॥ श्रीहरिः ॥

1897

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

1897

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध १ से ६ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६७ प्रथम संस्करण १०,०००

❖ **मूल्य—१५० रु०**

(एक सौ पचास रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५

(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)

फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७

e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

निवेदन

पुराणवाङ्मयमें 'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'का अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण पाँचवाँ है। शक्तिके उपासक इस पुराणको 'शाक्तभागवत' कहते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें मुख्य रूपसे परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उनकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही इस ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है, जिसके सम्यक् अवगाहनसे साधकों तथा भक्तोंका मन देवीके पद्मपरागका भ्रमर बनकर भक्तिमार्गका पथिक बन जाता है।

संसारमें सभी प्राणियोंके लिये मातृभावकी महती महिमा है। मानव अपनी सबसे अधिक श्रद्धा स्वाभाविक रूपसे माताके ही चरणोंमें अर्पित करता है; क्योंकि सर्वप्रथम माताकी ही गोदमें उसे लोक-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होता है, इसलिये माता ही सभी प्राणियोंकी आदिगुरुके रूपमें प्रतिष्ठित है। उसकी करुणा और कृपा बालकोंके लौकिक तथा पारलौकिक कल्याणका आधार है; इसीलिये 'मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव'—इन श्रुतिवाक्योंमें सबसे पहले माताका ही स्थान है। जो भगवती महाशक्तिस्वरूपिणी देवी तथा समष्टिस्वरूपिणी सम्पूर्ण जगत्की माता हैं, वे ही सम्पूर्ण लोकोंको कल्याणका मार्ग प्रदर्शित करनेवाली ज्ञानगुरुस्वरूपा भी हैं।

वास्तवमें महाशक्ति ही परब्रह्मके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, जो विभिन्न रूपोंमें अनेकविध लीलाएँ करती रहती हैं। उन्हींकी शक्तिसे ब्रह्मा विश्वका सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं, अत: ये ही जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली आदिनारायणी शक्ति हैं। ये ही महाशक्ति नौ दुर्गाओं तथा दस महाविद्याओंके रूपमें प्रतिष्ठित हैं और ये ही महाशक्ति देवी अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, कात्यायनी, ललिता तथा अम्बा हैं। गायत्री, भुवनेश्वरी, काली, तारा, बगला, षोडशी, त्रिपुरा, धूमावती, मातंगी, कमला, पद्मावती, दुर्गा आदि देवियाँ इन्हीं भगवतीके ही रूप हैं। ये ही शक्तिमती हैं और शक्ति हैं; नर हैं और नारी भी हैं; ये ही माता-धाता-पितामह आदि रूपसे अधिष्ठित हैं।

अभिप्राय यह है कि परमात्मस्वरूपिणी महाशक्ति ही विविध शक्तियोंके रूपमें सर्वत्र क्रीडा करती हैं—'शक्तिक्रीडा जगत् सर्वम्' सम्पूर्ण जगत् शक्तिकी क्रीडा (लीला) है। शक्तिसे रहित हो जाना ही शून्यता है।

शक्तिहीन मनुष्यका कहीं भी आदर नहीं किया जाता है। ध्रुव तथा प्रह्लाद भक्ति-शक्तिके कारण ही पूजित हैं। गोपिकाएँ प्रेमशक्तिके कारण ही जगत्में पूजनीय हुईं। हनुमान् तथा भीष्मकी ब्रह्मचर्यशक्ति; वाल्मीकि तथा व्यासकी कवित्वशक्ति; भीम तथा अर्जुनकी पराक्रमशक्ति; हरिश्चन्द्र तथा युधिष्ठिरकी सत्यशक्ति और शिवाजी तथा राणाप्रतापकी वीरशक्ति ही इन महात्माओंके प्रति श्रद्धा-समादर अर्पित करनेके लिये सभी लोगोंको प्रेरणा प्रदान करती है। सभी जगह शक्तिकी ही प्रधानता है। इसलिये प्रकारान्तरसे कहा जा सकता है कि 'सम्पूर्ण विश्व महाशक्तिका ही विलास है।' श्रीमद्देवीभागवतमें

भगवती स्वयं उद्‌घोष करती हैं 'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्।' अर्थात् समस्त जगत् मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी सनातन तत्त्व नहीं है।

वास्तवमें श्रीमद्देवीभागवतकी समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र पराम्बा भगवतीकी शरणमें जाना चाहिये। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि एवं शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनसे जीवमात्रके कल्याणमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय पराम्बा भगवतीकी करुणामयी कृपाको प्राप्त कर सकता है—इसके विधिवत् साधनोंको उपदेशपूर्ण इतिवृत्तों, कथानकोंके साथ इस पुराणमें प्रस्तुत किया गया है।

'श्रीमद्देवीभागवत' एवं 'श्रीमद्भागवत'—इन दोनोंमें महापुराणकी गणनामें किसे माना जाय? कभी-कभी यह प्रश्न उठता है। शास्त्रोंके अनुसार कल्पभेद कथाभेदका सुन्दर समाधान माना जाता है। इस कल्पभेदमें क्या होता है? देश, काल और अवस्थाका भेद है—ये तीनों भेद जड़प्रकृतिके हैं, चेतन संवित्‌में नहीं। कल्पभेदका एक अर्थ दर्शनभेद भी होता है। श्रीमद्भागवतका अपना दर्शन है और श्रीमद्देवीभागवतका अपना। दोनों ही दर्शन अपने-अपने स्थानपर सुप्रतिष्ठित हैं। श्रीमद्देवीभागवतका सम्बन्ध सारस्वतकल्पसे तथा श्रीमद्भागवतका सम्बन्ध पाद्मकल्पसे है।

'श्रीमद्देवीभागवतपुराण' के श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ तथा अन्तःकरणकी परिशुद्धि, पराम्बा भगवतीमें रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है, तदनुसार जीवनमें कर्तव्यका निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही जो जिज्ञासु शास्त्रमर्यादाके अनुसार अपना जीवनयापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन, सुन्दर एवं पवित्र जीवनयापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुराण जिज्ञासुओंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें पूर्णतः सहायक है।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत सन् १९६० ई०में कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। सुधीजनोंकी यह भावना थी कि भाषा-टीकासहित मूल श्रीमद्देवीभागवतका प्रकाशन किया जाय। इस दृष्टिसे पिछले दो वर्षों (सन् २००८ तथा २००९ ई०)-में सम्पूर्ण देवीभागवतमहापुराणका अनुवाद श्लोकसंख्यासहित कल्याणके विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया गया, इसके साथ ही मूल देवीभागवत भी पुस्तकरूपमें प्रकाशित की गयी। इस महापुराणका कलेवर बड़ा होनेके कारण विशेषाङ्कमें मूल और अर्थ—दोनों देना सम्भव नहीं था। अतः अब पुस्तकरूपमें भाषा-टीकासहित श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण दो भागोंमें प्रकाशित किया जा रहा है।

भक्तजनोंमें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा एवं पारायणके अनुष्ठानकी परम्परा भी है। इस दृष्टिसे श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि तथा सांगोपांग पूजा-अर्चन-हवनका विधान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही नवाह्न-पारायणके तिथिक्रमका भी उल्लेख किया गया है। आशा है साधकगण इससे लाभान्वित होंगे।

—राधेश्याम खेमका

◆

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय **विषय** **पृष्ठ-संख्या**

१-निवेदन ३
२-श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य १३
३-अर्धश्लोकी देवीभागवत १५
४-भवान्यष्टकम् १७
५-श्रीश्रीजगद्धात्री [चित्र] १८
६-श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि १९

माहात्म्य

१-सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणकी महिमाका कथन ३३
२-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें स्यमन्तकमणिकी कथा ३८
३-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुद्युम्नकी कथा ४५
४-श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें रेवती नक्षत्रके पतन और पुनः स्थापनकी कथा तथा श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे राजा दुर्दमको मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्ति..... ५१
५-श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम, श्रवणके फल तथा माहात्म्यका वर्णन . ५९

प्रथम स्कन्ध

१-महर्षि शौनकका सूतजीसे श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनानेकी प्रार्थना करना ... ६९
२-सूतजीद्वारा श्रीमद्देवीभागवतके स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकसंख्याका निरूपण और उसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन. ७१
३-सूतजीद्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोकसंख्याका कथन, उपपुराणों तथा प्रत्येक द्वापरयुगके व्यासोंका नाम ७५
४-नारदजीद्वारा व्यासजीको देवीकी महिमा बताना ७९
५-भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा...................... ८५
६-शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना...... ९६
७-ब्रह्माजीका भगवान् विष्णु तथा भगवती योगनिद्राकी स्तुति करना १००
८-भगवान् विष्णु योगमायाके अधीन क्यों हो गये—ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें सूतजीद्वारा उन्हें आद्याशक्ति भगवतीकी महिमा सुनाना................................ १०६
९-भगवान् विष्णुका मधु-कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करना, विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा मोहित मधु-कैटभका विष्णुद्वारा वध............ ११०
१०-व्यासजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति..... ११८
११-बुधके जन्मकी कथा १२१
१२-राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह और पुरूरवाकी उत्पत्ति, भगवतीकी स्तुति करनेसे इलारूपधारी राजा सुद्युम्नकी सायुज्यमुक्ति १२८
१३-राजा पुरूरवा और उर्वशीकी कथा १३३
१४-व्यासपुत्र शुकदेवके अरणिसे उत्पन्न होनेकी कथा तथा व्यासजीद्वारा उनसे गृहस्थधर्मका वर्णन १३६
१५-शुकदेवजीका विवाहके लिये अस्वीकार करना तथा व्यासजीका उनसे श्रीमद्देवीभागवत पढ़नेके लिये कहना १४२
१६-बालरूपधारी भगवान् विष्णुसे महालक्ष्मीका संवाद, व्यासजीका शुकदेवजीसे देवीभागवतप्राप्तिकी परम्परा बताना तथा शुकदेवजीका मिथिला जानेका निश्चय करना................................ १४८

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१७-शुकदेवजीका राजा जनकसे मिलनेके लिये मिथिलापुरीको प्रस्थान तथा राजभवनमें प्रवेश १५४
१८-शुकदेवजीके प्रति राजा जनकका उपदेश १६०
१९-शुकदेवजीका व्यासजीके आश्रममें वापस आना, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना तथा परम सिद्धिकी प्राप्ति करना........ १६५
२०-सत्यवतीका राजा शन्तनुसे विवाह तथा दो पुत्रोंका जन्म, राजा शन्तनुकी मृत्यु, चित्रांगदका राजा बनना तथा उसकी मृत्यु, विचित्रवीर्यका काशिराजकी कन्याओंसे विवाह और क्षयरोगसे मृत्यु, व्यासजीद्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति १७०

द्वितीय स्कन्ध

१-ब्राह्मणके शापसे अद्रिका अप्सराका मछली होना और उससे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति १७७
२-व्यासजीकी उत्पत्ति और उनका तपस्याके लिये जाना.................................... १८१
३-राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा १८५
४-गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, सात पुत्रोंका जन्म तथा गंगाका उन्हें अपने जलमें प्रवाहित करना, आठवें पुत्रके रूपमें भीष्मका जन्म तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा १९०
५-मत्स्यगन्धा (सत्यवती)-को देखकर राजा शन्तनुका मोहित होना, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा करना और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह १९५
६-दुर्वासाका कुन्तीको अमोघ कामद मन्त्र देना, मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णका जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, शापके कारण पाण्डुका सन्तानोत्पादनमें असमर्थ होना, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीका पुत्रवती होना, पाण्डुकी मृत्यु और पाँचों

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

पुत्रोंको लेकर कुन्तीका हस्तिनापुर आना २०१
७-धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे दुर्योधनके पिण्डदानहेतु धन माँगना, भीमसेनका प्रतिरोध; धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजयका वनके लिये प्रस्थान, वनवासी धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीसे मिलनेके लिये युधिष्ठिरका भाइयोंके साथ वनगमन, विदुरका महाप्रयाण, धृतराष्ट्रसहित पाण्डवोंका व्यासजीके आश्रमपर आना, देवीकी कृपासे व्यासजी-द्वारा महाभारतयुद्धमें मरे कौरवों-पाण्डवोंके परिजनोंको बुला देना...................... २०८
८-धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निमें जल जाना, प्रभासक्षेत्रमें यादवोंका परस्पर युद्ध और संहार, कृष्ण और बलरामका परमधामगमन, परीक्षित्‌को राजा बनाकर पाण्डवोंका हिमालयपर्वतपर जाना, परीक्षित्‌को शापकी प्राप्ति, प्रमद्वरा और रुरुका वृत्तान्त २१४
९-सर्पके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु, रुरुद्वारा अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कराना, मणि-मन्त्र-औषधिद्वारा सुरक्षित राजापरीक्षित्‌का सात तलवाले भवनमें निवास करना........ २१८
१०-महाराज परीक्षित्‌को डँसनेके लिये तक्षकका प्रस्थान, मार्गमें मन्त्रवेत्ता कश्यपसे भेंट, तक्षकका एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर देना और कश्यपका उसे पुनः हरा-भरा कर देना, तक्षकद्वारा धन देकर कश्यपको वापस कर देना, सर्पदंशसे राजा परीक्षित्‌की मृत्यु...................... २२२
११-जनमेजयका राजा बनना और उत्तंककी प्रेरणासे सर्प-सत्र करना, आस्तीकके कहनेसे राजाद्वारा सर्प-सत्र रोकना...... २२८
१२-आस्तीकमुनिके जन्मकी कथा, कद्रू और विनताद्वारा सूर्यके घोड़ेके रंगके विषयमें शर्त लगाना और विनताको दासीभावकी प्राप्ति, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप..... २३४

तृतीय स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	राजा जनमेजयका ब्रह्माण्डोत्पत्तिविषयक प्रश्न तथा इसके उत्तरमें व्यासजीका पूर्वकालमें नारदजीके साथ हुआ संवाद सुनाना	२४१
२-	भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन	२४५
३-	ब्रह्मा, विष्णु और महेशका विभिन्न लोकोंमें जाना तथा अपने ही सदृश अन्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर आश्चर्यचकित होना, देवीलोकका दर्शन	२४९
४-	भगवतीके चरणनखमें त्रिदेवोंको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन होना, भगवान् विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति करना	२५५
५-	ब्रह्मा और शिवजीका भगवतीकी स्तुति करना	२६०
६-	भगवती जगदम्बिकाद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा 'महासरस्वती', 'महालक्ष्मी' और 'महाकाली' नामक अपनी शक्तियोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवको प्रदान करना	२६६
७-	ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन; सात्त्विक, राजस और तामस शक्तिका वर्णन; पंचतन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा पंचीकरण-क्रियाद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन	२७४
८-	सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन	२७८
९-	गुणोंके परस्पर मिश्रीभावका वर्णन, देवीके बीजमन्त्रकी महिमा	२८३
१०-	देवीके बीजमन्त्रकी महिमाके प्रसंगमें सत्यव्रतका आख्यान	२८७
११-	सत्यव्रतद्वारा बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण तथा उससे प्रसन्न होकर भगवतीका सत्यव्रतको समस्त विद्याएँ प्रदान करना	२९३
१२-	सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंका वर्णन; मानसयज्ञकी महिमा और व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको देवी-यज्ञके लिये प्रेरित करना	२९९
१३-	देवीकी आधारशक्तिसे पृथ्वीका अचल होना तथा उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना, ब्रह्माजीद्वारा मरीचि आदिकी मानसी सृष्टि करना, काश्यपी सृष्टिका वर्णन; ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदिका निर्माण; भगवान् विष्णुद्वारा अम्बायज्ञ करना और प्रसन्न होकर भगवती आद्याशक्तिद्वारा आकाशवाणीके माध्यमसे उन्हें वरदान देना	३०६
१४-	देवीमाहात्म्यसे सम्बन्धित राजा ध्रुवसन्धिकी कथा, ध्रुवसन्धिकी मृत्युके बाद राजा युधाजित् और वीरसेनका अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें विवाद	३११
१५-	राजा युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, राजा ध्रुवसन्धिकी रानी मनोरमाका अपने पुत्र सुदर्शनको लेकर भारद्वाजमुनिके आश्रममें जाना तथा वहीं निवास करना	३१६
१६-	युधाजित्का भारद्वाजमुनिके आश्रमपर आना और उनसे मनोरमाको भेजनेका आग्रह करना, प्रत्युत्तरमें मुनिका 'शक्ति हो तो ले जाओ'—ऐसा कहना	३२२
१७-	युधाजित्का अपने प्रधान अमात्यसे परामर्श करना, प्रधान अमात्यका इस सन्दर्भमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-प्रसंग सुनाना और परामर्श मानकर युधाजित्का वापस लौट जाना, बालक सुदर्शनको दैवयोगसे कामराज नामक बीजमन्त्रकी प्राप्ति, भगवतीकी आराधनासे सुदर्शनको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होना तथा काशिराजकी कन्या शशिकलाको स्वप्नमें भगवतीद्वारा सुदर्शनका वरण करनेका आदेश देना	३२८
१८-	राजकुमारी शशिकलाद्वारा मन-ही-मन सुदर्शनका वरण करना, काशिराजद्वारा स्वयंवरकी घोषणा, शशिकलाका सखीके माध्यमसे अपना निश्चय माताको बताना	३३३

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१९-माताका शशिकलाको समझाना, शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना, सुदर्शन तथा अन्य राजाओंका स्वयंवरमें आगमन, युधाजित्द्वारा सुदर्शनको मार डालनेकी बात कहनेपर केरलनरेशका उन्हें समझाना .. ३३८
२०-राजाओंका सुदर्शनसे स्वयंवरमें आनेका कारण पूछना और सुदर्शनका उन्हें स्वप्नमें भगवतीद्वारा दिया गया आदेश बताना, राजा सुबाहुका शशिकलाको समझाना, परंतु उसका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना ३४४
२१-राजा सुबाहुका राजाओंसे अपनी कन्याकी इच्छा बताना, युधाजित्का क्रोधित होकर सुबाहुको फटकारना तथा अपने दौहित्रसे शशिकलाका विवाह करनेको कहना, माताद्वारा शशिकलाको पुनः समझाना, किंतु शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना ३५०
२२-शशिकलाका गुप्त स्थानमें सुदर्शनके साथ विवाह, विवाहकी बात जानकर राजाओंका सुबाहुके प्रति क्रोध प्रकट करना तथा सुदर्शनका मार्ग रोकनेका निश्चय करना ३५६
२३-सुदर्शनका शशिकलाके साथ भारद्वाज-आश्रमके लिये प्रस्थान, युधाजित् तथा अन्य राजाओंसे सुदर्शनका घोर संग्राम, भगवती सिंहवाहिनी दुर्गाका प्राकट्य, भगवतीद्वारा युधाजित् और शत्रुजित्का वध, सुबाहुद्वारा भगवतीकी स्तुति ३६१
२४-सुबाहुद्वारा भगवती दुर्गासे सदा काशीमें रहनेका वरदान माँगना तथा देवीका वरदान देना, सुदर्शनद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीका उसे अयोध्या जाकर राज्य करनेका आदेश देना, राजाओंका सुदर्शनसे अनुमति लेकर अपने-अपने राज्योंको प्रस्थान ... ३६७
२५-सुदर्शनका शत्रुजित्की माताको सान्त्वना देना, सुदर्शनद्वारा अयोध्यामें तथा राजा सुबाहुद्वारा काशीमें देवी दुर्गाकी स्थापना ३७१
२६-नवरात्रव्रत-विधान, कुमारीपूजामें प्रशस्त कन्याओंका वर्णन ३७५
२७-कुमारीपूजामें निषिद्ध कन्याओंका वर्णन, नवरात्रव्रतके माहात्म्यके प्रसंगमें सुशील नामक वणिक्की कथा ३८०
२८-श्रीरामचरित्रवर्णन ३८६
२९-सीताहरण, रामका शोक और लक्ष्मणद्वारा उन्हें सान्त्वना देना ३९२
३०-श्रीराम और लक्ष्मणके पास नारदजीका आना और उन्हें नवरात्रव्रत करनेका परामर्श देना, श्रीरामके पूछनेपर नारदजीका उनसे देवीकी महिमा और नवरात्रव्रतकी विधि बतलाना, श्रीरामद्वारा देवीका पूजन और देवीद्वारा उन्हें विजयका वरदान देना ... ३९७

चतुर्थ स्कन्ध

१- वसुदेव, देवकी आदिके कष्टोंके कारणके सम्बन्धमें जनमेजयका प्रश्न.............. ४०३
२- व्यासजीका जनमेजयको कर्मकी प्रधानता समझाना.................................... ४०७
३- वसुदेव और देवकीके पूर्वजन्मकी कथा ४१२
४- व्यासजीद्वारा जनमेजयको मायाकी प्रबलता समझाना........................... ४१७
५- नर-नारायणकी तपस्यासे चिन्तित होकर इन्द्रका उनके पास जाना और मोहिनी माया प्रकट करना तथा उससे भी अप्रभावित रहनेपर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंको भेजना....................................... ४२१
६- कामदेवद्वारा नर-नारायणके समीप वसन्त ऋतुकी सृष्टि, नारायणद्वारा उर्वशीकी उत्पत्ति, अप्सराओंद्वारा नारायणसे स्वयंको अंगीकार करनेकी प्रार्थना................. ४२५
७- अप्सराओंके प्रस्तावसे नारायणके मनमें ऊहापोह और नरका उन्हें समझाना तथा अहंकारके कारण प्रह्लादके साथ हुए युद्धका स्मरण कराना ४३१

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

८- व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको प्रह्लादकी कथा सुनाना और इस प्रसंगमें च्यवनऋषिके पाताललोक जानेका वर्णन ४३६

९- प्रह्लादजीका तीर्थयात्राके क्रममें नैमिषारण्य पहुँचना और वहाँ नर-नारायणसे उनका घोर युद्ध, भगवान् विष्णुका आगमन और उनके द्वारा प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय देना ४४०

१०-राजा जनमेजयद्वारा प्रह्लादके साथ नर-नारायणके युद्धका कारण पूछना, व्यासजीद्वारा उत्तरमें संसारके मूल कारण अहंकारका निरूपण करना तथा महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुको शाप देनेकी कथा ४४५

११-मन्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये शुक्राचार्यका तपस्यारत होना, देवताओंद्वारा दैत्योंपर आक्रमण, शुक्राचार्यकी माताद्वारा दैत्योंकी रक्षा और इन्द्र तथा विष्णुको संज्ञाशून्य कर देना, विष्णुद्वारा शुक्रमाताका वध.. ४५०

१२-महात्मा भृगुद्वारा विष्णुको मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप देना, इन्द्रद्वारा अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके लिये अर्पित करना, देवगुरु बृहस्पतिद्वारा शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंका पुरोहित बनना ४५५

१३-शुक्राचार्यरूपधारी बृहस्पतिका दैत्योंको उपदेश देना................................. ४६०

१४-शुक्राचार्यद्वारा दैत्योंको बृहस्पतिका पाखण्डपूर्ण कृत्य बताना, बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्योंका उन्हें फटकारना, क्रुद्ध शुक्राचार्यका दैत्योंको शाप देना, बृहस्पतिका अन्तर्धान हो जाना, प्रह्लादका शुक्राचार्यजीसे क्षमा माँगना और शुक्राचार्यका उन्हें प्रारब्धकी बलवत्ता समझाना ४६६

१५-देवता और दैत्योंके युद्धमें दैत्योंकी विजय, इन्द्रद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीका प्रकट होकर दैत्योंके पास जाना, प्रह्लादद्वारा भगवतीकी स्तुति, देवीके आदेशसे दैत्योंका पातालगमन..................... ४७१

१६-भगवान् श्रीहरिके विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन ४७८

१७-श्रीनारायणद्वारा अप्सराओंको वरदान देना, राजा जनमेजयद्वारा व्यासजीसे श्रीकृष्णावतारका चरित सुनानेका निवेदन करना ४८१

१८-पापभारसे व्यथित पृथ्वीका देवलोक जाना, इन्द्रका देवताओं और पृथ्वीके साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्माजीका पृथ्वी तथा इन्द्रादि देवताओंसहित विष्णुलोक जाकर विष्णुकी स्तुति करना, विष्णुद्वारा अपनेको भगवतीके अधीन बताना....... ४८५

१९-देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन, भगवतीद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर अपनी शक्तिसे पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन देना ४९०

२०-व्यासजीद्वारा जनमेजयको भगवतीकी महिमा सुनाना तथा कृष्णावतारकी कथाका उपक्रम ४९५

२१-देवकीके प्रथम पुत्रका जन्म, वसुदेवद्वारा प्रतिज्ञानुसार उसे कंसको अर्पित करना और कंसद्वारा उस नवजात शिशुका वध ५०३

२२-देवकीके छः पुत्रोंके पूर्वजन्मकी कथा, सातवें पुत्रके रूपमें भगवान् संकर्षणका अवतार, देवताओं तथा दानवोंके अंशावतारोंका वर्णन ५०७

२३-कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीका उन्हें गोकुल पहुँचाना और वहाँसे योगमायास्वरूपा कन्याको लेकर आना, कंसद्वारा कन्याके वधका प्रयास, योगमायाद्वारा आकाशवाणी करनेपर कंसका अपने सेवकोंद्वारा नवजात शिशुओंका वध कराना ५१२

२४-श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा, कृष्णपुत्रका

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

प्रसूतिगृहसे हरण, कृष्णद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवती चण्डिकाद्वारा सोलह वर्षके बाद पुनः पुत्रप्राप्तिका वर देना ५१७
२५-व्यासजीद्वारा शाम्भवी मायाकी बलवत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीद्वारा उन्हें वरदान देना ५२३

पंचम स्कन्ध

१- व्यासजीद्वारा त्रिदेवोंकी तुलनामें भगवतीकी उत्तमताका वर्णन ५३१
२- महिषासुरके जन्म, तप और वरदान-प्राप्तिकी कथा ५३६
३- महिषासुरका दूत भेजकर इन्द्रको स्वर्ग खाली करनेका आदेश देना, दूतद्वारा इन्द्रका युद्धहेतु आमन्त्रण प्राप्तकर महिषासुरका दानववीरोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेका आदेश देना ५४१
४- इन्द्रका देवताओं तथा गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करना तथा बृहस्पतिद्वारा जय-पराजयमें दैवकी प्रधानता बतलाना ५४६
५- इन्द्रका ब्रह्मा, शिव और विष्णुके पास जाना; तीनों देवताओंसहित इन्द्रका युद्धस्थलमें आना तथा चिक्षुर, बिडाल और ताम्रको पराजित करना ५५१
६- भगवान् विष्णु और शिवके साथ महिषासुरका भयानक युद्ध............... ५५६
७- महिषासुरको अवध्य जानकर त्रिदेवोंका अपने-अपने लोक लौट जाना, देवताओंकी पराजय तथा महिषासुरका स्वर्गपर आधिपत्य, इन्द्रका ब्रह्मा और शिवजीके साथ विष्णुलोकके लिये प्रस्थान ५६१
८- ब्रह्माप्रभृति समस्त देवताओंके शरीरसे तेजःपुंजका निकलना और उस तेजोराशिसे भगवतीका प्राकट्य ५६६
९- देवताओंद्वारा भगवतीको आयुध और आभूषण समर्पित करना तथा उनकी स्तुति करना, देवीका प्रचण्ड अट्टहास करना, जिसे सुनकर महिषासुरका उद्विग्न होकर अपने प्रधान अमात्यको देवीके पास भेजना... ५७३
१०-देवीद्वारा महिषासुरके अमात्यको अपना उद्देश्य बताना तथा अमात्यका वापस लौटकर देवीद्वारा कही गयी बातें महिषासुरको बताना........................ ५७९
११-महिषासुरका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करना और ताम्रको भगवतीके पास भेजना................................ ५८५
१२-देवीके अट्टहाससे भयभीत होकर ताम्रका महिषासुरके पास भाग आना, महिषासुरका अपने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार-विमर्श तथा दुर्धर, दुर्मुख और बाष्कलकी गर्वोक्ति ५९१
१३-बाष्कल और दुर्मुखका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध ५९७
१४-चिक्षुर और ताम्रका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध ६०२
१५-बिडालाख्य और असिलोमाका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध ६०७
१६-महिषासुरका रणभूमिमें आना तथा देवीसे प्रणय-याचना करना ६१२
१७-महिषासुरका देवीको मन्दोदरी नामक राजकुमारीका आख्यान सुनाना........... ६१८
१८-दुर्धर, त्रिनेत्र, अन्धक और महिषासुरका वध ६२३
१९-देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति ६२९
२०-देवीका मणिद्वीप पधारना तथा राजा शत्रुघ्नका भूमण्डलाधिपति बनना ६३५
२१-शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय ६४०
२२-देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और उनका प्राकट्य ६४६
२३-भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य,

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

देवीकी कालिकारूपमें परिणति, चण्ड-मुण्डसे देवीके अद्भुत सौन्दर्यको सुनकर शुम्भका सुग्रीवको दूत बनाकर भेजना, जगदम्बाका विवाहके विषयमें अपनी शर्त बताना ६५२

२४-शुम्भका धूम्रलोचनको देवीके पास भेजना और धूम्रलोचनका देवीको समझानेका प्रयास करना ६५७

२५-भगवती काली और धूम्रलोचनका संवाद, कालीके हुंकारसे धूम्रलोचनका भस्म होना तथा शुम्भका चण्ड-मुण्डको युद्धहेतु प्रस्थानका आदेश देना ६६३

२६-भगवती अम्बिकासे चण्ड-मुण्डका संवाद और युद्ध, देवी कालिकाद्वारा चण्ड-मुण्डका वध ६६८

२७-शुम्भका रक्तबीजको भगवती अम्बिकाके पास भेजना और उसका देवीसे वार्तालाप ६७४

२८-देवीके साथ रक्तबीजका युद्ध, विभिन्न शक्तियोंके साथ भगवान् शिवका रणस्थलमें आना तथा भगवतीका उन्हें दूत बनाकर शुम्भके पास भेजना, भगवान् शिवके सन्देशसे दानवोंका क्रुद्ध होकर युद्धके लिये आना ६८०

२९-रक्तबीजका वध और निशुम्भका युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान ६८५

३०-देवीद्वारा निशुम्भका वध ६९१

३१-शुम्भका रणभूमिमें आना और देवीसे वार्तालाप करना, भगवती कालिकाद्वारा उसका वध, देवीके इस उत्तम चरित्रके पठन और श्रवणका फल ६९७

३२-देवीमाहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा ७०३

३३-मुनि सुमेधाका सुरथ और समाधिको देवीकी महिमा बताना ७०९

३४-मुनि सुमेधाद्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन ७१४

३५-सुरथ और समाधिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवतीका प्रकट होना और उन्हें इच्छित वरदान देना ७१८

षष्ठ स्कन्ध

१- त्रिशिराकी तपस्यासे चिन्तित इन्द्रद्वारा तपभंगहेतु अप्सराओंको भेजना ७२३

२- इन्द्रद्वारा त्रिशिराका वध, क्रुद्ध त्वष्टाद्वारा अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करके वृत्रासुरको उत्पन्न करना और उसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित करना ७२८

३- वृत्रासुरका देवलोकपर आक्रमण, बृहस्पतिद्वारा इन्द्रकी भर्त्सना करना और वृत्रासुरको अजेय बतलाना, इन्द्रकी पराजय, त्वष्टाके निर्देशसे वृत्रासुरका ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यारत होना............ ७३२

४- तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीका वृत्रासुरको वरदान देना, त्वष्टाकी प्रेरणासे वृत्रासुरका स्वर्गपर आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेना, इन्द्रका पितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकरके साथ वैकुण्ठधाम जाना ७३७

५- भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे देवताओंका भगवतीकी स्तुति करना और प्रसन्न होकर भगवतीका वरदान देना ७४३

६- भगवान् विष्णुका इन्द्रको वृत्रासुरसे सन्धिका परामर्श देना, ऋषियोंकी मध्यस्थतासे इन्द्र और वृत्रासुरमें सन्धि, इन्द्रद्वारा छलपूर्वक वृत्रासुरका वध...... ७४९

७- त्वष्टाका वृत्रासुरकी पारलौकिक क्रिया करके इन्द्रको शाप देना, इन्द्रको ब्रह्महत्या लगना, नहुषका स्वर्गाधिपति बनना और इन्द्राणीपर आसक्त होना.................. ७५४

८- इन्द्राणीको बृहस्पतिकी शरणमें जानकर नहुषका क्रुद्ध होना, देवताओंका नहुषको समझाना, बृहस्पतिके परामर्शसे इन्द्राणीका नहुषसे समय माँगना, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास जाना और विष्णुका उन्हें देवीको प्रसन्न करनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेको कहना, बृहस्पतिका शचीको

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

भगवतीकी आराधना करनेको कहना, शचीकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीका प्रकट होना और शचीको इन्द्रका दर्शन होना ७५९
९- शचीका इन्द्रसे अपना दु:ख कहना, इन्द्रका शचीको सलाह देना कि वह नहुषसे ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें आनेको कहे, नहुषका ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें सवार होना और शापित होकर सर्प होना तथा इन्द्रका पुनः स्वर्गाधिपति बनना.................... ७६५
१०-कर्मकी गहन गतिका वर्णन तथा इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका उदाहरण ७७१
११-युगधर्म एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थाका वर्णन ७७४
१२-पवित्र तीर्थोंका वर्णन, चित्तशुद्धिकी प्रधानता तथा इस सम्बन्धमें विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर वैरकी कथा, राजा हरिश्चन्द्रका वरुणदेवके शापसे जलोदरग्रस्त होना ७७९
१३-राजा हरिश्चन्द्रका शुन:शेपको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करना, विश्वामित्रसे प्राप्त वरुणमन्त्रके जपसे शुन:शेपका मुक्त होना, परस्पर शापसे विश्वामित्र और वसिष्ठका बक तथा आडी होना ७८४
१४-राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेको शाप देना, वसिष्ठका मित्रावरुणके पुत्रके रूपमें जन्म लेना ७८९
१५-भगवतीकी कृपासे निमिको मनुष्योंके नेत्र-पलकोंमें वासस्थान मिलना तथा संसारी प्राणियोंकी त्रिगुणात्मकताका वर्णन...... ७९४
१६-हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार.. ७९९
१७-भगवतीकी कृपासे भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति, हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिकी कथा .. ८०३
१८-भगवती लक्ष्मीद्वारा घोड़ीका रूप धारणकर तपस्या करना ८०९

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१९-भगवती लक्ष्मीको अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुके दर्शन और उनका वैकुण्ठगमन ८१४
२०-राजा हरिवर्माको भगवान् विष्णुद्वारा अपना हैहयसंज्ञक पुत्र देना, राजाद्वारा उसका 'एकवीर' नाम रखना ८१९
२१-आखेटके लिये वनमें गये राजासे एकावलीकी सखी यशोवतीकी भेंट, एकावलीके जन्मकी कथा ८२४
२२-यशोवतीका एकवीरसे कालकेतुद्वारा एकावलीके अपहृत होनेकी बात बताना ८२९
२३-भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षितएकवीर-कालकेतुका वध, एकवीर और एकावलीका विवाह तथा हैहयवंशकीपरम्परा ८३५
२४-धृतराष्ट्रके जन्मकी कथा ८४१
२५-पाण्डु और विदुरके जन्मकी कथा, पाण्डवोंका जन्म, पाण्डुकी मृत्यु, द्रौपदीस्वयंवर, राजसूययज्ञ, कपटद्यूत तथा वनवास और व्यासजीके मोहका वर्णन................. ८४६
२६-देवर्षि नारद और पर्वतमुनिका एक-दूसरेको शाप देना, राजकुमारी दमयन्तीका नारदसे विवाह करनेका निश्चय ८५१
२७-वानरमुख नारदसे दमयन्तीका विवाह, नारद तथा पर्वतका परस्पर शापमोचन ८५६
२८-भगवान् विष्णुका नारदजीसे मायाकी अजेयताका वर्णन करना, मुनि नारदको मायावश स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा राजा तालध्वजका उनसे प्रणय-निवेदन करना ८६१
२९-राजा तालध्वजसे स्त्रीरूपधारी नारदजीका विवाह, अनेक पुत्र-पौत्रोंकी उत्पत्ति और युद्धमें उन सबकी मृत्यु, नारदजीका शोक और भगवान् विष्णुकी कृपासे पुनः स्वरूपबोध ८६६
३०-राजा तालध्वजका विलाप और ब्राह्मण-वेशधारी भगवान् विष्णुके प्रबोधनसे उन्हें वैराग्य होना, भगवान् विष्णुका नारदसे मायाके प्रभावका वर्णन करना ८७१
३१-व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना..................... ८७६

* * *

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥

श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥

पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥

यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥

सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः।
देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥

अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्।
देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्।
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥

दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च।
यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥

तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका।
यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥

तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः।
यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं
निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या
स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है। जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है। जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवतपुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है। अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है। सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है। जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता, इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये। पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती। समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक् रूपसे श्रवण नहीं कर लेते। मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता। मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाता। इस संसारमें जो मनुष्य विशेष श्रद्धाके साथ उच्च विचारोंसे युक्त होकर सम्पूर्ण पुराणोंके सारस्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करता है तथा इसका भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, वह ऐश्वर्य तथा ज्ञानसे सम्पन्न हो जाता है।

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥

मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते।
समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥

पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय।
पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥

नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥

अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना।
श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥

यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति।
तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥

नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः।
ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥

मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः।
शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥

प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः।
एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥

नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः।
तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥

वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा।
सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥

पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये।
वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः।
वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥

[महर्षि व्यासने राजा जनमेजयसे कहा—] महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है। हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूलप्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है? हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। **[श्रीसूतजी मुनियोंसे बोले—]** जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है। जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्या-विधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है। शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं। वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। **[श्रीमद्देवीभागवत]**

◆

अर्धश्लोकी देवीभागवत

जिस प्रकार सप्तश्लोकी दुर्गा[1], सप्तश्लोकी गीता[2], पंचश्लोकी गणेशपुराण,[3] चतु:श्लोकी भागवत,[4] एकश्लोकी भागवत[5], एकश्लोकी रामायण[6], एकश्लोकी योगवासिष्ठ[7], सार्धश्लोकी दुर्गा[8] तथा एकश्लोकी महाभारत[9] प्राप्त होता है; उसी प्रकार अर्धश्लोकी देवीभागवत भी प्राप्त होता है, जो तात्त्विक दृष्टिसे बड़े ही महत्त्वका है। पुराण-वाङ्मयमें देवीभागवतका अत्यन्त महनीय स्थान है। इसमें भगवती जगदम्बाका पराशक्तिके रूपमें निरूपण हुआ है। इस पुराणके प्राकट्यके विषयमें इसी पुराणमें बताया गया है कि जब भगवान् वेदव्यासने अपने पुत्र श्रीशुकदेवजीको गृहस्थाश्रम ग्रहण करनेका परामर्श दिया तो ज्ञानमार्गके उपासक श्रीशुकदेवजीने प्रवृत्तिमार्गको स्वीकार नहीं किया, तब वेदव्यासजीने मोक्षमार्गाभिलाषी अपने पुत्रसे कहा—हे महाभाग! तुम मेरे द्वारा रचित वेदतुल्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणको पढ़ो, इसमें बारह स्कन्ध हैं, यह पुराण सभी पुराणोंका आभूषण है और इसके सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है—**'सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते।'** (श्रीमद्देवीभा० १।१५।४९) व्यासजीने इस पुराणके प्राकट्यकी कथा बताते हुए आगे कहा—हे महामते! एक समयकी बात है, जब महाप्रलयावस्थामें एकार्णवके मध्य वटपत्रपर भगवान्, विष्णु बालरूपमें शयन कर रहे थे और बड़े ही विचारमग्न थे कि किस चिदात्मा शक्तिने मुझे इस बालरूपमें उत्पन्न किया है, मैं उन्हें कैसे जानूँ? उसी समय आदिशक्ति भगवतीने आकाशवाणीके रूपमें आधे श्लोकमें ही सम्पूर्ण अर्थको प्रदान करनेवाले ज्ञानको बताते हुए कहा—

'सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥'

(श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२)

अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है।

भगवान् बालमुकुन्द सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया, उस कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ, वह स्त्री है या पुरुष? तब उन्होंने उस श्लोकार्धरूपी भागवतको अपने हृदयमें धारण कर लिया। वे उसके अर्थपर चिन्तन करने लगे और बार-बार उसका उच्चारण करने लगे। बालमुकुन्दको चिन्तातुर देखकर उसी समय भगवती पराशक्ति शंख, चक्र धारण किये चतुर्भुजा महादेवीके रूपमें अपनी सखियोंसहित

---

[1] 'ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि०' इत्यादि सात श्लोक।

[2] 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म०' इत्यादि सात श्लोक।

[3] श्रीविघ्नेशपुराणसारमुदितम्० इत्यादि पाँच श्लोक।

[4] अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्। पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥
ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि। तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु। प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः। अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥
(श्रीमद्भा० २।९।३२—३५)

[5] आदौ देवकिदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्धनम् मायापूतनजीवतापहरणं गोवर्धनोद्धारणम्।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनम् एतद् भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम्॥

[6] आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम्।
वालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धि रामायणम्॥

[7] तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः। स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति॥

[8] मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्। शक्रादिस्तुतिकं चैव दूतसंवाद एव च॥
शुम्भराजवधश्चैव नारायणीस्तुतिस्तथा। सार्धपाठमिदं प्रोक्तं नवपाठफलप्रदम्॥

[9] आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनं द्यूते श्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालये वर्तनम्।
लीलागोग्रहणं रणे विहरणं सन्धिक्रियाजृम्भणं पश्चाद् भीष्मसुयोधनादिहननं चैतन्महाभारतम्॥

वहाँ प्रकट हो गयीं, वे दिव्य वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं और उनका स्वरूप बड़ा ही शान्त था। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं।

उनका दर्शनकर भगवान् विष्णु बड़े ही विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने पूछा हे देवि! कुछ समय पूर्व मैंने जो आधा श्लोक सुना, वह परम रहस्यमय वचन किसने कहा था, मुझे बतानेकी कृपा करें। इसपर देवीने कहा—मैं सगुणरूपा चतुर्भुजा भगवती हूँ। सब गुणोंका आलय होते हुए मैं निर्गुणा भी हूँ। वह आधा श्लोक निर्गुणा पराशक्तिने ही कहा था, आप इसे सब वेदोंका तत्त्वस्वरूप, कल्याणकारी और पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत समझिये। **'पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम्।'** (श्रीमद्देवीभा० १।१६।१५) आप इसे सदा अपने चित्तमें रखिये और कभी विस्मृत न कीजिये। यह सब शास्त्रोंका सार है तथा भगवती महाविद्याके द्वारा प्रकाशित किया गया है। तीनों लोकोंमें इससे बढ़कर अन्य कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् विष्णुने वह श्लोकार्ध—देवीभागवतरूपी मन्त्र अपने हृदयदेशमें सदाके लिये धारण कर लिया। कुछ समय बाद जब ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे डरकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये तो भगवान्‌को ध्यानमें स्थित होकर मन्त्र-जप करते हुए देखकर ब्रह्माजी बोले—हे देवेश! आप किस देवताका जप कर रहे हैं, आपसे भी बढ़कर कोई है क्या? तब विष्णुजी बोले—हे महाभाग! हम सभीमें जो कार्यकारणरूपा शक्ति विद्यमान है, जिनके द्वारा यह संसार पालित-पोषित और तिरोहित किया जाता है, वे ही सनातनी पराविद्या हैं, वे ही सभी ईश्वरोंकी भी स्वामिनी हैं। उन भगवतीने आधे श्लोकमें जो कहा, वही वास्तविक श्रीमद्देवीभागवत है। प्रत्येक द्वापरयुगमें उसीका विस्तार होगा—

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल।
विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा॥

(श्रीमद्देवीभा० १।१६।२९)

इतना कहनेके अनन्तर व्यासजीने शुकदेवजीसे फिर कहा—हे महाभाग! तब ब्रह्माजीने उस भागवतका संग्रह किया और उन्होंने इसे अपने पुत्र नारदजीको सुनाया। पूर्वकालमें वही भागवत देवर्षि नारदजीने मुझे दिया और फिर मैंने इसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत किया। हे पुत्र! यह पुराण वेदतुल्य है; सर्ग, प्रतिसर्ग आदि पाँच लक्षणोंसे युक्त है तथा भगवतीके उत्तम चरित्रोंसे ओत-प्रोत है। यह तत्त्वज्ञानके रससे परिपूर्ण, वेदार्थका उपबृंहण करनेवाला, ब्रह्मविद्याका निधान एवं भवसागरसे पार करनेवाला है। यह पुराण अत्यन्त पुण्यप्रद है। तुम इसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो। यह पुराण पाठ तथा श्रवण करनेवालेके लिये अज्ञानका नाश करनेवाला, दिव्य, ज्ञानरूपी सूर्यका बोध करानेवाला, सुखप्रद, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, कल्याणकारी तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है—

गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः।
पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ॥
अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम्।
अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम्॥
सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरं शिवम्।
शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥

(श्रीमद्देवीभा० १।१६।३५—३७)

इस प्रकार वेदव्यासजीके द्वारा प्रेरित किये जानेपर व्यासजीके शिष्य सूतजीने तथा श्रीशुकदेवजीने श्लोकार्धसे विस्तृत हुए श्रीमद्देवीभागवतपुराणका अध्ययन किया।

भगवतीकी कृपासे भगवान् बालमुकुन्दको जो आधे श्लोकमें देवीभागवत प्राप्त हुआ, उसे ब्रह्माजीने ग्रहण किया और फिर उसीको व्यासजीने बारह स्कन्धोंमें विस्तृत किया,* वही देवीभागवत हम सबको प्राप्त हुआ। यह भगवती आदिशक्ति तथा भगवान् वेदव्यासजीका जीवोंपर महान् अनुग्रह है।

◆

---

* अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम्। श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम्॥
उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने। शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा॥
तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे। अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १२।१४।१—३)

भवान्यष्टकम्

न तातो न माता न बन्धुर्न दाता
न पुत्रो न पुत्री न भृत्यो न भर्ता।
न जाया न विद्या न वृत्तिर्ममैव
गतिस्त्वं गतिस्त्वं त्वमेका भवानि॥ १॥

भवाब्धावपारे महादुःखभीरुः
पपात प्रकामी प्रलोभी प्रमत्तः।
कुसंसारपाशप्रबद्धः सदाहं। गतिस्त्वं०॥ २॥

न जानामि दानं न च ध्यानयोगं
न जानामि तन्त्रं न च स्तोत्रमन्त्रम्।
न जानामि पूजां न च न्यासयोगं। गतिस्त्वं०॥ ३॥

न जानामि पुण्यं न जानामि तीर्थं
न जानामि मुक्तिं लयं वा कदाचित्।
न जानामि भक्तिं व्रतं वापि मातर्गतिस्त्वं०॥ ४॥

कुकर्मी कुसङ्गी कुबुद्धिः कुदासः
कुलाचारहीनः कदाचारलीनः।
कुदृष्टिः कुवाक्यप्रबन्धः सदाहं। गतिस्त्वं०॥ ५॥

प्रजेशं रमेशं महेशं सुरेशं
दिनेशं निशीथेश्वरं वा कदाचित्।
न जानामि चान्यत् सदाहं शरण्ये। गतिस्त्वं०॥ ६॥

विवादे विषादे प्रमादे प्रवासे
जले चानले पर्वते शत्रुमध्ये।
अरण्ये शरण्ये सदा मां प्रपाहि । गतिस्त्वं०॥ ७॥

अनाथो दरिद्रो जरारोगयुक्तो
महाक्षीणदीनः सदा जाड्यवक्त्रः।
विपत्तौ प्रविष्टः प्रणष्टः सदाहं । गतिस्त्वं०॥ ८॥

हे भवानि! पिता, माता, भाई, दाता, पुत्र, पुत्री, भृत्य, स्वामी, स्त्री, विद्या और वृत्ति—इनमेंसे कोई भी मेरा नहीं है, हे देवि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ १॥

मैं अपार भवसागरमें पड़ा हुआ हूँ, महान् दुःखोंसे भयभीत हूँ; कामी, लोभी, मतवाला तथा संसारके घृणित बन्धनोंमें बँधा हुआ हूँ, हे भवानि! अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ २॥

हे भवानि! मैं न तो दान देना जानता हूँ और न ध्यानमार्गका ही मुझे पता है, तन्त्र और स्तोत्र-मन्त्रोंका भी मुझे ज्ञान नहीं है, पूजा तथा न्यास आदिकी क्रियाओंसे तो मैं एकदम कोरा हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ३॥

न मैं पुण्य जानता हूँ न तीर्थ, न मुक्तिका पता है न लयका। हे मातः! भक्ति और व्रत भी मुझे ज्ञात नहीं है, हे भवानि! अब केवल तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ४॥

मैं कुकर्मी, बुरी संगतिमें रहनेवाला, दुर्बुद्धि, दुष्टदास, कुलोचित सदाचारसे हीन, दुराचारपरायण, कुत्सित दृष्टि रखनेवाला और सदा दुर्वचन बोलनेवाला हूँ, हे भवानि! मुझ अधमकी एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ५॥

मैं ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा तथा अन्य किसी भी देवताको नहीं जानता, हे शरण देनेवाली भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ६॥

हे शरण्ये! तुम विवाद, विषाद, प्रमाद, परदेश, जल, अनल, पर्वत, वन तथा शत्रुओंके मध्यमें सदा ही मेरी रक्षा करो, हे भवानि! एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ७॥

हे भवानि! मैं सदासे ही अनाथ, दरिद्र, जरा-जीर्ण, रोगी, अत्यन्त दुर्बल, दीन, गूँगा, विपद्ग्रस्त और नष्टप्राय हूँ, अब एकमात्र तुम्हीं मेरी गति हो, तुम्हीं मेरी गति हो॥ ८॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं भवान्यष्टकं सम्पूर्णम्॥

॥ इस प्रकार श्रीमच्छङ्कराचार्यकृत भवान्यष्टक सम्पूर्ण हुआ॥

◆

श्रीश्रीजगद्धात्री

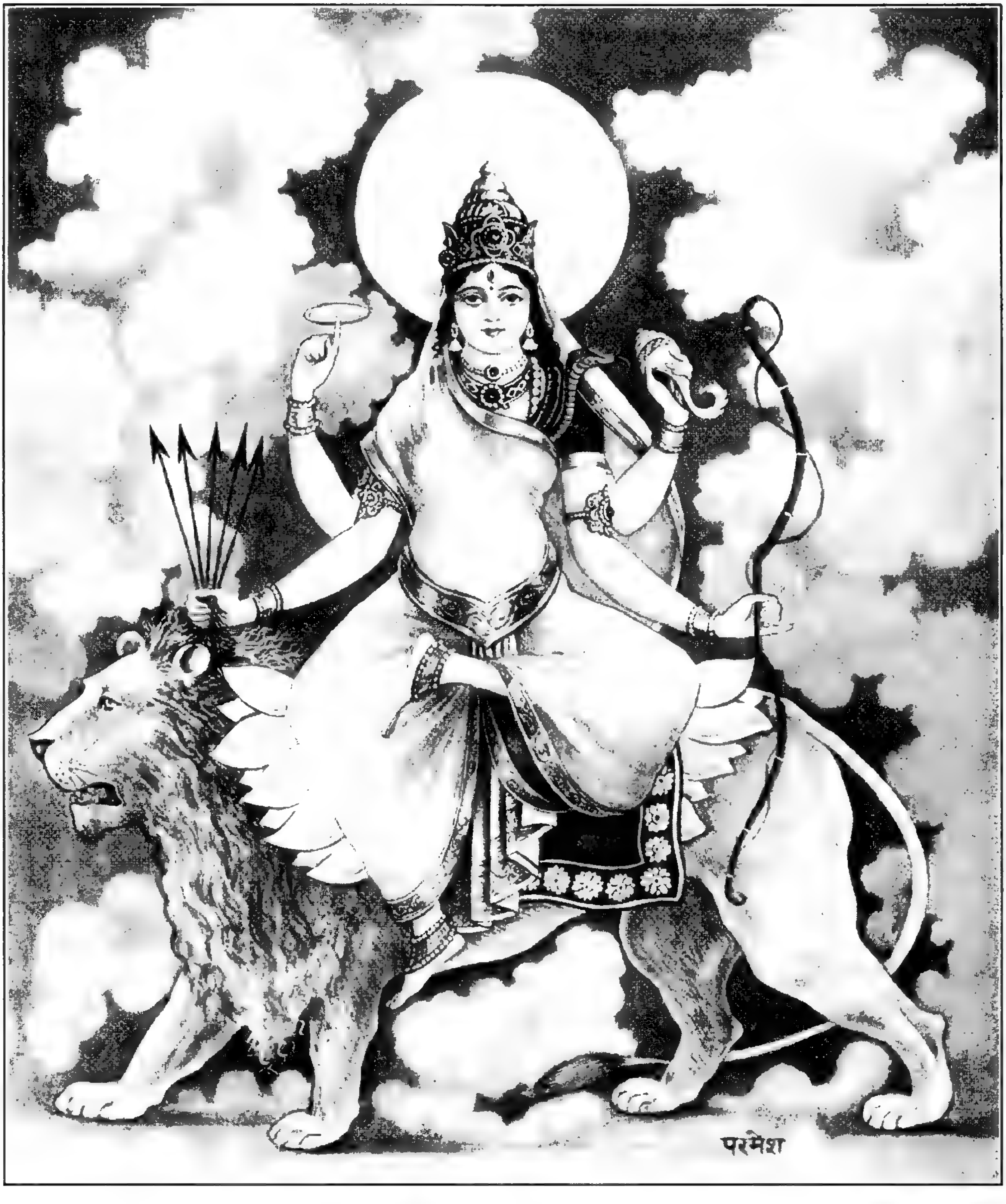

सिंहस्कन्धाधिरूढां नानालङ्कारभूषिताम्। चतुर्भुजां महादेवीं नागयज्ञोपवीतिनीम्॥
शङ्खशार्ङ्गसमायुक्तवामपाणिद्वयान्विताम्। चक्रं च पञ्चबाणांश्च धारयन्तीं च दक्षिणे॥
रत्नद्वीपे महाद्वीपे सिंहासनसमन्विते। प्रफुल्लकमलारूढां ध्यायेत्तां भवसुन्दरीम्॥

श्रीमद्देवीभागवतकी पाठविधि

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥
श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है। जो श्रीमद्देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है।

श्रीमद्देवीभागवतके नवाह्नकी विधि है। दोनों नवरात्रोंमें तथा आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ एवं फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतक इसके अनुष्ठानका विधान है। इसे 'नवाहयज्ञ' कहा जाता है। एतदर्थ कथा-स्थानकी भूमि का संशोधन, मार्जन-लेपनादिकर कदली-स्तम्भादिसे मण्डित मण्डप बनाना चाहिये। मण्डपका स्थान शुभ तथा बराबर होना चाहिये। उसका मान १६ हाथ लम्बा-चौड़ा हो तथा उसे तोरण, विमान एवं ध्वजा-पताकासे मण्डित किया जाय। मण्डपके बीचमें चार हाथ लम्बी-चौड़ी तथा एक हाथ ऊँची वेदी होनी चाहिये। फिर प्रतिपद्को प्रातः उठकर हृदय या शिरोदेशमें उज्ज्वल-पद्मके अन्तर्गत गुरुका ध्यान करना चाहिये। फिर शिखाके बीच इस रूपमें देवीका ध्यान करना चाहिये—

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तःपदव्यामनुसंचरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥

(श्रीमद्देवीभा० ७।४०।३)

प्रथम प्रयाणमें अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें संचरण करनेपर प्रकाश-पुंजरूपवाली, प्रतिप्रयाणमें अर्थात् मूलाधारमें संचरण करनेपर अमृतमयस्वरूपवाली तथा अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजनेपर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।

तत्पश्चात् किसी नदी, तड़ाग, सरोवर या पहाड़ी झील, झरने आदिमें स्नानकर नित्यकृत्य करना चाहिये। फिर भूतशुद्धि, मातृकान्यास एवं हृल्लेखा-मातृकान्यास करना चाहिये। इसकी विधि यह है कि मूलाधारमें 'ह' कार, हृदयमें 'र'कार, भ्रूमध्यमें 'ई'कार और मस्तकमें 'ह्रीं'कारका न्यास करे। फिर उपयुक्त ब्राह्मणोंका वरणकर वेदीपर सिंहासन रखकर उसपर क्षौम (रेशमी) वस्त्र-युक्त चार हाथोंवाली जगदम्बिकाकी प्रतिमा स्थापित करे। उन्हें रत्नाभूषण तथा मुक्ताहारादिसे विभूषित करे। चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कराये या अठारह भुजावाली प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाके अभावमें 'नवार्ण मन्त्र' का यन्त्र ही रख दे। फिर पंचपल्लवादिसंयुक्त एक कलश वेद-मन्त्रोंसे संस्कृतकर श्रेष्ठ तीर्थके जलसे भरकर पास ही स्थापित करे। तत्पश्चात् गणपति-पूजन, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी, मातृका, नवग्रह, तुलसी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, लोकपाल, दिक्पाल आदिकी पूजाकर षोडशोपचार तथा श्रीसूक्त या नवार्णमन्त्रसे भगवती महाशक्तिकी पूजा करे। देवी-पूजनमें चन्दन, अगर या अष्टगन्ध* तथा अशोक, चम्पा, करवीर, मालती, मन्दार आदिके पुष्पों, बिल्व तथा तुलसी आदिका प्रयोग श्रेष्ठ है। फलोंमें नारियल, नारंगी, अनार, केला, आम शुभ हैं। तत्पश्चात् १६ उपचारोंसे देवीभागवत-ग्रन्थकी भी पूजा करे। अन्तमें फिर इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये—

कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि॥
संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके॥
मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते।

(श्रीमद्देवीभा० माहात्म्य ५।३१—३३)

हे कात्यायनि! हे महामाये! हे भुवनेश्वरि! हे कृपामये! हे भवानि! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ; मेरा उद्धार कीजिये तथा हे ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे पूजनीया माता जगदम्बिके! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देवि! आप मुझे

---

* चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुङ्कुमरोचनाः। जटामांसी कपियुता शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः॥ (तन्त्रसार—कलावती दीक्षा ५।१)

अर्थात् चन्दन, अगुरु, कपूर, कृष्णशुंठी, कुंकुम (केसर), गोरोचन, जटामांसी तथा गांटना (एक प्रकारका करंज) मिलाकर शक्तिका अष्टगन्ध बनता है।

मनोवांछित वर प्रदान कीजिये; आपको बार-बार प्रणाम है।

तत्पश्चात् ऋष्यादिका न्यासकर पाठ आरम्भ करे।

पाठ आरम्भ करनेके बाद फिर अध्यायके बीचमें नहीं रुकना चाहिये। रुक जानेपर पुनः उसी अध्यायको आरम्भसे पढ़ना चाहिये। मध्यम स्वरसे श्रद्धापूर्वक धीरे-धीरे स्पष्ट पाठ करना चाहिये। गीत गाना, जल्दी करना, सिर कँपाना, अशुद्ध या अस्पष्ट उच्चारण करना, बिना अर्थ समझे ही पाठ करना—ये पाठके दोष हैं। पाठमें यथासाध्य इन दोषोंसे बचे रहना चाहिये। क्रोध, मद, त्वरा बाधक हैं। मनकी पवित्रता, शरीरकी पवित्रता अधिक सहायक है। दोपहरके बाद एक घड़ी विश्रामकर तथा लघुशंका आदिसे निवृत्त होकर पुनः पाठ करना चाहिये।

कथारम्भमें सोम, बुध, गुरु, शुक्रवार; अश्विनी, रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, हस्त, अनुराधा, मूल तथा श्रवण नक्षत्र शुभ हैं। बृहस्पति जिस नक्षत्रमें हों, वहाँसे चौथे नक्षत्रतक कथा आरम्भ करनेसे धर्मप्राप्ति, ५ से ८ वेंतक लक्ष्मीप्राप्ति, पुनः ९ में सिद्धि, १० से १४ तक सुख प्राप्त होता है। गुर्वधिष्ठित नक्षत्रसे २० नक्षत्रोंतकमें कथारम्भ करनेसे पीड़ा, २४ वेंतक राजभय तथा २७ वेंतक ज्ञानकी प्राप्ति होती है। इस चक्रका ध्यान रखना आवश्यक है। (किंतु नवरात्रोंमें देवीभागवत-कथामें चक्र-विचार अपेक्षित नहीं है।) अनुष्ठानके समय ब्रह्मचर्य, भूमिशयन, सत्यवचन तथा इन्द्रियसंयम अत्यन्त आवश्यक है। पत्तलमें भोजन करना चाहिये। बैगन, दाल, बहेड़ा, मधु, तैल, बासी तथा दूषित अन्न नहीं खाना चाहिये। रजस्वला आदिसे स्पृष्ट तथा मसूर, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कुम्हड़ा तथा नलिका आदिका शाक भी नहीं खाना चाहिये। प्रतिदिन कुमारीपूजन करना चाहिये या प्रतिदिन क्रमशः दुगुनी, तिगुनी पूजा बढ़ाते जाय। एक वर्षकी कन्याकी पूजा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि उसे गन्धादिका कोई भी ज्ञान नहीं होता। दोसे नौ वर्षोंतककी कन्याएँ पूज्य हैं। अन्तिम दिन गायत्रीसहस्रनामका पाठ करना चाहिये और सप्तशतीके मन्त्रोंसे हवन करना चाहिये अथवा गायत्री या नवार्णमन्त्रसे हवन किया जाय। यह संक्षेपमें देवीभागवतकी पाठविधि है।

श्रीमद्देवीभागवतकथा (पारायण) एवं अनुष्ठान-विधि

जो लोग विधि-विधानसे श्रीमद्देवीभागवतकी कथा अथवा पारायण-पाठ कराना चाहते हों, उनके लिये पूजन आदिकी विस्तृत विधि और क्रम नीचे लिखा जा रहा है—

स्नान-सन्ध्योपासनादि कृत्यसे निवृत्त होकर पवित्र आसनपर सपत्नीक पूर्वाभिमुख बैठ जाय और पत्नीको अपने दाहिनी ओर बैठाये। चन्दन आदिसे तिलक कर ले। दोनों हाथोंकी अनामिका अँगुलीमें पवित्री धारण कर ले। आचमन, प्राणायाम कर ले, शिखामें ग्रन्थि लगा ले। तदनन्तर ग्रन्थिबन्धन कर ले और भगवान् विष्णुका ध्यान कर ले। रक्षादीप जलाकर हाथ धो ले।

अधिकारप्राप्तिके लिये गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यका संकल्प—श्रीमद्देवीभागवतश्रवणमें अधिकारप्राप्तिके लिये प्रायश्चित्तके रूपमें तीन गौओंके निष्क्रयद्रव्यका दान करे। देयद्रव्य तथा त्रिकुश, अक्षत, पुष्प, जल लेकर निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे विष्णुपर्वे श्रीश्वेतवाराहनाम्नि प्रथमकल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगस्य प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे ....क्षेत्रे बौद्धावतारे ....नाम्नि संवत्सरे श्रीसूर्ये ....अयने ....ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे ....मासे ....पक्षे ....तिथौ ....वासरे ....राशिस्थिते श्रीसूर्ये शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ....गोत्रः ....शर्मा/वर्मा/गुप्तः सपत्नीकोऽहं मम कृच्छ्रत्रयात्मक-प्रायश्चित्तानुष्ठानसिद्ध्यर्थं गोत्रयनिष्क्रयद्रव्यं रजतं चन्द्रदैवतं ....गोत्राय ....शर्मणे ब्राह्मणाय भवते सम्प्रददे।

संकल्पजल तथा द्रव्य ब्राह्मणको दे दे। तदनन्तर

गोप्रार्थना करे—

गोप्रार्थना

गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्यादिहलोके परत्र च॥

प्रार्थनाके अनन्तर निम्न वाक्य बोले—**अनेन गोदानेन पापापहा महाविष्णुः प्रीयताम्।**

निम्न मन्त्रसे पंचगव्यप्राशन कर ले—

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मामके।
प्राशनात् पञ्चगव्यस्य दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥

तदनन्तर हाथमें अक्षत-पुष्प लेकर '**आ नो भद्रा०**' आदि मंगलमन्त्रोंका पाठ करे।

'**लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः**' आदि वाक्यों तथा '**सुमुखश्चैकदन्तश्च**' इत्यादि गणपतिमन्त्रोंका पाठ करे। हाथके अक्षतपुष्प भगवान्‌को अर्पित कर दे। इसके बाद देवीभागवतश्रवणका तथा पूजनका प्रधान संकल्प करे—

प्रधान संकल्प

हाथमें त्रिकुश, अक्षत, पुष्प, जल, फल तथा द्रव्य लेकर निम्न संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्धे विष्णुपर्वे श्रीश्वेतवाराहनाम्नि प्रथमकल्पे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगस्य प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भूर्लोके भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे ····क्षेत्रे (यदि काशी हो तो **अविमुक्तवाराणसीक्षेत्रे आनन्दवने महाश्मशाने गौरीमुखे त्रिकण्टकविराजिते भागीरथ्याः पश्चिमे तीरे** बोले) **बौद्धावतारे ····नाम्नि संवत्सरे श्रीसूर्ये ····अयने ····ऋतौ महामाङ्गल्यप्रदे मासोत्तमे ····मासे ····पक्षे ····तिथौ ····वासरे ····नक्षत्रे ····योगे ····करणे ····राशिस्थिते श्रीसूर्ये ····राशिस्थिते चन्द्रे ····राशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथं राशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ····गोत्रः ····शर्मा/वर्मा/गुप्तः सपत्नीकोऽहं अतीतानेकजन्मसञ्चिताखिलदुष्कृतनिवृत्तिपुरस्सरैहिकामुष्मिकाध्यात्मिकादितापत्रयोपशमनपूर्वककायिकादित्रिविधपापानां समूलोन्मूलनार्थं मनोभिलषितफलप्राप्तिपूर्वकश्रीपराम्बाप्रीत्याविर्भावकामः ····गोत्रोत्पन्न ····शर्माब्राह्मणवदनारविन्दात् अनेकश्रोतृश्रावणपूर्वकं श्रीमद्देवीभागवतं नवाह्नविधिना श्रोष्यामि। तदङ्गतया विहितं स्वस्तिपुण्याहवाचनं मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनं आयुष्यमन्त्रजपं साङ्कल्पिकेन विधिना नान्दीश्राद्धमाचार्यादिवरणानि च करिष्ये। तत्रादौ प्रारीप्सितसम्पूर्तिप्रतिबन्धकविघ्नव्यूहध्वंसकामः गणेशाम्बिकयोः यथोपचारैः पूजनमहं करिष्ये।** संकल्पजल छोड़ दे।

तदनन्तर संक्षेपमें स्वस्तिवाचन, गणपतिपूजन, कलशस्थापन, पुण्याहवाचन, मातृकापूजन, वसोर्धारापूजन, आयुष्यमन्त्रजप तथा नान्दीमुखश्राद्ध करे। इसके बाद आचार्य आदिका वरण करे।

तदनन्तर सर्वतोभद्रमण्डलपर कलश स्थापितकर पराम्बा भगवतीका षोडशोपचारपूजन करे। इसके बाद सूर्यादि नवग्रहोंका स्थापन-पूजन, असंख्यात रुद्रकलशकी स्थापना और पूजा, कुमारीपूजन, बटुकपूजन, पुस्तकपूजन आदि सम्पन्नकर कथा प्रारम्भ करनी चाहिये। कथा एवं पाठके अन्तमें अन्तिम दिन हवन करनेकी विधि है। (यदि विस्तृत पूजा न करनी हो तो केवल गणेशाम्बिकाका पूजनकर आचार्यादि ब्राह्मणोंको वरण देकर कलशपर पराम्बा भगवतीका पूजन कर ले तथा पुस्तकपूजन एवं कथावाचकका पूजनकर पाठ अथवा कथा प्रारम्भ करनी चाहिये।) यहाँ आचार्य आदिका वरण, पराम्बा भगवती दुर्गादेवी, कुमारी एवं बटुक आदिका पूजन संक्षेपमें दिया जा रहा है—

आचार्यवरण

हाथमें कुशाक्षत, जल, वरण-द्रव्य एवं वरणसामग्री लेकर सर्वप्रथम आचार्यके वरणका संकल्प करे—

ॐ अद्य पूर्वोच्चारितग्रहगणगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ····गोत्रः ····शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सर्वविधपापक्षयद्वारा ····पूर्वोक्तसंकल्पितकार्यसिद्ध्यर्थं श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थञ्च श्रीमद्देवीभागवतनवाह्नकथाश्रवणार्थं ····गोत्रं ····शर्माणं

नवाहकथाश्रावयितारं ब्राह्मणं एभिर्वरणद्रव्यैः भवन्तमहं वृणे। संकल्पजल छोड़ दे और वरणसामग्री आचार्यको प्रदान करे।

आचार्य बोले—ॐ वृतोऽस्मि।

उपवाचकका वरण

इसके बाद उपवाचकके वरणका निम्न संकल्प करे—**ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सकलपापक्षयद्वारा पूर्वोक्तसङ्कल्पितकार्यसिद्ध्यर्थं ……गोत्रं ……शर्माणं उपवाचयितारं ब्राह्मणं एभिर्वरणद्रव्यैः भवन्तमहं वृणे।** संकल्पजल छोड़ दे तथा वरणसामग्री दे दे।

मन्त्रजप तथा दुर्गापाठके लिये ब्राह्मणोंका वरण

तदनन्तर गायत्री, गणेश आदिके मन्त्रजप तथा सप्तशतीपाठके लिये निम्न संकल्पसे ब्राह्मणोंका वरण करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं मम सर्वविधपातकनिवृत्तिद्वारा श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं करिष्यमाणश्रीमद्देवीभागवतनवाहकथायज्ञकर्मणि एभिर्वरणद्रव्यैः नानागोत्रान् नानाशर्मणो ब्राह्मणान् गायत्रीगणेशादिमन्त्रजापकान् श्रीसूक्तसप्तशत्यादिपाठकांश्च तत्तत्कर्मकर्तृत्वेन भवतोऽहं वृणे। संकल्पजल छोड़ दे। वरण-सामग्री ब्राह्मणोंको दे दे।

ऋत्विज बोलें—वृताः स्मः।

ब्राह्मण निम्न मन्त्रका पाठ करे—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते॥

प्रार्थना—निम्न मन्त्रसे ब्राह्मणोंकी प्रार्थना करे—

अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः।
देवध्यानरता नित्यं प्रसन्नमनसः सदा॥
अदुष्टभाषणाः सन्तु मा सन्तु परनिन्दकाः।
ममापि नियमा ह्येते भवन्तु भवतामपि॥
ऋत्विजश्च यथा पूर्वं शक्रादीनां मखेऽभवन्।
यूयं तथा मे भवत ऋत्विजो द्विजसत्तमाः॥
अस्मिन् कर्मणि ये विप्राः वृता गुरुमुखादयः।
सावधानाः प्रकुर्वन्तु स्वं स्वं कर्म यथोदितम्॥
अस्य यागस्य निष्पत्तौ भवन्तोऽभ्यर्थिता मया।
सुप्रसन्नैः प्रकर्तव्यं कर्मेदं विधिपूर्वकम्॥

तदनन्तर दिग्रक्षण, पंचगव्यप्रोक्षण करके सर्वतोभद्रमण्डलमें देवताओंका आवाहन-पूजन करे।

कलशके ऊपर देवीकी प्रतिमाका स्थापन

सर्वतोभद्रमण्डलके मध्यमें प्रधान कलशकी स्थापना करे। कलशके ऊपर अग्न्युत्तारणपूर्वक स्वर्णनिर्मित देवीकी प्रतिमा स्थापित करे। प्रतिमाकी प्रतिष्ठा कर ले और श्रीसूक्तसे षोडशोपचारपूजन करे। प्रतिमाके ऊपर पंचरंगा वितान बाँधे।

सपत्नीक यजमान श्रीभगवतीदुर्गादेवीके समीपमें बैठकर अपने दक्षिण भागमें पूजनकी सामग्री स्थापित करे। तत्त्वशुद्धिके लिये निम्न रीतिसे आचमन करे—

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।

प्राणायाम

पूरक-कुम्भक-रेचकके क्रमसे प्राणायाम करे।

पवित्रीकरण

निम्न मन्त्रसे अपने ऊपर तथा पूजन-सामग्रीपर जल छिड़के—

अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु। ॐ पुण्डरीकाक्षः पुनातु।

आसन-पवित्रीकरण

पहले निम्न रीतिसे विनियोग करे—

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसनपवित्रकरणे विनियोगः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र बोले—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

शिखाबन्धन

निम्न मन्त्रसे शिखाका स्पर्श करे—

ॐ ऊर्ध्वकेशि विरूपाक्षि मांसशोणितभोजने।
तिष्ठ देवि शिखामध्ये चामुण्डे चापराजिते॥

भैरवनमस्कार

निम्न मन्त्रसे भैरवजीको नमस्कार करे—

ॐ तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय कल्पान्तदहनोपम।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि॥

दुर्गापूजनका संकल्प

हाथमें जल, अक्षत, पुष्प लेकर बोले—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहम् अस्मिन् श्रीमद्देवीभागवतनवाहकथायज्ञकर्मणि मम आत्मनः श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीभगवत्या जगदम्बिकायाः त्रिगुणात्मिकायाः श्रीदुर्गादेव्याः पूजनं करिष्ये। पूजनकर्मणि आत्मनोऽधिकारपूर्वकयोग्यतासम्पादनार्थं नवार्णेन न्यासान् करिष्ये। संकल्पजल छोड़ दे।

नवार्णमन्त्रके न्यासका संकल्प

अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः ऐं बीजं ह्रीं शक्तिः क्लीं कीलकम् श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे न्यासे पूजायां च विनियोगः।

विनियोग पढ़कर जल गिराये। नीचे लिखे न्यासवाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण और नाभि—इन अंगोंका स्पर्श करे।

ऋष्यादिन्यास

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि (सिरका स्पर्श करे)।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः मुखे (मुखका स्पर्श करे)।

महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः हृदि (हृदयका स्पर्श करे)।

ऐं बीजाय नमः गुह्ये (गुह्यस्थानका स्पर्श करे)।

ह्रीं शक्तये नमः पादयोः (दोनों पैरोंको छुए)।

क्लीं कीलकाय नमः नाभौ (नाभिका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे—इस मूल मन्त्रसे हाथोंकी शुद्धि करके करन्यास करे।

करन्यास

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। (दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों अँगूठोंका स्पर्श करे)।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। (दोनों हाथोंके अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। (दोनों अँगूठोंसे अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। (कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। (हथेलियों और उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श करे)।

हृदयादिन्यास

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श करे)।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श करे)।

ॐ क्लीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श करे)।

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका एक साथ स्पर्श करे)।

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श करे)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (दाहिने हाथकी तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

दीपप्रज्वालन तथा प्रार्थना

न्यासके अनन्तर देवीके दक्षिणभागमें घीका दीपक तथा बायें भागमें तिलके तेलका दीपक जलाकर निम्न मन्त्रसे दीपककी प्रार्थना करे—

भो दीप देवीरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत्।
यावत्कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत्त्वं सुस्थिरो भव॥

तदनन्तर अपने वामभागमें स्थापित पूजा-कलशमें गन्धाक्षत, पुष्प आदिसे वरुणकी पूजा करे।

प्रोक्षण

कलशके जलसे अपना तथा सभी सामग्रियोंका प्रोक्षण करे।

शंखपूजन

कलशके जलसे शंखको पूरित करके देवीके वामभागमें त्रिपादुकाधारमें स्थापितकर निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतसे उसका पूजन करे—

ॐ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

त्वं पुरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तु ते॥

घण्टापूजन

घण्टा प्रक्षालितकर उसे अपने वामभागमें स्थापित करके निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतसे उसका पूजन करे—

ॐ सुपर्णोऽसि गरुत्माँस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ। स्तोम आत्मा छन्दाꣳस्यङ्गानि यजूꣳषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान्दिवं गच्छ स्वः पत॥

तदनन्तर निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

ॐ आगमार्थं तु देवानां गमनार्थं तु रक्षसाम्।
घण्टानादं प्रकुर्वीत सर्वकामार्थसिद्धये॥

घण्टाध्वनि करके उसे यथास्थान रख दे।

॥ श्रीदुर्गादेवी-पूजनविधि ॥

ध्यान

हाथमें पुष्प लेकर निम्न मन्त्रोंसे दुर्गादेवीका ध्यान करे—

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥
अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुः कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥

ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण॥

ॐ पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः श्रीदुर्गां ध्यायामि। ध्यानार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। हाथके फूल चढ़ा दे।

आवाहन

हाथमें पुष्प लेकर श्रीदुर्गादेवीका आवाहन करे—

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः श्रीदुर्गां आवाहयामि। आवाहनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। पुष्प चढ़ाये।

आसन

हाथमें पुष्प लेकर श्रीदुर्गादेवीको आसन प्रदान करे—

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः आसनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि। पुष्प चढ़ाये।

पाद्य

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रमोदिनीम्।
श्रियं देवीमुप ह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

अर्घ्य

कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मेस्थितां पद्मवर्णां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः हस्तयोरर्घ्यं समर्पयामि। अर्घ्यका जल चढ़ाये।

आचमनीय

चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मिनीमीं शरणं प्र पद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणे॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, आचमनीयं जलं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

स्नान

आदित्यवर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या अन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, स्नानीयं जलं समर्पयामि। जल चढ़ाये।

पञ्चामृतस्नान

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, पंचामृतस्नानं समर्पयामि। पंचामृतसे स्नान कराये।

शुद्धोदकस्नान

शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त आश्विनाः श्येतः श्येताक्षोऽरुणास्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि। जलसे स्नान कराये।

महाभिषेकस्नान

श्रीसूक्तके मन्त्रोंद्वारा जलसे स्नान कराये।

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः, महाभिषेकस्नानं समर्पयामि।

वस्त्रोपवस्त्र

उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः वस्त्रोपवस्त्रं समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। वस्त्र तथा उपवस्त्र चढ़ाये। एक आचमनी जल छोड़े।

यज्ञोपवीत

क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः यज्ञोपवीते समर्पयामि। तदन्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि। यज्ञोपवीत चढ़ाये। एक आचमनी जल छोड़े।

चन्दन

गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोप ह्वये श्रियम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः विलेपनार्थे चन्दनं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको चन्दन लगाये।

अक्षत

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः चन्दनोपरि अक्षतान् समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको चन्दनके ऊपर अक्षत लगाये।

पुष्प तथा पुष्पमाला

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पुष्पमालां समर्पयामि।

भगवती दुर्गादेवीको पुष्पमाला चढ़ाये।

सौभाग्यद्रव्य

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमाꣳसं परि पातु विश्वतः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः सौभाग्यद्रव्याणि समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको हल्दी-रोरी आदि सौभाग्यद्रव्य चढ़ाये।

सिन्दूर

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वात प्रमियः पतयन्ति यह्वाः।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः सिन्दूरं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको सिन्दूर चढ़ाये।

धूप

कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः धूपमाघ्रापयामि। भगवती दुर्गादेवीको धूप निवेदित करे।

दीप

आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः दीपं दर्शयामि। भगवती दुर्गादेवीको दीप निवेदित करे।

नैवेद्य

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः नैवेद्यं निवेदयामि। भगवती दुर्गादेवीको नैवेद्य निवेदित करे।

करोद्वर्तन

अꣳशुनाते अꣳशुः पृच्यतां परुषा परुः।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो अच्युतः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः करोद्वर्तनकं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको इत्र निवेदित करे।

ऋतुफल

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पति प्रसूतास्तानो मुञ्चन्त्वꣳहसः॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः ऋतुफलानि समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको ऋतुफल निवेदित करे।

पूगीफल-ताम्बूल

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आ वह॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पूगीफलताम्बूलं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको सुपारी तथा ताम्बूल निवेदित करे।

दक्षिणा

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः दक्षिणां समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको दक्षिणा चढ़ाये।

नीराजन

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः
प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः नीराजनं दर्शयामि। भगवती दुर्गादेवीकी आरती करे।

प्रदक्षिणा

तां म आ वह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान् विन्देयं पुरुषानहम्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीकी प्रदक्षिणा करे।

पुष्पाञ्जलि

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम्।
सूक्तं पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत्॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥

राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥

ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमारि धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। भगवती दुर्गादेवीको पुष्पांजलि समर्पित करे।

स्तुतिपाठ

निम्न स्तोत्रसे प्रार्थना करे—

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे
नमस्ते जगद्व्यापिके विश्वरूपे।
नमस्ते जगद्वन्द्यपादारविन्दे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमस्ते जगच्चिन्त्यमानस्वरूपे
नमस्ते महायोगिनि ज्ञानरूपे।
नमस्ते नमस्ते सदानन्दरूपे
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अनाथस्य दीनस्य तृष्णातुरस्य
भयार्तस्य भीतस्य बद्धस्य जन्तोः।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारकर्त्री
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अरण्ये रणे दारुणे शत्रुमध्ये-
ऽनले सागरे प्रान्तरे राजगेहे।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारनौका
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
अपारे महादुस्तरेऽत्यन्तघोरे
विपत्सागरे मज्जतां देहभाजाम्।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारहेतु-
र्नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमश्चण्डिके चण्डदुर्दण्डलीला-
समुत्खण्डिता खण्डिताशेषशत्रो।
त्वमेका गतिर्देवि निस्तारबीजं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
त्वमेवाघभावाधृता सत्यवादी-
र्न जाता जितक्रोधनात् क्रोधनिष्ठा।
इडा पिङ्गला त्वं सुषुम्णा च नाडी
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
नमो देवि दुर्गे शिवे भीमनादे
सरस्वत्यरुन्धत्यमोघस्वरूपे।
विभूतिः शची कालरात्रिः सती त्वं
नमस्ते जगत्तारिणि त्राहि दुर्गे॥
शरणमसि सुराणां सिद्धविद्याधराणां
मुनिमनुजपशूनां दस्युभिस्त्रासितानाम्।
नृपतिगृहगतानां व्याधिभिः पीडितानां
त्वमसि शरणमेका देवि दुर्गे प्रसीद॥

श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपायै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गायै नमः स्तुतिपाठं निवेदयामि।

अनया पूजया त्रिगुणात्मिका दुर्गा प्रीयताम् न मम। एक आचमनी जल छोड़े।

॥ सूर्यादि ग्रहोंका स्थापन एवं पूजन॥

तदनन्तर ग्रहपीठके समीप बैठकर नवग्रहोंका स्थापन एवं पूजन करे। अपने दाहिने हाथमें जल, अक्षत तथा पुष्प लेकर पूजनका संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य यथोक्तगुणविशिष्टतिथ्यादौ शुभपुण्यतिथौ ……गोत्रः ……शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं ……कर्मणि निर्विघ्नतासंसिद्ध्यर्थं तथा च सूर्यादिग्रहाणां प्रीतये आदित्यादिनवग्रहाणां स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये। हाथका जल आदि तष्टामें छोड़ दे तथा गन्धाक्षत-पुष्प लेकर निम्न मन्त्रोंसे नवग्रहोंका आवाहन तथा स्थापन करे—

सूर्य

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्याय नमः सूर्यमावाहयामि स्थापयामि।

चन्द्रमा

ॐ इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते

ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्रमसे नमः चन्द्रमसमावाहयामि स्थापयामि।

भौम (मंगल)

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भौमाय नमः भौममावाहयामि स्थापयामि।

बुध

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथा मयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बुधाय नमः बुधमावाहयामि स्थापयामि।

बृहस्पति

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पतये नमः बृहस्पतिमावाहयामि स्थापयामि।

शुक्र

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्राय नमः शुक्रमावाहयामि स्थापयामि।

शनि

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शं योरभि स्रवन्तु नः॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शनैश्चराय नमः शनैश्चरमावाहयामि स्थापयामि।

राहु

ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥

ॐ भूर्भुवः स्वः राहवे नमः राहुमावाहयामि स्थापयामि।

केतु

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः॥

ॐ भूर्भुवः स्वः केतवे नमः केतुमावाहयामि स्थापयामि।

निम्न मन्त्रसे सभीपर अक्षत चढ़ाकर ग्रहोंकी प्रतिष्ठा करे।

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः कहकर गन्धाक्षतपुष्प आदि उपचारोंसे पूजन करे। तदनन्तर निम्न प्रार्थना करे—

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च। गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु॥

सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि। मन्त्रपुष्पांजलि अर्पित करे।

अनया पूजया सूर्यादिनवग्रहाः प्रीयन्तां न मम। कहकर एक आचमनी जल छोड़े।

॥ असंख्यात रुद्रकलशकी स्थापना ॥

तदनन्तर ग्रहपीठके ईशानकोणमें निम्न मन्त्रसे रुद्रकलशकी स्थापना करे—

ॐ असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम्। तेषाꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि॥

निम्न मन्त्रसे कलशपर अक्षत छोड़कर प्रतिष्ठा करे—

ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो३म्प्रतिष्ठ॥

प्रतिष्ठाके अनन्तर गन्धादि उपचारोंसे कलश एवं वरुणका पूजन करे।

प्रार्थना—निम्न मन्त्रसे भगवान् रुद्रकी प्रार्थना करे—

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम्।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो॥

अनेन पूजनाख्येन कर्मणा रुद्रवरुणौ प्रीयेताम्।

कहकर एक आचमनी जल छोड़े।

कुमारीपूजन (नवकन्यापूजन)*

जगत्पूज्यां जगद्वन्द्यां सर्वशक्तिस्वरूपिणीम्।
नवदुर्गात्मिकां देवीं कुमारीं पूजयाम्यहम्॥ १॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कुमार्यै नमः कुमारीमावाहयामि पूजयामि। कुमारीरूप कन्याका पूजन करे।

त्रिपुरां त्रिपुराधारां त्रिवर्गज्ञानरूपिणीम्।
त्रैलोक्यवन्दितां देवीं त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥ २॥

ॐ भूर्भुवः स्वः त्रिमूर्त्यै नमः त्रिमूर्तिमावाहयामि पूजयामि। त्रिमूर्तिरूप कन्याका पूजन करे।

कलात्मिकां कलातीतां कारुण्यहृदयां शिवाम्।
कल्याणजननीं देवीं कल्याणीं पूजयाम्यहम्॥ ३॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कल्याण्यै नमः कल्याणीमावाहयामि पूजयामि। कल्याणीरूप कन्याका पूजन करे।

अणिमादिगुणोपेतामकाराद्यक्षरात्मिकाम् ।
अनन्तां शक्तिसम्पन्नां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥ ४॥

ॐ भूर्भुवः स्वः रोहिण्यै नमः रोहिणीमावाहयामि पूजयामि। रोहिणीरूप कन्याका पूजन करे।

कामचारां शुभां कान्तां कालचक्रस्वरूपिणीम्।
कामदां करुणोपेतां कालिकां पूजयाम्यहम्॥ ५॥

ॐ भूर्भुवः स्वः कालिकायै नमः कालिकामावाहयामि पूजयामि। कालिकारूप कन्याका पूजन करे।

चण्डवीरां चण्डमायां चण्डमुण्डप्रभञ्जिनीम्।
पूजयामि सदा देवीं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ ६॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चण्डिकायै नमः चण्डिकामावाहयामि पूजयामि। चण्डिकारूप कन्याका पूजन करे।

सदानन्दकरीं शान्तां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वभूतात्मिकां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥ ७॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शाम्भव्यै नमः शाम्भवीमावाहयामि पूजयामि। शाम्भवीरूप कन्याका पूजन करे।

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदुःखविनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ ८॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गायै नमः दुर्गामावाहयामि पूजयामि। दुर्गारूप कन्याका पूजन करे।

सुन्दरीं स्वर्णवर्णाभां सुखसौभाग्यदायिनीम्।
सुभद्रजननीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥ ९॥

ॐ भूर्भुवः स्वः सुभद्रायै नमः सुभद्रामावाहयामि पूजयामि। सुभद्रारूप कन्याका पूजन करे।

इस प्रकार पाद्य, अर्घ्य, आचमन, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, माला आदिसे नौ कुमारियोंका पूजन करे, भोजन कराये तथा दक्षिणा प्रदानकर निम्न मन्त्रसे प्रार्थनापूर्वक प्रणाम करे—

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥

बटुकपूजन

निम्न मन्त्रसे बटुकका ध्यान करे—

ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणि-
स्तरुणतिमिरनीलव्यालयज्ञोपवीती।
क्रतुसमयसपर्याविघ्नविच्छेदहेतु-
र्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम्॥

'**ॐ बं बटुकाय नमः**' इस मन्त्रसे पाद्य, अर्घ्य, आचमन, वस्त्र, अलंकार, गन्ध, अक्षत, माला आदिसे पूजन करे, भोजन कराये तथा दक्षिणा प्रदानकर प्रणाम करे।

पायसबलि

नर्वाणमन्त्रका उच्चारण करके '**ॐ महालक्ष्म्यै नमः' पायसबलिं समर्पयामि।** कहकर जल छोड़ दे।

पुस्तकपूजन

निम्न मन्त्रसे गन्धाक्षतपुष्पसे श्रीमद्देवीभागवत-पुस्तकका ध्यान एवं पूजन करे—

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥
ॐ यदाकूतात्समुसुस्त्रोधृदो वा मनसो वा सम्भृतं चक्षुषो वा।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोक यत्र ऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥

कथावाचकका पूजन

कथावाचकका पैर धोकर गन्ध, अक्षत, पुष्पमाला

---

* (क) कुमार्यश्च प्रतिदिनं अष्टोत्तरशतं नव एका वा यथासम्भवं पूज्याः। (ख) कुमारीपूजने द्विवर्षादारभ्य दशवर्षपर्यन्ता कन्या ग्राह्या। द्विवर्षाद्या दशाब्दाद्याः कुमारीः परिपूजयेत्। एकाब्दायाः प्रीत्यभावो रुद्राब्दा तु विवर्जिता॥

तथा वस्त्र देकर निम्न मन्त्रसे उनकी प्रार्थना करे—

बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्॥
व्यासरूपप्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय॥

महाध्वजका पूजन

तदनन्तर ईशानकोणमें आकर निम्न मन्त्रसे महाध्वजका पूजन करे—

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥

ॐ महाध्वजाय नमः सर्वोपचारार्थे गन्धाक्षतपुष्पाणि समर्पयामि कहकर महाध्वजका पूजन करे तथा निम्न मन्त्रसे प्रार्थना करे—

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः।
स बुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनि मसतश्च वि वः॥

अनया पूजया महाध्वजस्थब्रह्मा प्रीयताम्। एक आचमनी जल छोड़े।

आरती

सभी स्थापित देवोंकी आरती करे—

इदꣳ हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतो अस्मासु धत्त॥
आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती वि तिष्ठस आ त्वेषं वर्तते तमः॥
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि॥

गणपत्याद्यावाहितदेवताभ्यो नमः कर्पूरनीराजनम् समर्पयामि।

जलेन शीतलीकरणम्। आरतीके चारों ओर घुमाकर जल छोड़े। **पुष्पैर्देवताभिवन्दनम्।** देवताओंको पुष्पद्वारा प्रणाम करे। **आत्माभिवन्दनम्। हस्तप्रक्षालनम्।** हाथ धोकर पुष्प लेकर निम्न प्रार्थना करे—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥
राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यं कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु॥ कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥
ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुषान्तादापरार्धात्। पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति।
ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥
ॐ कात्यायन्यै विद्महे कन्याकुमारि धीमहि। तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्॥
नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वरि॥

प्रधानपीठस्थित भगवतीके चरणकमलोंमें पुष्पांजलि निवेदितकर प्रदक्षिणा करे तथा निम्न मन्त्रसे नमस्कार करे।

नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्ते प्रणयेन मया कृतः॥

स्तुतिपाठ—यदि समय हो तो निम्न स्तुतिपाठ करे—

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो०

श्रीमद्देवीभागवतपाठका विनियोग

ॐ अस्य श्रीमद्देवीभागवताख्यस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीकृष्णद्वैपायन ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमणिद्वीपाधिवासिनी भगवती महाशक्तिः देवता, ब्रह्म बीजम्, गायत्री शक्तिः, भुक्तिमुक्तिके कीलकम्, पुरुषार्थचतुष्टयसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

फिर इस प्रकार भगवतीका ध्यान करे—

बालार्कायुततेजसां त्रिनयनां रक्ताम्बरोल्लासिनीं
नानालङ्कृतिराजमानवपुषां बालोडुराट्शेखराम्।
हस्तैरिक्षुधनुःसृणिं सुमशरं पाशं मुदा बिभ्रतीं
श्रीचक्रस्थितसुन्दरीं त्रिजगतामाधारभूतां स्मरेत्॥

अथवा

सुधाकूपारान्तस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते

मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे।
विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां
नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षञ्च लभते॥
ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता।
जगतां श्रेयसे सास्तु मणिद्वीपाधिदेवता॥

(श्रीमद्देवीभा० माहात्म्य ५।१०१-१०२)

अमृतसागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित मणिद्वीपमें स्थित बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परम शिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करके मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र—आदि देवताओं एवं समस्त महर्षियोंद्वारा पूजित मणिद्वीपनिवासिनी वे भगवती संसारका कल्याण करती रहें।

ध्यानके अनन्तर पाठ आरम्भ करे।

नवाह्न-पारायणके विश्रामस्थल

प्रतिदिन क्रमशः निम्नलिखित स्थलोंपर विश्राम करना चाहिये—

प्रथम दिन	तृतीयस्कन्धके तृतीय अध्यायकी समाप्तिपर				(३५)
द्वितीय ,,	चतुर्थ	,,	अष्टम	,, ,,	(३५)
तृतीय ,,	पंचम	,,	अष्टादश	,, ,,	(३५)
चतुर्थ ,,	षष्ठ	,,	अष्टादश	,, ,,	(३५)
पंचम ,,	सप्तम	,,	अष्टादश	,, ,,	(३१)
षष्ठ ,,	अष्टम	,,	सप्तदश	,, ,,	(३९)
सप्तम ,,	नवम	,,	अट्ठाईसवें	,, ,,	(३५)
अष्टम ,,	दशम	,,	त्रयोदश	,, ,,	(३५)
नवम ,,	द्वादश स्कन्धकी समाप्तिपर			,, ,,	(३८)

हवनविधान

श्रीमद्देवीभागवतके कथा-श्रवणके अनन्तर हवनका भी विधान है। सपत्नीक यजमान हवनकुण्ड या स्थण्डिलके समीप पूर्वाभिमुख बैठ जाय। कुशोदकके द्वारा अपना तथा हवन-सामग्रीका प्रोक्षण करके स्वस्तिवाचनपूर्वक श्रीगणपति आदि आवाहित देवोंका संक्षेपमें पूजन करके हवनका निम्न संकल्प करे—

संकल्प—हाथमें त्रिकुश, अक्षत, जल लेकर बोले—**ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्य पूर्वोच्चारित ग्रहगणगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ ....गोत्रः ....शर्मा/वर्मा/गुप्तोऽहं कृतस्य श्रीमद्देवीभागवत-कथाश्रवणस्य फलप्राप्त्यर्थं यज्ञाङ्गहोमकर्मणि नवग्रह-होमपूर्वकं प्रधानभूतश्रीदुर्गादेवतानिमित्तं पायसाज्येन तथा श्रीदेव्याः वैदिकमन्त्रेण नवार्णेन सप्तशतीमन्त्रैश्च यथासम्भवं सम्पादितैराज्यादिहवनद्रव्यैः यथासंख्येन होमं करिष्ये।** इस प्रकार संकल्पकर जल छोड़ दे, हवनके लिये ब्राह्मणोंका वरण कर ले।

तदनन्तर पंचभूसंस्कार करके अपने सम्मुख अग्नि स्थापित करके संक्षेपमें ग्रहोंका पूजन करे। तदनन्तर असंख्यातरुद्रका पूजन करके कुशकण्डिका करे। कुण्डस्थ देवताओं तथा अग्निका पूजन करके अग्निकी प्रार्थना करे—

अग्ने त्वमैश्वरं तेजः पावनं परमं हितम्।
तस्मात्त्वदीयहृद्पद्मे श्रीदुर्गां तर्पयाम्यहम्॥
अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
हिरण्यवर्णममलं समृद्धं विश्वतोमुखम्॥

तदनन्तर आघाराज्यहोम करते समय प्रत्येक आहुतिके अनन्तर स्रुवामें स्थित हुतशेष घृतको प्रोक्षणीपात्रमें डालता जाय।

फिर हाथमें त्रिकुश, अक्षत, जल लेकर द्रव्य समर्पणके लिये बोले—**इमानि सम्पादितहवनीयद्रव्याणि या या यक्ष्यमाणदेवतास्ताभ्यस्ताभ्यो मया परित्यक्तानि न ममेति**—कहकर जल भूमिपर छोड़ दे और बोले—**यथा दैवतानि सन्तु।**

तदनन्तर गणेशाम्बिकाके लिये आहुति देकर नवग्रहोंका हवन करे। प्रधान देवके लिये आहुति दे।

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥
आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः।
पितरं च प्रयन्त्स्वः॥

तथा नवार्णमन्त्र (**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**)-से १००८ या १०८ बार हवन करके सप्तशती-मन्त्रोंसे आहुतियाँ दे। तदनन्तर आवाहित देवताओंका हवन करे, फिर अग्निका पूजनकर स्विष्टकृत् होम करके भूरादि नवाहुति प्रदान करे।

तदनन्तर दशदिक्पाल, नवग्रहों और क्षेत्रपालके लिये बलि निवेदित करे। अन्तमें पूर्णाहुति करे। वसोर्धाराके मन्त्रोंसे घृतसे आहुति दे। तदनन्तर अग्निकी प्रदक्षिणा करे, हवनीय कुण्डसे भस्म धारण करे, फिर संस्रवप्राशन करके प्रणीतोदकसे मार्जन कर ले और ब्रह्माको पूर्णपात्र प्रदान करे। आचार्यादिको दक्षिणा प्रदान करे। आचार्य यजमानको श्रेयोदान प्रदान करे। इसके बाद उत्तर पूजन करके कर्पूरनीराजन करे और मन्त्र-पुष्पांजलि चढ़ाये।

तदनन्तर आचार्य यजमानके वामभागमें पत्नीको बैठाकर रुद्रकलशके जल तथा प्रधान कलशके जलसे अभिषेक करके भूयसी दक्षिणा तथा ब्राह्मण-भोजनका संकल्प करे और यजमानको तिलकाशीर्वाद दे। अन्तमें क्षमा-प्रार्थना करे तथा आवाहित देवोंका विसर्जन करे और निम्न मन्त्रोंको पढ़ते हुए समस्त कर्म भगवान्‌को समर्पित कर दे—

प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्॥
यत्पादपङ्कजस्मरणाद् यस्य नामजपादपि।
न्यूनं कर्म भवेत् पूर्णं तं वन्दे साम्बमीश्वरम्॥

◆

श्रीदेवीभागवतकी आरती

आरति जग-पावन पुरानकी।
मातृ-चरित्र-विचित्र-खानकी ॥
देवि-भागवत अतिशय सुन्दर।
परमहंस मुनि-जन-मन-सुखकर।
विमल ज्ञान-रवि मोह-तिमिर-हर॥
परम मधुर सुषमा-वितानकी॥ १॥
कलि-कल्मष-विष-विषम-निवारिणि ।
युगपत् भोग-सुयोग प्रसारिणि।
परमानन्द-सुधा विस्तारिणि॥
सुमहौषध अज्ञान-हानकी॥ २॥
संतत सकल सुमङ्गलदायिनि।
सन्मति सद्‌गति मुक्ति-प्रदायिनि।
नूतन नित्य विभूति-विधायिनि॥
परमप्रभा परतत्त्व-ज्ञानकी॥ ३॥
आर्ति-अशान्ति, भ्रान्ति-भय-भंजनि।
पाप-ताप माया-मद-गंजनि।
शुचि सेवक-मन-मानस-रंजनि॥
लीला-रस मधुमय निधानकी॥ ४॥

◆

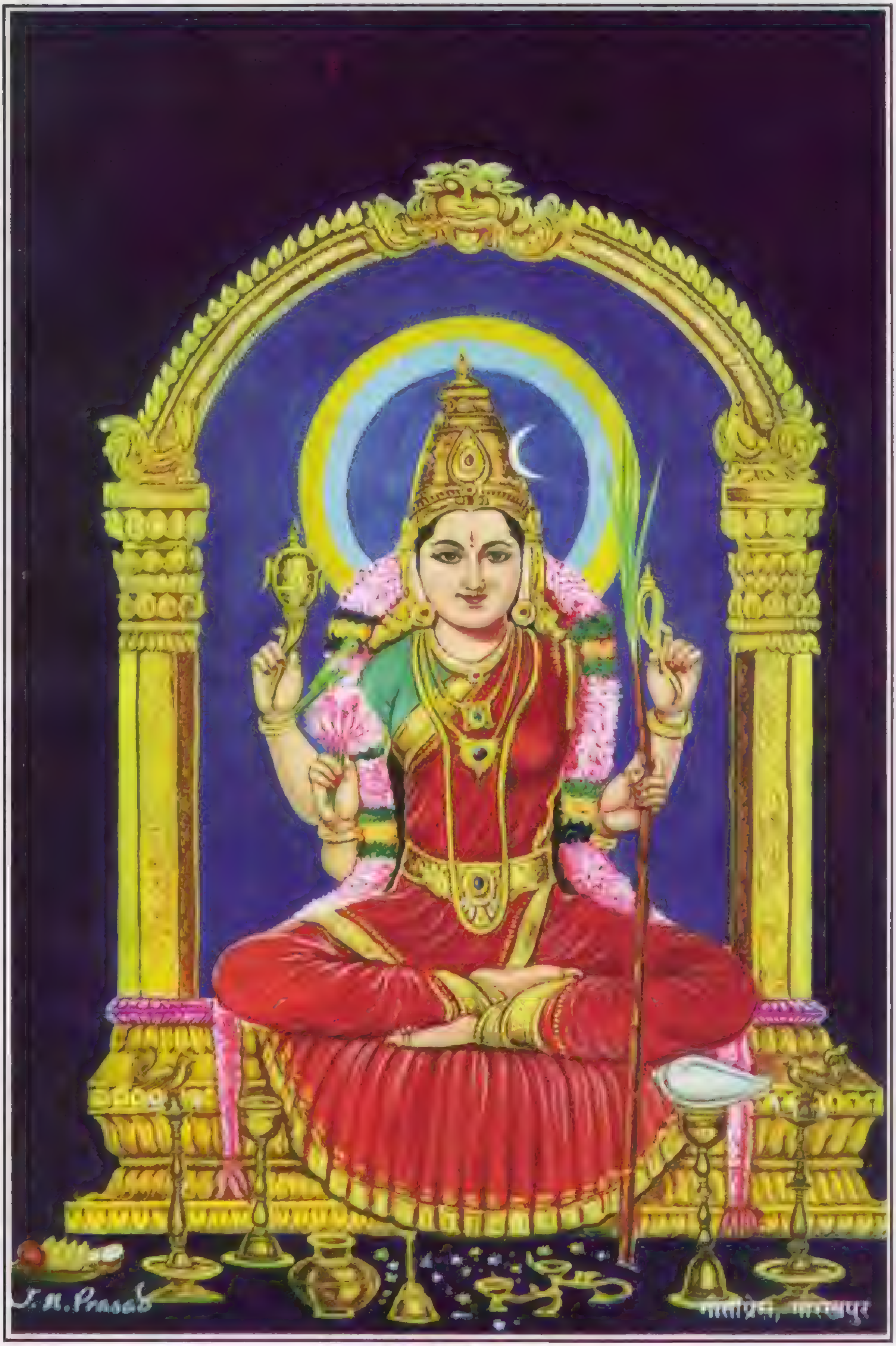
J. M. Prasad
गीताप्रेस, गोरखपुर

राजराजेश्वरी श्रीललिताम्बा

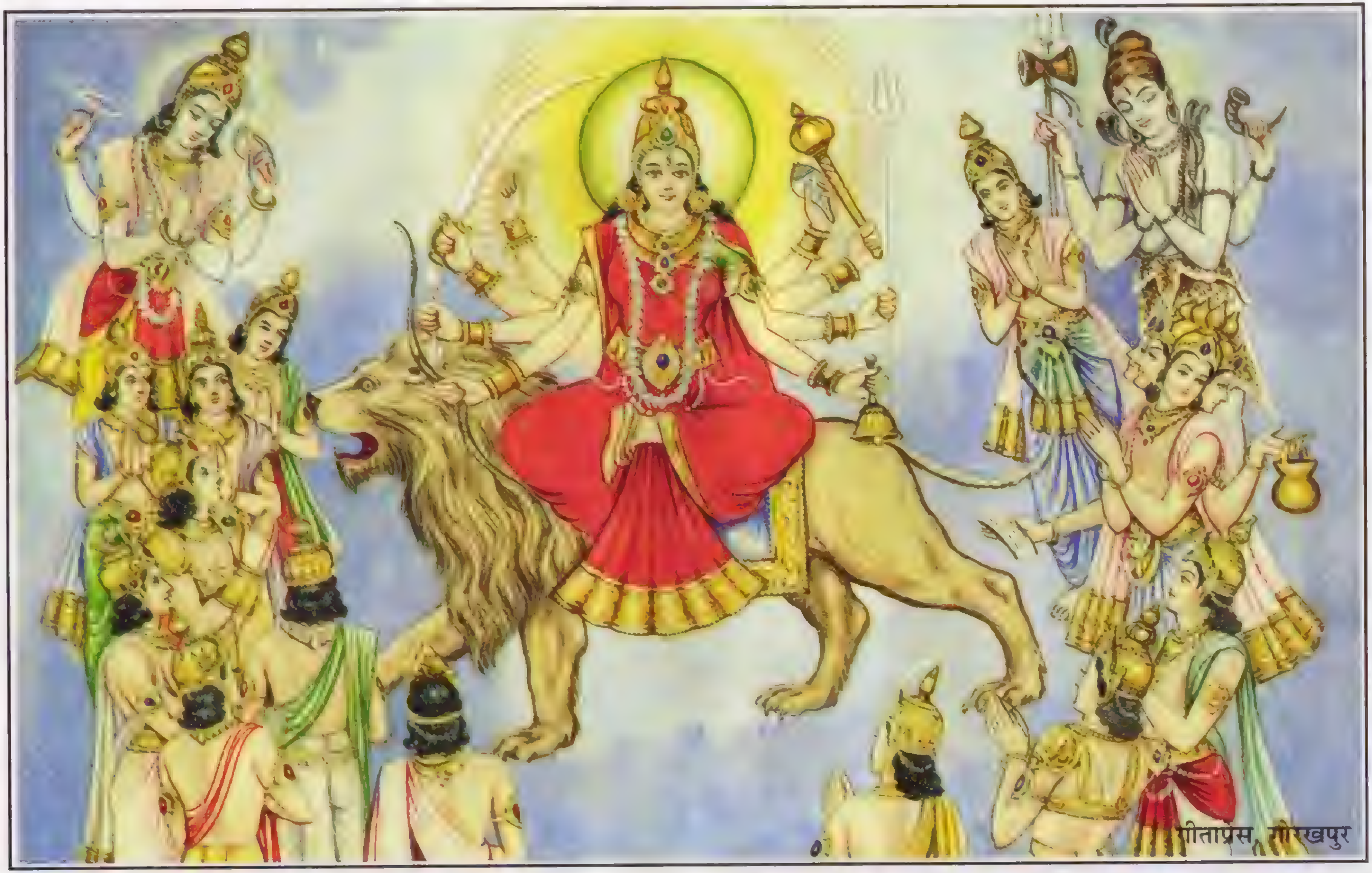
गीताप्रेस, गोरखपुर

देवताओंद्वारा सिंहवाहिनी श्रीदुर्गाकी स्तुति

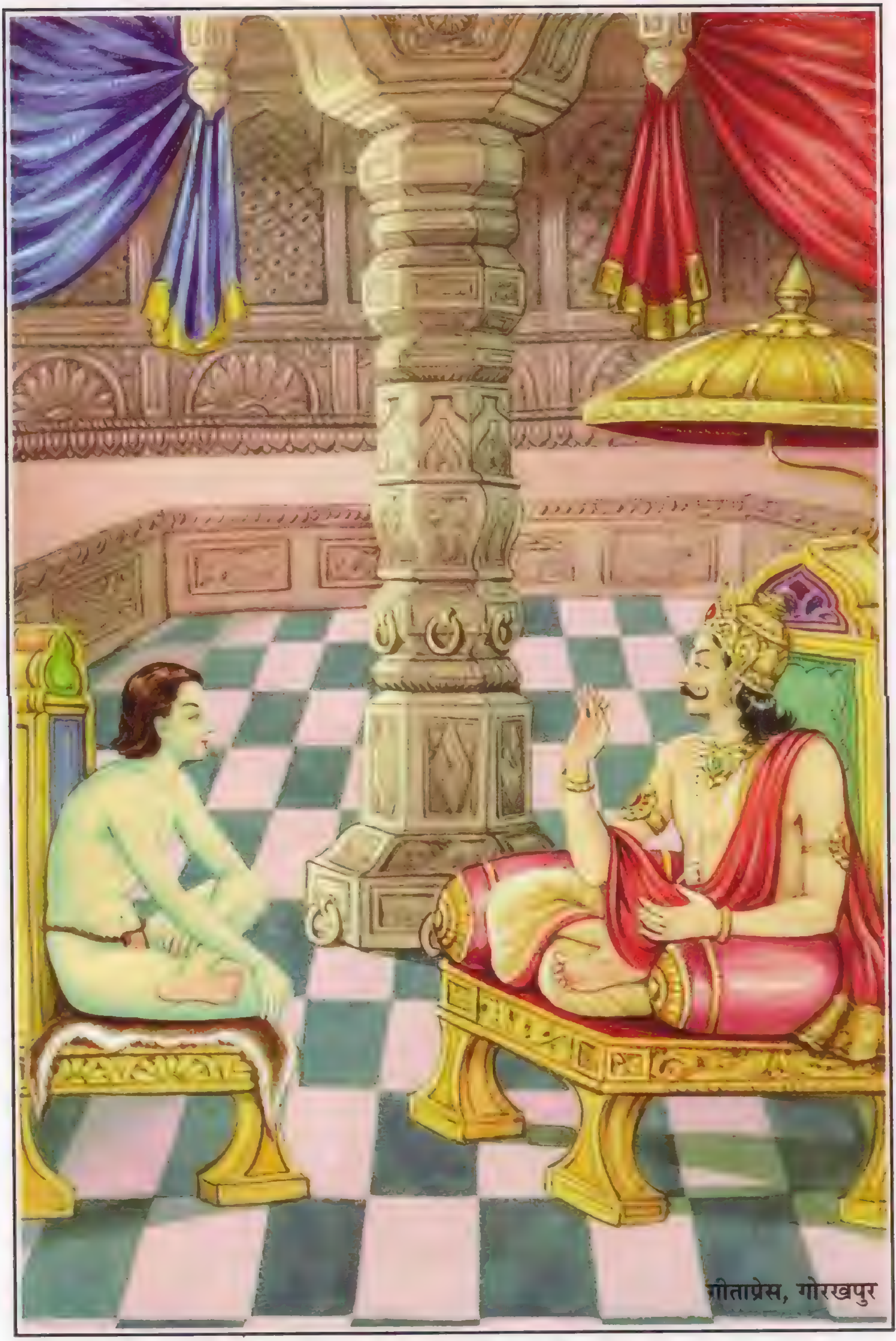
गीताप्रेस, गोरखपुर

विदेहराज जनक तथा परम विरक्त श्रीशुकदेवजी

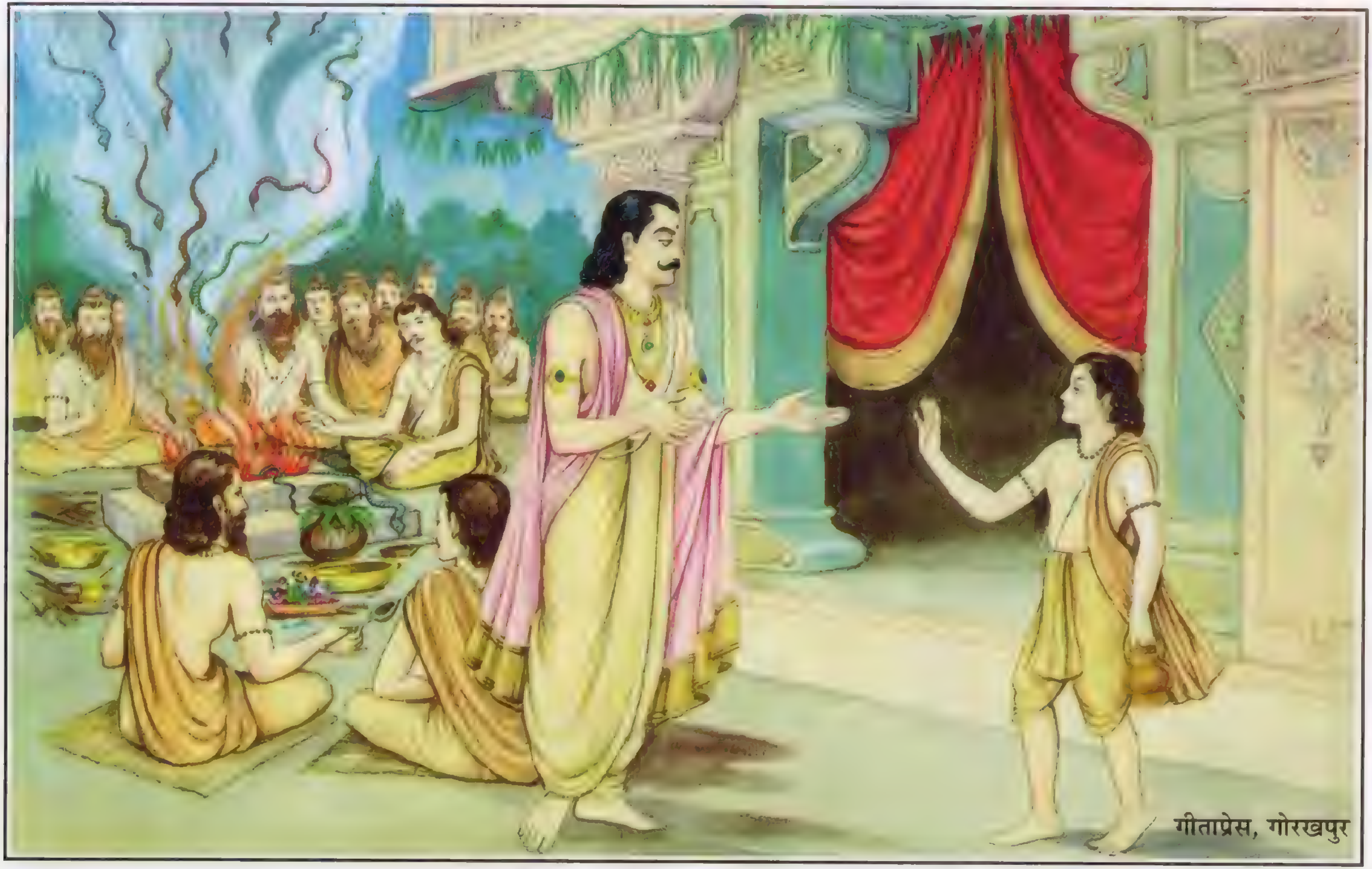

गीताप्रेस, गोरखपुर

परीक्षित्-पुत्र महाराज जनमेजयके सर्पयज्ञमें आस्तीकका प्रवेश

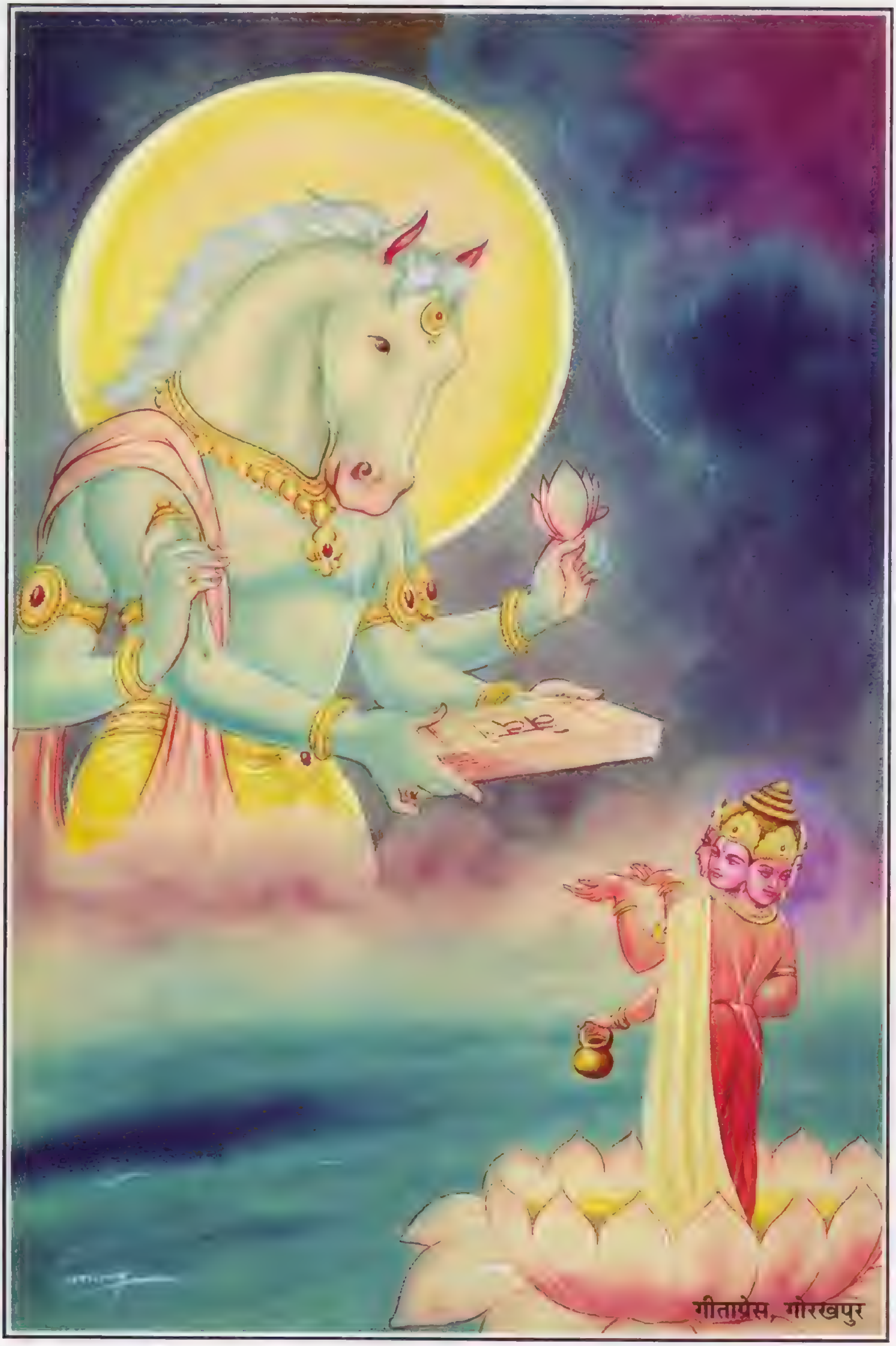
गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवान् हयग्रीवद्वारा वेदोंका उद्धारकर ब्रह्माजीको प्रदान करना

श्रीजगदम्बाका देवताओंको दर्शन देना

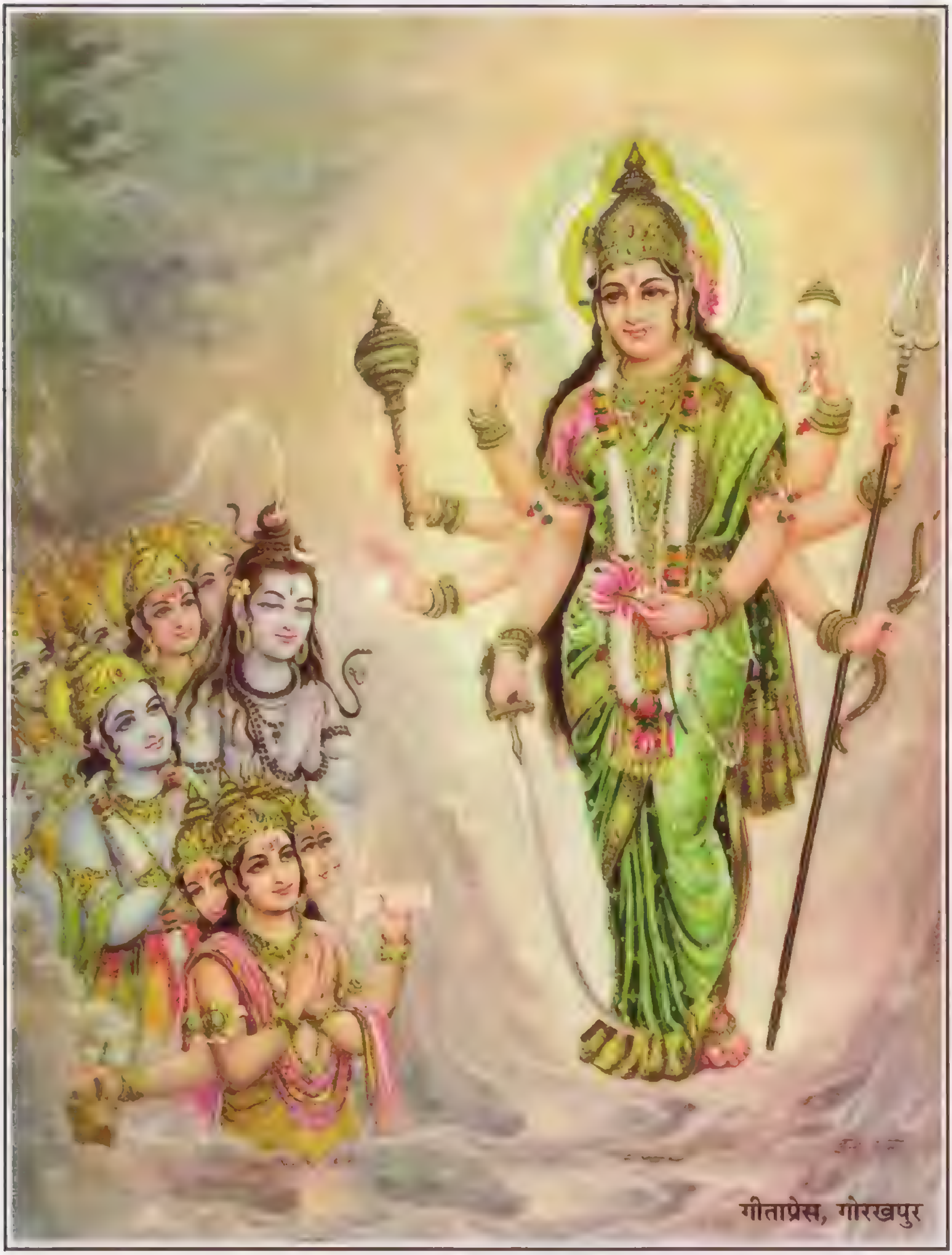

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः। भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः॥
कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः। सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः॥

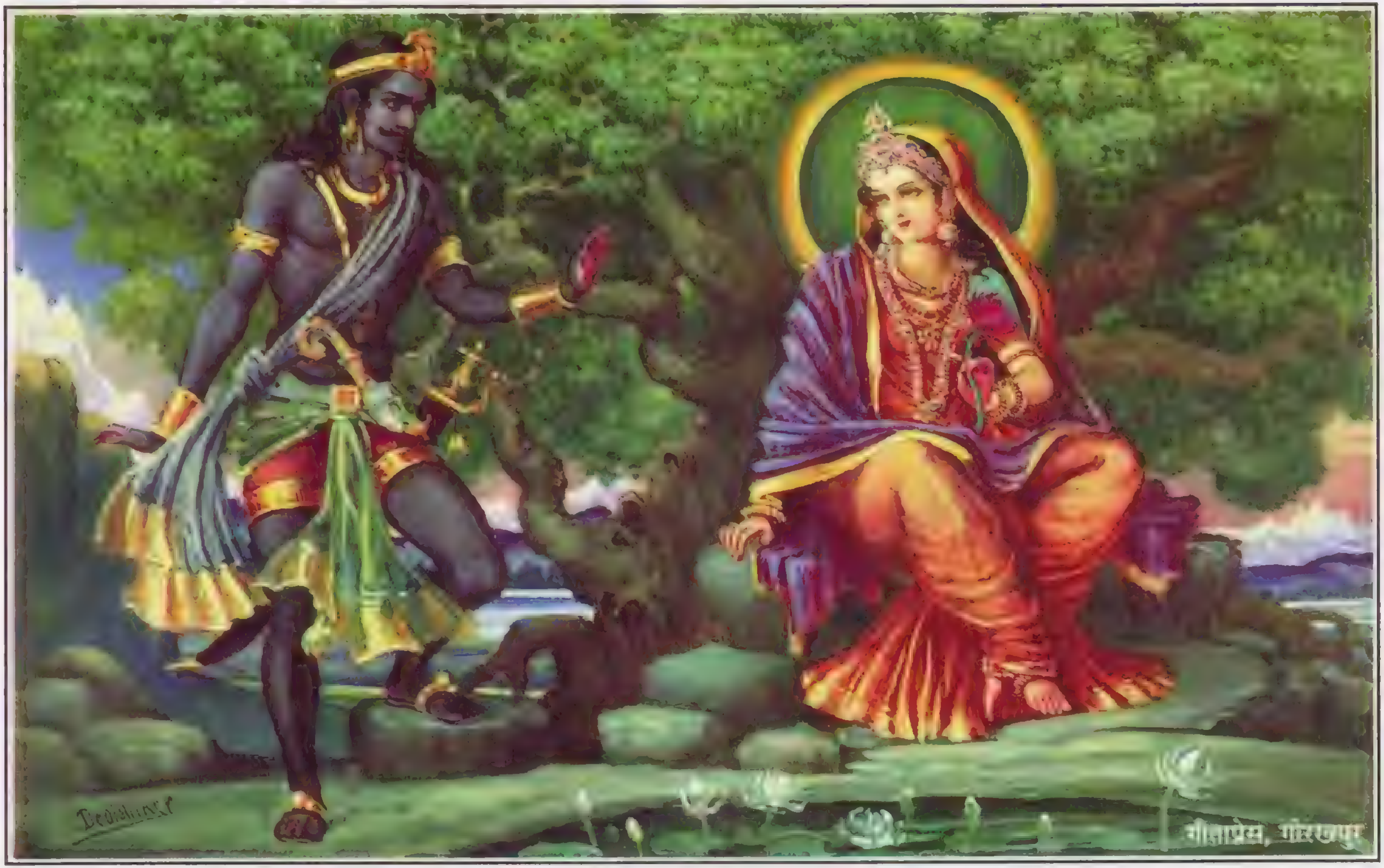
गीताप्रेस, गोरखपुर

शुम्भासुरके दूत सुग्रीवका भगवती कौशिकीके पास पहुँचना

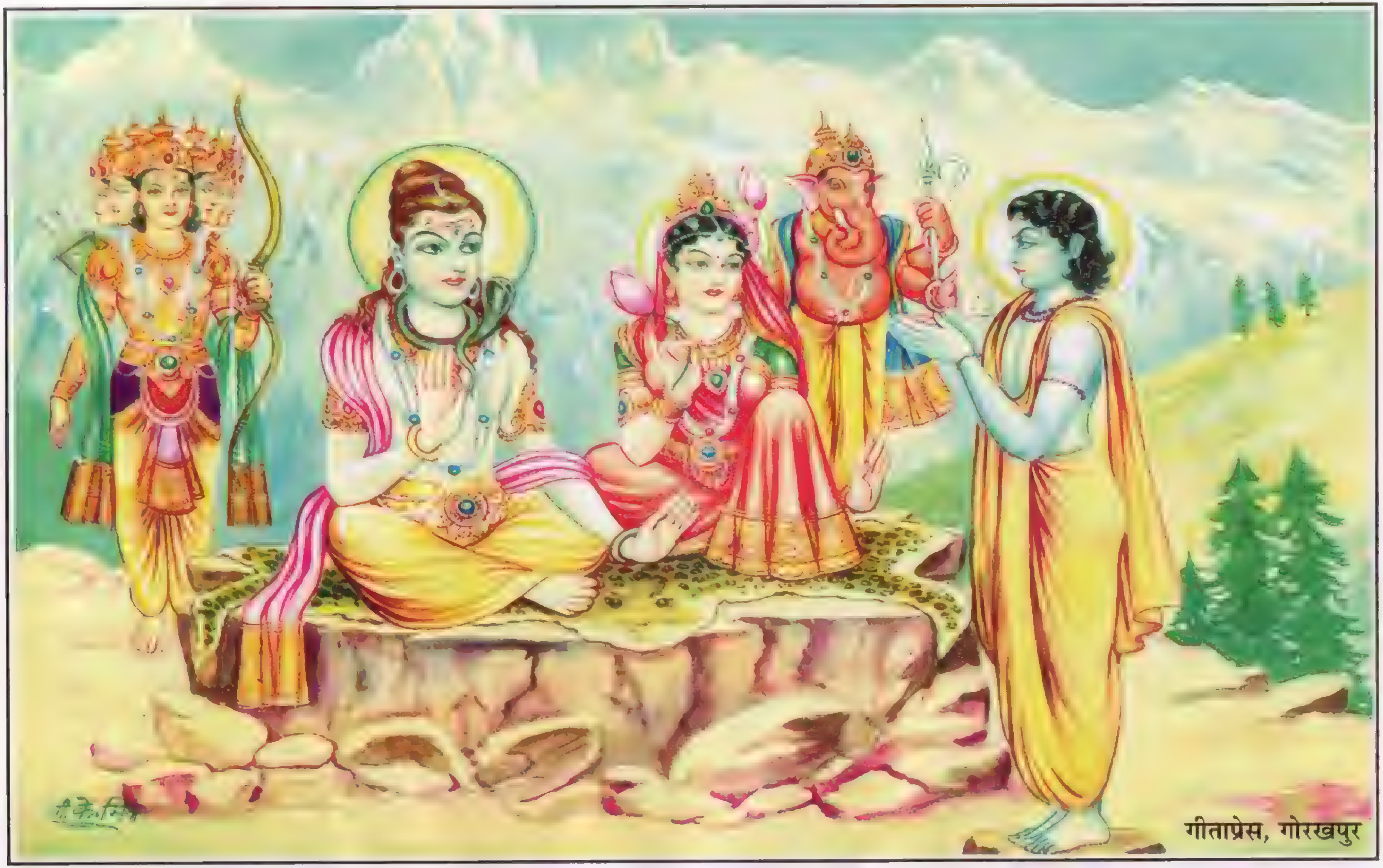

गीताप्रेस, गोरखपुर

शिव-पार्वतीद्वारा श्रीकृष्णको वरदान

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम्

अथ प्रथमोऽध्यायः

सूतजीके द्वारा ऋषियोंके प्रति श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणकी महिमाका कथन

सृष्टौ या सर्गरूपा जगदवनविधौ
पालनी या च रौद्री
संहारे चापि यस्या जगदिदमखिलं
क्रीडनं या पराख्या।
पश्यन्ती मध्यमाथो तदनु भगवती
वैखरी वर्णरूपा
सास्मद्वाचं प्रसन्ना विधिहरिगिरिशा-
राधितालङ्करोतु ॥ १

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥ २

ऋषय ऊचुः

सूत जीव समा बह्वीर्यस्त्वं श्रावयसीह नः।
कथा मनोहराः पुण्या व्यासशिष्य महामते॥ ३

सर्वपापहरं पुण्यं विष्णोश्चरितमद्भुतम्।
अवतारकथोपेतमस्माभिर्भक्तितः श्रुतम्॥ ४

शिवस्य चरितं दिव्यं भस्मरुद्राक्षयोस्तथा।
सेतिहासञ्च माहात्म्यं श्रुतं तव मुखाम्बुजात्॥ ५

अधुना श्रोतुमिच्छामः पावनात् पावनं परम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणामनायासेन सर्वशः॥ ६

तत् त्वं ब्रूहि महाभाग येन सिध्यन्ति मानवाः।
कलावपि परं त्वत्तो न विद्मः संशयच्छिदम्॥ ७

जगत्के सृष्टिकार्यमें जो उत्पत्तिरूपा, रक्षाकार्यमें पालनशक्तिरूपा, संहारकार्यमें रौद्ररूपा हैं, सम्पूर्ण विश्व-प्रपंच जिनके लिये क्रीडास्वरूप है, जो परा-पश्यन्ती-मध्यमा तथा वैखरी वाणीमें अभिव्यक्त होती हैं और जो ब्रह्मा-विष्णु-महेशद्वारा निरन्तर आराधित हैं, वे प्रसन्न चित्तवाली देवी भगवती मेरी वाणीको अलंकृत (परिशुद्ध) करें॥ १॥

[बदरिकाश्रमनिवासी प्रसिद्ध ऋषि] श्रीनारायण तथा नरोंमें श्रेष्ठ श्रीनर, भगवती सरस्वती और महर्षि वेदव्यासको प्रणाम करनेके पश्चात् ही जय (इतिहासपुराणादि सद्ग्रन्थों)-का पाठ-प्रवचन करना चाहिये॥ २॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे महामते! हे व्यासशिष्य! आप दीर्घजीवी हों; आप हमलोगोंको नानाविध पुण्यप्रदायिनी एवं मनोहारिणी कथाएँ सुनाते रहते हैं॥ ३॥

भगवान् विष्णुके सर्वपापविनाशक, परम पवित्र एवं उन अवतार-कथाओंसे सम्बन्धित अद्भुत चरित्रोंको हमने भक्तिपूर्वक सुना और इसी प्रकार हमने भगवान् शिवके अलौकिक चरित्र तथा भस्म और रुद्राक्षके ऐतिहासिक माहात्म्यका श्रवण आपके मुखारविन्दसे किया॥ ४-५॥

हमलोग अब ऐसी परम पावन कथा सुनना चाहते हैं, जो बिना प्रयासके ही मनुष्योंको भोग एवं मोक्ष प्रदान करनेमें पूर्णरूपसे सहायक हो॥ ६॥

हे महाभाग! अतः आप उस कथाका वर्णन करें, जिसके द्वारा मानव कलियुगमें भी सिद्धियाँ प्राप्त कर लें; क्योंकि हम आपसे बढ़कर किसी अन्यको नहीं जानते हैं, जो हमारी शंकाओंका निवारण कर सके॥ ७॥

सूत उवाच

साधु पृष्टं महाभागा लोकानां हितकाम्यया।
सर्वशास्त्रस्य यत् सारं तद्वो वक्ष्याम्यशेषतः॥ ८

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि पुराणानि व्रतानि च।
यावन्न श्रूयते सम्यग् देवीभागवतं नरैः॥ ९

तावत् पापाटवी नृणां क्लेशदादभ्रकण्टका।
यावन्न परशुः प्राप्तो देवीभागवताभिधः॥ १०

तावत् क्लेशावहं नृणामुपसर्गमहातमः।
यावन्नैवोदयं प्राप्तो देवीभागवतोष्णगुः॥ ११

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर।
कीदृशं तत्पुराणं हि विधिस्तच्छ्रवणे च कः॥ १२

कतिभिर्वासरैरेतच्छ्रोतव्यं किञ्च पूजनम्।
कैर्मानवैः श्रुतं पूर्वं कान्कान्कामानवाप्नुयुः॥ १३

सूत उवाच

विष्णोरंशो मुनिर्जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
विभज्य वेदांश्चतुरः शिष्यानध्यापयत्पुरा॥ १४

व्रात्यानां द्विजबन्धूनां वेदेष्वनधिकारिणाम्।
स्त्रीणां दुर्मेधसां नृणां धर्मज्ञानं कथं भवेत्॥ १५

विचार्यैतत् तु मनसा भगवान् बादरायणः।
पुराणसंहितां दध्यौ तेषां धर्मविधित्सया॥ १६

अष्टादश पुराणानि स कृत्वा भगवान् मुनिः।
मामेवाध्यापयामास भारताख्यानमेव च॥ १७

देवीभागवतं तत्र पुराणं भोगमोक्षदम्।
स्वयं तु श्रावयामास जनमेजयभूपतिम्॥ १८

सूतजी बोले—हे महाभाग ऋषियो! आपलोगोंने लोककल्याणकी भावनासे अत्यन्त उत्तम प्रश्न किया है, अतः मैं आप सभीके लिये समस्त शास्त्रोंका जो सार है, उसे पूर्णरूपसे बताऊँगा॥ ८॥

समस्त तीर्थ, पुराण और व्रत [अपनी श्रेष्ठताका वर्णन करते हुए] तभीतक गर्जना करते हैं, जबतक मनुष्य श्रीमद्देवीभागवतका सम्यक्‌रूपसे श्रवण नहीं कर लेते॥ ९॥

मनुष्योंके लिये पापरूपी अरण्य तभीतक दुःखप्रद एवं कंटकमय रहता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी परशु (कुठार) उपलब्ध नहीं हो जाता॥ १०॥

मनुष्योंको उपसर्ग (ग्रहण)-रूपी घोर अन्धकार तभीतक कष्ट पहुँचाता है, जबतक श्रीमद्देवीभागवतरूपी सूर्य उनके सम्मुख उदित नहीं हो जाते॥ ११॥

ऋषिगण बोले—हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग सूतजी! आप हमें बतायें कि वह श्रीमद्देवीभागवतपुराण कैसा है और उसके श्रवणकी विधि क्या है? उस पुराणको कितने दिनोंमें सुनना चाहिये, [उसके श्रवणकी अवधिमें] पूजन-विधान क्या है, प्राचीन कालमें किन-किन मनुष्योंने इसे सुना और उनकी कौन-कौनसी कामनाएँ पूर्ण हुईं?॥ १२-१३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें पराशरऋषिद्वारा सत्यवतीके गर्भसे विष्णुके अंशस्वरूप मुनि व्यास उत्पन्न हुए, जिन्होंने वेदोंका चार विभाग करके उन्हें अपने शिष्योंको पढ़ाया॥ १४॥

पतितों, ब्राह्मणाधमों, वेदाध्ययनके अनधिकारियों, स्त्रियों एवं दूषित बुद्धिवाले मनुष्योंको धर्मका ज्ञान कैसे हो—मनमें ऐसा विचार करके भगवान् बादरायण व्यासजीने उनके धर्मज्ञानार्थ पुराण-संहिताका प्रणयन किया॥ १५-१६॥

उन भगवान् व्यासमुनिने अठारह पुराणों एवं महाभारतका प्रणयन करके सर्वप्रथम मुझे ही पढ़ाया॥ १७॥

उन पुराणोंमें श्रीमद्देवीभागवतपुराण भोग एवं मोक्षको देनेवाला है। व्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था॥ १८॥

पूर्वमस्य पिता राजा परीक्षित् तक्षकाहिना।
सन्दष्टस्तस्य संशुध्यै राज्ञा भागवतं श्रुतम्॥ १९

नवभिर्दिवसैः श्रीमद्वेदव्यासमुखाम्बुजात्।
त्रैलोक्यमातरं देवीं पूजयित्वा विधानतः॥ २०

नवाहयज्ञे सम्पूर्णे परीक्षिदपि भूपतिः।
दिव्यरूपधरो देव्याः सालोक्यं तत्क्षणादगात्॥ २१

पितुर्दिव्यां गतिं राजा विलोक्य जनमेजयः।
व्यासं मुनिं समभ्यर्च्य परां मुदमवाप ह॥ २२

अष्टादशपुराणानां मध्ये सर्वोत्तमं परम्।
देवीभागवतं नाम धर्मकामार्थमोक्षदम्॥ २३

ये शृण्वन्ति सदा भक्त्या देव्या भागवतीं कथाम्।
तेषां सिद्धिर्न दूरस्था तस्मात् सेव्या सदा नृभिः॥ २४

दिनमर्धं तदर्धं वा मुहूर्तं क्षणमेव वा।
ये शृण्वन्ति नरा भक्त्या न तेषां दुर्गतिः क्वचित्॥ २५

सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु सर्वदानेषु यत् फलम्।
सकृत् पुराणश्रवणात् तत् फलं लभते नरः॥ २६

कृतादौ बहवो धर्माः कलौ धर्मस्तु केवलम्।
पुराणश्रवणादन्यो विद्यते नापरो नृणाम्॥ २७

धर्माचारविहीनानां कलावल्पायुषां नृणाम्।
व्यासो हिताय विदधे पुराणाख्यं सुधारसम्॥ २८

सुधां पिबन्नेक एव नरः स्यादजरामरः।
देव्याः कथामृतं कुर्यात् कुलमेवाजरामरम्॥ २९

पूर्वकालमें इन जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षक-नागद्वारा काट लिये गये। अतः पिताकी संशुद्धि (शुभगति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका श्रवण किया॥ १९-२०॥

इस नवाहयज्ञके सम्पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्ने उसी समय दिव्यरूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया॥ २१॥

राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए॥ २२॥

सभी अठारह पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको प्रदान करनेवाला है॥ २३॥

जो लोग सदा भक्ति-श्रद्धापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतकी कथा सुनते हैं, उन्हें सिद्धि प्राप्त होनेमें रंचमात्र भी विलम्ब नहीं होता। इसलिये मनुष्योंको इस पुराणका सदा पठन-श्रवण करना चाहिये॥ २४॥

पूरे दिन, दिनके आधे समयतक, चौथाई समयतक, मुहूर्तभर अथवा एक क्षण भी जो लोग भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करते हैं, उनकी कभी भी दुर्गति नहीं होती॥ २५॥

मनुष्य सभी यज्ञों, तीर्थों तथा दान आदि शुभ कर्मोंका जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे केवल एक बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे प्राप्त हो जाता है॥ २६॥

सत्ययुग आदि युगोंमें तो अनेक प्रकारके धर्मोंका विधान था, किंतु कलियुगमें पुराण-श्रवणके अतिरिक्त मनुष्योंके लिये अन्य कोई सरल धर्म विहित नहीं है॥ २७॥

कलियुगमें धर्म एवं सदाचारसे रहित तथा अल्प आयुवाले मनुष्योंके कल्याणार्थ महर्षि वेदव्यासने अमृतरसमय श्रीमद्देवीभागवतनामक पुराणकी रचना की॥ २८॥

अमृतके पानसे तो केवल एक ही मनुष्य अजर-अमर होता है, किंतु भगवतीका कथारूप अमृत सम्पूर्ण कुलको ही अजर-अमर बना देता है॥ २९॥

मासानां नियमो नात्र दिनानां नियमोऽपि न।
सदा सेव्यं सदा सेव्यं देवीभागवतं नरैः॥ ३०

आश्विने मधुमासे वा तपोमासे शुचौ तथा।
चतुर्षु नवरात्रेषु विशेषात् फलदायकम्॥ ३१

अतो नवाहयज्ञोऽयं सर्वस्मात् पुण्यकर्मणः।
फलाधिकप्रदानेन प्रोक्तः पुण्यप्रदो नृणाम्॥ ३२

ये दुर्हृदः पापरता विमूढा
मित्रद्रुहो वेदविनिन्दकाश्च।
हिंसारता नास्तिकमार्गसक्ता
नवाहयज्ञेन पुनन्ति ते कलौ॥ ३३

परस्वदाराहरणेऽतिलुब्धा
ये वै नराः कल्मषभारभाजः।
गोदेवताब्राह्मणभक्तिहीना
नवाहयज्ञेन भवन्ति शुद्धाः॥ ३४

तपोभिरुग्रैर्व्रततीर्थसेवनै-
र्दानैरनेकैर्नियमैर्मखैश्च ।
हुतैर्जपैर्यच्च फलं न लभ्यते
नवाहयज्ञेन तदाप्यते नृणाम्॥ ३५

तथा न गङ्गा न गया न काशी
न नैमिषं नो मथुरा न पुष्करम्।
पुनाति सद्यो बदरीवनं नो
यथा हि देवीमख एष विप्राः॥ ३६

अतो भागवतं देव्याः पुराणं परतः परम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणामुत्तमं साधनं मतम्॥ ३७

आश्विनस्य सिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ।
महाष्टम्यां समभ्यर्च्य हैमसिंहासनस्थितम्॥ ३८

देवीप्रीतिप्रदं भक्त्या श्रीभागवतपुस्तकम्।
दद्याद् विप्राय योग्याय स देव्याः पदवीं लभेत्॥ ३९

देवीभागवतस्यापि श्लोकं श्लोकार्धमेव वा।
भक्त्या यश्च पठेन्नित्यं स देव्याः प्रीतिभाग्भवेत्॥ ४०

श्रीमद्देवीभागवतके कथा-श्रवणमें महीनों तथा दिनोंका कोई भी नियम नहीं है। अतएव मानवोंद्वारा इसका सदा ही सेवन (पठन-श्रवण) किया जाना चाहिये॥ ३०॥

आश्विन, चैत्र, माघ तथा आषाढ़—इन महीनोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका श्रवण विशेष फल प्रदान करता है॥ ३१॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ समस्त पुण्यकर्मोंसे अधिक फलदायक होनेके कारण मनुष्योंके लिये विशेष पुण्यप्रद कहा गया है॥ ३२॥

जो कलुषित हृदयवाले, पापी, मूर्ख, मित्रद्रोही, वेदोंकी निन्दा करनेवाले, हिंसामें रत और नास्तिक मार्गका अनुसरण करनेवाले मनुष्य हैं, वे भी कलियुगमें इस नवाहयज्ञके अनुष्ठानसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३३॥

जो मनुष्य दूसरोंके धन तथा परायी स्त्रियोंके लिये लालायित रहते हैं, पापके बोझसे दबे हुए हैं और गो-ब्राह्मण-देवताओंकी भक्तिसे रहित हैं, वे भी इस नवाहयज्ञसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३४॥

जो फल कठिन तपस्याओं, व्रतों, तीर्थसेवन, अनेकविध दान, नियमों, यज्ञों, हवन एवं जप आदिके करनेसे प्राप्त नहीं होता है, वह फल मनुष्योंको श्रीमद्देवीभागवतके नवाहयज्ञसे प्राप्त हो जाता है॥ ३५॥

हे विप्रो! गंगा, गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, पुष्कर तथा बदरिकारण्य भी मनुष्योंको उतना शीघ्र पवित्र नहीं कर पाते हैं, जितना कि श्रीमद्देवीभागवतका यह नवाहयज्ञ लोगोंको पवित्र कर देता है॥ ३६॥

अतएव श्रीमद्देवीभागवतपुराण सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। इसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षकी प्राप्तिका उत्तम साधन माना गया है॥ ३७॥

जो आश्विन महीनेके शुक्लपक्षमें सूर्यके कन्याराशिमें पहुँचनेपर महाष्टमी तिथिको स्वर्ण-सिंहासनपर स्थित देवीके प्रीतिप्रद श्रीमद्देवीभागवत-ग्रन्थका पूजन करके उसे किसी योग्य ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक देता है, वह देवीके परमपदको प्राप्त करता है॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन श्रीमद्देवीभागवतपुराणके एक अथवा आधे श्लोकका भी भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह जगदम्बाका कृपापात्र हो जाता है॥ ४०॥

उपसर्गभयं घोरं महामारीसमुद्भवम्।
उत्पातानखिलांश्चापि हन्ति श्रवणमात्रतः॥ ४१

बालग्रहकृतं यच्च भूतप्रेतकृतं भयम्।
देवीभागवतस्यास्य श्रवणाद् याति दूरतः॥ ४२

यस्तु भागवतं देव्याः पठेद् भक्त्या शृणोति वा।
धर्ममर्थं च कामं च मोक्षं च लभते नरः॥ ४३

श्रवणाद्वसुदेवोऽस्य प्रसेनान्वेषणे गतम्।
चिरायितं प्रियं पुत्रं कृष्णं लब्ध्वा मुमोद ह॥ ४४

य एतां शृणुयाद् भक्त्या श्रीमद्भागवतीं कथाम्।
भुक्तिं मुक्तिं स लभते भक्त्या यश्च पठेदिमाम्॥ ४५

अपुत्रो लभते पुत्रं दरिद्रो धनवान् भवेत्।
रोगी रोगात् प्रमुच्येत श्रुत्वा भागवतामृतम्॥ ४६

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याङ्गना।
देवीभागवतं श्रुत्वा लभेत् पुत्रं चिरायुषम्॥ ४७

पूजितं यद्गृहे नित्यं श्रीभागवतपुस्तकम्।
तद्गृहं तीर्थभूतं हि वसतां पापनाशकम्॥ ४८

अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां नवम्यां भक्तिसंयुतः।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि स सिद्धिं लभते पराम्॥ ४९

महामारीसे उत्पन्न उपद्रवोंके भीषण भय तथा समस्त प्रकारके उत्पात (उल्कापात, भूकम्प, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि) इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवण-मात्रसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ४१॥

बालग्रहों* (स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेष) तथा भूत-प्रेत आदिसे उत्पन्न भय इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके श्रवणसे बहुत दूरसे ही भाग जाते हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति भक्ति-भावसे देवीके इस भागवत-पुराणका पाठ अथवा श्रवण करता है; वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे वसुदेवजी प्रसेनको खोजनेके लिये गये हुए और बहुत समयतक न लौटे हुए अपने प्रिय पुत्र श्रीकृष्णको प्राप्त करके प्रसन्न हुए॥ ४४॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी कथाको पढ़ता है तथा इसका श्रवण करता है, वह भोग तथा मोक्ष दोनों प्राप्त कर लेता है॥ ४५॥

अमृतस्वरूप इस श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है, दरिद्र व्यक्ति धनसे सम्पन्न हो जाता है तथा रोगग्रस्त मनुष्य रोगसे मुक्त हो जाता है॥ ४६॥

वन्ध्या स्त्री, एक सन्तानवाली स्त्री अथवा वह स्त्री जिसकी सन्तान पैदा होकर मर जाती हो—वे भी श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनकर दीर्घ आयुवाला पुत्र प्राप्त करती हैं॥ ४७॥

जिस घरमें नित्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूजन किया जाता है, वह घर तीर्थस्वरूप हो जाता है तथा उसमें निवास करनेवाले लोगोंके पापोंका नाश हो जाता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अष्टमी, नवमी अथवा चतुर्दशी तिथियोंको श्रद्धापूर्वक इसे पढ़ता या सुनता है, वह परम सिद्धिको प्राप्त करता है॥ ४९॥

---

* सुश्रुतसंहित उत्तरतन्त्र २७।४ ५

पठन् द्विजो वेदविदग्रणीर्भवेद्
बाहुप्रजातो धरणीपतिः स्यात्।
वैश्यः पठन् वित्तसमृद्धिमेति
शूद्रोऽपि शृण्वन् स्वकुलोत्तमः स्यात्॥ ५०

इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पाठ करनेवाला ब्राह्मण वेदवेत्ताओंमें अग्रगण्य हो जाता है, क्षत्रिय राजा हो जाता है, वैश्य धन-सम्पदासे सम्पन्न हो जाता है और शूद्र भी इसके श्रवणमात्रसे अपने कुल (बन्धु-बान्धवों)-के बीच श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है॥ ५०॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवत-श्रवणमाहात्म्यवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें स्यमन्तकमणिकी कथा

ऋषय ऊचुः

वसुदेवो महाभागः कथं पुत्रमवाप्तवान्।
प्रसेनः कुत्र कृष्णेन भ्रमतान्वेषितः कथम्॥ १

विधिना केन कस्माच्च देवीभागवतं श्रुतम्।
वसुदेवेन सुमते वद सूत कथामिमाम्॥ २

सूत उवाच

सत्राजिद् भोजवंशीयो द्वारवत्यां सुखं वसन्।
सूर्यस्याराधने युक्तो भक्तश्च परमः सखा॥ ३

अथ कालेन कियता प्रसन्नः सविताभवत्।
स्वलोकं दर्शयामास तद्भक्त्या प्रणयेन च॥ ४

तस्मै प्रीतश्च भगवान् स्यमन्तकमणिं ददौ।
स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे द्वारकामाजगाम ह॥ ५

दृष्ट्वा तं तेजसा भ्रान्ता मत्वादित्यं पुरौकसः।
कृष्णमूचुः समभ्येत्य सुधर्मायामवस्थितम्॥ ६

एष आयाति सविता दिदृक्षुस्त्वां जगत्पते।
श्रुत्वा कृष्णस्तु तद्वाचं प्रहस्योवाच संसदि॥ ७

सविता नैष भो बालाः सत्राजिन्मणिना ज्वलन्।
स्यमन्तकेन चायाति भास्वद्दत्तेन भास्वता॥ ८

ऋषिगण बोले—महाभाग वसुदेवजीने अपने पुत्रको किस प्रकार प्राप्त किया और वनमें भ्रमण करते हुए श्रीकृष्णने प्रसेनको कैसे खोजा? हे सुमते! हे सूतजी! किस विधिसे और किससे वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण किया; आप हमलोगोंको यह कथा बतायें॥ १-२॥

सूतजी बोले—भोजवंशी सत्राजित् द्वारकापुरीमें आनन्दपूर्वक निवास करता हुआ सूर्यकी आराधनामें तत्पर रहता था। वह सूर्यका परम भक्त एवं उनका मित्र था॥ ३॥

कुछ समयके पश्चात् सूर्यदेव उसके ऊपर प्रसन्न हो गये और उन्होंने उसे अपने लोकका दर्शन कराया। उसकी भक्ति तथा प्रेमसे अत्यन्त प्रसन्न हुए भगवान् सूर्यने सत्राजित्को स्यमन्तकमणि दे दी और वह उस मणिको अपने गलेमें धारण किये हुए द्वारका आ गया॥ ४-५॥

उसे देखकर मणिके तेजसे भ्रमित नागरिकोंने सत्राजित्को सूर्य समझकर सुधर्मा नामक अपनी सभामें विराजमान श्रीकृष्णके पास पहुँचकर उनसे कहा॥ ६॥

हे जगत्पते! आपके दर्शनकी अभिलाषासे भगवान् सूर्य स्वयं आपके पास आ रहे हैं। यह बात सुनकर सभामें श्रीकृष्ण हँसकर बोले॥ ७॥

हे बाल-स्वभाव नागरिको! ये सूर्यभगवान् नहीं हैं; बल्कि सत्राजित् है, जो स्वयं सूर्यद्वारा प्रदत्त स्यमन्तक-मणिसे दीप्तिमान् होता हुआ यहाँ आ रहा है॥ ८॥

अथ विप्रान् समाहूय स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।
प्रावेशयत् समभ्यर्च्य सत्राजित् स्वगृहे मणिम्॥ ९

न तत्र मारी दुर्भिक्षं नोपसर्गभयं क्वचित्।
यत्रास्ते स मणिर्नित्यमष्टभारसुवर्णदः॥ १०

अथ सत्राजितो भ्राता प्रसेनो नाम कर्हिचित्।
कण्ठे बद्ध्वा मणिं सद्यो हयमारुह्य सैन्धवम्॥ ११

मृगयार्थं वनं यातस्तमद्राक्षीन्मृगाधिपः।
प्रसेनं सहयं हत्वा सिंहो जग्राह तं मणिम्॥ १२

जाम्बवानृक्षराजोऽथ दृष्ट्वा मणिधरं हरिम्।
हत्वा च तं बिलद्वारि मणिं जग्राह वीर्यवान्॥ १३

स तं मणिं स्वपुत्राय क्रीडनार्थमदात् प्रभुः।
अथ चिक्रीड बालोऽपि मणिं सम्प्राप्य भास्वरम्॥ १४

प्रसेनेऽनागते चाथ सत्राजित् पर्यतप्यत।
न जाने केन निहतः प्रसेनो मणिमिच्छता॥ १५

अथ लोकमुखोद्गीर्णा किंवदन्ती पुरेऽभवत्।
कृष्णेन निहतो नूनं प्रसेनो मणिलिप्सुना॥ १६

स तं शुश्राव कृष्णोऽपि दुर्यशो लिप्तमात्मनि।
मार्ष्टुं तत्तस्य पदवीं पुरौकोभिस्सहागमत्॥ १७

उसके पश्चात् ब्राह्मणोंको बुलाकर सत्राजित्ने स्वस्तिवाचन कराया और भलीभाँति पूजन करके उस मणिको अपने घरमें स्थापित किया॥ ९॥

वह मणि जहाँ रहती थी, वहाँ किसी प्रकारकी महामारी, दुर्भिक्ष तथा उपसर्ग (भूकम्प आदि प्राकृतिक संकट)-का भय उत्पन्न नहीं होता था और (उस मणिकी एक विशेषता यह भी थी कि) वह नित्य आठ भार* स्वर्ण दिया करती थी॥ १०॥

तदनन्तर एक दिन सत्राजित्के भाई प्रसेनने उस मणिको गलेमें धारणकर सिन्धुदेशीय घोड़ेपर सवार होकर आखेटके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया। वहाँ वनमें किसी सिंहने उसे देखा और घोड़ेसहित प्रसेनको मारकर सिंहने वह मणि स्वयं ले ली॥ ११-१२॥

इसके पश्चात् महाबली ऋक्षराज जाम्बवान्ने मणि धारण करनेवाले उस सिंहको अपनी गुफाके द्वारपर देखकर और उसे मारकर मणि स्वयं ले ली॥ १३॥

पराक्रमी ऋक्षराजने वह मणि खेलनेके लिये अपने पुत्रको दे दी और वह बालक भी उस प्रदीप्त मणिको पाकर उसके साथ खेलने लगा॥ १४॥

कुछ काल बीतनेपर भी प्रसेनके वापस न लौटनेपर सत्राजित् अत्यन्त दुःखी हुआ और सोचने लगा कि मणि लेनेकी इच्छासे न जाने किसने प्रसेनको मार डाला॥ १५॥

इसी बीच द्वारकापुरमें नागरिकोंकी पारस्परिक बात-चीतसे किसी प्रकार यह किंवदन्ती फैल गयी कि मणिके लोभके वशीभूत श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है॥ १६॥

श्रीकृष्णने भी जब अपने विषयमें अपयशकी वह बात सुनी तो उन्होंने अपने ऊपर लगे हुए कलंकके परिमार्जनहेतु प्रसेनके अन्वेषणार्थ नागरिकोंके साथ प्रस्थान किया॥ १७॥

---

* भारका परिमाण इस प्रकार है—

चतुर्भिर्व्रीहिभिर्गुञ्जं गुञ्जान्पञ्च पणं पलम्। अष्टौ धरणमष्टौ च कर्षं तांश्चतुरः पलम्।
तुलां पलशतं प्राहुर्भारं स्याद्विंशतिस्तुलाः॥

अर्थात् 'चार व्रीहि (धान)-की एक गुंजा, पाँच गुंजाका एक पण, आठ पणका एक धरण, आठ धरणका एक कर्ष, चार कर्षका एक पल, सौ पलकी एक तुला और बीस तुलाका एक भार कहलाता है।'

गत्वा स विपिनेऽपश्यत् प्रसेनं हरिणा हतम्।
ययौ मृगेन्द्रमन्विष्यन्नसृग्बिन्द्वङ्किताध्वना॥ १८

अथ कृष्णो हतं सिंहं बिलद्वारि विलोक्य च।
उवाच भगवान् वाचं कृपया पुरवासिनः॥ १९

तिष्ठध्वं यूयमत्रैव यावदागमनं मम।
प्रविशामि बिलं त्वेतन्मणिहारकलब्धये॥ २०

तथेत्युक्त्वा तु ते तस्थुस्तत्रैव द्वारकौकसः।
जगामान्तर्बिलं कृष्णो यत्र जाम्बवतो गृहम्॥ २१

ऋक्षराजसुतं दृष्ट्वा कृष्णो मणिधरं तदा।
हर्तुमैच्छन्मणिं तावद् धात्री चुक्रोश भीतवत्॥ २२

श्रुत्वा धात्रीरवं सद्यः समागत्यर्क्षराट् तदा।
युयुधे स्वामिना साकमविश्रममहर्निशम्॥ २३

एवं त्रिनवरात्रं तु महद्युद्धमभूत्तयोः।
कृष्णागमं प्रतीक्षन्तस्तस्थुर्द्वारि पुरौकसः॥ २४

द्वादशाहं ततो भीत्या प्रतिजग्मुर्निजालयम्।
तत्र ते कथयामासुर्वृत्तान्तं सर्वमादितः॥ २५

सत्राजितं शपन्तस्ते सर्वे शोकाकुला भृशम्।
वसुदेवो महाभागः श्रुत्वा पुत्रस्य तां कथाम्॥ २६

मुमोह सपरीवारस्तदा परमया शुचा।
चिन्तयामास बहुधा कथं श्रेयो भवेन्मम॥ २७

अथाजगाम भगवान् देवर्षिर्ब्रह्मलोकतः।
उत्थाय तं प्रणम्यासौ वसुदेवोऽभ्यपूजयत्॥ २८

नारदोऽनामयं पृष्ट्वा वसुदेवं महामतिम्।
पप्रच्छ च यदुश्रेष्ठं किं चिन्तयसि तद् वद॥ २९

वनमें पहुँचनेपर श्रीकृष्णने सिंहद्वारा मारे गये प्रसेनको देखा और तदनन्तर गिरे हुए रक्त-बिन्दुओंसे चिह्नित मार्गका अनुसरण करके सिंहको खोजते हुए वे कुछ दूर गये॥ १८॥

इसके पश्चात् एक गुफाके द्वारपर मरे हुए सिंहको देखकर भगवान् श्रीकृष्ण करुणायुक्त वाणीमें नागरिकोंसे बोले—मणिका हरण करनेवालेको खोजनेके लिये मैं इस गुफाके भीतर प्रवेश कर रहा हूँ। जबतक मैं वापस न आ जाऊँ, तुम लोग यहींपर ठहरो॥ १९-२०॥

वे द्वारकावासी 'ठीक है'—ऐसा बोलकर वहींपर ठहर गये और श्रीकृष्ण गुफाके भीतर प्रविष्ट हुए, जहाँ जाम्बवान्‌का घर था॥ २१॥

तत्पश्चात् वहाँ पहुँचनेपर श्रीकृष्णने ऋक्षराजके पुत्रको मणि धारण किये देखकर मणिको छीनना चाहा, इसपर उसकी धात्री (धाय) भयभीत होकर चिल्लाने लगी॥ २२॥

तब धात्रीकी आवाज सुनकर जाम्बवान् तुरंत वहाँ आ गया और वह अपने [पूर्व] स्वामी श्रीकृष्णके साथ दिन-रात निरन्तर युद्ध करने लगा॥ २३॥

इस प्रकार उन दोनोंके बीच सत्ताईस दिनोंतक भयंकर युद्ध हुआ। इधर द्वारकावासी गुफाके द्वारपर बारह दिनोंतक तो श्रीकृष्णके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए ठहरे रहे, किंतु इसके बाद वे भयभीत होकर अपने-अपने घर चले गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने लोगोंसे सारा वृत्तान्त कहा॥ २४-२५॥

द्वारकापुरीके सभी नागरिक यह सब सुनकर सत्राजित्‌की भर्त्सना करते हुए अत्यन्त शोकविह्वल हो गये। महाभाग वसुदेवजी अपने पुत्रका वह समाचार सुनकर परिवारसहित महान् शोकसे मूर्छित हो गये और बार-बार सोचने लगे कि मेरा कल्याण किस प्रकारसे हो?॥ २६-२७॥

उसी समय ब्रह्मलोकसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये। वसुदेवजीने उठकर उन्हें प्रणाम करके विधिवत् उनकी पूजा की॥ २८॥

देवर्षि नारद महामति यदुश्रेष्ठ वसुदेवजीसे कुशल-क्षेम पूछकर उनसे बोले—आप क्यों चिन्तित हैं, यह मुझे बताइये॥ २९॥

वसुदेव उवाच

पुत्रो मेऽतिप्रियः कृष्णः प्रसेनान्वेषणाय तु।
पौरैः साकं वनं गत्वा निहतं तं तदैक्षत॥ ३०

प्रसेनघातकं दृष्ट्वा बिलद्वारे मृतं हरिम्।
द्वारि पौरानधिष्ठाप्य बिलान्तर्गतवान् स्वयम्॥ ३१

बहवो दिवसा याता नायात्यद्यापि मे सुतः।
अतः शोचामि तद् ब्रूहि येन लप्स्ये सुतं मुने॥ ३२

नारद उवाच

पुत्रप्राप्त्यै यदुश्रेष्ठ देवीमाराधयाम्बिकाम्।
तस्या आराधनेनैव सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥ ३३

वसुदेव उवाच

भगवन् का हि सा देवी किंप्रभावा महेश्वरी।
कथमाराधनं तस्या देवर्षे कृपया वद॥ ३४

नारद उवाच

वसुदेव महाभाग शृणु संक्षेपतो मम।
देव्या माहात्म्यमतुलं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः॥ ३५

या सा भगवती नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
परात्परतरा देवी यया व्याप्तमिदं जगत्॥ ३६

यदाराधनतो ब्रह्मा सृजतीदं चराचरम्।
यां च स्तुत्वा विनिर्मुक्तो मधुकैटभजाद् भयात्॥ ३७

विष्णुर्यत्कृपया विश्वं बिभर्ति भगवानिदम्।
रुद्रः संहरते यस्याः कृपापाङ्गनिरीक्षणात्॥ ३८

संसारबन्धहेतुर्या सैव मुक्तिप्रदायिनी।
सा विद्या परमा देवी सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ ३९

नवरात्रविधानेन सम्पूज्य जगदम्बिकाम्।
नवाहोभिः पुराणं च देव्या भागवतं शृणु॥ ४०

यस्य श्रवणमात्रेण सद्यः पुत्रमवाप्स्यसि।
भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था पठतां शृण्वतां नृणाम्॥ ४१

वसुदेवजी बोले—मेरा अतिशय प्रिय पुत्र श्रीकृष्ण प्रसेनको खोजनेके लिये द्वारकाके नागरिकोंके साथ वनमें गया था, जहाँ उसने प्रसेनको मरा हुआ देखा। इसके पश्चात् प्रसेनको मारनेवाले सिंहको भी एक गुफाके द्वारपर मरा देखकर श्रीकृष्ण नागरिकोंको द्वारपर ही रोककर स्वयं गुफाके अन्दर चले गये। बहुत दिन व्यतीत हो चुके हैं, किंतु मेरा पुत्र अभीतक नहीं लौटा, जिससे मैं चिन्तित हूँ, अतः हे मुने! आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं अपने प्रिय पुत्रको प्राप्त कर सकूँ॥ ३०—३२॥

नारदजी बोले—हे यदुश्रेष्ठ! आप पुत्रकी प्राप्तिके लिये अम्बिकादेवीकी आराधना कीजिये। उनकी आराधनासे शीघ्र ही आपका कल्याण होगा॥ ३३॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! वे देवी कौन हैं, वे महेश्वरी किस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी आराधना किस प्रकार की जाती है? हे देवर्षे! कृपा करके यह बतायें॥ ३४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! देवीके अतुलित माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? अतः मैं संक्षेपमें ही कह रहा हूँ, आप उसे सुनें॥ ३५॥

जो भगवती शाश्वत, सच्चिदानन्दस्वरूपा और परात्परतरा देवी हैं तथा जिनके द्वारा यह जगत् व्याप्त है, जिनकी आराधनाके प्रभावसे ही ब्रह्मा इस चराचर सृष्टिकी रचना करते हैं, जिनका स्तवन करके भगवान् विष्णु मधु-कैटभके भयसे मुक्त हुए तथा जिनकी कृपासे वे विश्वका पालन-पोषण करते हैं, जिनके कृपा-कटाक्षमात्रसे भगवान् शंकर जगत्का संहार करते हैं और जो संसारके बन्धनकी कारणरूपा हैं, वे ही मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, वे ही परम विद्यास्वरूपा हैं और वे ही समस्त ईश्वरोंकी भी ईश्वरी हैं॥ ३६—३९॥

अतः आप नवरात्रविधानके अनुसार जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके नौ दिनोंमें इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका श्रवण कीजिये, जिसके श्रवणमात्रसे आप शीघ्र ही अपने पुत्रकी प्राप्ति कर लेंगे। इस पुराणका पाठ तथा श्रवण करनेवाले मनुष्योंसे भोग एवं मोक्ष दूर नहीं रहते॥ ४०-४१॥

इत्युक्तो नारदेनासौ वसुदेवः प्रणम्य तम्।
उवाच परया प्रीत्या नारदं मुनिसत्तमम्॥ ४२

वसुदेव उवाच

भगवंस्तव वाक्येन संस्मृतं वृत्तमात्मनः।
श्रूयतां तच्च वक्ष्यामि देवीमाहात्म्यसम्भवम्॥ ४३

पुरा नभोगिरा कंसो देवक्यष्टमगर्भतः।
ज्ञात्वात्ममृत्युं पापो मां सभार्यं न्यरुणद्भिया॥ ४४

कारागारेऽहमवसं देवक्या सह भार्यया।
जातं जातं समवधीत्पुत्रं कंसोऽपि पापकृत्॥ ४५

षट् पुत्रा निहतास्तेन तदा शोकाकुला भृशम्।
अतप्यद् देवकी देवी नक्तन्दिवमनिन्दिता॥ ४६

तदाहं गर्गमाहूय मुनिं नत्वाभिपूज्य च।
निवेद्य देवकीदुःखमवोचं पुत्रकाम्यया॥ ४७

भगवन् करुणासिन्धो यादवानां गुरुर्भवान्।
आयुष्मत्पुत्रसम्प्राप्तिसाधनं वद मे मुने॥ ४८

ततो गर्गः प्रसन्नात्मा मामुवाच दयानिधिः।

गर्ग उवाच

वसुदेव महाभाग शृणु तत् साधनं परम्॥ ४९

या सा भगवती दुर्गा भक्तदुर्गतिहारिणी।
तामाराधय कल्याणीं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि॥ ५०

यदाराधनतः सर्वे सर्वान् कामानवाप्नुयुः।
न किञ्चिद् दुर्लभं लोके दुर्गार्चनवतां नृणाम्॥ ५१

इत्युक्तोऽहं मुदा युक्तः सभार्यो मुनिपुङ्गवम्।
प्रणम्य परया भक्त्या प्रावोचं विहिताञ्जलिः॥ ५२

वसुदेव उवाच

यद्यस्ति भगवन् प्रीतिर्मयि ते करुणानिधे।
तदा गुरो मदर्थे त्वं समाराधय चण्डिकाम्॥ ५३

नारदजीके ऐसा कहनेपर वे वसुदेवजी मुनिश्रेष्ठ नारदको प्रणाम करके अत्यन्त प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! आपके इस कथनसे देवी-माहात्म्यसे सम्बन्धित एक अपना वृत्तान्त मुझे याद आ गया; मैं उसे कह रहा हूँ, आप सुनिये॥ ४३॥

पूर्वकालमें पापी कंसने आकाशवाणीके माध्यमसे देवकीके आठवें गर्भसे अपनी मृत्यु जानकर भयभीत हो भार्यासहित मुझको बन्दी बना लिया॥ ४४॥

तदनन्तर मैं अपनी पत्नी देवकीके साथ कारागारमें रहने लगा और पापी कंस भी मेरे पैदा होनेवाले पुत्रोंको एक-एक करके मारता रहा॥ ४५॥

इस प्रकार जब कंसके द्वारा मेरे छः पुत्र मार डाले गये तब मेरी निर्दोष भार्या देवी देवकी अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं और दिन-रात दुखी रहने लगीं॥ ४६॥

तत्पश्चात् गर्गमुनिको बुलाकर उनका अभिवादन तथा पूजन करके पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मैंने उनसे देवकीका दुःख बताकर कहा—हे भगवन्! हे दयासिन्धो! हे मुनिवर! आप यदुकुलके गुरु हैं, अतः मुझे आयुष्मान् पुत्रकी प्राप्तिका कोई उपाय बताइये। इसके अनन्तर दयानिधान गर्गजी प्रसन्न होकर मुझसे कहने लगे॥ ४७-४८$\frac{१}{२}$॥

गर्गजी बोले—हे महाभाग वसुदेव! अब आप उस सर्वश्रेष्ठ साधनको सुनिये। जो भगवती दुर्गा अपने भक्तोंकी दुर्गतिका विनाश कर देती हैं, आप उन कल्याणकारिणी देवीकी आराधना कीजिये। इससे शीघ्र ही आपका कल्याण होगा; क्योंकि उनकी आराधनासे सभी लोगोंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। दुर्गाकी उपासना करनेवाले मनुष्योंके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ ४९-५१॥

गर्गमुनिके ऐसा कहनेपर मैं प्रसन्न हो गया और अपनी पत्नीसहित मुनिश्रेष्ठ गर्गको परम श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर मैंने उनसे कहा॥ ५२॥

वसुदेवजी बोले—हे भगवन्! हे करुणासागर! हे गुरो! यदि आप मुझपर स्नेह रखते हैं तो मेरे कल्याणके निमित्त आप ही उन भगवती चण्डिकाकी

निरुद्धः कंसगेहेऽहं न किञ्चित् कर्तुमुत्सहे।
अतस्त्वमेव दुःखाब्धेर्मामुद्धर महामते॥ ५४

इत्युक्तस्तु मया प्रीतः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः।
वसुदेव तव प्रीत्या करिष्यामि हितं तव॥ ५५

अथ गर्गमुनिः प्रीत्या मया सम्प्रार्थितोऽगमत्।
आरिराधयिषुर्दुर्गां विन्ध्याद्रिं ब्राह्मणैः सह॥ ५६

तत्र गत्वा जगद्धात्रीं भक्ताभीष्टप्रदायिनीम्।
आराधयामास मुनिर्जपपाठपरायणः॥ ५७

ततः समाप्ते नियमे वागुवाचाशरीरिणी।
प्रसन्नाहं मुने कार्यसिद्धिस्तव भविष्यति॥ ५८

भूभारहरणार्थाय मया सम्प्रेरितो हरिः।
वसुदेवस्य देवक्यां स्वांशेनावतरिष्यति॥ ५९

कंसभीत्या तमादाय बालमानकदुन्दुभिः।
प्रापयिष्यति सद्यस्तु गोकुले नन्दवेश्मनि॥ ६०

यशोदातनयां नीत्वा स्वगृहे कंसभूभुजे।
दास्यत्यथ च तां हन्तुं कंस आक्षेप्स्यति क्षितौ॥ ६१

सा तद्धस्ताद् विनिर्गत्य सद्यो दिव्यवपुर्धरा।
मदंशभूता विन्ध्याद्रौ करिष्यति जगद्धितम्॥ ६२

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रणम्य जगदम्बिकाम्।
गर्गो मुनिः प्रसन्नात्मा मथुरामागमत् पुरीम्॥ ६३

वरदानं महादेव्या गर्गाचार्यमुखादहम्।
श्रुत्वा सभार्यः सम्प्रीतः परां मुदमथागमम्॥ ६४

आराधना कर दें। मैं तो कंसके घरमें बन्दी रहनेके कारण कुछ भी कर सकनेमें समर्थ नहीं हूँ। अतः हे महामते! अब आप ही इस दुःखसागरसे मेरा उद्धार कीजिये॥ ५३-५४॥

मेरे इस प्रकार कहनेपर वे मुनिश्रेष्ठ प्रसन्न होकर बोले—हे वसुदेव! आपकी प्रीतिके कारण मैं आपका कल्याण करूँगा॥ ५५॥

मेरे द्वारा प्रीतिपूर्वक प्रार्थना किये जानेके उपरान्त गर्गमुनि देवी दुर्गाकी आराधनाकी इच्छासे ब्राह्मणोंके साथ विन्ध्यपर्वतपर चले गये॥ ५६॥

वहाँ जाकर जप एवं पाठमें तत्पर रहते हुए गर्गमुनि जगत्की मातृस्वरूपा और भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली भगवतीकी आराधना करने लगे॥ ५७॥

जप-पूजनादि अनुष्ठानोंकी समाप्तिके पश्चात् आकाशवाणी हुई कि हे मुने! मैं प्रसन्न हो गयी हूँ, अतएव तुम्हारे कार्यकी सिद्धि होगी॥ ५८॥

[समस्त प्रकारके पाप एवं अनाचारस्वरूप] पृथ्वीके भारका नाश करनेके लिये मुझसे प्रेरणा प्राप्तकर स्वयं भगवान् विष्णु अपने अंशसे वसुदेवकी भार्या देवकीके गर्भसे अवतार लेंगे॥ ५९॥

कंसके भयसे वसुदेवजी उस शिशुको लेकर शीघ्र ही गोकुलमें नन्दके घर पहुँचा देंगे और वहाँसे यशोदाकी कन्याको लाकर अपने घरमें राजा कंसको दे देंगे। तब कंस उस कन्याको मारनेके लिये उसे पृथ्वीपर पटक देगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर उसके हाथसे छूटकर मेरी अंशस्वरूपा वह कन्या तत्क्षण अलौकिक रूप धारण करके विन्ध्यपर्वतपर चली जायगी और निरन्तर जगत्का कल्याण करेगी॥ ६२॥

इस प्रकार उस आकाशवाणीको सुनकर गर्गमुनि भगवती जगदम्बाको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे मथुरापुरी आ गये॥ ६३॥

आचार्य गर्गके मुखसे महादेवीके वरदानकी बात सुनकर मैं पत्नीसहित अत्यन्त प्रसन्न हुआ और परम आनन्दविभोर हो उठा॥ ६४॥

तदारभ्य परं जाने देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
अधुनापि हि देवर्षे श्रुतं तव मुखाम्बुजात्॥ ६५

अतो भागवतं देव्यास्त्वमेव श्रावय प्रभो।
मद्भाग्यादेव देवर्षे सम्प्राप्तोऽसि दयानिधे॥ ६६

वसुदेववचः श्रुत्वा नारदः प्रीतमानसः।
सुदिने शुभनक्षत्रे कथारम्भमथाकरोत्॥ ६७

कथाविघ्नविघातार्थं द्विजा जेपुर्नवाक्षरम्।
मार्कण्डेयपुराणोक्तं पेठुर्देव्याः स्तवं तथा॥ ६८

प्रथमस्कन्धमारभ्य श्रीनारदमुखोद्गतम्।
शुश्राव वसुदेवश्च भक्त्या भागवतामृतम्॥ ६९

नवमेऽह्नि कथापूर्तौ पुस्तकं वाचकं तथा।
प्रसन्नः पूजयामास वसुदेवो महामनाः॥ ७०

अथ तत्र बिलस्यान्तः कृष्णजाम्बवतोर्मृधे।
कृष्णमुष्टिविनिष्पातश्लथाङ्गो जाम्बवानभूत्॥ ७१

अथागतस्मृतिः सोऽपि भगवन्तं प्रणम्य च।
उवाच परया भक्त्या स्वापराधं क्षमापयन्॥ ७२

ज्ञातोऽसि रघुवर्यस्त्वं यद्रोषात् सरितांपतिः।
क्षोभं जगाम लङ्का च रावणः सानुगो हतः॥ ७३

स एवासि भवान् कृष्ण मद्दौरात्म्यं क्षमस्व भोः।
ब्रूहि यत् करणीयं मे भृत्योऽहं तव सर्वथा॥ ७४

श्रुत्वा जाम्बवतो वाचमब्रवीज्जगदीश्वरः।
मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम्॥ ७५

तभीसे मैं देवीके अत्युत्तम माहात्म्यको जान रहा हूँ और हे देवर्षे! आज भी आपके मुखारविन्दसे मैंने वही देवीमाहात्म्य सुना है॥ ६५॥

अतः हे प्रभो! अब आप ही मुझे श्रीमद्देवीभागवत सुनाइये। हे दयानिधान! मेरे सौभाग्यसे ही आप यहाँ पधारे हुए हैं॥ ६६॥

वसुदेवजीका वचन सुनकर प्रसन्न मनवाले नारदजीने शुभ दिन एवं शुभ नक्षत्रमें श्रीमद्देवीभागवतकी कथा आरम्भ की॥ ६७॥

कथामें आनेवाली विघ्न-बाधाओंके शमनार्थ ब्राह्मण देवीके नवाक्षर (ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे)-मन्त्रका जप तथा मार्कण्डेयपुराणमें वर्णित देवीस्तोत्रका पाठ करने लगे॥ ६८॥

प्रथम स्कन्धके आरम्भसे ही वसुदेवजी देवर्षि नारदके मुखसे निःसृत अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवत-पुराणका भक्तिपूर्वक श्रवण करने लगे॥ ६९॥

नौवें दिन कथाकी समाप्ति होनेपर महामनस्वी वसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतग्रन्थ तथा कथावाचक दोनोंकी प्रसन्नतापूर्वक पूजा की॥ ७०॥

उधर कन्दरामें श्रीकृष्ण तथा जाम्बवान्‌के बीच चल रहे युद्धमें श्रीकृष्णके मुष्टिकाप्रहारोंसे जाम्बवान्‌का शरीर अत्यन्त शिथिल पड़ गया था॥ ७१॥

उसी समय जाम्बवान्‌को भी पूर्वकालकी घटनाएँ याद आ गयीं और भगवान् श्रीकृष्णको परम भक्तिके साथ प्रणाम करके अपने अपराधके लिये क्षमा-याचना करते हुए उसने श्रीकृष्णसे कहा—अब मुझे ज्ञात हो गया कि आप रघुश्रेष्ठ श्रीराम ही हैं, जिनके भयंकर कोपसे सागर तथा लंकानगरी—दोनों क्षुब्ध हो गये थे और रावण अपने बन्धु-बान्धवोंसहित मारा गया था॥ ७२-७३॥

हे श्रीकृष्ण! वे राम आप ही हैं, अतः मेरी धृष्टताको क्षमा करें। मैं आपका सर्वथा सेवक हूँ, अतएव मेरेयोग्य जो भी कार्य हो, उसके लिये मुझे आदेश दीजिये॥ ७४॥

जाम्बवान्‌का वचन सुनकर जगत्पति श्रीकृष्ण बोले—हे ऋक्षराज! मणि प्राप्त करनेके लिये हमलोग इस कन्दरामें आये हुए हैं॥ ७५॥

ऋक्षराजस्ततः प्रीत्या कन्यां जाम्बवतीं निजाम्।
ददौ कृष्णाय सम्पूज्य स्यमन्तकमणिं तथा॥ ७६

स तां पत्नीं समादाय मणिं कण्ठे तथादधत्।
अभिमन्त्र्यर्क्षराजञ्च प्रतस्थे द्वारकां प्रति॥ ७७

कथासमाप्तिदिवसे वसुदेव उदारधीः।
ब्राह्मणान् भोजयामास दक्षिणाभिरतोषयत्॥ ७८

आशीर्वाचं प्रयुञ्जाना द्विजा यत्समये हरिः।
आजगाम क्षणे तस्मिन् पत्न्या सह मणिं दधत्॥ ७९

भार्यया सहितं कृष्णं वसुदेवपुरोगमाः।
दृष्ट्वा हर्षाश्रुपूर्णाक्षाः समवापुः परां मुदम्॥ ८०

देवर्षिर्नारदश्चाथ कृष्णागमनहर्षितः।
आमन्त्र्य वसुदेवं च कृष्णं ब्रह्मसभां ययौ॥ ८१

हरिचरितमिदं यत्कीर्तितं दुर्यशोघ्नं
पठति विमलभक्त्या शुद्धचित्तः शृणोति।
स भवति सुखपूर्णः सर्वदा सिद्धकामो
जगति च वपुषोऽन्ते मुक्तिमार्गं लभेच्च॥ ८२

तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान्‌ने श्रीकृष्णकी विधिवत् पूजा करके स्यमन्तकमणि तथा अपनी पुत्री जाम्बवती उन्हें प्रसन्नतापूर्वक अर्पित कर दी॥ ७६॥

श्रीकृष्णने जाम्बवतीको पत्नीके रूपमें अंगीकार करके मणिको गलेमें धारण कर लिया और ऋक्षराज जाम्बवान्‌से विदा लेकर वे द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७७॥

उधर द्वारकामें उदारहृदय श्रीवसुदेवजीने श्रीमद्देवीभागवतपुराण-कथाकी समाप्तिके दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराया तथा नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ७८॥

जिस समय वे ब्राह्मण वसुदेवको आशीर्वचन प्रदान कर रहे थे, उसी समय भगवान् श्रीकृष्ण मणि धारण किये हुए पत्नी जाम्बवतीके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ७९॥

भार्यासहित भगवान् श्रीकृष्णको देखकर वसुदेवजी तथा उपस्थित जनसमूहकी आँखें हर्षातिरेकके अश्रुसे परिपूर्ण हो गयीं और वे परम आनन्दित हुए॥ ८०॥

देवर्षि नारद भी श्रीकृष्णके आगमनसे हर्षित हुए और उन्होंने वसुदेवजी तथा श्रीकृष्णसे विदा लेकर ब्रह्मसभाके लिये प्रस्थान किया॥ ८१॥

जो मनुष्य निष्कपट भक्ति एवं शुद्ध हृदयसे भगवान्‌के इस विख्यात तथा कलंकनाशक चरित्रका पाठ एवं श्रवण करता है, वह पूर्ण सुखी हो जाता है, जगत्‌में उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं तथा मृत्युके अनन्तर वह मोक्षपद प्राप्त करता है॥ ८२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये वसुदेवस्य देवीभागवतनवाह-श्रवणात्पुत्रप्राप्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

~~O~~

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुद्युम्नकी कथा

सूत उवाच

अथेतिहासमन्यच्च शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
देवीभागवतस्यास्य माहात्म्यं यत्र गीयते॥ १

एकदा कुम्भयोनिस्तु लोपामुद्रापतिर्मुनिः।
गत्वा कुमारमभ्यर्च्य पप्रच्छ विविधाः कथाः॥ २

सूतजी बोले—हे मुनिवरो! अब आपलोग एक अन्य इतिहास सुनिये, जिसमें इस देवीभागवतके माहात्म्यका वर्णन किया गया है॥ १॥

एक बार कुम्भयोनि लोपामुद्रापति महर्षि अगस्त्यने कुमार कार्तिकेयके पास जाकर उनकी भलीभाँति पूजा करके उनसे विविध प्रकारकी बातें पूछीं॥ २॥

स तस्मै भगवान् स्कन्दः कथयामास भूरिशः।
दानतीर्थव्रतादीनां माहात्म्योपचिताः कथाः॥ ३

वाराणस्याश्च माहात्म्यं मणिकर्णीभवं तथा।
गङ्गायाश्चापि तीर्थानां वर्णितं बहुविस्तरम्॥ ४

श्रुत्वाथ स मुनिः प्रीतः कुमारं भूरिवर्चसम्।
पुनः पप्रच्छ लोकानां हितार्थं कुम्भसम्भवः॥ ५

अगस्त्य उवाच

भगवंस्तारकाराते देवीभागवतस्य तु।
माहात्म्यं श्रवणे तस्य विधिं चापि वद प्रभो॥ ६

देवीभागवतं नाम पुराणं परमोत्तमम्।
त्रैलोक्यजननी साक्षाद् गीयते यत्र शाश्वती॥ ७

स्कन्द उवाच

श्रीभागवतमाहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात् क्षमः।
शृणु संक्षेपतो ब्रह्मन् कथयिष्यामि साम्प्रतम्॥ ८

या नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी जगदम्बिका।
साक्षात् समाश्रिता यत्र भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ ९

अतस्तद्वाङ्मयी मूर्तिर्देवीभागवते मुने।
पठनाच्छ्रवणाद्यस्य न किञ्चिदिह दुर्लभम्॥ १०

आसीद्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः।
सोऽनपत्योऽकरोदिष्टिं वसिष्ठानुमतो नृपः॥ ११

होतारं प्रार्थयामास श्रद्धाथ दयिता मनोः।
कन्या भवतु मे ब्रह्मंस्तथोपायो विधीयताम्॥ १२

मनसा चिन्तयन् होता कन्यामेवाजुहोद्धविः।
ततस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम चाभवत्॥ १३

अथ राजा सुतां दृष्ट्वा प्रोवाच विमना गुरुम्।
कथं सङ्कल्पवैषम्यमिह जातं प्रभो तव॥ १४

भगवान् कार्तिकेयने दान-तीर्थ-व्रतादिके माहात्म्यसे परिपूर्ण अनेक कथाओंका वर्णन उनसे किया। उन्होंने वाराणसी, मणिकर्णिका, गंगा तथा अनेक तीर्थोंके माहात्म्यका अत्यन्त विस्तारपूर्वक वर्णन किया॥ ३-४॥

उसे सुनकर अगस्त्यमुनि परम प्रसन्न हुए और उन्होंने महातेजसम्पन्न कुमार कार्तिकेयसे लोक-कल्याणके लिये पुनः पूछा॥ ५॥

अगस्त्यजी बोले—हे तारकरिपु! हे भगवन्! हे प्रभो! आप मुझे देवीभागवतके माहात्म्य तथा उसके श्रवणकी विधि भी बतायें॥ ६॥

श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण सभी पुराणोंमें अतिश्रेष्ठ है, जिसमें तीनों लोकोंकी जननी साक्षात् सनातनी भगवतीकी महिमा गायी गयी है॥ ७॥

कार्तिकेय बोले—हे ब्रह्मन्! श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यको विस्तारपूर्वक कहनेमें कौन समर्थ है? मैं इस समय संक्षेपमें इसे कहूँगा, आप सुनिये॥ ८॥

जो शाश्वती, सच्चिदानन्दस्वरूपा, भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली जगदम्बा हैं, वे स्वयं इस पुराणमें विराजमान रहती हैं॥ ९॥

अतएव हे मुने! यह श्रीमद्देवीभागवत उन जगदम्बिकाकी वाङ्मयी मूर्ति है, जिसके पठन एवं श्रवणसे इस लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ १०॥

विवस्वान्के एक पुत्र हुए, जो श्राद्धदेव नामसे प्रसिद्ध थे। सन्तानरहित होनेके कारण उन राजा श्राद्धदेवने वसिष्ठमुनिकी अनुमतिसे पुत्रेष्टि यज्ञ किया॥ ११॥

तत्पश्चात् मनु श्राद्धदेवकी भार्या श्रद्धाने यज्ञके होतासे प्रार्थना की—हे ब्रह्मन्! आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे कन्याकी प्राप्ति हो॥ १२॥

अतः होताने मनमें कन्या-प्राप्तिका संकल्प करते हुए आहुति डाली और उसके विपरीत भावके फलस्वरूप एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'इला' रखा गया॥ १३॥

इसके बाद पुत्रीको देखकर उदास मनवाले राजा श्राद्धदेवने गुरु वसिष्ठसे कहा—हे प्रभो! पुत्र-प्राप्तिके आपके संकल्पके विपरीत यह कन्या कैसे उत्पन्न हो गयी?॥ १४॥

तच्छ्रुत्वा स मुनिर्दध्यौ ज्ञात्वा होतुर्व्यतिक्रमम्।
ईश्वरं शरणं यात इलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ १५

मुनेस्तपःप्रभावाच्च परेशानुग्रहात्तथा।
पश्यतां सर्वलोकानामिला पुरुषतामगात्॥ १६

गुरुणा कृतसंस्कारः सुद्युम्नोऽथ मनोः सुतः।
निधिर्बभूव विद्यानां सरितामिव सागरः॥ १७

अथ कालेन सुद्युम्नस्तारुण्यं समवाप्य च।
मृगयार्थं वनं यातो हयमारुह्य सैन्धवम्॥ १८

वनाद् वनान्तरं गच्छन् बहु बभ्राम सानुगः।
दैवादधस्ताद्धेमाद्रेः स कुमारो वनं ययौ॥ १९

कस्मिंश्चित् समये यत्र भार्ययापर्णया सह।
अरमद्देवदेवस्तु शङ्करो भगवान् मुदा॥ २०

तदा तु मुनयस्तत्र शिवदर्शनलालसाः।
आजग्मुरथ तान् दृष्ट्वा गिरिजा व्रीडिताभवत्॥ २१

रममाणौ तु तौ दृष्ट्वा गिरिशौ संशितव्रताः।
निवृत्ता मुनयो जग्मुर्वैकुण्ठनिलयं तदा॥ २२

प्रियायाः प्रियमन्विच्छञ्छिवोऽरण्यं शशाप ह।
अद्यारभ्य विशेद्योऽत्र पुमान् योषिद् भवेदिति॥ २३

तत आरभ्य तं देशं पुरुषा वर्जयन्ति हि।
तत्र प्रविष्टः सुद्युम्नो बभूव प्रमदोत्तमा॥ २४

स्त्रीभूताननुगानश्वं वडवां वीक्ष्य विस्मितः।
अथ सा सुन्दरी योषा विचचार वने वने॥ २५

यह सुनकर महर्षि वसिष्ठने ध्यान लगाया, इसमें होताका व्यतिक्रम जानकर वे इलाको पुत्र बनानेकी कामनासे ईश्वरकी शरणमें गये॥ १५॥

मुनिके तपप्रभाव और भगवान्‌की कृपासे सभी लोगोंके देखते-देखते इला कन्यासे पुरुषरूपमें परिवर्तित हो गयी॥ १६॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठने पूर्णरूपसे संस्कार करके उसका नाम 'सुद्युम्न' रखा। वे मनुपुत्र सुद्युम्न सभी नदियोंके निधानभूत सागरकी भाँति सभी विद्याओंके निधान हो गये॥ १७॥

कुछ समय बीतनेपर सुद्युम्न युवा हुए और एक दिन सिन्धुदेशीय घोड़ेपर चढ़कर वे आखेटके लिये वनमें गये॥ १८॥

अपने सहचरोंके साथ वे कुमार सुद्युम्न एक वनसे दूसरे वनमें जाते हुए भटकते रहे और फिर संयोगसे वे हिमालयकी तलहटीके उस वनमें पहुँच गये जहाँ किसी समय देवाधिदेव भगवान् शंकर अपनी भार्या अपर्णाके साथ आनन्दपूर्ण मुद्रामें रमण कर रहे थे॥ १९-२०॥

उसी समय भगवान् शंकरके दर्शनकी अभिलाषासे मुनिगण वहाँ आ गये और उन्हें देखकर पार्वतीजी लज्जित हो गयीं॥ २१॥

तब शिव एवं पार्वतीको रमण करते देखकर उत्तम व्रत धारण करनेवाले वे मुनिगण वहाँसे लौटकर वैकुण्ठ-धामकी ओर चल दिये॥ २२॥

तदनन्तर अपनी प्रियतमाको प्रसन्न करनेके लिये भगवान्‌ने उस अरण्यको शाप दे दिया कि आजसे जो भी पुरुष यहाँ प्रवेश करेगा, वह स्त्री हो जायगा॥ २३॥

तभीसे पुरुषोंने उस वनमें जाना त्याग दिया था और संयोगवश वहाँ पहुँचते ही सुद्युम्न एक लावण्यमयी स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हो गये॥ २४॥

अपने सभी अनुचरोंको पुरुषसे स्त्री तथा घोड़ोंको घोड़ियोंमें रूपान्तरित हुआ देखकर सुद्युम्न आश्चर्यचकित हो गये। अब वह रूपवती तरुणी वन-वनमें विचरण करने लगी॥ २५॥

एकदा सा जगामाथ बुधस्याश्रमसन्निधौ।
दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं पीनोन्नतपयोधराम्॥ २६

बिम्बोष्ठीं कुन्ददशनां सुमुखीमुत्पलेक्षणाम्।
अनङ्गशरविद्धाङ्गश्चकमे भगवान् बुधः॥ २७

सापि तं चकमे सुभ्रूः कुमारं सोमनन्दनम्।
ततस्तस्याश्रमेऽवात्सीद्रममाणा बुधेन सा॥ २८

अथ कालेन कियता पुरूरवसमात्मजम्।
स तस्यां जनयामास मित्रावरुणसम्भव॥ २९

अथ वर्षेषु यातेषु कदाचित् सा बुधाश्रमे।
स्मृत्वा स्वं पूर्ववृत्तान्तं दुःखिता निर्जगाम ह॥ ३०

गुरोरथाश्रमं गत्वा वसिष्ठस्य प्रणम्य तम्।
निवेद्य वृत्तं शरणं ययौ पुंस्त्वमभीप्सती॥ ३१

वसिष्ठो ज्ञातवृत्तान्तो गत्वा कैलासपर्वतम्।
सम्पूज्य शम्भुं तुष्टाव भक्त्या परमया युतः॥ ३२

वसिष्ठ उवाच

नमो नमः शिवायास्तु शङ्कराय कपर्दिने।
गिरिजार्धाङ्गदेहाय नमस्ते चन्द्रमौलये॥ ३३

मृडाय सुखदात्रे ते नमः कैलासवासिने।
नीलकण्ठाय भक्तानां भुक्तिमुक्तिप्रदायिने॥ ३४

शिवाय शिवरूपाय प्रपन्नभयहारिणे।
नमो वृषभवाहाय शरण्याय परात्मने॥ ३५

ब्रह्मविष्णवीशरूपाय सर्गस्थितिलयेषु च।
नमो देवाधिदेवाय वरदाय पुरारये॥ ३६

यज्ञरूपाय यजतां फलदात्रे नमो नमः।
गङ्गाधराय सूर्येन्दुशिखिनेत्राय ते नमः॥ ३७

एक बार वह बुधके आश्रमके समीप पहुँची। स्थूल तथा उन्नत स्तनोंवाली, बिम्ब-फलके समान लाल ओठोंवाली, कुन्दफूलके समान श्वेत दाँतोंवाली, सुन्दर मुख तथा कमलके समान नयनोंवाली उस सर्वांगसुन्दरी तरुणीको देखकर कामदेवके बाणोंसे बिंधे हुए अंगोंवाले भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये॥ २६-२७॥

वह सुन्दर भौंहोंवाली युवती भी चन्द्रपुत्र कुमार बुधपर आसक्त हो गयी और बुधके साथ रमण करती हुई उनके आश्रममें रहने लगी॥ २८॥

हे महर्षि अगस्त्य! कुछ समय बाद बुधने उस तरुणीसे पुरूरवा नामक पुत्रको उत्पन्न किया॥ २९॥

इस प्रकार बुधके आश्रममें रहते हुए कई वर्ष बीत जानेपर किसी समय उसे अपने पूर्व वृत्तान्तका स्मरण हो आया और वह दुःखित होकर आश्रमसे चली गयी॥ ३०॥

इसके बाद गुरु वसिष्ठके आश्रममें पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और सारा वृत्तान्त कहकर पुरुषत्वकी कामना करती हुई वह उनके शरणागत हो गयी॥ ३१॥

इस प्रकार सभी बातोंको जानकर वसिष्ठजी कैलास-पर्वतपर जाकर विधि-विधानसे भगवान् शंकरकी पूजा करके परम भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—शिव, शंकर, कपर्दी, गिरिजाके अर्धांग एवं चन्द्रमौलिको बार-बार नमस्कार है॥ ३३॥

मृड, सुखदाता, कैलासवासी, नीलकण्ठ, भक्तोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ३४॥

शिव, शिवस्वरूप, शरणागतभयहारी, वृषभवाहन, शरणदाता परमात्माको नमस्कार है॥ ३५॥

सृजन, पालन तथा संहारके समय ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशरूपधारी, देवाधिदेव, वरदायक तथा त्रिपुरारिको मेरा नमस्कार है॥ ३६॥

यज्ञरूप तथा याजकोंके फलदाताको बार-बार नमस्कार है। आप गंगाधर, सूर्य-चन्द्र-अग्निस्वरूप त्रिनेत्रको मेरा नमस्कार है॥ ३७॥

एवं स्तुतः स भगवान् प्रादुरासीज्जगत्पतिः।
वृषारूढोऽम्बिकोपेतः कोटिसूर्यसमप्रभः॥ ३८

रजताचलसंकाशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः।
प्रणतं परितुष्टात्मा प्रोवाच मुनिसत्तमम्॥ ३९

श्रीभगवानुवाच

वरं वरय विप्रर्षे यत्ते मनसि वर्तते।
इत्युक्तस्तं प्रणम्येलापुंस्त्वमभ्यर्थयन्मुनिः॥ ४०

अथ प्रसन्नो भगवानुवाच मुनिसत्तमम्।
मासं पुमान् स भविता मासं नारी भविष्यति॥ ४१

इति प्राप्य वरं शम्भोर्महर्षिर्जगदम्बिकाम्।
वरदानोन्मुखीं देवीं प्रणनाम महेश्वरीम्॥ ४२

कोटिचन्द्रकलाकान्तिं सुस्मितां परिपूज्य च।
तुष्टाव भक्त्या सततमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया॥ ४३

जय देवि महादेवि भक्तानुग्रहकारिणि।
जय सर्वसुराराध्ये जयानन्तगुणालये॥ ४४

नमो नमस्ते देवेशि शरणागतवत्सले।
जय दुर्गे दुःखहन्त्रि दुष्टदैत्यनिषूदिनि॥ ४५

भक्तिगम्ये महामाये नमस्ते जगदम्बिके।
संसारसागरोत्तारपोतीभूतपदाम्बुजे॥ ४६

ब्रह्मादयोऽपि विबुधास्त्वत्पादाम्बुजसेवया।
विश्वसर्गस्थितिलयप्रभुत्वं समवाप्नुयुः॥ ४७

प्रसन्ना भव देवेशि चतुर्वर्गप्रदायिनि।
कस्त्वां स्तोतुं क्षमो देवि केवलं प्रणतोऽस्म्यहम्॥ ४८

इस प्रकार मुनि वसिष्ठके द्वारा स्तुति किये जानेपर करोड़ों सूर्यसदृश प्रभासे युक्त एवं भगवती पार्वतीके साथ नन्दीपर आरूढ़ वे जगत्पति भगवान् शंकर प्रकट हो गये॥ ३८॥

चाँदीके पर्वतके समान प्रभावाले, त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखर शरणमें आये हुए मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले॥ ३९॥

श्रीभगवान्ने कहा—हे विप्रर्षे! आपके मनमें जो भी इच्छा हो, वह वर माँगिये। उनके इस प्रकार कहनेपर गुरु वसिष्ठने प्रणाम करके इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिके लिये उनसे प्रार्थना की॥ ४०॥

इसके बाद प्रसन्न होकर शंकरजीने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठसे कहा कि एक मासतक वह पुरुषरूपमें तथा एक मासतक नारीरूपमें रहेगी॥ ४१॥

इस प्रकार शिवजीसे वर प्राप्त करके महर्षि वसिष्ठने वर प्रदान करनेके लिये सदा उत्सुक रहनेवाली जगदम्बिका पार्वतीको प्रणाम किया॥ ४२॥

करोड़ों चन्द्रमाकी कला-कान्तिसे युक्त तथा सुन्दर मुसकानवाली भगवतीकी सम्यक् पूजा करके सदाके लिये इलाकी पुरुषत्वप्राप्तिकी कामनासे वसिष्ठजी श्रद्धापूर्वक उनकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

हे देवि! हे महादेवि! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली भगवति! आपकी जय हो। हे समस्त देवोंकी आराध्यस्वरूपा और अनन्त गुणोंकी आगार! आपकी जय हो॥ ४४॥

हे देवेश्वरि! हे शरणागतवत्सले! आपको बार-बार नमस्कार है। हे दुःखहारिणि! हे दुष्ट दानवोंका नाश करनेवाली भगवति! आपकी जय हो॥ ४५॥

हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली भगवति! हे महामाये! हे जगदम्बिके! हे भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौका-स्वरूप चरणकमलवाली! आपको नमस्कार है॥ ४६॥

आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि देवता विश्वके सृजन, पालन तथा संहारहेतु सामर्थ्य प्राप्त करते हैं॥ ४७॥

पुरुषार्थचतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) प्रदान करनेवाली हे देवेश्वरि! आप प्रसन्न हों। हे देवि! आपकी स्तुति करनेमें भला कौन समर्थ है, अतः मैं आपको केवल प्रणाम कर रहा हूँ॥ ४८॥

एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा।
भक्त्या वसिष्ठमुनिना प्रसन्ना तत्क्षणादभूत्॥ ४९

तदोवाच महादेवी प्रणतार्तिहरी मुनिम्।
सुद्युम्नभवनं गत्वा कुरु भक्त्या मदर्चनम्॥ ५०

सुद्युम्नं श्रावय प्रीत्या पुराणं मत्प्रियङ्करम्।
देवीभागवतं नाम नवाहोभिर्द्विजोत्तम॥ ५१

श्रवणादेव सततं पुंस्त्वमस्य भविष्यति।
इत्युक्त्वा च तिरोधानं गच्छतः स्म शिवेश्वरौ॥ ५२

वसिष्ठस्तां दिशं नत्वा समागत्याश्रमं निजम्।
समाहूय च सुद्युम्नं देव्याराधनमादिशत्॥ ५३

आश्विनस्य सिते पक्षे सम्पूज्य जगदम्बिकाम्।
नवरात्रविधानेन श्रावयामास भूपतिम्॥ ५४

श्रुत्वा भक्त्यापि सुद्युम्नः श्रीमद्भागवतामृतम्।
प्रणम्याभ्यर्च्य च गुरुं लेभे पुंस्त्वं निरन्तरम्॥ ५५

राज्यासनेऽभिषिक्तस्तु वसिष्ठेन महर्षिणा।
भुवं शशास धर्मेण प्रजाश्चैवानुरञ्जयन्॥ ५६

ईजे च विविधैर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः।
पुत्रेषु राज्यं सन्दिश्य प्राप देव्याः सलोकताम्॥ ५७

इति कथितमशेषं सेतिहासं च विप्रा
यदि पठति सुभक्त्या मानवो वा शृणोति।
स इह सकलकामान् प्राप्य देव्याः प्रसादात्
परममृतमथान्ते याति देव्याः सलोकम्॥ ५८

महर्षि वसिष्ठजीद्वारा इस प्रकार भक्ति-भावसे स्तुति किये जानेपर नारायणी पराम्बा दुर्गा भगवती तत्काल प्रसन्न हो गयीं॥ ४९॥

तदनन्तर भक्तजनोंका दुःख दूर करनेवाली महादेवीने मुनि वसिष्ठसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! आप सुद्युम्नके घर जाकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करें॥ ५०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! सुद्युम्नको नौ दिनोंमें मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाले श्रीमद्देवीभागवतपुराणका प्रेमपूर्वक श्रवण कराइये॥ ५१॥

उसके श्रवणमात्रसे उसे सर्वदाके लिये पुरुषत्वकी प्राप्ति हो जायगी। ऐसा कहकर भगवती पार्वती तथा भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये॥ ५२॥

इसके पश्चात् वसिष्ठजी उस दिशाको नमस्कारकर अपने आश्रमको लौट आये और सुद्युम्नको बुलाकर उन्होंने देवीकी आराधना करनेके लिये उन्हें आदेश दिया॥ ५३॥

आश्विनमासके शुक्लपक्षमें जगदम्बाकी विधिवत् पूजा करके वसिष्ठजीने राजाको नवरात्र-विधानके अनुसार श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनाया॥ ५४॥

इस प्रकार अमृतस्वरूप श्रीमद्देवीभागवतपुराणको भक्तिपूर्वक सुनकर और गुरु वसिष्ठका पूजन-वन्दन करके सुद्युम्नने सदाके लिये पुरुषत्व प्राप्त कर लिया॥ ५५॥

महर्षि वसिष्ठने सुद्युम्नका राज्याभिषेक किया और वे प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए धर्मपूर्वक भूमण्डलपर शासन करने लगे॥ ५६॥

सुद्युम्नने अत्यन्त श्रेष्ठ दक्षिणावाले भाँति-भाँतिके यज्ञ किये और अन्तमें पुत्रोंको राज्यका शासन सौंपकर वे देवीलोकको प्राप्त हुए॥ ५७॥

हे विप्रो! इस प्रकार मैंने आप लोगोंको इतिहाससहित देवीमाहात्म्य बता दिया। यदि कोई मनुष्य सद्भक्तिके साथ इसे पढ़ता अथवा सुनता है तो वह देवीकी कृपासे इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करके अन्तमें देवीके परम सत्यस्वरूप सालोक्यको प्राप्त कर लेता है॥ ५८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतनवाहश्रवणादिलाया: पुंस्त्वप्राप्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्याय:॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतके माहात्म्यके प्रसंगमें रेवती नक्षत्रके पतन और पुनः स्थापनकी कथा तथा श्रीमद्देवीभागवतके श्रवणसे राजा दुर्दमको मन्वन्तराधिप-पुत्रकी प्राप्ति

सूत उवाच

इति श्रुत्वा कथां दिव्यां विचित्रां कुम्भसम्भवः।
शुश्रूषुः पुनराहेदं विशाखं विनयान्वितः॥ १

अगस्त्य उवाच

देवसेनापते देव विचित्रेयं श्रुता कथा।
पुनरन्यच्च माहात्म्यं वद भागवतस्य मे॥ २

स्कन्द उवाच

मित्रावरुणसम्भूत मुने शृणु कथामिमाम्।
यत्रैकदेशमहिमा प्रोक्तो भागवतस्य तु॥ ३
वर्ण्यते धर्मविस्तारो गायत्रीमधिकृत्य च।
गायत्र्या महिमा यत्र तद् भागवतमिष्यते॥ ४
भगवत्या इदं यस्मात्तस्माद् भागवतं विदुः।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्या परा भगवती हि सा॥ ५
ऋतवागिति विख्यातो मुनिरासीन्महामतिः।
तस्य पुत्रोऽभवत्काले गण्डान्ते पौष्णभान्तिमे॥ ६
स तस्य जातकर्मादिक्रियाश्चक्रे यथाविधि।
चूडोपनयनादींश्च संस्कारानपि सोऽकरोत्॥ ७
यत आरभ्य जातोऽसौ पुत्रस्तस्य महात्मनः।
तत एवाथ स मुनिः शोकरोगाकुलोऽभवत्॥ ८
रोषलोभपरीतात्मा तथा मातापि तस्य च।
बहुरोगार्दिता नित्यं शुचा दुःखीकृता भृशम्॥ ९
ऋतवाक् स मुनिश्चिन्तामवाप भृशदुःखितः।
किमेतत् कारणं जातं पुत्रो मेऽत्यन्तदुर्मतिः॥ १०
कस्यचिन्मुनिपुत्रस्य बलात् पत्नीं जहार च।
मेने शिक्षां पितुर्नासौ न च मातुर्विमूढधीः॥ ११

सूतजी बोले—इस अलौकिक एवं विचित्र कथाको सुनकर पुनः सुननेकी इच्छावाले अगस्त्यजीने बड़ी विनम्रतापूर्वक भगवान् कार्तिकेयसे कहा—॥ १॥

अगस्त्यजी बोले—हे देवसेनापते! हे देव! मैंने यह विचित्र कथा सुन ली, अब आप श्रीमद्देवीभागवतका दूसरा माहात्म्य मुझे बतायें॥ २॥

कार्तिकेयजी बोले—हे मित्रावरुणसे प्रकट होनेवाले मुने! अब आप यह कथा सुनें, जिसके एक अंशमें भागवतकी महिमा कही गयी हो, धर्मका विशद वर्णन किया गया हो और गायत्रीका प्रसंग आरम्भ करके उसकी महिमा दर्शायी गयी हो, उसे भागवतके रूपमें जाना जाता है॥ ३-४॥

यह पुराण देवी भगवतीके माहात्म्यसे परिपूर्ण होनेके कारण देवीभागवत कहा जाता है। वे परा भगवती ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी आराध्या हैं॥ ५॥

ऋतवाक् नामसे विख्यात एक महान् बुद्धिसम्पन्न मुनि थे। रेवती नक्षत्रके अन्तिम भाग गण्डान्तयोगमें उनके यहाँ समयानुसार एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ ६॥

उन्होंने उस पुत्रकी जातकर्म आदि क्रियाएँ तथा चूडाकरण एवं उपनयन आदि संस्कार भी विधिपूर्वक सम्पन्न किये॥ ७॥

महात्मा ऋतवाक्के यहाँ जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ, उसी समयसे वे शोक तथा रोगसे ग्रस्त रहने लगे और क्रोध एवं लोभने उन्हें घेर लिया। उस बालककी माता भी अनेक रोगोंसे ग्रसित होकर नित्य शोकाकुल और अति दुःखी रहने लगीं॥ ८-९॥

मुनि ऋतवाक् अत्यन्त दुःखी और चिन्तित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्या कारण है कि मेरे यह अत्यन्त दुर्मति पुत्र उत्पन्न हुआ॥ १०॥

[तरुणावस्थाको प्राप्त होनेपर] उसने किसी मुनिपुत्रकी पत्नीका बलपूर्वक हरण कर लिया। वह दुर्बुद्धि अपने माता-पिताकी शिक्षाओंपर कभी भी ध्यान नहीं देता था॥ ११॥

ततो विषण्णचित्तस्तु ऋतवागब्रवीदिदम्।
अपुत्रता वरं नृणां न कदाचित् कुपुत्रता॥ १२

पितॄन् कुपुत्रः स्वर्यातान्निरये पातयत्यपि।
यावज्जीवेत् सदा पित्रोः केवलं दुःखदायकः॥ १३

पित्रोर्दुःखाय धिग्जन्म कुपुत्रस्य च पापिनः।
सुहृदां नोपकाराय नापकाराय वैरिणाम्॥ १४

धन्यास्ते मानवा लोके सुपुत्रो यद्गृहे स्थितः।
परोपकारशीलश्च पितुर्मातुः सुखावहः॥ १५

कुपुत्रेण कुलं नष्टं कुपुत्रेण हतं यशः।
कुपुत्रेणेह चामुत्र दुःखं निरययातनाः॥ १६

कुपुत्रेणान्वयो नष्टो जन्म नष्टं कुभार्यया।
कुभोजनेन दिवसः कुमित्रेण सुखं कुतः॥ १७

स्कन्द उवाच

एवं दुष्टस्य पुत्रस्य दुष्टैराचरणैर्मुनिः।
तप्यमानोऽनिशं काले गत्वा गर्गमपृच्छत॥ १८

ऋतवागुवाच

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छामि वद तत् प्रभो।
ज्योतिश्शास्त्रस्य चाचार्य पुत्रदौःशील्यकारणम्॥ १९

गुरुशुश्रूषया वेदा अधीता विधिवन्मया।
ब्रह्मचारिव्रतं तीर्त्वा विवाहो विधिवत् कृतः॥ २०

भार्यया सह गार्हस्थ्यधर्मश्चानुष्ठितोऽनिशम्।
पञ्चयज्ञविधानं च मयाकारि यथाविधि॥ २१

नरकाद् बिभ्यता विप्र न तु कामसुखेच्छया।
गर्भाधानं च विधिवत् पुत्रप्राप्त्यै मया कृतम्॥ २२

तदनन्तर अत्यन्त दुःखित मनवाले ऋतवाक्‌ने यह कहा कि मनुष्योंके लिये पुत्रहीन रह जाना अच्छा है, किंतु कुपुत्रकी प्राप्ति कभी भी ठीक नहीं है॥ १२॥

कुपुत्र स्वर्गमें गये हुए पितरोंको भी नरकमें गिरा देता है। वह जबतक जीवित रहता है, तबतक माता-पिताको केवल कष्ट ही देता रहता है॥ १३॥

अतएव माता-पिताको कष्ट पहुँचानेवाले पापी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है। ऐसा पुत्र मित्रोंका न तो उपकार कर सकता है और न शत्रुओंका अपकार ही॥ १४॥

संसारमें वे मानव धन्य हैं, जिनके घरमें परोपकारपरायण तथा माता-पिताको सुख देनेवाला पुत्र हुआ करता है॥ १५॥

कुपुत्रसे कुल नष्ट हो जाता है, कुपुत्रसे यश नष्ट हो जाता है और कुपुत्रसे लौकिक तथा पारलौकिक—दोनों जगत्‌में दुःख तथा नारकीय यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं॥ १६॥

कुपुत्रसे वंश नष्ट हो जाता है, दुष्ट पत्नीसे जीवन नष्ट हो जाता है, विकृत भोजनसे दिन व्यर्थ चला जाता है और दुरात्मा मित्रसे सुख कहाँसे मिल सकता है!॥ १७॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] अपने दुष्ट पुत्रके दुराचरणोंसे निरन्तर सन्तप्त रहते हुए मुनि ऋतवाक्‌ने किसी दिन गर्गऋषिके पास जाकर पूछा—॥ १८॥

ऋतवाक् बोले—हे भगवन्! हे ज्योतिषशास्त्रके आचार्य! मैं आपसे अपने पुत्रकी दुःशीलताका कारण पूछना चाहता हूँ। हे प्रभो! आप उसे बतायें॥ १९॥

गुरुकी निरन्तर सेवा करते हुए मैंने विधिपूर्वक वेदाध्ययन किया और ब्रह्मचर्यव्रत पूर्ण करके विधि-विधानके साथ विवाह किया॥ २०॥

अपनी भार्याके साथ मैंने गृहस्थधर्मका सदैव यथोचित पालन किया और विधिपूर्वक पंचयज्ञका अनुष्ठान किया॥ २१॥

हे विप्र! नरकप्राप्तिके भयसे बचनेके लिये पुत्र प्राप्त करनेकी कामनासे मैंने विधिवत् गर्भाधान किया था न कि वासनात्मक सुखप्राप्तिकी इच्छासे॥ २२॥

पुत्रोऽयं मम दोषेण मातुर्दोषेण वा मुने।
जातो दुःखावहः पित्रोर्दुःशीलो बन्धुशोकदः॥ २३

एतन्निशम्य वचनं गर्गाचार्यो मुनेस्तदा।
विचार्य सर्वं तद्धेतुं ज्योतिर्विद्वाचमब्रवीत्॥ २४

गर्ग उवाच

मुने नैवापराधस्ते न मातुर्न कुलस्य च।
रेवत्यन्तं तु गण्डान्तं पुत्रदौःशील्यकारणम्॥ २५

दुष्टे काले यतो जन्म पुत्रस्य तव भो मुने।
तेनैव तव दुःखाय नान्यो हेतुर्मनागपि॥ २६

तद्दुःखशान्तये ब्रह्मञ्जगतां मातरं शिवाम्।
समाराधय यत्नेन दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ २७

गर्गस्य वचनं श्रुत्वा ऋतवाक् क्रोधमूर्च्छितः।
रेवतीं तु शशापासौ व्योम्नः पततु रेवती॥ २८

दत्ते शापे तु तेनाथ पूष्णो भञ्च पपात खात्।
कुमुदाद्रौ भासमानं सर्वलोकस्य पश्यतः॥ २९

ख्यातो रैवतकश्चाभूत्तत्पातात् कुमुदाचलः।
अतीव रमणीयश्च ततः प्रभृति सोऽप्यभूत्॥ ३०

दत्त्वा शापं च रेवत्यै गर्गोक्तविधिना मुनिः।
समाराध्याम्बिकां देवीं सुखसौभाग्यभागभूत्॥ ३१

स्कन्द उवाच

रेवत्यृक्षस्य यत् तेजस्तस्माज्जाता तु कन्यका।
रूपेणाप्रतिमा लोके द्वितीया श्रीरिवाभवत्॥ ३२

अथ तां प्रमुचः कन्यां रेवतीकान्तिसम्भवाम्।
दृष्ट्वा नाम चकारास्या रेवतीति मुदा मुनिः॥ ३३

हे मुने! दुःखदायी, माता-पिताके प्रति उद्दण्ड तथा बन्धु-बान्धवोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह पुत्र मेरे दोषसे अथवा अपनी माताके दोषसे उत्पन्न हुआ?॥ २३॥

तब ज्योतिषशास्त्रके ज्ञाता गर्गाचार्यने मुनि ऋतवाक्‌का यह वचन सुनकर सभी कारणोंपर सम्यक् रूपसे विचार करके कहा॥ २४॥

गर्गाचार्यजी बोले—हे मुने! इसमें न तो आपका दोष है, न बालककी माताका दोष है और न तो कुलका दोष है। रेवती नक्षत्रका अन्तिम भाग—गण्डान्तयोग ही इस बालककी दुर्विनीतताका कारण है॥ २५॥

हे मुने! अशुभ वेलामें आपके पुत्रका जन्म हुआ है, इसी कारण यह आपको दुःख दे रहा है; इसमें लेशमात्र भी अन्य कोई कारण नहीं है॥ २६॥

अतः हे ब्रह्मन्! इस दुःखके शमनके लिये आप प्रयत्नपूर्वक समस्त दुर्गतियोंका विनाश करनेवाली कल्याणी जगदम्बा दुर्गाकी आराधना कीजिये॥ २७॥

गर्गाचार्यजीका वचन सुनकर ऋतवाक्‌मुनि क्रोधसे मूर्च्छित हो गये और उन्होंने रेवतीको शाप दे दिया कि वह आकाशसे नीचे गिर जाय॥ २८॥

ऋतवाक्‌के शाप देते ही चमकता हुआ रेवती नक्षत्र सभी लोगोंके देखते-देखते आकाशसे कुमुदपर्वतपर जा गिरा॥ २९॥

वह कुमुदपर्वत रेवतीके गिरनेके कारण रैवतक नामसे प्रसिद्ध हुआ और उसी समयसे वह अत्यन्त रमणीक हो गया॥ ३०॥

रेवतीको शाप देकर मुनि ऋतवाक्‌ने महर्षि गर्गद्वारा बताये गये विधानके अनुसार देवी भगवतीकी सम्यक् आराधनाकर सुख और सौभाग्य प्राप्त किया॥ ३१॥

कार्तिकेयजी बोले—[हे अगस्त्यजी!] उस रेवती नक्षत्रके महान् तेजसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जो अनुपम रूपवती होनेके कारण लोकमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

रेवती नक्षत्रकी कान्तिसे प्रादुर्भूत उस कन्याको देखकर मुनि प्रमुचने प्रसन्न होकर उसका 'रेवती'—यह नाम रख दिया॥ ३३॥

निन्येऽथ स्वाश्रमे चैनां पोषयामास धर्मतः।
ब्रह्मर्षिः प्रमुचो नाम कुमुदाद्रौ सुतामिव॥ ३४

अथ कालेन च प्रौढां दृष्ट्वा तां रूपशालिनीम्।
स मुनिश्चिन्तयामास कोऽस्या योग्यो वरो भवेत्॥ ३५

बहुधान्वेषयंस्तस्या नाससादोचितं पतिम्।
ततोऽग्निशालां संविश्य मुनिस्तुष्टाव पावकम्॥ ३६

कन्यावरं तदाशंसत्प्रीतस्तमपि हव्यवाट्।
धर्मिष्ठो बलवान् वीरः प्रियवागपराजितः॥ ३७

दुर्दमो भविता भर्ता मुनेऽस्याः पृथिवीपतिः।
इति श्रुत्वा वचो वह्नेः प्रसन्नोऽभून्मुनिस्तदा॥ ३८

दैवादाखेटकव्याजात् तत्क्षणादागतो नृपः।
दुर्दमो नाम मेधावी तस्याश्रमपदं मुनेः॥ ३९

पुत्रो विक्रमशीलस्य बलवान् वीर्यवत्तरः।
कालिन्दीजठरे जातः प्रियव्रतकुलोद्भवः॥ ४०

मुनेराश्रममाविश्य तमदृष्ट्वा महामुनिम्।
आमन्त्र्य तां प्रिये चेति रेवतीं पृष्टवान् नृपः॥ ४१

राजोवाच

महर्षिर्भगवानस्मादाश्रमात् क्व गतः प्रिये।
तत्पादौ द्रष्टुमिच्छामि वद कल्याणि तत्त्वतः॥ ४२

कन्योवाच

अग्निशालामुपगतो महाराज महामुनिः।
निश्चक्रामाश्रमात् तूर्णं राजाप्याकर्ण्य तद्वचः॥ ४३

अथाग्निशालाद्वारस्थं राजानं दुर्दमं मुनिः।
राजलक्षणसंयुक्तमपश्यत् प्रश्रयानतम्॥ ४४

प्रणनाम च तं राजा मुनिः शिष्यमुवाच ह।
गौतमानीयतामर्घ्यमर्घ्ययोग्योऽस्ति भूपतिः॥ ४५

तदनन्तर ब्रह्मर्षि प्रमुच उसे कुमुदाचलपर स्थित अपने आश्रममें ले आये और पुत्रीकी भाँति उसका धर्मपूर्वक पालन-पोषण करने लगे॥ ३४॥

समय पाकर यौवनको प्राप्त उस रूपवती कन्याको देखकर मुनिने विचार किया कि इस कन्याके योग्य वर कौन होगा?॥ ३५॥

बहुत अन्वेषणके बाद भी जब मुनिको उसके योग्य कोई वर नहीं मिला, तब वे अग्निशालामें प्रवेश करके अग्निदेवकी स्तुति करने लगे॥ ३६॥

प्रमुचऋषिके स्तुति-गानसे प्रसन्न होकर अग्निदेवने कन्याके योग्य वरका संकेत करते हुए कहा—हे मुने! इस कन्याके पति धर्मपरायण, बलशाली, वीर, प्रिय भाषण करनेवाले और अपराजेय राजा दुर्दम होंगे। तब अग्निदेवके इस वचनको सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ३७-३८॥

संयोगसे उसी समय आखेटके बहाने दुर्दम नामक प्रतिभाशाली राजा मुनि प्रमुचके आश्रममें आ गये॥ ३९॥

बलवान् तथा अप्रतिम ओजसे सम्पन्न वे प्रियव्रतके वंशज राजा दुर्दम विक्रमशीलके पुत्र थे और कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे॥ ४०॥

मुनिके आश्रममें प्रवेशकर और उन्हें वहाँ न देखकर राजा दुर्दमने रेवतीको 'प्रिये'—इस शब्दसे सम्बोधित करके पूछा॥ ४१॥

राजा बोले—हे प्रिये! महर्षि भगवान् प्रमुच इस आश्रमसे कहाँ गये हुए हैं? हे कल्याणि! मुझे सच-सच बताओ; मैं उनके चरणोंका दर्शन करना चाहता हूँ॥ ४२॥

कन्या बोली—हे महाराज! महामुनि अग्निशालामें गये हुए हैं। राजा भी यह वचन सुनकर शीघ्रतापूर्वक आश्रमसे बाहर निकल आये॥ ४३॥

इसके बाद प्रमुचमुनिने राजलक्षणसम्पन्न एवं विनयावनत राजा दुर्दमको अग्निशालाके द्वारपर स्थित देखा॥ ४४॥

मुनिको देखकर राजाने प्रणाम किया और तदनन्तर मुनि प्रमुचने शिष्यसे कहा—हे गौतम! ये राजा अर्घ्य पानेके योग्य हैं, अतः शीघ्र ही इनके लिये

आगतश्चिरकालेन जामातेति विशेषतः।
इत्युक्त्वार्घ्यं ददौ तस्मै सोऽपि जग्राह चिन्तयन्॥ ४६

मुनिरासनमासीनं गृहीतार्घ्यं च भूपतिम्।
आशीर्भिरभिनन्द्याथ कुशलं चाप्यपृच्छत॥ ४७

अपि तेऽनामयं राजन् बले कोशे सुहृत्सु च।
भृत्येऽमात्ये पुरे देशे तथात्मनि जनाधिप॥ ४८

भार्यास्ति ते कुशलिनी यतः सात्रैव तिष्ठति।
अतो न पृच्छाम्यस्यास्ते चान्यासां कुशलं वद॥ ४९

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वत्रानामयं मम।
एतत् कुतूहलं ब्रह्मन् मद्भार्या कात्र विद्यते॥ ५०

ऋषिरुवाच

रेवती नाम ते भार्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
विद्यतेऽत्र कथं पत्नीं तां न वेत्सि महीपते॥ ५१

राजोवाच

सुभद्राद्यास्तु या भार्या मम सन्ति गृहे विभो।
जानामि तास्तु भगवन् नैव जानामि रेवतीम्॥ ५२

ऋषिरुवाच

प्रियेति साम्प्रतं राजंस्त्वयोक्ता या महामते।
सा विस्मृता क्षणादेव या ते श्लाघ्यतमा प्रिया॥ ५३

राजोवाच

त्वयोक्तं यन्मृषा तन्नो तथैवामन्त्रिता मया।
मुने दुष्टो न मे भावः कोपं मा कर्तुमर्हसि॥ ५४

ऋषिरुवाच

राजन्नुक्तं त्वया सत्यं न भावो दूषितस्तव।
वह्निना प्रेरितेनेत्थं भवता व्याहृतं वचः॥ ५५

अद्य पृष्टो मया वह्निः कोऽस्या भर्ता भविष्यति।
तेनोक्तं दुर्दमो राजा भवितास्याः पतिर्ध्रुवम्॥ ५६

अर्घ्य ले आओ। बहुत दिन बाद ये पधारे हुए हैं और विशेषरूपसे ये हमारे जामाता हैं—ऐसा कहकर मुनिने राजाको अर्घ्य प्रदान किया और राजाने भी विचार करते हुए उसे ग्रहण किया॥ ४५-४६॥

तत्पश्चात् राजाके अर्घ्य ग्रहण करके आसनपर बैठ जानेके उपरान्त मुनि प्रमुचने उन्हें आशीर्वचनोंसे अभिनन्दित करके उनका कुशल-क्षेम पूछा—हे राजन्! आप स्वस्थ तो हैं? आपकी सेना, कोष, बन्धु-बान्धव, सेवकगण, सचिव, नगर, देश आदिकी सर्वविध कुशलता तो है? हे नरेश! आपकी भार्या तो यहीं विद्यमान है और वह सकुशल है। अतएव, मैं उसकी कुशलता नहीं पूछूँगा, आप अपनी अन्य स्त्रियोंका कुशल-क्षेम बताइये॥ ४७-४९॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपके कृपाप्रभावसे मेरी सर्वविध कुशलता है। हे ब्रह्मन्! अब मेरी यह जिज्ञासा है कि मेरी कौन-सी भार्या यहाँ है?॥ ५०॥

ऋषि बोले—हे पृथ्वीपते! संसारमें अप्रतिम लावण्यसे सम्पन्न रेवती नामक आपकी पत्नी यहाँ ही रहती है। क्या आप उसे नहीं जानते?॥ ५१॥

राजा बोले—हे प्रभो! सुभद्रा आदि मेरी पत्नियाँ तो घरपर ही हैं। हे भगवन्! मैं तो केवल उन्हें ही जानता हूँ। मैं रेवतीको तो नहीं जानता॥ ५२॥

ऋषि बोले—हे महामते! हे राजन्! इसी समय 'प्रिये' के सम्बोधनसे आपने जिससे पूछा था, अपनी उस योग्यतम प्रियाको आपने क्षणभरमें ही भुला दिया!॥ ५३॥

राजा बोले—हे मुने! आपने जो कहा, वह असत्य नहीं है; किंतु मैंने तो सामान्यरूपसे ऐसा कह दिया था। इसमें मेरा कोई दूषित भाव नहीं था, अतः आप मेरे ऊपर क्रोध न करें॥ ५४॥

ऋषि बोले—हे राजन्! आपका भाव दूषित नहीं था अपितु आपने सत्य ही कहा था। अग्निदेवके द्वारा प्रेरित किये जानेपर ही आपने ऐसा कहा था॥ ५५॥

'इसका पति कौन होगा'—ऐसा मेरे द्वारा आज अग्निदेवसे पूछे जानेपर उन्होंने कहा था कि इसके पति निश्चितरूपसे राजा दुर्दम ही होंगे॥ ५६॥

तदादत्स्व मया दत्तामिमां कन्यां महीपते।
प्रियेत्यामन्त्रिता पूर्वं मा विचारं कुरुष्व भोः॥ ५७

श्रुत्वैतत् सोऽभवत् तूष्णीं चिन्तयन् मुनिभाषितम्।
वैवाहिकं विधिं तस्य मुनिः कर्तुं समुद्यतः॥ ५८

अथोद्यतं विवाहाय दृष्ट्वा कन्याब्रवीन्मुनिम्।
रेवत्यृक्षे विवाहो मे तात कर्तुं त्वमर्हसि॥ ५९

ऋषिरुवाच

वत्से विवाहयोग्यानि सन्त्यन्यर्क्षाणि भूरिशः।
रेवत्यां कथमुद्वाहः पौष्णभं न दिवि स्थितम्॥ ६०

कन्योवाच

रेवत्यृक्षं विना कालो ममोद्वाहोचितो न हि।
अतः संप्रार्थयाम्येतद्विवाहं पौष्णभे कुरु॥ ६१

ऋषिरुवाच

ऋतवाङ्मुनिना पूर्वं रेवतीभं निपातितम्।
भान्तरे चेन्न ते प्रीतिर्विवाहः स्यात् कथं तव॥ ६२

कन्योवाच

तपः किं तप्तवानेक ऋतवागेव केवलम्।
भवता किं तपो नेदृक् तप्तं वाक्कायमानसैः॥ ६३

जगत्स्रष्टुं समर्थस्त्वं वेद्म्यहं ते तपोबलम्।
रेवत्यृक्षं दिवि स्थाप्य ममोद्वाहं पितः कुरु॥ ६४

ऋषिरुवाच

एवं भवतु भद्रं ते यथैव त्वं ब्रवीषि माम्।
त्वत्कृते सोममार्गेऽहं स्थापयाम्यद्य पौष्णभम्॥ ६५

स्कन्द उवाच

एवमुक्त्वा मुनिस्तूर्णं पौष्णभं स्वतपोबलात्।
यथापूर्वं तथा चक्रे सोममार्गे घटोद्भव॥ ६६

हे महीपते! अतः मेरे द्वारा प्रदत्त इस कन्याको आप स्वीकार कीजिये। आप इसे 'प्रिये' ऐसा सम्बोधित भी कर चुके हैं। अतएव अब शंकारहित होकर किसी अन्य विचारमें न पड़ें॥ ५७॥

मुनिका यह वचन सुनकर राजा दुर्दम चिन्तन करते हुए चुप हो गये और मुनि उनके वैवाहिक अनुष्ठानकी तैयारीमें जुट गये॥ ५८॥

इसके बाद विवाह-कार्यके लिये मुनिको तत्पर देखकर रेवतीने कहा—हे तात! आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही सम्पन्न करायें॥ ५९॥

ऋषि बोले—वत्से! विवाहके योग्य अन्य बहुत-से नक्षत्र हैं। रेवती नक्षत्रमें विवाह कैसे होगा; क्योंकि रेवती तो आकाशमें स्थित है ही नहीं॥ ६०॥

कन्या बोली—रेवती नक्षत्रके अतिरिक्त अन्य कोई भी नक्षत्र मेरे विवाहके लिये उचित नहीं है। अतः मैं प्रार्थना करती हूँ कि आप मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें ही करें॥ ६१॥

ऋषि बोले—पूर्वकालमें मुनि ऋतवाक्‌ने रेवती नक्षत्रको पृथ्वीपर गिरा दिया था। इस प्रकार अन्य नक्षत्रमें यदि तुम्हारी श्रद्धा नहीं है, तब तुम्हारा विवाह कैसे होगा?॥ ६२॥

कन्या बोली—तात! क्या केवल एक ऋतवाक्‌ने ही तपश्चर्या की है? क्या आपने मन-वचन-कर्मसे ऐसी तपःसाधना नहीं की है?॥ ६३॥

हे पिताजी! मैं आपके तपोबलको जानती हूँ; आप जगत्‌की सृष्टि करनेमें समर्थ हैं। अतः आप अपने तपके प्रभावसे रेवतीको पुनः आकाशमें स्थापित करके उसी नक्षत्रमें मेरा विवाह कीजिये॥ ६४॥

ऋषि बोले—तुम्हारा कल्याण हो। तुम जैसा मुझसे कह रही हो, वैसा ही होगा, तुम्हारे हितार्थ मैं आज ही रेवती नक्षत्रको सोममार्ग (नक्षत्र-मण्डल)-में स्थापित करूँगा॥ ६५॥

कार्तिकेयजी बोले—हे अगस्त्यजी! ऐसा कहकर मुनिने अपने तपोबलसे शीघ्र ही पूर्वकी भाँति रेवती नक्षत्रको फिरसे नक्षत्र-मण्डलमें स्थापित कर दिया॥ ६६॥

रेवतीनाम्नि नक्षत्रे विवाहविधिना मुनिः।
रेवतीं प्रददौ राज्ञे दुर्दमाय महात्मने॥ ६७

कृत्वा विवाहं कन्याया मुनी राजानमब्रवीत्।
किं तेऽभिलषितं वीर वद तत्पूरयाम्यहम्॥ ६८

राजोवाच

मनोः स्वायम्भुवस्याहं वंशे जातोऽस्मि हे मुने।
मन्वन्तराधिपं पुत्रं त्वत्प्रसादाच्च कामये॥ ६९

मुनिरुवाच

यद्येषा कामना तेऽस्ति देव्या आराधनं कुरु।
भविष्यत्येव ते पुत्रो मनुर्मन्वन्तराधिपः॥ ७०

देवीभागवतं नाम पुराणं यत्तु पञ्चमम्।
पञ्चकृत्वस्तु तच्छ्रुत्वा लप्स्यसेऽभिमतं सुतम्॥ ७१

रेवत्यां रैवतो नाम पञ्चमो भविता मनुः।
वेदविच्छास्त्रतत्त्वज्ञो धर्मवानपराजितः॥ ७२

इत्युक्तो मुनिना राजा प्रणम्य मुदितो मुनिम्।
भार्यया सह मेधावी जगाम नगरं निजम्॥ ७३

पितृपैतामहं राज्यं चकार स महामतिः।
पालयामास धर्मात्मा प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥ ७४

एकदा लोमशो नाम महात्मा मुनिरागतः।
प्रणिपत्य तमभ्यर्च्य प्राञ्जलिश्चाब्रवीन्नृपः॥ ७५

राजोवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन श्रोतुमिच्छामि भो मुने।
देवीभागवतं नाम पुराणं पुत्रलिप्सया॥ ७६

श्रुत्वा वाचं प्रजाभर्तुः प्रीतः प्रोवाच लोमशः।
धन्योऽसि राजंस्ते भक्तिर्जाता त्रैलोक्यमातरि॥ ७७

सुरासुरनराराध्या या परा जगदम्बिका।
तस्यां चेद्भक्तिरुत्पन्ना कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥ ७८

तदनन्तर मुनि प्रमुचने रेवती नक्षत्रमें वैवाहिक विधिके अनुसार महात्मा राजा दुर्दमको वह रेवती कन्या सौंप दी॥ ६७॥

इस प्रकार कन्याका विवाह कर देनेके उपरान्त मुनिने राजासे कहा—हे वीर! तुम्हारी क्या अभिलाषा है? मुझे बताओ, मैं उसे पूरी करूँगा॥ ६८॥

राजा बोले—हे मुने! मैं स्वायम्भुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुआ हूँ, अतः मैं यही कामना करता हूँ कि आपकी कृपासे मुझे मन्वन्तराधिपति पुत्रकी प्राप्ति हो॥ ६९॥

मुनि बोले—यदि आपकी यह अभिलाषा है तो आप देवी भगवतीकी आराधना कीजिये। ऐसा करनेपर आपका पुत्र मनु अवश्य ही मन्वन्तराधिपति होगा॥ ७०॥

श्रीमद्देवीभागवत जो पंचम पुराणके रूपमें विख्यात है, उसका पाँच बार श्रवण करनेके उपरान्त आपको मनोवांछित पुत्र प्राप्त होगा॥ ७१॥

रेवतीके गर्भसे उत्पन्न रैवत नामवाला पाँचवाँ मनु वेदवेत्ता, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाला, धर्मपरायण तथा अपराजेय होगा॥ ७२॥

मुनि प्रमुचके इस प्रकार कहनेपर प्रसन्न होकर प्रतिभासम्पन्न राजा दुर्दमने मुनिको प्रणाम किया और वे भार्या रेवतीके साथ अपने नगर चले गये॥ ७३॥

महामति राजा दुर्दमने अपने पिता-पितामहसे प्राप्त राज्यपर शासन किया और उस धर्मात्माने औरस पुत्रोंकी भाँति अपनी प्रजाओंका पालन किया॥ ७४॥

एक बार उनके यहाँ महात्मा लोमशऋषि पधारे। राजा दुर्दमने उन्हें प्रणाम किया और उनका विधिवत् पूजनकर दोनों हाथ जोड़कर कहा॥ ७५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे मुने! यदि आप कृपा करें तो मैं पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे आपसे देवीभागवत नामक पुराण सुनना चाहता हूँ॥ ७६॥

राजाका यह वचन सुनकर लोमशमुनि प्रसन्न हो गये और बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं; क्योंकि तीनों लोकोंकी जननी देवी भगवतीमें आपकी ऐसी भक्ति हो गयी है। देव, दानव तथा मानवकी आराध्या परा भगवती जगदम्बामें यदि आपकी भक्ति उत्पन्न हुई है तो आपकी कार्य-सिद्धि अवश्य होगी॥ ७७-७८॥

अतस्त्वां श्रावयिष्यामि श्रीमद्भागवतं नृप।
यस्य श्रवणमात्रेण न किञ्चिदपि दुर्लभम्॥ ७९

इत्युक्त्वा सुदिने ब्रह्मन् कथारम्भमथाकरोत्।
पञ्चकृत्वः स शुश्राव विधिवद्भार्यया सह॥ ८०

समाप्तिदिवसे राजा पुराणञ्च मुनिं तथा।
पूजयामास धर्मात्मा मुदा परमया युतः॥ ८१

हुत्वा नवार्णमन्त्रेण भोजयित्वा कुमारिकाः।
वाडवांश्च सपत्नीकान्दक्षिणाभिरतोषयत्॥ ८२

अथ कालेन कियता भगवत्याः प्रसादतः।
गर्भं दधार सा राज्ञी लोककल्याणकारकम्॥ ८३

पुण्येऽथ समये प्राप्ते ग्रहैः सुस्थानसङ्गतैः।
सर्वमङ्गलसम्पन्ने रेवती सुषुवे सुतम्॥ ८४

श्रुत्वा पुत्रस्य जननं स्नात्वा राजा मुदान्वितः।
स सुवर्णाम्भसा चक्रे जातकर्मादिकाः क्रियाः॥ ८५

यथाविधि च दानानि दत्त्वा विप्रानतोषयत्।
कृतोपनयनं राजा साङ्गान्वेदानपाठयत्॥ ८६

सर्वविद्यानिधिर्जातो धर्मिष्ठोऽस्त्रविदां वरः।
धर्मस्य वक्ता कर्ता च रैवतो नाम वीर्यवान्॥ ८७

नियुक्तवानथ ब्रह्मा रैवतं मानवे पदे।
मन्वन्तराधिपः श्रीमान् गां शशास स धर्मतः॥ ८८

इत्थं देव्याः प्रभावोऽयं संक्षेपेणोपवर्णितः।
पुराणस्य च माहात्म्यं को वक्तुं विस्तरात्क्षमः॥ ८९

अतएव हे राजन्! मैं आपको श्रीमद्देवीभागवत सुनाऊँगा, जिसके सुननेमात्रसे कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं रह जाता॥ ७९॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर मुनिने किसी शुभ दिनमें कथाका आरम्भ किया। अपनी पत्नीके साथ राजाने पाँच बार श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विधिवत् श्रवण किया॥ ८०॥

कथा-समाप्तिके दिन धर्मनिष्ठ राजा दुर्दमने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीमद्देवीभागवतपुराण तथा लोमशमुनिकी पूजा की॥ ८१॥

राजाने नवार्णमन्त्रसे हवन करके कुमारी कन्याओंको भोजन कराया और सपत्नीक ब्राह्मणोंको प्रभूत दक्षिणादानद्वारा संतुष्ट किया॥ ८२॥

कुछ समय बीत जानेपर भगवतीकी कृपासे उस रानी रेवतीने लोककल्याणकारी गर्भ धारण किया॥ ८३॥

इसके बाद जब समस्त ग्रह-नक्षत्र अपने-अपने अनुकूल स्थानोंपर थे और सभी मांगलिक कृत्य सम्पन्न हो गये थे—ऐसे शुभ समयमें रेवतीने पुत्रको जन्म दिया॥ ८४॥

पुत्रके जन्मका समाचार सुनकर राजा दुर्दम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने स्नान करके स्वर्ण-कलशके जलसे पुत्रका जातकर्म आदि संस्कार सम्पन्न किया॥ ८५॥

तदनन्तर राजाने विधिपूर्वक दान देकर ब्राह्मणोंको संतुष्ट किया। समयपर पुत्रका उपनयन-संस्कार करके राजाने अपने पुत्रको अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन कराया॥ ८६॥

इस प्रकार राजाका वह रैवत नामक तेजस्वी पुत्र समग्र विद्याओंका निधान, धर्मपरायण, अस्त्र-विशारदोंमें श्रेष्ठ, धर्मका वक्ता तथा धर्मका पालनकर्ता हो गया॥ ८७॥

इसके बाद ब्रह्माजीने रैवतको मनुके पदपर नियुक्त किया और वे श्रीमान् मन्वन्तराधिपके रूपमें धर्मपूर्वक पृथ्वीपर शासन करने लगे॥ ८८॥

इस प्रकार मैंने देवी भगवतीके इस प्रभावका संक्षिप्तरूपसे वर्णन कर दिया। इस श्रीमद्देवीभागवत-पुराणके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेमें कौन समर्थ है?॥ ८९॥

सूत उवाच

कुम्भयोनिस्तु माहात्म्यं विधिं भागवतस्य च।
श्रुत्वा कुमारं चाभ्यर्च्य स्वाश्रमं पुनराययौ॥ ९०

इदं मया भागवतस्य विप्रा
माहात्म्यमुक्तं भवतां समक्षम्।
शृणोति भक्त्या पठतीह भोगान्
भुक्त्वाखिलान्मुक्तिमुपैति चान्ते॥ ९१

सूतजी बोले—[हे ब्राह्मणो!] इस प्रकार श्रीमद्देवीभागवतका माहात्म्य तथा उसकी विधि सुनकर और कुमार कार्तिकेयकी पूजाकर अगस्त्यजी अपने आश्रम चले आये॥ ९०॥

हे विप्रो! मैंने आपलोगोंके समक्ष श्रीमद्देवी-भागवतका यह माहात्म्य कह दिया। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इसका श्रवण तथा पाठ करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण भोगोंका सुख प्राप्त करके अन्तमें मोक्ष प्राप्त करता है॥ ९१॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये रैवतनामक-
मनुपुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतपुराणकी श्रवण-विधि, श्रवणकर्ताके लिये पालनीय नियम, श्रवणके फल तथा माहात्म्यका वर्णन

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग श्रुतं माहात्म्यमुत्तमम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामः पुराणश्रवणे विधिम्॥ १

सूत उवाच

श्रूयतां मुनयः सर्वे पुराणश्रवणे विधिम्।
नराणां शृण्वतां येन सिद्धिः स्यात्सार्वकामिकी॥ २

आदौ दैवज्ञमाहूय मुहूर्तं कल्पयेत्सुधीः।
आरभ्य शुचिमासं तु मासषट्कं शुभावहम्॥ ३

हस्ताश्विमूलपुष्यर्क्षे ब्रह्ममैत्रेन्दुवैष्णवे।
सत्तिथौ शुभवारे च पुराणश्रवणं शुभम्॥ ४

गुरुभाद्देवदेवाब्जशराङ्गाब्धिगुणैः क्रमात्।
धर्माप्तिरिन्दिराप्राप्तिः कथासिद्धिः परं सुखम्॥ ५

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! हमलोगोंने श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य सुन लिया और अब इस पुराणके श्रवणकी विधि सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग इस पुराणके श्रवणका विधान सुनें, जिसे सुननेवाले मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं॥ २॥

पुराणश्रवणके इच्छुक विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि वह सर्वप्रथम ज्योतिषीको बुलाकर शुभ मुहूर्त निर्धारित कर ले। इसके लिये ज्येष्ठमाससे लेकर छः महीने शुभकारक होते हैं॥ ३॥

हस्त, अश्विनी, मूल, पुष्य, रोहिणी, अनुराधा, मृगशिरा तथा श्रवण नक्षत्र, पुण्य तिथि तथा शुभ दिनमें श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कल्याणकारी होता है॥ ४॥

जिस नक्षत्रमें बृहस्पति हों, उससे चन्द्रमातक गिननेपर क्रमशः इस प्रकार फल होते हैं—चार नक्षत्रतक धर्म-प्राप्ति, पुनः चारतक लक्ष्मीकी प्राप्ति, इसके बाद एक नक्षत्र कथामें सिद्धि प्रदान करनेवाला, फिर पाँच नक्षत्र परम सुखकी प्राप्ति करानेवाले, बादमें छः नक्षत्र पीड़ा करनेवाले, इसके

पीडाथ भूपतिभयं ज्ञानप्राप्तिः क्रमात्फलम्।
पुराणश्रवणे चक्रं शोधयेच्छिवभाषितम्॥ ६

अथवा प्रीतये देव्या नवरात्रचतुष्टये।
शृणुयादन्यमासेऽपि तिथिवारर्क्षशोधिते॥ ७

सम्भारं तादृशं कार्यं विवाहादौ च यादृशम्।
नवाहयज्ञे चाप्यस्मिन्विधेयं यत्नतो बुधैः॥ ८

सहाया बहवः कार्या दम्भलोभविवर्जिताः।
चतुराश्च वदान्याश्च देवीभक्तिपरा नराः॥ ९

प्रेष्या यत्नेन वार्तेयं देशे देशे जने जने।
आगन्तव्यमिहावश्यं कथा देव्या भविष्यति॥ १०

सौराश्च गाणपत्याश्च शैवाः शाक्ताश्च वैष्णवाः।
सर्वेषामपि सेव्येयं यतो देवाः सशक्तयः॥ ११

श्रीमद्देवीभागवतपीयूषरसलोलुपैः।
आगन्तव्यं विशेषेण कथार्थं प्रेमतत्परैः॥ १२

ब्राह्मणाद्याश्च ये वर्णाः स्त्रियश्चाश्रमिणस्तथा।
सकामाश्चापि निष्कामाः पातव्यं तैः कथामृतम्॥ १३

बाद चार नक्षत्र राज-भय उत्पन्न करनेवाले और तत्पश्चात् तीन नक्षत्र ज्ञान-प्राप्तिमें सहायक होते हैं। पुराणश्रवणके आरम्भमें शिवोक्त चक्रका शोधन कर लेना चाहिये॥ ५-६॥

देवीकी प्रसन्नताके लिये इसे चारों नवरात्रोंमें* सुनना चाहिये अथवा तिथि, वार और नक्षत्रपर सम्यक् विचार करके यह पुराण अन्य मासोंमें भी सुना जा सकता है॥ ७॥

विवाह आदिमें जिस प्रकार [उत्साहपूर्वक] तैयारी की जाती है, उसी प्रकार नवाह-यज्ञके अवसरपर भी बुद्धिमान् मनुष्योंको प्रयत्नपूर्वक सामग्री आदिकी तैयारी करनी चाहिये॥ ८॥

पाखण्ड तथा लोभसे रहित, चतुर, उदार एवं देवीभक्त सज्जनोंको भी सहायकके रूपमें लेना चाहिये॥ ९॥

देश-देशमें भी यत्नपूर्वक यह सन्देश भेजना चाहिये—[हे कथानुरागी सज्जनो!] यहाँ श्रीमद्देवी-भागवतकी कथा होने जा रही है, आप अवश्य पधारें॥ १०॥

चाहे सूर्यकी उपासना करनेवाले हों, चाहे गणेशभक्त हों, चाहे शैव हों, चाहे वैष्णव अथवा शक्तिके उपासक हों, सभी इस कथाके श्रवणके अधिकारी हैं; क्योंकि सभी देवता शक्तिके साथ ही रहते हैं॥ ११॥

इसलिये श्रीमद्देवीभागवतकी कथारूपी सुधाके रसिक प्रेमीजनोंको कथाश्रवणके लिये विशेषरूपसे आना चाहिये॥ १२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्णके स्त्री, पुरुष एवं ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास—इन चारों आश्रमोंमें निरत मनुष्योंको चाहे सकामभावसे अथवा निष्कामभावसे—अवश्य ही इस कथा-सुधाका पान करना चाहिये॥ १३॥

---

* सामान्यतः नवरात्र चार हैं—१-चैत्र शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक, २-आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक (इसी नवरात्रके बाद हरिशयनी एकादशी), ३-आश्विन शुक्ल प्रतिपदासे विजयादशमीतक (इसके बाद कार्तिक शुक्ल एकादशी देवोत्थानी—प्रबोधिनी एकादशी) तथा ४-माघ शुक्ल प्रतिपदासे दशमीतक सारस्वत-नवरात्र।

नावकाशः कदाचित्स्यान्नवाहश्रवणेऽपि तैः।
आगन्तव्यं यथाकालं यज्ञे पुण्या क्षणस्थितिः॥ १४

विनयेनैव कर्तव्यमेवमाकारणं नृणाम्।
आगतानाञ्च कर्तव्यं वासस्थानं यथोचितम्॥ १५

कथास्थानं प्रकर्तव्यं भूमौ मार्जनपूर्वकम्।
लेपनं गोमयेनाथ विशालायां मनोरमम्॥ १६

कार्यस्तु मण्डपो रम्यो रम्भास्तम्भोपशोभितः।
वितानमुपरिष्ठात्तु पताकाध्वजराजितः॥ १७

वक्तुश्चैवासनं दिव्यं सुखास्तरणसंयुतम्।
रचितव्यं प्रयत्नेन प्राङ्मुखं वाप्युदङ्मुखम्॥ १८

यथोचितानि कुर्वीत श्रोतॄणामासनानि च।
नृणां चैवाथ नारीणां कथाश्रवणहेतवे॥ १९

वाग्मी दान्तश्च शास्त्रज्ञो देव्याराधनतत्परः।
दयालुर्निस्पृहो दक्षो धीरो वक्तोत्तमो मतः॥ २०

ब्रह्मण्यो देवताभक्तः कथारसपरायणः।
उदारोऽलोलुपो नम्रः श्रोता हिंसादिवर्जितः॥ २१

पाखण्डनिरतो लुब्धः स्त्रैणो धर्मध्वजस्तथा।
निष्ठुरः क्रोधनो वक्ता देवीयज्ञे न शस्यते॥ २२

संशयच्छेदनायैकः पण्डितश्च तथागुणः।
श्रोतृबोधकृदव्यग्रः कार्यो वक्तुः सहायकृत्॥ २३

मुहूर्तदिवसादर्वाग्वक्तृश्रोत्रादिभिर्जनैः।
कर्तव्यं क्षौरकर्मादि ततो नियमकल्पनम्॥ २४

जिन लोगोंको पूरे नौ दिनतक कथा सुननेका अवकाश न मिल सके, वे जब भी समय मिले तभी आ जायँ; क्योंकि यज्ञमें क्षणभर भी पहुँच जाना विशेष पुण्यदायक होता है॥ १४॥

बड़ी नम्रताके साथ मनुष्योंको निमन्त्रण देना चाहिये और आये हुए श्रोताओंके बैठनेका भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिये॥ १५॥

विस्तृत भूमिमें कथा-प्रवचनका सुन्दर स्थान बनाना चाहिये। उस स्थानकी सफाई कराकर गोबरसे लिपवा देना चाहिये। केलेके स्तम्भोंसे सुशोभित और ध्वज-पताकाओंसे अलंकृत एक सुरम्य मण्डपका निर्माण करना चाहिये और उसके ऊपर सुन्दर चाँदनी लगा देनी चाहिये॥ १६-१७॥

कथावाचकका आसन दिव्य तथा सुखकर आस्तरणसे युक्त होना चाहिये। उसे प्रयत्नपूर्वक पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख रखना चाहिये॥ १८॥

कथाश्रवणके लिये आनेवाले पुरुष तथा स्त्री श्रोताओंके लिये भी यथायोग्य पृथक्-पृथक् आसनोंकी व्यवस्था करनी चाहिये॥ १९॥

वक्तृत्वसम्पन्न, संयमी, शास्त्रज्ञ, देवीकी आराधनामें तत्पर, दयालु, लोभहीन, दक्ष तथा धैर्यशाली कथावाचक उत्तम माना गया है॥ २०॥

इसी प्रकार श्रोता भी ऐसा होना चाहिये जो ब्राह्मणसेवी, देवभक्त, कथा-रसका पान करनेवाला, उदार, लोभरहित, विनम्र और हिंसा आदिसे रहित हो॥ २१॥

पाखण्डी, लोभी, स्त्रीस्वभाव, कामी, धर्मका दिखावामात्र करनेवाला, निष्ठुर तथा क्रोधी वक्ता देवीभागवतके नवाहयज्ञमें श्रेष्ठ नहीं माना जाता है॥ २२॥

श्रोताओंकी शंकाओंके निवारणहेतु कथावाचकके साथ एक ऐसा सहायक भी लगा देना चाहिये, जो पण्डित, गुणवान्, शान्त तथा श्रोताओंको समझानेमें कुशल हो॥ २३॥

कथा प्रारम्भ होनेके एक दिन पूर्व ही वक्ता एवं श्रोतागणोंको क्षौरकर्म करा लेना चाहिये। तत्पश्चात् अन्यान्य नियमोंका पालन करना चाहिये॥ २४॥

अरुणोदयवेलायां स्नायाच्छौचं विधाय च।
सन्ध्यातर्पणकार्यञ्च नित्यं संक्षेपतश्चरेत्॥ २५

कथाश्रवणयोग्यत्वसिद्धये गाश्च दापयेत्।
समस्तविघ्नहर्तारमादौ गणपतिं यजेत्॥ २६

कलशांश्चापि संस्थाप्य पूजयेत्तत्र दिग्भवान्।
वटुकं क्षेत्रपालञ्च योगिनीर्मातृकास्तथा॥ २७

तुलसीञ्चापि सम्पूज्य ग्रहान्विष्णुञ्च शङ्करम्।
नवाक्षरेण मनुना पूजयेज्जगदम्बिकाम्॥ २८

सर्वोपचारैः सम्पूज्य श्रीभागवतपुस्तकम्।
श्रीदेव्या वाङ्मयीं मूर्तिं यथावच्छोभनाक्षरम्॥ २९

कथाविघ्नोपशान्त्यर्थं वृणुयात्पञ्च वाडवान्।
जाप्यो नवार्णमन्त्रस्तैः पाठ्यः सप्तशतीस्तवः॥ ३०

प्रदक्षिणनमस्कारान्कृत्वान्ते स्तुतिमाचरेत्।
कात्यायनि महामाये भवानि भुवनेश्वरि॥ ३१

संसारसागरे मग्नं मामुद्धर कृपामये।
ब्रह्मविष्णुशिवाराध्ये प्रसीद जगदम्बिके॥ ३२

मनोऽभिलषितं देवि वरं देहि नमोऽस्तु ते।
इति सम्प्रार्थ्य शृणुयात्कथां नियतमानसः॥ ३३

वक्तारञ्चापि सम्पूज्य व्यासबुध्या यतात्मवान्।
माल्यालङ्कारवस्त्राद्यैः सम्भूष्य प्रार्थयेच्च तम्॥ ३४

सर्वशास्त्रेतिहासज्ञ व्यासरूप नमोऽस्तु ते।
कथाचन्द्रोदयेनान्तस्तमःस्तोमं निराकुरु॥ ३५

तदग्रे तु नवाहान्तं कर्तव्या नियमास्तदा।
विप्रादीनुपवेश्यादौ सम्पूज्योपविशेत्स्वयम्॥ ३६

उस दिन शौचादिसे निवृत्त हो अरुणोदयवेलामें ही स्नान कर लेना चाहिये। सन्ध्या तथा तर्पण आदि नित्यकर्म संक्षेपमें ही करना चाहिये॥ २५॥

तत्पश्चात् कथाश्रवणका अधिकारी बननेके लिये गोदान करे और सब विघ्नोंको दूर करनेवाले श्रीगणेशजीका सर्वप्रथम पूजन करे। कलश-स्थापन करके वहाँ दस दिक्पालों, बटुक, क्षेत्रपाल, सभी योगिनियों और मातृकाओंका भी पूजन करे। तुलसी, नवग्रह, विष्णु तथा शिवजीका पूजन करके नवाक्षरमन्त्रसे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २६—२८॥

तत्पश्चात् सुन्दर अक्षरोंमें लिखी हुई भगवतीकी वाङ्मयी मूर्तिस्वरूप श्रीमद्देवीभागवत-पुस्तककी सभी उपचारोंसे विधिवत् पूजा करके कथाकी निर्विघ्न समाप्तिके लिये पाँच विद्वान् ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये। उनसे निरन्तर नवार्णमन्त्रका जप एवं दुर्गासप्तशतीका पाठ कराना चाहिये॥ २९-३०॥

अन्तमें प्रदक्षिणा तथा नमस्कारके बाद इस प्रकार स्तुति करे—'हे कात्यायनि! हे महामाये! हे भुवनेश्वरि! हे कृपामये! हे भवानि! मैं संसार-सागरमें डूब रहा हूँ; मेरा उद्धार कीजिये तथा हे ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे पूजनीया माता जगदम्बिके! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। हे देवि! आप मुझे मनोवांछित वर प्रदान कीजिये; आपको बार-बार प्रणाम है। इस प्रकार प्रार्थना करके स्वस्थचित्त होकर कथा सुने॥ ३१—३३॥

उस समय संयतचित्त होकर वक्ताको साक्षात् व्यास समझकर विधिवत् उनकी पूजा करे और वस्त्राभूषण तथा माला आदि पहनाकर उनसे प्रार्थना करे—'समस्त शास्त्र तथा पुराणेतिहासके ज्ञाता हे व्यासजी! आपको नमस्कार है। आप कथारूपी चन्द्रमाकी ज्योतिसे हमारे अन्तःकरणके अन्धकारसमूहको नष्ट कीजिये'॥ ३४-३५॥

इसके बाद नवाहके नियमोंका व्रत ले और ब्राह्मणोंका यथाशक्ति पूजन करके उन्हें पहले यथास्थान बैठा दे, तत्पश्चात् स्वयं भी अपने आसनपर बैठ जाय॥ ३६॥

श्रोतव्यं सावधानेन चतुर्वर्गफलाप्तये।
गृहपुत्रकलत्राप्तधनचिन्तामपास्य च॥ ३७

सूर्योदयं समारभ्य किञ्चित्सूर्येऽवशेषिते।
मुहूर्तमात्रं विश्रम्य मध्याह्ने वाचयेत्सुधीः॥ ३८

मलमूत्रजयायैषां लघु भोजनमिष्यते।
हविष्यान्नं वरं भोज्यं सकृदेव कथार्थिना॥ ३९

अथवा स्यात्फलाहारी पयोभुग्वा घृताशनः।
यथा स्यान्न कथाविघ्नस्तथा कार्यं विचक्षणैः॥ ४०

कथाश्रवणनिष्ठानां वक्ष्यामि नियमं द्विजाः।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां मध्ये ये भेददर्शिनः॥ ४१

देवीभक्तिविहीना ये पाखण्डा हिंसकाः खलाः।
विप्रद्रुहो नास्तिका ये न ते योग्याः कथाश्रवे॥ ४२

ब्रह्मस्वहरणे लुब्धाः परदारधनेषु च।
देवस्वहरणे तेषां नाधिकारः कथाश्रवे॥ ४३

ब्रह्मचारी च भूशायी सत्यवक्ता जितेन्द्रियः।
कथासमाप्तौ भुञ्जीत पत्रावल्यां यतात्मवान्॥ ४४

वृन्ताकञ्च कलिन्दञ्च तैलञ्च द्विदलं मधु।
दग्धमन्नं पर्युषितं भावदुष्टं त्यजेद् व्रती॥ ४५

आमिषञ्च मसूरान्नमुदक्यादृष्टमेव च।
रसोनं मूलकं हिङ्गुं पलाण्डुं गृञ्जनं तथा॥ ४६

कूष्माण्डं नलिकाशाकं न भुञ्जीत कथाव्रती।
कामं क्रोधं मदं लोभं दम्भं मानञ्च वर्जयेत्॥ ४७

विप्रध्रुक्पतितव्रात्यश्वपाकयवनान्त्यजैः।
उदक्यया वेदबाह्यैर्न वदेद्यः कथाव्रती॥ ४८

तब सावधान मनसे चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष)-फलको प्राप्त करनेके लिये पुत्र-कलत्र, धन-धान्य तथा गृहकी चिन्ता छोड़कर कथा सुने॥ ३७॥

विद्वान् वक्ताको चाहिये कि वह सूर्योदयसे आरम्भ करके पुनः दोपहरमें दो घड़ी विश्राम करके सूर्यास्तके कुछ समय पहलेतक कथा-वाचन करे॥ ३८॥

मल-मूत्रके वेगको रोकनेके लिये स्वल्पाहार उत्तम होता है। कथार्थीको दिन-रातमें केवल एक बार हविष्यान्नका भोजन करना ही ठीक है; अथवा फलाहार करे या केवल दूध-घीके आहारपर ही रहे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि ऐसा आहार ग्रहण करे, जिससे कथामें किसी प्रकारकी बाधा न हो॥ ३९-४०॥

हे द्विजगण! अब मैं कथाश्रवणमें निष्ठा रखनेवालोंके नियम बताता हूँ। जो लोग ब्रह्मा, विष्णु और शिवमें भेददृष्टि रखते हैं, देवीकी भक्तिसे रहित हैं, जो पाखण्डी, हिंसक तथा दुष्ट हैं और जो ब्राह्मणोंसे द्वेष रखनेवाले तथा नास्तिक हैं, वे कथाश्रवणके योग्य नहीं हैं॥ ४१-४२॥

जो परस्त्री, पराया धन, ब्राह्मणधन तथा देव-सम्पत्तिके हरणमें लुब्ध रहते हैं, उनका कथाश्रवणमें अधिकार नहीं है॥ ४३॥

श्रोताको चाहिये कि वह ब्रह्मचर्यका पालन करे, पृथ्वीपर सोये, सत्य बोले, जितेन्द्रिय रहे तथा कथाकी समाप्तिपर संयमपूर्वक पत्तलपर भोजन करे॥ ४४॥

व्रतीको बैगन, बहेड़ा (कलिन्द), तेल, दाल, मधु और जला हुआ, बासी तथा भावदूषित अन्नका त्याग कर देना चाहिये॥ ४५॥

कथा सुननेवाला व्रती मांस, मसूर, रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ खाद्यान्न, लहसुन, मूली, हींग, प्याज, गाजर, कोहड़ा और करमीका साग न खाये। काम, क्रोध, मद, लोभ, पाखण्ड और अहंकारको छोड़ दे॥ ४६-४७॥

विप्रद्रोही, पतित, संस्कारहीन, चाण्डाल, यवन, अन्त्यज, रजस्वला स्त्री और वेदविहीन मनुष्योंसे कथाव्रतीको वार्तालाप नहीं करना चाहिये॥ ४८॥

वेदगोगुरुविप्राणां स्त्रीराज्ञां महतां तथा।
देवानां देवभक्तानां न निन्दां शृणुयादपि॥ ४९

विनयं चार्जवं शौचं दयां च मितभाषणम्।
उदारं मानसञ्चैव कुर्याद्यस्तु कथाव्रती॥ ५०

श्वित्री कुष्ठी क्षयी रुग्णो भाग्यहीनश्च पापकृत्।
दरिद्रश्चानपत्यश्च भक्त्येमां शृणुयात्कथाम्॥ ५१

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा दुर्भगा वा मृतार्भका।
पतद्गर्भाङ्गना या च ताभिः श्राव्या तथा कथा॥ ५२

धर्मार्थकाममोक्षांश्च यो वाञ्छति विना श्रमम्।
भगवत्या भागवतं श्रोतव्यं तेन यत्नतः॥ ५३

कथादिनानि चैतानि नवयज्ञैः समानि हि।
तेषु दत्तं हुतं जप्तमनन्तफलदं भवेत्॥ ५४

एवं व्रतं नवाहं तु कृत्वोद्यापनमाचरेत्।
महाष्टमीव्रतं यद्वत्तथा कार्यं फलेप्सुभिः॥ ५५

निष्कामाः श्रवणेनैव पूता मुक्तिं व्रजन्ति हि।
भोगमोक्षप्रदा नृणां यतो भगवती परा॥ ५६

पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्या तु नित्यशः।
वक्त्रा दत्तं प्रसादं तु गृह्णीयाद्भक्तिपूर्वकम्॥ ५७

कुमारीः पूजयेन्नित्यं भोजयेत्प्रार्थयेच्च यः।
सुवासिनीश्च विप्रांश्च तस्य सिद्धिर्न संशयः॥ ५८

गायत्र्या नाम साहस्रं समाप्तावथ वा पठेत्।
विष्णोर्नामसहस्रञ्च सर्वदोषोपशान्तये॥ ५९

श्रोताको चाहिये कि वह वेद, गौ, गुरु, ब्राह्मण, स्त्री, राजा, महापुरुष, देवताओं और देवभक्तोंकी निन्दा कभी न सुने॥ ४९॥

जो कथाव्रती हो उसे सर्वदा विनयशील, सरलचित्त, पवित्र, दयालु, कम बोलनेवाला तथा उदार मनवाला होना चाहिये॥ ५०॥

श्वेतकुष्ठी, कुष्ठी, क्षयरोगी, अभागा, पापी, दरिद्र तथा सन्तानहीन मनुष्य इस कथाको भक्तिपूर्वक सुने॥ ५१॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या (जिस स्त्रीको एक बार सन्तान होकर बन्द हो जाय), अभागिन तथा मृतवत्सा हो और जिसका गर्भ गिर जाता हो, ऐसी सभी स्त्रियोंको इस देवीभागवतकथाका श्रवण करना चाहिये॥ ५२॥

जो मनुष्य बिना परिश्रमके ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करना चाहता है, वह यत्नपूर्वक इस देवीभागवतकी कथा अवश्य सुने॥ ५३॥

इस नवाहकथाके नौ दिन नौ यज्ञोंके समान हैं। उनमें किया गया दान, हवन तथा जप अनन्त फल देनेवाला होता है॥ ५४॥

इस प्रकार नवाहव्रत करके उसका उद्यापन करना चाहिये। फलकी कामना करनेवाले पुरुषोंको महाष्टमीव्रतके उद्यापनकी भाँति नवाहव्रतका भी उद्यापन करना चाहिये॥ ५५॥

निष्काम व्यक्ति कथाके श्रवणमात्रसे पवित्र होकर मुक्ति पा जाते हैं; क्योंकि परा भगवती मनुष्योंको भोग और मोक्ष सब कुछ देनेवाली हैं॥ ५६॥

पुस्तक और कथावाचक—दोनोंकी प्रतिदिन पूजा करनी चाहिये और वक्ताद्वारा दिया हुआ प्रसाद भक्तिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये॥ ५७॥

नवाह-यज्ञमें जो श्रोता नित्य कुमारी कन्याओं, सुहागिन स्त्रियों तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराता तथा उनसे प्रार्थना करता है, उसकी कार्यसिद्धि अवश्य हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८॥

सभी त्रुटियोंकी शान्तिके निमित्त कथासमाप्तिके दिन गायत्रीसहस्रनाम अथवा विष्णुसहस्रनामका पाठ करना चाहिये॥ ५९॥

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति तस्माद्विष्णुञ्च कीर्तयेत्॥ ६०

देव्याः सप्तशतीमन्त्रैः समाप्तौ होममाचरेत्।
देवीमाहात्म्यमूलेन नवार्णमनुनाथवा॥ ६१

गायत्र्या त्वथवा होमः पायसेन ससर्पिषा।
यतो भागवतं त्वेतद् गायत्रीमयमीरितम्॥ ६२

वाचकं तोषयेत्सम्यग्वस्त्रभूषाधनादिभिः।
प्रसन्ने वाचके सर्वाः प्रसन्नास्तस्य देवताः॥ ६३

ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
पृथिव्यां देवरूपास्ते तुष्टेष्वेष्वीप्सितं फलम्॥ ६४

सुवासिनीः कुमारीश्च देवीभक्त्या च भोजयेत्।
ताभ्योऽपि दक्षिणां दत्त्वा प्रार्थयेत्सिद्धिमात्मनः॥ ६५

दद्याद्दानानि चान्यानि सुवर्णं गाः पयस्विनीः।
हयानिभान्मेदिनीञ्च तस्य स्यादक्षयं फलम्॥ ६६

देवीभागवतं चैतल्लिखितं शोभनाक्षरम्।
हेमसिंहासने स्थाप्य पट्टवस्त्रेण वेष्टितम्॥ ६७

अष्टम्यां वा नवम्याञ्च वाचकायार्चिताय च।
दद्यात्स भोगान्भुक्त्वेह दुर्लभं मोक्षमाप्नुयात्॥ ६८

दरिद्रो दुर्बलो बालस्तरुणो जरठोऽपि वा।
पुराणवेत्ता वन्द्यः स्यात्पूज्यो मान्यश्च सर्वदा॥ ६९

सन्ति लोकस्य बहवो गुरवो गुणजन्मतः।
सर्वेषामपि तेषाञ्च पुराणज्ञः परो गुरुः॥ ७०

पौराणिको ब्राह्मणस्तु व्यासासनसमाश्रितः।
आसमाप्ते प्रसङ्गे तु नमस्कुर्यान्न कस्यचित्॥ ७१

जिनके स्मरण तथा नामकीर्तनसे तप, यज्ञ, क्रिया आदिमें न्यूनता समाप्त हो जाती है, उन विष्णुभगवान्‌का नाम-कीर्तन करना चाहिये॥ ६० ॥

कथासमाप्तिके दिन दुर्गासप्तशतीके मन्त्रोंसे अथवा देवीमाहात्म्यके मूलपाठसे या नवार्ण* मन्त्रसे होम करना चाहिये अथवा घृतसहित पायसद्वारा गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके हवन करे; क्योंकि यह श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण गायत्रीमय कहा गया है॥ ६१-६२॥

कथावाचकको वस्त्र, भूषण, धन आदिके द्वारा सन्तुष्ट करे; क्योंकि कथावाचकके प्रसन्न होनेपर सभी देवता उसपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ ६३॥

श्रद्धापूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराये और नानाविध दक्षिणाओंसे उन्हें सन्तुष्ट करे; क्योंकि वे विप्र पृथ्वीपर देवताके स्वरूप हैं। उनके सन्तुष्ट होनेपर वांछित फल प्राप्त होता है॥ ६४॥

सुहागिन स्त्रियों तथा कुमारी कन्याओंको साक्षात् देवी समझकर उन्हें भोजन कराये और उन्हें दक्षिणा देकर अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करे॥ ६५ ॥

सुवर्ण, दूध देनेवाली गौ, हाथी, घोड़े और भूमिका दान करना चाहिये; क्योंकि उसका अक्षय फल होता है॥ ६६ ॥

सुन्दर अक्षरोंमें लिखी देवीभागवतकी पुस्तकको रेशमी-वस्त्रमें लपेटकर उसे सुवर्णनिर्मित सिंहासनपर रखकर अष्टमी या नवमी तिथिको विधिपूर्वक कथावाचकको दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह इस संसारमें सभी सुखोंको भोगकर अन्तमें दुर्लभ मोक्ष प्राप्त करता है॥ ६७-६८॥

पुराणको जाननेवाला वक्ता चाहे दरिद्र हो, दुर्बल हो, बालक हो, युवक हो अथवा वृद्ध हो, वह सर्वदा वन्दनीय पूज्य एवं मान्य होता है॥ ६९ ॥

यद्यपि संसारमें जन्म अथवा गुणके कारण अनेक गुरु हैं, परंतु पुराणका ज्ञाता उन सबमें श्रेष्ठ गुरु है॥ ७० ॥

व्यासके आसनपर बैठा हुआ पौराणिक ब्राह्मण जबतक कथा समाप्त न हो जाय, तबतक किसीको भी प्रणाम न करे॥ ७१ ॥

---

* ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे।

पौराणिकीं कथां दिव्यां येऽपि शृण्वन्त्यभक्तितः।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखदारिद्र्यभागिनाम्॥ ७२

असम्पूज्य पुराणं तु ताम्बूलकुसुमादिभिः।
ये शृण्वन्ति कथां देव्यास्ते दरिद्रा भवन्ति हि॥ ७३

कीर्त्यमानां कथां त्यक्त्वा ये व्रजन्त्यन्यतो नराः।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः॥ ७४

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
ते वायसा भवन्त्यत्र भुक्त्वा निरययातनाम्॥ ७५

ये चाढ्यासनसंस्थाश्च ये वीरासनसंस्थिताः।
शृण्वन्ति च कथां दिव्यां ते स्युरर्जुनशाखिनः॥ ७६

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्।
रासभास्ते भवन्तीह कृकलासास्ततः परम्॥ ७७

निन्दन्ति ये पुराणज्ञान् कथां वा पापहारिणीम्।
ते तु जन्मशतं दुष्टाः शुनकाः स्युर्न संशयः॥ ७८

ये शृण्वन्ति कथां वक्तुः समानासनसंस्थिताः।
गुरुतल्पसमं पापं लभन्ते नरकालयाः॥ ७९

ये चाप्रणम्य शृण्वन्ति ते भवन्ति विषद्रुमाः।
शयाना येऽपि शृण्वन्ति भवन्त्यजगराहयः॥ ८०

ये कदाचन पौराणीं न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते घोरं नरकं भुक्त्वा भवन्ति वनसूकराः॥ ८१

ये कथां नानुमोदन्ते विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दं निरयं भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥ ८२

आसनं भाजनं द्रव्यं फलं वस्त्राणि कम्बलम्।
पुराणज्ञाय यच्छन्ति ते व्रजन्ति हरेः पदम्॥ ८३

जो लोग इस दिव्य पौराणिक कथाको श्रद्धारहित होकर सुनते हैं, उन दुःख तथा दारिद्र्य-युक्त मनुष्योंको कथाश्रवणका पुण्य-फल प्राप्त नहीं होता॥ ७२॥

जो लोग ताम्बूल, पुष्प आदि उपचारोंसे पुराणका पूजन किये बिना ही देवीकी कथा सुनते हैं, वे दरिद्र होते हैं और जो लोग कथाके बीचमें ही उसे छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं, कुछ ही समय बाद उनकी सम्पदाएँ एवं स्त्री आदि नष्ट हो जाती हैं॥ ७३-७४॥

जो अभिमानवश व्याससे ऊँचे स्थानपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे नरक-यातना भोगकर इस लोकमें कौएकी योनि पाते हैं॥ ७५॥

जो बहुमूल्य आसनपर अथवा वीरासनसे बैठकर दिव्य कथाका श्रवण करते हैं, वे 'अर्जुन' वृक्ष होते हैं॥ ७६॥

कथा होते समय जो लोग व्यर्थ तर्क-वितर्क करते हैं, वे इस लोकमें पहले गर्दभयोनिमें तत्पश्चात् गिरगिटकी योनिमें जाते हैं॥ ७७॥

जो लोग पुराण जाननेवालोंकी अथवा पापनाशिनी कथाकी निन्दा करते हैं, वे सैकड़ों जन्मतक दुष्ट कुत्ते होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ७८॥

जो लोग कथावाचकके बराबर आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, उन्हें गुरुके आसनपर बैठनेका पाप लगता है और वे नरकमें वास करते हैं। जो लोग वक्ताको प्रणाम किये बिना ही कथा सुनने लगते हैं, वे जन्मान्तरमें विषैले वृक्ष होते हैं। इसी प्रकार जो लोग लेटे-लेटे कथा सुनते हैं; वे अजगर, साँपकी योनि पाते हैं॥ ७९-८०॥

जो मनुष्य कभी भी पुराणकी कथा नहीं सुनते, वे घोर नरक भोगकर बनैले सूअरकी योनिमें जाते हैं। जो शठ मनुष्य कथाका अनुमोदन नहीं करते अपितु उसमें विघ्न डाला करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरक-यातना भोगकर अन्तमें ग्रामसूकर होते हैं॥ ८१-८२॥

जो लोग पुराणवेत्ताको आसन, पात्र, द्रव्य, फल, वस्त्र तथा कम्बल प्रदान करते हैं, वे भगवान्के परम पदको प्राप्त करते हैं॥ ८३॥

पुराणपुस्तकस्यापि ये पट्टवसनं नवम्।
प्रयच्छन्ति शुभं सूत्रं ते नराः सुखभागिनः॥ ८४

पुराणानां तु सर्वेषां श्रवणाद्यत्फलं लभेत्।
तस्माच्छतगुणं पुण्यं देवीभागवताल्लभेत्॥ ८५

यथा सरित्सु प्रवरा गङ्गा देवेषु शङ्करः।
काव्ये रामायणं यद्वज्ज्योतिष्मत्सु यथा रविः॥ ८६

आह्लादकानां चन्द्रश्च धनानाञ्च यथा यशः।
क्षमावतां यथा भूमिर्गाम्भीर्ये सागरो यथा॥ ८७

मन्त्राणां चैव सावित्री पापनाशे हरिस्मृतिः।
अष्टादशपुराणानां देवीभागवतं तथा॥ ८८

येन केनाप्युपायेन नवकृत्वः शृणोति चेत्।
न शक्यं तत्फलं वक्तुं जीवन्मुक्तः स एव हि॥ ८९

राजशत्रुभये प्राप्ते महामारीभये तथा।
दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च तच्छान्त्यै शृणुयादिदम्॥ ९०

भूतप्रेतविनाशाय राज्यलाभाय शत्रुतः।
पुत्रलाभाय शृणुयाद्देवीभागवतं द्विजाः॥ ९१

श्रीमद्भागवतं यस्तु पठेद्वा शृणुयादपि।
श्लोकार्धं श्लोकपादं वा स याति परमां गतिम्॥ ९२

भगवत्या स्वयं देव्या श्लोकार्धेन प्रकाशितम्।
शिष्यप्रशिष्यद्वारेण तदेव विपुलीकृतम्॥ ९३

न गायत्र्याः परो धर्मो न गायत्र्याः परं तपः।
न गायत्र्याः समो देवो न गायत्र्याः परो मनुः॥ ९४

गातारं त्रायते यस्माद् गायत्री तेन सोच्यते।
सात्र भागवते देवी सरहस्या प्रतिष्ठिता॥ ९५

अतो भागवतस्यास्य देव्याः प्रीतिकरस्य च।
महान्त्यपि पुराणानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ९६

जो मनुष्य पुराणपुस्तकके लिये नवीन रेशमी वस्त्र तथा सुन्दर सूत्रका दान करते हैं, वे सुखी रहते हैं॥ ८४॥

सभी पुराणोंके सुननेसे जो फल प्राप्त होता है, उससे सौगुना पुण्य श्रीमद्देवीभागवतपुराणके श्रवणसे होता है॥ ८५॥

जिस प्रकार नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं; देवताओंमें शिव, काव्योंमें वाल्मीकीय रामायण तथा तेजस्वियोंमें भगवान् सूर्य श्रेष्ठ हैं; और जैसे आनन्द देनेवालोंमें चन्द्रमा, सब धनोंमें सुयश, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, गाम्भीरतामें समुद्र, मन्त्रोंमें गायत्री तथा पापनाशके उपायोंमें भगवत्स्मरण श्रेष्ठ है, उसी प्रकार अठारहों पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवतपुराण सर्वश्रेष्ठ है॥ ८६—८८॥

जिस किसी भी उपायसे यदि कोई मनुष्य इस महापुराणकी नौ आवृत्तियाँ सुन ले तो उसके फलका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह तो जीवन्मुक्त ही हो जाता है॥ ८९॥

किसी शत्रु राजासे भय होनेपर, महामारीके समय, अकाल पड़नेपर तथा राष्ट्र-भंगके अवसरपर उसकी शान्तिके लिये यह पुराण सुनना चाहिये॥ ९०॥

हे विप्रो! भूत-प्रेतादिके शमनके लिये, शत्रुसे राज्य प्राप्त करनेके लिये और पुत्र-प्राप्तिके लिये श्रीमद्देवीभागवतका श्रवण करना चाहिये॥ ९१॥

जो देवीभागवतके आधे श्लोक या चौथाई श्लोकको भी प्रतिदिन सुनता या पढ़ता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है॥ ९२॥

स्वयं भगवती जगदम्बाने इस पुराणको सर्वप्रथम केवल आधे श्लोकमें ही प्रकाशित किया, वही बादमें शिष्य-प्रशिष्योंके द्वारा देवीभागवतके रूपमें विस्तृत कर दिया गया॥ ९३॥

गायत्रीसे बढ़कर न कोई धर्म है, न तप है, न कोई देवता है और न कोई मन्त्र ही है॥ ९४॥

भगवती अपना गुणगान करनेवालेकी रक्षा करती हैं, इसी कारणसे उन्हें गायत्री कहा जाता है। वे भगवती गायत्री इस पुराणमें अपने रहस्योंसहित विराजती हैं। अतः भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस देवीभागवतकी सोलहवीं कलाके समान भी अन्य महापुराण नहीं हो सकते॥ ९५-९६॥

श्रीमद्भागवतं पुराणममलं यद् ब्राह्मणानां धनं
धर्मो धर्मसुतेन यत्र गदितो नारायणेनामलः।
गायत्र्याश्च रहस्यमत्र च मणिद्वीपश्च संवर्णितः
श्रीदेव्या हिमभूभृते भगवती गीता च गीता स्वयम्॥ ९७

तस्मान्नास्य पुराणस्य लोकेऽन्यत्सदृशं परम्।
अतः सदैव संसेव्यं देवीभागवतं द्विजाः॥ ९८

यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता
नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः।
अंशांशका अपि च ते किमुतान्यदेवा-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥ ९९

यत्पादपङ्कजरजः समवाप्य विश्वं
ब्रह्मा सृजत्यनुदिनञ्च बिभर्ति विष्णुः।
रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्था-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥ १००

सुधाकूपारान्तस्त्रिदशतरुवाटीविलसिते
मणिद्वीपे चिन्तामणिमयगृहे चित्ररुचिरे।
विराजन्तीमम्बां परशिवहृदि स्मेरवदनां
नरो ध्यात्वा भोगं भजति खलु मोक्षञ्च लभते॥ १०१

ब्रह्मेशाच्युतशक्राद्यैर्महर्षिभिरुपासिता ।
जगतां श्रेयसे सास्तु मणिद्वीपाधिदेवता॥ १०२

श्रीमद्देवीभागवतपुराण अत्यन्त निर्मल है। जो ब्राह्मणोंका अमूल्य धन है और जिसमें स्वयं धर्मपुत्र नारायणने पवित्र धर्मका वर्णन किया है। इसमें श्रीगायत्रीदेवीका रहस्य एवं मणिद्वीपका सम्यक् वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें हिमालयके प्रति स्वयं भगवतीद्वारा कही गयी देवीगीता विद्यमान है॥ ९७॥

इस कारण हे विप्रो! इस महापुराणके सदृश दूसरा कोई उत्तम पुराण लोकमें नहीं है, अतः आपलोग सदा इस श्रीमद्देवीभागवतका भलीभाँति सेवन करें॥ ९८॥

जिनके सम्पूर्ण प्रभावको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भगवान् शेष भी भलीभाँति नहीं जान सकते जबकि वे उन्हींके अंशज भी हैं, तब दूसरे देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे? उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है॥ ९९॥

जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पाकर ब्रह्मा समस्त संसारकी रचना करते हैं, भगवान् विष्णु निरन्तर पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; दूसरे किसी उपायसे वे अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकते—ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा सतत प्रणाम है॥ १००॥

अमृत-सागरके तटपर कल्पवृक्षकी वाटिकासे सुशोभित मणिद्वीपमें स्थित बहुवर्णचित्रित चिन्तामणिमय भवनमें तथा परम शिवके हृदयमें विराजमान रहनेवाली और मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली जगदम्बाका ध्यान करके मनुष्य सांसारिक सुखोंका उपभोग करता है और अन्तमें निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करता है॥ १०१॥

इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र—आदि देवताओं एवं समस्त महर्षियोंद्वारा पूजित मणिद्वीपनिवासिनी वे भगवती संसारका कल्याण करती रहें॥ १०२॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे मानसखण्डे श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्ये देवीभागवतश्रवणविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

॥ समाप्तमिदं श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्यम्॥

* * *

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[पूर्वार्ध]

प्रथमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

महर्षि शौनकका सूतजीसे श्रीमद्देवीभागवतपुराण सुनानेकी प्रार्थना करना

ॐ सर्वचैतन्यरूपां तामाद्यां विद्यां च धीमहि।
बुद्धिं या नः प्रचोदयात्॥ १

शौनक उवाच

सूत सूत महाभाग धन्योऽसि पुरुषर्षभ।
यदधीतास्त्वया सम्यक् पुराणसंहिताः शुभाः॥ २
अष्टादश पुराणानि कृष्णेन मुनिनानघ।
कथितानि सुदिव्यानि पठितानि त्वयानघ॥ ३
पञ्चलक्षणयुक्तानि सरहस्यानि मानद।
त्वया ज्ञातानि सर्वाणि व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ ४
अस्माकं पुण्ययोगेन प्राप्तस्त्वं क्षेत्रमुत्तमम्।
दिव्यं विश्वसनं पुण्यं कलिदोषविवर्जितम्॥ ५
समाजोऽयं मुनीनां हि श्रोतुकामोऽस्ति पुण्यदाम्।
पुराणसंहितां सूत ब्रूहि त्वं नः समाहितः॥ ६
दीर्घायुर्भव सर्वज्ञ तापत्रयविवर्जितः।
कथयाद्य महाभाग पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ ७
श्रोत्रेन्द्रिययुताः सूत नराः स्वादविचक्षणाः।
न शृण्वन्ति पुराणानि वञ्चिता विधिना हि ते॥ ८
यथा जिह्वेन्द्रियाह्लादः षड्रसैः प्रतिपद्यते।
तथा श्रोत्रेन्द्रियाह्लादो वचोभिः सुधियां स्मृतः॥ ९

जो सर्वचेतनास्वरूपा, आदिशक्ति तथा ब्रह्मविद्या-स्वरूपिणी भगवती जगदम्बा हैं, उनका हम ध्यान करते हैं। वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें॥ १॥

शौनक बोले—हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ तथा भाग्यवान् सूतजी! आप धन्य हैं; क्योंकि संसारमें अत्यन्त दुर्लभ पुराण-संहिताओं का आपने भलीभाँति अध्ययन किया है। हे पुण्यात्मन्! हे मानद! आपने कृष्णद्वैपायन व्यासरचित अठारह महापुराणोंका सम्यक् अध्ययन किया है, जो पंच लक्षणोंसे युक्त तथा गूढ रहस्योंसे समन्वित हैं और जिनका आपने सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे ज्ञान प्राप्त किया है॥ २—४॥

हमारे पुण्यसे ही आप इस उत्तम, मुनियोंके निवास-योग्य, दिव्य, पुण्यप्रद तथा कलिके दोषोंसे रहित क्षेत्रमें पधारे हुए हैं। हे सूतजी! मुनियोंका यह समुदाय परम पुण्यदायिनी पुराण-संहिताका श्रवण करना चाहता है। अतः आप समाहितचित्त होकर हमलोगोंसे उसका वर्णन कीजिये॥ ५-६॥

हे सर्वज्ञ! आप तीनों तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से रहित होकर दीर्घजीवी हों। हे महाभाग! ब्रह्मप्रतिपादक देवीभागवतमहापुराणका वर्णन करें॥ ७॥

हे सूतजी! जो मनुष्य श्रवणेन्द्रिययुक्त होते हुए भी केवल जिह्वाके स्वादमें ही लगे रहते हैं और पुराणोंकी कथाएँ नहीं सुनते, वे निश्चित ही अभागे हैं। जैसे षड्रसके स्वादसे जिह्वाको आह्लाद होता है, वैसे विद्वज्जनोंके वचनोंसे कर्णेन्द्रियको आनन्द प्राप्त होता है॥ ८-९॥

अश्रोत्राः फणिनः कामं मुह्यन्ति हि नभोगुणैः।
सकर्णा ये न शृण्वन्ति तेऽप्यकर्णाः कथं न च॥ १०

अतः सर्वे द्विजाः सौम्य श्रोतुकामाः समाहिताः।
वर्तन्ते नैमिषारण्ये क्षेत्रे कलिभयार्दिताः॥ ११

येन केनाप्युपायेन कालातिवाहनं स्मृतम्।
व्यसनैरिह मूर्खाणां बुधानां शास्त्रचिन्तनैः॥ १२

शास्त्राण्यपि विचित्राणि जल्पवादयुतानि च।
(त्रिविधानि पुराणानि शास्त्राणि विविधानि च।
वितण्डाच्छलयुक्तानि गर्वामर्षकराणि च॥)
नानार्थवादयुक्तानि हेतुमन्ति बृहन्ति च॥ १३

सात्त्विकं तत्र वेदान्तं मीमांसा राजसं मतम्।
तामसं न्यायशास्त्रं च हेतुवादाभियन्त्रितम्॥ १४

तथैव च पुराणानि त्रिगुणानि कथानकैः।
कथितानि त्वया सौम्य पञ्चलक्षणवन्ति च॥ १५

तत्र भागवतं पुण्यं पञ्चमं वेदसम्मितम्।
कथितं यत्त्वया पूर्वं सर्वलक्षणसंयुतम्॥ १६

उद्देशमात्रेण तदा कीर्तितं परमाद्भुतम्।
मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामदं धर्मदं तथा॥ १७

विस्तरेण तदाख्याहि पुराणोत्तममादरात्।
श्रोतुकामा द्विजाः सर्वे दिव्यं भागवतं शुभम्॥ १८

त्वं तु जानासि धर्मज्ञ पौराणीं संहितां किल।
कृष्णोक्तां गुरुभक्तत्वात् सम्यक् सत्त्वगुणाश्रयः॥ १९

श्रुतान्यन्यानि सर्वज्ञ त्वन्मुखान्निःसृतानि च।
नैव तृप्तिं व्रजामोऽद्य सुधापानेऽमरा यथा॥ २०

जब कर्णहीन सर्प भी मधुर ध्वनि सुनकर मोहित हो जाते हैं, तब भला कर्णयुक्त मानव यदि कथा नहीं सुनते तो उन्हें बधिर क्यों न कहा जाय?॥ १०॥

अतः हे सौम्य! समाहितचित्त होकर कथा सुननेकी इच्छासे सभी द्विजगण कलिकालके भयसे पीड़ित हो इस नैमिषारण्यमें उपस्थित हैं॥ ११॥

जिस किसी प्रकारसे समय तो बीतता ही रहता है, किंतु मूर्खोंका समय व्यर्थ दुर्व्यसनोंमें बीतता है और विद्वानोंका समय शास्त्र-चिन्तनमें जाता है॥ १२॥

शास्त्र भी विचित्र प्रकारके तर्क-वितर्कसे युक्त हैं। (पुराण तीन प्रकारके तथा शास्त्र विविध प्रकारके हैं, जो नानाविध वाद-विवाद तथा छल-प्रपंचसे युक्त हैं और अहंकार तथा अमर्ष उत्पन्न करनेवाले हैं) वे अनेक अर्थवाद तथा हेतुवादसे युक्त और बहुत विस्तारवाले हैं॥ १३॥

उन शास्त्रोंमें वेदान्तशास्त्र सात्त्विक, मीमांसा राजस तथा न्यायशास्त्र तामस कहा गया है; क्योंकि वह हेतुवादसे परिपूर्ण है॥ १४॥

इसी प्रकार हे सौम्य! आपके द्वारा कहे गये पुराण कथा-भेदसे तीन गुणोंवाले तथा पाँच लक्षणोंसे समन्वित हैं॥ १५॥

आपने यह भी बताया है कि उन पुराणोंमें यह श्रीमद्देवीभागवत पाँचवाँ पुराण है, पवित्र है, वेदके समान है और सभी लक्षणोंसे युक्त है॥ १६॥

उस समय आपने प्रसंगवश अत्यन्त अद्भुत, मुमुक्षुजनोंके लिये मुक्तिप्रद, मनोरथ पूर्ण करनेवाले, धर्ममें रुचि उत्पन्न करनेवाले जिस पुराणको संक्षेपमें कहा था, उस उत्तम पुराणको विस्तारपूर्वक कहिये। उस दिव्य तथा कल्याणमय श्रीमद्देवीभागवतपुराणको हम सभी द्विजगण आदरपूर्वक सुननेकी इच्छा रखते हैं॥ १७-१८॥

हे धर्मज्ञ! गुरुभक्त एवं सत्त्वगुणसे सम्पन्न होनेके कारण आप कृष्णद्वैपायनके द्वारा कही गयी इस प्राचीन संहिताका ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं॥ १९॥

जिस प्रकार देवतालोग अमृतपान करते हुए तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार हमलोगोंने भी यहाँ आपके मुखारविन्दसे निकली अन्यान्य कथाएँ सुनीं, किंतु अभी भी हम तृप्त नहीं हुए हैं॥ २०॥

धिक्सुधां पिबतां सूत मुक्तिर्नैव कदाचन।
पिबन्भागवतं सद्यो नरो मुच्येत सङ्कटात्॥ २१

सुधापाननिमित्तं यत् कृता यज्ञाः सहस्रशः।
न शान्तिमधिगच्छामः सूत सर्वात्मना वयम्॥ २२

मखानां हि फलं स्वर्गः स्वर्गात्प्रच्यवनं पुनः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमणं च निरन्तरम्॥ २३

विना ज्ञानेन सर्वज्ञ नैव मुक्तिः कदाचन।
भ्रमतां कालचक्रेऽत्र नराणां त्रिगुणात्मके॥ २४

अतः सर्वरसोपेतं पुण्यं भागवतं वद।
पावनं मुक्तिदं गुह्यं मुमुक्षूणां सदा प्रियम्॥ २५

हे सूतजी! उस अमृतको धिक्कार है, जिसके पीनेसे कभी मुक्ति नहीं होती, परंतु इस भागवतरूपी कथा-सुधाके पानसे तो मनुष्य शीघ्र ही भवसंकटसे मुक्त हो जाता है॥ २१॥

हे सूतजी! अमृतपानके लिये जो हजारों प्रकारके यज्ञ किये गये हैं, उनसे भी सर्वदाके लिये हमें शान्ति नहीं मिली। यज्ञोंका फल तो केवल स्वर्ग है, [पुण्य क्षीण होनेपर] पुनः स्वर्गसे मृत्युलोकमें लौटना ही पड़ता है। इस प्रकार निरन्तर आवागमनके चक्रमें आना-जाना लगा रहता है॥ २२-२३॥

हे सर्वज्ञ! त्रिगुणात्मक कालचक्रमें भ्रमण करते हुए मनुष्योंकी ज्ञानके बिना मुक्ति कदापि सम्भव नहीं है। इसलिये सब प्रकारके रसोंसे परिपूर्ण तथा पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवतपुराण कहिये; जो पवित्र, मुक्तिदायक, गोपनीय तथा मुमुक्षुजनोंको सर्वदा प्रिय है॥ २४-२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शौनकप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सूतजीद्वारा श्रीमद्देवीभागवतके स्कन्ध, अध्याय तथा श्लोकसंख्याका निरूपण और उसमें प्रतिपादित विषयोंका वर्णन

सूत उवाच

धन्योऽहमतिभाग्योऽहं पावितोऽहं महात्मभिः।
यत्पृष्टं सुमहत्पुण्यं पुराणं वेदविश्रुतम्॥ १

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वश्रुत्यर्थसम्मतम्।
रहस्यं सर्वशास्त्राणामागमानामनुत्तमम्॥ २

नत्वा तत्पदपङ्कजं सुललितं मुक्तिप्रदं योगिनां
ब्रह्माद्यैरपि सेवितं स्तुतिपरैर्ध्येयं मुनीन्द्रैः सदा।
वक्ष्याम्यद्य सविस्तरं बहुरसं श्रीमत्पुराणोत्तमं
भक्त्या सर्वरसालयं भगवतीनाम्ना प्रसिद्धं द्विजाः॥ ३

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] मैं धन्य और महान् भाग्यशाली हूँ, जो कि आप महात्माओंने वेदविश्रुत तथा अत्यन्त पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणके सम्बन्धमें प्रश्न करके मुझे पवित्र बना दिया॥ १॥

इसलिये मैं सभी वेदोंके तात्पर्यसे युक्त, सभी शास्त्रों और आगमोंके रहस्यरूप सर्वोत्तम श्रीमद्देवीभागवतपुराणको आपलोगोंसे कहता हूँ॥ २॥

हे द्विजगण! ब्रह्मा-विष्णु-महेशसे सेवित, स्तुतिपरायण मुनिजनोंके सतत ध्यान करनेयोग्य तथा योगियोंको मुक्ति देनेवाले भगवतीके सुन्दर एवं कोमल चरणकमलोंमें प्रणाम करके मैं अब उस उत्तम पुराणका भक्तिपूर्वक विस्तारसे वर्णन करूँगा; जो सभी रसोंसे युक्त, शोभासम्पन्न, सभी रसोंका निधान एवं श्रीमद्देवीभागवतके नामसे प्रसिद्ध है॥ ३॥

या विद्येत्यभिधीयते श्रुतिपथे शक्तिः सदाद्या परा
सर्वज्ञा भवबन्धछित्तिनिपुणा सर्वाशये संस्थिता।
दुर्ज्ञेया सुदुरात्मभिश्च मुनिभिर्ध्यानास्पदं प्रापिता
प्रत्यक्षा भवतीह सा भगवती सिद्धिप्रदा स्यात्सदा॥ ४

सृष्ट्वाखिलं जगदिदं सदसत्स्वरूपं
शक्त्या स्वया त्रिगुणया परिपाति विश्वम्।
संहृत्य कल्पसमये रमते तथैका
तां सर्वविश्वजननीं मनसा स्मरामि॥ ५

ब्रह्मा सृजत्यखिलमेतदिति प्रसिद्धं
पौराणिकैश्च कथितं खलु वेदविद्भिः।
विष्णोस्तु नाभिकमले किल तस्य जन्म
तैरुक्तमेव सृजते न हि स स्वतन्त्रः॥ ६

विष्णुस्तु शेषशयने स्वपितीति काले
तन्नाभिपद्ममुकुले खलु तस्य जन्म।
आधारतां किल गतोऽत्र सहस्रमौलिः
सम्बोध्यतां स भगवान् हि कथं मुरारिः॥ ७

एकार्णवस्य सलिलं रसरूपमेव
पात्रं विना न हि रसस्थितिरस्ति कच्चित्।
या सर्वभूतविषये किल शक्तिरूपा
तां सर्वभूतजननीं शरणं गतोऽस्मि॥ ८

योगनिद्रामीलिताक्षं विष्णुं दृष्ट्वाम्बुजे स्थितः।
अजस्तुष्टाव यां देवीं तामहं शरणं गतः॥ ९

तां ध्यात्वा सगुणां मायां मुक्तिदां निर्गुणां तथा।
वक्ष्ये पुराणमखिलं शृण्वन्तु मुनयस्त्विह॥ १०

वैदिक मार्गानुसार जिसे 'विद्या' कहते हैं, जो सर्वदा 'आदिशक्ति' कही जाती हैं, जिन्हें योगीलोग 'पराशक्ति' भी कहते हैं; जो सर्वज्ञ, भवबन्धन काटनेमें निपुण हैं तथा जो सबके हृदयदेशमें विराजती रहती हैं और दुरात्मा प्राणी जिन्हें नहीं जान सकते, मुनियोंके ध्यान करनेपर जो शीघ्र प्रत्यक्ष दर्शन देती हैं, वे भगवती सर्वदा सिद्धिदायिनी बनी रहें॥ ४॥

जो सत्-असत्‌रूप उस जगत्‌की सृष्टि करके अपनी त्रिगुणात्मिका (सत्त्व, रज, तम) शक्तिद्वारा उसका पालन करती तथा प्रलयान्तमें उसका संहार करके अकेली स्वयं लीलारमण करती हैं, उन समस्त विश्वकी जननी भगवतीका मैं मन-ही-मन स्मरण करता हूँ॥ ५॥

यह संसारमें प्रसिद्ध है कि ब्रह्मा ही इस सम्पूर्ण जगत्‌के स्रष्टा हैं, साथ ही सभी वेदज्ञ तथा पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। उनका यह भी कथन है कि भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ही उन ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई है, जो स्वतन्त्र नहीं हैं, अपितु विष्णुकी प्रेरणासे ही वे संसारकी सृष्टि करते हैं॥ ६॥

जब कल्पान्तमें सर्वत्र जलमय हो जाता है, तब केवल शेषशय्यापर भगवान् विष्णु शयन करते हैं और उन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्माका आविर्भाव होता है। इस प्रकार जब सहस्र फणवाले शेष ही विष्णुके आधार हैं, तो फिर उन मुरारिको भी सर्वाधार भगवान् कैसे कहा जाय?॥ ७॥

प्रलयकालीन समुद्रका जल भी तो रसरूप ही है और बिना पात्र रस कहीं ठहर नहीं सकता। अतएव जो सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजती रहती हैं, मैं उन सम्पूर्ण संसारकी जननी आदिशक्ति भगवतीकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ ८॥

योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णुको देखकर उनके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माने जिन देवीकी स्तुति की थी, मैं उन्हीं पराशक्ति भगवतीके शरणागत हूँ॥ ९॥

हे मुनिजनो! उन्हीं निर्गुण तथा सगुण रूपवाली तथा मुक्तिदायिनी योगमायाका ध्यान करके मैं यहाँ सम्पूर्ण देवीभागवतपुराण कह रहा हूँ; आपलोग सुनिये॥ १०॥

पुराणमुत्तमं पुण्यं श्रीमद्भागवताभिधम्।
अष्टादश सहस्राणि श्लोकास्तत्र तु संस्कृताः॥ ११
स्कन्धा द्वादश चैवात्र कृष्णेन विहिताः शुभाः।
त्रिशतं पूर्णमध्याया अष्टादशयुताः स्मृताः॥ १२
विंशतिः प्रथमे तत्र द्वितीये द्वादशैव तु।
त्रिंशच्चैव तृतीये तु चतुर्थे पञ्चविंशतिः॥ १३
पञ्चत्रिंशत्तथाध्यायाः पञ्चमे परिकीर्तिताः।
एकत्रिंशत्तथा षष्ठे चत्वारिंशच्च सप्तमे॥ १४
अष्टमे तत्त्वसङ्ख्याश्च पञ्चाशन्नवमे तथा।
त्रयोदश तु सम्प्रोक्ता दशमे मुनिना किल॥ १५
तथा चैकादशस्कन्धे चतुर्विंशतिरीरिताः।
चतुर्दशैव चाध्याया द्वादशे मुनिसत्तमाः॥ १६
एवं सङ्ख्या समाख्याता पुराणेऽस्मिन्महात्मना।
अष्टादशसहस्रीया सङ्ख्या च परिकीर्तिता॥ १७
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ १८
निर्गुणा या सदा नित्या व्यापिका विकृता शिवा।
योगगम्याखिलाधारा तुरीया या च संस्थिता॥ १९
तस्यास्तु सात्त्विकी शक्ती राजसी तामसी तथा।
महालक्ष्मीः सरस्वती महाकालीति ताः स्त्रियः॥ २०
तासां तिसृणां शक्तीनां देहाङ्गीकारलक्षणः।
सृष्ट्यर्थं च समाख्यातः सर्गः शास्त्रविशारदैः॥ २१
हरिद्रुहिणरुद्राणां समुत्पत्तिस्ततः स्मृता।
पालनोत्पत्तिनाशार्थं प्रतिसर्गः स्मृतो हि सः॥ २२
सोमसूर्योद्भवानां च राज्ञां वंशप्रकीर्तनम्।
हिरण्यकशिप्वादीनां वंशास्ते परिकीर्तिताः॥ २३
स्वायम्भुवमुखानां च मनूनां परिवर्णनम्।
कालसङ्ख्या तथा तेषां तत्तन्मन्वन्तराणि च॥ २४
तेषां वंशानुकथनं वंशानुचरितं स्मृतम्।
पञ्चलक्षणयुक्तानि भवन्ति मुनिसत्तमाः॥ २५

यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण अत्यन्त पवित्र एवं उत्तम है। इसमें अठारह हजार सुन्दर श्लोक हैं। कृष्णद्वैपायनद्वारा विरचित इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणमें कल्याणकारी बारह स्कन्ध तथा कुल तीन सौ अठारह अध्याय बताये गये हैं। उनमें प्रथम स्कन्धमें बीस अध्याय, द्वितीयमें बारह, तृतीयमें तीस और चतुर्थमें पच्चीस अध्याय हैं। पंचम स्कन्धमें पैंतीस अध्याय, षष्ठमें एकतीस, सप्तममें चालीस, अष्टममें तत्त्व-संख्या*के बराबर अर्थात् चौबीस, नवममें पचास और दशम स्कन्धमें तेरह अध्याय मुनि व्यासजीने कहे हैं। इसी प्रकार हे मुनिगण! एकादश स्कन्धमें चौबीस और द्वादश स्कन्धमें चौदह अध्याय बताये गये हैं॥ ११—१६॥

इस प्रकार महात्मा व्यासजीने इस महापुराणमें अध्यायोंकी संख्या बतायी है। इसमें श्लोकोंकी संख्या अठारह हजार कही गयी है॥ १७॥

सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश-वर्णन, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित—इस प्रकार पुराणोंके ये पाँच लक्षण हैं॥ १८॥

जो कल्याणमयी भगवती नित्या, निर्गुणा, व्यापकरूपसे सृष्टिमें स्थित रहनेवाली, विकाररहित, योगगम्या, सबकी आधाररूपा तथा तुरीयावस्थामें प्रतिष्ठित हैं; उन्हींकी सात्त्विकी, राजसी और तामसी शक्तियाँ महासरस्वती, महालक्ष्मी तथा महाकाली नामक देवियोंके रूपमें प्रकट होती हैं॥ १९-२०॥

उन्हीं तीनों शक्तियोंका सृष्टिके लिये शरीर धारण करना ही शास्त्रके विद्वानोंके द्वारा 'सर्ग' कहा गया है॥ २१॥

तदनन्तर जगत्के सृजन, पालन तथा संहारके लिये ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी उत्पत्ति कही गयी है; और उसे ही प्रतिसर्ग बताया गया है॥ २२॥

चन्द्रवंशी, सूर्यवंशी राजाओंके वंशवर्णन तथा हिरण्यकशिपु आदि दैत्योंके वंशकथनको 'वंश' कहा गया है; इसी प्रकार स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंका वर्णन एवं उनके समय-विभाग मन्वन्तर कहलाते हैं। उन मनुओंके वंशका क्रमशः वर्णन करना ही 'वंशानुचरित' कहा गया है। हे मुनिवरो! इस प्रकार सभी पुराण उपर्युक्त पाँचों लक्षणोंसे युक्त होते हैं॥ २३—२५॥

---

* सांख्यशास्त्रमें प्रकृति, महत्, अहंकार आदि चौबीस तत्त्व माने जाते हैं।

सपादलक्षं च तथा भारतं मुनिना कृतम्।
इतिहास इति प्रोक्तं पञ्चमं वेदसम्मतम्॥ २६

शौनक उवाच

कानि तानि पुराणानि ब्रूहि सूत सविस्तरम्।
कतिसङ्ख्यानि सर्वज्ञ श्रोतुकामा वयं त्विह॥ २७

कलिकालविभीताः स्मो नैमिषारण्यवासिनः।
ब्रह्मणात्र समादिष्टाश्चक्रं दत्त्वा मनोमयम्॥ २८

कथितं तेन नः सर्वानाच्छन्त्वेतस्य पृष्ठतः।
नेमिः संशीर्यते यत्र स देशः पावनः स्मृतः॥ २९

कलेस्तत्र प्रवेशो न कदाचित् सम्भविष्यति।
तावत्तिष्ठन्तु तत्रैव यावत्सत्ययुगं पुनः॥ ३०

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गृहीत्वा तत्कथानकम्।
चालयन्निर्गतस्तूर्णं सर्वदेशदिदृक्षया॥ ३१

प्रेत्यात्र चालयंश्चक्रं नेमिः शीर्णोऽत्र पश्यतः।
तेनेदं नैमिषं प्रोक्तं क्षेत्रं परमपावनम्॥ ३२

कलिप्रवेशो नैवात्र तस्मात्स्थानं कृतं मया।
मुनिभिः सिद्धसङ्घैश्च कलिभीतैर्महात्मभिः॥ ३३

पशुहीनाः कृता यज्ञाः पुरोडाशादिभिः किल।
कालातिवाहनं कार्यं यावत्सत्ययुगागमः॥ ३४

भाग्ययोगेन सम्प्राप्तः सूत त्वं चात्र सर्वथा।
कथयाद्य पुराणं हि पावनं ब्रह्मसम्मतम्॥ ३५

सूत शुश्रूषवः सर्वे वक्ता त्वं मतिमानथ।
निर्व्यापारा वयं नूनमेकचित्तास्तथैव च॥ ३६

सवा लाख श्लोकोंका महाभारत नामक ग्रन्थ भी व्यासजीने ही रचा है; यह 'इतिहास' कहलाता है—जो वेदसम्मत होनेके कारण पाँचवाँ वेद कहा गया है॥ २६॥

शौनकजी बोले—हे सूतजी! वे पुराण कौन-कौनसे हैं और कितने हैं? हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप सर्वज्ञ हैं, अतः विस्तारसे बताइये॥ २७॥

कलिकालसे भयभीत हम ब्राह्मण नैमिषारण्यमें ही रहते हैं। ब्रह्माजीने मनोमय चक्र हमें देकर यह आदेश दिया था कि इसी चक्रके पीछे-पीछे आपलोग जायँ। जहाँ इस चक्रकी नेमि शीर्ण हो जाय, वह देश परम पवित्र कहा गया है। वहाँ कभी कलियुगका प्रवेश नहीं होगा। आपलोग वहाँ तबतक रहें, जबतक पुनः 'सत्ययुग' न आ जाय॥ २८—३०॥

उनका वह वचन सुनकर तथा उनकी बातोंको हृदयमें रखकर हमलोग सब देशोंके दर्शनार्थ उस मनोमय चक्रके पीछे-पीछे तत्काल चल दिये॥ ३१॥

चलते-चलते इसी स्थानपर पहुँचकर उस चक्रकी नेमि हमलोगोंके देखते-देखते शीर्ण हो गयी। तभीसे यह स्थान परम पवित्र 'नैमिषक्षेत्र' के नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ३२॥

यहाँ कभी कलिका प्रवेश नहीं होता। इसीलिये मैंने अनेक ऋषि-मुनियों, सिद्धगणों एवं कलिसे भयभीत महात्माओंके साथ यहाँ अपना निवास बना लिया है॥ ३३॥

हमलोगोंने यहाँपर चरु-पुरोडाश आदिद्वारा अनेक पशुवध-विहीन यज्ञ किये हैं। जबतक सत्ययुग न आ जाय तबतक हमलोगोंका यहीं रहनेका दृढ़ निश्चय है॥ ३४॥

हे सूतजी! आप निश्चितरूपसे हमलोगोंके सौभाग्यसे ही यहाँ आ पहुँचे हैं। इसलिये आप इस ब्रह्मसम्मित पावन पुराणकी कथा कहिये॥ ३५॥

हे सूतजी! हमलोगोंको सुननेकी उत्कट इच्छा है और आप-जैसे बुद्धिमान् वक्ता भी प्राप्त हैं। हमलोग भी अपना सभी कार्य त्यागकर चित्त एकाग्र करके यहाँ स्थित हैं॥ ३६॥

त्वं सूत भव दीर्घायुस्तापत्रयविवर्जितः।
कथयाद्य पुराणं हि पुण्यं भागवतं शिवम्॥ ३७

यत्र धर्मार्थकामानां वर्णनं विधिपूर्वकम्।
विद्यां प्राप्य तया मोक्षः कथितो मुनिना किल॥ ३८

अतः हे सूतजी! आप चिरंजीवी हों तथा तीनों प्रकारके तापों (दैहिक, दैविक, भौतिक)-से मुक्त रहकर अब हमलोगोंको परम पवित्र तथा कल्याणकारी श्रीमद्देवी-भागवतपुराण सुनाइये; जिसमें धर्म, अर्थ और कामका विधिवत् वर्णन किया गया है। महर्षि व्यासने भी बताया है कि इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करके पुनः उससे मुक्ति मिलती है॥ ३७-३८॥

द्वैपायनेन मुनिना कथितं यच्च पावनम्।
न तृप्यामो वयं सूत कथां श्रुत्वा मनोरमाम्॥ ३९

हे सूतजी! महर्षि वेदव्यासने जिस पवित्र पुराणको कहा है, उसके मनोहर कथा-चरित्रोंको सुननेसे हमारी कभी तृप्ति नहीं होती है॥ ३९॥

सकलगुणगणानामेकपात्रं पवित्र-
मखिलभुवनमातुर्नाट्यवद्यद्विचित्रम् ।
निखिलमलगणानां नाशकृत्कामकन्दं
प्रकटय भगवत्या नामयुक्तं पुराणम्॥ ४०

सभी गुणोंका एकमात्र स्थान, परम पवित्र, समस्त संसारकी जननी भगवतीके लीलानाट्यके समान विचित्र, सभी पापसमूहोंका नाश करनेवाले तथा सब प्रकारकी अभिलाषाओंको पूर्ण करनेवाले तथा भगवतीके नामसे समन्वित श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणको प्रकट कीजिये॥ ४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
ग्रन्थसंख्याविषयवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

~~○~~

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूतजीद्वारा पुराणोंके नाम तथा उनकी श्लोकसंख्याका कथन, उपपुराणों तथा प्रत्येक द्वापरयुगके व्यासोंका नाम

सूत उवाच

शृण्वन्तु सम्प्रवक्ष्यामि पुराणानि मुनीश्वराः।
यथाश्रुतानि तत्त्वेन व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ १

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरवृन्द! सत्यवती-सुत वेद-व्यासजीसे मैंने जिस प्रकार तत्त्वपूर्वक पुराणोंको सुना है, उसे मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये॥ १॥

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापलिंगकूस्कानि पुराणानि पृथक्पृथक्॥ २

उनमें दो 'म' वाले (मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण), दो 'भ' वाले (भविष्यपुराण तथा भागवत), तीन 'ब्र' वाले (ब्रह्म, ब्रह्माण्ड और ब्रह्मवैवर्तपुराण), चार 'व' वाले (वामन, विष्णु, वायु और वाराहपुराण), 'अ' वाला (अग्निपुराण), 'ना' वाला (नारदपुराण), 'प' वाला (पद्मपुराण), 'लिं' वाला (लिंगपुराण), 'ग' वाला (गरुडपुराण), 'कू' वाला (कूर्मपुराण), 'स्क' वाला (स्कन्दपुराण)—ये पृथक्-पृथक् (अठारह) पुराण हैं॥ २॥

चतुर्दशसहस्रं च मत्स्यमाद्यं प्रकीर्तितम्।
तथा ग्रहसहस्रं तु मार्कण्डेयं महाद्भुतम्॥ ३
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
भविष्यं परिसंख्यातं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४
अष्टादशसहस्रं वै पुण्यं भागवतं किल।
तथा चायुतसंख्याकं पुराणं ब्रह्मसंज्ञकम्॥ ५
द्वादशैव सहस्राणि ब्रह्माण्डं च शताधिकम्।
तथाष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमेव च॥ ६
अयुतं वामनाख्यं च वायव्यं षट्शतानि च।
चतुर्विंशतिसंख्यातः सहस्राणि तु शौनक॥ ७
त्रयोविंशतिसाहस्रं वैष्णवं परमाद्भुतम्।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं परमाद्भुतम्॥ ८
षोडशैव सहस्राणि पुराणं चाग्निसंज्ञितम्।
पञ्चविंशतिसाहस्रं नारदं परमं मतम्॥ ९
पञ्चपञ्चाशत्साहस्रं पद्माख्यं विपुलं मतम्।
एकादशसहस्राणि लिङ्गाख्यं चातिविस्तृतम्॥ १०
एकोनविंशत्साहस्रं गारुडं हरिभाषितम्।
सप्तदशसहस्रं च पुराणं कूर्मभाषितम्॥ ११
एकाशीतिसहस्राणि स्कन्दाख्यं परमाद्भुतम्।
पुराणाख्या च संख्या च विस्तरेण मयानघाः॥ १२
तथैवोपपुराणानि शृण्वन्तु ऋषिसत्तमाः।
सनत्कुमारं प्रथमं नारसिंहं ततः परम्॥ १३
नारदीयं शिवं चैव दौर्वाससमनुत्तमम्।
कापिलं मानवं चैव तथा चौशनसं स्मृतम्॥ १४
वारुणं कालिकाख्यं च साम्बं नन्दिकृतं शुभम्।
सौरं पाराशरप्रोक्तमादित्यं चातिविस्तरम्॥ १५
माहेश्वरं भागवतं वासिष्ठं च सविस्तरम्।
एतान्युपपुराणानि कथितानि महात्मभिः॥ १६
अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमतुलं चक्रे तदुपबृंहितम्॥ १७
मन्वन्तरेषु सर्वेषु द्वापरे द्वापरे युगे।
प्रादुःकरोति धर्मार्थी पुराणानि यथाविधि॥ १८
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपेण सर्वदा।
वेदमेकं स बहुधा कुरुते हितकाम्यया॥ १९

उनमें आदिके मत्स्यपुराणमें चौदह हजार, अत्यन्त अद्भुत मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार तथा भविष्यपुराणमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक-संख्या तत्त्वदर्शी मुनियोंने बतायी है॥ ३-४॥

पवित्र भागवतपुराणमें अठारह हजार और ब्रह्मपुराणमें दस हजार श्लोक हैं। ब्रह्माण्डपुराणमें बारह हजार एक सौ तथा ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं॥ ५-६॥

हे शौनक! वामनपुराणमें दस हजार तथा वायुपुराणमें चौबीस हजार छः सौ श्लोक हैं। उस परम विचित्र विष्णुपुराणमें तेईस हजार, वाराहपुराणमें चौबीस हजार, अग्निपुराणमें सोलह हजार तथा नारदपुराणमें पचीस हजार श्लोक कहे गये हैं॥ ७—९॥

विशाल पद्मपुराणमें पचपन हजार और लिंगपुराणमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। इसी प्रकार साक्षात् भगवान्‌के द्वारा कहे हुए गरुडपुराणमें उन्नीस हजार तथा कूर्मपुराणमें सत्रह हजार श्लोक हैं॥ १०-११॥

परम विचित्र स्कन्दपुराणमें इक्यासी हजार श्लोक कहे गये हैं। हे पापरहित मुनियो! इस प्रकार मैंने पुराणों तथा उनके श्लोकोंकी संख्या विस्तारपूर्वक बता दी॥ १२॥

हे मुनिवरो! अब उपपुराणोंकी भी संख्या सुनिये। उनमें सर्वप्रथम उपपुराण सनत्कुमार है, तत्पश्चात् नरसिंह, नारदीय, शिव, दुर्वासा, कपिल, मनु, उशना, वरुण, कालिका, साम्ब, नन्दी, सौर, पराशर, आदित्य, माहेश्वर, भागवत तथा अठारहवाँ वासिष्ठ—ये सब उपपुराण महात्माओंद्वारा बताये गये हैं॥ १३—१६॥

सत्यवतीतनय वेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना करनेके बाद उन्हीं विषयोंसे विस्तारपूर्वक उस अतुलनीय 'महाभारत' का प्रणयन किया॥ १७॥

प्रत्येक द्वापरयुगमें भगवान् वेदव्यासजी ही धर्मरक्षार्थ पुराणोंकी यथाविधि रचना करते रहते हैं। जब-जब द्वापरयुग आता है, तब-तब साक्षात् भगवान् विष्णु ही व्यासजीके रूपमें अवतीर्ण होकर सर्वलोकहितार्थ वेदके अनेक भेदोपभेद करते हैं॥ १८-१९॥

अल्पायुषोऽल्पबुद्धींश्च विप्रान् ज्ञात्वा कलावथ।
पुराणसंहितां पुण्यां कुरुतेऽसौ युगे युगे॥ २०

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां न वेदश्रवणं मतम्।
तेषामेव हितार्थाय पुराणानि कृतानि च॥ २१

मन्वन्तरे सप्तमेऽत्र शुभे वैवस्वताभिधे।
अष्टाविंशतिमे प्राप्ते द्वापरे मुनिसत्तमाः॥ २२

व्यासः सत्यवतीसूनुर्गुरुर्मे धर्मवित्तमः।
एकोनत्रिंशत्संप्राप्ते द्रौणिर्व्यासो भविष्यति॥ २३

अतीतास्तु तथा व्यासाः सप्तविंशतिरेव च।
पुराणसंहितास्तैस्तु कथितास्तु युगे युगे॥ २४

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि सूत महाभाग व्यासाः पूर्वयुगोद्भवाः।
वक्तारस्तु पुराणानां द्वापरे द्वापरे युगे॥ २५

सूत उवाच

द्वापरे प्रथमे व्यस्ताः स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा।
प्रजापतिर्द्वितीये तु द्वापरे व्यासकार्यकृत्॥ २६

तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे तु बृहस्पतिः।
पञ्चमे सविता व्यासः षष्ठे मृत्युस्तथापरे॥ २७

मघवा सप्तमे प्राप्ते वसिष्ठस्त्वष्टमे स्मृतः।
सारस्वतस्तु नवमे त्रिधामा दशमे तथा॥ २८

एकादशेऽथ त्रिवृषो भरद्वाजस्ततः परम्।
त्रयोदशे चान्तरिक्षो धर्मश्चापि चतुर्दशे॥ २९

त्रय्यारुणिः पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जयः।
मेधातिथिः सप्तदशे व्रती ह्यष्टादशे तथा॥ ३०

अत्रिरेकोनविंशेऽथ गौतमस्तु ततः परम्।
उत्तमश्चैकविंशेऽथ हर्यात्मा परिकीर्तितः॥ ३१

वेनो वाजश्रवाश्चैव सोमोऽमुष्यायणस्तथा।
तृणबिन्दुस्तथा व्यासो भार्गवस्तु ततः परम्॥ ३२

विशेषकर कलियुगमें ब्राह्मणोंको अल्पायु एवं अल्पबुद्धि जानकर वे युग-युगमें पवित्र पुराण-संहिताओंका निर्माण करते हैं॥ २०॥

स्त्रियों, शूद्रों तथा भ्रष्ट द्विजातियोंको वेद-श्रवणका अधिकार नहीं है, इसलिये उनके कल्याणके लिये व्यासजीने पुराणोंकी रचना की है॥ २१॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! इस वैवस्वत नामक शुभ सातवें मन्वन्तरके अट्ठाइसवें द्वापरयुगमें परम धर्मनिष्ठ सत्यवतीपुत्र मेरे गुरु श्रीव्यासजी हुए और उनतीसवें द्वापरमें द्रौणि नामके व्यास होंगे। इनके पूर्व भी सत्ताईस व्यास हो चुके हैं, जिन्होंने प्रत्येक युगमें अनेक पुराण-संहिताएँ रची हैं॥ २२—२४॥

ऋषियोंने कहा—हे महाभाग सूतजी! अब आप पूर्वकालमें प्रत्येक द्वापरयुगमें अवतीर्ण हुए पुराणवक्ता व्यासोंकी कथा कहिये॥ २५॥

सूतजी बोले—सृष्टिके बाद सर्वप्रथम द्वापरयुगमें स्वयं ब्रह्माजीने ही 'व्यास' के रूपमें प्रकट होकर वेदोंका विभाजन किया। दूसरे द्वापरमें 'प्रजापति' व्यास बने, तीसरे द्वापरमें 'शुक्राचार्य', चौथे द्वापरमें 'बृहस्पति', पाँचवेंमें 'सूर्य' तथा छठेमें 'यमराज' ही साक्षात् व्यास बने थे॥ २६—२७॥

सातवें द्वापरमें 'इन्द्र', आठवेंमें 'वसिष्ठमुनि', नवेंमें 'सारस्वत' और दसवें द्वापरमें 'त्रिधामाजी' व्यास हुए॥ २८॥

ग्यारहवेंमें 'त्रिवृष', बारहवेंमें 'भरद्वाजमुनि', तेरहवेंमें 'अन्तरिक्ष' और चौदहवें द्वापरमें 'धर्मराज' स्वयं व्यास बने॥ २९॥

पन्द्रहवें द्वापरमें 'त्रय्यारुणि', सोलहवेंमें 'धनंजय', सत्रहवेंमें 'मेधातिथि' तथा अठारहवें द्वापरमें 'व्रतीमुनि' व्यास हुए॥ ३०॥

उन्नीसवेंमें 'अत्रि', बीसवेंमें 'गौतम' और इक्कीसवें द्वापरमें हर्यात्मा 'उत्तम' नामक व्यास कहे गये हैं॥ ३१॥

बाईसवेंमें 'वाजश्रवा वेन', तेईसवेंमें 'आमुष्यायण सोम', चौबीसवेंमें 'तृणविन्दु' तथा पचीसवें द्वापरमें 'भार्गव' व्यास हुए॥ ३२॥

ततः शक्तिर्जातुकर्ण्यः कृष्णद्वैपायनस्ततः।
अष्टाविंशतिसंख्येयं कथिता या मया श्रुता॥ ३३

कृष्णद्वैपायनात्प्रोक्तं पुराणं च मया श्रुतम्।
श्रीमद्भागवतं पुण्यं सर्वदुःखौघनाशनम्॥ ३४

कामदं मोक्षदं चैव वेदार्थपरिबृंहितम्।
सर्वागमरसारामं मुमुक्षूणां सदा प्रियम्॥ ३५

व्यासेन कृत्वातिशुभं पुराणं
शुकाय पुत्राय महात्मने यत्।
वैराग्ययुक्ताय च पाठितं वै
विज्ञाय चैवारणिसम्भवाय॥ ३६

श्रुतं मया तत्र तथा गृहीतं
यथार्थवद्व्यासमुखान्मुनीन्द्राः।
पुराणगुह्यं सकलं समेतं
गुरोः प्रसादात्करुणानिधेश्च॥ ३७

सूतेन पृष्टः सकलं जगाद
द्वैपायनस्तत्र पुराणगुह्यम्।
अयोनिजेनाद्भुतबुद्धिना वै
श्रुतं मया तत्र महाप्रभावम्॥ ३८

श्रीमद्भागवतामरांघ्रिपफलास्वादादरः सत्तमाः
संसारार्णवदुर्विगाह्यसलिलं सन्तर्तुकामः शुकः।
नानाख्यानरसालयं श्रुतिपुटैः प्रेम्णाशृणोदद्भुतं
तच्छ्रुत्वा न विमुच्यते कलिभयादेवंविधः कः क्षितौ॥ ३९

पापीयानपि वेदधर्मरहितः स्वाचारहीनाशयो
व्याजेनापि शृणोति यः परमिदं श्रीमत्पुराणोत्तमम्।
भुक्त्वा भोगकलापमत्र विपुलं देहावसानेऽचलं
योगिप्राप्यमवाप्नुयाद्भगवतीनामाङ्कितं सुन्दरम्॥ ४०

छब्बीसवेंमें 'शक्ति', सत्ताईसवेंमें 'जातुकर्ण्य' और अट्ठाईसवें द्वापरमें 'कृष्णद्वैपायनजी' व्यास हुए। इस प्रकार अट्ठाईस व्यासोंके नाम जैसा मैंने सुना था, वैसा बता दिया॥ ३३॥

इन्हीं कृष्णद्वैपायन व्यासजीके द्वारा कहे गये श्रीमद्देवीभागवतपुराणको मैंने सुना था; जो पुण्यप्रद, सब प्रकारके दुःखोंका नाश करनेवाला, सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मोक्षदाता, वैदिक भावोंसे ओत-प्रोत तथा सभी आगमोंके रसोंसे परिपूर्ण, अत्यन्त मनोहर एवं मुमुक्षुजनोंको सदा प्रिय लगनेवाला है॥ ३४-३५॥

जिस अत्यन्त पवित्र पुराणको रचकर व्यासजीने अरणीके गर्भसे उत्पन्न, विद्वान्, महात्मा एवं विरक्त अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था; हे मुनिवृन्द! उसी रहस्यमय महापुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-को मैंने भी करुणासागर अपने गुरु व्यासजीके मुखसे सम्पूर्णरूपसे यथार्थतः सुना तथा उनकी कृपासे उसे हृदयंगम कर लिया है॥ ३६-३७॥

जिस समय अयोनिज एवं अपूर्व बुद्धिमान् अपने पुत्र शुकदेवजीके प्रश्न करनेपर व्यासजीने रहस्ययुक्त इस पुराणको सुनाया, उस समय मैंने भी एक साधारण श्रोताके रूपमें इस महान् प्रभाववाले श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणको सुन लिया॥ ३८॥

हे सर्वश्रेष्ठ मुनिजन! श्रीमद्भागवतरूपी इस कल्पवृक्षके फलके स्वादके प्रति आदरबुद्धि रखनेवाले तथा अपार संसार-सागरसे पार पानेके लिये श्रीशुकदेवजीने अनेक प्रकारकी सुन्दर एवं रसमयी कथाओंसे युक्त जिस अद्भुत महापुराणको विधिवत् अपने कर्णपुटसे प्रेमपूर्वक सुना है, उसे श्रवण करके भी जो कलिकालके भयसे मुक्त न हुआ, भला ऐसा प्राणी इस भूतलपर कौन होगा?॥ ३९॥

वैदिक धर्मसे रहित तथा निकृष्ट विचार रखनेवाला बड़े-से-बड़ा पापी मनुष्य भी यदि किसी बहाने इस उत्तम श्रीमद्देवीभागवतपुराणका श्रवण कर लेता है तो वह भी निश्चय ही समस्त सांसारिक सुखोंको भोगकर अन्तमें योगिजनोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य, भगवतीके नामसे चिह्नित, मनोरम तथा अचल पदको प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

या निर्गुणा हरिहरादिभिरप्यलभ्या
विद्या सतां प्रियतमाथ समाधिगम्या।
सा तस्य चित्तकुहरे प्रकरोति भावं
यः संशृणोति सततं तु सतीपुराणम्॥ ४१

सम्प्राप्य मानुषभवं सकलाङ्गयुक्तं
पोतं भवार्णवजलोत्तरणाय कामम्।
सम्प्राप्य वाचकमहो न शृणोति मूढः
स वञ्चितोऽत्र विधिना सुखदं पुराणम्॥ ४२

यः प्राप्य कर्णयुगलं पटुमानुषत्वे
रागी शृणोति सततं च परापवादान्।
सर्वार्थदं रसनिधिं विमलं पुराणं
नष्टः कुतो न शृणुते भुवि मन्दबुद्धिः॥ ४३

जो प्राणी इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणको प्रतिदिन प्रेमसे सुनता है, उसके हृदयरूपी गुहामें विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ, सर्वश्रेष्ठ विद्यारूपिणी, सज्जनोंकी एकमात्र प्रिया, गुणातीता एवं समाधिद्वारा जाननेयोग्य वे भगवती निवास करने लगती हैं॥ ४१॥

अतः सर्वांगसुन्दर इस मानव-तनको पाकर संसार-सागरके अगाध सलिलसे पार होनेके लिये जलयानके समान परम सुखदायी श्रीमद्देवीभागवतपुराण एवं उसके वक्ताको प्राप्त करके भी जो मूर्ख इसका श्रवण नहीं करता, वह विधाताके द्वारा वंचित ही कहा जायगा॥ ४२॥

इस दुर्लभ मनुष्य देहमें दोनों कानोंको प्राप्त करके भी जो सांसारिक मनुष्य केवल दूसरोंके दुर्गुणोंको ही सुना करता है, वह अधम मन्दबुद्धि चारों उत्तम पदार्थोंको देनेवाले तथा सब रसोंसे परिपूर्ण इस निर्मल पुराणको भूतलपर क्यों नहीं सुनता?॥ ४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पुराणवर्णनपूर्वकतत्तद्युगीयव्यासवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

नारदजीद्वारा व्यासजीको देवीकी महिमा बताना

ऋषय ऊचुः

सौम्य व्यासस्य भार्यायां कस्यां जातः सुतः शुकः।
कथं वा कीदृशो येन पठितेयं सुसंहिता॥ १

अयोनिजस्त्वया प्रोक्तस्तथा चारणिजः शुकः।
सन्देहोऽस्ति महांस्तत्र कथयाद्य महामते॥ २

गर्भयोगी श्रुतः पूर्वं शुको नाम महातपाः।
कथं च पठितं तेन पुराणं बहुविस्तरम्॥ ३

सूत उवाच

पुरा सरस्वतीतीरे व्यासः सत्यवतीसुतः।
आश्रमे कलविंकौ तु दृष्ट्वा विस्मयमागतः॥ ४

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! महर्षि व्यासकी किस पत्नीसे शुकदेवजी उत्पन्न हुए? उनका जन्म किस प्रकार हुआ और किस प्रकारसे उन्होंने इस संहिताका सम्यक् अध्ययन कर लिया?॥ १॥

आपके द्वारा ही वे अयोनिज कहे गये हैं तो फिर अरणीसे उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? हे महामते! इसमें हमें महान् संशय हो रहा है, आप उसका समाधान करें॥ २॥

हमलोगोंने पहले ही सुना है कि महातपस्वी शुकदेवजी गर्भयोगी थे। ऐसी स्थितिमें उन्होंने इतने विस्तृत पुराण (श्रीमद्देवीभागवत)-का अध्ययन कैसे कर लिया?॥ ३॥

सूतजी बोले—प्राचीन कालमें एक समय सत्यवतीके पुत्र व्यासजी सरस्वतीनदीके किनारे अपने आश्रममें गौरैया पक्षीका जोड़ा देखकर आश्चर्यचकित हो गये॥ ४॥

जातमात्रं शिशुं नीडे मुक्तमण्डान्मनोहरम्।
ताम्रास्यं शुभसर्वाङ्गं पिच्छांकुरविवर्जितम्॥ ५

तौ तु भक्ष्यार्थमत्यन्तं रतौ श्रमपरायणौ।
शिशोश्चंचुपुटे भक्ष्यं क्षिपन्तौ च पुनः पुनः॥ ६

अङ्गेनाङ्गानि बालस्य घर्षयन्तौ मुदान्वितौ।
चुम्बन्तौ च मुखं प्रेम्णा कलविंकौ शिशोः शुभम्॥ ७

वीक्ष्य प्रेमाद्भुतं तत्र बाले चटकयोस्तदा।
व्यासश्चिन्तातुरः कामं मनसा समचिन्तयत्॥ ८

तिरश्चामपि यत्प्रेम पुत्रे समभिलक्ष्यते।
किं चित्रं यन्मनुष्याणां सेवाफलमभीप्सताम्॥ ९

किमेतौ चटकौ चास्य विवाहं सुखसाधनम्।
विरच्य सुखिनौ स्यातां दृष्ट्वा वध्वा मुखं शुभम्॥ १०

अथवा वार्धके प्राप्ते परिचर्यां करिष्यति।
पुत्रः परमधर्मिष्ठः पुण्यार्थं कलविंकयोः॥ ११

अर्जयित्वाथवा द्रव्यं पितरौ तर्पयिष्यति।
अथवा प्रेतकार्याणि करिष्यति यथाविधि॥ १२

अथवा किं गयाश्राद्धं गत्वा संवितरिष्यति।
नीलोत्सर्गं च विधिवत्प्रकरिष्यति बालकः॥ १३

संसारेऽत्र समाख्यातं सुखानामुत्तमं सुखम्।
पुत्रगात्रपरिष्वंगो लालनञ्च विशेषतः॥ १४

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
पुत्रादन्यतरन्नास्ति परलोकस्य साधनम्॥ १५

मन्वादिभिश्च मुनिभिर्धर्मशास्त्रेषु भाषितम्।
पुत्रवान्स्वर्गमाप्नोति नापुत्रस्तु कथञ्चन॥ १६

दृश्यतेऽत्र समक्षं तन्नानुमानेन साध्यते।
पुत्रवान्मुच्यते पापादाप्तवाक्यं च शाश्वतम्॥ १७

अण्डेसे तत्काल पैदा हुए लाल मुखवाले, सुन्दर अंगोंवाले एवं पंखरहित शिशुको घोंसलेमें ही छोड़कर वे दोनों उड़ गये और अत्यन्त परिश्रमसे चारा लाकर उस शिशुके चोंचमें डालते हुए दोनों पक्षी अत्यन्त आह्लादयुक्त होकर उस शिशुके अंगोंको अपने अंगोंसे रगड़ते हुए प्रेमपूर्वक उसके सुन्दर मुखको चूम रहे थे॥ ५—७॥

व्यासजी उस शिशुमें उन दोनों पक्षियोंका ऐसा अद्भुत प्रेम देखकर चिन्तामें पड़ गये और मन-ही-मन सोचने लगे। यदि अपने पुत्रके प्रति पक्षियोंमें ऐसा प्रेम दिखायी दे रहा है तो अपनी सेवाका फल चाहनेवाले मनुष्योंमें ऐसा प्रेम-व्यवहार होनेमें आश्चर्य ही क्या! क्या ये दोनों पक्षी इसका सुख-साधनस्वरूप विवाह करके स्वयं सुखी रहते हुए इसकी वधूका सुन्दर मुख देख पायेंगे? क्या इनकी वृद्धावस्थामें यह धर्मनिष्ठ पुत्र पुण्य-प्राप्तिके लिये इन दोनोंकी सेवा करेगा? धन आदि अर्जित करके क्या यह अपने माता-पिताको सन्तुष्ट रखेगा और इनकी मृत्युके उपरान्त क्या इनका विधि-पूर्वक प्रेतकर्म करेगा? अथवा क्या गयातीर्थ जाकर यह बालक उनके श्राद्ध आदि कर्म करके उनका उद्धार करेगा तथा उनके परलोकसाधनहेतु क्या यह विधिपूर्वक नीलोत्सर्ग (नील वृषभ छोड़नेका कर्म) करेगा?॥ ८—१३॥

पुत्रके शरीरका आलिंगन और विशेषरूपसे उसका लालन-पालन इस संसारमें सभी सुखोंमें उत्तम सुख कहा गया है॥ १४॥

पुत्ररहित मनुष्यकी न तो सद्गति होती है और न तो उसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है। अतः परलोकसाधनके लिये पुत्रसे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है॥ १५॥

मनु आदि ऋषियोंने भी धर्मशास्त्रोंमें कहा है कि पुत्रवान् मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है और पुत्रहीन व्यक्तिको स्वर्ग-प्राप्ति कभी भी नहीं होती है॥ १६॥

इस बातमें अनुमानकी कोई आवश्यकता ही नहीं है अपितु यह प्रत्यक्षरूपमें भी देखा जाता है; साथ ही यह वेद, स्मृति आदिका भी सनातन वचन है कि पुत्रवान् मनुष्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १७॥

आतुरे मृत्युकालेऽपि भूमिशय्यागतो नरः।
करोति मनसा चिन्तां दुःखितः पुत्रवर्जितः॥ १८

धनं मे विपुलं गेहे पात्राणि विविधानि च।
मन्दिरं सुन्दरं चैतत्कोऽस्य स्वामी भविष्यति॥ १९

मृत्युकाले मनस्तस्य दुःखेन भ्रमते यतः।
अतोऽस्य दुर्गतिर्नूनं भ्रान्तचित्तस्य सर्वथा॥ २०

एवं बहुविधां चिन्तां कृत्वा सत्यवतीसुतः।
निःश्वस्य बहुधा चोष्णं विमनाः सम्बभूव ह॥ २१

विचार्य मनसात्यर्थं कृत्वा मनसि निश्चयम्।
जगाम च तपस्तप्तुं मेरुपर्वतसन्निधौ॥ २२

मनसा चिन्तयामास कं देवं समुपास्महे।
वरप्रदाननिपुणं वाञ्छितार्थप्रदं तथा॥ २३

विष्णुं रुद्रं सुरेन्द्रं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम्।
गणेशं कार्तिकेयं च पावकं वरुणं तथा॥ २४

एवं चिन्तयतस्तस्य नारदो मुनिसत्तमः।
यदृच्छया समायातो वीणापाणिः समाहितः॥ २५

तं दृष्ट्वा परमप्रीतो व्यासः सत्यवतीसुतः।
कृत्वार्घ्यमासनं दत्त्वा पप्रच्छ कुशलं मुनिम्॥ २६

श्रुत्वाथ कुशलप्रश्नं पप्रच्छ मुनिसत्तमः।
चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं द्वैपायन वदस्व मे॥ २७

व्यास उवाच

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति न सुखं मानसे यतः।
तदर्थं दुःखितश्चाहं चिन्तयामि पुनः पुनः॥ २८

तपसा तोषयाम्यद्य कं देवं वाञ्छितार्थदम्।
इति चिन्तातुरोऽस्म्यद्य त्वामहं शरणं गतः॥ २९

रोगावस्थामें तथा मरणकालमें भूमि-शय्यापर पड़ा हुआ सन्तानहीन प्राणी दुःखित होकर अपने मनमें विचार करता है कि मेरे घरमें पर्याप्त धन है, अनेक प्रकारके पात्र हैं तथा मेरा यह भवन भी अत्यन्त सुन्दर है; किंतु अब इन सबका स्वामी कौन होगा?॥ १८-१९॥

चूँकि मृत्युकालमें उस प्राणीका मन अति दुःखी होकर भ्रमित होता रहता है, इसलिये उस भ्रान्त मनवाले प्राणीकी दुर्गति अवश्य ही होती है॥ २०॥

इस प्रकार अनेकानेक चिन्तन करके और बार-बार लम्बी तथा गर्म साँसें लेकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीका मन अत्यन्त खिन्न हो गया॥ २१॥

इसके बाद मनमें बहुत सोच-विचार करके अन्ततः दृढ निश्चय करके वे तपश्चर्याके लिये मेरुपर्वतपर चले गये॥ २२॥

उन्होंने मनमें विचार किया कि मैं विष्णु, रुद्र, इन्द्र, ब्रह्मा, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, अग्नि एवं वरुण—इन देवताओंमें किस देवताकी आराधना करूँ, जो वरप्रदान करनेमें उदार तथा अभीष्ट फलोंको देनेवाला हो॥ २३-२४॥

इस प्रकार व्यासजी विचार कर ही रहे थे कि उसी समय संयोगवश मुनिश्रेष्ठ नारदजी हाथोंमें वीणा धारण किये हुए वहाँ आ गये॥ २५॥

उन्हें देखकर सत्यवतीपुत्र व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अर्घ्य तथा आसन प्रदान करके उन मुनिसे कुशल-क्षेम पूछा॥ २६॥

कुशल-प्रश्न सुन लेनेके पश्चात् मुनिवर नारदजीने पूछा—हे द्वैपायन! आप किस कारणसे चिन्ताग्रस्त हैं? मुझे बतायें॥ २७॥

व्यासजी बोले—सन्तानहीन व्यक्तिकी सद्गति नहीं होती और कभी भी उसके मनमें सुखानुभूति नहीं होती है। इसी बातको लेकर मैं अत्यन्त दुःखित हूँ और बार-बार यही सोचता रहता हूँ॥ २८॥

मैं अभिलषित फल देनेवाले किस देवताको अपनी तपःसाधनासे प्रसन्न करूँ, इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं [अब इसके समाधानहेतु] आपकी शरणमें हूँ॥ २९॥

सर्वज्ञोऽसि महर्षे त्वं कथयाशु कृपानिधे।
कं देवं शरणं यामि यो मे पुत्रं प्रदास्यति॥ ३०

सूत उवाच

इति व्यासेन पृष्टस्तु नारदो वेदविन्मुनिः।
उवाच परया प्रीत्या कृष्णं प्रति महामनाः॥ ३१

नारद उवाच

पाराशर्य महाभाग यत्त्वं पृच्छसि मामिह।
तमेवार्थं पुरा पृष्टः पित्रा मे मधुसूदनः॥ ३२

ध्यानस्थं च हरिं दृष्ट्वा पिता मे विस्मयं गतः।
पर्यपृच्छत देवेशं श्रीनाथं जगतः पतिम्॥ ३३

कौस्तुभोद्भासितं दिव्यं शङ्खचक्रगदाधरम्।
पीताम्बरं चतुर्बाहुं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ३४

कारणं सर्वलोकानां देवदेवं जगद्गुरुम्।
वासुदेवं जगन्नाथं तप्यमानं महत्तपः॥ ३५

ब्रह्मोवाच

देवदेव जगन्नाथ भूतभव्यभवत्प्रभो।
तपश्चरसि कस्मात्त्वं किं ध्यायसि जनार्दन॥ ३६

विस्मयोऽयं ममात्यर्थं त्वं सर्वजगतां प्रभुः।
ध्यानयुक्तोऽसि देवेश किं च चित्रमतः परम्॥ ३७

त्वन्नाभिकमलाज्जातः कर्ताहमखिलस्य ह।
त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्त्यत्र तं देवं ब्रूहि मापते॥ ३८

जानाम्यहं जगन्नाथ त्वमादिः सर्वकारणम्।
कर्ता पालयिता हर्ता समर्थः सर्वकार्यकृत्॥ ३९

इच्छया ते महाराज सृजाम्यहमिदं जगत्।
हरः संहरते काले सोऽपि ते वचने सदा॥ ४०

हे महर्षे! आप सब कुछ जाननेवाले हैं। हे कृपासिन्धु! आप मुझे शीघ्र ही बतायें कि मैं किस देवताकी शरणमें जाऊँ, जो प्रसन्न होकर मुझे पुत्र प्रदान कर दे॥ ३०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर वेदवेत्ता तथा महामना महर्षि नारद अत्यन्त प्रेमपूर्वक कृष्णद्वैपायनसे कहने लगे॥ ३१॥

नारदजी बोले—हे पराशरतनय! हे महाभाग! आपके द्वारा जो प्रश्न यहाँ मुझसे पूछा गया है, वैसा ही प्रश्न पूर्वकालमें मेरे पिता ब्रह्माजीने मधुसूदन भगवान् विष्णुसे किया था॥ ३२॥

मेरे पिता ब्रह्माजी कौस्तुभमणिकी प्रभासे दीप्तिमान्, शंख-चक्र-गदा और पद्म धारण करनेवाले, पीत वस्त्र धारण करनेवाले, चार भुजाओंवाले, श्रीवत्सचिह्नसे विभूषित वक्षःस्थलवाले, सभी लोकोंके कारणस्वरूप, देवाधिदेव, जगद्गुरु, जगदीश्वर, वासुदेव, देवेश, जगत्पति, श्रीनाथ विष्णुको ध्यानमें अवस्थित होकर कठोर तप करते हुए देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये और उन्होंने पूछा॥ ३३—३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ! हे भूत-भविष्य-वर्तमानके स्वामी! आप किसलिये यह कठोर तपस्या कर रहे हैं? हे जनार्दन! आप किसके ध्यानमें लीन हैं?॥ ३६॥

हे देवेश! [यह देखकर] मैं परम विस्मयमें पड़ गया हूँ कि समस्त विश्वका स्वामी होते हुए भी आप ऐसा ध्यान कर रहे हैं; भला इससे बढ़कर अन्य कौन-सी विचित्र बात होगी!॥ ३७॥

आपके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत होकर मैं सम्पूर्ण लोकोंके कर्ताके रूपमें अधिष्ठित हूँ। हे लक्ष्मीपते! आपसे भी श्रेष्ठतर कौन देवता है? उस देवताको मुझे बताइये॥ ३८॥

हे जगन्नाथ! मैं तो यही जानता हूँ कि आप ही आदिस्वरूप, सबके कारण, निर्माता, पालनकर्ता, संहारक तथा सभी कार्योंको सम्पादित करनेवाले हैं॥ ३९॥

हे महाराज! आपकी इच्छासे ही मैं इस जगत्के रचनाकार्यमें प्रवृत्त होता हूँ और सदा आपके ही आदेशसे शंकरजी प्रलयावस्थामें जगत्का संहार करते हैं॥ ४०॥

सूर्यो भ्रमति चाकाशे वायुर्वाति शुभाशुभः।
अग्निस्तपति पर्जन्यो वर्षतीश त्वदाज्ञया॥ ४१

त्वं तु ध्यायसि कं देवं संशयोऽयं महान्मम।
त्वत्तः परं न पश्यामि देवं वै भुवनत्रये॥ ४२

कृपां कृत्वा वदस्वाद्य भक्तोऽस्मि तव सुव्रत।
महतां नैव गोप्यं हि प्रायः किञ्चिदिति स्मृतिः॥ ४३

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिराह प्रजापतिम्।
शृणुष्वैकमना ब्रह्मंस्त्वां ब्रवीमि मनोगतम्॥ ४४

यद्यपि त्वां शिवं मां च स्थितिसृष्ट्यन्तकारणम्।
ते जानन्ति जनाः सर्वे सदेवासुरमानुषाः॥ ४५

स्रष्टा त्वं पालकश्चाहं हरः संहारकारकः।
कृताः शक्त्येति संतर्कः क्रियते वेदपारगैः॥ ४६

जगत्संजनने शक्तिस्त्वयि तिष्ठति राजसी।
सात्त्विकी मयि रुद्रे च तामसी परिकीर्तिता॥ ४७

तया विरहितस्त्वं न तत्कर्मकरणे प्रभुः।
नाहं पालयितुं शक्तः संहर्तुं नापि शङ्करः॥ ४८

तदधीना वयं सर्वे वर्तामः सततं विभो।
प्रत्यक्षे च परोक्षे च दृष्टान्तं शृणु सुव्रत॥ ४९

शेषे स्वपिमि पर्यङ्के परतन्त्रो न संशयः।
तदधीनः सदोत्तिष्ठे काले कालवशं गतः॥ ५०

तपश्चरामि सततं तदधीनोऽस्म्यहं सदा।
कदाचित्सह लक्ष्म्या च विहरामि यथासुखम्॥ ५१

कदाचिद्दानवैः सार्धं संग्रामं प्रकरोम्यहम्।
दारुणं देहदमनं सर्वलोकभयङ्करम्॥ ५२

हे ईश! आपकी आज्ञासे ही सूर्य आकाशमें [नियमित रूपसे] भ्रमण करता है, शुभ तथा अशुभ हवा चलती है, अग्नि ताप धारण करती है और मेघ वृष्टि करता है॥ ४१॥

आप किस देवताका ध्यान कर रहे हैं? यह मेरी महती शंका है। मैं तो तीनों लोकोंमें आपसे बढ़कर अन्य किसी देवताको नहीं जानता हूँ॥ ४२॥

हे सुव्रत! मैं आपका भक्त हूँ, अतः कृपा करके [अपनी तपस्याका रहस्य] बताइये; क्योंकि यह सर्वविदित है कि महान् लोग अपने भक्तोंसे कुछ भी गोपनीय नहीं रखते हैं॥ ४३॥

ब्रह्माजीका वचन सुनकर भगवान् विष्णु उनसे बोले—हे ब्रह्मन्! आपको अपने मनकी बात बताता हूँ, आप उसे एकाग्रचित्त होकर सुनें॥ ४४॥

यद्यपि सभी देव, दानव और मानव यही जानते हैं कि आप जगत्की रचना, मैं जगत्के पालन और शिवजी जगत्के संहारके परम कारण हैं तथापि वेद-तत्त्वज्ञ विद्वान् यह तर्कना करते हैं कि किसी शक्तिके द्वारा ही आप सृष्टिके कर्ता हैं, मैं भर्ता हूँ और शंकरजी हर्ता हैं॥ ४५-४६॥

जगत्की रचनाके लिये आपमें राजसी शक्ति विद्यमान है, मुझमें सात्त्विकी शक्ति स्थित है तथा शिवजीमें तामसी शक्ति बतायी गयी है॥ ४७॥

उस शक्तिके न रहनेपर आप न तो सृष्टि-रचना कर सकते हैं, न मैं पालन-कार्य करनेमें समर्थ हो सकता हूँ और न तो शंकर संहार कर सकते हैं॥ ४८॥

हे विभो! हम सभी निरन्तर उसी शक्तिके अधीन रहते हैं। हे सुव्रत! अब प्रत्यक्ष तथा परोक्षसे सम्बन्धित दृष्टान्त भी आप सुनिये॥ ४९॥

इसमें कोई संशय नहीं कि मैं परतन्त्र होकर शेष-शय्यापर शयन करता हूँ और उसी शक्तिके अधीन होकर समयपर कालका वशवर्ती होकर मैं शयनसे उठता हूँ॥ ५०॥

उसी शक्तिका अवलम्बन प्राप्तकर मैं सदा तपश्चरण करता रहता हूँ। मैं कभी लक्ष्मीके साथ सुखपूर्वक विहार करता हूँ और कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण, शरीरको चूर्ण कर देनेवाला तथा लोगोंको भयभीत कर देनेवाला युद्ध भी करता हूँ॥ ५१-५२॥

प्रत्यक्षं तव धर्मज्ञ तस्मिन्नेकार्णवे पुरा।
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुयुद्धं मया कृतम्॥ ५३

तौ कर्णमलजौ दुष्टौ दानवौ मदगर्वितौ।
देव देव्याः प्रसादेन निहतौ मधुकैटभौ॥ ५४

तदा त्वया न किं ज्ञातं कारणं तु परात्परम्।
शक्तिरूपं महाभाग किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ५५

यदिच्छः पुरुषो भूत्वा विचरामि महार्णवे।
कच्छपः कोलसिंहश्च वामनश्च युगे युगे॥ ५६

न कस्यापि प्रियो लोके तिर्यग्योनिषु सम्भवः।
नाभवं स्वेच्छया वामवराहादिषु योनिषु॥ ५७

विहाय लक्ष्म्या सह संविहारं
को याति मत्स्यादिषु हीनयोनिषु।
शय्यां च मुक्त्वा गरुडासनस्थः
करोमि युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः॥ ५८

पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं
गतं धनुर्ज्यास्खलनात्क्व चापि।
त्वया तदा वाजिशिरो गृहीत्वा
संयोजितं शिल्पिवरेण भूयः॥ ५९

हयाननोऽहं परिकीर्तितश्च
प्रत्यक्षमेतत्तव लोककर्तः।
विडम्बनेयं किल लोकमध्ये
कथं भवेदात्मपरो यदि स्याम्॥ ६०

तस्मान्नाहं स्वतन्त्रोऽस्मि शक्त्यधीनोऽस्मि सर्वथा।
तामेव शक्तिं सततं ध्यायामि च निरन्तरम्॥ ६१

नातः परतरं किञ्चिज्जानामि कमलोद्भव।

नारद उवाच

इत्युक्तं विष्णुना तेन पद्मयोनेस्तु सन्निधौ॥ ६२

हे धर्मज्ञ! आप यह तो प्रत्यक्ष जानते हैं कि पूर्व समयमें मेरे द्वारा उस महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक भीषण बाहुयुद्ध किया गया था॥ ५३॥

हे देव! कानकी मैलसे उत्पन्न अत्यन्त दुष्ट, मदोन्मत्त तथा अहंकारी मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंका मैंने देवीकी कृपासे ही संहार किया था। हे महाभाग! क्या आप उस समय परात्पर कारणस्वरूपा महाशक्तिको नहीं जान पाये थे? अतः बार-बार क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५४-५५॥

उसी शक्तिकी इच्छासे मैं परमपुरुषके रूपमें महासागरमें विचरण करता हूँ और विभिन्न युगोंमें कच्छप, वराह, नृसिंह तथा वामनके रूपमें अवतरित होता रहता हूँ॥ ५६॥

तिर्यग्योनिमें उत्पन्न होना किसीके लिये भी प्रिय नहीं होता। मैं अपनी इच्छासे वामन, वराह आदि योनियोंमें उत्पन्न नहीं होता हूँ। [अपितु इसमें उसी शक्तिकी प्रेरणा ही परम कारण है]॥ ५७॥

भला ऐसा कौन होगा, जो लक्ष्मीके साथ सुखदायक विहारका त्याग करके मत्स्यादि नीच योनियोंमें जन्म लेगा? यदि मैं स्वतन्त्र होता तो [सुखदायिनी] शय्याको छोड़कर गरुडरूपी आसनपर बैठकर महाभयंकर युद्ध क्यों करता!॥ ५८॥

हे अज! प्राचीन कालमें एक बार आपके समक्ष ही धनुषकी प्रत्यंचा टूट जानेके कारण मेरा सिर छिन्न हो गया था। तब शिल्पकारोंमें श्रेष्ठ आपने फिरसे मेरे धड़पर घोड़ेका सिर जोड़ दिया था॥ ५९॥

हे लोकनिर्माता! उसी समयसे मैं 'हयग्रीव' नामसे लोकप्रसिद्ध हुआ, यह सब आपके सामने घटित हुआ था। यदि मैं स्वाधीन होता तो संसारमें यह विडम्बना कैसे होती?॥ ६०॥

अतएव मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ, अपितु सर्वथा उसी शक्तिके अधीन हूँ। मैं निरन्तर उसी शक्तिका ध्यान करता रहता हूँ। हे कमलोद्भव! मैं इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं जानता॥ ६१½॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे इस प्रकार कहा था। हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे पिता

तेन चाप्यहमुक्तोऽस्मि तथैव मुनिपुङ्गव।
तस्मात्त्वमपि कल्याण पुरुषार्थाप्तिहेतवे॥ ६३

असंशयं हृदम्भोजे भज देवीपदाम्बुजम्।
सर्वं दास्यति सा देवी यद्यदिष्टं भवेत्तव॥ ६४

सूत उवाच

नारदेनैवमुक्तस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः।
देवीपादाब्जनिष्णातस्तपसे प्रययौ गिरौ॥ ६५

ब्रह्माजीने वे सब बातें मुझसे कही थीं। अतः आप भी कल्याणकारी पुत्र-प्राप्तिके उद्देश्यसे सर्वथा संशयरहित होकर अपने हृदयकमलमें देवी भगवतीके चरणारविन्दका ध्यान कीजिये। वे देवी आपके समस्त अभिलषित फलोंको अवश्य प्रदान करेंगी॥ ६२-६४॥

सूतजी बोले—नारदजीके ऐसा कहनेपर सत्यवतीपुत्र व्यासजी देवीके चरणारविन्दमें अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए तपश्चर्याहेतु पर्वतपर चले गये॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
देवीसर्वोत्तमेतिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीके शापसे विष्णुका मस्तक कट जाना, वेदोंद्वारा स्तुति करनेपर देवीका प्रसन्न होना, भगवान् विष्णुके हयग्रीवावतारकी कथा

ऋषय ऊचुः

सूतास्माकं मनः कामं मग्नं संशयसागरे।
यथोक्तं महदाश्चर्यं जगद्विस्मयकारकम्॥ १

यन्मूर्धा माधवस्यापि गतो देहात्पुनः परम्।
हयग्रीवस्ततो जातः सर्वकर्ता जनार्दनः॥ २

वेदोऽपि स्तौति यं देवं देवाः सर्वे यदाश्रयाः।
आदिदेवो जगन्नाथः सर्वकारणकारणः॥ ३

तस्यापि वदनं छिन्नं दैवयोगात्कथं तदा।
तत्सर्वं कथयाशु त्वं विस्तरेण महामते॥ ४

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयः सर्वे सावधानाः समन्ततः।
चरितं देवदेवस्य विष्णोः परमतेजसः॥ ५

कदाचिद्दारुणं युद्धं कृत्वा देवः सनातनः।
दशवर्षसहस्राणि परिश्रान्तो जनार्दनः॥ ६

समे देशे शुभे स्थाने कृत्वा पद्मासनं विभुः।
अवलम्ब्य धनुः सज्यं कण्ठदेशे धरास्थितम्॥ ७

दत्त्वा भारं धनुष्कोट्यां निद्रामाप रमापतिः।
श्रान्तत्वाद्दैवयोगाच्च जातस्तत्रातिनिद्रितः॥ ८

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हमारा चित्त सन्देहरूपी सागरमें पूर्णतः डूबता जा रहा है; क्योंकि आपने महान् आश्चर्यजनक तथा संसारको विस्मित कर देनेवाली यह बात कह दी कि विष्णुके शरीरसे उनका सिर अलग हो गया था और वे सर्वपालक जनार्दन पुनः हयग्रीव हो गये थे॥ १-२॥

वेद भी जिन भगवान् विष्णुका स्तवन करते हैं, समस्त देवता जिनका आश्रय ग्रहण करते हैं, जो आदिदेव हैं, जगत्के स्वामी हैं और सभी कारणोंके भी कारण हैं; दैवयोगसे उनका भी मस्तक कैसे कट गया? हे महामते! वह सब आप हमसे विस्तारपूर्वक शीघ्र कहिये॥ ३-४॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! आप सभी लोग एकाग्रचित्त होकर परम तेजस्वी देवाधिदेव भगवान् विष्णुका चरित्र सुनिये॥ ५॥

किसी समय वे सनातन देव विष्णु दस हजार वर्षोंतक भीषण युद्ध करके अत्यन्त थक गये थे॥ ६॥

तदनन्तर एक समतल तथा शुभ स्थानपर पद्मासन लगाकर पृथ्वीपर स्थित प्रत्यंचा चढ़े हुए धनुषपर कण्ठप्रदेश (गर्दन) टिकाये हुए उस धनुषकी नोंकपर भार देकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु सो गये और थकावटके कारण दैवयोगसे उन्हें गहरी नींद आ गयी॥ ७-८॥

तदा कालेन कियता देवाः सर्वे सवासवाः।
ब्रह्मेशसहिताः सर्वे यज्ञं कर्तुं समुद्यताः॥ ९

गताः सर्वेऽथ वैकुण्ठं द्रष्टुं देवं जनार्दनम्।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं मखानामधिपं प्रभुम्॥ १०

अदृष्ट्वा तं तदा तत्र ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ते।
यत्रास्ते भगवान् विष्णुर्जग्मुस्तत्र तदा सुराः॥ ११

ददृशुस्ते तदेशानं योगनिद्रावशं गतम्।
विचेतनं विभुं विष्णुं तत्रासांचक्रिरे सुराः॥ १२

स्थितेषु सर्वदेवेषु निद्रासुप्ते जगत्पतौ।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥ १३

तानुवाच ततः शक्रः किं कर्तव्यं सुरोत्तमाः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यश्चिन्तयन्तु सुरोत्तमाः॥ १४

तमुवाच तदा शम्भुर्निद्राभङ्गेऽस्ति दूषणम्।
कार्यं चैव प्रकर्तव्यं यज्ञस्य सुरसत्तमाः॥ १५

उत्पादिता तदा वम्री ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
तया भक्षयितुं तत्र धनुषोऽग्रं धरास्थितम्॥ १६

भक्षितेऽग्रे तदा निम्नं गमिष्यति शरासनम्।
तदा निद्राविमुक्तोऽसौ देवदेवो भविष्यति॥ १७

देवकार्यं तदा सर्वं भविष्यति न संशयः।
स वम्रीं संदिदेशाथ देवदेवः सनातनः॥ १८

तमुवाच तदा वम्री देवदेवस्य मापतेः।
निद्राभङ्गः कथं कार्यो देवस्य जगतां गुरोः॥ १९

निद्राभङ्गः कथाच्छेदो दम्पत्योः प्रीतिभेदनम्।
शिशुमातृविभेदश्च ब्रह्महत्यासमं स्मृतम्॥ २०

कुछ समय बीतनेके बाद ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्रसहित सभी देवता यज्ञ करनेको उद्यत हुए। वे सब देवकार्यकी सिद्धिहेतु यज्ञोंके अधिपति जनार्दन भगवान् विष्णुके दर्शनार्थ वैकुण्ठलोक गये॥ ९-१०॥

उस समय उन्हें वहाँ न देखकर वे देवतागण ज्ञान-दृष्टिसे देख करके वहाँ पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णु विराजमान थे॥ ११॥

वहाँ उन्होंने सर्वव्यापी भगवान् विष्णुको योग-निद्राके वशीभूत होकर अचेत पड़ा हुआ देखा। तब वे देवगण वहीं रुक गये॥ १२॥

सभी देवताओंके वहाँ रुक जानेके बाद जगत्पति विष्णुको निद्रामग्न देखकर ब्रह्मा-रुद्र आदि प्रमुख देवता अत्यन्त चिन्तित हुए॥ १३॥

तदनन्तर इन्द्रने देवताओंसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! अब क्या किया जाय? हे श्रेष्ठ देवताओ! अब आप सभी यह विचार करें कि इनकी निद्रा किस प्रकार भंग की जाय?॥ १४॥

तब शिवजीने इन्द्रसे कहा कि इनकी निद्राका भंग करनेसे महान् दोष लगेगा, किंतु हे श्रेष्ठ देवगण! यज्ञकार्य भी अवश्यकरणीय है॥ १५॥

इसके बाद परमेष्ठी ब्रह्माजीने पृथ्वीपर स्थित धनुषके अग्रभागको खा जानेके लिये दीमकका सृजन किया॥ १६॥

[उन्होंने यह सोचा कि] दीमकके द्वारा धनुषका अग्रभाग खा लिये जानेपर धनुष नीचा हो जायगा। तब वे देवाधिदेव विष्णु निद्रामुक्त हो जायँगे। ऐसा होनेपर निस्सन्देह देवताओंका सम्पूर्ण कार्य सिद्ध हो जायगा। अतः सनातन ब्रह्माजीने दीमकको इस कार्यके लिये आदेश दिया॥ १७-१८॥

तब दीमकने ब्रह्माजीसे कहा कि देवाधिदेव जगद्गुरु लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका निद्रा-भंग मैं कैसे करूँ? क्योंकि नींदमें बाधा डालना, कथामें विघ्न पैदा करना, पति-पत्नीके बीच भेद उत्पन्न करना एवं माँ-पुत्रके बीच वैरभाव पैदा करनेके लिये षड्यन्त्र

तत्कथं देवदेवस्य करोमि सुखनाशनम्।
किं फलं भक्षणाद्देव येन पापं करोम्यहम्॥ २१

सर्वः स्वार्थवशो लोकः कुरुते पातकं किल।
तस्मादहं करिष्यामि स्वार्थमेव प्रभक्षणम्॥ २२

ब्रह्मोवाच

तव भागं करिष्यामो मखमध्ये यथा शृणु।
तेन त्वं कुरु कार्यं नो विष्णुं बोधय माचिरम्॥ २३

होमकर्मणि पार्श्वे च हविर्दानात्पतिष्यति।
तत्ते भागं विजानीहि कुरु कार्यं त्वरान्विता॥ २४

सूत उवाच

इत्युक्ता ब्रह्मणा वम्री धनुषोऽग्रं त्वरान्विता।
चखाद संस्थितं भूमौ विमुक्ता ज्या तदाभवत्॥ २५

प्रत्यञ्चायां विमुक्तायां मुक्ता कोटिस्तथोत्तरा।
शब्दः समभवद् घोरस्तेन त्रस्ताः सुरास्तदा॥ २६

ब्रह्माण्डं क्षुभितं सर्वं वसुधा कम्पिता तदा।
समुद्राश्च समुद्विग्नास्त्रेसुश्च जलजन्तवः॥ २७

ववुर्वातास्तथा चोग्राः पर्वताश्च चकम्पिरे।
उल्कापाता महोत्पाता बभूवुर्दुःखशंसिनः॥ २८

दिशो घोरतराश्चासन्सूर्योऽप्यस्तंगतोऽभवत्।
चिन्तामापुः सुराः सर्वे किं भविष्यति दुर्दिने॥ २९

एवं चिन्तयतां तेषां मूर्धा विष्णोः सकुण्डलः।
गतः समुकुटः क्वापि देवदेवस्य तापसाः॥ ३०

अन्धकारे तदा घोरे शान्ते ब्रह्महरौ तदा।
शिरोहीनं शरीरं तु ददृशाते विलक्षणम्॥ ३१

करना ब्रह्महत्याके समान कहा गया है। अतः मैं देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सुख क्यों नष्ट करूँ? हे देव! उस धनुषका अग्रभाग खानेसे मेरा क्या लाभ है, जिसके लिये मैं ऐसा पाप करूँ?॥ १९—२१ ॥

स्वार्थके वशीभूत होकर ही समस्त लोक पापकार्यमें प्रवृत्त होता है। इसलिये मैं भी इसमें कोई स्वार्थसिद्धि होनेपर ही इसका भक्षण करूँगा॥ २२ ॥

ब्रह्माजी बोले—सुनो, हमलोग यज्ञमें तुम्हारे भागकी व्यवस्था कर देंगे। इसलिये तुम अविलम्ब भगवान् विष्णुको जगाकर हमलोगोंका कार्य सम्पन्न कर दो॥ २३ ॥

होमकार्यमें आहुति प्रदान करते समय जो हव्य आस-पास गिरेगा, उसीको अपना भाग समझना; और अब तुम शीघ्रतापूर्वक हमारा कार्य करो॥ २४॥

सूतजी बोले—हे ऋषियो! ब्रह्माजीके इस प्रकार कहनेके अनन्तर दीमकने धरातलपर स्थित धनुषाग्रको शीघ्र ही खा लिया, जिससे धनुषकी डोरी मुक्त हो गयी॥ २५॥

प्रत्यंचाके खुल जानेपर धनुषका वह ऊपरी कोना मुक्त हो गया। इस प्रकार एक भीषण ध्वनि पैदा हुई जिससे वहाँ सभी देवगण भयभीत हो गये, ब्रह्माण्ड क्षुब्ध हो उठा, पृथ्वीमें कम्पन होने लगा, सभी समुद्र उद्विग्न हो गये, जलचर जन्तु व्याकुल हो उठे। प्रचण्ड हवाएँ प्रवाहित होने लगीं, पर्वत प्रकम्पित हो उठे, किसी दारुण आपदाके सूचक उल्कापात आदि महान् उपद्रव होने लगे, सूर्य तिरोहित हो गये तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त भयावह हो गयीं। यह सब देखकर देवतालोग चिन्तित होकर सोचने लगे कि इस दुर्दिनमें अब क्या होगा?॥ २६—२९ ॥

हे तपस्वियो! वे देवतागण ऐसा सोच ही रहे थे कि किरीट-कुण्डलसहित देवाधिदेव भगवान् विष्णुका सिर [कटकर] कहीं चला गया॥ ३०॥

कुछ समय पश्चात् उस घोर अन्धकारके शान्त हो जानेपर ब्रह्मा और शंकरने भगवान् विष्णुका मस्तकविहीन विलक्षण शरीर देखा॥ ३१॥

दृष्ट्वा कबन्धं विष्णोस्ते विस्मिताः सुरसत्तमाः।
चिन्तासागरमग्नाश्च रुरुदुः शोककर्शिताः॥ ३२

हा नाथ किं प्रभो जातमत्यद्भुतममानुषम्।
वैशसं सर्वदेवानां देवदेव सनातन॥ ३३

मायेयं कस्य देवस्य यया तेऽद्य शिरो हृतम्।
अच्छेद्यस्त्वमभेद्योऽसि अप्रदाह्योऽसि सर्वदा॥ ३४

एवं गते त्वयि विभो मरिष्यन्ति च देवताः।
कीदृशस्त्वयि नः स्नेहः स्वार्थेनैव रुदामहे॥ ३५

नायं विघ्नः कृतो दैत्यैर्न यक्षैर्न च राक्षसैः।
देवैरेव कृतः कस्य दूषणं च रमापते॥ ३६

पराधीनाः सुराः सर्वे किं कुर्मः क्व व्रजाम च।
शरणं नैव देवेश सुराणां मूढचेतसाम्॥ ३७

न चैषा सात्त्विकी माया राजसी न च तामसी।
यया छिन्नं शिरस्तेऽद्य मायेशस्य जगद्गुरोः॥ ३८

क्रन्दमानांस्तदा दृष्ट्वा देवाञ्छिवपुरोगमान्।
बृहस्पतिस्तदोवाच शमयन्वेदवित्तमः॥ ३९

रुदितेन महाभागाः क्रन्दितेन तथापि किम्।
उपायश्चात्र कर्तव्यः सर्वथा बुद्धिगोचरः॥ ४०

दैवं पुरुषकारश्च देवेश सदृशावुभौ।
उपायश्च विधातव्यो दैवात्फलति सर्वथा॥ ४१

इन्द्र उवाच

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
विष्णोरपि शिरश्छिन्नं सुराणां चैव पश्यताम्॥ ४२

ब्रह्मोवाच

अवश्यमेव भोक्तव्यं कालेनापादितं च यत्।
शुभं वाप्यशुभं वापि दैवं कोऽतिक्रमेत्पुनः॥ ४३

भगवान् विष्णुका सिरविहीन धड़ देखकर वे श्रेष्ठ देवता अत्यन्त विस्मित हुए और चिन्तासागरमें निमग्न होकर शोकाकुल हो [इस प्रकार] विलाप करने लगे—॥ ३२॥

हे नाथ! हे प्रभो! यह कैसी विचित्र अलौकिक घटना हो गयी? हे देवाधिदेव! हे सनातन! हम सभी देवताओंके लिये तो यह बात विनाशकारी है॥ ३३॥

यह किस देवताकी माया है, जिसके द्वारा आपके सिरका हरण कर लिया गया। आप तो सर्वदा अच्छेद्य, अभेद्य और अदाह्य हैं॥ ३४॥

हे विभो! इस प्रकार आपके चले जानेपर हम देवता तो मृत्युको प्राप्त हो जायँगे। हमलोगोंके प्रति आपका कैसा स्नेह था। हमलोग स्वार्थके कारण ही रुदन कर रहे हैं॥ ३५॥

संकटकी यह स्थिति न तो दैत्योंने, न यक्षोंने और न राक्षसोंने ही पैदा की है, अपितु हम देवताओंने ही यह विघ्न उत्पन्न किया है; तथापि हे रमापते! इसमें किसका दोष समझा जाय?॥ ३६॥

हम सभी देवता पराश्रित हैं। हम इस समय क्या करें और कहाँ जायँ? हे देवेश! हम मूढ़ बुद्धिवाले देवताओंके लिये अब कहीं भी कोई शरण नहीं है॥ ३७॥

यह कोई सात्त्विकी, राजसी अथवा तामसी माया भी नहीं है, जिसके द्वारा आप मायापति जगद्गुरुका सिर काटा गया है॥ ३८॥

तब शिवसहित समस्त देवताओंको करुण क्रन्दन करते हुए देखकर वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ देवगुरु बृहस्पतिने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—हे महाभागो! अब इस प्रकार क्रन्दनसे क्या लाभ है? इस समय तो विवेकका आश्रय लेकर कोई उपाय करना चाहिये। हे देवेन्द्र! भाग्य एवं पुरुषार्थ—दोनों ही समान श्रेणीके हैं फिर भी उपाय करना ही चाहिये और वह दैवयोगसे ही सफल होता है॥ ३९—४१॥

इन्द्र बोले—अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, मैं तो दैवको श्रेष्ठतर मानता हूँ; क्योंकि हम देवताओंके देखते-देखते विष्णुका सिर कट गया॥ ४२॥

ब्रह्माजी बोले—कालद्वारा जो भी शुभाशुभ कर्मोंका फल निर्धारित है, उसे अवश्य ही भोगना पड़ता है; भाग्यका अतिक्रमण कौन कर सकता है?॥ ४३॥

देहवान्सुखदु:खानां भोक्ता नैवात्र संशयः।
यथा कालवशात्कृत्तं शिरो मे शम्भुना पुरा॥ ४४

तथैव लिङ्गपातश्च महादेवस्य शापतः।
तथैवाद्य हरेर्मूर्धा पतितो लवणाम्भसि॥ ४५

सहस्रभगसंप्राप्तिर्दु:खं चैव शचीपतेः।
स्वर्गाद् भ्रंशस्तथा वासः कमले मानसे सरे॥ ४६

एते दु:खस्य भोक्तारः केन दु:खं न भुज्यते।
संसारेऽस्मिन्महाभागास्तस्माच्छोकं त्यजन्तु वै॥ ४७

चिन्तयन्तु महामायां विद्यादेवीं सनातनीम्।
सा विधास्यति नः कार्यं निर्गुणा प्रकृतिः परा॥ ४८

ब्रह्मविद्यां जगद्धात्रीं सर्वेषां जननीं तथा।
यया सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४९

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वै सुरान्वेधा निगमानादिदेश ह।
देहयुक्तान्स्थितानग्रे सुरकार्यार्थसिद्धये॥ ५०

ब्रह्मोवाच

स्तुवन्तु परमां देवीं ब्रह्मविद्यां सनातनीम्।
गूढाङ्गीं च महामायां सर्वकार्यार्थसाधनीम्॥ ५१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वेदाः सर्वाङ्गसुन्दराः।
तुष्टुवुर्ज्ञानगम्यां तां महामायां जगत्स्थिताम्॥ ५२

वेदा ऊचुः

नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे।
निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शङ्करकामदे॥ ५३

त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणाः प्राणवतां तथा।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥ ५४

प्रत्येक प्राणी काल-क्रमके अनुसार सुख-दुःख भोगता ही है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिस प्रकार पूर्वकालमें कालकी प्रेरणासे शंकरजीने मेरा मस्तक काट दिया था, उसी प्रकार शापके कारण शिवजीका लिंग कटकर गिर गया था और उसी प्रकार आज विष्णुका सिर [कटकर] लवणसागरमें जा गिरा है॥ ४४-४५॥

[दैवयोगसे ही] इन्द्रको भी सहस्र भगोंकी प्राप्ति हुई। उन्हें दुःख भोगना पड़ा। वे स्वर्गसे च्युत हो गये और मानसरोवरके कमलमें रहने लगे॥ ४६॥

इस संसारमें जब इन महाभाग देवताओंको भी दुःखका भोग करनेके लिये विवश होना पड़ा तो फिर दुःख भोगनेसे भला कौन वंचित रह सकता है? अतएव आपलोग शोकका परित्याग कर दें और उन महामाया, विद्यारूपा, सनातनी, ब्रह्मविद्या तथा जगत्को धारण करनेवाली देवीका ध्यान कीजिये, जिनके द्वारा यह चराचर सम्पूर्ण त्रिलोक व्याप्त है। वे निर्गुणा परा प्रकृति हमलोगोंका समस्त कार्य सिद्ध कर देंगी॥ ४७—४९॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! देवताओंसे इस प्रकार कहकर ब्रह्माजीने कार्यकी सिद्धिकी कामनासे अपने सम्मुख सशरीर विद्यमान वेदोंको आदेश दिया॥ ५०॥

ब्रह्माजी बोले—आपलोग समस्त कार्योंको सिद्ध करनेवाली, पराम्बा, ब्रह्मविद्या, सनातनी तथा निगूढ़ अंगोंवाली महामायाका स्तवन कीजिये॥ ५१॥

उनका यह वचन सुनकर समस्त सुन्दर अंगोंवाले वेद जगत्की आधारस्वरूपा तथा ज्ञानगम्या उन महामायाकी स्तुति करने लगे॥ ५२॥

वेदोंने कहा—हे देवि! हे महामाये! हे विश्वोत्पत्तिकारिणि! हे शिवे! हे निर्गुणे! हे सर्वभूतेशि! हे शिवकामार्थ-प्रदायिनि माता! आपको नमस्कार है॥ ५३॥

आप सभी प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये पृथ्वीस्वरूपा हैं तथा प्राणधारियों
बुद्धि, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति,
एवं स्मृति सब कुछ आप ही हैं।

त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि गायत्री व्याहृतिस्तथा।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया॥ ५५

त्वां संस्तुमोऽम्ब भुवनत्रयसंविधान-
दक्षां दयारसयुतां जननीं जनानाम्।
विद्यां शिवां सकललोकहितां वरेण्यां
वाग्बीजवासनिपुणां भवनाशकर्त्रीम्॥ ५६

ब्रह्मा हरः शौरिसहस्रनेत्र-
वाग्वह्निसूर्या भुवनाधिनाथाः।
ते त्वत्कृताः सन्ति ततो न मुख्या
माता यतस्त्वं स्थिरजङ्गमानाम्॥ ५७

सकलभुवनमेतत्कर्तुकामा यदा त्वं
सृजसि जननि देवान्विष्णुरुद्राजमुख्यान्।
स्थितिलयजननं तैः कारयस्येकरूपा
न खलु तव कथंचिद्देवि संसारलेशः॥ ५८

न ते रूपं वेत्तुं सकलभुवने कोऽपि निपुणो
न नाम्नां संख्यां ते कथितुमिह योग्योऽस्ति पुरुषः।
यदल्पं कीलालं कलयितुमशक्तः स तु नरः
कथं पारावाराकलनचतुरः स्याद्दृतमतिः॥ ५९

न देवानां मध्ये भगवति तवानन्तविभवं
विजानात्येकोऽपि त्वमिह भुवनैकासि जननी।
कथं मिथ्या विश्वं सकलमपि चैका रचयसि
प्रमाणं त्वेतस्मिन्निगमवचनं देवि विहितम्॥ ६०

निरीहैवासि त्वं निखिलजगतां कारणमहो
चरित्रं ते चित्रं भगवति मनो नो व्यथयति।
कथंकारं वाच्यः सकलनिगमागोचरगुण-
प्रभावः स्वं यस्मात्स्वयमपि न जानासि परमम्॥ ६१

ॐकारमें अर्धमात्राके रूपमें आप ही विराजमान हैं। आप गायत्री, भूः, भुवः, स्वः आदि व्याहृति, जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा एवं दया सभी कुछ हैं॥ ५५॥

हे अम्ब! आप तीनों लोकोंके रचना-तन्त्रमें दक्ष, करुणरससे युक्त, सभी प्राणियोंकी माँ, विद्या, कल्याणी, सभी प्राणियोंकी हितसाधिका, सर्वश्रेष्ठ, वाग्बीजमन्त्रमें वास करनेमें निपुण तथा संसारका क्लेश दूर करनेवाली हैं; आपकी हम स्तुति करते हैं॥ ५६॥

ब्रह्मा, शंकर, विष्णु, इन्द्र, सरस्वती, अग्नि, सूर्य तथा सभी भुवनोंके स्वामी आपके द्वारा ही निर्मित किये गये हैं। अतः उनकी अपनी कोई विशेषता नहीं है; आप ही सभी चराचर जगत्‌की माता हैं॥ ५७॥

हे जननि! जब आप जगत्‌की रचनाकी कामना करती हैं, तब आप सर्वप्रथम ब्रह्मा, विष्णु, महेश—इन प्रमुख देवोंका सृजन करती हैं। उन्हींके माध्यमसे एकमात्र आप ही जगत्‌का सृजन, पालन एवं संहारकार्य पूर्ण कराती हैं। हे देवि! आपमें संसारका लेशमात्र भी नहीं रहता॥ ५८॥

हे देवि! सम्पूर्ण संसारमें ऐसा कोई भी निपुण प्राणी नहीं है, जो आपके रूपको जान सके और न तो ऐसा कोई योग्य मनुष्य है, जो आपके नामोंकी संख्याकी गणना करनेमें समर्थ हो। जो थोड़ेसे जलका सन्तरण करनेमें असमर्थ हो, वह बुद्धिसम्पन्न मनुष्य भला महासागरको पार करनेमें कुशल कैसे होगा?॥ ५९॥

हे भगवति! आपके अन्तहीन वैभवको जान सकनेमें देवताओंमें कोई भी समर्थ नहीं है। एकमात्र आप समस्त विश्वकी माता हैं। आप अकेले ही इस सम्पूर्ण मिथ्या जगत्‌की रचना कैसे करती हैं? हे देवि! एकमात्र वेदवाक्य ही आपके इस सृष्टि-कार्यकी प्रामाणिकता सिद्ध करते हैं॥ ६०॥

हे भगवति! समग्र जगत्‌की परम कारणस्वरूपा होती हुई भी आप इच्छारहित हैं। अहो! आपका अद्भुत चरित्र हमारे मनको विस्मित कर देता है। समस्त वेदोंसे भी अज्ञेय आपके गुणों एवं प्रभावोंका वर्णन हमलोग भला किस प्रकार कर सकते हैं; क्योंकि स्वयं आप भी अपने परमतत्त्वको नहीं जानतीं॥ ६१॥

न किं जानासि त्वं जननि मधुजिन्मौलिपतनं
शिवे किं वा ज्ञात्वा विविदिषसि शक्तिं मधुजितः।
हरेः किं वा मातर्दुरितततिरेषा बलवती
भवत्याः पादाब्जे भजननिपुणे क्वास्ति दुरितम्॥ ६२

उपेक्षा किं चेयं तव सुरसमूहेऽतिविषमा
हरेर्मूर्ध्नो नाशो मतमिह महाश्चर्यजनकम्।
महद्दुःखं मातस्त्वमसि जननच्छेदकुशला
न जानीमो मौलेर्विघटनविलम्बः कथमभूत्॥ ६३

ज्ञात्वा दोषं सकलसुरतापादितं देवि चित्ते
किं वा विष्णावमरजनितं दुष्कृतं पातितं ते।
विष्णोर्वा किं समरजनितः कोऽपि गर्वोऽतिवेगा-
च्छेत्तुं मातस्तव विलसितं नैव विद्मोऽत्र भावम्॥ ६४

किं वा दैत्यैः समरविजितैस्तीर्थदेशे सुरम्ये
घोरं तप्त्वा भगवति वरं लब्धवद्भिर्भवत्याः।
अन्तर्धानं गमितमधुना विष्णुशीर्षं भवानि
द्रष्टुं किं वा विगतशिरसं वासुदेवं विनोदः॥ ६५

सिन्धोः पुत्र्यां रोषिता किं त्वमाद्ये
कस्मादेनां प्रेक्षसे नाथहीनाम्।
क्षन्तव्यस्ते स्वांशजातापराधो
व्युत्थाप्यैनं मोदितां मां कुरुष्व॥ ६६

एते सुरास्त्वां सततं नमन्ति
कार्येषु मुख्याः प्रथितप्रभावाः।
शोकार्णवात्तारय देवि देवा-
नुत्थाप्य देवं सकलाधिनाथम्॥ ६७

हे जननि! क्या आप भगवान् विष्णुके शिरोच्छेदनकी घटना नहीं जानती हैं? हे शिवे! अथवा क्या यह जानकर भी आप मधुजित् विष्णुकी शक्तिकी परीक्षा करना चाहती हैं? हे माता! अथवा क्या यह विष्णुके महान् पापसमूहका फल है? किंतु आपके चरणकमलोंका भजन करनेमें निपुण प्राणीसे तो पाप हो ही नहीं सकता॥ ६२॥

हे माता! आप इस देवसमूहकी भारी उपेक्षा क्यों कर रही हैं? भगवान् विष्णुके मस्तक कटनेकी घटना हमारे लिये अत्यन्त आश्चर्यजनक तथा महान् कष्टदायक बात है। हे माता! आप जननरूपी दुःखका नाश करनेमें कुशल हैं, अब हम यह नहीं जान पा रहे हैं कि विष्णुके सिर-संयोजनमें विलम्ब क्यों हो रहा है?॥ ६३॥

हे देवि! सभी देवताओंके देवत्वाभिमानरूपी दोषको अपने मनमें समझकर आपने ही ऐसा किया है, अथवा देवजन्य दुष्कृतको विष्णुमें स्थापित किया है, अथवा विष्णुको संग्राम-विजय करनेका अहंकार हो गया था, जिसे अतिशीघ्र दूर करनेके लिये आपने यह लीला रची है। हे माता! हम आपके मनोभावोंको समझनेमें पूर्णतया असमर्थ हैं॥ ६४॥

हे भगवति! अथवा युद्धमें पराभूत किये गये दैत्योंने किसी मनोहर तीर्थमें घोर तपस्या करके आपसे वरदान प्राप्त कर लिया है, जो विष्णुके सिर कटनेका कारण बना। हे भवानि! अथवा विष्णुको सिरविहीनरूपमें देखनेके लिये आप इस समय कोई विनोद कर रही हैं॥ ६५॥

हे आद्ये! आप सिंधुसुता लक्ष्मीपर किसी कारणसे आक्रोशित तो नहीं हैं। आप उन्हें स्वामीविहीन किसलिये देखना चाह रही हैं? आप अपने ही अंशसे प्रादुर्भूत लक्ष्मीका अपराध क्षमा करें और भगवान् विष्णुको जीवनदान देकर रमाको प्रसन्न कर दें॥ ६६॥

जगत्के समस्त कार्योंको सम्पादित करनेमें प्रमुख भूमिकावाले अतिशय प्रभावशाली ये देवता आपको निरन्तर नमस्कार करते हैं। हे देवि! सर्वलोकाधिपति विष्णुको जीवित करके आप देवताओंको शोकसागरसे पार कीजिये॥ ६७॥

मूर्धा गतः क्वाम्ब हरेर्न विद्मो
नान्योऽस्त्युपायः खलु जीवनेऽद्य।
यथा सुधा जीवनकर्मदक्षा
तथा जगज्जीवितदासि देवि॥ ६८

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी गुणातीता महेश्वरी।
प्रसन्ना परमा माया वेदैः साङ्गैश्च सामगैः॥ ६९

तानुवाच तदा वाणी चाकाशस्थाशरीरिणी।
देवान्प्रति सुखैः शब्दैर्जनानन्दकरी शुभा॥ ७०

मा कुरुध्वं सुराश्चिन्तां स्वस्थास्तिष्ठन्तु चामराः।
स्तुताहं निगमैः कामं सन्तुष्टास्मि न संशयः॥ ७१

यः पुमान्मानुषे लोके स्तौत्येतां मामकीं स्तुतिम्।
पठिष्यति सदा भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ ७२

शृणोति वा स्तोत्रमिदं मदीयं
भक्त्या त्रिकालं सततं नरो यः।
विमुक्तदुःखः स भवेत्सुखी च
वेदोक्तमेतन्ननु वेदतुल्यम्॥ ७३

शृण्वन्तु कारणं चाद्य यद्गतं वदनं हरेः।
अकारणं कथं कार्यं संसारेऽत्र भविष्यति॥ ७४

उदधेस्तनयां विष्णुः संस्थितामन्तिके प्रियाम्।
जहास वदनं वीक्ष्य तस्यास्तत्र मनोरमम्॥ ७५

तया ज्ञातं हरिर्नूनं कथं मां हसति प्रभुः।
विरूपं हरिणा दृष्टं मुखं मे केन हेतुना॥ ७६

विनापि कारणेनाद्य कथं हास्यस्य सम्भवः।
सपत्नीव कृता तेन मन्येऽन्या वरवर्णिनी॥ ७७

हे अम्ब! भगवान् विष्णुका सिर छिन्न होकर कहाँ चला गया—यह हम नहीं जानते हैं और इस समय इन्हें जीवित करनेके लिये अन्य कोई युक्ति भी नहीं सूझ रही है। हे देवि! मृत प्राणीको जीवित करनेमें जिस प्रकार अमृत समर्थ है, उसी प्रकार समग्र संसारकी आप जीवनदात्री हैं॥ ६८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! इस प्रकार सामगान-निपुण सांगवेदोंद्वारा स्तुति किये जानेसे गुणातीता, महेश्वरी, परात्परा महामाया भगवती प्रसन्न हो गयीं॥ ६९॥

उसी समय देवताओंको सुख प्रदान करनेवाले शब्दोंसे युक्त और भक्तजनोंको आनन्दित करनेवाली आकाशस्थित अशरीरिणी शुभ वाणीने उनसे कहा॥ ७०॥

हे देवताओ! आप लोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें और स्वस्थचित्त रहें। हे अमरगण! इन वेदोंके भावपूर्ण स्तवनसे मैं परम प्रसन्न हो गयी हूँ, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ७१॥

मनुष्यलोकमें जो प्राणी इस स्तुतिसे मेरी आराधना करेगा अथवा भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, उसकी समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी॥ ७२॥

जो मनुष्य त्रिकाल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) मेरी स्तुतिको नित्य भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह सभी दुःखोंसे विमुक्त होकर परम सुखी हो जायगा। वेदोंद्वारा उच्चारित किये जानेके कारण यह स्तुति वेदोंके समान ही है॥ ७३॥

हे देवो! अब आप विष्णुके शिरोच्छेदका कारण सुनिये; क्योंकि इस लोकमें बिना कारण कोई कार्य कैसे हो सकता है?॥ ७४॥

एक बार अपने समीप बैठी हुई अपनी प्रियतमा सागरपुत्री लक्ष्मीका चित्ताकर्षक मुख देखकर भगवान् विष्णु हँस पड़े॥ ७५॥

उन्होंने सोचा कि भगवान् विष्णु मुझे देखकर क्यों हँस पड़े? मेरे मुखमें विष्णुजीद्वारा दोष देखे जानेका आखिर क्या कारण हो सकता है? और फिर बिना किसी कारणके उनका हँसना सम्भव नहीं हो सकता। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी अन्य सुन्दर स्त्रीको मेरी सौत बना लिया है॥ ७६-७७॥

ततः कोपयुता जाता महालक्ष्मी तमोगुणा।
तामसी तु तदा शक्तिस्तस्या देहे समाविशत्॥ ७८

केनचित्कालयोगेन देवकार्यार्थसिद्धये।
प्रविष्टा तामसी शक्तिस्तस्या देहेऽतिदारुणा॥ ७९

तामस्याविष्टदेहा सा चुकोपातिशयं तदा।
शनकैः समुवाचेदमिदं पततु ते शिरः॥ ८०

स्त्रीस्वभावाच्च भावित्वात्कालयोगाद्विनिर्गतः।
अविचार्य तदा दत्तः शापः स्वसुखनाशनः॥ ८१

सपत्नीसम्भवं दुःखं वैधव्यादधिकं त्विति।
विचिन्त्य मनसेत्युक्तं तामसीशक्तियोगतः॥ ८२

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥ ८३

सशीर्षं वासुदेवं तं करोम्यद्य यथा पुरा।
शिरोऽस्य शापयोगेन निमग्नं लवणाम्बुधौ॥ ८४

अन्यच्च कारणं किञ्चिद्वर्तते सुरसत्तमाः।
भवतां च महत्कार्यं भविष्यति न संशयः॥ ८५

पुरा दैत्यो महाबाहुर्हयग्रीवोऽतिविश्रुतः।
तपश्चक्रे सरस्वत्यास्तीरे परमदारुणम्॥ ८६

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं मायाबीजात्मकं मम।
निराहारो जितात्मा च सर्वभोगविवर्जितः॥ ८७

ध्यायन्मां तामसीं शक्तिं सर्वभूषणभूषिताम्।
एवं वर्षसहस्त्रं च तपश्चक्रेऽतिदारुणम्॥ ८८

इसी विचार-मन्थनके परिणामस्वरूप लक्ष्मीजी कोपाविष्ट हो गयीं और तब उनके शरीरमें तमोगुणसम्पन्न तामसी शक्ति व्याप्त हो गयी॥ ७८॥

तदनन्तर किसी दैवयोगके प्रभावसे देवताओंके कार्य-साधनके उद्देश्यसे ही उनके शरीरमें अत्यन्त उग्र तामसी शक्ति प्रविष्ट हुई॥ ७९॥

तब लक्ष्मीजीके शरीरमें तामसी शक्तिका समावेश हो जानेके कारण वे अत्यन्त क्रोधित हो उठीं और उन्होंने मन्द स्वरमें यह कहा—'तुम्हारा यह सिर कटकर गिर जाय'॥ ८०॥

स्त्रीस्वभावके कारण, भावीवश तथा संयोगसे बिना सोचे-समझे ही लक्ष्मीजीने अपने ही सुखको विनष्ट करनेवाला शाप दे दिया। सौतके व्यवहारादिसे उत्पन्न होनेवाला दुःख वैधव्यसे भी बढ़कर होता है। मनमें ऐसा सोचकर तथा शरीरपर तामसी शक्तिका प्रभाव रहनेके कारण उन्होंने ऐसा कह दिया था॥ ८१-८२॥

मिथ्याचरण, साहस, माया, मूर्खता, अतिलोभ, अपवित्रता तथा दयाहीनता—ये स्त्रियोंके स्वाभाविक दोष हैं॥ ८३॥

अब मैं उन वासुदेवको पूर्वकी भाँति सिरयुक्त कर देती हूँ। इनका सिर पूर्वशापके कारण लवणसागरमें डूब गया है॥ ८४॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! इस घटनाके होनेमें एक अन्य भी कारण है। आपलोगोंका महान् कार्य अवश्य सिद्ध होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८५॥

प्राचीन कालमें महाबाहु एवं अति प्रसिद्ध हयग्रीव नामवाला एक दानव था, जो सरस्वतीनदीके तटपर बहुत कठोर तपस्या करने लगा॥ ८६॥

वह दैत्य आहारका त्यागकर समस्त इन्द्रियोंको वशमें करके तथा सभी प्रकारके भोगैश्वर्यसे दूर रहते हुए मेरे मायाबीजात्मक एकाक्षर मन्त्र (ह्रीं)-का जप करता रहा॥ ८७॥

इस प्रकार समस्त आभूषणोंसे विभूषित मेरी तामसी शक्तिका सतत ध्यान करता हुआ वह एक हजार वर्षोंतक कठोर तप करता रहा॥ ८८॥

तदाहं तामसं रूपं कृत्वा तत्र समागता।
दर्शने पुरतस्तस्य ध्यातं तत्तेन यादृशम्॥ ८९

सिंहोपरि स्थिता तत्र तमवोचं दयान्विता।
वरं ब्रूहि महाभाग ददामि तव सुव्रत॥ ९०

इति श्रुत्वा वचो देव्या दानवः प्रेमपूरितः।
प्रदक्षिणां प्रणामं च चकार त्वरितस्तदा॥ ९१

दृष्ट्वा रूपं मदीयं स प्रेमोत्फुल्लविलोचनः।
हर्षाश्रुपूर्णनयनस्तुष्टाव स च मां तदा॥ ९२

हयग्रीव उवाच

नमो देव्यै महामाये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
भक्तानुग्रहचतुरे कामदे मोक्षदे शिवे॥ ९३

धराम्बुतेजःपवनखपञ्चानां च कारणम्।
त्वं गन्धरसरूपाणां कारणं स्पर्शशब्दयोः॥ ९४

घ्राणं च रसना चक्षुस्त्वक्श्रोत्रमिन्द्रियाणि च।
कर्मेन्द्रियाणि चान्यानि त्वत्तः सर्वं महेश्वरि॥ ९५

देव्युवाच

किं तेऽभीष्टं वरं ब्रूहि वाञ्छितं यद्ददामि तत्।
परितुष्टास्मि भक्त्या ते तपसा चाद्भुतेन च॥ ९६

हयग्रीव उवाच

यथा मे मरणं मातर्न भवेत्तत्तथा कुरु।
भवेयममरो योगी तथाजेयः सुरासुरैः॥ ९७

देव्युवाच

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मर्यादा चेदृशी लोके भवेच्च कथमन्यथा॥ ९८

एवं त्वं निश्चयं कृत्वा मरणे राक्षसोत्तम।
वरं वरय चेष्टं ते विचार्य मनसा किल॥ ९९

उस समय उस दैत्यने जिस रूपमें मेरा ध्यान किया था, उसी तामसरूपमें उसे दर्शन देनेहेतु उसके समक्ष मैं प्रकट हुई॥ ८९॥

उस समय सिंहपर आरूढ़ हुई मैंने दयापूर्वक उससे कहा—हे महाभाग! तुम वरदान माँगो; हे सुव्रत! मैं तुम्हें यथेच्छ वरदान दूँगी॥ ९०॥

वह दानव देवीका यह वचन सुनकर प्रेमविह्वल हो उठा और उसने तत्काल प्रणाम और प्रदक्षिणा की। मेरा रूप देखते ही प्रेमभावनाके कारण प्रफुल्लित नेत्रोंवाला तथा हर्षातिरेकके कारण अश्रुपूरित नयनोंवाला वह दानव मेरी स्तुति करने लगा॥ ९१-९२॥

हयग्रीव बोला—हे महामाये! हे जगत्का सृजन-पालन-संहार करनेवाली! हे भक्तोंपर कृपा करनेमें निपुण! हे सकल कामनाप्रदायिनि! हे मोक्षदायिनि! हे शिवे! आप देवीको नमस्कार है॥ ९३॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश—इन पाँच महाभूतोंका कारण आप ही हैं तथा गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—इन तत्त्वोंका कारण भी आप ही हैं॥ ९४॥

हे महेश्वरि! नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान—ये ज्ञानेन्द्रियाँ तथा हाथ, पैर, वाक्, लिंग, गुदा—ये कर्मेन्द्रियाँ आपसे ही उत्पन्न हैं॥ ९५॥

देवी बोलीं—तुम्हारा क्या अभीष्ट है? जो कुछ भी तुम्हारा अभिलषित वर हो, माँग लो। मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगी; क्योंकि मैं तुम्हारी अनन्य भक्ति तथा अद्भुत तपस्यासे अतिशय प्रसन्न हूँ॥ ९६॥

हयग्रीव बोला—हे माता! आप मुझे वैसा वरदान दें, जिससे मेरी मृत्यु कभी न हो और देव-दानवोंद्वारा अपराजेय रहता हुआ मैं सदाके लिये अमर योगी हो जाऊँ॥ ९७॥

देवी बोलीं—जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म भी निश्चित है। लोकमें स्थापित इस प्रकारकी मर्यादाका उल्लंघन कैसे सम्भव है?॥ ९८॥

अतएव हे दानवश्रेष्ठ! मृत्युको अवश्यम्भावी जानकर अपने मनमें सम्यक् विचार करके तुम अन्य यथेच्छ वर माँग लो॥ ९९॥

हयग्रीव उवाच

हयग्रीवाच्च मे मृत्युर्नान्यस्माजगदम्बिके।
इति मे वाञ्छितं कामं पूरयस्व मनोगतम्॥ १००

देव्युवाच

गृहं गच्छ महाभाग कुरु राज्यं यथासुखम्।
हयग्रीवादृते मृत्युर्न ते नूनं भविष्यति॥ १०१

इति दत्त्वा वरं तस्मा अन्तर्धानं गता तथा।
मुदं परमिकां प्राप्य सोऽपि स्वभवनं गतः॥ १०२

स पीडयति दुष्टात्मा मुनीन् वेदांश्च सर्वशः।
न कोऽपि विद्यते तस्य हन्ताद्य भुवनत्रये॥ १०३

तस्माच्छीर्षं हयस्यास्य समुद्धृत्य मनोहरम्।
देहेऽत्र विशिरोविष्णोस्त्वष्टा संयोजयिष्यति॥ १०४

हयग्रीवोऽथ भगवान्हनिष्यति तमासुरम्।
पापिष्ठं दानवं क्रूरं देवानां हितकाम्यया॥ १०५

सूत उवाच

एवं सुरांस्तदाभाष्य शर्वाणी विरराम ह।
देवास्तदातिसन्तुष्टास्तमूचुर्देवशिल्पिनम्॥ १०६

देवा ऊचुः

कुरु कार्यं सुराणां वै विष्णोः शीर्षाभियोजनम्।
दानवप्रवरं दैत्यं हयग्रीवो हनिष्यति॥ १०७

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां त्वष्टा चातित्वरान्वितः।
वाजिशीर्षं चकर्ताशु खड्गेन सुरसन्निधौ॥ १०८

विष्णोः शरीरे तेनाशु योजितं वाजिमस्तकम्।
हयग्रीवो हरिर्जातो महामायाप्रसादतः॥ १०९

कियता तेन कालेन दानवो मददर्पितः।
निहतस्तरसा संख्ये देवानां रिपुरोजसा॥ ११०

य इदं शुभमाख्यानं शृण्वन्ति भुवि मानवाः।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तास्ते भवन्ति न संशयः॥ १११

हयग्रीव बोला—हे जगदम्बे! मेरी मृत्यु हयग्रीवसे ही हो, किसी अन्यसे नहीं। मेरी इसी मनोवांछित कामनाको आप पूर्ण करें॥ १००॥

देवी बोलीं—हे महाभाग! अपने घर जाकर अब तुम सुखपूर्वक राज्य करो। हयग्रीवके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी तुम्हारी कदापि मृत्यु नहीं होगी॥ १०१॥

उस दैत्यको यह वरदान देकर मैं अन्तर्धान हो गयी और वह भी परम प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १०२॥

वह दुष्टात्मा इस समय मुनिजनों तथा वेदोंको हर प्रकारसे पीड़ित कर रहा है और तीनों लोकोंमें कोई भी ऐसा नहीं है, जो उसका संहार कर सके॥ १०३॥

अतः त्वष्टा इस अश्वका मनोहर सिर अलग करके उसे इन सिरविहीन विष्णुके धड़पर संयोजित कर देंगे॥ १०४॥

तत्पश्चात् देवताओंके कल्याणार्थ भगवान् हयग्रीव उस पापात्मा, अत्यन्त क्रूर तथा दानवी स्वभाववाले महा असुर हयग्रीवका संहार करेंगे॥ १०५॥

सूतजी बोले—देवताओंसे इस प्रकार कहकर भगवती शान्त हो गयीं और इसके बाद देवगण परम सन्तुष्ट होकर देवशिल्पी विश्वकर्मासे बोले॥ १०६॥

देवताओंने कहा—आप विष्णुके धड़पर घोड़ेका सिर जोड़कर देवताओंका कार्य कीजिये। वे भगवान् हयग्रीव ही दानवश्रेष्ठ दैत्यका वध करेंगे॥ १०७॥

सूतजी बोले—देवताओंका यह वचन सुनकर विश्वकर्माने अतिशीघ्रतापूर्वक अपने खड्गसे देवताओंके सामने ही घोड़ेका सिर काटा। तत्पश्चात् उन्होंने घोड़ेका वह सिर अविलम्ब विष्णुभगवान्‌के शरीरमें संयोजित कर दिया और इस प्रकार महामाया भगवतीकी कृपासे वे भगवान् विष्णु हयग्रीव हो गये॥ १०८-१०९॥

कुछ समय बाद उन भगवान् हयग्रीवने अहंकारके मदमें चूर उस देवशत्रु दानवका युद्धभूमिमें अपने तेजसे वध कर दिया॥ ११०॥

इस संसारमें जो प्राणी इस पवित्र कथाका श्रवण करते हैं, वे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ १११॥

महामायाचरित्रञ्च पवित्रं पापनाशनम्।
पठतां शृण्वतां चैव सर्वसम्पत्तिकारकम्॥ ११२

महामाया भगवतीका चरित्र अति पावन है तथा पापोंका नाश कर देता है। इस चरित्रका पाठ तथा श्रवण करनेवाले प्राणियोंको सभी प्रकारकी सम्पदाएँ अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं॥ ११२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे हयग्रीवावतारकथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

शेषशायी भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधु-कैटभकी उत्पत्ति तथा उन दोनोंका ब्रह्माजीसे युद्धके लिये तत्पर होना

ऋषय ऊचुः

सौम्य यच्च त्वया प्रोक्तं शौरेर्युद्धं महार्णवे।
मधुकैटभयोः सार्धं पञ्चवर्षसहस्रकम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सौम्य! आपने मधु और कैटभके साथ भगवान् विष्णुद्वारा महासिन्धुमें पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किये जानेकी पहले चर्चा की थी॥ १॥

कस्मात्तौ दानवौ जातौ तस्मिन्नेकार्णवे जले।
महावीर्यौ दुराधर्षौ देवैरपि सुदुर्जयौ॥ २

महावीर्यसम्पन्न, किसीसे भी पराभूत न होनेवाले तथा देवताओंसे भी अपराजेय वे दोनों दानव उस एकार्णवके जलमें किससे प्रादुर्भूत हुए?॥ २॥

कथं तावसुरौ जातौ कथं च हरिणा हतौ।
तदाचक्ष्व महाप्राज्ञ चरितं परमाद्भुतम्॥ ३

वे असुर क्यों उत्पन्न हुए तथा भगवान्‌के द्वारा उनका वध क्यों किया गया? हे महामते! आप यह परम अद्भुत आख्यान हमको सुनाइये॥ ३॥

श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वं वक्ता च बहुश्रुतः।
दैवाच्चात्रैव संजातः संयोगश्च तथावयोः॥ ४

हमलोग यह कथा सुननेको इच्छुक हैं और आप अति प्रसिद्ध वक्ता हैं। हमारा और आपका यह सम्पर्क दैवयोगसे ही हुआ है॥ ४॥

मूर्खेण सह संयोगो विषादपि सुदुर्जरः।
विज्ञेन सह संयोगः सुधारससमः स्मृतः॥ ५

मूर्खके साथ स्थापित किया गया सम्पर्क विषसे भी अधिक अनिष्टकर होता है और इसके विपरीत विद्वानोंका सम्पर्क पीयूषरसके तुल्य माना गया है॥ ५॥

जीवन्ति पशवः सर्वे खादन्ति मेहयन्ति च।
जानन्ति विषयाकारं व्यवायसुखमद्भुतम्॥ ६

न तेषां सदसज्ज्ञानं विवेको न च मोक्षदः।
पशुभिस्ते समा ज्ञेया येषां न श्रवणादरः॥ ७

पशु भी जीवनयापन करते हैं, वे भी आहार ग्रहण करते हैं, मल-मूत्रादिका विसर्जन करते हैं और विषयासक्त होकर इन्द्रियजन्य सुखकी अनुभूति करते हैं; किंतु उनमें अच्छे-बुरेका लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होता तथा वे मोक्षकी प्राप्ति करानेवाले विवेकसे भी रहित होते हैं। अतएव उत्तम बातोंको सुननेमें जो लोग श्रद्धा-भाव नहीं रखते, उन्हें पशु-तुल्य ही समझना चाहिये॥ ६-७॥

मृगाद्याः पशवः केचिज्जानन्ति श्रावणं सुखम्।
अश्रोत्राः फणिनश्चैव मुमुहुर्नादपानतः॥ ८

पञ्चानामिन्द्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने।
श्रवणाद्वस्तुविज्ञानं दर्शनाच्चित्तरञ्जनम्॥ ९

श्रवणं त्रिविधं प्रोक्तं सात्त्विकं राजसं तथा।
तामसं च महाभाग सुज्ञोक्तं निश्चयान्वितम्॥ १०

सात्त्विकं वेदशास्त्रादि साहित्यं चैव राजसम्।
तामसं युद्धवार्ता च परदोषप्रकाशनम्॥ ११

सात्त्विकं त्रिविधं प्रोक्तं प्रज्ञावद्भिश्च पण्डितैः।
उत्तमं मध्यमं चैव तथैवाधममित्युत॥ १२

उत्तमं मोक्षफलदं स्वर्गदं मध्यमं तथा।
अधमं भोगदं प्रोक्तं निर्णीय विदितं बुधैः॥ १३

साहित्यं चैव त्रिविधं स्वीयायां चोत्तमं स्मृतम्।
मध्यमं वारयोषायां परोढायां तथाधमम्॥ १४

तामसं त्रिविधं ज्ञेयं विद्वद्भिः शास्त्रदर्शिभिः।
आततायिनियुद्धं यत्तदुत्तममुदाहृतम्॥ १५

मध्यमं चापि विद्वेषात्पाण्डवानां तथारिभिः।
अधमं निर्निमित्तं तु विवादे कलहे तथा॥ १६

तदत्र श्रवणं मुख्यं पुराणस्य महामते।
बुद्धिप्रवर्धनं पुण्यं ततः पापप्रणाशनम्॥ १७

तदाख्याहि महाबुद्धे कथां पौराणिकीं शुभाम्।
श्रुतां द्वैपायनात्पूर्वं सर्वार्थस्य प्रसाधिनीम्॥ १८

मृग आदि बहुत-से पशु श्रवण-सुखका अनुभव करते हैं और कानविहीन सर्प भी ध्वनि सुनकर मुग्ध हो जाते हैं॥ ८॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंमें श्रवणेन्द्रिय तथा दर्शनेन्द्रिय—दोनों ही शुभ होती हैं; क्योंकि सुननेसे वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त होता है और देखनेसे मनोरंजन होता है॥ ९॥

हे महाभाग! विद्वानोंने निर्धारित करके कहा है कि सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदानुसार श्रवण तीन प्रकारका होता है॥ १०॥

वेद-शास्त्रादिका श्रवण सात्त्विक, साहित्यका श्रवण राजस तथा युद्धसम्बन्धी बातों एवं दूसरोंकी निन्दाका श्रवण तामस कहा गया है॥ ११॥

प्रज्ञावान् पण्डितोंद्वारा सात्त्विक श्रवणके भी उत्तम, मध्यम तथा अधम—ये तीन प्रकार बताये गये हैं॥ १२॥

उत्तम श्रवण मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला, मध्यम श्रवण स्वर्ग देनेवाला तथा अधम श्रवण भोगोंकी उपलब्धि करानेवाला कहा गया है। विद्वानोंने अच्छी तरह सोच-समझकर ऐसा निर्धारण किया है॥ १३॥

साहित्य भी तीन प्रकारका होता है। जिस साहित्यमें स्वकीया नायिकाका वर्णन हो वह उत्तम, जिस साहित्यमें वेश्याओंका वर्णन हो वह मध्यम तथा जिस साहित्यमें परस्त्रीवर्णन हो, वह अधम साहित्य कहा गया है॥ १४॥

शास्त्रोंके परम निष्णात विद्वानोंने तामस श्रवणके तीन भेद बतलाये हैं। किसी पापाचारीके संहारसे सम्बन्धित युद्धवर्णनका श्रवण उत्तम, कौरव-पाण्डवोंकी तरह द्वेषके कारण शत्रुतामें युद्धवर्णनका श्रवण मध्यम तथा अकारण विवाद एवं कलहसे हुए युद्धके वर्णनका श्रवण अधम कहा गया है॥ १५-१६॥

हे महामते! इनमें पुराणोंके श्रवणकी ही प्रधानता मानी गयी है; क्योंकि इनके श्रवणसे बुद्धिका विकास होता है, पुण्य प्राप्त होता है और समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥ १७॥

अतएव हे महामते! पूर्वकालमें द्वैपायन महर्षि व्याससे सुनी हुई समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाली परम पवित्र पौराणिक कथा कहिये॥ १८॥

सूत उवाच

यूयं धन्या महाभागा धन्योऽहं पृथिवीतले।
येषां श्रवणबुद्धिश्च ममापि कथने किल॥ १९

पुरा चैकार्णवे जाते विलीने भुवनत्रये।
शेषपर्यङ्कसुप्ते च देवदेवे जनार्दने॥ २०

विष्णुकर्णमलोद्भूतौ दानवौ मधुकैटभौ।
महाबलौ च तौ दैत्यौ विवृद्धौ सागरे जले॥ २१

क्रीडमानौ स्थितौ तत्र विचरन्ताावितस्ततः।
तावेकदा महाकायौ क्रीडासक्तौ महार्णवे॥ २२

चिन्तामवापतुश्चित्ते भ्रातराविव संस्थितौ।
नाकारणं भवेत्कार्यं सर्वत्रैषा परम्परा॥ २३

आधेयं तु विनाधारं न तिष्ठति कथञ्चन।
आधाराधेयभावस्तु भाति नो चित्तगोचरः॥ २४

क्व तिष्ठति जलं चेदं सुखरूपं सुविस्तरम्।
केन सृष्टं कथं जातं मग्नावावाञ्जले स्थितौ॥ २५

आवां वा कथमुत्पन्नौ केन वोत्पादितावुभौ।
पितरौ क्वेति विज्ञानं नास्ति कामं तथावयोः॥ २६

सूत उवाच

एवं कामयमानौ तौ जग्मतुर्न विनिश्चयम्।
उवाच कैटभस्तत्र मधुं पार्श्वे स्थितं जले॥ २७

कैटभ उवाच

मधो वामत्र सलिले स्थातुं शक्तिर्महाबला।
वर्तते भ्रातरचला कारणं सा हि मे मता॥ २८

तया ततमिदं तोयं तदाधारं च तिष्ठति।
सा एव परमा देवी कारणञ्च तथावयोः॥ २९

सूतजी बोले—हे महाभाग! इस पृथ्वीलोकमें आप-लोग धन्य हैं और मैं भी धन्य हूँ; क्योंकि आपलोगोंमें कथा-श्रवणके प्रति और मुझमें कथा-वाचनके प्रति विवेक जाग्रत् हुआ है॥ १९॥

पूर्वकालमें प्रलयावस्थामें जब तीनों लोक महाजलराशिमें विलीन हो गये और देवाधिदेव भगवान् विष्णु शेष-शय्यापर सो गये तब विष्णुके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए और वे महाबली दैत्य उस महासागरमें बढ़ने लगे॥ २०-२१॥

वे दोनों दैत्य क्रीडा करते हुए उसी सागरमें इधर-उधर भ्रमण करते रहे। एक बार क्रीडापरायण विशाल शरीरवाले उन दोनों भाइयोंने विचार किया कि बिना किसी कारणके कोई भी कार्य नहीं होता; यह एक सार्वत्रिक परम्परा है॥ २२-२३॥

बिना किसी आधारके आधेयकी सत्ता कदापि सम्भव नहीं है; अतः आधार-आधेयका भाव हमारे मनमें बार-बार आता रहता है॥ २४॥

अति विस्तारवाला तथा सुखद यह जल किस आधारपर स्थित है? किसने इसका सृजन किया? यह किस प्रकार उत्पन्न हुआ और इस जलमें निमग्न हमलोग कैसे स्थित हैं?॥ २५॥

हम दोनों कैसे पैदा हुए और किसने हम दोनोंको उत्पन्न किया? हमारे माता-पिता कौन हैं?—इस बातका भी कोई ज्ञान हम दोनोंको नहीं है॥ २६॥

सूतजी बोले—इस प्रकार चिन्तन करते हुए वे किसी निश्चयपर नहीं पहुँचे, तब कैटभने जलके भीतर अपने पास स्थित मधुसे कहा॥ २७॥

कैटभ बोला—हे भाई मधु! हम दोनोंके इस जलमें स्थित रहनेका कारण कोई अचल महाबली शक्ति है, ऐसा ही मैं मानता हूँ॥ २८॥

उसीसे समुद्रका सम्पूर्ण जल व्याप्त है और उसी शक्तिके आधारपर यह जल टिका हुआ है तथा वे ही परात्परा देवी हम दोनोंकी भी स्थितिका कारण हैं॥ २९॥

एवं विबुध्यमानौ तौ चिन्ताविष्टौ यदासुरौ।
तदाकाशे श्रुतं ताभ्यां वाग्बीजं सुमनोहरम्॥ ३०

गृहीतं च ततस्ताभ्यां तस्याभ्यासो दृढः कृतः।
तदा सौदामनी दृष्टा ताभ्यां खे चोत्थिता शुभा॥ ३१

ताभ्यां विचारितं तत्र मन्त्रोऽयं नात्र संशयः।
तथा ध्यानमिदं दृष्टं गगने सगुणं किल॥ ३२

निराहारौ जितात्मानौ तन्मनस्कौ समाहितौ।
बभूवतुर्विचिन्त्यैवं जपध्यानपरायणौ॥ ३३

एवं वर्षसहस्रं तु ताभ्यां तप्तं महत्तपः।
प्रसन्ना परमा शक्तिर्जाता सा परमा तयोः॥ ३४

खिन्नौ तौ दानवौ दृष्ट्वा तपसे कृतनिश्चयौ।
तयोरनुग्रहार्थाय वागुवाचाशरीरिणी॥ ३५

वरं वां वाञ्छितं दैत्यौ ब्रूतं परमसम्मतम्।
ददामि परितुष्टास्मि युवयोस्तपसा किल॥ ३६

सूत उवाच

इति श्रुत्वा तु तां वाणीं दानवावूचतुस्तदा।
स्वेच्छया मरणं देवि वरं नौ देहि सुव्रते॥ ३७

वागुवाच

वाञ्छितं मरणं दैत्यौ भवेद्वां मत्प्रसादतः।
अजेयौ देवदैत्यैश्च भ्रातरौ नात्र संशयः॥ ३८

सूत उवाच

इति दत्तवरौ देव्या दानवौ मदगर्पितौ।
चक्रतुः सागरे क्रीडां यादोगणसमन्वितौ॥ ३९

कालेन कियता विप्रा दानवाभ्यां यदृच्छया।
दृष्टः प्रजापतिर्ब्रह्मा पद्मासनगतः प्रभुः॥ ४०

इस प्रकार विविध चिन्तन करते हुए वे दोनों दानव जब सचेत हुए तब उन्हें आकाशमें अत्यन्त मनोहारी वाग्बीजस्वरूप (ऐं) वाणी सुनायी पड़ी॥ ३०॥

उसे सुनकर उन दोनोंने सम्यक् रूपसे हृदयंगम कर लिया और वे उसका दृढ़ अभ्यास करने लगे। तदनन्तर उन्हें आकाशमें कौंधती हुई सुन्दर विद्युत् दिखलायी पड़ी॥ ३१॥

तब उन्होंने सोचा कि निःसन्देह यह मन्त्र ही है और यह सगुण ध्यान ही आकाशमें प्रत्यक्ष दृष्टिगत हुआ है॥ ३२॥

तदनन्तर वे दोनों दैत्य आहारका परित्यागकर इन्द्रियोंको आत्मनियन्त्रित करके उसी विद्युज्ज्योतिमें मन केन्द्रित किये हुए समाधिस्थ भावसे जप-ध्यान करनेमें लीन हो गये॥ ३३॥

इस प्रकार उन दोनोंने एक हजार वर्षोंतक कठोर तपस्या की, जिससे वे परात्परा शक्ति उन दोनोंपर अतिशय प्रसन्न हो गयीं॥ ३४॥

घोर तपस्याके लिये अपने निश्चयपर दृढ़ रहनेवाले उन दोनों दानवोंको अत्यन्त परिश्रान्त देखकर उनपर कृपाके निमित्त यह आकाशवाणी हुई॥ ३५॥

हे दैत्यो! तुम दोनोंकी कठोर तपश्चर्यासे मैं परम प्रसन्न हूँ। अतएव तुम दोनों अपना मनोवांछित वरदान माँगो; मैं अवश्य दूँगी॥ ३६॥

सूतजी बोले—तदनन्तर उस आकाशवाणीको सुनकर उन दानवोंने कहा—हे देवि! हमारी मृत्यु हमारे इच्छानुसार हो; हे सुव्रते! हमें आप यही वरदान दीजिये॥ ३७॥

वाणीने कहा—हे दैत्यो! मेरी कृपासे अब तुम दोनों अपनी इच्छासे ही मृत्युको प्राप्त होओगे। दानव और देवता कोई भी तुम दोनों भाइयोंको पराजित नहीं कर सकेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८॥

सूतजी बोले—भगवतीसे ऐसा वरदान प्राप्तकर वे दोनों दैत्य मदोन्मत्त होकर उस महासागरमें जलचर जीवोंके साथ क्रीड़ातत्पर हो गये॥ ३९॥

हे विप्रो! कुछ समय व्यतीत होनेपर उन दानवोंने संयोगवश जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीको कमलके आसनपर बैठे हुए देखा॥ ४०॥

दृष्ट्वा तु मुदितावास्तां युद्धकामौ महाबलौ।
तमूचतुस्तदा तत्र युद्धं नौ देहि सुव्रत॥ ४१

नोचेत्पद्मं परित्यज्य यथेष्टं गच्छ माचिरम्।
यदि त्वं निर्बलश्चासि क्व योग्यं शुभमासनम्॥ ४२

वीरभोग्यमिदं स्थानं कातरोऽसि त्यजाशु वै।
तयोरिति वचः श्रुत्वा चिन्तामाप प्रजापतिः॥ ४३

दृष्ट्वा च बलिनौ वीरौ किं करोमीति तापसः।
चिन्ताविष्टस्तदा तस्थौ चिन्तयन्मनसा तदा॥ ४४

उन्हें देखकर युद्धकी लालसासे वे दोनों महाबली दैत्य प्रसन्न हो उठे और ब्रह्माजीसे बोले—हे सुव्रत! आप हमलोगोंके साथ युद्ध कीजिये; अन्यथा यह पद्मासन छोड़कर आप अविलम्ब जहाँ जाना चाहें, वहाँ चले जाइये। यदि आप दुर्बल हैं तो इस शुभ आसनपर बैठनेका आपका अधिकार कहाँ! कोई वीर ही इस आसनका उपभोग कर सकता है। आप कायर हैं, अतः अतिशीघ्र इस आसनको छोड़ दीजिये। उन दोनों दैत्योंकी यह बात सुनकर प्रजापति ब्रह्मा चिन्तामें पड़ गये। तब उन दोनों बलशाली वीरोंको देखकर ब्रह्माजी चिन्ताकुल हो उठे और मन-ही-मन सोचने लगे कि मुझ-जैसा तपस्वी इनका क्या कर सकता है?॥ ४१—४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
मधुकैटभयोर्युद्धोद्योगवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीका भगवान् विष्णु तथा भगवती योगनिद्राकी स्तुति करना

सूत उवाच

तौ वीक्ष्य बलिनौ ब्रह्मा तदोपायानचिन्तयत्।
सामदानभिदादींश्च युद्धान्तान्सर्वतन्त्रवित्॥ १

न जानेऽहं बलं नूनमेतयोर्वा यथातथम्।
अज्ञाते तु बले कामं नैव युद्धं प्रशस्यते॥ २

स्तुतिं करोमि चेदद्य दुष्टयोर्मदमत्तयोः।
प्रकाशितं भवेन्नूनं निर्बलत्वं मया स्वयम्॥ ३

वधिष्यति तदैकोऽपि निर्बलत्वे प्रकाशिते।
दानं नैवाद्य योग्यं वा भेदः कार्यो मया कथम्॥ ४

विष्णुं प्रबोधयाम्यद्य शेषे सुप्तं जनार्दनम्।
चतुर्भुजं महावीर्यं दुःखहा स भविष्यति॥ ५

इति सञ्चिन्त्य मनसा पद्मनालगतोऽब्जजः।
जगाम शरणं विष्णुं मनसा दुःखनाशकम्॥ ६

सूतजी बोले—तदनन्तर उन दोनों वीरोंको देखकर सर्वशास्त्रवेत्ता ब्रह्माजी साम, दान, भेद आदि नीतियोंके माध्यमसे युद्धकी समाप्तिके उपायोंको सोचने लगे॥ १॥

इनके वास्तविक बलका मुझे कोई ज्ञान नहीं है। नीतिके अनुसार जिसके बलकी जानकारी न हो, उसके साथ युद्ध करना कदापि उचित नहीं होता॥ २॥

यदि मैं इस समय इन मदोन्मत्त दुष्ट दानवोंकी स्तुति करता हूँ तो इससे स्वयं मेरे द्वारा अपनी निर्बलता प्रकाशित होगी। निर्बलता प्रदर्शित करनेपर इनमेंसे कोई एक ही मेरा वध कर देगा। इनके साथ इस समय मैं न तो दाननीति और न तो भेदनीतिको ही उपयुक्त समझ रहा हूँ। अतः इस समय उचित यही है कि मैं शेषनागपर सोये हुए चतुर्भुज एवं पराक्रमी भगवान् विष्णुको जगाऊँ। वे मेरी विपत्ति अवश्य ही दूर करेंगे॥ ३—५॥

मनमें ऐसा सोचकर कमलनालका आश्रय लेकर पद्मयोनि ब्रह्माजी मन-ही-मन दुःखनाशक विष्णुके शरणागत हो गये॥ ६॥

तुष्टाव बोधनार्थं तं शुभैः सम्बोधनैर्हरिम्।
नारायणं जगन्नाथं निस्पन्दं योगनिद्रया॥ ७

ब्रह्मोवाच

दीननाथ हरे विष्णो वामनोत्तिष्ठ माधव।
भक्तार्तिहृद्धृषीकेश सर्वावास जगत्पते॥ ८

अन्तर्यामिन्नमेयात्मन्वासुदेव जगत्पते।
दुष्टारिनाशनैकाग्रचित्त चक्रगदाधर॥ ९

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वशक्तिसमन्वित।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ देवेश दुःखनाशन पाहि माम्॥ १०

विश्वम्भर विशालाक्ष पुण्यश्रवणकीर्तन।
जगद्योने निराकार सर्गस्थित्यन्तकारक॥ ११

इमौ दैत्यौ महाराज हन्तुकामौ मदोद्धतौ।
न जानास्यखिलाधार कथं मां सङ्कटे गतम्॥ १२

उपेक्षसेऽतिदुःखार्तं यदि मां शरणं गतम्।
पालकत्वं महाविष्णो निराधारं भवेत्ततः॥ १३

एवं स्तुतोऽपि भगवान् न बुबोध यदा हरिः।
योगनिद्रासमाक्रान्तस्तदा ब्रह्मा ह्यचिन्तयत्॥ १४

नूनं शक्तिसमाक्रान्तो विष्णुर्निद्रावशं गतः।
जजागार न धर्मात्मा किं करोम्यद्य दुःखितः ॥ १५

हन्तुकामावुभौ प्राप्तौ दानवौ मदगर्वितौ।
किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मे शरणं क्वचित्॥ १६

इति संचिन्त्य मनसा निश्चयं प्रतिपद्य च।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ १७

विचार्य मनसाप्येवं शक्तिर्मे रक्षणे क्षमा।
यया ह्यचेतनो विष्णुः कृतोऽस्ति स्पन्दवर्जितः॥ १८

वे शुभ सम्बोधनोंके द्वारा योगनिद्राके कारण स्पन्दनरहित उन नारायण जगत्पति भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे दीनानाथ! हे हरे! हे विष्णो! हे वामन! हे माधव! भक्तोंकी पीड़ा हरनेवाले हे हृषीकेश! हे सर्वव्यापिन्! हे जगत्पते! हे अनन्तस्वरूप! हे वासुदेव! हे अन्तर्यामिन्! हे जगत्के स्वामी! हे दुष्टों तथा शत्रुओंका संहार करनेमें एकाग्र चित्तवाले! हे चक्रधर! हे गदाधर! हे सर्वज्ञ! हे सर्वलोकेश! हे सर्वशक्तिसम्पन्न! हे देवेश! हे दुःखनाशन! अब आप उठिये, उठिये और मेरी रक्षा कीजिये॥ ८—१०॥

हे विश्वम्भर! हे विशालाक्ष! हे पुण्यश्रवण-कीर्तन! हे जगत्स्रष्टा! हे निराकार! हे सृष्टि-पालन-संहारके कारक! हे महाराज! ये दोनों मदोन्मत्त दानव मेरा वध करना चाहते हैं। हे सर्वाधार! मैं इस समय संकटग्रस्त हूँ; क्या आप यह नहीं जानते?॥ ११-१२॥

हे महाविष्णो! मैं इस समय दुःखसे अत्यधिक पीड़ित हूँ और आपके शरणागत हूँ। ऐसी स्थितिमें यदि आप मेरी उपेक्षा करेंगे तो आपका जगत्पालनका नियम निरर्थक हो जायगा॥ १३॥

इस प्रकार स्तुति करनेपर भी जब योगनिद्रामें लीन भगवान् विष्णु नहीं जगे, तब ब्रह्माजीने विचार किया कि भगवान् विष्णु अवश्य ही शक्तिके अधीन होकर योगनिद्राके वशमें हो गये हैं, जिससे ये धर्मात्मा नहीं जग रहे हैं। अब दुःखसे पीड़ित मैं इस समय क्या करूँ? अहंकारके मदमें चूर वे दोनों दानव मुझे मारनेके उद्देश्यसे यहाँ आ गये हैं। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? अब तो मुझे शरण देनेवाला कोई भी नहीं है॥ १४—१६॥

इस प्रकार मन-ही-मन सोचते हुए वे एक निष्कर्षपर पहुँचकर एकाग्रचित्त हो उन भगवती योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

उन्होंने अपने मनमें यह दृढ विचार रख लिया कि वे ही महाशक्ति मेरी रक्षा करनेमें समर्थ हैं; जिन्होंने भगवान् विष्णुको भी चेतनाहीन तथा निःस्पन्द कर दिया है॥ १८॥

व्यसुर्यथा न जानाति गुणाञ्छब्दादिकानिह।
तथा हरिर्न जानाति निद्रामीलितलोचनः॥ १९

न जहाति यतो निद्रां बहुधा संस्तुतोऽप्यसौ।
मन्ये नास्य वशे निद्रा निद्रयायं वशीकृतः॥ २०

यो यस्य वशमापन्नः स तस्य किङ्करः किल।
तस्माच्च योगनिद्रेयं स्वामिनी मापतेर्हरेः॥ २१

सिन्धुजाया अपि वशे यया स्वामी वशीकृतः।
नूनं जगदिदं सर्वं भगवत्या वशीकृतम्॥ २२

अहं विष्णुस्तथा शम्भुः सावित्री च रमाप्युमा।
सर्वे वयं वशे यस्या नात्र किञ्चिद्विचारणा॥ २३

हरिरप्यवशः शेते यथान्यः प्राकृतो जनः।
ययाभिभूतः का वार्ता किलान्येषां महात्मनाम्॥ २४

स्तौम्यद्य योगनिद्रां वै यया मुक्तो जनार्दनः।
घटयिष्यति युद्धे च वासुदेवः सनातनः॥ २५

इति कृत्वा मतिं ब्रह्मा पद्मनालस्थितस्तदा।
तुष्टाव योगनिद्रां तां विष्णोरङ्गेषु संस्थिताम्॥ २६

ब्रह्मोवाच

देवि त्वमस्य जगतः किल कारणं हि
ज्ञातं मया सकलवेदवचोभिरम्ब।
यद्विष्णुरप्यखिललोकविवेककर्ता
निद्रावशं च गमितः पुरुषोत्तमोऽद्य॥ २७

इस लोकमें जैसे मृत प्राणीको शब्द आदि गुणोंका आभास नहीं हो पाता, उसी प्रकार निद्राके कारण अपने नेत्र मूँदे हुए भगवान् विष्णु कुछ भी जान सकनेमें असमर्थ हैं॥ १९॥

मेरे द्वारा नानाविध स्तुति किये जानेपर भी भगवान् विष्णु निद्राका त्याग नहीं कर रहे हैं। अतएव मैं मानता हूँ कि निद्रा इनके अधीन नहीं है, अपितु निद्राके द्वारा ही ये वशीभूत कर लिये गये हैं॥ २०॥

जो प्राणी जिस किसीके वशमें हो जाता है, वह निश्चय ही उसीका दास बन जाता है। अतः ये योगनिद्रा ही लक्ष्मीपति विष्णुकी स्वामिनी हो गयी हैं॥ २१॥

जिस शक्तिके द्वारा सिन्धुपुत्री लक्ष्मीके वशमें रहनेवाले भगवान् विष्णु भी वशीभूत कर लिये गये हैं, उन्हीं भगवतीने निश्चितरूपसे इस जगत्को अपने अधीन कर रखा है॥ २२॥

मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, सावित्री, लक्ष्मी एवं पार्वती—हम सभी उन्हींके अधीन हैं; इसमें कुछ भी संशय नहीं है॥ २३॥

भगवान् विष्णु भी जिस शक्तिके वशीभूत होकर विवश हुए-से उसी प्रकार सो रहे हैं जिस प्रकार एक सामान्य प्राणी सोता है, तब अन्य महापुरुषोंके विषयमें क्या कहा जाय?॥ २४॥

अतः अब मैं योगनिद्राका ही स्तवन करूँगा जिनकी कृपासे निद्रामुक्त होकर जनार्दन, सनातन भगवान् वासुदेव युद्धके लिये उद्योग करेंगे॥ २५॥

तदनन्तर ऐसा निश्चयकर कमलनालपर विराजमान ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके अंगोंमें व्याप्त उन योगनिद्राकी स्तुति करने लगे॥ २६॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! इस जगत्का कारण आप ही हैं; वेदवाक्योंसे मुझे ऐसा ज्ञात हुआ है। हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे सम्पूर्ण विश्वको ज्ञान देनेवाले पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु भी इस समय योगनिद्राके वशमें हो गये हैं॥ २७॥

को वेद ते जननि मोहविलासलीलां
मूढोऽस्म्यहं हरिरयं विवशश्च शेते।
ईदृक्तया सकलभूतमनोनिवासे
विद्वत्तमो विबुधकोटिषु निर्गुणायाः॥ २८

सांख्या वदन्ति पुरुषं प्रकृतिं च यां तां
चैतन्यभावरहितां जगतश्च कर्त्रीम्।
किं तादृशासि कथमत्र जगन्निवास-
श्चैतन्यताविरहितो विहितस्त्वयाद्य॥ २९

नाट्यं तनोषि सगुणा विविधप्रकारं
नो वेत्ति कोऽपि तव कृत्यविधानयोगम्।
ध्यायन्ति यां मुनिगणा नियतं त्रिकालं
सन्ध्येति नाम परिकल्प्य गुणान् भवानि॥ ३०

बुद्धिर्हि बोधकरणा जगतां सदा त्वं
श्रीश्चासि देवि सततं सुखदा सुराणाम्।
कीर्तिस्तथा मतिधृती किल कान्तिरेव
श्रद्धा रतिश्च सकलेषु जनेषु मातः॥ ३१

नातः परं किल वितर्कशतैः प्रमाणं
प्राप्तं मया यदिह दुःखगतिं गतेन।
त्वं चात्र सर्वजगतां जननीति सत्यं
निद्रालुतां वितरता हरिणात्र दृष्टम्॥ ३२

त्वं देवि वेदविदुषामपि दुर्विभाव्या
वेदोऽपि नूनमखिलार्थतया न वेद।
यस्मात्त्वदुद्भवमसौ श्रुतिराप्नुवाना
प्रत्यक्षमेव सकलं तव कार्यमेतत्॥ ३३

कस्ते चरित्रमखिलं भुवि वेद धीमा-
न्नाहं हरिर्न च भवो न सुरास्तथान्ये।
ज्ञातुं क्षमाश्च मुनयो न ममात्मजाश्च
दुर्वाच्य एव महिमा तव सर्वलोके॥ ३४

हे माता! समग्र लोकको मोहित कर देनेवाली आपकी लीलाको कौन जान सकता है? आपकी इस लीलासे मैं तो मूढ़ हो गया हूँ और ये विष्णु परवश होकर सो रहे हैं। हे समस्त प्राणियोंके मनमें निवास करनेवाली भगवति! करोड़ों देवताओंमें भी ऐसा कौन विज्ञ है, जो ऐसी आप निर्गुणाका रहस्य जान सके?॥ २८॥

सांख्यशास्त्रके विद्वान् पुरुष और प्रकृतिसे जगत्की उत्पत्ति मानते हैं। इनमें वे अचेतन प्रकृतिको ही जगत्को उत्पन्न करनेवाली बताते हैं। तो फिर क्या आप वैसी ही अचेतन हैं? किंतु यदि आप जड होतीं तो इन जगदाधार विष्णुको इस समय चेतनारहित कैसे कर देतीं?॥ २९॥

हे महामाये! आप सगुण रूप धारणकर नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं, अतः आपके रहस्यमय कार्योंका सम्यक् ज्ञान करनेमें भला कौन समर्थ है? हे भवानि! मुनिगण 'सन्ध्या' नामसे आपके गुणोंको परिकल्पित करके तीनों समय (प्रातः, मध्याह्न, सायं) निश्चितरूपसे आपका ही ध्यान करते हैं॥ ३०॥

हे देवि! आप बुद्धिस्वरूपा होकर समस्त लोकको ज्ञान देती हैं और लक्ष्मीरूपसे सदैव देवताओंको सुख प्रदान करती हैं। हे माता! सम्पूर्ण प्राणियोंमें कीर्ति, मति, धृति, कान्ति, श्रद्धा एवं रतिरूपमें आप ही विद्यमान हैं॥ ३१॥

हे देवि! प्रगाढ निद्राके वशीभूत विष्णुको देखकर विषम दुःखकी स्थितिको प्राप्त हुए मुझको यह प्रमाण मिल गया कि आप ही निस्सन्देह सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। इस विषयमें अब सैकड़ों तर्क-वितर्ककी कोई आवश्यकता नहीं है॥ ३२॥

हे देवि! आप वेदशास्त्रोंके पारदर्शी विद्वानोंकी समझसे भी परे हैं और वेद भी आपको पूर्णरूपसे नहीं जानते; क्योंकि उन वेदोंकी उत्पत्तिका भी कारण आप ही हैं। आपका यह सम्पूर्ण रहस्यमय क्रिया-कलाप सबको प्रत्यक्ष दिखायी देता है॥ ३३॥

इस संसारमें कौन ऐसा बुद्धिमान् प्राणी है, जो आपके सम्पूर्ण चरित्रको जाननेमें समर्थ है? स्वयं मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शंकर, देवगण, अन्य मुनिवृन्द तथा मेरे तत्त्वज्ञ पुत्र-लोग भी उसे नहीं जान सके हैं। सम्पूर्ण लोकमें आपकी महिमाका वर्णन कोई नहीं कर सकता है॥ ३४॥

यज्ञेषु देवि यदि नाम न ते वदन्ति
स्वाहेति वेदविदुषो हवने कृतेऽपि।
न प्राप्नुवन्ति सततं मखभागधेयं
देवास्त्वमेव विबुधेष्वपि वृत्तिदासि॥ ३५

त्राता वयं भगवति प्रथमं त्वया वै
देवारिसम्भवभयादधुना तथैव।
भीतोऽस्मि देवि वरदे शरणं गतोऽस्मि
घोरं निरीक्ष्य मधुना सह कैटभं च॥ ३६

नो वेत्ति विष्णुरधुना मम दुःखमेत-
ज्जाने त्वयात्मविवशीकृतदेहयष्टिः।
मुञ्चादिदेवमथवा जहि दानवेन्द्रौ
यद्रोचते तव कुरुष्व महानुभावे॥ ३७

जानन्ति ये न तव देवि परं प्रभावं
ध्यायन्ति ते हरिहरावपि मन्दचित्ताः।
ज्ञातं मयाद्य जननि प्रकटं प्रमाणं
यद्विष्णुरप्यतितरां विवशोऽथ शेते॥ ३८

सिन्धूद्भवापि न हरिं प्रतिबोधितुं वै
शक्ता पतिं तव वशानुगमद्य शक्त्या।
मन्ये त्वया भगवति प्रसभं रमापि
प्रस्वापिता न बुबुधे विवशीकृतेव॥ ३९

धन्यास्त एव भुवि भक्तिपरास्तवांघ्रौ
त्यक्त्वान्यदेवभजनं त्वयि लीनभावाः।
कुर्वन्ति देवि भजनं सकलं निकामं
ज्ञात्वा समस्तजननीं किल कामधेनुम्॥ ४०

धीकान्तिकीर्तिशुभवृत्तिगुणादयस्ते
विष्णोर्गुणास्तु परिहृत्य गताः क्व चाद्य।
बन्दीकृतो हरिरसौ ननु निद्रयात्र
शक्त्या तवैव भगवत्यतिमानवत्याः॥ ४१

हे देवि! यदि यज्ञोंमें वैदिक विद्वान् हवनकार्यके समय आपके 'स्वाहा' नामका उच्चारण न करें तो देवगण अपना यज्ञभाग नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव आप ही देवताओंका भी भरण-पोषण करती हैं॥ ३५॥

हे भगवति! आपने पहले भी समय-समयपर दैत्योंद्वारा उत्पन्न किये गये भयोंसे हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार इस समय भी हमारी रक्षा करें, मैं आपकी शरणमें हूँ। हे देवि! हे वरदे! मधुके साथ भयानक इस कैटभको देखकर मैं अत्यन्त भयाक्रान्त हूँ॥ ३६॥

आपकी योगमायाने भगवान् विष्णुके शरीरके सभी अवयवोंको अपने वशमें कर रखा है, अतः वे मेरी इस विषम विपत्तिको नहीं जान रहे हैं। हे महानुभावे! या तो इस समय आप आदिदेवको मुक्त कर दें अथवा इन दोनों महादैत्योंका वध कर दें; इनमेंसे आपको जो उचित जान पड़े, वह कीजिये॥ ३७॥

हे देवि! जो मन्दबुद्धि प्राणी आपकी विशिष्ट महिमाको नहीं जानते, वे ही विष्णु तथा शंकर आदिकी आराधना करते हैं। हे जननि! आज प्रत्यक्ष प्रमाणके रूपमें मैं आपकी महिमा देख रहा हूँ कि भगवान् विष्णु भी प्रगाढ़ निद्राके वशीभूत होकर सो रहे हैं॥ ३८॥

आपकी शक्तिके वशमें पड़े अपने पति भगवान् विष्णुको इस समय सिन्धुसुता लक्ष्मी भी नहीं जगा सकतीं; क्योंकि हे भगवति! मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आपने ही बलपूर्वक लक्ष्मीको भी शयन करनेके लिये विवश कर दिया है, जिससे वे भी नहीं जग रही हैं॥ ३९॥

हे देवि! इस संसारमें वे ही प्राणी धन्य हैं जो आपके चरणोंमें भक्तिभाव रखते हैं, अन्य देवताओंकी उपासना त्यागकर आपके ध्यानमें लीन रहते हैं और आपको ही सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाली कामधेनु तथा समस्त लोककी जननी मानकर आपका भजन करते हैं॥ ४०॥

बुद्धि, कान्ति, यश, शुभ वृत्ति आदि गुण इस समय भगवान् विष्णुका परित्यागकर कहाँ चले गये? हे भगवति! अतिशय मानवाली आपकी ही शक्तिसे ये भगवान् विष्णु इस समय निद्राके वशवर्ती हो गये हैं॥ ४१॥

त्वं शक्तिरेव जगतामखिलप्रभावा
त्वन्निर्मितं च सकलं खलु भावमात्रम्।
त्वं क्रीडसे निजविनिर्मितमोहजाले
नाट्ये यथा विहरते स्वकृते नटो वै॥ ४२

विष्णुस्त्वया प्रकटितः प्रथमं युगादौ
दत्ता च शक्तिरमला खलु पालनाय।
त्रातं च सर्वमखिलं विवशीकृतोऽद्य
यद्रोचते तव तथाम्ब करोषि नूनम्॥ ४३

सृष्ट्वात्र मां भगवति प्रविनाशितुं चे-
न्नेच्छास्ति ते कुरु दयां परिहृत्य मौनम्।
कस्मादिमौ प्रकटितौ किल कालरूपौ
यद्वा भवानि हसितुं नु किमिच्छसे माम्॥ ४४

ज्ञातं मया तव विचेष्टितमद्भुतं वै
कृत्वाखिलं जगदिदं रमसे स्वतन्त्रा।
लीनं करोषि सकलं किल मां तथैव
हन्तुं त्वमिच्छसि भवानि किमत्र चित्रम्॥ ४५

कामं कुरुष्व वधमद्य ममैव मात-
र्दुःखं न मे मरणजं जगदम्बिकेऽत्र।
कर्ता त्वयैव विहितः प्रथमं स चायं
दैत्याहतोऽथ मृत इत्ययशो गरिष्ठम्॥ ४६

उत्तिष्ठ देवि कुरु रूपमिहाद्भुतं त्वं
मां वा त्विमौ जहि यथेच्छसि बाललीले।
नो चेत्प्रबोधय हरिं निहनेदिमौ य-
स्त्वत्साध्यमेतदखिलं किल कार्यजातम्॥ ४७

अखिल प्रभाववाली आप ही जगत्‌की एकमात्र शक्ति हैं और आपके द्वारा रचा गया सब कुछ आपकी लीला ही है। जैसे कोई नट अपने ही द्वारा निर्मित नाट्यमें अभिनय करता है, उसी प्रकार आप भी अपने ही द्वारा निर्मित मोहजालमें नानाविध लीलाएँ करती रहती हैं॥ ४२॥

युगके आरम्भमें आपने सर्वप्रथम विष्णुका सृजन किया, सबके पालनके लिये उन्हें निर्मल शक्ति प्रदान की और इस प्रकार समस्त जगत्‌की रक्षा की। उन्हीं भगवान् विष्णुको निद्राभिभूतकर आपने इस समय सुला दिया है। हे अम्ब! आपको जो उचित जान पड़ता है, आप निश्चितरूपसे वही किया करती हैं॥ ४३॥

हे भगवति! यदि आप मेरी सृष्टि करके मुझे नष्ट कर देनेकी इच्छा नहीं रखतीं तो अपना यह मौन त्यागकर मेरे ऊपर दया कीजिये। हे भवानि! आपने कालरूप इन दोनों दानवोंको किसलिये उत्पन्न किया है? कहीं आपने मेरे उपहासके लिये तो ऐसा नहीं किया है?॥ ४४॥

हे भवानि! अब मुझे आपके अद्भुत चरित्रका ज्ञान हो गया। समस्त जगत्‌की रचना करके आप उसीमें स्वेच्छासे विहार करती हैं और पुनः उसे अपनेमें जैसे समाहित कर लेती हैं, उसी प्रकार मुझे नष्ट कर देना चाहती हैं तो इसमें कोई विचित्र बात नहीं है॥ ४५॥

हे माता! यदि आप यही चाहती हैं तो मेरा वध कर दीजिये। हे जगदम्बे! मुझे मरणजनित दुःखकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। हाँ, आपको यह महान् कलंक अवश्य लगेगा कि आपने जिसे सर्वप्रथम सृष्टिकर्ता बनाया, उसे दैत्यने मार डाला॥ ४६॥

हे देवि! अब आप उठिये और अपना अद्भुत रूप धारण कीजिये। हे बाललीलाकारिणि! आप अपने इच्छानुरूप चाहे मुझे मार दें अथवा इन दोनों दैत्योंको मार दें या तो भगवान् विष्णुको जगा दें, जिससे वे इन दोनोंका वध कर दें। यह सारा काम करनेमें आप ही समर्थ हैं॥ ४७॥

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा।
निःसृत्य हरिदेहात्तु संस्थिता पार्श्वतस्तदा॥ ४८

त्यक्त्वाङ्गानि च सर्वाणि विष्णोरतुलतेजसः।
निर्गता योगनिद्रा सा नाशाय च तयोस्तदा॥ ४९

विस्पन्दितशरीरोऽसौ यदा जातो जनार्दनः।
धाता परमिकां प्राप्तो मुदं दृष्ट्वा हरिं ततः॥ ५०

सूतजी बोले—ब्रह्माजीद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर विष्णुके शरीरसे निकलकर तामसीदेवी उनके समीप खड़ी हो गयीं॥ ४८॥

तदनन्तर अतुलित तेजवाले विष्णुके समस्त अंगोंको छोड़कर योगनिद्रा उन दोनोंका संहार करनेके लिये बाहर निकल आयीं॥ ४९॥

[योगमायाके प्रभावसे मुक्त हुए] वे जनार्दन जब चेतनायुक्त शरीरवाले हुए तब उन विष्णुको देखकर ब्रह्माजीको परम प्रसन्नता हुई॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
विष्णुप्रबोधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भगवान् विष्णु योगमायाके अधीन क्यों हो गये—ऋषियोंके इस प्रश्नके उत्तरमें सूतजीद्वारा उन्हें आद्याशक्ति भगवतीकी महिमा सुनाना

ऋषय ऊचुः

सन्देहोऽत्र महाभाग कथायां तु महाद्भुतः।
वेदशास्त्रपुराणैश्च निश्चितं तु सदा बुधैः॥ १

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवाः सनातनाः।
नातः परतरं किञ्चिद् ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महामते॥ २

ब्रह्मा सृजति लोकान्वै विष्णुः पात्यखिलं जगत्।
रुद्रः संहरते काले त्रय एतेऽत्र कारणम्॥ ३

एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
रजःसत्त्वतमोभिश्च संयुताः कार्यकारकाः॥ ४

तेषां मध्ये हरिः श्रेष्ठो माधवः पुरुषोत्तमः।
आदिदेवो जगन्नाथः समर्थः सर्वकर्मसु॥ ५

नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति विष्णोरतुलतेजसः।
स कथं स्वापितः स्वामी विवशो योगमायया॥ ६

क्व गतं तस्य विज्ञानं जीवतश्चेष्टितं कुतः।
सन्देहोऽयं महाभाग कथयस्व यथाशुभम्॥ ७

ऋषिगण बोले—हे महाभाग! हमें इस कथानकमें महान् अद्भुत संशय है। हे महामते! वेदों, शास्त्रों, पुराणों तथा बुद्धिमान् लोगोंकी सदासे यह अवधारणा रही है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शम्भु—ये तीनों देवता सनातन हैं और इस ब्रह्माण्डमें इनसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है॥ १-२॥

ब्रह्मा जगत्का सृजन करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शंकर प्रलयकालमें संहार करते हैं। ये तीनों ही इसमें कारण हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों देवता एक ही मूर्तिके तीन स्वरूप हैं। ये लोग क्रमशः रज, सत्त्व और तम-गुणोंसे युक्त होकर अपना-अपना कार्य करते हैं॥ ४॥

उन तीनोंमें माधव, पुरुषोत्तम, आदिदेव जगन्नाथ श्रीहरि श्रेष्ठ हैं और वे सभी कार्य सम्पादित करनेमें समर्थ हैं। अनुपम तेजवाले विष्णुसे बढ़कर सर्वसमर्थ अन्य कोई भी नहीं है। उन जगत्पति विष्णुको योगमायाने विवश करके भला कैसे सुला दिया?॥ ५-६॥

उस समय उन विष्णुकी चेतना कहाँ चली गयी और उनके जीवनकी चेष्टा कहाँ लुप्त हो गयी? हे महाभाग! यह महान् सन्देह उपस्थित है; आप इस विषयमें यथोचित बतानेकी कृपा करें॥ ७॥

का सा शक्तिः पुरा प्रोक्ता यया विष्णुर्जितः प्रभुः।
कुतो जाता कथं शक्ता का शक्तिर्वद सुव्रत॥ ८

यस्तु सर्वेश्वरो विष्णुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
परमात्मा परानन्दः सच्चिदानन्दविग्रहः॥ ९

सर्वकृत्सर्वभृत्स्रष्टा विरजः सर्वगः शुचिः।
स कथं निद्रया नीतः परतन्त्रः परात्परः॥ १०

एतदाश्चर्यभूतो हि सन्देहो नः परन्तप।
छिन्धि ज्ञानासिना सूत व्यासशिष्य महामते॥ ११

सूत उवाच

कः सन्देहं भिनत्त्येनं त्रैलोक्ये सचराचरे।
मुह्यन्ति मुनयः कामं ब्रह्मपुत्राः सनातनाः॥ १२

नारदः कपिलश्चैव प्रश्नेऽस्मिन्मुनिसत्तमाः।
किं ब्रवीमि महाभागा दुर्घटेऽस्मिन्विमर्शने॥ १३

देवेषु विष्णुः कथितः सर्वगः सर्वपालकः।
यतो विराडिदं सर्वमुत्पन्नं सचराचरम्॥ १४

ते सर्वे समुपासन्ते नत्वा देवं परात्परम्।
नारायणं हृषीकेशं वासुदेवं जनार्दनम्॥ १५

तथा केचिन्महादेवं शङ्करं शशिशेखरम्।
त्रिनेत्रं पञ्चवक्त्रं च शूलपाणिं वृषध्वजम्॥ १६

तथा वेदेषु सर्वेषु गीतं नाम्ना त्रियम्बकम्।
कपर्दिनं पञ्चवक्त्रं गौरीदेहार्धधारिणम्॥ १७

कैलासवासनिरतं सर्वशक्तिसमन्वितम्।
भूतवृन्दयुतं देवं दक्षयज्ञविघातकम्॥ १८

जिस शक्तिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं कि उसने भगवान् विष्णुको भी पराभूत कर दिया था, वह कौन-सी शक्ति है? वह शक्ति कहाँसे उद्भूत हुई, शक्तिसम्पन्न कैसे हुई तथा उसका स्वरूप क्या है? हे सुव्रत! यह सब हमें स्पष्टरूपसे बतलाइये॥ ८॥

जो विष्णु हैं वे तो सबके ईश्वर, वासुदेव, जगत्के गुरु, परमात्मा, परम आनन्दस्वरूप तथा सच्चिदानन्दकी साक्षात् मूर्ति हैं; सब कुछ करनेमें समर्थ, सबका पालन करनेवाले, सभी चराचरका सृजन करनेवाले, रजोगुणसे रहित, सर्वव्यापी और पवित्र हैं। वे परात्पर विष्णु निद्राकी परतन्त्रतामें कैसे आबद्ध हो गये?॥ ९-१०॥

हे परन्तप! हमें इस प्रकारका आश्चर्यजनक सन्देह है। हे सूत! हे व्यासशिष्य! हे महामते! आप अपने ज्ञानरूपी खड्गसे हमारे इस सन्देहको नष्ट कर दीजिये॥ ११॥

सूतजी बोले—हे मुनिजन! इस चराचर जगत्में कौन ऐसा है, जो इस शंकाका समाधान कर सके, जबकि ब्रह्माके पुत्र सनकादि मुनि तथा नारद, कपिल आदि भी इस विषयमें मोहित हो जाते हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! हे महाभाग! तब इस जटिल समस्याके समाधानमें मैं क्या कहूँ?॥ १२-१३॥

देवताओंमें भगवान् विष्णु ही सर्वव्यापी एवं सभी भूतोंके रक्षक कहे गये हैं। उन्हींसे इस चराचर समस्त विराट् संसारकी सृष्टि हुई है॥ १४॥

वे सभी देवता परात्पर परमात्माको नमस्कार करके नारायण, हृषीकेश, वासुदेव, जनार्दनरूपमें उनकी उपासना करते हैं॥ १५॥

कुछ लोग महादेव, शंकर, शशिशेखर, त्रिनेत्र, पंचवक्त्र, शूलपाणि और वृषभध्वजके रूपमें उन्हींकी उपासना करते हैं॥ १६॥

सभी वेदोंमें भी त्रियम्बक (त्र्यम्बक), कपर्दी, पंचवक्त्र, गौरीदेहार्धधारी, कैलासवासी, सर्वशक्ति-समन्वित, भूतगणोंसे सेवित एवं दक्षयज्ञविध्वंसक आदि नामोंसे उनका गुणगान किया गया है॥ १७-१८॥

तथा सूर्यं वेदविदः सायंप्रातर्दिने दिने।
मध्याह्ने तु महाभागाः स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः॥ १९

तथा वेदेषु सर्वेषु सूर्योपासनमुत्तमम्।
परमात्मेति विख्यातं नाम तस्य महात्मनः॥ २०

अग्निः सर्वत्र वेदेषु संस्तुतो वेदवित्तमैः।
इन्द्रश्चापि त्रिलोकेशो वरुणश्च तथापरः॥ २१

यथा गङ्गा प्रवाहैश्च बहुभिः परिवर्तते।
तथैव सर्वदेवेषु विष्णुः प्रोक्तो महर्षिभिः॥ २२

त्रीण्येव हि प्रमाणानि पठितानि सुपण्डितैः।
प्रत्यक्षं चानुमानं च शाब्दं चैव तृतीयकम्॥ २३

चत्वार्येवेतरे प्राहुरुपमानयुतानि च।
अर्थापत्तियुतान्यन्ये पञ्च प्राहुर्महाधियः॥ २४

सप्त पौराणिकाश्चैव प्रवदन्ति मनीषिणः।
एतैः प्रमाणैर्दुर्ज्ञेयं यद् ब्रह्म परमं च तत्॥ २५

वितर्कश्चात्र कर्तव्यो बुद्ध्या चैवागमेन च।
निश्चयात्मिकया युक्त्या विचार्य च पुनः पुनः॥ २६

प्रत्यक्षतस्तु विज्ञानं चिन्त्यं मतिमता सदा।
दृष्टान्तेनापि सततं शिष्टमार्गानुसारिणा॥ २७

विद्वांसोऽपि वदन्त्येवं पुराणैः परिगीयते।
द्रुहिणे सृष्टिशक्तिश्च हरौ पालनशक्तिता॥ २८

हरे संहारशक्तिश्च सूर्ये शक्तिः प्रकाशिका।
धराधरणशक्तिश्च शेषे कूर्मे तथैव च॥ २९

साद्या शक्तिः परिणता सर्वस्मिन्या प्रतिष्ठिता।
दाहशक्तिस्तथा वह्नौ समीरे प्रेरणात्मिका॥ ३०

शिवोऽपि शवतां याति कुण्डलिन्या विवर्जितः।
शक्तिहीनस्तु यः कश्चिदसमर्थः स्मृतो बुधैः॥ ३१

हे महाभागो! वैदिक विद्वान् लोग सूर्य आदि नामोंसे भी नित्य प्रातः, सायं तथा मध्याह्नकालमें सन्ध्या करते समय विविध प्रकारकी स्तुतियोंसे उन्हींकी प्रार्थना करते हैं॥ १९॥

सभी वेदोंमें सूर्योपासना श्रेष्ठ कही गयी है तथा उन महात्माका नाम 'परमात्मा' कहा गया है। वेदोंमें सर्वत्र वेदज्ञोंद्वारा अग्निदेवकी भी स्तुति की गयी है। वहाँ त्रिलोकेश इन्द्र, वरुण तथा अन्यान्य देवताओंकी भी स्तुति की गयी है॥ २०-२१॥

जिस प्रकार गंगा अनेक धाराओंमें विद्यमान रहकर प्रवाहित होती हैं, उसी प्रकार महर्षियोंद्वारा भगवान् विष्णु सभी देवताओंमें विद्यमान बताये गये हैं॥ २२॥

मनीषी विद्वानोंने तीन प्रकारके मुख्य प्रमाण बताये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और तीसरा शब्दप्रमाण। अन्य (न्याय)-के पण्डित चार प्रमाण मानते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्दप्रमाण। परंतु अन्य (मीमांसाके) विद्वान् लोग अर्थापत्तिको लेकर पाँच प्रमाण मानते हैं॥ २३-२४॥

पौराणिक विद्वान् सात प्रमाण बताते हैं—इन प्रमाणोंसे भी जो दुर्ज्ञेय है, वह है—परब्रह्म॥ २५॥

इसलिये इस विषयमें बुद्धि, शास्त्र एवं निश्चयात्मिका युक्तिसे बार-बार विचार करके अनुमान करना चाहिये। साथ ही सन्मार्गका अनुसरण करनेवाले दृष्टान्तद्वारा इस प्रत्यक्ष विज्ञानका चिन्तन बुद्धिमान् मनुष्यको सर्वदा करते रहना चाहिये॥ २६-२७॥

प्रायः सभी पुराण तथा विद्वान् ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मामें सृष्टि करनेकी शक्ति, विष्णुमें पालन करनेकी शक्ति, शिवमें संहार करनेकी शक्ति, सूर्यमें प्रकाश करनेकी शक्ति तथा शेष और कच्छपमें पृथ्वीको धारण करनेकी शक्ति स्वभावतः विद्यमान रहती है॥ २८-२९॥

इस प्रकार एकमात्र वे आद्याशक्ति ही स्वरूपभेदसे सभीमें व्याप्त रहती हैं। वे ही अग्निमें दाहकत्व शक्ति तथा वायुमें संचारशक्ति हैं॥ ३०॥

कुण्डलिनी शक्तिके बिना शिव भी 'शव' बन जाते हैं। विद्वान् लोग शक्तिहीन जीवको निर्जीव एवं असमर्थ कहते हैं॥ ३१॥

एवं सर्वत्र भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ब्रह्माण्डेऽस्मिन्महातपाः॥ ३२

शक्तिहीनं तु निन्द्यं स्याद्वस्तुमात्रं चराचरम्।
अशक्तः शत्रुविजये गमने भोजने तथा॥ ३३

एवं सर्वगता शक्तिः सा ब्रह्मेति विविच्यते।
सोपास्या विविधैः सम्यग्विचार्या सुधिया सदा॥ ३४

विष्णौ च सात्त्विकी शक्तिस्तया हीनोऽप्यकर्मकृत्।
द्रुहिणे राजसी शक्तिर्यया हीनो ह्यसृष्टिकृत्॥ ३५

शिवे च तामसी शक्तिस्तया संहारकारकः।
इत्यूह्यं मनसा सर्वं विचार्य च पुनः पुनः॥ ३६

शक्तिः करोति ब्रह्माण्डं सा वै पालयतेऽखिलम्।
इच्छया संहरत्येषा जगदेतच्चराचरम्॥ ३७

न विष्णुर्न हरः शक्रो न ब्रह्मा न च पावकः।
न सूर्यो वरुणः शक्तः स्वे स्वे कार्ये कथञ्चन॥ ३८

तया युक्ता हि कुर्वन्ति स्वानि कार्याणि ते सुराः।
सैव कारणकार्येषु प्रत्यक्षेणावगम्यते॥ ३९

सगुणा निर्गुणा सा तु द्विधा प्रोक्ता मनीषिभिः।
सगुणा रागिभिः सेव्या निर्गुणा तु विरागिभिः॥ ४०

धर्मार्थकाममोक्षाणां स्वामिनी सा निराकुला।
ददाति वाञ्छितान्कामान्पूजिता विधिपूर्वकम्॥ ४१

न जानन्ति जना मूढास्तां सदा माययावृताः।
जानन्तोऽपि नराः केचिन्मोहयन्ति परानपि॥ ४२

पण्डिताः स्वोदरार्थं वै पाखण्डानि पृथक्पृथक्।
प्रवर्तयन्ति कलिना प्रेरिता मन्दचेतसः॥ ४३

अतएव हे मुनिजनो! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभी पदार्थ इस संसारमें शक्तिके बिना सर्वथा हेय हैं; क्योंकि स्थावर-जंगम सभी जीवोंमें वह शक्ति ही काम करती है। यहाँतक कि शक्तिहीन पुरुष शत्रुपर विजयी होने, चलने-फिरने तथा भोजन करनेमें भी सर्वथा असमर्थ रहता है॥ ३२-३३॥

वह सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली आदिशक्ति ही 'ब्रह्म' कहलाती है। बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि वह अनेक प्रकारके यत्नोंद्वारा सम्यक् रूपसे उसकी उपासना करे तथा उसका चिन्तन करे॥ ३४॥

भगवान् विष्णुमें सात्त्विकी शक्ति रहती है, जिसके बिना वे अकर्मण्य हो जाते हैं। ब्रह्मामें राजसी शक्ति है, वे भी शक्तिहीन होकर सृष्टिकार्य नहीं कर सकते और शिवमें तामसी शक्ति रहती है, जिसके बलपर वे संहार-कृत्य सम्पादित करते हैं। इस विषयपर मनसे बार-बार विचार करके तर्क-वितर्क करते रहना चाहिये॥ ३५-३६॥

शक्ति ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी रचना करती है, सबका पालन करती है और इच्छानुसार इस चराचर जगत्का संहार करती है॥ ३७॥

उसके बिना विष्णु, शिव, इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य और वरुण कोई भी अपने-अपने कार्यमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३८॥

वे देवगण शक्तियुक्त होनेपर ही अपने-अपने कार्योंको सम्पादित करते रहते हैं। प्रत्येक कार्य-कारणमें वही शक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होती है॥ ३९॥

मनीषी पुरुषोंने शक्तिको सगुणा और निर्गुणा भेदसे दो प्रकारका बताया है। सगुणा शक्तिकी उपासना आसक्तजनों और निर्गुणा शक्तिकी उपासना अनासक्तजनोंको करनी चाहिये॥ ४०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पदार्थोंकी स्वामिनी वे ही निर्विकार शक्ति हैं। विधिवत् पूजा करनेसे वे सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण करती हैं॥ ४१॥

सदा मायासे घिरे हुए अज्ञानी लोग उस महाशक्तिको जान नहीं पाते। यहाँतक कि कुछ विद्वान् पुरुष उन्हें जानते हुए भी दूसरोंको भ्रममें डालते हैं। कुछ मन्दबुद्धि पण्डित अपने उदरकी पूर्तिके लिये कलिसे प्रेरित होकर अनेक प्रकारके पाखण्ड करते हैं॥ ४२-४३॥

कलावस्मिन्महाभागा नानाभेदसमुत्थिताः।
नान्ये युगे तथा धर्मा वेदबाह्याः कथञ्चन॥ ४४

विष्णुश्चरत्यसावुग्रं तपो वर्षाण्यनेकशः।
ब्रह्मा हरस्त्रयो देवा ध्यायन्तः कमपि ध्रुवम्॥ ४५

कामयानाः सदा कामं ते त्रयः सर्वदैव हि।
यजन्ति यज्ञान्विविधान्ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ४६

ते वै शक्तिं परां देवीं ब्रह्माख्यां परमात्मिकाम्।
ध्यायन्ति मनसा नित्यं नित्यां मत्वा सनातनीम्॥ ४७

तस्माच्छक्तिः सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः।
निश्चयः सर्वशास्त्राणां ज्ञातव्यो मुनिसत्तमाः॥ ४८

कृष्णाच्छ्रुतं मया चैतत्तेन ज्ञातं तु नारदात्।
पितुः सकाशात्तेनापि ब्रह्मणा विष्णुवाक्यतः॥ ४९

न श्रोतव्यं न मन्तव्यमन्येषां वचनं बुधैः।
शक्तिरेव सदा सेव्या विद्वद्भिः कृतनिश्चयैः॥ ५०

प्रत्यक्षमपि द्रष्टव्यमशक्तस्य विचेष्टितम्।
अतः सर्वेषु भूतेषु ज्ञातव्या शक्तिरेव हि॥ ५१

हे महाभागो! इस कलिमें बहुत प्रकारके अवैदिक तथा भेदमूलक धर्म उत्पन्न होते हैं; दूसरे युगोंमें नहीं होते॥ ४४॥

स्वयं भगवान् विष्णु भी अनेक वर्षोंतक कठोर तप करते हैं और ब्रह्मा तथा शिवजी भी ऐसा ही करते हैं। ये तीनों देवता निश्चित ही किसीका ध्यान करते हुए कठिन तपस्या करते रहते हैं॥ ४५॥

इसी प्रकार अपनी इच्छाओंकी पूर्तिके लिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तीनों ही देवता अनेक प्रकारके यज्ञ सदा करते हैं। वे उन पराशक्ति, ब्रह्म नामवाली परमात्मिका देवीको नित्य एवं सनातन मानकर सर्वदा मनसे उन्हींका ध्यान करते हैं॥ ४६-४७॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सब शास्त्रोंका यही निश्चय जानना चाहिये कि दृढनिश्चयी विद्वानोंके द्वारा वे आदिशक्ति ही सदा सेवनीय हैं॥ ४८॥

यह गुप्त रहस्य मैंने कृष्णद्वैपायनसे सुना है जिसे उन्होंने नारदजीसे, नारदजीने अपने पिता ब्रह्माजीसे और ब्रह्माजीने भी भगवान् विष्णुके मुखसे सुना था॥ ४९॥

इसलिये विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि वे न तो किसी अन्यकी बात सुनें और न मानें तथा दृढप्रतिज्ञ होकर सर्वदा शक्तिकी ही उपासना करें॥ ५०॥

शक्तिहीन असमर्थ पुरुषका व्यवहार तो प्रत्यक्ष ही देखा जाता है [कि वह कुछ कर नहीं पाता]। इसलिये सर्वव्यापिनी आदिशक्ति जगज्जननी भगवतीको ही जाननेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
आराध्यनिर्णयवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका मधु-कैटभसे पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध करना, विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा मोहित मधु-कैटभका विष्णुद्वारा वध

सूत उवाच

यदा विनिर्गता निद्रा देहात्तस्य जगद्गुरोः।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः॥ १

सूतजी बोले—[हे मुनिजनो!] जब जगद्गुरु भगवान् विष्णुके शरीरसे निद्रादेवी निकलीं; उस समय उनके नेत्र, मुख, नासिका, भुजा, हृदय तथा वक्षःस्थलसे

निःसृत्य गगने तस्थौ तामसी शक्तिरुत्तमा।
उदतिष्ठज्जगन्नाथो जृम्भमाणः पुनः पुनः॥ २

तदापश्यत् स्थितं तत्र भयत्रस्तं प्रजापतिम्।
उवाच च महातेजा मेघगम्भीरया गिरा॥ ३

विष्णुरुवाच

किमागतोऽसि भगवंस्तपस्त्यक्त्वात्र पद्मज।
कस्माच्चिन्तातुरोऽसि त्वं भयाकुलितमानसः॥ ४

ब्रह्मोवाच

त्वत्कर्णमलजौ देव दैत्यौ च मधुकैटभौ।
हन्तुं मां समुपायातौ घोररूपौ महाबलौ॥ ५

भयात्तयोः समायातस्त्वत्समीपं जगत्पते।
त्राहि मां वासुदेवाद्य भयत्रस्तं विचेतनम्॥ ६

विष्णुरुवाच

तिष्ठाद्य निर्भयो जातस्तौ हनिष्याम्यहं किल।
युद्धायाजग्मतुर्मूढौ मत्समीपं गतायुषौ॥ ७

सूत उवाच

एवं वदति देवेशे दानवौ तौ महाबलौ।
विचिन्वानावजं चोभौ संप्राप्तौ मदगर्वितौ॥ ८

निराधारौ जले तत्र संस्थितौ विगतज्वरौ।
तावूचतुर्मदोन्मत्तौ ब्रह्माणं मुनिसत्तमाः॥ ९

पलायित्वा समायातः सन्निधावस्य किं ततः।
युद्धं कुरु हनिष्यावः पश्यतोऽस्यैव सन्निधौ॥ १०

पश्चादेनं हनिष्यावः सर्पभोगोपरिस्थितम्।
त्वमद्य कुरु संग्रामं दासोऽस्मीति च वा वद॥ ११

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तावुवाच जनार्दनः।
कुरुतं समरं कामं मया दानवपुङ्गवौ॥ १२

हरिष्यामि मदं चाहं युवयोर्मत्तयोः किल।
आगच्छतं महाभागौ श्रद्धा चेद्वां महाबलौ॥ १३

निकलकर वे श्रेष्ठ तामसी शक्ति आकाशमें स्थित हो गयीं, तब भगवान् विष्णु भी बार-बार जम्हाई लेते हुए उठ खड़े हुए॥ १-२॥

तब वहाँ भगवान् विष्णुने भयसे काँपते हुए ब्रह्माको देखा और उन महातेजस्वी विष्णुने मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ३॥

विष्णु बोले—हे कमलोद्भव ब्रह्माजी! आप तपस्या छोड़कर यहाँ कैसे आ गये हैं? आप इतने चिन्तित एवं भयभीत क्यों हो रहे हैं?॥ ४॥

ब्रह्माजी बोले—हे देव! आपके कानोंके मैलसे दो महादानव पैदा हो गये हैं, जो महाभयंकर एवं महाबली हैं, जिनका नाम मधु और कैटभ है। उन्हीं दोनोंके भयसे मैं आपके पास आया हूँ। हे जगत्पते! हे वासुदेव! आप मुझ भयभीत तथा किंकर्तव्यविमूढ़की रक्षा कीजिये॥ ५-६॥

विष्णु बोले—ब्रह्मन्! अब आप निर्भय हो जाइये। उनकी मृत्यु निकट है, इसीलिये वे यहाँ युद्ध करनेके लिये आयेंगे और मैं उन दोनों दैत्योंका वध करूँगा॥ ७॥

सूतजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णु ब्रह्मासे कह ही रहे थे कि वे दोनों मतवाले महाबली दैत्य ब्रह्माजीको ढूँढ़ते हुए वहाँ आ पहुँचे॥ ८॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! वे दैत्य उस महासागरके जलमें बिना किसी अवलम्बके निश्चिन्त होकर खड़े थे। उन अहंकारी राक्षसोंने ब्रह्माजीसे कहा—'तुम भागकर इनके पास क्यों आये? अब तुम युद्ध करो। इनके देखते-देखते ही हमलोग तुम्हें मार डालेंगे'॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् शेषशय्यापर सोनेवाले इस पुरुषको भी मार डालेंगे। इसलिये तुम हम दोनों भाइयोंसे या तो युद्ध करो अथवा यह कहो कि 'मैं तुम्हारा सेवक हूँ'॥ ११॥

सूतजी बोले—उन दैत्योंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—अरे दानवेन्द्रो! तुम दोनों मेरे साथ यथेच्छ युद्ध करो। मैं तुम दोनों दैत्योंका घमण्ड चूर-चूर कर डालूँगा। हे महाभागो! तुम दोनोंकी लड़नेकी इच्छा है और अपनेको महायोद्धा समझ रहे हो तो आ जाओ॥ १२-१३॥

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं चोभौ क्रोधव्याकुललोचनौ।
निराधारौ जलस्थौ च युद्धोद्युक्तौ बभूवतुः॥ १४

मधुश्च कुपितस्तत्र हरिणा सह संयुगम्।
कर्तुं प्रचलितस्तूर्णं कैटभस्तु तथा स्थितः॥ १५

बाहुयुद्धं तयोरासीन्मल्लयोरिव मत्तयोः।
श्रान्ते मधौ कैटभस्तु संग्राममकरोत्तदा॥ १६

पुनर्मधुः कैटभश्च युयुधाते पुनः पुनः।
बाहुयुद्धेन रागान्धौ विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १७

प्रेक्षकस्तु तदा ब्रह्मा देवी चैवान्तरिक्षगा।
न मम्लतुस्तदा तौ तु विष्णुस्तु ग्लानिमाप्तवान्॥ १८

पञ्चवर्षसहस्राणि यदा जातानि युद्ध्यता।
हरिणा चिन्तितं तत्र कारणं मरणे तयोः॥ १९

पञ्चवर्षसहस्राणि मया युद्धं कृतं किल।
न श्रान्तौ दानवौ घोरौ श्रान्तोऽहं चैतदद्भुतम्॥ २०

क्व गतं मे बलं शौर्यं कस्माच्चेमावनामयौ।
किमत्र कारणं चिन्त्यं विचार्य मनसा त्विह॥ २१

इति चिन्तापरं दृष्ट्वा हरिं हर्षपरावुभौ।
ऊचतुस्तौ मदोन्मत्तौ मेघगम्भीरनिःस्वनौ॥ २२

तव नोचेद् बलं विष्णो यदि श्रान्तोऽसि युद्धतः।
ब्रूहि दासोऽस्मि वां नूनं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ २३

न चेद्युद्धं कुरुष्वाद्य समर्थोऽसि महामते।
हत्वा त्वां निहनिष्यावः पुरुषं च चतुर्मुखम्॥ २४

सूत उवाच

श्रुत्वा तद्भाषितं विष्णुस्तयोस्तस्मिन्महोदधौ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं सामपूर्वं महामनाः॥ २५

सूतजी बोले—भगवान्‌का यह वचन सुनते ही उन दैत्योंके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और जलमें खड़े निराधार वे दोनों भयंकर दानव युद्ध करनेको तैयार हो गये॥ १४॥

इनमें मधुदैत्य कुपित होकर विष्णुसे युद्ध करनेके लिये शीघ्र ही चल पड़ा और कैटभ वहीं खड़ा रहा॥ १५॥

दो मतवाले वीरोंके समान मधु और विष्णुमें बाहुयुद्ध होने लगा। जब मधु थक गया तब कैटभ उनसे लड़ने लगा॥ १६॥

इस प्रकार क्रमशः कुपित एवं मदान्ध दोनों दैत्य परम प्रतापी भगवान् विष्णुके साथ बारी-बारीसे बाहुयुद्ध करते रहे॥ १७॥

उस समय वहाँ उस युद्धके द्रष्टा ब्रह्मा और आकाशमें स्थित आदिशक्ति देवी थीं। बहुत दिनोंतक युद्ध करते-करते भी वे दैत्य नहीं थके तब भगवान् विष्णुको ग्लानि होने लगी। इस प्रकार जब युद्ध करते हुए पाँच हजार वर्ष बीत गये तब भगवान् विष्णु उन दैत्योंकी मृत्युका उपाय सोचने लगे॥ १८-१९॥

उनके विचारमें आया कि मैंने पाँच हजार वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, किंतु ये भयानक दानव थके नहीं और मैं थक गया; यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ २०॥

मेरा वह पराक्रम और बल कहाँ चला गया? ये दोनों मुझसे लड़ते हुए भी स्वस्थ हैं। इसका कारण क्या है? अब मुझे अच्छी तरह विचार करना चाहिये॥ २१॥

इस प्रकार चिन्तामें पड़े हुए विष्णुको देखकर ये दोनों मतवाले दैत्य अत्यन्त हर्षित हुए और मेघके समान गम्भीर वाणीमें बोले—हे विष्णो! यदि तुझमें अब बल न हो अथवा युद्धसे थक गये हो तो सिरपर हाथ जोड़कर कह दो कि मैं तुम दोनोंका सेवक हूँ अथवा यदि सामर्थ्य हो तो हे महामते! आओ, हमारे साथ युद्ध करो। आज हमलोग तुम्हें मारकर इस चार मुखवाले पुरुष (ब्रह्मा)-को भी मार डालेंगे॥ २२—२४॥

सूतजी बोले—उस महासागरमें उपस्थित महामना विष्णुने उनके वचन सुनकर सामनीतिके अनुसार मधुर शब्दोंमें कहा—॥ २५॥

हरिरुवाच

श्रान्ते भीते त्यक्तशस्त्रे पतिते बालके तथा।
प्रहरन्ति न वीरास्ते धर्म एष सनातनः॥ २६

पञ्चवर्षसहस्राणि कृतं युद्धं मया त्विह।
एकोऽहं भ्रातरौ वां च बलिनौ सदृशौ तथा॥ २७

कृतं विश्रमणं मध्ये युवाभ्यां च पुनः पुनः।
तथा विश्रमणं कृत्वा युध्येऽहं नात्र संशयः॥ २८

तिष्ठतं हि युवां तावद् बलवन्तौ मदोत्कटौ।
विश्रम्याहं करिष्यामि युद्धं वा न्यायमार्गतः॥ २९

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य विश्रब्धौ दानवोत्तमौ।
संस्थितौ दूरतस्तत्र संग्रामे कृतनिश्चयौ॥ ३०

अतिदूरे च तौ दृष्ट्वा वासुदेवश्चतुर्भुजः।
दध्यौ च मनसा तत्र कारणं मरणे तयोः॥ ३१

चिन्तनाज्ज्ञानमुत्पन्नं देवीदत्तवरावुभौ।
कामं वाञ्छितमरणौ न मम्लतुरतस्त्विमौ॥ ३२

वृथा मया कृतं युद्धं श्रमोऽयं मे वृथा गतः।
करोमि च कथं युद्धमेवं ज्ञात्वा विनिश्चयम्॥ ३३

अकृते च तथा युद्धे कथमेतौ गमिष्यतः।
विनाशं दुःखदौ नित्यं दानवौ वरदर्पितौ॥ ३४

भगवत्या वरो दत्तस्तया सोऽपि च दुर्घटः।
मरणं चेच्छया कामं दुःखितोऽपि न वाञ्छति॥ ३५

रोगग्रस्तोऽपि दीनोऽपि न मुमूर्षति कश्चन।
कथं चेमौ मदोन्मत्तौ मर्तुकामौ भविष्यतः॥ ३६

नन्वद्य शरणं यामि विद्यां शक्तिं सुकामदाम्।
विना तया न सिध्यन्ति कामाः सम्यक्प्रसन्नया॥ ३७

एवं सञ्चिन्त्यमानस्तु गगने संस्थितां शिवाम्।
अपश्यद्भगवान्विष्णुर्योगनिद्रां मनोहराम्॥ ३८

विष्णु बोले—यह सनातनधर्म है कि थके हुए, डरे हुए, शस्त्र त्यागे हुए, गिरे हुए एवं बालकपर वीर लोग प्रहार नहीं करते॥ २६॥

मैंने तो यहाँ पाँच हजार वर्षोंतक युद्ध किया। मैं अकेला हूँ और तुम दोनों भाई समान बलवाले वीर हो और दोनों बीच-बीचमें बारी-बारीसे विश्राम भी करते रहे हो। अब मुझे भी थोड़ा विश्राम कर लेने दो। तत्पश्चात् मैं पुनः लड़ूँगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २७-२८॥

बली एवं मदोन्मत्त तुम दोनों भी कुछ विश्राम कर लो, तब मैं विश्राम करके न्यायधर्मानुसार युद्ध करूँगा॥ २९॥

सूतजी बोले—भगवान् विष्णुकी बात सुनकर दोनों दानव भी युद्ध करनेकी इच्छासे कुछ दूर जाकर विश्राम करने लगे। उन्हें बहुत दूर बैठे देखकर चतुर्भुज भगवान् विष्णु उनके मरनेका उपाय सोचने लगे॥ ३०-३१॥

ध्यानकी अवस्थामें होकर विचार करनेपर उन्हें ज्ञात हो गया कि इन दोनोंको देवीके द्वारा इच्छामृत्युका वरदान प्राप्त है, इसी कारण ये थकते नहीं॥ ३२॥

वे सोचने लगे कि मैंने व्यर्थ ही युद्ध किया, मेरा सब परिश्रम व्यर्थ गया। इस (वरदानकी) बातको जानकर भी अब मैं कैसे युद्ध करूँ?॥ ३३॥

यदि युद्ध न भी करूँ तो भी ये दैत्य यहाँसे हटेंगे कैसे? यदि इनका विनाश न होगा तो वरप्राप्त दोनों दुर्धर्ष दैत्य सबको दुःख देते रहेंगे॥ ३४॥

देवीने जो वरदान इन्हें दिया है, वह भी अत्यन्त कठिन है। अत्यन्त दुःखी, रोगी और दीन-हीन प्राणी भी स्वेच्छया कभी नहीं मरना चाहता, तब भला वे दोनों मदोन्मत्त दैत्य क्यों मरना चाहेंगे?॥ ३५-३६॥

अतएव अब मैं सब चिन्ता छोड़कर उन आदिशक्ति भगवती विद्यादेवीकी शरणमें जाऊँ, जो सबकी मनोकामनाएँ सिद्ध करनेवाली हैं; क्योंकि बिना उनके प्रसन्न हुए कोई कामनाएँ पूर्ण नहीं होतीं॥ ३७॥

ऐसा मनमें विचार करते ही भगवान् विष्णुने आकाशमें स्थित परम सुन्दर स्वरूपवाली योगनिद्रा भगवती 'शिवा' को देखा। उन्हें देखते ही योगेश्वर

कृताञ्जलिरमेयात्मा तां च तुष्टाव योगवित्।
विनाशार्थं तयोस्तत्र वरदां भुवनेश्वरीम्॥ ३९

विष्णुरुवाच

नमो देवि महामाये सृष्टिसंहारकारिणि।
अनादिनिधने चण्डि भुक्तिमुक्तिप्रदे शिवे॥ ४०

न ते रूपं विजानामि सगुणं निर्गुणं तथा।
चरित्राणि कुतो देवि संख्यातीतानि यानि ते॥ ४१

अनुभूतो मया तेऽद्य प्रभावश्चातिदुर्घटः।
यदहं निद्रया लीनः सञ्जातोऽस्मि विचेतनः॥ ४२

ब्रह्मणा चातियत्नेन बोधितोऽपि पुनः पुनः।
न प्रबुद्धः सर्वथाहं सङ्कोचितषडिन्द्रियः॥ ४३

अचेतनत्वं सम्प्राप्तः प्रभावात्तव चाम्बिके।
त्वया मुक्तः प्रबुद्धोऽहं युद्धं च बहुधा कृतम्॥ ४४

श्रान्तोऽहं न च तौ श्रान्तौ त्वया दत्तवरौ वरौ।
ब्रह्माणं हन्तुमायातौ दानवौ मदगर्वितौ॥ ४५

आहूतौ च मया कामं द्वन्द्वयुद्धाय मानदे।
कृतं युद्धं महाघोरं मया ताभ्यां महार्णवे॥ ४६

मरणे वरदानं ते ततो ज्ञातं महाद्भुतम्।
ज्ञात्वाहं शरणं प्राप्तस्त्वामद्य शरणप्रदाम्॥ ४७

साहाय्यं कुरु मे मातः खिन्नोऽहं युद्धकर्मणा।
दृप्तौ तौ वरदानेन तव देवार्तिनाशने॥ ४८

हन्तुं मामुद्यतौ पापौ किं करोमि क्व यामि च।
इत्युक्ता सा तदा देवी स्मितपूर्वमुवाच ह॥ ४९

प्रणमन्तं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम्।
देवदेव हरे विष्णो कुरु युद्धं पुनः स्वयम्॥ ५०

अनन्त भगवान् विष्णु उन दोनों दैत्योंके विनाशके लिये हाथ जोड़कर वरप्रदायिनी भगवती 'भुवनेश्वरी' की स्तुति करने लगे॥ ३८-३९॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे महामाये! हे सृष्टि-संहारकारिणि! हे आदि-अन्तरहित! हे चण्डि! हे भुक्तिमुक्ति-प्रदायिनी शिवे! आपको नमस्कार है॥ ४०॥

हे देवि! मैं आपके सगुण तथा निर्गुण रूपको नहीं जानता, फिर आपके जो असंख्य अद्भुत चरित्र हैं, उन्हें कैसे जान पाऊँगा? मैंने आपके अत्यन्त दुर्घट प्रभावको आज जाना है जबकि मैं आपके द्वारा प्रेरित योगनिद्रामें विलीन होकर अचेत हो गया था॥ ४१-४२॥

ब्रह्माने मुझे बड़े यत्नसे बार-बार जगाया था, किंतु मैं अपनी छहों इन्द्रियोंके संकुचित होनेके कारण जाग न सका॥ ४३॥

हे अम्बिके! उस समय मैं आपके प्रभावसे अचेत हो गया था। जब आपने अपना वह प्रभाव हटा लिया तब मैं जगा और मैंने उन दानवोंके साथ अनेक प्रकारसे युद्ध किया। उस युद्धमें मैं तो थक गया, किंतु वे नहीं थके; क्योंकि उन्हें आपका वरदान प्राप्त था। जब वे मदोन्मत्त दानव ब्रह्माजीको मारने दौड़े, तब मैंने भी पुनः द्वन्द्व युद्धके लिये उनका आह्वान किया। हे मानप्रदायिनि! उस समय मैंने उनके साथ महासागरमें घोर युद्ध किया॥ ४४—४६॥

बादमें मुझे ज्ञात हुआ कि आपने उन्हें इच्छामरणका अद्भुत वरदान दिया है। यह जानकर आज मैं शरणदायिनी आपकी शरणमें आया हूँ॥ ४७॥

अतएव हे माता! अब मेरी सहायता आप ही करें; क्योंकि मैं युद्ध करते-करते बहुत ही खिन्न हो गया हूँ। हे देवताओंकी पीड़ा हरनेवाली! आपके वरदानसे दोनों दानव मदोन्मत्त हो गये हैं॥ ४८॥

वे दोनों पापी दैत्य मुझे मार डालना चाहते हैं। अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? प्रणाम करते हुए उन जगन्नाथ सनातन वासुदेव विष्णुके ऐसा कहनेपर मुसकराती हुई उन देवीने उनसे कहा—हे देवदेव! हे हरे! हे विष्णो! आप पुनः उनसे युद्ध कीजिये॥ ४९-५०॥

वञ्चयित्वा त्विमौ शूरौ हन्तव्यौ च विमोहितौ।
मोहयिष्याम्यहं नूनं दानवौ वक्रया दृशा॥ ५१

जहि नारायणाशु त्वं मम मायाविमोहितौ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुस्तस्याः प्रीतिरसान्वितम्॥ ५२

संग्रामस्थलमासाद्य तस्थौ तत्र महार्णवे।
तदायातौ च तौ वीरौ युद्धकामौ महाबलौ॥ ५३

वीक्ष्य विष्णुं स्थितं तत्र हर्षयुक्तौ बभूवतुः।
तिष्ठ तिष्ठ महाकाम कुरु युद्धं चतुर्भुज॥ ५४

दैवाधीनौ विदित्वाद्य नूनं जयपराजयौ।
सबलो जयमाप्नोति दैवाज्जयति दुर्बलः॥ ५५

सर्वथैव न कर्तव्यौ हर्षशोकौ महात्मना।
पुरा वै बहवो दैत्या जिता दानववैरिणा॥ ५६

अधुना चावयोः सार्धं युध्यमानः पराजितः।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तौ महाबाहू युद्धाय समुपस्थितौ॥ ५७

वीक्ष्य विष्णुर्जघानाशु मुष्टिनाद्भुतकर्मणा।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ जघ्नतुर्मुष्टिना हरिम्॥ ५८

एवं परस्परं जातं युद्धं परमदारुणम्।
युध्यमानौ महावीर्यौ दृष्ट्वा नारायणस्तदा॥ ५९

अपश्यत्सम्मुखं देव्याः कृत्वा दीनां दृशं हरिः।

सूत उवाच

तं वीक्ष्य तादृशं विष्णुं करुणारससंयुतम्॥ ६०

जहासातीव ताम्राक्षी वीक्षमाणा तदासुरौ।
तौ जघान कटाक्षैश्च कामबाणैरिवापरैः॥ ६१

मन्दस्मितयुतैः कामं प्रेमभावयुतैरनु।
दृष्ट्वा मुमुहतुः पापौ देव्या वक्रविलोकनम्॥ ६२

इन दोनों वीरोंको छलपूर्वक मोहित करके ही मारा जा सकता है। मैं अपनी वक्रदृष्टिसे उन्हें मोहित कर दूँगी। हे नारायण! अपनी मायासे जब मैं इन्हें मोहित कर दूँगी तब आप शीघ्र ही इन दोनोंका वध कर डालियेगा॥ ५१½ ॥

सूतजी बोले—देवीके प्रीतिरससे पूर्ण वचनोंको सुनकर भगवान् विष्णु उस सागरमें युद्धस्थलमें आकर खड़े हो गये। तब विष्णुको आते देख वे दोनों युद्धके अभिलाषी महाबली दैत्य भी वहाँ आ डटे॥ ५२-५३॥

भगवान् विष्णुको अपने सामने देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे महाकाम! हे चतुर्भुज! ठहरो-ठहरो; हार और जीतको प्रारब्धके अधीन समझकर अब तुम हमारे साथ युद्ध करो। बलवान् व्यक्ति विजय प्राप्त करता है, किंतु कभी-कभी भाग्यवश दुर्बल व्यक्ति भी जीत जाता है॥ ५४-५५॥

आप जैसे महापुरुषको जय या पराजयमें हर्ष या शोक कभी नहीं करना चाहिये। आपने दानवशत्रु होकर पूर्वकालमें बहुत-से दैत्योंको अनेक बार हराया है, परंतु इस समय तो हम दोनोंके साथ लड़ते हुए आप पराजित हो गये हैं॥ ५६½ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर वे दोनों महाबाहु दैत्य युद्ध करनेको तत्पर हो गये। तब वहाँ अवसर देखकर ज्यों ही विचित्रकर्मा विष्णुने उन दोनोंपर मुष्टिसे प्रहार किया, त्यों ही उन दोनों बलोन्मत्त दैत्योंने भी विष्णुपर मुष्टिप्रहार किया॥ ५७-५८॥

इस प्रकार उनमें परस्पर महाभयंकर युद्ध होने लगा। उन दोनों महाबलशाली दानवोंको युद्धरत देखकर नारायण श्रीहरिने दीन दृष्टिसे भगवतीकी ओर देखा॥ ५९½ ॥

सूतजी बोले—विष्णुकी ऐसी करुणाजनक दीन दशा देखकर अरुण नेत्रोंवाली भगवती उन दोनों दैत्योंकी ओर देखकर हँसने लगीं और उन्होंने दूसरे कामबाणोंके समान, मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रेमभावसे भरे अपने कटाक्षोंसे उनपर प्रहार किया। इस प्रकार देवीके कटाक्षको देखकर वे पापी मधु-कैटभ अत्यन्त मोहित हो गये। वे कामान्ध दानव अपने ऊपर भगवतीकी विशेष अनुकम्पा जानकर

विशेषमिति मन्वानौ कामबाणातिपीडितौ।
वीक्षमाणौ स्थितौ तत्र तां देवीं विशदप्रभाम्॥ ६३

हरिणापि च तद् दृष्टं देव्यास्तत्र चिकीर्षितम्।
मोहितौ तौ परिज्ञाय भगवान्कार्यवित्तमः॥ ६४

उवाच तौ हसन् श्लक्ष्णं मेघगम्भीरया गिरा।
वरं वरयतां वीरौ युवयोर्योऽभिवाञ्छितः॥ ६५

ददामि परमप्रीतो युद्धेन युवयोः किल।
दानवा बहवो दृष्टा युध्यमाना मया पुरा॥ ६६

युवयोः सदृशः कोऽपि न दृष्टो न च वै श्रुतः।
तस्मात्तुष्टोऽस्मि कामं वै निस्तुलेन बलेन च॥ ६७

भ्रात्रोश्च वाञ्छितं कामं प्रयच्छामि महाबलौ।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोः साभिमानौ स्मरातुरौ॥ ६८

वीक्षमाणौ महामायां जगदानन्दकारिणीम्।
तमूचतुश्च कामार्तौ विष्णुं कमललोचनौ॥ ६९

हरे न याचकावावां त्वं किं दातुमिहेच्छसि।
ददाव तुल्यं देवेश दातारौ नौ न याचकौ॥ ७०

प्रार्थय त्वं हृषीकेश मनोऽभिलषितं वरम्।
तुष्टौ स्वस्तव युद्धेन वासुदेवाद्भुतेन च॥ ७१

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच जनार्दनः।
भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥ ७२

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णोर्दानवौ चातिविस्मितौ।
वञ्चिताविति मन्वानौ तस्थतुः शोकसंयुतौ॥ ७३

विचार्य मनसा तौ तु दानवौ विष्णुमूचतुः।
प्रेक्ष्य सर्वं जलमयं भूमिं स्थलविवर्जिताम्॥ ७४

कामबाणसे अत्यन्त पीड़ित होने लगे और अपूर्व शोभाशालिनी भगवतीको देखते हुए वे वहीं खड़े हो गये॥ ६०—६३॥

भगवान् विष्णु भी देवीके उस प्रयत्नको समझ गये। दोनों कामी दानवोंको देवीकी मायासे विमोहित जानकर स्वकार्यसाधक भगवान् विष्णुने वहाँ मेघके समान गम्भीर एवं मधुर वचनोंके द्वारा उन दोनोंका उपहास करते हुए कहा—हे वीरो! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो॥ ६४-६५॥

तुम दोनोंके युद्धसे मैं अत्यन्त हर्षित हूँ, अतः मैं तुम्हें मनोभिलषित वर दूँगा। यद्यपि पूर्वकालमें भी मेरेद्वारा अनेक दानव युद्ध करते हुए देखे गये हैं, किंतु तुम दोनों भाइयोंके समान मैंने किसीको देखा-सुना नहीं। तुम दोनोंके अतुलनीय बलको देखकर मैं बहुत सन्तुष्ट हूँ। हे महाबली दानवो! मैं तुम दोनों भाइयोंकी वांछित कामनाएँ पूर्ण करूँगा॥ ६६-६७$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—विष्णुका यह वचन सुनकर कमलके समान नेत्रवाले कामपीड़ित वे दोनों दैत्य जगदानन्ददायिनी भगवती महामायाको देखते हुए विष्णुसे अभिमानपूर्वक बोले॥ ६८-६९॥

हे विष्णो! हमलोग याचक नहीं हैं, अतः आप हमलोगोंको देना क्यों चाहते हैं? हे देवेश! यदि आप लेना चाहें तो आप जो माँगिये हम दे सकते हैं; क्योंकि हमलोग भिक्षुक नहीं हैं, दाता हैं। हे हृषीकेश! आप अपना मनोभिलषित वरदान माँगिये। हे वासुदेव! आपके अद्भुत युद्धसे हमलोग आपपर अत्यन्त प्रसन्न हैं॥ ७०-७१॥

उन दोनोंका वचन सुनकर भगवान् विष्णुने उत्तर दिया—'यदि तुम दोनों मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो यही वरदान दो कि तुम दोनों भाई अब मेरे ही हाथों मारे जाओ'॥ ७२॥

सूतजी बोले—विष्णुका वचन सुनकर दोनों भाई चकित हो गये और अपनेको उनके द्वारा ठगा हुआ समझकर शोकसे चिन्तित हो गये॥ ७३॥

कुछ देरके बाद मनमें विचारकर सम्पूर्ण भूमिको स्थलरहित तथा वहाँ सर्वत्र जल-ही-जल देखकर उन्होंने विष्णुसे कहा—हे जनार्दन विष्णो! आपने

हरे योऽयं वरो दत्तस्त्वया पूर्वं जनार्दन।
सत्यवागसि देवेश देहि तं वाञ्छितं वरम्॥ ७५

निर्जले विपुले देशे हनस्व मधुसूदन।
वध्यावावां तु भवतः सत्यवाग्भव माधव॥ ७६

स्मृत्वा चक्रं तदा विष्णुस्तावुवाच हसन्हरिः।
हन्म्यद्य वां महाभागौ निर्जले विपुले स्थले॥ ७७

इत्युक्त्वा देवदेवेश ऊरू कृत्वातिविस्तरौ।
दर्शयामास तौ तत्र निर्जलं च जलोपरि॥ ७८

नास्त्यत्र दानवौ वारि शिरसी मुञ्चतामिह।
सत्यवागहमद्यैव भविष्यामि च वां तथा॥ ७९

तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं विचिन्त्य मनसा च तौ।
वर्धयामासतुर्देहं योजनानां सहस्रकम्॥ ८०

भगवान्द्विगुणं चक्रे जघनं विस्मितौ तदा।
शीर्षे सन्दधतां तत्र जघने परमाद्भुते॥ ८१

रथांगेन तदा छिन्ने विष्णुना प्रभविष्णुना।
जघनोपरि वेगेन प्रकृष्टे शिरसी तयोः॥ ८२

गतप्राणौ तदा जातौ दानवौ मधुकैटभौ।
सागरः सकलो व्याप्तस्तदा वै मेदसा तयोः॥ ८३

मेदिनीति ततो जातं नाम पृथ्व्याः समन्ततः।
अभक्ष्या मृत्तिका तेन कारणेन मुनीश्वराः॥ ८४

इति वः कथितं सर्वं यत्पृष्टोऽस्मि सुनिश्चितम्।
महाविद्या महामाया सेवनीया सदा बुधैः॥ ८५

हम-लोगोंको पहले जो वरदान देनेको कहा था, यदि आप सत्यवादी हैं तो पहले उस वांछित वरको प्रदान कीजिये॥ ७४-७५॥

हे मधुसूदन! आप हमें किसी निर्जल प्रदेशकी सुविस्तृत भूमिपर मारिये तभी हम आपसे मारे जा सकेंगे, अन्यथा नहीं। अतः हे माधव अब आप सत्यवादी बनिये॥ ७६॥

तब भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण करके उन दानवोंसे हँसते हुए कहा—'हे महाभागो! [तुम्हारे कथनानुसार] निर्जल तथा सुविस्तृत भूमिपर ही मैं आज तुम दोनोंको मारूँगा'॥ ७७॥

ऐसा कहकर देवताओंके आराध्य भगवान् विष्णुने अपनी दोनों जाँघोंको सुविस्तृत करके जलके ऊपर ही स्थल दिखा दिया और उनसे कहा—'दैत्यो! [देखो,] यहाँ जल नहीं है, पृथ्वी है। अतः यहींपर तुम दोनों अपना सिर रखो। ऐसा करनेसे ही आज हम और तुम दोनों सत्यवादी सिद्ध होंगे'॥ ७८-७९॥

उस समय विष्णुका तथ्यपूर्ण वचन सुनकर तथा अपने मनमें विचार करके उन दोनों दैत्योंने अपना शरीर बढ़ाकर हजारों योजन लम्बा-चौड़ा कर लिया॥ ८०॥

तब भगवान् विष्णुने भी अपनी दोनों जाँघोंको बढ़ाकर उससे भी द्विगुणित कर दिया। यह देखकर वे दोनों दैत्य बड़े विस्मयमें पड़ गये, [परंतु अपनी बात सत्य प्रमाणित करनेके लिये] उन्होंने अपने-अपने मस्तक उस अत्यन्त अद्भुत जंघेपर रख दिये। उसी समय प्रतापी भगवान् विष्णुने अपने सुदर्शन चक्रसे जंघेपर स्थित उनके विशाल सिरोंको वेगपूर्वक धड़से अलग कर दिया॥ ८१-८२॥

जब दोनों दैत्य मधु और कैटभ मर गये, तब उन्हींकी मेद (चर्बी)-से सम्पूर्ण सागर पट गया। हे मुनीश्वरो! तभीसे पृथ्वीका नाम 'मेदिनी' पड़ गया और इसीलिये मृत्तिका भी अभक्ष्य मानी जाने लगी॥ ८३-८४॥

आपलोगोंने जो प्रश्न किया था, उसका ठीक-ठीक उत्तर मैंने दे दिया। बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे महामाया महाविद्याकी सर्वदा उपासना करते

आराध्या परमा शक्तिः सर्वैरपि सुरासुरैः।
नातः परतरं किञ्चिदधिकं भुवनत्रये॥ ८६

रहें; क्योंकि वे पराशक्ति ही समस्त देव-दानवोंद्वारा आराध्य हैं। उनसे बढ़कर कोई दूसरा देवता तीनों लोकोंमें नहीं है॥ ८५-८६॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं वेदशास्त्रार्थनिर्णयः।
पूजनीया परा शक्तिर्निर्गुणा सगुणाथवा॥ ८७

यह बात सर्वदा सत्य है एवं वेदों तथा शास्त्रोंका निष्कर्ष है कि सगुण अथवा निर्गुणरूपमें सर्वदा उस पराशक्तिका ही पूजन करते रहना चाहिये॥ ८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
हरिकृतमधुकैटभवधवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

~~○~~

अथ दशमोऽध्यायः

व्यासजीकी तपस्या और वर-प्राप्ति

ऋषय ऊचुः

सूत पूर्वं त्वया प्रोक्तं व्यासेनामिततेजसा।
कृत्वा पुराणमखिलं शुकायाध्यापितं शुभम्॥ १

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने हमें पहले ही बतला दिया है कि असीम तेजवाले व्यासजीने कल्याणकारी समस्त पुराणोंकी रचना करके उन्हें शुकदेवजीको पढ़ाया॥ १॥

व्यासेन तु तपस्तप्त्वा कथमुत्पादितः शुकः।
विस्तरं ब्रूहि सकलं यच्छ्रुतं कृष्णतस्त्वया॥ २

व्यासजीने घोर तप करके शुकदेवजीको किस प्रकार पुत्ररूपमें प्राप्त किया? व्यासजीके मुखसे आपने जो कुछ सुना है, वह सब हमसे विस्तारपूर्वक कहिये॥ २॥

सूत उवाच

प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्तिं व्यासात्सत्यवतीसुतात्।
यथोत्पन्नः शुकः साक्षाद्योगिनां प्रवरो मुनिः॥ ३

सूतजी बोले—सत्यवतीपुत्र व्यासजीसे जिस प्रकार योगिजनोंमें श्रेष्ठ साक्षात् मुनिस्वरूप शुकदेवजी उत्पन्न हुए, उत्पत्तिके उस इतिहासको मैं आपलोगोंको बता रहा हूँ॥ ३॥

मेरुशृङ्गे महारम्ये व्यासः सत्यवतीसुतः।
तपश्चचार सोऽत्युग्रं पुत्रार्थं कृतनिश्चयः॥ ४

सत्यवतीके पुत्र महर्षि व्यास पुत्र-प्राप्तिके लिये दृढ संकल्पकर अत्यन्त मनोहर सुमेरुपर्वतके शिखरपर कठोर तपस्या करने लगे॥ ४॥

जपन्नेकाक्षरं मन्त्रं वाग्बीजं नारदाच्छ्रुतम्।
ध्यायन्परां महामायां पुत्रकामस्तपोनिधिः॥ ५

अग्नेर्भूमेस्तथा वायोरन्तरिक्षस्य चाप्ययम्।
वीर्येण सम्मितः पुत्रो मम भूयादिति स्म ह॥ ६

नारदजीसे सुने गये एकाक्षर वाग्बीज मन्त्रका जप करते हुए तपोनिधि व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे परात्परा महामायामें अपना ध्यान केन्द्रित किये हुए मन-ही-मन सोच रहे थे कि अग्नि, भूमि, वायु एवं आकाश—इनकी शक्तिसे सम्पन्न पुत्रकी मुझे प्राप्ति हो॥ ५-६॥

अतिष्ठत्स गताहारः शतसंवत्सरं प्रभुः।
आराधयन्महादेवं तथैव च सदाशिवाम्॥ ७

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे व्यासजी निराहार रहते हुए सौ वर्षोंतक शंकर एवं सदाशिवा भगवतीकी आराधनामें लीन रहे॥ ७॥

शक्तिः सर्वत्र पूज्येति विचार्य च पुनः पुनः।
अशक्तो निन्द्यते लोके शक्तस्तु परिपूज्यते॥ ८

यत्र पर्वतशृङ्गे वै कर्णिकारवनाद्भुते।
क्रीडन्ति देवताः सर्वे मुनयश्च तपोऽधिकाः॥ ९

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ तथा।
वसन्ति मुनयो यत्र ये चान्ये ब्रह्मवित्तमाः॥ १०

तत्र हेमगिरेः शृङ्गे संगीतध्वनिनादिते।
तपश्चचार धर्मात्मा व्यासः सत्यवतीसुतः॥ ११

ततोऽस्य तेजसा व्याप्तं विश्वं सर्वं चराचरम्।
अग्निवर्णा जटा जाता पाराशर्यस्य धीमतः॥ १२

ततोऽस्य तेज आलक्ष्य भयमाप शचीपतिः।
तुरासाहं तदा दृष्ट्वा भयत्रस्तं श्रमातुरम्॥ १३

उवाच भगवान् रुद्रो मघवन्तं तथास्थितम्।

शङ्कर उवाच

कथमिन्द्राद्य भीतोऽसि किं दुःखं ते सुरेश्वर॥ १४

अमर्षो नैव कर्तव्यस्तापसेषु कदाचन।
तपश्चरन्ति मुनयो ज्ञात्वा मां शक्तिसंयुतम्॥ १५

न त्वेतेऽहितमिच्छन्ति तापसाः सर्वथैव हि।
इत्युक्तवचनः शक्रस्तमुवाच वृषध्वजम्॥ १६

कस्मात्तपस्यति व्यासः कोऽर्थस्तस्य मनोगतः।

शिव उवाच

पाराशर्यस्तु पुत्रार्थी तपश्चरति दुश्चरम्॥ १७

पूर्णवर्षशतं जातं ददाम्यद्य सुतं शुभम्।

सूत उवाच

इत्युक्त्वा वासवं रुद्रो दयया मुदिताननः॥ १८

गत्वा ऋषिसमीपं तु तमुवाच जगद्गुरुः।
उत्तिष्ठ वासवीपुत्र पुत्रस्ते भविता शुभः॥ १९

सर्वतेजोमयो ज्ञानी कीर्तिकर्ता तवानघ।
अखिलस्य जनस्यात्र वल्लभस्ते सुतः सदा॥ २०

भविष्यति गुणैः पूर्णः सात्त्विकैः सत्यविक्रमः।

अनेकशः विचार करते हुए महर्षि व्यास इस निष्कर्षपर पहुँचे कि शक्ति ही सर्वत्र पूजनीया है। निर्बल प्राणी लोकमें निन्दाका पात्र होता है और शक्तिशालीकी पूजा की जाती है॥ ८॥

जहाँ पर्वत-शिखरपर कर्णिकार पुष्पके अद्भुत वनमें देवता एवं महातपस्वी मुनिवृन्द विहार करते हैं; जहाँ सूर्य, वसु, रुद्र, पवन, अश्विनीकुमारद्वय एवं ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ अन्य मुनिजन निवास करते हैं; मधुर संगीतकी ध्वनिसे मुखरित उसी सुमेरुपर्वतकी चोटीपर सत्यवतीनन्दन धर्मात्मा व्यासजीने तपस्या की॥ ९—११॥

उनके इस तपश्चरणके प्रभावसे समग्र चराचर जगत् व्याप्त हो गया और महामेधासम्पन्न पराशरपुत्र व्यासजीकी जटा अग्निवर्ण हो गयी॥ १२॥

तदनन्तर व्यासजीका यह तेज देखकर इन्द्र भयभीत हो गये। तब इन्द्रको भयाक्रान्त तथा व्याकुल देखकर भगवान् शंकरजी उनसे कहने लगे—॥ १३½॥

शंकरजी बोले—हे सुरेश्वर! आपको क्या दुःख है? हे इन्द्र! आज आप इस तरह भयग्रस्त क्यों हैं? तपस्वियोंसे कभी भी ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये; क्योंकि मुनिगण मुझे शक्तिसम्पन्न जानकर ही तपस्या करते हैं। ये तपस्वी मुनिलोग कभी भी किसीका अपकार नहीं चाहते हैं। शंकरजीके ऐसा कहनेपर इन्द्र उनसे बोले—व्यासजी ऐसा तप किसलिये कर रहे हैं, उनकी क्या मनोकामना है?॥ १४—१६½॥

शिवजी बोले—व्यासजी पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे यह कठोर तप कर रहे हैं। इन्हें तपस्या करते हुए पूरे एक सौ वर्ष हो चुके हैं, अतः मैं इन्हें कल्याणकारी पुत्र प्रदान करूँगा॥ १७½॥

सूतजी बोले—दयाभावसे युक्त प्रसन्न मुखवाले जगद्गुरु भगवान् शंकर इन्द्रसे ऐसा कहकर मुनि व्यासजीके पास जाकर बोले—हे वासवीपुत्र! उठो, तुम्हें कल्याणकारी पुत्र अवश्य प्राप्त होगा। हे निष्पाप! तुम्हारा वह पुत्र सभी प्रकारके तेजोंसे सम्पन्न, ज्ञानवान्, यशस्वी और सभी लोगोंका सदा अतिशय प्रिय, समस्त सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न तथा सत्यरूपी पराक्रमसे युक्त होगा॥ १८—२०½॥

सूत उवाच

तदाकर्ण्य वचः श्लक्ष्णं कृष्णद्वैपायनस्तदा॥ २१

शूलपाणिं नमस्कृत्य जगामाश्रममात्मनः।
स गत्वाश्रममेवाशु बहुवर्षश्रमातुरः॥ २२

अरणीसहितं गुह्यं ममन्थाग्निं चिकीर्षया।
मन्थनं कुर्वतस्तस्य चित्ते चिन्ताभरस्तदा॥ २३

प्रादुर्बभूव सहसा सुतोत्पत्तौ महात्मनः।
मन्थानारणिसंयोगान्मन्थनाच्च समुद्भवः॥ २४

पावकस्य यथा तद्वत्कथं मे स्यात्सुतोद्भवः।
पुत्रारणिस्तु या ख्याता सा ममाद्य न विद्यते॥ २५

तरुणी रूपसम्पन्ना कुलोत्पन्ना पतिव्रता।
कथं करोमि कान्तां च पादयोः शृङ्खलासमाम्॥ २६

पुत्रोत्पादनदक्षां च पातिव्रत्ये सदा स्थिताम्।
पतिव्रतापि दक्षापि रूपवत्यपि कामिनी॥ २७

सदा बन्धनरूपा च स्वेच्छासुखविधायिनी।
शिवोऽपि वर्तते नित्यं कामिनीपाशसंयुतः॥ २८

कथं करोम्यहं चात्र दुर्घटं च गृहाश्रमम्।
एवं चिन्तयतस्तस्य घृताची दिव्यरूपिणी॥ २९

प्राप्ता दृष्टिपथं तत्र समीपे गगने स्थिता।
तां दृष्ट्वा चञ्चलापाङ्गीं समीपस्थां वराप्सराम्॥ ३०

पञ्चबाणपरीताङ्गस्तूर्णमासीद् धृतव्रतः।
चिन्तयामास च तदा किं करोम्यद्य संकटे॥ ३१

धर्मस्य पुरतः प्राप्ते कामभावे दुरासदे।
अङ्गीकरोमि यद्येनां वञ्चनार्थमिहागताम्॥ ३२

हसिष्यन्ति महात्मानस्तापसा मां तु विह्वलम्।
तपस्तप्त्वा महाघोरं पूर्णवर्षशतं त्विह॥ ३३

सूतजी बोले—तब शूलपाणि शंकरजीका मधुर वचन सुनकर उन्हें प्रणामकर द्वैपायन व्यासजीने अपने आश्रमके लिये प्रस्थान किया। वहाँ पहुँचकर कई वर्षोंतक घोर तप करनेके कारण अतिशय श्रान्त महर्षि व्यास अरणीमें समाहित अग्निको प्रकट करनेकी कामनासे अरणि-मन्थन करने लगे। मन्थन कर रहे व्यासजीके मनमें उस समय महान् चिन्ता हो रही थी॥ २१—२३॥

मन्थन तथा अरणिके पारस्परिक संयोगसे प्रकटित अग्निको देखकर व्यासजीके मनमें अचानक पुत्रोत्पत्तिका विचार आया कि अरणि-मन्थनजनित अग्निकी भाँति मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न हो? क्योंकि पुत्र प्रदान करनेवाली अरणी-रूपी वह रूपवती, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा पतिव्रता युवती स्त्री मेरे पास है नहीं, साथ ही पैरोंकी शृंखलाके समान स्त्रीको मैं कैसे अंगीकार करूँ? पुत्र उत्पन्न करनेमें कुशल और पातिव्रत्य धर्ममें सदा तत्पर रहनेवाली पत्नी मुझे कैसे मिले? पतिपरायणा, निपुण, रूपवती—कैसी भी स्त्री हो; वह सदा बन्धनकी कारण ही बनी रहती है। स्त्री सदा अपनी इच्छाके अनुसार सुख प्राप्त करना चाहती है। शंकरजी भी नित्य स्त्रीके मोहपाशमें फँसे हुए रहते हैं। अतः अब मैं अत्यन्त विषम गृहस्थाश्रम-धर्मको किस प्रकार अंगीकार करूँ?॥ २४—२८½॥

व्यासजी ऐसा विचार कर ही रहे थे कि आकाशमें समीपमें ही स्थित घृताची नामक अप्सरा उन्हें दृष्टिगोचर हुई। चंचल कटाक्षोंवाली उस श्रेष्ठ अप्सराको पासमें ही स्थित देखकर कठोर नियम-संयम धारण करनेवाले व्यासजी शीघ्र ही कामबाणसे आहत अंगोंवाले हो गये और सोचने लगे कि अब इस विषम संकटके समय मैं क्या करूँ?॥ २९—३१॥

धर्मके समक्ष इस दुर्जय कामवासनाके वशीभूत होकर यदि मैं छलनेके लिये यहाँ उपस्थित हुई इस अप्सराको स्वीकार करता हूँ, तब ऐसी स्थितिमें महात्मा तथा तपस्वीगण मुझ कामासक्तिसे विह्वलका यह उपहास करेंगे कि सौ वर्षोंतक कठिन तपस्या करनेके पश्चात् भी एक अप्सराको देखकर महातपस्वी

दृष्ट्वाप्सरां च विवशः कथं जातो महातपाः।
कामं निन्दापि भवतु यदि स्यादतुलं सुखम्॥ ३४

गृहस्थाश्रमसम्भूतं सुखदं पुत्रकामदम्।
स्वर्गदं च तथा प्रोक्तं ज्ञानिनां मोक्षदं तथा॥ ३५

न भविष्यति तन्नूनमनया देवकन्यया।
नारदाच्च मया पूर्वं श्रुतमस्ति कथानकम्।
यथोर्वशीवशो राजा पराभूतः पुरूरवाः॥ ३६

व्यास इतने विवश कैसे हो गये? और फिर यदि इसमें अतुलनीय सुख हो तो ऐसी निन्दा भी होती रहे। अर्थात् उसकी उपेक्षा भी की जा सकती है॥ ३२—३४॥

गृहस्थाश्रम पुत्र-प्राप्तिकी कामना पूर्ण करनेवाला, स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला तथा ज्ञानियोंको मोक्ष देनेवाला कहा गया है। किंतु वैसा सुख इस देवकन्यासे नहीं प्राप्त होगा। पूर्वकालमें मैंने नारदजीसे एक कथा सुनी थी जिसमें राजा पुरूरवा उर्वशीके वशीभूत होकर अत्यन्त संकटमें पड़ गये थे॥ ३५-३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शिववरदानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

बुधके जन्मकी कथा

ऋषय ऊचुः

कोऽसौ पुरूरवा राजा कोर्वशी देवकन्यका।
कथं कष्टं च सम्प्राप्तं तेन राज्ञा महात्मना॥ १
सर्वं कथानकं ब्रूहि लोमहर्षणजाधुना।
श्रोतुकामा वयं सर्वे त्वन्मुखाब्जच्युतं रसम्॥ २
अमृतादपि मिष्टा ते वाणी सूत रसात्मिका।
न तृप्यामो वयं सर्वे सुधया च यथामराः॥ ३

सूत उवाच

शृणुध्वं मुनयः सर्वे कथां दिव्यां मनोरमाम्।
वक्ष्याम्यहं यथाबुद्ध्या श्रुतां व्यासवरोत्तमात्॥ ४
गुरोस्तु दयिता भार्या तारा नामेति विश्रुता।
रूपयौवनयुक्ता सा चार्वङ्गी मदविह्वला॥ ५
गतैकदा विधोर्धाम यजमानस्य भामिनी।
दृष्टा च शशिनात्यर्थं रूपयौवनशालिनी॥ ६
कामातुरस्तदा जातः शशी शशिमुखीं प्रति।
सापि वीक्ष्य विधुं कामं जाता मदनपीडिता॥ ७
तावन्योन्यं प्रेमयुक्तौ स्मरार्तौ च बभूवतुः।
तारा शशी मदोन्मत्तौ कामबाणप्रपीडितौ॥ ८

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! वे राजा पुरूरवा कौन थे तथा वह देवकन्या उर्वशी कौन थी? उस मनस्वी राजाने किस प्रकार संकट प्राप्त किया?॥ १॥

हे लोमहर्षणतनय! आप इस समय पूरा कथानक विस्तारपूर्वक कहें। हम सभी लोग आपके मुखारविन्दसे निःसृत रसमयी वाणीको सुननेके इच्छुक हैं॥ २॥

हे सूतजी! आपकी वाणी अमृतसे भी बढ़कर मधुर एवं रसमयी है। जिस प्रकार देवगण अमृत-पानसे कभी तृप्त नहीं होते, उसी प्रकार आपके कथा-श्रवणसे हम तृप्त नहीं होते॥ ३॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! अब आपलोग उस दिव्य तथा मनोहर कथाको सुनिये, जिसे मैंने परम श्रेष्ठ व्यासजीके मुखसे सुना है। मैं उसे अपनी बुद्धिके अनुसार वैसा ही कहूँगा॥ ४॥

सुरगुरु बृहस्पतिकी पत्नीका नाम 'तारा' था। वह रूप-यौवनसे सम्पन्न तथा सुन्दर अंगोंवाली थी॥ ५॥

एक बार वह सुन्दरी अपने यजमान चन्द्रमाके घर गयी। उस रूप तथा यौवनसे सम्पन्न चन्द्रमुखी कामिनीको देखते ही चन्द्रमा उसपर आसक्त हो गये। तारा भी चन्द्रमाको देखकर आसक्त हो गयी। इस प्रकार वे दोनों तारा तथा चन्द्रमा एक-दूसरेको देखकर प्रेमविभोर हो गये॥ ६—८॥

रेमाते मदमत्तौ तौ परस्परस्पृहान्वितौ।
दिनानि कतिचित्तत्र जातानि रममाणयोः॥ ९

बृहस्पतिस्तु दुःखार्तस्तारामानयितुं गृहम्।
प्रेषयामास शिष्यं तु नायाता सा वशीकृता॥ १०

पुनः पुनर्यदा शिष्यं परावर्तत चन्द्रमाः।
बृहस्पतिस्तदा क्रुद्धो जगाम स्वयमेव हि॥ ११

गत्वा सोमगृहं तत्र वाचस्पतिरुदारधीः।
उवाच शशिनं क्रुद्धः स्मयमानं मदान्वितम्॥ १२

किं कृतं किल शीतांशो कर्म धर्मविगर्हितम्।
रक्षिता मम भार्येयं सुन्दरी केन हेतुना॥ १३

तव देव गुरुश्चाहं यजमानोऽसि सर्वथा।
गुरुभार्या कथं मूढ भुक्ता किं रक्षिताथवा॥ १४

ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः।
महापातकिनो ह्येते तत्संसर्गी च पञ्चमः॥ १५

महापातकयुक्तस्त्वं दुराचारोऽतिगर्हितः।
न देवसदनार्होऽसि यदि भुक्तेयमङ्गना॥ १६

मुञ्चेमामसितापाङ्गीं नयामि सदनं मम।
नोचेद्द्रक्ष्यामि दुष्टात्मन् गुरुदारापहारिणम्॥ १७

इत्येवं भाषमाणं तमुवाच रोहिणीपतिः।
गुरुं क्रोधसमायुक्तं कान्ताविरहदुःखितम्॥ १८

इन्दुरुवाच

क्रोधात्ते तु दुराराध्या ब्राह्मणाः क्रोधवर्जिताः।
पूजार्हा धर्मशास्त्रज्ञा वर्जनीयास्ततोऽन्यथा॥ १९

आगमिष्यति सा कामं गृहं ते वरवर्णिनी।
अत्रैव संस्थिता बाला का ते हानिरिहानघ॥ २०

इच्छया संस्थिता चात्र सुखकामार्थिनी हि सा।
दिनानि कतिचित्स्थित्वा स्वेच्छया चागमिष्यति॥ २१

वे दोनों प्रेमोन्मत्त एक-दूसरेको चाहनेकी इच्छासे युक्त हो विहार करने लगे। इस प्रकार उनके कुछ दिन व्यतीत हुए। तब बृहस्पतिने ताराको घर लानेके लिये अपना एक शिष्य भेजा; परंतु वह न आ सकी॥ ९-१०॥

जब चन्द्रमाने बृहस्पतिके शिष्यको कई बार लौटाया, तो वे क्रोधित होकर चन्द्रमाके पास स्वयं गये॥ ११॥

चन्द्रमाके घर जाकर उदारचित्त बृहस्पतिने अभिमानके साथ मुसकराते हुए उस चन्द्रमासे कहा—हे चन्द्रमा! तुमने यह धर्मविरुद्ध कार्य क्यों किया और मेरी इस परम सुन्दरी पत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १२-१३॥

हे देव! मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुम मेरे यजमान हो। तब हे मूर्ख! तुमने गुरुपत्नीको अपने घरमें क्यों रख लिया?॥ १४॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, सुवर्ण चुरानेवाला, मदिरापान करनेवाला, गुरुपत्नीगामी तथा पाँचवाँ इन पापियोंके साथ संसर्ग रखनेवाला—ये 'महापातकी' हैं। तुम महापापी, दुराचारी एवं अत्यन्त निन्दनीय हो। यदि तुमने मेरी पत्नीके साथ अनाचार किया है तो तुम देवलोकमें रहनेयोग्य नहीं हो॥ १५-१६॥

हे दुष्टात्मन्! असितापांगी मेरी इस पत्नीको छोड़ दो जिससे मैं इसे अपने घर ले जाऊँ, अन्यथा गुरुपत्नीका अपहरण करनेवाले तुझको मैं शाप दे दूँगा॥ १७॥

इस प्रकार बोलते हुए स्त्रीविरहसे कातर तथा क्रोधाकुल देवगुरु बृहस्पतिसे रोहिणीपति चन्द्रमाने कहा॥ १८॥

चन्द्रमा बोले—क्रोधके कारण ब्राह्मण अपूजनीय होते हैं। क्रोधरहित तथा धर्मशास्त्रज्ञ विप्र पूजाके योग्य हैं और इन गुणोंसे हीन ब्राह्मण त्याज्य होते हैं॥ १९॥

हे अनघ! वह सुन्दर स्त्री अपनी इच्छासे आपके घर चली जायगी और यदि कुछ दिन यहाँ ठहर भी गयी तो इससे आपकी क्या हानि है? अपनी इच्छासे ही वह यहाँ रहती है। सुखकी इच्छा रखनेवाली वह कुछ दिन यहाँ रहकर अपनी इच्छासे चली जायगी॥ २०-२१॥

त्वयैवोदाहृतं पूर्वं धर्मशास्त्रमतं तथा।
न स्त्री दुष्यति चारेण न विप्रो वेदकर्मणा॥ २२

इत्युक्तः शशिना तत्र गुरुरत्यन्तदुःखितः।
जगाम स्वगृहं तूर्णं चिन्ताविष्टः स्मरातुरः॥ २३

दिनानि कतिचित्तत्र स्थित्वा चिन्तातुरो गुरुः।
ययावथ गृहं तस्य त्वरितश्चौषधीपतेः॥ २४

स्थितः क्षत्रा निषिद्धोऽसौ द्वारदेशे रुषान्वितः।
नाजगाम शशी तत्र चुकोपाति बृहस्पतिः॥ २५

अयं मे शिष्यतां यातो गुरुपत्नीं तु मातरम्।
जग्राह बलतोऽधर्मी शिक्षणीयो मयाधुना॥ २६

उवाच वाचं कोपात्तु द्वारदेशस्थितो बहिः।
किं शेषे भवने मन्द पापाचार सुराधम॥ २७

देहि मे कामिनीं शीघ्रं नोचेच्छापं ददाम्यहम्।
करोमि भस्मसान्नूनं न ददासि प्रियां मम॥ २८

सूत उवाच

क्रूराणि चैवमादीनि भाषणानि बृहस्पतेः।
श्रुत्वा द्विजपतिः शीघ्रं निर्गतः सदनाद् बहिः॥ २९

तमुवाच हसन्सोमः किमिदं बहु भाषसे।
न ते योग्यासितापाङ्गी सर्वलक्षणसंयुता॥ ३०

कुरूपां च स्वसदृशीं गृहाणान्यां स्त्रियं द्विज।
भिक्षुकस्य गृहे योग्या नेदृशी वरवर्णिनी॥ ३१

रतिः स्वसदृशे कान्ते नार्याः किल निगद्यते।
त्वं न जानासि मन्दात्मन् कामशास्त्रविनिर्णयम्॥ ३२

यथेष्टं गच्छ दुर्बुद्धे नाहं दास्यामि कामिनीम्।
यच्छक्यं कुरु तत्कामं न देया वरवर्णिनी॥ ३३

कामार्तस्य च ते शापो न मां बाधितुमर्हति।
नाहं ददे गुरो कान्तां यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३४

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना चेज्यश्चिन्तामाप रुषान्वितः।
जगाम तरसा सद्म क्रोधयुक्तः शचीपतेः॥ ३५

आपने ही तो पूर्वमें धर्मशास्त्रके इस मतका उल्लेख किया है कि संसर्गसे स्त्री और वेदकर्मसे ब्राह्मण कभी दूषित नहीं होते॥ २२॥

चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर बृहस्पति अत्यन्त दुखी हुए एवं चिन्तामग्न होकर शीघ्र ही अपने घर चले गये॥ २३॥

कुछ दिन अपने घर रहकर चिन्तासे व्याकुल गुरु बृहस्पति पुनः उन औषधिपति चन्द्रमाके यहाँ शीघ्र जा पहुँचे। वहाँ द्वारपालने उन्हें भीतर जानेसे रोका, तब वे क्रुद्ध होकर द्वारपर ही रुक गये। [कुछ देरतक प्रतीक्षा करनेपर] जब चन्द्रमा वहाँ नहीं आये, तब बृहस्पति अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे॥ २४-२५॥

[वे विचार करने लगे] मेरा शिष्य होते हुए भी इसने माताके समान आदरणीया गुरुपत्नीको बलपूर्वक हर लिया है। इसलिये अब मुझे इस अधर्मीको दण्डित करना चाहिये॥ २६॥

तब बाहर द्वारपर खड़े बृहस्पतिने क्रोधके साथ चन्द्रमासे कहा—अरे नीच! पापी! देवाधम! तुम अपने घरमें निश्चिन्त होकर क्यों पड़े हो? मेरी स्त्री शीघ्र मुझे लौटा दो, अन्यथा मैं तुम्हें शाप दे दूँगा। यदि तुम मेरी पत्नी नहीं दोगे तो मैं तुझे अभी अवश्य भस्म कर दूँगा॥ २७-२८॥

सूतजी बोले—बृहस्पतिके इस प्रकारके क्रोधभरे वचन सुनकर द्विजराज चन्द्रमा शीघ्र घरसे बाहर निकले और हँसते हुए उनसे बोले—आप इतना अधिक क्यों बोल रहे हैं? सर्वलक्षणसम्पन्न वह असितापांगी आपके योग्य नहीं है॥ २९-३०॥

हे विप्र! आप अपने समान किसी अन्य स्त्रीको ग्रहण कर लीजिये; ऐसी सुन्दरी भिक्षुकके घरमें रहनेयोग्य नहीं है। यह प्रायः कहा जाता है कि अपने समान गुणसम्पन्न पतिपर ही पत्नीका प्रेम स्थिर रहता है। अपने इच्छानुसार अब आप चाहे जहाँ चले जायँ। मैं इसे नहीं दूँगा। आपका शाप मेरे ऊपर नहीं लग सकता। हे गुरो! मैं यह रमणी आपको नहीं दूँगा, अब आप जैसा चाहें वैसा करें॥ ३१—३४॥

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर देवगुरु बृहस्पति रुष्ट होकर चिन्तामें पड़ गये और वे कुपित हो शीघ्रतासे इन्द्रके भवन चले गये॥ ३५॥

दृष्ट्वा शतक्रतुस्तत्र गुरुं दुःखातुरं स्थितम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयाद्यैः पूजयित्वा सुसंस्थितः॥ ३६

पप्रच्छ परमोदारस्तं तथावस्थितं गुरुम्।
का चिन्ता ते महाभाग शोकार्तोऽसि महामुने॥ ३७

केनापमानितोऽसि त्वं मम राज्ये गुरुश्च मे।
त्वदधीनमिदं सर्वं सैन्यं लोकाधिपैः सह॥ ३८

ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुर्ये चान्ये देवसत्तमाः।
करिष्यन्ति च साहाय्यं का चिन्ता वद साम्प्रतम्॥ ३९

गुरुरुवाच

शशिनापहृता भार्या तारा मम सुलोचना।
न ददाति स दुष्टात्मा प्रार्थितोऽपि पुनः पुनः॥ ४०

किं करोमि सुरेशान त्वमेव शरणं मम।
साहाय्यं कुरु देवेश दुःखितोऽस्मि शतक्रतो॥ ४१

इन्द्र उवाच

मा शोकं कुरु धर्मज्ञ दासोऽस्मि तव सुव्रत।
आनयिष्याम्यहं नूनं भार्यां तव महामते॥ ४२

प्रेषिते चेन्मया दूते न दास्यति मदाकुलः।
ततो युद्धं करिष्यामि देवसैन्यैः समावृतः॥ ४३

इत्याश्वास्य गुरुं शक्रो दूतं वक्तृविचक्षणम्।
प्रेषयामास सोमाय वार्ताशंसिनमद्भुतम्॥ ४४

स गत्वा शशिलोकं तु त्वरितः सुविचक्षणः।
उवाच वचनेनैव वचनं रोहिणीपतिम्॥ ४५

प्रेषितोऽहं महाभाग शक्रेण त्वां विवक्षया।
कथितं प्रभुणा यच्च तद् ब्रवीमि महामते॥ ४६

धर्मज्ञोऽसि महाभाग नीतिं जानासि सुव्रत।
अत्रिः पिता ते धर्मात्मा न निन्द्यं कर्तुमर्हसि॥ ४७

भार्या रक्ष्या सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतन्द्रितैः।
तदर्थे कलहः कामं भविता नात्र संशयः॥ ४८

वहाँ स्थित देवगुरु बृहस्पतिको दुःखसे व्याकुल देखकर इन्द्रने पाद्य, अर्घ्य तथा आचमनीय आदिसे उनकी विधिवत् पूजा करके बैठाया॥ ३६॥

जब बृहस्पति आसनपर बैठकर स्वस्थ हो गये, तब परम उदार इन्द्रने उनसे पूछा—'हे महाभाग! आपको कौन-सी चिन्ता है? हे मुनिवर! आप इतने शोकाकुल किसलिये हैं?॥ ३७॥

मेरे राज्यमें आपका अपमान किसने किया है? आप मेरे गुरु हैं, अतः हमारी सारी सेना एवं लोकपाल सभी आपके अधीन हैं। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा अन्य देवता भी आपकी सहायता करेंगे। आपको कौन-सी चिन्ता है; इस समय उसे बताइये॥ ३८-३९॥

बृहस्पति बोले—चन्द्रमाने मेरी सुन्दर नेत्रोंवाली पत्नी ताराका हरण कर लिया और वह दुष्ट मेरे बार-बार प्रार्थना करनेपर भी उसे लौटाता नहीं है। हे देवराज! अब मैं क्या करूँ? अब तो केवल आप ही मेरी शरण हैं। हे शतक्रतो! मैं अत्यन्त दुःखी हूँ। हे देवेश! आप मेरी सहायता कीजिये॥ ४०-४१॥

इन्द्र बोले—हे धर्मात्मन्! आप शोक न करें, हे सुव्रत! मैं आपका सेवक हूँ, मैं आपकी पत्नीको अवश्य लाऊँगा। हे महामते! यदि दूत भेजनेपर भी वह मदोन्मत्त चन्द्रमा आपकी स्त्रीको नहीं देगा तो देवसेनाओंसहित मैं स्वयं युद्ध करूँगा॥ ४२-४३॥

इस प्रकार गुरु बृहस्पतिको आश्वासन देकर इन्द्रने अपनी बातको सही ढंगसे कहनेवाले, विलक्षण तथा वाक्पटु दूतको चन्द्रमाके पास भेजा॥ ४४॥

शीघ्र ही वह चतुर दूत चन्द्रलोक गया और रोहिणीपति चन्द्रमासे यह सन्देश-वचन कहने लगा—हे महाभाग! हे महामते! इन्द्रने आपसे कुछ कहनेके लिये मुझे भेजा है। अतः उनके द्वारा जो कुछ कहा गया है, वही ज्यों-का-त्यों मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ४५-४६॥

हे महाभाग! हे सुव्रत! आप धर्मज्ञ हैं, नीति जानते हैं तथा धर्मात्मा अत्रिमुनि आपके पिता हैं, अतएव आपको कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये जिससे आप निन्दनीय हो जायँ। आलस्यरहित होकर यथाशक्ति अपनी स्त्रीकी रक्षा सभी प्राणी करते हैं। अतः इस (तारा)-के लिये बड़ा कलह होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४७-४८॥

यथा तव तथा तस्य यत्नः स्याद्दाररक्षणे।
आत्मवत्सर्वभूतानि चिन्तय त्वं सुधानिधे॥ ४९

अष्टाविंशतिसंख्यास्ते कामिन्यो दक्षजाः शुभाः।
गुरुपत्नीं कथं भोक्तुं त्वमिच्छसि सुधानिधे॥ ५०

स्वर्गे सदा वसन्त्येता मेनकाद्या मनोरमाः।
भुंक्ष्व ताः स्वेच्छया कामं मुञ्च पत्नीं गुरोरपि॥ ५१

ईश्वरा यदि कुर्वन्ति जुगुप्सितमहन्तया।
अज्ञास्तदनुवर्तन्ते तदा धर्मक्षयो भवेत्॥ ५२

तस्मान्मुञ्च महाभाग गुरोः पत्नीं मनोरमाम्।
कलहस्त्वन्निमित्तोऽद्य सुराणां न भवेद्यथा॥ ५३

सूत उवाच

सोमः शक्रवचः श्रुत्वा किञ्चित्क्रोधसमाकुलः।
भङ्ग्या प्रतिवचः प्राह शक्रदूतं तदा शशी॥ ५४

इन्दुरुवाच

धर्मज्ञोऽसि महाबाहो देवानामधिपः स्वयम्।
पुरोधापि च ते तादृग्युवयोः सदृशी मतिः॥ ५५

परोपदेशे कुशला भवन्ति बहवो जनाः।
दुर्लभस्तु स्वयं कर्ता प्राप्ते कर्मणि सर्वदा॥ ५६

बार्हस्पत्यप्रणीतं च शास्त्रं गृह्णन्ति मानवाः।
को विरोधोऽत्र देवेश कामयानां भजन्स्त्रियम्॥ ५७

स्वकीयं बलिनां सर्वं दुर्बलानां न किञ्चन।
स्वीया च परकीया च भ्रमोऽयं मन्दचेतसाम्॥ ५८

तारा मय्यनुरक्ता च यथा न तु तथा गुरौ।
अनुरक्ता कथं त्याज्या धर्मतो न्यायतस्तथा॥ ५९

गृहारम्भस्तु रक्तायां विरक्तायां कथं भवेत्।
विरक्तेयं यदा जाता चकमेऽनुजकामिनीम्॥ ६०

न दास्येऽहं वरारोहां गच्छ दूत वद स्वयम्।
ईश्वरोऽसि सहस्राक्ष यदिच्छसि कुरुष्व तत्॥ ६१

हे सुधानिधे! जैसे आप अपनी भार्याकी रक्षा हेतु प्रयत्न करते हैं, वैसे वे गुरु बृहस्पति भी अपनी पत्नीकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हैं। आप अपने ही सदृश सभी प्राणियोंके विषयमें विचार कीजिये॥ ४९॥

हे सुधानिधे! आपको दक्षप्रजापतिकी सुलक्षणोंसे युक्त अट्ठाईस कन्याएँ पत्नीके रूपमें प्राप्त हैं। आप अपने गुरुकी पत्नीको पानेकी इच्छा क्यों रखते हैं? स्वर्गलोकमें मेनका आदि अनेक मनोरम अप्सराएँ सर्वदा सुलभ हैं, तब उनके साथ स्वेच्छापूर्वक विहार कीजिये और गुरुपत्नी ताराको शीघ्र ही लौटा दीजिये॥ ५०-५१॥

आप-जैसे महान् लोग यदि अहंकारवश ऐसा निन्दित कर्म करें तो अनभिज्ञ साधारणजन तो उनका अनुकरण करेंगे ही और तब धर्मका नाश हो जायगा। अतः हे महाभाग! गुरुकी इस मनोरमा पत्नीको शीघ्र लौटा दीजिये, जिससे आपके कारण इस समय देवताओंके बीच कलह न उत्पन्न हो॥ ५२-५३॥

सूतजी बोले—दूतसे इन्द्रका सन्देश सुनकर चन्द्रमा कुछ क्रोधित हो गये और उन्होंने इन्द्रके दूतको इस प्रकार व्यंग्यपूर्वक उत्तर दिया॥ ५४॥

चन्द्रमा बोले—हे महाबाहो! आप धर्मज्ञ हैं और स्वयं देवताओंके राजा हैं। आपके पुरोहित बृहस्पति भी ठीक आपकी तरह हैं और आप दोनोंकी बुद्धि भी एक समान है॥ ५५॥

दूसरोंको उपदेश देनेमें अनेक लोग चतुर होते हैं, परंतु कार्य उपस्थित होनेपर [उपदेशानुसार] स्वयं आचरण करनेवाला दुर्लभ होता है॥ ५६॥

हे देवेश! बृहस्पतिके बनाये शास्त्रको सभी मनुष्य स्वीकार करते हैं। शक्तिशाली लोगोंके लिये सब कुछ अपना होता है, परंतु दुर्बल लोगोंके लिये कुछ भी अपना नहीं होता। तारा जितना प्रेम मुझसे करती है, उतना बृहस्पतिसे नहीं। अतः अनुरक्त स्त्री धर्म अथवा न्यायसे त्याज्य कैसे हो सकती है? गार्हस्थ्य जीवनका वास्तविक सुख तो प्रेम रखनेवाली स्त्रीके साथ ही होता है, उदासीन स्त्रीके साथ नहीं; इसलिये हे दूत! तुम जाओ और इन्द्रसे कह दो कि मैं इसे नहीं दूँगा। हे सहस्राक्ष! आप स्वयं समर्थ हैं; आप जो चाहते हों, वह कीजिये॥ ५७—६१॥

सूत उवाच

इत्युक्तः शशिना दूतः प्रययौ शक्रसन्निधिम्।
इन्द्रायाचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं शीतरश्मिना॥ ६२

तुराषाडपि तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तो बभूव ह।
सेनोद्योगं तथा चक्रे साहाय्यार्थं गुरोर्विभुः॥ ६३

शुक्रस्तु विग्रहं श्रुत्वा गुरुद्वेषात्ततो ययौ।
मा ददस्वेति तं वाक्यमुवाच शशिनं प्रति॥ ६४

साहाय्यं ते करिष्यामि मन्त्रशक्त्या महामते।
भविता यदि संग्रामस्तव चेन्द्रेण मारिष॥ ६५

शङ्करस्तु तदाकर्ण्य गुरुदाराभिमर्शनम्।
गुरुशत्रुं भृगुं मत्वा साहाय्यमकरोत्तदा॥ ६६

संग्रामस्तु तदा वृत्तो देवदानवयोर्द्रुतम्।
बहूनि तत्र वर्षाणि तारकासुरवत्किल॥ ६७

देवासुरकृतं युद्धं दृष्ट्वा तत्र पितामहः।
हंसारूढो जगामाशु तं देशं क्लेशशान्तये॥ ६८

राकापतिं तदा प्राह मुञ्च भार्यां गुरोरिति।
नोचेद्विष्णुं समाहूय करिष्यामि तु संक्षयम्॥ ६९

भृगुं निवारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।
किमन्यायमतिर्जाता सङ्गदोषान्महामते॥ ७०

निषेधयामास ततो भृगुस्तं चौषधीपतिम्।
मुञ्च भार्यां गुरोरद्य पित्राहं प्रेषितस्तव॥ ७१

सूत उवाच

द्विजराजस्तु तच्छ्रुत्वा भृगोर्वचनमद्भुतम्।
ददौ च तत्प्रियां भार्यां गुरोर्गर्भवतीं शुभाम्॥ ७२

प्राप्य कान्तां गुरुर्हृष्टः स्वगृहं मुदितो ययौ।
ततो देवास्ततो दैत्या ययुः स्वान्स्वान्गृहान्प्रति॥ ७३

सूतजी बोले—चन्द्रमाके ऐसा कहनेपर दूत इन्द्रके पास लौट गया और चन्द्रमाने जो कहा था, वह सब उसने इन्द्रसे कह दिया॥ ६२॥

इसे सुनकर प्रतापी इन्द्र भी अत्यन्त क्रोधित हुए और गुरु बृहस्पतिकी सहायताके लिये सेनाकी तैयारी करने लगे॥ ६३॥

दैत्यगुरु शुक्राचार्य चन्द्रमा तथा देवगुरुके विरोधकी बात सुनकर बृहस्पतिसे द्वेषके कारण चन्द्रमाके पास गये और उससे बोले कि आप ताराको वापस मत कीजिये॥ ६४॥

हे महामते! हे मान्य! यदि इन्द्रके साथ आपका युद्ध छिड़ जायगा तो मैं भी अपनी मन्त्रशक्तिसे आपकी सहायता करूँगा॥ ६५॥

गुरुपत्नीसे अनाचारकी बात सुनकर और शुक्राचार्यको बृहस्पतिका शत्रु जानकर शिवजी भी बृहस्पतिकी सहायताके लिये तैयार हो गये॥ ६६॥

तब तारकासुरके साथ हुए युद्धकी भाँति देव-दानवोंमें संग्राम छिड़ गया। यह युद्ध बहुत वर्षोंतक चलता रहा॥ ६७॥

देव-दानवोंका यह संग्राम देखकर प्रजापति ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर उस क्लेशकी शान्तिके लिये रणस्थलमें शीघ्र पहुँचे। तब ब्रह्माजीने चन्द्रमासे कहा कि तुम गुरु बृहस्पतिकी पत्नी लौटा दो, नहीं तो भगवान् विष्णुको बुलाकर मैं तुम्हें समूल नष्ट कर दूँगा। तत्पश्चात् लोकपितामह ब्रह्माजीने भृगुनन्दन शुक्रको भी युद्धसे रोका और उनसे कहा—हे महामते! दैत्योंके संगसे क्या आपकी भी बुद्धि अन्याययुक्त हो गयी है?॥ ६८—७०॥

तत्पश्चात् [ब्रह्माजीकी बात सुनकर शुक्राचार्य चन्द्रमाके पास गये] उन्होंने चन्द्रमाको युद्धसे रोका और कहा कि तुम्हारे पिताने मुझे भेजा है, तुम अपने गुरुकी पत्नीको तत्काल छोड़ दो॥ ७१॥

सूतजी बोले—शुक्राचार्यकी वह अद्भुत वाणी सुनकर चन्द्रमाने बृहस्पतिकी गर्भवती सुन्दरी प्रिय भार्याको लौटा दिया॥ ७२॥

पत्नीको पाकर देवगुरु बड़े प्रसन्न हुए और आनन्दपूर्वक अपने घर चले गये। तत्पश्चात् सभी देवता और दैत्य भी अपने-अपने घर चले गये॥ ७३॥

ब्रह्मा स्वसदनं प्राप्तः कैलासं चापि शङ्करः।
बृहस्पतिस्तु सन्तुष्टः प्राप्य भार्यां मनोरमाम्॥ ७४

ततः कालेन कियता तारासूत सुतं शुभम्।
सुदिने शुभनक्षत्रे तारापतिसमं गुणैः॥ ७५

दृष्ट्वा पुत्रं गुरुर्जातं चकार विधिपूर्वकम्।
जातकर्मादिकं सर्वं प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ७६

श्रुतं चन्द्रमसा जन्म पुत्रस्य मुनिसत्तमाः।
दूतं च प्रेषयामास गुरुं प्रति महामतिः॥ ७७

न चायं तव पुत्रोऽस्ति मम वीर्यसमुद्भवः।
कथं त्वं कृतवान्कामं जातकर्मादिकं विधिम्॥ ७८

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य दूतस्य च बृहस्पतिः।
उवाच मम पुत्रो मे सदृशो नात्र संशयः॥ ७९

पुनर्विवादः सञ्जातो मिलिता देवदानवाः।
युद्धार्थमागतास्तेषां समाजः समजायत॥ ८०

तत्रागतः स्वयं ब्रह्मा शान्तिकामः प्रजापतिः।
निवारयामास मुखे संस्थितान्युद्धदुर्मदान्॥ ८१

तारां पप्रच्छ धर्मात्मा कस्यायं तनयः शुभे।
सत्यं वद वरारोहे यथा क्लेशः प्रशाम्यति॥ ८२

तमुवाचासितापाङ्गी लज्जमानाप्यधोमुखी।
चन्द्रस्येति शनैरन्तर्जगाम वरवर्णिनी॥ ८३

जग्राह तं सुतं सोमः प्रहृष्टेनान्तरात्मना।
नाम चक्रे बुध इति जगाम स्वगृहं पुनः॥ ८४

ययौ ब्रह्मा स्वकं धाम सर्वे देवाः सवासवाः।
यथागतं गतं सर्वैः सर्वशः प्रेक्षकैर्जनैः॥ ८५

पितामह ब्रह्मा अपने लोकको तथा शिवजी भी कैलासपर्वतपर चले गये। इस प्रकार अपनी सुन्दरी स्त्रीको पाकर बृहस्पति सन्तुष्ट हो गये॥ ७४॥

तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद ताराने शुभ दिन तथा शुभ नक्षत्रमें गुणोंमें चन्द्रमाके समान ही सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पुत्रको उत्पन्न देखकर देवगुरु बृहस्पतिने प्रसन्न मनसे उसके विधिवत् जातकर्म आदि सभी संस्कार किये॥ ७५-७६॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! चन्द्रमाने जब सुना कि पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब बुद्धिमान् चन्द्रमाने बृहस्पतिके पास अपना दूत भेजा [और कहलाया—हे गुरो!] यह पुत्र आपका नहीं है; क्योंकि यह मेरे तेजसे उत्पन्न है। तब आपने अपनी इच्छासे बालकका जातकर्मादि संस्कार क्यों कर लिया?॥ ७७-७८॥

उस दूतका वचन सुनकर बृहस्पतिने कहा कि यह मेरा पुत्र है; क्योंकि इसकी आकृति मेरे समान है, इसमें सन्देह नहीं॥ ७९॥

पुनः दोनोंमें विवाद खड़ा हो गया और देव-दानव मिलकर फिर युद्धके लिये आ गये और इस प्रकार उनका बहुत बड़ा समूह एकत्र हो गया॥ ८०॥

उस समय शान्तिके अभिलाषी स्वयं प्रजापति ब्रह्माजी पुनः वहाँ पहुँचे और रणभूमिमें डटे हुए युद्धोत्सुक देव-दानवोंको उन्होंने युद्धसे रोका॥ ८१॥

धर्मात्मा ब्रह्माजीने तारासे पूछा—'हे कल्याणि! यह पुत्र किसका है? हे सुन्दरि! तुम सही-सही बता दो, जिससे यह कलह शान्त हो जाय'॥ ८२॥

तब असितापांगी सुन्दरी ताराने लजाते हुए सिर नीचे करके मन्द स्वरमें कहा—'यह पुत्र चन्द्रमाका है' ऐसा कहकर वह घरके भीतर चली गयी॥ ८३॥

तब प्रसन्नचित्त होकर चन्द्रमाने उस पुत्रको ले लिया। उन्होंने उसका नाम 'बुध' रखा। पुनः वे अपने घर चले गये॥ ८४॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजी अपने लोकको तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी चले गये। इसी प्रकार प्रेक्षक भी जो जहाँसे आये थे, वे सभी अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ८५॥

कथितेयं बुधोत्पत्तिर्गुरुक्षेत्रे च सोमतः।
यथा श्रुता मया पूर्वं व्यासात्सत्यवतीसुतात्॥ ८६

[हे मुनिजन!] इस प्रकार गुरुके क्षेत्रमें चन्द्रमासे बुधकी उत्पत्तिका यह वृत्तान्त जैसा मैंने पूर्वमें सत्यवती-पुत्र व्यासजीसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया है॥ ८६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे बुधोत्पत्तिर्नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

~~○~~

अथ द्वादशोऽध्यायः

राजा सुद्युम्नकी इला नामक स्त्रीके रूपमें परिणति, इलाका बुधसे विवाह और पुरूरवाकी उत्पत्ति, भगवतीकी स्तुति करनेसे इलारूपधारी राजा सुद्युम्नकी सायुज्यमुक्ति

सूत उवाच

ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां कथयामि वः।
बुधपुत्रोऽतिधर्मात्मा यज्ञकृद्दानतत्परः॥ १

सूतजी बोले—तदनन्तर इलाके गर्भसे पुरूरवाने जन्म लिया, यह प्रसंग मैं आपलोगोंसे कहता हूँ। वे बुधपुत्र पुरूरवा बड़े धर्मात्मा, यज्ञ करनेवाले एवं दानशील थे॥ १॥

सुद्युम्नो नाम भूपालः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
सैन्धवं हयमारुह्य चचार मृगयां वने॥ २

युतः कतिपयामात्यैर्दर्शितश्चारुकुण्डलः।
धनुराजगवं बद्ध्वा बाणसङ्गं तथाद्भुतम्॥ ३

स भ्रमंस्तद्वनोद्देशे हन्यमानो रुरून्मृगान्।
शशांश्च सूकरांश्चैव खड्गांश्च गवयांस्तथा॥ ४

शरभान्महिषांश्चैव साम्भरान्वनकुक्कुटान्।
निघ्नन्मेध्यान् पशून् राजा कुमारवनमाविशत्॥ ५

सुद्युम्न नामक एक राजा थे। वे बड़े ही सत्यवादी और जितेन्द्रिय थे। एक बार वे सैन्धव घोड़ेपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये। उनके साथ कुछ मन्त्री भी थे। वे राजा कानोंमें कमनीय कुण्डल पहने थे। आजगव नामक धनुष तथा बाणोंसे भरा अद्भुत तरकस धारण करके उस वनमें भ्रमण करते हुए रुरुमृग, हिरण, खरगोश, सूअर, गैंड़ों, गवय, साँभर, भैंसों, वन-मुर्गोंको मारते हुए तथा यज्ञोपयोगी अनेक वनपशुओंका वध करते हुए राजा सुद्युम्न 'कुमार' नामक वनमें प्रविष्ट हुए॥ २—५॥

मेरोरधस्तले दिव्यं मन्दारद्रुमराजितम्।
अशोकलतिकाकीर्णं बकुलैरधिवासितम्॥ ६

सालैस्तालैस्तमालैश्च चम्पकैः पनसैस्तथा।
आम्रैर्नीपैर्मधूकैश्च माधवीमण्डपावृतम्॥ ७

वह दिव्य वन सुमेरु पर्वतके निचले भागमें था, जो सुन्दर मन्दार-वृक्षोंसे सुशोभित था, वहाँ अशोक वृक्षकी लताएँ फैली हुई थीं तथा मौलसिरीकी सुगन्धि उसे सुरभित कर रही थी। वह वन साल, ताड़, तमाल, चम्पा, कटहल, आम, कदम्ब और महुएके पेड़ोंसे सुशोभित था तथा जहाँ-तहाँ माधवी लता मण्डपके समान छायी हुई थी॥ ६-७॥

दाडिमैर्नारिकेलैश्च कदलीखण्डमण्डितम्।
यूथिकामालतीकुन्दपुष्पवल्लीसमावृतम्॥ ८

उस वनमें दाडिम, नारियल तथा केलेके वृक्ष भी शोभित हो रहे थे और वह वन जूही, मालती तथा कुन्दकी पुष्पित लताओंसे चारों ओरसे घिरा हुआ था। वहाँ हंस और बतख विचरण कर रहे थे, बाँस [एक

हंसकारण्डवाकीर्णं कीचकध्वनिनादितम्।
भ्रमरालिरुतारामं वनं सर्वसुखावहम्॥ ९

दृष्ट्वा प्रमुदितो राजा सुद्युम्नः सेवकैर्वृतः।
वृक्षान्सुपुष्पितान्वीक्ष्य कोकिलारावमण्डितान्॥ १०

प्रविष्टस्तत्र राजर्षिः स्त्रीत्वमाप क्षणात्ततः।
अश्वोऽपि वडवा जातश्चिन्ताविष्टः स भूपतिः॥ ११

किमेतदिति चिन्तार्तश्चिन्त्यमानः पुनः पुनः।
दुःखं बहुतरं प्राप्तः सुद्युम्नो लज्जयान्वितः॥ १२

किं करोमि कथं यामि गृहं स्त्रीभावसंयुतः।
कथं राज्यं करिष्यामि केन वा वञ्चितो ह्यहम्॥ १३

ऋषय ऊचुः

सूताश्चर्यमिदं प्रोक्तं त्वया यल्लोमहर्षण।
सुद्युम्नः स्त्रीत्वमापन्नो भूपतिर्देवसन्निभः॥ १४

किं तत्कारणमाचक्ष्व वने तत्र मनोहरे।
किं कृतं तेन राज्ञा च विस्तरं वद सुव्रत॥ १५

सूत उवाच

एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयः सनकादयः।
दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन्॥ १६

तस्मिंश्च समये तत्र शङ्करः प्रमदायुतः।
क्रीडासक्तो महादेवो विवस्त्रा कामिनी शिवा॥ १७

उत्सङ्गे संस्थिता भर्तू रममाणा मनोरमा।
तान्विलोक्याम्बिका देवी विवस्त्रा व्रीडिता भृशम्॥ १८

भर्तुरङ्कात्समुत्थाय वस्त्रमादाय पर्यधात्।
लज्जाविष्टा स्थिता तत्र वेपमानातिमानिनी॥ १९

ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः।
परिवृत्य ययुस्तूर्णं नरनारायणाश्रमम्॥ २०

ह्रीयुतां कामिनीं वीक्ष्य प्रोवाच भगवान्हरः।
कथं लज्जातुरासि त्वं सुखं ते प्रकरोम्यहम्॥ २१

अद्यप्रभृति यो मोहात्पुमान्कोऽपि वरानने।
वनं च प्रविशेदेतत्स वै योषिद्भविष्यति॥ २२

दूसरेसे रगड़ खानेके कारण हवामें मधुर] ध्वनि कर रहे थे तथा कहीं भ्रमरोंकी मधुर गुंजार वन-प्रान्तको गुंजित कर रही थी। इस प्रकार वह वन सब प्रकारसे सुखदायक था॥ ८-९॥

कोयलोंकी ध्वनिसे मण्डित तथा पुष्पोंसे युक्त वृक्षोंको देखकर अनुचरोंके साथ राजा सुद्युम्न अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

राजर्षि सुद्युम्नने वहाँ प्रवेश किया और उसी क्षण वे स्त्रीके रूपमें परिणत हो गये; उनका घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें हो गया। इससे वे राजा चिन्तामें पड़ गये। [वे मनमें सोचने लगे] यह क्या हो गया? चिन्तासे व्याकुल वे राजा सुद्युम्न बार-बार सोचते हुए बहुत दुःखी तथा लज्जित हुए। [उन्होंने सोचा] अब मैं क्या करूँ और स्त्रीत्व भावसे युक्त मैं घर कैसे जाऊँ? मैं अब कैसे राज्य-संचालन करूँगा? मैं इस प्रकार किससे ठगा गया?॥ ११—१३॥

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षण सूतजी! आपने यह बड़ी आश्चर्यजनक बात कही है। देवताके समान तेजस्वी राजा सुद्युम्न स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये—इसका क्या कारण है? उसे बताइये। उस रमणीय वनमें राजाने कौन-सा कार्य किया था? हे सुव्रत! आप विस्तारपूर्वक हमें बताइये॥ १४-१५॥

सूतजी बोले—एक समयकी बात है—सनकादिक ऋषिगण अपने तेजसे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शंकरजीके दर्शनके लिये वहाँ गये थे॥ १६॥

उस समय महादेव शिव पार्वतीके साथ विहार कर रहे थे, इसी बीच उन सनकादिक ऋषियोंको वहाँ देखकर पार्वती अत्यन्त लज्जित हो गयीं। वे अतिमानिनी पार्वती काँपती हुई लज्जित होकर अलग खड़ी हो गयीं॥ १७—१९॥

सनकादिक मुनि भी शिव एवं पार्वतीको विहार करते देखकर वहाँसे तत्काल लौटकर नर-नारायणके आश्रममें चले गये॥ २०॥

भगवान् शिव अपनी प्रिय पत्नीको लज्जित देखकर कहने लगे—तुम इस प्रकार लज्जित क्यों हो रही हो? तुम्हारे सुख का उपाय मैं अभी करता हूँ। हे वरानने! आजसे जो कोई भी पुरुष इस वनमें भूलसे भी आयेगा, वह स्त्री हो जायगा॥ २१-२२॥

इति शप्तं वनं तेन ये जानन्ति जनाः क्वचित्।
वर्जयन्तीह ते कामं वनं दोषसमृद्धिमत्॥ २३

सुद्युम्नस्तु तदज्ञानात्प्रविष्टः सचिवैः सह।
तथैव स्त्रीत्वमापन्नस्तैः सहेति न संशयः॥ २४

चिन्ताविष्टः स राजर्षिर्न जगाम गृहं ह्रिया।
विचचार बहिस्तस्माद्वनदेशादितस्ततः॥ २५

इलेति नाम सम्प्राप्तं स्त्रीत्वे तेन महात्मना।
विचरंस्तत्र सम्प्रातो बुधः सोमसुतो युवा॥ २६

स्त्रीभिः परिवृतां तां तु दृष्ट्वा कान्तां मनोरमाम्।
हावभावकलायुक्तां चकमे भगवान्बुधः॥ २७

सापि तं चकमे कान्तं बुधं सोमसुतं पतिम्।
संयोगस्तत्र सञ्जातस्तयोः प्रेम्णा परस्परम्॥ २८

स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम्।
इलायां सोमपुत्रस्तु चक्रवर्तिनमुत्तमम्॥ २९

सा प्रासूत सुतं बाला चिन्ताविष्टा वने स्थिता।
सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठं मुनिसत्तमम्॥ ३०

स तदास्य दशां दृष्ट्वा सुद्युम्नस्य कृपान्वितः।
अतोषयन्महादेवं शङ्करं लोकशङ्करम्॥ ३१

तस्मै स भगवांस्तुष्टः प्रददौ वाञ्छितं वरम्।
वसिष्ठः प्रार्थयामास पुंस्त्वं राज्ञः प्रियस्य च॥ ३२

शङ्करस्तु निजां वाचमृतां कुर्वन्नुवाच ह।
मासं पुमांस्तु भविता मासं स्त्री भूपतिः किल॥ ३३

इत्थं प्राप्य वरं राजा जगाम स्वगृहं पुनः।
चक्रे राज्यं स धर्मात्मा वसिष्ठस्याप्यनुग्रहात्॥ ३४

उन शिवजीने वनको ऐसा शाप दे दिया है—इसे जो लोग जानते हैं, वे उस दोषपूर्ण वनका पूर्णतः परित्याग कर देते हैं॥ २३॥

वे सुद्युम्न भी अज्ञानवश सचिवोंके साथ उस वनमें चले गये, जिससे वे अपने सचिव आदि सहित स्त्री हो गये; इसमें शंकाका कोई कारण नहीं है॥ २४॥

चिन्ताकुल होनेके कारण राजा सुद्युम्न लज्जावश घर नहीं गये और उस वनप्रदेशसे बाहर इधर-उधर घूमने लगे॥ २५॥

स्त्रीत्व प्राप्त होनेपर उन महात्माका नाम इला पड़ गया। इस प्रकार स्त्रीरूपमें घूमते हुए एक दिन चन्द्रमाके युवा पुत्र बुधसे उनकी भेंट हो गयी॥ २६॥

अनेक स्त्रियोंके साथ भ्रमण करती हुई उस हाव-भावमयी युवती रमणीको देखकर चन्द्रमाके पुत्र भगवान् बुध उसपर मोहित हो गये। वह रमणी भी उन चन्द्रपुत्र बुधको अपना पति बनानेके लिये आकुल हो उठी। इस प्रकार परस्पर अनुरागके कारण कुछ दिनोंमें उन दोनोंका संयोग हो गया॥ २७-२८॥

उस चन्द्रमापुत्र बुधने इलाके गर्भसे पुरूरवा नामक श्रेष्ठ चक्रवर्ती पुत्रको उत्पन्न किया। पुत्रको जन्म देकर वह इला वनमें ही रहने लगी तथा चिन्तातुर हो उसने अपने कुलाचार्य मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीका स्मरण किया॥ २९-३०॥

[इलाके स्मरण करते ही वसिष्ठजी वहाँ आये।] सुद्युम्नकी यह दशा देखकर उन्हें बड़ी दया आयी। तब उन्होंने समस्त लोकका कल्याण करनेवाले महादेव शिवको प्रसन्न किया॥ ३१॥

वसिष्ठजीपर प्रसन्न होकर भगवान् शंकरने उन्हें मनोभिलषित वर प्रदान किया। वसिष्ठजीने प्रिय राजा सुद्युम्नके पुनः पुरुष होनेके लिये प्रार्थना की॥ ३२॥

शिवजीने अपना वचन सत्य करते हुए कहा—'हे ऋषे! आजसे राजा सुद्युम्न एक मास पुरुष और एक मास स्त्री बने रहेंगे'॥ ३३॥

इस प्रकार वरदान पाकर राजा सुद्युम्न पुनः अपने घर आ गये और वे धर्मात्मा वहाँ वसिष्ठजीकी कृपासे राज्य करने लगे॥ ३४॥

स्त्रीत्वे तिष्ठति हर्म्येषु पुंस्त्वे राज्यं प्रशास्ति च।
प्रजास्तस्मिन्समुद्विग्ना नाभ्यनन्दन्महीपतिम्॥ ३५

काले तु यौवनं प्राप्तः पुत्रः पुरूरवास्तदा।
प्रतिष्ठां नृपतिस्तस्मै दत्त्वा राज्यं वनं ययौ॥ ३६

गत्वा तस्मिन्वने रम्ये नानाद्रुमसमाकुले।
नारदान्मन्त्रमासाद्य नवाक्षरमनुत्तमम्॥ ३७

जजाप मन्त्रमत्यर्थं प्रेमपूरितमानसः।
परितुष्टा तदा देवी सगुणा तारिणी शिवा॥ ३८

सिंहारूढा स्थिता चाग्रे दिव्यरूपा मनोरमा।
वारुणीपानसम्मत्ता मदाघूर्णितलोचना॥ ३९

दृष्ट्वा तां दिव्यरूपां च प्रेमाकुलितलोचनः।
प्रणम्य शिरसा प्रीत्या तुष्टाव जगदम्बिकाम्॥ ४०

इलोवाच

दिव्यं च ते भगवति प्रथितं स्वरूपं
दृष्टं मया सकललोकहितानुरूपम्।
वन्दे त्वदंघ्रिकमलं सुरसङ्घसेव्यं
कामप्रदं जननि चापि विमुक्तिदं च॥ ४१

को वेत्ति तेऽम्ब भुवि मर्त्यतनुर्निकामं
मुह्यन्ति यत्र मुनयश्च सुराश्च सर्वे।
ऐश्वर्यमेतदखिलं कृपणे दयां च
दृष्ट्वैव देवि सकलं किल विस्मयो मे॥ ४२

शम्भुर्हरिः कमलजो मघवा रविश्च
वित्तेशवह्निवरुणाः पवनश्च सोमः।
जानन्ति नैव वसवोऽपि हि ते प्रभावं
बुध्येत्कथं तव गुणानगुणो मनुष्यः॥ ४३

वे जब स्त्रीके रूपमें रहते थे, तब अन्तःपुरमें रहते थे और जब पुरुषरूपमें रहते थे, तब राज्य करते थे। परंतु इस कारण उनकी प्रजा उनसे उद्विग्न होकर राजाके रूपमें उनका अभिनन्दन नहीं करती थी॥ ३५॥

कुछ समयके बाद जब राजकुमार पुरूरवा युवक हो गया तब महाराज सुद्युम्न उसे प्रतिष्ठानपुरका राज्य सौंपकर वनमें चले गये॥ ३६॥

अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुन्दर लगनेवाले उस वनमें रहते हुए राजा सुद्युम्नने देवर्षि नारदजीसे सर्वोत्तम नवाक्षर (नवार्ण) मन्त्रकी दीक्षा ली और अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिके साथ मन लगाकर वे उस मन्त्रका जप करने लगे। तदनन्तर भक्तोंका उद्धार करनेवाली जगज्जननी भगवती शिवाने सगुणरूप धारण करके उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय मनोरम तथा दिव्य स्वरूपवाली भगवती सिंहपर सवार होकर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं। उनके नेत्र मदसे परिपूर्ण थे॥ ३७—३९॥

ऐसी दिव्य रूपधारिणी श्रीदुर्गादेवीको अपने सामने देखकर स्नेहभरे नेत्रोंवाले (इलारूपी) राजा सुद्युम्न प्रेमपूर्वक सिर नवाकर उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०॥

इलाने कहा—हे भगवति! आपका जगत्-प्रसिद्ध वह दिव्य रूप, जो संसारके लिये कल्याणकारी है—मैंने देखा। हे जननि! सुरसमूहसे सेवित आपके भुक्ति-मुक्तिप्रदायक चरणकमलकी मैं वन्दना कर रही हूँ॥ ४१॥

हे अम्ब! इस संसारमें कौन मनुष्य आपको सम्पूर्ण रूपसे जान सकता है? जबकि मुनि एवं देवगण भी उसे देखकर विमोहित रहते हैं। हे देवि! आपके सम्पूर्ण ऐश्वर्य तथा मुझ-जैसी अकिंचनपर दया—यह सब देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा है॥ ४२॥

हे माता! जब शिव, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, कुबेर, अग्नि, वरुण, वायु, चन्द्रमा और अष्टवसु भी आपके प्रभावको नहीं जानते हैं, तब भला गुणरहित मनुष्य आपके गुणोंको कैसे जान सकता है?॥ ४३॥

जानाति विष्णुरमितद्युतिरम्ब साक्षा-
त्त्वां सात्त्विकीमुदधिजां सकलार्थदां च।
को राजसीं हर उमां किल तामसीं त्वां
वेदाम्बिके न तु पुनः खलु निर्गुणां त्वाम्॥ ४४

क्वाहं सुमन्दमतिरप्रतिमप्रभावः
क्वायं तवातिनिपुणो मयि सुप्रसादः।
जाने भवानि चरितं करुणासमेतं
यत्सेवकांश्च दयसे त्वयि भावयुक्तान्॥ ४५

वृत्तस्त्वया हरिरसौ वनजेशयापि
नैवाचरत्यपि मुदं मधुसूदनश्च।
पादौ तवादिपुरुषः किल पावकेन
कृत्वा करोति च करेण शुभौ पवित्रौ॥ ४६

वाञ्छत्यहो हरिरशोक इवातिकामं
पादाहतिं प्रमुदितः पुरुषः पुराणः।
तां त्वं करोषि रुषिता प्रणतं च पादे
दृष्ट्वा पतिं सकलदेवनुतं स्मरार्तम्॥ ४७

वक्षःस्थले वससि देवि सदैव तस्य
पर्यङ्कवत्सुचरिते विपुलेऽतिशान्ते।
सौदामिनीव सुघने सुविभूषिते च
किं ते न वाहनमसौ जगदीश्वरोऽपि॥ ४८

त्वं चेज्जहासि मधुसूदनमम्ब कोपा-
न्नैवार्चितोऽपि स भवेत्किल शक्तिहीनः।
प्रत्यक्षमेव पुरुषं स्वजनास्त्यजन्ति
शान्तं श्रियोज्झितमतीव गुणैर्वियुक्तम्॥ ४९

ब्रह्मादयः सुरगणा न तु किं युवत्यो
ये त्वत्पदाम्बुजमहर्निशमाश्रयन्ति।
मन्ये त्वयैव विहिताः खलु ते पुमांसः
किं वर्णयामि तव शक्तिमनन्तवीर्ये॥ ५०

हे अम्ब! यद्यपि परम तेजस्वी भगवान् विष्णु आपको समुद्रसे उत्पन्न, सब प्रकारके मनोरथोंको सिद्ध करनेवाली साक्षात् सात्त्विकी शक्तिस्वरूपा लक्ष्मीके रूपमें समझते हैं, ब्रह्मा भी आपको राजसी शक्तिस्वरूपा सरस्वती तथा शिवजी आपको तामसी शक्तिस्वरूपा महाकालीके रूपमें जानते हैं, तथापि हे अम्बिके! वे भी आपकी निर्गुणात्मिका दिव्य शक्तिको भलीभाँति नहीं जानते॥ ४४॥

हे भवानि! कहाँ तो अत्यन्त मन्दबुद्धि मैं और कहाँ मुझपर अमित महिमाशाली तथा अमोघ प्रभाववाला आपका अनुग्रह! मैं आपके कारुणिक चरित्रको जानती हूँ जो कि आप भक्तिभावयुक्त सेवकोंपर सर्वदा दया करती हैं॥ ४५॥

यद्यपि कमलवनमें वास करनेवाली कमला होकर आपने भगवान् विष्णुको पतिके रूपमें वरण किया है, तथापि वे मधुसूदन आनन्ददायक व्यवहार नहीं करते। वे आदिपुरुष विष्णु आदिशक्तिस्वरूपा आपके पवित्र हाथोंसे अपना पादसंवाहन कराकर अपने चरणोंको शुभ तथा पवित्र करते हैं॥ ४६॥

वे पुराणपुरुष भगवान् विष्णु भी प्रसन्न होकर आपके चरणोंका आघात वैसे ही चाहते हैं, जैसे अशोकवृक्ष अपनी वृद्धिके लिये चाहता है॥ ४७॥

हे सुन्दर चरित्रवाली देवि! आप विष्णुके विशाल, शान्त एवं भूषणोंसे विभूषित वक्षःस्थलरूपी शय्यापर सर्वदा निवास करती हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है, मानो सुन्दर श्याम मेघमें बिजली चमक रही हो, तब वे जगदीश्वर होते हुए भी क्या आपके वाहन नहीं बन जाते?॥ ४८॥

हे अम्ब! यदि क्रोधित होकर आप उनको त्याग दें तो वे भगवान् विष्णु अपूजित और शक्तिहीन होकर कुछ नहीं कर पायेंगे; क्योंकि लोकमें भी देखा जाता है कि श्रीहीन, गुणरहित एवं उदासीन पुरुषको उनके कुटुम्बीजन भी त्याग देते हैं॥ ४९॥

क्या ब्रह्मादि देवगण भी किसी समय युवतीरूपमें नहीं थे, जो दिन-रात आपके चरणकमलोंका ही आश्रय रखते हैं। मैं तो मानती हूँ कि आपने ही उन्हें पुंस्त्व प्रदान किया था। अतः हे अनन्त पराक्रमशालिनि! मैं आपकी शक्तिका क्या वर्णन कर सकती हूँ?॥ ५०॥

त्वं नापुमान्न च पुमानिति मे विकल्पो
या कासि देवि सगुणा ननु निर्गुणा वा।
तां त्वां नमामि सततं किल भावयुक्तो
वाञ्छामि भक्तिमचलां त्वयि मातरं तु॥ ५१

सूत उवाच

इति स्तुत्वा महीपालो जगाम शरणं तदा।
परितुष्टा ददौ देवी तत्र सायुज्यमात्मनि॥ ५२

सुद्युम्नस्तु ततः प्राप पदं परमकं स्थिरम्।
तस्या देव्याः प्रसादेन मुनीनामपि दुर्लभम्॥ ५३

'आप न तो स्त्री हैं, न पुरुष; न निर्गुण हैं न सगुण'—ऐसी मेरी धारणा है। अतः आप जैसी भी हों—उन आपको मैं भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करती हूँ। आप मातासे मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि आपमें मेरी अचल भक्ति बनी रहे॥ ५१॥

सूतजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके राजा सुद्युम्न उनके शरणागत हुए और भगवतीने भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उन्हें अपनी सायुज्य मुक्ति प्रदान की। तब उन देवीकी कृपासे सुद्युम्नने मुनियोंके लिये भी अति दुर्लभ शाश्वत परमपद प्राप्त किया॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
सुद्युम्नस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा पुरूरवा और उर्वशीकी कथा

सूत उवाच

सुद्युम्ने तु दिवं याते राज्यं चक्रे पुरूरवाः।
सगुणश्च सुरूपश्च प्रजारञ्जनतत्परः॥ १

प्रतिष्ठाने पुरे रम्ये राज्यं सर्वनमस्कृतम्।
चकार सर्वधर्मज्ञः प्रजारक्षणतत्परः॥ २

मन्त्रः सुगुप्तस्तस्यासीत्परत्राभिज्ञता तथा।
सदैवोत्साहशक्तिश्च प्रभुशक्तिस्तथोत्तमा॥ ३

सामदानादयः सर्वे वशगास्तस्य भूपतेः।
वर्णाश्रमान्स्वधर्मस्थान्कुर्वन् राज्यं शशास ह॥ ४

यज्ञांश्च विविधांश्चक्रे स राजा बहुदक्षिणान्।
दानानि च पवित्राणि ददावथ नराधिपः॥ ५

तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान्।
श्रुत्वोर्वशी वशीभूता चकमे तं नराधिपम्॥ ६

ब्रह्मशापाभितप्ता सा मानुषं लोकमास्थिता।
गुणिनं तं नृपं मत्वा वरयामास मानिनी॥ ७

सूतजी बोले—सुद्युम्नके दिवंगत हो जानेपर प्रजानुरंजनमें तत्पर, गुणी एवं सुन्दर महाराज पुरूरवा राज्य करने लगे। उस रमणीय प्रतिष्ठानपुरमें सर्वधर्मज्ञ तथा प्रजाकी रक्षामें तत्पर राजा पुरूरवाने सभीके द्वारा आदरणीय राज्य किया॥ १-२॥

उनकी राज्य-मन्त्रणा अच्छी तरहसे गुप्त रहती थी और उन्हें दूसरे राज्योंकी मन्त्रणाओंका भलीभाँति ज्ञान रहता था। उनमें सर्वदा उत्साहशक्ति एवं उत्तम प्रभुशक्ति विद्यमान थी। साम, दान, दण्ड और भेद—ये चारों नीतियाँ उन राजाके वशीभूत थीं। वे चारों वर्णों तथा आश्रमोंके लोगोंसे अपने-अपने धर्मोंका आचरण कराते हुए राज्यका शासन-कार्य करते थे। वे राजा पुरूरवा विपुल दक्षिणावाले विविध यज्ञ करते थे और पवित्र दान किया करते थे॥ ३—५॥

राजा पुरूरवाके रूप, गुण, उदारता, शील, ऐश्वर्य एवं वीरताकी प्रशंसा सुनकर उर्वशी उनके वशीभूत हो गयी; उन दिनों वह भी ब्रह्माके शापसे पृथ्वीपर मनुष्य-योनिमें आयी थी। अतः उस मानिनीने उन राजाको गुणी जानकर उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया॥ ६-७॥

समयं चेदृशं कृत्वा स्थिता तत्र वराङ्गना।
एतावुरणकौ राजन्यस्तौ रक्षस्व मानद॥ ८

घृतं मे भक्षणं नित्यं नान्यत्किञ्चिन्नृपाशनम्।
नेक्षे त्वां च महाराज नग्नमन्यत्र मैथुनात्॥ ९

भाषाबन्धस्त्वयं राजन् यदि भग्नो भविष्यति।
तदा त्यक्त्वा गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ १०

अङ्गीकृतं च तद्राज्ञा कामिन्या भाषितं तु यत्।
स्थिता भाषणबन्धेन शापानुग्रहकाम्यया॥ ११

रेमे तदा स भूपालो लीनो वर्षगणान्बहून्।
धर्मकर्मादिकं त्यक्त्वा चोर्वश्या मदमोहितः॥ १२

एकचित्तस्तु सञ्जातस्तन्मनस्को महीपतिः।
न शशाक तया हीनः क्षणमप्यतिमोहितः॥ १३

एवं वर्षगणान्ते तु स्वर्गस्थः पाकशासनः।
उर्वशीं नागतां दृष्ट्वा गन्धर्वानाह देवराट्॥ १४

उर्वशीमानयध्वं भो गन्धर्वाः सर्व एव हि।
हृत्वोरणौ गृहात्तस्य भूपतेः समये किल॥ १५

उर्वशीरहितं स्थानं मदीयं नातिशोभते।
येन केनाप्युपायेन तामानयत कामिनीम्॥ १६

इत्युक्तास्तेऽथ गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः।
ततो गत्वा महागाढे तमसि प्रत्युपस्थिते॥ १७

जहुस्तावुरणौ देवा रममाणं विलोक्य तम्।
चक्रन्दतुस्तदा तौ तु ह्रियमाणौ विहायसा॥ १८

उर्वशी तदुपाकर्ण्य क्रन्दितं सुतयोरिव।
कुपितोवाच राजानं समयोऽयं कृतो मया॥ १९

वह वरांगना इस प्रकारकी शर्त रखकर वहीं रहने लगी। [उसने कहा]—हे राजन्! ये दोनों भेड़के बच्चे मैं आपके पास धरोहरके रूपमें रखती हूँ। हे मानद! आप इनकी रक्षा करें। हे नृप! [दूसरी शर्त है कि] मैं केवल घी ही खाऊँगी और कुछ नहीं और हे महाराज! [तीसरी शर्त है कि] सहवासके अतिरिक्त किसी दूसरे समयमें मैं आपको कभी वस्त्रविहीन अवस्थामें न देखूँ। हे राजन्! यदि आप इन कही गयी शर्तोंको भंग करेंगे तो मैं उसी समय आपको छोड़कर चली जाऊँगी, यह मैं सत्य कह रही हूँ॥ ८—१०॥

इस प्रकार उस कामिनी उर्वशीने जो कहा था, उसे राजाने स्वीकार कर लिया और उर्वशी शापसे उद्धार पानेकी इच्छासे राजा पुरूरवाको प्रतिज्ञाबद्ध करके वहीं रहने लगी॥ ११॥

उर्वशीके द्वारा मुग्ध किये गये राजा सब धर्म-कर्म त्यागकर अनेक वर्षोंतक भोग-विलासमें पड़े रहे। उसपर आसक्त मनवाले वे सदा उसीका चिन्तन करते रहते थे और उसपर अत्यधिक मोहित होनेके कारण एक क्षण भी उस उर्वशीके बिना नहीं रह सकते थे॥ १२-१३॥

इस प्रकार जब बहुत वर्ष बीत गये, तब देवलोकमें इन्द्रने अपनी सभामें उर्वशीको अनुपस्थित देखकर गन्धर्वोंसे पूछकर कहा—हे गन्धर्वगण! तुम सब लोग वहाँ जाओ और प्रतिज्ञाबद्ध राजाके घरसे भेड़ोंको चुराकर उर्वशीको ले आओ; क्योंकि उर्वशीके बिना मुझे यह स्थान अच्छा नहीं लगता। अतः जिस किसी भी उपायसे उस कामिनीको तुमलोग लाओ॥ १४—१६॥

तब इन्द्रके ऐसा कहनेपर विश्वावसु आदि प्रधान गन्धर्वोंने वहाँसे जाकर रात्रिके घोर अन्धकारमें राजा पुरूरवाको विहार करते देख उन दोनों भेड़ोंको चुरा लिया। तब आकाशमार्गमें जाते हुए चुराये गये वे दोनों भेड़ जोरसे चिल्लाने लगे॥ १७-१८॥

अपने पुत्रके समान पाले हुए भेड़ोंका क्रन्दन सुनते ही उर्वशीने क्रोधित होकर राजा पुरूरवासे कहा—हे राजन्! मैंने आपके सम्मुख जो पहली शर्त

नष्टाहं तव विश्वासाद्धृतौ चौरैर्ममोरणौ।
राजन्पुत्रसमावेतौ त्वं किं शेषे स्त्रिया समः॥ २०

हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना।
उरणौ मे गतौ चाद्य सदा प्राणप्रियौ मम॥ २१

एवं विलप्यमानां तां दृष्ट्वा राजा विमोहितः।
नग्न एव ययौ तूर्णं पृष्ठतः पृथिवीपतिः॥ २२

विद्युत्प्रकाशिता तत्र गन्धर्वैर्नृपवेश्मनि।
नग्नभूतस्तया दृष्टो भूपतिर्गन्तुकामया॥ २३

त्यक्त्वोरणौ गताः सर्वे गन्धर्वाः पथि पार्थिवः।
नग्नो जग्राह तौ श्रान्तो जगाम स्वगृहं प्रति॥ २४

तदोर्वशीं गतां दृष्ट्वा विललापातिदुःखितः।
नग्नं वीक्ष्य पतिं नारी गता सा वरवर्णिनी॥ २५

क्रन्दन्स देशदेशेषु बभ्राम नृपतिः स्वयम्।
तच्चित्तो विह्वलः शोचन्विवशः काममोहितः॥ २६

भ्रमन्वै सकलां पृथ्वीं कुरुक्षेत्रे ददर्श ताम्।
दृष्ट्वा संहृष्टवदनः प्राह सूक्तं नृपोत्तमः॥ २७

अये जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि।
मां त्वं त्वन्मनसं कान्तं वशगं चाप्यनागसम्॥ २८

स देहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया।
खादन्त्येनं वृकाः काकास्त्वया त्यक्तं वरोरु यत्॥ २९

एवं विलपमानं तं राजानं प्राह चोर्वशी।
दुःखितं कृपणं श्रान्तं कामार्तं विवशं भृशम्॥ ३०

रखी थी, वह टूट गयी। आपके विश्वासपर मैं धोखेमें पड़ी; क्योंकि पुत्रके समान मेरे प्रिय भेड़ोंको चोरोंने चुरा लिया फिर भी आप घरमें स्त्रीकी तरह शयन कर रहे हैं॥ १९-२०॥

अपनेको वीर समझनेवाले नपुंसक इस अधम स्वामीके द्वारा मैं नष्ट कर दी गयी। सर्वदा प्राणोंके समान मेरे दोनों भेड़ अब चले गये। उर्वशीको इस प्रकार विलाप करती देख प्रेममें आसक्त राजा पुरूरवा चोरोंके पीछे नग्नावस्थामें ही तुरंत दौड़ पड़े॥ २१-२२॥

उसी समय गन्धर्वोंद्वारा वहाँ राजाके भवनमें बिजली चमका दी गयी, जिसके कारण वहाँसे जानेकी इच्छावाली उर्वशीने राजाको नग्न देख लिया॥ २३॥

गन्धर्व उन दोनों भेड़ोंको वहीं मार्गमें छोड़कर भाग गये। थके एवं नग्न राजा भेड़ोंको लेकर अपने घर चले आये। तब वे उर्वशीको वहाँसे गयी हुई देखकर अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे एवं लज्जित हुए। पतिको नग्न देखकर वह सुन्दरी उर्वशी चली गयी थी॥ २४-२५॥

व्याकुल, लाचार, कामसे मोहित तथा एकमात्र उर्वशीमें आसक्त चित्तवाले राजा शोक तथा क्रन्दन करते हुए देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार समस्त भूमण्डलपर भ्रमण करते हुए उन्होंने उर्वशीको कुरुक्षेत्रमें देखा। उसे देखते ही प्रसन्न मुखवाले नृपश्रेष्ठ राजा पुरूरवाने मधुर वाणीमें कहा—हे प्रिये! ठहरो-ठहरो। हे कठोरहृदये! मैं अब भी तुमपर आसक्त हूँ, मैं तुम्हारे वशमें हूँ; अतः मुझ निरपराधी पतिको तुम मत छोड़ो॥ २७-२८॥

हे देवि! जिस शरीरसे तुमने इतना प्रेम किया था, जिसे तुमने यहाँतक खींच लिया, वह शरीर आज यहीं गिर जायगा। हे सुन्दरि! तुम्हारे द्वारा त्यक्त इस देहको भेड़िये और कौए खा जायेंगे॥ २९॥

इस प्रकार विलाप करते हुए दुःखित, दीन, थके, कामातुर और अत्यन्त लाचार राजा पुरूरवासे उर्वशी कहने लगी॥ ३०॥

उर्वश्युवाच

मूर्खोऽसि नृपशार्दूल ज्ञानं कुत्र गतं तव।
क्वापि सख्यं न च स्त्रीणां वृकाणामिव पार्थिव॥ ३१

न विश्वासो हि कर्तव्यः स्त्रीषु चौरेषु पार्थिवैः।
गृहं गच्छ सुखं भुंक्ष्व मा विषादे मनः कृथाः॥ ३२

इत्येवं बोधितो राजा न विवेदातिमोहितः।
दुःखं च परमं प्राप्तः स्वैरिणीस्नेहयन्त्रितः॥ ३३

सूत उवाच

इति सर्वं समाख्यातमुर्वशीचरितं महत्।
वेदे विस्तरितं चैतत्संक्षेपात्कथितं मया॥ ३४

उर्वशी बोली—हे राजेन्द्र! आप मूर्ख हैं। आपका ज्ञान कहाँ चला गया? हे पृथ्वीपते! भेड़ियोंके समान स्त्रियोंकी किसीसे मित्रता नहीं होती। अतः राजाओंको चाहिये कि वे स्त्रियों और चोरोंपर कभी भी विश्वास न करें। अब आप अपने घर जाइये, सुख भोगिये और मनमें किसी प्रकारकी चिन्ता मत कीजिये॥ ३१-३२॥

इस प्रकार अत्यन्त विषयासक्त होनेके कारण उर्वशीके समझानेपर भी राजाको ज्ञान नहीं हुआ। उस स्वेच्छाचारिणी अप्सराके स्नेहमें जकड़े रहनेके कारण उन्हें अपार दुःख प्राप्त हुआ॥ ३३॥

सूतजी बोले—[हे मुनिजन!] इस प्रकार मैंने उर्वशीके महान् चरित्रका वर्णन आपलोगोंसे संक्षेपमें कर दिया, जो वेदमें विस्तारपूर्वक वर्णित है॥ ३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे पुरूरवस उर्वश्याश्च चरित्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

व्यासपुत्र शुकदेवके अरणिसे उत्पन्न होनेकी कथा तथा व्यासजीद्वारा उनसे गृहस्थधर्मका वर्णन

सूत उवाच

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं व्यासश्चिन्तापरोऽभवत्।
किं करोमि न मे योग्या देवकन्येयमप्सराः॥ १

एवं चिन्तयमानं तु दृष्ट्वा व्यासं तदाप्सराः।
भयभीता हि सञ्जाता शापं मा विसृजेदयम्॥ २

सा कृत्वाथ शुकीरूपं निर्गता भयविह्वला।
कृष्णस्तु विस्मयं प्राप्तो विहङ्गीं तां विलोकयन्॥ ३

कामस्तु देहे व्यासस्य दर्शनादेव सङ्गतः।
मनोऽतिविस्मितं जातं सर्वगात्रेषु विस्मितः॥ ४

स तु धैर्येण महता निगृह्णन्मानसं मुनिः।
न शशाक नियन्तुं च स व्यासः प्रसृतं मनः॥ ५

सूतजी बोले—उस सुन्दरी असितापांगी घृताचीको देखकर व्यासजी बड़े असमंजसमें पड़े और सोचने लगे कि यह देवकन्या अप्सरा मेरे योग्य नहीं है, अतः अब मैं क्या करूँ? वह अप्सरा भी व्यासजीको चिन्तित होता देखकर भयभीत हो गयी कि कहीं ये मुझे शाप न दे दें॥ १-२॥

तत्पश्चात् भयसे व्याकुल वह अप्सरा एक शुकीका रूप धारण करके उड़ गयी। व्यासजी उसे पक्षीके रूपमें देखकर आश्चर्यमें पड़ गये॥ ३॥

उसे देखनेमात्रसे व्यासजीके शरीरमें कामका संचार हो आया और प्रत्यंगमें कामका प्रवेश हो जानेके कारण उनका मन अत्यन्त विस्मयमें पड़ गया॥ ४॥

बड़ी धीरताके साथ मनको रोकनेकी चेष्टा करते हुए भी उस चंचल मनको वे व्यासमुनि वशमें करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ५॥

बहुशो गृह्यमाणं च घृताच्या मोहितं मनः।
भावित्वान्नैव विधृतं व्यासस्यामिततेजसः॥ ६

मन्थनं कुर्वतस्तस्य मुनेरग्निचिकीर्षया।
अरण्यामेव सहसा तस्य शुक्रमथापतत्॥ ७

सोऽविचिन्त्य तथा पातं ममन्थारणिमेव च।
तस्माच्छुकः समुद्भूतो व्यासाकृतिमनोहरः॥ ८

विस्मयं जनयन्बालः सञ्जातस्तदरण्यजः।
यथाध्वरे समिद्धोऽग्निर्भाति हव्येन दीप्तिमान्॥ ९

व्यासस्तु सुतमालोक्य विस्मयं परमं गतः।
किमेतदिति सञ्चिन्त्य वरदानाच्छिवस्य वै॥ १०

तेजोरूपी शुको जातोऽप्यरणीगर्भसम्भवः।
द्वितीयोऽग्निरिवात्यर्थं दीप्यमानः स्वतेजसा॥ ११

विलोकयामास तदा व्यासस्तु मुदितं सुतम्।
दिव्येन तेजसा युक्तं गार्हपत्यमिवापरम्॥ १२

गङ्गान्तः स्नापयामास समागत्य गिरेस्तदा।
पुष्पवृष्टिस्तु खाज्जाता शिशोरुपरि तापसाः॥ १३

जातकर्मादिकं चक्रे व्यासस्तस्य महात्मनः।
देवदुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ १४

जगुर्गन्धर्वपतयो मुदितास्ते दिदृक्षवः।
विश्वावसुर्नारदश्च तुम्बुरुः शुकसम्भवे॥ १५

तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे देवा विद्याधरास्तथा।
दृष्ट्वा व्याससुतं दिव्यमरणीगर्भसम्भवम्॥ १६

अन्तरिक्षात्पपातोर्व्यां दण्डः कृष्णाजिनं शुभम्।
कमण्डलुस्तथा दिव्यः शुकस्यार्थे द्विजोत्तमाः॥ १७

इस प्रकार घृताचीद्वारा मोहित तेजस्वी व्यासजीका मन अनेक यत्न करनेपर भी भावी संयोगके कारण उनके वशमें न हो सका॥ ६॥

इसी बीच अग्नि निकालनेके लिये मन्थन करते समय एकाएक उनका तेज उस अरणीपर गिर गया, किंतु उसके गिरनेपर ध्यान न देकर वे अरणिमन्थन करते रहे। उस अरणीसे उन्हींके सदृश मनोहर स्वरूपवाले 'शुक' उत्पन्न हो गये॥ ७-८॥

अरणीसे उत्पन्न वह बालक विस्मय पैदा करते हुए उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जिस प्रकार हवन करते समय घृताहुति पड़नेसे प्रकट अग्नि दीप्तिमान् हो उठती है॥ ९॥

उस पुत्रको देखकर 'यह क्या!'—ऐसा सोचकर व्यासजी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये [और विचार करने लगे कि यह] शिवके वरदानसे ही तो उत्पन्न नहीं हुआ है!॥ १०॥

इस प्रकार अरणीगर्भसे उत्पन्न वह तेजस्वी पुत्र शुक अपने तेजसे दूसरे अग्निके तुल्य देदीप्यमान प्रतीत हो रहा था॥ ११॥

व्यासजीने दिव्य देहधारी द्वितीय गार्हपत्य अग्निके समान तेजस्वी पुत्रको बड़ी प्रसन्नतासे देखा और पर्वतसे नीचे उतरकर गंगाजलसे उसको नहलाया। हे तपस्वियो! उस समय आकाशसे उस शिशुके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ १२-१३॥

व्यासजीने उस महात्मा शिशुका जातकर्म आदि संस्कार किया। उस समय देवताओंने दुंदुभियाँ बजायीं तथा अप्सराओंने नृत्य किया॥ १४॥

उस बालकके दर्शनकी लालसावाले विश्वावसु, नारद, तुम्बुरु आदि सभी गन्धर्वराज प्रसन्न होकर शुकके जन्मपर गान करने लगे। सभी देवता तथा विद्याधर भी अरणीके गर्भसे उत्पन्न उस दिव्य व्यासपुत्रको देखकर प्रसन्नतापूर्वक स्तुति करने लगे॥ १५-१६॥

हे द्विजोत्तम! उसी समय शुकदेवजीके लिये आकाशसे दिव्य दण्ड, कमण्डलु और शुभ कृष्ण मृगचर्म पृथ्वीपर आ गिरे॥ १७॥

सद्यः स ववृधे बालो जातमात्रोऽतिदीप्तिमान्।
तस्योपनयनं चक्रे व्यासो विद्याविधानवित्॥ १८

उत्पन्नमात्रं तं वेदाः सरहस्याः ससंग्रहाः।
उपतस्थुर्महात्मानं यथास्य पितरं तथा॥ १९

यतो दृष्टं शुकीरूपं घृताच्याः सम्भवे तदा।
शुकेति नाम पुत्रस्य चकार मुनिसत्तमः॥ २०

बृहस्पतिमुपाध्यायं कृत्वा व्याससुतस्तदा।
व्रतानि ब्रह्मचर्यस्य चकार विधिपूर्वकम्॥ २१

सोऽधीत्य निखिलान्वेदान् सरहस्यान्ससंग्रहान्।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कृत्वा गुरुकुले शुकः॥ २२

गुरवे दक्षिणां दत्त्वा समावृत्तो मुनिस्तदा।
आजगाम पितुः पार्श्वं कृष्णद्वैपायनस्य च॥ २३

दृष्ट्वा व्यासः शुकं प्राप्तं प्रेम्णोत्थाय ससम्भ्रमः।
आलिलिङ्ग मुहुर्घ्राणं मूर्ध्नि तस्य चकार ह॥ २४

पप्रच्छ कुशलं व्यासस्तथा चाध्ययनं शुचिः।
आश्वास्य स्थापयामास शुकं तत्राश्रमे शुभे॥ २५

दारकर्म ततो व्यासः शुकस्य पर्यचिन्तयत्।
कन्यां मुनिसुतां कान्तामपृच्छदतिवेगवान्॥ २६

शुकं प्राह सुतं व्यासो वेदोऽधीतस्त्वयानघ।
धर्मशास्त्राणि सर्वाणि कुरु भार्यां महामते॥ २७

गार्हस्थ्यं च समासाद्य यज देवान्पितॄनथ।
ऋणान्मोचय मां पुत्र प्राप्य दारान्मनोरमान्॥ २८

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्मात्पुत्र महाभाग कुरुष्वाद्य गृहाश्रमम्॥ २९

कृत्वा गृहाश्रमं पुत्र सुखिनं कुरु मां शुक।
आशा मे महती पुत्र पूरयस्व महामते॥ ३०

उत्पन्न होते ही वह अति तेजस्वी शिशु शीघ्रतापूर्वक बड़ा हो गया, तब वैदिक विधानके मर्मज्ञ व्यासजीने उसका उपनयनसंस्कार भी कर दिया॥ १८॥

उत्पन्न होते ही रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेद उन महात्माके समक्ष वैसे ही उपस्थित हो गये, जैसे उसके पिता व्यासजीमें वे विद्यमान थे॥ १९॥

अरणि-मन्थनके समय मुनिश्रेष्ठ व्यासजीने घृताची अप्सराको शुकीके रूपमें देखा था, इसलिये उन्होंने इस बालकका नाम शुक रख दिया॥ २०॥

व्याससुत शुकदेवने बृहस्पतिको अपना आचार्य मानकर विधिवत् ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। गुरुकुलमें निवासकर रहस्यों तथा संग्रहोंसहित सभी वेदों तथा धर्मशास्त्रोंका अध्ययन करके, तदनन्तर गुरुको दक्षिणा देकर वे शुकदेवमुनि अपने पिता व्यासजीके पास आ गये॥ २१—२३॥

शुकदेवको आया देखकर व्यासजीने शीघ्रताके साथ प्रसन्नतापूर्वक उठकर बारंबार उनका आलिंगन किया और उनका सिर सूँघा। परम पवित्र व्यासजीने शुकदेवजीके कुशलक्षेम तथा अध्ययनके विषयमें पूछा तथा उन्हें आश्वस्त करके अपने पावन आश्रममें रख लिया॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् व्यासजी शुकदेवजीके विवाहके विषयमें सोचने लगे। एक दिन परम तेजस्वी व्यासजीने शुकदेवजीसे किसी सुन्दर मुनिकन्याकी चर्चा की॥ २६॥

उन्होंने अपने पुत्र शुकदेवसे कहा—हे पवित्रात्मन्! तुमने वेद तथा सभी धर्मशास्त्रोंका अध्ययन कर लिया है। अतः हे महामते! अब तुम विवाह कर लो और गृहस्थ-आश्रममें रहकर देवताओं और पितरोंका यजन करो और हे पुत्र! तुम सुन्दर स्त्रीको स्वीकारकर मुझे भी ऋणसे मुक्त कर दो॥ २७-२८॥

अपुत्रकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग कदापि नहीं मिलता। इसलिये हे महाभाग पुत्र! अब तुम गृहस्थ-आश्रममें प्रवेश करो और हे शुक! हे पुत्र! गृहस्थी बसाकर मुझे भी आनन्दित करो। ऐसा करके हे महामते! हे पुत्र! तुम मेरी महान् आशा परिपूर्ण करो॥ २९-३०॥

तपस्तप्त्वा महाघोरं प्राप्तोऽसि त्वमयोनिजः।
देवरूपी महाप्राज्ञ पाहि मां पितरं शुक॥ ३१

सूत उवाच

इति वादिनमभ्याशे प्राप्तः प्राह शुकस्तदा।
विरक्तः सोऽतिरक्तं तं साक्षात्पितरमात्मनः॥ ३२

शुक उवाच

किं त्वं वदसि धर्मज्ञ वेदव्यास महामते।
तत्त्वेन शाधि शिष्यं मां त्वदाज्ञां करवाण्यलम्॥ ३३

व्यास उवाच

त्वदर्थे यत्तपस्तप्तं मया पुत्र शतं समाः।
प्राप्तस्त्वं चातिदुःखेन शिवस्याराधनेन च॥ ३४

ददामि तव वित्तं तु प्रार्थयित्वाथ भूपतिम्।
सुखं भुंक्ष्व महाप्राज्ञ प्राप्य यौवनमुत्तमम्॥ ३५

शुक उवाच

किं सुखं मानुषे लोके ब्रूहि तात निरामयम्।
दुःखविद्धं सुखं प्राज्ञा न वदन्ति सुखं किल॥ ३६

स्त्रियं कृत्वा महाभाग भवामि तद्वशानुगः।
सुखं किं परतन्त्रस्य स्त्रीजितस्य विशेषतः॥ ३७

कदाचिदपि मुच्येत लोहकाष्ठादियन्त्रितः।
पुत्रदारैर्निबद्धस्तु न विमुच्येत कर्हिचित्॥ ३८

विण्मूत्रसम्भवो देहो नारीणां तन्मयस्तथा।
कः प्रीतिं तत्र विप्रेन्द्र विबुधः कर्तुमिच्छति॥ ३९

अयोनिजोऽहं विप्रर्षे योनौ मे कीदृशी मतिः।
न वाञ्छाम्यहमग्रेऽपि योनावेव समुद्भवम्॥ ४०

विट्सुखं किमु वाञ्छामि त्यक्त्वात्मसुखमद्भुतम्।
आत्मारामश्च भूयोऽपि न भवत्यतिलोलुपः॥ ४१

हे शुक! कठिन तपस्या करके मैंने तुम्हारे-जैसा अयोनिज पुत्र पाया है। हे महाप्राज्ञ! तुम देवतारूप हो, अतः मुझ पिताकी रक्षा करो॥ ३१॥

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] ऐसा कहनेवाले व्यासजीके पास उपस्थित विरक्त शुकदेवजीने गृहस्थ-आश्रममें अनुरक्त अपने पितासे कहा॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे महामते! हे धर्मज्ञ! हे वेदव्यास! आप क्या कह रहे हैं, मुझ शिष्यको आप तत्त्वज्ञानका उपदेश दें; मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा॥ ३३॥

व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम्हारे लिये मैंने सैकड़ों वर्ष कष्ट सहकर जो तपस्या की और शिवजीकी आराधना की, उसके फलस्वरूप मैंने तुम्हें पाया है। किसी राजासे माँगकर मैं तुम्हें प्रचुर धन दूँगा, हे महाप्राज्ञ! तुम श्रेष्ठ यौवन प्राप्त करके सुखका उपभोग करो॥ ३४-३५॥

शुकदेवजी बोले—हे तात! आप बतायें कि इस मनुष्यलोकमें भला विपत्तिरहित कौन-सा सुख है? बुद्धिमान् लोग दुःखसे युक्त सुखको सुख नहीं कहते हैं॥ ३६॥

हे महाभाग! स्त्री पाकर मैं उसीके वशमें हो जाऊँगा। तब भला आप ही बताइये, परतन्त्र होकर और विशेषतः स्त्रीके वशमें रहकर मैं कौन-सा सुख पा सकूँगा?॥ ३७॥

लौह या काष्ठके फन्देमें जकड़ा हुआ पुरुष कदाचित् छूट भी सकता है, किंतु पुत्र-कलत्रके बन्धनमें फँसा हुआ प्राणी कभी भी बन्धनमुक्त नहीं हो पाता॥ ३८॥

यह शरीर विष्ठा एवं मूत्रसे परिपूर्ण रहता है; वैसे ही स्त्रियोंका शरीर भी होता है। हे विप्रेन्द्र! तब कौन बुद्धिमान् पुरुष उससे प्रीति करना चाहेगा!॥ ३९॥

हे विप्रशिरोमणे! मैं अयोनिज हूँ, तब योनिजन्य सुखमें मेरी बुद्धि कैसे होगी? मैं भविष्यमें भी अपनी उत्पत्ति किसी योनिमें नहीं चाहता॥ ४०॥

अतः अद्भुत अध्यात्म सुखको छोड़कर मैं विट्-मूत्रजन्य सुखको क्यों चाहूँ? अपने-आपमें रमण करनेवाला कभी विषय-सुखका लोभी नहीं होता॥ ४१॥

प्रथमं पठिता वेदा मया विस्तारिताश्च ते।
हिंसामयास्ते पठिताः कर्ममार्गप्रवर्तकाः॥ ४२

बृहस्पतिर्गुरुः प्राप्तः सोऽपि मग्नो गृहार्णवे।
अविद्याग्रस्तहृदयः कथं तारयितुं क्षमः॥ ४३

रोगग्रस्तो यथा वैद्यः पररोगचिकित्सकः।
तथा गुरुर्मुमुक्षोर्मे गृहस्थोऽयं विडम्बना॥ ४४

कृत्वा प्रणामं गुरवे त्वत्समीपमुपागतः।
त्राहि मां तत्त्वबोधेन भीतं संसारसर्पतः॥ ४५

संसारेऽस्मिन्महाघोरे भ्रमणं नभचक्रवत्।
न च विश्रमणं क्वापि सूर्यस्येव दिवानिशि॥ ४६

किं सुखं तात संसारे निजतत्त्वविचारणात्।
मूढानां सुखबुद्धिस्तु विट्सु कीटसुखं यथा॥ ४७

अधीत्य वेदशास्त्राणि संसारे रागिणश्च ये।
तेभ्यः परो न मूर्खोऽस्ति सधर्माः श्वाश्वसूकरैः॥ ४८

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य वेदशास्त्राण्यधीत्य च।
बध्यते यदि संसारे को विमुच्येत मानवः॥ ४९

नातः परतरं लोके क्वचिदाश्चर्यमद्भुतम्।
पुत्रदारगृहासक्तः पण्डितः परिगीयते॥ ५०

न बाध्यते यः संसारे नरो मायागुणैस्त्रिभिः।
स विद्वान्स च मेधावी शास्त्रपारं गतो हि सः॥ ५१

किं वृथाध्ययनेनात्र दृढबन्धकरेण च।
पठितव्यं तदेवाशु मोचयेद्भवबन्धनात्॥ ५२

गृह्णाति पुरुषं यस्माद् गृहं तेन प्रकीर्तितम्।
क्व सुखं बन्धनागारे तेन भीतोऽस्म्यहं पितः॥ ५३

मैंने सांगोपांग वेदोंका अध्ययन किया और जाना कि वे हिंसामय हैं तथा कर्ममार्गके प्रवर्तक हैं। मुझे गुरुरूपमें बृहस्पति प्राप्त हुए, वे भी गृहस्थीके सागरमें डूबे हुए हैं। अविद्याग्रस्त हृदयवाले वे मेरा उद्धार कैसे कर सकते हैं?॥ ४२-४३॥

जैसे कोई रोगग्रस्त वैद्य दूसरेके रोगकी चिकित्सा करता हो, उसी प्रकार मुझ मोक्षार्थीके गुरु गृहस्थ हैं, यह विडम्बना ही है। इसलिये ऐसे गुरुको नमस्कार करके मैं आपके पास आया हूँ। अब आप तत्त्वज्ञानका उपदेश देकर मेरी रक्षा करें; क्योंकि मैं इस संसाररूपी सर्पसे अत्यन्त भयभीत हूँ॥ ४४-४५॥

इस महाभयंकर संसार-चक्रमें प्राणिमात्रको सर्वदा नक्षत्रोंकी भाँति चक्कर काटना पड़ता है और सूर्यकी भाँति दिन-रात उन्हें भी कभी विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता॥ ४६॥

हे तात! इस संसारमें आत्मज्ञानको छोड़कर कौन-सा सुख है? मूढ जनोंको सुखकी वैसी ही प्रतीति होती है, जैसी विष्ठाके कीड़ोंको विष्ठामें होती है॥ ४७॥

वेदशास्त्रोंको पढ़कर भी जो सांसारिक सुखमें फँसे रहते हैं, भला उनसे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा? उन्हें तो कुत्ते, घोड़े एवं सूअर आदि पशुओंके समान धर्मवाला समझना चाहिये॥ ४८॥

दुर्लभ मानवतनको पाकर तथा वेदशास्त्रोंका अध्ययन करके भी यदि मनुष्य इस संसारमें बँधता है, तो दूसरा भला कौन बन्धनमुक्त हो सकता है? इससे बढ़कर संसारमें कोई दूसरी अद्भुत बात नहीं है कि पुत्र-कलत्र और घरके बन्धनमें पड़ा हुआ भी पण्डित कहलाता है!॥ ४९-५०॥

जो मनुष्य इस संसारमें मायाके सत्त्व, रज, तम-रूपी तीनों गुणोंसे बाँधा नहीं जाता है; वही विद्वान्, बुद्धिमान् एवं शास्त्रमें पारंगत है॥ ५१॥

दृढ़ बन्धनमें डालनेवाले व्यर्थ विद्याध्ययनसे क्या लाभ? उसीका अध्ययन करना चाहिये, जो शीघ्र ही भवबन्धनसे मुक्त कर दे॥ ५२॥

पुरुषको बन्धनमें जकड़ लेनेके कारण ही उसे गृह कहा गया है। अतः ऐसे बन्धनरूप घरमें सुख कहाँ? हे पिताजी! इसीलिये मैं भयभीत हूँ॥ ५३॥

येऽबुधा मन्दमतयो विधिना मुषिताश्च ये।
ते प्राप्य मानुषं जन्म पुनर्बन्धं विशन्त्युत॥ ५४

व्यास उवाच

न गृहं बन्धनागारं बन्धने न च कारणम्।
मनसा यो विनिर्मुक्तो गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥ ५५

न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात्।
गृहस्थोऽपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक् शुचिः॥ ५६

ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः।
गृहस्थं समुपासन्ते मध्याह्नातिक्रमे सदा॥ ५७

श्रद्धया चान्नदानेन वाचा सूनृतया तथा।
उपकुर्वन्ति धर्मस्था गृहाश्रमनिवासिनः॥ ५८

गृहाश्रमात्परो धर्मो न दृष्टो न च वै श्रुतः।
वसिष्ठादिभिराचार्यैर्ज्ञानिभिः समुपाश्रितः॥ ५९

किमसाध्यं महाभाग वेदोक्तानि च कुर्वतः।
स्वर्गं मोक्षं च सज्जन्म यद्यद्वाञ्छति तद्भवेत्॥ ६०

आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति धर्मविदो विदुः।
तस्मादग्निं समाधाय कुरु कर्माण्यतन्द्रितः॥ ६१

देवान्पितॄन्मनुष्यांश्च सन्तर्प्य विधिवत्सुत।
पुत्रमुत्पाद्य धर्मज्ञ संयोज्य च गृहाश्रमे॥ ६२

त्यक्त्वा गृहं वनं गत्वा कर्तासि व्रतमुत्तमम्।
वानप्रस्थाश्रमं कृत्वा संन्यासं च ततः परम्॥ ६३

इन्द्रियाणि महाभाग मादकानि सुनिश्चितम्।
अदारस्य दुरन्तानि पञ्चैव मनसा सह॥ ६४

जो अज्ञानी, मन्दबुद्धि तथा अभागे मनुष्य हैं; वे इस मानव-जन्मको पाकर भी पुनः बन्धनमें पड़ जाते हैं॥ ५४॥

व्यासजी बोले—गृह बन्धनागार नहीं है और न बन्धनका कारण ही है। जो मनसे बन्धनमुक्त है, वह गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है॥ ५५॥

जो न्यायमार्गसे धनोपार्जन करता है, शास्त्रोक्त कर्मोंका विधिवत् सम्पादन करता है, पितृश्राद्ध आदि यज्ञ करता है, सर्वदा सत्य बोलता है तथा पवित्र रहता है, वह गृहमें रहते हुए भी मुक्त हो जाता है॥ ५६॥

ब्रह्मचारी, संन्यासी, वानप्रस्थी तथा व्रतोपवास करनेवाला—ये सब मनुष्य मध्याह्नोत्तरकालमें गृहस्थके पास ही जाते हैं। वे धार्मिक गृहस्थ श्रद्धाके साथ मधुर वचनोंद्वारा सबका सत्कार करते एवं अन्नदानसे उन्हें उपकृत करते हैं॥ ५७-५८॥

गृहस्थ-आश्रमसे बढ़कर कोई दूसरा आश्रम देखा या सुना नहीं गया। वसिष्ठ आदि आचार्यों और तत्त्वज्ञानियोंने इसका आश्रय ग्रहण किया है॥ ५९॥

हे महाभाग! वेदोक्त कर्म करनेवाले गृहस्थके लिये क्या असाध्य रह जाता है? वह स्वर्ग, मोक्ष अथवा उत्तम कुलमें जन्म—जो कुछ भी चाहता है, वह हो जाता है। 'एक आश्रमसे दूसरे आश्रममें जाना चाहिये'—ऐसा धर्मज्ञोंने बताया है। अतः आलस्यरहित होकर गृहस्थसम्बन्धी कर्मोंको सम्पादित करो॥ ६०-६१॥

हे धर्मज्ञ पुत्र! देवताओं, पितरों एवं आश्रित-जनोंको विधिवत् सन्तुष्ट करके, पुत्र उत्पन्न करके और उसे भी गृहस्थ-आश्रममें लगाकर पुनः गृह त्यागकर वनमें जाकर श्रेष्ठ व्रतका आश्रय ग्रहण करो। वहाँ वानप्रस्थ-आश्रम पूर्ण करके उसके बाद संन्यास धारण करो॥ ६२-६३॥

हे महाभाग! इन्द्रियाँ मनुष्यको निश्चितरूपसे प्रमत्त बना देती हैं। जो मनुष्य स्त्रीरहित होता है, उसे मन पाँचों इन्द्रियोंसहित विकल कर देता है॥ ६४॥

तस्माद्दारान्प्रकुर्वीत तज्जयाय महामते।
वार्धके तप आतिष्ठेदिति शास्त्रोदितं वचः॥ ६५

हे महामते! इसलिये उन बलवान् इन्द्रियोंपर विजय पानेके लिये स्त्रीपरिणय करके गृहस्थ बनना चाहिये, तत्पश्चात् वृद्धावस्थामें तप करना चाहिये—यह शास्त्रवचन है॥ ६५॥

विश्वामित्रो महाभाग तपः कृत्वातिदुश्चरम्।
त्रीणि वर्षसहस्राणि निराहारो जितेन्द्रियः॥ ६६

मोहितश्च महातेजा वने मेनकया स्थितः।
शकुन्तला समुत्पन्ना पुत्री तद्वीर्यजा शुभा॥ ६७

हे महाभाग! वनमें स्थित महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्र किसी समय तीन सहस्र वर्षोंतक निराहार और जितेन्द्रिय रहकर अत्यन्त कठोर तप करके भी मेनकाको देखकर मोहित हो गये और उन्हींके तेजसे पुत्रीरूपमें सुन्दर शकुन्तला पैदा हुई॥ ६६-६७॥

दृष्ट्वा दाशसुतां कालीं पिता मम पराशरः।
कामबाणार्दितः कन्यां तां जग्राहोडुपे स्थितः॥ ६८

मेरे पिता पराशरजी भी धीवरकी कृष्णवर्णा कन्याको देखकर काम-बाणसे आहत हो गये और उन्होंने नावपर ही उसे स्वीकार कर लिया था॥ ६८॥

ब्रह्मापि स्वसुतां दृष्ट्वा पञ्चबाणप्रपीडितः।
धावमानश्च रुद्रेण मूर्च्छितश्च निवारितः॥ ६९

ब्रह्माजी भी अपनी कन्या को देखकर कामसे पीड़ित हो गये और बेसुध होकर उसके पीछे दौड़ते रहे; तब शिवजीने उन्हें रोका॥ ६९॥

तस्मात्त्वमपि कल्याण कुरु मे वचनं हितम्।
कुलजां कन्यकां वृत्वा वेदमार्गं समाश्रय॥ ७०

अतः हे कल्याणकारी पुत्र! तुम मेरा हितकर वचन मान लो और किसी कुलीन कन्यासे विवाह करके सनातन वेदमार्गका पालन करो॥ ७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे व्यासेन
गृहस्थधर्मवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

शुकदेवजीका विवाहके लिये अस्वीकार करना तथा व्यासजीका उनसे श्रीमद्देवीभागवत पढ़नेके लिये कहना

श्रीशुक उवाच

नाहं गृहं करिष्यामि दुःखदं सर्वदा पितः।
वागुरासदृशं नित्यं बन्धनं सर्वदेहिनाम्॥ १

श्रीशुकदेवजी बोले—हे पिताजी! सर्वदा दुःख देनेवाले गृहस्थाश्रमको मैं कभी स्वीकार नहीं करूँगा; क्योंकि [पशु-पक्षियोंको फँसानेवाले] जालके समान यह आश्रम सभी मानवोंके लिये सदा बन्धनस्वरूप है॥ १॥

धनचिन्तातुराणां हि क्व सुखं तात दृश्यते।
स्वजनैः खलु पीड्यन्ते निर्धना लोलुपा जनाः॥ २

हे तात! धन-धान्यकी चिन्तामें व्याकुल लोगोंके लिये सुख कहाँ दिखायी पड़ता है? निर्धन और लोभके वशीभूत मनुष्य अपने ही परिवारजनोंद्वारा सर्वदा कष्ट पाते रहते हैं॥ २॥

इन्द्रोऽपि न सुखी तादृग्यादृशो भिक्षुनिःस्पृहः।
कोऽन्यः स्यादिह संसारे त्रिलोकीविभवे सति॥ ३

इन्द्र भी वैसे सुखी नहीं रहते, जैसा एक सुखी निःस्पृह भिक्षुक रहता है। तब भला इस संसारमें तीनों लोकोंका वैभव पाकर भी दूसरा कौन सुखी रह सकता है?॥ ३॥

तपन्तं तापसं दृष्ट्वा मघवा दुःखितोऽभवत्।
विघ्नान्बहुविधानस्य करोति च दिवस्पतिः॥ ४

ब्रह्मापि न सुखी विष्णुर्लक्ष्मीं प्राप्य मनोरमाम्।
खेदं प्राप्नोति सततं संग्रामैरसुरैः सह॥ ५

करोति विपुलान्यत्नांस्तपश्चरति दुश्चरम्।
रमापतिरपि श्रीमान्कस्यास्ति विपुलं सुखम्॥ ६

शङ्करोऽपि सदा दुःखी भवत्येव च वेद्म्यहम्।
तपश्चर्यां प्रकुर्वाणो दैत्ययुद्धकरः सदा॥ ७

कदाचिन्न सुखी शेते धनवानपि लोलुपः।
निर्धनस्तु कथं तात सुखं प्राप्नोति मानवः॥ ८

जानन्नपि महाभाग पुत्रं वा वीर्यसम्भवम्।
नियोक्ष्यसि महाघोरे संसारे दुःखदे सदा॥ ९

जन्मदुःखं जरादुःखं दुःखं च मरणे तथा।
गर्भवासे पुनर्दुःखं विष्ठामूत्रमये पितः॥ १०

तस्मादतिशयं दुःखं तृष्णालोभसमुद्भवम्।
याच्ञायां परमं दुःखं मरणादपि मानद॥ ११

प्रतिग्रहधना विप्रा न बुद्धिबलजीवनाः।
पराशा परमं दुःखं मरणं च दिने दिने॥ १२

पठित्वा सकलान् वेदाञ्छास्त्राणि च समन्ततः।
गत्वा च धनिनां कार्या स्तुतिः सर्वात्मना बुधैः॥ १३

एकोदरस्य का चिन्ता पत्रमूलफलादिभिः।
येनकेनाप्युपायेन सन्तुष्ट्या च प्रपूर्यते॥ १४

भार्या पुत्रास्तथा पौत्राः कुटुम्बे विपुले सति।
पूरणार्थं महद्दुःखं क्व सुखं पितरद्भुतम्॥ १५

किसी तपस्वीको तप करते हुए देखकर स्वर्गलोकके स्वामी इन्द्र भी चिन्तित हो उठते हैं और उसके तपमें अनेक प्रकारके विघ्न करने लगते हैं॥ ४॥

ब्रह्मा भी सुखी नहीं हैं और मनोरम लक्ष्मीको पाकर विष्णु भी सुखी नहीं हैं; उन्हें भी दैत्योंके साथ युद्धके द्वारा निरन्तर कष्ट सहन करने पड़ते हैं। उन ऐश्वर्यशाली रमापति विष्णुको भी [सुखप्राप्तिके लिये] अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं और कठोर तपस्या करनी पड़ती है। [इस संसारमें] किसको बहुत सुख है?॥ ५-६॥

भगवान् शंकर भी सदैव दुःखी रहते हैं—ऐसा मैं जानता हूँ; क्योंकि वे सदैव तपस्या करते हुए भी दैत्योंसे युद्ध करते रहते हैं॥ ७॥

हे तात! जब धनवान् होते हुए भी लोभी मनुष्य कभी भी सुखपूर्वक सो नहीं पाता, तब भला निर्धन मनुष्य कैसे सुख पा सकता है? इसलिये हे महाभाग! यह जानते हुए भी आप अपने तेजसे उत्पन्न पुत्रको दुःखदायक तथा महाभयानक संसारमें क्यों लगा रहे हैं?॥ ८-९॥

हे पिताजी! जहाँ जन्ममें दुःख, बुढ़ापेमें दुःख, मरणमें दुःख तथा पुनः विष्ठा और मूत्रसे भरे हुए गर्भमें दुःख सहन करना पड़ता है; उससे भी अधिक दुःख तृष्णा और लोभसे उत्पन्न होता है। हे मानद! मरनेसे भी अधिक दुःख माँगनेमें होता है॥ १०-११॥

ब्राह्मण प्रतिग्रहद्वारा धन प्राप्त करते हैं और वे बुद्धि-बलका उपयोग नहीं करते। दूसरेके भरोसेपर रहना परम दुःखकर है तथा वह अहर्निश मृत्युके समान होता है॥ १२॥

सभी वेद-शास्त्रोंका भलीभाँति अध्ययन करके भी विद्वानोंको धनिकोंके पास जाकर सब प्रकारसे उनकी प्रशंसा करनी पड़ती है। केवल पेटके लिये कोई चिन्ताकी बात नहीं; उसे तो केवल पत्र, फल एवं कन्द-मूल आदिसे किसी भी प्रकार सन्तुष्टिपूर्वक भरा जा सकता है॥ १३-१४॥

हे पिताजी! भार्या, पुत्र, पौत्र आदि बड़े कुटुम्बके पालनमें तो अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं। ऐसी दशामें गृहस्थको सुख कहाँ है?॥ १५॥

योगशास्त्रं वद मम ज्ञानशास्त्रं सुखाकरम्।
कर्मकाण्डेऽखिले तात न रमेऽहं कदाचन॥ १६

वद कर्मक्षयोपायं प्रारब्धं सञ्चितं तथा।
वर्तमानं यथा नश्येत् त्रिविधं कर्ममूलजम्॥ १७

जलूकेव सदा नारी रुधिरं पिबतीति वै।
मूर्खस्तु न विजानाति मोहितो भावचेष्टितैः॥ १८

भोगैर्वीर्यं धनं पूर्णं मनः कुटिलभाषणैः।
कान्ता हरति सर्वस्वं कः स्तेनस्तादृशोऽपरः॥ १९

निद्रासुखविनाशार्थं मूर्खस्तु दारसंग्रहम्।
करोति वञ्चितो धात्रा दुःखाय न सुखाय च॥ २०

सूत उवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा व्यासः शुकस्य च।
सम्प्राप महतीं चिन्तां किं करोमीत्यसंशयम्॥ २१

तस्य सुस्रुवुरश्रूणि लोचनाद्दुःखजानि च।
वेपथुश्च शरीरेऽभूद् ग्लानिं प्राप मनस्तथा॥ २२

शोचन्तं पितरं दृष्ट्वा दीनं शोकपरिप्लुतम्।
उवाच पितरं व्यासं विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ २३

अहो मायाबलं चोग्रं यन्मोहयति पण्डितम्।
वेदान्तस्य च कर्तारं सर्वज्ञं वेदसम्मितम्॥ २४

न जाने का च सा माया किंस्वित्सातीव दुष्करा।
या मोहयति विद्वांसं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥ २५

पुराणानां च वक्ता च निर्माता भारतस्य च।
विभागकर्ता वेदानां सोऽपि मोहमुपागतः॥ २६

इसलिये हे तात! मुझे सुखदायी ज्ञानशास्त्र और योगशास्त्रका उपदेश कीजिये। सम्पूर्ण कर्मकाण्डमें मेरा मन कभी नहीं लगता॥ १६॥

अतः कर्मक्षयका कोई उपाय बताइये; जिससे संचित, प्रारब्ध एवं क्रियमाण—तीनों प्रकारके कर्मफल नष्ट हो जायँ॥ १७॥

स्त्री जोंकके समान सदा [पुरुषका] रक्त चूसती रहती है, जिसे बुद्धिहीन मनुष्य उसकी भावपूर्ण चेष्टाओंसे मोहित होनेके कारण नहीं जान पाता॥ १८॥

स्त्री अपने संसर्गसे उसके तेजका तथा अपनी वचनचातुरीद्वारा उसके सम्पूर्ण धन और मनका—इस प्रकार सर्वस्वका हरण कर लेती है। उससे बढ़कर दूसरा चोर कौन है?॥ १९॥

इसलिये मेरे विचारमें तो मूर्ख मनुष्य ही केवल निद्रासुखका नाश करनेके लिये स्त्रीपरिणय करता है। विधाताद्वारा वह दुःखके लिये ही ठगा जाता है, सुखके लिये नहीं॥ २०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवकी युक्तियुक्त ये बातें सुनकर व्यासजी बड़ी चिन्तामें पड़ गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अब मैं क्या करूँ?' तत्पश्चात् उनकी आँखोंसे दुःखके आँसू बहने लगे, शरीर काँपने लगा और मनमें ग्लानि होने लगी॥ २१-२२॥

इस प्रकार शोक करते हुए अपने दीन तथा शोकाकुल पिताको देखकर आश्चर्यसे विस्मित नेत्रवाले शुकदेवजीने अपने पिता व्यासजीसे कहा—अहो! माया कितनी प्रबल है, जो कि यह वेदान्तदर्शनके प्रणेता तथा वेदका सांगोपांग ज्ञान रखनेवाले सर्वज्ञ पण्डित मेरे पिताजीको भी मोहित कर रही है!॥ २३-२४॥

न जाने वह कौन-सी तथा कैसी अति दुष्कर माया है, जो सत्यवतीसुत विद्वान् व्यासजीको भी मोहित कर रही है!॥ २५॥

जो पुराणोंके वक्ता, महाभारतके रचयिता, वेदोंके विभागकर्ता हैं, वे भी [मायाजनित] मोहको प्राप्त हो गये हैं॥ २६॥

तां यामि शरणं देवीं या मोहयति वै जगत्।
ब्रह्मविष्णुहरादींश्च कथान्येषां च कीदृशी॥ २७

कोऽप्यस्ति त्रिषु लोकेषु यो न मुह्यति मायया।
यन्मोहं गमिताः पूर्वे ब्रह्मविष्णुहरादयः॥ २८

अहो बलमहो वीर्यं देव्या खलु विनिर्मितम्।
माययैव वशं नीतः सर्वज्ञ ईश्वरः प्रभुः॥ २९

विष्ण्वंशसम्भवो व्यास इति पौराणिका जगुः।
सोऽपि मोहार्णवे मग्नो भग्नपोतो वणिग्यथा॥ ३०

अश्रुपातं करोत्यद्य विवशः प्राकृतो यथा।
अहो मायाबलं चैतद्दुस्त्यजं पण्डितैरपि॥ ३१

कोऽयं कोऽहं कथं चेह कीदृशोऽयं भ्रमः किल।
पञ्चभूतात्मके देहे पितापुत्रेति वासना॥ ३२

बलिष्ठा खलु मायेयं मायिनामपि मोहिनी।
ययाभिभूतः कृष्णोऽपि करोति रोदनं द्विजः॥ ३३

सूत उवाच

तां नत्वा मनसा देवीं सर्वकारणकारणाम्।
जननीं सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां तथेश्वरीम्॥ ३४

पितरं प्राह दीनं तं शोकार्णवपरिप्लुतम्।
अरणीसम्भवो व्यासं हेतुमद्वचनं शुभम्॥ ३५

पाराशर्य महाभाग सर्वेषां बोधदः स्वयम्।
किं शोकं कुरुषे स्वामिन्यथाज्ञः प्राकृतो नरः॥ ३६

इसलिये मैं उन्हीं देवी महामायाकी शरणमें जाऊँ, जो समस्त जगत् तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिको भी मोहित कर देती हैं, तब दूसरोंकी बात ही क्या है?॥ २७॥

इन तीनों लोकोंमें कौन ऐसा है जो मायासे मोहित न होता हो? उस मायाने तो ब्रह्मा आदि देवताओंको भी पूर्वकालमें मोहित कर दिया था॥ २८॥

अहो! उन भगवती जगदम्बाके द्वारा रचित मायाका बल तथा पराक्रम महान् आश्चर्यजनक है; उन्होंने अपनी मायाके प्रभावसे ही सर्वज्ञ और सर्वान्तर्यामी ईश्वरको भी अपने वशमें कर रखा है॥ २९॥

पौराणिकोंद्वारा कहा गया है कि व्यासजी भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; तथापि वे आज शोक-सागरमें इस प्रकार डूब रहे हैं जैसे समुद्रमें भग्न जलयानवाला वणिक्॥ ३०॥

आज वे भी मायाके वशीभूत होकर एक साधारण व्यक्तिके समान आँसू बहा रहे हैं। अहो! माया बड़ी प्रबल है, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् भी नहीं त्याग पाते॥ ३१॥

व्यास कौन हैं? मैं कौन हूँ? यह संसार क्या वस्तु है? और यह कैसा भ्रम है? इस पांचभौतिक शरीरमें पिता-पुत्रकी भावना कहाँसे आयी? यह माया अतीव प्रबल है, जो मायावियोंको भी मोहित कर देती है, जिसके वशीभूत होकर यहाँ द्विज कृष्णद्वैपायन भी रुदन कर रहे हैं॥ ३२-३३॥

सूतजी बोले—सब कारणोंकी एकमात्र कारण, सब देवताओंकी जननी तथा ब्रह्मा आदि देवताओंकी भी स्वामिनी आदिशक्ति भगवतीको मनसे स्मरण करके शोकसागरमें डूबे हुए अपने दुःखी पिता श्रीव्यासजीसे अरणीपुत्र शुकदेवजीने इस प्रकार नीतियुक्त वचन कहा—॥ ३४-३५॥

हे पराशरनन्दन! हे महाभाग! आप तो स्वयं सब लोगोंको ज्ञान देनेवाले हैं तब हे स्वामिन्! आप ऐसा शोक क्यों करते हैं, जैसा कोई अज्ञ साधारण व्यक्ति करता है?॥ ३६॥

अद्याहं तव पुत्रोऽस्मि न जाने पूर्वजन्मनि।
कोऽहं कस्त्वं महाभाग विभ्रमोऽयं महात्मनि॥ ३७

कुरु धैर्यं प्रबुध्यस्व मा विषादे मनः कृथाः।
मोहजालमिमं मत्वा मुञ्च शोकं महामते॥ ३८

क्षुधानिवृत्तिर्भक्ष्येण न पुत्रदर्शनेन च।
पिपासा जलपानेन याति नैवात्मजेक्षणात्॥ ३९

घ्राणं सुखं सुगन्धेन कर्णजं श्रवणेन च।
स्त्रीसुखं तु स्त्रिया नूनं पुत्रोऽहं किं करोमि ते॥ ४०

अजीगर्तेन पुत्रोऽपि हरिश्चन्द्राय भूभुजे।
पशुकामाय यज्ञार्थे दत्तो मौल्येन सर्वथा॥ ४१

सुखानां साधनं द्रव्यं धनात्सुखसमुच्चयः।
धनमर्जय लोभश्चेत्पुत्रोऽहं किं करोम्यहम्॥ ४२

मां प्रबोधय बुद्ध्या त्वं दैवज्ञोऽसि महामते।
यथा मुच्येयमत्यन्तं गर्भवासभयान्मुने॥ ४३

दुर्लभं मानुषं जन्म कर्मभूमाविहानघ।
तत्रापि ब्राह्मणत्वं वै दुर्लभं चोत्तमे कुले॥ ४४

बद्धोऽहमिति मे बुद्धिर्नापसर्पति चित्ततः।
संसारवासनाजाले निविष्टा वृद्धिगामिनी॥ ४५

सूत उवाच

इत्युक्तस्तु तदा व्यासः पुत्रेणामितबुद्धिना।
प्रत्युवाच शुकं शान्तं चतुर्थाश्रममानसम्॥ ४६

व्यास उवाच

पठ पुत्र महाभाग मया भागवतं कृतम्।
शुभं न चातिविस्तीर्णं पुराणं ब्रह्मसम्मितम्॥ ४७

हे महाभाग! इस समय मैं आपका पुत्र हूँ, परंतु यह कौन जानता है कि पूर्वजन्ममें मैं कौन था और आप कौन थे? यह संसार तो महात्माओंके लिये एक भ्रममात्र है॥ ३७॥

अतएव आप धैर्य रखें, विवेक धारण करें तथा मनमें खेद न करें। हे महामते! इसे मोहजाल समझकर आप शोकका परित्याग करें॥ ३८॥

भूख भोजनसे मिटती है, पुत्रके देखनेसे नहीं। प्यास भी जल पीनेसे मिटती है, केवल पुत्र-दर्शनसे नहीं। इसी प्रकार सुगन्धित पदार्थसे नाकको तथा अच्छी बातोंसे कानोंको एवं स्त्रीसे विषय-सुखका आनन्द मिलता है। मैं आपका पुत्र हूँ, बताइये मैं आपके लिये क्या करूँ?॥ ३९-४०॥

किसी समय अजीगर्त नामक ब्राह्मणने धन लेकर अपने पुत्र शुनःशेपको यज्ञपशुके रूपमें राजा हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया था। सुखका साधन केवल धन ही है, धन ही सुखकी राशि है। अतः यदि आपको लोभ हो, तो धनका संचय कीजिये। मैं आपका पुत्र हूँ, अतः [आपके सुखके लिये] मैं क्या करूँ?॥ ४१-४२॥

हे महामते! आप दैवज्ञ हैं। अतः हे मुने! आप मुझे अपनी बुद्धिसे ऐसा ज्ञान दीजिये, जिससे मैं गर्भवासजनित महान् भयसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४३॥

हे पवित्रात्मन्! इस कर्मभूमिमें मनुष्य-जन्म अति दुर्लभ है, उसमें भी उत्तम कुलमें ब्राह्मणका जन्म और भी दुर्लभ है॥ ४४॥

'मैं आबद्ध हूँ'—यह बुद्धि मेरे चित्तसे नहीं हटती। संसारके वासनाजालमें यह उत्तरोत्तर बढ़ती हुई फँसती ही जाती है॥ ४५॥

सूतजी बोले—असीम बुद्धिवाले अपने पुत्र शुकदेवके ऐसा कहनेपर व्यासजीने शान्त एवं संन्यास-आश्रमके लिये उत्सुक मनवाले शुकदेवजीसे कहा—॥ ४६॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग पुत्र! मेरेद्वारा रचित श्रीमद्देवीभागवतपुराणको तुम पढ़ो; वेदतुल्य यह पवित्र पुराण अधिक विस्तृत भी नहीं है॥ ४७॥

स्कन्धा द्वादश तत्रैव पञ्चलक्षणसंयुतम्।
सर्वेषां च पुराणानां भूषणं मम सम्मतम्॥ ४८

सदसज्ज्ञानविज्ञानं श्रुतमात्रेण जायते।
येन भागवतेनेह तत्पठ त्वं महामते॥ ४९

वटपत्रशयानाय विष्णवे बालरूपिणे।
केनास्मि बालभावेन निर्मितोऽहं चिदात्मना॥ ५०

किमर्थं केन द्रव्येण कथं जानामि चाखिलम्।
इत्येवं चिन्त्यमानाय मुकुन्दाय महात्मने॥ ५१

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं भगवत्याखिलार्थदम्।
सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥ ५२

तद्वचो विष्णुना पूर्वं संविज्ञातं मनस्यपि।
केनोक्ता वागियं सत्या चिन्तयामास चेतसा॥ ५३

कथं वेद्मि प्रवक्तारं स्त्रीपुंसौ वा नपुंसकम्।
इति चिन्ताप्रपन्नेन धृतं भागवतं हृदि॥ ५४

पुनः पुनः कृतोच्चारस्तस्मिन्नेवास्तचेतसा।
वटपत्रे शयानः सन्नभूच्चिन्तासमन्वितः॥ ५५

तदा शान्ता भगवती प्रादुरास चतुर्भुजा।
शङ्खचक्रगदापद्मवरायुधधरा शिवा॥ ५६

दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता।
संयुता सदृशीभिश्च सखीभिः स्वविभूतिभिः॥ ५७

प्रादुर्बभूव तस्याग्रे विष्णोरमिततेजसः।
मन्दहास्यं प्रयुञ्जाना महालक्ष्मीः शुभानना॥ ५८

सूत उवाच

तां तथा संस्थितां दृष्ट्वा हृदये कमलेक्षणः।
विस्मितः सलिले तस्मिन्निराधारां मनोरमाम्॥ ५९

इसमें बारह स्कन्ध हैं, यह पुराणोंके पाँचों लक्षणोंसे युक्त है। मेरे विचारमें यह पुराण सभी पुराणोंका आभूषण है॥ ४८॥

हे महामते! जिस भागवतके सुननेमात्रसे सत् और असत् वस्तुओंका यथार्थ ज्ञान हो जाता है, उसे तुम पढ़ो॥ ४९॥

[एक बार महाप्रलयकालमें] वटपत्रपर शयन करते हुए बालरूपधारी भगवान् विष्णु वहाँ सोच रहे थे कि किस चिदात्माने, किस प्रयोजनसे तथा किस द्रव्यसे मुझे बालरूपमें उत्पन्न किया है? इन सब विषयोंका ज्ञान मुझे कैसे हो? इस प्रकार चिन्तन कर रहे महात्मा बालमुकुन्दसे उन आदिशक्ति भगवतीने सम्पूर्ण अर्थको प्रदान करनेवाले ज्ञानको आधे श्लोकमें ही इस प्रकार कहा—'**सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्**' अर्थात् यह सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है॥ ५०—५२॥

यह बात पहले भी भगवान् विष्णुके हृदयमें उत्पन्न हुई थी। इसलिये अब वे सोचने लगे कि इस सत्य वचनका उच्चारण किसने किया? इस कहनेवालेको मैं कैसे जानूँ? वह स्त्री है या पुरुष अथवा नपुंसक है? ऐसी चिन्तावाले भगवान् विष्णुने भागवतको हृदयमें धारण किया और उसी श्लोकार्धमें मन लगाये हुए वे बार-बार उसका उच्चारण करने लगे। इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए वे भगवान् विष्णु चिन्तातुर हो गये॥ ५३—५५॥

उसी समय शंख, चक्र, गदा, पद्म—इन श्रेष्ठ आयुधोंको धारण किये हुए, चतुर्भुजा, शान्तिस्वरूपा, शान्ता शिवा दिव्य वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर अपने ही समान विभूतियोंवाली सखियोंसहित प्रादुर्भूत हुईं। वे सुन्दर मुखवाली भगवती महालक्ष्मी परम तेजस्वी भगवान् विष्णुके समक्ष मन्द-मन्द मुसकराती हुई प्रकट हुईं॥ ५६—५८॥

सूतजी बोले—उस अपार प्रलय-सागरमें बिना अवलम्बके स्थित मनोरम रूपवाली उन दिव्य देवीको देखकर कमलनयन भगवान् विष्णु बड़े ही विस्मयमें पड़े॥ ५९॥

रतिर्भूतिस्तथा बुद्धिर्मतिः कीर्तिः स्मृतिर्धृतिः।
श्रद्धा मेधा स्वधा स्वाहा क्षुधा निद्रा दया गतिः॥ ६०

तुष्टिः पुष्टिः क्षमा लज्जा जृम्भा तन्द्रा च शक्तयः।
संस्थिताः सर्वतः पार्श्वे महादेव्याः पृथक्पृथक्॥ ६१

वरायुधधराः सर्वा नानाभूषणभूषिताः।
मन्दारमालाकुलिता मुक्ताहारविराजिताः॥ ६२

तां दृष्ट्वा ताश्च संवीक्ष्य तस्मिन्नेकार्णवे जले।
विस्मयाविष्टहृदयः सम्बभूव जनार्दनः॥ ६३

चिन्तयामास सर्वात्मा दृष्टमायोऽतिविस्मितः।
कुतो भूताः स्त्रियः सर्वाः कुतोऽहं वटतल्पगः॥ ६४

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे न्यग्रोधः कथमुत्थितः।
केनाहं स्थापितोऽस्म्यत्र शिशुं कृत्वा शुभाकृतिम्॥ ६५

ममेयं जननी नो वा माया वा कापि दुर्घटा।
दर्शनं केनचित्त्वद्य दत्तं वा केन हेतुना॥ ६६

किं मया चात्र वक्तव्यं गन्तव्यं वा न वा क्वचित्।
मौनमास्थाय तिष्ठेयं बालभावादतन्द्रितः॥ ६७

वहाँ रति, भूति, बुद्धि, मति, कीर्ति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, स्वधा, स्वाहा, क्षुधा, निद्रा, दया, गति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, जृम्भा, तन्द्रा—ये शक्तियाँ अलग-अलग रूपमें उन महादेवीके समीप सभी ओर खड़ी थीं॥ ६०-६१॥

वे सभी श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए थीं, नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थीं तथा उनके हृदयपर मन्दारकी मालाएँ और मोतियोंके हार सुशोभित हो रहे थे॥ ६२॥

उन भगवती महालक्ष्मी तथा उनकी सभी अन्यान्य सखियोंको उस प्रलयसागरके जलमें उपस्थित देखकर भगवान् विष्णुके मनमें बड़ा विस्मय हुआ॥ ६३॥

इस प्रकार भगवतीकी माया देखकर अति चकित सर्वात्मा भगवान् विष्णु सोचने लगे—ये देवियाँ कहाँसे आ गयीं, मैं वटवृक्षके पत्तेपर कैसे आ गया, इस एकार्णव महासागरमें वटवृक्ष कहाँसे उत्पन्न हो गया और किसके द्वारा मैं सुन्दर स्वरूपवाला बालक बनाकर उसपर स्थापित किया गया हूँ?॥ ६४-६५॥

ये मेरी माता तो नहीं हैं! अथवा यह कोई दुर्घट माया है? किसने और किस कारणसे मुझे इस समय दर्शन दिये हैं?॥ ६६॥

अब मैं इस विषयमें क्या कहूँ? मैं यहाँसे कहीं चला जाऊँ अथवा मौन धारण करके बालभावसे सावधान होकर यहीं स्थित रहूँ॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकवैराग्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

बालरूपधारी भगवान् विष्णुसे महालक्ष्मीका संवाद, व्यासजीका शुकदेवजीसे देवीभागवतप्राप्तिकी परम्परा बताना तथा शुकदेवजीका मिथिला जानेका निश्चय करना

व्यास उवाच

दृष्ट्वा तं विस्मितं देवं शयानं वटपत्रके।
उवाच सस्मितं वाक्यं विष्णो किं विस्मितो ह्यसि॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार वटपत्रपर सोये हुए उन भगवान् विष्णुको आश्चर्यचकित देखकर मन्द मुसकान करती हुई देवीने यह वचन कहा—'विष्णो! आप विस्मयमें क्यों पड़े हैं?'॥ १॥

महाशक्त्याः प्रभावेण त्वं मां विस्मृतवान्पुरा।
प्रभवे प्रलये जाते भूत्वा भूत्वा पुनः पुनः॥ २

निर्गुणा सा परा शक्तिः सगुणस्त्वं तथाप्यहम्।
सात्त्विकी किल या शक्तिस्तां शक्तिं विद्धि मामिकाम्॥ ३

त्वन्नाभिकमलाद् ब्रह्मा भविष्यति प्रजापतिः।
स कर्ता सर्वलोकस्य रजोगुणसमन्वितः॥ ४

स तदा तप आस्थाय प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम्।
रजसा रक्तवर्णञ्च करिष्यति जगत्त्रयम्॥ ५

सगुणान्पञ्चभूतांश्च समुत्पाद्य महामतिः।
इन्द्रियाणीन्द्रियेशांश्च मनःपूर्वान्समन्ततः॥ ६

करिष्यति ततः सर्गं तेन कर्ता स उच्यते।
विश्वस्यास्य महाभाग त्वं वै पालयिता तथा॥ ७

तद्भ्रुवोर्मध्यदेशाच्च क्रोधाद् रुद्रो भविष्यति।
तपः कृत्वा महाघोरं प्राप्य शक्तिं तु तामसीम्॥ ८

कल्पान्ते सोऽपि संहर्ता भविष्यति महामते।
तेनाहं त्वामुपायाता सात्त्विकीं त्वमवेहि माम्॥ ९

स्थास्येऽहं त्वत्समीपस्था सदाहं मधुसूदन।
हृदये ते कृतावासा भवामि सततं किल॥ १०

विष्णुरुवाच

श्लोकस्यार्धं मया पूर्वं श्रुतं देवि स्फुटाक्षरम्।
तत्केनोक्तं वरारोहे रहस्यं परमं शिवम्॥ ११

तन्मे ब्रूहि वरारोहे संशयोऽयं वरानने।
निर्धनो हि यथा द्रव्यं तत्स्मरामि पुनः पुनः॥ १२

व्यास उवाच

विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा महालक्ष्मीः स्मितानना।
उवाच परया प्रीत्या वचनं चारुहासिनी॥ १३

आप उस महाशक्तिकी मायासे पूर्वकालमें भी सृष्टिकी उत्पत्ति तथा प्रलय होनेपर इसी प्रकार बार-बार जन्म लेकर मुझे भूलते रहे हैं॥ २॥

वे पराशक्ति निर्गुणा हैं, मैं और आप तो सगुण हैं। जो सात्त्विकी शक्ति है, उसे आप मेरी ही शक्ति समझिये॥ ३॥

आपके नाभिकमलसे प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न होंगे। वे ही रजोगुणसे युक्त होकर समस्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि करेंगे॥ ४॥

वे ब्रह्मा ही तपोबलका आश्रय लेकर श्रेष्ठ शक्ति प्राप्त करके रजोगुणके द्वारा त्रिभुवनको लाल वर्णका कर देंगे। गुणोंसहित पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु—इन पाँचों महाभूतोंकी एवं मनके साथ इन्द्रियों तथा उनके अधिष्ठातृदेवताओंकी रचना करके वे बुद्धिमान् ब्रह्माजी जगत्‌की सृष्टि करेंगे; इसी कारण वे कर्ता कहे जायँगे और आप इस विश्वके पालक होंगे॥ ५—७॥

उनके क्रोध करनेपर उनकी भौंहोंके मध्यभागसे रुद्र उत्पन्न होंगे। हे महामते! वे ही रुद्र घोर तप करके तामसी शक्ति प्राप्तकर कल्पान्तके समय सृष्टिके संहारकर्ता होंगे। इसी कारण मैं आपके पास आयी हूँ; आप मुझे वही सात्त्विकी शक्ति समझिये। हे मधुसूदन! मैं यहीं रहूँगी। मैं तो सर्वदा आपके ही पास रहती हूँ। आपके हृदयमें मैं निरन्तर निवास करती हूँ॥ ८—१०॥

विष्णु बोले—हे देवि! हे वरारोहे! कुछ समय पूर्व मैंने स्पष्ट अक्षरोंवाला जो आधा श्लोक सुना, वह परम कल्याणप्रद तथा रहस्यमय वाक्य किसने कहा था? हे वरारोहे! यह मुझे शीघ्र बताइये; हे सुमुखि! इस विषयमें मुझे महती शंका है। जिस प्रकार निर्धन पुरुष धनकी चिन्ता करता रहता है, उसी प्रकार मैं उसका बार-बार स्मरण किया करता हूँ॥ ११-१२॥

व्यासजी बोले—विष्णुका वह वचन सुनकर मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली महालक्ष्मी मधुर हास्यके साथ अत्यन्त प्रेमसे बोलीं—॥ १३॥

महालक्ष्मीरुवाच

शृणु शौरे वचो मह्यं सगुणाहं चतुर्भुजा।
मां जानासि न जानासि निर्गुणां सगुणालयाम्॥ १४

त्वं जानीहि महाभाग तया तत्प्रकटीकृतम्।
पुण्यं भागवतं विद्धि वेदसारं शुभावहम्॥ १५

कृपां च महतीं मन्ये देव्याः शत्रुनिषूदन।
यया प्रोक्तं परं गुह्यं हिताय तव सुव्रत॥ १६

रक्षणीयं सदा चित्ते न विस्मार्यं कदाचन।
सारं हि सर्वशास्त्राणां महाविद्याप्रकाशितम्॥ १७

नातः परं वेदितव्यं वर्तते भुवनत्रये।
प्रियोऽसि खलु देव्यास्त्वं तेन ते व्याहृतं वचः॥ १८

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचो देव्या महालक्ष्म्याश्चतुर्भुजः।
दधार हृदये नित्यं मत्वा मन्त्रमनुत्तमम्॥ १९

कालेन कियता तत्र तन्नाभिकमलोद्भवः।
ब्रह्मा दैत्यभयात्त्रस्तो जगाम शरणं हरेः॥ २०

ततः कृत्वा महायुद्धं हत्वा तौ मधुकैटभौ।
जजाप भगवान्विष्णुः श्लोकार्धं विशदाक्षरम्॥ २१

जपन्तं वासुदेवं च दृष्ट्वा देवः प्रजापतिः।
पप्रच्छ परमप्रीतः कञ्जजः कमलापतिम्॥ २२

किं त्वं जपसि देवेश त्वत्तः कोऽप्यधिकोऽस्ति वै।
यत्स्मृत्वा पुण्डरीकाक्ष प्रीतोऽसि जगदीश्वर॥ २३

हरिरुवाच

मयि त्वयि च या शक्तिः क्रियाकारणलक्षणा।
विचारय महाभाग या सा भगवती शिवा॥ २४

यस्याधारे जगत्सर्वं तिष्ठत्यत्र महार्णवे।
साकारा या महाशक्तिरमेया च सनातनी॥ २५

महालक्ष्मी बोलीं—हे शौरे! मेरी बात सुनिये। मैं सगुणरूपा चतुर्भुजा भगवती हूँ। आप मुझे जानते हों या न जानते हों, किंतु मैं सब गुणोंका आलय होती हुई निर्गुणा भी हूँ॥ १४॥

हे महाभाग! आप यह जान लें कि वह अर्धश्लोक उसी पराशक्तिने कहा था। आप उसे सब वेदोंका तत्त्वस्वरूप, कल्याणकारी और पुण्यप्रद श्रीमद्देवीभागवत समझिये। हे शत्रुमर्दन! हे सुव्रत! मैं भगवतीकी परम कृपा मानती हूँ, जिसने ऐसा गुप्त एवं परम रहस्यमय मन्त्र आपके कल्याणके लिये कहा है॥ १५-१६॥

आप इसे सर्वदा चित्तमें रखिये और कभी भी इसे विस्मृत न कीजिये; यह सब शास्त्रोंका सार है तथा महाविद्याके द्वारा प्रकाशित किया गया है॥ १७॥

इससे बढ़कर त्रिभुवनमें कुछ भी ज्ञातव्य नहीं है। आप निश्चय ही देवीके परम प्रिय हैं, इसीलिये उन्होंने यह मन्त्र आपको बताया है॥ १८॥

व्यासजी बोले—महादेवी लक्ष्मीके इस वचनको सुनकर चतुर्भुज भगवान् विष्णुने इसे सर्वश्रेष्ठ मन्त्र समझकर सदाके लिये हृदयमें धारण कर लिया॥ १९॥

कुछ दिनोंके बाद उनके नाभिकमलसे उत्पन्न ब्रह्माजी दैत्योंके भयसे डरकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब वे भगवान् विष्णु भयंकर युद्ध करके मधु-कैटभका वधकर उस विशद अक्षरोंवाले श्लोकार्धरूप मन्त्रका जप करने लगे॥ २०-२१॥

भगवान् वासुदेवको जप करते हुए देखकर प्रजापति ब्रह्माजीने प्रेमपूर्वक कमलापतिसे पूछा—हे देवेश! हे पुण्डरीकाक्ष! हे जगदीश्वर! आप किसका जप कर रहे हैं? आपसे भी बढ़कर दूसरा कौन है, जिसका ध्यान करके आप इतने प्रसन्न हो रहे हैं?॥ २२-२३॥

विष्णु बोले—हे महाभाग! विचार कीजिये कि आपमें और मुझमें जो कार्यकारणस्वरूपा शक्ति विद्यमान है, वे ही भगवती शिवा हैं। जिनके आधारपर एकार्णव महासागरमें यह समस्त जगत् ठहरा हुआ है। जो महाशक्ति साकार, असीम तथा सनातनी भगवती हैं और यह समस्त जड-चेतन

यया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्।
सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये॥ २६

सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी।
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ २७

अहं त्वमखिलं विश्वं तस्याश्चिच्छक्तिसम्भवम्।
विद्धि ब्रह्मन्न सन्देहः कर्तव्यः सर्वदानघ॥ २८

श्लोकार्धेन तया प्रोक्तं तद्वै भागवतं किल।
विस्तरो भविता तस्य द्वापरादौ युगे तथा॥ २९

व्यास उवाच

ब्रह्मणा संगृहीतं च विष्णोस्तु नाभिपङ्कजे।
नारदाय च तेनोक्तं पुत्रायामितबुद्धये॥ ३०

नारदेन तथा मह्यं दत्तं हि मुनिना पुरा।
मया कृतमिदं पूर्णं द्वादशस्कन्धविस्तरम्॥ ३१

तत्पठस्व महाभाग पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
पञ्चलक्षणयुक्तं च देव्याश्चरितमुत्तमम्॥ ३२

तत्त्वज्ञानरसोपेतं सर्वेषामुत्तमोत्तमम्।
धर्मशास्त्रसमं पुण्यं वेदार्थेनोपबृंहितम्॥ ३३

वृत्रासुरवधोपेतं नानाख्यानकथायुतम्।
ब्रह्मविद्यानिधानं तु संसारार्णवतारकम्॥ ३४

गृहाण त्वं महाभाग योग्योऽसि मतिमत्तरः।
पुण्यं भागवतं नाम पुराणं पुरुषर्षभ॥ ३५

अष्टादशसहस्राणां श्लोकानां कुरु संग्रहम्।
अज्ञाननाशनं दिव्यं ज्ञानभास्करबोधकम्॥ ३६

सुखदं शान्तिदं धन्यं दीर्घायुष्यकरं शिवम्।
शृण्वतां पठतां चेदं पुत्रपौत्रविवर्धनम्॥ ३७

संसार जिनके द्वारा रचा गया है, वे ही जब प्रसन्न होती हैं तब मनुष्योंके उद्धारके लिये वरदायिनी होती हैं॥ २४—२६॥

वे ही सनातनी परमा विद्या हैं, संसारके बन्धन एवं मुक्तिकी कारणस्वरूपा हैं और वे ही सभी ईश्वरोंकी भी स्वामिनी हैं॥ २७॥

मैं, आप तथा समस्त संसार उन्हींकी चैतन्य शक्तिसे उत्पन्न हुए हैं। हे ब्रह्मन्! हे निष्पाप! ऐसा आप सत्य जानिये, इसमें सन्देह नहीं है॥ २८॥

उन भगवतीने आधे श्लोकमें ही जो कहा है, वही वास्तविक श्रीमद्देवीभागवत है। द्वापरयुगके आदिमें पुनः उसका विस्तार होगा॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माजीने उस भागवतका संग्रह किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने परम बुद्धिमान् पुत्र नारदजीसे इसे कहा। पूर्वकालमें वही भागवत देवर्षि नारदजीने मुझे दिया और फिर मैंने उसे बारह स्कन्धोंमें विस्तृत करके पूर्ण किया॥ ३०-३१॥

हे महाभाग! वेदतुल्य, पाँच लक्षणोंसे युक्त तथा भगवतीके उत्तम चरितोंसे ओत-प्रोत इस 'श्रीमद्देवीभागवत' पुराणको पढ़ो॥ ३२॥

तत्त्वज्ञानके रससे परिपूर्ण, वेदार्थके द्वारा उपबृंहित और धर्मशास्त्रके समान पुण्यप्रद यह भागवत सभी पुराणोंमें श्रेष्ठतम है। यह वृत्रासुरवधके कथानकसे युक्त, विविध आख्यानोपाख्यानोंसे समन्वित, ब्रह्मविद्याका निधान एवं भवसागरसे पार करनेवाला है॥ ३३-३४॥

अतः हे महाभाग! तुम उस भागवतको अवश्य पढ़ो; तुम अत्यन्त बुद्धिमान् और योग्य हो। हे नरश्रेष्ठ! यह श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराण पुण्यप्रद है॥ ३५॥

तुम इसके अठारह हजार श्लोकोंको हृदयंगम कर लो; यह पुराण पाठ तथा श्रवण करनेवालेके लिये अज्ञानका नाश करनेवाला, दिव्य ज्ञानरूपी सूर्यका बोध करानेवाला, सुखप्रद, शान्तिदायक, धन्य, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाला, कल्याणकारी तथा पुत्र-पौत्रकी वृद्धि करनेवाला है॥ ३६-३७॥

शिष्योऽयं मम धर्मात्मा लोमहर्षणसम्भवः।
पठिष्यति त्वया सार्धं पुराणीं संहितां शुभाम्॥ ३८

सूत उवाच

इत्युक्तं तेन पुत्राय मह्यं च कथितं किल।
मया गृहीतं तत्सर्वं पुराणं चातिविस्तरम्॥ ३९

शुकोऽधीत्य पुराणं तु स्थितो व्यासाश्रमे शुभे।
न लेभे शर्म धर्मात्मा ब्रह्मात्मज इवापरः॥ ४०

एकान्तसेवी विकलः स शून्य इव लक्ष्यते।
नात्यन्तभोजनासक्तो नोपवासरतस्तथा॥ ४१

चिन्ताविष्टं शुकं दृष्ट्वा व्यासः प्राह सुतं प्रति।
किं पुत्र चिन्त्यते नित्यं कस्माद्व्यग्रोऽसि मानद॥ ४२

आस्से ध्यानपरो नित्यमृणग्रस्त इवाधनः।
का चिन्ता वर्तते पुत्र मयि ताते तु तिष्ठति॥ ४३

सुखं भुंक्ष्व यथाकामं मुञ्च शोकं मनोगतम्।
ज्ञानं चिन्तय शास्त्रोक्तं विज्ञाने च मतिं कुरु॥ ४४

न चेन्मनसि ते शान्तिर्वचसा मम सुव्रत।
गच्छ त्वं मिथिलां पुत्र पालितां जनकेन ह॥ ४५

स ते मोहं महाभाग नाशयिष्यति भूपतिः।
जनको नाम धर्मात्मा विदेहः सत्यसागरः॥ ४६

तं गत्वा नृपतिं पुत्र सन्देहं स्वं निवर्तय।
वर्णाश्रमाणां धर्मांस्त्वं पृच्छ पुत्र यथातथम्॥ ४७

जीवन्मुक्तः स राजर्षिर्ब्रह्मज्ञानमतिः शुचिः।
तथ्यवक्तातिशान्तश्च योगी योगप्रियः सदा॥ ४८

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
प्रत्युवाच महातेजाः शुकश्चारणिसम्भवः॥ ४९

लोमहर्षणसे उत्पन्न मेरे शिष्य ये धर्मात्मा सूतजी भी तुम्हारे साथ इस शुभ पुराण-संहिताका अध्ययन करेंगे॥ ३८॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! व्यासजीने मुझसे और अपने पुत्रसे इस प्रकार कहा था, तब मैंने उस सम्पूर्ण विस्तृत पुराण-संहिताको विधिवत् पढ़ा था॥ ३९॥

उस समय भागवतपुराणका अध्ययन करके शुकदेवजी व्यासजीके पवित्र आश्रममें ही रहने लगे, परंतु दूसरे ब्रह्मापुत्र नारदकी भाँति उन धर्मात्माको वहाँ शान्ति न मिल सकी॥ ४०॥

एकान्तमें रहनेवाले तथा व्याकुलचित्त वे उदासीनकी भाँति दिखायी पड़ते थे। न वे अधिक भोजन करते थे और न उपवासपूर्वक ही रहते थे॥ ४१॥

इस प्रकार अपने पुत्र शुकदेवको चिन्तित देखकर व्यासजी बोले—हे पुत्र! तुम क्या चिन्ता करते रहते हो? हे मानद! तुम किसलिये व्याकुल रहते हो? ऋणग्रस्त निर्धन व्यक्तिकी भाँति तुम सदा चिन्ता करते रहते हो। हे पुत्र! मुझ पिताके रहते तुम्हें किस बातकी चिन्ता हो रही है?॥ ४२-४३॥

तुम मनकी ग्लानि छोड़ो; यथेष्टरूपसे सुखोपभोग करो, शास्त्रोक्त ज्ञानका चिन्तन करो और आत्मचिन्तनमें मन लगाओ॥ ४४॥

हे सुव्रत! यदि मेरे उपदेशसे तुम्हें शान्ति नहीं मिलती, तो राजा जनकके द्वारा पालित मिथिलापुरी चले जाओ। हे महाभाग! वे विदेह राजा जनक तुम्हारे मोहका नाश कर देंगे; क्योंकि वे सत्यसिन्धु तथा धर्मात्मा हैं॥ ४५-४६॥

हे पुत्र! उन राजाके पास जाकर तुम अपना सन्देह दूर करो और वर्णाश्रम-धर्मके रहस्यको उनसे यथार्थरूपमें पूछो॥ ४७॥

वे राजर्षि जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानका चिन्तन करनेवाले, पवित्र, यथार्थ वक्ता, शान्तचित्त तथा सदा योगप्रिय भी हैं॥ ४८॥

सूतजी बोले—परम तेजस्वी उन व्यासजीका वचन सुनकर अरणिसे उत्पन्न महातेजस्वी शुकदेवजीने उत्तर दिया। हे धर्मात्मन्! आपके द्वारा यह जो कहा

दम्भोऽयं किल धर्मात्मन्भाति चित्ते ममाधुना।
जीवन्मुक्तो विदेहश्च राज्यं शास्ति मुदान्वितः ॥ ५०

वन्ध्यापुत्र इवाभाति राजासौ जनकः पितः।
कुर्वन् राज्यं विदेहः किं सन्देहोऽयं ममाद्भुतः ॥ ५१

द्रष्टुमिच्छाम्यहं भूपं विदेहं नृपसत्तमम्।
कथं तिष्ठति संसारे पद्मपत्रमिवाम्भसि ॥ ५२

सन्देहोऽयं महांस्तात विदेहे परिवर्तते।
मोक्षः किं वदतां श्रेष्ठ सौगतानामिवापरः ॥ ५३

कथं भुक्तमभुक्तं स्यादकृतं च कृतं कथम्।
व्यवहारः कथं त्याज्य इन्द्रियाणां महामते ॥ ५४

माता पुत्रस्तथा भार्या भगिनी कुलटा तथा।
भेदाभेदः कथं न स्याद्यद्येतन्मुक्तता कथम् ॥ ५५

कटु क्षारं तथा तीक्ष्णं कषायं मिष्टमेव च।
रसना यदि जानाति भुंक्ते भोगाननुत्तमान् ॥ ५६

शीतोष्णसुखदुःखादिपरिज्ञानं यदा भवेत्।
मुक्तता कीदृशी तात सन्देहोऽयं ममाद्भुतः ॥ ५७

शत्रुमित्रपरिज्ञानं वैरं प्रीतिकरं सदा।
व्यवहारे परे तिष्ठन्कथं न कुरुते नृपः ॥ ५८

चौरं वा तापसं वापि समानं मन्यते कथम्।
असमा यदि बुद्धिः स्यान्मुक्तता तर्हि कीदृशी ॥ ५९

दृष्टपूर्वो न मे कश्चिज्जीवन्मुक्तश्च भूपतिः।
शङ्केयं महती तात गृहे मुक्तः कथं नृपः ॥ ६०

जा रहा है, उससे मेरे चित्तमें शंका उठती है कि कहीं यह दम्भ तो नहीं। जीवन्मुक्त तथा विदेह होते हुए भी राजा जनक हर्षके साथ कैसे राज्य करते हैं? हे पिताजी! यह बात तो वैसे ही असम्भव है जैसे किसी वन्ध्याको पुत्र हो! अतः वे राजा जनक राज्य करते हुए भी विदेह कैसे हैं? यह मुझे अद्भुत सन्देह हो रहा है! ॥ ४९—५१ ॥

अब मैं नृपश्रेष्ठ विदेह जनकको देखना चाहता हूँ कि वे जलमें कमलपत्रकी भाँति संसारमें कैसे रहते हैं? हे तात! उनके विदेह होनेके विषयमें मुझे बड़ा सन्देह हो रहा है! हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! सौगतोंकी भाँति वे भी मोक्षकी एक दूसरी परिभाषा तो नहीं हैं! ॥ ५२-५३ ॥

हे महामते! भला भोगा हुआ भोग अभोग और किया हुआ कर्म अकर्म कैसे हो सकता है? इन्द्रियोंका सहज व्यवहार कैसे छोड़ा जा सकता है? ॥ ५४ ॥

एक पुत्रका अपनी माता, पत्नी, बहन तथा किसी असती स्त्रीके साथ भेद-अभेदका सम्बन्ध क्यों नहीं होगा? और ऐसा होनेपर जीवन्मुक्तता कैसी? ॥ ५५ ॥

यदि जिह्वा कटु, क्षार, तीक्ष्ण, कषाय, मधुर आदि स्वादोंको जानती है तो वे अच्छे-अच्छे पदार्थोंका रसास्वादन करते ही होंगे। यदि शीत, उष्ण, सुख-दुःखका परिज्ञान उन्हें होता होगा तो भला यह मुक्तता कैसी? हे तात! मुझे यह अद्भुत सन्देह हो रहा है! ॥ ५६-५७ ॥

शत्रु और मित्रको पहचानकर उनके साथ वैर अथवा प्रीतिका व्यवहार किया जाता है, तो राज्यसिंहासनपर बैठे हुए राजा जनक शत्रुता या मित्रताका व्यवहार क्या नहीं रखते होंगे? उनके राज्यमें साधु और चोर समान कैसे समझे जाते हैं? यदि उनके प्रति समान बुद्धि नहीं है, तब भला वह जीवन्मुक्तता कैसी? ॥ ५८-५९ ॥

ऐसा जीवन्मुक्त कोई राजा मेरे द्वारा पहले देखा नहीं गया। हे तात! यह बहुत बड़ी शंका है कि वे राजा जनक घरमें रहकर भी मुक्त कैसे हैं? उन

दिदृक्षा महती जाता श्रुत्वा तं भूपतिं तथा।
सन्देहविनिवृत्त्यर्थं गच्छामि मिथिलां प्रति॥ ६१

राजाके विषयमें सुनकर उन्हें देखनेकी बड़ी लालसा उत्पन्न हो गयी है। अतः सन्देह-निवृत्तिके लिये मैं मिथिलापुरी जा रहा हूँ॥ ६०-६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकं प्रति व्यासोपदेशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

शुकदेवजीका राजा जनकसे मिलनेके लिये मिथिलापुरीको प्रस्थान तथा राजभवनमें प्रवेश

सूत उवाच

इत्युक्त्वा पितरं पुत्रः पादयोः पतितः शुकः।
बद्धाञ्जलिरुवाचेदं गन्तुकामो महामनाः॥ १

आपृच्छे त्वां महाभाग ग्राह्यं ते वचनं मया।
विदेहान्द्रष्टुमिच्छामि पालिताञ्जनकेन तु॥ २

विना दण्डं कथं राज्यं करोति जनकः किल।
धर्मे न वर्तते लोको दण्डश्चेन्न भवेद्यदि॥ ३

धर्मस्य कारणं दण्डो मन्वादिप्रहितः सदा।
स कथं वर्तते तात संशयोऽयं महान्मम॥ ४

मम माता त्वियं वन्ध्या तद्वद्भाति विचेष्टितम्।
पृच्छामि त्वां महाभाग गच्छामि च परन्तप॥ ५

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा गन्तुकामं च शुकं सत्यवतीसुतः।
आलिङ्ग्योवाच पुत्रं तं ज्ञानिनं निःस्पृहं दृढम्॥ ६

व्यास उवाच

स्वस्त्यस्तु शुक दीर्घायुर्भव पुत्र महामते।
सत्यां वाचं प्रदत्त्वा मे गच्छ तात यथासुखम्॥ ७

आगन्तव्यं पुनर्गत्वा ममाश्रममनुत्तमम्।
न कुत्रापि च गन्तव्यं त्वया पुत्र कथञ्चन॥ ८

सुखं जीवामि पुत्राहं दृष्ट्वा ते मुखपङ्कजम्।
अपश्यन्दुःखमाप्नोमि प्राणस्त्वमसि मे सुत॥ ९

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] पितासे यह कहकर महात्मा पुत्र शुकदेवजी उनके चरणोंपर गिर पड़े तथा हाथ जोड़कर चलनेकी इच्छासे बोले—हे महाभाग! अब आपसे आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आपका वचन स्वीकार्य है। अतः मैं महाराज जनकद्वारा पालित मिथिलापुरी देखना चाहता हूँ॥ १-२॥

राजा जनक दण्ड दिये बिना ही कैसे राज्य चलाते हैं? क्योंकि यदि दण्डका भय प्रजाओंको न हो तो लोग धर्मका पालन नहीं करेंगे॥ ३॥

मनु आदिके द्वारा धर्माचरणका मूल कारण सदा दण्ड-विधान ही कहा गया है। इस राजधर्मका निर्वाह बिना दण्डके कैसे हो सकेगा? हे पिताजी! इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे महाभाग! यह बात वैसी ही अनर्गल प्रतीत होती है, जैसे कोई कहे कि मेरी यह माता वन्ध्या है। हे परन्तप! अब मैं आपसे अनुमति लेता हूँ और यहाँसे जा रहा हूँ॥ ४-५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार शुकदेवजीको जनकपुर जानेका इच्छुक देखकर व्यासजीने अपने ज्ञानी एवं निःस्पृह पुत्रका दृढ़ आलिंगन करके कहा—॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे महामते! हे पुत्र! तुम्हारा कल्याण हो, हे शुक! तुम दीर्घायु होओ। हे तात! तुम मुझे यह सत्य वचन देकर सुखपूर्वक जाओ कि यहाँसे जाकर मेरे इस उत्तम आश्रममें पुनः आओगे। हे पुत्र! तुम वहाँसे कहीं और कभी भी मत चले जाना॥ ७-८॥

हे पुत्र! मैं तुम्हारा मुखकमल देखकर ही सुखपूर्वक जीता हूँ और तुम्हें न देखनेपर दुःखी रहता हूँ। हे सुत! तुम्हीं मेरे प्राण हो॥ ९॥

दृष्ट्वा त्वं जनकं पुत्र सन्देहं विनिवर्त्य च।
अत्रागत्य सुखं तिष्ठ वेदाध्ययनतत्परः॥ १०

सूत उवाच

इत्युक्तः सोऽभिवाद्यार्यं कृत्वा चैव प्रदक्षिणाम्।
चलितस्तरसातीव धनुर्मुक्तः शरो यथा॥ ११

सम्पश्यन्विविधान्देशाँल्लोकांश्च वित्तधर्मिणः।
वनानि पादपांश्चैव क्षेत्राणि फलितानि च॥ १२

तापसांस्तप्यमानांश्च याजकान्दीक्षयान्वितान्।
योगाभ्यासरतान्योगिवानप्रस्थान्वनौकसः ॥ १३

शैवान्पाशुपतांश्चैव सौराञ्छाक्तांश्च वैष्णवान्।
वीक्ष्य नानाविधान्धर्माञ्जगामातिस्मयन्मुनिः॥ १४

वर्षद्वयेन मेरुं च समुल्लङ्घ्य महामतिः।
हिमाचलं च वर्षेण जगाम मिथिलां प्रति॥ १५

प्रविष्टो मिथिलां मध्ये पश्यन्सर्वर्द्धिमुत्तमाम्।
प्रजाश्च सुखिताः सर्वाः सदाचाराः सुसंस्थिताः॥ १६

क्षत्रा निवारितस्तत्र कस्त्वमत्र समागतः।
किं ते कार्यं वदस्वेति पृष्टस्तेन न चाब्रवीत्॥ १७

निःसृत्य नगरद्वारात्स्थितः स्थाणुरिवाचलः।
विस्मितोऽतिहसंस्तस्थौ वचो नोवाच किञ्चन॥ १८

प्रतीहार उवाच

ब्रूहि मूकोऽसि किं ब्रह्मन्किमर्थं त्वमिहागतः।
चलनं च विना कार्यं न भवेदिति मे मतिः॥ १९

राजाज्ञया प्रवेष्टव्यं नगरेऽस्मिन्सदा द्विज।
अज्ञातकुलशीलस्य प्रवेशो नात्र सर्वथा॥ २०

तेजस्वी भासि नूनं त्वं ब्राह्मणो वेदवित्तमः।
कुलं कार्यं च मे ब्रूहि यथेष्टं गच्छ मानद॥ २१

हे पुत्र! वहाँ राजर्षि जनकसे मिलकर और अपना सन्देह दूर करके फिर उसके बाद यहाँ आकर वेदाध्ययनमें रत रहते हुए सुखपूर्वक रहो॥ १०॥

सूतजी बोले—व्यासजीके ऐसा कहनेपर शुकदेवजी अपने पिताको प्रणाम तथा उनकी प्रदक्षिणा करके शीघ्र ही इस प्रकार चल पड़े जैसे धनुषसे छूटा हुआ बाण॥ ११॥

मार्गमें चलते हुए अनेक समृद्धिशाली देशों, नागरिकों, वनों, वृक्षों, फले-फूले खेतों, तप करते हुए तपस्वीजनों, दीक्षा लिये हुए याजकजनों, योगाभ्यासमें तत्पर योगीजनों, वनमें रहनेवाले वानप्रस्थों, वैष्णव, पाशुपत, शैव, शाक्त एवं सूर्योपासक और अनेक धर्मा-वलम्बियोंको देखकर वे शुकदेवमुनि अति विस्मयमें पड़ गये॥ १२—१४॥

इस प्रकार वे महामति शुकदेवजी लगभग दो वर्षोंमें मेरुपर्वत और एक वर्षमें हिमालयको पार करके मिथिला-देशमें पहुँचे॥ १५॥

जब वे मिथिलामें प्रविष्ट हुए, तब उन्होंने वहाँकी श्रेष्ठ ऐश्वर्यसम्पदाको देखा तथा वहाँकी सारी प्रजाको सुखी एवं सदाचारसम्पन्न देखा॥ १६॥

वहाँ द्वारपालने उन्हें रोका और पूछा—तुम कौन हो और कहाँसे आये हो, तुम्हारा क्या कार्य है; बताओ। ऐसा पूछनेपर भी शुकदेवजी मौन रहे, कुछ बोले नहीं। वे नगरद्वारसे बाहर जाकर स्थाणुकी तरह खड़े हो गये और थोड़ी देरमें आश्चर्यचकित होकर हँसते हुए वहीं स्थित हो गये, पर किसीसे कुछ बोले नहीं॥ १७-१८॥

द्वारपालने पूछा—हे ब्रह्मन्! बोलिये, आप गूँगे तो नहीं हैं। आपका किस हेतु यहाँ आना हुआ है? मेरे विचारमें तो कोई कहीं भी निष्प्रयोजन नहीं जाता॥ १९॥

हे विप्र! इस नगरमें राजाकी आज्ञा पाकर ही कोई प्रवेश कर सकता है। अज्ञात कुल तथा शीलवाले व्यक्तिका प्रवेश यहाँ कदापि नहीं होता है॥ २०॥

हे मानद! आप निश्चय ही तेजस्वी एवं वेदवेत्ता ब्राह्मण प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये आप अपने कुल तथा प्रयोजनके विषयमें मुझे बता दें और फिर अपने इच्छानुसार चले जायँ॥ २१॥

शुक उवाच

यदर्थमागतोऽस्म्यत्र तत्प्राप्तं वचनात्तव।
विदेहनगरं द्रष्टुं प्रवेशो यत्र दुर्लभः॥ २२

मोहोऽयं मम दुर्बुद्धेः समुल्लङ्घ्य गिरिद्वयम्।
राजानं द्रष्टुकामोऽहं पर्यटन्समुपागतः॥ २३

वञ्चितोऽहं स्वयं पित्रा दूषणं कस्य दीयते।
भ्रामितोऽहं महाभाग कर्मणा वा महीतले॥ २४

धनाशा पुरुषस्येह परिभ्रमणकारणम्।
सा मे नास्ति तथाप्यत्र सम्प्राप्तोऽस्मि भ्रमात्किल॥ २५

निराशस्य सुखं नित्यं यदि मोहे न मज्जति।
निराशोऽहं महाभाग मग्नोऽस्मिन्मोहसागरे॥ २६

क्व मेरुर्मिथिला क्वेयं पद्भ्यां च समुपागतः।
परिश्रमफलं किं मे वञ्चितो विधिना किल॥ २७

प्रारब्धं किल भोक्तव्यं शुभं वाप्यथवाशुभम्।
उद्यमस्तद्वशे नित्यं कारयत्येव सर्वथा॥ २८

न तीर्थं न च वेदोऽत्र यदर्थमिह मे श्रमः।
अप्रवेशः पुरे जातो विदेहो नाम भूपतिः॥ २९

इत्युक्त्वा विररामाशु मौनीभूत इव स्थितः।
ज्ञातो हि प्रतिहारेण ज्ञानी कश्चिद् द्विजोत्तमः॥ ३०

सामपूर्वमुवाचासौ तं क्षत्ता संस्थितं मुनिम्।
गच्छ भो यत्र ते कार्यं यथेष्टं द्विजसत्तम॥ ३१

शुकदेवजी बोले—मैं जिस कार्यके लिये यहाँ आया था, वह तुम्हारे कथनमात्रसे ही पूरा हो गया। मैं विदेहनगर देखने आया था, परंतु यहाँ तो प्रवेश ही दुर्लभ है॥ २२॥

मुझ अज्ञानीकी यह भूल थी, जो दो पर्वतोंको लाँघकर महाराजसे मिलनेकी इच्छासे घूमते हुए यहाँ चला आया॥ २३॥

मैं तो स्वयं अपने पिताद्वारा ही ठगा गया हूँ। इसमें किसी अन्यको ही क्या दोष दिया जाय? अथवा हे महाभाग! यह मेरे दुर्भाग्यका ही दोष है, जिसके कारण इस भूमिपर मुझे इतना चक्कर काटना पड़ा॥ २४॥

इस संसारमें लोगोंका भ्रमण करनेका उद्देश्य धनोपार्जन ही है, किंतु मुझे उसकी कोई इच्छा नहीं है। मैं तो केवल भ्रमवश ही यहाँ आ गया हूँ॥ २५॥

आशारहित पुरुषको ही सर्वदा सुख प्राप्त होता है, यदि वह मोहमें न पड़े। किंतु हे महाभाग! मैं तो निराश होकर भी, न जानें क्यों इस मोहसागरमें निमग्न हो रहा हूँ!॥ २६॥

कहाँ सुमेरुपर्वत और कहाँ यह मिथिलापुरी! पैदल ही चलकर मैं यहाँ आया हूँ। इस परिश्रमका फल मुझे क्या मिला? प्रारब्धने ही मुझे ठगा है। प्रारब्धका भोग अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे वह शुभ हो या अशुभ। उद्योग भी तो सदा उसी दैवके अधीन ही रहता है; वह जैसा चाहे वैसा कराता है॥ २७-२८॥

यहाँ न कोई तीर्थ है न ज्ञानप्राप्ति होनी है, जिसके लिये यह मेरा परिश्रम हुआ। मैं तो महाराज जनकका 'विदेह' नाम सुनकर उत्सुकतासे यहाँ आया था, किंतु उनके नगरमें तो प्रवेश करना भी निषिद्ध है॥ २९॥

इतना कहकर शुकदेवजी चुप हो गये और मौन होकर खड़े रहे। द्वारपालको लगा कि ये कोई ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। तब उसने वहाँ खड़े मुनिसे शान्तिपूर्वक निवेदन किया—हे द्विजश्रेष्ठ! आपका जहाँ कार्य हो, वहाँ यथेष्ट चले जाइये॥ ३०-३१॥

अपराधो मम ब्रह्मन्यन्निवारितवानहम्।
तत्क्षन्तव्यं महाभाग विमुक्तानां क्षमा बलम्॥ ३२

शुक उवाच

किं तेऽत्र दूषणं क्षत्तः परतन्त्रोऽसि सर्वदा।
प्रभुकार्यं प्रकर्तव्यं सेवकेन यथोचितम्॥ ३३

न भूपदूषणं चात्र यदहं रक्षितस्त्वया।
चोरशत्रुपरिज्ञानं कर्तव्यं सर्वथा बुधैः॥ ३४

ममैव सर्वथा दोषो यदहं समुपागतः।
गमनं परगेहे यल्लघुतायाश्च कारणम्॥ ३५

प्रतीहार उवाच

किं सुखं द्विज किं दुःखं किं कार्यं शुभमिच्छता।
कः शत्रुर्हितकर्ता को ब्रूहि सर्वं ममाद्य वै॥ ३६

शुक उवाच

द्वैविध्यं सर्वलोकेषु सर्वत्र द्विविधो जनः।
रागी चैव विरागी च तयोश्चित्तं द्विधा पुनः॥ ३७

विरागी त्रिविधः कामं ज्ञातोऽज्ञातश्च मध्यमः।
रागी च द्विविधः प्रोक्तो मूर्खश्च चतुरस्तथा॥ ३८

चातुर्यं द्विविधं प्रोक्तं शास्त्रजं मतिजं तथा।
मतिस्तु द्विविधा लोके युक्तायुक्तेति सर्वथा॥ ३९

प्रतीहार उवाच

यदुक्तं भवता विद्वन्नार्थज्ञोऽहं द्विजोत्तम।
तत्सर्वं विस्तरेणाद्य यथार्थं वद सत्तम॥ ४०

शुक उवाच

रागो यस्यास्ति संसारे स रागीत्युच्यते ध्रुवम्।
दुःखं बहुविधं तस्य सुखं च विविधं पुनः॥ ४१

धनं प्राप्य सुतान्दारान्मानं च विजयं तथा।
तदप्राप्य महद्दुःखं भवत्येव क्षणे क्षणे॥ ४२

हे ब्रह्मन्! मैंने जो आपको रोका था, वह मेरा अपराध हुआ। उसके लिये आप क्षमा करें; क्योंकि हे महाभाग! मुक्तजनोंका तो क्षमा ही बल है॥ ३२॥

शुकदेवजी बोले—हे द्वारपाल! इसमें तुम्हारा क्या दोष है; तुम तो सर्वदा पराधीन हो। सेवकको तो स्वामीकी आज्ञाका यथोचित पालन करना ही चाहिये। तुमने मुझे जो रोका इसमें राजाका भी कोई दोष नहीं है; क्योंकि बुद्धिमानोंको चोर और शत्रुओंका सम्यक् ज्ञान रखना चाहिये॥ ३३-३४॥

यह सर्वथा मेरा ही दोष है, जो मैं यहाँ आ गया। [बिना बुलाये] दूसरेके घर जाना लघुताका कारण होता है॥ ३५॥

द्वारपालने कहा—हे विप्र! सुख क्या है, दुःख क्या है, कल्याण चाहनेवाले पुरुषका क्या कर्तव्य है? शत्रु कौन है और मित्र कौन है? आप मुझे यह सब बताइये॥ ३६॥

शुकदेवजी बोले—सभी लोकोंमें सर्वत्र द्वैविध्य रहता है। इसलिये मनुष्य भी दो प्रकारके हैं—एक रागी और दूसरा विरागी। उन दोनोंके मन भी दो प्रकारके होते हैं। उनमें भी विरागी तीन प्रकारके होते हैं—ज्ञात, अज्ञात एवं मध्यम। रागी भी दो प्रकारके कहे गये हैं—मूर्ख तथा चतुर। चातुर्य भी दो प्रकारका कहा गया है—शास्त्रजनित तथा बुद्धिजनित। इसी प्रकार लोकमें बुद्धि भी युक्त और अयुक्त-भेदसे दो प्रकारकी होती है॥ ३७—३९॥

द्वारपालने कहा—हे विद्वन्! हे विप्रवर! आपने जो कुछ कहा है, उसे मैं भलीभाँति नहीं समझ पाया। अतएव हे श्रेष्ठ! आप फिरसे विस्तारपूर्वक इस विषयको यथार्थरूपसे समझाइये॥ ४०॥

शुकदेवजी बोले—इस संसारमें जिसको राग है, वह निश्चय ही रागी कहलाता है। उस रागीको अनेक प्रकारके सुख एवं दुःख आते ही रहते हैं॥ ४१॥

धन, पुत्र, कलत्र, मान-प्रतिष्ठा और विजय प्राप्त करके ही सुख प्राप्त होता है। इनके न मिलनेपर प्रतिक्षण महान् दुःख होता ही है॥ ४२॥

कार्यस्तस्य सुखोपायः कर्तव्यं सुखसाधनम्।
तस्यारातिः स विज्ञेयः सुखविघ्नं करोति यः॥ ४३

सुखोत्पादयिता मित्रं रागयुक्तस्य सर्वदा।
चतुरो नैव मुह्येत मूर्खः सर्वत्र मुह्यति॥ ४४

विरक्तस्यात्मरक्तस्य सुखमेकान्तसेवनम्।
आत्मानुचिन्तनं चैव वेदान्तस्य च चिन्तनम्॥ ४५

दुःखं तदेतत्सर्वं हि संसारकथनादिकम्।
शत्रवो बहवस्तस्य विज्ञस्य शुभमिच्छतः॥ ४६

कामः क्रोधः प्रमादश्च शत्रवो विविधाः स्मृताः।
बन्धुः सन्तोष एवास्य नान्योऽस्ति भुवनत्रये॥ ४७

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मत्वा तं ज्ञानिनं द्विजम्।
क्षत्ता प्रवेशयामास कक्षां चातिमनोरमाम्॥ ४८

नगरं वीक्षमाणः संस्त्रैविध्यजनसङ्कुलम्।
नानाविपणिद्रव्याढ्यं क्रयविक्रयकारकम्॥ ४९

रागद्वेषयुतं कामलोभमोहाकुलं तथा।
विवदत्सुजनाकीर्णं वसुपूर्णं महत्तरम्॥ ५०

पश्यन्स त्रिविधाँल्लोकान्प्रासरद् राजमन्दिरम्।
प्राप्तः परमतेजस्वी द्वितीय इव भास्करः॥ ५१

निवारितश्च तत्रैव प्रतीहारेण काष्ठवत्।
तत्रैव च स्थितो द्वारि मोक्षमेवानुचिन्तयन्॥ ५२

छायायामातपे चैव समदर्शी महातपाः।
ध्यानं कृत्वा तथैकान्ते स्थितः स्थाणुरिवाचलः॥ ५३

तं मुहूर्तादुपागत्य राज्ञोऽमात्यः कृताञ्जलिः।
प्रावेशयत्ततः कक्षां द्वितीयां राजवेश्मनः॥ ५४

अतः जैसे सुख प्राप्त हो सके, वैसा उपाय करना चाहिये और सुखके साधनका संग्रह करना चाहिये। जो उस सुखमें विघ्न डाले, उसे शत्रु समझना चाहिये। जो रागी पुरुषके सुखको सर्वदा बढ़ाये, वही मित्र है। चतुर मनुष्य मोहमें फँसता नहीं है; किंतु मूर्ख सर्वत्र आसक्त रहता है॥ ४३-४४॥

विरागी तथा आत्माराम पुरुषको एकान्तवास, आत्म-चिन्तन तथा वेदान्तशास्त्रका अनुशीलन करनेसे ही सुख होता है। सांसारिक विषयोंकी चर्चा आदि—यह सब उनके लिये दुःखरूप है। कल्याण चाहनेवाले विद्वान् पुरुषके लिये बहुत शत्रु हैं; काम, क्रोध, प्रमाद आदि अनेक प्रकारके शत्रु बताये गये हैं; किंतु व्यक्तिका सच्चा बन्धु तो एकमात्र सन्तोष ही है; तीनों लोकोंमें दूसरा कोई भी नहीं है॥ ४५—४७॥

सूतजी बोले—शुकदेवजीकी बात सुनकर उन्हें ज्ञानी द्विज समझकर उसने शुकदेवजीको एक अत्यन्त रमणीय कक्षसे प्रवेश कराया॥ ४८॥

तीन प्रकारके नागरिकजनोंसे भरे हुए; अनेक प्रकारके क्रय-विक्रयकी वस्तुओंसे सजी दूकानोंवाले; राग-द्वेष, काम, लोभ, मोहसे युक्त एवं परस्पर वाद-विवादमें संलग्न श्रेष्ठीजनोंसे सुशोभित और धन-धान्यसे परिपूर्ण विशाल नगरको देखते हुए शुकदेवजी चले। इस तरह तीन प्रकारके लोगोंको देखते हुए शुकदेवजी राजभवनकी ओर बढ़े। इस प्रकार द्वितीय सूर्यके समान परम तेजस्वी शुकदेवजी द्वारपर पहुँचे; द्वारपालने उन्हें अन्दर जानेसे रोका। तब वे काष्ठके समान वहीं द्वारपर खड़े हो गये और मोक्षसम्बन्धी विषयपर विचार करने लगे॥ ४९—५२॥

धूप तथा छायाको समान-समझनेवाले महातपस्वी शुकदेवजी वहाँ एकान्तमें ध्यान करके इस प्रकार खड़े रहे मानो कोई अचल स्तम्भ हो॥ ५३॥

थोड़ी देर बाद राजमन्त्रीने हाथ जोड़े हुए स्वयं आकर उन्हें राजभवनके दूसरे कक्षमें प्रवेश कराया॥ ५४॥

तत्र दिव्यं मनोरम्यं पुष्पितं दिव्यपादपम्।
तद्वनं दर्शयित्वा तु कृत्वा चातिथिसत्क्रियाम्॥ ५५

वारमुख्याः स्त्रियस्तत्र राजसेवापरायणाः।
गीतवादित्रकुशलाः कामशास्त्रविशारदाः॥ ५६

ता आदिश्य च सेवार्थं शुकस्य मन्त्रिसत्तमः।
निर्गतः सदनात्तस्माद्व्यासपुत्रः स्थितस्तदा॥ ५७

पूजितः परया भक्त्या ताभिः स्त्रीभिर्यथाविधि।
देशकालोपपन्नेन नानान्नेनातितोषितः॥ ५८

ततोऽन्तःपुरवासिन्यस्तस्यान्तःपुरकाननम्।
रम्यं संदर्शयामासुरङ्गनाः काममोहिताः॥ ५९

स युवा रूपवान्कान्तो मृदुभाषी मनोरमः।
दृष्ट्वा ता मुमुहुः सर्वास्तं च काममिवापरम्॥ ६०

जितेन्द्रियं मुनिं मत्त्वा सर्वाः पर्यचरंस्तदा।
आरणेयस्तु शुद्धात्मा मातृभावमकल्पयत्॥ ६१

आत्मारामो जितक्रोधो न हृष्यति न तप्यति।
पश्यंस्तासां विकारांश्च स्वस्थ एव स तस्थिवान्॥ ६२

तस्मै शय्यां सुरम्यां च ददुर्नार्यः सुसंस्कृताम्।
परार्घ्यास्तरणोपेतां नानोपस्करसंवृताम्॥ ६३

स कृत्वा पादशौचं च कुशपाणिरतन्द्रितः।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यानमेवान्वपद्यत॥ ६४

याममेकं स्थितो ध्याने सुष्वाप तदनन्तरम्।
सुप्त्वा यामद्वयं तत्र चोदतिष्ठत्ततः शुकः॥ ६५

पाश्चात्यं यामिनीयामं ध्यानमेवान्वपद्यत।
स्नात्वा प्रातःक्रियाः कृत्वा पुनरास्ते समाहितः॥ ६६

वहाँ एक दिव्य रमणीय उपवन था, जिसमें विविध प्रकारके पुष्पोंसे लदे दिव्य वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। उस वनको दिखाकर मन्त्रीने उनका यथोचित आतिथ्य सत्कार किया। वहाँ राजाकी सेवा करनेवाली अनेक वारांगनाएँ थीं, वे नृत्य-गानमें कुशल तथा कामशास्त्रमें निपुण थीं। शुकदेवजीकी सेवाके लिये उन्हें आदेश देकर राजमन्त्री उस भवनसे निकल गये और शुकदेवजी वहीं स्थित रहे। उन वारांगनाओंने परम भक्तिके साथ उनकी पूजा की और देशकालानुसार उपलब्ध अनेक प्रकारके भोजनसे उन्हें सन्तुष्ट किया॥ ५५—५८॥

तत्पश्चात् अन्तःपुरनिवासिनी कामिनी स्त्रियोंने उन्हें अन्तःपुरका वन दिखाया, जो अत्यन्त रमणीय था। वे युवा, रूपवान्, कान्तिमान्, मृदुभाषी एवं मनोरम थे। दूसरे कामदेवके समान उन शुकदेवजीको देखकर वे सभी मुग्ध हो गयीं॥ ५९-६०॥

मुनिको जितेन्द्रिय जानकर वे सब उनकी परिचर्या करने लगीं। अरणिनन्दन शुद्धात्मा शुकदेवजीने उन्हें माताके समान समझा॥ ६१॥

वे आत्माराम तथा क्रोधको जीतनेवाले शुकदेवजी न हर्षित होते थे और न दुःखी। उनकी चेष्टाओंको देखकर भी वे शान्तचित्त होकर स्थित रहे॥ ६२॥

तब उन स्त्रियोंने उनके लिये सुरम्य, कोमल तथा बहुमूल्य आस्तरण और नानाविध उपकरणोंसे सुसज्जित शय्या बिछायी। शुकदेवजी हाथ-पाँव धोकर हाथमें कुश लेकर सावधान हो सायंकालीन सन्ध्योपासन सम्पन्न करके भगवान्‌के ध्यानमें लग गये॥ ६३-६४॥

इस प्रकार एक प्रहरतक ध्यानावस्थित होकर वे शयन करने लगे। दो प्रहर शयन करके पुनः वे शुकदेवजी उठ गये। रात्रिके चौथे प्रहरमें वे पुनः ध्यानमें स्थित रहे; तदनन्तर स्नान करके प्रातःकालीन क्रियाएँ सम्पन्न करके पुनः समाधिस्थ हो गये॥ ६५-६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
शुकस्य राजमन्दिरप्रवेशवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~○~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

शुकदेवजीके प्रति राजा जनकका उपदेश

सूत उवाच

श्रुत्वा तमागतं राजा मन्त्रिभिः सहितः शुचिः।
पुरः पुरोहितं कृत्वा गुरुपुत्रं समभ्यगात्॥ १

कृत्वार्हणां नृपः सम्यग् दत्तासनमनुत्तमम्।
पप्रच्छ कुशलं गां च विनिवेद्य पयस्विनीम्॥ २

स च तां नृपपूजां वै प्रत्यगृह्णाद्यथाविधि।
पप्रच्छ कुशलं राज्ञे स्वं निवेद्य निरामयम्॥ ३

कृत्वा कुशलसंप्रश्नमुपविष्टं सुखासने।
शुकं व्याससुतं शान्तं पर्यपृच्छत पार्थिवः॥ ४

किं निमित्तं महाभाग निःस्पृहस्य च मां प्रति।
जातं ह्यागमनं ब्रूहि कार्यं तन्मुनिसत्तम॥ ५

शुक उवाच

व्यासेनोक्तो महाराज कुरु दारपरिग्रहम्।
सर्वेषामाश्रमाणां च गृहस्थाश्रम उत्तमः॥ ६

मया नाङ्गीकृतं वाक्यं मत्त्वा बन्धं गुरोरपि।
न बन्धोऽस्तीति तेनोक्तो नाहं तत्कृतवान्पुनः॥ ७

इति सन्दिग्धमनसं मत्वा स मुनिसत्तमः।
उवाच वचनं तथ्यं मिथिलां गच्छ मा शुचः॥ ८

याज्योऽस्ति जनकस्तत्र जीवन्मुक्तो नराधिपः।
विदेहो लोकविदितः पाति राज्यमकण्टकम्॥ ९

कुर्वन् राज्यं तथा राजा मायापाशैर्न बध्यते।
त्वं बिभेषि कथं पुत्र वनवृत्तिः परन्तप॥ १०

पश्य तं नृपशार्दूलं त्यज मोहं मनोगतम्।
कुरु दारान्महाभाग पृच्छ वा भूपतिं च तम्॥ ११

सन्देहं ते मनोजातं कथयिष्यति पार्थिवः।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य मामेहि तरसा सुत॥ १२

सूतजी बोले—शुकदेवजीको आया हुआ सुनकर पवित्रात्मा राजा जनक अपने पुरोहितको आगे करके मन्त्रियोंसहित उन गुरुपुत्रके पास गये॥ १॥

महाराज जनकने उन्हें बड़े आदरसे उत्तम आसन देकर विधिवत् सत्कार करनेके पश्चात् एक दूध देनेवाली गौ प्रदान करके उनसे कुशल पूछा॥ २॥

शुकदेवजीने भी राजाकी पूजाको यथाविधि स्वीकार किया और अपना कुशल बताकर राजासे भी कुशल-मंगल पूछा॥ ३॥

इस प्रकार कुशल-प्रश्न करके सुखदायी आसनपर बैठे हुए शान्तचित्तवाले व्यासपुत्र शुकदेवजीसे महाराज जनकने पूछा—हे महाभाग! मेरे यहाँ आप निःस्पृहका आगमन किस कारण हुआ? हे मुनिश्रेष्ठ! उस प्रयोजन को बताइये?॥ ४-५॥

शुकदेवजी बोले—महाराज! मेरे पिता व्यासजीने मुझसे कहा कि विवाह कर लो; क्योंकि सब आश्रमोंमें गृहस्थ-आश्रम ही श्रेष्ठ है। गुरुरूप पिताकी आज्ञाको बन्धनकारक मानकर मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने समझाया कि गृहस्थाश्रम बन्धन नहीं है, फिर भी मैंने उसे स्वीकार नहीं किया॥ ६-७॥

इस प्रकार मुझे संशययुक्त चित्तवाला समझकर मुनिश्रेष्ठ व्यासने तथ्ययुक्त वचन कहा—तुम मिथिला चले जाओ, खेद न करो। वहाँ राजर्षि जनक रहते हैं, वे याज्ञिक एवं जीवन्मुक्त राजा हैं। संसारमें विदेह नामसे विख्यात वे वहाँ निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं॥ ८-९॥

हे पुत्र! महाराज जनक राज्य करते हुए भी मायाके जालमें नहीं बँधते, तब हे परन्तप! तुम वनवासी होते हुए भी क्यों भयभीत हो रहे हो?॥ १०॥

उन नृपश्रेष्ठ विदेहको देखो और अपने मनमें उठते हुए मोहका त्याग करो। हे महाभाग! विवाह करो, अन्यथा जाकर उन राजासे ही पूछो। वे राजा तुम्हारे मनमें उत्पन्न सन्देहका समाधान कर देंगे। तत्पश्चात् हे पुत्र! उनकी बात सुनकर तुम शीघ्र ही मेरे पास चले आना॥ ११-१२॥

सम्प्राप्तोऽहं महाराज त्वत्पुरे च तदाज्ञया।
मोक्षकामोऽस्मि राजेन्द्र ब्रूहि कृत्यं ममानघ॥ १३

तपस्तीर्थव्रतेज्याश्च स्वाध्यायस्तीर्थसेवनम्।
ज्ञानं वा वद राजेन्द्र मोक्षं प्रति च कारणम्॥ १४

जनक उवाच

शृणु विप्रेण कर्तव्यं मोक्षमार्गाश्रितेन यत्।
उपनीतो वसेदादौ वेदाभ्यासाय वै गुरौ॥ १५

अधीत्य वेदवेदान्तान्दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
समावृत्तस्तु गार्हस्थ्ये सदारो निवसेन्मुनिः॥ १६

न्यायवृत्तिस्तु सन्तोषी निराशी गतकल्मषः।
अग्निहोत्रादिकर्माणि कुर्वाणः सत्यवाक्शुचिः॥ १७

पुत्रं पौत्रं समासाद्य वानप्रस्थाश्रमे वसेत्।
तपसा षड्रिपूञ्जित्वा भार्यां पुत्रे निवेश्य च॥ १८

सर्वानग्नीन्यथान्यायमात्मन्यारोप्य धर्मवित्।
वसेत्तुर्याश्रमे श्रान्तः शुद्धे वैराग्यसम्भवे॥ १९

विरक्तस्याधिकारोऽस्ति संन्यासे नान्यथा क्वचित्।
वेदवाक्यमिदं तथ्यं नान्यथेति मतिर्मम॥ २०

शुकाष्टचत्वारिंशद्वै संस्कारा वेदबोधिताः।
चत्वारिंशद् गृहस्थस्य प्रोक्तास्तत्र महात्मभिः॥ २१

अष्टौ च मुक्तिकामस्य प्रोक्ताः शमदमादयः।
आश्रमादाश्रमं गच्छेदिति शिष्टानुशासनम्॥ २२

शुक उवाच

उत्पन्ने हृदि वैराग्ये ज्ञानविज्ञानसम्भवे।
अवश्यमेव वस्तव्यमाश्रमेषु वनेषु वा॥ २३

हे महाराज! मैं उन्हींके आदेशसे आपकी पुरीमें आया हूँ। हे राजेन्द्र! हे अनघ! मैं मोक्षका अभिलाषी हूँ, अतः जो कार्य मेरे लिये उचित हो, वह बताइये॥ १३॥

हे राजेन्द्र! तप, तीर्थ, व्रत, यज्ञ, स्वाध्याय, तीर्थसेवन और ज्ञान—इनमेंसे जो मोक्षका साक्षात् साधन हो, वह मुझे बताइये॥ १४॥

जनकजी बोले—मोक्षमार्गावलम्बी विप्रको जो करना चाहिये, उसे सुनिये। उपनयनसंस्कारके बाद सर्वप्रथम वेदशास्त्रका अध्ययन करनेहेतु गुरुके सांनिध्यमें रहना चाहिये। वहाँ वेद-वेदान्तोंका अध्ययन करके दीक्षान्त गुरुदक्षिणा देकर वापस लौटे मुनिको विवाह करके पत्नीके साथ गृहस्थीमें रहना चाहिये। [गृहस्थाश्रममें रहते हुए] न्यायोपार्जित धनका अर्जन करे, सर्वदा सन्तुष्ट रहे और किसीसे कोई आशा न रखे। पापोंसे मुक्त होकर अग्निहोत्र आदि कर्म करते हुए सत्यवचन बोले और [मन, वचन, कर्मसे सदा] पवित्र रहे। पुत्र-पौत्र हो जानेपर [समयानुसार] वानप्रस्थ-आश्रममें रहे। वहाँ तपश्चर्याद्वारा [काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मात्सर्य—इन] छहों शत्रुओंपर विजय प्राप्त करके अपनी स्त्रीरक्षाका भार पुत्रको सौंप देनेके पश्चात् वह धर्मात्मा सब अग्नियोंका अपनेमें न्यायपूर्वक आधान कर ले और सांसारिक विषयोंके भोगसे शान्ति मिल जानेके बाद हृदयमें विशुद्ध वैराग्य उत्पन्न होनेपर चौथे आश्रमका आश्रय ले ले। विरक्तको ही संन्यास लेनेका अधिकार है, अन्य किसीको नहीं—यह वेदवाक्य सर्वथा सत्य है, असत्य नहीं—ऐसा मेरा मानना है॥ १५—२०॥

हे शुकदेवजी! वेदोंमें कुल अड़तालीस संस्कार कहे गये हैं। उनमें गृहस्थके लिये चालीस संस्कार महात्माओंने बताये हैं। मुमुक्षुके लिये शम, दम आदि आठ संस्कार कहे गये हैं। एक आश्रमसे ही [क्रमशः] दूसरे आश्रममें जाना चाहिये, ऐसा शिष्टजनोंका आदेश है॥ २१-२२॥

शुकदेवजी बोले—चित्तमें वैराग्य और ज्ञान-विज्ञान उत्पन्न हो जानेपर अवश्य ही गृहस्थादि आश्रमोंमें रहना चाहिये अथवा वनोंमें॥ २३॥

जनक उवाच

इन्द्रियाणि बलिष्ठानि न नियुक्तानि मानद।
अपक्वस्य प्रकुर्वन्ति विकारांस्ताननेकशः॥ २४

भोजनेच्छां सुखेच्छां च शय्येच्छामात्मजस्य च।
यती भूत्वा कथं कुर्याद्विकारे समुपस्थिते॥ २५

दुर्जरं वासनाजालं न शान्तिमुपयाति वै।
अतस्तच्छमनार्थाय क्रमेण च परित्यजेत्॥ २६

ऊर्ध्वं सुप्तः पतत्येव न शयानः पतत्यधः।
परिव्रज्य परिभ्रष्टो न मार्गं लभते पुनः॥ २७

यथा पिपीलिका मूलाच्छाखायामधिरोहति।
शनैः शनैः फलं याति सुखेन पदगामिनी॥ २८

विहङ्गस्तरसा याति विघ्नशङ्कामुदस्य वै।
श्रान्तो भवति विश्रम्य सुखं याति पिपीलिका॥ २९

मनस्तु प्रबलं काममजेयमकृतात्मभिः।
अतः क्रमेण जेतव्यमाश्रमानुक्रमेण च॥ ३०

गृहस्थाश्रमसंस्थोऽपि शान्तः सुमतिरात्मवान्।
न च हृष्येन्न च तपेल्लाभालाभे समो भवेत्॥ ३१

विहतं कर्म कुर्वाणस्त्यजंश्चिन्तान्वितं च यत्।
आत्मलाभेन सन्तुष्टो मुच्यते नात्र संशयः॥ ३२

पश्याहं राज्यसंस्थोऽपि जीवन्मुक्तो यथानघ।
विचरामि यथाकामं न मे किञ्चित्प्रजायते॥ ३३

जनकजी बोले—हे मानद! इन्द्रियाँ बड़ी बलवान् होती हैं, वे वशमें नहीं रहतीं। वे अपरिपक्व बुद्धिवाले मनुष्यके मनमें नाना प्रकारके विकार उत्पन्न कर देती हैं॥ २४॥

यदि मनुष्यके मनमें भोजनकी, शयनकी, सुखकी और पुत्रकी इच्छा बनी रहे तो वह संन्यासी होकर भी इन विकारोंके उपस्थित होनेपर क्या कर पायेगा?॥ २५॥

वासनाओंका जाल बड़ा ही कठिन होता है, वह शीघ्र नहीं मिटता। इसलिये उसकी शान्तिके लिये मनुष्यको क्रमसे उसका त्याग करना चाहिये॥ २६॥

ऊँचे स्थानपर सोनेवाला मनुष्य ही नीचे गिरता है, नीचे सोनेवाला कभी नहीं गिरता। यदि संन्यास-ग्रहण कर लेनेपर भ्रष्ट हो जाय तो पुनः वह कोई दूसरा मार्ग नहीं प्राप्त कर सकता॥ २७॥

जिस प्रकार चींटी वृक्षकी जड़से चढ़कर शाखापर चढ़ जाती है और वहाँसे फिर धीरे-धीरे सुखपूर्वक पैरोंसे चलकर फलतक पहुँच जाती है। विघ्न-शंकाके भयसे कोई पक्षी बड़ी तीव्र गतिसे आसमानमें उड़ता है और [परिणामतः] थक जाता है, किंतु चींटी सुखपूर्वक विश्राम ले-लेकर [अपने अभीष्ट स्थानपर] पहुँच जाती है॥ २८-२९॥

मन अत्यन्त प्रबल है; यह अजितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा सर्वथा अजेय है। इसलिये आश्रमोंके अनुक्रमसे ही इसे क्रमशः जीतनेका प्रयत्न करना चाहिये॥ ३०॥

गृहस्थ-आश्रममें रहते हुए भी जो शान्त, बुद्धिमान् एवं आत्मज्ञानी होता है, वह न तो प्रसन्न होता है और न खेद करता है। वह हानि-लाभमें समान भाव रखता है॥ ३१॥

जो पुरुष शास्त्रप्रतिपादित कर्म करता हुआ, सभी प्रकारकी चिन्ताओंसे मुक्त रहता हुआ आत्मचिन्तनसे सन्तुष्ट रहता है; वह निःसन्देह मुक्त हो जाता है॥ ३२॥

हे अनघ! देखिये, मैं राजकार्य करता हुआ भी जीवन्मुक्त हूँ; मैं अपने इच्छानुसार सब काम करता हूँ, किंतु मुझे शोक या हर्ष कुछ भी नहीं होता॥ ३३॥

भुञ्जानो विविधान्भोगान्कुर्वन्कार्याण्यनेकशः।
भविष्यामि यथाहं त्वं तथा मुक्तो भवानघ॥ ३४

कथ्यते खलु यद्दृश्यमदृश्यं बध्यते कुतः।
दृश्यानि पञ्चभूतानि गुणास्तेषां तथा पुनः॥ ३५

आत्मा गम्योऽनुमानेन प्रत्यक्षो न कदाचन।
स कथं बध्यते ब्रह्मन्निर्विकारो निरञ्जनः॥ ३६

मनस्तु सुखदुःखानां महतां कारणं द्विज।
जाते तु निर्मले ह्यस्मिन्सर्वं भवति निर्मलम्॥ ३७

भ्रमन्सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा पुनः पुनः।
निर्मलं न मनो यावत्तावत्सर्वं निरर्थकम्॥ ३८

न देहो न च जीवात्मा नेन्द्रियाणि परन्तप।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥ ३९

शुद्धो मुक्तः सदैवात्मा न वै बध्येत कर्हिचित्।
बन्धमोक्षौ मनःसंस्थौ तस्मिञ्छान्ते प्रशाम्यति॥ ४०

शत्रुर्मित्रमुदासीनो भेदाः सर्वे मनोगताः।
एकात्मत्वे कथं भेदः सम्भवेद् द्वैतदर्शनात्॥ ४१

जीवो ब्रह्म सदैवाहं नात्र कार्या विचारणा।
भेदबुद्धिस्तु संसारे वर्तमाना प्रवर्तते॥ ४२

अविद्येयं महाभाग विद्या चैतन्निवर्तनम्।
विद्याविद्ये च विज्ञेये सर्वदैव विचक्षणैः॥ ४३

विनातपं हि छायाया ज्ञायते च कथं सुखम्।
अविद्यया विना तद्वत्कथं विद्यां च वेत्ति वै॥ ४४

जिस प्रकार मैं अनेक भोगोंको भोगता हुआ तथा अनेक कार्योंको करता हुआ भी अनासक्त हूँ, उसी प्रकार हे अनघ! आप भी मुक्त हो जाइये॥ ३४॥

ऐसा कहा भी जाता है कि जो यह दृश्य जगत् दिखायी देता है, उसके द्वारा अदृश्य आत्मा कैसे बन्धनमें आ सकता है? पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—ये पंचमहाभूत और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श एवं शब्द—ये उनके गुण दृश्य कहलाते हैं॥ ३५॥

आत्मा अनुमानगम्य है और कभी भी प्रत्यक्ष नहीं होता। ऐसी स्थितिमें हे ब्रह्मन्! वह निरंजन एवं निर्विकार आत्मा भला बन्धनमें कैसे पड़ सकता है? हे द्विज! मन ही महान् सुख-दुःखका कारण है, इसीके निर्मल होनेपर सब कुछ निर्मल हो जाता है॥ ३६-३७॥

सभी तीर्थोंमें घूमते हुए वहाँ बार-बार स्नान करके भी यदि मन निर्मल नहीं हुआ तो वह सब व्यर्थ हो जाता है। हे परन्तप! बन्धन तथा मोक्षका कारण न यह देह है, न जीवात्मा है और न ये इन्द्रियाँ ही हैं, अपितु मन ही मनुष्योंके बन्धन एवं मुक्तिका कारण है॥ ३८-३९॥

आत्मा तो सदा ही शुद्ध तथा मुक्त है, वह कभी बँधता नहीं है। अतः बन्धन और मोक्ष तो मनके भीतर हैं, मनकी शान्तिसे ही शान्ति है॥ ४०॥

शत्रुता, मित्रता या उदासीनताके सभी भेदभाव भी मनमें ही रहते हैं। इसलिये एकात्मभाव होनेपर यह भेदभाव नहीं रहता; यह तो द्वैतभावसे ही उत्पन्न होता है॥ ४१॥

'मैं जीव सदा ही ब्रह्म हूँ'—इस विषयमें और विचार करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। भेदबुद्धि तो संसारमें आसक्त रहनेपर ही होती है॥ ४२॥

हे महाभाग! बन्धनका मुख्य कारण अविद्या ही है। इस अविद्याको दूर करनेवाली विद्या है। इसलिये ज्ञानी पुरुषोंको चाहिये कि वे सदा विद्या तथा अविद्याका अनुसन्धानपूर्वक अनुशीलन किया करें॥ ४३॥

धूपके बिना छायाके सुखका ज्ञान कैसे हो सकता है, उसी प्रकार अविद्याके बिना विद्याका ज्ञान कैसे किया जा सकता है॥ ४४॥

गुणा गुणेषु वर्तन्ते भूतानि च तथैव च।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु को दोषस्तत्र चात्मनः॥ ४५

मर्यादा सर्वरक्षार्थं कृता वेदेषु सर्वशः।
अन्यथा धर्मनाशः स्यात्सौगतानामिवानघ॥ ४६

धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽतिवर्तितः।
अतो वेदप्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतां शुभम्॥ ४७

शुक उवाच

सन्देहो वर्तते राजन्न निवर्तति मे क्वचित्।
भवता कथितं यत्तच्छृण्वतो मे नराधिप॥ ४८

वेदधर्मेषु हिंसा स्यादधर्मबहुला हि सा।
कथं मुक्तिप्रदो धर्मो वेदोक्तो बत भूपते॥ ४९

प्रत्यक्षेण त्वनाचारः सोमपानं नराधिप।
पशूनां हिंसनं तद्वद्भक्षणं चामिषस्य च॥ ५०

सौत्रामणौ तथा प्रोक्तः प्रत्यक्षेण सुराग्रहः।
द्यूतक्रीडा तथा प्रोक्ता व्रतानि विविधानि च॥ ५१

श्रूयते स्म पुरा ह्यासीच्छशबिन्दुर्नृपोत्तमः।
यज्वा धर्मपरो नित्यं वदान्यः सत्यसागरः॥ ५२

गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता चोत्पथगामिनाम्।
यज्ञाश्च विहितास्तेन बहवो भूरिदक्षिणाः॥ ५३

चर्मणां पर्वतो जातो विन्ध्याचलसमः पुनः।
मेघाम्बुप्लावनाज्जाता नदी चर्मण्वती शुभा॥ ५४

सोऽपि राजा दिवं यातः कीर्तिरस्याचला भुवि।
एवं धर्मेषु वेदेषु न मे बुद्धिः प्रवर्तते॥ ५५

स्त्रीसङ्गेन सदा भोगे सुखमाप्नोति मानवः।
अलाभे दुःखमत्यन्तं जीवन्मुक्तः कथं भवेत्॥ ५६

गुणोंमें गुण, पंचभूतोंमें पंचभूत तथा इन्द्रियोंके विषयोंमें इन्द्रियाँ स्वयं रमण करती हैं; इसमें आत्माका क्या दोष है?॥ ४५॥

हे पवित्रात्मन्! सबकी सुरक्षाके लिये वेदोंमें सब प्रकारसे मर्यादाकी व्यवस्था की गयी है। यदि ऐसा न होता तो नास्तिकोंकी भाँति सब धर्मोंका नाश हो जाता। धर्मके नष्ट हो जानेपर सब कुछ नष्ट हो जायगा और सब वर्णोंकी आचार-परम्पराका उल्लंघन हो जायगा। इसलिये वेदोपदिष्ट मार्गपर चलनेवालोंका कल्याण होता है॥ ४६-४७॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन्! आपने जो बात कही उसे सुनकर भी मेरा सन्देह बना हुआ है; वह किसी प्रकार भी दूर नहीं होता॥ ४८॥

हे भूपते! वेदधर्मोंमें हिंसाका बाहुल्य है, उस हिंसामें अनेक प्रकारके अधर्म होते हैं। [ऐसी दशामें] वेदोक्त धर्म मुक्तिप्रद कैसे हो सकता है? हे राजन्! सोमरस-पान, पशुहिंसा और मांस-भक्षण तो स्पष्ट ही अनाचार है। सौत्रामणियज्ञमें तो प्रत्यक्षरूपसे सुराग्रहणका वर्णन किया गया है। इसी प्रकार द्यूतक्रीड़ा एवं अन्य अनेक प्रकारके व्रत बताये गये हैं॥ ४९—५१॥

सुना जाता है कि प्राचीन कालमें शशबिन्दु नामके एक श्रेष्ठ राजा थे। वे बड़े धर्मात्मा, यज्ञपरायण, उदार एवं सत्यवादी थे। वे धर्मरूपी सेतुके रक्षक तथा कुमार्गगामी जनोंके नियन्ता थे। उन्होंने पुष्कल दक्षिणावाले अनेक यज्ञ सम्पादित किये थे॥ ५२-५३॥

[उन यज्ञोंमें] पशुओंके चर्मसे विन्ध्यपर्वतके समान ऊँचा पर्वत-सा बन गया। मेघोंके जल बरसानेसे चर्मण्वती नामकी शुभ नदी बह चली॥ ५४॥

वे राजा भी दिवंगत हो गये, किंतु उनकी कीर्ति भूमण्डलपर अचल हो गयी। जब इस प्रकारके धर्मोंका वर्णन वेदमें है, तब हे राजन्! मेरी श्रद्धाबुद्धि उनमें नहीं है॥ ५५॥

स्त्रीके साथ भोगमें पुरुष सुख प्राप्त करता है और उसके न मिलनेपर वह बहुत दुःखी होता है तो ऐसी दशामें भला वह जीवन्मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ ५६॥

जनक उवाच

हिंसा यज्ञेषु प्रत्यक्षा साहिंसा परिकीर्तिता।
उपाधियोगतो हिंसा नान्यथेति विनिर्णयः॥ ५७

यथा चेन्धनसंयोगादग्नौ धूमः प्रवर्तते।
तद्वियोगात्तथा तस्मिन्निर्धूमत्वं विभाति वै॥ ५८

अहिंसां च तथा विद्धि वेदोक्तां मुनिसत्तम।
रागिणां सापि हिंसैव निःस्पृहाणां न सा मता॥ ५९

अरागेण च यत्कर्म तथाहङ्कारवर्जितम्।
अकृतं वेदविद्वांसः प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६०

गृहस्थानां तु हिंसैव या यज्ञे द्विजसत्तम।
अरागेण च यत्कर्म तथाहंकारवर्जितम्॥ ६१

साहिंसैव महाभाग मुमुक्षूणां जितात्मनाम्॥ ६२

जनकजी बोले—यज्ञोंमें जो हिंसा दिखायी देती है, वह वास्तवमें अहिंसा ही कही गयी है; क्योंकि जो हिंसा उपाधियोगसे होती है वही हिंसा कहलाती है, अन्यथा नहीं—ऐसा शास्त्रोंका निर्णय है॥ ५७॥

जिस प्रकार [गीली] लकड़ीके संयोगसे अग्निसे धुआँ निकलता है, उसके अभावमें उस अग्निमें धुँआ नहीं दिखायी देता, उसी प्रकार हे मुनिवर! वेदोक्त हिंसाको भी आप अहिंसा ही समझिये। रागीजनोंद्वारा की गयी हिंसा ही हिंसा है, किंतु अनासक्त जनोंके लिये वह हिंसा नहीं कही गयी है॥ ५८-५९॥

जो कर्म रागरहित तथा अहंकाररहित होकर किया जाता हो, उस कर्मको वैदिक विद्वान् मनीषीजन न किये हुएके समान ही कहते हैं॥ ६०॥

हे द्विजश्रेष्ठ! रागी गृहस्थोंके द्वारा यज्ञमें जो हिंसा होती है, वही हिंसा है। हे महाभाग! जो कर्म रागरहित तथा अहंकारशून्य होकर किया जाता है, वह जितात्मा मुमुक्षुजनोंके लिये अहिंसा ही है॥ ६१-६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकाय
जनकोपदेशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

शुकदेवजीका व्यासजीके आश्रममें वापस आना, विवाह करके सन्तानोत्पत्ति करना तथा परम सिद्धिकी प्राप्ति करना

शुक उवाच

सन्देहोऽयं महाराज वर्तते हृदये मम।
मायामध्ये वर्तमानः स कथं निःस्पृहो भवेत्॥ १

शास्त्रज्ञानं च सम्प्राप्य नित्यानित्यविचारणम्।
त्यजते न मनो मोहं स कथं मुच्यते नरः॥ २

अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शास्त्राद् बोधो हि न क्षमः।
यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया॥ ३

अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्तव्यः सर्वदा बुधैः।
स कथं राजशार्दूल गृहस्थस्य भवेत्तथा॥ ४

शुकदेवजी बोले—हे महाराज! मेरे हृदयमें यह शंका हो रही है कि मायामें लिप्त रहते हुए कोई मनुष्य निःस्पृह कैसे हो सकता है? शास्त्रका ज्ञान प्राप्त करके नित्यानित्यका विचार करनेपर भी चित्तसे मोह नहीं दूर होता। तब भला वह मनुष्य मुक्त कैसे हो सकेगा?॥ १-२॥

मनुष्यके मनमें स्थित मोहको दूर करनेके लिये केवल शास्त्रबोध ही समर्थ नहीं हो सकता, जैसे केवल दीप जलानेकी बात करनेसे अन्धकार दूर नहीं होता। अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे कभी किसीसे द्वेष-भाव न रखें, परंतु हे नृपश्रेष्ठ! गृहस्थसे वह कैसे सम्भव है?॥ ३-४॥

वित्तैषणा न ते शान्ता तथा राज्यसुखैषणा।
जयैषणा च सङ्ग्रामे जीवन्मुक्तः कथं भवेः॥ ५

चौरेषु चौरबुद्धिस्तु साधुबुद्धिस्तु तापसे।
स्वपरत्वं तवाप्यस्ति विदेहस्त्वं कथं नृप॥ ६

कटुतीक्ष्णकषायाम्लरसान्वेत्सि शुभाशुभान्।
शुभेषु रमते चित्तं नाशुभेषु तथा नृप॥ ७

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तव राजन् भवन्ति हि।
अवस्थास्तु यथाकालं तुरीया तु कथं नृप॥ ८

पदात्यश्वरथेभाश्च सर्वे वै वशगा मम।
स्वाम्यहं चैव सर्वेषां मन्यसे त्वं न मन्यसे॥ ९

मिष्टमत्सि सदा राजन्मुदितो विमनास्तथा।
मालायां च तथा सर्पे समदृक् क्व नृपोत्तम॥ १०

विमुक्तस्तु भवेद्राजन् समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
एकात्मबुद्धिः सर्वत्र हितकृत्सर्वजन्तुषु॥ ११

न मेऽद्य रमते चित्तं गृहदारादिषु क्वचित्।
एकाकी निःस्पृहोऽत्यर्थं चरेयमिति मे मतिः॥ १२

निःसङ्गो निर्ममः शान्तः पत्रमूलफलाशनः।
मृगवद्विचरिष्यामि निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ १३

किं मे गृहेण वित्तेन भार्यया च सुरूपया।
विरागमनसः कामं गुणातीतस्य पार्थिव॥ १४

चिन्त्यसे विविधाकारं नानारागसमाकुलम्।
दम्भोऽयं किल ते भाति विमुक्तोऽस्मीति भाषसे॥ १५

कदाचिच्छत्रुजा चिन्ता धनजा च कदाचन।
कदाचित्सैन्यजा चिन्ता निश्चिन्तोऽसि कदा नृप॥ १६

अभी भी आपकी धनप्राप्तिकी कामना, राज्यसुख तथा युद्धमें विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा शान्त नहीं हुई है, तब आप जीवन्मुक्त कैसे हो सकते हैं?॥ ५॥

अभी भी चोरोंके प्रति चौरबुद्धि तथा तपस्वीके प्रति साधुबुद्धि आपकी है ही। अपने-परायेका भेदभाव भी अभी आपमें है, तो फिर हे राजन्! आप विदेह कैसे?॥ ६॥

अभी आप कटु, तिक्त, कसैले एवं खट्टे रसोंका तथा भले-बुरेका ज्ञान रखते ही हैं। हे राजन्! आपका चित्त शुभ कर्मोंमें रमता है, अशुभ कर्मोंमें नहीं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति—ये अवस्थाएँ अभी आपको समयानुसार होती ही हैं; तब भला आपको तुरीयावस्था कैसे प्राप्त होती होगी?॥ ७-८॥

हे राजन्! घोड़े, रथ, हाथी तथा पैदल सैनिक—ये सब मेरे अधीन हैं और मैं इन सबका स्वामी हूँ—ऐसा आप अपनेको मानते हैं या नहीं? आप मधुर भोजनको प्रसन्नतापूर्वक अथवा बेमनसे खाते ही होंगे। हे नृपश्रेष्ठ! आप माला और सर्पमें क्या समान दृष्टिवाले हैं?॥ ९-१०॥

हे राजन्! विमुक्त पुरुष तो वह कहलाता है, जो मिट्टीके ढेले और स्वर्णको समान समझता हो, सब जीवोंमें एकात्मबुद्धि रखता हो तथा जीवमात्रका उपकार करता हो॥ ११॥

मेरा मन घर-स्त्री आदिमें कभी नहीं लगता। इसलिये अकेले ही निःस्पृह भावसे मैं सदा विचरण करता रहूँ—यही मेरा विचार है॥ १२॥

निःसंग, ममतारहित और शान्त होकर केवल पत्र, मूल, फल इत्यादि ग्रहण करता हुआ मैं निर्द्वन्द्व एवं अपरिग्रही होकर मृगकी भाँति स्वच्छन्द विचरण करूँगा॥ १३॥

हे पार्थिव! गृह, धन तथा रूपवती स्त्रीसे मुझ विरक्तचित्त और गुणातीतका क्या प्रयोजन है?॥ १४॥

आप अनेक प्रकारकी राग-द्वेषयुक्त बातें सोचते हैं, फिर भी 'मैं विमुक्त हूँ'—ऐसा आप कहते हैं। यह सब मुझे तो केवल आपका दम्भ ही जान पड़ता है। आपको कभी शत्रुकी, कभी धनकी तथा कभी सेनाकी चिन्ता रहती ही है, तब हे राजन्! आप निश्चिन्त कहाँ?॥ १५-१६॥

वैखानसा ये मुनयो मिताहारा जितव्रताः।
तेऽपि मुह्यन्ति संसारे जानन्तोऽपि ह्यसत्यताम्॥ १७

तव वंशसमुत्थानां विदेहा इति भूपते।
कुटिलं नाम जानीहि नान्यथेति कदाचन॥ १८

विद्याधरो यथा मूर्खो जन्मान्धस्तु दिवाकरः।
लक्ष्मीधरो दरिद्रश्च नाम तेषां निरर्थकम्॥ १९

तव वंशोद्भवा ये ये श्रुताः पूर्वे मया नृपाः।
विदेहा इति विख्याता नामतः कर्मतो न ते॥ २०

निमिनामाभवद्राजा पूर्वं तव कुले नृप।
यज्ञार्थं स तु राजर्षिर्वसिष्ठं स्वगुरुं मुनिम्॥ २१

निमन्त्रयामास तदा तमुवाच नृपं मुनिः।
निमन्त्रितोऽस्मि यज्ञार्थं देवेन्द्रेणाधुना किल॥ २२

कृत्वा तस्य मखं पूर्णं करिष्यामि तवापि वै।
तावत्कुरुष्व राजेन्द्र सम्भारं तु शनैः शनैः॥ २३

इत्युक्त्वा निर्ययौ सोऽथ महेन्द्रयजने मुनिः।
निमिरन्यं गुरुं कृत्वा चकार मखमुत्तमम्॥ २४

तच्छ्रुत्वा कुपितोऽत्यर्थं वसिष्ठो नृपतिं पुनः।
शशाप च पतत्वद्य देहस्ते गुरुलोपक॥ २५

राजापि तं शशापाथ तवापि च पतत्वयम्।
अन्योन्यशापात्पतितौ तावेव च मया श्रुतम्॥ २६

विदेहेन च राजेन्द्र कथं शप्तो गुरुः स्वयम्।
विनोद इव मे चित्ते विभाति नृपसत्तम॥ २७

जनक उवाच

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चिदिदं मतम्।
तथापि शृणु विप्रेन्द्र गुरुर्मम सुपूजितः॥ २८

स्वल्पाहारी, अटल व्रतवाले जो वैखानस मुनि हैं, वे इस संसारकी अनित्यताको जानते हुए भी इसमें आसक्त हो जाते हैं॥ १७॥

हे राजन्! आपके वंशमें उत्पन्न सभी राजाओंका नाम विदेह—यह हो जाता है, इसमें भी आप धोखा समझिये, दूसरा कुछ नहीं॥ १८॥

जिस प्रकार किसी मूर्खका नाम विद्याधर, जन्मान्धका नाम दिवाकर तथा सतत दरिद्री मनुष्यका नाम लक्ष्मीधर रखना निरर्थक है, उसी प्रकार पूर्वकालमें आपके वंशमें उत्पन्न जिन-जिन राजाओंको मैंने सुना है, वे नामसे ही विदेह प्रसिद्ध हुए हैं कर्मसे नहीं॥ १९-२०॥

हे नृप! आपके कुलमें पहले निमि नामके राजा हो चुके हैं। उन राजर्षिने एक बार अपने गुरु वसिष्ठमुनिको यज्ञके लिये निमन्त्रित किया। उस समय वसिष्ठजीने उनसे कहा कि आपसे पहले इन्द्रने मुझे यज्ञके लिये आमन्त्रित कर रखा है। इन्द्रका यज्ञ सम्पन्न कराकर मैं आपका भी यज्ञ पूर्ण करूँगा। अतः हे राजेन्द्र! तब तक आप धीरे-धीरे यज्ञ-सामग्री एकत्र कराइये॥ २१—२३॥

ऐसा कहकर वसिष्ठमुनि इन्द्रका यज्ञ करानेके लिये चले गये और महाराज निमिने किसी दूसरेको आचार्य बनाकर अपना उत्तम यज्ञ सम्पन्न कर लिया॥ २४॥

यह सुनकर वसिष्ठजी राजापर अत्यन्त क्रोधित हुए और उन्हें शाप देते हुए बोले—‘हे गुरुका परित्याग करनेवाले! तुम्हारा शरीर नष्ट हो जाय’॥ २५॥

यह सुनकर महाराज निमिने भी शाप दिया कि आपका भी शरीर नष्ट हो जाय। इस प्रकार वे दोनों एक-दूसरेके शापसे नष्ट हो गये—ऐसा मैंने सुना है॥ २६॥

हे राजेन्द्र! विदेह होकर भी राजाने अपने गुरुको स्वयं शाप क्यों दे डाला! हे नृपश्रेष्ठ! यह तो मेरे मनमें परिहास-जैसा प्रतीत हो रहा है॥ २७॥

जनकजी बोले—हे विप्रवर! आपने ठीक ही कहा है; इसमें मिथ्या कुछ भी नहीं है—ऐसा मैं मानता हूँ। फिर भी आप मेरी बात सुनें। हे विप्रेन्द्र!

पितुः सङ्गं परित्यज्य त्वं वनं गन्तुमिच्छसि।
मृगैः सह सुसम्बन्धो भविता ते न संशयः॥ २९

महाभूतानि सर्वत्र निःसङ्गः क्व भविष्यसि।
आहारार्थं सदा चिन्ता निश्चिन्तः स्याः कथं मुने॥ ३०

दण्डाजिनकृता चिन्ता यथा तव वनेऽपि च।
तथैव राज्यचिन्ता मे चिन्तयानस्य वा न वा॥ ३१

विकल्पोपहतस्त्वं वै दूरदेशमुपागतः।
न मे विकल्पसन्देहो निर्विकल्पोऽस्मि सर्वथा॥ ३२

सुखं स्वपिमि विप्राहं सुखं भुञ्जामि सर्वथा।
न बद्धोऽस्मीति बुद्ध्याहं सर्वदैव सुखी मुने॥ ३३

त्वं तु दुःखी सदैवासि बद्धोऽहमिति शङ्कया।
इति शङ्कां परित्यज्य सुखी भव समाहितः॥ ३४

देहोऽयं मम बन्धोऽयं न ममेति च मुक्तता।
तथा धनं गृहं राज्यं न ममेति च निश्चयः॥ ३५

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शुकः प्रीतमनाभवत्।
आपृच्छ्य तं जगामाशु व्यासस्याश्रममुत्तमम्॥ ३६

आगच्छन्तं सुतं दृष्ट्वा व्यासोऽपि सुखमाप्तवान्।
आलिङ्ग्याघ्राय मूर्धानं पप्रच्छ कुशलं पुनः॥ ३७

स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये पितुः पार्श्वे समाहितः।
वेदाध्ययनसम्पन्नः सर्वशास्त्रविशारदः॥ ३८

जनकस्य दशां दृष्ट्वा राज्यस्थस्य महात्मनः।
स निर्वृतिं परां प्राप्य पितुराश्रमसंस्थितः॥ ३९

गुरु व्यासजी मेरे परम पूज्य हैं। उन अपने पिताका साथ त्याग करके आप वनमें जाना चाहते हैं। वहाँ भी तो मृग आदि पशुओंके साथ आपका स्नेह-सम्बन्ध रहेगा ही; इसमें सन्देह नहीं है॥ २८-२९॥

पृथ्वी, जल आदि महाभूत तो सर्वत्र ही विद्यमान हैं। तब आप निःसंग कैसे हो पायेंगे? और फिर हे मुने! भोजन आदिकी भी चिन्ता रहेगी ही, तो आप निश्चिन्त कैसे रहेंगे?॥ ३०॥

जिस प्रकार आपको वनमें दण्ड और मृगचर्मकी चिन्ता बनी रहेगी, उसी प्रकार मुझ विचारशील राजाको भी राज्यसम्बन्धी चिन्ता तो होगी ही॥ ३१॥

आप ही भ्रममें पड़कर यहाँतक दूर देशमें आये हैं। मुझे किसी प्रकारका विकल्परूपी सन्देह नहीं है; क्योंकि मैं तो सर्वथा निर्विकल्प हूँ॥ ३२॥

हे विप्र! मैं सुखसे भोजन करता हूँ और सुखपूर्वक शयन करता हूँ। हे मुने! 'मैं बद्ध नहीं हूँ' इस भावनासे मैं सर्वदा सुखी रहता हूँ। [इसके विपरीत] 'मैं बद्ध हूँ'—इस शंकासे आप सर्वदा दुःखी ही रहते हैं, अतः आप इस शंकाको छोड़कर सदा सुखी एवं स्वस्थ हो जाइये॥ ३३-३४॥

यह शरीर मेरा है—यही बन्धनका कारण है; यह मेरा नहीं है—ऐसा निश्चय ही मुक्ति है। यह गृह, सम्पत्ति, राज्य मेरा नहीं है—ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय है॥ ३५॥

सूतजी बोले—महाराज जनककी बात सुनकर शुकदेवजी हर्षित हुए और उनसे आज्ञा लेकर व्यासजीके उत्तम आश्रमके लिये चल पड़े॥ ३६॥

व्यासजीने अपने ज्ञानी पुत्रको आते देखकर सुख प्राप्त किया। उन्होंने शुकदेवजीको हृदयसे लगाकर तथा उनका सिर सूँघकर उनकी कुशलता पूछी॥ ३७॥

सब शास्त्रोंमें कुशल एवं वेदाध्ययनमें तत्पर श्रीशुक-देवजी अपने पिताके साथ उस रमणीय आश्रममें सावधान होकर रहने लगे। राज्य करते हुए महात्मा जनककी वह विदेहावस्था देखकर शुकदेवजी परम शान्तिको प्राप्तकर अपने पिताके आश्रममें ही स्थित हो गये॥ ३८-३९॥

पितॄणां सुभगा कन्या पीवरी नाम सुन्दरी।
शुकश्चकार पत्नीं तां योगमार्गस्थितोऽपि हि॥ ४०

स तस्यां जनयामास पुत्रांश्चतुर एव हि।
कृष्णं गौरप्रभं चैव भूरिं देवश्रुतं तथा॥ ४१

कन्यां कीर्तिं समुत्पाद्य व्यासपुत्रः प्रतापवान्।
ददौ विभ्राजपुत्राय त्वणुहाय महात्मने॥ ४२

अणुहस्य सुतः श्रीमान्ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्।
ब्रह्मज्ञः पृथिवीपालः शुककन्यासमुद्भवः॥ ४३

कालेन कियता तत्र नारदस्योपदेशतः।
ज्ञानं परमकं प्राप्य योगमार्गमनुत्तमम्॥ ४४

पुत्रे राज्यं निधायाथ गतो बदरिकाश्रमम्।
मायाबीजोपदेशेन तस्य ज्ञानं निरर्गलम्॥ ४५

नारदस्य प्रसादेन जातं सद्यो विमुक्तिदम्।
कैलासशिखरे रम्ये त्यक्त्वा सङ्गं पितुः शुकः॥ ४६

ध्यानमास्थाय विपुलं स्थितः सङ्गपराङ्मुखः।
उत्पपात गिरेः शृङ्गात्सिद्धिं च परमां गतः॥ ४७

आकाशगो महातेजा विरराज यथा रविः।
गिरेः शृङ्गं द्विधा जातं शुकस्योत्पतने तदा॥ ४८

उत्पाता बहवो जाताः शुकश्चाकाशगोऽभवत्।
अन्तरिक्षे यथा वायुः स्तूयमानः सुरर्षिभिः॥ ४९

तेजसातिविराजन्वै द्वितीय इव भास्करः।
व्यासस्तु विरहाक्रान्तः क्रन्दन्पुत्रेति चासकृत्॥ ५०

गिरेः शृङ्गे गतस्तत्र शुको यत्र स्थितोऽभवत्।
क्रन्दमानं तदा दीनं व्यासं मत्वा श्रमाकुलम्॥ ५१

सर्वभूतगतः साक्षी प्रतिशब्दमदात्तदा।
तत्राद्यापि गिरेः शृङ्गे प्रतिशब्दः स्फुटोऽभवत्॥ ५२

योगमार्गमें स्थित रहते हुए भी शुकदेवजीने पितरोंकी पीवरी नामकी सौभाग्यवती सुन्दर कन्याको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। उन्होंने उससे कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि और देवश्रुत नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। साथ ही उन प्रतापी व्याससुत शुकदेवजीने कीर्ति नामकी एक कन्या उत्पन्न करके उस कन्याका विवाह विभ्राजके पुत्र महात्मा अणुहके साथ कर दिया॥ ४०—४२॥

शुकदेवजीकी कन्यासे उत्पन्न अणुहके पुत्र श्रीमान् ब्रह्मदत्त हुए जो बड़े प्रतापी, ब्रह्मज्ञानी एवं पृथ्वीके रक्षक थे। वे कुछ समयके बाद देवर्षि नारदके उपदेशसे और परमश्रेष्ठ ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान पाकर योगमार्गका आश्रय लेकर राज्यका भार अपने पुत्रको सौंपकर बदरिकाश्रम चले गये। वहाँ नारदजीके कृपाप्रसादसे प्राप्त मायाबीजके उपदेशसे उन्हें निर्बाध तथा तत्क्षण मुक्तिदायक ज्ञान उत्पन्न हुआ॥ ४३—४५ १/२॥

उधर शुकदेवजी भी अपने पिताका साथ त्यागकर कैलासके सुरम्य शिखरपर चले गये और निःसंग भावसे अविचल ध्यान लगाकर स्थित हो गये। कुछ ही दिनोंमें उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हो गयी और वे पर्वतके शिखरसे उड़ गये तथा महातेजस्वी वे शुकदेवजी आकाशमें जाकर सूर्यके समान सुशोभित होने लगे। तब शुकदेवजीके उड़ते ही पर्वत-शिखर दो भागोंमें विभाजित हो गया। शुकदेवजीके आकाशमें जाते ही अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषियोंके द्वारा स्तुति किये जाते हुए वे शुकदेवजी अन्तरिक्षमें वायुकी भाँति स्थित हो गये। वे अपने तेजसे दूसरे सूर्यकी भाँति देदीप्यमान हो रहे थे॥ ४६—४९ १/२॥

इसी बीच पुत्रके वियोगसे व्यग्र होकर व्यासजी बार-बार 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहते हुए उस पर्वतकी चोटीपर पहुँचे, जहाँ शुकदेवजी रहते थे। थके हुए व्यासजीको दीन भावसे करुण क्रन्दन करते हुए देखकर सभी जीवोंमें साक्षीरूपसे विद्यमान परमात्माने प्रतिध्वनिके रूपमें उत्तर दिया। आज भी उस पर्वतके शृंगपर वैसी ही प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनायी देती है॥ ५०—५२॥

रुदन्तं तं समालक्ष्य व्यासं शोकसमन्वितम्।
पुत्र पुत्रेति भाषन्तं विरहेण परिप्लुतम्॥ ५३
शिवस्तत्र समागत्य पाराशर्यमबोधयत्।
व्यास शोकं मा कुरु त्वं पुत्रस्ते योगवित्तमः॥ ५४
परमां गतिमापन्नो दुर्लभां चाकृतात्मभिः।
तस्य शोको न कर्तव्यस्त्वयाशोकं विजानता॥ ५५
कीर्तिस्ते विपुला जाता तेन पुत्रेण चानघ।

व्यास उवाच

न शोको याति देवेश किं करोमि जगत्पते॥ ५६
अतृप्ते लोचने मेऽद्य पुत्रदर्शनलालसे।

महादेव उवाच

छायां द्रक्ष्यसि पुत्रस्य पार्श्वस्थां सुमनोहराम्॥ ५७
तां वीक्ष्य मुनिशार्दूल शोकं जहि परन्तप।

सूत उवाच

तदा ददर्श व्यासस्तु छायां पुत्रस्य सुप्रभाम्॥ ५८
दत्त्वा वरं हरस्तस्मै तत्रैवान्तरधीयत।
अन्तर्हिते महादेवे व्यासः स्वाश्रममभ्यगात्॥ ५९
शुकस्य विरहेणापि तप्तः परमदुःखितः॥ ६०

अपने प्रिय पुत्र शुकदेवके विरहमें 'हा पुत्र! हा पुत्र!' कहकर विलाप करते हुए व्यासजीको शोक-सन्तप्त देखकर साक्षात् शंकरजी वहाँ आकर उन्हें सान्त्वना देने लगे—'हे व्यासजी! आप शोक मत कीजिये; आपके पुत्र श्रेष्ठ योगवेत्ता हैं। उन्होंने अकृतात्माओंके लिये भी दुर्लभ परमगति प्राप्त कर ली है। अतः ब्रह्मज्ञान रखनेवाले आपको उन [ब्रह्मज्ञानी] शुकदेवके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये; हे पवित्रात्मन्! शुकदेवके समान पुत्रके द्वारा आपकी महान् कीर्ति हुई है'॥ ५३—५५½ ॥

व्यासजी बोले—'हे देवेश! हे जगत्पते! मैं क्या करूँ, शोक दूर नहीं हो रहा है; पुत्र-दर्शनकी लालसावाले मेरे नेत्र अतृप्त हैं'॥ ५६½ ॥

महादेवजी बोले—'अब आप अपने पुत्रकी रमणीय छाया अपने पास सर्वदा विद्यमान देखेंगे। हे मुनिवर! हे परन्तप! उस छायाको देखकर आप अपना शोक दूर कीजिये'॥ ५७½ ॥

सूतजी बोले—तदनन्तर व्यासजीने अपने पुत्र शुकदेवकी ओजस्विनी छाया देखी। उन्हें वरदान देकर शंकरजी वहीं अन्तर्धान हो गये। महादेवजीके अन्तर्हित हो जानेपर व्यासजी भी अपने आश्रमको लौट आये। शुकदेवजीके वियोगसे सन्तप्त होकर वे अत्यन्त दुःखी रहने लगे॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकस्य विवाहादिकार्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

सत्यवतीका राजा शन्तनुसे विवाह तथा दो पुत्रोंका जन्म, राजा शन्तनुकी मृत्यु, चित्रांगदका राजा बनना तथा उसकी मृत्यु, विचित्रवीर्यका काशिराजकी कन्याओंसे विवाह और क्षयरोगसे मृत्यु, व्यासजीद्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

शुकस्तु परमां सिद्धिमाप्तवान्देवसत्तमः।
किं चकार ततो व्यासस्तन्नो ब्रूहि सविस्तरम्॥ १

सूत उवाच

शिष्या व्यासस्य येऽप्यासन्वेदाभ्यासपरायणाः।
आज्ञामादाय ते सर्वे गताः पूर्वं महीतले॥ २

ऋषियोंने कहा—[हे सूतजी!] शुकदेवजीको जब परम सिद्धि प्राप्त हो गयी तब देवश्रेष्ठ व्यासजीने क्या किया? यह सब विस्तारपूर्वक हमसे कहिये॥ १॥

सूतजी बोले—उस समय व्यासजीके जितने वेदपाठी शिष्य थे, वे सब व्यासजीकी आज्ञा पाकर पहले ही भूमण्डलमें इधर-उधर चले गये थे॥ २॥

असितो देवलश्चैव वैशम्पायन एव च।
जैमिनिश्च सुमन्तुश्च गताः सर्वे तपोधनाः॥ ३

तानेतान्वीक्ष्य पुत्रं च लोकान्तरितमप्युत।
व्यासः शोकसमाक्रान्तो गमनायाकरोन्मतिम्॥ ४

सस्मार मनसा व्यासस्तां निषादसुतां शुभाम्।
मातरं जाह्नवीतीरे मुक्तां शोकसमन्विताम्॥ ५

स्मृत्वा सत्यवतीं व्यासस्त्यक्त्वा तं पर्वतोत्तमम्।
आजगाम महातेजा जन्मस्थानं स्वकं मुनिः॥ ६

द्वीपं प्राप्याथ पप्रच्छ क्व गता सा वरानना।
निषादास्तं समाचख्युर्दत्ता राज्ञे तु कन्यका॥ ७

दाशराजोऽपि सम्पूज्य व्यासं प्रीतिपुरःसरम्।
स्वागतेनाभिसत्कृत्य प्रोवाच विहिताञ्जलिः॥ ८

दाशराज उवाच

अद्य मे सफलं जन्म पावितं नः कुलं मुने।
देवानामपि दुर्दर्शं यज्जातं तव दर्शनम्॥ ९

यदर्थमागतोऽसि त्वं तद् ब्रूहि द्विजसत्तम।
अपि दारा धनं पुत्रास्त्वदायत्तमिदं विभो॥ १०

सरस्वत्यास्तटे रम्ये चकाराश्रममण्डलम्।
व्यासस्तपःसमायुक्तस्तत्रैवास समाहितः॥ ११

सत्यवत्याः सुतौ जातौ शन्तनोरमितद्युतेः।
मत्वा तौ भ्रातरौ व्यासः सुखमाप वने स्थितः॥ १२

चित्राङ्गदः प्रथमजो रूपवाञ्छत्रुतापनः।
बभूव नृपतेः पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः॥ १३

विचित्रवीर्यनामासौ द्वितीयः समजायत।
सोऽपि सर्वगुणोपेतः शन्तनोः सुखवर्धनः॥ १४

असित, देवल, वैशम्पायन, जैमिनि और सुमन्तु आदि सभी तपोधन मुनि चले गये थे। उन ऋषियोंको अन्यत्र तथा अपने पुत्र शुकदेवको अन्तरिक्षमें गया हुआ देखकर शोकाकुल व्यासजीने वहाँसे चले जानेका विचार किया॥ ३-४॥

उसी समय व्यासजीने मन-ही-मन निषादकन्या अपनी कल्याणकारिणी माताका स्मरण किया, जिन्हें उन्होंने शोकावस्थामें गंगाजीके तटपर ही छोड़ दिया था॥ ५॥

अपनी माता सत्यवतीका स्मरण करके उस श्रेष्ठ पर्वतको त्यागकर महातेजस्वी व्यासजी अपने जन्मस्थानपर चले आये॥ ६॥

इस प्रकार उन्होंने उस द्वीपपर जाकर लोगोंसे पूछा कि 'वे सुन्दर मुखवाली [मेरी माता] कहाँ चली गयीं?' तब निषादोंने बताया कि उस कन्याका तो निषादराजने राजा [शन्तनु]-से विवाह कर दिया। तत्पश्चात् निषादराजने व्यासजीका प्रेमपूर्वक पूजन एवं सत्कार करके हाथ जोड़कर कहा—॥ ७-८॥

दाशराज बोला—हे मुने! मेरा जन्म सफल हो गया और हमारा कुल पवित्र हो गया जो कि आज देवताओंके लिये दुर्लभ आपका दर्शन प्राप्त हुआ॥ ९॥

हे विप्रवर! आप जिस कामसे आये हैं, वह बताइये। हे विभो! धन, पुत्र, कलत्र आदि—यह सब आपके अधीन है॥ १०॥

[निषादराजके प्रार्थना करनेपर] व्यासजीने सरस्वती नदीके सुन्दर तटपर अपना आश्रम बनाया और सावधान-चित्त हो वे पुनः तप करते हुए वहाँ रहने लगे॥ ११॥

अपूर्व तेजस्वी महाराज शन्तनुको सत्यवतीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए। इन दोनोंको अपना भाई मानकर वनवासी व्यासजी अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १२॥

उनमें राजाका पहला पुत्र चित्रांगद रूपवान्, शत्रुओंको कष्ट देनेवाला तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न था। शन्तनुके दूसरे पुत्रका नाम विचित्रवीर्य था। वह भी सर्वगुणसम्पन्न एवं शन्तनुके लिये सुखवर्द्धक हुआ॥ १३-१४॥

गाङ्गेयः प्रथमस्तस्य महावीरो बलाधिकः।
तथैव तौ सुतौ जातौ सत्यवत्यां महाबलौ॥ १५

शन्तनुस्तान्सुतान्वीक्ष्य सर्वलक्षणसंयुतान्।
अमंस्ताजय्यमात्मानं देवादीनां महामनाः॥ १६

अथ कालेन कियता शन्तनुः कालपर्ययात्।
तत्याज देहं धर्मात्मा देही जीर्णमिवाम्बरम्॥ १७

कालधर्मगते राज्ञि भीष्मश्चक्रे विधानतः।
प्रेतकार्याणि सर्वाणि दानानि विविधानि च॥ १८

चित्राङ्गदं ततो राज्ये स्थापयामास वीर्यवान्।
स्वयं न कृतवान् राज्यं तस्माद्देवव्रतोऽभवत्॥ १९

चित्राङ्गदस्तु वीर्येण प्रमत्तः परदुःखदः।
बभूव बलवान्वीरः सत्यवत्यात्मजः शुचिः॥ २०

अथैकदा महाबाहुः सैन्येन महतावृतः।
प्रचचार वनोद्देशान्पश्यन्वध्यान्मृगान् रुरून्॥ २१

चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो दृष्ट्वा तं मार्गगं नृपम्।
उत्ततारान्तिकं भूमेर्विमानवरमास्थितः॥ २२

तत्राभूच्च महद्युद्धं तयोः सदृशवीर्ययोः।
कुरुक्षेत्रे महास्थाने त्रीणि वर्षाणि तापसाः॥ २३

इन्द्रलोकमवापाशु गन्धर्वेण हतो रणे।
भीष्मः श्रुत्वा चकाराशु तस्यौर्ध्वदेहिकं तदा॥ २४

गाङ्गेयः कृतशोकस्तु मन्त्रिभिः परिवारितः।
विचित्रवीर्यनामानं राज्येशं च चकार ह॥ २५

मन्त्रिभिर्बोधिता पश्चाद् गुरुभिश्च महात्मभिः।
स्वपुत्रं राज्यगं दृष्ट्वा पुत्रशोकहतापि च॥ २६

इसके पूर्व उन राजा शन्तनुको गंगासे भीष्म नामक बलशाली एवं पराक्रमी पुत्र पैदा हुआ था। उसी प्रकार सत्यवतीसे दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए॥ १५॥

उन सर्वलक्षणसम्पन्न तीनों पुत्रोंको देखकर महामना शन्तनु अपने आपको देवताओंसे अजेय समझने लगे थे॥ १६॥

कुछ समय बीतनेपर यथासमय धर्मात्मा शन्तनुने उसी प्रकार अपना शरीर त्याग दिया, जिस प्रकार कोई मनुष्य अपना पुराना वस्त्र छोड़ देता है। शन्तनुके कालके वशीभूत हो जानेपर भीष्मने विधिवत् उनके समस्त प्रेतकार्य किये और विविध प्रकारके दान दिये॥ १७-१८॥

तदनन्तर पराक्रमी भीष्मने चित्रांगदको राज्यसिंहासनपर बैठाया। उन्होंने स्वयं राज्य नहीं किया, इसी कारण उनका नाम देवव्रत हुआ॥ १९॥

सत्यवतीपुत्र चित्रांगद बलगर्वित, शत्रुसन्तापकर्ता, बलशाली, वीर तथा पवित्र थे॥ २०॥

महाबाहु चित्रांगद एक बार महान् सेनासे युक्त होकर आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ वध्य रुरुमृगोंको खोजते हुए वे विविध वन-प्रदेशोंमें घूम रहे थे। मार्गमें उन राजाको जाता हुआ देखकर चित्रांगद नामक एक गन्धर्व अपने सुन्दर विमानसे भूमिपर उनके समीप उतर पड़ा॥ २१-२२॥

सूतजी बोले—हे तपस्वियो! उस समय कुरुक्षेत्रके उस विशाल मैदान में तीन वर्षतक समान बलवाले उन दोनोंमें घमासान युद्ध होता रहा॥ २३॥

अन्तमें उस गन्धर्वके द्वारा राजा चित्रांगद युद्धमें मारे गये और उन्हें शीघ्र ही इन्द्रलोक प्राप्त हुआ। यह सुनकर भीष्मने उसी समय चित्रांगदका और्ध्वदैहिक संस्कार किया॥ २४॥

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने भीष्मको समझा-बुझाकर शोकरहित किया। उन्होंने छोटे भाई विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २५॥

मन्त्रियों, गुरुजनों एवं महात्माओंके समझानेके बाद शुभलक्षणा राजमाता सत्यवती अपने [ज्येष्ठ] पुत्रकी मृत्युसे शोकाकुल होती हुई भी अपने छोटे पुत्र

सत्यवत्यतिसन्तुष्टा बभूव वरवर्णिनी।
व्यासोऽपि भ्रातरं श्रुत्वा राजानं मुदितोऽभवत्॥ २७

यौवनं परमं प्राप्तः सत्यवत्याः सुतः शुभः।
चकार चिन्तां भीष्मोऽपि विवाहार्थं कनीयसः॥ २८

काशिराजसुतास्तिस्रः सर्वलक्षणसंयुताः।
तेन राज्ञा विवाहार्थं स्थापिताश्च स्वयंवरे॥ २९

राजानो राजपुत्राश्च समाहूताः सहस्रशः।
इच्छास्वयंवरार्थं वै पूज्यमानाः समागताः॥ ३०

तत्र भीष्मो महातेजास्ता जहार बलेन वै।
निर्मथ्य राजकं सर्वं रथेनैकेन वीर्यवान्॥ ३१

स जित्वा पार्थिवान्सर्वांस्ताश्चादाय महारथः।
बाहुवीर्येण तेजस्वी ह्याससाद गजाह्वयम्॥ ३२

मातृवद्भगिनीवच्च पुत्रीवच्चिन्तयन्किल।
तिस्रः समानयामास कन्यका वामलोचनाः॥ ३३

सत्यवत्यै निवेद्याशु द्विजानाहूय सत्वरः।
दैवज्ञान्वेदविदुषः पर्यपृच्छच्छुभं दिनम्॥ ३४

कृत्वा विवाहसम्भारं यदा वै भ्रातरं निजम्।
विचित्रवीर्यं धर्मिष्ठं विवाहयति ता यदा॥ ३५

तदा ज्येष्ठाप्युवाचेदं कन्यका जाह्नवीसुतम्।
लज्जमानासितापाङ्गी तिसृणां चारुलोचना॥ ३६

गङ्गापुत्र कुरुश्रेष्ठ धर्मज्ञ कुलदीपक।
मया स्वयंवरे शाल्वो वृतोऽस्ति मनसा नृपः॥ ३७

वृताहं तेन राज्ञा वै चित्ते प्रेमसमाकुले।
यथायोग्यं कुरुष्वाद्य कुलस्यास्य परन्तप॥ ३८

तेनाहं वृतपूर्वाऽस्मि त्वं च धर्मभृतां वरः।
बलवानसि गाङ्गेय यथेच्छसि तथा कुरु॥ ३९

सूत उवाच

एवमुक्तस्तया तत्र कन्यया कुरुनन्दनः।
अपृच्छद् ब्राह्मणान्वृद्धान्मातरं सचिवांस्तथा॥ ४०

विचित्रवीर्यको राजसिंहासनपर बैठा देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। व्यासजी भी अपने भ्राताके राजा होनेका समाचार पाकर प्रसन्न हुए॥ २६-२७॥

जब सत्यवतीके सुन्दर पुत्र विचित्रवीर्य पूर्ण युवा हुए तब भीष्म अपने कनिष्ठ भ्राताके विवाहकी चिन्ता करने लगे॥ २८॥

उन दिनों काशिराजकी तीन कन्याएँ थीं—जो सभी शुभलक्षणोंसे युक्त थीं; उन राजाने विवाहके लिये उनका स्वयंवर रचाया॥ २९॥

हजारों पूज्यमान राजा तथा राजकुमार आमन्त्रित होकर उस इच्छास्वयंवरमें उपस्थित हुए थे तथा पराक्रमी भीष्मने अकेले ही रथपर बैठकर सभी राजाओंको रौंदकर बलपूर्वक उन कन्याओंका हरण कर लिया। वे महारथी तथा तेजस्वी भीष्म अपने बाहुबलसे उन सभी राजाओंको जीतकर उन कन्याओंको लेकर हस्तिनापुर चले आये॥ ३०—३२॥

सुन्दर नेत्रोंवाली उन तीनों राजकुमारियोंमें माता, भगिनी एवं पुत्रीकी भावना रखते हुए भीष्म उन्हें ले आये और उन्हें सत्यवतीको सौंपकर शीघ्रतापूर्वक ज्योतिर्विदों तथा वेदके विद्वान् ब्राह्मणोंको बुलाकर उनसे विवाहका शुभ मुहूर्त पूछा॥ ३३—३४॥

विवाहकी तैयारी करके अपने छोटे भाई धर्मात्मा विचित्रवीर्यके साथ उन कन्याओंका विवाह करनेको जब भीष्म उद्यत हुए तब उन तीनोंमें सबसे बड़ी एवं सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याने गंगापुत्र भीष्मसे लज्जित होते हुए इस प्रकार प्रार्थना की। हे गंगापुत्र! हे कुरुश्रेष्ठ! हे धर्मज्ञ! हे कुलदीपक! मैंने स्वयंवरमें मन-ही-मन राजा शाल्वका पतिरूपमें वरण कर लिया था। उन राजाने भी प्रेमपूर्वक हृदयसे मुझे अपनी पत्नी मान लिया था। हे परन्तप! अब आप इस कुलकी परम्पराके अनुसार जैसा उचित हो, वैसा कीजिये। उन्होंने पहलेसे ही मुझे वरण कर लिया है। हे गांगेय! आप धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा बलवान् हैं; आपकी जैसी इच्छा हो, वैसा कीजिये॥ ३५—३९॥

सूतजी बोले—इस प्रकार उस कन्याके कहनेपर कुरुनन्दन भीष्मजीने कुलवृद्धों, ब्राह्मणों, माता सत्यवती तथा मन्त्रियोंसे इस विषयमें परामर्श

सर्वेषां मतमाज्ञाय गाङ्गेयो धर्मवित्तमः।
गच्छेति कन्यकां प्राह यथारुचि वरानने॥ ४१

विसर्जिताथ सा तेन गता शाल्वनिकेतनम्।
उवाच तं वरारोहा राजानं मनसेप्सितम्॥ ४२

विनिर्मुक्तास्मि भीष्मेण त्वन्मनस्केति धर्मतः।
आगतास्मि महाराज गृहाणाद्य करं मम॥ ४३

धर्मपत्नी तवात्यन्तं भवामि नृपसत्तम।
चिन्तितोऽसि मया पूर्वं त्वयाहं नात्र संशयः॥ ४४

शाल्व उवाच

गृहीता त्वं वरारोहे भीष्मेण पश्यतो मम।
रथे संस्थापिता तेन न ग्रहीष्ये करं तव॥ ४५

परोच्छिष्टां च कः कन्यां गृह्णाति मतिमान्नरः।
अतोऽहं न ग्रहीष्यामि त्यक्तां भीष्मेण मातृवत्॥ ४६

रुदती विलपन्ती सा त्यक्ता तेन महात्मना।
पुनर्भीष्मं समागत्य रुदती चेदमब्रवीत्॥ ४७

शाल्वो मुक्तां त्वया वीर न गृह्णाति गृहाण माम्।
धर्मज्ञोऽसि महाभाग मरिष्याम्यन्यथा ह्यहम्॥ ४८

भीष्म उवाच

अन्यचित्तां कथं त्वां वै गृह्णामि वरवर्णिनि।
पितरं स्वं वरारोहे व्रज शीघ्रं निराकुला॥ ४९

तथोक्ता सा तु भीष्मेण जगाम वनमेव हि।
तपश्चकार विजने तीर्थे परमपावने॥ ५०

द्वे भार्ये चातिरूपाढ्ये तस्य राज्ञो बभूवतुः।
अम्बालिका चाम्बिका च काशिराजसुते शुभे॥ ५१

राजा विचित्रवीर्योऽसौ ताभ्यां सह महाबलः।
रेमे नानाविहारैश्च गृहे चोपवने तथा॥ ५२

किया। सबकी अनुमति प्राप्त करके धर्मज्ञ गंगापुत्रने उस कन्यासे कहा—हे वरानने! तुम स्वेच्छापूर्वक जा सकती हो॥ ४०-४१॥

भीष्मसे विदा होकर वह सुन्दरी कन्या राजा शाल्वके घर गयी और अपने मनकी अभीष्ट बात उनसे कहने लगी—हे महाराज! आपके प्रति आसक्तचित्त जानकर भीष्मने मुझे धर्मपूर्वक मुक्त कर दिया है। अब मैं आ गयी हूँ; आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये। मैं आपकी पूर्णरूपसे धर्मपत्नी होऊँगी; मैंने पूर्वमें आपको चाहा है और आपने मुझे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४२—४४॥

शाल्वने कहा—हे सुन्दरि! मेरे देखते-देखते भीष्मने तुम्हें पकड़ा और अपने रथपर बैठा लिया था, अतः अब मैं तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं कर सकता। कौन बुद्धिमान् मनुष्य दूसरेके द्वारा उच्छिष्ट कन्याको स्वीकार करेगा? अतः भीष्मके द्वारा मातृभावनासे भी त्यागी गयी तुम्हें मैं स्वीकार नहीं करूँगा॥ ४५-४६॥

महात्मा शाल्वने रोती तथा विलाप करती उस कन्याका त्याग कर दिया और वह पुनः भीष्मके यहाँ आकर रोती हुई इस प्रकार कहने लगी—हे वीर! आपके त्याग देनेके कारण शाल्व भी मुझे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। हे महाभाग! आप धर्मज्ञ हैं, इसलिये आप मुझे स्वीकार कीजिये, अन्यथा मैं प्राण दे दूँगी॥ ४७-४८॥

भीष्म बोले—हे वरवर्णिनि! तुम दूसरेपर आसक्त चित्तवाली हो, अतः मैं तुम्हें कैसे स्वीकार करूँ? हे वरारोहे! अब तुम चिन्ता त्यागकर शीघ्र अपने पिताके पास चली जाओ॥ ४९॥

भीष्मके ऐसा कहनेपर वह [अपने पिताके घर न जाकर] वनमें चली गयी और वहाँ किसी निर्जन एवं परम पवित्र तीर्थमें तप करने लगी॥ ५०॥

काशिराजकी अन्य दो रूपवती तथा कल्याणमयी कन्याएँ अम्बिका एवं अम्बालिका विचित्रवीर्यकी रानियाँ बन गयीं॥ ५१॥

महाबली राजा विचित्रवीर्य भी उन दोनोंके साथ कभी राजभवनमें और कभी उपवनमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगे॥ ५२॥

वर्षाणि नव राजेन्द्रः कुर्वन् क्रीडां मनोरमाम्।
प्रापासौ मरणं भूयो गृहीतो राजयक्ष्मणा॥ ५३

मृते पुत्रेऽतिदुःखार्ता जाता सत्यवती तदा।
कारयामास पुत्रस्य प्रेतकार्याणि मन्त्रिभिः॥ ५४

भीष्ममाह तदैकान्ते वचनं चातिदुःखिता।
राज्यं कुरु महाभाग पितुस्ते शन्तनोः सुत॥ ५५

भ्रातुर्भार्यां गृहाण त्वं वंशञ्च परिरक्षय।
यथा न नाशमायाति ययातेर्वंश इत्युत॥ ५६

भीष्म उवाच

प्रतिज्ञा मे श्रुता मातः पित्रर्थे या मया कृता।
नाहं राज्यं करिष्यामि न चाहं दारसंग्रहम्॥ ५७

सूत उवाच

तदा चिन्तातुरा जाता कथं वंशो भवेदिति।
नालसाद्धि सुखं मह्यं समुत्पन्ने ह्यराजके॥ ५८

गाङ्गेयस्तामुवाचेदं मा चिन्तां कुरु भामिनि।
पुत्रं विचित्रवीर्यस्य क्षेत्रजं चोपपादय॥ ५९

कुलीनं द्विजमाहूय वध्वा सह नियोजय।
नात्र दोषोऽस्ति वेदेऽपि कुलरक्षाविधौ किल॥ ६०

पौत्रं चैवं समुत्पाद्य राज्यं देहि शुचिस्मिते।
अहं च पालयिष्यामि तस्य शासनमेव हि॥ ६१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कानीनं स्वसुतं मुनिम्।
जगाम मनसा व्यासं द्वैपायनमकल्मषम्॥ ६२

स्मृतमात्रस्ततो व्यास आजगाम स तापसः।
कृत्वा प्रणामं मात्रेऽथ संस्थितो दीप्तिमान्मुनिः॥ ६३

इस प्रकार पूरे नौ वर्षतक मनोहर क्रीड़ा करते हुए राजा विचित्रवीर्य राजयक्ष्मारोगसे ग्रसित हो गये और अन्तमें मृत्युको प्राप्त हुए॥ ५३॥

उस समय पुत्रके मर जानेपर माता सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने मन्त्रियोंद्वारा पुत्रके सभी प्रेतकर्म सम्पन्न कराये॥ ५४॥

तत्पश्चात् एक दिन अत्यन्त दुःखी होकर सत्यवतीने भीष्मसे एकान्तमें कहा—हे महाभाग! हे पुत्र! अब तुम अपने पिता शन्तनुका राज्य सम्भालो और अपनी भ्रातृजायाको स्वीकार करो और अपने वंशकी रक्षा करो, जिससे महाराज ययातिका वंश नष्ट न हो जाय॥ ५५-५६॥

भीष्म बोले—हे माता! अपने पिताजीके लिये मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे तो आप सुन चुकी हैं। अतः मैं न तो राज्य ग्रहण करूँगा और न तो विवाह ही करूँगा॥ ५७॥

सूतजी बोले—तब सत्यवती चिन्तित हो गयीं कि अब वंश कैसे चलेगा? अपने कर्तव्यके प्रति यदि मैं उदासीन रहूँ तो अराजकताके व्याप्त होनेपर मुझे सुख कैसे प्राप्त होगा?॥ ५८॥

[इस प्रकार माताको चिन्तित देखकर] भीष्मने उनसे कहा—हे भामिनि! आप चिन्ता न करें। विचित्रवीर्यकी पत्नीके गर्भसे क्षेत्रज पुत्र उत्पन्न कराइये। किसी कुलीन विद्वान् ब्राह्मणको बुलाकर वधूके साथ नियोग कराइये। इसमें कोई दोष नहीं है; क्योंकि वंशरक्षाका विधान वेदमें भी है। हे प्रसन्नवदने! इस प्रकार पौत्र उत्पन्न कराकर आप उसीको राज्य सौंप दीजिये, मैं उसके राज्यशासनका सम्यक् संरक्षण करता रहूँगा॥ ५९—६१॥

भीष्मकी वह बात सुनकर सत्यवतीने अपनी कुमारी अवस्थामें उत्पन्न अपने निर्दोष पुत्र द्वैपायन व्यासमुनिका स्मरण किया॥ ६२॥

स्मरण करते ही तपस्वी व्यासजी वहाँ आ पहुँचे और माताको प्रणाम करके वे तेजस्वी मुनि सामने खड़े हो गये॥ ६३॥

भीष्मेण पूजितः कामं सत्यवत्या च मानितः।
तस्थौ तत्र महातेजा विधूमोऽग्निरिवापरः॥ ६४

तमुवाच मुनिं माता पुत्रमुत्पादयाधुना।
क्षेत्रे विचित्रवीर्यस्य सुन्दरं तव वीर्यजम्॥ ६५

व्यासः श्रुत्वा वचो मातुराप्तवाक्यममन्यत।
ओमित्युक्त्वा स्थितस्तत्र ऋतुकालमचिन्तयत्॥ ६६

अम्बिका च यदा स्नाता नारी ऋतुमती तदा।
सङ्गं प्राप्य मुनेः पुत्रमसूतान्धं महाबलम्॥ ६७

जन्मान्धं च सुतं वीक्ष्य दुःखिता सत्यवत्यपि।
द्वितीयां च वधूमाह पुत्रमुत्पादयाशु वै॥ ६८

ऋतुकालेऽथ सम्प्राप्ते व्यासेन सह सङ्गता।
तथा चाम्बालिका रात्रौ गर्भं नारी दधार सा॥ ६९

सोऽपि पाण्डुः सुतो जातो राज्ययोग्यो न सम्मतः।
पुत्रार्थे प्रेरयामास वर्षान्ते च पुनर्वधूम्॥ ७०

आहूय च ततो व्यासं सम्प्रार्थ्य मुनिसत्तमम्।
प्रेषयामास रात्रौ सा शयनागारमुत्तमम्॥ ७१

न गता च वधूस्तत्र प्रेष्या सम्प्रेषिता तया।
तस्यां च विदुरो जातो दास्यां धर्मांशतः शुभः॥ ७२

एवं व्यासेन ते पुत्रा धृतराष्ट्रादयस्त्रयः।
उत्पादिता महावीरा वंशरक्षणहेतवे॥ ७३

एतद्वः सर्वमाख्यातं तस्य वंशसमुद्भवम्।
व्यासेन रक्षितो वंशो भ्रातृधर्मविदानघाः॥ ७४

भीष्मने उनकी भलीभाँति पूजा की और माता सत्यवतीने भी आदर किया। उस समय महातेजस्वी व्यासजी वहाँ इस प्रकार सुशोभित हुए मानो धूमरहित साक्षात् दूसरे अग्निदेव ही हों॥ ६४॥

माता सत्यवतीने व्यासमुनिसे कहा—इस समय तुम विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें अपने तेजसे सुन्दर पुत्र उत्पन्न करो॥ ६५॥

माताका वचन सुनकर व्यासजीने उसे आप्तवाक्य माना और 'ठीक है'—कहकर वे वहींपर ठहर गये और ऋतुकालकी प्रतीक्षा करने लगे॥ ६६॥

जब अम्बिका ऋतुमती होकर स्नान कर चुकी तब उसने मुनि व्यासजीके तेजसे एक पुत्र उत्पन्न किया, जो महाबली और जन्मान्ध था। उस बालकको जन्मान्ध देखकर सत्यवतीको बड़ा दुःख हुआ। तब उन्होंने दूसरी वधू अम्बालिका से कहा कि तुम भी शीघ्र एक पुत्र उत्पन्न करो॥ ६७-६८॥

ऋतुकाल प्राप्त होनेपर उस अम्बालिकाने व्यासजीसे गर्भ धारण किया। उससे उत्पन्न पुत्र भी पाण्डुरोगसे ग्रसित होनेके कारण राजा होनेके योग्य नहीं था। इसलिये माताने वधू अम्बालिकाको एक वर्षके बाद पुनः एक पुत्रके लिये प्रेरित किया। माता सत्यवतीने मुनिश्रेष्ठ व्यासजीका आह्वानकर उनसे इसके लिये प्रार्थना की, परंतु उसने स्वयं न जाकर अपनी दासीको भेज दिया। उस दासीके गर्भसे धर्मके अंशसे युक्त शुभ विदुर उत्पन्न हुए॥ ६९—७२॥

इस प्रकार वंशकी रक्षाके लिये व्यासजीने धृतराष्ट्र आदि तीन महापराक्रमी पुत्र उत्पन्न किये। भ्रातृ-धर्मको जाननेवाले व्यासजीने ऐसा करके वंशकी रक्षा की। हे पुण्यात्मा मुनिजनो! इस प्रकार उनकी वंशोत्पत्तिसे सम्बन्धित समस्त कथानक मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ७३-७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे
धृतराष्ट्रादीनामुत्पत्तिवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

* * *

॥ प्रथमः स्कन्धः समाप्तः॥

* * *

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वितीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

ब्राह्मणके शापसे अद्रिका अप्सराका मछली होना और उससे राजा मत्स्य तथा मत्स्यगन्धाकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

आश्चर्यकरमेतत्ते वचनं गर्भहेतुकम्।
सन्देहोऽत्र समुत्पन्नः सर्वेषां नस्तपस्विनाम्॥ १

माता व्यासस्य मेधाविन्नाम्ना सत्यवतीति च।
विवाहिता पुरा ज्ञाता राज्ञा शन्तनुना यथा॥ २

तस्याः पुत्रः कथं व्यासः सती स्वभवने स्थिता।
ईदृशी सा कथं राज्ञा पुनः शन्तनुना वृता॥ ३

तस्यां पुत्रावुभौ जातौ तत्त्वं कथय सुव्रत।
विस्तरेण महाभाग कथां परमपावनीम्॥ ४

उत्पत्तिं वद व्यासस्य सत्यवत्यास्तथा पुनः।
श्रोतुकामाः पुनः सर्वे ऋषयः संशितव्रताः॥ ५

सूत उवाच

प्रणम्य परमां शक्तिं चतुर्वर्गप्रदायिनीम्।
आदिशक्तिं वदिष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्॥ ६

यस्योच्चारणमात्रेण सिद्धिर्भवति शाश्वती।
व्याजेनापि हि बीजस्य वाग्भवस्य विशेषतः॥ ७

सम्यक् सर्वात्मना सर्वैः सर्वकामार्थसिद्धये।
स्मर्तव्या सर्वथा देवी वाञ्छितार्थप्रदायिनी॥ ८

राजोपरिचरो नाम धार्मिकः सत्यसङ्गरः।
चेदिदेशपतिः श्रीमान् बभूव द्विजपूजकः॥ ९

ऋषिगण बोले—[हे सूतजी!] आपकी यह बात आश्चर्यजनक एवं रहस्यपूर्ण है। इस सम्बन्धमें हम सब तपस्वियोंको महान् सन्देह उत्पन्न हो गया है॥ १॥

हे मेधाविन्! पूर्वकालमें सत्यवती नामसे विख्यात व्यासजीकी माताका राजा शन्तनुके साथ जिस प्रकार विवाह हुआ, उन सतीके अपने घरमें रहते हुए भी उनसे पुत्ररूपमें व्यास कैसे उत्पन्न हुए, ऐसी सत्यवतीका शन्तनुने पुनः वरण कैसे किया और उनसे दो पुत्रोंकी उत्पत्ति कैसे हुई? हे सुव्रत! हे महाभाग! आप इस परम पावन कथाको विस्तारपूर्वक कहिये। आप व्यासजी तथा सत्यवतीकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये; हम सभी व्रतधारी ऋषि इस विषयमें सुननेके लिये उत्सुक हैं॥ २—५॥

सूतजी बोले—मैं चतुर्वर्ग [धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष] प्रदान करनेवाली परमा आदिशक्तिको प्रणाम करके यह शुभ पौराणिक कथा कहूँगा॥ ६॥

जिनके विशिष्ट वाग्भव बीजमन्त्र (ऐं)-का किसी भी बहानेसे उच्चारण करते ही शाश्वती सिद्धि प्राप्त हो जाती है, उन इच्छित फल देनेवाली भगवतीका सभी लोगोंको अपनी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेके लिये समर्पण भावसे सम्यक् स्मरण करना चाहिये॥ ७-८॥

उपरिचर नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा, ब्राह्मणपूजक तथा श्रीमान् राजा हुए, जो चेदि

तपसा तस्य तुष्टेन विमानं स्फाटिकं शुभम्।
दत्तमिन्द्रेण तत्तस्मै सुन्दरं प्रियकाम्यया॥ १०

तेनारूढस्तु सर्वत्र याति दिव्येन भूपतिः।
न भूमावुपरिस्थोऽसौ तेनोपरिचरो वसुः॥ ११

विख्यातः सर्वलोकेषु धर्मनित्यः स भूपतिः।
तस्य भार्या वरारोहा गिरिका नाम सुन्दरी॥ १२

पुत्राश्चास्य महावीर्याः पञ्चासन्नमितौजसः।
पृथग्देशेषु राजानः स्थापितास्तेन भूभुजा॥ १३

वसोस्तु पत्नी गिरिका कामान् काले न्यवेदयत्।
ऋतुकालमनुप्राप्ता स्नाता पुंसवने शुचिः॥ १४

तदहः पितरश्चैनमूचुर्जहि मृगानिति।
तच्छ्रुत्वा चिन्तयामास भार्यामृतुमतीं तथा॥ १५

पितृवाक्यं गुरुं मत्वा कर्तव्यमिति निश्चितम्।
चचार मृगयां राजा गिरिकां मनसा स्मरन्॥ १६

वने स्थितः स राजर्षिश्चित्ते सस्मार भामिनीम्।
अतीव रूपसम्पन्नां साक्षाच्छ्रियमिवापराम्॥ १७

तस्य रेतः प्रचस्कन्द स्मरतस्तां च कामिनीम्।
वटपत्रे तु तद्राजा स्कन्नमात्रं समाक्षिपत्॥ १८

इदं वृथा परिस्कन्नं रेतो वै न भवेत्कथम्।
ऋतुकालं च विज्ञाय मतिं चक्रे नृपस्तदा॥ १९

अमोघं सर्वथा वीर्यं मम चैतन्न संशयः।
प्रियायै प्रेषयाम्येतदिति बुद्धिमकल्पयत्॥ २०

शुक्रप्रस्थापने कालं महिष्याः प्रसमीक्ष्य सः।
अभिमन्त्र्याथ तद्वीर्यं वटपर्णपुटे कृतम्॥ २१

देशके शासक थे। उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर देवराज इन्द्रने उन्हें प्रसन्न करनेके लिये स्फटिक मणिका बना हुआ एक सुन्दर तथा दिव्य विमान दिया॥ ९-१०॥

उस दिव्य विमानपर चढ़कर चेदिराज सर्वत्र विचरण करते थे। वे कभी भूमिपर न उतरने तथा पृथ्वीसे ऊपर-ही-ऊपर चलनेके कारण सभी लोकोंमें 'उपरिचर' वसुके नामसे प्रसिद्ध हुए। वे राजा अत्यन्त धर्मपरायण थे। उनकी धर्मपत्नीका नाम गिरिका था, जो रूपवती तथा सुन्दरी थी॥ ११-१२॥

महाराज उपरिचरके पाँच पुत्र हुए जो बड़े महान् वीर एवं परम प्रतापी थे। [यथासमय] उन्होंने अपने राजकुमारोंको अलग-अलग देशोंका राजा बना दिया॥ १३॥

एक बार राजा वसुकी पत्नी गिरिकाने ऋतुकालके स्नानसे पवित्र होकर राजासे पुत्रप्राप्तिकी कामना की। जिस समय वह प्रार्थना करने लगी, उसी समय उनके पितरोंने उन राजासे कहा— हे राजन्! मृगोंको मार लाओ—इस आदेशको सुनकर राजाको अपनी ऋतुमती पत्नीका भी स्मरण हो आया, किंतु पितरोंकी आज्ञा श्रेष्ठ मानकर तथा अपने कर्तव्यका निश्चयकर राजा मन-ही-मन गिरिकाका स्मरण करते हुए आखेटके लिये चल पड़े॥ १४—१६॥

वनमें रहते हुए राजा वसु साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूपवती अपनी पत्नीका स्मरण करने लगे। इस प्रकार उस कामिनीके ध्यानसे एकाएक उनका वीर्य स्खलित हो गया और राजाने शीघ्र ही उस स्खलित वीर्यको बरगदके पत्तेपर रख लिया॥ १७-१८॥

यह स्खलित तेज व्यर्थ न हो—[यह सोचकर] तथा स्त्रीका ऋतुकाल जानकर उन्होंने ऐसा निश्चय कर लिया कि मेरा तेज सर्वथा अमोघ है, इसमें सन्देह नहीं है अतः अवश्य ही इसे मैं रानीके पास भेज दूँ॥ १९-२०॥

राजा जब उस वीर्यको बरगदके दोनेमें रखकर अपनी रानीके पास भेजने लगे तब उन्होंने रानीका ऋतुकाल जानकर उस वीर्यको अभिमन्त्रित किया।

पार्श्वस्थं श्येनमाभाष्य राजोवाच द्विजं प्रति।
गृहाणेदं महाभाग गच्छ शीघ्रं गृहं मम॥ २२

मत्प्रियार्थमिदं सौम्य गृहीत्वा त्वं गृहं नय।
गिरिकायै प्रयच्छाशु तस्यास्त्वार्तवमद्य वै॥ २३

सूत उवाच

इत्युक्त्वा प्रददौ पर्णं श्येनाय नृपसत्तमः।
स गृहीत्वोत्पपाताशु गगनं गतिवित्तमः॥ २४

गच्छन्तं गगनं श्येनं धृत्वा चञ्चुपुटे पुटम्।
तमपश्यदथायान्तं खगं श्येनस्तथापरः॥ २५

आमिषं स तु विज्ञाय शीघ्रमभ्यद्रवत्खगम्।
तुण्डयुद्धमथाकाशे तावुभौ सम्प्रचक्रतुः॥ २६

युद्ध्यतोरपतद्रेतस्तच्चापि यमुनाम्भसि।
खगौ तौ निर्गतौ कामं पुटके पतिते तदा॥ २७

एतस्मिन्समये काचिदद्रिका नाम चाप्सराः।
ब्राह्मणं समनुप्राप्तं सन्ध्यावन्दनतत्परम्॥ २८

कुर्वन्ती जलकेलिं सा जले मग्ना चचार सा।
जग्राह चरणं नारी द्विजस्य वरवर्णिनी॥ २९

प्राणायामपरः सोऽथ दृष्ट्वा तां कामचारिणीम्।
शशाप भव मत्स्यी त्वं ध्यानविघ्नकरी यतः॥ ३०

सा शप्ता विप्रमुख्येन बभूव यमुनाचरी।
शफरी रूपसम्पन्ना ह्यद्रिका च वराप्सराः॥ ३१

श्येनपादपरिभ्रष्टं तच्छुक्रमथ वासवी।
जग्राह तरसाभ्येत्य साद्रिका मत्स्यरूपिणी॥ ३२

अथ कालेन कियता मत्स्यीं तां मत्स्यजीवनः।
सम्प्राप्ते दशमे मासि बबन्ध तां मनोरमाम्॥ ३३

उदरं विददाराशु स तस्या मत्स्यजीवनः।
युग्मं विनिःसृतं तस्मादुदरान्मानुषाकृति॥ ३४

राजाने पास ही बैठे हुए बाज पक्षीको बुलाकर उससे कहा—'हे महाभाग! तुम इसे ग्रहण करो और शीघ्र ही मेरे घर चले जाओ। हे सौम्य! मेरा हित करनेके लिये इसे लेकर तुम मेरे घर जाओ और इसे शीघ्र ही गिरिकाको दे देना; क्योंकि आज ही उसका ऋतुकाल है'॥ २१—२३॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठने बाजको वह दोना दे दिया और वह द्रुतगामी बाज भी उसे लेकर शीघ्र ही आकाशमें उड़ने लगा॥ २४॥

चोंचमें पत्तेका दोना लेकर आकाशमें उड़ते हुए उस बाजको एक दूसरे बाजपक्षीने अपनी ओर आते हुए देखा॥ २५॥

बाजकी चोंचमें मांसका टुकड़ा समझकर तत्काल उसने उस बाजपर आक्रमण कर दिया। दोनों बाजोंके बीच आकाशमें चोंचोंसे घोर युद्ध होने लगा। उन दोनोंके युद्ध करते समय वीर्यवाला वह दोना यमुनाजीके जलमें जा गिरा। दोनेके गिर जानेपर दोनों पक्षी वहाँसे यथेच्छ दिशामें चले गये॥ २६-२७॥

उसी समय अद्रिका नामकी एक अप्सरा जलमें निमग्न होकर जलक्रीडा कर रही थी। उस सुन्दरी स्त्रीने वहाँपर उपस्थित सन्ध्यावन्दन करनेमें तत्पर एक ब्राह्मणको देखा और उन ब्राह्मणका पैर पकड़ लिया॥ २८-२९॥

प्राणायाम करते हुए ब्राह्मणने उस स्वेच्छाचारिणीको देखकर उसे यह शाप दे दिया कि 'तुमने मेरे ध्यानमें विघ्न डाला है, अतएव तुम मछली हो जाओ।' इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठसे शाप पाकर वह अद्रिका नामकी रूपवती श्रेष्ठ अप्सरा मछली बनकर यमुनाके जलमें विचरने लगी॥ ३०-३१॥

बाजके पादाघातसे गिरे हुए उस वीर्यके पास जाकर मत्स्यरूपधारिणी अद्रिका अप्सराने उसे शीघ्रतापूर्वक निगल लिया॥ ३२॥

कुछ समय बाद दस महीने बीतनेपर एक मछुआरेने उस सुन्दर मछलीको अपने जालमें फँसा लिया॥ ३३॥

उस मछुआरेने शीघ्र ही उस मछलीका पेट चीर दिया। उसके उदरसे मनुष्यके आकारवाली जुड़वाँ सन्तति निकली॥ ३४॥

बालः कुमारः सुभगस्तथा कन्या शुभानना।
दृष्ट्वाश्चर्यमिदं सोऽथ विस्मयं परमं गतः॥ ३५

राज्ञे निवेदयामास पुत्रौ द्वौ तु झषोद्भवौ।
राजापि विस्मयाविष्टः सुतं जग्राह तं शुभम्॥ ३६

स मत्स्यो नाम राजासौ धार्मिकः सत्यसङ्गरः।
वसुपुत्रो महातेजाः पित्रा तुल्यपराक्रमः॥ ३७

कालिका वसुना दत्ता तरसा जलजीविने।
नाम्ना कालीति विख्याता तथा मत्स्योदरीति च॥ ३८

मत्स्यगन्धेति नाम्ना वै गुणेन समजायत।
विवर्धमाना दाशस्य गृहे सा वासवी शुभा॥ ३९

ऋषय ऊचुः

अद्रिका मुनिना शप्ता मत्स्यी जाता वराप्सराः।
विदारिता च दाशेन मृता च भक्षिता पुनः॥ ४०

किं बभूव पुनस्तस्या अप्सराया वदस्व तत्।
शापस्यान्तं कथं सूत कथं स्वर्गमवाप सा॥ ४१

सूत उवाच

शप्ता यदा सा मुनिना विस्मिता सम्बभूव ह।
स्तुतिं चकार विप्रस्य दीनेव रुदती तदा॥ ४२

दयावान् ब्राह्मणः प्राह तां तदा रुदतीं स्त्रियम्।
मा शोकं कुरु कल्याणि शापान्तं ते वदाम्यहम्॥ ४३

मत्क्रोधशापयोगेन मत्स्ययोनिं गता शुभे।
मानुषौ जनयित्वा त्वं शापमोक्षमवाप्स्यसि॥ ४४

इत्युक्ता तेन सा प्राप मत्स्यदेहं नदीजले।
बालकौ जनयित्वा सा मृता मुक्ता च शापतः॥ ४५

सन्त्यज्य रूपं मत्स्यस्य दिव्यरूपमवाप्य च।
जगामामरमार्गं च शापान्ते वरवर्णिनी॥ ४६

उन दोनोंमें एक रूपवान् बालक तथा एक सुन्दर मुखवाली बालिका थी। इस अद्भुत घटनाको देखकर वह भी अत्यन्त विस्मित हुआ॥ ३५॥

उसने मछलीके पेटसे निकले उन दोनों बच्चोंको राजा उपरिचरको सौंप दिया। राजा भी आश्चर्यचकित हुआ और उसने उस सुन्दर पुत्रको ले लिया॥ ३६॥

वह वसुपुत्र मत्स्य नामक राजा हुआ, जो अपने पिताके समान ही धर्मात्मा, सत्यप्रतिज्ञ, महातेजस्वी तथा पराक्रमी था॥ ३७॥

राजा उपरिचर वसुने वह कन्या उस मछुआरेको ही दे दी, जो आगे चलकर काली तथा मत्स्योदरी नामसे प्रसिद्ध हुई। अपने गुणविशेषके कारण वह मत्स्यगन्धा नामसे कही जाने लगी। उस मछुआरे दाशके घर वह सुन्दरी वासवी धीरे-धीरे बढ़ने लगी॥ ३८-३९॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! मुनिके द्वारा शापित वह अद्रिका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा जब मछली हो गयी और मछुआरेने उसे चीर डाला, तब वह मर गयी अथवा उसने उसे खा लिया। उस अप्सराका फिर क्या हुआ? उसके शापकी समाप्ति कैसे हुई और उसे पुनः स्वर्ग कैसे मिला? यह बताइये॥ ४०-४१॥

सूतजी बोले—जब मुनिने उसे शाप दिया, तब वह विस्मित हो गयी और दीनतापूर्वक रोती हुई उस ब्राह्मणकी स्तुति करने लगी॥ ४२॥

दयालु ब्राह्मणने उस रोती हुई स्त्रीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शोक न करो, मैं तुम्हारे शापके अन्तका उपाय बताता हूँ। हे शुभे! मैंने क्रुद्ध होकर जो शाप दिया है, उससे तुम मत्स्ययोनिको प्राप्त होओगी; किंतु तुम अपने उदरसे एक युग्म मानव-सन्तान उत्पन्नकर इस शापसे मुक्त हो जाओगी॥ ४३-४४॥

उनके ऐसा कहनेपर वह यमुनाजलमें मछलीका शरीर पाकर तथा दो सन्तानोंको उत्पन्न करके मर गयी और शापसे मुक्त हो गयी॥ ४५॥

इस प्रकार शापोद्धार होनेपर वह सुन्दरी मछलीका शरीर त्यागकर दिव्य रूप धारण करके स्वर्गको चली गयी॥ ४६॥

एवं जाता वरा पुत्री मत्स्यगन्धा वरानना।
पुत्रीव पाल्यमाना सा दाशगेहे व्यवर्धत॥ ४७

मत्स्यगन्धा तदा जाता किशोरी चातिसुप्रभा।
तस्य कार्याणि कुर्वाणा वासवी चातिसुप्रभा॥ ४८

इस प्रकार सुन्दर मुखवाली उस कन्या मत्स्यगन्धाका जन्म हुआ। दाशके घरमें पुत्रीकी भाँति पालन-पोषणकी जाती हुई वह कन्या बढ़ने लगी॥ ४७॥

जब वह मत्स्यगन्धा किशोरावस्थाको प्राप्त हुई, तब उसका सौन्दर्य और भी बढ़ गया। वह परम सुन्दरी वसुकन्या निषादराजके कार्योंको करती हुई रहने लगी॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
मत्स्यगन्धोत्पत्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यासजीकी उत्पत्ति और उनका तपस्याके लिये जाना

सूत उवाच

एकदा तीर्थयात्रायां व्रजन् पाराशरो मुनिः।
आजगाम महातेजाः कालिन्द्यास्तटमुत्तमम्॥ १

निषादमाह धर्मात्मा कुर्वन्तं भोजनं तदा।
प्रापयस्व परं पारं कालिन्द्या उडुपेन माम्॥ २

दाशः श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं कुर्वाणो भोजनं तटे।
उवाच तां सुतां बालां मत्स्यगन्धां मनोरमाम्॥ ३

उडुपेन मुनिं बाले परं पारं नयस्व ह।
गन्तुकामोऽस्ति धर्मात्मा तापसोऽयं शुचिस्मिते॥ ४

इत्युक्ता सा तदा पित्रा मत्स्यगन्धाथ वासवी।
उडुपे मुनिमासीनं संवाहयति भामिनी॥ ५

व्रजन् सूर्यसुतातोये भावित्वाद्दैवयोगतः।
कामार्तस्तु मुनिर्जातो दृष्ट्वा तां चारुलोचनाम्॥ ६

ग्रहीतुकामः स मुनिर्दृष्ट्वा व्यञ्जितयौवनाम्।
दक्षिणेन करेणैनामस्पृशद्दक्षिणे करे॥ ७

तमुवाचासितापाङ्गी स्मितपूर्वमिदं वचः।
कुलस्य सदृशं वः किं श्रुतस्य तपसश्च किम्॥ ८

त्वं वै वसिष्ठदायादः कुलशीलसमन्वितः।
किं चिकीर्षसि धर्मज्ञ मन्मथेन प्रपीडितः॥ ९

सूतजी बोले—एक बार तीर्थयात्रा करते हुए महान् तेजस्वी पराशरमुनि यमुनानदीके उत्तम तटपर आये और उन धर्मात्माने भोजन करते हुए निषादसे कहा—मुझको नावसे यमुनाके पार पहुँचा दो॥ १-२॥

मुनिका वचन सुनकर यमुनाके तटपर भोजन करते हुए उस निषादने अपनी सुन्दर युवा पुत्री मत्स्यगन्धासे कहा—'हे सुन्दर मुसकानवाली पुत्रि! तुम इन मुनिको नावमें बैठाकर पार उतार दो; क्योंकि ये धर्मात्मा तपस्वी उस पार जानेके इच्छुक हैं'॥ ३-४॥

पिताके ऐसा कहनेपर वह सुन्दर वासवी मत्स्यगन्धा मुनिको नावमें बैठाकर खेने लगी। यमुनानदीके जलपर नावसे चलते समय दैवयोगसे प्रारब्धानुसार मुनि पराशर उस सुन्दर नेत्रोंवाली कन्याको देखकर आसक्त हो गये॥ ५-६॥

प्रस्फुटित यौवनवाली उस कन्याको देखकर उसे प्राप्त करनेकी इच्छावाले मुनिराजने अपनी दाहिनी भुजासे उसकी दाहिनी भुजाका स्पर्श किया॥ ७॥

इसपर उस असितापांगीने मुसकराकर कहा—क्या आपका यह कृत्य आपके कुल, तपस्या तथा वेदज्ञानके अनुरूप है? हे धर्मज्ञ! आप वसिष्ठजीके वंशज हैं और कुल तथा शीलसे युक्त हैं फिर भी कामदेवसे पीड़ित होकर आप क्या करना चाहते हैं?॥ ८-९॥

दुर्लभं मानुषं जन्म भुवि ब्राह्मणसत्तम।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये ब्राह्मणत्वं विशेषतः॥ १०

कुलेन शीलेन तथा श्रुतेन
द्विजोत्तमस्त्वं किल धर्मविच्च।
अनार्यभावं कथमागतोऽसि
विप्रेन्द्र मां वीक्ष्य च मीनगन्धाम्॥ ११

मदीये शरीरे द्विजामोघबुद्धे
शुभं किं समालोक्य पाणिं ग्रहीतुम्।
समीपं समायासि कामातुरस्त्वं
कथं नाभिजानासि धर्मं स्वकीयम्॥ १२

अहो मन्दबुद्धिर्द्विजोऽयं ग्रहीष्य-
ञ्जले मग्न एवाद्य मां वै गृहीत्वा।
मनो व्याकुलं पञ्चबाणातिविद्धं
न कोऽपीह शक्तः प्रतीपं हि कर्तुम्॥ १३

इति सञ्चिन्त्य सा बाला तमुवाच महामुनिम्।
धैर्यं कुरु महाभाग परं पारं नयामि वै॥ १४

सूत उवाच

पराशरस्तु तच्छ्रुत्वा वचनं हितपूर्वकम्।
करं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सिन्धोः पारं गतः पुनः॥ १५

मत्स्यगन्धां प्रजग्राह मुनिः कामातुरस्तदा।
वेपमाना तु सा कन्या तमुवाच पुरःस्थितम्॥ १६

दुर्गन्धाहं मुनिश्रेष्ठ कथं त्वं नोपशङ्कसे।
समानरूपयोः कामसंयोगस्तु सुखावहः॥ १७

इत्युक्तेन तु सा कन्या क्षणमात्रेण भामिनी।
कृता योजनगन्धा तु सुरूपा च वरानना॥ १८

मृगनाभिसुगन्धां तां कृत्वा कान्तां मनोहराम्।
जग्राह दक्षिणे पाणौ मुनिर्मन्मथपीडितः॥ १९

ग्रहीतुकामं तं प्राह नाम्ना सत्यवती शुभा।
मुने पश्यति लोकोऽयं पिता चैव तटस्थितः॥ २०

पशुधर्मो न मे प्रीतिं जनयत्यतिदारुणः।
प्रतीक्षस्व मुनिश्रेष्ठ यावद्भवति यामिनी॥ २१

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर मनुष्यजन्म दुर्लभ है। उसमें भी ब्राह्मणकुलमें जन्म लेना तो मैं विशेषरूपसे दुर्लभ मानती हूँ॥ १०॥

हे विप्रेन्द्र! आप कुलसे, शीलसे तथा वेदाध्ययनसे एक धर्मपरायण श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं? मुझ मत्स्यगन्धाको देखकर आप अनाचारयुक्त विचारवाले कैसे हो गये? हे अमोघ बुद्धिवाले ब्राह्मण! मेरे शरीरमें स्थित किस विशेषताको देखकर आप मेरा हाथ पकड़नेके लिये कामासक्त होकर मेरी ओर चले आ रहे हैं? क्या आपको अपने धर्मका ज्ञान नहीं है?॥ ११-१२॥

अहो, ये मन्दबुद्धि ब्राह्मण इस जलमें मुझे पकड़नेको आतुर हो रहे हैं। मेरा स्पर्श करके कामबाणसे आहत इनका मन व्याकुल हो उठा है। इस समय कोई भी इन्हें रोकनेमें समर्थ नहीं है॥ १३॥

ऐसा सोचकर उस निषादकन्याने महामुनि पराशरसे कहा—हे महाभाग! आप धैर्य धारण करें; मैं अभी आपको उस पार ले चलती हूँ॥ १४॥

सूतजी बोले—मुनि पराशर उसका हितकारी वचन सुनकर उसका हाथ छोड़ करके वहीं स्थित हो गये और उस पार पहुँच गये॥ १५॥

तदनन्तर पराशरमुनिने मत्स्यगन्धाको पकड़ लिया। तब भयसे काँपती हुई वह कन्या सम्मुखस्थित मुनिसे कहने लगी—हे मुनिवर! मैं दुर्गन्धवाली हूँ, मुझसे क्या आपको घृणा नहीं हो रही है? समान रूपवालोंके बीच ही परस्पर सम्बन्ध आनन्ददायक होता है॥ १६-१७॥

मत्स्यगन्धाके ऐसा कहते ही पराशरमुनिने क्षण-मात्रमें अपने तपोबलसे उस भामिनी कन्याको सुमुखी, रूपवती तथा योजनगन्धा बना दिया॥ १८॥

उसे कस्तूरीकी सुगन्धिवाली मनोहर स्त्री बनाकर कामातुर मुनिराजने अपने दाहिने हाथसे उसे पकड़ लिया। तब सत्यवती नामवाली उस सुन्दरीने संयोगकी कामनावाले मुनिसे कहा—हे मुने! तटपर स्थित मेरे पिता तथा सभी लोग यहाँ हमें देख रहे हैं॥ १९-२०॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह भीषण पशुवत् व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लगता। जबतक रात नहीं हो जाती, तबतक प्रतीक्षा कीजिये॥ २१॥

रात्रौ व्यवाय उद्दिष्टो दिवा न मनुजस्य हि।
दिवासङ्गे महान् दोषः पश्यन्ति किल मानवाः॥ २२

कामं यच्छ महाबुद्धे लोकनिन्दा दुरासदा।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या युक्तमुक्तमुदारधीः॥ २३

नीहारं कल्पयामास शीघ्रं पुण्यबलेन वै।
नीहारे च समुत्पन्ने तटेऽतितमसा युते॥ २४

कामिनी तं मुनिं प्राह मृदुपूर्वमिदं वचः।
कन्याहं द्विजशार्दूल भुक्त्वा गन्तासि कामतः॥ २५

अमोघवीर्यस्त्वं ब्रह्मन् का गतिर्मे भवेदिति।
पितरं किं ब्रवीम्यद्य सगर्भा चेद्भवाम्यहम्॥ २६

त्वं गमिष्यसि भुक्त्वा मां किं करोमि वदस्व तत्।

पराशर उवाच

कान्तेऽद्य मत्प्रियं कृत्वा कन्यैव त्वं भविष्यसि॥ २७

वृणीष्व च वरं भीरु यं त्वमिच्छसि भामिनि।

सत्यवत्युवाच

यथा मे पितरौ लोके न जानीतो हि मानद॥ २८

कन्याव्रतं न मे हन्यात्तथा कुरु द्विजोत्तम।
पुत्रश्च त्वत्समः कामं भवेदद्भुतवीर्यवान्॥ २९

गन्धोऽयं सर्वदा मे स्याद्यौवनं च नवं नवम्।

पराशर उवाच

शृणु सुन्दरि पुत्रस्ते विष्णवंशसम्भवः शुचिः॥ ३०

भविष्यति च विख्यातस्त्रैलोक्ये वरवर्णिनि।
केनचित्कारणेनाहं जातः कामातुरस्त्वयि॥ ३१

कदापि च न सम्मोहो भूतपूर्वो वरानने।
दृष्ट्वा चाप्सरसां रूपं सदाहं धैर्यमावहम्॥ ३२

दैवयोगेन वीक्ष्य त्वां कामस्य वशगोऽभवम्।
तत्किञ्चित्कारणं विद्धि दैवं हि दुरतिक्रमम्॥ ३३

दृष्ट्वाहं चातिदुर्गन्धां त्वां कथं मोहमाप्नुयाम्।
पुराणकर्ता पुत्रस्ते भविष्यति वरानने॥ ३४
वेदविद्भागकर्ता च ख्यातश्च भुवनत्रये।

मनुष्यके लिये कामसंसर्ग रातमें ही विहित है, दिनमें नहीं। दिनमें संसर्ग करनेसे महान् दोष होता है और बहुत-से लोग उसे देख भी लेते हैं॥ २२॥

हे महाबुद्धे! अब आपकी जैसी इच्छा हो वैसा करें, लोकनिन्दा अत्यन्त कष्टकर होती है। सत्यवतीका कहा गया युक्तिसंगत वचन सुनकर उदार बुद्धिवाले पराशरमुनिने अपने पुण्यबलसे तत्क्षण कुहरा उत्पन्न कर दिया। उस कुहरेके उत्पन्न हो जानेपर अत्यन्त अन्धकारमय नदीतटपर उस कामिनीने पराशरमुनिसे मधुर वाणीमें यह वचन कहा—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं अभी कन्या हूँ और आप मेरे साथ संसर्ग करके चले जायँगे। हे ब्रह्मन्! आप अमोघ वीर्यवाले हैं, ऐसी स्थितिमें मेरी क्या गति होगी? यदि मैं गर्भधारण कर लूँगी तो पिताको क्या उत्तर दूँगी? हे ब्रह्मन्! मेरे साथ संसर्ग करके आप चले जायँगे तब मैं क्या करूँगी, उसे बताइये?॥ २३—२६$\frac{१}{२}$॥

पराशर बोले—हे प्रिये! आज मुझे प्रसन्न करके भी तुम कन्या ही बनी रहोगी। हे भामिनि! हे भीरु! तुम जो वर चाहती हो, उसे माँग लो॥ २७$\frac{१}{२}$॥

सत्यवती बोली—हे मानद! आप ऐसा वरदान दीजिये, जिससे मेरे माता-पिता लोकमें इसे न जान सकें। साथ ही हे विप्रवर! आप ऐसा करें, जिससे मेरा कन्याव्रत नष्ट न हो और जो पुत्र उत्पन्न हो, वह आपहीके समान अपूर्व ओजस्वी हो, मेरी यह सुगन्ध सदा बनी रहे और मेरा यौवन नित नूतन बना रहे॥ २८-२९$\frac{१}{२}$॥

पराशर बोले—हे सुन्दरि! सुनो, तुम्हारा पुत्र पवित्र तथा भगवान् विष्णुके अंशसे अवतीर्ण होगा। हे सुन्दरि! वह तीनों लोकोंमें विख्यात होगा। मैं तुम्हारे ऊपर किसी कारणविशेषसे ही कामासक्त हुआ हूँ। हे सुमुखि! मुझे ऐसा मोह पूर्वमें कभी नहीं हुआ। अप्सराओंके रूपको देखकर भी मैं सदा धैर्य धारण किये रहा। दैवयोगसे ही तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार कामके वशीभूत हुआ हूँ। इस विषयमें तुम कोई विशेष कारण ही समझो, दैवका अतिक्रमण अत्यन्त कठिन है, अन्यथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त तुम्हें देखकर मैं इस प्रकार क्यों मोहित होता! हे वरानने! तुम्हारा पुत्र पुराणोंका रचयिता, वेदोंका विभाग करनेवाला तथा तीनों लोकोंमें विख्यात होगा॥ ३०—३४$\frac{१}{२}$॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तां वशं यातां भुक्त्वा स मुनिसत्तमः॥ ३५

जगाम तरसा स्नात्वा कालिन्दीसलिले मुनिः।
सापि सत्यवती जाता सद्यो गर्भवती सती॥ ३६

सुषुवे यमुनाद्वीपे पुत्रं काममिवापरम्।
जातमात्रस्तु तेजस्वी तामुवाच स्वमातरम्॥ ३७

तपस्येव मनः कृत्वा विविशे चातिवीर्यवान्।
गच्छ मातर्यथाकामं गच्छाम्यहमतः परम्॥ ३८

तपः कर्तुं महाभागे दर्शयिष्यामि वै स्मृतः।
मातर्यदा भवेत्कार्यं तव किञ्चिदनुत्तमम्॥ ३९

स्मर्तव्योऽहं तदा शीघ्रमागमिष्यामि भामिनि।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि त्यक्त्वा चिन्तां सुखं वस॥ ४०

इत्युक्त्वा निर्ययौ व्यासः सापि पित्रन्तिकं गता।
द्वीपे न्यस्तस्तया बालस्तस्माद् द्वैपायनोऽभवत्॥ ४१

जातमात्रो जगामाशु वृद्धिं विष्णवंशयोगतः।
तीर्थे तीर्थे कृतस्नानश्चचार तप उत्तमम्॥ ४२

एवं द्वैपायनो जज्ञे सत्यवत्यां पराशरात्।
चकार वेदशाखाश्च प्राप्तं ज्ञात्वा कलेर्युगम्॥ ४३

वेदविस्तारकरणाद्व्यासनामाभवन्मुनिः।
पुराणसंहिताश्चक्रे महाभारतमुत्तमम्॥ ४४

शिष्यानध्यापयामास वेदान्कृत्वा विभागशः।
सुमन्तुं जैमिनिं पैलं वैशम्पायनमेव च॥ ४५

असितं देवलं चैव शुकं चैव स्वमात्मजम्।

सूतजी बोले—ऐसा कहकर अपने वशमें आयी हुई उस कन्याके साथ संसर्ग करके मुनिश्रेष्ठ पराशर तत्काल यमुनानदीमें स्नानकर वहाँसे शीघ्र चले गये। वह साध्वी सत्यवती भी तत्काल गर्भवती हो गयी॥ ३५-३६॥

[यथासमय] सत्यवतीने यमुनाजीके द्वीपमें दूसरे कामदेवके तुल्य एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। उत्पन्न होते ही उस तेजवान् पुत्रने अपनी मातासे कहा—हे माता! मनमें तपस्याका निश्चय करके ही अत्यन्त तेजस्वी मैं गर्भमें प्रविष्ट हुआ था। हे महाभागे! अब आप अपनी इच्छानुसार कहीं भी चली जायँ और मैं भी यहाँसे तप करनेके लिये जा रहा हूँ। हे माता! आपके स्मरण करनेपर मैं अवश्य ही दर्शन दूँगा। हे माता! जब कोई उत्तम कार्य आ पड़े तब आप मेरा स्मरण कीजियेगा, मैं शीघ्र ही उपस्थित हो जाऊँगा। हे भामिनि! आपका कल्याण हो, अब मैं चलूँगा। आप चिन्ता छोड़कर सुखपूर्वक रहिये॥ ३७—४०॥

ऐसा कहकर व्यासजी चले गये और वह सत्यवती भी अपने पिताके पास चली गयी। सत्यवतीने बालकको यमुनाद्वीपमें जन्म दिया था। अतः वह बालक 'द्वैपायन' नामसे विख्यात हुआ॥ ४१॥

विष्णुभगवान्‌के अंशावतार होनेके कारण वह बालक उत्पन्न होते ही शीघ्र बड़ा हो गया तथा अनेक तीर्थोंमें स्नान करता हुआ उत्तम तप करने लगा॥ ४२॥

इस प्रकार पराशरमुनिके द्वारा सत्यवतीके गर्भसे द्वैपायन उत्पन्न हुए और उन्होंने ही कलियुगको आया जानकर वेदोंको अनेक शाखाओंमें विभक्त किया, वेदोंका विस्तार करनेके कारण ही उन मुनिका नाम 'व्यास' पड़ गया। उन्होंने ही विभिन्न पुराणसंहिताओं तथा श्रेष्ठ महाभारतकी रचना की। उन्होंने ही वेदोंके अनेक विभाग करके उसे अपने शिष्यों—सुमन्तु, जैमिनि, पैल, वैशम्पायन, असित, देवल और अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया॥ ४३—४५ $\frac{१}{२}$॥

सूत उवाच

एतच्च कथितं सर्वं कारणं मुनिसत्तमाः॥ ४६

सत्यवत्याः सुतस्यापि समुत्पत्तिस्तथा शुभा।
संशयोऽत्र न कर्तव्यः सम्भवे मुनिसत्तमाः॥ ४७

महतां चरिते चैव गुणा ग्राह्या मुनेरिति।
कारणाच्च समुत्पत्तिः सत्यवत्या झषोदरे॥ ४८

पराशरेण संयोगः पुनः शन्तनुना तथा।
अन्यथा तु मुनेश्चित्तं कथं कामाकुलं भवेत्॥ ४९

अनार्यजुष्टं धर्मज्ञः कृतवान्स कथं मुनिः।
सकारणेयमुत्पत्तिः कथिताश्चर्यकारिणी॥ ५०

श्रुत्वा पापाच्च निर्मुक्तो नरो भवति सर्वथा।
य एतच्छुभमाख्यानं शृणोति श्रुतिमान्नरः॥ ५१
न दुर्गतिमवाप्नोति सुखी भवति सर्वदा॥ ५२

सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ मुनियो! मैंने यह सब उत्पत्तिका कारण आपलोगोंसे बता दिया, साथ ही सत्यवतीके पुत्र व्यासजीकी पवित्र उत्पत्तिका वर्णन कर दिया है। हे श्रेष्ठ मुनिगण! व्यासजीकी इस उत्पत्तिके विषयमें आपलोगोंको सन्देह नहीं करना चाहिये। महापुरुषोंके चरितसे केवल गुण ही ग्रहण करना चाहिये। किसी विशेष कारणसे ही मुनि व्यासका तथा मछलीके उदरसे सत्यवतीका जन्म, पराशरमुनिके साथ उनका संयोग और फिर राजा शन्तनुके साथ उनका विवाह हुआ। अन्यथा मुनि पराशरका चित्त कामासक्त ही क्यों होता? और धर्मके ज्ञाता वे महामुनि पराशर अनार्य लोगोंद्वारा आचरित किया जानेवाला ऐसा कृत्य क्यों करते! किसी विशेष कारणसे युक्त तथा आश्चर्यकारिणी यह उत्पत्ति मैंने बता दी, जिसे सुनकर मनुष्य निश्चितरूपसे पापसे मुक्त हो जाता है। जो श्रुतिपरायण मनुष्य इस शुभ आख्यानको सुनता है; वह दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता है तथा सर्वदा सुखी रहता है॥ ४६—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
व्यासजन्मवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

राजा शन्तनु, गंगा और भीष्मके पूर्वजन्मकी कथा

ऋषय ऊचुः

उत्पत्तिस्तु त्वया प्रोक्ता व्यासस्यामिततेजसः।
सत्यवत्यास्तथा सूत विस्तरेण त्वयानघ॥ १

तथाप्येकस्तु सन्देहश्चित्तेऽस्माकं तु संस्थितः।
न निवर्तति धर्मज्ञ कथितेन त्वयानघ॥ २

माता व्यासस्य या प्रोक्ता नाम्ना सत्यवती शुभा।
सा कथं नृपतिं प्राप्ता शन्तनुं धर्मवित्तमम्॥ ३

निषादपुत्रीं स कथं वृतवान्नृपतिः स्वयम्।
धर्मिष्ठः पौरवो राजा कुलहीनामसंवृताम्॥ ४

शन्तनोः प्रथमा पत्नी का ह्यभूत्कथयाधुना।
भीष्मः पुत्रोऽथ मेधावी वसोरंशः कथं पुनः॥ ५

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! हे अनघ! यद्यपि आपने परम तेजस्वी व्यास तथा सत्यवतीके जन्मकी कथा विस्तारपूर्वक कही तथापि हमलोगोंके चित्तमें एक बड़ी भारी शंका बनी हुई है। हे धर्मज्ञ! हे अनघ! वह शंका आपके कहनेपर भी दूर नहीं हो रही है॥ १-२॥

व्यासजीकी कल्याणमयी माता जो सत्यवती नामसे जानी जाती थीं, वे धर्मात्मा राजा शन्तनुको कैसे प्राप्त हुईं? कुल तथा आचरणसे हीन उस निषादकन्याका पुरुकुलमें उत्पन्न उन धर्मात्मा राजाने स्वयं कैसे वरण कर लिया?॥ ३-४॥

आप कृपा करके हमलोगोंको यह भी बतलाइये कि राजा शन्तनुकी पहली पत्नी कौन थी? वसुके अंशसे उत्पन्न मेधावी भीष्म उनके पुत्र कैसे हुए?॥ ५॥

त्वया प्रोक्तं पुरा सूत राजा चित्राङ्गदः कृतः।
सत्यवत्याः सुतो वीरो भीष्मेणामिततेजसा॥ ६

चित्राङ्गदे हते वीरे कृतस्तदनुजस्तथा।
विचित्रवीर्यनामासौ सत्यवत्याः सुतो नृपः॥ ७

ज्येष्ठे भीष्मे स्थिते पूर्वं धर्मिष्ठे रूपवत्यपि।
कृतवान्स कथं राज्यं स्थापितस्तेन जानता॥ ८

मृते विचित्रवीर्ये तु सत्यवत्यतिदुःखिता।
वधूभ्यां गोलकौ पुत्रौ जनयामास सा कथम्॥ ९

कथं राज्यं न भीष्माय ददौ सा वरवर्णिनी।
न कृतस्तु कथं तेन वीरेण दारसंग्रहः॥ १०

अधर्मस्तु कृतः कस्माद्व्यासेनामिततेजसा।
ज्येष्ठेन भ्रातृभार्यायां पुत्रावुत्पादिताविति॥ ११

पुराणकर्ता धर्मात्मा स कथं कृतवान्मुनिः।
सेवनं परदाराणां भ्रातुश्चैव विशेषतः॥ १२

जुगुप्सितमिदं कर्म स कथं कृतवान्मुनिः।
शिष्टाचारः कथं सूत वेदानुमितिकारकः॥ १३

व्यासशिष्योऽसि मेधाविन् सन्देहं छेत्तुमर्हसि।
श्रोतुकामा वयं सर्वे धर्मक्षेत्रे कृतक्षणाः॥ १४

सूत उवाच

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो महाभिष इति स्मृतः।
सत्यवान्धर्मशीलश्च चक्रवर्ती नृपोत्तमः॥ १५

अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च।
तोषयामास देवेन्द्रं स्वर्गं प्राप महामतिः॥ १६

एकदा ब्रह्मसदनं गतो राजा महाभिषः।
सुराः सर्वे समाजग्मुः सेवनार्थं प्रजापतिम्॥ १७

गङ्गा महानदी तत्र संस्थिता सेवितुं विभुम्।
तस्या वासः समुद्धूतं मारुतेन तरस्विना॥ १८

अधोमुखाः सुराः सर्वे न विलोक्यैव तां स्थिताः।
राजा महाभिषस्तां तु निःशङ्कः समपश्यत॥ १९

हे सूतजी! आप यह पहले ही कह चुके हैं कि सत्यवतीके वीर पुत्र चित्रांगदको अमित तेजवाले भीष्मने राजा बनाया था और वीर चित्रांगदके मारे जानेपर उसके अनुज तथा सत्यवतीके पुत्र विचित्रवीर्यको उन्होंने राजा बनाया॥ ६-७॥

रूपसम्पन्न तथा ज्येष्ठ पुत्र धर्मात्मा भीष्मके रहते हुए विचित्रवीर्यने राज्य कैसे किया और सब कुछ जानते हुए भी भीष्मने उन्हें राज्यपर कैसे स्थापित किया?॥ ८॥

विचित्रवीर्यके मरनेपर अत्यन्त दुःखित माता सत्यवतीने अपनी दोनों पुत्रवधुओंसे दो गोलक पुत्र कैसे उत्पन्न कराये?॥ ९॥

उन सुन्दरी सत्यवतीने उस समय ज्येष्ठ पुत्र भीष्मको राजा क्यों नहीं बनाया और उन पराक्रमी भीष्मने अपना विवाह क्यों नहीं किया?॥ १०॥

अमित तेजस्वी बड़े भाई व्यासजीने ऐसा अधर्म क्यों किया जो कि उन्होंने नियोगद्वारा दो पुत्र उत्पन्न किये?॥ ११॥

पुराणोंके रचयिता व्यासमुनिने धर्मज्ञ होते हुए भी ऐसा कार्य क्यों किया; हे सूतजी! क्या यही वेदोंसे अनुमोदित शिष्टाचार है?॥ १२-१३॥

हे मेधाविन्! आप व्यासजीके शिष्य हैं, इसलिये आप हमारी इन सभी शंकाओंका समाधान करनेमें समर्थ हैं। हम सभी इस धर्मक्षेत्रमें इन प्रश्नोंके उत्तर सुननेको उत्सुक हो रहे हैं॥ १४॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इक्ष्वाकुकुलमें महाभिष नामके एक सत्यवादी, धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा उत्पन्न हुए—ऐसा कहा जाता है॥ १५॥

उन बुद्धिमान् राजाने हजारों अश्वमेध तथा सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया और स्वर्ग प्राप्त किया था॥ १६॥

एक बार राजा महाभिष ब्रह्मलोक गये। वहाँ प्रजापतिकी सेवाके लिये सभी देवता आये हुए थे। उस समय देवनदी गंगाजी भी ब्रह्माजीकी सेवामें उपस्थित थीं। उस समय तीव्रगामी पवनने उनका वस्त्र उड़ा दिया। सभी देवता अपना सिर नीचा किये उन्हें बिना देखे खड़े रहे, किंतु राजा महाभिष निःशंक भावसे उनकी ओर देखते रह गये॥ १७—१९॥

सापि तं प्रेमसंयुक्तं नृपं ज्ञातवती नदी।
दृष्ट्वा तौ प्रेमसंयुक्तौ निर्लज्जौ काममोहितौ॥ २०

ब्रह्मा चुकोप तौ तूर्णं शशाप च रुषान्वितः।
मर्त्यलोकेषु भूपाल जन्म प्राप्य पुनर्दिवम्॥ २१

पुण्येन महताविष्टस्त्वमवाप्स्यसि सर्वथा।
गङ्गां तथोक्तवान्ब्रह्मा वीक्ष्य प्रेमवतीं नृपे॥ २२

विमनस्कौ तु तौ तूर्णं निःसृतौ ब्रह्मणोऽन्तिकात्।
स नृपांश्चिन्तयित्वाथ भूर्लोके धर्मतत्परान्॥ २३

प्रतीपं चिन्तयामास पितरं पुरुवंशजम्।
एतस्मिन्समये चाष्टौ वसवः स्त्रीसमन्विताः॥ २४

वसिष्ठस्याश्रमं प्राप्ता रममाणा यदृच्छया।
पृथ्वादीनां वसूनां च मध्ये कोऽपि वसूत्तमः॥ २५

द्यौर्नामा तस्य भार्याथ नन्दिनीं गां ददर्श ह।
दृष्ट्वा पतिं सा पप्रच्छ कस्येयं धेनुरुत्तमा॥ २६

द्यौस्तामाह वसिष्ठस्य गौरियं शृणु सुन्दरि।
दुग्धमस्याः पिबेद्यस्तु नारी वा पुरुषोऽथ वा॥ २७

अयुतायुर्भवेन्नूनं सदैवागतयौवनः।
तच्छ्रुत्वा सुन्दरी प्राह मृत्युलोकेऽस्ति मे सखी॥ २८

उशीनरस्य राजर्षेः पुत्री परमशोभना।
तस्या हेतोर्महाभाग सवत्सां गां पयस्विनीम्॥ २९

आनयस्वाश्रमं श्रेष्ठं नन्दिनीं कामदां शुभाम्।
यावदस्याः पयः पीत्वा सखी मम सदैव हि॥ ३०

मानुषेषु भवेदेका जरारोगविवर्जिता।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या द्यौर्जहार च नन्दिनीम्॥ ३१

अवमन्य मुनिं दान्तं पृथ्वाद्यैः सहितोऽनघः।
हृतायामथ नन्दिन्यां वसिष्ठस्तु महातपाः॥ ३२

आजगामाश्रमपदं फलान्यादाय सत्वरः।
नापश्यत यदा धेनुं सवत्सां स्वाश्रमे मुनिः॥ ३३

उन गंगानदीने भी राजाको अपनेपर प्रेमासक्त जाना। उन दोनोंको इस प्रकार मुग्ध देखकर ब्रह्माजी क्रोधित हो गये और कोपाविष्ट होकर शीघ्र ही उन दोनोंको शाप दे दिया—हे राजन्! मनुष्यलोकमें तुम्हारा जन्म होगा। वहाँ जब तुम अधिक पुण्य एकत्र कर लोगे, तब पुनः स्वर्गलोकमें आओगे। गंगाको महाभिष-राजापर प्रेमासक्त जानकर ब्रह्माजीने उन्हें [गंगाको] भी उसी प्रकार शाप दे दिया॥ २०—२२॥

इस प्रकार वे दोनों दुःखी मनसे ब्रह्माजीके पाससे शीघ्र ही चले गये। राजा अपने मनमें सोचने लगे कि इस मृत्युलोकमें कौन ऐसे राजा हैं, जो धर्मपरायण हैं। ऐसा विचारकर उन्होंने पुरुवंशीय महाराज 'प्रतीप' को ही पिता बनानेका निश्चय कर लिया। इसी बीच आठों वसु अपनी-अपनी स्त्रीके साथ विहार करते हुए स्वेच्छया महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर आ पहुँचे। उन पृथु आदि वसुओंमें 'द्यौ' नामक एक श्रेष्ठ वसु थे। उनकी पत्नीने 'नन्दिनी' गौको देखकर अपने पतिसे पूछा कि यह सुन्दर गाय किसकी है?॥ २३—२६॥

द्यौने उससे कहा—हे सुन्दरि! सुनो, यह महर्षि वसिष्ठजीकी गाय है। इस गायका दूध स्त्री या पुरुष जो कोई भी पीता है, उसकी आयु दस हजार वर्षकी हो जाती है और उसका यौवन सर्वदा बना रहता है। यह सुनकर उस सुन्दरी स्त्रीने कहा—मृत्युलोकमें मेरी एक सखी है। मेरी वह सखी राजर्षि उशीनरकी परम सुन्दरी कन्या है। हे महाभाग! उसके लिये अत्यन्त सुन्दर तथा सब प्रकारकी कामनाओंको देनेवाली इस गायको बछड़े-सहित अपने आश्रममें ले चलिये। जब मेरी सखी इसका दूध पीयेगी तब वह निर्जरा एवं रोगरहित होकर मनुष्योंमें एकमात्र अद्वितीय बन जायगी। उसका वचन सुनकर द्यौ नामके वसुने 'पृथु' आदि अष्टवसुओंके साथ जितेन्द्रिय मुनिका अपमान करके नन्दिनीका अपहरण कर लिया॥ २७—३१½॥

नन्दिनीका हरण हो जानेपर महातपस्वी वसिष्ठ फल लेकर शीघ्र ही अपने आश्रम आ गये। जब मुनिने अपने आश्रममें बछड़ेसहित नन्दिनीगायको नहीं देखा तब वे तेजस्वी वनों एवं गुफाओंमें उसे ढूँढ़ने

मृगयामास तेजस्वी गह्वरेषु वनेष्वपि।
नासादिता यदा धेनुश्चुकोपातिशयं मुनिः॥ ३४

वारुणिश्चापि विज्ञाय ध्यानेन वसुभिर्हृताम्।
वसुभिर्मे हृता धेनुर्यस्मान्मामवमन्य वै॥ ३५

तस्मात्सर्वे जनिष्यन्ति मानुषेषु न संशयः।
एवं शशाप धर्मात्मा वसूंस्तान्वारुणिः स्वयम्॥ ३६

श्रुत्वा विमनसः सर्वे प्रययुर्दुःखिताश्च ते।
शप्ताः स्म इति जानन्त ऋषिं तमुपचक्रमुः॥ ३७

प्रसादयन्तस्तमृषिं वसवः शरणं गताः।
मुनिस्तानाह धर्मात्मा वसून्दीनान्पुरःस्थितान्॥ ३८

अनुसंवत्सरं सर्वे शापमोक्षमवाप्स्यथ।
येनेयं विहृता धेनुर्नन्दिनी मम वत्सला॥ ३९

तस्माद् द्यौर्मानुषे देहे दीर्घकालं वसिष्यति।
ते शप्ताः पथि गच्छन्तीं गङ्गां दृष्ट्वा सरिद्वराम्॥ ४०

ऊचुस्तां प्रणताः सर्वे शप्तां चिन्तातुरां नदीम्।
भविष्यामो वयं देवि कथं देवाः सुधाशनाः॥ ४१

मानुषाणां च जठरे चिन्तेयं महती हि नः।
तस्मात्त्वं मानुषी भूत्वा जनयास्मान्सरिद्वरे॥ ४२

शन्तनुर्नाम राजर्षिस्तस्य भार्या भवानघे।
जाताञ्जाताञ्जले चास्मान्निःक्षिपस्व सुरापगे॥ ४३

एवं शापविनिर्मोक्षो भविता नात्र संशयः।
तथेत्युक्ताश्च ते सर्वे जग्मुर्लोकं स्वकं पुनः॥ ४४

गङ्गापि निर्गता देवी चिन्त्यमाना पुनः पुनः।
महाभिषो नृपो जातः प्रतीपस्य सुतस्तदा॥ ४५

शन्तनुर्नाम राजर्षिर्धर्मात्मा सत्यसङ्गरः।
प्रतीपस्तु स्तुतिं चक्रे सूर्यस्यामिततेजसः॥ ४६

तदा च सलिलात्तस्मान्निःसृता वरवर्णिनी।
दक्षिणं शालसंकाशमूरुं भेजे शुभानना॥ ४७

लगे, जब वह गाय नहीं मिली तब वरुणपुत्र मुनि वसिष्ठजी ध्यानयोगसे उसे वसुओंके द्वारा हरी गयी जानकर अत्यन्त कुपित हुए। वसुओंने मेरी अवमानना करके मेरी गौ चुरा ली है। वे सभी मानवयोनिमें जन्म ग्रहण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार धर्मात्मा वसिष्ठजीने उन वसुओंको शाप दिया॥ ३२—३६॥

यह सुनकर वे सभी वसु खिन्नमनस्क और दुःखित हो गये और वहाँसे चल दिये। हमें शाप दे दिया गया है—यह जानकर वे ऋषि वसिष्ठके पास पहुँचे और उन्हें प्रसन्न करते हुए वे सभी वसु उनके शरणागत हो गये। तब धर्मात्मा मुनि वसिष्ठजीने उन सामने खड़े वसुओंको देखकर कहा—तुमलोगोंमेंसे [सात वसु] एक-एक वर्षके अन्तरालसे ही शापसे मुक्त हो जायँगे; परंतु जिसने मेरी प्रिय सवत्सा नन्दिनीका अपहरण किया है, वह 'द्यौ' नामक वसु मनुष्य-शरीरमें ही बहुत दिनोंतक रहेगा॥ ३७—३९$\frac{१}{२}$॥

उन अभिशप्त वसुओंने मार्गमें जाती हुई नदियोंमें उत्तम गंगाजीको देखकर उन अभिशप्त तथा चिन्तातुर गंगाजीसे प्रणामपूर्वक कहा—हे देवि! अमृत पीनेवाले हम देवता मानवकुक्षिसे कैसे उत्पन्न होंगे, यह हमें महान् चिन्ता है, अतः हे नदियोंमें श्रेष्ठ! आप ही मानुषी बनकर हमलोगोंको जन्म दें। पृथ्वीपर शन्तनु नामक एक राजर्षि हैं, हे अनघे! आप उन्हींकी भार्या बन जायँ और हे सुरापगे! हमें क्रमशः जन्म लेनेपर आप जलमें छोड़ती जायँ। आपके ऐसा करनेसे हमलोग भी शापसे मुक्त हो जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है। गंगाजीने जब उनसे 'तथास्तु' कह दिया तब वे सब वसु अपने-अपने लोकको चले गये और गंगाजी भी बार-बार विचार करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ४०—४४$\frac{१}{२}$॥

उस समय राजा महाभिषने राजा प्रतीपके पुत्रके रूपमें जन्म लिया। उन्हींका नाम शन्तनु पड़ा, जो सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा राजर्षि हुए। महाराज प्रतीपने परम तेजस्वी भगवान् सूर्यकी आराधना की। उस समय जलमेंसे एक परम सुन्दर स्त्री निकल पड़ी और वह सुमुखी आकर तुरंत ही महाराजके शाल वृक्षके समान विशाल दाहिने जंघेपर विराजमान हो गयी।

अङ्के स्थितां स्त्रियं चाह मा पृष्ट्वा किं वरानने।
ममोरावास्थितासि त्वं किमर्थं दक्षिणे शुभे॥ ४८

सा तमाह वरारोहा यदर्थं राजसत्तम।
स्थितास्म्यङ्के कुरुश्रेष्ठ कामयानां भजस्व माम्॥ ४९

तामवोचदथो राजा रूपयौवनशालिनीम्।
नाहं परस्त्रियं कामाद् गच्छेयं वरवर्णिनीम्॥ ५०

स्थिता दक्षिणमूरुं मे त्वमाश्लिष्य च भामिनि।
अपत्यानां स्नुषाणां च स्थानं विद्धि शुचिस्मिते॥ ५१

स्नुषा मे भव कल्याणि जाते पुत्रेऽतिवाञ्छिते।
भविष्यति च मे पुत्रस्तव पुण्यान्न संशयः॥ ५२

तथेत्युक्त्वा गता सा वै कामिनी दिव्यदर्शना।
राजा चापि गृहं प्राप्तश्चिन्तयंस्तां स्त्रियं पुनः॥ ५३

ततः कालेन कियता जाते पुत्रे वयस्विनि।
वनं जिगमिषू राजा पुत्रं वृत्तान्तमूचिवान्॥ ५४

वृत्तान्तं कथयित्वा तु पुनरूचे निजं सुतम्।
यदि प्रयाति सा बाला त्वां वने चारुहासिनी॥ ५५

कामयाना वरारोहा तां भजेथा मनोरमाम्।
न प्रष्टव्या त्वया कासि मन्नियोगान्नराधिप॥ ५६

धर्मपत्नीं च तां कृत्वा भविता त्वं सुखी किल।

सूत उवाच

एवं सन्दिश्य तं पुत्रं भूपतिः प्रीतमानसः॥ ५७

दत्त्वा राज्यश्रियं सर्वां वनं राजा विवेश ह।
तत्रापि च तपस्तप्त्वा समाराध्य पराम्बिकाम्॥ ५८

जगाम स्वर्गं राजासौ देहं त्यक्त्वा स्वतेजसा।
राज्यं प्राप महातेजाः शन्तनुः सार्वभौमिकम्॥ ५९

प्रजां वै पालयामास धर्मदण्डो महीपतिः॥ ६०

अंकमें बैठी हुई उस स्त्रीसे राजाने पूछा—'हे वरानने! तुम मुझसे बिना पूछे ही मेरे शुभ दाहिने जंघेपर क्यों बैठ गयी?'॥ ४५—४८॥

उस सुन्दरीने उनसे कहा—'हे नृपश्रेष्ठ! हे कुरुश्रेष्ठ! मैं जिस कामनासे आपके अंकमें बैठी हूँ, उस कामनावाली मुझे आप स्वीकार करें'॥ ४९॥

उस रूपयौवनसम्पन्ना सुन्दरीसे राजाने कहा—'मैं किसी सुन्दरी परस्त्रीको कामकी इच्छासे नहीं स्वीकार करता'॥ ५०॥

हे भामिनि! हे शुचिस्मिते! तुम मेरे दाहिने जंघेपर प्रेमपूर्वक आकर बैठ गयी हो, उसे तुम पुत्रों तथा पुत्रवधुओंका स्थान समझो। अतः हे कल्याणि! मेरे मनोवांछित पुत्रके उत्पन्न होनेपर तुम मेरी पुत्रवधू हो जाओ। तुम्हारे पुण्यसे मुझे पुत्र हो जायगा, इसमें संशय नहीं है॥ ५१-५२॥

वह दिव्य दर्शनवाली कामिनी 'तथास्तु' कहकर चली गयी और उस स्त्रीके विषयमें सोचते हुए राजा प्रतीप भी अपने घर चले गये॥ ५३॥

समय बीतनेपर पुत्रके युवा होनेपर वन जानेकी इच्छावाले राजाने अपने पुत्रको वह समस्त पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया॥ ५४॥

सारी बात बताकर राजाने अपने पुत्रसे कहा—'यदि वह सुन्दरी बाला तुम्हें कभी वनमें मिले और अपनी अभिलाषा प्रकट करे तो उस मनोरमाको स्वीकार कर लेना तथा उससे मत पूछना कि तुम कौन हो? यह मेरी आज्ञा है, उसे अपनी धर्मपत्नी बनाकर तुम सुखी रहोगे'॥ ५५-५६$\frac{१}{२}$॥

सूतजी बोले—इस प्रकार अपने पुत्रको आदेश देकर महाराज प्रतीप प्रसन्नताके साथ उन्हें सारा राज्य-वैभव सौंपकर वनको चले गये। वहाँ जाकर वे तप करके तथा आदिशक्ति भगवती जगदम्बिकाकी आराधना करके अपने तेजसे शरीर छोड़कर स्वर्ग चले गये। महातेजस्वी राजा शन्तनुने सार्वभौम राज्य प्राप्त किया और वे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे॥ ५७—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
प्रतीपसकाशाच्छन्तनुजन्मवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गंगाजीद्वारा राजा शन्तनुका पतिरूपमें वरण, सात पुत्रोंका जन्म तथा गंगाका उन्हें अपने जलमें प्रवाहित करना, आठवें पुत्रके रूपमें भीष्मका जन्म तथा उनकी शिक्षा-दीक्षा

सूत उवाच

प्रतीपेऽथ दिवं याते शन्तनुः सत्यविक्रमः।
बभूव मृगयाशीलो निघ्नन्व्याघ्रान्मृगान्नृपः॥ १

स कदाचिद्वने घोरे गङ्गातीरे चरन्नृपः।
ददर्श मृगशावाक्षीं सुन्दरीं चारुभूषणाम्॥ २

दृष्ट्वा तां नृपतिर्मग्नः पित्रोक्तेयं वरानना।
रूपयौवनसम्पन्ना साक्षाल्लक्ष्मीरिवापरा॥ ३

पिबन्मुखाम्बुजं तस्या न तृप्तिमगमन्नृपः।
हृष्टरोमाभवत्तत्र व्याप्तचित्त इवानघः॥ ४

महाभिषं सापि मत्वा प्रेमयुक्ता बभूव ह।
किञ्चिन्मन्दस्मितं कृत्वा तस्थावग्रे नृपस्य च॥ ५

वीक्ष्य तामसितापाङ्गीं राजा प्रीतमना भृशम्।
उवाच मधुरं वाक्यं सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा॥ ६

देवी वा त्वं च वामोरु मानुषी वा वरानने।
गन्धर्वी वाथ यक्षी वा नागकन्याप्सरापि वा॥ ७

यासि कासि वरारोहे भार्या मे भव सुन्दरि।
प्रेमयुक्तस्मितैव त्वं धर्मपत्नी भवाद्य मे॥ ८

सूत उवाच

राजा तां नाभिजानाति गङ्गेयमिति निश्चितम्।
महाभिषं समुत्पन्नं नृपं जानाति जाह्नवी॥ ९

पूर्वप्रेमसमायोगाच्छ्रुत्वा वाचं नृपस्य ताम्।
उवाच नारी राजानं स्मितपूर्वमिदं वचः॥ १०

स्त्र्युवाच

जानामि त्वां नृपश्रेष्ठ प्रतीपतनयं शुभम्।
का न वाञ्छति चार्वङ्गी भावित्वात्सदृशं पतिम्॥ ११

सूतजी बोले—प्रतीपके स्वर्ग चले जानेपर सत्यपराक्रमी राजा शन्तनु व्याघ्र तथा मृगोंको मारते हुए मृगयामें तत्पर हो गये॥ १॥

किसी समय गंगाके किनारे घने वनमें विचरण करते हुए राजाने मृगके बच्चे-जैसी आँखोंवाली तथा सुन्दर आभूषणोंसे युक्त एक सुन्दर स्त्रीको देखा॥ २॥

उसे देखकर राजा शन्तनु हर्षित हो गये और सोचने लगे कि साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान रूप-यौवनसे सम्पन्न यह स्त्री वही है, जिसके विषयमें पिताजीने मुझे बताया था॥ ३॥

उसके मुखकमलका पान करते हुए राजा तृप्त नहीं हुए। हर्षातिरेकसे उन निष्पाप राजाको रोमांच हो गया और उनका चित्त उस स्त्रीमें रम गया॥ ४॥

वह स्त्री भी उन्हें राजा महाभिष जानकर प्रेमासक्त हो गयी। वह मन्द-मन्द मुसकराती हुई राजाके सामने खड़ी हो गयी। उस सुन्दरीको देखकर राजा अत्यन्त प्रेमविवश हो गये तथा कोमल वाणीसे उसे सान्त्वना देते हुए मधुर वचन कहने लगे॥ ५-६॥

हे वामोरु! हे सुमुखि! तुम कोई देवी, मानुषी, गन्धर्वी, यक्षी, नागकन्या अथवा अप्सरा तो नहीं हो। हे वरारोहे! तुम जो कोई भी हो, मेरी भार्या बन जाओ। हे सुन्दरि! तुम प्रेमपूर्वक मुसकरा रही हो; अब मेरी धर्मपत्नी बन जाओ॥ ७-८॥

सूतजी बोले—राजा शन्तनु तो निश्चितरूपसे नहीं जान सके कि ये वे ही गंगा हैं, किंतु गंगाने उन्हें पहचान लिया कि ये शन्तनुके रूपमें उत्पन्न वही राजा महाभिष हैं। पूर्वकालीन प्रेमवश राजा शन्तनुके उस वचनको सुनकर उस स्त्रीने मन्द मुसकान करके यह वचन कहा॥ ९-१०॥

स्त्री बोली—हे नृपश्रेष्ठ! मैं यह जानती हूँ कि आप महाराज प्रतीपके योग्य पुत्र हैं। अतः भला कौन ऐसी स्त्री होगी, जो संयोगवश अपने अनुरूप पुरुषको पाकर भी उसे पतिरूपमें स्वीकार न करेगी॥ ११॥

वाग्बन्धेन नृपश्रेष्ठ वरिष्यामि पतिं किल।
शृणु मे समयं राजन् वृणोमि त्वां नृपोत्तम॥ १२

यच्च कुर्यामहं कार्यं शुभं वा यदि वाशुभम्।
न निषेध्या त्वया राजन्न वक्तव्यं तथाप्रियम्॥ १३

यदा च त्वं नृपश्रेष्ठ न करिष्यसि मे वचः।
तदा मुक्त्वा गमिष्यामि यथेष्टदेशं मारिष॥ १४

स्मृत्वा जन्म वसूनां सा प्रार्थनापूर्वकं हृदि।
महाभिषस्य प्रेमाथ विचिन्त्यैव च जाह्नवी॥ १५

तथेत्युक्ताथ सा देवी चकार नृपतिं पतिम्।
एवं वृता नृपेणाथ गङ्गा मानुषरूपिणी॥ १६

नृपस्य मन्दिरं प्राप्ता सुभगा वरवर्णिनी।
नृपतिस्तां समासाद्य चिक्रीडोपवने शुभे॥ १७

सापि तं रमयामास भावज्ञा वै वराङ्गना।
न बुबोध नृपः क्रीडन्गतान्वर्षगणानथ॥ १८

स तया मृगशावाक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा।
सा सर्वगुणसम्पन्ना सोऽपि कामविचक्षणः॥ १९

रेमाते मन्दिरे दिव्ये रमानारायणाविव।
एवं गच्छति काले सा दधार नृपतेस्तदा॥ २०

गर्भं गङ्गा वसुं पुत्रं सुषुवे चारुलोचना।
जातमात्रं सुतं वारि चिक्षेपैवं द्वितीयके॥ २१

तृतीयेऽथ चतुर्थेऽथ पञ्चमे षष्ठ एव च।
सप्तमे वा हते पुत्रे राजा चिन्तापरोऽभवत्॥ २२

किं करोम्यद्य वंशो मे कथं स्यात्सुस्थिरो भुवि।
सप्त पुत्रा हता नूनमनया पापरूपया॥ २३

हे नृपश्रेष्ठ! वचनबद्ध करके ही मैं आपको अपना पति स्वीकार करूँगी। हे राजन्! हे नृपोत्तम! अब आप मेरी शर्त सुनिये, जिससे मैं आपका वरण कर सकूँ॥ १२॥

हे राजन्! मैं भला-बुरा जो भी कार्य करूँ, आप मुझे मना नहीं करेंगे तथा न कोई अप्रिय बात ही कहेंगे। जिस समय आप मेरा यह वचन नहीं मानेंगे, उसी समय हे मान्य नृपश्रेष्ठ! मैं आपको त्यागकर जहाँ चाहूँगी, उस जगह चली जाऊँगी॥ १३-१४॥

उस समय प्रार्थनापूर्वक वसुओंके जन्म ग्रहण करनेका स्मरण करके तथा महाभिषके पूर्वकालीन प्रेमको अपने मनमें सोच करके गंगाजीने राजा शन्तनुके 'तथास्तु' कहनेपर उन्हें अपना पति बनाना स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मानवीरूप धारण करनेवाली रूपवती तथा सुन्दर वर्णवाली गंगा महाराज शन्तनुकी पत्नी बनकर राजभवनमें पहुँच गयीं। राजा शन्तनु उन्हें पाकर सुन्दर उपवनमें विहार करने लगे॥ १५—१७॥

भावोंको जाननेवाली वे सुन्दरी गंगा भी राजा शन्तनुके साथ विहार करने लगीं। उनके साथ महाराज शन्तनुको क्रीडा करते अनेक वर्ष बीत गये, पर उन्हें समय बीतनेका बोध ही न हुआ। वे उन मृगलोचनाके साथ उसी प्रकार विहार करते थे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। सर्वगुणसम्पन्ना गंगा तथा चतुर शन्तनु भी दिव्य भवनमें लक्ष्मी तथा नारायणकी भाँति विहार करने लगे॥ १८-१९$\frac{१}{२}$॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गंगाजीने महाराज शन्तनुसे गर्भ धारण किया और यथासमय उन सुनयनीने एक वसुको पुत्ररूपमें जन्म दिया। उन्होंने उस बालकको उत्पन्न होते ही तत्काल जलमें फेंक दिया। इस प्रकार दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें, छठें तथा सातवें पुत्रके मारे जानेपर राजा शन्तनुको बड़ी चिन्ता हुई॥ २०—२२॥

[उन्होंने सोचा—] अब मैं क्या करूँ? मेरा वंश इस पृथ्वीपर सुस्थिर कैसे होगा? इस पापिनीने मेरे सात पुत्र मार डाले। यदि इसे रोकता हूँ तो

निवारयामि यदि मां त्यक्त्वा यास्यति सर्वथा।
अष्टमोऽयं सुसम्प्राप्तो गर्भो मे मनसीप्सितः॥ २४

न वारयामि चेदद्य सर्वथेयं जले क्षिपेत्।
भविता वा न वा चाग्रे संशयोऽयं ममाद्भुतः॥ २५

सम्भवेऽपि च दुष्टेयं रक्षयेद्वा न रक्षयेत्।
एवं संशयिते कार्ये किं कर्तव्यं मयाधुना॥ २६

वंशस्य रक्षणार्थं हि यत्नः कार्यः परो मया।
ततः काले यदा जातः पुत्रोऽयमष्टमो वसुः॥ २७

मुनेर्येन हृता धेनुर्नन्दिनी स्त्रीजितेन हि।
तं दृष्ट्वा नृपतिः पुत्रं तामुवाच पतन्पदे॥ २८

दासोऽस्मि तव तन्वङ्गि प्रार्थयामि शुचिस्मिते।
पुत्रमेकं पुषाम्येनं देहि जीवितमद्य मे॥ २९

हिंसिताः सप्त पुत्रा मे करभोरु त्वया शुभाः।
अष्टमं रक्ष सुश्रोणि पतामि तव पादयोः॥ ३०

अन्यद्वै प्रार्थितं तेऽद्य ददाम्यथ च दुर्लभम्।
वंशो मे रक्षणीयोऽद्य त्वया परमशोभने॥ ३१

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे वेदविदो विदुः।
तस्मादद्य वरारोहे प्रार्थयाम्यष्टमं सुतम्॥ ३२

इत्युक्तापि गृहीत्वा तं यदा गन्तुं समुत्सुका।
तदातिकुपितो राजा तामुवाचातिदुःखितः॥ ३३

पापिष्ठे किं करोम्यद्य निरयान्न बिभेषि किम्।
कासि पापकराणां त्वं पुत्री पापरता सदा॥ ३४

यथेच्छं गच्छ वा तिष्ठ पुत्रो मे स्थीयतामिह।
किं करोमि त्वया पापे वंशान्तकरयानया॥ ३५

यह मुझे त्यागकर चली जायगी। मेरा अभिलषित आठवाँ गर्भ भी इसे प्राप्त हो गया है। यदि अब भी मैं इसे रोकता नहीं हूँ तो यह इसे भी जलमें फेंक देगी। यह भी मुझे महान् सन्देह है कि भविष्यमें कोई और सन्तति होगी अथवा नहीं। यदि उत्पन्न हो भी तो पता नहीं कि यह दुष्टा उसकी रक्षा करेगी अथवा नहीं? इस संशयकी स्थितिमें मैं अब क्या करूँ?॥ २३—२६॥

वंशकी रक्षाके लिये मुझे कोई दूसरा यत्न करना ही होगा। तदनन्तर यथासमय जब वह आठवाँ 'द्यौ' नामक वसु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी स्त्रीके वशीभूत होकर वसिष्ठकी नन्दिनी गौका हरण कर लिया था, तब उस पुत्रको देखकर राजा शन्तनु गंगाजीके पैरोंपर गिरते हुए कहने लगे॥ २७-२८॥

हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे शुचिस्मिते! मैं प्रार्थना करता हूँ। मैं इस पुत्रको पालना चाहता हूँ, अतः इसे जीवित ही मुझे दे दो॥ २९॥

हे करभोरु! तुमने मेरे सात सुन्दर पुत्रोंको मार डाला, किंतु इस आठवें पुत्रकी रक्षा करो। हे सुश्रोणि! मैं तुम्हारे पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ३०॥

हे परम रूपवती! इसके बदले तुम मुझसे जो माँगोगी, मैं वह दुर्लभ वस्तु भी तुम्हें दूँगा। अब तुम मेरे वंशकी रक्षा करो॥ ३१॥

वेदविद् विद्वानोंने कहा है कि पुत्रहीन मनुष्यकी स्वर्गमें भी गति नहीं होती। इसी कारण हे सुन्दरि! अब मैं इस आठवें पुत्रके लिये याचना करता हूँ॥ ३२॥

राजा शन्तनुके ऐसा कहनेपर भी जब गंगा उस पुत्रको लेकर जानेको उद्यत हुईं, तब उन्होंने अत्यन्त कुपित एवं दुःखित होकर उनसे कहा—'हे पापिनि! अब मैं क्या करूँ? क्या तुम नरकसे भी नहीं डरती? तुम कौन हो? लगता है कि तुम पापियोंकी पुत्री हो, तभी तो तुम सदा पापकर्ममें लगी रहती हो, अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जाओ या रहो, किंतु यह पुत्र यहीं रहेगा। हे पापिनि! अपने वंशका अन्त करनेवाली ऐसी तुम्हें रखकर भी मैं क्या करूँगा?'॥ ३३—३५॥

एवं वदति भूपाले सा गृहीत्वा सुतं शिशुम्।
गच्छन्ती वचनं कोपसंयुता तमुवाच ह॥ ३६

पुत्रकामा सुतं त्वेनं पालयामि वने गता।
समयो मे गमिष्यामि वचनं ह्यन्यथाकृतम्॥ ३७

गङ्गां मां वै विजानीहि देवकार्यार्थमागताम्।
वसवस्तु पुरा शप्ता वसिष्ठेन महात्मना॥ ३८

व्रजन्तु मानुषीं योनिं स्थितां चिन्तातुरास्तु माम्।
दृष्ट्वेदं प्रार्थयामासुर्जननी नो भवानघे॥ ३९

तेभ्यो दत्त्वा वरं जाता पत्नी ते नृपसत्तम।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं जानीहि सम्भवो मम॥ ४०

सप्त ते वसवः पुत्रा मुक्ताः शापादृषेस्तु ते।
कियन्तं कालमेकोऽयं तव पुत्रो भविष्यति॥ ४१

गङ्गादत्तमिमं पुत्रं गृहाण शन्तनो स्वयम्।
वसुं देवं विदित्वैनं सुखं भुंक्ष्व सुतोद्भवम्॥ ४२

गाङ्गेयोऽयं महाभाग भविष्यति बलाधिकः।
अद्य तत्र नयाम्येनं यत्र त्वं वै मया वृतः॥ ४३

दास्यामि यौवनप्राप्तं पालयित्वा महीपते।
न मातृरहितः पुत्रो जीवेन्न च सुखी भवेत्॥ ४४

इत्युक्त्वान्तर्दधे गङ्गा तं गृहीत्वा च बालकम्।
राजा चातीव दुःखार्तः संस्थितो निजमन्दिरे॥ ४५

भार्याविरहजं दुःखं तथा पुत्रस्य चाद्भुतम्।
सर्वदा चिन्तयन्नास्ते राज्यं कुर्वन्महीपतिः॥ ४६

एवं गच्छति कालेऽथ नृपतिर्मृगयां गतः।
निघ्नन्मृगगणान्बाणैर्महिषान्सूकरानपि ॥ ४७

गङ्गातीरमनुप्राप्तः स राजा शन्तनुस्तदा।
नदीं स्तोकजलां दृष्ट्वा विस्मितः स महीपतिः॥ ४८

राजाके ऐसा कहनेपर उस नवजात शिशुको लेकर जाती हुई गंगाने क्रोधपूर्वक उनसे कहा—पुत्रकी कामनावाली मैं भी इस पुत्रको वनमें ले जाकर पालूँगी। शर्तके अनुसार अब मैं चली जाऊँगी; क्योंकि आपने अपना वचन तोड़ा है। [हे राजन्!] मुझे आप गंगा जानिये; देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये ही मैं यहाँ आयी थी। महात्मा वसिष्ठने प्राचीन कालमें आठों वसुओंको शाप दिया था कि तुम सब मनुष्ययोनिमें जाकर जन्म लो। तब चिन्तासे व्याकुल होकर आठों वसु मुझे वहाँ स्थित देखकर कहने लगे—हे अनघे! आप हमारी माता बनें। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें वरदान देकर मैं आपकी पत्नी बन गयी। आप ऐसा समझ लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही मेरा जन्म हुआ है॥ ३६—४०॥

वे सातों वसु तो आपके पुत्र बनकर ऋषिके शापसे विमुक्त हो गये। यह आठवाँ वसु कुछ समयतक आपके पुत्ररूपमें विद्यमान रहेगा। अतः हे महाराज शन्तनु! मुझ गंगाके द्वारा दिये हुए पुत्रको आप स्वीकार कीजिये। इसे आठवाँ वसु जानते हुए आप पुत्र-सुखका भोग करें; क्योंकि हे महाभाग! यह 'गांगेय' बड़ा ही बलवान् होगा। अब इसे मैं वहीं ले जा रहीं हूँ, जहाँ मैंने आपका पतिरूपसे वरण किया था॥ ४१—४३॥

हे राजन्! इसे पालकर इसके युवा होनेपर मैं पुनः आपको दे दूँगी; क्योंकि मातृहीन बालक न जी पाता है और न सुखी रहता है॥ ४४॥

ऐसा कहकर उस बालकको लेकर गंगा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राजा भी अत्यन्त दुःखित होकर अपने राजभवनमें रहने लगे॥ ४५॥

महाराज शन्तनु स्त्री तथा पुत्रके वियोगजन्य महान् कष्टका सदा अनुभव करते हुए भी किसी प्रकार राज्यकार्य सँभालने लगे॥ ४६॥

कुछ समय बीतनेपर महाराज आखेटके लिये वनमें गये। वहाँ अनेक प्रकारके मृगगणों, भैंसों तथा सूकरोंको अपने बाणोंसे मारते हुए वे गंगाजीके तटपर जा पहुँचे। उस नदीमें बहुत थोड़ा जल देखकर वे राजा शन्तनु बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४७-४८॥

तत्रापश्यत्कुमारं तं मुञ्चन्तं विशिखान्बहून्।
आकृष्य च महाचापं क्रीडन्तं सरितस्तटे॥ ४९

तं वीक्ष्य विस्मितो राजा न स्म जानाति किञ्चन।
नोपलेभे स्मृतिं भूपः पुत्रोऽयं मम वा न वा॥ ५०

दृष्ट्वाप्यमानुषं कर्म बाणेषु लघुहस्तताम्।
विद्यां वाप्रतिमां रूपं तस्य वै स्मरसन्निभम्॥ ५१

पप्रच्छ विस्मितो राजा कस्य पुत्रोऽसि चानघ।
नोवाच किञ्चिद्वीरोऽसौ मुञ्चञ्छिलीमुखानथ॥ ५२

अन्तर्धानं गतः सोऽथ राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
कोऽयं मम सुतो बालः किं करोमि व्रजामि कम्॥ ५३

गङ्गां तुष्टाव भूपालः स्थितस्तत्र समाहितः।
दर्शनं सा ददौ चाथ चारुरूपा यथा पुरा॥ ५४

दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं बभाषे नृपतिः स्वयम्।
कोऽयं गङ्गे गतो बालो मम त्वं दर्शयाधुना॥ ५५

गङ्गोवाच

पुत्रोऽयं तव राजेन्द्र रक्षितश्चाष्टमो वसुः।
ददामि तव हस्ते तु गाङ्गेयोऽयं महातपाः॥ ५६

कीर्तिकर्ता कुलस्यास्य भविता तव सुव्रत।
पाठितस्त्वखिलान्वेदान्धनुर्वेदं च शाश्वतम्॥ ५७

वसिष्ठस्याश्रमे दिव्ये संस्थितोऽयं सुतस्तव।
सर्वविद्याविधानज्ञः सर्वार्थकुशलः शुचिः॥ ५८

यद्वेद जामदग्न्योऽसौ तद्वेदायं सुतस्तव।
गृहाण गच्छ राजेन्द्र सुखी भव नराधिप॥ ५९

इत्युक्त्वान्तर्दधे गङ्गा दत्त्वा पुत्रं नृपाय वै।
नृपतिस्तु मुदा युक्तो बभूवातिसुखान्वितः॥ ६०

उन्होंने वहाँ नदीके किनारे खेलते हुए एक बालकको महान् धनुषको खींचकर बहुतसे बाणोंको छोड़ते हुए देखा। उसे देखकर राजा शन्तनु बड़े विस्मित हुए और कुछ भी नहीं जान पाये। उन्हें यह भी स्मरण न हो पाया कि यह मेरा पुत्र है या नहीं॥ ४९-५०॥

उस बालकके अतिमानवीय कृत्य, बाण चलानेके हस्तलाघव, असाधारण विद्या और कामदेवके समान सुन्दर रूपको देखकर अत्यन्त विस्मित राजाने उससे पूछा—'हे निर्दोष बालक! तुम किसके पुत्र हो?' किंतु उस वीर बालकने कोई उत्तर नहीं दिया और वह बाण चलाता हुआ अन्तर्धान हो गया। तब राजा शन्तनु चिन्तित होकर यह सोचने लगे कि कहीं यह मेरा ही पुत्र तो नहीं है? अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?॥ ५१—५३॥

जब उन्होंने वहीं खड़े होकर समाहितचित्तसे गंगाजीकी स्तुति की तब गंगाजीने प्रसन्न होकर पहलेके ही समान एक रूपवती स्त्रीके रूपमें उन्हें दर्शन दिया॥ ५४॥

सर्वांगसुन्दरी गंगाजीको देखकर राजा शन्तनु बोले—हे गंगे! यह बालक कौन था और कहाँ चला गया? आप उसे मुझको दिखा दीजिये॥ ५५॥

गंगाजी बोलीं—हे राजेन्द्र! यह आपका ही पुत्र आठवाँ वसु है, जिसे मैंने पाला है। इस महातपस्वी गांगेयको मैं आपको सौंपती हूँ॥ ५६॥

हे सुव्रत! यह बालक आपके इस कुलकी कीर्तिको बढ़ानेवाला होगा। इसे सभी वेदशास्त्र एवं शाश्वत धनुर्वेदकी शिक्षा दी गयी है॥ ५७॥

आपका यह पुत्र वसिष्ठजीके दिव्य आश्रममें रहा है और सब विद्याओंमें पारंगत, कार्यकुशल एवं सदाचारी है॥ ५८॥

जिस विद्याको जमदग्निपुत्र परशुराम जानते हैं, उसे आपका यह पुत्र जानता है। हे राजेन्द्र! हे नराधिप! आप इसे ग्रहण कीजिये, जाइये और सुखपूर्वक रहिये॥ ५९॥

ऐसा कहकर तथा वह पुत्र राजाको देकर गंगाजी अन्तर्धान हो गयीं। उसे पाकर राजा शन्तनु बहुत आनन्दित और सुखी हुए॥ ६०॥

समालिङ्ग्य सुतं राजा समाघ्राय च मस्तकम्।
समारोप्य रथे पुत्रं स्वपुरं स प्रचक्रमे॥ ६१

गत्वा गजाह्वयं राजा चकारोत्सवमुत्तमम्।
दैवज्ञं च समाहूय पप्रच्छ च शुभं दिनम्॥ ६२

समाहृत्य प्रजाः सर्वाः सचिवान्सर्वशः शुभान्।
यौवराज्येऽथ गाङ्गेयं स्थापयामास पार्थिवः॥ ६३

कृत्वा तं युवराजानं पुत्रं सर्वगुणान्वितम्।
सुखमास स धर्मात्मा न सस्मार च जाह्नवीम्॥ ६४

सूत उवाच

एतद्वः कथितं सर्वं कारणं वसुशापजम्।
गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिं जाह्नव्याः सम्भवं तथा॥ ६५

गङ्गावतरणं पुण्यं वसूनां सम्भवं तथा।
यः शृणोति नरः पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ६६

पुण्यं पवित्रमाख्यानं कथितं मुनिसत्तमाः।
यथा मया श्रुतं व्यासात्पुराणं वेदसम्मितम्॥ ६७

श्रीमद्भागवतं पुण्यं नानाख्यानकथान्वितम्।
द्वैपायनमुखोद्भूतं पञ्चलक्षणसंयुतम्॥ ६८

शृण्वतां सर्वपापघ्नं शुभदं सुखदं तथा।
इतिहासमिमं पुण्यं कीर्तितं मुनिसत्तमाः॥ ६९

राजा शन्तनु पुत्रका आलिंगन करके तथा उसका मस्तक सूँघकर और उसे अपने रथपर बैठाकर अपने नगरकी ओर चल पड़े॥ ६१॥

राजाने हस्तिनापुर जाकर महान् उत्सव किया और दैवज्ञको बुलाकर शुभ मुहूर्त पूछा॥ ६२॥

राजा शन्तनुने सब प्रजाजनों तथा सभी श्रेष्ठ मन्त्रियोंको बुलाकर गंगापुत्रको युवराज पदपर बैठा दिया॥ ६३॥

उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको युवराज बनाकर वे धर्मात्मा शन्तनु सुखपूर्वक रहने लगे। अब उन्हें गंगाजीकी भी सुधि नहीं रही॥ ६४॥

सूतजी बोले—इस प्रकार मैंने आप सबको वसुओंके शापका कारण, गंगाके प्राकट्य तथा भीष्मकी उत्पत्तिका वृत्तान्त कह दिया॥ ६५॥

जो मनुष्य गंगावतरण तथा वसुओंके उद्भवकी इस पवित्र कथाको सुनता है, वह सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६६॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा वेद-सम्मत पौराणिक आख्यान जैसा व्यासजीके मुखारविन्दसे सुना था, वैसा आपलोगोंसे कह दिया॥ ६७॥

द्वैपायन व्यासजीके मुखसे निःसृत यह श्रीमद्देवी-भागवतमहापुराण बड़ा ही पवित्र, अनेकानेक कथाओंसे परिपूर्ण तथा सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पाँच पुराण-लक्षणोंसे युक्त है॥ ६८॥

हे मुनिश्रेष्ठो! सुननेवालोंके समस्त पापोंका नाश करनेवाले, कल्याणकारी, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस इतिहासका मैंने आपलोगोंसे वर्णन कर दिया॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
देवव्रतोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

मत्स्यगन्धा (सत्यवती)-को देखकर राजा शन्तनुका मोहित होना, भीष्मद्वारा आजीवन ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करनेकी प्रतिज्ञा करना और शन्तनुका सत्यवतीसे विवाह

ऋषय ऊचुः

वसूनां सम्भवः सूत कथितः शापकारणात्।
गाङ्गेयस्य तथोत्पत्तिः कथिता लोमहर्षणे॥ १

ऋषिगण बोले—हे लोमहर्षणतनय सूतजी! आपने शापवश अष्टवसुओंके जन्म तथा गंगाजीकी उत्पत्तिका वर्णन किया। हे धर्मज्ञ! व्यासजीकी सत्यवती

माता व्यासस्य धर्मज्ञ नाम्ना सत्यवती सती।
कथं शन्तनुना प्राप्ता भार्या गन्धवती शुभा॥ २

तन्ममाचक्ष्व विस्तारं दाशपुत्री कथं वृता।
राज्ञा धर्मवरिष्ठेन संशयं छिन्धि सुव्रत॥ ३

सूत उवाच

शन्तनुर्नाम राजर्षिर्मृगयानिरतः सदा।
वनं जगाम निघ्नन्वै मृगांश्च महिषान् रुरून्॥ ४

चत्वार्येव तु वर्षाणि पुत्रेण सह भूपतिः।
रममाणः सुखं प्राप कुमारेण यथा हरः॥ ५

एकदा विक्षिपन्बाणान्विनिघ्नन्खड्गसूकरान्।
स कदाचिद्वनं प्राप्तः कालिन्दीं सरितां वराम्॥ ६

महीपतिरनिर्देश्यमाजिघ्रद् गन्धमुत्तमम्।
तस्य प्रभवमन्विच्छन्सञ्चचार वनं तदा॥ ७

न मन्दारस्य गन्धोऽयं मृगनाभिमदस्य न।
चम्पकस्य न मालत्या न केतक्या मनोहरः॥ ८

न चानुभूतपूर्वोऽयं वाति गन्धवहः शुभः।
कुतोऽयमेति वायुर्वै मम घ्राणविमोहनः॥ ९

इति सञ्चिन्त्यमानोऽसौ बभ्राम वनमण्डलम्।
मोहितो गन्धलोभेन शन्तनुः पवनानुगः॥ १०

स ददर्श नदीतीरे संस्थितां चारुदर्शनाम्।
शृङ्गाररहितां कान्तां सुस्थितां मलिनाम्बराम्॥ ११

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं विस्मितः स महीपतिः।
अस्या देहस्य गन्धोऽयमिति सञ्जातनिश्चयः॥ १२

नामकी साध्वी माता जो पवित्र गन्धवाली थीं, वे राजा शन्तनुको पत्नीरूपसे कैसे प्राप्त हुईं? यह हमें विस्तारके साथ बताइये। महान् धर्मनिष्ठ राजा शन्तनुने निषादपुत्रीके साथ विवाह क्यों किया? हे सुव्रत! यह बताकर आप हमारे सन्देहका निवारण कीजिये॥ १—३॥

सूतजी बोले—राजर्षि शन्तनु सदा आखेट करनेमें तत्पर रहते थे। वे वनमें जाकर मृग, महिष तथा रुरुमृगोंका वध किया करते थे॥ ४॥

राजा शन्तनु केवल चार वर्षतक भीष्मके साथ उसी प्रकार सुखसे रहे, जिस प्रकार भगवान् शंकर कार्तिकेयके साथ आनन्दपूर्वक रहते थे॥ ५॥

एक बार वे महाराज शन्तनु वनमें बाण छोड़ते हुए बहुतसे गैंड़ों तथा सूकरोंका वध करते हुए किसी समय नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाके किनारे जा पहुँचे॥ ६॥

राजाने वहाँपर कहींसे आती हुई उत्तम गन्धको सूँघा। तब उस सुगन्धिके उद्गमका पता लगानेके लिये वे वनमें विचरने लगे॥ ७॥

वे बड़े असमंजसमें पड़ गये कि यह मनोहर सुगन्धि न मन्दारपुष्पकी है, न कस्तूरीकी है, न मालतीकी है, न चम्पाकी है और न तो केतकीकी ही है!॥ ८॥

मैंने ऐसी अनुपम सुगन्धिका पूर्वमें कभी नहीं अनुभव किया था। [इस दिव्य सुगन्धिको लेकर] सुन्दर वायु बह रही है। मेरी घ्राणेन्द्रियको मुग्ध कर देनेवाली यह वायु कहाँसे आ रही है?॥ ९॥

इस प्रकार सोचते-विचारते राजा शन्तनु गन्धके लोभसे मोहित सुगन्धित वायुका अनुसरण करते हुए वनप्रदेशमें विचरण करने लगे॥ १०॥

उन्होंने यमुनानदीके तटपर बैठी हुई एक दिव्यदर्शनवाली स्त्रीको देखा, जो मलिन वस्त्र धारण करने और शृंगार न करनेपर भी मनोहर दीख रही थी॥ ११॥

उस श्याम नयनोंवाली स्त्रीको देखकर राजा आश्चर्यमें पड़ गये और उन्हें इस बातका विश्वास हो गया कि यह सुगन्धि इसी स्त्रीके शरीरकी है॥ १२॥

तदद्भुतं रूपमतीव सुन्दरं
तथैव गन्धोऽखिललोकसम्मतः।
वयश्च तादृङ्‌ नवयौवनं शुभं
दृष्ट्वैव राजा किल विस्मितोऽभवत्॥ १३
केयं कुतो वा समुपागताधुना
देवाङ्गना वा किमु मानुषी वा।
गन्धर्वपुत्री किल नागकन्या
जाने कथं गन्धवतीं नु कामिनीम्॥ १४
सञ्चिन्त्य चैवं मनसा नृपोऽसौ
न निश्चयं प्राप यदा ततः स्वयम्।
गङ्गां स्मरन्कामवशं गतोऽथ
पप्रच्छ कान्तां तटसंस्थितां च॥ १५
कासि प्रिये कस्य सुतासि कस्मा-
दिह स्थिता त्वं विजने वरोरु।
एकाकिनी किं वद चारुनेत्रे
विवाहिता वा न विवाहितासि॥ १६
सञ्जातकामोऽहमरालनेत्रे
त्वां वीक्ष्य कान्तां च मनोरमां च।
ब्रूहि प्रिये यासि चिकीर्षसि त्वं
किं चेति सर्वं मम विस्तरेण॥ १७
इत्येवमुक्ता सुदती नृपेण
प्रोवाच तं सस्मितमम्बुजेक्षणा।
दाशस्य पुत्रीं त्वमवेहि राजन्
कन्यां पितुः शासनसंस्थितां च॥ १८
तरीमिमां धर्मनिमित्तमेव
संवाहयामीह जले नृपेन्द्र।
पिता गृहे मेऽद्य गतोऽस्ति कामं
सत्यं ब्रवीम्यर्थपते तवाग्रे॥ १९
इत्येवमुक्त्वा विरराम बाला
कामातुरस्तां नृपतिर्बभाषे।
कुरुप्रवीरं कुरु मां पतिं त्वं
वृथा न गच्छेन्ननु यौवनं ते॥ २०
न चास्ति पत्नी मम वै द्वितीया
त्वं धर्मपत्नी भव मे मृगाक्षि।
दासोऽस्मि तेऽहं वशगः सदैव
मनोभवस्तापयति प्रिये माम्॥ २१

उसका अद्भुत एवं अतिशय सुन्दर रूप, सब प्राणियोंका मन स्वाभाविक रूपसे अपनी ओर आकर्षित करनेवाली सुगन्धि, उसकी अवस्था तथा उसका वैसा शुभ नवयौवन देखकर राजा शन्तनुको महान् विस्मय हुआ॥ १३॥

यह कौन है और इस समय यह कहाँसे आयी है? यह कोई देवांगना है या मानवी स्त्री, यह कोई गन्धर्वकन्या अथवा नागकन्या है? मैं इस सुगन्धा कामिनीके विषयमें कैसे जानकारी प्राप्त करूँ?॥ १४॥

इस प्रकार विचार करके भी वे राजा जब कुछ निश्चय नहीं कर सके, तब तत्क्षण गंगाजीका स्मरण करते हुए वे कामके वशीभूत हो गये और तटपर बैठी हुई उस सुन्दरीसे उन्होंने पूछा—हे प्रिये! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? हे वरोरु! तुम इस निर्जन वनमें क्यों बैठी हो? हे सुनयने! क्या तुम अकेली ही हो? तुम विवाहिता हो या कुमारी; यह बताओ॥ १५-१६॥

हे अरालनेत्रे! तुम जैसी मनोरमा स्त्रीको देखकर मैं कामातुर हो गया हूँ। हे प्रिये! विस्तारपूर्वक मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो और क्या करना चाहती हो?॥ १७॥

महाराज शन्तनुके वचन सुनकर वह सुन्दर दाँतोंवाली तथा कमलके समान नयनोंवाली स्त्री मुसकराकर बोली—हे राजन्! आप मुझे निषादकन्या और अपने पिताकी आज्ञामें रहनेवाली कन्या समझें॥ १८॥

हे नृपेन्द्र! मैं अपने धर्मका अनुसरण करती हुई जलमें यह नौका चलाती हूँ। हे अर्थपते! पिताजी अभी ही घर गये हैं। आपके सम्मुख यह बातें मैंने सत्य कही हैं॥ १९॥

यह कहकर वह निषादकन्या मौन हो गयी। तब कामसे पीड़ित महाराज शन्तनुने उससे कहा—मुझ कुरुवंशी वीरको तुम अपना पति बना लो, जिससे तुम्हारा यौवन व्यर्थ न जाय॥ २०॥

मेरी कोई दूसरी पत्नी नहीं है। अतः हे मृगनयनी! तुम मेरी धर्मपत्नी बन जाओ। हे प्रिये! मैं सर्वदाके लिये तुम्हारा वशवर्ती दास बन जाऊँगा। मुझे कामदेव पीड़ित कर रहा है॥ २१॥

गता प्रिया मां परिहृत्य कान्ता
नान्या वृताहं विधुरोऽस्मि कान्ते।
त्वां वीक्ष्य सर्वावयवातिरम्यां
मनो हि जातं विवशं मदीयम्॥ २२
श्रुत्वामृतास्वादरसं नृपस्य
वचोऽतिरम्यं खलु दाशकन्या।
उवाच तं सात्त्विकभावयुक्ता
कृत्वातिधैर्यं नृपतिं सुगन्धा॥ २३
यदात्थ राजन् मयि तत्तथैव
मन्येऽहमेतत्तु यथा वचस्ते।
नास्मि स्वतन्त्रा त्वमवेहि कामं
दाता पिता मेऽर्थय तं त्वमाशु॥ २४
न स्वैरिणीहास्म्यपि दाशपुत्री
पितुर्वशेऽहं सततं चरामि।
स चेद्ददाति प्रथितः पिता मे
गृहाण पाणिं वशगास्मि तेऽहम्॥ २५
मनोभवस्त्वां नृप किं दुनोति
यथा पुनर्मां नवयौवनां च।
दुनोति तत्रापि हि रक्षणीया
धृतिः कुलाचारपरम्परासु॥ २६

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नृपतिः काममोहितः।
गतो दाशपतेर्गेहं तस्या याचनहेतवे॥ २७
दृष्ट्वा नृपतिमायान्तं दाशोऽतिविस्मयं गतः।
प्रणामं नृपतेः कृत्वा कृताञ्जलिरभाषत॥ २८

दाश उवाच

दासोऽस्मि तव भूपाल कृतार्थोऽहं तवागमे।
आज्ञां देहि महाराज यदर्थमिह चागमः॥ २९

राजोवाच

धर्मपत्नीं करिष्यामि सुतामेतां तवानघ।
त्वया चेद्दीयते मह्यं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३०

दाश उवाच

कन्यारत्नं मदीयं चेद्यत्त्वं प्रार्थयसे नृप।
दातव्यं तु प्रदास्यामि न त्वदेयं कदाचन॥ ३१
तस्याः पुत्रो महाराज त्वदन्ते पृथिवीपतिः।
सर्वथा चाभिषेक्तव्यो नान्यः पुत्रस्तवेति वै॥ ३२

मेरी प्रियतमा मुझे छोड़कर चली गयी है, तबसे मैंने अपना दूसरा विवाह नहीं किया। हे कान्ते! मैं इस समय विधुर हूँ। तुम जैसी सर्वांगसुन्दरीको देखकर मेरा मन अपने वशमें नहीं रह गया है॥ २२॥

राजाकी अमृतरसके समान मधुर तथा मनोहारी बात सुनकर वह दाशकन्या सुगन्धा सात्त्विक भावसे युक्त होकर धैर्य धारण करके राजासे बोली—हे राजन्! आपने मुझसे जो कुछ कहा, वह यथार्थ है; किंतु आप अच्छी तरह जान लीजिये कि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे पिताजी ही मुझे दे सकते हैं। अतएव आप उन्हींसे मेरे लिये याचना कीजिये॥ २३-२४॥

मैं एक निषादकी कन्या होती हुई भी स्वेच्छाचारिणी नहीं हूँ। मैं सदा पिताके वशमें रहती हुई सब काम करती हूँ। यदि मेरे पिताजी मुझे आपको देना स्वीकार कर लें तब आप मेरा पाणिग्रहण कर लीजिये और मैं सदाके लिये आपके अधीन हो जाऊँगी॥ २५॥

हे राजन्! परस्पर आसक्त होनेपर भी कुलकी मर्यादा तथा परम्पराके अनुसार धैर्य धारण करना चाहिये॥ २६॥

सूतजी बोले—उस सुगन्धाकी यह बात सुनकर कामातुर राजा उसे माँगनेके लिये निषादराजके घर गये॥ २७॥

इस प्रकार महाराज शन्तनुको अपने घर आया देखकर निषादराजको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर वह बोला—॥ २८॥

निषादने कहा—हे राजन्! मैं आपका दास हूँ। आपके आगमनसे मैं कृतकृत्य हो गया। हे महाराज! आप जिस कार्यके लिये आये हों, मुझे आज्ञा दीजिये॥ २९॥

राजा बोले—हे अनघ! यदि आप अपनी यह कन्या मुझे प्रदान कर दें तो मैं इसे अपनी धर्मपत्नी बना लूँगा; यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ३०॥

निषादने कहा—हे महाराज! यदि आप मेरे इस कन्यारत्नके लिये प्रार्थना कर रहे हैं तो मैं अवश्य दूँगा; क्योंकि देनेयोग्य वस्तु तो कभी अदेय नहीं होती है; किंतु हे महाराज! आपके बाद इस कन्याका पुत्र ही राजाके रूपमें अभिषिक्त होना चाहिये, आपका दूसरा पुत्र नहीं॥ ३१-३२॥

सूत उवाच

श्रुत्वा वाक्यं तु दाशस्य राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
गाङ्गेयं मनसा कृत्वा नोवाच नृपतिस्तदा॥ ३३
कामातुरो गृहं प्राप्तश्चिन्ताविष्टो महीपतिः।
न सस्नौ बुभुजे नाथ न सुष्वाप गृहं गतः॥ ३४
चिन्तातुरं तु तं दृष्ट्वा पुत्रो देवव्रतस्तदा।
गत्वापृच्छन्महीपालं तदसन्तोषकारणम्॥ ३५
दुर्जयः कोऽस्ति शत्रुस्ते करोमि वशगं तव।
का चिन्ता नृपशार्दूल सत्यं वद नृपोत्तम॥ ३६
किं तेन जातेन सुतेन राजन्
दुःखं न जानाति न नाशयेद्यः।
ऋणं ग्रहीतुं समुपागतोऽसौ
प्राग्जन्मजं नात्र विचारणास्ति॥ ३७
विमुच्य राज्यं रघुनन्दनोऽपि
ताताज्ञया दाशरथिस्तु रामः।
वनं गतो लक्ष्मणजानकीभ्यां
सहैव शैलं किल चित्रकूटम्॥ ३८
सुतो हरिश्चन्द्रनृपस्य राजन्
यो रोहितश्चेति प्रसिद्धनामा।
क्रीतोऽथ पित्रा विपणोद्यतश्च
दासार्पितो विप्रगृहे तु नूनम्॥ ३९
तथाजिगर्तस्य सुतो वरिष्ठो
नाम्ना शुनःशेप इति प्रसिद्धः।
क्रीतस्तु पित्राप्यथ यूपबद्धः
सम्मोचितो गाधिसुतेन पश्चात्॥ ४०
पित्राज्ञया जामदग्न्येन पूर्वं
छिन्नं शिरो मातुरिति प्रसिद्धम्।
अकार्यमप्याचरितं च तेन
गुरोरनुज्ञा च गरीयसी कृता॥ ४१
इदं शरीरं तव भूपते न
क्षमोऽस्मि नूनं वद किं करोम्यहम्।
न शोचनीयं मयि वर्तमाने-
ऽप्यसाध्यमर्थं प्रतिपादयाम्यदः॥ ४२

सूतजी बोले—निषादकी बात सुनकर राजा शन्तनु चिन्तित हो उठे। उस समय मनमें भीष्मका स्मरण करके राजा कुछ भी उत्तर न दे सके॥ ३३॥

तब कामातुर तथा चिन्तित राजा राजमहलमें चले गये। उन्होंने घर जानेपर न स्नान किया, न भोजन किया और न शयन ही किया॥ ३४॥

तब उन्हें चिन्तित देखकर पुत्र देवव्रत राजाके पास जाकर उनकी इस चिन्ताका कारण पूछने लगे—हे नृपश्रेष्ठ! कौन-सा ऐसा शत्रु है जिसको आप जीत न सके; मैं उसे आपके अधीन कर दूँ। हे नृपोत्तम! आपकी क्या चिन्ता है, मुझे सही-सही बताइये॥ ३५-३६॥

हे राजन्! भला उस उत्पन्न हुए पुत्रसे क्या लाभ? जो पैदा होकर अपने पिताका दुःख न समझे तथा उसको दूर करनेका उपाय न कर सके। ऐसा कुपुत्र तो पूर्वजन्मके किसी ऋणको वापस लेनेके लिये यहाँ आता है; इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहीं है॥ ३७॥

दशरथके पुत्र रामचन्द्रजी भी पिताकी आज्ञासे राज्य त्यागकर लक्ष्मण और सीताके साथ वनमें चले गये तथा चित्रकूटपर्वतपर निवास करने लगे॥ ३८॥

इसी प्रकार हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र जो रोहित नामसे प्रसिद्ध था, अपने पिताके इच्छानुसार बिकनेके लिये तत्पर हो गया और खरीदा हुआ वह बालक ब्राह्मणके घरमें सेवकका कार्य करने लगा॥ ३९॥

'अजीगर्त' ब्राह्मणका एक श्रेष्ठ पुत्र था, जो शुनःशेप नामसे प्रसिद्ध था। खरीद लिये जानेपर वह पिताके द्वारा यूपमें बाँध दिया गया, जिसे बादमें विश्वामित्रने छुड़ाया था॥ ४०॥

पूर्वकालमें पिताकी आज्ञासे ही परशुरामने अपनी माताका सिर काट दिया था, ऐसा लोकमें प्रसिद्ध है। इस अनुचित कर्मको करके भी उन्होंने पिताकी आज्ञाका महत्त्व बढ़ाया था॥ ४१॥

हे पृथ्वीपते! यह मेरा शरीर आपका ही है। यद्यपि मैं समर्थ नहीं हूँ; फिर भी आप कहिये मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मेरे रहते आपको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं होनी चाहिये। मैं आपका असाध्य कार्य भी तत्काल पूरा करूँगा॥ ४२॥

प्रब्रूहि राजंस्तव कास्ति चिन्ता
निवारयाम्यद्य धनुर्गृहीत्वा।
देहेन मे चेच्चरितार्थता वा
भवत्वमोघा भवतश्चिकीर्षा॥ ४३

धिक् तं सुतं यः पितुरीप्सितार्थं
क्षमोऽपि सन् प्रतिपादयेद्यः।
जातेन किं तेन सुतेन कामं
पितुर्न चिन्तां हि समुद्धरेद्यः॥ ४४

सूत उवाच

निशम्येति वचस्तस्य पुत्रस्य शन्तनुर्नृपः।
लज्जमानस्तु मनसा तमाह त्वरितं सुतम्॥ ४५

राजोवाच

चिन्ता मे महती पुत्र यस्त्वमेकोऽसि मे सुतः।
शूरोऽतिबलवान्मानी संग्रामेष्वपराङ्मुखः॥ ४६

एकापत्यस्य मे तात वृथेदं जीवितं किल।
मृते त्वयि मृधे क्वापि किं करोमि निराश्रयः॥ ४७

एषा मे महती चिन्ता तेनाद्य दुःखितोऽस्म्यहम्।
नान्या चिन्तास्ति मे पुत्र यां तवाग्रे वदाम्यहम्॥ ४८

सूत उवाच

तदाकर्ण्याथ गाङ्गेयो मन्त्रिवृद्धानपृच्छत।
न मां वदति भूपालो लज्जयाद्य परिप्लुतः॥ ४९

वित्त वार्तां नृपस्याद्य पृष्ट्वा यूयं विनिश्चयात्।
सत्यं ब्रुवन्तु मां सर्वं तत्करोमि निराकुलः॥ ५०

तच्छ्रुत्वा ते नृपं गत्वा संविज्ञाय च कारणम्।
शशंसुर्विदितार्थस्तु गाङ्गेयस्तदचिन्तयत्॥ ५१

सहितस्तैर्जगामाशु दाशस्य सदनं तदा।
प्रेमपूर्वमुवाचेदं विनम्रो जाह्नवीसुतः॥ ५२

गाङ्गेय उवाच

पित्रे देहि सुतां तेऽद्य प्रार्थयामि सुमध्यमाम्।
माता मेऽस्तु सुतेयं ते दासोऽस्म्यस्याः परन्तप॥ ५३

हे राजन्! आप बताइये कि आपको किस बातकी चिन्ता है? मैं अभी धनुष लेकर उसका निवारण कर दूँगा। यदि मेरे इस शरीरसे भी आपका कार्य सिद्ध हो सके तो मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करनेको तत्पर हूँ। उस पुत्रको धिक्कार है, जो समर्थ होकर भी अपने पिताकी इच्छाको पूर्ण नहीं करता। जिस पुत्रके द्वारा पिताकी चिन्ता दूर न हुई, उस पुत्रका जन्म लेनेका क्या प्रयोजन?॥ ४३-४४॥

सूतजी बोले—अपने पुत्र गांगेयका वचन सुनकर महाराज शन्तनु मनमें लज्जित होते हुए उससे शीघ्र ही कहने लगे॥ ४५॥

राजा बोले—हे पुत्र! मुझे यही महान् चिन्ता है कि तुम मेरे इकलौते पुत्र हो। यद्यपि तुम बलवान्, स्वाभिमानी, रणस्थलमें पीठ न दिखानेवाले साहसी पुत्र हो तथापि केवल एक पुत्र होनेके कारण मुझ पिताका जीवन व्यर्थ है; क्योंकि यदि कहीं किसी समरमें तुम्हें अमरगति प्राप्त हो गयी तो मैं असहाय होकर क्या कर सकूँगा? यही मुझे सबसे बड़ी चिन्ता लगी है; इसी कारण मैं आजकल दुःखित रहता हूँ। हे पुत्र! इसके अतिरिक्त मुझे दूसरी कोई चिन्ता नहीं है, जिसे मैं तुम्हारे सामने कहूँ॥ ४६—४८॥

सूतजी बोले—यह सुनकर गांगेयने वृद्ध मन्त्रियोंसे पूछा कि लज्जासे परिपूर्ण महाराज मुझे कुछ बता नहीं रहे हैं॥ ४९॥

आपलोग राजाकी भावना जानकर सही एवं निश्चित कारण मुझे बताइये; मैं प्रसन्नतापूर्वक उसे सम्पन्न करूँगा॥ ५०॥

यह सुनकर मन्त्रिगण राजाके पास गये और सब कारण सही-सही जानकर उन्होंने युवराज गांगेयसे आकर कह दिया। तब उनका अभिप्राय जानकर गांगेय विचार करने लगे। मन्त्रियोंके साथ गंगापुत्र देवव्रत उस निषादके घर शीघ्र गये और प्रेमके साथ विनम्र होकर यह कहने लगे॥ ५१-५२॥

गांगेय बोले—हे परन्तप! आप अपनी सुन्दरी कन्या मेरे पिताजीके लिये प्रदान कर दें—यही मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आपकी ये कन्या मेरी माता हों और मैं इनका सेवक रहूँगा॥ ५३॥

दाश उवाच

त्वं गृहाण महाभाग पत्नीं कुरु नृपात्मज।
पुत्रोऽस्या न भवेद् राजा वर्तमाने त्वयीति वै॥ ५४

गाङ्गेय उवाच

मातेयं मम दाशेयी राज्यं नैव करोम्यहम्।
पुत्रोऽस्याः सर्वथा राज्यं करिष्यति न संशयः॥ ५५

दाश उवाच

सत्यं वाक्यं मया ज्ञातं पुत्रस्ते बलवान्भवेत्।
सोऽपि राज्यं बलान्नूनं गृह्णीयादिति निश्चयः॥ ५६

गाङ्गेय उवाच

न दारसंग्रहं नूनं करिष्यामि हि सर्वथा।
सत्यं मे वचनं तात मया भीष्मं व्रतं कृतम्॥ ५७

सूत उवाच

एवं कृतां प्रतिज्ञां तु निशम्य झषजीवकः।
ददौ सत्यवतीं तस्मै राज्ञे सर्वाङ्गशोभनाम्॥ ५८
अनेन विधिना तेन वृता सत्यवती प्रिया।
न जानाति परं जन्म व्यासस्य नृपसत्तमः॥ ५९

निषादने कहा—हे महाभाग! हे नृपनन्दन! आप स्वयं ही इसे अपनी भार्या बनाइये; क्योंकि आपके रहते इसका पुत्र राजा नहीं हो सकेगा॥ ५४॥

गांगेय बोले—आपकी यह कन्या मेरी माता है। मैं राज्य नहीं करूँगा। इसका पुत्र ही निश्चितरूपसे राज्य करेगा; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है॥ ५५॥

निषादने कहा—मैंने आपकी बात सही मान ली; परंतु यदि आपका पुत्र बलवान् हुआ तो वह बलपूर्वक राज्यको निश्चय ही ले लेगा॥ ५६॥

गांगेय बोले—हे तात! मैं कभी विवाह नहीं करूँगा; मेरा यह वचन सर्वथा सत्य है—यह मैंने भीष्म-प्रतिज्ञा कर ली॥ ५७॥

सूतजी बोले—गांगेयद्वारा की गयी ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर निषादने उन राजा शन्तनुको अपनी सर्वांगसुन्दरी कन्या सत्यवती सौंप दी॥ ५८॥

इस प्रकार राजा शन्तनुने प्रिया सत्यवतीसे विवाह कर लिया। वे नृपश्रेष्ठ शन्तनु पूर्वमें सत्यवतीसे व्यासजीका जन्म नहीं जानते थे॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
देवव्रतप्रतिज्ञावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

दुर्वासाका कुन्तीको अमोघ कामद मन्त्र देना, मन्त्रके प्रभावसे कन्यावस्थामें ही कर्णका जन्म, कुन्तीका राजा पाण्डुसे विवाह, शापके कारण पाण्डुका सन्तानोत्पादनमें असमर्थ होना, मन्त्र-प्रयोगसे कुन्ती और माद्रीका पुत्रवती होना, पाण्डुकी मृत्यु और पाँचों पुत्रोंको लेकर कुन्तीका हस्तिनापुर आना

सूत उवाच

एवं सत्यवती तेन वृता शन्तनुना किल।
द्वौ पुत्रौ च तया जातौ मृतौ कालवशादपि॥ १

व्यासवीर्यात्तु सञ्जातो धृतराष्ट्रोऽन्ध एव च।
मुनिं दृष्ट्वाथ कामिन्या नेत्रसम्मीलने कृते॥ २

श्वेतरूपा यतो जाता दृष्ट्वा व्यासं नृपात्मजा।
व्यासकोपात्समुत्पन्नः पाण्डुस्तेन न संशयः॥ ३

सूतजी बोले—इस प्रकार उन शन्तनुने सत्यवतीसे विवाह कर लिया। उसको [चित्रांगद और विचित्रवीर्य नामक] दो पुत्र उत्पन्न हुए और कालवश वे दोनों मृत्युको भी प्राप्त हो गये॥ १॥

पुनः व्यासजीके तेजसे धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए, जो जन्मसे ही अन्धे थे; क्योंकि मुनिको देखकर उस स्त्रीने अपने नेत्र बन्द कर लिये थे॥ २॥

तत्पश्चात् छोटी रानी व्यासजीको देखकर पीली पड़ गयी, जिससे व्यासजीके कोपके कारण उससे पीतवर्ण पाण्डुका जन्म हुआ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

सन्तोषितस्तया व्यासो दास्या कामकलाविदा।
विदुरस्तु समुत्पन्नो धर्मांशः सत्यवाक् शुचिः॥ ४

राज्ये संस्थापितः पाण्डुः कनीयानपि मन्त्रिभिः।
अन्धत्वाद् धृतराष्ट्रोऽसौ नाधिकारे नियोजितः॥ ५

भीष्मस्यानुमते राज्यं प्राप्तः पाण्डुर्महाबलः।
विदुरोऽप्यथ मेधावी मन्त्रकार्ये नियोजितः॥ ६

धृतराष्ट्रस्य द्वे भार्ये गान्धारी सौबली स्मृता।
द्वितीया च तथा वैश्या गार्हस्थ्येषु प्रतिष्ठिता॥ ७

पाण्डोरपि तथा पत्न्यौ द्वे प्रोक्ते वेदवादिभिः।
शौरसेनी तथा कुन्ती माद्री च मद्रदेशजा॥ ८

गान्धारी सुषुवे पुत्रशतं परमशोभनम्।
वैश्याप्येकं सुतं कान्तं युयुत्सुं सुषुवे प्रियम्॥ ९

कुन्ती तु प्रथमं कन्या सूर्यात्कर्णं मनोहरम्।
सुषुवे पितृगेहस्था पश्चात्पाण्डुपरिग्रहः॥ १०

ऋषय ऊचुः

किमेतत्सूत चित्रं त्वं भाषसे मुनिसत्तम।
जनितश्च सुतः पूर्वं पाण्डुना सा विवाहिता॥ ११

सूर्यात्कर्णः कथं जातः कन्यायां वद विस्तरात्।
कन्या कथं पुनर्जाता पाण्डुना सा विवाहिता॥ १२

सूत उवाच

शूरसेनसुता कुन्ती बालभावे यदा द्विजाः।
कुन्तिभोजेन राज्ञा तु प्रार्थिता कन्यका शुभा॥ १३

कुन्तिभोजेन सा बाला पुत्री तु परिकल्पिता।
सेवनार्थं तु दीप्तस्य विहिता चारुहासिनी॥ १४

दुर्वासास्तु मुनिः प्राप्तश्चातुर्मास्ये स्थितो द्विजः।
परिचर्या कृता कुन्त्या मुनिस्तोषं जगाम ह॥ १५

निपुण दासीने व्यासजीको सन्तुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप धर्मके अंश, सत्यवादी तथा पवित्र विचारवाले विदुर उत्पन्न हुए॥ ४॥

[बड़े होनेपर भी] अन्धे होनेके कारण धृतराष्ट्रको राज्य नहीं दिया गया और छोटे होते हुए भी पाण्डुको ही मन्त्रियोंने राजसिंहासनपर अभिषिक्त किया। भीष्मकी सम्मतिसे ही महाबली पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ तथा प्रतिभासम्पन्न विदुरजी मन्त्रणा-कार्यमें नियुक्त किये गये॥ ५-६॥

धृतराष्ट्रकी दो स्त्रियाँ थीं। उनमें पहली सुबलपुत्री गान्धारी कही गयी है और दूसरी एक वैश्यपुत्री थी, जो गृहकार्योंमें प्रतिष्ठित की गयी थी॥ ७॥

वेदवादी विद्वानोंने पाण्डुकी भी दो पत्नियाँ बतायी हैं। एक शूरसेनकी पुत्री कुन्ती और दूसरी मद्रदेशकी राजकुमारी माद्री॥ ८॥

गान्धारीने परम सुन्दर सौ पुत्र उत्पन्न किये एवं वैश्या रानीने युयुत्सु नामका एक कान्तिमान् और प्रिय पुत्र उत्पन्न किया॥ ९॥

कुन्तीने कुमारी अवस्थामें ही अपने पिताके घर रहते हुए सूर्यसे कर्ण नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया था; तदनन्तर कुन्तीका विवाह पाण्डुसे हुआ॥ १०॥

ऋषिगण बोले—हे मुनिवर सूतजी! आप यह कैसी आश्चर्यजनक बात बता रहे हैं? पहले पुत्र उत्पन्न हुआ और बादमें पाण्डुके साथ कुन्तीका विवाह हुआ!॥ ११॥

सूर्यके द्वारा कन्या कुन्तीसे कर्णकी उत्पत्ति कैसे हुई? वह कुन्ती पुनः कन्या कैसे रह गयी, जो पाण्डुके साथ उसका विवाह हो गया। यह आप विस्तारपूर्वक बताइये॥ १२॥

सूतजी बोले—हे द्विजगण! शूरसेनकी वह पुत्री कुन्ती जब शिशु थी, तभी राजा कुन्तिभोजने उस सुन्दर कन्याको माँग लिया था। उन्होंने उस चारुहासिनी कन्याको अपनी पुत्री बनाकर रखा और उसे अग्निहोत्रके काममें नियुक्त कर दिया॥ १३-१४॥

एक बार महर्षि दुर्वासा वहाँ आ पहुँचे और चातुर्मास्यके लिये वहीं रहने लगे। कुन्तीने उनकी सेवा की, जिससे मुनिवर सन्तुष्ट हुए और उसको

ददौ मन्त्रं शुभं तस्यै येनाहूतः सुरः स्वयम्।
समायाति तथा कामं पूरयिष्यति वाञ्छितम्॥ १६

गते मुनौ ततः कुन्ती निश्चयार्थं गृहे स्थिता।
चिन्तयामास मनसा कं सुरं समचिन्तये॥ १७

उदितश्च तदा भानुस्तया दृष्टो दिवाकरः।
मन्त्रोच्चारं तया कृत्वा चाहूतस्तिग्मगुस्तदा॥ १८

मण्डलान्मानुषं रूपं कृत्वा सर्वातिपेशलम्।
अवातरत्तदाकाशात्समीपे तत्र मन्दिरे॥ १९

दृष्ट्वा देवं समायान्तं कुन्ती भानुं सुविस्मिता।
वेपमाना रजोदोषं प्राप्ता सद्यस्तु भामिनी॥ २०

कृताञ्जलिः स्थिता सूर्यं बभाषे चारुलोचना।
सुप्रीता दर्शनेनाद्य गच्छ त्वं निजमण्डलम्॥ २१

सूर्य उवाच

आहूतोऽस्मि कथं कुन्ति त्वया मन्त्रबलेन वै।
न मां भजसि कस्मात्त्वं समाहूय पुरोगतम्॥ २२

कामार्तोऽस्म्यसितापाङ्गि भज मां भावसंयुतम्।
मन्त्रेणाधीनतां प्राप्तं क्रीडितुं नय मामिति॥ २३

कुन्त्युवाच

कन्यास्म्यहं तु धर्मज्ञ सर्वसाक्षिन्नमाम्यहम्।
तवाप्यहं न दुर्वाच्या कुलकन्यास्मि सुव्रत॥ २४

सूर्य उवाच

लज्जा मे महती चाद्य यदि गच्छाम्यहं वृथा।
वाच्यतां सर्वदेवानां यास्याम्यत्र न संशयः॥ २५

शप्स्यामि तं द्विजं चाद्य येन मन्त्रः समर्पितः।
त्वां चापि सुभृशं कुन्ति नोचेन्मां त्वं भजिष्यसि॥ २६

कन्याधर्मः स्थिरस्ते स्यान्न ज्ञास्यन्ति जनाः किल।
मत्समस्तु तथा पुत्रो भविता ते वरानने॥ २७

एक ऐसे मन्त्रका उपदेश दिया, जिसके प्रयोगसे आवाहित किये गये देवता स्वयं उपस्थित होंगे और उसकी अभिलाषा पूर्ण करेंगे॥ १५-१६॥

दुर्वासामुनिके वहाँसे चले जानेपर अपने गृहमें बैठी हुई कुन्ती उस मन्त्रकी परीक्षाके लिये मनमें सोचने लगी कि मैं किस देवताका ध्यान करूँ?॥ १७॥

उसने पूर्व दिशामें उदित होते हुए सूर्यको देखा और उस मन्त्रका उच्चारण करके उसने सूर्यका आवाहन किया। तब सूर्य अपने मण्डलसे अत्यन्त सुन्दर मनुष्यका रूप धारण करके आकाशसे कुन्तीके पास उस भवनमें उतर आये॥ १८-१९॥

सूर्यदेवको आते हुए देखकर कुन्ती आश्चर्यचकित हो गयी। वह सुन्दरी काँपती हुई तत्काल रजोधर्मको प्राप्त हो गयी॥ २०॥

उस समय सुन्दर नेत्रवाली कुन्ती हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी और सूर्यसे बोली—मैं आपके दर्शनसे प्रसन्न हो गयी; अब आप अपने मण्डलको चले जाइये॥ २१॥

सूर्य बोले—हे कुन्ति! तुमने मन्त्रबलसे मुझे क्यों बुलाया है? तुम मुझे बुला करके भी अपने समक्ष उपस्थित मुझ सूर्यकी सेवा क्यों नहीं करती?॥ २२॥

हे चारुलोचने! मैं इस समय कामार्त हूँ, अतः प्रेमके साथ मेरा सेवन करो। मन्त्रके द्वारा अधीनताको प्राप्त मुझको तुम विहार करनेके लिये ले चलो॥ २३॥

कुन्ती बोली—हे धर्मज्ञ! मैं अभी कन्या हूँ। हे सर्वसाक्षिन्! मैं आपको प्रणाम करती हूँ। हे सुव्रत! आप मेरे प्रति अनुचित बातें न कहें; क्योंकि मैं कुलीन कन्या हूँ॥ २४॥

सूर्य बोले—यदि मैं इस समय व्यर्थ लौट जाता हूँ तो मेरे लिये बड़ी लज्जाकी बात होगी और मैं सभी देवताओंमें निन्दाका पात्र बनूँगा; इसमें संशय नहीं है॥ २५॥

हे कुन्ति! यदि तुम मेरे साथ रमण नहीं करोगी तो मैं तुम्हें तथा उस मुनिको शाप दे दूँगा, जिसने तुम्हें वह मन्त्र बताया है। हे सुन्दरि! तुम्हारा कन्याधर्म स्थिर रहेगा। इस रहस्यको लोग नहीं जान सकेंगे तथा हे वरानने! मेरे समान ही तेजस्वी पुत्र तुमको प्राप्त होगा॥ २६-२७॥

इत्युक्त्वा तरणिः कुन्तीं तन्मनस्कां सुलज्जिताम्।
भुक्त्वा जगाम देवेशो वरं दत्त्वातिवाञ्छितम्॥ २८

गर्भं दधार सुश्रोणी सुगुप्ते मन्दिरे स्थिता।
धात्री वेद प्रिया चैका न माता न जनस्तथा॥ २९

गुप्तः सद्मनि पुत्रस्तु जातश्चातिमनोहरः।
कवचेनातिरम्येण कुण्डलाभ्यां समन्वितः॥ ३०

द्वितीय इव सूर्यस्तु कुमार इव चापरः।
करे कृत्वाथ धात्रेयी तामुवाच सुलज्जिताम्॥ ३१

कां चिन्तां करभोरु त्वमाधत्सेऽद्य स्थितास्म्यहम्।
मञ्जूषायां सुतं कुन्ती मुञ्चन्ती वाक्यमब्रवीत्॥ ३२

किं करोमि सुतार्ताहं त्यजे त्वां प्राणवल्लभम्।
मन्दभाग्या त्यजामि त्वां सर्वलक्षणसंयुतम्॥ ३३

पातु त्वां सगुणागुणा भगवती सर्वेश्वरी चाम्बिका
स्तन्यं सैव ददातु विश्वजननी कात्यायनी कामदा।
द्रक्ष्येऽहं मुखपङ्कजं सुललितं प्राणप्रियार्हं कदा
त्यक्त्वा त्वां विजने वने रविसुतं दुष्टा यथा स्वैरिणी॥ ३४

पूर्वस्मिन्नपि जन्मनि त्रिजगतां माता न चाराधिता
न ध्यातं पदपङ्कजं सुखकरं देव्याः शिवायाश्चिरम्।
तेनाहं सुत दुर्भगास्मि सततं त्यक्त्वा पुनस्त्वां वने
तप्स्यामि प्रिय पातकं स्मृतवती बुद्ध्या कृतं यत्स्वयम्॥ ३५

सूत उवाच

इत्युक्त्वा तं सुतं कुन्ती मञ्जूषायां धृतं किल।
धात्रीहस्ते ददौ भीता जनदर्शनतस्तथा॥ ३६

यह कहकर सूर्यदेव अपनी ओर आसक्त मनवाली एवं लज्जाशील उस कुन्तीसे संसर्ग करके तथा उसे मनोवांछित वरदान देकर चले गये॥ २८॥

इस प्रकार उस सुश्रोणी कुन्तीने गर्भ धारण किया और वह अत्यन्त गुप्त भवनमें रहने लगी। केवल उसकी एक प्रिय दासी ही इस रहस्यको जानती थी, कुन्तीके माता-पिता भी इसे नहीं जानते थे॥ २९॥

यथासमय उसी गुप्त भवनमें कुन्तीको एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर कवच तथा दो कुण्डलोंसे युक्त था और दूसरे सूर्य तथा कुमार कार्तिकेयके समान प्रतीत हो रहा था। धात्रीने उसे अपने हाथमें उठाकर लज्जायुक्त कुन्तीसे कहा—हे सुन्दरि! मैं यहाँ हूँ, अतः तुम किस बातकी चिन्ता कर रही हो?॥ ३०-३१$\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् काष्ठमंजूषामें पुत्रको छोड़ती हुई कुन्ती कहने लगी—हे पुत्र! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त दुःखित हूँ, जो कि तुझ प्राणप्रियको त्याग रही हूँ। मैं अभागिन तुझ सर्वलक्षणसम्पन्नका परित्याग कर दे रही हूँ॥ ३२-३३॥

सगुणा, निर्गुणा तथा सबकी स्वामिनी वे भगवती अम्बिका तुम्हारी रक्षा करें। वे जगज्जननी कामप्रदा कात्यायनी तुम्हें दुग्धपान करायें। हे पुत्र! तुम साक्षात् सूर्यनारायणके पुत्र हो और मेरे प्राणप्रिय हो—ऐसे तुमको इस निर्जन वनमें एक दुष्ट तथा कुलटा स्त्रीकी भाँति छोड़कर मैं कब तुम्हारा अति सुन्दर मुखकमल देख पाऊँगी॥ ३४॥

हे पुत्र! प्रतीत होता है कि मैंने पूर्वजन्ममें भी तीनों लोकोंकी जननी भगवतीकी आराधना नहीं की थी तथा भगवती शिवाके सुखदायक चरणकमलका भी मैंने कभी ध्यान नहीं किया था; इसी कारण मैं सदा अभागिनी हूँ। हे प्रिय! मैं तुम्हें इस वनमें त्यागकर जान-बूझकर स्वयं किये गये इस पापका स्मरण करती हुई सन्ताप सहूँगी॥ ३५॥

सूतजी बोले—इस प्रकार कहकर कुन्तीने मंजूषामें रखे हुए उस पुत्रको लोगोंकी दृष्टिसे बचाते हुए भयभीतभावसे धात्रीके हाथमें दे दिया॥ ३६॥

स्नात्वा त्रस्ता तदा कुन्ती पितृवेश्मन्युवास सा।
मञ्जूषा वहमाना च प्राप्ता ह्यधिरथेन वै॥ ३७

राधा सूतस्य भार्या वै तयासौ प्रार्थितः सुतः।
कर्णोऽभूद् बलवान्वीरः पालितः सूतसद्मनि॥ ३८

कुन्ती विवाहिता कन्या पाण्डुना सा स्वयम्वरे।
माद्री चैवापरा भार्या मद्रराजसुता शुभा॥ ३९

मृगयां रममाणस्तु वने पाण्डुर्महाबलः।
जघान मृगबुद्ध्या तु रममाणं मुनिं वने॥ ४०

शप्तस्तेन तदा पाण्डुर्मुनिना कुपितेन च।
स्त्रीसङ्गं यदि कर्तासि तदा ते मरणं ध्रुवम्॥ ४१

इति शप्तस्तु मुनिना पाण्डुः शोकसमन्वितः।
त्यक्त्वा राज्यं वने वासं चकार भृशदुःखितः॥ ४२

कुन्ती माद्री च भार्ये द्वे जग्मतुः सह सङ्गते।
सेवनार्थं सतीधर्मं संश्रिते मुनिसत्तमाः॥ ४३

गङ्गातीरे स्थितः पाण्डुर्मुनीनामाश्रमेषु च।
शृण्वानो धर्मशास्त्राणि चकार दुश्चरं तपः॥ ४४

कथायां वर्तमानायां कदाचिद्धर्मसंश्रितम्।
अशृणोद्वचनं राजा सुपृष्टं मुनिभाषितम्॥ ४५

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गे गन्तुं परन्तप।
येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननं चरेत्॥ ४६

अंशजः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गोलकस्तथा।
कुण्डः सहोढः कानीनः क्रीतः प्राप्तस्तथा वने॥ ४७

दत्तः केनापि चाशक्तौ धनग्राहिसुताः स्मृताः।
उत्तरोत्तरतः पुत्रा निकृष्टा इति निश्चयः॥ ४८

तत्पश्चात् स्नान करके भयभीत वह कुन्ती अपने पिताके घरमें रहने लगी। जलमें बहती हुई वह मंजूषा अधिरथ नामक सूतको प्राप्त हुई। उस सूतकी भार्या राधा थी। उसने बच्चेको माँग लिया। इस प्रकार सूतके घरमें पलकर वह कर्ण बलवान् तथा वीर हो गया॥ ३७-३८॥

इसके बाद स्वयंवरमें कुन्तीका विवाह पाण्डुके साथ हुआ। उनकी दूसरी पत्नी मद्रदेशके राजाकी सुलक्षणा कन्या माद्री थी॥ ३९॥

एक बार वनमें आखेट करनेमें तत्पर महाबली पाण्डुने मृग समझकर रमण करते हुए एक मुनिपर प्रहार कर दिया। तब उस कुपित मुनिने पाण्डुको शाप दे दिया कि यदि तुम स्त्रीके साथ संसर्ग करोगे तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है॥ ४०-४१॥

मुनिके यह शाप दे देनेपर पाण्डु शोकाकुल हो गये। वे राज्य त्यागकर अत्यन्त दुःखित हो वनमें रहने लगे॥ ४२॥

हे मुनिवरो! उनकी दोनों पत्नियाँ माद्री और कुन्ती भी सतीधर्मका आश्रय लेकर उनकी सेवा करनेके लिये उनके साथ ही वनमें चली गयीं॥ ४३॥

राजा पाण्डु गंगाजीके तटपर मुनियोंके आश्रमोंमें रहने लगे और धर्मशास्त्रोंका श्रवण करते हुए कठिन तपस्या करने लगे॥ ४४॥

किसी समय कथाप्रसंगमें सम्यक् प्रकारसे पूछनेपर किसी मुनिके द्वारा कहा गया यह धार्मिक वचन राजाने सुना—हे परन्तप! अपुत्रकी गति नहीं होती; वह स्वर्ग जानेका अधिकारी नहीं होता अतएव जिस किसी भी उपायसे पुत्र उत्पन्न करना चाहिये॥ ४५-४६॥

अंशज, पुत्रिकापुत्र, क्षेत्रज , गोलक, कुण्ड, सहोढ, कानीन, क्रीत, वनमें प्राप्त, पालन करनेमें असमर्थ किसीका दिया हुआ—इतने प्रकारके पुत्र पिताकी सम्पत्तिके उत्तराधिकारी कहे गये हैं, इनमें उत्तरोत्तर एक दूसरेसे निकृष्ट पुत्र हैं; यह सुनिश्चित है॥ ४७-४८॥

इत्याकर्ण्य तदा प्राह कुन्तीं कमललोचनाम्।
सुतमुत्पादयाशु त्वं मुनिं गत्वा तपोऽन्वितम्॥ ४९

ममाज्ञया न दोषस्ते पुरा राज्ञा महात्मना।
वसिष्ठाज्जनितः पुत्रः सौदासेनेति मे श्रुतम्॥ ५०

तं कुन्ती वचनं प्राह मम मन्त्रोऽस्ति कामदः।
दत्तो दुर्वाससा पूर्वं सिद्धिदः सर्वथा प्रभो॥ ५१

निमन्त्रयेऽहं यं देवं मन्त्रेणानेन पार्थिव।
आगच्छेत्सर्वथासौ वै मम पार्श्वं निमन्त्रितः॥ ५२

भर्तुर्वाक्येन सा तत्र स्मृत्वा धर्मं सुरोत्तमम्।
सङ्गम्य सुषुवे पुत्रं प्रथमं च युधिष्ठिरम्॥ ५३

वायोर्वृकोदरं पुत्रं जिष्णुं चैव शतक्रतोः।
वर्षे वर्षे त्रयः पुत्राः कुन्त्या जाता महाबलाः॥ ५४

माद्री प्राह पतिं पाण्डुं पुत्रं मे कुरु सत्तम।
किं करोमि महाराज दुःखं नाशय मे प्रभो॥ ५५

प्रार्थिता पतिना कुन्ती ददौ मन्त्रं दयान्विता।
एकपुत्रप्रबन्धेन माद्री पतिमते स्थिता॥ ५६

स्मृत्वा तदाश्विनौ देवौ मद्रराजसुता सुतौ।
नकुलः सहदेवश्च सुषुवे वरवर्णिनी॥ ५७

एवं ते पाण्डवाः पञ्च क्षेत्रोत्पन्नाः सुरात्मजाः।
वर्षवर्षान्तरे जाता वने तस्मिन्द्विजोत्तमाः॥ ५८

एकस्मिन्समये पाण्डुर्माद्रीं दृष्ट्वाथ निर्जने।
आश्रमे चातिकामार्तो जग्राहागतवैशसः॥ ५९

यह सुनकर राजा पाण्डुने कमलके समान नेत्रवाली कुन्तीसे कहा—तुम किसी तपोनिष्ठ मुनिके पास जाकर शीघ्र पुत्र उत्पन्न करो। मेरी आज्ञा होनेके कारण तुम्हें दोष नहीं लगेगा। मैंने सुना है कि पूर्वकालमें महात्मा राजा सौदासने वसिष्ठसे पुत्र उत्पन्न कराया था॥ ४९-५०॥

कुन्ती उनसे यह वचन बोली—सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाला एक मन्त्र मेरे पास है। हे प्रभो! पूर्वकालमें महर्षि दुर्वासाने सिद्धि प्रदान करनेवाला वह मन्त्र मुझे प्रदान किया था॥ ५१॥

हे राजन्! मैं इस मन्त्रद्वारा जिस देवताका आवाहन करूँगी, वह निमन्त्रित होकर निश्चय ही मेरे पास आ जायगा॥ ५२॥

पतिकी आज्ञासे वहाँ कुन्तीने देवताओंमें श्रेष्ठ धर्मराजका स्मरण करके उनके संयोगसे सर्वप्रथम युधिष्ठिरको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया॥ ५३॥

तत्पश्चात् उसने वायुके द्वारा भीमको और इन्द्रके द्वारा अर्जुनको उत्पन्न किया। इस प्रकार एक-एक वर्षके अन्तरालमें कुन्तीके तीन महाबली पुत्र उत्पन्न हुए॥ ५४॥

इसके बाद माद्रीने भी अपने पति पाण्डुसे कहा—हे श्रेष्ठ! मुझे भी पुत्र प्रदान कीजिये। हे महाराज! मैं क्या करूँ? हे प्रभो! मेरा दुःख दूर कीजिये॥ ५५॥

तब पति पाण्डुके प्रार्थना करनेपर दयालु कुन्तीने वह मन्त्र माद्रीको बता दिया। सुन्दरी माद्रीने भी एक पुत्रकी प्राप्तिके लिये पतिसे अनुमति पाकर अश्विनीकुमारोंका स्मरण करके नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र उत्पन्न किये॥ ५६-५७॥

हे मुनिवरो! इस प्रकार वे पाँचों पाण्डव देवताओंके पुत्र थे। वे क्षेत्रज पुत्रके रूपमें उस वनमें क्रमशः एक-एक वर्षके अन्तरसे उत्पन्न हुए॥ ५८॥

एक बार राजा पाण्डुने माद्रीको निर्जन आश्रममें देखकर अपनी मृत्यु निकट आयी होनेके कारण अत्यन्त कामातुर हो पकड़ लिया। माद्रीके द्वारा 'नहीं-नहीं'—ऐसा कहकर बार-बार निषेध करनेपर

मा मा मा मेति बहुधा निषिद्धोऽपि तया भृशम्।
आलिलिङ्ग प्रियां दैवात्पपात धरणीतले॥ ६०

यथा वृक्षगता वल्ली छिन्ने पतति वै द्रुमे।
तथा सा पतिता बाला कुर्वन्ती रोदनं बहु॥ ६१

प्रत्यागता तदा कुन्ती रुदती बालकास्तथा।
मुनयश्च महाभागाः श्रुत्वा कोलाहलं तदा॥ ६२

मृतः पाण्डुस्तदा सर्वे मुनयः संशितव्रताः।
सहाग्निभिर्विधिं कृत्वा गङ्गातीरे तदादहन्॥ ६३

चक्रे सहैव गमनं माद्री दत्त्वा सुतौ शिशू।
कुन्त्यै धर्मं पुरस्कृत्य सतीनां सत्यकामतः॥ ६४

जलदानादिकं कृत्वा मुनयस्तत्र वासिनः।
पञ्चपुत्रयुतां कुन्तीमनयन्हस्तिनापुरम्॥ ६५

तां प्राप्तां च समाज्ञाय गाङ्गेयो विदुरस्तथा।
नगरीं धृतराष्ट्रस्य सर्वे तत्र समाययुः॥ ६६

पप्रच्छुश्च जनाः सर्वे कस्य पुत्रा वरानने।
पाण्डोः शापं समाज्ञाय कुन्ती दुःखान्विता तदा॥ ६७

तानुवाच सुराणां वै पुत्राः कुरुकुलोद्भवाः।
विश्वासार्थं समाहूताः कुन्त्या सर्वे सुरास्तदा॥ ६८

आगत्य खे तदा तैस्तु कथितं नः सुताः किल।
भीष्मेण सत्कृतं वाक्यं देवानां सत्कृताः सुताः॥ ६९

गता नागपुरं सर्वे तानादाय सुतान्वधूम्।
भीष्मादयः प्रीतचित्ताः पालयामासुरर्थतः॥ ७०

एवं पार्थाः समुत्पन्ना गाङ्गेयेनाथ पालिताः॥ ७१

भी उन्होंने बलपूर्वक अपनी उस प्रियाका आलिंगन कर लिया और वे दैववश [शापके कारण] पृथ्वीपर गिर पड़े॥ ५९-६०॥

जैसे वृक्षपर चढ़ी हुई लता वृक्षके कट जानेपर गिर पड़ती है, वैसे ही वह रानी माद्री भी बहुत रुदन करती हुई गिर पड़ी॥ ६१॥

उस समय कोलाहल सुनकर रोती हुई कुन्ती, सभी बालक और महाभाग मुनिगण भी वहाँ आ गये॥ ६२॥

इस प्रकार जब पाण्डु मर गये, तब सभी व्रतधारी मुनियोंने गंगाके तटपर चिता लगाकर उनका दाह-संस्कार कर दिया। तत्पश्चात् अपने दोनों पुत्र कुन्तीको सौंप करके सती-धर्मका पालन करते हुए वह माद्री सत्यकी कामनासे उनके साथ ही सती हो गयी॥ ६३-६४॥

वहाँके निवासी मुनिगण जलांजलि आदि देकर पाँचों पुत्रोंसहित कुन्तीको हस्तिनापुर ले आये॥ ६५॥

धृतराष्ट्रकी नगरी हस्तिनापुरमें कुन्तीके आनेका समाचार पाकर भीष्म, विदुर आदि सभी लोग वहाँ आ पहुँचे॥ ६६॥

सभी लोगोंने कुन्तीसे पूछा—हे सुमुखि! ये किसके पुत्र हैं? तब कुन्ती अत्यन्त दुःखित होकर पाण्डुकी शापजन्य मृत्युका उल्लेख करके बोली—कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ये सब बालक देवताओंके पुत्र हैं। उन्हें विश्वास दिलानेके लिये कुन्तीने उस समय सभी देवताओंका आह्वान भी किया, तब उन देवताओंने आकाशमें प्रकट होकर कहा—ये पाँचों निःसन्देह हमलोगोंके पुत्र हैं। भीष्मने देवताओंके वचनका अनुमोदन किया तथा कुन्तीके पाँचों पुत्रोंका स्वागत किया॥ ६७—६९॥

तत्पश्चात् उन पुत्रों तथा वधू कुन्तीको लेकर भीष्म आदि सभी लोग हस्तिनापुर चले गये और प्रसन्नचित्त होकर प्रयत्नपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे। इस प्रकार पाण्डव उत्पन्न हुए और भीष्मने उनका परिपालन किया॥ ७०-७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
युधिष्ठिरादीनामुत्पत्तिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

◆

अथ सप्तमोऽध्यायः

धृतराष्ट्रका युधिष्ठिरसे दुर्योधनके पिण्डदानहेतु धन माँगना, भीमसेनका प्रतिरोध; धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और संजयका वनके लिये प्रस्थान, वनवासी धृतराष्ट्र तथा माता कुन्तीसे मिलनेके लिये युधिष्ठिरका भाइयोंके साथ वनगमन, विदुरका महाप्रयाण, धृतराष्ट्रसहित पाण्डवोंका व्यासजीके आश्रमपर आना, देवीकी कृपासे व्यासजीद्वारा महाभारत-युद्धमें मरे कौरवों-पाण्डवोंके परिजनोंको बुला देना

सूत उवाच

पञ्चानां द्रौपदी भार्या सा मान्या सा पतिव्रता।
पञ्च पुत्रास्तु तस्याः स्युर्भर्तृभ्योऽतीव सुन्दराः॥ १

अर्जुनस्य तथा भार्या कृष्णस्य भगिनी शुभा।
सुभद्रा या हृता पूर्वं जिष्णुना हरिसम्मते॥ २

तस्यां जातो महावीरो निहतोऽसौ रणाजिरे।
अभिमन्युर्हतास्तत्र द्रौपद्याश्च सुताः किल॥ ३

अभिमन्योर्वरा भार्या वैराटी चातिसुन्दरी।
कुलान्ते सुषुवे पुत्रं मृतो बाणाग्निना शिशुः॥ ४

जीवितः स तु कृष्णेन भागिनेयसुतः स्वयम्।
द्रौणिबाणाग्निनिर्दग्धः प्रतापेनाद्भुतेन च॥ ५

परिक्षीणेषु वंशेषु जातो यस्माद्वरः सुतः।
तस्मात्परीक्षितो नाम विख्यातः पृथिवीतले॥ ६

निहतेषु च पुत्रेषु धृतराष्ट्रोऽतिदुःखितः।
तस्थौ पाण्डवराज्ये च भीमवाग्बाणपीडितः॥ ७

गान्धारी च तथातिष्ठत् पुत्रशोकातुरा भृशम्।
सेवां तयोर्दिवारात्रं चकारार्तो युधिष्ठिरः॥ ८

विदुरोऽप्यतिधर्मात्मा प्रज्ञानेत्रमबोधयत्।
युधिष्ठिरस्यानुमते भ्रातृपार्श्वे व्यतिष्ठत॥ ९

सूतजी बोले—[हे मुनिगण!] माननीया द्रौपदी उन पाँचों पाण्डवोंकी पतिव्रता पत्नी थी। उन द्रौपदीको अत्यन्त सुन्दर पाँच पुत्र उन पतियोंसे उत्पन्न हुए॥ १॥

अर्जुनकी एक दूसरी सुन्दर पत्नी श्रीकृष्णकी बहन सुभद्रा थीं, जिन्हें अर्जुनने पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णकी अनुमतिसे हर लिया था॥ २॥

उन्हीं सुभद्राके गर्भसे महान् वीर अभिमन्युका जन्म हुआ। वह संग्राम-भूमिमें मारा गया था। उसी युद्धमें द्रौपदीके पाँचों पुत्र भी मारे गये थे॥ ३॥

वीर अभिमन्युकी श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सुन्दर पत्नी महाराज विराटकी पुत्री उत्तरा थी। [महाभारतके युद्धमें] कुरुकुलका नाश हो जानेपर उसने एक पुत्र उत्पन्न किया था; वह द्रोणपुत्र अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे [पहले गर्भमें ही] मर गया था, किंतु बादमें भगवान् श्रीकृष्णने अश्वत्थामाकी बाणाग्निसे निर्दग्ध अपने भांजेके पुत्रको अपने अद्भुत प्रतापसे पुनः जीवित कर दिया था॥ ४-५॥

कुरुवंशके समाप्त होनेपर वह श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ था; इसलिये वह बालक 'परीक्षित्' नामसे पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध हुआ॥ ६॥

अपने सौ पुत्रोंके मारे जानेपर अत्यन्त दुःखित राजा धृतराष्ट्र भीमके वाग्बाणोंसे सन्तप्त रहते हुए अब पाण्डवोंके राज्यमें रहने लगे। वैसे ही गान्धारी भी अत्यन्त दुःखी होकर जीवन-यापन करने लगी। दुःखित युधिष्ठिर दिन-रात उन दोनोंकी सेवा करने लगे॥ ७-८॥

महान् धर्मात्मा विदुर युधिष्ठिरकी अनुमतिसे अपने भाई धृतराष्ट्रके पासमें ही रहते थे और वे उन प्रज्ञाचक्षुको समझाते-बुझाते रहते थे॥ ९॥

धर्मपुत्रोऽपि धर्मात्मा चकार सेवनं पितुः।
पुत्रशोकोद्भवं दुःखं तस्य विस्मारयन्निव॥ १०

यथा शृणोति वृद्धोऽसौ तथा भीमोऽतिरोषितः।
वाग्बाणेनाहनत्तं तु श्रावयन्संस्थिताञ्जनान्॥ ११

मया पुत्रा हताः सर्वे दुष्टस्यान्धस्य ते रणे।
दुःशासनस्य रुधिरं पीतं हृद्यं तथा भृशम्॥ १२

भुनक्ति पिण्डमन्धोऽयं मया दत्तं गतत्रपः।
ध्वांक्षवद्वा श्ववच्चापि वृथा जीवत्यसौ जनः॥ १३

एवंविधानि रूक्षाणि श्रावयत्यनुवासरम्।
आश्वासयति धर्मात्मा मूर्खोऽयमिति च ब्रुवन्॥ १४

अष्टादशैव वर्षाणि स्थित्वा तत्रैव दुःखितः।
धृतराष्ट्रो वने यानं प्रार्थयामास धर्मजम्॥ १५

अयाचत धर्मपुत्रं धृतराष्ट्रो महीपतिः।
पुत्रेभ्योऽहं ददाम्यद्य निर्वापं विधिपूर्वकम्॥ १६

वृकोदरेण सर्वेषां कृतमत्रौर्ध्वदैहिकम्।
न कृतं मम पुत्राणां पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ १७

ददासि चेद्धनं मह्यं कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम्।
गमिष्येऽहं वनं तप्तुं तपः स्वर्गफलप्रदम्॥ १८

एकान्ते विदुरेणोक्तो राजा धर्मसुतः शुचिः।
धनं दातुं मनश्चक्रे धृतराष्ट्राय चार्थिने॥ १९

समाहूय निजान्सर्वानुवाच पृथिवीपतिः।
धनं दास्ये महाभागाः पित्रे निर्वापकामिने॥ २०

तच्छ्रुत्वा वचनं भ्रातुर्ज्येष्ठस्यामिततेजसः।
संग्रहेऽस्य महाबाहुर्मारुतिः कुपितोऽब्रवीत्॥ २१

धनं देयं महाभाग दुर्योधनहिताय किम्।
अन्धोऽपि सुखमाप्नोति मूर्खत्वं किमतः परम्॥ २२

धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर भी अपने पितातुल्य धृतराष्ट्रके पुत्रशोकजनित दुःखको विस्मारित कराते हुए उनकी सेवा करने लगे॥ १०॥

जिस किसी भी प्रकार यह वृद्ध धृतराष्ट्र सुन ले [यह ध्यानमें रखकर] भीम अत्यन्त क्रोधित होकर अपने वचनरूपी बाणोंसे उनपर सर्वदा प्रहार किया करते थे। वहाँ उपस्थित लोगोंको सुना-सुनाकर भीम कहा करते थे कि मैंने इस दुष्ट अन्धेके सभी पुत्रोंको रणभूमिमें मार डाला और दुःशासनके हृदयका रक्त जी-भरके पी लिया है। अब यह अन्धा निर्लज्ज होकर मेरे दिये हुए पिण्डको कौओं एवं कुत्तोंकी भाँति खाता है। अब तो यह व्यर्थ ही जीवन बिता रहा है॥ ११—१३॥

भीम इस प्रकारकी कठोर बातें प्रतिदिन उन्हें सुनाते थे; परंतु धर्मात्मा युधिष्ठिर यह कहते हुए धृतराष्ट्रको धैर्य प्रदान करते थे कि यह भीम मूर्ख है॥ १४॥

इस प्रकार उस दुःखी धृतराष्ट्रने अठारह वर्षतक वहाँ रहकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे वनमें जानेकी इच्छा प्रकट की। महाराज धृतराष्ट्रने धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे यह भी प्रार्थना की कि अब मैं अपने पुत्रोंके लिये विधिपूर्वक पिण्डदान करूँगा। यद्यपि भीमने सभीका और्ध्वदैहिककर्म कर दिया था, किंतु पूर्व वैरका स्मरण करते हुए उन्होंने मेरे पुत्रोंका नहीं किया। अतः यदि आप मुझे कुछ धन दें तो मैं अपने पुत्रोंका और्ध्वदैहिककर्म करके स्वर्गफल देनेवाला तप करनेके लिये वनमें चला जाऊँगा॥ १५—१८॥

विदुरने भी एकान्तमें पवित्रात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिरसे जब ऐसा कहा तब उन्होंने धनार्थी धृतराष्ट्रको धन देनेका निश्चय कर लिया। राजा युधिष्ठिरने परिवारके सभी जनोंको बुलाकर कहा—हे महाभाग! मैं कौरवोंका श्राद्ध करनेके इच्छुक ज्येष्ठ पिताको धन प्रदान करूँगा॥ १९-२०॥

महातेजस्वी ज्येष्ठ भ्राता युधिष्ठिरका वचन सुनकर वायुपुत्र महाबली भीमने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—हे महाभाग! दुर्योधनके कल्याणके लिये राजकोषका धन क्यों दिया जाय? इससे अन्धे धृतराष्ट्रको भी सुख मिलेगा; इससे बड़ी मूर्खता और क्या होगी?॥ २१-२२॥

तव दुर्मन्त्रितेनाथ दुःखं प्राप्ता वने वयम्।
द्रौपदी च महाभागा समानीता दुरात्मना॥ २३

विराटभवने वासः प्रसादात्तव सुव्रत।
दासत्वं च कृतं सर्वैर्मत्स्यस्यामितविक्रमैः॥ २४

देविता त्वं न चेज्ज्येष्ठः प्रभवेत्संक्षयः कथम्।
सूपकारो विराटस्य हत्वाभूवं तु मागधम्॥ २५

बृहन्नला कथं जिष्णुर्भवेद् बालस्य नर्तकः।
कृत्वा वेषं महाबाहुर्योषाया वासवात्मजः॥ २६

गाण्डीवशोभितौ हस्तौ कृतौ कङ्कणशोभितौ।
मानुषं च वपुः प्राप्य किं दुःखं स्यादतः परम्॥ २७

दृष्ट्वा वेणीं कृतां मूर्ध्नि कज्जलं लोचने तथा।
असिं गृहीत्वा तरसा छेद्म्यहं नान्यथा सुखम्॥ २८

अपृष्ट्वा च महीपालं निक्षिप्तोऽग्निर्मया गृहे।
दग्धुकामश्च पापात्मा निर्दग्धोऽसौ पुरोचनः॥ २९

कीचका निहताः सर्वे त्वामपृष्ट्वा जनाधिप।
न तथा निहताः सर्वे सभार्या धृतराष्ट्रजाः॥ ३०

मूर्खत्वं तव राजेन्द्र गन्धर्वेभ्यश्च मोचिताः।
दुर्योधनादयः कामं शत्रवो निगडीकृताः॥ ३१

दुर्योधनहितायाद्य धनं दातुं त्वमिच्छसि।
नाहं ददे महीपाल सर्वथा प्रेरितस्त्वया॥ ३२

इत्युक्त्वा निर्गते भीमे त्रिभिः परिवृतो नृपः।
ददौ वित्तं सुबहुलं धृतराष्ट्राय धर्मजः॥ ३३

आपकी दूषित मन्त्रणाके फलस्वरूप ही हमलोगोंने वनवासका कठोर कष्ट सहा। दुरात्मा दुःशासन महारानी द्रौपदीको अपमानपूर्वक सभामें खींच लाया॥ २३॥

हे सुव्रत! आपकी कृपासे ही हमलोगोंको विराट राजाके घर रहना पड़ा तथा हम अमित पराक्रमवालोंको मत्स्यदेशके राजाकी दासता करनी पड़ी थी॥ २४॥

हम सबमें ज्येष्ठ आप यदि जुआ न खेलते तो हम लोगोंकी दुर्गति क्यों होती? मगधनरेश जरासंधका वध करनेवाले मुझको राजा विराटके यहाँ रसोइया बनना पड़ा॥ २५॥

आपके ही कारण इन्द्रपुत्र महाबाहु अर्जुनको विराट राजाके यहाँ स्त्रीका रूप धारण करके उनके बच्चोंको नृत्यकी शिक्षा देनेके लिये बृहन्नला बनना पड़ा। गाण्डीव धनुषके स्थानपर अर्जुनको अपने हाथोंमें कंकण धारण करना पड़ा। मनुष्यका शरीर पाकर भला इससे बड़ा कष्ट और क्या हो सकता है? अर्जुनके सिरपर चोटी और आँखोंमें काजलकी बातका स्मरण करके तो मनमें यही आता है कि मैं अभी तलवार लेकर शीघ्र ही धृतराष्ट्रका सिर काट दूँ; इसके अतिरिक्त मुझे शान्ति नहीं मिल सकती॥ २६—२८॥

आप महाराजसे बिना पूछे ही मैंने लाक्षागृहमें अग्नि लगा दी थी, जिससे हमलोगोंको जलानेकी इच्छावाला वह पापी पुरोचन स्वयं जल गया॥ २९॥

हे राजन्! मैंने आपसे परामर्श किये बिना ही जैसे सभी कीचकोंका वध कर डाला, वैसे ही स्त्रियोंसमेत धृतराष्ट्रके सभी पुत्रोंका भी वध मैं नहीं कर पाया॥ ३०॥

हे राजेन्द्र! यह आपकी नासमझी ही थी कि जब गन्धर्वोंने दुर्योधन आदि हमारे शत्रुओंको बन्दी बना लिया था, तब आपने ही उन्हें छुड़ा दिया॥ ३१॥

हे राजन्! आज पुनः उसी दुष्ट दुर्योधनके कल्याणके लिये आप धन देनेकी इच्छा कर रहे हैं। आपके कहनेपर भी मैं उन्हें धन नहीं देने दूँगा॥ ३२॥

ऐसा कहकर भीमके चले जानेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने [अर्जुन, नकुल तथा सहदेव—इन] तीनोंकी सम्मति लेकर धृतराष्ट्रको बहुत-सा धन दे दिया॥ ३३॥

कारयामास विधिवत्पुत्राणां चौर्ध्वदैहिकम्।
ददौ दानानि विप्रेभ्यो धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः॥ ३४

कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं गान्धारीसहितो नृपः।
प्रविवेश वनं तूर्णं कुन्त्या च विदुरेण च॥ ३५

सञ्जयेन परिज्ञातो निर्गतोऽसौ महामतिः।
पुत्रैर्निवार्यमाणापि शूरसेनसुता गता॥ ३६

विलपन्भीमसेनोऽपि तथान्ये चापि कौरवाः।
गङ्गातीरात्परावृत्य ययुः सर्वे गजाह्वयम्॥ ३७

ते गत्वा जाह्नवीतीरे शतयूपाश्रमं शुभम्।
कृत्वा तृणैः कुटीं तत्र तपस्तेपुः समाहिताः॥ ३८

गतान्यब्दानि षट् तेषां यदा याता हि तापसाः।
युधिष्ठिरस्तु विरहादनुजानिदमब्रवीत्॥ ३९

स्वप्ने दृष्टा मया कुन्ती दुर्बला वनसंस्थिता।
मनो मे जायते द्रष्टुं मातरं पितरौ तथा॥ ४०

विदुरं च महात्मानं सञ्जयं च महामतिम्।
रोचते यदि वः सर्वान् व्रजाम इति मे मतिः॥ ४१

ततस्ते भ्रातरः सर्वे सुभद्रा द्रौपदी तथा।
वैराटी च महाभागा तथा नागरिको जनः॥ ४२

प्राप्ताः सर्वजनैः सार्धं पाण्डवा दर्शनोत्सुकाः।
शतयूपाश्रमं प्राप्य ददृशुः सर्व एव ते॥ ४३

विदुरो न यदा दृष्टो धर्मस्तं पृष्टवांस्तदा।
क्वास्ते स विदुरो धीमांस्तमुवाचाम्बिकासुतः॥ ४४

विरक्तश्चरते क्षत्ता निरीहो निष्परिग्रहः।
कुतोऽप्येकान्तसंवासी ध्यायतेऽन्तः सनातनम्॥ ४५

तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने धन लेकर अपने पुत्रोंका विधिवत् श्राद्धकर्म कराया और ब्राह्मणोंको विविध दान दिये॥ ३४॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंका श्राद्धकर्म करके गान्धारीसहित महाराज धृतराष्ट्र कुन्ती तथा विदुरके साथ शीघ्र ही वनमें चले गये॥ ३५॥

संजयद्वारा सबको यह समाचार मिला कि महामति धृतराष्ट्र वनमें जा रहे हैं, उस समय अपने पुत्रोंके मना करनेपर भी शूरसेनकी पुत्री कुन्ती उनके साथ चली गयी॥ ३६॥

यह देखकर भीम भी रोने लगे। वे तथा अन्यान्य सभी कौरव उन लोगोंको गंगातटतक पहुँचाकर पुनः हस्तिनापुरको लौट आये॥ ३७॥

तत्पश्चात् धृतराष्ट्र आदि गंगातटपर स्थित शुभ शतयूप-आश्रममें पहुँचे और वहाँ पर्णकुटी बनाकर एकचित्त हो तपस्या करने लगे॥ ३८॥

जब वे तपस्वी चले गये और इस प्रकार छः वर्ष बीत गये, तब उनके विरहसे सन्तप्त युधिष्ठिर अपने भाइयोंसे कहने लगे—मैंने स्वप्न देखा है कि वनमें रहती हुई माता कुन्ती अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, अतः माता तथा पितृजनोंको देखनेकी मनमें इच्छा हो रही है। साथ ही महात्मा विदुर तथा महाबुद्धिमान् संजयसे भी मिलनेकी मेरी इच्छा है। यदि आप लोगोंको भी यह उचित प्रतीत होता हो तो हमलोग वहाँ चलें—ऐसा मेरा विचार है॥ ३९—४१॥

तब वे सभी भाई, सुभद्रा, द्रौपदी, महाभागा उत्तरा तथा अन्यान्य नागरिकजन वहाँ एकत्र हुए। दर्शनके लिये उत्सुक उन पाण्डवोंने सभी लोगोंके साथ शतयूप-आश्रममें जाकर धृतराष्ट्र आदिको देखा॥ ४२-४३॥

वहाँ जब विदुरजी दिखायी नहीं दिये, तब धर्मराज युधिष्ठिरने धृतराष्ट्रसे पूछा—वे बुद्धिमान् विदुरजी कहाँ हैं? तब अम्बिकापुत्र धृतराष्ट्रने उनसे कहा—विदुर तो विरक्त एवं निष्काम होकर तथा सब कुछ त्यागकर कहीं एकान्तमें रहते हुए अन्तःकरणमें परमात्माका ध्यान कर रहे होंगे॥ ४४-४५॥

गङ्गां गच्छन्द्वितीयेऽह्नि वने राजा युधिष्ठिरः।
ददर्श विदुरं क्षामं तपसा संशितव्रतम्॥ ४६

दृष्ट्वोवाच महीपालो वन्देऽहं त्वां युधिष्ठिरः।
तस्थौ श्रुत्वा च विदुरः स्थाणुभूत इवानघः॥ ४७

क्षणेन विदुरस्यास्यान्निःसृतं तेज अद्भुतम्।
लीनं युधिष्ठिरस्यास्ये धर्मांशत्वात्परस्परम्॥ ४८

क्षत्ता जहौ तदा प्राणाञ्छुशोचाति युधिष्ठिरः।
दाहार्थं तस्य देहस्य कृतवानुद्यमं नृपः॥ ४९

शृण्वतस्तु तदा राज्ञो वागुवाचाशरीरिणी।
विरक्तोऽयं न दाहार्हो यथेष्टं गच्छ भूपते॥ ५०

श्रुत्वा ते भ्रातरः सर्वे सस्नुर्गङ्गाजलेऽमले।
गत्वा निवेदयामासुर्धृतराष्ट्राय विस्तरात्॥ ५१

स्थितास्तत्राश्रमे सर्वे पाण्डवा नागरैः सह।
तत्र सत्यवतीसूनुर्नारदश्च समागतः॥ ५२

मुनयोऽन्ये महात्मानश्चागता धर्मनन्दनम्।
कुन्ती प्राह तदा व्यासं संस्थितं शुभदर्शनम्॥ ५३

कृष्ण कर्णस्तु पुत्रो मे जातमात्रस्तु वीक्षितः।
मनो मे तप्यतेऽत्यर्थं दर्शयस्व तपोधन॥ ५४
समर्थोऽसि महाभाग कुरु मे वाञ्छितं प्रभो।

गान्धार्युवाच

दुर्योधनो रणेऽगच्छद्वीक्षितो न मया मुने॥ ५५

तं दर्शय मुनिश्रेष्ठ पुत्रं मे त्वं सहानुजम्।

सुभद्रोवाच

अभिमन्युं महावीरं प्राणादप्यधिकं प्रियम्॥ ५६
द्रष्टुकामास्मि सर्वज्ञ दर्शयाद्य तपोधन।

दूसरे दिन गंगाजीकी ओर जाते हुए युधिष्ठिरने वनमें तपस्याके कारण क्षीण देहवाले व्रतधारी विदुरजीको देखा। उन्हें देखकर महाराज युधिष्ठिरने कहा—मैं आपको प्रणाम करता हूँ। यह सुनकर भी निष्पाप विदुरजी ठूँठवृक्षके समान अचल स्थित रहे॥ ४६-४७॥

उसी क्षण विदुरजीके मुखसे एक अद्भुत तेज निकला और वह तत्काल युधिष्ठिरके मुखमें समा गया; क्योंकि वे दोनों ही धर्मके अंश थे॥ ४८॥

इस प्रकार विदुरजीने प्राणत्याग कर दिया और युधिष्ठिर अत्यन्त शोकाकुल हो गये। वे राजा युधिष्ठिर उनके शरीरका दाह-संस्कार करनेका प्रबन्ध करने लगे॥ ४९॥

उसी समय राजाको सुनाते हुए आकाशवाणी हुई—हे राजन्! ये विदुरजी विरक्त हैं, अतः ये दाह-संस्कारके योग्य नहीं हैं। अब आप इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ५०॥

यह सुनकर उन सभी भाइयोंने गंगाके निर्मल जलमें स्नान किया और वहाँ जाकर धृतराष्ट्रसे [सभी वृत्तान्त] विस्तारपूर्वक बताया॥ ५१॥

तत्पश्चात् सब पाण्डव नागरिकोंके साथ उस आश्रममें बैठ गये। उसी समय सत्यवतीपुत्र व्यासजी तथा नारदजी भी वहाँ पहुँच गये। अन्य मुनिगण भी वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरके पास आ गये। उस समय कुन्तीने वहाँ विराजमान शुभदर्शन व्यासजीसे कहा—॥ ५२-५३॥

हे कृष्णद्वैपायन! मैंने अपने पुत्र कर्णको जन्मके समय ही देखा था। [उसे देखनेके लिये] मेरा मन बहुत तड़प रहा है, अतः हे तपोधन! मुझे उसको दिखा दीजिये। हे महाभाग! आप समर्थ हैं, अतः मेरी यह इच्छा पूर्ण कीजिये॥ ५४½॥

गान्धारी बोली—हे मुने! दुर्योधन समरभूमिमें चला गया था और मैं उसे देख नहीं पायी। अतः हे मुनिश्रेष्ठ! छोटे भाइयोंसहित उस दुर्योधनको आप मुझे दिखा दीजिये॥ ५५½॥

सुभद्रा बोली—हे सर्वज्ञ! मैं प्राणोंसे भी अधिक प्रिय अपने महान् वीर पुत्र अभिमन्युको देखना चाहती हूँ। अतः हे तपोधन! उसे अभी दिखा दीजिये॥ ५६½॥

सूत उवाच

एवंविधानि वाक्यानि श्रुत्वा सत्यवतीसुतः॥ ५७

प्राणायामं ततः कृत्वा दध्यौ देवीं सनातनीम्।
सन्ध्याकालेऽथ सम्प्राप्ते गङ्गायां मुनिसत्तमः॥ ५८

सर्वांस्तांश्च समाहूय युधिष्ठिरपुरोगमान्।
तुष्टाव विश्वजननीं स्नात्वा पुण्यसरिज्जले॥ ५९

प्रकृतिं पुरुषारामां सगुणां निर्गुणां तथा।
देवदेवीं ब्रह्मरूपां मणिद्वीपाधिवासिनीम्॥ ६०

यदा न वेधा न च विष्णुरीश्वरो
न वासवो नैव जलाधिपस्तथा।
न वित्तपो नैव यमश्च पावक-
स्तदासि देवि त्वमहं नमामि ताम्॥ ६१

जलं न वायुर्न धरा न चाम्बरं
गुणा न तेषां च न चेन्द्रियाण्यहम्।
मनो न बुद्धिर्न च तिग्मगुः शशी
तदासि देवि त्वमहं नमामि ताम्॥ ६२

इमं जीवलोकं समाधाय चित्ते
गुणैर्लिङ्गकोशं च नीत्वा समाधौ।
स्थिता कल्पकालं नयस्यात्मतन्त्रा
न कोऽप्यस्ति वेत्ता विवेकं गतोऽपि॥ ६३

प्रार्थयत्येष मां लोको मृतानां दर्शनं पुनः।
नाहं क्षमोऽस्मि मातस्त्वं दर्शयाशु जनान्मृतान्॥ ६४

सूत उवाच

एवं स्तुता तदा देवी माया श्रीभुवनेश्वरी।
स्वर्गादाहूय सर्वान्वै दर्शयामास पार्थिवान्॥ ६५

दृष्ट्वा कुन्ती च गान्धारी सुभद्रा च विराटजा।
पाण्डवा मुमुदुः सर्वे वीक्ष्य प्रत्यागतान्स्वकान्॥ ६६

पुनर्विसर्जितास्तेन व्यासेनामिततेजसा।
स्मृत्वा देवीं महामायामिन्द्रजालमिवोद्यतम्॥ ६७

सूतजी बोले—इस प्रकारके वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासजीने प्राणायाम करके सनातनी देवी भगवतीका ध्यान किया। तब सायंकाल आनेपर मुनिश्रेष्ठ व्यासजी युधिष्ठिर आदि सभी जनोंको गंगाजीके तटपर बुलाकर पुण्यनदी गंगाके पवित्र जलमें स्नान करके प्रकृतिस्वरूपिणी, परम पुरुषको प्रसन्न करनेवाली, सगुण-निर्गुणरूपा, देवताओंकी भी देवी, ब्रह्मस्वरूपिणी उन मणिद्वीपनिवासिनी भगवतीकी स्तुति करने लगे॥ ५७—६०॥

हे देवि! जब ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम तथा अग्नि—ये कोई भी नहीं थे, उस समय भी आपकी सत्ता थी; ऐसी उन आपको मैं नमस्कार करता हूँ॥ ६१॥

जिस समय जल, वायु, पृथ्वी, आकाश तथा उनके रस आदि गुण, समस्त इन्द्रियाँ, अहंकार, मन, बुद्धि, सूर्य तथा चन्द्रमा—ये कोई भी नहीं थे, तब भी आप विद्यमान थीं; ऐसी उन आपको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ६२॥

इस जीवलोकको अपने चित्तमें समाहित करके सत्व-रज-तम आदि गुणोंसहित लिंग-कोशको समाधिकी अवस्थामें पहुँचाकर जब आप कल्पपर्यन्त स्वतन्त्र होकर विहार करती हैं, तब विवेकप्राप्त पुरुष भी आपको जाननेमें समर्थ नहीं होता॥ ६३॥

हे माता! ये लोग मृत व्यक्तियोंके पुनः दर्शनके लिये मुझसे प्रार्थना कर रहे हैं, किंतु मैं ऐसा कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। अतएव आप इन्हें मृत व्यक्तियोंको शीघ्र ही दिखा दें॥ ६४॥

सूतजी बोले—व्यासजीके द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर महामाया श्रीभुवनेश्वरी देवीने समस्त मृत राजाओंको स्वर्गसे बुलाकर दिखा दिया॥ ६५॥

कुन्ती, गान्धारी, सुभद्रा, विराटपुत्री उत्तरा एवं सभी पाण्डव वापस आये हुए स्वजनोंको देखकर प्रसन्न हो गये॥ ६६॥

तदनन्तर अपरिमित तेजवाले व्यासजीने महामाया देवीका स्मरण करके इन्द्रजालकी भाँति प्रकट हुए उन सबको पुनः लौटा दिया॥ ६७॥

तदा पृष्ट्वा ययुः सर्वे पाण्डवा मुनयस्तथा।
राजा नागपुरं प्राप्तः कुर्वन्व्यासकथां पथि॥ ६८

तत्पश्चात् [धृतराष्ट्र आदि तापसोंसे] आज्ञा लेकर सभी पाण्डव तथा मुनिजन वहाँसे चल दिये। राजा युधिष्ठिर भी मार्गमें व्यासजीकी चर्चा करते हुए हस्तिनापुर आ गये॥ ६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे पाण्डवानां कथानकं मृतानां दर्शनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

धृतराष्ट्र आदिका दावाग्निमें जल जाना, प्रभासक्षेत्रमें यादवोंका परस्पर युद्ध और संहार, कृष्ण और बलरामका परमधामगमन, परीक्षित्‌को राजा बनाकर पाण्डवोंका हिमालय-पर्वतपर जाना, परीक्षित्‌को शापकी प्राप्ति, प्रमद्वरा और रुरुका वृत्तान्त

सूत उवाच

ततो दिने तृतीये च धृतराष्ट्रः स भूपतिः।
दावाग्निना वने दग्धः सभार्यः कुन्तिसंयुतः॥ १

सूतजी बोले—वहाँसे पाण्डवोंके प्रस्थित होनेके तीसरे दिन उस वनमें लगी दावाग्निमें कुन्ती एवं गान्धारीसहित राजा धृतराष्ट्र दग्ध हो गये॥ १॥

सञ्जयस्तीर्थयात्रायां गतस्त्यक्त्वा महीपतिम्।
श्रुत्वा युधिष्ठिरो राजा नारदाद्दुःखमाप्तवान्॥ २

संजय पहले ही धृतराष्ट्रको छोड़कर तीर्थयात्राके लिये चले गये थे। नारदजीसे यह वृत्तान्त सुनकर राजा युधिष्ठिर अत्यन्त दुःखी हुए॥ २॥

षट्त्रिंशेऽथ गते वर्षे कौरवाणां क्षयात्पुनः।
प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः॥ ३

ते पीत्वा मदिरां मत्ताः कृत्वा युद्धं परस्परम्।
क्षयं प्राप्ता महात्मानः पश्यतो रामकृष्णयोः॥ ४

कौरवोंके विनाशके छत्तीस वर्ष बीतनेपर विप्र-शापके प्रभावसे सभी यादव प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये। वे सभी यादव मदिरा पीकर मतवाले हो गये और आपसमें लड़कर बलराम तथा श्रीकृष्णके देखते-देखते मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ३-४॥

देहं तत्याज रामस्तु कृष्णः कमललोचनः।
व्याधबाणहतः शापं पालयन्भगवान्हरिः॥ ५

तदनन्तर बलरामजीने योगक्रियाद्वारा शरीरका त्याग किया और कमलके समान नेत्रवाले भगवान् श्रीकृष्णने शापकी मर्यादा रखते हुए एक बहेलियेके बाणसे आहत होकर महाप्रयाण किया॥ ५॥

वसुदेवस्तु तच्छ्रुत्वा देहत्यागं हरेरथ।
जहौ प्राणाञ्छुचीन्कृत्वा चित्ते श्रीभुवनेश्वरीम्॥ ६

इसके पश्चात् जब वसुदेवजीने श्रीकृष्णके शरीर-त्यागका समाचार सुना तो उन्होंने अपने चित्तमें श्रीभुवनेश्वरी देवीका ध्यान करके अपने पवित्र प्राणोंका परित्याग कर दिया॥ ६॥

अर्जुनस्तु ततो गत्वा प्रभासे चातिदुःखितः।
संस्कारं तत्र सर्वेषां यथायोग्यं चकार ह॥ ७

तत्पश्चात् अत्यन्त शोक-संतप्त अर्जुनने प्रभास-क्षेत्रमें पहुँचकर सभीका यथोचित अन्तिम संस्कार सम्पन्न किया॥ ७॥

समीक्ष्याथ हरेर्देहं कृत्वा काष्ठस्य सञ्चयम्।
अष्टाभिः सह पत्नीभिर्दाहयामास पार्थिवः॥ ८

भगवान् श्रीकृष्णका शरीर खोजकर और लकड़ी जुटाकर अर्जुनने आठ पटरानियोंके साथ उनका दाह-संस्कार किया॥ ८॥

देहं रामस्य रेवत्या सह दग्ध्वा विभावसौ।
अर्जुनो द्वारकामेत्य पुरान्निष्क्रामयज्जनम्॥ ९

पुरी सा वासुदेवस्य प्लावितोदधिना ततः।
अर्जुनः सर्वलोकान्वै गृहीत्वा निर्गतस्तदा॥ १०

कृष्णपत्न्यस्तदा मार्गे चौराभीरैश्च लुण्ठिताः।
धनं सर्वं गृहीतं च निस्तेजश्चार्जुनोऽभवत्॥ ११

इन्द्रप्रस्थे समागत्य वज्रो राजा कृतस्तदा।
अनिरुद्धसुतो नाम्ना पार्थेनामिततेजसा॥ १२

व्यासाय कथितं दुःखं तेनोक्तोऽसौ महारथः।
पुनर्यदा हरिस्त्वञ्च भवितासि महामते॥ १३

तदा तेजस्तवात्युग्रं भविष्यति पुनर्युगे।
तच्छ्रुत्वा वचनं पार्थो गत्वा नागपुरेऽर्जुनः॥ १४

दुःखितो धर्मराजानं वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत्।
देहत्यागं हरेः श्रुत्वा यादवानां क्षयं तथा॥ १५

गमनाय मतिं चक्रे राजा हैमाचलं प्रति।
षट्त्रिंशद्वार्षिकं राज्ये स्थापयित्वोत्तरासुतम्॥ १६

निर्जगाम वनं राजा द्रौपद्या भ्रातृभिः सह।
षट्त्रिंशच्चैव वर्षाणि कृत्वा राज्यं गजाह्वये॥ १७

गत्वा हिमाचले षट् ते जहुः प्राणान्पृथासुताः।
परीक्षिदपि राजर्षिः प्रजाः सर्वाः सुधार्मिकः॥ १८

अपालयच्च राजेन्द्रः षष्टिवर्षाण्यतन्द्रितः।
बभूव मृगयाशीलो जगाम च वनं महत्॥ १९

विद्धं मृगं विचिन्वानो मध्याह्ने भूपतिः स्वयम्।
तृषितश्च परिश्रान्तः क्षुधितश्चोत्तरासुतः॥ २०

तदनन्तर रेवतीके साथ बलरामजीके मृतशरीरका दाह-संस्कार करके अर्जुनने द्वारकापुरी पहुँचकर उस नगरीसे नागरिकोंको बाहर निकाला॥ ९॥

तत्पश्चात् कुछ ही क्षणोंमें भगवान् श्रीकृष्णकी वह द्वारकापुरी समुद्रमें डूब गयी, किंतु अर्जुन सभी लोगोंको साथ लेकर बाहर निकल गये थे॥ १०॥

मार्गमें चोरों और भीलोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूट लिया और समस्त धन छीन लिया; उस समय अर्जुन तेजहीन हो गये॥ ११॥

तदनन्तर अपरिमित तेजसे सम्पन्न अर्जुनने इन्द्रप्रस्थ पहुँचकर अनिरुद्धके वज्र नामक पुत्रको राजा बनाया॥ १२॥

अर्जुनने अपने तेजहीन होनेका दुःख व्यासजीसे निवेदित किया, जिसपर व्यासजीने उस महारथी अर्जुनसे कहा—हे महामते! जब भगवान् श्रीकृष्ण और आपका पुनः अवतार होगा, तब उस युगमें आपका तेज पुनः अत्यन्त उग्र हो जायगा। उनका यह वचन सुनकर अर्जुन वहाँसे हस्तिनापुर चले गये। वहाँपर अत्यन्त दुःखी होकर अर्जुनने धर्मराज युधिष्ठिरसे समस्त वृत्तान्त कहा॥ १३-१४½॥

श्रीकृष्णके देहत्याग एवं यादवोंके विनाशका समाचार सुनकर राजा युधिष्ठिरने हिमालयकी ओर जानेका निश्चय कर लिया। इसके बाद छत्तीसवर्षीय उत्तरापुत्र परीक्षित्‌को राजसिंहासनपर प्रतिष्ठित करके वे राजा युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयोंके साथ वनकी ओर निकल गये। इस प्रकार छत्तीस वर्षकी अवधितक हस्तिनापुरमें राज्य करके द्रौपदी तथा कुन्तीपुत्रों—इन छहोंने हिमालयपर्वतपर जाकर प्राण त्याग दिये॥ १५—१७½॥

इधर धर्मनिष्ठ राजर्षि परीक्षित्‌ने भी आलस्यरहित भावसे साठ वर्षोंतक सम्पूर्ण प्रजाका पालन किया। वे एक बार आखेटहेतु एक विशाल जंगलमें गये॥ १८-१९॥

अपने बाणसे विद्ध एक मृगको खोजते-खोजते मध्याह्नकालमें उत्तरापुत्र राजा परीक्षित् भूख-प्यास तथा थकानसे व्याकुल हो गये॥ २०॥

राजा घर्मेण सन्तप्तो ददर्श मुनिमन्तिके।
ध्याने स्थितं मुनिं राजा जलं पप्रच्छ चातुरः॥ २१

नोवाच किञ्चिन्मौनस्थश्चुकोप नृपतिस्तदा।
मृतं सर्पं तदादाय धनुष्कोट्या तृषातुरः॥ २२

कलिनाविष्टचित्तस्तु कण्ठे तस्य न्यवेशयत्।
आरोपिते तथा सर्पे नोवाच मुनिसत्तमः॥ २३

न चचाल समाधिस्थो राजापि स्वगृहं गतः।
तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी गविजातो महातपाः॥ २४

महाशक्तोऽथ शुश्राव क्रीडमानो वनान्तिके।
मित्राण्याहुश्च तत्पुत्रं पितुः कण्ठे तवाधुना॥ २५

लम्भितोऽस्ति मृतः सर्पः केनापीति मुनीश्वर।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा चुकोपातिशयं तदा॥ २६

शशाप नृपतिं क्रुद्धो गृहीत्वाशु करे जलम्।
पितुः कण्ठेऽद्य मे येन विनिक्षिप्तो मृतोरगः॥ २७

तक्षकः सप्तरात्रेण तं दशेत्पापपूरुषम्।
मुनेः शिष्योऽथ राजानं समुपेत्य गृहे स्थितम्॥ २८

शापं निवेदयामास मुनिपुत्रेण चार्पितम्।
अभिमन्युसुतः श्रुत्वा शापं दत्तं द्विजेन वै॥ २९

अनिवार्यं च विज्ञाय मन्त्रिवृद्धानुवाच ह।
शप्तोऽहं द्विजरूपेण मम द्वेषादसंशयम्॥ ३०

किं विधेयं मयामात्या उपायश्चिन्त्यतामिह।
मृत्युः किलानिवार्योऽसौ वदन्ति वेदवादिनः॥ ३१

यत्नस्तथापि शास्त्रोक्तः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः।
उपायवादिनः केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ३२

विज्ञोपायेन सिध्यन्ति कार्याणि नेतरस्य च।
मणिमन्त्रौषधीनां वै प्रभावाः खलु दुर्विदः॥ ३३

न भवेदिति किं तैस्तु मणिमद्भिः सुसाधितैः।
सर्पदष्टा पुरा भार्या मुनेः सञ्जीविता मृता॥ ३४

धूपसे पीड़ित राजाने समीपमें ही एक ध्यानमग्न मुनिको विराजमान देखा और प्याससे व्याकुल उन्होंने मुनिसे जल माँगा॥ २१॥

मौन व्रतमें स्थित वे मुनि कुछ भी नहीं बोले, जिससे राजा कुपित हो गये और प्याससे आकुल तथा कलिसे प्रभावित चित्तवाले राजाने अपने धनुषकी नोकसे एक मृत साँप उठाकर उनके गलेमें डाल दिया। गलेमें सर्प डाल दिये जानेके बाद भी वे मुनिश्रेष्ठ कुछ भी नहीं बोले॥ २२-२३॥

वे थोड़ा भी विचलित नहीं हुए और समाधिमें स्थित रहे। राजा भी अपने घर चले गये। उन मुनिका पुत्र गविजात अत्यन्त तेजस्वी तथा महातपस्वी था॥ २४॥

पराशक्तिके आराधक उस गविजातने पासके वनमें खेलते हुए अपने मित्रोंको ऐसा कहते हुए सुना कि हे मुनिश्रेष्ठ! तुम्हारे पिताके गलेमें किसीने मृत सर्प डाल दिया है। उनकी यह बात सुनकर वह अत्यन्त कुपित हुआ और शीघ्र ही हाथमें जल लेकर उसने कुपित होकर राजाको शाप दे दिया—जिस व्यक्तिने मेरे पिताजीके कण्ठमें मृत सर्प डाला है, उस पापी पुरुषको एक सप्ताहमें तक्षक डस लेगा। मुनिके शिष्यने महलमें स्थित राजा परीक्षित्के समीप जाकर मुनिपुत्रके द्वारा दिये गये शापकी बात कही। ब्राह्मणके द्वारा दिये गये शापको सुनकर अभिमन्युपुत्र परीक्षित्ने उसे अनिवार्य समझकर वृद्ध मन्त्रियोंसे कहा—अपने अपराधके कारण मैं मुनिपुत्रसे शापित हुआ हूँ॥ २५—३०॥

हे मन्त्रियो! अब मुझे क्या करना चाहिये? आप लोग कोई उपाय सोचें। मृत्यु तो अनिवार्य है—ऐसा वेदवादी लोग कहते हैं, तथापि बुद्धिमान् पुरुषोंको शास्त्रोक्त रीतिसे सर्वथा प्रयत्न करना ही चाहिये। कुछ पुरुषार्थवादी विद्वान् ऐसा कहते हैं कि बुद्धिमानीके साथ उपाय करनेपर कार्य सिद्ध हो जाते हैं; न करनेपर नहीं। मणि, मन्त्र और औषधोंके प्रभाव अत्यन्त ही दुर्ज्ञेय होते हैं। मणि धारण करनेवाले सिद्धजनोंके द्वारा क्या नहीं सम्भव हो जाता? पूर्वकालमें किसी ऋषिपत्नीको सर्पने काट लिया था, जिससे वह मर गयी थी; उस समय उस मुनिने अपनी आयुका आधा

दत्त्वार्धमायुषस्तेन मुनिना सा वराप्सरा:।
भवितव्ये न विश्वास: कर्तव्य: सर्वथा बुधै:॥ ३५

प्रत्यक्षं तत्र दृष्टान्तं पश्यन्तु सचिवा: किल।
दिवि कोऽपि पृथिव्यां वा दृश्यते पुरुष: क्वचित्॥ ३६

दैवे मतिं समाधाय यस्तिष्ठेत्तु निरुद्यम:।
विरक्तस्तु यतिर्भूत्वा भिक्षार्थं याति सर्वथा॥ ३७

गृहस्थानां गृहे काममाहूतो वाथवान्यथा।
यदृच्छयोपपन्नं च क्षिप्तं केनापि वा मुखे॥ ३८

उद्यमेन विना चास्यादुदरे संविशेत्कथम्।
प्रयत्नश्चोद्यमे कार्यो यदा सिद्धिं न याति चेत्॥ ३९

तदा दैवं स्थितं चेति चित्तमालम्बयेद् बुध:।

मन्त्रिण ऊचु:

को मुनिर्येन दत्त्वार्धमायुषो जीविता प्रिया॥ ४०

कथं मृता महाराज तन्नो ब्रूहि सविस्तरम्।

राजोवाच

भृगोर्भार्या वरारोहा पुलोमा नाम सुन्दरी॥ ४१

तस्यां तु च्यवनो नाम मुनिर्जातोऽतिविश्रुत:।
च्यवनस्य च शर्याते: सुकन्या नाम सुन्दरी॥ ४२

तस्यां जज्ञे सुत: श्रीमान्प्रमतिर्नाम विश्रुत:।
प्रमतेस्तु प्रिया भार्या प्रतापी नाम विश्रुता॥ ४३

रुरुर्नाम सुतो जातस्तथा परमतापस:।
तस्मिंश्च समये कश्चित्स्थूलकेशश्च विश्रुत:॥ ४४

बभूव तपसा युक्तो धर्मात्मा सत्यसम्मत:।
एतस्मिन्नन्तरे मान्या मेनका च वराप्सरा:॥ ४५

क्रीडां चक्रे नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरी।
गर्भं विश्वावसो: प्राप्य निर्गता वरवर्णिनी॥ ४६

स्थूलकेशाश्रमे गत्वा विससर्ज वराप्सरा:।
कन्यकां च नदीतीरे त्रिषु लोकेषु सुन्दरीम्॥ ४७

भाग देकर उस श्रेष्ठ अप्सराको जीवित कर दिया था। अत: बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे भवितव्यतापर विश्वास न करें, उपाय भी करें॥ ३१—३५॥

हे सचिवो! आपलोग यह दृष्टान्त प्रत्यक्ष देख लें। इस लोक या परलोकमें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं दिखायी देता, जो केवल भाग्यके भरोसे रहकर उद्यम न करता हो। गृहस्थीसे विरक्त मनुष्य संन्यासी होकर जगह-जगह भिक्षाटनके लिये बुलानेपर अथवा बिना बुलाये भी गृहस्थोंके घर जाता ही है। दैवात्प्राप्त उस भोजनको भी क्या कोई मुखमें डाल देता है? उद्यमके बिना वह भोजन मुखसे उदरमें कैसे प्रवेश कर सकता है? अत: प्रयत्नपूर्वक उद्यम तो करना ही चाहिये, यदि सफलता न मिले तो बुद्धिमान् मनुष्य मनमें विश्वास कर ले कि दैव यहाँ प्रबल है॥ ३६—३९½॥

मन्त्रियोंने कहा—हे महाराज! वे कौन मुनि थे, जिन्होंने अपनी आधी आयु देकर अपनी प्रिय पत्नीको जीवित किया था? वह कैसे मरी थी? यह कथा विस्तारसे हमसे कहिये॥ ४०½॥

राजा बोले—महर्षि भृगुकी एक सुन्दर स्त्री थी, जिसका नाम पुलोमा था। उससे परम विख्यात च्यवनमुनिका जन्म हुआ। च्यवनकी पत्नीका नाम सुकन्या था, वह महाराज शर्यातिकी रूपवती कन्या थी॥ ४१-४२॥

उस सुकन्यासे श्रीमान् प्रमतिने जन्म लिया, जो बड़े यशस्वी थे। उस प्रमतिकी प्रिय पत्नीका नाम प्रतापी था। उन्हीं राजा प्रमतिके पुत्र परम तपस्वी 'रुरु' हुए॥ ४३½॥

उन्हीं दिनों स्थूलकेश नामक एक विख्यात ऋषि थे, जो बड़े ही तपस्वी, धर्मात्मा एवं सत्यनिष्ठ थे। इसी बीच त्रिलोकसुन्दरी मेनका नामकी श्रेष्ठ अप्सरा नदीके किनारे जलक्रीडा कर रही थी। वह अप्सरा विश्वावसुके द्वारा गर्भवती होकर वहाँसे निकल पड़ी॥ ४४—४६॥

उस श्रेष्ठ अप्सराने स्थूलकेशके आश्रममें जाकर नदीतटपर एक त्रैलोक्यसुन्दरी कन्याको जन्म दिया और वह उसे छोड़कर चली गयी। तब उस नवजात शिशु

दृष्ट्वानाथां तदा कन्यां जग्राह मुनिसत्तमः।
पुपोष स्थूलकेशस्तु नाम्ना चक्रे प्रमद्वराम्॥ ४८

सा काले यौवनं प्राप्ता सर्वलक्षणसंयुता।
रुरुर्दृष्ट्वाथ तां बालां कामबाणार्दितो ह्यभूत्॥ ४९

कन्याको अनाथ जानकर मुनिवर स्थूलकेश अपने आश्रममें ले गये और उसका पालन-पोषण करने लगे। उन्होंने उसका नाम प्रमद्वरा रखा॥ ४७-४८॥

वह सर्वलक्षणसम्पन्न कन्या यथासमय यौवनको प्राप्त हुई। उस सुन्दरीको देखकर रुरु काममोहित हो गये॥ ४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे रुरुचरित्रवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सर्पके काटनेसे प्रमद्वराकी मृत्यु, रुरुद्वारा अपनी आधी आयु देकर उसे जीवित कराना, मणि-मन्त्र-औषधिद्वारा सुरक्षित राजा परीक्षित्‌का सात तलवाले भवनमें निवास करना

परीक्षिदुवाच

कामार्तः स मुनिर्गत्वा रुरुः सुप्तो निजाश्रमे।
पिता पप्रच्छ दीनं तं किं रुरो विमना असि॥ १

स तमाहातिकामार्तः स्थूलकेशस्य चाश्रमे।
कन्या प्रमद्वरा नाम सा मे भार्या भवेदिति॥ २

स गत्वा प्रमतिस्तूर्णं स्थूलकेशं महामुनिम्।
प्रमुह्य सुमुखं कृत्वा ययाचे तां वराननाम्॥ ३

ददौ वाचं स्थूलकेशः प्रदास्यामि शुभेऽहनि।
विवाहार्थं च सम्भारं रचयामासतुर्वने॥ ४

प्रमतिः स्थूलकेशश्च विवाहार्थं समुद्यतौ।
बभूवतुर्महात्मानौ समीपस्थौ तपोवने॥ ५

तस्मिन्नवसरे कन्या रममाणा गृहाङ्गणे।
प्रसुप्तं पन्नगं पादेनास्पृशच्चारुलोचना॥ ६

दष्टा तु पन्नगेनाथ सा ममार वराङ्गना।
कोलाहलस्तदा जातो मृतां दृष्ट्वा प्रमद्वराम्॥ ७

मिलिता मुनयः सर्वे चुक्रुशुः शोकसंयुताः।
भूमौ तां पतितां दृष्ट्वा पिता तस्यातिदुःखितः॥ ८

परीक्षित् बोले—[हे सचिववृन्द!] इस प्रकार कामासक्त होकर रुरुमुनि अपने आश्रममें सो गये, तब उनके पिताने उन्हें दुःखी देखकर पूछा—हे रुरु! तुम इतने उदास क्यों हो?॥ १॥

कामातुर रुरुने अपने पितासे कहा—महर्षि स्थूलकेशके आश्रममें प्रमद्वरा नामकी एक कन्या है; मैं चाहता हूँ कि वह मेरी पत्नी बन जाय॥ २॥

उन प्रमतिने महामुनि स्थूलकेशके पास शीघ्र जाकर उन्हें प्रसन्न तथा अपने अनुकूल करके उस सुन्दर कन्याकी याचना की॥ ३॥

महामुनि स्थूलकेशने यह वचन दे दिया कि किसी अच्छे मुहूर्तमें कन्यादान दूँगा। अब उस वनमें वे दोनों विवाहकी सामग्रीका प्रबन्ध करने लगे। इस प्रकार उस तपोवनमें समीपमें ही रहकर प्रमति और स्थूलकेश दोनों महात्मा विवाहोत्सवकी तैयारी करने लगे॥ ४-५॥

उसी अवसरपर वह कन्या अपने घरके आँगनमें खेल रही थी, तभी एक सोये हुए सर्पसे उस सुनयनीका पैर छू गया। [स्पर्श होते ही] सर्पने उसे डँस लिया और वह सुन्दरी कन्या मर गयी। तब मृत्युको प्राप्त हुई प्रमद्वराको देखकर वहाँ कोलाहल मच गया॥ ६-७॥

सभी मुनि जुट गये और शोकसे ग्रस्त होकर रोने लगे। पृथ्वीपर प्राणहीन होकर पड़ी हुई अत्यन्त तेजसे देदीप्यमान उस कन्याको देखकर उसके पिता

रुरोद विगतप्राणां दीप्यमानां सुतेजसा।
रुरुः श्रुत्वा तदाक्रन्दं दर्शनार्थं समागतः॥ ९

ददर्श पतितां तत्र सजीवामिव कामिनीम्।
रुदन्तं स्थूलकेशं च दृष्ट्वान्यानृषिसत्तमान्॥ १०

रुरुः स्थानाद् बहिर्गत्वा रुरोद विरहाकुलः।
अहो दैवेन सर्पोऽयं प्रेषितः परमाद्भुतः॥ ११

मम शर्मविघाताय दुःखहेतुरयं किल।
किं करोमि क्व गच्छामि मृता मे प्राणवल्लभा॥ १२

न वै जीवितुमिच्छामि वियुक्तः प्रिययानया।
नालिङ्गिता वरारोहा न मया चुम्बिता मुखे॥ १३

न पाणिग्रहणं प्राप्तं मन्दभाग्येन सर्वथा।
लाजाहोमस्तथा चाग्नौ न कृतस्त्वनया सह॥ १४

मानुष्यं धिगिदं कामं गच्छन्त्वद्य ममासवः।
दुःखितस्य न वा मृत्युर्वाञ्छितः समुपैति हि॥ १५

सुखं तर्हि कथं दिव्यमाप्यते भुवि वाञ्छितम्।
प्रपतामि ह्रदे घोरे पावके प्रपताम्यहम्॥ १६

विषमद्मि गले पाशं कृत्वा प्राणांस्त्यजाम्यहम्।
विलप्यैवं रुरुस्तत्र विचार्य मनसा पुनः॥ १७

उपायं चिन्तयामास स्थितस्तस्मिन्नदीतटे।
मरणात्किं फलं मे स्यादात्महत्या दुरत्यया॥ १८

दुःखितश्च पिता मे स्याज्जननी चातिदुःखिता।
दैवस्तुष्टो भवेत्कामं दृष्ट्वा मां त्यक्तजीवितम्॥ १९

सर्वः प्रमुदितश्च स्यान्मत्क्षये नात्र संशयः।
उपकारः प्रियायाः कः परलोके भवेदपि॥ २०

मृते मय्यात्मघातेन विरहात्पीडितेऽपि च।
परलोके प्रिया सापि न मे स्यादात्मघातिनः॥ २१

एतदर्थं मृते दोषा मयि नैवामृते पुनः।

स्थूलकेश अत्यन्त दुःखित होकर रुदन करने लगे। उस समय करुण क्रन्दन सुनकर रुरु भी उसे देखनेके लिये आये। उन्होंने उस मृत पड़ी सुन्दरीको सजीव-जैसी देखा। स्थूलकेश तथा अन्य श्रेष्ठ मुनियोंको रुदन करते देखकर रुरुमुनि उस स्थानसे बाहर आ करके विरहाकुल होकर रोने लगे॥ ८—१०$\frac{१}{२}$ ॥

[वे कहने लगे—] अहो! प्रारब्धने ही मेरे सुखके विनाशके लिये ही यह अत्यन्त विचित्र सर्प भेजा था। यह निश्चित ही मेरे दुःखका कारण है। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? मेरी प्राणप्रिया तो मर गयी। अब मैं अपनी इस प्रियासे विलग होकर जीना नहीं चाहता। अभीतक मैंने उस सुन्दरीका आलिंगन आदि कोई सांसारिक सुख भी नहीं प्राप्त किया था। मैं ऐसा अभागा हूँ कि उसका पाणिग्रहण नहीं कर सका और न तो उसके साथ अग्निमें लाजाहोम ही कर पाया। मेरे इस मनुष्य-जीवनको धिक्कार है। अब तो मेरे प्राण निकल जायँ तो अच्छा है, जब दुःखित मनुष्यको चाहनेपर भी मृत्यु नहीं मिलती, तब इस संसारमें वांछित उत्तम सुख कैसे मिल सकता है? अब मैं या तो कहीं किसी भयानक तालाबमें डूब जाऊँ, अग्निमें कूद पड़ूँ, विष खा लूँ अथवा गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्याग दूँ॥ ११—१६$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार विलाप करके रुरु अपने मनमें विचारकर उस नदीके तटपर स्थित रहते हुए उपाय सोचने लगे। प्राण त्यागनेसे मुझे क्या लाभ होगा? आत्महत्याका फल तो अत्यन्त दुर्निवार्य होता है। [मेरी मृत्यु सुनकर] पिताजी दुःखी होंगे, माताजीको भी महान् कष्ट होगा। हाँ, हो सकता है कि मुझे मरा हुआ देखकर प्रारब्ध सन्तुष्ट हो जाय? मेरे मर जानेपर मेरे सभी शत्रु भी प्रसन्न होंगे, इसमें सन्देह नहीं है, किंतु इससे परलोकमें मेरी प्रियाका क्या उपकार होगा? इस प्रकार विरहसे सन्तप्त होकर आत्महत्या करके मेरे मर जानेपर भी परलोकमें मुझ आत्मघातीको मेरी वह प्रिया नहीं मिलेगी। इसलिये मेरे मरनेमें बहुत दोष हैं और न मरनेपर मुझे कोई दोष नहीं होगा॥ १७—२१$\frac{१}{२}$ ॥

विमृश्यैवं रुरुस्तत्र स्नात्वाचम्य शुचिः स्थितः ॥ २२

अब्रवीद्वचनं कृत्वा जलं पाणावसौ मुनिः।
यन्मया सुकृतं किञ्चित्कृतं देवार्चनादिकम्॥ २३

गुरवः पूजिता भक्त्या हुतं जप्तं तपः कृतम्।
अधीतास्त्वखिला वेदा गायत्री संस्कृता यदि॥ २४

रविराराधितस्तेन सञ्जीवतु मम प्रिया।
यदि जीवेन्न मे कान्ता त्यजे प्राणानहं ततः॥ २५

इत्युक्त्वा तज्जलं भूमौ चिक्षेपाराध्य देवताः।

राजोवाच

एवं विलपतस्तस्य भार्यया दुःखितस्य च॥ २६

देवदूतस्तदाभ्येत्य वाक्यमाह रुरुं ततः।

देवदूत उवाच

माकार्षीः साहसं ब्रह्मन्कथं जीवेन्मृता प्रिया॥ २७

गतायुरेषा सुश्रोणी गन्धर्वाप्सरसोः सुता।
अन्यां कामय चार्वङ्गीं मृतेयं चाविवाहिता॥ २८

किं रोदिषि सुदुर्बुद्धे का प्रीतिस्तेऽनया सह।

रुरुरुवाच

देवदूत न चान्यां वै वरिष्याम्यहमङ्गनाम्॥ २९

यदि जीवेन्न जीवेद्वा मर्तव्यं चाधुना मया।

राजोवाच

विदित्वेति हठं तस्य देवदूतो मुदान्वितः॥ ३०

उवाच वचनं तथ्यं सत्यं चातिमनोहरम्।
उपायं शृणु विप्रेन्द्र विहितं यत्सुरैः पुरा॥ ३१

आयुषोऽर्धप्रदानेन जीवयाशु प्रमद्वराम्।

रुरुरुवाच

आयुषोऽर्धं प्रयच्छामि कन्यायै नात्र संशयः॥ ३२

अद्य प्रत्यावृतप्राणा प्रोत्तिष्ठतु मम प्रिया।
विश्वावसुस्तदा तत्र विमानेन समागतः॥ ३३

ऐसा सोचकर रुरु स्नान तथा आचमन करके पवित्र होकर वहींपर बैठ गये। इसके बाद उन मुनिने हाथमें जल लेकर यह वचन कहा—यदि मेरे द्वारा देवाराधन आदि कुछ भी पुण्य कर्म सम्पादित किया गया हो, यदि मैंने श्रद्धापूर्वक गुरुओंकी पूजा की हो; हवन, जप एवं तप किया हो, समस्त वेदोंका अध्ययन किया हो, गायत्रीकी उपासना की हो और सूर्यकी आराधना की हो तो उस पुण्यके प्रभावसे मेरी प्रिया जीवित हो जाय। यदि मेरी प्रिया जीवित नहीं होगी तो मैं प्राण त्याग दूँगा। ऐसा कहकर देवताओंका ध्यान करके उन्होंने वह जल जमीनपर छोड़ दिया॥ २२—२५$\frac{१}{२}$ ॥

राजा बोले—तदनन्तर इस प्रकार अपनी भार्याके लिये विलाप कर रहे उन दुःखित रुरुके पास एक देवदूत आकर यह वाक्य बोला॥ २६$\frac{१}{२}$ ॥

देवदूत बोला—हे ब्रह्मन्! ऐसा साहस मत कीजिये। आपकी मरी हुई प्रियतमा भला कैसे जीवित हो सकेगी? गन्धर्व और अप्सराकी इस सुन्दर कन्याकी आयु समाप्त हो चुकी थी, जिससे यह अविवाहिता ही मर गयी; अतः अब आप किसी अन्य शुभ अंगोंवाली कन्याका वरण कर लीजिये। हे हतबुद्धि! आप क्यों रो रहे हैं? इसके साथ आपका कैसा प्रेम है?॥ २७-२८$\frac{१}{२}$ ॥

रुरु बोले—हे देवदूत! मैं किसी अन्य सुन्दरीका वरण नहीं करूँगा। यदि यह जीवित हो जाती है तो ठीक है, अन्यथा मैं इसी समय अपने प्राण त्याग दूँगा॥ २९$\frac{१}{२}$ ॥

राजा बोले—उन मुनिका यह हठ देखकर देवदूतने प्रसन्न होकर तथ्यपूर्ण, सत्य तथा मनोहर वचन कहा—हे विप्रेन्द्र! देवताओंके द्वारा इसका पूर्वविहित उपाय मुझसे सुनिये। आप अपनी आयुका आधा भाग देकर अपनी प्रमद्वराको शीघ्र ही जीवित कर लीजिये॥ ३०-३१$\frac{१}{२}$ ॥

रुरु बोले—मैं निःसन्देह अपनी आयुका आधा भाग इस कन्याको दे रहा हूँ। अब मेरी प्रियतमाके प्राण वापस आ जायँ और यह उठकर बैठ जाय। उसी समय विश्वावसु अपनी पुत्री प्रमद्वराकी मृत्यु

ज्ञात्वा पुत्रीं मृतां चाशु स्वर्गलोकात्प्रमद्वराम्।
ततो गन्धर्वराजश्च देवदूतश्च सत्तमः॥ ३४

धर्मराजमुपेत्येदं वचनं प्रत्यभाषताम्।
धर्मराज रुरोः पत्नी सुता विश्वावसोस्तथा॥ ३५

मृता प्रमद्वरा कन्या दष्टा सर्पेण चाधुना।
सा रुरोरायुषोऽर्धेन मर्तुकामस्य सूर्यज॥ ३६

समुत्तिष्ठतु तन्वङ्गी व्रतचर्याप्रभावतः।

धर्म उवाच

विश्वावसुसुतां कन्यां देवदूत यदीच्छसि॥ ३७

उत्तिष्ठत्वायुषोऽर्धेन रुरुं गत्वा त्वमर्पय।

राजोवाच

एवमुक्तस्ततो गत्वा जीवयित्वा प्रमद्वराम्॥ ३८

रुरोः समर्पयामास देवदूतस्त्वरान्वितः।
ततः शुभेऽह्नि विधिना रुरुणापि विवाहिता॥ ३९

इत्थं चोपाययोगेन मृताप्युज्जीविता तदा।
उपायस्तु प्रकर्तव्यः सर्वथा शास्त्रसम्मतः॥ ४०

मणिमन्त्रौषधीभिश्च विधिवत्प्राणरक्षणे।
इत्युक्त्वा सचिवान् राजा कल्पयित्वा सुरक्षकान्॥ ४१

कारयित्वाथ प्रासादं सप्तभूमिकमुत्तमम्।
आरुरोहोत्तरासूनुः सचिवैः सह तत्क्षणम्॥ ४२

मणिमन्त्रधराः शूराः स्थापितास्तत्र रक्षणे।
प्रेषयामास भूपालो मुनिं गौरमुखं ततः॥ ४३

प्रसादार्थं सेवकस्य क्षमस्वेति पुनः पुनः।
ब्राह्मणान्सिद्धमन्त्रज्ञान् रक्षणार्थमितस्ततः॥ ४४

मन्त्रिपुत्रः स्थितस्तत्र स्थापयामास दन्तिनः।
न कश्चिदारुहेत्तत्र प्रासादे चातिरक्षिते॥ ४५

जान करके स्वर्गलोकसे विमानद्वारा शीघ्र ही वहाँ आ गये। तत्पश्चात् गन्धर्वराज विश्वावसु तथा उस श्रेष्ठ देवदूतने धर्मराजके पास पहुँचकर यह वचन कहा—हे धर्मराज! रुरुकी पत्नी तथा विश्वावसुकी पुत्री इस प्रमद्वरा नामक कन्याकी सर्पदंशके कारण इस समय मृत्यु हो गयी है। हे सूर्यतनय! इसके वियोगमें मरणके लिये उद्यत मुनि रुरुकी आधी आयु तथा उनकी तपस्याके प्रभावसे यह कोमलांगी जीवित हो जाय॥ ३२—३६$\frac{1}{2}$॥

धर्मराजने कहा—हे देवदूत! यदि तुम ऐसा चाहते हो तो उसकी आधी आयुसे विश्वावसुकी यह कन्या जीवित होकर उठ जाय और तुम जाकर इसे रुरुको समर्पित कर दो॥ ३७$\frac{1}{2}$॥

राजा बोले—धर्मराजके ऐसा कहनेपर देवदूतने जाकर प्रमद्वराको जीवित करके शीघ्र ही रुरुको समर्पित कर दिया और तत्पश्चात् रुरुने किसी शुभ दिन उसके साथ विधानपूर्वक विवाह कर लिया॥ ३८-३९॥

इस प्रकार उपायका आश्रय लेकर मृत प्रमद्वराको भी जीवित कर लिया गया था। अतः मणि, मन्त्र तथा औषधियोंके विधिवत् प्रयोगद्वारा प्राणरक्षाके लिये शास्त्र-सम्मत उपाय अवश्य किया जाना चाहिये॥ ४०$\frac{1}{2}$॥

मन्त्रियोंसे यह कहकर उत्तम रक्षकोंकी व्यवस्था करके एक सात तलवाला उत्तम राजभवन बनवाकर उसी क्षण उत्तरापुत्र परीक्षित् अपने मन्त्रियोंके साथ उसपर चढ़ गये॥ ४१-४२॥

उस भवनकी सम्यक् सुरक्षाके लिये मणि-मन्त्र-धारी वीरोंको नियुक्त किया गया और इसके बाद राजाने गौरमुखमुनिको [गविजातके पास उन्हें] प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे भेजा और कहलाया कि मुझ सेवकका अपराध वे बार-बार क्षमा करें। तत्पश्चात् राजाने मन्त्र-प्रयोगमें निपुण ब्राह्मणोंको रक्षा-कार्यके निमित्त चारों ओर नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

एक मन्त्रिपुत्र वहाँ नियुक्त किया गया, जिसने महलके चारों ओर हाथियोंका घेरा स्थापित कराया ताकि विशेषरूपसे रक्षित उस महलपर कोई चढ़ न सके॥ ४५॥

वातोऽपि न चरेत्तत्र प्रवेशे विनिवार्यते।
भक्ष्यभोज्यादिकं राजा तत्रस्थश्च चकार सः॥ ४६

स्नानसन्ध्यादिकं कर्म तत्रैव विनिवर्त्य च।
राजकार्याणि सर्वाणि तत्रस्थश्चाकरोन्नृपः॥ ४७

मन्त्रिभिः सह सम्मन्त्र्य गणयन्दिवसानपि।
कश्चिच्च कश्यपो नाम ब्राह्मणो मन्त्रिसत्तमः॥ ४८

शुश्राव च तथा शापं प्राप्तं राज्ञा महात्मना।
स धनार्थी द्विजश्रेष्ठः कश्यपः समचिन्तयत्॥ ४९

व्रजामि तत्र यत्रास्ते शप्तो राजा द्विजेन ह।
इति कृत्वा मतिं विप्रः स्वगृहान्निःसृतः पथि॥ ५०
कश्यपो मन्त्रविद्विद्वान्धनार्थी मुनिसत्तमः॥ ५१

महलके भीतर वायुका भी संचरण नहीं हो पाता था; क्योंकि उसका प्रवेश सर्वथा वर्जित था। राजा वहीं स्थित रहकर भोजनादि करने लगे। वहींपर रहते हुए स्नान एवं सन्ध्यादि कार्योंसे निवृत्त होकर राजा मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते तथा शापके दिन गिनते हुए समस्त राजकार्योंको संचालित करते थे॥ ४६-४७$\frac{1}{2}$॥

इसी बीच किसी कश्यप नामक मन्त्र-विशेषज्ञ ब्राह्मणने सुना कि राजा परीक्षित्‌को [सर्पद्वारा काटे जानेका] शाप प्राप्त हुआ है। उस धनाभिलाषी ब्राह्मणश्रेष्ठ कश्यपने विचार किया कि मुनिके द्वारा शापित राजा इस समय जहाँ रह रहे हैं, मैं वहीं पर जाऊँगा। ऐसा निश्चय करके मन्त्रज्ञ, विद्वान् तथा धनाभिलाषी वह कश्यप नामक मुनिश्रेष्ठ विप्र अपने घरसे निकलकर रास्तेपर चल पड़ा॥ ४८—५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
परीक्षिद्राज्ञो गुप्तगृहे वासवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

महाराज परीक्षित्‌को डँसनेके लिये तक्षकका प्रस्थान, मार्गमें मन्त्रवेत्ता कश्यपसे भेंट, तक्षकका एक वटवृक्षको डँसकर भस्म कर देना और कश्यपका उसे पुनः हरा-भरा कर देना, तक्षकद्वारा धन देकर कश्यपको वापस कर देना, सर्पदंशसे राजा परीक्षित्‌की मृत्यु

सूत उवाच

तस्मिन्नेव दिने नाम्ना तक्षकस्तं नृपोत्तमम्।
शप्तं ज्ञात्वा गृहात्तूर्णं निःसृतः पुरुषोत्तमः॥ १

वृद्धब्राह्मणवेषेण तक्षकः पथि निर्गतः।
अपश्यत्कश्यपं मार्गे व्रजन्तं नृपतिं प्रति॥ २

तमपृच्छत्पन्नगोऽसौ ब्राह्मणं मन्त्रवादिनम्।
क्व भवांस्त्वरितो याति किञ्च कार्यं चिकीर्षति॥ ३

कश्यप उवाच

परीक्षितं नृपश्रेष्ठं तक्षकश्च प्रधक्ष्यति।
तत्राहं त्वरितो यामि नृपं कर्तुमपज्वरम्॥ ४

मन्त्रोऽस्ति मम विप्रेन्द्र विषनाशकरः किल।
जीवयिष्याम्यहं तं वै जीवितव्येऽधुना किल॥ ५

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उसी दिन तक्षक नामक नाग नृपश्रेष्ठ परीक्षित्‌को शापित जानकर एक उत्तम मनुष्यका रूप धारण करके अपने घरसे शीघ्र निकल पड़ा। वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें रास्तेपर चलते हुए उस तक्षकने महाराज परीक्षित्‌के यहाँ जाते हुए कश्यपको देखा॥ १-२॥

उस नागने उन मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणसे पूछा—आप इतनी शीघ्र गतिसे कहाँ चले जा रहे हैं और कौन-सा कार्य करनेकी आपकी इच्छा है?॥ ३॥

कश्यपने कहा—महाराज परीक्षित्‌को तक्षकनाग डँसनेवाला है। अतः मैं उन्हें विषमुक्त करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक वहीं जा रहा हूँ॥ ४॥

हे विप्रेन्द्र! मेरे पास प्रबल विषनाशक मन्त्र है, अतएव यदि उनकी आयु शेष होगी तो मैं उन्हें जीवित कर दूँगा॥ ५॥

तक्षक उवाच

अहं स पन्नगो ब्रह्मंस्तं धक्ष्यामि महीपतिम्।
निवर्तस्व न शक्तस्त्वं मया दष्टं चिकित्सितुम्॥ ६

कश्यप उवाच

अहं दष्टं त्वया सर्प नृपं शप्तं द्विजेन वै।
जीवयिष्याम्यसन्देहं कामं मन्त्रबलेन वै॥ ७

तक्षक उवाच

यदि त्वं जीवितुं यासि मया दष्टं नृपोत्तमम्।
मन्त्रशक्तिबलं विप्र दर्शय त्वं ममानघ॥ ८

धक्ष्याम्येनं च न्यग्रोधं विषदंष्ट्राभिरद्य वै।

कश्यप उवाच

जीवयिष्ये त्वया दष्टं दग्धं वा पन्नगोत्तम॥ ९

सूत उवाच

अदशत्पन्नगो वृक्षं भस्मसाच्च चकार तम्।
उवाच कश्यपं भूयो जीवयैनं द्विजोत्तम॥ १०

दृष्ट्वा भस्मीकृतं वृक्षं पन्नगेन विषाग्निना।
सर्वं भस्म समाहृत्य कश्यपो वाक्यमब्रवीत्॥ ११

पश्य मन्त्रबलं मेऽद्य न्यग्रोधं पन्नगोत्तम।
जीवयाम्यद्य वृक्षं वै पश्यतस्ते महाविष॥ १२

इत्युक्त्वा जलमादाय कश्यपो मन्त्रवित्तमः।
सिषेच भस्मराशिं तं मन्त्रितेनैव वारिणा॥ १३

तद्वारिसेचनाज्जातो न्यग्रोधः पूर्ववच्छुभः।
विस्मयं तक्षकः प्राप्तो दृष्ट्वा तं जीवितं नगम्॥ १४

तमाह कश्यपं नागः किमर्थं ते परिश्रमः।
सम्पादयामि तं कामं ब्रूहि वाडव वाञ्छितम्॥ १५

कश्यप उवाच

वित्तार्थी नृपतिं मत्वा शप्तं पन्नग निःसृतः।
गृहादहं चोपकर्तुं विद्यया नृपसत्तमम्॥ १६

तक्षकने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं ही वह तक्षकनाग हूँ और मैं ही महाराज परीक्षित्को काटूँगा। मेरे काट लेनेपर आप चिकित्सा करनेमें समर्थ नहीं हो सकेंगे; अतएव आप लौट जाइये॥ ६॥

कश्यपने कहा—हे सर्प! ब्राह्मणके द्वारा शापित किये गये राजाको आपके काटनेके उपरान्त मैं उन्हें अपने मन्त्रबलसे निःसन्देह जीवित कर दूँगा॥ ७॥

तक्षकने कहा—हे विप्र! हे अनघ! यदि आप मेरे काटे हुए नृपश्रेष्ठ परीक्षित्को जीवित करनेके लिये जा रहे हैं तो आप अपनी मन्त्र-शक्तिका प्रभाव दिखाइये। मैं इसी समय इस वटवृक्षको अपने विषैले दाँतोंसे डँसता हूँ॥ ८$\frac{१}{२}$॥

कश्यपने कहा—हे सर्पश्रेष्ठ! आप इसे काट लें अथवा इसे जलाकर भस्म कर दें तो भी मैं इसे पुनः जीवित कर दूँगा॥ ९॥

सूतजी बोले—नागराज तक्षकने उस वृक्षको डँस लिया और उसे जलाकर भस्म कर दिया। तब उसने कश्यपसे कहा—'हे द्विजश्रेष्ठ! अब आप इसे पुनः जीवित कीजिये'॥ १०॥

तक्षकनागकी विषाग्निसे भस्म हुए वृक्षके सम्पूर्ण भस्मको एकत्र करके कश्यपने यह बात कही—हे महाविषधर नागराज! अब आप मेरे मन्त्रका प्रभाव देखिये। मैं आपके देखते-देखते इस वटवृक्षको जीवन प्रदान करता हूँ॥ ११-१२॥

ऐसा कहकर हाथमें जल लेकर मन्त्रविद् कश्यपने उस जलको अभिमन्त्रित किया और उसे भस्मराशिपर छिड़क दिया। जलके पड़ते ही वह वटवृक्ष पुनः पहलेकी भाँति सुन्दर हो गया। उस वृक्षको इस प्रकार जीवित देखकर तक्षकको बड़ा आश्चर्य हुआ॥ १३-१४॥

उस नागराजने कश्यपसे कहा—हे विप्र! आप इतना परिश्रम किसलिये करेंगे? आपकी वह कामना मैं ही पूर्ण कर दूँगा। कहिये, आप क्या चाहते हैं?॥ १५॥

कश्यपने कहा—हे पन्नग! मैं धनका अभिलाषी हूँ; नृपश्रेष्ठ परीक्षित्को शापित जानकर अपनी मन्त्रविद्यासे उनका उपकार करनेके लिये मैं अपने घरसे निकला हुआ हूँ॥ १६॥

तक्षक उवाच

वित्तं गृहाण विप्रेन्द्र यावदिच्छसि पार्थिवात्।
ददामि स्वगृहं याहि सकामोऽहं भवाम्यतः॥ १७

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कश्यपः परमार्थवित्।
चिन्तयामास मनसा किं करोमि पुनः पुनः॥ १८

धनं गृहीत्वा स्वगृहं प्रयामि यद्यहं पुनः।
भविष्यति न मे कीर्तिर्लोके लोभसमाश्रयात्॥ १९

जीवितेऽथ नृपश्रेष्ठे कीर्तिः स्यादचला मम।
धनप्राप्तिश्च बहुधा भवेत्पुण्यं च जीवनात्॥ २०

रक्षणीयं यशः कामं धिग्धनं यशसा विना।
सर्वस्वं रघुणा पूर्वं दत्तं विप्राय कीर्तये॥ २१

हरिश्चन्द्रेण कर्णेन कीर्त्यर्थं बहुविस्तरम्।
उपेक्षेयं कथं भूपं दह्यमानं विषाग्निना॥ २२

जीवितेऽद्य मया राज्ञि सुखं सर्वजनस्य च।
अराजके प्रजानाशो भविता नात्र संशयः॥ २३

प्रजानाशस्य पापं मे भविष्यति मृते नृपे।
अपकीर्तिश्च लोकेषु धनलोभाद्भविष्यति॥ २४

इति सञ्चिन्त्य मनसा ध्यानं कृत्वा स कश्यपः।
गतायुषं च नृपतिं ज्ञातवान्बुद्धिमत्तरः॥ २५

आसन्नमृत्युं राजानं ज्ञात्वा ध्यानेन कश्यपः।
गृहं ययौ स धर्मात्मा धनमादाय तक्षकात्॥ २६

निवर्त्य कश्यपं सर्पः सप्तमे दिवसे नृपम्।
हन्तुकामो जगामाशु नगरं नागसाह्वयम्॥ २७

शुश्राव नगरस्यान्ते प्रासादस्थं परीक्षितम्।
मणिमन्त्रौषधैः कामं रक्ष्यमाणमतन्द्रितम्॥ २८

तक्षकने कहा—हे विप्रवर! राजासे जितना धन आप चाहते हैं, उतना धन मुझसे अभी ले लें और अपने घर लौट जायँ, जिससे मैं अपने कृत्यमें सफल हो सकूँ॥ १७॥

सूतजी बोले—तक्षककी यह बात सुनकर परमार्थवेत्ता कश्यपजी मनमें बार-बार सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं धन लेकर अपने घर जाता हूँ तो धनलोलुप होनेके कारण संसारमें मेरी कीर्ति नहीं होगी। यदि राजा जीवित हो जाते हैं तो मेरी अचल कीर्ति होगी तथा धन-प्राप्तिके साथ-साथ पुण्य भी प्राप्त होगा॥ १८—२०॥

यश ही रक्षणीय है और बिना यशके धनको धिक्कार है; क्योंकि प्राचीन कालमें महाराज रघुने कीर्तिके लिये अपना सब कुछ ब्राह्मणको दे दिया था। सत्यवादी हरिश्चन्द्र तथा दानी कर्णने भी केवल कीर्तिके लिये बहुत कुछ किया था। अतः विषकी अग्निसे जलते हुए राजा परीक्षित्‌की उपेक्षा मैं कैसे करूँ?॥ २१-२२॥

यदि मैं महाराजको जिला दूँ तो सब लोगोंको अत्यन्त सुख मिलेगा और यदि राजा मर गये तो अराजकताके कारण सारी प्रजा नष्ट हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ २३॥

राजाके मृत हो जाने पर मुझे प्रजानाशका पाप लगेगा तथा संसारमें धन-लोभके कारण मेरी अपकीर्ति भी होगी॥ २४॥

मनमें ऐसा विचार करके परम बुद्धिमान् कश्यपने ध्यान करके जाना कि महाराज परीक्षित्‌की आयु अब समाप्त हो चुकी है॥ २५॥

इस प्रकार ध्यान-दृष्टिसे धर्मात्मा कश्यप राजाकी मृत्यु निकट जानकर तक्षकसे धन लेकर अपने घर लौट गये॥ २६॥

कश्यपको लौटाकर वह नाग सातवें दिन राजाको डँसनेकी इच्छासे शीघ्र हस्तिनापुर चला गया॥ २७॥

नगरमें पहुँचते ही उसने सुना कि मणि, मन्त्र तथा औषधियोंसे भलीभाँति सावधानीपूर्वक सुरक्षित होकर राजा परीक्षित् अपने महलमें रह रहे हैं॥ २८॥

चिन्ताविष्टस्तदा नागो विप्रशापभयाकुलः।
चिन्तयामास योगेन प्रविशेयं गृहं कथम्॥ २९

वञ्चयामि कथं चैनं राजानं पापकारिणम्।
विप्रशापाद्धतं मूढं विप्रपीडाकरं शठम्॥ ३०

पाण्डवानां कुले जातः कोऽपि नैतादृशो भवेत्।
तापसस्य गले येन मृतः सर्पो निवेशितः॥ ३१

कृत्वा विगर्हितं कर्म जानन्कालगतिं नृपः।
रक्षकान्भवने कृत्वा प्रासादमभिगम्य च॥ ३२

मृत्युं वञ्चयते राजा वर्ततेऽद्य निराकुलः।
तं कथं धक्षयिष्यामि विप्रवाक्येन चोदितः॥ ३३

न जानाति च मन्दात्मा मरणं ह्यनिवर्तनम्।
तेनासौ रक्षकान्स्थाप्य सौधारूढोऽद्य मोदते॥ ३४

यदि वै विहितो मृत्युर्दैवेनामिततेजसा।
स कथं परिवर्तेत कृतैर्यत्नैस्तु कोटिभिः॥ ३५

पाण्डवस्य च दायादो जानन्मृत्युं गतं नृपः।
जीवने मतिमास्थाय स्थितः स्थाने निराकुलः॥ ३६

दानपुण्यादिकं राजा कर्तुमर्हति सर्वथा।
धर्मेण हन्यते व्याधिर्येनायुः शाश्वतं भवेत्॥ ३७

नोचेन्मृत्युविधिं कृत्वा स्नानदानादिकाः क्रियाः।
मरणं स्वर्गलोकाय नरकायान्यथा भवेत्॥ ३८

द्विजपीडाकृतं पापं पृथग्वास्य च भूपतेः।
विप्रशापस्तथा घोर आसन्ने मरणे किल॥ ३९

[यह जानकर] ब्राह्मणके शापसे भयभीत सर्पराज तक्षकको बड़ी चिन्ता हुई। वह सोचने लगा कि अब मैं किस उपायसे इस राजभवनमें प्रवेश करूँ? और इस पापी, मूढ, विप्रको पीड़ित करनेवाले तथा मुनिके शापसे आहत इस दुष्ट राजाको मैं कैसे छलूँ?॥ २९-३०॥

पाण्डववंशमें ऐसा कोई नहीं हुआ, जिसने इस प्रकार किसी तपस्वी ब्राह्मणके गलेमें मृत सर्प डाल दिया हो॥ ३१॥

ऐसा निन्दित कर्म करके कालचक्रको जानते हुए भी यह राजा भवनमें रक्षकोंकी नियुक्ति करके राज-भवनमें छिपकर मृत्युकी वंचना कर रहा है और निश्चिन्त होकर पड़ा है। विप्रके शापानुसार मैं उस राजाको कैसे डसूँ?॥ ३२-३३॥

यह मन्दबुद्धि इतना भी नहीं जानता कि मृत्यु तो अनिवार्य है? इसी कारण यह रक्षकोंकी नियुक्ति करके स्वयं भवनपर चढ़कर आनन्द ले रहा है॥ ३४॥

यदि अमित तेजवाले दैवने मृत्यु निश्चित कर दी है तो करोड़ों प्रकारके प्रयत्नोंसे भी उसे कैसे टाला जा सकता है?॥ ३५॥

पाण्डववंशका उत्तराधिकारी यह राजा परीक्षित् अपनेको मृत्युके मुखमें गया हुआ जानते हुए भी जीवित रहनेकी अभिलाषा रखकर सुरक्षित स्थानमें निश्चिन्त होकर पड़ा हुआ है॥ ३६॥

यह यदि चाहता तो अनेक प्रकारके दान-पुण्य-द्वारा अपनी आयु बढ़ा सकता था; क्योंकि धर्माचरणसे व्याधि नष्ट होती है और उससे आयु स्थिर होती है॥ ३७॥

यदि ऐसा सम्भव नहीं था तो मृत्युके समय सम्पन्न की जानेवाली स्नान, दान आदि क्रियाएँ करके मृत्युके अनन्तर स्वर्गयात्रा कर सकता था, अन्यथा इसे नरक जाना होगा॥ ३८॥

मुनिको पीड़ा पहुँचानेका पाप इस राजाको था ही और ब्राह्मणका घोर शाप अलगसे है। अतः अब इसकी मृत्यु सन्निकट है॥ ३९॥

न कोऽपि ब्राह्मणः पार्श्वे य एनं प्रतिबोधयेत्।
वेधसा विहितो मृत्युरनिवार्यस्तु सर्वथा॥ ४०

इति सञ्चिन्त्य सर्पोऽसौ स्वान्नागान्निकटे स्थितान्।
कृत्वा तापसवेषांस्तान्प्राहिणोत्सुभुजङ्गमान्॥ ४१

फलमूलादिकं गृह्य राज्ञे नागोऽथ तक्षकः।
स्वयं च कीटरूपेण फलमध्ये ससार ह॥ ४२

निर्गतास्ते तदा नागाः फलान्यादाय सत्वराः।
ते राजभवनं प्राप्य स्थिताः प्रासादसन्निधौ॥ ४३

रक्षकास्तापसान्दृष्ट्वा पप्रच्छुस्तच्चिकीर्षितम्।
ऊचुस्ते भूपतिं द्रष्टुं प्राप्ताः स्मोऽद्य तपोवनात्॥ ४४

अभिमन्युसुतं वीरं कुलार्कं चारुदर्शनम्।
परिवर्धयितुं प्राप्ता मन्त्रैराथर्वणैस्तथा॥ ४५

निवेदयध्वं राजानं दर्शनार्थागतान्मुनीन्।
कृत्वाभिषेकान्यास्यामो दत्त्वा मिष्टफलानि च॥ ४६

भारतानां कुले क्वापि न दृष्टा द्वाररक्षकाः।
न श्रुतं तापसानां तु राज्ञोऽसन्दर्शनं किल॥ ४७

आरोहामो वयं तत्र यत्र राजा परीक्षितः।
आशीर्भिर्वर्धयित्वैनं दत्ताज्ञाः प्रव्रजामहे॥ ४८

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां तापसानां तु रक्षकाः।
प्रत्यूचुस्तान् द्विजान्मत्वा निदेशं भूपतेर्यथा॥ ४९

नाद्य वो दर्शनं विप्रा राज्ञः स्यादिति नो मतिः।
श्वः सर्वतापसैरत्र त्वागन्तव्यं नृपालये॥ ५०

अनारोहस्तु प्रासादो विप्राणां मुनिसत्तमाः।
विप्रशापभयाद्राज्ञा विहितोऽस्ति न संशयः॥ ५१

इस समय ऐसा कोई ब्राह्मण भी इसके पास नहीं है, जो इसे यह बता सके कि विधाताके द्वारा निर्धारित मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है॥ ४०॥

ऐसा विचारकर तक्षकनागने अपने निकटवर्ती श्रेष्ठ नागोंको तपस्वी ब्राह्मणोंका वेष धारण कराकर राजाके पास भेजा। वे राजाको देनेके लिये फल-मूल आदि लेकर तैयार हो गये और तक्षकनाग भी एक छोटे-से कीटके रूपमें फलके बीचमें छिप गया॥ ४१-४२॥

तब वे नाग फल आदि लेकर शीघ्र ही निकल पड़े और राजभवनमें पहुँचकर महलके पास खडे हो गये॥ ४३॥

इस प्रकार तपस्वियोंको खड़े देखकर रक्षकोंने उनसे पूछा कि आपलोगोंकी क्या इच्छा है? तब उन्होंने कहा—हमलोग महाराजको देखनेके लिये तपोवनसे आये हैं॥ ४४॥

पाण्डवकुलके सूर्य, शुभदर्शन तथा पराक्रमी अभिमन्यु-पुत्र परीक्षित्‌को अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे आशीर्वाद देनेहेतु हमलोग यहाँ आये हैं॥ ४५॥

आप जाकर महाराजसे कहें कि कुछ मुनिजन उनसे मिलने आये हैं और वे महाराजका मन्त्राभिषेक करके उन्हें मधुर फल देकर लौट जायेंगे॥ ४६॥

भरतवंशी राजाओंके कुलमें कभी भी द्वाररक्षक नहीं देखे गये। ऐसा भी कहीं सुना नहीं गया कि तपस्वियोंको राजाका दर्शन न मिले। जहाँ महाराज परीक्षित् विराजमान हैं, वहाँ हमलोग जायँगे और उन्हें अपने आशीर्वादसे दीर्घायुष्य बनाकर आज्ञा लेकर लौट जायँगे॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—उन तपस्वियोंका वचन सुनकर रक्षकोंने उन्हें ब्राह्मण समझकर महाराजका आदेश सुनाते हुए कहा—हे विप्रो! हमारे विचारमें आज आपलोगोंको राजाका दर्शन नहीं हो सकेगा। अतः आप समस्त तपस्वीजन राजभवनमें कल पधारें॥ ४९-५०॥

हे मुनिश्रेष्ठो! विप्रशापसे भयभीत होकर राजाने अपने महलमें ब्राह्मणोंका प्रवेश वर्जित कर रखा है; इसमें संशय नहीं है॥ ५१॥

तदोचुस्तानथो विप्राः फलमूलजलानि च।
विप्राशिषश्च राज्ञेऽथ ग्राहयन्तु सुरक्षकाः॥ ५२

ते गत्वा नृपतिं प्रोचुस्तापसानागताञ्जनाः।
राजोवाचानयध्वं वै फलमूलादिकं च यत्॥ ५३

पृच्छध्वं तापसान्कार्यं प्रातरागमनं पुनः।
प्रणामं कथयध्वं मे नाद्य सन्दर्शनं मम॥ ५४

ते गत्वाथ समादाय फलमूलादिकं च यत्।
राज्ञे समर्पयामासुर्बहुमानपुरःसरम्॥ ५५

गतेषु तेषु नागेषु विप्रवेषावृतेषु च।
फलान्यादाय राजासौ सचिवानिदमब्रवीत्॥ ५६

सुहृदो भक्षयन्त्वद्य फलान्येतानि सर्वशः।
अद्म्यहं चैकमेतद्वै फलं विप्रार्पितं महत्॥ ५७

इत्युक्त्वा तत्फलं दत्त्वा सुहृद्भ्यश्चोत्तरासुतः।
करे कृत्वा फलं पक्वं ददार नृपतिः स्वयम्॥ ५८

विदारितं फलं राज्ञा तत्र कृमिरभूदणुः।
स कृष्णनयनस्ताम्रो दृष्टो भूपतिना स्वयम्॥ ५९

तं दृष्ट्वा नृपतिः प्राह सचिवान्विस्मितानथ।
अस्तमभ्येति सविता विषादद्य न मे भयम्॥ ६०

अङ्गीकरोमि तं शापं कृमिको मां दशत्वयम्।
एवमुक्त्वा स राजेन्द्रो ग्रीवायां संन्यवेशयत्॥ ६१

अस्तं याते दिवानाथे धृतः कण्ठेऽथ कीटकः।
तक्षकस्तु तदा जातः कालरूपी भयानकः॥ ६२

राजा संवेष्टितस्तेन दष्टश्चापि महीपतिः।
मन्त्रिणो विस्मयं प्राप्ता रुरुदुर्भृशदुःखिताः॥ ६३

घोररूपमहिं वीक्ष्य दुद्रुवुस्ते भयार्दिताः।
चुक्रुशू रक्षकाः सर्वे हाहाकारो महानभूत्॥ ६४

तब ब्राह्मणोंने उनसे कहा—हमलोगोंकी ओरसे ये फल-मूल तथा जल आप रक्षकगण राजाको दे दें और हमलोगोंका आशीर्वाद पहुँचा दें॥ ५२॥

उन्होंने राजाके पास जाकर तपस्वियोंके आगमनकी बात बता दी। इसपर राजाने आज्ञा दी कि वे लोग फल-मूल आदि जो कुछ दे रहे हैं, उन्हें यहाँ लाओ और उन तपस्वियोंके आनेका कारण पूछ लो और उन्हें पुनः कल प्रातः आनेको कह दो। साथ ही मेरी ओरसे उन्हें प्रणाम कहकर यह भी कह देना कि आज मेरा मिलना सम्भव नहीं है॥ ५३-५४॥

उन द्वारपालोंने तपस्वियोंके पास जाकर उनके दिये हुए फल-मूल आदि लाकर आदरपूर्वक राजाको अर्पित कर दिये॥ ५५॥

उन विप्रवेषमें आये नागोंके चले जानेपर महाराजने फलोंको लेकर मन्त्रियोंसे कहा—हे सचिवो! आपलोग भी इन फलोंका सम्यक् सेवन कीजिये। मैं तो तपस्वियोंद्वारा अर्पित यही एक बड़ा फल खाऊँगा॥ ५६-५७॥

ऐसा कहकर उत्तरासुत राजा परीक्षित्ने सब फल अपने सुहृद् सचिवोंमें बाँट दिये और एक सुन्दर पका फल हाथमें लेकर उसे स्वयं विदीर्ण किया॥ ५८॥

जिस फलको राजाने चीरा, उसमें ताम्र वर्णवाला तथा काले नेत्रवाला एक छोटा-सा कीट राजाको दिखायी दिया। उसे देखकर राजाने अपने आश्चर्यचकित मन्त्रियोंसे कहा—सूर्य अस्त हो रहे हैं, अतः अब मुझे विषका भय नहीं है। मैं ब्राह्मणके उस शापको अंगीकार करता हूँ कि यह कीट मुझे काट ले। ऐसा कहकर महाराज परीक्षित्ने उसे अपने गलेपर रख लिया। सूर्यके अस्त होते ही गलेपर स्थित वह कीट साक्षात् कालस्वरूप भयानक तक्षकके रूपमें परिणत हो गया॥ ५९—६२॥

उस नागने तत्काल राजाको लपेट लिया तथा उन्हें डँस लिया। यह देखते ही सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और अत्यधिक दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ६३॥

भयंकर रूपवाले उस सर्पको देखकर सभी सचिवगण भयभीत होकर वहाँसे भागने लगे और सभी रक्षकगण चिल्लाने लगे। इस प्रकार वहाँ महान् हाहाकार मच गया॥ ६४॥

वेष्टितो भोगिभोगेन विनष्टबहुपौरुषः।
नोवाच नृपतिः किञ्चिन्न चचालोत्तरासुतः॥ ६५

उस सर्पके शरीरसे बद्ध हो जानेके कारण राजाका महान् बल प्रभावहीन हो गया, जिससे वे उत्तरापुत्र परीक्षित् कुछ भी बोल पाने तथा हिल-डुल सकनेमें असमर्थ हो गये॥ ६५॥

उत्थिताग्निशिखा घोरा विषजा तक्षकाननात्।
प्रजज्वाल नृपं त्वाशु गतप्राणं चकार ह॥ ६६

तक्षकके मुखसे विषजनित भयंकर आगकी ज्वालाएँ उठने लगीं। उस भीषण ज्वालाने क्षणभरमें राजाको जला दिया और शीघ्र ही उन्हें निष्प्राण कर दिया॥ ६६॥

हत्वाशु जीवितं राज्ञस्तक्षको गगने गतः।
जगद्दग्धं तु कुर्वाणं ददृशुस्तं जना इह॥ ६७

इस प्रकार क्षणमात्रमें ही राजाका प्राण हरकर वह तक्षकनाग आकाशमें चला गया। वहाँ लोगोंने संसारको भस्मसात् कर देनेकी सामर्थ्यवाले उस तक्षकको देखा॥ ६७॥

स पपात गतप्राणो राजा दग्ध इव द्रुमः।
चुक्रुशुश्च जनाः सर्वे मृतं दृष्ट्वा नराधिपम्॥ ६८

वे राजा परीक्षित् प्राणहीन होकर जले हुए वृक्षकी भाँति गिर पड़े और राजाको मृत देखकर सभी लोग विलाप करने लगे॥ ६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे परीक्षिन्मरणं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

जनमेजयका राजा बनना और उत्तंककी प्रेरणासे सर्प-सत्र करना, आस्तीकके कहनेसे राजाद्वारा सर्प-सत्र रोकना

सूत उवाच

गतप्राणं तु राजानं बालं पुत्रं समीक्ष्य च।
चक्रुश्च मन्त्रिणः सर्वे परलोकस्य सत्क्रियाः॥ १

सूतजी बोले—सभी मन्त्रियोंने राजा परीक्षित्को मृतक तथा उनके पुत्र जनमेजयको अबोध जानकर उनकी परलोक-सम्बन्धी क्रियाएँ सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न कीं॥ १॥

गङ्गातीरे दग्धदेहं भस्मप्रायं महीपतिम्।
अगुरुभिश्चाभियुक्तायां चितायामध्यरोपयन्॥ २

शरीर दग्ध हो जानेसे भस्मीभूत हुए राजाको उन मन्त्रियोंने गंगाके किनारे अगरुसे बनायी गयी चितापर रखा॥ २॥

दुर्मरणे मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्वदैहिकीम्।
क्रियां पुरोहितास्तस्य वेदमन्त्रैर्विधानतः॥ ३

अकालमृत्युको प्राप्त राजा परीक्षित्की औध्वदैहिक क्रिया राजाके पुरोहितोंद्वारा वैदिक मन्त्रोंके साथ विधिवत् सम्पन्न की गयी॥ ३॥

ददुर्दानानि विप्रेभ्यो गाः सुवर्णं यथोचितम्।
अन्नं बहुविधं तत्र वस्त्राणि विविधानि च॥ ४

मन्त्रियोंने ब्राह्मणोंको गायें, सुवर्ण, अनेक प्रकारके अन्न तथा नाना प्रकारके वस्त्र यथोचित रूपसे दानमें दिये॥ ४॥

सुमुहूर्ते सुतं बालं प्रजानां प्रीतिवर्धनम्।
सिंहासने शुभे तत्र मन्त्रिणः संन्यवेशयन्॥ ५

तत्पश्चात् मन्त्रियोंने प्रजाओंके प्रति प्रीति-सम्वर्धन करनेवाले राजपुत्र जनमेजयको शुभ मुहूर्तमें सुन्दर राजसिंहासनपर आसीन किया॥ ५॥

पौरा जानपदा लोकाश्चक्रुस्तं नृपतिं शिशुम्।
जनमेजयनामानं राजलक्षणसंयुतम्॥ ६

धात्रेयी शिक्षयामास राजचिह्नानि सर्वशः।
दिने दिने वर्धमानः स बभूव महामतिः॥ ७

प्राप्ते चैकादशे वर्षे तस्मै कुलपुरोहितः।
यथोचितां ददौ विद्यां जग्राह स यथोचिताम्॥ ८

धनुर्वेदं कृपः पूर्णं ददावस्मै सुसंस्कृतम्।
अर्जुनाय यथा द्रोणः कर्णाय भार्गवो यथा॥ ९

सम्प्राप्तविद्यो बलवान्बभूव दुरतिक्रमः।
धनुर्वेदे तथा वेदे पारगः परमार्थवित्॥ १०

धर्मशास्त्रार्थकुशलः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
चकार राज्यं धर्मात्मा पुरा धर्मसुतो यथा॥ ११

ततः सुवर्णवर्माख्यो राजा काशिपतिः किल।
वपुष्टमां शुभां कन्यां ददौ पारीक्षिताय च॥ १२

स तां प्राप्यासितापाङ्गीं मुमुदे जनमेजयः।
काशिराजसुतां कान्तां प्राप्य राजा यथा पुरा॥ १३

विचित्रवीर्यो मुमुदे सुभद्रां च यथार्जुनः।
विजहार महीपालो वनेषूपवनेषु च॥ १४

तया कमलपत्राक्ष्या शच्या शतक्रतुर्यथा।
प्रजास्तस्य सुसन्तुष्टा बभूवुः सुखलालिताः॥ १५

मन्त्रिणः कर्मकुशलाश्चक्रुः कार्याणि सर्वशः।

पुरवासी तथा जनपदवासी प्रजाओंने राजलक्षणोंसे सम्पन्न जनमेजय नामक उस बालकको अपने राजाके रूपमें स्वीकार किया॥ ६॥

राजकुमारकी धात्रीने उन्हें सब प्रकारके राजोचित गुणोंकी शिक्षा दी। इस प्रकार दिन-प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होते हुए वे महान् बुद्धिमान् हो गये॥ ७॥

उनकी ग्यारह वर्षकी अवस्था होनेपर कुल-पुरोहितने उन्हें यथोचित शिक्षा प्रदान की और उन्होंने उसे सम्यक् रूपसे ग्रहण किया॥ ८॥

जिस प्रकार द्रोणाचार्यने अर्जुनको तथा भार्गव परशुरामने कर्णको धनुर्विद्यामें प्रशिक्षित किया, उसी प्रकार कृपाचार्यने जनमेजयको भलीभाँति परिष्कृत धनुर्विद्या प्रदान की॥ ९॥

इस प्रकार सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करके वे जनमेजय वेद तथा धनुर्वेदमें पूर्ण पारंगत, बलशाली, अपराजेय तथा परमार्थवेत्ता हो गये॥ १०॥

वे धर्मशास्त्रके अर्थोंका विवेचन करनेमें कुशल, सत्यनिष्ठ, इन्द्रियजित् और धर्मात्मा थे। उन्होंने पूर्वमें धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरकी भाँति राज्य-शासन किया॥ ११॥

इसके बाद सुवर्णवर्मा नामवाले काशिपति राजाने शुभ गुणोंवाली अपनी कन्या वपुष्टमाका पाणिग्रहण जनमेजयके साथ सम्पन्न कर दिया॥ १२॥

जिस प्रकार प्राचीन कालमें काशिराजकी पुत्रीको पाकर विचित्रवीर्य तथा सुभद्राको पाकर अर्जुन अत्यन्त आह्लादित हुए थे, उसी प्रकार उस श्याम नयनोंवालीको अपनी कान्ताके रूपमें पाकर जनमेजय अति प्रसन्न हुए। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस वपुष्टमाके साथ वनों और उपवनोंमें राजा जनमेजय उसी प्रकार विहार करने लगे जिस प्रकार इन्द्राणीके साथ इन्द्र। उनके द्वारा सुखपूर्वक रक्षित प्रजा अति सन्तुष्ट थी। जनमेजयके कार्यकुशल सभी मन्त्री समस्त कार्योंको सम्यक् प्रकारसे करते थे॥ १३—१५$\frac{१}{२}$ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु मुनिरुत्तङ्कनामकः॥ १६

तक्षकेण परिक्लिष्टो हस्तिनापुरमभ्यगात्।
वैरस्यापचितिं कोऽस्य प्रकुर्यादिति चिन्तयन्॥ १७

परीक्षितसुतं मत्वा तं नृपं समुपागतः।
कार्याकार्यं न जानासि समये नृपसत्तम॥ १८

अकर्तव्यं करोष्यद्य कर्तव्यं न करोषि वै।
किं त्वां सम्प्रार्थयाम्यद्य गतामर्षं निरुद्यमम्॥ १९

अवैरज्ञमतन्त्रज्ञं बालचेष्टासमन्वितम्।

जनमेजय उवाच

किं वैरं न मया ज्ञातं न किं प्रतिकृतं मया॥ २०

तद्वद त्वं महाभाग करोमि यदनन्तरम्।

उत्तङ्क उवाच

पिता ते निहतो भूप तक्षकेण दुरात्मना॥ २१

मन्त्रिणस्त्वं समाहूय पृच्छ स्वपितृनाशनम्।

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा पप्रच्छ मन्त्रिसत्तमान्॥ २२

ऊचुस्ते द्विजशापेन दष्टः सर्पेण वै मृतः।

जनमेजय उवाच

शापोऽत्र कारणं राज्ञः शप्तस्य मुनिना किल॥ २३

तक्षकस्य तु को दोषो ब्रूहि मे मुनिसत्तम।

उत्तङ्क उवाच

तक्षकेण धनं दत्त्वा कश्यपः सन्निवारितः॥ २४

न स किं तक्षको वैरी पितृहा तव भूपते।
भार्या रुरोः पुरा भूप दष्टा सर्पेण सा मृता॥ २५

अविवाहिता तु मुनिना जीविता च पुनः प्रिया।
रुरुणापि कृता तत्र प्रतिज्ञा चातिदारुणा॥ २६

इसी समय तक्षकके द्वारा पीड़ित उत्तंक नामक मुनिका हस्तिनापुरमें आगमन हुआ। 'इस सर्पकी शत्रुताका बदला कौन ले सकता है'—ऐसा सोचते हुए वे परीक्षित्-पुत्र जनमेजयको यह कार्य कर सकनेवाला समझकर उनके पास आये और बोले—हे भूपवर! आपको यह ज्ञान नहीं है कि इस समय क्या करणीय है और क्या अकरणीय है? आप इस समय न करनेयोग्य कार्य कर रहे हैं और करनेयोग्य कार्य नहीं कर रहे हैं। आपसदृश रोषहीन, पुरुषार्थरहित, वैरभावके ज्ञानसे शून्य, प्रतीकार आदि उपायोंको न जाननेवाले तथा बालकोंके समान स्वभाववाले राजासे अब मैं क्या कहूँ?॥ १६—१९½ ॥

जनमेजय बोले—मैंने किस शत्रुताको नहीं जाना और उसका प्रतीकार नहीं किया? हे महाभाग! आप मुझे वह बतायें, जिससे मैं उसे सम्पन्न कर सकूँ॥ २०½ ॥

उत्तंक बोले—हे राजन्! आपके पिता परीक्षित् दुष्टात्मा तक्षकनागद्वारा मार डाले गये थे। आप मन्त्रियोंको बुलाकर अपने पिताकी मृत्युके विषयमें पूछिये॥ २१½ ॥

सूतजी बोले—उत्तंकका वचन सुनकर राजाने मन्त्रिप्रवरोंसे पूछा। तब उन्होंने बताया कि ब्राह्मणद्वारा शापित होनेके कारण एक सर्पने उन्हें डँस लिया और वे मर गये॥ २२½ ॥

जनमेजय बोले—मेरे पिता राजा परीक्षित्की मृत्युका कारण तो मुनिद्वारा प्रदत्त शाप था। हे मुनिश्रेष्ठ! मुझे यह बताइये कि इसमें तक्षकका क्या दोष था?॥ २३½ ॥

उत्तंक बोले—तक्षकने कश्यप नामक ब्राह्मणको धन देकर आपके पितातक पहुँचनेसे रोक दिया था। हे राजन्! आपके पिताका हन्ता वह तक्षक क्या आपका शत्रु नहीं है? हे भूप! प्राचीन कालमें मुनि रुरुकी भार्याको सर्पने डँस लिया था और वह मर गयी थी। वह अविवाहिता थी। मुनि रुरुने अपनी उस प्रियाको पुनः जीवित कर दिया और उन्होंने वहींपर

यं यं सर्पं प्रपश्यामि तं तं हन्म्यायुधेन वै।
एवं कृत्वा प्रतिज्ञां स शस्त्रपाणी रुरुस्तदा॥ २७

व्यचरत्पृथिवीं राजन्निघ्नन्सर्पान्यतस्ततः।
एकदा स वने घोरं डुण्डुभं जरसान्वितम्॥ २८

अपश्यद्दण्डमुद्यम्य हन्तुं तं समुपाययौ।
अभ्यहन्रुषितो विप्रस्तमुवाचाथ डुण्डुभः॥ २९

नापराध्नोमि ते विप्र कस्मान्मामभिहंसि वै।

रुरुरुवाच

प्राणप्रिया मे दयिता दष्टा सर्पेण सा मृता॥ ३०

प्रतिज्ञेयं तदा सर्प दुःखितेन मया कृता।

डुण्डुभ उवाच

नाहं दशामि तेऽन्ये वै ये दशन्ति भुजङ्गमाः॥ ३१

शरीरसमयोगेन न मां हिंसितुमर्हसि।

उत्तङ्क उवाच

श्रुत्वा तां मानुषीं वाणीं सर्पेणोक्तां मनोहराम्॥ ३२

रुरुः पप्रच्छ कोऽसि त्वं कस्माद् डुण्डुभतां गतः।

सर्प उवाच

ब्राह्मणोऽहं पुरा विप्र सखा मे खगमाभिधः॥ ३३

विप्रो धर्मभृतां श्रेष्ठः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
स मया वञ्चितो मौर्ख्यात्सर्पं कृत्वा च तार्णकम्॥ ३४

भयं च प्रापितोऽत्यर्थमग्निहोत्रगृहे स्थितः।
तेन भीतेन शप्तोऽहं विह्वलेनातिवेपिना॥ ३५

भव सर्पो मन्दबुद्धे येनाहं धर्षितस्त्वया।
मया प्रसादितोऽत्यर्थं सर्पेणासौ द्विजोत्तमः॥ ३६

मामुवाचाथ तत्क्रोधात्किञ्चिच्छान्तिमवाप्य च।
रुरुस्ते मोचिता शापस्यास्य सर्प भविष्यति॥ ३७

प्रमतेस्तु सुतो नूनमिति मां सोऽब्रवीद्वचः।
सोऽहं सर्पो रुरुस्त्वं च शृणु मे परमं वचः॥ ३८

अत्यन्त भीषण प्रतिज्ञा की कि मैं जिस किसी भी सर्पको देखूँगा, उसे तत्काल आयुधसे मार डालूँगा। हे राजन्! इस प्रकार प्रतिज्ञा करके हाथमें शस्त्र लेकर मुनि रुरु सर्पोंका वध करते हुए इधर-उधर घूमते रहे। एक बार उन्हें वनमें एक बूढ़ा डुंडुभ साँप दिखायी दिया। वे लाठी उठाकर रोषपूर्वक उसे मारनेके लिये तत्पर हुए, तब डुंडुभने उन ब्राह्मणसे कहा—हे विप्र! मैं आपके प्रति कोई अपराध नहीं कर रहा हूँ तो फिर आप मुझे क्यों मार रहे हैं?॥ २४—२९½ ॥

रुरु बोले—मेरी प्राणप्रिया भार्याको सर्पने डँस लिया था और उसकी मृत्यु हो गयी थी। अतः हे सर्प! उसी समयसे दुःखित होकर मैंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली थी॥ ३०½ ॥

डुंडुभ बोला—मैं किसीको काटता नहीं। जो सर्प काटते हैं, वे दूसरे होते हैं। इसलिये सर्पसदृश शरीर होनेके कारण मुझे आप मत मारिये॥ ३१½ ॥

उत्तंक बोले—मनुष्यके समान उसकी सुन्दर वाणी सुनकर रुरुने पूछा—तुम कौन हो? और डुंडुभयोनिको कैसे प्राप्त हो गये?॥ ३२½ ॥

सर्प बोला—हे विप्र! पहले मैं ब्राह्मण था और 'खगम' नामका मेरा एक ब्राह्मण मित्र था। वह धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय था। एक बार अपनी मूर्खतावश मैंने तृणका सर्प बनाकर उसे धोखेमें डाल दिया॥ ३३-३४॥

उस समय वह अग्निहोत्रगृहमें विद्यमान था, सर्पको देखकर अत्यन्त डर गया। भयसे थर-थर काँपते हुए उस ब्राह्मणने विह्वल होकर मुझे शाप दे दिया—हे मन्दबुद्धि! तुमने सर्प दिखाकर मुझे डराया है, अतः तुम सर्प हो जाओ। सर्परूपमें मैंने उस ब्राह्मणकी बड़ी प्रार्थना की। तब उस ब्राह्मणने क्रोधसे थोड़ा शान्त होनेपर मुझसे कहा—हे सर्प! प्रमतिपुत्र रुरु तुम्हें इस शापसे मुक्त करेंगे। उन्होंने यह बात स्वयं मुझसे कही थी। मैं वही सर्प हूँ और आप रुरु हैं। आप मेरे वचनको ध्यानपूर्वक सुनिये—ब्राह्मणोंके

अहिंसा परमो धर्मो विप्राणां नात्र संशयः।
दया सर्वत्र कर्तव्या ब्राह्मणेन विजानता॥ ३९

यज्ञादन्यत्र विप्रेन्द्र न हिंसा याज्ञिकी मता।

उत्तङ्क उवाच

सर्पयोनेर्विनिर्मुक्तो ब्राह्मणोऽसौ रुरुस्ततः॥ ४०

कृत्वा तस्य च शापान्तं परित्यक्तं च हिंसनम्।
विवाहिता तेन बाला मृता सञ्जीविता पुनः॥ ४१

कदनं सर्वसर्पाणां कृतं वैरमनुस्मरन्।
त्वं तु वैरं समुत्सृज्य वर्तसे पन्नगेष्वथ॥ ४२

विमन्युर्भरतश्रेष्ठ पितृघातकरेषु वै।
अन्तरिक्षे मृतस्तातः स्नानदानविवर्जितः॥ ४३

तस्योद्धारं च राजेन्द्र कुरु हत्वाथ पन्नगान्।
पितुर्वैरं न जानाति जीवन्नेव मृतो हि सः॥ ४४

दुर्गतिस्ते पितुस्तावद्यावत्तान्न हनिष्यसि।
अम्बामखमिषं कृत्वा कुरु यज्ञं नृपोत्तम॥ ४५

सर्पसत्रं महाराज पितुर्वैरमनुस्मरन्।

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा जन्मेजयस्तदा॥ ४६

नेत्राभ्यामश्रुपातं च चकारातीव दुःखितः।
धिङ्मामस्तु सुदुर्बुद्धेर्वृथा मानकरस्य वै॥ ४७

पिता यस्य गतिं घोरां प्राप्तः पन्नगपीडितः।
अद्याहं मखमारभ्य करोम्यपचितिं पितुः॥ ४८

हत्वा सर्पानसन्दिग्धो दीप्यमाने विभावसौ।
आहूय मन्त्रिणः सर्वान् राजा वचनमब्रवीत्॥ ४९

कुर्वन्तु यज्ञसम्भारं यथार्हं मन्त्रिसत्तमाः।
गङ्गातीरे शुभां भूमिं मापयित्वा द्विजोत्तमैः॥ ५०

लिये अहिंसा परम धर्म है, इसमें सन्देह नहीं। अतः विद्वान् ब्राह्मणको चाहिये कि वह सर्वत्र दया करे। हे विप्रवर! यज्ञसे अतिरिक्त कहीं भी की गयी हिंसा याज्ञिकी हिंसा नहीं कही गयी है॥ ३५—३९ १/२ ॥

उत्तंक बोले—तब वह ब्राह्मण सर्पयोनिसे मुक्त हो गया। इस प्रकार उस ब्राह्मणके शापका अन्त करके रुरुने भी हिंसा छोड़ दी। उन्होंने मरी हुई उस सुन्दरीको पुनः जीवित कर दिया और उसके साथ विवाह कर लिया॥ ४०-४१ ॥

हे राजन्! उस मुनिने इस प्रकार शत्रुताका स्मरण करते हुए सभी सर्पोंका संहार किया था, परंतु हे भरतश्रेष्ठ! आप तो वैर भूलकर अपने पिताको मारनेवाले सर्पोंके प्रति क्रोधशून्य बने रहते हैं। आपके पिता स्नान-दान किये बिना अन्तरिक्षमें ही मर गये। इसलिये हे राजेन्द्र! सर्पोंका नाश करके आप उनका उद्धार कीजिये। जो पुत्र पिताके शत्रुओंसे बदला नहीं लेता, वह जीते हुए भी मृतकतुल्य है। हे नृपश्रेष्ठ! जबतक आप सर्पोंका विनाश नहीं करते, तबतक आपके पिताकी दुर्गति ही रहेगी। हे महाराज! आप देवीयज्ञके व्याजसे अपने पिताकी शत्रुताका स्मरण करते हुए सर्पसत्र नामक यज्ञ कीजिये॥ ४२—४५ १/२ ॥

सूतजी बोले—उत्तंकमुनिका यह वचन सुनकर राजा जनमेजय अत्यन्त दुःखी हुए और उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। [वे मनमें सोचने लगे] जिसके पिता सर्पसे दंशित होकर इस प्रकार दुर्गतिको प्राप्त हों, उस मुझ मिथ्याभिमानी तथा दुर्बुद्धिको धिक्कार है। मैं आज ही यज्ञ आरम्भ करके प्रज्वलित अग्निमें सर्पोंकी आहुति देकर अवश्य ही पिताकी मृत्युका बदला लूँगा॥ ४६—४८ १/२ ॥

सभी मन्त्रियोंको बुलाकर राजाने यह वचन कहा—हे मन्त्रिप्रवरो! गंगाके किनारे श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे उत्तम भूमिकी माप कराकर आपलोग यथोचित यज्ञसामग्रीका प्रबन्ध करें। हे मेरे बुद्धिमान् मन्त्रियो! सौ खंभोंवाले एक सुरम्य मण्डपका निर्माण कराकर

कुर्वन्तु मण्डपं स्वस्थाः शतस्तम्भं मनोहरम्।
वेदी यज्ञस्य कर्तव्या ममाद्य सचिवाः खलु॥ ५१

तदङ्गत्वे विधेयो वै सर्पसत्रः सुविस्तरः।
तक्षकस्तु पशुस्तत्र होतोत्तङ्को महामुनिः॥ ५२

शीघ्रमाहूयतां विप्राः सर्वज्ञा वेदपारगाः।

सूत उवाच

मन्त्रिणस्तु तदा चक्रुर्भूपवाक्यैर्विचक्षणाः॥ ५३

यज्ञस्य सर्वसम्भारं वेदीं यज्ञस्य विस्तृताम्।
हवने वर्तमाने तु सर्पाणां तक्षको गतः॥ ५४

इन्द्रं प्रति भयार्तोऽहं त्राहि मामिति चाब्रवीत्।
भयभीतं समाश्वास्य स्वासने सन्निवेश्य च॥ ५५

ददावभयमत्यर्थं निर्भयो भव पन्नग।
तमिन्द्रशरणं ज्ञात्वा मुनिर्दत्ताभयं तथा॥ ५६

उत्तङ्कोऽह्वयदुद्विग्नः सेन्द्रं कृत्वा निमन्त्रणम्।
स्मृतस्तदा तक्षकेण यायावरकुलोद्भवः॥ ५७

आस्तीको नाम धर्मात्मा जरत्कारुसुतो मुनिः।
तत्रागत्य मुनेर्बालस्तुष्टाव जनमेजयम्॥ ५८

राजा तमर्चयामास दृष्ट्वा बालं सुपण्डितम्।
अर्चयित्वा नृपस्तं तु छन्दयामास वाञ्छितैः॥ ५९

स तु वव्रे महाभाग यज्ञोऽयं विरमत्विति।
सत्यबद्धो नृपस्तेन प्रार्थितश्च पुनस्तथा॥ ६०

होमं निवर्तयामास सर्पाणां मुनिवाक्यतः।
भारतं श्रावयामास वैशम्पायन विस्तरात्॥ ६१

श्रुत्वापि नृपतिः कामं न शान्तिमभिजग्मिवान्।
व्यासं पप्रच्छ भूपालो मम शान्तिः कथं भवेत्॥ ६२

आपलोग उसमें आज ही यज्ञके लिये वेदीका भी निर्माण सम्पन्न करा लें। उस यज्ञके अंगरूपमें विस्तारसहित सर्पसत्र भी करना है। महामुनि उत्तंक उस यज्ञके होता होंगे और तक्षकनाग उसमें यज्ञपशु होगा। आपलोग शीघ्र ही सर्वज्ञाता एवं वेदपारगामी ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करें॥ ४९—५२½ ॥

सूतजी बोले—बुद्धिमान् मन्त्रियोंने राजाके कथनानुसार यज्ञसम्बन्धी समस्त सामग्रीका प्रबन्ध कर लिया और विस्तृत यज्ञवेदी भी निर्मित करायी। सर्पोंका हवन आरम्भ होनेपर तक्षक इन्द्रके यहाँ गया और उनसे बोला—मैं भयाकुल हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। तत्पश्चात् इन्द्रने उस भयभीत तक्षकको सान्त्वना देकर अपने आसनपर बैठाकर उसे अभय प्रदान किया और कहा—हे पन्नग! तुम निर्भय हो जाओ॥ ५३—५५½ ॥

तदनन्तर उत्तंकमुनि उस तक्षकको इन्द्रका शरणागत और उनसे अभयदान पाया हुआ जानकर उद्विग्न हो उठे और उन्होंने मन्त्रप्रभावसे इन्द्रसहित तक्षकका आवाहन किया। तब तक्षकने यायावरवंशमें उत्पन्न जरत्कारुपुत्र धर्मनिष्ठ आस्तीक-नामक मुनिका स्मरण किया। वे मुनिबालक आस्तीक वहाँ आकर जनमेजयकी प्रशंसा करने लगे॥ ५६—५८ ॥

राजा जनमेजयने उस बालकको महान् पण्डित देखकर उसकी पूजा की। पूजन-अर्चन करके राजाने अपनी मनोवांछित वस्तु माँगनेके लिये उससे निवेदन किया॥ ५९ ॥

तब आस्तीकने याचना की—हे महाभाग! इस यज्ञको समाप्त किया जाय। उसने सत्य वचनमें आबद्ध राजासे बार-बार ऐसी प्रार्थना की॥ ६० ॥

तत्पश्चात् मुनिके वचनानुसार राजाने सर्पोंका हवन बन्द कर दिया और फिर वैशम्पायनऋषिने उन्हें विस्तारपूर्वक महाभारतकी कथा सुनायी॥ ६१ ॥

उस कथाको सुनकर भी राजाको विशेष शान्ति नहीं प्राप्त हुई तब राजाने व्यासजीसे पूछा—मुझे किस प्रकार शान्ति मिलेगी? मेरा मन अशान्तिकी

मनोऽतिदह्यते कामं किं करोमि वदस्व मे।
पिता मे दुर्भगस्यैव मृतः पार्थसुतात्मजः॥ ६३

क्षत्रियाणां महाभाग सङ्ग्रामे मरणं वरम्।
रणे वा मरणं व्यास गृहे वा विधिपूर्वकम्॥ ६४

मरणं न पितुर्मेऽभूदन्तरिक्षे मृतोऽवशः।
शान्त्युपायं वदस्वात्र त्वं च सत्यवतीसुत॥ ६५
यथा स्वर्गं व्रजेदाशु पिता मे दुर्गतिं गतः॥ ६६

अग्निमें अत्यधिक दग्ध हो रहा है, मैं क्या करूँ? मुझको बतलाइये। मुझ मन्दभाग्यके पिता और अर्जुनपौत्र परीक्षित् अकाल-मृत्युको प्राप्त हुए हैं। हे महाभाग! युद्धमें होनेवाली मृत्यु ही क्षत्रियोंके लिये श्रेष्ठ होती है। हे व्यासजी! रणमें अथवा घरमें विधिपूर्वक होनेवाली मृत्यु ही अच्छी मानी जाती है, किंतु मेरे पिताका वैसा मरण नहीं हुआ। वे तो असहाय अवस्थामें अन्तरिक्षमें मृत्युको प्राप्त हुए। हे सत्यवतीपुत्र! आप उनकी शान्ति-प्राप्तिका कोई उपाय बतलाइये, जिससे दुर्गतिको प्राप्त मेरे पिताजी शीघ्र ही स्वर्ग चले जायँ॥ ६२—६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे सर्पसत्रवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

आस्तीकमुनिके जन्मकी कथा, कद्रू और विनताद्वारा सूर्यके घोड़ेके रंगके विषयमें शर्त लगाना और विनताको दासीभावकी प्राप्ति, कद्रूद्वारा अपने पुत्रोंको शाप

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य व्यासः सत्यवतीसुतः।
उवाच वचनं तत्र सभायां नृपतिं च तम्॥ १

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि पुराणं गुह्यमद्भुतम्।
पुण्यं भागवतं नाम नानाख्यानयुतं शिवम्॥ २

अध्यापितं मया पूर्वं शुकायात्मसुताय वै।
श्रावयामि नृप त्वां हि रहस्यं परमं मम॥ ३

धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं श्रवणात्किल।
शुभदं सुखदं नित्यं सर्वागमसमुद्धृतम्॥ ४

जनमेजय उवाच

आस्तीकोऽयं सुतः कस्य विघ्नार्थं कथमागतः।
प्रयोजनं किमत्रास्य सर्पाणां रक्षणे प्रभो॥ ५

सूतजी बोले—राजा जनमेजयका वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र व्यासने सभामें उन राजासे कहा—॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपसे एक पुनीत, कल्याणकारक, रहस्यमय, अद्भुत तथा विविध कथानकोंसे युक्त देवीभागवत नामक पुराण कहूँगा॥ २॥

मैंने पूर्वकालमें उसे अपने पुत्र शुकदेवको पढ़ाया था। हे राजन्! मैं अपने परम रहस्यमय पुराणका श्रवण आपको कराऊँगा॥ ३॥

सभी वेदों एवं शास्त्रोंके सारस्वरूप तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षके कारणभूत इस पुराणका श्रवण करनेसे यह मंगल तथा आनन्द प्रदान करनेवाला होता है॥ ४॥

जनमेजय बोले—हे प्रभो! यह आस्तीक किसका पुत्र था और यज्ञमें विघ्न डालनेके लिये क्यों आया? यज्ञमें सर्पोंकी रक्षा करनेके पीछे इसका क्या उद्देश्य था?॥ ५॥

कथयैतन्महाभाग विस्तरेण कथानकम्।
पुराणं च तथा सर्वं विस्तराद्वद सुव्रत॥ ६

व्यास उवाच

जरत्कारुर्मुनिः शान्तो न चकार गृहाश्रमम्।
तेन दृष्टा वने गर्ते लम्बमानाः स्वपूर्वजाः॥ ७

ततस्तमाहुः कुरु पुत्र दारा-
न्यथा च नः स्यात्परमा हि तृप्तिः।
स्वर्गे व्रजामः खलु दुःखमुक्ता
वयं सदाचारयुते सुते वै॥ ८

स तानुवाचाथ लभे समाना-
मयाचितां चातिवशानुगां च।
तदा गृहारम्भमहं करोमि
ब्रवीमि तथ्यं मम पूर्वजा वै॥ ९

इत्युक्त्वा ताञ्जरत्कारुर्गतस्तीर्थान्प्रति द्विजः।
तदैव पन्नगाः शप्ता मात्राग्नौ निपतन्त्विति॥ १०

कश्यपस्य मुनेः पत्न्यौ कद्रूश्च विनता तथा।
दृष्ट्वादित्यरथे चाश्वमूचतुश्च परस्परम्॥ ११

तं दृष्ट्वा च तदा कद्रूर्विनतामिदमब्रवीत्।
किंवर्णोऽयं हयो भद्रे सत्यं प्रब्रूहि माचिरम्॥ १२

विनतोवाच

श्वेत एवाश्वराजोऽयं किं वा त्वं मन्यसे शुभे।
ब्रूहि वर्णं त्वमप्यस्य ततस्तु विपणावहे॥ १३

कद्रूरुवाच

कृष्णवर्णमहं मन्ये हयमेनं शुचिस्मिते।
एहि सार्धं मया दिव्यं दासीभावाय भामिनि॥ १४

हे महाभाग! उस आख्यानको विस्तारपूर्वक बताइये। हे सुव्रत! उस सम्पूर्ण पुराणको भी विस्तारके साथ कहिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—जरत्कारु एक शान्त स्वभाववाले ऋषि थे, उन्होंने गार्हस्थ्य-जीवन अंगीकार नहीं किया था। उन्होंने एक बार वनमें एक गड्ढेके भीतर अपने पूर्वजोंको लटकते हुए देखा॥ ७॥

तदनन्तर पूर्वजोंने उनसे कहा—हे पुत्र! तुम विवाह कर लो, जिससे हमारी परम तृप्ति हो सके। तुझ सदाचारी पुत्रके ऐसा करनेपर हम-लोग निश्चितरूपसे दुःखमुक्त होकर स्वर्गकी प्राप्ति कर लेंगे॥ ८॥

तब उन जरत्कारुने उनसे कहा—हे मेरे पूर्वजो! जब मुझे अपने समान नामवाली तथा अत्यन्त वशवर्तिनी कन्या बिना माँगे ही मिलेगी तभी मैं विवाह करके गृहस्थी बसाऊँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

उनसे ऐसा कहकर ब्राह्मण जरत्कारु तीर्थाटनके लिये चल पड़े। उसी समय सर्पोंको उनकी माताने शाप दे दिया कि वे अग्निमें गिर जायँ॥ १०॥

कश्यपऋषिकी कद्रू और विनता नामक दो पत्नियाँ थीं। सूर्यके रथमें जुते हुए घोड़ेको देखकर वे आपसमें वार्तालाप करने लगीं॥ ११॥

उस घोड़ेको देखकर कद्रूने विनतासे यह कहा—हे कल्याणि! यह घोड़ा किस रंगका है? यह मुझे शीघ्र ही सही-सही बताओ॥ १२॥

विनता बोली—यह अश्वराज श्वेत रंगका है। हे शुभे! तुम इसे किस रंगका मानती हो? तुम भी इसका रंग बता दो। तब हम दोनों आपसमें इसपर शर्त लगायें॥ १३॥

कद्रू बोली—हे शुभ मुसकानवाली! मैं तो इस घोड़ेको कृष्णवर्णका समझती हूँ। हे भामिनि! आओ, मेरे साथ शर्त लगाओ कि जो हारेगी, वह दूसरेकी दासी होना स्वीकार करेगी॥ १४॥

सूत उवाच

कद्रूश्च स्वसुतानाह सर्वान्सर्पान्वशे स्थितान्।
बालाञ्छ्यामान्प्रकुर्वन्तु यावतोऽश्वशरीरके॥ १५

नेति केचन तत्राहुस्तानथासौ शशाप ह।
जनमेजयस्य यज्ञे वै गमिष्यथ हुताशनम्॥ १६

अन्ये चक्रुर्हयं सर्पाः कर्बुरं वर्णभोगकैः।
वेष्टयित्वास्य पुच्छं तु मातुः प्रियचिकीर्षया॥ १७

भगिन्यौ च सुसंयुक्ते गत्वा ददृशतुर्हयम्।
कर्बुरं तं हयं दृष्ट्वा विनता चातिदुःखिता॥ १८

तदाजगाम गरुडः सुतस्तस्या महाबलः।
स दृष्ट्वा मातरं दीनामपृच्छत्पन्नगाशनः॥ १९

मातः कथं सुदीनासि रुदितेव विभासि मे।
जीवमाने मयि सुते तथान्ये रविसारथौ॥ २०

दुःखितासि ततो वां धिग्जीवितं चारुलोचने।
किं जातेन सुतेनाथ यदि माता सुदुःखिता॥ २१

शंस मे कारणं मातः करोमि विगतज्वराम्।

विनतोवाच

सपत्न्या दास्यहं पुत्र किं ब्रवीमि वृथा क्षता॥ २२

वह मां सा ब्रवीत्यद्य तेनास्मि दुःखिता सुत।

गरुड उवाच

वहिष्येऽहं तत्र किल यत्र सा गन्तुमुत्सुका॥ २३

मा शोकं कुरु कल्याणि निश्चिन्तां त्वां करोम्यहम्।

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा गता पार्श्वं कद्रोश्च विनता तदा॥ २४

सूतजी बोले—कद्रूने अपने सभी आज्ञाकारी सर्पपुत्रोंसे कहा कि तुम सभी लिपटकर उस घोड़ेके शरीरमें जितने बाल हैं, उन्हें काला कर दो॥ १५॥

उनमेंसे कुछ सर्पोंने कहा कि हम ऐसा नहीं करेंगे। उन सर्पोंको कद्रूने शाप दे दिया कि तुम लोग जनमेजयके यज्ञमें हवनकी अग्निमें गिर पड़ोगे॥ १६॥

अन्य सर्पोंने माताको प्रसन्न करनेकी कामनासे उस घोड़ेकी पूँछमें लिपटकर अपने विभिन्न रंगोंसे घोड़ेको चितकबरा कर दिया॥ १७॥

तदनन्तर दोनों बहनोंने साथ-साथ जाकर घोड़ेको देखा। उस घोड़ेको चितकबरा देखकर विनता बहुत दुःखी हुई॥ १८॥

उसी समय सर्पोंका आहार करनेवाले महाबली विनतापुत्र गरुडजी वहाँ आ गये। उन्होंने अपनी माताको दुःखित देखकर उनसे पूछा—॥ १९॥

हे माता! आप बहुत उदास क्यों हैं? आप मुझे रोती हुई प्रतीत हो रही हैं। हे सुनयने! मेरे एवं सूर्यसारथि अरुणसदृश पुत्रोंके जीवित रहते यदि आप दुःखी हैं, तब हमारे जीवनको धिक्कार है! यदि माता ही परम दुःखी हों तो पुत्रके उत्पन्न होनेसे क्या लाभ? हे माता! आप मुझे अपने दुःखका कारण बताइये, मैं आपको दुःखसे मुक्त करूँगा॥ २०-२१½॥

विनता बोली—हे पुत्र! मैं अपनी सौतकी दासी हो गयी हूँ। अब व्यर्थमें मारी गयी मैं क्या कहूँ? वह मुझसे अब कह रही है कि मैं उसे अपने कन्धेपर ढोऊँ। हे पुत्र! मैं इसीसे दुःखी हूँ॥ २२½॥

गरुडजी बोले—वे जहाँ भी जानेकी कामना करेंगी, मैं उन्हें ढोकर वहाँ ले जाऊँगा। हे कल्याणि! आप शोक न करें, मैं आपको निश्चिन्त कर देता हूँ॥ २३½॥

व्यासजी बोले—गरुडद्वारा ऐसा कहे जानेपर विनता उसी समय कद्रूके पास चली गयी। महाबली गरुड भी अपनी माता विनताको दास्य-

दासीभावमपाकर्तुं गरुडोऽपि महाबलः।
उवाह तां सपुत्रां वै सिन्धोः पारं जगाम ह॥ २५

गत्वा तां गरुडः प्राह ब्रूहि मातर्नमोऽस्तु ते।
कथं मुच्येत मे माता दासीभावादसंशयम्॥ २६

कद्रूरुवाच

अमृतं देवलोकात्त्वं बलादानीय मे सुतान्।
समर्पय सुताद्याशु मातरं मोचयाबलाम्॥ २७

व्यास उवाच

इत्युक्तः प्रययौ शीघ्रमिन्द्रलोकं महाबलः।
कृत्वा युद्धं जहाराशु सुधाकुम्भं खगोत्तमः॥ २८

समानीयामृतं मात्रे वैनतेयः समर्पयत्।
मोचिता विनता तेन दासीभावादसंशयम्॥ २९

अमृतं सञ्जहारेन्द्रः स्नातुं सर्पा यदा गताः।
दासीभावाद्विनिर्मुक्ता विनता विपतेर्बलात्॥ ३०

तत्रास्तीर्णाः कुशास्तैस्तु लीढाः पन्नगनामकैः।
द्विजिह्वास्ते सुसम्पन्नाः कुशाग्रस्पर्शमात्रतः॥ ३१

मात्रा शप्ताश्च ये नागा वासुकिप्रमुखाः शुचा।
ब्रह्माणं शरणं गत्वा ते होचुः शापजं भयम्॥ ३२

तानाह भगवान्ब्रह्मा जरत्कारुर्महामुनिः।
वासुकेर्भगिनीं तस्मै अर्पयध्वं सनामिकाम्॥ ३३

तस्यां यो जायते पुत्रः स वस्त्राता भविष्यति।
आस्तीक इति नामासौ भविता नात्र संशयः॥ ३४

वासुकिस्तु तदाकर्ण्य वचनं ब्रह्मणः शिवम्।
वनं गत्वा सुतां तस्मै ददौ विनयपूर्वकम्॥ ३५

भावसे मुक्ति दिलानेके उद्देश्यसे कद्रूको उसके पुत्रोंसहित अपनी पीठपर बैठाकर सागरके उस पार ले गये॥ २४-२५॥

वहाँ जाकर गरुडने कद्रूसे कहा—हे जननि! आपको बार-बार प्रणाम है। अब आप मुझे यह बतायें कि मेरी माता दासीभावसे निश्चित ही कैसे मुक्त होंगी?॥ २६॥

कद्रू बोली—हे पुत्र! तुम स्वर्गलोकसे बलपूर्वक अमृत लाकर मेरे पुत्रोंको दे दो और शीघ्र ही अपनी अबला माताको मुक्त करा लो॥ २७॥

व्यासजी बोले—कद्रूके ऐसा कहनेपर पक्षिश्रेष्ठ महाबली गरुड उसी समय इन्द्रलोक गये और देवताओंसे युद्ध करके उन्होंने सुधा-कलश छीन लिया। अमृत लाकर उन्होंने उसे अपनी विमाता कद्रूको अर्पण कर दिया और उन्होंने विनताको दासीभावसे निःसन्देह मुक्त करा लिया॥ २८-२९॥

जब सभी सर्प स्नान करनेके लिये चले गये, तब इन्द्रने अमृत चुरा लिया। इस प्रकार गरुडके प्रतापसे विनता दासीभावसे छूट गयी॥ ३०॥

अमृतघटके पास कुश बिछे हुए थे, जिन्हें सर्प अपनी जिह्वासे चाटने लगे। तब कुशके अग्रभागके स्पर्शमात्रसे ही वे दो जीभवाले हो गये॥ ३१॥

जिन सर्पोंको उनकी माताने शाप दिया था, वे वासुकिआदि नाग चिन्तित होकर ब्रह्माजीके पास गये और उन्होंने अपने शाप-जनित भयकी बात बतायी। ब्रह्माजीने उनसे कहा—जरत्कारु नामके एक महामुनि हैं, तुमलोग उन्हींके नामवाली वासुकिनागकी बहन जरत्कारुको उन्हें अर्पित कर दो। उस कन्यासे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वही तुमलोगोंका रक्षक होगा। वह 'आस्तीक'—इस नामवाला होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३२—३४॥

ब्रह्माजीका वह कल्याणकारी वचन सुनकर वासुकिने वनमें जाकर अपनी बहन उन्हें विनयपूर्वक समर्पित कर दी॥ ३५॥

सनामां तां मुनिर्ज्ञात्वा जरत्कारुरुवाच तम्।
अप्रियं मे यदा कुर्यात्तदा तां सन्त्यजाम्यहम्॥ ३६

वाग्बन्धं तादृशं कृत्वा मुनिर्जग्राह तां स्वयम्।
दत्त्वा च वासुकिः कामं भवनं स्वं जगाम ह॥ ३७

कृत्वा पर्णकुटीं शुभ्रां जरत्कारुर्महावने।
तया सह सुखं प्राप रममाणः परन्तप॥ ३८

एकदा भोजनं कृत्वा सुप्तोऽसौ मुनिसत्तमः।
भगिनी वासुकेस्तत्र संस्थिता वरवर्णिनी॥ ३९

न सम्बोधयितव्योऽहं त्वया कान्ते कथञ्चन।
इत्युक्त्वा तु गतो निद्रां मुनिस्तां सुदतीं तदा॥ ४०

रविरस्तगिरिं प्राप्तः सन्ध्याकाल उपस्थिते।
किं करोमि न मे शान्तिस्त्यजेन्मां बोधितः पुनः॥ ४१

धर्मलोपभयाद्भीता जरत्कारुरचिन्तयत्।
नोचेत्प्रबोधयाम्येनं सन्ध्याकालो वृथा व्रजेत्॥ ४२

धर्मनाशाद्वरं त्यागस्तथापि मरणं ध्रुवम्।
धर्महानिर्नराणां हि नरकाय भवेत्पुनः॥ ४३

इति सञ्चिन्त्य सा बाला तं मुनिं प्रत्यबोधयत्।
सन्ध्याकालोऽपि सञ्जात उत्तिष्ठोत्तिष्ठ सुव्रत॥ ४४

उत्थितोऽसौ मुनिः कोपात्तामुवाच व्रजाम्यहम्।
त्वं तु भ्रातृगृहं याहि निद्राविच्छेदकारिणी॥ ४५

जरत्कारुमुनिने उसे अपने ही समान नामवाली जानकर उनसे कहा—जब भी यह मेरा अप्रिय करेगी, तब मैं इसका परित्याग कर दूँगा॥ ३६॥

वैसी प्रतिज्ञा करके जरत्कारुमुनिने उस जरत्कारुको पत्नीरूपसे ग्रहण कर लिया। वासुकिनाग भी अपनी बहन उन्हें प्रदानकर आनन्दपूर्वक अपने घर लौट गये॥ ३७॥

हे परन्तप! मुनि जरत्कारु उस महावनमें सुन्दर पर्णकुटी बनाकर उसके साथ रमण करते हुए सुख भोगने लगे॥ ३८॥

एक समय मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु भोजन करके विश्राम कर रहे थे, वासुकिकी बहन सुन्दरी जरत्कारु भी वहीं बैठी हुई थी। [मुनिने उससे कहा] हे कान्ते! तुम मुझे किसी भी प्रकार जगाना मत—उस सुन्दर दाँतोंवालीसे ऐसा कहकर वे मुनि सो गये॥ ३९-४०॥

सूर्य अस्ताचलको प्राप्त हो गये थे। सन्ध्या-वन्दनका समय उपस्थित हो जानेपर धर्मलोपके भयसे डरी हुई जरत्कारु सोचने लगी—मैं क्या करूँ? मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। यदि मैं इन्हें जगाती हूँ तो ये मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो यह सन्ध्याकाल व्यर्थ ही चला जायगा॥ ४१-४२॥

धर्मनाशकी अपेक्षा त्याग श्रेष्ठ है; क्योंकि मृत्यु तो निश्चित है ही। धर्मके नष्ट होनेपर मनुष्योंको निश्चित ही नरकमें जाना पड़ता है—ऐसा निश्चय करके उस स्त्रीने उन मुनिको जगाया और कहा—हे सुव्रत! उठिये, उठिये, अब सन्ध्याकाल भी उपस्थित हो गया है॥ ४३-४४॥

जगनेपर मुनि जरत्कारुने क्रोधित होकर उससे कहा—अब मैं जा रहा हूँ और मेरी निद्रामें विघ्न डालनेवाली तुम अपने भाई वासुकिके घर चली जाओ॥ ४५॥

वेपमानाब्रवीद्वाक्यमित्युक्ता मुनिना तदा।
भ्रात्रा दत्ता यदर्थं तत्कथं स्यादमितप्रभ॥ ४६

मुनिः प्राह जरत्कारुं तदस्तीति निराकुलः।
गता सा मुनिना त्यक्ता वासुकेः सदनं तदा॥ ४७

पृष्टा भ्रात्राब्रवीद्वाक्यं यथोक्तं पतिना तदा।
अस्तीत्युक्त्वा च हित्वा मां गतोऽसौ मुनिसत्तमः॥ ४८

वासुकिस्तु तदाकर्ण्य सत्यावाङ्मुनिरित्युत।
विश्वासं च परं कृत्वा भगिनीं तां समाश्रयत्॥ ४९

ततः कालेन कियता जातोऽसौ मुनिबालकः।
आस्तीक इति नामासौ विख्यातः कुरुसत्तम॥ ५०

तेनायं रक्षितो यज्ञस्तव पार्थिवसत्तम।
मातृपक्षस्य रक्षार्थं मुनिना भावितात्मना॥ ५१

भव्यं कृतं महाराज मानितोऽयं त्वया मुनिः।
यायावरकुलोत्पन्नो वासुकेर्भगिनीसुतः॥ ५२

स्वस्ति तेऽस्तु महाबाहो भारतं सकलं श्रुतम्।
दानानि बहु दत्तानि पूजिता मुनयस्तथा॥ ५३

कृतेन सुकृतेनापि न पिता स्वर्गतिं गतः।
पावितं न कुलं कृत्स्नं त्वया भूपतिसत्तम॥ ५४

देव्याश्चायतनं भूप विस्तीर्णं कुरु भक्तितः।
येन वै सकला सिद्धिस्तव स्याज्जनमेजय॥ ५५

पूजिता परया भक्त्या शिवा सकलदा सदा।
कुलवृद्धिं करोत्येव राज्यं च सुस्थिरं सदा॥ ५६

मुनिके ऐसा कहनेपर भयसे काँपती हुई उसने कहा—हे महातेजस्वी! मेरे भाईने जिस प्रयोजनसे मुझे आपको सौंपा था, वह प्रयोजन अब कैसे सिद्ध होगा?॥ ४६॥

तदनन्तर मुनिने शान्तचित्त होकर जरत्कारुसे कहा—'वह तो है ही।' इसके बाद मुनिके द्वारा परित्यक्त वह कन्या वासुकिके घर चली गयी॥ ४७॥

भाई वासुकिके पूछनेपर उसने पतिद्वारा कही गयी बात उनसे यथावत् कह दी और [वह यह भी बोली कि] 'अस्ति'—ऐसा कहकर वे मुनिश्रेष्ठ मुझको छोड़कर चले गये॥ ४८॥

यह सुनकर वासुकिने सोचा कि मुनि सत्यवादी हैं; तत्पश्चात् पूर्ण विश्वास करके उन्होंने अपनी उस बहनको अपने यहाँ आश्रय प्रदान किया॥ ४९॥

हे कुरुश्रेष्ठ! कुछ समय बाद मुनिबालक उत्पन्न हुआ और वह आस्तीक नामसे विख्यात हुआ॥ ५०॥

हे नृपश्रेष्ठ! पवित्र आत्मावाले उन्हीं आस्तीक-मुनिने अपने मातृ-पक्षकी रक्षाके लिये आपका सर्पयज्ञ रुकवाया है॥ ५१॥

हे महाराज! यायावर वंशमें उत्पन्न और वासुकिकी बहनके पुत्र आस्तीकका आपने सम्मान किया, यह तो बड़ा ही उत्तम कार्य किया है॥ ५२॥

हे महाबाहो! आपका कल्याण हो। आपने सम्पूर्ण महाभारत सुना, नानाविध दान दिये और मुनिजनोंकी पूजा की। हे भूपश्रेष्ठ! आपके द्वारा इतना महान् पुण्यकार्य किये जानेपर भी आपके पिता स्वर्गको प्राप्त नहीं हुए और न आपका सम्पूर्ण कुल ही पवित्र हो सका। अतः हे महाराज जनमेजय! आप भक्तिभावसे युक्त होकर देवी भगवतीके एक विशाल मन्दिरका निर्माण कराइये, जिसके द्वारा आप समस्त सिद्धिको प्राप्त कर लेंगे॥ ५३—५५॥

सर्वस्व प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गा परम श्रद्धापूर्वक पूजित होनेपर सदा वंश-वृद्धि करती हैं तथा राज्यको सदा स्थिरता प्रदान करती हैं॥ ५६॥

देवीमखं विधानेन कृत्वा पार्थिवसत्तम।
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं परमं शृणु॥ ५७

त्वामहं श्रावयिष्यामि कथां परमपावनीम्।
संसारतारिणीं दिव्यां नानारससमाहृताम्॥ ५८

न श्रोतव्यं परं चास्मात्पुराणाद्विद्यते भुवि।
नाराध्यं विद्यते राजन्देवीपादाम्बुजादृते॥ ५९

ते सभाग्याः कृतप्रज्ञा धन्यास्ते नृपसत्तम।
येषां चित्ते सदा देवी वसति प्रेमसंकुले॥ ६०

सुदुःखितास्ते दृश्यन्ते भुवि भारत भारते।
नाराधिता महामाया यैर्जनैश्च सदाम्बिका॥ ६१

ब्रह्मादयः सुराः सर्वे यदाराधनतत्पराः।
वर्तन्ते सर्वदा राजंस्तां न सेवेत को जनः॥ ६२

य इदं शृणुयान्नित्यं सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
भगवत्या समाख्यातं विष्णवे यदनुत्तमम्॥ ६३

तेन श्रुतेन ते राजंश्चित्ते शान्तिर्भविष्यति।
पितॄणां चाक्षयः स्वर्गः पुराणश्रवणाद्भवेत्॥ ६४

हे भूपश्रेष्ठ! विधि-विधानके साथ देवीयज्ञ करके आप श्रीमद्देवीभागवत नामक महापुराणका श्रवण कीजिये॥ ५७॥

अत्यन्त पुनीत, भवसागरसे पार उतारनेवाली, अलौकिक तथा विविध रसोंसे सम्पृक्त उस कथाको मैं आपको सुनाऊँगा॥ ५८॥

हे राजन्! सम्पूर्ण संसारमें इस पुराणसे बढ़कर अन्य कुछ भी श्रवणीय नहीं है और भगवतीके चरणारविन्दके अतिरिक्त अन्य कुछ भी आराधनीय नहीं है॥ ५९॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिनके प्रेमपूरित हृदयमें सदा भगवती विराजमान रहती हैं; वे ही सौभाग्यशाली, ज्ञानवान् एवं धन्य हैं॥ ६०॥

हे भारत! इस भारतभूमिपर वे ही लोग सदा दुःखी दिखायी देते हैं, जिन्होंने कभी भी महामाया अम्बिकाकी आराधना नहीं की है॥ ६१॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी जिन भगवतीकी आराधनामें सर्वदा लीन रहते हैं, उनकी आराधना भला कौन मनुष्य नहीं करेगा?॥ ६२॥

जो मनुष्य इस पुराणका नित्य श्रवण करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। स्वयं भगवतीने भगवान् विष्णुके समक्ष इस अतिश्रेष्ठ पुराणका वर्णन किया था॥ ६३॥

हे राजन्! इस पुराणके श्रवणसे आपके चित्तको परम शान्ति प्राप्त होगी और आपके पितरोंको अक्षय स्वर्ग प्राप्त होगा॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वितीयस्कन्धे
श्रोतृप्रवक्तृप्रसङ्गो नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

॥ द्वितीयः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

तृतीयः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

राजा जनमेजयका ब्रह्माण्डोत्पत्तिविषयक प्रश्न तथा इसके उत्तरमें व्यासजीका पूर्वकालमें नारदजीके साथ हुआ संवाद सुनाना

जनमेजय उवाच

भगवन् भवता प्रोक्तं यज्ञमम्बाभिधं महत्।
सा का कथं समुत्पन्ना कुत्र कस्माच्च किंगुणा॥ १

कीदृशश्च मखस्तस्याः स्वरूपं कीदृशं तथा।
विधानं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ २

ब्रह्माण्डस्य तथोत्पत्तिं वद विस्तरतस्तथा।
यथोक्तं यादृशं ब्रह्मन्नखिलं वेत्सि भूसुर॥ ३

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रयो देवा मया श्रुताः।
सृष्टिपालनसंहारकारकाः सगुणास्त्वमी॥ ४

स्वतन्त्रास्ते महात्मानः पाराशर्य वदस्व मे।
आहोस्वित्परतन्त्रास्ते श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ५

मृत्युधर्माश्च ते नो वा सच्चिदानन्दरूपिणः।
अधिभूतादिभिर्युक्ता न वा दुःखैस्त्रिधात्मकैः॥ ६

कालस्य वशगा नो वा ते सुरेन्द्रा महाबलाः।
कथं ते वै समुत्पन्नाः कस्मादिति च संशयः॥ ७

जनमेजय बोले—हे भगवन्! आपने महान् अम्बा-यज्ञके विषयमें कहा है। वे अम्बा कौन हैं, वे कैसे, कहाँ और किसलिये उत्पन्न हुई हैं और वे कौन-कौनसे गुणोंवाली हैं?॥ १॥

उनका यह यज्ञ कैसा है और उसका क्या स्वरूप है? हे दयानिधान! आप सब कुछ जाननेवाले हैं; उस यज्ञका विधान सम्यक् रूपसे बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिका भी वर्णन कीजिये। हे भूसुर! इस विषयमें अन्य ज्ञानियोंने जैसा कहा है, वह सब कुछ भी आप भलीभाँति जानते हैं॥ ३॥

मैंने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इन तीनों देवताओंके विषयमें सुना है कि ये सगुण रूपमें सम्पूर्ण जगत्का सृजन, पालन एवं संहार करते हैं॥ ४॥

हे पराशरसुत व्यासजी! वे तीनों देवश्रेष्ठ स्वाधीन हैं अथवा पराधीन; आप मुझे बताइये, मैं इस समय सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

वे सच्चिदानन्दस्वरूप देवगण मरणधर्मा हैं अथवा नहीं; और वे आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक—इन तीन प्रकारके दुःखोंसे युक्त हैं अथवा नहीं?॥ ६॥

वे तीनों महाबली देवेश कालके वशवर्ती हैं अथवा नहीं; और वे कैसे तथा किससे आविर्भूत हुए, मेरी यह भी एक शंका है॥ ७॥

हर्षशोकयुतास्ते वै निद्रालस्यसमन्विताः।
सप्तधातुमयास्तेषां देहाः किं वान्यथा मुने॥ ८

कैर्द्रव्यैर्निर्मितास्ते वै कैर्गुणैरिन्द्रियैस्तथा।
भोगश्च कीदृशस्तेषां प्रमाणमायुषस्तथा॥ ९

निवासस्थानमप्येषां विभूतिं च वदस्व मे।
श्रोतुमिच्छाम्यहं ब्रह्मन् विस्तरेण कथामिमाम्॥ १०

व्यास उवाच

दुर्गमः प्रश्नभारोऽयं कृतो राजंस्त्वयाधुना।
ब्रह्मादीनां समुत्पत्तिः कस्मादिति महामते॥ ११

एतदेव मया पूर्वं पृष्टोऽसौ नारदो मुनिः।
विस्मितः प्रत्युवाचेदमुत्थितः शृणु भूपते॥ १२

कस्मिंश्च समये चाहं गङ्गातीरे स्थितं मुनिम्।
अपश्यं नारदं शान्तं सर्वज्ञं वेदवित्तमम्॥ १३

दृष्ट्वाहं मुदितो भूत्वा पादयोरपतं मुनेः।
तेनाज्ञप्तः समीपेऽस्य संविष्टश्च वरासने॥ १४

श्रुत्वा कुशलवार्तां वै तमपृच्छं विधेः सुतम्।
निविष्टं जाह्नवीतीरे निर्जने सूक्ष्मबालुके॥ १५

मुनेऽतिविततस्यास्य ब्रह्माण्डस्य महामते।
कः कर्ता परमः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि विधानतः॥ १६

कस्मादेतत्समुत्पन्नं ब्रह्माण्डं मुनिसत्तम।
अनित्यं वा तथा नित्यं तदाचक्ष्व द्विजोत्तम॥ १७

एककर्तृकमेतद्वा बहुकर्तृकमन्यथा।
अकर्तृकं न कार्यं स्याद्विरोधोऽयं विभाति मे॥ १८

हे मुने! क्या वे हर्ष, शोक आदि द्वन्द्वोंसे युक्त हैं, क्या वे निद्रा एवं प्रमाद आदिसे प्रभावित हैं तथा क्या उनके शरीर सप्त धातुओं (अन्नरस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य)-से निर्मित हैं अथवा नहीं?॥ ८॥

वे किन द्रव्योंसे निर्मित हैं, वे किन-किन गुणोंको धारण करते हैं, उनमें कौन-कौन-सी इन्द्रियाँ अवस्थित हैं, उनका भोग कैसा होता है तथा उनकी आयुका परिमाण क्या है?॥ ९॥

इनके निवास-स्थान एवं विभूतियोंके भी विषयमें मुझको बतलाइये। हे ब्रह्मन्! इस कथाको विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी अभिलाषा है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे महामति राजन्! ब्रह्मादि देवोंकी उत्पत्ति किससे हुई, इस समय आपने यह बड़ा दुर्गम प्रश्न किया है॥ ११॥

हे राजन्! पूर्वमें मैंने यही प्रश्न देवर्षि नारदजीसे पूछा था। तब विस्मित होकर वे उठ खड़े हुए और उन्होंने जो उत्तर दिया था, उसे आप सुनें॥ १२॥

किसी समय मैंने शान्त, सर्ववेत्ता तथा वेद-विद्वानोंमें श्रेष्ठ नारदमुनिको गंगाके किनारे विद्यमान देखा॥ १३॥

मुनिको देखकर तथा प्रसन्न होकर मैं उनके चरणोंपर गिर पड़ा। तदनन्तर उनके द्वारा आज्ञा देनेपर मैं उनके पासमें ही एक सुन्दर आसनपर बैठ गया॥ १४॥

कुशल-क्षेमकी वार्ता सुन करके सूक्ष्म बालूवाले गंगा-तटके निर्जन स्थानपर बैठे हुए ब्रह्मापुत्र देवर्षि नारदसे मैंने पूछा—॥ १५॥

हे महामति मुनिदेव! इस अति विस्तीर्ण ब्रह्माण्डका प्रधान कर्ता कौन कहा गया है? उसे आप मुझे सम्यक् रूपसे बताइये॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति किससे हुई है? हे विप्रवर! आप मुझे यह भी बताइये कि यह ब्रह्माण्ड नित्य है अथवा अनित्य?॥ १७॥

यह ब्रह्माण्ड किसी एकके द्वारा विरचित है अथवा अनेक कर्ताओंद्वारा मिलकर इसका निर्माण किया गया है? किसी कर्ताके बिना कार्यकी सत्ता सम्भव नहीं है। इस विषयमें मुझे अत्यन्त सन्देह हो रहा है॥ १८॥

इति सन्देहसन्दोहे मग्नं मां तारयाधुना।
विकल्पकोटीः कुर्वाणं संसारेऽस्मिन् प्रविस्तरे॥ १९

ब्रुवन्ति शङ्करं केचिन्मत्वा कारणकारणम्।
सदाशिवं महादेवं प्रलयोत्पत्तिवर्जितम्॥ २०

आत्मारामं सुरेशं च त्रिगुणं निर्मलं हरम्।
संसारतारकं नित्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम्॥ २१

अन्ये विष्णुं स्तुवन्त्येनं सर्वेषां प्रभुमीश्वरम्।
परमात्मानमव्यक्तं सर्वशक्तिसमन्वितम्॥ २२

भुक्तिदं मुक्तिदं शान्तं सर्वादिं सर्वतोमुखम्।
व्यापकं विश्वशरणमनादिनिधनं हरिम्॥ २३

धातारं च तथा चान्ये ब्रुवन्ति सृष्टिकारणम्।
तमेव सर्ववेत्तारं सर्वभूतप्रवर्तकम्॥ २४

चतुर्मुखं सुरेशानं नाभिपद्मभवं विभुम्।
स्रष्टारं सर्वलोकानां सत्यलोकनिवासिनम्॥ २५

दिनेशं प्रवदन्त्यन्ये सर्वेशं वेदवादिनः।
स्तुवन्ति चैव गायन्ति सायं प्रातरतन्द्रिताः॥ २६

यजन्ति च तथा यज्ञे वासवं च शतक्रतुम्।
सहस्राक्षं देवदेवं सर्वेषां प्रभुमुल्वणम्॥ २७

यज्ञाधीशं सुराधीशं त्रिलोकेशं शचीपतिम्।
यज्ञानां चैव भोक्तारं सोमपं सोमपप्रियम्॥ २८

वरुणं च तथा सोमं पावकं पवनं तथा।
यमं कुबेरं धनदं गणाधीशं तथापरे॥ २९

हेरम्बं गजवक्त्रं च सर्वकार्यप्रसाधकम्।
स्मरणात्सिद्धिदं कामं कामदं कामगं परम्॥ ३०

इस प्रकार इस विस्तृत ब्रह्माण्डके विषयमें विविध कल्पना करते हुए तथा सन्देहसागरमें डूबते हुए मुझ दुःखीका आप उद्धार कीजिये॥ १९॥

कुछ लोग सदाशिव, महादेव, प्रलय तथा उत्पत्तिसे रहित, आत्माराम, देवेश, त्रिगुणात्मक, निर्मल, हर, संसारसे उद्धार करनेवाले, नित्य तथा सृष्टि-पालन-संहार करनेवाले भगवान् शंकरको ही मूल कारण मानकर उन्हें ही इस ब्रह्माण्डका रचयिता कहते हैं॥ २०-२१॥

दूसरे लोग श्रीहरि विष्णुको सबका प्रभु, ईश्वर, परमात्मा, अव्यक्त, सर्वशक्तिसम्पन्न, भोग तथा मोक्षप्रदाता, शान्त, सबका आदि, सर्वतोमुख, व्यापक, समग्र संसारको शरण देनेवाला तथा आदि-अन्तसे रहित जानकर उन्हींका स्तवन करते हैं॥ २२-२३।

अन्य लोग ब्रह्माजीको सृष्टिका कारण, सर्वज्ञ, सभी प्राणियोंका प्रवर्तक, चार मुखोंवाला, सुरपति, विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत, सर्वव्यापी, सभी लोकोंकी रचना करनेवाला तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाला बताते हैं॥ २४-२५॥

कुछ वेदवेत्ता विद्वान् सर्वेश्वर भगवान् सूर्यको ब्रह्माण्डकर्ता मानते हैं और सावधान होकर सायं-प्रातः उन्हींकी स्तुति करते हैं तथा उन्हींका यशोगान करते हैं॥ २६॥

यज्ञमें निष्ठाभाव रखनेवाले लोग धनप्रदाता, शतक्रतु, सहस्राक्ष, देवाधिदेव, सबके स्वामी, बलशाली, यज्ञाधीश, सुरपति, त्रिलोकेश, यज्ञोंका भोग करनेवाले, सोमपान करनेवाले तथा सोमपायी लोगोंके प्रिय शचीपति इन्द्रको [सर्वश्रेष्ठ मानकर] यज्ञोंमें उन्हींका यजन करते हैं॥ २७-२८॥

कुछ लोग वरुण, सोम, अग्नि, पवन, यमराज, धनपति कुबेरकी तथा कुछ लोग हेरम्ब, गजमुख, सर्वकार्यसाधक, स्मरणमात्रसे सिद्धि प्रदान करनेवाले, कामस्वरूप, कामनाओंको प्रदान करनेवाले, स्वेच्छ विचरण करनेवाले, परम देव गणाधीश गणेशकी स्तुति करते हैं॥ २९-३०॥

भवानीं केचनाचार्याः प्रवदन्त्यखिलार्थदाम्।
आदिमायां महाशक्तिं प्रकृतिं पुरुषानुगाम्॥ ३१

ब्रह्मैकतासमापन्नां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
मातरं सर्वभूतानां देवतानां तथैव च॥ ३२

अनादिनिधनां पूर्णां व्यापिकां सर्वजन्तुषु।
ईश्वरीं सर्वलोकानां निर्गुणां सगुणां शिवाम्॥ ३३

वैष्णवीं शाङ्करीं ब्राह्मीं वासवीं वारुणीं तथा।
वाराहीं नारसिंहीं च महालक्ष्मीं तथाद्भुताम्॥ ३४

वेदमातरमेकां च विद्यां भवतरोः स्थिराम्।
सर्वदुःखनिहन्त्रीं च स्मरणात्सर्वकामदाम्॥ ३५

मोक्षदां च मुमुक्षूणां कामदां च फलार्थिनाम्।
त्रिगुणातीतरूपां च गुणविस्तारकारकाम्॥ ३६

निर्गुणां सगुणां तस्मात्तां ध्यायन्ति फलार्थिनः।

निरञ्जनं निराकारं निर्लेपं निर्गुणं किल॥ ३७

अरूपं व्यापकं ब्रह्म प्रवदन्ति मुनीश्वराः।
वेदोपनिषदि प्रोक्तस्तेजोमय इति क्वचित्॥ ३८

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्रनयनस्तथा।
सहस्रकरकर्णश्च सहस्रास्यः सहस्रपात्॥ ३९

विष्णोः पादमथाकाशं परमं समुदाहृतम्।
विराजं विरजं शान्तं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ४०

पुरुषोत्तमं तथा चान्ये प्रवदन्ति पुराविदः।
नैकोऽपीति वदन्त्यन्ये प्रभुरीशः कदाचन॥ ४१

अनीश्वरमिदं सर्वं ब्रह्माण्डमिति केचन।
न कदापीशजन्यं यज्जगदेतदचिन्तितम्॥ ४२

सदैवेदमनीशं च स्वभावोत्थं सदेदृशम्।
अकर्तासौ पुमान्प्रोक्तः प्रकृतिस्तु तथा च सा॥ ४३

एवं वदन्ति सांख्याश्च मुनयः कपिलादयः।

कुछ आचार्य भवानीको ही सब कुछ देनेवाली, आदिमाया, महाशक्ति तथा पुरुषानुगामिनी परा प्रकृति कहते हैं। वे उनको ब्रह्मस्वरूपा, सृजन-पालन-संहार करनेवाली, सभी प्राणियों एवं देवताओंकी जननी, आदि-अन्तरहित, पूर्णा, सभी जीवोंमें व्याप्त, सभी लोकोंकी स्वामिनी, निर्गुणा, सगुणा तथा कल्याणस्वरूपा मानते हैं॥ ३१—३३॥

फलकी आकांक्षा रखनेवाले उन भवानीका वैष्णवी, शांकरी, ब्राह्मी, वासवी, वारुणी, वाराही, नारसिंही, महालक्ष्मी, विचित्ररूपा, वेदमाता, एकेश्वरी, विद्यास्वरूपा, संसाररूपी वृक्षकी स्थिरताकी कारणरूपा, सभी कष्टोंका नाश करनेवाली और स्मरण करते ही सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली, मुक्ति चाहनेवालोंके लिये मोक्षदायिनी, फलकी अभिलाषा रखनेवालोंके लिये कामप्रदायिनी, त्रिगुणातीतस्वरूपा, गुणोंका विस्तार करनेवाली, निर्गुणा-सगुणा-रूपमें ध्यान करते हैं॥ ३४—३६$\frac{१}{२}$॥

कुछ मुनीश्वर निरंजन, निराकार, निर्लिप्त, गुणरहित, रूपरहित तथा सर्वव्यापक ब्रह्मको जगत्का कर्ता बतलाते हैं। वेदों तथा उपनिषदोंमें कहीं-कहीं उसे अनन्त सिर, नेत्र, हाथ, कान, मुख और चरणसे युक्त तेजोमय विराट् पुरुष कहा गया है॥ ३७—३९॥

कुछ मनीषीगण आकाशको विष्णुके परम पादके रूपमें मानते हैं और उन्हें विराट्, निरंजन तथा शान्तस्वरूप कहते हैं॥ ४०॥

कुछ तत्त्वज्ञानी पुराणवेत्ता पुरुषोत्तमको सृष्टिका निर्माता कहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि इस अनन्त ब्रह्माण्डकी रचनामें केवल एक ईश्वर कदापि समर्थ नहीं हो सकता है॥ ४१॥

कुछ लोग कहते हैं कि यह जगत् अचिन्त्य है, अतः यह ईश्वररचित कदापि नहीं हो सकता; उनके मतमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ईश्वररहित है। 'यह जगत् सदासे ही ईश्वरीय सत्तासे रहित रहा है और यह स्वभावसे उत्पन्न होता है तथा सदासे ऐसा ही है। यह पुरुष तो कर्तृत्वभावसे रहित कहा गया है और वह प्रकृति ही सर्वसंचालिका है'—कपिल आदि सांख्यशास्त्रके आचार्य ऐसा ही कहते हैं॥ ४२-४३$\frac{१}{२}$॥

एते सन्देहसन्दोहाः प्रभवन्ति तथापरे॥ ४४

विकल्पोपहतं चेतः किं करोमि मुनीश्वर।
धर्माधर्मविवक्षायां न मनो मे स्थिरं भवेत्॥ ४५

को धर्मः कीदृशोऽधर्मश्चिह्नं नैवोपलभ्यते।
देवाः सत्त्वगुणोत्पन्नाः सत्यधर्मव्यवस्थिताः॥ ४६

पीड्यन्ते दानवैः पापैः कुत्र धर्मव्यवस्थितिः।
धर्मस्थिताः सदाचाराः पाण्डवा मम वंशजाः॥ ४७

दुःखं बहुविधं प्राप्तास्तत्र धर्मस्य का स्थितिः।
अतो मे हृदयं तात वेपतेऽतीव संशये॥ ४८

कुरु मेऽसंशयं चेतः समर्थोऽसि महामुने।
त्राहि संसारवार्धेस्त्वं ज्ञानपोतेन मां मुने॥ ४९

मज्जन्तं चोत्पतन्तं च मग्नं मोहजलाविले॥ ५०

हे मुनिनाथ! मेरे मनमें ये तथा अन्य प्रकारके और भी सन्देहपुंज उत्पन्न होते रहते हैं। नाना प्रकारकी कल्पनाओंसे उद्विग्न मनवाला मैं क्या करूँ? धर्म तथा अधर्मके विषयमें मेरा मन स्थिर नहीं हो पाता है॥ ४४-४५॥

क्या धर्म है और क्या अधर्म है; इसका कोई स्पष्ट लक्षण प्राप्त नहीं होता है। लोग कहते हैं कि देवता सत्त्वगुणसे उत्पन्न हुए हैं और वे सत्यधर्ममें स्थित रहते हैं फिर भी वे देवगण पापाचारी दानवोंद्वारा प्रताड़ित किये जाते हैं, तो फिर धर्मकी व्यवस्था कहाँ रह गयी? धर्मनिष्ठ और सदाचारी मेरे वंशज पाण्डव भी नाना प्रकारके कष्ट सहनेको विवश हुए, ऐसी स्थितिमें धर्मकी क्या मर्यादा रह गयी? अतः हे तात! इस संशयमें पड़ा हुआ मेरा मन अतीव चंचल रहता है॥ ४६—४८॥

हे महामुने! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरे हृदयको संशयमुक्त कीजिये। हे मुने! संसार-सागरके मोहसे दूषित जलमें गिरे हुए तथा बार-बार डूबते-उतराते मुझ अज्ञानीकी अपने ज्ञानरूपी जहाजसे रक्षा कीजिये॥ ४९-५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे भुवनेश्वरीवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

* * *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

भगवती आद्याशक्तिके प्रभावका वर्णन

व्यास उवाच

यत्त्वया च महाबाहो पृष्टोऽहं कुरुसत्तम।
तान्प्रश्नान्नारदः प्राह मया पृष्टो मुनीश्वरः॥ १

नारद उवाच

व्यास किं ते ब्रवीम्यद्य पुरायं संशयो मम।
उत्पन्नो हृदयेऽत्यर्थं सन्देहासारपीडितः॥ २

गत्वाहं पितरं स्थाने ब्रह्माणममितौजसम्।
अपृच्छं यत्त्वया पृष्टं व्यासाद्य प्रश्नमुत्तमम्॥ ३

व्यासजी बोले—हे महाबाहो! हे कुरुश्रेष्ठ! आपने मुझसे जो प्रश्न पूछे हैं, उन्हीं प्रश्नोंको मेरेद्वारा मुनिराज नारदजीसे पूछे जानेपर उन्होंने इस विषयमें ऐसा कहा था॥ १॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! मैं आपसे इस समय क्या कहूँ? प्राचीन कालमें यही शंका मेरे भी मनमें उत्पन्न हुई थी और सन्देहकी बहुलतासे मेरा मन उद्वेलित हो गया था॥ २॥

हे व्यासजी! तदनन्तर मैंने ब्रह्मलोकमें अपने अमित तेजस्वी पिता ब्रह्माजीके पास पहुँचकर यही प्रश्न पूछा था, जो उत्तम प्रश्न आपने आज मुझसे पूछा है॥ ३॥

पितः कुतः समुत्पन्नं ब्रह्माण्डमखिलं विभो।
भवत्कृतेन वा सम्यक् किं वा विष्णुकृतं त्विदम्॥ ४

रुद्रकृतं वा विश्वात्मन् ब्रूहि सत्यं जगत्पते।
आराधनीयः कः कामं सर्वोत्कृष्टश्च कः प्रभुः॥ ५

तत्सर्वं वद मे ब्रह्मन्सन्देहांश्छिन्धि चानघ।
निमग्नो ह्यस्मि संसारे दुःखरूपेऽनृतोपमे॥ ६

सन्देहान्दोलितं चेतो न प्रशाम्यति कुत्रचित्।
न तीर्थेषु न देवेषु साधनेष्वितरेषु च॥ ७

अविज्ञाय परं तत्त्वं कुतः शान्तिः परन्तप।
विकीर्णं बहुधा चित्तं नैकत्र स्थिरतां व्रजेत्॥ ८

कं स्मरामि यजे कं वा कं व्रजाम्यर्चयामि कम्।
स्तौमि कं नाभिजानामि देवं सर्वेश्वरेश्वरम्॥ ९

ततो तां प्रत्युवाचेदं ब्रह्मा लोकपितामहः।
मया सत्यवतीसूनो कृते प्रश्ने सुदुस्तरे॥ १०

ब्रह्मोवाच

किं ब्रवीमि सुताद्याहं दुर्बोधं प्रश्नमुत्तमम्।
त्वयाशक्यं महाभाग विष्णोरपि सुनिश्चयात्॥ ११

रागी कोऽपि न जानाति संसारेऽस्मिन्महामते।
विरक्तश्च विजानाति निरीहो यो विमत्सरः॥ १२

एकार्णवे पुरा जाते नष्टे स्थावरजङ्गमे।
भूतमात्रे समुत्पन्ने सञ्जज्ञे कमलादहम्॥ १३

नापश्यं तरणिं सोमं न वृक्षान्न च पर्वतान्।
कर्णिकायां समाविष्टश्चिन्तामकरवं तदा॥ १४

[मैंने पूछा—] हे पिताजी! इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका आविर्भाव कैसे हुआ? हे विभो! इसका निर्माण आपने किया है अथवा विष्णुने अथवा शिवने इसकी रचना की है? हे विश्वात्मन्! मुझे सही-सही बताइये। हे जगत्पते! सर्वश्रेष्ठ ईश्वर कौन है और किसकी आराधना की जानी चाहिये?॥ ४-५॥

हे ब्रह्मन्! वह सब कुछ बताइए और मेरे सन्देहोंको दूर कीजिये। हे निष्पाप! मैं असत्य तथा दुःखरूप संसारमें डूबा हुआ हूँ॥ ६॥

सन्देहोंसे दोलायमान मेरा मन तीर्थोंमें, देवताओंमें तथा अन्य साधनोंमें—कहीं भी शान्त नहीं हो पा रहा है॥ ७॥

हे परन्तप! परमतत्त्वका ज्ञान प्राप्त किये बिना शान्ति मिल भी कैसे सकती है? अनेक प्रकारसे उलझा हुआ मेरा मन एक जगह स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ८॥

मैं किसका स्मरण करूँ, किसका यजन करूँ, कहाँ जाऊँ, किसकी अर्चना करूँ और किसकी स्तुति करूँ? हे देव! मैं तो उस सर्वेश्वर परमात्माको जानता भी नहीं हूँ॥ ९॥

हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मेरे द्वारा किये गये दुरूह प्रश्नोंको सुनकर लोकपितामह ब्रह्माने तब मुझसे ऐसा कहा—॥ १०॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! तुमने आज एक दुरूह तथा उत्तम प्रश्न किया है, उसके विषयमें मैं क्या कहूँ? हे महाभाग! साक्षात् विष्णुद्वारा भी इन प्रश्नोंका निश्चित उत्तर दिया जाना सम्भव नहीं है॥ ११॥

हे महामते! इस संसारके क्रियाकलापोंमें आसक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जो इस तत्त्वका ज्ञान रखता हो। कोई विरक्त, निःस्पृह तथा विद्वेषरहित ही इसे जान सकता है॥ १२॥

प्राचीन कालमें जल-प्रलयके होनेपर स्थावर-जंगमादिक प्राणियोंके नष्ट हो जाने तथा मात्र पंचमहाभूतोंकी उत्पत्ति होनेपर मैं कमलसे आविर्भूत हुआ॥ १३॥

उस समय मैंने सूर्य, चन्द्र, वृक्षों तथा पर्वतोंको नहीं देखा और कमलकर्णिकापर बैठा हुआ मैं विचार करने लगा—॥ १४॥

कस्मादहं समुद्भूतः सलिलेऽस्मिन्महार्णवे।
को मे त्राता प्रभुः कर्ता संहर्ता वा युगात्यये॥ १५

न च भूर्विद्यते स्पष्टा यदाधारं जलं त्विदम्।
पङ्कजं कथमुत्पन्नं प्रसिद्धं रूढियोगयोः॥ १६

पश्याम्यद्यास्य पङ्कं तं मूलं वै पङ्कजस्य च।
भविष्यति धरा तत्र मूलं नास्त्यत्र संशयः॥ १७

उत्तरन्सलिले तत्र यावद्वर्षसहस्रकम्।
अन्वेषमाणो धरणीं नावाप तां यदा तदा॥ १८

तपस्तपेति चाकाशे वागभूदशरीरिणी।
ततो मया तपस्तप्तं पद्मे वर्षसहस्रकम्॥ १९

सृजेति पुनरुद्भूता वाणी तत्र श्रुता मया।
विमूढोऽहं तदाकर्ण्य कं सृजामि करोमि किम्॥ २०

तदा दैत्यावपि प्राप्तौ दारुणौ मधुकैटभौ।
ताभ्यां विभीषितश्चाहं युद्धाय मकरालये॥ २१

ततोऽहं नालमालम्ब्य वारिमध्यमवातरम्।
तदा तत्र मया दृष्टः पुरुषः परमाद्भुतः॥ २२

मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः।
शेषशायी जगन्नाथो वनमालाविभूषितः॥ २३

शङ्खचक्रगदापद्माद्यायुधैः सुविराजितः।
तमद्राक्षं महाविष्णुं शेषपर्यङ्कशायिनम्॥ २४

योगनिद्रासमाक्रान्तमविस्पन्दिनमच्युतम्।
शयानं तं समालोक्य भोगिभोगोपरि स्थितम्॥ २५

चिन्ता ममाद्भुता जाता किं करोमीति नारद।
मया स्मृता तदा देवी स्तुता निद्रास्वरूपिणी॥ २६

इस महासागरके जलमें मेरा प्रादुर्भाव किससे हुआ? मेरा निर्माण करनेवाला, रक्षा करनेवाला तथा युगान्तके समय संहार करनेवाला प्रभु कौन है?॥ १५॥

कहीं भूमि भी स्पष्ट दिखायी नहीं दे रही है, जिसके आधारपर यह जल टिका है तो फिर यह कमल कैसे उत्पन्न हुआ, जिसकी उत्पत्ति जल और पृथ्वीके संयोगसे ही प्रसिद्ध है?॥ १६॥

आज मैं इस कमलका मूल आधार पंक अवश्य देखूँगा; और फिर उस पंककी आधारस्वरूपा भूमि भी अवश्य मिल जायगी, इसमें सन्देह नहीं है॥ १७॥

तदनन्तर मैं जलमें नीचे उतरकर हजार वर्षोंतक पृथ्वीको खोजता रहा, किंतु जब उसे नहीं पाया तब आकाशवाणी हुई कि 'तपस्या करो'। तत्पश्चात् मैं उसी कमलपर आसीन होकर हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करता रहा॥ १८-१९॥

इसके बाद पुनः एक अन्य वाणी उत्पन्न हुई—'सृष्टि करो', इसे मैंने साफ-साफ सुना। उसे सुनकर व्याकुल चित्तवाला मैं सोचने लगा, किसका सृजन करूँ और किस प्रकार करूँ?॥ २०॥

उसी समय मधु-कैटभ नामवाले दो भयानक दैत्य मेरे सम्मुख आ गये। उस महासागरमें युद्धके लिये तत्पर उन दोनों दैत्योंसे मैं अत्यधिक भयभीत हो गया॥ २१॥

तत्पश्चात् मैं उसी कमलकी नालका आश्रय लेकर जलके भीतर उतरा और वहाँ एक अत्यन्त अद्भुत पुरुषको मैंने देखा॥ २२॥

उनका शरीर मेघके समान श्याम वर्णवाला था। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे और उनकी चार भुजाएँ थीं। वे जगत्पति वनमालासे अलंकृत थे तथा शेषशय्यापर सो रहे थे॥ २३॥

वे शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि आयुध धारण किये हुए थे। इस प्रकार मैंने शेषनागकी शय्यापर शयन करते हुए उन महाविष्णुको देखा॥ २४॥

हे नारदजी! योगनिद्राके वशीभूत होनेके कारण निष्पन्द पड़े उन भगवान् अच्युतको शेषनागके ऊपर सोया हुआ देखकर मुझे अद्भुत चिन्ता हुई और मैं सोचने लगा कि अब क्या करूँ? तब मैंने निद्रास्वरूपा भगवतीका स्मरण किया और मैं उनकी स्तुति करने लगा॥ २५-२६॥

देहान्निर्गत्य सा देवी गगने संस्थिता शिवा।
अवितर्क्यशरीरा सा दिव्याभरणमण्डिता॥ २७

विष्णोर्देहं विहायाशु विरराज नभःस्थिता।
उदतिष्ठदमेयात्मा तया मुक्तो जनार्दनः॥ २८

पञ्चवर्षसहस्राणि कृतवान्युद्धमुत्तमम्।
तदा विलोकितौ दैत्यौ हरिणा विनिपातितौ॥ २९

उत्सङ्गं विपुलं कृत्वा तत्रैव निहतौ च तौ।
रुद्रस्तत्रैव सम्प्राप्तो यत्रावां संस्थितावुभौ॥ ३०

त्रिभिः संवीक्षितास्माभिः स्वस्था देवी मनोहरा।
संस्तुता परमा शक्तिरुवाचास्मानवस्थितान्॥ ३१

कृपावलोकनैः कृत्वा पावनैर्मुदितानथ।

देव्युवाच

काजेशाः स्वानि कार्याणि कुरुध्वं समतन्द्रिताः॥ ३२

सृष्टिस्थितिविशिष्टानि हतावेतौ महासुरौ।
कृत्वा स्वानि निकेतानि वसध्वं विगतज्वराः॥ ३३

प्रजाश्चतुर्विधाः सर्वाः सृजध्वं स्वविभूतिभिः।

ब्रह्मोवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः पेशलं सुखदं मृदु॥ ३४

अब्रूम तामशक्ताः स्मः कथं कुर्मस्त्विमाः प्रजाः।
न मही वितता मातः सर्वत्र विततं जलम्॥ ३५

न भूतानि गुणाश्चापि तन्मात्राणीन्द्रियाणि च।
तदाकर्ण्य वचोऽस्माकं शिवा जाता स्मितानना॥ ३६

[मेरी स्तुतिसे] वे कल्याणी भगवती विष्णुभगवान्‌के शरीरसे निकलकर आकाशमें विराजमान हुईं। उस समय दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत वे भगवती कल्पनाओंसे परे विग्रहवाली प्रतीत हो रही थीं॥ २७॥

इस प्रकार विष्णुका शरीर तत्काल छोड़कर जब वे आकाशमें विराजित हो गयीं, तब उनके द्वारा मुक्त किये गये अनन्तात्मा वे जनार्दन उठ गये॥ २८॥

तत्पश्चात् उन्होंने पाँच हजार वर्षोंतक उन दैत्योंके साथ घोर युद्ध किया। पुनः उन महामाया भगवतीके दृष्टिपातसे मोहित किये गये उन दोनों दैत्योंको भगवान् विष्णुने मार दिया। अपनी जाँघोंको विस्तृत करके भगवान् विष्णुने उसीपर उन दोनोंका वध किया। उसी समय जहाँ हम दोनों थे, वहींपर शंकरजी भी आ गये॥ २९-३०॥

तब हम तीनोंने गगन-मण्डलमें विराजमान उन मनोहर देवीको देखा। हमलोगोंके द्वारा उन परम शक्तिकी स्तुति किये जानेपर अपनी पवित्र कृपादृष्टिसे हमलोगोंको प्रसन्न करके उन्होंने वहाँ स्थित हमलोगोंसे कहा—॥ ३१½॥

देवी बोलीं—हे ब्रह्मा, विष्णु, महेश! अब आपलोग सृष्टि, पालन एवं संहारके अपने-अपने कार्य प्रमादरहित होकर कीजिये। अब आपलोग अपना-अपना निवास बनाकर निर्भीकतापूर्वक रहिये; क्योंकि उन दोनों महादैत्योंका संहार हो गया है। अतः आपलोग अपनी विभूतियोंसे अण्डज, पिण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज—चारों प्रकारकी सभी प्रजाओंका सृजन कीजिये॥ ३२-३३½॥

ब्रह्माजी बोले—उन भगवतीका वह मनोहर, सुखकर तथा मधुर वचन सुनकर हमलोगोंने उनसे कहा—हे माता! हमलोग शक्तिहीन हैं, अतः इन प्रजाओंका सृजन कैसे करें? अभी विस्तृत पृथ्वी ही नहीं है और सभी ओर जल-ही-जल फैला हुआ है। सृष्टिकार्यके लिये आवश्यक पंचतत्त्व, गुण, तन्मात्राएँ और इन्द्रियाँ—ये कुछ भी नहीं हैं। हमलोगोंके ये वचन सुनकर भगवतीका मुखमण्डल मुसकानसे भर उठा॥ ३४—३६॥

झटित्येवागतं तत्र विमानं गगनाच्छुभम्।
सोवाचास्मिन्सुराः कामं विशध्वं गतसाध्वसाः॥ ३७

विमाने ब्रह्मविष्णवीशा दर्शयाम्यद्य चाद्भुतम्।
तन्निशम्य वचस्तस्या ओमित्युक्त्वा पुनर्वयम्॥ ३८

समारुह्योपविष्टाः स्मो विमाने रत्नमण्डिते।
मुक्तादामसुसंवीते किंकिणीजालशब्दिते॥ ३९

सुरसद्मनिभे रम्ये त्रयस्तत्राविशंकिताः।
सोपविष्टांस्ततो दृष्ट्वा देव्यस्मान्विजितेन्द्रियान्॥ ४०

स्वशक्त्या तद्विमानं वै नोदयामास चाम्बरे॥ ४१

उसी समय वहाँ आकाशसे एक रमणीक विमान आ पहुँचा। तत्पश्चात् उन भगवतीने कहा—हे देवताओ! आप लोग निर्भीक होकर इस विमानमें इच्छानुसार बैठ जायँ॥ ३७॥

हे ब्रह्मा, विष्णु और शिव! मैं आपलोगोंको आज इस विमानमें एक अद्भुत दृश्य दिखाऊँगी। उनका यह वचन सुनकर हम तीनों उनकी बात स्वीकार करके रत्नजटित, मोतियोंकी झालरोंसे शोभायमान, घंटियोंकी ध्वनिसे गुंजित तथा देव-भवनके तुल्य उस रमणीक विमानपर संशयरहित भावसे चढ़कर बैठ गये। तब भगवतीने हम जितेन्द्रिय देवताओंको बैठा हुआ देखकर उस विमानको अपनी शक्तिसे आकाशमण्डलमें उड़ाया॥ ३८—४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विमानेन ब्रह्मादीनाङ्गतिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

ब्रह्मा, विष्णु और महेशका विभिन्न लोकोंमें जाना तथा अपने ही सदृश अन्य ब्रह्मा, विष्णु और महेशको देखकर आश्चर्यचकित होना, देवीलोकका दर्शन

ब्रह्मोवाच

विमानं तन्मनोवेगं यत्र स्थानान्तरे गतम्।
न जलं तत्र पश्यामो विस्मिताः स्मो वयं तदा॥ १

वृक्षाः सर्वफला रम्याः कोकिलारावमण्डिताः।
मही महीधराः कामं वनान्युपवनानि च॥ २

नार्यश्च पुरुषाश्चैव पशवश्च सरिद्वराः।
वाप्यः कूपास्तडागाश्च पल्वलानि च निर्झराः॥ ३

पुरतो नगरं रम्यं दिव्यप्राकारमण्डितम्।
यज्ञशालासमायुक्तं नानाहर्म्यविराजितम्॥ ४

प्रत्यभिज्ञा तदा जाताप्यस्माकं प्रेक्ष्य तत्पुरम्।
स्वर्गोऽयमिति केनासौ निर्मितोऽस्ति तदाद्भुतम्॥ ५

ब्रह्माजी बोले—मनके समान वेगसे उड़नेवाला वह विमान जिस स्थानपर पहुँचा, वहाँ जब हमने जल नहीं देखा तब हमलोगोंको महान् आश्चर्य हुआ॥ १॥

उस स्थानके वृक्ष सभी प्रकारके फलोंसे लदे हुए और कोकिलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजायमान थे। वहाँकी भूमि, पर्वत, वन और उपवन—ये सभी सुरम्य दृष्टिगोचर हो रहे थे॥ २॥

उस स्थानपर स्त्रियाँ, पुरुष, पशु, बड़ी नदियाँ, बावलियाँ, कुएँ, तालाब, पोखरे तथा झरने इत्यादि विद्यमान थे॥ ३॥

वहाँ भव्य चहारदीवारीसे घिरा हुआ एक मनोहर नगर था, जो यज्ञशालाओं तथा अनेक प्रकारके दिव्य महलोंसे सुशोभित था॥ ४॥

तब उस नगरको देखकर हमलोगोंको ऐसी प्रतीति हुई, मानो यही स्वर्ग है और फिर हम लोगोंकी यह जिज्ञासा हुई कि इस अद्भुत नगरका निर्माण किसने किया है, उस समय हमलोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ!॥ ५॥

राजानं देवसङ्काशं व्रजन्तं मृगयां वने।
अस्माभिः संस्थिता दृष्टा विमानोपरि चाम्बिका॥ ६

क्षणाच्चचाल गगने विमानं पवनेरितम्।
मुहूर्ताद्वा ततः प्राप्तं देशे चान्ये मनोहरे॥ ७

नन्दनं च वनं तत्र दृष्टमस्माभिरुत्तमम्।
पारिजाततरुच्छायासंश्रिता सुरभिः स्थिता॥ ८

चतुर्दन्तो गजस्तस्याः समीपे समवस्थितः।
अप्सरसां तत्र वृन्दानि मेनकाप्रभृतीनि च॥ ९

क्रीडन्ति विविधैर्भावैर्गाननृत्यसमन्वितैः।
गन्धर्वाः शतशस्तत्र यक्षा विद्याधरास्तथा॥ १०

मन्दारवाटिकामध्ये गायन्ति च रमन्ति च।
दृष्टः शतक्रतुस्तत्र पौलोम्या सहितः प्रभुः॥ ११

वयं तु विस्मिताश्चास्म दृष्ट्वा त्रैविष्टपं तदा।
यादःपतिं कुबेरं च यमं सूर्यं विभावसुम्॥ १२

विलोक्य विस्मिताश्चास्म वयं तत्र सुरान्स्थितान्।
तदा विनिर्गतो राजा पुरात्तस्मात्सुमण्डितात्॥ १३

देवराज इवाक्षोभ्यो नरवाह्यावनौ स्थितः।
विमानस्था वयं तच्च चचाल तरसागतम्॥ १४

ब्रह्मलोकं तदा दिव्यं सर्वदेवनमस्कृतम्।
तत्र ब्रह्माणमालोक्य विस्मितौ हरकेशवौ॥ १५

सभायां तत्र वेदाश्च सर्वे साङ्गाः स्वरूपिणः।
सागराः सरितश्चैव पर्वताः पन्नगोरगाः॥ १६

मामूचतुश्चतुर्वक्त्र कोऽयं ब्रह्मा सनातनः।
ताववोचमहं नैव जाने सृष्टिपतिं पतिम्॥ १७

हमलोगोंने आखेटके उद्देश्यसे वनमें जाते हुए एक देवतुल्य राजाको देखा। उसी समय हमलोगोंको जगदम्बा भगवती भी विमानपर स्थित दिखायी पड़ीं॥ ६॥

थोड़ी ही देर बाद हमारा विमान वायुसे प्रेरित होकर आकाशमें पुनः उड़ने लगा और मुहूर्तभरमें वह पुनः एक अन्य सुरम्य देशमें पहुँच गया॥ ७॥

वहाँपर हमलोगोंको अत्यन्त रमणीक नन्दनवन दृष्टिगत हुआ, जिसमें पारिजातवृक्षकी छायाका आश्रय लिये हुए कामधेनु स्थित थी॥ ८॥

कामधेनुके समीप ही चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी विद्यमान था और वहाँ मेनका आदि अप्सराओंके समूह अपने नृत्यों तथा गानोंमें विविध भाव-भंगिमाओंका प्रदर्शन करते हुए अनेक प्रकारकी क्रीडाएँ कर रहे थे। वहाँ मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंमें सैकड़ों गन्धर्व, यक्ष और विद्याधर गा रहे थे और रमण कर रहे थे। वहाँपर इन्द्रभगवान् भी इन्द्राणीके साथ दृष्टिगोचर हुए॥ ९—११॥

स्वर्गमें निवास करनेवाले देवताओंको देखकर हमें परम विस्मय हुआ। वहाँपर वरुण, कुबेर, यम, सूर्य, अग्नि तथा अन्य देवताओंको स्थित देखकर हम आश्चर्यचकित हुए। उसी समय उस सुसज्जित नगरसे वह राजा निकला॥ १२-१३॥

देवताओंके राजा इन्द्रकी भाँति पराक्रमी वह राजा धरातलपर पालकीमें बैठा था। वह विमान हमलोगोंको लेकर द्रुत गतिसे आगे बढ़ा॥ १४॥

तदनन्तर हमलोग अलौकिक ब्रह्मलोकमें पहुँच गये। वहाँपर सभी देवताओंसे नमस्कृत ब्रह्माजीको विद्यमान देखकर भगवान् शंकर एवं विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १५॥

वहाँ ब्रह्माजीकी सभामें सभी वेद अपने-अपने अंगोंसहित मूर्तरूपमें विराजमान थे। साथ ही समुद्र, नदियाँ, पर्वत, सर्प एवं नाग भी उपस्थित थे॥ १६॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णु और शंकरने मुझसे पूछा—हे चतुर्मुख! ये दूसरे सनातन ब्रह्मा कौन हैं? तब मैंने उनसे कहा कि मैं सबके स्वामी तथा सृष्टिकर्ता इन ब्रह्माको नहीं जानता॥ १७॥

कोऽहं कोऽयं किमर्थं वा भ्रमोऽयं मम चेश्वरौ।
क्षणादथ विमानं तच्चचालाशु मनोजवम्॥ १८

कैलासशिखरे प्राप्तं रम्ये यक्षगणान्विते।
मन्दारवाटिकारम्ये कीरकोकिलकूजिते॥ १९

वीणामुरजवाद्यैश्च नादिते सुखदे शिवे।

यदा प्राप्तं विमानं तत्तदैव सदनाच्छुभात्॥ २०

निर्गतो भगवाञ्छम्भुर्वृषारूढस्त्रिलोचनः।
पञ्चाननो दशभुजः कृतसोमार्धशेखरः॥ २१

व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः।
पार्ष्णिरक्षौ महावीरौ गजाननषडाननौ॥ २२

शिवेन सह पुत्रौ द्वौ व्रजमानौ विरेजतुः।
नन्दिप्रभृतयः सर्वे गणपाश्च वराश्च ते॥ २३

जयशब्दं प्रयुञ्जाना व्रजन्ति शिवपृष्ठगाः।
तं वीक्ष्य शङ्करं चान्यं विस्मितास्तत्र नारद॥ २४

मातृभिः संशयाविष्टस्तत्राहं न्यवसं मुने।
क्षणात्तस्माद् गिरेः शृङ्गाद्विमानं वातरंहसा॥ २५

वैकुण्ठसदनं प्राप्तं रमारमणमन्दिरम्।
असम्भाव्या विभूतिश्च तत्र दृष्टा मया सुत॥ २६

विसिष्मिये तदा विष्णुर्दृष्ट्वा तत्पुरमुत्तमम्।
सदनाग्रे ययौ तावद्धरिः कमललोचनः॥ २७

अतसीकुसुमाभासः पीतवासाश्चतुर्भुजः।
द्विजराजाधिरूढश्च दिव्याभरणभूषितः॥ २८

वीज्यमानस्तदा लक्ष्म्या कामिन्या चामरैः शुभैः।
तं वीक्ष्य विस्मिताः सर्वे वयं विष्णुं सनातनम्॥ २९

हे ईश्वरो! मैं कौन हूँ, ये कौन हैं और हम दोनोंका क्या प्रयोजन है? इसमें मैं भ्रमित हूँ। थोड़ी ही देरमें वह विमान पुनः मनके सदृश वेगसे आगेकी ओर बढ़ा॥ १८॥

तत्पश्चात् वह विमान यक्षगणोंसे सुशोभित, मन्दार-वृक्षकी वाटिकाओंके कारण अति सुरम्य, शुक और कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे गुंजित, वीणा और मृदंग आदि वाद्य-यन्त्रोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित, सुखदायक तथा मंगलकारी कैलास-शिखरपर पहुँचा॥ १९½ ॥

उस शिखरपर जब वह विमान पहुँचा; उसी समय वृषभपर आरूढ, पंचमुख, दस भुजाओंवाले, मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये हुए भगवान् शंकर अपने दिव्य भवनसे बाहर निकले॥ २०-२१॥

उस समय वे व्याघ्रचर्म पहने हुए तथा गजचर्म ओढ़े हुए थे। महाबली गजानन (श्रीगणेश) तथा षडानन (कार्तिकेय) उनके अंगरक्षकके रूपमें विद्यमान थे॥ २२॥

भगवान् शंकरके साथ चल रहे उनके दोनों पुत्र अतीव सुशोभित हो रहे थे। नन्दी आदि सभी प्रधान शिवगण जयघोष करते हुए भगवान् शिवके पीछे-पीछे चल रहे थे। हे नारद! वहाँ अन्य लोगों तथा शंकरको मातृकाओंसहित देखकर हमलोग विस्मयमें पड़ गये और हे मुने! मैं संशयग्रस्त हो गया। थोड़ी ही देरमें वह विमान उस कैलास-शिखरसे वायुगतिसे लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुके वैकुण्ठलोकमें जा पहुँचा। हे पुत्र! मैंने वहाँ अद्भुत विभूतियाँ देखीं॥ २३—२६॥

उस अति रमणीक नगरको देखकर भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये। उसी समय कमललोचन भगवान् विष्णु अपने भवनसे बाहर निकले॥ २७॥

उनका वर्ण अलसीके पुष्पकी भाँति श्याम था, वे पीताम्बर धारण किये हुए थे, उनकी चार भुजाएँ थीं, वे पक्षिराज गरुडपर आरूढ़ थे और दिव्य अलंकारोंसे विभूषित थे। भगवती लक्ष्मी उन्हें शुभ चँवर डुला रही थीं। उन सनातन भगवान् विष्णुजीको देखकर हम सभीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २८-२९॥

परस्परं निरीक्षन्तः स्थितास्तस्मिन् वरासने।
ततश्चचाल तरसा विमानं वातरंहसा॥ ३०

सुधासमुद्रः सम्प्राप्तो मिष्टवारिमहोर्मिमान्।
यादोगणसमाकीर्णश्चलद्वीचिविराजितः॥ ३१

मन्दारपारिजाताद्यैः पादपैरतिशोभितः।
नानास्तरणसंयुक्तो नानाचित्रविचित्रितः॥ ३२

मुक्तादामपरिक्लिष्टो नानादामविराजितः।
अशोकबकुलाख्यैश्च वृक्षैः कुरुबकादिभिः॥ ३३

संवृतः सर्वतः सौम्यैः केतकीचम्पकैर्वृतः।
कोकिलारावसंघुष्टो दिव्यगन्धसमन्वितः॥ ३४

द्विरेफातिरणत्कारैरञ्जितः परमाद्भुतः।
तस्मिन्द्वीपे शिवाकारः पर्यङ्कः सुमनोहरः॥ ३५

रत्नालिखचितोऽत्यर्थं नानारत्नविराजितः।
दृष्टोऽस्माभिर्विमानस्थैर्दूरतः परिमण्डितः॥ ३६

नानास्तरणसंछन्न इन्द्रचापसमन्वितः।
पर्यङ्कप्रवरे तस्मिन्नुपविष्टा वराङ्गना॥ ३७

रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
सुरक्तनयना कान्ता विद्युत्कोटिसमप्रभा॥ ३८

सुचारुवदना रक्तदन्तच्छदविराजिता।
रमाकोट्यधिका कान्त्या सूर्यबिम्बनिभाखिला॥ ३९

वरपाशाङ्कुशाभीष्टधरा श्रीभुवनेश्वरी।
अदृष्टपूर्वा दृष्टा सा सुन्दरी स्मितभूषणा॥ ४०

तदनन्तर परस्पर एक-दूसरेको देखते हुए हमलोग अपने-अपने श्रेष्ठ आसनोंपर बैठे रहे। इसके बाद वह विमान वायुसदृश द्रुत गतिसे पुनः चल पड़ा। कुछ ही क्षणोंमें वह विमान मधुर जलवाले, ऊँची-ऊँची लहरोंवाले, नानाविध जल-जन्तुओंसे युक्त तथा चंचल तरंगोंसे शोभायमान अमृत-सागरके तटपर पहुँच गया॥ ३०-३१॥

उस सागरके तटपर विभिन्न पंक्तियोंमें नाना प्रकारके विचित्र रंगोंवाले मन्दार एवं पारिजात आदि वृक्ष शोभायमान थे। वहाँ मोतियोंकी झालरें तथा अनेक प्रकारके पुष्पहार शोभामें वृद्धि कर रहे थे। समुद्रके सभी ओर अशोक, मौलसिरी, कुरबक आदि वृक्ष विद्यमान थे। उसके चारों ओर चित्ताकर्षक केतकी तथा चम्पक पुष्पोंकी वाटिकाएँ थीं, जो कोयलोंकी मधुर ध्वनियोंसे गुंजित तथा नाना प्रकारकी दिव्य सुगन्धिसे परिपूर्ण थीं॥ ३२—३४॥

उस स्थलपर भौंरे गुंजार कर रहे थे। इस प्रकार वहाँका दृश्य परम अद्भुत था। उस द्वीपमें हमलोगोंने दूरसे ही विमानपर बैठे-बैठे शिवजीके आकारवाला एक मनोहर तथा अत्यन्त अद्भुत पलंग देखा, जो रत्नमालाओंसे जड़ा हुआ था और नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित था॥ ३५-३६॥

उस पलंगपर अनेक प्रकारके रंगोंवाली आकर्षक चादरें बिछी थीं, जिससे वह पलंग इन्द्रधनुषके समान सुशोभित हो रहा था। उस भव्य पलंगपर एक दिव्यांगना बैठी हुई थी॥ ३७॥

उस देवीने रक्तपुष्पोंकी माला तथा रक्ताम्बर धारण किया था। उसने अपने शरीरमें लाल चन्दनका लेप कर रखा था। लालिमापूर्ण नेत्रोंवाली वह देवी असंख्य विद्युत्की कान्तिसे सुशोभित हो रही थी। सुन्दर मुखवाली, रक्तिम अधरसे सुशोभित, लक्ष्मीसे करोड़ोंगुना अधिक सौन्दर्यशालिनी वह स्त्री अपनी कान्तिसे सूर्यमण्डलकी दीप्तिको भी मानो तिरस्कृत कर रही थी॥ ३८-३९॥

वर, पाश, अंकुश और अभय मुद्राको धारण करनेवाली तथा मधुर मुसकानयुक्त वे भगवती भुवनेश्वरी हमें दृष्टिगोचर हुईं; जिन्हें पहले कभी नहीं देखा गया था॥ ४०॥

ह्रींकारजपनिष्ठैस्तु पक्षिवृन्दैर्निषेविता।
अरुणा करुणामूर्तिः कुमारी नवयौवना॥ ४१

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या मन्दस्मितमुखाम्बुजा।
उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिर्जिताम्भोजकुड्मला ॥ ४२

नानामणिगणाकीर्णभूषणैरुपशोभिता ।
कनकाङ्गदकेयूरकिरीटपरिशोभिता ॥ ४३

कनकच्छ्रीचक्रताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजा ।
हृल्लेखा भुवनेशीति नामजापपरायणैः॥ ४४

सखीवृन्दैः स्तुता नित्यं भुवनेशी महेश्वरी।
हृल्लेखाद्याभिरमरकन्याभिः परिवेष्टिता॥ ४५

अनङ्गकुसुमाद्याभिर्देवीभिः परिवेष्टिता।
देवी षट्कोणमध्यस्था यन्त्रराजोपरि स्थिता॥ ४६

दृष्ट्वा तां विस्मिताः सर्वे वयं तत्र स्थिताभवन्।
केयं कान्ता च किं नाम न जानीमोऽत्र संस्थिताः॥ ४७

सहस्रनयना रामा सहस्रकरसंयुता।
सहस्रवदना रम्या भाति दूरादसंशयम्॥ ४८

नाप्सरा नापि गन्धर्वी नेयं देवाङ्गना किल।
इति संशयमापन्नास्तत्र नारद संस्थिताः॥ ४९

तदासौ भगवान्विष्णुर्दृष्ट्वा तां चारुहासिनीम्।
उवाचाम्बां स्वविज्ञानात्कृत्वा मनसि निश्चयम्॥ ५०

एषा भगवती देवी सर्वेषां कारणं हि नः।
महाविद्या महामाया पूर्णा प्रकृतिरव्यया॥ ५१

दुर्ज्ञेयाल्पधियां देवी योगगम्या दुराशया।
इच्छा परात्मनः कामं नित्यानित्यस्वरूपिणी॥ ५२

ह्रींकार बीजमन्त्रका जप करनेवाले पक्षियोंका समुदाय उनकी सेवामें निरन्तर रत था। नवयौवनसे सम्पन्न तथा अरुण आभावाली वे कुमारी साक्षात् करुणाकी मूर्ति थीं॥ ४१॥

वे सभी प्रकारके शृंगार एवं परिधानोंसे सुसज्जित थीं और उनके मुखारविन्दपर मन्द मुसकान विराजमान थी। उनके उन्नत वक्ष:स्थल कमलकी कलियोंसे भी बढ़कर शोभायमान हो रहे थे। नानाविध मणियोंसे जटित आभूषणोंसे वे अलंकृत थीं। स्वर्णनिर्मित कंकण, केयूर और मुकुट आदिसे वे सुशोभित थीं। स्वर्णनिर्मित श्रीचक्राकार कर्णफूलसे सुशोभित उनका मुखारविन्द अतीव दीप्तिमान् था। उनकी सखियोंका समुदाय 'हृल्लेखा' तथा 'भुवनेशी' नामोंका सतत जप कर रहा था और अन्य सखियाँ उन भुवनेशी महेश्वरीकी अनवरत स्तुति कर रही थीं। 'हृल्लेखा' आदि देवकन्याओं तथा 'अनंगकुसुमा' आदि देवियोंसे वे घिरी हुई थीं। वे षट्कोणके मध्यमें यन्त्रराजके ऊपर विराजमान थीं॥ ४२—४६॥

उन भगवतीको देखकर वहाँ स्थित हम सभी आश्चर्यचकित हो गये और कुछ देरतक वहीं ठहरे रहे। हमलोग यह नहीं जान पाये कि वे सुन्दरी कौन हैं और उनका क्या नाम है?॥ ४७॥

दूरसे देखनेपर वे भगवती हजार नेत्र, हजार मुख और हजार हाथोंसे युक्त अति सुन्दर लग रही थीं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है॥ ४८॥

हे नारद! हम सोचने लगे कि ये न तो अप्सरा, न गन्धर्वी और न देवांगना ही दीखती हैं, तो फिर ये कौन हो सकती हैं? हम इसी संशयमें पड़कर वहाँ खड़े रहे॥ ४९॥

तब उन सुन्दर हासवाली देवीको देखकर भगवान् विष्णुने अपने अनुभवसे मनमें निश्चित करके हमसे कहा—ये साक्षात् भगवती जगदम्बा हम सबकी कारणस्वरूपा हैं। ये ही महाविद्या, महामाया, पूर्णा तथा शाश्वत प्रकृतिरूपा हैं॥ ५०-५१॥

अल्प बुद्धिवाले गम्भीर आशयवाली इन भगवतीको सम्यक् रूपसे नहीं जान सकते, केवल योगमार्गसे ही ये ज्ञेय हैं। ये देवी परमात्माकी इच्छास्वरूपा तथा नित्यानित्य-स्वरूपिणी हैं॥ ५२॥

दुराराध्याल्पभाग्यैश्च देवी विश्वेश्वरी शिवा।
वेदगर्भा विशालाक्षी सर्वेषामादिरीश्वरी॥ ५३

एषा संहृत्य सकलं विश्वं क्रीडति संक्षये।
लिङ्गानि सर्वजीवानां स्वशरीरे निवेश्य च॥ ५४

सर्वबीजमयी ह्येषा राजते साम्प्रतं सुरौ।
विभूतयः स्थिताः पार्श्वे पश्यतां कोटिशः क्रमात्॥ ५५

दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यगन्धानुलेपनाः।
परिचर्यापराः सर्वाः पश्यतां ब्रह्मशङ्करौ॥ ५६

धन्या वयं महाभागाः कृतकृत्याः स्म साम्प्रतम्।
यदत्र दर्शनं प्राप्तं भगवत्याः स्वयं त्विदम्॥ ५७

तपस्तप्तं पुरा यत्नात्तस्येदं फलमुत्तमम्।
अन्यथा दर्शनं कुत्र भवेदस्माकमादरात्॥ ५८

पश्यन्ति पुण्यपुञ्जा ये ये वदान्यास्तपस्विनः।
रागिणो नैव पश्यन्ति देवीं भगवतीं शिवाम्॥ ५९

मूलप्रकृतिरेवैषा सदा पुरुषसङ्गता।
ब्रह्माण्डं दर्शयत्येषा कृत्वा वै परमात्मने॥ ६०

द्रष्टासौ दृश्यमखिलं ब्रह्माण्डं देवताः सुरौ।
तस्यैषा कारणं सर्वा माया सर्वेश्वरी शिवा॥ ६१

क्वाहं वा क्व सुराः सर्वे रम्भाद्याः सुरयोषितः।
लक्षांशेन तुलामस्या न भवामः कथञ्चन॥ ६२

सैषा वराङ्गना नाम वै दृष्टा या महार्णवे।
बालभावे महादेवी दोलयन्तीव मां मुदा॥ ६३

ये विश्वेश्वरी कल्याणी भगवती अल्पभाग्यवाले प्राणियोंके लिये दुराराध्य हैं। ये वेदजननी विशालनयना जगदम्बा सबकी आदिस्वरूपा ईश्वरी हैं॥ ५३॥

ये भगवती प्रलयावस्थामें समग्र विश्वका संहार करके सभी प्राणियोंके लिंगरूप शरीरको अपने शरीरमें समाविष्ट करके विहार करती हैं॥ ५४॥

हे देवो! ये भगवती इस समय सर्वबीजमयी देवीके रूपमें विराजमान हैं। देखिये, इनके समीप करोड़ों विभूतियाँ क्रमसे स्थित हैं॥ ५५॥

हे ब्रह्मा एवं शंकरजी! देखिये, दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत तथा दिव्य गन्धानुलेपसे युक्त ये सभी विभूतियाँ इन भगवतीकी सेवामें मनोयोगसे संलग्न हैं॥ ५६॥

हमलोग धन्य, सौभाग्यशाली तथा कृतकृत्य हैं, जो कि हमें इस समय यहाँ भगवतीका साक्षात् दर्शन प्राप्त हुआ॥ ५७॥

पूर्वकालमें हमलोगोंने बड़े प्रयत्नसे जो तपस्या की थी, उसीका यह उत्तम परिणाम है; अन्यथा भगवती हमलोगोंको स्नेहपूर्वक दर्शन कैसे देतीं?॥ ५८॥

जो उदार हृदयवाले पुण्यात्मा तथा तपस्वीलोग हैं, वे ही इनके दर्शन प्राप्त करते हैं, किंतु विषयासक्तलोग इन कल्याणमयी भगवतीके दर्शनसे सर्वथा वंचित रहते हैं॥ ५९॥

ये ही मूलप्रकृतिस्वरूपा भगवती परमपुरुषके सहयोगसे ब्रह्माण्डकी रचना करके परमात्माके समक्ष उसे उपस्थित करती हैं॥ ६०॥

हे देवो! यह पुरुष द्रष्टामात्र है और समस्त ब्रह्माण्ड तथा देवतागण दृश्यस्वरूप हैं। महामाया, कल्याणमयी, सर्वव्यापिनी सर्वेश्वरी ये भगवती ही इन सबका मूल कारण हैं॥ ६१॥

कहाँ मैं, कहाँ सभी देवता और कहाँ रम्भा आदि देवांगनाएँ! हम सभी इन भगवतीकी तुलनामें उनके लक्षांशके बराबर भी नहीं हैं॥ ६२॥

ये वे ही महादेवी जगदम्बा हैं, जिन्हें हमलोगोंने प्रलयसागरमें देखा था और जो बाल्यावस्थामें मुझे प्रसन्नतापूर्वक पालनेमें झुला रही थीं॥ ६३॥

शयानं वटपत्रे च पर्यङ्के सुस्थिरे दृढे।
पादाङ्गुष्ठं करे कृत्वा निवेश्य मुखपङ्कजे॥ ६४

लेलिहन्तञ्च क्रीडन्तमनेकैर्बालचेष्टितैः।
रममाणं कोमलाङ्गं वटपत्रपुटे स्थितम्॥ ६५

गायन्ती दोलयन्ती च बालभावान्मयि स्थिते।
सेयं सुनिश्चितं ज्ञानं जातं मे दर्शनादिव॥ ६६

कामं नो जननी सैषा शृणु तं प्रवदाम्यहम्।
अनुभूतं मया पूर्वं प्रत्यभिज्ञा समुत्थिता॥ ६७

उस समय मैं एक सुस्थिर तथा दृढ़ वटपत्ररूपी पलंगपर सोया हुआ था और अपने पैरका अँगूठा अपने मुखारविन्दमें डालकर चूस रहा था। अत्यन्त कोमल अंगोंवाला मैं उस समय अनेक बालसुलभ चेष्टाएँ करता हुआ उसी वटपत्रके दोनेमें पड़े-पड़े खेल रहा था॥ ६४-६५॥

उस समय गाती हुई ये भगवती बालभावमें स्थित मुझे झूला झुलाती थीं। इन्हें देखकर मुझे यह सुनिश्चित ज्ञान हो गया है कि वे ही यहाँ विराजमान हैं॥ ६६॥

निश्चितरूपसे ये भगवती मेरी जननी हैं। आप सुनें, मुझे पूर्व अनुभवकी स्मृति जग गयी है, जो मैं आपसे कहता हूँ॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विमानस्थैर्हरादिभिर्देवीदर्शनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

भगवतीके चरणनखमें त्रिदेवोंको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका दर्शन होना, भगवान् विष्णुद्वारा देवीकी स्तुति करना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह जनार्दनः।
वयं गच्छेम पार्श्वेऽस्याः प्रणमन्तः पुनः पुनः॥ १

सेयं वरा महामाया दास्यत्येषा वरान् हि नः।
स्तुवामः सन्निधिं प्राप्य निर्भयाश्चरणान्तिके॥ २

यदि नो वारयिष्यन्ति द्वारस्थाः परिचारकाः।
पठिष्यामश्च तत्रस्थाः स्तुतिं देव्याः समाहिताः॥ ३

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ते हरिणा वाक्ये सुप्रहृष्टौ सुसंस्थितौ।
जातौ प्रमुदितौ कामं निकटे गमनाय च॥ ४

ओमित्युक्त्वा हरिं सर्वे विमानात्त्वरितास्त्रयः।
उत्तीर्य निर्गता द्वारि शङ्कमाना मनस्यलम्॥ ५

द्वारस्थान् वीक्ष्य तान्सर्वान्देवी भगवती तदा।
स्मितं कृत्वा चकाराशु तांस्त्रीन्स्त्रीरूपधारिणः॥ ६

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जनार्दन भगवान् विष्णुने पुनः कहा—हमलोग बार-बार प्रणाम करते हुए उनके पास चलें। वे वरदायिनी महामाया हमें अवश्य वरदान देंगी। अतः निर्भय होकर हमें उनके चरणोंके निकट चलकर उनकी स्तुति करनी चाहिये। यदि उनके द्वारपाल हमें वहाँ रोकेंगे तो हमलोग ध्यानपूर्वक वहीं बैठकर देवीकी स्तुति करने लगेंगे॥ १—३॥

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर मैं तथा शिव—हम दोनों प्रसन्नतासे गद्‌गद होकर शीघ्र उनके निकट जानेको उत्सुक हो गये। विष्णुसे 'ठीक है'—ऐसा कहकर हम तीनों शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर मन-ही-मन अनेक तर्क-वितर्क करते हुए भगवतीके द्वारपर ज्यों ही पहुँचे, त्यों ही द्वारपर स्थित हम सभीको देखकर मन्द मुसकान करके उन भगवतीने हम तीनोंको स्त्रीरूपमें परिणत कर दिया॥ ४—६॥

वयं युवतयो जाताः सुरूपाश्चारुभूषणाः।
विस्मयं परमं प्राप्ता गतास्तत्सन्निधिं पुनः॥ ७

सा दृष्ट्वा नः स्थितांस्तत्र स्त्रीरूपांश्चरणान्तिके।
व्यलोकयत चार्वङ्गी प्रेमसम्पूर्णया दृशा॥ ८

प्रणम्य तां महादेवीं पुरतः संस्थिता वयम्।
परस्परं लोकयन्तः स्त्रीरूपाश्चारुभूषणाः॥ ९

पादपीठं प्रेक्षमाणा नानामणिविभूषितम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशं स्थितास्तत्र वयं त्रयः॥ १०

काश्चिद्रक्ताम्बरास्तत्र सहचर्यः सहस्रशः।
काश्चिन्नीलाम्बरा नार्यस्तथा पीताम्बराः शुभाः॥ ११

देव्यः सर्वाः शुभाकारा विचित्राम्बरभूषणाः।
विरेजुः पार्श्वतस्तस्याः परिचर्यापराः किल॥ १२

जगुश्च ननृतुश्चान्याः पर्युपासन्त ताः स्त्रियः।
वीणामारुतवाद्यानि वादयन्त्यो मुदान्विताः॥ १३

शृणु नारद वक्ष्यामि यद् दृष्टं तत्र चाद्भुतम्।
नखदर्पणमध्ये वै देव्याश्चरणपङ्कजे॥ १४

ब्रह्माण्डमखिलं सर्वं तत्र स्थावरजङ्गमम्।
अहं विष्णुश्च रुद्रश्च वायुरग्निर्यमो रविः॥ १५

वरुणः शीतगुस्त्वष्टा कुबेरः पाकशासनः।
पर्वताः सागरा नद्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ १६

विश्वावसुश्चित्रकेतुः श्वेतश्चित्राङ्गदस्तथा।
नारदस्तुम्बुरुश्चैव हाहाहूहूस्तथैव च॥ १७

अश्विनौ वसवः साध्याः सिद्धाश्च पितरस्तथा।
नागाः शेषादयः सर्वे किन्नरोरगराक्षसाः॥ १८

वैकुण्ठो ब्रह्मलोकश्च कैलासः पर्वतोत्तमः।
सर्वं तदखिलं दृष्टं नखमध्यस्थितं च नः॥ १९

मज्जन्मपङ्कजं तत्र स्थितोऽहं चतुराननः।
शेषशायी जगन्नाथस्तथा च मधुकैटभौ॥ २०

हमलोग नाना प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत रूपवती युवती बन गये और अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर उन महामाया भगवतीके पास पुनः गये॥ ७॥

स्त्रीके वेषमें हमलोगोंको अपने चरणोंके निकट देखकर अत्यन्त मनोहर रूपवाली उन देवीने हमलोगोंके ऊपर कृपादृष्टि डाली॥ ८॥

उस समय महामाया भगवतीको प्रणाम करके स्त्री-वेषधारी तथा दिव्य वस्त्राभरण धारण किये हम तीनों परस्पर एक दूसरेको देखते हुए उनके सामने खड़े रहे॥ ९॥

विविध प्रकारके मणिजटित एवं करोड़ों सूर्यके समान देदीप्यमान देवीके पादपीठको देखते हुए हम तीनों वहीं स्थित रहे॥ १०॥

उन महादेवीकी हजारों सेविकाओंमेंसे कुछने रक्त वस्त्र, कुछने नीले वस्त्र और कुछने सुन्दर पीत वस्त्र धारण कर रखे थे॥ ११॥

वहाँ उपस्थित सभी देवियाँ सुन्दर स्वरूपकी थीं और विचित्र वस्त्र एवं आभूषणोंसे सुसज्जित थीं। वे सब जगदम्बाकी विभिन्न सेवाओंमें तत्पर थीं॥ १२॥

उनमेंसे कुछ गा रही थीं, कुछ नाच रही थीं और कुछ स्त्रियाँ हर्षके साथ वीणा तथा मुखवाद्य बजाती हुई अन्य सेवाओंमें संलग्न थीं॥ १३॥

हे नारदजी! वहाँ मैंने भगवतीके चरणकमलके नखरूपी दर्पणमें जो अद्भुत दृश्य देखा, उसे बताता हूँ, आप सुनें। वहाँ मुझे समस्त स्थावर-जंगमात्मक ब्रह्माण्ड, मैं (ब्रह्मा), विष्णु, शिव, वायु, अग्नि, यम, सूर्य, वरुण, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, कुबेर, इन्द्र, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, विश्वावसु, चित्रकेतु, श्वेत, चित्रांगद, नारद, तुम्बुरु, हाहा-हूहू, दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, साध्य, सिद्धगण, पितर, शेष आदि नाग, सभी किन्नर, उरग और राक्षसगण दिखायी दे रहे थे॥ १४—१८॥

वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक तथा पर्वतश्रेष्ठ कैलास—इन सबको हमने उनके पद-नखमें विराजमान देखा। उसीमें मेरा जन्मस्थान कमल भी था और मैं चतुरानन उस कमलकोशमें बैठा हुआ था। मधु-कैटभ नामके दोनों दानव तथा शेषशायी महाविष्णु भी उसीमें विराजमान थे॥ १९-२०॥

ब्रह्मोवाच

एवं दृष्टं मया तत्र पादपद्मनखे स्थितम्।
विस्मितोऽहं ततो वीक्ष्य किमेतदिति शङ्कितः॥ २१

विष्णुश्च विस्मयाविष्टः शङ्करश्च तथा स्थितः।
तां तदा मेनिरे देवीं वयं विश्वस्य मातरम्॥ २२

ततो वर्षशतं पूर्णं व्यतिक्रान्तं प्रपश्यतः।
सुधामये शिवे द्वीपे विहारं विविधं तदा॥ २३

सख्य इव तदा तत्र मेनिरेऽस्मानवस्थितान्।
देव्यः प्रमुदिताकारा नानाभरणमण्डिताः॥ २४

वयमप्यतिरम्यत्वाद् बभूविम विमोहिताः।
प्रहृष्टमनसः सर्वे पश्यन्भावान्मनोरमान्॥ २५

एकदा तां महादेवीं देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्।
तुष्टाव भगवान्विष्णुर्युवतीभावसंस्थितः॥ २६

श्रीभगवानुवाच

नमो देव्यै प्रकृत्यै च विधात्र्यै सततं नमः।
कल्याण्यै कामदायै च वृद्ध्यै सिद्ध्यै नमो नमः॥ २७

सच्चिदानन्दरूपिण्यै संसारारणये नमः।
पञ्चकृत्यविधात्र्यै ते भुवनेश्यै नमो नमः॥ २८

सर्वाधिष्ठानरूपायै कूटस्थायै नमो नमः।
अर्धमात्रार्थभूतायै हृल्लेखायै नमो नमः॥ २९

ज्ञातं मयाखिलमिदं त्वयि सन्निविष्टं
त्वत्तोऽस्य सम्भवलयावपि मातरद्य।
शक्तिश्च तेऽस्य करणे विततप्रभावा
ज्ञाताधुना सकललोकमयीति नूनम्॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—इस प्रकार परमेश्वरीके चरण-कमलके नखमें स्थित यह सारा दृश्य मुझे दिखायी दिया, जिसे देखकर मैं चकित रह गया और मन-ही-मन सोचने लगा—'यह क्या है?'॥ २१॥

मेरे ही समान विष्णु और शिव भी वहाँ आश्चर्य-चकित होकर खड़े थे। उस समय हम तीनोंने समझ लिया कि समस्त जगत्की जननी ये ही महादेवी हैं॥ २२॥

इस प्रकार अमृतमय एवं कल्याणमय उस द्वीपमें अनेक प्रकारके अद्भुत दृश्य देखते हुए हमारे सौ वर्ष व्यतीत हो गये॥ २३॥

वहाँकी प्रसन्नवदना एवं विचित्र अलंकारोंसे अलंकृत देवियाँ हम तीनोंको अपनी सखियाँ समझती थीं और हमलोग भी उनके स्नेहपूर्ण सद्व्यवहारसे मुग्ध थे तथा उनके मनोरम भावोंको देखकर अतीव प्रसन्न थे॥ २४-२५॥

एक बार नारीरूपमें स्थित भगवान् विष्णु महादेवी भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी स्तुति करने लगे—॥ २६॥

श्रीभगवान् बोले—प्रकृति एवं विधात्रीदेवीको मेरा निरन्तर नमस्कार है। कल्याणी, कामप्रदा, वृद्धि तथा सिद्धिदेवीको बार-बार नमस्कार है। सच्चिदानन्द-रूपिणी तथा संसारकी योनिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। आप पंचकृत्य* विधात्री तथा श्रीभुवनेश्वरीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २७-२८॥

समस्त संसारकी एकमात्र अधिष्ठात्री तथा कूटस्थरूपा देवीको बार-बार नमस्कार है। अर्धमात्राकी अर्थभूता एवं हृल्लेखादेवीको बार-बार नमस्कार है॥ २९॥

हे जननि! आज मैंने जान लिया कि यह समस्त विश्व आपमें समाहित है तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डकी सृष्टि एवं संहार भी आप ही करती हैं। इस ब्रह्माण्डके निर्माणमें आपकी विस्तृत प्रभाववाली शक्ति ही मुख्य हेतु है, अतः मुझे यह ज्ञात हो गया कि आप ही सम्पूर्ण लोकमें व्याप्त हैं। इस सत् एवं

---

* सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह, अनुग्रह।

विस्तार्य सर्वमखिलं सदसद्विकारं
सन्दर्शयस्यविकलं पुरुषाय काले।
तत्त्वैश्च षोडशभिरेव च सप्तभिश्च
भासीन्द्रजालमिव नः किल रञ्जनाय॥ ३१

न त्वामृते किमपि वस्तुगतं विभाति
व्याप्यैव सर्वमखिलं त्वमवस्थितासि।
शक्तिं विना व्यवहृतो पुरुषोऽप्यशक्तो
वम्भण्यते जननि बुद्धिमता जनेन॥ ३२

प्रीणासि विश्वमखिलं सततं प्रभावैः
स्वैस्तेजसा च सकलं प्रकटीकरोषि।
अत्स्येव देवि तरसा किल कल्पकाले
को वेद देवि चरितं तव वैभवस्य॥ ३३

त्राता वयं जननि ते मधुकैटभाभ्यां
लोकाश्च ते सुवितताः खलु दर्शिता वै।
नीताः सुखस्य भवने परमां च कोटिं
यद्दर्शनं तव भवानि महाप्रभावम्॥ ३४

नाहं भवो न च विरिञ्चि विवेद मातः
कोऽन्यो हि वेत्ति चरितं तव दुर्विभाव्यम्।
कानीह सन्ति भुवनानि महाप्रभावे
ह्यस्मिन्भवानि रचिते रचनाकलापे॥ ३५

अस्माभिरत्र भुवने हरिरन्य एव
दृष्टः शिवः कमलजः प्रथितप्रभावः।
अन्येषु देवि भुवनेषु न सन्ति किं ते
किं विद्म देवि विततं तव सुप्रभावम्॥ ३६

याचेऽम्ब तेऽङ्घ्रिकमलं प्रणिपत्य कामं
चित्ते सदा वसतु रूपमिदं तवैतत्।
नामापि वक्त्रकुहरे सततं तवैव
संदर्शनं तव पदाम्बुजयोः सदैव॥ ३७

असत् सम्पूर्ण जगत्का विस्तार करके उस चिद्ब्रह्म पुरुषको यथासमय आप इसे समग्ररूपसे प्रस्तुत करती हैं। अपनी प्रसन्नताके लिये सोलह तत्त्वों तथा महदादि अन्य सात तत्त्वोंके साथ आप हमें इन्द्रजालके समान प्रतीत होती हैं॥ ३०-३१॥

हे जननि! आपसे रहित यहाँ कोई भी वस्तु दिखायी नहीं देती, आप ही समस्त जगत्को व्याप्त करके स्थित रहती हैं। बुद्धिमान् पुरुषोंका कथन है कि आपकी शक्तिके बिना वह परमपुरुष कुछ भी करनेमें असमर्थ है॥ ३२॥

आप अपने कृपाप्रभावसे संसारका कल्याण करती हैं। हे देवि! आप ही अपने तेजसे सृष्टिकालमें सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करती हैं तथा प्रलयकालमें इसका शीघ्र ही संहार कर डालती हैं। हे देवि! आपके वैभवके लीला-चरित्रको भलीभाँति जाननेमें कौन समर्थ है?॥ ३३॥

हे जननि! मधु-कैटभ नामक दोनों दानवोंसे आपने हमारी रक्षा की है, आपने ही हमलोगोंको अपने अनेक विस्तृत लोक दिखाये तथा अपने-अपने भवनमें हमें परमानन्दका अनुभव कराया। हे भवानि! यह आपके दर्शनका ही महान् प्रभाव है॥ ३४॥

हे माता! जब मैं (विष्णु), शिव तथा ब्रह्मा भी आपके अपूर्व चरित्रको जाननेमें समर्थ नहीं हैं, तब अन्य कोई कैसे जान सकेगा? हे महिमामयी भवानि! आपके रचे हुए इस ब्रह्माण्ड-प्रपंचमें न जाने कितने ब्रह्माण्ड भरे पड़े हैं!॥ ३५॥

हमलोगोंने आपके इस लोकमें अद्भुत प्रभाववाले दूसरे विष्णु, शिव तथा ब्रह्माको देखा है। हे देवि! क्या वे देवता अन्यान्य लोकोंमें नहीं होंगे? हमलोग आपकी इस अद्भुत महिमाको कैसे जान सकते हैं?॥ ३६॥

हे जगदम्ब! हमलोग आपके चरणोंमें मस्तक झुकाकर यही याचना करते हैं कि आपका यह दिव्य स्वरूप हमारे हृदयमें सदा विराजमान रहे, हमारे मुखसे सदा आपका ही नाम निकले और हमारे नेत्र प्रतिदिन आपके चरणकमलोंके दर्शन पाते रहें॥ ३७॥

भृत्योऽयमस्ति सततं मयि भावनीयं
त्वां स्वामिनीति मनसा ननु चिन्तयामि।
एषावयोरविरता किल देवि भूया-
द्व्याप्तिः सदैव जननीसुतयोरिवार्ये॥ ३८

त्वं वेत्सि सर्वमखिलं भुवनप्रपञ्चं
सर्वज्ञता परिसमाप्तिनितान्तभूमिः।
किं पामरेण जगदम्ब निवेदनीयं
यद्युक्तमाचर भवानि तवेङ्गितं स्यात्॥ ३९

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरुमापतिश्च
संहारकारक इयं तु जने प्रसिद्धिः।
किं सत्यमेतदपि देवि तवेच्छया वै
कर्तुं क्षमा वयमजे तव शक्तियुक्ताः॥ ४०

धात्री धराधरसुते न जगद् बिभर्ति
आधारशक्तिरखिलं तव वै बिभर्ति।
सूर्योऽपि भाति वरदे प्रभया युतस्ते
त्वं सर्वमेतदखिलं विरजा विभासि॥ ४१

ब्रह्माहमीश्वरवरः किल ते प्रभावा-
त्सर्वे वयं जनियुता न यदा तु नित्याः।
केऽन्ये सुराः शतमखप्रमुखाश्च नित्या
नित्या त्वमेव जननी प्रकृतिः पुराणा॥ ४२

त्वं चेद्भवानि दयसे पुरुषं पुराणं
जानेऽहमद्य तव सन्निधिगः सदैव।
नोचेदहं विभुरनादिरनीह ईशो
विश्वात्मधीरिति तमःप्रकृतिः सदैव॥ ४३

विद्या त्वमेव ननु बुद्धिमतां नराणां
शक्तिस्त्वमेव किल शक्तिमतां सदैव।
त्वं कीर्तिकान्तिकमलामलतुष्टिरूपा
मुक्तिप्रदा विरतिरेव मनुष्यलोके॥ ४४

हे माता! आपकी यह भावना हमारे प्रति सर्वदा बनी रहे कि ये सब हमारे सेवक हैं और हम भी सर्वथा आपको मनसे अपनी स्वामिनी समझते रहें। हे आर्ये! इस प्रकार हमारा और आपका माता-पुत्रका अनन्य सम्बन्ध सर्वदा बना रहे॥ ३८॥

हे जगदम्बिके! आप समस्त ब्रह्माण्ड-प्रपंचको पूर्ण रूपसे जानती हैं; क्योंकि जहाँ सर्वज्ञताकी समाप्ति होती है, उसकी अन्तिम सीमा आप ही हैं। हे भवानि! मैं पामर कह ही क्या सकता हूँ? आपको जो उचित लगे, आप वह करें; क्योंकि सब कुछ तो आपहीके संकेतपर होता है॥ ३९॥

जगत्‌में ऐसी प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं, किंतु हे देवि! क्या यह बात सत्य है? हे अजे! सच्चाई तो यह है कि आपकी इच्छासे तथा आपसे शक्ति प्राप्तकर हम अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ ४०॥

हे गिरिजे! यह पृथ्वी इस जगत्‌को धारण नहीं करती है अपितु आपकी आधारशक्ति ही इस समस्त जगत्‌को धारण करती है। हे वरदे! भगवान् सूर्य भी आपके ही आलोकसे युक्त होकर प्रकाशमान हैं। इस प्रकार आप विरजारूपसे इस सम्पूर्ण जगत्‌के रूपमें सुशोभित हो रही हैं॥ ४१॥

ब्रह्मा, मैं (विष्णु) तथा शंकर हम सब आपके ही प्रभावसे उत्पन्न होते हैं। जब हम नित्य नहीं हैं तो फिर इन्द्र आदि प्रमुख देवता कैसे नित्य हो सकते हैं? समस्त चराचर जगत्‌की जननी तथा सनातन प्रकृतिरूपा आप ही नित्य हैं॥ ४२॥

हे भवानि! आपकी सन्निधिमें आनेपर आज मुझे ज्ञात हो गया कि आप मुझ पुराणपुरुषपर सर्वदा दयाभाव बनाये रखती हैं; अन्यथा मैं अपनेको सर्वव्यापी, आदिरहित, निष्काम, ईश्वर तथा विश्वात्मा मान बैठता और अहंकारयुक्त होकर सदाके लिये तमोगुणी प्रकृतिवाला हो जाता॥ ४३॥

आप निश्चय ही सदासे बुद्धिमान् पुरुषोंकी विद्या तथा शक्तिशाली पुरुषोंकी शक्ति हैं। आप इस मनुष्य-लोकमें कीर्ति, कान्ति, कमला, निर्मला तथा तुष्टिस्वरूपा हैं तथा प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली विरक्तिस्वरूपा हैं॥ ४४॥

गायत्र्यसि प्रथमवेदकला त्वमेव
स्वाहा स्वधा भगवती सगुणार्धमात्रा।
आम्नाय एव विहितो निगमो भवत्या
सञ्जीवनाय सततं सुरपूर्वजानाम्॥ ४५

मोक्षार्थमेव रचयस्यखिलं प्रपञ्चं
तेषां गताः खलु यतो ननु जीवभावम्।
अंशा अनादिनिधनस्य किलानघस्य
पूर्णार्णवस्य वितता हि यथा तरङ्गाः॥ ४६

जीवो यदा तु परिवेत्ति तवैव कृत्यं
त्वं संहरस्यखिलमेतदिति प्रसिद्धम्।
नाट्यं नटेन रचितं वितथेऽन्तरङ्गे
कार्ये कृते विरमसे प्रथितप्रभावा॥ ४७

त्राता त्वमेव मम मोहमयाद्भवाब्धे-
स्त्वामम्बिके सततमेमि महार्तिदे च।
रागादिभिर्विरचिते वितथे किलान्ते
मामेव पाहि बहुदुःखकरे च काले॥ ४८

नमो देवि महाविद्ये नमामि चरणौ तव।
सदा ज्ञानप्रकाशं मे देहि सर्वार्थदे शिवे॥ ४९

आप वेदोंकी प्रथम कला गायत्री हैं। आप ही स्वाहा, स्वधा, सगुणा तथा अर्धमात्रा भगवती हैं। आपने ही देवताओं और पूर्वजोंके संरक्षणके लिये आगम तथा निगमकी रचना की है॥ ४५॥

जिस प्रकार पूर्ण महासमुद्रकी विस्तृत तरंगें उस समुद्रका ही अंश होती हैं, उसी प्रकार आदि-अन्तसे हीन निष्कलंक ब्रह्मके जीवरूपी अंशोंको मोक्ष प्राप्त करानेके उद्देश्यसे ही आपने सम्पूर्ण जगत्-प्रपंचका निर्माण किया है॥ ४६॥

जीवको जब यह विदित हो जाता है कि सम्पूर्ण विश्वप्रपंच आपहीका कृत्य है, तब अमित प्रभाववाली आप उसका उपसंहार कर देती हैं और अपने द्वारा किये गये मिथ्या, किंतु रहस्यपूर्ण कार्यपर उसी प्रकार प्रमुदित होती हैं जिस प्रकार मनोहारी नाटककी रचनापर सफल नट सन्तुष्ट होता है॥ ४७॥

हे अम्बिके! आप ही इस मोहमय भव-सागरसे मेरी रक्षा कर सकती हैं। राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंके कारण अत्यन्त कष्टदायक तथा दुःखप्रद मिथ्या अन्तकालमें मेरी रक्षा कीजियेगा, मैं आपके शरणागत हूँ॥ ४८॥

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महाविद्ये! मैं आपके चरणोंमें नमन करता हूँ। हे सर्वार्थदात्री शिवे! आप ज्ञानरूपी प्रकाशसे मेरे हृदयको आलोक प्रदान कीजिये॥ ४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
विष्णुना कृतं देवीस्तोत्रं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

ब्रह्मा और शिवजीका भगवतीकी स्तुति करना

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विरते विष्णौ देवदेवे जनार्दने।
उवाच शंकरः शर्वः प्रणतः पुरतः स्थितः॥ १

शिव उवाच

यदि हरिस्तव देवि विभावज-
स्तदनु पद्मज एव तवोद्भवः।
किमहमत्र तवापि न सद्गुणः
सकललोकविधौ चतुरा शिवे॥ २

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवदेव जनार्दन भगवान् विष्णुके स्तुति कर लेनेके उपरान्त भगवान् शिवशंकर विनीतभावसे देवीके सम्मुख स्थित होकर कहने लगे॥ १॥

शिवजी बोले—हे देवि! यदि भगवान् विष्णु आपके प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए तथा उनके बाद ब्रह्माजी भी आपसे उत्पन्न हुए तो क्या मुझ तमोगुणीकी आपसे उत्पत्ति नहीं हुई है? हे शिवे! आप तो समग्र लोककी रचनामें चतुर हैं॥ २॥

त्वमसि भूः सलिलं पवनस्तथा
खमपि वह्निगुणश्च तथा पुनः।
जननि तानि पुनः करणानि च
त्वमसि बुद्धिमनोऽप्यथ हंकृतिः॥ ३
न च विदन्ति वदन्ति च येऽन्यथा
हरिहराजकृतं निखिलं जगत्।
तव कृतास्त्रय एव सदैव ते
विरचयन्ति जगत्सचराचरम्॥ ४
अवनिवायुखवह्निजलादिभिः
सविषयैः सगुणैश्च जगद् भवेत्।
यदि तदा कथमद्य च तत्स्फुटं
प्रभवतीति तवाम्ब कलामृते॥ ५
भवसि सर्वमिदं सचराचरं
त्वमजविष्णुशिवाकृतिकल्पितम्।
विविधवेषविलासकुतूहलै-
र्विरमसे रमसेऽम्ब यथारुचि॥ ६
सकललोकसिसृक्षुरहं हरिः
कमलभूश्च भवाम यदाऽम्बिके।
तव पदाम्बुजपांसुपरिग्रहं
समधिगम्य तदा ननु चक्रिम॥ ७
यदि दयार्द्रमना न सदाम्बिके
कथमहं विहितश्च तमोगुणः।
कमलजश्च रजोगुणसम्भवः
सुविहितः किमु सत्त्वगुणो हरिः॥ ८
यदि न ते विषमा मतिरम्बिके
कथमिदं बहुधा विहितं जगत्।
सचिवभूपतिभृत्यजनावृतं
बहुधनैरधनैश्च समाकुलम्॥ ९
तव गुणास्त्रय एव सदा क्षमाः
प्रकटनावनसंहरणेषु वै।
हरिहरद्रुहिणाश्च क्रमात्त्वया
विरचितास्त्रिजगतां किल कारणम्॥ १०
परिचितानि मया हरिणा तथा
कमलजेन विमानगतेन वै।
पथिगतैर्भुवनानि कृतानि वा
कथय केन भवानि नवानि च॥ ११

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि आप ही हैं। हे माता! आप ही इन्द्रियरूपिणी तथा आप ही बुद्धि, मन और अहंकारस्वरूपा हैं॥ ३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शंकरने अखिल जगत्की रचना की है—ऐसा जो लोग अन्यथा बोलते हैं, वे कुछ भी नहीं जानते। आपने ही सदासे इन तीनोंकी सृष्टि की है, जो [आपकी ही प्रेरणासे] चराचर जगत्का सृजन-पालन-संहार करते हैं॥ ४॥

यदि पृथ्वी, वायु, आकाश, अग्नि, जल आदि महाभूतोंके गुणों तथा विषयोंसे ही जगत्का निर्माण सम्भव हो तो भी हे अम्ब! आपकी [चिन्मयी] कलाके बिना वह कैसे व्यक्त हो सकता है?॥ ५॥

हे अम्ब! आपने ब्रह्मा, विष्णु और महेशद्वारा निर्मित इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को व्याप्त कर रखा है। आप अनेक प्रकारके वेष धारण करके कुतूहलपूर्ण क्रीड़ाएँ करती हुई यथेच्छ विहार करती हैं और पुनः शान्त भी हो जाती हैं॥ ६॥

हे अम्बिके! जब मैं (शिव), विष्णु और ब्रह्मा सृष्टिकालमें इस ब्रह्माण्डकी रचना करनेकी इच्छा करते हैं, तब निश्चित ही आपके चरणकमलोंका रजकण प्राप्त करके ही हमलोग अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं॥ ७॥

हे अम्बिके! यदि आप सदा दयालु चित्तवाली न होतीं तो मैं तमोगुणयुक्त, ब्रह्मा रजोगुणसम्पन्न और विष्णु सत्त्वगुणयुक्त कैसे बनते?॥ ८॥

हे अम्बिके! यदि आपकी वैविध्यपूर्ण बुद्धि न होती तो यह संसार इतना विविधतापूर्ण कैसे होता, जिसमें मन्त्री, राजा, सेवक, धनी और निर्धन भरे पड़े हैं॥ ९॥

इस ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और संहार करनेमें आपके तीनों गुण (सत्-रज-तम) ही सर्वथा समर्थ हैं; फिर भी आपने हम ब्रह्मा, विष्णु और महेशको क्रमशः इन कार्योंको सम्पन्न करनेके लिये तीनों लोकोंके कारणरूपमें उत्पन्न किया है॥ १०॥

विमानमें बैठा हुआ मैं, ब्रह्मा तथा विष्णु—हमलोग इन भुवनोंसे पूर्णरूपेण परिचित हो गये हैं। हे भवानि! मार्गमें स्थित इन नवीन भुवनोंको किसने बनाया? इसे आप बतायें॥ ११॥

सृजसि पासि जगज्जगदम्बिके
स्वकलया कियदिच्छसि नाशितुम्।
रमयसे स्वपतिं पुरुषं सदा
तव गतिं न हि विद्म वयं शिवे॥ १२
जननि देहि पदाम्बुजसेवनं
युवतिभावगतानपि नः सदा।
पुरुषतामधिगम्य पदाम्बुजा-
द्विरहिताः क्व लभेम सुखं स्फुटम्॥ १३
न रुचिरस्ति ममाम्ब पदाम्बुजं
तव विहाय शिवे भुवनेष्वलम्।
निवसितुं नरदेहमवाप्य च
त्रिभुवनस्य पतित्वमवाप्य वै॥ १४
सुदति नास्ति मनागपि मे रति-
र्युवतिभावमवाप्य तवान्तिके।
पुरुषता क्व सुखाय भवत्यलं
तव पदं न यदीक्षणगोचरम्॥ १५
त्रिभुवनेषु भवत्वियमम्बिके
मम सदैव हि कीर्तिरनाविला।
युवतिभावमवाप्य पदाम्बुजं
परिचितं तव संसृतिनाशनम्॥ १६
भुवि विहाय तवान्तिकसेवनं
क इह वाञ्छति राज्यमकंटकम्।
त्रुटिरसौ किल याति युगात्मतां
न निकटं यदि तेऽङ्घ्रिसरोरुहम्॥ १७
तपसि ये निरता मुनयोऽमला-
स्तव विहाय पदाम्बुजपूजनम्।
जननि ते विधिना किल वञ्चिताः
परिभवो विभवे परिकल्पितः॥ १८
न तपसा न दमेन समाधिना
न च तथा विहितैः क्रतुभिर्यथा।
तव पदाब्जपरागनिषेवणा-
द्भवति मुक्तिरजे भवसागरात्॥ १९

हे जगदम्बिके! आप अपनी कलासे जगत्‌की रचना तथा पालन करती हैं और जब चाहती हैं तब उसका संहार कर देती हैं। आप सदा अपने पति परमपुरुषको रमण कराती रहती हैं। हे शिवे! आपकी इस लीलाको हम नहीं जान सकते॥ १२॥

हे जननि! नारीभावको प्राप्त हमलोगोंको सदा अपने चरणकमलोंकी सेवा करनेका अवसर दें; क्योंकि कालान्तरमें पुनः पुंस्त्व प्राप्त होनेपर आपके चरणकमलोंसे पृथक् रहकर हमलोगोंको वह प्रत्यक्ष सुख कहाँ प्राप्त होगा!॥ १३॥

हे अम्ब! हे शिवे! आपके चरणकमलोंको त्यागकर यह नरदेह प्राप्त करके तीनों लोकोंका स्वामित्व प्राप्त करके भी समस्त लोकोंमें कहीं भी रहनेकी मेरी रुचि नहीं है—चाहे मुझे त्रिभुवनका स्वामित्व ही क्यों न मिल जाय॥ १४॥

हे सुदति! आपके सांनिध्यमें स्त्रीभावको प्राप्त कर लेनेपर अब पुरुषभावमें मेरी थोड़ी भी रुचि नहीं है। जिसे पाकर आपके चरणारविन्दके दर्शनका सौभाग्य न मिले, वह पुरुषता कैसे सुख प्रदान कर सकती है?॥ १५॥

हे अम्बिके! स्त्रीका रूप पाकर मैं भवबन्धनसे मुक्त करनेवाले आपके चरणकमलोंसे परिचित हो गया हूँ। आपकी कृपासे तीनों लोकोंमें मेरा सुयश स्थिर रहे॥ १६॥

इस संसारमें ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके सांनिध्यका सेवन छोड़कर निष्कण्टक राज्य करना चाहेगा? क्योंकि जिसे आपके चरणकमलका सांनिध्य प्राप्त नहीं होता, उसके लिये क्षणांश भी युगके समान प्रतीत होता है॥ १७॥

हे जननि! जो शुद्ध चित्तवाले मुनि आपके चरण-कमलकी सेवा त्यागकर केवल तपश्चर्यामें लगे रहते हैं, वे निश्चितरूपसे विधाताके द्वारा ठगे गये हैं और अपनी हानिको ही लाभ समझते हैं॥ १८॥

हे अजे! आपके पदारविन्दके परागकी सेवासे जैसी मुक्ति इस संसार-सागरसे प्राप्त होती है, वैसी मुक्ति तपस्या, इन्द्रियदमन, समाधि तथा विभिन्न वेदविहित यज्ञोंसे भी नहीं होती॥ १९॥

कुरु दयां दयसे यदि देवि मां
कथय मन्त्रमनाविलमद्भुतम्।
समभवं प्रजपन्सुखितो ह्यहं
सुविशदं च नवार्णमनुत्तमम्॥ २०

प्रथमजन्मनि चाधिगतो मया
तदधुना न विभाति नवाक्षरः।
कथय मां मनुमद्य भवार्णवा-
ज्जननि तारय तारय तारके॥ २१

ब्रह्मोवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी शिवेनाद्भुततेजसा।
उच्चचाराम्बिका मन्त्रं प्रस्फुटं च नवाक्षरम्॥ २२

तं गृहीत्वा महादेवः परां मुदमवाप ह।
प्रणम्य चरणौ देव्यास्तत्रैवावस्थितः शिवः॥ २३

जपन्नवाक्षरं मन्त्रं कामदं मोक्षदं तथा।
बीजयुक्तं शुभोच्चारं शङ्करस्तस्थिवांस्तदा॥ २४

तं तथावस्थितं दृष्ट्वा शङ्करं लोकशङ्करम्।
अवोचं तां महामायां संस्थितोऽहं पदान्तिके॥ २५

न वेदास्त्वामेवं कलयितुमिहासन्नपटवो
यतस्ते नोचुस्त्वां सकलजनधात्रीमविकलाम्।
यदा स्वाहाभूता सकलमखहोमेषु विहिता
तदा त्वं सर्वज्ञा जननि खलु जाता त्रिभुवने॥ २६

कर्ताहं प्रकरोमि सर्वमखिलं ब्रह्माण्डमत्यद्भुतं
कोऽन्योऽस्तीह चराचरे त्रिभुवने मत्तः समर्थः पुमान्।
धन्योऽस्म्यत्र न संशयः किल यदा ब्रह्मास्मि लोकातिगो
मग्नोऽहं भवसागरे प्रवितते गर्वाभिवेशादिति॥ २७

हे देवि! यदि आप मेरे प्रति दयालु हैं तो मुझपर दया कीजिये और अपना निर्मल, अद्भुत, सर्वश्रेष्ठ एवं विशद नवार्ण मन्त्र (**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**) मुझे प्रदान कीजिये, जिससे उसका निरन्तर जप करके मैं सर्वदाके लिये सुखी हो जाऊँ॥ २०॥

पूर्वजन्ममें मैंने नवार्ण मन्त्रकी दीक्षा पायी थी; परंतु वह मुझे अब स्मरण नहीं रह गया है। इसलिये हे तारके! हे जननि! आज पुनः वह मन्त्र मुझे प्रदान कीजिये और भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये॥ २१॥

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] अद्भुत तेजस्वी शिवजीके ऐसा कहनेपर जगदम्बाने स्पष्ट शब्दोंमें नवाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया। उस मन्त्रको ग्रहण करके शिवजी बहुत प्रसन्न हो गये और भगवतीके चरणोंमें प्रणाम करके वहींपर स्थित हो गये॥ २२-२३॥

उस समय सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेमें समर्थ, मुक्तिप्रदायक तथा शुभ उच्चारणसे सम्पन्न उस बीजयुक्त नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए शंकरजी वहाँ विराजमान रहे॥ २४॥

संसारका कल्याण करनेवाले शिवजीको इस प्रकार बैठा देखकर मैं उन महामायाके चरणोंके समीप बैठ गया और उनसे कहने लगा॥ २५॥

हे जननि! वेद सभी लोगोंको धारण करनेवाली तथा सनातनी आप भगवतीकी कल्पना करनेमें अकुशल हैं—ऐसी बात नहीं है; क्योंकि साधारण कार्योंमें उन्होंने आप भगवतीकी चर्चा नहीं की है। यदि वे आपको न जानते तो सभी यज्ञों तथा हवन-कार्योंमें आपको ही स्वाहादेवीके रूपमें प्रतिष्ठित कैसे करते? इसलिये आप तीनों लोकोंमें सर्वज्ञाके रूपमें विख्यात हुईं॥ २६॥

मैं स्रष्टा हूँ, मैं अत्यन्त अद्भुत सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका निर्माण करता हूँ, इस चराचर त्रिभुवनमें मुझसे बढ़कर समर्थ दूसरा पुरुष कौन है, मैं निस्सन्देह धन्य हूँ, मैं लोकोत्तर ब्रह्मा हूँ—इस मिथ्या अहंकारके कारण मैं सर्वदा इस विस्तृत संसारसागरमें निमग्न रहता हूँ; तथापि आज आपके चरण-कमलोंकी पराग-प्राप्तिके

अद्याहं तव पादपङ्कजपरागादानगर्वेण वै
धन्योऽस्मीति यथार्थवादनिपुणो जातः प्रसादाच्च ते।
याचे त्वां भवभीतिनाशचतुरां मुक्तिप्रदां चेश्वरीं
हित्वा मोहकृतं महार्तिनिगडं त्वद्भक्तियुक्तं कुरु॥ २८

अतोऽहञ्च जातो विमुक्तः कथं स्यां
सरोजादमेयात्त्वदाविष्कृताद्वै ।
तवाज्ञाकरः किङ्करोऽस्मीति नूनं
शिवे पाहि मां मोहमग्नं भवाब्धौ॥ २९

न जानन्ति ये मानवास्ते वदन्ति
प्रभुं मां तवाद्यं चरित्रं पवित्रम्।
यजन्तीह ये याजकाः स्वर्गकामा
न ते ते प्रभावं विदन्त्येव कामम्॥ ३०

त्वया निर्मितोऽहं विधित्वे विहारं
विकर्तुं चतुर्धा विधायादिसर्गम्।
अहं वेद्मि कोऽन्यो विवेदादिमाये
क्षमस्वापराधं त्वहङ्कारजं मे॥ ३१

श्रमं येऽष्टधा योगमार्गे प्रवृत्ताः
प्रकुर्वन्ति मूढाः समाधौ स्थिता वै।
न जानन्ति ते नाम मोक्षप्रदं वा
समुच्चारितं जातु मातर्मिषेण॥ ३२

विचारे परे तत्त्वसंख्याविधाने
पदे मोहिता नाम ते संविहाय।
न किं ते विमूढा भवाब्धौ भवानि
त्वमेवासि संसारमुक्तिप्रदा वै॥ ३३

परं तत्त्वविज्ञानमाद्यैर्जनैर्यै-
रजे चानुभूतं त्यजन्त्येव ते किम्।
निमेषार्धमात्रं पवित्रं चरित्रं
शिवा चाम्बिका शक्तिरीशेति नाम॥ ३४

गर्वसे मैं वस्तुतः धन्य हो गया हूँ और आपकी कृपासे ही आज मैं यथातथ्यके ज्ञानमें निपुण हो गया हूँ। सांसारिक भयका नाश करनेमें दक्ष, मुक्तिदायिनी आप परमेश्वरीसे मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि मोहनिर्मित महादु:खदायी भवबन्धनसे मुक्त करके आप मुझे अपनी भक्तिसे समन्वित कीजिये॥ २७-२८॥

आपसे ही निर्मित अद्भुत कमलसे मैं आविर्भूत हुआ हूँ और मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ, अतः मैं कैसे मुक्त हो सकूँगा? हे शिवे! इस भवसागरमें पड़े हुए मुझ मोहमग्नकी रक्षा कीजिये॥ २९॥

इस संसारमें जो लोग आपके सनातन पवित्र चरित्रको नहीं जानते, वे लोग मुझे ही ईश्वर कहते हैं और जो यज्ञकर्ता स्वर्गकी इच्छासे [इन्द्र आदि देवताओंका] यजन करते हैं, वे भी सर्वथा आपके प्रभावको नहीं जानते॥ ३०॥

हे आदिमाये! सर्वप्रथम सृष्टिको चार भागों [अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज और पिण्डज—जरायुज]-में विभक्त करनेके लिये ही आपने मुझे ब्रह्माके पदपर बैठाया, परंतु [मैंने यह समझ लिया कि] मैं ही सब कुछ जानता हूँ, दूसरा कौन जान सकता है—मेरे इस अहंकारजन्य अपराधको आप क्षमा कीजिये॥ ३१॥

जो लोग अष्टांगयोगका आश्रय लेते हैं और समाधि लगाकर व्यर्थ श्रम करते हैं, वे अज्ञानी हैं। हे माता! वे यह नहीं जानते कि किसी भी बहाने आपके नामोच्चारणमात्रसे ही उन्हें मुक्ति प्राप्त हो सकती है॥ ३२॥

कुछ लोग (सांख्यवादी) तो आपके नामका आश्रय छोड़कर विमोहित हो तत्त्वोंकी संख्याके फेरमें पड़ जाते हैं; क्या वे इस भवसागरमें मूर्ख नहीं हैं? हे भवानि! संसारसे मुक्ति प्रदान करनेवाली तो आप ही हैं॥ ३३॥

हे अजे! जिन विष्णु-शिव आदिने परम तत्त्वज्ञानका अनुभव कर लिया है, वे क्या आधे निमेषमात्रके लिये भी आपके पवित्र चरित्र तथा शिवा, अम्बिका, शक्ति, ईश्वरी आदि नामोंको विस्मृत करते हैं?॥ ३४॥

न किं त्वं समर्थासि विश्वं विधातुं
दृशैवाशु सर्वं चतुर्धा विभक्तम्।
विनोदार्थमेवं विधिं मां विधाया-
दिसर्गे किलेदं करोषीति कामम्॥ ३५

हरिः पालकः किं त्वयासौ मधोर्वा
तथा कैटभाद्रक्षितः सिन्धुमध्ये।
हरः संहृतः किं त्वयासौ न काले
कथं मे भ्रुवोर्मध्यदेशात्स जातः॥ ३६

न ते जन्म कुत्रापि दृष्टं श्रुतं वा
कुतः सम्भवस्ते न कोऽपीह वेद।
किलाद्यासि शक्तिस्त्वमेका भवानि
स्वतन्त्रैः समस्तैरतो बोधितासि॥ ३७

त्वया संयुतोऽहं विकर्तुं समर्थो
हरिस्त्रातुमम्ब त्वया संयुतश्च।
हरः सम्प्रहर्तुं त्वयैवेह युक्तः
क्षमा नाद्य सर्वे त्वया विप्रयुक्ताः॥ ३८

यथाहं हरिः शङ्करः किं तथान्ये
न जाता न सन्तीह नो वाभविष्यन्।
न मुह्यन्ति केऽस्मिंस्तवात्यन्तचित्रे
विनोदे विवादास्पदेऽल्पाशयानाम्॥ ३९

अकर्ता गुणस्पष्ट एवाद्य देवो
निरीहोऽनुपाधिः सदैवाकलश्च।
तथापीश्वरस्ते वितीर्णं विनोदं
सुसम्पश्यतीत्याहुरेवं विधिज्ञाः॥ ४०

दृष्टादृष्टविभेदेऽस्मिन्प्राक्त्वत्तो वै पुमान्परः।
नान्यः कोऽपि तृतीयोऽस्ति प्रमेये सुविचारिते॥ ४१

क्या आप विश्वकी रचना करनेमें समर्थ नहीं हैं? हे आदिसर्गे! आपके दृष्टिनिक्षेपमात्रसे ही यह सम्पूर्ण विश्व चार प्रकारके (अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, पिण्डज—जरायुज) जीवोंके रूपमें शीघ्र ही विभक्त हुआ है। इस प्रकार मुझ ब्रह्माकी सृष्टि तो आप अपने मनोविनोदके लिये करके पुनः स्वतन्त्र भावसे जो चाहती हैं, वह करती हैं॥ ३५॥

[महाप्रलयकी स्थितिमें] यदि महासागरमें आप मधु-कैटभसे विष्णुकी रक्षा न करतीं तो वे सृष्टि-पालक कैसे बन पाते और यदि आप सबके संहारक शिवका संहार न करतीं तो वे मेरे भ्रूमध्यसे कैसे प्रकट होते?॥ ३६॥

आपका जन्म कहाँ हुआ—इसे न तो किसीने देखा और न सुना और कोई यह भी नहीं जान पाया कि आपकी उत्पत्ति कहाँ हुई? हे भवानि! एकमात्र आप ही आद्या शक्ति हैं, अतएव वेदोंने इसी रूपमें आपका वर्णन किया है॥ ३७॥

हे अम्ब! आपकी ही शक्तिसे प्रेरित होकर मैं सृष्टि करनेमें, विष्णु पालन करनेमें तथा शिव संहार करनेमें समर्थ होते हैं। आपकी शक्तिसे विलग रहकर अब हमलोग कुछ भी करनेमें सक्षम नहीं हैं॥ ३८॥

जिस प्रकार मैं (ब्रह्मा), विष्णु और शिव उत्पन्न हुए हैं, उसी प्रकार क्या अन्य प्राणी उत्पन्न नहीं हुए, अथवा विद्यमान नहीं हैं या उत्पन्न नहीं होंगे? किंतु अल्प बुद्धिवाले प्राणियोंके लिये विवादास्पद तथा अत्यन्त विचित्र आपके इस लीलाविनोदसे कौन भ्रमित नहीं हो जाते?॥ ३९॥

वे आदिदेव ईश्वर अकर्ता, गुणोंसे स्फुट होनेवाले, निष्काम, उपाधिरहित तथा निर्गुण हैं, फिर भी वे आपके विस्तृत लीला-विनोदको भलीभाँति देखते रहते हैं—ज्ञानीजन ऐसा ही कहते हैं॥ ४०॥

मूर्त और अमूर्त भेदोंसे युक्त इस संसारमें आपसे पूर्व वे ही परमपुरुष थे; ज्ञान-तत्त्वपर सम्यक् प्रकारसे विचार करनेपर यह सर्वथा सिद्ध होता है कि अन्य तीसरा कोई भी नहीं है॥ ४१॥

न मिथ्या वेदवाक्यं वै कल्पनीयं कदाचन।
विरोधोऽयं मयात्यन्तं हृदये तु विशङ्कितः॥ ४२

एकमेवाद्वितीयं यद् ब्रह्म वेदा वदन्ति वै।
सा किं त्वं वाप्यसौ वा किं सन्देहं विनिवर्तय॥ ४३

निःसंशयं न मे चेतः प्रभवत्यविशङ्कितम्।
द्वित्वैकत्वविचारेऽस्मिन्निमग्नं क्षुल्लकं मनः॥ ४४

स्वमुखेनापि सन्देहं छेत्तुमर्हसि मामकम्।
पुण्ययोगाच्च मे प्राप्ता सङ्गतिस्तव पादयोः॥ ४५

पुमानसि त्वं स्त्री वासि वद विस्तरतो मम।
ज्ञात्वाहं परमां शक्तिं मुक्तः स्यां भवसागरात्॥ ४६

[यह सिद्धान्त है कि] वेद-वाक्यको कभी मिथ्या नहीं समझना चाहिये। वेद ब्रह्मको अद्वितीय और एक बताते हैं; तो फिर आप क्या हैं और वह ब्रह्म क्या है? यह विरोध मेरे हृदयमें महान् शंका उत्पन्न करता है। आप मेरे इस सन्देहका निवारण करें॥ ४२-४३॥

इस प्रकार द्वैत-अद्वैतके इस विचारमें डूबा हुआ मेरा क्षुद्र मन निश्चितरूपसे शंकारहित नहीं हो पा रहा है॥ ४४॥

अब आप ही स्वयं अपने मुखसे मेरी इस शंकाका निवारण करनेकी कृपा करें; क्योंकि [अनेक जन्मोंके] पुण्ययोगसे ही आपके चरणोंका यह सांनिध्य मुझे प्राप्त हुआ है॥ ४५॥

आप पुरुष हैं अथवा स्त्री—यह मुझे विस्तारपूर्वक बतायें, जिससे मैं आप परम शक्तिको जानकर भवसागरसे मुक्त हो जाऊँ॥ ४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
हरब्रह्मकृतस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवती जगदम्बिकाद्वारा अपने स्वरूपका वर्णन तथा 'महासरस्वती', 'महालक्ष्मी' और 'महाकाली' नामक अपनी शक्तियोंको क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और शिवको प्रदान करना

ब्रह्मोवाच

इति पृष्टा मया देवी विनयावनतेन च।
उवाच वचनं श्लक्ष्णमाद्या भगवती हि सा॥ १

देव्युवाच

सदैकत्वं न भेदोऽस्ति सर्वदैव ममास्य च।
योऽसौ साहमहं योऽसौ भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्॥ २

आवयोरन्तरं सूक्ष्मं यो वेद मतिमान्हि सः।
विमुक्तः स तु संसारान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ३

एकमेवाद्वितीयं वै ब्रह्म नित्यं सनातनम्।
द्वैतभावं पुनर्याति काल उत्पित्सुसंज्ञके॥ ४

ब्रह्माजी बोले—अत्यन्त नम्र भावसे मेरे पूछनेपर वे आद्या भगवती मधुर वचन कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—मैं और परब्रह्म सदा एक ही हैं; कोई भेद नहीं है; क्योंकि जो वे हैं, वही मैं हूँ, और जो मैं हूँ, वही वे हैं। बुद्धिभ्रमसे ही हम दोनोंमें भेद दिखायी पड़ता है॥ २॥

इसलिये हम दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको जो बुद्धिमान् जानता है, वह संसारके बन्धनसे छूटकर सदाके लिये मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

ब्रह्म अद्वितीय, एक, नित्य एवं सनातन है; केवल सृष्टि-रचनाके समय वह पुनः द्वैतभावको प्राप्त होता है॥ ४॥

यथाद्वीपस्तथोपाधेर्योगात्सञ्जायते द्विधा।
छायेवादर्शमध्ये वा प्रतिबिम्बं तथावयोः॥ ५

भेद उत्पत्तिकाले वै सर्गार्थं प्रभवत्यज।
दृश्यादृश्यविभेदोऽयं द्वैविध्ये सति सर्वथा॥ ६

नाहं स्त्री न पुमांश्चाहं न क्लीबं सर्गसंक्षये।
सर्गे सति विभेदः स्यात्कल्पितोऽयं धिया पुनः॥ ७

अहं बुद्धिरहं श्रीश्च धृतिः कीर्तिः स्मृतिस्तथा।
श्रद्धा मेधा दया लज्जा क्षुधा तृष्णा तथा क्षमा॥ ८

कान्तिः शान्तिः पिपासा च निद्रा तन्द्रा जराजरा।
विद्याविद्या स्पृहा वाञ्छा शक्तिश्चाशक्तिरेव च॥ ९

वसा मज्जा च त्वक्चाहं दृष्टिर्वागनृतानृता।
परा मध्या च पश्यन्ती नाड्योऽहं विविधाश्च याः॥ १०

किं नाहं पश्य संसारे मद्वियुक्तं किमस्ति हि।
सर्वमेवाहमित्येवं निश्चयं विद्धि पद्मज॥ ११

एतैर्मे निश्चितै रूपैर्विहीनं किं वदस्व मे।
तस्मादहं विधे चास्मिन्सर्गे वै वितताभवम्॥ १२

नूनं सर्वेषु देवेषु नानानामधरा ह्यहम्।
भवामि शक्तिरूपेण करोमि च पराक्रमम्॥ १३

गौरी ब्राह्मी तथा रौद्री वाराही वैष्णवी शिवा।
वारुणी चाथ कौबेरी नारसिंही च वासवी॥ १४

उत्पन्नेषु समस्तेषु कार्येषु प्रविशामि तान्।
करोमि सर्वकार्याणि निमित्तं तं विधाय वै॥ १५

जले शीतं तथा वह्नावौष्ण्यं ज्योतिर्दिवाकरे।
निशानाथे हिमा कामं प्रभवामि यथा तथा॥ १६

जिस प्रकार एक ही दीपक उपाधिभेदसे दो प्रकारका दिखायी देता है अथवा दर्पणमें पड़ती हुई छाया दर्पणभेदसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं और ब्रह्म एक होते हुए भी उपाधिभेदसे अनेक हो जाते हैं॥ ५॥

हे अज! जगत्का निर्माण करनेके लिये सृष्टिकालमें भेद दिखता ही है। तब दृश्यादृश्यकी प्रतीति होना अनिवार्य ही है; क्योंकि बिना दोके सृष्टि होना असम्भव है॥ ६॥

सृष्टिके प्रलयकालमें मैं न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न ही नपुंसक हूँ। परंतु जब पुनः सृष्टि होने लगती है, तब पूर्ववत् यह भेद बुद्धिके द्वारा उत्पन्न हो जाता है॥ ७॥

मैं ही बुद्धि, श्री, धृति, कीर्ति, स्मृति, श्रद्धा, मेधा, दया, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, क्षमा, कान्ति, शान्ति, पिपासा, निद्रा, तन्द्रा, जरा, अजरा, विद्या, अविद्या, स्पृहा, वाञ्छा, शक्ति, अशक्ति, वसा, मज्जा, त्वचा, दृष्टि, सत्यासत्य वाणी, परा, मध्या, पश्यन्ती आदि वाणीके भेद और जो विभिन्न प्रकारकी नाड़ियाँ हैं—वह सब मैं ही हूँ॥ ८—१०॥

हे पद्मयोने! आप यह देखिये कि इस संसारमें मैं क्या नहीं हूँ और मुझसे पृथक् कौन-सी वस्तु है? इसलिये आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि सब कुछ मैं ही हूँ॥ ११॥

हे विधे! मेरे इन निश्चित रूपोंके अतिरिक्त यदि कुछ हो तो मुझे बतायें, अतः इस सृष्टिमें सर्वत्र मैं ही व्याप्त हूँ॥ १२॥

निश्चित ही मैं समस्त देवताओंमें भिन्न-भिन्न नामोंसे विराजती हूँ तथा शक्तिरूपसे प्रकट होती हूँ और पराक्रम करती हूँ। मैं ही गौरी, ब्राह्मी, रौद्री, वाराही, वैष्णवी, शिवा, वारुणी, कौबेरी, नारसिंही और वासवी शक्तिके रूपमें विद्यमान हूँ। सब कार्योंके उपस्थित होनेपर मैं उन देवताओंमें प्रविष्ट हो जाती हूँ और देवविशेषको निमित्त बनाकर सब कार्य सम्पन्न कर देती हूँ॥ १३—१५॥

जलमें शीतलता, अग्निमें उष्णता, सूर्यमें प्रकाश और चन्द्रमामें ज्योत्स्नाके रूपमें मैं ही यथेच्छ प्रकट होती हूँ॥ १६॥

मया त्यक्तं विधे नूनं स्पन्दितुं न क्षमं भवेत्।
जीवजातं च संसारे निश्चयोऽयं ब्रुवे त्वयि॥ १७

अशक्तः शङ्करो हन्तुं दैत्यान्किल मयोज्झितः।
शक्तिहीनं नरं ब्रूते लोकश्चैवातिदुर्बलम्॥ १८

रुद्रहीनं विष्णुहीनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं यथा सर्वे प्रवदन्ति नराधमम्॥ १९

पतितः स्खलितो भीतः शान्तः शत्रुवशं गतः।
अशक्तः प्रोच्यते लोके नारुद्रः कोऽपि कथ्यते॥ २०

तद्विद्धि कारणं शक्तिर्यथा त्वं च सिसृक्षसि।
भविता च यदा युक्तः शक्त्या कर्ता तदाखिलम्॥ २१

तथा हरिस्तथा शम्भुस्तथेन्द्रोऽथ विभावसुः।
शशी सूर्यो यमस्त्वष्टा वरुणः पवनस्तथा॥ २२

धरा स्थिरा तदा धर्तुं शक्तियुक्ता यदा भवेत्।
अन्यथा चेदशक्ता स्यात्परमाणोश्च धारणे॥ २३

तथा शेषस्तथा कूर्मो येऽन्ये सर्वे च दिग्गजाः।
मद्युक्ता वै समर्थाश्च स्वानि कार्याणि साधितुम्॥ २४

जलं पिबामि सकलं संहरामि विभावसुम्।
पवनं स्तम्भयाम्यद्य यदिच्छामि तथाचरम्॥ २५

तत्त्वानां चैव सर्वेषां कदापि कमलोद्भव।
असतां भावसन्देहः कर्तव्यो न कदाचन॥ २६

कदाचित्प्रागभावः स्यात्प्रध्वंसाभाव एव वा।
मृत्पिण्डेषु कपालेषु घटाभावो यथा तथा॥ २७

हे विधे! इस संसारका कोई भी जीव मुझसे रहित होकर स्पन्दन भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। यह मेरा निश्चय है। इसे मैं आपको बता दे रही हूँ। इसी प्रकार यदि मैं शिवको छोड़ दूँ तो वे शक्तिहीन होकर दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसीलिये तो संसारमें भी अत्यन्त दुर्बल पुरुषको लोग शक्तिहीन कहते हैं॥ १७-१८॥

लोग अधम मनुष्यको विष्णुहीन या रुद्रहीन नहीं कहते बल्कि उसे शक्तिहीन ही कहते हैं। जो गिर गया हो, स्खलित हो गया हो, भयभीत हो, निश्चेष्ट हो गया हो अथवा शत्रुके वशीभूत हो गया हो—वह संसारमें अरुद्र नहीं कहा जाता, अपितु अशक्त ही कहा जाता है॥ १९-२०॥

[हे ब्रह्मन्!] आप ही जब सृष्टि करना चाहते हैं तब उसमें शक्ति ही कारण है, ऐसा जानिये। जब आप शक्तिसे युक्त होते हैं तभी सृष्टिकर्ता हो पाते हैं॥ २१॥

इसी प्रकार विष्णु, शिव, इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, यम, विश्वकर्मा, वरुण और वायुदेवता भी शक्ति-सम्पन्न होकर ही अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ २२॥

पृथ्वी भी जब शक्तिसे युक्त होती है, तब स्थिर होकर सबको धारण करनेमें समर्थ होती है। यदि वह शक्तिहीन हो जाय तो एक परमाणुको भी धारण करनेमें समर्थ न हो सकेगी। शेषनाग, कच्छप एवं दसों दिग्गज मेरी शक्ति पाकर ही अपने-अपने कार्य सम्पन्न करनेमें समर्थ हो पाते हैं॥ २३-२४॥

यदि मैं चाहूँ तो सम्पूर्ण संसारका जल पी जाऊँ, अग्निको नष्ट कर दूँ और वायुकी गति रोक दूँ; मैं जैसा चाहती हूँ, वैसा करती हूँ॥ २५॥

हे कमलोद्भव! सभी तत्त्वोंके अभावका सन्देह अब आप कभी न कीजिये; क्योंकि कभी-कभी किसी वस्तुविशेषका प्रागभाव (जिसका आदि न हो, पर अन्त हो) तथा प्रध्वंसाभाव (जिसका आदि हो, किंतु अन्त न हो) उसी प्रकार हो जाता है, जिस प्रकार मिट्टीके पिण्डोंमें और कपालोंमें घटाभाव प्रतीत होता है॥ २६-२७॥

अद्यात्र पृथिवी नास्ति क्व गतेति विचारणे।
सञ्जाता इति विज्ञेया अस्यास्तु परमाणवः॥ २८

शाश्वतं क्षणिकं शून्यं नित्यानित्यं सकर्तृकम्।
अहंकाराग्रिमञ्चैव सप्तभेदैर्विवक्षितम्॥ २९

गृहाणाज महत्तत्त्वमहङ्कारस्तदुद्भवः।
ततः सर्वाणि भूतानि रचयस्व यथा पुरा॥ ३०

व्रजन्तु स्वानि धिष्ण्यानि विरच्य निवसन्तु वः।
स्वानि स्वानि च कार्याणि कुर्वन्तु दैवभाविताः॥ ३१

गृहाणेमां विधे शक्तिं सुरूपां चारुहासिनीम्।
महासरस्वतीं नाम्ना रजोगुणयुतां वराम्॥ ३२

श्वेताम्बरधरां दिव्यां दिव्यभूषणभूषिताम्।
वरासनसमारूढां क्रीडार्थं सहचारिणीम्॥ ३३

एषा सहचरी नित्यं भविष्यति वराङ्गना।
मावमंस्था विभूतिं मे मत्वा पूज्यतमां प्रियाम्॥ ३४

गच्छ त्वमनया सार्धं सत्यलोकं बताशु वै।
बीजाच्चतुर्विधं सर्वं समुत्पादय साम्प्रतम्॥ ३५

लिङ्गकोशाश्च जीवैस्तैः सहिताः कर्मभिस्तथा।
वर्तन्ते संस्थिताः काले तान्कुरु त्वं यथा पुरा॥ ३६

कालकर्मस्वभावाख्यैः कारणैः सकलं जगत्।
स्वभावस्वगुणैर्युक्तं पूर्ववत्सचराचरम्॥ ३७

माननीयस्त्वया विष्णुः पूजनीयश्च सर्वदा।
सत्त्वगुणप्रधानत्वादधिकः सर्वतः सदा॥ ३८

यदा यदा हि कार्यं वो भविष्यति दुरत्ययम्।
करिष्यति पृथिव्यां वै अवतारं तदा हरिः॥ ३९

तिर्यग्योनावथान्यत्र मानुषीं तनुमाश्रितः।
दानवानां विनाशं वै करिष्यति जनार्दनः॥ ४०

आज यहाँ पृथ्वी नहीं है, तब वह कहाँ चली गयी? इसपर विचार करनेपर वह पृथ्वी परमाणुरूपसे विद्यमान तो है ही—ऐसा जानना चाहिये॥ २८॥

शाश्वत, क्षणिक, शून्य, नित्य, अनित्य, सकर्तृक और अहंकार—इन सात भेदोंमें सृष्टिका वर्णन विवक्षित है। इसलिये हे अज! अब आप उस महत्तत्त्वको ग्रहण कीजिये, जिससे अहंकारकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् आप पूर्वकी भाँति समस्त प्राणियोंकी रचना कीजिये॥ २९-३०॥

अब आपलोग जाइये तथा अपने-अपने लोकोंकी रचना करके निवास कीजिये और दैवका चिन्तन करते हुए अपने-अपने कार्य कीजिये॥ ३१॥

हे विधे! सुन्दर रूपवाली, दिव्य हासवाली, रजोगुणसे युक्त, श्रेष्ठ श्वेत वस्त्र धारण करनेवाली, अलौकिक, दिव्याभूषणोंसे विभूषित, उत्तम आसनपर विराजमान इस महासरस्वती नामक शक्तिको क्रीडाविहारके लिये अपनी सहचरीके रूपमें स्वीकार कीजिये॥ ३२-३३॥

यह सुन्दरी सदा आपकी सहचरी बनकर रहेगी। इस पूज्यतम प्रेयसीको मेरी विभूति समझकर कभी भी इसका तिरस्कार न कीजियेगा। अब आप शीघ्र ही इसे साथ लेकर सत्यलोकमें प्रस्थान करें और तत्त्वबीजसे चार प्रकारकी समस्त सृष्टि करनेमें तत्पर हो जायँ॥ ३४-३५॥

समस्त जीवों और कर्मोंके साथ जो लिंगकोश हैं, उन्हें पूर्वकी भाँति आप प्रतिष्ठित कर दें। काल, कर्म और स्वभाव नामवाले—इन कारणोंसे समस्त चराचर सृष्टिको पूर्वकी भाँति अपने-अपने स्वभाव और गुणोंसे युक्त कर दीजिये॥ ३६-३७॥

विष्णु आपके सदा माननीय और पूजनीय हैं; क्योंकि सत्त्वगुणकी प्रधानताके कारण वे सर्वदा सब प्रकारसे श्रेष्ठ हैं॥ ३८॥

जब-जब आपलोगोंका कोई कठिन कार्य उपस्थित होगा, उस समय भगवान् श्रीहरि पृथ्वीपर अवतार ग्रहण करेंगे॥ ३९॥

कहीं तिर्यक्-योनिमें तथा कहीं मानवयोनिमें शरीर धारण करके ये भगवान् जनार्दन दानवोंका अवश्य विनाश करेंगे॥ ४०॥

भवोऽयं ते सहायश्च भविष्यति महाबलः।
समुत्पाद्य सुरान्सर्वान्विहरस्व यथासुखम्॥ ४१

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या नानायज्ञैः सदक्षिणैः।
यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः॥ ४२

मन्नामोच्चारणात्सर्वे मखेषु सकलेषु च।
सदा तृप्ताश्च सन्तुष्टा भविष्यध्वं सुराः किल॥ ४३

शिवश्च माननीयो वै सर्वथा यत्तमोगुणः।
यज्ञकार्येषु सर्वेषु पूजनीयः प्रयत्नतः॥ ४४

यदा पुनः सुराणां वै भयं दैत्याद्भविष्यति।
शक्तयो मे तदोत्पन्ना हरिष्यन्ति सुविग्रहाः॥ ४५

वाराही वैष्णवी गौरी नारसिंही सदाशिवा।
एताश्चान्याश्च कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव॥ ४६

नवाक्षरमिमं मन्त्रं बीजध्यानयुतं सदा।
जपन्सर्वाणि कार्याणि कुरु त्वं कमलोद्भव॥ ४७

मन्त्राणामुत्तमोऽयं वै त्वं जानीहि महामते।
हृदये ते सदा धार्यः सर्वकामार्थसिद्धये॥ ४८

इत्युक्त्वा मां जगन्माता हरिं प्राह शुचिस्मिता।
विष्णो व्रज गृहाणेमां महालक्ष्मीं मनोहराम्॥ ४९

सदा वक्षःस्थले स्थाने भविता नात्र संशयः।
क्रीडार्थं ते मया दत्ता शक्तिः सर्वार्थदा शिवा॥ ५०

त्वयेयं नावमन्तव्या माननीया च सर्वदा।
लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं योगो वै विहितो मया॥ ५१

ये महाबली शंकरजी भी आपकी सहायता करेंगे। अब आप समस्त देवताओंका सृजन करके स्वेच्छया सुखपूर्वक विहार कीजिये॥ ४१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यलोग दक्षिणायुक्त नानाविध यज्ञोंसे विधिपूर्वक पूर्ण मनोयोगके साथ आप सबकी पूजा करेंगे॥ ४२॥

हे देवो! सभी यज्ञोंमें मेरे नामका उच्चारण करते ही आप सभी लोग निश्चितरूपसे सदैव तृप्त एवं सन्तुष्ट हो जायँगे॥ ४३॥

आपलोग तमोगुणसम्पन्न शंकरजीका सब प्रकारसे सम्मान कीजियेगा और सभी यज्ञकार्योंमें प्रयत्नपूर्वक उनकी पूजा कीजियेगा॥ ४४॥

जब कभी भी देवताओंके समक्ष दैत्योंसे भय उत्पन्न होगा, उस समय सुन्दर रूपोंवाली वाराही, वैष्णवी, गौरी, नारसिंही, सदाशिवा तथा अन्य देवियोंके रूपमें मेरी शक्तियाँ प्रकट होकर उनका भय दूर कर देंगी। अतः हे कमलोद्भव! अब आप अपने कार्य करें॥ ४५-४६॥

हे कमलोद्भव! बीज तथा ध्यानसे युक्त मेरे इस नवाक्षर मन्त्रका जप करते हुए आप समस्त कार्य कीजिये॥ ४७॥

हे महामते! आप इस मन्त्रको सभी मन्त्रोंसे श्रेष्ठ जानिये। सभी मनोरथोंकी सिद्धिके लिये आपको इस मन्त्रको सदा अपने हृदयमें धारण करना चाहिये॥ ४८॥

मुझसे ऐसा कहकर पवित्र मुसकानवाली जगज्जननीने भगवान् विष्णुसे कहा—हे विष्णो! अब आप इन मनोहर महालक्ष्मीको स्वीकार कीजिये और यहाँसे प्रस्थान कीजिये॥ ४९॥

ये आपके वक्षःस्थलमें सदा निवास करेंगी, इसमें सन्देह नहीं है। आपके लीलाविनोदके लिये मैंने आपको यह सभी मनोरथ प्रदान करनेवाली कल्याणमयी शक्ति अर्पित की है॥ ५०॥

आप इनका सर्वदा सम्मान करते रहियेगा और कभी भी तिरस्कार न कीजियेगा। लक्ष्मीनारायण नामक यह संयोग मेरे द्वारा ही रचा गया है॥ ५१॥

जीवनार्थं कृता यज्ञा देवानां सर्वथा मया।
अविरोधेन सङ्गेन वर्तितव्यं त्रिभिः सदा॥ ५२

त्वं च वेधाः शिवस्त्वेते देवा मद्गुणसम्भवाः।
मान्याः पूज्याश्च सर्वेषां भविष्यन्ति न संशयः॥ ५३

ये विभेदं करिष्यन्ति मानवा मूढचेतसः।
निरयं ते गमिष्यन्ति विभेदान्नात्र संशयः॥ ५४

यो हरिः स शिवः साक्षाद्यः शिवः स स्वयं हरिः।
एतयोर्भेदमातिष्ठन्नरकाय भवेन्नरः॥ ५५

तथैव द्रुहिणो ज्ञेयो नात्र कार्या विचारणा।
अपरो गुणभेदोऽस्ति शृणु विष्णो ब्रवीमि ते॥ ५६

मुख्यः सत्त्वगुणस्तेऽस्तु परमात्मविचिन्तने।
गौणत्वेऽपि परौ ख्यातौ रजोगुणतमोगुणौ॥ ५७

लक्ष्म्या सह विकारेषु नानाभेदेषु सर्वदा।
रजोगुणयुतो भूत्वा विहरस्वानया सह॥ ५८

वाग्बीजं कामराजं च मायाबीजं तृतीयकम्।
मन्त्रोऽयं त्वं रमाकान्त मद्दत्तः परमार्थदः॥ ५९

गृहीत्वा जप तं नित्यं विहरस्व यथासुखम्।
न ते मृत्युभयं विष्णो न कालप्रभवं भयम्॥ ६०

यावदेष विहारो मे भविष्यति सुनिश्चयः।
संहरिष्याम्यहं सर्वं यदा विश्वं चराचरम्॥ ६१

भवन्तोऽपि तदा नूनं मयि लीना भविष्यथ।
स्मर्तव्योऽयं सदा मन्त्रः कामदो मोक्षदस्तथा॥ ६२

उद्गीथेन च संयुक्तः कर्तव्यः शुभमिच्छता।
कारयित्वाथ वैकुण्ठं वस्तव्यं पुरुषोत्तम॥ ६३

विहरस्व यथाकामं चिन्तयन्मां सनातनीम्।

मैंने देवताओंकी जीविकाके लिये ही यज्ञोंकी रचना की है। आप तीनों विरोधभावनासे रहित होकर व्यवहार कीजिये॥ ५२॥

आप (विष्णु), ब्रह्मा, शिव तथा ये सभी देवता मेरे ही प्रभावसे प्रादुर्भूत हुए हैं। अतएव निस्सन्देह आपलोग सभी प्राणियोंके मान्य एवं पूज्य होंगे॥ ५३॥

जो अज्ञानी मनुष्य इनमें भेदभाव करेंगे, वे इस विभेदके कारण नरकमें पड़ेंगे। इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

जो विष्णु हैं, वे ही साक्षात् शिव हैं और जो शिव हैं, वे ही स्वयं विष्णु हैं। इन दोनोंमें भेद रखनेवाला मनुष्य नरकगामी होता है॥ ५५॥

ब्रह्माजीके सम्बन्धमें भी ऐसा ही जानिये; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे विष्णो! गुणोंके कारण इनमें जो भेद हैं; उन्हें आपको बता रही हूँ, आप सुनें॥ ५६॥

परमात्म-चिन्तनकी दृष्टिसे आपका मुख्य गुण सत्त्वगुण है। दूसरे रजोगुण तथा तमोगुण आपके लिये गौण हैं। अतएव विभिन्न भेदयुक्त विकारोंमें रजोगुणसे सम्पन्न होकर आप इन लक्ष्मीके साथ विहार कीजिये॥ ५७-५८॥

हे लक्ष्मीकान्त! मेरे द्वारा आपको दिया गया वाग्बीज (ऐं), कामराज (क्लीं) तथा तृतीय मायाबीज (ह्रीं) इनसे युक्त यह मन्त्र परमार्थ प्रदान करनेवाला है। आप इसे ग्रहण करके निरन्तर इसका जप कीजिये तथा सुखपूर्वक विहार कीजिये। हे विष्णो! ऐसा करनेसे आपको न तो मृत्युभय होगा और न कालजनित भय ही होगा॥ ५९-६०॥

जबतक मैं विहार करती रहूँगी, तबतक यह सृष्टि निश्चितरूपसे रहेगी और जब मैं सम्पूर्ण चराचर जगत्का संहार कर दूँगी, उस समय आपलोग भी मुझमें समाहित हो जायँगे। आपलोग समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रका अनवरत स्मरण करते रहें॥ ६१-६२॥

अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको इस मन्त्रके साथ 'ओंकार' जोड़कर चतुरक्षर मन्त्रका जप करना चाहिये। हे पुरुषोत्तम! अब आप वैकुण्ठका निर्माण कराकर उसीमें निवास कीजिये और मुझ सनातनीका सतत ध्यान करते हुए इच्छापूर्वक विहार कीजिये॥ ६३ १/२॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा वासुदेवं सा त्रिगुणा प्रकृतिः परा॥ ६४

निर्गुणा शङ्करं देवमवोचदमृतं वचः।

देव्युवाच

गृहाण हर गौरीं त्वं महाकालीं मनोहराम्॥ ६५

कैलासं कारयित्वा च विहरस्व यथासुखम्।
मुख्यस्तमोगुणस्तेऽस्तु गौणौ सत्त्वरजोगुणौ॥ ६६

विहरासुरनाशार्थं रजोगुणतमोगुणौ।
तपस्तप्तं तथा कर्तुं स्मरणं परमात्मनः॥ ६७

शर्व सत्त्वगुणः शान्तो गृहीतव्यः सदानघ।
सर्वथा त्रिगुणा यूयं सृष्टिस्थित्यन्तकारकाः॥ ६८

एभिर्विहीनं संसारे वस्तु नैवात्र कुत्रचित्।
वस्तुमात्रं तु यद् दृश्यं संसारे त्रिगुणं हि तत्॥ ६९

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति।
निर्गुणः परमात्मासौ न तु दृश्यः कदाचन॥ ७०

सगुणा निर्गुणा चाहं समये शङ्करोत्तमा।
सदाहं कारणं शम्भो न च कार्यं कदाचन॥ ७१

सगुणा कारणत्वाद्वै निर्गुणा पुरुषान्तिके।
महत्तत्त्वमहङ्कारो गुणाः शब्दादयस्तथा॥ ७२

कार्यकारणरूपेण संसरन्ते त्वहर्निशम्।
सदुद्भूतस्त्वहङ्कारस्तेनाहं कारणं शिवा॥ ७३

अहङ्कारश्च मे कार्यं त्रिगुणोऽसौ प्रतिष्ठितः।
अहङ्कारान्महत्तत्त्वं बुद्धिः सा परिकीर्तिता॥ ७४

महत्तत्त्वं हि कार्यं स्यादहङ्कारो हि कारणम्।
तन्मात्राणि त्वहङ्कारादुत्पद्यन्ते सदैव हि॥ ७५

ब्रह्माजी बोले—[हे नारद!] विष्णुसे ऐसा कहकर उस त्रिगुणात्मिका तथा निर्गुणा परा प्रकृतिने देवाधिदेव शंकरसे अमृतमय वचन कहा॥ ६४$\frac{१}{२}$॥

देवी बोलीं—हे हर! आप इन मनोहरा महाकाली गौरीको अंगीकार कीजिये और कैलासशिखरकी रचना कराकर वहाँ सुखपूर्वक विहार कीजिये। तमोगुण आपमें प्रधानगुणके रूपमें विद्यमान रहेगा और सत्त्वगुण तथा रजोगुण आपमें गौणरूपसे व्याप्त रहेंगे॥ ६५-६६॥

रजोगुण और तमोगुणके द्वारा दैत्योंके विनाशके लिये आप वहाँ विहार करें और हे शर्व! परमात्माका स्मरण-ध्यान करनेके लिये आप तप कर चुके हैं। आप शान्तिप्रधान सत्त्वगुणका अवलम्बन कीजिये। हे अनघ! त्रिगुणात्मक आप तीनों देवता सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले हैं॥ ६७-६८॥

संसारमें कहीं भी कोई भी वस्तु इन तीनों गुणोंसे रहित नहीं है। जगत्की जितनी भी दृश्य वस्तुएँ हैं, वे सब त्रिगुणात्मिका हैं॥ ६९॥

इस संसारमें ऐसी कोई भी दृश्य वस्तु गुणरहित न तो हुई और न होगी। निर्गुण तो एकमात्र वह परमात्मा ही है और वह कभी दृष्टिगोचर नहीं होता॥ ७०॥

हे शंकर! समय आनेपर मैं श्रेष्ठरूपा ही वह सगुणा या निर्गुणा हो जाती हूँ। हे शम्भो! मैं सर्वदा कारण हूँ, कार्य कभी नहीं॥ ७१॥

किसी कारणविशेषसे मैं सगुणा होती हूँ तो उस परमपुरुषके सांनिध्यमें निर्गुणा रहती हूँ। महत्तत्त्व, अहंकार, तीनों गुण और शब्द आदि विषय कार्य-कारणभावसे निरन्तर गतिशील रहते हैं। सत्से अहंकार उत्पन्न होता है; इसीलिये मैं शिवा सबका कारण हूँ॥ ७२-७३॥

अहंकार मेरा कार्य है और वह त्रिगुणात्मक रूपमें प्रतिष्ठित है। उस अहंकारसे महत्तत्त्व उत्पन्न होता है; उसीको बुद्धि कहा गया है॥ ७४॥

वह महत्तत्त्व कार्य है तथा अहंकार उसका कारण है। इसी अहंकारसे तन्मात्राओंकी सदा

कारणं पञ्चभूतानां तानि सर्वसमुद्भवे।
कर्मेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च॥ ७६

महाभूतानि पञ्चैव मनः षोडशमेव च।
कार्यञ्च कारणञ्चैव गणोऽयं षोडशात्मकः॥ ७७

परमात्मा पुमानाद्यो न कार्यं न च कारणम्।
एवं समुद्भवः शम्भो सर्वेषामादिसम्भवे॥ ७८

संक्षेपेण मया प्रोक्तस्तव तत्र समुद्भवः।
व्रजन्त्वद्य विमानेन कार्यार्थं मम सत्तमाः॥ ७९

स्मरणाद्दर्शनं तुभ्यं दास्येऽहं विषमे स्थिते।
स्मर्तव्याहं सदा देवाः परमात्मा सनातनः॥ ८०

उभयोः स्मरणादेव कार्यसिद्धिरसंशयम्।

ब्रह्मोवाच

इत्युक्त्वा विससर्जास्मान्दत्त्वा शक्तीः सुसंस्कृताः॥ ८१
विष्णवेऽथ महालक्ष्मीं महाकालीं शिवाय च।

महासरस्वतीं मह्यं स्थानात्तस्माद्विसर्जिताः॥ ८२

स्थलान्तरं समासाद्य ते जाताः पुरुषा वयम्।
चिन्तयन्तः स्वरूपं तत्प्रभाव परमाद्भुतम्॥ ८३

विमानं तत्समासाद्य संरूढास्तत्र वै त्रयः।
न द्वीपोऽसौ न सा देवी सुधासिन्धुस्तथैव च।
पुनर्दृष्टं विमानं वै तत्रास्माभिर्न चान्यथा॥ ८४

आसाद्य तस्मिन्विितते विमाने
प्राप्ता वयं पङ्कजसन्निधौ च।
महार्णवे यत्र हतौ दुरत्ययौ
मुरारिणा तौ मधुकैटभाख्यौ॥ ८५

उत्पत्ति होती है। वे तन्मात्राएँ [पृथ्वी, जल आदि] पंचमहाभूतोंका कारण हैं। सबके सृजनमें पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूत और सोलहवाँ मन—यह षोडशात्मक समूह कार्य और कारणरूप होता है॥ ७५—७७॥

वह आदिपुरुष परमात्मा न कार्य है और न कारण। हे शिव! सबकी प्रारम्भिक सृष्टिके उत्पत्तिका यही क्रम है॥ ७८॥

अभी मैंने आपलोगोंकी यह उत्पत्ति-परम्परा संक्षेपमें कही। इसलिये हे श्रेष्ठदेव! अब आपलोग मेरा कार्य सम्पन्न करनेके लिये इस विमानसे प्रस्थान करें॥ ७९॥

जब आपलोगोंपर कोई संकट आयेगा, तब मैं स्मरणमात्रसे तत्काल आपलोगोंको दर्शन दूँगी। अतः हे देवो! आपलोग सर्वदा मेरा तथा सनातन परमात्माका स्मरण करते रहें। हम दोनोंके स्मरणसे ही निःसन्देह आपलोगोंकी कार्यसिद्धि होगी॥ ८०½॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! ऐसा कहकर भगवतीने अपनी अद्भुत शक्तियाँ प्रदानकर हमें विदा किया। विष्णुको महालक्ष्मी, शिवको महाकाली और मुझे महासरस्वती प्रदान करके उस स्थानसे विदा कर दिया॥ ८१-८२॥

उनके स्वरूप तथा अत्यन्त अद्भुत प्रभावका स्मरण करते हुए अन्य स्थानपर पहुँचकर हमलोग पुनः पुरुषरूपमें हो गये॥ ८३॥

तब लौटकर हम तीनों पुनः उसी विमानमें बैठ गये। [हमने देखा कि] वहाँ न तो वह मणिद्वीप है, न वे महामाया हैं और न वह सुधासागर है। उस समय वहाँ उस विमानके अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता था॥ ८४॥

उस विशाल विमानमें बैठकर हम तीनों पुनः उसी महासागरमें विद्यमान उस कमलके निकट पहुँचे, जहाँ भगवान् विष्णुने मधु-कैटभ नामक दुर्धर्ष दैत्योंका वध किया था॥ ८५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
ब्रह्मणे श्रीदेव्या उपदेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

◆

अथ सप्तमोऽध्यायः

ब्रह्माजीके द्वारा परमात्माके स्थूल और सूक्ष्म स्वरूपका वर्णन; सात्त्विक, राजस और तामस शक्तिका वर्णन; पंचतन्मात्राओं, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा पंचीकरण-क्रियाद्वारा सृष्टिकी उत्पत्तिका वर्णन

ब्रह्मोवाच

एवंप्रभावा सा देवी मया दृष्टाथ विष्णुना।
शिवेनापि महाभाग तास्ता देव्यः पृथक्पृथक्॥ १

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य पितुर्वाक्यं नारदो मुनिसत्तमः।
पप्रच्छ परमप्रीतः प्रजापतिमिदं वचः॥ २

नारद उवाच

पुमानाद्योऽविनाशी यो निर्गुणोऽच्युतिरव्ययः।
दृष्टश्चैवानुभूतश्च तद्वदस्व पितामह॥ ३

त्रिगुणा वीक्षिता शक्तिर्निर्गुणा कीदृशी पितः।
तस्याः स्वरूपं मे ब्रूहि पुरुषस्य च पद्मज॥ ४

यदर्थञ्च मया तप्तं श्वेतद्वीपे महातपः।
दृष्टाः सिद्धा महात्मानस्तापसा गतमन्यवः॥ ५

परमात्मा न सम्प्राप्तो मयासौ दृष्टिगोचरः।
पुनः पुनस्तपस्तीव्रं कृतं तत्र प्रजापते॥ ६

भवता सगुणा शक्तिर्दृष्टा तात मनोरमा।
निर्गुणा निर्गुणश्चैव कीदृशौ तौ वदस्व मे॥ ७

व्यास उवाच

इति पृष्टः पिता तेन नारदेन प्रजापतिः।
उवाच वचनं तथ्यं स्मितपूर्वं पितामहः॥ ८

ब्रह्मोवाच

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद् दृष्टिगोचरम्।
दृश्यञ्च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम्॥ ९

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! [नारद!] मैंने, विष्णु तथा शंकरने इस प्रकारके प्रभाववाली उन देवीको तथा अन्य सभी देवियोंको पृथक्-पृथक् देखा॥ १॥

व्यासजी बोले—पिताका यह वचन सुनकर मुनिवर नारदने परम प्रसन्न होकर प्रजापति ब्रह्माजीसे यह बात पूछी॥ २॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने जिन आदि, अविनाशी, निर्गुण, अच्युत तथा अव्यय परमपुरुषका दर्शन तथा अनुभव किया, उनके विषयमें बताइये॥ ३॥

हे पिताजी! आपने त्रिगुणसम्पन्ना देवीका दर्शन तो कर लिया है; निर्गुणा शक्ति कैसी होती हैं? हे कमलोद्भव! अब आप मुझे उन शक्तिका तथा परमपुरुषका स्वरूप बताइये॥ ४॥

जिनके लिये मैंने श्वेतद्वीपमें महान् तपश्चर्या की और क्रोधशून्य सिद्धपुरुषों, महात्माओं तथा तपस्वियोंके दर्शन किये; वे परमात्मा मुझे दृष्टिगोचर नहीं हुए। हे प्रजापते! इसके बाद भी [उनके दर्शनार्थ] मैंने वहाँ बार-बार घोर तपस्या की॥ ५-६॥

हे तात! आपने मनोरमा सगुणा शक्तिका दर्शन किया है। आप मुझे बताइये कि निर्गुणा शक्ति और निर्गुण परमात्मा कैसे हैं?॥ ७॥

व्यासजी बोले—नारदजीने अपने पिता प्रजापति ब्रह्मासे ऐसा पूछा, तब उन पितामहने मुसकराते हुए रहस्यपूर्ण वचन कहा॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—हे मुने! निर्गुणतत्त्वका रूप दृष्टिगोचर नहीं हो सकता; क्योंकि जो दिखायी पड़ता है, वह तो नाशवान् होता है। जो रूपरहित है, वह दृष्टिगोचर कैसे हो सकता है?॥ ९॥

निर्गुणा दुर्गमा शक्तिर्निर्गुणश्च तथा पुमान्।
ज्ञानगम्यौ मुनीनां तु भावनीयौ तथा पुनः॥ १०

अनादिनिधनौ विद्धि सदा प्रकृतिपूरुषौ।
विश्वासेनाभिगम्यौ तौ नाविश्वासेन कर्हिचित्॥ ११

चैतन्यं सर्वभूतेषु यत्तद्विद्धि परात्मकम्।
तेजः सर्वत्रगं नित्यं नानाभावेषु नारद॥ १२

तच्च ताञ्च महाभाग व्यापकौ विद्धि सर्वगौ।
ताभ्यां विहीनं संसारे न किञ्चिद्वस्तु विद्यते॥ १३

तौ विचिन्त्यौ सदा देहे मिश्रीभूतौ सदाव्ययौ।
एकरूपौ चिदात्मानौ निर्गुणौ निर्मलावुभौ॥ १४

या शक्तिः परमात्मासौ योऽसौ सा परमा मता।
अन्तरं नैतयोः कोऽपि सूक्ष्मं वेद च नारद॥ १५

अधीत्य सर्वशास्त्राणि वेदान्साङ्गांश्च नारद।
न जानाति तयोः सूक्ष्ममन्तरं विरतिं विना॥ १६

अहङ्कारकृतं सर्वं विश्वं स्थावरजङ्गमम्।
कथं तद्रहितं पुत्र भवेत्कल्पशतैरपि॥ १७

निर्गुणं सगुणः पुत्र कथं पश्यति चक्षुषा।
सगुणं च महाबुद्धे चेतसा संविचारय॥ १८

पित्तेनाच्छादिता जिह्वा चक्षुश्च मुनिसत्तम।
कटु पित्तं विजानाति रसं रूपं न तत्तथा॥ १९

गुणैः समावृतं चेतः कथं जानाति निर्गुणम्।
अहङ्कारोद्भवं तच्च तद्विहीनं कथं भवेत्॥ २०

निर्गुणा शक्तिको जान पाना अत्यन्त दुरूह है और उसी प्रकार निर्गुण परमपुरुषका साक्षात्कार भी अति दुष्कर है। ये दोनों केवल मुनिजनोंके द्वारा ज्ञानसे प्राप्त तथा अनुभूत किये जा सकते हैं॥ १०॥

आप प्रकृति तथा पुरुष दोनोंको आदि-अन्तसे सर्वदा रहित जानिये। ये दोनों विश्वाससे जाने जा सकते हैं; अविश्वाससे कभी नहीं॥ ११॥

हे नारद! सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य विद्यमान है, उसे ही परमात्मस्वरूप जानो। तेजःस्वरूप वे परमात्मा सर्वत्र व्याप्त हैं तथा सदा विराजमान हैं॥ १२॥

हे महाभाग! उन परमपुरुष तथा प्रकृतिको सर्वव्यापी तथा सर्वगामी समझिये। इस संसारमें कोई भी पदार्थ उन दोनोंसे रहित नहीं है॥ १३॥

सर्वदा अव्यय, एकरूप, चिदात्मा, निर्गुण तथा निर्मल—उन दोनों (प्रकृति-पुरुष)-को एक ही शरीरमें सम्मिश्रित मानकर सदा इनका चिन्तन करना चाहिये॥ १४॥

हे नारद! जो शक्ति हैं, वे ही परमात्मा हैं और जो परमात्मा हैं, वे ही परमशक्ति मानी गयी हैं। इन दोनोंमें विद्यमान सूक्ष्म अन्तरको कोई भी नहीं जान सकता॥ १५॥

हे नारद! कोई भी व्यक्ति समस्त शास्त्रों तथा अंगोंसहित वेदोंका अध्ययन करके भी विरक्तिके बिना उन दोनोंके सूक्ष्म अन्तरको नहीं जान पाता है॥ १६॥

हे पुत्र! जड-चेतनरूप यह सारा जगत् अहंकारसे निर्मित है; ऐसी स्थितिमें सैकड़ों कल्पोंमें भी यह अहंकारसे रहित कैसे हो सकता है?॥ १७॥

हे पुत्र! सगुण मनुष्य निर्गुणको नेत्रसे कैसे देख सकता है? अतः हे महाबुद्धे! उन परमात्माके सगुण रूपका मनसे सम्यक् ध्यान करते रहो॥ १८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! पित्तसे आच्छादित जिह्वा जिस प्रकार यथार्थ रसका अनुभव न करके केवल कटुरसका अनुभव करती है तथा पित्ताच्छादित नेत्र यथार्थ रूप न देखकर केवल पीले रंगको ही देखता है, उसी प्रकार गुणोंसे आच्छादित मन उस निर्गुण परमात्माको कैसे जान पायेगा? क्योंकि मन भी तो अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह मन अहंकारसे रहित कैसे

यावन्न गुणविच्छेदस्तावत्तद्दर्शनं कुतः।
तं पश्यति तदा चित्ते यदाहङ्कारवर्जितः॥ २१

नारद उवाच

स्वरूपं देवदेवेश त्रयाणामेव विस्तरात्।
गुणानां यत्स्वरूपोऽस्ति ह्यहङ्कारस्त्रिरूपकः॥ २२
सात्त्विको राजसश्चैव तामसश्च तथापरः।
विभेदेन स्वरूपाणि वदस्व पुरुषोत्तम॥ २३
यज्ज्ञात्वा विप्रमुच्येऽहं ज्ञानं तद्वद मे प्रभो।
गुणानां लक्षणान्येव विततानि विभागशः॥ २४

ब्रह्मोवाच

त्रयाणां शक्तयस्तिस्रस्तद् ब्रवीमि तवानघ।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिरर्थशक्तिस्तथापरा॥ २५
सात्त्विकस्य ज्ञानशक्ती राजसस्य क्रियात्मिका।
द्रव्यशक्तिस्तामसस्य तिस्रश्च कथितास्तव॥ २६
तेषां कार्याणि वक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः।
तामस्या द्रव्यशक्तेश्च शब्दस्पर्शसमुद्भवः॥ २७
रूपं रसश्च गन्धश्च तन्मात्राणि प्रचक्षते।
शब्दैकगुणमाकाशं वायुः स्पर्शगुणस्तथा॥ २८
सुरूपैकगुणोऽग्निश्च जलं रसगुणात्मकम्।
पृथ्वी गन्धगुणा ज्ञेया सूक्ष्माण्येतानि नारद॥ २९
दशैतानि मिलित्वा तु द्रव्यशक्तियुतानि वै।
तामसाहङ्कारजः स्यात्सर्गस्तदनुवृत्तिकः॥ ३०
राजस्याश्च क्रियाशक्तेरुत्पन्नानि शृणुष्व मे।
श्रोत्रं त्वग्रसना चक्षुर्घ्राणं चैव च पञ्चमम्॥ ३१
ज्ञानेन्द्रियाणि चैतानि तथा कर्मेन्द्रियाणि च।
वाक्पाणिपादपायुश्च गुह्यान्तानि च पञ्च वै॥ ३२
प्राणोऽपानश्च व्यानश्च समानोदानवायवः।
पञ्चदश मिलित्वैव राजसः सर्ग उच्यते॥ ३३
साधनानि किलैतानि क्रियाशक्तिमयानि च।
उपादानं किलैतेषां चिदनुवृत्तिरुच्यते॥ ३४

हो सकता है? जबतक अन्तःकरण गुणोंसे रहित नहीं होता तबतक परमात्माका दर्शन कैसे सम्भव है? जब मनुष्य अहंकारविहीन हो जाता है, तब वह अपने हृदयमें उनका साक्षात्कार कर लेता है॥ १९—२१॥

नारदजी बोले—हे देवदेवेश! तीनों गुणोंका जो स्वरूप है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये और त्रिगुणात्मक अहंकारके स्वरूपका भी वर्णन कीजिये। हे पुरुषोत्तम! सात्त्विक, राजस तथा तीसरे तामस अहंकारके स्वरूप-भेदको बताइये। इस प्रकार गुणोंके विस्तृत लक्षणोंको विभागपूर्वक मुझको बताइये। हे प्रभो! मुझे ऐसा ज्ञान दीजिये जिसे जानकर मैं पूर्णरूपेण मुक्त हो जाऊँ॥ २२—२४॥

ब्रह्माजी बोले—हे निष्पाप! इस त्रिविध अहंकारकी तीन शक्तियाँ हैं, मैं उन्हें बताता हूँ। वे हैं—ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति तथा तीसरी अर्थशक्ति॥ २५॥

उनमें सात्त्विक अहंकारकी ज्ञानशक्ति, राजसकी क्रियाशक्ति और तामसकी द्रव्यशक्ति—ये तीन शक्तियाँ आपको बता दीं॥ २६॥

हे नारद! अब मैं उनके कार्योंको सम्यक् रूपसे बताऊँगा, सुनिये। तामसी द्रव्यशक्ति (अर्थशक्ति)-से उत्पन्न शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—ये तन्मात्राएँ कही गयी हैं। आकाशका एकमात्र गुण शब्द, वायुका गुण स्पर्श, अग्निका गुण रूप, जलका गुण रस तथा पृथ्वीका गुण गन्ध है—ऐसा जानना चाहिये। हे नारद! ये तन्मात्राएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं॥ २७—२९॥

द्रव्यशक्तिसे युक्त इन दसों (पाँच तन्मात्राओं तथा उनके पाँच गुणों)-से मिलकर तामस अहंकारकी अनुवृत्तिसे सृष्टिकी रचना होती है॥ ३०॥

अब राजसी क्रियाशक्तिसे उत्पन्न होनेवाली इन्द्रियोंके विषयमें मुझसे सुनिये। श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र और नासिका—ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा वाणी, हाथ, पैर, गुदा और गुह्यांग—ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ उससे उत्पन्न हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—ये पाँच वायु होती हैं। इन पन्द्रह (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच वायु)-से मिलकर होनेवाली सृष्टि राजसी सृष्टि कही जाती है। ये सभी साधन क्रियाशक्तिसे सदा युक्त रहते हैं और इनके उपादानकारणको चित्-अनुवृत्ति कहा जाता है॥ ३१—३४॥

ज्ञानशक्तिसमायुक्ताः सात्त्विकाच्च समुद्भवाः।
दिशो वायुश्च सूर्यश्च वरुणश्चाश्विनावपि॥ ३५

ज्ञानेन्द्रियाणां पञ्चानां पञ्चाधिष्ठातृदेवताः।
चन्द्रो ब्रह्मा तथा रुद्रः क्षेत्रज्ञश्च चतुर्थकः॥ ३६

इत्यन्तःकरणाख्यस्य बुद्ध्यादेश्चाधिदैवतम्।
चत्वार्येव तथा प्रोक्ताः किलाधिष्ठातृदेवताः॥ ३७

मनसा सह चैतानि नूनं पञ्चदशैव तु।
सात्त्विकस्य तु सर्गोऽयं सात्त्विकाख्यः प्रकीर्तितः॥ ३८

स्थूलसूक्ष्मादिभेदेन द्वे रूपे परमात्मनः।
ज्ञानरूपं निराकारं निदानं तत्प्रचक्षते॥ ३९

साधकस्य तु ध्यानादौ स्थूलरूपं प्रचक्षते।
शरीरं सूक्ष्ममेवेदं पुरुषस्य प्रकीर्तितम्॥ ४०

मम चैव शरीरं वै सूत्रमित्यभिधीयते।
स्थूलं शरीरं वक्ष्यामि ब्रह्मणः परमात्मनः॥ ४१

शृणु नारद यत्नेन यच्छ्रुत्वा विप्रमुच्यते।
तन्मात्राणि पुरोक्तानि भूतसूक्ष्माणि यानि वै॥ ४२

पञ्चीकृत्य तु तान्येव पञ्चभूतसमुद्भवः।
पञ्चीकरणभेदोऽयं शृणु संवदतः किल॥ ४३

प्रथमं रसतन्मात्रामुपादाय मनस्यपि।
कल्पयेच्च तथा तद्द्वै यथा भवति चोदकम्॥ ४४

शिष्टानां चैव भूतानामंशान्कृत्वा पृथक्पृथक्।
उदके मिश्रयेच्चांशान्कृते रसमये ततः॥ ४५

तदा भूतविभागे च चैतन्ये च प्रकाशिते।

दिशाएँ, वायु, सूर्य, वरुण और दोनों अश्विनीकुमार ज्ञानशक्तिसे युक्त हैं और ये सात्त्विक अहंकारसे उत्पन्न हुए हैं। पाँचों ज्ञानेन्द्रियोंके ये ही पाँच अधिष्ठातृदेवता हैं। इसी प्रकार बुद्धि आदि अन्तःकरणचतुष्टयके चन्द्रमा, ब्रह्मा, रुद्र तथा क्षेत्रज्ञ—ये अधिदेव हैं। ये चारों अधिष्ठातृदेवता कहे गये हैं। मनसहित ये सब पन्द्रह होते हैं। यह सात्त्विक अहंकारकी सृष्टि है और 'सात्त्विकी सृष्टि' कही गयी है॥ ३५—३८॥

स्थूल और सूक्ष्मभेदसे परमात्माके दो रूप होते हैं, उनमें ज्ञानरूप निराकारस्वरूप सबका कारण कहा गया है॥ ३९॥

साधकके ध्यान आदि कार्योंके लिये परमात्माके स्थूल रूपकी उपासना कही गयी है। यह उस परमपुरुषका सूक्ष्म शरीर ही बताया गया है॥ ४०॥

मेरा यह शरीर सूत्रसंज्ञक है। अब मैं उस परब्रह्म परमात्माके स्थूल विराट् स्वरूपका वर्णन करूँगा। हे नारद! आप उसे सुनें, जिसे सावधानीसे सुनकर मनुष्य मुक्त हो जाता है। इसके पहले मैंने गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द—इन पंच तन्मात्राओं तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—इन सूक्ष्म पंच महाभूतोंका वर्णन विस्तारसे कर दिया है॥ ४१-४२॥

उन्हीं पाँचोंको मिलाकर पंचीकरणकी क्रियासे परमात्माने पंचभूतमय देहकी सृष्टि की है। अब मैं पंचीकरणका भेद बता रहा हूँ, ध्यान देकर सुनिये—॥ ४३॥

सबसे पहले रसरूप तन्मात्राका मनमें निश्चय करके जिस स्थूल रूपमें जल होता है, वैसी ही उसकी दो अंशोंमें भावना करे॥ ४४॥

उसी प्रकार अवशिष्ट चार भूतोंके भी दो-दो भाग करके, उसमेंसे आधे भागको पृथक् कर ले। शेष आधे अंशको चार प्रकारसे अलग करके आधे भागसे रहित उन अंशोंमें मिला दे। रस तन्मात्राको आधे भाग जलमें मिलाकर अवशिष्टभूत तन्मात्राके आधेको चारों भागोंमें मिश्रित कर दे। ऐसा करनेसे जब रसमय स्थूल जल हो जाय तब अन्य चार भूतोंके पंचीकरणका विभाग करे। उन

चैतन्यस्य प्रवेशात्तु तदाहमिति संशयः ॥ ४६

प्रतीयमाने तेनैव विशेषेणाभिमानतः ।
आदिनारायणो देवो भगवानिति चोच्यते ॥ ४७

घनीभूतेऽथ भूतानां विभागे स्पष्टतां गते ।
वृद्धिं प्राप्य गुणैश्चेत्थमेकैकगुणवृद्धितः ॥ ४८

आकाशस्य गुणश्चैकः शब्द एव न चापरः ।
शब्दस्पर्शौ च वायोश्च द्वौ गुणौ परिकीर्तितौ ॥ ४९

अग्नेः शब्दश्च स्पर्शश्च रूपमेते त्रयो गुणाः ।
शब्दस्पर्शरूपरसाश्चत्वारो वै जलस्य च ॥ ५०

स्पर्शशब्दरसा रूपं गन्धश्च पृथिवीगुणाः ।
एवं मिलितयोगैश्च ब्रह्माण्डोत्पत्तिरुच्यते ॥ ५१

सर्वे जीवा मिलित्वैव ब्रह्माण्डांशसमुद्भवाः ।
चतुरशीतिलक्षाश्च प्रोक्ता वै जीवजातयः ॥ ५२

पंचीकृत पंचभूतोंमें अधिष्ठानताके कारण उनके प्रतिबिम्बरूपसे जब चैतन्य प्रविष्ट हो जाता है, तब उस पंचभूतात्मक शरीरमें 'अहम्' भावरूप संशय उत्पन्न हो जाता है। वह संशय स्पष्टरूपसे जब भासित होने लगता है, तब उस स्थूल शरीरमें देहाभिमानके साथ चैतन्य जाग्रत् होने लगता है, वही दिव्य चैतन्य आदिनारायण भगवान्, परमात्मा आदि नामोंसे पुकारा जाता है ॥ ४५—४७ ॥

इस प्रकार पंचीकरणसे सभी भूतोंका विभाग स्पष्ट हो जाने पर आकाश आदि सभी पंचभूत पूर्वोक्त तन्मात्राओंके कारण अपने-अपने विशेष गुणोंसे वृद्धिको प्राप्त होते हैं और एक-एक गुणकी वृद्धिसे एक-एक भूत उत्पन्न हो जाता है ॥ ४८ ॥

आकाशका केवल एकमात्र गुण शब्द है, दूसरा नहीं। वायुके शब्द और स्पर्श—ये दो गुण कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण अग्निके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप और रस—ये चार गुण जलके हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध—ये पाँच गुण पृथ्वीके हैं। इस प्रकार इन पंचीकृत महाभूतोंके योगसे ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति कही जाती है। ब्रह्माण्डके अंशसे उत्पन्न सभी जीवोंको मिलाकर चौरासी लाख जीव-योनियाँ कही गयी हैं ॥ ४९—५२ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
तत्त्वनिरूपणवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

* * *

अथाष्टमोऽध्यायः

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणका वर्णन

ब्रह्मोवाच

सर्गोऽयं कथितस्तात यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना ।
गुणानां रूपसंस्थां वै शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १

सत्त्वं प्रीत्यात्मकं ज्ञेयं सुखात्प्रीतिसमुद्भवः ।
आर्जवं च तथा सत्यं शौचं श्रद्धा क्षमा धृतिः ॥ २

अनुकम्पा तथा लज्जा शान्तिः सन्तोष एव च ।
एतैः सत्त्वप्रतीतिश्च जायते निश्चला सदा ॥ ३

ब्रह्माजी बोले—हे तात! आपने जो मुझसे पूछा था, वह सृष्टिका वर्णन मैंने कर दिया। अब गुणोंका स्वरूप कहता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ १ ॥

सत्त्वगुणको प्रीतिस्वरूप समझना चाहिये, वह प्रीति सुखसे उत्पन्न होती है। सरलता, सत्य, शौच, श्रद्धा, क्षमा, धैर्य, कृपा, लज्जा, शान्ति और सन्तोष—इन लक्षणोंसे सदैव निश्चल सत्त्वगुणकी प्रतीति होती है ॥ २-३ ॥

श्वेतवर्णं तथा सत्त्वं धर्मे प्रीतिकरं सदा।
सच्छ्रद्धोत्पादकं नित्यमसच्छ्रद्धानिवारकम्॥ ४

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च तथापरा।
श्रद्धा तु त्रिविधा प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ५

रक्तवर्णं रजः प्रोक्तमप्रीतिकरमद्भुतम्।
अप्रीतिर्दुःखयोगत्वाद्भवत्येव सुनिश्चिता॥ ६

प्रद्वेषोऽथ तथा द्रोहो मत्सरः स्तम्भ एव च।
उत्कण्ठा च तथा निद्रा श्रद्धा तत्र च राजसी॥ ७

मानो मदस्तथा गर्वो रजसा किल जायते।
प्रत्येतव्यं रजस्त्वेतैर्लक्षणैश्च विचक्षणैः॥ ८

कृष्णवर्णं तमः प्रोक्तं मोहनं च विषादकृत्।
आलस्यं च तथाज्ञानं निद्रा दैन्यं भयं तथा॥ ९

विवादश्चैव कार्पण्यं कौटिल्यं रोष एव च।
वैषम्यं वातिनास्तिक्यं परदोषानुदर्शनम्॥ १०

प्रत्येतव्यं तमस्त्वेतैर्लक्षणैः सर्वथा बुधैः।
तामस्या श्रद्धया युक्तं परतापोपपादकम्॥ ११

सत्त्वं प्रकाशयितव्यं नियन्तव्यं रजः सदा।
संहर्तव्यं तमः कामं जनेन शुभमिच्छता॥ १२

अन्योन्याभिभवाच्चैते विरुध्यन्ति परस्परम्।
तथान्योन्याश्रयाः सर्वे न तिष्ठन्ति निराश्रयाः॥ १३

सत्त्वं न केवलं क्वापि न रजो न तमस्तथा।
मिलिताश्च सदा सर्वे तेनान्योन्याश्रयाः स्मृताः॥ १४

अन्योन्यमिथुनाच्चैव विस्तारं कथयाम्यहम्।
शृणु नारद यज्ज्ञात्वा मुच्यते भवबन्धनात्॥ १५

सत्त्वगुणका वर्ण श्वेत है, यह सर्वदा धर्मके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है, सत्-श्रद्धाका आविर्भाव करता है तथा असत्-श्रद्धाको समाप्त करता है॥ ४॥

तत्त्वदर्शी मुनियोंने तीन प्रकारकी श्रद्धा बतलायी है—सात्त्विकी, राजसी एवं तीसरी तामसी॥ ५॥

रजोगुण रक्तवर्णवाला कहा गया है। यह आश्चर्य एवं अप्रीतिको उत्पन्न करता है। दुःखसे योगके कारण ही निश्चितरूपसे अप्रीति उत्पन्न होती है॥ ६॥

जहाँ ईर्ष्या, द्रोह, मत्सर, स्तम्भन, उत्कण्ठा एवं निद्रा होती है, वहाँ राजसी श्रद्धा रहती है॥ ७॥

अभिमान, मद और गर्व—ये सब भी राजसी श्रद्धासे ही उत्पन्न होते हैं। अतः विद्वान् मनुष्योंको चाहिये कि वे इन लक्षणोंद्वारा राजसी श्रद्धा समझ लें॥ ८॥

तमोगुणका वर्ण कृष्ण होता है। यह मोह और विषाद उत्पन्न करता है। आलस्य, अज्ञान, निद्रा, दीनता, भय, विवाद, कायरता, कुटिलता, क्रोध, विषमता, अत्यन्त नास्तिकता और दूसरोंके दोषको देखनेका स्वभाव—ये तामसिक श्रद्धाके लक्षण हैं। पण्डितजन इन लक्षणोंसे तामसी श्रद्धा जान लें; तामसी श्रद्धासे युक्त ये सभी लक्षण परपीड़ादायक हैं॥ ९—११॥

आत्मकल्याणकी इच्छा रखनेवालेको अपनेमें निरन्तर सत्त्वगुणका विकास करना चाहिये, रजोगुणपर नियन्त्रण रखना चाहिये तथा तमोगुणका नाश कर डालना चाहिये॥ १२॥

ये तीनों गुण एक-दूसरेका उत्कर्ष होनेकी दशामें परस्पर विरोध करने लगते हैं। ये सब एक-दूसरेके आश्रित हैं, निराश्रय होकर नहीं रहते॥ १३॥

सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुणमेंसे कोई एक अकेला कभी नहीं रह सकता; ये सभी सदैव मिलकर रहते हैं, इसीलिये ये अन्योन्याश्रय सम्बन्धवाले कहे गये हैं॥ १४॥

हे नारद! ध्यानसे सुनिये, अब मैं इनके अन्योन्याश्रय-सम्बन्धसे होनेवाले विस्तारका वर्णन करता हूँ, जिसे जानकर मनुष्य भव-बन्धनसे छुटकारा प्राप्त कर लेता है। इसमें आपको किसी प्रकारका

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यो ज्ञात्वेत्युक्तं मया वचः।
ज्ञातं तदनुभूतं यत्परिज्ञातं फले सति॥ १६

श्रवणाद्दर्शनाच्चैव सपद्येव महामते।
संस्कारानुभवाच्चैव परिज्ञातं न जायते॥ १७

श्रुतं तीर्थं पवित्रञ्च श्रद्धोत्पन्ना च राजसी।
निर्गतस्तत्र तीर्थे वै दृष्टं चैव यथाश्रुतम्॥ १८

स्नातस्तत्र कृतं कृत्यं दत्तं दानं च राजसम्।
स्थितस्तत्र कियत्कालं रजोगुणसमावृतः॥ १९

रागद्वेषान्न निर्मुक्तः कामक्रोधसमावृतः।
पुनरेव गृहं प्राप्तो यथापूर्वं तथास्थितः॥ २०

श्रुतं च नानुभूतं वै तेन तीर्थं मुनीश्वर।
न प्राप्तं च फलं यस्मादश्रुतं विद्धि नारद॥ २१

निष्पापत्वं फलं विद्धि तीर्थस्य मुनिसत्तम।
कृषेः फलं यथा लोके निष्पन्नान्नस्य भक्षणम्॥ २२

पापदेहविकारा ये कामक्रोधादयः परे।
लोभो मोहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः॥ २३

असूयेर्ष्याक्षमाशान्तिः पापान्येतानि नारद।
न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतो नरः॥ २४

कृते तीर्थे यदैतानि देहान्न निर्गतानि चेत्।
निष्फलः श्रम एवैकः कर्षकस्य यथा तथा॥ २५

श्रमेणापीडितं क्षेत्रं कृष्टा भूमिः सुदुर्घटा।
उप्तं बीजं महार्घं च हिता वृत्तिरुदाहृता॥ २६

सन्देह नहीं करना चाहिये। सम्यक् प्रकारसे जानकर ही मैंने यह बात कही है। मैंने पहले इसे जाना, तत्पश्चात् इसका अनुभव किया और पुनः परिणाम देखकर इसका परिज्ञान प्राप्त किया है॥ १५-१६॥

हे महामते! मात्र देख लेने, सुन लेने अथवा संस्कारजनित अपने अनुभवसे ही किसी भी वस्तुका तत्काल परिज्ञान नहीं हो जाता॥ १७॥

जैसे किसी पवित्र तीर्थके विषयमें सुनकर किसी व्यक्तिके हृदयमें राजसी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी और वह उस तीर्थमें चला गया। वहाँ पहुँचकर उसने वही देखा जैसा पहले सुना था। उस तीर्थमें उसने स्नान करके तीर्थकृत्य किया और राजसी दान भी किया। रजोगुणसे युक्त रहकर उस व्यक्तिने कुछ समयतक वहाँ तीर्थवास भी किया। किंतु ऐसा करके भी वह राग-द्वेषसे मुक्त नहीं हो पाया और काम-क्रोध आदि विकारोंसे आच्छादित ही रहा। पुनः अपने घर लौट आया और वह पूर्वकी भाँति वैसे ही रहने लगा॥ १८—२०॥

हे मुनीश्वर! उस व्यक्तिने तीर्थकी महिमा तो सुनी थी, किंतु उसका सम्यक् अनुभव नहीं किया। इसी कारण उसे तीर्थयात्राका कोई फल नहीं प्राप्त हुआ। अतः हे नारद! उसका सुनना न सुननेके बराबर समझें॥ २१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप यह जान लें कि तीर्थयात्राका फल पापसे छुटकारा प्राप्त करना है; यह वैसे ही है जैसे संसारमें कृषिका फल उत्पादित अन्नका भक्षण है॥ २२॥

जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, परदोषदर्शन, ईर्ष्या, सहनशीलताका अभाव और अशान्ति आदि हैं, वे पापमय शरीरके विकार हैं। हे नारद! जबतक ये पाप शरीरसे नहीं निकलते, तबतक मनुष्य पापी ही रहता है॥ २३-२४॥

तीर्थयात्रा करनेपर भी यदि ये पाप देहसे नहीं निकले तो तीर्थाटन करनेका वह परिश्रम उसी प्रकार व्यर्थ है, जैसे किसी किसानका। उस किसानने परिश्रमपूर्वक खेतको खोदा, अत्यन्त कठोर भूमिको जोता, उसमें महँगा बीज बोया और अन्य आवश्यक कार्य किये तथा फलप्राप्तिकी इच्छासे उसकी रक्षाके

अहोरात्रं परिक्लिष्टो रक्षणार्थं फलोत्सुकः।
काले सुप्तस्तु हेमन्ते वने व्याघ्रादिभिर्भृशम्॥ २७

भक्षितं शलभैः सर्वं निराशश्च कृतः पुनः।
तद्वत्तीर्थश्रमः पुत्र कष्टदो न फलप्रदः॥ २८

सत्त्वं समुत्कटं जातं प्रवृद्धं शास्त्रदर्शनात्।
वैराग्यं तत्फलं जातं तामसार्थेषु नारद॥ २९

प्रसह्याभिभवत्येव तद्रजस्तमसी उभे।
रजः समुत्कटं जातं प्रवृत्तं लोभयोगतः॥ ३०

तत्तथाभिभवत्येव तमःसत्त्वे तथा उभे।
तमस्तथोत्कटं भूत्वा प्रवृद्धं मोहयोगतः॥ ३१

तत्सत्त्वरजसी चोभे सङ्गम्याभिभवत्यपि।
विस्तरं कथयाम्यद्य यथाभिभवतीति वै॥ ३२

यदा सत्त्वं प्रवृद्धं वै मतिर्धर्मे स्थिता तदा।
न चिन्तयति बाह्यार्थं रजस्तमःसमुद्भवम्॥ ३३

अर्थं सत्त्वसमुद्भूतं गृह्णाति च न चान्यथा।
अनायासकृतं चार्थं धर्मं यज्ञं च वाञ्छति॥ ३४

सात्त्विकेष्वेव भोगेषु कामं वै कुरुते तदा।

राजसेषु न मोक्षार्थं तामसेषु पुनः कुतः॥ ३५

एवं जित्वा रजः पूर्वं ततश्च तमसो जयः।
सत्त्वं च केवलं पुत्र तदा भवति निर्मलम्॥ ३६

यदा रजः प्रवृद्धं वै त्यक्त्वा धर्मान् सनातनान्।
अन्यथाकुरुते धर्माच्छ्रद्धां प्राप्य तु राजसीम्॥ ३७

लिये दिन-रात अनेक कष्ट सहे, किंतु फल लगनेका समय हेमन्त-काल आनेपर वह सो गया, जिससे व्याघ्र आदि वन्य जन्तुओं तथा टिड्डियोंने उस फसलको खा लिया और अन्तमें वह किसान सर्वथा निराश हो गया। उसी प्रकार हे पुत्र! तीर्थमें किया गया वह श्रम भी कष्टदायक ही सिद्ध होता है, उसका कोई फल नहीं मिलता॥ २५—२८॥

हे नारद! शास्त्रके अवलोकनसे सत्त्वगुण समुन्नत होता है तथा बड़ी तेजीसे बढ़ता है। उसका फल यह होता है कि तामस पदार्थोंके प्रति वैराग्य हो जाता है॥ २९॥

वह सत्त्वगुण रज और तम—इन दोनोंको बलपूर्वक दबा देता है, लोभके कारण रजोगुण अत्यन्त तीव्र हो जाता है, वह बढ़ा हुआ रजोगुण सत्त्व तथा तम—इन दोनोंको दबा देता है। उसी प्रकार तमोगुण मोहके कारण तीव्रताको प्राप्त होकर सत्त्वगुण तथा रजोगुण—इन दोनोंको दबा देता है। ये गुण जिस प्रकार एक-दूसरेको दबाते हैं? उसे मैं यहाँपर विस्तारपूर्वक कह रहा हूँ॥ ३०—३२॥

जब सत्त्वगुण बढ़ता है, उस समय बुद्धि धर्ममें स्थित रहती है। उस समय वह रजोगुण या तमोगुणसे उत्पन्न बाह्य विषयोंका चिन्तन नहीं करती है॥ ३३॥

उस समय बुद्धि सत्त्वगुणसे उत्पन्न होनेवाले कार्यको अपनाती है; इसके अतिरिक्त वह अन्य कार्योंमें नहीं फँसती। बुद्धि बिना प्रयासके ही धर्म तथा यज्ञादि कर्ममें प्रवृत्त हो जाती है। मोक्षकी अभिलाषासे मनुष्य उस समय सात्त्विक पदार्थोंके भोगमें प्रवृत्त रहता है; वह राजसी भोगोंमें लिप्त नहीं होता, तब भला वह तमोगुणी कार्योंमें क्यों लगेगा?॥ ३४-३५॥

इस प्रकार पहले रजोगुणको जीत करके वह तमोगुणको पराजित करता है। हे तात! उस समय एकमात्र विशुद्ध सत्त्वगुण ही स्थित रहता है॥ ३६॥

जब मनुष्यके मनमें रजोगुणकी वृद्धि होती है, तब वह सनातन धर्मोंको त्यागकर राजसी श्रद्धाके वशीभूत हो विपरीत धर्माचरण करने लगता है॥ ३७॥

राजसादर्थसंवृद्धिस्तथा भोगस्तु राजसः।
सत्त्वं विनिर्गतं तेन तमसश्चापि निग्रहः॥ ३८

यदा तमो विवृद्धं स्यादुत्कटं सम्बभूव ह।
तदा वेदे न विश्वासो धर्मशास्त्रे तथैव च॥ ३९

श्रद्धां च तामसीं प्राप्य करोति च धनात्ययम्।
द्रोहं सर्वत्र कुरुते न शान्तिमधिगच्छति॥ ४०

जित्वा सत्त्वं रजश्चैव क्रोधनो दुर्मतिः शठः।
वर्तते कामचारेण भावेषु विततेषु च॥ ४१

एकं सत्त्वं न भवति रजश्चैकं तमस्तथा।
सहैवाश्रित्य वर्तन्ते गुणा मिथुनधर्मिणः॥ ४२

रजो विना न सत्त्वं स्याद्रजः सत्त्वं विना क्वचित्।
तमो विना न चैवैते वर्तन्ते पुरुषर्षभ॥ ४३

तमस्ताभ्यां विहीनं तु केवलं न कदाचन।
सर्वे मिथुनधर्माणो गुणाः कार्यान्तरेषु वै॥ ४४

अन्योन्यसंश्रिताः सर्वे तिष्ठन्ति न वियोजिताः।
अन्योन्यजनकाश्चैव यतः प्रसवधर्मिणः॥ ४५

सत्त्वं कदाचिच्च रजस्तमसी जनयत्युत।
कदाचित्तु रजः सत्त्वतमसी जनयत्यपि॥ ४६

कदाचित्तु तमः सत्त्वरजसी जनयत्युभे।
जनयन्त्येवमन्योन्यं मृत्पिण्डश्च घटं यथा॥ ४७

बुद्धिस्थास्ते गुणाः कामान्बोधयन्ति परस्परम्।
देवदत्तविष्णुमित्रयज्ञदत्तादयो यथा॥ ४८

रजोगुण बढ़नेसे धनकी वृद्धि होती है और भोग भी राजसी हो जाता है। उस दशामें सत्त्वगुण दूर चला जाता है और उससे तमोगुण भी दब जाता है॥ ३८॥

जब तमोगुणकी वृद्धि होती है और वह उत्कट हो जाता है, तब वेद तथा धर्मशास्त्रमें विश्वास नहीं रह जाता। उस समय मनुष्य तामसी श्रद्धा प्राप्त करके धनका दुरुपयोग करता है, सबसे द्रोह करने लगता है तथा उसे शान्ति नहीं मिलती। वह क्रोधी, दुर्बुद्धि तथा दुष्ट मनुष्य सत्त्व तथा रजोगुणको दबाकर अनेकविध तामसिक विचारोंमें लीन रहता हुआ मनमाना आचरण करने लगता है॥ ३९—४१॥

किसी भी प्राणीमें सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण अकेले नहीं रहते; अपितु मिश्रित धर्मवाले वे तीनों गुण एक-दूसरेके आश्रयीभूत होकर रहते हैं॥ ४२॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! रजोगुणके बिना सत्त्वगुण और सत्त्वगुणके बिना रजोगुण कदापि रह नहीं सकते। इसी प्रकार तमोगुणके बिना ये दोनों गुण नहीं रह सकते। इस प्रकार ये गुण परस्पर स्थित रहते हैं। सत्त्वगुण तथा रजोगुणके बिना तमोगुण नहीं रहता; क्योंकि इन मिश्रित धर्मवाले सभी गुणोंकी स्थिति कार्य-कारण-भावसे विभिन्न प्रकारकी होती है॥ ४३-४४॥

ये सभी गुण अन्योन्याश्रयभावसे विद्यमान रहते हैं, अलग-अलग भावसे नहीं। प्रसवधर्मी होनेके कारण ये एक-दूसरेके उत्पादक भी होते हैं॥ ४५॥

सत्त्वगुण कभी रजोगुणको और कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है; इसी तरह रजोगुण कभी सत्त्वगुणको तथा कभी तमोगुणको उत्पन्न करता है। इसी प्रकार तमोगुण कभी सत्त्वगुणको एवं कभी रजोगुणको भी उत्पन्न करता है। ये तीनों गुण आपसमें एक-दूसरेको उसी प्रकार उत्पन्न कर देते हैं, जिस प्रकार मिट्टीका लोंदा घड़ेको उत्पन्न कर देता है॥ ४६-४७॥

मनुष्योंकी बुद्धिमें स्थित ये तीनों गुण परस्पर कामनाओंको उसी प्रकार जाग्रत् करते हैं; जैसे देवदत्त, विष्णुमित्र और यज्ञदत्त आदि मिलकर काम करते हैं॥ ४८॥

यथा स्त्रीपुरुषश्चैव मिथुनौ च परस्परम्।
तथा गुणाः समायान्ति युग्मभावं परस्परम्॥ ४९

रजसो मिथुने सत्त्वं सत्त्वस्य मिथुने रजः।
उभे ते सत्त्वरजसी तमसो मिथुने विदुः॥ ५०

नारद उवाच

इत्येतत्कथितं पित्रा गुणरूपमनुत्तमम्।
श्रुत्वाप्येतत्स एवाहं ततोऽपृच्छं पितामहम्॥ ५१

जिस प्रकार स्त्री और पुरुष आपसमें मिथुन-भावको प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार ये तीनों गुण परस्पर युग्म-भावको प्राप्त रहते हैं॥ ४९॥

रजोगुणका युग्म-भाव होनेपर सत्त्वगुण, सत्त्वगुणका युग्म-भाव होनेपर रजोगुण और तमोगुणके युग्म-भावसे सत्त्वगुण तथा रजोगुण—ये दोनों उत्पन्न होते हैं—ऐसा कहा गया है॥ ५०॥

नारदजी बोले—इस प्रकार पिताजीने तीनों गुणोंके अत्युत्तम स्वरूपका वर्णन किया। इसे सुननेके पश्चात् मैंने पुनः पितामह ब्रह्माजीसे पूछा॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
गुणानां रूपसंस्थानादिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

गुणोंके परस्पर मिश्रीभावका वर्णन, देवीके बीजमन्त्रकी महिमा

नारद उवाच

गुणानां लक्षणं तात भवता कथितं किल।
न तृप्तोऽस्मि पिबन्मिष्टं त्वन्मुखात्प्रच्युतं रसम्॥ १

गुणानां तु परिज्ञानं यथावदनुवर्णय।
येनाहं परमां शान्तिमधिगच्छामि चेतसि॥ २

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तु पुत्रेण नारदेन महात्मना।
उवाच च जगत्कर्ता रजोगुणसमुद्भवः॥ ३

ब्रह्मोवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि गुणानां परिवर्णनम्।
सम्यङ् नाहं विजानामि यथामति वदामि ते॥ ४

सत्त्वं तु केवलं नैव कुत्रापि परिलक्ष्यते।
मिश्रीभावस्तु तेषां वै मिश्रत्वं प्रतिभाति वै॥ ५

यथा काचिद्वरा नारी सर्वभूषणभूषिता।
हावभावयुता कामं भर्तुः प्रीतिकरी भवेत्॥ ६

नारदजी बोले—हे तात! आपने गुणोंके लक्षणोंका वर्णन किया, किंतु आपके मुखसे निःसृत वाणीरूपी मधुर रसका पान करता हुआ मैं अभी भी तृप्त नहीं हुआ हूँ॥ १॥

अतएव अब आप इन गुणोंके सूक्ष्म ज्ञानका यथावत् वर्णन कीजिये, जिससे मैं अपने हृदयमें परम शान्तिका अनुभव कर सकूँ॥ २॥

व्यासजी बोले—अपने पुत्र महात्मा नारदके इस प्रकार पूछनेपर रजोगुणसे आविर्भूत सृष्टि-निर्माता ब्रह्माजीने कहा॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं गुणोंका विस्तृत वर्णन करूँगा; यद्यपि मैं इस विषयमें सम्यक् ज्ञान नहीं रखता फिर भी अपनी बुद्धिके अनुसार आपसे वर्णन कर रहा हूँ॥ ४॥

केवल सत्त्वगुण कहीं भी परिलक्षित नहीं होता है। गुणोंका परस्पर मिश्रीभाव होनेके कारण वह सत्त्वगुण भी मिश्रित दिखायी देता है॥ ५॥

जिस प्रकार सब भूषणोंसे विभूषित तथा हाव-भावसे युक्त कोई सुन्दरी स्त्री अपने पतिको विशेष प्रिय होती है तथा माता-पिता एवं बन्धु-बान्धवोंके

मातापित्रोस्तथा सैव बन्धुवर्गस्य प्रीतिदा।
दुःखं मोहं सपत्नीषु जनयत्यपि सैव हि॥ ७

एवं सत्त्वेन तेनैव स्त्रीत्वमापादितेन च।
रजसस्तमसश्चैव जनिता वृत्तिरन्यथा॥ ८

रजसा स्त्रीकृतेनैव तमसा च तथा पुनः।
अन्योन्यस्य समायोगादन्यथा प्रतिभाति वै॥ ९

अवस्थानात्स्वभावेषु न वै जात्यन्तराणि च।
लक्ष्यन्ते विपरीतानि योगान्नारद कुत्रचित्॥ १०

यथा रूपवती नारी यौवनेन विभूषिता।
लज्जामाधुर्ययुक्ता च तथा विनयसंयुता॥ ११

कामशास्त्रविधिज्ञा च धर्मशास्त्रेऽपि सम्मता।
भर्तुः प्रीतिकरी भूत्वा सपत्नीनां च दुःखदा॥ १२

मोहदुःखस्वभावस्था सत्त्वस्थेत्युच्यते जनैः।
तथा सत्त्वं विकुर्वाणमन्यभावं विभाति वै॥ १३

चौरैरुपद्रुतानां हि साधूनां सुखदा भवेत्।
दुःखा मूढा च दस्यूनां सैव सेना तथागुणा॥ १४

विपरीतप्रतीतिं वै जनयन्ति स्वभावतः।
यथा च दुर्दिनं जातं महामेघघनावृतम्॥ १५

विद्युत्स्तनितसंयुक्तं तिमिरेणावगुण्ठितम्।
सिञ्चद्भूमिं प्रवर्षद्वै तमोरूपमुदाहृतम्॥ १६

यदेतत्कर्षकाणां वै तदेवातीव दुर्दिनम्।
बीजोपस्करयुक्तानां सुखदं प्रभवत्युत॥ १७

अप्रच्छन्नगृहाणाञ्च दुर्भगानां विशेषतः।
तृणकाष्ठगृहीतानां दुःखदं गृहमेधिनाम्॥ १८

लिये भी प्रीतिकर होती है, किंतु वही स्त्री अपनी सौतोंके मनमें दुःख और मोह उत्पन्न करती है। इसी प्रकार सत्त्वगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर रजोगुण और तमोगुणसे मिलनेपर भिन्न वृत्ति उत्पन्न होती है। ऐसे ही रजोगुण तथा तमोगुणके स्त्रीभावापन्न होनेपर एक-दूसरेके परस्पर संयोगके कारण विपरीत भावना प्रतीत होती है॥ ६—९॥

हे नारद! यदि ये तीनों गुण परस्पर मिश्रित न होते तो उनके स्वभावमें एक-सी ही प्रवृत्ति रहती, किंतु तीनों गुणोंमें मिश्रण होनेके कारण ही विभिन्नताएँ दिखायी देती हैं॥ १०॥

जैसे कोई रूपवती स्त्री यौवन, लज्जा, माधुर्य तथा विनयसे युक्त हो, साथ ही वह धर्मशास्त्रके अनुकूल हो तथा कामशास्त्रको जाननेवाली हो, तो वह अपने पतिके लिये प्रीतिकर होती है; किंतु सौतोंके लिये कष्ट देनेवाली होती है॥ ११-१२॥

[सौतोंके लिये] मोह तथा दुःख देनेवाली होनेपर भी कुछ लोगोंके द्वारा वह सत्त्वगुणी कही जाती है और सत्त्वगुणके अनेक शुभ कार्य करनेपर भी वह सौतोंको विपरीत भाववाली प्रतीत होती है॥ १३॥

जैसे राजाकी सेना चोरोंसे पीड़ित सज्जनोंके लिये सुख देनेवाली होती है, किंतु वही सेना चोरोंके लिये दुःखदायिनी, मूढ़ तथा गुणहीन होती है॥ १४॥

इससे प्रकट होता है कि स्वाभाविक गुण भी विपरीत लक्षणोंवाले दीख पड़ते हैं। जैसे किसी दिन जब चारों ओर काले-काले मेघ घिर आये हों, बिजली चमक रही हो, मेघ गरज रहे हों, अन्धकारसे आच्छादित हो और घनघोर वर्षाके कारण सूखी भूमि सिंच रही हो, तब भी लोग उसे तमोरूप गाढ़ान्धकारसे व्याप्त दुर्दिन नामसे ही पुकारते हैं। एक ओर वही दुर्दिन किसानोंको खेत जोतने तथा बीज बोनेकी सुविधा देनेके कारण सुखदायी प्रतीत होता है, किंतु दूसरी ओर वही दुर्दिन उन अभागे गृहस्थोंके लिये दुःखदायी हो जाता है, जिनके घर अभी छाये नहीं जा सके हैं और जो तृण, काष्ठ आदिके संग्रहमें व्यस्त हैं। साथ ही वही दुर्दिन उन स्त्रियोंके हृदयमें शोक उत्पन्न करता है, जिनके पति परदेश गये हों।

प्रोषितभर्तृकाणां वै मोहदं प्रवदन्त्यपि।
स्वभावस्था गुणाः सर्वे विपरीता विभान्ति वै॥ १९

लक्षणानि पुनस्तेषां शृणु पुत्र ब्रवीम्यहम्।
लघुप्रकाशकं सत्त्वं निर्मलं विशदं सदा॥ २०

यदाङ्गानि लघून्येव नेत्रादीनीन्द्रियाणि च।
निर्मलं च तथा चेतो गृह्णाति विषयान्न तान्॥ २१

तदा सत्त्वं शरीरे वै मन्तव्यञ्च समुत्कटम्।
जृम्भां स्तम्भं च तन्द्रां च चलञ्चैव रजः पुनः॥ २२

यदा तदुत्कटं जातं देहे यस्य च कस्यचित्।
कलिं मृगयते कर्तुं गन्तुं ग्रामान्तरं तथा॥ २३

चलचित्तश्च सोऽत्यर्थं विवादे चोद्यतस्तथा।
गुरुमावरणं कामं तमो भवति तद्यदा॥ २४

तदाङ्गानि गुरूण्याशु प्रभवन्त्यावृतानि च।
इन्द्रियाणि मनः शून्यं निद्रां नैवाभिवाञ्छति॥ २५

गुणानां लक्षणान्येवं विज्ञेयानीह नारद।

नारद उवाच

विभिन्नलक्षणाः प्रोक्ताः पितामह गुणास्त्रयः॥ २६

कथमेकत्र संस्थाने कार्यं कुर्वन्ति शाश्वतम्।
परस्परं मिलित्वा हि विभिन्नाः शत्रवः किल॥ २७

एकत्रस्थाः कथं कार्यं कुर्वन्तीति वदस्व मे।

ब्रह्मोवाच

शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुणास्ते दीपवृत्तयः॥ २८

प्रदीपश्च यथा कार्यं प्रकरोत्यर्थदर्शनम्।
वर्तिस्तैलं यथार्चिश्च विरुद्धाश्च परस्परम्॥ २९

विरुद्धं हि तथा तैलमग्निना सह सङ्गतम्।
तैलं वर्तिविरोध्येव पावकोऽपि परस्परम्॥ ३०
एकत्रस्थाः पदार्थानां प्रकुर्वन्ति प्रदर्शनम्।

उसी प्रकार ये सत्त्वादि गुण अपनी स्वाभाविक परिस्थितिमें रहते हुए भी अन्य गुणोंसे मिलनेपर विपरीत दृष्टिगोचर होते हैं॥ १५—१९॥

हे पुत्र! अब मैं उन गुणोंके लक्षण पुनः बता रहा हूँ; सुनो। सत्त्वगुण सूक्ष्म, प्रकाशक, स्वच्छ, निर्मल एवं व्यापक होता है। जब मानवके सम्पूर्ण अंग और नेत्र आदि इन्द्रियाँ हल्के हों, मन निर्मल हो तथा वह उन राजस एवं तामस विषयोंको न ग्रहण करता हो, तब यह समझ लेना चाहिये कि शरीरमें अब सत्त्वगुण प्रधानरूपसे विद्यमान है। जब जिस किसीकी देहमें रजोगुण प्रधानरूपसे विद्यमान रहता है तब यह बार-बार जम्हाई, स्तम्भन, तन्द्रा तथा चंचलता उत्पन्न करता है। इसी प्रकार जब अत्यन्त कलह करनेका मन चाहता हो, अन्यत्र जानेकी इच्छा हो, चित्त चंचल हो और वाद-विवादमें उलझनेकी प्रवृत्ति हो, मनमें काम-भावनाका गहरा परदा पड़ जाय, तब यह समझ ले कि शरीरमें तमोगुणकी प्रधानता है। उस समय शरीरके अंग भारी हो जाते हैं, इन्द्रियाँ तामसिक भावोंके वशीभूत रहती हैं, चित्त विमूढ़ रहता है और वह निद्राकी इच्छा नहीं करता। हे नारद! इस प्रकार सभी गुणोंके लक्षण समझना चाहिये॥ २०—२५½॥

नारदजी बोले—हे पितामह! आपने तीनों गुणोंको भिन्न-भिन्न लक्षणोंवाला बताया, तो फिर ये एक स्थानमें होकर निरन्तर कार्य कैसे करते हैं? विपरीत होते हुए भी शत्रुरूप ये गुण एकत्र होकर परस्पर मिल करके किस प्रकार कार्य करते हैं; यह मुझे बताइये॥ २६-२७½॥

ब्रह्माजी बोले—हे पुत्र! सुनो, मैं बताता हूँ। उन तीनों गुणोंका स्वभाव दीपकके समान है। जैसे दीपकमें तेल, बत्ती और अग्निशिखा तीनों परस्पर विरोधी धर्मवाले हैं, परंतु तीनोंके सहयोगसे ही दीपक वस्तुओं आदिका दर्शन कराता है। यद्यपि आगके साथ मिला हुआ तेल आगका विरोधी है और तेल बत्ती तथा अग्निका विरोधी है तथापि वे एकत्र होकर वस्तुओंका दर्शन कराते हैं॥ २८—३०½॥

नारद उवाच

एवं प्रकृतिजाः प्रोक्ता गुणाः सत्यवतीसुत॥ ३१
विश्वस्य कारणं ते वै मया पूर्वं यथाश्रुतम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तं नारदेनाथ मम सर्वं सविस्तरम् ॥ ३२
गुणानां लक्षणं सर्वं कार्यं चैव विभागशः।
आराध्या परमा शक्तिर्यया सर्वमिदं ततम्॥ ३३
सगुणा निर्गुणा चैव कार्यभेदे सदैव हि।
अकर्ता पुरुषः पूर्णो निरीहः परमोऽव्ययः॥ ३४
करोत्येषा महामाया विश्वं सदसदात्मकम्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रः सूर्यश्चन्द्रः शचीपतिः॥ ३५
अश्विनौ वसवस्त्वष्टा कुबेरो यादसां पतिः।
वह्निर्वायुस्तथा पूषा सेनानीश्च विनायकः॥ ३६
सर्वे शक्तियुताः शक्ताः कर्तुं कार्याणि स्वानि च।
अन्यथा तेऽप्यशक्ता वै प्रस्पन्दितुमनीश्वराः॥ ३७
सा चैव कारणं राजन् जगतः परमेश्वरी।
समाराधय तां भूप कुरु यज्ञं जनाधिप॥ ३८
पूजनं परया भक्त्या तस्या एव विधानतः।
महालक्ष्मीर्महाकाली तथा महासरस्वती॥ ३९
ईश्वरी सर्वभूतानां सर्वकारणकारणम्।
सर्वकामार्थदा शान्ता सुखसेव्या दयान्विता॥ ४०
नामोच्चारणमात्रेण वाञ्छितार्थफलप्रदा।
देवैराराधिता पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः॥ ४१
मोक्षकामैश्च विविधैस्तापसैर्विजितात्मभिः।
अस्पष्टमपि यन्नाम प्रसङ्गेनापि भाषितम्॥ ४२
ददाति वाञ्छितानर्थान्दुर्लभानपि सर्वथा।
ऐ ऐ इति भयार्तेन दृष्ट्वा व्याघ्रादिकं वने॥ ४३

नारदजी बोले—हे सत्यवतीसुत व्यासजी! ये सत्त्वादि तीनों गुण भी प्रकृतिसे उत्पन्न कहे गये हैं और ये जगत्‌के कारण हैं, जैसा मैंने पहले भी सुना है॥ ३१$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार नारदजीने विस्तारपूर्वक गुणोंके लक्षण और उनके विभागोंके सहित कार्योंको भी मुझे बतलाया है। सर्वदा उन्हीं परमशक्तिकी आराधना करनी चाहिये, जिनसे यह समस्त संसार व्याप्त है। वे भगवती कार्यभेदसे सगुणा और निर्गुणा दोनों हैं। वह परमपुरुष तो अकर्ता, पूर्ण, निःस्पृह तथा परम अविनाशी है; ये महामाया ही सत् और असद्रूप जगत्‌की रचना करती हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, दोनों अश्विनीकुमार, आठों वसु, विश्वकर्मा, कुबेर, वरुण, अग्नि, वायु, पूषा, कुमार कार्तिकेय और गणपति—ये सभी देवता उन्हीं महामायाकी शक्तिसे युक्त होकर अपने-अपने कार्य करनेमें समर्थ होते हैं। हे मुनीश्वरो! यदि ऐसा न हो तो वे हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते॥ ३२—३७॥

हे राजन्! वे परमेश्वरी ही इस जगत्‌की परम कारण हैं, अतः हे नरपते! अब आप उन्हींकी आराधना करें, उन्हींका यज्ञ करें और परम भक्तिके साथ विधिवत् उन्हींका पूजन करें। वे ही महालक्ष्मी, महाकाली एवं महासरस्वती हैं। वे सब जीवोंकी अधीश्वरी, समस्त कारणोंकी एकमात्र कारण, सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली, शान्तस्वरूपिणी, सुखपूर्वक सेवनीय तथा दयासे परिपूर्ण हैं॥ ३८—४०॥

ये भगवती नामोच्चारणमात्रसे ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं। पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओं तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अनेक जितेन्द्रिय तपस्वियोंने उनकी आराधना की थी। किसी प्रसंगवश अस्पष्टरूपसे ही उच्चारित किया गया उनका नाम सर्वथा दुर्लभ मनोरथोंको भी पूर्ण कर देता है॥ ४१—४२$\frac{1}{2}$॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस सम्बन्धमें एक दृष्टान्त है—सत्यव्रत नामके एक मुनिने वनमें व्याघ्रादि हिंसक पशुओंको देखकर भयसे पीड़ित होकर 'ऐ-ऐ'

बिन्दुहीनमपीत्युक्तं वाञ्छितं प्रददाति वै।
तत्र सत्यव्रतस्यैव दृष्टान्तो नृपसत्तम॥ ४४

प्रत्यक्ष एव चास्माकं मुनीनां भावितात्मनाम्।
ब्राह्मणानां समाजेषु तस्योदाहरणं बुधैः॥ ४५

कथ्यमानं मया राजञ्छ्रुतं सर्वं सविस्तरम्।
अनक्षरो महामूर्खो नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः॥ ४६

श्रुत्वाक्षरं कोलमुखात्समुच्चार्य स्वयं ततः।
बिन्दुहीनं प्रसङ्गेन जातोऽसौ विबुधोत्तमः॥ ४७

ऐकारोच्चारणाद्देवी तुष्टा भगवती तदा।
चकार कविराजं तं दयार्द्रा परमेश्वरी॥ ४८

शब्दका उच्चारण किया था। उस बिन्दुरहित बीजमन्त्र (ऐं)-का उच्चारण करनेके फलस्वरूप उसे भगवतीने मनोवांछित फल प्रदान कर दिया था। यह दृष्टान्त हम पुण्यात्मा मुनियोंके लिये प्रत्यक्ष ही है॥ ४३—४४॥

हे राजन्! ब्राह्मणोंकी सभामें विद्वानोंके द्वारा उदाहरणके रूपमें उस सत्यव्रतके कहे जाते हुए सम्पूर्ण आख्यानको मैंने विस्तारपूर्वक सुना था। सत्यव्रत नामवाले उस निरक्षर तथा महामूर्ख ब्राह्मणने वह 'ऐ-ऐ' शब्द एक कोलके मुखसे सुनकर स्वयं भी उसका उच्चारण किया। बिन्दुरहित 'ऐं' बीजका उच्चारण करनेसे भी वह श्रेष्ठ विद्वान् हो गया। ऐकारके उच्चारणमात्रसे भगवती प्रसन्न हो गयीं और दयार्द्र होकर उन परमेश्वरीने उसे कविराज बना दिया॥ ४५—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
गुणपरिज्ञानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

देवीके बीजमन्त्रकी महिमाके प्रसंगमें सत्यव्रतका आख्यान

जनमेजय उवाच

कोऽसौ सत्यव्रतो नाम ब्राह्मणो द्विजसत्तमः।
कस्मिन्देशे समुत्पन्नः कीदृशश्च वदस्व मे॥ १

कथं तेन श्रुतः शब्दः कथमुच्चारितः पुनः।
सिद्धिश्च कीदृशी जाता तस्य विप्रस्य तत्क्षणात्॥ २

कथं तुष्टा भवानी सा सर्वज्ञा सर्वसंस्थिता।
विस्तरेण वदस्वाद्य कथामेतां मनोरमाम्॥ ३

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा राज्ञा व्यासः सत्यवतीसुतः।
उवाच परमोदारं वचनं रसवच्छुचि॥ ४

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्।
श्रुता मुनिसमाजेषु मया पूर्वं कुरूद्वह॥ ५

जनमेजय बोले—वह द्विजश्रेष्ठ सत्यव्रत नामक ब्राह्मण कौन था, वह किस देशमें पैदा हुआ था तथा कैसा था? यह मुझे बताइये॥ १॥

उस ब्राह्मणने 'ऐ' शब्द कैसे सुना और फिर स्वयं भी कैसे उसका उच्चारण किया? उच्चारण करते ही उसी क्षण उस ब्राह्मणको कैसी सिद्धि प्राप्त हुई? सर्वत्र विराजमान रहनेवाली तथा सब कुछ जाननेवाली वे भवानी उसपर किस प्रकार प्रसन्न हो गयीं? अब आप यह मनोरम कथा विस्तारपूर्वक मुझसे कहिये॥ २-३॥

सूतजी बोले—राजा जनमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत व्यासजी सरस, पवित्र एवं परम उदार वचन कहने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं वह पवित्र पौराणिक कथा कह रहा हूँ। हे कुरुनन्दन! पूर्वकालमें मुनियोंके समाजमें मैंने यह कथा सुनी थी॥ ५॥

एकदाहं कुरुश्रेष्ठ कुर्वंस्तीर्थाटनं शुचि।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं पावनं मुनिसेवितम्॥ ६

प्रणम्याहं मुनीन्सर्वान् स्थितस्तत्र वराश्रमे।
विधिपुत्रास्तु यत्रासञ्जीवन्मुक्ता महाव्रताः॥ ७

कथाप्रसङ्ग एवासीत्तत्र विप्रसमागमे।
जमदग्निस्तु पप्रच्छ मुनीनेवं सभास्थितः॥ ८

जमदग्निरुवाच

सन्देहोऽस्ति महाभागा मम चेतसि तापसाः।
समाजेषु मुनीनां वै निःसन्देहो भवाम्यहम्॥ ९

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो मघवा वरुणोऽनलः।
कुबेरः पवनस्त्वष्टा सेनानीश्च गणाधिपः॥ १०

सूर्योऽश्विनौ भगः पूषा निशानाथो ग्रहास्तथा।
आराधनीयतमः कोऽत्र वाञ्छितार्थफलप्रदः॥ ११

सुखसेव्यश्च सततं चाशुतोषश्च मानदाः।
ब्रुवन्तु मुनयः शीघ्रं सर्वज्ञाः संशितव्रताः॥ १२

एवं प्रश्ने कृते तत्र लोमशो वाक्यमब्रवीत्।
जमदग्ने शृणुष्वैतद्यत्पृष्टं वै त्वयाधुना॥ १३

सेवनीयतमा शक्तिः सर्वेषां शुभमिच्छताम्।
परा प्रकृतिराद्या च सर्वगा सर्वदा शिवा॥ १४

देवानां जननी सैव ब्रह्मादीनां महात्मनाम्।
आदिप्रकृतिमूलं सा संसारपादपस्य वै॥ १५

स्मृता चोच्चारिता देवी ददाति किल वाञ्छितम्।
सर्वदैवार्द्रचित्ता सा वरदानाय सेविता॥ १६

इतिहासं प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयः शुभम्।
अक्षरोच्चारणादेव यथा प्राप्तं द्विजेन वै॥ १७

कोसलेषु द्विजः कश्चिद्देवदत्तेति विश्रुतः।
अनपत्यश्चकारेष्टिं पुत्राय विधिपूर्वकम्॥ १८

हे कुरुश्रेष्ठ! एक बार तीर्थाटन करता हुआ मैं मुनियोंद्वारा सेवित पवित्र क्षेत्र नैमिषारण्यमें जा पहुँचा। वहाँ सभी मुनियोंको प्रणाम करके मैं एक उत्तम आश्रममें ठहर गया, जहाँ ब्रह्माके पुत्र महाव्रती एवं जीवन्मुक्त मुनि निवास कर रहे थे॥ ६-७॥

उस ब्राह्मणसमाजमें कथाका ही प्रसंग चल रहा था। सभामें उपस्थित महर्षि जमदग्निने सब मुनियोंसे यह पूछा—॥ ८॥

जमदग्नि बोले—हे महाभाग तपस्वियो! मेरे मनमें एक शंका है। निश्चय ही इस मुनिसमाजमें मैं शंकारहित हो जाऊँगा। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, कुबेर, वायु, विश्वकर्मा, कार्तिकेय, गणेश, सूर्य, दोनों अश्विनीकुमार, भग, पूषा, चन्द्रमा और सभी ग्रह—इन सबमें सबसे अधिक आराधनीय तथा अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला कौन है? उनमें कौन देवता सदा सेव्य और शीघ्र प्रसन्न होनेवाला है? हे मानद! हे सर्वज्ञ! हे व्रतधारी मुनिगण! आप हमें शीघ्र बतायें॥ ९—१२॥

इस प्रकार जमदग्निके प्रश्न करनेपर लोमश-ऋषिने कहा—हे जमदग्ने! आपने इस समय जो पूछा है, उसे सुनिये। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये वे एकमात्र महाशक्ति ही आराधनीय हैं। वे ही परा-प्रकृति आदिस्वरूपा, सर्वगामिनी, सर्वदायिनी और कल्याणकारिणी हैं। वे ही ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देवताओंकी जननी हैं और वे ही संसाररूपी वृक्षकी मूलरूपिणी आदिप्रकृति हैं॥ १३—१५॥

वे भगवती केवल नामका उच्चारण तथा स्मरण करते ही निश्चितरूपसे अभीष्ट फल प्रदान करती हैं। जो लोग उनकी उपासना करते हैं, उन्हें वरदान देनेके लिये वे सर्वदा दयालुचित्त रहती हैं॥ १६॥

हे मुनिगण! उनके नामाक्षरके उच्चारण-मात्रसे ही एक ब्राह्मणने जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त की थी, वह पवित्र वृत्तान्त मैं आपलोगोंसे कहता हूँ, सुनिये—॥ १७॥

कोसलदेशमें देवदत्त नामक एक विद्वान् ब्राह्मण रहता था। वह निःसन्तान था, इसलिये उसने पुत्रप्राप्तिके लिये विधिपूर्वक यज्ञ किया॥ १८॥

तमसातीरमास्थाय कृत्वा मण्डपमुत्तमम्।
द्विजानाहूय वेदज्ञान्सत्रकर्मविशारदान्॥ १९

कृत्वा वेदीं विधानेन स्थापयित्वा विभावसून्।
पुत्रेष्टिं विधिवत्तत्र चकार द्विजसत्तमः॥ २०

ब्रह्माणं कल्पयामास सुहोत्रं मुनिसत्तमम्।
अध्वर्युं याज्ञवल्क्यञ्च होतारं च बृहस्पतिम्॥ २१

प्रस्तोतारं तथा पैलमुद्गातारं च गोभिलम्।
सभ्यानन्यान्मुनीन्कृत्वा विधिवत्प्रददौ वसु॥ २२

उद्गाता सामगः श्रेष्ठः सप्तस्वरसमन्वितम्।
रथन्तरमगायत्तु स्वरितेन समन्वितम्॥ २३

तदास्य स्वरभङ्गोऽभूत्कृते श्वासे मुहुर्मुहुः।
देवदत्तश्चुकोपाशु गोभिलं प्रत्युवाच ह॥ २४

मूर्खोऽसि मुनिमुख्याद्य स्वरभङ्गस्त्वया कृतः।
काम्यकर्मणि सञ्जाते पुत्रार्थं यजतश्च मे॥ २५

गोभिलस्तु तदोवाच देवदत्तं सुकोपितः।
मूर्खस्ते भविता पुत्रः शठः शब्दविवर्जितः॥ २६

सर्वप्राणिशरीरे तु श्वासोच्छ्वासः सुदुर्ग्रहः।
न मेऽत्र दूषणं किञ्चित्स्वरभङ्गे महामते॥ २७

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य गोभिलस्य महात्मनः।
शापाद्भीतो देवदत्तस्तमुवाचातिदुःखितः॥ २८

कथं क्रुद्धोऽसि विप्रेन्द्र वृथा मयि निरागसि।
अक्रोधना हि मुनयो भवन्ति सुखदाः सदा॥ २९

स्वल्पेऽपराधे विप्रेन्द्र कथं शप्तस्त्वया ह्यहम्।
अपुत्रोऽहं सुतप्तः प्राक् तापयुक्तः पुनः कृतः॥ ३०

मूर्खपुत्रादपुत्रत्वं वरं वेदविदो विदुः।
तथापि ब्राह्मणो मूर्खः सर्वेषां निन्द्य एव हि॥ ३१

तमसानदीके तटपर पहुँचकर उसने उत्तम यज्ञ-मण्डप बनवाया और वेदज्ञ तथा यज्ञकर्ममें निपुण ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके विधिपूर्वक यज्ञवेदी बनवाकर तथा अग्नि-स्थापन करके उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया॥ १९-२०॥

उसने उस यज्ञमें मुनिवर सुहोत्रको 'ब्रह्मा', याज्ञवल्क्यको 'अध्वर्यु' तथा बृहस्पतिको 'होता', पैलमुनिको 'प्रस्तोता' तथा गोभिलको 'उद्गाता' बनाया एवं अन्यान्य उपस्थित मुनियोंको यज्ञका सभासद् बनाकर उन्हें विधिवत् प्रचुर धन प्रदान किया॥ २१-२२॥

सामवेदका गान करनेवाले श्रेष्ठ उद्गाता गोभिलमुनि सातों स्वरोंसे युक्त तथा स्वरितसे समन्वित रथन्तर सामका गान करने लगे॥ २३॥

बार-बार श्वास लेनेके कारण गोभिलका स्वर भंग हो गया। तब देवदत्तको क्रोध आ गया और उसने तुरंत गोभिलमुनिसे कहा—हे मुनिमुख्य! तुम मूर्ख हो, तुमने आज मेरेद्वारा पुत्रप्राप्तिके लिये किये जाते हुए इस काम्यकर्ममें स्वरभंग कर दिया॥ २४-२५॥

तब गोभिलमुनि अत्यन्त क्रोधित होकर देवदत्तसे कहने लगे—[इस यज्ञके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाला] तुम्हारा पुत्र मूर्ख, शठ और गूँगा होगा। हे महामते! सभी प्राणियोंके शरीरमें श्वास आता-जाता रहता है। इसे रोक पाना बड़ा कठिन है। अतः ऐसी स्थितिमें स्वरभंग हो जानेमें मेरा कुछ भी दोष नहीं है॥ २६-२७॥

महात्मा गोभिलका यह वचन सुनकर शापसे भयभीत देवदत्तने अत्यन्त दुःखी होकर उनसे कहा—हे विप्रवर! आप मुझ निर्दोषपर व्यर्थ ही क्यों क्रुद्ध हैं? मुनिलोग तो सदा क्रोधरहित और सुखदायक होते हैं॥ २८-२९॥

हे विप्र! थोड़ेसे अपराधपर आपने मुझे शाप क्यों दे दिया? पुत्रहीन होनेके कारण मैं तो पहलेसे ही बहुत दुःखी था, उसपर भी शाप देकर आपने मुझे और भी दुःखी कर दिया। वेदके विद्वानोंने कहा है कि मूर्ख पुत्रकी अपेक्षा पुत्रहीन रहना अच्छा है। उसपर भी मूर्ख ब्राह्मण तो सबके लिये निन्दनीय होता

पशुवच्छूद्रवच्चैव न योग्यः सर्वकर्मसु।
किं करोमीह मूर्खेण पुत्रेण द्विजसत्तम॥ ३२

यथा शूद्रस्तथा मूर्खो ब्राह्मणो नात्र संशयः।
न पूजार्हो न दानार्हो निन्द्यश्च सर्वकर्मसु॥ ३३

देशे वै वसमानश्च ब्राह्मणो वेदवर्जितः।
करदः शूद्रवच्चैव मन्तव्यः स च भूभुजा॥ ३४

नासने पितृकार्येषु देवकार्येषु स द्विजः।
मूर्खः समुपवेश्यश्च कार्यस्य फलमिच्छता॥ ३५

राज्ञा शूद्रसमो ज्ञेयो न योज्यः सर्वकर्मसु।
कर्षकस्तु द्विजः कार्यो ब्राह्मणो वेदवर्जितः॥ ३६

विना विप्रेण कर्तव्यं श्राद्धं कुशचटेन वै।
न तु विप्रेण मूर्खेण श्राद्धं कार्यं कदाचन॥ ३७

आहारादधिकं चान्नं न दातव्यमपण्डिते।
दाता नरकमाप्नोति ग्रहीता तु विशेषतः॥ ३८

धिग्राज्यं तस्य राज्ञो वै यस्य देशेऽबुधा जनाः।
पूज्यन्ते ब्राह्मणा मूर्खा दानमानादिकैरपि॥ ३९

आसने पूजने दाने यत्र भेदो न चाण्वपि।
मूर्खपण्डितयोर्भेदो ज्ञातव्यो विबुधेन वै॥ ४०

मूर्खा यत्र सुगर्विष्ठा दानमानपरिग्रहैः।
तस्मिन्देशे न वस्तव्यं पण्डितेन कथञ्चन॥ ४१

असतामुपकाराय दुर्जनानां विभूतयः।
पिचुमन्दः फलाढ्योऽपि काकैरेवोपभुज्यते॥ ४२

है। वह पशु एवं शूद्रके समान सभी कार्योंमें अयोग्य माना जाता है। अतः हे विप्रवर! मूर्ख पुत्रको लेकर मैं क्या करूँगा?॥ ३०—३२॥

मूर्ख ब्राह्मण शूद्रतुल्य होता है; इसमें सन्देह नहीं है; क्योंकि वह न तो पूजाके योग्य होता है और न दान लेनेका पात्र ही होता है। वह सब कार्योंमें निन्द्य होता है॥ ३३॥

किसी देशमें रहता हुआ वेदशास्त्रविहीन ब्राह्मण कर देनेवाले शूद्रकी भाँति एक राजाके द्वारा समझा जाना चाहिये॥ ३४॥

फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि देव तथा पितृकार्योंके अवसरपर उस मूर्ख ब्राह्मणको आसनपर न बैठाये॥ ३५॥

राजा भी वेदविहीन ब्राह्मणको शूद्रके समान समझे और उसे शुभ कार्योंमें नियुक्त न करे, बल्कि उसे कृषिके काममें लगा दे॥ ३६॥

ब्राह्मणके अभावमें कुशके चटसे स्वयं श्राद्धकार्य कर लेना ठीक है, किंतु मूर्ख ब्राह्मणसे कभी भी श्राद्धकार्य नहीं कराना चाहिये॥ ३७॥

मूर्ख ब्राह्मणको भोजनसे अधिक अन्न नहीं देना चाहिये; क्योंकि देनेवाला व्यक्ति नरकमें जाता है और लेनेवाला तो विशेषरूपसे नरकगामी होता है॥ ३८॥

उस राजाके राज्यको धिक्कार है, जिसके राज्यमें मूर्खलोग निवास करते हैं और मूर्ख ब्राह्मण भी दान, सम्मान आदिसे पूजित होते हैं, साथ ही जहाँ मूर्ख और पण्डितके बीच आसन, पूजन और दानमें रंचमात्र भी भेद नहीं माना जाता। अतः विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह मूर्ख और पण्डितकी जानकारी अवश्य कर ले॥ ३९-४०॥

जहाँ दान, मान तथा परिग्रहसे मूर्खलोग महान् गौरवशाली माने जाते हैं, उस देशमें पण्डितजनको किसी प्रकार भी नहीं रहना चाहिये। दुर्जन व्यक्तियोंकी सम्पत्तियाँ दुर्जनोंके उपकारके लिये ही होती हैं। जैसे अधिक फलोंसे लदे हुए नीमके वृक्षका उपभोग केवल कौए ही करते हैं॥ ४१-४२॥

भुक्त्वान्नं वेदविद्विप्रो वेदाभ्यासं करोति वै।
क्रीडन्ति पूर्वजाः तस्य स्वर्गे प्रमुदिताः किल॥ ४३

गोभिलातः किमुक्तं वै त्वया वेदविदुत्तम।
संसारे मूर्खपुत्रत्वं मरणादतिगर्हितम्॥ ४४

कृपां कुरु महाभाग शापस्यानुग्रहं प्रति।
दीनोद्धारणशक्तोऽसि पतामि तव पादयोः॥ ४५

लोमश उवाच

इत्युक्त्वा देवदत्तस्तु पतितस्तस्य पादयोः।
स्तुवन्दीनहृदत्यर्थं कृपणः साश्रुलोचनः॥ ४६

गोभिलस्तु तदा तत्र दृष्ट्वा तं दीनचेतसम्।
क्षणकोपा महान्तो वै पापिष्ठाः कल्पकोपनाः॥ ४७

जलं स्वभावतः शीतं पावकातपयोगतः।
उष्णं भवति तच्छीघ्रं तद्विना शिशिरं भवेत्॥ ४८

दयावान्गोभिलस्त्वाह देवदत्तं सुदुःखितम्।
मूर्खो भूत्वा सुतस्ते वै विद्वानपि भविष्यति॥ ४९

इति दत्तवरः सोऽथ मुदितोऽभूद् द्विजर्षभः।
इष्टिं समाप्य विप्रान्वै विससर्ज यथाविधि॥ ५०

कालेन कियता तस्य भार्या रूपवती सती।
गर्भं दधार काले सा रोहिणी रोहिणीसमा॥ ५१

गर्भाधानादिकं कर्म चकार विधिवद् द्विजः।
पुंसवनविधानञ्च शृङ्गारकरणं तथा॥ ५२

सीमन्तोन्नयनञ्चैव कृतं वेदविधानतः।
ददौ दानानि मुदितो मत्वेष्टिं सफलां तथा॥ ५३

शुभेऽह्नि सुषुवे पुत्रं रोहिणी रोहिणीयुते।
दिने लग्ने शुभेऽत्यर्थं जातकर्म चकार सः॥ ५४

पुत्रदर्शनकं कृत्वा नामकर्म चकार च।
उतथ्य इति पुत्रस्य कृतं नाम पुराविदा॥ ५५

वेदज्ञ ब्राह्मण जिसका अन्न खाकर वेदाभ्यास करता है, उसके पूर्वज परम प्रसन्न होकर स्वर्गमें विहार करते हैं॥ ४३॥

अतएव हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ गोभिल मुने! आपने यह क्या कह दिया। इस संसारमें मूर्ख पुत्रका पिता होना तो मृत्युसे भी बढ़कर कष्टप्रद होता है॥ ४४॥

हे महाभाग! अब आप इस शापसे मेरा उद्धार करनेकी कृपा कीजिये। आप दीनोंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं। मैं आपके पैरोंपर पड़ता हूँ॥ ४५॥

लोमश बोले—यह कहकर देवदत्त अत्यन्त दीनहृदय तथा असहाय होकर नेत्रोंमें आँसू भरकर स्तुति करता हुआ मुनिके पैरोंपर गिर पड़ा॥ ४६॥

तब उस दीनहृदय देवदत्तको देखकर गोभिलमुनिको दया आ गयी। महात्मालोग क्षणभरके लिये ही कोप करते हैं, किंतु पापियोंका कोप कल्पपर्यन्त बना रहता है। जल स्वभावतः शीतल होता है। वही जल अग्नि तथा धूपके संयोगसे गर्म हो जाता है, किंतु पुनः उनका संयोग हटते ही वह शीघ्र शीतल हो जाता है। तब दयालु गोभिलमुनिने अत्यन्त दुःखित देवदत्तसे कहा—तुम्हारा पुत्र मूर्ख होकर भी बादमें विद्वान् हो जायगा॥ ४७—४९॥

इस प्रकार वर पा लेनेपर द्विजवर देवदत्त प्रसन्न हो गये। उन्होंने विधिवत् पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त करके ब्राह्मणोंको विदा किया॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर देवदत्तकी पतिव्रता तथा रूपवती भार्या रोहिणी जो रोहिणीके समान शुभ लक्षणोंवाली थी, उसने यथासमय गर्भधारण किया॥ ५१॥

देवदत्तने विधि-विधानके साथ गर्भाधान आदि कर्म किये। तत्पश्चात् पुंसवन, शृंगारकरण तथा सीमन्तोन्नयन-संस्कार वेद-विधिके साथ सम्पन्न किये। उस समय अपने यज्ञको सफल जानकर प्रसन्न मनसे उन्होंने बहुत-से दान दिये॥ ५२-५३॥

रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ दिनमें रोहिणीने पुत्रको जन्म दिया। देवदत्तने शुभ दिन और मुहूर्तमें नवजात शिशुका जातकर्म-संस्कार किया और पुत्रदर्शन करके यथासमय उसका नामकरण भी कर दिया। पूर्व बातोंको जाननेवाले देवदत्तने अपने पुत्रका नाम 'उतथ्य' रखा॥ ५४-५५॥

स चाष्टमे तथा वर्षे शुभे वै शुभवासरे।
तस्योपनयनं कर्म चकार विधिवत्पिता॥ ५६

आठवें वर्षमें शुभ योग तथा शुभ दिनमें पिता देवदत्तने अपने उस पुत्रका विधिवत् उपनयन-संस्कार सम्पन्न किया॥ ५६॥

वेदमध्यापयामास गुरुस्तं वै व्रते स्थितम्।
नोच्चचार तथोतथ्यः संस्थितो मुग्धवत्तदा॥ ५७

ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित उतथ्यको आचार्य वेद पढ़ाने लगे, किंतु वह एक शब्दका भी उच्चारण नहीं कर सका, मूढकी भाँति चुपचाप बैठा रहा॥ ५७॥

बहुधा पाठितः पित्रा न दधार मतिं शठः।
मूढवत्तिष्ठतेऽत्यर्थं तं शुशोच पिता तदा॥ ५८

उसके पिताने उसे अनेक प्रकारसे पढ़ानेका प्रयत्न किया, किंतु उस मूर्खकी बुद्धि उस ओर प्रवृत्त नहीं होती थी। वह मूर्खके समान पड़ा रहता था। इससे उसके पिता देवदत्त उसके लिये बहुत चिन्तित हुए॥ ५८॥

एवं कुर्वन्सदाभ्यासं जातो द्वादशवार्षिकः।
न वेद विधिवत्कर्तुं सन्ध्यावन्दनकं विधिम्॥ ५९

इस प्रकार निरन्तर वेदाभ्यास करते हुए वह बालक बारह वर्षका हो गया, किंतु भलीभाँति सन्ध्यावन्दन करनेतककी विधि भी न जान पाया॥ ५९॥

मूर्खोऽभूदिति लोकेषु गता वार्तातिविस्तरा।
ब्राह्मणेषु च सर्वेषु तापसेष्वितरेषु च॥ ६०

सभी ब्राह्मणों, तपस्वियों तथा अन्यान्य लोगोंमें यह बात विस्तृतरूपसे फैल गयी कि देवदत्तका पुत्र महामूर्ख निकल गया॥ ६०॥

जहास लोकस्तं विप्रं यत्र तत्र गतं वने।
पिता माता निनिन्दाथ मूर्खं तमतिभर्त्सयन्॥ ६१

हे मुने! वह जहाँ कहीं जाता, लोग उसकी हँसी उड़ाते थे। यहाँतक कि उसके माता-पिता भी उस मूर्खको कोसते हुए उसकी निन्दा किया करते थे॥ ६१॥

निन्दितोऽथ जनैः कामं पितृभ्यामथ बान्धवैः।
वैराग्यमगमद्विप्रो जगाम वनमप्यसौ॥ ६२

इस प्रकार जब सभी लोग, माता-पिता तथा बन्धु-बान्धव उसकी निन्दा करने लगे, तब उस ब्राह्मणबालकके मनमें वैराग्य उत्पन्न हो गया और वह वनमें चला गया॥ ६२॥

अन्धो वरस्तथा पङ्गुर्न मूर्खस्तु वरः सुतः।
इत्युक्तोऽसौ पितृभ्यां वै विवेश काननं प्रति॥ ६३

अन्धा या पंगु पुत्र ठीक है, किंतु मूर्ख पुत्र ठीक नहीं है—माता-पिताके ऐसा कहनेपर वह वनमें चला गया॥ ६३॥

गङ्गातीरे शुभे स्थाने कृत्वोटजमनुत्तमम्।
वन्यां वृत्तिं च संकल्प्य स्थितस्तत्र समाहितः॥ ६४

गंगाके किनारे एक उत्तम स्थानपर सुन्दर पर्णकुटी बनाकर वह वनवासीका जीवन व्यतीत करते हुए एकनिष्ठ होकर वहीं रहने लगा॥ ६४॥

नियमं च परं कृत्वा नासत्यं प्रब्रवीम्यहम्।
स्थितस्तत्राश्रमे रम्ये ब्रह्मचर्यव्रतो हि सः॥ ६५

'मैं असत्य नहीं बोलूँगा'—ऐसी दृढ़ प्रतिज्ञा करके ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करते हुए वह उसी सुन्दर आश्रममें रहने लगा॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

सत्यव्रतद्वारा बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण तथा उससे प्रसन्न होकर भगवतीका सत्यव्रतको समस्त विद्याएँ प्रदान करना

लोमश उवाच

न वेदाध्ययनं किञ्चिज्जानाति न जपं तथा।
ध्यानं न देवतानाञ्च न चैवाराधनं तथा॥ १

नासनं वेद विप्रोऽसौ प्राणायामं तथा पुनः।
प्रत्याहारं तु नो वेद भूतशुद्धिञ्च कारणम्॥ २

न मन्त्रकीलकं जाप्यं गायत्रीञ्च न वेद सः।
शौचं स्नानविधिञ्चैव तथाचमनकं पुनः॥ ३

प्राणाग्निहोत्रं नो वेद बलिदानं न चातिथिम्।
न सन्ध्यां समिधो होमं विवेद च तथा मुनिः॥ ४

सोऽकरोत्प्रातरुत्थाय यत्किञ्चिद्दन्तधावनम्।
स्नानं च शूद्रवत्तत्र गङ्गायां मन्त्रवर्जितम्॥ ५

फलान्यादाय वन्यानि मध्याह्नेऽपि यदृच्छया।
भक्ष्याभक्ष्यपरिज्ञानं न जानाति शठस्तथा॥ ६

सत्यं ब्रूते स्थितस्तत्र नानृतं वदते पुनः।
जनैः सत्यतपा नाम कृतमस्य द्विजस्य वै॥ ७

नाहितं कस्यचित्कुर्यान्न तथाविहितं क्वचित्।
सुखं स्वपिति तत्रैव निर्भयश्चिन्तयन्निति॥ ८

कदा मे मरणं भावि दुःखं जीवामि कानने।
जीवितं धिक्च मूर्खस्य तरसा मरणं ध्रुवम्॥ ९

दैवेनाहं कृतो मूर्खो नान्योऽत्र कारणं मम।
प्राप्य चैवोत्तमं जन्म वृथा जातं ममाधुना॥ १०

यथा वन्ध्या सुरूपा च यथा वा निष्फलो द्रुमः।
अदुग्धदोहा धेनुश्च तथाहं निष्फलः कृतः॥ ११

लोमश बोले—[हे जमदग्ने!] वह उतथ्य वेदाध्ययन, जप, ध्यान तथा देवताओंकी आराधना आदि कुछ भी नहीं जानता था। वह ब्राह्मण आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार भी नहीं जानता था। वह भूतशुद्धि तथा कारणके विषयमें भी कुछ नहीं जानता था। वह कीलक मन्त्र, जप, गायत्री नहीं जानता था। उसे सम्यक् रूपसे शौच, स्नान-विधि तथा आचमनतकका ज्ञान नहीं था। वह ब्राह्मण प्राणाग्निहोत्र, वैश्वदेव, अतिथि-सत्कार, सन्ध्या-वन्दन, समिधा तथा होम आदिके विषयमें भी नहीं जानता था॥ १—४॥

प्रातःकाल उठकर वह किसी तरह सामान्य रूपसे दन्तधावन कर लेता था, तत्पश्चात् शूद्रकी भाँति बिना मन्त्र बोले ही गंगामें स्नान कर लिया करता था। दोपहरके समय वह अपनी इच्छासे वन्य फल लाकर उन्हें खा लिया करता था। उस मूर्खको भक्ष्य तथा अभक्ष्यका भी ज्ञान नहीं था॥ ५-६॥

वहाँ निवास करता हुआ वह ब्राह्मण सदैव सत्यभाषण करता था और झूठ कभी नहीं बोलता था। [उसकी इस सत्यनिष्ठासे प्रभावित होकर] लोगोंने इस ब्राह्मणका नाम 'सत्यतपा' रख दिया॥ ७॥

वह न तो कभी किसीका अहित करता था और न अविहित कार्य ही करता था। वह यही सोचता हुआ निडर होकर उस कुटीमें सोता था कि मेरी मृत्यु कब होगी? मैं इस वनमें दुःखपूर्वक जी रहा हूँ। मुझ मूर्खके जीवनको धिक्कार है, अतः अब मेरा शीघ्र मर जाना ही उत्तम है॥ ८-९॥

दैवने ही मुझे मूर्ख बनाया है, इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण मुझे जान नहीं पड़ता। उत्तम कुलमें जन्म-ग्रहण करके भी मैंने अपना जीवन व्यर्थ गँवा दिया॥ १०॥

जैसे रूपसम्पन्न वन्ध्या स्त्री, फलरहित वृक्ष तथा दूध न देनेवाली गाय—ये सब निरर्थक होते हैं, उसी प्रकार मैं भी निष्फल कर दिया गया हूँ॥ ११॥

किन्नु निन्दाम्यहं दैवं नूनं कर्म ममेदृशम्।
न दत्तं पुस्तकं कृत्वा ब्राह्मणाय महात्मने॥ १२

न वै विद्या मया दत्ता पूर्वजन्मनि निर्मला।
तेनाहं कर्मयोगेन शठोऽस्मि च द्विजाधमः॥ १३

न च तीर्थे तपस्तप्तं सेविता न च साधवः।
न द्विजाः पूजिता द्रव्यैस्तेन जातोऽस्मि दुष्टधीः॥ १४

वर्तन्ते मुनिपुत्राश्च वेदशास्त्रार्थपारगाः।
अहं सुमूढः सञ्जातो दैवयोगेन केनचित्॥ १५

न जानामि तपस्तप्तुं किं करोमि सुसाधनम्।
मिथ्यायं मेऽत्र सङ्कल्पो न मे भाग्यं शुभं किल॥ १६

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
वृथा श्रमकृतं कार्यं दैवाद्भवति सर्वथा॥ १७

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्याः किल देवताः।
कालस्य वशगाः सर्वे कालो हि दुरतिक्रमः॥ १८

एवंविधान्वितर्कांस्तु कुर्वाणोऽहर्निशं द्विजः।
स्थितस्तत्राश्रमे तीरे जाह्नव्याः पावने स्थले॥ १९

विरक्तः स तु सञ्जातः स्थितस्तत्राश्रमे द्विजः।
कालातिवाहनं शान्तश्चकार विजने वने॥ २०

एवं स्थितस्य तु वने विमलोदके वै
वर्षाणि तत्र नवपञ्च गतानि कामम्।
नाराधनं न च जपं न विवेद मन्त्रं
कालातिवाहनमसौ कृतवान्वने वै॥ २१

जानाति तस्य विततं व्रतमेव लोकः
सत्यं वदत्यपि मुनिः किल नामजातम्।
जातं यशश्च सकलेषु जनेषु कामं
सत्यव्रतोऽयमनिशं न मृषाभिभाषी॥ २२

मैं दैवको दोष क्यों दूँ? निश्चित रूपसे मेरा कर्म ही ऐसा था। मैंने पुस्तक लिखकर उसे किसी महात्मा ब्राह्मणको दान नहीं दिया। मैंने पूर्वजन्ममें उत्तम विद्याका भी दान नहीं किया, इसीलिये प्रारब्धवश इस जन्ममें मूर्ख और अधम ब्राह्मण हुआ हूँ। मैंने किसी तीर्थमें तप नहीं किया और न साधुओंकी सेवा ही की। धन-दानसे मैंने ब्राह्मणोंकी पूजा भी नहीं की। इसी कारण मैं ऐसा दुर्बुद्धि हुआ॥ १२—१४॥

[मेरे साथके] बहुत-से मुनिकुमार वेदशास्त्रमें पारंगत हो गये, किंतु मैं न जाने किस दुर्विपाकसे महामूर्ख रह गया॥ १५॥

मैं तप करना भी नहीं जानता, तब कौन-सी साधना करूँ? अब तो मेरा यह सब सोचना भी व्यर्थ है; क्योंकि मेरा भाग्य ही अच्छा नहीं है॥ १६॥

मैं भाग्यको ही सर्वोपरि मानता हूँ। निरर्थक पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि परिश्रमसे किया गया कार्य भी प्रारब्धवश सर्वथा विफल हो जाता है॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता भी कालके वशमें रहते हैं। इसलिये काल सर्वथा अजेय है॥ १८॥

दिन-रात इस प्रकारके अनेक तर्क-वितर्क करता हुआ वह द्विज गंगाके तटपर स्थित उस पावन आश्रममें रहता था॥ १९॥

अब वह ब्राह्मण सर्वथा विरक्त हो गया और उस निर्जन वनमें स्थित आश्रममें रहता हुआ शान्तचित्त होकर समय बिताने लगा॥ २०॥

इस प्रकार निर्मल जलवाले उस वनमें रहते हुए उस ब्राह्मणके चौदह वर्ष बीत गये; पर उसने न कोई जप किया, न आराधना की और न कोई मन्त्र ही वह जान सका, केवल उसने वनमें रहकर कालक्षेप ही किया॥ २१॥

वहाँके लोग केवल उसके इस प्रसिद्ध व्रतको जानते थे कि यह मुनि सदा सत्य बोलता है। अतः सब लोगोंमें उसका यह सुयश फैल गया कि यह सदा सत्यव्रती है और मिथ्याभाषी नहीं॥ २२॥

तत्रैकदा तु मृगयां रममाण एव
प्राप्तो निषादनिशठो धृतचापबाणः।
क्रीडन्वनेऽतिविपुले यमतुल्यदेहः
क्रूराकृतिर्हननकर्मणि चातिदक्षः॥ २३

तेनातिकृष्टेन शरेण विद्धः
कोलः किरातेन धनुर्धरेण।
पलायमानो भयविह्वलश्च
मुनेः समीपं विद्रुतो जगाम॥ २४

विकम्पमानो रुधिरार्द्रदेहो
यदा जगामाश्रममण्डलं वै।
कोलस्तदातीव दयार्द्रभावं
प्राप्तो मुनिस्तत्र समीक्ष्य दीनम्॥ २५

अग्रे व्रजन्तं रुधिरार्द्रदेहं
दृष्ट्वा मुनिः सूकरमाशु विद्धम्।
दयाभिवेशादतिकम्पमानः
सारस्वतं बीजमथोच्चचार॥ २६

अज्ञातपूर्वं च तथाश्रुतञ्च
दैवान्मुखे वै समुपागतञ्च।
न ज्ञातवान्बीजमसौ विमूढो
ममज्ज शोके स मुनिर्महात्मा॥ २७

कोलः प्रविश्याश्रममण्डलं तद्
गतो निकुञ्जे प्रविलीय गूढम्।
अप्राप्तमार्गो दृढनिर्विण्णचेताः
प्रवेपमानः शरपीडितत्वात्॥ २८

ततः क्षणादाकरणान्तकृष्टं
चापं दधानोऽतिकरालदेहः।
प्राप्तस्तदन्ते स च मृग्यमाणो
निषादराजः किल काल एव॥ २९

दृष्ट्वा मुनिं तत्र कुशासने स्थितं
नाम्ना तु सत्यव्रतमद्वितीयम्।
व्याधः प्रणम्य प्रमुखे स्थितोऽसौ
पप्रच्छ कोलः क्व गतो द्विजेश॥ ३०

एक दिन आखेट करता हुआ एक महान् मूर्ख निषाद हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए उसी गहन वनमें आ पहुँचा। यमराजके समान शरीर तथा भीषण आकृतिवाला वह निषाद आखेट करते समय वधकार्यमें बड़ा ही कुशल जान पड़ता था॥ २३॥

उस धनुर्धारी किरातने एक सूअरको लक्ष्य करके बड़े जोरसे खींचकर बाण चलाया। तब बाणसे बिँधा हुआ वह सूअर भयभीत होकर भागता हुआ उस मुनिके समीप जा पहुँचा॥ २४॥

जब वह सूअर आश्रम-परिधिमें पहुँचा तो भयसे काँप रहा था और उसका शरीर रक्तसे लथपथ था। उस बेचारेको इस दशामें देखकर उस समय सत्यव्रतमुनि अत्यन्त दयार्द्रचित्त हो गये। रक्तसे सराबोर शरीरवाले उस आहत सूअरको अपने आगेसे जाते देखकर दयाके अतिरेकसे काँपते हुए मुनिने बिन्दुरहित सारस्वत बीजमन्त्र 'ऐ-ऐ' का उच्चारण किया॥ २५-२६॥

उन्हें इसके पूर्व न तो इस मन्त्रका ज्ञान था और न उन्होंने कभी इसे सुना ही था; दैवयोगसे ही उनके मुखसे यह मन्त्र निकल पड़ा। अब भी उन विमूढ़को नहीं मालूम था कि यह सारस्वत बीजमन्त्र है। वे महात्मा सत्यव्रतमुनि तो उस घायल सूअरके शोकमें डूबे हुए थे॥ २७॥

इसी बीच बाणकी पीड़ाके कारण अत्यन्त सन्तप्तचित्त तथा काँपते हुए शरीरवाला वह सूअर कोई दूसरा मार्ग न पाकर सत्यव्रतके आश्रममण्डलमें प्रविष्ट होकर कहीं झाड़ीमें छिप गया॥ २८॥

थोड़ी देर बाद कानतक खींचे धनुषको धारण किये हुए दूसरे कालके समान विकराल देहवाला वह निषादराज भी उस सूअरको खोजता हुआ मुनिके निकट आ पहुँचा॥ २९॥

वहाँ कुशासनपर बैठे हुए अद्वितीय सत्यव्रतमुनिको देखकर वह व्याध प्रणाम करके उनके सामने खड़ा हो गया और पूछने लगा—हे द्विजराज! वह सूअर कहाँ गया?॥ ३०॥

जानामि तेऽहं सुव्रतं प्रसिद्धं
तेनाद्य पृच्छे मम बाणविद्धः।
क्षुधार्दितं मे सकलं कुटुम्बं
विभर्तुकामः किल आगतोऽस्मि॥ ३१

वृत्तिर्ममैषा विहिता विधात्रा
नान्यास्ति विप्रेन्द्र ऋतं ब्रवीमि।
भर्तव्यमेवेह कुटुम्बमञ्जसा
केनाप्युपायेन शुभाशुभेन॥ ३२

सत्यं ब्रवीत्वद्य सत्यव्रतोऽसि
क्षुधातुरो वर्तते पोष्यवर्गः।
क्वासौ गतः सूकरो बाणविद्धः
पृच्छाम्यहं वाडव ब्रूहि तूर्णम्॥ ३३

तेनेति पृष्टः स मुनिर्महात्मा
वितर्कमग्नः प्रबभूव कामम्।
सत्यव्रतं मेऽद्य भवेन्न भग्नं
न दृष्ट इत्युच्चरितेन किं वै॥ ३४

गतोऽत्र कोलः शरविद्धदेहः
कथं ब्रवीम्यद्य मृषामृषा वा।
क्षुधार्दितोऽयं परिपृच्छतीव
दृष्ट्वा हनिष्यत्यपि सूकरं वै॥ ३५

सत्यं न सत्यं खलु यत्र हिंसा
दयान्वितं चानृतमेव सत्यम्।
हितं नराणां भवतीह येन
तदेव सत्यं न तथान्यथैव॥ ३६

हितं कथं स्यादुभयोर्विरुद्धयो-
स्तदुत्तरं किं न यथा मृषा वचः।
विचारयन्वाडव धर्मसङ्कटे
न प्राप वक्तुं वचनं यथोचितम्॥ ३७

मैं आपके सत्यभाषणके प्रसिद्ध व्रतको जानता हूँ इसीलिये पूछता हूँ कि मेरे बाणसे घायल हुआ वह सूअर किधर गया? मेरा सारा परिवार भूखसे पीड़ित है। मैं उनकी क्षुधा-शान्तिकी इच्छासे ही यहाँ आया हूँ॥ ३१॥

हे विप्रेन्द्र! विधाताने मेरी यही जीविका निर्धारित की है। इसके अतिरिक्त मेरा दूसरा कोई साधन नहीं है, यह मैं सत्य कहता हूँ। अच्छे-बुरे किसी भी उपायसे अपने परिवारका पालन-पोषण तो निश्चितरूपसे करना ही चाहिये॥ ३२॥

आप सत्यव्रत हैं, अतः मुझे अब सच-सच बता दीजिये। मेरा सारा कुटुम्ब भूखसे व्याकुल है। अतः हे विप्र! मैं आपसे पुनः पूछ रहा हूँ कि मेरे बाणसे घायल वह सूअर किधर गया है? आप मुझे शीघ्र बता दें॥ ३३॥

उस व्याधके इस प्रकार बार-बार पूछनेपर महात्मा सत्यव्रतमुनि बड़े असमंजसमें पड़ गये और मनमें सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ? जिससे मेरा सत्यव्रत नष्ट न हो और मुझे यह भी न कहना पड़े कि 'मैंने उसे नहीं देखा है'॥ ३४॥

'तुम्हारे बाणसे घायल वह सूअर भाग गया।' यह मिथ्या मैं कैसे कहूँ? और यदि इसे सच बता देता हूँ तो यह क्षुधासे आतुर होकर बार-बार सूअरको पूछ रहा है, अतः उसे खोजकर अवश्य ही मार डालेगा॥ ३५॥

वह सत्य वास्तविक सत्य नहीं है जिससे किसी जीवकी हिंसा होती हो तथा वह असत्य भी सत्य ही है, जो दयासे युक्त हो। जिसके द्वारा प्राणियोंका कल्याण हो, वही सत्य है और जो इसके विपरीत है, वह असत्य है॥ ३६॥

इन परस्पर विरोधी प्रसंगोंमें मेरा हित कैसे हो! मैं क्या उत्तर दूँ, जिससे मेरी बात झूठी न हो। [लोमशमुनिने कहा]—हे ब्राह्मण! ऐसा विचार करते हुए वे सत्यव्रतमुनि धर्मसंकटमें पड़ गये और व्याधको यथोचित उत्तर नहीं दे सके॥ ३७॥

बाणाहतं वीक्ष्य दयान्वितञ्च
कोलं तदन्ते समुदाहृतं वचः।
तेन प्रसन्ना निजबीजतः शिवा
विद्यां दुरापां प्रददौ च तस्मै॥ ३८

बीजोच्चारणतो देव्या विद्या प्रस्फुरिताखिला।
वाल्मीकेश्च यथा पूर्वं तथा स ह्यभवत्कविः॥ ३९

तमुवाच द्विजो व्याधं सम्मुखस्थं धनुर्धरम्।
सत्यकामस्तु धर्मात्मा श्लोकमेकं दयापरः॥ ४०

या पश्यति न सा ब्रूते या ब्रूते सा न पश्यति।
अहो व्याध स्वकार्यार्थिन् किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ४१

इत्युक्तस्तु तदा तेन गतोऽसौ पशुहा पुनः।
निराशः सूकरे तस्मिन्परावृत्तो निजालये॥ ४२

ब्राह्मणस्तु कविर्जातः प्राचेतस इवापरः।
प्रसिद्धः सर्वलोकेषु नाम्ना सत्यव्रतो द्विजः॥ ४३

सारस्वतं ततो बीजं जजाप विधिपूर्वकम्।
पण्डितश्चातिविख्यातो द्विजोऽसौ धरणीतले॥ ४४

प्रतिपर्वसु गायन्ति ब्राह्मणा यद्यशः सदा।
आख्यानं चातिविस्तीर्णं स्तुवन्ति मुनयः किल॥ ४५

तच्छ्रुत्वा सदनं तस्य समागत्य तदाश्रमे।
येन त्यक्तः पुरा तेन गृहं नीतोऽतिमानितः॥ ४६

तस्माद्राजन्सदा सेव्या पूजनीया च भक्तितः।
आदिशक्तिः परा देवी जगतां कारणं हि सा॥ ४७

तस्या यज्ञं महाराज कुरु वेदविधानतः।
सर्वकामप्रदं नित्यं निश्चयं कथितं पुरा॥ ४८

बाणसे आहत सूअरको देखकर मुनि सत्यव्रतके द्वारा जो करुणायुक्त 'ऐ-ऐ' शब्द उच्चरित हो गया था; उस अपने बीजमन्त्रसे प्रसन्न होकर भगवती शिवाने उन्हें दुर्लभ विद्या दे दी॥ ३८॥

देवीके बीजमन्त्रका उच्चारण करते ही मुनि सत्यव्रतके हृदयमें समस्त विद्याएँ प्रस्फुटित हो गयीं और वे उसी प्रकार कवि हो गये, जिस प्रकार पूर्वकालमें महर्षि वाल्मीकि॥ ३९॥

तत्पश्चात् सत्यकाम, धर्मात्मा तथा दयालु ब्राह्मण सत्यव्रतने अपने सामने खड़े उस धनुर्धारी व्याधसे एक श्लोक इस प्रकार कहा—जो (आँख) देखती है, वह बोलती नहीं है और जो (वाणी) बोलती है, वह देखती नहीं। अतः अपने ही प्रयोजनकी सिद्धिमें तत्पर हे व्याध! तुम बार-बार क्यों पूछ रहे हो?॥ ४०-४१॥

उस मुनिके ऐसा कहनेपर पशुओंका वध करनेवाला वह व्याध उस सूअरसे निराश होकर अपने घर लौट गया॥ ४२॥

इस प्रकार वे सत्यव्रत नामक ब्राह्मण दूसरे वाल्मीकिके समान कवि हो गये और समस्त लोकोंमें प्रख्यात हो गये॥ ४३॥

तत्पश्चात् उन सत्यव्रतब्राह्मणने सारस्वत बीजमन्त्रका विधिपूर्वक जप किया और वे पृथ्वीतलपर पण्डितके रूपमें अत्यधिक विख्यात हो गये॥ ४४॥

अब ब्राह्मणलोग प्रत्येक पर्वपर उनका यशोगान करने लगे और मुनिगण उनके विस्तृत आख्यानकी निरन्तर प्रशंसा करने लगे॥ ४५॥

उनका महान् यश सुनकर उनके परिवारके वे ही लोग, जिन्होंने उन्हें पहले त्याग दिया था, उनके आश्रममें आकर विशेष आदर-सम्मानके साथ उन्हें घर ले गये॥ ४६॥

अतः हे राजन्! उन आदिशक्ति तथा जगत्की कारणस्वरूपा परादेवीकी सदा भक्तिपूर्वक सेवा तथा पूजा करनी चाहिये॥ ४७॥

हे महाराज! आप मेरे द्वारा पहले ही बताये गये सर्वकामप्रदायक अम्बामखका अनुष्ठान वैदिक विधिके अनुसार नित्य नियमपूर्वक कीजिये॥ ४८॥

स्मृता सम्पूजिता भक्त्या ध्याता चोच्चारिता स्तुता।
ददाति वाञ्छितानर्थान्कामदा तेन कीर्त्यते॥ ४९

अनुमानमिदं राजन् कर्तव्यं सर्वथा बुधैः।
दृष्ट्वा रोगयुतान्दीनान्क्षुधितान्निर्धनाञ्छठान्॥ ५०

जनानार्तांस्तथा मूर्खान्पीडितान्वैरिभिः सदा।
दासानाज्ञाकरान्क्षुद्रान्विकलान्विह्वलानथ ॥ ५१

अतृप्तान्भोजने भोगे सदार्तानजितेन्द्रियान्।
तृष्णाधिकानशक्तांश्च सदाधिपरिपीडितान्॥ ५२

तथा विभवसम्पन्नान् पुत्रपौत्रविवर्धनान्।
पुष्टदेहांश्च सम्भोगैः संयुतान्वेदवादिनः॥ ५३

राजलक्ष्म्या युताञ्छूरान्वशीकृतजनानथ।
स्वजनैरवियुक्तांश्च सर्वलक्षणलक्षितान्॥ ५४

व्यतिरेकान्वयाभ्यां च विचेतव्यं विचक्षणैः।
एभिर्न पूजिता देवी सर्वार्थफलदा शिवा॥ ५५

समाराधिता च तथा नृभिरेभिः सदाम्बिका।
यतोऽमी सुखिनः सर्वे संसारेऽस्मिन्न संशयः॥ ५६

व्यास उवाच

इति राजञ्छ्रुतं तत्र मया मुनिसमागमे।
लोमशस्य मुखात्कामं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ५७

इति सञ्चिन्त्य राजेन्द्र कर्तव्यं च सदार्चनम्।
भक्त्या परमया देव्याः प्रीत्या च पुरुषर्षभ॥ ५८

वे भगवती स्मरण करने, पूजा करने, श्रद्धापूर्वक ध्यान करने, नामोच्चारण करने तथा स्तुति करनेसे [परम प्रसन्न होकर] सभी इच्छित मनोरथोंको पूर्ण कर देती हैं। इसीलिये वे 'कामदा' कही जाती हैं॥ ४९॥

हे राजन्! रुग्ण, दीन, क्षुधापीड़ित, धनहीन, शठ, दुःखी, मूर्ख, शत्रुओंसे सदा प्रताड़ित, आज्ञाके अधीन रहनेवाले दास, क्षुद्र, विकल, अशान्त, भोजन तथा भोगसे अतृप्त, सदा कष्टमें रहनेवाले, अजितेन्द्रिय, अधिक तृष्णायुक्त, शक्तिहीन तथा सदैव मानसिक रोगोंसे पीड़ित रहनेवाले प्राणियोंको देखकर बुद्धिमानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी सम्यक् उपासना नहीं की है। इसी प्रकार वैभवयुक्त, पुत्र-पौत्रादिसे सम्पन्न, हृष्ट-पुष्ट शरीरवाले, भोगयुक्त, वेदवादी, राजलक्ष्मीसे सम्पन्न, पराक्रमी, लोगोंको अपने वशमें रखनेवाले, स्वजनोंके साथ आनन्दपूर्वक रहनेवाले और समस्त उत्तम लक्षणोंसे युक्त लोगोंको देखकर यह अनुमान कर लेना चाहिये कि इन लोगोंने भगवतीकी उपासना की है। इस प्रकार पण्डितजनोंको व्यतिरेक-अन्वयके क्रमसे यह जान लेना चाहिये कि उपर्युक्त [दीन आदि] लोगोंने सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाली शिवाकी पूजा नहीं की है तथा उपर्युक्त [विभवयुक्त] लोगोंने भगवती अम्बाकी सर्वदा विधिपूर्वक आराधना की है, जिससे ये सभी लोग इस संसारमें सुखी हैं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है॥ ५०—५६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैंने नैमिषारण्यतीर्थमें मुनियोंके समाजमें लोमशऋषिके मुखसे भगवतीका यह अत्युत्तम माहात्म्य सुना॥ ५७॥

हे राजेन्द्र! हे पुरुषश्रेष्ठ! इसपर सम्यक् विचार करके परम भक्तिके साथ प्रेमपूर्वक भगवतीकी सदा अर्चना करनी चाहिये॥ ५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

~~~
~~~

अथ द्वादशोऽध्यायः

सात्त्विक, राजस और तामस यज्ञोंका वर्णन; मानसयज्ञकी महिमा और व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको देवी-यज्ञके लिये प्रेरित करना

राजोवाच

वद यज्ञविधिं सम्यग्देव्यास्तस्याः समन्ततः।
श्रुत्वा करोम्यहं स्वामिन् यथाशक्ति ह्यतन्द्रितः॥ १

पूजाविधिं च मन्त्रांश्च होमद्रव्यमसंशयम्।
ब्राह्मणाः कतिसंख्याश्च दक्षिणाश्च तथा पुनः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्या यज्ञं विधानतः।
त्रिविधं तु सदा ज्ञेयं विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ३

सात्त्विकं राजसं चैव तामसं च तथापरम्।
मुनीनां सात्त्विकं प्रोक्तं नृपाणां राजसं स्मृतम्॥ ४

तामसं राक्षसानां वै ज्ञानिनां तु गुणोज्झितम्।
विमुक्तानां ज्ञानमयं विस्तरात्प्रब्रवीमि ते॥ ५

देशः कालस्तथा द्रव्यं मन्त्राश्च ब्राह्मणास्तथा।
श्रद्धा च सात्त्विकी यत्र तं यज्ञं सात्त्विकं विदुः॥ ६

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मन्त्रशुद्धिश्च भूमिप।
भवेद्यदि तदा पूर्णं फलं भवति नान्यथा॥ ७

अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ ८

तस्मान्न्यायार्जितेनैव कर्तव्यं सुकृतं सदा।
यशसे परलोकाय भवत्येव सुखाय च॥ ९

प्रत्यक्षं तव राजेन्द्र पाण्डवैस्तु मखः कृतः।
राजसूयः क्रतुवरः समाप्तवरदक्षिणः॥ १०

राजा बोले—हे स्वामिन्! अब आप उन देवीके यज्ञकी विधिका पूर्णरूपसे सम्यक् वर्णन कीजिये। उसे सुनकर मैं यथाशक्ति प्रमादरहित होकर वह यज्ञ करूँगा॥ १॥

उस यज्ञकी पूजा-विधि, उसके मन्त्र, होमद्रव्य, उसमें कितने ब्राह्मण हों और दक्षिणा—इन सभीके बारेमें नि:संकोच बताइये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं आपसे देवीके यज्ञका विधानपूर्वक वर्णन करूँगा। अनुष्ठानमें विहित कर्मके अनुसार यह यज्ञ सात्त्विक, राजस तथा तामस भेदसे सदा तीन प्रकारका समझा जाना चाहिये। मुनियोंके लिये सात्त्विक यज्ञ, राजाओंके लिये राजस यज्ञ, राक्षसोंके लिये तामस यज्ञ, ज्ञानियोंके लिये निर्गुण यज्ञ और वैराग्ययुक्त लोगोंके लिये ज्ञानमय यज्ञ कहा गया है; मैं आपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ॥ ३—५॥

जिस यज्ञमें देश, काल, द्रव्य, मन्त्र, ब्राह्मण तथा श्रद्धा—ये सब सात्त्विक हों; उसे सात्त्विक यज्ञ कहा गया है॥ ६॥

हे भूपाल! यदि द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मन्त्रशुद्धिके साथ यज्ञ सम्पन्न होता है, तब पूर्ण फलकी प्राप्ति अवश्य होती है; अन्यथा नहीं होती॥ ७॥

अन्यायके द्वारा उपार्जित किये गये धनसे यदि पुण्य-कार्य किया जाता है तो इस लोकमें यशकी प्राप्ति नहीं होती और परलोकमें उसका कोई फल भी नहीं मिलता है, इसलिये न्यायपूर्वक उपार्जित धनसे ही सदा पुण्यकार्य करना चाहिये। ऐसा कार्य इस लोकमें कीर्ति तथा परलोकमें आनन्दके लिये होता है॥ ८-९॥

हे राजेन्द्र! आपके सामने इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। पाण्डवोंने यज्ञोंमें उत्तम राजसूय-यज्ञ किया था, जिसकी समाप्तिपर उन्होंने श्रेष्ठ दक्षिणा भी दी थी,

यत्र साक्षाद्धरिः कृष्णो यादवेन्द्रो महामनाः।
ब्राह्मणाः पूर्णविद्याश्च भारद्वाजादयस्तथा॥ ११

कृत्वा यज्ञं सुसम्पूर्णं मासमात्रेण पाण्डवैः।
प्राप्तं महत्तरं कष्टं वनवासश्च दारुणः॥ १२

पीडनञ्चैव पाञ्चाल्यास्तथा द्यूते पराजयः।
वनवासो महत्कष्टं क्व गतं मखजं फलम्॥ १३

दासत्वञ्च विराटस्य कृतं सर्वैर्महात्मभिः।
कीचकेन परिक्लिष्टा द्रौपदी च प्रमद्वरा॥ १४

आशीर्वादा द्विजातीनां क्व गताः शुद्धचेतसाम्।
भक्तिर्वा वासुदेवस्य क्व गता तत्र सङ्कटे॥ १५

न रक्षिता तदा बाला केनापि द्रुपदात्मजा।
प्राप्तकेशग्रहा काले साध्वी च वरवर्णिनी॥ १६

किमत्र चिन्तनीयं वै धर्मवैगुण्यकारणम्।
केशवे सति देवेशे धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे॥ १७

भवितव्यमिति प्रोक्ते निष्फलः स्यात्तदागमः।
वेदमन्त्रास्तथान्ये च वितथाः स्युरसंशयम्॥ १८

साधनं निष्फलं सर्वमुपायश्च निरर्थकः।
भवितव्यं भवत्येव वचने प्रतिपादके॥ १९

आगमोऽप्यर्थवादः स्यात्क्रियाः सर्वा निरर्थकाः।
स्वर्गार्थञ्च तपो व्यर्थं वर्णधर्मश्च वै तथा॥ २०

सर्वं प्रमाणं व्यर्थं स्याद्भवितव्ये कृते हृदि।
उभयञ्चापि मन्तव्यं दैवं चोपाय एव च॥ २१

जिसमें महामनस्वी यादवेन्द्र साक्षात् भगवान् कृष्ण विद्यमान थे और भारद्वाज आदि पूर्णतः विद्यानिष्ठ ब्राह्मणोंने जिस यज्ञका सम्पादन किया था, उस यज्ञको विधिवत् सम्पन्न करनेके पश्चात् एक मासके भीतर ही पाण्डवोंको महान् कष्ट प्राप्त हुआ तथा कठोर वनवास भोगना पड़ा॥ १०—१२॥

द्रौपदीका अपमान हुआ, युधिष्ठिरकी जुएमें पराजय हुई, पाण्डवोंको वनवास हुआ और उन्हें तरह-तरहका घोर कष्ट मिला, तब यज्ञसे होनेवाला फल कहाँ चला गया?॥ १३॥

महामनस्वी पाण्डवोंको राजा विराटकी दासता करनी पड़ी और नारियोंमें श्रेष्ठ द्रौपदीको कीचकने प्रताड़ित किया। उस संकटकालमें विशुद्ध हृदयवाले ब्राह्मणोंके आशीर्वाद कहाँ चले गये थे और कृष्णकी भक्ति कहाँ चली गयी थी?॥ १४-१५॥

जिस समय परम सुन्दरी पतिव्रता द्रौपदीको बाल पकड़कर घसीटा जा रहा था, उस समय उस बेचारीकी रक्षा किसीने भी नहीं की॥ १६॥

जिस यज्ञमें देवाधीश भगवान् श्रीकृष्ण रहे हों और जिस यज्ञके कर्ता धर्मराज युधिष्ठिर हों, उस यज्ञका विपरीत फल मिलनेका कारण अवश्य ही धर्मानुष्ठानमें कोई कमी रही होगी—ऐसा समझना चाहिये॥ १७॥

यदि कहा जाय कि प्रारब्ध ही ऐसा था तो सभी शास्त्र निष्फल हो जायँगे और वेद-मन्त्र तथा अन्य धर्मग्रन्थ निरर्थक सिद्ध होंगे; इसमें संशय नहीं है। प्रारब्ध तो अवश्यम्भावी है, इस कथनको यदि स्वीकार कर लिया जाय तो सभी साधन निष्फल और सभी उपाय व्यर्थ हो जायँगे; सभी वेद-शास्त्र अर्थवादके रूपमें परिणत हो जायँगे, सभी क्रियाएँ निरर्थक हो जायँगी और स्वर्ग-प्राप्तिके लिये तप तथा वर्ण-धर्म सब व्यर्थ हो जायँगे। केवल प्रारब्धको ही हृदयमें धारण करनेसे सभी प्रमाण व्यर्थ हो जायँगे। अतएव भाग्य तथा उपाय दोनोंको मानना चाहिये॥ १८—२१॥

कृते कर्मणि चेत्सिद्धिर्विपरीता यदा भवेत्।
वैगुण्यं कल्पनीयं स्यात्प्राज्ञैः पण्डितमौलिभिः॥ २२

तत्कर्म बहुधा प्रोक्तं विद्वद्भिः कर्मकारिभिः।
कर्तृभेदान्मन्त्रभेदाद् द्रव्यभेदात्तथा पुनः॥ २३

यथा मघवता पूर्वं विश्वरूपो वृतो गुरुः।
विपरीतं कृतं तेन कर्म मातृहिताय वै॥ २४

देवेभ्यो दानवेभ्यस्तु स्वस्तीत्युक्त्वा पुनः पुनः।
असुरा मातृपक्षीयाः कृतं तेषाञ्च रक्षणम्॥ २५

दैत्यान् दृष्ट्वातिसम्पुष्टांश्चुकोप मघवा तदा।
शिरांसि तस्य वज्रेण चिच्छेद तरसा हरिः॥ २६

क्रियावैगुण्यमत्रैव कर्तृभेदादसंशयम्।
नोचेत्पञ्चालराजेन रोषेणापि कृता क्रिया॥ २७

भारद्वाजविनाशाय पुत्रस्योत्पादनाय च।
धृष्टद्युम्नः समुत्पन्नो वेदिमध्याच्च द्रौपदी॥ २८

पुरा दशरथेनापि पुत्रेष्टिस्तु कृता यदा।
अपुत्रस्य सुतास्तस्य चत्वारः सम्प्रजज्ञिरे॥ २९

अतः क्रिया कृता युक्त्या सिद्धिदा सर्वथा भवेत्।
अयुक्त्या विपरीता स्यात्सर्वथा नृपसत्तम॥ ३०

पाण्डवानां यथा यज्ञे किञ्चिद्वैगुण्ययोगतः।
विपरीतं फलं प्राप्तं निर्जितास्ते दुरोदरे॥ ३१

सत्यवादी तथा राजन् धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
द्रौपदी च तथा साध्वी तथान्येऽप्यनुजाः शुभाः॥ ३२

कुद्रव्ययोगाद्वैगुण्यं समुत्पन्नं मखेऽथवा।
साभिमानैः कृताद्वापि दूषणं समुपस्थितम्॥ ३३

कर्म करनेपर भी यदि विपरीत परिणाम प्राप्त होता है तो पण्डितशिरोमणि विद्वानोंको सोचना चाहिये कि कार्य करनेमें कोई कमी अवश्य रह गयी थी॥ २२॥

कर्मशील विद्वानोंने कर्तृभेद, मन्त्रभेद तथा द्रव्यभेदसे उस कर्मको अनेक प्रकारवाला बताया है॥ २३॥

पूर्वकालमें इन्द्रने यज्ञमें आचार्यके रूपमें विश्वरूपका वरण किया था। उस विश्वरूपने अपने मातृपक्षके दानवोंके हितार्थ विपरीत कार्य किया। देवताओं तथा दानवों दोनोंका कल्याण हो—ऐसा बार-बार कहकर उसने मातृपक्षके जो असुर थे, उनकी भी रक्षा की। तदनन्तर दानवोंको अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट देखकर इन्द्र कुपित हो उठे और उन्होंने वज्रसे तत्काल उस विश्वरूपके सिर काट दिये॥ २४—२६॥

इससे यह निस्सन्देह सिद्ध हो जाता है कि कर्ताके भेदसे विपरीत फल हो जाता है। यदि इसे न मानें तो ठीक नहीं; क्योंकि पञ्चालनरेश द्रुपदने रोषपूर्वक द्रोणाचार्यके नाशके निमित्त एक पुत्र उत्पन्न होनेके लिये यज्ञ किया था। [इसके परिणामस्वरूप] यज्ञवेदीके मध्यभागसे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी—ये दोनों उत्पन्न हुए॥ २७-२८॥

पूर्वकालमें जब महाराज दशरथने पुत्रेष्टि-यज्ञ किया तो उन पुत्रहीन राजा दशरथके भी चार पुत्र उत्पन्न हुए॥ २९॥

अतः हे नृपश्रेष्ठ! युक्तिपूर्वक किया गया कोई भी कार्य हर प्रकारसे सिद्धि प्रदान करनेवाला होता है और युक्तिपूर्वक न किया गया कार्य सर्वथा विपरीत फल प्रदान करनेवाला होता है॥ ३०॥

जैसे पाण्डवोंके यज्ञमें किसी दोषके कारण ही उन्हें विपरीत फल मिला और जुएमें वे हार गये। हे राजन्! युधिष्ठिर सत्यवादी तथा धर्मपुत्र थे, द्रौपदी भी एक पतिव्रता स्त्री थी एवं युधिष्ठिरके अन्य छोटे भाई भी पुण्यात्मा थे, किंतु अन्यायोपार्जित द्रव्योंके प्रयोगके कारण उस यज्ञमें वैगुण्य उत्पन्न हुआ अथवा उन्होंने अभिमानपूर्वक यज्ञ किया था, जिससे दोष उत्पन्न हुआ॥ ३१—३३॥

सात्त्विकस्तु महाराज दुर्लभो वै मखः स्मृतः।
वैखानसमुनीनां हि विहितोऽसौ महामखः॥ ३४

सात्त्विकं भोजनं ये वै नित्यं कुर्वन्ति तापसाः।
न्यायार्जितञ्च वन्यञ्च तथा ऋष्यं सुसंस्कृतम्॥ ३५

पुरोडाशपरा नित्यं वियूपा मन्त्रपूर्वकाः।
श्रद्धाधिका मखा राजन् सात्त्विकाः परमाः स्मृताः॥ ३६

राजसा द्रव्यबहुलाः सयूपाश्च सुसंस्कृताः।
क्षत्रियाणां विशाञ्चैव साभिमानाश्च वै मखाः॥ ३७

तामसा दानवानां वै सक्रोधा मदवर्धकाः।
सामर्षाः संस्कृताः क्रूरा मखाः प्रोक्ता महात्मभिः॥ ३८

मुनीनां मोक्षकामानां विरक्तानां महात्मनाम्।
मानसस्तु स्मृतो यागः सर्वसाधनसंयुतः॥ ३९

अन्येषु सर्वयज्ञेषु किञ्चिन्न्यूनं भवेदपि।
द्रव्येण श्रद्धया वापि क्रियया ब्राह्मणैस्तथा॥ ४०

देशकालपृथग्द्रव्यसाधनैः सकलैस्तथा।
नान्यो भवति पूर्णो वै तथा भवति मानसः॥ ४१

प्रथमं तु मनः शोध्यं कर्तव्यं गुणवर्जितम्।
शुद्धे मनसि देहो वै शुद्ध एव न संशयः॥ ४२

इन्द्रियार्थपरित्यक्तं यदा जातं मनः शुचि।
तदा तस्य मखस्यासौ प्रभवेदधिकारवान्॥ ४३

तदासौ मण्डपं कृत्वा बहुयोजनविस्तृतम्।
स्तम्भैश्च विपुलैः श्लक्ष्णैर्यज्ञियद्रुमसम्भवैः॥ ४४

हे महाराज! सात्त्विक यज्ञ तो अत्यन्त दुर्लभ माना गया है। वह महायज्ञ केवल वानप्रस्थ मुनियोंके लिये ही विहित है॥ ३४॥

हे राजन्! तपमें तत्पर जो लोग नित्य न्यायपूर्वक अर्जित किये गये द्रव्य-पदार्थ, वन्य फल-मूल तथा ऋषियोंका सुसंस्कृत सात्त्विक आहार ग्रहण करते हैं—ऐसे तपस्वियोंद्वारा नित्य अतिश्रद्धाके साथ पुरोडाशसे सम्पादित किये जानेवाले समन्त्रक तथा यूपविहीन यज्ञ परम सात्त्विक यज्ञ कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

जिस यज्ञमें अधिक धन व्यय किया जाता है, जिसमें पशु-बलिके लिये सुन्दर यूप गाड़े जाते हैं तथा जो अभिमानके साथ किये जाते हैं—क्षत्रियों तथा वैश्योंद्वारा सम्पादित किये जानेवाले वे यज्ञ राजस यज्ञ कहे गये हैं॥ ३७॥

महात्माओंने दानवोंद्वारा किये जानेवाले यज्ञोंको तामस यज्ञ कहा है। ऐसे यज्ञ क्रोधभावनाके साथ किये जाते हैं, अहंकारको बढ़ानेवाले होते हैं, ईर्ष्यापूर्वक किये जाते हैं और बड़ी साज-सज्जा तथा क्रूरताके साथ सम्पन्न किये जाते हैं॥ ३८॥

मोक्षकी कामना करनेवाले विरक्त मुनि-महात्माओंके लिये सर्वसाधनसम्पन्न मानस-यज्ञ बताया गया है॥ ३९॥

अन्य सभी यज्ञोंमें कुछ कमी हो भी सकती है; क्योंकि वे द्रव्य, श्रद्धा, कर्म, ब्राह्मण, देश, काल तथा अन्य द्रव्यसाधनोंसे सम्पन्न किये जाते हैं। अतः अन्य यज्ञ वैसा पूर्ण नहीं होता, जैसा मानस-यज्ञ सदैव पूर्ण हो जाता है॥ ४०-४१॥

[इस यज्ञके लिये] सर्वप्रथम मनको परिशुद्ध तथा गुणसे रहित बनाना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर शरीरकी शुद्धि स्वतः हो जाती है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२॥

जब मनुष्यका मन इन्द्रियोंके विषयोंका परित्याग करके पवित्र हो जाता है, तभी वह उस मानस-यज्ञको करनेका अधिकारी होता है॥ ४३॥

तत्पश्चात् वह अपने मनमें पवित्र यज्ञीय वृक्षोंसे निर्मित, अनेक सुन्दर-सुन्दर स्तम्भोंसे अलंकृत तथा अनेक योजन विस्तारवाले यज्ञमण्डपकी रचना करके

वेदीं च विशदां तत्र मनसा परिकल्पयेत्।
अग्नयोऽपि तथा स्थाप्या विधिवन्मनसा किल॥ ४५

ब्राह्मणानाञ्च वरणं तथैव प्रतिपाद्य च।
ब्रह्माध्वर्युस्तथा होता प्रस्तोता विधिपूर्वकम्॥ ४६

उद्गाता प्रतिहर्ता च सभ्याश्चान्ये यथाविधि।
पूजनीया प्रयत्नेन मनसैव द्विजोत्तमाः॥ ४७

प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानोदान एव च।
पावकाः पञ्च एवैते स्थाप्या वेद्यां विधानतः॥ ४८

गार्हपत्यस्तदा प्राणोऽपानश्चाहवनीयकः।
दक्षिणाग्निस्तथा व्यानः समानश्चावसथ्यकः॥ ४९

सभ्योदानः स्मृता ह्येते पावकाः परमोत्कटाः।
द्रव्यं च मनसा भाव्यं निर्गुणं परमं शुचि॥ ५०

मन एव तदा होता यजमानस्तथैव तत्।
यज्ञाधिदेवता ब्रह्म निर्गुणं च सनातनम्॥ ५१

फलदा निर्गुणा शक्तिः सदा निर्वेददा शिवा।
ब्रह्मविद्याखिलाधारा व्याप्य सर्वत्र संस्थिता॥ ५२

तदुद्देशेन तद् द्रव्यं हुनेत्प्राणाग्निषु द्विजः।
पश्चाच्चित्तं निरालम्बं कृत्वा प्राणानपि प्रभो॥ ५३

कुण्डलीमुखमार्गेण हुनेद् ब्रह्मणि शाश्वते।
स्वानुभूत्या स्वयं साक्षात्स्वात्मभूतां महेश्वरीम्॥ ५४

समाधिनैव योगेन ध्यायेच्चेतस्यनाकुलः।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि॥ ५५

उसमें मन-ही-मन एक विशाल यज्ञवेदीकी कल्पना करे और उसपर मानसिक अग्निकी विधिपूर्वक स्थापना करे॥ ४४-४५॥

उसी प्रकार [मनमें] ब्राह्मणोंका वरण करके ब्रह्मा, अध्वर्यु, होता, प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता तथा अन्य सभासदोंको नियुक्त करके यथोचित रूपसे प्रयत्नपूर्वक मनसे उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७॥

प्राण, अपान, व्यान, समान तथा उदान—इन पाँचों अग्नियोंको यज्ञवेदीपर विधानपूर्वक स्थापित करना चाहिये॥ ४८॥

उनमें प्राणको गार्हपत्य अग्नि, अपानको आहवनीय अग्नि, व्यानको दक्षिणाग्नि, समानको आवसथ्य अग्नि तथा उदानको सभ्य अग्नि कहा गया है। ये पाँचों परम तेजस्वी हैं। इस यज्ञमें मानसिक रूपसे ही दोषरहित तथा परम पवित्र सामग्रियोंकी भी कल्पना करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

इस यज्ञमें होता तथा यजमान दोनोंके रूपमें मन ही होता है। निर्गुण तथा अविनाशी ब्रह्म इस यज्ञमें अधिदेवता होते हैं॥ ५१॥

निर्गुणा पराशक्ति सभी फलोंको प्रदान करनेवाली हैं। उन वैराग्यदायिनी, कल्याणकारिणी, ब्रह्मविद्या, समस्त जगत्की आधारस्वरूपा तथा जगत्को व्याप्त करके सर्वत्र विराजमान रहनेवाली आदिशक्ति-स्वरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे द्विजको मनःकल्पित हवन-सामग्रियोंकी आहुति अपने प्राणरूपी अग्निमें देनी चाहिये॥ ५२½॥

हे प्रभो! मानस हवनके पश्चात् अपने मनको आलम्बनरहित करके कुण्डलिनीके मुखमार्गसे अर्थात् सुषुम्ना रन्ध्रद्वारा शाश्वत ब्रह्ममें अपने प्राणोंकी भी आहुति दे देनी चाहिये॥ ५३½॥

अपनी अनुभूतिसे स्वयंका साक्षात्कार करके तथा महेश्वरीको अपनी आत्मस्वरूपा जानकर समाधियोगसे शान्तचित्त होकर ध्यान करना चाहिये॥ ५४½॥

इस प्रकार जब वह साधक सभी प्राणियोंमें अपने-आपको तथा अपनेमें सभी प्राणियोंको देखने लगता है, तब वह भूतात्मा उन कल्याणस्वरूपा

यदा पश्यति भूतात्मा तदा पश्यति तां शिवाम्।
दृष्ट्वा तां ब्रह्मविद्भूयात्सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ५६

तदा मायादिकं सर्वं दग्धं भवति भूमिप।
प्रारब्धं कर्ममात्रं तु यावद्देहं च तिष्ठति॥ ५७

जीवन्मुक्तस्तदा जातो मृतो मोक्षमवाप्नुयात्।
कृतकृत्यो भवेत्तात यो भजेज्जगदम्बिकाम्॥ ५८

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ध्येया श्रीभुवनेश्वरी।
श्रोतव्या चैव मन्तव्या गुरुवाक्यानुसारतः॥ ५९

राजन्नेवं कृतो यज्ञो मोक्षदो नात्र संशयः।
अन्ये यज्ञाः सकामास्तु प्रभवन्ति क्षयोन्मुखाः॥ ६०

अग्निष्टोमेन विधिवत्स्वर्गकामो यजेदिति।
वेदानुशासनं चैतत्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६१

क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं विशन्ति च यथामति।
तस्मात्तु मानसः श्रेष्ठो यज्ञोऽप्यक्षय एव सः॥ ६२

न राज्ञा साधितुं योग्यो मखोऽसौ जयमिच्छता।
तामसस्तु कृतः पूर्वं सर्पयज्ञस्त्वयाधुना॥ ६३

वैरं निर्वाहितं राजंस्तक्षकस्य दुरात्मनः।
यत्कृते निहताः सर्पास्त्वयाग्नौ कोटिशः परे॥ ६४

देवीयज्ञं कुरुष्वाद्य विततं विधिपूर्वकम्।
विष्णुना यः कृतः पूर्वं सृष्ट्यादौ नृपसत्तम॥ ६५

तथा त्वं कुरु राजेन्द्र विधिं ते प्रब्रवीम्यहम्।
ब्राह्मणाः सन्ति राजेन्द्र विधिज्ञा वेदवित्तमाः॥ ६६

देवीबीजविधानज्ञा मन्त्रमार्गविचक्षणाः।
याजकास्ते भविष्यन्ति यजमानस्त्वमेव हि॥ ६७

कृत्वा यज्ञं विधानेन दत्त्वा पुण्यं मखार्जितम्।
समुद्धर महाराज पितरं दुर्गतिङ्गतम्॥ ६८

भगवतीका दर्शन प्राप्त कर लेता है और उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणीका दर्शन करके ब्रह्मज्ञानी हो जाता है। हे भूपाल! तब उसका सब मायाजनित प्रपंच जलकर भस्म हो जाता है और केवल प्रारब्धकर्मका भोग करनेके लिये ही शरीर रहता है॥ ५५—५७॥

हे तात! तब वह जीवन्मुक्त हो जाता है और मृत्युके उपरान्त मोक्ष प्राप्त करता है। जो भगवतीको भजता है, वह सब प्रकारसे कृतकृत्य हो जाता है। इसलिये गुरुके वचनोंके अनुसार सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ श्रीभुवनेश्वरी भगवतीका ध्यान, उनके चरित्रका श्रवण तथा मनन करना चाहिये॥ ५८-५९॥

हे राजन्! इस प्रकार किया हुआ यज्ञ मोक्षप्रद होता है; इसमें सन्देह नहीं। इसके अतिरिक्त अन्य सकाम यज्ञ विनाशोन्मुख होते हैं॥ ६०॥

मनीषी विद्वान् यह वेदानुशासन बताते हैं कि स्वर्गकी इच्छावालेको विधिपूर्वक अग्निष्टोम यज्ञ करना चाहिये। मेरी समझसे पुण्य क्षीण होनेपर पुनः उन्हें मृत्युलोकमें आना ही पड़ता है, अतः अक्षय फलवाला वह मानस-यज्ञ ही श्रेष्ठ है॥ ६१-६२॥

विजयकी इच्छा रखनेवाला राजा इस मानस-यज्ञको सम्पन्न नहीं कर सकता। हे राजन्! अभी कुछ ही समय पूर्व आपने तामस सर्पयज्ञ किया था, जिसमें आपने दुरात्मा तक्षकसे वैरका बदला चुकाया था और उसमें आपने करोड़ों सर्पोंको अग्निमें जलाकर मार डाला था॥ ६३-६४॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप विधिपूर्वक विस्तृत देवीयज्ञ कीजिये, जिसे पूर्वकालमें सृष्टिके आरम्भमें भगवान् विष्णुने किया था॥ ६५॥

हे राजेन्द्र! मैं आपको उसकी विधि बता रहा हूँ, आप वैसा कीजिये। हे राजेन्द्र! आपके यहाँ वेदोंके पूर्ण ज्ञाता, विधिको जाननेवाले, देवीके बीजमन्त्रके विधानके जानकार तथा मन्त्रमार्गके विद्वान् अनेक ब्राह्मण हैं, वे ही उस यज्ञमें आपके याजक होंगे और आप यजमान बनेंगे॥ ६६-६७॥

हे महाराज! इस प्रकार आप विधिवत् देवीयज्ञ करके उस यज्ञसे मिले हुए पुण्यको अर्पित करके अपने दुर्गतिप्राप्त पिताका उद्धार कीजिये॥ ६८॥

विप्रावमानजं पापं दुर्घटं नरकप्रदम्।
तथैव शापजो दोषः प्राप्तः पित्रा तवानघ॥ ६९

तथा दुर्मरणं प्राप्तं सर्पदंशेन भूभुजा।
अन्तराले तथा मृत्युर्न भूमौ कुशसंस्तरे॥ ७०

न सङ्ग्रामे न गङ्गायां स्नानदानादिवर्जितम्।
मरणं ते पितुस्तत्र सौधे जातं कुरूद्वह॥ ७१

कृपणानि च सर्वाणि नरकस्य नृपोत्तम।
तत्रैकं कारणं तस्य न जातं चातिदुर्लभम्॥ ७२

यत्र यत्र स्थितः प्राणी ज्ञात्वा कालं समागतम्।
साधनानामभावेऽपि ह्यवशश्चातिसङ्कटे॥ ७३

यदा निर्वेदमायाति मनसा निर्मलेन वै।
पञ्चभूतात्मको देहो मम किञ्चात्र दुःखदम्॥ ७४

पतत्वद्य यथाकामं मुक्तोऽहं निर्गुणोऽव्ययः।
नाशात्मकानि तत्त्वानि तत्र का परिदेवना॥ ७५

ब्रह्मैवाहं न संसारी सदा मुक्तः सनातनः।
देहेन मम सम्बन्धः कर्मणा प्रतिपादितः॥ ७६

तानि सर्वाणि मुक्तानि शुभानि चेतराणि च।
मनुष्यदेहयोगेन सुखदुःखानुसाधनात्॥ ७७

विमुक्तोऽतिभयाद् घोरादस्मात्संसारसङ्कटात्।
इत्येवं चिन्त्यमानस्तु स्नानदानविवर्जितः॥ ७८

मरणं चेदवाप्नोति स मुच्येज्जन्मदुःखतः।
एषा काष्ठा परा प्रोक्ता योगिनामपि दुर्लभा॥ ७९

पिता ते नृपशार्दूल श्रुत्वा शापं द्विजोदितम्।
देहे ममत्वं कृतवान्न निर्वेदमवाप्तवान्॥ ८०

ब्राह्मणके अपमानसे होनेवाला पाप बड़ा भयंकर और नरकदायक होता है। हे अनघ! आपके पिता वैसे ही शापजनित दोषसे ग्रस्त हो चुके हैं; साथ ही साँपके काटनेसे महाराजकी अकालमृत्यु हुई है और भूमिपर बिछे कुशासनपर नहीं अपितु आकाशमें उनका मरण हुआ है, उनकी मृत्यु न रणस्थलमें हुई है और न गंगातटपर ही अपितु हे कुरुश्रेष्ठ! आपके पिता बिना स्नान-दान आदि किये ही महलमें मर गये॥ ६९—७१॥

हे नृपश्रेष्ठ! ये सब कुत्सित साधन नरकके हेतु हैं। राजाके लिये नरकसे बचनेका एक उपाय था; किंतु वह अत्यन्त दुर्लभ उपाय भी उनसे न बन सका॥ ७२॥

जहाँ कहीं भी प्राणी स्थित रहे, कालको समीप आया जानकर साधनोंके अभावमें भी अत्यन्त कष्टके कारण विवश हुआ वह जब हृदयमें वैराग्य-भाव आ जाय, तब निर्मल मनसे यह सोचने लगे कि यह शरीर तो पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु—इन पंचभूतोंसे निर्मित है, तब फिर यह मेरे लिये क्या दुःखदायी हो सकता है!॥ ७३-७४॥

यह देह अभी नष्ट हो जाय; मैं तो मुक्त, निर्गुण तथा अविनाशी हूँ। ये पंचतत्त्व तो विनाशशील हैं, तब इनके लिये मुझे चिन्ता ही क्या! मैं तो सदा मुक्त और सनातन ब्रह्म हूँ; संसारी जीव नहीं हूँ। इस देहसे मेरा सम्बन्ध केवल कर्मभोगके कारण ही है। शरीरद्वारा किये गये उन सभी शुभाशुभ कर्मोंका मेरा बन्धन तो छूट चुका है; क्योंकि मनुष्यशरीरसे मैंने दुःख तथा सुख भोग लिया है और इस अत्यन्त भयानक, घोर तथा भीषण सांसारिक कष्टसे मैं सर्वथा विमुक्त हूँ, इस प्रकारका चिन्तन करता हुआ पुरुष यदि स्नान-दानरहित भी मृत्यु प्राप्त करता है तो भी वह पुनः जन्म लेनेके दुःखसे छूट जाता है। यह सर्वोत्कृष्ट साधन कहा गया है, जो योगियोंके लिये भी दुर्लभ है॥ ७५—७९॥

हे नृपसत्तम! आपके पिताने ब्राह्मणके द्वारा दिये गये उस शापको सुनकर भी अपने शरीरके प्रति मोह रखा और वैराग्यका आश्रय नहीं लिया॥ ८०॥

नीरोगो मम देहोऽयं राज्यं निहतकण्टकम्।
कथं जीवाम्यहं कामं मन्त्रज्ञानानयन्तु वै॥ ८१

औषधं मणिमन्त्रं च यन्त्रं परमकं तथा।
आरोहणं तथा सौधे कृतवान्नृपतिस्तदा॥ ८२

न स्नानं न कृतं दानं न देव्याः स्मरणं कृतम्।
न भूमौ शयनं चैव दैवं मत्वा परं तथा॥ ८३

मग्नो मोहार्णवे घोरे मृतः सौधेऽहिना हतः।
कृत्वा पापं कलेर्योगात्तापसस्यावमानजम्॥ ८४

अवश्यमेव नरकं एतैराचरणैर्भवेत्।
तस्मात्त्वं पितरं पापात्समुद्धर नृपोत्तम॥ ८५

सूत उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य व्यासस्यामिततेजसः।
साश्रुकण्ठोऽतिदुःखार्तो बभूव जनमेजयः॥ ८६

धिगिदं जीवितं मेऽद्य पिता मे नरके स्थितः।
तत्करोमि यथैवाद्य स्वर्गं यात्युत्तरासुतः॥ ८७

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि मेरा यह शरीर सदा निरोग रहे, मैं निष्कंटक राज्य करता रहूँ और चिरकालतक कैसे जीता रहूँ, [—इस भावनासे उन्होंने सचिवोंको आज्ञा दी कि सर्पविष उतारनेका] मन्त्र जाननेवालोंको बुलाओ॥ ८१॥

राजाने औषध, मणि, मन्त्र तथा उत्तमोत्तम यन्त्रोंका संग्रह किया और वे एक ऊँचे महलपर आरूढ़ हो गये। उस समय उन्होंने न स्नान किया, न दान दिया और न भगवतीका स्मरण ही किया। दैवको प्रधान मानकर वे भूमिपर भी नहीं सोये॥ ८२-८३॥

कलिके प्रभावके कारण एक तपस्वीके प्रति अपमानजन्य पाप करके घोर मोहरूपी सागरमें डूबकर महलके ऊपर सर्पके डँसनेसे वे मर गये। ऐसे आचरणोंसे अवश्य ही नरक होता है। इसलिये हे नृपश्रेष्ठ! अपने उन पिताका पापसे उद्धार कीजिये॥ ८४-८५॥

सूतजी बोले—[हे ऋषिगण!] अमित तेजस्वी व्यासजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजय बड़े दुःखी हुए और अश्रुप्रवाहके कारण उनका कण्ठ रुँध गया। [मनमें पश्चात्ताप करते हुए वे कहने लगे—] आज मेरे इस जीवनको धिक्कार है जो कि मेरे पिता नरकमें पड़े हैं। इसलिये अब मैं ऐसा उपाय करता हूँ, जिससे उत्तरातनय राजा परीक्षित् स्वर्ग चले जायँ॥ ८६-८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अम्बायज्ञविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

देवीकी आधारशक्तिसे पृथ्वीका अचल होना तथा उसपर सुमेरु आदि पर्वतोंकी रचना, ब्रह्माजीद्वारा मरीचि आदिकी मानसी सृष्टि करना, काश्यपी सृष्टिका वर्णन, ब्रह्मलोक, वैकुण्ठ, कैलास और स्वर्ग आदिका निर्माण; भगवान् विष्णुद्वारा अम्बायज्ञ करना और प्रसन्न होकर भगवती आद्याशक्तिद्वारा आकाशवाणीके माध्यमसे उन्हें वरदान देना

राजोवाच

हरिणा तु कथं यज्ञः कृतः पूर्वं पितामह।
जगत्कारणरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १

राजा बोले—हे पितामह! जगत्के कारणस्वरूप तथा परम शक्तिशाली भगवान् विष्णुने पूर्वकालमें वह यज्ञ कैसे किया? हे महामते! उस यज्ञमें कौन-कौन

के सहायास्तु तत्रासन्ब्राह्मणाः के महामते।
ऋत्विजो वेदतत्त्वज्ञास्तन्मे ब्रूहि परन्तप॥ २

पश्चात्करोम्यहं यज्ञं विधिदृष्टेन कर्मणा।
श्रुत्वा विष्णुकृतं यागमम्बिकायाः समाहितः॥ ३

व्यास उवाच

राजञ्छृणु महाभाग विस्तरं परमाद्भुतम्।
यथा भगवता यज्ञः कृतश्च विधिपूर्वकः॥ ४

विसर्जिता यदा देव्या दत्त्वा शक्तीश्च तास्त्रयः।
काजेशाः पुरुषा जाता विमानवरमास्थिताः॥ ५

प्राप्ता महार्णवं घोरं त्रयस्ते विबुधोत्तमाः।
चक्रुः स्थानानि वासार्थं समुत्पाद्य धरां स्थिताः॥ ६

आधारशक्तिरचला मुक्ता देव्या स्वयं ततः।
तदाधारा स्थिता जाता धरा मेदःसमन्विता॥ ७

मधुकैटभयोर्मेदःसंयोगान्मेदिनी स्मृता।
धारणाच्च धरा प्रोक्ता पृथ्वी विस्तारयोगतः॥ ८

मही चापि महीयस्त्वाद्भूता सा शेषमस्तके।
गिरयश्च कृताः सर्वे धारणार्थं प्रविस्तराः॥ ९

लोहकीलं यथा काष्ठे तथा ते गिरयः कृताः।
महीधरा महाराज प्रोच्यन्ते विबुधैर्जनैः॥ १०

जातरूपमयो मेरुर्बहुयोजनविस्तरः।
कृतो मणिमयैः शृङ्गैः शोभितः परमाद्भुतः॥ ११

मरीचिर्नारदोऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
दक्षो वसिष्ठ इत्येते ब्रह्मणः प्रथिताः सुताः॥ १२

मरीचेः कश्यपो जातो दक्षकन्यास्त्रयोदश।
ताभ्यो देवाश्च दैत्याश्च समुत्पन्ना ह्यनेकशः॥ १३

ब्राह्मण सहायक थे और कौन-कौन वेदतत्त्वज्ञ विद्वान् ऋत्विज थे? हे परन्तप! यह सब आप मुझे बतायें। भगवान् विष्णुके द्वारा किये गये अम्बायज्ञको सुनकर बादमें मैं भी सावधान होकर उसी विहित कर्मके अनुसार यज्ञ करूँगा॥ १—३॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! हे राजन्! भगवान् विष्णुने जिस तरह विधिपूर्वक देवीयज्ञ किया था, उस परम अद्भुत प्रसंगको आप विस्तारसे सुनें॥ ४॥

उस समय जब आदिशक्तिने उन्हें विभिन्न शक्तियाँ प्रदान करके विदा कर दिया, तब श्रेष्ठ विमानपर स्थित वे तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश पुनः पुरुषके रूपमें हो गये। [वहाँसे चलकर] वे तीनों श्रेष्ठ देवगण घोर महासागरमें पहुँच गये। वहाँ उन्होंने पृथ्वी उत्पन्न करके उसपर रहनेके लिये स्थान बनाया और वहीं रहने लगे॥ ५-६॥

उसी समय देवीने अचल आधारशक्तिको मुक्त किया, जिसके आश्रयसे वह मेदयुक्त पृथ्वी टिक गयी॥ ७॥

मधु-कैटभके मेदका संयोग होनेके कारण पृथ्वीको 'मेदिनी' कहा गया है। धारण करनेकी शक्ति होनेके कारण उसे 'धरा' तथा विस्तृत होनेके कारण उसे 'पृथ्वी' कहा गया है॥ ८॥

यह पृथ्वी महनीय होनेके कारण 'मही' कही जाती है। यह शेषनागके मस्तकपर स्थित है। इसको यथास्थान स्थित रखनेके लिये सभी विशाल पर्वत रचे गये। जिस प्रकार काठमें लौह कीलें जड़ दी जाती हैं, उसी प्रकार पृथ्वीको सुस्थिर रखनेके लिये विशाल पर्वत बनाये गये। इसी कारण विद्वान्लोग उन पर्वतोंको 'महीधर' कहते हैं॥ ९-१०॥

परम अद्भुत सुमेरुपर्वत सोनेका बना हुआ है, वह मणिमय चोटियोंसे सुशोभित है तथा अनेक योजन विस्तारवाला है॥ ११॥

[उस समय सृष्टिका विकास इस प्रकार हुआ—] सर्वप्रथम ब्रह्माके विख्यात मानसिक पुत्र मरीचि, नारद, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष और वसिष्ठ आदि हुए। तत्पश्चात् मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। दक्षप्रजापतिको तेरह कन्याएँ हुईं। उन्हीं कन्याओंसे अनेक देवता एवं दैत्य उत्पन्न हुए॥ १२-१३॥

ततस्तु काश्यपी सृष्टिः प्रवृत्ता चातिविस्तरा।
मनुष्यपशुसर्पादिजातिभेदैरनेकधा ॥ १४

ब्रह्मणश्चार्धदेहात्तु मनुः स्वायम्भुवोऽभवत्।
शतरूपा तथा नारी सञ्जाता वामभागतः॥ १५

प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ तस्या बभूवतुः।
तिस्रः कन्या वरारोहा ह्यभवन्नतिसुन्दराः॥ १६

एवं सृष्टिं समुत्पाद्य भगवान्कमलोद्भवः।
चकार ब्रह्मलोकञ्च मेरुशृङ्गे मनोहरम्॥ १७

वैकुण्ठं भगवान्विष्णू रमारमणमुत्तमम्।
क्रीडास्थानं सुरम्यञ्च सर्वलोकोपरिस्थितम्॥ १८

शिवोऽपि परमं स्थानं कैलासाख्यं चकार ह।
समासाद्य भूतगणं विजहार यथारुचि॥ १९

स्वर्गस्त्रिविष्टपो मेरुशिखरोपरि कल्पितः।
तच्च स्थानं सुरेन्द्रस्य नानारत्नविराजितम्॥ २०

समुद्रमथनात्प्राप्तः पारिजातस्तरूत्तमः।
चतुर्दन्तस्तथा नागः कामधेनुश्च कामदा॥ २१

उचैःश्रवास्तथाश्वो वै रम्भाद्यप्सरसस्तथा।
इन्द्रेणोपात्तमखिलं जातं वै स्वर्गभूषणम्॥ २२

धन्वन्तरिश्चन्द्रमाश्च सागराच्च समुद्बभौ।
स्वर्गस्थितौ विराजेते देवौ बहुगणैर्वृतौ॥ २३

एवं सृष्टिः समुत्पन्ना त्रिविधा नृपसत्तम।
देवतिर्यङ्मनुष्यादिभेदैर्विविधकल्पिता ॥ २४

अण्डजाः स्वेदजाश्चैव चोद्भिज्जाश्च जरायुजाः।
चतुर्भेदैः समुत्पन्ना जीवाः कर्मयुताः किल॥ २५

एवं सृष्टिं समासाद्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
विहारं स्वेषु स्थानेषु चक्रुः सर्वे यथेप्सितम्॥ २६

उसके बाद काश्यपी सृष्टि संसारमें फैल गयी। उस सृष्टिमें मनुष्य, पशु और सर्प आदि योनिभेदोंसे अनेक जीव उत्पन्न हुए॥ १४॥

ब्रह्माके दाहिने आधे शरीरसे स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए तथा बायें भागसे स्त्रीके रूपमें शतरूपा उत्पन्न हुईं॥ १५॥

उन्हीं शतरूपासे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए तथा तीन अत्यन्त सुन्दर और उत्तम गुणोंवाली पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं॥ १६॥

इस प्रकार सृष्टिरचना करके कमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माजीने सुमेरुपर्वतके शिखरपर एक सुन्दर ब्रह्मलोक बनाया॥ १७॥

भगवान् विष्णुने भी लक्ष्मीजीके विहार करनेयोग्य वैकुण्ठलोक बनाया। वह अत्यन्त रमणीय तथा उत्तम क्रीडास्थान सभी लोकोंके ऊपर विराजमान है॥ १८॥

शिवजीने भी कैलास नामक एक उत्तम स्थान बना लिया, जिसमें वे भूतगणोंको साथ लेकर इच्छानुसार विहार करने लगे॥ १९॥

सुमेरुपर्वतके एक शिखरपर देवलोक स्वर्गकी रचना हुई। वह इन्द्रलोक अनेक प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित तथा इन्द्रका निवास था॥ २०॥

समुद्रमन्थनसे सर्वोत्तम वृक्ष पारिजात, चार दाँतोंवाला ऐरावत हाथी, कामना पूर्ण करनेवाली कामधेनु, उच्चैःश्रवा घोड़ा और रम्भा आदि अनेक अप्सराएँ निकलीं। इन्द्रने स्वर्गको सुशोभित करनेवाले इन सबको अपने पास रख लिया। धन्वन्तरिवैद्य तथा चन्द्रमा भी समुद्रसे निकले; वे दोनों देव अनेक गुणोंसे युक्त होकर स्वर्गमें रहते हुए शोभा पाने लगे॥ २१—२३॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस तरह तीन प्रकारकी सृष्टि हुई। देवता, पशु-पक्षी और मानव आदि अनेक भेदोंसे यह सृष्टि कल्पित है। अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज तथा जरायुज—इन चार भेदोंसे अनेक जीवोंकी सृष्टि हुई। उन सभी जीवोंके साथ कर्मका बन्धन लगा हुआ है। इस प्रकार सृष्टि करके ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब अपने-अपने लोकोंमें इच्छापूर्वक विहार करने लगे॥ २४—२६॥

एवं प्रवर्तिते सर्गे भगवान्प्रभुरच्युतः।
महालक्ष्म्या समं तत्र चिक्रीड भुवने स्वके॥ २७

एकस्मिन्समये विष्णुर्वैकुण्ठे संस्थितः पुरा।
सुधासिन्धुस्थितं द्वीपं सस्मार मणिमण्डितम्॥ २८

यत्र दृष्ट्वा महामायां मन्त्रश्चासादितः शुभः।
स्मृत्वा तां परमां शक्तिं स्त्रीभावं गमितो यया॥ २९

यज्ञं कर्तुं मनश्चक्रे अम्बिकाया रमापतिः।
उत्तीर्य भुवनात्तस्मात्समाहूय महेश्वरम्॥ ३०

ब्रह्माणं वरुणं शक्रं कुबेरं पावकं यमम्।
वसिष्ठं कश्यपं दक्षं वामदेवं बृहस्पतिम्॥ ३१

सम्भारं कल्पयामास यज्ञार्थं चातिविस्तरम्।
महाविभवसंयुक्तं सात्त्विकं च मनोहरम्॥ ३२

मण्डपं विततं तत्र कारयामास शिल्पिभिः।
ऋत्विजो वरयामास सप्तविंशतिसुव्रतान्॥ ३३

चितिञ्च कारयामास वेदीश्चैव सुविस्तराः।
प्रजेपुर्ब्राह्मणा मन्त्रान्देव्या बीजसमन्वितान्॥ ३४

जुहुवुस्ते हविः कामं विधिवत्परिकल्पिते।
कृते तु वितते होमे वागुवाचाशरीरिणी॥ ३५

विष्णुं तदा समाभाष्य सुस्वरा मधुराक्षरा।
विष्णो त्वं भव देवानां हरे श्रेष्ठतमः सदा॥ ३६

मान्यश्च पूजनीयश्च समर्थश्च सुरेष्वपि।
सर्वे त्वामर्चयिष्यन्ति ब्रह्माद्याश्च सवासवाः॥ ३७

प्रभविष्यन्ति भो भक्त्या मानवा भुवि सर्वतः।
वरदस्त्वं च सर्वेषां भविता मानवेषु वै॥ ३८

कामदः सर्वदेवानां परमः परमेश्वरः।
सर्वयज्ञेषु मुख्यस्त्वं पूज्यः सर्वैश्च याज्ञिकैः॥ ३९

इस प्रकार सृष्टिके विस्तृत हो जानेपर अच्युत भगवान् विष्णु अपने लोकमें लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्द करने लगे॥ २७॥

एक समयकी बात है—भगवान् विष्णु वैकुण्ठमें विराजमान थे। उन्हें एकाएक अमृतसागरमें विद्यमान तथा मणियोंसे सुशोभित उस द्वीपका स्मरण हो आया, जहाँ महामायाका दर्शन करके उन्होंने शुभ मन्त्र प्राप्त किया था। तदनन्तर जिन भगवतीके द्वारा वे पुरुषसे स्त्री बना दिये गये थे, उन परमशक्तिका स्मरण करके लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुने अम्बायज्ञ करनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ २८-२९$\frac{१}{२}$ ॥

इसके बाद अपने धामसे उतरकर उन्होंने शिव, ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, कुबेर, अग्नि, यम, वसिष्ठ, कश्यप, दक्ष, वामदेव तथा बृहस्पतिको आमन्त्रित करके अत्यन्त विस्तारके साथ यज्ञ सम्पन्न करनेके लिये अत्यधिक मूल्यवाली, सात्त्विक तथा मनोरम बहुत-सी सामग्रियाँ एकत्र कीं॥ ३०-३२॥

उन्होंने शिल्पियोंद्वारा विशाल यज्ञमण्डप बनवाया और सत्ताईस महान् व्रती ऋत्विजोंका वरण किया। तत्पश्चात् अग्निस्थापनके लिये बड़ी-बड़ी वेदियाँ बनायी गयीं। ब्राह्मणगण बीजसहित देवीमन्त्रोंका जप करने लगे॥ ३३-३४॥

विधिवत् प्रज्वलित की गयी अग्निमें वे ब्राह्मण यथेच्छ हव्य-पदार्थकी आहुति देने लगे। इस प्रकार विस्तृत होमकृत्य सम्पन्न होते ही भगवान् विष्णुको सम्बोधित करके मधुर अक्षरों तथा स्पष्ट स्वरोंसे युक्त आकाशवाणी हुई। हे हरे! हे विष्णो! आप सदा देवताओंमें श्रेष्ठतम होंगे। सभी देवगणोंमें आप मान्य, पूज्य तथा समर्थ होंगे। संसारमें इन्द्रसहित ब्रह्मा आदि सभी देवता आपकी अर्चना करेंगे॥ ३५—३७॥

हे विष्णो! पृथ्वीपर सभी मानव आपकी भक्तिसे युक्त होकर रहेंगे और आप सभी मनुष्योंको वर देनेवाले होंगे॥ ३८॥

आप सभी देवताओंको वांछित फल प्रदान करनेवाले महान् परमेश्वर होंगे। सभी यज्ञोंमें प्रधानरूपसे सभी याज्ञिकोंके द्वारा आप ही पूजे जायँगे॥ ३९॥

त्वां जनाः पूजयिष्यन्ति वरदस्त्वं भविष्यसि।
श्रयिष्यन्ति च देवास्त्वां दानवैरतिपीडिताः॥ ४०

शरणस्त्वञ्च सर्वेषां भविता पुरुषोत्तम।
पुराणेषु च सर्वेषु वेदेषु विततेषु च॥ ४१

त्वं वै पूज्यतमः कामं कीर्तिस्तव भविष्यति।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूतले॥ ४२

तदांशेनावतीर्याशु कर्तव्यं धर्मरक्षणम्।
अवताराः सुविख्याताः पृथिव्यां तव भागशः॥ ४३

भविष्यन्ति धरायां वै माननीया महात्मनाम्।
अवतारेषु सर्वेषु नानायोनिषु माधव॥ ४४

विख्यातः सर्वलोकेषु भविता मधुसूदन।
अवतारेषु सर्वेषु शक्तिस्ते सहचारिणी॥ ४५

भविष्यति ममांशेन सर्वकार्यप्रसाधिनी।
वाराही नारसिंही च नानाभेदैरनेकधा॥ ४६

नानायुधाः शुभाकाराः सर्वाभरणमण्डिताः।
ताभिर्युक्तः सदा विष्णो सुरकार्याणि माधव॥ ४७

साधयिष्यसि तत्सर्वं मद्दत्तवरदानतः।
तास्त्वया नावमन्तव्याः सर्वदा गर्वलेशतः॥ ४८

पूजनीयाः प्रयत्नेन माननीयाश्च सर्वथा।
नूनं ता भारते खण्डे शक्तयः सर्वकामदाः॥ ४९

भविष्यन्ति मनुष्याणां पूजिताः प्रतिमासु च।
तासां तव च देवेश कीर्तिः स्यादखिलेष्वपि॥ ५०

द्वीपेषु सप्तस्वपि च विख्याता भुवि मण्डले।
ताश्च त्वां वै महाभाग मानवा भुवि मण्डले॥ ५१

अर्चयिष्यन्ति वाञ्छार्थं सकामाः सततं हरे।
अर्चासु चोपहारैश्च नानाभावसमन्विताः॥ ५२
पूजयिष्यन्ति वेदोक्तैर्मन्त्रैर्नामजपैस्तथा।

लोग आपकी पूजा करेंगे और आप उनके लिये वरदाता होंगे। राक्षसोंके द्वारा अत्यधिक प्रताड़ित किये जानेपर देवगण आपका आश्रय ग्रहण करेंगे। हे पुरुषोत्तम! आप सभीके शरणदाता होंगे। अत्यन्त विस्तारवाले वेदों तथा सभी पुराणोंमें आप ही पूज्यतम होंगे और आपकी महान् कीर्ति होगी॥ ४०-४१½ ॥

इस पृथ्वीतलपर जब-जब धर्मका ह्रास होगा तब-तब आप शीघ्र अपने अंशसे अवतार लेकर धर्मकी रक्षा करेंगे। आपके अंशसे उत्पन्न वे समस्त अवतार पृथ्वीपर अत्यन्त प्रसिद्ध होंगे और महात्मागण आपके उन अवतारोंका सम्मान करेंगे। हे माधव! नानाविध योनियोंमें आपके द्वारा लिये गये अवतारोंमें आप सभी लोकोंमें विख्यात होंगे। हे मधुसूदन! उन सभी अवतारोंमें मेरे अंशसे उत्पन्न शक्ति सदा आपकी सहचारिणी होगी और आपके समस्त कार्योंको सम्पन्न करेगी। वह शक्ति वाराही, नारसिंही आदि भेदोंसे अनेक प्रकारकी होगी॥ ४२—४६ ॥

वे शक्तियाँ सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, भव्य स्वरूपवाली एवं नानाविध शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित होंगी। हे विष्णो! आप उन शक्तियोंसे सदैव युक्त रहेंगे। हे माधव! मेरे द्वारा प्रदत्त वरदानके प्रभावसे आप देवताओंके समस्त कार्य सिद्ध करेंगे। आप लेशमात्र भी अभिमान करके उन शक्तियोंका कभी अपमान न कीजियेगा, अपितु हर प्रकारसे प्रयत्नपूर्वक उन शक्तियोंका पूजन तथा सम्मान कीजियेगा॥ ४७-४८½ ॥

समस्त कामनाओंको प्रदान करनेवाली वे शक्तियाँ भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा विविध प्रतिमाओंमें प्रतिष्ठित होकर पूजी जायँगी। हे देवेश! उन शक्तियोंकी तथा आपकी कीर्ति पृथ्वीमण्डल तथा समस्त सातों द्वीपोंमें प्रसिद्ध होगी॥ ४९-५०½ ॥

हे महाभाग! भूमण्डलपर सकाम मनुष्य अपने मनोरथोंको पूर्ण करनेके लिये आपकी तथा उन शक्तियोंकी निरन्तर उपासना करेंगे। हे हरे! वे लोग अर्चनाओंमें अनेक भावोंसे युक्त होकर नानाविध उपहारों, वैदिक मन्त्रों तथा नामजपसे आपकी आराधना

महिमा तव भूर्लोके स्वर्गे च मधुसूदन॥ ५३

पूजनाद्देवदेवेश वृद्धिमेष्यति मानवैः।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरान्वाणी विरराम खसम्भवा॥ ५४

भगवानपि प्रीतात्मा ह्यभवच्छ्रवणादिव।
समाप्य विधिवद्यज्ञं भगवान्हरिरीश्वरः॥ ५५

विसर्जयित्वा तान्देवान्ब्रह्मपुत्रान्मुनीनथ।
जगामानुचरैः सार्धं वैकुण्ठं गरुडध्वजः॥ ५६

स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि पुनः सर्वे सुरास्ततः।
मुनयो विस्मिता वार्तां कुर्वन्तस्ते परस्परम्॥ ५७

ययुः प्रमुदिताः कामं स्वाश्रमान्पावनानथ॥ ५८

श्रुत्वा वाणीं परमविशदां व्योमजां श्रोत्ररम्यां
सर्वेषां वै प्रकृतिविषये भक्तिभावश्च जातः।
चक्रुः सर्वे द्विजमुनिगणाः पूजनं भक्तियुक्ता-
स्तस्याः कामं निखिलफलदं चागमोक्तं मुनीन्द्राः॥ ५९

करेंगे। हे मधुसूदन! हे देवदेवेश! मनुष्योंके द्वारा सुपूजित होनेके कारण आपकी महिमा पृथ्वीलोक तथा स्वर्गलोकमें वृद्धिको प्राप्त होगी॥ ५१—५३½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुको वरदान देकर वह आकाशवाणी चुप हो गयी। उसे सुनते ही भगवान् विष्णु भी प्रसन्नचित्त हो गये। तत्पश्चात् यज्ञका विधिपूर्वक समापन करके तथा उन देवताओं, ब्रह्मपुत्रों और मुनियोंको विदा करके सर्वसमर्थ गरुडध्वज भगवान् विष्णु अपने अनुचरोंके साथ वैकुण्ठलोकको चले गये॥ ५४—५६॥

तदनन्तर विस्मयके साथ यज्ञविषयक वार्ता करते हुए वे समस्त देवता अपने-अपने लोकोंको तथा मुनिजन अपने-अपने पवित्र आश्रमोंको अति प्रसन्नता-पूर्वक चले गये॥ ५७-५८॥

आकाशसे प्रादुर्भूत उस कर्णप्रिय तथा परम विशद वाणीको सुनकर सबके हृदयमें परा प्रकृतिके प्रति भक्तिभाव उत्पन्न हो गया। हे मुनीन्द्रो! अतएव वे सभी ब्राह्मण तथा मुनिजन भक्तिपरायण होकर उन भगवतीका पूजन करने लगे, जो वेदशास्त्रोंमें वर्णित है तथा सम्पूर्ण वांछित फलोंको प्रदान करनेवाला है॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे अम्बिकामखस्य
विष्णुनानुष्ठानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यसे सम्बन्धित राजा ध्रुवसन्धिकी कथा, ध्रुवसन्धिकी मृत्युके बाद राजा युधाजित् और वीरसेनका अपने-अपने दौहित्रोंके पक्षमें विवाद

जनमेजय उवाच

श्रुतो वै हरिणा क्लृप्तो यज्ञो विस्तरतो द्विज।
महिमानं तथाम्बाया वद विस्तरतो मम॥ १

श्रुत्वा देव्याश्चरित्रं वै कुर्वे मखमनुत्तमम्।
प्रसादात्तव विप्रेन्द्र भविष्यामि च पावनः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम्।
इतिहासं पुराणञ्च कथयामि सुविस्तरम्॥ ३

जनमेजय बोले—हे द्विज! मैंने विष्णुद्वारा किये गये देवीयज्ञके विषयमें विस्तारपूर्वक सुन लिया। अब आप मुझे विस्तृतरूपसे भगवतीकी महिमा बताइये॥ १॥

हे विप्रेन्द्र! देवीका चरित्र सुनकर मैं भी वह उत्कृष्ट देवीयज्ञ अवश्य करूँगा और इस प्रकार आपकी कृपासे पवित्र हो जाऊँगा॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन करूँगा। मैं इसके साथ-साथ विस्तृत इतिहास तथा पुराण भी कहूँगा॥ ३॥

कोसलेषु नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशसमुद्भवः।
पुष्यपुत्रो महातेजा ध्रुवसन्धिरिति स्मृतः॥ ४

धर्मात्मा सत्यसन्धश्च वर्णाश्रमहिते रतः।
अयोध्यायां समृद्धायां राज्यं चक्रे शुचिव्रतः॥ ५

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्ये तथा द्विजाः।
स्वां स्वां वृत्तिं समास्थाय तद्राज्ये धर्मतोऽभवन्॥ ६

न चौराः पिशुना धूर्तास्तस्य राज्ये च कुत्रचित्।
दम्भाः कृतघ्ना मूर्खाश्च वसन्ति किल मानवाः॥ ७

एवं वै वर्तमानस्य नृपस्य कुरुसत्तम।
द्वे पत्न्यौ रूपसम्पन्ने ह्यासतुः कामभोगदे॥ ८

मनोरमा धर्मपत्नी सुरूपातिविचक्षणा।
लीलावती द्वितीया च सापि रूपगुणान्विता॥ ९

विजहार सपत्नीभ्यां गृहेषूपवनेषु च।
क्रीडागिरौ दीर्घिकासु सौधेषु विविधेषु च॥ १०

मनोरमा शुभे काले सुषुवे पुत्रमुत्तमम्।
सुदर्शनाभिधं पुत्रं राजलक्षणसंयुतम्॥ ११

लीलावत्यपि तत्पत्नी मासेनैकेन भामिनी।
सुषुवे सुन्दरं पुत्रं शुभे पक्षे दिने तथा॥ १२

चकार नृपतिस्तत्र जातकर्मादिकं द्वयोः।
ददौ दानानि विप्रेभ्यः पुत्रजन्मप्रमोदितः॥ १३

प्रीतिं तयोः समां राजा चकार सुतयोर्नृप।
नृपश्चकार सौहार्देष्वन्तरं न कदाचन॥ १४

चूडाकर्म तयोश्चक्रे विधिना नृपसत्तमः।
यथाविभवमेवासौ प्रीतियुक्तः परन्तपः॥ १५

कोसलदेशमें सूर्यवंशमें एक महातेजस्वी श्रेष्ठ राजा उत्पन्न हुए। वे महाराज पुष्यके पुत्र थे और ध्रुवसन्धिके नामसे विख्यात थे॥ ४॥

वे धर्मात्मा, सत्यनिष्ठ तथा वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहते थे। पवित्र व्रतधारी वे ध्रुवसन्धि वैभवशालिनी अयोध्यानगरीमें राज्य करते थे॥ ५॥

उनके राज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, द्विजगण तथा अन्य सभी अपनी-अपनी जीविकामें तत्पर रहकर धर्मपूर्वक आचरण करते थे। उनके राज्यमें कहीं भी चोर, निन्दक, धूर्त, पाखण्डी, कृतघ्न तथा मूर्ख मनुष्य निवास नहीं करते थे॥ ६-७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! इस प्रकार धर्मपूर्वक राज्य करते हुए उन राजाकी रूपवती तथा आनन्दोपभोग प्रदान करनेवाली दो पत्नियाँ थीं। उनकी धर्मपत्नी मनोरमा थी, जो सुन्दर रूपवाली तथा परम विदुषी थी और दूसरी पत्नी लीलावती थी; वह भी रूप तथा गुणोंसे सम्पन्न थी॥ ८-९॥

महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पत्नियोंके साथ राजभवनों, उपवनों, क्रीड़ापर्वत, बावलियों तथा विभिन्न महलोंमें विहार करते थे॥ १०॥

रानी मनोरमाने शुभ वेलामें राजलक्षणोंसे सम्पन्न एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। उसका नाम सुदर्शन पड़ा॥ ११॥

उनकी दूसरी सुन्दर पत्नी लीलावतीने भी एक माहके भीतर शुभ पक्ष तथा शुभ दिनमें एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

महाराज ध्रुवसन्धिने उन दोनों बालकोंका जातकर्म आदि संस्कार किया तथा पुत्र-जन्मसे प्रमुदित एवं उल्लसित होकर उन्होंने ब्राह्मणोंको नानाविध दान दिये॥ १३॥

हे राजन्! महाराज ध्रुवसन्धि उन दोनों पुत्रोंपर समान प्रीति रखते थे। वे उन दोनोंके प्रति अपने प्रेम-भावमें कभी भी अन्तर नहीं आने देते थे॥ १४॥

परम तपस्वी उन राजेन्द्रने अपने वैभवके अनुसार बड़े हर्षोल्लासके साथ विधिपूर्वक उन दोनोंका चूडाकर्म-संस्कार किया॥ १५॥

कृतचूडौ सुतौ कामं जह्रतुर्नृपतेर्मनः।
क्रीडमानावुभौ कान्तौ लोकानामनुरञ्जकौ॥ १६

तयोः सुदर्शनो ज्येष्ठो लीलावत्याः सुतः शुभः।
शत्रुजित्संज्ञकः कामं चाटुवाक्यो बभूव ह॥ १७

नृपतेः प्रीतिजनको मञ्जुवाक्चारुदर्शनः।
प्रजानां वल्लभः सोऽभूत्तथा मन्त्रिजनस्य वै॥ १८

यथा तस्मिन्नृपः प्रीतिं चकार गुणयोगतः।
मन्दभाग्यान्मन्दभावो न तथा वै सुदर्शने॥ १९

एवं गच्छति काले तु ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः।
जगाम वनमध्येऽसौ मृगयाभिरतः सदा॥ २०

निघ्नन्मृगान् रुरून्कम्बून्सूकरान्गवयाञ्छशान्।
महिषाञ्छरभान्खड्गांश्चिक्रीड नृपतिर्वने॥ २१

क्रीडमाने नृपे तत्र वने घोरेऽतिदारुणे।
उदतिष्ठन्निकुञ्जात्तु सिंहः परमकोपनः॥ २२

राज्ञा शिलीमुखेनादौ विद्धः क्रोधवशं गतः।
दृष्ट्वाग्रे नृपतिं सिंहो ननाद मेघनिःस्वनः॥ २३

कृत्वा चोर्ध्वं स लाङ्गूलं प्रसारितबृहत्सटः।
हन्तुं नृपतिमाकाशादुत्पपातातिकोपनः॥ २४

नृपतिस्तरसा वीक्ष्य दधारासिं करे तदा।
वामे चर्म समादाय स्थितः सिंह इवापरः॥ २५

सेवकास्तस्य ये सर्वे तेऽपि बाणान्पृथक्पृथक्।
अमुञ्चन्कुपिताः कामं सिंहोपरि रुषान्विताः॥ २६

चूडाकर्म-संस्कार हो जानेपर उन दोनों बालकोंने राजाके मनको मोहित कर लिया; वे दोनों कान्तिमान् बालक खेलते समय सभी लोगोंको मुग्ध कर लेते थे॥ १६॥

उन दोनोंमें [मनोरमाका पुत्र] सुदर्शन ज्येष्ठ था। लीलावतीका शत्रुजित् नामक पुत्र अत्यन्त सुन्दर तथा मृदुभाषी था॥ १७॥

उसके मधुरभाषी तथा अत्यन्त सुन्दर होनेके कारण राजा उससे अधिक प्रेम करने लगे और उसी तरहसे वह प्रजाजनों तथा मन्त्रियोंका भी प्रियपात्र बन गया॥ १८॥

शत्रुजित्के गुणोंके कारण राजाका जैसा प्रेम उसपर हो गया, वैसा प्रेम सुदर्शनके प्रति नहीं था। वे सुदर्शनके प्रति मन्दभाग्य होनेके कारण कम अनुराग रखने लगे॥ १९॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर आखेटके प्रति सदा तत्पर रहनेवाले नृपश्रेष्ठ ध्रुवसन्धि आखेटके लिये वनमें गये॥ २०॥

वे राजा ध्रुवसन्धि वनमें रुरु मृगों, बनैले सूअरों, गवयों, खरगोशों, भैंसों, शरभों तथा गैंडोंको मारते हुए आखेट करने लगे॥ २१॥

जब महाराज उस गहन तथा महाभयंकर वनमें शिकार खेल रहे थे, उसी समय महान् रोषमें भरा हुआ एक सिंह झाड़ीसे निकला॥ २२॥

पहले तो राजाने उसे बाणसे आहत कर दिया; तब अत्यन्त कोपाविष्ट वह सिंह उन्हें अपने सामने देखकर मेघके समान गरजने लगा॥ २३॥

अपनी पूँछ खड़ी करके तथा गर्दनके लम्बे केशोंको छितराकर अत्यन्त कुपित वह सिंह राजाको मारनेके लिये छलाँग लगाकर उनपर झपटा॥ २४॥

तब उसे देखकर राजाने भी तत्काल अपने हाथमें तलवार धारण कर ली और बायें हाथमें ढाल लेकर दूसरे सिंहके समान खड़े हो गये॥ २५॥

यह देखकर उनके जो सेवकगण थे, वे सभी अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषपूर्वक उस सिंहपर अलग-अलग बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २६॥

हाहाकारो महानासीत्संप्रहारश्च दारुणः।
उत्पपात ततः सिंहो नृपस्योपरि दारुणः॥ २७

तं पतन्तं समालोक्य खड्गेनाभ्यहनन्नृपः।
सोऽपि क्रूरैर्नखाग्रैश्च तत्रागत्य विदारितः॥ २८

स नखैराहतो राजा पपात च ममार वै।
चुक्रुशुः सैनिकास्ते तु निर्जघ्नुर्विशिखैस्तदा॥ २९

मृतः सिंहोऽपि तत्रैव भूपतिश्च तथा मृतः।
सैनिकैर्मन्त्रिमुख्याश्च तत्रागत्य निवेदिताः॥ ३०

परलोकगतं भूपं श्रुत्वा ते मन्त्रिसत्तमाः।
संस्कारं कारयामासुर्गत्वा तत्र वनान्तिके॥ ३१

परलोकक्रियां सर्वां वसिष्ठो विधिपूर्वकम्।
कारयामास तत्रैव परलोकसुखावहाम्॥ ३२

प्रजाः प्रकृतयश्चैव वसिष्ठश्च महामुनिः।
सुदर्शनं नृपं कर्तुं मन्त्रं चक्रुः परस्परम्॥ ३३

धर्मपत्नीसुतः शान्तः पुरुषश्च सुलक्षणः।
अयं नृपासनार्हश्च ह्यब्रुवन्मन्त्रिसत्तमाः॥ ३४

वसिष्ठोऽपि तथैवाह योग्योऽयं नृपतेः सुतः।
बालोऽपि धर्मवान् राजा नृपासनमिहार्हति॥ ३५

कृते मन्त्रे मन्त्रिवृद्धैर्युधाजिन्नाम पार्थिवः।
तत्राजगाम तरसा श्रुत्वा तूज्जयिनीपतिः॥ ३६

मृतं जामातरं श्रुत्वा लीलावत्याः पिता तदा।
तत्राजगाम त्वरितो दौहित्रप्रियकाम्यया॥ ३७

वहाँ महान् हाहाकार मच गया तथा भीषण प्रहार होने लगा। इसी बीच वह भयानक सिंह राजापर टूट पड़ा॥ २७॥

उसे अपने ऊपर झपटते देखकर राजाने खड्गसे उसपर प्रहार किया। उस सिंहने भी राजाके समीप आकर अपने भयानक तथा तीक्ष्ण नखोंसे राजाको क्षत-विक्षत कर डाला॥ २८॥

नखोंके प्रहारसे आहत होकर राजा गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। इससे सभी सैनिक और भी क्रोधित हो उठे; तब वे बाणोंसे सिंहपर भीषण प्रहार करने लगे। इस प्रकार राजा ध्रुवसन्धि तथा वह सिंह दोनों मर गये। तदनन्तर सैनिकोंने आकर मन्त्रिप्रवरोंको यह समाचार बताया॥ २९-३०॥

राजाके परलोकगमनका समाचार सुनकर उन श्रेष्ठ मन्त्रियोंने उस वनमें जाकर उनका दाह-संस्कार करवाया॥ ३१॥

वहींपर गुरु वसिष्ठने परलोकमें सुख प्रदान करनेवाले सभी श्राद्ध आदि पारलौकिक कृत्य विधिपूर्वक सम्पन्न करवाये॥ ३२॥

तदनन्तर प्रजाजनों, मन्त्रियों तथा महामुनि वसिष्ठने सुदर्शनको राजा बनानेके उद्देश्यसे आपसमें विचार-विमर्श किया॥ ३३॥

श्रेष्ठ मन्त्रियोंने कहा कि सुदर्शन महाराजकी धर्मपत्नी मनोरमाके पुत्र हैं, शान्त स्वभाववाले पुरुष हैं तथा सभी लक्षणोंसे सम्पन्न हैं, अतः ये राजसिंहासनके योग्य हैं॥ ३४॥

गुरु वसिष्ठने भी वही बात कही कि महाराजका यह पुत्र सुदर्शन राजपदके योग्य है; क्योंकि बालक होते हुए भी धर्मपरायण राजकुमार ही राजसिंहासनका अधिकारी होता है॥ ३५॥

वयोवृद्ध मन्त्रियोंके द्वारा इस प्रकार विचार करनेके उपरान्त यह समाचार सुनकर उज्जयिनीनरेश राजा युधाजित् शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ३६॥

लीलावतीके पिता युधाजित् अपने दामादकी मृत्युके विषयमें सुनकर अपने दौहित्रके हितकी कामनासे उस समय शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये॥ ३७॥

वीरसेनस्तथायातः सुदर्शनहितेच्छया।
कलिङ्गाधिपतिश्चैव मनोरमापिता नृपः॥ ३८

उभौ तौ सैन्यसंयुक्तौ नृपौ साध्वससंस्थितौ।
चक्रतुर्मन्त्रिमुख्यैस्तैर्मन्त्रं राज्यस्य कारणात्॥ ३९

युधाजित्तु तदापृच्छज्ज्येष्ठः कः सुतयोर्द्वयोः।
राज्यं प्राप्नोति ज्येष्ठो वै न कनीयान्कदाचन॥ ४०

वीरसेनोऽपि तत्राह धर्मपत्नीसुतः किल।
राज्यार्हः स यथा राजन् शास्त्रज्ञेभ्यो मया श्रुतम्॥ ४१

युधाजित्पुनराहेदं ज्येष्ठोऽयं च यथा गुणैः।

राजलक्षणसंयुक्तो न तथायं सुदर्शनः॥ ४२

विवादोऽत्र सुसम्पन्नो नृपयोस्तत्र लुब्धयोः।
कः सन्देहमपाकर्तुं क्षमः स्यादतिसङ्कटे॥ ४३

युधाजिन्मन्त्रिणः प्राह यूयं स्वार्थपराः किल।
सुदर्शनं नृपं कृत्वा धनं भोक्तुं किलेच्छथ॥ ४४

युष्माकं तु विचारोऽयं मया ज्ञातस्तथेङ्गितैः।
शत्रुजित्सबलस्तस्मात्सम्मतो वो नृपासने॥ ४५

मयि जीवति कः कुर्यात्कनीयांसं नृपं किल।
त्यक्त्वा ज्येष्ठं गुणार्हञ्च सेनया च समन्वितम्॥ ४६

नूनं युद्धं करिष्यामि तस्मिन्खड्गस्य मेदिनी।
धारया च द्विधा भूयाद्युष्माकं तत्र का कथा॥ ४७

वीरसेनस्तु तच्छ्रुत्वा युधाजितमभाषत।
बालौ द्वौ सदृशप्रज्ञौ को भेदोऽत्र विचक्षण॥ ४८

उसी समय सुदर्शनके हित-साधनके उद्देश्यसे मनोरमाके पिता कलिंगाधिपति महाराज वीरसेन भी वहाँ आ गये॥ ३८॥

सेनाओंसे सम्पन्न तथा एक-दूसरेसे भयभीत वे दोनों राजा राज्यके अधिकारीका निर्णय करनेके लिये प्रधान अमात्योंके साथ मन्त्रणा करने लगे॥ ३९॥

युधाजित्ने पूछा कि इन दोनों राजकुमारोंमें ज्येष्ठ कौन है? ज्येष्ठ ही राज्य प्राप्त करता है, कनिष्ठ कदापि नहीं॥ ४०॥

उसी समय वीरसेनने भी कहा—हे राजन्! मैंने शास्त्रविदोंसे ऐसा सुना है कि धर्मपत्नीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी माना जाता है॥ ४१॥

युधाजित्ने पुनः कहा कि यह शत्रुजित् गुणोंके कारण ज्येष्ठ है। यह सुदर्शन राजोचित चिह्नोंसे युक्त होते हुए भी वैसा नहीं है॥ ४२॥

अपने-अपने स्वार्थके वशीभूत उन दोनों राजाओंमें वहाँ विवाद होने लगा। अब उस महासंकटकी परिस्थितिमें उनके सन्देहका समाधान करनेमें कौन समर्थ हो सकता था?॥ ४३॥

युधाजित्ने मन्त्रियोंसे कहा कि आपलोग अवश्य ही स्वार्थपरायण हो गये हैं और सुदर्शनको राजा बनाकर धनका स्वयं उपभोग करना चाहते हैं॥ ४४॥

मैंने आप लोगोंका यह विचार तो आप सबकी भाव-भंगिमासे पहले ही जान लिया था। शत्रुजित् सुदर्शनसे अधिक बलवान् है, अतः आप लोगोंकी सम्मति तो यह होनी चाहिये कि शत्रुजित् ही राजसिंहासनपर आसीन होनेयोग्य है॥ ४५॥

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो मेरे जीवित रहते गुणोंमें बड़े तथा सेनासे सुसज्जित राजकुमारको छोड़कर [गुणोंमें] छोटे पुत्रको राजा बना सके॥ ४६॥

इसके लिये मैं निश्चितरूपसे घोर संग्राम करूँगा। मेरे खड्गकी धारसे पृथ्वीके भी दो टुकड़े हो सकते हैं, फिर आप लोगोंकी बात ही क्या!॥ ४७॥

यह सुनकर वीरसेनने युधाजित्से कहा—हे विद्वन्! दोनों ही बालक समान बुद्धि रखते हैं; इनमें भेद ही क्या है?॥ ४८॥

एवं विवदमानौ तौ संस्थितौ नृपती तदा।
प्रजाश्च ऋषयश्चैव बभूवुर्व्यग्रमानसाः॥ ४९

समाजग्मुश्च सामन्ताः ससैन्याः क्लेशतत्पराः।
विग्रहं चाभिकाङ्क्षन्तः परस्परमतन्द्रिताः॥ ५०

निषादा ह्याययुस्तत्र शृङ्गवेरपुराश्रयाः।
राज्यद्रव्यमपाहर्तुं मृतं श्रुत्वा महीपतिम्॥ ५१

पुत्रौ च बालकौ श्रुत्वा विग्रहं च परस्परम्।
चौरास्तत्र समाजग्मुर्देशदेशान्तरादपि॥ ५२

सम्मर्दस्तत्र सञ्जातः कलहे समुपस्थिते।
युधाजिद्वीरसेनश्च युद्धकामौ बभूवतुः॥ ५३

तदनन्तर उन दोनोंको इस प्रकार परस्पर विवाद करते देखकर प्रजाजनों तथा ऋषियोंके मनमें व्यग्रता होने लगी॥ ४९॥

तब एक-दूसरेको क्लेश पहुँचानेके लिये उद्यत तथा युद्धकी इच्छावाले दोनों पक्षोंके सामन्त सावधान होकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ वहाँ आ पहुँचे॥ ५०॥

उसी समय महाराज ध्रुवसन्धिकी मृत्युका समाचार सुनकर शृंगवेरपुरमें रहनेवाले निषादगण राजकोष लूटनेके लिये वहाँ आ गये। दोनों राजकुमार अभी बालक हैं तथा वे आपसमें कलह कर रहे हैं—यह सुनकर देश-देशान्तरके चोर-लुटेरे भी वहाँ आ गये॥ ५१-५२॥

इस प्रकार वहाँपर भारी कलह उपस्थित हो जानेपर युद्ध आरम्भ हो गया। युधाजित् तथा वीरसेन भी युद्धके लिये उद्यत हो गये॥ ५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे युधाजिद्वीरसेनयोर्युद्धार्थं सज्जीभवनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~○~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

राजा युधाजित् और वीरसेनका युद्ध, वीरसेनकी मृत्यु, राजा ध्रुवसन्धिकी रानी मनोरमाका अपने पुत्र सुदर्शनको लेकर भारद्वाजमुनिके आश्रममें जाना तथा वहीं निवास करना

व्यास उवाच

संयुगे च सति तत्र भूपयोराहवाय समुपात्तशस्त्रयोः।
क्रोधलोभवशयोः समं ततः सम्बभूव तुमुलस्तु विमर्दः॥ १

संस्थितः स समरे धृतचापः पार्थिवः पृथुलबाहुयुधाजित्।
संयुतः स्वबलवाहनादिकैराहवाय कृतनिश्चयो नृपः॥ २

वीरसेन इह सैन्यसंयुतः क्षात्रधर्ममनुसृत्य सङ्गरे।
पुत्रिकात्मजहिताय पार्थिवः संस्थितः सुरपतेः समतेजाः॥ ३

स बाणवृष्टिं विससर्ज पार्थिवो
युधाजितं वीक्ष्य रणे स्थितञ्च।
गिरिं तडित्वानिव तोयवृष्टिभिः
क्रोधान्वितः सत्यपराक्रमोऽसौ॥ ४

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] युद्ध आरम्भ हो जानेपर क्रोध एवं लोभके वशीभूत उन दोनों राजाओंने लड़नेके लिये शस्त्र उठा लिये और तब उनके बीच भयानक संग्राम आरम्भ हो गया॥ १॥

युद्धके लिये कृतसंकल्प वे विशालबाहु राजा युधाजित् धनुष धारण करके अपनी सेना तथा वाहन आदिके साथ रणभूमिमें डट गये॥ २॥

इधर इन्द्रके समान तेजस्वी राजा वीरसेन भी क्षत्रियोचित धर्मका अनुसरण करते हुए अपने दौहित्रके हित-साधनहेतु विशाल सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हो गये॥ ३॥

सत्यपराक्रमी राजा वीरसेनने युधाजित्को समरांगणमें उपस्थित देखकर क्रोधयुक्त होकर इस प्रकार बाणोंकी वृष्टि आरम्भ कर दी, मानो पर्वतपर मेघ जल बरसा रहा हो॥ ४॥

तं वीरसेनो विशिखैः शिलाशितैः
समावृणोदाशुगमैरजिह्मगैः ।
चिच्छेद बाणैश्च शिलीमुखानसौ
तेनैव मुक्तानतिवेगपातिनः ॥ ५

गजरथतुरगाणां सम्बभूवातियुद्धं
सुरनरमुनिसङ्घैर्वीक्षितं चातिघोरम्।
विततविहगवृन्दैरावृतं व्योम सद्यः
पिशितमशितुकामैः काकगृध्रादिभिश्च॥ ६

तत्राद्भुता क्षतजसिन्धुरुवाह घोरा
वृन्देभ्य एव गजवीरतुरङ्गमाणाम्।
त्रासावहा नयनमार्गगता नराणां
पापात्मनां रविजमार्गभवेव कामम्॥ ७

कीर्णानि भिन्नपुलिने नरमस्तकानि
केशावृतानि च विभान्ति यथैव सिन्धौ।
तुम्बीफलानि विहितानि विहर्तुकामै-
र्बालैर्यथा रविसुताप्रभवैश्च नूनम्॥ ८

वीरं मृतं भुवि गतं पतितं रथाद्वै
गृध्रः पलार्थमुपरि भ्रमतीति मन्ये।
जीवोऽप्यसौ निजशरीरमवेक्ष्य कान्तं
काङ्क्षत्यहोऽतिविवशोऽपि पुनः प्रवेष्टुम्॥ ९

आजौ हतोऽपि नृवरः सुविमानरूढः
स्वाङ्के स्थितां सुरवधूं प्रवदत्यभीष्टम्।
पश्याधुना मम शरीरमिदं पृथिव्यां
बाणाहतं निपतितं करभोरु कान्तम्॥ १०

एको हतस्तु रिपुणैव गतोऽन्तरिक्षं
देवाङ्गनां समधिगम्य युतो विमाने।
तावत्प्रिया हुतवहे सुसमर्प्य देहं
जग्राह कान्तमबला सबला स्वकीया॥ ११

राजा वीरसेनने पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये, द्रुतगामी तथा सीधे प्रवेश करनेवाले बाणोंसे युधाजित्को आच्छादित कर दिया और युधाजित्के द्वारा छोड़े गये अत्यन्त तीव्रगामी बाणोंको उन्होंने अपने बाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया॥ ५॥

इस प्रकार हाथियों, रथों तथा घोड़ोंसे अतिभयंकर युद्ध होने लगा जिसे देवता, मनुष्य तथा मुनिगण देख रहे थे। मांसभक्षणकी लालसावाले कौए, गीध आदि पक्षियोंके विस्तृत समूहसे शीघ्र ही वहाँका आकाशमण्डल ढक गया॥ ६॥

उस युद्धभूमिमें हाथियों, घोड़ों तथा सैन्यसमूहोंके शरीरसे निकले रक्तसे अद्भुत तथा भयंकर नदी बह चली, जो लोगोंको उसी प्रकार दिखायी पड़ रही थी, जैसे यमलोकके मार्गमें प्रवाहित वैतरणी पापियोंको भयावह दीखती है॥ ७॥

[तीव्र धारके वेगसे] कटे हुए तटवाली उस नदीमें मनुष्योंके केशयुक्त इधर-उधर बिखरे मस्तक, खेलनेमें तत्पर बालकोंद्वारा यमुनामें फेंके गये तुम्बीफलोंके समान प्रतीत हो रहे थे॥ ८॥

रथसे गिरे हुए किसी मृत वीरको पृथ्वीपर पड़ा हुआ देखकर मांसकी इच्छासे गीध उसके ऊपर मँडराने लगता था, इससे ऐसा प्रतीत होता था मानो उस वीरका जीव अपने शरीरको अति सुन्दर देखकर अत्यन्त विवश हो उसमें पुनः प्रवेश करनेकी इच्छा कर रहा हो॥ ९॥

युद्धभूमिमें हत कोई वीर योद्धा सुन्दर विमानमें आरूढ़ होकर अपनी गोदमें बैठी हुई किसी देवांगनासे अपना मनोभाव इस प्रकार व्यक्त करता था—हे करभोरु! इस समय बाणोंसे आहत होकर धरतीपर पड़े हुए मेरे इस कान्तियुक्त शरीरको देखो॥ १०॥

शत्रुके द्वारा मारा गया एक वीर ज्यों ही अन्तरिक्षमें पहुँचा और अप्सराके पास जाकर विमानमें बैठा, त्यों ही उसकी अपनी प्रिय स्त्री अपना शरीर अग्निको भलीभाँति समर्पित करके पुनः दिव्य शरीर पाकर अपने पतिके पास जा पहुँची॥ ११॥

युद्धे मृतौ च सुभटौ दिवि सङ्गतौ ता-
वन्योन्यशस्त्रनिहतौ सह सम्प्रयातौ।
तत्रैव जघ्नतुरलं परमाहितास्त्रा-
वेकाप्सरोऽर्थविहतौ कलहाकुलौ च॥ १२

कश्चिद्युवा समधिगम्य सुराङ्गनां वै
रूपाधिकां गुणवतीं किल भक्तियुक्तः।
स्वीयान् गुणान्प्रविततान्प्रवदंस्तदासौ
तां प्रेमदामनुचकार च योगयुक्तः॥ १३

भौमं रजोऽतिविततं दिवि संस्थितञ्च
रात्रिं चकार तरणिञ्च समावृणोद्यत्।
मग्नं तदेव रुधिराम्बुनिधावकस्मात्
प्रादुर्बभूव रविरप्यतिकान्तियुक्तः॥ १४

कश्चिद् गतस्तु गगनं किल देवकन्यां
सम्प्राप्य चारुवदनां किल भक्तियुक्ताम्।
नाङ्गीचकार चतुरो व्रतनाशभीतो
यास्यत्ययं मम वृथा ह्यनुकूलशब्दः॥ १५

सङ्ग्रामे संवृते तत्र युधाजित्पृथिवीपतिः।
जघान वीरसेनं तं बाणैस्तीव्रैः सुदारुणैः॥ १६

निहतः स पपातोर्व्यां छिन्नमूर्धा महीपतिः।
प्रभग्नं तद्बलं सर्वं निर्गतं च चतुर्दिशम्॥ १७

मनोरमा हतं श्रुत्वा पितरं रणमूर्धनि।
भयत्रस्ताथ सञ्जाता पितुर्वैरमनुस्मरन्॥ १८

हनिष्यति युधाजिद्वै पुत्रं मम दुराशयः।
राज्यलोभेन पापात्मा सेति चिन्तापराभवत्॥ १९

किं करोमि क्व गच्छामि पिता मे निहतो रणे।
भर्ता चापि मृतोऽद्यैव पुत्रोऽयं मम बालकः॥ २०

उस युद्धमें दो वीर परस्पर एक-दूसरेके शस्त्र-प्रहारसे आहत होकर मर गये और साथ-साथ ही स्वर्गलोकमें पहुँचे। वहाँपर भी एक अप्सराको प्राप्त करनेके लिये वे दोनों वीर शस्त्रयुक्त होकर एक-दूसरेको मारनेहेतु युद्ध करने लगे॥ १२॥

कोई अनुरागमय युवा वीर अतिशय रूपवती तथा गुणवती अप्सराको प्राप्त करके अत्यन्त बढ़ा-चढ़ाकर अपने गुणोंका वर्णन करते हुए उसके प्रति भक्तिपरायण होकर प्रयत्नपूर्वक उस प्रेमदायिनीके गुण आदिका अनुकरण करने लगा॥ १३॥

घोर युद्धके कारण रणभूमिसे उड़ी हुई अत्यधिक धूलने अन्तरिक्षस्थित सूर्यको ढक दिया और दिनमें ही रात हो गयी। पुनः वही धूल जब अथाह रक्त-सिन्धुमें विलीन हो जाती तब अत्यन्त प्रभावाले सूर्य अचानक प्रकट हो जाते॥ १४॥

कोई युवक वीर युद्धमें मरकर स्वर्ग पहुँचा तो उसे एक सुन्दर रूपवाली देवकन्या मिली, जो उसके ऊपर आसक्त हो गयी। किंतु ब्रह्मचर्यव्रतके नाश होनेसे भयभीत उस चतुर वीरने उसे स्वीकार नहीं किया; [उसने सोचा कि ऐसा करनेसे] मेरे अनुरूप यह ब्रह्मचारी शब्द व्यर्थ हो जायगा॥ १५॥

तदनन्तर घोर संग्राम छिड़ जानेपर राजा युधाजित्ने अपने तीक्ष्ण तथा अत्यन्त भीषण बाणोंसे वीरसेनको मार डाला॥ १६॥

इस प्रकार कटे मस्तकवाले महाराज वीरसेन पृथ्वीपर गिर पड़े। उनकी सम्पूर्ण सेना नष्ट हो गयी और चारों दिशाओंमें भाग गयी॥ १७॥

अपने पिता वीरसेनको समरांगणमें मारा गया सुनकर तथा अपने पिताके वैरका स्मरण करते हुए मनोरमा भयसे व्याकुल हो गई। वह इस चिन्तामें पड़ गई कि बुरे विचारोंवाला वह पापी युधाजित् राज्यके लोभसे मेरे पुत्रको अवश्य ही मार डालेगा॥ १८-१९॥

अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? मेरे पिताजी युद्धमें मारे गये तथा पतिदेव भी मर चुके हैं और मेरा यह पुत्र अभी बालक ही है॥ २०॥

लोभोऽतीव च पापिष्ठस्तेन को न वशीकृतः।
किं न कुर्यात्तदाविष्टः पापं पार्थिवसत्तमः॥ २१

पितरं मातरं भ्रातॄन्गुरून्स्वजनबान्धवान्।
हन्ति लोभसमाविष्टो जनो नात्र विचारणा॥ २२

अभक्ष्यभक्षणं लोभादगम्यागमनं तथा।
करोति किल तृष्णार्तो धर्मत्यागं तथा पुनः॥ २३

न सहायोऽस्ति मे कश्चिन्नगरेऽत्र महाबलः।
यदाधारे स्थिता चाहं पालयामि सुतं शुभम्॥ २४

हते पुत्रे नृपेणाद्य किं करिष्याम्यहं पुनः।
न मे त्रातास्ति भुवने येन वै सुस्थिता ह्यहम्॥ २५

सापि वैरयुता कामं सपत्नी सर्वदा भवेत्।
लीलावती न मे पुत्रे भविष्यति दयावती॥ २६

युधाजिति समायाते न मे निःसरणं भवेत्।
ज्ञात्वा बालं सुतं सोऽद्य कारागारं नयिष्यति॥ २७

श्रूयते हि पुरेन्द्रेण मातुर्गर्भगतः शिशुः।
कृन्तितः सप्तधा पश्चात्कृतास्ते सप्त सप्तधा॥ २८

प्रविश्य चोदरं मातुः करे कृत्वाल्पकं पविम्।
एकोनपञ्चाशदपि तेऽभवन्मरुतो दिवि॥ २९

सपत्न्यै गरलं दत्तं सपत्न्या नृपभार्यया।
गर्भनाशार्थमुद्दिश्य पुरैतद्वै मया श्रुतम्॥ ३०

जातस्तु बालकः पश्चाद्देहे विषयुतः किल।
तेनासौ सगरो नाम विख्यातो भुवि मण्डले॥ ३१

जीवमानोऽथ भर्ता वै कैकेय्या नृपभार्यया।
रामः प्रव्राजितो ज्येष्ठो मृतो दशरथो नृपः॥ ३२

लोभ बड़ा ही पापी होता है, इसने किसको अपने वशमें नहीं किया। लोभसे ग्रस्त हो जानेपर श्रेष्ठ राजा भी कौन-सा पाप नहीं कर सकता। लोभसे अभिभूत मनुष्य अपने माता-पिता, भाई, गुरु तथा बन्धु-बान्धवोंको भी मार डालता है; इसमें सन्देह नहीं है। लोभके कारण मनुष्य अभक्ष्यका भक्षण तथा अगम्या स्त्रीके साथ गमन भी कर लेता है; यहाँतक कि लोभसे व्याकुल होकर वह धर्मका त्याग भी कर देता है॥ २१—२३॥

अब इस नगरमें कोई बलवान् पुरुष मुझे सहायता देनेवाला भी नहीं रह गया, जिसके आश्रयमें रहकर मैं अपने सुन्दर पुत्रका पालन कर सकूँ॥ २४॥

यदि राजा युधाजित् मेरे पुत्रको मार डाले, तो मैं फिर क्या करूँगी? इस संसारमें मेरा कोई रक्षक नहीं है, जिसके सहारे मैं निश्चिन्त रह सकूँ?॥ २५॥

मेरी सौत लीलावती भी सदा मुझसे वैरभाव रखती है, अतः वह भी मेरे पुत्रपर दया नहीं करेगी॥ २६॥

युधाजित्के रणभूमिसे लौटकर आ जानेपर मेरा यहाँसे निकल भागना सम्भव नहीं हो सकेगा; वह मेरे पुत्रको बालक जानकर उसे कारागारमें डाल देगा॥ २७॥

सुना जाता है कि पूर्वकालमें इन्द्रने अपने वज्रको अत्यन्त छोटा बनाकर अपनी सौतेली माता दितिके गर्भमें प्रवेश करके गर्भस्थ शिशुको काटकर उसके सात टुकड़े कर दिये थे। इसके बाद उसने पुनः एक-एक टुकड़ेके सात-सात खण्ड कर दिये थे। वे ही आगे चलकर देवलोकमें उनचास मरुत्के रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २८-२९॥

मैंने यह भी सुना है कि पूर्वकालमें एक राजाकी किसी रानीने अपनी सौतके गर्भको नष्ट करनेके उद्देश्यसे उसे विष दे दिया था। कुछ समय बीतनेपर वह बालक विषके साथ उत्पन्न हुआ, इसीसे वह भूमण्डलपर 'सगर' नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ३०-३१॥

महाराज दशरथकी भार्या कैकेयीने पतिके जीवनकालमें ही उनके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रको वनवास दे दिया था, जिसके फलस्वरूप राजा दशरथकी मृत्यु भी हो गयी॥ ३२॥

मन्त्रिणस्त्ववशाः कामं ये मे पुत्रं सुदर्शनम्।
राजानं कर्तुकामा वै युधाजिद्वशगाश्च ते॥ ३३

न मे भ्राता तथा शूरो यो मां बन्धात्प्रमोचयेत्।
महत्कष्टं च सम्प्राप्तं मया वै दैवयोगतः॥ ३४

उद्यमः सर्वथा कार्यः सिद्धिर्दैवाद्धि जायते।
उपायं पुत्ररक्षार्थं करोम्यद्य त्वरान्विता॥ ३५

इति सञ्चिन्त्य सा बाला विदल्लं चातिमानिनम्।
निपुणं सर्वकार्येषु चिन्त्यं मन्त्रिवरोत्तमम्॥ ३६

समाहूय तमेकान्ते प्रोवाच बहुदुःखिता।
गृहीत्वा बालकं हस्ते रुदती दीनमानसा॥ ३७

पिता मे निहतः संख्ये पुत्रोऽयं बालकस्तथा।
युधाजिद् बलवान् राजा किं विधेयं वदस्व मे॥ ३८

तामुवाच विदल्लोऽसौ नात्र स्थातव्यमेव च।
गमिष्यामो वने कामं वाराणस्याः पुनः किल॥ ३९

तत्र मे मातुलः श्रीमान्वर्तते बलवत्तरः।
सुबाहुरिति विख्यातो रक्षिता स भविष्यति॥ ४०

युधाजिद्दर्शनोत्कण्ठमनसा नगराद् बहिः।
निर्गत्य रथमारुह्य गन्तव्यं नात्र संशयः॥ ४१

इत्युक्ता तेन सा राज्ञी गत्वा लीलावतीं प्रति।
उवाच पितरं द्रष्टुं गच्छाम्यद्य सुलोचने॥ ४२

इत्युक्त्वा रथमारुह्य सैरन्ध्रीसंयुता तदा।
विदल्लेन च संयुक्ता निःसृता नगराद् बहिः॥ ४३

त्रस्ता ह्यार्तातिकृपणा पितुः शोकसमाकुला।
दृष्ट्वा युधाजितं भूपं पितरं गतजीवितम्॥ ४४

संस्कार्य च त्वरायुक्ता वेपमाना भयाकुला।
दिनद्वयेन सम्प्राप्ता राज्ञी भागीरथीतटम्॥ ४५

जो मन्त्री मेरे पुत्र सुदर्शनको राजा बनाना चाहते थे, वे भी अब विवश होकर युधाजित्के अधीन हो गये हैं। मेरा भाई भी ऐसा योद्धा नहीं है, जो मुझे बन्धनसे छुड़ा सके। दैवयोगसे मैं महान् संकटमें पड़ गयी हूँ। फिर भी उद्योग तो सर्वथा करना ही चाहिये, सफलता तो दैवके आधीन है। अतः अब मैं अपने पुत्रकी रक्षाके लिये शीघ्र ही कोई उपाय करूँगी॥ ३३—३५॥

ऐसा सोचकर वह रानी अतिसम्मानित, सभी कार्योंमें दक्ष तथा विचार-कुशल श्रेष्ठ मन्त्रिप्रवर विदल्लको बुलवाकर उन्हें एकान्तमें ले गयी और बालकको हाथमें लेकर रोती हुई दीन मनवाली उस मनोरमाने अत्यन्त दुःखित होकर उनसे कहा—मेरे पिता युद्धमें मारे गये और मेरा यह पुत्र अभी अबोध बालक है। राजा युधाजित् बलवान् हैं। [ऐसी परिस्थितिमें] मुझे क्या करना चाहिये? मुझे बतायें॥ ३६—३८॥

तब विदल्लने उससे कहा—अब यहाँ नहीं रहना चाहिये, हमलोग यहाँसे वाराणसीके वनमें चलेंगे। वहाँ सुबाहु नामसे विख्यात मेरे मामा रहते हैं। वे समृद्धिशाली तथा महाबलशाली हैं; वे ही हमारे रक्षक होंगे॥ ३९-४०॥

मनमें युधाजित्के दर्शनकी लालसासे नगरसे बाहर निकल चलना चाहिये और रथपर सवार हो प्रस्थान कर देना चाहिये; इसमें शंकाकी आवश्यकता नहीं है॥ ४१॥

विदल्लके ऐसा कहनेपर रानी मनोरमा लीलावतीके पास गयी और बोली—हे सुनयने! मैं [तुम्हारे] पिताजीका दर्शन करने जा रही हूँ॥ ४२॥

ऐसा कहकर मनोरमा एक दासी और मन्त्री विदल्लको साथ लेकर रथपर सवार हो नगरसे बाहर निकल गयी। उस समय बहुत डरी हुई, दुःखित, अत्यन्त दीन तथा पिताके मृत्युजन्य शोकसे व्याकुल वह मनोरमा राजा युधाजित्से मिलकर तत्काल अपने मृत पिताका दाहसंस्कार कराकर भयसे व्याकुल हो काँपती हुई दो दिनोंमें गंगाजीके तटपर पहुँच गयी॥ ४३—४५॥

निषादैर्लुण्ठिता तत्र गृहीतं सकलं वसु।
रथञ्चापि गृहीत्वा ते निर्गता दस्यवः शठाः॥ ४६

रुदती सुतमादाय चारुवस्त्रा मनोरमा।
निर्ययौ जाह्नवीतीरे सैरन्ध्रीकरलम्बिता॥ ४७

आरुह्य च भयाच्छीघ्रमुडुपं सा भयाकुला।
तीर्त्वा भागीरथीं पुण्यां ययौ त्रिकूटपर्वतम्॥ ४८

भारद्वाजाश्रमं प्राप्ता त्वरया च भयाकुला।
संवीक्ष्य तापसांस्तत्र सञ्जाता निर्भया तदा॥ ४९

मुनिना सा ततः पृष्टा कासि कस्य परिग्रहः।
कष्टेनात्र कथं प्राप्ता सत्यं ब्रूहि शुचिस्मिते॥ ५०

देवी वा मानुषी वासि बालपुत्रा वने कथम्।
राज्यभ्रष्टेव वामोरु भासि त्वं कमलेक्षणे॥ ५१

एवं सा मुनिना पृष्टा नोवाच वरवर्णिनी।
रुदती दुःखसन्तप्ता विदल्लं च समादिशत्॥ ५२

विदल्लस्तमुवाचेदं ध्रुवसन्धिर्नृपोत्तमः।
तस्य भार्या धर्मपत्नी नाम्ना चेयं मनोरमा॥ ५३

सिंहेन निहतो राजा सूर्यवंशी महाबलः।
पुत्रोऽयं नृपतेस्तस्य नाम्ना चैव सुदर्शनः॥ ५४

अस्याः पितातिधर्मात्मा दौहित्रार्थं मृतो रणे।
युधाजिद्भयसन्त्रस्ता सम्प्राप्ता विजने वने॥ ५५

त्वामेव शरणं प्राप्ता बालपुत्रा नृपात्मजा।
त्राता भव महाभाग त्वमस्या मुनिसत्तम॥ ५६

आर्तस्य रक्षणे पुण्यं यज्ञाधिकमुदाहृतम्।
भयत्रस्तस्य दीनस्य विशेषफलदं स्मृतम्॥ ५७

वहाँके निषादोंने उसे लूट लिया तथा उसका सारा धन और रथ छीन लिया। सब कुछ लेकर वे धूर्त दस्यु चले गये। तब वह रोती हुई अपने पुत्रको लेकर सैरंध्रीके हाथका सहारा लेकर किसी प्रकार गंगाके तटपर गयी और एक छोटी-सी नौकापर डरती हुई बैठकर पवित्र गंगाको पार करके वह भयाक्रान्त मनोरमा त्रिकूटपर्वतपर पहुँच गयी॥ ४६—४८॥

वह भयभीत मनोरमा भारद्वाजमुनिके आश्रममें शीघ्रतासे पहुँची। तब वहाँ तपस्वियोंको देखकर वह निर्भय हो गयी। तदनन्तर भारद्वाजमुनिने पूछा—हे शुचिस्मिते! तुम कौन हो, किसकी पत्नी हो? इतने कष्टसे तुम यहाँ कैसे आ गयी हो? मुझसे सत्य कहो। तुम कोई देवी हो अथवा मानवी हो। अपने इस बालक पुत्रके साथ वनमें क्यों विचरण कर रही हो? हे सुन्दरि! हे कमलनयने! तुम राज्यभ्रष्ट-जैसी प्रतीत हो रही हो॥ ४९—५१॥

मुनिके पूछनेपर उस रूपवती रानीने कुछ भी उत्तर नहीं दिया और दुःखसे सन्तप्त होकर रोती हुई उसने अपने मन्त्री विदल्लको सारी बातें बतानेके लिये संकेत किया॥ ५२॥

तब विदल्लने मुनिसे कहा—ध्रुवसन्धि एक श्रेष्ठ नरेश थे। ये उन्हींकी मनोरमा नामवाली धर्मपत्नी हैं॥ ५३॥

सूर्यवंशमें उत्पन्न उन महाबली महाराजको सिंहने मार डाला। सुदर्शन नामका यह बालक उन्हीं राजाका पुत्र है॥ ५४॥

इनके अत्यन्त धर्मात्मा पिता अपने इसी दौहित्रके लिये संग्राममें मारे गये। अतएव युधाजित्के भयसे संत्रस्त होकर ये इस निर्जन वनमें आयी हुई हैं॥ ५५॥

हे महाभाग! हे मुनिश्रेष्ठ! अबोध पुत्रवाली ये राजपुत्री अब आपकी शरणमें आयी हैं। अतः आप इनकी रक्षा कीजिये॥ ५६॥

किसी दुःखी प्राणीकी रक्षा करनेमें यज्ञ करनेसे भी अधिक पुण्य बताया गया है। भयभीत तथा दीनकी रक्षाको तो और भी अधिक फलदायक कहा गया है॥ ५७॥

ऋषिरुवाच

निर्भया वस कल्याणि पुत्रं पालय सुव्रते।
न ते भयं विशालाक्षि कर्तव्यं शत्रुसम्भवम्॥ ५८

पालयस्व सुतं कान्तं राजा तेऽयं भविष्यति।
नात्र दुःखं तथा शोकः कदाचित्सम्भविष्यति॥ ५९

ऋषि बोले—हे कल्याणि! तुम यहाँ भयरहित होकर निवास करो; हे सुव्रते! अपने पुत्रका पालन-पोषण करो। हे विशालनयने! यहाँ तुम्हें शत्रुओंसे उत्पन्न होनेवाला किसी प्रकारका भी भय नहीं करना चाहिये। तुम अपने इस कान्तिमान् पुत्रका पालन करो, तुम्हारा यह पुत्र आगे चलकर राजा होगा। यहाँ तुम लोगोंको कभी भी कोई दुःख तथा शोक नहीं होगा॥ ५८-५९॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता मुनिना राज्ञी स्वस्था सा सम्बभूव ह।
उटजे मुनिना दत्ते वीतशोका तदावसत्॥ ६०

व्यासजी बोले—मुनिके इस प्रकार कहनेपर महारानी मनोरमा निश्चिन्त हो गयीं और मुनिके द्वारा प्रदान की गयी एक कुटियामें वे शोकरहित होकर निवास करने लगीं॥ ६०॥

सैरन्ध्रीसहिता तत्र विदल्लेन च संयुता।
सुदर्शनं पालयाना न्यवसत्सा मनोरमा॥ ६१

इस प्रकार सुदर्शनका पालन-पोषण करती हुई वे मनोरमा अपनी दासी तथा मन्त्री विदल्लके साथ वहाँ रहने लगीं॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे मनोरमया भारद्वाजाश्रमं प्रति गमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~~

अथ षोडशोऽध्यायः

युधाजित्का भारद्वाजमुनिके आश्रमपर आना और उनसे मनोरमाको भेजनेका आग्रह करना, प्रत्युत्तरमें मुनिका 'शक्ति हो तो ले जाओ'—ऐसा कहना

व्यास उवाच

युधाजित्त्वथ संग्रामाद् गत्वायोध्यां महाबलः।
मनोरमां च पप्रच्छ सुदर्शनजिघांसया॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तदनन्तर महाबली युधाजित्ने रणभूमिसे अयोध्या पहुँचकर सुदर्शनको भी मार डालनेकी इच्छासे मनोरमाके विषयमें लोगोंसे पूछा॥ १॥

सेवकान् प्रेषयामास क्व गतेति मुहुर्वदन्।
शुभे दिनेऽथ दौहित्रं स्थापयामास चासने॥ २

'मनोरमा कहाँ चली गयी' ऐसा बार-बार कहते हुए उसने सेवकोंको इधर-उधर भेज दिया। तत्पश्चात् किसी शुभ दिनमें अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठा दिया॥ २॥

मन्त्रिभिश्च वसिष्ठेन मन्त्रैराथर्वणैः शुभैः।
अभिषिक्तश्च सम्पूर्णैः कलशैर्जलपूरितैः॥ ३

समस्त मन्त्रियोंके साथ गुरु वसिष्ठने अथर्ववेदके कल्याणकारी मन्त्रोंका उच्चारण करके जलपूरित समस्त कलशोंसे राजकुमार शत्रुजित्का अभिषेक किया॥ ३॥

भेरीशङ्खनिनादैश्च तूर्याणां चाथ निःस्वनैः।
उत्सवस्तु नगर्यां वै सम्बभूव कुरूद्वह॥ ४

हे कुरुनन्दन! उस समय शंख, भेरीके निनादों तथा तुरहियोंकी ध्वनियोंके साथ पूरे नगरमें उत्सव मनाया गया॥ ४॥
~~~

विप्राणां वेदपाठैश्च बन्दिनां स्तुतिभिस्तथा।
अयोध्या मुदितेवासीज्जयशब्दैः सुमङ्गलैः॥ ५

हृष्टपुष्टजनाकीर्णा स्तुतिवादित्रनिःस्वना।
नवे तस्मिन्महीपाले पूर्बभौ नूतनेव सा॥ ६

केचित्साधुजना ये वै चक्रुः शोकं गृहे स्थिताः।
सुदर्शनं विचिन्त्याद्य क्व गतोऽसौ नृपात्मजः॥ ७

मनोरमातिसाध्वी सा क्व गता सुतसंयुता।
पितास्या निहतः संख्ये राज्यलोभेन वैरिणा॥ ८

इत्येवं चिन्त्यमानास्ते साधवः समबुद्धयः।
अतिष्ठन्दुःखितास्तत्र शत्रुजिद्वशवर्तिनः॥ ९

युधाजिदपि दौहित्रं स्थापयित्वा विधानतः।
राज्यञ्च मन्त्रिसात्कृत्वा चलितः स्वां पुरीं प्रति॥ १०

श्रुत्वा सुदर्शनं तत्र मुनीनामाश्रमे स्थितम्।
हन्तुकामो जगामाशु चित्रकूटं स पर्वतम्॥ ११

निषादाधिपतिं शूरं पुरस्कृत्य बलाभिधम्।
दुर्दर्शाख्यमगादाशु शृङ्गवेरपुराधिपम्॥ १२

श्रुत्वा मनोरमा तत्र बभूवातिसुदुःखिता।
आगच्छन्तं बालपुत्रा भयार्ता सैन्यसंयुतम्॥ १३

तमुवाचातिशोकार्ता मुनिं साश्रुविलोचना।
किं करोमि क्व गच्छामि युधाजित्समुपस्थितः॥ १४

पिता मे निहतोऽनेन दौहित्रो भूपतिः कृतः।
सुतं मे हन्तुकामोऽत्र समायाति बलान्वितः॥ १५

ब्राह्मणोंके वेदपाठों, बन्दीजनोंके स्तुतिगान तथा मंगलकारी जयघोषसे अयोध्यानगरी प्रफुल्लित-सी दिखायी दे रही थी॥ ५॥

हृष्ट-पुष्टजनोंसे भरी-पूरी और स्तुतियों तथा वाद्योंकी ध्वनिसे निनादित वह अयोध्या उस नये नरेशके अभिषिक्त होनेपर नवीन पुरीकी भाँति सुशोभित हो रही थी॥ ६॥

उस नगरीमें जो कोई भी सज्जनलोग थे, उन्होंने अपने घरमें ही रहकर शोक मनाया। वे सुदर्शनके विषयमें सोचते हुए कह रहे थे कि वह राजकुमार कहाँ चला गया? महान् पतिव्रता वह मनोरमा अपने पुत्रके साथ कहाँ चली गयी? राज्यलोभी शत्रु युधाजित्ने युद्धमें उसके पिताको मार डाला॥ ७-८॥

ऐसा विचार करते हुए सबमें समान बुद्धि रखनेवाले वे साधुजन शत्रुजित्के अधीन होकर दुःखी मनसे रहने लगे॥ ९॥

इस प्रकार युधाजित् भी विधानपूर्वक अपने दौहित्रको राजसिंहासनपर बैठाकर तथा राज्यभार मन्त्रियोंको सौंपकर अपनी नगरीको प्रस्थान कर गया॥ १०॥

सुदर्शन मुनियोंके आश्रममें रह रहा है—ऐसा सुनकर युधाजित् उसे मार डालनेकी इच्छासे तत्काल ही चित्रकूट-पर्वतकी ओर चल पड़ा॥ ११॥

वह दुर्दर्श नामक शृंगवेरपुरके राजाके यहाँ पहुँचा और उस विशाल सेनासम्पन्न तथा पराक्रमी निषादराजको अगुआ बनाकर उसने शीघ्र ही आगेकी ओर प्रस्थान किया॥ १२॥

युधाजित्को सेनासहित आते हुए सुनकर अबोध सन्तानवाली वह मनोरमा भयभीत तथा अत्यन्त दुःखित हो गयी॥ १३॥

अत्यन्त शोकसन्तप्त वह मनोरमा आँखोंमें आँसू भरकर मुनि भारद्वाजसे बोली कि युधाजित् यहाँ भी आ पहुँचा; अब मैं क्या करूँ तथा कहाँ जाऊँ?॥ १४॥

इसने मेरे पिताका वध कर दिया तथा अपने दौहित्रको राजा बना दिया। अब वह विशाल सेनाके साथ मेरे पुत्रके वधकी कामनासे यहाँ आ रहा है॥ १५॥

पुरा श्रुतं मया स्वामिन् पाण्डवा वै वने स्थिताः।
मुनीनामाश्रमे पुण्ये पाञ्चाल्या सहितास्तदा॥ १६

गतास्ते मृगयां पार्था भ्रातरः पञ्च एव ते।
द्रौपदी संस्थिता तत्र मुनीनामाश्रमे शुभे॥ १७

धौम्योऽत्रिर्गालवः पैलो जाबालिर्गौतमो भृगुः।
च्यवनश्चात्रिगोत्रश्च कण्वश्चैव जतुः क्रतुः॥ १८

वीतिहोत्रः सुमन्तुश्च यज्ञदत्तोऽथ वत्सलः।
राशासनः कहोडश्च यवक्रीर्यज्ञकृत्क्रतुः॥ १९

एते चान्ये च मुनयो भारद्वाजादयः शुभाः।
वेदपाठयुताः सर्वे संस्थिताश्चाश्रमे स्थिताः॥ २०

दासीभिः सहिता तत्र याज्ञसेनी स्थिता मुने।
आश्रमे चारुसर्वाङ्गी निर्भया मुनिसंवृते॥ २१

पार्था मृगानुगास्तावत्प्रयाताश्च वनाद्वनम्।
धनुर्बाणधरा वीराः पञ्च वै शत्रुतापनाः॥ २२

तावत्सिन्धुपतिः श्रीमान्मार्गस्थो बलसंयुतः।
आगतश्चाश्रमाभ्याशे श्रुत्वा तु निगमध्वनिम्॥ २३

श्रुत्वा वेदध्वनिं राजा मुनीनां भावितात्मनाम्।
उत्ततार रथात्तूर्णं दर्शनाकाङ्क्षया नृपः॥ २४

यदा निरगमत्तत्र भृत्यद्वयसमन्वितः।
वेदपाठयुतान्वीक्ष्य मुनीनुद्यमसंस्थितः॥ २५

कृताञ्जलिपुटः स्वामिन्संस्थितोऽथ जयद्रथः।
आश्रमे मुनिभिर्जुष्टे भूपतिः संविवेश ह॥ २६

तत्रोपविष्टं राजानं द्रष्टुकामाः स्त्रियस्तदा।
आययुर्मुनिभार्याश्च कोऽयमित्यब्रुवन्नृपम्॥ २७

तासां मध्ये वरारोहा याज्ञसेनी समागता।
जयद्रथेन दृष्टा सा रूपेण श्रीरिवापरा॥ २८

तां विलोक्यासितापाङ्गीं देवकन्यामिवापराम्।
पप्रच्छ नृपतिर्धौम्यं केयं श्यामा वरानना॥ २९

हे स्वामिन्! मैंने सुना है कि पूर्वकालमें जब मुनियोंके पवित्र आश्रममें द्रौपदीके साथ पाण्डव निवास कर रहे थे, उसी समय एक दिन वे पाँचों भाई आखेटके लिये चले गये और द्रौपदी वहींपर मुनियोंके उस पावन आश्रममें रह गयी थी॥ १६-१७॥

धौम्य, अत्रि, गालव, पैल, जाबालि, गौतम, भृगु, च्यवन, अत्रिगोत्रज कण्व, जतु, क्रतु, वीतिहोत्र, सुमन्तु, यज्ञदत्त, वत्सल, राशासन, कहोड, यवक्री, यज्ञकृत् क्रतु—ये सब और भारद्वाज आदि अन्य पुण्यात्मा मुनिगण उस पावन आश्रममें विराजमान थे। वे सभी वेदपाठ कर रहे थे॥ १८—२०॥

हे मुने! मुनि-समुदायसे सम्पन्न उस आश्रममें सर्वांगसुन्दरी वह द्रौपदी अपनी दासियोंके साथ निर्भय होकर रहती थी॥ २१॥

शत्रुओंको सन्ताप पहुँचानेमें समर्थ तथा धनुष-बाण धारण किये वे पाँचों पाण्डव मृगका पीछा करते हुए एक वनसे दूसरे वनमें निकल गये॥ २२॥

इसी बीच समृद्धिशाली सिन्धुनरेश [जयद्रथ] वेद-ध्वनि सुनकर अपनी सेनाके साथ आश्रमके पास आ गया॥ २३॥

वेदपाठ सुनकर राजा जयद्रथ पुण्यात्मा मुनियोंके दर्शनकी इच्छासे शीघ्रतापूर्वक रथसे उतरा॥ २४॥

जब वह अपने दो भृत्योंके साथ आगे बढ़ा तो मुनियोंको वेदपाठमें संलग्न देखकर वहींपर बैठ गया। हे स्वामिन्! राजा जयद्रथ हाथ जोड़कर कुछ देरतक बैठा रहा। इसके बाद वह मुनियोंसे भरे हुए उस आश्रममें प्रविष्ट हुआ॥ २५-२६॥

तत्पश्चात् मुनियोंकी पत्नियाँ तथा अन्य स्त्रियाँ वहाँ बैठे हुए राजा जयद्रथको देखनेकी इच्छासे वहाँ आ गयीं और लोगोंसे पूछने लगीं—यह कौन है?॥ २७॥

उन्हीं स्त्रियोंके साथ परम सुन्दरी द्रौपदी भी आयी थी। जयद्रथकी दृष्टि दूसरी लक्ष्मीके समान प्रतीत हो रही उस द्रौपदीपर पड़ गयी॥ २८॥

दूसरी देवकन्याकी भाँति प्रतीत हो रही उस श्याम नेत्रोंवाली द्रौपदीको देखकर राजा जयद्रथने ऋषि धौम्यसे पूछा कि यह सुन्दर मुखवाली युवती कौन है?॥ २९॥

भार्या कस्य सुता कस्य नाम्ना का वरवर्णिनी।
रूपलावण्यसंयुक्ता शचीव वसुधाङ्गता॥ ३०

बर्बूलवनमध्यस्था लवङ्गलतिका यथा।
राक्षसीवृन्दगा नूनं रम्भेवाभाति भामिनी॥ ३१

सत्यं वद महाभाग कस्येयं वल्लभाबला।
राजपत्नीव चाभाति नैषा मुनिवधूर्द्विज॥ ३२

धौम्य उवाच

पाण्डवानां प्रिया भार्या द्रौपदी शुभलक्षणा।
पाञ्चाली सिन्धुराजेन्द्र वसत्यत्र वराश्रमे॥ ३३

जयद्रथ उवाच

क्व गताः पाण्डवाः पञ्च शूराः सम्प्रति विश्रुताः।
वसन्त्यत्र वने वीरा वीतशोका महाबलाः॥ ३४

धौम्य उवाच

मृगयार्थं गताः पञ्च पाण्डवा रथसंस्थिताः।
आगमिष्यन्ति मध्याह्ने मृगानादाय पार्थिवाः॥ ३५

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य उदतिष्ठदसौ नृपः।
द्रौपदीसन्निधौ गत्वा प्रणम्येदमुवाच ह॥ ३६

कुशलं ते वरारोहे क्व गताः पतयश्च ते।
एकादश गतान्यद्य वर्षाणि च वने किल॥ ३७

द्रौपदी तु तदोवाच स्वस्ति तेऽस्तु नृपात्मज।
विश्रमस्वाश्रमाभ्याशे क्षणादायान्ति पाण्डवाः॥ ३८

एवं ब्रुवन्त्यां तस्यां तु लोभाविष्टः स भूपतिः।
जहार द्रौपदीं वीरोऽनादृत्य मुनिसत्तमान्॥ ३९

यह किसकी पत्नी है, किसकी पुत्री है और इस परम सुन्दरीका नाम क्या है? रूप तथा सौन्दर्यसे सम्पन्न यह स्त्री तो धरापर उतरकर आयी हुई साक्षात् इन्द्राणीकी भाँति प्रतीत हो रही है॥ ३०॥

यह स्त्री बबूलके वनमें स्थित लवंगलता तथा [कुरूपा] राक्षसियोंके समूहमें सचमुच रम्भाके समान प्रतीत हो रही है॥ ३१॥

हे महाभाग! आप सच-सच बताइये कि यह स्त्री किसकी पत्नी है? हे द्विज! यह तो किसी रानी-जैसी प्रतीत हो रही है; मुनिपत्नी तो यह कदापि नहीं हो सकती॥ ३२॥

धौम्य बोले—हे सिन्धुराजेन्द्र! समस्त शुभ लक्षणोंवाली यह पाण्डवोंकी प्रिय भार्या तथा पांचालनरेशकी पुत्री द्रौपदी है। यह इसी पवित्र आश्रममें निवास करती है॥ ३३॥

जयद्रथ बोला—विख्यात पराक्रमी पाँचों पाण्डव कहाँ गये हुए हैं? क्या वे महान् बलशाली वीर निश्चिन्त होकर इस समय इसी वनमें रह रहे हैं?॥ ३४॥

धौम्य बोले—पाँचों पाण्डव इस समय रथपर आरूढ़ होकर आखेटके लिये वनमें गये हुए हैं। वे राजागण मध्याह्नकालमें मृगोंको लेकर आ जायँगे॥ ३५॥

मुनिका यह वचन सुनकर वह राजा जयद्रथ अपने आसनसे उठा और द्रौपदीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—हे परम सुन्दरि! आप सकुशल तो हैं न, आपके पतिगण कहाँ गये हुए हैं? आपको वनमें निवास करते हुए आज ग्यारह वर्ष बीत चुके हैं॥ ३६-३७॥

तत्पश्चात् द्रौपदीने कहा—हे राजकुमार! आपका कल्याण हो। अभी थोड़ी ही देरमें पाण्डव आ जायँगे, तबतक आप आश्रमके समीप ही विश्राम कीजिये॥ ३८॥

उसके ऐसा कहनेपर लोभसे आक्रान्त उस वीर जयद्रथने मुनिवरोंकी अवहेलना करके द्रौपदीका हरण कर लिया॥ ३९॥

कस्यचिन्नैव विश्वासः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः।
कुर्वन्दुःखमवाप्नोति दृष्टान्तस्त्वत्र वै बलिः॥ ४०

वैरोचनसुतः श्रीमान्धर्मिष्ठः सत्यसङ्गरः।
यज्ञकर्ता च दाता च शरण्यः साधुसम्मतः॥ ४१

नाधर्मे निरतः क्वापि प्रह्लादस्य च पौत्रकः।
एकोनशतयज्ञान्वै स चकार सदक्षिणान्॥ ४२

सत्त्वमूर्तिः सदा विष्णुः सेव्यः स योगिनामपि।
निर्विकारोऽपि भगवान्देवकार्यार्थसिद्धये॥ ४३

कश्यपाच्च समुद्भूतो विष्णुः कपटवामनः।
राज्यं छलेन हृतवान्महीं चैव ससागराम्॥ ४४

सोऽभवत्सत्यवाग्राजा बलिर्वैरोचनिस्तदा।
कपटं कृतवान्विष्णुरिन्द्रार्थे तु मया श्रुतम्॥ ४५

अन्यः किं न करोत्येवं कृतं वै सत्त्वमूर्तिना।
वामनं रूपमास्थाय यज्ञपातं चिकीर्षता॥ ४६

न च विश्वसितव्यं वै कदाचित्केनचित्तथा।
लोभश्चेतसि चेत्स्वामिन्कीदृक्पापकृतं भयम्॥ ४७

लोभाहताः प्रकुर्वन्ति पापानि प्राणिनः किल।
परलोकाद्भयं नास्ति कस्यचित्कर्हिचिन्मुने॥ ४८

मनसा कर्मणा वाचा परस्वादानहेतुतः।
प्रपतन्ति नराः सम्यग्लोभोपहतचेतसः॥ ४९

देवानाराध्य सततं वाञ्छन्ति च धनं नराः।
न देवास्तत्करे कृत्वा समर्था दातुमञ्जसा॥ ५०

[मनोरमाने कहा—हे स्वामिन्!] अतएव बुद्धिमान् लोगोंको चाहिये कि वे किसीपर भी विश्वास न करें, ऐसा करनेवाला व्यक्ति दुःख प्राप्त करता है। इस विषयमें राजा बलि उदाहरण हैं। विरोचनपुत्र राजा बलि वैभवसम्पन्न, धर्मपरायण, सत्यप्रतिज्ञ, यज्ञकर्ता, दानी, शरणदाता तथा साधुजनोंके सम्मान्य थे॥ ४०-४१॥

प्रह्लादके पौत्र वे राजा बलि कभी अधर्मका आचरण नहीं करते थे। उन्होंने दक्षिणायुक्त निन्यानवे यज्ञ किये थे, फिर भी सत्त्वगुणकी साक्षात् मूर्ति, योगियोंद्वारा सदा आराधित तथा विकारोंसे रहित भगवान् विष्णु भी देवताओंका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये कश्यपसे उत्पन्न हुए और उन्होंने वामनका कपटवेष धारण करके छलपूर्वक उनका राज्य तथा सागरसमेत पृथ्वी ले ली॥ ४२—४४॥

विरोचनके पुत्र बलि एक सत्यवादी राजा थे मैंने तो ऐसा सुना है कि भगवान् विष्णुने इन्द्रके लिये ही यह कपट किया था॥ ४५॥

जब साक्षात् सत्त्वकी मूर्ति भगवान् विष्णुने बलिका यज्ञ ध्वंस करनेकी कामनासे वामनरूप धारण करके ऐसा किया, तब अन्य लोग क्यों नहीं करेंगे?॥ ४६॥

अतएव हे स्वामिन्! किसीपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि यदि चित्तमें लोभ रहता है तो पाप करनेमें किसी भी प्रकारका डर ही क्या?॥ ४७॥

हे मुने! लोभके वशीभूत प्राणी सभी प्रकारके पाप कर बैठते हैं। उस समय किसीको परलोकका किंचिन्मात्र भी भय नहीं रहता॥ ४८॥

लोभसे नष्ट हुए चित्तवाले प्राणी दूसरोंका धन हड़पनेके लिये मन, वचन तथा कर्मसे सम्यक् तत्पर रहते हैं॥ ४९॥

देवताओंकी निरन्तर आराधना करके मनुष्य उनसे धनकी कामना करते हैं। यह निश्चित है कि वे देवता अपने हाथोंसे धन उठाकर उन्हें देनेमें पूरी तरहसे समर्थ नहीं हैं॥ ५०॥

अन्यस्यानीयते वित्तं प्रयच्छन्ति मनीषितम्।
वाणिज्येनाथ दानेन चौर्येणापि बलेन वा॥ ५१

विक्रयार्थं गृहीत्वा च धान्यवस्त्रादिकं बहु।
देवानर्चयते वैश्यो महर्द्धिर्मे भवेदिति॥ ५२

नात्र किं परवित्तेच्छा वाणिज्येन परन्तप।
ग्रहणकाले तु सम्प्राप्ते महर्घञ्चापि काङ्क्षति॥ ५३

एवं हि प्राणिनः सर्वे परस्वादानतत्पराः।
वर्तन्ते सततं ब्रह्मन् विश्वासः कीदृशः पुनः॥ ५४

वृथा तीर्थं वृथा दानं वृथाध्ययनमेव च।
लोभमोहावृतानां वै कृतं तदकृतं भवेत्॥ ५५

तस्मादेनं महाभाग विसर्जय गृहं प्रति।
सपुत्राहं वसिष्यामि जानकीवद् द्विजोत्तम॥ ५६

इत्युक्तोऽसौ मुनिस्तावद् गत्वा युधाजितं नृपम्।
उवाच वचनं राज्ञे भारद्वाजः प्रतापवान्॥ ५७

गच्छ राजन् यथाकामं स्वपुरं नृपसत्तम।
नेयं मनोरमाभ्येति बालपुत्रा सुदुःखिता॥ ५८

युधाजिदुवाच

मुने मुञ्च हठं सौम्य विसर्जय मनोरमाम्।
न च यास्याम्यहं मुक्त्वा नेष्याम्यद्य बलात्पुनः॥ ५९

ऋषिरुवाच

नयस्व यदि शक्तिस्ते बलेनाद्य ममाश्रमात्।
विश्वामित्रो यथा धेनुं वसिष्ठस्य मुनेः पुरा॥ ६०

किंतु व्यवसाय, दान, चोरी अथवा बलपूर्वक लूट आदि किसी भी माध्यमसे मनुष्यका अभिलषित धन [उन देवताओंके द्वारा] दूसरेके पाससे ला करके उन्हें दे दिया जाता है॥ ५१॥

विक्रय करनेके लिये पर्याप्त धान्य तथा वस्त्र आदिका संग्रह करके वैश्य इस भावनासे देवताओंकी पूजा करता है कि 'मेरे पास विपुल धन हो जाय।' हे परन्तप! क्या इस व्यापारके द्वारा दूसरोंका धन ग्रहण करनेकी उन्हें इच्छा नहीं होती? वस्तुका संग्रह करनेके बादसे ही वह भाव महँगा होनेकी इच्छा करने लगता है॥ ५२-५३॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार सभी प्राणी दूसरोंका धन ले लेनेके लिये निरन्तर तत्पर रहते हैं तो फिर विश्वास कैसा?॥ ५४॥

लोभ तथा मोहसे घिरे हुए लोगोंका तीर्थ, दान, अध्ययन—सब व्यर्थ हो जाता है; उनका किया हुआ वह सारा कर्म न करनेके समान हो जाता है॥ ५५॥

अतः हे महाभाग! इस युधाजित्‌को घर लौटा दीजिये। हे द्विजोत्तम! जानकीकी भाँति मैं अपने पुत्रके साथ यहीं निवास करूँगी॥ ५६॥

मनोरमाके ऐसा कहनेपर तेजस्वी भारद्वाजमुनि राजा युधाजित्‌के पास जाकर उनसे बोले—हे राजन्! हे नृपश्रेष्ठ! अपने इच्छानुसार आप अपने नगरको चले जायँ। छोटे बालकवाली यह मनोरमा बड़ी दुःखी है; वह नहीं आ रही है॥ ५७-५८॥

युधाजित् बोला—हे सौम्य मुने! आप हठ छोड़ दीजिये और मनोरमाको विदा कीजिये, इसे छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा, [यदि आप नहीं मानेंगे तो] मैं इसे अभी बलपूर्वक ले जाऊँगा॥ ५९॥

ऋषि बोले—जैसे प्राचीन कालमें विश्वामित्र वसिष्ठमुनिकी गौ ले जानेके लिये उद्यत हुए थे, उसी प्रकार यदि आपमें शक्ति हो तो आज मेरे आश्रमसे इसे बलपूर्वक ले जाइये॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
युधाजिद्भारद्वाजयोः संवादवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

युधाजित्का अपने प्रधान अमात्यसे परामर्श करना, प्रधान अमात्यका इस सन्दर्भमें वसिष्ठ-विश्वामित्र-प्रसंग सुनाना और परामर्श मानकर युधाजित्का वापस लौट जाना, बालक सुदर्शनको दैवयोगसे कामराज नामक बीजमन्त्रकी प्राप्ति, भगवतीकी आराधनासे सुदर्शनको उनका प्रत्यक्ष दर्शन होना तथा काशिराजकी कन्या शशिकलाको स्वप्नमें भगवतीद्वारा सुदर्शनका वरण करनेका आदेश देना

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुनेस्तत्रावनीपतिः।
मन्त्रिवृद्धं समाहूय पप्रच्छ तमतन्द्रितः॥ १

किं कर्तव्यं सुबुद्धेऽत्र मयाद्य वद सुव्रत।
बलान्नयामि तां कामं सपुत्राञ्च सुभाषिणीम्॥ २

रिपुरल्पोऽपि नोपेक्ष्यः सर्वथा शुभमिच्छता।
राजयक्ष्मेव संवृद्धो मृत्यवे परिकल्पयेत्॥ ३

नात्र सैन्यं न योद्धास्ति यो मामत्र निवारयेत्।
गृहीत्वा हन्मि तं तत्र दौहित्रस्य रिपुं किल॥ ४

निष्कण्टकं भवेद्राज्यं यताम्यद्य बलादहम्।
हते सुदर्शने नूनं निर्भयोऽसौ भवेदिति॥ ५

प्रधान उवाच

साहसं न हि कर्तव्यं श्रुतं राजन् मुनेर्वचः।
विश्वामित्रस्य दृष्टान्तः कथितस्तेन मारिष॥ ६

पुरा गाधिसुतः श्रीमान्विश्वामित्रोऽतिविश्रुतः।
विचरन्स नृपश्रेष्ठो वसिष्ठाश्रममभ्यगात्॥ ७

नमस्कृत्य च तं राजा विश्वामित्रः प्रतापवान्।
उपविष्टो नृपश्रेष्ठो मुनिना दत्तविष्टरः॥ ८

निमन्त्रितो वसिष्ठेन भोजनाय महात्मना।
ससैन्यश्च स्थितो राजा गाधिपुत्रो महायशाः॥ ९

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भारद्वाजमुनिका यह वचन सुनकर राजा युधाजित्ने अपने प्रधान अमात्यको बुलाकर बड़ी सावधानीसे उनसे पूछा—हे सुबुद्धे! आप बतायें कि अब मुझे क्या करना चाहिये? हे सुव्रत! क्या मधुर वचन बोलनेवाली मनोरमाको पुत्रसहित बलपूर्वक ले चलूँ? अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको चाहिये कि वह तुच्छ शत्रुकी भी उपेक्षा न करे; क्योंकि वह राजयक्ष्मा रोगके समान बढ़कर मृत्युका कारण बन जाता है॥ १—३॥

यहाँ न कोई सेना है और न कोई योद्धा ही है जो मुझे रोक सके। अतः मैं अपने दौहित्रके शत्रु उस सुदर्शनको पकड़कर अभी मार डालूँगा। यदि मैं बलपूर्वक इस प्रयत्नमें सफल हो जाता हूँ तो उसका राज्य निष्कंटक हो जायगा। सुदर्शनके मर जानेपर निश्चय ही वह निर्भय हो जायगा॥ ४-५॥

प्रधान अमात्यने कहा—हे राजन्! ऐसा दुःसाहस नहीं करना चाहिये। अभी आपने भारद्वाजमुनिका वचन सुना ही है। हे मान्य! उन्होंने [इस सम्बन्धमें] विश्वामित्रका दृष्टान्त दिया है॥ ६॥

प्राचीन समयमें गाधितनय विश्वामित्र एक समृद्धिशाली तथा प्रसिद्ध राजा थे। एक बार वे महाराज घूमते हुए महर्षि वसिष्ठके आश्रममें जा पहुँचे॥ ७॥

प्रतापी राजाओंमें श्रेष्ठ वे महाराज विश्वामित्र उन्हें प्रणाम करके मुनिद्वारा प्रदत्त आसनपर बैठ गये। उसके बाद महात्मा वसिष्ठजीने उन्हें भोजनके लिये निमन्त्रित किया, तब वे महायशस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्र अपने सैनिकोंसहित उपस्थित हो गये॥ ८-९॥

नन्दिन्यासादितं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिकं च यत्।
भुक्त्वा राजा ससैन्यश्च वाञ्छितं तत्र भोजनम्॥ १०

प्रतापं तञ्च नन्दिन्याः परिज्ञाय स पार्थिवः।
ययाचे नन्दिनीं राजा वसिष्ठं मुनिसत्तमम्॥ ११

विश्वामित्र उवाच

मुने धेनुसहस्रं ते घटोध्नीनां ददाम्यहम्।
नन्दिनीं देहि मे धेनुं प्रार्थयामि परन्तप॥ १२

वसिष्ठ उवाच

होमधेनुरियं राजन्न ददामि कथञ्चन।
सहस्रञ्चापि धेनूनां तवेदं तव तिष्ठतु॥ १३

विश्वामित्र उवाच

अयुतं वाथ लक्ष्यं वा ददामि मनसेप्सितम्।
देहि मे नन्दिनीं साधो ग्रहीष्यामि बलादथ॥ १४

वसिष्ठ उवाच

कामं गृहाण नृपते बलादद्य यथारुचि।
नाहं ददामि ते राजन्स्वेच्छया नन्दिनीं गृहात्॥ १५

तच्छ्रुत्वा नृपतिर्भृत्यानादिदेश महाबलान्।
नयध्वं नन्दिनीं धेनुं बलदर्पसुसंस्थिताः॥ १६

ते भृत्या जगृहुस्तां तु हठादाक्रम्य यन्त्रिताम्।
वेपमाना मुनिं प्राह सुरभिः साश्रुलोचना॥ १७

मुने त्यजसि मां कस्मात्कर्षयन्ति सुयन्त्रिताम्।
मुनिस्तां प्रत्युवाचेदं त्यजे नाहं सुदुग्धदे॥ १८

बलान्नयति राजासौ पूजितोऽद्य मया शुभे।
किं करोमि न चेच्छामि त्यक्तुं त्वां मनसा किल॥ १९

उस समय भक्ष्य तथा भोज्य आदि जो भी आवश्यक हुआ, वह सब उनकी नन्दिनी गौने उपस्थित कर दिया। सेनासमेत राजा विश्वामित्र मनोवांछित भोजन करके इसे नन्दिनी गौका प्रभाव समझकर वे राजा उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे नन्दिनी गौ माँगने लगे॥ १०-११॥

विश्वामित्र बोले—हे मुने! मैं आपको पर्याप्त दूध देनेवाली हजारों गौएँ दूँगा; आप मुझे यह अपनी नन्दिनी गौ दे दीजिये। हे परन्तप! मैं यही प्रार्थना कर रहा हूँ॥ १२॥

वसिष्ठ बोले—हे राजन्! यह गौ होमके लिये हविष्य प्रदान करती है। अतः मैं इसे किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। आपकी हजार गौएँ आपके ही पास रहें॥ १३॥

विश्वामित्र बोले—हे साधो! मैं आपकी इच्छाके अनुसार दस हजार अथवा एक लाख गौएँ दे रहा हूँ, आप नन्दिनी मुझे दे दीजिये, नहीं तो मैं इसे बलपूर्वक ग्रहण कर लूँगा॥ १४॥

वसिष्ठ बोले—हे नृपते! जैसी आपकी रुचि हो, आप इसे बलपूर्वक अभी ले लीजिये, किंतु हे राजन्! मैं तो इस नन्दिनीको स्वेच्छासे अपने आश्रमसे आपको नहीं दूँगा॥ १५॥

यह सुनकर राजा विश्वामित्रने अपने महाबली अनुचरोंको आदेश दिया कि तुमलोग इस नन्दिनी गौको ले चलो। तब बलके अभिमानमें चूर उन अनुचरोंने आक्रमण करके उस धेनुको बलपूर्वक बाँधकर पकड़ लिया॥ १६$\frac{१}{२}$॥

तब आँखोंमें आँसू भरकर काँपती हुई उस नन्दिनीने मुनिसे कहा—हे मुने! आप मुझे क्यों त्याग रहे हैं? ये सब मुझे बाँधकर खींच रहे हैं॥ १७$\frac{१}{२}$॥

वसिष्ठजीने उससे कहा—हे उत्तम दूध देनेवाली नन्दिनी! मैं तुम्हें त्याग नहीं रहा हूँ। ये राजा तुम्हें बलपूर्वक ले जा रहे हैं; जबकि मैंने अभी इनका स्वागत किया है। हे शुभे! मैं क्या करूँ? मैं अपने मनसे तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता॥ १८-१९॥

इत्युक्ता मुनिना धेनुः क्रोधयुक्ता बभूव ह।
हम्भारवं चकाराशु क्रूरशब्दं सुदारुणम्॥ २०

उद्गतास्तत्र देहात्तु दैत्या घोरतरास्तदा।
सायुधास्तिष्ठ तिष्ठेति ब्रुवन्तः कवचावृताः॥ २१

सैन्यं सर्वं हतं तैस्तु नन्दिनी प्रतिमोचिता।
एकाकी निर्गतो राजा विश्वामित्रोऽतिदुःखितः॥ २२

हन्त पापोऽतिदीनात्मा निन्दन् क्षात्रबलं महत्।
ब्राह्मं बलं दुराराध्यं मत्वा तपसि संस्थितः॥ २३

तप्त्वा बहूनि वर्षाणि तपो घोरं महावने।
ऋषित्वं प्राप गाधेयस्त्यक्त्वा क्षात्रं विधिं पुनः॥ २४

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मा कृथा वैरमद्भुतम्।
कुलनाशकरं नूनं तापसैः सह संयुगम्॥ २५

मुनिवर्यं व्रजाद्य त्वं समाश्वास्य तपोनिधिम्।
सुदर्शनोऽपि राजेन्द्र तिष्ठत्वत्र यथासुखम्॥ २६

बालोऽयं निर्धनः किं ते करिष्यति नृपाहितम्।
वृथा ते वैरभावोऽयमनाथे दुर्बले शिशौ॥ २७

दया सर्वत्र कर्तव्या दैवाधीनमिदं जगत्।
ईर्ष्यया किं नृपश्रेष्ठ यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ २८

वज्रं तृणायते राजन् दैवयोगान्न संशयः।
तृणं वज्रायते क्वापि समये दैवयोगतः॥ २९

शशको हन्ति शार्दूलं मशको वै तथा गजम्।
साहसं मुञ्च मेधाविन् कुरु मे वचनं हितम्॥ ३०

मुनिके ऐसा कहनेपर वह धेनु क्रोधित हो गयी और कर्कश शब्दोंवाला अत्यन्त भयंकर हम्भारव करने लगी॥ २०॥

उसी समय उसके शरीरसे महाभयंकर दैत्य 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए निकल पड़े। वे शस्त्र धारण किये हुए थे और उनका शरीर कवचसे ढँका हुआ था॥ २१॥

उन्होंने सारी सेनाका संहार कर दिया और नन्दिनीको उनसे छुड़ा लिया। तब अत्यन्त व्यथित होकर राजा विश्वामित्र अकेले ही घर लौट गये। [वे अपने मनमें सोचने लगे—] हाय! मैं कितना पापी एवं दीनात्मा हूँ। क्षत्रियबलकी निन्दा करते हुए वे विश्वामित्र ब्राह्मणके बलको महान् तथा दुराराध्य समझकर तप करने लगे। महावनमें अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या करके विश्वामित्रने क्षात्रधर्मका त्याग करके अन्तमें ऋषित्व प्राप्त कर लिया॥ २२—२४॥

अतः हे राजेन्द्र! आप भी ऐसा अद्भुत वैर न करें; क्योंकि तपस्वियोंके साथ किया जानेवाला युद्ध निश्चित ही कुलका नाश करनेवाला होता है॥ २५॥

अतः आप तपोनिधि मुनिवर भारद्वाजके पास अभी जाइये और उन्हें आश्वासन दीजिये। हे राजेन्द्र! सुदर्शनको यहीं छोड़ दीजिये, जिससे वह आनन्दपूर्वक रह सके॥ २६॥

हे राजन्! यह दीन बालक आपका क्या अहित कर सकेगा? ऐसे दुर्बल एवं अनाथ बालकके प्रति आपका यह वैरभाव व्यर्थ है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! सर्वत्र दया करनी चाहिये। यह संसार सदा दैवके अधीन रहता है। ईर्ष्या करनेसे क्या लाभ? जो होनी होगी, वह तो होकर ही रहेगी॥ २८॥

हे राजन्! दैवयोगसे कभी वज्र तृण बन जाता है और किसी समय तृण वज्र बन जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। दैवयोगसे ही खरगोश सिंहको और मच्छर हाथीको मार देता है। अतः हे मेधाविन्! आप दुःसाहस छोड़िये तथा मेरा हितकर वचन मानिये॥ २९-३०॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य युधाजिन्नृपसत्तमः।
प्रणम्य तं मुनिं मूर्ध्ना जगाम स्वपुरं नृपः॥ ३१

मनोरमापि स्वस्थाभूदाश्रमे तत्र संस्थिता।
पालयामास पुत्रं तं सुदर्शनमृतव्रतम्॥ ३२

दिने दिने कुमारोऽसौ जगामोपचयं ततः।
मुनिबालगतः क्रीडन्निर्भयः सर्वतः शुभः॥ ३३

एकस्मिन्समये तत्र विदल्लं समुपागतम्।
क्लीबेति मुनिपुत्रस्तमामन्त्रयत्तदन्तिके॥ ३४

सुदर्शनस्तु तच्छ्रुत्वा दधारैकाक्षरं स्फुटम्।
अनुस्वारायुतं तच्च प्रोवाचापि पुनः पुनः॥ ३५

बीजं वै कामराजाख्यं गृहीतं मनसा तदा।
जजाप बालकोऽत्यर्थं धृत्वा चेतसि सादरम्॥ ३६

भावियोगान्महाराज कामराजाख्यमद्भुतम्।
स्वभावेनैव तेनेत्थं गृहीतं बालकेन वै॥ ३७

तदासौ पञ्चमे वर्षे प्राप्य मन्त्रमनुत्तमम्।
ऋषिच्छन्दोविहीनञ्च ध्यानन्यासविवर्जितम्॥ ३८

प्रजपन्मनसा नित्यं क्रीडत्यपि स्वपित्यपि।
विसस्मार न तं मन्त्रं ज्ञात्वा सारमिति स्वयम्॥ ३९

वर्षे चैकादशे प्राप्ते कुमारोऽसौ नृपात्मजः।
मुनिना चोपनीतोऽथ वेदमध्यापितस्तथा॥ ४०

धनुर्वेदं तथा साङ्गं नीतिशास्त्रं विधानतः।
अभ्यस्ताः सकला विद्यास्तेन मन्त्रबलादिव॥ ४१

कदाचित्सोऽपि प्रत्यक्षं देवीरूपं ददर्श ह।
रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तसर्वाङ्गभूषणम्॥ ४२

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] मन्त्रीकी यह बात सुनकर नृपश्रेष्ठ राजा युधाजित् भारद्वाजमुनिको सिर झुकाकर प्रणाम करके अपने पुरको चले गये। तब रानी मनोरमा भी निश्चिन्त हो गयीं और उस आश्रममें रहती हुई अपने सत्यव्रती पुत्र सुदर्शनका पालन करने लगीं॥ ३१-३२॥

अब वह सुन्दर कुमार मुनिबालकोंके साथ सर्वत्र निर्भय होकर क्रीड़ा करता हुआ दिनोंदिन बढ़ने लगा। एक दिन सुदर्शनके पास आये हुए विदल्लको किसी मुनिकुमारने 'क्लीब' इस नामसे पुकारा॥ ३३-३४॥

उसे सुनकर सुदर्शनने उसके एकाक्षर 'क्ली' शब्दको स्पष्टरूपसे धारण कर लिया और उस अनुस्वारविहीन अक्षरका ही वह बार-बार उच्चारण करने लगा॥ ३५॥

बालकने इस कामराज नामक बीजमन्त्रको मनसे ग्रहण कर लिया और उसे हृदयंगम करके आदरपूर्वक जपना प्रारम्भ कर दिया। हे महाराज! दैवयोगसे ही उस बालक सुदर्शनको यह कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र स्वयमेव प्राप्त हो गया॥ ३६-३७॥

उस समय केवल पाँच वर्षकी अवस्थामें ही वह ऋषि तथा छन्दसे विहीन और ध्यान तथा न्यासरहित मन्त्र प्राप्तकर मन-ही-मन उसे जपता हुआ खेलता तथा सोता था; उस मन्त्रको स्वयं सबका सार समझकर वह सुदर्शन उसे कभी नहीं भूलता था॥ ३८-३९॥

मुनिने ग्यारहवें वर्षमें उस राजकुमारका उपनयन संस्कार किया और उसे वेद पढ़ाया एवं सांगोपांग धनुर्वेद तथा नीतिशास्त्रकी विधिवत् शिक्षा दी। उस बालकने उसी मन्त्रके प्रभावसे समस्त विद्याओंका सम्यक् अभ्यास कर लिया॥ ४०-४१॥

एक बार उसने देवीके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन भी किया। उस समय वे लाल वस्त्र धारण किये थीं, उनके विग्रहका रंग भी लाल था और उनके सभी अंगोंमें रक्तवर्णके ही आभूषण सुशोभित हो रहे

गरुडे वाहने संस्थां वैष्णवीं शक्तिमद्भुताम्।
दृष्ट्वा प्रसन्नवदनः स बभूव नृपात्मजः॥ ४३

वने तस्मिन्स्थितः सोऽथ सर्वविद्यार्थतत्त्ववित्।
मातरं सेवमानस्तु विजहार नदीतटे॥ ४४

शरासनञ्च सम्प्राप्तं विशिखाश्च शिलाशिताः।
तूणीरकवचं तस्मै दत्तं चाम्बिकया वने॥ ४५

एतस्मिन्समये पुत्री काशिराजस्य सुप्रिया।
नाम्ना शशिकला दिव्या सर्वलक्षणसंयुता॥ ४६

शुश्राव नृपपुत्रं तं वनस्थञ्च सुदर्शनम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं शूरं काममिवापरम्॥ ४७

बन्दीजनमुखाच्छ्रुत्वा राजपुत्रं सुसम्मतम्।
चकमे मनसा तं वै वरं वरयितुं धिया॥ ४८

स्वप्ने तस्याः समागम्य जगदम्बा निशान्तरे।
उवाच वचनं चेदं समाश्वास्य सुसंस्थिता॥ ४९

वरं वरय सुश्रोणि मम भक्तः सुदर्शनः।
सर्वकामप्रदस्तेऽस्तु वचनान्मम भामिनि॥ ५०

एवं शशिकला दृष्ट्वा स्वप्ने रूपं मनोहरम्।
अम्बाया वचनं स्मृत्वा जहर्ष भृशमानिनी॥ ५१

उत्थिता सा मुदा युक्ता पृष्टा मात्रा पुनः पुनः।
प्रमोदे कारणं बाला नोवाचातित्रपान्विता॥ ५२

जहास मुदमापन्ना स्मृत्वा स्वप्नं मुहुर्मुहुः।
सखीं प्राह तदान्यां वै स्वप्नवृत्तं सुविस्तरम्॥ ५३

कदाचित्सा विहारार्थमवापोपवनं शुभम्।
सखीयुक्ता विशालाक्षी चम्पकैरुपशोभितम्॥ ५४

पुष्पाणि चिन्वती बाला चम्पकाधःस्थिताबला।

थे। [इस प्रकारका दिव्य स्वरूप धारणकर] वाहन गरुडपर विराजमान उन अद्भुत वैष्णवी शक्तिको देखकर राजकुमार सुदर्शनके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी॥ ४२-४३॥

इस प्रकार समस्त विद्याओंका रहस्य जाननेवाला वह सुदर्शन उस वनमें रहकर जगदम्बाकी उपासना करता हुआ नदीतटपर विचरण करने लगा। उसी वनमें भगवती जगदम्बाने उसे धनुष, अनेक तीक्ष्ण बाण, तूणीर तथा कवच प्रदान किये॥ ४४-४५॥

इसी समय सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त 'शशिकला' नामसे विख्यात काशिराजकी परम प्रिय पुत्रीने उस वनमें रहनेवाले समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, पराक्रमी तथा दूसरे कामदेवके समान प्रतीत होनेवाले राजकुमार सुदर्शनके विषयमें सुना॥ ४६-४७॥

बन्दीजनोंके मुखसे अतिसम्मानित राजकुमारके विषयमें सुनकर शशिकलाने मन-ही-मन बुद्धिपूर्वक उसे पतिरूपमें वरण करनेका निश्चय कर लिया॥ ४८॥

[उसी दिन] आधी रातको जगदम्बा स्वप्नमें शशिकलाके पास आकर स्थित हो गयीं और उसे आश्वस्त करके यह वचन बोलीं—'हे सुश्रोणि! सुदर्शन मेरा भक्त है, तुम उसीको अपना पति स्वीकार कर लो। हे भामिनि! मेरी आज्ञासे वह तुम्हारी सब कामनाएँ पूर्ण करेगा'॥ ४९-५०॥

इस प्रकार स्वप्नमें भगवतीका मनोहर स्वरूप देखकर तथा उनके इस वचनको स्मरण करके परम मानिनी शशिकला प्रसन्न हो गयी॥ ५१॥

वह प्रसन्नताके साथ उठ गयी। उसकी माताने उसे हर्षित देखकर बार-बार प्रसन्नताका कारण पूछा, किंतु उस सुन्दरीने अति लज्जाके कारण कुछ नहीं बताया॥ ५२॥

स्वप्नका बार-बार स्मरण करके प्रसन्नतासे युक्त होकर वह जोरसे हँस पड़ती थी। तब उसने अपनी एक अन्य सखीसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह दिया॥ ५३॥

किसी दिन वह विशालनयनी शशिकला अपनी सखीके साथ चम्पाके वृक्षोंसे सुशोभित एक सुन्दर उपवनमें विहारके लिये गयी। वहाँ पुष्प चुनती हुई वह कुमारी एक चम्पावृक्षके नीचे खड़ी हो गयी।

अपश्यद् ब्राह्मणं मार्गे आगच्छन्तं त्वरान्वितम्॥ ५५

तं प्रणम्य द्विजं श्यामा बभाषे मधुरं वचः।
कुतो देशान्महाभाग कृतमागमनं त्वया॥ ५६

द्विज उवाच

भारद्वाजाश्रमाद् बाले नूनमागमनं मम।
जातं वै कार्ययोगेन किं पृच्छसि वदस्व मे॥ ५७

शशिकलोवाच

तत्राश्रमे महाभाग वर्णनीयं किमस्ति वै।
लोकातिगं विशेषेण प्रेक्षणीयतमं किल॥ ५८

ब्राह्मण उवाच

ध्रुवसन्धिसुतः श्रीमानास्ते सुदर्शनो नृपः।
यथार्थनामा सुश्रोणि वर्तते पुरुषोत्तमः॥ ५९

तस्य लोचनमत्यन्तं निष्फलं प्रतिभाति मे।
येन दृष्टो न वामोरु कुमारस्तु सुदर्शनः॥ ६०
एकत्र निहिता धात्रा गुणाः सर्वे सिसृक्षुणा।
गुणानामाकरं द्रष्टुं मन्ये तेनैव कौतुकात्॥ ६१
तव योग्यः कुमारोऽसौ भर्ता भवितुमर्हति।
योगोऽयं विहितोऽप्यासीन्मणिकाञ्चनयोरिव॥ ६२

तभी उसने मार्गमें शीघ्रतापूर्वक आते हुए किसी ब्राह्मणको देखा। उस ब्राह्मणको प्रणाम करके सुन्दरी शशिकलाने मधुर वाणीमें कहा—हे महाभाग! आप किस देशसे आये हैं?॥ ५४—५६॥

ब्राह्मणने कहा—हे बाले! एक कार्यवश भारद्वाजमुनिके आश्रमसे मेरा आगमन हुआ है। तुम क्या पूछ रही हो; मुझे बताओ॥ ५७॥

शशिकला बोली—हे महाभाग! उस आश्रममें अत्यन्त प्रशंसनीय, संसारमें सबसे बढ़कर तथा विशेषरूपसे दर्शनीय कौन-सी वस्तु है?॥ ५८॥

ब्राह्मणने कहा—हे सुश्रोणि! महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र श्रीमान् सुदर्शन वहाँ रहते हैं। पुरुषोंमें श्रेष्ठ वे सुदर्शन अपने नामके अनुरूप ही हैं॥ ५९॥

हे सुन्दरि! जिसने राजकुमार सुदर्शनको नहीं देखा, मैं तो उसके नेत्रोंको अत्यन्त निष्फल मानता हूँ॥ ६०॥

सृष्टिकी अभिलाषावाले ब्रह्माने कौतूहलवश उन एक सुदर्शनमें सभी गुणोंको भर दिया है। अतः गुणोंकी खान सुदर्शनको ही मैं देखनेयोग्य मानता हूँ॥ ६१॥

वे राजकुमार तुम्हारे अनुरूप हैं और तुम्हारे पति होनेयोग्य हैं। मणि और कांचनकी भाँति यह तुम दोनोंका संयोग पहलेसे ही निश्चित हो चुका है॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विश्वामित्रकथोत्तरं राजपुत्रस्य कामबीजप्राप्तिवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

राजकुमारी शशिकलाद्वारा मन-ही-मन सुदर्शनका वरण करना, काशिराजद्वारा स्वयंवरकी घोषणा, शशिकलाका सखीके माध्यमसे अपना निश्चय माताको बताना

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं श्यामा प्रेमयुक्ता बभूव ह।
प्रतस्थे ब्राह्मणस्तस्मात्स्थानादुक्त्वा समाहितः॥ १

सा तु पूर्वानुरागाद्वै मग्ना प्रेम्णातिचञ्चला।
कामबाणहतेवास गते तस्मिन्द्विजोत्तमे॥ २

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणका वचन सुनकर सुन्दरी शशिकला प्रेमविभोर हो गयी और वह ब्राह्मण इतना कहकर शान्तभावसे उस स्थानसे चला गया॥ १॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके चले जानेपर वह सुन्दरी पूर्व अनुरागसे तथा विप्रकी बातोंसे प्रेमातिरेकके कारण अत्यधिक अधीर हो उठी॥ २॥
~~~

अथ कामार्दिता प्राह सखीं छन्दोनुवर्तिनीम्।
विकारश्च समुत्पन्नो देहे यच्छ्रवणादनु॥ ३

अज्ञातरसविज्ञानं कुमारं कुलसम्भवम्।
दुनोति मदनः पापः किं करोमि क्व यामि च॥ ४

स्वप्नेषु वा मया दृष्टः पञ्चबाण इवापरः।
तपते मे मनोऽत्यर्थं विरहाकुलितं मृदु॥ ५

चन्दनं देहलग्नं मे विषवद्भाति भामिनि।
स्त्रगियं सर्पवच्चैव चन्द्रपादाश्च वह्निवत्॥ ६

न च हर्म्ये वने शं मे दीर्घिकायां न पर्वते।
न दिवा न निशायां वा न सुखं सुखसाधनैः॥ ७

न शय्या न च ताम्बूलं न गीतं न च वादनम्।
प्रीणयन्ति मनो मेऽद्य न तृप्ते मम लोचने॥ ८

प्रयाम्यद्य वने तत्र यत्रासौ वर्तते शठः।
भीतास्मि कुललज्जायाः परतन्त्रा पितुस्तथा॥ ९

स्वयंवरं पिता मेऽद्य न करोति करोमि किम्।
दास्यामि राजपुत्राय कामं सुदर्शनाय वै॥ १०

सन्त्यन्ये पृथिवीपालाः शतशः सम्भृतर्द्धयः।
रमणीया न मे तेऽद्य राज्यहीनोऽप्यसौ मतः॥ ११

व्यास उवाच

एकाकी निर्धनश्चैव बलहीनः सुदर्शनः।
वनवासी फलाहारस्तस्याश्चित्ते सुसंस्थितः॥ १२

वाग्बीजस्य जपात्सिद्धिस्तस्या एषाप्युपस्थिता।
सोऽपि ध्यानपरोऽत्यन्तं जजाप मन्त्रमुत्तमम्॥ १३

तदनन्तर उस शशिकलाने अपनी इच्छाके अनुसार चलनेवाली एक सखीसे कहा कि रससे अनभिज्ञ तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न उस राजकुमारके विषयमें सुनकर मेरे शरीरमें विकार उत्पन्न हो गया है। इस समय कामदेव मुझे अत्यधिक पीड़ा दे रहा है। अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ?॥ ३-४॥

जबसे मैंने स्वप्नमें दूसरे कामदेवके सदृश उस राजकुमारको देखा है, तभीसे विरहसे आकुल हुआ मेरा कोमल मन अत्यधिक सन्तप्त हो रहा है॥ ५॥

हे भामिनि! इस समय मेरे शरीरमें लगा हुआ चन्दन विषके समान, यह माला सर्पके तुल्य तथा चन्द्रमाकी किरणें अग्निसदृश प्रतीत हो रही हैं॥ ६॥

इस समय महलमें, वनमें, बावलीमें तथा पर्वतपर—कहीं भी मेरे चित्तको शान्ति नहीं मिल पा रही है। नानाविध सुख-साधनोंसे दिनमें अथवा रातमें किसी भी समय सुखकी अनुभूति नहीं हो रही है॥ ७॥

शय्या, ताम्बूल, गायन तथा वादन—इनमें कोई भी चीजें मेरे मनको प्रसन्न नहीं कर पा रही हैं और न तो मेरे नेत्रोंको कोई भी वस्तु तृप्त ही कर पा रही है॥ ८॥

[जी करता है] उसी वनमें चली जाऊँ जहाँ वह निष्ठुर विद्यमान है, किंतु कुलकी लज्जाके कारण भयभीत हूँ, और फिर अपने पिताके अधीन भी हूँ॥ ९॥

क्या करूँ, मेरे पिता अभी मेरा स्वयंवर भी नहीं आयोजित कर रहे हैं। [यदि स्वयंवर हुआ तो] मैं इच्छापूर्वक अपनेको सुदर्शनको समर्पित कर दूँगी॥ १०॥

यद्यपि दूसरे सैकड़ों समृद्धिशाली नरेश हैं, परंतु वे मुझे रमणीय नहीं लगते। राज्यहीन होते हुए भी इस सुदर्शनको मैं अधिक रमणीय मानती हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—अकेला, निर्धन, बलहीन, वनवासी तथा फलका आहार करनेवाला होते हुए भी सुदर्शन उस शशिकलाके हृदयमें पूर्णरूपसे बस गया था। भगवतीके वाग्बीजमन्त्रके जपसे सुदर्शनको यह सिद्धि प्राप्त हो गयी थी। वह पूर्णरूपसे ध्यानमग्न होकर उस सर्वोत्तम मन्त्रका निरन्तर जप करता रहता था॥ १२-१३॥

स्वप्ने पश्यत्यसौ देवीं विष्णुमायामखण्डिताम्।
विश्वमातरमव्यक्तां सर्वसम्पत्कराम्बिकाम्॥ १४

शृङ्गवेरपुराध्यक्षो निषादः समुपेत्य तम्।
ददौ रथवरं तस्मै सर्वोपस्करसंयुतम्॥ १५

चतुर्भिस्तुरगैर्युक्तं पताकावरमण्डितम्।
जैत्रं राजसुतं ज्ञात्वा ददौ चोपायनं तदा॥ १६

सोऽपि जग्राह तं प्रीत्या मित्रत्वेन सुसंस्थितम्।
वन्यैर्मूलफलैः सम्यगर्चयामास शम्बरम्॥ १७

कृतातिथ्ये गते तस्मिन्निषादाधिपतौ तदा।
मुनयः प्रीतियुक्तास्ते तमूचुस्तापसा मिथः॥ १८

राजपुत्र ध्रुवं राज्यं प्राप्स्यसि त्वं च सर्वथा।
स्वल्पैरहोभिरव्यग्रः प्रतापान्नात्र संशयः॥ १९

प्रसन्ना तेऽम्बिका देवी वरदा विश्वमोहिनी।
सहायस्तु सुसम्पन्नो न चिन्तां कुरु सुव्रत॥ २०

मनोरमां तथोचुस्ते मुनयः संशितव्रताः।
पुत्रस्तेऽद्य धराधीशो भविष्यति शुचिस्मिते॥ २१

सा तानुवाच तन्वङ्गी वचनं वोऽस्तु सत्फलम्।
दासोऽयं भवतां विप्राः किं चित्रं सदुपासनात्॥ २२

न सैन्यं सचिवाः कोशो न सहायश्च कश्चन।
केन योगेन पुत्रो मे राज्यं प्राप्तुमिहार्हति॥ २३

आशीर्वादैश्च वो नूनं पुत्रोऽयं मे महीपतिः।
भविष्यति न सन्देहो भवन्तो मन्त्रवित्तमाः॥ २४

एक बार स्वप्नमें सुदर्शनने उन अव्यक्त, पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा, जगज्जननी, विष्णुमाया तथा सभी सम्पदा प्रदान करानेवाली भगवती अम्बिकाका दर्शन किया॥ १४॥

उसी समय शृंगवेरपुरके अधिपति निषादने सुदर्शनके पास आकर उसे सब प्रकारकी सामग्रियोंसे परिपूर्ण उत्तम रथ प्रदान किया। उस रथमें चार घोड़े जुते हुए थे और वह सुन्दर पताकासे सुशोभित था। निषादराजने राजकुमार सुदर्शनको विजयशाली समझकर उसे भेंटस्वरूप वह रथ दिया था। सुदर्शनने भी प्रेमपूर्वक उसे स्वीकार कर लिया और मित्ररूपमें आये हुए उस निषादका वन्य फल-मूलोंसे भलीभाँति सत्कार किया॥ १५—१७॥

तब आतिथ्य स्वीकार करके उस निषादराजके चले जानेपर वहाँके तपस्वी मुनिगण अत्यन्त प्रसन्न होकर सुदर्शनसे कहने लगे—हे राजकुमार! आप धैर्यवान् हैं; भगवतीकी कृपासे थोड़े ही दिनोंमें निश्चय ही अपना राज्य प्राप्त करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है। हे सुव्रत! विश्वमोहिनी और वरदायिनी भगवती अम्बिका आपके ऊपर प्रसन्न हैं। अब आपको उत्तम सहायक भी मिल गया है, आप चिन्ता न करें॥ १८—२०॥

तत्पश्चात् उन व्रतधारी मुनियोंने मनोरमासे कहा—हे शुचिस्मिते! अब आपका पुत्र सुदर्शन शीघ्र ही भूमण्डलका राजा होगा॥ २१॥

तब उस कोमलांगी मनोरमाने उनसे कहा—आपलोगोंका वचन सफल हो। हे विप्रगण! यह सुदर्शन आपलोगोंका सेवक है। सच्ची उपासनासे सब कुछ सम्भव हो जाता है, इसमें आश्चर्य ही क्या? [किंतु] उसके पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न कोई सहायक ही है। [ऐसी दशामें] किस उपायसे मेरा पुत्र राज्य पानेके योग्य बन सकता है? आपलोग मन्त्रके पूर्णवेत्ता हैं, अतः आपलोगोंके आशीर्वचनोंसे मेरा यह पुत्र निश्चय ही राजा होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २२—२४॥

व्यास उवाच

रथारूढः स मेधावी यत्र याति सुदर्शनः।
अक्षौहिणीसमावृत्त इवाभाति स तेजसा॥ २५

प्रतापो मन्त्रबीजस्य नान्यः कश्चन भूपते।
एवं वै जपतस्तस्य प्रीतियुक्तस्य सर्वथा॥ २६

सम्प्राप्य सद्गुरोर्बीजं कामराजाख्यमद्भुतम्।
जपेद्यस्तु शुचिः शान्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २७

न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि वापि सुदुर्लभम्।
प्रसन्नायाः शिवायाश्च यदप्राप्यं नृपोत्तम॥ २८

ते मन्दास्तेऽतिदुर्भाग्या रोगैस्ते समभिद्रुताः।
येषां चित्ते न विश्वासो भवेदम्बार्चनादिषु॥ २९

या माता सर्वदेवानां युगादौ परिकीर्तिता।
आदिमातेति विख्याता नाम्ना तेन कुरूद्वह॥ ३०

बुद्धिः कीर्तिर्धृतिर्लक्ष्मीः शक्तिः श्रद्धा मतिः स्मृतिः।
सर्वेषां प्राणिनां सा वै प्रत्यक्षं वै विभासते॥ ३१

न जानन्ति नरा ये वै मोहिता मायया किल।
न भजन्ति कुतर्कज्ञा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्॥ ३२

ब्रह्मा विष्णुस्तथा शम्भुर्वासवो वरुणो यमः।
वायुरग्निः कुबेरश्च त्वष्टा पूषाश्विनौ भगः॥ ३३

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः।
सर्वे ध्यायन्ति तां देवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्॥ ३४

को न सेवेत विद्वान्वै तां शक्तिं परमात्मिकाम्।
सुदर्शनेन सा ज्ञाता देवी सर्वार्थदा शिवा॥ ३५

ब्रह्मैव सातिदुष्प्राप्या विद्याविद्यास्वरूपिणी।
योगगम्या परा शक्तिर्मुमुक्षूणां च वल्लभा॥ ३६

व्यासजी बोले—रथपर सवार होकर मेधावी सुदर्शन जहाँ भी जाता था, वहाँ वह अपने तेजसे एक अक्षौहिणी सेनासे आवृत प्रतीत होता था। हे भूप! यह उस बीजमन्त्रका ही प्रभाव था, दूसरा कोई कारण नहीं; क्योंकि वह सुदर्शन सर्वदा प्रसन्नतापूर्वक उसी मन्त्रका जप किया करता था॥ २५-२६॥

जो मनुष्य किसी सद्गुरुसे कामराज नामक अद्भुत बीजमन्त्र ग्रहण करके शान्त होकर पवित्रतापूर्वक उसका जप करता है, वह अपनी सभी कामनाएँ पूर्ण कर लेता है॥ २७॥

हे नृपश्रेष्ठ! भूतलपर अथवा स्वर्गमें भी कोई ऐसा अत्यन्त दुर्लभ पदार्थ नहीं है, जो कल्याणकारिणी भगवतीके प्रसन्न होनेपर न मिल सके॥ २८॥

वे महान् मूर्ख, भाग्यहीन तथा रोगोंसे व्यथित होते हैं, जिनके मनमें जगदम्बाके अर्चन आदिमें विश्वास नहीं होता॥ २९॥

हे कुरुनन्दन! जो भगवती युगके आदिमें सब देवताओंकी माता कही गयी थीं, इसी कारण आदिमाता—इस नामसे विख्यात हैं; वे ही बुद्धि, कीर्ति, धृति, लक्ष्मी, शक्ति, श्रद्धा, मति और स्मृति आदि रूपोंसे समस्त प्राणियोंमें प्रत्यक्ष दिखायी देती हैं॥ ३०-३१॥

जो लोग मायासे मोहित हैं, वे उन्हें नहीं जान पाते। कुतर्क करनेवाले मनुष्य उन भुवनेश्वरी भगवती शिवाका भजन नहीं करते॥ ३२॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, यम, वायु, अग्नि, कुबेर, त्वष्टा, पूषा, दोनों अश्विनीकुमार, भग, आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वेदेव एवं मरुद्गण—ये सभी देवता सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली उन भगवतीका ध्यान करते हैं॥ ३३-३४॥

कौन ऐसा विद्वान् है, जो उन परमात्मिका शक्तिकी आराधना न करता हो? सुदर्शनने सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन्हीं कल्याणकारिणी भगवतीको जान लिया था॥ ३५॥

वे विद्या तथा अविद्यास्वरूपा भगवती ही ब्रह्म हैं और अत्यन्त दुष्प्राप्य हैं। वे पराशक्ति योगद्वारा ही अनुभवगम्य हैं और मोक्ष चाहनेवाले लोगोंको विशेष प्रिय हैं॥ ३६॥

परमात्मस्वरूपं को वेत्तुमर्हति तां विना।
या सृष्टिं त्रिविधां कृत्वा दर्शयत्यखिलात्मने॥ ३७

सुदर्शनस्तु तां देवीं मनसा परिचिन्तयन्।
राज्यलाभात्परं प्राप्य सुखं वै कानने स्थितः॥ ३८

सापि चन्द्रकलात्यर्थं कामबाणप्रपीडिता।
नानोपचारैरनिशं दधार दुःखितं वपुः॥ ३९

तावत्तस्याः पिता ज्ञात्वा कन्यां पुत्रवरार्थिनीम्।
सुबाहुः कारयामास स्वयंवरमतन्द्रितः॥ ४०

स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परिकीर्तितः।
राज्ञां विवाहयोग्यो वै नान्येषां कथितः किल॥ ४१

इच्छास्वयंवरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः।
यथा रामेण भग्नं वै त्र्यम्बकस्य शरासनम्॥ ४२

तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः।
इच्छास्वयंवरं तत्र चकार नृपसत्तमः॥ ४३

शिल्पिभिः कारिता मञ्चाः शुभैरास्तरणैर्युताः।
ततश्च विविधाकाराः सुक्लृप्ताः सभ्यमण्डपाः॥ ४४

एवं कृतेऽतिसम्भारे विवाहार्थं सुविस्तरे।
सखीं शशिकला प्राह दुःखिता चारुलोचना॥ ४५

इदं मे मातरं ब्रूहि त्वमेकान्ते वचो मम।
मया वृतः पतिश्चित्ते ध्रुवसन्धिसुतः शुभः॥ ४६

नान्यं वरं वरिष्यामि तमृते वै सुदर्शनम्।
स मे भर्ता नृपसुतो भगवत्या प्रतिष्ठितः॥ ४७

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा सखी गत्वा मातरं प्राह सत्वरा।
वैदर्भीं विजने वाक्यं मधुरं मञ्जुभाषिणी॥ ४८

उन भगवतीके बिना परमात्माका स्वरूप जाननेमें कौन समर्थ है? जो तीन प्रकारकी सृष्टि करके सर्वात्मा भगवान्‌को दिखलाती हैं, उन्हीं भगवतीका मनसे सम्यक् चिन्तन करता हुआ राजकुमार सुदर्शन राज्य-प्राप्तिसे भी अधिक सुखका अनुभव करके वनमें रहता था॥ ३७-३८॥

उधर, वह शशिकला भी कामसे निरन्तर अत्यधिक पीड़ित रहती हुई नानाविध उपचारोंसे किसी प्रकार अपना दुःखित शरीर धारण किये हुए थी॥ ३९॥

इसी बीच उसके पिता सुबाहुने कन्या शशिकलाको वरकी अभिलाषिणी जानकर बड़ी सावधानीके साथ स्वयंवर आयोजित कराया॥ ४०॥

विद्वानोंने स्वयंवरके तीन प्रकार बताये हैं। वह क्षत्रिय राजाओंके विवाहहेतु उचित कहा गया है, अन्यके लिये नहीं। उनमें प्रथम इच्छास्वयंवर है, जिसमें कन्या अपने इच्छानुसार पति स्वीकार करती है। दूसरा पणस्वयंवर है, जिसमें किसी प्रकारका पण (शर्त) रखा जाता है। जैसे भगवान् श्रीरामने [जानकीके स्वयंवरमें] शिवधनुष तोड़ा था। तीसरा स्वयंवर शौर्यशुल्क है, जो शूरवीरोंके लिये कहा गया है। नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उनमें इच्छास्वयंवरका आयोजन किया॥ ४१—४३॥

शिल्पियोंद्वारा बहुत-से मंच बनवाये गये और उनपर सुन्दर आसन बिछाये गये। तत्पश्चात् राजाओंके बैठनेयोग्य विविध आकार-प्रकारके सभा-मण्डप बनवाये गये॥ ४४॥

इस प्रकार विवाहके लिये सम्पूर्ण सामग्री जुट जानेपर सुन्दर नेत्रोंवाली शशिकलाने दुःखित होकर अपनी सखीसे कहा—एकान्तमें जाकर तुम मेरी मातासे मेरा यह वचन कह दो कि मैंने अपने मनमें ध्रुवसन्धिके सुन्दर पुत्रका पतिरूपमें वरण कर लिया है। उन सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी दूसरेको पति नहीं बनाऊँगी; क्योंकि स्वयं भगवतीने राजकुमार सुदर्शनको मेरा पति निश्चित कर दिया है॥ ४५—४७॥

व्यासजी बोले—उसके ऐसा कहनेपर उस मृदुभाषिणी सखीने शशिकलाकी माता विदर्भसुताके पास शीघ्र जाकर एकान्तमें उनसे मधुर वाणीमें कहा—

पुत्री ते दु:खिता प्राह साध्वि त्वां मन्मुखेन यत्।
शृणु त्वं कुरु कल्याणि तद्धितं त्वरिताधुना॥ ४९

भारद्वाजाश्रमे पुण्ये ध्रुवसन्धिसुतोऽस्ति यः।
स मे भर्ता वृतश्चित्ते नान्यं भूपं वृणोम्यहम्॥ ५०

व्यास उवाच

राज्ञी तद्वचनं श्रुत्वा स्वपतौ गृहमागते।
निवेदयामास तदा पुत्रीवाक्यं यथातथम्॥ ५१

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विस्मितः प्रहसन्मुहुः।
भार्यामुवाच वैदर्भी सुबाहुस्तु ऋतं वचः॥ ५२

सुभ्रु जानासि बालोऽसौ राज्यान्निष्कासितो वने।
एकाकी सह मात्रा वै वसते निर्जने वने॥ ५३

तत्कृते निहतो राजा वीरसेनो युधाजिता।
स कथं निर्धनो भर्ता योग्यः स्याच्चारुलोचने॥ ५४

ब्रूहि पुत्रीं ततो वाक्यं कदाचिदपि विप्रियम्।
आगमिष्यन्ति राजानः स्थितिमन्तः स्वयंवरे॥ ५५

'हे साध्वि! आपकी पुत्रीने अत्यन्त दु:खित होकर मेरे मुखसे आपको जो कहलाया है, उसे आप सुन लें और हे कल्याणि! इस समय शीघ्र ही उसका हित-साधन करें'। [उसका कथन है कि] भारद्वाजमुनिके आश्रममें जो ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन रहते हैं, उनका मैं अपने मनमें पतिरूपमें वरण कर चुकी हूँ। अतः मैं किसी दूसरे राजाका वरण नहीं करूँगी॥ ४८—५०॥

व्यासजी बोले—वह वचन सुनकर रानीने राजाके आनेपर पुत्रीकी सारी बातें ज्यों-की-त्यों उनको बतायीं॥ ५१॥

उसे सुनकर राजा सुबाहु आश्चर्यमें पड़ गये और बार-बार मुसकराते हुए वे अपनी भार्या विदर्भराजकुमारीसे यथार्थ बात कहने लगे— ॥ ५२॥

हे सुभ्रु! तुम तो यह जानती ही हो कि वह बालक राज्यसे निकाल दिया गया है और निर्जन वनमें अकेले ही अपनी माताके साथ रहता है। उसीके लिये राजा वीरसेन युधाजित्के द्वारा मार डाले गये। हे सुनयने! वह निर्धन योग्य पति कैसे हो सकता है?॥ ५३-५४॥

तुम यह बात पुत्री शशिकलासे कह दो कि बड़े-से-बड़े प्रतिष्ठित राजा इस स्वयंवरमें आनेवाले हैं। अतः उनके प्रति ऐसी अप्रिय बात वह कभी भी न बोले॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे शशिकलया मातरं प्रति संदेशप्रेषणं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

माताका शशिकलाको समझाना, शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना, सुदर्शन तथा अन्य राजाओंका स्वयंवरमें आगमन, युधाजित्द्वारा सुदर्शनको मार डालनेकी बात कहनेपर केरलनरेशका उन्हें समझाना

व्यास उवाच

भर्त्रा साभिहिता बालां पुत्रीं कृत्वाङ्कसंस्थिताम्।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं समाश्वास्य शुचिस्मिताम्॥ १

किं वृथा सुदति त्वं हि विप्रियं मम भाषसे।
पिता ते दु:खमाप्नोति वाक्येनानेन सुव्रते॥ २

व्यासजी बोले—पतिके ऐसा कहनेपर रानीने सुन्दर मुसकानवाली उस कन्याको अपनी गोदमें बैठाकर उसे आश्वासन दे करके यह मधुर वचन कहा—हे सुदति! तुम मुझसे ऐसी अप्रिय एवं निष्प्रयोजन बात क्यों कह रही हो? हे सुव्रते! इस कथनसे तुम्हारे पिता बहुत दु:खित हो रहे हैं॥ १-२॥

सुदर्शनोऽतिदुर्भाग्यो राज्यभ्रष्टो निराश्रयः।
बलकोषविहीनश्च परित्यक्तस्तु बान्धवैः॥ ३

मात्रा सह वनं प्राप्तः फलमूलाशनः कृशः।
न ते योग्यो वरोऽयं वै वनवासी च दुर्भगः॥ ४

राजपुत्राः कृतप्रज्ञा रूपवन्तः सुसम्मताः।
तवार्हाः पुत्रि सन्त्यन्ये राजचिह्नैरलङ्कृताः॥ ५

भ्रातास्य वर्तते कान्तः स राज्यं कोसलेषु वै।
करोति रूपसम्पन्नः सर्वलक्षणसंयुतः॥ ६

अन्यच्च कारणं सुभ्रु शृणु यच्च मया श्रुतम्।
युधाजित्सततं तस्य वधकामोऽस्ति भूमिपः॥ ७

दौहित्रः स्थापितस्तेन राज्ये कृत्वातिसङ्गरम्।
वीरसेनं नृपं हत्वा सम्मन्त्र्य सचिवैः सह॥ ८

भारद्वाजाश्रमं प्राप्तं हन्तुकामः सुदर्शनम्।
मुनिना वारितः पश्चाज्जगाम निजमन्दिरम्॥ ९

शशिकलोवाच

मातर्ममेप्सितः कामं वनस्थोऽपि नृपात्मजः।
शर्यातिवचनेनैव सुकन्या च पतिव्रता॥ १०

च्यवनञ्च यथा प्राप्य पतिशुश्रूषणे रता।
पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां स्वर्गदं मोक्षदं तथा॥ ११

अकैतवकृतं नूनं सुखदं भवति स्त्रियाः।
भगवत्या समादिष्टं स्वप्ने वरमनुत्तमम्॥ १२

तमृतेऽहं कथं चान्यं संश्रयामि नृपात्मजम्।
मच्चित्तभित्तौ लिखितो भगवत्या सुदर्शनः॥ १३

तं विहाय प्रियं कान्तं करिष्येऽहं न चापरम्।

वह सुदर्शन बड़ा ही अभागा, राजच्युत, आश्रयहीन और सेना तथा कोशसे विहीन है; बन्धु-बान्धवोंने उसका परित्याग कर दिया है। वह अपनी माताके साथ वनमें रहकर फल-मूल खाता है और अत्यन्त दुर्बल है। इसलिये वह मन्दभाग्य एवं वनवासी बालक सर्वथा तुम्हारे योग्य वर नहीं है॥ ३-४॥

हे पुत्रि! तुम्हारे योग्य अनेक राजकुमार यहाँ उपस्थित हैं; जो बुद्धिमान्, रूपवान्, सम्माननीय और राजचिह्नोंसे अलंकृत हैं। इसी सुदर्शनका एक कान्तिमान्, रूपसम्पन्न तथा सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त भाई भी है, जो इस समय कोसलदेशमें राज्य करता है॥ ५-६॥

हे सुभ्रु! इसके अतिरिक्त मैंने एक और जो बात सुनी है, तुम उसे सुनो—राजा युधाजित् उस सुदर्शनका वध करनेके लिये सतत प्रयत्नशील रहता है॥ ७॥

उसने घोर संग्राम करके [इसके नाना] राजा वीरसेनको मारकर पुनः मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करके अपने दौहित्र शत्रुजित्को राज्यपर अभिषिक्त कर दिया है। इसके बाद भारद्वाजमुनिके आश्रममें शरणलिये उस सुदर्शनको मारनेकी इच्छासे वह वहाँ भी पहुँचा, किंतु मुनिके मना करनेपर अपने घर लौट गया॥ ८-९॥

शशिकला बोली—हे माता! मुझे तो वह वनवासी राजकुमार ही अत्यन्त अभीष्ट है। [पूर्वकालमें] शर्यातिकी आज्ञासे ही उनकी पतिव्रता पुत्री सुकन्या च्यवनमुनिके पास जाकर उनकी सेवामें तत्पर हो गयी थी। उसी प्रकार मैं पतिसेवा करूँगी; पतिकी सेवा-शुश्रूषा स्त्रियोंके लिये स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली होती है। अपने पतिके लिये कपटरहित व्यवहार स्त्रियोंके लिये निश्चित रूपसे सुखदायक होता है॥ १०-११½॥

स्वयं भगवती उस सर्वश्रेष्ठ वरका वरण करनेके लिये मुझे स्वप्नमें आज्ञा दे चुकी हैं। अतः उनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारका वरण कैसे करूँ? स्वयं भगवतीने मेरे चित्तकी भित्तिपर सुदर्शनको ही अंकित कर दिया है। अतः उस प्रिय सुदर्शनको छोड़कर मैं किसी अन्य राजकुमारको पति नहीं बनाऊँगी॥ १२-१३½॥

व्यास उवाच

प्रत्यादिष्टाथ वैदर्भी तया बहुनिदर्शनैः॥ १४

भर्तारं सर्वमाचष्ट पुत्र्योक्तं वचनं भृशम्।
विवाहस्य दिनादर्वागाप्तं श्रुतसमन्वितम्॥ १५

द्विजं शशिकला तत्र प्रेषयामास सत्वरम्।
यथा न वेद मे तातस्तथा गच्छ सुदर्शनम्॥ १६

भारद्वाजाश्रमे ब्रूहि मद्वाक्यात्तरसा विभो।
पित्रा मे सम्भृतः कामं मदर्थेन स्वयंवरः॥ १७

आगमिष्यन्ति राजानो बलयुक्ता ह्यनेकशः।
मया त्वं वै वृतश्चित्ते सर्वथा प्रीतिपूर्वकम्॥ १८

भगवत्या समादिष्टः स्वप्ने मम सुरोपम।
विषमद्मि हुताशे वा प्रपतामि प्रदीपिते॥ १९

वरये त्वदृते नान्यं पितृभ्यां प्रेरितापि वा।
मनसा कर्मणा वाचा संवृतस्त्वं मया वरः॥ २०

भगवत्याः प्रसादेन शर्मावाभ्यां भविष्यति।
आगन्तव्यं त्वयात्रैव दैवं कृत्वा परं बलम्॥ २१

यदधीनं जगत्सर्वं वर्तते सचराचरम्।
भगवत्या यदादिष्टं न तन्मिथ्या भविष्यति॥ २२

यद्वशे देवताः सर्वा वर्तन्ते शङ्करादयः।
वक्तव्योऽसौ त्वया ब्रह्मन्नेकान्ते वै नृपात्मजः॥ २३

यथा भवति मे कार्यं तत्कर्तव्यं त्वयानघ।
इत्युक्त्वा दक्षिणां दत्त्वा मुनिर्व्यापारितस्तया॥ २४

गत्वा सर्वं निवेद्याशु तत्र प्रत्यागतो द्विजः।
सुदर्शनस्तु तज्ज्ञात्वा निश्चयं गमने तदा॥ २५

चकार मुनिना तेन प्रेरितः परमादरात्।

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय उस शशिकलाने अनेक प्रमाणोंके द्वारा विदर्भराजकुमारी अपनी माताको समझा दिया। तत्पश्चात् पुत्रीके द्वारा कही गयी सभी बातोंको महारानीने अपने पतिसे बताया॥ १४$\frac{1}{2}$॥

उधर शशिकलाने विवाहके कुछ दिनों पूर्व ही एक विश्वस्त तथा वेदनिष्ठ ब्राह्मणको शीघ्र ही वहाँ भेज दिया। [जाते समय उसने ब्राह्मणसे कहा कि] आप सुदर्शनके पास इस प्रकार जायँ, जिसे मेरे पिता न जान पायें॥ १५-१६॥

हे विभो! आप बहुत शीघ्र ही भारद्वाजके आश्रम पहुँचकर सुदर्शनको मेरी ओरसे कहिये कि मेरे पिताने मेरे विवाहार्थ एक स्वयंवर आयोजित किया है; उसमें अनेक बलवान् राजा आयेंगे, किंतु मैं तो मनसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक हर तरहसे आपका वरण कर चुकी हूँ। हे देवोपम राजकुमार! मुझे भगवतीने स्वप्नमें आपको वरण करनेका आदेश दिया है। मैं विष खा लूँगी अथवा जलती हुई अग्निमें कूद पड़ूँगी, किंतु माता-पिताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्यका वरण नहीं करूँगी; क्योंकि मैं मन, वचन तथा कर्मसे आपको अपना पति मान चुकी हूँ। भगवतीकी कृपासे हम दोनोंका कल्याण होगा। प्रारब्धको प्रबल मानकर आप इस स्वयंवरमें अवश्य आयें। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिनके अधीन है तथा शंकर आदि सभी देवगण जिनके वशमें रहते हैं, उन भगवतीने जो आदेश दिया है, वह कभी भी असत्य नहीं होगा। हे ब्रह्मन्! आप उस राजकुमारसे यह सब एकान्तमें बताइयेगा। हे निष्पाप! आप वही कीजियेगा, जिससे मेरा काम बन जाय॥ १७—२३$\frac{1}{2}$॥

ऐसा कहकर और दक्षिणा देकर शशिकलाने उस ब्राह्मणको भेज दिया। वह ब्राह्मण सुदर्शनसे सारी बातें कहकर शीघ्र ही वापस आ गया। उन बातोंको जानकर राजकुमार सुदर्शनने स्वयंवरमें जानेका निश्चय कर लिया; उन भारद्वाजमुनिने भी उसे आदरपूर्वक भेज दिया॥ २४-२५$\frac{1}{2}$॥

व्यास उवाच

गमनायोद्यतं पुत्रं तमुवाच मनोरमा॥ २६

वेपमानातिदुःखार्ता जातत्रासाश्रुलोचना।
कुत्र गच्छसि पुत्राद्य समाजे भूभृतां किल॥ २७

एकाकी कृतवैरश्च किं विचिन्त्य स्वयंवरे।
युधाजिद्धन्तुकामस्त्वां समेष्यति महीपतिः॥ २८

न तेऽन्योऽस्ति सहायश्च तस्मान्मा व्रज पुत्रक।
एकपुत्रातिदीनास्मि तवाधारा निराश्रया॥ २९

नार्हसि त्वं महाभाग निराशां कर्तुमद्य माम्।
पिता मे निहतो येन सोऽपि तत्रागतो नृपः॥ ३०

एकाकिनं गतं तत्र युधाजित्त्वां हनिष्यति।

सुदर्शन उवाच

भवितव्यं भवत्येव नात्र कार्या विचारणा॥ ३१

आदेशाच्च जगन्मातुर्गच्छाम्यद्य स्वयंवरे।
मा शोकं कुरु कल्याणि क्षत्रियासि वरानने॥ ३२

न बिभेमि प्रसादेन भगवत्या निरन्तरम्।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रथमारुह्य गन्तुकामं सुदर्शनम्॥ ३३

दृष्ट्वा मनोरमा पुत्रमाशीर्भिश्चान्वमोदयत्।
अग्रतस्तेऽम्बिका पातु पार्वती पातु पृष्ठतः॥ ३४

(पार्वती पार्श्वयोः पातु शिवा सर्वत्र साम्प्रतम्।)
वाराही विषमे मार्गे दुर्गा दुर्गेषु कर्हिचित्।
कालिका कलहे घोरे पातु त्वां परमेश्वरी॥ ३५

मण्डपे तत्र मातङ्गी तथा सौम्या स्वयंवरे।
भवानी भूपमध्ये तु पातु वां भवमोचनी॥ ३६

गिरिजा गिरिदुर्गेषु चामुण्डा चत्वरेषु च।
कामगा काननेष्वेवं रक्षतु त्वां सनातनी॥ ३७

विवादे वैष्णवी शक्तिरवतात्त्वां रघूद्वह।
भैरवी च रणे सौम्य शत्रूणां वै समागमे॥ ३८

सर्वदा सर्वदेशेषु पातु त्वां भुवनेश्वरी।
महामाया जगद्धात्री सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ३९

व्यासजी बोले—तब अत्यधिक दुःखसे व्याकुल, काँपती हुई तथा भयभीत मनोरमा गमनके लिये तत्पर अपने पुत्र सुदर्शनसे आँखोंमें आँसू भरकर बोली—पुत्र! तुम इस समय राजाओंके उस समाजमें कहाँ जा रहे हो? तुम अकेले हो और तुमसे शत्रुता रखनेवाला राजा युधाजित् तुम्हें मारनेकी इच्छासे उस स्वयंवरमें अवश्य आयेगा, फिर तुम क्या सोचकर वहाँ जा रहे हो? तुम्हारा कोई सहायक भी नहीं है। इसलिये हे पुत्र! वहाँ मत जाओ। तुम ही मेरे एकमात्र पुत्र हो और मैं अति दीन हूँ तथा मुझ आश्रयहीनके लिये तुम्हीं एकमात्र आधार हो। हे महाभाग! इस समय तुम मुझे निराश मत करो। जिसने मेरे पिताका वध कर दिया है, वह राजा युधाजित् भी वहाँ आयेगा और वहाँ तुझ अकेले गये हुएको मार डालेगा॥ २६—३०$\frac{1}{2}$॥

सुदर्शन बोला—होनी तो होकर रहती है, इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे कल्याणि! जगज्जननीके आदेशसे मैं आज स्वयंवरमें जा रहा हूँ। हे वरानने! तुम क्षत्राणी हो, अतः इस विषयमें चिन्ता मत करो। भगवतीकी सदा अपने ऊपर कृपा रहनेके कारण मैं किसीसे भी भयभीत नहीं होता॥ ३१—३२$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर रथपर आरूढ़ होकर स्वयंवरमें जानेके लिये उद्यत पुत्र सुदर्शनको देखकर मनोरमाने इन आशीर्वादोंसे उसका अनुमोदन किया—भगवती अम्बिका आगेसे, पार्वती पीछेसे, (पार्वती दोनों पार्श्वभागमें तथा शिवा सर्वत्र तुम्हारी रक्षा करें।) विषम मार्गमें वाराही, किसी भी प्रकारके दुर्गम स्थानोंमें दुर्गा और भयानक संग्राममें परमेश्वरी कालिका तुम्हारी रक्षा करें। उस मण्डपमें देवी मातंगी, स्वयंवरमें भगवती सौम्या तथा भव-बन्धनसे मुक्त करनेवाली भवानी राजाओंके बीचमें तुम्हारी रक्षा करें। इसी प्रकार पर्वतीय दुर्गम स्थानोंमें गिरिजा, चौराहोंपर देवी चामुण्डा तथा वनोंमें सनातनी कामगादेवी तुम्हारी रक्षा करें। हे रघूद्वह! विवादमें भगवती वैष्णवी तुम्हारी रक्षा करें। हे सौम्य! शत्रुओंके साथ युद्धमें भैरवी तुम्हारी रक्षा करें। जगत्‌को धारण करनेवाली सच्चिदानन्दस्वरूपिणी महामाया भुवनेश्वरी सभी स्थानोंपर सर्वदा तुम्हारी रक्षा करें॥ ३३—३९॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा माता वेपमाना भयाकुला।
उवाचाहं त्वया सार्धमागमिष्यामि सर्वथा॥ ४०

निमिषार्धं विना त्वां वै नाहं स्थातुमिहोत्सहे।
सहैव नय मां वत्स यत्र ते गमने मतिः॥ ४१

इत्युक्त्वा निःसृता माता धात्रेयीसंयुता तदा।
विप्रैर्दत्ताशिषः सर्वे निर्ययुर्हर्षसंयुताः॥ ४२

वाराणस्यां ततः प्राप्तो रथेनैकेन राघवः।
ज्ञातः सुबाहुना तत्र पूजितश्चार्हणादिभिः॥ ४३

निवेशार्थं गृहं दत्तमन्नपानादिकं तथा।
सेवकं समनुज्ञाप्य परिचर्यार्थमेव च॥ ४४

मिलितास्त्वथ राजानो नानादेशाधिपाः किल।
युधाजिदपि सम्प्राप्तो दौहित्रेण समन्वितः॥ ४५

करूषाधिपतिश्चैव तथा मद्रेश्वरो नृपः।
सिन्धुराजस्तथा वीरो योद्धा माहिष्मतीपतिः॥ ४६

पाञ्चालः पर्वतीयश्च कामरूपोऽतिवीर्यवान्।
कार्णाटश्चोलदेशीयो वैदर्भश्च महाबलः॥ ४७

अक्षौहिणी त्रिषष्टिश्च मिलिता संख्यया तदा।
वेष्टिता नगरी सा तु सैन्यैः सर्वत्र संस्थितैः॥ ४८

एते चान्ये च बहवः स्वयंवरदिदृक्षया।
मिलितास्तत्र राजानो वरवारणसंयुताः॥ ४९

अन्योन्यं नृपपुत्रास्त इत्यूचुर्मिलितास्तदा।
सुदर्शनो नृपसुतो ह्यागतोऽस्ति निराकुलः॥ ५०

एकाकी रथमारुह्य मात्रा सह महामतिः।
विवाहार्थमिहायातः काकुत्स्थः किन्नु साम्प्रतम्॥ ५१

एतान् राजसुतांस्त्यक्त्वा ससैन्यान्सायुधानथ।
किमेनं राजपुत्री सा वरिष्यति महाभुजम्॥ ५२

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भयसे व्याकुल तथा काँपती हुई उसकी माता मनोरमाने उससे कहा—मैं भी तुम्हारे साथ अवश्य चलूँगी। हे पुत्र! मैं तुम्हारे बिना आधे क्षण भी यहाँ नहीं रह सकती, अतएव तुम्हारी जहाँ जानेकी इच्छा है, वहीं मुझे भी अपने साथ ले चलो॥ ४०-४१॥

तब ऐसा कहकर अपनी दासीको साथ लेकर माता मनोरमा चल पड़ीं। ब्राह्मणोंसे आशीर्वाद प्राप्त करके वे सभी प्रसन्नतापूर्वक चल पड़े॥ ४२॥

इसके बाद वह रघुवंशी सुदर्शन एक रथपर आरूढ़ होकर वाराणसी पहुँचा। राजा सुबाहुको उसके आनेकी जानकारी होनेपर उन्होंने आदर-सम्मान आदिके द्वारा उसका सत्कार किया। उन लोगोंके निवासके लिये भवन तथा अन्न-जल आदिकी व्यवस्था कर दी तथा उनकी सेवा-शुश्रूषाहेतु सेवकको भी नियुक्त कर दिया॥ ४३-४४॥

इसके बाद वहाँ अनेक देशोंके राजा-महाराजा एकत्र हुए। वहाँ अपने नातीको साथ लेकर युधाजित् भी आया॥ ४५॥

करूषाधिपति, मद्रदेशके महाराज, वीर सिन्धुराज, युद्धकुशल माहिष्मतीनरेश, पंचालपति, पर्वतीय राजा, कामरूपदेशके अति पराक्रमी महाराज, कर्णाटकनरेश, चोलराज और महाबली विदर्भनरेश वहाँ आये थे॥ ४६-४७॥

उन राजाओंकी कुल मिलाकर तिरसठ अक्षौहिणी सेना थी। वहाँ सर्वत्र स्थित उन सैनिकोंसे वह वाराणसी नगरी पूरी तरहसे घिर गयी॥ ४८॥

इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से राजा भी स्वयंवर देखनेकी इच्छासे बड़े-बड़े हाथियोंपर आरूढ़ होकर उस स्वयंवरमें सम्मिलित हुए॥ ४९॥

उस समय सभी राजकुमार आपसमें मिलकर कहने लगे कि राजकुमार सुदर्शन भी निश्चिन्त होकर यहाँ आया है। वह महाबुद्धिमान् सूर्यवंशी सुदर्शन अपनी माताके साथ इस समय अकेला ही रथपर चढ़कर विवाहके लिये यहाँ आ पहुँचा है। सैन्यशक्तिसे सम्पन्न तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित इन राजकुमारोंको छोड़कर क्या वह राजकुमारी बड़ी भुजाओंवाले इस सुदर्शनका वरण करेगी?॥ ५०—५२॥

युधाजिदथ राजेशस्तानुवाच महीपतीन्।
अहमेनं हनिष्यामि कन्यार्थे नात्र संशयः॥ ५३

केरलाधिपतिः प्राह तं तदा नीतिसत्तमः।
नात्र युद्धं प्रकर्तव्यं राजन्निच्छास्वयंवरे॥ ५४

बलेन हरणं नास्ति नात्र शुल्कस्वयंवरः।
कन्येच्छयात्र वरणं विवादः कीदृशस्त्विह॥ ५५

अन्यायेन त्वया पूर्वमसौ राज्यात्प्रवासितः।
दौहित्रायार्पितं राज्यं बलवन्नृपसत्तम॥ ५६

काकुत्स्थोऽयं महाभाग कोसलाधिपतेः सुतः।
कथमेनं राजपुत्रं हनिष्यसि निरागसम्॥ ५७

लप्स्यसे तत्फलं नूनमनयस्य नृपोत्तम।
शास्तास्ति कश्चिदायुष्मञ्जगतोऽस्य जगत्पतिः॥ ५८

धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम्।
मानयं कुरु राजेन्द्र त्यज पापमतिं किल॥ ५९

दौहित्रस्तव सम्प्राप्तः सोऽपि रूपसमन्वितः।
राज्ययुक्तस्तथा श्रीमान् कथं तं न वरिष्यति॥ ६०

अन्ये राजसुताः कामं वर्तन्ते बलवत्तराः।
कन्यास्वयंवरे कन्या स्वीकरिष्यति साम्प्रतम्॥ ६१

वृते तथा विवादः कः प्रवदन्तु महीभुजः।
परस्परं विरोधोऽत्र न कर्तव्यो विजानता॥ ६२

इसके बाद राजा युधाजित्ने उन नरेशोंसे कहा—राजकुमारीको प्राप्त करनेके लिये मैं इसे मार डालूँगा, इसमें कोई संशय नहीं है॥ ५३॥

तब महान् नीतिज्ञ केरलनरेशने उस युधाजित्से कहा—हे राजन्! इच्छास्वयंवरमें युद्ध नहीं करना चाहिये। यह शुल्कस्वयंवर भी नहीं है, अतः कन्याका बलपूर्वक हरण भी नहीं किया जाना चाहिये। इसमें तो कन्याकी इच्छासे पति चुनना निर्धारित है; तो फिर इसमें विवाद कैसा?॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपने पहले तो इस सुदर्शनको अन्यायपूर्वक राज्यसे निकाल दिया और अपने दौहित्रको बलपूर्वक उस राज्यका स्वामी बना दिया॥ ५६॥

हे महाभाग! यह सूर्यवंशी राजकुमार कोसलनरेशका सुपुत्र है। इस निरपराध राजकुमारका वध आप क्यों करेंगे?॥ ५७॥

हे नृपोत्तम! आपको अन्यायका फल अवश्य ही मिलेगा। हे आयुष्मन्! इस संसारपर शासन करनेवाला कोई और ही जगत्पति परमेश्वर है॥ ५८॥

धर्मकी जय होती है, अधर्मकी नहीं। सत्यकी जय होती है, असत्यकी नहीं। अतएव हे राजेन्द्र! आप अन्याय न कीजिये और इस प्रकारके पापमय विचारका सर्वथा परित्याग कर दीजिये॥ ५९॥

आपका दौहित्र यहाँ आया ही है। वह भी अत्यन्त रूपवान् और राज्य तथा लक्ष्मीसे सम्पन्न है; तब भला कन्या उसका वरण क्यों नहीं करेगी?॥ ६०॥

अन्य एकसे बढ़कर एक बलवान् राजकुमार आये हैं। इस स्वयंवरमें कन्या शशिकला किसी भी राजकुमारको अपनी इच्छासे चुन लेगी॥ ६१॥

हे राजागण! अब आप ही लोग बतायें कि इस प्रकारके विवाहमें विवाद ही क्या? विवेकवान् पुरुषको इस विषयमें परस्पर विरोधभाव नहीं रखना चाहिये॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
राजसंवादवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

राजाओंका सुदर्शनसे स्वयंवरमें आनेका कारण पूछना और सुदर्शनका उन्हें स्वप्नमें भगवतीद्वारा दिया गया आदेश बताना, राजा सुबाहुका शशिकलाको समझाना, परंतु उसका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यास उवाच

इतिवादिनि भूपाले केरलाधिपतौ तदा।
प्रत्युवाच महाभाग युधाजिदपि पार्थिवः॥ १

नीतिरेषा महीपाल यद् ब्रवीति भवानिह।
समाजे पार्थिवानां वै सत्यवाग्विजितेन्द्रियः॥ २

योग्येषु वर्तमानेषु कन्यारत्नं कुलोद्वह।
अयोग्योऽर्हति भूपाल न्यायोऽयं तव रोचते॥ ३

भागं सिंहस्य गोमायुर्भोक्तुमर्हति वा कथम्।
तथा सुदर्शनोऽयं वै कन्यारत्नं किमर्हति॥ ४

बलं वेदो हि विप्राणां भूभुजां चापजं बलम्।
किमन्याय्यं महाराज ब्रवीम्यहमिहाधुना॥ ५

बलं शुल्कं यथा राज्ञां विवाहे परिकीर्तितम्।
बलवानेव गृह्णातु नाबलस्तु कदाचन॥ ६

तस्मात्कन्यापणं कृत्वा नीतिरत्र विधीयताम्।
अन्यथा कलहः कामं भविष्यति महीभुजाम्॥ ७

एवं विवादे संवृत्ते राज्ञां तत्र परस्परम्।
आहूतस्तु सभामध्ये सुबाहुर्नृपसत्तमः॥ ८

समाहूय नृपाः सर्वे तमूचुस्तत्त्वदर्शिनः।
राजन्नीतिस्त्वया कार्या विवाहेऽत्र समाहिता॥ ९

किं ते चिकीर्षितं राजंस्तद्वदस्व समाहितः।
पुत्र्याः प्रदानं कस्मै ते रोचते नृप चेतसि॥ १०

सुबाहुरुवाच

पुत्र्या मे मनसा कामं वृतः किल सुदर्शनः।
मया निवारितात्यर्थं न सा प्रत्येति मे वचः॥ ११

किं करोमि सुताया मे न वशे वर्तते मनः।
सुदर्शनस्तथैकाकी सम्प्राप्तोऽस्ति निराकुलः॥ १२

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तब महाराज केरल-नरेशके ऐसा कहनेपर राजा युधाजित्ने कहा—॥ १॥

हे पृथ्वीपते! आपने अभी-अभी जो कहा है, क्या यही नीति है? राजाओंके समाजमें आप तो सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय माने जाते हैं॥ २॥

हे कुलोद्वह! हे राजन्! योग्य राजाओंके रहते हुए एक अयोग्य व्यक्ति कन्यारत्नको प्राप्त कर ले, क्या यही न्याय आपको अच्छा लगता है?॥ ३॥

एक सियार सिंहके भागको खानेका अधिकारी कैसे हो सकता है? उसी प्रकार क्या यह सुदर्शन इस कन्यारत्नको पानेकी योग्यता रखता है?॥ ४॥

ब्राह्मणोंका बल वेद है और राजाओंका बल धनुष। हे महाराज! क्या मैं इस समय अन्यायपूर्ण बात कह रहा हूँ?॥ ५॥

राजाओंके विवाहमें बलको ही शुल्क कहा गया है। यहाँ जो भी बलशाली हो, वह कन्यारत्नको प्राप्त कर ले; बलहीन इसे कदापि नहीं पा सकता॥ ६॥

अतएव कन्याके लिये कोई शर्त निर्धारित करके ही राजकुमारीका विवाह हो—यही नीति इस अवसरपर अपनायी जानी चाहिये; अन्यथा राजाओंमें परस्पर घोर कलहकी स्थिति उत्पन्न हो जायगी॥ ७॥

इस प्रकार वहाँ राजाओंमें परस्पर विवाद उत्पन्न हो जानेपर नृपश्रेष्ठ सुबाहु सभामें बुलाये गये॥ ८॥

उन्हें बुलवाकर तत्त्वदर्शी राजाओंने उनसे कहा—हे राजन्! इस विवाहमें आप राजोचित नीतिका अनुसरण करें। हे राजन्! आप क्या करना चाहते हैं, उसे सावधान होकर बतायें। हे नृप! आप अपने मनसे इस कन्याको किसे प्रदान करना पसन्द करते हैं?॥ ९-१०॥

सुबाहु बोले—मेरी पुत्रीने मन-ही-मन सुदर्शनका वरण कर लिया है। इसके लिये मैंने उसे बहुत रोका, किंतु वह मेरी बात नहीं मानती। मैं क्या करूँ? मेरी पुत्रीका मन वशमें नहीं है और यह सुदर्शन भी निर्भीक होकर यहाँ अकेले आ गया है॥ ११-१२॥

व्यास उवाच

सम्पन्नभूभुजः सर्वे समाहूय सुदर्शनम्।
ऊचुः समागतं शान्तमेकाकिनमतन्द्रिताः॥ १३

राजपुत्र महाभाग केनाहूतोऽसि सुव्रत।
एकाकी यः समायातः समाजे भूभृतामिह॥ १४

न वै सैन्यं न सचिवा न कोशो न बृहद्बलम्।
किमर्थञ्च समायातस्तत्त्वं ब्रूहि महामते॥ १५

युद्धकामा नृपतयो वर्तन्तेऽत्र समागमे।
कन्यार्थं सैन्यसम्पन्नाः किं त्वं कर्तुमिहेच्छसि॥ १६

भ्राता ते सुबलः शूरः सम्प्राप्तोऽस्ति जिघृक्षया।
युधाजिच्च महाबाहुः साहाय्यं कर्तुमागतः॥ १७

गच्छ वा तिष्ठ राजेन्द्र याथातथ्यमुदाहृतम्।
त्वयि सैन्यविहीने च यथेष्टं कुरु सुव्रत॥ १८

सुदर्शन उवाच

न बलं न सहायो मे न कोशो दुर्गसंश्रयः।
न मित्राणि न सौहार्दी न नृपा रक्षका मम॥ १९

अत्र स्वयंवरं श्रुत्वा द्रष्टुकाम इहागतः।
स्वप्ने देव्या प्रेरितोऽस्मि भगवत्या न संशयः॥ २०

नान्यच्चिकीर्षितं मेऽद्य मामाह जगदीश्वरी।
तया यद्विहितं तच्च भविताद्य न संशयः॥ २१

न शत्रुरस्ति संसारे कोऽप्यत्र जगतीश्वराः।
सर्वत्र पश्यतो मेऽद्य भवानीं जगदम्बिकाम्॥ २२

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सभी वैभवशाली राजाओंने सुदर्शनको बुलवाया। उस शान्तस्वभाव सुदर्शनसे राजाओंने सावधान होकर पूछा—हे राजपुत्र! हे महाभाग! हे सुव्रत! तुम्हें यहाँ किसने बुलाया है, जो तुम इस राजसमाजमें अकेले ही चले आये हो?॥ १३-१४॥

तुम्हारे पास न सेना है, न मन्त्री हैं, न कोश है और न अधिक बल ही है। हे महामते! तुम यहाँ किसलिये आये हो? उसे बताओ॥ १५॥

युद्धकी अभिलाषा रखनेवाले बहुत-से राजागण इस कन्याको प्राप्त करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनासहित इस समाजमें विद्यमान हैं। यहाँ तुम क्या करना चाहते हो?॥ १६॥

तुम्हारा शूरवीर भाई शत्रुजित् भी एक महान् सेनाके साथ राजकुमारीको प्राप्त करनेकी इच्छासे यहाँ आया हुआ है और उसकी सहायता करनेके लिये महाबाहु युधाजित् भी आये हैं॥ १७॥

हे राजेन्द्र! तुम जाओ अथवा रहो। हमने तो सारी वास्तविकता तुम्हें बतला दी; क्योंकि तुम सेना-विहीन हो। हे सुव्रत! अब तुम्हारी जो इच्छा हो, वह करो॥ १८॥

सुदर्शन बोला—मेरे पास न सेना है, न कोई सहायक है, न खजाना है, न सुरक्षित किला है, न मित्र हैं, न सुहृद् हैं तथा न तो मेरी रक्षा करनेवाले कोई राजा ही हैं॥ १९॥

यहाँपर स्वयंवर होनेका समाचार सुनकर उसे देखनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। देवी भगवतीने स्वप्नमें मुझे यहाँ आनेकी प्रेरणा दी है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे यहाँ आनेके लिये जगज्जननी भगवतीने आदेश दिया है। उन्होंने जो विधान रच दिया होगा, वह होकर ही रहेगा; इसमें कोई संशय नहीं है॥ २१॥

हे राजागण! इस संसारमें मेरा कोई शत्रु नहीं है। मैं सर्वत्र भवानी जगदम्बाको विराजमान देख रहा हूँ॥ २२॥

यः करिष्यति शत्रुत्वं मया सह नृपात्मजाः।
शास्ता तस्य महाविद्या नाहं जानामि शत्रुताम्॥ २३

यद्भावि तद्वै भविता नान्यथा नृपसत्तमाः।
का चिन्ता ह्यत्र कर्तव्या दैवाधीनोऽस्मि सर्वदा॥ २४

देवभूतमनुष्येषु सर्वभूतेषु सर्वदा।
सर्वेषां तत्कृता शक्तिर्नान्यथा नृपसत्तमाः॥ २५

सा यं चिकीर्षते भूपं तं करोति नृपाधिपाः।
निर्धनं वा नरं कामं का चिन्ता वै तदा मम॥ २६

तामृते परमां शक्तिं ब्रह्मविष्णुहरादयः।
न शक्ताः स्पन्दितुं देवाः का चिन्ता मे तदा नृपाः॥ २७

अशक्तो वा सशक्तो वा यादृशस्तादृशस्त्वहम्।
तदाज्ञया नृपाद्यैव सम्प्राप्तोऽस्मि स्वयंवरे॥ २८

सा यदिच्छति तत्कुर्यान्मम किं चिन्तनेन वै।
नात्र शङ्का प्रकर्तव्या सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २९

जये पराजये लज्जा न मेऽत्राण्वपि पार्थिवाः।
भगवत्यास्तु लज्जास्ति तदधीनोऽस्मि सर्वथा॥ ३०

व्यास उवाच

इति तस्य तदाकर्ण्य वचनं राजसत्तमाः।
ऊचुः परस्परं प्रेक्ष्य निश्चयज्ञा नराधिपाः॥ ३१

सत्यमुक्तं त्वया साधो न मिथ्या कर्हिचिद्भवेत्।
तथाप्युज्जयनीनाथस्त्वां हन्तुं परिकाङ्क्षति॥ ३२

त्वत्कृतेन दयादिष्टा त्वां ब्रवीमो महामते।
यदुक्तं तत्त्वया कार्यं विचार्य मनसानघ॥ ३३

हे राजकुमारो! जो कोई भी प्राणी मुझसे शत्रुता करेगा, उसे महाविद्या जगदम्बा दण्डित करेंगी; मैं तो वैर-भाव जानता ही नहीं॥ २३॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! जो होना है, वह अवश्य ही होगा; उसके विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता। अतः इस विषयमें क्या चिन्ता की जाय? मैं तो सदा प्रारब्धपर भरोसा करता हूँ?॥ २४॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! देवताओं, दानवों, मनुष्यों तथा सभी प्राणियोंमें एकमात्र जगदम्बाकी शक्ति ही विद्यमान है। उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है॥ २५॥

हे महाराजाओ! वे जिस मनुष्यको राजा बनाना चाहती हैं, उसे राजा बना देती हैं और जिसे निर्धन बनाना चाहती हैं, उसे निर्धन बना देती हैं; तब मुझे किस बातकी चिन्ता?॥ २६॥

हे राजाओ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी उन महाशक्तिके बिना हिलने-डुलनेमें भी समर्थ नहीं हैं, तब मुझे क्या चिन्ता?॥ २७॥

मैं शक्तिसम्पन्न हूँ या शक्तिहीन, जैसा भी हूँ वैसा आपके समक्ष हूँ। हे राजाओ! मैं उन्हीं भगवतीकी आज्ञासे ही इस स्वयंवरमें आया हुआ हूँ॥ २८॥

वे भगवती जो चाहेंगीं, सो करेंगीं। मेरे सोचनेसे क्या होगा? मैं यह सत्य कह रहा हूँ, इस विषयमें शंका नहीं करनी चाहिये॥ २९॥

हे राजाओ! जय अथवा पराजयमें मुझे अणुमात्र भी लज्जा नहीं है। लज्जा तो उन भगवतीको होगी; क्योंकि मैं तो सर्वथा उन्हींके अधीन हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस सुदर्शनकी यह बात सुनकर सभी श्रेष्ठ राजागण उसके निश्चयको जान गये और एक-दूसरेको देखकर उन राजाओंने सुदर्शनसे कहा—हे साधो! आपने सत्य कहा है, आपका कथन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। तथापि उज्जयिनीपति महाराज युधाजित् आपको मार डालना चाहते हैं। हे महामते! हमें आपके ऊपर दया आ रही है, इसीलिये हमने आपको यह सब बता दिया। हे अनघ! अब आपको जो उचित जान पड़े, वैसा मनसे खूब सोच-समझकर कीजिये॥ ३१—३३॥

सुदर्शन उवाच

सत्यमुक्तं भवद्भिश्च कृपावद्भिः सुहृज्जनैः।
किं ब्रवीमि पुनर्वाक्यमुक्त्वा नृपतिसत्तमाः॥ ३४

न मृत्युः केनचिद्द्राव्यः कस्यचिद्वा कदाचन।
दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३५

स्ववशोऽयं न जीवोऽस्ति स्वकर्मवशगः सदा।
तत्कर्म त्रिविधं प्रोक्तं विद्वद्भिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ३६

सञ्चितं वर्तमानञ्च प्रारब्धञ्च तृतीयकम्।
कालकर्मस्वभावैश्च ततं सर्वमिदं जगत्॥ ३७

न देवो मानुषं हन्तुं शक्तः कालागमं विना।
हतं निमित्तमात्रेण हन्ति कालः सनातनः॥ ३८

यथा पिता मे निहतः सिंहेनामित्रकर्षणः।
तथा मातामहोऽप्येवं युद्धे युधाजिता हतः॥ ३९

यत्नकोटिं प्रकुर्वाणो हन्यते दैवयोगतः।
जीवेद्वर्षसहस्राणि रक्षणेन विना नरः॥ ४०

नाहं बिभेमि धर्मिष्ठाः कदाचिच्च युधाजितः।
दैवमेव परं मत्वा सुस्थितोऽस्मि सदा नृपाः॥ ४१

स्मरणं सततं नित्यं भगवत्याः करोम्यहम्।
विश्वस्य जननी देवी कल्याणं सा करिष्यति॥ ४२

पूर्वार्जितं हि भोक्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा।
स्वकृतस्य च भोगेन कीदृक्शोको विजानताम्॥ ४३

स्वकर्मफलयोगेन प्राप्य दुःखमचेतनः।
निमित्तकारणे वैरं करोत्यल्पमतिः किल॥ ४४

सुदर्शन बोला—आप सब बड़े कृपालु एवं सहृदय-जनोंने सत्य ही कहा है, किंतु हे श्रेष्ठ राजागण! अब मैं अपनी पूर्वकथित बात फिरसे क्या दोहराऊँ!॥ ३४॥

किसीकी भी मृत्यु किसीसे भी कभी भी नहीं हो सकती; क्योंकि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् तो दैवके अधीन है॥ ३५॥

यह जीव भी स्वयं अपने वशमें नहीं है; यह सदा अपने कर्मके अधीन रहता है। तत्त्वदर्शी विद्वानोंने उस कर्मके तीन प्रकार बतलाये हैं—संचित, वर्तमान तथा प्रारब्ध। यह सम्पूर्ण जगत् काल, कर्म तथा स्वभावसे व्याप्त है॥ ३६-३७॥

बिना कालके आये देवता भी किसी मनुष्यको मारनेमें समर्थ नहीं हो सकते। किसीको भी मारनेवाला तो निमित्तमात्र होता है; वास्तविकता यह है कि सभीको अविनाशी काल ही मारता है॥ ३८॥

जैसे शत्रुओंका शमन करनेवाले मेरे पिताको सिंहने मार डाला। वैसे ही मेरे नानाको भी युद्धमें युधाजित्ने मार डाला॥ ३९॥

प्रारब्ध पूरा हो जानेपर करोड़ों प्रयत्न करनेपर भी अन्ततः मनुष्य मर ही जाता है और दैवके अनुकूल रहनेपर बिना किसी रक्षाके ही वह हजारों वर्षोंतक जीवित रहता है॥ ४०॥

हे धर्मनिष्ठ राजाओ! मैं युधाजित्से कभी नहीं डरता। मैं दैवको ही सर्वोपरि मानकर पूर्णरूपसे निश्चिन्त रहता हूँ॥ ४१॥

मैं नित्य-निरन्तर भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ। विश्वकी जननी वे भगवती ही कल्याण करेंगी॥ ४२॥

पूर्वजन्ममें किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल प्राणीको भोगना ही पड़ता है; तो फिर अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगनेमें विवेकी पुरुषोंको शोक कैसा?॥ ४३॥

अपने द्वारा उपार्जित कर्मफल भोगनेमें दुःख प्राप्त होनेके कारण अज्ञानी तथा अल्पबुद्धिवाला प्राणी निमित्त कारणके प्रति शत्रुता करने लगता है॥ ४४॥

न तथाहं विजानामि वैरं शोकं भयं तथा।
निःशङ्कमिह सम्प्राप्तः समाजे भूभृतामिह॥ ४५

एकाकी द्रष्टुकामोऽहं स्वयंवरमनुत्तमम्।
भविष्यति च यद्भाव्यं प्राप्तोऽस्मि चण्डिकाज्ञया॥ ४६

भगवत्याः प्रमाणं मे नान्यं जानामि संयतः।
तत्कृतं च सुखं दुःखं भविष्यति च नान्यथा॥ ४७

युधाजित्सुखमाप्नोतु न मे वैरं नृपोत्तमाः।
यः करिष्यति मे वैरं स प्राप्स्यति फलं तथा॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्तास्ते तथा तेन सन्तुष्टा भूभुजः स्थिताः।
सोऽपि स्वमाश्रमं प्राप्य सुस्थितः सम्बभूव ह॥ ४९

अपरेऽह्नि शुभे काले नृपाः सम्मन्त्रिताः किल।
सुबाहुना नृपेणाथ रुचिरे वै स्वमण्डपे॥ ५०

दिव्यास्तरणयुक्तेषु मञ्चेषु रचितेषु च।
उपविष्टाश्च राजानः शुभालङ्करणैर्युताः॥ ५१

दिव्यवेषधराः कामं विमानेष्वमरा इव।
दीप्यमानाः स्थितास्तत्र स्वयंवरदिदृक्षया॥ ५२

इति चिन्तापराः सर्वे कदा साप्यागमिष्यति।
भाग्यवन्तं नृपश्रेष्ठं श्रुतपुण्यं वरिष्यति॥ ५३

यदा सुदर्शनं दैवात्स्रजा सम्भूषयेदिह।
विवादो वै नृपाणां च भविता नात्र संशयः॥ ५४

इत्येवं चिन्त्यमानास्ते भूपा मञ्चेषु संस्थिताः।
वादित्रघोषः सुमहानुत्थितो नृपमण्डपे॥ ५५

उनकी भाँति मैं वैर, शोक तथा भयको नहीं जानता। अतः मैं राजाओंके इस समाजमें भयरहित होकर आया हुआ हूँ॥ ४५॥

जो होना है, वह तो होकर ही रहेगा। मैं तो भगवतीके आदेशसे इस उत्कृष्ट स्वयंवरको देखनेकी अभिलाषासे यहाँ अकेला ही आया हूँ॥ ४६॥

मैं भगवतीके वचनको ही प्रमाण मानता हूँ और उनकी आज्ञाके अधीन रहता हुआ मैं अन्य किसीको नहीं जानता। उन्होंने सुख-दुःखका जो विधान कर दिया है, वही प्राप्त होगा, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं॥ ४७॥

हे श्रेष्ठ राजाओ! युधाजित् सुखी रहें। मेरे मनमें उनके प्रति वैरभाव नहीं है। जो मुझसे शत्रुता करेगा, वह उसका फल पायेगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके इस प्रकार कहनेपर वहाँ उपस्थित सभी राजा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। वह भी अपने निवासमें आकर शान्तभावसे बैठ गया॥ ४९॥

तदनन्तर दूसरे दिन शुभ मुहूर्तमें राजा सुबाहुने अपने भव्य मण्डपमें सभी राजाओंको बुलाया॥ ५०॥

उस मण्डपमें दिव्य आसनोंसे सुशोभित पूर्णरूपसे सजाये गये मंचोंपर मनोहारी आभूषणोंसे अलंकृत राजागण विराजमान हुए॥ ५१॥

स्वयंवर देखनेकी इच्छासे वहाँ मंचोंपर विराजमान वे दिव्य वेषधारी देदीप्यमान राजागण विमानपर बैठे हुए देवताओंकी भाँति प्रतीत हो रहे थे॥ ५२॥

सभी राजा इस बातके लिये बहुत चिन्तित थे कि वह राजकुमारी कब आयेगी और किस पुण्यवान् तथा भाग्यशाली श्रेष्ठ नरेशका वरण करेगी?॥ ५३॥

संयोगवश यदि राजकुमारीने सुदर्शनके गलेमें माला डाल दी तो राजाओंमें परस्पर कलह होने लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४॥

मंचोंपर विराजमान राजालोग ऐसा सोच ही रहे थे तभी राजा सुबाहुके भवनमें वाद्योंकी ध्वनि होने लगी॥ ५५॥

अथ काशीपतिः प्राह सुतां स्नातां स्वलंकृताम्।
मधूकमालासंयुक्तां क्षौमवासोविभूषिताम्॥ ५६

विवाहोपस्करैर्युक्तां दिव्यां सिन्धुसुतोपमाम्।
चिन्तापरां सुवसनां स्मितपूर्वमिदं वचः॥ ५७

उत्तिष्ठ पुत्रि सुनसे करे धृत्वा शुभां स्रजम्।
व्रज मण्डपमध्येऽद्य समाजं पश्य भूभुजाम्॥ ५८

गुणवान् रूपसम्पन्नः कुलीनश्च नृपोत्तमः।
तव चित्ते वसेद्यस्तु तं वृणुष्व सुमध्यमे॥ ५९

देशदेशाधिपाः सर्वे मञ्चेषु रचितेषु च।
संविष्टाः पश्य तन्वङ्गि वरयस्व यथारुचि॥ ६०

व्यास उवाच

तं तथा भाषमाणं वै पितरं मितभाषिणी।
उवाच वचनं बाला ललितं धर्मसंयुतम्॥ ६१

शशिकलोवाच

नाहं दृष्टिपथे राज्ञां गमिष्यामि पितः किल।
कामुकानां नरेशानां गच्छन्त्यन्याश्च योषितः॥ ६२

धर्मशास्त्रे श्रुतं तात मयेदं वचनं किल।
एक एव वरो नार्या निरीक्ष्यः स्यान्न चापरः॥ ६३

सतीत्वं निर्गतं तस्या या प्रयाति बहूनथ।
संकल्पयन्ति ते सर्वे दृष्ट्वा मे भवतात्त्विति॥ ६४

स्वयंवरे स्रजं धृत्वा यदागच्छति मण्डपे।
सामान्या सा तदा जाता कुलटेवापरा वधूः॥ ६५

वारस्त्री विपणे गत्वा यथा वीक्ष्य नरान्स्थितान्।
गुणागुणपरिज्ञानं करोति निजमानसे॥ ६६

तत्पश्चात् स्नान करके भलीभाँति अलंकृत, मधूक पुष्पकी माला धारण किये, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, विवाहके अवसरपर धारणीय सभी पदार्थोंसे युक्त, लक्ष्मीके सदृश दिव्य स्वरूपवाली, चिन्तामग्न तथा सुन्दर वस्त्रोंवाली शशिकलासे मुसकराकर महाराज सुबाहुने यह वचन कहा— ॥ ५६-५७ ॥

हे सुन्दर नासिकावाली पुत्रि! उठो और हाथमें यह सुन्दर माला लेकर मण्डपमें चलो और वहाँपर विराजमान राजाओंके समुदायको देखो ॥ ५८ ॥

हे सुमध्यमे! उन राजाओंमें जो गुणसम्पन्न, रूपवान् और उत्तम कुलमें उत्पन्न श्रेष्ठ राजा तुम्हारे मनमें बस जाय, उसका वरण कर लो ॥ ५९ ॥

देश-देशान्तरके सभी राजागण सम्यक् रूपसे सजाये गये मंचोंपर विराजमान हैं। हे तन्वंगि! इन्हें देखो और अपनी इच्छाके अनुसार वरण कर लो ॥ ६० ॥

व्यासजी बोले—तब ऐसा कहते हुए अपने पितासे मितभाषिणी उस कन्या शशिकलाने लालित्यपूर्ण एवं धर्मसंगत बात कही ॥ ६१ ॥

शशिकला बोली—हे पिताजी! मैं इन राजाओंके सम्मुख बिलकुल नहीं जाऊँगी। ऐसे कामासक्त राजाओंके सामने अन्य प्रकारकी स्त्रियाँ ही जाती हैं ॥ ६२ ॥

हे तात! मैंने धर्मशास्त्रोंमें यह वचन सुना है कि नारीको एक ही वरपर दृष्टि डालनी चाहिये, किसी दूसरेपर नहीं ॥ ६३ ॥

जो स्त्री अनेक पुरुषोंके समक्ष उपस्थित होती है, उसका सतीत्व विनष्ट हो जाता है; क्योंकि उसे देखकर वे सभी अपने मनमें यही संकल्प कर लेते हैं कि यह स्त्री किसी तरहसे मेरी हो जाय ॥ ६४ ॥

कोई स्त्री अपने हाथमें जयमाल लेकर जब स्वयंवरमण्डपमें आती है तो वह एक साधारण स्त्री हो जाती है और उस समय वह एक व्यभिचारिणी स्त्रीकी भाँति प्रतीत होती है ॥ ६५ ॥

जिस प्रकार एक वारांगना बाजारमें जाकर वहाँ स्थित पुरुषोंको देखकर अपने मनमें उनके गुण-दोषोंका आकलन करती है और जैसे अनेक प्रकारके चंचल भावोंसे युक्त वह वेश्या किसी कामी पुरुषको

नैकभावा यथा वेश्या वृथा पश्यति कामुकम्।
तथाहं मण्डपे गत्वा कुर्वे वारस्त्रिया कृतम्॥ ६७

वृद्धैरेतैः कृतं धर्मं न करिष्यामि साम्प्रतम्।
पत्नीव्रतं तथा कामं करिष्येऽहं धृतव्रता॥ ६८

सामान्या प्रथमं गत्वा कृत्वा संकल्पितं बहु।
वृणोति चैकं तद्वद्वै वृणोमि कथमद्य वै॥ ६९

सुदर्शनो मया पूर्वं वृतः सर्वात्मना पितः।
तमृते नान्यथा कर्तुमिच्छामि नृपसत्तम॥ ७०

विवाहविधिना देहि कन्यादानं शुभे दिने।
सुदर्शनाय नृपते यदीच्छसि शुभं मम॥ ७१

बिना किसी प्रयोजनके व्यर्थ ही देखती रहती है, उसी प्रकार स्वयंवर-मण्डपमें जाकर मुझे भी उसीके सदृश व्यवहार करना पड़ेगा॥ ६६-६७॥

इस समय मैं अपने कुलके वृद्धजनोंद्वारा स्थापित किये गये इस स्वयंवरनियमका पालन नहीं करूँगी। मैं अपने संकल्पपर अटल रहती हुई पत्नीव्रत-धर्मका पूर्णरूपसे आचरण करूँगी॥ ६८॥

सामान्य कन्या स्वयंवर-मण्डपमें पहुँचकर पहले अनेक संकल्प-विकल्प करनेके पश्चात् अन्ततः किसी एकका वरण कर लेती है; उसके समान मैं भी पतिका वरण क्यों करूँ?॥ ६९॥

हे पिताजी! मैंने पूरे मनसे सुदर्शनका पहले ही वरण कर लिया है। हे महाराज! उस सुदर्शनके अतिरिक्त मैं किसी अन्यको पतिके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकती॥ ७०॥

हे राजन्! यदि आप मेरा हित चाहते हैं तो किसी शुभ दिनमें वैवाहिक विधि-विधानसे कन्यादान करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये॥ ७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे स्वपितरं प्रति शशिकलावाक्यं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

राजा सुबाहुका राजाओंसे अपनी कन्याकी इच्छा बताना, युधाजित्का क्रोधित होकर सुबाहुको फटकारना तथा अपने दौहित्रसे शशिकलाका विवाह करनेको कहना, माताद्वारा शशिकलाको पुनः समझाना, किंतु शशिकलाका अपने निश्चयपर दृढ़ रहना

व्यास उवाच

सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा युक्तमुक्तं तया तदा।
चिन्ताविष्टो बभूवाशु किं कर्तव्यमितः परम्॥ १

सङ्गताः पृथिवीपालाः ससैन्याः सपरिग्रहाः।
उपविष्टाश्च मञ्चेषु योद्धुकामा महाबलाः॥ २

यदि ब्रवीमि तान्सर्वान्सुता नायाति साम्प्रतम्।
तथापि कोपसंयुक्ता हन्युर्मां दुष्टबुद्धयः॥ ३

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] महाराज सुबाहु पुत्रीके द्वारा कही गयी युक्तिसंगत बातें सुनकर इस चिन्तामें पड़ गये कि अब आगे क्या किया जाय? अपने-अपने सैनिकों तथा सेवकोंके साथ यहाँ आये हुए और युद्धकी इच्छावाले अनेक महाबली नरेश मंचोंपर बैठे हुए हैं॥ १-२॥

इस समय यदि मैं उन सभीसे यह कहूँ कि कन्या नहीं आ रही है, तो दुष्ट बुद्धिवाले वे राजा क्रोधित होकर मुझे मार ही डालेंगे॥ ३॥

न मे सैन्यबलं तादृङ्न दुर्गबलमद्भुतम्।
येनाहं नृपतीन्सर्वान् प्रत्यादेष्टुमिहोत्सहे॥ ४

सुदर्शनस्तथैकाकी ह्यसहायोऽधनः शिशुः।
किं कर्तव्यं निमग्नोऽहं सर्वथा दुःखसागरे॥ ५

इति चिन्तापरो राजा जगाम नृपसन्निधौ।
प्रणम्य तानुवाचाथ प्रश्रयावनतो नृपः॥ ६

किं कर्तव्यं नृपाः कामं नैति मे मण्डपे सुता।
बहुशः प्रेर्यमाणापि सा मात्रापि मयापि च॥ ७

मूर्ध्ना पतामि पादेषु राज्ञां दासोऽस्मि साम्प्रतम्।
पूजादिकं गृहीत्वाद्य व्रजन्तु सदनानि वः॥ ८

ददामि बहुरत्नानि वस्त्राणि च गजान् रथान्।
गृहीत्वाद्य कृपां कृत्वा व्रजन्तु भवनान्युत॥ ९

न वशे मे सुता बाला यदि म्रियेत खेदिता।
तदा मे स्यान्महद्दुःखं तेन चिन्तातुरोऽस्म्यहम्॥ १०

भवन्तः करुणावन्तो महाभाग्या महौजसः।
किमेतया दुहित्रा मे मन्दया दुर्विनीतया॥ ११

अनुग्राह्योऽस्मि वः कामं दासोऽहमिति सर्वथा।
सुता सुतेव मन्तव्या भवद्भिः सर्वथा मम॥ १२

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुबाहुवचनं नोचुः केचन भूमिपाः।
युधाजित्क्रोधताम्राक्षस्तमुवाच रुषान्वितः॥ १३

राजन्मूर्खोऽसि किं ब्रूषे कृत्वा कार्यं सुनिन्दितम्।
स्वयंवरः कथं मोहाद्रचितः संशये सति॥ १४

मेरे पास न तो वैसा सैन्यबल है और न तो सुरक्षार्थ अद्भुत किला ही है, जिससे मैं इस समय उन सभीको पराजित कर सकूँ॥ ४॥

यह बालक सुदर्शन भी निस्सहाय, निर्धन तथा अकेला है। मैं तो हर तरहसे दुःखसागरमें डूब चुका हूँ। अब मुझे इस समय क्या करना चाहिये?॥ ५॥

इस प्रकार चिन्ताकुल राजा सुबाहु राजाओंके पास गये और उन सबको प्रणाम करके अत्यन्त विनीतभावसे उन्होंने कहा—हे महाराजाओ! अब मैं क्या करूँ? मेरे तथा अपनी माताके द्वारा बहुत प्रेरित किये जानेपर भी मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है॥ ६-७॥

मैं आपलोगोंका दास हूँ और सभी राजाओंके चरणोंपर अपना सिर रखकर निवेदन करता हूँ कि आपलोग पूजा-सत्कार ग्रहण करके इस समय अपने-अपने घर लौट जायँ॥ ८॥

मैं आपलोगोंको बहुत-से रत्न, वस्त्र, हाथी तथा रथ देता हूँ। इन्हें स्वीकारकर कृपा करके आपलोग अपने-अपने भवन चले जायँ॥ ९॥

मेरी पुत्री मेरे वशमें नहीं है। यदि वह बेचारी खिन्न होकर मर गयी तो मुझे महान् दुःख होगा। इसीसे मैं अत्यन्त चिन्तित हूँ॥ १०॥

आपलोग बड़े दयालु, भाग्यवान् तथा महान् तेजस्वी हैं तो फिर मेरी इस मन्द बुद्धिवाली अविनीत कन्यासे आपलोगोंको क्या लाभ होगा?॥ ११॥

मैं आपलोगोंका हर तरहसे सेवक हूँ, अतएव आपलोग मुझपर कृपा करें। आप सभी लोग मेरी इस पुत्रीको अपनी ही पुत्री समझें॥ १२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुबाहुका वचन सुनकर अन्य राजागण तो नहीं बोले, किंतु क्रोधसे आँखें लाल करके युधाजित्ने उनसे रोषपूर्वक कहा—हे राजन्! आप तो बड़े मूर्ख हैं। ऐसा निन्दनीय कृत्य करनेके बाद भी आप कैसे इस प्रकारकी बात बोल रहे हैं? यदि संशयकी स्थिति थी तो आपने अज्ञानतावश स्वयंवरका आयोजन ही क्यों किया?॥ १३-१४॥

मिलिता भूभुजः सर्वे त्वयाहूताः स्वयंवरे।
कथमद्य नृपा गन्तुं योग्यास्ते स्वगृहान्प्रति॥ १५

आपके बुलानेपर ही सभी राजा स्वयंवरमें पधारे हुए हैं तो फिर वे सुयोग्य राजागण यों ही अपने-अपने घर कैसे चले जायँ?॥ १५॥

अवमान्य नृपान्सर्वांस्त्वं किं सुदर्शनाय वै।
दातुमिच्छसि पुत्रीञ्च किमनार्यमतः परम्॥ १६

क्या आप सभी राजाओंका अपमान करके सुदर्शनको अपनी कन्या देना चाहते हैं? इससे बढ़कर नीचताकी और क्या बात होगी? ॥ १६॥

विचार्य पुरुषेणादौ कार्यं वै शुभमिच्छता।
आरब्धव्यं त्वया तत्तु कृतं राजन्नजानता॥ १७

अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्यको पहले ही सोच-समझकर कोई कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। किंतु हे राजन्! आपने तो बिना सोचे-समझे ही यह आयोजन कर डाला॥ १७॥

एतान्विहाय नृपतीन्बलवाहनसंयुतान्।
वरं सुदर्शनं कर्तुं कथमिच्छसि साम्प्रतम्॥ १८

सेना तथा वाहनोंसे सम्पन्न इन राजाओंको छोड़कर इस समय आप सुदर्शनको अपना जामाता क्यों बनाना चाहते हैं?॥ १८॥

अहं त्वां हन्मि पापिष्ठं तथा पश्चात्सुदर्शनम्।
दौहित्रायाद्य ते कन्यां दास्यामीति विनिश्चयः॥ १९

[उसने क्रोधपूर्वक आगे कहा—] मैं तुझ पापीको अभी मार डालूँगा और बादमें सुदर्शनका भी वध कर दूँगा। तत्पश्चात् तुम्हारी कन्याका विवाह अपने नाती शत्रुजित्से कर दूँगा; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ १९॥

मयि तिष्ठति कोन्योऽस्ति यः कन्यां हर्तुमिच्छति।
सुदर्शनः कियानद्य निर्धनो निर्बलः शिशुः॥ २०

ऐसा दूसरा कौन व्यक्ति है जो मेरे रहते कन्याके हरणकी इच्छातक कर ले और सुदर्शन तो अत्यन्त निर्धन, बलहीन तथा बच्चा है॥ २०॥

भारद्वाजाश्रमे पूर्वं मुक्तो मुनिकृते मया।
नाद्याहं मोचयिष्यामि सर्वथा जीवितं शिशोः॥ २१

यह सुदर्शन पूर्वमें जब भारद्वाजमुनिके आश्रममें था तभी मैं उसे मार डालता, किंतु मुनिके कहनेसे मैंने उसे छोड़ दिया था। किंतु आज किसी भी तरह इस बालकके प्राण नहीं छोड़ूँगा॥ २१॥

तस्माद्विचार्य सम्यक्त्वं पुत्र्या च भार्यया सह।
दौहित्राय प्रियां कन्यां देहि मे सुभ्रुवं किल॥ २२

सम्बन्धी भव दत्त्वा त्वं पुत्रीमेतां मनोरमाम्।
उच्चाश्रयः प्रकर्तव्यः सर्वदा शुभमिच्छता॥ २३

अब तुम अपनी स्त्री और पुत्रीके साथ भलीभाँति विचार-विमर्श करके सुन्दर भौंहोंवाली अपनी कन्या मेरे दौहित्र शत्रुजित्को प्रदान कर दो। इस प्रकार अपनी इस सुन्दर पुत्रीको देकर तुम मेरे सम्बन्धी हो जाओ; क्योंकि अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको सर्वदा बड़ोंसे ही सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये॥ २२-२३॥

सुदर्शनाय दत्त्वा त्वं पुत्रीं प्राणप्रियां शुभाम्।
एकाकिनेऽप्यराज्याय किं सुखं प्राप्तुमिच्छसि॥ २४

(कुलं वित्तं बलं रूपं राज्यं दुर्गं सुहृज्जनम्।
दृष्ट्वा कन्या प्रदातव्या नान्यथा सुखमृच्छति॥)

तुम अकेले और राज्यहीन सुदर्शनको अपनी प्राणप्रिय, सुन्दर कन्या देकर क्या सुख चाहते हो? (वरके कुल, धन, बल, रूप, राज्य, दुर्ग और सगे-सम्बन्धियोंको देखनेके बाद ही उसे अपनी कन्या देनी चाहिये, अन्यथा सुख नहीं मिलता है)

परिचिन्तय धर्मं त्वं राज्यनीतिञ्च शाश्वतीम्।
कुरु कार्यं यथायोग्यं मा कृथा मतिमन्यथा॥ २५

सुहृदसि ममात्यर्थं हितं ते प्रब्रवीम्यहम्।
समानय सुतां राजन् मण्डपे तां सखीवृताम्॥ २६

सुदर्शनमृते चेयं वरिष्यति यदाप्यसौ।
विग्रहो मे तदा न स्याद्विवाहोऽस्तु तवेप्सितः॥ २७

अन्ये नृपतयः सर्वे कुलीनाः सबलाः समाः।
विरोधः कीदृशस्त्वेनं वृणोद्यदि नृपोत्तम॥ २८

अन्यथाहं हरिष्येऽद्य बलात्कन्यामिमां शुभाम्।
मा विरोधं सुदुःसाध्यं गच्छ पार्थिवसत्तम॥ २९

व्यास उवाच

युधाजिता समादिष्टः सुबाहुः शोकसंयुतः।
निःश्वसन्भवनं गत्वा भार्यां प्राह शुचावृतः॥ ३०

पुत्रीं ब्रूहि सुधर्मज्ञे कलहे समुपस्थिते।
किं कर्तव्यं मया शक्यं त्वद्वशोऽस्मि सुलोचने॥ ३१

व्यास उवाच

सा श्रुत्वा पतिवाक्यं तु गत्वा प्राह सुतान्तिकम्।
वत्से राजातिदुःखार्तः पिता तेऽद्यापि वर्तते॥ ३२

त्वदर्थे विग्रहः कामं समुत्पन्नोऽद्य भूभृताम्।
अन्यं वरय सुश्रोणि सुदर्शनमृते नृपम्॥ ३३

यदि सुदर्शनं वत्से हठात्त्वं वै वरिष्यसि।
युधाजित्त्वां च मां चैव हनिष्यति बलान्वितः॥ ३४

सुदर्शनं च राजासौ बलमत्तः प्रतापवान्।
द्वितीयस्ते पतिः पश्चाद्भविता कलहे सति॥ ३५
तस्मात्सुदर्शनं त्यक्त्वा वरयान्यं नृपोत्तमम्।

तुम धर्म तथा शाश्वत राजनीतिपर सम्यक् विचार कर लो, तत्पश्चात् यथोचित कार्य करो; इसके विपरीत कोई दूसरा विचार मत करो॥ २४-२५॥

तुम मेरे परम मित्र हो, इसलिये तुम्हारे हितकी बात बता देता हूँ। अब तुम अपनी कन्याको उसकी सखियोंसहित स्वयंवर-मण्डपमें ले आओ॥ २६॥

यदि वह सुदर्शनको छोड़कर किसी दूसरेका वरण कर लेगी तो इसमें मुझे विरोध नहीं होगा। आप अपने इच्छानुसार उसके साथ विवाह कर दीजियेगा। हे राजेन्द्र! अन्य सभी नरेश कुलीन, शक्तिशाली एवं हर तरहसे समान हैं। अतः यदि इनमेंसे किसीको भी वह कन्या चुन लेती है तो विरोध ही क्या है? अन्यथा मैं बलपूर्वक आज ही इस सुन्दर कन्याका हरण कर लूँगा। हे नृपश्रेष्ठ! जाओ, इस कार्यको सुसम्पन्न करो और इस असाध्य कलहमें मत पड़ो॥ २७—२९॥

व्यासजी बोले—उस समय युधाजित्‌का यह आदेश पाकर सुबाहु शोकाकुल हो उठे और दीर्घ श्वास लेते हुए महलमें जाकर दुःखित हो अपनी पत्नीसे कहने लगे—हे सुधर्मज्ञे! हे सुनयने! अब पुत्रीसे कहो—'स्वयंवर-सभामें इस समय घोर कलह उपस्थित हो जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? मैं स्वयं कुछ नहीं कर सकता; क्योंकि मैं तो तुम्हारे वशमें हूँ'॥ ३०-३१॥

व्यासजी बोले—पतिकी यह बात सुनकर रानी अपनी पुत्रीके पास जाकर बोली—पुत्रि! तुम्हारे पिता राजा सुबाहु इस समय अत्यन्त दुःखी हैं। तुम्हारे लिये आये हुए नरेशोंमें भयंकर कलह उत्पन्न हो गया है, इसलिये हे सुश्रोणि! तुम सुदर्शनको छोड़कर अन्य किसी राजकुमारका वरण कर लो॥ ३२-३३॥

हे वत्से! यदि तुम हठ करके सुदर्शनका ही वरण करोगी तो सैन्यबलयुक्त, प्रतापी तथा बलशाली वह युधाजित् तुमको, सुदर्शनको और हमलोगोंको मार डालेगा। तत्पश्चात् कलह हो जानेपर कोई दूसरा ही तुम्हारा पति होगा। अतः हे मृगलोचने! यदि तुम मेरा और अपना हित चाहती हो तो सुदर्शनको छोड़कर किसी अन्य श्रेष्ठ राजाका वरण कर लो॥ ३४-३५$\frac{१}{२}$॥

सुखमिच्छसि चेन्मह्यं तुभ्यं वा मृगलोचने।
इति मात्रा बोधितां तां पश्चाद्राजाप्यबोधयत्॥ ३६

उभयोर्वचनं श्रुत्वा निर्भयोवाच कन्यका।

कन्योवाच

सत्यमुक्तं नृपश्रेष्ठ जानासि च व्रतं मम॥ ३७

नान्यं वृणोमि भूपाल सुदर्शनमृते क्वचित्।
बिभेषि यदि राजेन्द्र नृपेभ्यः किल कातरः॥ ३८

सुदर्शनाय दत्त्वा मां विसर्जय पुराद्बहिः।
स मां रथे समारोप्य निर्गमिष्यति ते पुरात्॥ ३९

भवितव्यं तु पश्चाद्वै भविष्यति न चान्यथा।
नात्र चिन्ता त्वया कार्या भवितव्ये नृपोत्तम॥ ४०

यद्भावि तद्भवत्येव सर्वथात्र न संशयः।

राजोवाच

न पुत्रि साहसं कार्यं मतिमद्भिः कदाचन॥ ४१

बहुभिर्न विरोधव्यमिति वेदविदो विदुः।
विस्त्रक्ष्यामि कथं कन्यां दत्त्वा राजसुताय च॥ ४२

राजानो वैरसंयुक्ताः किन्नु कुर्युरसाम्प्रतम्।
यदि ते रोचते वत्से पणं संविदधाम्यहम्॥ ४३

जनकेन यथा पूर्वं कृतः सीतास्वयंवरे।
शैवं धनुर्यथा तेन धृतं कृत्वा पणं तथा॥ ४४

तथाहमपि तन्वङ्गि करोम्यद्य दुरासदम्।
विवादो येन राज्ञां वै कृते सति शमं व्रजेत्॥ ४५

पालयिष्यति यः कामं स ते भर्ता भविष्यति।
सुदर्शनस्तथान्यो वा यः कश्चिद् बलवत्तरः॥ ४६

पालयित्वा पणं त्वां वै वरयिष्यति सर्वथा।
एवं कृते नृपाणां तु विवादः शमितो भवेत्॥ ४७
सुखेनाहं विवाहं ते करिष्यामि ततः परम्।

कन्योवाच

सन्देहे नैव मज्जामि मूर्खकृत्यमिदं यतः॥ ४८

मया सुदर्शनः पूर्वं धृतश्चेतसि नान्यथा।
कारणं पुण्यपापानां मन एव महीपते॥ ४९

इस प्रकार माताके समझानेके बाद पिताने भी उसे समझाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर कन्या शशिकला निर्भय होकर कहने लगी॥ ३६½॥

कन्या बोली—हे नृपश्रेष्ठ! आप ठीक कह रहे हैं किंतु आप मेरे प्रणको तो जानते ही हैं। हे राजन्! मैं सुदर्शनको छोड़कर और किसीका भी वरण नहीं कर सकती। हे राजेन्द्र! यदि आप राजाओंसे डरते हैं और बहुत घबड़ाये हुए हैं तो मुझे सुदर्शनको सौंपकर नगरसे बाहर कर दीजिये। वे मुझे रथपर बैठाकर आपके नगरसे बाहर निकल जायँगे। हे नृपश्रेष्ठ! जो होना है वह तो बादमें अवश्य होगा; इसके विपरीत नहीं होगा। अब आप होनीके विषयमें चिन्ता न करें; क्योंकि जो होना है वह तो निश्चितरूपसे होता ही है; इसमें संशय नहीं है॥ ३७—४०½॥

राजा बोले—हे पुत्रि! बुद्धिमानोंको कभी ऐसा साहस नहीं करना चाहिये। वेदज्ञोंने कहा है कि बहुतोंसे विरोध नहीं करना चाहिये। पुत्रीको उस राजकुमारको सौंपकर कैसे विदा कर दूँ? मुझसे वैर साधे हुए ये राजागण न जाने कौन-सा अनिष्ट कर डालेंगे। इसलिये हे पुत्रि! यदि तुम पसन्द करो तो मैं कोई शर्त रख दूँ, जैसा कि पूर्वकालमें राजा जनकने सीतास्वयंवरमें किया था। हे तन्वंगि! जैसे उन्होंने शिव-धनुष तोड़नेकी शर्त रख दी थी, वैसे ही मैं भी कोई ऐसी कठोर शर्त रख दूँ जिससे ऐसा कर देनेपर राजाओंका विवाद ही समाप्त हो जाय। जो उस प्रतिज्ञाको पूरा करेगा, वही तुम्हारा पति होगा। सुदर्शन हो अथवा कोई दूसरा—जो भी अधिक बलशाली होगा, वह मेरी प्रतिज्ञा पूरी करके तुम्हारा वरण कर लेगा। ऐसा करनेसे राजाओंमें उत्पन्न कलह निश्चितरूपसे शान्त हो जायगा और उसके बाद मैं आनन्दपूर्वक तुम्हारा विवाह कर दूँगा॥ ४१—४७½॥

कन्या बोली—मैं इस सन्दिग्ध कार्यमें नहीं पड़ूँगी; क्योंकि यह मूर्खोंका काम है। मैंने अपने मनमें सुदर्शनका पहलेसे ही वरण कर लिया है, अब दूसरेको स्वीकार नहीं कर सकती। हे महाराज! पुण्य तथा पापका कारण तो मन ही है। इसलिये हे

मनसा विधृतं त्यक्त्वा कथमन्यं वृणे पितः।
कृते पणे महाराज सर्वेषां वशगा ह्यहम्॥ ५०

एकः पालयिता द्वौ वा बहवो वा भवन्ति चेत्।
किं कर्तव्यं तदा तात विवादे समुपस्थिते॥ ५१

संशयाधिष्ठिते कार्ये मतिं नाहं करोम्यतः।
मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र देहि सुदर्शनाय माम्॥ ५२

विवाहं विधिना कृत्वा शं विधास्यति चण्डिका।
यन्नामकीर्तनादेव दुःखौघो विलयं व्रजेत्॥ ५३

तां स्मृत्वा परमां शक्तिं कुरु कार्यमतन्द्रितः।
गत्वा वद नृपेभ्यस्त्वं कृताञ्जलिपुटोऽद्य वै॥ ५४

आगन्तव्यञ्च श्वः सर्वैरिह भूपैः स्वयंवरे।
इत्युक्त्वा त्वं विसृज्याशु सर्वं नृपतिमण्डलम्॥ ५५

विवाहं कुरु रात्रौ मे वेदोक्तविधिना नृप।
पारिबर्हं यथायोग्यं दत्त्वा तस्मै विसर्जय॥ ५६

गमिष्यति गृहीत्वा मां ध्रुवसन्धिसुतः किल।
कदाचित्ते नृपाः क्रुद्धाः संग्रामं कर्तुमुद्यताः॥ ५७

भविष्यन्ति तदा देवी साहाय्यं नः करिष्यति।
सोऽपि राजसुतस्तैस्तु संग्रामं संविधास्यति॥ ५८

दैवान्मृधे मृते तस्मिन्मरिष्याम्यहमप्युत।
स्वस्ति तेऽस्तु गृहे तिष्ठ दत्त्वा मां सहसैन्यकः॥ ५९

एकैवाहं गमिष्यामि तेन सार्धं रिरंसया।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा राजासौ कृतनिश्चयः।
मतिं चक्रे तथाकर्तुं विश्वासं प्रतिपद्य च॥ ६०

पिताजी! मनसे वरण किये गये सुदर्शनको छोड़कर मैं दूसरेका वरण कैसे करूँ? हे महाराज! दूसरी बात यह भी है कि पणस्वयंवर करनेमें मुझे सबके अधीन रहना पड़ेगा। हे तात! यदि इनमेंसे एक, दो या अनेकने आपका प्रण पूरा कर दिया तब उस समय विवादकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर आप क्या करेंगे? अतः मैं किसी संशयात्मक कार्यमें पड़ना नहीं चाहती। हे राजेन्द्र! आप चिन्ता न करें और विधिपूर्वक मेरा विवाह करके मुझे सुदर्शनको सौंप दीजिये। जिनके नामका संकीर्तन करनेसे समस्त दुःखराशि विलीन हो जाती है, वे भगवती चण्डिका अवश्य कल्याण करेंगी। अब आप उन्हीं महाशक्तिका स्मरण करके पूरी तत्परताके साथ यह कार्य कीजिये॥ ४८—५३$\frac{१}{२}$॥

अभी जा करके दोनों हाथ जोड़कर आप उन राजाओंसे कहिये कि आप सभी राजागण इस स्वयंवरमें कल पधारें। ऐसा कहकर सम्पूर्ण राजसमुदायको शीघ्र ही विसर्जित करके वैदिक रीतिसे सुदर्शनके साथ रातमें मेरा विवाह कर दीजिये। हे राजन्! तत्पश्चात् उन्हें यथोचित उपहार देकर विदा कर दीजिये॥ ५४—५६॥

तदनन्तर महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शन मुझे साथ लेकर चले जायँगे। इससे कुपित हुए राजा यदि युद्ध करनेको उद्यत होंगे तो उस समय भगवती हमारी सहायता करेंगी, जिससे वे राजकुमार सुदर्शन भी उन लोगोंके साथ संग्राम करनेमें अवश्य समर्थ होंगे। दैवयोगसे यदि वे युद्धमें मारे गये तो मैं प्राण त्याग दूँगी। आपका कल्याण हो। आप मुझे सुदर्शनको सौंपकर अपनी सेनाके साथ महलमें सुखपूर्वक रहें। मैं भी विहार करनेकी कामनासे उनके साथ अकेली ही चली जाऊँगी॥ ५७—५९$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस शशिकलाका वचन सुनकर दृढ़प्रतिज्ञ राजा सुबाहुने उसे पूर्णरूपसे विश्वस्त करके ठीक वैसा ही करनेका निश्चय कर लिया॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे कन्यया स्वपितरं प्रति सुदर्शनेन सह विवाहार्थकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

~~O~~

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

शशिकलाका गुप्त स्थानमें सुदर्शनके साथ विवाह, विवाहकी बात जानकर राजाओंका सुबाहुके प्रति क्रोध प्रकट करना तथा सुदर्शनका मार्ग रोकनेका निश्चय करना

व्यास उवाच

श्रुत्वा सुतावाक्यमनिन्दितात्मा
नृपांश्च गत्वा नृपतिर्जगाद।
व्रजन्तु कामं शिविराणि भूपाः
श्वो वा विवाहं किल संविधास्ये॥ १

भक्ष्याणि पेयानि मयार्पितानि
गृह्णन्तु सर्वे मयि सुप्रसन्नाः।
श्वो भावि कार्यं किल मण्डपेऽत्र
समेत्य सर्वैरिह संविधेयम्॥ २

नायाति पुत्री किल मण्डपेऽद्य
करोमि किं भूपतयोऽत्र कामम्।
प्रातः समाश्वास्य सुतां नयिष्ये
गच्छन्तु तस्माच्छिविराणि भूपाः॥ ३

न विग्रहो बुद्धिमतां निजाश्रिते
कृपा विधेया सततं ह्यपत्ये।
विधाय तां प्रातरिहानयिष्ये
सुतां तु गच्छन्तु नृपा यथेष्टम्॥ ४

इच्छापणं वा परिचिन्त्य चित्ते
प्रातः करिष्याम्यथ संविवाहम्।
सर्वैः समेत्यात्र नृपैः समेतैः
स्वयंवरः सर्वमतेन कार्यः॥ ५

श्रुत्वा नृपास्तेऽवितथं विदित्वा
वचो ययुः स्वानि निकेतनानि।
विधाय पार्श्वे नगरस्य रक्षां
चक्रुः क्रिया मध्यदिनोदिताश्च॥ ६

सुबाहुरप्यार्यजनैः समेत-
श्चकार कार्याणि विवाहकाले।
पुत्रीं समाहूय गृहे सुगुप्ते
पुरोहितैर्वेदविदां वरिष्ठैः॥ ७

स्नानादिकं कर्म वरस्य कृत्वा
विवाहभूषाकरणं तथैव।
आनाय्य वेदीरचिते गृहे वै
तस्यार्हणां भूमिपतिश्चकार॥ ८

व्यासजी बोले—पवित्र अन्तःकरणवाले राजा सुबाहु कन्याकी बात सुनकर राजाओंके पास जाकर बोले—हे महाराजाओ! आपलोग इस समय अपने-अपने शिविरमें जायँ, मैं कन्याका विवाह कल करूँगा॥ १॥

आपलोग मुझपर कृपा करके मेरे द्वारा अर्पित की गयी भोज्य वस्तुएँ स्वीकार करें। अब यह विवाहकार्य कल पुनः इसी स्वयंवर-मण्डपमें होगा। हम सब मिलकर उसे सम्पन्न करेंगे॥ २॥

हे नृपतिगण! आज मेरी पुत्री मण्डपमें नहीं आ रही है। मैं क्या करूँ? कल प्रातः पुत्रीको समझा-बुझाकर अवश्य लाऊँगा। अब सभी राजागण अपने-अपने शिविरमें चलें। बुद्धिमानोंको अपने आश्रितजनोंके प्रति विरोधभाव नहीं रखना चाहिये और अपनी सन्तानपर तो निरन्तर विशेष कृपा करनी चाहिये। हे नृपगण! प्रातःकाल समझा-बुझाकर मैं अपनी पुत्रीको यहाँ ले आऊँगा; इस समय आपलोग जायँ॥ ३-४॥

मैं इच्छास्वयंवरकी बातको भलीभाँति सोचकर प्रातः कन्याका विवाह कर दूँगा। एक साथ सभी राजाओंके उपस्थित हो जानेपर सबकी सम्मतिसे स्वयंवरका कार्य सम्पन्न होगा॥ ५॥

सुबाहुकी वाणी सुनकर सभी राजागण उसे सच मानकर अपने-अपने शिविरमें चले गये और नगरके आस-पास रक्षाका सम्यक् प्रबन्ध करके वे मध्याह्नकालकी क्रियाओंमें संलग्न हो गये॥ ६॥

उधर राजा सुबाहु भी श्रेष्ठजनोंके साथ अपने अन्तःपुरके एक गुप्त स्थानमें अपनी पुत्रीको बुलाकर वरिष्ठ वैदिक पुरोहितोंद्वारा विवाह-कृत्य सम्पन्न करनेका प्रयत्न करने लगे॥ ७॥

वरको स्नानादि कर्म कराकर उसे विवाहके योग्य वस्त्राभूषण पहनाकर और उसे वेदीरचित गृहमें ले आकर राजा सुबाहुने उसका पूजन किया॥ ८॥

सविष्टरं चाचमनीयमर्घ्यं
वस्त्रद्वयं गामथ कुण्डले द्वे।
समर्घ्य तस्मै विधिवन्नरेन्द्र
ऐच्छत्सुतादानमहीनसत्त्वः ॥ ९
सोऽप्यग्रहीत्सर्वमदीनचेताः
शशाम चिन्ताथ मनोरमायाः।
कन्यां सुकेशीं निधिकन्यकासमां
मेने तदात्मानमनुत्तमञ्च॥ १०
सुपूजितं भूषणवस्त्रदानै-
र्वरोत्तमं तं सचिवास्तदानीम्।
निन्युश्च ते कौतुकमण्डपान्त-
र्मुदान्विता वीतभयाश्च सर्वे॥ ११
समाप्तभूषां विधिवद्विधिज्ञाः
स्त्रियश्च तां राजसुतां सुयाने।
आरोप्य निन्युर्वरसन्निधानं
चतुष्कयुक्ते किल मण्डपे वै॥ १२
अग्निं समाधाय पुरोहितः स
हुत्वा यथावच्च तदन्तराले।
आह्वाययत्तौ कृतकौतुकौ तु
वधूवरौ प्रेमयुतौ निकामम्॥ १३
लाजाविसर्गं विधिवद्विधाय
कृत्वा हुताशस्य प्रदक्षिणाञ्च।
तौ चक्रतुस्तत्र यथोचितं तत्
सर्वं विधानं कुलगोत्रजातम्॥ १४
शतद्वयं चाश्वयुजां रथानां
सुभूषितं चापि शरौघसंयुतम्।
ददौ नृपेन्द्रस्तु सुदर्शनाय
सुपूजितं पारिबर्हं विवाहे॥ १५
मदोत्कटान्हेमविभूषितांश्च
गजान्गिरेः शृङ्गसमानदेहान्।
शतं सपादं नृपसूनवेऽसौ
ददावथ प्रेमयुतो नृपेन्द्रः॥ १६

वरको विष्टर, आचमन, अर्घ्य, दो वस्त्र, गौ और दो कुण्डल विधिवत् प्रदान करके महामनस्वी राजा सुबाहुने कन्यादान कर दिया॥ ९॥

उदार हृदयवाले सुदर्शनने भी सभी वस्तुएँ स्वीकार कर लीं। अब मनोरमाकी चिन्ता दूर हो गयी। उस समय कुबेरपुत्रीके समान उस सुन्दर केशोंवाली शशिकलाको पाकर सुदर्शनने अपने आपको परम धन्य समझा॥ १०॥

उस समय आनन्दित एवं निर्भीक सभी मन्त्री राजाद्वारा आभूषण तथा वस्त्र देकर सम्यक् रूपसे पूजित श्रेष्ठ वर सुदर्शनको कौतुकमण्डपमें ले गये॥ ११॥

तदनन्तर विधिकी जानकार स्त्रियाँ राजकुमारीको वस्त्राभूषणोंसे विधिवत् सुसज्जित करके उसे सुन्दर पालकीमें बिठाकर चौकोर वेदीसे युक्त मण्डपमें वरके पास ले गयीं॥ १२॥

उस वेदीपर पुरोहितने अग्नि-स्थापन करके और विधिवत् घृताहुति देकर कौतुकागारमें कौतुक किये हुए प्रेमरससे अत्यन्त सिक्त वर-वधूको बुलाया। उन दोनोंने विधिवत् लाजाहोम करनेके बाद अग्निकी प्रदक्षिणा करके अपने-अपने कुल तथा गोत्रकी समस्त रीतियाँ सम्पन्न कीं॥ १३-१४॥

महाराज सुबाहुने घोड़ोंसे जुते तथा अत्यधिक बाणोंसे लदे हुए दो सौ सुसज्जित रथ सुदर्शनको विवाहमें उपहारस्वरूप दिये। उन्होंने मदमत्त, सुवर्णके भूषणोंसे विभूषित तथा पर्वतके शिखरके समान शरीरवाले सवा सौ हाथी राजकुमार सुदर्शनको प्रेमपूर्वक प्रदान किये॥ १५-१६॥

दासीशतं काञ्चनभूषितं च
करेणुकानां च शतं सुचारु।
समर्पयामास वराय राजा
विवाहकाले मुदितोऽनुवेलम्॥ १७
अदात्पुनर्दाससहस्रमेकं
सर्वायुधैः सम्भृतभूषितञ्च।
रत्नानि वासांसि यथोचितानि
दिव्यानि चित्राणि तथाविकानि॥ १८
ददौ पुनर्वासगृहाणि तस्मै
रम्याणि दीर्घाणि विचित्रितानि।
सिन्धूद्भवानां तुरगोत्तमाना-
मदात्सहस्रद्वितयं सुरम्यम्॥ १९
क्रमेलकानां च शतत्रयं वै
प्रत्यादिशद्भारभृतां सुचारु।
शतद्वयं वै शकटोत्तमानां
तस्मै ददौ धान्यरसैः प्रपूरितम्॥ २०
मनोरमां राजसुतां प्रणम्य
जगाद वाक्यं विहिताञ्जलिः पुरः।
दासोऽस्मि ते राजसुते वरिष्ठे
तद् ब्रूहि यत्स्यात्तु मनोगतं ते॥ २१
तं चारुवाक्यं निजगाद सापि
स्वस्त्यस्तु ते भूप कुलस्य वृद्धिः।
सम्मानिताहं मम सूनवे त्वया
दत्ता यतो रत्नवरा स्वकन्या॥ २२
न बन्दिपुत्री नृप मागधी वा
स्तौमीह किं त्वां स्वजनं महत्तरम्।
सुमेरुतुल्यस्तु कृतः सुतोऽद्य मे
सम्बन्धिना भूपतिनोत्तमेन॥ २३
अहोऽतिचित्रं नृपतेश्चरित्रं
परं पवित्रं तव किं वदामि।
यद् भ्रष्टराज्याय सुताय मेऽद्य
दत्ता त्वया पूज्यसुता वरिष्ठा॥ २४
वनाधिवासाय किलाधनाय
पित्रा विहीनाय विसैन्यकाय।
सर्वानिमान्भूमिपतीन्विहाय
फलाशनायार्थविवर्जिताय ॥ २५

विवाहके समय राजाने स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत सौ दासियाँ और सुन्दर-सुन्दर सौ हथिनियाँ प्रसन्नतापूर्वक बार-बार वरको समर्पित कीं। उन्होंने सब प्रकारके आयुधों और आभूषणोंसे सुसज्जित एक हजार सेवक, बहुत-से रत्न, रंग-बिरंगे दिव्य सूती तथा ऊनी वस्त्र यथोचित रूपसे दिये॥ १७-१८॥

निवासके लिये रंग-बिरंगे, सुन्दर और विशाल भवन, सिन्धुदेशके उत्तम दो हजार घोड़े, भार ढोनेमें कुशल सुन्दर तीन सौ ऊँट, अन्न एवं रससे परिपूर्ण दो सौ उत्तम बैलगाड़ियाँ भी प्रदान कीं॥ १९-२०॥

तत्पश्चात् राजा सुबाहुने हाथ जोड़कर राजमाता मनोरमाको प्रणाम करके कहा—हे राजकुमारी! मैं आपका सेवक हूँ, अतः आपका जो मनोवांछित हो उसे कहिये॥ २१॥

तब उस मनोरमाने भी सुबाहुसे मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! आपका कल्याण हो, आपके वंशकी वृद्धि हो। आपने मेरा बहुत सम्मान किया; क्योंकि आपने अपनी रत्नमयी कन्या मेरे पुत्रको प्रदान की है॥ २२॥

हे राजन्! मैं [यश गानेमें कुशल] बन्दीजन और मागधोंकी पुत्री नहीं हूँ, [जो भलीभाँति आपकी प्रशंसा कर सकूँ।] आप तो अपने ही हैं, अतः आप श्रेष्ठ स्वजनकी मैं क्या स्तुति करूँ? आप एक उत्तम नरेश हैं और मेरे सम्बन्धी हो गये हैं; आपने मेरे पुत्रको सुमेरुके समान बना दिया है। अहो! महान् आश्चर्य है! आप-जैसे राजाके पवित्र चरित्रका वर्णन कहाँतक करूँ, जो कि आपने इन सभी राजाओंको छोड़कर राज्यसे च्युत, वनमें निवास करनेवाले, धनहीन, पिताविहीन, सेनारहित, फलके आहारपर ही रहनेवाले तथा सम्पत्तिहीन मेरे पुत्रको अपनी प्रिय तथा कुलीन कन्या प्रदान कर दी॥ २३—२५॥

समानवित्तेऽथ कुले बले च
ददाति पुत्रीं नृपतिश्च भूयः।
न कोऽपि मे भूप सुतेऽर्थहीने
गुणान्वितां रूपवतीञ्च दद्यात्॥ २६
वैरं तु सर्वैः सह संविधाय
नृपैर्वरिष्ठैर्बलसंयुतैश्च।
सुदर्शनायाथ सुतार्पिता मे
किं वर्णये धैर्यमिदं त्वदीयम्॥ २७
निशम्य वाक्यानि नृपः प्रहृष्टः
कृताञ्जलिर्वाक्यमुवाच भूयः।
गृहाण राज्यं मम सुप्रसिद्धं
भवामि सेनापतिरद्य चाहम्॥ २८
नोचेत्तदर्धं प्रतिगृह्य चात्र
सुतान्वितो राज्यफलानि भुङ्क्ष्व।
विहाय वाराणसिकानिवासं
वने पुरे वा स मतो न मेऽस्ति॥ २९
नृपास्तु सन्त्येव रुषान्विता वै
गत्वा करिष्ये प्रथमं तु सान्त्वनम्।
ततः परं द्वावपरावुपायौ
नोचेत्ततो युद्धमहं करिष्ये॥ ३०
जयाजयौ दैववशौ तथापि
धर्मे जयो नैव कृतेऽप्यधर्मे।
तेषां किलाधर्मवतां नृपाणां
कथं भविष्यत्यनुचिन्तितं वै॥ ३१
आकर्ण्य तद्भाषितमर्थवच्च
जगाद वाक्यं हितकारकं तम्।
मनोरमा मानमवाप्य तस्मात्
सर्वात्मना मोदयुता प्रसन्ना॥ ३२
राजञ्छिवं तेऽस्तु कुरुष्व राज्यं
त्यक्त्वा भयं त्वं स्वसुतैः समेतः।
सुतोऽपि मे नूनमवाप्य राज्यं
साकेतपुर्यां प्रचरिष्यतीह॥ ३३

अपने समान धन, कुल और बलवालेको ही कोई अपनी पुत्री प्रदान करता है। हे राजन्! आपको छोड़कर कोई भी राजा मेरे धनहीन पुत्रको अपनी रूपगुणसम्पन्ना पुत्री नहीं दे सकता॥ २६॥

सभी महान् तथा बलशाली राजाओंसे शत्रुता लेकर आपने मेरे सुदर्शनको अपनी कन्या अर्पित की है—हे राजन्! मैं आपके इस धैर्यका वर्णन क्या करूँ?॥ २७॥

इस प्रकार मनोरमाके [कृतज्ञतापूर्ण] वचन सुनकर महाराज सुबाहुने प्रसन्नतापूर्वक हाथ जोड़कर पुनः यह वचन कहा—मेरा यह अति प्रसिद्ध राज्य आप ले लीजिये और आजसे मैं आपका सेनापति हो जा रहा हूँ; नहीं तो आप आधा राज्य ही ले लें और अपने पुत्रके साथ यहीं रहकर राजसी भोग भोगें; क्योंकि अब काशीमें निवास छोड़कर किसी वन या ग्राममें आपलोग रहें—ऐसा मेरा विचार नहीं है॥ २८-२९॥

सभी उपस्थित भूपगण मुझपर अत्यन्त रुष्ट हैं। मैं जाकर पहले उन्हें शान्त करूँगा। इसके बाद दान एवं भेदनीतिका विधान करूँगा। यदि इसपर भी वे अनुकूल न होंगे तो उनसे युद्ध करूँगा॥ ३०॥

यद्यपि हार और जीत तो दैवाधीन हैं तथापि जिस पक्षमें धर्म रहता है, उसकी विजय होती है; अधर्मके पक्षवालेकी कभी नहीं। अतः अधर्मसे युक्त उन राजाओंका अपना सोचा हुआ कैसे हो सकता है?॥ ३१॥

उन सुबाहुसे सम्मान पाकर पूर्णरूपसे आनन्दमग्न मनोरमा उनकी सारगर्भित वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे हितकर वचन कहने लगी—हे राजन्! आपका कल्याण हो। आप निर्भय होकर अपने पुत्रोंके साथ राज्य कीजिये। मेरा पुत्र भी निश्चय ही अपना राज्य पाकर साकेतपुरी अयोध्यामें शासन करेगा॥ ३२-३३॥

विसर्जयास्मान्निजसद्म गन्तुं
शिवं भवानी तव संविधास्यति।
न कापि चिन्ता मम भूप वर्तते
सञ्चिन्तयन्त्याः परमाम्बिकां वै॥ ३४

दोषा गता विविधवाक्यपदै रसालै-
रन्योन्यभाषणपदैरमृतोपमैश्च ।
प्रातर्नृपाः समधिगम्य कृतं विवाहं
रोषान्विता नगरबाह्यगतास्तथोचुः॥ ३५

अद्यैव तं नृपकलङ्कधरञ्च हत्वा
बालं तथैव किल तं न विवाहयोग्यम्।
गृह्णीम तां शशिकलां नृपतेश्च लक्ष्मीं
लज्जामवाप्य निजसद्म कथं व्रजेम॥ ३६

शृण्वन्तु तूर्यनिनदान्किल वाद्यमाना-
ञ्छङ्खस्वनानभिभवन्ति मृदङ्गशब्दाः।
गीतध्वनिं च विविधं निगमस्वनञ्च
मन्यामहे नृपतिनात्र कृतो विवाहः॥ ३७

अस्मान्प्रतार्य वचनैर्विधिवच्चकार
वैवाहिकेन विधिना करपीडनं वै।
कर्तव्यमद्य किमहो प्रविचिन्तयन्तु
भूपाः परस्परमतिं च समर्थयन्तु॥ ३८

एवं वदत्सु नृपतिष्वथ कन्यकायाः
कृत्वा विवाहविधिमप्रतिमप्रभावः।
भूपान्निमन्त्रयितुमाशु जगाम राजा
काशीपतिः स्वसुहृदैः प्रथितप्रभावैः॥ ३९

आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा नृपाः काशीपतिं तदा।
नोचुः किञ्चिदपि क्रोधान्मौनमाधाय संस्थिताः॥ ४०

स गत्वा प्रणिपत्याह कृताञ्जलिरभाषत।
आगन्तव्यं नृपैः सर्वैर्भोजनार्थं गृहे मम॥ ४१

हे राजन्! अब आप हमलोगोंको अपने घर जानेके लिये आज्ञा दीजिये। भगवती दुर्गा आपका कल्याण करेंगी। हे राजन्! मुझे अब कोई चिन्ता नहीं है; क्योंकि मैं पराम्बा भगवतीका भलीभाँति चिन्तन करती रहती हूँ॥ ३४॥

इस प्रकार उन दोनोंमें विविध वाक्योंद्वारा अमृतके समान मधुर वार्तालापमें रात बीत गयी। प्रात:काल होनेपर सभी राजा विवाह हो जानेकी बात जानकर कुपित हो उठे और नगरके बाहर निकलकर आपसमें कहने लगे— ॥ ३५॥

हम आज ही उस कलंकी राजा सुबाहु तथा विवाहकी योग्यता न रखनेवाले उस कुमार सुदर्शनको मारकर राज्यलक्ष्मीसहित उस शशिकलाको छीन लेंगे, अन्यथा लज्जित होकर हमलोग कैसे अपने घर जायँगे?॥ ३६॥

आप सब लोग बजायी जा रही तुरहियों तथा शंखोंके निनाद, गीतध्वनि तथा अनेक प्रकारकी वेद-ध्वनि सुन लें। मृदंगोंके भी शब्द हो रहे हैं। हमलोग तो ऐसा मानते हैं कि राजा सुबाहुने विवाह सम्पन्न कर दिया॥ ३७॥

राजाने हमें बातोंसे ठगकर वैवाहिक विधिसे पाणिग्रहण-संस्कार अवश्य कर दिया। हे राजाओ! अब हमलोगोंको क्या करना चाहिये, इस विषयमें आपलोग सोचें और आपसमें विचार करके एक निर्णय लें॥ ३८॥

इस प्रकार राजाओंमें परस्पर बातचीत हो ही रही थी कि इतनेमें अप्रतिम प्रभाववाले काशीपति महाराज सुबाहु कन्याका पाणिग्रहण-संस्कार सम्पन्न करके प्रसिद्ध तेजवाले अपने मित्रोंको साथ लेकर उन राजाओंको निमन्त्रित करनेके लिये शीघ्र उनके पास गये॥ ३९॥

काशीराज सुबाहुको आते देखकर उपस्थित नरेशोंने क्रोधके कारण कुछ नहीं कहा। वे मौन साधकर बैठे रहे॥ ४०॥

राजा सुबाहु उनके पास जाकर हाथ जोड़कर प्रणाम करके कहने लगे कि सभी राजागण भोजन करनेके

कन्ययासौ वृतो भूपः किं करोमि हिताहितम्।
भवद्भिस्तु शमः कार्यो महान्तो हि दयालवः॥ ४२

तन्निशम्य वचस्तस्य नृपाः क्रोधपरिप्लुताः।
प्रत्यूचुर्भुक्तमस्माभिः स्वगृहं नृपते व्रज॥ ४३

कुरु कार्याण्यशेषाणि यथेष्टं सुकृतं कृतम्।
नृपाः सर्वे प्रयान्त्वद्य स्वानि स्वानि गृहाणि वै॥ ४४

सुबाहुरपि तच्छ्रुत्वा जगाम शङ्कितो गृहम्।
किं करिष्यन्ति संविग्नाः क्रोधयुक्ता नृपोत्तमाः॥ ४५

गते तस्मिन्महीपालाश्चक्रुश्च समयं पुनः।
रुद्ध्वा मार्गं ग्रहीष्यामः कन्यां हत्वा सुदर्शनम्॥ ४६

केचनोचुः किमस्माकं हन्त तेन नृपेण वै।
दृष्ट्वा तु कौतुकं सर्वं गमिष्यामो यथागतम्॥ ४७

इत्युक्त्वा ते नृपाः सर्वे मार्गमाक्रम्य संस्थिताः।
चकारोत्तरकार्याणि सुबाहुः स्वगृहं गतः॥ ४८

लिये मेरे घर आयें। कन्याने तो उस राजकुमार सुदर्शनका पतिरूपमें वरण कर लिया है। मैं इस विषयमें अच्छा-बुरा क्या कर सकता हूँ? अब आपलोग शान्त हो जायँ; क्योंकि महान् लोग दयालु होते हैं॥ ४१-४२॥

राजा सुबाहुकी बात सुनकर सभी राजा क्रोधसे तमतमा उठे। उन्होंने कहा—राजन्! हमलोग भोजन कर चुके, अब आप अपने घर जाइये। आपको जो अच्छा लगा, उसे आपने कर लिया। जो कार्य शेष हों उन सबको भी जाकर कर लीजिये। अब सभी राजागण अपने-अपने घर चले जायँगे॥ ४३-४४॥

सुबाहु भी यह सुनकर घर चले गये और शंका करने लगे कि ये क्षुब्ध तथा कुपित राजागण अब न जाने क्या कर डालेंगे॥ ४५॥

राजा सुबाहुके चले जानेपर उन नरेशोंने यह निश्चय किया कि अब हमलोग मार्ग रोककर सुदर्शनको मारकर कन्याको छीन लेंगे॥ ४६॥

उनमेंसे कुछ राजाओंने कहा—अरे! उस राजकुमार सुदर्शनसे हमारा क्या वैर? हमने यहाँका सब कौतुक देख लिया। अब हम जैसे आये थे, वैसे ही घर लौट चलें॥ ४७॥

ऐसा कहकर वे सब [विरोधी] राजागण मार्ग रोककर खड़े हो गये और राजा सुबाहु अपने भवन पहुँचकर आगेके कृत्य सम्पादित करने लगे॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुदर्शनशशिकलयोर्विवाहवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

सुदर्शनका शशिकलाके साथ भारद्वाज-आश्रमके लिये प्रस्थान, युधाजित् तथा अन्य राजाओंसे सुदर्शनका घोर संग्राम, भगवती सिंहवाहिनी दुर्गाका प्राकट्य, भगवतीद्वारा युधाजित् और शत्रुजित्‌का वध, सुबाहुद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यास उवाच

तस्मै गौरवभोज्यानि विधाय विधिवत्तदा।
वासराणि च षड्राजा भोजयामास भक्तितः॥ १
एवं विवाहकार्याणि कृत्वा सर्वाणि पार्थिवः।
पारिबर्हं प्रदत्त्वाथ मन्त्रयन्सचिवैः सह॥ २
दूतैस्तु कथितं श्रुत्वा मार्गसंरोधनं कृतम्।
बभूव विमना राजा सुबाहुरमितद्युतिः॥ ३

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस समय राजा सुबाहुने छः दिनोंतक विविध प्रकारके भोजन बनवाकर सुदर्शनको प्रेमपूर्वक खिलाया॥ १॥

इस प्रकार विवाहके सभी कृत्य करके राजा सुबाहु सुदर्शनको उपहार प्रदान करके सचिवोंके साथ मन्त्रणा कर रहे थे, उसी समय अपने दूतोंका यह कथन सुनकर कि विरोधी राजाओंने मार्ग रोक रखा है, वे अमित तेजवाले राजा सुबाहु खिन्नमनस्क हो गये॥ २-३॥

सुदर्शनस्तदोवाच श्वशुरं संशितव्रतः।
अस्मान्विसर्जयाशु त्वं गमिष्यामो ह्यशङ्किताः॥ ४

भारद्वाजाश्रमं पुण्यं गत्वा तत्र समाहिताः।
निवासाय विचारो वै कर्तव्यः सर्वथा नृप॥ ५

नृपेभ्यश्च न कर्तव्यं भयं किञ्चित्त्वयानघ।
जगन्माता भवानी मे साहाय्यं वै करिष्यति॥ ६

व्यास उवाच

तस्येति मतमाज्ञाय जामातुर्नृपसत्तमः।
विससर्ज धनं दत्त्वा प्रतस्थे सोऽपि सत्वरः॥ ७

बलेन महताविष्टो ययावनु नृपोत्तमः।
सुदर्शनो वृतस्तत्र चचाल पथि निर्भयः॥ ८

रथैः परिवृतः शूरः सदारो रथसंस्थितः।
गच्छन्ददर्श सैन्यानि नृपाणां रघुनन्दनः॥ ९

सुबाहुरपि तान्वीक्ष्य चिन्ताविष्टो बभूव ह।
विधिवत्स शिवां चित्ते जगाम शरणं मुदा॥ १०

जजापैकाक्षरं मन्त्रं कामराजमनुत्तमम्।
निर्भयो वीतशोकश्च पत्न्या सह नवोढया॥ ११

ततः सर्वे महीपालाः कृत्वा कोलाहलं तदा।
उत्थिताः सैन्यसंयुक्ता हन्तुकामास्तु कन्यकाम्॥ १२

काशिराजस्तु तान्दृष्ट्वा हन्तुकामो बभूव ह।
निवारितस्तदात्यर्थं राघवेण जिगीषता॥ १३

तत्रापि नेदुः शङ्खाश्च भेर्यश्चानकदुन्दुभिः।
सुबाहोश्च नृपाणाञ्च परस्परजिघांसताम्॥ १४

शत्रुजित्तु सुसंवृत्तः स्थितस्तत्र जिघांसया।
युधाजित्तत्सहायार्थं सन्नद्धः प्रबभूव ह॥ १५

तब व्रतपरायण सुदर्शनने अपने श्वसुरसे कहा—आप हमें शीघ्र विदा कर दीजिये, हम निःशंक होकर चले जायँगे॥ ४॥

हे राजन्! भारद्वाजमुनिके पवित्र आश्रममें पहुँचनेपर वहीं सावधानीके साथ आगे रहनेके लिये विचार कर लिया जायगा॥ ५॥

अतः हे पुण्यात्मन्! उन राजाओंसे आप कुछ भी भय न करें; क्योंकि जगज्जननी भगवती मेरी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६॥

व्यासजी बोले—अपने जामाता सुदर्शनका ऐसा विचार जानकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने उन्हें धन देकर विदा कर दिया और वे सुदर्शन भी तत्काल चल पड़े। नृपश्रेष्ठ सुबाहु भी एक विशाल सेना लेकर उनके पीछे-पीछे चले। इस प्रकार उन सैनिकोंसे आवृत सुदर्शन निर्भय होकर मार्गमें चले जा रहे थे॥ ७-८॥

रथोंसे घिरे हुए एक रथपर अपनी पत्नीके साथ बैठकर जाते हुए रघुनन्दन सुदर्शनने मार्गमें उन राजाओंके सैनिकोंको देखा॥ ९॥

राजा सुबाहु भी उन सैनिकोंको देखकर चिन्तित हुए। तब सुदर्शनने विधिपूर्वक अपने मनमें भगवती जगदम्बाका ध्यान किया और प्रसन्नतापूर्वक उनकी शरण ली। उस समय सुदर्शन एकाक्षर कामराज नामक सर्वोत्तम मन्त्रका जप कर रहे थे, उसके प्रभावसे वे अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ निर्भय तथा चिन्तामुक्त थे॥ १०-११॥

इसी बीच सभी राजा एक साथ कोलाहल करके कन्याका हरण करनेकी इच्छासे अपनी-अपनी सेनाके साथ उनकी ओर बढ़े॥ १२॥

उन्हें ऐसा करते देखकर काशीनरेश सुबाहुने उनको मारनेका विचार किया, किंतु विजयकी इच्छावाले रघुवंशी सुदर्शनने उन्हें मना कर दिया॥ १३॥

उस समय एक दूसरेको मार डालनेकी अभिलाषावाले महाराज सुबाहु तथा अन्य राजाओंकी सेनाओंमें शंख भेरी, नगाड़े और दुन्दुभि बजने लगे॥ १४॥

सुदर्शनको मार डालनेकी इच्छासे शत्रुजित् सैन्य-बलसे युक्त होकर बड़ी तत्परतासे तैयार खड़ा था और राजा युधाजित् भी उसकी सहायताके लिये

केचिच्च प्रेक्षकास्तस्य सहानीकैः स्थितास्तदा।
युधाजिदग्रतो गत्वा सुदर्शनमुपस्थितः॥ १६

शत्रुजित्तेन सहितो हन्तुं भ्रातरमानुजः।
परस्परं ते बाणौघैस्ततक्षुः क्रोधमूर्च्छिताः॥ १७

सम्मर्दः सुमहांस्तत्र सम्प्रवृत्तः सुमार्गणैः।
काशीपतिस्तदा तूर्णं सैन्येन बहुना वृतः॥ १८

साहाय्यार्थं जगामाशु जामातरमनिन्दितम्।
एवं प्रवृत्ते संग्रामे दारुणे लोमहर्षणे॥ १९

प्रादुर्बभूव सहसा देवी सिंहोपरि स्थिता।
नानायुधधरा रम्या वराभूषणभूषिता॥ २०

दिव्याम्बरपरीधाना मन्दारस्रक्सुसंयुता।
तां दृष्ट्वा तेऽथ भूपाला विस्मयं परमं गताः॥ २१

केयं सिंहसमारूढा कुतो वेति समुत्थिता।
सुदर्शनस्तु तां वीक्ष्य सुबाहुमिति चाब्रवीत्॥ २२

पश्य राजन् महादेवीमागतां दिव्यदर्शनाम्।
अनुग्रहाय मे नूनं प्रादुर्भूता दयान्विता॥ २३

निर्भयोऽहं महाराज जातोऽस्मि निर्भयादपि।
सुदर्शनः सुबाहुश्च तामालोक्य वराननाम्॥ २४

प्रणामं चक्रतुस्तस्या मुदितौ दर्शनेन च।
ननाद च तदा सिंहो गजास्त्रस्ताश्चकम्पिरे॥ २५

ववुर्वाता महाघोरा दिशश्चासन्सुदारुणाः।
सुदर्शनस्तदा प्राह निजं सेनापतिं प्रति॥ २६

मार्गे व्रज त्वं तरसा भूपाला यत्र संस्थिताः।
किं करिष्यन्ति राजानः कुपिता दुष्टचेतसः॥ २७

शरणार्थञ्च सम्प्राप्ता देवी भगवती हि नः।
निरातङ्कैश्च गन्तव्यं मार्गेऽस्मिन्भूपसङ्कुले॥ २८

सन्नद्ध थे। उनमें कुछ राजागण अपनी सेनाके साथ दर्शकके रूपमें खड़े थे। तभी युधाजित् आगे बढ़कर सुदर्शनके समक्ष जा डटा। उसके साथ शत्रुजित् भी अपने भाईका वध करनेके लिये आ गया। तब क्रोधके वशीभूत होकर वे सब परस्पर एक-दूसरेपर बाणोंसे प्रहार करने लगे। इस प्रकार वहाँ बाणोंद्वारा बड़ा भारी संग्राम छिड़ गया। तब काशीनरेश सुबाहु एक विशाल सेना लेकर अपने सुप्रशंसित जामाताकी सहायताके लिये जा पहुँचे॥ १५—१८½ ॥

इस प्रकार भयानक लोमहर्षक संग्राम छिड़ जानेपर सहसा भगवती प्रकट हो गयीं। वे सिंहपर सवार थीं, विविध प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण किये थीं, अत्यन्त मनोहर थीं तथा उत्तम आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य वस्त्र पहने थीं और मन्दारकी मालासे सुशोभित थीं॥ १९-२०½ ॥

उन्हें देखकर वे राजागण अत्यन्त चकित हो गये। वे कहने लगे कि सिंहपर सवार यह स्त्री कौन है और कहाँसे प्रकट हो गयी है? उन्हें देखकर सुदर्शनने सुबाहुसे कहा—हे राजन्! यहाँ प्रादुर्भूत हुई इन दिव्य दर्शनवाली महादेवीको आप देखें। ये दयामयी भगवती निश्चय ही मुझपर अनुग्रह करनेके लिये प्रकट हुई हैं। हे महाराज! मैं निर्भय तो पहले ही था, किंतु अब और भी अधिक निर्भय हो गया॥ २१—२३½ ॥

सुदर्शन और सुबाहुने उन सुमुखी भगवतीको देखकर उन्हें प्रणाम किया। उनके दर्शनसे वे दोनों प्रसन्न हो गये। उसी समय भगवतीके सिंहने भीषण गर्जन किया, जिससे उस रणभूमिमें विद्यमान सभी हाथी भयसे काँपने लगे। उस समय महाभीषण आँधी चलने लगी और सभी दिशाएँ अत्यन्त भयानक हो गयीं॥ २४-२५½ ॥

तब सुदर्शनने अपने सेनापतिसे कहा कि जहाँ ये राजागण [मार्ग रोककर] खड़े हैं, उधर ही तुम वेगसे आगे बढ़ो। ये दुष्ट तथा कुपित राजालोग हमारा क्या कर लेंगे? अब हमें शरण देनेके लिये स्वयं भगवती जगदम्बा आ गयी हैं। अतएव हमें निर्भय होकर राजाओंसे भरे इस मार्गपर आगे बढ़ना

स्मृता मया महादेवी रक्षणार्थमुपागता।
तच्छ्रुत्वा वचनं सेनापतिस्तेन पथाव्रजत्॥ २९

युधाजित्तु सुसंक्रुद्धस्तानुवाच महीपतीन्।
किं स्थिता भयसन्त्रस्ता निघ्नन्तु कन्यकान्वितम्॥ ३०

अवमन्य च नः सर्वान्बलहीनो बलाधिकान्।
कन्यां गृहीत्वा संयाति निर्भयस्तरसा शिशुः॥ ३१

किं भीताः कामिनीं वीक्ष्य सिंहोपरि सुसंस्थिताम्।
नोपेक्ष्यो हि महाभागा हन्तव्योऽत्र समाहितैः॥ ३२

हत्वैनं संग्रहीष्यामः कन्यां चारुविभूषणाम्।
नायं केसरिणादत्तां छेत्तुमर्हति जम्बुकः॥ ३३

इत्युक्त्वा सैन्यसंयुक्तः शत्रुजित्सहितस्तदा।
योद्धुकामः सुसम्प्राप्तो युधाजित्क्रोधसंवृतः॥ ३४

मुमोच विशिखांस्तूर्णं समपुंखाञ्छिलाशितान्।
धनुराकृष्य कर्णान्तं कर्मारपरिमार्जितान्॥ ३५

हन्तुकामः सुदुर्मेधाः सुदर्शनमथोपरि।
सुदर्शनस्तु तान्बाणैश्चिच्छेदापततः क्षणात्॥ ३६

एवं युद्धे प्रवृत्तेऽथ चुकोप चण्डिका भृशम्।
दुर्गादेवी मुमोचाथ बाणान्युधाजितं प्रति॥ ३७

नानारूपा तदा जाता नानाशस्त्रधरा शिवा।
सम्प्राप्ता तुमुलं तत्र चकार जगदम्बिका॥ ३८

शत्रुजिन्निहतस्तत्र युधाजिदपि पार्थिवः।
पतितौ तौ रथाभ्यां तु जयशब्दस्तदाभवत्॥ ३९

विस्मयं परमं प्राप्ता भूपाः सर्वे विलोक्य ताम्।
निधनं मातुलस्यापि भागिनेयस्य संयुगे॥ ४०

चाहिये। मेरे स्मरण करते ही मेरी रक्षाके लिये ये भगवती आ गयी हैं। सुदर्शनका वचन सुनकर सेनापति उसी मार्गसे आगे बढ़ा॥ २६—२९॥

अतिशय कुपित होकर युधाजित्‌ने उन राजाओंसे कहा—तुमलोग भयभीत होकर खड़े क्यों हो; कन्यासहित इस सुदर्शनको मार डालो॥ ३०॥

हम सभी बलवानोंका तिरस्कार करके यह बलहीन बालक कन्याको लेकर निर्भीकतापूर्वक बड़े वेगसे चला जा रहा है॥ ३१॥

सिंहपर विराजमान उस स्त्रीको देखकर तुमलोग क्यों डरते हो? हे महाभाग राजाओ! इस समय सुदर्शनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये और अत्यन्त सावधान होकर इसका वध कर देना चाहिये॥ ३२॥

इसे मारकर हम सुन्दर आभूषण धारण करनेवाली कन्याको छीन लेंगे। हम सिंहसदृश वीरोंके भागको यह सियार नहीं ले जा सकता॥ ३३॥

ऐसा कहकर वह युधाजित् अत्यन्त कुपित हो [अपने दौहित्र] शत्रुजित् तथा विशाल सेनाको साथ लिये हुए युद्धकी इच्छासे आ डटा॥॥ ३४॥

अब वह कानतक धनुष खींचकर लोहकारके द्वारा सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए, शिलापर घिसकर तेज किये गये तथा समान पुच्छयुक्त बाणोंको शीघ्रतापूर्वक छोड़ने लगा॥ ३५॥

इस प्रकार उसके ऊपर प्रहार करके वह दुर्बुद्धि युधाजित् सुदर्शनको मार डालना चाहता था, किंतु सुदर्शनने उसके बाणोंको छूटते ही अपने बाणोंसे क्षणभरमें काट डाला॥ ३६॥

वह भीषण युद्ध छिड़ जानेपर भगवती चण्डिका अत्यन्त क्रुद्ध हो उठीं और युधाजित्‌पर बाण बरसाने लगीं॥ ३७॥

उस समय कल्याणमयी जगदम्बिका विविध रूप धारण कर लेती थीं। वे नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र लेकर घमासान युद्ध कर रही थीं॥ ३८॥

कुछ ही क्षणोंमें शत्रुजित् और राजा युधाजित्—दोनों मार डाले गये और अपने-अपने रथोंसे गिर पड़े। उस समय जयजयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ३९॥

उस युद्धमें भगवतीको तथा मामा और भांजेकी (नाना-नातीकी) मृत्यु देखकर सभी राजा बहुत विस्मयमें पड़ गये॥ ४०॥

सुबाहुरपि तद् दृष्ट्वा निधनं संयुगे तयोः।
तुष्टाव परमप्रीतो दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्॥ ४१

सुबाहुरुवाच

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः।
दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥ ४२

नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः।
विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥ ४३

नाहं गतिं तव धिया परिचिन्तयन्वै
जानामि देवि सगुणः किल निर्गुणायाः।
किं स्तौमि विश्वजननीं प्रकटप्रभावां
भक्तार्तिनाशनपरां परमां च शक्तिम्॥ ४४

वाग्देवता त्वमसि सर्वगतैव बुद्धि-
र्विद्या मतिश्च गतिरप्यसि सर्वजन्तोः।
त्वां स्तौमि किं त्वमसि सर्वमनोनियन्त्री
किं स्तूयते हि सततं खलु चात्मरूपम्॥ ४५

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं स्तुवन्तो
नान्तं गताः सुरवराः किल ते गुणानाम्।
क्वाहं विभेदमतिरम्ब गुणैर्वृतो वै
वक्तुं क्षमस्तव चरित्रमहोऽप्रसिद्धः॥ ४६

सत्सङ्गतिः कथमहो न करोति कामं
प्रासङ्गिकापि विहिता खलु चित्तशुद्धिः।
जामातुरस्य विहितेन समागमेन
प्राप्तं मयाद्भुतमिदं तव दर्शनं वै॥ ४७

ब्रह्मापि वाञ्छति सदैव हरो हरिश्च
सेन्द्राः सुराश्च मुनयो विदितार्थतत्त्वाः।
यद्दर्शनं जननि तेऽद्य मया दुरापं
प्राप्तं विना दमशमादिसमाधिभिश्च॥ ४८

महाराज सुबाहु भी रणभूमिमें उन दोनोंका मरण देखकर बहुत प्रसन्न हुए और दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे॥ ४१॥

सुबाहु बोले—जगत्‌को धारण करनेवाली देवीको नमस्कार है। भगवती शिवाको निरन्तर नमस्कार है। मनोरथ पूर्ण करनेवाली आप भगवती दुर्गाको बार-बार नमस्कार है॥ ४२॥

आप शिवा और शान्तिदेवीको नमस्कार है। हे मोक्षदायिनि! आप विद्यास्वरूपिणीको नमस्कार है। हे जगन्माता! हे शिवे! आप विश्वव्यापिनी तथा जगज्जननीको नमस्कार है॥ ४३॥

हे देवि! मैं सगुण प्राणी अपनी बुद्धिसे बहुत प्रकारसे चिन्तन करके भी आप निर्गुणा भगवतीकी गतिको नहीं जान पाता। हे विश्वजननि! प्रत्यक्ष प्रभाववाली, भक्तोंकी पीड़ा दूर करनेमें तत्पर तथा परम शक्तिस्वरूपा आपकी स्तुति मैं कैसे करूँ?॥ ४४॥

आप ही देवी सरस्वती हैं, आप ही बुद्धिरूपसे सबके भीतर विराजमान हैं, आप ही सब प्राणियोंकी विद्या, मति और गति हैं और आप ही सबके मनका नियन्त्रण करती हैं, तब मैं आपकी स्तुति कैसे करूँ? सर्वव्यापी आत्माके रूपकी भी स्तुति भला कभी की जा सकती है?॥ ४५॥

देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु और शिव निरन्तर आपकी स्तुति करते हुए भी आपके गुणोंके पार नहीं जा सके। तब हे अम्ब! भेदबुद्धिवाला, सत्त्व आदि गुणोंसे आबद्ध तथा अप्रसिद्ध एक तुच्छ जीव मैं आपके चरित्रका वर्णन करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ?॥ ४६॥

अहो! सत्संग कौन-सा मनोरथ पूर्ण नहीं कर देता? आपके इस प्रासंगिक संगसे ही मेरा चित्त शुद्ध हो गया। [आपके भक्त] अपने इस जामाता सुदर्शनके संगके प्रभावसे मैंने अनायास आपका यह अद्भुत दर्शन पा लिया॥ ४७॥

हे जननि! ब्रह्मा, शिव, भगवान् विष्णु, इन्द्र-सहित सभी देवता तथा तत्त्वज्ञानी मुनिलोग भी आपके जिस दर्शनको चाहते हैं, वह आपका दुर्लभ दर्शन मुझे बिना शम, दम तथा समाधि आदिके ही प्राप्त हो गया॥ ४८॥

क्वाहं सुमन्दमतिराशु तवावलोकं
क्वेदं भवानि भवभेषजमद्वितीयम्।
ज्ञातासि देवि सततं किल भावयुक्ता
भक्तानुकम्पनपरामरवर्गपूज्या ॥ ४९

किं वर्णयामि तव देवि चरित्रमेतद्
यद्रक्षितोऽस्ति विषमेऽत्र सुदर्शनोऽयम्।
शत्रू हतौ सुबलिनौ तरसा त्वयाद्य
भक्तानुकम्पि चरितं परमं पवित्रम् ॥ ५०

नाश्चर्यमेतदिति देवि विचारितेऽर्थे
त्वं पासि सर्वमखिलं स्थिरजङ्गमं वै।
त्रातस्त्वया च विनिहत्य रिपुर्दयातः
संरक्षितोऽयमधुना ध्रुवसन्धिसूनुः ॥ ५१

भक्तस्य सेवनपरस्य स्वयशोऽतिदीप्तं
कर्तुं भवानि रचितं चरितं त्वयैतत्।
नोचेत्कथं सुपरिगृह्य सुतां मदीयां
युद्धे भवेत्कुशलवाननवद्यशीलः ॥ ५२

शक्तासि जन्ममरणादिभयान्विहन्तुं
किं चित्रमत्र किल भक्तजनस्य कामम्।
त्वं गीयसे जननि भक्तजनैरपारा
त्वं पापपुण्यरहिता सगुणागुणा च ॥ ५३

त्वद्दर्शनादहमहो सुकृती कृतार्थो
जातोऽस्मि देवि भुवनेश्वरि धन्यजन्मा।
बीजं न ते न भजनं किल वेद्मि मात-
र्ज्ञातस्तवाद्य महिमा प्रकटप्रभावः ॥ ५४

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी प्रसन्नवदना शिवा।
उवाच तं नृपं देवी वरं वरय सुव्रत ॥ ५५

हे भवानि! कहाँ अतिशय मन्दमति मैं और कहाँ भवरूपी रोगके लिये औषधिस्वरूप आपका यह शीघ्र अद्वितीय दर्शन! हे देवि! मुझे ज्ञात हो गया कि आप सदा भावनायुक्त रहती हैं। देवसमूहद्वारा पूजी जानेवाली आप अपने भक्तोंपर अनुकम्पा करती हैं ॥ ४९ ॥

हे देवि! आपने इस भीषण संकटके समय जिस प्रकार इस सुदर्शनकी रक्षा की है, आपके इस चरित्रका मैं किस तरह वर्णन करूँ? आपने आज इसके दो बलवान् शत्रुओंको तत्काल मार डाला। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाला आपका यह चरित्र परम पवित्र है ॥ ५० ॥

हे देवि! विशेष विचार करनेपर ज्ञात होता है कि आपका ऐसा करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि आप अखिल स्थावर-जंगम जगत्‌की रक्षा करती हैं। आपने शत्रुको मारकर दयालुतावश ध्रुवसन्धिके पुत्र इस सुदर्शनकी इस समय रक्षा की ॥ ५१ ॥

हे भवानि! अपने सेवापरायण भक्तके यशको अत्यन्त उज्ज्वल बनानेके लिये ही आपने इस चरित्रकी रचना की है, नहीं तो मेरी कन्याका पाणिग्रहण करके यह असमर्थ सुदर्शन युद्धमें सकुशल जीवित कैसे बच सकता था? ॥ ५२ ॥

जब आप अपने भक्तोंके जन्म-मरण आदि भयोंको नष्ट करनेमें समर्थ हैं, तब उसकी लौकिक अभिलाषा पूर्ण कर देना कौन बड़ी बात है? हे जननि! आप पाप-पुण्यसे रहित, सगुणा तथा निर्गुणा हैं; इसी कारण भक्तजन सदा आपके गुण गाते रहते हैं ॥ ५३ ॥

हे देवि! हे भुवनेश्वरि! आज आपके दर्शनसे मैं पवित्र, कृतार्थ और धन्य जन्मवाला हो गया। हे माता! मैं न आपका भजन जानता हूँ और न तो बीजमन्त्र जानता हूँ। मैं आपकी प्रत्यक्ष प्रभाववाली महिमाको आज जान गया ॥ ५४ ॥

व्यासजी बोले—महाराज सुबाहुके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती शिवाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे भर गया। तब भगवतीने उन राजासे कहा—हे सुव्रत! तुम वर माँगो ॥ ५५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
सुबाहुकृतदेवीस्तुतिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

सुबाहुद्वारा भगवती दुर्गासे सदा काशीमें रहनेका वरदान माँगना तथा देवीका वरदान देना, सुदर्शनद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीका उसे अयोध्या जाकर राज्य करनेका आदेश देना, राजाओंका सुदर्शनसे अनुमति लेकर अपने-अपने राज्योंको प्रस्थान

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा भवान्याः स नृपोत्तमः।
प्रोवाच वचनं तत्र सुबाहुर्भक्तिसंयुतः॥ १

सुबाहुरुवाच

एकतो देवलोकस्य राज्यं भूमण्डलस्य च।
एकतो दर्शनं ते वै न च तुल्यं कदाचन॥ २

दर्शनात्सदृशं किञ्चित्त्रिषु लोकेषु नास्ति मे।
कं वरं देवि याचेऽहं कृतार्थोऽस्मि धरातले॥ ३

एतदिच्छाम्यहं मातर्याचितुं वाञ्छितं वरम्।
तव भक्तिः सदा मेऽस्तु निश्चला ह्यनपायिनी॥ ४

नगरेऽत्र त्वया मातः स्थातव्यं मम सर्वदा।
दुर्गादेवीति नाम्ना वै त्वं शक्तिरिह संस्थिता॥ ५

रक्षा त्वया च कर्तव्या सर्वदा नगरस्य ह।
यथा सुदर्शनस्त्रातो रिपुसंघादनामयः॥ ६

तथात्र रक्षा कर्तव्या वाराणस्यास्त्वयाम्बिके।
यावत्पुरी भवेद्भूमौ सुप्रतिष्ठा सुसंस्थिताः॥ ७

तावत्त्वयात्र स्थातव्यं दुर्गे देवि कृपानिधे।
वरोऽयं मम ते देयः किमन्यत्प्रार्थयाम्यहम्॥ ८

विविधान्सकलान्कामान्देहि मे विद्विषो जहि।
अभद्राणां विनाशञ्च कुरु लोकस्य सर्वदा॥ ९

व्यास उवाच

इति सम्प्रार्थिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
तमुवाच नृपं तत्र स्तुत्वा वै संस्थितं पुरः॥ १०

दुर्गोवाच

राजन् सदा निवासो मे मुक्तिपुर्यां भविष्यति।
रक्षार्थं सर्वलोकानां यावत्तिष्ठति मेदिनी॥ ११

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन भवानीका वचन सुनकर नृपश्रेष्ठ सुबाहुने भक्तिसे युक्त होकर यह बात कही—॥ १॥

सुबाहु बोले—हे माता! एक ओर देवलोक तथा समस्त भूमण्डलका राज्य और दूसरी ओर आपका दर्शन; वे दोनों तुल्य कभी नहीं हो सकते॥ २॥

आपके दर्शनसे बढ़कर समस्त त्रिलोकीमें कोई भी वस्तु नहीं है। हे देवि! मैं आपसे क्या वर माँगूँ? मैं तो इस जगतीतलमें आपके दर्शनसे ही कृतकृत्य हो गया॥ ३॥

हे माता! मैं तो यही अभीष्ट वर माँगना चाहता हूँ कि आपकी स्थिर तथा अखण्ड भक्ति मेरे हृदयमें बनी रहे॥ ४॥

हे माता! आप मेरी नगरी काशीमें सदा निवास करें। आप शक्तिस्वरूपा होकर दुर्गादेवीके नामसे यहाँ विराजमान रहें और सर्वदा नगरकी रक्षा करती रहें। हे अम्बिके! इस समय आपने जिस तरह शत्रुदलसे सुदर्शनकी रक्षा की है और उसे विकार-रहित बना दिया है, उसी तरह आप सदा वाराणसीकी रक्षा करें। हे देवि! हे कृपानिधे! जबतक भूलोकमें काशीनगरी सुप्रतिष्ठित होकर विद्यमान रहे, तबतक आप यहाँ विराजमान रहें—आप मुझे यही वरदान दें, इसके अतिरिक्त मैं आपसे और दूसरा क्या माँगूँ?॥ ५—८॥

आप मेरी विविध प्रकारकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करें, मेरे शत्रुओंका नाश करें और जगत‍्के सभी अमंगलोंको सदाके लिये नष्ट कर डालें॥ ९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार राजा सुबाहुके सम्यक् प्रार्थना करनेपर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा स्तुति करके अपने समक्ष खड़े राजा सुबाहुसे कहने लगीं—॥ १०॥

दुर्गाजी बोलीं—हे राजन्! जबतक यह पृथिवी रहेगी, तबतक सभी लोकोंकी रक्षाके लिये मैं निरन्तर इस मुक्तिपुरी काशीमें निवास करूँगी॥ ११॥

अथो सुदर्शनस्तत्र समागम्य मुदान्वितः।
प्रणम्य परया भक्त्या तुष्टाव जगदम्बिकाम्॥ १२

अहो कृपा ते कथयाम्यहं किं
त्रातस्त्वया यत्किल भक्तिहीनः।
भक्तानुकम्पी सकलो जनोऽस्ति
विमुक्तभक्तेरवनं व्रतं ते॥ १३

त्वं देवि सर्वं सृजसि प्रपञ्चं
श्रुतं मया पालयसि स्वसृष्टम्।
त्वमत्सि संहारपरे च काले
न तेऽत्र चित्रं मम रक्षणं वै॥ १४

करोमि किं ते वद देवि कार्यं
क्व वा व्रजामीत्यनुमोदयाशु।
कार्ये विमूढोऽस्मि तवाज्ञयाहं
गच्छामि तिष्ठे विहरामि मातः॥ १५

व्यास उवाच

तं तथा भाषमाणं तु देवी प्राह दयान्विता।
गच्छायोध्यां महाभाग कुरु राज्यं कुलोचितम्॥ १६

स्मरणीया सदाहं ते पूजनीया प्रयत्नतः।
शं विधास्याम्यहं नित्यं राज्ये ते नृपसत्तम॥ १७

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः।
मम पूजा प्रकर्तव्या बलिदानविधानतः॥ १८

अर्चा मदीया नगरे स्थापनीया त्वयानघ।
पूजनीया प्रयत्नेन त्रिकालं भक्तिपूर्वकम्॥ १९

शरत्काले महापूजा कर्तव्या मम सर्वदा।
नवरात्रविधानेन भक्तिभावयुतेन च॥ २०

चैत्रेऽश्विने तथाषाढे माघे कार्यो महोत्सवः।
नवरात्रे महाराज पूजा कार्या विशेषतः॥ २१

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां मम भक्तिसमन्वितैः।
कर्तव्या नृपशार्दूल तथाष्टम्यां सदा बुधैः॥ २२

इसके बाद सुदर्शन बड़ी प्रसन्नताके साथ वहाँ आकर उन्हें प्रणाम करके परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति करने लगे—॥ १२॥

अहो! मैं आपकी कृपाका वर्णन कहाँतक करूँ! आपने मुझ जैसे भक्तिहीनकी भी रक्षा कर ली। अपने भक्तोंपर तो सभी लोग अनुकम्पा करते हैं, किंतु भक्तिरहित प्राणीकी भी रक्षा करनेका व्रत आपने ही ले रखा है॥ १३॥

मैंने सुना है कि आप ही समस्त विश्व-प्रपंचकी रचना करती हैं और अपनेद्वारा सृजित उस जगत्का पालन करती हैं तथा यथोचित समय उपस्थित होनेपर उसे अपनेमें समाहित कर लेती हैं; तब आपने जो मेरी रक्षा की, उसमें कोई आश्चर्य नहीं॥ १४॥

हे देवि! अब यह बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ; मैं कहाँ जाऊँ? मुझे शीघ्र आदेश दीजिये। मैं इस समय किंकर्तव्यविमूढ हो रहा हूँ। हे माता! मैं आपकी ही आज्ञासे जाऊँगा, ठहरूँगा या विहार करूँगा॥ १५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस सुदर्शनसे भगवतीने दयापूर्वक कहा—हे महाभाग! अब तुम अयोध्या जाओ और अपने कुलकी मर्यादाके अनुसार राज्य करो॥ १६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तुम प्रयत्नके साथ सदा मेरा स्मरण तथा पूजन करते रहना और मैं भी तुम्हारे राज्यका सर्वदा कल्याण करती रहूँगी॥ १७॥

अष्टमी, चतुर्दशी और विशेष करके नवमी तिथिको विधि-विधानसे मेरी पूजा अवश्य करते रहना। हे अनघ! तुम अपने नगरमें मेरी प्रतिमा स्थापित करना और प्रयत्नके साथ भक्तिपूर्वक तीनों समय मेरा पूजन करते रहना॥ १८-१९॥

शरत्कालमें सर्वदा नवरात्रविधानके अनुसार भक्तिभावसे युक्त होकर मेरी महापूजा करनी चाहिये। हे महाराज! चैत्र, आश्विन, आषाढ़ तथा माघमासमें नवरात्रके अवसरपर मेरा महोत्सव मनाना चाहिये और विशेषरूपसे मेरी महापूजा करनी चाहिये॥ २०-२१॥

हे नृपशार्दूल! विज्ञजनोंको चाहिये कि वे भक्तियुक्त होकर कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तथा अष्टमीको सदा मेरी पूजा करें॥ २२॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी दुर्गा दुर्गतिनाशिनी।
नता सुदर्शनेनाथ स्तुता च बहुविस्तरम्॥ २३

अन्तर्हितां तु तां दृष्ट्वा राजानः सर्व एव ते।
प्रणेमुस्तं समागम्य यथा शक्रं सुरास्तथा॥ २४

सुबाहुरपि तं नत्वा स्थितश्चाग्रे मुदान्वितः।
ऊचुः सर्वे महीपाला अयोध्याधिपतिं तदा॥ २५

त्वमस्माकं प्रभुः शास्ता सेवकास्ते वयं सदा।
कुरु राज्यमयोध्यायां पालयास्मान्नृपोत्तम॥ २६

त्वत्प्रसादान्महाराज दृष्टा विश्वेश्वरी शिवा।
आदिशक्तिर्भवानी सा चतुर्वर्गफलप्रदा॥ २७

धन्यस्त्वं कृतकृत्योऽसि बहुपुण्यो धरातले।
यस्माच्च त्वत्कृते देवी प्रादुर्भूता सनातनी॥ २८

न जानीमो वयं सर्वे प्रभावं नृपसत्तम।
चण्डिकायास्तमोयुक्ता मायया मोहिताः सदा॥ २९

धनदारसुतानां च चिन्तनेऽभिरताः सदा।
मग्ना महार्णवे घोरे कामक्रोधझषाकुले॥ ३०

पृच्छामस्त्वां महाभाग सर्वज्ञोऽसि महामते।
केयं शक्तिः कुतो जाता किंप्रभावा वदस्व तत्॥ ३१

भव त्वं नौश्च संसारे साधवोऽति दयापराः।
तस्मान्नो वद काकुत्स्थ देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ३२

यत्प्रभावा च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामस्त्वं ब्रूहि नृवरोत्तम॥ ३३

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा तैस्तु ध्रुवसन्धिसुतो नृपः।
विचिन्त्य मनसा देवीं तानुवाच मुदान्वितः॥ ३४

व्यासजी बोले—राजा सुदर्शनके स्तुति तथा प्रणाम करनेके अनन्तर ऐसा कहकर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गा अन्तर्धान हो गयीं॥ २३॥

उन भगवतीको अन्तर्हित देखकर वहाँ उपस्थित सभी राजाओंने आकर सुदर्शनको उसी प्रकार प्रणाम किया जैसे देवता इन्द्रको प्रणाम करते हैं॥ २४॥

महाराज सुबाहु भी उन्हें प्रणाम करके बड़े हर्षपूर्वक उनके समक्ष खड़े हो गये। तदनन्तर उन सभी राजाओंने अयोध्यापति सुदर्शनसे कहा—॥ २५॥

हे नृपश्रेष्ठ! आप हमारे स्वामी तथा शासक हैं और हम आपके सेवक हैं। अब आप अयोध्यामें राज्य करें और हमारा पालन करें॥ २६॥

हे महाराज! आपकी कृपासे हमने धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको देनेवाली उन विश्वेश्वरी, शिवा और आदिशक्ति भवानीका दर्शन पा लिया॥ २७॥

आप इस धरतीपर धन्य, कृतकृत्य और बड़े पुण्यात्मा हैं; क्योंकि आपके लिये साक्षात् सनातनी देवी प्रकट हुईं॥ २८॥

हे नृपसत्तम! तमोगुणसे युक्त और सदा मायासे मोहित रहनेवाले हम सभी लोग भगवती चण्डिकाका प्रभाव नहीं जानते। हम सदा धन, स्त्री और पुत्रोंकी चिन्तामें व्यग्र रहकर काम-क्रोधरूपी मत्स्योंसे भरे घोर महासागरमें डूबे रहते हैं॥ २९-३०॥

हे महाभाग! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव हम आपसे यह पूछ रहे हैं कि ये शक्ति कौन हैं, कहाँसे उत्पन्न हुई हैं और इनका कैसा प्रभाव है? वह सब बताइये॥ ३१॥

साधु पुरुष बड़े दयालु होते हैं। अतएव आप हमारे लिये इस संसार-सागरकी नौका बन जाइये। हे काकुत्स्थ! अब आप भगवतीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन कीजिये॥ ३२॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनका जो प्रभाव हो, जो स्वरूप हो तथा वे जैसे प्रकट हुई हों; यह सब हम आपसे सुनना चाहते हैं, आप बतायें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—राजाओंके यह पूछनेपर ध्रुवसन्धिके पुत्र राजा सुदर्शन मन-ही-मन भगवतीका स्मरण करके हर्षपूर्वक उनसे कहने लगे—॥ ३४॥

सुदर्शन उवाच

किं ब्रवीमि महीपालास्तस्याश्चरितमुत्तमम्।
ब्रह्मादयो न जानन्ति सेशाः सुरगणास्तथा॥ ३५

सर्वस्याद्या महालक्ष्मीर्वरेण्या शक्तिरुत्तमा।
सात्त्विकीयं महीपाला जगत्पालनतत्परा॥ ३६

सृजते या रजोरूपा सत्त्वरूपा च पालने।
संहारे च तमोरूपा त्रिगुणा सा सदा मता॥ ३७

निर्गुणा परमा शक्तिः सर्वकामफलप्रदा।
सर्वेषां कारणं सा हि ब्रह्मादीनां नृपोत्तमाः॥ ३८

निर्गुणा सर्वथा ज्ञातुमशक्या योगिभिर्नृपाः।
सगुणा सुखसेव्या सा चिन्तनीया सदा बुधैः॥ ३९

राजान ऊचुः

बाल एव वनं प्राप्तस्त्वं तु नूनं भयातुरः।
कथं ज्ञाता त्वया देवी परमा शक्तिरुत्तमा॥ ४०

उपासिता कथं चैव पूजिता च कथं नृप।
या प्रसन्ना तु साहाय्यं चकार त्वरयान्विता॥ ४१

सुदर्शन उवाच

बालभावान्मया प्राप्तं बीजं तस्याः सुसम्मतम्।
स्मरामि प्रजपन्नित्यं कामबीजाभिधं नृपाः॥ ४२

ऋषिभिः कथ्यमाना सा मया ज्ञाताम्बिका शिवा।
स्मरामि तां दिवारात्रं भक्त्या परमया पराम्॥ ४३

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य राजानो भक्तितत्पराः।
तां मत्वा परमां शक्तिं निर्ययुः स्वगृहान्प्रति॥ ४४

सुबाहुरगमत्काश्यां तमापृच्छ्य सुदर्शनम्।
सुदर्शनोऽपि धर्मात्मा निर्जगाम सुकोसलान्॥ ४५

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! उन जगदम्बाके उत्तम चरित्रको मैं क्या कहूँ; क्योंकि ब्रह्मा आदि तथा इन्द्रसहित सभी देवता भी उन्हें नहीं जानते॥ ३५॥

हे राजाओ! वे भगवती सबकी आदिस्वरूपा हैं, महालक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हैं, वे वरेण्य हैं और उत्तम सात्त्विकी शक्तिके रूपमें समस्त विश्वका पालन करनेमें तत्पर रहती हैं॥ ३६॥

वे अपने रजोगुणी स्वरूपसे सृष्टि करती, सत्वगुणी स्वरूपसे पालन करती और तमोगुणी स्वरूपसे इसका संहार करती हैं, इसी कारण वे त्रिगुणात्मिका कही गयी हैं। परम शक्तिस्वरूपा निर्गुणा भगवती समस्त कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। हे श्रेष्ठ राजाओ! वे ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी भी आदिकारण हैं॥ ३७-३८॥

हे राजाओ! योगीलोग भी निर्गुणा भगवतीको जाननेमें सर्वथा असमर्थ हैं। अतः बुद्धिमानोंको चाहिये कि सरलतापूर्वक सेवनीय सगुणा भगवतीकी निरन्तर आराधना करें॥ ३९॥

राजागण बोले—बाल्यावस्थामें ही आप वनवासी हो गये थे तथा भयसे व्याकुल थे। तब आपको उन उत्तम परमा शक्तिका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?॥ ४०॥

हे नृप! आपने उनकी उपासना और पूजा कैसे की, जिससे शीघ्रतापूर्वक प्रसन्न होकर उन्होंने आपकी सहायता की॥ ४१॥

सुदर्शन बोले—हे राजाओ! बाल्यकालमें ही मुझे उनका अतिश्रेष्ठ बीजमन्त्र प्राप्त हो गया था। मैं उसी कामराज नामक बीजमन्त्रका सदा जप करता हुआ भगवतीका स्मरण करता रहता हूँ॥ ४२॥

ऋषियोंके द्वारा उन कल्याणमयी भगवतीके विषयमें बताये जानेपर मैंने उन्हें जाना और तभीसे मैं परम भक्तिके साथ दिन-रात उन परा शक्तिका स्मरण किया करता हूँ॥ ४३॥

व्यासजी बोले—सुदर्शनका वचन सुनकर वे राजा भी भक्तिपरायण हो गये और उन देवीको ही परम शक्ति मानकर अपने-अपने घर चले गये॥ ४४॥

सुदर्शनसे अनुमति लेकर महाराज सुबाहु काशी चले गये और धर्मात्मा सुदर्शन वहाँसे अयोध्याकी ओर चल पड़े॥ ४५॥

मन्त्रिणस्तु नृपं श्रुत्वा हतं शत्रुजितं मृधे।
जितं सुदर्शनञ्चैव बभूवुः प्रेमसंयुताः॥ ४६

आगच्छन्तं नृपं श्रुत्वा तं साकेतनिवासिनः।
उपायनान्युपादाय प्रययुः सम्मुखे जनाः॥ ४७

तथा प्रकृतयः सर्वे नानोपायनपाणयः।
ध्रुवसन्धिसुतं मत्वा मुदिताः प्रययुः प्रजाः॥ ४८

स्त्रियोपसंयुतः सोऽथ प्राप्यायोध्यां सुदर्शनः।
सम्मान्य सर्वलोकांश्च ययौ राजा निवेशनम्॥ ४९

बन्दिभिः स्तूयमानस्तु वन्द्यमानश्च मन्त्रिभिः।
कन्याभिः कीर्यमाणश्च लाजैः सुमनसैस्तथा॥ ५०

राजा शत्रुजित् युद्धमें मारा गया और सुदर्शन विजयी हुए—यह सुनकर मन्त्रीलोग प्रेमसे प्रफुल्लित हो उठे॥ ४६॥

राजा सुदर्शनके आगमनका समाचार सुनकर साकेतके निवासी विविध प्रकारके उपहार लेकर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और सब राजकर्मचारीगण भी हाथोंमें नाना प्रकारकी भेंट-सामग्री लेकर आये। महाराज ध्रुवसन्धिके पुत्र सुदर्शनको राजाके रूपमें जानकर अयोध्याकी समस्त प्रजा आनन्दविभोर हो गयी॥ ४७-४८॥

अपनी स्त्रीके साथ अयोध्यामें पहुँचकर सब लोगोंका सम्मान करके राजा सुदर्शन राजभवनमें गये। उस समय बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे थे, मन्त्रीगण उनकी वन्दना कर रहे थे और कन्याएँ उनके ऊपर लाजा (धानका लावा) तथा पुष्प बिखेर रही थीं॥ ४९-५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे सुदर्शनेन देवीमहिमवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुदर्शनका शत्रुजित्की माताको सान्त्वना देना, सुदर्शनद्वारा अयोध्यामें तथा राजा सुबाहुद्वारा काशीमें देवी दुर्गाकी स्थापना

व्यास उवाच

गत्वायोध्यां नृपश्रेष्ठो गृहं राज्ञः सुहृद्वृतः।
शत्रुजिन्मातरं प्राह प्रणम्य शोकसंकुलाम्॥ १

मातर्न ते मया पुत्रः संग्रामे निहतः किल।
न पिता ते युधाजिच्च शपे ते चरणौ तथा॥ २

दुर्गया तौ हतौ संख्ये नापराधो ममात्र वै।
अवश्यंभाविभावेषु प्रतीकारो न विद्यते॥ ३

न शोकोऽत्र त्वया कार्यो मृतपुत्रस्य मानिनी।
स्वकर्मवशगो जीवो भुङ्क्ते भोगान्सुखासुखान्॥ ४

व्यासजी बोले—अयोध्या पहुँचकर नृपश्रेष्ठ सुदर्शन अपने मित्रोंके साथ राजभवनमें गये। वहाँपर शत्रुजित्की परम शोकाकुल माताको प्रणामकर उन्होंने कहा—हे माता! मैं आपके चरणोंकी शपथ खाकर कहता हूँ कि आपके पुत्र तथा आपके पिता युधाजित्को युद्धमें मैंने नहीं मारा है॥ १-२॥

स्वयं भगवती दुर्गाने रणभूमिमें उनका वध किया है; इसमें मेरा अपराध नहीं है। होनी तो अवश्य होकर रहती है, उसे टालनेका कोई उपाय नहीं है॥ ३॥

हे मानिनि! अपने मृत पुत्रके विषयमें आप शोक न करें; क्योंकि जीव अपने पूर्वकर्मोंके अधीन होकर सुख-दुःखरूपी भोगोंको भोगता है॥ ४॥

दासोऽस्मि तव भो मातर्यथा मम मनोरमा।
तथा त्वमपि धर्मज्ञे न भेदोऽस्ति मनागपि॥ ५

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
तस्मान्न शोचितव्यं ते सुखे दुःखे कदाचन॥ ६

दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्।
आत्मानं शोकहर्षाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्॥ ७

दैवाधीनमिदं सर्वं नात्माधीनं कदाचन।
न शोकेन तदात्मानं शोषयेन्मतिमान्नरः॥ ८

यथा दारुमयी योषा नटादीनां प्रचेष्टते।
तथा स्वकर्मवशगो देही सर्वत्र वर्तते॥ ९

अहं वनगतो मातर्नाभवं दुःखमानसः।
चिन्तयन्स्वकृतं कर्म भोक्तव्यमिति वेद्मि च॥ १०

मृतो मातामहोऽत्रैव विधुरा जननी मम।
भयातुरा गृहीत्वा मां निर्ययौ गहनं वनम्॥ ११

लुण्ठिता तस्करैर्मार्गे वस्त्रहीना तथा कृता।
पाथेयञ्च हृतं सर्वं बालपुत्रा निराश्रया॥ १२

माता गृहीत्वा मां प्राप्ता भारद्वाजाश्रमं प्रति।
विदल्लोऽयं समायातस्तथा धात्रेयिकाबला॥ १३

मुनिभिर्मुनिपत्नीभिर्दयायुक्तैः समन्ततः।
पोषिताः फलनीवारैर्वयं तत्र स्थितास्त्रयः॥ १४

दुःखं न मे तदा ह्यासीत्सुखं नाद्य धनागमे।
न वैरं न च मात्सर्यं मम चित्ते तु कर्हिचित्॥ १५

नीवारभक्षणं श्रेष्ठं राजभोगात्परन्तपे।
तदाशी नरकं याति न नीवाराशनः क्वचित्॥ १६

हे माता! मैं आपका दास हूँ। जैसे मनोरमा मेरी माता हैं, वैसे ही आप भी मेरी माता हैं। हे धर्मज्ञे! आपमें और उनमें मेरे लिये कुछ भी भेद नहीं है॥ ५॥

अपने किये हुए शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। अतएव सुख-दुःखके विषयमें आपको कभी भी शोक नहीं करना चाहिये॥ ६॥

मनुष्यको चाहिये कि दुःखकी स्थितिमें अधिक दुःखवालोंको तथा सुखकी स्थितिमें अधिक सुखवालोंको देखे; अपने आपको हर्ष-शोकरूपी शत्रुओंके अधीन न करे। यह सब दैवके अधीन है, अपने अधीन कभी नहीं। अतएव बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि शोकसे अपनी आत्माको न सुखाये॥ ७-८॥

जैसे कठपुतली नट आदिके संकेतपर नाचती है, उसी प्रकार जीवको भी अपने कर्मके अधीन होकर सर्वत्र रहना पड़ता है॥ ९॥

हे माता! अपने किये हुए कर्मका फल भोगना ही पड़ता है—यह सोचते हुए मैं वनमें गया था, इसलिये मेरे मनमें दुःख नहीं हुआ। इस बातको मैं अभी भी जानता हूँ॥ १०॥

इसी अयोध्यामें मेरे नाना मारे गये, माता विधवा हो गयी। भयसे व्याकुल वह मुझे लेकर घोर वनमें चली गयी। रास्तेमें चोरोंने उसे लूट लिया, उसके वस्त्रतक उतार लिये और समस्त राह-सामग्री छीन ली। वह बालपुत्रा निराश्रय होकर मुझे लिये हुए भारद्वाजमुनिके आश्रमपर पहुँची। ये मन्त्री विदल्ल तथा अबला दासी हमारे साथ गये थे॥ ११—१३॥

आश्रमके मुनियों और मुनिपत्नियोंने दया करके नीवार तथा फलोंसे भलीभाँति हमारा पालन किया और हम तीनों वहीं रहने लगे॥ १४॥

उस समय निर्धन होनेके कारण न मुझे दुःख था और न अब धन आ जानेपर सुख ही है। मेरे मनमें कभी भी वैर तथा ईर्ष्याकी भावना नहीं रहती॥ १५॥

हे परन्तपे! राजसी भोजनकी अपेक्षा नीवारभक्षण श्रेष्ठ है; क्योंकि राजस अन्न खानेवाला नरकमें जा सकता है, किंतु नीवारभोजी कभी नहीं॥ १६॥

धर्मस्याचरणं कार्यं पुरुषेण विजानता।
सञ्जित्येन्द्रियवर्गं वै यथा न नरकं व्रजेत्॥ १७

मानुष्यं दुर्लभं मातः खण्डेऽस्मिन्भारते शुभे।
आहारादिसुखं नूनं भवेत्सर्वासु योनिषु॥ १८

प्राप्य तं मानुषं देहं कर्तव्यं धर्मसाधनम्।
स्वर्गमोक्षप्रदं नृणां दुर्लभं चान्ययोनिषु॥ १९

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा तेन लीलावत्यतिलज्जिता।
पुत्रशोकं परित्यज्य तमाहाश्रुविलोचना॥ २०

सापराधास्मि पुत्राहं कृता पित्रा युधाजिता।
हत्वा मातामहं तेऽत्र हृतं राज्यं तु येन वै॥ २१

न तं वारयितुं शक्ता तदाहं न सुतं मम।
यत्कृतं कर्म तेनैव नापराधोऽस्ति मे सुत॥ २२

तौ मृतौ स्वकृतेनैव कारणं त्वं तयोर्न च।
नाहं शोचामि तं पुत्रं सदा शोचामि तत्कृतम्॥ २३

पुत्रस्त्वमसि कल्याण भगिनी मे मनोरमा।
न च क्रोधो न शोको मे त्वयि पुत्र मनागपि॥ २४

कुरु राज्यं महाभाग प्रजाः पालय सुव्रत।
भगवत्याः प्रसादेन प्राप्तमेतदकण्टकम्॥ २५

तदाकर्ण्य वचो मातुर्नत्वा तां नृपनन्दनः।
जगाम भवनं रम्यं यत्र पूर्वं मनोरमा॥ २६

न्यवसत्तत्र गत्वा तु सर्वानाहूय मन्त्रिणः।
दैवज्ञानथ पप्रच्छ मुहूर्तं दिवसं शुभम्॥ २७

सिंहासनं तथा हैमं कारयित्वा मनोहरम्।
सिंहासने स्थितां देवीं पूजयिष्ये सदाप्यहम्॥ २८

स्थापयित्वासने देवीं धर्मार्थकाममोक्षदाम्।
राज्यं पश्चात्करिष्यामि यथा रामादिभिः कृतम्॥ २९

इन्द्रियोंपर सम्यक् नियन्त्रण करके विज्ञ पुरुषको धर्मका आचरण करना चाहिये, जिससे उसे नरकमें न जाना पड़े॥ १७॥

हे माता! इस पवित्र भारतवर्षमें मानवजन्म दुर्लभ है। आहारादिका सुख तो निश्चय ही सभी योनियोंमें मिल सकता है। स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मनुष्यतनको पाकर धर्मसाधन करना चाहिये; क्योंकि अन्य योनियोंमें यह दुर्लभ है॥ १८-१९॥

व्यासजी बोले—उस सुदर्शनके यह कहनेपर लीलावती बहुत लज्जित हुई और पुत्रशोक त्यागकर आँखोंमें आँसू भरके बोली—॥ २०॥

हे पुत्र! मेरे पिता युधाजित्ने मुझे अपराधिनी बना दिया। उन्होंने ही तुम्हारे नानाका वध करके राज्यका हरण कर लिया था॥ २१॥

हे तात! उस समय मैं उन्हें तथा अपने पुत्रको रोकनेमें समर्थ नहीं थी। उन्होंने जो कुछ किया, उसमें मेरा अपराध नहीं था॥ २२॥

वे दोनों अपने ही कर्मसे मृत्युको प्राप्त हुए हैं। उनकी मृत्युमें तुम कारण नहीं हो। अतएव मैं अपने उस पुत्रके लिये शोक नहीं करती। मैं सदा उसके किये कर्मकी चिन्ता करती रहती हूँ॥ २३॥

हे कल्याण! अब तुम्हीं मेरे पुत्र हो और मनोरमा मेरी बहन है। हे पुत्र! तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी शोक या क्रोध नहीं है॥ २४॥

हे महाभाग! अब तुम राज्य करो और प्रजाका पालन करो। हे सुव्रत! भगवतीकी कृपासे ही तुम्हें यह अकंटक राज्य प्राप्त हुआ है॥ २५॥

माता लीलावतीका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम करके राजकुमार सुदर्शन उस भव्य भवनमें गये, जहाँ पहले उनकी माता मनोरमा रहा करती थीं। वहाँ जाकर उन्होंने सब मन्त्रियों तथा ज्योतिषियोंको बुलाकर शुभ दिन और मुहूर्त पूछा और कहा कि सोनेका सुन्दर सिंहासन बनवाकर उसपर विराजमान देवीका मैं नित्य पूजन करूँगा। उस सिंहासनपर धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्थापना करनेके बाद ही मैं राज्यकार्य संचालित करूँगा, जैसा मेरे पूर्वज श्रीराम आदिने किया है। सभी नागरिकजनोंको चाहिये

पूजनीया सदा देवी सर्वैर्नागरिकैर्जनैः।
माननीया शिवा शक्तिः सर्वकामार्थसिद्धिदा॥ ३०

इत्युक्ता मन्त्रिणस्ते तु चक्रुर्वै राजशासनम्।
प्रासादं कारयामासुः शिल्पिभिः सुमनोरमम्॥ ३१

प्रतिमां कारयित्वाथ मुहूर्तेऽथ शुभे दिने।
द्विजानाहूय वेदज्ञान्स्थापयामास भूपतिः॥ ३२

हवनं विधिवत्कृत्वा पूजयित्वाथ देवताम्।
प्रासादे मतिमान् देव्याः स्थापयामास भूमिपः॥ ३३

उत्सवस्तत्र संवृत्तो वादित्राणां च निःस्वनैः।
ब्राह्मणानां वेदघोषैर्गानैस्तु विविधैर्नृप॥ ३४

व्यास उवाच

प्रतिष्ठाप्य शिवां देवीं विधिवद्वेदवादिभिः।
पूजां नानाविधां राजा चकारातिविधानतः॥ ३५

कृत्वा पूजाविधिं राजा राज्यं प्राप्य स्वपैतृकम्।
विख्यातश्चाम्बिका देवी कोसलेषु बभूव ह॥ ३६

राज्यं प्राप्य नृपः सर्वं सामन्तकनृपानथ।
वशे चक्रेऽतिधर्मिष्ठान्सद्धर्मविजयी नृपः॥ ३७

यथा रामः स्वराज्येऽभूद्दिलीपस्य रघुर्यथा।
प्रजानां वै सुखं तद्वन्मर्यादापि तथाभवत्॥ ३८

धर्मो वर्णाश्रमाणां च चतुष्पादभवत्तथा।
नाधर्मे रमते चित्तं केषामपि महीतले॥ ३९

ग्रामे ग्रामे च प्रासादांश्चक्रुः सर्वे जनाधिपाः।
देव्याः पूजा तदा प्रीत्या कोसलेषु प्रवर्तिता॥ ४०

कि वे सभी प्रकारके काम, अर्थ और सिद्धि प्रदान करनेवाली कल्याणमयी भगवती आदिशक्तिका पूजन तथा सम्मान करते रहें॥ २६—३०॥

राजा सुदर्शनके ऐसा कहनेपर मन्त्रीगण राजाज्ञाके पालनमें तत्पर हो गये। उन्होंने शिल्पियोंद्वारा एक बहुत सुन्दर मन्दिर तैयार कराया॥ ३१॥

तदनन्तर राजाने देवीकी प्रतिमा बनवाकर शुभ दिन और शुभ मुहूर्तमें वैदिक विद्वानोंको बुलाकर उसकी स्थापना की॥ ३२॥

तत्पश्चात् विधिवत् हवन तथा देवपूजन करके बुद्धिमान् राजाने उस मन्दिरमें देवीकी प्रतिमा स्थापित की॥ ३३॥

हे राजन्! उस समय ब्राह्मणोंके वेदघोष, विविध गानों तथा वाद्योंकी ध्वनिके साथ बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया॥ ३४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वेदवादी विद्वानोंद्वारा कल्याणमयी देवीकी विधिवत् स्थापना कराकर राजा सुदर्शनने बड़े विधानके साथ नाना प्रकारकी पूजा सम्पन्न की॥ ३५॥

इस प्रकार राजा सुदर्शन भगवतीकी पूजा करके अपना पैतृक राज्य प्राप्तकर विख्यात हो गये और कोसल देशमें अम्बिकादेवी भी विख्यात हो गयीं॥ ३६॥

सम्पूर्ण राज्य प्राप्त करनेके बाद सद्धर्मसे विजय प्राप्त करनेवाले राजा सुदर्शनने सभी धर्मात्मा सामन्त राजाओंको अपने अधीन कर लिया॥ ३७॥

जिस प्रकार अपने राज्यमें राम हुए और जिस प्रकार दिलीपके पुत्र राजा रघु हुए उसी प्रकार सुदर्शन भी हुए। जैसे उनके राज्यमें प्रजाओंको सुख था और मर्यादा थी, वैसा ही राजा सुदर्शनके राज्यमें भी था॥ ३८॥

उनके राज्यमें वर्णाश्रमधर्म चारों चरणोंसे समृद्ध हुआ। उस समय धरतीतलपर किसीका भी मन अधर्ममें लिप्त नहीं होता था॥ ३९॥

कोसलदेशके सभी राजाओंने प्रत्येक ग्राममें देवीके मन्दिर बनवाये। तबसे समस्त कोसलदेशमें प्रेमपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी॥ ४०॥

सुबाहुरपि काश्यां तु दुर्गायाः प्रतिमां शुभाम्।
कारयित्वा च प्रासादं स्थापयामास भक्तितः॥ ४१

महाराज सुबाहुने भी काशीमें मन्दिरका निर्माण कराकर भक्तिपूर्वक दुर्गादेवीकी दिव्य प्रतिमा स्थापित की॥ ४१॥

तत्र तस्या जनाः सर्वे प्रेमभक्तिपरायणाः।
पूजां चक्रुर्विधानेन यथा विश्वेश्वरस्य ह॥ ४२

काशीके सभी लोग प्रेम और भक्तिमें तत्पर होकर विधिवत् दुर्गादेवीकी उसी प्रकार पूजा करने लगे, जैसे भगवान् विश्वनाथजीकी करते थे॥ ४२॥

विख्याता सा बभूवाथ दुर्गा देवी धरातले।
देशे देशे महाराज तस्या भक्तिर्व्यवर्धत॥ ४३

सर्वत्र भारते लोके सर्ववर्णेषु सर्वथा।
भजनीया भवानी तु सर्वेषामभवत्तदा॥ ४४

हे महाराज! तबसे इस धरातलपर देश-देशमें भगवती दुर्गा विख्यात हो गयीं और लोगोंमें उनकी भक्ति बढ़ने लगी। उस समय भारतवर्षमें सब जगह सभी वर्णोंमें भवानी ही सबकी पूजनीया हो गयीं॥ ४३-४४॥

शक्तिभक्तिरताः सर्वे मानिनश्चाभवन्नृप।
आगमोक्तैरथ स्तोत्रैर्जपध्यानपरायणाः॥ ४५

नवरात्रेषु सर्वेषु चक्रुः सर्वे विधानतः।
अर्चनं हवनं यागं देव्या भक्तिपरा जनाः॥ ४६

हे नृप! सभी लोग भगवती शक्तिको मानने लगे, उनकी भक्तिमें निरत रहने लगे और वेद-वर्णित स्तोत्रोंके द्वारा उनके जप तथा ध्यानमें तत्पर हो गये। इस प्रकार भक्तिपरायण लोग सभी नवरात्रोंमें विधानपूर्वक भगवतीका पूजन, हवन तथा यज्ञ करने लगे॥ ४५-४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीस्थापनवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

◆

अथ षड्विंशोऽध्यायः

नवरात्रव्रत-विधान, कुमारीपूजामें प्रशस्त कन्याओंका वर्णन

जनमेजय उवाच

नवरात्रे तु सम्प्राप्ते किं कर्तव्यं द्विजोत्तम।
विधानं विधिवद् ब्रूहि शरत्काले विशेषतः॥ १

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! नवरात्रके आनेपर और विशेष करके शारदीय नवरात्रमें क्या करना चाहिये? उसका विधान आप मुझे भलीभाँति बताइये॥ १॥

किं फलं खलु कस्तत्र विधिः कार्यो महामते।
एतद्विस्तरतो ब्रूहि कृपया द्विजसत्तम॥ २

हे महामते! उस पूजनका क्या फल है और उसमें किस विधिका पालन करना चाहिये। हे द्विजवर! कृपया विस्तारके साथ मुझे यह सब बताइये॥ २॥

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि नवरात्रव्रतं शुभम्।
शरत्काले विशेषेण कर्तव्यं विधिपूर्वकम्॥ ३

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं पवित्र नवरात्रव्रतके विषयमें बता रहा हूँ, सुनिये। शरत्कालके नवरात्रमें विशेष करके यह व्रत करना चाहिये॥ ३॥

वसन्ते च प्रकर्तव्यं तथैव प्रेमपूर्वकम्।
द्वावृतू यमदंष्ट्राख्यौ नूनं सर्वजनेषु वै॥ ४

उसी प्रकार प्रेमपूर्वक वसन्त ऋतुके नवरात्रमें भी इस व्रतको करे। ये दोनों ऋतुएँ सब प्राणियोंके लिये यमदंष्ट्रा कही गयी हैं॥ ४॥

शरद्वसन्तनामानौ दुर्गमौ प्राणिनामिह।
तस्माद्यत्नादिदं कार्यं सर्वत्र शुभमिच्छता॥ ५

द्वावेव सुमहाघोरावृतू रोगकरौ नृणाम्।
वसन्तशरदावेव सर्वनाशकरावुभौ॥ ६

तस्मात्तत्र प्रकर्तव्यं चण्डिकापूजनं बुधैः।
चैत्राश्विने शुभे मासे भक्तिपूर्वं नराधिप॥ ७

अमावास्यां च सम्प्राप्य सम्भारं कल्पयेच्छुभम्।
हविष्यं चाशनं कार्यमेकभुक्तं तु तद्दिने॥ ८

मण्डपस्तु प्रकर्तव्यः समे देशे शुभे स्थले।
हस्तषोडशमानेन स्तम्भध्वजसमन्वितः॥ ९

गौरमृद्गोमयाभ्याञ्च लेपनं कारयेत्ततः।
तन्मध्ये वेदिका शुभ्रा कर्तव्या च समा स्थिरा॥ १०

चतुर्हस्ता च हस्तोच्छ्रा पीठार्थं स्थानमुत्तमम्।
तोरणानि विचित्राणि वितानञ्च प्रकल्पयेत्॥ ११

रात्रौ द्विजानथामन्त्र्य देवीतत्त्वविशारदान्।
आचारनिरतान्दान्तान्वेदवेदाङ्गपारगान्॥ १२

प्रतिपद्दिवसे कार्यं प्रातःस्नानं विधानतः।
नद्यां नदे तडागे वा वाप्यां कूपे गृहेऽथवा॥ १३

प्रातर्नित्यं पुरः कृत्वा द्विजानां वरणं ततः।
अर्घ्यपाद्यादिकं सर्वं कर्तव्यं मधुपूर्वकम्॥ १४

वस्त्रालङ्करणादीनि देयानि च स्वशक्तितः।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं विभवे सति कर्हिचित्॥ १५

विप्रैः सन्तोषितैः कार्यं सम्पूर्णं सर्वथा भवेत्।
नव पञ्च त्रयश्चैको देव्याः पाठे द्विजाः स्मृताः॥ १६

शरत् तथा वसन्त नामक ये दोनों ऋतुएँ संसारमें प्राणियोंके लिये दुर्गम हैं। अतएव आत्मकल्याणके इच्छुक व्यक्तिको बड़े यत्नके साथ यह नवरात्रव्रत करना चाहिये॥ ५॥

ये वसन्त तथा शरद्—दोनों ही ऋतुएँ बड़ी भयानक हैं और मनुष्योंके लिये रोग उत्पन्न करनेवाली हैं। ये सबका विनाश कर देनेवाली हैं। अतएव हे राजन्! बुद्धिमान् लोगोंको शुभ चैत्र तथा आश्विनमासमें भक्तिपूर्वक चण्डिकादेवीका पूजन करना चाहिये॥ ६-७॥

अमावस्या आनेपर व्रतकी सभी शुभ सामग्री एकत्रित कर ले और उस दिन एकभुक्त व्रत करे और हविष्य ग्रहण करे॥ ८॥

किसी समतल तथा पवित्र स्थानमें सोलह हाथ लम्बे-चौड़े और स्तम्भ तथा ध्वजाओंसे सुसज्जित मण्डपका निर्माण करना चाहिये॥ ९॥

उसको सफेद मिट्टी और गोबरसे लिपवा दे। तत्पश्चात् उस मण्डपके बीचमें सुन्दर, चौरस और स्थिर वेदी बनाये॥ १०॥

वह वेदी चार हाथ लम्बी-चौड़ी और हाथभर ऊँची होनी चाहिये। पीठके लिये उत्तम स्थानका निर्माण करे तथा विविध रंगोंके तोरण लटकाये और ऊपर चाँदनी लगा दे॥ ११॥

रात्रिमें देवीका तत्त्व जाननेवाले, सदाचारी, संयमी और वेद-वेदांगके पारंगत विद्वान् ब्राह्मणोंको आमन्त्रित करके प्रतिपदाके दिन प्रातःकाल नदी, नद, तड़ाग, बावली, कुआँ अथवा घरपर ही विधिवत् स्नान करे॥ १२-१३॥

प्रातःकालके समय नित्यकर्म करके ब्राह्मणोंका वरण-कर उन्हें मधुपर्क तथा अर्घ्य-पाद्य आदि अर्पण करे॥ १४॥

अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें वस्त्र, अलंकार आदि प्रदान करे। धन रहते हुए इस काममें कभी कृपणता न करे॥ १५॥

सन्तुष्ट ब्राह्मणोंके द्वारा किया हुआ कर्म सम्यक् प्रकारसे परिपूर्ण होता है। देवीका पाठ करनेके लिये नौ, पाँच, तीन अथवा एक ब्राह्मण बताये गये हैं॥ १६॥

वरयेद् ब्राह्मणं शान्तं पारायणकृते तदा।
स्वस्तिवाचनकं कार्यं वेदमन्त्रविधानतः॥ १७

वेद्यां सिंहासनं स्थाप्यं क्षौमवस्त्रसमन्वितम्।
तत्र स्थाप्याम्बिका देवी चतुर्हस्तायुधान्विता॥ १८

रत्नभूषणसंयुक्ता मुक्ताहारविराजिता।
दिव्याम्बरधरा सौम्या सर्वलक्षणसंयुता॥ १९

शङ्खचक्रगदापद्मधरा सिंहे स्थिता शिवा।
अष्टादशभुजा वापि प्रतिष्ठाप्या सनातनी॥ २०

अर्चाभावे तथा यन्त्रं नवार्णमन्त्रसंयुतम्।
स्थापयेत्पीठपूजार्थं कलशं तत्र पार्श्वतः॥ २१

पञ्चपल्लवसंयुक्तं वेदमन्त्रैः सुसंस्कृतम्।
सुतीर्थजलसम्पूर्णं हेमरत्नैः समन्वितम्॥ २२

पार्श्वे पूजार्थसम्भारान्परिकल्प्य समन्ततः।
गीतवादित्रनिर्घोषान्कारयेन्मङ्गलाय वै॥ २३

तिथौ हस्तान्वितायां च नन्दायां पूजनं वरम्।
प्रथमे दिवसे राजन् विधिवत्कामदं नृणाम्॥ २४

नियमं प्रथमं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत्।
उपवासेन नक्तेन चैकभुक्तेन वा पुनः॥ २५

करिष्यामि व्रतं मातर्नवरात्रमनुत्तमम्।
साहाय्यं कुरु मे देवि जगदम्ब ममाखिलम्॥ २६

यथाशक्ति प्रकर्तव्यो नियमो व्रतहेतवे।
पश्चात्पूजा प्रकर्तव्या विधिवन्मन्त्रपूर्वकम्॥ २७

चन्दनागुरुकर्पूरैः कुसुमैश्च सुगन्धिभिः।
मन्दारकरजाशोकचम्पकैः करवीरकैः॥ २८

मालतीब्रह्मकापुष्पैस्तथा बिल्वदलैः शुभैः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं धूपैर्दीपैर्विधानतः॥ २९

देवीभागवतका पारायण करनेके कार्यमें किसी शान्त ब्राह्मणका वरण करे और वैदिक मन्त्रोंसे स्वस्तिवाचन कराये॥ १७॥

वेदीपर रेशमी वस्त्रसे आच्छादित सिंहासन स्थापित करे। उसके ऊपर चार भुजाओं तथा उनमें आयुधोंसे युक्त देवीकी प्रतिमा स्थापित करे। भगवतीकी प्रतिमा रत्नमय भूषणोंसे युक्त, मोतियोंके हारसे अलंकृत, दिव्य वस्त्रोंसे सुसज्जित, शुभलक्षणसम्पन्न और सौम्य आकृतिकी हो। वे कल्याणमयी भगवती शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हों और सिंहपर सवार हों; अथवा अठारह भुजाओंसे सुशोभित सनातनी देवीको प्रतिष्ठित करे॥ १८—२०॥

भगवतीकी प्रतिमाके अभावमें नवार्णमन्त्रयुक्त यन्त्रको पीठपर स्थापित करे और पीठपूजाके लिये पासमें कलश भी स्थापित कर ले॥ २१॥

वह कलश पंचपल्लवयुक्त, वैदिक मन्त्रोंसे भलीभाँति संस्कृत, उत्तम तीर्थके जलसे पूर्ण और सुवर्ण तथा पंचरत्नमय होना चाहिये॥ २२॥

पासमें पूजाकी सब सामग्रियाँ रखकर उत्सवके निमित्त गीत तथा वाद्योंकी ध्वनि भी करानी चाहिये॥ २३॥

हस्तनक्षत्रयुक्त नन्दा (प्रतिपदा) तिथिमें पूजन श्रेष्ठ माना जाता है। हे राजन्! पहले दिन विधिवत् किया हुआ पूजन मनुष्योंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला होता है॥ २४॥

सबसे पहले उपवासव्रत, एकभुक्तव्रत अथवा नक्तव्रत—इनमेंसे किसी एक व्रतके द्वारा नियम करनेके पश्चात् ही पूजा करनी चाहिये॥ २५॥

[पूजनके पहले प्रार्थना करते हुए कहे—] हे माता! मैं सर्वश्रेष्ठ नवरात्रव्रत करूँगा। हे देवि! हे जगदम्बे! [इस पवित्र कार्यमें] आप मेरी सम्पूर्ण सहायता करें॥ २६॥

इस व्रतके लिये यथाशक्ति नियम रखे। उसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक विधिवत् भगवतीका पूजन करे॥ २७॥

चन्दन, अगरु, कपूर तथा मन्दार, करंज, अशोक, चम्पा, कनैल, मालती, ब्राह्मी आदि सुगन्धित पुष्पों, सुन्दर बिल्वपत्रों और धूप-दीपसे विधिवत् भगवती जगदम्बाका पूजन करना चाहिये॥ २८-२९॥

फलैर्नानाविधैरर्घ्यं प्रदातव्यं च तत्र वै।
नारिकेलैर्मातुलुङ्गैर्दाडिमीकदलीफलैः ॥ ३०

नारंगैः पनसैश्चैव तथा पूर्णफलैः शुभैः।
अन्नदानं प्रकर्तव्यं भक्तिपूर्वं नराधिप॥ ३१

मांसाशनं ये कुर्वन्ति तैः कार्यं पशुहिंसनम्।
महिषाजवराहाणां बलिदानं विशिष्यते॥ ३२

देव्यग्रे निहता यान्ति पशवः स्वर्गमव्ययम्।
न हिंसा पशुजा तत्र निघ्नतां तत्कृतेऽनघ॥ ३३

अहिंसा याज्ञिकी प्रोक्ता सर्वशास्त्रविनिर्णये।
देवतार्थे विसृष्टानां पशूनां स्वर्गतिर्ध्रुवा॥ ३४

होमार्थं चैव कर्तव्यं कुण्डं चैव त्रिकोणकम्।
स्थण्डिलं वा प्रकर्तव्यं त्रिकोणं मानतः शुभम्॥ ३५

त्रिकालं पूजनं नित्यं नानाद्रव्यैर्मनोहरैः।
गीतवादित्रनृत्यैश्च कर्तव्यश्च महोत्सवः॥ ३६

नित्यं भूमौ च शयनं कुमारीणां च पूजनम्।
वस्त्रालङ्करणैर्दिव्यैर्भोजनैश्च सुधामयैः॥ ३७

एकैकां पूजयेन्नित्यमेकवृद्ध्या तथा पुनः।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्रत्येकं नवकं च वा॥ ३८

विभवस्यानुसारेण कर्तव्यं पूजनं किल।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं राजञ्छक्तिमखे सदा॥ ३९

एकवर्षा न कर्तव्या कन्या पूजाविधौ नृप।
परमज्ञा तु भोगानां गन्धादीनां च बालिका॥ ४०

कुमारिका तु सा प्रोक्ता द्विवर्षा या भवेदिह।
त्रिमूर्तिश्च त्रिवर्षा च कल्याणी चतुरब्दिका॥ ४१

रोहिणी पञ्चवर्षा च षड्वर्षा कालिका स्मृता।
चण्डिका सप्तवर्षा स्यादष्टवर्षा च शाम्भवी॥ ४२

नववर्षा भवेद् दुर्गा सुभद्रा दशवार्षिकी।
अत ऊर्ध्वं न कर्तव्या सर्वकार्यविगर्हिता॥ ४३

एभिश्च नामभिः पूजा कर्तव्या विधिसंयुता।
तासां फलानि वक्ष्यामि नवानां पूजने सदा॥ ४४

उस अवसरपर अर्घ्य भी प्रदान करे। हे राजन्! नारियल, बिजौरा नीबू, दाडिम, केला, नारंगी, कटहल तथा बिल्वफल आदि अनेक प्रकारके सुन्दर फलोंके साथ भक्तिपूर्वक अन्नका नैवेद्य एवं पवित्र बलि अर्पित करे॥ ३०—३४॥

होमके लिये त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिये अथवा त्रिकोणके मानके अनुरूप उत्तम वेदी बनानी चाहिये॥ ३५॥

विविध प्रकारके सुन्दर द्रव्योंसे प्रतिदिन भगवतीका त्रिकाल (प्रातः-सायं-मध्याह्न) पूजन करना चाहिये और गायन, वादन तथा नृत्यके द्वारा महान् उत्सव मनाना चाहिये॥ ३६॥

[व्रती] नित्य भूमिपर सोये और वस्त्र, आभूषण तथा अमृतके सदृश दिव्य भोजन आदिसे कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३७॥

नित्य एक ही कुमारीका पूजन करे अथवा प्रतिदिन एक-एक कुमारीकी संख्याके वृद्धिक्रमसे पूजन करे अथवा प्रतिदिन दुगुने-तिगुनेके वृद्धिक्रमसे और या तो प्रत्येक दिन नौ कुमारी कन्याओंका पूजन करे॥ ३८॥

अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार भगवतीकी पूजा करे, किंतु हे राजन्! देवीके यज्ञमें धनकी कृपणता न करे॥ ३९॥

हे राजन्! पूजाविधिमें एक वर्षकी अवस्थावाली कन्या नहीं लेनी चाहिये; क्योंकि वह कन्या गन्ध और भोग आदि पदार्थोंके स्वादसे बिलकुल अनभिज्ञ रहती है। कुमारी कन्या वह कही गयी है, जो दो वर्षकी हो चुकी हो। तीन वर्षकी कन्या त्रिमूर्ति, चार वर्षकी कन्या कल्याणी, पाँच वर्षकी रोहिणी, छः वर्षकी कालिका, सात वर्षकी चण्डिका, आठ वर्षकी शाम्भवी, नौ वर्षकी दुर्गा और दस वर्षकी कन्या सुभद्रा कहलाती है। इससे ऊपरकी अवस्थावाली कन्याका पूजन नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह सभी कार्योंमें निन्द्य मानी जाती है। इन नामोंसे कुमारीका विधिवत् पूजन सदा करना चाहिये। अब मैं इन नौ कन्याओंके पूजनसे प्राप्त होनेवाले फलोंको कहूँगा॥ ४०—४४॥

कुमारी पूजिता कुर्याद्दुःखदारिद्र्यनाशनम्।
शत्रुक्षयं धनायुष्यं बलवृद्धिं करोति वै॥ ४५

त्रिमूर्तिपूजनादायुस्त्रिवर्गस्य फलं भवेत्।
धनधान्यागमश्चैव पुत्रपौत्रादिवृद्धयः॥ ४६

विद्यार्थी विजयार्थी च राज्यार्थी यश्च पार्थिवः।
सुखार्थी पूजयेन्नित्यं कल्याणीं सर्वकामदाम्॥ ४७

कालिकां शत्रुनाशार्थं पूजयेद्भक्तिपूर्वकम्।
ऐश्वर्यधनकामश्च चण्डिकां परिपूजयेत्॥ ४८

पूजयेच्छाम्भवीं नित्यं नृप सम्मोहनाय च।
दुःखदारिद्र्यनाशाय संग्रामे विजयाय च॥ ४९

क्रूरशत्रुविनाशार्थं तथोग्रकर्मसाधने।
दुर्गां च पूजयेद्भक्त्या परलोकसुखाय च॥ ५०

वाञ्छितार्थस्य सिद्ध्यर्थं सुभद्रां पूजयेत्सदा।
रोहिणीं रोगनाशाय पूजयेद्विधिवन्नरः॥ ५१

श्रीरस्त्विति च मन्त्रेण पूजयेद्भक्तितत्परः।
श्रीयुक्तमन्त्रैरथवा बीजमन्त्रैरथापि वा॥ ५२

कुमारस्य च तत्त्वानि या सृजत्यपि लीलया।
कादीनपि च देवांस्तां कुमारीं पूजयाम्यहम्॥ ५३

सत्त्वादिभिस्त्रिमूर्तिर्या तैर्हि नानास्वरूपिणी।
त्रिकालव्यापिनी शक्तिस्त्रिमूर्तिं पूजयाम्यहम्॥ ५४

कल्याणकारिणी नित्यं भक्तानां पूजितानिशम्।
पूजयामि च तां भक्त्या कल्याणीं सर्वकामदाम्॥ ५५

'कुमारी' नामकी कन्या पूजित होकर दुःख तथा दरिद्रताका नाश करती है; वह शत्रुओंका क्षय और धन, आयु तथा बलकी वृद्धि करती है॥ ४५॥

'त्रिमूर्ति' नामकी कन्याका पूजन करनेसे धर्म-अर्थ-कामकी पूर्ति होती है, धन-धान्यका आगम होता है और पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है॥ ४६॥

जो राजा विद्या, विजय, राज्य तथा सुखकी कामना करता हो, उसे सभी कामनाएँ प्रदान करनेवाली 'कल्याणी' नामक कन्याका नित्य पूजन करना चाहिये॥ ४७॥

शत्रुओंका नाश करनेके लिये भक्तिपूर्वक 'कालिका' कन्याका पूजन करना चाहिये। धन तथा ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवालेको 'चण्डिका' कन्याकी सम्यक् अर्चना करनी चाहिये॥ ४८॥

हे राजन्! सम्मोहन, दुःख-दारिद्र्यके नाश तथा संग्राममें विजयके लिये 'शाम्भवी' कन्याकी नित्य पूजा करनी चाहिये॥ ४९॥

क्रूर शत्रुके विनाश एवं उग्र कर्मकी साधनाके निमित्त और परलोकमें सुख पानेके लिये 'दुर्गा' नामक कन्याकी भक्तिपूर्वक आराधना करनी चाहिये॥ ५०॥

मनुष्य अपने मनोरथकी सिद्धिके लिये 'सुभद्रा' की सदा पूजा करे और रोगनाशके निमित्त 'रोहिणी' की विधिवत् आराधना करे॥ ५१॥

'श्रीरस्तु' इस मन्त्रसे अथवा किन्हीं भी श्रीयुक्त देवीमन्त्रसे अथवा बीजमन्त्रसे भक्तिपूर्वक भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ५२॥

जो भगवती कुमारके रहस्यमय तत्त्वों और ब्रह्मादि देवताओंकी भी लीलापूर्वक रचना करती हैं, उन 'कुमारी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५३॥

जो सत्त्व आदि तीनों गुणोंसे तीन रूप धारण करती हैं, जिनके अनेक रूप हैं तथा जो तीनों कालोंमें सर्वत्र व्याप्त रहती हैं, उन भगवती 'त्रिमूर्ति' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५४॥

निरन्तर पूजित होनेपर जो भक्तोंका नित्य कल्याण करती हैं, सब प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन भगवती 'कल्याणी' का मैं भक्तिपूर्वक पूजन करता हूँ॥ ५५॥

रोहयन्ती च बीजानि प्राग्जन्मसञ्चितानि वै।
या देवी सर्वभूतानां रोहिणीं पूजयाम्यहम्॥ ५६

काली कालयते सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्।
कल्पान्तसमये या तां कालिकां पूजयाम्यहम्॥ ५७

चण्डिकां चण्डरूपाञ्च चण्डमुण्डविनाशिनीम्।
तां चण्डपापहरिणीं चण्डिकां पूजयाम्यहम्। ५८

अकारणात्समुत्पत्तिर्यन्मयैः परिकीर्तिता।
यस्यास्तां सुखदां देवीं शाम्भवीं पूजयाम्यहम्॥ ५९

दुर्गात्त्रायति भक्तं या सदा दुर्गार्तिनाशिनी।
दुर्ज्ञेया सर्वदेवानां तां दुर्गां पूजयाम्यहम्॥ ६०

सुभद्राणि च भक्तानां कुरुते पूजिता सदा।
अभद्रनाशिनीं देवीं सुभद्रां पूजयाम्यहम्॥ ६१

एभिर्मन्त्रैः पूजनीयाः कन्यकाः सर्वदा बुधैः।
वस्त्रालङ्करणैर्माल्यैर्गन्धैरुच्चावचैरपि ॥ ६२

जो देवी सम्पूर्ण जीवोंके पूर्वजन्मके संचित कर्मरूपी बीजोंका रोपण करती हैं, उन भगवती रोहिणीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ५६॥

जो देवी काली कल्पान्तमें चराचरसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें विलीन कर लेती हैं, उन भगवती 'कालिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५७॥

अत्यन्त उग्र स्वभाववाली, उग्ररूप धारण करनेवाली, चण्ड-मुण्डका संहार करनेवाली तथा घोर पापोंका नाश करनेवाली उन भगवती 'चण्डिका' की मैं पूजा करता हूँ॥ ५८॥

वेद जिनके स्वरूप हैं, उन्हीं वेदोंके द्वारा जिनकी उत्पत्ति अकारण बतायी गयी है, उन सुखदायिनी भगवती 'शाम्भवी' का मैं पूजन करता हूँ॥ ५९॥

जो अपने भक्तको सर्वदा संकटसे बचाती हैं, बड़े-बड़े विघ्नों तथा दुःखोंका नाश करती हैं और सभी देवताओंके लिये दुर्ज्ञेय हैं, उन भगवती 'दुर्गा' की मैं पूजा करता हूँ॥ ६०॥

जो पूजित होनेपर भक्तोंका सदा कल्याण करती हैं, उन अमंगलनाशिनी भगवती 'सुभद्रा' की मैं पूजा करता हूँ॥ ६१॥

विद्वानोंको चाहिये कि वस्त्र, भूषण, माला, गन्ध आदि श्रेष्ठ उपचारोंसे इन मन्त्रोंके द्वारा सर्वदा कन्याओंका पूजन करें॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
कुमारीपूजावर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

कुमारीपूजामें निषिद्ध कन्याओंका वर्णन, नवरात्रव्रतके माहात्म्यके प्रसंगमें सुशील नामक वणिक्‌की कथा

व्यास उवाच

हीनाङ्गीं वर्जयेत्कन्यां कुष्ठयुक्तां व्रणाङ्किताम्।
गन्धस्फुरितहीनाङ्गीं विशालकुलसम्भवाम्॥ १

जात्यन्धां केकरां काणीं कुरूपां बहुरोमशाम्।
सन्त्यजेद्रोगिणीं कन्यां रक्तपुष्पादिनाङ्किताम्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] जो कन्या किसी अंगसे हीन हो, कोढ़ तथा घावयुक्त हो, जिसके शरीरके किसी अंगसे दुर्गन्ध आती हो और जो विशाल कुलमें उत्पन्न हुई हो—ऐसी कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ १॥

जन्मसे अन्धी, तिरछी नजरसे देखनेवाली, कानी, कुरूप, बहुत रोमवाली, रोगी तथा रजस्वला कन्याका पूजामें परित्याग कर देना चाहिये॥ २॥

क्षामां गर्भसमुद्भूतां गोलकां कन्यकोद्भवाम्।
वर्जनीयाः सदा चैताः सर्वपूजादिकर्मसु॥ ३

अरोगिणीं सुरूपाङ्गीं सुन्दरीं व्रणवर्जिताम्।
एकवंशसमुद्भूतां कन्यां सम्यक्प्रपूजयेत्॥ ४

ब्राह्मणी सर्वकार्येषु जयार्थे नृपवंशजा।
लाभार्थे वैश्यवंशोत्था मता वा शूद्रवंशजा॥ ५

ब्राह्मणैर्ब्रह्मजाः पूज्या राजन्यैर्ब्रह्मवंशजाः।
वैश्यैस्त्रिवर्गजाः पूज्याश्चतस्त्रः पादसम्भवैः॥ ६

कारुभिश्चैव वंशोत्था यथायोग्यं प्रपूजयेत्।
नवरात्रविधानेन भक्तिपूर्वं सदैव हि॥ ७

अशक्तो नियतं पूजां कर्तुं चेन्नवरात्रके।
अष्टम्यां च विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा॥ ८

पुराष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी।
प्रादुर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह॥ ९

अतोऽष्टम्यां विशेषेण कर्तव्यं पूजनं सदा।
नानाविधोपहारैश्च गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ १०

पायसैरामिषैर्होमैर्ब्राह्मणानां च भोजनैः।
फलपुष्पोपहारैश्च तोषयेज्जगदम्बिकाम्॥ ११

उपवासे ह्यशक्तानां नवरात्रव्रते पुनः।
उपोषणत्रयं प्रोक्तं यथोक्तफलदं नृप॥ १२

सप्तम्यां च तथाष्टम्यां नवम्यां भक्तिभावतः।
त्रिरात्रकरणात्सर्वं फलं भवति पूजनात्॥ १३

पूजाभिश्चैव होमैश्च कुमारीपूजनैस्तथा।
सम्पूर्णं तद् व्रतं प्रोक्तं विप्राणां चैव भोजनैः॥ १४

अत्यन्त दुर्बल, समयसे पूर्व ही गर्भसे उत्पन्न, विधवा स्त्रीसे उत्पन्न तथा कन्यासे उत्पन्न—ये सभी कन्याएँ पूजा आदि सभी कार्योंमें सर्वथा त्याज्य हैं॥ ३॥

रोगसे रहित, रूपवान् अंगोंवाली, सौन्दर्यमयी, व्रणरहित तथा एक वंशमें (अपने माता-पितासे) उत्पन्न कन्याकी ही विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ४॥

समस्त कार्योंकी सिद्धिके लिये ब्राह्मणकी कन्या, विजय-प्राप्तिके लिये राजवंशमें उत्पन्न कन्या तथा धन-लाभके लिये वैश्यवंश अथवा शूद्रवंशमें उत्पन्न कन्या पूजनके योग्य मानी गयी है॥ ५॥

ब्राह्मणको ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; क्षत्रियोंको भी ब्राह्मणवर्णमें उत्पन्न कन्याकी; वैश्योंको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—तीनों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी तथा शूद्रको चारों वर्णोंमें उत्पन्न कन्याकी पूजा करनी चाहिये। शिल्पकर्ममें लगे हुए मनुष्योंको यथायोग्य अपने-अपने वंशमें उत्पन्न कन्याओंकी पूजा करनी चाहिये। नवरात्र-विधिसे भक्तिपूर्वक निरन्तर पूजाकी जानी चाहिये। यदि कोई व्यक्ति नवरात्रपर्यन्त प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ है, तो उसे अष्टमी तिथिको विशेषरूपसे अवश्य पूजन करना चाहिये॥ ६—८॥

प्राचीन कालमें दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाली महाभयानक भगवती भद्रकाली करोड़ों योगिनियोंसहित अष्टमी तिथिको ही प्रकट हुई थीं॥ ९॥

अतः अष्टमीको विशेष विधानसे सदा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उस दिन विविध प्रकारके उपहारों, गन्ध, माला, चन्दनके अनुलेप, पायस आदिके हवन, ब्राह्मण-भोजन तथा फल-पुष्पादि उपहारोंसे भगवतीको प्रसन्न करना चाहिये॥ १०-११॥

हे राजन्! पूरे नवरात्रभर उपवास करनेमें असमर्थ लोगोंके लिये तीन दिनका उपवास भी यथोक्त फल प्रदान करनेवाला बताया गया है॥ १२॥

भक्तिभावसे केवल सप्तमी, अष्टमी और नवमी—इन तीन रात्रियोंमें देवीकी पूजा करनेसे सभी फल सुलभ हो जाते हैं॥ १३॥

पूजन, हवन, कुमारी-पूजन तथा ब्राह्मण-भोजन—इनको सम्पन्न करनेसे वह नवरात्र-व्रत पूरा हो जाता है—ऐसा कहा गया है॥ १४॥

व्रतानि यानि चान्यानि दानानि विविधानि च।
नवरात्रव्रतस्यास्य नैव तुल्यानि भूतले॥ १५

धनधान्यप्रदं नित्यं सुखसन्तानवृद्धिदम्।
आयुरारोग्यदं चैव स्वर्गदं मोक्षदं तथा॥ १६

विद्यार्थी वा धनार्थी वा पुत्रार्थी वा भवेन्नरः।
तेनेदं विधिवत्कार्यं व्रतं सौभाग्यदं शिवम्॥ १७

विद्यार्थी सर्वविद्यां वै प्राप्नोति व्रतसाधनात्।
राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं समवाप्नोति सर्वदा॥ १८

पूर्वजन्मनि यैर्नूनं न कृतं व्रतमुत्तमम्।
ते व्याधिनो दरिद्राश्च भवन्ति पुत्रवर्जिताः॥ १९

वन्ध्या च या भवेन्नारी विधवा धनवर्जिता।
अनुमा तत्र कर्तव्या नेयं कृतवती व्रतम्॥ २०

नवरात्रव्रतं प्रोक्तं न कृतं येन भूतले।
स कथं विभवं प्राप्य मोदते च तथा दिवि॥ २१

रक्तचन्दनसंमिश्रैः कोमलैर्बिल्वपत्रकैः।
भवानी पूजिता येन स भवेन्नृपतिः क्षितौ॥ २२

नाराधिता येन शिवा सनातनी
दुःखार्तिहा सिद्धिकरी जगद्वरा।
दुःखावृतः शत्रुयुतश्च भूतले
नूनं दरिद्रो भवतीह मानवः॥ २३

यां विष्णुरिन्द्रो हरपद्मजौ तथा
वह्निः कुबेरो वरुणो दिवाकरः।
ध्यायन्ति सर्वार्थसमाप्तिनन्दिता-
स्तां किं मनुष्या न भजन्ति चण्डिकाम्॥ २४

इस पृथ्वीलोकमें जितने भी प्रकारके व्रत एवं दान हैं, वे इस नवरात्रव्रतके तुल्य नहीं हैं; क्योंकि यह व्रत सदा धन-धान्य प्रदान करनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला, आयु तथा आरोग्य प्रदान करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्ष देनेवाला है॥ १५-१६॥

अतएव विद्या, धन अथवा पुत्र—इनमेंसे मनुष्य किसीकी भी कामना करता हो, उसे इस सौभाग्यदायक तथा कल्याणकारी व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये॥ १७॥

इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे विद्या चाहनेवाला मनुष्य समस्त विद्या प्राप्त कर लेता है और अपने राज्यसे वंचित राजा फिरसे अपना राज्य प्राप्त कर लेता है॥ १८॥

पूर्वजन्ममें जिन लोगोंद्वारा यह उत्तम व्रत नहीं किया गया है, वे इस जन्ममें रोगग्रस्त, दरिद्र तथा सन्तानरहित होते हैं॥ १९॥

जो स्त्री वन्ध्या, विधवा अथवा धनहीन है; उसके विषयमें यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उसने [अवश्य ही पूर्वजन्ममें] यह व्रत नहीं किया था॥ २०॥

इस पृथ्वीलोकमें जिस प्राणीने उक्त नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं किया, वह इस लोकमें वैभव प्राप्त करके स्वर्गमें आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता है?॥ २१॥

जिसने लाल चन्दनमिश्रित कोमल बिल्वपत्रोंसे भवानी जगदम्बाकी पूजा की है, वह इस पृथ्वीपर राजा होता है॥ २२॥

जिस मनुष्यने दुःख तथा सन्तापका नाश करनेवाली, सिद्धियाँ देनेवाली, जगत्में सर्वश्रेष्ठ, शाश्वत तथा कल्याणस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना नहीं की; वह इस पृथ्वीतलपर सदा ही अनेक प्रकारके कष्टोंसे ग्रस्त, दरिद्र तथा शत्रुओंसे पीड़ित रहता है॥ २३॥

विष्णु, इन्द्र, शिव, ब्रह्मा, अग्नि, कुबेर, वरुण तथा सूर्य समस्त कामनाओंसे परिपूर्ण होकर हर्षके साथ जिन भगवतीका ध्यान करते हैं, उन देवी चण्डिकाका ध्यान मनुष्य क्यों नहीं करते?॥ २४॥

स्वाहास्वधानामममनुप्रभावै-
स्तृप्यन्ति देवाः पितरस्तथैव।
यज्ञेषु सर्वेषु मुदा हरन्ति
यन्नामयुग्मं श्रुतिभिर्मुनीन्द्राः॥ २५

यस्येच्छया सृजति विश्वमिदं प्रजेशो
नानावतारकलनं कुरुते हरिश्च।
नूनं करोति जगतः किल भस्म शम्भु-
स्तां शर्मदां न भजते नु कथं मनुष्यः॥ २६

नैकोऽस्ति सर्वभुवनेषु तया विहीनो
देवो नरोऽथ विहगः किल पन्नगो वा।
गन्धर्वराक्षसपिशाचनगेषु नूनं
यः स्पन्दितुं भवति शक्तियुतो यथेच्छम्॥ २७

तां न सेवेत कश्चण्डीं सर्वकामार्थदां शिवाम्।
व्रतं तस्या न कः कुर्याद्वाञ्छन्नर्थचतुष्टयम्॥ २८

महापातकसंयुक्तो नवरात्रव्रतं चरेत्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नात्र कार्या विचारणा॥ २९

पुरा कश्चिद्वणिग्दीनो धनहीनः सुदुःखितः।
कुटुम्बी चाभवत्कश्चित् कोसले नृपसत्तम॥ ३०

अपत्यानि बहून्यस्याभवन्क्षुत्पीडितानि च।
भक्ष्यं किञ्चित्तु सायाह्ने प्रापुस्तस्य च बालकाः॥ ३१

भुंक्ते स्म कार्यकर्तासौ परस्याथ बुभुक्षितः।
कुटुम्बभरणं तत्र चकारातिनिराकुलः॥ ३२

सदा धर्मरतः शान्तः सदाचारश्च सत्यवाक्।
अक्रोधनश्च धृतिमान्निर्मदश्चानसूयकः॥ ३३

सम्पूज्य देवता नित्यं पितॄनप्यतिथींस्तदा।
भुञ्जाने पोष्यवर्गेऽथ कृतवान्भोजनं वणिक्॥ ३४

देवगण इनके 'स्वाहा' नाममन्त्रके प्रभावसे तथा पितृगण 'स्वधा' नाममन्त्रके प्रभावसे तृप्त होते हैं। इसीलिये महान् मुनिजन प्रसन्नतापूर्वक सभी यज्ञों तथा श्राद्धकार्योंमें मन्त्रोंके साथ 'स्वाहा' एवं 'स्वधा' नामोंका उच्चारण करते हैं॥ २५॥

जिनकी इच्छासे ब्रह्मा इस विश्वका सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु अनेकविध अवतार लेते हैं और शंकरजी जगत्‌को भस्मसात् करते हैं, उन कल्याणकारिणी भगवतीको मनुष्य क्यों नहीं भजता?॥ २६॥

सभी भुवनोंमें कोई भी ऐसा देवता, मनुष्य, पक्षी, सर्प, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच एवं पर्वत नहीं है; जो उन भगवतीकी शक्तिके बिना अपनी इच्छासे शक्तिसम्पन्न होकर स्पन्दित होनेमें समर्थ हो॥ २७॥

सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली उन कल्याणदायिनी चण्डिकाकी सेवा भला कौन नहीं करेगा? चारों प्रकारके पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष)-को चाहनेवाला कौन प्राणी उन भगवतीके नवरात्रव्रतका अनुष्ठान नहीं करेगा?॥ २८॥

यदि कोई महापापी भी नवरात्रव्रत करे तो वह समस्त पापोंसे मुक्ति पा लेता है, इसमें लेशमात्र भी विचार नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे नृपश्रेष्ठ! पूर्वकालमें कोसलदेशमें दीन, धनहीन, अत्यन्त दुःखी एवं विशाल कुटुम्बवाला एक वैश्य रहता था॥ ३०॥

उसकी अनेक सन्तानें थीं, जो धनाभावके कारण क्षुधासे पीड़ित रहा करती थीं; सायंकालमें उसके लड़कोंको खानेके लिये कुछ मिल जाता था तथा वह भी कुछ खा लेता था। इस प्रकार वह वणिक् भूखा रहते हुए सर्वदा दूसरोंका काम करके धैर्यपूर्वक परिवारका पालन-पोषण कर रहा था॥ ३१-३२॥

वह सर्वदा धर्मपरायण, शान्त, सदाचारी, सत्यवादी, क्रोध न करनेवाला, धैर्यवान्, अभिमानरहित तथा ईर्ष्याहीन था॥ ३३॥

प्रतिदिन देवताओं, पितरों तथा अतिथियोंकी पूजा करके वह अपने परिवारजनोंके भोजन कर लेनेके उपरान्त स्वयं भोजन करता था॥ ३४॥

एवं गच्छति काले वै सुशीलो नामतो गुणैः।
दारिद्र्यार्तो द्विजं शान्तं पप्रच्छातिबुभुक्षितः॥ ३५

सुशील उवाच

भो भूदेव कृपां कृत्वा वदस्वाद्य महामते।
कथं दारिद्र्यनाशः स्यादिति मे निश्चयेन वै॥ ३६

धनैषणा मे नैवास्ति धनी स्यामिति मानद।
कुटुम्बभरणार्थं वै पृच्छामि त्वां द्विजोत्तम॥ ३७

पुत्री सुतस्तु मे बालो भक्षार्थी रोदते भृशम्।
तावन्मात्रं गृहे नान्नं मुष्टिमेकां ददाम्यहम्॥ ३८

विसर्जितो यतो गेहाद् गतो बालो रुदन्मया।
अतो मे दह्यतेऽत्यर्थं किं करोमि धनं विना॥ ३९

विवाहोऽस्ति सुताया मे नास्ति वित्तं करोमि किम्।
दशवर्षाधिकायास्तु दानकालोऽपि यात्यलम्॥ ४०

तेन शोचामि विप्रेन्द्र सर्वज्ञोऽसि दयानिधे।
तपो दानं व्रतं किञ्चिद् ब्रूहि मन्त्रं जपं तथा॥ ४१

येनाहं पोष्यवर्गस्य करोमि द्विज पोषणम्।
तावन्मे स्याद्धनप्राप्तिर्नाधिकं प्रार्थये किल॥ ४२

त्वत्प्रसादात्कुटुम्बं मे सुखितं प्रभवेदिह।
तत्कुरुष्व महाभाग ज्ञानेन परिचिन्त्य च॥ ४३

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर गुणोंके कारण सुशील नामसे ख्यातिप्राप्त उस वणिक्‌ने दरिद्रता तथा क्षुधा-पीड़ासे अत्यन्त व्याकुल होकर एक शान्तस्वभाव ब्राह्मणसे पूछा॥ ३५॥

सुशील बोला—हे महाबुद्धिसम्पन्न ब्राह्मण-देवता! आज मुझपर कृपा करके यह बताइये कि मेरी दरिद्रताका नाश निश्चितरूपसे कैसे हो सकता है?॥ ३६॥

हे मानद! मुझे धनकी अभिलाषा तो नहीं है; किंतु हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपसे कोई ऐसा उपाय पूछ रहा हूँ, जिससे मैं कुटुम्बके भरण-पोषणमात्रके लिये धनसम्पन्न हो जाऊँ॥ ३७॥

मेरी पुत्री और पुत्र [क्षुधासे पीड़ित होकर] भोजनके लिये बहुत रोते हैं और मेरे घरमें इतना भी अन्न नहीं रहता कि मैं उन्हें एक मुट्ठीभर अन्न दे सकूँ॥ ३८॥

रोते हुए बालकको मैंने घरसे निकाल दिया और वह चला गया। इसलिये मेरा हृदय शोकाग्निमें जल रहा है। धनके अभावमें मैं क्या करूँ?॥ ३९॥

मेरी पुत्री विवाहके योग्य हो चुकी है, किंतु मेरे पास धन नहीं है। अब मैं क्या करूँ? वह दस वर्षसे अधिककी हो गयी है; इस प्रकार कन्यादानका समय बीता जा रहा है॥ ४०॥

हे विप्रेन्द्र! इसीलिये मैं अत्यधिक चिन्तित हूँ। हे दयानिधान! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव मुझे कोई ऐसा तप, दान, व्रत, मन्त्र तथा जप बताइये, जिससे मैं अपने आश्रितजनोंका भरण-पोषण करनेमें समर्थ हो जाऊँ। हे द्विज! बस मुझे उतना ही धन मिल जाय और मैं उससे अधिक धनके लिये प्रार्थना नहीं करता॥ ४१-४२॥

हे महाभाग! आपकी कृपासे मेरा परिवार अवश्य सुखी हो सकता है। अतएव आप अपने ज्ञानबलसे भलीभाँति विचार करके वह उपाय बताइये॥ ४३॥

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तथा तेन ब्राह्मणः संशितव्रतः।
उवाच परमप्रीतस्तं वैश्यं नृपसत्तम॥ ४४

वैश्यवर्य कुरुष्वाद्य नवरात्रव्रतं शुभम्।
पूजनं भगवत्याश्च हवनं भोजनं तथा॥ ४५

वेदपारायणं शक्तिजपहोमादिकं तथा।
कुरुष्वाद्य यथाशक्ति तव कार्यं भविष्यति॥ ४६

एतस्मादपरं किञ्चिद् व्रतं नास्ति धरातले।
नवरात्राभिधं वैश्य पावनं सुखदं तथा॥ ४७

ज्ञानदं मोक्षदं चैव सुखसन्तानवर्धनम्।
शत्रुनाशकरं कामं नवरात्रव्रतं सदा॥ ४८

राज्यभ्रष्टेन रामेण सीताविरहितेन च।
किष्किन्धायां व्रतं चैतत्कृतं दुःखातुरेण वै॥ ४९

प्रतप्तेनापि रामेण सीताविरहवह्निना।
विधिवत्पूजिता देवी नवरात्रव्रतेन वै॥ ५०

तेन प्राप्ताथ वैदेही कृत्वा सेतुं महार्णवे।
हत्वा मन्दोदरीनाथं कुम्भकर्णं महाबलम्॥ ५१

मेघनादं सुतं हत्वा कृत्वा भूपं विभीषणम्।
पश्चादयोध्यामागत्य प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ५२

नवरात्रव्रतस्यास्य प्रभावेण विशांवर।
सुखं भूमितले प्राप्तं रामेणामिततेजसा॥ ५३

व्यास उवाच

इति विप्रवचः श्रुत्वा स वैश्यस्तं द्विजं गुरुम्।
कृत्वा जग्राह सन्मन्त्रं मायाबीजाभिधं नृप॥ ५४

जजाप परया भक्त्या नवरात्रमतन्द्रितः।
नानाविधोपहारैश्च पूजयामास सादरम्॥ ५५
नवसंवत्सरं चैव मायाबीजपरायणः।

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! उसके इस प्रकार पूछनेपर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उस ब्राह्मणने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उस वैश्यसे कहा—॥ ४४॥

हे वैश्यवर्य! अब तुम पवित्र नवरात्रव्रतका अनुष्ठान करो। इसमें तुम भगवतीकी पूजा, हवन, ब्राह्मणभोजन, वेदपाठ, उनके मन्त्रका जप और होम आदि यथाशक्ति सम्पन्न करो। इससे तुम्हारा कार्य अवश्य सिद्ध होगा॥ ४५-४६॥

हे वैश्य! नवरात्र नामक इस पवित्र तथा सुखदायक व्रतसे बढ़कर इस पृथ्वीतलपर अन्य कोई भी व्रत नहीं है॥ ४७॥

यह नवरात्रव्रत सर्वदा ज्ञान तथा मोक्षको देनेवाला, सुख तथा सन्तानकी वृद्धि करनेवाला एवं शत्रुओंका पूर्णरूपसे विनाश करनेवाला है॥ ४८॥

राज्यसे च्युत तथा सीताके वियोगसे अत्यन्त दुःखित श्रीरामने किष्किन्धापर्वतपर इस व्रतको किया था। सीताकी विरहाग्निसे अत्यधिक सन्तप्त श्रीरामने उस समय नवरात्रव्रतके विधानसे भगवती जगदम्बाकी भलीभाँति पूजा की थी॥ ४९-५०॥

इसी व्रतके प्रभावसे उन्होंने महासागरपर सेतुकी रचनाकर महाबली मन्दोदरीपति रावण, कुम्भकर्ण तथा रावणपुत्र मेघनादका संहार करके सीताको प्राप्त किया। विभीषणको लंकाका राजा बनाकर पुनः अयोध्या लौटकर उन्होंने निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया था॥ ५१-५२॥

हे वैश्यवर! इस प्रकार अमित तेजवाले श्रीरामजीने इस नवरात्रव्रतके प्रभावसे पृथ्वीतलपर महान् सुख प्राप्त किया॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ब्राह्मणका यह वचन सुनकर उस वैश्यने उन्हें अपना गुरु मान लिया और उनसे मायाबीज नामक उत्तम मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की॥ ५४॥

तत्पश्चात् आलस्यहीन होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूरे नवरात्रभर उसने उस मन्त्रका जप किया और अनेकविध उपहारोंसे आदरपूर्वक भगवतीका पूजन किया। इस प्रकार मायाबीजपरायण उस वैश्यने नौ

नवमे वत्सरान्ते तु महाष्टम्यां महेश्वरी॥ ५६

अर्धरात्रे तु सञ्जाते प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
नानावरप्रदानैश्च कृतकृत्यं चकार तम्॥ ५७

वर्षोंतक यह अनुष्ठान किया। नौवें वर्षके अन्तमें महाष्टमी तिथिको अर्धरात्रि आनेपर महेश्वरीने उसे अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया और अनेक प्रकारके वरदानोंसे कृतकृत्य कर दिया॥ ५५—५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
देवीपूजामहत्त्ववर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

श्रीरामचरित्रवर्णन

जनमेजय उवाच

कथं रामेण तच्चीर्णं व्रतं देव्याः सुखप्रदम्।
राज्यभ्रष्टः कथं सोऽथ कथं सीता हृता पुनः॥ १

व्यास उवाच

राजा दशरथः श्रीमानयोध्याधिपतिः पुरा।
सूर्यवंशधरश्चासीद्देवब्राह्मणपूजकः॥ २

चत्वारो जज्ञिरे तस्य पुत्रा लोकेषु विश्रुताः।
रामलक्ष्मणशत्रुघ्ना भरतश्चेति नामतः॥ ३

राज्ञः प्रियकराः सर्वे सदृशा गुणरूपतः।
कौसल्यायाः सुतो रामः कैकेय्या भरतः स्मृतः॥ ४

सुमित्रातनयौ जातौ यमलौ द्वौ मनोहरौ।
ते जाता वै किशोराश्च धनुर्बाणधराः किल॥ ५

सूनवः कृतसंस्कारा भूपतेः सुखवर्धकाः।
कौशिकेन तदागत्य प्रार्थितो रघुनन्दनः॥ ६

राघवं मखरक्षार्थं सूनुं षोडशवार्षिकम्।
तस्मै सोऽयं ददौ रामं कौशिकाय सलक्ष्मणम्॥ ७

तौ समेत्य मुनिं मार्गे जग्मतुश्चारुदर्शनौ।
ताटका निहता मार्गे राक्षसी घोरदर्शना॥ ८

जनमेजय बोले—श्रीरामने भगवती जगदम्बाके इस सुखप्रदायक व्रतका अनुष्ठान किस प्रकार किया, वे राज्यच्युत कैसे हुए और फिर सीता-हरण किस प्रकार हुआ?॥ १॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें श्रीमान् महाराज दशरथ अयोध्यापुरीमें राज्य करते थे। वे सूर्यवंशमें श्रेष्ठ राजाके रूपमें प्रतिष्ठित थे और वे देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन किया करते थे॥ २॥

उनके चार पुत्र उत्पन्न हुए; जो लोकमें राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न नामसे विख्यात हुए। गुण तथा रूपमें पूर्ण समानता रखनेवाले वे सभी महाराज दशरथको अत्यन्त प्रिय थे। उनमें राम महारानी कौसल्याके तथा भरत महारानी कैकेयीके पुत्र कहे गये। रानी सुमित्राके लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न नामवाले जुड़वाँ पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों किशोरावस्थामें ही धनुष-बाणधारी हो गये॥ ३—५॥

महाराज दशरथने सुख बढ़ानेवाले अपने चारों पुत्रोंके संस्कार भी सम्पन्न कर दिये। तब एक समय महर्षि विश्वामित्र ने दशरथके यहाँ आकर उनसे रघुनन्दन रामको माँगा॥ ६॥

महाराज दशरथने यज्ञकी रक्षाके लिये लक्ष्मण-सहित सोलहवर्षीय पुत्र रामको विश्वामित्रको समर्पित कर दिया॥ ७॥

प्रियदर्शन वे दोनों भाई मुनिके साथ मार्गमें चल दिये। रामचन्द्रजीने मुनियोंको सदा पीड़ित करनेवाली तथा अत्यन्त भयानक रूपवाली ताटकाको

रामेणैकेन बाणेन मुनीनां दुःखदा सदा।
यज्ञरक्षा कृता तत्र सुबाहुर्निहतः शठः॥ ९

मारीचोऽथ मृतप्रायो निक्षिप्तो बाणवेगतः।
एवं कृत्वा महत्कर्म यज्ञस्य परिरक्षणम्॥ १०

गतास्ते मिथिलां सर्वे रामलक्ष्मणकौशिकाः।
अहल्या मोचिता शापान्निष्पापा सा कृताबला॥ ११

विदेहनगरे तौ तु जग्मतुर्मुनिना सह।
बभञ्ज शिवचापञ्च जनकेन पणीकृतम्॥ १२

उपयेमे ततः सीतां जानकीञ्च रमांशजाम्।
लक्ष्मणाय ददौ राजा पुत्रीमेकां तथोर्मिलाम्॥ १३

कुशध्वजसुते कन्ये प्रापतुर्भ्रातरावुभौ।
तथा भरतशत्रुघ्नौ सुशीलौ शुभलक्षणौ॥ १४

एवं दारक्रियास्तेषां भ्रातॄणां चाभवन्नृप।
चतुर्णां मिथिलायां तु यथाविधि विधानतः॥ १५

राज्ययोग्यं सुतं दृष्ट्वा राजा दशरथस्तदा।
राघवाय धुरं दातुं मनश्चक्रे निजाय वै॥ १६

सम्भारं विहितं दृष्ट्वा कैकेयी पूर्वकल्पितौ।
वरौ संप्रार्थयामास भर्तारं वशवर्तिनम्॥ १७

राज्यं सुताय चैकेन भरताय महात्मने।
रामाय वनवासञ्च चतुर्दशसमास्तथा॥ १८

रामस्तु वचनात्तस्याः सीतालक्ष्मणसंयुतः।
जगाम दण्डकारण्यं राक्षसैरुपसेवितम्॥ १९

राजा दशरथः पुत्रविरहेण प्रपीडितः।
जहौ प्राणानमेयात्मा पूर्वशापमनुस्मरन्॥ २०

रास्तेमें ही मात्र एक बाणसे मार डाला। उन्होंने दुष्ट सुबाहुका वध किया तथा मारीचको अपने बाणसे दूर फेंककर उसे मृतप्राय कर दिया और यज्ञ-रक्षा की। इस प्रकार यज्ञ-रक्षाका महान् कृत्य सम्पन्न करके राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्रने मिथिलापुरीके लिये प्रस्थान किया। जाते समय मार्गमें रामने अबला अहल्याको शापसे मुक्ति प्रदान करके उसे पापरहित कर दिया॥ ८—११॥

इसके बाद वे दोनों भाई मुनि विश्वामित्रके साथ जनकपुर पहुँच गये और वहाँ श्रीरामने जनकजीद्वारा प्रतिज्ञाके रूपमें रखे शिव-धनुषको तोड़ दिया और लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न जनकनन्दिनी सीताके साथ विवाह किया। राजा जनकने दूसरी पुत्री उर्मिलाका विवाह लक्ष्मणके साथ कर दिया॥ १२-१३॥

शीलसम्पन्न तथा शुभलक्षणोंसे युक्त दोनों भाई भरत तथा शत्रुघ्नने कुशध्वजकी दो पुत्रियों [माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति]-को पत्नीरूपमें प्राप्त किया॥ १४॥

हे राजन्! इस प्रकार उन चारों भाइयोंका विवाह मिथिलापुरीमें ही विधि-विधानसे सम्पन्न हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् महाराज दशरथने अपने बड़े पुत्र रामको राज्य करनेयोग्य देखकर उन्हें राज्य-भार सौंपनेका मनमें निश्चय किया॥ १६॥

राजतिलक-सम्बन्धी सामग्रियोंका प्रबन्ध हुआ देखकर रानी कैकेयीने अपने वशीभूत महाराज दशरथसे पूर्वकल्पित दो वरदान माँगे॥ १७॥

उसने पहले वरदानके रूपमें अपने पुत्र भरतके लिये राज्य तथा दूसरे वरदानके रूपमें महात्मा रामको चौदह वर्षोंका वनवास माँगा॥ १८॥

कैकेयीका वचन मानकर श्रीरामचन्द्रजी सीता तथा लक्ष्मणके साथ दण्डकवन चले गये, जहाँ राक्षस रहते थे॥ १९॥

तदनन्तर पुत्रके वियोगजनित शोकसे सन्तप्त पुण्यात्मा दशरथने पूर्वकालमें एक ऋषिद्वारा प्रदत्त शापका स्मरण करते हुए अपने प्राण त्याग दिये॥ २०॥

भरतः पितरं दृष्ट्वा मृतं मातृकृतेन वै।
राज्यमृद्धं न जग्राह भ्रातुः प्रियचिकीर्षया॥ २१

पञ्चवट्यां वसन् रामो रावणावरजां वने।
शूर्पणखां विरूपां वै चकारातिस्मरातुराम्॥ २२

खरादयस्तु तां दृष्ट्वा छिन्ननासां निशाचराः।
चक्रुः संग्राममतुलं रामेणामिततेजसा॥ २३

स जघान खरादींश्च दैत्यानतिबलान्वितान्।
मुनीनां हितमन्विच्छन् रामः सत्यपराक्रमः॥ २४

गत्वा शूर्पणखा लङ्कां खरदूषणघातनम्।
दूषिता कथयामास रावणाय च राघवात्॥ २५

सोऽपि श्रुत्वा विनाशं तं जातः क्रोधवशः खलः।
जगाम रथमारुह्य मारीचस्याश्रमं तदा॥ २६

कृत्वा हेममृगं नेतुं प्रेषयामास रावणः।
सीताप्रलोभनार्थाय मायाविनमसम्भवम्॥ २७

सोऽथ हेममृगो भूत्वा सीतादृष्टिपथं गतः।
मायावी चातिचित्राङ्गश्चरन्प्रबलमन्तिके॥ २८

तं दृष्ट्वा जानकी प्राह राघवं दैवनोदिता।
चर्मानयस्व कान्तेति स्वाधीनपतिका यथा॥ २९

अविचार्याथ रामोऽपि तत्र संस्थाप्य लक्ष्मणम्।
सशरं धनुरादाय ययौ मृगपदानुगः॥ ३०

सारङ्गोऽपि हरिं दृष्ट्वा मायाकोटिविशारदः।
दृश्यादृश्यो बभूवाथ जगाम च वनान्तरम्॥ ३१

मत्वा हस्तगतं रामः क्रोधाकृष्टधनुः पुनः।
जघान चातितीक्ष्णेन शरेण कृत्रिमं मृगम्॥ ३२

माता कैकेयीके कृत्यके कारण पिताजीकी मृत्यु देखकर भरतजीने भाई श्रीरामका हित करनेकी इच्छासे अयोध्याका समृद्ध राज्य स्वीकार नहीं किया॥ २१॥

उधर पंचवटीमें निवास करते हुए श्रीरामने रावणकी छोटी बहन अतिशय कामातुर शूर्पणखाको कुरूप बना दिया॥ २२॥

तब खर-दूषण आदि राक्षसोंने उसे कटी हुई नासिकावाली देखकर अमित तेजस्वी रामके साथ घोर संग्राम किया॥ २३॥

उस संग्राममें सत्यपराक्रमी श्रीरामने मुनियोंका कल्याण करनेकी इच्छासे अत्यन्त बलशाली खर आदि राक्षसोंका संहार कर दिया॥ २४॥

तत्पश्चात् लंका जाकर उस दुष्ट शूर्पणखाने रामके द्वारा खर-दूषणके संहारका समाचार रावणसे बताया॥ २५॥

वह दुष्ट रावण भी संहारके विषयमें सुनकर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और तब रथपर सवार होकर वह मारीचके आश्रममें पहुँच गया॥ २६॥

सीता-हरणके उद्देश्यसे रावणने मायावी मारीचको असम्भव स्वर्ण-मृग बनाकर सीताको प्रलोभित करनेके लिये भेजा॥ २७॥

तत्पश्चात् वह मायावी मारीच अत्यन्त अद्भुत अंगोंवाला स्वर्ण-मृग बनकर चरते-चरते सीताजीके सन्निकट पहुँच गया और उन्होंने उसे देख लिया॥ २८॥

उसे देखकर दैवी प्रेरणासे स्वाधीनपतिका स्त्रीकी भाँति सीताने श्रीरामसे कहा—हे कान्त! आप इस मृगका चर्म ले आइये॥ २९॥

राम भी बिना कुछ सोचे-समझे लक्ष्मणको सीताके रक्षार्थ वहीं छोड़कर धनुष तथा बाण लेकर उस मृगके पीछे-पीछे दौड़ पड़े॥ ३०॥

करोड़ों प्रकारकी माया रचनेका ज्ञान रखनेवाला मृगरूपधारी वह मारीच भी रामको अपने पीछे दौड़ता देखकर कभी दिखायी पड़ते हुए तथा कभी आँखोंसे ओझल होते हुए एक वनसे दूसरे वनमें बहुत दूर चला गया॥ ३१॥

रामने अब उसे हस्तगत समझकर क्रोधपूर्वक धनुष खींचकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे उस कृत्रिम मृगको मार डाला॥ ३२॥

स हतोऽतिबलात्तेन चुक्रोश भृशदुःखितः।
हा लक्ष्मण हतोऽस्मीति मायावी नश्वरः खलः॥ ३३

स शब्दस्तुमुलस्तावज्जानक्या संश्रुतस्तदा।
राघवस्येति सा मत्वा दीना देवरमब्रवीत्॥ ३४

गच्छ लक्ष्मण तूर्णं त्वं हतोऽसौ रघुनन्दनः।
त्वामाह्वयति सौमित्रे साहाय्यं कुरु सत्वरम्॥ ३५

तत्राह लक्ष्मणः सीतामम्ब रामवधादपि।
नाहं गच्छेऽद्य मुक्त्वा त्वामसहायामिहाश्रमे॥ ३६

आज्ञा मे राघवस्यात्र तिष्ठेति जनकात्मजे।
तदतिक्रमभीतोऽहं न त्यजामि तवान्तिकम्॥ ३७

दूरं वै राघवं दृष्ट्वा वने मायाविना किल।
त्यक्त्वा त्वां नाधिगच्छामि पदमेकं शुचिस्मिते॥ ३८

कुरु धैर्यं न मन्येऽद्य रामं हन्तुं क्षमं क्षितौ।
नाहं त्यक्त्वा गमिष्यामि विलंघ्य रामभाषितम्॥ ३९

व्यास उवाच

रुदती सुदती प्राह तं तदा विधिनोदिता।
अक्रूरा वचनं क्रूरं लक्ष्मणं शुभलक्षणम्॥ ४०

अहं जानामि सौमित्रे सानुरागं च मां प्रति।
प्रेरितं भरतेनैव मदर्थमिह सङ्गतम्॥ ४१

नाहं तथाविधा नारी स्वैरिणी कुहकाधम।
मृते रामे पतिं त्वां न कर्तुमिच्छामि कामतः॥ ४२

नागमिष्यति चेद्रामो जीवितं सन्त्यजाम्यहम्।
विना तेन न जीवामि विधुरा दुःखिता भृशम्॥ ४३

रामके प्रबल प्रहारसे आहत होकर वह मरणोन्मुख मायावी तथा नीच मृग चीख-चीखकर चिल्लाने लगा—हा लक्ष्मण! अब मैं मारा गया॥ ३३॥

उसके गगन-भेदी चीत्कारकी ध्वनिको सीताने सुन लिया। 'यह तो रामकी पुकार है'—ऐसा मानकर उन्होंने दुःखी होकर देवर लक्ष्मणसे कहा—हे लक्ष्मण! ऐसा प्रतीत होता है कि वे रघुनन्दन राम आहत हो गये हैं। अतः तुम शीघ्र जाओ। हे सुमित्रानन्दन! वे तुम्हें पुकार रहे हैं; वहाँ शीघ्र ही पहुँचकर उनकी सहायता करो॥ ३४-३५॥

तब लक्ष्मणजीने सीतासे कहा—हे माता! रामका वध ही क्यों न हो; मैं आपको इस आश्रममें इस समय असहाय छोड़कर वहाँ नहीं जा सकता। हे जनकनन्दिनि! मुझे रामकी आज्ञा है कि तुम इसी आश्रममें रहना। उनकी आज्ञाका उल्लंघन करनेमें मैं डरता हूँ। अतः आपका सामीप्य नहीं छोड़ सकता। हे शुचिस्मिते! वह मायावी भगवान् श्रीरामको बहुत दूर दौड़ा ले गया है—यह जान करके मैं आपको छोड़कर यहाँसे एक पग भी नहीं जा सकता। आप धैर्य धारण कीजिये। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि इस समय सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें श्रीरामको मारनेमें कोई समर्थ नहीं है। रामके आदेशका उल्लंघन करके तथा आपको यहाँ छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा॥ ३६—३९॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् सुन्दर दाँतोंवाली तथा सौम्य स्वभाववाली सीताने दैवसे प्रेरित होकर शुभ लक्षणसम्पन्न लक्ष्मणसे रोते हुए यह कठोर वचन कहा—॥ ४०॥

हे सुमित्रातनय! अब मैं जान गयी कि तुम मेरे प्रति अनुरागयुक्त हो और भरतकी प्रेरणासे मेरे प्रयोजनसे यहाँ आये हो॥ ४१॥

हे कुहकाधम! मैं उस तरहकी स्वच्छन्द स्त्री नहीं हूँ। मैं रामके मृत हो जानेपर भी सुखके लिये तुम्हें अपना पति कभी नहीं बना सकती॥ ४२॥

यदि राम नहीं लौटेंगे तो मैं अपना प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि उनके बिना मैं विधवा होकर अत्यधिक दुःखी जीवन नहीं जी सकती॥ ४३॥

गच्छ वा तिष्ठ सौमित्रे न जानेऽहं तवेप्सितम्।
क्व गतं तेऽत्र सौहार्दं ज्येष्ठे धर्मरते किल॥ ४४

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या लक्ष्मणो दीनमानसः।
प्रोवाच रुद्धकण्ठस्तु तां तदा जनकात्मजाम्॥ ४५

किमात्थ क्षितिजे वाक्यं मयि क्रूरतरं किल।
किं वदस्यत्यनिष्टं ते भावि जाने धिया ह्यहम्॥ ४६

इत्युक्त्वा निर्ययौ वीरस्तां त्यक्त्वा प्ररुदन्भृशम्।
अग्रजस्य ययौ पश्यञ्छोकार्तः पृथिवीपते॥ ४७

गतेऽथ लक्ष्मणे तत्र रावणः कपटाकृतिः।
भिक्षुवेषं ततः कृत्वा प्रविवेश तदाश्रमे॥ ४८

जानकी तं यतिं मत्वा दत्त्वार्घ्यं वन्यमादरात्।
भैक्ष्यं समर्पयामास रावणाय दुरात्मने॥ ४९

तां पप्रच्छ स दुष्टात्मा नम्रपूर्वं मृदुस्वरम्।
कासि पद्मपलाशाक्षि वने चैकाकिनी प्रिये॥ ५०

पिता कस्तेऽथ वामोरु भ्राता कः कः पतिस्तव।
मूढेवैकाकिनी चात्र स्थितासि वरवर्णिनि॥ ५१

निर्जने विपिने किं त्वं सौधार्हा त्वमसि प्रिये।
उटजे मुनिपत्नीवद्देवकन्यासमप्रभा॥ ५२

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विदेहजा।
दिव्यं दिष्ट्या यतिं ज्ञात्वा मन्दोदर्याः पतिं तदा॥ ५३

हे लक्ष्मण! तुम जाओ या रहो। मुझे तुम्हारी वास्तविक इच्छाका पता नहीं है। धर्मपरायण ज्येष्ठ भाईके प्रति आपका प्रेम अब कहाँ चला गया?॥ ४४॥

सीताका वह वचन सुनकर लक्ष्मणके मनमें अत्यधिक कष्ट हुआ। रुदनके कारण रुँधे कण्ठसे उन्होंने जनकनन्दिनी सीतासे कहा—॥ ४५॥

हे भूमिकन्ये! आप इस प्रकारके अति कठोर वचन मेरे लिये क्यों कह रही हैं? मेरा मन तो यह कह रहा है कि आपके समक्ष कोई अनिष्टकर परिस्थिति उत्पन्न होनेवाली है॥ ४६॥

[व्यासजीने कहा—] हे महाराज जनमेजय! ऐसा कहकर अत्यधिक विलाप करते हुए वीर लक्ष्मण सीताको वहीं छोड़कर चल दिये और अत्यधिक शोकाकुल होकर बड़े भाई रामको चारों ओर देखते हुए आगेकी ओर बढ़ते गये॥ ४७॥

इस प्रकार लक्ष्मणके वहाँसे चले जानेपर कपट स्वभाववाले रावणने साधु-वेष धारणकर उस आश्रममें प्रवेश किया॥ ४८॥

जानकी उस दुष्टात्मा रावणको संन्यासी समझकर आदरपूर्वक वन्य सामग्रियोंका अर्घ्य प्रदान करके भिक्षा देने लगीं॥ ४९॥

तब उस दुरात्माने अत्यन्त विनम्र भावसे मधुर वाणीमें सीताजीसे पूछा—हे पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाली प्रिये! तुम कौन हो और इस वनमें अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५०॥

हे वामोरु! तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे भाई तथा पति कौन हैं? हे सुन्दरि! तुम एक मूढ़ स्त्रीकी भाँति यहाँ अकेली क्यों रह रही हो?॥ ५१॥

हे प्रिये! इस निर्जन वनमें क्यों रह रही हो? तुम तो महलोंमें निवास करनेयोग्य हो। देवकन्याके समान कान्तिवाली तुम एक मुनिपत्नीकी भाँति इस कुटियामें क्यों रह रही हो?॥ ५२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उसका यह वचन सुनकर विदेहतनया सीताजीने मन्दोदरीके पति रावणको दैववश एक दिव्य संन्यासी समझकर उत्तर दिया॥ ५३॥

राजा दशरथः श्रीमांश्चत्वारस्तस्य वै सुताः।
तेषु ज्येष्ठः पतिर्मेऽस्ति रामनामेति विश्रुतः॥ ५४

विवासितोऽथ कैकेय्या कृते भूपतिना वरे।
चतुर्दश समा रामो वसतेऽत्र सलक्ष्मणः॥ ५५

जनकस्य सुता चाहं सीतानाम्नीति विश्रुता।
भङ्क्त्वा शैवं धनुः कामं रामेणाहं विवाहिता॥ ५६

रामबाहुबलेनात्र वसामो निर्भया वने।
काञ्चनं मृगमालोक्य हन्तुं मे निर्गतः पतिः॥ ५७

लक्ष्मणोऽपि पुनः श्रुत्वा रवं भ्रातुर्गतोऽधुना।
तयोर्बाहुबलादत्र निर्भयाहं वसामि वै॥ ५८

मयेदं कथितं सर्वं वृत्तान्तं वनवासके।
तेऽत्रागत्यार्हणां ते वै करिष्यन्ति यथाविधि॥ ५९

यतिर्विष्णुस्वरूपोऽसि तस्मात्त्वं पूजितो मया।
आश्रमो विपिने घोरे कृतोऽस्ति रक्षसां कुले॥ ६०

तस्मात्त्वां परिपृच्छामि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः।
कोऽसि त्रिदण्डिरूपेण विपिने त्वं समागतः॥ ६१

रावण उवाच

लङ्केशोऽहं मरालाक्षि श्रीमान्मन्दोदरीपतिः।
त्वत्कृते तु कृतं रूपं मयेत्थं शोभनाकृते॥ ६२

आगतोऽहं वरारोहे भगिन्या प्रेरितोऽत्र वै।
जनस्थाने हतौ श्रुत्वा भ्रातरौ खरदूषणौ॥ ६३

अङ्गीकुरु नृपं मां त्वं त्यक्त्वा तं मानुषं पतिम्।
हृतराज्यं गतश्रीकं निर्बलं वनवासिनम्॥ ६४

दशरथ नामक लक्ष्मीसम्पन्न एक राजा हैं, उनके चार पुत्र हैं। उनमें सबसे बड़े पुत्र जो 'राम' नामसे विख्यात हैं, वे ही मेरे पति हैं॥ ५४॥

कैकेयीने महाराज दशरथसे वरदान माँगकर रामको चौदह वर्षके लिये वनवास दिला दिया। वे अपने भाई लक्ष्मणके साथ अब यहींपर रह रहे हैं॥ ५५॥

मैं राजा जनककी पुत्री हूँ तथा 'सीता' नामसे विख्यात हूँ। शिवजीका धनुष तोड़कर श्रीरामने मेरा पाणिग्रहण किया है॥ ५६॥

उन्हीं रामके बाहुबलका आश्रय लेकर मैं निर्भीक होकर इस वनमें रहती हूँ। एक स्वर्ण-मृग देखकर उसे मारनेके लिये मेरे पति गये हुए हैं॥ ५७॥

अपने भाईका शब्द सुनकर लक्ष्मण भी इस समय उधर ही गये हुए हैं। उन्हीं दोनोंके बाहुबलसे मैं यहाँ निडर होकर रहती हूँ॥ ५८॥

मैंने आपको वनवास-सम्बन्धी अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बता दिया। अब वे लोग यहाँ आकर आपका विधिपूर्वक सत्कार करेंगे॥ ५९॥

संन्यासी विष्णुस्वरूप होता है, इसीलिये मैंने आपकी पूजा की है। राक्षसोंके समुदायद्वारा सेवित इस भयंकर जंगलमें यह आश्रम बना हुआ है। इसलिये मैं आपसे यह पूछती हूँ कि त्रिदण्डीके रूपमें इस वनमें पधारे हुए आप कौन हैं? आप मेरे समक्ष सत्य कहिये॥ ६०-६१॥

रावण बोला—हे हंसनयने! मैं मन्दोदरीका पति तथा लंकाका नरेश श्रीमान् रावण हूँ। हे सुन्दर आकृतिवाली! तुम्हारे लिये ही मैंने इस प्रकारका वेष बनाया है॥ ६२॥

हे सुन्दरि! जनस्थानमें अपने भाई खर-दूषणके मारे जानेका समाचार सुनकर तथा अपनी बहन शूर्पणखाद्वारा प्रेरित किये जानेपर मैं यहाँ आया हूँ॥ ६३॥

अब तुम उस राज्यच्युत, लक्ष्मीहीन, निर्बल, वनवासी तथा मानवयोनिवाले पतिको छोड़कर मुझ राजाको स्वीकार कर लो॥ ६४॥

पट्टराज्ञी भव त्वं मे मन्दोदर्युपरि स्फुटम्।
दासोऽस्मि तव तन्वङ्गि स्वामिनी भव भामिनि॥ ६५

तुम मेरी बात मानकर मन्दोदरीसे भी बड़ी पटरानी बन जाओ, मैं सत्य कहता हूँ। हे तन्वंगि! मैं तुम्हारा दास हूँ। हे भामिनि! तुम मेरी स्वामिनी हो जाओ॥ ६५॥

जेताहं लोकपालानां पतामि तव पादयोः।
करं गृहाण मेऽद्य त्वं सनाथं कुरु जानकि॥ ६६

समस्त लोकपालोंपर विजय प्राप्त करनेवाला मैं तुम्हारे चरणोंपर पड़ता हूँ। हे जनकनन्दिनि! तुम इस समय मेरा हाथ पकड़ लो और मुझे सनाथ कर दो॥ ६६॥

पिता ते याचितः पूर्वं मया वै त्वत्कृतेऽबले।
जनको मामुवाचेत्थं पणबन्धो मया कृतः॥ ६७

हे अबले! मैंने पहले भी तुम्हारे पिता जनकसे तुम्हें प्राप्त करनेके लिये याचना की थी, किंतु उस समय उन्होंने मुझसे यह कहा था कि मैं [धनुषभंगकी] शर्त रख चुका हूँ॥ ६७॥

रुद्रचापभयान्नाहं सम्प्राप्तस्तु स्वयंवरे।
मनो मे संस्थितं तावन्निमग्नं विरहातुरम्॥ ६८

शंकरजीके धनुषके भयके कारण मैं उस समय स्वयंवरमें सम्मिलित नहीं हुआ था। उसी समयसे विरह-वेदनासे पीड़ित मेरा मन तुममें ही लगा हुआ है॥ ६८॥

वनेऽत्र संस्थितां श्रुत्वा पूर्वानुरागमोहितः।
आगतोऽस्म्यसितापाङ्गि सफलं कुरु मे श्रमम्॥ ६९

हे श्याम नयनोंवाली! तुम इस वनमें रह रही हो—यह सुनकर तुम्हारे प्रति पूर्व प्रेमके अधीन हुआ मैं यहाँ आया हूँ; अब तुम मेरा परिश्रम सार्थक कर दो॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
रामचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सीताहरण, रामका शोक और लक्ष्मणद्वारा उन्हें सान्त्वना देना

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचो दुष्टं जानकी भयविह्वला।
वेपमाना स्थिरं कृत्वा मनो वाचमुवाच ह॥ १

पौलस्त्य किमसद्वाक्यं त्वमात्थ स्मरमोहितः।
नाहं वै स्वैरिणी किन्तु जनकस्य कुलोद्भवा॥ २

व्यासजी बोले—रावणका कुविचारपूर्ण वचन सुनकर सीता भयसे व्याकुल होकर काँप उठीं। पुनः मनको स्थिर करके उन्होंने कहा—हे पुलस्त्यके वंशज! कामके वशीभूत होकर तुम ऐसा अनर्गल वचन क्यों कह रहे हो? मैं स्वैरिणी नारी नहीं हूँ, बल्कि महाराज जनकके कुलमें उत्पन्न हुई हूँ॥ १-२॥

गच्छ लङ्कां दशास्य त्वं रामस्त्वां वै हनिष्यति।
मत्कृते मरणं तत्र भविष्यति न संशयः॥ ३

हे दशकन्धर! तुम लंका चले जाओ, नहीं तो श्रीराम निश्चय ही तुम्हें मार डालेंगे। मेरे लिये ही तुम्हारी मृत्यु होगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३॥

इत्युक्त्वा पर्णशालायां गता सा वह्निसन्निधौ।
गच्छ गच्छेति वदती रावणं लोकरावणम्॥ ४

सोऽथ कृत्वा निजं रूपं जगामोटजमन्तिकम्।
बलाज्जग्राह तां बालां रुदतीं भयविह्वलाम्॥ ५

रामरामेति क्रन्दन्तीं लक्ष्मणेति मुहुर्मुहुः।
गृहीत्वा निर्गतः पापो रथमारोप्य सत्वरः॥ ६

गच्छन्नरुणपुत्रेण मार्गे रुद्धो जटायुषा।
संग्रामोऽभून्महारौद्रस्तयोस्तत्र वनान्तरे॥ ७

हत्वा तं तां गृहीत्वा च गतोऽसौ राक्षसाधिपः।
लङ्कायां क्रन्दती तात कुररीव दुरात्मना॥ ८

अशोकवनिकायां सा स्थापिता राक्षसीयुता।
स्ववृत्तान्नैव चलिता सामदानादिभिः किल॥ ९

रामोऽपि तं मृगं हत्वा जगामादाय निर्वृतः।
आयान्तं लक्ष्मणं वीक्ष्य किं कृतं तेऽनुजासमम्॥ १०

एकाकिनीं प्रियां हित्वा किमर्थं त्वमिहागतः।
श्रुत्वा स्वनं तु पापस्य राघवस्त्वब्रवीदिदम्॥ ११

सौमित्रिस्त्वब्रवीद्वाक्यं सीतावाग्बाणपीडितः।
प्रभोऽत्राहं समायातः कालयोगान्न संशयः॥ १२

तदा तौ पर्णशालायां गत्वा वीक्ष्यातिदुःखितौ।
जानक्यन्वेषणे यत्नमुभौ कर्तुं समुद्यतौ॥ १३

मार्गमाणौ तु सम्प्राप्तौ यत्रासौ पतितः खगः।
जटायुः प्राणशेषस्तु पतितः पृथिवीतले॥ १४

तेनोक्तं रावणेनाद्य हृतासौ जनकात्मजा।
मया निरुद्धः पापात्मा पातितोऽहं मृधे पुनः॥ १५

ऐसा कह करके वे सीताजी जगत्‌को रुलानेवाले रावणके प्रति 'चले जाओ, चले जाओ' इस प्रकार बोलती हुई पर्णशालामें अग्निकुण्डके पास चली गयीं॥ ४॥

इतनेमें वह रावण अपना वास्तविक रूप धारण करके तुरन्त पर्णशालामें उनके पास जा पहुँचा और उसने भयसे व्याकुल होकर रोती हुई उस बाला सीताको बलपूर्वक पकड़ लिया॥ ५॥

हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण!—ऐसा बार-बार कहकर विलाप करती हुई सीताको पकड़कर और उन्हें अपने रथपर बैठाकर रावण शीघ्रतापूर्वक निकल गया। तब अरुणपुत्र जटायुने जाते हुए उस रावणको मार्गमें रोक दिया। उस वनमें दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा॥ ६-७॥

हे तात! अन्तमें वह राक्षसराज रावण जटायुको मारकर और सीताको साथ लेकर चला गया। तदनन्तर उस दुष्टात्माने कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई सीताको लंकामें अशोकवाटिकामें रख दिया और उसकी रखवालीके लिये राक्षसियोंको नियुक्त कर दिया। उस राक्षसके साम-दान आदि उपायोंसे भी सीताजी अपने सतीत्वसे विचलित नहीं हुईं॥ ८-९॥

उधर श्रीराम भी स्वर्ण-मृगको शीघ्र मारकर उसे लिये हुए प्रसन्नतापूर्वक [आश्रमकी ओर] चल पड़े। मार्गमें आते हुए लक्ष्मणको देखकर वे बोले—भाई! यह तुमने कैसा विषम कार्य कर दिया? वहाँ प्रिया सीताको अकेली छोड़कर तथा इस पापीकी पुकार सुनकर तुम इधर क्यों चले आये?॥ १०-११॥

तब सीताके वचनरूपी बाणसे आहत लक्ष्मणने कहा—प्रभो! मैं कालकी प्रेरणासे यहाँ चला आया हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

तदनन्तर वे दोनों पर्णशालामें जाकर वहाँकी स्थिति देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और जानकीको खोजनेका प्रयत्न करने लगे॥ १३॥

खोजते हुए वे उस स्थानपर पहुँचे जहाँ पक्षिराज 'जटायु' गिरा पड़ा था। वह पृथ्वीपर मृतप्राय पड़ा हुआ था। उसने बताया कि रावण जानकीको अभी हर ले गया है। मैंने उस पापीको रोका, किंतु उसने युद्धमें मुझे मारकर गिरा दिया॥ १४-१५॥

इत्युक्त्वासौ गतप्राणः संस्कृतो राघवेण वै।
कृत्वौर्ध्वदैहिकं रामलक्ष्मणौ निर्गतौ ततः॥ १६

कबन्धं घातयित्वासौ शापाच्चामोचयत्प्रभुः।
वचनात्तस्य हरिणा सख्यं चक्रेऽथ राघवः॥ १७

हत्वा च वालिनं वीरं किष्किन्धाराज्यमुत्तमम्।
सुग्रीवाय ददौ रामः कृतसख्याय कार्यतः॥ १८

तत्रैव वार्षिकान्मासांस्तस्थौ लक्ष्मणसंयुतः।
चिन्तयञ्जानकीं चित्ते दशाननहृतां प्रियाम्॥ १९

लक्ष्मणं प्राह रामस्तु सीताविरहपीडितः।
सौमित्रे कैकयसुता जाता पूर्णमनोरथा॥ २०

न प्राप्ता जानकी नूनं नाहं जीवामि तां विना।
नागमिष्याम्ययोध्यायामृते जनकनन्दिनीम्॥ २१

गतं राज्यं वने वासो मृतस्तातो हृता प्रिया।
पीडयन्मां स दुष्टात्मा दैवोऽग्रे किं करिष्यति॥ २२

दुर्ज्ञेयं भवितव्यं हि प्राणिनां भरतानुज।
आवयोः का गतिस्तात भविष्यति सुदुःखदा॥ २३

प्राप्य जन्म मनोर्वंशे राजपुत्रावुभौ किल।
वनेऽतिदुःखभोक्तारौ जातौ पूर्वकृतेन च॥ २४

त्यक्त्वा त्वमपि भोगांस्तु मया सह विनिर्गतः।
दैवयोगाच्च सौमित्रे भुंक्ष्व दुःखं दुरत्ययम्॥ २५

न कोऽप्यस्मत्कुले पूर्वं मत्समो दुःखभाङ्नरः।
अकिञ्चनोऽक्षमः क्लिष्टो न भूतो न भविष्यति॥ २६

किं करोम्यद्य सौमित्रे मग्नोऽस्मि दुःखसागरे।
न चास्ति तरणोपायो ह्यसहायस्य मे किल॥ २७

ऐसा कहकर वह जटायु मर गया। तब श्रीरामने उसका दाह-संस्कार किया। उसकी समस्त और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके श्रीराम और लक्ष्मण वहाँसे आगे बढ़े॥ १६॥

मार्गमें कबन्धका वध करके भगवान् श्रीरामने उसे शापसे छुड़ाया और उसीके कथनानुसार उन्होंने सुग्रीवसे मित्रता की॥ १७॥

तदनन्तर पराक्रमी वालीका वध करके श्रीरामने कार्यसाधनहेतु किष्किन्धाका उत्तम राज्य अपने सखा सुग्रीवको दे दिया॥ १८॥

वहींपर लक्ष्मणसहित श्रीरामने रावणके द्वारा अपहृत अपनी प्रिया जानकीके विषयमें मनमें सोचते हुए वर्षाके चार मास व्यतीत किये॥ १९॥

सीताके विरहमें अत्यन्त दुःखित श्रीरामने एक दिन लक्ष्मणसे कहा—हे सौमित्रे! कैकेयीकी कामना पूरी हो गयी। अभीतक जानकी नहीं मिली, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकता। जनकतनया सीताके बिना मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा॥ २०-२१॥

राज्य चला गया, वनवास करना पड़ा, पिताजी मृत हो गये और प्रिया सीता भी हर ली गयी। इस प्रकार मुझे पीड़ित करता हुआ दुर्दैव आगे न जाने क्या करेगा?॥ २२॥

हे भरतानुज! प्राणियोंके प्रारब्धको जान पाना अत्यन्त कठिन है। हे तात! अब हम दोनोंकी न जाने कौन-सी दुःखद गति होगी?॥ २३॥

मनुके कुलमें जन्म पाकर हम राजकुमार हुए; फिर भी हमलोग पूर्वजन्ममें किये गये कर्मके कारण वनमें अत्यधिक दुःख भोग रहे हैं॥ २४॥

हे सौमित्रे! तुम भी भोगोंका परित्याग करके दैवयोगसे मेरे साथ निकल पड़े; तो फिर अब यह कठिन कष्ट भोगो॥ २५॥

हमारे कुलमें मेरे समान दुःख भोगनेवाला, अकिंचन, असमर्थ तथा क्लेशयुक्त व्यक्ति न हुआ है और न होगा॥ २६॥

हे लक्ष्मण! अब मैं क्या करूँ? मैं शोकसागरमें डूब रहा हूँ, मुझ असहायको इससे पार होनेका कोई

न वित्तं न बलं वीर त्वमेकः सहचारकः।
कोपं कस्मिन्करोम्यद्य भोगेऽस्मिन्स्वकृतेऽनुज॥ २८

गतं हस्तगतं राज्यं क्षणादिन्द्रसमोपमम्।
वने वासस्तु सम्प्राप्तः को वेद विधिनिर्मितम्॥ २९

बालभावाच्च वैदेही चलिता चावयोः सह।
नीता दैवेन दुष्टेन श्यामा दुःखतरां दशाम्॥ ३०

लङ्केशस्य गृहे श्यामा कथं दुःखे भविष्यति।
पतिव्रता सुशीला च मयि प्रीतियुता भृशम्॥ ३१

न च लक्ष्मण वैदेही सा तस्य वशगा भवेत्।
स्वैरिणीव वरारोहा कथं स्याज्जनकात्मजा॥ ३२

त्यजेत्प्राणान्नियंतृत्वे मैथिली भरतानुज।
न रावणस्य वशगा भवेदिति सुनिश्चितम्॥ ३३

मृता चेज्जानकी वीर प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम्।
मृता चेदसितापाङ्गी किं मे देहेन लक्ष्मण॥ ३४

एवं विलपमानं तं रामं कमललोचनम्।
लक्ष्मणः प्राह धर्मात्मा सान्त्वयन्नृतया गिरा॥ ३५

धैर्यं कुरु महाबाहो त्यक्त्वा कातरतामिह।
आनयिष्यामि वैदेहीं हत्वा तं राक्षसाधमम्॥ ३६

आपदि सम्पदि तुल्या धैर्याद्भवन्ति ते धीराः।
अल्पधियस्तु निमग्नाः कष्टे भवन्ति विभवेऽपि॥ ३७

संयोगो विप्रयोगश्च दैवाधीनावुभावपि।
शोकस्तु कीदृशस्तत्र देहेऽनात्मनि च क्वचित्॥ ३८

उपाय नहीं सूझता। हे वीर! मेरे पास न धन है, न बल; एकमात्र तुम ही मेरा साथ देनेवाले हो। हे अनुज! अपने ही द्वारा किये इस कर्मभोगके विषयमें अब मैं किसपर क्रोध करूँ?॥ २७-२८॥

इन्द्र और यमके राज्यकी तरह हाथमें आया हुआ राज्य क्षणभरमें चला गया और वनवास प्राप्त हुआ; विधिकी रचनाको कौन जान सकता है?॥ २९॥

बाल-स्वभावके कारण सीता भी हम दोनोंके साथ चली आयी। दुष्ट दैवने उस सुन्दरीको अत्यधिक दुःखपूर्ण स्थितिमें पहुँचा दिया॥ ३०॥

वह सुन्दरी जानकी लंकापति रावणके घरमें किस प्रकार दुःखित जीवन व्यतीत करती होगी? वह पतिव्रता है, शीलवती है और मुझसे अत्यधिक अनुराग रखती है॥ ३१॥

हे लक्ष्मण! वह जनकनन्दिनी उस रावणके वशमें कभी नहीं हो सकती, सुन्दर शरीरवाली वह विदेहतनया सीता स्वैरिणीकी भाँति भला किस प्रकार आचरण करेगी?॥ ३२॥

हे भरतानुज! वह मैथिली अधिक नियन्त्रण किये जानेपर अपने प्राण त्याग देगी, किंतु यह सुनिश्चित है कि वह रावणकी वशवर्तिनी नहीं होगी॥ ३३॥

हे वीर! यदि जानकी मर गयी तो मैं भी निस्सन्देह अपने प्राण त्याग दूँगा; क्योंकि हे लक्ष्मण! श्यामनयना सीताके मृत हो जानेपर मुझे अपने देहसे क्या लाभ?॥ ३४॥

इस प्रकार विलाप करते हुए उन कमलनयन रामको सत्यपूर्ण वाणीसे सान्त्वना प्रदान करते हुए धर्मात्मा लक्ष्मणने कहा—॥ ३५॥

हे महाबाहो! आप इस समय दैन्यभाव छोड़कर धैर्य धारण कीजिये। मैं उस अधम राक्षसको मारकर जानकीको वापस ले आऊँगा॥ ३६॥

विपत्ति तथा सम्पत्ति—इन दोनों ही स्थितियोंमें धैर्य धारण करते हुए जो एक समान रहते हैं, वे ही धीर होते हैं, किंतु अल्प बुद्धिवाले लोग तो सम्पत्तिकी दशामें भी कष्टमें पड़े रहते हैं॥ ३७॥

संयोग तथा वियोग—ये दोनों ही दैवके अधीन होते हैं। शरीर तो आत्मासे भिन्न है, अतः उसके लिये शोक कैसा?॥ ३८॥

राज्याद्यथा वने वासो वैदेह्या हरणं यथा।
तथा काले समीचीने संयोगोऽपि भविष्यति॥ ३९

प्राप्तव्यं सुखदु:खानां भोगान्निर्वर्तनं क्वचित्।
नान्यथा जानकीजाने तस्माच्छोकं त्यजाधुना॥ ४०

वानराः सन्ति भूयांसो गमिष्यन्ति चतुर्दिशम्।
शुद्धिं जनकनन्दिन्या आनयिष्यन्ति ते किल॥ ४१

ज्ञात्वा मार्गस्थितिं तत्र गत्वा कृत्वा पराक्रमम्।
हत्वा तं पापकर्माणमानयिष्यामि मैथिलीम्॥ ४२

ससैन्यं भरतं वापि समाहूय सहानुजम्।
हनिष्यामो वयं शत्रुं किं शोचसि वृथाग्रज॥ ४३

रघुणैकरथेनैव जिताः सर्वा दिशः पुरा।
तद्वंशजः कथं शोकं कर्तुमर्हसि राघव॥ ४४

एकोऽहं सकलाञ्जेतुं समर्थोऽस्मि सुरासुरान्।
किं पुनः ससहायो वै रावणं कुलपांसनम्॥ ४५

जनकं वा समानीय साहाय्ये रघुनन्दन।
हनिष्यामि दुराचारं रावणं सुरकण्टकम्॥ ४६

सुखस्यानन्तरं दु:खं दु:खस्यानन्तरं सुखम्।
चक्रनेमिरिवैकं तन्न भवेद्रघुनन्दन॥ ४७

मनोऽतिकातरं यस्य सुखदु:खसमुद्भवे।
स शोकसागरे मग्नो न सुखी स्यात्कदाचन॥ ४८

इन्द्रेण व्यसनं प्राप्तं पुरा वै रघुनन्दन।
नहुषः स्थापितो देवैः सर्वैर्मघवतः पदे॥ ४९

स्थितः पङ्कजमध्ये च बहुवर्षगणानपि।
अज्ञातवासं मघवा भीतस्त्यक्त्वा निजं पदम्॥ ५०

जिस प्रकार [प्रतिकूल समय आनेपर] राज्यसे निर्वासित होकर हमें वनवास भोगना पड़ा तथा सीताहरण हुआ, उसी प्रकार अनुकूल समय आनेपर संयोग भी हो जायगा॥ ३९॥

हे सीतापते! सुखों तथा दु:खोंके भोगसे छुटकारा कहाँ? वह तो नि:सन्देह भोगना ही पड़ता है। अत: आप इस समय शोकका त्याग कर दीजिये॥ ४०॥

बहुतसे वानर हैं; वे चारों दिशाओंमें जायँगे और जानकीकी खोज-खबर ले आयेंगे। [पता लग जानेपर] मार्गकी जानकारी करके मैं स्वयं वहाँ जाऊँगा और आक्रमण करके उस पापकर्मवाले रावणका वध करके जानकीजीको अवश्य ले आऊँगा॥ ४१-४२॥

अथवा हे अग्रज! यदि इससे कार्य न चलेगा, तो मैं भरत तथा शत्रुघ्नको भी सेनासमेत बुला लूँगा और हमलोग उस शत्रुको मार डालेंगे; आप वृथा क्यों चिन्ता कर रहे हैं?॥ ४३॥

पूर्वकालमें राजा रघुने केवल एक रथसे ही चारों दिशाओंको जीत लिया था। हे राघवेन्द्र! आप उसी वंशके होकर शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ४४॥

अकेला मैं सभी देवताओं तथा दानवोंको जीतनेमें समर्थ हूँ, तब फिर आप-जैसे सहायकके रहते उस कुलकलंकी रावणका वध करनेमें क्या कठिनाई है?॥ ४५॥

अथवा हे रघुनन्दन! मैं महाराज जनकको सहायताके लिये बुलाकर देवताओंके कण्टकस्वरूप उस दुराचारी रावणका वध कर डालूँगा॥ ४६॥

हे रघुनन्दन! सुखके बाद दु:ख तथा दु:खके बाद सुख पहियेकी धुरीकी तरह आया-जाया करते हैं। सदा एक स्थिति नहीं रहती। सुख-दु:खके आनेपर जिसका मन कातर हो जाता है, वह शोकसागरमें निमग्न रहता है और कभी सुखी नहीं रह सकता॥ ४७-४८॥

हे राघव! पूर्वकालमें इन्द्रके ऊपर भी विपत्ति आयी थी, तब सभी देवताओंने उनके स्थानपर राजा नहुषको स्थापित कर दिया था। उस समय इन्द्रने भयवश अपना पद त्यागकर बहुत दिनोंतक कमलवनमें छिपकर अज्ञातवास किया था। समय बदलनेपर

पुनः प्राप्तं निजं स्थानं काले विपरिवर्तिते।
नहुषः पतितो भूमौ शापादजगराकृतिः॥ ५१

इन्द्राणीं कामयानस्तु ब्राह्मणानवमन्य च।
अगस्तिकोपात्सञ्जातः सर्पदेहो महीपतिः॥ ५२

तस्माच्छोको न कर्तव्यो व्यसने सति राघव।
उद्यमे चित्तमास्थाय स्थातव्यं वै विपश्चिता॥ ५३

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थोऽसि जगत्पते।
किं प्राकृत इवात्यर्थं कुरुषे शोकमात्मनि॥ ५४

व्यास उवाच

इति लक्ष्मणवाक्येन बोधितो रघुनन्दनः।
त्यक्त्वा शोकं तथात्यर्थं बभूव विगतज्वरः॥ ५५

उन्होंने पुनः अपना पद प्राप्त कर लिया और नहुषको शापवश अजगरके रूपमें होकर पृथ्वीपर गिरना पड़ा। ब्राह्मणोंका अपमान करके इन्द्राणीको पानेकी इच्छाके कारण ही अगस्त्यमुनिके कोपपूर्वक शाप देनेसे राजा नहुष सर्पदेहवाले हो गये थे॥ ४९—५२॥

अतः हे राघव! दुःख आनेपर शोक नहीं करना चाहिये। विज्ञ पुरुषको चाहिये कि ऐसी परिस्थितिमें मनको उद्यमशील बनाकर समयकी प्रतीक्षा करता रहे॥ ५३॥

हे महाभाग! आप सर्वज्ञ हैं। हे जगत्पते! आप सर्वसमर्थ हैं; तब एक प्राकृत पुरुषकी भाँति आप अपने मनमें अत्यन्त शोक क्यों कर रहे हैं?॥ ५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार लक्ष्मणकी बातोंसे रघुनन्दन श्रीरामचन्द्रजीको सान्त्वना मिली और वे शोक त्यागकर बिलकुल निश्चिन्त हो गये॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
लक्ष्मणकृतरामशोकसान्त्वनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

* * *

अथ त्रिंशोऽध्यायः

श्रीराम और लक्ष्मणके पास नारदजीका आना और उन्हें नवरात्रव्रत करनेका परामर्श देना, श्रीरामके पूछनेपर नारदजीका उनसे देवीकी महिमा और नवरात्रव्रतकी विधि बतलाना, श्रीरामद्वारा देवीका पूजन और देवीद्वारा उन्हें विजयका वरदान देना

व्यास उवाच

एवं तौ संविदं कृत्वा यावत्तूष्णीं बभूवतुः।
आजगाम तदाकाशान्नारदो भगवानृषिः॥ १

रणयन्महतीं वीणां स्वरग्रामविभूषिताम्।
गायन्बृहद्रथं साम तदा तमुपतस्थिवान्॥ २

दृष्ट्वा तं राम उत्थाय ददावथ वृषं शुभम्।
आसनं चार्घपाद्यञ्च कृतवानमितद्युतिः॥ ३

पूजां परमिकां कृत्वा कृताञ्जलिरुपस्थितः।
उपविष्टः समीपे तु कृताज्ञो मुनिना हरिः॥ ४

व्यासजी बोले—इस प्रकार राम और लक्ष्मण परस्परमें परामर्श करके ज्यों ही चुप हुए, त्यों ही आकाशमार्गसे देवर्षि नारद वहाँ आ गये॥ १॥

उस समय वे स्वर तथा ग्रामसे विभूषित अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा बृहद्रथन्तर सामका गायन करते हुए उनके समीप पहुँचे॥ २॥

उन्हें देखते ही अमित तेजवाले श्रीरामने उठकर उन्हें श्रेष्ठ पवित्र आसन प्रदान किया और तत्पश्चात् अर्घ्य तथा पाद्यसे उनकी पूजा की॥ ३॥

भलीभाँति पूजा करनेके बाद भगवान् श्रीराम हाथ जोड़कर खड़े हो गये और फिर मुनिके आज्ञा देनेपर उनके पास ही बैठ गये॥ ४॥

उपविष्टं तदा रामं सानुजं दुःखमानसम्।
पप्रच्छ नारदः प्रीत्या कुशलं मुनिसत्तमः॥ ५

कथं राघव शोकार्तो यथा वै प्राकृतो नरः।
हृतां सीतां च जानामि रावणेन दुरात्मना॥ ६

सुरसद्मगतश्चाहं श्रुतवाञ्जनकात्मजाम्।
पौलस्त्येन हृतां मोहान्मरणं स्वमजानता॥ ७

तव जन्म च काकुत्स्थ पौलस्त्यनिधनाय वै।
मैथिलीहरणं जातमेतदर्थं नराधिप॥ ८

पूर्वजन्मनि वैदेही मुनिपुत्री तपस्विनी।
रावणेन वने दृष्टा तपस्यन्ती शुचिस्मिता॥ ९

प्रार्थिता रावणेनासौ भव भार्येति राघव।
तिरस्कृतस्तयासौ वै जग्राह कबरं बलात्॥ १०

शशाप तत्क्षणं राम रावणं तापसी भृशम्।
कुपिता त्यक्तुमिच्छन्ती देहं संस्पर्शदूषितम्॥ ११

दुरात्मंस्तव नाशार्थं भविष्यामि धरातले।
अयोनिजा वरा नारी त्यक्त्वा देहं जहावपि॥ १२

सेयं रमांशसम्भूता गृहीता तेन रक्षसा।
विनाशार्थं कुलस्यैव व्याली स्त्रगिव सम्भ्रमात्॥ १३

तव जन्म च काकुत्स्थ तस्य नाशाय चामरैः।
प्रार्थितस्य हरेरंशादजवंशेऽप्यजन्मनः॥ १४

कुरु धैर्यं महाबाहो तत्र सा वर्ततेऽवशा।
सतीधर्मरता सीता त्वां ध्यायन्ती दिवानिशम्॥ १५

तब अपने अनुज लक्ष्मणके साथ बैठे हुए खिन्न-मनस्क रामसे मुनीन्द्र नारदजी प्रेमपूर्वक कुशलक्षेम पूछने लगे॥ ५॥

नारदजी बोले—हे राघव! आप इस समय साधारण मनुष्यके समान शोकाकुल क्यों हैं? मैं यह जानता हूँ कि दुष्ट रावण सीताको हर ले गया है। जब मैं देवलोकमें गया था, तभी मैंने वहाँ सुना कि अपनी मृत्युको न जाननेसे ही मोहके वशीभूत होकर रावणने जनकनन्दिनीका हरण कर लिया है॥ ६-७॥

हे काकुत्स्थ! आपका जन्म ही रावणके निधनके लिये हुआ है। हे नराधिप! इसी कार्यसिद्धिके लिये सीताका हरण हुआ है॥ ८॥

पूर्वजन्ममें ये वैदेही एक मुनिकी तपस्विनी कन्या थीं। उस पवित्र मुसकानवाली कन्याको रावणने वनमें तप करते हुए देखा। हे राघव! तब रावणने उससे प्रार्थना की कि तुम मेरी पत्नी बन जाओ। इसपर उसके द्वारा तिरस्कृत किये गये रावणने बलपूर्वक उसके केश पकड़ लिये॥ ९-१०॥

हे राम! रावणके स्पर्शसे दूषित अपनी देहको त्यागनेकी आकांक्षा रखती हुई उस तापसी मुनिकन्याने अत्यन्त कुपित होकर उसे तत्काल यह घोर शाप दे दिया कि हे दुरात्मन्! तुम्हारे विनाशके लिये मैं भूतलपर गर्भसे जन्म न लेकर एक श्रेष्ठ स्त्रीके रूपमें प्रकट होऊँगी—ऐसा कहकर उस तापसीने अपना शरीर त्याग दिया॥ ११-१२॥

लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न यह सीता वही है; जिसे भ्रमवश माला समझकर नागिनको धारण करनेवाले व्यक्तिकी भाँति रावणने अपने ही वंशका नाश करनेके लिये हर लिया है॥ १३॥

हे काकुत्स्थ! आपका भी जन्म उसी रावणके नाशके लिये देवताओंके प्रार्थना करनेपर अनादि भगवान् विष्णुके अंशसे अजवंशमें हुआ है॥ १४॥

हे महाबाहो! आप धैर्य धारण करें; वे किसी दूसरेके वशमें नहीं हो सकतीं! वे सतीधर्मपरायण सीता लंकामें दिन-रात आपका ध्यान करती हुई रह रही हैं॥ १५॥

कामधेनुपयः पात्रे कृत्वा मघवता स्वयम्।
पानार्थं प्रेषितं तस्याः पीतं चैवामृतं तथा॥ १६

सुरभीदुग्धपानात्सा क्षुत्तृड्दुःखविवर्जिता।
जाता कमलपत्राक्षी वर्तते वीक्षिता मया॥ १७

उपायं कथयाम्यद्य तस्य नाशाय राघव।
व्रतं कुरुष्व श्रद्धावानाश्विने मासि साम्प्रतम्॥ १८

नवरात्रोपवासञ्च भगवत्याः प्रपूजनम्।
सर्वसिद्धिकरं राम जपहोमविधानतः॥ १९

मेध्यैश्च पशुभिर्देव्या बलिं दत्त्वा विशंसितैः।
दशांशं हवनं कृत्वा सुशक्तस्त्वं भविष्यसि॥ २०

विष्णुना चरितं पूर्वं महादेवेन ब्रह्मणा।
तथा मघवता चीर्णं स्वर्गमध्यस्थितेन वै॥ २१

सुखिना राम कर्तव्यं नवरात्रव्रतं शुभम्।
विशेषेण च कर्तव्यं पुंसा कष्टगतेन वै॥ २२

विश्वामित्रेण काकुत्स्थ कृतमेतन्न संशयः।
भृगुणाथ वसिष्ठेन कश्यपेन तथैव च॥ २३

गुरुणा हृतदारेण कृतमेतन्महाव्रतम्।
तस्मात्त्वं कुरु राजेन्द्र रावणस्य वधाय च॥ २४

इन्द्रेण वृत्रनाशाय कृतं व्रतमनुत्तमम्।
त्रिपुरस्य विनाशाय शिवेनापि पुरा कृतम्॥ २५

हरिणा मधुनाशाय कृतं मेरौ महामते।
विधिवत्कुरु काकुत्स्थ व्रतमेतदतन्द्रितः॥ २६

श्रीराम उवाच

का देवी किंप्रभावा सा कुतो जाता किमाह्वया।
व्रतं किं विधिवद् ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ २७

नारद उवाच

शृणु राम सदा नित्या शक्तिराद्या सनातनी।
सर्वकामप्रदा देवी पूजिता दुःखनाशिनी॥ २८

स्वयं इन्द्रने एक पात्रमें कामधेनुका दूध सीताको पीनेके लिये भेजा था, उस अमृततुल्य दूधको उन्होंने पी लिया है। वे कामधेनुके दुग्धपानसे भूख-प्यासके दुःखसे रहित हो गयी हैं। मैंने उन कमलनयनीको स्वयं देखा है॥ १६-१७॥

हे राघवेन्द्र! मैं उस रावणके नाशका उपाय बताता हूँ। अब आप इसी आश्विनमासमें श्रद्धापूर्वक नवरात्रव्रत कीजिये॥ १८॥

हे राम! नवरात्रमें उपवास तथा जप-होमके विधानसे किया गया भगवती-पूजन समस्त सिद्धियोंको प्रदान करनेवाला है। देवीको पवित्र बलि देकर तथा दशांश हवन करके आप पूर्ण शक्तिशाली बन जायँगे॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा तथा स्वर्ग-लोकमें विराजमान इन्द्रने भी इसका अनुष्ठान किया था॥ २१॥

हे राम! सुखी मनुष्यको इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये और कष्टमें पड़े हुए मनुष्यको तो यह व्रत विशेषरूपसे करना चाहिये॥ २२॥

हे काकुत्स्थ! विश्वामित्र, भृगु, वसिष्ठ और कश्यप भी इस व्रतको कर चुके हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसी प्रकार हरण की गयी पत्नीवाले गुरु बृहस्पतिने भी इस व्रतको किया था। इसलिये हे राजेन्द्र! रावणके वध तथा सीताकी प्राप्तिके लिये आप इस व्रतको कीजिये। पूर्वकालमें इन्द्रने वृत्रासुरके वधके लिये तथा शिवने त्रिपुरदैत्यके वधके लिये यह सर्वश्रेष्ठ व्रत किया था। हे महामते! इसी प्रकार भगवान् विष्णुने भी मधुदैत्यके वधके लिये सुमेरुपर्वतपर यह व्रत किया था, अतः हे काकुत्स्थ! आप भी आलस्यरहित होकर विधिपूर्वक यह व्रत कीजिये॥ २३—२६॥

श्रीराम बोले—हे दयानिधे! आप सर्वज्ञ हैं, अतः मुझे विधिपूर्वक बताइये कि वे कौन देवी हैं, उनका प्रभाव क्या है, वे कहाँसे उत्पन्न हुई हैं, उनका नाम क्या है तथा वह व्रत कौन-सा है?॥ २७॥

नारदजी बोले—हे राम! सुनिये—वे देवी नित्य, सनातनी और आद्याशक्ति हैं, वे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण कर देती हैं और अपनी आराधनासे सभी प्रकारके कष्ट दूर कर देती हैं॥ २८॥

कारणं सर्वजन्तूनां ब्रह्मादीनां रघूद्वह।
तस्याः शक्तिं विना कोऽपि स्पन्दितुं न क्षमो भवेत्॥ २९

विष्णोः पालनशक्तिः सा कर्तृशक्तिः पितुर्मम।
रुद्रस्य नाशशक्तिः सा त्वन्या शक्तिः परा शिवा॥ ३०

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु सदसद्भुवनत्रये।
तस्य सर्वस्य या शक्तिस्तदुत्पत्तिः कुतो भवेत्॥ ३१

न ब्रह्मा न यदा विष्णुर्न रुद्रो न दिवाकरः।
न चेन्द्राद्याः सुराः सर्वे न धरा न धराधराः॥ ३२

तदा सा प्रकृतिः पूर्णा पुरुषेण परेण वै।
संयुता विहरत्येव युगादौ निर्गुणा शिवा॥ ३३

सा भूत्वा सगुणा पश्चात्करोति भुवनत्रयम्।
पूर्वं संसृज्य ब्रह्मादीन्दत्त्वा शक्तीश्च सर्वशः॥ ३४

तां ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।
सा विद्या परमा ज्ञेया वेदाद्या वेदकारिणी॥ ३५

असंख्यातानि नामानि तस्या ब्रह्मादिभिः किल।
गुणकर्मविधानैस्तु कल्पितानि च किं ब्रुवे॥ ३६

अकारादिक्षकारान्तैः स्वरैर्वर्णैस्तु योजितैः।
असंख्येयानि नामानि भवन्ति रघुनन्दन॥ ३७

श्रीराम उवाच

विधिं मे ब्रूहि विप्रर्षे व्रतस्यास्य समासतः।
करोम्यद्यैव श्रद्धावाञ्छ्रीदेव्याः पूजनं तथा॥ ३८

नारद उवाच

पीठं कृत्वा समे स्थाने संस्थाप्य जगदम्बिकाम्।
उपवासान्नवैव त्वं कुरु राम विधानतः॥ ३९

आचार्योऽहं भविष्यामि कर्मण्यस्मिन्महीपते।
देवकार्यविधानार्थमुत्साहं प्रकरोम्यहम्॥ ४०

हे रघुनन्दन! वे ब्रह्मा आदि देवताओं तथा समस्त जीवोंकी कारणस्वरूपा हैं। उनसे शक्ति पाये बिना कोई हिल-डुल सकनेमें भी समर्थ नहीं है॥ २९॥

वे ही मेरे पिता ब्रह्माकी सृष्टि-शक्ति हैं, विष्णुकी पालन-शक्ति हैं तथा शंकरकी संहार-शक्ति हैं। वे कल्याणमयी पराम्बा अन्य शक्तिरूपा भी हैं॥ ३०॥

इन तीनों लोकोंमें जो कुछ भी कहीं भी सत् या असत् पदार्थ है, उसकी उत्पत्तिमें निमित्तकारण इस देवीके अतिरिक्त और कौन हो सकता है?॥ ३१॥

इस सृष्टिके आरम्भमें जब ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, इन्द्रादि देवता, पृथ्वी और पर्वत आदि कुछ भी नहीं रहता, तब उस समय वे निर्गुणा, कल्याणमयी, परा प्रकृति ही परमपुरुषके साथ विहार करती हैं॥ ३२-३३॥

वे ही बादमें सगुणा शक्ति बनकर सर्वप्रथम ब्रह्मा आदिका सृजन करके और उन्हें शक्तियाँ प्रदानकर तीनों भुवनोंकी सम्यक् रचना करती हैं॥ ३४॥

उन आदिशक्तिको जानकर प्राणी संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है। विद्यास्वरूपा, वेदोंकी आदिकारण, वेदोंको प्रकट करनेवाली तथा परमा उन भगवतीको अवश्य जानना चाहिये॥ ३५॥

ब्रह्मादि देवताओंने गुण-कर्मके विधानानुसार उनके असंख्य नाम कल्पित किये हैं, मैं कहाँतक बताऊँ? हे रघुनन्दन! 'अ' कारसे लेकर 'क्ष' पर्यन्त सभी स्वरों तथा वर्णोंके संयोगसे उनके असंख्य नाम बनते हैं॥ ३६-३७॥

श्रीराम बोले—हे देवर्षे! इस नवरात्रव्रतका विधान मुझे संक्षेपमें बताइये; मैं आज ही श्रद्धापूर्वक श्रीदेवीका विधिवत् पूजन करूँगा॥ ३८॥

नारदजी बोले—हे राम! किसी समतल भूमिपर पीठासन बनाकर उसपर भगवती जगदम्बिकाकी स्थापना करके विधानपूर्वक नौ दिन उपवास कीजिये। हे राजन्! इस कार्यमें मैं आचार्य बनूँगा; क्योंकि देवताओंके कार्य करनेमें मैं अधिक उत्साह रखता हूँ॥ ३९-४०॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं मत्वा रामः प्रतापवान्।
कारयित्वा शुभं पीठं स्थापयित्वाम्बिकां शिवाम्॥ ४१

विधिवत्पूजनं तस्याश्चकार व्रतवान् हरिः।
सम्प्राप्ते चाश्विने मासि तस्मिन्गिरिवरे तदा॥ ४२

उपवासपरो रामः कृतवान्व्रतमुत्तमम्।
होमञ्च विधिवत्तत्र बलिदानञ्च पूजनम्॥ ४३

भ्रातरौ चक्रतुः प्रेम्णा व्रतं नारदसम्मतम्।
अष्टम्यां मध्यरात्रे तु देवी भगवती हि सा॥ ४४

सिंहारूढा ददौ तत्र दर्शनं प्रतिपूजिता।
गिरिशृङ्गे स्थितोवाच राघवं सानुजं गिरा॥ ४५

मेघगम्भीरया चेदं भक्तिभावेन तोषिता।

देव्युवाच

राम राम महाबाहो तुष्टास्म्यद्य व्रतेन ते॥ ४६

प्रार्थयस्व वरं कामं यत्ते मनसि वर्तते।
नारायणांशसम्भूतस्त्वं वंशे मानवेऽनघे॥ ४७

रावणस्य वधायैव प्रार्थितस्त्वमरैरसि।
पुरा मत्स्यतनुं कृत्वा हत्वा घोरञ्च राक्षसम्॥ ४८

त्वया वै रक्षिता वेदाः सुराणां हितमिच्छता।
भूत्वा कच्छपरूपस्तु धृतवान्मन्दरं गिरिम्॥ ४९

अकूपारं प्रमन्थानं कृत्वा देवानपोषयः।
कोलरूपं परं कृत्वा दशनाग्रेण मेदिनीम्॥ ५०

धृतवानसि यद्राम हिरण्याक्षं जघान च।
नारसिंहीं तनुं कृत्वा हिरण्यकशिपुं पुरा॥ ५१

प्रह्लादं राम रक्षित्वा हतवानसि राघव।
वामनं वपुरास्थाय पुरा छलितवान्बलिम्॥ ५२

भूत्वेन्द्रस्यानुजः कामं देवकार्यप्रसाधकः।
जमदग्निसुतस्त्वं मे विष्णोरंशेन सङ्गतः॥ ५३

व्यासजी बोले—नारदजीका वचन सुनकर प्रतापी श्रीरामने उसे सत्य मानकर तदनुसार एक सुन्दर पीठासन बनवाकर उसपर अम्बिकाकी स्थापना की। व्रतधारी भगवान् श्रीरामने आश्विनमास लगनेपर उस श्रेष्ठ पर्वतपर उन भगवतीका पूजन किया। उपवासपरायण श्रीरामने यह श्रेष्ठ व्रत करते हुए विधिवत् होम, बलिदान और पूजन किया। इस प्रकार दोनों भाइयोंने नारदजीके द्वारा बताये गये इस व्रतको प्रेमपूर्वक सम्पन्न किया। उनसे सम्यक् पूजित होकर अष्टमीकी मध्यरात्रिकी वेलामें भगवती दुर्गाने सिंहपर सवार होकर उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। तदनन्तर भक्तिभावसे प्रसन्न उन भगवतीने पर्वतके शिखरपर स्थित होकर लक्ष्मणसहित रामसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा॥ ४१—४५ $\frac{१}{२}$ ॥

देवी बोलीं—हे राम! हे महाबाहो! इस समय मैं आपके व्रतसे सन्तुष्ट हूँ। आपके मनमें जो भी हो, उस अभिलषित वरको माँग लीजिये। आप पवित्र मनुवंशमें नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। हे राम! देवताओंके प्रार्थना करनेपर रावणके वधके लिये आप अवतरित हुए हैं। पूर्वकालमें मत्स्यरूप धारणकर भयानक राक्षसका वध करके देवताओंके हितकी इच्छावाले आपने ही वेदोंकी रक्षा की थी। पुनः कच्छपके रूपमें अवतार लेकर मन्दराचलको अपनी पीठपर धारण किया, जिससे समुद्रका मन्थन करके [अमृतपान कराकर] देवताओंका पोषण किया था। हे राम! आपने वराहका रूप धारणकर अपने दाँतोंकी नोंकपर पृथ्वीको रख लिया और हिरण्याक्षका वध किया था। हे राघव! हे राम! पूर्वकालमें नरसिंहका रूप धारणकर प्रह्लादकी रक्षा करके आपने हिरण्यकशिपुका वध किया था। इसी प्रकार पूर्वकालमें वामनका रूप धारण करके आपने बलिको छला था। उस समय इन्द्रका लघु भ्राता बनकर आपने देवताओंका महान् कार्य सिद्ध किया था। पुनः भगवान् विष्णुके अंशसे जमदग्निके

कृत्वान्तं क्षत्रियाणां तु दानं भूमेरदाद् द्विजे।
तथेदानीं तु काकुत्स्थ जातो दशरथात्मजः॥ ५४

प्रार्थितस्तु सुरैः सर्वैः रावणेनातिपीडितैः।
कपयस्ते सहाया वै देवांशा बलवत्तराः॥ ५५

भविष्यन्ति नरव्याघ्र मच्छक्तिसंयुता ह्यमी।
शेषांशोऽप्यनुजस्तेऽयं रावणात्मजनाशकः॥ ५६

भविष्यति न सन्देहः कर्तव्योऽत्र त्वयानघ।
वसन्ते सेवनं कार्यं त्वया तत्रातिश्रद्धया॥ ५७

हत्वाथ रावणं पापं कुरु राज्यं यथासुखम्।
एकादशसहस्राणि वर्षाणि पृथिवीतले॥ ५८

कृत्वा राज्यं रघुश्रेष्ठ गन्तासि त्रिदिवं पुनः।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी रामस्तु प्रीतमानसः॥ ५९

समाप्य तद् व्रतं चक्रे प्रयाणं दशमीदिने।
विजयापूजनं कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः॥ ६०

कपिपतिबलयुक्तः सानुजः श्रीपतिश्च
प्रकटपरमशक्त्या प्रेरितः पूर्णकामः।
उदधितटगतोऽसौ सेतुबन्धं विधाया-
प्यहनदमरशत्रुं रावणं गीतकीर्तिः॥ ६१

यः शृणोति नरो भक्त्या देव्याश्चरितमुत्तमम्।
स भुक्त्वा विपुलान्भोगान्प्राप्नोति परमं पदम्॥ ६२

सन्त्यन्यानि पुराणानि विस्तराणि बहूनि च।
श्रीमद्भागवतस्यास्य न तुल्यानीति मे मतिः॥ ६३

पुत्र परशुरामके रूपमें अवतरित होकर क्षत्रियोंका अन्त करके आपने सारी पृथ्वी ब्राह्मणोंको दे दी थी। उसी प्रकार हे काकुत्स्थ! रावणके द्वारा अत्यधिक सताये गये सभी देवताओंके प्रार्थना करनेपर इस समय आप ही दशरथपुत्र श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं॥ ४६—५४½॥

हे नरोत्तम! देवताओंके अंशसे उत्पन्न ये परम बलशाली वानर मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर आपके सहायक होंगे। शेषनागके अंशस्वरूप आपके ये अनुज लक्ष्मण रावणके पुत्र मेघनादका वध करनेवाले होंगे। हे अनघ! इस विषयमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५५-५६½॥

वसन्त ऋतुके नवरात्रमें आप परम श्रद्धाके साथ [पुनः] मेरी पूजा कीजिये। तत्पश्चात् पापी रावणका वध करके आप सुखपूर्वक राज्य कीजिये। हे रघुश्रेष्ठ! इस प्रकार ग्यारह हजार वर्षोंतक भूतलपर राज्य करके पुनः आप देवलोकके लिये प्रस्थान करेंगे॥ ५७-५८½॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती दुर्गा वहीं अन्तर्धान हो गयीं और श्रीरामचन्द्रजीने प्रसन्न मनसे उस व्रतका समापन करके दशमी तिथिको विजयापूजन करके तथा अनेकविध दान देकर वहाँसे प्रस्थान कर दिया॥ ५९-६०॥

वानरराज सुग्रीवकी सेनाके साथ अपने अनुज-सहित विख्यात यशवाले तथा पूर्णकाम लक्ष्मीपति श्रीराम साक्षात् परमा शक्तिकी प्रेरणासे समुद्रतटपर पहुँचे। वहाँ सेतु-बन्धन करके उन्होंने देवशत्रु रावणका संहार किया॥ ६१॥

जो मनुष्य भक्तिपूर्वक देवीके उत्तम चरित्रका श्रवण करता है, वह अनेक सुखोंका उपभोग करके परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ६२॥

यद्यपि अन्य बहुतसे विस्तृत पुराण हैं, किंतु वे इस श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणके तुल्य नहीं हैं, ऐसी मेरी धारणा है॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे
रामाय देवीवरदानं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

* * *

॥ तृतीयः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

चतुर्थः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

वसुदेव, देवकी आदिके कष्टोंके कारणके सम्बन्धमें जनमेजयका प्रश्न

जनमेजय उवाच

वासवेय मुनिश्रेष्ठ सर्वज्ञाननिधेऽनघ।
प्रष्टुमिच्छाम्यहं स्वामिन्नस्माकं कुलवर्धन॥ १

शूरसेनसुतः श्रीमान्वसुदेवः प्रतापवान्।
श्रुतं मया हरिर्यस्य पुत्रभावमवाप्तवान्॥ २

देवानामपि पूज्योऽभून्नाम्ना चानकदुन्दुभिः।
कारागारे कथं बद्धः कंसस्य धर्मतत्परः॥ ३

देवक्या भार्यया सार्धं किमागः कृतवानसौ।
देवक्या बालषट्कस्य विनाशश्च कृतः पुनः॥ ४

तेन कंसेन कस्माद्वै ययातिकुलजेन च।
कारागारे कथं जन्म वासुदेवस्य वै हरेः॥ ५

गोकुले च कथं नीतो भगवान्सात्वतां पतिः।
गतो जन्मान्तरं कस्मात्पितरौ निगडे स्थितौ॥ ६

देवकी वसुदेवौ च कृष्णस्यामिततेजसः।
कथं न मोचितौ वृद्धौ पितरौ हरिणामुना॥ ७

जगत्कर्तुं समर्थेन स्थितेन जनकोदरे।
प्राक्तनं किं तयोः कर्म दुर्विज्ञेयं महात्मभिः॥ ८

जन्म वै वासुदेवस्य यत्रासीत्परमात्मनः।
के ते पुत्राश्च का बाला या कंसेन विपोथिता॥ ९
शिलायां निर्गता व्योम्नि जाता त्वष्टभुजा पुनः।

जनमेजय बोले—हे वासवेय! हे मुनिवर! हे सर्वज्ञाननिधे! हे अनघ! हमारे कुलकी वृद्धि करनेवाले हे स्वामिन्! मैं [श्रीकृष्णके विषयमें] पूछना चाहता हूँ॥ १॥

मैंने सुना है कि परम प्रतापी श्रीमान् वसुदेव राजा शूरसेनके पुत्र थे, जिनके पुत्ररूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु अवतरित हुए थे॥ २॥

आनकदुन्दुभि नामसे विख्यात वे वसुदेव देवताओंके भी पूज्य थे। धर्मपरायण होते हुए भी वे कंसके कारागारमें क्यों बन्द हुए? उन्होंने अपनी भार्या देवकीसहित ऐसा क्या अपराध किया था, जिससे ययातिके कुलमें उत्पन्न कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया गया?॥ ३-४$\frac{१}{२}$ ॥

साक्षात् भगवान् विष्णुने वसुदेवके पुत्ररूपमें कारागारमें जन्म क्यों ग्रहण किया? देवताओंके अधिपति भगवान् श्रीकृष्ण गोकुलमें किस प्रकार ले जाये गये और वे भगवान् होते हुए भी जन्मान्तरको क्यों प्राप्त हुए? अमित तेजस्वी श्रीकृष्णके माता-पिता वसुदेव और देवकीको बन्धनमें क्यों आना पड़ा? जगत्‌की सृष्टि करनेमें समर्थ उन भगवान् श्रीकृष्णने माता देवकीके गर्भमें स्थित रहते हुए ही अपने वृद्ध माता-पिताको बन्धनसे मुक्त क्यों नहीं कर दिया? उन वसुदेव तथा देवकीने महात्माओंद्वारा भी दुःसाध्य ऐसे कौन-से कर्म पूर्वजन्ममें किये थे, जिससे उनके यहाँ परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका जन्म हुआ? वे छः पुत्र कौन थे, वह कन्या कौन थी, जिसे कंसने पत्थरपर पटक दिया था और वह हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी तथा पुनः अष्टभुजाके रूपमें प्रकट हुई?॥ ५—९$\frac{१}{२}$ ॥

गार्हस्थ्यञ्च हरेर्ब्रूहि बहुभार्यस्य चानघ॥ १०

कार्याणि तत्र तान्येव देहत्यागं च तस्य वै।
किंवदन्त्या श्रुतं यत्तन्मनो मोहयतीव मे॥ ११

चरितं वासुदेवस्य त्वमाख्याहि यथातथम्।
नरनारायणौ देवौ पुराणावृषिसत्तमौ॥ १२

धर्मपुत्रौ महात्मानौ तपश्चेरतुरुत्तमम्।
यौ मुनी बहुवर्षाणि पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ १३

निराहारौ जितात्मानौ निःस्पृहौ जितषड्गुणौ।
विष्णोरंशौ जगत्स्थेम्ने तपश्चेरतुरुत्तमम्॥ १४

तयोरंशावतारौ हि जिष्णुकृष्णौ महाबलौ।
प्रसिद्धौ मुनिभिः प्रोक्तौ सर्वज्ञैर्नारदादिभिः॥ १५

विद्यमानशरीरौ तौ कथं देहान्तरं गतौ।
नरनारायणौ देवौ पुनः कृष्णार्जुनौ कथम्॥ १६

यौ चक्रतुस्तपश्चोग्रं मुक्त्यर्थं मुनिसत्तमौ।
तौ कथं प्रापतुर्देहौ प्राप्तयोगौ महातपौ॥ १७

शूद्रः स्वधर्मनिष्ठस्तु देहान्ते क्षत्रियस्तु सः।
शुभाचारो मृतो यो वै स शूद्रो ब्राह्मणो भवेत्॥ १८

ब्राह्मणो निःस्पृहः शान्तो भवरोगाद्विमुच्यते।
विपरीतमिदं भाति नरनारायणौ च तौ॥ १९

तपसा शोषितात्मानौ क्षत्रियौ तौ बभूवतुः।
केन तौ कर्मणा शान्तौ जातौ शापेन वा पुनः॥ २०

ब्राह्मणौ क्षत्रियौ जातौ कारणं तन्मुने वद।
यादवानां विनाशश्च ब्रह्मशापादिति श्रुतः॥ २१

कृष्णस्यापि हि गान्धार्याः शापेनैव कुलक्षयः।
प्रद्युम्नहरणं चैव शम्बरेण कथं कृतम्॥ २२

हे अनघ! बहुत-सी पत्नियोंवाले श्रीकृष्णके गृहस्थ-जीवन, उसमें उनके द्वारा किये गये कार्यों तथा अन्तमें उनके शरीर-त्यागके विषयमें बताइये। किंवदन्तीके आधारपर मैंने भगवान् श्रीकृष्णका जो चरित्र सुना है, उससे मेरा मन परम विस्मयमें पड़ गया है। अतः आप उनके चरित्रका सम्यक् रूपसे वर्णन कीजिये॥ १०-११$\frac{१}{२}$॥

पुरातन, धर्मपुत्र, महात्मा तथा देवस्वरूप ऋषिश्रेष्ठ नर-नारायणने उत्तम तप किया था। जगत्के कल्याणार्थ निराहार, जितेन्द्रिय तथा स्पृहारहित रहते हुए काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मात्सर्य—इन छहोंपर पूर्ण नियन्त्रण रखकर साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप जिन नर-नारायण मुनियोंने पुण्यक्षेत्र बदरिकाश्रममें बहुत वर्षोंतक श्रेष्ठ तपस्या की थी, नारद आदि सर्वज्ञ मुनियोंने प्रसिद्ध तथा महाबलसम्पन्न अर्जुन तथा श्रीकृष्णको उन्हीं दोनोंका अंशावतार बताया है। उन भगवान् नर-नारायणने एक शरीर धारण करते हुए भी दूसरा जन्म क्यों प्राप्त किया और पुनः वे कृष्ण तथा अर्जुन कैसे हुए?॥ १२—१६॥

जिन मुनिप्रवर नर-नारायणने मुक्तिहेतु कठोर तपस्या की थी; उन महातपस्वी तथा योगसिद्धिसम्पन्न दोनों देवोंने मानव-शरीर क्यों प्राप्त किया?॥ १७॥

अपने धर्ममें निष्ठा रखनेवाला शूद्र अगले जन्ममें क्षत्रिय होता है और जो शूद्र वर्तमान जन्ममें पवित्र आचरण करता है, वह मृत्युके अनन्तर ब्राह्मण होता है। कामनाओंसे रहित शान्त-स्वभाव ब्राह्मण पुनर्जन्मरूपी रोगसे मुक्त हो जाता है, किंतु उनके विषयमें तो सर्वथा विपरीत स्थिति दिखायी देती है। उन नर-नारायणने तपस्यासे अपना शरीरतक सुखा दिया, फिर भी वे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हो गये। शान्त-स्वभाव वे दोनों अपने किस कर्मसे अथवा किस शापसे ब्राह्मणसे क्षत्रिय हुए? हे मुने! वह कारण बताइये॥ १८—२०$\frac{१}{२}$॥

मैंने यह भी सुना है कि यादवोंका विनाश ब्राह्मणके शापसे हुआ था और गान्धारीके शापसे ही श्रीकृष्णके वंशका विनाश हुआ था। शम्बरासुरने

वर्तमाने वासुदेवे देवदेवे जनार्दने।
पुत्रस्य सूतिकागेहाद्धरणं चातिदुर्घटम्॥ २३

द्वारकादुर्गमध्याद्वै हरिवेश्माद्दुरत्ययात्।
न ज्ञातं वासुदेवेन तत्कथं दिव्यचक्षुषा॥ २४

सन्देहोऽयं महान्ब्रह्मन्निःसन्देहं कुरु प्रभो।
यत्पत्न्यो वासुदेवस्य दस्युभिर्लुण्ठिता हृताः॥ २५

स्वर्गते देवदेवे तु तत्कथं मुनिसत्तम।
संशयो जायते ब्रह्मंश्चित्तान्दोलनकारकः॥ २६

विष्णोरंशः समुद्भूतः शौरिर्भूभारहारकृत्।
स कथं मथुराराज्यं भयात्त्यक्त्वा जनार्दनः॥ २७

द्वारवत्यां गतः साधो ससैन्यः ससुहृद्गणः।
अवतारो हरेः प्रोक्तो भूभारहरणाय वै॥ २८

पापात्मनां विनाशाय धर्मसंस्थापनाय च।
तत्कथं वासुदेवेन चौरास्ते न निपातिताः॥ २९

यैर्हृता वासुदेवस्य पत्न्यः संलुण्ठिताश्च ताः।
स्तेनास्ते किं न विज्ञाताः सर्वज्ञेन सता पुनः॥ ३०

भीष्मद्रोणवधः कामं भूभारहरणे मतः।
अर्चिताश्च महात्मानः पाण्डवा धर्मतत्पराः॥ ३१

कृष्णभक्ताः सदाचारा युधिष्ठिरपुरोगमाः।
ते कृत्वा राजसूयञ्च यज्ञराजं विधानतः॥ ३२

दक्षिणा विविधा दत्त्वा ब्राह्मणेभ्योऽतिभावतः।
पाण्डुपुत्रास्तु देवांशा वासुदेवाश्रिता मुने॥ ३३

घोरं दुःखं कथं प्राप्ताः क्व गतं सुकृतञ्च तत्।
किं तत्पापं महारौद्रं येन ते पीडिताः सदा॥ ३४

कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्नका अपहरण क्यों किया? देवाधिदेव जनार्दन वासुदेवके रहते सूतिकागृहसे पुत्रका हरण हो जाना एक अत्यन्त अद्भुत बात है। द्वारकाके किलेमें श्रीकृष्णके दुर्गम राजमहलसे पुत्रका हरण हो गया; किंतु भगवान् श्रीकृष्णने उसे अपनी दिव्य दृष्टिसे क्यों नहीं देख लिया? हे ब्रह्मन्! यह एक महान् शंका मेरे समक्ष उपस्थित है। हे प्रभो! आप मुझे सन्देह-मुक्त कर दीजिये॥ २१—२४$\frac{1}{2}$॥

देवदेव श्रीकृष्णके स्वर्गगमनके अनन्तर उनकी पत्नियोंको लुटेरोंने लूट लिया; हे मुनिराज! वह कैसे हुआ? हे ब्रह्मन्! मनको आन्दोलित कर देनेवाला यह संदेह मुझे हो रहा है॥ २५-२६॥

श्रीकृष्ण भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हुए थे और उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा था। हे साधो! ऐसे वे जनार्दन जरासन्धके भयसे मथुराका राज्य छोड़कर अपनी सेना तथा बन्धु-बान्धवोंके सहित द्वारकापुरी क्यों चले गये? ऐसा कहा जाता है कि श्रीकृष्णका अवतार पृथ्वीको भारसे मुक्त करने, पापाचारियोंको विनष्ट करने तथा धर्मकी स्थापना करनेके लिये हुआ था, फिर भी वासुदेवने उन लुटेरोंको क्यों नहीं मार डाला, जिन लुटेरोंने श्रीकृष्णकी पत्नियोंको लूटा तथा उनका हरण किया? सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीकृष्ण उन चोरोंको क्यों नहीं जान सके?॥ २७—३०॥

भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्यका वध पृथ्वीका भार-हरणस्वरूप कार्य कैसे माना गया? युधिष्ठिर आदि सदाचारवान्, महात्मा, धर्मपरायण, पूज्य तथा श्रीकृष्ण-भक्त उन पाण्डवोंने यज्ञोंके राजा कहे जानेवाले राजसूय-यज्ञका विधिपूर्वक अनुष्ठान करके उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक अनेक प्रकारकी दक्षिणाएँ दीं। हे मुने! वे पाण्डु-पुत्र देवताओंके अंशसे प्रादुर्भूत थे तथा श्रीकृष्णके आश्रित थे, फिर भी उन्हें इतने महान् कष्ट क्यों भोगने पड़े? उस समय उनके पुण्य कार्य कहाँ चले गये थे? उन्होंने ऐसा कौन-सा महाभयानक पाप किया था, जिसके कारण वे सदा कष्ट पाते रहे?॥ ३१—३४॥

द्रौपदी च महाभागा वेदीमध्यात्समुत्थिता।
रमांशजा च साध्वी च कृष्णभक्तियुता तथा॥ ३५

सा कथं दुःखमतुलं प्राप घोरं पुनः पुनः।
दुःशासनेन सा केशे गृहीता पीडिता भृशम्॥ ३६

रजस्वला सभायां तु नीता भीतैकवाससा।
विराटनगरे दासी जाता मत्स्यस्य सा पुनः॥ ३७

धर्षिता कीचकेनाथ रुदती कुररी यथा।
हृता जयद्रथेनाथ क्रन्दमानातिदुःखिता॥ ३८

मोचिता पाण्डवैः पश्चाद् बलवद्भिर्महात्मभिः।
पूर्वजन्मकृतं पापं किं तद्येन च पीडिताः॥ ३९

दुःखान्यनेकान्याप्तास्ते कथयाद्य महामते।
राजसूयं क्रतुवरं कृत्वा ते मम पूर्वजाः॥ ४०

दुःखं महत्तरं प्राप्ताः पूर्वजन्मकृतेन वै।
देवांशानां कथं तेषां संशयोऽयं महान्हि मे॥ ४१

सदाचारैस्तु कौन्तेयैर्भीष्मद्रोणादयो हताः।
छलेन धनलाभार्थं जानानैर्नश्वरं जगत्॥ ४२

प्रेरिता वासुदेवेन पापे घोरे महात्मना।
कुलं क्षयितवन्तस्ते हरिणा परमात्मना॥ ४३

वरं भिक्षाटनं साधोर्नीवारैर्जीवनं वरम्।
योधान्न हत्वा लोभेन शिल्पेन जीवनं वरम्॥ ४४

पुण्यात्मा द्रौपदी यज्ञकी वेदीके मध्यसे प्रकट हुई थी। वह लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी, साध्वी थी तथा सदा श्रीकृष्णकी भक्तिमें लीन रहती थी। उस द्रौपदीने भी बार-बार महाभीषण संकट क्यों प्राप्त किया? दुःशासनके द्वारा उसे बाल पकड़कर घसीटा गया तथा अत्यधिक प्रताड़ित किया गया। केवल एक वस्त्र धारण की हुई वह भयाकुल द्रौपदी रजस्वलावस्थामें ही कौरवोंकी सभामें ले जायी गयी। पुनः उसे विराटनगरमें मत्स्यनरेशकी दासी बनना पड़ा। कीचकके द्वारा अपमानित होनेपर वह कुररी पक्षीकी भाँति बहुत रोयी थी। पुनः जयद्रथने उसका अपहरण कर लिया, जिसपर वह करुणक्रन्दन करती हुई अत्यधिक दुःखित हुई थी। बादमें बलवान् महात्मा पाण्डवोंने उसे मुक्त कराया था। क्या यह उन सबके पूर्वजन्ममें किये गये पापकृत्यका फल था, जो वे इतने पीड़ित हुए?॥ ३५—३९॥

हे महामते! उन्हें नानाविध कष्ट प्राप्त हुए, मुझे इसका कारण बताइये। यज्ञोंमें श्रेष्ठ राजसूययज्ञ करनेपर भी मेरे उन पूर्वजोंने महान् कष्ट प्राप्त किया। लगता है पूर्वजन्ममें कृत कर्मोंका ही यह फल है। देवताओंके अंश होनेपर भी उन्हें कष्ट प्राप्त हुआ; मुझे यह महान् सन्देह है!॥ ४०-४१॥

महान् सदाचारपरायण पाण्डवोंने जगत्‌को नाशवान् जाननेके बावजूद भी धनके लोभसे छद्मका आश्रय लेकर भीष्मपितामह तथा द्रोणाचार्य आदिका संहार किया॥ ४२॥

महात्मा वासुदेवने उन्हें इस घोर पापकृत्यके लिये प्रेरित किया और उन्हीं परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा प्रेरित किये जानेपर उन पाण्डवोंने अपने कुलका विनाश कर डाला॥ ४३॥

सज्जन पुरुषोंके लिये भिक्षा माँगकर अथवा नीवार आदि खाकर जीवन बिता लेना श्रेयस्कर होता है। लोभके वशीभूत होकर वीर पुरुषोंका वध न करके शिल्पकार्य आदिके माध्यमसे जीवन-यापन करना उत्तम होता है॥ ४४॥

विच्छिन्नस्तु त्वया वंशो रक्षितो मुनिसत्तम।
समुत्पाद्य सुतानाशु गोलकाञ्छत्रुनाशनान्॥ ४५

सोऽल्पेनैव तु कालेन विराटतनयासुतः।
तापसस्य गले सर्पं न्यस्तवान्कथमद्भुतम्॥ ४६

न कोऽपि ब्राह्मणं द्वेष्टि क्षत्रियस्य कुलोद्भवः।
तापसं मौनसंयुक्तं पित्रा किं तत्कृतं मुने॥ ४७

एतैरन्यैश्च सन्देहैर्विकलं मे मनोऽधुना।
स्थिरं कुरु पितः साधो सर्वज्ञोऽसि दयानिधे॥ ४८

हे मुनिसत्तम! आपने वंशके समाप्त हो जानेपर शत्रुओंका विनाश करनेमें समर्थ गोलक पुत्रोंको [नियोगद्वारा] उत्पन्न करके शीघ्र ही वंशकी रक्षा की थी॥ ४५॥

कुछ ही समयके पश्चात् विराटपुत्री उत्तराके पुत्र महाराज परीक्षित्‌ने एक तपस्वीके गलेमें मृत सर्प डाल दिया। यह अद्भुत घटना कैसे घटित हो गयी?॥ ४६॥

क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न कोई भी व्यक्ति ब्राह्मणसे द्वेष नहीं करता है। हे मुने! मेरे पिताने मौनव्रत धारण किये हुए उन तपस्वीके साथ ऐसा क्यों किया?॥ ४७॥

इन तथा अन्य कई प्रकारकी शंकाओंसे मेरा मन इस समय आकुलित हो रहा है। हे तात! हे साधो! हे दयानिधे! आप तो सर्वज्ञ हैं, अतएव [सन्देहोंको दूर करके] मेरे मनको शान्त कीजिये॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
जनमेजयप्रश्नो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

व्यासजीका जनमेजयको कर्मकी प्रधानता समझाना

सूत उवाच

एवं पृष्टः पुराणज्ञो व्यासः सत्यवतीसुतः।
परीक्षितसुतं शान्तं ततो वै जनमेजयम्॥ १

उवाच संशयच्छेत्तृ वाक्यं वाक्यविशारदः।

व्यास उवाच

राजन् किमेतद्वक्तव्यं कर्मणां गहना गतिः॥ २

दुर्ज्ञेया किल देवानां मानवानां च का कथा।
यदा समुत्थितं चैतद् ब्रह्माण्डं त्रिगुणात्मकम्॥ ३

कर्मणैव समुत्पत्तिः सर्वेषां नात्र संशयः।
अनादिनिधना जीवाः कर्मबीजसमुद्भवाः॥ ४

नानायोनिषु जायन्ते म्रियन्ते च पुनः पुनः।
कर्मणा रहितो देहसंयोगो न कदाचन॥ ५

सूतजी बोले—हे मुनियो! ऐसा पूछे जानेपर पुराणवेत्ता, वाणीविशारद सत्यवती-पुत्र महर्षि व्यासने शान्त स्वभाववाले परीक्षित्-पुत्र जनमेजयसे उनके सन्देहोंको दूर करनेवाले वचन कहे—॥ १½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस विषयमें क्या कहा जाय। कर्मोंकी बड़ी गहन गति होती है। कर्मकी गति जाननेमें देवता भी समर्थ नहीं हैं, मानवोंकी क्या बात! जब इस त्रिगुणात्मक ब्रह्माण्डका आविर्भाव हुआ, उसी समयसे कर्मके द्वारा सभीकी उत्पत्ति होती आ रही है, इस विषयमें सन्देह नहीं है। आदि तथा अन्तसे रहित होते हुए भी समस्त जीव कर्मरूपी बीजसे उत्पन्न होते हैं। वे जीव नानाविध योनियोंमें बार-बार पैदा होते हैं और मरते हैं। कर्मसे रहित जीवका देह-संयोग कदापि सम्भव नहीं है॥ २—५॥

शुभाशुभैस्तथा मिश्रैः कर्मभिर्वेष्टितं त्विदम्।
त्रिविधानि हि तान्याहुर्बुधास्तत्त्वविदश्च ये॥ ६

सञ्चितानि भविष्यन्ति प्रारब्धानि तथा पुनः।
वर्तमानानि देहेऽस्मिंस्त्रैविध्यं कर्मणां किल॥ ७

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां तद्वशत्वं नराधिप।
सुखं दुःखं जरामृत्युहर्षशोकादयस्तथा॥ ८

कामक्रोधौ च लोभश्च सर्वे देहगता गुणाः।
दैवाधीनाश्च सर्वेषां प्रभवन्ति नराधिप॥ ९

रागद्वेषादयो भावाः स्वर्गेऽपि प्रभवन्ति हि।
देवानां मानवानाञ्च तिरश्चां च तथा पुनः॥ १०

विकाराः सर्व एवैते देहेन सह सङ्गताः।
पूर्ववैरानुयोगेन स्नेहयोगेन वै पुनः॥ ११

उत्पत्तिः सर्वजन्तूनां विना कर्म न विद्यते।
कर्मणा भ्रमते सूर्यः शशाङ्कः क्षयरोगवान्॥ १२

कपाली च तथा रुद्रः कर्मणैव न संशयः।
अनादिनिधनं चैतत्कारणं कर्म विद्यते॥ १३

तेनेह शाश्वतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
नित्यानित्यविचारेऽत्र निमग्ना मुनयः सदा॥ १४

न जानन्ति किमेतद्वै नित्यं वानित्यमेव च।
मायायां विद्यमानायां जगन्नित्यं प्रतीयते॥ १५

कार्याभावः कथं वाच्यः कारणे सति सर्वथा।
माया नित्या कारणञ्च सर्वेषां सर्वदा किल॥ १६

कर्मबीजं ततोऽनित्यं चिन्तनीयं सदा बुधैः।
भ्रमत्येव जगत्सर्वं राजन्कर्मनियन्त्रितम्॥ १७

शुभ, अशुभ तथा मिश्र—इन कर्मोंसे यह जगत् सदा व्याप्त रहता है। तत्त्वोंके ज्ञाता जो विद्वान् हैं; उन्होंने संचित, प्रारब्ध तथा वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म बताये हैं। कर्मोंका त्रैविध्य इस शरीरमें अवश्य विद्यमान रहता है॥ ६-७॥

हे राजन्! ब्रह्मा आदि सभी देवता भी उस कर्मके वशवर्ती होते हैं। सुख, दुःख, वृद्धावस्था, मृत्यु, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ आदि—ये सभी देहगत गुण हैं। हे राजेन्द्र! ये दैवके अधीन होकर सभी जीवोंको प्राप्त होते हैं॥ ८-९॥

राग, द्वेष आदि भाव स्वर्गमें भी होते हैं और इस प्रकार ये भाव देवताओं, मनुष्यों तथा पशु-पक्षियोंमें भी विद्यमान रहते हैं॥ १०॥

पूर्वजन्मके किये हुए वैर तथा स्नेहके कारण ये समस्त विकार शरीरके साथ सदा ही संलग्न रहते हैं॥ ११॥

समस्त जीवोंकी उत्पत्ति कर्मके बिना हो ही नहीं सकती है। कर्मसे ही सूर्य नियमित रूपसे परिभ्रमण करता है और चन्द्रमा क्षयरोगसे ग्रस्त रहता है॥ १२॥

अपने कर्मके प्रभावसे ही रुद्रको मुण्डोंकी माला धारण करनी पड़ती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आदि-अन्तरहित यह कर्म ही जगत्का कारण है॥ १३॥

स्थावर-जंगमात्मक यह समग्र शाश्वत विश्व उसी कर्मके प्रभावसे नियन्त्रित है। सभी मुनिगण इस कर्ममय जगत्की नित्यता तथा अनित्यताके विचारमें सदा डूबे रहते हैं। फिर भी वे नहीं जान पाते कि यह जगत् नित्य है अथवा अनित्य। जबतक माया विद्यमान रहती है, तबतक यह जगत् नित्य प्रतीत होता है॥ १४-१५॥

कारणकी सर्वथा सत्ता रहनेपर कार्यका अभाव कैसे कहा जा सकता है? माया नित्य है और वही सर्वदा सबका कारण है॥ १६॥

अतएव कर्मबीजकी अनित्यतापर बुद्धिमान् पुरुषोंको सदा चिन्तन करना चाहिये। हे राजन्! सम्पूर्ण जगत् कर्मके द्वारा नियन्त्रित होकर सदा परिवर्तित होता रहता है॥ १७॥

नानायोनिषु राजेन्द्र नानाधर्ममयेषु च।
इच्छया च भवेज्जन्म विष्णोरमिततेजसः॥ १८

युगे युगेष्वनेकासु नीचयोनिषु तत्कथम्।
त्यक्त्वा वैकुण्ठसंवासं सुखभोगाननेकशः॥ १९

विण्मूत्रमन्दिरे वासं संत्रस्तः कोऽभिवाञ्छति।
पुष्पावचयलीलां च जलकेलिं सुखासनम्॥ २०

त्यक्त्वा गर्भगृहे वासं कोऽभिवाञ्छति बुद्धिमान्।
तूलिकां मृदुसंयुक्तां दिव्यां शय्यां विनिर्मिताम्॥ २१

त्यक्त्वाधोमुखवासं च कोऽभिवाञ्छति पण्डितः।
गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च नानाभावसमन्वितम्॥ २२

मुक्त्वा को नरके वासं मनसापि विचिन्तयेत्।
सिन्धुजाद्भुतभावानां रसं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम्॥ २३

विण्मूत्ररसपानञ्च क इच्छेन्मतिमान्नरः।
गर्भवासात्परो नास्ति नरको भुवनत्रये॥ २४

तद्भीताश्च प्रकुर्वन्ति मुनयो दुस्तरं तपः।
हित्वा भोगञ्च राज्यञ्च वने यान्ति मनस्विनः॥ २५

यद्भीतास्तु विमूढात्मा कस्तं सेवितुमिच्छति।
गर्भे तुदन्ति कृमयो जठराग्निस्तपत्यधः॥ २६

वपासंवेष्टनं क्रूरं किं सुखं तत्र भूपते।
वरं कारागृहे वासो बन्धनं निगडैर्वरम्॥ २७

अल्पमात्रं क्षणं नैव गर्भवासः क्वचिच्छुभः।
गर्भवासे महद्दुःखं दशमासनिवासनम्॥ २८

हे राजेन्द्र! यदि अमित तेजवाले भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे जन्म लेनेके लिये स्वतन्त्र होते तो वे नानाविध योनियोंमें, नानाविध धर्म-कर्मानुरूप युगोंमें तथा अनेक प्रकारकी निम्न योनियोंमें जन्म क्यों लेते? अनेक प्रकारके सुखभोगों और वैकुण्ठपुरीका निवास छोड़कर मल-मूत्रवाले स्थान (उदर)-में भयभीत होकर भला कौन रहना चाहेगा? फूल चुननेकी क्रीड़ा, जल-विहार तथा सुखदायक आसनका परित्यागकर कौन बुद्धिमान् गर्भगृहमें वास करना चाहेगा? कोमल रूईसे निर्मित गद्दे तथा दिव्य शय्याको छोड़कर गर्भमें औंधे मुँह पड़े रहना भला कौन विद्वान् पुरुष पसन्द कर सकता है? अनेक प्रकारके भावोंसे युक्त गीत, वाद्य तथा नृत्यका परित्याग करके गर्भरूपी नरकमें रहनेका मनमें विचारतक भला कौन कर सकता है? ऐसा कौन बुद्धिमान् व्यक्ति होगा जो लक्ष्मीके अद्भुत भावोंके अत्यन्त कठिनाईसे त्याग करनेयोग्य रसको छोड़कर मल-मूत्रका रस पीनेकी इच्छा करेगा? अतएव तीनों लोकोंमें गर्भवाससे बढ़कर नरकस्वरूप अन्य कोई स्थल नहीं है। गर्भवाससे भयभीत होकर मुनिलोग कठिन तपस्या करते हैं। बड़े-बड़े मनस्वी पुरुष जिस गर्भवाससे डरकर राज्य तथा सुखका परित्याग करके वनमें चले जाते हैं, ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो उसके सेवनकी इच्छा करेगा?॥ १८—२५½॥

गर्भमें कीड़े काटते हैं और नीचेसे जठराग्नि तपाती रहती है। हे राजन्! उस समय शरीरमें अतिशय दुर्गन्धयुक्त मज्जा लगी रहती है; तो फिर वहाँ कौन-सा सुख है? कारागारमें रहना और बेड़ियोंमें बँधे रहना अच्छा है, किंतु एक क्षणके अल्पांश कालतक भी गर्भमें रहना कदापि शुभ नहीं होता। गर्भवासमें जीवको अत्यधिक पीड़ा होती है; वहाँ दस महीनेतक रहना पड़ता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त दारुण योनि-यन्त्रसे बाहर आनेमें महान् कष्ट प्राप्त होता है। बाल्यावस्थामें भी अज्ञानता तथा न बोल पानेके कारण बहुत कष्ट मिलता है। परतन्त्र तथा अत्यन्त भयभीत बालक भूख तथा प्यासकी पीड़ाके कारण अशक्त रहता है। भूखे बालकको रोता हुआ देखकर माता [रोनेका कारण जाननेके लिये]

तथा निःसरणे दुःखं योनियन्त्रेऽतिदारुणे।
बालभावे तदा दुःखं मूकाज्ञभावसंयुतम्॥ २९

क्षुत्तृष्णावेदनाशक्तः परतन्त्रोऽतिकातरः।
क्षुधिते रुदिते बाले माता चिन्तातुरा तदा॥ ३०

भेषजं पातुमिच्छन्ती ज्ञात्वा व्याधिव्यथां दृढाम्।
नानाविधानि दुःखानि बालभावे भवन्ति वै॥ ३१

किं सुखं विबुधा दृष्ट्वा जन्म वाञ्छन्ति चेच्छया।
संग्राममम‌रैः सार्धं सुखं त्यक्त्वा निरन्तरम्॥ ३२

कर्तुमिच्छेच्च को मूढः श्रमदं सुखनाशनम्।
सर्वथैव नृपश्रेष्ठ सर्वे ब्रह्मादयः सुराः॥ ३३

कृतकर्मविपाकेन प्राप्नुवन्ति सुखासुखे।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
देहवद्भिर्नृभिर्देवैस्तिर्यग्भिश्च नृपोत्तम॥ ३४

तपसा दानयज्ञैश्च मानवश्चेन्द्रतां व्रजेत्।
क्षीणे पुण्येऽथ शक्रोऽपि पतत्येव न संशयः॥ ३५

रामावतारयोगेन देवा वानरतां गताः।
तथा कृष्णसहायार्थं देवा यादवतां गताः॥ ३६

एवं युगे युगे विष्णुरवताराननेकशः।
करोति धर्मरक्षार्थं ब्रह्मणा प्रेरितो भृशम्॥ ३७

पुनः पुनर्हरेरेवं नानायोनिषु पार्थिव।
अवतारा भवन्त्यन्ये रथचक्रवदद्भुताः॥ ३८

दैत्यानां हननं कर्म कर्तव्यं हरिणा स्वयम्।
अंशांशेन पृथिव्यां वै कृत्वा जन्म महात्मना॥ ३९

तदहं संप्रवक्ष्यामि कृष्णजन्मकथां शुभाम्।
स एव भगवान्विष्णुरवतीर्णो यदोः कुले॥ ४०

कश्यपस्य मुनेरंशो वसुदेवः प्रतापवान्।
गोवृत्तिरभवद्राजन् पूर्वशापानुभावतः॥ ४१

कश्यपस्य च द्वे पत्न्यौ शापादत्र महीपते।
अदितिः सुरसा चैवमासतुः पृथिवीपते॥ ४२

चिन्ताग्रस्त हो उठती है और पुनः किसी बड़े रोगजनित कष्टका अनुमान करके उसे दवा पिलानेकी इच्छा करने लगती है। इस प्रकार बाल्यावस्थामें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं, तब विवेकी पुरुष किस सुखको देखकर स्वयं जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं!॥ २६—३१½ ॥

कौन ऐसा मूर्ख होगा, जो देवताओंके साथ रहते हुए निरन्तर सुख-भोगका त्याग करके श्रमपूर्ण तथा सुखनाशक युद्ध करनेकी इच्छा रखेगा; हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मादि सभी देवता भी अपने किये कर्मोंके फलस्वरूप सुख-दुःख प्राप्त करते हैं। हे नृपोत्तम! सभी देहधारी जीव चाहे मनुष्य, देवता या पशु-पक्षी हों, अपने-अपने किये कर्मका शुभाशुभ फल पाते हैं॥ ३२—३४॥

मनुष्य तप, यज्ञ तथा दानके द्वारा इन्द्रत्वको प्राप्त हो जाता है और पुण्य क्षीण होनेपर इन्द्र भी च्युत हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं॥ ३५॥

रामावतारके समय देवता कर्मबन्धनके कारण वानर बने थे और कृष्णावतारमें भी कृष्णकी सहायताके लिये देवता यादव बने थे॥ ३६॥

इस प्रकार प्रत्येक युगमें धर्मकी रक्षाके लिये भगवान् विष्णु ब्रह्माजीसे अत्यन्त प्रेरित होकर अनेक अवतार धारण करते हैं॥ ३७॥

हे राजन्! इस प्रकार रथचक्रकी भाँति विविध प्रकारकी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अद्भुत अवतार बार-बार होते रहते हैं॥ ३८॥

महात्मा भगवान् विष्णु अपने अंशांशसे पृथ्वीपर अवतार लेकर दैत्योंका वधरूपी कार्य सम्पन्न करते हैं। इसलिये अब मैं यहाँ श्रीकृष्णके जन्मकी पवित्र कथा कह रहा हूँ। वे साक्षात् भगवान् विष्णु ही यदुवंशमें अवतरित हुए थे॥ ३९-४०॥

हे राजन्! कश्यपमुनिके अंशसे प्रतापी वसुदेवजी उत्पन्न हुए थे, जो पूर्वजन्मके शापवश इस जन्ममें गोपालनका काम करते थे॥ ४१॥

हे महाराज! हे पृथ्वीपते! उन्हीं कश्यपमुनिकी दो पत्नियाँ—अदिति और सुरसाने भी शापवश पृथ्वीपर अवतार ग्रहण किया था। हे भरतश्रेष्ठ! उन

देवकी रोहिणी चोभे भगिन्यौ भरतर्षभ।
वरुणेन महाञ्छापो दत्तः कोपादिति श्रुतम्॥ ४३

राजोवाच

किं कृतं कश्यपेनागो येन शप्तो महानृषिः।
सभार्यः स कथं जातस्तद्वदस्व महामते॥ ४४
कथञ्च भगवान्विष्णुस्तत्र जातोऽस्ति गोकुले।
वासी वैकुण्ठनिलये रमापतिरखण्डितः॥ ४५
निदेशात्कस्य भगवान्वर्तते प्रभुरव्ययः।
नारायणः सुरश्रेष्ठो युगादिः सर्वधारकः॥ ४६
स कथं सदनं त्यक्त्वा कर्मवानिव मानुषे।
करोति जननं कस्मादत्र मे संशयो महान्॥ ४७
प्राप्य मानुषदेहं तु करोति च विडम्बनम्।
भावान्नानाविधांस्तत्र मानुषे दुष्टजन्मनि॥ ४८
कामः क्रोधोऽमर्षशोकौ वैरं प्रीतिश्च कर्हिचित्।
सुखं दुःखं भयं नृणां दैन्यमार्जवमेव च॥ ४९
दुष्कृतं सुकृतं चैव वचनं हननं तथा।
पोषणं चलनं तापो विमर्शश्च विकत्थनम्॥ ५०
लोभो दम्भस्तथा मोहः कपटः शोचनं तथा।
एते चान्ये तथा भावा मानुष्ये सम्भवन्ति हि॥ ५१
स कथं भगवान्विष्णुस्त्यक्त्वा सुखमनश्वरम्।
करोति मानुषं जन्म भावैस्तैस्तैरभिद्रुतम्॥ ५२
किं सुखं मानुषं प्राप्य भुवि जन्म मुनीश्वर।
किं निमित्तं हरिः साक्षाद् गर्भवासं करोति वै॥ ५३
गर्भदुःखं जन्मदुःखं बालभावे तथा पुनः।
यौवने कामजं दुःखं गार्हस्थ्येऽतिमहत्तरम्॥ ५४
दुःखान्येतान्यवाप्नोति मानुषे द्विजसत्तम।
कथं स भगवान्विष्णुरवतारान्पुनः पुनः॥ ५५
प्राप्य रामावतारं हि हरिणा ब्रह्मयोनिना।
दुःखं महत्तरं प्राप्तं वनवासेऽतिदारुणे॥ ५६

दोनोंने देवकी और रोहिणी नामक बहनोंके रूपमें जन्म लिया था। मैंने यह सुना है कि क्रुद्ध होकर वरुणने उन्हें महान् शाप दिया था॥ ४२-४३॥

राजा बोले—हे महामते! महर्षि कश्यपने कौन-सा ऐसा अपराध किया था, जिसके कारण उन्हें स्त्रियोंसहित शाप मिला; इसे मुझे बताइये॥ ४४॥

वैकुण्ठवासी, अविनाशी, रमापति भगवान् विष्णुको गोकुलमें जन्म क्यों लेना पड़ा?॥ ४५॥

सबके स्वामी, अविनाशी, देवश्रेष्ठ, युगके आदि तथा सबको धारण करनेवाले साक्षात् भगवान् नारायण किसके आदेशसे व्यवहार करते हैं और वे अपने स्थानको छोड़कर मानव-योनिमें जन्म लेकर मनुष्योंकी भाँति सब काम क्यों करते हैं; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है॥ ४६-४७॥

भगवान् विष्णु स्वयं मानव-शरीर धारण करके हीन मनुष्य-जन्ममें अनेकविध लीलाएँ दिखाते हुए प्रपंच क्यों करते हैं?॥ ४८॥

काम, क्रोध, अमर्ष, शोक, वैर, प्रेम, सुख, दुःख, भय, दीनता, सरलता, पाप, पुण्य, वचन, मारण, पोषण, चलन, ताप, विमर्श, आत्मश्लाघा, लोभ, दम्भ, मोह, कपट और चिन्ता—ये तथा अन्य भी नाना प्रकारके भाव मनुष्य-जन्ममें विद्यमान रहते हैं॥ ४९—५१॥

वे भगवान् विष्णु शाश्वत सुखका त्याग करके इन भावोंसे ग्रस्त मनुष्य-जन्म किसलिये धारण करते हैं? हे मुनीश्वर! इस पृथ्वीपर मानव-जन्म पाकर कौन-सा सुख मिल जाता है? वे साक्षात् भगवान् विष्णु किस कारणसे गर्भवास करते हैं?॥ ५२-५३॥

गर्भवासमें दुःख, जन्मग्रहणमें दुःख, बाल्यावस्थामें दुःख, यौवनावस्थामें कामजनित दुःख एवं गार्हस्थ्य जीवनमें तो बहुत बड़ा दुःख होता है॥ ५४॥

हे विप्रवर! ये अनेक कष्ट मानव-जीवनमें प्राप्त होते हैं, तो फिर वे भगवान् विष्णु अवतार क्यों लेते हैं?॥ ५५॥

ब्रह्मयोनि भगवान् विष्णुको रामावतार ग्रहण करके अत्यन्त दारुण वनवासकालमें घोर कष्ट प्राप्त हुआ था। उन्हें सीता-वियोगसे उत्पन्न महान् दुःख प्राप्त हुआ

सीताविरहजं दुःखं संग्रामश्च पुनः पुनः।
कान्तात्यागोऽप्यनेनैवमनुभूतो महात्मना॥ ५७

तथा कृष्णावतारेऽपि जन्म रक्षागृहे पुनः।
गोकुले गमनं चैव गवां चारणमित्युत॥ ५८

कंसस्य हननं कष्टाद् द्वारकागमनं पुनः।
नानासंसारदुःखानि भुक्तवान्भगवान् कथम्॥ ५९

स्वेच्छया कः प्रतीक्षेत मुक्तो दुःखानि ज्ञानवान्।
संशयं छिन्धि सर्वज्ञ मम चित्तप्रशान्तये॥ ६०

तथा अनेक बार राक्षसोंसे युद्ध करना पड़ा। अन्तमें महान् आत्मावाले इन श्रीरामको पत्नी-परित्यागकी असीम वेदना भी सहनी पड़ी॥ ५६-५७॥

उसी प्रकार कृष्णावतारमें भी बन्दीगृहमें जन्म, गोकुल-गमन, गोचारण, कंसका वध और पुनः कष्टपूर्वक द्वारकाके लिये प्रस्थान—इन अनेकविध सांसारिक दुःखोंको भगवान् कृष्णने क्यों भोगा?॥ ५८-५९॥

ऐसा कौन ज्ञानी व्यक्ति होगा जो मुक्त होता हुआ भी स्वेच्छासे इन दुःखोंकी प्रतीक्षा करेगा? हे सर्वज्ञ! मेरे मनकी शान्तिके लिये सन्देहका निवारण कीजिये॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कर्मणो जन्मादिकारणत्वनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

वसुदेव और देवकीके पूर्वजन्मकी कथा

व्यास उवाच

कारणानि बहून्यत्राप्यवतारे हरेः किल।
सर्वेषां चैव देवानामंशावतरणेष्वपि॥ १

वसुदेवावतारस्य कारणं शृणु तत्त्वतः।
देवक्याश्चैव रोहिण्या अवतारस्य कारणम्॥ २

एकदा कश्यपः श्रीमान्यज्ञार्थं धेनुमाहरत्।
याचितोऽयं बहुविधं न ददौ धेनुमुत्तमाम्॥ ३

वरुणस्तु ततो गत्वा ब्रह्माणं जगतः प्रभुम्।
प्रणम्योवाच दीनात्मा स्वदुःखं विनयान्वितः॥ ४

किं करोमि महाभाग मत्तोऽसौ न ददाति गाम्।
शापो मया विसृष्टोऽस्मै गोपालो भव मानुषे॥ ५

भार्ये द्वे अपि तत्रैव भवेतां चातिदुःखिते।
यतो वत्सा रुदन्त्यत्र मातृहीनाः सुदुःखिताः॥ ६

मृतवत्सादितिस्तस्माद्भविष्यति धरातले।
कारागारनिवासा च तेनापि बहुदुःखिता॥ ७

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार ग्रहण करने तथा इसी प्रकार सभी देवताओंके भी अंशावतार ग्रहण करनेके बहुतसे कारण हैं॥ १॥

अब वसुदेव, देवकी तथा रोहिणीके अवतारोंका कारण यथार्थ रूपसे सुनिये॥ २॥

एक बार महर्षि कश्यप यज्ञकार्यके लिये वरुणदेवकी गौ ले आये। [यज्ञ-कार्यकी समाप्तिके पश्चात्] वरुणदेवके बहुत याचना करनेपर भी उन्होंने वह उत्तम धेनु वापस नहीं दी॥ ३॥

तत्पश्चात् उदास मनवाले वरुणदेवने जगत्के स्वामी ब्रह्माके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे अपना दुःख कहा॥ ४॥

हे महाभाग! मैं क्या करूँ? वह अभिमानी कश्यप मेरी गाय नहीं लौटा रहा है। अतएव मैंने उसे शाप दे दिया कि मानवयोनिमें जन्म लेकर तुम गोपालक हो जाओ और तुम्हारी दोनों भार्याएँ भी मानवयोनिमें उत्पन्न होकर अत्यधिक दुःखी रहें। मेरी गायके बछड़े मातासे वियुक्त होकर अति दुःखित हैं और रो रहे हैं, अतएव पृथ्वीलोकमें जन्म लेनेपर यह अदिति भी मृतवत्सा होगी। इसे कारागारमें रहना पड़ेगा, उससे भी उसे महान् कष्ट भोगना होगा॥ ५—७॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य यादोनाथस्य पद्मभूः।
समाहूय मुनिं तत्र तमुवाच प्रजापतिः॥ ८

कस्मात्त्वया महाभाग लोकपालस्य धेनवः।
हृताः पुनर्न दत्ताश्च किमन्यायं करोषि च॥ ९

जानन् न्यायं महाभाग परवित्तापहारणम्।
कृतवान्कथमन्यायं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ १०

अहो लोभस्य महिमा महतोऽपि न मुञ्चति।
लोभं नरकदं नूनं पापाकरमसम्मतम्॥ ११

कश्यपोऽपि न तं त्यक्तुं समर्थः किं करोम्यहम्।
सर्वदैवाधिकस्तस्माल्लोभो वै कलितो मया॥ १२

धन्यास्ते मुनयः शान्ता जितो यैर्लोभ एव च।
वैखानसैः शमपरैः प्रतिग्रहपराङ्मुखैः॥ १३

संसारे बलवाञ्छत्रुर्लोभोऽमेध्योऽवरः सदा।
कश्यपोऽपि दुराचारः कृतस्नेहो दुरात्मना॥ १४

ब्रह्मापि तं शशापाथ कश्यपं मुनिसत्तमम्।
मर्यादारक्षणार्थं हि पौत्रं परमवल्लभम्॥ १५

अंशेन त्वं पृथिव्यां वै प्राप्य जन्म यदोः कुले।
भार्याभ्यां संयुतस्तत्र गोपालत्वं करिष्यसि॥ १६

व्यास उवाच

एवं शप्तः कश्यपोऽसौ वरुणेन च ब्रह्मणा।
अंशावतरणार्थाय भूभारहरणाय च॥ १७

तथा दित्यादितिः शप्ता शोकसन्तप्तया भृशम्।
जाता जाता विनश्येरंस्तव पुत्रास्तु सप्त वै॥ १८

व्यासजी बोले—जल-जन्तुओंके स्वामी वरुणका यह वचन सुनकर प्रजापति ब्रह्माने मुनि कश्यपको वहाँ बुलाकर उनसे कहा—हे महाभाग! आपने लोकपाल वरुणकी गायोंका हरण क्यों किया; और फिर आपने उन्हें लौटाया भी नहीं। आप ऐसा अन्याय क्यों कर रहे हैं?॥ ८-९॥

हे महाभाग! न्यायको जानते हुए भी आपने दूसरेके धनका हरण किया। हे महामते! आप तो सर्वज्ञ हैं; तो फिर आपने यह अन्याय क्यों किया?॥ १०॥

अहो! लोभकी ऐसी महिमा है कि वह महान्-से-महान् लोगोंको भी नहीं छोड़ता है। लोभ तो निश्चय ही पापोंकी खान, नरकको प्राप्ति करानेवाला और सर्वथा अनुचित है॥ ११॥

महर्षि कश्यप भी उस लोभका परित्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं हुए तो मैं क्या कर सकता हूँ। अन्ततः मैंने यही निष्कर्ष निकाला कि लोभ सदासे सबसे प्रबल है॥ १२॥

शान्त स्वभाववाले, जितेन्द्रिय, प्रतिग्रहसे पराङ्मुख तथा वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किये हुए वे मुनिलोग धन्य हैं, जिन्होंने लोभपर विजय प्राप्त कर ली है॥ १३॥

संसारमें लोभसे बढ़कर अपवित्र तथा निन्दित अन्य कोई चीज नहीं है; यह सबसे बलवान् शत्रु है। महर्षि कश्यप भी इस नीच लोभसे स्नेह करनेके कारण दुराचारमें लिप्त हो गये॥ १४॥

अतएव मर्यादाकी रक्षाके लिये ब्रह्माजीने भी अपने परमप्रिय पौत्र मुनिश्रेष्ठ कश्यपको शाप दे दिया कि तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर यदुवंशमें जन्म लेकर वहाँ अपनी दोनों पत्नियोंके साथ गोपालनका कार्य करोगे॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अंशावतार लेने तथा पृथ्वीका बोझ उतारनेके लिये वरुणदेव तथा ब्रह्माजीने उन महर्षि कश्यपको शाप दे दिया था॥ १७॥

उधर कश्यपकी भार्या दितिने भी अत्यधिक शोकसन्तप्त होकर अदितिको शाप दे दिया कि क्रमसे तुम्हारे सातों पुत्र उत्पन्न होते ही मृत्युको प्राप्त हो जायँ॥ १८॥

जनमेजय उवाच

कस्माद्दित्या च भगिनी शप्तेन्द्रजननी मुने।
कारणं वद शापे च शोकस्तु मुनिसत्तम॥ १९

सूत उवाच

पारीक्षितेन पृष्टस्तु व्यासः सत्यवतीसुतः।
राजानं प्रत्युवाचेदं कारणं सुसमाहितः॥ २०

व्यास उवाच

राजन् दक्षसुते द्वे तु दितिश्चादितिरुत्तमे।
कश्यपस्य प्रिये भार्ये बभूवतुरुरुक्रमे॥ २१

अदित्यां मघवा पुत्रो यदाभूदतिवीर्यवान्।
तदा तु तादृशं पुत्रं चकमे दितिरोजसा॥ २२

पतिमाहासितापाङ्गी पुत्रं मे देहि मानद।
इन्द्रतुल्यबलं वीरं धर्मिष्ठं वीर्यवत्तमम्॥ २३

तामुवाच मुनिः कान्ते स्वस्था भव मयोदिते।
व्रतान्ते भविता तुभ्यं शतक्रतुसमः सुतः॥ २४

सा तथेति प्रतिश्रुत्य चकार व्रतमुत्तमम्।
निषिक्तं मुनिना गर्भं बिभ्राणा सुमनोहरम्॥ २५

भूमौ चकार शयनं पयोव्रतपरायणा।
पवित्रा धारणायुक्ता बभूव वरवर्णिनी॥ २६

एवं जातः सुसम्पूर्णो यदा गर्भोऽतिवीर्यवान्।
शुभ्रांशुमतिदीप्ताङ्गीं दितिं दृष्ट्वा तु दुःखिता॥ २७

मघवत्सदृशः पुत्रो भविष्यति महाबलः।
दित्यास्तदा मम सुतस्तेजोहीनो भवेत्किल॥ २८

इति चिन्तापरा पुत्रमिन्द्रं चोवाच मानिनी।
शत्रुस्तेऽद्य समुत्पन्नो दितिगर्भेऽतिवीर्यवान्॥ २९

उपायं कुरु नाशाय शत्रोरद्य विचिन्त्य च।
उत्पत्तिरेव हन्तव्या दित्या गर्भस्य शोभन॥ ३०

जनमेजय बोले—हे मुने! दितिके द्वारा उसकी अपनी बहन तथा इन्द्रकी माता अदिति क्यों शापित की गयी? हे मुनिवर! आप दितिके शोक तथा उसके द्वारा प्रदत्त शापका कारण मुझे बताइये॥ १९॥

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा जनमेजयके पूछनेपर सत्यवती-पुत्र व्यासजी पूर्ण सावधान होकर राजाको शापका कारण बतलाने लगे॥ २०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! दक्षप्रजापतिकी दिति और अदिति नामक दो सुन्दर कन्याएँ थीं। दोनों ही कश्यपमुनिकी प्रिय तथा गौरवशालिनी पत्नियाँ बनीं॥ २१॥

जब अदितिके अत्यन्त तेजस्वी पुत्र इन्द्र हुए, तब वैसे ही ओजस्वी पुत्रके लिये दितिके भी मनमें इच्छा जाग्रत् हुई॥ २२॥

उस समय सुन्दरी दितिने कश्यपजीसे प्रार्थना की—हे मानद! इन्द्रके ही समान बलशाली, वीर, धर्मात्मा तथा परम शक्तिसम्पन्न पुत्र मुझे भी देनेकी कृपा करें॥ २३॥

तब मुनि कश्यपने उनसे कहा—प्रिये! धैर्य धारण करो, मेरे द्वारा बताये गये व्रतको पूर्ण करनेके अनन्तर इन्द्रके समान पुत्र तुम्हें अवश्य प्राप्त होगा॥ २४॥

कश्यपमुनिकी बात स्वीकार करके दिति उस उत्तम व्रतके पालनमें तत्पर हो गयी। उनके ओजसे सुन्दर गर्भ धारण करती हुई वह सुन्दरी दिति पयोव्रतमें स्थित रहकर भूमिपर सोती थी और पवित्रताका सदा ध्यान रखती थी। इस प्रकार क्रमशः जब वह महान् तेजस्वी गर्भ पूर्ण हो गया, तब शुभ्र ज्योतियुक्त तथा दीप्तिमान् अंगोंवाली दितिको देखकर अदिति दुःखित हुई॥ २५—२७॥

[उसने अपने मनमें सोचा—] यदि दितिके गर्भसे इन्द्रतुल्य महाबली पुत्र उत्पन्न होगा तो निश्चय ही मेरा पुत्र निस्तेज हो जायगा॥ २८॥

इस प्रकार चिन्ता करती हुई मानिनी अदितिने अपने पुत्र इन्द्रसे कहा—प्रिय पुत्र! इस समय दितिके गर्भमें तुम्हारा अत्यन्त पराक्रमशाली शत्रु विद्यमान है। हे शोभन! तुम सम्यक् विचार करके उस शत्रुके नाशका प्रयत्न करो, जिससे दितिकी गर्भोत्पत्ति ही विनष्ट हो जाय॥ २९-३०॥

वीक्ष्य तामसितापाङ्गीं सपत्नीभावमास्थिताम्।
दुनोति हृदये चिन्ता सुखमर्मविनाशिनी॥ ३१

राजयक्ष्मेव संवृद्धो नष्टो नैव भवेद्रिपुः।
तस्मादङ्कुरितं हन्याद् बुद्धिमानहितं किल॥ ३२

लोहशङ्कुरिव क्षिप्तो गर्भो वै हृदये मम।
येन केनाप्युपायेन पातयाद्य शतक्रतो॥ ३३

सामदानबलेनापि हिंसनीयस्त्वया सुतः।
दित्या गर्भो महाभाग मम चेदिच्छसि प्रियम्॥ ३४

व्यास उवाच

श्रुत्वा मातृवचः शक्रो विचिन्त्य मनसा ततः।
जगामापरमातुः स समीपममराधिपः॥ ३५

ववन्दे विनयात्पादौ दित्याः पापमतिर्नृप।
प्रोवाच विनयेनासौ मधुरं विषगर्भितम्॥ ३६

इन्द्र उवाच

मातस्त्वं व्रतयुक्तासि क्षीणदेहातिदुर्बला।
सेवार्थमिह सम्प्राप्तः किं कर्तव्यं वदस्व मे॥ ३७

पादसंवाहनं तेऽहं करिष्यामि पतिव्रते।
गुरुशुश्रूषणात्पुण्यं लभते गतिमक्षयाम्॥ ३८

न मे किमपि भेदोऽस्ति तथादित्या शपे किल।
इत्युक्त्वा चरणौ स्पृष्ट्वा संवाहनपरोऽभवत्॥ ३९

संवाहनसुखं प्राप्य निद्रामाप सुलोचना।
श्रान्ता व्रतकृशा सुप्ता विश्वस्ता परमा सती॥ ४०

तां निद्रावशमापन्नां विलोक्य प्राविशत्तनुम्।
रूपं कृत्वातिसूक्ष्मञ्च शस्त्रपाणिः समाहितः॥ ४१

मुझसे सपत्नीभाव रखनेवाली उस सुन्दरी दितिको देखकर सुखका नाश कर देनेवाली चिन्ता मेरे मनको सताने लगती है॥ ३१॥

जब शत्रु बढ़ जाता है तब राजयक्ष्मा रोगकी भाँति वह नष्ट नहीं हो पाता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यका कर्तव्य है कि वह ऐसे शत्रुको अंकुरित होते ही नष्ट कर डाले॥ ३२॥

हे देवेन्द्र! दितिका वह गर्भ मेरे हृदयमें लोहेकी कीलके समान चुभ रहा है, अतः जिस किसी भी उपायसे तुम उसे नष्ट कर दो। हे महाभाग! यदि तुम मेरा हित करना चाहते हो तो साम, दान आदिके बलसे दितिके गर्भस्थ शिशुका संहार कर डालो॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब अपनी माताकी वाणी सुनकर देवराज इन्द्र मन-ही-मन उपाय सोचकर अपनी विमाता दितिके पास गये। उस पापबुद्धि इन्द्रने विनयपूर्वक दितिके चरणोंमें प्रणाम किया और ऊपरसे मधुर किंतु भीतरसे विषभरी वाणीमें विनम्रतापूर्वक उससे कहा—॥ ३५-३६॥

इन्द्र बोले—हे माता! आप व्रतपरायण हैं, और अत्यन्त दुर्बल तथा कृशकाय हो गयी हैं। अतः मैं आपकी सेवा करनेके लिये आया हूँ। मुझे बताइये, मैं क्या करूँ? हे पतिव्रते! मैं आपके चरण दबाऊँगा; क्योंकि बड़ोंकी सेवासे मनुष्य पुण्य तथा अक्षय गति प्राप्त कर लेता है॥ ३७-३८॥

मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरे लिये माता अदिति तथा आपमें कुछ भी भेद नहीं है। ऐसा कहकर इन्द्र उनके दोनों चरण पकड़कर दबाने लगे॥ ३९॥

पादसंवाहनका सुख पाकर सुन्दर नेत्रोंवाली उस दितिको नींद आने लगी। वह परम सती दिति थकी हुई थी, व्रतके कारण दुर्बल हो गयी थी और उसे इन्द्रपर विश्वास था, अतः वह सो गयी॥ ४०॥

दितिको नींदके वशीभूत देखकर इन्द्र अपना अत्यन्त सूक्ष्म रूप बनाकर हाथमें शस्त्र लेकर बड़ी सावधानीके साथ दितिके शरीरमें प्रवेश कर गये॥ ४१॥

उदरं प्रविवेशाशु तस्या योगबलेन वै।
गर्भं चकर्त वज्रेण सप्तधा पविनायकः॥ ४२

रुरोद च तदा बालो वज्रेणाभिहतस्तथा।
मा रुदेति शनैर्वाक्यमुवाच मघवानमुम्॥ ४३

शकलानि पुनः सप्त सप्तधा कर्तितानि च।
तदा चैकोनपञ्चाशन्मरुतश्चाभवन्नृप॥ ४४

तदा प्रबुद्धा सुदती ज्ञात्वा गर्भं तथाकृतम्।
इन्द्रेण छलरूपेण चुकोप भृशदुःखिता॥ ४५

भगिनीकृतं तु सा बुद्ध्वा शशाप कुपिता तदा।
अदितिं मघवन्तञ्च सत्यव्रतपरायणा॥ ४६

यथा मे कर्तितो गर्भस्तव पुत्रेण छद्मना।
तथा तन्नाशमायातु राज्यं त्रिभुवनस्य तु॥ ४७

यथा गुप्तेन पापेन मम गर्भो निपातितः।
अदित्या पापचारिण्या यथा मे घातितः सुतः॥ ४८

तस्याः पुत्रास्तु नश्यन्तु जाता जाताः पुनः पुनः।
कारागारे वसत्वेषा पुत्रशोकातुरा भृशम्॥ ४९

अन्यजन्मनि चाप्येव मृतापत्या भविष्यति।
व्यास उवाच
इत्युत्सृष्टं तदा श्रुत्वा शापं मरीचिनन्दनः॥ ५०

उवाच प्रणयोपेतो वचनं शमयन्निव।
मा कोपं कुरु कल्याणि पुत्रास्ते बलवत्तराः॥ ५१

भविष्यन्ति सुराः सर्वे मरुतो मघवत्सखाः।
शापोऽयं तव वामोरु त्वष्टाविंशेऽथ द्वापरे॥ ५२

अंशेन मानुषं जन्म प्राप्य भोक्ष्यति भामिनी।
वरुणेनापि दत्तोऽस्ति शापः सन्तापितेन च॥ ५३

उभयोः शापयोगेन मानुषीयं भविष्यति।
व्यास उवाच
पतिनाश्वासिता देवी सन्तुष्टा साभवत्तदा॥ ५४

इस प्रकार योगबलद्वारा दितिके उदरमें शीघ्र ही प्रविष्ट होकर इन्द्रने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर डाले॥ ४२॥

उस समय वज्राघातसे दुःखित हो गर्भस्थ शिशु रुदन करने लगा। तब धीरेसे इन्द्रने उससे '**मा रुद**' 'मत रोओ'—ऐसा कहा॥ ४३॥

तत्पश्चात् इन्द्रने पुनः उन सातों टुकड़ोंके सात-सात खण्ड कर डाले। हे राजन्! वे ही टुकड़े उनचास मरुद्गणके रूपमें प्रकट हो गये॥ ४४॥

उस छली इन्द्रद्वारा अपने गर्भको वैसा (विकृत) किया गया जानकर सुन्दर दाँतोंवाली वह दिति जाग गयी और अत्यन्त दुःखी होकर क्रोध करने लगी॥ ४५॥

यह सब बहन अदितिद्वारा किया गया है—ऐसा जानकर सत्यव्रतपरायण दितिने कुपित होकर अदिति और इन्द्र दोनोंको शाप दे दिया कि जिस प्रकार तुम्हारे पुत्र इन्द्रने छलपूर्वक मेरा गर्भ छिन्न-भिन्न कर डाला है, उसी प्रकार उसका त्रिभुवनका राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाय। जिस प्रकार पापिनी अदितिने गुप्त पापके द्वारा मेरा गर्भ गिराया है और मेरे गर्भको नष्ट करवा डाला है, उसी प्रकार उसके पुत्र भी क्रमशः उत्पन्न होते ही नष्ट हो जायँगे और वह पुत्र-शोकसे अत्यन्त चिन्तित होकर कारागारमें रहेगी। अन्य जन्ममें भी इसकी सन्तानें मर जाया करेंगी॥ ४६—४९$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार मरीचिपुत्र कश्यपने दितिप्रदत्त शापको सुनकर उसे सान्त्वना देते हुए प्रेमपूर्वक यह वचन कहा—हे कल्याणि! तुम क्रोध मत करो, तुम्हारे पुत्र बड़े बलवान् होंगे। वे सब उनचास मरुद् देवता होंगे, जो इन्द्रके मित्र बनेंगे। हे सुन्दरि! अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें तुम्हारा शाप सफल होगा। उस समय अदिति मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर अपने किये कर्मका फल भोगेगी। इसी प्रकार दुःखित वरुणने भी उसे शाप दिया है। इन दोनों शापोंके संयोगसे यह अदिति मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होगी॥ ५०—५३$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार पति कश्यपके आश्वासन देनेपर दिति सन्तुष्ट हो गयी और वह

नोवाच विप्रियं किञ्चित्ततः सा वरवर्णिनी।
इति ते कथितं राजन् पूर्वशापस्य कारणम्॥ ५५

अदितिर्देवकी जाता स्वांशेन नृपसत्तम॥ ५६

पुनः कोई अप्रिय वाणी नहीं बोली। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको अदितिके पूर्व शापका कारण बताया। हे नृपश्रेष्ठ! वही अदिति अपने अंशसे देवकीके रूपमें उत्पन्न हुई॥ ५४—५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
दित्या अदित्यै शापदानं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा जनमेजयको मायाकी प्रबलता समझाना

राजोवाच

विस्मितोऽस्मि महाभाग श्रुत्वाख्यानं महामते।
संसारोऽयं पापरूपः कथं मुच्येत बन्धनात्॥ १

कश्यपस्यापि दायादस्त्रिलोकीविभवे सति।
कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्याज्जुगुप्सितम्॥ २

गर्भे प्रविश्य बालस्य हननं दारुणं किल।
सेवामिषेण मातुश्च कृत्वा शपथमद्भुतम्॥ ३

शास्ता धर्मस्य गोप्ता च त्रिलोक्याः पतिरप्युत।
कृतवानीदृशं कर्म को न कुर्यादसाम्प्रतम्॥ ४

पितामहा मे संग्रामे कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम्।
कृतवन्तस्तथाश्चर्यं दुष्टं कर्म जगद्गुरो॥ ५

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो धर्मांशोऽपि युधिष्ठिरः।
सर्वे विरुद्धधर्मेण वासुदेवेन नोदिताः॥ ६

असारतां विजानन्तः संसारस्य सुमेधसः।
देवांशाश्च कथं चक्रुर्निन्दितं धर्मतत्पराः॥ ७

कास्था धर्मस्य विप्रेन्द्र प्रमाणं किं विनिश्चितम्।
चलचित्तोऽस्मि सञ्जातः श्रुत्वा चैतत्कथानकम्॥ ८

राजा बोले—हे महाभाग! इस आख्यानको सुनकर मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। हे महामते! यह संसार पापका मूर्तरूप है। इसके बन्धनसे मनुष्य किस प्रकार मुक्त हो सकता है?॥ १॥

जब तीनों लोकोंका वैभव पास रखते हुए भी कश्यपमुनिकी संतान इन्द्रने ऐसा पापकर्म कर डाला, तब कौन मनुष्य पाप नहीं कर सकता?॥ २॥

अद्भुत शपथ लेकर सेवाके बहाने माताके गर्भमें प्रविष्ट होकर बालककी हत्या करना तो बड़ा भयानक पाप है!॥ ३॥

सबके शासक, धर्मके रक्षक और तीनों लोकोंके स्वामी इन्द्रने जब ऐसा निन्दित कर्म कर डाला, तब फिर दूसरा कौन नहीं करेगा?॥ ४॥

हे जगद्गुरो! मेरे पितामह लोगोंने भी कुरुक्षेत्रके संग्राममें ऐसा ही विस्मयकारी दारुण और निन्दित कर्म किया था। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण तथा धर्मके अंशरूप युधिष्ठिर—इन सभीने भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेरणासे धर्मविरुद्ध कर्म किया था॥ ५-६॥

संसारकी असारता जानते हुए भी उन प्रतिभाशाली तथा देवांशसे उत्पन्न धर्मपरायण पाण्डवोंने भी ऐसा गर्हित कर्म क्यों किया?॥ ७॥

हे द्विजेन्द्र! यदि ऐसी बात है तो धर्मपर किसकी आस्था होगी और धर्मके विषयमें सैद्धान्तिक प्रमाण ही क्या रह जायगा? यह वृत्तान्त सुनकर तो मेरा मन चंचल हो उठा है॥ ८॥

आप्तवाक्यं प्रमाणं चेदाप्तः कः परदेहवान्।
पुरुषो विषयासक्तो रागी भवति सर्वथा॥ ९

रागो द्वेषो भवेन्नूनमर्थनाशादसंशयम्।
द्वेषादसत्यवचनं वक्तव्यं स्वार्थसिद्धये॥ १०

जरासन्धविघातार्थं हरिणा सत्त्वमूर्तिना।
छलेन रचितं रूपं ब्राह्मणस्य विजानता॥ ११

तदाप्तः कः प्रमाणं किं सत्त्वमूर्तिरपीदृशः।
अर्जुनोऽपि तथैवात्र कार्ये यज्ञविनिर्मिते॥ १२

कीदृशोऽयं कृतो यज्ञः किमर्थं शमवर्जितः।
परलोकपदार्थं वा यशसे वान्यथा किल॥ १३

धर्मस्य प्रथमः पादः सत्यमेतच्छ्रुतेर्वचः।
द्वितीयस्तु तथा शौचं दया पादस्तृतीयकः॥ १४

दानं पादश्चतुर्थश्च पुराणज्ञा वदन्ति वै।
तैर्विहीनः कथं धर्मस्तिष्ठेदिह सुसम्मतः॥ १५

धर्महीनं कृतं कर्म कथं तत्फलदं भवेत्।
धर्मे स्थिरा मतिः क्वापि न कस्यापि प्रतीयते॥ १६

छलार्थञ्च यदा विष्णुर्वामनोऽभूज्जगत्प्रभुः।
येन वामनरूपेण वञ्चितोऽसौ बलिर्नृपः॥ १७

विहर्ता शतयज्ञस्य वेदाज्ञापरिपालकः।
धर्मिष्ठो दानशीलश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ १८

स्थानात्प्रभ्रंशितोऽकस्माद्विष्णुना प्रभविष्णुना।
जितं केन तयोः कृष्ण बलिना वामनेन वा॥ १९

छलकर्मविदा चायं सन्देहोऽत्र महान्मम।
वञ्चयित्वा वञ्चितेन सत्यं वद द्विजोत्तम॥ २०
पुराणकर्ता त्वमसि धर्मज्ञश्च महामतिः।

यदि आप्त वचनको प्रमाण मानें, तो फिर कौन पुरुष आप्त है? विषयासक्त मनुष्यमें राग आ ही जाता है और अपना स्वार्थ भंग होनेपर उसमें निःसन्देह राग-द्वेषकी बहुलता हो जाती है। द्वेषके कारण अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये असत्य भाषण करना पड़ता है॥ ९-१०॥

परम ज्ञानी और सत्त्वगुणके मूर्तस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णने भी जरासन्धके वधके लिये छलसे ब्राह्मणका वेष धारण किया था। जब सत्त्वमूर्ति भी इस प्रकारके होते हैं, तब किस आप्त पुरुषको प्रमाण माना जाय? उसी प्रकार [राजसूय] यज्ञके अवसरपर अर्जुनने भी वैसा ही कर्म किया था॥ ११-१२॥

जिस यज्ञमें अशान्तिका वातावरण रहा, उस यज्ञको किस श्रेणीका यज्ञ कहा जाय? वह यज्ञ परलोकमें परमपदकी प्राप्तिके लिये किया गया था अथवा सुयश पानेके लिये किया गया था या अन्य किसी कार्यकी सिद्धिके लिये किया गया था?॥ १३॥

श्रुतिका यह वचन है कि धर्मका प्रथम चरण सत्य, दूसरा चरण पवित्रता, तीसरा चरण दया तथा चतुर्थ चरण दान है। पुराणवेत्ता भी यही कहते हैं। इन चारोंके बिना परम आदृत धर्म कैसे टिक सकता है?॥ १४-१५॥

तब मेरे पूर्वजोंके द्वारा किया गया वह धर्मविहीन यज्ञ-कर्म [उत्तम] फल देनेवाला कैसे हो सकता था? इससे तो यही प्रतीत होता है कि उस समय किसीका भी कहीं भी धर्ममें अटल विश्वास नहीं था॥ १६॥

जगत्प्रभु भगवान् विष्णुने भी छलनेहेतु वामनका रूप धारण किया था, जिन्होंने वामनरूपसे राजा बलिको ठग लिया था॥ १७॥

महाराज बलि सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, वेदोंकी आज्ञाका पालन करनेवाले, धर्मात्मा, दानी, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय थे। ऐसे महापुरुषको परम प्रभावशाली भगवान् विष्णुने अकस्मात् पदच्युत कर दिया। अतः हे कृष्णद्वैपायन! उन दोनोंमें कौन जीता? वंचना करके छलकर्ममें निपुण भगवान् वामनकी विजय हुई या छले गये राजा बलिकी; इस विषयमें मुझे महान् सन्देह है। हे द्विजश्रेष्ठ! मुझे सत्य बात बताइये; क्योंकि आप पुराणोंके रचयिता, धर्मज्ञ तथा महान् बुद्धिसम्पन्न हैं॥ १८—२०$\frac{1}{2}$॥

व्यास उवाच

जितं वै बलिना राजन् दत्ता येन च मेदिनी॥ २१

त्रिविक्रमोऽपि नाम्ना यः प्रथितो वामनोऽभवत्।
छलनार्थमिदं राजन्वामनत्वं नराधिप॥ २२

सम्प्राप्तं हरिणा भूयो द्वारपालत्वमेव च।
सत्यादन्यतरन्नास्ति मूलं धर्मस्य पार्थिव॥ २३

दुःसाध्यं देहिनां राजन्सत्यं सर्वात्मना किल।
माया बलवती भूप त्रिगुणा बहुरूपिणी॥ २४

ययेदं निर्मितं विश्वं गुणैः शबलितं त्रिभिः।
तस्माच्छलवता सत्यं कुतोऽविद्धं भवेन्नृप॥ २५

मिश्रेण जनिता चैव स्थितिरेषा सनातनी।
वैखानसाश्च मुनयो निःसङ्गा निष्प्रतिग्रहाः॥ २६

सत्ययुक्ता भवन्त्यत्र वीतरागा गतस्पृहाः।
दृष्टान्तदर्शनार्थाय निर्मितास्ते च तादृशाः॥ २७

अन्यत्सर्वं शबलितं गुणैरेभिस्त्रिभिर्नृप।
नैकं वाक्यं पुराणेषु वेदेषु नृपसत्तम॥ २८

धर्मशास्त्रेषु चाङ्गेषु सगुणै रचितेष्विह।
सगुणः सगुणं कुर्यान्निर्गुणो न करोति वै॥ २९

गुणास्ते मिश्रिताः सर्वे न पृथग्भावसङ्गताः।
निर्व्यलीके स्थिरे धर्मे मतिः कस्यापि न स्थिरा॥ ३०

भवोद्भवे महाराज मायया मोहितस्य वै।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि तदासक्तं मनस्तथा॥ ३१

करोति विविधान्भावान्गुणैस्तैः प्रेरितो भृशम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्ताः प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः॥ ३२

सर्वे मायावशा राजन् सानुक्रीडति तैरिह।
सर्वान्वै मोहयत्येषा विकुर्वत्यनिशं जगत्॥ ३३

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस राजा बलिकी ही विजय हुई, जिसने समस्त भूमण्डलका दान कर दिया था। हे राजन्! जो त्रिविक्रम नामसे विख्यात थे, वे भगवान् विष्णु वामन बने। हे नरेन्द्र! उन्होंने छल करनेके लिये यह वामनरूप धारण किया था और इसी छलके परिणामस्वरूप उन श्रीहरिको राजा बलिका द्वारपाल बनना पड़ा। अतः हे राजन्! सत्यसे बढ़कर धर्मका मूल और कुछ नहीं है॥ २१—२३॥

हे राजन्! सम्यक् प्रकारसे सत्यका पालन करना प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर है। अनेक रूप धारण करनेवाली त्रिगुणात्मिका माया बड़ी बलवती है, जिसने तीनों गुणोंसे सम्मिश्रित इस विश्वकी रचना की है। अतः हे राजन्! छल-कपट करनेवालेसे बिना प्रभावित हुए यह सत्य कैसे रह सकता है?॥ २४-२५॥

सत्त्व, रज और तम—इन्हीं तीनों गुणोंके मेलसे संसारका प्रादुर्भाव हुआ, यही सृष्टिका सनातन नियम है। केवल अनासक्त, प्रतिग्रहशून्य, रागरहित और तृष्णाविहीन वानप्रस्थ तथा मुनिजन अवश्य सत्यपरायण होते हैं, किंतु वैसे लोग केवल दृष्टान्त दिखानेके लिये ही बनाये गये हैं॥ २६-२७॥

हे राजन्! उनके अतिरिक्त सब कुछ सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणोंसे ओत-प्रोत है। हे नृपश्रेष्ठ! पुराणों, वेदों, धर्मशास्त्रों, वेदांगों और सगुण प्राणियोंद्वारा रचित ग्रन्थोंमें भी कहीं एकवाक्यता नहीं मिलती; सगुण प्राणी ही सगुण कार्य करता है, निर्गुणसे सगुण कार्य नहीं हो सकता; क्योंकि वे सभी गुण मिश्रित हैं, वे पृथक्-पृथक् नहीं रहते। इसी कारण किसीकी भी बुद्धि सत्य तथा सनातनधर्ममें टिक नहीं पाती॥ २८—३०॥

हे महाराज! संसारकी सृष्टिके समय मायासे मोहित मनुष्यकी इन्द्रियाँ अत्यन्त चंचल हो जाती हैं और उनमें आसक्त मन उन गुणोंसे प्रेरित होकर विविध प्रकारके भाव प्रकट करने लगता है। हे राजन्! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त स्थावर-जंगम सभी प्राणी मायाके वशीभूत रहते हैं और वह माया उनके साथ क्रीडा करती रहती है। यह माया सभीको मोहमें डाल देती है और जगत्में निरन्तर विकार उत्पन्न किया करती है॥ ३१—३३॥

असत्यो जायते राजन्कार्यवान्प्रथमं नरः।
इन्द्रियार्थांश्चिन्तयानो न प्राप्नोति यदा नरः॥ ३४

तदर्थं छलमादत्ते छलात्पापे प्रवर्तते।
कामः क्रोधश्च लोभश्च वैरिणो बलवत्तराः॥ ३५

कृताकृतं न जानन्ति प्राणिनस्तद्वशं गताः।
विभवे सत्यहङ्कारः प्रबलः प्रभवत्यपि॥ ३६

अहङ्काराद्भवेन्मोहो मोहान्मरणमेव च।
सङ्कल्पा बहवस्तत्र विकल्पाः प्रभवन्ति च॥ ३७

ईर्ष्यासूया तथा द्वेषः प्रादुर्भवति चेतसि।
आशा तृष्णा तथा दैन्यं दम्भोऽधर्ममतिस्तथा॥ ३८

प्राणिनां प्रभवन्त्येते भावा मोहसमुद्भवाः।
यज्ञदानानि तीर्थानि व्रतानि नियमास्तथा॥ ३९

अहङ्काराभिभूतस्तु करोति पुरुषोऽन्वहम्।
अहंभावकृतं सर्वं प्रभवेद्वै न शौचवत्॥ ४०

रागलोभात्कृतं कर्म सर्वाङ्गं शुद्धिवर्जितम्।
प्रथमं द्रव्यशुद्धिश्च द्रष्टव्या विबुधैः किल॥ ४१

अद्रोहेणार्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि।
द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः॥ ४२

विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम।
मनोऽतिनिर्मलं यस्य स सम्यक्फलभाग्भवेत्॥ ४३

तस्मिन्विकारयुक्ते तु न यथार्थफलं लभेत्।
कर्तारः कर्मणां सर्वे आचार्यऋत्विजादयः॥ ४४

स्युस्ते विशुद्धमनसस्तदा पूर्णं भवेत्फलम्।
देशकालक्रियाद्रव्यकर्तॄणां शुद्धता यदि॥ ४५

मन्त्राणां च तदा पूर्णं कर्मणां फलमश्नुते।
शत्रूणां नाशमुद्दिश्य स्ववृद्धिं परमां तथा॥ ४६

हे राजन्! सर्वप्रथम अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य असत्यका सहारा लेता है। उस समय इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करते हुए जब मनुष्य अपना अभीष्ट नहीं पाता, तो वह उसके लिये छल करने लगता है। इस प्रकार छलके कारण वह पापमें प्रवृत्त हो जाता है। काम, क्रोध और लोभ मनुष्योंके सबसे बड़े शत्रु हैं। इनके वशमें होनेके कारण प्राणी कर्तव्य-अकर्तव्यको नहीं जान पाते। ऐश्वर्य बढ़ जानेपर अहंकार और भी बढ़ जाता है। अहंकारसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे विनाश हो जाता है। मोहके कारण मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प होने लगते हैं। उस समय मनमें ईर्ष्या, असूया तथा द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं। प्राणियोंके हृदयमें आशा, तृष्णा, दीनता, दम्भ और अधार्मिक बुद्धि—ये सब उत्पन्न हो जाते हैं। ये भावनाएँ प्राणियोंमें मोहसे ही उत्पन्न होती हैं। यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत और नियम जो कुछ भी सत्कर्म हैं, उन्हें भी मनुष्य अहंकारके ही वशीभूत होकर निरन्तर करता है, उनका अहंभावसे किया गया सारा कार्य वैसा नहीं होता, जैसा कि शुद्ध अन्तःकरणसे किया जाता है। आसक्ति एवं लोभसे किया हुआ कोई भी कर्म सर्वथा अशुद्ध होता है॥ ३४—४०½ ॥

बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वे सर्वप्रथम द्रव्य-शुद्धिपर विचार कर लें। द्रोहरहित कर्म करके अर्जित किया हुआ धन धर्मकार्यमें प्रशस्त माना गया है। हे नृपश्रेष्ठ! द्रोहपूर्वक उपार्जित किये हुए द्रव्यके द्वारा मनुष्य जो उत्तम कार्य करता है, समय आनेपर उसका विपरीत फल प्राप्त होता है। जिसका मन परम पवित्र है, वही पूर्ण फलका अधिकारी होता है और मनके विकारपूर्ण रहनेपर उसे यथार्थ फल नहीं मिलता॥ ४१—४३½ ॥

जब कर्म करानेवाले ऋत्विक्, आचार्य आदि लोगोंका चित्त शुद्ध रहता है, तभी पूर्ण फल प्राप्त होता है। यदि देश, काल, क्रिया, द्रव्य, कर्ता और मन्त्र—इन सबकी शुद्धता रहती है, तभी कर्मोंका पूरा फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य शत्रुनाश तथा अपनी अभिवृद्धिके उद्देश्यसे पुण्यकर्म करता है तो उसे भी वैसा ही

करोति सुकृतं तद्वद्विपरीतं भवेत्किल।
स्वार्थासक्तः पुमान्नित्यं न जानाति शुभाशुभम्॥ ४७

दैवाधीनः सदा कुर्यात्पापमेव न सत्कृतम्।
प्राजापत्याः सुराः सर्वे ह्यसुराश्च तदुद्भवाः॥ ४८

सर्वे ते स्वार्थनिरताः परस्परविरोधिनः।
सत्त्वोद्भवाः सुराः सर्वेऽप्युक्ता वेदेषु मानुषाः॥ ४९

रजोद्भवास्तामसास्तु तिर्यंचः परिकीर्तिताः।
सत्त्वोद्भवानां तैर्वैरं परस्परमनारतम्॥ ५०

तिरश्चामत्र किं चित्रं जातिवैरसमुद्भवे।
सदा द्रोहपरा देवास्तपोविघ्नकरास्तथा॥ ५१

असन्तुष्टा द्वेषपराः परस्परविरोधिनः।
अहङ्कारसमुद्भूतः संसारोऽयं यतो नृप॥ ५२

रागद्वेषविहीनस्तु स कथं जायते नृप॥ ५३

विपरीत फल मिलता है। स्वार्थमें लिप्त मनुष्य शुभाशुभका ज्ञान नहीं रख पाता और दैवाधीन होकर सदा पाप ही किया करता है, पुण्य नहीं॥ ४४—४७½ ॥

प्रजापति ब्रह्मासे ही देवता उत्पन्न हुए हैं और उन्हींसे असुरोंकी भी उत्पत्ति हुई है। वे सब-के-सब स्वार्थमें लिप्त होकर एक-दूसरेके विरुद्ध काम करते हैं। वेदोंमें कहा गया है कि सत्त्वगुणसे सभी देवता, रजोगुणसे मनुष्य तथा तमोगुणसे पशु-पक्षी आदि तिर्यक्‌योनिके जीव उत्पन्न होते हैं। अतएव जब सत्त्वगुणसे उत्पन्न देवताओंमें भी निरन्तर आपसमें वैरभाव रहता है तब पशु-पक्षियोंमें परस्पर जातिवैर उत्पन्न होनेमें क्या आश्चर्य! देवता भी सदैव द्रोहमें तत्पर रहते हैं और तपस्यामें विघ्न डाला करते हैं। हे नृप! वे सदा असन्तुष्ट रहते हुए द्वेषपरायण होकर आपसमें विरोधभाव रखते हैं। अतः हे राजन्! जब यह संसार ही अहंकारसे उत्पन्न हुआ है, तब वह राग-द्वेषसे हीन हो ही कैसे सकता है?॥ ४८—५३ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अधमजगतः स्थितिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

नर-नारायणकी तपस्यासे चिन्तित होकर इन्द्रका उनके पास जाना और मोहिनी माया प्रकट करना तथा उससे भी अप्रभावित रहनेपर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंको भेजना

व्यास उवाच

अथ किं बहुनोक्तेन संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम।
धर्मात्माद्रोहबुद्धिस्तु कश्चिद्भवति कर्हिचित्॥ १

रागद्वेषावृतं विश्वं सर्वं स्थावरजङ्गमम्।
आद्ये युगेऽपि राजेन्द्र किमद्य कलिदूषिते॥ २

देवाः सेर्ष्याश्च सद्रोहाश्छलकर्मरताः सदा।
मानुषाणां तिरश्चां च का वार्ता नृप गण्यते॥ ३

द्रोहपरे द्रोहपरो भवेदिति समानता।
अद्रोहिणि तथा शान्ते विद्वेषः खलता स्मृता॥ ४

व्यासजी बोले—हे नृपोत्तम! अब अधिक कहनेसे क्या लाभ? इस संसारमें कहीं बिरला ही ऐसा कोई धर्मात्मा पुरुष होगा जो द्रोहभावसे रहित हो। यह चर-अचर सम्पूर्ण संसार राग-द्वेषसे ओत-प्रोत है। हे राजेन्द्र! सत्ययुगमें भी यह संसार ऐसा ही था, तब कलिसे दूषित इसके विषयमें क्या कहा जाय?॥ १-२ ॥

हे राजन्! जब देवता भी सदा ईर्ष्यायुक्त, द्रोहसे भरे हुए और छल-परायण रहते हैं, तब मनुष्य तथा पशु-पक्षियोंकी बात ही क्या है? यदि कोई मनुष्य द्रोह करनेवालेके प्रति द्रोहभाव रखे तो यह समानताकी बात है, किंतु द्रोह न करनेवाले तथा शान्त स्वभाववालेके प्रति विद्वेष रखनेको नीचता कहा गया है॥ ३-४ ॥

यः कश्चित्तापसः शान्तो जपध्यानपरायणः।
भवेत्तस्य जपे विघ्नकर्ता वै मघवा परम्॥ ५

सतां सत्ययुगं साक्षात्सर्वदैवासतां कलिः।
मध्यमो मध्यमानां तु क्रियायोगौ युगे स्मृतौ॥ ६

कश्चित्कदाचिद्भवति सत्यधर्मानुवर्तकः।
अन्यथान्ययुगानां वै सर्वे धर्मपरायणाः॥ ७

वासना कारणं राजन् सर्वत्र धर्मसंस्थितौ।
तस्यां वै मलिनायां तु धर्मोऽपि मलिनो भवेत्॥ ८

मलिना वासना सत्यं विनाशायेति सर्वथा।
ब्रह्मणो हृदयाज्जातः पुत्रो धर्म इति स्मृतः॥ ९

ब्राह्मणः सत्यसम्पन्नो वेदधर्मरतः सदा।
दक्षस्य दुहितारो हि वृता दश महात्मना॥ १०

विवाहविधिना सम्यङ् मुनिना गृहधर्मिणा।
तास्वजीजनयत्पुत्रान्धर्मः सत्यवतां वरः॥ ११

हरिं कृष्णं नरं चैव तथा नारायणं नृप।
योगाभ्यासरतो नित्यं हरिः कृष्णो बभूव ह॥ १२

नरनारायणौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम्।
प्रालेयाद्रिं समागत्य तीर्थे बदरिकाश्रमे॥ १३

तपस्विषु धुरीणौ तौ पुराणौ मुनिसत्तमौ।
गृणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे॥ १४

हरेरंशौ स्थितौ तत्र नरनारायणावृषी।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु चक्राते तप उत्तमम्॥ १५

तापितं च जगत्सर्वं तपसा सचराचरम्।
नरनारायणाभ्यां च शक्रः क्षोभं तदा ययौ॥ १६

चिन्ताविष्टः सहस्राक्षो मनसा समकल्पयत्।
किं कर्तव्यं धर्मपुत्रौ तापसौ ध्यानसंयुतौ॥ १७

सिद्धार्थौ सुभृशं श्रेष्ठमासनं मे ग्रहीष्यतः।
विघ्नः कथं प्रकर्तव्यस्तपो येन भवेन्न हि॥ १८

यदि कोई तपस्वी शान्त होकर जप-ध्यानमें लीन हो जाता है तो इन्द्र उसके जपमें विघ्न डालनेहेतु तत्पर हो जाते हैं॥ ५॥

सज्जन पुरुषोंके लिये हर समय सत्ययुग दिखलायी पड़ता है और दुष्ट लोगोंके लिये सर्वदा कलियुग ही रहता है। जिस युगमें क्रिया तथा योग व्यवस्थित रहते हैं, वे द्वापर तथा त्रेतारूप मध्यम युग मध्यम कोटिके लोगोंके लिये कहे गये हैं॥ ६॥

अतः किसी समय भी कोई सत्यधर्मा हो सकता है अथवा सभी युगोंमें जो चाहे धर्मपरायण हो सकता है। हे राजन्! सर्वत्र धर्मकी स्थितिमें वासना ही प्रधान कारण मानी गयी है। उसमें मलिनता आ जानेपर धर्म भी मलिन हो जाता है। मलिन वासना विनाशके लिये होती है; यह सर्वथा सत्य है॥ ७-८½॥

ब्रह्माजीके हृदयसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो धर्म—इस नामसे कहा गया। वह ब्राह्मण सत्यसम्पन्न और वैदिक धर्ममें सदा संलग्न रहनेवाला था। उस गृहस्थधर्मी महात्मा मुनिने पाणिग्रहणकी विधिसे दक्षप्रजापतिकी दस कन्याओंका सम्यक् रूपसे वरण किया। सत्यव्रतियोंमें श्रेष्ठ उस धर्मने उनसे 'हरि', 'कृष्ण', 'नर' और 'नारायण' नामक चार पुत्र उत्पन्न किये। हे राजन्! उनमें 'हरि' और 'कृष्ण' ये दोनों योगाभ्यास करने लगे तथा नर और नारायण ये दोनों हिमालयपर्वतके शिखरपर जाकर 'बदरिकाश्रम' तीर्थमें कठिन तपस्या करने लगे॥ ९—१३॥

वे प्राचीन मुनिश्रेष्ठ नर और नारायण तपस्वियोंमें सबसे प्रधान थे। गंगाके विस्तृत तटपर रहकर ब्रह्मचिन्तन करते हुए भगवान् विष्णुके अंशावतार नर-नारायणने वहाँ पूरे एक हजार वर्षोंतक कठोर तप किया। उनके तपसे चराचरसहित सम्पूर्ण संसार सन्तप्त हो गया। इससे इन्द्रके मनमें नर-नारायणके प्रति क्षोभ उत्पन्न हो गया॥ १४—१६॥

तब चिन्तित होकर इन्द्रने अपने मनमें सोचा—अब मुझे क्या करना चाहिये? ये धर्मपुत्र नर-नारायण तपस्वी तथा ध्यानपरायण हैं। ये पूर्णरूपसे सिद्ध होकर मेरा श्रेष्ठ आसन ग्रहण कर लेंगे, अतः किस प्रकार विघ्न उत्पन्न करूँ, जिससे तप न कर सकें॥ १७-१८॥

उत्पाद्य कामं क्रोधञ्च लोभं वाप्यतिदारुणम्।
इत्युद्दिश्य सहस्राक्षः समारुह्य गजोत्तमम्॥ १९

विघ्नकामस्तु तरसा जगाम गन्धमादनम्।
गत्वा तत्राश्रमे पुण्ये तावपश्यच्छतक्रतुः॥ २०

तपसा दीप्तदेहौ तु भास्कराविव चोदितौ।
ब्रह्मविष्णू किमेतौ वै प्रकटौ वा विभावसू॥ २१

धर्मपुत्रावृषी एतौ तपसा किं करिष्यतः।
इति सञ्चिन्त्य तौ दृष्ट्वा तदोवाच शचीपतिः॥ २२

किं वा कार्यं महाभागौ ब्रूतं धर्मसुतौ किल।
ददामि वां वरं श्रेष्ठं दातुं यातोऽस्म्यहमृषी॥ २३

अदेयमपि दास्यामि तुष्टोऽस्मि तपसा किल।

व्यास उवाच

एवं पुनः पुनः शक्रस्तावुवाच पुरः स्थितः॥ २४

नोचतुस्तावृषी ध्यानसंस्थितौ दृढचेतसौ।
ततो वै मोहिनीं मायां चकार भयदां वृषः॥ २५

वृकान्सिंहांश्च व्याघ्रांश्च समुत्पाद्याबिभीषयत्।
वर्षं वातं तथा वह्निं समुत्पाद्य पुनः पुनः॥ २६

भीषयामास तौ शक्रो मायां कृत्वा विमोहिनीम्।
भयतोऽपि वशं नीतौ न तौ धर्मसुतौ मुनी॥ २७

नरनारायणौ दृष्ट्वा शक्रः स्वभवनं गतः।
वरदाने प्रलुब्धौ न न भीतौ वह्निवायुतः॥ २८

व्याघ्रसिंहादिभिः क्रान्तौ चलितौ नाश्रमात्स्वकात्।
न तयोर्ध्यानभङ्गं वै कर्तुं कोऽपि क्षमोऽभवत्॥ २९

इन्द्रोऽपि सदनं गत्वा चिन्तयामास दुःखितः।
चलितौ भयलोभाभ्यां नेमौ मुनिवरोत्तमौ॥ ३०

अब इनके मनमें काम, क्रोध अथवा अत्यन्त भीषण लोभ उत्पन्न करके तपमें विघ्न करना चाहिये। यह विचारकर इन्द्र अपने उत्तम ऐरावत हाथीपर सवार होकर उनके तपमें विघ्न डालनेकी इच्छासे गन्धमादनपर्वतपर शीघ्रतापूर्वक जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने उस पवित्र आश्रममें तप करते हुए नर-नारायणको देखा॥ १९-२० ॥

उस समय तपके प्रभावसे दीप्त शरीरवाले वे दोनों ऋषि उगे हुए सूर्यकी भाँति प्रतीत हो रहे थे। [इन्द्रने सोचा—] क्या ये ब्रह्मा और विष्णु प्रकट हुए हैं अथवा दो सूर्य उदित हो गये हैं? धर्मके ये दोनों पुत्र अपने तपद्वारा न जाने क्या कर देंगे? ऐसा विचार करके शचीपति इन्द्रने नर-नारायणकी ओर देखकर उनसे कहा—हे महाभाग धर्मनन्दन! आपलोगोंका क्या कार्य है, बताइये। मैं श्रेष्ठ वर अभी प्रदान करता हूँ। हे ऋषियो! मैं वर देनेके लिये ही आया हूँ। वर अदेय हो तो भी मैं दूँगा; क्योंकि मैं आप लोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ॥ २१—२३½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उनके सामने खड़े होकर इन्द्रने बार-बार उनसे [वरदान माँगनेको] कहा, किंतु ध्यानमग्न तथा दृढ़चित्त वे दोनों ऋषि नहीं बोले। तब इन्द्रने अपनी भयदायिनी मोहिनी माया प्रकट की। उन्होंने भेड़िये, सिंह, व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंको उत्पन्न करके उन्हें भयभीत किया। इसी प्रकार वर्षा, वायु तथा अग्नि उत्पन्न करके इन्द्रने अपनी मोहिनी माया रचकर उन दोनोंको भयभीत करनेकी चेष्टा की किंतु धर्मपुत्र वे दोनों मुनि इस भयसे भी वशमें नहीं किये जा सके। ऐसे उन नर-नारायणको देखकर इन्द्र अपने भवन चले गये। वे नर-नारायण वरदानके लोभमें नहीं आये और अग्नि तथा वायुसे भयभीत नहीं हुए। व्याघ्र, सिंह आदिके आक्रमण करनेपर भी वे दोनों अपने आसनसे हिलेतक नहीं। उन दोनोंके ध्यानको भंग करनेमें उस समय कोई भी समर्थ नहीं हो सका॥ २४—२९ ॥

इन्द्र भी अपने घर पहुँचकर दुःखित होकर विचार करने लगे कि मुनिवरोंमें उत्तम ये दोनों ऋषि भय तथा लोभसे विचलित नहीं हुए। वे तो महाविद्या,

चिन्तयन्तौ महाविद्यामादिशक्तिं सनातनीम्।
ईश्वरीं सर्वलोकानां परां प्रकृतिमद्भुताम्॥ ३१

ध्यायतां कः क्षमो लोके बहुमायाविदप्युत।
यन्मूलाः सकला माया देवासुरकृताः किल॥ ३२

ते कथं बाधितुं शक्या ध्यायन्ति गतकल्मषाः।
वाग्बीजं कामबीजञ्च मायाबीजं तथैव च॥ ३३

चित्ते यस्य भवेत्तं तु बाधितुं कोऽपि न क्षमः।
मायया मोहितः शक्रो भूयस्तस्य प्रतिक्रियाम्॥ ३४

कर्तुं कामवसन्तौ तु समाहूयाब्रवीद्वचः।
मनोभव वसन्तेन रत्या युक्तो व्रजाधुना॥ ३५

अप्सरोभिः समायुक्तस्तरसा गन्धमादनम्।
नरनारायणौ तत्र पुराणावृषिसत्तमौ॥ ३६

कुरुतस्तप एकान्ते स्थितौ बदरिकाश्रमे।
गत्वा तत्र समीपे तु तयोर्मन्मथ मार्गणैः॥ ३७

चित्तं कामातुरं कार्यं कुरु कार्यं ममाधुना।
मोहयित्वोच्चाटयित्वा विशिखैस्ताडयाशु च॥ ३८

वशीकुरु महाभाग मुनी धर्मसुतावपि।
को ह्यस्मिन् सर्वसंसारे देवो दैत्योऽथ मानवः॥ ३९

यस्ते बाणवशं प्राप्तो न याति भृशताडितः।
ब्रह्माहं गिरिजानाथश्चन्द्रो वह्निर्विमोहितः॥ ४०

गणना कानयोः काम त्वद्बाणानां पराक्रमे।
वाराङ्गनागणोऽयं ते सहायार्थं मयेरितः॥ ४१

आगमिष्यति तत्रैव रम्भादीनां मनोरमः।
एका तिलोत्तमा रम्भा कार्यं साधयितुं क्षमा॥ ४२

त्वमेवैकः क्षमः कामं मिलितैः कस्तु संशयः।
कुरु कार्यं महाभाग ददामि तव वाञ्छितम्॥ ४३

आदिशक्ति, सनातनी, सब लोकोंकी स्वामिनी औ अद्भुत परा-प्रकृतिका ध्यान कर रहे थे। देवताओं तथा असुरोंके द्वारा रची गयी सारी माया जि भगवतीसे ही उत्पन्न होती है, उनका ध्यान करनेवालेक विचलित करनेमें कौन समर्थ है, चाहे वह कितना ह बड़ा मायाविज्ञ क्यों न हो? जो लोग कल्मषरहि होकर भगवतीका ध्यान करते हैं, वे भला कैसे विचलित किये जा सकते हैं? देवीका वाग्बीज, कामबीज और मायाबीज—यह जिसके हृदयमें विद्यमान है, उसे विचलित करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ ३०—३३$\frac{1}{2}$॥

अब मायासे मोहित इन्द्रने पुनः उनका प्रतीका करनेहेतु कामदेव तथा वसन्तको बुलाकर यह वचन कहा—हे कामदेव! तुम वसन्त और रतिको लेक अनेक अप्सराओंके साथ उस गन्धमादनपर्वतपर अभी शीघ्रतापूर्वक जाओ। वहाँ 'नर-नारायण' नामक दो प्राचीन श्रेष्ठ ऋषि बदरिकाश्रमके एकान्त स्थानमें स्थित होकर तपस्या कर रहे हैं। हे मन्मथ! उनके पास जाकर तुम अपने बाणोंसे उनके चित्तको कामासक्त कर दो। उनका मोहन तथा उच्चाटन करके तुम अपने बाणोंसे उन्हें शीघ्र आहत कर डालो; मेरा यह कार्य अभी सिद्ध करो॥ ३४—३८॥

इस प्रकार हे महाभाग! धर्मके पुत्र उन दोनों मुनियोंको वशीभूत कर लो। इस सम्पूर्ण संसारमें देवता, दैत्य या मनुष्य कौन ऐसा है, जो तुम्हारे बाणके वशीभूत होकर अत्यन्त कामासक्त न हो जाय? हे कामदेव! जब ब्रह्मा, मैं (इन्द्र), शिव, चन्द्रमा या अग्नि भी मोहित हो जाते हैं तब तुम्हारे बाणोंके पराक्रमके सामने उन दोनोंकी क्या गणना है?॥ ३९-४०$\frac{1}{2}$॥

तुम्हारी सहायताके लिये मेरे द्वारा यह रम्भा आदि अप्सराओंका समूह भेजा जा रहा है, जो वहाँ पहुँच जायगा। अकेली तिलोत्तमा या रम्भा ही इस कार्यको करनेमें समर्थ है अथवा तुम अकेले भी इसे करनेमें समर्थ हो, तब सभी सम्मिलित रूपसे कार्य सिद्ध कर लेंगे; इसमें सन्देहकी बात ही क्या? हे महाभाग! तुम मेरे इस कार्यको सम्पन्न करो, मैं तुम्हें वांछित वस्तु प्रदान करूँगा॥ ४१—४३॥

प्रलोभितौ मयात्यर्थं वरदानैस्तपस्विनौ।
स्थानान्न चलितौ शान्तौ वृथायं मे गतः श्रमः॥ ४४

तथा वै मायया कृत्वा भीषितौ तापसौ भृशम्।
तथापि नोत्थितौ स्थानाद्देहरक्षापरौ न तौ॥ ४५

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शक्रं प्राह मनोभवः।
वासवाद्य करिष्यामि कार्यं ते मनसेप्सितम्॥ ४६

यदि विष्णुं महेशं वा ब्रह्माणं वा दिवाकरम्।
ध्यायन्तौ तौ तदास्माकं भवितारौ वशौ मुनी॥ ४७

देवीभक्तं वशीकर्तुं नाहं शक्तः कथञ्चन।
कामराजं महाबीजं चिन्तयन्तं मनस्यलम्॥ ४८

तां देवीं चेन्महाशक्तिं संश्रितौ भक्तिभावतः।
न तदा मम बाणानां गोचरौ तापसौ किल॥ ४९

इन्द्र उवाच

गच्छ त्वं च महाभाग सर्वैस्तत्र समुद्यतैः।
कार्यं ममातिदुःसाध्यं कर्ता हितमनुत्तमम्॥ ५०

व्यास उवाच

इति तेन समादिष्टा ययुः सर्वे समुद्यताः।
यत्र तौ धर्मपुत्रौ द्वौ तेपाते दुष्करं तपः॥ ५१

मैंने उन दोनों तपस्वियोंको वरदानोंके द्वारा बहुत प्रलोभन दिया, किंतु वे अपने स्थानसे विचलित नहीं हुए, बल्कि शान्त बैठे रहे। मेरा यह परिश्रम व्यर्थ चला गया। मैंने माया रचकर उन तपस्वियोंको बहुत डराया, फिर भी वे अपने आसनसे नहीं उठे। वे दोनों शरीररक्षाके लिये जरा भी चिन्तित नहीं हैं॥ ४४-४५॥

व्यासजी बोले—इन्द्रका यह वचन सुनकर कामदेवने उनसे कहा—हे इन्द्र! मैं अभी आपका मनोवांछित कार्य करूँगा। यदि वे दोनों मुनि विष्णु, शिव, ब्रह्मा अथवा सूर्य किसीका ध्यान करते होंगे, तो वे हमारे वशमें हो जायँगे। मैं केवल कामराज महाबीज 'क्लीं' का अपने मनमें चिन्तन करनेवाले देवीभक्तको वशमें करनेमें किसी प्रकार भी समर्थ नहीं हूँ। यदि वे भक्ति-भावसे महाशक्तिस्वरूपा देवीकी उपासनामें लगे होंगे, तो मेरे बाणोंका प्रभाव उन तपस्वियोंपर नहीं पड़ेगा॥ ४६—४९॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग! जानेके लिये उद्यत इन सभीके साथ तुम वहाँ जाओ। यद्यपि मेरा यह कार्य अत्यन्त दुःसाध्य है, फिर भी तुम इस हितकर तथा उत्तम कार्यको पूर्ण कर ही लोगे॥ ५०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार इन्द्रका आदेश पाकर वे लोग पूरी तैयारीके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ वे धर्मपुत्र नर-नारायण कठोर तपस्या कर रहे थे॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
नरनारायणकथावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

कामदेवद्वारा नर-नारायणके समीप वसन्त ऋतुकी सृष्टि, नारायणद्वारा उर्वशीकी उत्पत्ति, अप्सराओंद्वारा नारायणसे स्वयंको अंगीकार करनेकी प्रार्थना

व्यास उवाच

प्रथमं तत्र सम्प्राप्तो वसन्तः पर्वतोत्तमे।
पुष्पिताः पादपाः सर्वे द्विरेफालिविराजिताः॥ १

आम्राश्च बकुला रम्यास्तिलकाः किंशुकाः शुभाः।
सालास्तालास्तमालाश्च मधूकाः पुष्पिता बभुः॥ २

व्यासजी बोले—सर्वप्रथम उस पर्वतश्रेष्ठ गन्धमादनपर वसन्त पहुँचा। उस पर्वतपर स्थित सभी वृक्ष पुष्पित हो गये और उनपर भ्रमरोंके समूह मँडराने लगे॥ १॥

आम, मौलसिरी, रम्य, तिलक, सुन्दर किंशुक, साल, ताल, तमाल तथा महुए—ये सब-के-सब फूलोंसे सुशोभित हो गये॥ २॥

बभूवुः कोकिलालापा वृक्षाग्रेषु मनोहराः।
वल्ल्योऽपि पुष्पिताः सर्वा आलिलिङ्गुर्नगोत्तमान्॥ ३

प्राणिनः स्वासु भार्यासु प्रेमयुक्ताः स्मरातुराः।
बभूवुश्चातिमत्ताश्च क्रीडासक्ताः परस्परम्॥ ४

ववुर्मन्दाः सुगन्धाश्च सुस्पर्शा दक्षिणानिलाः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि मुनीनामपि चाभवन्॥ ५

रतियुक्तस्ततः कामः पूरयन्पञ्चमार्गणान्।
चकार त्वरितस्तत्र वासं बदरिकाश्रमे॥ ६

रम्भा तिलोत्तमाद्याश्च गत्वा तत्र वराश्रमे।
गानं चक्रुः सुगीतज्ञाः स्वरतानसमन्वितम्॥ ७

तच्छ्रुत्वा मधुरोद्गीतं कोकिलानाञ्च कूजितम्।
भ्रमरालिविरावञ्च प्रबुद्धौ तौ मुनीश्वरौ॥ ८

ऋतुराजमकाले तु दृष्ट्वा तौ पुष्पितं वनम्।
जातौ चिन्तापरौ तत्र नरनारायणावृषी॥ ९

किमद्य शिशिरापायः संवृतः समयं विना।
प्राणिनो विह्वलाः सर्वे लक्ष्यन्तेऽतिस्मरातुराः॥ १०

कालधर्मविपर्यासः कथमद्य दुरासदः।
नरं नारायणः प्राह विस्मयोत्फुल्ललोचनः॥ ११

नारायण उवाच

पश्य भ्रातरिमे वृक्षाः पुष्पिताः प्रतिभान्ति वै।
कोकिलालापसङ्घुष्टा भ्रमरालिविराजिताः॥ १२

शिशिरं भीममातङ्गं दारयन्स्वखरैर्नखैः।
वसन्तकेसरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मुने॥ १३

रक्ताशोककरा तन्वी देवर्षे किंशुकाङ्घ्रिका।
नीलाशोककचा श्यामा विकासिकमलानना॥ १४

वृक्षोंकी डालियोंपर कोयलोंकी मनोहारिणी कूक आरम्भ हो गयी। पुष्पोंसे लदी हुई सभी लताएँ ऊँचे पर्वतोंपर चढ़ने लगीं॥ ३॥

सभी प्राणी अपनी-अपनी भार्याओंमें प्रेमासक्त हो गये तथा मत्त होकर परस्पर क्रीड़ा करने लगे॥ ४

मन्द, सुगन्धयुक्त तथा सुखद स्पर्शवाली दक्षिणी हवाएँ चलने लगीं। उस समय मुनियोंकी भी वृत्तियाँ अतीव चंचल हो उठीं॥ ५॥

तत्पश्चात् अपनी भार्या रतिके साथ कामदेव भी अपने पंचबाणोंको छोड़ता हुआ तत्काल बदरिकाश्रम पहुँचकर वहाँ रहने लगा॥ ६॥

संगीतकलामें अत्यन्त प्रवीण रम्भा और तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ भी उस रमणीक बदरिकाश्रममें पहुँचकर स्वर तथा तानमें आबद्ध गीत गाने लगीं॥ ७।

उस मधुर गायन, कोयलोंकी कूक तथा भ्रमर-समूहोंका गुंजार सुनकर उन दोनों मुनिवरोंका ध्यान भंग हो गया॥ ८॥

असमयमें ही वसन्तका आगमन तथा सम्पूर्ण वनको पुष्पोंसे सुशोभित देखकर वे दोनों नर तथा नारायणऋषि चिन्तित हो उठे [वे सोचने लगे कि] क्या आज समय पूरा हुए बिना ही शिशिर ऋतु बीत गयी? इस समय तो समस्त प्राणी कामसे पीड़ित होनेके कारण अत्यन्त विह्वल दिखायी पड़ रहे हैं। कालके स्वभाव तथा नियममें यह अद्भुत परिवर्तन आज कैसे हो गया? विस्मयके कारण विस्फारित नेत्रोंवाले मुनि नारायण नरसे कहने लगे॥ ९—११॥

नारायण बोले—हे भाई! देखो, ये सभी वृक्ष पुष्पोंसे लदे हुए सुशोभित हो रहे हैं। इन वृक्षोंपर कोयलोंकी मधुर ध्वनि हो रही है तथा भ्रमरोंकी पंक्तियाँ विराजमान हैं॥ १२॥

हे मुने! यह वसन्तरूपी सिंह अपने पलाशपुष्परूपी तीखे नाखूनोंसे शिशिररूपी भयानक हाथीको विदीर्ण करता हुआ यहाँ आ पहुँचा है॥ १३॥

हे देवर्षे! लाल अशोक जिसके हाथ हैं, किंशुकके पुष्प जिसके पैर हैं, नील अशोक जिसके केश हैं, विकसित श्याम कमल जिसका मुख है,

नीलेन्दीवरनेत्रा सा बिल्ववृक्षफलस्तनी।
प्रोत्फुल्लकुन्ददरदना मञ्जरीकर्णशोभिता॥ १५

बन्धुजीवाधरा शुभ्रा सिन्धुवारनखोद्भवा।
पुंस्कोकिलस्वरा पुण्या कदम्बवसना शुभा॥ १६

बर्हिवृन्दकलापा च सारसस्वननूपुरा।
वासन्ती बद्धरशना मत्तहंसगतिस्तथा॥ १७

पुत्रजीवांशुकन्यस्तरोमराजिविराजिता।
वसन्तलक्ष्मीः सम्प्राप्ता ब्रह्मन् बदरिकाश्रमे॥ १८

अकाले किमियं प्राप्ता विस्मयोऽयं ममाधुना।
तपोविघ्नकरा नूनं देवर्षे परिचिन्तय॥ १९

श्रूयते सुरनारीणां गानं ध्यानविनाशनम्।
आवयोस्तपिभङ्गाय कृतं मघवता किल॥ २०

ऋतुराडन्यथाकाले प्रीतिं सञ्जनयेत्कथम्।
विघ्नोऽयं विहितो भाति भीतेनासुरशत्रुणा॥ २१

वाताः सुगन्धाः शीताश्च समायान्ति मनोहराः।
नान्यत्कारणमस्तीह शतक्रतुकृतिं विना॥ २२

इति ब्रुवति विप्राग्र्ये देवे नारायणे विभौ।
सर्वे दृष्टिपथं प्राप्ता मन्मथप्रमुखास्तदा॥ २३

ददर्श भगवान्सर्वान्नरो नारायणस्तथा।
विस्मयाविष्टमनसौ बभूवतुरुभावपि॥ २४

मन्मथं मेनकां चैव रम्भां चैव तिलोत्तमाम्।
पुष्पगन्धां सुकेशीं च महाश्वेतां मनोरमाम्॥ २५

प्रमद्वरां घृताचीञ्च गीतज्ञां चारुहासिनीम्।
चन्द्रप्रभां च सोमां च कोकिलालापमण्डिताम्॥ २६

विद्युन्मालाम्बुजाक्ष्यौ च तथा काञ्चनमालिनीम्।
एताश्चान्या वरारोहा दृष्टास्ताभ्यां तदान्तिके॥ २७

तासां द्व्यष्टसहस्राणि पञ्चाशदधिकानि च।
वीक्ष्य तौ विस्मितौ जातौ कामसैन्यं सुविस्तरम्॥ २८

नीले कमल जिसके नेत्र हैं, बिल्व-वृक्षके फल जिसके स्तन हैं, खिले हुए कुन्दके फूल जिसके दाँत हैं, आमके बौर जिसके कान हैं, बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के पुष्प जिसके शुभ्र अधर हैं, सिन्धुवारके पुष्प जिसके नख हैं, कोयलके समान जिसका स्वर है, कदम्बके पुष्प जिस सुन्दरीके पावन वस्त्र हैं, मयूरपंखोंके समूह जिसके आभूषण हैं, सारसोंका स्वर जिसका नूपुर है, माधवी लता जिसकी करधनी है—ऐसी मत्त हंसके समान गतिवाली तथा इंगुदीके पत्तोंको रोमस्वरूप धारण की हुई वसन्तश्री इस बदरिकाश्रममें छायी हुई है॥ १४—१८॥

मुझे तो यह महान् आश्चर्य हो रहा है कि असमयमें यह यहाँ क्यों आ गयी? हे देवर्षे! आप यह निश्चित समझिये कि इस समय यह हमलोगोंकी तपस्यामें विघ्न डालनेवाली है॥ १९॥

ध्यान भंग कर देनेवाला यह देवांगनाओंका गीत सुनायी दे रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि हम दोनोंका तप नष्ट करनेके लिये इन्द्रने ही यह उपक्रम रचा है। अन्यथा ऋतुराज वसन्त अकालमें कैसे प्रीति प्रकट कर सकता है? जान पड़ता है कि भयभीत होकर असुरोंके शत्रु इन्द्रके द्वारा ही यह विघ्न उपस्थित किया गया है। सुरभित, शीतल एवं मनोहर हवाएँ चल रही हैं; इसमें इन्द्रकी चालके अतिरिक्त अन्य कोई कारण नहीं है॥ २०—२२॥

विप्रवर विभु भगवान् नारायण ऐसा कह ही रहे थे कि कामदेव आदि सभी दिखायी पड़ गये। भगवान् नर तथा नारायणने उन सबको प्रत्यक्ष देखा और इससे उन दोनोंके मनमें महान् आश्चर्य हुआ॥ २३-२४॥

कामदेव, मेनका, रम्भा, तिलोत्तमा, पुष्पगन्धा, सुकेशी, महाश्वेता, मनोरमा, प्रमद्वरा, गीतज्ञ और सुन्दर हास्य करनेवाली घृताची, चन्द्रप्रभा, कोकिलके समान आलाप करनेवाली सोमा, विद्युन्माला, अम्बुजाक्षी और कांचनमालिनी—इन्हें तथा अन्य भी बहुत-सी सुन्दर अप्सराओंको नर-नारायणने अपने पास उपस्थित देखा। उनकी संख्या सोलह हजार पचास थी, कामदेवकी उस विशाल सेनाको देखकर वे दोनों मुनि चकित हो गये॥ २५—२८॥

प्रणम्याग्रे स्थिताः सर्वा देववाराङ्गनास्तदा।
दिव्याभरणभूषाढ्या दिव्यमालोपशोभिताः॥ २९

जगुश्छलेन ताः सर्वाः पृथिव्यामतिदुर्लभम्।
तत्तथावस्थितं दिव्यं मन्मथादिविवर्धनम्॥ ३०

शुश्राव भगवान्विष्णुर्नरो नारायणस्तदा।
श्रुत्वा प्रोवाच तास्तत्र प्रीत्या नारायणो मुनिः॥ ३१

आस्यतां सुखमत्रैव करोम्यातिथ्यमद्भुतम्।
भवत्योऽतिथिधर्मेण प्राप्ताःस्वर्गात्सुमध्यमाः॥ ३२

व्यास उवाच

साभिमानस्तु सञ्जातस्तदा नारायणो मुनिः।
इन्द्रेण प्रेषिता नूनं तथा विघ्नचिकीर्षया॥ ३३

वराक्यः का इमाः सर्वाः सृजाम्यद्य नवाः किल।
एताभ्यो दिव्यरूपाश्च दर्शयामि तपोबलम्॥ ३४

इति सञ्चिन्त्य मनसा करेणोरुं प्रताड्य वै।
तरसोत्पादयामास नारीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥ ३५

नारायणोरुसम्भूता ह्युर्वशीति ततः शुभा।
ददृशुस्ताः स्थितास्तत्र विस्मयं परमं ययुः॥ ३६

तासां च परिचर्यार्थं तावतीश्चातिसुन्दरीः।
प्रादुश्चकार तरसा तदा मुनिरसम्भ्रमः॥ ३७

गायन्त्यश्च हसन्त्यश्च नानोपायनपाणयः।
प्रणेमुस्ता मुनी सर्वाः स्थिताः कृत्वाञ्जलिं पुरः॥ ३८

तां वीक्ष्य विभ्रमकरीं तपसो विभूतिं
देवाङ्गना हि मुमुहुः प्रविमोहयन्त्यः।
ऊचुश्च तौ प्रमुदिताननपद्मशोभा
रोमोद्गमोल्लसितचारुनिजाङ्गवल्ल्यः॥ ३९

उस समय दिव्य वस्त्र तथा आभूषणोंसे विभूषित और दिव्य मालाओंसे सुशोभित देवलोककी वे अप्सराएँ प्रणाम करके सामने खड़ी हो गयीं॥ २९॥

तत्पश्चात् वे अनेक प्रकारके हाव-भाव प्रदर्शित करती हुई छलपूर्वक पृथ्वीतलपर अत्यन्त दुर्लभ एवं कामवासनावर्धक गीत गाने लगीं। भगवान् नर-नारायणने उस गीतको सुना। तदनन्तर उसे सुनकर नारायणमुनिने प्रेमपूर्वक उनसे कहा—तुमलोग आनन्दसे बैठो, मैं तुम्हारा अद्भुत आतिथ्य-सत्कार करूँगा। हे सुन्दरियो! तुमलोग स्वर्गसे यहाँ आयी हो, अतएव हमारी अतिथिस्वरूपा हो॥ ३०—३२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस समय मुनि नारायण अभिमानमें आकर सोचने लगे कि निश्चितरूपसे इन्द्रने हमारे तपमें बाधा डालनेकी इच्छासे इन्हें भेजा है। ये सब बेचारी क्या चीज हैं, मैं अभी अपना तपोबल दिखाता हूँ और इनसे भी अधिक दिव्य रूपवाली नवीन अप्सराएँ उत्पन्न करता हूँ॥ ३३-३४॥

मनमें ऐसा विचार करके उन्होंने हाथसे अपनी जंघापर आघातकर तत्काल एक सर्वांगसुन्दरी स्त्री उत्पन्न कर दी॥ ३५॥

वह सुन्दरी भगवान् नारायणके ऊरुदेश (जंघा)-से उत्पन्न हुई थी, अतः उसका नाम उर्वशी पड़ा। वहाँ उपस्थित वे अप्सराएँ उर्वशीको देखकर अत्यन्त आश्चर्यचकित हो गयीं॥ ३६॥

तदनन्तर उन अप्सराओंकी सेवाके लिये मुनिने तत्काल उतनी ही अन्य अत्यन्त सुन्दर अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। हाथमें विविध प्रकारके उपहार लिये हँसती हुई तथा मधुर गीत गाती हुई उन सब अप्सराओंने उन मुनियोंको प्रणाम किया और वे हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ी हो गयीं॥ ३७-३८॥

लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली वे [इन्द्रप्रेषित] अप्सराएँ तपस्याकी विभूति उस विस्मयकारिणी उर्वशीको देखकर अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उन अप्सराओंके मुखकमल आनन्दातिरेकसे खिल उठे तथा उनके मनोहर शरीररूपी वल्लरियोंपर रोमांचरूपी अंकुर निकल आये। वे अप्सराएँ उन दोनों मुनियोंसे कहने लगीं—॥ ३९॥

कुर्युः कथं स्तुतिमहो तपसो महत्त्वं
धैर्यं तथैव भवतामभिवीक्ष्य बालाः।
अस्मत्कटाक्षविषदिग्धशरेण दग्धः
को वा न तत्र भवतां मनसो व्यथा न॥ ४०

ज्ञातौ युवां नरहरेः परमांशभूतौ
देवौ मुनी शमदमादिनिधी सदैव।
सेवानिमित्तमिह नो गमनं न कामं
कार्यं हरेः शतमखस्य विधातुमेव॥ ४१

भाग्येन केन युवयोः किल दर्शनं नः
सम्पादितं न विदितं खलु सञ्चितं तत्।
चित्तं क्षमं निजजने विहितं युवाभ्या-
मस्मद्विधे किल कृतागसि तापमुक्तम्॥ ४२

कुर्वन्ति नैव विबुधास्तपसो व्ययं वै
शापेन तुच्छफलदेन महानुभावाः।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य वचनं सुरकामिनीनां
तावूचतुर्मुनिवरौ विनयानतानाम्॥ ४३

प्रीतौ प्रसन्नवदनौ जितकामलोभौ
धर्मात्मजौ निजतपोरुचिशोभिताङ्गौ।

नरनारायणावूचतुः

ब्रुवन्तु वाञ्छितान् कामान्ददावस्तुष्टमानसौ॥ ४४

यान्तु स्वर्गं गृहीत्वेमामुर्वशीं चारुलोचनाम्।
उपायनमियं बाला गच्छत्वद्य मनोहरा॥ ४५

दत्तावाभ्यां मघवतः प्रीणनायोरुसम्भवा।
स्वस्त्यस्तु सर्वदेवेभ्यो यथेष्टं प्रव्रजन्तु च॥ ४६
(न कस्यापि तपोविघ्नं प्रकर्तव्यमतः परम्।)

अहो! हम मूर्ख अप्सराएँ आपकी स्तुति कैसे करें? हम तो आपके धैर्य तथा तपके प्रभावको देखकर परम विस्मयमें पड़ गयी हैं। ऐसा कौन है जो हमलोगोंके कटाक्षरूपी विषसे बुझे बाणोंसे दग्ध न हो गया हो, फिर भी आपके मनको थोड़ी भी व्यथा नहीं हुई॥ ४०॥

अब हमलोगोंको ज्ञात हो गया कि आप दोनों देवस्वरूप मुनि साक्षात् भगवान् विष्णुके परम अंश हैं और सदा ही शम, दम आदि गुणोंके निधान हैं। आप दोनोंकी सेवाके लिये यहाँ हमारा आगमन नहीं हुआ है, अपितु देवराज इन्द्रका कार्य सिद्ध करनेके लिये ही हम सब यहाँ आयी हुई हैं॥ ४१॥

न जाने हमारे किस भाग्यसे आप दोनों मुनिवरोंके दर्शन हुए। हम यह नहीं जान पा रही हैं कि हमारे द्वारा सम्पादित किस संचित पुण्यकर्मका यह फल है। [शाप देनेमें समर्थ होते हुए भी] आप दोनों मुनियोंने हम-जैसे अपराधीजनोंको स्वजन समझकर अपने चित्तको क्षमाशील बनाया और हमें सन्तापरहित कर दिया। विवेकशील महानुभाव तुच्छ फल देनेवाले शापको उपयोगमें लाकर अपने तपका अपव्यय नहीं करते॥ ४२½ ॥

व्यासजी बोले—उन अति विनम्र देवसुन्दरियोंका वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाले, काम तथा लोभको जीत लेनेवाले तथा अपनी तपस्याके प्रभावसे देदीप्यमान अंगोंवाले वे धर्मपुत्र मुनिवर नर-नारायण प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ ४३½ ॥

नर-नारायण बोले—हम दोनों तुम सभीपर अत्यन्त प्रसन्न हैं। तुमलोग अपने वांछित मनोरथ बताओ, हम उसे देंगे। इस सुन्दर नयनोंवाली उर्वशीको भी अपने साथ लेकर तुम सब स्वर्गके लिये प्रस्थान करो। उपहारस्वरूप यह मनोहर युवती अब यहाँसे तुमलोगोंके साथ जाय॥ ४४-४५॥

ऊरुसे प्रादुर्भूत इस उर्वशीको इन्द्रके प्रसन्नार्थ हमने उनको दे दिया है। सभी देवताओंका कल्याण हो और अब सभी लोग इच्छानुसार यहाँसे प्रस्थान करें॥ ४६॥ (अब इसके बाद तुमलोग किसीकी तपस्यामें विघ्न मत उत्पन्न करना।)

देव्य ऊचुः

क्व गच्छामो महाभाग प्राप्तास्ते पादपङ्कजम्।
नारायण सुरश्रेष्ठ भक्त्या परमया मुदा॥ ४७

वाञ्छितं चेद्वरं नाथ ददासि मधुसूदन।
तुष्टः कमलपत्राक्ष ब्रवीमो मनसेप्सितम्॥ ४८

पतिस्त्वं भव देवेश वरमेनं परन्तप।
भवामः प्रीतियुक्तास्त्वां सेवितुं जगदीश्वर॥ ४९

त्वया चोत्पादिता नार्यः सन्त्यन्याश्चारुलोचनाः।
उर्वश्याद्यास्तथा यान्तु स्वर्गं वै भवदाज्ञया॥ ५०

स्त्रीणां षोडशसाहस्रं तिष्ठत्वत्र शतार्धकम्।
सेवां तेऽत्र करिष्यामो युवयोस्तापसोत्तमौ॥ ५१

वाञ्छितं देहि देवेश सत्यवाग्भव माधव।
आशाभङ्गो हि नारीणां हिंसनं परिकीर्तितम्॥ ५२

कामार्तानाञ्च मुनिभिर्धर्मज्ञैस्तत्त्वदर्शिभिः।
भाग्ययोगादिह प्राप्ताः स्वर्गात्प्रेमपरिप्लुताः॥ ५३

त्यक्तुं नार्हसि देवेश समर्थोऽसि जगत्पते।

नारायण उवाच

पूर्णं वर्षसहस्रं तु तपस्तप्तं मयात्र वै॥ ५४

जितेन्द्रियेण चार्वङ्ग्यः कथं भङ्गं करोम्यतः।
नेच्छा कामे सुखे काचित्सुखधर्मविनाशके॥ ५५
पशूनामपि साधर्म्ये रमेत मतिमान्कथम्।

अप्सरस ऊचुः

शब्दादीनां च पञ्चानां मध्ये स्पर्शसुखं वरम्॥ ५६

आनन्दरसमूलं वै नान्यदस्ति सुखं किल।
अतोऽस्माकं महाराज वचनं कुरु सर्वथा॥ ५७

देवियाँ बोलीं—हे महाभाग! हे नारायण! हे सुरश्रेष्ठ! परमभक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक हम सभी अप्सराएँ आपके चरणकमलोंका सांनिध्य प्राप्त कर चुकी हैं; अब हम सब कहाँ जायँ?॥ ४७॥

हे नाथ! हे मधुसूदन! हे कमलपत्राक्ष! यदि आप हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वांछित वरदान देना चाहते हैं, तो हम अपने मनकी इच्छा प्रकट कर रही हैं॥ ४८॥

हे देवेश! आप हमारे पति बन जायँ। हे परन्तप! हमलोगोंके इसी वरदानको पूर्ण कीजिये। हे जगदीश्वर! आपकी सेवा करनेमें हम सभीको प्रसन्नता होगी॥ ४९॥

आपने जिन उर्वशी आदि सुन्दर नयनोंवाली अन्य रमणियोंको उत्पन्न किया है, वे अब आपकी आज्ञासे स्वर्ग चली जायँ। हे श्रेष्ठ तपस्वियो! हम सोलह हजार पचास अप्सराएँ यहीं रहेंगी और यहाँ हम सब आप दोनोंकी सेवा करेंगी॥ ५०-५१॥

हे देवेश! आप हमारा मनोवांछित वर दीजिये और अपने सत्यव्रतका पालन कीजिये। हे माधव! धर्मज्ञ तथा तत्त्वदर्शी मुनियोंने प्रेमासक्त स्त्रियोंकी आशाको भंग करना हिंसा बताया है। दैवयोगसे हम अप्सराएँ भी स्वर्गसे यहाँ आकर आप दोनोंके प्रेमरससे संसिक्त हो गयी हैं। हे देवेश! आप हमारा त्याग न कीजिये। हे जगत्पते! आप तो सर्वसमर्थ हैं॥ ५२-५३½॥

नारायण बोले—इन्द्रियोंको जीतकर मैंने पूरे एक हजार वर्षोंतक यहाँ तपस्या की है, अतएव हे सुन्दरियो! उसे कैसे नष्ट कर दूँ? सुख तथा धर्मका नाश करनेवाले वासनात्मक सुखमें मेरी कोई रुचि नहीं है। पाशविक धर्मके समान सुखमें विवेकशील पुरुष कैसे प्रवृत्त हो सकता है?॥ ५४-५५½॥

अप्सराएँ बोलीं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच सुखोंमें स्पर्श-सुख सर्वश्रेष्ठ है। यह आनन्दरसका मूल है और इससे बढ़कर अन्य कोई भी सुख नहीं है। अतः हे महाराज! आप हमारी बात मान लीजिये॥ ५६-५७॥

निर्भरं सुखमासाद्य चरस्व गन्धमादने।
यदि वाञ्छसि नाकत्वं नाधिको गन्धमादनात्॥ ५८
रमस्वात्र शुभे स्थाने प्राप्य सर्वाः सुराङ्गनाः॥ ५९

पूर्ण आनन्द प्राप्त करते हुए आप गन्धमादन-पर्वतपर विचरण कीजिये। यदि आप स्वर्ग-प्राप्तिकी आकांक्षा रखते हैं तो यह निश्चय जान लीजिये कि वह स्वर्ग इस गन्धमादनसे अच्छा नहीं है। अतः हम सभी अप्सराओंको अंगीकार करके आप इस दिव्य स्थानमें विहार कीजिये॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे अप्सरसां नारायणसमीपे प्रार्थनाकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

अप्सराओंके प्रस्तावसे नारायणके मनमें ऊहापोह और नरका उन्हें समझाना तथा अहंकारके कारण प्रह्लादके साथ हुए युद्धका स्मरण कराना

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तासां धर्मपुत्रः प्रतापवान्।
विमर्शमकरोच्चित्ते किं कर्तव्यं मयाधुना॥ १

हास्योऽहं मुनिवृन्देषु भविष्याम्यद्य सङ्गमात्।
अहंकारादिदं प्राप्तं दुःखं नात्र विचारणा।
मूलं धर्मविनाशस्य प्रथमं यदहङ्कृतिः॥ २

मूलं संसारवृक्षस्य यतः प्रोक्तो महात्मभिः।
दृष्ट्वा मौनं समाधाय न स्थितोऽहं समागतम्॥ ३

वाराङ्गनागणं जुष्टं तेनास्मं दुःखभाजनम्।
उत्पादितास्तथा नार्यो मया धर्मव्ययेन वै॥ ४

तास्तु मां बाधितुं वृत्ताः कामार्ताः प्रमदोत्तमाः।
ऊर्णनाभिरिवाद्याहं जालेन स्वकृतेन वै॥ ५

बद्धोऽस्मि सुदृढेनात्र किं कर्तव्यमतः परम्।
यदि चिन्तां समुत्सृज्य सन्त्यजाम्यबला इमाः॥ ६

शप्त्वा भ्रष्टा व्रजिष्यन्ति सर्वा भग्नमनोरथाः।
मुक्तोऽहं सञ्चरिष्यामि विजने परमं तपः॥ ७
तस्मात्क्रोधं समुत्पाद्य त्यक्ष्यामि सुन्दरीगणम्।

व्यासजी बोले—उन देवांगनाओंका वचन सुनकर धर्मपुत्र प्रतापी नारायण अपने मनमें विचार करने लगे कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? यदि मैं इस समय विषयभोगमें लिप्त होता हूँ तो मुनिसमुदायमें उपहासका पात्र बनूँगा। अहंकारसे ही मुझे यह दुःख प्राप्त हुआ है; इसमें कोई संशय नहीं। धर्मके विनाशका मूल तथा प्रधान कारण अहंकार है। अतः महात्माओंने उसे संसाररूपी वृक्षका मूल कहा है॥ १-२$\frac{१}{२}$॥

इन वारांगनाओंके समूहको आया हुआ देखकर मैं मौन धारणकर स्थित नहीं रह सका और प्रसन्नतापूर्वक मैंने इनसे वार्तालाप किया, इसीलिये मैं दुःखका भाजन हुआ। अपने धर्मका व्यय करके मैंने उन उर्वशी आदि स्त्रियोंकी व्यर्थ रचना की। ये कामार्त अप्सराएँ मेरी तपस्यामें विघ्न डालनेमें प्रवृत्त हैं। मकड़ियोंके द्वारा बनाये गये जालकी भाँति अब अपने ही द्वारा उत्पादित सुदृढ़ जालमें मैं बुरी तरह फँस गया हूँ, अब मुझे क्या करना चाहिये? यदि चिन्ता छोड़कर इन स्त्रियोंको अस्वीकार कर देता हूँ तो अपना मनोरथ निष्फल हुआ पाकर ये भ्रष्ट स्त्रियाँ मुझे शाप देकर चली जायँगी। तब इनसे छुटकारा पाकर मैं निर्जन स्थानमें कठोर तप करूँगा। अतएव क्रोध उत्पन्न करके मैं इनका परित्याग कर दूँगा॥ ३—७$\frac{१}{२}$॥

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा मुनिर्नारायणस्तदा॥ ८

विमर्शमकरोच्चित्ते सुखोत्पादनसाधने।
द्वितीयोऽयं महाशत्रुः क्रोधः सन्तापकारकः॥ ९

कामादप्यधिको लोके लोभादपि च दारुणः।
क्रोधाभिभूतः कुरुते हिंसां प्राणविघातिनीम्॥ १०

दुःखदां सर्वभूतानां नरकारामदीर्घिकाम्।
यथाग्निर्घर्षणाज्जातः पादपं प्रदहेत्तथा॥ ११

देहोत्पन्नस्तथा क्रोधो देहं दहति दारुणः।

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्यमानं तं भ्रातरं दीनमानसम्॥ १२

उवाच वचनं तथ्यं नरो धर्मसुतोऽनुजः।

नर उवाच

नारायण महाभाग कोपं यच्छ महामते॥ १३

शान्तं भावं समाश्रित्य नाशयाहङ्कृतिं पराम्।
पुराहङ्कारदोषेण तपो नष्टं किलावयोः॥ १४

संग्रामश्चाभवत्ताभ्यां भावाभ्यामसुरेण ह।
दिव्यवर्षसहस्रं तु प्रह्लादेन महाद्भुतम्॥ १५

दुःखं बहुतरं प्राप्तं तत्रावाभ्यां सुरोत्तम।
तस्मात्क्रोधं परित्यज्य शान्तो भव मुनीश्वर॥ १६

(शान्तत्वं तपसो मूलं मुनिभिः परिकीर्तितम्।)

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा शान्तोऽभूद्धर्मनन्दनः।

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं मुनिश्रेष्ठ प्रह्लादेन महात्मना॥ १७

विष्णुभक्तेन शान्तेन कथं युद्धं कृतं पुरा।
कृतवन्तौ कथं युद्धं नरनारायणावृषी॥ १८

तापसौ धर्मपुत्रौ द्वौ सुशान्तमानसावुभौ।
समागमः कथं जातस्तयोर्दैत्यसुतस्य च॥ १९

व्यासजी बोले—मुनि नारायणने ऐसा निश्चय करके अपने मनमें विचार किया कि सुख-प्राप्तिके समस्त साधनोंमें [अहंकारके बाद] यह क्रोध दूसरा प्रबल शत्रु है, जो अत्यन्त कष्ट प्रदान करता है। यह क्रोध संसारमें काम तथा लोभसे भी अधिक भयंकर है। क्रोधके वशीभूत प्राणी प्राणघातक हिंसातक कर डालता है, जो (हिंसा) सभी प्राणियोंके लिये दुःखदायिनी तथा नरकरूपी बगीचेकी बावलीके तुल्य है। जिस प्रकार वृक्षोंके परस्पर घर्षणसे उत्पन्न अग्नि वृक्षको ही जला डालती है, उसी प्रकार शरीरसे उत्पन्न भीषण क्रोध उसी शरीरको जला डालता है॥ ८—११½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार खिन्नमनस्क होकर चिन्तन करते हुए अपने भाई नारायणसे उनके लघु भ्राता धर्मपुत्र नरने यह तथ्यपूर्ण वचन कहा॥ १२½॥

नर बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महामते! आप क्रोधका त्याग कीजिये और शान्तभावका आश्रय लेकर इस प्रबल अहंकारका नाश कीजिये; क्योंकि पूर्व समयमें इसी अहंकारके दोषसे हम दोनोंका तप विनष्ट हो गया था॥ १३-१४॥

अहंकार तथा क्रोध—इन्हीं दोनों भावोंके कारण हमलोगोंको असुरराज प्रह्लादके साथ एक हजार दिव्य वर्षोंतक अत्यन्त अद्भुत युद्ध करना पड़ा था। हे सुरश्रेष्ठ! उस युद्धमें हम दोनोंको महान् क्लेश मिला था। अतएव हे मुनीश्वर! आप क्रोधका परित्याग करके शान्त हो जाइये॥ १५-१६॥ (मुनियोंने शान्तिको तपस्याका मूल बतलाया है।)

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर धर्मपुत्र नारायण शान्त हो गये॥ १६½॥

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह सन्देह उत्पन्न हो गया है कि शान्त स्वभाववाले विष्णुभक्त महात्मा प्रह्लादने पूर्वकालमें यह युद्ध क्यों किया और ऋषि नर-नारायणने भी संग्राम क्यों किया?॥ १७-१८॥

धर्मपुत्र नर-नारायण—ये दोनों ही अत्यन्त शान्त स्वभाववाले तपस्वी थे। ऐसी स्थितिमें दैत्यपुत्र प्रह्लाद तथा उन दोनों ऋषियोंका सम्पर्क कैसे हुआ?॥ १९॥

संग्रामस्तु कथं ताभ्यां कृतस्तेन महात्मना।
प्रह्लादोऽप्यतिधर्मात्मा ज्ञानवान्विष्णुतत्परः॥ २०

नरनारायणौ तद्वत्तापसौ सत्त्वसंस्थितौ।
तेन ताभ्यां समुद्भूतं वैरं यदि परस्परम्॥ २१

तदा तपसि धर्मे च श्रम एव हि केवलम्।
क्व जपः क्व तपश्चर्या पुरा सत्ययुगेऽपि च॥ २२

तादृशैर्न जितं चित्तं क्रोधाहङ्कारसंवृतम्।
न क्रोधो न च मात्सर्यमहङ्कारांकुरं विना॥ २३

अहङ्कारात्समुत्पन्नाः कामक्रोधादयः किल।
वर्षकोटिसहस्रं तु तपः कृत्वातिदारुणम्॥ २४

अहङ्कारांकुरे जाते व्यर्थं भवति सर्वथा।
यथा सूर्योदये जाते तमोरूपं न तिष्ठति॥ २५

अहङ्कारांकुरस्याग्रे तथा पुण्यं न तिष्ठति।
प्रह्लादोऽपि महाभाग हरिणा समयुध्यत॥ २६

तदा व्यर्थं कृतं सर्वं सुकृतं किल भूतले।
नरनारायणौ शान्तौ विहाय परमं तपः॥ २७

कृतवन्तौ यदा युद्धं क्व शमः सुकृतं पुनः।
ईदृग्भ्यां सत्त्वयुक्ताभ्यामजेया यद्यहङ्कृतिः॥ २८

मादृशानाञ्च का वार्ता मुनेऽहङ्कारसंक्षये।
अहङ्कारपरित्यक्तो न कोऽप्यस्ति जगत्त्रये॥ २९

न भूतो भविता नैव यस्त्यक्तस्तेन सर्वथा।
मुच्यते लोहनिगडैर्बद्धः काष्ठमयैस्तथा॥ ३०

अहङ्कारनिबद्धस्तु न कदाचिद्विमुच्यते।
अहङ्कारावृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३१

प्रह्लाद भी अत्यन्त धर्मपरायण, ज्ञानसम्पन्न तथा विष्णुभक्त थे, तब महात्मा प्रह्लादने उन ऋषियोंके साथ युद्ध क्यों किया?॥ २०॥

तपस्वी नर-नारायण भी प्रह्लादकी ही भाँति सात्त्विक भावसे सम्पन्न थे। उन दोनों ऋषियों तथा प्रह्लादमें यदि परस्पर वैर उत्पन्न हो गया तो फिर उनकी तपस्या तथा धर्माचरणके पालनमें केवल परिश्रम ही उनके हाथ लगा। उस सत्ययुगमें भी उनके जप तथा घोर तप कहाँ चले गये थे?॥ २१-२२॥

वैसे वे महात्मा भी क्रोध और अहंकारसे भरे अपने मनको वशमें नहीं कर सके। अहंकाररूपी बीजके अंकुरित हुए बिना क्रोध तथा मात्सर्य उत्पन्न नहीं होते हैं। यह निश्चित है कि काम-क्रोध आदि अहंकारसे ही उत्पन्न होते हैं। हजार करोड़ वर्षोंतक घोर तपस्या करनेके पश्चात् भी यदि अहंकारका अंकुरण हुआ तो फिर सब कुछ निरर्थक हो जाता है। जिस प्रकार सूर्योदय होनेपर अन्धकार नहीं ठहरता, उसी प्रकार अहंकाररूपी अंकुरके समक्ष पुण्य नहीं ठहर पाता है॥ २३—२५½॥

हे महाभाग! प्रह्लादने भी भगवान् नर-नारायणके साथ संग्राम किया, जिसके कारण पृथ्वीपर उनके द्वारा अर्जित समस्त पुण्य व्यर्थ हो गया॥ २६½॥

शान्त स्वभाववाले नर-नारायण भी अपनी कठिन तपस्या त्यागकर यदि युद्ध करनेमें तत्पर हुए तो फिर उनकी शान्तिवृत्ति तथा पुण्यशीलताका क्या महत्त्व रहा?॥ २७½॥

हे मुने! जब सात्त्विक भावोंसे सम्पन्न इस प्रकारके वे दोनों महात्मा भी अहंकारपर विजय प्राप्त करनेमें असमर्थ रहे, तब मेरे-जैसे व्यक्तियोंके लिये अहंकार नष्ट करनेकी बात ही क्या है? इस त्रिलोकमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है जो अहंकारसे मुक्त हो, इसी तरह ऐसा कोई भी न तो हुआ है और न होगा, जो अहंकारसे पूर्णतया मुक्त हो॥ २८-२९½॥

काष्ठ तथा लोहेकी जंजीरमें बँधा हुआ व्यक्ति बन्धनमुक्त हो सकता है, किंतु अहंकारसे बँधा व्यक्ति कभी भी नहीं छूट सकता। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् अहंकारसे व्याप्त है॥ ३०-३१॥

भ्रमत्येव हि संसारे विष्ठामूत्रप्रदूषिते।
ब्रह्मज्ञानं कुतस्तावत्संसारे मोहसंवृते॥ ३२

मतं मीमांसकानां वै सम्मतं भाति सुव्रत।
महान्तोऽपि सदा युक्ताः कामक्रोधादिभिर्मुने॥ ३३

मादृशानां कलावस्मिन्का कथा मुनिसत्तम।

व्यास उवाच

कार्यं वै कारणाद्भिन्नं कथं भवति भारत॥ ३४

कटकं कुण्डलञ्चैव सुवर्णसदृशं भवेत्।
अहङ्कारोद्भवं सर्वं ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥ ३५

पटस्तन्तुवशः प्रोक्तस्तद्वियुक्तः कथं भवेत्।
मायागुणैस्त्रिभिः सर्वं रचितं स्थिरजङ्गमम्॥ ३६

सतृणस्तम्बपर्यन्तं का तत्र परिदेवना।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्ते चाहङ्कारमोहिताः॥ ३७

भ्रमन्त्यस्मिन्महागाधे संसारे नृपसत्तम।
वसिष्ठनारदाद्याश्च मुनयो ज्ञानिनः परम्॥ ३८

तेऽभिभूताः संसरन्ति संसारेऽस्मिन्पुनः पुनः।
न कोऽप्यस्ति नृपश्रेष्ठ त्रिषु लोकेषु देहभृत्॥ ३९

एभिर्मायागुणैर्मुक्तः शान्त आत्मसुखे स्थितः।
कामक्रोधौ तथा लोभो मोहोऽहङ्कारसम्भवः॥ ४०

न मुञ्चन्ति नरं सर्वं देहवन्तं नृपोत्तम।
अधीत्य वेदशास्त्राणि पुराणानि विचिन्त्य च॥ ४१

कृत्वा तीर्थाटनं दानं ध्यानञ्चैव सुरार्चनम्।
करोति विषयासक्तः सर्वं कर्म च चौरवत्॥ ४२

विचारयति नो पूर्वं काममोहमदान्वितः।
कृते युगेऽपि त्रेतायां द्वापरे कुरुनन्दन॥ ४३
विद्धोऽत्रास्ति च धर्मोऽपि का कथाद्य कलौ पुनः।

अहंकारी मनुष्य मल-मूत्रसे प्रदूषित इस संसारमें चक्कर काटता रहता है, तो फिर इस मोहाच्छन्न संसारमें ब्रह्मज्ञानकी कल्पना ही कहाँ रह गयी?॥ ३२॥

हे सुव्रत! मुझे तो मीमांसकोंका कर्म-सिद्धान्त ही उचित प्रतीत होता है। हे मुने! जब महान्-से-महान् लोग भी काम, क्रोध आदिसे सदा ग्रस्त रहते हैं, तब हे मुनिश्रेष्ठ! इस कलियुगमें मुझ-जैसे लोगोंकी बात ही क्या?॥ ३३½॥

व्यासजी बोले—हे भारत (जनमेजय)! कारणसे कार्य भिन्न कैसे हो सकता है? कड़ा तथा कुण्डल आकारमें भिन्न होते हुए भी स्वर्णके सदृश होते हैं। चराचरसहित समस्त ब्रह्माण्ड अहंकारसे उत्पन्न हुआ है। [धागेसे निर्मित होनेके कारण] वस्त्र उसके अधीन कहा गया है, अतएव वस्त्ररूपी कार्य तन्तुरूपी कारणसे पृथक् कैसे रह सकता है? जब मायाके तीनों गुणोंद्वारा ही तिनकेसे लेकर पर्वततक स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विरचित है, तब सृष्टिके विषयमें खेद किस बातका? हे नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी अहंकारसे मोहित होकर इस अत्यन्त अगाध संसारमें भ्रमण करते रहते हैं। वसिष्ठ, नारद आदि परम ज्ञानी मुनिगण भी अहंकारके वशवर्ती होकर इस संसारमें बार-बार आते-जाते रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! तीनों लोकोंमें ऐसा कोई भी देहधारी नहीं है जो मायाके इन गुणोंसे मुक्त होकर शान्ति धारण करता हुआ आत्मसुखका अनुभव कर सके। हे नृपश्रेष्ठ! अहंकारसे उत्पन्न काम, क्रोध, लोभ तथा मोह किसी भी देहधारी प्राणीको नहीं छोड़ते॥ ३४—४०½॥

वेद-शास्त्रोंका अध्ययन, पुराणोंका पर्यालोचन, तीर्थभ्रमण, दान, ध्यान तथा देव-पूजन करके भी विषयासक्त प्राणी चोरोंकी भाँति सभी कर्म करता रहता है। काम, मोह और मदसे युक्त होनेके कारण प्राणी आरम्भमें कुछ विचार ही नहीं करता॥ ४१—४२½॥

हे कुरुनन्दन! सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापरमें भी धर्मका विरोध किया गया था, तो आज कलियुगमें

स्पर्धा सदैव सद्रोहा लोभामर्षौ च सर्वदा॥ ४४

एवंविधोऽस्ति संसारो नात्र कार्या विचारणा।
साधवो विरला लोके भवन्ति गतमत्सराः॥ ४५

जितक्रोधा जितामर्षा दृष्टान्तार्थं व्यवस्थिताः।

राजोवाच

ते धन्याः कृतपुण्यास्ते मदमोहविवर्जिताः॥ ४६

जितेन्द्रियाः सदाचारा जितं तैर्भुवनत्रयम्।
दुनोमि पातकं स्मृत्वा पितुर्मम महात्मनः॥ ४७

कृतस्तपस्विनः कण्ठे मृतसर्पो ह्यघं विना।
अतस्तस्य मुनिश्रेष्ठ भविता किं ममाग्रतः॥ ४८

न जाने बुद्धिसम्मोहात्किं वा कार्यं भविष्यति।
मधु पश्यति मूढात्मा प्रपातं नैव पश्यति॥ ४९

करोति निन्दितं कर्म नरकान्न बिभेति च।
कथं युद्धं पुरा वृत्तं विस्तरात्तद्वदस्व मे॥ ५०

प्रह्लादेन यथा चोग्रं नरनारायणस्य वै।
प्रह्लादस्तु कथं यातः पातालात्तद्वदस्व मे॥ ५१

सारस्वते महातीर्थे पुण्ये बदरिकाश्रमे।
नरनारायणौ शान्तौ तापसौ मुनिसत्तमौ॥ ५२

कृतवन्तौ तथा युद्धं हेतुना केन मानद।
वैरं भवति वित्तार्थं दारार्थं वा परस्परम्॥ ५३

एषणारहितौ कस्माच्चक्रतुः प्रधनं महत्।
प्रह्लादोऽपि च धर्मात्मा ज्ञात्वा देवौ सनातनौ॥ ५४

कृतवान्स कथं युद्धं नरनारायणौ मुनी।
एतद्विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि कारणम्॥ ५५

उसकी बात ही क्या! इसमें तो द्रोह, स्पर्धा, लोभ तथा क्रोध सर्वदा ही विद्यमान हैं। संसार ऐसे ही स्वभाववाला है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये। संसारमें मत्सरहीन साधु पुरुष विरले ही होते हैं। क्रोध तथा ईर्ष्यापर विजय प्राप्त कर लेनेवाले तो दृष्टान्तमात्रके लिये मिलते हैं॥ ४३—४५$\frac{१}{२}$ ॥

राजा बोले—वे लोग धन्य तथा पुण्यात्मा हैं, जिन्होंने मद तथा मोहसे छुटकारा प्राप्त कर लिया है। जो सदाचारपरायण तथा जितेन्द्रिय हैं, उन्होंने मानो तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अपने महात्मा पिताके पापका स्मरण करके मैं दुःखित रहता हूँ। उन्होंने बिना किसी अपराधके एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प डाल दिया। अतः हे मुनिवर! अब मेरे आगे उनकी क्या गति होगी? बुद्धिके मोहग्रस्त हो जानेपर क्या कार्य हो जायगा, यह मैं नहीं जानता। मूर्ख मनुष्य केवल मधु देखता है, किंतु उसके पास ही विद्यमान [गहरे] प्रपातकी ओर नहीं निहारता। वह निन्दनीय कर्म करता रहता है और नरकसे नहीं डरता॥ ४६—४९$\frac{१}{२}$ ॥

[हे मुने!] अब आप मुझे विस्तारपूर्वक यह बताइये कि पूर्वकालमें प्रह्लादके साथ नर-नारायणका घोर युद्ध क्यों हुआ था? प्रह्लाद पाताल-लोकसे सारस्वत महातीर्थ पवित्र बदरिकाश्रममें कैसे पहुँचे, यह भी मुझे बताइये। शान्त स्वभाववाले मुनिश्रेष्ठ नर-नारायण तो महान् तपस्वी थे; तब हे मानद! उन दोनोंने प्रह्लादके साथ युद्ध किस कारणसे किया?॥ ५०—५२$\frac{१}{२}$ ॥

प्रायः धन अथवा स्त्रीके लिये लोगोंमें परस्पर शत्रुता होती है। तब हर प्रकारकी इच्छाओंसे रहित उन दोनोंने वह भीषण युद्ध क्यों किया और उन नर-नारायणको सनातन देवता जानते हुए भी महात्मा प्रह्लादने उनके साथ युद्ध क्यों किया? हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारपूर्वक इसका कारण सुनना चाहता हूँ॥ ५३—५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
अहङ्कारावर्तनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

~~O~~

अथाष्टमोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा राजा जनमेजयको प्रह्लादकी कथा सुनाना और इस प्रसंगमें च्यवनऋषिके पाताललोक जानेका वर्णन

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा विप्रो राज्ञा पारीक्षितेन वै।
उवाच विस्तरात्सर्वं व्यासः सत्यवतीसुतः॥ १

जनमेजयोऽपि धर्मात्मा निर्वेदं परमं गतः।
चित्तं दुश्चरितं मत्वा वैराटीतनयस्य वै॥ २

तस्यैवोद्धरणार्थाय चकार सततं मनः।
विप्रावमानपापेन यमलोकं गतस्य वै॥ ३

पुन्नामनरकाद्यस्मात्त्रायते पितरं स्वकम्।
पुत्रेति नाम सार्थं स्यात्तेन तस्य मुनीश्वराः॥ ४

सर्पदष्टं नृपं श्रुत्वा हर्म्योपरि मृतं तथा।
विप्रशापादौत्तरेयं स्नानदानविवर्जितम्॥ ५

पितुर्गतिं निशम्यासौ निर्वेदं गतवान्नृपः।
पारीक्षितो महाभागः सन्तप्तो भयविह्वलः॥ ६

पप्रच्छाथ मुनिं व्यासं गृहागतमनिन्दितः।
नरनारायणस्येमां कथां परमविस्तृताम्॥ ७

व्यास उवाच

स यदा निहतो रौद्रो हिरण्यकशिपुर्नृप।
अभिषिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम तत्सुतः॥ ८

तस्मिञ्छासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके।
मखैर्भूमौ नृपतयो यजन्तः श्रद्धयान्विताः॥ ९

ब्राह्मणाश्च तपोधर्मतीर्थयात्राश्च कुर्वते।
वैश्याश्च स्वस्ववृत्तिस्थाः शूद्राः शुश्रूषणे रताः॥ १०

सूतजी बोले—परीक्षित्-पुत्र राजा जनमेजयके यह पूछनेपर सत्यवतीसुत विप्र व्यासजीने विस्तारपूर्वक सारा वृत्तान्त बताया॥ १॥

धर्मपरायण राजा जनमेजय भी उत्तरापुत्र अपने पिता परीक्षित्की कुत्सित चेष्टाको सोच-सोचकर अत्यन्त दुःखी हो गये थे॥ २॥

विप्रको अपमानित करनेके परिणामस्वरूप पापके कारण यमलोकको प्राप्त अपने उन पिताके उद्धारके लिये वे निरन्तर अपने मनमें अनेक प्रकारके उपाय सोचा करते थे॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! जब पुत्र अपने पिताकी 'पुम्' नामक नरकसे रक्षा कर देता है, तभी उसका 'पुत्र' नाम सार्थक होता है॥ ४॥

जब उन्हें यह विदित हुआ कि एक महलकी ऊपरी मंजिलमें स्नान-दान किये बिना ही विप्रके शापवश सर्प-दंशसे महाराज परीक्षित्की मृत्यु हुई थी, तब अपने पिताकी दुर्गति सुनकर वे राजा जनमेजय अत्यन्त दुःखित हुए और शोकसे सन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उठे॥ ५-६॥

इसके अनन्तर निष्पाप राजा जनमेजयने अपने घरपर स्वतः आये हुए महामुनि व्याससे नर-नारायणकी अति विस्तृत इस कथाके विषयमें पूछा॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जब नृसिंहभगवान्के द्वारा उस भयानक हिरण्यकशिपुका वध हो गया, तब प्रह्लाद नामक उसके पुत्रका राज्याभिषेक किया गया॥ ८॥

देवताओं तथा ब्राह्मणोंका पूजन-सम्मान करनेवाले उस दैत्यराज प्रह्लादके शासनकालमें पृथ्वी-लोकके सभी राजागण श्रद्धापूर्वक यज्ञादिका अनुष्ठान करने लगे॥ ९॥

ब्राह्मणलोग तपश्चरण, धर्मानुष्ठान तथा तीर्थाटनमें तत्पर हो गये; वैश्यसमुदाय अपने-अपने व्यावसायिक कार्योंमें लग गये तथा शूद्रगण सेवापरायण हो गये॥ १०॥

नृसिंहेन च पाताले स्थापितः सोऽथ दैत्यराट्।
राज्यं चकार तत्रैव प्रजापालनतत्परः॥ ११

कदाचिद् भृगुपुत्रोऽथ च्यवनाख्यो महातपाः।
जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं वै व्याहृतीश्वरम्॥ १२

रेवां महानदीं दृष्ट्वा ततस्तस्यामवातरत्।
उत्तरन्तं प्रजग्राह नागो विषभयङ्करः॥ १३

गृहीतो भयभीतस्तु पाताले मुनिसत्तमः।
सस्मार मनसा विष्णुं देवदेवं जनार्दनम्॥ १४

संस्मृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभून्महोरगः।
न प्राप च्यवनो दुःखं नीयमानो रसातलम्॥ १५

द्विजिह्वेन मुनिस्त्यक्तो निर्विण्णेनातिशङ्किना।
मां शपेत मुनिः क्रुद्धस्तापसोऽयं महानिति॥ १६

चचार नागकन्याभिः पूजितो मुनिसत्तमः।
विवेशाप्यथ नागानां दानवानां महत्पुरम्॥ १७

कदाचिद् भृगुपुत्रं तं विचरन्तं पुरोत्तमे।
ददर्श दैत्यराजोऽसौ प्रह्लादो धर्मवत्सलः॥ १८

दृष्ट्वा तं पूजयामास मुनिं दैत्यपतिस्तदा।
पप्रच्छ कारणं किं ते पातालागमने वद॥ १९

प्रेषितोऽसि किमिन्द्रेण सत्यं ब्रूहि द्विजोत्तम।
दैत्यविद्वेषयुक्तेन मम राज्यदिदृक्षया॥ २०

च्यवन उवाच

किं मे मघवता राजन् यदहं प्रेषितः पुनः।
दूतकार्यं प्रकुर्वाणः प्राप्तवान्नगरे तव॥ २१

नृसिंहभगवान्‌ने उस दैत्यराज प्रह्लादको पाताललोकके राजसिंहासनपर स्थापित कर दिया था और वे वहींपर प्रजापालनमें तत्पर होकर राज्य करने लगे॥ ११॥

एक बार भृगुके पुत्र महातपस्वी च्यवन नर्मदामें स्नान करनेके लिये व्याहृतीश्वर नामक तीर्थमें पहुँचे॥ १२॥

वहाँपर रेवा नामक महानदीको देखकर वे उसमें उतरने लगे। इसी बीच एक भयंकर विषधर सर्पने उतरते हुए मुनिको पकड़ लिया॥ १३॥

तदनन्तर उन महामुनि च्यवनको वह नागराज खींचकर पाताललोकमें ले गया। तब उन भयाक्रान्त मुनिने मन-ही-मन देवाधिदेव जनार्दन विष्णुका स्मरण किया॥ १४॥

मुनि च्यवनके द्वारा हृदयसे कमलनयन भगवान् विष्णुका स्मरण किये जानेपर वह भयंकर सर्प विषहीन हो गया। अतएव रसातलमें ले जाये गये उन मुनिको कष्ट नहीं हुआ॥ १५॥

तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखी तथा सशंकित उस सर्पने यह सोचकर उन्हें छोड़ दिया कि ये महातपस्वी मुनि क्रोधित होकर कहीं मुझे शाप न दे दें॥ १६॥

वहाँकी नागकन्याओंद्वारा पूजित होते हुए मुनिश्रेष्ठ च्यवन पाताललोकमें विचरण करने लगे। वे नागों तथा दानवोंके विशाल पुरमें भी आने-जाने लगे॥ १७॥

एक बार उन धर्मानुरागी दैत्यराज प्रह्लादने अपनी श्रेष्ठ पुरीमें विचरण करते हुए उन भृगुपुत्र मुनि च्यवनको देखा॥ १८॥

मुनिको देखकर दैत्यराज प्रह्लादने उनकी पूजा की और उनसे पूछा कि पाताललोकमें आपके आगमनका क्या कारण है, आप मुझे बताइये?॥ १९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! क्या दैत्योंके प्रति द्वेष-भाव रखनेवाले इन्द्रने मेरे राज्यके विषयमें जानकारीके लिये आपको यहाँ भेजा है? आप मुझे सच-सच बताइये॥ २०॥

च्यवन बोले—हे राजन्! इन्द्रसे मेरा क्या प्रयोजन है, जो कि वे मुझे यहाँ भेजें और मैं उनके दूतका कार्य करता हुआ आपके नगरमें घूमता फिरूँ?॥ २१॥

विद्धि मां भृगुपुत्रं तं स्वनेत्रं धर्मतत्परम्।
मा शङ्कां कुरु दैत्येन्द्र वासवप्रेषितस्य वै॥ २२

स्नानार्थं नर्मदां प्राप्तः पुण्यतीर्थे नृपोत्तम।
नद्यामेवावतीर्णोऽहं गृहीतश्च महाहिना॥ २३

जातोऽसौ निर्विषः सर्पो विष्णोः संस्मरणादिव।
मुक्तोऽहं तेन नागेन प्रभावात्स्मरणस्य वै॥ २४

अत्रागतेन राजेन्द्र मयाप्तं तव दर्शनम्।
विष्णुभक्तोऽसि दैत्येन्द्र तद्भक्तं मां विचिन्तय॥ २५

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचः श्लक्ष्णं हिरण्यकशिपोः सुतः।
पप्रच्छ परया प्रीत्या तीर्थानि विविधानि च॥ २६

प्रह्लाद उवाच

पृथिव्यां कानि तीर्थानि पुण्यानि मुनिसत्तम।
पाताले च तथाकाशे तानि नो वद विस्तरात्॥ २७

च्यवन उवाच

मनोवाक्कायशुद्धानां राजंस्तीर्थं पदे पदे।
तथा मलिनचित्तानां गङ्गापि कीकटाधिका॥ २८

प्रथमं चेन्मनः शुद्धं जातं पापविवर्जितम्।
तदा तीर्थानि सर्वाणि पावनानि भवन्ति वै॥ २९

गङ्गातीरे हि सर्वत्र वसन्ति नगराणि च।
व्रजाश्चैवाकरा ग्रामाः सर्वे खेटास्तथापरे॥ ३०

निषादानां निवासाश्च कैवर्तानां तथापरे।
हूणबङ्गखसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम॥ ३१

पिबन्ति सर्वदा गाङ्गं जलं ब्रह्मोपमं सदा।
स्नानं कुर्वन्ति दैत्येन्द्र त्रिकालं स्वेच्छया जनाः॥ ३२

तत्रैकोऽपि विशुद्धात्मा न भवत्येव मारिष।
किं फलं तर्हि तीर्थस्य विषयोपहतात्मसु॥ ३३

हे दैत्यराज! आप मुझे महर्षि भृगुका धर्मनिष्ठ तथा ज्ञाननेत्रसम्पन्न पुत्र च्यवन जानिये। आप मेरे प्रति इन्द्रके द्वारा भेजे गये किसी दूतकी शंका मत करें॥ २२॥

हे नृपश्रेष्ठ! मैं नर्मदानदीमें स्नान करनेके लिये पुण्यतीर्थमें गया था। मैं नदीमें उतरा ही था कि एक विशाल सर्पने मुझे पकड़ लिया॥ २३॥

मेरे द्वारा भगवान् विष्णुका स्मरण करनेसे वह सर्प विषहीन हो गया और विष्णुस्मरणके प्रभावसे मैं उस नागसे मुक्त हो गया॥ २४॥

हे राजेन्द्र! यहाँ आनेसे मुझे आपका दर्शन प्राप्त हो गया। हे दैत्यराज! आप भगवान् विष्णुके भक्त हैं और मुझे भी उनका भक्त ही समझिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—महर्षि च्यवनका मधुर वचन सुनकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद अत्यन्त प्रेमपूर्वक नानाविध तीर्थोंके विषयमें उनसे पूछने लगे॥ २६॥

प्रह्लाद बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! पृथ्वी, पाताल तथा आकाशमें कौन-कौनसे पवित्र तीर्थ हैं? उनके सम्बन्धमें विस्तारपूर्वक मुझे बताइये॥ २७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मन, वचन तथा कर्मसे शुद्ध प्राणियोंके लिये तो पद-पदपर तीर्थ हैं, किंतु दूषित मनवाले प्राणियोंके लिये गंगा भी मगधसे अधिक अपवित्र हो जाती हैं॥ २८॥

यदि मनुष्यका मन शुद्ध तथा पापरहित हो गया तो उसके लिये सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। गंगाके तटपर तो सर्वत्र नानाविध नगर, गोष्ठ (गायोंका बाड़ा), बाजार, गाँव तथा अनेक कस्बे वहाँ बसे हैं। हे दैत्यराज! निषादों, धीवरों, हूणों, बंगों, खसों तथा म्लेच्छ जातियोंका निवास भी वहाँ रहता है। हे दैत्येन्द्र! वे सदैव ब्रह्मसदृश गंगाजलका पान करते हैं और अपनी इच्छासे त्रिकाल गंगा-स्नान भी करते हैं। किंतु हे धर्मात्मन्! उनमेंसे कोई एक भी शुद्ध अन्तःकरणवाला नहीं हो पाता। तब नानाविध वासनाओंसे प्रदूषित चित्तवाले लोगोंके लिये तीर्थका क्या फल हो सकता है?॥ २९—३३॥

कारणं मन एवात्र नान्यद्राजन्विचिन्तय।
मनःशुद्धिः प्रकर्तव्या सततं शुद्धिमिच्छता॥ ३४

तीर्थवासी महापापी भवेत्तत्रात्मवञ्चनात्।
तत्रैवाचरितं पापमानन्त्याय प्रकल्पते॥ ३५

यथेन्द्रवारुणं पक्वं मिष्टं नैवोपजायते।
भावदुष्टस्तथा तीर्थे कोटिस्नातो न शुध्यति॥ ३६

प्रथमं मनसः शुद्धिः कर्तव्या शुभमिच्छता।
शुद्धे मनसि द्रव्यस्य शुद्धिर्भवति नान्यथा॥ ३७

तथैवाचारशुद्धिः स्यात्ततस्तीर्थं प्रसिध्यति।
अन्यथा तु कृतं सर्वं व्यर्थं भवति तत्क्षणात्॥ ३८

(हीनवर्णस्य संसर्गं तीर्थे गत्वा सदा त्यजेत्।)
भूतानुकम्पनं चैव कर्तव्यं कर्मणा धिया।
यदि पृच्छसि राजेन्द्र तीर्थं वक्ष्याम्यनुत्तमम्॥ ३९

प्रथमं नैमिषं पुण्यं चक्रतीर्थं च पुष्करम्।
अन्येषां चैव तीर्थानां संख्या नास्ति महीतले॥ ४०

पावनानि च स्थानानि बहूनि नृपसत्तम।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नैमिषं गन्तुमुद्यतः॥ ४१

नोदयामास दैत्यान्वै हर्षनिर्भरमानसः।

प्रह्लाद उवाच

उत्तिष्ठन्तु महाभागा गमिष्यामोऽद्य नैमिषम्॥ ४२
द्रक्ष्यामः पुण्डरीकाक्षं पीतवाससमच्युतम्।

हे राजन्! आप यह निश्चित समझिये कि मन ही इसमें प्रमुख कारण है; इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं। अतः शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको निरन्तर अपने मनको शुद्ध बनाये रखना चाहिये॥ ३४॥

तीर्थमें निवास करनेवाला प्राणी भी आत्मवंचनाके कारण महापापी हो जाता है। वहाँ किया गया पाप अनन्तगुना हो जाता है॥ ३५॥

जिस प्रकार इन्द्रवारुणका फल पक जानेपर भी मीठा नहीं होता, उसी प्रकार दूषित भावनाओंवाला मनुष्य तीर्थमें करोड़ों बार स्नान करके भी पवित्र नहीं हो पाता॥ ३६॥

अतः कल्याणकी कामना करनेवाले पुरुषको सर्वप्रथम अपने मनको शुद्ध कर लेना चाहिये। मनके शुद्ध हो जानेपर द्रव्यशुद्धि स्वतः हो जाती है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है॥ ३७॥

उसी प्रकार आचार-शुद्धि भी आवश्यक है; इसके अनन्तर ही तीर्थयात्राकी पूर्ण सिद्धि होती है। इसके विपरीत उसका किया हुआ सारा कर्म उसी क्षण व्यर्थ हो जाता है॥ ३८॥

(तीर्थमें पहुँचकर नीच प्राणीके संसर्गका सर्वदाके लिये त्याग कर देना चाहिये।) कर्म तथा बुद्धिसे प्राणियोंके प्रति सदा दयाभाव रखना चाहिये। फिर भी हे राजेन्द्र! यदि आप पूछते ही हैं तो मैं आपको प्रमुख तीर्थोंके विषयमें बता रहा हूँ॥ ३९॥

प्रथम श्रेणीका तीर्थ पुण्यमय नैमिषारण्य है। इसी प्रकार चक्रतीर्थ, पुष्करतीर्थ तथा अन्य भी अनेक तीर्थ पृथ्वीलोकमें हैं, जिनकी संख्या निश्चित नहीं है। हे नृपश्रेष्ठ! और भी बहुत-से पवित्र स्थान हैं॥ ४०$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—च्यवनऋषिका वचन सुनकर राजा प्रह्लाद नैमिषारण्यतीर्थ जानेको तैयार हो गये। हर्षातिरेकसे परिपूर्ण हृदयवाले प्रह्लादने अन्य दैत्योंको भी चलनेकी आज्ञा दी॥ ४१$\frac{१}{२}$॥

प्रह्लाद बोले—हे महाभाग दैत्यगण! आपलोग उठिये, हम सभी लोग आज नैमिषारण्य चलेंगे। वहाँ हमलोग पीताम्बर धारण करनेवाले कमलनयन भगवान् अच्युत (विष्णु)-का दर्शन करेंगे॥ ४२$\frac{१}{२}$॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता विष्णुभक्तेन सर्वे ते दानवास्तदा॥ ४३
तेनैव सह पातालान्निर्ययुः परया मुदा।
ते समेत्य च दैतेया दानवाश्च महाबलाः॥ ४४
नैमिषारण्यमासाद्य स्नानं चक्रुर्मुदान्विताः।
प्रह्लादस्तत्र तीर्थेषु चरन्दैत्यैः समन्वितः॥ ४५
सरस्वतीं महापुण्यां ददर्श विमलोदकाम्।
तीर्थे तत्र नृपश्रेष्ठ प्रह्लादस्य महात्मनः॥ ४६
मनः प्रसन्नं सञ्जातं स्नात्वा सारस्वते जले।
विधिवत्तत्र दैत्येन्द्रः स्नानदानादिकं शुभे॥ ४७
चकारातिप्रसन्नात्मा तीर्थे परमपावने॥ ४८

व्यासजी बोले—विष्णुभक्त प्रह्लादके ऐसा कहनेपर वे समस्त दानव परम प्रसन्नतापूर्वक उनके साथ पाताललोकसे निकल पड़े। उन महाबली दैत्यों तथा दानवोंने एक साथ नैमिषारण्य पहुँचकर आनन्दपूर्वक स्नान किया। दैत्योंके साथ वहाँके तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए प्रह्लादने स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा महापुण्यदायिनी सरस्वतीनदीका दर्शन किया। हे नृपश्रेष्ठ! उस पवित्र तीर्थमें सरस्वतीके जलमें स्नान करनेसे महात्मा प्रह्लादका मन प्रसन्न हो गया। दैत्येन्द्र प्रह्लादने उस शुभ तथा परम पावन तीर्थमें प्रसन्न मनसे स्नान, दान आदि कर्म विधिवत् सम्पन्न किये॥ ४३—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादतीर्थयात्रावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

प्रह्लादजीका तीर्थयात्राके क्रममें नैमिषारण्य पहुँचना और वहाँ नर-नारायणसे उनका घोर युद्ध, भगवान् विष्णुका आगमन और उनके द्वारा प्रह्लादको नर-नारायणका परिचय देना

व्यास उवाच

कुर्वंस्तीर्थविधिं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः।
न्यग्रोधं सुमहच्छायमपश्यत्पुरतस्तदा॥ १

ददर्श बाणानपरान्नानाजातीयकांस्तदा।
गृध्रपक्षयुतांस्तीव्राञ्छिलाधौतान्महोज्ज्वलान्॥ २

चिन्तयामास मनसा कस्येमे विशिखास्त्विह।
ऋषीणामाश्रमे पुण्ये तीर्थे परमपावने॥ ३

एवं चिन्तयतानेन कृष्णाजिनधरौ मुनी।
समुन्नतजटाभारौ दृष्टौ धर्मसुतौ तदा॥ ४

तयोरग्रे धृते शुभ्रे धनुषी लक्षणान्विते।
शार्ङ्गमाजगवञ्चैव तथाक्षय्यौ महेषुधी॥ ५

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार तीर्थके कृत्य सम्पन्न करते हुए हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लादको अपने समक्ष एक विशाल छायासम्पन्न वटवृक्ष दिखायी पड़ा॥ १॥

वहाँपर प्रह्लादने गीधोंके पंखोंसे सुसज्जित, नुकीले तथा शिलापर घर्षित करके अत्यन्त दीप्त एवं उज्ज्वल बनाये गये अनेक प्रकारके बाण देखे॥ २॥

उन्हें देखकर प्रह्लादने मनमें सोचा कि इस परम पवित्र तीर्थमें ऋषियोंके पुण्यमय आश्रममें ये बाण किसके हैं?॥ ३॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए प्रह्लादने कृष्ण-मृगचर्म धारण किये हुए तथा सिरपर विशाल जटाओंसे सुशोभित धर्मपुत्र नर-नारायण मुनियोंको देखा॥ ४॥

उनके आगे धनुर्वेदोक्त लक्षणोंसे सम्पन्न चमकीले शार्ङ्ग तथा आजगव नामक दो धनुष तथा दो अक्षय तरकस रखे हुए थे॥ ५॥

ध्यानस्थौ तौ महाभागौ नरनारायणावृषी।
दृष्ट्वा धर्मसुतौ तत्र दैत्यानामधिपस्तदा॥ ६

क्रोधरक्तेक्षणस्तौ तु प्रोवाचासुरपालकः।
किं भवद्भ्यां समारब्धो दम्भो धर्मविनाशनः॥ ७

न श्रुतं नैव दृष्टं हि संसारेऽस्मिन्कदापि हि।
तपसश्चरणं तीव्रं तथा चापस्य धारणम्॥ ८

विरोधोऽयं युगे चाद्ये कथं युक्तं कलिप्रियम्।
ब्राह्मणस्य तपो युक्तं तत्र किं चापधारणम्॥ ९

क्व जटाधारणं देहे क्वेषुधी च विडम्बनौ।
धर्मस्याचरणं युक्तं युवयोर्दिव्यभावयोः॥ १०

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा नरः प्रोवाच भारत।
का ते चिन्तात्र दैत्येन्द्र वृथा तपसि चावयोः॥ ११

सामर्थ्ये सति यत्कुर्यात्तत्संपद्येत तस्य हि।
आवां कार्यद्वये मन्द समर्थौ लोकविश्रुतौ॥ १२

युद्धे तपसि सामर्थ्यं त्वं पुनः किं करिष्यसि।
गच्छ मार्गे यथाकामं कस्मादत्र विकत्थसे॥ १३

ब्रह्मतेजो दुराराध्यं न त्वं वेद विमोहितः।
विप्रचर्चा न कर्तव्या प्राणिभिः सुखमीप्सुभिः॥ १४

प्रह्लाद उवाच

तापसौ मन्दबुद्धी स्थो मृषा वां गर्वमोहितौ।
मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके॥ १५

उन महाभाग धर्मपुत्र नर-नारायण ऋषियोंको उस समय ध्यानावस्थित देखकर क्रोधसे लाल आँखें किये हुए दैत्याधिपति असुररक्षक प्रह्लादने उनसे कहा—आप दोनोंने धर्मको नष्ट करनेवाला यह कैसा पाखण्ड कर रखा है?॥ ६-७॥

इस प्रकारकी घोर तपस्या तथा धनुष-धारण करना—ऐसा तो इस संसारमें न कभी सुना गया और न देखा ही गया॥ ८॥

ये तो परस्पर विरोधी स्थितियाँ हैं। कलियुगके लिये प्रिय यह विरोधभाव भला सत्ययुगमें किस प्रकार उचित है? ब्राह्मणके लिये तो तपश्चरण ही उचित है, उन्हें धनुष-धारण करनेकी क्या आवश्यकता है?॥ ९॥

कहाँ तो मस्तकपर जटा धारण करना और कहाँ यह तरकस रखना—ये दोनों बातें आडम्बरमात्र हैं। दिव्य भावनावाले आप दोनोंके लिये धर्मका आचरण ही उचित है॥ १०॥

व्यासजी बोले—हे भारत! प्रह्लादका यह वचन सुनकर मुनिवर नरने कहा—हे दैत्येन्द्र! हम दोनोंकी तपस्याके विषयमें आप यह व्यर्थ चिन्ता क्यों कर रहे हैं?॥ ११॥

सामर्थ्यसम्पन्न हो जानेपर व्यक्ति जो कुछ करता है, उसका वह सब कुछ पूर्ण हो जाता है। हे मन्दबुद्धि! हम इन दोनों प्रकारके कार्योंको [एक साथ] करनेमें समर्थ हैं; इसके लिये हम लोकमें प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

युद्ध तथा तपस्या दोनोंमें हम समान रूपसे समर्थ हैं। फिर इस विषयमें आप पूछकर क्या करेंगे? आप इच्छानुसार अपने रास्ते चले जाइये, यहाँ व्यर्थकी बात क्यों कर रहे हैं?॥ १३॥

मोहग्रस्त होनेके कारण आप अत्यन्त कठिनतासे प्राप्त किये जानेवाले ब्रह्मतेजको नहीं जानते। सुखकी कामना करनेवाले प्राणियोंको ब्राह्मणोंसे बहस नहीं करनी चाहिये॥ १४॥

प्रह्लाद बोले—आप दोनों तपस्वी मन्द बुद्धिवाले हैं और व्यर्थ ही अहंकारके वशवर्ती हो गये हैं। धर्मसेतुका प्रवर्तन करनेवाले मुझ दैत्येन्द्र प्रह्लादके रहते

न युक्तमेतत्तीर्थेऽस्मिन्नधर्माचरणं पुनः।
का शक्तिस्तव युद्धेऽस्ति दर्शयाद्य तपोधन॥ १६

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य नरस्तं प्रत्युवाच ह।
युद्धस्वाद्य मया सार्धं यदि ते मतिरीदृशी॥ १७
अद्य ते स्फोटयिष्यामि मूर्धानमसुराधम।
(युद्धे श्रद्धा न ते पश्चाद्भविष्यति कदाचन।)

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य दैत्येन्द्रः कुपितस्तदा॥ १८
प्रह्लादो बलवानत्र प्रतिज्ञामारुरोह सः।
येन केनाप्युपायेन जेष्यामि तावुभावपि॥ १९
नरनारायणौ दान्तावृषी तपिसमन्वितौ।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं दैत्यः प्रतिगृह्य शरासनम्॥ २०
आकृष्य तरसा चापं ज्याशब्दञ्च चकार ह।
नरोऽपि धनुरादाय शरांस्तीव्रांञ्छिलाशितान्॥ २१
मुमोच बहुशः क्रोधात्प्रह्लादोपरि पार्थिव॥ २२
तान्दैत्यराजस्तपनीयपुङ्खै-
श्चिच्छेद बाणैस्तरसा समेत्य।
समीक्ष्य छिन्नांश्च नरः स्वसृष्टा-
नन्यान्मुमोचाशु रुषान्वितो वै॥ २३
दैत्याधिपस्तानपि तीव्रवेगै-
श्छित्त्वा जघानोरसि तं मुनीन्द्रम्।
नरोऽपि तं पञ्चभिराशुगैश्च
क्रुद्धोऽहनद्दैत्यपतिं बाहुदेशे॥ २४
सेन्द्राः सुरास्तत्र तयोर्हि युद्धं
द्रष्टुं विमानैर्गगनस्थिताश्च।
नरस्य वीर्यं युधि संस्थितस्य
ते तुष्टुवुर्दैत्यपतेश्च भूयः॥ २५
ववर्ष दैत्याधिप आत्तचापः
शिलीमुखानम्बुधरो यथापः।
आदाय शार्ङ्गं धनुरप्रमेयं
मुमोच बाणाञ्छितहेमपुङ्खान्॥ २६

इस पवित्र तीर्थमें इस प्रकारका अधर्मपूर्ण आचरण उचित नहीं है। हे तपोधन! आपमें कितनी शक्ति है, इसे युद्धमें अभी प्रदर्शित कीजिये॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—तब प्रह्लादका वचन सुनकर ऋषि नरने उनसे कहा—यदि आपकी ऐसी ही धारणा है तो मेरे साथ इसी समय युद्ध कर लीजिये। हे असुराधम! आज मैं तुम्हारा सिर विदीर्ण कर डालूँगा (इसके बाद युद्ध करनेकी तुम्हारी कभी इच्छा नहीं होगी)॥ १७$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—तब ऋषि नरका वचन सुनकर दैत्यपति प्रह्लाद कुपित हो उठे। बलशाली उन प्रह्लादने प्रतिज्ञा की कि जिस किसी भी उपायसे मैं इन दोनों जितेन्द्रिय तथा परम तपस्वी नर-नारायण ऋषियोंको जीतकर रहूँगा॥ १८-१९$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा वचन बोलकर दैत्य प्रह्लादने धनुष उठाकर और शीघ्रतापूर्वक उसे खींचकर प्रत्यंचाकी टंकार की। हे राजन्! मुनि नरने भी धनुष लेकर शिलापर घिसकर तेज किये हुए अनेक तीक्ष्ण बाण प्रह्लादके ऊपर क्रोधपूर्वक छोड़े॥ २०—२२॥

दैत्यराज प्रह्लादने अपने सुनहले पंखोंवाले बाणोंसे शीघ्र ही उन बाणोंको आते ही काट डाला। तब नर अपने द्वारा छोड़े गये बाणोंको प्रह्लादद्वारा छिन्न किया गया देखकर अत्यन्त कोपाविष्ट हो शीघ्रतासे उनपर अन्य बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ २३॥

दैत्यपति प्रह्लादने उन बाणोंको भी अपने द्रुतगामी बाणोंसे काटकर उन मुनिराज नरके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। नरने भी क्रुद्ध होकर अपने तीव्रगामी पाँच बाणोंसे दैत्येन्द्र प्रह्लादके बाहुदेशपर प्रहार किया॥ २४॥

इन्द्रसहित सभी देवगण उन दोनोंका युद्ध देखनेके लिये विमानोंमें बैठकर आकाशमण्डलमें स्थित हो गये। वे कभी समरांगणमें विराजमान नरके पराक्रमकी प्रशंसा करते थे और फिर कभी दैत्यपति प्रह्लादके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगते थे॥ २५॥

धनुष धारण किये हुए दैत्यराज प्रह्लाद इस प्रकार बाणोंकी वर्षा कर रहे थे, मानो मेघ जल बरसा रहे हों। [ऋषि नर भी अपना] अप्रतिम शार्ङ्ग धनुष लेकर तीक्ष्ण तथा सुनहले पंखवाले बाण छोड़ रहे थे॥ २६॥

बभूव युद्धं तुमुलं तयोस्तु
जयैषिणोः पार्थिव देवदैत्ययोः।
ववर्षुराकाशपथे स्थितास्ते
पुष्पाणि दिव्यानि प्रहृष्टचित्ताः॥ २७

चुकोप दैत्याधिपतिर्हरौ स
मुमोच बाणानतितीव्रवेगान्।
चिच्छेद तान्धर्मसुतः सुतीक्ष्णै-
र्धनुर्विमुक्तैर्विशिखैस्तदाशु ॥ २८

ततो नारायणं बाणैः प्रह्लादश्चातिकर्षितैः।
ववर्ष सुस्थितं वीरं धर्मपुत्रं सनातनम्।
नारायणोऽपि तं वेगान्मुक्तैर्बाणैः शिलाशितैः॥ २९

तुतोदातीव पुरतो दैत्यानामधिपं स्थितम्।
सन्निपातोऽम्बरे तत्र दिदृक्षूणां बभूव ह॥ ३०

देवानां दानवानाञ्च कुर्वतां जयघोषणम्।
उभयोः शरवर्षेण छादिते गगने तदा॥ ३१

दिवापि रात्रिसदृशं बभूव तिमिरं महत्।
ऊचुः परस्परं देवा दैत्याश्चातीव विस्मिताः॥ ३२

अदृष्टपूर्वं युद्धं वै वर्ततेऽद्य सुदारुणम्।
देवर्षयोऽथ गन्धर्वा यक्षकिन्नरपन्नगाः॥ ३३

विद्याधराश्चारणाश्च विस्मयं परमं ययुः।
नारदः पर्वतश्चैव प्रेक्षणार्थं स्थितौ मुनी॥ ३४

नारदः पर्वतं प्राह नेदृशं चाभवत्पुरा।
तारकासुरयुद्धञ्च तथा वृत्रासुरस्य च॥ ३५

मधुकैटभयोर्युद्धं हरिणा चेदृशं कृतम्।
प्रह्लादः प्रबलः शूरो यस्मान्नारायणेन च॥ ३६

करोति सदृशं युद्धं सिद्धेनाद्भुतकर्मणा।

व्यास उवाच

दिने दिने तथा रात्रौ कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः॥ ३७

हे राजन्! इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेके इच्छुक उन ऋषि नर तथा दैत्यराज प्रह्लादके बीच भीषण युद्ध होने लगा। आकाशमार्गमें स्थित वे [देवतागण] प्रसन्नचित्त होकर उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे॥ २७॥

अचानक प्रह्लाद कुपित हो उठे और उन्होंने अति तीव्रगामी बाण ऋषि नारायणपर छोड़े। धर्मपुत्र नारायणने शीघ्र ही उन बाणोंको अपने धनुषसे छोड़े गये अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे खण्ड-खण्ड कर डाला॥ २८॥

दैत्यराज प्रह्लाद समरांगणमें डटकर खड़े अतीव पराक्रमी तथा सनातन धर्मपुत्र नारायणपर अपने अति तीक्ष्ण बाण बरसाने लगे। नारायणने भी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये अपने वेगपूर्वक छोड़े गये बाणोंके द्वारा सम्मुख खड़े दैत्यपति प्रह्लादको अत्यन्त भीषण चोट पहुँचायी। उस युद्धका अवलोकन करनेके इच्छुक देवताओं तथा दैत्योंका एक विशाल समूह अपने-अपने पक्षका जयघोष करते हुए आकाशमें एकत्र हो गया॥ २९-३०½॥

दोनों पक्षोंकी बाणवर्षासे आकाशके आच्छादित हो जानेपर उस समय इतना घना अन्धकार हो गया कि दिन भी रातके समान प्रतीत होने लगा। इससे अति आश्चर्यचकित होकर देवता तथा दैत्य परस्पर कहने लगे कि यह अत्यन्त भयावह संग्राम हो रहा है। ऐसा भीषण युद्ध तो पहले कभी नहीं देखा गया। बड़े-बड़े देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नाग, विद्याधर तथा चारणगण इस युद्धको देखकर अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये॥ ३१—३३½॥

उस युद्धका अवलोकन करनेके लिये मुनि नारद तथा पर्वत भी आये हुए थे। नारदमुनिने पर्वतसे कहा—ऐसा घोर संग्राम पहले नहीं हुआ था; तारकासुरयुद्ध, वृत्रासुरका युद्ध यहाँतक कि मधु-कैटभका युद्ध भी वैसा नहीं हुआ था, जैसा कि इस समय नारायणके द्वारा किया गया। प्रह्लाद अत्यन्त वीर हैं जो कि वे अद्भुत कर्मवाले सिद्धिसम्पन्न नारायणके साथ यह बराबरीका युद्ध कर रहे हैं॥ ३४—३६½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार प्रतिदिन तथा प्रतिरात्रि बार-बार युद्ध करते हुए वे दोनों दैत्य तथा

चक्रतुः परमं युद्धं तौ तदा दैत्यतापसौ।
नारायणस्तु चिच्छेद प्रह्लादस्य शरासनम्॥ ३८

तरसैकेन बाणेन स चान्यद्धनुराददे।
नारायणस्तु तरसा मुक्त्वान्यञ्च शिलीमुखम्॥ ३९

तदैव मध्यतश्चापं चिच्छेद लघुहस्तकः।
छिन्नं छिन्नं पुनर्दैत्यो धनुरन्यत्समाददे॥ ४०

नारायणस्तु चिच्छेद विशिखैराशु कोपितः।
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रः परिघं तु समाददे॥ ४१

जघान धर्मजं तूर्णं बाह्वोर्मध्येऽतिकोपनः।
तमायान्तं स बलवान्मार्गणैर्नवभिर्मुनिः॥ ४२

चिच्छेद परिघं घोरं दशभिस्तमताडयत्।
गदामादाय दैत्येन्द्रः सर्वायसमयीं दृढाम्॥ ४३

जानुदेशे जघानाशु देवं नारायणं रुषा।
गदया चापि गिरिवत्संस्थितः स्थिरमानसः॥ ४४

धर्मपुत्रोऽतिबलवान्मुमोचाशु शिलीमुखान्।
गदां चिच्छेद भगवांस्तदा दैत्यपतेर्दृढाम्॥ ४५

विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षका गगने स्थिताः।
स तु शक्तिं समादाय प्रह्लादः परवीरहा॥ ४६

चिक्षेप तरसा क्रुद्धो बलान्नारायणोरसि।
तामापतन्तीं संवीक्ष्य बाणेनैकेन लीलया॥ ४७

सप्तधा कृतवानाशु सप्तभिस्तं जघान ह।
दिव्यवर्षशतं चैव तद्युद्धं परमं तयोः॥ ४८

जातं विस्मयदं राजन् सर्वेषां तत्र चाश्रमे।
तदाजगाम तरसा पीतवासाश्चतुर्भुजः॥ ४९

प्रह्लादस्याश्रमं तत्र जगाम च गदाधरः।
चतुर्भुजो रमाकान्तो रथाङ्गदरपद्मभृत्॥ ५०

तपस्वी घोर संग्राममें तत्पर रहे। नारायणने एक बाणसे प्रह्लादका धनुष काट दिया। तब प्रह्लादने तत्काल दूसरा धनुष ले लिया। नारायणने हस्तकौशल दिखाते हुए पुनः बड़ी शीघ्रतासे दूसरा बाण चलाकर उस धनुषको भी बीचोबीचसे काट डाला। इस प्रकार नारायण बार-बार धनुष काटते जाते थे और प्रह्लाद दूसरा धनुष लेते जाते थे। अन्तमें नारायणने कुपित होकर अपने बाणोंसे उसके धनुषको शीघ्रतासे पुनः काट दिया। उस धनुषके भी कट जानेपर दैत्यराज प्रह्लादने अपना परिघ उठा लिया और अत्यन्त क्रोधित होकर बड़ी फुर्तीसे धर्मपुत्र नारायणकी भुजाओंपर प्रहार किया॥ ३७—४१$\frac{1}{2}$ ॥

प्रतापी नारायणने अपनी ओर आते हुए उस परिघको नौ बाणोंसे काट दिया और दस बाणोंसे प्रह्लादपर चोट की॥ ४२$\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् दैत्येन्द्र प्रह्लादने पूर्णतः लोहमयी सुदृढ़ गदा उठाकर क्रोधपूर्वक नारायणमुनिकी जाँघपर शीघ्रतापूर्वक प्रहार किया॥ ४३$\frac{1}{2}$ ॥

उस गदा-प्रहारसे भी धर्मपुत्र नारायण पर्वतकी भाँति अविचल भावसे स्थिरचित्त होकर खड़े रहे। तदनन्तर परम पराक्रमी भगवान् नारायणने बड़ी तेजीसे अनेक बाण छोड़े और दैत्यपति प्रह्लादकी सुदृढ़ गदाको खण्ड-खण्ड कर दिया। आकाशमें स्थित होकर युद्ध देखनेवाले बड़े आश्चर्यमें पड़ गये॥ ४४-४५$\frac{1}{2}$ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका दमन करनेवाले प्रह्लादने शक्ति उठाकर कुपित हो बलपूर्वक बड़ी तेजीसे नारायणके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। तब सामने आती हुई उस शक्तिको देखकर नारायणने एक ही बाणसे बड़ी आसानीसे उसके सात खण्ड कर दिये और साथ ही सात बाणोंसे प्रह्लादपर प्रहार किया॥ ४६—४७$\frac{1}{2}$ ॥

हे राजन्! इस प्रकार सबको विस्मित कर देनेवाला वह युद्ध एक सौ दिव्य वर्षतक चलता रहा। तदनन्तर चार भुजाओंसे शोभा पानेवाले पीताम्बरधारी भगवान् विष्णु शीघ्रतापूर्वक उस आश्रममें आ गये। तत्पश्चात् हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले वे चतुर्भुज लक्ष्मीपति विष्णु प्रह्लादके आश्रमपर पहुँचे॥ ४८—५०॥

दृष्ट्वा तमागतं तत्र हिरण्यकशिपोः सुतः।
प्रणम्य परया भक्त्या प्राञ्जलिः प्रत्युवाच ह॥ ५१

प्रह्लाद उवाच

देवदेव जगन्नाथ भक्तवत्सल माधव।
कथं न जितवानाजावहमेतौ तपस्विनौ।
संग्रामस्तु मया देव कृतः पूर्णं शतं समाः॥ ५२

सुराणां न जितौ कस्मादिति मे विस्मयो महान्।

विष्णुरुवाच

सिद्धाविमौ मदंशौ च विस्मयः कोऽत्र मारिष॥ ५३

तापसौ न जितात्मानौ नरनारायणौ जितौ।
गच्छ त्वं वितलं राजन् कुरु भक्तिं ममाचलाम्॥ ५४

नाभ्यां कुरु विरोधं त्वं तापसाभ्यां महामते।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तो दैत्यराजो निर्ययावसुरैः सह॥ ५५
नरनारायणौ भूयस्तपोयुक्तौ बभूवतुः॥ ५६

वहाँ उन्हें आये हुए देखकर हिरण्यकशिपुपुत्र प्रह्लाद बड़ी श्रद्धाके साथ उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ५१॥

प्रह्लाद बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे भक्तवत्सल! हे माधव! मैं इन दोनों तपस्वियोंको युद्धमें क्यों नहीं जीत सका? हे देव! मैंने देवताओंके पूरे सौ वर्षतक इनके साथ युद्ध किया, फिर भी ये जीते न जा सके—मुझे यह महान् आश्चर्य है!॥ ५२½ ॥

विष्णु बोले—हे आर्य! ये दोनों सिद्ध पुरुष हैं और मेरे अंशसे आविर्भूत हैं; अतः [इन्हें न जीत पानेमें] आश्चर्य क्या! नर-नारायण नामसे प्रसिद्ध इन जितात्मा तपस्वियोंको तुम नहीं जीत सकते। अतः हे राजन्! तुम अपने वितललोकको चले जाओ और वहाँ मेरी अविचल भक्ति करो। हे महामते! तुम इन दोनों तपस्वियोंसे विरोध मत करो॥ ५३-५४½ ॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुसे ऐसी आज्ञा पाकर दैत्यपति प्रह्लाद असुरोंके साथ वहाँसे प्रस्थित हो गये। तदनन्तर नर-नारायण पुनः तपस्यामें संलग्न हो गये॥ ५५-५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्रह्लादनारायणयोर्युद्धे विष्णोरागमनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

~~~

अथ दशमोऽध्यायः

राजा जनमेजयद्वारा प्रह्लादके साथ नर-नारायणके युद्धका कारण पूछना, व्यासजीद्वारा उत्तरमें संसारके मूल कारण अहंकारका निरूपण करना तथा महर्षि भृगुद्वारा भगवान् विष्णुको शाप देनेकी कथा

जनमेजय उवाच

सन्देहोऽयं महानत्र पाराशर्य कथानके।
नरनारायणौ शान्तौ वैष्णवांशौ तपोधनौ॥ १

तीर्थाश्रयौ सत्त्वयुक्तौ वन्याशनपरौ सदा।
धर्मपुत्रौ महात्मानौ तापसौ सत्यसंस्थितौ॥ २

कथं रागसमायुक्तौ जातौ युद्धे परस्परम्।
संग्रामं चक्रतुः कस्मात्त्यक्त्वा तपिमनुत्तमाम्॥ ३

जनमेजय बोले—हे व्यासजी! इस कथानकमें मुझे यह महान् संशय हो रहा है कि जब वे नर-नारायण शान्तस्वभाव, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, तपको ही अपना सर्वस्व माननेवाले, तीर्थमें निवास करनेवाले, सत्त्वगुणसम्पन्न, वनके फल-मूलका सदा आहार करनेवाले, धर्मपुत्र, महात्मा, तपस्वी तथा सत्यनिष्ठ थे; तब वे युद्धमें परस्पर राग-द्वेषसे ग्रस्त कैसे हो गये और उन्होंने उत्कृष्ट तपस्याका त्याग करके संग्राम क्यों किया?॥ १—३॥
~~~

प्रह्लादेन समं पूर्णं दिव्यवर्षशतं किल।
हित्वा शान्तिसुखं युद्धं कृतवन्तौ कथं मुनी॥ ४

कथं तौ चक्रतुर्युद्धं प्रह्लादेन समं मुनी।
कथयस्व महाभाग कारणं विग्रहस्य वै॥ ५

(कामिनी कनकं कार्यं कारणं विग्रहस्य वै)
युद्धबुद्धिः कथं जाता तयोश्च तद्विरक्तयोः।
तथाविधं तपस्तप्तं ताभ्याञ्च केन हेतुना॥ ६

मोहार्थं सुखभोगार्थं स्वर्गार्थं वा परन्तप।
कृतमत्युत्कटं ताभ्यां तपः सर्वफलप्रदम्॥ ७

मुनिभ्यां शान्तचित्ताभ्यां प्राप्तं किं फलमद्भुतम्।
तपसा पीडितो देहः संग्रामेण पुनः पुनः॥ ८

दिव्यवर्षशतं पूर्णं श्रमेण परिपीडितौ।
न राज्यार्थे धने वापि न दारेषु गृहेषु च॥ ९

किमर्थं तु कृतं युद्धं ताभ्यां तेन महात्मना।
निरीहः पुरुषः कस्मात्प्रकुर्याद्युद्धमीदृशम्॥ १०

दुःखदं सर्वथा देहे जानन्धर्मं सनातनम्।
सुबुद्धिः सुखदानीह कर्माणि कुरुते सदा॥ ११

न दुःखदानि धर्मज्ञ स्थितिरेषा सनातनी।
धर्मपुत्रौ हरेरंशौ सर्वज्ञौ सर्वभूषितौ॥ १२

कृतवन्तौ कथं युद्धं दुःखं धर्मविनाशकम्।
त्यक्त्वा तपः समाधीतं सुखारामं महत्फलम्॥ १३

संयुगं दारुणं कृष्ण नैव मूर्खोऽपि वाञ्छति।
श्रुतो मया ययातिस्तु च्युतः स्वर्गान्महीपतिः॥ १४

अहङ्कारभवात्पापात्पातितः पृथिवीतले।
यज्ञकृद्दानकर्ता च धार्मिकः पृथिवीपतिः॥ १५

उन दोनों मुनियोंने शान्ति-सुखका त्याग करके प्रह्लादके साथ पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक युद्ध किसलिये किया?॥ ४॥

उन दोनों मुनियोंने प्रह्लादके साथ वह संग्राम क्यों किया? हे महाभाग! आप मुझे उस युद्धका कारण बताइये॥ ५॥

(स्त्री, धन तथा कोई कार्यविशेष ही प्रायः युद्धके कारण होते हैं।) उन विरक्त मुनियोंको युद्धका विचार क्यों उत्पन्न हुआ? हे परन्तप! उन्होंने उस प्रकारका तप किसीको प्रसन्न करनेके लिये, सुखभोगके लिये अथवा स्वर्गके लिये—किस उद्देश्यसे किया था? शान्त चित्तवाले उन मुनियोंने समस्त फल प्रदान करनेवाला कठोर तप तो किया था, किंतु उन्होंने कौन-सा अद्भुत फल प्राप्त किया? उन्होंने तपस्यासे शरीरको कष्ट दिया और पूरे सौ दिव्य वर्षोंतक बार-बार संग्राम करके परिश्रमके द्वारा अपनेको संतप्त किया। उन मुनियोंने न राज्यके लिये, न धनके लिये, न स्त्रीके लिये और न तो गृहके लिये ही यह युद्ध किया तो फिर उन्होंने महात्मा प्रह्लादके साथ किसलिये युद्ध किया?॥ ६—९$\frac{१}{२}$ ॥

युद्ध शरीरके लिये कष्टदायक होता है—इस सनातन बातको जानते हुए कोई तृष्णारहित पुरुष आखिर ऐसा युद्ध किसलिये करेगा? हे धर्मज्ञ! उत्तम बुद्धिवाला मनुष्य इस लोकमें सदा सुखदायी कर्म ही करता है, दुःखप्रद कर्म नहीं—यह सनातन सिद्धान्त है। तब धर्मपुत्र, भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप, सर्वज्ञ तथा सभी गुणोंसे विभूषित उन मुनियोंने वह दुःखदायक तथा धर्मविनाशक युद्ध क्यों किया? हे व्यासजी! कोई मूर्ख भी अच्छी प्रकार आचरित, सुख तथा आनन्द देनेवाले और महाफलदायी तपका त्याग करके दारुण युद्ध करना नहीं चाहता॥ १०—१३$\frac{१}{२}$ ॥

मैंने सुना है कि राजा ययाति स्वर्गसे च्युत हो गये थे। अहंकारजन्य पापके कारण वे पृथ्वीतलपर गिरा दिये गये थे। वे यज्ञकर्ता, दानी और धर्मनिष्ठ थे; किंतु केवल थोड़ेसे अहंकारभरे शब्दोंका उच्चारण करनेके कारण वज्रपाणि इन्द्रने उन्हें [स्वर्गसे पृथ्वीपर] गिरा दिया था। यह निश्चित है कि बिना अहंकारके

शब्दोच्चारणमात्रेण पातितो वज्रपाणिना।
अहङ्कारमृते युद्धं न भवत्येव निश्चयः॥ १६

किं फलं तस्य युद्धस्य मुनेः पुण्यविनाशनम्।

व्यास उवाच

राजन् संसारमूलं हि त्रिविधः परिकीर्तितः॥ १७

अहङ्कारस्तु सर्वज्ञैर्मुनिभिर्धर्मनिश्चये।
स कथं मुनिना त्यक्तुं योग्यो देहभृता किल॥ १८

कारणेन विना कार्यं न भवत्येव निश्चयः।
तपो दानं तथा यज्ञाः सात्त्विकात्प्रभवन्ति ते॥ १९

राजसाद्वा महाभाग तामसात्कलहस्तथा।
क्रिया स्वल्पापि राजेन्द्र नाहङ्कारं विना क्वचित्॥ २०

शुभा वाप्यशुभा वापि प्रभवत्यपि निश्चयः।
अहङ्काराद् बन्धकारी नान्योऽस्ति जगतीतले॥ २१

येनेदं रचितं विश्वं कथं तद्रहितं भवेत्।
ब्रह्मा रुद्रस्तथा विष्णुरहङ्कारयुतास्त्वमी॥ २२

अन्येषां चैव का वार्ता मुनीनां वसुधाधिप।
अहङ्कारावृतं विश्वं भ्रमतीदं चराचरम्॥ २३

पुनर्जन्म पुनर्मृत्युः सर्वं कर्मवशानुगम्।
देवतिर्यङ्मनुष्याणां संसारेऽस्मिन्महीपते॥ २४

रथाङ्गवदसर्वार्थं भ्रमणं सर्वदा स्मृतम्।
विष्णोरप्यवताराणां संख्यां जानाति कः पुमान्॥ २५

विततेऽस्मिंस्तु संसारे उत्तमाधमयोनिषु।
नारायणो हरिः साक्षान्मात्स्यं वपुरुपाश्रितः॥ २६

कामठं सौकरं चैव नारसिंहञ्च वामनम्।
युगे युगे जगन्नाथो वासुदेवो जनार्दनः॥ २७
अवतारानसंख्यातान्करोति विधियन्त्रितः।

युद्ध हो ही नहीं सकता। अन्ततः मुनिको उस युद्धका क्या फल मिला, उससे तो केवल उनका पुण्य ही नष्ट हुआ॥ १४—१६½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! धर्मका निर्णय करते समय सर्वज्ञ मुनियोंने अहंकारको ही संसारका मूल कारण कहा है और इसे [सत्त्वादि भेदसे] तीन प्रकारका बतलाया है। [ऐसी स्थितिमें] शरीरधारी होकर मुनि नारायण उस अहंकारका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकते थे? यह निश्चित है कि बिना कारणके कार्य नहीं होता॥ १७-१८½ ॥

तप, दान तथा यज्ञ सात्त्विक अहंकारसे होते हैं। हे महाभाग! राजस और तामस अहंकारसे कलह उत्पन्न होता है। हे राजेन्द्र! यह निश्चय है कि छोटी-सी भी क्रिया चाहे वह शुभ हो अथवा अशुभ—बिना अहंकारके कभी नहीं हो सकती। जगत्में अहंकारसे बढ़कर बन्धनमें डालनेवाला दूसरा कोई पदार्थ नहीं है। अतः जिस अहंकारसे ही यह विश्व निर्मित है, उसके बिना यह संसार कैसे रह सकता है?॥ १९—२१½ ॥

हे पृथ्वीपते! जब ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी अहंकारयुक्त रहते हैं, तब अन्य प्राणियों और मुनियोंकी बात ही क्या? यह चराचर जगत् अहंकारके वशीभूत होकर भ्रमण करता रहता है। सभी जीव कर्मके अधीन हैं और उसीके अनुसार बार-बार उनका जन्म तथा मरण होता रहता है। हे महीपते! देवता, मनुष्य और पशु-पक्षियोंका इस संसारमें बराबर चक्कर काटना रथके पहियेके भ्रमणके समान बताया गया है॥ २२—२४½ ॥

इस विस्तृत संसारमें उत्तम-अधम सभी योनियोंमें भगवान् विष्णुके अवतारोंकी संख्या कौन मनुष्य जान सकता है? साक्षात् नारायण श्रीहरिको मत्स्य, कच्छप, वराह, नरसिंह और वामनतकका शरीर धारण करना पड़ा। वे जगत्प्रभु, वासुदेव, भगवान् जनार्दन भी विधिके अधीन होकर विभिन्न युगोंमें असंख्य अवतार धारण करते रहते हैं॥ २५—२७½ ॥

वैवस्वते महाराज सप्तमे भगवान्हरिः॥ २८
मन्वन्तरेऽवतारान्वै चक्रे ताञ्छृणु तत्त्वतः।
भृगुशापान्महाराज विष्णुर्देववरः प्रभुः॥ २९
अवताराननेकांस्तु कृतवानखिलेश्वरः।

राजोवाच

सन्देहोऽयं महाभाग हृदये मम जायते॥ ३०
भृगुणा भगवान्विष्णुः कथं शप्तः पितामह।
हरिणा च मुनेस्तस्य विप्रियं किं कृतं मुने॥ ३१
यद्रोषाद् भृगुणा शप्तो विष्णुर्देवनमस्कृतः।

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि भृगोः शापस्य कारणम्॥ ३२
पुरा कश्यपदायादो हिरण्यकशिपुर्नृपः।
यदा तदा सुरैः सार्धं कृतं संख्यं परस्परम्॥ ३३
कृते संख्ये जगत्सर्वं व्याकुलं समजायत।
हते तस्मिन्नृपे राजा प्रह्लादः समजायत॥ ३४
देवान्स पीडयामास प्रह्लादः शत्रुकर्षणः।
संग्रामो ह्यभवद् घोरः शक्रप्रह्लादयोस्तदा॥ ३५
पूर्णं वर्षशतं राजल्ँलोकविस्मयकारकम्।
देवैर्युद्धं कृतं चोग्रं प्रह्लादस्तु पराजितः॥ ३६
निर्वेदं परमं प्राप्तो ज्ञात्वा धर्मं सनातनम्।
विरोचनसुतं राज्ये प्रतिष्ठाप्य बलिं नृप॥ ३७
जगाम स तपस्तप्तुं पर्वते गन्धमादने।
प्राप्य राज्यं बलिः श्रीमान्सुरैर्वैरं चकार ह॥ ३८
यतः परस्परं युद्धं जातं परमदारुणम्।
ततः सुरैर्जिता दैत्या इन्द्रेणामिततेजसा॥ ३९
विष्णुना च सहायेन राज्यभ्रष्टाः कृता नृप।

हे महाराज! सातवें वैवस्वत मन्वन्तरमें भगवान् श्रीहरिने जो-जो अवतार लिये थे, उन्हें आप ध्यानपूर्वक सुनें। हे महाराज! देवश्रेष्ठ और सबके स्वामी भगवान् विष्णुको महर्षि भृगुके शापके कारण अनेक अवतार धारण करने पड़े थे॥ २८–२९$\frac{१}{२}$॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे पितामह! मेरे मनमें यह संदेह हो रहा है कि भृगुने भगवान्‌को शाप क्यों दे दिया? हे मुने! भगवान् विष्णुने उन भृगुमुनिका कौन-सा अप्रिय कार्य कर दिया था, जिससे रुष्ट होकर महर्षि भृगुने सभी देवताओंद्वारा नमस्कार किये जानेवाले भगवान् विष्णुको शाप दे दिया॥ ३०–३१$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको भृगुके शापका कारण बताता हूँ। पूर्वकालमें कश्यपतनय हिरण्यकशिपु नामक एक राजा था। उस समय जब भी वह देवताओंके साथ परस्पर संघर्ष करने लगता था, तब युद्ध आरम्भ हो जानेपर सारा संसार व्याकुल हो उठता था॥ ३२–३३$\frac{१}{२}$॥

बादमें हिरण्यकशिपुका वध हो जानेपर प्रह्लाद राजा बने। शत्रुओंको कष्ट पहुँचानेवाले वे प्रह्लाद भी देवताओंको पीड़ित करने लगे। अतः इन्द्र और प्रह्लादमें भयानक संग्राम आरम्भ हो गया। हे राजन्! पूरे सौ वर्षतक देवताओंने लोगोंको अचम्भेमें डाल देनेवाला भीषण युद्ध किया और प्रह्लादको पराजित कर दिया। हे राजन्! तब शाश्वत धर्मको समझकर वे महान् विरक्तिको प्राप्त हुए और विरोचनपुत्र बलिको राज्यपर प्रतिष्ठित करके तप करनेके लिये गन्धमादनपर्वतपर चले गये॥ ३४—३७$\frac{१}{२}$॥

राज्य प्राप्त करके ऐश्वर्यशाली राजा बलिने देवताओंसे शत्रुता कर ली, जिससे [देवताओं और दैत्योंमें] पुनः परस्पर अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा। उसमें देवताओं तथा अमित तेजस्वी इन्द्रने दैत्योंको जीत लिया। हे राजन्! उस समय इन्द्रके सहायक बनकर भगवान् विष्णुने दैत्योंको राज्यसे च्युत कर दिया॥ ३८–३९$\frac{१}{२}$॥

ततः पराजिता दैत्याः काव्यस्य शरणं गताः ॥ ४०

किं त्वं न कुरुषे ब्रह्मन् साहाय्यं नः प्रतापवान्।
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्॥ ४१

यदि त्वं न सहायोऽसि त्रातुं मन्त्रविदुत्तम।

व्यास उवाच

इत्युक्तः सोऽब्रवीद्दैत्यान्काव्यः कारुणिको मुनिः॥ ४२

मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन भोऽसुराः।
मन्त्रैस्तथौषधीभिश्च साहाय्यं वः सदैव हि॥ ४३

करिष्यामि कृतोत्साहा भवन्तु विगतज्वराः।

व्यास उवाच

ततस्ते निर्भया जाता दैत्याः काव्यस्य संश्रयात्॥ ४४

देवैः श्रुतस्तु वृत्तान्तः सर्वैश्चारमुखात्किल।
तत्र संमन्त्र्य ते देवाः शक्रेण च परस्परम्॥ ४५

मन्त्रं चक्रुः सुसंविग्नाः काव्यमन्त्रप्रभावतः।
योद्धुं गच्छामहे तूर्णं यावन्न च्यावयन्ति वै॥ ४६

प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे।
दैत्याञ्जग्मुस्ततो देवाः संरुष्टाः शस्त्रपाणयः॥ ४७

जग्मुस्तान्विष्णुसहिता दानवान् हरिणोदिताः।
वध्यमानास्तु ते दैत्याः सन्त्रस्ता भयपीडिताः॥ ४८

काव्यस्य शरणं जग्मू रक्ष रक्षेति चाब्रुवन्।
ताञ्छुक्रः पीडितान्दृष्ट्वा देवैर्दैत्यान्महाबलान्॥ ४९

मा भैष्टेति वचः प्राह मन्त्रौषधिबलाद्विभुः।
दृष्ट्वा काव्यं सुराः सर्वे त्यक्त्वा तान्प्रययुः किल॥ ५०

तदनन्तर हारे हुए दैत्य [अपने गुरु] शुक्राचार्यकी शरणमें गये। [सभी दैत्य उनसे कहने लगे—] हे ब्रह्मन्! आप प्रतापशाली होते हुए भी हमारी सहायता क्यों नहीं कर रहे हैं? हे मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ! यदि हमारी रक्षाहेतु आप सहायक न हुए तो हमलोग यहाँ नहीं रह पायेंगे और निश्चय ही हमें पातालमें जाना पड़ेगा॥ ४०-४१½ ॥

व्यासजी बोले—दैत्योंके ऐसा कहनेपर दयालु शुक्राचार्यमुनिने उनसे कहा—हे असुरो! डरो मत। मैं अपने तेजसे [तुमलोगोंको धरातलपर] स्थापित करूँगा और मन्त्रों तथा औषधियोंसे सर्वदा तुमलोगोंकी सहायता करूँगा। तुमलोग चिन्तामुक्त होकर उत्साह बनाये रखो॥ ४२-४३½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुक्राचार्यका आश्रय पाकर वे दैत्य निर्भय हो गये। उधर देवताओंने गुप्तचरोंसे यह समाचार सुन लिया। तत्पश्चात् शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावको समझकर अत्यन्त घबराये हुए देवताओंने इन्द्रके साथ परस्पर मन्त्रणा करके यह योजना बनायी कि जबतक शुक्राचार्यके मन्त्रके प्रभावसे दैत्य हमें राज्यच्युत करें, उसके पहले ही हमलोग युद्ध करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान कर दें और बलपूर्वक उनका वध करके बचे हुए दैत्योंको पाताल भेज दें॥ ४४—४६½ ॥

तदनन्तर अत्यधिक रोषमें भरे देवताओंने हाथोंमें शस्त्र धारणकर दैत्योंपर चढ़ाई कर दी। इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् विष्णुसहित सभी देवता उनपर टूट पड़े। तब देवताओंके द्वारा मारे जा रहे वे दैत्य आतंकित तथा भयभीत होकर शुक्राचार्यकी शरणमें गये और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा बार-बार कहने लगे॥ ४७-४८½ ॥

देवताओंके द्वारा पीड़ित किये गये उन महाबली दैत्योंको देखकर मन्त्र और औषधिके प्रभावसे शक्तिशाली बने शुक्राचार्यने उनसे 'डरो मत'—ऐसा वचन कहा। तब शुक्राचार्यको देखते ही सभी देवता उन दैत्योंको छोड़कर चले गये॥ ४९-५० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
भृगुशापकारणवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

~~O~~

अथैकादशोऽध्यायः

मन्त्रविद्याकी प्राप्तिके लिये शुक्राचार्यका तपस्यारत होना, देवताओंद्वारा दैत्योंपर आक्रमण, शुक्राचार्यकी माताद्वारा दैत्योंकी रक्षा और इन्द्र तथा विष्णुको संज्ञाशून्य कर देना, विष्णुद्वारा शुक्रमाताका वध

व्यास उवाच

तथा गतेषु देवेषु काव्यस्तान्प्रत्युवाच ह।
ब्रह्मणा पूर्वमुक्तं यच्छृणुध्वं दानवोत्तमाः॥ १

विष्णुर्दैत्यवधे युक्तो हनिष्यति जनार्दनः।
वाराहरूपं संस्थाय हिरण्याक्षो यथा हतः॥ २

यथा नृसिंहरूपेण हिरण्यकशिपुर्हतः।
तथा सर्वान्कृतोत्साहो हनिष्यति न चान्यथा॥ ३

न मे मन्त्रबलं सम्यक्प्रतिभाति यथा हरिम्।
जेतुं यूयं समर्थाः स्थ मया त्राताः सुरानथ॥ ४

तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं कियन्तं दानवोत्तमाः।
अहमद्य महादेवं मन्त्रार्थं प्रव्रजामि वै॥ ५

प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि साम्प्रतम्।
युष्मभ्यं तान्प्रदास्यामि यथार्थं दानवोत्तमाः॥ ६

दैत्या ऊचुः

पराजिताः कथं स्थातुं पृथिव्यां मुनिसत्तम।
शक्ता भवामोऽप्यबलास्तावत्कालं प्रतीक्षितुम्॥ ७

निहता बलिनः सर्वे केचिच्छिष्टाश्च दानवाः।
नाद्य युक्ताश्च संग्रामे स्थातुमेवं सुखावहाः॥ ८

शुक्र उवाच

यावदहं मन्त्रविद्यामानयिष्यामि शङ्करात्।
तावद्भवद्भिः स्थातव्यं तपोयुक्तैः शमान्वितैः॥ ९

सामदानादयः प्रोक्ता विद्वद्भिः समयोचिताः।
देशं कालं बलं वीरैर्ज्ञात्वा शक्तिं बलं बुधैः॥ १०

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् देवताओंके चले जानेपर शुक्राचार्यने उन दैत्योंसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे जो कहा था, उसे तुमलोग सुनो। दैत्योंके वधके लिये भगवान् विष्णु सदा प्रयत्नरत रहते हैं, वे दैत्योंका वध अवश्य करेंगे। जैसे वाराहका रूप धारण करके उन्होंने हिरण्याक्षका वध किया और नृसिंहरूपसे हिरण्यकशिपुको मारा, उसी प्रकार उत्साहसम्पन्न होकर वे सब दैत्योंका संहार करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ १—३॥

मुझे जान पड़ता है कि वैसा समुचित मन्त्रबल अभी मेरे पास नहीं है, जिससे मेरे द्वारा सुरक्षित होकर तुमलोग इन्द्र तथा देवताओंको जीतनेमें समर्थ हो सको। अतः हे श्रेष्ठ दानवगण! तुमलोग कुछ समयतक प्रतीक्षा करो। मैं मन्त्रसिद्धिके लिये आज ही भगवान् शिवके पास जा रहा हूँ। हे श्रेष्ठ दानवो! महादेवजीसे मन्त्र लेकर मैं तत्काल आऊँगा और यथावत् रूपमें तुमलोगोंको सिखा दूँगा॥ ४—६॥

दैत्योंने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! देवताओंसे पराजित होकर हमलोग अत्यन्त निर्बल हो गये हैं, अतः उतने समयतक प्रतीक्षा करनेके लिये हम पृथ्वीपर रहनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं? सभी पराक्रमी दानव मारे जा चुके हैं और जो शेष बचे हुए हैं, सुखकी इच्छा करनेवाले वे अब युद्धमें ठहरनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७-८॥

शुक्राचार्य बोले—जबतक मैं शिवजीसे मन्त्रविद्या लेकर नहीं आता हूँ, तबतक तुमलोग शान्ति और तपस्यासे युक्त होकर यहीं रुके रहो॥ ९॥

विद्वानोंने कहा है कि समयानुसार साम, दान आदिका प्रयोग करना चाहिये। बुद्धिमान् तथा वीर पुरुष देश, काल, बल, शक्ति और सेनाकी जानकारी करके ही अपना सामर्थ्य दिखाते हैं॥ १०॥

सेवाथ समये कार्या शत्रूणां शुभकाम्यया।
स्वशक्त्युपचये काले हन्तव्यास्ते मनीषिभिः॥ ११

तदद्य विनयं कृत्वा सामपूर्वं छलेन वै।
तिष्ठध्वं स्वनिकेतेषु मदागमनकाङ्क्षया॥ १२

प्राप्य मन्त्रान्महादेवादागमिष्यामि दानवाः।
युध्यामहे पुनर्देवान्मान्त्रमास्थाय वै बलम्॥ १३

इत्युक्त्वाथ भृगुस्तेभ्यो जगाम कृतनिश्चयः।
महादेवं महाराज मन्त्रार्थं मुनिसत्तमः॥ १४

दानवाः प्रेषयामासुः प्रह्लादं सुरसन्निधौ।
सत्यवादिनमव्यग्रं सुराणां प्रत्ययप्रदम्॥ १५

प्रह्लादस्तु सुरान्प्राह प्रश्रयावनतो नृपः।
असुरैः सहितस्तत्र वचनं नम्रतायुतम्॥ १६

न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसन्नाहास्तथैव च।
देवास्तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्युताः॥ १७

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत्।
ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते॥ १८

न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः।
विश्रब्धाः स्वगृहान्गत्वा क्रीडासक्ताः सुसंस्थिताः॥ १९

दैत्या दम्भं समालम्ब्य तापसास्तपिसंयुताः।
कश्यपस्याश्रमे वासं चक्रुः काव्यागमेच्छया॥ २०

काव्यो गत्वाथ कैलासं महादेवं प्रणम्य च।
उवाच विभुना पृष्टः किं ते कार्यमिति प्रभुः॥ २१

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ।
पराजयाय देवानामसुराणां जयाय च॥ २२

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अपने कल्याणकी इच्छासे समयपर शत्रुओंकी भी सेवा करे और अपनी शक्तिका संचय हो जानेपर उन्हें मार डाले॥ ११॥

अतः देवताओंकी विनती करके छलपूर्वक सामनीतिका प्रयोग करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षाके साथ अपने-अपने घरोंमें रहो॥ १२॥

हे दानवो! महादेवजीसे मन्त्र प्राप्त करके मैं आऊँगा और तब उसी मन्त्रबलका आश्रय लेकर हमलोग देवताओंसे युद्ध करेंगे॥ १३॥

हे महाराज! उन दानवोंसे ऐसा कहकर दृढ़ संकल्पवाले मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्य मन्त्रप्राप्तिके लिये शिवजीके पास चले गये॥ १४॥

तदनन्तर दैत्योंने सत्यवादी, धैर्यवान् तथा देवताओंके विश्वासपात्र प्रह्लादको देवताओंके पास भेजा॥ १५॥

असुरोंके साथ वहाँ जाकर राजा प्रह्लाद विनय-सम्पन्न होकर देवताओंसे नम्रतायुक्त वचन बोले। हे देवताओ! हम सभी लोगोंने शस्त्र रख दिये हैं और कवचका त्याग कर दिया है। अब हम वल्कल धारण करके तपस्या करेंगे॥ १६-१७॥

प्रह्लादका वचन सुनकर देवताओंने उसे सत्य मान लिया और इसके बाद वे निश्चिन्त होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे लौट गये॥ १८॥

तब दैत्योंके शस्त्र त्याग देनेपर देवता युद्धसे विरत हो गये और चिन्तारहित होकर अपने-अपने घर जाकर स्वस्थचित्त हो क्रीडाविलासमें संलग्न हो गये॥ १९॥

उस समय दैत्यगण पाखण्डका सहारा लेकर तपस्वीके रूपमें तपस्यारत होकर शुक्राचार्यके आगमनकी प्रतीक्षा करते हुए कश्यपमुनिके आश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उधर, मुनि शुक्राचार्यने कैलासपर्वतपर पहुँचकर शंकरजीको प्रणाम किया। भगवान् शिवके पूछनेपर कि 'आपका क्या कार्य है?'—उन्होंने कहा—हे देव! मैं देवताओंकी पराजय और असुरोंकी विजयके लिये उन मन्त्रोंको चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके भी पास न हों॥ २१-२२॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सर्वज्ञः शङ्करः शिवः।
चिन्तयामास मनसा किं कर्तव्यमतः परम्॥ २३

सुरेषु द्रोहबुद्ध्यासौ मन्त्रार्थमिह साम्प्रतम्।
प्राप्तः काव्यो गुरुस्तेषां दैत्यानां विजयाय च॥ २४

रक्षणीया मया देवा इति सञ्चिन्त्य शङ्करः।
दुष्करं व्रतमत्युग्रं तमुवाच महेश्वरः॥ २५

पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्छिराः।
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि॥ २६

इत्युक्तोऽसौ प्रणम्येशं बाढमित्यब्रवीद्वचः।
व्रतं चराम्यहं देव त्वयाज्ञप्तः सुरेश्वर॥ २७

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा शङ्करं काव्यश्चकार व्रतमुत्तमम्।
धूमपानरतः शान्तो मन्त्रार्थं कृतनिश्चयः॥ २८

ततो देवाः परिज्ञाय काव्यं व्रतरतं तदा।
दैत्यान्दम्भरतांश्चैव बभूवुर्मन्त्रतत्पराः॥ २९

विचार्य मनसा सर्वे संग्रामायोद्यता नृप।
ययुर्धृतायुधास्तत्र यत्र ते दानवोत्तमाः॥ ३०

तानागतान्समीक्ष्याथ सायुधान्दंशितांस्तथा।
आसंस्ते भयसंविग्ना दैत्या देवान्समन्ततः॥ ३१

उत्पेतुः सहसा ते वै सन्नद्धान्भयकर्शिताः।
अब्रुवन्वचनं तथ्यं ते देवान्बलदर्पितान्॥ ३२

न्यस्तशस्त्रे भयवति आचार्ये व्रतमास्थिते।
दत्त्वाभयं पुरा देवाः सम्प्राप्ता नो जिघांसया॥ ३३

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सर्वज्ञ और कल्याणकारी भगवान् शिव मनमें सोचने लगे कि अब मुझे क्या करना चाहिये? ये दैत्यगुरु शुक्राचार्य देवताओंके प्रति द्रोह-बुद्धिसे युक्त होकर उन दैत्योंकी विजयके लिये मन्त्रहेतु इस समय यहाँ आये हैं, अतः मुझे देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये—ऐसा सोचकर शिवजीने उन्हें यह अत्यन्त कठोर और दुष्कर व्रत करनेको कहा—पूरे एक हजार वर्षोंतक यदि आप सिर नीचे करके कणधूम (भूसीके धुएँ)-का पान करेंगे, तभी आपका कल्याण होगा और आप मन्त्र प्राप्त कर सकेंगे॥ २३—२६॥

शिवजीके ऐसा कहनेपर उन्होंने महेश्वरको प्रणाम करके यह वचन कहा—'बहुत अच्छा', हे देव! हे सुरेश्वर! आपने मुझे जो आदेश दिया है, मैं उस व्रतका पालन करूँगा॥ २७॥

व्यासजी बोले—शिवजीसे ऐसा कहकर मन्त्रप्राप्तिके लिये दृढ़संकल्प शुक्राचार्यजी शान्त होकर धुएँका सेवन करते हुए कठोर व्रत करने लगे॥ २८॥

तब उस समय शुक्राचार्यको व्रतमें संलग्न तथा दैत्योंको [तपस्वी बनकर] पाखण्डमें निरत देखकर देवता लोग आपसमें मन्त्रणा करने लगे॥ २९॥

हे राजन्! भलीभाँति विचार करके सभी देवता संग्रामके लिये उद्यत हो गये और शस्त्रास्त्र धारणकर वहाँ पहुँच गये, जहाँ वे बड़े-बड़े दानव विद्यमान थे॥ ३०॥

तदनन्तर दैत्यगण उन आये हुए देवताओंको आयुधोंसे सज्जित और कवच धारण किये तथा अपनेको उनसे सब ओरसे घिरा देखकर भयसे व्याकुल हो उठे॥ ३१॥

वे भयातुर दानव तुरंत उठकर खड़े हो गये और युद्धके लिये उद्यत बलाभिमानी देवताओंसे सारगर्भित वचन कहने लगे—हमने शस्त्र रख दिये हैं, हम भयभीत हैं और हमारे आचार्य इस समय व्रतमें संलग्न हैं। हे देवताओ! पहले अभयदान देकर भी आप लोग हमें मारनेकी इच्छासे आ गये। हे

सत्यं वः क्व गतं देवा धर्मश्च श्रुतिनोदितः।
न्यस्तशस्त्रा न हन्तव्या भीताश्च शरणं गताः॥ ३४

देवा ऊचुः

भवद्भिः प्रेषितः काव्यो मन्त्रार्थं कुहकेन च।
तपो ज्ञातं हि युष्माकं तेन युध्याम एव हि॥ ३५

सज्जा भवन्तु युद्धाय संरब्धाः शस्त्रपाणयः।
शत्रुश्छिद्रेण हन्तव्य एष धर्मः सनातनः॥ ३६

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्या विचार्य च परस्परम्।
पलायनपराः सर्वे निर्गता भयविह्वलाः॥ ३७

शरणं दानवा जग्मुर्भीतास्ते काव्यमातरम्।
दृष्ट्वा तानतिसन्तप्तानभयं च ददावथ॥ ३८

काव्यमातोवाच

न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः।
मत्सन्निधौ वर्तमानान्न भीर्भवितुमर्हति॥ ३९

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्याः स्थितास्तत्र गतव्यथाः।
निरायुधा ह्यसंभ्रान्तास्तत्राश्रमवरेऽसुराः॥ ४०

देवास्तान्विद्रुतान्वीक्ष्य दानवांस्ते पदानुगाः।
अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम्॥ ४१

तत्रागताः सुराः सर्वे हन्तुं दैत्यान्समुद्यताः।
वारिताः काव्यमात्रापि जघ्नुस्तानाश्रमस्थितान्॥ ४२

हन्यमानान्सुरैर्दृष्ट्वा काव्यमातातिवेपिता।
उवाच सर्वान्सनिद्रांस्तपसा वै करोम्यहम्॥ ४३

देवगण! आप लोगोंका सत्य और श्रुतिसम्मत वह धर्म कहाँ चला गया कि 'जो शस्त्र रख चुके हों, भयभीत हों और शरणागत हो गये हों, उन्हें नहीं मारना चाहिये'॥ ३२—३४॥

देवता बोले—आप लोगोंने छलसे शुक्राचार्यको मन्त्र प्राप्त करनेके लिये भेजा है। हम आपलोगोंके तपको जान गये हैं, इसीलिये हमलोग युद्ध करनेके लिये उद्यत हुए हैं॥ ३५॥

अब क्षुब्ध हुए आपलोग भी हाथोंमें शस्त्र धारणकर युद्धके लिये तैयार हो जाइये। यह सनातन सिद्धान्त है कि जब शत्रु दुर्बल हो, तभी उसे मार डालना चाहिये॥ ३६॥

व्यासजी बोले—उनका वचन सुनकर सभी दैत्य आपसमें विचार करके भागनेके लिये तत्पर हो गये और भयसे व्याकुल होकर वहाँसे निकल भागे॥ ३७॥

वे भयभीत दैत्य शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें गये। उन दैत्योंको बहुत सन्तप्त देखकर उन्होंने अभय प्रदान कर दिया॥ ३८॥

शुक्राचार्यकी माताने कहा—हे दानवगण! डरो मत, डरो मत; तुम लोग भय छोड़ दो। मेरे पास रहनेवालोंको भय हो ही नहीं सकता॥ ३९॥

यह वचन सुनकर दैत्योंकी व्यथा दूर हो गयी और वे शस्त्रास्त्र त्यागकर पूर्ण रूपसे निश्चिन्त हो वहींपर उनके उत्तम आश्रममें रहने लगे॥ ४०॥

तब दैत्योंको पलायित देखकर वे देवता उनके पैरोंके चिह्नोंके पीछे-पीछे जाते हुए उनके बलाबलका बिना विचार किये हठात् उनके पास पहुँच गये॥ ४१॥

वहाँपर आये हुए सभी देवता आश्रममें रहनेवाले दैत्योंका वध करनेको उद्यत हो गये और शुक्राचार्यकी माताके रोकनेपर भी उन दैत्योंको मारने लगे॥ ४२॥

इस प्रकार देवताओंके द्वारा उन्हें मारे जाते हुए देखकर शुक्राचार्यकी माता बहुत काँपने लगीं और बोलीं—मैं अभी समस्त देवताओंको अपने तपके प्रभावसे निद्राग्रस्त कर दे रही हूँ॥ ४३॥

इत्युक्त्वा प्रेरिता निद्रा तानागत्य पपात च।
सेन्द्रा निद्रावशं याता देवा मूकवदास्थिताः॥ ४४

इन्द्रं निद्राजितं दृष्ट्वा दीनं विष्णुरभाषत।
मां त्वं प्रविश भद्रं ते नये त्वां च सुरोत्तम॥ ४५

एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरन्दरः।
निर्भयो गतनिद्रश्च बभूव हरिरक्षितः॥ ४६

रक्षितं हरिणा दृष्ट्वा शक्रं तत्र गतव्यथम्।
काव्यमाता ततः क्रुद्धा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ४७

मघवंस्त्वां भक्षयामि सविष्णुं वै तपोबलात्।
पश्यतां सर्वदेवानामीदृशं मे तपोबलम्॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तु तया देवौ विष्ण्विन्द्रौ योगविद्यया।
अभिभूतौ महात्मानौ स्तब्धौ तौ सम्बभूवतुः॥ ४९

विस्मितास्तु तदा देवा दृष्ट्वा तावतिबाधितौ।
चक्रुः किलकिलाशब्दं ततस्ते दीनमानसाः॥ ५०

क्रोशमानान्सुरान्दृष्ट्वा विष्णुं प्राह शचीपतिः।
विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं मधुसूदन॥ ५१

जह्येनां तरसा विष्णो यावन्नौ न दहेत्प्रभो।
तपसा दर्पितां दुष्टां मा विचारय माधव॥ ५२

इत्युक्तो भगवान्विष्णुः शक्रेण प्रथितेन च।
चक्रं सस्मार तरसा घृणां त्यक्त्वाथ माधवः॥ ५३

स्मृतमात्रं तु सम्प्राप्तं चक्रं विष्णुवशानुगम्।
दधार च करे क्रुद्धो वधार्थं शक्रनोदितः॥ ५४

ऐसा कहकर उन्होंने निद्राको प्रेरित किया। उस निद्राने देवताओंके पास आकर उनपर अपना प्रभाव डाल दिया, जिससे इन्द्रसहित सभी देवता निद्राके वशीभूत हो गये और गूँगेकी भाँति पड़े रहे॥ ४४॥

इन्द्रको निद्राके द्वारा नियन्त्रित तथा दीन देखकर भगवान् विष्णुने कहा—हे देवश्रेष्ठ! तुम मुझमें प्रविष्ट हो जाओ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें अन्यत्र पहुँचाता हूँ॥ ४५॥

विष्णुके इस प्रकार कहनेपर इन्द्र उनमें प्रवेश कर गये और उन श्रीहरिसे रक्षित होकर वे निर्भय तथा निद्रारहित हो गये॥ ४६॥

तब भगवान् विष्णुके द्वारा रक्षित इन्द्रको व्यथाशून्य देखकर शुक्राचार्यकी माता कुपित हो उठीं और यह वचन बोलीं—हे इन्द्र! सभी देवताओंके देखते-देखते मैं अपने तपोबलसे विष्णुसहित तुम्हें खा जाऊँगी; ऐसा मेरा तपोबल है॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर उन्होंने अपनी योगविद्याके द्वारा इन्द्र तथा विष्णुको आक्रान्त कर दिया और वे दोनों महात्मा स्तब्ध हो गये॥ ४९॥

उन दोनोंको बहुत बड़े संकटमें पड़ा देखकर देवताओंको महान् आश्चर्य हुआ और वे दुःखीचित्त हो जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ ५०॥

देवताओंको चीखते-चिल्लाते देखकर इन्द्रने विष्णुसे कहा—हे मधुसूदन! मैं [इस समय] आपकी अपेक्षा अधिक आक्रान्त हूँ। अतः हे विष्णो! हे प्रभो! यह हमें जबतक भस्म न कर दे, आप तपस्याके अभिमानमें चूर इस दुष्टाको शीघ्रतापूर्वक मार डालिये। हे माधव! अब आप सोच-विचार न करें॥ ५१-५२॥

कीर्तिमान् इन्द्रके ऐसा कहनेपर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने दया छोड़कर तत्काल सुदर्शन चक्रका स्मरण किया। विष्णुके वशमें रहनेवाला वह चक्र उनके स्मरण करते ही आ पहुँचा और इन्द्रसे प्रेरित होकर उन्होंने कुपित हो उसके वधके लिये चक्रको अपने हाथमें ले लिया॥ ५३-५४॥

गृहीत्वा तत्करे चक्रं शिरश्छिच्छेद रंहसा।
हतां दृष्ट्वा तु तां शक्रो मुदितश्चाभवत्तदा॥ ५५

देवाश्चातीव सन्तुष्टा हरिं जय जयेति च।
तुष्टुवुर्मुदिताः सर्वे सञ्जाता विगतज्वराः॥ ५६

इन्द्रविष्णू तु सञ्जातौ तत्क्षणाद्धृदयव्यथौ।
स्त्रीवधाच्छंकमानौ तु भृगोः शापं दुरत्ययम्॥ ५७

उस चक्रको हाथमें लेकर भगवान् विष्णुने बड़े वेगसे उसका सिर काट दिया। तब उसे मृत देखकर इन्द्र हर्षित हो उठे। सभी देवता भी अत्यन्त सन्तुष्ट होकर विष्णुकी जयकार करने लगे। वे प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और सन्तापरहित हो गये॥ ५५-५६॥

स्त्रीवधसे [होनेवाले पाप] तथा भृगुमुनिके भीषण शापकी शंका करते हुए वे भगवान् विष्णु तथा इन्द्र उसी समयसे दुःखीचित्त रहने लगे॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
शुक्रमातुर्वधवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

महात्मा भृगुद्वारा विष्णुको मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप देना, इन्द्रद्वारा अपनी पुत्री जयन्तीको शुक्राचार्यके लिये अर्पित करना, देवगुरु बृहस्पतिद्वारा शुक्राचार्यका रूप धारणकर दैत्योंका पुरोहित बनना

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा तु वधं घोरं चुक्रोध भगवान्भृगुः।
वेपमानोऽतिदुःखार्तः प्रोवाच मधुसूदनम्॥ १

भृगुरुवाच

अकृत्यं ते कृतं विष्णो जानन्पापं महामते।
वधोऽयं विप्रजाताया मनसा कर्तुमक्षमः॥ २

आख्यातस्त्वं सत्त्वगुणः स्मृतो ब्रह्मा च राजसः।
तथासौ तामसः शम्भुर्विपरीतं कथं स्मृतम्॥ ३

तामसस्त्वं कथं जातः कृतं कर्मातिनिन्दितम्।
अवध्या स्त्री त्वया विष्णो हता कस्मान्निरागसा॥ ४

शपामि त्वां दुराचारं किमन्यत्प्रकरोमि ते।
विधुरोऽहं कृतः पाप त्वयाहं शक्रकारणात्॥ ५

न शपेऽहं तथा शक्रं शपे त्वां मधुसूदन।
सदा छलपरोऽसि त्वं कीटयोनिर्दुराशयः॥ ६

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उस भयानक वधको देखकर भगवान् भृगु अत्यन्त कुपित हुए और दुःखसे व्याकुल होकर काँपते हुए वे मधुसूदन विष्णुसे कहने लगे॥ १॥

भृगु बोले—हे महाबुद्धिमान् विष्णो! जो नहीं करना चाहिये वह पाप आपने जान-बूझकर कर डाला। विप्र-स्त्रीके इस वधकी तो मनसे कल्पना करना भी अनुचित है॥ २॥

आप तो सत्त्वगुणसे सम्पन्न कहे गये हैं, ब्रह्मा रजोगुणी और शिव तमोगुणी बताये गये हैं; तब आपने अपने गुणके विपरीत कार्य क्यों किया? आप तामसी कैसे हो गये, जिससे आपने यह घोर निन्दनीय कर्म कर डाला? हे विष्णो! आपने उस अवध्य तथा निरपराध स्त्रीको क्यों मार डाला?॥ ३-४॥

[उन्होंने क्रोधपूर्वक कहा कि] अब मैं तुझ दुराचारीको शाप दे रहा हूँ, इसके अतिरिक्त तुम्हारा क्या प्रतीकार करूँ? अरे पापी! तुमने इन्द्रके हितके लिये मुझे विधुर बना दिया। हे मधुसूदन! मैं इन्द्रको शाप नहीं दूँगा, बल्कि तुम्हें ही शाप दूँगा। कृष्ण सर्पसदृश दुरभिप्रायवाले तुम सदा छल करनेमें ही तत्पर रहते हो॥ ५-६॥

ये च त्वां सात्त्विकं प्राहुस्ते मूर्खा मुनयः किल।
तामसस्त्वं दुराचारः प्रत्यक्षं मे जनार्दन॥ ७

अवतारा मृत्युलोके सन्तु मच्छापसम्भवाः।
प्रायो गर्भभवं दुःखं भुंक्ष्व पापाज्जनार्दन॥ ८

व्यास उवाच

ततस्तेनाथ शापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः।
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥ ९

राजोवाच

भृगुभार्या हता तत्र चक्रेणामिततेजसा।
गार्हस्थ्यञ्च पुनस्तस्य कथं जातं महात्मनः॥ १०

व्यास उवाच

इति शप्त्वा हरिं रोषात्तदादाय शिरस्त्वरन्।
काये संयोज्य तरसा भृगुः प्रोवाच कार्यवित्॥ ११

अद्य त्वां विष्णुना देवि हतां सञ्जीवयाम्यहम्।
यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा॥ १२

तेन सत्येन जीवेत यदि सत्यं ब्रवीम्यहम्।
पश्यन्तु देवताः सर्वा मम तेजोबलं महत्॥ १३

अद्भिस्त्वां प्रोक्ष्य शीताभिर्जीवयामि तपोबलात्।
सत्यं शौचं तथा वेदा यदि मे तपसो बलम्॥ १४

व्यास उवाच

अद्भिः सम्प्रोक्षिता देवी सद्यः सञ्जीविता तदा।
उत्थिता परमप्रीता भृगोर्भार्या शुचिस्मिता॥ १५

ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव।
साधु साध्विति तं तां तु तुष्टुवुः सर्वतो दिशम्॥ १६

एवं सञ्जीविता तेन भृगुणा वरवर्णिनी।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवाः सेन्द्रा विलोक्य तत्॥ १७

हे जनार्दन! जो मुनि तुम्हें सात्त्विक कहते हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं। मैंने तो प्रत्यक्ष जान लिय कि तुम तमोगुणी तथा दुराचारी हो। अतः हे जनार्दन! मेरे शापसे मृत्युलोकमें तुम्हारे अनेक अवता हों और [इस स्त्री-वधजन्य] पापके कारण बार-बार गर्भवाससे होनेवाले दुःखको भोगो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—उसी शापके कारण भगवान् विष्णु धर्मका ह्रास होनेपर संसारके कल्याणके लिये बार-बार मानवरूपोंमें प्रकट होते हैं॥ ९॥

राजा बोले—[हे व्यासजी!] जब अमित तेजस्वी चक्रके द्वारा भृगुपत्नीका वध हो गया, उसके बाद महात्मा भृगुका गार्हस्थ्य-जीवन कैसे व्यतीत हुआ?॥ १०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार रोषपूर्वक भगवान् विष्णुको शाप देकर कार्यकुशल महर्षि भृगु तत्काल उस [कटे] सिरको लेकर शीघ्रतापूर्वक [अपनी पत्नीके] धड़में जोड़ करके बोले—हे देवि! विष्णुके द्वारा तुम मारी जा चुकी हो, किंतु अब मैं तुम्हें फिरसे जीवित कर रहा हूँ। यदि मैं सम्पूर्ण धर्म जानता हूँ तथा उसका सम्यक् आचरण करता हूँ और सदा सत्य भाषण करता हूँ तो उसी सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ। सभी देवता मेरे महान् तेज-बलको देख लें। यदि मुझमें सत्य, पवित्रता, वेदाध्ययन तथा तपस्याका बल होगा तो मैं उन्हींके प्रभावसे शीतल जलसे तुम्हारा प्रोक्षण करके तुम्हें जीवित कर दूँगा॥ ११—१४॥

व्यासजी बोले—तब जलसे प्रोक्षित करते ही मधुर मुसकानवाली वे भृगुपत्नी शीघ्र ही जीवित हो गयीं और बड़ी प्रसन्नतापूर्वक उठकर खड़ी हो गयीं॥ १५॥

तब सोकर उठी हुईके समान उसे देखकर सब ओरसे लोग 'साधु-साधु'—ऐसा कहकर भृगुमुनि तथा उनकी भार्या दोनोंकी स्तुति करने लगे॥ १६॥

इस प्रकार उन महर्षि भृगुने उस सुन्दरीको जीवित कर दिया। यह देखकर इन्द्रसहित सभी देवता अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे॥ १७॥

इन्द्रः सुरानथोवाच मुनिना जीविता सती।
काव्यस्तप्त्वा तपो घोरं किं करिष्यति मन्त्रवित्॥ १८

व्यास उवाच

गता निद्रा सुरेन्द्रस्य देहेऽक्षेममभून्नृप।
स्मृत्वा काव्यस्य वृत्तान्तं मन्त्रार्थमतिदारुणम्॥ १९

विमृश्य मनसा शक्रो जयन्तीं स्वसुतां तदा।
उवाच कन्यां चार्वङ्गीं स्मितपूर्वमिदं वचः॥ २०

गच्छ पुत्रि मया दत्ता काव्याय त्वं तपस्विने।
समाराधय तन्वङ्गि मत्कृते तं वशं कुरु॥ २१

उपचारैर्मुनिं तैस्तैः समाराध्य मनःप्रियैः।
भयं मे तरसा गत्वा हर तत्र वराश्रमे॥ २२

सा पितुर्वचनं श्रुत्वा तत्रागच्छन्मनोरमा।
तमपश्यद्विशालाक्षी पिबन्तं धूममाश्रमे॥ २३

तस्य देहं समालोक्य स्मृत्वा वाक्यं पितुस्तदा।
कदलीदलमादाय वीजयामास तं मुनिम्॥ २४

निर्मलं शीतलं वारि समानीय सुवासितम्।
पानाय कल्पयामास भक्त्या परमया लघु॥ २५

छायां वस्त्रातपत्रेण भास्करे मध्यगे सति।
रचयामास तन्वङ्गी स्वयं धर्मे स्थिता सती॥ २६

फलान्यानीय दिव्यानि पक्वानि मधुराणि च।
मुमोचाग्रे मुनेस्तस्य भक्षार्थं विहितानि च॥ २७

कुशाः प्रादेशमात्रा हि हरिताः शुकसन्निभाः।
दधाराग्रेऽथ पुष्पाणि नित्यकर्मसमृद्धये॥ २८

निद्रार्थं कल्पयामास संस्तरं पल्लवान्वितम्।
तस्मिन्मुनौ चादरस्था चकार व्यजनं शनैः॥ २९

तत्पश्चात् इन्द्रने देवताओंसे कहा—भृगुमुनिने अपनी साध्वी भार्याको जीवित कर दिया। साथ ही मन्त्रज्ञानी शुक्राचार्य कठोर तपस्या करके [शिवसे मन्त्र प्राप्तकर] पता नहीं क्या कर डालेंगे!॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मन्त्रप्राप्तिके लिये शुक्राचार्यके अत्यन्त कठोर तपका स्मरण करके इन्द्रकी नींद समाप्त हो गयी और उनके शरीरमें व्याकुलता होने लगी॥ १९॥

तब मनमें भली-भाँति विचार करके इन्द्रने सुन्दर स्वरूपवाली अपनी पुत्री जयन्तीसे मुसकराते हुए कहा—हे पुत्रि! मैंने तुम्हें तपस्वी शुक्राचार्यको सौंप दिया। अतः हे तन्वंगि! अब तुम जाओ और मेरे कल्याणके लिये उनकी सेवा करो और उन्हें वशमें कर लो। उस उत्तम आश्रममें शीघ्र जाकर उनके मनको प्रिय लगनेवाले विविध उपचारोंसे उन्हें प्रसन्न करके मेरा भय दूर करो॥ २०—२२॥

विशाल नयनोंवाली वह सुन्दर कन्या पिताकी बात सुनकर [शुक्राचार्यके] आश्रममें गयी और वहाँपर उसने मुनिको [नीचेकी ओर सिर करके] धुएँका सेवन करते हुए देखा॥ २३॥

तब उनके [तपोरत] शरीरको देखकर और पिताकी बात याद करके वह केलेका एक पत्ता लेकर मुनिको पंखा झलने लगी॥ २४॥

तबसे वह उनके पीनेके लिये अत्यन्त स्वच्छ, शीतल, सुगन्धित तथा रुचिकर जल ले आकर [उनके समक्ष] श्रद्धापूर्वक उपस्थित किया करती। सूर्यके मध्य आकाशमें होते ही वह सुन्दरी उनके ऊपर वस्त्रसे छतरी बनाकर छाया कर देती थी। वह साध्वी सदा पातिव्रत्य धर्मका पालन करती थी॥ २५-२६॥

वह शास्त्रविहित दिव्य, पके तथा मीठे फल लाकर खानेके लिये उन मुनिके समक्ष रख देती थी। वह कन्या उनके नित्यकर्मके सम्पादनार्थ पुष्प और तोतेके वर्णके समान प्रादेशमात्र मापवाले हरे-हरे कुश उनके आगे प्रस्तुत कर देती थी। उनके शयनके लिये वह कोमल-कोमल पत्तोंका बिछौना तैयार करती थी और फिर उन मुनिके प्रति आदरभाव रखकर धीरे-धीरे पंखा झलने लगती थी॥ २७—२९॥

हावभावादिकं किञ्चिद्विकारजननं च तत्।
न चकार जयन्ती सा शापभीता मुनेस्तदा॥ ३०

स्तुतिं चकार तन्वङ्गी गीर्भिस्तस्य महात्मनः।
सुभाषिण्यनुकूलाभिः प्रीतिकर्त्रीभिरप्युत॥ ३१

प्रबुद्धे जलमादाय दधाराचमनाय च।
मनोऽनुकूलं सततं कुर्वन्ती व्यचरत्तदा॥ ३२

इन्द्रोऽपि सेवकांस्तत्र प्रेषयामास चातुरः।
प्रवृत्तिं ज्ञातुकामो वै मुनेस्तस्य जितात्मनः॥ ३३

एवं बहूनि वर्षाणि परिचर्यापराभवत्।
निर्विकारा जितक्रोधा ब्रह्मचर्यपरा सती॥ ३४

पूर्णे वर्षसहस्रे तु परितुष्टो महेश्वरः।
वरेण छन्दयामास काव्यं प्रीतमना हरः॥ ३५

ईश्वर उवाच

यच्च किञ्चिदपि ब्रह्मन्विद्यते भृगुनन्दन।
प्रतिपश्यसि यत्सर्वं यच्च वाच्यं न कस्यचित्॥ ३६

सर्वाभिभावकत्वेन भविष्यसि न संशयः।
अवध्यः सर्वभूतानां प्रजेशश्च द्विजोत्तमः॥ ३७

व्यास उवाच

एवं दत्त्वा वराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत।
काव्यस्तामथ संवीक्ष्य जयन्तीं वाक्यमब्रवीत्॥ ३८

कासि कस्यासि सुश्रोणि ब्रूहि किं ते चिकीर्षितम्।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कार्यं वद वरोरु मे॥ ३९

किं वाञ्छसि करोम्यद्य दुष्करं चेत्सुलोचने।
प्रीतोऽस्मि त्वत्कृतेनाद्य वरं वरय सुव्रते॥ ४०

मुनिके शापसे भयभीत होकर वह जयन्ती उनके मनमें विकार उत्पन्न करनेवाला कोई हाव-भाव प्रदर्शित नहीं करती थी॥ ३०॥

सुकुमार अंगोंवाली तथा मृदुभाषण करनेवाली वह कन्या उन महात्माके मनके अनुकूल तथा प्रीति उत्पन्न करनेवाले शब्दोंसे उनकी स्तुति करती थी। तत्पश्चात् उनके जाग जानेपर आचमनके लिये जल लाकर रख देती थी। इस प्रकार सदा उनके मनके अनुकूल कार्य करती हुई उनके साथ व्यवहार करती थी॥ ३१-३२॥

चिन्तासे व्याकुल इन्द्र भी उन जितेन्द्रिय मुनिकी प्रवृत्ति जाननेकी इच्छासे अपने सेवक भेजते रहते थे॥ ३३॥

इस प्रकार वह साध्वी कन्या क्रोधपर विजय प्राप्त करके, निर्विकार होकर तथा ब्रह्मचर्यपरायण रहती हुई बहुत वर्षोंतक मुनिकी सेवामें संलग्न रही॥ ३४॥

तदनन्तर हजार वर्ष पूर्ण होनेपर महेश्वर शिव प्रसन्न हो गये और प्रसन्नतापूर्वक वे शुक्राचार्यसे वर माँगनेके लिये कहने लगे॥ ३५॥

ईश्वर बोले—हे ब्रह्मन्! हे भृगुनन्दन! जगत्में जो कुछ भी विद्यमान है, आप जो सब देख रहे हैं तथा जो किसीकी भी वाणीका विषय नहीं है—उन सबके स्वामित्वसे आप युक्त हो जायँगे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। आप सभी प्राणियोंसे अवध्य होंगे। आप प्रजाओंके स्वामी तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ ३६-३७॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार वर प्रदान करके शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। तत्पश्चात् जयन्तीको देखकर शुक्राचार्यने उससे कहा—हे सुश्रोणि! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो; मुझे अपनी अभिलाषा बताओ। हे सुन्दरि! तुम यहाँ किसलिये आयी हो, अपना कार्य बताओ। हे सुनयने! तुम क्या चाहती हो; यदि वह कार्य दुष्कर भी हो तो भी मैं उसे अभी कर दूँगा। हे सुव्रते! आज मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ, अतः वर माँग लो॥ ३८—४०॥

ततः सा तु मुनिं प्राह जयन्ती मुदितानना।
चिकीर्षितं मे भगवंस्तपसा ज्ञातुमर्हसि॥ ४१

शुक्र उवाच

ज्ञातं मया तथापि त्वं ब्रूहि यन्मनसेप्सितम्।
करोमि सर्वथा भद्रं प्रीतोऽस्मि परिचर्यया॥ ४२

जयन्त्युवाच

शक्रस्याहं सुता ब्रह्मन् पित्रा तुभ्यं समर्पिता।
जयन्ती नामतश्चाहं जयन्तावरजा मुने॥ ४३

सकामास्मि त्वयि विभो वाञ्छितं कुरु मेऽधुना।
रंस्ये त्वया महाभाग धर्मतः प्रीतिपूर्वकम्॥ ४४

शुक्र उवाच

मया सह त्वं सुश्रोणि दशवर्षाणि भामिनि।
सर्वैर्भूतैरदृश्या च रमस्वेह यदृच्छया॥ ४५

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा गृहं गत्वा जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्।
तया सहावसद्देव्या दशवर्षाणि भार्गवः॥ ४६

अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः।
दैत्यास्तमागतं श्रुत्वा कृतार्थं मन्त्रसंयुतम्॥ ४७

अभिजग्मुर्गृहे तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः।
नापश्यन् रममाणं ते जयन्त्या सह संयुतम्॥ ४८

तदा विमनसः सर्वे जाता भग्नोद्यमाश्च ते।
चिन्तापरातिदीनाश्च वीक्षमाणाः पुनः पुनः॥ ४९

अदृष्ट्वा तं तु संवृत्तं प्रतिजग्मुर्यथागतम्।
स्वगृहान्दैत्यवर्यास्ते चिन्ताविष्टा भयातुराः॥ ५०

रममाणं तथा ज्ञात्वा शक्रः प्रोवाच तं गुरुम्।
बृहस्पतिं महाभागं किं कर्तव्यमितः परम्॥ ५१

तदनन्तर प्रसन्न मुखमण्डलवाली जयन्तीने मुनिसे कहा—हे भगवन्! आप तो अपनी तपस्यासे मेरा अभिलषित जान लेनेमें समर्थ हैं॥ ४१॥

शुक्राचार्य बोले—वह तो मैंने जान लिया, फिर भी जो तुम्हारा मनोभिलषित है, उसे तुम मुझे बताओ। मैं हर तरहसे तुम्हारा कल्याण करूँगा; क्योंकि मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ॥ ४२॥

जयन्ती बोली—हे ब्रह्मन्! मैं इन्द्रकी पुत्री हूँ और पिताजीने मुझे आपको सौंप दिया है। हे मुने! मेरा नाम जयन्ती है और मैं जयन्तकी छोटी बहन हूँ॥ ४३॥

हे विभो! मैं आपपर आसक्त हूँ, अतः मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिये। हे महाभाग! मैं पातिव्रत-धर्मके अनुसार प्रेमपूर्वक आपके साथ विहार करूँगी॥ ४४॥

शुक्राचार्य बोले—हे सुश्रोणि! हे भामिनि! तुम सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहती हुई दस वर्षोंतक इच्छानुसार मेरे साथ यहाँ विहार करो॥ ४५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर शुक्राचार्यने घर जाकर जयन्तीके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् मायासे आच्छादित होकर सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए वे ऐश्वर्यसम्पन्न मुनि शुक्राचार्य देवी जयन्तीके साथ दस वर्षोंतक वहाँ रहे॥ ४६½॥

गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल हो मन्त्रसे युक्त होकर आया हुआ सुनकर सभी दैत्य उनके दर्शनकी इच्छासे प्रसन्नतापूर्वक उनके घर गये, किंतु वे उन्हें देख न सके; क्योंकि उस समय वे जयन्तीके साथ विहार कर रहे थे॥ ४७-४८॥

इससे उन सभी दैत्योंका मन उदास हो गया और उनके सभी उद्योग व्यर्थ हो गये। वे बहुत चिन्तित और दुःखी होकर उन्हें बार-बार खोजते रहे। अन्तमें [मायासे] आच्छादित उन मुनिको न देखकर वे चिन्तित तथा भयभीत दैत्य जैसे आये थे वैसे ही अपने घर लौट गये॥ ४९-५०॥

तत्पश्चात् शुक्राचार्यको विहार करता हुआ जानकर इन्द्रने अपने गुरु महाभाग बृहस्पतिसे कहा—अब क्या किया जाय?॥ ५१॥

गच्छाद्य दानवान्ब्रह्मन्मायया त्वं प्रलोभय।
अस्माकं कुरु कार्यं त्वं बुद्ध्या सञ्चिन्त्य मानद॥ ५२

तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यं रममाणं सुसंवृतम्।
ज्ञात्वा तद्रूपमास्थाय दैत्यान्प्रति ययौ गुरुः॥ ५३

गत्वा तत्रातिभक्त्यासौ दानवान्समुपाह्वयत्।
आगतास्तेऽसुराः सर्वे ददृशुः काव्यमग्रतः॥ ५४

प्रणम्य संस्थिताः सर्वे काव्यं मत्वातिमोहिताः।
न विदुस्ते गुरोर्मायां काव्यरूपविभाविनीम्॥ ५५

तानुवाच गुरुः काव्यरूपः प्रच्छन्नमायया।
स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय वै॥ ५६

अहं वो बोधयिष्यामि विद्यां प्राप्ताममायया।
तपसा तोषितः शम्भुर्युष्मत्कल्याणहेतवे॥ ५७

तच्छ्रुत्वा प्रीतमनसो जातास्ते दानवोत्तमाः।
कृतकार्यं गुरुं मत्वा जहृषुस्ते विमोहिताः॥ ५८

प्रणेमुस्ते मुदा युक्ता निरातङ्का गतव्यथाः।
देवेभ्यश्च भयं त्यक्त्वा तस्थुः सर्वे निरामयाः॥ ५९

हे ब्रह्मन्! आप दानवोंके पास जाइये और मायाके द्वारा उन्हें मोहमें डाल दीजिये। हे मानद! बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके आप हमारा कार्य सिद्ध कर दीजिये॥ ५२॥

इन्द्रकी बात सुनकर देवगुरु बृहस्पति शुक्राचार्यको मायाच्छादित होनेके कारण [अदृश्य हो जयन्तीके साथ] क्रीडा करते जानकर उन्हींका रूप धारण करके दैत्योंके पास गये॥ ५३॥

वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े आदरके साथ दानवोंको बुलवाया। तब सभी दानव आ गये और उन्होंने शुक्राचार्यको अपने सम्मुख देखा॥ ५४॥

मायासे विमोहित सभी दैत्य [उन छद्मवेषधारी देवगुरु बृहस्पतिको ही] शुक्राचार्य समझकर उन्हें प्रणाम करके उनके समक्ष खड़े हो गये। वे शुक्राचार्यका कृत्रिम रूप प्रकट करनेवाली देवगुरु बृहस्पतिकी मायाको नहीं जान सके॥ ५५॥

तत्पश्चात् छद्म मायासे शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले गुरु बृहस्पतिने उनसे कहा—मेरे यजमानोंका स्वागत है। मैं आपलोगोंके हितके लिये अब आ गया हूँ। मैंने आप सबके कल्याणके लिये तपस्याके द्वारा भगवान् शिवको प्रसन्न कर लिया और अब मैं उनसे प्राप्त विद्याको निष्कपट भावसे आपलोगोंको बता दूँगा॥ ५६-५७॥

यह सुनकर वे श्रेष्ठ दानव प्रसन्नचित्त हो गये। गुरु शुक्राचार्यको अपने उद्देश्यमें सफल समझकर वे मोहग्रस्त दानव बहुत हर्षित हुए और उन्होंने बड़ी प्रसन्नताके साथ उन्हें प्रणाम किया। वे भयमुक्त तथा सन्तापरहित हो गये। अब देवताओंका भय छोड़कर वे सभी दैत्य स्वस्थचित्त होकर रहने लगे॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
जयन्त्या शुक्रसहवासवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

शुक्राचार्यरूपधारी बृहस्पतिका दैत्योंको उपदेश देना

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा पश्चाद् भृगुरूपेण वर्तता।
छलेनैव हि दैत्यानां पौरोहित्येन धीमता॥ १

राजा बोले—[हे व्यासजी!] तत्पश्चात् शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले बुद्धिमान् गुरु बृहस्पतिने छलपूर्वक दैत्योंका पुरोहित बनकर क्या किया?॥ १॥

गुरुः सुराणामनिशं सर्वविद्यानिधिस्तथा।
सुतोऽङ्गिरस एवासौ स कथं छलकृन्मुनिः॥ २

वे तो देवताओंके गुरु हैं, सदासे सभी विद्याओंके निधान हैं और महर्षि अंगिराके पुत्र हैं; तब उन मुनिने छल क्यों किया?॥ २॥

धर्मशास्त्रेषु सर्वेषु सत्यं धर्मस्य कारणम्।
कथितं मुनिभिर्येन परमात्मापि लभ्यते॥ ३

मुनियोंने समस्त धर्मशास्त्रोंमें सत्यको ही धर्मका मूल बताया है, जिससे परमात्मातक प्राप्त किये जा सकते हैं॥ ३॥

वाचस्पतिस्तथा मिथ्यावक्ता चेद्दानवान्प्रति।
कः सत्यवक्ता संसारे भविष्यति गृहाश्रमी॥ ४

जब बृहस्पति भी दानवोंसे झूठ बोले, तब संसारमें कौन गृहस्थ सत्य बोलनेवाला हो सकेगा?॥ ४॥

आहारादधिकं भोज्यं ब्रह्माण्डविभवेऽपि न।
तदर्थं मुनयो मिथ्या प्रवर्तन्ते कथं मुने॥ ५

हे मुने! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका वैभव पासमें हो जानेपर भी [कोई व्यक्ति अपने] आहारसे अधिक नहीं खा सकता, तब उसीके निमित्त मुनिलोग भी मिथ्या-भाषणमें किसलिये प्रवृत्त हो जाते हैं?॥ ५॥

शब्दप्रमाणमुच्छेदं शिष्टाभावे गतं न किम्।
छलकर्मप्रवृत्ते वाविगीतत्वं गुरौ कथम्॥ ६

इस प्रकारके अशिष्ट आचरणसे देवगुरु बृहस्पतिके वचनोंकी प्रामाणिकता क्या नष्ट नहीं हो गयी और इस छलकर्ममें लिप्त होनेसे उन्हें निष्कलंक कैसे कहा जा सकता है?॥ ६॥

देवाः सत्त्वसमुद्भूता राजसा मानवाः स्मृताः।
तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ता उत्पत्तौ मुनिभिः किल॥ ७

मुनियोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे तथा पशु-पक्षियोंको तमोगुणसे उत्पन्न बतलाया है॥ ७॥

अमराणां गुरुः साक्षान्मिथ्यावादी स्वयं यदि।
तदा कः सत्यवक्ता स्याद्राजसस्तामसः पुनः॥ ८

यदि स्वयं देवगुरु बृहस्पति ही साक्षात् मिथ्या-भाषणमें प्रवृत्त हो गये, तब रजोगुण तथा तमोगुणसे युक्त कौन प्राणी सत्यवादी हो सकेगा?॥ ८॥

क्व स्थितिस्तस्य धर्मस्य सन्देहोऽयं ममात्मनः।
का गतिः सर्वजन्तूनां मिथ्याभूते जगत्त्रये॥ ९

इस प्रकार तीनों लोकोंके मिथ्यापरायण हो जानेपर धर्मकी स्थिति कहाँ होगी और सभी प्राणियोंकी क्या दशा होगी? यही मेरा संदेह है॥ ९॥

हरिर्ब्रह्मा शचीकान्तस्तथान्ये सुरसत्तमाः।
सर्वे छलविधौ दक्षा मनुष्याणाञ्च का कथा॥ १०

भगवान् विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र तथा और भी दूसरे महान् देवतागण—सब छलकार्यमें निपुण हैं, तब मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ १०॥

कामक्रोधाभिसन्तप्ता लोभोपहतचेतसः।
छले दक्षाः सुराः सर्वे मुनयश्च तपोधनाः॥ ११

सभी देवता और तपोधन मुनिगण भी काम तथा क्रोधसे सन्तप्त और लोभसे व्याकुलचित्त होकर छल-प्रपंचमें तत्पर रहते हैं॥ ११॥

वसिष्ठो वामदेवश्च विश्वामित्रो गुरुस्तथा।
एते पापरताः कात्र गतिर्धर्मस्य मानद॥ १२

हे मानद! जब वसिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र और गुरु बृहस्पति—ये लोग भी पाप-कर्ममें संलग्न हो गये, तब धर्मकी क्या दशा होगी?॥ १२॥

इन्द्रोऽग्निश्चन्द्रमा वेधाः परदाराभिलम्पटाः।
आर्यत्वं भुवनेष्वेषु स्थितं कुत्र मुने वद॥ १३

इन्द्र, अग्नि, चन्द्रमा और ब्रह्मातक कामके वशीभूत हो गये, तब हे मुने! आप ही बतायें कि इन भुवनोंमें शिष्टता कहाँ रह गयी?॥ १३॥

वचनं कस्य मन्तव्यमुपदेशधियानघ।
सर्वे लोभाभिभूतास्ते देवाश्च मुनयस्तदा॥ १४

व्यास उवाच

किं विष्णुः किं शिवो ब्रह्मा मघवा किं बृहस्पतिः।
देहवान् प्रभवत्येव विकारैः संयुतस्तदा॥ १५

रागी विष्णुः शिवो रागी ब्रह्मापि रागसंयुतः।
(रागवान्किमकृत्यं वै न करोति नराधिप)
रागवानपि चातुर्याद्विदेह इव लक्ष्यते॥ १६

सम्प्राप्ते संकटे सोऽपि गुणैः सम्बाध्यते किल।
कारणाद्रहितं कार्यं कथं भवितुमर्हति॥ १७

ब्रह्मादीनां च सर्वेषां गुणा एव हि कारणम्।
पञ्चविंशत्समुद्भूता देहास्तेषां न चान्यथा॥ १८

काले मरणधर्मास्ते सन्देहः कोऽत्र ते नृप।
परोपदेशे विस्पष्टं शिष्टाः सर्वे भवन्ति च॥ १९

विप्लुतिर्ह्यविशेषेण स्वकार्ये समुपस्थिते।
कामः क्रोधस्तथा लोभद्रोहाहङ्कारमत्सराः॥ २०

देहवान्कः परित्यक्तुमीशो भवति तान्पुनः।
संसारोऽयं महाराज सदैवैवंविधः स्मृतः॥ २१

नान्यथा प्रभवत्येव शुभाशुभमयः किल।
कदाचिद्भगवान्विष्णुस्तपश्चरति दारुणम्॥ २२

कदाचिद्विविधान्यज्ञान्वितनोति सुराधिपः।
कदाचित्तु रमारङ्गरञ्जितः परमेश्वरः॥ २३

रमते किल वैकुण्ठे तद्वशस्तरुणो विभुः।
कदाचिद्दानवैः सार्धं युद्धं परमदारुणम्॥ २४

करोति करुणासिन्धुस्तद्बाणापीडितो भृशम्।
कदाचिज्जयमाप्नोति दैवात्सोऽपि पराजयम्॥ २५

सुखदुःखाभिभूतोऽसौ भवत्येव न संशयः।
शेषे शेते कदाचिद्वै योगनिद्रासमावृतः॥ २६
काले जागर्ति विश्वात्मा स्वभावप्रतिबोधितः।

हे पुण्यात्मन्! जब वे सब देवता और मुनिलोग भी लोभके वशीभूत हैं, तब उपदेश ग्रहण करनेके विचारसे किसका वचन प्रमाण माना जाय?॥ १४॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] चाहे विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र और बृहस्पति ही क्यों न हों—देहधारी तो विकारोंसे युक्त रहता ही है॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेशतक आसक्तिसे ग्रस्त हैं। (हे राजन्! आसक्त प्राणी कौन-सा अनर्थ नहीं कर बैठता) आसक्तिसे युक्त प्राणी भी चतुराईके कारण विरक्तकी भाँति दिखायी पड़ता है, किंतु संकट उपस्थित होनेपर वह [सत्त्व, रज, तम] गुणोंसे आबद्ध हो जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कैसे हो सकता है? ब्रह्मा आदि समस्त देवताओंके भी मूल कारण गुण ही हैं। उनके भी शरीर पचीस तत्त्वोंसे बने हैं, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! समय आ जानेपर वे भी मृत्युको प्राप्त होते हैं, इसमें आपको संशय कैसा?॥ १६—१८$\frac{१}{२}$॥

यह पूर्णरूपसे स्पष्ट है कि दूसरोंको उपदेश देनेमें सभी लोग शिष्ट बन जाते हैं, किंतु अपना कार्य पड़नेपर उस उपदेशका पूर्णतः लोप हो जाता है। जो काम, क्रोध, लोभ, द्रोह, अहंकार और डाह आदि विकार हैं; उन्हें छोड़नेमें कौन-सा देहधारी प्राणी समर्थ हो सकता है? हे महाराज! यह संसार सदासे ही इसी प्रकार शुभाशुभसे युक्त कहा गया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ १९—२१$\frac{१}{२}$॥

कभी भगवान् विष्णु घोर तपस्या करते हैं, कभी वे ही सुरेश्वर अनेक प्रकारके यज्ञ करते हैं, कभी वे परमेश्वर विष्णु लक्ष्मीके प्रेम-रसमें सिक्त होकर उनके वशीभूत हो वैकुण्ठमें विहार करते हैं। वे करुणासागर विष्णु कभी दानवोंके साथ अत्यन्त भीषण युद्ध करते हैं और उनके बाणोंसे आहत हो जाते हैं। [उस युद्धमें] वे कभी विजयी होते हैं और कभी दैववश पराजित भी हो जाते हैं। इस प्रकार वे भी सुख तथा दुःखसे प्रभावित होते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। वे विश्वात्मा कभी योगनिद्राके वशवर्ती होकर शेषशय्यापर शयन करते हैं और कभी सृष्टिकाल आनेपर योगमायासे प्रेरित होकर जाग भी जाते हैं॥ २२—२६$\frac{१}{२}$॥

शर्वो ब्रह्मा हरिश्चेति इन्द्राद्या ये सुरास्तथा॥ २७

मुनयश्च विनिर्माणैः स्वायुषो विचरन्ति हि।
निशावसाने सञ्जाते जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २८

म्रियते नात्र सन्देहो नृप किञ्चित्कदापि च।
स्वायुषोऽन्ते पद्मजाद्याः क्षयमृच्छन्ति पार्थिव॥ २९

प्रभवन्ति पुनर्विष्णुहरशक्रादयः सुराः।
तस्मात्कामादिकान्भावान्देहवान्प्रतिपद्यते ॥ ३०

नात्र ते विस्मयः कार्यः कदाचिदपि पार्थिव।
संसारोऽयं तु सन्दिग्धः कामक्रोधादिभिर्नृप॥ ३१

दुर्लभस्तद्विनिर्मुक्तः पुरुषः परमार्थवित्।
यो बिभेतीह संसारे स दारान्न करोत्यपि॥ ३२

विमुक्तः सर्वसङ्गेभ्यो विचरत्यविशङ्कितः।
तस्माद् बृहस्पतेर्भार्या शशिना लम्भिता पुनः॥ ३३

गुरुणा लम्भिता भार्या तथा भ्रातुर्यवीयसः।
एवं संसारचक्रेऽस्मिन् रागलोभादिभिर्वृतः॥ ३४

गार्हस्थ्यञ्च समास्थाय कथं मुक्तो भवेन्नरः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन हित्वा संसारसारताम्॥ ३५

आराधयेन्महेशानीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
तन्मायागुणतश्छन्नं जगदेतच्चराचरम्॥ ३६

भ्रमत्युन्मत्तवत्सर्वं मदिरामत्तवन्नृप।
तस्या आराधनेनैव गुणान्सर्वान्विमृद्य च॥ ३७

मुक्तिं भजेत मतिमान्नान्यः पन्थास्त्वितः परः।
आराधिता महेशानी न यावत्कुरुते कृपाम्॥ ३८

तावद्भवेत्सुखं कस्मात्कोऽन्योऽस्ति दयया युतः।
करुणासागरामेतां भजेत्तस्मादमायया॥ ३९
यस्यास्तु भजनेनैव जीवन्मुक्तत्वमश्नुते।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र आदि जो देवता तथा मुनिगण हैं—वे भी अपनी आयुके परिमाणकालतक ही जीवित रहते हैं। हे राजन्! अन्तकाल आनेपर स्थावर-जंगमात्मक यह जगत् भी विनष्ट हो जाता है, इसमें कभी भी कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये। हे भूपाल! अपनी आयुका अन्त हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र आदि देवता भी विनष्ट हो जाते हैं और [सृष्टिकाल आनेपर] पुनः ये उत्पन्न भी हो जाते हैं॥ २७—२९½ ॥

अतएव देहधारी प्राणी काम आदि भावोंसे ग्रस्त हो ही जाता है; हे राजन्! इस विषयमें आपको कभी भी विस्मय नहीं करना चाहिये। हे राजन्! यह संसार तो काम, क्रोध आदिसे ओतप्रोत है। इनसे पूर्णतः मुक्त तथा परम तत्त्वको जाननेवाला पुरुष दुर्लभ है॥ ३०-३१½ ॥

जो इस संसारमें [काम, क्रोध आदि विकारोंसे] डरता है, वह विवाह नहीं करता। वह समस्त प्रकारकी आसक्तियोंसे मुक्त होकर निर्भीकतापूर्वक विचरता है। इसके विपरीत संसारसे आबद्ध रहनेके कारण ही बृहस्पतिकी पत्नीको चन्द्रमाने रख लिया था और देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी पत्नीको अपना लिया था। इस प्रकार इस संसार-चक्रमें राग, लोभ आदिसे जकड़ा हुआ मनुष्य गृहस्थीमें आसक्त रहकर भला मुक्त कैसे हो सकता है?॥ ३२—३४½ ॥

अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ संसारमें आसक्तिका त्याग करके सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती महेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये। हे राजन्! यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उन्हींके मायारूपी गुणसे आच्छादित होकर उन्मत्त तथा मदिरापान करके मतवाले मनुष्यकी भाँति चक्कर काटता रहता है॥ ३५-३६½ ॥

उन्हींकी आराधनाके द्वारा [सत्त्व आदि] सभी गुणोंको पराभूत करके बुद्धिमान् मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर सकता है, इसके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग नहीं है। आराधित होकर महेश्वरी जबतक कृपा नहीं करतीं, तबतक सुख कैसे हो सकता है? उनके सदृश दयावान् दूसरा कौन है? अतः निष्कपट भावसे करुणासागर भगवतीकी आराधना करनी चाहिये, जिनके भजनसे मनुष्य जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकता है॥ ३७—३९½ ॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य सेविता न महेश्वरी॥ ४०

निःश्रेणिकाग्रात्पतिता अध इत्येव विद्महे।
अहङ्कारावृतं विश्वं गुणत्रयसमन्वितम्॥ ४१

असत्येनापि सम्बद्धं मुच्यते कथमन्यथा।
हित्वा सर्वं ततः सर्वैः संसेव्या भुवनेश्वरी॥ ४२

राजोवाच

किं कृतं गुरुणा तत्र काव्यरूपधरेण च।
कदा शुक्रः समायातस्तन्मे ब्रूहि पितामह॥ ४३

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि यत्कृतं गुरुणा तदा।
कृत्वा काव्यस्वरूपञ्च प्रच्छन्नेन महात्मना॥ ४४

गुरुणा बोधिता दैत्या मत्वा काव्यं स्वकं गुरुम्।
विश्वासं परमं कृत्वा बभूवुस्तन्मयास्तदा॥ ४५

विद्यार्थं शरणं प्राप्ता भृगुं मत्वातिमोहिताः।
गुरुणा विप्रलब्धास्ते लोभात्को वा न मुह्यति॥ ४६

दशवर्षात्मके काले सम्पूर्णसमये तदा।
जयन्त्या सह क्रीडित्वा काव्यो याज्यानचिन्तयत्॥ ४७

आशया मम मार्गं ते पश्यन्तः संस्थिताः किल।
गत्वा तान्वै प्रपश्येऽहं याज्यानतिभयातुरान्॥ ४८

मा देवेभ्यो भयं तेषां मद्भक्तानां भवेदिति।
सञ्चिन्त्य बुद्धिमास्थाय जयन्तीं प्रत्युवाच ह॥ ४९

देवानेवोपसंयान्ति पुत्रा मे चारुलोचने।
समयस्तेऽद्य सम्पूर्णो जातोऽयं दशवार्षिकः॥ ५०

तस्माद् गच्छाम्यहं देवि द्रष्टुं याज्यान्सुमध्यमे।
पुनरेवागमिष्यामि तवान्तिकमनुद्रुतः॥ ५१

दुर्लभ मनुष्य-जन्म पाकर जिसने उन महेश्वरीकी उपासना नहीं की, वह मानो अन्तिम सीढ़ीसे फिसलकर गिर गया—मैं तो यही धारणा रखता हूँ। सम्पूर्ण विश्व अहंकारसे आच्छादित है, तीनों गुणोंसे युक्त है तथा असत्यसे बँधा हुआ है, तब प्राणी मुक्त कैसे हो सकता है? अतः सब कुछ छोड़कर सभी लोगोंको भगवती भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये॥ ४०—४२॥

राजा बोले—हे पितामह! शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिने वहाँ दैत्योंके पास पहुँचकर क्या किया और शुक्राचार्य पुनः कब लौटे? वह हमें बताइये॥ ४३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब गोपनीय ढंगसे शुक्राचार्यका स्वरूप बनाकर देवगुरुने जो कुछ किया, वह मैं बताता हूँ, आप सुनिये॥ ४४॥

देवगुरु बृहस्पतिने दैत्योंको बोध प्रदान किया। तब शुक्राचार्यको अपना गुरु समझकर और उनपर पूर्ण विश्वास करके सभी दैत्य उन्हींके कथनानुसार व्यवहार करने लगे॥ ४५॥

अत्यधिक मोहितचित्त वे दैत्य बृहस्पतिको शुक्राचार्य समझकर विद्याप्राप्तिके लिये उनके शरणागत हुए। देवगुरु बृहस्पतिने भी उन्हें बहुत ठगा। [यह सत्य है कि] लोभसे कौन-सा प्राणी मोहमें नहीं पड़ जाता॥ ४६॥

तब जयन्तीके साथ क्रीडा करते-करते निर्धारित प्रतिज्ञासम्बन्धी दस वर्षकी अवधि पूर्ण हो जानेपर शुक्राचार्य अपने यजमानोंके विषयमें विचार करने लगे कि मेरी राह देखते हुए वे आशान्वित हो बैठे होंगे। अतः अब मैं चलकर अपने उन अत्यन्त भयभीत यजमानोंको देखूँ। कहीं ऐसा न हो कि मेरे उन भक्तोंके सम्मुख देवताओंसे कोई भय उत्पन्न हो गया हो॥ ४७-४८$\frac{1}{2}$॥

यह सोचकर अपनी बुद्धि स्थिर करके उन्होंने जयन्तीसे कहा—हे सुनयने! मेरे पुत्रसदृश दैत्यगण देवताओंके पास कालक्षेप कर रहे हैं। प्रतिज्ञानुसार तुम्हारे साथ रहनेका दस वर्षका समय पूरा हो चुका है, अतः हे देवि! अब मैं अपने यजमानोंसे मिलने जा रहा हूँ। हे सुमध्यमे! मैं पुनः तुम्हारे पास शीघ्र ही लौट आऊँगा॥ ४९—५१॥

तथेति तमुवाचाथ जयन्ती धर्मवित्तमा।
यथेष्टं गच्छ धर्मज्ञ न ते धर्मं विलोपये॥ ५२

तच्छ्रुत्वा वचनं काव्यो जगाम त्वरितस्ततः।
अपश्यद्दानवानां च पार्श्वे वाचस्पतिं तदा॥ ५३

छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयन्तं छलेन तान्।
जैनं धर्मं कृतं स्वेन यज्ञनिन्दापरं तथा॥ ५४

भो देवरिपवः सत्यं ब्रवीमि भवतां हितम्।
अहिंसा परमो धर्मोऽहन्तव्या ह्याततायिनः॥ ५५

द्विजैर्भोगरतैर्वेदे दर्शितं हिंसनं पशोः।
जिह्वास्वादपरैः काममहिंसैव परा मता॥ ५६

एवंविधानि वाक्यानि वेदशास्त्रपराणि च।
ब्रुवाणं गुरुमाकर्ण्य विस्मितोऽसौ भृगोः सुतः॥ ५७

चिन्तयामास मनसा मम द्वेष्यो गुरुः किल।
वञ्चिताः किल धूर्तेन याज्या मे नात्र संशयः॥ ५८

धिग्लोभं पापबीजं वै नरकद्वारमूर्जितम्।
गुरुरप्यनृतं ब्रूते प्रेरितो येन पाप्मना॥ ५९

प्रमाणं वचनं यस्य सोऽपि पाखण्डधारकः।
गुरुः सुराणां सर्वेषां धर्मशास्त्रप्रवर्तकः॥ ६०

किं किं न लभते लोभान्मलिनीकृतमानसः।
अन्योऽपि गुरुरप्येवं जातः पाखण्डपण्डितः॥ ६१

शैलूषचेष्टितं सर्वं परिगृह्य द्विजोत्तमः।
वञ्चयत्यतिसम्मूढान्दैत्यान्याज्यान्ममाप्यसौ ॥ ६२

परम धर्मपरायणा जयन्तीने उनसे कहा—हे धर्मज्ञ! बहुत ठीक है, आप स्वेच्छापूर्वक जाइये। मैं आपका धर्म लुप्त नहीं होने दूँगी॥ ५२॥

उसका यह वचन सुनकर शुक्राचार्य वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि दैत्योंके पास विराजमान होकर बृहस्पति छद्मरूप धारण करके शान्तचित्त हो छलसे उन्हें अपने द्वारा रचित जिन-धर्म तथा यज्ञनिन्दापरक वचनोंकी शिक्षा इस प्रकार दे रहे हैं—'हे देवताओंके शत्रुगण! मैं सत्य तथा आपलोगोंके हितकी बात बता रहा हूँ कि अहिंसा सर्वोपरि धर्म है। आततायियोंको भी नहीं मारना चाहिये। भोगपरायण तथा अपनी जिह्वाके स्वादके लिये सदा तत्पर रहनेवाले द्विजोंने वेदमें पशुहिंसाका उल्लेख कर दिया है, किंतु सच्चाई यह है कि अहिंसाको ही सर्वोत्कृष्ट माना गया है'॥ ५३—५६॥

इस प्रकारकी वेद-शास्त्रविरोधी बातें कहते हुए देवगुरु बृहस्पतिको देखकर वे भृगुपुत्र शुक्राचार्य आश्चर्यचकित हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि यह देवगुरु तो मेरा शत्रु है। इस धूर्तने मेरे यजमानोंको अवश्य ठग लिया है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७-५८॥

नरकके द्वारस्वरूप तथा पापके बीजरूप उस उग्र लोभको धिक्कार है, जिस लोभरूप पापसे प्रेरित होकर देवगुरु बृहस्पति भी झूठ बोल रहे हैं॥ ५९॥

जिनका वचन प्रमाण माना जाता है और जो समस्त देवताओंके गुरु तथा धर्मशास्त्रोंके प्रवर्तक हैं, वे भी पाखण्डके पोषक हो गये हैं॥ ६०॥

लोभसे विकृत मनवाला प्राणी क्या-क्या नहीं कर डालता। दूसरोंकी क्या बात, जबकि साक्षात् देवगुरु ही इस प्रकारके पाखण्डके पण्डित हो गये हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी ये धूर्तोंकी सारी भाव-भंगिमाएँ बनाकर मेरे इन घोर अज्ञानी दैत्य यजमानोंको ठग रहे हैं॥ ६१-६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे शुक्ररूपेण
गुरुणा दैत्यवञ्चनावर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

शुक्राचार्यद्वारा दैत्योंको बृहस्पतिका पाखण्डपूर्ण कृत्य बताना, बृहस्पतिकी मायासे मोहित दैत्योंका उन्हें फटकारना, क्रुद्ध शुक्राचार्यका दैत्योंको शाप देना, बृहस्पतिका अन्तर्धान हो जाना, प्रह्लादका शुक्राचार्यजीसे क्षमा माँगना और शुक्राचार्यका उन्हें प्रारब्धकी बलवत्ता समझाना

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा तानुवाच हसन्निव।
वञ्चिता मत्स्वरूपेण दैत्याः किं गुरुणा किल॥ १

अहं काव्यो गुरुश्चायं देवकार्यप्रसाधकः।
अनेन वञ्चिता यूयं मद्याज्या नात्र संशयः॥ २

मा श्रद्धध्वं वचोऽस्यार्या दाम्भिकोऽयं मदाकृतिः।
अनुगच्छत मां याज्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम्॥ ३

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य दृष्ट्वा तौ सदृशौ पुनः।
विस्मयं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चिताः॥ ४

स तान्वीक्ष्य सुसम्भ्रान्तान्गुरुर्वाक्यमुवाच ह।
गुरुर्वो वञ्चयत्येव मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः॥ ५

प्राप्तो वञ्चयितुं युष्मान्देवकार्यार्थसिद्धये।
मा विश्वासं वचस्तस्य कुरुध्वं दैत्यसत्तमाः॥ ६

प्राप्ता विद्या मया शम्भोर्युष्मानध्यापयामि ताम्।
देवेभ्यो विजयं नूनं करिष्यामि न संशयः॥ ७

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं काव्यरूपधरस्य ते।
विश्वासं परमं जग्मुः काव्योऽयमिति निश्चयात्॥ ८

काव्येन बहुधा तत्र बोधिताः किल दानवाः।
बुबुधुर्न गुरोर्मायामोहिताः कालपर्ययात्॥ ९

व्यासजी बोले—मनमें ऐसा सोचकर उन दैत्योंसे शुक्राचार्यने हँसते हुए कहा—हे दैत्यगण! मेरा स्वरूप बनाये हुए इस देवगुरु बृहस्पतिने तुमलोगोंको ठग लिया क्या? शुक्राचार्य मैं हूँ और ये तो देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाले देवगुरु बृहस्पति हैं। हे मेरे यजमानो! इन्होंने तुम सबको अवश्य ठग लिया; इसमें सन्देह नहीं है। हे आर्यो! इनकी बातोंपर विश्वास मत करो। ये पाखण्डी हैं तथा मेरा स्वरूप बनाये हुए हैं। हे यजमानो! तुमलोग मेरा अनुसरण करो और इन बृहस्पतिका त्याग कर दो॥ १—३॥

उनका यह वचन सुनकर और फिर उन दोनोंको समान रूपवाला देखकर सभी दैत्य महान् आश्चर्यमें पड़ गये। पुनः उन्होंने विचार किया कि हो सकता है ये ही शुक्राचार्य हों॥ ४॥

इस प्रकार उन दैत्योंको अत्यन्त विस्मित देखकर [शुक्राचार्यरूपधारी] गुरु बृहस्पतिने यह बात कही—मेरा स्वरूप बनाये हुए ये देवगुरु बृहस्पति तुम सबको धोखा दे रहे हैं। ये देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त तुमलोगोंको ठगनेके लिये आये हुए हैं। हे श्रेष्ठ दैत्यगण! तुमलोग इनकी बातपर विश्वास मत करो। मैंने शंकरजीसे विद्या प्राप्त कर ली है और उसे तुम सबको पढ़ा रहा हूँ। इस प्रकार मैं तुम्हें देवताओंपर विजय दिला दूँगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५—७॥

शुक्राचार्यका रूप धारण करनेवाले देवगुरु बृहस्पतिका यह वाक्य सुनकर उन दैत्योंको पूर्ण विश्वास हो गया कि ये ही निश्चितरूपसे [हमारे गुरु] शुक्राचार्य हैं। उस समय शुक्राचार्यने उन्हें बहुत प्रकारसे समझाया फिर भी समयके फेरसे गुरु बृहस्पतिकी मायासे मोहित होनेके कारण वे दैत्य समझ नहीं सके॥ ८-९॥

एवं ते निश्चयं कृत्वा ततो भार्गवमब्रुवन्।
अयं गुरुर्नो धर्मात्मा बुद्धिदश्च हिते रतः॥ १०

दशवर्षाणि सततमयं नः शास्ति भार्गवः।
गच्छ त्वं कुहको भासि नास्माकं गुरुरप्युत॥ ११

इत्युक्त्वा भार्गवं मूढा निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः।
जगृहुस्तं गुरुं प्रीत्या प्रणिपत्याभिवाद्य च॥ १२

काव्यस्तु तन्मयान्दृष्ट्वा चुकोपाथ शशाप च।
दैत्यान्विबोधितान्मत्वा गुरुणा चातिवञ्चितान्॥ १३

यस्मान्मया बोधिता वै गृह्णीयुर्न च मे वचः।
तस्मात्प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ॥ १४

मदवज्ञाफलं कामं स्वल्पे काले ह्यवाप्स्यथ।
तदास्य कपटं सर्वं परिज्ञातं भविष्यति॥ १५

व्यास उवाच

इत्युक्त्वासौ जगामाशु भार्गवः क्रोधसंयुतः।
बृहस्पतिर्मुदं प्राप्य तस्थौ तत्र समाहितः॥ १६

ततः शप्तान्गुरुर्ज्ञात्वा दैत्यांस्तान्भार्गवेण हि।
जगाम तरसा त्यक्त्वा स्वरूपं स्वं विधाय च॥ १७

गत्वोवाच तदा शक्रं कृतं कार्यं मया ध्रुवम्।
शप्ताः शुक्रेण ते दैत्या मया त्यक्ताः पुनः किल॥ १८

निराधाराः कृता नूनं यतध्वं सुरसत्तमाः।
संग्रामार्थं महाभाग शापदग्धा मया कृताः॥ १९

इति श्रुत्वा गुरोर्वाक्यं मघवा मुदमाप्तवान्।
जहृषुश्च सुराः सर्वे प्रतिपूज्य बृहस्पतिम्॥ २०

ऐसा निश्चय करनेके उपरान्त उन्होंने शुक्राचार्यसे कहा—ये ही हमारे गुरु हैं। ये धर्मात्मा हमें बुद्धि प्रदान करनेवाले हैं और हमारा हित करनेमें तत्पर हैं। इन शुक्राचार्यजीने हमें निरन्तर दस वर्षतक शिक्षा दी है। तुम चले जाओ, तुम धूर्त जान पड़ते हो; तुम हमारे गुरु बिलकुल नहीं हो सकते॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उन मूर्ख दैत्योंने शुक्राचार्यको बार-बार फटकारा और बृहस्पतिको प्रेमपूर्वक प्रणाम तथा अभिवादन करके उन्हें ही अपना गुरु स्वीकार कर लिया॥ १२॥

देवगुरु बृहस्पतिने इन दैत्योंको पूर्णरूपसे सिखा-पढ़ा दिया है तथा इन्हें खूब ठगा है—ऐसा मानकर और इन्हें गुरु बृहस्पतिमें तन्मय देखकर शुक्राचार्य बहुत कुपित हुए और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरे बार-बार समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी, इसलिये नष्ट बुद्धिवाले तुम सब पराभवको प्राप्त होओगे। तुमलोग थोड़े ही समयमें मेरे तिरस्कारका फल पाओगे। तब इनका सारा कपट तुम सबको मालूम पड़ जायगा॥ १३—१५॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधमें भरे शुक्राचार्य तत्काल चल दिये और [शुक्राचार्यरूपधारी] बृहस्पति प्रसन्न होकर निश्चिन्तभावसे वहाँ रहने लगे॥ १६॥

तदनन्तर शुक्राचार्यके द्वारा उन दैत्योंको शापित हुआ जानकर गुरु बृहस्पति तत्काल उन्हें छोड़कर अपना रूप धारणकर वहाँसे चल पड़े। उन्होंने जाकर इन्द्रसे कहा—मैंने [आपका] सम्पूर्ण कार्य भलीभाँति बना दिया है। शुक्राचार्यने उन दैत्योंको शाप दे दिया और बादमें मैंने भी उनका त्याग कर दिया। अब मैंने उन्हें पूर्णरूपसे असहाय बना दिया है। अतः हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग युद्धके लिये अब उद्योग करें। हे महाभाग! मैंने उन दैत्योंको शापसे दग्ध कर दिया है॥ १७—१९॥

गुरु बृहस्पतिका यह वचन सुनकर इन्द्र बहुत आनन्दित हुए और सभी देवता भी हर्षित हो उठे। तत्पश्चात् गुरु बृहस्पतिकी पूजा करके वे युद्धके लिये

संग्रामाय मतिं चक्रुः संविचार्य मिथः पुनः।
निर्ययुर्मिलिताः सर्वे दानवाभिमुखाः सुराः॥ २१

सुरान्समुद्यताञ्ज्ञात्वा कृतोद्योगान्महाबलान्।
अन्तर्हितं गुरुं चैव बभूवुश्चिन्तयान्विताः॥ २२

परस्परमथोचुस्ते मोहितास्तस्य मायया।
सम्प्रसाद्यो महात्मा च यातोऽसौ रुष्टमानसः॥ २३

वञ्चयित्वा गतः पापो गुरुः कपटपण्डितः।
भ्रातृस्त्रीलम्भनः प्रायो मलिनोऽन्तर्बहिः शुचिः॥ २४

किं कुर्मः क्व च गच्छामः कथं काव्यं प्रकोपितम्।
कुर्वीमहि सहायार्थं प्रसन्नं हृष्टमानसम्॥ २५

इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे मिलिता भयकम्पिताः।
प्रह्लादं पुरतः कृत्वा जग्मुस्ते भार्गवं पुनः॥ २६

प्रणेमुश्चरणौ तस्य मुनेर्मौनभृतस्तदा।
भार्गवस्तानुवाचाथ रोषसंरक्तलोचनः॥ २७

मया प्रबोधिता यूयं मोहिता गुरुमायया।
न गृहीतं वचो योग्यं तदा याज्या हितं शुचि॥ २८

तदावगणितश्चाहं भवद्भिस्तद्वशं गतैः।
प्राप्तं नूनं मदोन्मत्तैर्ममावमानजं फलम्॥ २९

तत्र गच्छत सद्भ्रष्टा यत्रासौ कपटाकृतिः।
वञ्चकः सुरकार्यार्थी नाहं तद्वद्धि वञ्चकः॥ ३०

व्यास उवाच

एवं ब्रुवन्तं शुक्रं तु वाक्यसन्दिग्धया गिरा।
प्रह्लादस्तं तदोवाच गृहीत्वा चरणौ ततः॥ ३१

मन्त्रणा करने लगे। आपसमें भलीभाँति सोच-विचार करके सभी देवता एक साथ मिलकर दानवोंसे लड़नेके लिये वहाँसे निकल पड़े॥ २०-२१॥

उधर महाबली देवताओंको युद्धकी तैयारी करके आक्रमणके लिये उद्यत तथा शुक्राचार्यरूपधारी गुरु बृहस्पतिको अन्तर्हित जान करके दैत्यगण बहुत चिन्तित हुए॥ २२॥

अब उन देवगुरुकी मायासे मोहित वे दैत्य आपसमें कहने लगे कि वे गुरु शुक्राचार्य कुपितमन होकर यहाँसे चले गये, अतः हमें उन महात्माको भलीभाँति मनाना चाहिये॥ २३॥

वह पापी और कपटकार्यमें अत्यन्त प्रवीण देवगुरु हमें ठगकर चला गया। अपने भाईकी पत्नीके साथ अनाचार करनेवाला वह भीतरसे कलुषित है तथा ऊपरसे पवित्र प्रतीत होता है॥ २४॥

अब हम क्या करें और कहाँ जायँ? अत्यन्त कुपित गुरु शुक्राचार्यको अपनी सहायताके लिये हम किस तरह हर्षित तथा प्रसन्नचित्त करें॥ २५॥

ऐसा विचार करके वे सब एकजुट हुए। प्रह्लादको आगे करके भयसे काँपते हुए वे दैत्य पुनः भृगुपुत्र शुक्राचार्यके पास गये। [वहाँ पहुँचकर] उन्होंने मौन धारण किये हुए उन मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। तब क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले शुक्राचार्य उनसे कहने लगे॥ २६-२७॥

हे यजमानो! मैंने तुमलोगोंको बहुत समझाया, किंतु देवगुरुकी मायासे व्यामुग्ध रहनेके कारण तुम-लोगोंने मेरा उचित, हितकर और निष्कपट वचन नहीं माना॥ २८॥

उस समय उनके वशवर्ती हुए तुम सबने मेरी अवहेलना की। मदसे उन्मत्त रहनेवाले तुम सबको मेरे अपमान करनेका फल अवश्य मिल गया॥ २९॥

तुमलोगोंका सर्वस्व छिन गया। अब तुमलोग वहींपर चले जाओ; जहाँ वह कपटी, छली और देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाला बृहस्पति विद्यमान है; मैं उसकी तरह वंचक नहीं हूँ॥ ३०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार संदेहयुक्त वाणीमें बोलते हुए शुक्राचार्यके दोनों पैर पकड़कर प्रह्लाद उनसे कहने लगे—॥ ३१॥

प्रह्लाद उवाच

भार्गवाद्य समायातान्याज्यानस्मांस्तथातुरान्।
त्यक्तुं नार्हसि सर्वज्ञ त्वद्धितांस्तनयान्हि नः॥ ३२

गते त्वयि तु मन्त्रार्थं शैलूषेण दुरात्मना।
त्वद्वेषमधुरालापैर्वयं तेन प्रवञ्चिताः॥ ३३

अज्ञानकृतदोषेण नैव कुप्यति शान्तिमान्।
सर्वज्ञस्त्वं विजानासि चित्तं नः प्रवणं त्वयि॥ ३४

ज्ञात्वा नस्तपसा भावं त्यज कोपं महामते।
ब्रुवन्ति मुनयः सर्वे क्षणकोपा हि साधवः॥ ३५

जलं स्वभावतः शीतं वह्न्यातपसमागमात्।
भवत्युष्णं वियोगाच्च शीतत्वमनुगच्छति॥ ३६

क्रोधश्चाण्डालरूपो वै त्यक्तव्यः सर्वथा बुधैः।
तस्माद्रोषं परित्यज्य प्रसादं कुरु सुव्रत॥ ३७

यदि न त्यजसि क्रोधं त्यजस्यस्मान्सुदुःखितान्।
त्वया त्यक्ता महाभाग गमिष्यामो रसातलम्॥ ३८

व्यास उवाच

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा भार्गवो ज्ञानचक्षुषा।
विलोक्य सुमना भूत्वा तानुवाच हसन्निव॥ ३९

न भेतव्यं न गन्तव्यं दानवा वा रसातलम्।
रक्षयिष्यामि वो याज्यान्मन्त्रैरवितथैः किल॥ ४०

हितं सत्यं ब्रवीम्यद्य शृणुध्वं तत्तु निश्चयम्।
वचनं मम धर्मज्ञाः श्रुतं यद् ब्रह्मणः पुरा॥ ४१

अवश्यम्भाविनो भावाः प्रभवन्ति शुभाशुभाः।
दैवं न चान्यथा कर्तुं क्षमः कोऽपि धरातले॥ ४२

प्रह्लाद बोले—हे भार्गव! हे सर्वज्ञ! अत्यन्त दुःखी होकर आज पास आये हुए अपने पुत्रतुल्य तथा हितचिन्तक हम यजमानोंका आप त्याग न करें॥ ३२॥

मन्त्र-प्राप्तिके लिये आपके चले जानेपर उस कपटी तथा दुष्टात्मा बृहस्पतिने आपकी वेश-भूषा तथा मधुर वाणीके द्वारा हमलोगोंको खूब ठगा॥ ३३॥

शान्तिसम्पन्न व्यक्ति किसीके द्वारा अनजानमें किये गये अपराधसे कुपित नहीं होता। आप तो सर्वज्ञ हैं, अतः जानते ही हैं कि हमलोगोंका चित्त सदा आपमें ही अनुरक्त रहता है॥ ३४॥

अतः हे महामते! अपने तपोबलसे हमलोगोंका भाव जानकर आप क्रोधका त्याग कर दीजिये; क्योंकि सभी मुनिगण कहा करते हैं कि साधुपुरुषोंका क्रोध क्षणभरके लिये ही होता है॥ ३५॥

जल स्वभावसे शीतल होता है, किंतु अग्नि और धूपके संपर्कसे वह गर्म हो जाता है। वही जल आग तथा धूपका संयोग दूर होते ही पुनः शीतलता प्राप्त कर लेता है॥ ३६॥

क्रोध चाण्डालरूप होता है; बुद्धिमान् लोगोंको इसका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये। अतः हे सुव्रत! क्रोध छोड़कर आप हमपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३७॥

हे महाभाग! यदि आप क्रोधका त्याग नहीं करते बल्कि अत्यन्त दुःखित हमलोगोंका ही त्याग कर देते हैं, तो आपसे परित्यक्त होकर हम सब रसातलमें चले जायँगे॥ ३८॥

व्यासजी बोले—प्रह्लादका वचन सुनकर शुक्राचार्य ज्ञानदृष्टिसे सब कुछ देख करके प्रसन्नचित्त हो उनसे हँसते हुए बोले—॥ ३९॥

हे दानवो! तुमलोगोंको अब न तो डरना है और न रसातलमें ही जाना है। मैं अपने अचूक मन्त्रोंसे तुम सब यजमानोंकी निश्चय ही रक्षा करूँगा॥ ४०॥

हे धर्मज्ञो! पूर्वकालमें मैंने ब्रह्माजीसे जो सुना है, वह हितकर, सत्य तथा अटल बात मैं तुमलोगोंको बता रहा हूँ, मेरी वह बात सुनिये—॥ ४१॥

निश्चित रूपसे होनेवाली शुभ या अशुभ घटनाएँ होकर रहती हैं। धरातलपर कोई भी प्राणी प्रारब्धको टाल पानेमें समर्थ नहीं है॥ ४२॥

अद्य मन्दबला यूयं कालयोगादसंशयम्।
देवैर्जिताः सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ॥ ४३

प्राप्तः पर्यायकालो व इति ब्रह्माभ्यभाषत।
भुक्तं राज्यं भवद्भिश्च पूर्णं सर्वं समृद्धिमत्॥ ४४

युगानि दश पूर्णानि देवानाक्रम्य मूर्धनि।
दैवयोगाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम्॥ ४५

सावर्णिके मनौ राज्यं पुनस्तत्तु भविष्यति।
पौत्रस्त्रैलोक्यविजयी राज्यं प्राप्स्यति ते बलिः॥ ४६

यदा वामनरूपेण हृतं देवेन विष्णुना।
तदैव च भवत्पौत्रः प्रोक्तो देवेन जिष्णुना॥ ४७

हृतं येन बले राज्यं देववाञ्छार्थसिद्धये।
त्वमिन्द्रो भविता चाग्रे स्थिते सावर्णिके मनौ॥ ४८

भार्गव उवाच

इत्युक्तो हरिणा पौत्रस्तव प्रह्लाद साम्प्रतम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां गुप्तश्चरति भीतवत्॥ ४९

एकदा वासवेनासौ बलिर्गर्दभरूपभाक्।
शून्ये गृहे स्थितः कामं भयभीतः शतक्रतोः॥ ५०

पृष्टश्च बहुधा तेन वासवेन बलिस्तदा।
किमर्थं गार्दभं रूपं कृतवान्दैत्यपुङ्गव॥ ५१

भोक्ता त्वं सर्वलोकस्य दैत्यानां च प्रशासिता।
(न लज्जा खररूपेण तव राक्षससत्तम।)
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दैत्यराजो बलिस्तदा॥ ५२

प्रोवाच वचनं शक्रं कोऽत्र शोकः शतक्रतो।
यथा विष्णुर्महातेजा मत्स्यकच्छपतां गतः॥ ५३

इसमें संदेह नहीं कि तुमलोग आज समयके फेरसे क्षीण बलवाले हो गये हो, अतः एक बार देवताओंसे पराजित होकर तुमलोगोंको पातालमें जाना ही पड़ेगा॥ ४३॥

अब तुमलोगोंका समय-परिवर्तन उपस्थित हुआ है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा था। कुछ दिनों पूर्व तुमलोगोंने सब प्रकारसे समृद्ध राज्यसुखका भोग किया था। उस समय देवताओंपर आक्रमण करके उनके मस्तकपर चरण रखकर तुमलोगोंने दैवयोगसे पूरे दस युगोंतक इस दिव्य त्रिलोकीपर शासन किया था॥ ४४-४५॥

[अब आगे आनेवाले] सावर्णि मन्वन्तरमें तुम्हें वह राज्य पुनः प्राप्त होगा। तुम्हारा पौत्र बलि तीनों लोकोंमें विजयी होकर राज्यको पुनः प्राप्त कर लेगा॥ ४६॥

जिस समय वामनरूप धारण करके भगवान् विष्णुने [राजा बलिका राज्य] छीन लिया था, उस समय भगवान् विष्णुने आपके पौत्र बलिसे कहा था—हे बले! मैंने तुम्हारा यह राज्य देवताओंकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये छीना है, किंतु आगे सावर्णि मन्वन्तरके उपस्थित होनेपर तुम इन्द्र होओगे॥ ४७-४८॥

शुक्राचार्य बोले—हे प्रह्लाद! भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा कहा गया तुम्हारा पौत्र बलि इस समय सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहकर डरे हुएकी भाँति गुप्तरूपसे विचरण कर रहा है॥ ४९॥

एक समयकी बात है—इन्द्रसे भयभीत बलि गर्दभका रूप धारण करके एक सूने घरमें स्थित थे, तभी [वहाँ पहुँचकर] इन्द्र उन बलिसे बार-बार पूछने लगे—हे दैत्यश्रेष्ठ! आपने गर्दभका रूप क्यों धारण किया है? आप तो समस्त लोकोंका भोग करनेवाले और दैत्योंके शासक हैं। (हे राक्षसश्रेष्ठ! क्या गर्दभका रूप धारण करनेमें आपको लज्जा नहीं लगती?)॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$॥

तब इन्द्रकी वह बात सुनकर बलिने इन्द्रसे यह वचन कहा—हे शतक्रतो! इसमें शोक कैसा? जैसे महान् तेजस्वी भगवान् विष्णुने मत्स्य और कच्छपका

तथाहं खररूपेण संस्थितः कालयोगतः।
यथा त्वं कमले लीनः संस्थितो ब्रह्महत्यया॥ ५४

पीडितश्च तथा ह्यद्य स्थितोऽहं खररूपधृक्।
दैवाधीनस्य किं दुःखं किं सुखं पाकशासन॥ ५५

कालः करोति वै नूनं यदिच्छति यथा तथा।

भार्गव उवाच

इति तौ बलिदेवेशौ कृत्वा संविदमुत्तमाम्॥ ५६

प्रबोधं प्रापतुः कामं यथास्थानञ्च जग्मतुः।
इत्येतत्ते समाख्याता मया दैवबलिष्ठता॥ ५७
दैवाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ५८

रूप धारण किया था, उसी प्रकार मैं भी समयके फेरसे गर्दभरूपसे स्थित हूँ। जिस प्रकार तुम ब्रह्महत्यासे दुःखी होकर कमलमें छिपकर पड़े रहे, उसी तरह मैं भी आज गर्दभका रूप धारण करके स्थित हूँ। हे पाकशासन! दैवके अधीन रहनेवालोंको क्या दुःख और क्या सुख? दैव जिस रूपमें जो चाहता है, वैसा निश्चितरूपसे करता है॥ ५२—५५$\frac{१}{२}$॥

शुक्राचार्य बोले—इस प्रकार बलि और देवराज इन्द्रने परस्पर उत्तम बातें करके परम सन्तुष्टि प्राप्त की और इसके बाद वे अपने-अपने स्थानको चले गये। यह मैंने तुमसे प्रारब्धकी बलवत्ताका भलीभाँति वर्णन कर दिया। देवताओं, असुरों और मानवोंसे युक्त सम्पूर्ण जगत् दैवके अधीन है॥ ५६—५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
प्रह्लादेन शुक्रकोपसान्त्वनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

देवता और दैत्योंके युद्धमें दैत्योंकी विजय, इन्द्रद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवतीका प्रकट होकर दैत्योंके पास जाना, प्रह्लादद्वारा भगवतीकी स्तुति, देवीके आदेशसे दैत्योंका पातालगमन

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः।
प्रह्लादस्तु सुसंहृष्टो बभूव नृपनन्दनः॥ १
ज्ञात्वा दैवं बलिष्ठञ्च प्रह्लादस्तानुवाच ह।
कृतेऽपि युद्धे न जयो भविष्यति कदाचन॥ २

तदा ते जयिनः प्रोचुर्दानवा मदगर्विताः।
संग्रामस्तु प्रकर्तव्यो दैवं किं न विदामहे॥ ३

निरुद्यमानां दैवं हि प्रधानमसुराधिप।
केन दृष्टं क्व वा दृष्टं कीदृशं केन निर्मितम्॥ ४

तस्माद्युद्धं करिष्यामो बलमास्थाय साम्प्रतम्।
भवाग्रे दैत्यवर्य त्वं सर्वज्ञोऽसि महामते॥ ५

व्यासजी बोले—उन महात्मा शुक्राचार्यका यह वचन सुनकर राजकुमार प्रह्लाद अत्यन्त हर्षित हुए। प्रारब्धको बलवान् मानकर प्रह्लादने उन दैत्योंसे कहा—युद्ध करनेपर भी विजय कभी नहीं होगी॥ १-२॥

तदनन्तर विजयकी अभिलाषा रखनेवाले उन दानवोंने अभिमानसे चूर होकर कहा—हमें तो निश्चितरूपसे संग्राम करना चाहिये। दैव क्या है! इसे हमलोग नहीं जानते। हे दानवेश्वर! उद्यमरहित लोगोंके लिये ही दैव प्रधान होता है। दैवको किसने देखा है, कहाँ देखा है, दैव कैसा है और उसे किसने बनाया है! अतएव अब हमलोग बलका आश्रय लेकर युद्ध करेंगे। हे दैत्यश्रेष्ठ! हे महामते! आप सर्वज्ञ हैं, आप केवल हमारे आगे रहें॥ ३—५॥

इत्युक्तस्तैस्तदा राजन् प्रह्लादः प्रबलारिहा।
सेनानीश्च तदा भूत्वा देवान्युद्धे समाह्वयत्॥ ६

तेऽपि तत्रासुरान्दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान्।
सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान्समयोधयन्॥ ७

संग्रामस्तु तदा घोरः शक्रप्रह्लादयोरभूत्।
पूर्णं वर्षशतं तत्र मुनीनां विस्मयावहः॥ ८

वर्तमाने महायुद्धे शुक्रेण प्रतिपालिताः।
जयमापुस्तदा दैत्याः प्रह्लादप्रमुखा नृप॥ ९

तदैवेन्द्रो गुरोर्वाक्यात्सर्वदुःखविनाशिनीम्।
संस्मार मनसा देवीं मुक्तिदां परमां शिवाम्॥ १०

इन्द्र उवाच

जय देवि महामाये शूलधारिणि चाम्बिके।
शङ्खचक्रगदापद्मखड्गहस्तेऽभयप्रदे॥ ११

नमस्ते भुवनेशानि शक्तिदर्शननायिके।
दशतत्त्वात्मिके मातर्महाबिन्दुस्वरूपिणि॥ १२

महाकुण्डलिनीरूपे सच्चिदानन्दरूपिणि।
प्राणाग्निहोत्रविद्ये ते नमो दीपशिखात्मिके॥ १३

पञ्चकोशान्तरगते पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि।
आनन्दकलिके मातः सर्वोपनिषदर्चिते॥ १४

मातः प्रसीद सुमुखी भव हीनसत्त्वां-
स्त्रायस्व नो जननि दैत्यपराजितान् वै।
त्वं देवि नः शरणदा भुवने प्रमाणा
शक्तासि दुःखशमनेऽखिलवीर्ययुक्ते॥ १५

हे राजन्! तब उन दैत्योंके ऐसा कहनेपर महाबली शत्रुओंको भी मार डालनेवाले प्रह्लादने उनका सेनाध्यक्ष बनकर देवताओंको युद्धके लिये ललकारा॥ ६॥

दैत्योंको समरांगणमें डटे हुए देखकर उन सभी देवताओंने भी अपनी पूरी तैयारी कर ली और वे उनके साथ युद्ध करने लगे॥ ७॥

तदनन्तर इन्द्र और प्रह्लादका वह भीषण संग्राम पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वह युद्ध मुनियोंको विस्मित कर देनेवाला था॥ ८॥

हे राजन्! शुक्राचार्यके द्वारा संरक्षित प्रह्लाद आदि प्रधान दैत्योंने उस हो रहे महायुद्धमें विजय प्राप्त की॥ ९॥

तब इन्द्रने गुरु बृहस्पतिके वचनानुसार सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाली, मुक्ति देनेवाली तथा परम कल्याणस्वरूपिणी भगवतीका मन-ही-मन स्मरण किया॥ १०॥

इन्द्र बोले—हे महामाये! हे शूलधारिणि! हे अम्बिके! हे शंख, चक्र, गदा, पद्म तथा खड्गसे सुशोभित हाथोंवाली! हे अभय प्रदान करनेवाली! हे देवि! आपकी जय हो॥ ११॥

हे भुवनेश्वरि! हे शक्ति! हे शाक्तादि छः दर्शनोंकी नायिकास्वरूपिणि! हे दस तत्त्वोंकी अधिष्ठातृदेवि! हे महाबिन्दुस्वरूपिणि! हे माता! आपको नमस्कार है॥ १२॥

हे महाकुण्डलिनीस्वरूपे! हे सच्चिदानन्दरूपिणि! हे प्राणाग्निहोत्रविद्ये! हे दीपशिखात्मिके! हे [अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय, आनन्दमय] पंचकोशोंमें सदा विराजमान रहनेवाली! हे पुच्छब्रह्मस्वरूपिणि! हे आनन्दकलिके! सभी उपनिषदोंद्वारा स्तुत हे माता! आपको नमस्कार है॥ १३-१४॥

हे माता! आप हमपर प्रसन्न होनेकी कृपा करें और प्रफुल्लित मुखमण्डलवाली हो जायँ। हे जननि! दैत्योंसे पराजित हम निर्बलोंकी रक्षा कीजिये। हे देवि! एकमात्र आप ही हमें शरण प्रदान करनेवाली हैं; आप संसारमें प्रमाणस्वरूपा हैं। हे समस्त पराक्रमोंसे युक्त भगवति! हमलोगोंका दुःख दूर करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं॥ १५॥

ध्यायन्ति येऽपि सुखिनो नितरां भवन्ति
दुःखान्विताविगतशोकभयास्तथान्ये ।
मोक्षार्थिनो विगतमानविमुक्तसङ्गाः
संसारवारिधिजलं प्रतरन्ति सन्तः॥ १६

त्वं देवि विश्वजननि प्रथितप्रभावा
संरक्षणार्थमुदितार्तिहरप्रतापा ।
संहर्तुमेतदखिलं किल कालरूपा
को वेत्ति तेऽम्ब चरितं ननु मन्दबुद्धिः॥ १७

ब्रह्मा हरश्च हरिदश्वरथो हरिश्च
इन्द्रो यमोऽथ वरुणोऽग्निसमीरणौ च।
ज्ञातुं क्षमा न मुनयोऽपि महानुभावा
यस्याः प्रभावमतुलं निगमागमाश्च॥ १८

धन्यास्त एव तव भक्तिपरा महान्तः
संसारदुःखरहिताः सुखसिन्धुमग्नाः।
ये भक्तिभावरहिता न कदापि दुःखा-
म्भोधिं जनिक्षयतरङ्गमुमे तरन्ति॥ १९

ये वीज्यमानाः सितचामरैश्च
क्रीडन्ति धन्याः शिबिकाधिरूढाः।
तैः पूजिता त्वं किल पूर्वदेहे
नानोपहारैरिति चिन्तयामि॥ २०

ये पूज्यमाना वरवारणस्था
विलासिनीवृन्दविलासयुक्ताः ।
सामन्तकैश्चोपनतैर्व्रजन्ति
मन्ये हि तैस्त्वं किल पूजितासि॥ २१

व्यास उवाच

एवं स्तुता मघवता देवी विश्वेश्वरी तदा।
प्रादुर्बभूव तरसा सिंहारूढा चतुर्भुजा॥ २२

शङ्खचक्रगदापद्मान्बिभ्रती चारुलोचना।
रक्ताम्बरधरा देवी दिव्यमाल्यविभूषणा॥ २३

जो भी आपका ध्यान करते हैं, वे परम सुखी हो जाते हैं; और [आपकी उपासना न करनेवाले] दूसरे लोग दुःखी तथा शोक और भयसे युक्त रहते हैं। मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले अहंकारशून्य तथा आसक्तिरहित संतलोग संसार-सागरके असीम जलको पार कर लेते हैं॥ १६॥

हे देवि! हे विश्वजननि! आप विस्तृत प्रभाववाली हैं। भक्तोंकी रक्षाके लिये आप प्रकट हो जाती हैं। आप भक्तजनोंका दुःख दूर करनेमें समर्थप्रतापवाली हैं। इस सम्पूर्ण जगत्का संहार करनेके लिये आप कालस्वरूपिणी हैं। हे अम्ब! कौन मन्दबुद्धि प्राणी आपका चरित्र जान सकता है?॥ १७॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, इन्द्र, यम, वरुण, अग्नि, वायु, निगम, आगम तथा महातपस्वी मुनिगण भी आपकी अनुपम महिमाको जाननेमें समर्थ नहीं हैं॥ १८॥

हे उमे! जो आपकी भक्तिमें तत्पर हैं, वे ही परम धन्य हैं और सांसारिक दुःखोंसे मुक्त होकर सुखके समुद्रमें डूबे रहते हैं; किंतु जो लोग आपकी भक्तिभावनासे वंचित हैं, वे जन्म-मरणरूपी तरंगोंवाले दुःखमय भवसागरको कभी भी पार नहीं कर सकते॥ १९॥

जिन भाग्यशाली लोगोंके ऊपर स्वच्छ चँवर डुलाये जा रहे हैं, जो हास-विलासका सुख भोग रहे हैं तथा जो सुन्दर यानोंपर सवारी कर रहे हैं—उनके विषयमें मैं तो यही सोचता हूँ कि उन्होंने पूर्वजन्ममें अनेकविध पूजनोपचारोंसे निश्चय ही आपकी पूजा की है॥ २०॥

पूजित होते हुए जो लोग उत्तम हाथियोंपर विराजमान रहते हैं, जो रमणियोंके साथ आमोद-प्रमोदमें संलग्न हैं और जो विनम्र सामंतोंके साथ चलते हैं, मैं मानता हूँ कि उन्होंने अवश्य आपकी पूजा की है॥ २१॥

व्यासजी बोले—तब इन्द्रके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती विश्वेश्वरी तुरंत प्रकट हो गयीं। उस समय वे सिंहपर बैठी हुई थीं; वे चार भुजाओंसे युक्त थीं; उन्होंने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर रखा था; उनके नेत्र सुन्दर थे; वे लाल वस्त्र पहने हुए थीं और वे देवी दिव्य मालाओंसे विभूषित थीं॥ २२-२३॥

तानुवाच सुरान्देवी प्रसन्नवदना गिरा।
भयं त्यजन्तु भो देवाः शं विधास्ये किलाधुना॥ २४

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढातिसुन्दरी।
जगाम तरसा तत्र यत्र दैत्या मदान्विताः॥ २५

प्रह्लादप्रमुखाः सर्वे दृष्ट्वा देवीं पुरःस्थिताम्।
ऊचुः परस्परं भीताः किं कर्तव्यमितस्तदा॥ २६

देवं नारायणं चात्र सम्प्राप्ता चण्डिका किल।
महिषान्तकरी नूनं चण्डमुण्डविनाशिनी॥ २७

निहनिष्यति नः सर्वानम्बिका नात्र संशयः।
वक्रदृष्ट्या यया पूर्वं निहतौ मधुकैटभौ॥ २८

एवं चिन्तातुरान्वीक्ष्य प्रह्लादस्तानुवाच ह।
योद्धव्यं नाथ गन्तव्यं पलाय्य दानवोत्तमाः॥ २९

नमुचिस्तानुवाचाथ पलायनपरानिह।
हनिष्यति जगन्माता रुषिता किल हेतिभिः॥ ३०

तथा कुरु महाभाग यथा दुःखं न जायते।
व्रजामोऽद्यैव पातालं तां स्तुत्वा तदनुज्ञया॥ ३१

प्रह्लाद उवाच

स्तौमि देवीं महामायां सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्।
सर्वेषां जननीं शक्तिं भक्तानामभयङ्करीम्॥ ३२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विष्णुभक्तस्तु प्रह्लादः परमार्थवित्।
तुष्टाव जगतां धात्रीं कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ ३३

मालासर्पवदाभाति यस्यां सर्वं चराचरम्।
सर्वाधिष्ठानरूपायै तस्यै ह्रींमूर्तये नमः॥ ३४

प्रसन्न मुखमण्डलवाली भगवतीने उन देवताओंसे कहा—हे देवताओ! आपलोग भयका त्याग कर दें, अब मैं आपलोगोंका कल्याण अवश्य करूँगी॥ २४॥

तब ऐसा कहकर सिंहपर सवार वे परम सुन्दर भगवती तुरंत वहाँ चल पड़ीं, जहाँ अभिमानी दानव विद्यमान थे॥ २५॥

प्रह्लाद आदि सभी प्रमुख दानव भगवतीको सामने स्थित देखकर भयभीत हो आपसमें कहने लगे कि अब हमें क्या करना चाहिये?॥ २६॥

सम्भवतः यह चण्डिका भगवान् नारायणसे मिलकर यहाँ आयी है। इसीने महिषासुरका वध किया था तथा चण्ड-मुण्डका विनाश किया था। जिसने पूर्वकालमें अपनी वक्रदृष्टिसे मधु-कैटभका संहार कर डाला था, वह अम्बिका हम सबको अवश्य मार डालेगी॥ २७-२८॥

इस प्रकार उन्हें चिन्तासे व्याकुल देखकर प्रह्लादने उनसे कहा—हे श्रेष्ठ दानवो! इस समय हमें युद्ध नहीं करना चाहिये, बल्कि भागकर यहाँसे चले जाना चाहिये॥ २९॥

तब भागनेकी चेष्टा करनेवाले उन दैत्योंसे नमुचिने कहा—ये जगन्माता भगवती कुपित होकर शस्त्रोंसे हमलोगोंका संहार अवश्य कर देंगी। [इसके बाद उसने प्रह्लादसे कहा—] हे महाभाग! आप ऐसा उपाय करें, जिससे हमलोगोंको दुःख न मिले। उन भगवतीकी स्तुति करके उनकी आज्ञासे हमलोग इसी क्षण पातालके लिये प्रस्थान कर दें॥ ३०-३१॥

प्रह्लाद बोले—सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली, सभी प्राणियोंकी माता तथा भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली शक्तिस्वरूपा भगवती महामायाकी मैं स्तुति करता हूँ॥ ३२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमार्थवेत्ता विष्णुभक्त प्रह्लाद दोनों हाथ जोड़कर जगज्जननी भगवतीकी स्तुति करने लगे—॥ ३३॥

जिनमें यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मालामें सर्पकी भाँति प्रतीत हो रहा है, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा उन 'ह्रीं' मूर्तिधारिणी भगवतीको नमस्कार है॥ ३४॥

त्वत्तः सर्वमिदं विश्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
अन्ये निमित्तमात्रास्ते कर्तारस्तव निर्मिताः॥ ३५

यह स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण विश्व आपसे ही उत्पन्न हुआ है। जो दूसरे कर्ता हैं, वे तो निमित्तमात्र हैं; क्योंकि वे भी आपके बनाये हुए हैं॥ ३५॥

नमो देवि महामाये सर्वेषां जननी स्मृता।
को भेदस्तव देवेषु दैत्येषु स्वकृतेषु च॥ ३६

हे देवि! आपको नमस्कार है। हे महामाये! आप सभी प्राणियोंकी जननी कही गयी हैं। स्वयं आपके ही द्वारा बनाये गये देवताओं और दैत्योंमें आपका यह कैसा भेदभाव!॥ ३६॥

मातुः पुत्रेषु को भेदोऽप्यशुभेषु शुभेषु च।
तथैव देवेष्वस्मासु न कर्तव्यस्त्वयाधुना॥ ३७

पुत्र अच्छे हों अथवा बुरे, उनमें माताका कैसा भेदभाव? उसी प्रकार देवताओं और हम दैत्योंमें आपको इस समय भेदभाव नहीं करना चाहिये॥ ३७॥

यादृशास्तादृशा मातः सुतास्ते दानवाः किल।
यतस्त्वं विश्वजननी पुराणेषु प्रकीर्तिता॥ ३८

हे माता! दानव चाहे जिस किसी भी प्रकारके हों, किंतु वे आपके ही पुत्र हैं; क्योंकि आप पुराणोंमें विश्वजननी बतायी गयी हैं॥ ३८॥

तेऽपि स्वार्थपरा नूनं यथैव वयमप्युत।
नान्तरं दैत्यसुरयोर्भेदोऽयं मोहसम्भवः॥ ३९

वे देवता भी तो निश्चितरूपसे वैसे ही स्वार्थी हैं जैसे हम दैत्यगण। देवताओं और दैत्योंमें अन्तर नहीं है। यह भेद केवल मोहजनित है॥ ३९॥

धनदारादिभोगेषु वयं सक्ता दिवानिशम्।
तथैव देवा देवेशि को भेदोऽसुरदेवयोः॥ ४०

जैसे हमलोग धन, स्त्री आदिके भोगोंमें दिन-रात आसक्त रहते हैं, वैसे ही देवता भी तो [विषय-भोगोंमें लीन] रहते हैं। अतः हे देवेश्वरि! असुरों और देवताओंमें भेद कैसा?॥ ४०॥

तेऽपि कश्यपदायादा वयं तत्सम्भवाः किल।
कुतो विरोधसम्भूतिर्जाता मातस्तवाधुना॥ ४१

वे भी कश्यपजीकी संतान हैं और हम भी उन्हीं कश्यपजीसे उत्पन्न हुए हैं। हे माता! ऐसी स्थितिमें हमारे प्रति आपके मनमें यह विरोधभाव कैसे उत्पन्न हो गया?॥ ४१॥

न तथा विहितं मातस्त्वयि सर्वसमुद्भवे।
साम्यतैव त्वया स्थाप्या देवेष्वस्मासु चैव हि॥ ४२

हे माता! जब सबकी उत्पत्तिमें आप ही मूल कारण हैं, तो इस प्रकार भेद करना आपके लिये उचित नहीं है। देवताओं तथा हम दैत्योंमें आपको समान व्यवहार रखना चाहिये॥ ४२॥

गुणव्यतिकरात्सर्वे समुत्पन्नाः सुरासुराः।
गुणान्विता भवेयुस्ते कथं देहभृतोऽमराः॥ ४३

गुणोंसे सम्बन्ध होनेके कारण ही सम्पूर्ण देवता तथा दैत्य उत्पन्न हुए हैं। तब गुणोंसे युक्त केवल वे देहधारी देवता ही आपके प्रिय क्यों हैं?॥ ४३॥

कामः क्रोधश्च लोभश्च सर्वदेहेषु संस्थिताः।
वर्तन्ते सर्वदा तस्मात् कोऽविरोधी भवेज्जनः॥ ४४

काम, क्रोध और लोभ सभी प्राणियोंके भीतर सदा विद्यमान रहते हैं। अतः कौन व्यक्ति विरोधभावसे शून्य रह सकता है?॥ ४४॥

त्वया मिथो विरोधोऽयं कल्पितः किल कौतुकात्।
मन्यामहे विभेदेन नूनं युद्धदिदृक्षया॥ ४५

अन्यथा खलु भ्रातॄणां विरोधः कीदृशोऽनघे।
त्वं चेन्नेच्छसि चामुण्डे वीक्षितुं कलहं किल॥ ४६

जानामि धर्मं धर्मज्ञे वेद्मि चाहं शतक्रतुम्।
तथापि कलहोऽस्माकं भोगार्थं देवि सर्वदा॥ ४७

एकः कोऽपि न शास्तास्ति संसारे त्वां विनाम्बिके।
स्पृहावतस्तु कः कर्तुं क्षमते वचनं बुधः॥ ४८

देवासुरैरयं सिन्धुर्मथितः समये क्वचित्।
विष्णुना विहितो भेदः सुधारत्नच्छलेन वै॥ ४९

त्वयासौ कल्पितः शौरिः पालकत्वे जगद्गुरुः।
तेन लक्ष्मीः स्वयं लोभाद् गृहीतामरसुन्दरी॥ ५०

ऐरावतस्तथेन्द्रेण पारिजातोऽथ कामधुक्।
उच्चैःश्रवाः सुरैः सर्वं गृहीतं वैष्णवेच्छया॥ ५१

अनयं तादृशं कृत्वा जाता देवास्तु साधवः।
(अन्यायिनः सुरा नूनं पश्य त्वं धर्मलक्षणम्।)
संस्थापिताः सुरा नूनं विष्णुना बहुमानिना॥ ५२

नूनं दैत्याः पराभूवन्पश्य त्वं धर्मलक्षणम्।
क्व धर्मः कीदृशो धर्मः क्व कार्यं क्व च साधुता॥ ५३

कथयामि च कस्याग्रे सिद्धं मैमांसिकं मतम्।
तार्किका युक्तिवादज्ञा विधिज्ञा वेदवादकाः॥ ५४

मैं तो समझता हूँ कि अपने विनोदके लिये आपने ही युद्ध देखनेकी इच्छासे निश्चय ही [हम दैत्यों तथा देवताओंके बीच] भेद उत्पन्न करके परस्पर यह विरोधभाव पैदा कर दिया है। अन्यथा हे अनघे! भाइयोंमें परस्पर विरोध कैसा? हे चामुण्डे! यदि आप [दैत्यों तथा देवताओंमें] कलह देखना न चाहतीं तो यह विरोधभाव नहीं होता॥ ४५-४६॥

हे धर्मज्ञे! मैं धर्मको जानता हूँ और इन्द्रको भी भलीभाँति जानता हूँ, तथापि हे देवि! भोगके लिये हमलोगोंके बीच कलह सदासे होता रहा है॥ ४७॥

हे अम्बिके! आपके अतिरिक्त संसारमें कोई भी एक शासक नहीं है। कौन बुद्धिमान् प्राणी किसी लोभीकी बातपर विश्वास करेगा? किसी समयकी बात है देवताओं और असुरोंने मिलकर इस समुद्रका मन्थन किया। किंतु विष्णुने अमृतरत्नके विभाजनमें छलपूर्वक देवताओं और असुरोंमें भेदभाव किया॥ ४८-४९॥

आपने पालन-कार्यके लिये विष्णुको जगद्गुरु बनाया है, किंतु उन्होंने लोभवश दिव्य सुन्दरी लक्ष्मीको स्वयं अपना लिया॥ ५०॥

उसी प्रकार विष्णुकी ही इच्छासे इन्द्रने ऐरावत हाथी, पारिजात, कामधेनु तथा उच्चैःश्रवा घोड़ेको ले लिया तथा अन्य देवताओंने शेष सब कुछ ग्रहण कर लिया॥ ५१॥

इस प्रकारका अन्याय करके देवता साधु बन गये! (यदि आप धर्मका लक्षण देखें तो उससे ज्ञात हो जायगा कि देवता निश्चितरूपसे अन्यायी हैं।) महाभिमानी विष्णुने ऐसे अन्यायी देवताओंको उच्च स्थानोंपर प्रतिष्ठित किया। इसके विपरीत दैत्यगण पराभूत हुए; अब आप ही धर्मका लक्षण देख लीजिये। धर्म कहाँ है, धर्मका स्वरूप कैसा है, कैसा कार्य हुआ है और साधुता कहाँ है?॥ ५२-५३॥

अब मैं किसके आगे अपनी बात कहूँ? मैमांसिक मत तो प्रसिद्ध ही है। [मीमांसक निरीश्वरवादका समर्थन करते हैं] नैयायिक विद्वान् युक्तिवादके ज्ञाता और वैदिक विद्वान् विधिके ज्ञाता कहे गये हैं।

उक्ताः सकर्तृकं विश्वं विवदन्ते जडात्मकाः।
कर्ता भवति चेदस्मिन्संसारे वितते किल॥ ५५

विरोधः कीदृशस्तत्र चैककर्मणि वै मिथः।
वेदे नैकमतिः कस्माच्छास्त्रेष्वपि तथा पुनः॥ ५६

नैकवाक्यं वचस्तेषामपि वेदविदां पुनः।
यतः स्वार्थपरं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ५७

निःस्पृहः कोऽपि संसारे न भवेन्न भविष्यति।
शशिनाथ गुरोर्भार्या हृता ज्ञात्वा बलादपि॥ ५८

गौतमस्य तथेन्द्रेण जानता धर्मनिश्चयम्।
गुरुणानुजभार्या च भुक्ता गर्भवती बलात्॥ ५९

शप्तो गर्भगतो बालः कृतश्चान्धस्तथा पुनः।
विष्णुना च शिरश्छिन्नं राहोश्चक्रेण वै बलात्॥ ६०

अपराधं विना कामं तदा सत्त्ववताम्बिके।
पौत्रो धर्मवतां शूरः सत्यव्रतपरायणः॥ ६१

यज्वा दानपतिः शान्तः सर्वज्ञः सर्वपूजकः।
कृत्वाथ वामनं रूपं हरिणा छलवेदिना॥ ६२

वञ्चितोऽसौ बलिः सर्वं हृतं राज्यं पुरा किल।
तथापि देवान्धर्मस्थान्प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ६३

वदन्ति चाटुवादांश्च धर्मवादाञ्जयं गताः।
एवं ज्ञात्वा जगन्मातर्यथेच्छसि तथा कुरु॥ ६४

शरणा दानवाः सर्वे जहि वा रक्ष वा पुनः।

श्रीदेव्युवाच

सर्वे गच्छत पातालं तत्र वासं यथेप्सितम्॥ ६५

कुरुध्वं दानवाः सर्वे निर्भया गतमन्यवः।
कालः प्रतीक्ष्यो युष्माभिः कारणं स शुभेऽशुभे॥ ६६

कुछ लोग विश्वको सकर्तृक मानते हैं। [उनमें कुछ लोग विश्वका रचयिता 'पुरुष' को और कुछ लोग 'प्रकृति' को बताते हैं] जड़वादी लोग इससे विपरीत प्रकारकी बात करते हैं। यदि इस विस्तृत संसारमें कोई एक कर्ता होता तो एक ही कर्मके विषयमें लोगोंमें परस्पर विरोध कैसे होता? वेदमें एक मत नहीं है और उसी प्रकार शास्त्रोंमें भी मतैक्य नहीं है। उन वेदविदोंके वचनमें भी एकवाक्यता नहीं है; क्योंकि यह समस्त स्थावर-जंगमात्मक जगत् ही स्वार्थपरायण है। संसारमें कोई भी न तो निःस्पृह हुआ है और न होगा॥ ५४—५७$\frac{१}{२}$ ॥

चन्द्रमाने जान-बूझकर अपने गुरु बृहस्पतिकी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया। उसी प्रकार धर्मका निर्णय जानते हुए भी इन्द्रने महर्षि गौतमकी पत्नीके साथ अनाचार किया। देवगुरु बृहस्पतिने अपने छोटे भाईकी गर्भवती भार्याके साथ रमण किया और गर्भस्थ शिशुको शाप दे दिया तथा उसे अन्धा बना दिया॥ ५८-५९$\frac{१}{२}$ ॥

हे अम्बिके! सत्त्व-सम्पन्न होते हुए भी विष्णुने बलपूर्वक सुदर्शनचक्रसे निरपराध राहुका सिर काट लिया। मेरा पौत्र बलि धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ, वीर, सत्यव्रतमें संलग्न रहनेवाला, यज्ञकर्ता, महादानी, शान्त, सर्वज्ञ तथा सबका सम्मान करनेवाला था। पूर्वकालमें कपटज्ञानी विष्णुने वामनका रूप धारण करके उस बलिके साथ भी छल किया और उसका सारा राज्य छीन लिया। फिर भी विद्वान् लोग देवताओंको धर्मनिष्ठ कहते हैं और चाटुकारितापूर्ण वचन बोलते हैं कि धर्मवादी होनेके कारण ही देवता विजयको प्राप्त हुए। हे जगज्जननि! यह सब सोच-समझकर आप जैसा चाहें, वैसा करें। सभी दानव आपकी शरणमें हैं, अब आप उनका संहार करें अथवा उनकी रक्षा करें॥ ६०—६४$\frac{१}{२}$ ॥

श्रीदेवी बोलीं—हे दानवो! तुम सबलोग पाताल चले जाओ और वहाँपर निर्भय तथा शोकरहित होकर इच्छानुसार निवास करो। अभी तुमलोगोंको समयकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। वह काल ही अच्छे या बुरे कार्यमें कारण बनता है॥ ६५-६६ ॥

सुनिर्वेदपराणां हि सुखं सर्वत्र सर्वदा।
त्रैलोक्यस्य च राज्येऽपि न सुखं लोभचेतसाम्॥ ६७

कृतेऽपि न सुखं पूर्णं सस्पृहाणां फलैरपि।
तस्मात्त्यक्त्वा महीमेतां प्रयान्त्वद्य महीतलम्॥ ६८

ममाज्ञां पुरतः कृत्वा सर्वे विगतकल्मषाः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्यास्तथेत्युक्त्वा रसातलम्॥ ६९

प्रणम्य दानवाः सर्वे गताः शक्त्याभिरक्षिताः।
अन्तर्दधे ततो देवी देवाः स्वभुवनं गताः॥ ७०

त्यक्त्वा वैरं स्थिताः सर्वे ते तदा देवदानवाः।

एतदाख्यानमखिलं यः शृणोति वदत्यथ॥ ७१
सर्वदुःखविनिर्मुक्तः प्रयाति पदमुत्तमम्॥ ७२

परम सन्तोषी लोगोंको सभी जगह सदा सुख-ही-सुख है, किंतु लोभयुक्त मनवाले लोगोंको तीनों लोकोंका राज्य मिल जानेपर भी सुख नहीं प्राप्त होता। सत्ययुगमें भी नानाविध भोगोंके रहते प्रबल कामनावाले लोगोंका सुख कभी पूरा नहीं हुआ। अतः सभी दैत्य मेरी आज्ञा मानकर इस पृथ्वीको छोड़कर अभी पातालमें चले जायँ और वहाँ निष्पाप होकर रहें॥ ६७-६८$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर सभी दानवोंने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उन्हें प्रणाम किया और उनकी शक्तिसे रक्षित होकर वे वहाँसे चल पड़े। तत्पश्चात् भगवती अन्तर्धान हो गयीं और देवता अपने-अपने लोक चले गये। उस समय सभी देवता तथा दानव वैर-भाव छोड़कर रहने लगे॥ ६९-७०$\frac{१}{२}$॥

जो मनुष्य इस सम्पूर्ण कथानकको सुनता अथवा कहता है, वह सभी दुःखोंसे मुक्त होकर परमपद प्राप्त कर लेता है॥ ७१-७२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे देवीकथनेन
दानवानां रसातलं प्रति गमनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

भगवान् श्रीहरिके विविध अवतारोंका संक्षिप्त वर्णन

जनमेजय उवाच

भृगुशापान्मुनिश्रेष्ठ हरेरद्भुतकर्मणः।
अवताराः कथं जाताः कस्मिन्मन्वन्तरे विभो॥ १

विस्तराद्वद धर्मज्ञ अवतारकथां हरेः।
पापनाशकरीं ब्रह्मञ्छ्रुतां सर्वसुखावहाम्॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि अवतारान् हरेर्यथा।
यस्मिन्मन्वन्तरे जाता युगे यस्मिन्नराधिप॥ ३

येन रूपेण यत्कार्यं कृतं नारायणेन वै।
तत्सर्वं नृप वक्ष्यामि संक्षेपेण तवाधुना॥ ४

धर्मस्यैवावतारोऽभूच्चाक्षुषे मनुसम्भवे।
नरनारायणौ धर्मपुत्रौ ख्यातौ महीतले॥ ५

जनमेजय बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! हे विभो! अद्भुत चरित्रवाले भगवान् विष्णुने भृगुके शापसे किस मन्वन्तरमें किस प्रकार अवतार ग्रहण किये। हे धर्मज्ञ! हे ब्रह्मन्! श्रवण करनेपर समस्त सुख सुलभ करानेवाली तथा पापोंका नाश कर देनेवाली भगवान् विष्णुकी अवतार-कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे नराधिप! जिस मन्वन्तर तथा जिस युगमें जैसे-जैसे भगवान् विष्णुके अवतार हुए हैं, उन अवतारोंको मैं बता रहा हूँ, आप सुनें। हे नृप! भगवान् नारायणने जिस रूपसे जो कार्य किया, वह सब मैं आपको इस समय संक्षेपमें बताता हूँ॥ ३-४॥

चाक्षुष मन्वन्तरमें साक्षात् विष्णुका धर्मावतार हुआ था। उस समय वे धर्मपुत्र होकर नर-नारायण नामसे धरातलपर विख्यात हुए॥ ५॥

अथ वैवस्वताख्येऽस्मिन्द्वितीये तु युगे पुनः।
दत्तात्रेयावतारोऽत्रेः पुत्रत्वमगमद्धरिः॥ ६

ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयोऽमी देवसत्तमाः।
पुत्रत्वमगमन्देवास्तस्यात्रेर्भार्यया वृताः॥ ७

अनसूयात्रिपत्नी च सतीनामुत्तमा सती।
यया सम्प्रार्थिता देवाः पुत्रत्वमगमंस्त्रयः॥ ८

ब्रह्माभूत्सोमरूपस्तु दत्तात्रेयो हरिः स्वयम्।
दुर्वासा रुद्ररूपोऽसौ पुत्रत्वं ते प्रपेदिरे॥ ९

नृसिंहस्यावतारस्तु देवकार्यार्थसिद्धये।
चतुर्थे तु युगे जातो द्विधारूपो मनोहरः॥ १०

हिरण्यकशिपोः सम्यग्वधाय भगवान् हरिः।
चक्रे रूपं नारसिंहं देवानां विस्मयप्रदम्॥ ११

बलेर्नियमनार्थाय श्रेष्ठे त्रेतायुगे तथा।
चकार रूपं भगवान् वामनं कश्यपान्मुनेः॥ १२

छलयित्वा मखे भूपं राज्यं तस्य जहार ह।
पाताले स्थापयामास बलिं वामनरूपधृक्॥ १३

युगे चैकोनविंशेऽथ त्रेताख्ये भगवान् हरिः।
जमदग्निसुतो जातो रामो नाम महाबलः॥ १४

क्षत्रियान्तकरः श्रीमान्सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दत्तवान्मेदिनीं कृत्स्नां कश्यपाय महात्मने॥ १५

यो वै परशुरामाख्यो हरेरद्भुतकर्मणः।
अवतारस्तु राजेन्द्र कथितः पापनाशनः॥ १६

त्रेतायुगे रघोर्वंशे रामो दशरथात्मजः।
नरनारायणांशौ द्वौ जातौ भुवि महाबलौ॥ १७

इस वैवस्वत मन्वन्तरके दूसरे चतुर्युगमें भगवान्‌का दत्तात्रेयावतार हुआ। वे भगवान् श्रीहरि महर्षि अत्रिके पुत्ररूपमें अवतीर्ण हुए॥ ६॥

उन अत्रिमुनिकी भार्या अनसूयाकी प्रार्थनापर ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—ये तीनों महान् देवता उनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे॥ ७॥

अत्रिकी पत्नी साध्वी अनसूया सती स्त्रियोंमें श्रेष्ठ थीं, जिनके सम्यक् रूपसे प्रार्थना करनेपर वे तीनों देवता उनके पुत्ररूपमें अवतरित हुए॥ ८॥

उनमें ब्रह्माजी सोम (चन्द्रमा)-रूपमें, साक्षात् विष्णु दत्तात्रेयके रूपमें और शंकरजी दुर्वासाके रूपमें उनके यहाँ पुत्रत्वको प्राप्त हुए॥ ९॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये चौथे चतुर्युगमें दो प्रकारके रूपोंवाला मनोहर नृसिंहावतार हुआ। भगवान् श्रीविष्णुने उस समय हिरण्यकशिपुका सम्यक् वध करनेके लिये ही देवताओंको भी चकित कर देनेवाला नारसिंहरूप धारण किया था॥ १०-११॥

भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिका शमन करनेके उद्देश्यसे उत्तम त्रेतायुगमें कश्यपमुनिके यहाँ वामनरूपसे अवतार धारण किया था। उन वामनरूपधारी विष्णुने यज्ञमें राजा बलिको छलकर उनका राज्य हर लिया और उन्हें पातालमें स्थापित कर दिया॥ १२-१३॥

उन्नीसवें चतुर्युगके त्रेता नामक युगमें भगवान् विष्णु महर्षि जमदग्निके परशुराम नामक महाबली पुत्रके रूपमें उत्पन्न हुए॥ १४॥

क्षत्रियोंका नाश कर डालनेवाले उन प्रतापी, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय परशुरामने सम्पूर्ण पृथ्वी [क्षत्रियोंसे छीनकर] महात्मा कश्यपको दे दी थी॥ १५॥

हे राजेन्द्र! मैंने अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके पापनाशक 'परशुराम' नामक अवतारका यह वर्णन कर दिया॥ १६॥

भगवान् विष्णुने त्रेतायुगमें रघुके वंशमें दशरथपुत्र रामके रूपमें अवतार धारण किया था। इसी प्रकार अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें साक्षात् नर तथा नारायणके अंशसे कल्याणप्रद तथा महाबली अर्जुन

अष्टाविंशे युगे शस्तौ द्वापरेऽर्जुनशौरिणौ।
धराभारावतारार्थं जातौ कृष्णार्जुनौ भुवि॥ १८

कृतवन्तौ महायुद्धं कुरुक्षेत्रेऽतिदारुणम्।
एवं युगे युगे राजन्नवतारा हरेः किल॥ १९

भवन्ति बहवः कामं प्रकृतेरनुरूपतः।
प्रकृतेरखिलं सर्वं वशमेतज्जगत्त्रयम्॥ २०

यथेच्छति तथैवेयं भ्रामयत्यनिशं जगत्।
पुरुषस्य प्रियार्थं सा रचयत्यखिलं जगत्॥ २१

सृष्ट्वा पुरा हि भगवाञ्जगदेतच्चराचरम्।
सर्वादिः सर्वगश्चासौ दुर्ज्ञेयः परमोऽव्ययः॥ २२

निरालम्बो निराकारो निःस्पृहश्च परात्परः।
उपाधितस्त्रिधा भाति यस्याः सा प्रकृतिः परा॥ २३

उत्पत्तिकालयोगात्सा भिन्ना भाति शिवा तदा।
सा विश्वं कुरुते कामं सा पालयति कामदा॥ २४

कल्पान्ते संहरत्येव त्रिरूपा विश्वमोहिनी।
तया युक्तोऽसृजद् ब्रह्मा विष्णुः पाति तयान्वितः॥ २५

रुद्रः संहरते कामं तया सम्मिलितः शिवः।
सा चैवोत्पाद्य काकुत्स्थं पुरा वै नृपसत्तमम्॥ २६

कुत्रचित्स्थापयामास दानवानां जयाय च।
एवमस्मिंश्च संसारे सुखदुःखान्विताः किल॥ २७

भवन्ति प्राणिनः सर्वे विधितन्त्रनियन्त्रिताः॥ २८

और श्रीकृष्ण पृथ्वीतलपर अवतीर्ण हुए। श्रीकृष्ण तथा अर्जुनने पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही भूमण्डलपर अवतार लिया और कुरुक्षेत्रमें अत्यन्त भयंकर महायुद्ध किया॥ १७-१८½ ॥

हे राजन्! इस प्रकार प्रकृतिके आदेशानुसार युग-युगमें भगवान् विष्णुके अनेक अवतार हुआ करते हैं। यह सम्पूर्ण त्रिलोकी प्रकृतिके अधीन रहती है। ये भगवती प्रकृति जैसे चाहती हैं वैसे ही जगत्को निरन्तर नचाया करती हैं। परमपुरुषकी प्रसन्नताके लिये ही वे समस्त संसारकी रचना करती हैं॥ १९—२१ ॥

प्राचीनकालमें इस चराचर जगत्का सृजन करके सबके आदिरूप, सर्वत्र गमन करनेवाले, दुर्ज्ञेय, महान्, अविनाशी, स्वतन्त्र, निराकार, निःस्पृह और परात्पर वे भगवान् जिन मायारूपिणी भगवतीके संयोगसे उपाधिरूपमें [ब्रह्मा, विष्णु, महेश] तीन प्रकारके प्रतीत होते हैं, वे ही 'परा प्रकृति' हैं॥ २२-२३ ॥

उत्पत्ति और कालके योगसे ही वे कल्याणमयी प्रकृति उस परमात्मासे भिन्न भासती हैं। सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे प्रकृति ही विश्वकी रचना करती हैं, सम्यक् रूपसे पालन करती हैं और कल्पके अन्तमें संहार भी कर देती हैं। इस प्रकार वे विश्वमोहिनी भगवती प्रकृति ही तीन रूपोंमें विराजमान रहती हैं। उन्हींसे संयुक्त होकर ब्रह्माने जगत्की सृष्टि की है, उन्हींसे सम्बद्ध होकर विष्णु पालन करते हैं और उन्हींके साथ मिलकर कल्याणकारी रुद्र संहार करते हैं॥ २४-२५½ ॥

पूर्वकालमें उन भगवती परा प्रकृतिने ही ककुत्स्थवंशी नृपश्रेष्ठको उत्पन्न करके दानवोंको पराजित करनेके लिये उन्हें कहींपर स्थापित कर दिया। इस प्रकार इस संसारमें सभी प्राणी विधिके नियमोंमें बँधकर सदा सुख तथा दुःखसे युक्त रहते हैं॥ २६—२८ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
हरेर्नानावतारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

श्रीनारायणद्वारा अप्सराओंको वरदान देना, राजा जनमेजयद्वारा व्यासजीसे श्रीकृष्णावतारका चरित सुनानेका निवेदन करना

जनमेजय उवाच

वाराङ्गनास्त्वयाख्याता नरनारायणाश्रमे।
एकं नारायणं शान्तं कामयानाः स्मरातुराः॥ १

शप्तुकामस्तदा जातो मुनिर्नारायणश्च ताः।
निवारितो नरेणाथ भ्रात्रा धर्मविदा नृप॥ २

किं कृतं मुनिना तेन व्यसने समुपस्थिते।
ताभिः संकल्पितेनाथ कामार्थाभिर्भृशं मुने॥ ३

शक्रेणोत्पादिताभिश्च बहुप्रार्थनया पुनः।
याचितेन विवाहार्थं किं कृतं तेन जिष्णुना॥ ४

इत्येतच्छ्रोतुमिच्छामि चरितं तस्य मोक्षदम्।
नारायणस्य मे ब्रूहि विस्तरेण पितामह॥ ५

व्यास उवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि यथा तस्य महात्मनः।
धर्मपुत्रस्य धर्मज्ञ विस्तरेण वदामि ते॥ ६

शप्तुकामस्तु संदृष्टो नरेणाथ यदा हरिः।
वारितोऽसौ समाश्वास्य मुनिर्नारायणस्तदा॥ ७

शान्तकोपस्तदोवाच तास्तपस्वी महामुनिः।
स्मितपूर्वमिदं वाक्यं मधुरं धर्मनन्दनः॥ ८

अस्मिञ्जन्मनि चार्वंग्यः कृतसंकल्पवानहम्।
आवाभ्याञ्च न कर्तव्यः सर्वथा दारसंग्रहः॥ ९

तस्माद् गच्छन्तु त्रिदिवं कृपां कृत्वा ममोपरि।
धर्मज्ञा न प्रकुर्वन्ति व्रतभङ्गं परस्य वै॥ १०

शृङ्गारेऽस्मिन् रसे नूनं स्थायीभावो रतिः स्मृतः।
कथं करोमि सम्बन्धं तदभावे सुलोचनाः॥ ११

जनमेजय बोले—हे मुने! आप नर-नारायणके आश्रममें आयी हुई अप्सराओंकी चर्चा पहले ही कर चुके हैं, जो काम-पीड़ित होकर शान्तचित्त मुनि नारायणपर आसक्त हो गयी थीं। उसके बाद मुनि नारायण उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। इसपर उनके भाई धर्मवेत्ता नरने उन्हें ऐसा करनेसे रोक दिया था॥ १-२॥

हे मुने! अत्यन्त कामासक्त उन अप्सराओं के द्वारा [अपने मनमें पतिरूपमें] संकल्पित किये गये उन मुनि नारायणने इस विषम संकटके उपस्थित होनेपर क्या किया? इन्द्रके द्वारा प्रेषित उन वारांगनाओंके बार-बार बहुत प्रार्थना करके विवाहके लिये याचित उन भगवान् नारायणमुनिने क्या किया? हे पितामह! मैं उन नारायणमुनिका यह मोक्षदायक चरित्र सुनना चाहता हूँ; विस्तारके साथ मुझे बतायें॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताऊँगा। हे धर्मज्ञ! उन महात्मा धर्मपुत्र नारायणका चरित्र विस्तारपूर्वक मैं आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

जब नरने मुनि नारायणको शाप देनेके लिये उद्यत देखा तब उन्होंने नारायणको आश्वासन देकर [वैसा करनेसे] रोक दिया॥ ७॥

तत्पश्चात् क्रोधके शान्त हो जानेपर महामुनि तपस्वी धर्मपुत्र नारायण उन अप्सराओंसे मन्द-मन्द मुसकराते हुए यह मधुर वचन कहने लगे—॥ ८॥

हे सुन्दरियो! हमने इस जन्ममें संकल्प कर रखा है कि हम दोनों कभी भी विवाह नहीं करेंगे। अतः मेरे ऊपर कृपा करके आपलोग स्वर्ग लौट जायँ। धर्मज्ञ लोग दूसरेका व्रत भंग नहीं करते॥ ९-१०॥

हे सुन्दर नेत्रोंवाली! इस शृंगार-रसमें रतिको ही स्थायी भाव कहा गया है। अतः [ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेके कारण] उसके अभावमें मैं सम्बन्ध कैसे कर सकता हूँ?॥ ११॥

कारणेन विना कार्यं न भवेदिति निश्चयः।
कविभिः कथितं शास्त्रे स्थायीभावो रसः किल॥ १२

धन्यः सुचारुसर्वाङ्गः सभाग्योऽहं धरातले।
प्रीतिपात्रं यतो जातो भवतीनामकृत्रिमम्॥ १३

भवतीभिः कृपां कृत्वा रक्षणीयं व्रतं मम।
भविष्यामि महाभागाः पतिरप्यन्यजन्मनि॥ १४

अष्टाविंशे विशालाक्ष्यो द्वापरेऽस्मिन्धरातले।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं प्रभविष्यामि सर्वथा॥ १५

तदा भवत्यो मद्दाराः प्राप्य जन्म पृथक्पृथक्।
भूपतीनां सुता भूत्वा पत्नीभावं गमिष्यथ॥ १६

इत्याश्वास्य हरिस्तास्तु प्रतिश्रुत्य परिग्रहम्।
व्यसर्जयत्स भगवाञ्जग्मुश्च विगतज्वराः॥ १७

एवं विसर्जितास्तेन गताः स्वर्गं तदाङ्गनाः।
शक्राय कथयामासुः कारणं सकलं पुनः॥ १८

आश्रुत्य मघवांस्ताभ्यो वृत्तान्तं तस्य विस्तरात्।
तुष्टाव तं महात्मानं नारीर्दृष्ट्वा तथोर्वशीः॥ १९

इन्द्र उवाच

अहो धैर्यं मुनेः कामं तथैव च तपोबलम्।
येनोर्वश्यः स्वतपसा तादृग्रूपाः प्रकल्पिताः॥ २०

इति स्तुत्वा प्रसन्नात्मा बभूव सुरराट् ततः।
नारायणोऽपि धर्मात्मा तपस्यभिरतोऽभवत्॥ २१

इत्येतत्सर्वमाख्यातं मुनेर्वृत्तान्तमद्भुतम्।
नारायणस्य सकलं नरस्य च महामुनेः॥ २२

तौ हि कृष्णार्जुनौ वीरौ भूभारहरणाय च।
जातौ तौ भरतश्रेष्ठ भृगोः शापवशादिह॥ २३

कारणके बिना कार्य नहीं हो सकता है—यह सुनिश्चित है। कवियोंने शास्त्रमें कहा है कि स्थायीभाव ही रसस्वरूप है॥ १२॥

समस्त सुन्दर अंगोंवाला मैं इस धरातलपर धन्य तथा सौभाग्यशाली हूँ जो कि आपलोगोंका स्वाभाविक प्रीतिपात्र बन सका॥ १३॥

हे महाभागाओ! आपलोग कृपा करके मेरे व्रतकी रक्षा करें। मैं दूसरे जन्ममें आपलोगोंका पति अवश्य बनूँगा॥ १४॥

हे विशाल नेत्रोंवाली सुन्दरियो! देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं अट्ठाईसवें द्वापरमें इस धरातलपर निश्चितरूपसे अवतरित होऊँगा॥ १५॥

उस समय आपलोग भी राजाओंकी कन्याएँ होकर पृथक्-पृथक् जन्म ग्रहण करेंगी और मेरी भार्याएँ बनकर पत्नी-भावको प्राप्त होंगी॥ १६॥

पाणिग्रहणका ऐसा आश्वासन देकर भगवान् नारायण-मुनिने उन्हें विदा किया और वे अप्सराएँ भी कामव्यथासे रहित होकर वहाँसे चली गयीं॥ १७॥

इस प्रकार उनसे विदा पाकर वे अप्सराएँ स्वर्ग पहुँचीं और फिर उन्होंने इन्द्रको सारा वृत्तान्त बता दिया॥ १८॥

तदनन्तर उन अप्सराओंसे नारायणमुनिका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनकर तथा साथमें आयी उर्वशी आदि नारियोंको देखकर इन्द्र उन महात्मा नारायणकी प्रशंसा करने लगे॥ १९॥

इन्द्र बोले—अहो, उन मुनिका ऐसा अपार धैर्य तथा तपोबल है, जिन्होंने अपने तपके प्रभावसे उन्हीं अप्सराओंके सदृश रूपवाली अन्य उर्वशी आदि अप्सराएँ उत्पन्न कर दीं। नारायणमुनिकी यह प्रशंसा करके देवराज इन्द्रका मन प्रसन्नतासे परिपूर्ण हो गया। उधर, धर्मात्मा नारायण भी तपस्यामें संलग्न हो गये॥ २०-२१॥

[हे राजन्!] इस प्रकार मैंने आपसे मुनि नारायण और महामुनि नरके सम्पूर्ण अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कर दिया॥ २२॥

हे भरतश्रेष्ठ! वे ही नर-नारायण भृगुके शापवश पृथ्वीका भार उतारनेके लिये इस लोकमें पराक्रमी कृष्ण तथा अर्जुनके रूपमें अवतरित हुए थे॥ २३॥

राजोवाच

कृष्णावतारचरितं विस्तरेण वदस्व मे।
सन्देहो मम चित्तेऽस्ति तं निवारय मानद॥ २४

ययोः पुत्रत्वमापन्नौ हर्यनन्तौ महाबलौ।
देवकीवसुदेवौ तौ दुःखभाजौ कथं मुने॥ २५

कंसेन निगडे बद्धौ पीडितौ बहुवत्सरान्।
ययोः पुत्रो हरिः साक्षात्तपसा तोषितोऽभवत्॥ २६

जातोऽसौ मथुरायां तु गोकुले स कथं गतः।
कंसं हत्वा द्वारवत्यां निवासं कृतवान्कथम्॥ २७

पित्रादिसेवितं देशं समृद्धं पावनं किल।
त्यक्त्वा देशान्तरेऽनार्ये गतवान्स कथं हरिः॥ २८

कुलञ्च द्विजशापेन कथमुत्सादितं हरेः।
भारावतारणं कृत्वा वासुदेवः सनातनः॥ २९

देहं मुमोच तरसा जगाम च दिवं हरिः।
पापिष्ठानाञ्च भारेण व्याकुलाभूच्च मेदिनी॥ ३०

ते हता वासुदेवेन पार्थेनामितकर्मणा।
लुण्ठिता यैर्हरेः पत्न्यस्ते कथं न निपातिताः॥ ३१

भीष्मो द्रोणस्तथा कर्णो बाह्लीकोऽप्यथ पार्थिवः।
वैराटोऽथ विकर्णश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्थिवः॥ ३२

सोमदत्तादयः सर्वे निहताः समरे नृपाः।
तेषामुत्तारितो भारश्चौराणां न हृतः कथम्॥ ३३

कृष्णपत्न्यः कथं दुःखं प्राप्ताः प्रान्ते पतिव्रताः।
सन्देहोऽयं मुनिश्रेष्ठ चित्ते मे परिवर्तते॥ ३४

वसुदेवस्तु धर्मात्मा पुत्रदुःखेन तापितः।
त्यक्तवान्स कथं प्राणानपमृत्युं जगाम ह॥ ३५

पाण्डवा धर्मसंयुक्ताः कृष्णे च निरताः सदा।
ते कथं दुःखभोक्तारो ह्यभवन्मुनिसत्तम॥ ३६

राजा बोले—हे मानद! अब आप कृष्णावतारकी कथा विस्तारके साथ मुझसे कहिये और मेरे मनमें जो सन्देह है, उसका निवारण कीजिये॥ २४॥

हे मुने! महाबली श्रीकृष्ण और बलराम जिनके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए, उन वसुदेव और देवकीको दुःखका भागी क्यों होना पड़ा?॥ २५॥

जिनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर साक्षात् भगवान् श्रीहरि उनके पुत्र बने थे, वे ही [वसुदेव और देवकी] बेड़ियोंमें बद्ध होकर कंसके द्वारा बहुत वर्षोंतक क्यों सताये गये?॥ २६॥

वे श्रीकृष्ण उत्पन्न तो मथुरामें हुए, किंतु गोकुल क्यों ले जाये गये? बादमें कंसका वध करके उन्होंने द्वारकामें निवास क्यों किया? अपने पिता आदिके द्वारा सेवित, समृद्धिसम्पन्न तथा पवित्र स्थानको छोड़कर वे भगवान् श्रीकृष्ण दूसरे अनार्य देशमें क्यों चले गये?॥ २७-२८॥

एक ब्राह्मणके शापसे भगवान् श्रीकृष्णके वंशका नाश क्यों हो गया? पृथ्वीका भार उतारकर उन सनातन भगवान् श्रीकृष्णने तुरंत देहत्याग कर दिया और वे स्वर्ग चले गये। जिन पापियोंके भारसे पृथ्वी व्याकुल हो उठी थी, उन्हें तो अमित कर्मोंवाले भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनने मार डाला था, किंतु जिन चोरोंने भगवान् श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण कर लिया था, उन्हें वे क्यों नहीं मार सके?॥ २९—३१॥

भीष्म, द्रोण, कर्ण, राजा बाह्लीक, वैराट, विकर्ण, राजा धृष्टद्युम्न, सोमदत्त आदि सभी राजागण युद्धमें मार डाले गये। भगवान् श्रीकृष्णने उनका भार तो पृथ्वीपरसे उतार दिया, किंतु वे चोरोंका भार क्यों नहीं मिटा सके? कृष्णकी पतिव्रता पत्नियोंको निर्जन स्थानमें इस प्रकारका दुःख क्यों मिला? हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे मनमें यह संदेह बार-बार हो रहा है॥ ३२—३४॥

धर्मात्मा वसुदेवने पुत्रशोकसे सन्तप्त होकर अपने प्राण त्याग दिये; इस प्रकार वे अकालमृत्युको क्यों प्राप्त हुए?॥ ३५॥

हे मुनिवर! पाण्डव धर्मनिष्ठ थे और भगवान् कृष्णमें सदा तल्लीन रहते थे; फिर भी उन्हें दुःख क्यों भोगना पड़ा?॥ ३६॥

द्रौपदी च महाभागा कथं दुःखस्य भागिनी।
वेदीमध्याच्च सञ्जाता लक्ष्म्यंशसम्भवा किल॥ ३७

सभायां सा समानीता रजोदोषसमन्विता।
बाला दुःशासनेनाथ केशग्रहणकर्शिता॥ ३८

पीडिता सिन्धुराज्ञाथ वनमध्यगता सती।
तथैव कीचकेनापि पीडिता रुदती भृशम्॥ ३९

पुत्राः पञ्चैव तस्यास्तु निहता द्रौणिना गृहे।
सुभद्रायाः सुतो युद्धे बाल एव निपातितः॥ ४०

तथा च देवकीपुत्रा षट् कंसेन निषूदिताः।
समर्थेनापि हरिणा दैवं न कृतमन्यथा॥ ४१

यादवानां तथा शापः प्रभासे निधनं पुनः।
कुलक्षयस्तथा तीव्रस्तत्पत्नीनाञ्च लुण्ठनम्॥ ४२

विष्णुना चेश्वरेणापि साक्षान्नारायणेन च।
उग्रसेनस्य सेवा वै दासवत्सततं कृता॥ ४३

सन्देहोऽयं महाभाग तत्र नारायणे मुनौ।
सर्वजन्तुसमानत्वं व्यवहारे निरन्तरम्॥ ४४

हर्षशोकादयो भावाः सर्वेषां सदृशाः कथम्।
ईश्वरस्य हरेर्जाता कथमप्यन्यथा गतिः॥ ४५

तस्माद्विस्तरतो ब्रूहि कृष्णस्य चरितं महत्।
अलौकिकेन हरिणा कृतं कर्म महीतले॥ ४६

हता आयुःक्षये दैत्याः क्लेशेन महता पुनः।
क्वैश्वर्यशक्तिः प्रथिता हरिणा मुनिसत्तम॥ ४७

रुक्मिणीहरणे नूनं गृहीत्वाथ पलायनम्।
कृतं हि वासुदेवेन चौरवच्चरितं तदा॥ ४८

मथुरामण्डलं त्यक्त्वा समृद्धं कुलसम्मतम्।
जरासन्धभयात्तेन द्वारकागमनं कृतम्॥ ४९

महाभागा द्रौपदीको दुःख क्यों सहने पड़े? वह तो साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी और वेदीके मध्यसे प्रकट हुई थी। रजोधर्मसे युक्त उस युवती द्रौपदीको उसके बाल पकड़कर घसीटते हुए दुःशासन सभामें ले आया था। वनमें गयी हुई उस पतिव्रताको सिन्धुराज जयद्रथने सताया, उसी प्रकार [अज्ञातवासके समय] कीचकने भी रोती-कलपती उस द्रौपदीको बहुत पीड़ा पहुँचायी। अश्वत्थामाने घरके अन्दर ही उसके पाँच पुत्रोंको मार डाला। सुभद्रापुत्र अभिमन्यु बाल्यावस्थामें ही युद्धमें मार डाला गया। उसी प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिया। किंतु [सब कुछ करनेमें] समर्थ होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्ण प्रारब्धको नहीं टाल सके॥ ३७—४१॥

यादवोंको शाप मिला और इसके बाद प्रभास-क्षेत्रमें उनका निधन हो गया। इस प्रकार भयंकर कुलनाश हो गया और अन्तमें उनकी पत्नियोंका हरण भी हो गया। भगवान् कृष्ण स्वयं नारायण, ईश्वर और विष्णु थे; फिर भी उन्होंने दासकी भाँति उग्रसेनकी सदा सेवा की। हे महाभाग! मुनि नारायणके विषयमें मुझे यह सन्देह है कि आचार-व्यवहारमें वे सदा साधारण प्राणियोंके समान ही रहते थे॥ ४२—४४॥

सभी प्राणियोंके समान हर्ष-शोकादि भाव उनमें भी क्यों थे? उन भगवान् श्रीकृष्णकी भी यह अन्यथा गति क्यों हुई?॥ ४५॥

अतः आप श्रीकृष्णके महान् चरित्रका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और उन लोकोत्तर भगवान्के द्वारा पृथ्वीतलपर किये गये कर्मोंको भी बताइये॥ ४६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्ण दैत्योंकी आयु समाप्त होनेपर भी बड़े कष्टसे उन्हें मार पाये। उस समय उनकी विख्यात ईश्वरीय शक्ति कहाँ थी?॥ ४७॥

रुक्मिणीहरणके समय वे वासुदेव श्रीकृष्ण उसे लेकर भाग गये थे। उस समय तो उन्होंने चौर-तुल्य आचरण किया था॥ ४८॥

समृद्धिशाली तथा अपने पूर्वजोंके द्वारा प्रतिष्ठित किये गये मथुरामण्डलको छोड़कर वे श्रीकृष्ण जरासन्धके

तदा केनापि न ज्ञातो भगवान्हरिरीश्वरः।
किञ्चित्प्रब्रूहि मे ब्रह्मन् कारणं व्रजगोपनम्॥ ५०

एते चान्ये च बहवः सन्देहा वासवीसुत।
नाशयाद्य महाभाग सर्वज्ञोऽसि द्विजोत्तम॥ ५१

गोप्यस्तथैकः सन्देहो हृदयान्न निवर्तते।
पाञ्चाल्याः पञ्चभर्तृत्वं लोके किं न जुगुप्सितम्॥ ५२

सदाचारं प्रमाणं हि प्रवदन्ति मनीषिणः।
पशुधर्मः कथं तैस्तु समर्थैरपि संश्रितः॥ ५३

भीष्मेणापि कृतं किं वा देवरूपेण भूतले।
गोलकौ तौ समुत्पाद्य यत्तु वंशस्य रक्षणम्॥ ५४

धिग्धर्मनिर्णयः कामं मुनिभिः परिदर्शितः।
येन केनाप्युपायेन पुत्रोत्पादनलक्षणः॥ ५५

भयसे द्वारका चले गये थे। उस समय कोई भी नहीं जान सका कि ये श्रीकृष्ण ही भगवान् विष्णु हैं। हे ब्रह्मन्! [श्रीकृष्णके द्वारा अपनेको] व्रजमें छिपाये रखनेका कुछ कारण आप मुझे बताइये॥ ४९-५०॥

हे सत्यवतीनन्दन! ये तथा और भी दूसरे बहुत-से सन्देह हैं। हे महाभाग! हे द्विजवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतः आज आप उन्हें दूर कर दीजिये॥ ५१॥

एक और गोपनीय सन्देह है जो मेरे मनसे नहीं निकल पा रहा है। क्या द्रौपदीके पाँच पतियोंका होना लोकमें निन्दनीय नहीं है? विद्वज्जन तो सदाचारको ही प्रमाण मानते हैं; तब समर्थ होकर भी उन पाण्डवोंने पशु-धर्म क्यों स्वीकार किया?॥ ५२-५३॥

देवतास्वरूप भीष्मपितामहने भी भूतलपर दो गोलक सन्तानें उत्पन्न कराकर अपने वंशकी जो रक्षा की, क्या यह उचित है? मुनियोंके द्वारा जो धर्मनिर्णय प्रदर्शित किया गया है कि जिस किसी भी उपायसे पुत्रोत्पत्ति करनी चाहिये, उसे धिक्कार है!॥ ५४-५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे सुराङ्गनानां प्रति नारायणवरदानं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

* * *

अथाष्टादशोऽध्यायः

पापभारसे व्यथित पृथ्वीका देवलोक जाना, इन्द्रका देवताओं और पृथ्वीके साथ ब्रह्मलोक जाना, ब्रह्माजीका पृथ्वी तथा इन्द्रादि देवताओंसहित विष्णुलोक जाकर विष्णुकी स्तुति करना, विष्णुद्वारा अपनेको भगवतीके अधीन बताना

व्यास उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि कृष्णस्य चरितं महत्।
अवतारकारणं चैव देव्याश्चरितमद्भुतम्॥ १

धरैकदा भराक्रान्ता रुदती चातिकर्शिता।
गोरूपधारिणी दीना भीतागच्छत्त्रिविष्टपम्॥ २

पृष्टा शक्रेण किं तेऽद्य वर्तते भयमित्यथ।
केन वै पीडितासि त्वं किं ते दुःखं वसुन्धरे॥ ३

तच्छ्रुत्वेला तदोवाच श्रृणु देवेश मेऽखिलम्।
दुःखं पृच्छसि यत्त्वं मे भाराक्रान्तोऽस्मि मानद॥ ४

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं श्रीकृष्णके महान् चरित्र, उनके अवतारके कारण और भगवतीके अद्भुत चरित्रका वर्णन करूँगा॥ १॥

एक समयकी बात है—[पापियोंके] भारसे व्यथित, अत्यधिक कृश, दीन तथा भयभीत पृथ्वी गौका रूप धारण करके रोती हुई स्वर्गलोक गयी॥ २॥

वहाँ इन्द्रने पूछा—हे वसुन्धरे! इस समय तुम्हें कौन-सा भय है, तुम्हें किसने पीड़ा पहुँचायी है और तुम्हें क्या दुःख है?॥ ३॥

यह सुनकर पृथ्वीने कहा—हे देवेश! यदि आप पूछ ही रहे हैं तो मेरा सारा दुःख सुन लीजिये। हे मानद! मैं भारसे दबी हुई हूँ॥ ४॥

जरासन्धो महापापी मागधेषु पतिर्मम।
शिशुपालस्तथा चैद्यः काशिराजः प्रतापवान्॥ ५

रुक्मी च बलवान्कंसो नरकश्च महाबलः।
शाल्वः सौभपतिः क्रूरः केशी धेनुकवत्सकौ॥ ६

सर्वे धर्मविहीनाश्च परस्परविरोधिनः।
पापाचारा मदोन्मत्ताः कालरूपाश्च पार्थिवाः॥ ७

तैरहं पीडिता शक्र भाराक्रान्ताक्षमा विभो।
किं करोमि क्व गच्छामि चिन्ता मे महती स्थिता॥ ८

पीडिताहं वराहेण विष्णुना प्रभविष्णुना।
शक्र जानीहि हरिणा दुःखाद्दुःखतरं गता॥ ९

यतोऽहं दुष्टदैत्येन कश्यपस्यात्मजेन वै।
हृताहं हिरण्याक्षेण मग्ना तस्मिन्महार्णवे॥ १०

तदा सूकररूपेण विष्णुना निहतोऽप्यसौ।
उद्धृताहं वराहेण स्थापिता हि स्थिरा कृता॥ ११

नोचेद्रसातले स्वस्था स्थिता स्यां सुखशायिनी।
न शक्तास्म्यद्य देवेश भारं वोढुं दुरात्मनाम्॥ १२

अग्रे दुष्टः समायाति ह्यष्टाविंशस्तथा कलिः।
तदाहं पीडिता शक्र गन्तास्म्याशु रसातलम्॥ १३

तस्मात्त्वं देवदेवेश दुःखरूपार्णवस्य च।
पारदो भव भारं मे हर पादौ नमामि ते॥ १४

इन्द्र उवाच

इले किं ते करोम्यद्य ब्रह्माणं शरणं व्रज।
अहं तत्रागमिष्यामि स ते दुःखं हरिष्यति॥ १५

तच्छ्रुत्वा त्वरिता पृथ्वी ब्रह्मलोकं गता तदा।
शक्रोऽपि पृष्ठतः प्राप्तः सर्वदेवपुरःसरः॥ १६

मगधदेशका राजा महापापी जरासन्ध, चेदिनरेश शिशुपाल, प्रतापी काशिराज, रुक्मी, बलवान् कंस, महाबली नरकासुर, सौभनरेश शाल्व, क्रूर केशी, धेनुकासुर और वत्सासुर—ये सभी राजागण धर्महीन, परस्पर विरोध रखनेवाले, पापाचारी, मदोन्मत्त और साक्षात् कालस्वरूप हो गये हैं॥ ५—७॥

हे इन्द्र! उनसे मुझे बहुत व्यथा हो रही है। मैं उनके भारसे दबी हुई हूँ और अब [उनका भार सहनेमें] मैं असमर्थ हो गयी हूँ। हे विभो! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मुझे यही महान् चिन्ता है॥ ८॥

हे इन्द्र! पूर्वमें मैं [दानव हिरण्याक्षसे] पीड़ित थी। उस समय परम ऐश्वर्यशाली वराहरूपधारी भगवान् विष्णुने मेरा उद्धार किया था। यदि वे वराहरूप धारण करके मेरा उद्धार न किये होते तो उससे भी अधिक दुःखकी स्थितिमें मैं न पहुँचती—आप ऐसा जानिये॥ ९॥

कश्यपके पुत्र दुष्ट दैत्य हिरण्याक्षने मुझे चुरा लिया था और उस महासमुद्रमें डुबो दिया था। उस समय भगवान् विष्णुने सूकरका रूप धारणकर उसका संहार किया और मेरा उद्धार किया। तदनन्तर उन वराहरूपधारी विष्णुने मुझे स्थापित करके स्थिर कर दिया अन्यथा मैं इस समय पातालमें स्वस्थचित्त रहकर सुखपूर्वक सोयी रहती। हे देवेश! अब मैं दुष्टात्मा राजाओंका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं हूँ॥ १०—१२॥

हे इन्द्र! अब आगे अट्ठाईसवाँ दुष्ट कलियुग आ रहा है। उस समय मैं और भी पीड़ित हो जाऊँगी तब तो मैं शीघ्र ही रसातलमें चली जाऊँगी। अतएव हे देवदेवेश! इस दुःखरूपी महासागरसे मुझे पार कर दीजिये; मेरा बोझ उतार दीजिये, मैं आपके चरणोंमें नमन करती हूँ॥ १३-१४॥

इन्द्र बोले—हे वसुन्धरे! मैं इस समय तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूँ! तुम ब्रह्माकी शरणमें जाओ, वे ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे, मैं भी वहाँ आ जाऊँगा॥ १५॥

यह सुनकर पृथ्वीने तत्काल ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान कर दिया। उसके पीछे-पीछे इन्द्र भी सभी देवताओंके साथ वहाँ पहुँच गये॥ १६॥

सुरभीमागतां तत्र दृष्ट्वोवाच प्रजापतिः।
महीं ज्ञात्वा महाराज ध्यानेन समुपस्थिताम्॥ १७

कस्माद्रुदसि कल्याणि किं ते दुःखं वदाधुना।
पीडितासि च केन त्वं पापाचारेण भूर्वद॥ १८

धरोवाच

कलिरायाति दुष्टोऽयं बिभेमि तद्भयादहम्।
पापाचाराः प्रजास्तत्र भविष्यन्ति जगत्पते॥ १९

राजानश्च दुराचाराः परस्परविरोधिनः।
चौरकर्मरताः सर्वे राक्षसाः पूर्णवैरिणः॥ २०

तान्हत्वा नृपतीन्भारं हर मेऽद्य पितामह।
पीडितास्मि महाराज सैन्यभारेण भूभृताम्॥ २१

ब्रह्मोवाच

नाहं शक्तस्तथा देवि भारावतरणे तव।
गच्छावः सदनं विष्णोर्देवदेवस्य चक्रिणः॥ २२

स ते भारापनोदं वै करिष्यति जनार्दनः।
पूर्वं मयापि ते कार्यं चिन्तितं सुविचार्य च॥ २३

तत्र गच्छ सुरश्रेष्ठ यत्र देवो जनार्दनः।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वेदकर्तासौ पुरस्कृत्य सुरांश्च गाम्॥ २४

जगाम विष्णुसदनं हंसारूढश्चतुर्मुखः।
तुष्टाव वेदवाक्यैश्च भक्तिप्रवणमानसः॥ २५

ब्रह्मोवाच

सहस्रशीर्षास्त्वमसि सहस्राक्षः सहस्रपात्।
त्वं वेदपुरुषः पूर्वं देवदेवः सनातनः॥ २६

भूतपूर्वं भविष्यच्च वर्तमानं च यद्विभो।
अमरत्वं त्वया दत्तमस्माकं च रमापते॥ २७

एतावान्महिमा तेऽस्ति को न वेत्ति जगत्त्रये।
त्वं कर्ताप्यविता हन्ता त्वं सर्वगतिरीश्वरः॥ २८

हे महाराज! उस आयी हुई धेनुको अपने सम्मुख उपस्थित देखकर तथा ध्यान-दृष्टिद्वारा उसे पृथ्वी जान करके ब्रह्माजीने कहा—हे कल्याणि! तुम किसलिये रो रही हो और तुम्हें कौन-सा दुःख है; मुझे अभी बताओ। हे पृथ्वि! किस पापाचारीने तुम्हें पीड़ा पहुँचायी है, मुझे बताओ॥ १७-१८॥

धरा बोली—हे जगत्पते! यह दुष्ट कलि अब आनेवाला है। मैं उसीके आतंकसे डर रही हूँ; क्योंकि उस समय सभी लोग पापाचारी हो जायँगे। सभी राजालोग दुराचारी हो जायँगे, आपसमें विरोध करनेवाले होंगे और चोरीके कर्ममें संलग्न रहेंगे। वे राक्षसके रूपमें एक-दूसरेके पूर्णरूपसे शत्रु बन जायँगे। हे पितामह! उन राजाओंका वध करके मेरा भार उतार दीजिये। हे महाराज! मैं राजाओंकी सेनाके भारसे दबी हुई हूँ॥ १९—२१॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! तुम्हारा भार उतारनेमें मैं सर्वथा समर्थ नहीं हूँ। अब हम दोनों चक्रधारी देवाधिदेव भगवान् विष्णुके धाम चलते हैं। वे जनार्दन तुम्हारा भार अवश्य उतार देंगे। मैंने पहलेसे ही भलीभाँति विचार करके तुम्हारा कार्य करनेकी योजना बनायी है। [उन्होंने इन्द्रसे कहा—] हे सुरश्रेष्ठ! जहाँपर भगवान् जनार्दन विद्यमान हैं, अब आप वहींपर चलें॥ २२-२३$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर वे वेदकर्ता चतुर्मुख ब्रह्माजी हंसपर आरूढ़ हुए और देवताओं तथा गोरूपधारिणी पृथ्वीको साथमें लेकर विष्णुलोकके लिये प्रस्थित हो गये। [वहाँ पहुँचकर] भक्तिसे परिपूर्ण हृदयवाले ब्रह्माजी वेदवाक्योंसे उनकी स्तुति करने लगे॥ २४-२५॥

ब्रह्माजी बोले—आप हजार मस्तकोंवाले, हजार नेत्रोंवाले और हजार पैरोंवाले हैं। आप देवताओंके भी आदिदेव तथा सनातन वेदपुरुष हैं। हे विभो! हे रमापते! भूतकाल, भविष्यकाल तथा वर्तमानकालका जो भी हमारा अमरत्व है, उसे आपने ही हमें प्रदान किया है। आपकी इतनी बड़ी महिमा है कि उसे त्रिलोकीमें कौन नहीं जानता? आप ही सृष्टि करनेवाले, पालन करनेवाले और संहार करनेवाले हैं। आप सर्वव्यापी और सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ २६—२८॥

व्यास उवाच

इतीडितः प्रभुर्विष्णुः प्रसन्नो गरुडध्वजः।
दर्शनञ्च ददौ तेभ्यो ब्रह्मादिभ्योऽमलाशयः॥ २९

पप्रच्छ स्वागतं देवान्प्रसन्नवदनो हरिः।
ततस्त्वागमने तेषां कारणञ्च सविस्तरम्॥ ३०

तमुवाचाब्जजो नत्वा धरादुःखञ्च संस्मरन्।
भारावतरणं विष्णो कर्तव्यं ते जनार्दन॥ ३१

भुवि धृत्वावतारं त्वं द्वापरान्ते समागते।
हत्वा दुष्टान्नृपानुर्व्या हर भारं दयानिधे॥ ३२

विष्णुरुवाच

नाहं स्वतन्त्र एवात्र न ब्रह्मा न शिवस्तथा।
नेन्द्रोऽग्निर्न यमस्त्वष्टा न सूर्यो वरुणस्तथा॥ ३३

योगमायावशे सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं ग्रथितं गुणसूत्रतः॥ ३४

यथा सा स्वेच्छया पूर्वं कर्तुमिच्छति सुव्रत।
तथा करोति सुहिता वयं सर्वेऽपि तद्वशाः॥ ३५

यद्यहं स्यां स्वतन्त्रो वै चिन्तयन्तु धिया किल।
कुतोऽभवं मत्स्यवपुः कच्छपो वा महार्णवे॥ ३६

तिर्यग्योनिषु को भोगः का कीर्तिः किं सुखं पुनः।
किं पुण्यं किं फलं तत्र क्षुद्रयोनिगतस्य मे॥ ३७

कोलो वाथ नृसिंहो वा वामनो वाभवं कुतः।
जमदग्निसुतः कस्मात्सम्भवेयं पितामह॥ ३८

नृशंसं वा कथं कर्म कृतवानस्मि भूतले।
क्षतजैस्तु ह्रदान्सर्वान्पूरयेयं कथं पुनः॥ ३९

तत्कथं जमदग्नेश्च पुत्रो भूत्वा द्विजोत्तमः।
क्षत्रियान्हतवानाजौ निर्दयो गर्भगानपि॥ ४०

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करनेपर पवित्र हृदयवाले वे गरुडध्वज भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये और उन्होंने ब्रह्मा आदि देवताओंको अपने दर्शन दिये। प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णुने देवताओंका स्वागत किया और विस्तारपूर्वक उनके आगमनका कारण पूछा॥ २९-३०॥

तदनन्तर पद्मयोनि ब्रह्माजीने उन्हें प्रणाम करनेके उपरान्त पृथ्वीके दुःखका स्मरण करते हुए उनसे कहा—हे विष्णो! हे जनार्दन! अब पृथ्वीका भार दूर कर देना आपका कर्तव्य है। अतः हे दयानिधे! द्वापरका अन्तिम समय उपस्थित होनेपर आप पृथ्वीपर अवतार लेकर दुष्ट राजाओंको मारकर पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ ३१-३२॥

विष्णु बोले—इस विषयमें मैं (विष्णु), ब्रह्मा, शंकर, इन्द्र, अग्नि, यम, त्वष्टा, सूर्य और वरुण—कोई भी स्वतन्त्र नहीं है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् योगमायाके अधीन रहता है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ [सात्त्विक, राजस, तामस] गुणोंके सूत्रोंद्वारा उन्हींमें गुँथा हुआ है॥ ३३-३४॥

हे सुव्रत! वे हितकारिणी भगवती सर्वप्रथम स्वेच्छापूर्वक जैसा करना चाहती हैं, वैसा ही करती हैं। हमलोग भी सदा उनके ही अधीन रहते हैं॥ ३५॥

अब आपलोग स्वयं अपनी बुद्धिसे विचार करें कि यदि मैं स्वतन्त्र होता तो महासमुद्रमें मत्स्य और कच्छपरूपधारी क्यों बनता? तिर्यक्-योनियोंमें कौन-सा भोग प्राप्त होता है, क्या यश मिलता है, कौन-सा सुख होता है और कौन-सा पुण्य प्राप्त होता है? [इस प्रकार] क्षुद्रयोनियोंमें जन्म लेनेवाले मुझ विष्णुको क्या फल मिला?॥ ३६-३७॥

यदि मैं स्वतन्त्र होता तो सूकर, नृसिंह और वामन क्यों बनता? इसी प्रकार हे पितामह! मैं जमदग्निपुत्र (परशुराम)-के रूपमें उत्पन्न क्यों होता? इस भूतलपर मैं [क्षत्रियोंके संहार जैसा] नृशंस कर्म क्यों करता और उनके रुधिरसे समस्त सरोवरोंको क्यों भर डालता? उस समय मैं जमदग्निपुत्र परशुरामके रूपमें जन्म लेकर एक श्रेष्ठ ब्राह्मण होकर भी युद्धमें क्षत्रियोंका संहार क्यों करता और घोर निर्दयी बनकर गर्भस्थ शिशुओंतकको भला क्यों मारता?॥ ३८—४०॥

रामो भूत्वाथ देवेन्द्र प्राविशद्दण्डकं वनम्।
पदातिश्चीरवासाश्च जटावल्कलवान्पुनः॥ ४१

असहायो ह्यपाथेयो भीषणे निर्जने वने।
कुर्वन्नाखेटकं तत्र व्यचरं विगतत्रपः॥ ४२

न ज्ञातवान्मृगं हैमं मायया पिहितस्तदा।
उटजे जानकीं त्यक्त्वा निर्गतस्तत्पदानुगः॥ ४३

लक्ष्मणोऽपि च तां त्यक्त्वा निर्गतो मत्पदानुगः।
वारितोऽपि मयात्यर्थं मोहितः प्राकृतैर्गुणैः॥ ४४

भिक्षुरूपं ततः कृत्वा रावणः कपटाकृतिः।
जहार तरसा रक्षो जानकीं शोककर्शिताम्॥ ४५

दुःखार्तेन मया तत्र रुदितञ्च वने वने।
सुग्रीवेण च मित्रत्वं कृतं कार्यवशान्मया॥ ४६

अन्यायेन हतो वाली शापाच्चैव निवारितः।
सहायान्वानरान् कृत्वा लङ्कायां चलितः पुनः॥ ४७

बद्धोऽहं नागपाशैश्च लक्ष्मणश्च ममानुजः।
विसंज्ञौ पतितौ दृष्ट्वा वानरा विस्मयं गताः॥ ४८

गरुडेन तदागत्य मोचितौ भ्रातरौ किल।
चिन्ता मे महती जाता दैवं किं वा करिष्यति॥ ४९

हृतं राज्यं वने वासो मृतस्तातः प्रिया हृता।
युद्धं कष्टं ददात्येवमग्रे किं वा करिष्यति॥ ५०

प्रथमं तु महद्दुःखमराज्यस्य वनाश्रयम्।
राजपुत्र्यान्वितस्यैव धनहीनस्य मे सुराः॥ ५१

वराटिकापि पित्रा मे न दत्ता वननिर्गमे।
पदातिरसहायोऽहं धनहीनश्च निर्गतः॥ ५२

चतुर्दशैव वर्षाणि नीतानि च तदा मया।
क्षात्रं धर्मं परित्यज्य व्याधवृत्त्या महावने॥ ५३

हे देवेन्द्र! रामका अवतार लेकर मुझे दण्डकवनमें पैदल विचरण करना पड़ा, गेरुआ वस्त्र धारण करना पड़ा और जटा-वल्कलधारी बनना पड़ा। उस निर्जन वनमें असहाय रहते हुए तथा पासमें बिना किसी भोज्य-सामग्रीके ही निर्लज्ज होकर आखेट करते हुए मैं इधर-उधर भटकता रहा॥ ४१-४२॥

उस समय मायासे आच्छादित रहनेके कारण मैं उस मायावी स्वर्ण-मृगको नहीं पहचान सका और जानकीको पर्णकुटीमें छोड़कर उस मृगके पीछे-पीछे निकल पड़ा॥ ४३॥

मेरे बहुत मना करनेपर भी प्राकृत गुणोंसे व्यामुग्ध होनेके कारण लक्ष्मण भी उस सीताको छोड़कर मेरे पदचिह्नोंका अनुसरण करते हुए वहाँसे निकल पड़े॥ ४४॥

तदनन्तर कपटस्वभाव राक्षस रावणने भिक्षुकका रूप धारण करके शोकसे व्याकुल जानकीका तत्काल हरण कर लिया॥ ४५॥

तब दुःखसे व्याकुल होकर मैं वन-वन भटकता हुआ रोता रहा और अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये मैंने सुग्रीवसे मित्रता की। मैंने अन्यायपूर्वक वालीका वध किया तथा उसे शापसे मुक्ति दिलायी और इसके बाद वानरोंको अपना सहायक बनाकर लंकाकी ओर प्रस्थान किया॥ ४६-४७॥

[वहाँ युद्धमें] मैं तथा मेरा छोटा भाई लक्ष्मण दोनों ही नागपाशोंसे बाँध दिये गये। हम दोनोंको अचेत पड़ा देखकर सभी वानर आश्चर्यचकित हो गये। तब गरुड़ने आकर हम दोनों भाइयोंको छुड़ाया। उस समय मुझे महान् चिन्ता होने लगी कि दैव अब न जाने क्या करेगा? राज्य छिन गया, वनमें वास करना पड़ा, पिताकी मृत्यु हो गयी और प्रिय सीता हर ली गयी। युद्ध कष्ट दे ही रहा है, अब आगे दैव न जाने क्या करेगा!॥ ४८—५०॥

हे देवतागण! सर्वप्रथम दुःख तो मुझ राज्यविहीनका वनवास हुआ; वनके लिये चलते समय राजकुमारी सीता मेरे साथ थीं और मेरे पास धन भी नहीं था। वन जाते समय पिताजीने मुझे एक वराटिका (कौड़ी) भी नहीं दी; असहाय तथा धनविहीन मैं पैदल ही निकल पड़ा। उस समय क्षत्रियधर्मका त्याग करके व्याधवृत्तिके द्वारा मैंने उस महावनमें चौदह वर्ष व्यतीत किये॥ ५१—५३॥

दैवाद्युद्धे जयः प्राप्तो निहतोऽसौ महासुरः।
आनीता च पुनः सीता प्राप्तायोध्या मया तथा॥ ५४

वर्षाणि कतिचित्तत्र सुखं संसारसम्भवम्।
प्राप्तं राज्यञ्च सम्पूर्णं कोसलानधितिष्ठता॥ ५५

तदनन्तर भाग्यवश युद्धमें मुझे विजय प्राप्त हुई और वह महान् असुर रावण मारा गया। इसके बाद मैं सीताको ले आया और मुझे अयोध्या फिरसे प्राप्त हो गयी। इस प्रकार जब मुझे सम्पूर्ण राज्य मिल गया, तब कोसलदेशपर अधिष्ठित रहते हुए मैंने वहाँपर कुछ वर्षोंतक सांसारिक सुखका भोग किया॥ ५४-५५॥

पुरैवं वर्तमानेन प्राप्तराज्येन वै तदा।
लोकापवादभीतेन त्यक्ता सीता वने मया॥ ५६

कान्ताविरहजं दुःखं पुनः प्राप्तं दुरासदम्।
पातालं सा गता पश्चाद्धरां भित्त्वा धरात्मजा॥ ५७

इस प्रकार पूर्वकालमें जब मुझे राज्य प्राप्त हो गया तब मैंने लोकनिन्दाके भयसे वनमें सीताका परित्याग कर दिया। इसके बाद मुझे पुनः पत्नी-वियोगसे होनेवाला भयंकर दुःख प्राप्त हुआ। वह धरानन्दिनी सीता पृथ्वीको भेदकर पातालमें चली गयी॥ ५६-५७॥

एवं रामावतारेऽपि दुःखं प्राप्तं निरन्तरम्।
परतन्त्रेण मे नूनं स्वतन्त्रः को भवेत्तदा॥ ५८

पश्चात्कालवशात्प्राप्तः स्वर्गो मे भ्रातृभिः सह।
परतन्त्रस्य का वार्ता वक्तव्या विबुधेन वै॥ ५९

परतन्त्रोऽस्म्यहं नूनं पद्मयोने निशामय।
तथा त्वमपि रुद्रश्च सर्वे चान्ये सुरोत्तमाः॥ ६०

इस प्रकार रामावतारमें भी मैं परतन्त्र होकर निरन्तर दुःख पाता रहा। तब भला दूसरा कौन स्वतन्त्र हो सकता है? तत्पश्चात् कालके वशीभूत होकर मुझे अपने भाइयोंके साथ स्वर्ग जाना पड़ा। अतः कोई भी विद्वान् पराधीन व्यक्तिकी क्या बात करेगा? हे कमलोद्भव! आप यह जान लीजिये कि जैसे मैं परतन्त्र हूँ वैसे ही आप, शंकर तथा अन्य सभी बड़े-बड़े देवता भी निश्चितरूपसे परतन्त्र हैं॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे ब्रह्माणं प्रति विष्णुवाक्यं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीका स्तवन, भगवतीद्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुनको निमित्त बनाकर अपनी शक्तिसे पृथ्वीका भार दूर करनेका आश्वासन देना

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः पुनराह प्रजापतिम्।
यन्मायामोहितः सर्वस्तत्त्वं जानाति नो जनः॥ १

वयं मायावृताः कामं न स्मरामो जगद्गुरुम्।
परमं पुरुषं शान्तं सच्चिदानन्दमव्ययम्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ऐसा कहनेके उपरान्त भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे फिर कहा—जिन भगवतीकी मायासे मोहित रहनेके कारण सभी लोग परमतत्त्वको नहीं जान पाते, उन्हींकी मायासे आच्छादित रहनेके कारण हम लोग भी जगद्गुरु, शान्तस्वरूप, सच्चिदानन्द तथा अविनाशी परमपुरुषका स्मरण नहीं कर पाते॥ १-२॥

अहं विष्णुरहं ब्रह्मा शिवोऽहमिति मोहिताः।
न जानीमो वयं धातः परं वस्तु सनातनम्॥ ३

यन्मायामोहितश्चाहं सदा वर्ते परात्मनः।
परवान्दारुपाञ्चाली मायिकस्य यथा वशे॥ ४

भवतापि तथा दृष्टा विभूतिस्तस्य चाद्भुता।
कल्पादौ भवयुक्तेन मयापि च सुधार्णवे॥ ५

मणिद्वीपेऽथ मन्दारविटपे रासमण्डले।
समाजे तत्र सा दृष्टा श्रुता न वचसापि च॥ ६

तस्मात्तां परमां शक्तिं स्मरन्त्वद्य सुराः शिवाम्।
सर्वकामप्रदां मायामाद्यां शक्तिं परात्मनः॥ ७

व्यास उवाच

इत्युक्ता हरिणा देवा ब्रह्माद्या भुवनेश्वरीम्।
सस्मरुर्मनसा देवीं योगमायां सनातनीम्॥ ८

स्मृतमात्रा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
पाशाङ्कुशवराभीतिधरा देवी जपारुणा।
दृष्ट्वा प्रमुदिता देवास्तुष्टुवुस्तां सुदर्शनाम्॥ ९

देवा ऊचुः

ऊर्णनाभाद्यथा तन्तुर्विस्फुलिङ्गा विभावसोः।
तथा जगद्यदेतस्या निर्गतं तां नता वयम्॥ १०

यन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।
तां चितं भुवनाधीशां स्मरामः करुणार्णवाम्॥ ११

यदज्ञानाद्भवोत्पत्तिर्यज्ज्ञानाद्भवनाशनम् ।
संविद्रूपां च तां देवीं स्मरामः सा प्रचोदयात्॥ १२

हे ब्रह्मन्! मैं विष्णु हूँ, मैं ब्रह्मा हूँ, मैं शिव हूँ—इसी [अभिमानसे] मोहित हमलोग उस सनातन परम-तत्त्वको नहीं जान पाते॥ ३॥

उस परमात्माकी मायासे मोहित मैं उसी प्रकार सदा उसके अधीन रहता हूँ, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है॥ ४॥

कल्पके आरम्भमें आप (ब्रह्मा)-ने, शिवने तथा मैंने भी सुधासागरमें उस परमात्माकी अद्भुत विभूतिका दर्शन किया था। मणिद्वीपमें मन्दारवृक्षके नीचे चल रहे रासमण्डलमें एकत्रित सभामें भी वह विभूति साक्षात् देखी गयी थी; न कि वह केवल कही-सुनी गयी बात है॥ ५-६॥

अतएव इस अवसरपर सभी देवता उसी परमा शक्ति, कल्याणकारिणी, सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली, माया-स्वरूपिणी तथा परमात्माकी आद्याशक्ति भगवतीका स्मरण करें॥ ७॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर ब्रह्मा आदि देवता सदा विराजमान रहनेवाली भगवती योगमायाका एकाग्र मनसे ध्यान करने लगे॥ ८॥

उनके स्मरण करते ही भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान किया। उस समय वे देवी जपाकुसुमके समान रक्तवर्णसे सुशोभित थीं और उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण कर रखी थी। उन परम सुन्दर भगवतीको देखकर सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे॥ ९॥

देवता बोले—जिस प्रकार मकड़ीकी नाभिसे तन्तु तथा अग्निसे चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार यह जगत् जिनसे प्रकट हुआ है, उन भगवतीको हम नमस्कार करते हैं॥ १०॥

जिनकी मायाशक्तिसे सम्पूर्ण चराचर जगत् पूर्णतः ओत-प्रोत है, उन चित्स्वरूपिणी करुणासिन्धु भुवनेश्वरीका हम स्मरण करते हैं॥ ११॥

जिन्हें न जाननेसे संसारमें बार-बार जन्म होता रहता है और जिनका ज्ञान हो जानेसे भव-बन्धनका नाश हो जाता है, उन ज्ञानस्वरूपिणी भगवतीका हम स्मरण करते हैं। वे हमें [सन्मार्गपर चलनेके लिये]

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ १३

मातर्नताः स्म भुवनार्तिहरे प्रसीद
शन्नो विधेहि कुरु कार्यमिदं दयार्द्रे।
भारं हरस्व विनिहत्य सुरारिवर्गं
मह्या महेश्वरि सतां कुरु शं भवानि॥ १४

यद्यम्बुजाक्षि दयसे न सुरान्कदाचित्
किं ते क्षमा रणमुखेऽसिशरैः प्रहर्तुम्।
एतत्त्वयैव गदितं ननु यक्षरूपं
धृत्वा तृणं दह हुताश पदाभिलाषैः॥ १५

कंसः कुजोऽथ यवनेन्द्रसुतश्च केशी
बार्हद्रथो बकबकीखरशाल्वमुख्याः।
येऽन्ये तथा नृपतयो भुवि सन्ति तांस्त्वं
हत्वा हरस्व जगतो भरमाशु मातः॥ १६

ये विष्णुना न निहताः किल शङ्करेण
ये वा विगृह्य जलजाक्षि पुरन्दरेण।
ते ते मुखं सुखकरं सुसमीक्षमाणाः
संख्ये शरैर्विनिहता निजलीलया ते॥ १७

शक्तिं विना हरिहरप्रमुखाः सुराश्च
नैवेश्वरा विचलितुं तव देवदेवि।
किं धारणाविरहितः प्रभुरप्यनन्तो
धर्तुं धराञ्च रजनीशकलावतंसे॥ १८

इन्द्र उवाच

वाचा विना विधिरलं भवतीह विश्वं
कर्तुं हरिः किमु रमारहितोऽथ पातुम्।
संहर्तुमीश उमयोज्झित ईश्वरः किं
ते ताभिरेव सहिताः प्रभवः प्रजेशाः॥ १९

प्रेरित करें। हम उन महालक्ष्मीको जानें। हम सर्वशक्तिमयी भगवतीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें [सत्कर्ममें प्रवृत्त होनेकी] प्रेरणा प्रदान करें॥ १२-१३॥

संसारका कष्ट हरनेवाली हे माता! हम आपको प्रणाम करते हैं, आप प्रसन्न होइये। हे दयासे आर्द्र हृदयवाली! हमारा कल्याण कीजिये; हमारा यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये। हे महेश्वरि! असुर-समुदायका संहार करके पृथ्वीका भार उतार दीजिये। हे भवानि! आप सज्जनोंका कल्याण करें॥ १४॥

हे कमलनयने! यदि आप देवताओंपर दया नहीं करेंगी तो वे समरांगणमें तलवारों तथा बाणोंसे [दैत्योंपर] प्रहार करनेमें समर्थ कैसे हो सकेंगे? इस बातको आपने स्वयं [यक्षोपाख्यान-प्रसंगमें] यक्षरूप धारण करके 'हे हुताशन! आप इस तिनकेको जला दें' इत्यादि पद-कथनोंके द्वारा व्यक्त कर दिया है॥ १५॥

हे माता! कंस, भौमासुर, कालयवन, केशी, बृहद्रथ-पुत्र जरासन्ध, बकासुर, पूतना, खर और शाल्व आदि तथा इनके अतिरिक्त और भी जो दुष्ट राजागण पृथ्वीपर हैं, उन्हें मारकर आप शीघ्र ही पृथ्वीका भार उतार दीजिये॥ १६॥

हे कमलनयने! जिन दैत्योंको भगवान् विष्णु, शिव और इन्द्र भी [कई बार] युद्ध करके नहीं मार सके, वे दैत्य युद्धभूमिमें आपका सुखदायक मुखमण्डल देखते हुए आपकी लीलासे आपके बाणोंके द्वारा मार डाले गये॥ १७॥

चन्द्रकलाको मस्तकपर धारण करनेवाली हे देवदेवि! विष्णु, शिव आदि प्रमुख देवता भी आपकी शक्तिके बिना हिलने-डुलनेतकमें समर्थ नहीं हैं। इसी प्रकार क्या शेषनाग भी आपकी शक्तिके बिना पृथ्वीको धारण कर सकनेमें समर्थ हैं?॥ १८॥

इन्द्र बोले—[हे माता!] क्या सरस्वतीके बिना ब्रह्मा इस विश्वकी सृष्टि करनेमें, लक्ष्मीके बिना विष्णु पालन करनेमें और पार्वतीके बिना शिवजी संहार करनेमें समर्थ हो सकते हैं? वे महान् देवगण उन्हीं [तीनों महाशक्तियों]-के साथ अपना-अपना कार्य कर सकनेमें समर्थ होते हैं॥ १९॥

विष्णुरुवाच

कर्तुं प्रभुर्न द्रुहिणो न कदाचनाहं
नापीश्वरस्तव कलारहितस्त्रिलोक्याः।
कर्तुं प्रभुत्वमनघेऽत्र तथा विहर्तुं
त्वं वै समस्तविभवेश्वरि भासि नूनम्॥ २०

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तानाह विबुधेश्वरान्।
किं तत्कार्यं वदन्त्वद्य करोमि विगतज्वराः॥ २१

असाध्यमपि लोकेऽस्मिंस्तत्करोमि सुरेप्सितम्।
शंसन्तु भवतां दुःखं धरायाश्च सुरोत्तमाः॥ २२

देवा ऊचुः

वसुधेयं भराक्रान्ता सम्प्राप्ता विबुधान्प्रति।
रुदती वेपमाना च पीडिता दुष्टभूभुजैः॥ २३

भारापहरणं चास्याः कर्तव्यं भुवनेश्वरि।
देवानामीप्सितं कार्यमेतदेवाधुना शिवे॥ २४

घातितस्तु पुरा मातस्त्वया महिषरूपभृत्।
दानवोऽतिबलाक्रान्तस्तत्सहायाश्च कोटिशः॥ २५

तथा शुम्भो निशुम्भश्च रक्तबीजस्तथापरः।
चण्डमुण्डौ महावीर्यौ तथैव धूम्रलोचनः॥ २६

दुर्मुखो दुःसहश्चैव करालश्चाति वीर्यवान्।
अन्ये च बहवः क्रूरास्त्वयैव च निपातिताः॥ २७

तथैव च सुरारींश्च जहि सर्वान्महीश्वरान्।
(भारं हर धरायाश्च दुर्धरं दुष्टभूभुजाम्।)

व्यास उवाच

इत्युक्ता सा तदा देवी देवानाहाम्बिका शिवा॥ २८

सम्प्रहस्यासितापाङ्गी मेघगम्भीरया गिरा।

श्रीदेव्युवाच

मयेदं चिन्तितं पूर्वमंशावतरणं सुराः॥ २९

भारावतरणं चैव यथा स्याद्दुष्टभूभुजाम्।
मया सर्वे निहन्तव्या दैत्येशा ये महीभुजः॥ ३०

विष्णु बोले—हे अनघे! आपकी कलासे रहित होकर न तो ब्रह्मा इस त्रिलोकीकी रचना कर सकनेमें, न तो मैं इसका पालन कर सकनेमें और न तो शिव इसका संहार कर सकनेमें समर्थ हैं। हे समस्त विभवोंकी स्वामिनि! इसका सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ निश्चितरूपसे आप ही प्रतीत होती हैं॥ २०॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन देवताओंने जब देवीकी स्तुति की, तब उन्होंने उन देवेश्वरोंसे कहा—वह कौन-सा कार्य है? आपलोग सन्तापरहित होकर बतायें, मैं अभी करूँगी। इस संसारमें देवताओंके द्वारा अभिलषित जो असाध्य कार्य भी होगा, उसे मैं करूँगी। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग अपना तथा पृथ्वीका दुःख मुझे बताइये॥ २१-२२॥

देवता बोले—दुष्ट राजाओंसे पीड़ित यह पृथ्वी उनके भारसे व्याकुल होकर रोती तथा थर-थर काँपती हुई हम देवताओंके पास आयी। हे भुवनेश्वरि! आप इसका भार उतार दें। हे शिवे! इस समय हम देवताओंका यही अभीष्ट कार्य है॥ २३-२४॥

हे माता! पूर्वकालमें आप अत्यधिक बलसम्पन्न दानव महिषासुरका वध कर चुकी हैं। इसके अतिरिक्त आप उसके करोड़ों सहायकों, शुम्भ, निशुम्भ, रक्तबीज, महाबली चण्ड-मुण्ड, धूम्रलोचन, दुर्मुख, दुःसह, अतिशय बलवान् कराल तथा दूसरे भी अनेक क्रूर दानवोंको मार चुकी हैं। उसी प्रकार आप हम देवताओंके शत्रुरूप सभी दुष्ट राजाओंका वध कीजिये। (दुष्ट राजाओंका वध करके पृथ्वीका दुःसह भार उतार दीजिये)॥ २५—२७½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवताओंके ऐसा कहनेपर नीले नेत्रप्रान्तवाली कल्याणमयी भगवती हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं—॥ २८½॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवताओ! मैंने यह पहलेसे ही सोच रखा है कि मैं अंशावतार धारण करूँ, जिससे पृथ्वीपरसे दुष्ट राजाओंका भार उतर जाय। हे महाभाग देवताओ! मन्द तेजवाले जरासन्ध आदि जो बड़े-बड़े दैत्य राजागण हैं, उन सबको मैं अपनी

मागधाद्या महाभागाः स्वशक्त्या मन्दतेजसः।
भवद्भिरपि स्वैरंशैरवतीर्य धरातले॥ ३१

मच्छक्तियुक्तैः कर्तव्यं भारावतरणं सुराः।
कश्यपो भार्यया सार्धं दिविजानां प्रजापतिः॥ ३२

यादवानां कुले पूर्वं भवितानकदुन्दुभिः।
तथैव भृगुशापाद्वै भगवान्विष्णुरव्ययः॥ ३३

अंशेन भविता तत्र वसुदेवसुतो हरिः।
तदाहं प्रभविष्यामि यशोदायां च गोकुले॥ ३४

कार्यं सर्वं करिष्यामि सुराणां सुरसत्तमाः।
कारागारे गतं विष्णुं प्रापयिष्यामि गोकुले॥ ३५

शेषं च देवकीगर्भात्प्रापयिष्यामि रोहिणीम्।
मच्छक्त्योपचितौ तौ च कर्तारौ दुष्टसंक्षयम्॥ ३६

दुष्टानां भूभुजां कामं द्वापरान्ते सुनिश्चितम्।
इन्द्रांशोऽप्यर्जुनः साक्षात्करिष्यति बलक्षयम्॥ ३७

धर्मांशोऽपि महाराजो भविष्यति युधिष्ठिरः।
वाय्वंशो भीमसेनश्चाश्विन्यंशौ च यमावपि॥ ३८

वसोरंशोऽथ गाङ्गेयः करिष्यति बलक्षयम्।
व्रजन्तु च भवन्तोऽद्य धरा भवतु सुस्थिरा॥ ३९

भारावतरणं नूनं करिष्यामि सुरोत्तमाः।
कृत्वा निमित्तमात्रांस्तान्स्वशक्त्याहं न संशयः॥ ४०

कुरुक्षेत्रे करिष्यामि क्षत्रियाणां च संक्षयम्।
असूयेर्ष्या मतिस्तृष्णा ममताभिमता स्पृहा॥ ४१

जिगीषा मदनो मोहो दोषैर्नक्ष्यन्ति यादवाः।
ब्राह्मणस्य च शापेन वंशनाशो भविष्यति॥ ४२

भगवानपि शापेन त्यक्ष्यत्येतत्कलेवरम्।
भवन्तोऽपि निजाङ्गैश्च सहायाः शार्ङ्गधन्वनः॥ ४३
प्रभवन्तु सनारीका मथुरायां च गोकुले।

शक्तिसे मार डालूँगी। हे देवतागण! आपलोग भी अपने-अपने अंशोंसे पृथ्वीपर अवतार लेकर मेरी शक्तिसे युक्त होकर भार उतारें॥ २९—३१½ ॥

मेरे अवतार लेनेसे पूर्व देवताओंके प्रजापति कश्यप अपनी पत्नीके साथ यदुकुलमें वसुदेव नामसे अवतीर्ण होंगे। उसी प्रकार भृगुके शापसे अविनाशी भगवान् विष्णु अपने अंशसे वहींपर वसुदेवके पुत्रके रूपमें उत्पन्न होंगे॥ ३२-३३½ ॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! उस समय मैं भी गोकुलमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होऊँगी और देवताओंका सारा कार्य सिद्ध करूँगी। कारागारमें अवतीर्ण हुए [कृष्णरूपधारी] विष्णुको मैं गोकुलमें पहुँचा दूँगी और देवकीके गर्भसे शेषभगवान्‌को खींचकर रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दूँगी। मेरी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे दोनों ही दुष्टोंका विनाश करेंगे। द्वापरके व्यतीत होते ही दुष्ट राजाओंका पूर्णरूपसे संहार बिलकुल निश्चित है॥ ३४—३६½ ॥

साक्षात् इन्द्रके अंशस्वरूप अर्जुन भी [उन दुष्ट राजाओंके] बलका नाश करेंगे। धर्मके अंशरूप महाराज युधिष्ठिर, वायुके अंशरूप भीमसेन तथा दोनों अश्विनीकुमारोंके अंशरूप नकुल-सहदेव भी उत्पन्न होंगे। [उसी समय] वसुके अंशसे अवतीर्ण गंगापुत्र भीष्म उन दुष्ट राजाओंकी शक्ति नष्ट करेंगे॥ ३७-३८½ ॥

हे श्रेष्ठ देवतागण! अब आपलोग जायँ और पृथ्वी भी निश्चिन्त होकर रहे। मैं उन अंशावतारी लोगोंको निमित्तमात्र बनाकर अपनी शक्तिसे इस पृथ्वीका भार दूर करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। मैं क्षत्रियोंका यह संहार कुरुक्षेत्रमें करूँगी॥ ३९-४०½ ॥

असूया, ईर्ष्या, बुद्धि, तृष्णा, ममता, अपनी प्रिय वस्तुकी इच्छा, स्पृहा, विजयकी अभिलाषा, काम और मोह—इन दोषोंके कारण सभी यादव नष्ट हो जायँगे। ब्राह्मणके शापसे उनके वंशका नाश हो जायगा और उसी शापवश भगवान् श्रीकृष्ण भी अपने शरीरका त्याग कर देंगे। अब आपलोग भी अपनी शक्तिस्वरूपा भार्याओंसहित अपने-अपने अंशोंसे मथुरा तथा गोकुलमें अवतरित हों और शार्ङ्गपाणि भगवान् विष्णुके सहायक बनें॥ ४१—४३½ ॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी योगमाया परात्मनः॥ ४४
सधरा वै सुराः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि च।
धरापि सुस्थिरा जाता तस्या वाक्येन तोषिता॥ ४५
ओषधीवीरुधोपेता बभूव जनमेजय।
प्रजाश्च सुखिनो जाता द्विजाश्चापुर्महोदयम्।
सन्तुष्टा मुनयः सर्वे बभूवुर्धर्मतत्पराः॥ ४६

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परमात्माकी योगमाया भगवती अन्तर्धान हो गयीं। तदनन्तर पृथ्वीसहित सभी देवता अपने-अपने स्थानपर चले गये। पृथ्वी भी उन भगवतीकी वाणीसे सन्तुष्ट होकर शान्तचित्त हो गयी। हे जनमेजय! वह औषधियों और लताओंसे सम्पन्न हो गयी। प्रजाएँ सुखी हो गयीं, द्विजगणोंकी महान् उन्नति होने लगी और सभी मुनिगण सन्तुष्ट होकर धर्मपरायण हो गये॥ ४४—४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देवान् प्रति देवीवाक्यवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~~

अथ विंशोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा जनमेजयको भगवतीकी महिमा सुनाना तथा कृष्णावतारकी कथाका उपक्रम

व्यास उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि भारावतरणं तथा।
कुरुक्षेत्रे प्रभासे च क्षपितं योगमायया॥ १

यदुवंशे समुत्पत्तिर्विष्णोरमिततेजसः।
भृगुशापप्रतापेन महामायाबलेन च॥ २

क्षितिभारसमुत्तारनिमित्तमिति मे मतिः।
मायया विहितो योगो विष्णोर्जन्म धरातले॥ ३

किं चित्रं नृप देवी सा ब्रह्मविष्णुसुरानपि।
नर्तयत्यनिशं माया त्रिगुणानपरान्किमु॥ ४

गर्भवासोद्भवं दुःखं विण्मूत्रस्नायुसंयुतम्।
विष्णोरापादितं सम्यग्यया विगतलीलया॥ ५

पुरा रामावतारेऽपि निर्जरा वानराः कृताः।
विदितं ते यथा विष्णुर्दुःखपाशेन मोहितः॥ ६

व्यासजी बोले—हे भारत! सुनिये, अब मैं आपको पृथ्वीका भार उतारने और कुरुक्षेत्र तथा प्रभासक्षेत्रमें योगमायाके द्वारा सेनाके संहारका वृत्तान्त बताऊँगा॥ १॥

भृगुके शापके प्रताप तथा महामायाकी शक्तिसे ही अमित तेजस्वी भगवान् विष्णुका आविर्भाव यदुवंशमें हुआ था। मेरा यह मानना है कि पृथ्वीका भार उतारना तो निमित्तमात्र था, वस्तुतः योगमायाने ही इस संयोगका विधान कर दिया था कि धरातलपर भगवान् विष्णुका अवतार हो॥ २-३॥

हे राजन्! इसमें आश्चर्य कैसा! वे भगवती योगमाया जब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंको भी निरन्तर नचाती रहती हैं, तब त्रिगुणात्मक सामान्यजनकी क्या बात!॥ ४॥

उन भगवतीने अपनी रहस्यमयी लीलासे भगवान् विष्णुको भी सम्यक् रूपसे मल, मूत्र तथा स्नायुसे भरे गर्भवाससे होनेवाला दुःख भोगनेको विवश कर दिया था॥ ५॥

पूर्वकालमें रामावतारके समय भी उन्हीं योगमायाने जिस प्रकार देवताओंको वानर बना दिया था और [राम-रूपमें अवतीर्ण] भगवान् विष्णुको दुःखपाशसे व्यथित कर दिया था, वह तो आपको विदित ही है॥ ६॥
~~~

अहं ममेति पाशेन सुदृढेन नराधिप।
योगिनो मुक्तसङ्गाश्च भुक्तिकामा मुमुक्षवः॥ ७

तामेव समुपासन्ते देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्।
यद्भक्तिलेशलेशांशलेशलेशलवांशकम् ॥ ८

लब्ध्वा मुक्तो भवेजन्तुस्तां न सेवेत को जनः।
भुवनेशीत्येव वक्त्रे ददाति भुवनत्रयम्॥ ९

मां पाहीत्यस्य वचसो देयाभावादृणान्विता।
विद्याविद्येति तस्या द्वे रूपे जानीहि पार्थिव॥ १०

विद्यया मुच्यते जन्तुर्बध्यतेऽविद्यया पुनः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सर्वे तस्या वशानुगाः॥ ११

अवताराः सर्व एव यन्त्रिता इव दामभिः।
कदाचिच्च सुखं भुंक्ते वैकुण्ठे क्षीरसागरे॥ १२

कदाचित्कुरुते युद्धं दानवैर्बलवत्तरैः।
हरिः कदाचिद्यज्ञान्वै विततान्प्रकरोति च॥ १३

कदाचिच्च तपस्तीव्रं तीर्थे चरति सुव्रत।
कदाचिच्छयने शेते योगनिद्रामुपाश्रितः॥ १४

न स्वतन्त्रः कदाचिच्च भगवान्मधुसूदनः।
तथा ब्रह्मा तथा रुद्रस्तथेन्द्रो वरुणो यमः॥ १५

कुबेरोऽग्नी रवीन्दू च तथान्ये सुरसत्तमाः।
मुनयः सनकाद्याश्च वसिष्ठाद्यास्तथापरे॥ १६

सर्वेऽम्बावशगा नित्यं पाञ्चालीव नरस्य च।
नसि प्रोता यथा गावो विचरन्ति वशानुगाः॥ १७

तथैव देवताः सर्वाः कालपाशनियन्त्रिताः।
हर्षशोकादयो भावा निद्रातन्द्रालसादयः॥ १८

सर्वेषां सर्वदा राजन्देहिनां देहसंश्रिताः।
अमरा निर्जराः प्रोक्ता देवाश्च ग्रन्थकारकैः॥ १९

हे महाराज! अहंता और ममताके इस सुदृढ़ बन्धनसे सभी लोग आबद्ध हैं। अतः अनासक्त तथा मोक्षकी इच्छा रखनेवाले योगीजन और भोगकी कामना करनेवाले लोग भी उन्हीं कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाकी उपासना करते हैं। जिन योगमायाकी भक्तिके लेशलेशांशके लेशलेशलवांशको प्राप्त करके प्राणी मुक्त हो जाता है, उनकी उपासना कौन व्यक्ति नहीं करेगा? 'हे भुवनेशि!' ऐसा उच्चारण करनेवालेको वे भगवती तीनों लोक प्रदान कर देती हैं और 'मेरी रक्षा कीजिये' इस वाक्यके कहनेपर [उसे पहले ही त्रिलोक दे देनेके कारण] अब कुछ भी न दे पानेसे वे उस भक्तकी ऋणी हो जाती हैं। हे राजन्! आप उन भगवतीके विद्या तथा अविद्या—ये दो रूप जानिये। विद्यासे प्राणी मुक्त होता है और अविद्यासे बन्धनमें पड़ता है॥ ७—१०½ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये सब उनके अधीन रहते हैं। भगवान्‌के सभी अवतार रस्सीसे बँधे हुएके समान भगवतीसे ही नियन्त्रित रहते हैं। भगवान् विष्णु कभी वैकुण्ठमें और कभी क्षीरसागरमें आनन्द लेते हैं, कभी अत्यधिक बलशाली दानवोंके साथ युद्ध करते हैं, कभी बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, कभी तीर्थमें कठोर तपस्या करते हैं और हे सुव्रत! कभी योगनिद्राके वशीभूत होकर शय्यापर सोते हैं। वे भगवान् मधुसूदन कभी भी स्वतन्त्र नहीं रहते॥ ११—१४½ ॥

ऐसे ही ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, अन्य श्रेष्ठ देवतागण, सनक आदि मुनि और वसिष्ठ आदि महर्षि—ये सब-के-सब बाजीगरके अधीन कठपुतलीकी भाँति सदा भगवतीके वशमें रहते हैं। जिस प्रकार नथे हुए बैल अपने स्वामीके अधीन रहकर विचरण करते हैं, उसी प्रकार सभी देवता कालपाशमें आबद्ध रहते हैं॥ १५—१७½ ॥

हे राजन्! हर्ष, शोक, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य आदि भाव सभी देहधारियोंके शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं। ग्रन्थकारोंने देवताओंको अमर (मृत्युरहित) तथा निर्जर (बुढ़ापारहित) कहा है, किंतु वे निश्चय ही केवल नामसे अमर हैं, अर्थसे कभी भी वैसे नहीं हैं।

अभिधानतश्चार्थतो न ते नूनं तादृशाः क्वचित्।
उत्पत्तिस्थितिनाशाख्या भावा येषां निरन्तरम्॥ २०

अमरास्ते कथं वाच्या निर्जराश्च कथं पुनः।
कथं दुःखाभिभूता वा जायन्ते विबुधोत्तमाः॥ २१

कथं देवाश्च वक्तव्या व्यसने क्रीडनं कथम्।
क्षणादुत्पत्तिनाशश्च दृश्यतेऽस्मिन्न संशयः॥ २२

जलजानां च कीटानां मशकानां तथा पुनः।
उपमा न कथं चैषामायुषोऽन्ते मराः स्मृताः॥ २३

ततो वर्षायुषश्चापि शतवर्षायुषस्तथा।
मनुष्या ह्यमरा देवास्तस्माद् ब्रह्मा परः स्मृतः॥ २४

रुद्रस्तथा तथा विष्णुः क्रमशश्च भवन्ति हि।
नश्यन्ति क्रमशश्चैव वर्धन्ति चोत्तरोत्तरम्॥ २५

नूनं देहवतो नाशो मृतस्योत्पत्तिरेव च।
चक्रवद् भ्रमणं राजन् सर्वेषां नात्र संशयः॥ २६

मोहजालावृतो जन्तुर्मुच्यते न कदाचन।
मायायां विद्यमानायां मोहजालं न नश्यति॥ २७

उत्पित्सुकाल उत्पत्तिः सर्वेषां नृप जायते।
तथैव नाशः कल्पान्ते ब्रह्मादीनां यथाक्रमम्॥ २८

निमित्तं यस्तु यन्नाशे स घातयति तं नृप।
नान्यथा तद्भवेन्नूनं विधिना निर्मितं तु यत्॥ २९

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखं वा सुखमेव वा।
तत्तथैव भवेत्कामं नान्यथेह विनिर्णयः॥ ३०

जिनमें सदा उत्पत्ति, स्थिति और विनाश नामक अवस्थाएँ रहती हैं, वे अमर और निर्जर कैसे कहे जा सकते हैं? वे देवता विबुध (विशेष बुद्धिवाले) होते हुए भी दुःखोंसे पीड़ित क्यों होते हैं? जब वे भी [सामान्य लोगोंकी भाँति] व्यसन तथा क्रीडामें आसक्त रहते हैं, तब उन्हें देव क्यों कहा जाय? इसमें कोई सन्देह नहीं कि सामान्य जीवोंकी भाँति इनकी भी क्षणमें उत्पत्ति होती है और क्षणमें नाश होता है। [ऐसी स्थितिमें] इनकी उपमा जलमें उत्पन्न होनेवाले कीटों और मच्छरोंसे क्यों न दी जाय? और जब आयुके समाप्त होनेपर वे भी मर जाते हैं, तब उन्हें [अमर न कहकर] 'मर' क्यों न कहा जाय?॥ १८—२३॥

कुछ मनुष्य एक वर्षकी आयुवाले और कुछ सौ वर्षकी आयुवाले होते हैं, उनसे अधिक आयुवाले देवता होते हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले ब्रह्मा कहे गये हैं। ब्रह्मासे अधिक आयुवाले शिव हैं और उनसे भी अधिक आयुवाले विष्णु हैं। अन्तमें वे भी नष्ट होते हैं और इसके बाद वे फिरसे क्रमशः उत्पन्न होते हैं और उत्तरोत्तर बढ़ते हैं॥ २४-२५॥

हे राजन्! निश्चितरूपसे सभी देहधारियोंकी मृत्यु होती है और मरे हुए प्राणीका जन्म होता है। इस प्रकार पहियेकी भाँति सभी प्राणियोंका [जन्म-मृत्युका] चक्कर लगा रहता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २६॥

मोहके जालमें फँसा हुआ प्राणी कभी मुक्त नहीं होता; क्योंकि मायाके रहते मोहका बन्धन नष्ट नहीं होता है॥ २७॥

हे राजन्! सृष्टिके समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओंकी उत्पत्ति होती है और कल्पके अन्तमें क्रमशः उनका नाश भी हो जाता है॥ २८॥

हे नृप! जिसके नाशमें जो निमित्त बन चुका है, उसीके द्वारा उसकी मृत्यु होती है। विधाताने जो रच दिया है, वह अवश्य होता है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ २९॥

जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, रोग, दुःख अथवा सुख—जो सुनिश्चित है, वह उसी रूपमें अवश्य प्राप्त होता है; इसके विपरीत दूसरा सिद्धान्त है ही नहीं॥ ३०॥

सर्वेषां सुखदौ देवौ प्रत्यक्षौ शशिभास्करौ।
न नश्यति तयोः पीडा क्वचित्तद्वैरिसम्भवा॥ ३१

भास्करस्य सुतो मन्दः क्षयी चन्द्रः कलङ्कवान्।
पश्य राजन् विधेः सूत्रं दुर्वारं महतामपि॥ ३२

वेदकर्ता जगत्स्रष्टा बुद्धिदस्तु चतुर्मुखः।
सोऽपि विक्लवतां प्राप्तो दृष्ट्वा पुत्रीं सरस्वतीम्॥ ३३

शिवस्यापि मृता भार्या सती दग्ध्वा कलेवरम्।
सोऽभवद्दुःखसन्तप्तः कामार्तश्च जनार्तिहा॥ ३४

कामाग्निदग्धदेहस्तु कालिन्द्यां पतितः शिवः।
सापि श्यामजला जाता तन्निदाघवशान्नृप॥ ३५

कामार्तो रममाणस्तु नग्नः सोऽपि भृगोर्वनम्।
गतः प्राप्तोऽथ भृगुणा शप्तः कामातुरो भृशम्॥ ३६

पतत्वद्यैव ते लिङ्गं निर्लज्जेति भृशं किल।
पपौ चामृतवापीञ्च दानवैर्निर्मितां मुदे॥ ३७

इन्द्रोऽपि च वृषो भूत्वा वाहनत्वं गतः क्षितौ।
आद्यस्य सर्वलोकस्य विष्णोरेव विवेकिनः॥ ३८

सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र प्रभुशक्तिः कुतो गता।
यद्धेममृगविज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल॥ ३९

राजन् मायाबलं पश्य रामो हि काममोहितः।
रामो विरहसन्तप्तो रुरोद भृशमातुरः॥ ४०

योऽपृच्छत्पादपान्मूढः क्व गता जनकात्मजा।
भक्षिता वा हृता केन रुदन्नुच्चतरं ततः॥ ४१

प्रत्यक्ष दिखायी देनेवाले सूर्य तथा चन्द्रदेव सबको सुख प्रदान करते हैं, किंतु उनके शत्रु [राहु]-के द्वारा उन्हें होनेवाली पीड़ा दूर नहीं होती। सूर्यपुत्र शनैश्चर 'मन्द' और चन्द्रमा 'क्षयरोगी तथा कलंकी' कहे जाते हैं। हे राजन्! देखिये, बड़े-बड़े देवताओंके भी विषयमें विधिका विधान अटल है॥ ३१—३२

ब्रह्माजी वेदकर्ता, जगत्‌की सृष्टि करनेवाले तथा सबको बुद्धि देनेवाले हैं, किंतु वे भी सरस्वतीको देखकर विकल हो गये॥ ३३॥

जब शिवजीकी भार्या सती अपने शरीरको दग्ध करके मर गयी, तब लोगोंका दुःख दूर करनेवाले होते हुए भी वे शिवजी शोकसन्तप्त तथा पीड़ित हो गये। उस समय कामाग्निसे जलते हुए देहवाले शिवजी यमुनानदीमें कूद पड़े। तब हे राजन्! उनके तापके कारण यमुनाजीका जल श्यामवर्णका हो गया॥ ३४-३५॥

भृगुके वनमें जाकर जब वे शिवजी दिगम्बर होकर विहार करने लगे, तब भृगुमुनिने अतीव आतुर उन शिवजीको यह शाप दे दिया—हे निर्लज्ज! तुम्हारा लिंग अभी कटकर गिर जाय। तब शान्तिके लिये शिवजीने दानवोंके द्वारा निर्मित बावलीका अमृत पिया॥ ३६-३७॥

बैल बनकर इन्द्रको भी धरातलपर [सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थका] वाहन बनना पड़ा। समस्त लोकके आदिपुरुष और महान् विवेकशील भगवान् विष्णुकी सर्वज्ञता तथा प्रभुशक्ति उस समय कहाँ चली गयी थी, जब [रामावतारमें] वे स्वर्णमृग-सम्बन्धी उस विशेष रहस्यको बिलकुल नहीं जान सके!॥ ३८-३९॥

हे राजन्! मायाका बल तो देखिये कि भगवान् श्रीराम भी कामसे व्याकुल हुए। उन श्रीरामने सीताके वियोगसे संतप्त तथा व्याकुल होकर बहुत विलाप किया था। वे विह्वल होकर जोर-जोरसे रोते हुए वृक्षोंसे पूछते-फिरते थे कि सीता कहाँ चली गयी? उसे कोई [हिंसक जन्तु] खा गया या किसीने हर लिया?॥ ४०-४१॥

लक्ष्मणाहं मरिष्यामि कान्ताविरहदुःखितः।
त्वं चापि मम दुःखेन मरिष्यसि वनेऽनुज॥ ४२

आवयोर्मरणं ज्ञात्वा माता मम मरिष्यति।
शत्रुघ्नोऽप्यतिदुःखार्तः कथं जीवितुमर्हति॥ ४३

सुमित्रा जीवितं जह्यात्पुत्रव्यसनकर्शिता।
पूर्णकामाथ कैकेयी भवेत्पुत्रसमन्विता॥ ४४

हा सीते क्व गतासि त्वं मां विहाय स्मरातुरा।
एह्येहि मृगशावाक्षि मां जीवय कृशोदरि॥ ४५

किं करोमि क्व गच्छामि त्वदधीनञ्च जीवितम्।
समाश्वासय दीनं मां प्रियं जनकनन्दिनि॥ ४६

एवं विलपता तेन रामेणामिततेजसा।
वने वने च भ्रमता नेक्षिता जनकात्मजा॥ ४७

शरण्यः सर्वलोकानां रामः कमललोचनः।
शरणं वानराणां स गतो मायाविमोहितः॥ ४८

सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध वरुणालयम्।
जघान रावणं वीरं कुम्भकर्णं महोदरम्॥ ४९

आनीय च ततः सीतां रामो दिव्यमकारयत्।
सर्वज्ञोऽपि हृतां मत्वा रावणेन दुरात्मना॥ ५०

किं ब्रवीमि महाराज योगमायाबलं महत्।
यया विश्वमिदं सर्वं भ्रामितं भ्रमते किल॥ ५१

एवं नानावतारेऽत्र विष्णुः शापवशं गतः।
करोति विविधाश्चेष्टा दैवाधीनः सदैव हि॥ ५२

तवाहं कथयिष्यामि कृष्णस्यापि विचेष्टितम्।
प्रभवं मानुषे लोके देवकार्यार्थसिद्धये॥ ५३

हे लक्ष्मण! मैं तो अपनी भार्याके वियोगसे दुःखित होकर मर जाऊँगा और हे अनुज! मेरे दुःखसे तुम भी इस वनमें मर जाओगे। इस प्रकार हम दोनोंकी मृत्यु जान करके मेरी माता कौसल्या मर जायँगी। शत्रुघ्न भी इस महान् दुःखसे पीड़ित होकर कैसे जीवित रह पायेगा? तब पुत्रमरणसे व्यथित होकर माता सुमित्रा भी अपने प्राण त्याग देंगी, किंतु अपने पुत्र भरतके साथ कैकेयीकी कामना अवश्य पूर्ण हो जायगी॥ ४२—४४॥

हा सीते! मुझे पीड़ित छोड़कर तुम कहाँ चली गयी हो? हे मृगलोचने! आओ, आओ। हे कृशोदरि! मुझे जीवन प्रदान करो। हे जनकनन्दिनि! मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा जीवन तो तुम्हारे अधीन है। अपने प्रिय मुझ दुःखितको सान्त्वना प्रदान करो॥ ४५-४६॥

इस प्रकार विलाप करते हुए तथा वन-वन भटकते हुए वे अमित तेजस्वी राम जनकपुत्री सीताको नहीं खोज पाये। तत्पश्चात् समस्त लोकोंको शरण देनेवाले वे कमलनयन श्रीराम मायासे मोहित होकर वानरोंकी शरणमें गये। उन वानरोंको सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँधा और पराक्रमी रावण, कुम्भकर्ण तथा महोदरका संहार किया॥ ४७—४९॥

तदनन्तर दुष्टात्मा रावणके द्वारा सीताको हरी गयी समझकर सर्वज्ञ होते हुए भी श्रीरामने उन्हें लाकर उनकी अग्निपरीक्षा करायी॥ ५०॥

हे महाराज! योगमायाकी महिमा बहुत बड़ी है। मैं उन योगमायाके विषयमें क्या कहूँ, जिनके द्वारा नचाया हुआ यह सम्पूर्ण विश्व निरन्तर चक्कर काट रहा है॥ ५१॥

इस प्रकार शापके वशीभूत होकर भगवान् विष्णु इस लोकमें [धारण किये गये] अनेक अवतारोंमें दैवके अधीन होकर नाना प्रकारकी लीलाएँ करते हैं॥ ५२॥

अब मैं आपसे देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये मनुष्य-लोकमें भगवान् श्रीकृष्णके अवतार तथा उनकी लीलाका वर्णन करूँगा॥ ५३॥

कालिन्दीपुलिने रम्ये ह्यासीन्मधुवनं पुरा।
लवणो मधुपुत्रस्तु तत्रासीद्दानवो बली॥ ५४

द्विजानां दुःखदः पापो वरदानेन गर्वितः।
निहतोऽसौ महाभाग लक्ष्मणस्यानुजेन वै॥ ५५

शत्रुघ्नेनाथ संग्रामे तं निहत्य मदोत्कटम्।
वासिता मथुरा नाम पुरी परमशोभना॥ ५६

स तत्र पुष्कराक्षौ द्वौ पुत्रौ शत्रुनिषूदनः।
निवेश्य राज्ये मतिमान्काले प्राप्ते दिवं गतः॥ ५७

सूर्यवंशक्षये तां तु यादवाः प्रतिपेदिरे।
मथुरां मुक्तिदां राजन् ययातितनयः पुरा॥ ५८

शूरसेनाभिधः शूरस्तत्राभून्मेदिनीपतिः।
माथुराञ्छूरसेनांश्च बुभुजे विषयान्नृप॥ ५९

तत्रोत्पन्नः कश्यपांशः शापाच्च वरुणस्य वै।
वसुदेवोऽतिविख्यातः शूरसेनसुतस्तदा॥ ६०

वैश्यवृत्तिरतः सोऽभून्मृते पितरि माधवः।
उग्रसेनो बभूवाथ कंसस्तस्यात्मजो महान्॥ ६१

अदितिर्देवकी जाता देवकस्य सुता तदा।
शापाद्वै वरुणस्याथ कश्यपानुगता किल॥ ६२

दत्ता सा वसुदेवाय देवकेन महात्मना।
विवाहे रचिते तत्र वागभूद् गगने तदा॥ ६३

कंस कंस महाभाग देवकीगर्भसम्भवः।
अष्टमस्तु सुतः श्रीमांस्तव हन्ता भविष्यति॥ ६४

तच्छ्रुत्वा वचनं कंसो विस्मितोऽभून्महाबलः।
देववाचं तु तां मत्वा सत्यां चिन्तामवाप सः॥ ६५

किं करोमीति सञ्चिन्त्य विमर्शमकरोत्तदा।
निहत्यैनां न मे मृत्युर्भवेदद्यैव सत्वरम्॥ ६६

प्राचीन समयकी बात है—यमुनाके मनोहर तटपर मधुवन नामक एक वन था। वहाँ लवणासुर नामवाला एक बलवान् दानव रहता था, जो मधुका पुत्र था॥ ५४॥

वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर वह पापी दैत्य ब्राह्मणोंको दुःख देता था। हे महाभाग! लक्ष्मणके छोटे भाई शत्रुघ्नने संग्राममें उसका वध कर दिया। उस मदोन्मत्तको मारकर उन्होंने मथुरा नामक परम सुन्दर नगरी बसायी॥ ५५-५६॥

कमलके समान नेत्रोंवाले अपने दो पुत्रोंको राज्यकार्यमें नियुक्त करके वे बुद्धिमान् शत्रुघ्न समय आ जानेपर स्वर्ग चले गये॥ ५७॥

सूर्यवंशके नष्ट हो जानेपर उस मुक्तिदायिनी मथुराको यादवोंने अधिकारमें कर लिया। हे राजन्! पूर्वकालमें राजा ययातिका शूरसेन नामक एक पराक्रमी पुत्र था, जो वहाँका राजा हुआ। हे राजन्! उसने मथुरा और शूरसेन दोनों ही राज्योंके विषयोंका भोग किया॥ ५८—५९॥

वहाँपर वरुणदेवके शापवश महर्षि कश्यपके अंशस्वरूप परम यशस्वी वसुदेवजी शूरसेनके पुत्र होकर उत्पन्न हुए। पिताके मर जानेपर वे वसुदेवजी वैश्यवृत्तिमें संलग्न होकर जीवन-यापन करने लगे। उस समय वहाँके राजा उग्रसेन थे और उनका कंस नामक एक प्रतापी पुत्र था॥ ६०-६१॥

वरुणदेवके ही शापके कारण कश्यपकी अनुगामिनी अदिति भी राजा देवककी पुत्री देवकीके रूपमें उत्पन्न हुईं। महात्मा देवकने उस देवकीको वसुदेवको सौंप दिया। विवाह सम्पन्न हो जानेके पश्चात् वहाँ आकाशवाणी हुई—हे महाभाग कंस! इस देवकीके गर्भसे उत्पन्न होनेवाला आठवाँ ऐश्वर्यशाली पुत्र तुम्हारा संहारक होगा॥ ६२—६४॥

उस आकाशवाणीको सुनकर महाबली कंस आश्चर्यचकित हो गया। उस आकाशवाणीको सत्य मानकर वह चिन्तामें पड़ गया। 'अब मैं क्या करूँ' ऐसा भलीभाँति सोच-विचारकर उसने यह निश्चय किया कि यदि मैं देवकीको इसी समय शीघ्र मार डालूँ तो मेरी मृत्यु नहीं होगी। मृत्युका भय उत्पन्न करनेवाले

उपायो नान्यथा चास्मिन्कार्ये मृत्युभयावहे।
इयं पितृष्वसा पूज्या कथं हन्मीत्यचिन्तयत्॥ ६७

पुनर्विचारयामास मरणं मेऽस्त्यहो स्वसा।
पापेनापि प्रकर्तव्या देहरक्षा विपश्चिता॥ ६८

प्रायश्चित्तेन पापस्य शुद्धिर्भवति सर्वदा।
प्राणरक्षा प्रकर्तव्या बुधैरप्येनसा तथा॥ ६९

विचिन्त्य मनसा कंसः खड्गमादाय सत्वरः।
जग्राह तां वरारोहां केशेष्वाकृष्य पापकृत्॥ ७०

कोशात्खड्गमुपाकृष्य हन्तुकामो दुराशयः।
पश्यतां सर्वलोकानां नवोढां तां चकर्ष ह॥ ७१

हन्यमानाञ्च तां दृष्ट्वा हाहाकारो महानभूत्।
वसुदेवानुगा वीरा युद्धायोद्यतकार्मुकाः॥ ७२

मुञ्च मुञ्चेति प्रोचुस्तं ते तदाद्भुतसाहसाः।
कृपया मोचयामासुर्देवकीं देवमातरम्॥ ७३

तद्युद्धमभवद् घोरं वीराणाञ्च परस्परम्।
वसुदेवसहायानां कंसेन च महात्मना॥ ७४

वर्तमाने तथा युद्धे दारुणे लोमहर्षणे।
कंसं निवारयामासुर्वृद्धा ये यदुसत्तमाः॥ ७५

पितृष्वसेयं ते वीर पूजनीया च बालिशा।
न हन्तव्या त्वया वीर विवाहोत्सवसङ्गमे॥ ७६

स्त्रीहत्या दुःसहा वीर कीर्तिघ्नी पापकृत्तमा।
भूतभाषितमात्रेण न कर्तव्या विजानता॥ ७७

अन्तर्हितेन केनापि शत्रुणा तव चास्य वा।
उदितेति कुतो न स्याद्वागनर्थकरी विभो॥ ७८

यशसस्ते विघाताय वसुदेवगृहस्य च।
अरिणा रचिता वाणी गुणमायाविदा नृप॥ ७९

इस विषम अवसरपर दूसरा कोई उपाय नहीं है, किंतु यह मेरी पूज्य चचेरी बहन है। अतः इसकी हत्या कैसे करूँ, वह ऐसा सोचने लगा॥ ६५—६७॥

उसने पुनः सोचा—अरे! यही बहन तो मेरी मृत्युस्वरूपा है। बुद्धिमान् मनुष्यको पापकर्मसे भी अपने शरीरकी रक्षा कर लेनी चाहिये। बादमें प्रायश्चित्त कर लेनेसे उस पापकी शुद्धि हो जाती है। अतः चतुर लोगोंको चाहिये कि पापकर्मसे भी अपने प्राणकी रक्षा कर लें॥ ६८-६९॥

मनमें ऐसा सोचकर पापी कंसने बाल खींचकर उस सुन्दरी देवकीको तुरंत पकड़ लिया। तत्पश्चात् म्यानसे तलवार निकालकर उसे मारनेकी इच्छासे बुरे विचारोंवाला कंस सभी लोगोंके सामने ही उस नवविवाहिता देवकीको अपनी ओर खींचने लगा॥ ७०-७१॥

उसे मारी जाती देखकर लोगोंमें महान् हाहाकार मच गया। वसुदेवजीके वीर साथीगण धनुष लेकर युद्धके लिये तैयार हो गये। अद्भुत साहसवाले वे सब कंससे कहने लगे—कृपा करके इसे छोड़ दो, छोड़ दो। वे देवमाता देवकीको कंससे छुड़ाने लगे॥ ७२-७३॥

तब शक्तिशाली कंसके साथ वसुदेवजीके पराक्रमी सहायकोंका घोर युद्ध होने लगा। उस भीषण लोमहर्षक युद्धके निरन्तर होते रहनेपर जो श्रेष्ठ तथा वृद्ध यदुगण थे, उन्होंने कंसको युद्ध करनेसे रोक दिया॥ ७४-७५॥

[उन्होंने कंससे कहा—] हे वीर! यह तुम्हारी पूजनीय चचेरी बहन है। इस विवाहोत्सवके शुभ अवसरपर तुम्हें इस अबोध देवकीकी हत्या नहीं करनी चाहिये। हे वीर! स्त्रीहत्या दुःसह कार्य है; यह यशका नाश करनेवाली है और इससे घोर पाप लगता है। केवल आकाशवाणी सुनकर तुम-जैसे बुद्धिमान्‌को बिना सोचे-समझे यह हत्या नहीं करनी चाहिये॥ ७६-७७॥

हे विभो! हो-न-हो तुम्हारे या इन वसुदेवके किसी गुप्त शत्रुने यह अनर्थकारी वाणी बोल दी हो। हे राजन्! तुम्हारा यश और वसुदेवका गार्हस्थ्य नष्ट करनेके लिये किसी मायावी शत्रुने यह कृत्रिम वाणी घोषित कर दी हो॥ ७८-७९॥

बिभेषि वीरस्त्वं भूत्वा भूतभाषितभाषया।
यशोमूलविघातार्थमुपायस्त्वरिणा कृतः॥ ८०

पितृष्वसा न हन्तव्या विवाहसमये पुनः।
भवितव्यं महाराज भवेच्च कथमन्यथा॥ ८१

एवं तैर्बोध्यमानोऽसौ निवृत्तो नाभवद्यदा।
तदा तं वसुदेवोऽपि नीतिज्ञः प्रत्यभाषत॥ ८२

कंस सत्यं ब्रवीम्यद्य सत्याधारं जगत्त्रयम्।
दास्यामि देवकीपुत्रानुत्पन्नांस्तव सर्वशः॥ ८३

जातं जातं सुतं तुभ्यं न दास्यामि यदि प्रभो।
कुम्भीपाके तदा घोरे पतन्तु मम पूर्वजाः॥ ८४

श्रुत्वाथ वचनं सत्यं पौरवा ये पुरःस्थिताः।
ऊचुस्ते त्वरिताः कंसं साधु साधु पुनः पुनः॥ ८५

न मिथ्या भाषते क्वापि वसुदेवो महामनाः।
केशं मुञ्च महाभाग स्त्रीहत्या पातकं तथा॥ ८६

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः कंसो यदुवृद्धैर्महात्मभिः।
क्रोधं त्यक्त्वा स्थितस्तत्र सत्यवाक्यानुमोदितः॥ ८७

ततो दुन्दुभयो नेदुर्वादित्राणि च सस्वनुः।
जयशब्दस्तु सर्वेषामुत्पन्नस्तत्र संसदि॥ ८८

प्रसाद्य कंसं प्रतिमोच्य देवकीं
महायशाः शूरसुतस्तदानीम्।
जगाम गेहं स्वजनानुवृत्तो
नवोढया वीतभयस्तरस्वी॥ ८९

तुम वीर होकर भी आकाशवाणीसे डर रहे हैं तुम्हारे यशरूपी वृक्षको उखाड़ फेंकनेके लिये तुम्हा किसी शत्रुने ही यह चाल चली है॥ ८०॥

जो कुछ भी हो, विवाहके इस अवसरपर तुम्हें बहनकी हत्या तो करनी ही नहीं चाहिये। हे महाराज! होनहार तो होगी ही, उसे कोई कैसे टाल सकता है?॥ ८१॥

इस प्रकार उन वृद्ध यादवोंके समझानेपर भी जब वह कंस पापकर्मसे विरत नहीं हुआ, तब नीतिज्ञ वसुदेवजीने उससे कहा—हे कंस! तीनों लोक सत्यपर टिके हुए हैं, अतः मैं इस समय तुमसे सत्य बोल रहा हूँ। उत्पन्न होते ही देवकीके सभी पुत्रोंको लाकर मैं आपको दे दूँगा। हे विभो! यदि क्रमसे उत्पन्न होते हुए ही प्रत्येक पुत्र आपको न दे दूँ तो मेरे पूर्वज भयंकर कुम्भीपाक नरकमें गिर पड़ें॥ ८२—८४॥

वसुदेवजीका यह सत्य वचन सुनकर वहाँ जो नागरिक सामने खड़े थे, वे कंससे तुरंत बोल उठे—'बहुत ठीक, बहुत ठीक। महात्मा वसुदेव कभी भी झूठ नहीं बोलते। हे महाभाग! अब इस देवकीके केश छोड़ दीजिये; क्योंकि स्त्रीहत्या पाप है'॥ ८५-८६॥

व्यासजी बोले—उन महात्मा वृद्ध यादवोंके इस प्रकार समझानेपर कंसने क्रोध त्यागकर वसुदेवजीके सत्य वचनपर विश्वास कर लिया॥ ८७॥

तब दुन्दुभियाँ तथा अन्य बाजे ऊँचे स्वरमें बजने लगे और उस सभामें उपस्थित सभी लोगोंके मुखसे जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ ८८॥

इस प्रकार उस समय महायशस्वी वसुदेवजी कंसको प्रसन्न करके उससे देवकीको छुड़ाकर उस नवविवाहिताके साथ अपने इष्टजनोंसहित निर्भय होकर शीघ्रतापूर्वक घर चले गये॥ ८९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
कृष्णावतारकथोपक्रमवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~O~~

अथैकविंशोऽध्यायः

देवकीके प्रथम पुत्रका जन्म, वसुदेवद्वारा प्रतिज्ञानुसार उसे कंसको अर्पित करना और कंसद्वारा उस नवजात शिशुका वध

व्यास उवाच

अथ काले तु सम्प्राप्ते देवकी देवरूपिणी।
गर्भं दधार विधिवद्वसुदेवेन सङ्गता॥ १

पूर्णेऽथ दशमे मासे सुषुवे सुतमुत्तमम्।
रूपावयवसम्पन्नं देवकी प्रथमं यदा॥ २

तदाह वसुदेवस्तां सत्यवाक्यानुमोदितः।
भावित्वाच्च महाभागो देवकीं देवमातरम्॥ ३

वरोरु समयं मे त्वं जानासि स्वसुतार्पणे।
मोचिता त्वं महाभागे शपथेन मया तदा॥ ४

इमं पुत्रं सुकेशान्ते दास्यामि भ्रातृसूनवे।
(खले कंसे विनाशार्थं दैवे किं वा करिष्यसि।)
विचित्रकर्मणां पाको दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः॥ ५

सर्वेषां किल जीवानां कालपाशानुवर्तिनाम्।
भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम्॥ ६

प्रारब्धं सर्वथैवात्र जीवस्य विधिनिर्मितम्।

देवक्युवाच

स्वामिन् पूर्वं कृतं कर्म भोक्तव्यं सर्वथा नृभिः॥ ७

तीर्थैस्तपोभिर्दानैर्वा किं न याति क्षयं हि तत्।
लिखितो धर्मशास्त्रेषु प्रायश्चित्तविधिर्नृप॥ ८

पूर्वार्जितानां पापानां विनाशाय महात्मभिः।
ब्रह्महा हेमहारी च सुरापो गुरुतल्पगः॥ ९

द्वादशाब्दव्रते चीर्णे शुद्धिं याति यतस्ततः।
मन्वादिभिर्यथोद्दिष्टं प्रायश्चित्तं विधानतः॥ १०

व्यासजी बोले—हे राजन्! इसके बाद समय आनेपर देवस्वरूपिणी देवकीने वसुदेवके संयोगसे विधिवत् गर्भ धारण किया॥ १॥

दसवाँ माह पूर्ण होनेपर जब देवकीने अत्यन्त रूपसम्पन्न तथा सुडौल अंगोंवाले अत्युत्तम प्रथम पुत्रको जन्म दिया तब सत्यप्रतिज्ञासे बँधे हुए महाभाग वसुदेवने होनहारसे विवश होकर देवमाता देवकीसे कहा—॥ २-३॥

हे सुन्दरि! अपने सभी पुत्र कंसको अर्पित कर देनेकी मेरी प्रतिज्ञाको तुम भलीभाँति जानती हो। हे महाभागे! उस समय इसी प्रतिज्ञाके द्वारा मैंने तुम्हें कंससे मुक्त कराया था। अतएव हे सुन्दर केशोंवाली! मैं यह पुत्र तुम्हारे चचेरे भाई कंसको अर्पित कर दे रहा हूँ। (जब दुष्ट कंस अथवा प्रारब्ध विनाशके लिये उद्यत ही है तो तुम कर ही क्या सकोगी?) अद्भुत कर्मोंका परिणाम आत्मज्ञानसे रहित प्राणियोंके लिये दुर्ज्ञेय होता है। कालके पाशमें बँधे हुए समस्त जीवोंको अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मोंका फल निश्चितरूपसे भोगना ही पड़ता है। प्रत्येक जीवका प्रारब्ध निश्चित-रूपसे विधिके द्वारा ही निर्मित है॥ ४—६½॥

देवकी बोली—हे स्वामिन्! मनुष्योंको अपने पूर्वजन्ममें किये गये कर्मोंका फल अवश्य भोगना पड़ता है; किंतु क्या तीर्थाटन, तपश्चरण एवं दानादिसे वह कर्म-फल नष्ट नहीं हो सकता है? हे महाराज! पूर्व अर्जित पापोंके विनाशके लिये महात्माओंने धर्मशास्त्रोंमें तो नानाविध प्रायश्चित्तके विधानका उल्लेख किया है॥ ७-८½॥

ब्रह्महत्या करनेवाला, स्वर्णका हरण करनेवाला, सुरापान करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला महापापी भी बारह वर्षोंतक व्रतका अनुष्ठान कर लेनेपर शुद्ध हो जाता है। हे अनघ! उसी प्रकार मनु आदिके द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्तका विधानपूर्वक

तथा कृत्वा नरः पापान्मुच्यते वा न वानघ।
विगीतवचनास्ते किं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः॥ ११

याज्ञवल्क्यादयः सर्वे धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः।
भवितव्यं भवत्येव यद्येवं निश्चयः प्रभो॥ १२

आयुर्वेदः स मिथ्यैव मन्त्रवादास्तथाखिलाः।
उद्यमस्तु वृथा सर्वमेवं चेद्दैवनिर्मितम्॥ १३

भवितव्यं भवत्येव प्रवृत्तिस्तु निरर्थिका।
अग्निष्टोमादिकं व्यर्थं नियतं स्वर्गसाधनम्॥ १४

यदा तदा प्रमाणं हि वृथैव परिभाषितम्।
वितथे तत्प्रमाणे तु धर्मोच्छेदः कुतो न हि॥ १५

उद्यमे च कृते सिद्धिः प्रत्यक्षेणैव साध्यते।
तस्मादत्र प्रकर्तव्यः प्रपञ्चश्चित्तकल्पितः॥ १६

यथायं बालकः क्षेमं प्राप्नोति मम पुत्रकः।
मिथ्या यदि प्रकर्तव्यं वचनं शुभमिच्छता॥ १७

न तत्र दूषणं किञ्चित्प्रवदन्ति मनीषिणः।

वसुदेव उवाच

निशामय महाभागे सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ १८

उद्यमः खलु कर्तव्यः फलं दैववशानुगम्।
त्रिविधानीह कर्माणि संसारेऽत्र पुराविदः॥ १९

प्रवदन्तीह जीवानां पुराणेष्वागमेषु च।
सञ्चितानि च जीर्णानि प्रारब्धानि सुमध्यमे॥ २०

वर्तमानानि वामोरु त्रिविधानीह देहिनाम्।
शुभाशुभानि कर्माणि बीजभूतानि यानि च॥ २१

बहुजन्मसमुत्थानि काले तिष्ठन्ति सर्वथा।
पूर्वदेहं परित्यज्य जीवः कर्मवशानुगः॥ २२

स्वर्गं वा नरकं वापि प्राप्नोति स्वकृतेन वै।
दिव्यं देहञ्च सम्प्राप्य यातनादेहमर्थजम्॥ २३
भुनक्ति विविधान् भोगान्स्वर्गे वा नरकेऽथवा।

अनुष्ठान करके मनुष्य क्या पापसे मुक्त नहीं हो जाता है? [यदि प्रायश्चित्त-विधानके द्वारा पापसे मुक्ति नहीं मिलती है तो] क्या याज्ञवल्क्य आदि धर्मशास्त्रप्रणेता तत्त्वदर्शी मुनियोंके वचन निरर्थक हो जायँगे? हे स्वामिन्! होनी होकर ही रहती है—यदि यह निश्चित है तब तो सभी आयुर्वेद एवं सभी मन्त्रशास्त्र झूठे सिद्ध हो जायँगे और इस प्रकार भाग्यलेखके समक्ष सभी उद्यम अर्थहीन हो जायँगे॥ ९—१३॥

'जो होना है, वह अवश्य घटित होता है' यदि [यही सत्य है] तो सत्कर्मोंकी ओर प्रवृत्त होना व्यर्थ हो जायगा और अग्निष्टोम आदि स्वर्गप्राप्तिके शास्त्र-सम्मत साधन भी निरर्थक हो जायँगे। जब वेद-शास्त्रादिके उपदेश ही व्यर्थ हो गये, तब उन प्रमाणोंके झूठा हो जानेपर क्या धर्मका समूल नाश नहीं हो जायगा?॥ १४-१५॥

उद्यम करनेपर सिद्धिकी प्रत्यक्ष प्राप्ति हो जाती है। अतएव अपने मनमें भलीभाँति सोच करके कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरा यह बालक पुत्र बच जाय। किसीके कल्याणकी इच्छासे यदि झूठ बोल दिया जाय तो इसमें किसी प्रकारका दोष नहीं होता है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं॥ १६-१७½॥

वसुदेव बोले—हे महाभागे! सुनो, मैं तुमसे यह सत्य कह रहा हूँ। मनुष्यको उद्यम करना चाहिये, उसका फल दैवके अधीन रहता है। प्राचीन तत्त्ववेत्ताओंने इस संसारमें प्राणियोंके तीन प्रकारके कर्म पुराणों तथा शास्त्रोंमें बताये हैं। हे सुमध्यमे! संचित, प्रारब्ध और वर्तमान—ये तीन प्रकारके कर्म देहधारियोंके होते हैं। हे सुजघने! प्राणियोंद्वारा सम्पादित जो भी शुभाशुभ कर्म होते हैं, वे बीजका रूप धारण कर लेते हैं और अनेक जन्मोंके उपार्जित वे कर्म समय पाकर फल देनेके लिये उपस्थित हो जाते हैं॥ १८—२१½॥

जीव अपना पूर्व शरीर छोड़कर अपने द्वारा किये गये कर्मोंके अधीन होकर स्वर्ग अथवा नरकमें जाता है। सुकर्म करनेवाला जीव दिव्य शरीर प्राप्त करके स्वर्गमें नानाविध सुखोंका उपभोग करता है तथा दुष्कर्म करनेवाला विषयभोगजन्य यातना देह प्राप्त करके नरकमें अनेक प्रकारके कष्ट भोगता है॥ २२-२३½॥

भोगान्ते च यदोत्पत्तेः समयस्तस्य जायते॥ २४

लिङ्गदेहेन सहितं जायते जीवसंज्ञितम्।
तदैव सञ्चितेभ्यश्च कर्मभ्यः कर्मभिः पुनः॥ २५

योजयत्येव तं कालं कर्माणि प्राक्कृतानि च।
देहेनानेन भाव्यानि शुभानि चाशुभानि च॥ २६

प्रारब्धानि च जीवेन भोक्तव्यानि सुलोचने।
प्रायश्चित्तेन नश्यन्ति वर्तमानानि भामिनि॥ २७

सञ्चितानि तथैवाशु यथार्थं विहितेन च।
प्रारब्धकर्मणां भोगात्संक्षयो नान्यथा भवेत्॥ २८

तेनायं ते कुमारो वै देयः कंसाय सर्वथा।
न मिथ्या वचनं मेऽस्ति लोकनिन्दाभिदूषितम्॥ २९

अनित्येऽस्मिंस्तु संसारे धर्मसारे महात्मनाम्।
दैवाधीनं हि सर्वेषां मरणं जननं तथा॥ ३०

तस्माच्छोको न कर्तव्यो देहिना हि निरर्थकः।
सत्यं यस्य गतं कान्ते वृथा तस्यैव जीवितम्॥ ३१

इहलोको गतो यस्मात्परलोकः कुतस्ततः।
अतो देहि सुतं सुभ्रु कंसाय प्रददाम्यहम्॥ ३२

सत्यसंस्तरणाद्देवि शुभमग्रे भविष्यति।
कर्तव्यं सुकृतं पुम्भिः सुखे दुःखे सति प्रिये॥ ३३

(सत्यसंरक्षणाद्देवि शुभमेव भविष्यति)

व्यास उवाच

इत्युक्तवति कान्ते सा देवकी शोकसंयुता।
ददौ पुत्रं प्रसूतं च वेपमाना मनस्विनी॥ ३४

वसुदेवोऽपि धर्मात्मा आदाय स्वसुतं शिशुम्।
जगाम कंससदनं मार्गे लोकैरभिष्टुतः॥ ३५

इस प्रकार भोग पूर्ण हो जानेपर जब पुनः उसके जन्मका समय आता है, तब लिंगदेहके साथ संयोग होनेपर उसकी 'जीव' संज्ञा हो जाती है। उसी समय जीवका संचित कर्मोंसे सम्बन्ध हो जाता है और पुनः लिंगदेहके आविर्भावके समय परमात्मा उन कर्मोंके साथ जीवको जोड़ देते हैं। हे सुलोचने! इसी शरीरके द्वारा जीवको संचित, वर्तमान और प्रारब्ध—इन तीन प्रकारके शुभ अथवा अशुभ कर्म भोगने पड़ते हैं। हे भामिनि! केवल वर्तमान कर्म ही प्रायश्चित्त आदिके द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। इसी प्रकार समुचित शास्त्रोक्त उपायोंद्वारा संचित कर्मोंको भी विनष्ट किया जा सकता है, किंतु प्रारब्ध कर्मोंका क्षय तो भोगसे ही सम्भव है, अन्यथा नहीं॥ २४—२८॥

अतएव मुझे तुम्हारे इस पुत्रको हर प्रकारसे कंसको अर्पित कर ही देना चाहिये। ऐसा करनेसे मेरा वचन भी मिथ्या नहीं होगा और लोकनिन्दाका दोष भी मुझे नहीं लगेगा॥ २९॥

इस अनित्य संसारमें महापुरुषोंके लिये धर्म ही एकमात्र सार-तत्त्व है। इस लोकमें प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। अतएव हे प्रिये! प्राणियोंको व्यर्थ शोक नहीं करना चाहिये। इस संसारमें जिसने सत्य छोड़ दिया उसका जीवन निरर्थक ही है॥ ३०-३१॥

जिसका यह लोक बिगड़ गया, उसके लिये परलोक कहाँ? अतः हे सुन्दर भौंहोंवाली! यह बालक मुझे दे दो और मैं इसे कंसको सौंप दूँ॥ ३२॥

हे देवि! सत्य-पथका अनुगमन करनेसे आगे कल्याण होगा। हे प्रिये! सुख अथवा दुःख—किसी भी परिस्थितिमें मनुष्योंको सत्कर्म ही करना चाहिये। (हे देवि! सत्यकी भलीभाँति रक्षा करनेसे कल्याण ही होगा)॥ ३३॥

व्यासजी बोले—अपने प्रिय पतिके ऐसा कहनेपर शोक-सन्तप्त तथा काँपती हुई मनस्विनी देवकीने वह नवजात शिशु वसुदेवको दे दिया॥ ३४॥

धर्मात्मा वसुदेव भी अपने पुत्र उस अबोध शिशुको लेकर कंसके महलकी ओर चल पड़े। मार्गमें लोग उनकी प्रशंसा कर रहे थे॥ ३५॥

लोका ऊचुः

पश्यन्तु वसुदेवं भो लोका एवं मनस्विनम्।
स्ववाक्यमनुरुध्यैव बालमादाय यात्यसौ॥ ३६

मृत्यवे दातुकामोऽद्य सत्यवागनसूयकः।
सफलं जीवितं चास्य धर्मं पश्यन्तु चाद्भुतम्॥ ३७

यः पुत्रं याति कंसाय दातुं कालात्मनेऽपि हि।

व्यास उवाच

इति संस्तूयमानस्तु प्राप्तः कंसालयं नृप॥ ३८

ददावस्मै कुमारं तं जातमात्रममानुषम्।
कंसोऽपि विस्मयं प्राप्तो दृष्ट्वा धैर्यं महात्मनः॥ ३९

गृहीत्वा बालकं प्राह स्मितपूर्वमिदं वचः।
धन्यस्त्वं शूरपुत्राद्य ज्ञातः पुत्रसमर्पणात्॥ ४०

मम मृत्युर्न चायं वै गिरा प्रोक्तस्तु चाष्टमः।
न हन्तव्यो मया कामं बालोऽयं यातु ते गृहम्॥ ४१

अष्टमस्तु प्रदातव्यस्त्वया पुत्रो महामते।
इत्युक्त्वा वसुदेवाय ददावाशु खलः शिशुम्॥ ४२

गच्छत्वयं गृहे बालः क्षेमं व्याहृतवान्नृपः।
तमादाय तदा शौरिर्जगाम स्वगृहं मुदा॥ ४३

कंसोऽपि सचिवानाह वृथा किं घातये शिशुम्।
अष्टमाद्देवकीपुत्रान्मम मृत्युरुदाहृतः॥ ४४

अतः किं प्रथमं बालं हत्वा पापं करोम्यहम्।
साधु साध्विति तेऽप्युक्त्वा संस्थिता मन्त्रिसत्तमाः॥ ४५

विसर्जितास्तु कंसेन जग्मुस्ते स्वगृहान्प्रति।
गतेषु तेषु सम्प्राप्तो नारदो मुनिसत्तमः॥ ४६

लोगोंने कहा—हे नागरिको! इस मनस्वी वसुदेवको देखो; इस अबोध बालकको लेकर ये द्वेषरहित एवं सत्यवादी वसुदेव अपने वचनकी रक्षाके लिये आज इसे मृत्युको समर्पित करने जा रहे हैं। इनका जीवन सफल हो गया है। इनके इस अद्भुत धर्मपालनको देखो, जो साक्षात् कालस्वरूप कंसको अपना पुत्र देनेके लिये जा रहे हैं॥ ३६-३७½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार लोगोंद्वारा प्रशंसित होते हुए वे वसुदेव कंसके महलमें पहुँच गये और उस दिव्य नवजात शिशुको कंसको अर्पित कर दिया। महात्मा वसुदेवके इस धैर्यको देखकर कंस भी विस्मित हो गया॥ ३८-३९ ॥

उस बालकको अपने हाथोंमें लेकर कंसने मुसकराते हुए यह वचन कहा—हे शूरसेनतनय! आप धन्य हैं; आज आपके इस पुत्र-समर्पणके कृत्यसे मैंने आपका महत्त्व जान लिया॥ ४० ॥

यह बालक मेरी मृत्युका कारण नहीं है; क्योंकि आकाशवाणीके द्वारा देवकीका आठवाँ पुत्र मेरी मृत्युका कारण बताया गया है। अतएव मैं इस बालकका वध नहीं करूँगा, आप इसे अपने घर ले जाइये॥ ४१ ॥

हे महामते! आप मुझे देवकीका आठवाँ पुत्र दे दीजियेगा। ऐसा कहकर उस दुष्ट कंसने तुरंत वह शिशु वसुदेवको वापस दे दिया॥ ४२ ॥

राजा कंसने कहा कि यह बालक अपने घर जाय और सकुशल रहे। तत्पश्चात् उस बालकको लेकर शूरसेन-पुत्र वसुदेव प्रसन्नतापूर्वक अपने घरकी ओर चल पड़े॥ ४३ ॥

इसके बाद कंसने भी अपने मन्त्रियोंसे कहा कि मैं इस शिशुकी व्यर्थ ही हत्या क्यों करता; क्योंकि मेरी मृत्यु तो देवकीके आठवें पुत्रसे कही गयी है, अतः देवकीके प्रथम शिशुका वध करके मैं पाप क्यों करूँ? तब वहाँ विद्यमान श्रेष्ठ मन्त्रिगण 'साधु, साधु'—ऐसा कहकर और कंससे आज्ञा पाकर अपने-अपने घर चले गये। उनके चले जानेपर मुनिश्रेष्ठ नारदजी वहाँ आ गये॥ ४४—४६ ॥

अभ्युत्थानार्घ्यपाद्यादि चकारोग्रसुतस्तदा।
पप्रच्छ कुशलं राजा तत्रागमनकारणम्॥ ४७

नारदस्तं तदोवाच स्मितपूर्वमिदं वचः।
कंस कंस महाभाग गतोऽहं हेमपर्वतम्॥ ४८

तत्र ब्रह्मादयो देवा मन्त्रं चक्रुः समाहिताः।
देवक्यां वसुदेवस्य भार्यायां सुरसत्तमः॥ ४९

वधार्थं तव विष्णुश्च जन्म चात्र करिष्यति।
तत्कथं न हतः पुत्रस्त्वया नीतिं विजानता॥ ५०

कंस उवाच

अष्टमं च हनिष्येऽहं मृत्युं मे देवभाषितम्।

नारद उवाच

न जानासि नृपश्रेष्ठ राजनीतिं शुभाशुभाम्॥ ५१

मायाबलं च देवानां न त्वं वेत्सि वदामि किम्।
रिपुरल्पोऽपि शूरेण नोपेक्ष्यः शुभमिच्छता॥ ५२

सम्मेलनक्रियायां तु सर्वे ते ह्यष्टमाः स्मृताः।
मूर्खस्त्वमरिसन्त्यागः कृतोऽयं जानता त्वया॥ ५३

इत्युक्त्वाशु गतः श्रीमान्नारदो देवदर्शनः।
गतेऽथ नारदे कंसः समाहूयाथ बालकम्।
पाषाणे पोथयामास सुखं प्राप च मन्दधीः॥ ५४

उस समय उग्रसेन-पुत्र कंसने श्रद्धापूर्वक उठकर विधिवत् अर्घ्य, पाद्य आदि अर्पण किया और पुनः कुशल-क्षेम तथा उनके आगमनका कारण पूछा॥ ४७॥

तब नारदजीने मुसकराकर कंससे यह वचन कहा—हे कंस! हे महाभाग! मैं सुमेरुपर्वतपर गया था। वहाँ ब्रह्मा आदि देवगण एकत्र होकर आपसमें मन्त्रणा कर रहे थे कि वसुदेवकी पत्नी देवकीके गर्भसे सुरश्रेष्ठ भगवान् विष्णु आपके संहारके उद्देश्यसे अवतार लेंगे; तो फिर नीतिका ज्ञान रखते हुए भी आपने उस शिशुका वध क्यों नहीं किया?॥ ४८—५०॥

कंस बोला—आकाशवाणीके द्वारा बताये गये अपने मृत्यु-रूप [देवकीके] आठवें पुत्रका मैं वध करूँगा॥ ५०½॥

नारदजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! आप शुभ तथा अशुभ राजनीतिको नहीं जानते हैं और देवताओंकी माया-शक्ति भी नहीं जानते हैं। अब मैं क्या बताऊँ? अपना कल्याण चाहनेवाले वीरको छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ५१-५२॥

[गणितशास्त्रकी] सम्मेलन-क्रियाके आधारपर तो सभी पुत्र आठवें कहे जा सकते हैं। आप मूर्ख हैं; क्योंकि ऐसा जानते हुए भी आपने शत्रुको छोड़ दिया है॥ ५३॥

ऐसा कहकर श्रीमान् देवदर्शन नारद वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले गये। नारदके चले जानेपर कंसने उस बालकको मँगवाकर उसे पत्थरपर पटक दिया और उस मन्दबुद्धि कंसको महान् सुख प्राप्त हुआ॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां कंसेन
देवकीप्रथमपुत्रवधवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देवकीके छः पुत्रोंके पूर्वजन्मकी कथा, सातवें पुत्रके रूपमें भगवान् संकर्षणका अवतार, देवताओं तथा दानवोंके अंशावतारोंका वर्णन

जनमेजय उवाच

किं कृतं पातकं तेन बालकेन पितामह।
यज्जातमात्रो निहतस्तथा तेन दुरात्मना॥ १

जनमेजय बोले—हे पितामह! उस बालकने ऐसा कौन-सा पापकर्म किया था, जिससे जन्म लेते ही उसको दुष्टात्मा कंसने मार डाला?॥ १॥

नारदोऽपि मुनिश्रेष्ठो ज्ञानवान्धर्मतत्परः।
कथमेवंविधं पापं कृतवान्ब्रह्मवित्तमः॥ २

कर्ता कारयिता पापे तुल्यपापौ स्मृतौ बुधैः।
स कथं प्रेरयामास मुनिः कंसं खलं तदा॥ ३

संशयोऽयं महान्मेऽत्र ब्रूहि सर्वं सविस्तरम्।
येन कर्मविपाकेन बालको निधनं गतः॥ ४

व्यास उवाच

नारदः कौतुकप्रेक्षी सर्वदा कलहप्रियः।
देवकार्यार्थमागत्य सर्वमेतच्चकार ह॥ ५

न मिथ्याभाषणे बुद्धिर्मुनेस्तस्य कदाचन।
सत्यवक्ता सुराणां स कर्तव्ये निरतः शुचिः॥ ६

एवं षड् बालकास्तेन जाता जाता निपातिताः।
षड् गर्भाः शापयोगेन सम्भूय मरणं गताः॥ ७

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तेषां शापस्य कारणम्।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पुत्रा मरीचेः षण्महाबलाः॥ ८

ऊर्णायां चैव भार्यायामासन्धर्मविचक्षणाः।
ब्रह्माणं जहसुर्वीक्ष्य सुतां यभितुमुद्यतम्॥ ९

शशाप तांस्तदा ब्रह्मा दैत्ययोनिं विशन्त्वधः।
कालनेमिसुता जातास्ते षड्गर्भा विशाम्पते॥ १०

अवतारे परे ते तु हिरण्यकशिपोः सुताः।
जातास्ते ज्ञानसंयुक्ताः पूर्वशापभयान्नृप॥ ११

तस्मिञ्जन्मनि शान्ताश्च तपश्चक्रुः समाहिताः।
तेषां प्रीतोऽभवद् ब्रह्मा षड्गर्भाणां वरान्ददौ॥ १२

महान् ज्ञानी, धर्मपरायण तथा ब्रह्मवेत्ता होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ नारदने इस प्रकारका पाप क्यों किया? विद्वज्जनोंने पाप करने तथा करानेवाले—इन दोनोंको समान पापी बताया है; तो फिर उन देवर्षि नारदने इस पापकर्मके लिये दुष्ट कंसको प्रेरित क्यों किया?॥ २-३॥

इस विषयमें मुझे यह महान् सन्देह हो गया है। जिस कर्मफलसे वह बालक मारा गया, उसके बारेमें मुझे सब कुछ विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४॥

व्यासजी बोले—देवर्षि नारदको कौतुक करना तथा कलह करा देना अत्यन्त प्रिय है। अतः देवताओंका कार्य साधनेके लिये ही उन्होंने उपस्थित होकर यह सब किया था॥ ५॥

उन मुनि नारदकी बुद्धि झूठ बोलनेमें कभी भी प्रवृत्त नहीं हो सकती। सत्यवादी तथा पवित्र हृदयवाले वे सदा देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर रहते हैं॥ ६॥

इस प्रकार कंसने देवकीके छः पुत्रोंको बारी-बारीसे जन्म लेते ही मार डाला। पूर्वजन्ममें प्राप्त शापके कारण वे छः बालक जन्म लेते ही मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ७॥

हे राजन्! सुनिये, अब मैं उनके शापका कारण बताऊँगा। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें मरीचिकी भार्या ऊर्णाके गर्भसे छः अत्यन्त बलशाली पुत्र उत्पन्न हुए; ये धर्मशास्त्रमें पूर्णरूपसे निष्णात थे॥ ८$\frac{१}{२}$॥

एक बार ब्रह्माजीको अपनी पुत्री सरस्वतीके साथ समागमके लिये उद्यत देखकर वे हँस पड़े थे। तब ब्रह्माजीने उन्हें शाप दे दिया कि तुमलोगोंका पतन हो जाय और तुम सब दैत्ययोनिमें जन्म लो। हे महाराज! इस प्रकार वे छहों पुत्र कालनेमिके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए॥ ९-१०॥

हे राजन्! अगले जन्ममें वे हिरण्यकशिपुके पुत्र हुए। उनका पूर्वज्ञान अभी बना हुआ था। अतः वे सब पूर्वशापसे भयभीत होकर उस जन्ममें समाहितचित्त हो शान्तभावसे तप करने लगे। इससे ब्रह्माजीने अत्यधिक प्रसन्न होकर उन छहोंको वरदान दे दिया॥ ११-१२॥

ब्रह्मोवाच

शप्ता यूयं मया पूर्वं क्रोधयुक्तेन पुत्रकाः।
तुष्टोऽस्मि वो महाभागा ब्रुवन्तु वाञ्छितं वरम्॥ १३

व्यास उवाच

ते तु श्रुत्वा वचस्तस्य ब्रह्मणः प्रीतमानसाः।
ब्रह्माणमब्रुवन्कामं सर्वे कार्यार्थतत्पराः॥ १४

गर्भा ऊचुः

पितामहाद्य तुष्टोऽसि देहि नो वाञ्छितं वरम्।
अवध्या दैवतैः सर्वैर्मानवैश्च महोरगैः॥ १५

गन्धर्वसिद्धपतिभिर्वधो माभूत्पितामह।

व्यास उवाच

तानुवाच ततो ब्रह्मा सर्वमेतद्भविष्यति॥ १६

गच्छन्तु वो महाभागाः सत्यमेव न संशयः।
दत्त्वा वरं गतो ब्रह्मा मुदितास्ते तदाभवन्॥ १७

हिरण्यकशिपुः क्रुद्धस्तानुवाच कुरूद्वह।
यस्माद्विहाय मां पुत्रास्तोषितो वै पितामहः॥ १८

वरेण प्रार्थितोऽत्यर्थं बलवन्तो यतोऽभवन्।
युष्माभिर्हापितः स्नेहस्ततो युष्मांस्त्यजाम्यहम्॥ १९

यूयं व्रजन्तु पाताले षड्गर्भा विश्रुता भुवि।
पाताले निद्रयाविष्टास्तिष्ठन्तु बहुवत्सरान्॥ २०

ततस्तु देवकीगर्भे वर्षे वर्षे पुनः पुनः।
पिता वः कालनेमिस्तु तत्र कंसो भविष्यति॥ २१

स एव जातमात्रान्वो वधिष्यति सुदारुणः।

व्यास उवाच

एवं शप्तांस्तदा तेन गर्भे जातान्पुनः पुनः॥ २२

जघान देवकीपुत्रान्षड्गर्भाञ्छापनोदितः।
शेषांशः सप्तमस्तत्र देवकीगर्भसंस्थितः॥ २३

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग पुत्रो! मैंने क्रोधमें आकर उस समय तुम लोगोंको शाप दे दिया था। मैं तुम सभीपर परम प्रसन्न हूँ; अतएव अपना अभिलषित वर माँगो॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन ब्रह्माका वचन सुनकर उनके मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई। अपना कार्य सिद्ध करनेमें तत्पर उन सबने ब्रह्माजीसे वर माँग लिया॥ १४॥

बालक बोले—हे पितामह! यदि आज आप हमपर प्रसन्न हैं तो हमें मनोवांछित वरदान दीजिये। हमलोगोंको सभी देवता, मानव और महानाग न मार सकें। हे पितामह! यहाँतक कि गन्धर्व तथा बड़े-से-बड़े सिद्ध पुरुषोंसे भी हमारा वध न हो सके॥ १५$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—तब ब्रह्माजीने उनसे कहा कि यह सब पूर्ण होगा। हे महाभाग्यशाली बालको! अब तुमलोग जाओ। यह सत्य होकर रहेगा; इसमें सन्देह नहीं है। जब ब्रह्माजी वरदान देकर चले गये, तब वे सब परम प्रसन्न हुए॥ १६-१७॥

हे कुरुश्रेष्ठ! [वरदानकी बात जानकर] हिरण्यकशिपु कुपित होकर उनसे बोला—हे पुत्रो! तुमलोगोंने मेरी उपेक्षा करके अपनी तपस्यासे ब्रह्माको प्रसन्न किया है। उनसे प्रार्थना करके वरदान पाकर तुमलोग अत्यधिक बलशाली हो गये हो। तुम सभीने अपने पिताके स्नेहको अपमानित किया है; अतएव मैं तुमलोगोंका परित्याग करता हूँ॥ १८-१९॥

अब तुमलोग पाताललोक चले जाओ। इस पृथ्वीपर तुमलोग 'षड्गर्भ' नामसे विख्यात होओगे। पाताललोकमें तुमलोग बहुत वर्षोंतक निद्राके वशीभूत रहोगे। तत्पश्चात् तुमलोग क्रमसे प्रतिवर्ष देवकीके गर्भसे उत्पन्न होते रहोगे और पूर्वजन्मका तुम्हारा पिता कालनेमि उस समय कंस नामसे उत्पन्न होगा। वह अत्यन्त क्रूर कंस तुमलोगोंको उत्पन्न होते ही मार डालेगा॥ २०-२१$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार हिरण्यकशिपुसे शापित होकर वे क्रमसे एक-एक करके देवकीके गर्भमें आते गये और कंस पूर्वशापसे प्रेरित होकर उन षड्गर्भरूप देवकीके पुत्रोंका वध करता गया। इसके बाद शेषनागके अंशावतार बलभद्रजी देवकीके सातवें गर्भमें आये॥ २२-२३॥

विस्त्रंसितश्च गर्भोऽसौ योगेन योगमायया।
नीतश्च रोहिणीगर्भे कृत्वा संकर्षणं बलात्॥ २४

पतितः पञ्चमे मासि लोकख्यातिं गतस्तदा।
कंसोऽपि ज्ञातवांस्तत्र देवकीगर्भपातनम्॥ २५

मुदं प्राप स दुष्टात्मा श्रुत्वा वार्तां सुखावहाम्।
अष्टमे देवकीगर्भे भगवान्सात्वतां पतिः॥ २६

उवास देवकार्यार्थं भारावतरणाय च।

राजोवाच

वसुदेवः कश्यपांशः शेषांशश्च तदाभवत्॥ २७

हरेरंशस्तथा प्रोक्तो भवता मुनिसत्तम।
अन्ये च येंऽशा देवानां तत्र जातास्तु तान्वद॥ २८

भारावतरणार्थं वै क्षितेः प्रार्थनयानघ।

व्यास उवाच

सुराणामसुराणां च ये येंऽशा भुवि विश्रुताः॥ २९

तानहं सम्प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण शृणुष्व तान्।
वसुदेवः कश्यपांशो देवकी च तथादितिः॥ ३०

बलदेवस्त्वनन्तांशो वर्तमानेषु तेषु च।
योऽसौ धर्मसुतः श्रीमान्नारायण इति श्रुतः॥ ३१

तस्यांशो वासुदेवस्तु विद्यमाने मुनौ तदा।
नरस्तस्यानुजो यस्तु तस्यांशोऽर्जुन एव च॥ ३२

युधिष्ठिरस्तु धर्मांशो वाय्वंशो भीम इत्युत।
अश्विन्यंशौ ततः प्रोक्तौ माद्रीपुत्रौ महाबलौ॥ ३३

सूर्यांशः कर्ण आख्यातो धर्मांशो विदुरः स्मृतः।
द्रोणो बृहस्पतेरंशस्तत्सुतस्तु शिवांशजः॥ ३४

तत्पश्चात् योगमायाने अपने योगबलसे उस गर्भको च्युत कर दिया और हठात् खींचकर उसे रोहिणीके गर्भमें स्थापित कर दिया॥ २४॥

इसी बीच लोगोंको यह बात मालूम हो गयी कि पाँचवें महीनेमें ही देवकीका गर्भस्राव हो गया। कंस भी देवकीके गर्भपातका समाचार जान गया। अपने लिये यह सुखप्रद समाचार सुनकर वह दुरात्मा कंस बहुत प्रसन्न हुआ॥ २५$\frac{१}{२}$॥

उधर देवताओंके कार्यको सिद्ध करने तथा पृथ्वीका भार उतारनेके लिये जगत्पति भगवान् विष्णु देवकीके आठवें गर्भमें विराजमान हो गये॥ २६$\frac{१}{२}$॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने यह बता दिया कि वसुदेवजी महर्षि कश्यपके अंशावतार थे और उनके यहाँ शेषनाग तथा भगवान् विष्णु अपने-अपने अंशोंसे उत्पन्न हुए। हे अनघ! देवताओंके अन्य जो-जो अंशावतार पृथ्वीकी प्रार्थनापर उसका भार उतारनेके लिये हुए हैं, उन्हें भी बताइये॥ २७-२८$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवताओं तथा असुरोंके जो-जो अंश लोकमें विख्यात हुए हैं, उनके विषयमें मैं संक्षिप्तरूपमें बता रहा हूँ; आप उन्हें सुनिये—वसुदेव कश्यपके अंशसे तथा देवकी अदितिके अंशसे उत्पन्न थीं॥ २९-३०॥

बलदेवजी शेषनागके अंश थे। इन सभीके अवतरित हो जानेपर जिन धर्मपुत्र श्रीमान् नारायणके विषयमें कहा जा चुका है, उन्हींके अंशसे ही साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने अवतार लिया। मुनिवर नारायणके श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हो जानेपर उनके नर नामक जो छोटे भाई हैं, उनके अंशस्वरूप अर्जुनका प्राकट्य हुआ॥ ३१-३२॥

महाराज युधिष्ठिर धर्मके अंश, भीमसेन पवनदेवके अंश तथा माद्रीके दोनों महाबली पुत्र नकुल एवं सहदेव दोनों अश्विनीकुमारोंके अंश कहे गये हैं॥ ३३॥

कर्ण सूर्यके अंशसे प्रकट हुए और विदुरको धर्मका अंश बताया गया है। द्रोणाचार्य बृहस्पतिके अंशसे तथा उनका पुत्र अश्वत्थामा शिवके अंशसे उत्पन्न थे॥ ३४॥

समुद्रः शन्तनुः प्रोक्तो गङ्गा भार्या मता बुधैः।
देवकस्तु समाख्यातो गन्धर्वपतिरागमे॥ ३५

विद्वानोंका मानना है कि समुद्रके अंशसे महाराज शन्तनु तथा गंगाके अंशसे उनकी भार्या उत्पन्न हुई थीं। पुराणप्रसिद्ध गन्धर्वराजके अंशसे महाराज देवक उत्पन्न हुए थे॥ ३५॥

वसुर्भीष्मो विराटस्तु मरुद्गण इति स्मृतः।
अरिष्टस्य सुतो हंसो धृतराष्ट्रः प्रकीर्तितः॥ ३६

भीष्मपितामहको वसुका तथा राजा विराटको मरुद्-गणोंका अंशावतार बताया गया है। महाराज धृतराष्ट्र अरिष्टनेमिके पुत्र हंसके अंशसे उत्पन्न कहे गये हैं॥ ३६॥

मरुद्गणः कृपः प्रोक्तः कृतवर्मा तथापरः।
दुर्योधनः कलेरंशः शकुनिं विद्धि द्वापरम्॥ ३७

कृपाचार्यको किसी एक मरुद्गणका अंश तथा कृतवर्माको किसी दूसरे मरुद्गणका अंश बताया गया है। [हे राजन्!] दुर्योधनको कलिका अंश तथा शकुनिको द्वापरका अंश समझिये॥ ३७॥

सोमपुत्रः सुवर्चाख्यः सोमप्ररुरुदाहृतः।
पावकांशो धृष्टद्युम्नः शिखण्डी राक्षसस्तथा॥ ३८

प्रसिद्ध सोमनन्दन सुवर्चा पृथ्वीपर सोमप्ररु नामसे विख्यात हुए। धृष्टद्युम्न अग्नि तथा शिखण्डी राक्षसके अंशसे उत्पन्न हुए॥ ३८॥

सनत्कुमारस्यांशस्तु प्रद्युम्नः परिकीर्तितः।
द्रुपदो वरुणस्यांशो द्रौपदी च रमांशजा॥ ३९

प्रद्युम्न सनत्कुमारके अंश कहे गये हैं। द्रुपद वरुणके अंश थे तथा द्रौपदी साक्षात् लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थीं॥ ३९॥

द्रौपदीतनयाः पञ्च विश्वेदेवांशजाः स्मृताः।
कुन्तिः सिद्धिर्धृतिर्माद्री मतिर्गान्धारराजजा॥ ४०

द्रौपदीके पाँचों पुत्र विश्वेदेवके अंशसे उत्पन्न माने गये हैं। कुन्ती सिद्धिके अंशसे, माद्री धृतिके अंशसे तथा गान्धारी मतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं॥ ४०॥

कृष्णपत्न्यस्तथा सर्वा देववाराङ्गनाः स्मृताः।
राजानश्च तथा सर्वे असुराः शक्रनोदिताः॥ ४१

भगवान् कृष्णकी सभी पत्नियाँ देवताओंकी रमणियोंके अंशसे उत्पन्न कही गयी हैं। इन्द्रके द्वारा भेजे हुए सब दैत्य धरातलपर आकर दुराचारी नरेश बने थे॥ ४१॥

हिरण्यकशिपोरंशः शिशुपाल उदाहृतः।
विप्रचित्तिर्जरासन्धः शल्यः प्रह्लाद इत्यपि॥ ४२

शिशुपालको हिरण्यकशिपुका अंश कहा गया है। जरासन्ध विप्रचित्तिका तथा शल्य प्रह्लादका अंशावतार था॥ ४२॥

कालनेमिस्तथा कंसः केशी हयशिरास्तथा।
अरिष्टो बलिपुत्रस्तु ककुद्मी गोकुले हतः॥ ४३

कालनेमि कंस हुआ तथा हयशिराको केशीका जन्म प्राप्त हुआ। बलिपुत्र ककुद्मी अरिष्टासुर बना, जो गोकुलमें मारा गया॥ ४३॥

अनुह्लादो धृष्टकेतुर्भगदत्तोऽथ बाष्कलः।
लम्बः प्रलम्बः सञ्जातः खरोऽसौ धेनुकोऽभवत्॥ ४४

अनुह्लाद धृष्टकेतु बना और बाष्कल भगदत्तके रूपमें उत्पन्न हुआ। लम्बने प्रलम्बासुरके रूपमें जन्म लिया तथा खर धेनुकासुर हुआ॥ ४४॥

वाराहश्च किशोरश्च दैत्यौ परमदारुणौ।
मल्लौ तावेव सञ्जातौ ख्यातौ चाणूरमुष्टिकौ॥ ४५

अत्यन्त भयंकर वाराह और किशोर नामक दोनों दैत्य चाणूर और मुष्टिक नामक पहलवानोंके रूपमें प्रख्यात हुए॥ ४५॥

दितिपुत्रस्तथारिष्टो गजः कुवलयाभिधः।
बलिपुत्री बकी ख्याता बकस्तदनुजः स्मृतः॥ ४६

दितिका पुत्र अरिष्टासुर कुवलयापीड नामक हाथी हुआ। बलिकी पुत्री पूतना (बकी) राक्षसी बनी और उसका छोटा भाई बकासुर कहलाया॥ ४६॥

यमो रुद्रस्तथा कामः क्रोधश्चैव चतुर्थकः।
तेषामंशैस्तु सञ्जातो द्रोणपुत्रो महाबलः॥ ४७

द्रोणपुत्र महाबली अश्वत्थामा यम, रुद्र, काम और क्रोध—इन चारोंके अंशसे उत्पन्न हुआ था॥ ४७॥

अंशावतरणे पूर्वं दैतेया राक्षसास्तथा।
जाताः सर्वे सुरांशास्ते क्षितिभारावतारणे॥ ४८

पूर्वकालमें अंशावतारके समय जो दैत्य तथा राक्षस उत्पन्न हुए थे, पृथ्वीपरसे उनका भार उतारनेके लिये सभी देवता अपने-अपने अंशसे उत्पन्न हुए॥ ४८॥

एतेषां कथितं राजन्नंशावतरणं नृप।
सुराणां चासुराणां च पुराणेषु प्रकीर्तितम्॥ ४९

हे राजन्! पुराणोंमें इन देवताओं तथा असुरोंके अंशावतारोंका जो वर्णन किया गया है, वह सब मैंने आपसे कह दिया॥ ४९॥

यदा ब्रह्मादयो देवाः प्रार्थनार्थं हरिं गताः।
हरिणा च तदा दत्तौ केशौ खलु सितासितौ॥ ५०

जब ब्रह्मा आदि देवता प्रार्थना करनेके लिये भगवान् विष्णुके पास गये थे तब विष्णुजीने उन्हें श्वेत तथा श्याम वर्णवाले दो केश प्रदान किये थे॥ ५०॥

श्यामवर्णस्ततः कृष्णः श्वेतः सङ्कर्षणस्तथा।
भारावतारणार्थं तौ जातौ देवांशसम्भवौ॥ ५१

तदनन्तर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भगवान् कृष्ण श्यामवर्ण विष्णुका अंश लेकर तथा बलरामजी श्वेतवर्ण शेषनागका अंश लेकर अवतरित हुए॥ ५१॥

अंशावतरणं चैतच्छृणोति भक्तिभावतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो मोदते स्वजनैर्वृतः॥ ५२

जो प्राणी भक्ति-भावनासे इस अंशावतारकी कथाका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर अपने बन्धु-बान्धवोंके सहित आनन्दित रहता है॥ ५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देवदानवानामंशावतरणवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कंसके कारागारमें भगवान् श्रीकृष्णका अवतार, वसुदेवजीका उन्हें गोकुल पहुँचाना और वहाँसे योगमायास्वरूपा कन्याको लेकर आना, कंसद्वारा कन्याके वधका प्रयास, योगमायाद्वारा आकाशवाणी करनेपर कंसका अपने सेवकोंद्वारा नवजात शिशुओंका वध कराना

व्यास उवाच

हतेषु षट्सु पुत्रेषु देवक्या औग्रसेनिना।
सप्तमे पतिते गर्भे वचनान्नारदस्य च॥ १

अष्टमस्य च गर्भस्य रक्षणार्थमतन्द्रितः।
प्रयत्नमकरोद्राजा मरणं स्वं विचिन्तयन्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उग्रसेनपुत्र कंसके द्वारा देवकीके छः पुत्रोंका वध कर दिये जानेपर तथा सातवाँ गर्भ गिर जानेके पश्चात् वह राजा कंस नारदजीके कथनानुसार अपनी मृत्युके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करते हुए सावधानीपूर्वक आठवें गर्भको [गिरनेसे] बचानेका प्रयत्न करने लगा॥ १-२॥

समये देवकीगर्भे प्रवेशमकरोद्धरिः।
अंशेन वसुदेवे तु समागत्य यथाक्रमम्॥ ३

तदेयं योगमाया च यशोदायां यथेच्छया।
प्रवेशमकरोद्देवी देवकार्यार्थसिद्धये॥ ४

रोहिण्यास्तनयो रामो गोकुले समजायत।
यतः कंसभयोद्विग्ना संस्थिता सा च कामिनी॥ ५

कारागारे ततः कंसो देवकीं देवसंस्तुताम्।
स्थापयामास रक्षार्थं सेवकान्समकल्पयत्॥ ६

वसुदेवस्तु कामिन्याः प्रेमतन्तुनियन्त्रितः।
पुत्रोत्पत्तिं च सञ्चिन्त्य प्रविष्टः सह भार्यया॥ ७

देवकीगर्भगो विष्णुर्देवकार्यार्थसिद्धये।
संस्तुतोऽमरसङ्घैश्च व्यवर्धत यथाक्रमम्॥ ८

सञ्जाते दशमे तत्र मासेऽथ श्रावणे शुभे।
प्राजापत्यर्क्षसंयुक्ते कृष्णपक्षेऽष्टमीदिने॥ ९

कंसस्तु दानवान्सर्वानुवाच भयविह्वलः।
रक्षणीया भवद्भिश्च देवकी गर्भमन्दिरे॥ १०

अष्टमो देवकीगर्भः शत्रुर्मे प्रभविष्यति।
रक्षणीयः प्रयत्नेन मृत्युरूपः स बालकः॥ ११

हत्वैनं बालकं दैत्याः सुखं स्वप्स्यामि मन्दिरे।
निवृत्तिवर्जिते दुःखे नाशिते चाष्टमे सुते॥ १२

खड्गप्रासधराः सर्वे तिष्ठन्तु धृतकार्मुकाः।
निद्रातन्द्राविहीनाश्च सर्वत्र निहितेक्षणाः॥ १३

व्यास उवाच

इत्यादिश्यासुरगणान् कृशोऽतिभयविह्वलः।
मन्दिरं स्वं जगामाशु न लेभे दानवः सुखम्॥ १४

उचित समय आनेपर भगवान् श्रीहरि अपने अंशके साथ वसुदेवमें प्रविष्ट होकर देवकीके गर्भमें विराजमान हो गये॥ ३॥

उसी समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे भगवती योगमायाने अपनी इच्छासे यशोदाके गर्भमें प्रवेश किया॥ ४॥

कंसके भयसे उद्विग्न होकर गोकुलमें कालक्षेप कर रही वसुदेव-भार्या रोहिणीके गर्भसे पुत्ररूपमें बलरामजी प्रकट हो चुके थे॥ ५॥

तदनन्तर कंसने देववन्दिता देवकीको कारागारमें बन्द कर दिया और उनकी रखवालीके लिये बहुतसे सेवक नियुक्त कर दिये॥ ६॥

अपनी पत्नी देवकीके पुत्र-प्रसवकी बातको ध्यानमें रखते हुए तथा उनके प्रेमपाशमें आबद्ध रहनेके कारण वसुदेवजी भी उनके साथ कारागारमें ही रहने लगे॥ ७॥

देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये देवकीके गर्भमें विराजमान भगवान् विष्णु देवसमुदायद्वारा स्तूयमान होते हुए धीरे-धीरे वृद्धिको प्राप्त होने लगे॥ ८॥

श्रावणमासमें दसवाँ महीना पूर्ण हो जानेपर (भाद्रपद-मासके) कृष्णपक्षमें रोहिणी नक्षत्रयुक्त शुभ अष्टमी तिथिके उपस्थित होनेपर भयसे व्याकुल कंसने सभी दानवोंसे कहा कि आपलोग इस समय गर्भकक्षमें विद्यमान देवकीकी रखवाली करें॥ ९-१०॥

देवकीके आठवें गर्भसे उत्पन्न बालक मेरा शत्रु होगा। अतएव आपलोगोंको मेरे कालरूप उस बालककी यत्नपूर्वक रखवाली करनी चाहिये॥ ११॥

हे दैत्यो! इस समय मैं अत्यन्त उद्वेगकारी तथा दुःखदायी आठवें गर्भसे उत्पन्न होनेवाले इस बालकका वध कर लेनेके बाद ही अपने महलमें सुखपूर्वक सो सकूँगा॥ १२॥

आप सभी लोग अपने हाथोंमें तलवार, भाला और धनुष धारण करके निद्रा तथा आलस्यसे रहित होकर चारों ओर दृष्टि रखियेगा॥ १३॥

व्यासजी बोले—उन दैत्योंको यह आज्ञा देकर भयाकुल तथा [चिन्ताके कारण] अति दुर्बल दानव कंस तत्काल अपने महलमें चला गया, किंतु वहाँ भी वह सुखकी नींद नहीं सो पा रहा था॥ १४॥

निशीथे देवकी तत्र वसुदेवमुवाच ह।
किं करोमि महाराज प्रसवावसरो मम॥ १५

बहवो रक्षपालाश्च तिष्ठन्त्यत्र भयानकाः।
नन्दपत्न्या मया सार्धं कृतोऽस्ति समयः पुरा॥ १६

प्रेषितव्यस्त्वया पुत्रो मन्दिरे मम मानिनि।
पालयिष्याम्यहं तत्र तवातिमनसा किल॥ १७

अपत्यं ते प्रदास्यामि कंसस्य प्रत्ययाय वै।
किं कर्तव्यं प्रभो चात्र विषमे समुपस्थिते॥ १८

व्यत्ययः सन्ततेः शौरे कथं कर्तुं क्षमो भवेः।
दूरे तिष्ठस्व कान्ताद्य लज्जा मेऽतिदुरत्यया॥ १९

परावृत्य मुखं स्वामिन्नन्यथा किं करोम्यहम्।
इत्युक्त्वा तं महाभागं देवकी देवसम्मतम्॥ २०

बालकं सुषुवे तत्र निशीथे परमाद्भुतम्।
तं दृष्ट्वा विस्मयं प्राप देवकी बालकं शुभम्॥ २१

पतिं प्राह महाभागा हर्षोत्फुल्लकलेवरा।
पश्य पुत्रमुखं कान्त दुर्लभं हि तव प्रभो॥ २२

अद्यैनं कालरूपोऽसौ घातयिष्यति भ्रातृजः।
वसुदेवस्तथेत्युक्त्वा तमादाय करे सुतम्॥ २३

अपश्यच्चाननं तस्य सुतस्याद्भुतकर्मणः।
वीक्ष्य पुत्रमुखं शौरिश्चिन्ताविष्टो बभूव ह॥ २४

किं करोमि कथं न स्याद्दुःखमस्य कृते मम।
एवं चिन्तातुरे तस्मिन्वागुवाचाशरीरिणी॥ २५

वसुदेवं समाभाष्य गगने विशदाक्षरा।
वसुदेव गृहीत्वैनं गोकुलं नय सत्वरः॥ २६

रक्षपालास्तथा सर्वे मया निद्राविमोहिताः।
विवृतानि कृतान्यष्ट कपाटानि च शृङ्खलाः॥ २७
मुक्त्वैनं नन्दगेहे त्वं योगमायां समानय।

तत्पश्चात् मध्यरात्रिमें देवकीने वसुदेवजीसे कहा—महाराज! मेरे प्रसवका समय आ गया है, अब मैं क्या करूँ?॥ १५॥

यहाँपर बहुतसे भयंकर रक्षक नियुक्त हैं। यहाँ आनेके पूर्व नन्दकी पत्नी यशोदासे मेरी यह बात निश्चित हुई थी। [उन्होंने कहा था—] 'हे मानिनि! तुम अपने पुत्रको मेरे घर भेज देना, मैं मन लगाकर तुम्हारे पुत्रका पालन-पोषण करूँगी। कंसको विश्वास दिलानेके लिये मैं तुम्हें इसके बदले अपनी सन्तान दे दूँगी।' अतः हे प्रभो! इस विषम परिस्थितिमें अब हमें क्या करना चाहिये? हे शूरतनय! आप इन दोनों सन्तानोंकी अदला-बदली करनेमें कैसे समर्थ हो सकेंगे? हे कान्त! आप अपना मुख फेरकर मुझसे दूर होकर बैठिये; क्योंकि दुस्तर लज्जाके कारण मैं संकोचमें पड़ रही हूँ। हे स्वामिन्! इसके अतिरिक्त यहाँ कुछ विशेष कर ही क्या सकती हूँ॥ १६—१९½॥

देवतुल्य महाभाग वसुदेवसे ऐसा कहकर देवकीने उसी अर्धरात्रिकी शुभ वेलामें एक परम अद्भुत बालकको जन्म दिया। उस सुन्दर बालकको देखकर देवकीको महान् आश्चर्य हुआ॥ २०-२१॥

[पुत्रप्राप्तिके कारण] हर्षातिरेकसे प्रफुल्लित अंग-प्रत्यंगोंवाली महाभागा देवकीने पतिसे कहा—हे कान्त! अपने पुत्रका मुख तो देख लीजिये; क्योंकि हे प्रभो! इसका दर्शन आपके लिये फिर सर्वथा दुर्लभ हो जायगा। कालरूपी मेरा भाई कंस आज ही इसका वध कर डालेगा। तब 'ठीक है'—ऐसा कहकर वसुदेवजी उस पुत्रको अपने हाथोंमें लेकर अद्भुत कर्मशाली अपने उस पुत्रका मुख निहारने लगे। तत्पश्चात् अपने पुत्रका मुख देखकर वसुदेवजी इस चिन्तासे आकुल हो गये कि मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे इस बालकके लिये मुझे विषाद न हो॥ २२—२४½॥

वसुदेवजीके इस प्रकार चिन्तामग्न होनेपर उन्हें सम्बोधित करके आकाशमें स्पष्ट शब्दोंमें आकाशवाणी हुई—हे वसुदेव! तुम इस बालकको लेकर तत्काल गोकुल पहुँचा दो। सभी रक्षकगण मेरे द्वारा निद्रासे अचेत कर दिये गये हैं, आठों फाटकोंको खोल दिया गया है तथा जंजीरें तोड़ दी गयी हैं। इस बालकको नन्दके घर छोड़कर वहाँसे तुम योगमायाको उठा लाओ॥ २५—२७½॥

श्रुत्वैवं वसुदेवस्तु तस्मिन्कारागृहे गतः॥ २८

विवृतं द्वारमालोक्य बभूव तरसा नृप।
तमादाय ययावाशु द्वारपालैरलक्षितः॥ २९

कालिन्दीतटमासाद्य पूरं दृष्ट्वा सुनिश्चितम्।
तदैव कटिदघ्नी सा बभूवाशु सरिद्वरा॥ ३०

योगमायाप्रभावेण ततारानकदुन्दुभिः।
गत्वा तु गोकुलं शौरिर्निशीथे निर्जने पथि॥ ३१

नन्दद्वारे स्थितः पश्यन्विभूतिं पशुसंज्ञिताम्।
तदैव तत्र सञ्जाता यशोदा गर्भसम्भवा॥ ३२

योगमायांशजा देवी त्रिगुणा दिव्यरूपिणी।
जातां तां बालिकां दिव्यां गृहीत्वा करपङ्कजे॥ ३३

तत्रागत्य ददौ देवी सैरन्ध्रीरूपधारिणी।
वसुदेवः सुतं दत्त्वा सैरन्ध्रीकरपङ्कजे॥ ३४

तामादाय ययौ शीघ्रं बालिकां मुदिताशयः।
कारागारे ततो गत्वा देवक्याः शयने सुताम्॥ ३५

निःक्षिप्य संस्थितः पार्श्वे चिन्ताविष्टो भयातुरः।
रुरोद सुस्वरं कन्या तदैवागतसंज्ञका:॥ ३६

उत्तस्थुः सेवका राज्ञः श्रुत्वा तद्रुदितं निशि।
तमूचुर्भूपतिं गत्वा त्वरितास्तेऽतिविह्वलाः॥ ३७

देवक्याश्च सुतो जातः शीघ्रमेहि महामते।
तदाकर्ण्य वचस्तेषां शीघ्रं भोजपतिर्ययौ॥ ३८
प्रावृतं द्वारमालोक्य वसुदेवमथाह्वयत्।

यह वाणी सुनकर उस कारागृहमें निरुद्ध वसुदेवजी बाहरकी ओर गये। हे राजन्! इस प्रकार वसुदेवजी फाटकोंको खुला हुआ देखकर बड़ी शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर द्वारपालोंकी दृष्टिसे बचते हुए तत्काल कारागारसे निकल पड़े॥ २८-२९॥

यमुनाके किनारे पहुँचकर उन्होंने देखा कि इस पारसे उस पार अगाध जल आप्लावित हो रहा है। उनका गोकुल जाना भी सुनिश्चित था। उनके जलमें उतरते ही नदियोंमें श्रेष्ठ यमुनाजीमें कमरभर पानी हो गया॥ ३०॥

योगमायाके प्रभावसे वसुदेवजीने सहजतापूर्वक यमुनाजीको पार कर लिया और वे उस आधी रातमें सुनसान मार्गपर चलते हुए गोकुलमें पहुँचकर नन्दके द्वारपर विपुल गौ-सम्पदा देखते हुए वहाँ स्थित हो गये॥ ३१$\frac{१}{२}$॥

उसी समय योगमायाके अंशसे जायमान दिव्यरूपमयी त्रिगुणात्मिका भगवतीने यशोदाके गर्भसे अवतार लिया था। तदनन्तर सैरन्ध्रीका रूप धारण करके स्वयं भगवतीने उत्पन्न उस अलौकिक बालिकाको अपने करकमलमें ग्रहण करके वहाँ जाकर वसुदेवजीको दे दिया। वसुदेवजी भी अपने पुत्रको देवीरूपा सैरन्ध्रीके करकमलमें रखकर योगमायास्वरूपा उस बालिकाको लेकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँसे तत्काल चल पड़े॥ ३२—३४$\frac{१}{२}$॥

कारागारमें पहुँचकर उन्होंने देवकीकी शय्यापर बालिकाको लिटा दिया और भय तथा चिन्तासे युक्त होकर वे पासहीमें एक ओर जाकर बैठ गये॥ ३५$\frac{१}{२}$॥

इतनेमें कन्याने उच्च स्वरमें रोना आरम्भ किया। तब प्रसवकालको सूचित करनेके लिये नियुक्त कंसके सेवकगण रातमें रोनेकी वह ध्वनि सुनकर जाग पड़े। आनन्दसे विह्वल वे सेवक तत्काल उसी समय जाकर राजासे बोले—हे महामते! देवकीका पुत्र उत्पन्न हो गया, आप शीघ्र चलिये॥ ३६-३७$\frac{१}{२}$॥

उनका यह वचन सुनते ही भोजपति कंस तत्काल जा पहुँचा और वहाँपर दरवाजा खुला हुआ देखकर कंसने वसुदेवजीको बुलवाया॥ ३८$\frac{१}{२}$॥

कंस उवाच

सुतमानय देवक्या वसुदेव महामते॥ ३९
मृत्युर्मे चाष्टमो गर्भस्तन्निहन्मि रिपुं हरिम्।

व्यास उवाच

श्रुत्वा कंसवचः शौरिर्भयत्रस्तविलोचनः॥ ४०
तामादाय सुतां पाणौ ददौ चाशु रुदन्निव।
दृष्ट्वाथ दारिकां राजा विस्मयं परमं गतः॥ ४१
देववाणी वृथा जाता नारदस्य च भाषितम्।
वसुदेवः कथं कुर्यादनृतं सङ्कटे स्थितः॥ ४२
रक्षपालाश्च मे सर्वे सावधाना न संशयः।
कुतोऽत्र कन्यका कामं क्व गतः स सुतः किल॥ ४३
सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः कालस्य विषमा गतिः।
इति सञ्चिन्त्य तां बालां गृहीत्वा पादयोः खलः॥ ४४
पोथयामास पाषाणे निर्घृणः कुलपांसनः।
सा करान्निःसृता बाला ययावाकाशमण्डलम्॥ ४५
दिव्यरूपा तदा भूत्वा तमुवाच मृदुस्वना।
किं मया हतया पाप जातस्ते बलवान् रिपुः॥ ४६
हनिष्यति दुराराध्यः सर्वथा त्वां नराधमम्।
इत्युक्त्वा सा गता कन्या गगनं कामगा शिवा॥ ४७
कंसस्तु विस्मयाविष्टो गतो निजगृहं तदा।
आनाय्य दानवान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८
बकधेनुकवत्सादीन्क्रोधाविष्टो भयातुरः।
गच्छन्तु दानवाः सर्वे मम कार्यार्थसिद्धये॥ ४९
जातमात्राश्च हन्तव्या बालका यत्र कुत्रचित्।
पूतनैषा व्रजत्वद्य बालघ्नी नन्दगोकुलम्॥ ५०
जातमात्रान्विनिघ्नन्ती शिशूंस्तत्र ममाज्ञया।
धेनुको वत्सकः केशी प्रलम्बो बक एव च॥ ५१
सर्वे तिष्ठन्तु तत्रैव मम कार्यचिकीर्षया।

कंस बोला—हे महामतिसम्पन्न वसुदेव! देवकीके पुत्रको यहाँ ले आओ। देवकीका आठवाँ गर्भ मेरी मृत्यु है, अतः मैं उस विष्णुरूप अपने शत्रुका वध करूँगा॥ ३९$\frac{१}{२}$ ॥

व्यासजी बोले—कंसका वचन सुनकर भयसे सन्त्रस्त नयनोंवाले वसुदेवजीने शीघ्र ही उस कन्याको ले जाकर कंसके हाथोंमें रोते हुए रख दिया। उस बालिकाको देखकर राजा कंस बड़ा विस्मित हुआ॥ ४०-४१॥

आकाशवाणी तथा नारदजीका वचन—दोनों ही मिथ्या सिद्ध हुए और यहाँ संकटकी स्थितिमें पड़ा हुआ यह वसुदेव भी झूठी बात भला कैसे बना सकता है? मेरे सभी रक्षक भी सावधान थे; इसमें कोई सन्देह नहीं है। तब यह बालिका कहाँसे आ गयी और वह बालक कहाँ चला गया? कालकी बड़ी विषम गति होती है, अतएव इसके सम्बन्धमें अब किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४२-४३$\frac{१}{२}$ ॥

ऐसा सोचकर उस दुष्ट, निर्मम तथा कुलकलंकी कंसने बालिकाके दोनों पैर पकड़कर पत्थरपर पटका। किंतु वह कन्या कंसके हाथसे छूटकर आकाशमें चली गयी। वहाँ दिव्य रूप धारण करके उस कन्याने मधुर स्वरमें उससे कहा—'अरे पापी! मुझे मारनेसे तुम्हारा क्या लाभ होगा; तेरा महाबलशाली शत्रु तो जन्म ले चुका है। वे दुराराध्य परमपुरुष तुझ नराधमका वध अवश्य करेंगे।' ऐसा कहकर स्वेच्छा-विहारिणी तथा कल्याणकारिणी भगवतीस्वरूपा वह कन्या आकाशमें चली गयी॥ ४४—४७॥

यह सुनकर आश्चर्यसे युक्त कंस अपने महलके लिये प्रस्थान कर गया। वहाँ बकासुर, धेनुकासुर तथा वत्सासुर आदि दानवोंको बुलवाकर अत्यन्त कुपित तथा भयाक्रान्त कंसने उनसे कहा—हे दानवो! मेरा कार्य सिद्ध करनेके लिये तुम सभी यहाँसे अभी प्रस्थान करो और जहाँ कहीं भी तुमलोगोंको नवजात शिशु मिलें, उन्हें अवश्य मार डालना। बालघातिनी यह पूतना अभी नन्दराजके गोकुलमें चली जाय। वहाँ सद्यःप्रसूत जितने बालक मिलें, उन्हें यह पूतना मेरी आज्ञासे मार डाले। धेनुक, वत्सक, केशी, प्रलम्ब और बक—ये समस्त असुर मेरा कार्य सिद्ध करनेकी इच्छासे वहाँ निरन्तर विद्यमान रहें॥ ४८—५१$\frac{१}{२}$ ॥

इत्याज्ञाप्यासुरान्कंसो ययौ निजगृहं खलः॥ ५२
चिन्ताविष्टोऽतिदीनात्मा चिन्तयित्वैव तं पुनः॥ ५३

इस प्रकार सभी दैत्योंको आदेश देकर वह दुष्ट कंस अपने भवनमें चला गया। अपने शत्रुरूप उस बालकके विषयमें बार-बार सोचकर वह अत्यन्त चिन्तातुर तथा खिन्नमनस्क हो गया॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे कंसं प्रति योगमायावाक्यं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

~~~

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्णावतारकी संक्षिप्त कथा, कृष्णपुत्रका प्रसूतिगृहसे हरण, कृष्णद्वारा भगवतीकी स्तुति, भगवती चण्डिकाद्वारा सोलह वर्षके बाद पुनः पुत्रप्राप्तिका वर देना

व्यास उवाच

प्रातर्नन्दगृहे जातः पुत्रजन्ममहोत्सवः।
किंवदन्त्यथ कंसेन श्रुता चारमुखादपि॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] प्रातःकाल नन्दजीके घरमें पुत्रजन्मका बड़ा भारी समारोह सम्पन्न हुआ, यह बात चारों ओर फैल गयी और कंसने भी किसी दूतके मुखसे यह सुन लिया॥ १॥

जानाति वसुदेवस्य दारास्तत्र वसन्ति हि।
पशवो दासवर्गश्च सर्वे ते नन्दगोकुले॥ २

तेन शङ्कासमाविष्टो गोकुलं प्रति भारत।
नारदेनापि तत्सर्वं कथितं कारणं पुरा॥ ३

गोकुले ये च नन्दाद्यास्तत्पत्न्यश्च सुरांशजाः।
देवकीवसुदेवाद्याः सर्वे ते शत्रवः किल॥ ४

कंस यह पहलेसे ही जानता था कि वसुदेवकी अन्य भार्या, पशु तथा सेवकगण—सब-के-सब गोकुलमें नन्दके यहाँ रह रहे हैं। हे भारत! इस कारणसे गोकुलके प्रति कंसका सन्देह और बढ़ गया। नारदजीने भी सभी कारण पहले ही बता दिये थे। उन्होंने कह दिया था कि गोकुलमें नन्द आदि गोप, उनकी पत्नियाँ, देवकी तथा वसुदेव आदि जो भी लोग हैं, वे सब देवताओंके अंशसे उत्पन्न हुए हैं; इसलिये वे निश्चितरूपसे तुम्हारे शत्रु हैं॥ २—४॥

इति नारदवाक्येन बोधितोऽसौ कुलाधमः।
जातः कोपमना राजन् कंसः परमपापकृत्॥ ५

हे राजन्! देवर्षि नारदने जब यह बात बतायी थी तो बड़े-से-बड़े पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहनेवाला वह कुलकलंकी कंस अत्यधिक कुपित हो गया था॥ ५॥

पूतना निहता तत्र कृष्णेनामिततेजसा।
बको वत्सासुरश्चापि धेनुकश्च महाबलः॥ ६

प्रलम्बो निहतस्तेन तथा गोवर्धनो धृतः।
श्रुत्वैतत्कर्म कंसस्तु मेने मरणमात्मनः॥ ७

अपरिमित तेजवाले श्रीकृष्णने पूतना, बकासुर, वत्सासुर, महाबली धेनुकासुर तथा प्रलम्बासुरको मार डाला और गोवर्धनपर्वतको उठा लिया—इस अद्भुत कर्मको सुनकर कंसने यह अनुमान लगा लिया कि मेरा भी मरण अब सुनिश्चित है॥ ६-७॥

तथा विनिहतः केशी ज्ञात्वा कंसोऽतिदुर्मनाः।
धनुर्यागमिषेणाशु तावानेतुं प्रचक्रमे॥ ८

[महान् बलशाली] केशी भी मार डाला गया—यह जानकर कंस अत्यधिक खिन्नमनस्क हो गया, तब उसने धनुष-यज्ञके बहाने [कृष्ण तथा बलराम] दोनोंको शीघ्र ही मथुरामें बुलानेकी योजना बनायी॥ ८॥
~~~

अक्रूरं प्रेषयामास क्रूरः पापमतिस्तदा।
आनेतुं रामकृष्णौ च वधायामितविक्रमौ॥ ९

रथमारोप्य गोपालौ गोकुलाद् गान्दिनीसुतः।
आगतो मथुरायां तु कंसादेशे स्थितः किल॥ १०

तावागत्य तदा तत्र धनुर्भङ्गञ्च चक्रतुः।
हत्वाथ रजकं कामं गजं चाणूरमुष्टिकम्॥ ११

शलं च तोशलं चैव निजघान हरिस्तदा।
जघान कंसं देवेशः केशेष्वाकृष्य लीलया॥ १२

पितरौ मोचयित्वाथ गतदुःखौ चकार ह।
उग्रसेनाय राज्यं तद्ददावरिनिषूदनः॥ १३

वसुदेवस्तयोस्तत्र मौञ्जीबन्धनपूर्वकम्।
कारयामास विधिवद् व्रतबन्धं महामनाः॥ १४

उपनीतौ तदा तौ तु गतौ सान्दीपनालयम्।
विद्याः सर्वाः समभ्यस्य मथुरामागतौ पुनः॥ १५

जातौ द्वादशवर्षीयौ कृतविद्यौ महाबलौ।
मथुरायां स्थितौ वीरौ सुतावानकदुन्दुभेः॥ १६

मागधस्तु जरासन्धो जामातृवधदुःखितः।
कृत्वा सैन्यसमाजं स मथुरामागतः पुरीम्॥ १७

स सप्तदशवारं तु कृष्णेन कृतबुद्धिना।
जितः संग्राममासाद्य मधुपुर्यां निवासिना॥ १८

पश्चाच्च प्रेरितस्तेन स कालयवनाभिधः।
सर्वम्लेच्छाधिपः शूरो यादवानां भयङ्करः॥ १९

निर्दयी तथा पापबुद्धि कंसने असीम पराक्रमी श्रीकृष्ण तथा बलरामका वध करनेके उद्देश्यसे उन्हें बुलानेके लिये अक्रूरको भेजा॥ ९॥

तदनन्तर कंसका आदेश मानकर गान्दिनीपुत्र अक्रूर गोकुल गये और दोनों गोपालों—श्रीकृष्ण तथा बलरामको रथपर बैठाकर गोकुलसे मथुरा लौट आये॥ १०॥

वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्ण तथा बलरामने धनुषको तोड़ा। पुनः रजक, कुवलयापीड हाथी, चाणूर और मुष्टिकका संहार करके भगवान् श्रीकृष्णने शल तथा तोशलका वध किया। तत्पश्चात् देवेश श्रीकृष्णने कंसके बाल पकड़कर लीलापूर्वक उसको भी मार डाला॥ ११-१२॥

तदनन्तर शत्रुविनाशक श्रीकृष्णने अपने माता-पिताको कारागारसे मुक्त कराकर उनका कष्ट दूर किया और उग्रसेनको उनका राज्य वापस दिला दिया॥ १३॥

तदनन्तर महामना वसुदेवने उन दोनोंका मौंजी-बन्धन तथा उपनयन-संस्कार विधिपूर्वक सम्पन्न करवाया॥ १४॥

उपनयन-संस्कार हो जानेके पश्चात् वे दोनों सान्दीपनिऋषिके आश्रममें विद्याध्ययनके लिये गये और समस्त विद्याओंका अध्ययन करके पुनः मथुरा लौट आये॥ १५॥

आनकदुन्दुभि (वसुदेवजी)-के पुत्र कृष्ण और बलराम बारह वर्षकी अवस्थामें ही सम्पूर्ण विद्याओंमें निष्णात तथा महान् बलशाली होकर मथुरामें ही निवास करने लगे॥ १६॥

उधर अपने जामाता कंसके वधसे मगधनरेश जरासन्ध अत्यन्त दुःखित हुआ और उसने विशाल सेना संगठितकर मथुरापुरीपर आक्रमण कर दिया॥ १७॥

किंतु मधुपुरी (मथुरा)-में निवास करनेवाले बुद्धिमान् श्रीकृष्णने समरांगणमें उपस्थित होकर सत्रह बार उसे पराजित किया॥ १८॥

इसके बाद जरासन्धने यादव-समुदायके लिये भयदायक तथा सम्पूर्ण म्लेच्छोंके अधिपति कालयवन नामक योद्धाको श्रीकृष्णका सामना करनेके लिये प्रेरित किया॥ १९॥

श्रुत्वा यवनमायान्तं कृष्णः सर्वान् यदूत्तमान्।
आनाय्य च तथा राममुवाच मधुसूदनः॥ २०

भयं नोऽत्र समुत्पन्नं जरासन्धान्महाबलात्।
किं कर्तव्यं महाभाग यवनः समुपैति वै॥ २१

प्राणत्राणं प्रकर्तव्यं त्यक्त्वा गेहं बलं धनम्।
सुखेन स्थीयते यत्र स देशः खलु पैतृकः॥ २२

सदोद्वेगकरः कामं किं कर्तव्यः कुलोचितः।
शैलसागरसान्निध्ये स्थातव्यं सुखमिच्छता॥ २३

यत्र वैरिभयं न स्यात्स्थातव्यं तत्र पण्डितैः।
शेषशय्यां समाश्रित्य हरिः स्वपिति सागरे॥ २४

तथैव च भयाद्भीतः कैलासे त्रिपुरार्दनः।
तस्मान्नात्रैव स्थातव्यमस्माभिः शत्रुतापितैः॥ २५

द्वारवत्यां गमिष्यामः सहिताः सर्व एव वै।
कथिता गरुडेनाद्य रम्या द्वारवती पुरी॥ २६

रैवताचलसान्निध्ये सिन्धुकूले मनोहरा।
व्यास उवाच
तच्छ्रुत्वा वचनं तथ्यं सर्वे यादवपुङ्गवाः॥ २७

गमनाय मतिं चक्रुः सकुटुम्बाः सवाहनाः।
शकटानि तथोष्ट्राश्च वाम्यश्च महिषास्तथा॥ २८

धनपूर्णानि कृत्वा ते निर्ययुर्नगराद् बहिः।
रामकृष्णौ पुरस्कृत्य सर्वे ते सपरिच्छदाः॥ २९

अग्रे कृत्वा प्रजाः सर्वाश्चेलुः सर्वे यदूत्तमाः।
कतिचिद्दिवसैः प्रापुः पुरीं द्वारवतीं किल॥ ३०

शिल्पिभिः कारयामास जीर्णोद्धारं हि माधवः।
संस्थाप्य यादवांस्तत्र तावेतौ बलकेशवौ॥ ३१

कालयवनको आता सुनकर मधुसूदन श्रीकृष्णने सभी प्रसिद्ध यादवों तथा बलरामको बुलाकर कहा—महाबलशाली जरासन्धसे हमलोगोंको यहाँ बराबर भय बना हुआ है। [उसीकी प्रेरणासे] कालयवन यहाँ आ रहा है। हे महाभाग! ऐसी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?॥ २०-२१॥

इस समय घर, सेना और धन छोड़कर हमें प्राण बचा लेना चाहिये। जहाँ भी सुखपूर्वक रहनेका प्रबन्ध हो जाय, वही पैतृक देश होता है॥ २२॥

इसके विपरीत उत्तम कुलके निवास करनेयोग्य पैतृक भूमिमें भी यदि सदा अशान्ति बनी रहती हो तो ऐसे स्थानपर रहनेसे क्या लाभ? अतः सुखकी कामना करनेवालेको पर्वत या समुद्रके पास निवास कर लेना चाहिये॥ २३॥

जिस स्थानपर शत्रुओंका भय नहीं रहता, ऐसे स्थानपर ही विज्ञजनोंको रहना चाहिये। भगवान् विष्णु शेषशय्याका आश्रय लेकर समुद्रमें शयन करते हैं और इसी प्रकार त्रिपुरदमन भगवान् शंकर भी कैलासपर्वतपर निवास करते हैं। अतएव शत्रुओंद्वारा निरन्तर सन्तप्त किये गये हमलोगोंको अब यहाँ नहीं रहना चाहिये। अब हम सभी लोग एक साथ द्वारकापुरी चलेंगे। गरुडने मुझसे बताया है कि द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीक तथा मनोहर है, जो समुद्रके तटपर तथा रैवतपर्वतके समीप विराजमान है॥ २४—२६$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—श्रीकृष्णकी यह युक्तिपूर्ण बात सुनकर सभी श्रेष्ठ यादवोंने अपने परिवारजनों तथा वाहनोंके साथ जानेका निश्चय कर लिया। गाड़ियों, ऊँटों, घोड़ियों और भैंसोंपर धन-सामग्री लादकर तथा श्रीकृष्ण और बलरामको आगे करके वे सभी यादवश्रेष्ठ अपने परिजनोंको साथ लेकर नगरसे बाहर हो गये। समस्त प्रजाजनोंको आगे-आगे करके सभी श्रेष्ठ यादव चल पड़े। वे सब कुछ ही दिनोंमें द्वारकापुरी पहुँच गये॥ २७—३०॥

श्रीकृष्णने कुशल शिल्पकारोंसे द्वारकापुरीका जीर्णोद्धार कराया, सभी यादवोंको वहाँ बसाकर वे श्रीकृष्ण और बलराम तत्काल मथुरा लौटकर उस

तरसा मथुरामेत्य संस्थितौ निर्जनां पुरीम्।
तदा तत्रैव सम्प्राप्तो बलवान् यवनाधिपः॥ ३२

ज्ञात्वैनमागतं कृष्णो निर्ययौ नगराद् बहिः।
पदातिरग्रे तस्याभूद्यवनस्य जनार्दनः॥ ३३

पीताम्बरधरः श्रीमान्प्राहसन्मधुसूदनः।
तं दृष्ट्वा पुरतो यान्तं कृष्णं कमललोचनम्॥ ३४

यवनोऽपि पदातिः सन्पृष्ठतोऽनुगतः खलः।
प्रसुप्तो यत्र राजर्षिर्मुचुकुन्दो महाबलः॥ ३५

प्रययौ भगवांस्तत्र सकालयवनो हरिः।
तत्रैवान्तर्दधे विष्णुर्मुचुकुन्दं समीक्ष्य च॥ ३६

तत्रैव यवनः प्राप्तः सुप्तभूतमपश्यत।
मत्वा तं वासुदेवं स पादेनाताडयन्नृपम्॥ ३७

प्रबुद्धः क्रोधरक्ताक्षस्तं ददाह महाबलः।
तं दग्ध्वा मुचुकुन्दोऽथ ददर्श कमलेक्षणम्॥ ३८

वासुदेवं सुदेवेशं प्रणम्य प्रस्थितो वनम्।
जगाम द्वारकां कृष्णो बलदेवसमन्वितः॥ ३९

उग्रसेनं नृपं कृत्वा विजहार यथारुचि।
अहरद्रुक्मिणीं कामं शिशुपालस्वयंवरात्॥ ४०

राक्षसेन विवाहेन चक्रे दारविधिं हरिः।
ततो जाम्बवतीं सत्यां मित्रविन्दाञ्च भामिनीम्॥ ४१

कालिन्दीं लक्ष्मणां भद्रां तथा नाग्नजितीं शुभाम्।
पृथक्पृथक्समानीयाप्युपयेमे जनार्दनः॥ ४२

अष्टावेव महीपाल पत्न्यः परमशोभनाः।
प्रासूत रुक्मिणी पुत्रं प्रद्युम्नं चारुदर्शनम्॥ ४३

जातकर्मादिकं तस्य चकार मधुसूदनः।
हृतोऽसौ सूतिकागेहाच्छम्बरेण बलीयसा॥ ४४
नीतश्च स्वपुरीं बालो मायावत्यै समर्पितः।

निर्जन पुरीमें रहने लगे। उसी समय शक्तिशाली कालयवन भी वहाँ आ गया। कालयवनको आया जानकर वे पीताम्बरधारी तथा ऐश्वर्यसम्पन्न मधुसूदन भगवान् जनार्दन नगरसे बाहर निकल पड़े और जोर-जोर हँसते हुए उसके आगे-आगे पैदल ही चलने लगे॥ ३१–३३$\frac{१}{२}$॥

उन कमललोचन श्रीकृष्णको अपने आगे जाता देखकर वह दुष्ट कालयवन उनके पीछे-पीछे पैदल ही चलता रहा। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण कालयवनसहित वहाँ पहुँच गये, जहाँ महाबली राजर्षि मुचुकुन्द शयन कर रहे थे। मुचुकुन्दको देखकर भगवान् कृष्ण वहीं अन्तर्धान हो गये॥ ३४–३६॥

वह कालयवन भी वहीं पहुँच गया। उसने देखा कि कोई सो रहा है। राजर्षि मुचुकुन्दको कृष्ण समझकर कालयवनने उनके ऊपर पैरसे प्रहार किया॥ ३७॥

[कालयवनद्वारा पाद-प्रहार किये जानेसे] वे जग गये और क्रोधसे आँखें लाल किये हुए महाबली मुचुकुन्दने [उसकी ओर दृष्टिपात करके] उसे भस्म कर दिया। उसे जलानेके बाद मुचुकुन्दने अपने समक्ष कमलनयन भगवान् श्रीकृष्णको उपस्थित देखा। तदनन्तर देवाधिदेव वासुदेवको प्रणाम करके वे वनकी ओर प्रस्थान कर गये। भगवान् श्रीकृष्ण भी बलरामको साथ लेकर द्वारकापुरी चले गये॥ ३८–३९॥

इस प्रकार उग्रसेनको पुनः राजा बनाकर वे इच्छापूर्वक विहार करने लगे। इसके बाद शिशुपालके साथ रुक्मिणीके सुनिश्चित किये गये विवाहहेतु आयोजित स्वयंवरसे भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीका हरण कर लिया और उसके साथ राक्षसविधिसे विवाह कर लिया। तत्पश्चात् जाम्बवती, सत्यभामा, मित्रविन्दा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, भद्रा तथा नाग्नजिती—इन दिव्य सुन्दरियोंको बारी-बारीसे ले आकर श्रीकृष्णने उनके साथ भी पाणिग्रहण किया। हे भूपाल! श्रीकृष्णकी ये ही परम सुन्दर आठ पत्नियाँ थीं। इनमें रुक्मिणीने देखनेमें परम सुन्दर पुत्र प्रद्युम्नको जन्म दिया॥ ४०—४३॥

मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। महाबली शम्बरासुरने प्रसवगृहसे उस बालकका हरण कर लिया और उसे अपनी नगरीमें ले जाकर मायावतीको सौंप दिया॥ ४४$\frac{१}{२}$॥

वासुदेवो हृतं दृष्ट्वा पुत्रं शोकसमन्वितः॥ ४५

जगाम शरणं देवीं भक्तियुक्तेन चेतसा।
वृत्रासुरादयो दैत्या लीलयैव यया हताः॥ ४६

ततोऽसौ योगमायायाश्चकार परमां स्मृतिम्।
वचोभिः परमोदारैरक्षरैः स्तवनैः शुभैः॥ ४७

श्रीकृष्ण उवाच

मातर्मयातितपसा परितोषिता त्वं
प्राग्जन्मनि प्रसुमनादिभिरर्चितासि।
धर्मात्मजेन बदरीवनखण्डमध्ये
किं विस्मृतो जननि ते त्वयि भक्तिभावः॥ ४८

सूतीगृहादपहृतः किमु बालको मे
केनापि दुष्टमनसाप्यथ कौतुकाद्वा।
मानापहारकरणाय ममाद्य नूनं
लज्जा तवाम्ब खलु भक्तजनस्य युक्ता॥ ४९

दुर्गो महानतितरां नगरी सुगुप्ता
तत्रापि मेऽस्ति सदनं किल मध्यभागे।
अन्तःपुरे च पिहितं ननु सूतिगेहं
बालो हृतः खलु तथापि ममैव दोषात्॥ ५०

नाहं गतः परपुरं न च यादवाश्च
रक्षावतीव नगरी किल वीरवर्यैः।
माया तवैव जननि प्रकटप्रभावा
मे बालकः परिहृतः कुहकेन केन॥ ५१

नो वेद्म्यहं जननि ते चरितं सुगुप्तं
को वेद मन्दमतिरल्पविदेव देही।
क्वासौ गतो मम भटैर्न च वीक्षितो वा
हर्ताम्बिके जवनिका तव कल्पितेयम्॥ ५२

उधर, अपने पुत्रका हरण देखकर शोक-सन्तप्त वासुदेव श्रीकृष्णने भक्तिभावयुक्त हृदयसे उन भगवती योगमायाकी शरण ली, जिन्होंने वृत्रासुर आदि दैत्योंका लीलामात्रसे वध कर दिया था॥ ४५-४६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त सारगर्भित अक्षरों तथा वाक्योंसे युक्त मंगलमय स्तवनोंके द्वारा योगमायाका पुण्य-स्मरण करने लगे॥ ४७॥

श्रीकृष्ण बोले—हे माता! पूर्वकालमें मैंने धर्मपुत्र नारायणके रूपमें बदरिकाश्रममें घोर तपस्या करके तथा पुष्प आदिसे आपकी विधिवत् पूजा करके आपको प्रसन्न किया था। हे जननि! क्या अपने प्रति मेरे उस भक्तिभावको आपने विस्मृत कर दिया?॥ ४८॥

किस कुत्सित हृदयवाले दुराचारीने प्रसूतिगृहसे मेरे पुत्रका हरण कर लिया? अथवा किसीने मेरा अभिमान दूर करनेके लिये कौतूहलवश यह प्रपंच रच दिया है। हे अम्ब! चाहे जो हो, किंतु आज अपने भक्तजनकी लाज रखना आपका परमोचित कर्तव्य है॥ ४९॥

चारों ओर दुस्तर खाइयोंसे अति सुरक्षित मेरी नगरी है, उसमें भी मेरा भवन मध्य भागमें स्थित है और उस भवनके अन्तःपुरमें प्रसूतिगृह स्थित है, जिसके दरवाजे बन्द रहते हैं; फिर भी मेरे पुत्रका हरण हो गया। यह तो मेरे दोषके ही कारण हुआ॥ ५०॥

मैं द्वारकापुरी छोड़कर किसी अन्य नगरमें नहीं गया और यादवगण भी वहाँसे कहीं नहीं गये थे। महान् वीरोंके द्वारा नगरीकी पूर्ण सुरक्षा की गयी थी। हे माता! इसमें तो मुझे आपकी ही मायाका प्रत्यक्ष प्रभाव परिलक्षित हो रहा है, जिसकी प्रेरणासे किसी मायावीने मेरे पुत्रका हरण कर लिया है॥ ५१॥

हे माता! जब मैं आपके अत्यन्त गुप्त चरित्रको नहीं जान पाया तो फिर मन्दबुद्धि तथा अल्पज्ञ ऐसा कौन प्राणी होगा, जो आपके चरित्रको जान सकता है। मेरे पुत्रका हरण करनेवाला कहाँ चला गया, जिसे मेरे सैनिक देखतक नहीं पाये, हे अम्बिके! यह आपकी ही रची हुई मायाका प्रभाव है॥ ५२॥

चित्रं न तेऽत्र पुरतो मम मातृगर्भो
नीतस्त्वयार्धसमये किल माययासौ।
यं रोहिणी हलधरं सुषुवे प्रसिद्धं
दूरे स्थिता पतिपरा मिथुनं विनापि॥ ५३

आपके लिये यह कोई विचित्र बात नहीं है; क्योंकि मेरे प्रकट होनेके पूर्व आपने अपनी मायाके प्रभावसे माता देवकीके पाँच महीनेके गर्भको खींचकर [माता रोहिणीके गर्भमें] स्थापित कर दिया था। वसुदेवजी कारागारमें निरुद्ध थे; उनसे दूर रहती हुई पतिपरायणा माता रोहिणीने सम्पर्कके बिना ही उसे जन्म दिया, जो हलधर नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ ५३॥

सृष्टिं करोषि जगतामनुपालनं च
नाशं तथैव पुनरप्यनिशं गुणैस्त्वम्।
को वेद तेऽम्ब चरितं दुरितान्तकारि
प्रायेण सर्वमखिलं विहितं त्वयैतत्॥ ५४

हे अम्ब! आप सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके द्वारा जगत्का सृजन, पालन तथा संहार निरन्तर करती रहती हैं। हे जननि! आपके पापनाशक चरित्रको कौन जान सकता है? वास्तविकता तो यह है कि यह सम्पूर्ण जगत्प्रपंच आपके ही द्वारा विरचित है॥ ५४॥

उत्पाद्य पुत्रजननप्रभवं प्रमोदं
दत्त्वा पुनर्विरहजं किल दुःखभारम्।
त्वं क्रीडसे सुललितैः खलु तैर्विहारै-
र्नो चेत्कथं मम सुताप्तिरतिर्वृथा स्यात्॥ ५५

आप पहले प्राणियोंके समक्ष पुत्र-जन्मसे होनेवाले असीम आनन्दको उपस्थित करके पुनः पुत्र-वियोगजनित दुःखका भार उनके ऊपर ला देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उन सुललित प्रपंचोंकी रचना करके आप अपना मनोरंजन करती हैं। यदि ऐसा न होता तो पुत्र-प्राप्तिजनित मेरा आनन्द व्यर्थ क्यों होता?॥ ५५॥

मातास्य रोदिति भृशं कुररीव बाला
दुःखं तनोति मम सन्निधिगा सदैव।
कष्टं न वेत्सि ललितेऽप्रमितप्रभावे
मातस्त्वमेव शरणं भवपीडितानाम्॥ ५६

हे अमित प्रभाववाली भगवति! इस बालककी माता कुररी पक्षीकी भाँति रो रही है। वह बेचारी सदा मेरे पास ही रहती है, जिसे देखकर मेरा दुःख और भी बढ़ जाता है। हे माता! आप ही तो भवव्याधिसे पीड़ित प्राणियोंकी एकमात्र शरण हैं; हे ललिते! आप उसका दुःख क्यों नहीं समझ रही हैं?॥ ५६॥

सीमा सुखस्य सुतजन्म तदीयनाशो
दुःखस्य देवि भवने विबुधा वदन्ति।
तत्किं करोमि जननि प्रथमे प्रनष्टे
पुत्रे ममाद्य हृदयं स्फुटतीव मातः॥ ५७

हे देवि! विद्वज्जन कहते हैं कि पुत्र-जन्मके अवसरपर सुखकी कोई सीमा नहीं रहती तथा उसके नष्ट हो जानेपर दुःखकी भी सीमा नहीं रहती। हे जननि! अब मैं क्या करूँ? हे माता! अपने प्रथम पुत्रके विनष्ट हो जानेपर मेरा हृदय अब विदीर्ण होता जा रहा है॥ ५७॥

यज्ञं करोमि तव तुष्टिकरं व्रतं वा
दैवं च पूजनमथाखिलदुःखहा त्वम्।
मातः सुतोऽत्र यदि जीवति दर्शयाशु
त्वं वै क्षमा सकलशोकविनाशनाय॥ ५८

मैं आपको प्रसन्न करनेवाला अम्बायज्ञ करूँगा, नवरात्रव्रत करूँगा और विधि-विधानसे आपका पूजन करूँगा; क्योंकि आप सम्पूर्ण दुःखोंका नाश करनेवाली हैं। हे माता! यदि मेरा पुत्र जीवित हो तो आप मुझे शीघ्र उसे दिखा दीजिये; क्योंकि आप समस्त प्रकारके शोकोंका शमन करनेमें समर्थ हैं॥ ५८॥

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी कृष्णेनाक्लिष्टकर्मणा।
प्रत्यक्षदर्शना भूत्वा तमुवाच जगद्गुरुम्॥ ५९

श्रीदेव्युवाच

शोकं मा कुरु देवेश शापोऽयं ते पुरातनः।
तस्य योगेन पुत्रस्ते शम्बरेण हृतो बलात्॥ ६०

अतस्ते षोडशे वर्षे हत्वा तं शम्बरं बलात्।
आगमिष्यति पुत्रस्ते मत्प्रसादान्न संशयः॥ ६१

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी चण्डिका चण्डविक्रमा।
भगवानपि पुत्रस्य शोकं त्यक्त्वाभवत्सुखी॥ ६२

व्यासजी बोले—असाध्य-से-असाध्य कार्योंको भी सहज भावसे कर सकनेमें समर्थ भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवती उन जगद्गुरु वासुदेवके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होकर बोलीं—॥ ५९॥

श्रीदेवी बोलीं—हे देवेश! आप शोक न करें। यह आपका पूर्वजन्मका शाप है; उसीके परिणामस्वरूप शम्बरासुरने आपके पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ ६०॥

सोलह वर्षका हो जानेपर वह पुत्र मेरी कृपासे उस शम्बरासुरका संहार करके स्वयं ही घर आ जायगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर प्रचण्ड पराक्रमसे सम्पन्न भगवती चण्डिका अन्तर्धान हो गयीं और भगवान् श्रीकृष्ण भी पुत्र-शोक त्यागकर प्रसन्न हो गये॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे
देव्या कृष्णशोकापनोदनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा शाम्भवी मायाकी बलवत्ताका वर्णन, श्रीकृष्णद्वारा शिवजीकी प्रसन्नताके लिये तप करना और शिवजीद्वारा उन्हें वरदान देना

राजोवाच

सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठ जायते वचनात्तव।
वैष्णवांशे भगवति दुःखोत्पत्तिं विलोक्य च॥ १

नारायणांशसम्भूतो वासुदेवः प्रतापवान्।
कथं स सूतिकागाराद्धृतो बालो हरेरपि॥ २

सुगुप्तनगरे रम्ये गुप्तेऽथ सूतिकागृहे।
प्रविश्य तेन दैत्येन गृहीतोऽसौ कथं शिशुः॥ ३

न ज्ञातो वासुदेवेन चित्रमेतन्ममाद्भुतम्।
जायते महदाश्चर्यं चित्ते सत्यवतीसुत॥ ४

राजा बोले—हे मुनिवर! आपकी इस बातसे तथा साक्षात् विष्णुके अंशावतार भगवान् कृष्णके ऊपर कष्टका पड़ना देखकर मुझे सन्देह हो रहा है॥ १॥

भगवान् विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्ण [अपरिमित] प्रतापसे सम्पन्न थे, फिर भी भगवान्‌के उस पुत्रका प्रसव-गृहसे हरण कैसे सम्भव हुआ?॥ २॥

वह दैत्य शम्बरासुर चारों ओरसे भलीभाँति सुरक्षित रमणीय नगरके अत्यन्त गुप्त स्थानमें अवस्थित प्रसव-गृहमें प्रवेश करके उस बालकको कैसे उठा ले गया?॥ ३॥

यह बड़ी विचित्र तथा अद्भुत बात है कि भगवान् श्रीकृष्ण भी इसे नहीं जान पाये। हे सत्यवतीनन्दन! मेरे मनमें [इस बातको लेकर] महान् आश्चर्य उत्पन्न हो रहा है!॥ ४॥

ब्रूहि तत्कारणं ब्रह्मन्न ज्ञातं केशवेन यत्।
हरणं तत्रसंस्थेन शिशोर्वा सूतिकागृहात्॥ ५

व्यास उवाच

माया बलवती राजन्नराणां बुद्धिमोहिनी।
शाम्भवी विश्रुता लोके को वा मोहं न गच्छति॥ ६

मानुषं जन्म सम्प्राप्य गुणाः सर्वेऽपि मानुषाः।
भवन्ति देहजाः कामं न देवा नासुरास्तदा॥ ७

क्षुत्तृण्निद्रा भयं तन्द्रा व्यामोहः शोकसंशयः।
हर्षश्चैवाभिमानश्च जरामरणमेव च॥ ८

अज्ञानं ग्लानिरप्रीतिरीर्ष्यासूया मदः श्रमः।
एते देहभवा भावाः प्रभवन्ति नराधिप॥ ९

यथा हेममृगं रामो न बुबोध पुरोगतम्।
जानक्या हरणञ्चैव जटायुमरणं तथा॥ १०

अभिषेकदिने रामो वनवासं न वेद च।
तथा न ज्ञातवान् रामः स्वशोकान्मरणं पितुः॥ ११

अज्ञवद्विचचारासौ पश्यमानो वने वने।
जानकीं न विवेदाथ रावणेन हृतां बलात्॥ १२

सहायान् वानरान्कृत्वा हत्वा शक्रसुतं बलात्।
सागरे सेतुबन्धञ्च कृत्वोत्तीर्य सरित्पतिम्॥ १३

प्रेषयामास सर्वासु दिक्षु तान्कपिकुञ्जरान्।
संग्रामं कृतवान्घोरं दुःखं प्राप रणाजिरे॥ १४

बन्धनं नागपाशेन प्राप रामो महाबलः।
गरुडान्मोक्षणं पश्चादन्वभूद्रघुनन्दनः॥ १५

हे ब्रह्मन्! वहाँ द्वारकापुरीमें वासुदेव श्रीकृष्णके विद्यमान रहते हुए भी सूतिका-गृहसे बच्चेके हरणकी जानकारी उन्हें नहीं हो सकी; मुझे इसक कारण बताइये॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! प्राणियोंक बुद्धिको विमोहित कर देनेवाली माया बड़ी बलवत होती है; यह शाम्भवी नामसे प्रसिद्ध है। संसारमें कौन-सा प्राणी है, जो [इस मायाके प्रभावसे] मोहि नहीं हो जाता है॥ ६॥

मनुष्य-जन्म पाते ही प्राणीमें समस्त मानवोचि गुण उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी गुण देहसे सम्बन्ध रखते हैं। देवता अथवा दानव—कोई भी इससे पर नहीं है॥ ७॥

भूख, प्यास, निद्रा, भय, तन्द्रा, व्यामोह, शोक सन्देह, हर्ष, अभिमान, बुढ़ापा, मृत्यु, अज्ञान, ग्लानि वैर, ईर्ष्या, परदोषदृष्टि, मद और थकावट—ये देहके साथ उत्पन्न होते हैं। हे राजन्! ये भाव सभीपर अपना प्रभाव डालते हैं॥ ८-९॥

जिस प्रकार श्रीराम अपने समक्ष विचरणशील स्वर्ण-मृगकी वास्तविकताको नहीं जान पाये और वे सीताहरण तथा जटायुमरणकी घटना भी नहीं जान सके॥ १०॥

श्रीराम यह भी नहीं जान सके कि अभिषेकके दिन ही उन्हें वनवास होगा और वे अपने वियोगजनित शोकसे पिताकी मृत्यु भी नहीं जान पाये॥ ११॥

रावणके द्वारा बलपूर्वक हरी गयी सीताके सम्बन्धमें श्रीराम कुछ भी नहीं जान सके थे और एक अज्ञानी पुरुषकी भाँति उन्हें खोजते हुए वन-वनमें भटकते रहे॥ १२॥

तदनन्तर उन्होंने बलपूर्वक वालीका वध करके वानरोंको अपना सहायक बनाकर सागरपर सेतु बाँधा और पुनः उस समुद्रको पार करके उन्होंने सभी दिशाओंमें बड़े-बड़े शूरवीर वानरोंको भेजा। तत्पश्चात् संग्रामभूमिमें रावणके साथ घोर युद्ध किया, जिसमें उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ा॥ १३-१४॥

महाबली होते हुए भी श्रीरामको नागपाशमें बँधना पड़ा; बादमें गरुडकी सहायतासे वे रघुनन्दन बन्धनमुक्त हुए॥ १५॥

अहनद्रावणं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम्।
मेघनादं निकुम्भञ्च कुपितो रघुनन्दनः॥ १६

अदूष्यत्वञ्च जानक्या न विवेद जनार्दनः।
दिव्यञ्च कारयामास ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम्॥ १७

लोकापवादाच्च परं ततस्तत्याज तां प्रियाम्।
अदूष्यां दूषितां मत्वा सीतां दशरथात्मजः॥ १८

न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन रामेण च कुशीलवौ।
मुनिना कथितौ तौ तु तस्य पुत्रौ महाबलौ॥ १९

पातालगमनं चैव जानक्या ज्ञातवान्न च।
राघवः कोपसंयुक्तो भ्रातरं हन्तुमुद्यतः॥ २०

कालस्यागमनञ्चैव न विवेद खरान्तकः।
मानुषं देहमाश्रित्य चक्रे मानुषचेष्टितम्॥ २१

तथैव मानुषान्भावान्नात्र कार्या विचारणा।
पूर्वं कंसभयात्प्राप्तो गोकुले यदुनन्दनः॥ २२

जरासन्धभयात्पश्चाद् द्वारवत्यां गतो हरिः।
अधर्मं कृतवान्कृष्णो रुक्मिण्या हरणञ्च यत्॥ २३

शिशुपालवृतायाश्च जानन्धर्मं सनातनम्।
शुशोच बालकं कृष्णः शम्बरेण हृतं बलात्॥ २४

मुमोद जानन्पुत्रं तं हर्षशोकयुतस्ततः।
सत्यभामाज्ञया यत्तु युयुधे स्वर्गतः किल॥ २५

इन्द्रेण पादपार्थं तु स्त्रीजितत्वं प्रकाशयन्।
जहार कल्पवृक्षं यः पराभूय शतक्रतुम्॥ २६

मानिनीमानरक्षार्थं हरिश्चित्रधरः प्रभुः।
बद्ध्वा वृक्षे हरिं सत्या नारदाय ददौ पतिम्॥ २७
दत्त्वाथ कानकं कृष्णं मोचयामास भामिनी।

श्रीरामने कोप करके समरभूमिमें रावण, महाबली कुम्भकर्ण, मेघनाद तथा निकुम्भका संहार किया॥ १६॥

भगवान् श्रीरामको जानकीकी निर्दोषताका भी परिज्ञान नहीं हो सका और उन्होंने शुद्धताकी परीक्षाहेतु प्रज्वलित अग्निमें उनका प्रवेश कराया॥ १७॥

तत्पश्चात् दशरथपुत्र श्रीरामने परम पवित्र तथा प्रिय सीताको लोकनिन्दाके भयसे दूषित मानकर उनका परित्याग कर दिया॥ १८॥

वे श्रीराम अपने पुत्रों लव-कुशको नहीं पहचान सके। बादमें महर्षि वाल्मीकिने उन्हें बताया कि वे दोनों महाबली बालक उन्हींके पुत्र हैं॥ १९॥

वे रघुनन्दन श्रीराम सीताके पाताल जानेकी भी बात नहीं जान पाये। वे कुपित होकर भाईका वध करनेको उद्यत हो गये॥ २०॥

दानव खरके संहारक श्रीरामको कालके आगमनका भी ज्ञान नहीं हो सका। मानव-शरीर धारण करके उन्होंने मनुष्योंके समान कार्य किये॥ २१॥

ऐसे ही श्रीकृष्णने भी सभी मानवोचित भाव प्रदर्शित किये, इस विषयमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। यदुनन्दन श्रीकृष्ण पहले कंसके भयसे गोकुल जानेको विवश हुए। कुछ समयके पश्चात् जरासन्धके भयसे मथुरा छोड़कर श्रीकृष्णको द्वारका जाना पड़ा। वे ही श्रीकृष्ण अधर्मपूर्ण कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए जो कि उन्होंने सनातन धर्मको जानते हुए भी शिशुपालके द्वारा वरण की गयी रुक्मिणीका हरण कर लिया। शम्बरासुरके द्वारा पुत्रका बलपूर्वक हरण कर लिये जानेपर उसके लिये श्रीकृष्ण शोकाकुल हो उठे और [भगवतीसे] पुत्रके जीवित होनेकी बात जानकर वे प्रसन्न हो गये। इस प्रकार हर्ष तथा शोक—इन दोनोंसे वे प्रभावित रहे॥ २२—२४$\frac{१}{२}$॥

सत्यभामाकी आज्ञासे स्वर्गमें जाकर कल्पवृक्षके लिये उन्होंने इन्द्रके साथ युद्ध किया। युद्धमें इन्द्रको परास्त करके अपना स्त्रीवशित्व प्रकट करते हुए श्रीकृष्णने इन्द्रसे वह कल्पवृक्ष छीन लिया था। मानिनी सत्यभामाका मान रखनेके लिये प्रभु श्रीकृष्ण काष्ठमूर्तिके रूपमें चित्रित हो गये और सत्यभामाने पति कृष्णको वृक्षमें बाँधकर उन्हें नारदको दान कर दिया। तत्पश्चात् सत्यभामाने सोनेका कृष्ण दानमें देकर उन्हें नारदजीसे मुक्त कराया॥ २५—२७$\frac{१}{२}$॥

दृष्ट्वा पुत्रान्पुरुगुणान्प्रद्युम्नप्रमुखानथ॥ २८

कृष्णं जाम्बवती दीना ययाचे सन्ततिं शुभाम्।
स ययौ पर्वतं कृष्णस्तपस्याकृतनिश्चयः॥ २९

उपमन्युर्मुनिर्यत्र शिवभक्तः परन्तपः।
उपमन्युं गुरुं कृत्वा दीक्षां पाशुपतीं हरिः॥ ३०

जग्राह पुत्रकामस्तु मुण्डी दण्डी बभूव ह।
उग्रं तत्र तपस्तेपे मासमेकं फलाशनः॥ ३१

जजाप शिवमन्त्रं तु शिवध्यानपरो हरिः।
द्वितीये तु जलाहारस्तिष्ठन्नेकपदा हरिः॥ ३२

तृतीये वायुभक्षस्तु पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थितः।
षष्ठे तु भगवान् रुद्रः प्रसन्नो भक्तिभावतः॥ ३३

दर्शनञ्च ददौ तत्र सोमः सोमकलाधरः।
आजगाम वृषारूढः सुरैरिन्द्रादिभिर्वृतः॥ ३४

ब्रह्मविष्णुयुतः साक्षाद्यक्षगन्धर्वसेवितः।
सम्बोधयन्वासुदेवं शङ्करस्तमुवाच ह॥ ३५

तुष्टोऽस्मि कृष्ण तपसा तवोग्रेण महामते।
ददामि वाञ्छितान्कामान्ब्रूहि यादवनन्दन॥ ३६

मयि दृष्टे कामपूरे कामशेषो न सम्भवेत्।

व्यास उवाच

तं दृष्ट्वा शङ्करं तुष्टं भगवान्देवकीसुतः॥ ३७

पपात पादयोस्तस्य दण्डवत्प्रेमसंयुतः।
स्तुतिं चकार देवेशो मेघगम्भीरया गिरा॥ ३८

स्थितस्तु पुरतः शम्भोर्वासुदेवः सनातनः।

श्रीकृष्ण उवाच

देवदेव जगन्नाथ सर्वभूतार्तिनाशन॥ ३९

विश्वयोने सुरारिघ्न नमस्त्रैलोक्यकारक।
नीलकण्ठ नमस्तुभ्यं शूलिने ते नमो नमः॥ ४०

शैलजावल्लभायाथ यज्ञघ्नाय नमोऽस्तु ते।
धन्योऽहं कृतकृत्योऽहं दर्शनात्तव सुव्रत॥ ४१

रुक्मिणीके प्रद्युम्न आदि विशिष्ट गुणसम्पन्न पुत्रोंको देखकर दीनभावसे जाम्बवतीने कृष्णसे सुन्दर सन्तानहेतु याचना की, तब तपस्या करनेका निश्चय करके वे पर्वतपर चले गये, जहाँ महान् तपस्वी तथा शिवभक्त मुनि उपमन्यु विराजमान थे॥ २८–२९$\frac{१}{२}$॥

वहाँपर पुत्राभिलाषी श्रीकृष्णने उपमन्युको अपना गुरु बनाकर उनसे पाशुपत-दीक्षा ली और वे वहींपर मुण्डित होकर दण्डी हो गये। महीनेभर फलाहार करते हुए श्रीकृष्णने घोर तपस्या की और शिवके ध्यानमें लीन होकर शिवमन्त्रका जप किया। दूसरे महीनेमें केवल जल पीकर और एक पैरसे खड़े होकर श्रीकृष्णने कठोर तप किया। तीसरे महीनेमें वे वायुभक्षण करते हुए पैरके अँगूठेके अग्रभागपर स्थित रहे। तत्पश्चात् छठे महीनेमें भगवान् रुद्र उनके भक्तिभावसे प्रसन्न हो गये और उन चन्द्रकलाधारी भगवान् शंकरने पार्वतीसहित उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे नन्दी बैलपर सवार होकर वहाँ आये थे और इन्द्र आदि देवताओंसे घिरे हुए थे। उस समय ब्रह्मा और विष्णु भी उनके साथ थे तथा साक्षात् यक्ष और गन्धर्व उनकी निरन्तर सेवा कर रहे थे। उन वासुदेव श्रीकृष्णको सम्बोधित करते हुए शंकरजीने कहा—हे कृष्ण! हे महामते! तुम्हारी इस कठोर तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। अतः हे यादवनन्दन! तुम अपने वांछित मनोरथ बताओ, मैं उन्हें दूँगा। सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले मुझ शिवका दर्शन हो जानेपर कोई भी कामना शेष नहीं रह जाती॥ ३०—३६$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—उन भगवान् शंकरको प्रसन्न देखकर देवकीनन्दन श्रीकृष्ण प्रेमपूर्वक उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। तदनन्तर देवेश्वर सनातन श्रीकृष्ण शंकरजीके सम्मुख खड़े होकर मेघ-सदृश गम्भीर वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ३७–३८$\frac{१}{२}$॥

श्रीकृष्ण बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सभी प्राणियोंके कष्टके विनाशक! हे विश्वयोने! हे दैत्यमर्दन! हे त्रैलोक्यकारक! आपको नमस्कार है। हे नीलकण्ठ! आपको नमस्कार है, आप त्रिशूलधारीको बार-बार नमस्कार है। दक्षके यज्ञका विध्वंस करनेवाले आप पार्वतीवल्लभको नमस्कार है। हे सुव्रत! आपके

जन्म मे सफलं जातं नत्वा ते पादपङ्कजम्।
बद्धोऽहं स्त्रीमयैः पाशैः संसारेऽस्मिञ्जगद्गुरो॥ ४२

शरणं तेऽद्य सम्प्राप्तो रक्षणार्थं त्रिलोचन।
सम्प्राप्य मानुषं जन्म खिन्नोऽहं दुःखनाशन॥ ४३

त्राहि मां शरणं प्राप्तं भवभीतं भवाधुना।
गर्भवासे महद्दुःखं प्राप्तं मदनदाहक॥ ४४

जन्मतः कंसभयजमनुभूतं च गोकुले।
जातोऽहं नन्दगोपालो बल्लवाज्ञाकरस्तथा॥ ४५

गोरजःकीर्णकेशस्तु भ्रमन्वृन्दावने घने।
म्लेच्छराजभयत्रस्तो गतो द्वारवतीं पुनः॥ ४६

त्यक्त्वा पित्र्यं शुभं देशं माथुरं दुर्लभं विभो।
ययातिशापबद्धेन तस्मै दत्तं भयाद्विभो॥ ४७

राज्यं सुपुष्टमपि च धर्मरक्षापरेण च।
उग्रसेनस्य दासत्वं कृतं वै सर्वदा मया॥ ४८

राजासौ यादवानां वै कृतो नः पूर्वजैः किल।
गार्हस्थ्यं दुःखदं शम्भो स्त्रीवश्यं धर्मखण्डनम्॥ ४९

पारतन्त्र्यं सदा बन्धमोक्षवार्तात्र दुर्लभा।
रुक्मिण्यास्तनयान्दृष्ट्वा भार्या जाम्बवती मम॥ ५०

प्रेरयामास पुत्रार्थं तपसे मदनान्तक।
सकामेन मया तप्तं तपः पुत्रार्थमद्य वै॥ ५१

दर्शनसे मैं धन्य तथा कृतकृत्य हो गया। आपके चरणकमलका नमन करके मेरा जन्म सफल हो गया। हे जगद्गुरो! इस संसारमें आकर मैं स्त्रीरूपी बन्धनोंमें आबद्ध हो गया हूँ॥ ३९—४२॥

हे त्रिलोचन! अपनी रक्षाके लिये आज मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे दुःखनाशन! मानव-जन्म पाकर मैं बहुत खिन्न हो गया हूँ। हे भव! शरणमें आये हुए तथा सांसारिक दुःखोंसे भयभीत मुझ दीनकी इस समय आप रक्षा कीजिये। हे मदनदाहक! मैंने गर्भमें रहकर बहुत कष्ट पाया है। जन्मकालसे ही गोकुलमें रहते हुए मुझे कंससे भयभीत रहना पड़ा। तत्पश्चात् नन्दके यहाँ मुझे गो-पालनका कार्य करना पड़ा और गायोंके खुरसे उड़ी हुई धूलसे धूसरित केशपाशवाला होकर घने वृन्दावनमें इधर-उधर विचरण करता हुआ मैं ग्वालोंकी आज्ञाका पालन करनेको विवश हुआ॥ ४३—४५ $\frac{१}{२}$॥

हे विभो! उसके बाद म्लेच्छराज कालयवनके भयसे सन्त्रस्त होकर मथुरा-जैसी दुर्लभ तथा शुभ पैतृक भूमि छोड़कर मुझे द्वारकापुरी चले जाना पड़ा। हे विभो! राजा ययातिके शापवश भयके कारण अपने कुल-धर्मकी रक्षामें तत्पर मैंने समृद्धिमयी मथुरा तथा द्वारकापुरीका राज्य उग्रसेनको सौंप दिया और सदा उनका दास बनकर उनकी सेवा की। हमारे पूर्वजोंने उन उग्रसेनको ही यादवोंका राजा बनाया था॥ ४६—४८ $\frac{१}{२}$॥

हे शम्भो! गृहस्थीका जीवन अत्यन्त कष्टप्रद होता है। इसमें सदा स्त्रीके वशीभूत रहना पड़ता है और अनेक धार्मिक मर्यादाओंका उल्लंघन हो जाता है। इसमें परतन्त्रता तथा स्त्रीपुत्रादिका बन्धन सदा बाँधे रखता है। इस जीवनमें मोक्षकी वार्ता तो दुर्लभ रहती है॥ ४९ $\frac{१}{२}$॥

रुक्मिणीके पुत्रोंको देखकर मेरी भार्या जाम्बवतीने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त तपस्या करनेके लिये मुझे प्रेरित किया। अतएव हे मदनान्तक! पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे मुझे यह तपस्या करनी पड़ी। हे देवेश! [पुत्र-प्राप्तिके लिये] आपसे याचना करनेमें मुझे लज्जाका अनुभव हो रहा है। हे जगद्गुरो! आप मुक्तिदाता तथा भक्तवत्सल देवेश्वरकी आराधनाके बाद उनके

लज्जा भवति देवेश प्रार्थनायां जगद्गुरो।
कस्त्वामाराध्य देवेशं मुक्तिदं भक्तवत्सलम्॥ ५२

प्रसन्नं याचते मूढः फलं तुच्छं विनाशि यत्।
सोऽयं मायाविमूढात्मा याचे पुत्रसुखं विभो॥ ५३

कामिन्या प्रेरितः शम्भो मुक्तिदं त्वां जगत्पते।
जानामि दुःखदं शम्भो संसारं दुःखसाधनम्॥ ५४

अनित्यं नाशधर्माणं तथापि विरतिर्न मे।
शापान्नारायणांशोऽहं जातोऽस्मि क्षितिमण्डले॥ ५५

भोक्तुं बहुतरं दुःखं मायापाशेन यन्त्रितः।

व्यास उवाच

इत्युक्तवन्तं गोविन्दं प्रत्युवाच महेश्वरः॥ ५६

बहवस्ते भविष्यन्ति पुत्राः शत्रुनिषूदन।
स्त्रीणां षोडशसाहस्त्रं भविष्यति शतार्धकम्॥ ५७

तासु पुत्रा दश दश भविष्यन्ति महाबलाः।
इत्युक्त्वोपरराामाशु शङ्करः प्रियदर्शनः॥ ५८

उवाच गिरिजा देवी प्रणतं मधुसूदनम्।
कृष्ण कृष्ण महाबाहो संसारेऽस्मिन्नराधिप॥ ५९

गृहस्थप्रवरो लोके भविष्यति भवानिह।
ततो वर्षशतान्ते तु द्विजशापाज्जनार्दन॥ ६०

गान्धार्याश्च तथा शापाद्भविता ते कुलक्षयः।
परस्परं निहत्याजौ पुत्रास्ते शापमोहिताः॥ ६१

गमिष्यन्ति क्षयं सर्वे यादवाश्च तथापरे।
सानुजस्त्वं तथा देहं त्यक्त्वा यास्यसि वै दिवम्॥ ६२

शोकस्तत्र न कर्तव्यो भवितव्यं प्रति प्रभो।
अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते॥ ६३

तत्र शोको न कर्तव्यो नूनं मम मतं सदा।
अष्टावक्रस्य शापेन भार्यास्ते मधुसूदन॥ ६४
चौरेभ्यो ग्रहणं कृष्ण गमिष्यन्ति मृते त्वयि।

प्रसन्न हो जानेपर कौन मूर्ख ऐसे विनाशशील तथा तुच्छ फलकी कामना करेगा? हे शम्भो! हे जगत्पते! हे विभो! अपनी भार्या जाम्बवतीसे प्रेरित होकर आपकी मायासे विमूढचित्त यह मैं आप मुक्तिदातासे पुत्र-सुखकी याचना कर रहा हूँ॥ ५०—५३½॥

हे शम्भो! मैं जानता हूँ कि यह संसार कष्टदायक, दुःखोंका आगार, अनित्य तथा विनाशशील है, फिर भी इसके प्रति मेरे मनमें वैराग्य-भावका उदय नहीं हो पा रहा है। नारायणका अंश होते हुए भी पूर्वजन्मके शापके कारण मायापाशमें आबद्ध होकर नानाविध कष्ट भोगनेके लिये मुझे पृथ्वीतलपर जन्म लेना पड़ा॥ ५४-५५½॥

व्यासजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके ऐसा कहनेपर महेश्वरने उनसे कहा—हे शत्रुदमन! आपके बहुतसे पुत्र होंगे; आपकी सोलह हजार पचास भार्याएँ भी होंगी। उनमेंसे प्रत्येक स्त्रीसे दस-दस महाबलवान् पुत्र उत्पन्न होंगे—ऐसा कहकर प्रियदर्शन शिवजी चुप हो गये॥ ५६—५८॥

तत्पश्चात् प्रणाम करते हुए श्रीकृष्णसे देवी पार्वतीने कहा—हे कृष्ण! हे महाबाहो! हे नराधिप! इस संसारमें आप सर्वश्रेष्ठ गृहस्थ होंगे। इसके बाद हे जनार्दन! सौ वर्ष व्यतीत होनेपर एक विप्र तथा गान्धारीके शापके कारण आपके कुलका नाश हो जायगा। शापवश अज्ञानमें पड़कर आपके वे पुत्र तथा अन्य सभी यादव आपसमें एक दूसरेको मारकर रणभूमिमें विनष्ट हो जायँगे और आप अपने भाई बलरामके साथ यह शरीर छोड़कर दिव्य लोकको प्रयाण करेंगे॥ ५९—६२॥

हे प्रभो! आपको होनहारके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई भी प्रतीकार सम्भव नहीं है। हे मधुसूदन! मेरा सर्वदा यही निश्चित मन्तव्य रहा है कि भावीके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये। हे कृष्ण! आपके प्रयाण कर जानेपर अष्टावक्रके शापके कारण आपकी भार्याएँ चोरोंद्वारा हर ली जायँगी॥ ६३-६४½॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे शम्भुः सोमः ससुरमण्डलः॥ ६५

उपमन्युं प्रणम्याथ कृष्णोऽपि द्वारकां ययौ।
यस्माद् ब्रह्मादयो राजन् सन्ति यद्यप्यधीश्वराः॥ ६६

तथापि मायाकल्लोलयोगसंक्षुभितान्तराः।
तदधीनाः स्थिताः सर्वे काष्ठपुत्तलिकोपमाः॥ ६७

यथा यथा पूर्वभवं कर्म तेषां तथा तथा।
प्रेरयत्यनिशं माया परब्रह्मस्वरूपिणी॥ ६८

न वैषम्यं न नैर्घृण्यं भगवत्यां कदाचन।
केवलं जीवमोक्षार्थं यतते भुवनेश्वरी॥ ६९

यदि सा नैव सृज्येत जगदेतच्चराचरम्।
तदा मायां विना भूतं जडं स्यादेव नित्यशः॥ ७०

तस्मात्कारुण्यमाश्रित्य जगज्जीवादिकं च यत्।
करोति सततं देवी प्रेरयत्यनिशं च तत्॥ ७१

तस्माद् ब्रह्मादिमोहेऽस्मिन्कर्तव्यः संशयो न हि।
मायान्तःपातिनः सर्वे मायाधीनाः सुरासुराः॥ ७२

स्वतन्त्रा सैव देवेशी स्वेच्छाचारविहारिणी।
तस्मात्सर्वात्मना राजन् सेवनीया महेश्वरी॥ ७३

नातः परतरं किञ्चिदधिकं भुवनत्रये।
एतद्धि जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदस्मृतिः॥ ७४

माभूत्तत्र कुले जन्म यत्र देवी न दैवतम्।
अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्॥ ७५

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवान् शिव समस्त देवताओं तथा पार्वतीसमेत अन्तर्धान हो गये। इसके बाद अपने गुरु उपमन्युको प्रणाम करके श्रीकृष्ण भी द्वारकापुरीके लिये प्रस्थित हुए। हे राजन्! यद्यपि ब्रह्मा आदि देवता लोकके अधीश्वर हैं, फिर भी मायारूपिणी नदीकी उत्ताल तरंगोंके आघात-प्रत्याघातसे क्षुब्ध अन्तःकरणवाले बनकर वे भी उसी प्रकार उस मायाके अधीन रहते हैं, जैसे कठपुतली बाजीगरके अधीन रहती है॥ ६५—६७॥

उनके पूर्वजन्मके संचित कर्म जिस प्रकारके होते हैं, उसीके अनुरूप परब्रह्मस्वरूपिणी माया उन्हें सदा प्रेरित करती रहती है। उन भगवतीके हृदयमें किसी प्रकारकी विषमता अथवा निर्दयताका लेशमात्र भी नहीं रहता। वे अखिल भुवनकी ईश्वरी केवल जीवोंको भवबन्धनसे छुटकारा दिलानेके लिये निरन्तर प्रयत्नशील रहती हैं॥ ६८-६९॥

यदि वे भगवती इस चराचर जगत्‌की सृष्टि न करतीं तो समग्र जीव-जगत् माया-शक्तिके बिना सर्वदाके लिये जड़ ही रह जाता। अतएव वे भगवती करुणा करके यह जगत् और जीव आदि जो भी हैं, उनकी रचना करती हैं और उन्हें कर्मशील बनानेके लिये सतत प्रेरणा देती रहती हैं॥ ७०-७१॥

अतएव ब्रह्मादि देवताओंके भी इस प्रकार माया-विमोहित हो जानेमें सन्देह नहीं करना चाहिये; क्योंकि समस्त देवता तथा दानव मायासे निरन्तर आवृत रहते हुए भगवती योगमायाके अधीन रहते हैं॥ ७२॥

स्वेच्छया विचरण एवं विहार करनेवाली वे देवेश्वरी ही स्वतन्त्र हैं। अतएव हे राजन्! उन महेश्वरीकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करनी चाहिये। तीनों लोकोंमें उनसे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। उन पराशक्ति भगवती योगमायाके पावन चरणोंका सदा स्मरण बना रहे—यही जीवनकी सफलता है॥ ७३-७४॥

मेरा जन्म उस कुलमें न हो, जहाँ देवीकी उपासना न होती हो। मैं उन देवीका ही अंश हूँ, दूसरा नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ; तब मैं शोकका भागी नहीं

इत्यभेदेन तां नित्यां चिन्तयेज्जगदम्बिकाम्।
ज्ञात्वा गुरुमुखादेनां वेदान्तश्रवणादिभिः॥ ७६

नित्यमेकाग्रमनसा भावयेदात्मरूपिणीम्।
मुक्तो भवति तेनाशु नान्यथा कर्मकोटिभिः॥ ७७

श्वेताश्वतरादयः सर्वे ऋषयो निर्मलाशयाः।
आत्मरूपां हृदा ज्ञात्वा विमुक्ता भवबन्धनात्॥ ७८

ब्रह्मविष्ण्वादयस्तद्वद् गौरीलक्ष्म्यादयस्तथा।
तामेव समुपासन्ते सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ७९

इति ते कथितं राजन् यद्यत्पृष्टं त्वयानघ।
प्रपञ्चतापत्रस्तेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ८०

एतत्ते कथितं राजन्मयाख्यानमनुत्तमम्।
सर्वपापहरं पुण्यं पुराणं परमाद्भुतम्॥ ८१

य इदं शृणुयान्नित्यं पुराणं वेदसम्मितम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोके महीयते॥ ८२

सूत उवाच

एतन्मया श्रुतं व्यासात्कथ्यमानं सविस्तरम्।
पुराणं पञ्चमं नूनं श्रीमद्भागवताभिधम्॥ ८३

हो सकता। इस अभेदबुद्धिसे युक्त रहते हुए उन सनातन जगदम्बाका चिन्तन करना चाहिये। गुरुके उपदेशसे वेदान्तश्रवण आदिके द्वारा भगवतीके स्वरूपको जानकर नित्य एकाग्र मनसे उन आत्म-स्वरूपिणी योगमायाकी भावना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे प्राणी भव-बन्धनसे शीघ्र ही छूट जाता है, अन्यथा करोड़ों कर्मोंसे भी नहीं छूट सकता॥ ७५—७७॥

निर्मल अन्तःकरणवाले सभी श्वेताश्वतर आदि ऋषिगण उन्हीं आत्मस्वरूपिणी भगवतीका अपने हृदयमें साक्षात्कार करके भव-बन्धनसे मुक्त हुए हैं। उन्हींकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता तथा गौरी, लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन्हीं सच्चि-दानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ७८-७९॥

हे राजन्! हे अनघ! नानाविध प्रपंचोंके तापसे त्रस्त आपने मुझसे जो कुछ पूछा था, मैंने वह सब बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ८०॥

हे महाराज! मैंने आपको यह परमश्रेष्ठ आख्यान सुनाया है; जो सर्वपापविनाशक, पुण्यदायक, पुरातन तथा अत्यन्त अद्भुत कथानक है॥ ८१॥

जो इस वेदतुल्य पुराणका नित्य श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवीलोकमें महान् आनन्द प्राप्त करता है॥ ८२॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] मैंने व्यासजीद्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये इस श्रीमद् [देवी] भागवत नामक पंचम महापुराणको उनसे सुना था॥ ८३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे पराशक्तेः सर्वज्ञत्वकथनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

~~O~~

॥ चतुर्थः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

पञ्चमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

व्यासजीद्वारा त्रिदेवोंकी तुलनामें भगवतीकी उत्तमताका वर्णन

ऋषय ऊचुः

भवता कथितं सूत महदाख्यानमुत्तमम्।
कृष्णस्य चरितं दिव्यं सर्वपातकनाशनम्॥ १

सन्देहोऽत्र महाभाग वासुदेवकथानके।
जायते नः प्रोच्यमाने विस्तरेण महामते॥ २

वने गत्वा तपस्तप्तं वासुदेवेन दुष्करम्।
विष्णोरंशावतारेण शिवस्याराधनं कृतम्॥ ३

वरप्रदानं देव्या च पार्वत्या यत्कृतं पुनः।
जगन्मातुश्च पूर्णायाः श्रीदेव्या अंशभूतया॥ ४

ईश्वरेणापि कृष्णेन कुतस्तौ सम्प्रपूजितौ।
न्यूनता वा किमस्त्यस्य तदेवं संशयो मम॥ ५

सूत उवाच

शृणुध्वं कारणं तत्र मया व्यासश्रुतञ्च यत्।
प्रब्रवीमि महाभागाः कथां कृष्णगुणान्विताम्॥ ६

वृत्तान्तं व्यासतः श्रुत्वा वैराटीसुतजस्तदा।
पुनः पप्रच्छ मेधावी सन्देहं परमं गतः॥ ७

जनमेजय उवाच

सम्यक्सत्यवतीसूनो श्रुतं परमकारणम्।
तथापि मनसो वृत्तिः संशयं न विमुञ्चति॥ ८

कृष्णेनाराधितः शम्भुस्तपस्तप्त्वातिदारुणम्।
विस्मयोऽयं महाभाग देवदेवेन विष्णुना॥ ९

ऋषिगण बोले—हे सूतजी! आपने यह बहुत ही उत्तम कथा कही, जिसमें भगवान् श्रीकृष्णके सर्वपापविनाशक तथा अलौकिक चरित्रका वर्णन है॥ १॥

हे महाभाग! हे महामते! [आपके द्वारा] विस्तारपूर्वक कहे जा रहे श्रीकृष्णके इस कथानकमें हमें सन्देह हो रहा है॥ २॥

[एक तो] विष्णुके अंशावतार श्रीकृष्णने वनमें जाकर घोर तप किया और शिवकी आराधना की; पुनः जगज्जननी श्रीदेवी भगवती पूर्णाकी अंशस्वरूपा देवी पार्वतीने श्रीकृष्णको जो वरदान दिया; ईश्वर होते हुए भी श्रीकृष्णने शिव तथा पार्वतीकी उपासना क्यों की? क्या श्रीकृष्णमें शिवकी अपेक्षा कोई न्यूनता थी? यही हमारा सन्देह है॥ ३—५॥

सूतजी बोले—हे महाभाग मुनिगण! व्यासजीसे इसका जो कारण मैंने सुना है, उसे आपलोग सुनिये। अब मैं भगवान् श्रीकृष्णके गुणोंसे परिपूर्ण कथा कहता हूँ॥ ६॥

व्यासजीसे यह वृत्तान्त सुनकर प्रतिभावान् राजा जनमेजय और भी अधिक सन्देहमें पड़ गये; तब उन्होंने फिर पूछा॥ ७॥

जनमेजय बोले—हे सत्यवतीतनय व्यासजी! मैंने परमकारणस्वरूपा भगवतीके विषयमें सुना। फिर भी मनकी वृत्ति संशयसे मुक्त नहीं हो पा रही है॥ ८॥

हे महाभाग! मुझे यह महान् विस्मय है कि देवोंके भी देव विष्णुके अंशसे उत्पन्न श्रीकृष्णने अति उग्र तपस्या करके भगवान् शिवकी आराधना की। जो

य: सर्वात्मापि सर्वेश: सर्वसिद्धिप्रद: प्रभु:।
स कथं कृतवान्घोरं तप: प्राकृतवद्धरि:॥ १०

जगत्कर्तुं क्षम: कृष्णस्तथा पालयितुं क्षम:।
संहर्तुमपि कस्मात्स दारुणं तप आचरत्॥ ११

व्यास उवाच

सत्यमुक्तं त्वया राजन् वासुदेवो जनार्दन:।
क्षम: सर्वेषु कार्येषु देवानां दैत्यसूदन:॥ १२

तथापि मानुषं देहमाश्रित: परमेश्वर:।
कृतवान्मानुषान्भावान्वर्णाश्रमसमाश्रितान्॥ १३

वृद्धानां पूजनं चैव गुरुपादाभिवन्दनम्।
ब्राह्मणानां तथा सेवा देवताराधनं तथा॥ १४

शोके शोकाभियोगश्च हर्षे हर्षसमुन्नति:।
दैन्यं नानापवादाश्च स्त्रीषु कामोपसेवनम्॥ १५

काम: क्रोधस्तथा लोभ: काले काले भवन्ति हि।
तथा गुणमये देहे निर्गुणत्वं कथं भवेत्॥ १६

सौबलीशापजाद्दोषात्तथा ब्राह्मणशापजात्।
निधनं यादवानां तु कृष्णदेहस्य मोचनम्॥ १७

हरणं लुण्ठनं तद्वत्तत्पत्नीनां नराधिप।
अर्जुनस्यास्त्रमोक्षे च क्लीबत्वं तस्करेषु च॥ १८

अज्ञत्वं हरणे गेहात्तत्प्रद्युम्नानिरुद्धयो:।
एवं मानुषदेहेऽस्मिन्मानुषं खलु चेष्टितम्॥ १९

विष्णोरंशावतारेऽस्मिन्नारायणमुनेस्तथा ।
अंशजे वासुदेवेऽत्र किं चित्रं शिवसेवने॥ २०

स हि सर्वेश्वरो देवो विष्णोरपि च कारणम्।
सुषुप्तस्थाननाथ: स विष्णुना च प्रपूजित:॥ २१

सभी जीवोंकी आत्मा, सभीके ईश्वर और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ देनेवाले हैं—उन भगवान् कृष्णने भी सामान्य प्राणियोंकी भाँति घोर तप क्यों किया? भगवान् श्रीकृष्ण तो जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ हैं; तब भी उन्होंने इतनी उग्र तपस्या किसलिये की?॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आपने सत्य कहा है। दैत्यदमन भगवान् वासुदेव देवताओंके सभी कार्य करनेमें समर्थ थे; फिर भी उन परमेश्वर श्रीकृष्णने मानव-देह धारण करनेके कारण वर्णाश्रमधर्मसे सम्बन्धित मानवोचित कार्य सम्पादित किये थे। उन्होंने वृद्धजनोंकी पूजा, गुरु-जनोंकी चरण-वन्दना, ब्राह्मणोंकी सेवा तथा देवताओंकी आराधना की। शोकके अवसरपर वे शोकाकुल हुए तथा हर्षकी स्थितिमें हर्षित हुए। [अवसरके अनुसार] उन्होंने दीनताका प्रदर्शन किया, नानाविध लोकापवादोंको सहन किया तथा अपनी स्त्रियोंके साथ लीला-विहार किया। जिस प्रकार मानवमें समय-समयपर काम, क्रोध तथा लोभ होते रहते हैं, उसी प्रकारके भाव उनके भी मनमें जाग्रत् हुए; क्योंकि गुणमय देहमें निर्गुणत्व कैसे हो सकता है?॥ १२—१६॥

सुबलसुता गान्धारी तथा ब्राह्मण अष्टावक्रके शापजनित दोषके कारण यादवोंका विनाश हुआ और भगवान् कृष्णको देह-त्याग करना पड़ा॥ १७॥

हे राजन्! उसी प्रकार उनकी स्त्रियोंका हरण हुआ, उनका धन लूट लिया गया तथा अर्जुन उन लुटेरोंपर अपना अस्त्र चलानेमें पुरुषार्थहीन हो गये॥ १८॥

श्रीकृष्णको अपने घरसे प्रद्युम्न तथा अनिरुद्धके हरणकी जानकारी नहीं हो पायी। इस प्रकार यह मानव-शरीर पाकर उन्होंने साधारण प्राणीकी भाँति सभी मानवीय चेष्टाओंका प्रदर्शन किया॥ १९॥

तब भगवान् विष्णुके अंशावतार तथा साक्षात् नारायणके अंशसे उत्पन्न इन श्रीकृष्णने यदि शिवजीकी उपासना की तो इसमें आश्चर्य क्या?॥ २०॥

वे प्रभु सबके ईश्वर हैं तथा विष्णुकी भी उत्पत्तिके कारण हैं। वे सुषुप्तस्थान (कारण-देह)-के स्वामी हैं। इसीलिये वे विष्णुके द्वारा भी पूजित

तदंशभूताः कृष्णाद्यास्तैः कथं न स पूज्यते।
अकारो भगवान्ब्रह्माप्युकारः स्याद्धरिः स्वयम्॥ २२

मकारो भगवान् रुद्रोऽप्यर्धमात्रा महेश्वरी।
उत्तरोत्तरभावेनाप्युत्तमत्वं स्मृतं बुधैः॥ २३

अतः सर्वेषु शास्त्रेषु देवी सर्वोत्तमा स्मृता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः॥ २४

विष्णोरप्यधिको रुद्रो विष्णुस्तु ब्रह्मणोऽधिकः।
तस्मान्न संशयः कार्यः कृष्णेन शिवपूजने॥ २५

इच्छया ब्रह्मणो वक्त्राद्वरदानार्थमुद्बभौ।
मूलरुद्रस्यांशभूतो रुद्रनामा द्वितीयकः॥ २६

सोऽपि पूज्योऽस्ति सर्वेषां मूलरुद्रस्य का कथा।
देवीतत्त्वस्य सान्निध्यादुत्तमत्वं स्मृतं शिवे॥ २७

अवतारा हरेरेवं प्रभवन्ति युगे युगे।
योगमायाप्रभावेण नात्र कार्या विचारणा॥ २८

या नेत्रपक्ष्मपरिसञ्चलनेन सम्य-
ग्विश्वं सृजत्यवति हन्ति निगूढभावा।
सैषा करोति सततं द्रुहिणाच्युतेशान्
नानावतारकलने परिभूयमानान्॥ २९

सूतीगृहाद् व्रजनमप्यनया नियुक्तं
संगोपितश्च भवने पशुपालराज्ञः।
सम्प्रापितश्च मथुरां विनियोजितश्च
श्रीद्वारकाप्रणयने ननु भीतचित्तः॥ ३०

हैं। कृष्ण आदि उन्हीं विष्णुके अंशसे अवतीर्ण हैं तब वे शिवकी पूजा क्यों नहीं करेंगे? ॐकारका 'अ' ब्रह्माका रूप है, 'उ' विष्णुका रूप है, 'म्' भगवान् शिवका रूप है और अर्धमात्रा (चन्द्रबिन्दु) भगवती महेश्वरीका रूप है। ये उत्तरोत्तर क्रमसे एक-दूसरेसे उत्तम हैं—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ २१—२३॥

अतएव समस्त शास्त्रोंमें देवी सर्वोत्तम मानी गयी हैं। वे भगवती बिन्दुरूप नित्य अर्धमात्रामें स्थित हैं, जो [अर्धमात्रा] विशेषरूपसे उच्चारित नहीं की जा सकती॥ २४॥

ब्रह्माजीसे भी बढ़कर विष्णु तथा विष्णुसे भी बढ़कर भगवान् शिव हैं। अतः श्रीकृष्णद्वारा शिवकी आराधनामें किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २५॥

सृजन-कार्यके लिये जब ब्रह्माजीने शिवकी उपासना की तब इच्छापूर्वक उन्हें वरदान देनेके लिये शिवजी उन्हींके मुखसे प्रकट हो गये, जो मूलरुद्र कहलाये। पुनः उन मूलरुद्रके अंशसे द्वितीय रुद्र उत्पन्न हुए। वे रुद्रदेव भी सबके पूजनीय हैं तो फिर मूलरुद्रके विषयमें कहना ही क्या? देवीतत्त्वके सांनिध्यमें रहनेके कारण ही शिवजीमें उत्तमता कही गयी है॥ २६-२७॥

भगवती योगमायाके ही प्रभावसे प्रत्येक युगमें भगवान् विष्णुके विभिन्न अवतार होते रहते हैं; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८॥

अत्यन्त निगूढ रहस्योंवाली जो भगवती अप्रत्यक्षरूपसे नेत्रकी पलक झँपनेमात्रमें भलीभाँति जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार कर देती हैं; वे ही ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवको अनेकविध रूपोंमें अवतार ग्रहण करनेमें निरन्तर दुःखोंसे व्याकुल करती रहती हैं॥ २९॥

इन्हीं योगमायाके द्वारा श्रीकृष्णको प्रसूतिगृहसे निकालकर गोपराज नन्दके भवनमें पहुँचाकर उनकी रक्षा की गयी। वे योगमाया ही कंसके विनाशार्थ श्रीकृष्णको मथुरा ले गयीं। जरासन्धसे अत्यन्त भयाक्रान्त चित्तवाले श्रीकृष्णको द्वारका बनानेकी प्रेरणा भी उन्हीं भगवतीने दी॥ ३०॥

निर्माय षोडशसहस्रशतार्धकास्ता
नार्योऽष्टसम्मततराः स्वकलासमुत्थाः।
तासां विलासवशगं तु विधाय कामं
दासीकृतो हि भगवाननयाप्यनन्तः॥ ३१

एकापि बन्धनविधौ युवती समर्था
पुंसो यथा सुदृढलोहमयं तु दाम।
किं नाम षोडशसहस्रशतार्धकाश्च
तं स्वीकृतं शुकमिवातिनिबन्धयन्ति॥ ३२

सात्राजितीवशगतेन मुदान्वितेन
प्राप्तं सुरेन्द्रभवनं हरिणा तदानीम्।
कृत्वा मृधं मघवता विहृतस्तरूणा-
मीशः प्रियासदनभूषणतां य आप॥ ३३

यो भीमजां हि हृतवाञ्छिशुपालकादी-
ञ्जित्वा विधिं निखिलधर्मकृतो विधित्सुः।
जग्राह तां निजबलेन च धर्मपत्नीं
कोऽसौ विधिः परकलत्रहृतौ विजातः॥ ३४

अहङ्कारवशः प्राणी करोति च शुभाशुभम्।
विमूढो मोहजालेन तत्कृतेनातिपातिना॥ ३५

अहङ्काराद्धि सञ्जातमिदं स्थावरजङ्गमम्।
मूलाद्धरिहरादीनामुग्रात्प्रकृतिसम्भवात्॥ ३६

अहङ्कारपरित्यक्तो यदा भवति पद्मजः।
तदा विमुक्तो भवति नोचेत्संसारकर्मकृत्॥ ३७

तन्मुक्तस्तु विमुक्तो हि बद्धस्तद्वशतां गतः।
न नारी न धनं गेहं न पुत्रा न सहोदराः॥ ३८

उन्होंने ही अपनी कला-शक्तिसे सोलह हजार पचास रानियों तथा आठ पटरानियोंकी रचना करके पुनः भगवान् श्रीकृष्णको उनके विलासके वशीभूत करके उन अनन्त शक्तिसम्पन्न श्रीकृष्णको उनका वशवर्ती बना दिया॥ ३१॥

केवल एक ही युवती अपने लौहमय सुदृढ़ पाशमें पुरुषको बाँध सकनेमें समर्थ है तो फिर जिसकी सोलह हजार पचास भार्याएँ हों उसके विषयमें क्या कहना? वे सब तो उस पुरुषको पालित तोतेकी भाँति अपनी इच्छाके अनुरूप नियन्त्रित कर ही सकती हैं॥ ३२॥

सत्राजित्की पुत्री सत्यभामाके वशीभूत श्रीकृष्ण उसके कहनेपर प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रके भवनमें पहुँच गये। वहाँपर इन्द्रके साथ युद्ध करके उन्होंने तरुराज कल्पवृक्ष छीन लिया और उससे अपनी प्रिया सत्यभामाके महलको सुशोभित किया॥ ३३॥

समस्त धार्मिक अनुष्ठानोंको विधिपूर्वक करनेकी इच्छावाले भगवान् श्रीकृष्णने शिशुपाल आदि वीरोंको जीतकर [पूर्वतः वाग्दत्ता] रुक्मिणीका हरण कर लिया और अपने बलके प्रभावसे उसे अपनी धर्मपत्नीके रूपमें ग्रहण किया। किसी दूसरेकी भार्या हरण करनेकी यह कौन-सी विधि निर्मित हो गयी?॥ ३४॥

अत्यन्त दारुण अधःपतन करानेवाले मोहजालसे विमोहित तथा अहंकारके वशीभूत मनुष्य नानाविध शुभ तथा अशुभ कार्य करता है॥ ३५॥

मूलप्रकृतिजन्य उग्र अहंकारसे ही इस स्थावर-जंगमात्मक जगत्की उत्पत्ति हुई है और इसीसे विष्णु, शिव आदि देवोंका भी प्रादुर्भाव हुआ है॥ ३६॥

जब ब्रह्माजी पूर्णरूपसे अहंकारसे रहित होते हैं, तब वे सृष्टिके निर्माण-कार्यसे मुक्त हो जाते हैं; अन्यथा अहंकारके वशवर्ती होकर वे सृष्टि-रचनामें प्रवृत्त रहते हैं॥ ३७॥

उस अहंकारसे मुक्त प्राणी सांसारिक बन्धनसे छूट जाता है और उसके वशीभूत हुआ प्राणी सांसारिक बन्धनमें पड़ जाता है। हे राजन्! स्त्री, धन, घर, पुत्र तथा सहोदर भाई—ये सब बन्धनके मूल

बन्धनं प्राणिनां राजन्नहङ्कारस्तु बन्धकः।
अहं कर्ता मया चेदं कृतं कार्यं बलीयसा॥ ३९

करिष्यामि करोम्येवं स्वयं बध्नाति प्राणभृत्।
कारणेन विना कार्यं न सम्भवति कर्हिचित्॥ ४०

यथा न दृश्यते जातो मृत्पिण्डेन विना घटः।
विष्णुः पालयिता विश्वस्याहङ्कारसमन्वितः॥ ४१

अन्यथा सर्वदा चिन्ताम्बुधौ मग्नः कथं भवेत्।
अहङ्कारविमुक्तस्तु यदा भवति मानवः॥ ४२

अवतारप्रवाहेषु कथं मज्जेच्छुभाशयः।
मोहमूलमहङ्कारः संसारस्तत्समुद्भवः॥ ४३

अहङ्कारविहीनानां न मोहो न च संसृतिः।
त्रिविधः पुरुषः प्रोक्तः सात्त्विको राजसस्तथा॥ ४४

तामसस्तु महाराज ब्रह्मविष्णुशिवादिषु।
त्रिविधस्त्रिषु राजेन्द्र काजेशादिषु सर्वदा॥ ४५

अहङ्कारः सदा प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
अहङ्कारेण तेनैव बद्धा एते न संशयः॥ ४६

मायाविमोहिता मन्दाः प्रवदन्ति मनीषिणः।
करोति स्वेच्छया विष्णुरवताराननेकशः॥ ४७

मन्दोऽपि दुःखगहने गर्भवासेऽतिसङ्कटे।
न करोति मतिं विद्वान्कथं कुर्यात्स चक्रभृत्॥ ४८

कारण नहीं हैं, अपितु अहंकार ही प्राणियोंके लिये बन्धनकारी वस्तु है। मैं ही कर्ता हूँ, यह कार्य मैंने अपने ही सामर्थ्यसे पूरा किया है, यह कार्य पूरा कर लूँगा, यह कार्य अभी कर लेता हूँ—इन भावनाओंके कारण प्राणी स्वयं बँधता चला जाता है। कोई भी कार्य बिना कारणके कदापि नहीं होता है, जैसे मिट्टीके पिण्डके बिना घड़ा न तो बन सकता है, न दिखायी पड़ सकता है॥ ३८—४०$\frac{१}{२}$ ॥

जब भगवान् विष्णु अहंकारके वशवर्ती होते हैं तभी वे विश्वका पालन करनेमें समर्थ होते हैं। नहीं तो वे सदा [सृष्टिपालनके] चिन्तारूपी समुद्रमें डूबे क्यों रहते?॥ ४१$\frac{१}{२}$ ॥

अहंकारमुक्त होकर यदि वे मनुष्यरूप ग्रहण करें तो निर्मलचित्त हुए वे अवतार-प्रवाहमें होनेवाले (सुख-दुःखादि)-में कैसे डूबें-उतराएँ?॥ ४२$\frac{१}{२}$ ॥

अहंकार ही अज्ञानका मूल कारण है तथा उसीसे इस जगत्की उत्पत्ति हुई है। अहंकारसे विहीन प्राणीको अज्ञानता तथा सांसारिक बन्धन—दोनों ही नहीं होते॥ ४३$\frac{१}{२}$ ॥

हे महाराज! इस जगत्में सत्त्वगुणी, रजोगुणी तथा तमोगुणी—ये तीन प्रकारके पुरुष कहे गये हैं। हे राजेन्द्र! सृष्टि, पालन तथा संहारकार्य सम्पन्न करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तीनों देवताओंमें भी ये तीन गुण सदा विद्यमान रहते हैं। तत्त्वदर्शी मुनियोंने अहंकारको ही जगत्की उत्पत्तिका परम कारण बताया है। अतएव इसमें सन्देह नहीं है कि ये ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश भी उसी अहंकारसे आबद्ध हैं॥ ४४—४६ ॥

मायासे विमोहित मन्द बुद्धिवाले कुछ मनीषी कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे नानाविध अवतार ग्रहण करते हैं, किंतु जब कोई मन्दमति प्राणी भी अतिशय दुःखप्रद गर्भमें निवास करना पसन्द नहीं करता तो फिर सर्वविद्या-सम्पन्न वे चक्रधारी भगवान् विष्णु अवतार ग्रहण करना क्यों चाहेंगे?॥ ४७-४८ ॥

कौसल्यादेवकीगर्भे विष्ठामलसमाकुले।
स्वेच्छया प्रवदन्त्यद्धा गतो हि मधुसूदनः॥ ४९

वैकुण्ठसदनं त्यक्त्वा गर्भवासे सुखं नु किम्।
चिन्ताकोटिसमुत्थाने दुःखदे विषसम्मिते॥ ५०

तपस्तप्त्वा क्रतून्कृत्वा दत्त्वा दानान्यनेकशः।
न वाञ्छन्ति यतो लोका गर्भवासं सुदुःखदम्॥ ५१

स कथं भगवान्विष्णुः स्ववशश्चेज्जनार्दनः।
गर्भवासरुचिर्भूयाद्भवेत्स्ववशता यदि॥ ५२

जानीहि त्वं महाराज योगमायावशे जगत्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं देवमानुषतिर्यगम्॥ ५३

मायातन्त्रीनिबद्धा ये ब्रह्मविष्णुहरादयः।
भ्रमन्ति बन्धमायान्ति लीलया चोर्णनाभवत्॥ ५४

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् विष्णु अपनी इच्छासे कौसल्या तथा देवकीके मल-मूत्रसे परिपूर्ण गर्भमें आये थे। किंतु वैकुण्ठ-भवन छोड़कर करोड़ों चिन्ताओंके आगार विषतुल्य दुःखदायक गर्भवासमें आनेसे उन्हें कौन-सा सुख प्राप्त हुआ होगा?॥ ४९-५०॥

जब साधारण प्राणी भी तपस्या करके, विविध प्रकारके यज्ञ सम्पन्न करके तथा नाना प्रकारके दान देकर अत्यन्त दुःखद गर्भवास नहीं चाहते तब यदि भगवान् विष्णु स्वतन्त्र होते तो उस गर्भवासको क्यों चाहते? यदि वे अपने वशमें होते तो गर्भवासके प्रति उनकी रुचि क्यों होती?॥ ५१-५२॥

अतः हे महाराज! आप यह जान लीजिये कि ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण जगत्, सभी देव, मानव तथा पशु-पक्षी योगमाया आदिशक्ति भगवतीके वशमें हैं॥ ५३॥

मकड़ीके तन्तुजालमें फँसे कीटकी भाँति ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदि ये सभी देव उन भगवतीकी लीलासे मायारूपी बन्धनमें पड़ जाते हैं और आवागमनके चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
योगमायाप्रभाववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

महिषासुरके जन्म, तप और वरदान-प्राप्तिकी कथा

राजोवाच

योगेश्वर्याः प्रभावोऽयं कथितश्चातिविस्तरात्।
ब्रूहि तच्चरितं स्वामिञ्छ्रोतुं कौतूहलं मम॥ १

महादेवीप्रभावं वै श्रोतुं को नाभिवाञ्छति।
यो जानाति जगत्सर्वं तदुत्पन्नं चराचरम्॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि विस्तरेण महामते।
श्रद्दधानाय शान्ताय न ब्रूयात्स तु मन्दधीः॥ ३

राजा बोले—हे स्वामिन्! आपने भगवती योगेश्वरीका यह प्रभाव विस्तारपूर्वक कहा। अब आप उन महामायाका चरित्र कहिये, उसे सुननेकी मेरी बड़ी उत्सुकता है। जो मनुष्य इस बातको भलीभाँति जानता है कि यह स्थावर-जंगमात्मक संसार उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, वह उन महादेवीके प्रभावको क्यों नहीं सुनना चाहेगा?॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं विस्तारके साथ वर्णन करूँगा। हे महामते! जो वक्ता श्रद्धालु एवं शान्तचित्त श्रोतासे भगवतीकी कथा नहीं कहता, वह तो मन्द बुद्धिका होता है॥ ३॥

पुरा युद्धमभूद् घोरं देवदानवसेनयोः।
पृथिव्यां पृथिवीपाल महिषाख्ये महीपतौ॥ ४

महिषो नाम राजेन्द्र चकार तप उत्तमम्।
गत्वा हेमगिरौ चोग्रं देवविस्मयकारकम्॥ ५

वर्षाणामयुतं पूर्णं चिन्तयन्हृदि देवताम्।
तस्य तुष्टो महाराज ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ६

तत्रागत्याब्रवीद्वाक्यं हंसारूढश्चतुर्मुखः।
वरं वरय धर्मात्मन्ददामि तव वाञ्छितम्॥ ७

महिष उवाच

अमरत्वं देवदेव वाञ्छामि द्रुहिण प्रभो।
यथा मृत्युभयं न स्यात्तथा कुरु पितामह॥ ८

ब्रह्मोवाच

उत्पन्नस्य ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
सर्वथा मरणोत्पत्ती सर्वेषां प्राणिनां किल॥ ९

नाशः कालेन सर्वेषां प्राणिनां दैत्यपुङ्गव।
महामहीधराणां च समुद्राणां च सर्वथा॥ १०

एकं स्थानं परित्यज्य मरणस्य महीपते।
प्रब्रूहि तं वरं साधो यस्ते मनसि वर्तते॥ ११

महिष उवाच

न देवान्मानुषाद्दैत्यान्मरणं मे पितामह।
पुरुषान्न च मे मृत्युर्योषा मां का हनिष्यति॥ १२

तस्मान्मे मरणं नूनं कामिन्याः कुरु पद्मज।
अबला हन्त मां हन्तुं कथं शक्ता भविष्यति॥ १३

ब्रह्मोवाच

यदा कदापि दैत्येन्द्र नार्यास्ते मरणं ध्रुवम्।
न नरेभ्यो महाभाग मृतिस्ते महिषासुर॥ १४

हे राजन्! प्राचीन कालकी बात है, जिस समय भूतलपर महिषासुर नामक राजा राज्य करता था, उस समय देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंमें भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ४॥

हे राजेन्द्र! उन्हीं दिनों सुमेरुपर्वतपर जाकर उस महिष नामक दानवने हृदयमें अपने इष्ट देवताका ध्यान करते हुए पूरे दस हजार वर्षोंतक देवताओंतकको चकित कर देनेवाला उत्तम तथा कठोर तप किया॥ ५$\frac{१}{२}$ ॥

हे महाराज! उसकी तपस्यासे लोकपितामह ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये, अतः हंसपर सवार होकर वे चतुर्मुख ब्रह्मा वहाँ प्रकट होकर उससे बोले—हे धर्मात्मन्! वर माँगो, मैं तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण करूँगा॥ ६-७॥

महिष बोला—हे देवदेव! हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! मैं अमरत्व चाहता हूँ। हे पितामह! आप ऐसा वर दीजिये, जिससे मुझे मृत्युका भय न रहे॥ ८॥

ब्रह्माजी बोले—[इस जगत्‌में] उत्पन्न हुएका मरना और मरे हुएका जन्म लेना निश्चित है। समस्त जीवोंका जन्म और मरण अनिवार्यरूपसे होता रहता है। हे दैत्यप्रवर! समयानुसार सम्पूर्ण प्राणियोंका नाश हो जाता है, यहाँतक कि बड़े-बड़े पर्वतों एवं समुद्रोंका भी नाश हो जाता है॥ ९-१०॥

अतः हे राजन्! मृत्युसम्बन्धी अपनी यह धारणा छोड़कर हे साधो! दूसरा जो भी वर तुम्हारे मनमें हो, वह माँग लो॥ ११॥

महिष बोला—हे पितामह! देव, दानव और मानव—इनमें किसी भी पुरुषसे मेरी मृत्यु न हो। इस प्रकार जब पुरुषसे मेरी मृत्यु नहीं होगी, तब भला कौन-सी स्त्री मुझे मार सकेगी? अतएव हे कमलयोने! मेरी मृत्यु किसी स्त्रीके हाथ होनेका वरदान दीजिये; क्योंकि कोई अबला भला मुझे मारनेमें कैसे समर्थ हो सकेगी?॥ १२-१३॥

ब्रह्माने कहा—हे दानवेन्द्र! जब भी तुम्हारी मृत्यु होगी किसी स्त्रीसे ही होगी। हे महाभाग महिषासुर! पुरुषसे तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी॥ १४॥

व्यास उवाच

एवं दत्त्वा वरं तस्मै ययौ ब्रह्मा निजालयम्।
सोऽपि दैत्यवरः प्राप निजं स्थानं मुदान्वितः॥ १५

राजोवाच

महिषः कस्य पुत्रोऽसौ कथं जातो महाबली।
कथं च माहिषं रूपं प्राप्तं तेन महात्मना॥ १६

व्यास उवाच

दनोः पुत्रौ महाराज विख्यातौ क्षितिमण्डले।
रम्भश्चैव करम्भश्च द्वावास्तां दानवोत्तमौ॥ १७

तावपुत्रौ महाराज पुत्रार्थं तेपतुस्तपः।
बहून्वर्षगणान्कामं पुण्ये पञ्चनदे जले॥ १८

करम्भस्तु जले मग्नश्चकार परमं तपः।
वृक्षं रसालवटं प्राप्य रम्भोऽग्निमसेवत॥ १९

पञ्चाग्निसाधनासक्तः स रम्भस्तु यदाभवत्।
ज्ञात्वा शचीपतिर्दुःखमुद्ययौ दानवौ प्रति॥ २०

गत्वा पञ्चनदे तत्र ग्राहरूपं चकार ह।
वासवस्तु करम्भं तं तदा जग्राह पादयोः॥ २१

निजघान च तं दुष्टं करम्भं वृत्रसूदनः।
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रम्भः कोपं परं गतः॥ २२

स्वशीर्षं पावके होतुमैच्छच्छित्त्वा करेण ह।
केशपाशे गृहीत्वाशु वामेन क्रोधसंयुतः॥ २३

दक्षिणेन करेणोग्रं गृहीत्वा खड्गमुत्तमम्।
छिनत्ति शीर्षं तत्तावद्वह्निना प्रतिबोधितः॥ २४

उक्तश्च दैत्य मूर्खोऽसि स्वशीर्षं छेत्तुमिच्छसि।
आत्महत्यातिदुःसाध्या कथं त्वं कर्तुमुद्यतः॥ २५

वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते।
मा म्रियस्व मृतेनाद्य किं ते कार्यं भविष्यति॥ २६

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार उसे वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकको चले गये और वह दैत्यश्रेष्ठ महिषासुर भी प्रसन्न होकर अपने घर लौट गया॥ १५॥

राजा बोले—वह महिषासुर किसका पुत्र था, वह महान् बलशाली कैसे हो गया था और उस महान् दैत्यको महिषका रूप कैसे मिला था?॥ १६॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! दनुके रम्भ और करम्भ—नामक दो पुत्र थे। वे दोनों दानवश्रेष्ठ भूमण्डलपर बहुत प्रसिद्ध थे॥ १७॥

हे महाराज! वे दोनों सन्तानहीन थे, अतः वे पुत्र-प्राप्तिके लिये तपस्या करने लगे। उनमें करम्भने पवित्र पंचनदके जलमें डूबकर अनेक वर्षोंतक कठोर तप किया और रम्भ दूधवाले वटवृक्षके नीचे जाकर पंचाग्निका सेवन करने लगा॥ १८-१९॥

बहुत कालतक जब रम्भ पंचाग्नि-साधना करता रह गया, तब यह जानकर इन्द्र बहुत चिन्तित हुए और वे उन दोनों दानवोंके पास पहुँच गये॥ २०॥

पंचनदके जलमें प्रविष्ट होकर इन्द्रने ग्राहका रूप धारण कर लिया और उस करम्भको दोनों पैरोंसे पकड़ लिया। इस प्रकार वृत्रासुरका वध करनेवाले इन्द्रने उस करम्भको मार डाला॥ २१½॥

तब अपने भाईका वध सुनकर रम्भ अत्यधिक कुपित हुआ। उसने अपने हाथसे अपना सिर काटकर उसे अग्निमें होम कर देनेकी इच्छा की। तदुपरान्त वह तत्काल अत्यन्त क्रोधके साथ बायें हाथसे अपने केशपाश पकड़कर दाहिने हाथमें तीक्ष्ण तलवार लेकर जैसे ही अपना सिर काटनेको उद्यत हुआ, तभी अग्निदेव [प्रकट होकर] उसे समझाने लगे॥ २२—२४॥

[अग्निदेव उससे] बोले—हे दैत्य! तुम अपना ही सिर काटना चाहते हो; तुम तो बड़े मूर्ख हो। आत्महत्या अत्यन्त ही दुःसाध्य कर्म है। इसे करनेके लिये तुम कैसे तैयार हो गये?॥ २५॥

तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो हो, वह वरदान माँग लो। मरो मत, मरनेसे तुम्हारा कौन-सा कार्य हो जायगा?॥ २६॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं रम्भः पावकस्य सुभाषितम्।
ततोऽब्रवीद्वचो रम्भस्त्यक्त्वा केशकलापकम्॥ २७

यदि तुष्टोऽसि देवेश देहि मे वाञ्छितं वरम्।
त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्नः परबलार्दनः॥ २८

अजेयः सर्वथा स स्याद्देवदानवमानवैः।
कामरूपी महावीर्यः सर्वलोकाभिवन्दितः॥ २९

पावकस्तं तथेत्याह भविष्यति तवेप्सितम्।
पुत्रस्तव महाभाग मरणाद्विरमाधुना॥ ३०

यस्यां चित्तं तु रम्भ त्वं प्रमदायां करिष्यसि।
तस्यां पुत्रो महाभाग भविष्यति बलाधिकः॥ ३१

व्यास उवाच

इत्युक्तो वह्निना रम्भो वचनं चित्तरञ्जनम्।
श्रुत्वा प्रणम्य प्रययौ वह्निं तं दानवोत्तमः॥ ३२

यक्षैः परिवृतं स्थानं रमणीयं श्रियान्वितम्।
दृष्ट्वा चक्रे तदा भावं महिष्यां दानवोत्तमः॥ ३३

मत्तायां रूपपूर्णायां विहायान्याञ्च योषितम्।
सा समागाच्च तरसा कामयन्ती मुदान्विता॥ ३४

रम्भोऽपि गमनं चक्रे भवितव्यप्रणोदितः।
सा तु गर्भवती जाता महिषी तस्य वीर्यतः॥ ३५

तां गृहीत्वाथ पातालं प्रविवेश मनोहरम्।
महिषेभ्यश्च तां रक्षन्प्रियामनुमतां किल॥ ३६

कदाचिन्महिषश्चान्यः कामार्तस्तामुपाद्रवत्।
स्वयमागत्य तं हन्तुं दानवः समुपाद्रवत्॥ ३७

व्यासजी बोले—अग्निदेवका सुन्दर वचन सुनकर रम्भने अपना केशपाश छोड़कर कहा—हे देवेश! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वांछित वरदान दीजिये कि मुझे तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला तथा शत्रु-सेनाका विनाश करनेवाला पुत्र प्राप्त हो। वह देवता, दानव तथा मनुष्य—इन सभीसे सर्वथा अजेय हो। वह महापराक्रमी, अपने इच्छानुसार कोई भी रूप धारण करनेमें समर्थ तथा सभी लोगोंके लिये वन्दनीय हो॥ २७—२९॥

अग्निदेवने उससे कहा कि जैसी तुम्हारी अभिलाषा है, वैसा ही होगा। हे महाभाग! तुम्हें वैसा ही पुत्र प्राप्त होगा, किंतु अब तुम मरनेका विचार छोड़ दो॥ ३०॥

हे महाभाग! हे रम्भ! जिस भी स्त्रीके प्रति तुम्हारे मनमें आसक्ति-भाव आ जायगा, उसीसे तुम्हें वह महाबलशाली पुत्र उत्पन्न होगा॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अग्निदेवने उससे ऐसा कहा। तब उनका मनमोहक वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ रम्भ अग्निको प्रणाम करके वहाँसे चला गया और एक ऐसे स्थानपर जा पहुँचा जो रमणीक, समृद्धियोंसे सम्पन्न तथा यक्षोंसे घिरा हुआ था॥ ३२$\frac{१}{२}$॥

वहाँ एक रूपवती तथा मदमत्त महिषीको देखकर वह दानवश्रेष्ठ किसी अन्य स्त्रीको छोड़कर उसीपर आसक्त हो गया। वह महिषी भी उसे प्रसन्नतापूर्वक चाहती हुई तत्काल उसके साथ रमणके लिये तैयार हो गयी। होनहारसे प्रेरित होकर रम्भने उसके साथ समागम किया और उसके वीर्यसे वह महिषी गर्भवती हो गयी॥ ३३—३५॥

तत्पश्चात् उसे अपने साथ लेकर रम्भने मनोहर पाताललोकमें प्रवेश किया और वहाँपर महिषोंसे अपने मनोनुकूल उस प्रियतमाकी रक्षा करता हुआ वह सुखपूर्वक रहने लगा॥ ३६॥

किसी दिन एक दूसरे महिषने कामासक्त होकर उस महिषीको दौड़ा लिया। यह देखकर दानव रम्भ स्वयं वहाँ आकर उसे मारनेके लिये दौड़ा और उसके पास पहुँचकर

स्वरक्षार्थं समागत्य महिषं समताडयत्।
सोऽपि तं निजघानाशु शृङ्गाभ्यां काममोहितः॥ ३८

ताडितस्तेन तीक्ष्णाभ्यां शृङ्गाभ्यां हृदये भृशम्।
भूमौ पपात तरसा ममार च विमूर्च्छितः॥ ३९

मृते भर्तरि सा दीना भयार्ता विद्रुता भृशम्।
सा वेगात्तं वटं प्राप्य यक्षाणां शरणं गता॥ ४०

पृष्ठतस्तु गतस्तत्र महिषः कामपीडितः।
कामयानस्तु तां कामी बलवीर्यमदोद्धतः॥ ४१

रुदती सा भृशं दीना दृष्टा यक्षैर्भयातुरा।
धावमानं च तं वीक्ष्य यक्षास्त्रातुं समाययुः॥ ४२

युद्धं समभवद् घोरं यक्षाणां च हयारिणा।
शरेण ताडितस्तूर्णं पपात धरणीतले॥ ४३

मृतं रम्भं समानीय यक्षास्ते परमं प्रियम्।
चितायां रोपयामासुस्तस्य देहस्य शुद्धये॥ ४४

महिषी सा पतिं दृष्ट्वा चितायां रोपितं तदा।
प्रवेष्टुं सा मतिं चक्रे पतिना सह पावकम्॥ ४५

वार्यमाणापि यक्षैः सा प्रविवेश हुताशनम्।
ज्वालामालाकुलं साध्वी पतिमादाय वल्लभम्॥ ४६

महिषस्तु चितामध्यात्समुत्तस्थौ महाबलः।
रम्भोऽप्यन्यद्वपुः कृत्वा निःसृतः पुत्रवत्सलः॥ ४७

रक्तबीजोऽप्यसौ जातो महिषोऽपि महाबलः।
अभिषिक्तस्तु राज्येऽसौ हयारिरसुरोत्तमैः॥ ४८

एवं स महिषो जातो रक्तबीजश्च वीर्यवान्।
अवध्यस्तु सुरैर्दैत्यैर्मानवैश्च नृपोत्तम॥ ४९

अपनी रक्षाके लिये रम्भने उस महिषपर कठोर प्रहार किया। तब उस कामातुर महिषने भी अपनी सींगोंसे रम्भपर शीघ्रतासे प्रहार करना आरम्भ कर दिया॥ ३७-३८॥

उस महिषके द्वारा तीक्ष्ण सींगोंसे हृदयस्थलमें गहरी चोट पहुँचानेके कारण रम्भ शीघ्र ही मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा और मर गया॥ ३९॥

पतिके मर जानेपर अत्यन्त शोकाकुल तथा भयग्रस्त वह महिषी वहाँसे भाग चली। वेगपूर्वक भागती हुई वह एक वटवृक्षके नीचे पहुँचकर वहाँ रहनेवाले यक्षोंकी शरणमें जा पहुँची॥ ४०॥

वह कामार्त और बल तथा वीर्यसे मदोन्मत्त कामासक्त महिष भी उसकी कामना करता हुआ उसके पीछे-पीछे गया॥ ४१॥

यक्षोंने उस महिषसे पीड़ित तथा भयभीत होकर रोती हुई उस महिषीको देख लिया और महिषको दौड़ता हुआ देखकर उस महिषीकी रक्षाके लिये वे यक्ष वहाँ आ गये॥ ४२॥

अब उस महिषके साथ यक्षोंका विकराल युद्ध होने लगा और अन्तमें बाणसे आहत होकर वह महिष शीघ्र ही भूमिपर गिर पड़ा॥ ४३॥

तदनन्तर उन यक्षोंने परम प्रिय मृत रम्भको लाकर उसकी देह-शुद्धिके लिये उसे चितापर रख दिया। तब उस महिषीने अपने पतिको चितापर रखा हुआ देखकर उसके साथ स्वयं भी अग्निमें प्रवेश करनेका निश्चय किया॥ ४४-४५॥

यक्षोंके मना करनेपर भी अपने प्रिय पतिके साथ वह महिषी विकराल लपटोंवाली अग्निमें प्रविष्ट हो गयी॥ ४६॥

उसी समय एक महाबली महिष चिताके मध्यसे प्रकट हो गया तथा अन्य शरीर धारण करके वह पुत्रप्रेमी रम्भ भी चिताके मध्यभागसे निकल पड़ा। इस प्रकार रक्तबीज तथा महान् बलशाली महिषासुर उत्पन्न हुए। तदनन्तर श्रेष्ठ दानवोंने उस महिषासुरका राज्याभिषेक कर दिया॥ ४७-४८॥

हे नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार महिषासुर तथा पराक्रमी रक्तबीज उत्पन्न हुए। वह महिषासुर देवताओं, दानवों तथा मनुष्योंसे अवध्य था॥ ४९॥

इत्येतत्कथितं राजन् जन्म तस्य महात्मनः।
वरप्रदानञ्च तथा प्रोक्तं सर्वं सविस्तरम्॥ ५०

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपको उस महान् महिषासुरके जन्म तथा उससे सम्बन्धित वरदान-प्राप्तिका प्रसंग विस्तारपूर्वक बता दिया॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरोत्पत्तिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महिषासुरका दूत भेजकर इन्द्रको स्वर्ग खाली करनेका आदेश देना, दूतद्वारा इन्द्रका युद्धहेतु आमन्त्रण प्राप्तकर महिषासुरका दानववीरोंको युद्धके लिये सुसज्जित होनेका आदेश देना

व्यास उवाच

एवं स महिषो नाम दानवो वरदर्पितः।
प्राप्य राज्यं जगत्सर्वं वशे चक्रे महाबलः॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरदान पानेके कारण अभिमानयुक्त उस महाबली दानव महिषासुरने राज्य प्राप्त करके सम्पूर्ण जगत्‌को अपने अधीन कर लिया॥ १॥

पृथिवीं पालयामास सागरान्तां भुजार्जिताम्।
एकच्छत्रां निरातङ्कां वैरिवर्गविवर्जिताम्॥ २

उसने समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीको अपने बाहुबलसे जीतकर शत्रु-समुदायसे रहित कर दिया तथा वह निर्भय होकर एकच्छत्र राज्य करने लगा॥ २॥

सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य महावीर्यो मदोत्कटः।
धनाध्यक्षस्तथा ताम्रः सेनायुतसमावृतः॥ ३

उसका सेनाध्यक्ष चिक्षुर महापराक्रमी एवं मदमत्त था। ताम्र उसका कोषाध्यक्ष था, जिसके पास दस हजार सैनिक थे॥ ३॥

असिलोमा तथोदर्को बिडालाख्यश्च बाष्कलः।
त्रिनेत्रोऽथ तथा कालबन्धको बलदर्पितः॥ ४

एते सैन्ययुताः सर्वे दानवा मेदिनीं तदा।
आवृत्य संस्थिताः काममृद्धां सागरमेखलाम्॥ ५

उस समय असिलोमा, उदर्क, बिडालाख्य, बाष्कल, त्रिनेत्र तथा बलोन्मत्त कालबन्धक—इन दानवोंने अपनी-अपनी विशाल सेनाओंके साथ सागरान्त समृद्धिशालिनी पृथ्वीको घेरकर राज्य स्थापित किया॥ ४-५॥

करदाश्च कृताः सर्वे भूमिपालाः पुरातनाः।
निहता ये बलोदग्राः क्षात्रधर्मव्यवस्थिताः॥ ६

जो पुराने नरेश थे, वे भी अब महिषासुरको कर देने लगे। उनमें भी जो स्वाभिमानी थे और क्षात्र-धर्मानुसार जिन्होंने उसका सामना किया, वे मार डाले गये॥ ६॥

ब्राह्मणा वशगा जाता यज्ञभागसमर्पकाः।
महिषस्य महाराज निखिले क्षितिमण्डले॥ ७

हे महाराज! सम्पूर्ण भूमण्डलपर ब्राह्मणलोग महिषासुरके अधीन हो गये और उसे यज्ञभाग देने लगे॥ ७॥

एकातपत्रं तद्राज्यं कृत्वा स महिषासुरः।
स्वर्गं जेतुं मनश्चक्रे वरदानेन गर्वितः॥ ८

इस प्रकार एकच्छत्र राज्य स्थापित करके वरदानसे गर्वित वह महिषासुर स्वर्गपर भी विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा करने लगा॥ ८॥

प्रणिधिं प्रेषयामास हयारिस्तु शचीपतिम्।
स सन्देशहरं शीघ्रमाहूयोवाच दैत्यराट्॥ ९

गच्छ वीर महाबाहो दूतत्वं कुरु मेऽनघ।
ब्रूहि शक्रं दिवं गत्वा निःशङ्कः सुरसन्निधौ॥ १०

मुञ्च स्वर्गं सहस्राक्ष यथेष्टं गच्छ मा चिरम्।
सेवां वा कुरु देवेश महिषस्य महात्मनः॥ ११

स त्वां संरक्षयेन्नूनं राजा शरणमागतम्।
तस्मात्त्वं शरणं याहि महिषस्य शचीपते॥ १२

नोचेद्वज्रं गृहाणाशु युद्धाय बलसूदन।
पूर्वैर्जितोऽसि चास्माकं जानामि तव पौरुषम्॥ १३

अहल्याजार विज्ञातं बलं ते सुरसङ्घप।
युध्यस्व व्रज वा कामं यत्र ते रमते मनः॥ १४

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य शक्रः क्रोधसमन्वितः।
उवाच तं नृपश्रेष्ठ स्मितपूर्वं वचस्तदा॥ १५

न जानेऽहं सुमन्दात्मन् यतस्त्वं मददर्पितः।
चिकित्सां संकरिष्यामि रोगस्यास्य प्रभोस्तव॥ १६

अतः परं करिष्यामि मूलस्यास्य निमूलनम्।
गच्छ दूत तथा ब्रूहि तस्याग्रे मम भाषितम्॥ १७

शिष्टैर्दूता न हन्तव्यास्तस्मात्त्वां विसृजाम्यहम्।
युद्धेच्छा चेत्समागच्छ त्वरितो महिषीसुत॥ १८

हयारे त्वद्बलं ज्ञातं तृणादस्त्वं जडाकृतिः।
शृङ्गयोस्ते करिष्यामि सुदृढं च शरासनम्॥ १९

दर्पः शृङ्गबलात्तेऽस्ति विदितं कारणं मया।
विषाणे ते परिच्छिद्य संहरिष्यामि तद् बलम्॥ २०

महिषासुरने इन्द्रके पास अपना एक दूत भेजा। उस दैत्यराजने दूतको बुलाकर उससे कहा—हे वीर! जाओ, हे महाबाहो! तुम मेरा दूतकार्य करो। हे अनघ! तुम निडर होकर स्वर्गमें देवताओंके पास जाकर वहाँ इन्द्रसे कहो—हे सहस्राक्ष! तुम स्वर्ग छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहो, शीघ्र चले जाओ। अथवा हे देवेश! महान् महिषासुरकी सेवा करो॥ ९—११॥

यदि तुम राजा महिषासुरकी शरणागति स्वीकार कर लो तो वे तुम्हारी रक्षा अवश्य करेंगे। अतएव हे इन्द्र! तुम महिषासुरकी शरणमें चले जाओ॥ १२॥

अन्यथा हे बलसूदन! युद्धके लिये शीघ्र ही अपना वज्र उठा लो। हमारे पूर्वजोंने तुम्हें पराजित किया है, अतएव हम तुम्हारा पुरुषार्थ जानते हैं॥ १३॥

अहल्याके साथ अनाचार करनेवाले तथा देवसमुदायके अधिपति हे इन्द्र! मैं तुम्हारे बलसे भलीभाँति परिचित हूँ। तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा जहाँ तुम्हारा मन करे, वहाँ चले जाओ॥ १४॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! दूतका वचन सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे; फिर भी उन्होंने मुसकराकर दूतसे कहा—हे मन्दबुद्धि! मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ कि तुम अभिमानके मदमें इतना चूर क्यों हो गये हो! मैं तुम्हारे स्वामी महिषासुरके अभिमानरूपी इस रोगकी चिकित्सा अवश्य करूँगा। इसके बाद मैं इस रोगको जड़से नष्ट कर दूँगा। हे दूत! अब तुम जाओ और उस महिषासुरसे मेरी कही गयी बात बता दो। शिष्टजनोंको चाहिये कि दूतोंका वध न करें, अतः मैं तुम्हें छोड़ दे रहा हूँ॥ १५—१७$\frac{1}{2}$॥

[वहाँ जाकर मेरी तरफसे उससे कह देना—] हे महिषीपुत्र! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो शीघ्र आ जाओ। हे महिषासुर! तुम तो घास खानेवाले जड प्रकृतिके जीव हो। अतः मुझे तुम्हारा बल ज्ञात है। मैं तुम्हारी सींगोंसे एक सुदृढ़ धनुष बनाऊँगा। तुम्हारे अभिमानका कारण मुझे विदित है। तुम्हें अपनी सींगोंके बलपर गर्व है, अतएव तुम्हारी सींगोंको काटकर मैं उस अभिमानबलको समाप्त कर

यद् बलेनातिपूर्णस्त्वं जातोऽसि बलदर्पितः।
कुशलस्त्वं तदाघाते न युद्धे महिषाधम॥ २१

व्यास उवाच

इत्युक्तोऽसौ सुरेन्द्रेण स दूतस्त्वरितो गतः।
जगाम महिषं मत्तं प्रणम्य प्रत्युवाच ह॥ २२

दूत उवाच

राजन्देवाधिपः कामं न त्वां विगणयत्यसौ।
मन्यते स्वबलं पूर्णं देवसैन्यसमावृतः॥ २३

यदुक्तं तेन मूर्खेण कथमन्यद् ब्रवीम्यहम्।
प्रियं सत्यं च वक्तव्यं भृत्येन पुरतः प्रभोः॥ २४

प्रियं सत्यं च वक्तव्यं प्रभोरग्रे शुभेच्छुना।
इति नीतिर्महाराज जागर्ति शुभकारिणी॥ २५

केवलं चेत्प्रियं ब्रूयान्न ते कार्यं भविष्यति।
परुषं च न वक्तव्यं कदाचिच्छुभमिच्छता॥ २६

यथा रिपुमुखाद्वाचः प्रसरन्ति विषोपमाः।
तथा भृत्यमुखान्नाथ निःसरन्ति कथं गिरः॥ २७

यादृशानीह वाक्यानि तेनोक्तानि महीपते।
तादृशानि न मे जिह्वा वक्तुमर्हति कर्हिचित्॥ २८

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हेतुगर्भं तृणाशनः।
भृशं कोपपरीतात्मा बभूव महिषासुरः॥ २९

समाहूयाब्रवीद्दैत्यान्क्रोधसंरक्तलोचनः ।
लाङ्गूलं पृष्ठदेशे च कृत्वा मूत्रं परित्यजन्॥ ३०

भो भो दैत्याः सुरेन्द्रोऽसौ युद्धकामोऽस्ति सर्वथा।
बलोद्योगं कुरुध्वं वै जेतव्योऽसौ सुराधमः॥ ३१

दूँगा। हे महिषाधम! जिन सींगोंके बलपर तुम गर्वोन्मत्त हो तथा अपनेको सर्वसमर्थ समझते हो, केवल उन्हींसे आघात करनेमें तुम कुशल हो; युद्ध करनेमें तुम दक्ष नहीं हो सकते॥ १८—२१॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर वह दूत तत्काल वहाँसे चल दिया। वह उन्मत्त महिषासुरके पास पहुँचा और उसे प्रणाम करके कहने लगा—॥ २२॥

दूत बोला—हे राजन्! वह देवराज इन्द्र आपको कुछ भी नहीं समझ रहा है। देवसेनासे सम्पन्न होनेके कारण वह अपनेको पूर्ण बलवान् मानता है॥ २३॥

उस मूर्खने जो कुछ कहा है, उसके अतिरिक्त दूसरी बात मैं कैसे कहूँ? सेवकको अपने स्वामीके समक्ष सत्य तथा प्रिय वाणी बोलनी चाहिये॥ २४॥

कल्याणकी इच्छा रखनेवाले सेवकको अपने स्वामीके आगे सदा सत्य तथा प्रिय वचन बोलना चाहिये। हे महाराज! यही नीति संसारमें सदासे कल्याणप्रद होती आयी है॥ २५॥

किंतु यदि केवल प्रिय लगनेवाली बात ही कहूँ तो इससे आपका कार्य सिद्ध नहीं होगा। साथ ही अपना कल्याण चाहनेवाले सेवकको अपने स्वामीसे कठोर बात कभी नहीं कहनी चाहिये॥ २६॥

हे नाथ! शत्रुके मुखसे जिस तरहकी विषतुल्य बातें निकलती हैं, उस तरहकी बातें सेवकके मुखसे कैसे निकल सकती हैं?॥ २७॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रने जिस प्रकारके वाक्य बोले हैं, उन्हें कह सकनेमें मेरी जिह्वा कभी भी समर्थ नहीं है॥ २८॥

व्यासजी बोले—उस दूतका रहस्यपूर्ण वचन सुनकर घास खानेवाले महिषासुरका मन पूर्णरूपसे क्रोधके वशीभूत हो गया॥ २९॥

सभी दैत्योंको बुलाकर क्रोधके मारे लाल आँखोंवाला महिषासुर अपनी पूँछ पीठपर रख करके मूत्र त्याग करते हुए उनसे कहने लगा—हे दैत्यो! वह इन्द्र निश्चय ही युद्ध करना चाहता है। अतः तुमलोग सेना संगठित करो। हमें उस देवाधमको जीतना है॥ ३०-३१॥

मदग्रे को भवेच्छूरः कोटिशश्चेत्तथाविधाः।
न बिभेम्येकतः कामं हनिष्याम्यद्य सर्वथा॥ ३२

शूरः शान्तेष्वसौ नूनं तपस्विषु बलाधिकः।
बलकर्ता हि कुहको लम्पटः परदारहृत्॥ ३३

अप्सरोबलसम्मत्तस्तपोविघ्नकरः खलः।
छिद्रप्रहरणः पापो नित्यं विश्वासघातकः॥ ३४

नमुचिर्निहतो येन कृत्वा सन्धिं दुरात्मना।
शपथान्विविधानादौ कृत्वा भीतेन छद्मना॥ ३५

विष्णुस्तु कपटाचार्यः कुहकः शपथाकरः।
नानारूपधरः कामं बलकृद्दम्भपण्डितः॥ ३६

कृत्वा कोलाकृतिं येन हिरण्याक्षो निपातितः।
हिरण्यकशिपुर्येन नृसिंहेन च घातितः॥ ३७

नाहं तद्वशगो नूनं भवेयं दनुनन्दनाः।
विश्वासं नैव गच्छामि देवानां कुत्र कर्हिचित्॥ ३८

किं करिष्यति मे विष्णुरिन्द्रो वा बलवत्तरः।
रुद्रो वापि न मे शक्तः प्रतिकर्तुं रणाङ्गणे॥ ३९

त्रिविष्टपं ग्रहीष्यामि जित्वेन्द्रं वरुणं यमम्।
धनदं पावकं चैव चन्द्रसूर्यौ विजित्य च॥ ४०

यज्ञभागभुजः सर्वे भविष्यामोऽद्य सोमपाः।
जित्वा देवसमूहञ्च विहरिष्यामि दानवैः॥ ४१

न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानेन दानवाः।
मरणं न नरेभ्यश्च नारी किं मे करिष्यति॥ ४२

मेरे सम्मुख भला कौन पराक्रमी बन सकता है? यदि उस इन्द्रके समान करोड़ों लोग मेरे सामने आ जायँ तो भी मैं नहीं डरूँगा, तब उस अकेले इन्द्रसे कैसे डर सकता हूँ? उसको तो मैं अब निश्चितरूपसे मार डालूँगा॥ ३२॥

वह इन्द्र शान्त स्वभाववाले लोगोंपर अपने पराक्रमका प्रदर्शन तथा तपस्वियोंपर अपने बलका प्रयोग करता है। वह मायावी, व्यभिचारी तथा दूसरेकी स्त्रीका हरण करनेवाला है॥ ३३॥

वह दुष्ट अपनी अप्सराओंके बलबूते दूसरोंकी तपस्यामें विघ्न डालता है, शत्रुकी कमजोरी देखकर अवसरवादिताका लाभ उठाकर उसपर प्रहार करता है, वह सदासे पापकृत्योंमें रत रहनेवाला तथा घोर विश्वासघात करनेवाला है॥ ३४॥

भयके मारे उस छली इन्द्रने पहले विश्वास-प्रदर्शनके लिये अनेक प्रकारकी शपथें खाकर नमुचि नामक दैत्यसे सन्धि स्थापित की, किंतु बादमें उस दुष्टात्माने छलपूर्वक नमुचिको मार डाला॥ ३५॥

विष्णु तो कपटका आचार्य, मायावी, झूठी प्रतिज्ञाएँ करनेमें बड़ा ही कुशल, बहुरूपिया, सैन्य-बलका संचय करनेवाला तथा महान् पाखण्डी है। उसीने सूकरका रूप धारणकर हिरण्याक्षका वध कर डाला और नृसिंहका रूप धारणकर हिरण्यकशिपुका संहार किया॥ ३६-३७॥

अतएव हे दनुके वंशजो! मैं उसका वशवर्ती कभी भी नहीं होऊँगा और देवताओंका कहीं भी कदापि विश्वास नहीं करूँगा॥ ३८॥

विष्णु तथा इन्द्र—ये दोनों मेरा क्या कर लेंगे? यहाँतक कि उनसे भी अधिक शक्तिशाली रुद्र भी युद्ध-भूमिमें मेरा प्रतीकार कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर, अग्नि, चन्द्रमा तथा सूर्यको जीतकर मैं स्वर्गपर अधिकार कर लूँगा॥ ३९-४०॥

अब हमलोग यज्ञका भाग प्राप्त करेंगे तथा सोमरसका पान करनेवाले होंगे। मैं देवसमुदायको जीतकर दानवोंके साथ विहार करूँगा॥ ४१॥

हे दानवो! वरदानके कारण मुझे देवताओंका भय नहीं है। पुरुषसे मेरी मृत्यु हो ही नहीं सकती; तब भला स्त्री मेरा क्या कर लेगी?॥ ४२॥

पातालपर्वतेभ्यश्च समाहूय वरान्वरान्।
दानवान्मम सैन्येशान्कुर्वन्तु त्वरिताश्चराः॥ ४३

एकोऽहं सर्वदेवेशान्विजेतुं दानवाः क्षमः।
शोभार्थं वः समाहूय नयामि सुरसङ्गमे॥ ४४

शृङ्गाभ्यां च खुराभ्यां च हनिष्येऽहं सुरान्किल।
न मे भयं सुरेभ्यश्च वरदानप्रभावतः॥ ४५

अवध्योऽहं सुरगणैरसुरैर्मानवैस्तथा।
तस्मात्सज्जा भवन्त्वद्य देवलोकजयाय वै॥ ४६

जित्वा सुरालयं दैत्या विहरिष्यामि नन्दने।
मन्दारकुसुमापीडा देवयोषित्समन्विताः॥ ४७

कामधेनुपयोत्सिक्ताः सुधापानप्रमोदिताः।
देवगन्धर्वगीतादिनृत्यलास्यसमन्विताः ॥ ४८

उर्वशी मेनका रम्भा घृताची च तिलोत्तमा।
प्रमद्वरा महासेना मिश्रकेशी मदोत्कटा॥ ४९

विप्रचित्तिप्रभृतयो नृत्यगीतविशारदाः।
रञ्जयिष्यन्ति वः सर्वान्नानासवनिषेवणैः॥ ५०

सर्वे सज्जा भवन्त्वद्य रोचतां गमनं दिवि।
संग्रामार्थं सुरैः सार्धं कृत्वा मङ्गलमुत्तमम्॥ ५१

रक्षणार्थं च सर्वेषां भार्गवं मुनिसत्तमम्।
समाहूय च सम्पूज्य स्थाप्य यज्ञे गुरुं परम्॥ ५२

व्यास उवाच

इति सन्दिश्य दैत्येन्द्रान्महिषः पापधीस्तदा।
जगाम त्वरितो राजन्भवनं स्वं मुदान्वितः॥ ५३

हे गुप्तचरो! पातालमें तथा पर्वतोंपर रहनेवाले बड़े-बड़े दानव-वीरोंको तत्काल यहाँ बुलाकर उन्हें मेरी सेनाओंका अध्यक्ष बना दो॥ ४३॥

हे दानवो! मैं तो अकेला ही समस्त देवताओंको जीतनेमें समर्थ हूँ, फिर भी शोभा बढ़ानेकी दृष्टिसे आप सबको भी बुलाकर देवताओंके साथ होनेवाले संग्राममें ले चलूँगा॥ ४४॥

मैं अपनी सींगों तथा खुरोंसे देवताओंको निश्चितरूपसे मार डालूँगा। वरदानके प्रभावसे मुझे देवताओंसे भय नहीं है॥ ४५॥

देवता, दानव तथा मनुष्य—सभीसे मैं अवध्य हूँ, अतः आप सब देवलोकपर विजय प्राप्त करनेके लिये अब तैयार हो जायँ॥ ४६॥

हे दैत्यो! देवलोकको जीतकर मैं नन्दनवनमें विहार करूँगा। मन्दारपुष्पकी मालाएँ धारण करके आपलोग देवांगनाओंके साथ रहेंगे, कामधेनुके दुग्धका सेवन करेंगे, प्रसन्नतापूर्वक अमृत-पान करेंगे और देवताओं तथा गन्धर्वोंके गीतों तथा मनमोहक हाव-भाव-युक्त नृत्योंका आनन्द लेंगे॥ ४७-४८॥

उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा, प्रमद्वरा, महासेना, मिश्रकेशी, मदोत्कटा, विप्रचित्ति आदि नृत्य तथा गायन-कलामें अति निपुण अप्सराएँ विविध प्रकारके मद्य पिलाकर आप सभीका मनोरंजन करेंगी॥ ४९-५०॥

देवताओंके साथ युद्ध करनेके लिये देवलोकके लिये प्रस्थान करना यदि आपलोगोंको उचित लगे तो आप सब उत्तम मंगलाचार सम्पन्न करके आज ही चलनेके लिये तैयार हो जाइये॥ ५१॥

समस्त दानवोंकी रक्षाके लिये मुनिश्रेष्ठ शुक्राचार्यको बुलाकर उनका पूजन करके उन परम गुरुको यज्ञ-कार्यमें नियुक्त कीजिये॥ ५२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार दानववीरोंको आदेश देकर वह पापबुद्धि महिषासुर प्रसन्नताके साथ शीघ्र ही अपने भवनको चला गया॥ ५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
भगवतीमाहात्म्ये दैत्यसैन्योद्योगो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रका देवताओं तथा गुरु बृहस्पतिसे परामर्श करना तथा बृहस्पतिद्वारा जय-पराजयमें दैवकी प्रधानता बतलाना

व्यास उवाच

गते दूते सुरेन्द्रोऽपि समाहूय सुरानथ।
यमवायुधनाध्यक्षवरुणानिदमूचिवान् ॥ १

महिषो नाम दैत्येन्द्रो रम्भपुत्रो महाबलः।
वरदर्पमदोन्मत्तो मायाशतविचक्षणः॥ २

तस्य दूतोऽद्य सम्प्राप्तः प्रेषितस्तेन भोः सुराः।
स्वर्गकामेन लुब्धेन मामुवाचेदृशं वचः॥ ३

त्यज देवालयं शक्र यथेच्छं व्रज वासव।
सेवां वा कुरु दैत्यस्य महिषस्य महात्मनः॥ ४

दयावान्दानवेन्द्रोऽसौ स ते वृत्तिं विधास्यति।
नतेषु भृत्यभूतेषु न कुप्यति कदाचन॥ ५

नोचेद्युद्धाय देवेश सेनोद्योगं कुरु स्वयम्।
गते मयि स दैत्येन्द्रस्त्वरितः समुपेष्यति॥ ६

इत्युक्त्वा स गतो दूतो दानवस्य दुरात्मनः।
किं कर्तव्यमतः कार्यं चिन्तयध्वं सुरोत्तमाः॥ ७

दुर्बलोऽपि न चोपेक्ष्यः शत्रुर्बलवता सुराः।
विशेषेण सदोद्योगी बलवान्बलदर्पितः॥ ८

उद्यमः किल कर्तव्यो यथाबुद्धि यथाबलम्।
दैवाधीनो भवेन्नूनं जयो वाथ पराजयः॥ ९

व्यासजी बोले—हे राजन्! दूतके चले जानेपर इन्द्रने भी यम, वायु, कुबेर तथा वरुण—इन देवताओंको बुलाकर यह बात कही॥ १॥

रम्भका पुत्र महाबली दैत्यराज महिषासुर इस समय वरदानके अभिमानमें मदोन्मत्त हो गया है। वह सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें पारंगत है॥ २॥

हे देवताओ! स्वर्ग-प्राप्तिकी कामना करनेवाले उस लोभी महिषासुरके द्वारा भेजा गया दूत आज ही यहाँ आया था। उसने मुझसे इस प्रकारकी बात कही—॥ ३॥

हे शक्र! तुम तत्काल देवलोक छोड़ दो और अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ जाना चाहो, वहाँ चले जाओ; अथवा हे वासव! महान् महिषासुरका सेवकत्व स्वीकार कर लो॥ ४॥

वे दैत्यराज महिषासुर बड़े दयालु हैं। वे आपके लिये किसी जीविकाका प्रबन्ध अवश्य कर देंगे। विनम्र सेवकोंपर वे कभी भी क्रोध नहीं करते हैं॥ ५॥

हे देवेश! यदि आपको यह स्वीकार नहीं है तो युद्धके लिये सेनाके संगठनमें जुट जाइये। मेरे वहाँ पहुँचते ही वे दैत्येन्द्र महिषासुर [देवलोकपर आक्रमणके लिये] यहाँ शीघ्र आ पहुँचेंगे॥ ६॥

ऐसा कहकर दुष्टात्मा दानव महिषासुरका वह दूत यहाँसे चला गया। हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग विचार कीजिये कि अब क्या करना चाहिये?॥ ७॥

हे देवताओ! स्वयं बलवान् होते हुए भी अत्यन्त दुर्बल शत्रुकी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। अपने बलका अभिमान करनेवाले, बलशाली तथा सदा उद्यमशील शत्रुकी तो विशेषरूपसे उपेक्षा नहीं करनी चाहिये॥ ८॥

अतः हमलोगोंको अपने बल तथा विवेकके अनुसार पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिये। जीत अथवा हार तो दैवके अधीन रहती है॥ ९॥

सन्धियोगो न चात्रास्ति खले सन्धिर्निरर्थकः।
सर्वथा साधुभिः कार्यं विचार्य च पुनः पुनः॥ १०

यानमप्यधुना नैव कर्तव्यं सहसा पुनः।
प्रेक्षकाः प्रेषणीयाश्च शीघ्रगाः सुप्रवेशकाः॥ ११

इङ्गितज्ञाश्च निःसङ्गा निःस्पृहाः सत्यवादिनः।
सेनाभियोगं प्रस्थानं बलसंख्यां यथार्थतः॥ १२

वीराणां च परिज्ञानं कृत्वायान्तु त्वरान्विताः।
ज्ञात्वा दैत्यपतेस्तस्य सैन्यस्य च बलाबलम्॥ १३

करिष्यामि ततस्तूर्णं यानं वा दुर्गसंग्रहम्।
विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं बुद्धिमता सदा।
सहसा विहितं कार्यं दुःखदं सर्वथा भवेत्॥ १४

तस्माद्विमृश्य कर्तव्यं सुखदं सर्वथा बुधैः।
नात्र भेदविधिर्न्याय्यो दानवेषु च सर्वथा॥ १५

एकचित्तेषु कार्येऽस्मिंस्तस्माच्चारा व्रजन्तु वै।
ज्ञात्वा बलाबलं तेषां पश्चान्नीतिर्विचार्य च॥ १६

विधेया विधिवत्तज्ज्ञैस्तेषु कार्यपरेषु च।
अन्यथा विहितं कार्यं विपरीतफलप्रदम्॥ १७

सर्वथा तद्भवेन्नूनमज्ञातमौषधं यथा।

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य तैः सर्वैः प्रणिधिं कार्यवेदिनम्॥ १८

प्रेषयामास देवेन्द्रः परिज्ञानाय पार्थिव।
दूतस्तु त्वरितो गत्वा समागम्य सुराधिपम्॥ १९

इस परिस्थितिमें सन्धिकी भी सम्भावना नहीं है; क्योंकि नीचके साथ की गयी सन्धि व्यर्थ सिद्ध होती है। अतएव बार-बार विचार करके केवल सज्जनोंके साथ ही सन्धि करनी चाहिये॥ १०॥

इस समय अचानक आक्रमण करना भी उचित नहीं है। अतएव सर्वप्रथम शीघ्रगामी तथा सुगमतासे प्रवेश करनेमें दक्ष गुप्तचर वहाँ भेजे जाने चाहिये, जो शत्रुओंके अभिप्राय समझनेमें समर्थ, किसीके साथ अधिक भावासक्ति न रखनेवाले, निर्लोभी तथा सत्यवादी हों। वे गुप्तचर शत्रु-सेनाकी गतिविधि, प्रस्थान, सेनाकी ठीक-ठीक संख्या और शत्रुदलके वीरोंकी वास्तविक जानकारी करके शीघ्रतापूर्वक वापस आ जायँ। इस प्रकार दैत्यपति महिषासुरकी सेनाके बलाबलको भलीभाँति जान लेनेके पश्चात् मैं शीघ्र ही आक्रमण अथवा किलेबन्दी करनेका प्रबन्ध करूँगा। सर्वदा भलीभाँति सोच-समझकर बुद्धिमान् मनुष्यको कार्य करना चाहिये; क्योंकि बिना विचार किये अचानक किया गया कार्य हर तरहसे दुःखदायक ही होता है। अतएव बुद्धिमान् मनुष्योंको सम्यक् रूपसे विचार-विमर्श करके ऐसा कार्य करना चाहिये, जो सुखकर हो॥ ११—१४½ ॥

दानवोंमें मतभेद पैदा करनेवाली भेदनीतिका आश्रय लेना भी उचित नहीं जान पड़ता; क्योंकि उनमें पूर्ण मतैक्य है। अतएव इस कार्यके लिये पहले गुप्तचर भेजे जायँ। उनके द्वारा उन दानवोंके बलाबलको जाननेके पश्चात् श्रेष्ठ नीतिविदोंसे भलीभाँति विचार करके उन कार्योंके लिये नीति निर्धारित की जानी चाहिये। नीतिसे हटकर किया गया कार्य अज्ञात औषधिके सेवनसे उत्पन्न होनेवाले कष्टकी भाँति विपरीत फल देनेवाला होता है॥ १५—१७½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार उन सभी देवताओंसे विचार-विमर्श करके देवराज इन्द्रने शत्रुपक्षके रहस्योंकी जानकारीके उद्देश्यसे एक कार्यकुशल गुप्तचर भेजा॥ १८½ ॥

उस दूतने तत्काल पहुँचकर शत्रुपक्षके सैन्य-बलाबलकी जानकारी प्राप्त की और पुनः इन्द्रके पास वापस आकर उनको सब कुछ बता दिया। शत्रुसेनाकी

निवेदयामास तदा सर्वसैन्यबलाबलम्।
ज्ञात्वा तद्बलमुद्योगं तुराषाडतिविस्मितः॥ २०

देवानचोदयत्तूर्णं समाहूय पुरोहितम्।
मन्त्रं मन्त्रविदां श्रेष्ठं चकार त्रिदशेश्वरः॥ २१

उवाचाङ्गिरसश्रेष्ठं समासीनं वरासने।

इन्द्र उवाच

भो भो देवगुरो विद्वन्किं कर्तव्यं वदस्व नः॥ २२

सर्वज्ञोऽसि समुत्पन्ने कार्ये त्वं गतिरद्य नः।
दानवो महिषो नाम महावीर्यो मदान्वितः॥ २३

योद्धुकामः समायाति बहुभिर्दानवैर्वृतः।
तत्र प्रतिक्रिया कार्या त्वया मन्त्रविदाधुना॥ २४

तेषां शुक्रस्तथा त्वं मे विघ्नहर्ता सुसंयतः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह तुरासाहं बृहस्पतिः॥ २५

विचिन्त्य मनसा कामं कार्यसाधनतत्परः।

गुरुरुवाच

स्वस्थो भव सुरेन्द्र त्वं धैर्यमालम्ब्य मारिष॥ २६

व्यसने च समुत्पन्ने न त्याज्यं धैर्यमाशु वै।
जयाजयौ सुराध्यक्ष दैवाधीनौ सदैव हि॥ २७

स्थातव्यं धैर्यमालम्ब्य तस्माद् बुद्धिमता सदा।
भवितव्यं भवत्येव जानन्नेव शतक्रतो॥ २८

उद्यमः सर्वथा कार्यो यथापौरुषमात्मनः।
मुनयोऽपि हि मुक्त्यर्थमुद्यमैकरताः सदा॥ २९

दैवाधीनं च जानन्तो योगध्यानपरायणाः।
तस्मात्सदैव कर्तव्यो व्यवहारोदितोद्यमः॥ ३०

सुखं भवतु वा मा वा दैवे का परिदेवना।
विना पुरुषकारेण कदाचित्सिद्धिमाप्नुयात्॥ ३१

तैयारीके विषयमें जानकर इन्द्रको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने देवताओंको तैयारीमें लगनेकी आज्ञा दे दी। तत्पश्चात् मन्त्रविदोंमें श्रेष्ठ पुरोधा देवगुरु बृहस्पतिको बुलाकर इन्द्र उनके साथ परामर्श करने लगे। उत्तम आसनपर विराजमान श्रेष्ठ अंगिरापुत्र बृहस्पतिसे इन्द्रने कहा॥ १९—२१$\frac{१}{२}$॥

इन्द्र बोले—हे देवगुरो! हे विद्वन्! हमलोगोंको क्या करना चाहिये, हमें बताइये। आप सर्वज्ञ हैं। आज उत्पन्न इस विषम परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे अवलम्ब हैं। महाबली तथा मदोन्मत्त दानव महिषासुर बहुतसे दानवोंको अपने साथ लेकर हम सबसे युद्ध करनेके लिये यहाँ आ रहा है। आप मन्त्रणाविद् हैं, अतएव इस समय कोई प्रतिक्रियात्मक युक्ति बतानेकी कृपा करें। जैसे शुक्राचार्य दानवोंकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार हम देवताओंके कष्टका निवारण करने हेतु आप सदा उद्यत रहते हैं॥ २२—२४$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर अपने मनमें भलीभाँति सोचकर सदा कार्यसिद्धिके लिये तत्पर रहनेवाले बृहस्पति इन्द्रसे कहने लगे॥ २५$\frac{१}{२}$॥

गुरु बोले—हे देवेन्द्र! आप निश्चिन्त हो जाइये। हे महानुभाव! धैर्य धारण कीजिये, विषम परिस्थिति आ जानेपर सहसा धैर्य नहीं खोना चाहिये। हे सुराध्यक्ष! हार तथा जीत सदा दैवाधीन होती हैं, अतएव बुद्धिमान् प्राणीको चाहिये कि वह सदैव धैर्य धारण करके स्थित रहे। हे शतक्रतो! होनी होकर रहती है, ऐसा समझते हुए मनुष्यको अपनी सामर्थ्यके अनुसार सदा उद्यम करना चाहिये। सब कुछ दैवके अधीन है—यह जानते हुए भी योगध्यानपरायण मुनिगण भी मुक्ति-प्राप्ति हेतु निरन्तर उद्यमशील रहते हैं। अतएव मनुष्यको अपने सामर्थ्यानुसार सदैव उद्योग करते रहना चाहिये॥ २६—३०॥

सुख मिले अथवा न मिले—इस दैवाधीन विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता? बिना पुरुषार्थ किये ही संयोगसे सिद्धि मिल जाय—ऐसा मानकर अन्धे तथा

अन्धवत्पङ्गुवत्कामं न तथा मुदमावहेत्।
कृते पुरुषकारेऽपि यदि सिद्धिर्न जायते॥ ३२

न तत्र दूषणं तस्य दैवाधीने शरीरिणि।
कार्यसिद्धिर्न सैन्येऽस्ति न मन्त्रे न च मन्त्रणे॥ ३३

न रथे नायुधे नूनं दैवाधीना सुराधिप।
बलवान्क्लेशमाप्नोति निर्बलः सुखमश्नुते॥ ३४

बुद्धिमान्क्षुधितः शेते निर्बुद्धिर्भोगवान्भवेत्।
कातरो जयमाप्नोति शूरो याति पराजयम्॥ ३५

दैवाधीने तु संसारे कामं का परिदेवना।
उद्यमे योजयेन्नूनं भवितव्यं सुराधिप॥ ३६

दुःखदे सुखदे वापि तत्र तौ न विचिन्तयेत्।
दुःखे दुःखाधिकान्पश्येत्सुखे पश्येत्सुखाधिकम्॥ ३७

आत्मानं हर्षशोकाभ्यां शत्रुभ्यामिव नार्पयेत्।
धैर्यमेवावगन्तव्यं हर्षशोकोद्भवे बुधैः॥ ३८

अधैर्याद्यादृशं दुःखं न तु धैर्येऽस्ति तादृशम्।
दुर्लभं सहनत्वं वै समये सुखदुःखयोः॥ ३९

हर्षशोकोद्भवो यत्र न भवेद् बुद्धिनिश्चयात्।
किं दुःखं कस्य वा दुःखं निर्गुणोऽहं सदाव्ययः॥ ४०

लँगड़ेकी भाँति अकर्मण्य होकर प्रसन्नतापूर्वक पड़े रहना उचित नहीं है। पुरुषार्थ करनेपर भी यदि सिद्धि नहीं मिलती है तो इसमें उस व्यक्तिका कोई अपराध नहीं है; क्योंकि प्रत्येक शरीरधारी सदा दैवके अधीन रहता है। कार्यकी सिद्धि न सेनासे, न मन्त्रसे, न मन्त्रणासे, न रथसे और न तो आयुधसे ही मिलती है। हे सुरेन्द्र! सफलता तो निश्चितरूपसे दैवके अधीन रहती है॥ ३१—३३½ ॥

[ऐसा भी देखा जाता है कि] बलशाली कष्ट पाता है तथा बलहीन सुखोपभोग करता है, बुद्धिमान् भूखा ही सो जाता है तथा बुद्धिहीन अनेक उत्तम भोज्य पदार्थोंका सेवन करता है, कायर व्यक्तिकी जीत हो जाती है तथा वीर पराजित हो जाता है। हे सुराधिप! यह समस्त जगत् ही दैवके अधीन है, तो फिर चिन्ताकी आवश्यकता ही क्या? ऐसा दृढ़ विश्वास करके भाग्यको उद्योगके साथ संयोजित कर देना चाहिये॥ ३४—३६ ॥

उद्योग करनेके बाद सुख प्राप्त हो अथवा दुःख—इन दोनोंके विषयमें किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दुःख आनेपर अपनेसे अधिक दुःखीजनोंको तथा सुख आनेपर अधिक सुखी व्यक्तिको देखना चाहिये॥ ३७ ॥

अपने आपको शत्रुतुल्य हर्ष तथा शोकको अर्पित नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषोंको हर्ष या शोकके उपस्थित होनेपर धैर्यका अवलम्बन करना चाहिये॥ ३८ ॥

अधीर हो जानेसे जैसा दुःख प्राप्त होता है, वैसा दुःख धैर्य धारण करनेसे कभी नहीं होता। किंतु सुख तथा दुःखके अवसरपर सहनशील बने रहना अति दुर्लभ है॥ ३९ ॥

जब हर्ष अथवा शोक उत्पन्न हों तब अपनी बुद्धिसे निश्चय करके उनसे अप्रभावित बने रहना चाहिये। वैसी परिस्थितिमें सोचना चाहिये कि दुःख क्या है; और यह दुःख किसे होता है? मैं तो सदा

चतुर्विंशातिरिक्तोऽस्मि किं मे दुःखं सुखञ्च किम्।
प्राणस्य क्षुत्पिपासे द्वे मनसः शोकमूर्च्छने॥ ४१

जरामृत्यू शरीरस्य षडूर्मिरहितः शिवः।
शोकमोहौ शरीरस्य गुणौ किं मेऽत्र चिन्तने॥ ४२

शरीरं नाहमथवा तत्सम्बन्धी न चाप्यहम्।
सप्तैकषोडशादिभ्यो विभिन्नोऽहं सदा सुखी॥ ४३

प्रकृतिर्विकृतिर्नाहं किं मे दुःखं सदा पुनः।
इति मत्वा सुरेश त्वं मनसा भव निर्ममः॥ ४४

उपायः प्रथमोऽयं ते दुःखनाशे शतक्रतो।
ममता परमं दुःखं निर्ममत्वं परं सुखम्॥ ४५

सन्तोषादपरं नास्ति सुखस्थानं शचीपते।
अथवा यदि न ज्ञानं ममत्वनाशने किल॥ ४६

ततो विवेकः कर्तव्यो भवितव्ये सुराधिप।
प्रारब्धकर्मणां नाशो नाभोगाल्लक्ष्यते किल॥ ४७

यद्भावि तद्भवत्येव का चिन्ता सुखदुःखयोः।
सुरैः सर्वैः सहायैर्वा बुद्ध्या वा तव सत्तम॥ ४८

सुखं क्षयाय पुण्यस्य दुःखं पापस्य मारिष।
तस्मात्सुखक्षये हर्षः कर्तव्यः सर्वथा बुधैः॥ ४९

अथवा मन्त्रयित्वाद्य कुरु यत्नं यथाविधि।
कृते यत्ने महाराज भवितव्यं भविष्यति॥ ५०

गुणोंसे रहित और अविनाशी हूँ। मैं तो चौबीस तत्त्वोंसे भिन्न आत्मतत्त्व हूँ, तब सुख अथवा दुःखसे मेरा क्या प्रयोजन? भूख तथा प्यासका सम्बन्ध प्राणसे, शोक तथा मोहका सम्बन्ध मनसे एवं जरा तथा मृत्युका सम्बन्ध शरीरसे है। मैं तो इन छहों ऊर्मियोंसे रहित कल्याणस्वरूप हूँ। शोक तथा मोह शरीरके गुण हैं; इनके विषयमें सोचनेकी मुझे क्या आवश्यकता?॥ ४०—४२॥

मैं न शरीर हूँ और न तो इससे मेरा कोई सम्बन्ध है। मैं तो महदादि सात विकृतियों, एक प्रकृति तथा सोलह विकारोंसे पृथक् रहनेवाला सदा सुखस्वरूप हूँ। मैं न प्रकृति हूँ और न तो विकृति हूँ; तब मुझे दुःख किस बातका? हे देवेश! अपने मनमें ऐसा निश्चय करके आप ममतारहित हो जाइये। हे शतयज्ञकर्ता इन्द्र! आपके दुःखनाशका यही प्रधान उपाय है; क्योंकि ममता सबसे बड़ा दुःख है तथा निर्ममता सबसे बड़ा सुख है॥ ४३—४५॥

हे शचीपते! सन्तोषसे बढ़कर सुखका कोई भी स्थान नहीं है। अथवा हे देवराज! यदि आपके पास ममताको नष्ट करनेवाले ज्ञानका अभाव हो तो प्रारब्धके विषयमें विवेकका आश्रय लेना परमावश्यक है। बिना भोगके प्रारब्ध कर्मोंका नाश कभी नहीं हो सकता॥ ४६-४७॥

हे आर्य! सभी देवता आपके सहायक हों अथवा केवल आपकी बुद्धि सहायक बने—जो होना है वह होकर रहेगा, तब सुख अथवा दुःखके विषयमें चिन्ता क्या?॥ ४८॥

हे महाभाग! सुखके उपभोगसे पुण्यका क्षय होता है और दुःख भोगनेसे पापका नाश होता है। अतएव बुद्धिमान् पुरुषोंको सुख-क्षयकी स्थितिमें हर प्रकारसे प्रसन्नताका अनुभव करना चाहिये॥ ४९॥

अथवा हे महाराज! यदि आपकी इच्छा हो तो विधिवत् परामर्श करके आप यत्न करनेमें तत्पर हो जाइये। प्रयत्न करनेपर भी जो होना होगा, वही होगा॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भयातुरेन्द्रादिदेवैः सुरगुरुणा सह परामर्शवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

इन्द्रका ब्रह्मा, शिव और विष्णुके पास जाना, तीनों देवताओंसहित इन्द्रका युद्धस्थलमें आना तथा चिक्षुर, बिडाल और ताम्रको पराजित करना

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा सहस्राक्षः पुनराह बृहस्पतिम्।
युद्धोद्योगं करिष्यामि हयारेर्नाशनाय वै॥ १

नोद्यमेन विना राज्यं न सुखं न च वै यशः।
निरुद्यमं न शंसन्ति कातरा न च सोद्यमाः॥ २

यतीनां भूषणं ज्ञानं सन्तोषो हि द्विजन्मनाम्।
उद्यमः शत्रुहननं भूषणं भूतिमिच्छताम्॥ ३

उद्यमेन हतस्त्वाष्ट्रो नमुचिर्बल एव च।
तथैनं निहनिष्यामि महिषं मुनिसत्तम॥ ४

बलं देवगुरुस्त्वं मे वज्रमायुधमुत्तमम्।
सहायस्तु हरिर्नूनं तथोमापतिरव्ययः॥ ५

रक्षोघ्नान्पठ मे साधो करोम्यद्य समुद्यमम्।
स्वसैन्याभिनिवेशञ्च महिषं प्रति मानद॥ ६

व्यास उवाच

इत्युक्तो देवराजेन वाचस्पतिरुवाच ह।
सुरेन्द्रं युद्धसंरक्तं स्मितपूर्वं वचस्तदा॥ ७

बृहस्पतिरुवाच

प्रेरयामि न चाहं त्वां न च निर्वारयाम्यहम्।
सन्दिग्धेऽत्र जये कामं युध्यतश्च पराजये॥ ८

न तेऽत्र दूषणं किञ्चिद्भवितव्ये शचीपते।
सुखं वा यदि वा दुःखं विहितं च भविष्यति॥ ९

व्यासजी बोले—हे महाराज! यह सुनकर सहस्रनेत्र इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा कि मैं महिषासुरके विनाशके लिये अब युद्धकी तैयारी अवश्य करूँगा; क्योंकि उद्योगके बिना न राज्य, न सुख और न तो यशकी ही प्राप्ति होती है। उद्यमहीनकी प्रशंसा न तो कायर लोग करते हैं और न उद्योगपरायण॥ १-२॥

संन्यासियोंका आभूषण ज्ञान है तथा ब्राह्मणोंका आभूषण सन्तोष है; किंतु अपनी उन्नतिकी आकांक्षा रखनेवाले लोगोंके लिये उद्योगपरायण रहते हुए शत्रुसंहारका कार्य ही आभूषण है॥ ३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उद्यमका आश्रय लेकर ही मैंने वृत्रासुर, नमुचि तथा बल आदि दैत्योंका संहार किया था; उसी प्रकार मैं महिषासुरका भी वध करूँगा॥ ४॥

आप देवगुरु बृहस्पति तथा श्रेष्ठ आयुध वज्र मेरे महान् बलके रूपमें सुलभ हैं। साथ ही भगवान् विष्णु तथा अविनाशी शिवजी मेरी सहायता अवश्य करेंगे॥ ५॥

हे मानद! अब मैं महिषासुरके साथ युद्ध करनेके लिये सेनाकी तैयारीके उद्योगमें लग रहा हूँ। हे साधो! अब आप मेरे कल्याणार्थ रक्षोघ्न मन्त्रोंका पाठ कीजिये॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! देवराज इन्द्रके ऐसा कहनेपर युद्धके लिये सर्वथा तत्पर उन सुरेन्द्रसे मुसकराकर बृहस्पतिने यह वचन कहा—॥ ७॥

बृहस्पति बोले—इस समय मैं आपको युद्धके लिये न तो प्रेरित करूँगा और न तो इससे आपको रोकूँगा ही; क्योंकि युद्ध करनेवालेकी हार तथा जीत दोनों ही अनिश्चित रहती हैं॥ ८॥

हे शचीपते! इस होनहारके विषयमें आपका कोई दोष नहीं है। जो भी सुख-दुःख पूर्वतः निर्धारित है, वह तो अवश्य ही प्राप्त होगा॥ ९॥

न मया तत्परिज्ञातं भावि दुःखं सुखं तथा।
यद्भार्याहरणे प्राप्तं पुरा वासव वेत्सि हि॥ १०

शशिना मे हृता भार्या मित्रेणामित्रकर्शन।
स्वाश्रमस्थेन सम्प्राप्तं दुःखं सर्वसुखापहम्॥ ११

बुद्धिमान्सर्वलोकेषु विदितोऽहं सुराधिप।
क्व मे गता तदा बुद्धिर्यदा भार्या हृता बलात्॥ १२

तस्मादुपायः कर्तव्यो बुद्धिमद्भिः सदा नरैः।
कार्यसिद्धिः सदा नूनं दैवाधीना सुराधिप॥ १३

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं गुरोः सार्थं शचीपतिः।
ब्रह्माणं शरणं गत्वा नत्वा वचनमब्रवीत्॥ १४

पितामह सुराध्यक्ष दैत्यो महिषसंज्ञकः।
ग्रहीतुकामः स्वर्गं मे बलोद्योगं करोत्यलम्॥ १५

अन्ये च दानवाः सर्वे तत्सैन्यं समुपस्थिताः।
योद्धुकामा महावीर्याः सर्वे युद्धविशारदाः॥ १६

तेनाहं भीतभीतोऽस्मि त्वत्सकाशमिहागतः।
सर्वज्ञोऽसि महाप्राज्ञ साहाय्यं कर्तुमर्हसि॥ १७

ब्रह्मोवाच

गच्छामः सर्व एवाद्य कैलासं त्वरिता वयम्।
शङ्करं पुरतः कृत्वा विष्णुं च बलिनां वरम्॥ १८

ततो युद्धं प्रकर्तव्यं सर्वैः सुरगणैः सह।
मिलित्वा मन्त्रमाधाय देशं कालं विचिन्त्य च॥ १९

बलाबलमविज्ञाय विवेकमपहाय च।
साहसं तु प्रकुर्वाणो नरः पतनमृच्छति॥ २०

भविष्यमें आपको प्राप्त होनेवाले सुख या दुःखके विषयमें मुझे कोई भी ज्ञान नहीं है; क्योंकि हे वासव! आप यह बात भलीभाँति जानते हैं कि पूर्व समयमें अपनी भार्याके हरणके अवसरपर मुझे बहुत ही कष्ट उठाना पड़ा था॥ १०॥

हे शत्रुनिषूदन! चन्द्रमाने मेरी पत्नीका हरण कर लिया था, जिसके फलस्वरूप अपने आश्रममें रहते हुए मुझे सभी सुखोंका विनाश करनेवाला महान् कष्ट झेलना पड़ा॥ ११॥

हे सुराधिप! मैं सभी लोकोंमें परम बुद्धिमान्के रूपमें विश्रुत हूँ; किंतु जब मेरी भार्याका बलपूर्वक हरण कर लिया गया था तो उस समय मेरी बुद्धि कहाँ चली गयी थी?॥ १२॥

अतएव हे सुराधिप! बुद्धिमान् लोगोंको सदा यत्नपरायण होना चाहिये। कार्यकी सिद्धि तो निश्चितरूपसे सदा दैवके ही अधीन रहती है॥ १३॥

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिका यह सत्य तथा अर्थयुक्त वचन सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीकी शरणमें जाकर उन्हें प्रणाम करके बोले—॥ १४॥

हे पितामह! हे देवाध्यक्ष! इस समय महिषासुर नामक दैत्य मेरे स्वर्गलोकपर अपना अधिकार स्थापित करनेकी कामनासे सैन्यबलकी तैयारी कर रहा है॥ १५॥

अन्य दानव भी उसकी सेनामें सम्मिलित हो रहे हैं। वे सब-के-सब सदा युद्धके लिये आतुर रहनेवाले, महान् पराक्रमी तथा युद्धकलामें अत्यन्त प्रवीण हैं॥ १६॥

उस दानवसे भयभीत होकर मैं आपकी शरणमें यहाँ आया हूँ। हे महाप्राज्ञ! आप तो सर्ववेत्ता हैं तथा मेरी सहायता करनेमें पूर्ण समर्थ हैं॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—हमलोग इसी समय शीघ्रतापूर्वक कैलास चलें और वहाँसे शंकरजीको आगे करके बलवानोंमें श्रेष्ठ विष्णुभगवान्के पास चलें। तत्पश्चात् सभी देवगणोंके साथ परस्पर मिलकर देश-कालके सम्बन्धमें भलीभाँति विचार करके एक समुचित निर्णय लेकर ही युद्ध करना चाहिये। अपनी शक्ति तथा निर्बलताका सम्यक् ज्ञान किये बिना विवेकका त्याग करके दुःसाहसपूर्ण कार्य करनेवाला व्यक्ति पतनको प्राप्त होता है॥ १८—२०॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य सहस्राक्षः कैलासं निर्जगाम ह।
ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा लोकपालसमन्वितः॥ २१

तुष्टाव शङ्करं गत्वा वेदमन्त्रैर्महेश्वरम्।
प्रसन्नं पुरतः कृत्वा ययौ विष्णुपुरं प्रति॥ २२

स्तुत्वा तं देवदेवेशं कार्यं प्रोवाच चात्मनः।
महिषात्तद्भयं चोग्रं वरदानमदोद्धतात्॥ २३

तदाकर्ण्य भयं तस्य विष्णुर्देवानुवाच ह।
करिष्यामो वयं युद्धं हनिष्यामस्तु दुर्जयम्॥ २४

व्यास उवाच

इति ते निश्चयं कृत्वा ब्रह्मविष्णुहरीश्वराः।
स्वानि स्वानि समारुह्य वाहनानि ययुः सुराः॥ २५

ब्रह्मा हंससमारूढो विष्णुर्गरुडवाहनः।
शङ्करो वृषभारूढो वृत्रहा गजसंस्थितः॥ २६

मयूरवाहनः स्कन्दो यमो महिषवाहनः।
कृत्वा सैन्यसमायोगं यावत्ते निर्ययुः सुराः॥ २७

तावद्दैत्यबलं प्राप्तं दृप्तं महिषपालितम्।
तत्राभूत्तुमुलं युद्धं देवदानवसैन्ययोः॥ २८

बाणैः खड्गैस्तथा प्रासैर्मुसलैश्च परश्वधैः।
गदाभिः पट्टिशैः शूलैश्चक्रैश्च शक्तितोमरैः॥ २९

मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च हलैश्चैवातिदारुणैः।
अन्यैश्च विविधैरस्त्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम्॥ ३०

सेनानीश्चिक्षुरस्तस्य गजारूढो महाबलः।
मघवन्तं पञ्चभिस्तैः सायकैः समताडयत्॥ ३१

तुराषाडपि तांश्छित्त्वा बाणैर्बाणांस्त्वरान्वितः।
हृदये चार्धचन्द्रेण ताडयामास तं कृती॥ ३२

बाणाहतस्तु सेनानीः प्राप मूर्च्छां गजोपरि।
करिणं वज्रघातेन स जघान करे ततः॥ ३३

व्यासजी बोले—यह सुनकर इन्द्र ब्रह्माजीको आगे करके समस्त लोकपालोंके साथ कैलासकी ओर चल पड़े॥ २१॥

कैलास पहुँचकर इन्द्रने वेदमन्त्रोंके द्वारा शिवजीकी स्तुति की। तत्पश्चात् [स्तुतिगानसे] अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त भगवान् शंकरको आगे करके वे विष्णुलोक गये॥ २२॥

उन देवाधिदेव भगवान् विष्णुकी स्तुति करके उन्होंने वहाँ अपने आनेका उद्देश्य बताया तथा वरदान पानेके कारण गर्वोन्मत्त महिषासुरसे उत्पन्न उग्र भयके बारेमें उनसे कहा॥ २३॥

उनके भयको सुनकर भगवान् विष्णुने देवताओंसे कहा कि हम देवगण युद्ध करेंगे और उस दुर्जयका वध कर डालेंगे॥ २४॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र आदि देवता अपने-अपने वाहनोंपर चढ़कर चल पड़े॥ २५॥

ब्रह्माजी हंसपर चढ़े, विष्णुभगवान्ने गरुडको अपना वाहन बनाया, शंकरजी वृषभपर सवार हुए, इन्द्र ऐरावत हाथीपर बैठे, स्वामी कार्तिकेय मोरपर चढ़े और यमराज महिषपर आरूढ़ हुए। इस प्रकार अपनी सैन्य तैयारी करके देवता लोग ज्यों ही आगे बढ़े, तभी उन्हें महिषासुरके द्वारा पालित मदोन्मत्त दानवी-सेना सामने मिल गयी। इसके बाद वहींपर देवताओं तथा दानवोंकी सेनामें भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ २६—२८॥

वे एक-दूसरेपर बाण, तलवार, भाला, मूसल, परशु, गदा, पट्टिश, शूल, चक्र, शक्ति, तोमर, मुद्गर, भिन्दिपाल, हल तथा अन्य अति भयंकर शस्त्रोंसे प्रहार करने लगे॥ २९-३०॥

महिषासुरके सेनापति महाबली चिक्षुरने हाथीपर चढ़कर इन्द्रपर पाँच बाणोंसे प्रहार किया॥ ३१॥

युद्धकुशल इन्द्रने भी तत्काल अपने बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर अपने अर्धचन्द्र नामक बाणसे उसके हृदय-स्थलपर आघात किया॥ ३२॥

उस बाणसे आहत होकर सेनानायक चिक्षुर हाथीपर बैठे-बैठे ही मूर्च्छित हो गया। इसके बाद इन्द्रने हाथीकी सूँड़पर वज्रसे प्रहार किया॥ ३३॥

तद्वज्राभिहतो नागो भग्नः सैन्यं जगाम ह।
दृष्ट्वा तं दैत्यराट् क्रुद्धो बिडालाख्यमथाब्रवीत्॥ ३४

गच्छ वीर महाबाहो जहीन्द्रं मदगर्वितम्।
वरुणादीन्परान्देवान्हत्वागच्छ ममान्तिकम्॥ ३५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य बिडालाख्यो महाबलः।
आरुह्य वारणं मत्तं जगाम त्रिदशाधिपम्॥ ३६

वासवस्तं समायान्तं दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः॥ ३७

स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः।
पञ्चाशद्भिर्जघानाशु वासवञ्च शिलीमुखैः॥ ३८

तथेन्द्रोऽपि च तान्बाणांश्छित्त्वा कोपसमन्वितः।
जघान विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः॥ ३९

स तु छित्त्वा शरांस्तूर्णं स्वशरैश्चापनिःसृतैः।
गदया ताडयामास गजं तस्य करोपरि॥ ४०

स्वकरे निहतो नागश्चकारार्तस्वरं मुहुः।
परिवृत्य जघानाशु दैत्यसैन्यं भयातुरम्॥ ४१

दानवस्तु गजं वीक्ष्य परावृत्य गतं रणात्।
समाविश्य रथे रम्ये जगामाशु सुरान् रणे॥ ४२

तुराषाडपि तं वीक्ष्य रथस्थं पुनरागतम्।
अहनद्विशिखैस्तीक्ष्णैराशीविषसमप्रभैः ॥ ४३

सोऽपि क्रुद्धश्चकारोग्रां बाणवृष्टिं महाबलः।
बभूव तुमुलं युद्धं तयोस्तत्र जयैषिणोः॥ ४४

उस वज्रके आघातसे हाथीकी सूँड़ कट गयी और वह सेनाके बीच भाग खड़ा हुआ। उसे देखकर दानवराज महिषासुर कुपित हो गया और उसने बिडाल नामक दानवसे कहा—हे महाबाहो! हे वीर! तुम जाओ और बलके अभिमानमें चूर इन्द्रको मार डालो, साथ ही वरुण आदि अन्य देवताओंका भी वध करके शीघ्र ही मेरे पास लौट आओ॥ ३४-३५॥

व्यासजी बोले—उसकी बात सुनकर वह महाबली बिडाल एक मतवाले हाथीपर सवार होकर युद्धके लिये इन्द्रकी ओर चल पड़ा॥ ३६॥

उसे अपनी ओर आते देखकर इन्द्रने कुपित होकर विषधर सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे बिडालपर प्रहार किया॥ ३७॥

उस बिडालने शीघ्र ही अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे इन्द्रके बाण काटकर पुनः तत्काल अपने पचास बाणोंसे इन्द्रपर आघात किया॥ ३८॥

तब इन्द्रने भी क्रुद्ध होकर उसके उन बाणोंको काटकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ३९॥

अपने धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे उसके बाणोंको काटकर इन्द्रने अपनी गदासे उसके हाथीकी सूँड़पर प्रहार किया॥ ४०॥

अपनी सूँड़पर गदाके आघातसे वह हाथी बार-बार आर्तनाद करने लगा और पीछे घूमकर भागता हुआ वह दैत्य-सेनाको ही कुचलने लगा, जिससे दानवोंकी सेना भयाकुल हो उठी॥ ४१॥

तत्पश्चात् हाथीको युद्धभूमिसे भागा देखकर वह दानव बिडाल लौटकर चला गया और पुनः एक सुन्दर रथपर सवार होकर देवताओंके समक्ष रणमें उपस्थित हो गया॥ ४२॥

इन्द्रने बिडालको रथपर सवार होकर पुनः समरांगणमें आया हुआ देखकर अपने सर्पतुल्य तीक्ष्ण बाणोंसे उसपर आघात करना आरम्भ कर दिया॥ ४३॥

वह महाबली बिडाल भी अत्यन्त कुपित होकर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा। इस प्रकार विजयके इच्छुक उन दोनोंके बीच भीषण युद्ध होने लगा॥ ४४॥

इन्द्रस्तु बलिनं दृष्ट्वा कोपेनाकुलितेन्द्रियः।
जयन्तमग्रतः कृत्वा युयुधे तेन संयुतः॥ ४५

जयन्तस्तु शितैर्बाणैस्तं जघान स्तनान्तरे।
पञ्चभिः प्रबलाकृष्टैरसुरं मदगर्वितम्॥ ४६

स बाणाभिहतस्तावन्निपपात रथोपरि।
अतिवाह्य रथं सूतो निर्जगाम रणाजिरात्॥ ४७

तस्मिन्विनिर्गते दैत्ये बिडालाख्येऽथ मूर्च्छिते।
जयशब्दो महानासीद्दुन्दुभीनां च निःस्वनः॥ ४८

सुराः प्रमुदिताः सर्वे तुष्टुवुस्तं शचीपतिम्।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४९

चुकोप महिषः श्रुत्वा जयशब्दं सुरैः कृतम्।
प्रेषयामास तत्रैव ताम्रं परमदापहम्॥ ५०

ताम्रस्तु बहुभिः सार्धं समागम्य रणाजिरे।
शरवृष्टिं चकाराशु तडित्वानिव सागरे॥ ५१

वरुणः पाशमुद्यम्य जगाम त्वरितस्तदा।
यमश्च महिषारूढो दण्डमादाय निर्ययौ॥ ५२

तत्र युद्धमभूद् घोरं देवदानवयोर्मिथः।
बाणैः खड्गैश्च मुसलैः शक्तिभिश्च परश्वधैः॥ ५३

दण्डेन निहतस्ताम्रो यमहस्तोद्यतेन च।
न चचाल महाबाहुः संग्रामाङ्गणतस्तदा॥ ५४

चापमाकृष्य वेगेन मुक्त्वा तीव्राञ्छिलीमुखान्।
इन्द्रादीनहनत्तूर्णं ताम्रस्तस्मिन् रणाजिरे॥ ५५

तेऽपि देवाः शरैर्दिव्यैर्निशितैश्च शिलाशितैः।
निजघ्नुर्दानवान्क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति चुक्रुशुः॥ ५६

क्रोधके प्रभावसे व्याकुल इन्द्रियोंवाले इन्द्रने बिडालको विशेष बलवान् देखकर जयन्तको अपना अग्रणी बना लिया और अब उसके साथ मिलकर वे युद्ध करने लगे॥ ४५॥

जयन्तने धनुषपर चढ़ाकर प्रबलतापूर्वक खींचे गये पाँच तीक्ष्ण बाणोंसे मदोन्मत्त उस दानव बिडालके वक्षःस्थलपर आघात किया॥ ४६॥

उन बाणोंके आघातसे मूर्च्छित होकर बिडाल रथपर गिर पड़ा, तब उसका सारथि तत्काल रथ लेकर रण-भूमिसे बाहर निकल गया॥ ४७॥

उस बिडालके मूर्च्छित होकर युद्धभूमिसे बाहर चले जानेपर देवसेनामें महान् विजय-घोष तथा दुन्दुभियोंकी ध्वनि होने लगी॥ ४८॥

सभी देवता प्रसन्न होकर इन्द्रकी स्तुति करने लगे, गन्धर्व गाने लगे तथा अप्सराएँ नाचने लगीं॥ ४९॥

तत्पश्चात् देवताओंके द्वारा किये गये उस विजय-घोषको सुनकर महिषासुर कुपित हो उठा। उसने शत्रुओंके अभिमानको चूर-चूर कर देनेवाले ताम्र नामक दानवको युद्धक्षेत्रमें भेजा॥ ५०॥

ताम्र बहुत-से सैनिकोंके साथ समरांगणमें आकर इस प्रकार वेगपूर्वक बाणोंकी वर्षा करने लगा मानो मेघ समुद्रमें जल बरसा रहा हो॥ ५१॥

उस समय वरुणदेव पाश लेकर तथा यमराज हाथमें दण्ड धारण करके महिषपर चढ़कर [युद्धभूमिमें] शीघ्र ही पहुँच गये॥ ५२॥

अब देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर बाणों, तलवारों, मुसलों, बर्छियों तथा फरसोंसे भीषण संग्राम होने लगा॥ ५३॥

यमराजके द्वारा अपने हाथसे फेंके गये दण्डसे ताम्र आहत हो गया, किंतु वह महाबाहु ताम्र समरांगणसे हिलातक नहीं॥ ५४॥

ताम्र उस संग्रामभूमिमें वेगपूर्वक धनुषको खींच-खींचकर अति तीक्ष्ण बाण छोड़कर इन्द्र आदि देवताओंपर शीघ्रतासे प्रहार करने लगा॥ ५५॥

वे देवता कुपित होकर पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये तीक्ष्ण दिव्य बाणोंसे दानवोंको मारने लगे और 'ठहरो-ठहरो' कहकर चिल्लाने लगे॥ ५६॥

निहतस्तैः सुरैर्दैत्यो मूर्च्छामाप रणाङ्गणे।
हाहाकारो महानासीद्दैत्यसैन्ये भयातुरे॥ ५७

उन देवताओंके प्रहारसे घायल होकर दैत्य ताम्र युद्धभूमिमें मूर्च्छित हो गया। तब भयाक्रान्त दैत्यसेनामें महान् हाहाकार मच गया॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
दैत्यसैन्यपराजयो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णु और शिवके साथ महिषासुरका भयानक युद्ध

व्यास उवाच

ताम्रेऽथ मूर्च्छिते दैत्ये महिषः क्रोधसंयुतः।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं देवानुपजगाम ह॥ १

व्यासजी बोले—इस प्रकार दानव ताम्रके मूर्च्छित हो जानेपर महिषासुर कुपित हो गया और एक विशाल गदा लेकर देवताओंके समक्ष जा डटा॥ १॥

तिष्ठन्त्वद्य सुराः सर्वे हन्म्यहं गदया किल।
सर्वे बलिभुजः कामं बलहीनाः सदैव हि॥ २

इत्युक्त्वासौ गजारूढं सम्प्राप्य मदगर्वितः।
जघान गदया तूर्णं बाहुमूले महाभुजः॥ ३

हे देवताओ! तुम सब ठहरो; मैं अभी अपनी गदासे तुम सभीको मार डालूँगा। बलिभाग (हविष्य) खानेवाले तुम सब तो सदासे बलहीन रहे हो—ऐसा कहकर अभिमानके मदमें चूर वह महाबाहु महिषासुर हाथीपर बैठे हुए इन्द्रके पास पहुँचकर उसने उनके बाहुमूलपर अपनी गदासे तीव्र आघात किया॥ २-३॥

सोऽपि वज्रेण घोरेण चिच्छेदाशु गदाञ्च ताम्।
प्रहर्तुकामस्त्वरितो जगाम महिषं प्रति॥ ४

इन्द्रने अपने भयंकर वज्रसे उस गदाको तुरंत काट दिया और वे महिषासुरको मारनेकी इच्छासे बड़ी शीघ्रतापूर्वक उसकी ओर बढ़े॥ ४॥

हयारिरपि कोपेन खड्गमादाय सुप्रभम्।
ययाविन्द्रं महावीर्यं प्रहरिष्यन्निवान्तिकम्॥ ५

तत्पश्चात् वह महिषासुर भी कुपित होकर अपने हाथमें चमचमाती हुई तलवार लेकर प्रहार करते हुए महाबली इन्द्रके सामने पहुँच गया॥ ५॥

बभूव च तयोर्युद्धं सर्वलोकभयावहम्।
आयुधैर्विविधैस्तत्र मुनिविस्मयकारकम्॥ ६

तब उन दोनोंमें नानाविध आयुधोंके द्वारा समस्त प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाला तथा मुनिजनोंको भी विस्मित कर देनेवाला भीषण युद्ध छिड़ गया॥ ६॥

चकाराशु तदा दैत्यो मायां मोहकरीं किल।
शाम्बरीं सर्वलोकघ्नीं मुनीनामपि मोहिनीम्॥ ७

तत्पश्चात् दैत्य महिषासुरने सम्पूर्ण जगत्‌को नष्ट कर देनेवाली तथा मुनियोंको भी मोहित कर देनेवाली मोहकारिणी शाम्बरी मायाका तत्काल प्रयोग किया॥ ७॥

कोटिशो महिषास्तत्र तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।
ददृशुः सायुधाः सर्वे निघ्नन्तो देववाहिनीम्॥ ८

उस मायाके प्रभावसे महिषासुरके ही रूपवाले तथा उसीके समान पराक्रमी करोड़ों महिषासुर अनेक प्रकारके आयुध लेकर देवसेनाका संहार करते हुए दिखायी पड़े॥ ८॥

मघवा विस्मितस्तत्र दृष्ट्वा तां दैत्यनिर्मिताम्।
बभूवातिभयोद्विग्नो मायां मोहकरीं किल॥ ९

वरुणोऽपि सुसन्त्रस्तस्तथैव धननायकः।
यमो हुताशनः सूर्यः शीतरश्मिर्भयातुरः॥ १०

पलायनपराः सर्वे बभूवुर्मोहिताः सुराः।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां स्मरणं चक्रुरुद्यताः॥ ११

तत्राजग्मुश्च काजेशाः स्मृतमात्राः सुरोत्तमाः।
हंसतार्क्ष्यवृषारूढास्त्रातुकामा वरायुधाः॥ १२

शौरिस्तां मोहिनीं दृष्ट्वा सुदर्शनमथोज्ज्वलम्।
मुमोच तत्तेजसैव माया सा विलयं गता॥ १३

वीक्ष्य तान्महिषस्तत्र सृष्टिस्थित्यन्तकारिणः।
योद्धुकामः समादाय परिघं समुपाद्रवत्॥ १४

महिषाख्यो महावीरः सेनानीश्चिक्षुरस्तथा।
उग्रास्यश्चोग्रवीर्यश्च दुद्रुवुर्युद्धकामुकाः॥ १५

असिलोमात्रिनेत्रश्च बाष्कलोऽन्धक एव च।
एते चान्ये च बहवो युद्धकामा विनिर्ययुः॥ १६

सन्नद्धा धृतचापास्ते रथारूढा मदोद्धताः।
परिवव्रुः सुरान्सर्वान्वृका इव सुवत्सकान्॥ १७

बाणवृष्टिं ततश्चक्रुर्दानवा मदगर्विताः।
सुराश्चापि तथा चक्रुः परस्परजिघांसवः॥ १८

अन्धको हरिमासाद्य पञ्चबाणाञ्छिलाशितान्।
मुमोच विषसन्दिग्धान्कर्णाकृष्टान्महाबलान्॥ १९

वासुदेवोऽप्यसंप्राप्तान्विशिखानाशुगैस्तदा।
चिच्छेद तान्पुनः पञ्च मुमोच रिपुनाशनः॥ २०

तब दैत्य महिषासुरद्वारा उत्पन्न की गयी उस मोहकरी मायाको देखकर इन्द्र विस्मयमें पड़ गये तथा भयसे बहुत व्याकुल हो उठे॥ ९॥

वरुण, कुबेर, यम, अग्नि, सूर्य तथा चन्द्रमा भी भयभीत हो गये और सभीके मनमें त्रास छा गया। सभी देवगण माया-विमोहित होकर भाग खड़े हुए और वे सावधान होकर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवका स्मरण करने लगे॥ १०-११॥

स्मरण करते ही उनकी रक्षाकी कामनासे श्रेष्ठ आयुध धारण करके सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश अपने-अपने वाहन हंस, गरुड तथा वृषभपर आरूढ होकर वहाँ आ गये॥ १२॥

मोहकारिणी उस आसुरी मायाको देखकर भगवान् विष्णुने अपना तेजोमय सुदर्शन चक्र चला दिया, जिसके प्रचण्ड तेजसे वह माया समाप्त हो गयी॥ १३॥

तदनन्तर सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले उन देवताओंको देखकर उनसे युद्ध करनेकी इच्छासे वह महिषासुर परिघ लेकर उनकी ओर दौड़ा॥ १४॥

इसके बाद महावीर महिषासुर, सेनाध्यक्ष चिक्षुर, उग्रास्य, उग्रवीर्य, असिलोमा, त्रिनेत्र, बाष्कल तथा अन्धक—ये दानव एवं इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दानव युद्धकी अभिलाषासे निकल पड़े॥ १५-१६॥

उन कवचधारी, धनुष धारण करनेवाले, रथारूढ तथा मदोन्मत्त दानवोंने सभी देवताओंको उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार भेड़िये अत्यन्त कोमल बछड़ोंको घेर लेते हैं॥ १७॥

तदनन्तर एक-दूसरेको मार डालनेकी इच्छावाले वे मदोन्मत्त दानव तथा देवता बाण-वृष्टि करने लगे॥ १८॥

इसी बीच अन्धकासुरने भगवान् विष्णुके समक्ष पहुँचकर सानपर चढ़ाये गये, विषमें दग्ध किये गये तथा कानतक खींचे गये अत्यन्त शक्तिशाली पाँच बाण छोड़े॥ १९॥

शत्रुदमन भगवान् विष्णुने भी बड़ी तत्परताके साथ अपने तीव्रगामी बाणोंसे अन्धकासुरके उन बाणोंको दूरसे ही काट डाला और फिर उसके ऊपर पाँच बाण छोड़े॥ २०॥

तयोः परस्परं युद्धं बभूव हरिदैत्ययोः।
बाणासिचक्रमुसलैर्गदाशक्तिपरश्वधैः ॥ २१

महेशान्धकयोर्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम्।
पञ्चाशद्दिनपर्यन्तं बभूव च परस्परम्॥ २२

इन्द्रबाष्कलयोस्तद्वन्महिषासुररुद्रयोः ।
यमत्रिनेत्रयोस्तद्वन्महाहनुधनेशयोः ॥ २३

असिलोमवरुणयोर्युद्धं परमदारुणम्।
गरुडं गदया दैत्यो जघान हरिवाहनम्॥ २४

स गदापातखिन्नाङ्गो निःश्वसन्नवतिष्ठत।
शौरिस्तं दक्षिणेनाशु हस्तेन परिसान्त्वयन्॥ २५

स्थिरं चकार देवेशो वैनतेयं महाबलम्।
समाकृष्य धनुः शार्ङ्गं मुमोच विशिखान्बहून्॥ २६

अन्धकोपरि कोपेन हन्तुकामो जनार्दनः।
दानवोऽपि च तान्बाणांश्चिच्छेद स्वशरैः शितैः॥ २७

पञ्चाशद्भिर्हरिं कोपाज्जघान च शिलाशितैः।
वासुदेवोऽपि तांस्तूर्णं वञ्चयित्वा शरोत्तमान्॥ २८

चक्रं मुमोच वेगेन सहस्रारं सुदर्शनम्।
त्यक्तं सुदर्शनं दूरात्स्वचक्रेण न्यवारयत्॥ २९

ननाद च महाराज देवान्सम्मोहयन्निव।
दृष्ट्वा तु विफलं जातं चक्रं देवस्य शार्ङ्गिणः॥ ३०

जग्मुः शोकं सुराः सर्वे जहर्षुर्दानवास्तथा।
वासुदेवोऽपि तरसा दृष्ट्वा देवाञ्छुचावृतान्॥ ३१

गदां कौमोदकीं धृत्वा दानवं समुपाद्रवत्।
तं जघानातिवेगेन मूर्ध्नि मायाविनं हरिः॥ ३२
स गदाभिहतो भूमौ निपपातातिमूर्च्छितः।

इस प्रकार विष्णु तथा अन्धकासुर—उन दोनोंमें बाण, तलवार, चक्र, मूसल, गदा, बर्छी तथा फरसोंमें भीषण युद्ध होने लगा॥ २१॥

इसी प्रकार महेश्वर तथा अन्धकासुरके बीच भीषण रोमांचकारी युद्ध निरन्तर पचास दिनोंतक होता रहा॥ २२॥

उसी तरह इन्द्र तथा बाष्कल, महिषासुर तथा भगवान् रुद्र, यमराज तथा त्रिनेत्र, महाहनु तथा कुबेर एवं असिलोमा तथा वरुणके बीच महाभीषण युद्ध हुआ। इसी बीच अन्धकासुरने अपनी गदासे भगवान् विष्णुके वाहन गरुडपर प्रहार किया। गदाके प्रहारसे घायल अंगोंवाले गरुड लम्बी साँस खींचते हुए स्थित हो गये। तत्पश्चात् देवाधिदेव विष्णुने अपने दाहिने हाथसे सहलाकर महाबली गरुडको सान्त्वना प्रदान करते हुए उन्हें स्वस्थचित्त किया। तब भगवान् विष्णुने अन्धकका संहार करनेके विचारसे अपना शार्ङ्गधनुष खींचकर उसके ऊपर बहुत-से बाण छोड़े॥ २३—२६$\frac{१}{२}$ ॥

दानव अन्धकने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और इसके बाद सानपर चढ़ाकर तेज बनाये गये पचास बाण भगवान् विष्णुके ऊपर कुपित होकर एक ही साथ छोड़े। भगवान् विष्णुने भी उन उत्तम बाणोंको तत्क्षण निष्फल करके अपना हजार अरोंवाला सुदर्शन चक्र अन्धकासुरके ऊपर वेगपूर्वक चलाया। तब अन्धकासुरने भगवान् विष्णुद्वारा छोड़े गये सुदर्शन चक्रको अपने चक्रसे काफी दूरसे ही विफल कर दिया। हे महाराज [जनमेजय]! इसके बाद देवताओंको सम्मोहित करते हुए उसने भीषण गर्जना की॥ २७—२९$\frac{१}{२}$ ॥

तत्पश्चात् शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले भगवान् विष्णुके सुदर्शन चक्रको विफल हुआ देखकर सभी देवता शोकाकुल हो उठे तथा दानवगण हर्षित हो गये। तब भगवान् विष्णु भी देवताओंको चिन्तामग्न देखकर अपनी कौमोदकी गदा लेकर दानव अन्धकपर झपट पड़े। श्रीहरिने बड़े वेगसे उस मायावीके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। वह दैत्य गदाके प्रहारसे पूर्णरूपसे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०—३२$\frac{१}{२}$ ॥

तं तथा पतितं वीक्ष्य हयारिरतिकोपनः॥ ३३

आजगाम रमानाथं त्रासयन्नतिगर्जितैः।
वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा समायान्तं क्रुधान्वितम्॥ ३४

चापज्यानिनदं चोग्रं चकार नन्दयन्सुरान्।
शरवृष्टिं चकाराशु भगवान्महिषोपरि॥ ३५

सोऽपि चिच्छेद बाणौघैस्ताञ्छरान्गगनेरितान्।
तयोर्युद्धमभूद्राजन् परस्परभयावहम्॥ ३६

गदया ताडयामास केशवो मस्तकोपरि।
स गदाभिहतो मूर्ध्नि पपातोर्व्यां सुमूर्च्छितः॥ ३७

हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य सुदारुणः।
स विहाय व्यथां दैत्यो मुहूर्तादुत्थितः पुनः॥ ३८

गृहीत्वा परिघं शीर्षे जघान मधुसूदनम्।
परिघेणाहतस्तेन मूर्च्छामाप जनार्दनः॥ ३९

मूर्च्छितं तमुवाहाशु जगाम गरुडो रणात्।
परावृत्ते जगन्नाथे देवा इन्द्रपुरोगमाः॥ ४०

भयं प्रापुः सुदुःखार्ताश्चुक्रुशुश्च रणाजिरे।
क्रन्दमानान्सुरान्वीक्ष्य शङ्करः शूलभृत्तदा॥ ४१

महिषं तरसाभ्येत्य प्राहरद्रोषसंयुतः।
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ शङ्करस्योरसि स्फुटम्॥ ४२

जगर्ज स च दुष्टात्मा वञ्चयित्वा त्रिशूलकम्।
शङ्करोऽपि तदा पीडां न प्रापोरसि ताडितः॥ ४३

तं जघान त्रिशूलेन कोपादरुणलोचनः।

उसे इस प्रकार गिरा हुआ देखकर महिषासुर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और अपनी घोर गर्जनासे भयभीत करता हुआ भगवान् विष्णुके सामने आ गया। भगवान् विष्णुने भी उस महिषासुरको कुपित होकर अपने समक्ष आया देखकर देवताओंको आनन्दित करते हुए अपने धनुषकी प्रत्यंचासे भयानक टंकार उत्पन्न की। तत्पश्चात् भगवान् विष्णु महिषासुरके ऊपर शीघ्रतापूर्वक बाणोंकी बौछार करने लगे। उसने भी अपने बाणसमूहोंसे उन आते हुए बाणोंको आकाशमें ही काट डाला। हे राजन्! इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अति भीषण युद्ध हुआ॥ ३३—३६॥

भगवान् विष्णुने गदासे महिषासुरके मस्तकपर प्रहार किया। मस्तकपर उस गदाके आघातसे मूर्च्छित होकर वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। [यह देखकर] उसकी सेनामें अति भीषण हाहाकार मच गया। कुछ ही क्षणोंमें अपनी वेदनाको भूलकर वह दैत्य फिर उठकर खड़ा हो गया। उसने तत्काल एक परिघ लेकर मधुसूदन श्रीविष्णुके सिरपर प्रहार किया। उस परिघके प्रहारसे आहत होकर भगवान् विष्णु मूर्च्छाको प्राप्त हो गये। तब गरुड मूर्च्छाको प्राप्त उन भगवान् विष्णुको युद्धस्थलसे लेकर बाहर चले गये। इस प्रकार जगत्पति विष्णुके समरांगणसे लौट जानेपर इन्द्र आदि प्रधान देवता भयभीत हो गये और दुःखसे पीड़ित होकर युद्धभूमिमें चीखने-चिल्लाने लगे॥ ३७—४०½॥

तत्पश्चात् शूलधारी भगवान् शंकरने देवताओंको इस प्रकार करुण क्रन्दन करते हुए देखकर अत्यन्त क्रोधके साथ महिषासुरके पास द्रुतगतिसे पहुँचकर उसपर भीषण प्रहार किया। उस महिषासुरने भी भगवान् शंकरके वक्षःस्थलपर अपनी शक्ति (बर्छी)-से तेज प्रहार किया और उनके त्रिशूलप्रहारको विफल करके उस दुष्टात्माने बड़ी तेज गर्जना की। वक्षपर प्रहार होनेपर भी भगवान् शंकरको कोई पीड़ा नहीं हुई और क्रोधसे आँखें लाल करके उन्होंने उसपर अपने त्रिशूलसे प्रहार किया॥ ४१—४३½॥

संलग्नं शङ्करं दृष्ट्वा महिषेण दुरात्मना॥ ४४

आजमाम हरिस्तावत्त्यक्त्वा मूर्च्छां प्रहारजाम्।
महिषस्तु तदा वीक्ष्य सम्प्राप्तौ हरिशङ्करौ॥ ४५

युद्धकामौ महावीर्यौ चक्रशूलधरौ वरौ।
कोपयुक्तो बभूवासौ दृष्ट्वा तौ समुपागतौ॥ ४६

जगाम सम्मुखस्तावत्संग्रामार्थं महाभुजः।
माहिषं वपुरास्थाय धुन्वन्पुच्छं समुत्कटम्॥ ४७

चकार भैरवं नादं त्रासयन्नमरानपि।
धुन्वञ्छृङ्गे महाकायो दारुणो जलदो यथा॥ ४८

शृङ्गाभ्यां पर्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप भृशमुत्कटान्।
दृष्ट्वा तौ तु महावीर्यौ दानवं देवसत्तमौ॥ ४९

चक्रतुर्बाणवृष्टिं च दानवोपरि दारुणाम्।
कुर्वाणौ बाणवृष्टिं तौ दृष्ट्वा हरिहरौ हरिः॥ ५०

चिक्षेप गिरिशृङ्गं तु पुच्छेनावृत्य दारुणम्।
आपतन्तं गिरिं वीक्ष्य भगवान्सात्वतां पतिः॥ ५१

विशिखैः शतधा चक्रे चक्रेणाशु जघान तम्।
हरिचक्राहतः संख्ये मूर्च्छामाप स दैत्यराट्॥ ५२

उत्तस्थौ च क्षणान्नूनं मानुषं वपुरास्थितः।
गदापाणिर्महाघोरो दानवः पर्वतोपमः॥ ५३

मेघनादं ननादोच्चैर्भीषयन्नमरानपि।
तच्छ्रुत्वा भगवान्विष्णुः पाञ्चजन्यं समुज्ज्वलम्॥ ५४

पूरयामास तरसा शब्दं कर्तुं खरस्वरम्।
तेन शब्देन शङ्खस्य भयत्रस्ताश्च दानवाः।
बभूवुर्मुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः॥ ५५

इसी बीच दुष्टात्मा महिषासुरके साथ भगवान् शंकरको इस प्रकार युद्धरत देखकर प्रहारजनित मूर्च्छाका त्याग करके वहाँ भगवान् विष्णु आ गये। उस समय युद्धके लिये उत्सुक महापराक्रमी विष्णु तथा शिवको श्रेष्ठ सुदर्शन चक्र तथा त्रिशूल धारण करके लड़नेके लिये अपने समक्ष उपस्थित देखकर वह महाबली महिषासुर अत्यन्त कुपित हो उठा। तत्पश्चात् वह विशालबाहु दैत्य उन दोनों देवताओंको अपने समीप आया हुआ देखकर महिषका रूप धारण करके पूँछ हिलाता हुआ युद्ध करनेके लिये उनके समक्ष पहुँच गया। देवताओंको आतंकित करते हुए उस विशालकाय तथा भयावह महिषासुरने अपनी सींगें फटकारते हुए मेघकी भाँति भीषण गर्जना की तथा वह अपनी सींगोंसे पर्वतोंकी बड़ी-बड़ी चट्टानें उखाड़-उखाड़कर फेंकने लगा॥ ४४—४८ १/२ ॥

उस दानवको देखकर महापराक्रमी देवश्रेष्ठ विष्णु तथा शंकर उसके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगे। भगवान् विष्णु तथा शिवको अपने ऊपर बाण-वृष्टि करते हुए देखकर महिषासुरने अपनी पूँछमें एक भयानक पर्वतशिखर लपेटकर उनके ऊपर फेंका। उस पर्वत-शिखरको आते देखकर भगवान् विष्णुने अपने बाणोंसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये और फिर सुदर्शन चक्रसे उसके ऊपर शीघ्रतासे प्रहार किया। भगवान् विष्णुके चक्रसे आहत होकर वह दैत्यराज महिषासुर युद्धमें मूर्च्छित हो गया। किंतु थोड़ी ही देरमें वह मनुष्यका शरीर धारण करके उठ खड़ा हुआ। पर्वतके समान शरीरवाला वह महाभयानक दैत्य हाथमें गदा धारणकर देवताओंको भयभीत करता हुआ मेघके समान जोर-जोरसे गरजने लगा॥ ४९—५३ १/२ ॥

उस नादको सुनकर भगवान् विष्णुने तीव्रतर ध्वनि उत्पन्न करनेके लिये बड़ी तेजीसे अपना देदीप्यमान पांचजन्य नामक शंख बजाया। शंखकी उस ध्वनिसे समस्त दानव भयभीत हो गये और तपोधन ऋषिगण तथा देवता आनन्दमग्न हो गये॥ ५४-५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरस्येन्द्रादिदेवैः सह युद्धवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

* * *

अथ सप्तमोऽध्यायः

महिषासुरको अवध्य जानकर त्रिदेवोंका अपने-अपने लोक लौट जाना, देवताओंकी पराजय तथा महिषासुरका स्वर्गपर आधिपत्य, इन्द्रका ब्रह्मा और शिवजीके साथ विष्णुलोकके लिये प्रस्थान

व्यास उवाच

असुरान्महिषो दृष्ट्वा विषण्णमनसस्तदा।
त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव मृगराडसौ॥ १

कृत्वा नादं महाघोरं विस्तार्य च महासटाम्।
पपात सुरसेनायां त्रासयन्नखदर्शनैः॥ २

गरुडञ्च नखाघातैः कृत्वा रुधिरविप्लुतम्।
जघान च भुजे विष्णुं नखाघातेन केसरी॥ ३

वासुदेवोऽपि तं दृष्ट्वा चक्रमुद्यम्य वेगवान्।
हन्तुकामो हरिः काममवापाशु क्रुधान्वितः॥ ४

यावद्धयरिपुं वेगाच्चक्रेणाभिजघान तम्।
तावत्सोऽतिबलः शृङ्गी शृङ्गाभ्यां न्यहनद्धरिम्॥ ५

वासुदेवो विषाणाभ्यां ताडितोरसि विह्वलः।
पलायनपरो वेगाज्जगाम भुवनं निजम्॥ ६

गतं दृष्ट्वा हरिं कामं शङ्करोऽपि भयान्वितः।
अवध्यं तं परं मत्वा ययौ कैलासपर्वतम्॥ ७

ब्रह्मापि च निजं धाम त्वरितः प्रययौ भयात्।
मघवा वज्रमालम्ब्य तस्थावाजौ महाबलः॥ ८

वरुणः शक्तिमालम्ब्य धैर्यमालम्ब्य संस्थितः।
यमोऽपि दण्डमादाय यत्तः समरतत्परः॥ ९

ततो यक्षाधिपः कामं बभूव रणतत्परः।
पावकः शक्तिमादाय तत्राभूद्युद्धमानसः॥ १०

नक्षत्राधिपतिः सूर्यः समवेतौ स्थितावुभौ।
वीक्ष्य तं दानवश्रेष्ठं युद्धाय कृतनिश्चयौ॥ ११

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] महिषासुरने समस्त दानवोंको खिन्नमनस्क देखकर महिषका वह रूप छोड़कर तत्काल सिंहका रूप धारण कर लिया॥ १॥

तत्पश्चात् भयानक गर्जन करके गर्दनके बाल (अयाल) फैलाकर अपने तीक्ष्ण नख दिखाकर देवताओंको भयभीत करता हुआ वह देवसेनापर टूट पड़ा॥ २॥

उसने गरुडके ऊपर अपने नाखूनोंसे आघात करके उन्हें रक्तसे लथपथ कर दिया। पुनः सिंहरूपधारी उस दानवने विष्णुकी भुजापर अपने नखोंसे प्रहार किया॥ ३॥

भगवान् विष्णुने उसे देखकर कुपित हो तत्काल अपना सुदर्शन चक्र लेकर उस दैत्यको मार डालनेकी इच्छासे बड़े वेगसे उसपर चला दिया॥ ४॥

भगवान् विष्णुने उस महिषासुरपर ज्यों ही अपने चक्रसे तेज प्रहार किया त्यों ही वह महान् शक्तिशाली महिषका रूप धारणकर भगवान् विष्णुको अपनी सींगोंसे मारने लगा॥ ५॥

वक्षःस्थलपर सींगके आघातसे व्याकुल होकर भगवान् विष्णु बड़े वेगसे भागकर अपने लोक चले गये। विष्णुको पलायित देखकर शंकरजी भी बहुत भयभीत हो गये और उसे सर्वथा अवध्य मानकर कैलासपर्वतपर चले गये। ब्रह्माजी भी उसके डरसे तत्काल अपने लोक चले गये॥ ६-७½॥

महाबली इन्द्र वज्र धारण किये हुए समरांगणमें डटे रहे। वरुणदेव अपना पाशास्त्र लेकर धैर्यपूर्वक खड़े रहे। यमराज अपना दण्ड धारण किये युद्ध करनेके लिये सावधान होकर खड़े थे। यक्षाधिपति कुबेर युद्ध करनेके लिये पूर्णरूपसे उद्यत थे और अग्निदेव बर्छी लेकर युद्ध करनेके विचारसे स्थित थे। नक्षत्रोंके नायक चन्द्रमा तथा भगवान् सूर्य—दोनों एक साथ युद्ध करनेके लिये खड़े हो गये और उस दानवश्रेष्ठ महिषासुरको देखकर उन्होंने युद्ध करनेका निश्चय कर लिया॥ ८—११॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धं दैत्यसैन्यं समभ्यगात्।
विसृजन्बाणजालानि क्रूराहिसदृशानि च॥ १२

कृत्वा हि माहिषं रूपं भूपतिः संस्थितस्तदा।
देवदानवयोधानां निनादस्तुमुलोऽभवत्॥ १३

ज्याघातश्च तलाघातो मेघनादसमोऽभवत्।
संग्रामे सुमहाघोरे देवदानवसेनयोः॥ १४

शृङ्गाभ्यां पार्वताञ्छृङ्गांश्चिक्षेप च महाबलः।
जघान सुरसङ्घांश्च दानवो मदगर्वितः॥ १५

खुराघातैस्तथा देवान्पुच्छस्य भ्रमणेन च।
स जघान रुषाविष्टो महिषः परमाद्भुतः॥ १६

ततो देवाः सगन्धर्वा भयमाजग्मुरुद्यताः।
मघवा महिषं दृष्ट्वा पलायनपरोऽभवत्॥ १७

सङ्गरं सम्परित्यज्य गते शक्रे शचीपतौ।
यमो धनाधिपः पाशी जग्मुः सर्वे भयातुराः॥ १८

महिषोऽपि जयं मत्वा जगाम स्वगृहं ततः।
ऐरावतं गजं प्राप्य त्यक्तमिन्द्रेण गच्छता॥ १९

तथोच्चैःश्रवसं भानोः कामधेनुं पयस्विनीम्।
स्वसैन्यसंवृतस्तूर्णं स्वर्गं गन्तुं मनो दधे॥ २०

तरसा देवसदनं गत्वा स महिषासुरः।
जग्राह सुरराज्यं वै त्यक्तं देवैर्भयातुरैः॥ २१

इन्द्रासने तथा रम्ये दानवः समुपाविशत्।
दानवान्स्थापयामास देवानां स्थानकेषु सः॥ २२

एवं वर्षशतं पूर्णं कृत्वा युद्धं सुदारुणम्।
अवापैन्द्रपदं कामं दानवो मदगर्वितः॥ २३

निर्जरा निर्गता नाकात्तेन सर्वेऽतिपीडिताः।
एवं बहूनि वर्षाणि बभ्रमुर्गिरिगह्वरे॥ २४

इतनेमें क्रूर सर्पोंके समान बाण-समूहोंकी वर्षा करती हुई क्रुद्ध दानवी सेना वहाँ आ गयी॥ १२॥

वह दानवराज महिषका रूप धारण करके खड़ा था। उस समय देवता तथा असुर-पक्षके योद्धाओंका भीषण गर्जन होने लगा॥ १३॥

देवताओं तथा दानवोंके बीच हो रहे महाभयानक संग्राममें धनुषकी टंकार तथा ताल ठोंकनेकी ध्वनि मेघ-गर्जना जैसी प्रतीत हो रही थी॥ १४॥

अभिमानमें चूर महाबली दैत्य महिषासुर अपनी सींगोंसे पर्वत-शिखर फेंक-फेंककर देवसमूहपर प्रहार कर रहा था॥ १५॥

क्रोधमें भरे हुए उस परम अद्भुत महिषासुरने अपने खुरोंके आघातसे तथा पूँछ घुमाकर बहुत-से देवताओंपर प्रहार किया॥ १६॥

तत्पश्चात् लड़नेके लिये उद्यत देवता तथा गन्धर्व भयभीत हो गये और महिषासुरको देखकर इन्द्र भी भाग गये॥ १७॥

संग्राम छोड़कर शचीपति इन्द्रके भाग जानेपर यमराज, धनाध्यक्ष कुबेर तथा वरुणदेव—ये सब भी भयभीत होकर भाग चले॥ १८॥

महिषासुर भी अपनी जीत मानकर अपने घर चला गया। इन्द्रके भाग जानेके बाद उनके द्वारा त्यक्त ऐरावत हाथी, सूर्यका उच्चैःश्रवा घोड़ा तथा दूध देनेवाली कामधेनु गौको उसने हस्तगत कर लिया। तत्पश्चात् उसने शीघ्र ही सेनाको साथमें लेकर स्वर्ग जानेका मनमें निश्चय किया॥ १९-२०॥

इसके बाद शीघ्र ही देवलोक पहुँचकर महिषासुरने भयाक्रान्त देवताओंके द्वारा पहलेसे ही छोड़ दिये गये उनके राज्यपर आधिपत्य कर लिया॥ २१॥

इसके बाद उस रमणीय इन्द्रासनपर महिषासुर आसीन हुआ और उसने राज्य-संचालनार्थ देवताओंके स्थानपर दानवोंको स्थापित कर दिया॥ २२॥

इस प्रकार पूरे सौ वर्षतक भीषण युद्ध करके अभिमानमें चूर उस दैत्यने इन्द्रपद प्राप्त किया॥ २३॥

सभी देवता उस महिषासुरसे प्रताड़ित होकर स्वर्गसे निकल गये और बहुत वर्षोंतक पर्वतकी गुफाओंमें घूमते-फिरते रहे॥ २४॥

श्रान्ताः सर्वे तदा राजन् ब्रह्माणं शरणं ययुः।
प्रजापतिं जगन्नाथं रजोरूपं चतुर्मुखम्॥ २५

पद्मासनं वेदगर्भं सेवितं मुनिभिः स्वजैः।
मरीचिप्रमुखैः शान्तैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ २६

किन्नरैः सिद्धगन्धर्वैश्चारणोरगपन्नगैः।
तुष्टुवुर्भयभीतास्ते देवदेवं जगद्गुरुम्॥ २७

देवा ऊचुः

धातः किमेतदखिलार्तिहराम्बुजन्म
जन्माभिवीक्ष्य न दयां कुरुषे सुरान् यत्।
सम्पीडितान् रणजितानसुराधिपेन
स्थानच्युतान् गिरिगुहाकृतसन्निवासान्॥ २८

पुत्रान्पिता किमपराधशतैः समेता-
न्सन्त्यज्य लोभरहितः कुरुतेऽतिदुःस्थान्।
यस्त्वं सुरांस्तव पदाम्बुजभक्तियुक्ता-
न्दैत्यार्दितांश्च कृपणान् यदुपेक्षसेऽद्य॥ २९

अमरभुवनराज्यं तेन भुक्तं नितान्तं
मखहविरपि योग्यं ब्राह्मणैराददाति।
सुरतरुवरपुष्पं सेवतेऽसौ दुरात्मा
जलनिधिनिधिभूतां गामसौ सेवते ताम्॥ ३०

किं वा गृणीमः सुरकार्यमद्भुतं
जानासि देवेश सुरारिचेष्टितम्।
ज्ञानेन सर्वं त्वमशेषकार्यवि-
त्तस्मात्प्रभो ते प्रणताः स्म पादयोः॥ ३१

यत्रापि कुत्रापि गतान्सुरानसौ
नानाचरित्रः खलु पापमानसः।
पीडां करोत्येव स दुष्टचेष्टित-
स्त्रातासि देवेश विधेहि शं विभो॥ ३२

हे राजन्! तब थके हुए सभी देवतागण ब्रह्माजीकी शरणमें गये। उस महिषासुरके भयसे त्रस्त वे सभी देवता समस्त वेद-वेदांगोंके पारगामी विद्वान्, शान्त स्वभाववाले और स्वयं ब्रह्माके मनसे उत्पन्न मरीचि आदि प्रमुख मुनियों एवं सिद्धों, किन्नरों, गन्धर्वों, चारणों, उरगों तथा पन्नगोंद्वारा निरन्तर सेवित, रजोगुणसे सम्पन्न, चार मुखवाले, जगन्नाथ, प्रजापति, वेदगर्भ, कमलके आसनपर विराजमान तथा समस्त संसारके गुरु देवाधिदेव ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे॥ २५—२७॥

देवता बोले—हे सम्पूर्ण दुःख दूर करनेवाले पद्मयोनि ब्रह्माजी! इस समय सभी देवता संग्राममें दानवेन्द्र महिषासुरसे पराजित होकर गिरि-कन्दराओंमें कालक्षेप कर रहे हैं। स्थानच्युत हो जानेके कारण उन्हें महान् कष्ट उठाना पड़ रहा है। हमारी ऐसी दशा देखकर भी क्या आपको दया नहीं आती, यह कैसी विचित्र बात है!॥ २८॥

क्या निर्लोभी पिता सैकड़ों अपराधोंसे युक्त अपने पुत्रोंको त्यागकर उन्हें कष्टमें पड़े रहना देख सकता है? तब फिर दैत्योंद्वारा सताये गये असहाय देवताओंकी, जो आपके चरणकमलकी भक्तिमें लगे रहते हैं, उपेक्षा आज आप क्यों कर रहे हैं?॥ २९॥

[दुष्ट] महिषासुर देवलोकका साम्राज्य भोग रहा है। ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञमें दी हुई पवित्र हविको वह स्वयं ले लेता है। वह दुष्टात्मा असुर स्वर्गके पारिजातपुष्पोंको अपने उपभोगमें लाता है तथा समुद्रकी निधिस्वरूपा उस कामधेनु गौका भी उपयोग कर रहा है॥ ३०॥

हे देवेश! हमलोग देवताओंकी विषम स्थितिका वर्णन कहाँतक करें? आप तो अपने ज्ञानसे दैत्योंकी सारी कुचेष्टा जानते हैं; आप सम्पूर्ण कार्योंको जाननेवाले हैं। अतः हे प्रभो! हम सभी देवता आपके चरणोंमें आ पड़े हैं॥ ३१॥

हे देवेश! देवता जहाँ कहीं भी जाते हैं [वहीं पहुँचकर] विविध चरित्रोंवाला, पापमय विचारोंवाला तथा दुष्ट आचरणवाला वह महिषासुर उन्हें पीड़ित करने लगता है। हे विभो! अब आप ही हमारे रक्षक हैं; हमारा कल्याण कीजिये॥ ३२॥

नो चेद्वयं दावमहाग्निपीडिताः
कं शान्तिकर्तारमनन्ततेजसम्।
यामः प्रजेशं शरणं सुरेष्टं
धातारमाद्यं परिमुच्य कं शिवम्॥ ३३

व्यास उवाच

इति स्तुत्वा सुराः सर्वे प्रणेमुस्तं प्रजापतिम्।
बद्धाञ्जलिपुटाः सर्वे विषण्णवदना भृशम्॥ ३४

तांस्तथा पीडितान्दृष्ट्वा तदा लोकपितामहः।
उवाच श्लक्ष्णया वाचा सुखं सञ्जनयन्निव॥ ३५

ब्रह्मोवाच

किं करोमि सुराः कामं दानवो वरदर्पितः।
स्त्रीवध्योऽसौ न पुंवध्यो विधेयं तत्र किं पुनः॥ ३६

व्रजामोऽद्य सुराः सर्वे कैलासं पर्वतोत्तमम्।
शङ्करं पुरतः कृत्वा सर्वकार्यविशारदम्॥ ३७

ततो व्रजाम वैकुण्ठं यत्र देवो जनार्दनः।
मिलित्वा देवकार्यञ्च विमृशामो विशेषतः॥ ३८

इत्युक्त्वा हंसमारुह्य ब्रह्मा कार्यसमुच्चये।
देवांश्च पृष्ठतः कृत्वा कैलासाभिमुखो ययौ॥ ३९

तावच्छिवोऽपि तरसा ज्ञात्वा ध्यानेन पद्मजम्।
आगच्छन्तं सुरैः सार्धं निर्गतः स्वगृहाद् बहिः॥ ४०

दृष्ट्वा परस्परं तौ तु कृताभिवादनौ भृशम्।
प्रणतौ च सुरैः सर्वैः सन्तुष्टौ सम्बभूवतुः॥ ४१

आसनानि पृथग्दत्त्वा देवेभ्यो गिरिजापतिः।
उपविष्टेषु तेष्वेव निषसादासने स्वके॥ ४२

कृत्वा तु कुशलप्रश्नं ब्रह्माणं वृषभध्वजः।
पप्रच्छ कारणं देवान्कैलासागमने विभुः॥ ४३

यदि आप हमारी रक्षा नहीं करेंगे तो दैत्योंके भीषण अत्याचाररूपी दावानलसे पीड़ित हमलोग आप सदृश शान्तिदाता, अनन्त तेजस्वी, प्रजापति, देवताओंके पूज्य, आदिपिता तथा कल्याणकारी प्रभुको छोड़कर किसकी शरणमें जायँ?॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार स्तुति करके सम्पूर्ण देवता हाथ जोड़कर प्रजापति ब्रह्माको प्रणाम करने लगे। उन सबके मुखपर अत्यन्त उदासी छायी हुई थी। तब उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर लोकपितामह ब्रह्माजी उन्हें सुख पहुँचाते हुए मधुर वाणीमें कहने लगे—॥ ३४-३५॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवताओ! मैं क्या करूँ? वर पानेके कारण वह दैत्य अभिमानी हो गया है। उसका वध कोई स्त्री ही कर सकती है, पुरुष नहीं। ऐसी परिस्थितिमें मैं क्या कर सकता हूँ?॥ ३६॥

हे देवताओ! हम सबलोग पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर चलें। [वहाँ विराजमान] सम्पूर्ण कर्मोंके ज्ञाता भगवान् शंकरको आगे करके वहाँसे वैकुण्ठधामको चलें, जहाँ भगवान् विष्णु रहते हैं। उनसे मिलकर हमलोग देवताओंके कार्यके विषयमें विशेषरूपसे विचार करेंगे॥ ३७-३८॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी हंसपर सवार होकर कार्यसिद्धिके लिये देवताओंको साथ लेकर कैलासकी ओर चल पड़े॥ ३९॥

तभी शिवजी अपने ध्यानयोगसे सभी देवताओंसहित ब्रह्माजीको आता हुआ जानकर अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ ४०॥

एक-दूसरेको देखकर उन्होंने परस्पर प्रणाम किया। उन सभी देवताओंने भी भगवान् शंकर तथा ब्रह्माको प्रणाम किया और वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४१॥

शिवजी वहाँ सभी देवताओंको पृथक्-पृथक् आसन देकर सबके यथास्थान बैठ जानेपर स्वयं भी अपने आसनपर बैठ गये। तब ब्रह्माजीसे कुशल-प्रश्न करके भगवान् शिवने देवताओंसे कैलास आनेका कारण पूछा॥ ४२-४३॥

शिव उवाच

किमत्रागमनं ब्रह्मन् कृतं देवैः सवासवैः।
भवता च महाभाग ब्रूहि तत्कारणं किल॥ ४४

ब्रह्मोवाच

महिषेण सुरेशान पीडिताः स्वर्निवासिनः।
भ्रमन्ति गिरिदुर्गेषु भयत्रस्ताः सवासवाः॥ ४५

यज्ञभुग्महिषो जातस्तथान्ये सुरशत्रवः।
पीडिता लोकपालाश्च त्वामद्य शरणं गताः॥ ४६

मया ते भवनं शम्भो प्रापिताः कार्यगौरवात्।
यद्युक्तं तद्विधत्स्वाद्य सुरकार्यं सुरेश्वर॥ ४७

त्वयि भारोऽस्ति सर्वेषां देवानां भूतभावन।

व्यास उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करः प्रहसन्निव॥ ४८

वचनं श्लक्ष्णया वाचा प्रोवाच पद्मजं प्रति।

शिव उवाच

भवतैव कृतं कार्यं वरदानात्पुरा विभो॥ ४९

अनर्थदञ्च देवानां किं कर्तव्यमतः परम्।
ईदृशो बलवाञ्छूरः सर्वदेवभयप्रदः॥ ५०

का समर्था वरा नारी तं हन्तुं मददर्पितम्।
न मे भार्या न ते भार्या संग्रामं गन्तुमर्हति॥ ५१

गत्वैव ते महाभागे युयुधाते कथं पुनः।
इन्द्राणी च महाभागा न युद्धकुशलास्ति हि॥ ५२

कान्या हन्तुं समर्थास्ति तं पापं मददर्पितम्।
ममेदं मतमद्यैव गत्वा देवं जनार्दनम्॥ ५३

स्तुत्वा तं देवकार्याय प्रेरयामः सुसत्वरम्।
सोऽतिबुद्धिमतां श्रेष्ठो विष्णुः सर्वार्थसाधने॥ ५४

शिवजी बोले—हे ब्रह्मन्! इन्द्र आदि देवताओंके साथ आपके यहाँ आनेका क्या प्रयोजन है? हे महाभाग! वह कारण अवश्य बताइये॥ ४४॥

ब्रह्माजी बोले—हे सुरेशान! महिषासुर स्वर्गमें रहनेवाले इन्द्रादि देवताओंको महान् कष्ट दे रहा है और उसके भयसे त्रस्त होकर ये देवगण पर्वतोंकी कन्दराओंमें घूम रहे हैं॥ ४५॥

महिषासुर यज्ञ-भाग स्वयं ग्रहण कर रहा है। अन्य अनेक दैत्य भी देवताओंके शत्रु बन गये हैं। उन सबसे पीड़ित होकर ये सभी लोकपाल आपकी शरणमें आये हुए हैं। हे शम्भो! इसी गुरुतर कार्यके लिये मैंने इन देवताओंको आपके भवनपर पहुँचा दिया है। अतः हे सुरेश्वर! अब इनके कार्यके विषयमें जो उचित जान पड़े, वह आप करें। हे भूतभावन! सम्पूर्ण देवताओंका भार अब आपपर है॥ ४६-४७½॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भगवान् शंकर मुसकराते हुए कोमल वाणीमें ब्रह्माजीसे यह वचन कहने लगे—॥ ४८½॥

शिवजी बोले—हे विभो! आपने ही तो पूर्वकालमें [महिषासुरको] वरदान देकर देवताओंके लिये ऐसा अनर्थकारी कार्य किया है। अब इसके बाद हमें क्या करना चाहिये? [आपके वरके प्रभावसे ही] वह इतना बली, पराक्रमी तथा सभी देवताओंके लिये भयदायक हो गया है॥ ४९-५०॥

अभिमानमें चूर रहनेवाले उस दानवको मारनेमें कौन श्रेष्ठ स्त्री समर्थ हो सकती है? न तो मेरी भार्या 'रुद्राणी' और न आपकी भार्या 'ब्रह्माणी' ही संग्राममें जानेयोग्य हैं। महाभाग्यवती ये देवियाँ संग्रामभूमिमें जाकर भी भला युद्ध किस प्रकार करेंगी? इन्द्रकी पत्नी महाभागा इन्द्राणी भी युद्धकलामें कुशल नहीं हैं। तब दूसरी कौन-सी देवांगना उस मदोन्मत्त पापीको मारनेमें समर्थ है?॥ ५१-५२½॥

अतः मेरा तो यह विचार है कि हमलोग इसी समय भगवान् विष्णुके पास चलकर और उनकी स्तुति करके देवताओंका कार्य करनेके लिये उन्हींको

मिलित्वा वासुदेवं वै कर्तव्यं कार्यचिन्तनम्।
प्रपञ्चेन च बुद्ध्या स संविधास्यति साधनम्॥ ५५

व्यास उवाच

इति रुद्रवचः श्रुत्वा ब्रह्माद्याः सुरसत्तमाः।
उत्थितास्ते तथेत्युक्त्वा शिवेन सह सत्वराः॥ ५६

स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे ययुर्विष्णुपुरं प्रति।
मुदिताः शकुनान्दृष्ट्वा कार्यसिद्धिकराञ्छुभान्॥ ५७

ववुर्वाताः शुभाः शान्ताः सुगन्धाः शुभशंसिनः।
पक्षिणश्च शिवा वाचस्तत्रोचुः पथि सर्वशः॥ ५८

निर्मलं चाभवद्व्योम दिशश्च विमलास्तथा।
गमने तत्र देवानां सर्वं शुभमिवाभवत्॥ ५९

शीघ्रतापूर्वक प्रेरित करें। परम बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ वे विष्णु सम्पूर्ण कार्योंको सिद्ध करनेमें कुशल हैं। उन्हीं वासुदेवसे मिलकर इस कार्यके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये। वे किसी प्रपंच अथवा बुद्धिसे कार्य सिद्ध होनेका उपाय बना देंगे॥ ५३—५५॥

व्यासजी बोले—भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर ब्रह्मा आदि समस्त श्रेष्ठ देवता 'यह ठीक है'—ऐसा कहकर उठ खड़े हुए और वे सब अपने-अपने वाहनोंपर सवार हो शिवजीके साथ तुरन्त वैकुण्ठकी ओर चल दिये। उस समय कार्यसिद्धिके सूचक अनेक शुभ शकुन देखकर वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए। शुभ सूचना देनेवाली शीतल, मन्द तथा सुगन्धित हवाएँ चलने लगीं और पवित्र पक्षी सर्वत्र मार्गमें मंगलमयी बोली बोलने लगे। आकाश निर्मल हो गया और दिशाएँ स्वच्छ हो गयीं। इस प्रकार देवताओंकी यात्रामें मानो सब मंगल ही मंगल हो गया॥ ५६—५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे पराजितदेवतानां शङ्करशरणगमनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

ब्रह्माप्रभृति समस्त देवताओंके शरीरसे तेजःपुंजका निकलना और उस तेजोराशिसे भगवतीका प्राकट्य

व्यास उवाच

तरसा तेऽथ सम्प्राप्य वैकुण्ठं विष्णुवल्लभम्।
ददृशुः सर्वशोभाढ्यं दिव्यसद्मविराजितम्॥ १

सरोवापीसरिद्भिश्च संयुतं सुखदं शुभम्।
हंससारसचक्राह्वैः कूजद्भिश्च विराजितम्॥ २

चम्पकाशोककह्लारमन्दारबकुलावृतैः।
मल्लिकातिलकाम्रातयुतैः कुरबकादिभिः॥ ३

कोकिलारावसन्नादैः शिखण्डैर्नृत्यरञ्जितैः।
भ्रमरारावरम्यैश्च दिव्यैरुपवनैर्युतम्॥ ४

सुनन्दनन्दनाद्यैश्च पार्षदैर्भक्तितत्परैः।
संस्तुवद्भिर्युतं भक्तैरनन्यभववृत्तिभिः॥ ५

व्यासजी बोले—हे राजन्! उन देवताओंने शीघ्रतापूर्वक भगवान् विष्णुके प्रिय धाम वैकुण्ठमें पहुँचकर वहाँ उन श्रीहरिका विशाल सदन देखा, जो सम्पूर्ण शोभाओंसे युक्त तथा दिव्य महलोंसे सुशोभित था। सुन्दर तथा सुखदायक वह भवन सरोवर, बावली एवं नदियोंसे सुशोभित था, जिनमें हंस, सारस, चक्रवाक आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। उस भवनके चारों ओर सुशोभित हो रहे दिव्य उपवनोंमें चम्पा, अशोक, कह्लार, मन्दार, मौलसिरी, मालती, तिलक, आमड़ा और कुरबक आदि विविध प्रकारके वृक्ष लगे हुए थे। उपवनोंमें चारों ओर कोयलोंकी कूक सुनायी दे रही थी, मोर नृत्य कर रहे थे और भौंरे गुंजार कर रहे थे। नन्द-सुनन्द आदि भक्तिपरायण पार्षद तथा

प्रासादै रत्नखचितैः काञ्चनैश्चित्रमण्डितैः।
अभ्रंलिहैर्विराजद्भिः संयुतं शुभसद्मकैः॥ ६

गायद्भिर्देवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिरप्सरोगणैः।
रञ्जितं किन्नरैः शश्वद्रक्तकण्ठैर्मनोहरैः॥ ७

मुनिभिश्च तथा शान्तैर्वेदपाठकृतादरैः।
स्तुवद्भिः श्रुतिसूक्तैश्च मण्डितं सदनं हरेः॥ ८

ते च विष्णुगृहं प्राप्य द्वारपालौ शुभाकृती।
वीक्ष्योचुर्जयविजयौ हेमयष्टिधरौ स्थितौ॥ ९

गत्वैकोऽप्युभयोर्मध्ये निवेदयतु सङ्गतान्।
द्वारस्थान् ब्रह्मरुद्रादीन्विष्णुदर्शनलालसान्॥ १०

व्यास उवाच

विजयस्तद्वचः श्रुत्वा गत्वाथ विष्णुसन्निधौ।
सर्वान्समागतान्देवान्प्रणम्योवाच सत्वरः॥ ११

विजय उवाच

देवदेव महाराज रमाकान्त सुरारिहन्।
समागताः सुराः सर्वे द्वारि तिष्ठन्ति वै विभो॥ १२

ब्रह्मा रुद्रस्तथेन्द्रश्च वरुणः पावको यमः।
स्तुवन्ति वेदवाक्यैस्त्वाममरा दर्शनार्थिनः॥ १३

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं विष्णुर्विजयस्य रमापतिः।
निर्जगाम गृहात्तूर्णं सुरान्समधिकोत्सवः॥ १४

गत्वा वीक्ष्य हरिर्देवान्द्वारस्थाञ्छ्रमकर्शितान्।
प्रीतिप्रवणया दृष्ट्या प्रीणयामास दुःखितान्॥ १५

प्रणेमुस्ते सुराः सर्वे देवदेवं जनार्दनम्।
तुष्टुवुश्च सुरारिघ्नं वाग्भिर्वेदविनिश्चितम्॥ १६

त्याग-वृत्तिसम्पन्न अनन्य भक्त भगवान् विष्णुकी स्तुति कर रहे थे। वहाँ रत्नजटित महल बने हुए थे, जिनपर सुनहरे चित्र बने हुए थे; सुन्दर-सुन्दर कक्षोंसे सुशोभित वे महल ऊँचाईमें आकाशको छू रहे थे। वहाँ देवता और गन्धर्व गा रहे थे, अप्सराएँ नाच रही थीं और वह मनको मुग्ध करनेवाले तथा मधुर कण्ठध्वनिवाले किन्नरोंसे मण्डित था। वैदिक सूक्तोंके द्वारा आदरपूर्वक भगवान् विष्णुकी स्तुति करते हुए शान्त स्वभाववाले वेदपाठपरायण मुनियोंसे वह भवन अत्यन्त सुशोभित हो रहा था॥ १—८॥

भगवान् विष्णुके भवनपर पहुँचकर देवताओंने सुन्दर स्वरूपवाले तथा हाथमें स्वर्णकी छड़ी धारण किये हुए जय-विजय नामक द्वारपालोंको देखकर उनसे कहा कि आप दोनोंमेंसे कोई एक जाकर भगवान् विष्णुसे कह दे कि आपके दर्शनकी अभिलाषासे ब्रह्मा, रुद्र आदि देवता द्वारपर खड़े हैं॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर विजयने तुरन्त भगवान् विष्णुके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके सभी देवताओंके आगमनकी बात उनको बतायी॥ ११॥

विजयने कहा—हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे दैत्योंका दमन करनेवाले लक्ष्मीकान्त! हे विभो! इस समय सभी देवता आये हुए हैं और वे द्वारपर खड़े हैं। आपके दर्शनके इच्छुक ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, यम आदि देवता वेदवाक्योंसे आपकी स्तुति कर रहे हैं॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु विजयकी बात सुनकर देवोंसे मिलनेहेतु अत्यधिक उत्साहित होकर शीघ्रतापूर्वक अपने भवनसे बाहर निकल आये॥ १४॥

वहाँ जाकर भगवान् विष्णुने द्वारपर स्थित उन देवताओंको थकानसे व्याकुल तथा दुःखित देखकर अपनी प्रेमभरी दृष्टिसे उन्हें आनन्दित किया॥ १५॥

उन सभी देवताओंने दैत्योंका संहार करनेवाले तथा वेदोंके द्वारा सुनिश्चित किये गये (तत्त्वस्वरूप) देवाधिदेव भगवान् विष्णुको प्रणाम किया और मधुर वाणीमें उनकी स्तुति की॥ १६॥

देवा ऊचुः

देवदेव जगन्नाथ सृष्टिस्थित्यन्तकारक।
दयासिन्धो महाराज त्राहि नः शरणागतान्॥ १७

विष्णुरुवाच

विशन्तु निर्जराः सर्वे कुशलं कथयन्तु वः।
आसनेषु किमर्थं वै मिलिताः समुपागताः॥ १८

चिन्तातुराः कथं जाता विषण्णा दीनमानसाः।
ब्रह्मरुद्रेण सहिताः कार्यं प्रब्रूत सत्वरम्॥ १९

देवा ऊचुः

महिषेण महाराज पीडिताः पापकर्मणा।
असाध्येनातिदुष्टेन वरदृप्तेन पापिना॥ २०

यज्ञभागानसौ भुंक्ते ब्राह्मणैः प्रतिपादितान्।
अमरा गिरिदुर्गेषु भ्रमन्ति च भयातुराः॥ २१

वरदानेन धातुः स दुर्जयो मधुसूदन।
तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता ज्ञात्वा तत्कार्यगौरवम्॥ २२

समर्थोऽसि समुद्धर्तुं दैत्यमायाविशारद।
कुरु कृष्ण वधोपायं तस्य दानवमर्दन॥ २३

धात्रा तस्मै वरो दत्तो ह्यवध्योऽसि नरैः किल।
का स्त्री त्वेवंविधा बाला या हन्यात्तं शठं रणे॥ २४

उमा मा वा शची विद्या का समर्थास्य घातने।
महिषस्यातिदुष्टस्य वरदानबलादपि॥ २५

विचिन्त्य बुद्ध्या यत्सर्वं मरणस्यास्य कारणम्।
कुरु कार्यं च देवानां भक्तवत्सल भूधर॥ २६

व्यास उवाच

श्रुत्वा तद्वचनं विष्णुस्तानुवाच हसन्निव।
युद्धं कृतं पुरास्माभिस्तथापि न मृतो ह्यसौ॥ २७

देवता बोले—हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाले! हे दयासिन्धो! हे महाराज! हम शरणागतोंकी रक्षा कीजिये॥ १७॥

विष्णु बोले—हे देवताओ! आप सभी लोग आसनोंपर बैठ जाइये और फिर अपना कुशल-क्षेम बताइये। आपलोग एक साथ मिलकर यहाँ किसलिये आये हुए हैं? ब्रह्मा तथा शिवसहित आप सभी देवता चिन्तामग्न, दु:खित और उदास क्यों हो गये हैं? आपलोग अपना प्रयोजन शीघ्र बताएँ॥ १८-१९॥

देवता बोले—हे महाराज! पापकर्ममें संलग्न, अजेय, महादुष्ट, वरदान पाकर अभिमानमें चूर तथा पापी महिषासुरसे हमलोग पीड़ित हैं॥ २०॥

ब्राह्मणोंद्वारा देवताओंको दिये गये यज्ञभागोंको वह स्वयं ग्रहण कर लेता है। हम सभी देवता उससे भयभीत होकर पर्वतोंकी कन्दराओंमें भटकते फिरते हैं॥ २१॥

हे मधुसूदन! ब्रह्माजीके वरदानसे वह अजेय बन गया है, अतः इस कार्यको अत्यन्त गुरुतर जानकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। दानवोंकी मायाको जाननेवाले तथा दानवोंका वध करनेवाले हे कृष्ण! आप ही देवताओंका उद्धार करनेमें समर्थ हैं, अतः उसके वधका कोई उपाय कीजिये॥ २२-२३॥

विधाताने उसे वर दे दिया है कि तुम पुरुषमात्रसे सदा अवध्य रहोगे। तब ऐसी कौन स्त्री होगी जो रणमें उस शठको मार सके?॥ २४॥

क्या भगवती पार्वती, लक्ष्मी, इन्द्राणी अथवा सरस्वती भी इस अत्यन्त दुष्ट तथा वरदानके कारण अत्यन्त अभिमानी महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होंगी? अतएव हे भक्तवत्सल! हे भूधर! आप अपनी बुद्धिसे भलीभाँति विचार करके उसके मरणका जो भी उपाय हो उसके द्वारा हमलोगोंका यह कार्य सम्पन्न कर दीजिये॥ २५-२६॥

व्यासजी बोले—यह बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए उनसे कहने लगे—पहले भी हमलोगोंने महिषासुरसे युद्ध किया था, किंतु वह नहीं मारा जा सका॥ २७॥

अद्य सर्वसुराणां वै तेजोभी रूपसम्पदा।
उत्पन्ना चेद्वरारोहा सा हन्यात्तं रणे बलात्॥ २८

हयारिं वरदृप्तञ्च मायाशतविशारदम्।
हन्तुं योग्या भवेन्नारी शक्त्यंशैर्निर्मिता हि नः॥ २९

प्रार्थयन्तु च तेजोंऽशान्स्त्रियोऽस्माकं तथा पुनः।
उत्पन्नैस्तैश्च तेजोंऽशैस्तेजोराशिर्भवेद्यथा॥ ३०

आयुधानि वयं दद्मः सर्वे रुद्रपुरोगमाः।
तस्यै सर्वाणि दिव्यानि त्रिशूलादीनि यानि च॥ ३१

सर्वायुधधरा नारी सर्वतेजःसमन्विता।
हनिष्यति दुरात्मानं तं पापं मदगर्वितम्॥ ३२

व्यास उवाच

इत्युक्तवति देवेशे ब्रह्मणो वदनात्ततः।
स्वयमेवोद्बभौ तेजोराशिश्चातीव दुःसहः॥ ३३

रक्तवर्णं शुभाकारं पद्मरागमणिप्रभम्।
किञ्चिच्छीतं तथा चोष्णं मरीचिजालमण्डितम्॥ ३४

निःसृतं हरिणा दृष्टं हरेण च महात्मना।
विस्मितौ तौ महाराज बभूवतुरुरुक्रमौ॥ ३५

शङ्करस्य शरीरात्तु निःसृतं महदद्भुतम्।
रौप्यवर्णमभूत्तीव्रं दुर्दर्शं दारुणं महत्॥ ३६

भयङ्करञ्च दैत्यानां देवानां विस्मयप्रदम्।
घोररूपं गिरिप्रख्यं तमोगुणमिवापरम्॥ ३७

ततो विष्णुशरीरात्तु तेजोराशिमिवापरम्।
नीलं सत्त्वगुणोपेतं प्रादुरास महाद्युति॥ ३८

ततश्चेन्द्रशरीरात्तु चित्ररूपं दुरासदम्।
आविरासीत्सुसंवृत्तं तेजः सर्वगुणात्मकम्॥ ३९

अब एक ही उपाय है कि यदि सभी देवताओंके तेजसे कोई श्रेष्ठ रूपवती सुन्दरी उत्पन्न की जाय तो वही समरांगणमें उसे अपने पराक्रमसे मार सकती है। हम सबकी शक्तिके अंशोंसे निर्मित कोई वीर नारी ही सैकड़ों प्रकारकी माया रचनेमें निपुण और वरप्राप्तिके कारण अभिमानमें चूर उस महिषासुरका वध करनेमें समर्थ होगी॥ २८-२९॥

अब आप सभी देवतागण तेजांशोंसे प्रार्थना करें; साथ ही हमारी स्त्रियाँ भी प्रार्थना करें, जिससे कि उन आविर्भूत तेजांशोंके द्वारा एक तेजोराशि उत्पन्न हो जाय॥ ३०॥

उस समय रुद्र आदि हम सब मुख्य देवतागण त्रिशूल आदि जो भी दिव्य आयुध हैं, वह सब उसे दे देंगे। तत्पश्चात् सभी प्रकारके आयुध धारण करनेवाली तथा सम्पूर्ण तेजसे सम्पन्न वह देवी उस दुराचारी, पापी तथा मदोन्मत्त दानवको मार डालेगी॥ ३१-३२॥

व्यासजी बोले— भगवान् विष्णुके ऐसा कहते ही ब्रह्माजीके मुखसे अपने आप एक अत्यन्त असह्य तेजःपुंज निकल पड़ा। वह तेज लाल रंगका था, उसकी आकृति सुन्दर थी, वह पद्मराग मणिके समान प्रभावाला था। उसमें कुछ शीतलता एवं ऊष्णता भी थी और वह अनेक किरणोंसे सुशोभित था। हे महाराज! भगवान् विष्णु और शिवने भी उस निःसृत तेजको देखा। [उसे देखकर] अमित पराक्रमवाले वे दोनों आश्चर्यचकित हो गये॥ ३३—३५॥

तत्पश्चात् शंकरजीके शरीरसे भी चाँदीके सदृश वर्णवाला, अत्यन्त अद्भुत, तीव्र, देखनेमें असह्य तथा महाप्रचण्ड तेज निकला जो दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला तथा देवताओंको आश्चर्यमें डाल देनेवाला था। वह भयानक रूपवाला, पर्वतके समान विशाल तथा साक्षात् दूसरे तमोगुण जैसा था॥ ३६-३७॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुके शरीरसे सत्त्वगुण-सम्पन्न, नीलवर्ण और अत्यन्त दीप्तिमान् दूसरी तेजोराशि प्रकट हुई॥ ३८॥

इसके बाद इन्द्रके शरीरसे विचित्र आकारवाला, असह्य, पूर्ण गोलाकार और सर्वगुणात्मक तेज प्रादुर्भूत हुआ॥ ३९॥

कुबेरयमवह्नीनां शरीरेभ्यः समन्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो वरुणस्य तथैव च॥ ४०

अन्येषां चैव देवानां शरीरेभ्योऽतिभास्वरम्।
निर्गतं तन्महातेजोराशिरासीन्महोज्ज्वलः॥ ४१

तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे देवा विष्णुपुरोगमाः।
तेजोराशिं महादिव्यं हिमाचलमिवापरम्॥ ४२

पश्यतां तत्र देवानां तेजःपुञ्जसमुद्भवा।
बभूवातिवरा नारी सुन्दरी विस्मयप्रदा॥ ४३

त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः सर्वदेवशरीरजा।
अष्टादशभुजा रम्या त्रिवर्णा विश्वमोहिनी॥ ४४

श्वेतानना कृष्णनेत्रा संरक्ताधरपल्लवा।
ताम्रपाणितला कान्ता दिव्यभूषणभूषिता॥ ४५

अष्टादशभुजा देवी सहस्रभुजमण्डिता।
सम्भूतासुरनाशाय तेजोराशिसमुद्भवा॥ ४६

जनमेजय उवाच

कृष्ण देव महाभाग सर्वज्ञ मुनिसत्तम।
विस्तरं ब्रूहि तस्यास्त्वं शरीरस्य समुद्भवम्॥ ४७

एकीभूतं च सर्वेषां तेजः किं वा पृथक् स्थितम्।
अङ्गानि चैव तस्यास्तु सर्वतेजोमयानि वा॥ ४८

भिन्नभागविभागेन जातान्यङ्गानि यानि तु।
मुखनासाक्षिभेदेन सर्वत्रैकभवानि च॥ ४९

ब्रूहि तद्विस्तरं व्यास शरीराङ्गसमुद्भवम्।
बभूव यस्य देवस्य तेजसोऽङ्गं यदद्भुतम्॥ ५०

आयुधाभरणादीनि दत्तानि यैर्यथा यथा।
तत्सर्वं श्रोतुकामोऽस्मि त्वन्मुखाम्बुजनिर्गतम्॥ ५१

कुबेर, यम, अग्नि तथा वरुणके भी शरीरोंसे सभी ओर महान् तेज निकलने लगा। इसी प्रकार अन्य देवताओंके शरीरोंसे भी अतिशय प्रदीप्त तेज निकला। वह महान् तेजोराशि अत्यन्त दीप्तिमान् थी॥ ४०-४१॥

दूसरे हिमालयपर्वतके सदृश उस महादिव्य तेजोराशिको देखकर विष्णु आदि सभी प्रधान देवता आश्चर्यचकित हो गये॥ ४२॥

उसी क्षण वहाँ सभी देवताओंके देखते-देखते उस तेजःपुंजसे अत्यन्त श्रेष्ठ, सुन्दर तथा सबको विस्मित कर देनेवाली एक स्त्री प्रकट हो गयी॥ ४३॥

सभी देवताओंके शरीरसे आविर्भूत वह नारी त्रिगुणात्मिका, अठारह भुजाओंवाली, मनोहर, त्रिवर्णा तथा विश्वको मोहमें डाल देनेवाली साक्षात् महालक्ष्मी थीं। वे उज्ज्वल मुखवाली, कृष्णवर्णके नेत्रोंवाली, अत्यन्त लाल अधरोष्ठसे सुशोभित, ताम्रवर्णकी हथेलीसे सुन्दर लगनेवाली, कान्तिसे सम्पन्न तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत थीं॥ ४४-४५॥

देवताओंके शरीरसे उत्पन्न तेजोराशिसे प्रकट वे अठारह भुजाओंवाली भगवती असुरोंका विनाश करनेके लिये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हो गयीं॥ ४६॥

जनमेजय बोले—हे कृष्णद्वैपायन! हे महाभाग! हे सर्वज्ञ! हे मुनिवर! अब आप उन भगवतीके शरीरकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। उन सब देवताओंके शरीरसे निकला हुआ तेज बादमें एकत्र हो गया अथवा पृथक्-पृथक् ही रहा? उनके अंग-प्रत्यंग विभिन्न देवताओंके तेजसे सम्पन्न थे अथवा नहीं? उनके शरीरके विभिन्न अंग—मुख, नासिका, नेत्र आदि अलग-अलग देवताओंके तेजसे निर्मित थे अथवा सब तेज एक साथ मिलकर बने थे? हे व्यासजी! उनके शरीरके अंगोंकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक बताइये। जिस देवताके तेजसे उनका जो-जो अद्भुत अंग बना, वह सब मुझे बताइये॥ ४७—५०॥

जिन-जिन देवताओंने उन भगवतीको जो-जो आयुध तथा आभूषण आदि समर्पित किये, आपके मुखारविन्दसे निकली सारी बात मैं सुनना चाहता हूँ।

न हि तृप्याम्यहं ब्रह्मन् सुधामयरसं पिबन्।
चरितञ्च महालक्ष्म्यास्त्वन्मुखाम्भोजनिःसृतम्॥ ५२

सूत उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञः सत्यवतीसुतः।
उवाच मधुरं वाक्यं प्रीणयन्निव भूपतिम्॥ ५३

व्यास उवाच

शृणु राजन्महाभाग विस्तरेण ब्रवीमि ते।
यथामति कुरुश्रेष्ठ तस्या देहसमुद्भवम्॥ ५४

न ब्रह्मा न हरिः साक्षान्न रुद्रो न च वासवः।
याथातथ्येन तद्रूपं वक्तुमीशः कदाचन॥ ५५

कथं जानाम्यहं देव्या यद्रूपं यादृशं यतः।
वाचारम्भणमात्रं तदुत्पन्नेति ब्रवीमि यत्॥ ५६

सा नित्या सर्वदैवास्ते देवकार्यार्थसिद्धये।
नानारूपा त्वेकरूपा जायते कार्यगौरवात्॥ ५७

यथा नटो रङ्गगतो नानारूपो भवत्यसौ।
एकरूपस्वभावोऽपि लोकरञ्जनहेतवे॥ ५८

तथैषा देवकार्यार्थमरूपापि स्वलीलया।
करोति बहुरूपाणि निर्गुणा सगुणानि च॥ ५९

कार्यकर्मानुसारेण नामानि प्रभवन्ति हि।
धात्वर्थगुणयुक्तानि गौणानि सुबहून्यपि॥ ६०

तद्वै बुद्ध्यनुसारेण प्रब्रवीमि नराधिप।
यथा तेजःसमुद्भूतं रूपं तस्या मनोहरम्॥ ६१

शङ्करस्य च यत्तेजस्तेन तन्मुखपङ्कजम्।
श्वेतवर्णं शुभाकारमजायत महत्तरम्॥ ६२

केशास्तस्यास्तथा स्निग्धा याम्येन तेजसाभवन्।
वक्राग्राश्चातिदीर्घा वै मेघवर्णा मनोहराः॥ ६३

हे ब्रह्मन्! आपके मुखकमलसे निकले महालक्ष्मीके चरित्ररूपी अमृतमय रसका पान करते हुए मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ ५१-५२॥

सूतजी बोले—[हे मुनिवृन्द!] उन राजा जनमेजयका यह वचन सुनकर सत्यवतीपुत्र श्रीव्यासजी उन्हें प्रसन्न करते हुए यह मधुर वचन कहने लगे॥ ५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे महाभाग! हे कुरुश्रेष्ठ! सुनिये, मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनके शरीरकी उत्पत्तिके विषयमें विस्तारपूर्वक आपसे कहता हूँ॥ ५४॥

स्वयं ब्रह्मा, विष्णु, महेश और इन्द्र भी भगवतीके यथार्थ रूपको बता पानेमें कभी भी समर्थ नहीं हैं तब देवीका जो रूप है, जैसा है और जिस उद्देश्यसे बना है, उसे मैं कैसे जान सकता हूँ? बस, मेरी वाणी इतना ही कह सकती है कि वे भगवती प्रकट हुईं॥ ५५-५६॥

वे देवी नित्यस्वरूपा हैं और सदा ही सर्वत्र विराजमान रहती हैं। वे एक होती हुई भी गुरुतर कार्य पड़नेपर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये नाना प्रकारके रूप धारण कर लेती हैं॥ ५७॥

जिस प्रकार नाटकका कोई नट एक होता हुआ भी रंगमंचपर जाकर लोगोंके मनोरंजनहेतु अनेक रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार रूपरहित तथा निर्गुणा होती हुई भी ये भगवती देवताओंका कार्य सम्पन्न करनेके लिये अपनी लीलासे अनेक सगुण रूप धारण कर लिया करती हैं और किये जानेवाले कर्मके अनुसार धात्वर्थ-गुणसंयुक्त उनके अनेक गौण नाम पड़ जाते हैं॥ ५८—६०॥

हे राजन्! देवताओंके तेजसमूहसे उन भगवतीका मनोहर रूप जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे मैं अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ ६१॥

भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उन भगवतीका गौरवर्ण, सुन्दर आकारवाला तथा अत्यन्त विशाल मुखकमल निर्मित हुआ॥ ६२॥

यमराजके तेजसे उनके कोमल, घुँघराले, बहुत लम्बे, मेघके समान कृष्ण वर्णवाले और मनोहर केश बने॥ ६३॥

नयनत्रितयं तस्या जज्ञे पावकतेजसा।
कृष्णं रक्तं तथा श्वेतं वर्णत्रयविभूषितम्॥ ६४

वक्रे स्निग्धे कृष्णवर्णे सन्ध्ययोस्तेजसा भ्रुवौ।
जाते देव्याः सुतेजस्के कामस्य धनुषीव ते॥ ६५

वायोश्च तेजसा शस्तौ श्रवणौ सम्बभूवतुः।
नातिदीर्घौ नातिह्रस्वौ दोलाविव मनोभुवः॥ ६६

तिलपुष्पसमाकारा नासिका सुमनोहरा।
सञ्जाता स्निग्धवर्णा वै धनदस्य च तेजसा॥ ६७

दन्ताः शिखरिणः श्लक्ष्णाः कुन्दाग्रसदृशाः समाः।
सञ्जाताः सुप्रभा राजन् प्राजापत्येन तेजसा॥ ६८

अधरश्चातिरक्तोऽस्याः सञ्जातोऽरुणतेजसा।
उत्तरोष्ठस्तथा रम्यः कार्तिकेयस्य तेजसा॥ ६९

अष्टादशभुजाकारा बाहवो विष्णुतेजसा।
वसूनां तेजसाङ्गुल्यो रक्तवर्णास्तथाभवन्॥ ७०

सौम्येन तेजसा जातं स्तनयोर्युग्ममुत्तमम्।
ऐन्द्रेणास्यास्तथा मध्यं जातं त्रिवलिसंयुतम्॥ ७१

जङ्घोरू वरुणस्याथ तेजसा सम्बभूवतुः।
नितम्बः स तु सञ्जातो विपुलस्तेजसा भुवः॥ ७२

एवं नारी शुभाकारा सुरूपा सुस्वरा भृशम्।
समुत्पन्ना तथा राजंस्तेजोराशिसमुद्भवा॥ ७३

तां दृष्ट्वा सुष्ठुसर्वाङ्गीं सुदतीं चारुलोचनाम्।
मुदं प्रापुः सुराः सर्वे महिषेण प्रपीडिताः॥ ७४

विष्णुस्त्वाह सुरान्सर्वान्भूषणान्यायुधानि च।
प्रयच्छन्तु शुभान्यस्यै देवाः सर्वाणि साम्प्रतम्॥ ७५

स्वायुधेभ्यः समुत्पाद्य तेजोयुक्तानि सत्वराः।
समर्पयन्तु सर्वेऽद्य देव्यै नानायुधानि वै॥ ७६

अग्निके तेजसे उन भगवतीके तीनों नेत्र बने। तीन प्रकारके वर्णोंसे सुशोभित वे नेत्र काले, लाल तथा श्वेत थे॥ ६४॥

उनकी भौंहें दोनों सन्ध्याओंके तेजसे बनीं। वे टेढ़ी, चिकनी, काले रंगकी, अत्यन्त तेजोमय तथा कामदेवके धनुषकी भाँति प्रतीत हो रही थीं॥ ६५॥

उनके दोनों उत्तम कान वायुके तेजसे बने, जो न बहुत बड़े तथा न बहुत छोटे थे। वे कामदेवके झूलेके सदृश प्रतीत हो रहे थे। तिलके फूलके समान आकृतिवाली, अत्यन्त मनोहर और स्निग्ध नाक कुबेरके तेजसे उत्पन्न हुई॥ ६६-६७॥

हे राजन्! उन देवीके नुकीले, चिकने, चमकीले, कुन्दके अग्रभागके सदृश तथा समान दाँत प्रजापतिके तेजसे उत्पन्न हुए॥ ६८॥

उनका रक्तवर्ण अधरोष्ठ अरुणके तेजसे उत्पन्न हुआ तथा ऊपरका अत्यन्त मनोहर उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओष्ठ) कार्तिकेयके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ६९॥

उन देवीकी अठारह भुजाएँ विष्णुके तेजसे प्रकट हुईं तथा उनकी रक्तवर्णकी अँगुलियाँ वसुओंके तेजसे उत्पन्न हुईं। उनके दोनों उत्तम स्तन चन्द्रमाके तेजसे आविर्भूत हुए तथा तीन रेखाओंसे युक्त उनका मध्यभाग इन्द्रके तेजसे उत्पन्न हुआ। उनकी जाँघें तथा ऊरु-प्रदेश वरुणके तेजसे उत्पन्न हुए तथा उनका विशाल नितम्ब पृथ्वीके तेजसे उत्पन्न हुआ॥ ७०—७२॥

हे राजन्! इस प्रकार उस तेजोराशिसे सुन्दर आकारवाली, दिव्य रूपसे सम्पन्न तथा मधुर स्वरवाली भगवती नारी-रूपमें प्रकट हुईं॥ ७३॥

मनोहर अंग-प्रत्यंगवाली, सुन्दर दाँतोंवाली तथा भव्य नेत्रोंवाली उन देवीको देखकर महिषासुरसे पीड़ित समस्त देवता अत्यन्त आनन्दित हो उठे॥ ७४॥

उसी समय भगवान् विष्णुने सभी देवताओंसे कहा—हे देवताओ! अब आपलोग अपने-अपने सभी शुभ भूषण एवं आयुध इन देवीको प्रदान करें। अपने-अपने आयुधोंसे नानाविध तेजस्वी शस्त्रास्त्र उत्पन्न करके सभी लोग शीघ्र ही देवीको अर्पित कर दें॥ ७५-७६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्याः स्वरूपोद्भववर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीको आयुध और आभूषण समर्पित करना तथा उनकी स्तुति करना, देवीका प्रचण्ड अट्टहास करना, जिसे सुनकर महिषासुरका उद्विग्न होकर अपने प्रधान अमात्यको देवीके पास भेजना

व्यास उवाच

देवा विष्णुवचः श्रुत्वा सर्वे प्रमुदितास्तदा।
ददुश्च भूषणान्याशु वस्त्राणि स्वायुधानि च॥ १

क्षीरोदश्चाम्बरे दिव्ये रक्ते सूक्ष्मे तथाजरे।
निर्मलञ्च तथा हारं प्रीतस्तस्यै सुमण्डितम्॥ २

ददौ चूडामणिं दिव्यं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कुण्डले च तथा शुभ्रे कटकानि भुजेषु वै॥ ३

केयूरान्कङ्कणान्दिव्यान्नानारत्नविराजितान्।
ददौ तस्यै विश्वकर्मा प्रसन्नेन्द्रियमानसः॥ ४

नूपुरौ सुस्वरौ कान्तौ निर्मलौ रत्नभूषितौ।
ददौ सूर्यप्रतीकाशौ त्वष्टा तस्यै सुपादयोः॥ ५

तथा ग्रैवेयकं रम्यं ददौ तस्यै महार्णवः।
अङ्गुलीयकरत्नानि तेजोवन्ति च सर्वशः॥ ६

अम्लानपङ्कजां मालां गन्धाढ्यां भ्रमरानुगाम्।
तथैव वैजयन्तीञ्च वरुणः सम्प्रयच्छत॥ ७

हिमवानथ सन्तुष्टो रत्नानि विविधानि च।
ददौ च वाहनं सिंहं कनकाभं मनोहरम्॥ ८

भूषणैर्भूषिता दिव्यैः सा रराज वरा शुभा।
सिंहारूढा वरारोहा सर्वलक्षणसंयुता॥ ९

विष्णुश्चक्रात्समुत्पाद्य ददावस्यै रथाङ्गकम्।
सहस्त्रारं सुदीप्तञ्च देवारिशिरसां हरम्॥ १०

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुए। वे तुरंत महालक्ष्मीको वस्त्र, आभूषण और अपने-अपने आयुध प्रदान करने लगे॥ १॥

क्षीरसागरने देवीको दिव्य, रक्तवर्णवाले, महीन तथा कभी भी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र; निर्मल तथा मनोहर हार; करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दिव्य चूडामणि; दो सुन्दर कुण्डल तथा कड़े प्रसन्नतापूर्वक दिये। विश्वकर्माने भुजाओंपर धारण करनेके लिये बाजूबन्द और अनेक प्रकारके रत्नजटित दिव्य कंकण प्रसन्नचित्त होकर उन्हें प्रदान किये। साथ ही त्वष्टाने मधुर ध्वनिवाले, चमकीले, स्वच्छ, रत्नजटित और सूर्यके समान प्रकाशमान दो नूपुर पैरोंमें पहननेके लिये उन्हें प्रदान किये॥ २—५॥

महासमुद्रने उन्हें गलेमें धारण करनेके लिये मनोहर कण्ठहार और रत्नोंसे निर्मित तेजोमय अँगूठियाँ प्रदान कीं॥ ६॥

वरुणदेवने कभी न मुरझानेवाले कमलोंकी माला, जो सुगन्धसे परिपूर्ण थी तथा जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे और वैजयन्ती नामक माला भगवतीको प्रदान की॥ ७॥

हिमवान्‌ने प्रसन्न होकर उन्हें नाना प्रकारके रत्न तथा सुवर्णके समान चमकीले वर्णवाला एक मनोहर सिंह वाहनके रूपमें प्रदान किया॥ ८॥

सभी लक्षणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर रूपवाली वे कल्याणमयी श्रेष्ठ भगवती दिव्य आभूषणोंसे विभूषित होकर सिंहपर आरूढ़ होकर अत्यन्त सुशोभित हो रही थीं॥ ९॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने अपने चक्रसे उत्पन्न करके सहस्र अरोंवाला, तेजसम्पन्न और दैत्योंका सिर काट लेनेकी सामर्थ्यवाला एक चक्र उन्हें प्रदान किया॥ १०॥

स्वत्रिशूलात्समुत्पाद्य शङ्करः शूलमुत्तमम्।
ददौ देव्यै सुरारीणां कृन्तनं भयनाशनम्॥ ११

वरुणश्च प्रसन्नात्मा ददौ शङ्खं समुज्ज्वलम्।
घोषवन्तं स्वशङ्खात्तु समुत्पाद्य सुमङ्गलम्॥ १२

हुताशनस्तथा शक्तिं शतघ्नीं सुमनोजवाम्।
प्रायच्छत्तु प्रसन्नात्मा तस्यै दैत्यविनाशिनीम्॥ १३

इषुधिं बाणपूर्णञ्च चापं चाद्भुतदर्शनम्।
मारुतो दत्तवांस्तस्यै दुराकर्षं खरस्वरम्॥ १४

स्ववज्राद्वज्रमुत्पाद्य ददाविन्द्रोऽतिदारुणम्।
घण्टामैरावतात्तूर्णं सुशब्दां चातिसुन्दराम्॥ १५

ददौ दण्डं यमः कामं कालदण्डसमुद्भवम्।
येनान्तं सर्वभूतानामकरोत्काल आगते॥ १६

ब्रह्मा कमण्डलुं दिव्यं गङ्गावारिप्रपूरितम्।
ददावस्यै मुदा युक्तो वरुणः पाशमेव च॥ १७

कालः खड्गं तथा चर्म प्रायच्छत्तु नराधिप।
परशुं विश्वकर्मा च तीक्ष्णमस्यै ददावथ॥ १८

धनदस्तु सुरापूर्णं पानपात्रं सुवर्णजम्।
पङ्कजं वरुणश्चादाद्देव्यै दिव्यं मनोहरम्॥ १९

गदां कौमोदकीं त्वष्टा घण्टाशतनिनादिनीम्।
अदात्तस्यै प्रसन्नात्मा सुरशत्रुविनाशिनीम्॥ २०

अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यञ्च दंशनम्।
ददौ त्वष्टा जगन्मात्रे निजरश्मीन्दिवाकरः॥ २१

शंकरजीने अपने त्रिशूलसे उत्पन्न करके भगवतीको एक ऐसा उत्तम त्रिशूल अर्पण किया, जो दानवोंको काट डालनेकी शक्तिसे सम्पन्न तथा देवताओंके भयका नाश करनेवाला था॥ ११॥

वरुणदेवने अपने शंखसे उत्पन्न करके प्रसन्नचित्त होकर देवीजीको एक ऐसा शंख प्रदान किया; जो मंगलमय, अत्यन्त उज्ज्वल तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला था॥ १२॥

अग्निदेवने प्रसन्नचित्त होकर सैकड़ों शत्रुओंका संहार करनेवाली, मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाली तथा दैत्योंका विनाश करनेवाली एक शक्ति उन्हें प्रदान की॥ १३॥

पवनदेवने उन भगवती महालक्ष्मीको बाणोंसे भरा हुआ एक तरकस तथा देखनेमें अत्यन्त अद्भुत, कठिनाईसे खींचा जा सकनेवाला और कर्कश टंकार करनेवाला धनुष प्रदान किया॥ १४॥

देवराज इन्द्रने अपने वज्रसे उत्पन्न करके एक अत्यन्त भयंकर वज्र तथा ऐरावत हाथीसे उतारकर एक परम सुन्दर तथा तीव्र ध्वनि करनेवाला घण्टा तुरंत भगवतीको अर्पण किया॥ १५॥

यमराजने अपने कालदण्डसे आविर्भूत एक ऐसा दण्ड भगवतीको प्रदान किया, जिससे वे समय आनेपर सभी प्राणियोंका अन्त करते थे॥ १६॥

ब्रह्माजीने गंगाजलसे परिपूर्ण दिव्य कमण्डलु और वरुणदेवने अपना पाश उन्हें प्रसन्नतापूर्वक प्रदान किया॥ १७॥

हे राजन्! कालने महालक्ष्मीको खड्ग तथा ढाल दिये और विश्वकर्माने उन्हें तीक्ष्ण परशु अर्पण किया॥ १८॥

कुबेरने भगवतीको एक सुवर्णमय पानपात्र तथा वरुणने उन्हें दिव्य तथा मनोहर कमल-पुष्प प्रदान किया॥ १९॥

प्रसन्न मनवाले त्वष्टाने सैकड़ों घण्टोंके समान ध्वनि करनेवाली और दानवोंका विनाश कर डालनेवाली कौमोदकी नामक गदा उन्हें प्रदान की। साथ ही उन त्वष्टाने जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको अनेक प्रकारके अस्त्र तथा अभेद्य कवच प्रदान किये और सूर्यदेवने उन्हें अपनी किरणें प्रदान कीं॥ २०-२१॥

सायुधां भूषणैर्युक्तां दृष्ट्वा ते विस्मयं गताः।
तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं त्रैलोक्यमोहिनीं शिवाम्॥ २२

देवा ऊचुः

नमः शिवायै कल्याण्यै शान्त्यै पुष्ट्यै नमो नमः।
भगवत्यै नमो देव्यै रुद्राण्यै सततं नमः॥ २३

कालरात्र्यै तथाम्बायै इन्द्राण्यै ते नमो नमः।
सिद्ध्यै बुद्ध्यै तथा वृद्ध्यै वैष्णव्यै ते नमो नमः॥ २४

पृथिव्यां या स्थिता पृथ्व्या न ज्ञाता पृथिवीञ्च या।
अन्तःस्थिता यमयति वन्दे तामीश्वरीं पराम्॥ २५

मायायां या स्थिता ज्ञाता मायया न च तामजाम्।
अन्तःस्थिता प्रेरयति प्रेरयित्रीं नुमः शिवाम्॥ २६

कल्याणं कुरु भो मातस्त्राहि नः शत्रुतापितान्।
जहि पापं हयारिं त्वं तेजसा स्वेन मोहितम्॥ २७

खलं मायाविनं घोरं स्त्रीवध्यं वरदर्पितम्।
दुःखदं सर्वदेवानां नानारूपधरं शठम्॥ २८

त्वमेका सर्वदेवानां शरणं भक्तवत्सले।
पीडितान्दानवेनाद्य त्राहि देवि नमोऽस्तु ते॥ २९

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी सुरैः सर्वसुखप्रदा।
नानुवाच महादेवी स्मितपूर्वं शुभं वचः॥ ३०

देव्युवाच

भयं त्यजन्तु गीर्वाणा महिषान्मन्दचेतसः।
हनिष्यामि रणेऽद्यैव वरदृप्तं विमोहितम्॥ ३१

इस प्रकार सभी आयुधों तथा आभूषणोंसे युक्त उन भगवतीको देखकर देवतागण अत्यन्त विस्मित हुए और त्रैलोक्यमोहिनी उन कल्याणकारिणी देवीकी स्तुति करने लगे॥ २२॥

देवता बोले—शिवाको नमस्कार है। कल्याणी, शान्ति और पुष्टि देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवतीको नमस्कार है। देवी रुद्राणीको निरन्तर नमस्कार है॥ २३॥

आप कालरात्रि, अम्बा तथा इन्द्राणीको बार-बार नमस्कार है। आप सिद्धि, बुद्धि, वृद्धि तथा वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

पृथ्वीके भीतर स्थित रहकर जो पृथ्वीको नियन्त्रित करती हैं, किंतु पृथ्वी जिन्हें नहीं जान पातीं, उन परा परमेश्वरीकी मैं वन्दना करता हूँ॥ २५॥

जो मायाके अन्दर स्थित रहनेपर भी मायाके द्वारा नहीं जानी जा सकीं तथा जो मायाके अन्दर विराजमान रहकर उसे प्रेरणा प्रदान करती हैं, उन जन्मरहित तथा प्रेरणा प्रदान करनेवाली भगवती शिवाको हम नमस्कार करते हैं॥ २६॥

हे माता! आप हमारा कल्याण करें और शत्रुओंसे संत्रस्त हम देवताओंकी रक्षा करें। आप अपने तेजसे इस मोहग्रस्त पापी महिषासुरका वध कर डालें। यह महिषासुर दुष्ट, घोर मायावी, केवल स्त्रीके द्वारा मारा जा सकनेवाला, वरदान प्राप्त करनेसे अभिमानी, समस्त देवताओंको दुःख देनेवाला तथा अनेक रूप धारण करनेवाला महादुष्ट है॥ २७-२८॥

हे भक्तवत्सले! एकमात्र आप ही सभी देवताओंकी शरण हैं; दानव महिषासुरसे पीड़ित हम देवताओंकी आप रक्षा कीजिये। हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सब देवताओंके स्तुति करनेपर समस्त सुख प्रदान करनेवाली महादेवी मुसकराकर उन देवताओंसे यह मंगलमय वचन कहने लगीं॥ ३०॥

देवी बोलीं—हे देवतागण! आपलोग मन्दबुद्धि महिषासुरका भय त्याग दें। मैं वर पानेके कारण अभिमानमें चूर तथा मोहग्रस्त उस महिषासुरको आज ही रणमें मार डालूँगी॥ ३१॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा सुरान्देवी जहासातीव सुस्वरम्।
चित्रमेतच्च संसारे भ्रममोहयुतं जगत्॥ ३२

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्याः सेन्द्राश्चान्ये सुरास्तथा।
कम्पयुक्ता भयत्रस्ता वर्तन्ते महिषात्किल॥ ३३

अहो दैवबलं घोरं दुर्जयं सुरसत्तमाः।
कालः कर्तास्ति दुःखानां सुखानां प्रभुरीश्वरः॥ ३४

सृष्टिपालनसंहारे समर्था अपि ते यदा।
मुह्यन्ति क्लेशसन्तप्ता महिषेण प्रपीडिताः॥ ३५

इति कृत्वा स्मितं देवी साट्टहासं चकार ह।
उच्चैः शब्दं महाघोरं दानवानां भयप्रदम्॥ ३६

चकम्पे वसुधा तत्र श्रुत्वा तच्छब्दमद्भुतम्।
चेलुश्च पर्वताः सर्वे चुक्षोभाब्धिश्च वीर्यवान्॥ ३७

मेरुश्चचाल शब्देन दिशः सर्वाः प्रपूरिताः।
भयं जग्मुस्तदा श्रुत्वा दानवास्तत्स्वनं महत्॥ ३८

जय पाहीति देवास्तामूचुः परमहर्षिताः।
महिषोऽपि स्वनं श्रुत्वा चुकोप मदगर्वितः॥ ३९

किमेतदिति तान्दैत्यान्पप्रच्छ स्वनशङ्कितः।
गच्छन्तु त्वरिता दूता ज्ञातुं शब्दसमुद्भवम्॥ ४०

कृतः केनायमत्युग्रः शब्दः कर्णव्यथाकरः।
देवो वा दानवो वापि यो भवेत्स्वनकारकः॥ ४१

गृहीत्वा तं दुरात्मानं मत्समीपं नयन्त्विह।
हनिष्यामि दुराचारं गर्जन्तं स्मयदुर्मदम्॥ ४२

क्षीणायुष्यं मन्दमतिं नयामि यमसादनम्।
पराजिताः सुराः कामं न गर्जन्ति भयातुराः॥ ४३

नासुरा मम वश्यास्ते कस्येदं मूढचेष्टितम्।
त्वरिता मामुपायान्तु ज्ञात्वा शब्दस्य कारणम्॥ ४४

व्यासजी बोले—देवताओंसे ऐसा कहकर वे भगवती अत्यन्त उच्च स्वरमें हँस पड़ीं। [वे बोलीं—] इस संसारमें यह बड़ी विचित्र बात है कि यह सारा जगत् ही भ्रम तथा मोहसे ग्रसित है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र आदि तथा अन्य देवता भी महिषासुरसे भयभीत होकर काँपने लगते हैं॥ ३२-३३॥

हे श्रेष्ठ देवताओ! दैवबल बड़ा ही भयानक और दुर्जय है। काल ही सुख और दुःखका कर्ता है। यही सबका प्रभु तथा ईश्वर है। सृष्टि, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ रहते हुए भी वे ब्रह्मा आदि मोह-ग्रस्त हो जाते हैं, कष्ट भोगते हैं और महिषासुरके द्वारा सताये जाते हैं॥ ३४-३५॥

मुसकराकर ऐसा कहनेके पश्चात् देवी अट्टहास करने लगीं। उस अट्टहासका महाभयानक गर्जन दानवोंको भयभीत कर देनेवाला था॥ ३६॥

उस अद्भुत शब्दको सुनकर पृथ्वी काँपने लगी, सभी पर्वत चलायमान हो उठे और अगाध महासमुद्रमें विक्षोभ उत्पन्न होने लगा। उस शब्दसे सुमेरुपर्वत हिलने लगा और सभी दिशाएँ गूँज उठीं। उस तीव्र ध्वनिको सुनकर सभी दानव भयभीत हो गये। सभी देवता परम प्रसन्न होकर 'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो'—ऐसा उन देवीसे कहने लगे॥ ३७-३८$\frac{१}{२}$॥

अभिमानमें चूर महिषासुर भी वह ध्वनि सुनकर क्रुद्ध हो उठा। उस ध्वनिसे सशंकित महिषासुरने दैत्योंसे पूछा—यह कैसी ध्वनि है? इस ध्वनिके उद्‌गम-स्थलको जाननेके लिये दूतगण तत्काल यहाँसे जायँ। कानोंको पीड़ा पहुँचानेवाला यह अति भीषण शब्द किसने किया है? देवता या दानव जो कोई भी इस ध्वनिको उत्पन्न करनेवाला हो, उस दुष्टात्माको पकड़कर मेरे पास ले आयें। ऐसा गर्जन करनेवाले उस अभिमानके मदमें उन्मत्त दुराचारीको मैं मार डालूँगा। मैं क्षीण-आयु तथा मन्दबुद्धिवाले उस दुष्टको अभी यमपुरी पहुँचा दूँगा। देवता मुझसे पराजित होकर भयभीत हो गये हैं, अतः वे ऐसा गर्जन कर ही नहीं सकते। दानव भी ऐसा नहीं कर सकते; क्योंकि वे सब तो मेरे अधीन हैं, तो फिर यह

अहं गत्वा हनिष्यामि तं पापं वितथश्रमम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तास्तेन ते दूता देवीं सर्वाङ्गसुन्दरीम्॥ ४५

अष्टादशभुजां दिव्यां सर्वाभरणभूषिताम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नां वरायुधधरां शुभाम्॥ ४६

दधतीं चषकं हस्ते पिबन्तीं च मुहुर्मधु।
संवीक्ष्य भयभीतास्ते जग्मुस्त्रस्ताः सुशङ्किताः॥ ४७

सकाशे महिषस्याशु तमूचुः स्वनकारणम्।

दूता ऊचुः

देवी दैत्येश्वर प्रौढा दृश्यते काचिदङ्गना॥ ४८

सर्वाङ्गभूषणा नारी सर्वरत्नोपशोभिता।
न मानुषी नासुरी सा दिव्यरूपा मनोहरा॥ ४९

सिंहारूढायुधधरा चाष्टादशकरा वरा।
सा नादं कुरुते नारी लक्ष्यते मदगर्विता॥ ५०

सुरापानरता कामं जानीमो न सभर्तृका।
अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवन्ति मुदान्विताः॥ ५१

जयेति पाहि नश्चेति जहि शत्रुमिति प्रभो।
न जाने का वरारोहा कस्य वा सा परिग्रहः॥ ५२

किमर्थमागता चात्र किं चिकीर्षति सुन्दरी।
द्रष्टुं नैव समर्थाः स्मस्तत्तेजःपरिधर्षिताः॥ ५३

शृङ्गारवीरहासाढ्या रौद्राद्भुतरसान्विता।
दृष्ट्वैवैवंविधां नारीमसम्भाष्य समागताः॥ ५४
वयं त्वदाज्ञया राजन् किं कर्तव्यमतःपरम्।

मूर्खतापूर्ण चेष्टा किसकी हो सकती है? अब दूतगण इस शब्दके कारणका पता लगाकर मेरे पास शीघ्र आयें। तत्पश्चात् मैं स्वयं वहाँ जाकर ऐसा व्यर्थ कर्म करनेवाले उस पापीका वध कर दूँगा॥ ३९—४४$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—महिषासुरके ऐसा कहनेपर वे दूत [शब्दके कारणका पता लगाते-लगाते] समस्त सुन्दर अंगोंवाली, अठारह भुजाओंवाली, दिव्य विग्रहमयी, सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत, सम्पूर्ण शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, उत्तम आयुध धारण करनेवाली और हाथमें मधुपात्र लेकर बार-बार उसका पान करती हुई भगवतीके पास पहुँच गये। उन्हें देखकर वे भयभीत हो गये और व्याकुल तथा सशंकित होकर वहाँसे भाग चले। महिषासुरके पास आकर वे उससे ध्वनिका कारण बताने लगे॥ ४५—४७$\frac{1}{2}$॥

दूत बोले—हे दैत्येन्द्र! वह कोई प्रौढा स्त्री और देवीकी भाँति दिखायी देती है। उस स्त्रीके सभी अंगोंमें आभूषण विद्यमान हैं तथा वह सभी प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित है। वह स्त्री न तो मानवी है और न तो आसुरी है। दिव्यविग्रहवाली वह स्त्री बड़ी मनोहर है। अठारह भुजाओंवाली वह श्रेष्ठ नारी नानाविध आयुध धारण करके सिंहपर विराजमान है। वही स्त्री गर्जन कर रही है। वह मदोन्मत्त दिखायी दे रही है। वह निरन्तर मद्यपान कर रही है। हमें ऐसा जान पड़ता है कि वह अभी विवाहिता नहीं है॥ ४८—५०$\frac{1}{2}$॥

देवतागण आकाशमें स्थित होकर प्रसन्नतापूर्वक उसकी इस प्रकार स्तुति कर रहे हैं—'आपकी जय हो', 'हमारी रक्षा करो' और 'शत्रुओंका वध करो'। हे प्रभो! मैं यह नहीं जानता कि वह सुन्दरी कौन है, किसकी पत्नी है, वह सुन्दरी यहाँ किसलिये आयी हुई है और वह क्या करना चाहती है? उस स्त्रीके तेजसे चकाचौंध हमलोग उसे देखनेमें समर्थ नहीं हो सके। वह स्त्री शृंगार, वीर, हास्य, रौद्र और अद्भुत—इन सभी रसोंसे परिपूर्ण थी। इस प्रकारकी अद्भुत स्वरूपवाली नारीको देखकर हमलोग बिना कुछ कहे ही आपके आज्ञानुसार लौट आये। हे राजन्! अब इसके बाद क्या करना है?॥ ५१—५४$\frac{1}{2}$॥

महिष उवाच

गच्छ वीर मयादिष्टो मन्त्रिश्रेष्ठ बलान्वितः॥ ५५

सामादिभिरुपायैस्त्वं समानय शुभाननाम्।
नायाति यदि सा नारी त्रिभिः सामादिभिस्त्विह॥ ५६

अहत्वा तां वरारोहां त्वमानय ममान्तिकम्।
करोमि पट्टमहिषीं तां मरालभ्रुवं मुदा॥ ५७

प्रीतियुक्ता समायाति यदि सा मृगलोचना।
रसभङ्गो यथा न स्यात्तथा कुरु ममेप्सितम्॥ ५८

श्रवणान्मोहितोऽस्म्यद्य तस्या रूपस्य सम्पदा।

व्यास उवाच

महिषस्य वचः श्रुत्वा पेशलं मन्त्रिसत्तमः॥ ५९

जगाम तरसा कामं गजाश्वरथसंयुतः।
गत्वा दूरतरं स्थित्वा तामुवाच मनस्विनीम्॥ ६०

विनयावनतः श्लक्ष्णं मन्त्री मधुरया गिरा।

प्रधान उवाच

कासि त्वं मधुरालापे किमत्रागमनं कृतम्॥ ६१

पृच्छति त्वां महाभागे मन्मुखेन मम प्रभुः।
स जेता सर्वदेवानामवध्यस्तु नरैः किल॥ ६२

ब्रह्मणो वरदानेन गर्वितश्चारुलोचने।
दैत्येश्वरोऽसौ बलवान्कामरूपधरः सदा॥ ६३

श्रुत्वा त्वां समुपायातां चारुवेषां मनोहराम्।
द्रष्टुमिच्छति राजा मे महिषो नाम पार्थिवः॥ ६४

मानुषं रूपमादाय त्वत्समीपं समेष्यति।
यथा रुच्येत चार्वङ्गि तथा मन्यामहे वयम्॥ ६५

तद्गेहि मृगशावाक्षि समीपं तस्य धीमतः।
नो चेदिहानयाम्येनं राजानं भक्तितत्परम्॥ ६६

महिषासुर बोला—हे वीर! हे मन्त्रिश्रेष्ठ! तुम मेरे आदेशसे सेना साथमें लेकर जाओ और साम आदि उपायोंसे उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको यहाँ ले आओ। यदि वह स्त्री साम, दान और भेद—इन तीन उपायोंसे भी यहाँ न आये तो उस सुन्दरीको बिना मारे ही पकड़कर मेरे पास ले आओ, यदि वह मृगनयनी प्रीतिपूर्वक आयेगी तो मैं हंसके समान भौंहोंवाली उस स्त्रीको प्रसन्नतापूर्वक अपनी पटरानी बनाऊँगा। मेरी इच्छा समझकर जिस प्रकार रसभंग न हो, वैसा करना। मैं उसकी रूपराशिकी बात सुनकर मोहित हो गया हूँ॥ ५५—५८$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह कोमल वाणी सुनकर वह श्रेष्ठ मन्त्री हाथी, घोड़े और रथ साथ लेकर तुरंत चल पड़ा। वहाँ पहुँचकर कुछ दूर खड़े होकर वह सचिव कोमल तथा मधुर वाणीमें विनम्रतापूर्वक उस दृढ़ निश्चयवाली नारीसे कहने लगा॥ ५९-६०$\frac{१}{२}$॥

प्रधान बोला—हे मधुरभाषिणि! तुम कौन हो और यहाँ क्यों आयी हो? हे महाभागे! मेरे मुखसे ऐसा कहलाकर मेरे स्वामीने तुमसे यह बात पूछी है॥ ६१$\frac{१}{२}$॥

उन्होंने समस्त देवताओंको जीत लिया है और वे मनुष्योंसे अवध्य हैं। हे चारुलोचने! ब्रह्माजीसे वरदान पानेके कारण वे बहुत गर्वयुक्त रहते हैं। वे दैत्यराज महिष बड़े बलवान् हैं और अपनी इच्छाके अनुसार वे सदा विविध रूप धारण कर सकते हैं॥ ६२-६३॥

सुन्दर वेष तथा मनोहर विग्रहवाली आप यहाँ आयी हुई हैं—ऐसा सुनकर मेरे प्रभु महाराज महिषासुर आपको देखना चाहते हैं। वे मनुष्यका रूप धारण करके आपके पास आयेंगे। हे सुन्दर अंगोंवाली! आपकी जो इच्छा होगी, हम उसीको मान लेंगे॥ ६४-६५॥

हे बालमृगके समान नेत्रोंवाली! अब आप उन बुद्धिमान् राजा महिषके पास चलें और नहीं तो मैं स्वयं जाकर आपके प्रेममें लीन राजा महिषको यहाँ ले आऊँ॥ ६६॥

तथा करोमि देवेशि यथा ते मनसेप्सितम्।
वशगोऽसौ तवात्यर्थं रूपसंश्रवणात्तव॥ ६७

करभोरु वदाशु त्वं संविधेयं मया तथा॥ ६८

हे देवेशि! आपके मनमें जैसी इच्छा होगी, मैं वही करूँगा। आपके रूपके विषयमें सुनकर वे पूर्णरूपसे आपके वशवर्ती हो गये हैं। हे करभोरु! आप शीघ्र बताएँ; मैं उसीके अनुसार कार्य करूँगा॥ ६७-६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे महिषमन्त्रिणा देवीवार्तावर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

देवीद्वारा महिषासुरके अमात्यको अपना उद्देश्य बताना तथा अमात्यका वापस लौटकर देवीद्वारा कही गयी बातें महिषासुरको बताना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य प्रमदोत्तमा।
तमुवाच महाराज मेघगम्भीरया गिरा॥ १

देव्युवाच

मन्त्रिवर्य सुराणां वै जननीं विद्धि मां किल।
महालक्ष्मीमिति ख्यातां सर्वदैत्यनिषूदिनीम्॥ २

प्रार्थिताहं सुरैः सर्वैर्महिषस्य वधाय च।
पीडितैर्दानवेन्द्रेण यज्ञभागबहिष्कृतैः॥ ३

तस्मादिहागतास्म्यद्य तद्वधार्थं कृतोद्यमा।
एकाकिनी न सैन्येन संयुता मन्त्रिसत्तम॥ ४

यत्त्वयाहं सामपूर्वं कृत्वा स्वागतमादरात्।
उक्ता मधुरया वाचा तेन तुष्टास्मि तेऽनघ॥ ५

नोचेद्धन्मि दृशा त्वां वै कालाग्निसमया किल।
कस्य प्रीतिकरं न स्यान्माधुर्यवचनं खलु॥ ६

गच्छ तं महिषं पापं वद मद्वचनादिदम्।
गच्छ पातालमधुना जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ७

नोचेत्कृतागसं दुष्टं हनिष्यामि रणाङ्गणे।
मद्बाणक्षुण्णदेहस्त्वं गन्तासि यमसादनम्॥ ८

दयालुत्वं ममेदं त्वं विदित्वा गच्छ सत्वरम्।
हते त्वयि सुरा मूढ स्वर्गं प्राप्स्यन्ति सत्वरम्॥ ९

व्यासजी बोले—हे महाराज! उसकी यह बात सुनकर नारीश्रेष्ठ भगवती जोरसे हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—हे मन्त्रिवर! मुझे देवमाताके रूपमें जानो। मैं सभी दैत्योंका नाश करनेवाली तथा महालक्ष्मी नामसे विख्यात हूँ॥ २॥

दानवेन्द्र महिषासुरसे पीड़ित और यज्ञभागसे बहिष्कृत सभी देवताओंने उसके संहारके लिये मुझसे प्रार्थना की है। हे मन्त्रिश्रेष्ठ! इसलिये उसके वधके लिये पूर्णरूपसे तत्पर होकर मैं बिना किसी सेनाके अकेली ही आज यहाँ आयी हूँ॥ ३-४॥

हे अनघ! तुमने जो शान्तिपूर्वक आदरके साथ मेरा स्वागत करके मधुर वाणीमें मुझसे बात की है, उससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ; अन्यथा अपनी कालाग्निके समान दृष्टिसे तुम्हें भस्म कर देती। मधुरतासे युक्त वचन भला किसके लिये प्रीतिकारक नहीं होता!॥ ५-६॥

अब तुम जाओ और मेरे शब्दोंमें उस पापी महिषासुरसे कह दो—यदि तुम्हें जीवित रहनेकी अभिलाषा हो तो अभी पाताललोकमें चले जाओ, नहीं तो मैं तुझ पापी तथा दुष्टको रणभूमिमें मार डालूँगी। मेरे बाणोंसे छिन्न-भिन्न शरीरवाले होकर तुम यमपुरी चले जाओगे॥ ७-८॥

हे मूर्ख! इसे मेरी दयालुता समझकर तुम यहाँसे शीघ्र चले जाओ, नहीं तो तुम्हारे मार दिये जानेपर देवतागण निश्चय ही तत्काल स्वर्गका राज्य पा

तस्माद् गच्छस्व त्यक्त्वैको मेदिनीञ्च ससागराम्।
पातालं तरसा मन्द यावद् बाणा न मेऽपतन्॥ १०

युद्धेच्छा चेन्मनसि ते तर्ह्येहि त्वरितोऽसुर।
वीरैर्महाबलैः सर्वैर्नयामि यमसादनम्॥ ११

युगे युगे महामूढ हतास्त्वत्सदृशाः किल।
असंख्यातास्तथा त्वां वै हनिष्यामि रणाङ्गणे॥ १२

साफल्यं कुरु शस्त्राणां धारणे तु श्रमोऽन्यथा।
तद्युध्यस्व मया सार्धं समरे स्मरपीडितः॥ १३

मा गर्वं कुरु दुष्टात्मन् यन्मेऽस्ति ब्रह्मणो वरः।
स्त्रीवध्यत्वे त्वया मूढ पीडिताः सुरसत्तमाः॥ १४

कर्तव्यं वचनं धातुस्तेनाहं त्वामुपागता।
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा सत्यं हन्तुं कृतागसम्॥ १५

यथेच्छं गच्छ वा मूढ पातालं पन्नगावृतम्।
हित्वा भूसुरसद्माद्य जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ १६

व्यास उवाच

इत्युक्तः स ततो देव्या मन्त्रिश्रेष्ठो बलान्वितः।
प्रत्युवाच निशम्यासौ वचनं हेतुगर्भितम्॥ १७

देवि स्त्रीसदृशं वाक्यं ब्रूषे त्वं मदगर्विता।
क्वासौ क्व त्वं कथं युद्धमसम्भाव्यमिदं किल॥ १८

एकाकिनी पुनर्बाला प्रारब्धयौवना मृदुः।
महिषोऽसौ महाकायो दुर्विभाव्यं हि सङ्गतम्॥ १९

सैन्यं बहुविधं तस्य हस्त्यश्वरथसंकुलम्।
पदातिगणसंविद्धं नानायुधविराजितम्॥ २०

जायँगे। इसलिये हे दुष्ट! जबतक मेरे बाण तुझपर नहीं गिरते, उसके पूर्व ही तुम शीघ्रतापूर्वक समुद्रसहित पृथ्वीका त्याग करके पाताललोक चले जाओ॥ ९-१०॥

हे असुर! यदि तुम्हारे मनमें युद्धकी इच्छा हो तो अपने सभी महाबली वीरोंको साथ लेकर शीघ्र आ जाओ। मैं सबको यमपुरी पहुँचा दूँगी॥ ११॥

हे महामूढ! मैंने युग-युगमें तुम्हारे-जैसे असंख्य दैत्योंका संहार किया है, उसी प्रकार मैं तुम्हें भी रणमें मार डालूँगी। [मेरा सामना करके] तुम मेरे शस्त्र धारण करनेके परिश्रमको सफल करो, नहीं तो यह श्रम व्यर्थ हो जायगा। कामपीड़ित तुम रणभूमिमें मेरे साथ युद्ध करो॥ १२-१३॥

हे दुरात्मन्! तुम इस बातपर अभिमान मत करो कि मुझे ब्रह्माका वर प्राप्त हो गया है। हे मूढ़! केवल स्त्रीके द्वारा वध्य होनेके कारण तुमने श्रेष्ठ देवताओंको बहुत पीड़ित किया है॥ १४॥

अतः ब्रह्माजीका वचन सत्य करना है, इसीलिये स्त्रीका अनुपम रूप धारण करके मैं तुझ पापीका संहार करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। हे मूढ! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो इसी समय देवलोक छोड़कर तुम सर्पोंसे भरे पाताललोकको अथवा जहाँ तुम्हारी इच्छा हो वहाँ चले जाओ॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—देवीने उससे ऐसा कहा, तब उनकी बात सुनकर वह पराक्रमशाली मन्त्रिश्रेष्ठ उनसे सारगर्भित वचन कहने लगा—॥ १७॥

हे देवि! आप अभिमानमें चूर होकर एक साधारण स्त्रीके समान बात कर रही हैं। कहाँ वे महिषासुर और कहाँ आप, यह युद्ध तो असम्भव ही दीखता है॥ १८॥

आप यहाँ अकेली हैं और उसपर भी सद्यः युवावस्थाको प्राप्त सुकुमार बाला हैं। [इसके विपरीत] वे महिषासुर विशाल शरीरवाले हैं; ऐसी स्थितिमें उनकी और आपकी तुलना कल्पनातीत है॥ १९॥

उनके पास हाथी-घोड़े और रथसे परिपूर्ण, पैदल सैनिकोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके आयुधोंसे सज्जित अनेक प्रकारकी सेना है॥ २०॥

कः श्रमः करिराजस्य मालतीपुष्पमर्दने।
मारणे तव वामोरु महिषस्य तथा रणे॥ २१

यदि त्वां परुषं वाक्यं ब्रवीमि स्वल्पमप्यहम्।
शृङ्गारे तद्विरुद्धं हि रसभङ्गाद् बिभेम्यहम्॥ २२

राजास्माकं सुररिपुर्वर्तते त्वयि भक्तिमान्।
साममेव मया वाच्यं दानयुक्तं तथा वचः॥ २३

नोचेद्धन्म्यहमद्यैव बाणेन त्वां मृषावदाम्।
मिथ्याभिमानचतुरां रूपयौवनगर्विताम्॥ २४

स्वामी मे मोहितः श्रुत्वा रूपं ते भुवनातिगम्।
तत्प्रियार्थं प्रियं कामं वक्तव्यं त्वयि यन्मया॥ २५

राज्यं तव धनं सर्वं दासस्ते महिषः किल।
कुरु भावं विशालाक्षि त्यक्त्वा रोषं मृतिप्रदम्॥ २६

पतामि पादयोस्तेऽहं भक्तिभावेन भामिनि।
पट्टराज्ञी महाराज्ञो भव शीघ्रं शुचिस्मिते॥ २७

त्रैलोक्यविभवं सर्वं प्राप्स्यसि त्वमनाविलम्।
सुखं संसारजं सर्वं महिषस्य परिग्रहात्॥ २८

देव्युवाच

शृणु साचिव वक्ष्यामि वाक्यानां सारमुत्तमम्।
शास्त्रदृष्टेन मार्गेण चातुर्यमनुचिन्त्य च॥ २९

महिषस्य प्रधानस्त्वं मया ज्ञातं धिया किल।
पशुबुद्धिस्वभावोऽसि वचनात्तव साम्प्रतम्॥ ३०

मन्त्रिणस्त्वादृशा यस्य स कथं बुद्धिमान्भवेत्।
उभयोः सदृशो योगः कृतोऽयं विधिना किल॥ ३१

मालतीके पुष्पोंको कुचल डालनेमें गजराजको भला कौन-सा परिश्रम करना पड़ता है। हे सुजघने! उसी प्रकार युद्धमें आपको मारनेमें महिषासुरको कुछ भी प्रयास नहीं करना पड़ेगा॥ २१॥

यदि मैं आपको थोड़ा भी कठोर वचन कह दूँ तो वह शृंगाररसके विरुद्ध होगा; और मैं रसभंगसे डरता हूँ॥ २२॥

हमारे राजा महिषासुर देवताओंके शत्रु हैं, किंतु वे आपके प्रति अनुरागयुक्त हैं। [मेरे राजाने कहा है कि] मैं आपसे साम तथा दाननीतियोंसे पूर्ण वचन ही बोलूँ, अन्यथा मैं झूठ बोलनेवाली, मिथ्या अभिमानमें भरकर चतुरता दिखानेवाली और रूप तथा यौवनके अभिमानमें चूर रहनेवाली आपको इसी समय अपने बाणसे मार डालता॥ २३-२४॥

आपके अलौकिक रूपके विषयमें सुनकर मेरे स्वामी मोहित हो गये हैं। उनकी प्रसन्नताके लिये ही मुझे प्रिय वचन बोलना पड़ रहा है॥ २५॥

उनका सम्पूर्ण राज्य तथा धन आपका है; क्योंकि वे महाराज महिषासुर निश्चय ही आपके दास हो चुके हैं। अतः हे विशालनयने! इस मृत्युदायक रोषका त्याग करके उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित कीजिये॥ २६॥

हे भामिनि! मैं भक्तिभावसे आपके चरणोंपर गिर रहा हूँ। हे पवित्र मुसकानवाली! आप शीघ्र ही महाराज महिषकी पटरानी बन जाइये॥ २७॥

महिषासुरको स्वीकार कर लेनेसे आपको तीनों लोकोंका सम्पूर्ण उत्तम वैभव तथा समस्त सांसारिक सुख प्राप्त हो जायगा॥ २८॥

देवी बोलीं—हे सचिव! सुनो, मैं बुद्धिचातुर्यसे सम्यक् विचार करके तथा शास्त्रप्रतिपादित मार्गसे निर्णय करके सारभूत बातें बताऊँगी॥ २९॥

तुम्हारी बातोंसे मैंने अपनी बुद्धिद्वारा जान लिया कि तुम महिषासुरके प्रधानमन्त्री हो और तुम भी [उसीकी तरह] पशुबुद्धिस्वभाववाले हो॥ ३०॥

जिस राजाके तुम्हारे-जैसे मन्त्री हों, वह बुद्धिमान् कैसे हो सकता है? ब्रह्माने निश्चय ही तुम दोनोंका यह समान योग रचा है॥ ३१॥

यदुक्तं स्त्रीस्वभावासि तद्विचारय मूढ किम्।
पुमान्नाहं तत्स्वभावाभवं स्त्रीवेषधारिणी॥ ३२

याचितं मरणं पूर्वं स्त्रिया त्वत्प्रभुणा यथा।
तस्मान्मन्येऽतिमूर्खोऽसौ न वीररसवित्तमः॥ ३३

कामिन्या मरणं क्लीबरतिदं शूरदुःखदम्।
प्रार्थितं प्रभुणा तेन महिषेणात्मबुद्धिना॥ ३४

तस्मात्स्त्रीरूपमाधाय कार्यं कर्तुमुपागता।
कथं बिभेमि त्वद्वाक्यैर्धर्मशास्त्रविरोधकैः॥ ३५

विपरीतं यदा दैवं तृणं वज्रसमं भवेत्।
विधिश्चेत्सुमुखः कामं कुलिशं तूलवत्तदा॥ ३६

किं सैन्यैरायुधैः किं वा प्रपञ्चैर्दुर्गसेवनैः।
मरणं साम्प्रतं यस्य तस्य सैन्यैस्तु किं फलम्॥ ३७

यदायं देहसम्बन्धो जीवस्य कालयोगतः।
तदैव लिखितं सर्वं सुखं दुःखं तथा मृतिः॥ ३८

यस्य येन प्रकारेण मरणं दैवनिर्मितम्।
तस्य तेनैव जायेत नान्यथेति विनिश्चयः॥ ३९

ब्रह्मादीनां यथा काले नाशोत्पत्ती विनिर्मिते।
तथैव भवतः कामं किमन्येषां विचार्यते॥ ४०

ये मृत्युधर्मिणस्तेषां वरदानेन दर्पिताः।
मरिष्यामो न मन्यन्ते ते मूढा मन्दचेतसः॥ ४१

हे मूर्ख! तुमने जो यह कहा कि 'तुम स्त्रीस्वभाववाली हो', तो अब तुम इस बातपर जरा विचार करो कि क्या मैं पुरुष नहीं हूँ? वस्तुतः उसीके स्वभाववाली मैं इस समय स्त्रीवेषधारिणी हो गयी हूँ॥ ३२॥

तुम्हारे स्वामी महिषासुरने पूर्वकालमें जो स्त्रीसे मारे जानेका वरदान माँगा था, उसीसे मैं समझती हूँ कि वह महामूर्ख है। वह वीररसका थोड़ा भी जानकार नहीं है॥ ३३॥

स्त्रीके द्वारा मारा जाना पराक्रमहीनके लिये भले ही सुखकर हो, किंतु वीरके लिये यह कष्टप्रद होता है। महिषकी अपनी जो बुद्धि हो सकती है, उसीके अनुसार तुम्हारे स्वामीने ऐसा वरदान माँगा। इसीलिये मैं स्त्री-रूप धारण करके अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आयी हूँ। मैं तुम्हारे धर्मशास्त्र-विरोधी वचनोंसे क्यों डरूँ?॥ ३४-३५॥

जब दैव प्रतिकूल होता है, तब एक तिनका भी वज्र-तुल्य हो जाता है और जब वह दैव अनुकूल होता है, तब वज्र भी तूल (रूई)-के समान कोमल हो जाता है॥ ३६॥

जिसकी मृत्यु सन्निकट हो उसके लिये सेना, अस्त्र-शस्त्र तथा किलेकी सुरक्षा, सैन्यबल आदि प्रपंचोंसे क्या लाभ!॥ ३७॥

जब कालयोगसे देहके साथ जीवका सम्बन्ध स्थापित होता है, उसी समय विधाताके द्वारा सुख, दुःख तथा मृत्यु—सब कुछ निर्धारित कर दिया जाता है। दैवने जिस प्राणीकी मृत्यु जिस प्रकारसे निश्चित कर दी है, उसकी मृत्यु उसी प्रकारसे होगी, इसके विपरीत नहीं; यह पूर्ण सत्य है॥ ३८-३९॥

जिस प्रकारसे ब्रह्मा आदि देवताओंके भी जन्म और मृत्यु सुनिश्चित किये गये रहते हैं, समय आनेपर उसी प्रकारसे उनका भी जन्म-मरण होता है तब अन्य लोगोंके विषयमें विचार ही क्या! उन ब्रह्मा आदि मरणधर्माके वरदानसे गर्वित होकर जो लोग यह समझते हैं कि 'हम नहीं मरेंगे' वे मूर्ख तथा अल्पबुद्धिवाले हैं॥ ४०-४१॥

तस्माद् गच्छ नृपं ब्रूहि वचनं मम सत्वरम्।
यदाज्ञापयते भूपस्तत्कर्तव्यं त्वया किल॥ ४२

मघवा स्वर्गमाप्नोतु देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥ ४३

अन्यथा चेन्मतिर्मन्द महिषस्य दुरात्मनः।
तद्युध्यस्व मया सार्धं मरणाय कृतादरः॥ ४४

मन्यसे सङ्गरे भग्ना देवा विष्णुपुरोगमाः।
दैवं हि कारणं तत्र वरदानं प्रजापतेः॥ ४५

व्यास उवाच

इति देव्या वचः श्रुत्वा चिन्तयामास दानवः।
किं कर्तव्यं मया युद्धं गन्तव्यं वा नृपं प्रति॥ ४६

विवाहार्थमिहाज्ञप्तो राज्ञा कामातुरेण वै।
तत्कथं विरसं कृत्वा गच्छेयं नृपसन्निधौ॥ ४७

इयं बुद्धिः समीचीना यद् व्रजामि कलिं विना।
यथागतं तथा शीघ्रं राज्ञे संवेदयाम्यहम्॥ ४८

स प्रमाणं पुनः कार्ये राजा मतिमतां वरः।
करिष्यति विचार्यैव सचिवैर्निपुणैः सह॥ ४९

सहसा न मया युद्धं कर्तव्यमनया सह।
जये पराजये वापि भूपतेरप्रियं भवेत्॥ ५०

यदि मां सुन्दरी हन्यादहं वा हन्मि तां पुनः।
येन केनाप्युपायेन स कुप्येत्पार्थिवः किल॥ ५१

तस्मात्तत्रैव गत्वाहं बोधयिष्यामि तं नृपम्।
यथाद्याभिहितं देव्या यथारुचि करोतु सः॥ ५२

अतएव अब तुम शीघ्र जाओ और अपने राजासे मेरी बात कह दो। इसके बाद तुम्हारे राजा जैसी आज्ञा दें, तुम वैसा करो। इन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हो जाय और देवताओंको यज्ञका भाग मिलने लगे। तुमलोग यदि जीवित रहना चाहते हो, तो पाताललोक चले जाओ और हे मूर्ख! यदि दुष्टात्मा महिषासुरका विचार विपरीत हो, तो वह मरनेके लिये तैयार होकर मेरे साथ युद्ध करे॥ ४२—४४॥

यदि तुम यह मानते हो कि विष्णु आदि प्रधान देवता तो युद्धमें पहले ही परास्त किये जा चुके हैं, तो उस समय उसका कारण था—विपरीत भाग्य तथा ब्रह्माजीका वरदान॥ ४५॥

व्यासजी बोले—देवीका यह वचन सुनकर वह दानव सोचने लगा—अब मुझे क्या करना चाहिये? मैं इसके साथ युद्ध करूँ या राजा महिषके पास लौट चलूँ॥ ४६॥

[किंतु यह भी है कि] कामातुर महाराज महिषने विवाहके लिये [उसे राजी करनेकी] मुझे आज्ञा दी है तो फिर रसभंग करके मैं राजाके पास लौटकर कैसे जाऊँ?॥ ४७॥

अन्तमें अब मुझे यही विचार उचित प्रतीत होता है कि बिना युद्ध किये ही राजाके पास शीघ्र चला जाऊँ और जैसा सामने उपस्थित है, वैसा उनको बता दूँ। उसके बाद बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजा महिष अपने चतुर मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करके जो उचित समझेंगे, उसे करेंगे॥ ४८-४९॥

मुझे अचानक इस स्त्रीके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि जय अथवा पराजय—इन दोनोंमें राजाका अप्रिय हो सकता है॥ ५०॥

यदि यह सुन्दरी मुझे मार डाले अथवा मैं ही जिस किसी उपायसे इसको मार डालूँ, तब भी राजा महिष निश्चितरूपसे कुपित होंगे। अतः अब मैं वहींपर चलकर इस सुन्दरीके द्वारा आज जो कुछ कहा गया है, वह सब राजा महिषको बता दूँगा। तत्पश्चात् उनकी जैसी रुचि होगी, वैसा वे करेंगे॥ ५१-५२॥

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मेधावी जगाम नृपसन्निधौ।
प्रणम्य तमुवाचेदं कृताञ्जलिरमात्यकः॥ ५३

मन्त्र्युवाच

राजन् देवी वरारोहा सिंहस्योपरि संस्थिता।
अष्टादशभुजा रम्या वरायुधधरा परा॥ ५४

सा मयोक्ता महाराज महिषं भज भामिनि।
महिषी भव राज्ञस्त्वं त्रैलोक्याधिपतेः प्रिया॥ ५५

पट्टराज्ञी त्वमेवास्य भविता नात्र संशयः।
स तवाज्ञाकरो जातो वशवर्ती भविष्यति॥ ५६

त्रैलोक्यविभवं भुक्त्वा चिरकालं वरानने।
महिषं पतिमासाद्य योषितां सुभगा भव॥ ५७

इति मद्वचनं श्रुत्वा सा स्मयावेशमोहिता।
मामुवाच विशालाक्षी स्मितपूर्वमिदं वचः॥ ५८

महिषीगर्भसम्भूतं पशूनामधमं किल।
बलिं दास्याम्यहं देव्यै सुराणां हितकाम्यया॥ ५९

का मूढा कामिनी लोके महिषं वै पतिं भजेत्।
मादृशी मन्दबुद्धे किं पशुभावं भजेदिह॥ ६०

महिषी महिषं नाथं सशृङ्गा शृङ्गसंयुतम्।
कुरुते क्रन्दमाना वै नाहं तत्सदृशी शठा॥ ६१

करिष्येऽहं मृधे युद्धं हनिष्ये त्वां सुराप्रियम्।
गच्छ वा दुष्ट पातालं जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ६२

परुषं तु तया वाक्यमित्युक्तं नृप मत्तया।
तच्छ्रुत्वाहं समायातः प्रविचिन्त्य पुनः पुनः॥ ६३

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके वह बुद्धिमान् मन्त्री राजा (महिष)-के पास गया और उसे प्रणामकर दोनों हाथ जोड़कर कहने लगा—॥ ५३॥

मन्त्री बोला—हे राजन्! सुन्दर रूपवाली वह देवी सिंहपर आरूढ है, उस मनोहर देवीकी अठारह भुजाएँ हैं और उस श्रेष्ठ देवीने उत्तम कोटिके आयुध धारण कर रखे हैं॥ ५४॥

हे महाराज! मैंने उससे कहा—हे भामिनि! तुम राजा महिषसे प्रेम कर लो और तीनों लोकोंके स्वामी उन महाराजकी प्रिय पटरानी बन जाओ। केवल तुम्हीं उनकी पटरानी बननेयोग्य हो; इसमें कोई संशय नहीं है। वे तुम्हारे आज्ञाकारी बनकर सदा तुम्हारे अधीन रहेंगे। हे सुमुखि! महाराज महिषको पतिरूपमें प्राप्त करके तुम चिरकालतक तीनों लोकोंके ऐश्वर्यका उपभोगकर समस्त स्त्रियोंमें सौभाग्यवती बन जाओ॥ ५५—५७॥

मेरा यह वचन सुनकर विशाल नयनोंवाली वह सुन्दरी गर्वके आवेगसे विमोहित होकर मुसकराती हुई मुझसे यह बात बोली—मैं देवताओंका हित करनेके विचारसे महिषीके गर्भसे उत्पन्न उस अधम पशु (महिष)-को देवीके लिये बलि चढ़ा दूँगी॥ ५८-५९॥

हे मन्दबुद्धे! इस संसारमें भला कौन मूर्ख स्त्री महिषको पतिरूपमें स्वीकार कर सकती है? क्या मुझ-जैसी स्त्री पशुस्वभाववाले उस महिषासुरसे प्रेम कर सकती है?॥ ६०॥

हे मूर्ख! सींगवाली तथा जोर-जोरसे चिल्लानेवाली कोई महिषी ही उस शृंगधारी महिषको अपना पति बना सकती है; किंतु मैं वैसी मूर्ख नहीं हूँ। [देवीने पुनः कहलाया है] मैं तो देवताओंके शत्रु तुझ महिषासुरके साथ रणक्षेत्रमें युद्ध करूँगी और तुम्हें मार डालूँगी। हे दुष्ट! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा है, तो अभी पाताललोक चले जाओ॥ ६१-६२॥

हे राजन्! उस मदमत्त स्त्रीने ऐसी बहुत कठोर बात मुझसे कही। उसे सुनकर बार-बार विचार करनेके बाद मैं यहाँ लौट आया हूँ॥ ६३॥

रसभङ्गं विचिन्त्यैव न युद्धं तु मया कृतम्।
आज्ञां विना तवात्यन्तं कथं कुर्यां वृथोद्यमम्॥ ६४

सातीव च बलोन्मत्ता वर्तते भूप भामिनी।
भवितव्यं न जानामि किं वा भावि भविष्यति॥ ६५

कार्येऽस्मिंस्त्वं प्रमाणं नो मन्त्रोऽतीव दुरासदः।
युद्धं पलायनं श्रेयो न जानेऽहं विनिश्चयम्॥ ६६

आपका रसभंग न हो—यह सोचकर मैंने उसके साथ युद्ध नहीं किया और फिर आपकी आज्ञाके बिना मैं व्यर्थ ही युद्ध कैसे कर सकता था?॥ ६४॥

हे राजन्! वह स्त्री सदा अपने बलसे अत्यन्त उन्मत्त रहती है। होनीके विषयमें मैं नहीं जानता; आगे न जाने क्या होगा! इस विषयमें आप ही प्रमाण हैं। इसमें परामर्श देना मेरे लिये अत्यन्त कठिन है। इस समय हमारे लिये युद्ध करना अथवा पलायन कर जाना—इन दोनोंमें कौन श्रेयस्कर होगा, इसका निर्णय मैं नहीं कर पा रहा हूँ॥ ६५-६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे मन्त्रीद्वारा महिषासुरेण देव्या सह विवाहप्रस्तावो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

महिषासुरका अपने मन्त्रियोंसे विचार-विमर्श करना और ताम्रको भगवतीके पास भेजना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा महिषो मदविह्वलः।
मन्त्रिवृद्धान् समाहूय राजा वचनमब्रवीत्॥ १

राजोवाच

मन्त्रिणः किं च कर्तव्यं विश्रब्धं ब्रूत मा चिरम्।
आगता देवविहिता मायेयं शाम्बरीव किम्॥ २

कार्येऽस्मिन्निपुणा यूयमुपायेषु विचक्षणाः।
सामादिषु च कर्तव्यः कोऽत्र मह्यं ब्रुवन्तु च॥ ३

मन्त्रिण ऊचुः

सत्यं सदैव वक्तव्यं प्रियञ्च नृपसत्तम।
कार्यं हितकरं नूनं विचार्य विबुधैः किल॥ ४

सत्यं च हितकृद्राजन्प्रियं चाहितकृद्भवेत्।
यथौषधं नृणां लोके ह्यप्रियं रोगनाशनम्॥ ५

सत्यस्य श्रोता मन्ता च दुर्लभः पृथिवीपते।
वक्तापि दुर्लभः कामं बहवश्चाटुभाषकाः॥ ६

व्यासजी बोले—मन्त्रीकी यह बात सुनकर मदोन्मत्त राजा महिषासुर अपने वयोवृद्ध मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे यह वचन कहने लगा॥ १॥

राजा बोला—हे मन्त्रिगण! आपलोग निर्भीकतापूर्वक मुझे शीघ्र बतायें कि इस समय मुझे क्या करना चाहिये? आपलोग इस कार्यमें प्रवीण हैं, साथ ही साम तथा दण्ड आदि नीतियोंमें भी कुशल हैं। कहीं देवताओंके द्वारा रची गयी शाम्बरी मायाके रूपमें तो यह नहीं आयी हुई है? अतः आपलोग मुझे यह बतायें कि इस समय किस नीतिका सहारा लिया जाय?॥ २-३॥

मन्त्रिगण बोले—हे नृपश्रेष्ठ! बुद्धिमान् लोगोंको सदा सत्य और प्रिय बोलना चाहिये तथा सम्यक् विचार करके हितकर कार्य करना चाहिये॥ ४॥

हे राजन्! सत्य वचन कल्याणकारी होता है और प्रिय वचन [प्रायः] अहितकर होता है। इस लोकमें अप्रिय वचन भी मनुष्योंके लिये उसी प्रकार हितकारक होता है, जैसे औषधि अरुचिकर होते हुए भी मनुष्योंके रोगोंका नाश करनेवाली होती है॥ ५॥

हे पृथिवीपते! सत्य बातको सुनने तथा माननेवाला दुर्लभ है। सत्य बोलनेवाला तो परम दुर्लभ है; किंतु चाटुकारितापूर्ण बातें करनेवाले बहुत-से लोग हैं॥ ६॥

कथं ब्रूमोऽत्र नृपते विचारे गहने त्विह।
शुभं वाप्यशुभं वापि को वेत्ति भुवनत्रये॥ ७

राजोवाच

स्वस्वमत्यनुसारेण ब्रुवन्त्वद्य पृथक्पृथक्।
येषां हि यादृशो भावस्तच्छ्रुत्वा चिन्तयाम्यहम्॥ ८

बहूनां मतमाज्ञाय विचार्य च पुनः पुनः।
यच्छ्रेयस्तद्धि कर्तव्यं कार्यं कार्यविचक्षणैः॥ ९

व्यास उवाच

तस्यैवं वचनं श्रुत्वा विरूपाक्षो महाबलः।
उवाच तरसा वाक्यं रञ्जयन्पृथिवीपतिम्॥ १०

विरूपाक्ष उवाच

राजन्नारी वराकीयं सा ब्रूते मदगर्विता।
विभीषिकामात्रमिदं ज्ञातव्यं वचनं त्वया॥ ११

को बिभेति स्त्रियो वाक्यैर्दुरुक्तै रणदुर्मदैः।
अनृतं साहसं चेति जानन्नारीविचेष्टितम्॥ १२

जित्वा त्रिभुवनं राजन्नद्य कान्ताभयेन वै।
दीनत्वेऽप्ययशो नूनं वीरस्य भुवने भवेत्॥ १३

तस्माद्याम्यहमेकाकी युद्धाय चण्डिकां प्रति।
हनिष्ये तां महाराज निर्भयो भव साम्प्रतम्॥ १४

सेनावृतोऽहं गत्वा तां शस्त्रास्त्रैर्विविधैः किल।
निषूदयामि दुर्मर्षां चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ १५

बद्ध्वा सर्पमयैः पाशैरानयिष्ये तवान्तिकम्।
वशगा तु सदा ते स्यात्पश्य राजन् बलं मम॥ १६

हे राजन्! इस गूढ़ विषयमें हमलोग कुछ कैसे कह सकते हैं, और फिर इस त्रिलोकीमें भविष्यमें होनेवाले शुभ अथवा अशुभ परिणामके विषयमें कौन जान सकता है?॥ ७॥

राजा बोला—आपलोग अपनी-अपनी बुद्धिके अनुसार अलग-अलग विचार प्रकट करें। जिसका जो भाव होगा, उसे सुनकर मैं स्वयं विचार करूँगा; क्योंकि बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि अनेक लोगोंके मन्तव्य सुनकर और फिर उनपर बार-बार विचार करके उनमेंसे अपने लिये जो कल्याणप्रद हो, उसी कामको करें॥ ८-९॥

व्यासजी बोले—उसकी यह बात सुनकर महाबली विरूपाक्ष राजा महिषको प्रसन्न करते हुए शीघ्र कहने लगा॥ १०॥

विरूपाक्ष बोला—हे राजन्! वह बेचारी स्त्री मदमत्त होकर जो कुछ बोल रही है, उन बातोंको आप केवल धमकीभर समझें॥ ११॥

यह जानते हुए कि झूठ और साहस स्त्रियोंकी आदत होती है, भला कौन एक स्त्रीके कहे हुए युद्धोन्मादी कठोर वाक्योंसे डरेगा?॥ १२॥

हे राजन्! तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करके भी आज आप स्त्रीके भयसे ग्रस्त हो गये हैं! उसकी अधीनता स्वीकार कर लेनेपर इस लोकमें अवश्य ही आप-जैसे वीरकी अपकीर्ति होगी॥ १३॥

अतएव हे महाराज! मैं अकेला ही उस चण्डिकासे युद्ध करनेके लिये जा रहा हूँ और उसे निश्चितरूपसे मार डालूँगा। अब आप भयमुक्त हो जायँ॥ १४॥

अपनी सेनाके साथ वहाँ जाकर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे मैं उस दु:सह तथा प्रचण्ड पराक्रमसम्पन्न चण्डिकाका निश्चय ही वध कर दूँगा अथवा उसे नागपाशमें बाँधकर जीवित दशामें ही आपके पास ले आऊँगा, जिससे वह सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाय। हे राजन्! अब आप मेरा पराक्रम देखिये॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

विरूपाक्षवचः श्रुत्वा दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्।
सत्यमुक्तं वचो राजन् विरूपाक्षेण धीमता॥ १७

ममापि वचनं श्लक्ष्णं श्रोतव्यं धीमता त्वया।
कामातुरैषा सुदती लक्ष्यतेऽप्यनुमानतः॥ १८

भवत्येवंविधा कामं नायिका रूपगर्विता।
भीषयित्वा वरारोहा त्वां वशे कर्तुमिच्छति॥ १९

हावोऽयं मानिनीनां वै तं वेत्ति रसवित्तमः।
वक्रोक्तिरेषा कामिन्याः प्रियं प्रति परायणम्॥ २०

वेत्ति कोऽपि नरः कामं कामशास्त्रविचक्षणः।
यदुक्तं नाम बाणैस्त्वां वधिष्ये रणमूर्धनि॥ २१

हेतुगर्भमिदं वाक्यं ज्ञातव्यं हेतुवित्तमैः।
बाणास्तु मानिनीनां वै कटाक्षा एव विश्रुताः॥ २२

पुष्पाञ्जलिमयाश्चान्ये व्यंग्यानि वचनानि च।
का शक्तिरन्यबाणानां प्रेरणे त्वयि पार्थिव॥ २३

तादृशीनां न सा शक्तिर्ब्रह्मविष्णुहरादिषु।
ययोक्तं नेत्रबाणैस्त्वां हनिष्ये मन्द पार्थिवम्॥ २४

विपरीतं परिज्ञातं तेनारसविदा किल।
पातयिष्यामि शय्यायां रणमय्यां पतिं तव॥ २५

विपरीतरतिक्रीडाभाषणं ज्ञेयमेव तत्।
करिष्ये विगतप्राणं यदुक्तं वचनं तया॥ २६
वीर्यं प्राणा इति प्रोक्तं तद्विहीनं न चान्यथा।

व्यासजी बोले—विरूपाक्षकी बात सुनकर दुर्धरने कहा—हे राजन्! बुद्धिमान् विरूपाक्षने यथार्थ बात कही है। प्रतिभासम्पन्न आप अब मेरी भी उत्तम बात सुन लें। अनुमानसे ऐसा प्रतीत होता है कि सुन्दर दाँतोंवाली यह स्त्री कामातुर है। अपने रूपके गर्वमें चूर इस प्रकारकी नायिकाएँ अपने प्रियको डरा-धमकाकर वशमें करनेका प्रयास करती हैं; वैसे ही यह सुन्दरी भी आपको धमकाकर अपने वशमें करना चाहती है॥ १७—१९॥

यह तो मानिनी स्त्रियोंका हाव-भाव होता है और रसका महान् ज्ञाता ही उस हाव-भावको समझ पाता है। आसक्त प्रेमीके प्रति किसी स्त्रीकी ऐसी वक्रोक्ति होती ही है, जिसे कामशास्त्रका विद्वान् कोई विरला पुरुष ही समझ पाता है। जैसे उसने कहा है—'मैं तुम्हें युद्धक्षेत्रमें बाणोंसे मार डालूँगी', इस कथनमें बहुत बड़ा रहस्य निहित है, जिसे रहस्यविद् ही भलीभाँति समझ सकते हैं। मानिनी स्त्रियोंके बाण तो उनके कटाक्ष ही कहे गये हैं और हे राजन्! उनके व्यंग्यपूर्ण वचन दूसरे पुष्पांजलिमय बाण हैं; क्योंकि कटाक्षको छोड़कर वह अन्य प्रकारके बाण भला आपपर क्या चला सकेगी? जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिमें आपपर बाण चलानेकी शक्ति नहीं है, तब वैसी स्त्रियोंमें अन्य बाण चलानेकी शक्ति कहाँ है? उसने अमात्यसे जो कहा था—'हे मन्द! मैं तुम्हारे राजाको अपने नेत्रबाणोंसे बेध डालूँगी' इस कथनका तात्पर्य उन रसज्ञानसे विहीन मन्त्रीने विपरीत ही समझ लिया था॥ २०—२४$\frac{१}{२}$॥

उसने प्रधान अमात्यसे जो यह कहा था कि 'मैं तुम्हारे स्वामीको रणमयी शय्यापर गिरा दूँगी'—इस कथनका तात्पर्य उस स्त्रीके द्वारा विपरीत रतिक्रीडाका किया जाना समझना चाहिये। साथ ही उसने जो यह बात कही थी कि 'मैं उन्हें प्राणहीन कर दूँगी'—तो [हे राजन्!] पुरुषोंमें वीर्यको ही प्राण कहा गया है, अतः उस स्त्रीके कथनका तात्पर्य आपको वीर्यहीन कर देनेसे है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं॥ २५-२६$\frac{१}{२}$॥

व्यंग्याधिक्येन वाक्येन वरयत्युत्तमा नृप॥ २७

तद्वै विचारतो ज्ञेयं रसग्रन्थविचक्षणैः।
इति ज्ञात्वा महाराज कर्तव्यं रससंयुतम्॥ २८

सामदानद्वयं तस्या नान्योपायोऽस्ति भूपते।
रुष्टा वा गर्विता वापि वशगा मानिनी भवेत्॥ २९

तादृशैर्मधुरैर्वाक्यैरानयिष्ये तवान्तिकम्।
किं बहूक्तेन मे राजन् कर्तव्या वशवर्तिनी॥ ३०

गत्वा मयाधुनैवेयं किङ्करीव सदैव ते।

व्यास उवाच

इत्थं निशम्य तद्वाक्यं ताम्रस्तत्त्वविचक्षणः॥ ३१

उवाच वचनं राजन्निशामय मयोदितम्।
हेतुमद्धर्मसहितं रसयुक्तं नयान्वितम्॥ ३२

नैषा कामातुरा बाला नानुरक्ता विचक्षणा।
व्यंग्यानि नैव वाक्यानि तयोक्तानि तु मानद॥ ३३

चित्रमत्र महाबाहो यदेका वरवर्णिनी।
निरालम्बा समायाति चित्ररूपा मनोहरा॥ ३४

अष्टादशभुजा नारी न श्रुता न च वीक्षिता।
केनापि त्रिषु लोकेषु पराक्रमवती शुभा॥ ३५

आयुधान्यपि तावन्ति धृतानि बलवन्ति च।
विपरीतमिदं मन्ये सर्वं कालकृतं नृप॥ ३६

स्वप्नानि दुर्निमित्तानि मया दृष्टानि वै निशि।
तेन जानाम्यहं नूनं वैशसं समुपागतम्॥ ३७

कृष्णाम्बरधरा नारी रुदती च गृहाङ्गणे।
दृष्टा स्वप्नेऽप्युषःकाले चिन्तितव्यस्तदत्ययः॥ ३८

हे राजन्! व्यंग्यभरे इस कथनके द्वारा वह सुन्दरी आपको पतिके रूपमें वरण करना चाहती है। रसशास्त्रके विद्वानोंको विचारपूर्वक इस कथनका अभिप्राय भलीभाँति जान लेना चाहिये। हे महाराज! ऐसा जानकर आपको उसके प्रति रसमय व्यवहार करना चाहिये। हे राजन्! साम (प्रिय वचन) और दान (प्रलोभन आदि)—ये ही दो उपाय उसे वशमें करनेके हैं, इनके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है। रुष्ट अथवा मदगर्वित कोई भी मानिनी स्त्री इन उपायोंसे वशवर्तिनी हो जाती है। उसी प्रकारके मधुर वचनोंसे प्रसन्न करके मैं उसे आपके पास ले आऊँगा। हे राजन्! बहुत कहनेसे क्या लाभ! अभी वहाँ जाकर मैं उस स्त्रीको एक दासीकी भाँति सदाके लिये आपके वशमें कर दूँगा॥ २७—३०½ ॥

व्यासजी बोले—दुर्धरकी यह बात सुनकर तत्त्वविद् ताम्र बोला—हे राजन्! अब आप मेरेद्वारा कही गयी बात सुनिये जो तर्कयुक्त, धर्मसे ओतप्रोत, रसमय तथा नीतिसे भरी हुई है॥ ३१-३२॥

हे मानद! यह बुद्धिसम्पन्न स्त्री न कामातुर है, न आपपर आसक्त है और न तो उसने व्यंग्यपूर्ण बातें ही कही हैं॥ ३३॥

हे महाबाहो! यह तो महान् आश्चर्य है कि एक अत्यधिक रूपवती और मनोहर स्त्री बिना किसीका आश्रय लिये अकेली ही युद्धहेतु आयी हुई है। अठारह भुजाओंसे सम्पन्न ऐसी पराक्रमशालिनी तथा सुन्दर स्त्री किसीके भी द्वारा तीनों लोकोंमें न तो देखी गयी और न तो सुनी ही गयी। उसने अनेक प्रकारके सुदृढ़ आयुध धारण कर रखे हैं। हे राजन्! इससे मैं तो यह मानता हूँ कि समयने सब कुछ हमारे विपरीत कर दिया है॥ ३४—३६॥

मैंने रातमें अपशकुनसूचक अनेक स्वप्न देखे हैं, इससे मैं तो यह समझता हूँ कि अब निश्चय ही हमारा विनाश आ चुका है॥ ३७॥

मैंने आज ही उषाकालमें स्वप्न देखा कि काले वस्त्र धारण किये एक स्त्री घरके आँगनमें रुदन कर रही है। यह विनाशसूचक स्वप्न विचारणीय है॥ ३८॥

विकृताः पक्षिणो रात्रौ रोरुवन्ति गृहे गृहे।
उत्पाता विविधा राजन् प्रभवन्ति गृहे गृहे॥ ३९

तेन जानाम्यहं नूनं कारणं किञ्चिदेव हि।
यत्त्वां प्रार्थयते बाला युद्धाय कृतनिश्चया॥ ४०

नैषास्ति मानुषी नो वा गान्धर्वी न तथासुरी।
देवैः कृतेयं ज्ञातव्या माया मोहकरी विभो॥ ४१

कातरत्वं न कर्तव्यं ममैतन्मतमित्यलम्।
कर्तव्यं सर्वथा युद्धं यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ ४२

को वेद दैवकर्तव्यं शुभं वाप्यशुभं तथा।
अवलम्ब्य धिया धैर्यं स्थातव्यं वै विचक्षणैः॥ ४३

जीवितं मरणं पुंसां दैवाधीनं नराधिप।
कोऽपि नैवान्यथा कर्तुं समर्थो भुवनत्रये॥ ४४

महिष उवाच

गच्छ ताम्र महाभाग युद्धाय कृतनिश्चयः।
तामानय वरारोहां जित्वा धर्मेण मानिनीम्॥ ४५

न भवेद्वशगा नारी संग्रामे यदि सा तव।
हन्तव्या नान्यथा कामं माननीया प्रयत्नतः॥ ४६

वीरस्त्वमसि सर्वज्ञ कामशास्त्रविशारदः।
येन केनाप्युपायेन जेतव्या वरवर्णिनी॥ ४७

त्वरन्वीर महाबाहो सैन्येन महता वृतः।
तत्र गत्वा त्वया ज्ञेया विचार्य च पुनः पुनः॥ ४८

किमर्थमागता चेयं ज्ञातव्यं तद्धि कारणम्।
कामाद्वा वैरभावाच्च माया कस्येयमित्युत॥ ४९

आदौ तन्निश्चयं कृत्वा ज्ञातव्यं तच्चिकीर्षितम्।
पश्चाद्युद्धं प्रकर्तव्यं यथायोग्यं यथाबलम्॥ ५०

हे राजन्! आजकल घर-घरमें भयानक पक्षी रोया करते हैं और घर-घरमें विविध प्रकारके उपद्रव होते रहते हैं। इससे मैं तो यह समझता हूँ कि इसमें निश्चितरूपसे कुछ और ही कारण है, तभी तो युद्धके लिये कृतसंकल्प यह स्त्री आपको ललकार रही है॥ ३९-४०॥

हे राजन्! यह न तो मानुषी, न गान्धर्वी और न आसुरी ही है; अपितु इसे देवताओंकी रची हुई मोहकरी माया समझना चाहिये॥ ४१॥

अतः मेरा यह दृढ़ मत है कि इस समय कायरता नहीं प्रदर्शित करनी चाहिये, अपितु हर तरहसे युद्ध करना चाहिये; जो होना होगा वह होगा। भविष्यमें विधाताके द्वारा किये जानेवाले शुभ या अशुभके बारेमें कौन जानता है? अतः विद्वान् पुरुषोंको चाहिये कि बुद्धिपूर्वक धैर्य धारण करके समयकी प्रतीक्षा करें॥ ४२-४३॥

हे नरेश! प्राणियोंका जन्म तथा मरण दैवके अधीन है। तीनों लोकोंमें कोई भी व्यक्ति इसके विपरीत कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४४॥

महिष बोला—हे महाभाग! हे ताम्र! युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके तुम जाओ और धर्मपूर्वक उस मानिनी स्त्रीको जीतकर यहाँ ले आओ॥ ४५॥

यदि संग्राममें वह स्त्री तुम्हारे अधीन न हो सके, तब तुम उसे मार डालना; नहीं तो जहाँतक सम्भव हो, प्रयत्नपूर्वक उसका सम्मान करना॥ ४६॥

हे सर्वज्ञ! तुम पराक्रमी तथा कामशास्त्रके पूर्ण विद्वान् हो, अतः किसी भी युक्तिसे उस सुन्दरीपर विजय प्राप्त करना॥ ४७॥

हे वीर! हे महाबाहो! विशाल सेनाके साथ तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और वहाँ पहुँचकर बार-बार चिन्तन-मनन करके इसका पता लगाओ कि यह किसलिये आयी हुई है? तुम यह भी ज्ञात करना कि वह कामभाव अथवा वैरभाव—किस भावसे आयी है और वह किसकी माया है?॥ ४८-४९॥

आरम्भमें इन बातोंकी जानकारी कर लेनेपर तुम यह पता करना कि वह क्या करना चाहती है? तत्पश्चात् उसकी सबलता तथा निर्बलताको भलीभाँति समझकर ही उसके साथ तुम युद्ध करना॥ ५०॥

कातरत्वं न कर्तव्यं निर्दयत्वं तथा न च।
यादृशं हि मनस्तस्याः कर्तव्यं तादृशं त्वया॥ ५१

व्यास उवाच

इति तद्भाषितं श्रुत्वा ताम्रः कालवशं गतः।
निर्गतः सैन्यसंयुक्तः प्रणम्य महिषं नृपम्॥ ५२

गच्छन्मार्गे दुरात्मासौ शकुनान्वीक्ष्य दारुणान्।
विस्मयञ्च भयं प्राप यममार्गप्रदर्शकान्॥ ५३

स गत्वा तां समालोक्य देवीं सिंहोपरिस्थिताम्।
स्तूयमानां सुरैः सर्वैः सर्वायुधविभूषिताम्॥ ५४

तामुवाच विनीतः सन् वाक्यं मधुरया गिरा।
सामभावं समाश्रित्य विनयावनतः स्थितः॥ ५५

देवि दैत्येश्वरः शृङ्गी त्वद्रूपगुणमोहितः।
स्पृहां करोति महिषस्त्वत्पाणिग्रहणाय च॥ ५६

भावं कुरु विशालाक्षि तस्मिन्नमरदुर्जये।
पतिं तं प्राप्य मृद्वङ्गि नन्दने विहराद्भुते॥ ५७

सर्वाङ्गसुन्दरं देहं प्राप्य सर्वसुखास्पदम्।
सुखं सर्वात्मना ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः॥ ५८

करभोरु किमर्थं ते गृहीतान्यायुधान्यलम्।
पुष्पकन्दुकयोग्यास्ते कराः कमलकोमलाः॥ ५९

भ्रूचापे विद्यमानेऽपि धनुषा किं प्रयोजनम्।
कटाक्षा विशिखाः सन्ति किं बाणैर्निष्प्रयोजनैः॥ ६०

संसारे दुःखदं युद्धं न कर्तव्यं विजानता।
लोभासक्ताः प्रकुर्वन्ति संग्रामञ्च परस्परम्॥ ६१

तुम उसके समक्ष न तो कायरता प्रदर्शित करना और न बिलकुल निर्दयताका ही व्यवहार करना। उसकी जैसी मनोदशा देखना, उसीके अनुसार उससे बर्ताव करना॥ ५१॥

व्यासजी बोले—महिषासुरकी यह बात सुनकर कालके वशीभूत वह ताम्र राजा महिषको प्रणाम करके सेनाके साथ चल पड़ा। चलते समय मार्गमें यमका द्वार दिखलानेवाले अत्यन्त भयानक अपशकुनोंको देख-देखकर वह बहुत विस्मित तथा भयभीत होता था॥ ५२-५३॥

देवीके समीप पहुँचकर उसने देखा कि वे सिंहपर सवार हैं, वे विविध प्रकारके आयुधोंसे विभूषित हैं तथा सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं। तदनन्तर उस ताम्रने विनम्र भावसे खड़े होकर सामनीतिका आश्रय लेकर मधुर वाणीमें शान्तिपूर्वक देवीसे यह वचन कहा—हे देवि! दैत्योंके अधिपति तथा विशाल सींगोंवाले राजा महिष आपके रूप तथा गुणपर मोहित होकर आपसे विवाह करनेकी अभिलाषा रखते हैं॥ ५४—५६॥

विशाल नयनों तथा सुकुमार अंगोंवाली हे सुन्दरि! देवताओंके लिये भी अजेय उन महिषसे आप प्रेम कीजिये और उन्हें पतिरूपमें प्राप्त करके अद्भुत नन्दनवनमें विहार कीजिये॥ ५७॥

सभी प्रकारके सुखोंके निधानस्वरूप इस सर्वांगसुन्दर शरीरको प्राप्त करके हर तरह सुख भोगना चाहिये और दुःखका तिरस्कार करना चाहिये, यही बात सर्वमान्य है॥ ५८॥

हे करभोरु! आपने अपने हाथोंमें ये आयुध किसलिये धारण कर रखे हैं? कमलके समान कोमल आपके ये हाथ तो पुष्पोंके गेंद धारण करनेयोग्य हैं॥ ५९॥

भौंहरूपी धनुषके रहते आपको यह धनुष धारण करनेसे क्या प्रयोजन है और जब आपके पास ये कटाक्षरूपी बाण हैं तो फिर व्यर्थ बाणोंको धारण करनेसे क्या लाभ?॥ ६०॥

इस संसारमें युद्ध दुःखदायी होता है, अतः ज्ञानीजनको युद्ध नहीं करना चाहिये। राज्य तथा धनके लोलुप लोग ही परस्पर युद्ध करते हैं॥ ६१॥

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः।
भेदनं निजगात्राणां कस्य तज्जायते मुदे॥ ६२

तस्मात्त्वमपि तन्वङ्गि प्रसादं कर्तुमर्हसि।
भर्तारं भज मे नाथं देवदानवपूजितम्॥ ६३

स तेऽत्र वाञ्छितं सर्वं करिष्यति मनोरथम्।
त्वं पट्टमहिषी राज्ञः सर्वथा नात्र संशयः॥ ६४

वचनं कुरु मे देवि प्राप्स्यसे सुखमुत्तमम्।
संग्रामे जयसन्देहः कष्टं प्राप्य न संशयः॥ ६५

जानासि राजनीतिं त्वं यथावद्वरवर्णिनि।
भुंक्ष्व राज्यसुखं पूर्णं वर्षाणामयुतायुतम्॥ ६६

पुत्रस्ते भविता कान्तः सोऽपि राजा भविष्यति।
यौवने क्रीडयित्वान्ते वार्धक्ये सुखमाप्स्यसि॥ ६७

पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या? अपने अंगोंका छिद जाना भला किसकी प्रसन्नताका कारण बन सकता है? अतएव हे तन्वंगि! आप कृपा करें और देवताओं तथा दानवोंके द्वारा पूजित मेरे स्वामी महिषको पतिके रूपमें स्वीकार कर लें॥ ६२-६३॥

वे आपके सभी वांछित मनोरथ पूर्ण कर देंगे और उन्हें पतिरूपमें पाकर आप सदाके लिये उनकी पटरानी बन जायँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ६४॥

हे देवि! आप मेरी बात मान लें, इससे आपको उत्तम सुख मिलेगा। कष्ट पाकर भी संग्राममें विजयका सन्देह बना रहता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६५॥

हे सुन्दरि! आप राजनीति भलीभाँति जानती हैं, अतः हजारों-हजारों वर्षोंतक राज्यसुखका भोग करें॥ ६६॥

आपको तेजस्वी पुत्र प्राप्त होगा; वह भी राजा बनेगा। इस प्रकार आप युवावस्थामें क्रीड़ासुख प्राप्त करके वृद्धावस्थामें आनन्द प्राप्त करेंगी॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे ताम्रकृतं देवीं प्रति विस्रंसनवचनवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

देवीके अट्टहाससे भयभीत होकर ताम्रका महिषासुरके पास भाग आना, महिषासुरका अपने मन्त्रियोंके साथ पुनः विचार-विमर्श तथा दुर्धर, दुर्मुख और बाष्कलकी गर्वोक्ति

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य ताम्रस्य जगदम्बिका।
मेघगम्भीरया वाचा हसन्ती तमुवाच ह॥ १

देव्युवाच

गच्छ ताम्र पतिं ब्रूहि मुमूर्षुं मन्दचेतसम्।
महिषं चातिकामार्तं मूढं ज्ञानविवर्जितम्॥ २

यथा ते महिषी माता प्रौढा यवसभक्षिणी।
नाहं तथा शृङ्गवती लम्बपुच्छा महोदरी॥ ३

न कामयेऽहं देवेशं नैव विष्णुं न शङ्करम्।
धनदं वरुणं नैव ब्रह्माणं न च पावकम्॥ ४

व्यासजी बोले—उस ताम्रकी वह बात सुनकर भगवती जगदम्बिका मेघके समान गम्भीर वाणीमें उससे हँसते हुए कहने लगीं॥ १॥

देवी बोलीं—हे ताम्र! तुम अपने स्वामी महिषके पास जाओ और मरनेको उद्यत, मन्दबुद्धि, अति कामातुर तथा ज्ञानशून्य उस मूर्खसे कहो कि जिस प्रकार तुम्हारी माता महिषी घास खानेवाली, प्रौढा, विशाल सींगोंवाली, लम्बी पूँछवाली तथा महान् उदरवाली है; वैसी मैं नहीं हूँ॥ २-३॥

मैं न देवराज इन्द्रको, न विष्णुको, न शिवको, न कुबेरको, न वरुणको, न ब्रह्माको और न तो

एतान्देवगणान्हित्वा पशुं केन गुणेन वै।
वृणोम्यहं वृथा लोके गर्हणा मे भवेदिति॥ ५

नाहं पतिंवरा नारी वर्तते मे पतिः प्रभुः।
सर्वकर्ता सर्वसाक्षी ह्यकर्ता निःस्पृहः स्थिरः॥ ६

निर्गुणो निर्ममोऽनन्तो निरालम्बो निराश्रयः।
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी पूर्णः पूर्णाशयः शिवः॥ ७

सर्वावासक्षमः शान्तः सर्वदृक्सर्वभावनः।
तं त्यक्त्वा महिषं मन्दं कथं सेवितुमुत्सहे॥ ८

प्रबुध्य युध्यतां कामं करोमि यमवाहनम्।
अथवा मनुजानां वै करिष्ये जलवाहकम्॥ ९

जीवितेच्छास्ति चेत्पाप गच्छ पातालमाशु वै।
समस्तैर्दानवैर्युक्तस्त्वन्यथा हन्मि सङ्गरे॥ १०

कामं सदृशयोर्योगः संसारे सुखदो भवेत्।
अन्यथा दुःखदो भूयादज्ञानाद्यदि कल्पितः॥ ११

मूर्खस्त्वमसि यद् ब्रूषे पतिं मे भज भामिनि।
क्वाहं क्व महिषः शृङ्गी सम्बन्धः कीदृशो द्वयोः॥ १२

गच्छ युध्यस्व वा कामं हनिष्येऽहं सबान्धवम्।
यज्ञभागं देवलोकं नोचेत्त्यक्त्वा सुखी भव॥ १३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा तदा देवी जगर्ज भृशमद्भुतम्।
कल्पान्तसदृशं नादं चक्रे दैत्यभयावहम्॥ १४

चकम्पे वसुधा चेलुस्तेन शब्देन भूधराः।
गर्भाश्च दैत्यपत्नीनां सस्रंसुर्गर्जितस्वनात्॥ १५

अग्निदेवको ही चाहती हूँ। जब मैंने इन देवताओंकी उपेक्षा कर दी, तब भला मैं एक पशुका उसके किस गुणसे प्रसन्न होकर वरण करूँगी; इससे तो संसारमें मेरी निन्दा ही होगी!॥ ४-५॥

मैं पतिका वरण करनेवाली साधारण स्त्री नहीं हूँ। मेरे पति तो साक्षात् प्रभु हैं। वे सब कुछ करनेवाले, सबके साक्षी, कुछ भी न करनेवाले, इच्छारहित, सदा रहनेवाले, निर्गुण, मोहरहित, अनन्त, निरालम्ब, आश्रयरहित, सर्वज्ञ, सर्वव्यापी, साक्षी, पूर्ण, पूर्ण आशयवाले, कल्याणकारी, सबको आश्रय देनेमें समर्थ, शान्त, सबको देखनेवाले तथा सबकी भावनाओंको जाननेवाले हैं। उन प्रभुको छोड़कर मैं मूर्ख महिषको अपना पति क्यों बनाना चाहूँगी?॥ ६—८॥

[उससे कह देना—] अब तुम उठकर युद्ध करो। मैं तुम्हें या तो यमका वाहन बना दूँगी अथवा मनुष्योंके लिये पानी ढोनेवाला महिष बना दूँगी॥ ९॥

अरे पापी! यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो शीघ्र ही समस्त दानवोंको साथ लेकर पाताललोक चले जाओ, अन्यथा मैं युद्धमें मार डालूँगी॥ १०॥

इस संसारमें समान कुल तथा आचारवालोंका परस्पर सम्बन्ध सुखदायक होता है, इसके विपरीत बिना सोचे-समझे यदि सम्बन्ध हो जाता है, तो वह बड़ा दुःखदायी होता है॥ ११॥

[अरे महिष!] तुम मूर्ख हो जो यह कहते हो कि 'हे भामिनि! मुझे पतिरूपमें स्वीकार कर लो।' कहाँ मैं और कहाँ तुम सींग धारण करनेवाले महिष! हम दोनोंका यह कैसा सम्बन्ध! अतः अब तुम [पाताललोक] चले जाओ अथवा मुझसे युद्ध करो, मैं तुम्हें बन्धु-बान्धवोंसहित निश्चय ही मार डालूँगी, नहीं तो देवताओंका यज्ञभाग दे दो और देवलोक छोड़कर सुखी हो जाओ॥ १२-१३॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर देवीने बड़े जोरसे अद्भुत गर्जन किया। वह गर्जन प्रलयकालीन भीषण ध्वनिके समान तथा दैत्योंको भयभीत कर देनेवाला था। उस नादसे पृथ्वी काँप उठी और पर्वत डगमगाने लगे तथा दैत्योंकी पत्नियोंके गर्भ गिर गये॥ १४-१५॥

ताम्रः श्रुत्वा च तं शब्दं भयत्रस्तमनास्तदा।
पलायनं ततः कृत्वा जगाम महिषान्तिकम्॥ १६

नगरे तस्य ये दैत्यास्तेऽपि चिन्तामवाप्नुवन्।
बधिरीकृतकर्णाश्च पलायनपरा नृप॥ १७

तदा क्रोधेन सिंहोऽपि ननाद भृशमुत्सटः।
तेन नादेन दैतेया भयं जग्मुरपि स्फुटम्॥ १८

ताम्रं समागतं दृष्ट्वा हयारिरपि मोहितः।
चिन्तयामास सचिवैः किं कर्तव्यमतः परम्॥ १९

दुर्गग्रहो वा कर्तव्यो युद्धं निर्गत्य वा पुनः।
पलायने कृते श्रेयो भवेद्वा दानवोत्तमाः॥ २०

बुद्धिमन्तो दुराधर्षाः सर्वशास्त्रविशारदाः।
मन्त्रः खलु प्रकर्तव्यः सुगुप्तः कार्यसिद्धये॥ २१

मन्त्रमूलं स्मृतं राज्यं यदि स स्यात्सुरक्षितः।
मन्त्रिभिश्च सदाचारैर्विधेयः सर्वथा बुधैः॥ २२

मन्त्रभेदे विनाशः स्याद्राज्यस्य भूपतेस्तथा।
तस्माद्भेदभयाद् गुप्तः कर्तव्यो भूतिमिच्छता॥ २३

तदत्र मन्त्रिभिर्वाच्यं वचनं हेतुमद्धितम्।
कालदेशानुसारेण विचिन्त्य नीतिनिर्णयम्॥ २४

या योषात्र समायाता प्रबला देवनिर्मिता।
एकाकिनी निरालम्बा कारणं तद्विचिन्त्यताम्॥ २५

युद्धं प्रार्थयते बाला किमाश्चर्यमतः परम्।
श्रेयोऽत्र विपरीतं वा को वेत्ति भुवनत्रये॥ २६

उस शब्दको सुनकर ताम्रके मनमें भय व्याप्त हो गया और तब वह वहाँसे भागकर महिषासुरके पास जा पहुँचा॥ १६॥

हे राजन्! उसके नगरमें जो भी दैत्य थे, वे सब बड़े चिन्तित हुए। वे उस ध्वनिके प्रभावसे बधिर हो गये और वहाँसे भागने लगे॥ १७॥

उसी समय देवीका सिंह भी क्रोधपूर्वक अपने अयालों (गर्दनके बालों)-को फैलाकर बड़े जोरसे दहाड़ा। उस गर्जनसे सभी दैत्य बहुत डर गये॥ १८॥

ताम्रको वापस आया हुआ देखकर महिषासुरको बहुत विस्मय हुआ। वह उसी समय मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगा कि अब आगे क्या किया जाय?॥ १९॥

[उसने कहा—] हे श्रेष्ठ दानवो! हमें आत्मरक्षार्थ किलेके भीतर ही रहना चाहिये अथवा बाहर निकलकर युद्ध करना चाहिये अथवा भाग जानेमें ही हमारा कल्याण है?॥ २०॥

आपलोग बुद्धिमान्, अजेय तथा सभी शास्त्रोंके विद्वान् हैं। अतः मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये आपलोग अत्यन्त गुप्त मन्त्रणा करें; क्योंकि मन्त्रणाको ही राज्यका मूल कहा गया है। यदि मन्त्रणा सुरक्षित (गुप्त) रहती है, तभी राज्यकी सुरक्षा सम्भव है। अतएव राजाको चाहिये कि बुद्धिमान् तथा सदाचारी मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २१-२२॥

मन्त्रणाके खुल जानेपर राज्य तथा राजा—इन दोनोंका विनाश हो जाता है। अतः अपने अभ्युदयकी इच्छा करनेवाले राजाको चाहिये कि भेद खुल जानेके भयसे सदा गुप्त मन्त्रणा करे॥ २३॥

अतः इस समय आप मन्त्रिगण नीति-निर्णयपर सम्यक् विचार करके देश-कालके अनुसार मुझे सार्थक तथा हितकर परामर्श प्रदान करें॥ २४॥

देवताओंद्वारा निर्मित जो यह अत्यन्त बलवती स्त्री बिना किसी सहायताके अकेली ही यहाँ आयी हुई है, उसके रहस्यपर आपलोग विचार करें॥ २५॥

वह बाला हमें युद्धके लिये चुनौती दे रही है, इससे बढ़कर आश्चर्य और क्या हो सकता है? इसमें मेरी विजय होगी अथवा पराजय—इसे तीनों लोकोंमें भला कौन जानता है?॥ २६॥

न बहूनां जयोऽप्यस्ति नैकस्य च पराजयः।
दैवाधीनौ सदा ज्ञेयौ युद्धे जयपराजयौ॥ २७

उपायवादिनः प्राहुर्दैवं किं केन वीक्षितम्।
अदृष्टमिति यन्नाम प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २८

तत्सत्त्वेऽपि प्रमाणं किं कातराशावलम्बनम्।
न समर्थजनानां हि दैवं कुत्रापि लक्ष्यते॥ २९

उद्यमो दैवमेतौ हि शूरकातरयोर्मतम्।
विचिन्त्याद्य धिया सर्वं कर्तव्यं कार्यमादरात्॥ ३०

व्यास उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा हेतुगर्भं महायशाः।
बिडालाख्यो महाराजमित्युवाच कृताञ्जलिः॥ ३१

राजन्नेषा विशालाक्षी ज्ञातव्या यत्नतः पुनः।
किमर्थमिह सम्प्राप्ता कुतः कस्य परिग्रहः॥ ३२

मरणं ते परिज्ञाय स्त्रिया सर्वात्मना सुरैः।
प्रेषिता पद्मपत्राक्षी समुत्पाद्य स्वतेजसा॥ ३३

तेऽपि छन्नाः स्थिताः खेऽत्र सर्वे युद्धदिदृक्षवः।
समयेऽस्याः सहायास्ते भविष्यन्ति युयुत्सवः॥ ३४

पुरतः कामिनीं कृत्वा ते वै विष्णुपुरोगमाः।
वधिष्यन्ति च नः सर्वान्सा त्वां युद्धे हनिष्यति॥ ३५

एतच्चिकीर्षितं तेषां मया ज्ञातं नराधिप।
भवितव्यस्य न ज्ञानं वर्तते मम सर्वथा॥ ३६

योद्धव्यं न त्वयाद्येति नाहं वक्तुं क्षमः प्रभो।
प्रमाणं त्वं महाराज कार्येऽत्र देवनिर्मिते॥ ३७

न तो बहुत संख्यावालोंकी ही सदा विजय होती है और न तो अकेला रहते हुए भी किसीकी पराजय ही होती है। युद्धमें जय तथा पराजयको सदा दैवके अधीन जानना चाहिये॥ २७॥

पुरुषार्थवादी लोग कहते हैं कि दैव क्या है, उसे किसने देखा है; इसीलिये तो बुद्धिमान् उसे 'अदृष्ट' कहते हैं। उसके होनेमें क्या प्रमाण है? वह केवल कायरोंको आशा बँधानेका साधन है, सामर्थ्यवान् लोग उसे कहीं नहीं देखते। उद्यम और दैव—ये दोनों ही वीर तथा कायर लोगोंकी मान्यताएँ हैं। अतः बुद्धिपूर्वक सारी बातोंपर विचार करके हमें कर्तव्यका निश्चय करना चाहिये॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—राजा महिषकी यह सारगर्भित बात सुनकर महायशस्वी बिडालाख्यने हाथ जोड़कर अपने महाराज महिषासुरसे यह वचन कहा—हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस स्त्रीके विषयमें सावधानीपूर्वक बार-बार यह पता लगाया जाना चाहिये कि यह यहाँ किसलिये और कहाँसे आयी हुई है तथा यह किसकी पत्नी है?॥ ३१-३२॥

[मैं तो यह समझता हूँ कि] 'स्त्रीके द्वारा ही आपकी मृत्यु होगी'—ऐसा भलीभाँति जानकर सभी देवताओंने अपने तेजसे उस कमलनयनी स्त्रीका निर्माण करके यहाँ भेजा है॥ ३३॥

युद्ध देखनेकी इच्छावाले वे देवता भी आकाशमें छिपकर विद्यमान हैं और अवसर आनेपर युद्धकी इच्छावाले देवता भी उसकी सहायता करेंगे॥ ३४॥

उस स्त्रीको आगे करके वे विष्णु आदि प्रधान देवता युद्धमें हम सबका वध कर देंगे और वह स्त्री भी आपको मार डालेगी॥ ३५॥

हे नरेश! मैंने तो यही समझा है कि उन देवताओंका यही अभीष्ट है, किंतु मुझे भविष्यमें होनेवाले परिणामका बिलकुल ज्ञान नहीं है। हे प्रभो! मैं इस समय यह भी नहीं कह सकता कि आप युद्ध न करें। हे महाराज! देवताओंके द्वारा निर्मित इस कार्यमें कुछ भी निर्णय लेनेमें आप ही प्रमाण हैं॥ ३६-३७॥

तदर्थेऽस्माभिरनिशं मर्तव्यं कार्यगौरवात्।
विहर्तव्यं त्वया सार्धमेष धर्मोऽनुजीविनाम्॥ ३८

विचारोऽत्र महानस्ति यदेका कामिनी नृप।
युद्धं प्रार्थयतेऽस्माभिः ससैन्यैर्बलदर्पितैः॥ ३९

दुर्मुख उवाच

राजन् युद्धे जयो नोऽद्य भविता वेद्म्यहं किल।
पलायनं न कर्तव्यं यशोहानिकरं नृणाम्॥ ४०

इन्द्रादीनां संयुगेऽपि न कृतं यज्जुगुप्सितम्।
एकाकिनीं स्त्रियं प्राप्य को हि कुर्यात्पलायनम्॥ ४१

तस्माद्युद्धं प्रकर्तव्यं मरणं वा रणे जयः।
यद्भावि तद्भवत्येव कात्र चिन्ता विपश्यतः॥ ४२

मरणेऽत्र यशःप्राप्तिर्जीवने च तथा सुखम्।
उभयं मनसा कृत्वा कर्तव्यं युद्धमद्य वै॥ ४३

पलायने यशोहानिर्मरणं चायुषः क्षये।
तस्माच्छोको न कर्तव्यो जीविते मरणे वृथा॥ ४४

व्यास उवाच

दुर्मुखस्य वचः श्रुत्वा बाष्कलो वाक्यमब्रवीत्।
प्रणतः प्राञ्जलिर्भूत्वा राजानं वाक्यकोविदः॥ ४५

बाष्कल उवाच

राजंश्चिन्ता न कर्तव्या कार्येऽस्मिन्कातरप्रिये।
अहमेको हनिष्यामि चण्डीं चञ्चललोचनाम्॥ ४६

उत्साहस्तु प्रकर्तव्यः स्थायीभावो रसस्य च।
भयानको भवेद्वैरी वीरस्य नृपसत्तम॥ ४७

हम अनुयायियोंका तो यही धर्म है कि अवसर आनेपर आपके लिये सदा मरनेको तैयार रहें अथवा आपके साथ आनन्दपूर्वक रहें॥ ३८॥

हे राजन्! अद्भुत बात तो यह है कि बलाभिमानी और सेनासम्पन्न हमलोगोंको एक स्त्री युद्धके लिये चुनौती दे रही है॥ ३९॥

दुर्मुख बोला—हे राजन्! मैं यह पूर्णरूपसे जानता हूँ कि आज युद्धमें विजय निश्चितरूपसे हमलोगोंकी होगी। हमलोगोंको पलायन नहीं करना चाहिये; क्योंकि युद्धसे भाग जाना पुरुषोंकी कीर्तिको नष्ट करनेवाला होता है॥ ४०॥

इन्द्र आदि देवताओंके साथ भी युद्धमें जब हमलोगोंने यह निन्दनीय कार्य नहीं किया था, तब उस अकेली स्त्रीको सामने पाकर उससे डरकर भला कौन पलायन करेगा?॥ ४१॥

अतः अब हमें युद्ध आरम्भ कर देना चाहिये, युद्धमें हमारी मृत्यु हो अथवा विजय। जो होना होगा वह तो होगा ही। यथार्थ ज्ञानवालेको इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता?॥ ४२॥

रणभूमिमें मरनेपर कीर्ति मिलेगी और विजयी होनेपर जीवनमें सुख मिलेगा। इन दोनों ही बातोंको मनमें स्थिर करके हमें आज ही युद्ध छेड़ देना चाहिये॥ ४३॥

युद्धसे पलायन कर जानेसे हमारा यश नष्ट हो जायगा। आयुके समाप्त हो जानेपर मृत्यु होनी तो निश्चित ही है। अतएव जीवन तथा मरणके लिये व्यर्थ चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४४॥

व्यासजी बोले—दुर्मुखका विचार सुनकर बात करनेमें परम प्रवीण बाष्कल हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक राजा महिषासुरसे यह वचन कहने लगा॥ ४५॥

बाष्कल बोला—हे राजन्! कायर लोगोंके लिये प्रिय इस [पलायन] कार्यके विषयमें आपको विचार नहीं करना चाहिये। मैं उस चंचल नेत्रोंवाली चण्डीको अकेला ही मार डालूँगा॥ ४६॥

हमें सर्वदा उत्साहसे सम्पन्न रहना चाहिये; क्योंकि उत्साह ही वीररसका स्थायीभाव है। हे नृपश्रेष्ठ! भयानक रस तो वीररसका वैरी है॥ ४७॥

तस्मात्त्यक्त्वा भयं भूप करिष्ये युद्धमद्भुतम्।
नयिष्यामि नरेन्द्राहं चण्डिकां यमसादनम्॥ ४८

न बिभेमि यमादिन्द्रात्कुबेराद्वरुणादपि।
वायोर्वह्नेस्तथा विष्णोः शङ्कराच्छशिनो रवेः॥ ४९

एकाकिनी तथा नारी किं पुनर्मदगर्विता।
अहं तां निहनिष्यामि विशिखैश्च शिलाशितैः॥ ५०

पश्य बाहुबलं मेऽद्य विहरस्व यथासुखम्।
भवतात्र न गन्तव्यं संग्रामेऽप्यनया समम्॥ ५१

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्रं बाष्कले मदगर्विते।
प्रणम्य नृपतिं तत्र दुर्धरो वाक्यमब्रवीत्॥ ५२

दुर्धर उवाच

महिषाहं विजेष्यामि देवीं देवविनिर्मिताम्।
अष्टादशभुजां रम्यां कारणाच्च समागताम्॥ ५३

राजन् भीषयितुं त्वां वै मायैषा निर्मिता सुरैः।
विभीषिकेयं विज्ञाय त्यज मोहं मनोगतम्॥ ५४

राजनीतिरियं राजन् मन्त्रिकृत्यं तथा शृणु।
सात्त्विका राजसाः केचित्तामसाश्च तथापरे॥ ५५

मन्त्रिणस्त्रिविधा लोके भवन्ति दानवाधिप।
सात्त्विकाः प्रभुकार्याणि साधयन्ति स्वशक्तिभिः॥ ५६

आत्मकृत्यं प्रकुर्वन्ति स्वामिकार्याविरोधतः।
एकचित्ता धर्मपरा मन्त्रशास्त्रविशारदाः॥ ५७

राजसा भिन्नचित्ताश्च स्वकार्यनिरताः सदा।
कदाचित्स्वामिकार्यं ते प्रकुर्वन्ति यदृच्छया॥ ५८

तामसा लोभनिरताः स्वकार्यनिरताः सदा।
प्रभुकार्यं विनाश्यैव स्वकार्यं साधयन्ति ते॥ ५९

अतएव हे राजन्! भयका त्याग करके मैं अद्भुत युद्ध करूँगा। हे नरेन्द्र! मैं उस चण्डिकाको मारकर उसे यमपुरी पहुँचा दूँगा॥ ४८॥

मैं यम, इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, विष्णु, शिव, चन्द्रमा और सूर्यसे भी नहीं डरता, तब उस अकेली तथा मदोन्मत्त स्त्रीसे भला क्यों डरूँगा? पत्थरपर सान धरे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे मैं उस स्त्रीका वध कर दूँगा। आज आप मेरा बाहुबल तो देखिये और इस स्त्रीके साथ युद्ध करनेके लिये आपको संग्राममें जानेकी आवश्यकता नहीं है; आप केवल सुखपूर्वक विहार कीजिये॥ ४९—५१॥

व्यासजी बोले—दैत्यराज महिषसे मदोन्मत्त बाष्कलके ऐसा कहनेपर वहाँ उपस्थित दुर्धर अपने राजा महिषासुरको प्रणाम करके कहने लगा॥ ५२॥

दुर्धर बोला—हे महाराज महिष! रहस्यमय ढंगसे आयी हुई उस देवनिर्मित अठारह भुजाओंवाली तथा मनोहर देवीपर मैं विजय प्राप्त करूँगा॥ ५३॥

हे राजन्! आपको भयभीत करनेके लिये ही देवताओंने इस मायाकी रचना की है। यह एक विभीषिकामात्र है—ऐसा जानकर आप अपने मनकी व्याकुलता दूर कर दीजिये॥ ५४॥

हे राजन्! यह सब तो राजनीतिकी बात हुई, अब आप मन्त्रियोंका कर्तव्य सुनिये। हे दानवेन्द्र! तीन प्रकारके मन्त्री संसारमें होते हैं। उनमें कुछ सात्त्विक, कुछ राजस तथा अन्य तामस होते हैं। सात्त्विक मन्त्री अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करते हैं। वे अपने स्वामीके कार्यमें बिना कोई अवरोध उत्पन्न किये अपना कार्य करते हैं। ऐसे मन्त्री एकाग्रचित्त, धर्मपरायण तथा मन्त्रशास्त्रों (मन्त्रणासे सम्बन्धित शास्त्र)-के विद्वान् होते हैं॥ ५५—५७॥

राजस प्रकृतिके मन्त्री चंचल चित्तवाले होते हैं और वे सदा अपना कार्य साधनेमें लगे रहते हैं। जब कभी उनके मनमें आ जाता है, तब वे अपने स्वामीका भी काम कर देते हैं॥ ५८॥

तामस प्रकृतिके मन्त्री लोभपरायण होते हैं और वे सदैव अपना कार्य सिद्ध करनेमें संलग्न रहते हैं। वे अपने स्वामीका कार्य विनष्ट करके भी अपना

समये ते विभिद्यन्ते परैस्तु परिवञ्चिताः।
स्वच्छिद्रं शत्रुपक्षीयान्निर्दिशन्ति गृहस्थिताः॥ ६०

कार्यभेदकरा नित्यं कोशगुप्तासिवत्सदा।
संग्रामेऽथ समुत्पन्ने भीषयन्ति प्रभुं सदा॥ ६१

विश्वासस्तु न कर्तव्यस्तेषां राजन् कदाचन।
विश्वासे कार्यहानिः स्यान्मन्त्रहानिः सदैव हि॥ ६२

खलाः किं किं न कुर्वन्ति विश्वस्ता लोभतत्पराः।
तामसाः पापनिरता बुद्धिहीनाः शठास्तथा॥ ६३

तस्मात्कार्यं करिष्यामि गत्वाहं रणमस्तके।
चिन्ता त्वया न कर्तव्या सर्वथा नृपसत्तम॥ ६४

गृहीत्वा तां दुराचारामागमिष्यामि सत्वरः।
पश्य मेऽद्य बलं धैर्यं प्रभुकार्यं स्वशक्तितः॥ ६५

कार्य सिद्ध करते हैं। वे समय आनेपर परपक्षके लोगोंसे प्रलोभन पाकर अपने स्वामीका भेद खोल देते हैं और घरमें बैठे-बैठे अपनी कमजोरी शत्रुपक्षके लोगोंको बता देते हैं। ऐसे मन्त्री म्यानमें छिपी तलवारकी भाँति अपने स्वामीके कार्यमें बाधा डालते हैं और संग्रामकी स्थिति उत्पन्न होनेपर सदा उन्हें डराते रहते हैं॥ ५९—६१॥

हे राजन्! उन मन्त्रियोंका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उनका विश्वास करनेपर काम बिगड़ जाता है और गुप्त भेद भी खुल जाता है। लोभी, तमोगुणी, पापी, बुद्धिहीन, शठ तथा खल मन्त्रियोंका विश्वास कर लेनेपर वे क्या-क्या अनर्थ नहीं कर डालते?॥ ६२-६३॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! मैं स्वयं युद्धभूमिमें जाकर आपका कार्य सम्पन्न करूँगा। आप किसी भी तरहकी चिन्ता न करें। मैं उस दुराचारिणी स्त्रीको पकड़कर आपके पास शीघ्र ले आऊँगा। आप मेरा बल तथा धैर्य देखें। मैं अपनी पूरी शक्तिसे अपने स्वामीका कार्य सिद्ध करूँगा॥ ६४-६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीपराजयकरणाय दुर्धरप्रबोधवचनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

बाष्कल और दुर्मुखका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तौ महाबाहू दैत्यौ बाष्कलदुर्मुखौ।
जग्मतुर्मददिग्धाङ्गौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ॥ १

तौ गत्वा समरे देवीमूचतुर्वचनं तदा।
दानवौ च मदोन्मत्तौ मेघगम्भीरया गिरा॥ २

देवि देवा जिता येन महिषेण महात्मना।
वरय त्वं वरारोहे सर्वदैत्याधिपं नृपम्॥ ३

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर अभिमानसे चूर अंगोंवाले तथा सभी शस्त्रास्त्रोंके विशारद वे दोनों महाबाहु दैत्य बाष्कल तथा दुर्मुख समरांगणकी ओर चल पड़े॥ १॥

इसके बाद वे दोनों मदोन्मत्त दानव समरभूमिमें पहुँचकर मेघ-गर्जनके समान गम्भीर वाणीमें देवीसे कहने लगे॥ २॥

हे देवि! हे सुन्दरि! जिन महान् महिषासुरने सभी देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली है; सभी दैत्योंके अधिष्ठाता उन नरेश महिषासुरका आप वरण कर लें॥ ३॥

स कृत्वा मानुषं रूपं सर्वलक्षणसंयुतम्।
भूषितं भूषणैर्दिव्यैस्त्वामेष्यति रहः किल॥ ४

त्रैलोक्यविभवं कामं त्वमेष्यसि शुचिस्मिते।
महिषे परमं भावं कुरु कान्ते मनोगतम्॥ ५

कृत्वा पतिं महावीरं संसारसुखमद्भुतम्।
त्वं प्राप्स्यसि पिकालापे योषितां खलु वाञ्छितम्॥ ६

देव्युवाच

जाल्म त्वं किं विजानासि नारीयं काममोहिता।
मन्दबुद्धिबलात्यर्थं भजेयं महिषं शठम्॥ ७

कुलशीलगुणैस्तुल्यं तं भजन्ति कुलस्त्रियः।
अधिकं रूपचातुर्यबुद्धिशीलक्षमादिभिः॥ ८

का नु कामातुरा नारी भजेच्च पशुरूपिणम्।
पशूनामधमं नूनं महिषं देवरूपिणी॥ ९

गच्छतं महिषं तूर्णं भूपं बाष्कलदुर्मुखौ।
वदतं मद्वचो दैत्यं गजतुल्यं विषाणिनम्॥ १०

पातालं गच्छ वाभ्येत्य संग्रामं कुरु वा मया।
रणे जाते सहस्राक्षो निर्भयः स्यादिति ध्रुवम्॥ ११

हत्वाहं त्वां गमिष्यामि नान्यथा गमनं मम।
इत्थं ज्ञात्वा सुदुर्बुद्धे यथेच्छसि तथा कुरु॥ १२

मामनिर्जित्य भूभागे न स्थानं ते कदाचन।
भविष्यति चतुष्पाद दिवि वा गिरिकन्दरे॥ १३

व्यास उवाच

इत्युक्तौ तौ तया दैत्यौ कोपाकुलितलोचनौ।
धनुर्बाणधरौ वीरौ युद्धकामौ बभूवतुः॥ १४

वे सभी लक्षणोंसे सम्पन्न मनुष्य-रूप धारण करके तथा दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत होकर एकान्तमें आपसे मिलनेके लिये आयेंगे॥ ४॥

हे सुन्दर मुसकानवाली देवि! [उन्हें पतिके रूपमें स्वीकार कर लेनेपर] आपको तीनों लोकोंका वैभव निश्चय ही प्राप्त हो जायगा। अतः हे कान्ते! उन महिषासुरके प्रति आप अपने मनमें परम प्रेमभाव रखिये॥ ५॥

हे कोकिलभाषिणि! महान् पराक्रमी महिषासुरको अपना पति बनाकर आप स्त्रियोंके लिये अभीष्ट अद्भुत सांसारिक सुख प्राप्त करेंगी॥ ६॥

देवी बोलीं—अरे दुष्ट! क्या तुम यह समझ रहे हो कि यह कोई काममोहित, बुद्धिहीन तथा बलरहित नारी है? मैं उस मूर्ख महिषासुरकी सेवा कैसे कर सकती हूँ?॥ ७॥

कुलीन स्त्रियाँ कुल, चरित्र तथा गुणमें समानता रखनेवाले एवं रूप, चतुरता, बुद्धि, व्यवहार, क्षमा आदिसे विशेषरूपसे सम्पन्न पुरुषको ही स्वीकार करती हैं॥ ८॥

ऐसी कौन देवरूपिणी नारी होगी, जो कामातुर होकर पशुरूपधारी तथा पशुओंमें भी अधम महिषको अपना पति बनाना चाहेगी?॥ ९॥

हे बाष्कल और दुर्मुख! तुम लोग तत्काल अपने राजा महिषासुरके पास जाओ और हाथीके समान विशाल शरीरवाले तथा शृङ्गधारी उस दानवसे मेरा सन्देश कह दो—'तुम पाताललोक चले जाओ अथवा यहाँ आकर मेरे साथ युद्ध करो। संग्राम होनेपर ही इन्द्र निर्भय हो सकते हैं—यह निश्चित है। मैं तुम्हारा वध करके ही जाऊँगी, बिना तुम्हें मारे मैं नहीं जा सकती। हे महामूर्ख! यह समझकर अब तुम जो चाहते हो वैसा करो। हे चतुष्पाद! बिना मुझको पराजित किये पृथ्वीके किसी भी भागमें, अन्तरिक्ष या पर्वतकी गुफामें कहीं भी अब तुम्हें शरण नहीं मिलेगी'॥ १०—१३॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर क्रोधसे तमतमाये नेत्रोंवाले वे दोनों दैत्य धनुष-बाण लेकर युद्ध करनेके लिये तैयार हो गये॥ १४॥

कृत्वा सुविपुलं नादं देवी सा निर्भया स्थिता।
उभौ च चक्रतुस्तीव्रां बाणवृष्टिं कुरूद्वह॥ १५

भगवत्यपि बाणौघान्मुमोच दानवौ प्रति।
कृत्वातिमधुरं नादं देवकार्यार्थसिद्धये॥ १६

तयोस्तु बाष्कलस्तूर्णं सम्मुखोऽभूद् रणाङ्गणे।
दुर्मुखः प्रेक्षकस्तत्र देवीमभिमुखः स्थितः॥ १७

तयोर्युद्धमभूद् घोरं देवीबाष्कलयोस्तदा।
बाणासिपरिघाघातैर्भयदं मन्दचेतसाम्॥ १८

ततः क्रुद्धा जगन्माता दृष्ट्वा तं युद्धदुर्मदम्।
जघान पञ्चभिर्बाणैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ १९

दानवोऽपि शरान्देव्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः।
सप्तभिस्ताडयामास देवीं सिंहोपरिस्थिताम्॥ २०

सापि तं दशभिस्तीक्ष्णैः सुपीतैः सायकैः खलम्।
जघान तच्छरांश्छित्त्वा जहास च मुहुर्मुहुः॥ २१

अर्धचन्द्रेण बाणेन चिच्छेद च शरासनम्।
बाष्कलोऽपि गदां गृह्य देवीं हन्तुमुपाययौ॥ २२

आगच्छन्तं गदापाणिं दानवं मदगर्वितम्।
चण्डिका स्वगदापातैः पातयामास भूतले॥ २३

बाष्कलः पतितो भूमौ मुहूर्तादुत्थितः पुनः।
चिक्षेप च गदां सोऽपि चण्डिकां चण्डविक्रमः॥ २४

तमागच्छन्तमालोक्य देवी शूलेन वक्षसि।
जघान बाष्कलं क्रुद्धा पपात च ममार सः॥ २५

वे भगवती जगदम्बा भी गम्भीर गर्जना करके निर्भीक भावसे विराजमान थीं। हे कुरुनन्दन! वे दोनों दैत्य घनघोर बाण-वृष्टि करने लगे॥ १५॥

भगवती जगदम्बा भी देवताओंकी कार्य-सिद्धिके निमित्त अत्यन्त मधुर नाद करती हुई उन दोनों दानवोंपर बाण-समूह बरसाने लगीं॥ १६॥

उन दोनोंमेंसे बाष्कल शीघ्रतापूर्वक समरभूमिमें देवीके सामने आ गया। उस समय दुर्मुख केवल दर्शक बनकर देवीकी ओर मुख करके खड़ा रहा॥ १७॥

अब भगवती तथा बाष्कलके बीच बाणों, तलवार तथा परिघके प्रहारसे भीषण युद्ध होने लगा, जो उत्साहहीन चित्तवाले लोगोंके लिये भयदायक था॥ १८॥

तत्पश्चात् युद्धके लिये उन्मत्त उस बाष्कलको देखकर जगदम्बिका कुपित हो गयीं और उन्होंने पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीखे बनाये गये तथा कानोंतक खींचे गये पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ १९॥

उस दानवने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंसे देवीके बाणोंको काट दिया और पुनः सिंहपर विराजमान भगवतीपर सात बाणोंसे प्रहार किया॥ २०॥

देवी भगवतीने उसके बाणोंको काटकर पानी चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए दस बाणोंसे उस दुष्टपर प्रहार किया और वे बार-बार जोर-जोरसे हँसने लगीं॥ २१॥

जगदम्बाने अपने अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका धनुष काट डाला। तब बाष्कल भी गदा लेकर देवीको मारनेके लिये उनकी ओर दौड़ा॥ २२॥

अभिमानमें चूर उस दानवको हाथमें गदा लिये आता हुआ देखकर देवी चण्डिकाने अपनी गदाके प्रहारसे उसे धराशायी कर दिया॥ २३॥

बाष्कल मुहूर्तभर पृथ्वीपर पड़ा रहा, इसके बाद वह फिर उठ खड़ा हुआ और प्रचण्ड, पराक्रमी उस वीरने भी भगवतीपर गदा चला दी॥ २४॥

उस दैत्यको सामने आते देखकर भगवतीने कुपित होकर बाष्कलके वक्षःस्थलपर त्रिशूलसे प्रहार किया, जिससे वह गिर पड़ा और मर गया॥ २५॥

पतिते बाष्कले सैन्यं भग्नं तस्य दुरात्मनः।
जयेति च मुदा देवाश्चुक्रुशुर्गगने स्थिताः॥ २६

तस्मिंश्च निहते दैत्ये दुर्मुखोऽतिबलान्वितः।
आजगाम रणे देवीं क्रोधसंरक्तलोचनः॥ २७

तिष्ठ तिष्ठाबले सोऽपि भाषमाणः पुनः पुनः।
धनुर्बाणधरः श्रीमान्रथस्थः कवचावृतः॥ २८

तमागच्छन्तमालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
कोपयन्ती दानवं तं ज्याघोषञ्च चकार ह॥ २९

सोऽपि बाणान्मुमोचाशु तीक्ष्णानाशीविषोपमान्।
स्वबाणैस्तान्महामाया चिच्छेद च ननाद च॥ ३०

तयोः परस्परं युद्धं बभूव तुमुलं नृप।
बाणशक्तिगदाघातैर्मुसलैस्तोमरैस्तथा॥ ३१

रणभूमौ तदा जाता रुधिरौघवहा नदी।
पतितानि तदा तीरे शिरांसि प्रबभुस्तदा॥ ३२

यथा सन्तरणार्थाय यमकिङ्करनायकैः।
तुम्बीफलानि नीतानि नवशिक्षापरैर्मुदा॥ ३३

रणभूमिस्तदा घोरा बभूवातीव दुर्गमा।
शरीरैः पतितैर्भूमौ खाद्यमानैर्वृकादिभिः॥ ३४

गोमायुसारमेयाश्च काकाः कङ्का अयोमुखाः।
गृध्राः श्येनाश्च खादन्ति शरीराणि दुरात्मनाम्॥ ३५

ववौ वायुश्च दुर्गन्धो मृतानां देहसङ्गतः।
अभूत्किलकिलाशब्दः खगानां पलभक्षिणाम्॥ ३६

तदा चुकोप दुष्टात्मा दुर्मुखः कालमोहितः।
देवीमुवाच गर्वेण कृत्वा चोर्ध्वकरं शुभम्॥ ३७

बाष्कलके गिरते ही उस दुरात्माकी सेना भाग गयी और आकाशमण्डलमें विद्यमान देवता प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जय-जयकार करने लगे॥ २६॥

उस दैत्यके मार दिये जानेपर महाबली दुर्मुख क्रोधसे आँखें लाल किये रणभूमिमें देवीके समक्ष आया॥ २७॥

उस समय वह वैभवशाली दैत्य 'अरी अबले! ठहरो, ठहरो'—ऐसा बार-बार कहते हुए धनुष-बाण धारण करके कवच पहने हुए रथपर सवार था॥ २८॥

उस दानवको अपनी ओर आते देखकर देवीने शंखध्वनि की और उसे कुपित करती हुई वे अपने धनुषकी टंकार करने लगीं॥ २९॥

दुर्मुख भी बड़ी तेजीसे सर्पके समान विषैले तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगा। तब महामायाने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट डाला और वे गर्जन करने लगीं॥ ३०॥

हे राजन्! बाण, शक्ति, गदा, मूसल और तोमर आदिके प्रहारसे उन दोनोंमें परस्पर भयंकर युद्ध होने लगा॥ ३१॥

उस समय रणभूमिमें रुधिरकी नदी बह चली। उसके तटपर गिरे हुए मस्तक इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे, मानो वैतरणी पार करनेके लिये तैरना सीखनेवाले यमदूतोंके द्वारा प्रसन्नतापूर्वक तुम्बीफल लाकर रख दिये गये हों॥ ३२-३३॥

भूमिपर कटकर गिरे शवों तथा उन्हें खानेवाले भेड़िये आदि जन्तुओंसे वह रणभूमि अत्यन्त भयंकर तथा दुर्गम हो गयी थी॥ ३४॥

सियार, कुत्ते, कौए, कंक, अयोमुख नामक पक्षी, गिद्ध और बाज उन दुष्ट दानवोंके शरीरको [नोच-नोचकर] खा रहे थे॥ ३५॥

मृतकोंके शरीरके संसर्गसे दुर्गन्धित हवा चल रही थी और मांसाहारी पक्षियोंकी किलकिला ध्वनि हो रही थी॥ ३६॥

तब कालसे मोहित वह दुरात्मा दुर्मुख अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा और गर्वके साथ अपनी सुन्दर भुजा उठाकर देवीसे कहने लगा—॥ ३७॥

गच्छ चण्डि हनिष्यामि त्वामद्यैव सुबालिशे।
दैत्यं वा भज वामोरु महिषं मदगर्वितम्॥ ३८

देव्युवाच

आसन्नमरणः कामं प्रलपस्यद्य मोहितः।
अद्यैव त्वां हनिष्यामि यथायं बाष्कलो हतः॥ ३९

गच्छ वा तिष्ठ वा मन्द मरणं यदि रोचते।
हत्वा त्वां वै वधिष्यामि बालिशं महिषीसुतम्॥ ४०

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दुर्मुखो मर्तुमुद्यतः।
मुमोच बाणवृष्टिं तु चण्डिकां प्रति दारुणाम्॥ ४१

सापि तां तरसा छित्त्वा बाणवृष्टिं शितैः शरैः।
जघान दानवं क्रुद्धा वृत्रं वज्रधरो यथा॥ ४२

तयोः परस्परं युद्धं सञ्जातं चातिकर्कशम्।
भयदं कातराणाञ्च शूराणां बलवर्धनम्॥ ४३

देवी चिच्छेद तरसा धनुस्तस्य करे स्थितम्।
तथैव पञ्चभिर्बाणैर्बभञ्ज रथमुत्तमम्॥ ४४

रथे भग्ने महाबाहुः पदातिर्दुर्मुखस्तदा।
गदां गृहीत्वा दुर्धर्षां जगाम चण्डिकां प्रति॥ ४५

चकार स गदाघातं सिंहमौलौ महाबलः।
न चचाल हरिः स्थानात्ताडितोऽपि महाबलः॥ ४६

अम्बिका तं समालोक्य गदापाणिं पुरःस्थितम्।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद मौलिमत्॥ ४७

छिन्ने च मस्तके भूमौ पपात दुर्मुखो मृतः।
जयशब्दं तदा चक्रुर्मुदिता निर्जरा भृशम्॥ ४८

हे चण्डिके! हे मूर्ख बाले! भाग जाओ, नहीं तो मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा अथवा हे वामोरु! मदसे मत्त महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ ३८॥

देवी बोलीं—अब तुम्हारी मृत्यु समीप है, तभी तुम मोहित होकर ऐसा प्रलाप कर रहे हो। अभी मैं तुम्हें भी उसी प्रकार मार डालूँगी, जैसे मैंने इस बाष्कलको मारा है॥ ३९॥

हे मूर्ख! भाग जाओ और यदि तुम्हें मृत्यु अच्छी लगती हो तो रुके रहो। तुम्हें मारनेके बाद मैं मूर्ख महिषासुरका भी संहार कर दूँगी॥ ४०॥

देवीका वह वचन सुनकर मरणोन्मुख दुर्मुख भगवती चण्डिकाके ऊपर भीषण बाण-वृष्टि करने लगा॥ ४१॥

भगवतीने भी कुपित होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस बाण-वृष्टिको तत्काल व्यर्थ करके उस दैत्यपर उसी प्रकार आघात किया, जैसे इन्द्रने वृत्रासुरपर किया था॥ ४२॥

अब उन दोनोंमें बड़ा भीषण युद्ध आरम्भ हो गया, जो कायरोंके लिये भयदायक तथा वीरोंके लिये उत्साहवर्धक था॥ ४३॥

देवीने बड़ी फुर्तीके साथ उसके हाथमें स्थित धनुषको काट डाला और उसी तरह अपने पाँच बाणोंसे उसके उत्तम रथको छिन्न-भिन्न कर दिया॥ ४४॥

रथके नष्ट हो जानेपर महाबाहु दुर्मुख अपनी भयानक गदा लेकर पैदल ही भगवती चण्डिकाकी ओर दौड़ा॥ ४५॥

[उनके पास पहुँचकर] उस महाबली दैत्यने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार कर दिया, किंतु महाशक्तिशाली सिंह गदासे मारे जानेपर भी अपने स्थानसे विचलित नहीं हुआ॥ ४६॥

उसी समय जगदम्बाने हाथमें गदा लिये हुए उस दुर्मुखको सम्मुख उपस्थित देखकर अपनी तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे उसके किरीटयुक्त मस्तकको काट दिया॥ ४७॥

मस्तक कट जानेपर दुर्मुख जमीनपर गिर पड़ा और मर गया। तब देवता परम प्रसन्न होकर देवीकी जय-जयकार करने लगे॥ ४८॥

तुष्टुवुस्तां तदा देवीं दुर्मुखे निहतेऽमराः।
पुष्पवृष्टिं तथा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः॥ ४९

दुर्मुखके मर जानेपर आकाशमें विद्यमान देवता भगवतीकी स्तुति करने लगे। उनपर पुष्प बरसाने लगे तथा उनकी जयकार करने लगे॥ ४९॥

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः सविद्याधरकिन्नराः।
जहृषुस्तं हतं दृष्ट्वा दानवं रणमस्तके॥ ५०

रणभूमिमें उस महान् दानवको मरा हुआ देखकर ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर आनन्दित हो उठे॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे महिषसेनाधिपबाष्कलदुर्मुखनिपातनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

चिक्षुर और ताम्रका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

दुर्मुखं निहतं श्रुत्वा महिषः क्रोधमूर्च्छितः।
उवाच दानवान्सर्वान्किं जातमिति चासकृत्॥ १

निहतौ दानवौ शूरौ रणे दुर्मुखबाष्कलौ।
तन्व्या तत्परमाश्चर्यं पश्यन्तु दैवचेष्टितम्॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! दुर्मुख मार दिया गया—यह सुनकर महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित हो गया और दानवोंसे बार-बार कहने लगा—'यह क्या हो गया?' दुर्मुख और बाष्कल तो बड़े शूर-वीर दानव थे। एक सुकुमार नारीने उन्हें रणभूमिमें मार डाला, यह तो महान् आश्चर्य है! दैवका विधान तो देखो॥ १-२॥

कालो हि बलवान्कर्ता सततं सुखदुःखयोः।
नराणां परतन्त्राणां पुण्यपापानुयोगतः॥ ३

समय बड़ा बलवान् होता है, वही परतन्त्र मनुष्योंके पुण्य तथा पापके अनुसार सदा उनके सुखों-दुःखोंका निर्माण करता है॥ ३॥

निहतौ दानवश्रेष्ठौ किं कर्तव्यमतः परम्।
ब्रुवन्तु मिलिताः सर्वे यद्युक्तं कार्यसङ्कटे॥ ४

ये दोनों ही श्रेष्ठ दानव मार डाले गये हैं, अब इसके बाद क्या करना चाहिये? इस विषम स्थितिमें सब लोग विचार करके जो उचित हो, बतायें॥ ४॥

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति राजेन्द्र महिषेऽतिबलान्विते।
चिक्षुराख्यस्तु सेनानीस्तमुवाच महारथः॥ ५

राजन्नहं हनिष्यामि का चिन्ता स्त्रीविहिंसने।

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! इस प्रकार महाशक्तिशाली महिषासुरके कहनेपर उसके महारथी सेनाध्यक्ष चिक्षुरने कहा—हे राजन्! स्त्रीको मार डालनेमें चिन्ता किस बातकी! मैं उसे मार डालूँगा॥ ५$\frac{१}{२}$॥

इत्युक्त्वा स्वबलैर्युक्तः प्रययौ रथसंयुतः॥ ६

द्वितीयं पार्ष्णिरक्षं तु कृत्वा ताम्रं महाबलम्।
महता सैन्यघोषेण पूरयन्गगनं दिशः॥ ७

ऐसा कहकर वह चिक्षुराख्य रथपर बैठकर दूसरे महाबली ताम्रको अपना अंगरक्षक बनाकर सेनाकी तुमुल ध्वनिसे आकाश एवं दिशाओंको निनादित करता हुआ युद्धके लिये चल पड़ा॥ ६-७॥

तमागच्छन्तमालोक्य देवी भगवती शिवा।
चकार शङ्खज्याघोषं घण्टानादं महाद्भुतम्॥ ८

तत्रसुस्तेन शब्देन ते च सर्वे सुरारयः।
किमेतदिति भाषन्तो दुद्रुवुर्भयकम्पिताः॥ ९

उसे आता हुआ देखकर कल्याणमयी भगवतीने अद्भुत शंखध्वनि, घण्टानाद तथा धनुषकी टंकार की। उस ध्वनिसे सभी राक्षस भयभीत हो गये। 'यह क्या'—ऐसा कहते हुए वे भयसे काँपने लगे तथा भाग खड़े हुए॥ ८-९॥

चिक्षुराख्यस्तु तान्दृष्ट्वा पलायनपरायणान्।
उवाचातीव संक्रुद्धः किं भयं वः समागतम्॥ १०

अद्यैवाहं हनिष्यामि बाणैर्बालां मदोन्नताम्।
तिष्ठन्त्वत्र भयं त्यक्त्वा दैत्याः समरमूर्धनि॥ ११

इत्युक्त्वा दानवश्रेष्ठश्चापपाणिर्बलान्वितः।
आगत्य सङ्गरे देवीमित्युवाच गतव्यथः॥ १२

किं गर्जसि विशालाक्षि भीषयन्तीतरान्नरान्।
नाहं बिभेमि तन्वङ्गि श्रुत्वा तेऽद्य विचेष्टितम्॥ १३

स्त्रीवधे दूषणं ज्ञात्वा तथैवाकीर्तिसम्भवम्।
उपेक्षां कुरुते चित्तं मदीयं वामलोचने॥ १४

स्त्रीणां युद्धं कटाक्षैश्च तथा हावैश्च सुन्दरि।
न शस्त्रैर्विहितं क्वापि त्वादृशीनां कदाचन॥ १५

पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः।
भवादृशीनां देहेषु दुनोति मालतीदलम्॥ १६

धिग्जन्म मानुषे लोके क्षात्रधर्मानुजीविनाम्।
लालितोऽयं प्रियो देहः कृन्तनीयः शितैः शरैः॥ १७

तैलाभ्यङ्गैः पुष्पवातैस्तथा मिष्टान्नभोजनैः।
पोषितोऽयं प्रियो देहो घातनीयः परेषुभिः॥ १८

देहं छित्त्वासिधाराभिर्धनभृज्जायते नरः।
धिग्धनं दुःखदं पूर्वं पश्चात्किं सुखदं भवेत्॥ १९

त्वमप्यज्ञैव वामोरु युद्धमाकाङ्क्षसे यतः।
सुखं सम्भोगजं त्यक्त्वा कं गुणं वेत्सि सङ्गरे॥ २०

खड्गपातं गदाघातं भेदनञ्च शिलीमुखैः।
मरणान्ते तु संस्कारो गोमायुमुखकर्षणम्॥ २१

उन्हें भागते हुए देखकर चिक्षुराख्यने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा—तुम्हारे सामने कौन-सा भय आ गया? मैं इस मदोन्मत्त नारीको आज ही बाणोंद्वारा मार डालूँगा। हे दैत्यो! तुम लोग भय छोड़कर लड़ाईके मोर्चेपर डटे रहो॥ १०-११॥

ऐसा कहकर उस पराक्रमी दैत्यश्रेष्ठ चिक्षुरने हाथमें धनुष उठा लिया और युद्धभूमिमें आकर वह निश्चिन्ततापूर्वक भगवतीसे कहने लगा—हे विशालाक्षि! अन्य साधारण मनुष्योंको भयभीत करती हुई तुम क्यों गरज रही हो? तुम्हारा यह व्यर्थ गर्जन सुनकर मैं भयभीत नहीं हो सकता॥ १२-१३॥

हे सुलोचने! स्त्रीका वध करना पाप है तथा इससे जगत्में अपकीर्ति होती है—यह जानकर मेरा चित्त तुम्हें मारनेसे विचलित हो रहा है। हे सुन्दरि! तुम-जैसी स्त्रियोंके कटाक्षों तथा हाव-भावोंसे समरका कार्य सम्पन्न हो जाता है; कभी कहीं भी शस्त्रोंद्वारा स्त्रीका युद्ध नहीं हुआ है॥ १४-१५॥

हे सुन्दरि! तुम्हें तो पुष्पसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, तब फिर तीक्ष्ण बाणोंसे युद्धकी बात ही क्या; क्योंकि तुम्हारी-जैसी सुन्दरियोंके शरीरमें मालतीकी पंखुड़ी भी पीड़ा उत्पन्न कर सकती है॥ १६॥

इस संसारमें क्षात्रधर्मानुयायी लोगोंके जन्मको धिक्कार है; क्योंकि वे बड़े प्यारसे पाले गये अपने शरीरको भी तीक्ष्ण बाणोंसे छिदवाते हैं!॥ १७॥

तेलकी मालिशसे, फूलोंकी हवासे तथा स्वादिष्ट भोजन आदिसे पोषित इस प्रिय शरीरको शत्रुओंके बाणोंसे बिंधवाते हैं। तलवारकी धारसे अपना शरीर कटवाकर मनुष्य धनवान् होना चाहते हैं। ऐसे धनको धिक्कार है जो प्रारम्भमें ही दुःख देनेवाला होता है; तो बादमें क्या वह सुख देनेवाला हो सकता है?॥ १८-१९॥

हे सुन्दरि! तुम भी मूर्ख ही हो, तभी तो सम्भोगजन्य सुखको त्यागकर युद्धकी इच्छा कर रही हो। युद्धमें तुम कौन-सा लाभ समझ रही हो?॥ २०॥

युद्धमें तलवारें चलती हैं, गदाका प्रहार होता है और बाणोंसे शरीरका बेधन किया जाता है। मृत्युके अन्तमें सियार अपने मुँहसे नोच-नोचकर उस देहका संस्कार करते हैं॥ २१॥

तस्यैव कविभिर्धूर्तैः कृतं चातीव शंसनम्।
रणे मृतानां स्वःप्राप्तिरर्थवादोऽस्ति केवलः॥ २२

तस्माद् गच्छ वरारोहे यत्र ते रमते मनः।
भज वा भूपतिं नाथं हयारिं सुरमर्दनम्॥ २३

व्यास उवाच

एवं ब्रुवाणं तं दैत्यं प्रोवाच जगदम्बिका।
किं मृषा भाषसे मूढ बुद्धिमानिव पण्डितः॥ २४

नीतिशास्त्रं न जानासि विद्यां चान्वीक्षिकीं तथा।
न सेवितास्त्वया वृद्धा न धर्मे मतिरस्ति ते॥ २५

मूर्खसेवापरो यस्मात्तस्मात्त्वं मूर्ख एव हि।
राजधर्मं न जानासि किं ब्रवीषि ममाग्रतः॥ २६

संग्रामे महिषं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम्।
यशःस्तम्भं स्थिरं कृत्वा गमिष्यामि यथासुखम्॥ २७

देवानां दुःखदातारं दानवं मदगर्वितम्।
हनिष्येऽहं दुराचारं युद्धं कुरु स्थिरो भव॥ २८

जीवितेच्छास्ति चेन्मूढ महिषस्य तथा तव।
तदा गच्छन्तु पातालं दानवाः सर्व एव ते॥ २९

मुमूर्षा यदि वश्चित्ते युद्धं कुर्वन्तु सत्वराः।
सर्वानेव वधिष्यामि निश्चयोऽयं ममाधुना॥ ३०

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या दानवो बलदर्पितः।
मुमोच बाणवृष्टिं तां घनवृष्टिमिवापराम्॥ ३१

चिच्छेद तस्य सा बाणान्स्वबाणैर्निशितैस्तदा।
जघान तं तथा घोरैराशीविषसमैः शरैः॥ ३२

युद्धं परस्परं तत्र बभूव विस्मयप्रदम्।
गदया घातयामास तं रथाज्जगदम्बिका॥ ३३

धूर्त कवियोंने उसी युद्धकी अत्यन्त प्रशंसा की है कि रणभूमिमें मरनेवालोंको स्वर्ग प्राप्त होता है। उनका यह कहना केवल अर्थवादमात्र है॥ २२॥

अतः हे वरारोहे! तुम्हारा मन जहाँ लगे, वहाँ चली जाओ अथवा तुम देवताओंका दमन करनेवाले मेरे स्वामी महाराज महिषासुरको स्वीकार कर लो॥ २३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार बोलते हुए उस दैत्यसे भगवती जगदम्बाने कहा—मूर्ख! तुम अपनेको बुद्धिमान् पण्डितके समान मानकर व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? तुम न तो नीतिशास्त्र जानते हो, न आन्वीक्षिकी विद्या ही जानते हो, तुमने कभी न वृद्धोंकी सेवा की है और न तो तुम्हारी बुद्धि ही धर्मपरायण है॥ २४-२५॥

क्योंकि तुम मूर्खकी सेवामें लगे रहते हो, अतः तुम भी मूर्ख हो। जब तुम्हें राजधर्म ही ज्ञात नहीं, तब मेरे सामने क्यों व्यर्थ बकवाद कर रहे हो?॥ २६॥

संग्राममें महिषासुरका वध करके समरांगणको रुधिरसे पंकमय बनाकर अपना यश-स्तम्भ सुदृढ़ स्थापितकर मैं सुखपूर्वक चली जाऊँगी॥ २७॥

देवताओंको दुःख देनेवाले इस दुराचारी तथा मदोन्मत्त दानवको मैं अवश्य मार डालूँगी। तुम सावधान होकर युद्ध करो। हे मूर्ख! यदि तुम्हें तथा महिषासुरको जीनेकी अभिलाषा हो तो सभी दानव पाताललोकको शीघ्र ही चले जायँ; अन्यथा यदि तुमलोगोंके मनमें मरनेकी इच्छा हो तो तुरंत युद्ध करो। यह मेरा संकल्प है कि मैं सभी दानवोंको मार डालूँगी॥ २८—३०॥

व्यासजी बोले—देवीका वचन सुनकर बलके अभिमानसे युक्त वह दैत्य उनपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, मानो दूसरे मेघ ही जलकी धारा बरसा रहे हों॥ ३१॥

तब भगवतीने अपने तीक्ष्ण बाणोंद्वारा उसके सभी बाण काट डाले और विषधर सर्पके समान विषैले बाणोंसे उसपर प्रहार किया। उन दोनोंमें परस्पर विस्मयकारी युद्ध होने लगा। जगदम्बाने अपने वाहन सिंहपरसे ही उस दैत्यपर गदासे प्रहार किया॥ ३२-३३॥

मूर्च्छां प्राप स दुष्टात्मा गदयाभिहतो भृशम्।
मुहूर्तद्वयमात्रं तु रथोपस्थ इवाचलः॥ ३४

तं तथामूर्च्छितं दृष्ट्वा ताम्रः परबलार्दनः।
आजगाम रणे योद्धुं चण्डिकां प्रति चापलात्॥ ३५

आगच्छन्तं तु तं वीक्ष्य हसन्ती प्राह चण्डिका।
एह्येहि दानवश्रेष्ठ यमलोकं नयाम्यहम्॥ ३६

किं भवद्भिः समायातैरबलैश्च गतायुषैः।
महिषः किं गृहे मूढः करोति जीवनोद्यमम्॥ ३७

किं भवद्भिर्हतैर्मन्दैर्ममापि विफलः श्रमः।
अहते महिषे पापे सुरशत्रौ दुरात्मनि॥ ३८

तस्माद्यूयं गृहं गत्वा महिषं प्रेषयन्त्विह।
पश्येन्मां सोऽपि मन्दात्मा यादृशीं तादृशीं स्थिताम्॥ ३९

ताम्रस्तद्वचनं श्रुत्वा बाणवृष्टिं चकार ह।
चण्डिकां प्रति कोपेन कर्णाकृष्टशरासनः॥ ४०

भगवत्यपि ताम्राक्षी समाकृष्य शरासनम्।
बाणान्मुमोच तरसा हन्तुकामा सुराहितम्॥ ४१

चिक्षुराख्योऽपि बलवान्मूर्च्छां त्यक्त्वोत्थितः पुनः।
गृहीत्वा सशरं चापं तस्थौ तत्सम्मुखः क्षणात्॥ ४२

चिक्षुराख्यश्च ताम्रश्च द्वावप्यतिबलोत्कटौ।
युयुधाते महावीरौ सह देव्या रणाङ्गणे॥ ४३

कुपिता च महामाया ववर्ष शरसन्ततिम्।
चकार दानवान् सर्वान् बाणक्षततनुच्छदान्॥ ४४

असुराः क्रोधसम्मूढा बभूवुः शरताडिताः।
चिक्षिपुः शरजालानि देवीं प्रति रुषान्विताः॥ ४५

गदासे अत्यधिक आहत होनेके कारण वह दुष्टात्मा दैत्य मूर्च्छित हो गया और दो मुहूर्ततक पाषाणकी भाँति रथपर ही पड़ा रहा॥ ३४॥

इस प्रकार उसे मूर्च्छित देखकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला ताम्र नामक दैत्य चण्डिकासे लड़नेके लिये वेगपूर्वक रणमें उपस्थित हो गया॥ ३५॥

उसे आते देखकर भगवती चण्डिका उससे हँसती हुई बोलीं—अरे दानवश्रेष्ठ! आओ-आओ, अभी तुम्हें यमलोक भेज देती हूँ॥ ३६॥

निर्बल और समाप्त आयुवाले तुमलोगोंके यहाँ आनेसे क्या लाभ? वह मूर्ख महिषासुर घरमें रहकर अपने जीनेका कौन-सा उपाय कर रहा है? देवताओंके शत्रु, दुष्टात्मा तथा पापी महिषासुरका संहार किये बिना तुम मूर्खोंको मारनेसे मुझे क्या लाभ होगा? इससे तो मेरा परिश्रम भी व्यर्थ हो जायगा, अतः तुमलोग घरपर जाकर महिषासुरको यहाँ भेज दो, जिससे वह मन्दबुद्धि भी मैं जिस रूपमें स्थित हूँ, उसमें मुझको देख ले॥ ३७—३९॥

भगवतीका वचन सुनकर वह ताम्र कुपित हो धनुषको कानतक खींचकर उनपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ४०॥

देवताओंके शत्रु उस दैत्यको मारनेकी इच्छावाली ताम्राक्षी भगवती भी धनुष खींचकर उसके ऊपर वेगपूर्वक बाण छोड़ने लगीं॥ ४१॥

इतनेमें बलवान् चिक्षुराख्य भी मूर्च्छा त्यागकर उठ खड़ा हुआ और तुरंत बाणसहित धनुष लेकर देवीके सामने आकर खड़ा हो गया॥ ४२॥

चिक्षुराख्य और ताम्र दोनों ही अत्यन्त उग्र बलवान् और महान् वीर थे। अब वे दोनों ही मिलकर भगवती जगदम्बासे रणमें युद्ध करने लगे॥ ४३॥

तब महामाया क्रोधित होकर बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगीं, और उन्होंने अपने बाणोंके प्रहारसे सभी दानवोंके कवच छिन्न-भिन्न कर दिये॥ ४४॥

उन बाणोंसे आहत होकर सभी असुर क्रोधसे व्याकुल हो गये तथा रोषपूर्वक देवीपर बाणसमूह छोड़ने लगे। उस समय समस्त रणभूमिमें भगवतीके

बभुस्ते राक्षसास्तत्र किंशुका इव पुष्पिणः।
शिलीमुखक्षताः सर्वे वसन्ते च वने रणे॥ ४६

बभूव तुमुलं युद्धं ताम्रेण सह संयुगे।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवा ये प्रेक्षकाः स्थिताः॥ ४७

ताम्रो मुसलमादाय लोहजं दारुणं दृढम्।
जघान मस्तके सिंहं जहास च ननर्द च॥ ४८

नर्दमानं तदा तं तु दृष्ट्वा देवी रुषान्विता।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद सत्वरा॥ ४९

छिन्ने शिरसि ताम्रस्तु विशीर्षो मुसली बली।
बभ्राम क्षणमात्रं तु पपात रणमस्तके॥ ५०

पतितं ताम्रमालोक्य चिक्षुराख्यो महाबलः।
खड्गमादाय तरसा दुद्राव चण्डिकां प्रति॥ ५१

भगवत्यपि तं दृष्ट्वा खड्गपाणिमुपागतम्।
दानवं पञ्चभिर्बाणैर्जघान तरसा रणे॥ ५२

एकेन पातितं खड्गं द्वितीयेन तु तत्करः।
कण्ठाच्च मस्तकं तस्य कृन्तितं चापरैः शरैः॥ ५३

एवं तौ निहतौ क्रूरौ राक्षसौ रणदुर्मदौ।
भग्नं सैन्यं तयोस्तूर्णं दिक्षु सन्त्रस्तमानसम्॥ ५४

देवाश्च मुदिताः सर्वे दृष्ट्वा तौ निहतौ रणे।
पुष्पवृष्टिं मुदा चक्रुर्जयशब्दं नभःस्थिताः॥ ५५

ऋषयो देवगन्धर्वा वेतालाः सिद्धचारणाः।
ऊचुस्ते जय देवीति चाम्बिकेति पुनः पुनः॥ ५६

बाणोंसे घायल सभी राक्षस ऐसे सुशोभित होने लगे, जैसे वसन्त ऋतुमें वनमें किंशुकके लाल पुष्प दिखायी पड़ते हों॥ ४५-४६॥

उस समरभूमिमें ताम्रके साथ देवीका भीषण युद्ध होने लगा। इसे देखनेवाले जो देवता आकाशमें स्थित थे, वे आश्चर्यचकित हो गये॥ ४७॥

उसी समय ताम्रने लोहेका बना हुआ एक सुदृढ़ तथा भयंकर मूसल लेकर देवीके सिंहके सिरपर प्रहार किया और वह जोरसे हँसने तथा गरजने लगा॥ ४८॥

तब उसे गरजता हुआ देखकर भगवती क्रोधित हो गयीं और उन्होंने तुरंत अपनी तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक काट डाला॥ ४९॥

सिर कट जानेपर भी वह मस्तकविहीन बलशाली ताम्र मूसल लिये हुए कुछ क्षणतक घूमता रहा, इसके बाद वह समरांगणमें गिर पड़ा॥ ५०॥

ताम्रको गिरा हुआ देखकर महाबली चिक्षुराख्य खड्ग लेकर बड़े वेगसे चण्डिकाकी ओर झपटा॥ ५१॥

हाथमें तलवार लिये उस दानवको रणमें अपनी ओर आते देखकर देवीने भी तुरंत पाँच बाणोंसे उसपर प्रहार किया॥ ५२॥

भगवतीने एक बाणसे उसका खड्ग काट दिया, दूसरेसे उसका हाथ काट दिया और अन्य बाणोंसे उसका मस्तक कण्ठसे अलग कर दिया॥ ५३॥

इस प्रकार युद्धके लिये उन्मत्त रहनेवाले उन दोनों क्रूर राक्षसोंका वध हो गया, तब उन दोनोंकी सेना भयभीत होकर चारों दिशाओंमें शीघ्रतापूर्वक भाग चली॥ ५४॥

उन दोनों दानवोंको रणमें मारा गया देखकर आकाशमें विराजमान सम्पूर्ण देवता आह्लादित हो गये और प्रसन्नतापूर्वक भगवतीकी जयध्वनि करते हुए फूलोंकी वर्षा करने लगे। ऋषि, देवता, गन्धर्व, वेताल, सिद्ध और चारण—वे सब 'देवीकी जय, अम्बिकाकी जय' ऐसा बार-बार बोलने लगे॥ ५५-५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
ताम्रचिक्षुराख्यवधवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

◆

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

बिडालाख्य और असिलोमाका रणभूमिमें आना, देवीसे उनका वार्तालाप और युद्ध तथा देवीद्वारा उनका वध

व्यास उवाच

तौ तया निहतौ श्रुत्वा महिषो विस्मयान्वितः।
प्रेषयामास दैतेयांस्तद्वधार्थं महाबलान्॥ १

असिलोमबिडालाख्यप्रमुखान् युद्धदुर्मदान्।
सैन्येन महता युक्तान्सायुधान्सपरिच्छदान्॥ २

ते तत्र ददृशुर्देवीं सिंहस्योपरि संस्थिताम्।
अष्टादशभुजां दिव्यां खड्गखेटकधारिणीम्॥ ३

असिलोमाग्रतो गत्वा तामुवाच हसन्निव।
विनयावनतः शान्तो देवीं दैत्यवधोद्यताम्॥ ४

असिलोमोवाच

देवि ब्रूहि वचः सत्यं किमर्थमिह सुन्दरि।
आगतासि किमर्थं वा हंसि दैत्यान्निरागसः॥ ५

कारणं कथयाद्य त्वं त्वया सन्धिं करोम्यहम्।
काञ्चनं मणिरत्नानि भाजनानि वराणि च॥ ६

यानीच्छसि वरारोहे गृहीत्वा गच्छ मा चिरम्।
किमर्थं युद्धकामासि दुःखसन्तापवर्धनम्॥ ७

कथयन्ति महात्मानो युद्धं सर्वसुखापहम्।
कोमलेऽतीव ते देहे पुष्पघातासहे भृशम्॥ ८

किमर्थं शस्त्रसम्पातान्सहसीति विसिस्मिये।
चातुर्यस्य फलं शान्तिः सततं सुखसेवनम्॥ ९

तत्किमर्थं दुःखहेतुं संग्रामं कर्तुमिच्छसि।
संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः॥ १०

व्यासजी बोले—उस देवीने चिक्षुराख्य तथा ताम्रका वध कर दिया—यह सुनकर महिषासुरको बड़ा विस्मय हुआ। अब उसने विशाल सेनासे युक्त, शस्त्रास्त्र लिये हुए तथा कवच धारण किये हुए असिलोमा, बिडालाख्य आदि प्रमुख युद्धोन्मत्त तथा महाबली दैत्योंको भगवतीका वध करनेके लिये भेजा॥ १-२॥

वहाँपर उन्होंने सिंहके ऊपर विराजमान, अठारह भुजाओंसे सुशोभित, खड्ग तथा ढाल धारण की हुई दिव्यस्वरूपवाली भगवतीको देखा॥ ३॥

तब असिलोमा दैत्योंके वधके लिये उद्यत देवीके पास जाकर विनयावनत होकर शान्तिपूर्वक उनसे हँसते हुए कहने लगा—॥ ४॥

असिलोमा बोला—हे देवि! सच्ची बात बताइये, आप यहाँ किस प्रयोजनसे आयी हैं? हे सुन्दरि! इन निरपराध दैत्योंको आप क्यों मार रही हैं? इसका कारण बताइये। मैं अभी आपके साथ सन्धि करनेको तैयार हूँ। हे वरारोहे! सुवर्ण, मणि, रत्न और अच्छे-अच्छे पात्र जो भी आप चाहती हैं, उन्हें लेकर यहाँसे शीघ्र चली जाइये। आप युद्धकी इच्छुक क्यों हैं? महात्मा पुरुष कहते हैं कि युद्ध दुःख तथा सन्तापको बढ़ानेवाला और सम्पूर्ण सुखोंका विघातक होता है॥ ५—७$\frac{१}{२}$॥

मुझे महान् आश्चर्य हो रहा है कि पुष्पका भी आघात न सह सकनेवाले अपने अत्यन्त सुकोमल शरीरमें आप शस्त्रोंके आघात सहनेके लिये क्यों तैयार हैं? चातुर्यका फल तो शान्ति और निरन्तर सुख भोगना है। अतः एकमात्र दुःखके कारणस्वरूप इस संग्रामको आप क्यों करना चाहती हैं? इस संसारमें सुख ग्रहण करना चाहिये और दुःखका परित्याग करना चाहिये—यही सर्वमान्य नियम है॥ ८—१०॥

तत्सुखं द्विविधं प्रोक्तं नित्यानित्यप्रभेदतः।
आत्मज्ञानं सुखं नित्यमनित्यं भोगजं स्मृतम्॥ ११

नाशात्मकं तु तत्त्याज्यं वेदशास्त्रार्थचिन्तकैः।
सौगतानां मतं चेत्त्वं स्वीकरोषि वरानने॥ १२

तथापि यौवनं प्राप्य भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्।
परलोकस्य सन्देहो यदि तेऽस्ति कृशोदरि॥ १३

स्वर्गभोगपरा नित्यं भव भामिनि भूतले।
अनित्यं यौवनं देहे ज्ञात्वेति सुकृतं चरेत्॥ १४

परोपतापनं कार्यं वर्जनीयं सदा बुधैः।
अविरोधेन कर्तव्यं धर्मार्थकामसेवनम्॥ १५

तस्मात्त्वमपि कल्याणि मतिं धर्मे सदा कुरु।
अपराधं विना दैत्यान्कस्मान्मारयसेऽम्बिके॥ १६

दयाधर्मोऽस्य देहोऽस्ति सत्ये प्राणाः प्रकीर्तिताः।
तस्माद्दया तथा सत्यं रक्षणीयं सदा बुधैः॥ १७

कारणं वद सुश्रोणि दानवानां वधे तव।

देव्युवाच

त्वया पृष्टं महाबाहो किमर्थमिह चागता॥ १८

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि हनने च प्रयोजनम्।
विचरामि सदा दैत्य सर्वलोकेषु सर्वदा॥ १९

न्यायान्यायौ च भूतानां पश्यन्ती साक्षिरूपिणी।
न मे कदापि भोगेच्छा न लोभो न च वैरिता॥ २०

धर्मार्थं विचराम्यत्र संसारे साधुरक्षणम्।
व्रतमेतत्तु नियतं पालयामि निजं सदा॥ २१

साधूनां रक्षणं कार्यं हन्तव्या येऽप्यसाधवः।
वेदसंरक्षणं कार्यमवतारैरनेकशः॥ २२
युगे युगे तानेवाहमवतारान्बिभर्मि च।

वह सुख भी नित्य और अनित्यके भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। आत्मज्ञानसम्बन्धी सुखको 'नित्य' और भोगजनित सुखको 'अनित्य' माना गया है। वेद और शास्त्रके तत्त्वका चिन्तन करनेवाले लोगोंको चाहिये कि उस विनाशशील अनित्य सुखको त्याग दें। हे वरानने! यदि आप नास्तिकका मत स्वीकार करती हों तो भी इस यौवनको पाकर उत्तमसे उत्तम सुखोंका भोग करें। हे कृशोदरि! हे भामिनि! यदि परलोकके विषयमें आपको सन्देह हो तो इस पृथ्वीपर ही सदाचारपूर्वक रहती हुई स्वर्गीय सुख प्राप्त करनेमें सदा तत्पर रहें, नहीं तो शरीरमें यह यौवन अनित्य है—ऐसा समझकर आपको सदा सत्कर्म करते रहना चाहिये॥ ११—१४॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे दूसरोंको पीड़ित करनेके कार्यका त्याग कर दें। अतः बिना विरोधके धर्म, अर्थ और कामका सेवन करना चाहिये। इसलिये हे कल्याणि! आप अपनी बुद्धि धर्मकृत्यमें लगाइये। हे अम्बिके! आप हम दैत्योंको बिना अपराधके क्यों मार रही हैं? दयाभाव पुरुषमात्रका शरीर है और सत्यमें ही उसका प्राण प्रतिष्ठित कहा गया है। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दया और सत्यकी सदा रक्षा करें। हे देवि! आप दानवोंके संहारमें अपना प्रयोजन बतायें?॥ १५—१७½ ॥

देवी बोलीं—हे महाबाहो! तुमने जो यह पूछा है कि मैं यहाँ क्यों आयी हूँ—उसे बताती हूँ और दानववधका प्रयोजन भी बताती हूँ। हे दैत्य! मैं सदा साक्षी बनकर सभी प्राणियोंके न्याय तथा अन्यायको देखती हुई सब लोकोंमें निरन्तर विचरती रहती हूँ। मुझे न तो कभी भोगविलासकी इच्छा है, न लोभ है और न किसीके प्रति द्वेषभाव ही है॥ १८—२०॥

धर्मकी मर्यादा रखनेके लिये मैं इस संसारमें विचरण करती रहती हूँ। साधुपुरुषोंकी रक्षा करना—अपने इस व्रतका मैं सदा पालन करती हूँ। अनेक अवतार धारण करके मैं सज्जनोंकी रक्षा करती हूँ, जो असाधु हैं उनका संहार करती हूँ और वेदोंका संरक्षण करती हूँ। मैं प्रत्येक युगमें उन अवतारोंको धारण करती रहती हूँ॥ २१-२२½ ॥

महिषस्तु दुराचारो देवान्वै हन्तुमुद्यतः॥ २३

ज्ञात्वाहं तद्वधार्थं भोः प्राप्तास्मि राक्षसाधुना।
तं हनिष्ये दुराचारं सुरशत्रुं महाबलम्॥ २४

गच्छ वा तिष्ठ कामं त्वं सत्यमेतदुदाहृतम्।
ब्रूहि वा तं दुरात्मानं राजानं महिषीसुतम्॥ २५

किमन्यान् प्रेषयस्यत्र स्वयं युद्धं कुरुष्व ह।
सन्धिञ्चेत्कर्तुमिच्छास्ति राज्ञस्तव मया सह॥ २६

सर्वे गच्छन्तु पातालं वैरं त्यक्त्वा यथासुखम्।
देवद्रव्यं तु यत्किञ्चिद्धृतं जित्वा रणे सुरान्।
तद्दत्त्वा यान्तु पातालं प्रह्लादो यत्र तिष्ठति॥ २७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या असिलोमा पुरःस्थितः।
बिडालाख्यं महावीरं पप्रच्छ प्रीतिपूर्वकम्॥ २८

असिलोमोवाच

श्रुतं तेऽद्य बिडालाख्य भवान्या कथितं च यत्।
एवं गते किं कर्तव्यो विग्रहः सन्धिरेव वा॥ २९

बिडालाख्य उवाच

न सन्धिकामोऽस्ति नृपोऽभिमानी
युद्धे च मृत्युं नियतं हि जानन्।
दृष्ट्वा हतान् प्रेरयते तथास्मा-
न्दैवं हि कोऽतिक्रमितुं समर्थः॥ ३०

(दुःसाध्य एवास्त्विह सेवकानां
धर्मः सदा मानविवर्जितानाम्।
आज्ञापराणां वशवर्तिकानां
पाञ्चालिकानामिव सूत्रभेदात्॥)

गत्वा कथं तस्य पुरस्त्वया च
मयापि वक्तव्यमिदं कठोरम्।
गच्छन्तु पातालमितश्च सर्वे
दत्त्वाथ रत्नानि धनं सुराणाम्॥ ३१

दुराचारी महिषासुर देवताओंको मार डालनेके लिये उद्यत है—यह जानकर मैं उसके वधके लिये इस समय यहाँ उपस्थित हुई हूँ। हे दानव! मैं उस दुराचारी तथा सुरद्रोही महाबली महिषको मार डालूँगी॥ २३-२४॥

अब तुम इच्छानुसार जाओ या रुके रहो, मैंने तुमसे यह सब सच-सच बतला दिया। अतः जाकर अपने उस दुराचारी राजा महिषसे कह दो—'आप अन्य दैत्योंको क्यों भेजते हैं? स्वयं युद्ध कीजिये।' यदि तुम्हारे राजाकी इच्छा मेरे साथ सन्धि करनेकी हो, तो सभी दैत्य शत्रुता छोड़कर सुखपूर्वक पाताल चले जायँ। देवताओंको जीतकर जो भी देवद्रव्य असुरोंने छीन लिया है, वह सब वापस करके वे उस पातालपुरीमें चले जायँ, जहाँ इस समय प्रह्लाद विराजमान हैं॥ २५—२७॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार देवीका वचन सुनकर असिलोमा भगवतीके सामने ही महान् शूरवीर बिडालाख्यसे प्रीतिपूर्वक पूछने लगा—॥ २८॥

असिलोमा बोला—बिडालाख्य! देवीने अभी-अभी जो कहा है, वह तो तुमने सुन लिया, इस स्थितिमें हमें सन्धि या विग्रह—क्या करना चाहिये?॥ २९॥

बिडालाख्य बोला—युद्धमें मृत्युको निश्चित जानते हुए भी हमारे अभिमानी महाराज सन्धि नहीं करना चाहते। समरमें बहुत-से योद्धा मारे जा चुके हैं—यह देखकर भी वे हमें भेज रहे हैं। दैवको टाल सकनेमें भला कौन समर्थ है!॥ ३०॥

(सम्मानकी भावनासे रहित, स्वामीकी आज्ञाका पालन करनेवाले तथा सदा उनके अधीन रहनेवाले सेवकोंका सेवाधर्म अत्यन्त कठिन है। सूतके संकेतपर नर्तन करनेवाली कठपुतलीकी भाँति वे सदा परतन्त्र रहते हैं।)

अतः उन महिषासुरके सामने जाकर मेरे अथवा तुम्हारे द्वारा ऐसा अप्रिय वचन कैसे कहा जा सकता है कि देवताओंके धन एवं रत्न वापस करके सभी दानव यहाँसे पातालको लौट चलें?॥ ३१॥

(प्रियं हि वक्तव्यमसत्यमेव
न च प्रियं स्याद्धितकृत्तु भाषितम्।
सत्यं प्रियं नो भवतीह कामं
मौनं ततो बुद्धिमतां प्रतिष्ठितम्॥)

न फल्गुवाक्यैः प्रतिबोधनीयो
राजा तु वीरैरिति नीतिशास्त्रम्॥ ३२

न नूनं तत्र गन्तव्यं हितं वा वक्तुमादरात्।
प्रष्टुं वापि गते राजा कोपयुक्तो भविष्यति॥ ३३

इति सञ्चिन्त्य कर्तव्यं युद्धं प्राणस्य संशये।
स्वामिकार्यं परं मत्वा मरणं तृणवत्तथा॥ ३४

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य तौ वीरौ संस्थितौ युद्धतत्परौ।
धनुर्बाणधरौ तत्र सन्नद्धौ रथसङ्गतौ॥ ३५

प्रथमं तु बिडालाख्यः सप्तबाणान्मुमोच ह।
असिलोमा स्थितो दूरे प्रेक्षकः परमास्त्रवित्॥ ३६

चिच्छेद तांस्तथाप्राप्तानम्बिका स्वशरैः शरान्।
बिडालाख्यं त्रिभिर्बाणैर्जघान च शिलाशितैः॥ ३७

प्राप्य बाणव्यथां दैत्यः पपात समराङ्गणे।
मूर्च्छितोऽथ ममाराशु दानवो दैवयोगतः॥ ३८

बिडालाख्यं हतं दृष्ट्वा रणे शक्तिशरोत्करैः।
असिलोमा धनुष्पाणिः संस्थितो युद्धतत्परः॥ ३९

ऊर्ध्वं सव्यं करं कृत्वा तामुवाच मितं वचः।
देवि जानामि मरणं दानवानां दुरात्मनाम्॥ ४०

तथापि युद्धं कर्तव्यं पराधीनेन वै मया।
महिषो मन्दबुद्धिश्च न जानाति प्रियाप्रिये॥ ४१

(सदा प्रिय वचन बोलना चाहिये, किंतु वह असत्य न हो। वचन हितकारक तथा प्रिय होना चाहिये। यदि वचन सत्य होनेपर भी प्रिय न हो तो ऐसी दशामें बुद्धिमान् मनुष्योंके लिये मौन ही श्रेष्ठ होता है।)

नीतिशास्त्रका कथन है कि वीर पुरुषोंको चाहिये कि वे मिथ्या वचनोंद्वारा राजाको धोखेमें न डालें॥ ३२॥

[सत्य बात तो यह है कि] आदरके साथ हितकी बात कहने अथवा पूछनेके लिये हमलोगोंको वहाँ नहीं चलना चाहिये। वहाँ जानेपर राजा महिषासुर कोपाविष्ट हो जायँगे। यह विचारकर अब हमलोगोंको यहाँ युद्ध ही करना चाहिये। जहाँ प्राणका संशय हो वहाँ स्वामीके कार्यको मुख्य मानकर मृत्युको तृणसदृश समझना चाहिये॥ ३३-३४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार विचार करके वे दोनों वीर युद्धके लिये तत्पर हो गये और कवच धारण करके हाथोंमें धनुष-बाण लेकर रथपर आरूढ हो देवीके सामने आ डटे॥ ३५॥

सर्वप्रथम बिडालाख्यने देवीके ऊपर सात बाण चलाये। अस्त्र चलानेमें अत्यन्त निपुण असिलोमा दूर जाकर दर्शकके रूपमें खड़ा हो गया॥ ३६॥

भगवती जगदम्बाने अपने बाणोंसे बिडालाख्यके द्वारा चलाये गये उन बाणोंको काट डाला और पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये तीन बाणोंसे बिडालाख्यपर आघात किया॥ ३७॥

उन बाणोंकी असह्य वेदनासे पीड़ित होकर वह दैत्य समरभूमिमें गिर पड़ा, उसे मूर्च्छा आ गयी और कालयोगसे वह मर गया॥ ३८॥

इस प्रकार भगवतीके बाणसमूहोंसे रणमें बिडालाख्यको मारा गया देखकर असिलोमा भी हाथमें धनुष लेकरके युद्ध करनेके लिये तैयार होकर सामने आ गया और दाहिना हाथ ऊपर उठाकर अभिमानपूर्वक बोला—हे देवि! मैं जानता हूँ कि सभी दुराचारी दानव मारे जायँगे, फिर भी पराधीन होनेके कारण मुझे युद्ध करना ही होगा। वह मन्दबुद्धि महिषासुर अपने प्रिय तथा अप्रियके विषयमें नहीं जानता॥ ३९—४१॥

तदग्रे नैव वक्तव्यं हितं चैवाप्रियं मया।
मर्तव्यं वीरधर्मेण शुभं वाप्यशुभं भवेत्॥ ४२

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
पतन्ति दानवास्तूर्णं तव बाणहता भुवि॥ ४३

इत्युक्त्वा शरवृष्टिं स चकार दानवोत्तमः।
देवी चिच्छेद तान्बाणैरप्राप्तांस्तु निजान्तिके॥ ४४

अन्यैर्विव्याध तं तूर्णमसिलोमानमाशुगैः।
वीक्षितामरसङ्घैश्च कोपपूर्णानना तदा॥ ४५

शुशुभे दानवः कामं बाणैर्विद्धतनुः किल।
स्रवद्रुधिरधारः स प्रफुल्लः किंशुको यथा॥ ४६

असिलोमा गदां गुर्वीं लौहीमुद्यम्य वेगतः।
दुद्राव चण्डिकां कोपात्सिंहं मूर्ध्नि जघान ह॥ ४७

सिंहोऽपि नखराघातैस्तं ददार भुजान्तरे।
अगणय्य गदाघातं कृतं तेन बलीयसा॥ ४८

उत्पत्य तरसा दैत्यो गदापाणिः सुदारुणः।
सिंहमूर्ध्नि समारुह्य जघान गदयाम्बिकाम्॥ ४९

कृतं तेन प्रहारं तु वञ्चयित्वा विशांपते।
खड्गेन शितधारेण शिरश्चिच्छेद कण्ठतः॥ ५०

छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रः पपात तरसा क्षितौ।
हाहाकारो महानासीत्सैन्ये तस्य दुरात्मनः॥ ५१

जय देवीति देवास्तां तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्।
देवदुन्दुभयो नेदुर्जगुश्च नृप किन्नराः॥ ५२

उसके सामने हितकर वचन भी यदि अप्रिय है तो मुझे नहीं बोलना चाहिये। अब वीरधर्मके अनुसार मर जाना ही मेरे लिये उचित है—वह चाहे शुभ हो अथवा अशुभ। मैं तो दैवको ही बलवान् मानता हूँ, अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है, तभी तो आपके बाणोंसे हत होकर दानव पृथ्वीपर गिरते जा रहे हैं॥ ४२-४३॥

ऐसा कहकर दानवश्रेष्ठ असिलोमा बाणवृष्टि करने लगा। देवीने अपने पासतक न पहुँचे हुए उन बाणोंको अपने बाणोंसे काट डाला और अपने अन्य शीघ्रगामी बाणोंसे असिलोमाको शीघ्रतापूर्वक बींध डाला। उस समय आकाशमें स्थित देवताओंने देखा कि भगवतीका मुखमण्डल क्रोधसे भर उठा है। देवीके बाणोंसे बिंधे शरीरवाला तथा बहती हुई रुधिरकी धारासे युक्त वह दैत्य ऐसा सुशोभित हो रहा था मानो पुष्पित हुआ पलाशका वृक्ष हो॥ ४४—४६॥

अब असिलोमा लोहेकी बनी एक विशाल गदा लेकर बड़ी तेजीसे चण्डिकाकी ओर दौड़ा और क्रोधपूर्वक सिंहके सिरपर उसने गदासे प्रहार कर दिया। परंतु देवीके सिंहने उस बलवान् दानवके द्वारा किये गये गदा-प्रहारकी कुछ भी परवाह न करके अपने नखोंद्वारा उसके वक्षःस्थलको फाड़ डाला॥ ४७-४८॥

तब उस महाविकराल दैत्यने हाथमें गदा लिये ही बड़े वेगसे उछलकर सिंहके मस्तकपर सवार हो भगवतीके ऊपर गदासे प्रहार किया॥ ४९॥

हे राजन्! उसके द्वारा किये गये प्रहारको रोककर देवीने तेज धारवाली तलवारसे उसका मस्तक गर्दनसे अलग कर दिया। इस प्रकार मस्तक कट जानेपर वह दानवराज तुरंत गिर पड़ा। अब उस दुरात्माकी सेनामें हाहाकार मच गया॥ ५०-५१॥

हे राजन्! देवीकी जय हो—ऐसा कहकर देवतागण भगवतीकी स्तुति करने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं और किन्नरगण देवीका यशोगान करने लगे॥ ५२॥

निहतौ दानवौ वीक्ष्य पतितौ च रणाङ्गणे।
निहताः सैनिकाः सर्वे तत्र केसरिणा बलात्॥ ५३

भक्षिताश्च तथा केचिन्निःशेषं तद्रणं कृतम्।
भग्नाः केचिद् गता मन्दा महिषं प्रति दुःखिताः॥ ५४

चुक्रुशू रुरुदुश्चैव त्राहि त्राहीति भाषणैः।
असिलोमबिडालाख्यौ निहतौ नृपसत्तम॥ ५५

अन्ये ये सैनिका राजन् सिंहेन भक्षिताश्च ते।
एवं ब्रुवन्तो राजानं तदा चक्रुश्च वैशसम्॥ ५६

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां महिषो दुर्मनास्तदा।
बभूव चिन्ताकुलितो विमना दुःखसंयुतः॥ ५७

मारे गये उन दोनों दैत्योंको समरांगणमें गिरा हुआ देखकर शेष सम्पूर्ण सैनिकोंको सिंहने अपने पराक्रमद्वारा मार गिराया और कुछ दानवोंको खा डाला और इस प्रकार उस युद्धभूमिको दानवोंसे रहित कर दिया। कुछ अंग-भंग हुए मूर्ख दानव दुःखी होकर महिषासुरके पास पहुँचे और 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा कहते हुए वे चीखने-चिल्लाने तथा रोने लगे—'हे नृपश्रेष्ठ! असिलोमा और बिडालाख्य दोनों ही मारे गये। हे राजन्! अन्य जो भी सैनिक थे, उन्हें सिंह खा गया' ऐसा कहते हुए उन्होंने राजाको दुःखमें डाल दिया॥ ५३—५६॥

उनकी बात सुनकर महिषासुर खिन्नमनस्क, चिन्तासे व्याकुल, उदास तथा दुःखी हो गया॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
असिलोमबिडालाख्यवधवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

महिषासुरका रणभूमिमें आना तथा देवीसे प्रणय-याचना करना

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा क्रोधयुक्तो नराधिपः।
दारुकं प्राह तरसा रथमानय मेऽद्भुतम्॥ १

सहस्रखरसंयुक्तं पताकाध्वजभूषितम्।
आयुधैः संयुतं शुभ्रं सुचक्रं चारुकूबरम्॥ २

सूतोऽपि रथमानीय तमुवाच त्वरान्वितः।
राजन् रथोऽयमानीतो द्वारि तिष्ठति भूषितः॥ ३

सर्वायुधसमायुक्तो वरास्तरणसंयुतः।
आनीतं तं रथं ज्ञात्वा दानवेन्द्रो महाबलः॥ ४

मानुषं देहमास्थाय संग्रामे गन्तुमुद्यतः।
विचार्य मनसा चेति देवी मां प्रेक्ष्य दुर्मुखम्॥ ५

शृङ्गिणं महिषं नूनं विमना सा भविष्यति।
नारीणां च प्रियं रूपं तथा चातुर्यमित्यपि॥ ६

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी बात सुनकर राजा महिष क्रोधित हो उठा और उसने सारथिसे कहा—हजार गधोंसे जुते हुए, ध्वजा तथा पताकाओंसे सुशोभित, अनेक प्रकारके आयुधोंसे परिपूर्ण, सुन्दर चक्कों तथा जुएसे विभूषित तथा प्रकाशमान मेरा अद्भुत रथ तुरंत ले आओ॥ १-२॥

सारथिने भी तत्क्षण रथ लाकर उससे कहा—हे राजन्! सुसज्जित करके रथ ला दिया गया जो द्वारपर खड़ा है; यह सभी आयुधोंसे समन्वित तथा उत्तम आस्तरणोंसे युक्त है॥ ३$\frac{१}{२}$॥

रथके आनेकी बात सुनकर महाबली दानवराज महिष मनुष्यका रूप धारण करके युद्धभूमिमें जानेको तैयार हुआ। उसने अपने मनमें सोचा कि यदि मैं अपने महिषरूपमें जाऊँगा तो देवी मुझ शृंगयुक्त महिषको देखकर अवश्य उदास हो जायगी। स्त्रियोंको सुन्दर रूप और चातुर्य अत्यन्त प्रिय होता है। अतः आकर्षक रूप तथा चातुर्यसे सम्पन्न होकर मैं उसके

तस्माद्रूपं च चातुर्यं कृत्वा यास्यामि तां प्रति।
यथा मां वीक्ष्य सा बाला प्रेमयुक्ता भविष्यति॥ ७

ममापि च तदैव स्यात्सुखं नान्यस्वरूपतः।
इति सञ्चिन्त्य मनसा दानवेन्द्रो महाबलः॥ ८

त्यक्त्वा तन्माहिषं रूपं बभूव पुरुषः शुभः।
सर्वायुधधरः श्रीमांश्चारुभूषणभूषितः॥ ९

दिव्याम्बरधरः कान्तः पुष्पबाण इवापरः।
रथोपविष्टः केयूरस्रग्वी बाणधनुर्धरः॥ १०

सेनापरिवृतो देवीं जगाम मदगर्वितः।
मनोज्ञं रूपमास्थाय मानिनीनां मनोहरम्॥ ११

तमागतं समालोक्य दैत्यानामधिपं तदा।
बहुभिः संवृतं वीरैर्देवी शङ्खमवादयत्॥ १२

स शङ्खनिनदं श्रुत्वा जनविस्मयकारकम्।
समीपमेत्य देव्यास्तु तामुवाच हसन्निव॥ १३

देवि संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानो जनः किल।
नरो वाथ तथा नारी सुखं वाञ्छति सर्वथा॥ १४

सुखं संयोगजं नृणां नासंयोगे भवेदिह।
संयोगो बहुधा भिन्नस्तान्ब्रवीमि शृणुष्व ह॥ १५

भेदान्सुप्रीतिहेतूत्थान्स्वभावोत्थाननेकशः।
तत्र प्रीतिभवानादौ कथयामि यथामति॥ १६

मातापित्रोस्तु पुत्रेण संयोगस्तूत्तमः स्मृतः।
भ्रातुर्भ्रात्रा तथा योगः कारणान्मध्यमो मतः॥ १७

उत्तमस्य सुखस्यैव दातृत्वादुत्तमः स्मृतः।
तस्मादल्पसुखस्यैव प्रदातृत्वाच्च मध्यमः॥ १८

पास जाऊँगा, जिससे मुझे देखते ही वह युवती प्रेमयुक्त—मोहित हो जायगी। मुझे भी इसी स्थितिमें सुख होगा, अन्य किसी स्वरूपसे नहीं॥ ४—७½॥

मनमें ऐसा विचार करके महाबली वह दानवेन्द्र महिषरूप छोड़कर एक सुन्दर पुरुष बन गया। वह सभी प्रकारके आयुधको धारण किये हुए था, वह ऐश्वर्यसम्पन्न था, वह सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत था, उसने दिव्य वस्त्र धारण कर रखे थे। केयूर और हार पहने तथा हाथमें धनुष-बाण धारण किये रथपर बैठा हुआ वह कान्तिमान् दैत्य दूसरे कामदेवके सदृश प्रतीत हो रहा था। मानिनी सुन्दरियोंका भी मन हर लेनेवाला ऐसा सुन्दर रूप बनाकर वह मदोन्मत्त दैत्य अपनी विशाल सेनाके साथ देवीकी ओर चला॥ ८—११॥

अनेक वीरोंसे घिरे हुए उस दैत्यराज महिषासुरको आया हुआ देखकर देवीने अपना शंख बजाया॥ १२॥

लोगोंको आश्चर्यचकित कर देनेवाली उस शंखध्वनिको सुनकर भगवतीके पास आकर वह दैत्य हँसता हुआ उनसे कहने लगा—॥ १३॥

हे देवि! इस परिवर्तनशील जगत्‌में रहनेवाला व्यक्ति वह स्त्री अथवा पुरुष चाहे कोई भी हो, सब प्रकारसे सुख ही चाहता है। इस लोकमें सुख मनुष्योंको संयोगमें ही प्राप्त होता है, वियोगमें सुख होता ही नहीं। संयोग भी अनेक प्रकारका होता है। मैं उन भेदोंको बताता हूँ, सुनो। कहीं उत्तम प्रीतिके कारण संयोग हो जाता है और कहीं स्वभावतः संयोग हो जाता है, इनमें सर्वप्रथम मैं प्रीतिसे उत्पन्न होनेवाले संयोगके विषयमें अपनी बुद्धिके अनुसार बता रहा हूँ॥ १४—१६॥

माता-पिताका पुत्रके साथ होनेवाला संयोग उत्तम कहा गया है। भाईका भाईके साथ संयोग किसी प्रयोजनसे होता है, अतः वह मध्यम माना गया है। उत्तम सुख प्रदान करनेके कारण पहले प्रकारके संयोगको उत्तम तथा उससे कम सुख प्रदान करनेके कारण [दूसरे प्रकारके] संयोगको मध्यम कहा गया है॥ १७-१८॥

नाविकानां तु संयोगः स्मृतः स्वाभाविको बुधैः।
विविधावृतचित्तानां प्रसङ्गपरिवर्तिनाम्॥ १९

अत्यल्पसुखदातृत्वात्कनिष्ठोऽयं स्मृतो बुधैः।
अत्युत्तमस्तु संयोगः संसारे सुखदः सदा॥ २०

नारीपुरुषयोः कान्ते समानवयसोः सदा।
संयोगो यः समाख्यातः स एवात्युत्तमः स्मृतः॥ २१

अत्युत्तमसुखस्यैव दातृत्वात्स तथाविधः।
चातुर्यरूपवेषाद्यैः कुलशीलगुणैस्तथा॥ २२

परस्परसमुत्कर्षः कथ्यते हि परस्परम्।
तं चेत्करोषि संयोगं वीरेण च मया सह॥ २३

अत्युत्तमसुखस्यैव प्राप्तिः स्यात्ते न संशयः।
नानाविधानि रूपाणि करोमि स्वेच्छया प्रिये॥ २४

इन्द्रादयः सुराः सर्वे संग्रामे विजिता मया।
रत्नानि यानि दिव्यानि भवनेऽस्मिन्ममाधुना॥ २५

भुंक्ष्व त्वं तानि सर्वाणि यथेष्टं देहि वा यथा।
पट्टराज्ञी भवाद्य त्वं दासोऽस्मि तव सुन्दरि॥ २६

वैरं त्यजेऽहं देवैस्तु तव वाक्यान्न संशयः।
यथा त्वं सुखमाप्नोषि तथाहं करवाणि वै॥ २७

आज्ञापय विशालाक्षि तथाहं प्रकरोम्यथ।
चित्तं मे तव रूपेण मोहितं चारुभाषिणि॥ २८

आतुरोऽस्मि वरारोहे प्राप्तस्ते शरणं किल।
प्रपन्नं पाहि रम्भोरु कामबाणैः प्रपीडितम्॥ २९

धर्माणामुत्तमो धर्मः शरणागतरक्षणम्।
त्वदीयोऽस्म्यसितापाङ्गि सेवकोऽहं कृशोदरि॥ ३०

मरणान्तं वचः सत्यं नान्यथा प्रकरोम्यहम्।
पादौ नतोऽस्मि तन्वङ्गि त्यक्त्वा नानायुधानि ते॥ ३१

विविध विचारोंसे युक्त चित्तवाले तथा प्रसंगवश एकत्रित नौकामें बैठे हुए लोगोंके मिलनेको विद्वानोंने स्वाभाविक संयोग कहा है। बहुत कम समयके लिये सुख प्रदान करनेके कारण विद्वानोंके द्वारा इसे कनिष्ठ संयोग कहा गया है॥ १९½॥

अत्युत्तम संयोग संसारमें सदा सुखदायक होता है। हे कान्ते! समान अवस्थावाले स्त्री-पुरुषका जो संयोग है, वही अत्युत्तम कहा गया है। अत्युत्तम सुख प्रदान करनेके कारण ही उसे उस प्रकारका संयोग कहा गया है। चातुर्य, रूप, वेष, कुल, शील, गुण आदिमें समानता रहनेपर परस्पर सुखकी अभिवृद्धि कही जाती है॥ २०—२२½॥

यदि तुम मुझ वीरके साथ संयोग करोगी तो तुम्हें अत्युत्तम सुखकी प्राप्ति होगी; इसमें सन्देह नहीं है। हे प्रिये! मैं अपनी रुचिके अनुसार अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता हूँ। मैंने इन्द्र आदि सभी देवताओंको संग्राममें जीत लिया है। मेरे भवनमें इस समय जो भी दिव्य रत्न हैं, उन सबका तुम उपभोग करो; अथवा इच्छानुसार उसका दान करो। अब तुम मेरी पटरानी बन जाओ। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारा दास हूँ॥ २३—२६॥

तुम्हारे कहनेसे मैं देवताओंसे वैर करना भी छोड़ दूँगा; इसमें सन्देह नहीं है। तुम्हें जैसे भी सुख मिलेगा, मैं वही करूँगा। हे विशालनयने! अब तुम मुझे आज्ञा दो और मैं उसका पालन करूँ। हे मधुरभाषिणि! मेरा मन तुम्हारे रूपपर मोहित हो गया है॥ २७-२८॥

हे सुन्दरि! मैं [तुम्हें पानेके लिये] व्याकुल हूँ, इसलिये इस समय तुम्हारी शरणमें आया हूँ। हे रम्भोरु! कामबाणसे आहत मुझ शरणागतकी रक्षा करो। शरणमें आये हुएकी रक्षा करना सभी धर्मोंमें उत्तम धर्म है। श्याम नेत्रोंवाली हे कृशोदरि! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मैं मरणपर्यन्त सत्य वचनका पालन करूँगा, इसके विपरीत नहीं करूँगा। हे तन्वंगि! नानाविध आयुधोंको त्यागकर मैं तुम्हारे चरणोंमें अवनत हूँ॥ २९—३१॥

दयां कुरु विशालाक्षि तप्तोऽस्मि काममार्गणैः।
जन्मप्रभृति चार्वङ्गि दैन्यं नाचरितं मया॥ ३२

ब्रह्मादीनीश्वरान्प्राप्य त्वयि तद्विदधाम्यहम्।
चरितं मम जानन्ति रणे ब्रह्मादयः सुराः॥ ३३

सोऽप्यहं तव दासोऽस्मि मन्मुखं पश्य भामिनि।

व्यास उवाच

इति ब्रुवाणं तं दैत्यं देवी भगवती हि सा॥ ३४

प्रहस्य सस्मितं वाक्यमुवाच वरवर्णिनी।

देव्युवाच

नाहं पुरुषमिच्छामि परमं पुरुषं विना॥ ३५

तस्य चेच्छास्म्यहं दैत्य सृजामि सकलं जगत्।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याहं प्रकृतिः शिवा॥ ३६

तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्।
जडाहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना॥ ३७

अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा।
न ग्राम्यसुखवाञ्छा मे कदाचिदपि जायते॥ ३८

मूर्खस्त्वमसि मन्दात्मन् यत्स्त्रीसङ्गं चिकीर्षसि।
नरस्य बन्धनार्थाय शृङ्खला स्त्री प्रकीर्तिता॥ ३९

लोहबद्धोऽपि मुच्येत स्त्रीबद्धो नैव मुच्यते।
किमिच्छसि च मन्दात्मन् मूत्रागारस्य सेवनम्॥ ४०

शमं कुरु सुखाय त्वं शमात्सुखमवाप्स्यसि।
नारीसङ्गे महद्दुःखं जानन्किं त्वं विमुह्यसि॥ ४१

त्यज वैरं सुरैः सार्धं यथेष्टं विचरावनौ।
पातालं गच्छ वा कामं जीवितेच्छा यदस्ति ते॥ ४२

अथवा कुरु संग्रामं बलवत्यस्मि साम्प्रतम्।
प्रेषिताहं सुरैः सर्वैस्तव नाशाय दानव॥ ४३

हे विशालाक्षि! मैं कामदेवके बाणोंद्वारा सन्तप्त हो रहा हूँ, अतः तुम मेरे ऊपर दया करो। हे सुन्दरि! जन्मसे लेकर आजतक मैंने ब्रह्मा आदि देवताओंके समक्ष भी दीनता नहीं प्रदर्शित की, किंतु तुम्हारे समक्ष आज उसे प्रकट कर रहा हूँ। ब्रह्मा आदि देवता समरांगणमें मेरे चरित्रको जानते हैं। हे भामिनि! वही मैं आज तुम्हारी दासता स्वीकार करता हूँ, मेरी ओर देखो॥ ३२-३३½ ॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहते हुए उस दैत्य महिषासुरसे हँसकर अनुपम सौन्दर्यमयी भगवती मुसकानके साथ यह वचन कहने लगीं॥ ३४½ ॥

देवी बोलीं—मैं परमपुरुषके अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषको नहीं चाहती। हे दैत्य! मैं उनकी इच्छाशक्ति हूँ, मैं ही सारे संसारकी सृष्टि करती हूँ। वे विश्वात्मा मुझे देख रहे हैं; मैं उनकी कल्याणमयी प्रकृति हूँ। निरन्तर उनके सांनिध्यके कारण ही मुझमें शाश्वत चेतना है। वैसे तो मैं जड़ हूँ, किंतु उन्हींके संयोगसे मैं चेतनायुक्त हो जाती हूँ जैसे चुम्बकके संयोगसे साधारण लोहेमें भी चेतना उत्पन्न हो जाती है॥ ३५—३७½ ॥

मेरे मनमें कभी भी विषयभोगकी इच्छा नहीं होती। हे मन्दबुद्धि! तुम मूर्ख हो जो कि स्त्रीसंग करना चाहते हो; पुरुषको बाँधनेके लिये स्त्री जंजीर कही गयी है। लोहेसे बँधा हुआ मनुष्य बन्धनमुक्त हो भी सकता है, किंतु स्त्रीके बन्धनमें बँधा हुआ प्राणी कभी नहीं छूटता। हे मूर्ख! मूत्रागार (गुह्य अंग)-का सेवन क्यों करना चाहते हो? सुखके लिये मनमें शान्ति धारण करो। शान्तिसे ही तुम सुख प्राप्त कर सकोगे। स्त्रीसंगसे बहुत दुःख मिलता है—इस बातको जानते हुए भी तुम अज्ञानी क्यों बनते हो?॥ ३८—४१ ॥

तुम देवताओंके साथ वैरभाव छोड़ दो और पृथ्वीपर इच्छानुसार विचरण करो। यदि जीवित रहनेकी तुम्हारी अभिलाषा हो तो पाताललोक चले जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। इस समय मुझमें पूर्ण शक्ति विद्यमान है। हे दानव! सभी देवताओंने तुम्हारा नाश करनेके लिये मुझे यहाँ भेजा है॥ ४२-४३ ॥

सत्यं ब्रवीमि येनाद्य त्वया वचनसौहृदम्।
दर्शितं तेन तुष्टास्मि जीवन्गच्छ यथासुखम्॥ ४४

सतां सप्तपदी मैत्री तेन मुञ्चामि जीवितम्।
मरणेच्छास्ति चेद्युद्धं कुरु वीर यथासुखम्॥ ४५

हनिष्यामि महाबाहो त्वामहं नात्र संशयः।

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा दानवः काममोहितः॥ ४६

उवाच श्लक्ष्णया वाचा मधुरं वचनं ततः।
बिभेम्यहं वरारोहे त्वां प्रहर्तुं वरानने॥ ४७

कोमलां चारुसर्वाङ्गीं नारीं नरविमोहिनीम्।
जित्वा हरिहरादींश्च लोकपालांश्च सर्वशः॥ ४८

किं त्वया सह युद्धं मे युक्तं कमललोचने।
रोचते यदि चार्वङ्गि विवाहं कुरु मां भज॥ ४९

नोचेद् गच्छ यथेष्टं ते देशं यस्मात्समागता।
नाहं त्वां प्रहरिष्यामि यतो मैत्री कृता त्वया॥ ५०

हितमुक्तं शुभं वाक्यं तस्माद् गच्छ यथासुखम्।
का शोभा मे भवेदन्ते हत्वा त्वां चारुलोचनाम्॥ ५१

स्त्रीहत्या बालहत्या च ब्रह्महत्या दुरत्यया।
गृहीत्वा त्वां गृहं नूनं गच्छाम्यद्य वरानने॥ ५२

तथापि मे फलं न स्याद् बलाद्भोगसुखं कुतः।
प्रब्रवीमि सुकेशि त्वां विनयावनतो यतः॥ ५३

पुरुषस्य सुखं न स्यादृते कान्तामुखाम्बुजात्।
तत्तथैव हि नारीणां न स्याच्च पुरुषं विना॥ ५४

मैं तुमसे यह सत्य कह रही हूँ, तुमने वाणीद्वारा सौहार्दपूर्ण भाव प्रदर्शित किया है, अतः मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। अब तुम जीवित रहते ही सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ। केवल सात पग साथ चलनेपर ही सज्जनोंमें मैत्री हो जाती है, इसी कारण मैं तुम्हें जीवित छोड़ दे रही हूँ। हे वीर! यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुम मेरे साथ आनन्दसे युद्ध कर सकते हो। हे महाबाहो! मैं तुम्हें युद्धमें मार डालूँगी; इसमें संशय नहीं है॥ ४४-४५$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर कामसे मोहित दानव [पुनः] मधुर वाणीमें मीठी बातें करने लगा—हे सुन्दरि! हे सुमुखि! कोमल, सुन्दर अंगोंवाली तथा पुरुषोंको मोह लेनेवाली तुझ युवतीके ऊपर प्रहार करनेमें मुझे भय लगता है। हे कमललोचने! विष्णु, शिव आदि बड़े-बड़े देवताओं और सब लोकपालोंपर विजय प्राप्त करके क्या अब तुम्हारे साथ मेरा युद्ध करना उचित होगा?॥ ४६—४८$\frac{१}{२}$॥

हे सुन्दर अंगोंवाली! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो मेरे साथ विवाह कर लो और मेरा सेवन करो; अन्यथा तुम जहाँसे आयी हो, उसी देशमें इच्छानुसार चली जाओ। मैं तुम्हारे साथ मित्रता कर चुका हूँ, इसलिये तुमपर प्रहार नहीं करूँगा। यह मैंने तुम्हारे लिये हितकर तथा कल्याणकारी बात बतायी है; इसलिये तुम सुखपूर्वक यहाँसे चली जाओ। सुन्दर नेत्रोंवाली तुझ रमणीका वध करनेसे मेरी कौन-सी गरिमा बढ़ जायगी? स्त्रीहत्या, बालहत्या और ब्रह्महत्याका पाप बहुत ही जघन्य होता है॥ ४९—५१$\frac{१}{२}$॥

हे वरानने! वैसे तो मैं तुम्हें बलपूर्वक पकड़कर अपने घर निश्चितरूपसे ले जा सकता हूँ, किंतु बलप्रयोगसे मुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा, उसमें भोगसुख कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव हे सुकेशि! मैं बहुत विनीतभावसे तुमसे कह रहा हूँ कि जैसे पुरुषको अपनी प्रियाके मुखकमलके बिना सुख नहीं मिलता, उसी प्रकार स्त्रियोंको भी पुरुषके बिना सुख नहीं मिलता॥ ५२—५४॥

संयोगे सुखसम्भूतिर्वियोगे दुःखसम्भवः।
कान्तासि रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥ ५५

चातुर्यं त्वयि किं नास्ति यतो मां न भजस्यहो।
तवोपदिष्टं केनेदं भोगानां परिवर्जनम्॥ ५६

वञ्चितासि प्रियालापे वैरिणा केनचित्त्विह।
मुञ्चाग्रहमिमं कान्ते कुरु कार्यं सुशोभनम्॥ ५७

सुखं तव ममापि स्याद्विवाहे विहिते किल।
विष्णुर्लक्ष्म्या सहाभाति सावित्र्या च सहात्मभूः॥ ५८

रुद्रो भाति च पार्वत्या शच्या शतमखस्तथा।
का नारी पतिहीना च सुखं प्राप्नोति शाश्वतम्॥ ५९

येन त्वमसितापाङ्गि न करोषि पतिं शुभम्।
कामः क्वाद्य गतः कान्ते यस्त्वां बाणैः सुकोमलैः॥ ६०

मादनैः पञ्चभिः कामं न ताडयति मन्दधीः।
मन्येऽहमिव कामोऽपि दयावांस्त्वयि सुन्दरि॥ ६१

अबलेति च मन्वानो न प्रेरयति मार्गणान्।
मनोभवस्य वैरं वा किमप्यस्ति मया सह॥ ६२

तेन च त्वय्यरालाक्षि न मुञ्चति शिलीमुखान्।
अथवा मेऽहितैर्देवैर्वारितोऽसौ झषध्वजः॥ ६३

सुखविध्वंसिभिस्तेन त्वयि न प्रहरत्यपि।
त्यक्त्वा मां मृगशावाक्षि पश्चात्तापं करिष्यसि॥ ६४

मन्दोदरीव तन्वङ्गि परित्यज्य शुभं नृपम्।
अनुकूलं पतिं पश्चात्सा चकार शठं पतिम्।
कामार्ता च यदा जाता मोहेन व्याकुलान्तरा॥ ६५

संयोगमें सुख उत्पन्न होता है और वियोगमें दुःख। तुम सुन्दर, रूपवती और सभी आभूषणोंसे अलंकृत हो। [यह सब होते हुये भी] तुझमें चतुरता क्यों नहीं है, जिससे तुम मुझे स्वीकार नहीं कर रही हो? इस तरह भोगोंको छोड़ देनेका परामर्श तुम्हें किसने दिया है? हे मधुरभाषिणि! [ऐसा करके] किसी शत्रुने तुम्हें धोखा दिया है॥ ५५-५६$\frac{१}{२}$॥

हे कान्ते! अब तुम यह आग्रह छोड़ दो और अत्यन्त सुन्दर कार्य करनेमें तत्पर हो जाओ। विवाह सम्पन्न हो जानेपर तुम्हें और मुझे दोनोंको सुख प्राप्त होगा। विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, शंकर पार्वतीके साथ तथा इन्द्र शचीके साथ रहकर ही सुशोभित होते हैं। पतिके बिना कौन स्त्री चिरस्थायी सुख प्राप्त कर सकती है? हे सुन्दरि! [कौन-सा ऐसा कारण है] जिससे तुम मुझ-जैसे उत्तम पुरुषको अपना पति नहीं बना रही हो?॥ ५७—५९$\frac{१}{२}$॥

हे कान्ते! न जाने मन्दबुद्धि कामदेव इस समय कहाँ चला गया जो अपने अत्यन्त कोमल तथा मादक पंचबाणोंसे तुम्हें आहत नहीं कर रहा है। हे सुन्दरि! मुझे तो लगता है कि कामदेव भी तुम्हारे ऊपर दयालु हो गया है और तुम्हें अबला समझते हुए वह अपने बाण नहीं छोड़ रहा है। हे तिरछी चितवनवाली सुन्दरि! सम्भव है उस कामदेवको भी मेरे साथ कुछ शत्रुता हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर बाण न चलाता हो। अथवा यह भी हो सकता है कि मेरे सुखका नाश करनेवाले मेरे शत्रु देवताओंने उस कामदेवको मना कर दिया हो, इसीलिये वह तुम्हारे ऊपर [अपने बाणोंसे] प्रहार नहीं कर रहा है॥ ६०—६३$\frac{१}{२}$॥

हे मृगशावकके समान नेत्रोंवाली! मुझे त्यागकर तुम मन्दोदरीकी भाँति पश्चात्ताप करोगी, हे तन्वंगि! पतिरूपमें प्राप्त सुन्दर तथा अनुकूल राजाका त्याग करके बादमें वह मन्दोदरी जब कामार्त तथा मोहसे व्याकुल अन्तःकरणवाली हो गयी, तब उसने एक धूर्तको अपना पति बना लिया था॥ ६४-६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषद्वारा देवीप्रबोधनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

महिषासुरका देवीको मन्दोदरी नामक राजकुमारीका आख्यान सुनाना

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवी पप्रच्छ दानवम्।
का सा मन्दोदरी नारी कोऽसौ त्यक्तो नृपस्तया॥ १

शठः को वा नृपः पश्चात्तन्मे ब्रूहि कथानकम्।
विस्तरेण यथा प्राप्तं दुःखं वनितया पुनः॥ २

महिष उवाच

सिंहलो नाम देशोऽस्ति विख्यातः पृथिवीतले।
घनपादपसंयुक्तो धनधान्यसमृद्धिमान्॥ ३

चन्द्रसेनाभिधस्तत्र राजा धर्मपरायणः।
न्यायदण्डधरः शान्तः प्रजापालनतत्परः॥ ४

सत्यवादी मृदुः शूरस्तितिक्षुर्नीतिसागरः।
शास्त्रवित्सर्वधर्मज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठितः॥ ५

तस्य भार्या वरारोहा सुन्दरी सुभगा शुभा।
सदाचारातिसुमुखी पतिभक्तिपरायणा॥ ६

नाम्ना गुणवती कान्ता सर्वलक्षणसंयुता।
सुषुवे प्रथमे गर्भे पुत्रीं सा चातिसुन्दरीम्॥ ७

पिता चातीव सन्तुष्टः पुत्रीं प्राप्य मनोरमाम्।
मन्दोदरीति नामास्याः पिता चक्रे मुदान्वितः॥ ८

इन्दोः कलेव चात्यर्थं ववृधे सा दिने दिने।
दशवर्षा यदा जाता कन्या चातिमनोहरा॥ ९

वरार्थं नृपतिश्चिन्तामवाप च दिने दिने।
मद्रदेशाधिपः शूरः सुधन्वा नाम पार्थिवः॥ १०

तस्य पुत्रोऽतिमेधावी कम्बुग्रीवोऽतिविश्रुतः।
ब्राह्मणैः कथितो राज्ञे स युक्तोऽस्या वरः शुभः॥ ११
सर्वलक्षणसम्पन्नः सर्वविद्यार्थपारगः।

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] उसका यह वचन सुनकर भगवतीने उस दानवसे पूछा—वह स्त्री मन्दोदरी कौन थी और वह राजा कौन था, जिसे उसने त्याग दिया था?॥ १॥

बादमें उसने जिसे पति बनाया, वह धूर्त राजा कौन था? उस स्त्रीको पुनः जिस प्रकार दुःख मिला हो, वह कथानक विस्तारपूर्वक बताओ॥ २॥

महिषासुर बोला—पृथ्वीतलपर विख्यात सिंहल नामक एक देश है। उसमें बहुत ही घने-घने वृक्ष हैं और वह धन-धान्यसे समृद्ध है॥ ३॥

वहाँ चन्द्रसेन नामका राजा राज्य करता था, जो बड़ा धर्मात्मा, शान्तस्वभाव, प्रजापालनमें तत्पर, न्यायपूर्वक शासन-कार्य करनेवाला, सत्यवादी, मृदु स्वभाववाला, वीर, सहिष्णु, नीतिशास्त्रका सागर, शास्त्रवेत्ता, सब धर्मोंका ज्ञाता और धनुर्वेदमें अत्यन्त प्रवीण था॥ ४-५॥

उसकी भार्या भी रूपवती, सुन्दरी, सौभाग्यशालिनी, सद्‌गुणी, सदाचारिणी, अत्यन्त सुन्दर मुखवाली, पतिभक्तिमें लीन रहनेवाली, मनोहर और सभी उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थी। उसका नाम गुणवती था। उसने प्रथम गर्भसे एक अति सुन्दर कन्याको जन्म दिया॥ ६-७॥

उस मनोरम कन्याको पाकर पिता बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े हर्षके साथ उसका नाम मन्दोदरी रखा॥ ८॥

वह कन्या चन्द्रमाकी कलाके समान दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अत्यन्त मनोहारिणी वह कन्या जब दस वर्षकी हुई, तब उसके वरके लिये राजा चन्द्रसेन प्रतिदिन चिन्तित रहने लगे॥ ९$\frac{१}{२}$॥

उस समय मद्रदेशके अधिपति सुधन्वा नामवाले एक पराक्रमी नरेश थे। कम्बुग्रीव नामसे अति विख्यात उनका एक पुत्र था, जो बहुत मेधावी था। ब्राह्मणोंने राजा चन्द्रसेनसे कहा कि कम्बुग्रीव उस कन्याके योग्य वर है। वह सुन्दर, सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा समस्त विद्याओंमें पारंगत है॥ १०-११$\frac{१}{२}$॥

राज्ञा पृष्टा तदा राज्ञी नाम्ना गुणवती प्रिया॥ १२

कम्बुग्रीवाय कन्यां स्वां दास्यामि वरवर्णिनीम्।
सा तु पत्युर्वचः श्रुत्वा पुत्रीं पप्रच्छ सादरम्॥ १३

विवाहं ते पिता कर्तुं कम्बुग्रीवेण वाञ्छति।
तच्छ्रुत्वा मातरं प्राह वाक्यं मन्दोदरी तदा॥ १४

नाहं पतिं करिष्यामि नेच्छा मेऽस्ति परिग्रहे।
कौमारं व्रतमास्थाय कालं नेष्यामि सर्वथा॥ १५

स्वातन्त्र्येण चरिष्यामि तपस्तीव्रं सदैव हि।
पारतन्त्र्यं परं दुःखं मातः संसारसागरे॥ १६

स्वातन्त्र्यान्मोक्षमित्याहुः पण्डिताः शास्त्रकोविदाः।
तस्मान्मुक्ता भविष्यामि पत्या मे न प्रयोजनम्॥ १७

विवाहे वर्तमाने तु पावकस्य च सन्निधौ।
वक्तव्यं वचनं सम्यक्त्वदधीनास्मि सर्वदा॥ १८

श्वश्रूदेवरवर्गाणां दासीत्वं श्वशुरालये।
पतिचित्तानुवर्तित्वं दुःखाद्दुःखतरं स्मृतम्॥ १९

कदाचित्पतिरन्यां वा कामिनीं च भजेद्यदि।
तदा महत्तरं दुःखं सपत्नीसम्भवं भवेत्॥ २०

तदेर्ष्या जायते पत्यौ क्लेशश्चापि भवेदथ।
संसारे क्व सुखं मातर्नारीणां च विशेषतः॥ २१

स्वभावात्परतन्त्राणां संसारे स्वप्नधर्मिणि।
श्रुतं मया पुरा मातरुत्तानचरणात्मजः॥ २२

उत्तमः सर्वधर्मज्ञो ध्रुवादवरजो नृपः।
पत्नीं धर्मपरां साध्वीं पतिभक्तिपरायणाम्॥ २३
अपराधं विना कान्तां त्यक्तवान्विपिने प्रियाम्।

तब राजाने गुणवती नामवाली अपनी प्रिय रानीसे पूछा—[मेरा विचार है कि] मैं अपनी सुन्दर पुत्री मन्दोदरीको कम्बुग्रीवको सौंप दूँ॥ १२½ ॥

पतिकी यह बात सुनकर उस रानीने अपनी पुत्रीसे आदरपूर्वक पूछा—तुम्हारे पिता कम्बुग्रीवके साथ तुम्हारा विवाह करना चाहते हैं॥ १३½ ॥

तब यह सुनकर मन्दोदरीने मातासे यह वचन कहा—मैं पति नहीं बनाऊँगी, विवाह करनेमें मेरी अभिरुचि नहीं है। मैं सदा कौमार्यव्रतका आश्रय लेकर अपना जीवन व्यतीत करूँगी। मैं स्वतन्त्रतापूर्वक सदा कठोर तप करूँगी। हे माता! संसारसागरमें परतन्त्रता परम दुःख है। स्वतन्त्रतासे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है—ऐसा शास्त्रोंके ज्ञाता पण्डितजनोंने कहा है, अतएव मैं बन्धनसे मुक्त रहूँगी, मुझे पतिसे कोई भी प्रयोजन नहीं है॥ १४—१७॥

विवाह होते समय अग्निके साक्ष्यमें [प्रतिज्ञारूपमें] यह वचन कहना पड़ता है—'[हे पतिदेव!] अब मैं सदाके लिये पूर्णरूपसे आपके अधीन हो चुकी हूँ।' इसके अतिरिक्त ससुरालमें सास तथा देवर आदि लोगोंकी दासी बनकर रहना तथा सदा पतिके अनुकूल रहना अत्यन्त दुःखदायक बताया गया है॥ १८-१९॥

कहीं यदि पतिने अन्य स्त्रीके साथ विवाह कर लिया तब तो सौतसे मिलनेवाला महान् दुःख उपस्थित हो जाता है। उस समय पतिके प्रति ईर्ष्याभाव उत्पन्न हो जाता है, कलह भी होने लगता है। हे माता! संसारमें सुख कहाँ है? और विशेष करके स्वभावसे ही परतन्त्र नारियोंके लिये इस स्वप्नधर्मा संसारमें सुख है ही नहीं॥ २०-२१½ ॥

हे माता! मैंने सुना है कि प्राचीनकालमें राजा उत्तानपादके एक 'उत्तम' नामक पुत्र थे, जो समस्त धर्मोंके ज्ञाता एवं ध्रुवके कनिष्ठ भ्राता थे। उन्होंने अपनी धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, पतिके प्रति भक्तिभाव रखनेवाली, प्रिय तथा सुन्दर पत्नीको बिना किसी अपराधके ही वनमें छोड़ दिया था॥ २२-२३½ ॥

एवंविधानि दुःखानि विद्यमाने तु भर्तरि॥ २४

कालयोगान्मृते तस्मिन्नारी स्याद्दुःखभाजनम्।
वैधव्यं परमं दुःखं शोकसन्तापकारकम्॥ २५

परोषितपतित्वेऽपि दुःखं स्यादधिकं गृहे।
मदनाग्निविदग्धायाः किं सुखं पतिसङ्गजम्॥ २६

तस्मात्पतिर्न कर्तव्यः सर्वथेति मतिर्मम।
एवं प्रोक्ता तदा माता पतिं प्राह नृपात्मजा॥ २७

न च वाञ्छति भर्तारं कौमारव्रतधारिणी।
व्रतजाप्यपरा नित्यं संसाराद्विमुखी सदा॥ २८

न काङ्क्षति पतिं कर्तुं बहुदोषविचक्षणा।
भार्याया भाषितं श्रुत्वा तथैव संस्थितो नृपः॥ २९

विवाहो न कृतः पुत्र्या ज्ञात्वा भावविवर्जिताम्।
वर्तमाना गृहेष्वेव पित्रा मात्रा च रक्षिता॥ ३०

यौवनस्याङ्कुरा जाता नारीणां कामदीपकाः।
तथापि सा वयस्याभिः प्रेरितापि पुनः पुनः॥ ३१

चकमे न पतिं कर्तुं ज्ञानार्थपदभाषिणी।
एकदोद्यानदेशे सा विहर्तुं बहुपादपे॥ ३२

जगाम सुमुखी प्रेम्णा सैरन्ध्रीगणसेविता।
रेमे कृशोदरी तत्रापश्यत्कुसुमिता लताः॥ ३३

पुष्पाणि चिन्वती रम्या वयस्याभिः समावृता।
कोसलाधिपतिस्तत्र मार्गे दैववशात्तदा॥ ३४

आजगाम महावीरो वीरसेनोऽतिविश्रुतः।
एकाकी रथमारूढः कतिचित्सेवकैर्वृतः॥ ३५
सैन्यं च पृष्ठतस्तस्य समायाति शनैः शनैः।

पतिके रहते हुए भी इस प्रकारके अनेक दुःख स्त्रीको सहने पड़ते हैं। दैवयोगसे उसकी मृत्यु हो जानेपर स्त्रीको [विधवा बनकर] दुःख उठाना पड़ता है; क्योंकि वैधव्य परम दुःखमय होता है तथा नानाविध शोक एवं संताप उत्पन्न करता रहता है। पतिके परदेश चले जानेपर कामदेवकी अग्निमें जलती हुई स्त्रीको घरमें अत्यधिक दुःख सहना पड़ता है, तो फिर उसे पतिसंगजनित क्या सुख प्राप्त हुआ? अतएव मेरा तो यही मत है कि स्त्रियोंको विवाह कभी नहीं करना चाहिये॥ २४—२६½ ॥

[पुत्रीके] ऐसा कहनेपर उसकी माताने अपने पतिसे कहा—कौमारव्रत धारण करनेकी इच्छावाली वह राजकुमारी पतिकी कामना नहीं करती है। संसारसे विरक्त रहकर वह सदा व्रत और जपमें तत्पर रहना चाहती है। [पतिसंगजनित] अनेक दोषोंको जाननेवाली वह कन्या विवाह नहीं करना चाहती॥ २७-२८½ ॥

अपनी भार्याकी बात सुनकर राजा चन्द्रसेन भी चुप रह गये। अपनी पुत्रीको विवाहकी इच्छासे रहित भाववाली जानकर राजाने भी उसका विवाह नहीं किया। वह मन्दोदरी भी माता-पिताके द्वारा भलीभाँति रक्षित होती हुई घरपर ही रहने लगी। कुछ समय पश्चात् नारियोंमें कामोत्तेजना उत्पन्न करनेवाले यौवन-सम्बन्धी लक्षण उसमें विकसित होने लगे। उस समय उसकी सखियोंने विवाहके लिये उसे बार-बार प्रेरित किया, फिर भी ज्ञान-तत्त्वकी बातें कहकर वह मन्दोदरी पति बनानेके लिये तैयार न हुई॥ २९—३१½ ॥

एक दिन सुन्दर मुखवाली वह कन्या अपनी दासियोंके साथ बहुत-से वृक्षोंसे सुशोभित उद्यानमें आनन्दपूर्वक विहार करनेके लिये गयी। उस कृशोदरीने वहाँ पुष्पित लताओंको देखा और अपनी सखियोंके साथ पुष्प चुनती हुई वह वहींपर क्रीडाविहार करने लगी॥ ३२-३३½ ॥

उसी समय उस मार्गसे संयोगवश कोसलनरेश वीरसेन आ गये। वे महान् शूरवीर तथा बहुत विख्यात थे। वे रथपर अकेले ही आरूढ़ थे तथा उनके साथ कुछ सेवक भी थे और सेना उनके पीछे धीरे-धीरे चली आ रही थी॥ ३४-३५½ ॥

दृष्टस्तस्या वयस्याभिर्दूरतः पार्थिवस्तदा॥ ३६

मन्दोदर्यै तथा प्रोक्तं समायाति नरः पथि।
रथारूढो महाबाहू रूपवान्मदनोऽपरः॥ ३७

मन्येऽहं नृपतिः कश्चित्प्राप्तो भाग्यवशादिह।
एवं ब्रुवत्यां तत्रासौ कोसलेन्द्रः समागतः॥ ३८

दृष्ट्वा तामसितापाङ्गीं विस्मयं प्राप भूपतिः।
उत्तीर्य स रथात्तूर्णं पप्रच्छ परिचारिकाम्॥ ३९

केयं बाला विशालाक्षी कस्य पुत्री वदाशु मे।
एवं पृष्टा तु सैरन्ध्री तमुवाच शुचिस्मिता॥ ४०

प्रथमं ब्रूहि मे वीर पृच्छामि त्वां सुलोचन।
कोऽसि त्वं किमिहायातः किं कार्यं वद साम्प्रतम्॥ ४१

इति पृष्टस्तु सैरन्ध्र्या तामुवाच महीपतिः।
कोसलो नाम देशोऽस्ति पृथिव्यां परमाद्भुतः॥ ४२

तस्य पालयिता चाहं वीरसेनाभिधः प्रिये।
वाहिनी पृष्ठतः कामं समायाति चतुर्विधा॥ ४३

मार्गभ्रमादिह प्राप्तं विद्धि मां कोसलाधिपम्।

सैरन्ध्र्युवाच

चन्द्रसेनसुता राजन्नाम्ना मन्दोदरी किल॥ ४४

उद्याने रन्तुकामेयं प्राप्ता कमललोचना।
श्रुत्वा तद्भाषितं राजा प्रत्युवाच प्रसाधिकाम्॥ ४५

सैरन्ध्रि चतुरासि त्वं राजपुत्रीं प्रबोधय।
ककुत्स्थवंशजश्चाहं राजास्मि चारुलोचने॥ ४६

गान्धर्वेण विवाहेन पतिं मां कुरु कामिनि।
न मे भार्यास्ति सुश्रोणि वयसोऽद्भुतयौवनाम्॥ ४७

वाञ्छामि रूपसम्पन्नां सुकुलां कामिनीं किल।
अथवा ते पिता मह्यं विधिना दातुमर्हति॥ ४८
अनुकूलः पतिश्चाहं भविष्यामि न संशयः।

तभी उसकी सखियोंने दूरसे ही राजाको देख लिया और [उनमेंसे किसी युवतीने] मन्दोदरीसे कहा—विशाल भुजाओंवाला, रूपवान् तथा दूसरे कामदेवके समान एक पुरुष रथपर सवार होकर इस मार्गसे चला आ रहा है। मैं तो यह मानती हूँ कि यहाँ भाग्यवश कोई राजा ही आ गया है॥ ३६–३७$\frac{१}{२}$ ॥

वह युवती ऐसा कह रही थी कि इतनेमें कोसल-नरेश वीरसेन वहाँ आ गये। उस श्याम कटाक्षोंवाली मन्दोदरीको देखकर राजा विस्मयमें पड़ गये। रथसे तुरंत उतरकर उन्होंने दासीसे पूछा—विशाल नेत्रोंवाली यह युवती कौन है और किसकी पुत्री है? मुझे शीघ्र बताओ॥ ३८–३९$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार पूछे जानेपर मधुर मुसकानवाली दासीने उनसे कहा—सुन्दर नेत्रोंवाले हे वीर! पहले आप मुझे बतायें, मैं आपसे पूछ रही हूँ कि आप कौन हैं? यहाँ किसलिये आये हैं और यहाँ आपका कौन-सा कार्य है? [यह सब] अभी बतानेकी कृपा करें॥ ४०–४१ ॥

दासीके यह पूछनेपर राजाने उससे कहा—पृथ्वीपर अत्यन्त अद्भुत कोसल नामक एक देश है। हे प्रिये! वीरसेन नामवाला मैं उसी देशका शासक हूँ। मेरी विशाल चतुरंगिणी सेना पीछे-पीछे आ रही है। मार्ग भूल जानेके कारण यहाँ आये हुए मुझको तुम कोसलदेशका राजा समझो॥ ४२–४३$\frac{१}{२}$ ॥

सैरन्ध्री बोली—हे राजन्! यह महाराज चन्द्रसेनकी पुत्री है और इसका नाम मन्दोदरी है। कमलसदृश नेत्रोंवाली यह राजकुमारी विहार करनेकी इच्छासे इस उपवनमें आयी है॥ ४४$\frac{१}{२}$ ॥

उसकी बात सुनकर राजाने उस सैरन्ध्रीसे कहा—हे सैरन्ध्रि! तुम चतुर हो, अतः राजकुमारीको समझा दो। 'हे सुनयने! मैं ककुत्स्थवंशमें उत्पन्न एक राजा हूँ। अतः हे कामिनि! तुम गान्धर्व-विवाहके द्वारा मुझे पति बना लो। हे सुश्रोणि! मेरी कोई भार्या नहीं है। मैं भी अद्भुत यौवनावस्थासे सम्पन्न, रूपवती और कुलीन युवतीकी आकांक्षा रखता हूँ। अथवा [यदि गान्धर्व-विवाह पसन्द न हो तो] तुम्हारे पिता विधि-विधानसे तुमको मुझे सौंप दें। मैं सर्वथा तुम्हारे अनुकूल पति होऊँगा; इसमें सन्देह नहीं है'॥ ४५—४८$\frac{१}{२}$ ॥

महिष उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सैरन्ध्री प्राह तां तदा॥ ४९

प्रहस्य मधुरं वाक्यं कामशास्त्रविशारदा।
मन्दोदरि नृपः प्राप्तः सूर्यवंशसमुद्भवः॥ ५०

रूपवान्बलवान्कान्तो वयसा त्वत्समः पुनः।
प्रीतिमान्नृपतिर्जातस्त्वयि सुन्दरि सर्वथा॥ ५१

पितापि ते विशालाक्षि परितप्यति सर्वथा।
विवाहकालं ते ज्ञात्वा त्वां च वैराग्यसंयुताम्॥ ५२

इत्याहास्मान्स नृपतिर्विनिःश्वस्य पुनः पुनः।
पुत्रीं प्रबोधयन्त्वेतां सैरन्ध्र्यः सेवने रताः॥ ५३

वक्तुं शक्ता वयं न त्वां हठधर्मरतां पुनः।
भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मोऽब्रवीन्मनुः॥ ५४

भर्तारं सेवमाना वै नारी स्वर्गमवाप्नुयात्।
तस्मात्कुरु विशालाक्षि विवाहं विधिपूर्वकम्॥ ५५

मन्दोदर्युवाच

नाहं पतिं करिष्यामि चरिष्ये तप अद्भुतम्।
निवारय नृपं बाले किं मां पश्यति निस्त्रपः॥ ५६

सैरन्ध्र्युवाच

दुर्जयो देवि कामोऽसौ कालोऽसौ दुरतिक्रमः।
तस्मान्मे वचनं पथ्यं कर्तुमर्हसि सुन्दरि॥ ५७

अन्यथा व्यसनं नूनमापतेदिति निश्चयः।
इति तस्या वचः श्रुत्वा कन्योवाचाथ तां सखीम्॥ ५८

यद्यद्भवेत्तद्भवतु दैवयोगादसंशयम्।
न विवाहं करिष्येऽहं सर्वथा परिचारिके॥ ५९

महिष उवाच

इति तस्यास्तु निर्बन्धं ज्ञात्वा प्राह नृपं पुनः।
गच्छ राजन् यथाकामं नेयमिच्छति सत्पतिम्॥ ६०

महिष बोला—तब वीरसेनका वचन सुनकर कामशास्त्रमें प्रवीण सैरन्ध्रीने हँसकर उस मन्दोदरीसे मधुर वाणीमें कहा—हे मन्दोदरि! सूर्यवंशमें उत्पन्न ये राजा यहाँ आये हैं। ये रूपवान्, बलवान् तथा आयुमें तुम्हारे ही तुल्य हैं। हे सुन्दरि! ये राजा सम्यक् प्रकारसे तुझमें प्रेमासक्त हो गये हैं॥ ४९—५१॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम्हारी विवाहयोग्य अवस्था हो गयी है और तुम वैराग्यभावसे युक्त रहती हो—यह जानकर तुम्हारे पिता भी सदा चिन्तित रहते हैं। उन महाराजने बार-बार लंबी साँस लेकर हमलोगोंसे यह कहा था—'हे दासियो! तुमलोग सदा उसकी सेवामें संलग्न रहती हो, अतः तुम्हीं लोग मेरी इस पुत्रीको समझाओ।' किंतु हमलोग तुझ हठधर्मपरायणासे कुछ भी कहनेमें समर्थ नहीं हैं। [फिर भी हम तुम्हें बता देना चाहती हैं कि] पतिकी सेवा ही स्त्रियोंके लिये परम धर्म है—ऐसा मनुने कहा है। पतिकी सेवा करनेवाली स्त्री स्वर्ग प्राप्त कर लेती है। अतएव हे विशाल नेत्रोंवाली! तुम विधिपूर्वक विवाह कर लो॥ ५२—५५॥

मन्दोदरी बोली—मैं पति नहीं बनाऊँगी; मैं अद्भुत तप करूँगी। हे बाले! तुम इस राजाको मना कर दो; यह निर्लज्ज मेरी ओर क्यों देख रहा है?॥ ५६॥

सैरन्ध्री बोली—हे देवि! यह कामदेव अजेय है तथा कालका अतिक्रमण भी अत्यन्त कठिन है। अतएव हे सुन्दरि! तुम मेरे इस कल्याणकारी वचनको मान लेनेकी कृपा करो। अन्यथा [तुम्हारे ऊपर कभी-न-कभी] संकट अवश्य पड़ेगा; यह मेरा दृढ़ विश्वास है॥ ५७½॥

उसकी यह बात सुनकर राजकुमारीने उस सखीसे कहा—हे परिचारिके! दैवयोगसे जो भी होनेवाला है वह हो, किंतु मैं विवाह बिलकुल नहीं करूँगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५८-५९॥

महिष बोला—उस राजकुमारीका निश्चित विचार जानकर सैरन्ध्रीने राजासे पुनः कहा—हे राजन्! आप इच्छानुसार यहाँसे जा सकते हैं। यह राजकुमारी उत्तम पति बनाना नहीं चाहती॥ ६०॥

नृपस्तु तद्वचः श्रुत्वा निर्गतः सह सेनया।
कोसलान्विमना भूत्वा कामिनीं प्रति निःस्पृहः॥ ६१

उसकी बात सुनकर राजा वीरसेन उदास हो गये और उस राजकुमारीके प्रति आसक्तिरहित होकर अपनी सेनाके साथ कोसलदेशके लिये प्रस्थित हो गये॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देवीमहिषसंवादे राजपुत्रीमन्दोदरीवृत्तवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

दुर्धर, त्रिनेत्र, अन्धक और महिषासुरका वध

महिष उवाच

तस्यास्तु भगिनी कन्या नाम्ना चेन्दुमती शुभा।
विवाहयोग्या सञ्जाता सुरूपावरजा यदा॥ १

तस्या विवाहः संवृत्तः सञ्जातश्च स्वयंवरः।
राजानो बहुदेशीयाः सङ्गतास्तत्र मण्डपे॥ २

तया वृतो नृपः कश्चिद् बलवान् रूपसंयुतः।
कुलशीलसमायुक्तः सर्वलक्षणसंयुतः॥ ३

तदा कामातुरा जाता विटं वीक्ष्य नृपं तु सा।
चकमे दैवयोगात्तु शठं चातुर्यभूषितम्॥ ४

पितरं प्राह तन्वङ्गी विवाहं कुरु मे पितः।
इच्छा मेऽद्य समुद्भूता दृष्ट्वा मद्राधिपं त्विह॥ ५

चन्द्रसेनोऽपि तच्छ्रुत्वा पुत्र्या यद्भाषितं रहः।
प्रसन्नेन च मनसा तत्कार्ये तत्परोऽभवत्॥ ६

तमाहूय नृपं गेहे विवाहविधिना ददौ।
कन्यां मन्दोदरीं तस्मै पारिबर्हं तथा बहु॥ ७

चारुदेष्णोऽपि तां प्राप्य सुन्दरीं मुदितोऽभवत्।
जगाम स्वगृहं तुष्टो राजापि सहितः स्त्रिया॥ ८

महिष बोला—उस मन्दोदरीकी इन्दुमती नामकी एक छोटी बहन थी, जो समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा अत्यन्त रूपवती थी। जब वह विवाहके योग्य हुई, तब उसके विवाहकी तैयारी होने लगी। उसका स्वयंवर रचाया गया, स्वयंवरके मण्डपमें अनेक देशोंके राजा एकत्रित हुए॥ १-२॥

इन्दुमतीने उनमेंसे एक बलशाली, रूपवान्, कुलीन, शीलवान् तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न राजाका वरण कर लिया॥ ३॥

उसी समय वह मन्दोदरी दैवयोगसे एक धूर्त, शठ तथा चातुर्यसम्पन्न राजाको देखकर कामातुर हो उठी और उसपर मोहित हो गयी॥ ४॥

उस कोमलांगीने अपने पितासे कहा—हे पिताजी! अब आप मेरा भी विवाह कर दीजिये। मद्रदेशके राजाको यहाँ देखकर अब मेरी भी विवाह करनेकी इच्छा हो गयी है॥ ५॥

पुत्रीने एकान्तमें अपने पितासे जो कुछ कहा था, उसे सुनकर राजा चन्द्रसेन प्रसन्नमनसे उसके भी विवाहकार्यकी व्यवस्थामें संलग्न हो गये॥ ६॥

तत्पश्चात् मद्रदेशके उन राजाको अपने घर बुलाकर उन्होंने वैवाहिक विधिके अनुसार उन्हें अपनी कन्या मन्दोदरी सौंप दी और बहुत-सा वैवाहिक उपहार प्रदान किया॥ ७॥

मद्रनरेश चारुदेष्ण भी उस सुन्दरीको पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और सन्तुष्ट होकर स्त्रीके साथ अपने घर चला गया॥ ८॥

रेमे नृपतिशार्दूलः कामिन्या बहुवासरान्।
कदाचिद्दासपत्न्या स रममाणो रहः किल॥ ९

सैरन्ध्र्या कथितं तस्यै तया दृष्टः पतिस्तथा।
उपालम्भं ददौ तस्मै स्मितपूर्वं रुषान्विता॥ १०

कदाचिदपि सामान्यां रहो रूपवतीं नृपः।
क्रीडयँल्लालयन्दृष्टः खेदं प्राप तदैव सा॥ ११

न ज्ञातोऽयं शठः पूर्वं यदा दृष्टः स्वयंवरे।
किं कृतं तु मया मोहाद्वञ्चिताहं नृपेण ह॥ १२

किं करोम्यद्य सन्तापं निर्लज्जे निर्घृणे शठे।
का प्रीतिरीदृशे पत्यौ धिगद्य मम जीवितम्॥ १३

अद्यप्रभृति संसारे सुखं त्यक्तं मया खलु।
पतिसम्भोगजं सर्वं सन्तोषोऽद्य मया कृतः॥ १४

अकर्तव्यं कृतं कार्यं तज्जातं दुःखदं मम।
देहत्यागः क्रियते चेद्धत्यातीव दुरत्यया॥ १५

पितृगेहं व्रजाम्याशु तत्रापि न सुखं भवेत्।
हास्ययोग्या सखीनां तु भवेयं नात्र संशयः॥ १६

तस्मादत्रैव संवासो वैराग्ययुतया मया।
कर्तव्यः कालयोगेन त्यक्त्वा कामसुखं पुनः॥ १७

महिष उवाच

इति सञ्चिन्त्य सा नारी दुःखशोकपरायणा।
स्थिता पतिगृहं त्यक्त्वा सुखं संसारजं ततः॥ १८

तस्मात्त्वमपि कल्याणि मामनादृत्य भूपतिम्।
अन्यं कापुरुषं मन्दं कामार्ता संश्रयिष्यसि॥ १९

राजाओंमें श्रेष्ठ वह चारुदेष्ण बहुत दिनोंतक उस कामिनीके साथ रमण करता रहा। एक दिन वह किसी दासीके साथ एकान्तमें रमण कर रहा था। सैरन्ध्रीने यह बात मन्दोदरीको बता दी और उसने स्वयं जाकर पतिको [उस स्थितिमें] देख लिया। तब उसने मुसकराकर क्रोधके साथ राजाको बहुत उपालम्भ दिया॥ ९-१०॥

इसके बाद पुनः किसी दिन मन्दोदरीने राजाको एक रूपवती दासीके साथ एकान्तमें क्रीड़ाविहार करते हुए देख लिया। [यह देखकर] उस समय उसे महान् कष्ट हुआ॥ ११॥

वह सोचने लगी कि जब मैंने इसे स्वयंवरमें देखा था, तब मैं इस शठके विषयमें ऐसा नहीं समझ पायी थी। मैंने मोहवश यह क्या कर डाला? इस राजाने तो मुझे ठग लिया॥ १२॥

अब मैं क्या करूँ; केवल सन्ताप ही मिला। ऐसे निर्लज्ज, निर्दयी और धूर्त पतिके प्रति प्रेम कैसे हो सकता है! अब मेरे जीवनको धिक्कार है॥ १३॥

आजसे मैं संसारमें पतिके साथ सहवाससे प्राप्त होनेवाले सारे सुखका त्याग कर रही हूँ; अब मैंने सन्तोष कर लिया॥ १४॥

मैंने वह काम कर डाला, जिसे मुझे नहीं करना चाहिये था, इसीलिये वह मेरे लिये कष्टदायक सिद्ध हुआ। अब यदि मैं देहत्याग करती हूँ तो वह दुस्तर आत्महत्याके समान होगा। यदि पिताके घर चली जाऊँ तो वहाँ भी सुख नहीं मिलेगा और वहाँपर मैं अपनी सखियोंकी हँसीका पात्र बनी रहूँगी; इसमें कोई संशय नहीं है। अतः वैराग्ययुक्त होकर भोगविलासके सुखका परित्याग करके कालयोगसे मुझे यहींपर निवास करना चाहिये॥ १५—१७॥

महिष बोला—ऐसा विचार करके वह नारी सांसारिक सुखका परित्याग करके दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रहती हुई अपने पतिके घरपर ही रह गयी॥ १८॥

अतः हे कल्याणि! उसी प्रकार तुम भी मुझ राजा पतिका अनादर करके पुनः कामातुर होनेपर किसी अन्य मूर्ख तथा कायर पुरुषका आश्रय ग्रहण करोगी॥ १९॥

वचनं कुरु मे तथ्यं नारीणां परमं हितम्।
अकृत्वा परमं शोकं लप्स्यसे नात्र संशयः॥ २०

देव्युवाच

मन्दात्मन् गच्छ पातालं युद्धं वा कुरु साम्प्रतम्।
हत्वा त्वामसुरान्सर्वान्गमिष्यामि यथासुखम्॥ २१

यदा यदा हि साधूनां दुःखं भवति दानव।
तदा तेषां च रक्षार्थं देहं सन्धारयाम्यहम्॥ २२

अरूपायाश्च मे रूपमजन्मायाश्च जन्म च।
सुराणां रक्षणार्थाय विद्धि दैत्य विनिश्चितम्॥ २३

सत्यं ब्रवीमि जानीहि प्रार्थिताहं सुरैः किल।
त्वद्वधार्थं हयारे त्वां हत्वा स्थास्यामि निश्चला॥ २४

तस्माद्युध्यस्व वा गच्छ पातालमसुरालयम्।
सर्वथा त्वां हनिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २५

व्यास उवाच

इत्युक्तः स तया देव्या धनुरादाय दानवः।
युद्धकामः स्थितस्तत्र संग्रामाङ्गणभूमिषु॥ २६

मुमोच तरसा बाणान्कर्णाकृष्टाञ्छिलाशितान्।
देवी चिच्छेद तान्बाणैः क्रोधान्मुक्तैरयोमुखैः॥ २७

तयोः परस्परं युद्धं सम्बभूव भयप्रदम्।
देवानां दानवानाञ्च परस्परजयैषिणाम्॥ २८

मध्ये दुर्धर आगत्य मुमोच च शिलीमुखान्।
देवीं प्रति विषासक्तान्कोपयन्नतिदारुणान्॥ २९

ततो भगवती क्रुद्धा तं जघान शितैः शरैः।
दुर्धरस्तु पपातोर्व्यां गतासुर्गिरिशृङ्गवत्॥ ३०

अतः स्त्रियोंके लिये परम हितकारी तथा सच्ची मेरी यह बात मान लो। इसे न मानकर तुम बहुत कष्ट उठाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ २०॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! अब तुम पाताललोक भाग जाओ अथवा मेरे साथ युद्ध करो। मैं तुम्हें तथा सभी असुरोंको मारकर सुखपूर्वक यहाँसे चली जाऊँगी॥ २१॥

हे दानव! जब-जब साधु पुरुषोंपर संकट आता है, तब-तब उनकी रक्षाके लिये मैं देह धारण करती हूँ॥ २२॥

हे दैत्य! वास्तवमें मैं निराकार और अजन्मा हूँ, तथापि देवताओंकी रक्षा करनेके लिये रूप और जन्म धारण करती हूँ; यह तुम निश्चित समझ लो॥ २३॥

मैं सत्य कहती हूँ कि देवताओंने तुम्हारा वध करनेके लिये मुझसे प्रार्थना की थी। हे महिष! तुझे मारकर मैं सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊँगी॥ २४॥

अतएव अब तुम मेरे साथ युद्ध करो अथवा असुरोंकी निवासभूमि पाताललोकको चले जाओ। अब मैं तुम्हें निश्चय ही मार डालूँगी, मैं यह बिलकुल सच कह रही हूँ॥ २५॥

व्यासजी बोले—देवीके ऐसा कहनेपर महिषासुर धनुष लेकर युद्ध करनेकी इच्छासे संग्रामभूमिमें डट गया॥ २६॥

वह पत्थरपर घिसकर नुकीले बनाये गये बाणोंको कानतक खींचकर बड़े वेगसे छोड़ने लगा। तब भगवतीने कुपित होकर अपने लौहमुख बाणोंसे उसके बाणोंको काट डाला॥ २७॥

अब देवी और दानव महिषमें भीषण संग्राम होने लगा। वह युद्ध अपनी-अपनी विजय चाहनेवाले देवताओं और दानवोंके लिये बड़ा भयदायक था॥ २८॥

उसी समय दुर्धर नामक दैत्य बीचमें आकर भगवतीको कुपित करता हुआ उनपर अतिशय दारुण और विषैले बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ २९॥

तब भगवतीने क्रोधित होकर उसपर तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा प्रहार किया, जिससे दुर्धर प्राणहीन होकर पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३०॥

तं तथा निहतं दृष्ट्वा त्रिनेत्रः परमास्त्रवित्।
आगत्य सप्तभिर्बाणैर्जघान परमेश्वरीम्॥ ३१

अनागतांस्तु चिच्छेद देवी तान्विशिखैः शरान्।
त्रिशूलेन त्रिनेत्रं तु जघान जगदम्बिका॥ ३२

अन्धकस्त्वाजगामाशु हतं दृष्ट्वा त्रिलोचनम्।
गदया लोहमय्याशु सिंहं विव्याध मस्तके॥ ३३

सिंहस्तु नखघातेन तं हत्वा बलवत्तरम्।
चखाद तरसा मांसमन्धकस्य रुषान्वितः॥ ३४

तान् रणे निहतान्वीक्ष्य दानवो विस्मयं गतः।
चिक्षेप तरसा बाणानतितीक्ष्णाञ्छिलाशितान्॥ ३५

द्विधा चक्रे शरान्देवी तानप्राप्ताञ्छिलीमुखैः।
गदया ताडयामास दैत्यं वक्षसि चाम्बिका॥ ३६

स गदाभिहतो मूर्च्छामवापामरबाधकः।
विषह्य पीडां पापात्मा पुनरागत्य सत्वरः॥ ३७

जघान गदया सिंहं मूर्ध्नि क्रोधसमन्वितः।
सिंहोऽपि नखघातेन तं ददार महासुरम्॥ ३८

विहाय पौरुषं रूपं सोऽपि सिंहो बभूव ह।
नखैर्विदारयामास देवीसिंहं मदोत्कटम्॥ ३९

तञ्च केसरिणं वीक्ष्य देवी क्रुद्धा ह्ययोमुखैः।
शरैरवाकिरत्तीक्ष्णैः क्रूरैराशीविषैरिव॥ ४०

त्यक्त्वा स हरिरूपं तु गजो भूत्वा मदस्रवः।
शैलशृङ्गं करे कृत्वा चिक्षेप चण्डिकां प्रति॥ ४१

दुर्धरको मृत देखकर शस्त्रोंका महान् ज्ञाता त्रिनेत्र रणभूमिमें आकर सात बाणोंसे भगवती परमेश्वरीपर आघात करने लगा॥ ३१॥

वे बाण देवीके पास पहुँच भी नहीं पाये थे कि बीचहीमें उन्होंने अपने बाणोंसे उन बाणोंको काट दिया। तत्पश्चात् जगदम्बाने अपने त्रिशूलसे त्रिनेत्रको मार डाला॥ ३२॥

तब त्रिनेत्रको मारा गया देखकर तुरंत अन्धक आ गया और उसने अपनी लौहमयी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया, किंतु सिंह क्रोधमें भरकर अपने तीक्ष्ण नखोंके प्रहारसे उस महान् बलशाली दानवका वध करके उसका मांस खाने लगा॥ ३३-३४॥

उन्हें रणमें मारा गया देखकर महिषासुरको बहुत आश्चर्य हुआ। अतएव वह और भी वेगके साथ अति तीक्ष्ण और पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण किये हुए बाणोंको छोड़ने लगा॥ ३५॥

किंतु भगवतीने उन बाणोंको अपने पास पहुँचनेके पहले ही अपने बाणोंसे काटकर उनके दो टुकड़े कर दिये। इसी समय जगदम्बाने महिषासुरके वक्षपर अपनी गदासे आघात किया॥ ३६॥

देवताओंको दुःख देनेवाला महिष गदासे घायल होकर मूर्च्छित हो गया। किंतु उस वेदनाको सहन करके वह पापी उठ खड़ा हुआ और पुनः तुरंत आकर उसने कोपाविष्ट होकर अपनी गदासे सिंहके मस्तकपर प्रहार कर दिया। तब सिंह भी नखोंके आघातसे उस महान् असुरको विदीर्ण करने लगा॥ ३७-३८॥

तब महिषासुरने मानवरूप त्यागकर सिंहका रूप धारण कर लिया और वह अपने नखोंसे भगवतीके मतवाले सिंहको चीरने लगा॥ ३९॥

उसे सिंहरूपमें देखकर भगवती क्रोधित हो उठीं और अपने लौहमुख, तीक्ष्ण, क्रूर एवं सर्पसदृश बाणोंसे उसे बींधने लगीं॥ ४०॥

तदनन्तर सिंहरूप त्यागकर महिषासुरने मद बहाते हुए हाथीका रूप धारण करके अपनी सूँड़से एक विशाल शैलशिखर उठाकर चण्डिकापर फेंका॥ ४१॥

आगच्छन्तं गिरेः शृङ्गं देवी बाणैः शिलाशितैः।
चकार तिलशः खण्डाञ्जहास जगदम्बिका॥ ४२

उत्पत्य च तदा सिंहस्तस्य मूर्ध्नि व्यवस्थितः।
नखैर्विदारयामास महिषं गजरूपिणम्॥ ४३

विहाय गजरूपं च बभूवाष्टापदी तथा।
हन्तुकामो हरिं कोपाद्दारुणो बलवत्तरः॥ ४४

तं वीक्ष्य शरभं देवी खड्गेन सा रुषान्विता।
उत्तमाङ्गे जघानाशु सोऽपि तां प्राहरत्तदा॥ ४५

तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम्।
माहिषं रूपमास्थाय शृङ्गाभ्यां प्राहरत्तदा॥ ४६

पुच्छप्रभ्रमणेनाशु शृङ्गाघातैर्महासुरः।
ताडयामास तन्वङ्गीं घोररूपो भयानकः॥ ४७

पुच्छेन पर्वताञ्छृङ्गे गृहीत्वा भ्रामयन्बलात्।
प्रेषयामास पापात्मा प्रहसन्परया मुदा॥ ४८

तामुवाच बलोन्मत्तस्तिष्ठ देवि रणाङ्गणे।
अद्याहं त्वां हनिष्यामि रूपयौवनभूषिताम्॥ ४९

मूर्खासि मदमत्ताद्य यन्मया सह सङ्गरम्।
करोषि मोहितातीव मृषा बलवती खरा॥ ५०

हत्वा त्वां निहनिष्यामि देवान्कपटपण्डितान्।
ये नारीं पुरतः कृत्वा जेतुमिच्छन्ति मां शठाः॥ ५१

देव्युवाच

मा गर्वं कुरु मन्दात्मंस्तिष्ठ तिष्ठ रणाङ्गणे।
करिष्यामि निरातङ्कान्हत्वा त्वां सुरसत्तमान्॥ ५२

पीत्वाद्य माधवीं मिष्टां शातयामि रणेऽधम।
देवानां दुःखदं पापं मुनीनां भयकारकम्॥ ५३

उस पर्वतशिखरको आते देखकर भगवती जगदम्बाने पत्थरपर घिसकर तेज किये गये बाणोंसे उसे तिल-तिल करके काट डाला और वे बड़ी जोरसे अट्टहास करने लगीं॥ ४२॥

उस समय देवीका सिंह उछलकर उसके मस्तकपर चढ़ बैठा और अपने तीक्ष्ण नखोंसे उस गजरूपधारी महिषको विदीर्ण करने लगा॥ ४३॥

अब महिषने क्रोधपूर्वक उस सिंहको मारनेके विचारसे हाथीका रूप त्यागकर अत्यन्त भीषण और बलवान् आठ पैरोंवाले शरभका रूप धारण कर लिया॥ ४४॥

उस शरभको देखकर जगदम्बाने अतिशय क्रोधमें भरकर उसके मस्तकपर खड्गसे आघात किया। तब उसने भी भगवतीपर प्रहार किया॥ ४५॥

अब उन दोनोंमें महाभयंकर युद्ध होने लगा। उसी समय उसने महिषरूप धारण करके अपनी सींगोंसे देवीके ऊपर आघात किया॥ ४६॥

विकराल रूपवाला तथा भयानक वह महान् असुर अपनी पूँछके घुमाने तथा सींगोंसे कोमल अंगोंवाली देवीपर प्रहार करने लगा॥ ४७॥

वह पापी अपनी पूँछसे पर्वतोंको सींगपर रखकर बड़े वेगसे घुमाता हुआ हँसकर अति प्रसन्नतापूर्वक भगवतीके ऊपर फेंकने लगा॥ ४८॥

बलसे उन्मत्त उस दानवने भगवतीसे कहा—हे देवि! ठहरो। रूप और यौवनसे सम्पन्न तुमको मैं आज मार डालूँगा॥ ४९॥

तुम मूर्ख हो जो कि मदमत्त हो मेरे साथ युद्ध कर रही हो। तुम अज्ञानवश अपनेको व्यर्थ ही बलवती समझकर मुखर हो रही हो॥ ५०॥

तुम्हें मारनेके बाद मैं उन सब कपटपण्डित देवताओंको मार डालूँगा, जो शठ देवतागण एक स्त्रीको आगे करके मुझे जीतना चाहते हैं॥ ५१॥

देवी बोलीं—अरे मूर्ख! व्यर्थ अभिमान मत करो, रणभूमिमें ठहर जाओ, ठहर जाओ। तुम्हें मारकर मैं देवताओंको निर्भय बना दूँगी॥ ५२॥

अरे अधम! मैं अभी मधुर मद्य पीकर देवताओंके लिये दुःखदायी और मुनियोंको भयभीत करनेवाले तुझ पापीको रणमें काट डालूँगी॥ ५३॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा चषकं हैमं गृहीत्वा सुरया युतम्।
पपौ पुनः पुनः क्रोधाद्धन्तुकामा महासुरम्॥ ५४

पीत्वा द्राक्षासवं मिष्टं शूलमादाय सत्वरा।
दुद्राव दानवं देवी हर्षयन्देवतागणान्॥ ५५

देवास्तां तुष्टुवुः प्रेम्णा चक्रुः कुसुमवर्षणम्।
जय जीवेति ते प्रोचुर्दुन्दुभीनाञ्च निःस्वनैः॥ ५६

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पिशाचोरगचारणाः।
किन्नराः प्रेक्ष्य संग्रामं मुदिता गगने स्थिताः॥ ५७

सोऽपि नानाविधान्देहान्कृत्वा कृत्वा पुनः पुनः।
मायामयाञ्जघानाजौ देवीं कपटपण्डितः॥ ५८

चण्डिकापि च तं पापं त्रिशूलेन बलाद्धृदि।
ताडयामास तीक्ष्णेन क्रोधादरुणलोचना॥ ५९

ताडितोऽसौ पपातोर्व्यां मूर्च्छामाप मुहूर्तकम्।
पुनरुत्थाय चामुण्डां पद्भ्यां वेगादताडयत्॥ ६०

विनिहत्य पदाघातैर्जहास च मुहुर्मुहुः।
रुराव दारुणं शब्दं देवानां भयकारकम्॥ ६१

ततो देवी सहस्रारं सुनाभं चक्रमुत्तमम्।
करे कृत्वा जगादोच्चैः संस्थितं महिषासुरम्॥ ६२

पश्य चक्रं मदान्धाद्य तव कण्ठनिकृन्तनम्।
क्षणमात्रं स्थिरो भूत्वा यमलोकं व्रजाधुना॥ ६३

इत्युक्त्वा दारुणं चक्रं मुमोच जगदम्बिका।
शिरश्छिन्नं रथाङ्गेन दानवस्य तदा रणे॥ ६४

सुस्राव रुधिरं चोष्णं कण्ठनालाद् गिरेर्यथा।
गैरिकाद्यरुणं प्रौढं प्रवाहमिव नैर्झरम्॥ ६५

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर क्रोधपूर्वक उस दैत्यको मार डालनेके विचारसे भगवती मद्यपूर्ण सोनेका पात्र लेकर बारम्बार उसे पीने लगीं॥ ५४॥

उस मीठे द्राक्षारसको पीकर भगवती बड़े वेगसे अपना त्रिशूल उठाकर देवताओंको हर्षित करती हुई उस दानवपर झपटीं॥ ५५॥

उस समय देवता प्रेमपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे और पुष्पवर्षा करने लगे। वे दुन्दुभियोंकी ध्वनिके साथ देवीकी जय हो—ऐसा बार-बार कहने लगे॥ ५६॥

सभी ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पिशाच, नाग, चारण और किन्नरगण आकाशमण्डलमें स्थित होकर उस युद्धको देखकर आनन्दित हो रहे थे॥ ५७॥

कपटकार्यमें प्रवीण वह महिषासुर रणभूमिमें बार-बार विविध प्रकारके मायामय शरीर धारण करके भगवतीपर प्रहार करने लगा॥ ५८॥

तब क्रोधसे लाल नेत्र करके चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण त्रिशूलसे उस पापीके हृदयदेशपर बलपूर्वक आघात किया॥ ५९॥

उससे आहत होकर महिषासुर भूमिपर गिर पड़ा और मूर्च्छित हो गया, किंतु मुहूर्तभर बाद पुनः उठकर अपने पैरोंसे वेगपूर्वक देवी चामुण्डाको मारने लगा। इस प्रकार पदप्रहारोंसे देवीको चोट पहुँचाकर वह बारम्बार हँसने लगा और देवताओंको भयभीत कर देनेवाली भीषण ध्वनि करके चिल्लाने लगा॥ ६०-६१॥

तदनन्तर भगवतीने हजार अरों और सुन्दर नाभिवाला एक उत्कृष्ट चक्र हाथमें लेकर अपने समक्ष खड़े महिषासुरसे उच्च स्वरमें कहा—अरे मदान्ध! तुम्हारे गलेको काट डालनेवाले इस चक्रकी ओर देखो। तनिक देर और ठहरकर अब तुम यमलोकके लिये प्रस्थान कर दो॥ ६२-६३॥

ऐसा कहकर जगदम्बाने युद्धभूमिमें उस दारुण चक्रको चला दिया। तब चक्रसे उस दानवका सिर कट गया। उस समय उसके कण्ठकी नलीसे इस प्रकार उष्ण रक्त बहने लगा, जैसे गेरू आदिसे युक्त लाल पानीका झरना बड़े वेगके साथ पर्वतसे गिर रहा हो। [मस्तक कट जानेपर] उस दानवका

कबन्धस्तस्य दैत्यस्य भ्रमन्वै पतितः क्षितौ।
जयशब्दश्च देवानां बभूव सुखवर्धनः॥ ६६

धड़ घूमता हुआ भूमिपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंके [मुखसे] सुखकी वृद्धि करनेवाला विजयघोष होने लगा॥ ६४—६६॥

सिंहस्त्वतिबलस्तत्र पलायनपरानथ।
दानवान्भक्षयामास क्षुधार्त इव सङ्गरे॥ ६७

अब भगवतीका महाबली सिंह मानो भूखसे व्याकुल होकर रणभूमिमें भागते हुए दानवोंको खाने लगा॥ ६७॥

मृते च महिषे क्रूरे दानवा भयपीडिताः।
मृतशेषाश्च ये केचित्पातालं ते ययुर्नृप॥ ६८

हे नृप! क्रूर महिषासुरके मर जानेपर जो कोई दानव मरनेसे शेष बच गये थे, वे भयसे सन्त्रस्त होकर पाताल चले गये॥ ६८॥

आनन्दं परमं जग्मुर्देवास्तस्मिन्निपातिते।
मुनयो मानवाश्चैव ये चान्ये साधवः क्षितौ॥ ६९

उसके मर जानेपर भूमण्डलपर जो भी देवता, मुनिगण, मनुष्य और साधुजन थे, वे परम आनन्दित हो गये॥ ६९॥

चण्डिकापि रणं त्यक्त्वा शुभे देशेऽथ संस्थिता।
देवास्तत्राययुः शीघ्रं स्तोतुकामाः सुखप्रदाम्॥ ७०

भगवती चण्डिका भी रणभूमि छोड़कर एक पवित्र स्थानमें विराजमान हो गयीं। देवता भी उन सुख प्रदान करनेवाली भगवतीकी स्तुति करनेकी इच्छासे शीघ्र ही वहाँ आ पहुँचे॥ ७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषासुरवधो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति

व्यास उवाच

अथ प्रमुदिताः सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
महिषं निहतं दृष्ट्वा तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्॥ १

व्यासजी बोले—महिषासुरका संहार देखकर इन्द्र आदि प्रधान देवता परम प्रसन्न हुए और वे जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ १॥

देवा ऊचुः

ब्रह्मा सृजत्यवति विष्णुरिदं महेशः
शक्त्या तवैव हरते ननु चान्तकाले।
ईशा न तेऽपि च भवन्ति तया विहीना-
स्तस्मात्त्वमेव जगतः स्थितिनाशकर्त्री॥ २

देवता बोले—हे देवि! आपकी ही शक्तिसे ब्रह्मा इस जगत्का सृजन करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं और शिवजी प्रलयकालमें संहार करते हैं। आपकी शक्तिसे रहित हो जानेपर वे कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अतः जगत्का सृजन, पालन और संहार करनेवाली आप ही हैं॥ २॥

कीर्तिर्मतिः स्मृतिगती करुणा दया त्वं
श्रद्धा धृतिश्च वसुधा कमलाजपा च।
पुष्टिः कलाथ विजया गिरिजा जया त्वं
तुष्टिः प्रमा त्वमसि बुद्धिरुमा रमा च॥ ३

इस संसारमें कीर्ति, मति, स्मृति, गति, करुणा, दया, श्रद्धा, धृति, वसुधा, कमला, अजपा, पुष्टि, कला, विजया, गिरिजा, जया, तुष्टि, प्रमा, बुद्धि, उमा, रमा,

विद्या क्षमा जगति कान्तिरपीह मेधा
सर्वं त्वमेव विदिता भुवनत्रयेऽस्मिन्।
आभिर्विना तव तु शक्तिभिराशु कर्तुं
को वा क्षमः सकललोकनिवासभूमे॥ ४

त्वं धारणा ननु न चेदसि कूर्मनागौ
धर्तुं क्षमौ कथमिलामपि तौ भवेताम्।
पृथ्वी न चेत्त्वमसि वा गगने कथं स्था-
स्यत्येतदम्ब निखिलं बहुभारयुक्तम्॥ ५

ये वा स्तुवन्ति मनुजा अमरान्विमूढा
मायागुणैस्तव चतुर्मुखविष्णुरुद्रान्।
शुभ्रांशुवह्नियमवायुगणेशमुख्यान्
किं त्वामृते जननि ते प्रभवन्ति कार्ये॥ ६

ये जुह्वति प्रविततेऽल्पधियोऽम्ब यज्ञे
वह्नौ सुरान्समधिकृत्य हविः समृद्धम्।
स्वाहा न चेत्त्वमसि ते कथमापुरद्धा
त्वामेव किं न हि यजन्ति ततो हि मूढाः॥ ७

भोगप्रदासि भवतीह चराचराणां
स्वांशैर्ददासि खलु जीवनमेव नित्यम्।
स्वीयान्सुराञ्जननि पोषयसीह यद्व-
त्तद्वत्परानपि च पालयसीति हेतोः॥ ८

मातः स्वयं विरचितान्विपिने विनोदा-
द्वन्ध्यान्पलाशरहितांश्च कटूंश्च वृक्षान्।
नोच्छेदयन्ति पुरुषा निपुणाः कथञ्चि-
त्तस्मात्त्वमप्यतितरां परिपासि दैत्यान्॥ ९

यत्त्वं तु हंसि रणमूर्ध्नि शरैरराती-
न्देवाङ्गनासुरतकेलिमतीन्विदित्वा ।
देहान्तरेऽपि करुणारसमाददाना
तत्ते चरित्रमिदमीप्सितपूरणाय॥ १०

विद्या, क्षमा, कान्ति और मेधा—ये सब शक्तियाँ आप ही हैं। इस त्रिलोकीमें आप विख्यात हैं। सम्पूर्ण जगत्को आश्रय देनेवाली हे देवि! आपकी इन शक्तियोंके बिना कौन व्यक्ति कुछ भी स्वयं कर सकनेमें समर्थ है?॥ ३-४॥

हे अम्ब! धारणा शक्ति भी निश्चितरूपसे आप ही हैं, अन्यथा कच्छप और शेषनाग इस पृथ्वीको धारण कर सकनेमें कैसे समर्थ हो पाते? पृथ्वी-शक्ति भी आप ही हैं। यदि आप इस रूपमें न होतीं तो प्रचुर भारसे सम्पन्न यह सम्पूर्ण जगत् आकाशमें कैसे ठहर सकता था॥ ५॥

हे जननि! जो मनुष्य मायाके गुणोंसे प्रभावित होकर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, अग्नि, यम, वायु, गणेश आदि प्रमुख देवताओंकी स्तुति करते हैं, वे अज्ञानी ही हैं; क्योंकि क्या वे देवता भी आपकी कृपाशक्तिके बिना उन मनुष्योंको कार्य-फल प्रदान करनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ ६॥

हे अम्ब! जो लोग सुविस्तृत यज्ञमें देवताओंको अधिकृत करके अग्निमें पुष्कल आहुति देते हैं, वे मन्दमति हैं; क्योंकि यदि स्वाहाके रूपमें आप न होतीं, तो वे देवता हविर्द्रव्यको कैसे पाते? तब फिर वे मूढ़ आपका ही यजन क्यों नहीं करते?॥ ७॥

आप जगत्के चराचर प्राणियोंको भोग प्रदान करती हैं और अपने अंशोंसे उन्हें नित्य जीवन देती हैं। हे जननि! जिस प्रकार आप अपने प्रिय देवताओंका पोषण करती हैं, उसी प्रकार अपने शत्रुओंका भी पालन करती हैं॥ ८॥

हे माता! बुद्धिमान् पुरुष विनोदके लिये उद्यानमें लगाये गये वृक्षोंमेंसे कुछ वृक्षोंके फल और पत्तोंसे रहित हो जाने अथवा उन वृक्षोंका रस कड़ुवा निकल जानेपर भी उन्हें कभी भी नहीं काटते, उसी प्रकार आप भी [अपने ही बनाये हुए] दैत्योंकी भलीभाँति रक्षा करती हैं॥ ९॥

करुणारससे ओत-प्रोत हृदयवाली आप रणभूमिमें बाणोंद्वारा शत्रुओंका जो संहार करती हैं, वह भी उनका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये ही होता है; क्योंकि दूसरे जन्ममें देवांगनाओंके साथ क्रीड़ा-विहार करनेकी इच्छावाला उन्हें जानकर ही आपके द्वारा ऐसा किया जाता है; ऐसा आपका अद्भुत चरित्र है॥ १०॥

चित्रं त्वमी यदसुभी रहिता न सन्ति
त्वच्चिन्तितेन दनुजाः प्रथितप्रभावाः।
येषां कृते जननि देहनिबन्धनं ते
क्रीडारसस्तव न चान्यतरोऽत्र हेतुः॥ ११

प्राप्ते कलावहह दुष्टतरे च काले
न त्वां भजन्ति मनुजा ननु वञ्चितास्ते।
धूर्तैः पुराणचतुरैर्हरिशङ्कराणां
सेवापराश्च विहितास्तव निर्मितानाम्॥ १२

ज्ञात्वा सुरांस्तव वशानसुरार्दितांश्च
ये वै भजन्ति भुवि भावयुता विभग्नान्।
धृत्वा करे सुविमलं खलु दीपकं ते
कूपे पतन्ति मनुजा विजलेऽतिघोरे॥ १३

विद्या त्वमेव सुखदासुखदाप्यविद्या
मातस्त्वमेव जननार्तिहरा नराणाम्।
मोक्षार्थिभिस्तु कलिता किल मन्दधीभि-
र्नाराधिता जननि भोगपरैस्तथाज्ञैः॥ १४

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्यनिशं शरण्यं
पादाम्बुजं तव भजन्ति सुरास्तथान्ये।
तद्वै न येऽल्पमतयो मनसा भजन्ति
भ्रान्ताः पतन्ति सततं भवसागरे ते॥ १५

चण्डि त्वदङ्घ्रिजलजोत्थरजःप्रसादै-
र्ब्रह्मा करोति सकलं भुवनं भवादौ।
शौरिश्च पाति खलु संहरते हरस्तु
त्वां सेवते न मनुजस्त्विह दुर्भगोऽसौ॥ १६

वाग्देवता त्वमसि देवि सुरासुराणां
वक्तुं न तेऽमरवराः प्रभवन्ति शक्ताः।
त्वं चेन्मुखे वससि नैव यदैव तेषां
यस्माद्भवन्ति मनुजा न हि तद्विहीनाः॥ १७

हे माता! बड़ी विलक्षण बात तो यह है कि विख्यात प्रभावोंवाले उन दैत्योंका संहार जो आपके संकल्पमात्रसे ही सम्भव था, इसके लिये आपको अवतार लेना पड़ा। यह शरीर धारण करके आप वास्तवमें इसीके सहारे लीला करती हैं; इसमें कोई दूसरा कारण नहीं है॥ ११॥

जो मनुष्य इस विकराल कलिके उपस्थित होनेपर भी आपकी आराधना नहीं करते, अपितु आपके ही द्वारा निर्मित विष्णु, शिव आदि देवताओंकी उपासनामें तत्पर रहते हैं, वे लोग पुराण-चतुर धूर्तजनोंके द्वारा निश्चित रूपसे ठग लिये गये हैं॥ १२॥

यह जानकर भी कि देवता आपके अधीन हैं तथा दैत्योंके द्वारा छिन्न-भिन्न और प्रताड़ित किये जाते हैं—जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भूलोकमें अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे मानो हाथमें अत्यन्त प्रकाशमान दीपक लेकर भी किसी जलरहित भयानक कूपमें जा गिरते हैं॥ १३॥

हे माता! आप ही सुखदायिनी विद्या तथा दुःखदायिनी अविद्या हैं और आप ही मनुष्योंके जन्म-मृत्युका दुःख दूर करनेवाली हैं। हे जननि! मोक्षकी कामना करनेवाले लोग तो आपकी आराधना करते हैं, किंतु मन्दबुद्धि अज्ञानी तथा विषयभोगपरायण मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते॥ १४॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा अन्य देवतागण आपके शरणदायक चरणकमलकी निरन्तर उपासना करते हैं, किंतु जो अल्पबुद्धि मनुष्य भ्रमित होकर मनसे आपकी आराधना नहीं करते, वे संसार-सागरमें बार-बार गिरते हैं॥ १५॥

हे चण्डिके! आपके चरण-कमलसे उत्पन्न हुई धूलिके प्रभावसे ही ब्रह्मा सृष्टिके प्रारम्भमें सम्पूर्ण भुवनकी रचना करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और शिवजी संहार करते हैं। इस लोकमें जो मनुष्य आपकी उपासना नहीं करता, वह अभागा है॥ १६॥

हे देवि! आप ही देवताओं तथा दैत्योंकी वाग्देवता हैं। यदि आप मुखमें विराजमान न रहतीं, तो बड़े-बड़े देवता भी बोलनेमें समर्थ नहीं हो सकते थे। मुख होनेपर भी मनुष्य उस वाक्शक्तिके बिना बोल नहीं सकता॥ १७॥

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं
मीनो बभूव कमठः खलु सूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यश्छलकृद्धरायां
तान्सेवतां जननि मृत्युभयं न किं स्यात्॥ १८

शम्भोः पपात भुवि लिङ्गमिदं प्रसिद्धं
शापेन तेन च भृगोर्विपिने गतस्य।
तं ये नरा भुवि भजन्ति कपालिनं तु
तेषां सुखं कथमिहापि परत्र मातः॥ १९

योऽभूद् गजाननगणाधिपतिर्महेशा-
त्तं ये भजन्ति मनुजा वितथप्रपन्नाः।
जानन्ति ते न सकलार्थफलप्रदात्रीं
त्वां देवि विश्वजननीं सुखसेवनीयाम्॥ २०

चित्रं त्वयारिजनतापि दयार्द्रभावा-
द्धत्वा रणे शितशरैर्गमिता द्युलोकम्।
नोचेत्स्वकर्मनिचिते निरये नितान्तं
दुःखातिदुःखगतिमापदमापतेत्सा ॥ २१

ब्रह्मा हरश्च हरिरप्युत गर्वभावा-
ज्जानन्ति तेऽपि विबुधा न तव प्रभावम्।
केऽन्ये भवन्ति मनुजा विदितुं समर्थाः
सम्मोहितास्तव गुणैरमितप्रभावैः॥ २२

क्लिश्यन्ति तेऽपि मुनयस्तव दुर्विभाव्यं
पादाम्बुजं न हि भजन्ति विमूढचित्ताः।
सूर्याग्निसेवनपराः परमार्थतत्त्वं
ज्ञातं न तैः श्रुतिशतैरपि वेदसारम्॥ २३

हे जननि! महर्षि भृगुने कुपित होकर भगवान् विष्णुको शाप दे दिया, जिससे उन्हें पृथ्वीपर बारम्बार मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह और छली वामनका अवतार लेना पड़ा। तो फिर [एक ऋषिके शापसे अपनी रक्षा न कर पानेवाले ऐसे विष्णु आदि] उन देवताओंकी उपासना करनेवाले लोगोंको मृत्युका भय क्यों नहीं बना रहेगा?॥ १८॥

हे माता! सम्पूर्ण संसारमें यह बात प्रसिद्ध है कि भृगुमुनिके काननमें गये हुए भगवान् शिवका लिंग मुनिके शापके कारण कटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा था। अतः जो मनुष्य पृथ्वीपर उन कापालिक शिवको ही भजते हैं, उन्हें इस लोक तथा परलोकमें भी सुख कैसे प्राप्त हो सकता है?॥ १९॥

शिवसे जो गणोंके अधिपति गणेश उत्पन्न हुए हैं—उन गणेशको जो लोग भजते हैं, उनकी यह शरणागति व्यर्थ है। हे देवि! वे लोग सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली तथा सुखपूर्वक आराधनीय आप जगज्जननीको नहीं जानते हैं॥ २०॥

यह बड़ी विचित्र बात है कि आपने अपने शत्रु-दैत्योंपर भी दया करके उन्हें तीक्ष्ण बाणोंसे रणमें मारकर स्वर्गलोक भेज दिया। यदि आप ऐसा न करतीं तो वे अपने कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाले घोर नरकमें बड़े-से-बड़े दुःख और विपत्तिमें पड़ जाते॥ २१॥

जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवता भी अहंकारके कारण आपकी महिमा नहीं जानते, तब आपके अमित प्रभाववाले गुणोंसे मोहित तुच्छ मनुष्य आपकी महिमाको कैसे जान सकेंगे?॥ २२॥

जो मुनिगण आपके स्वरूपको बड़ी कठिनतासे ध्यानमें आनेवाला समझकर आपके चरणकमलकी उपासना नहीं करते; अपितु सूर्य, अग्नि आदिकी उपासनामें लगे रहते हैं, वे मूढ़बुद्धि अनेकविध कष्ट पाते हैं। समस्त श्रुतियोंके द्वारा प्रतिपादित वेदसारस्वरूप परमार्थतत्त्वको वे नहीं जान पाते॥ २३॥

---

* इस पुराणमें जगदम्बा पराशक्तिकी विशिष्टता प्रदर्शित करनेके लिये ही अन्य देवोंकी उपासनासे विरत रहनेकी बात कही गयी है। वैसे तो भगवती एवं ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवगण भी परमात्मप्रभुके ही स्वरूप हैं; उनमें कोई भेद नहीं है।

मन्ये गुणास्तव भुवि प्रथितप्रभावाः
कुर्वन्ति ये हि विमुखान्ननु भक्तिभावात्।
लोकान्स्वबुद्धिरचितैर्विविधागमैश्च
विष्ण्वीशभास्करगणेशपरान्विधाय ॥ २४

कुर्वन्ति ये तव पदाद्विमुखान्नराग्र्या-
न्स्वोक्तागमैर्हरिहरार्चनभक्तियोगैः ।
तेषां न कुप्यसि दयां कुरुषेऽम्बिके त्वं
तान्मोहमन्त्रनिपुणान्प्रथयस्यलं च ॥ २५

तुर्ये युगे भवति चातिबलं गुणस्य
तुर्यस्य तेन मथितान्यसदागमानि।
त्वां गोपयन्ति निपुणाः कवयः कलौ वै
त्वत्कल्पितान्सुरगणानपि संस्तुवन्ति ॥ २६

ध्यायन्ति मुक्तिफलदां भुवि योगसिद्धां
विद्यां पराञ्च मुनयोऽतिविशुद्धसत्त्वाः।
ते नाप्नुवन्ति जननीजठरे तु दुःखं
धन्यास्त एव मनुजास्त्वयि ये विलीनाः ॥ २७

चिच्छक्तिरस्ति परमात्मनि येन सोऽपि
व्यक्तो जगत्सु विदितो भवकृत्यकर्ता।
कोऽन्यस्त्वया विरहितः प्रभवत्यमुष्मिन्
कर्तुं विहर्तुमपि सञ्चलितुं स्वशक्त्या ॥ २८

तत्त्वानि चिद्विरहितानि जगद्विधातुं
किं वा क्षमाणि जगदम्ब यतो जडानि।
किं चेन्द्रियाणि गुणकर्मयुतानि सन्ति
देवि त्वया विरहितानि फलं प्रदातुम् ॥ २९

मैं तो यही समझता हूँ कि अद्‌भुत प्रभावोंवाले जो आपके सत्त्व, रज और तम गुण हैं, वे ही मनुष्योंको उन्हींकी अपनी ही बुद्धिद्वारा विरचित अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें उलझाकर उन्हें विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश आदिका उपासक बनाकर आपके भक्तिभावसे सर्वथा विमुख कर देते हैं ॥ २४ ॥

हे अम्बिके! जो लोग विष्णु तथा शिवकी पूजा और भक्तिसे परिपूर्ण शास्त्रोंके उपदेशद्वारा ब्राह्मणोंको आपके चरणोंसे विमुख कर देते हैं, उनके ऊपर भी आप क्रोध नहीं करती हैं, बल्कि दया ही करती हैं और इसके अतिरिक्त मोहन आदि मन्त्रोंके ज्ञाताओंको भी आप संसारमें बहुत प्रसिद्ध बना देती हैं ॥ २५ ॥

सत्ययुगमें सत्त्वगुणकी प्रबलता रहती है, अतः उस युगमें असत्-शास्त्रोंपर आस्था नहीं हो पाती। किंतु कलिमें तो कवित्वके अभिमानी लोग आपकी उपेक्षा करते हैं और आपहीके द्वारा बनाये गये देवताओंकी स्तुति करते हैं ॥ २६ ॥

इस पृथ्वीतलपर अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरणवाले जो सात्त्विक मुनिगण मुक्ति-फल प्रदान करनेवाली योगसिद्धा एवं पराविद्यास्वरूपिणी आप भगवतीका ध्यान करते हैं, वे पुनः माताके गर्भमें आकर कष्ट नहीं पाते। जो मनुष्य आपमें ध्यानमग्न हैं, वे धन्य हैं ॥ २७ ॥

आप चित्-शक्ति हैं और वही चित्-शक्ति परमात्मामें विद्यमान है, जिसके कारण वे भी [नाम और रूपसे] अभिव्यक्त होकर इस जगत्‌के सृजन, पालन एवं संहाररूपी कार्योंके कर्ताके रूपमें लोकोंमें प्रसिद्ध होते हैं। उन परमात्माके अतिरिक्त दूसरा कौन है, जो आपसे रहित होकर अपनी शक्तिसे इस जगत्‌का सृजन, पालन और संहार करनेमें समर्थ हो सकता है? ॥ २८ ॥

हे जगदम्बे! क्या चित्-शून्य तत्त्व जगत्‌की रचना करनेमें समर्थ हो सकते हैं? चूँकि तत्त्व जड़ हैं, अतः वे जगत्‌की रचनामें समर्थ नहीं हैं। हे देवि! यद्यपि इन्द्रियाँ गुण तथा कर्मसे युक्त हैं, फिर भी आपसे रहित होकर क्या वे फल प्रदान कर सकती हैं? ॥ २९ ॥

देवा मखेष्वपि हुतं मुनिभिः स्वभागं
गृह्णीयुरम्ब विधिवत्प्रतिपादितं किम्।
स्वाहा न चेत्त्वमसि तत्र निमित्तभूता
तस्मात्त्वमेव ननु पालयसीव विश्वम्॥ ३०

सर्वं त्वयेदमखिलं विहितं भवादौ
त्वं पासि वै हरिहरप्रमुखान्दिगीशान्।
कालेऽत्सि विश्वमपि ते चरितं भवाद्यं
जानन्ति नैव मनुजाः क्व नु मन्दभाग्याः॥ ३१

हत्वासुरं महिषरूपधरं महोग्रं
मातस्त्वया सुरगणः किल रक्षितोऽयम्।
कां ते स्तुतिं जननि मन्दधियो विदामो
वेदा गतिं तव यथार्थतया न जग्मुः॥ ३२

कार्यं कृतं जगति नो यदसौ दुरात्मा
वैरी हतो भुवनकण्टकदुर्विभाव्यः।
कीर्तिः कृता ननु जगत्सु कृपा विधेया-
प्यस्मांश्च पाहि जननि प्रथितप्रभावे॥ ३३

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तानुवाच मृदुस्वरा।
अन्यत्कार्यं च दुःसाध्यं ब्रुवन्तु सुरसत्तमाः॥ ३४

यदा यदा हि देवानां कार्यं स्यादतिदुर्घटम्।
स्मर्तव्याहं तदा शीघ्रं नाशयिष्यामि चापदम्॥ ३५

देवा ऊचुः

सर्वं कृतं त्वया देवि कार्यं नः खलु साम्प्रतम्।
यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः॥ ३६

हे माता! यदि आप यज्ञोंमें 'स्वाहा' के रूपमें निमित्त न बनतीं तो क्या देवगण उन यज्ञोंमें मुनियोंके द्वारा विधिवत् प्रदत्त आहुति-रूप यज्ञभाग प्राप्त करते? अतः यह निश्चय हो गया कि आप ही विश्वका पालन करती हैं॥ ३०॥

सृष्टिके प्रारम्भमें इस सम्पूर्ण जगत्की रचना आपने ही की है, आप ही विष्णु-शिव आदि प्रमुख देवताओं तथा दिक्पालोंकी रक्षा करती हैं और प्रलयकालमें आप ही सम्पूर्ण विश्वको अपनेमें विलीन कर लेती हैं। [हे देवि!] जब ब्रह्मा आदि देवता भी आपके आद्य चरित्रको नहीं जान पाते, तब मन्दभाग्य हम देवता उसे कैसे जान सकते हैं?॥ ३१॥

हे माता! आपने महिषका रूप धारण करनेवाले अत्यन्त उग्र असुरका वध करके इस देवसमुदायकी रक्षा की है। हे जननि! जब वेद भी यथार्थरूपसे आपकी गतिको नहीं जान पाये, तब हम मन्दबुद्धि देवता उसे कैसे जान सकते हैं, हम कैसे आपकी स्तुति करें?॥ ३२॥

विख्यात प्रभाववाली हे जननि! आपने जगत्में महान् कार्य किया है जो कि आपने संसारके अचिन्त्य कण्टकस्वरूप हमारे शत्रु दुरात्मा महिषासुरका वध कर दिया। ऐसा करके आपने सम्पूर्ण लोकोंमें अपनी कीर्ति स्थापित कर दी है, अब आप सारे संसारपर अनुग्रह करें और हमारी रक्षा करें॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर देवीने मधुर स्वरमें उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवतागण! इसके अतिरिक्त भी कोई दुःसाध्य कार्य हो तो उसे आपलोग बता दीजिये। जब-जब आप देवताओंके सामने कोई महान् दुःसाध्य कार्य उपस्थित हो, तब-तब आपलोग मेरा स्मरण कीजियेगा; मैं उस संकटको शीघ्र ही दूर कर दूँगी॥ ३४-३५॥

देवता बोले—हे देवि! इस समय आपने हमारा सारा कार्य पूर्ण कर दिया है जो कि आपके द्वारा हमारा शत्रु यह महिषासुर मार डाला गया॥ ३६॥

स्मरिष्यामो यथा तेऽम्ब सदैव पदपङ्कजम्।
तथा कुरु जगन्मातर्भक्तिं त्वय्यप्यचञ्चलाम्॥ ३७

अपराधसहस्राणि मातैव सहते सदा।
इति ज्ञात्वा जगद्योनिं न भजन्ते कुतो जनाः॥ ३८

द्वौ सुपर्णौ तु देहेऽस्मिंस्तयोः सख्यं निरन्तरम्।
नान्यः सखा तृतीयोऽस्ति योऽपराधं सहेत हि॥ ३९

तस्माज्जीवः सखायं त्वां हित्वा किं नु करिष्यति।
पापात्मा मन्दभाग्योऽसौ सुरमानुषयोनिषु॥ ४०

प्राप्य देहं सुदुष्प्रापं न स्मरेत्त्वां नराधमः।
मनसा कर्मणा वाचा ब्रूमः सत्यं पुनः पुनः॥ ४१

सुखे वाप्यथवा दुःखे त्वं नः शरणमद्भुतम्।
पाहि नः सततं देवि सर्वैस्तव वरायुधैः॥ ४२

अन्यथा शरणं नास्ति त्वत्पादाम्बुजरेणुतः।

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी तत्रैवान्तरधीयत।
विस्मयं परमं जग्मुर्देवास्तां वीक्ष्य निर्गताम्॥ ४३

हे अम्ब! हे जगज्जननि! अब आप हमारे मनमें अपने प्रति ऐसी अविचल भक्ति स्थापित कीजिये कि हम सदा आपके चरण-कमलका स्मरण करते रहें॥ ३७॥

माता ही [अपनी सन्तानके] हजारों अपराध सह सकती है—ऐसा समझकर लोग जगत्‌की उत्पत्तिस्वरूपा भगवतीकी उपासना क्यों नहीं करते?॥ ३८॥

इस देहरूपी वृक्षपर जीवात्मा और परमात्मारूपी दो पक्षी रहते हैं। उन दोनोंमें सर्वदा मित्रता बनी रहती है, किंतु उनका तीसरा सखा ऐसा कोई भी नहीं है, जो अपराधको सह सके। अतएव यह जीव आप-जैसे मित्रको त्यागकर क्या करेगा? देवताओं और मानवोंकी योनिमें वह प्राणी पापी, मन्दभागी और अधम है, जो अत्यन्त दुर्लभ देह पाकर भी आपका स्मरण नहीं करता॥ ३९-४०½॥

हम मन, वाणी और कर्मसे बार-बार यह सत्य कह रहे हैं कि सुख अथवा दुःख—प्रत्येक परिस्थितिमें एकमात्र आप ही हमारे लिये अद्भुत शरण हैं। हे देवि! आप अपने समस्त श्रेष्ठ आयुधोंद्वारा हमारी निरन्तर रक्षा करें। आपके चरणकमलोंकी धूलिको छोड़कर हमारे लिये कोई दूसरा शरण नहीं है॥ ४१-४२½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर भगवती जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब उन्हें अन्तर्हित देखकर देवता बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवीसान्त्वनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

देवीका मणिद्वीप पधारना तथा राजा शत्रुघ्नका भूमण्डलाधिपति बनना

जनमेजय उवाच

अथाद्भुतं वीक्ष्य मुने प्रभावं
देव्या जगच्छान्तिकरं परञ्च।
न तृप्तिरस्ति द्विजवर्य शृण्वतः
कथामृतं ते मुखपद्मजातम्॥ १

जनमेजय बोले—हे मुने! अब मैंने भगवतीके अत्यन्त अद्भुत तथा जगत्‌को शान्ति प्रदान करनेवाले प्रभावको तो देख लिया, फिर भी हे द्विजवर! आपके मुखारविन्दसे निकली हुई सुधामयी कथाको बार-बार

अन्तर्हितायां च तदा भवान्यां
चक्रुश्च किं देवपुरोगमास्ते।
देव्याश्चरित्रं परमं पवित्रं
दुरापमेवाल्पपुण्यैर्नराणाम् ॥ २

कस्तृप्तिमाप्नोति कथामृतेन
भिन्नोऽल्पभाग्यात्पटुकर्णरन्ध्रः ।
पीतेन येनामरतां प्रयाति
धिक्तान्नरान् ये न पिबन्ति सादरम्॥ ३

लीलाचरित्रं जगदम्बिकाया
रक्षान्वितं देवमहामुनीनाम्।
संसारवार्धेस्तरणं नराणां
कथं कृतज्ञा हि परित्यजेयुः॥ ४

मुक्ताश्च ये चैव मुमुक्षवश्च
संसारिणो रोगयुताश्च केचित्।
तेषां सदा श्रोत्रपुटैश्च पेयं
सर्वार्थदं वेदविदो वदन्ति॥ ५

तथा विशेषेण मुने नृपाणां
धर्मार्थकामेषु सदा रतानाम्।
मुक्ताश्च यस्मात्खलु तत्पिबन्ति
कथं न पेयं रहितैश्च तेभ्यः॥ ६

यैः पूजिता पूर्वभवे भवानी
सत्कुन्दपुष्पैरथ चम्पकैश्च।
बैल्वैर्दलैस्ते भुवि भोगयुक्ता
नृपा भवन्तीत्यनुमेयमेवम्॥ ७

ये भक्तिहीनाः समवाप्य देहं
तं मानुषं भारतभूमिभागे।
यैर्नार्चिता ते धनधान्यहीना
रोगान्विताः सन्ततिवर्जिताश्च॥ ८

सुनते हुए भी मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। [अब आप बतायें] भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर उन प्रधान देवताओंने क्या किया? देवीका यह परम पावन चरित्र मनुष्योंके अल्प पुण्योंसे प्राप्त हो सकना सर्वथा दुर्लभ ही है॥ १-२॥

अल्पभाग्यवाले मनुष्यको छोड़कर भगवतीके कथाश्रवणमें सदा तत्पर कर्णपुटवाला ऐसा कौन होगा जो देवीके कथामृतसे तृप्ति प्राप्त कर लेता है? जिस कथामृतका पान करनेसे मनुष्य अमरत्व प्राप्त कर लेता है, उसे जो आदरपूर्वक नहीं पीते, उन मनुष्योंको धिक्कार है॥ ३॥

भगवती जगदम्बाका लीलाचरित्र देवताओं और बड़े-बड़े मुनियोंके लिये भी रक्षाका परम साधन है। [यह लीलाचरित्र] मनुष्योंको संसारसागरसे पार करनेके लिये एक नौका है। कृतज्ञजन उस चरित्रको भला कैसे त्याग सकते हैं?॥ ४॥

जीवन्मुक्त तथा मोक्षकी कामना करनेवाले अथवा रोगग्रस्त जो कोई भी सांसारिक प्राणी हों, उन सबको चाहिये कि वे अपने कर्णपुटसे भगवतीके इस सर्वार्थदायक कथामृतका पान करते रहें—ऐसा वेदवेत्ता कहते हैं। हे मुने! धर्म, अर्थ और काममें तत्पर राजाओंको तो विशेष रूपसे कथामृतका पान करना चाहिये। जब मुक्त प्राणीतक उस कथामृतका पान करते हैं, तब मुक्तिसे वंचित जन इसका पान क्यों न करें!॥ ५-६॥

यह अनुमान करना चाहिये कि जिन लोगोंने अपने पूर्वजन्ममें सुन्दर कुन्दपुष्पों, चम्पाके पुष्पों तथा बिल्वपत्रोंसे भगवतीका पूजन किया है, वे ही इस जन्ममें भूतलपर भोग तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न राजा होते हैं॥ ७॥

जो मनुष्य [पवित्र] भारत-भूभागमें यह मानवशरीर पाकर भी भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं तथा जिन्होंने उनकी आराधना नहीं की, वे सदा धन-धान्यसे हीन, रोगग्रस्त और नि:सन्तान रहते हैं; साध

भ्रमन्ति नित्यं किल दासभूता
आज्ञाकराः केवलभारवाहाः।
दिवानिशं स्वार्थपराः कदापि
नैवाप्नुवन्त्यौदरपूर्तिमात्रम् ॥ ९

अन्धाश्च मूका बधिराश्च खञ्जाः
कुष्ठान्विता ये भुवि दुःखभाजः।
तत्रानुमानं कविभिर्विधेयं
नाराधिता तैः सततं भवानी॥ १०

ये राजभोगान्वितऋद्धिपूर्णाः
संसेव्यमाना बहुभिर्मनुष्यैः।
दृश्यन्ति ये वा विभवैः समेता-
स्तैः पूजिताम्बेत्यनुमेयमेव॥ ११

तस्मात्सत्यवतीसूनो देव्याश्चरितमुत्तमम्।
कथयस्व कृपां कृत्वा दयावानसि साम्प्रतम्॥ १२

हत्वा तं महिषं पापं स्तुता सम्पूजिता सुरैः।
क्व गता सा महालक्ष्मीः सर्वतेजःसमुद्भवा॥ १३

कथितं ते महाभाग गतान्तर्धानमाशु सा।
स्वर्गे वा मृत्युलोके वा संस्थिता भुवनेश्वरी॥ १४

लयं गता वा तत्रैव वैकुण्ठे वा समाश्रिता।
अथवा हेमशैले सा तत्त्वतो मे वदाधुना॥ १५

व्यास उवाच

पूर्वं मया ते कथितं मणिद्वीपं मनोहरम्।
क्रीडास्थानं सदा देव्या वल्लभं परमं स्मृतम्॥ १६

यत्र ब्रह्मा हरिः स्थाणुः स्त्रीभावं ते प्रपेदिरे।
पुरुषत्वं पुनः प्राप्य स्वानि कार्याणि चक्रिरे॥ १७

यः सुधासिन्धुमध्येऽस्ति द्वीपः परमशोभनः।
नानारूपैः सदा तत्र विहारं कुरुतेऽम्बिका॥ १८

ही वे लोग दूसरोंके दास बनकर निरन्तर घूमते रहते हैं और आज्ञाकारी होकर दूसरोंका भार ढोया करते हैं। वे दिन-रात स्वार्थसाधनमें लगे रहते हैं, फिर भी उन्हें अपना पेट भरनेतकके लिये अन्न कभी नहीं मिलता॥ ८-९॥

इस संसारमें जो लोग अन्धे, गूँगे, बहरे, लूले और कोढ़ीके रूपमें कष्ट भोग रहे हैं, उनके विषयमें विद्वानोंको यह अनुमान कर लेना चाहिये कि उन्होंने भगवतीकी निरन्तर आराधना नहीं की है॥ १०॥

जो लोग राजोचित भोगसे युक्त, ऐश्वर्यसे सम्पन्न, अनेक मनुष्योंसे सेवित और वैभवशाली दिखायी पड़ते हैं, उनके विषयमें यह अनुमान लगाना चाहिये कि उन्होंने अवश्य ही जगदम्बाकी उपासना की है॥ ११॥

अतएव हे सत्यवतीनन्दन! अब आप कृपा करके भगवतीके उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये; आप बड़े दयालु हैं॥ १२॥

उस पापी महिषासुरका वध करनेके पश्चात् देवताओंसे भलीभाँति पूजित होकर सभी देवताओंके तेजसे प्रादुर्भूत वे भगवती महालक्ष्मी कहाँ चली गयीं?॥ १३॥

हे महाभाग! आपने अभी कहा है कि वे तुरंत अन्तर्धान हो गयीं। स्वर्गलोक अथवा मृत्युलोक किस जगह वे भगवती भुवनेश्वरी प्रतिष्ठित हुईं? वे वहींपर विलीन हो गयीं या वैकुण्ठधाममें विराजने लगीं अथवा वे सुमेरुपर्वतपर विराजमान हुईं, अब आप मुझे यह सब यथार्थरूपमें बतायें॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इसके पहले मैं आपसे रमणीय मणिद्वीपका वर्णन कर चुका हूँ। वह भगवतीका क्रीडास्थल है तथा उनके लिये सदा परम प्रिय बतलाया गया है। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेश स्त्रीरूपमें परिणत हो गये थे और पुनः पुरुषत्व पाकर वे अपने-अपने कार्योंमें संलग्न हो गये। वह परम सुन्दर द्वीप सुधासागरके मध्यमें विराजमान है। भगवती जगदम्बा वहाँ अनेक रूपोंमें सदा विहार करती रहती हैं॥ १६—१८॥

स्तुता सम्पूजिता देवैः सा तत्रैव गता शिवा।
यत्र संक्रीडते नित्यं मायाशक्तिः सनातनी॥ १९

देवास्तां निर्गतां वीक्ष्य देवीं सर्वेश्वरीं तथा।
रविवंशोद्भवं चक्रुर्भूमिपालं महाबलम्॥ २०

अयोध्याधिपतिं वीरं शत्रुघ्नं नाम पार्थिवम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नं महिषस्यासने शुभे॥ २१

दत्त्वा राज्यं तदा तस्मै देवा इन्द्रपुरोगमाः।
स्वकीयैर्वाहनैः सर्वे जग्मुः स्वान्यालयानि ते॥ २२

गतेषु तेषु देवेषु पृथिव्यां पृथिवीपते।
धर्मराज्यं बभूवाथ प्रजाश्च सुखितास्तथा॥ २३

पर्जन्यः कालवर्षी च धरा धान्यगुणावृता।
पादपाः फलपुष्पाढ्या बभूवुः सुखदाः सदा॥ २४

गावश्च क्षीरसम्पन्ना घटोध्न्यः कामदा नृणाम्।
नद्यः सुमार्गगाः स्वच्छाः शीतोदाः खगसंयुताः॥ २५

ब्राह्मणा वेदतत्त्वाश्च यज्ञकर्मरतास्तथा।
क्षत्रिया धर्मसंयुक्ता दानाध्ययनतत्पराः॥ २६

शस्त्रविद्यारता नित्यं प्रजारक्षणतत्पराः।
न्यायदण्डधराः सर्वे राजानः शमसंयुताः॥ २७

अविरोधस्तु भूतानां सर्वेषां सम्बभूव ह।
आकरा धनदा नृणां व्रजा गोयूथसंयुताः॥ २८

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम।
देवीभक्तिपराः सर्वे सम्बभूवुर्धरातले॥ २९

सर्वत्र यज्ञयूपाश्च मण्डपाश्च मनोहराः।
मखैः पूर्णा धराश्चासन् ब्राह्मणैः क्षत्रियैः कृतैः॥ ३०

[महिषासुरके वधके पश्चात्] देवताओंसे स्तुत तथा भलीभाँति पूजित होकर वे सनातनी मायाशक्ति भगवती शिवा उसी मणिद्वीपमें चली गयीं, जहाँ वे निरन्तर विहार करती रहती हैं॥ १९॥

उन सर्वेश्वरी भगवतीको अन्तर्हित देखकर देवताओंने सूर्यवंशमें उत्पन्न, महाबली एवं सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अयोध्याधिपति शत्रुघ्न नामक पराक्रमी राजाको महिषासुरके सुन्दर आसनपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार इन्द्र आदि सभी प्रधान देवता शत्रुघ्नको राज्य प्रदान करके अपने-अपने वाहनोंसे अपने-अपने स्थानोंको चले गये॥ २०—२२॥

हे भूपते! उन देवताओंके चले जानेपर पृथ्वीपर धर्मराज्य स्थापित हो गया और प्रजाएँ सुखी हो गयीं। मेघ उचित समयपर जल बरसाते थे और पृथ्वीपर उत्तम धान्य उत्पन्न होते थे। वृक्ष फलों तथा फूलोंसे सदा लदे रहते थे और वे लोगोंके लिये बड़े सुखदायक हो गये॥ २३-२४॥

घड़ेके समान थनवाली दुधारू गौएँ मनुष्योंको उनकी इच्छाके अनुसार दूध दिया करती थीं। स्वच्छ एवं शीतल जलवाली नदियाँ सुगमतापूर्वक बहती थीं और पक्षियोंसे सुशोभित रहती थीं॥ २५॥

ब्राह्मण वेदतत्त्वोंके ज्ञाता हो गये और यज्ञकर्ममें प्रवृत्त रहने लगे। क्षत्रिय धर्मभावनासे ओतप्रोत हो गये और सदा दान तथा अध्ययनमें तत्पर रहने लगे। सभी राजा शस्त्रविद्या प्राप्त करनेमें संलग्न हो गये, वे सदा प्रजाओंकी रक्षा करने लगे, उनका दण्ड-विधान न्यायके अनुसार चलने लगा और वे शान्तिगुणसे सम्पन्न हो गये॥ २६-२७॥

सभी प्राणियोंमें परस्पर मेल-जोल रहने लगा, खानोंसे मनुष्योंको अपार धन प्राप्त होने लगा और गोशालाएँ गोसमुदायसे सम्पन्न हो गयीं॥ २८॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस समय धरातलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये सब-के-सब देवीकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ २९॥

सर्वत्र मनोहर यज्ञमण्डप तथा यज्ञयूप दृष्टिगोचर होते थे। ब्राह्मणों तथा क्षत्रियोंद्वारा सम्पन्न किये गये यज्ञोंसे सारी पृथ्वी सुशोभित होने लगी॥ ३०॥

पतिव्रतधरा नार्यः सुशीलाः सत्यसंयुताः।
पितृभक्तिपराः पुत्रा आसन्धर्मपरायणाः॥ ३१

न पाखण्डं न वाधर्मः कुत्रापि पृथिवीतले।
वेदवादाः शास्त्रवादा नान्ये वादास्तथाभवन्॥ ३२

कलहो नैव केषाञ्चिन्न दैन्यं नाशुभा मतिः।
सर्वत्र सुखिनो लोकाः काले च मरणं तथा॥ ३३

सुहृदां न वियोगश्च नापदश्च कदाचन।
नानावृष्टिर्न दुर्भिक्षं न मारी दुःखदा नृणाम्॥ ३४

न रोगो न च मात्सर्यं न विरोधः परस्परम्।
सर्वत्र सुखसम्पन्ना नरा नार्यः सुखान्विताः॥ ३५

क्रीडन्ति मानवाः सर्वे स्वर्गे देवगणा इव।
न चौरा न च पाखण्डा वञ्चका दम्भकास्तथा॥ ३६

पिशुना लम्पटाः स्तब्धा न बभूवुस्तदा नृप।
न वेदद्वेषिणः पापा मानवाः पृथिवीपते॥ ३७

सर्वधर्मरता नित्यं द्विजसेवापरायणाः।
त्रिधात्वात्सृष्टिधर्मस्य त्रिविधा ब्राह्मणास्ततः॥ ३८

सात्त्विका राजसाश्चैव तामसाश्च तथापरे।
सर्वे वेदविदो दक्षाः सात्त्विकाः सत्त्ववृत्तयः॥ ३९

प्रतिग्रहविहीनाश्च दयादमपरायणाः।
यज्ञांस्ते सात्त्विकैरन्नैः कुर्वाणा धर्मतत्पराः॥ ४०

पुरोडाशविधानैश्च पशुभिर्न कदाचन।
दानमध्ययनञ्चैव यजनं तु तृतीयकम्॥ ४१
त्रिकर्मरसिकास्ते वै सात्त्विका ब्राह्मणा नृप।

उस समय स्त्रियाँ पातिव्रतधर्मपरायण, सुशील तथा सत्यनिष्ठ थीं और पुत्र पिताके प्रति श्रद्धा रखनेवाले तथा धर्मशील होते थे॥ ३१॥

पृथ्वीतलपर पाखण्ड तथा अधर्म कहीं भी नहीं रह गया। उस समय वेदवाद और शास्त्रवादके अतिरिक्त अन्य कोई वाद प्रचलित नहीं थे॥ ३२॥

उस समय किसीमें भी परस्पर कलह नहीं होता था, दीनता नहीं थी और किसीकी अशुभ बुद्धि नहीं रह गयी थी। सभी जगह लोग सुखी थे और आयु पूर्ण होनेपर ही उनकी मृत्यु होती थी, किसीकी अकालमृत्यु नहीं होती थी॥ ३३॥

मित्रोंमें वियोग नहीं होता था, किसीपर कभी विपत्तियाँ नहीं आती थीं, अनावृष्टि नहीं होती थी, न अकाल पड़ता था और न तो दुःखदायिनी महामारी ही मनुष्योंको ग्रसित करती थी॥ ३४॥

न किसीको रोग था और न तो लोगोंका आपसमें डाह तथा विरोध ही था। सर्वत्र नर तथा नारी सब प्रकारसे सुखी थे। सभी मनुष्य स्वर्गमें रहनेवाले देवताओंकी भाँति आनन्द भोगते थे। हे राजन्! उस समय चोर, पाखण्डी, धोखेबाज, दम्भी, चुगलखोर, लम्पट तथा जड़ प्रकृतिवाले मनुष्य नहीं रह गये थे। हे भूपते! वेदोंसे द्वेष करनेवाले तथा पापी मनुष्य उस समय नहीं थे, अपितु सभी लोग धर्मनिष्ठ थे और नित्य ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते थे॥ ३५—३७$\frac{1}{2}$ ॥

सृष्टिधर्मके तीन प्रकार होनेके कारण ब्राह्मण भी तीन प्रकारके थे—सात्त्विक, राजस तथा तामस। उनमें सत्त्व-वृत्तिवाले सभी सात्त्विक ब्राह्मण वेदोंके ज्ञाता तथा [यज्ञकार्योंमें] दक्ष, दान लेनेकी प्रवृत्तिसे रहित, दयालु तथा संयम रखनेवाले थे। वे धर्मपरायण रहकर सात्त्विक अन्नोंसे यज्ञ करते हुए सदा पुरोडाशके द्वारा विधिविधानसे हवन करते थे और पशुबलिके द्वारा कभी भी यज्ञ सम्पन्न नहीं करते थे। हे राजन्! वे सात्त्विक ब्राह्मण दान, अध्ययन और यज्ञ—इन्हीं तीनों कार्योंमें सदा अभिरुचि रखते थे*॥ ३८—४१$\frac{1}{2}$ ॥

---

* सात्त्विक ब्राह्मणोंद्वारा किये जानेवाले निरामिष यज्ञकी प्रशंसा करनेसे यह स्पष्ट है कि मांस-भक्षणादि तथा काम-क्रोधादि विकार रजोगुण तथा तमोगुणसे उत्पन्न हो जाते हैं, अतः सर्वथा त्याज्य हैं; इन्हें भ्रमवश विधि नहीं समझना चाहिये।

राजसा वेदविद्वांसः क्षत्रियाणां पुरोहिताः॥ ४२

षट्कर्मनिरताः सर्वे विधिवन्मांसभक्षकाः।
यजनं याजनं दानं तथैव च प्रतिग्रहः॥ ४३

अध्ययनं तु वेदानां तथैवाध्यापनं तु षट्।
तामसाः क्रोधसंयुक्ता रागद्वेषपराः पुनः॥ ४४

राज्ञां कर्मकरा नित्यं किञ्चिदध्ययने रताः।
महिषे निहते सर्वे सुखिनो वेदतत्पराः॥ ४५

बभूवुर्व्रतनिष्णाता दानधर्मपरास्तथा।
क्षत्रियाः पालने युक्ता वैश्या वणिजवृत्तयः॥ ४६

कृषिवाणिज्यगोरक्षाकुसीदवृत्तयः परे।
एवं प्रमुदितो लोको महिषे विनिपातिते॥ ४७

अनुद्वेगः प्रजानां वै सम्बभूव धनागमः।
बहुक्षीराः शुभा गावो नद्यश्चैव बहूदकाः॥ ४८

वृक्षा बहुफलाश्चासन्मानवा रोगवर्जिताः।
नाधयो नेतयः क्वापि प्रजानां दुःखदायकाः॥ ४९

न निधनमुपयान्ति प्राणिनस्तेऽप्यकाले
सकलविभवयुक्ता रोगहीनाः सदैव।
निगमविहितधर्मे तत्पराश्चण्डिकाया-
श्चरणसरसिजानां सेवने दत्तचित्ताः॥ ५०

राजस ब्राह्मण वेदके विद्वान् थे और वे क्षत्रियोंके पुरोहित होते थे। वे यथाविधि मांसभक्षी थे। वे सदा छः कर्मोंमें ही संलग्न रहते थे। यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, वेद पढ़ना और वेद पढ़ाना—ये ही उनके छः कर्म थे॥ ४२-४३ $\frac{१}{२}$ ॥

तामस प्रकृतिवाले ब्राह्मण क्रोधी और राग-द्वेषपरायण रहते थे। वे सदा राजाओंके यहाँ कर्मचारीके रूपमें कार्य करते थे। वे कुछ-कुछ अध्ययनमें भी संलग्न रहते थे॥ ४४ $\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार महिषासुरका वध हो जानेपर सभी ब्राह्मण सुखी, वेदपरायण, व्रतनिष्ठ तथा दान-धर्ममें संलग्न हो गये; क्षत्रिय प्रजापालनमें लग गये; वैश्य व्यवसायमें तत्पर हो गये और कुछ अन्य वैश्य कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा तथा सूदपर धन देनेके कर्ममें प्रवृत्त हो गये। इस प्रकार महिषासुरके संहारके पश्चात् सारा जनसमुदाय आनन्दसे परिपूर्ण हो गया॥ ४५—४७॥

प्रजाओंकी व्याकुलता दूर हो गयी, उन्हें पर्याप्त धन प्राप्त होने लगा, गौएँ परम सुन्दर तथा बहुत दूध देनेवाली हो गयीं, नदियाँ प्रचुर जलसे भर गयीं, वृक्ष बहुत अधिक फलोंसे लद गये और सभी मनुष्य रोगरहित हो गये। कहीं भी किसी प्राणीको मानसिक व्याधियाँ तथा प्राकृतिक आपदाएँ व्यथित नहीं करती थीं॥ ४८-४९॥

उस समय सभी प्राणी अकालमृत्युको प्राप्त नहीं होते थे, वे सब प्रकारके वैभवसे सम्पन्न तथा नीरोग रहते थे। वेदप्रतिपादित धर्ममें तत्पर रहते हुए सभी लोगोंने भगवती चण्डिकाके चरणकमलोंकी सेवामें ही अपना चित्त लगा दिया था॥ ५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
महिषवधानन्तरं पृथिवीसुखवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

* * *

अथैकविंशोऽध्यायः

शुम्भ और निशुम्भको ब्रह्माजीके द्वारा वरदान, देवताओंके साथ उनका युद्ध और देवताओंकी पराजय

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याश्चरितमुत्तमम्।
सुखदं सर्वजन्तूनां सर्वपापप्रणाशनम्॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं देवीका उत्तम चरित्र कहता हूँ; यह सम्पूर्ण प्राणियोंको सुख देनेवाला तथा समस्त पापोंका नाश करनेवाला है॥ १॥

यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ।
बभूवतुर्महावीरौ अवध्यौ पुरुषैः किल॥ २

बहुसेनावृतौ शूरौ देवानां दुःखदौ सदा।
दुराचारौ मदोत्सिक्तौ बहुदानवसंयुतौ॥ ३

हतावम्बिकया तौ तु संग्रामेऽतीव दारुणे।
देवानाञ्च हितार्थाय सर्वैः परिचरैः सह॥ ४

चण्डमुण्डौ महाबाहू रक्तबीजोऽतिदारुणः।
धूम्रलोचननामा च निहतास्ते रणाङ्गणे॥ ५

तान्निहत्य सुराणां सा जहार भयमुत्तमम्।
स्तुता सम्पूजिता देवैर्गिरौ हेमाचले शुभे॥ ६

राजोवाच

कावेतावसुरावादौ कथं तौ बलिनां वरौ।
केन संस्थापितौ चेह स्त्रीवध्यत्वं कुतो गतौ॥ ७

तपसा वरदानेन कस्य जातौ महाबलौ।
कथञ्च निहतौ सर्वं कथयस्व सविस्तरम्॥ ८

व्यास उवाच

शृणु राजन् कथां दिव्यां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
देव्याश्चरितसंयुक्तां सर्वार्थफलदां शुभाम्॥ ९

पुरा शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ भूमिमण्डले।
पातालतश्च सम्प्राप्तौ भ्रातरौ शुभदर्शनौ॥ १०

तौ प्राप्तयौवनौ चैव चेरतुस्तप उत्तमम्।
अन्नोदकं परित्यज्य पुष्करे लोकपावने॥ ११

वर्षाणामयुतं यावद्योगविद्यापरायणौ।
एकत्रैवासनं कृत्वा तेपाते परमं तपः॥ १२

[पूर्वकालमें] शुम्भ और निशुम्भ नामक दो [असुर] भाई थे। वे बड़े बलवान्, महापराक्रमी तथा पुरुषोंसे अवध्य थे॥ २॥

उनके पास बहुत-से सैनिक थे। वे दोनों वीर देवताओंको सदा दुःख देते रहते थे। वे बड़े दुराचारी तथा मदमत्त थे। उनके पास बहुत अधिक दानव थे॥ ३॥

अम्बिकाने देवताओंके हितके लिये उन दोनों दानवोंको उनके परिचरोंसमेत अत्यन्त भीषण संग्राममें मार डाला॥ ४॥

महाबाहु चण्ड-मुण्ड, महाभयंकर रक्तबीज और धूम्रलोचन नामक असुर—वे सब भी भगवतीके द्वारा रणभूमिमें मारे गये थे॥ ५॥

उन सबका वध करके भगवती अम्बिकाने देवताओंका बहुत बड़ा भय दूर कर दिया। तदनन्तर देवताओंने पवित्र सुमेरुपर्वतपर उन देवीका स्तवन तथा विधिवत् पूजन किया॥ ६॥

राजा बोले—पूर्वकालमें ये दोनों दानव कौन थे, वे बड़े-बड़े बलशालियोंसे भी श्रेष्ठ कैसे हुए, उन्हें राजसिंहासनपर किसने प्रतिष्ठित किया, स्त्रीके द्वारा वे कैसे मारे गये, किस देवताकी तपस्याके परिणामस्वरूप प्राप्त वरदानसे वे महाबली हुए? और किस प्रकार वे मारे गये? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब आप समस्त पापोंका नाश करनेवाली, सभी प्रकारके अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली, मंगलमयी तथा भगवतीके चरित्रसे ओत-प्रोत दिव्य कथा सुनिये॥ ९॥

पूर्वकालमें शुम्भ-निशुम्भ नामक दो दैत्य पातालसे भूमण्डलपर आ गये। वे दोनों भाई देखनेमें बड़े सुन्दर थे॥ १०॥

पूर्ण वयस्क होनेपर उन दोनोंने जगत्पावन पुष्कर तीर्थमें अन्न तथा जलका परित्याग करके कठोर तप आरम्भ कर दिया॥ ११॥

योगसाधनामें तत्पर रहनेवाले शुम्भ और निशुम्भ एक ही स्थानपर आसन लगाकर दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते रहे॥ १२॥

तयोस्तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः।
तत्रागतश्च भगवानारुह्य वरटापतिम्॥ १३

तावुभौ च जगत्स्त्रष्टा दृष्ट्वा ध्यानपरौ स्थितौ।
उत्तिष्ठतं महाभागौ तुष्टोऽहं तपसा किल॥ १४

वाञ्छितं वां वरं कामं ददामि ब्रुवतामिह।
कामदोऽहं समायातो दृष्ट्वा वां तपसो बलम्॥ १५

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य प्रबुद्धौ तौ समाहितौ।
प्रदक्षिणक्रियां कृत्वा प्रणामं चक्रतुस्तदा॥ १६

दण्डवत्प्रणिपातञ्च कृत्वा तौ दुर्बलाकृती।
ऊचतुर्मधुरां वाचं दीनौ गद्गदया गिरा॥ १७

देवदेव दयासिन्धो भक्तानामभयप्रद।
अमरत्वञ्च नौ ब्रह्मन्देहि तुष्टोऽसि चेद्विभो॥ १८

मरणादपरं किञ्चिद्भयं नास्ति धरातले।
तस्माद्भयाच्च सन्त्रस्तौ युष्माकं शरणं गतौ॥ १९

त्राहि त्वं देवदेवेश जगत्कर्तः क्षमानिधे।
परिस्फोटय विश्वात्मन् सद्यो मरणजं भयम्॥ २०

ब्रह्मोवाच

किमिदं प्रार्थनीयं वो विपरीतं तु सर्वथा।
अदेयं सर्वथा सर्वैः सर्वेभ्यो भुवनत्रये॥ २१

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
मर्यादा विहिता लोके पूर्वं विश्वकृता किल॥ २२

मर्तव्यं सर्वथा सर्वैः प्राणिभिर्नात्र संशयः।
अन्यं प्रार्थयतं कामं ददामि यच्च वाञ्छितम्॥ २३

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तस्य सुविमृश्य च दानवौ।
ऊचतुः प्रणिपत्याथ ब्रह्माणं पुरतः स्थितम्॥ २४

अन्तमें समस्त लोकोंके पितामह भगवान् ब्रह्माजी उनपर प्रसन्न हो गये और हंसपर आरूढ़ होकर वहाँ आ गये॥ १३॥

ध्यानमग्न होकर बैठे हुए उन दोनोंको देखकर जगत्के रचयिता ब्रह्माजीने कहा—हे महाभाग! तुम दोनों उठो, मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे परम प्रसन्न हूँ। तुमलोगोंका जो भी अभीष्ट वर हो उसे बताओ, मैं अवश्य दूँगा। तुम दोनोंका तपोबल देखकर तुमलोगोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके विचारसे ही मैं यहाँ आया हूँ॥ १४-१५॥

व्यासजी बोले—ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर समाहित चित्तवाले उन दोनोंका ध्यान टूट गया। तब प्रदक्षिणा करके उन्होंने दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया। तत्पश्चात् तपके कारण दुर्बल शरीरवाले दोनों दानवोंने ब्रह्माजीसे बड़ी दीनतापूर्वक गद्गद वाणीमें यह मधुर वचन कहा—हे देवदेव! हे दयासिन्धो! हे भक्तोंको अभय देनेवाले ब्रह्मन्! हे विभो! यदि आप हमपर प्रसन्न हैं, तो हमें अमरत्व प्रदान कीजिये। मृत्युसे बढ़कर दूसरा कोई भी भय इस पृथ्वीलोकमें नहीं है, उसी भयसे सन्त्रस्त होकर हम दोनों आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे देवदेवेश! आप हमारी रक्षा कीजिये। हे जगत्कर्ता! हे क्षमानिधान! हे विश्वात्मा! आप हमारे मरणजन्य भयको शीघ्र ही दूर कीजिये॥ १६—२०॥

ब्रह्माजी बोले—तुम लोगोंने यह कैसा सर्वथा नियमविरुद्ध वरदान माँगा है, तीनों लोकोंमें किसीके द्वारा किसीके भी लिये यह वरदान सर्वथा अदेय है। जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है और मरनेवालेका जन्म निश्चित है। विश्वकी रचना करनेवाले प्रभुने यह नियम पहलेसे ही निर्धारित कर रखा है। सभी प्राणियोंको निश्चितरूपसे मरना ही पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। अतः इसके अतिरिक्त तुमलोगोंका जो भी दूसरा अभिलषित वर हो, उसे माँग लो, मैं अभी देता हूँ॥ २१—२३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर उन दोनों दानवोंने परस्पर भलीभाँति विचार करनेके उपरान्त अपने सम्मुख खड़े उन ब्रह्माजीको

पुरुषैरमराद्यैश्च मानवैर्मृगपक्षिभिः।
अवध्यत्वं कृपासिन्धो देहि नौ वाञ्छितं वरम्॥ २५

नारी बलवती कास्ति या नौ नाशं करिष्यति।
न बिभीवः स्त्रियः कामं त्रैलोक्ये सचराचरे॥ २६

अवध्यौ भ्रातरौ स्यातां नरेभ्यः पङ्कजोद्भव।
भयं न स्त्रीजनेभ्यश्च स्वभावादबला हि सा॥ २७

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं प्रददौ वाञ्छितं वरम्।
ब्रह्मा प्रसन्नमनसा जगामाथ स्वमालयम्॥ २८

गतेऽथ भवने तस्मिन्दानवौ स्वगृहं गतौ।
भृगुं पुरोहितं कृत्वा चक्रतुः पूजनं तदा॥ २९

शुभे दिने सुनक्षत्रे जातरूपमयं शुभम्।
कृत्वा सिंहासनं दिव्यं राज्यार्थं प्रददौ मुनिः॥ ३०

शुम्भाय ज्येष्ठभूताय ददौ राज्यासनं शुभम्।
सेवनार्थं तदैवाशु सम्प्राप्ता दानवोत्तमाः॥ ३१

चण्डमुण्डौ महावीरौ भ्रातरौ बलदर्पितौ।
सम्प्राप्तौ सैन्यसंयुक्तौ रथवाजिगजान्वितौ॥ ३२

धूम्रलोचननामा च तद्रूपश्चण्डविक्रमः।
शुम्भञ्च भूपतिं श्रुत्वा तदागाद् बलसंयुतः॥ ३३

रक्तबीजस्तथा शूरो वरदानबलाधिकः।
अक्षौहिणीभ्यां संयुक्तस्तत्रैवागत्य सङ्गतः॥ ३४

तस्यैकं कारणं राजन् संग्रामे युध्यतः सदा।
देहाद्रुधिरसम्पातस्तस्य शस्त्राहतस्य च॥ ३५

जायते च यदा भूमावुत्पद्यन्ते ह्यनेकशः।
तादृशाः पुरुषाः क्रूरा बहवः शस्त्रपाणयः॥ ३६

प्रणाम करके कहा—हे कृपासिन्धो! देवता, मनुष्य, मृग अथवा पक्षी—इनमेंसे किसी भी पुरुषजातिके द्वारा हमारा मरण न हो—यही हमारा अभीष्ट वर है, इसे आप हमें प्रदान करें। ऐसी कौन बलवती स्त्री है, जो हम दोनोंका नाश कर सके? इस चराचर त्रिलोकीमें किसी भी स्त्रीसे हम नहीं डरते। हे ब्रह्मन्! हम दोनों भाई पुरुषोंसे अवध्य होवें। हमें स्त्रियोंसे कोई डर नहीं है; क्योंकि वे तो स्वभावसे ही अबला होती हैं॥ २४—२७॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उन्हें अभिलषित वर दे दिया और प्रसन्नमनसे अपने स्थानपर चले गये॥ २८॥

ब्रह्माजीके अपने लोक चले जानेपर वे दोनों दानव भी अपने घर चले गये। उन्होंने वहाँपर शुक्राचार्यको अपना पुरोहित बनाकर उनका पूजन किया॥ २९॥

तत्पश्चात् किसी उत्तम दिन और नक्षत्रमें सोनेका दिव्य तथा सुन्दर सिंहासन बनवाकर मुनिने राज्य-स्थापनाके लिये उन्हें प्रदान किया। उन्होंने ज्येष्ठ होनेके कारण शुम्भको वह सुन्दर राजसिंहासन समर्पित किया। उसी समय अनेक श्रेष्ठ दानव उसकी सेवा करनेके लिये शीघ्र वहाँ उपस्थित हो गये॥ ३०-३१॥

बलाभिमानी तथा महापराक्रमी चण्ड और मुण्ड—ये दोनों भाई भी अपनी सेना तथा बहुत-से रथ, घोड़े और हाथी साथमें लेकर उनके पास आ गये॥ ३२॥

शुम्भको राजा बना हुआ सुनकर उसीके रूपवाला धूम्रलोचन नामक प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य भी उस समय सेनासहित वहाँ पहुँच गया॥ ३३॥

उसी प्रकार वरदानके प्रभावसे अत्यधिक बलशाली तथा शूरवीर रक्तबीज भी दो अक्षौहिणी सेनाके साथ वहाँ आकर सम्मिलित हो गया। हे राजन्! उसके अतिशय बलवान् होनेका एक कारण यह था कि संग्राममें युद्ध करते हुए उस रक्तबीजके शस्त्राहत होनेपर उसके शरीरसे जब भूमिपर रुधिर गिरता था, उसी समय उसके ही समान क्रूर और हाथोंमें शस्त्र धारण किये बहुत-से वीर पुरुष उत्पन्न हो जाते थे। रक्तबिन्दुओंसे उत्पन्न वे पुरुष उसी रक्तबीजके आकार, रूप और पराक्रमवाले होते थे

सम्भवन्ति तदाकारास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः।
युद्धं पुनस्ते कुर्वन्ति पुरुषा रक्तसम्भवाः॥ ३७

अतः सोऽपि महावीर्यः संग्रामेऽतीव दुर्जयः।
अवध्यः सर्वभूतानां रक्तबीजो महासुरः॥ ३८

अन्ये च बहवः शूराश्चतुरङ्गसमन्विताः।
शुम्भञ्च नृपतिं मत्वा बभूवुस्तस्य सेवकाः॥ ३९

असंख्याता तदा जाता सेना शुम्भनिशुम्भयोः।
पृथिव्याः सकलं राज्यं गृहीतं बलवत्तया॥ ४०

सेनायोगं तदा कृत्वा निशुम्भः परवीरहा।
जगाम तरसा स्वर्गे शचीपतिजयाय च॥ ४१

चकारासौ महायुद्धं लोकपालैः समन्ततः।
वृत्रहा वज्रपातेन ताडयामास वक्षसि॥ ४२

स वज्राभिहतो भूमौ पपात दानवानुजः।
भग्नं बलं तदा तस्य निशुम्भस्य महात्मनः॥ ४३

भ्रातरं मूर्च्छितं श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः।
तत्रागत्य सुरान्सर्वांस्ताडयामास सायकैः॥ ४४

कृतं युद्धं महत्तेन शुम्भेनाक्लिष्टकर्मणा।
निर्जितास्तु सुराः सर्वे सेन्द्राः पालाश्च सर्वशः॥ ४५

ऐन्द्रं पदं तदा तेन गृहीतं बलवत्तया।
कल्पपादपसंयुक्तं कामधेनुसमन्वितम्॥ ४६

त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृतास्तेन महात्मना।
नन्दनं च वनं प्राप्य मुदितोऽभून्महासुरः॥ ४७

सुधायाश्चैव पानेन सुखमाप महासुरः।
कुबेरं स च निर्जित्य तस्य राज्यं चकार ह॥ ४८

अधिकारं तथा भानोः शशिनश्च चकार ह।
यमञ्चैव विनिर्जित्य जग्राह तत्पदं तथा॥ ४९

वरुणस्य तथा राज्यं चकार वह्निकर्म च।
वायोः कार्यं निशुम्भश्च चकार स्वबलान्वितः॥ ५०

और वे सभी पुनः युद्ध करने लगते थे। इसलिये संग्राममें महापराक्रमी तथा अजेय समझा जानेवाला वह महान् असुर रक्तबीज सभी प्राणियोंसे अवध्य हो गया था॥ ३४—३८॥

इसके अतिरिक्त चतुरंगिणी सेनासे युक्त अन्य बहुत-से पराक्रमी दानव भी शुम्भको अपना राजा मानकर उसके सेवक बन गये॥ ३९॥

उस समय शुम्भ और निशुम्भके पास असंख्य सेना हो गयी थी और उन्होंने अपने बलके प्रभावसे भूमण्डलका सम्पूर्ण राज्य अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४०॥

तत्पश्चात् शत्रुपक्षके वीरोंका संहार करनेवाले निशुम्भने अपनी सेना सुसज्जित करके इन्द्रको जीतनेहेतु बड़े वेगसे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] उसने लोकपालोंके साथ घोर युद्ध किया। तब इन्द्रने उसके वक्षपर वज्रसे प्रहार किया। उस वज्राघातसे आहत होकर दानव शुम्भका छोटा भाई निशुम्भ भूमिपर गिर पड़ा। तब परम साहसी उस निशुम्भकी सेना भाग गयी॥ ४१—४३॥

अपने भाईको मूर्च्छित हुआ सुनकर शत्रुसेनाको नष्ट कर डालनेवाला शुम्भ वहाँ आकर सभी देवताओंको बाणोंसे मारने लगा॥ ४४॥

इस प्रकार किसी भी कार्यको कठिन न समझनेवाले उस शुम्भने भीषण युद्ध किया और इन्द्रसहित सभी देवताओं तथा लोकपालोंको पराजित कर दिया॥ ४५॥

तब उस शुम्भने अपने पराक्रमके प्रभावसे कल्पवृक्ष और कामधेनुसहित इन्द्रपदको अधिकारमें कर लिया। उस दुस्साहसी शुम्भने तीनों लोकोंपर आधिपत्य जमा लिया और देवताओंको मिलनेवाले यज्ञभागोंका हरण कर लिया। नन्दनवन पा करके वह महान् असुर आनन्दित हुआ और अमृतके पानसे उसे बहुत सुख मिला॥ ४६-४७½॥

उसने कुबेरको जीतकर उनके राज्यपर अधिकार कर लिया और सूर्य तथा चन्द्रमाका भी अधिकार छीन लिया। उसने यमराजको परास्त करके उनका पद स्वयं ले लिया। इसी प्रकार अपने बलके प्रभावसे वरुणका राज्य अपने अधीन करके वह शुम्भ राज्य-शासन स्वयं करने लगा और अग्नि तथा वायुके कार्य स्वयं करने लगा॥ ४८—५०॥

ततो देवा विनिर्धूता हृतराज्या हृतश्रियः।
सन्त्यज्य नन्दनं सर्वे निर्ययुर्गिरिगह्वरे॥ ५१

हृताधिकारास्ते सर्वे बभ्रमुर्विजने वने।
निरालम्बा निराधारा निस्तेजस्का निरायुधाः॥ ५२

विचेरुरमराः सर्वे पर्वतानां गुहासु च।
उद्यानेषु च शून्येषु नदीनां गह्वरेषु च॥ ५३

न प्रापुस्ते सुखं क्वापि स्थानभ्रष्टा विचेतसः।
लोकपाला महाराज दैवाधीनं सुखं किल॥ ५४

बलवन्तो महाभागा बहुज्ञा धनसंयुताः।
काले दुःखं तथा दैन्यमाप्नुवन्ति नराधिप॥ ५५

चित्रमेतन्महाराज कालस्यैव विचेष्टितम्।
यः करोति नरं तावद्राजानं भिक्षुकं ततः॥ ५६

दातारं याचकं चैव बलवन्तं तथाबलम्।
पण्डितं विकलं कामं शूरं चातीव कातरम्॥ ५७

मखानाञ्च शतं कृत्वा प्राप्येन्द्रासनमुत्तमम्।
पुनर्दुःखं परं प्राप्तं कालस्य गतिरीदृशी॥ ५८

कालः करोति धर्मिष्ठं पुरुषं ज्ञानसंयुतम्।
तमेवातीव पापिष्ठं ज्ञानलेशविवर्जितम्॥ ५९

न विस्मयोऽत्र कर्तव्यः सर्वथा कालचेष्टिते।
ब्रह्मविष्णुहरादीनामपीदृक्कष्टचेष्टितम् ॥ ६०

विष्णुर्जननमाप्नोति सूकरादिषु योनिषु।
हरः कपाली सञ्जातः कालेनैव बलीयसा॥ ६१

तब [असुरोंके द्वारा] तिरस्कृत और राज्य छिन जानेके कारण नष्ट शोभावाले सभी देवता नन्दनवन छोड़कर पर्वतोंकी गुफाओंमें चले गये॥ ५१॥

अधिकारसे वंचित होकर वे सब निर्जन वनमें भटकने लगे। अब उनका कोई सहारा नहीं रहा, उनके रहनेकी जगह नहीं रही, वे तेजहीन और आयुधविहीन हो चुके थे। इस प्रकार सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओं, निर्जन उद्यानों और नदियोंकी घाटियोंमें विचरण करने लगे॥ ५२-५३॥

हे महाराज! स्थानभ्रष्ट हो जानेके कारण उन बेचारे लोकपालोंको कहीं भी सुख नहीं मिल रहा था, और फिर यह सुनिश्चित भी है कि सुख सदा प्रारब्धके अधीन रहता है॥ ५४॥

हे नराधिप! बलशाली, बड़े भाग्यवान्, महान् ज्ञानी तथा धनसम्पन्न व्यक्ति भी विपरीत समय उपस्थित होनेपर दुःख तथा कष्ट पाते हैं॥ ५५॥

हे महाराज! उस कालकी गति बड़ी ही विचित्र होती है, जो एक साधारण मनुष्यको राजा बना देता है और उसके बाद राजाको भिखारी बना देता है। वही काल दाताको याचक, बलवान्‌को निर्बल, पण्डितको अज्ञानी और वीरको अत्यन्त कायर बना देता है॥ ५६-५७॥

सौ अश्वमेधयज्ञ करनेके बाद सर्वोत्कृष्ट इन्द्रासन प्राप्त करके भी बादमें समयके फेरसे इन्द्रको असीम कष्ट उठाना पड़ा था—कालकी ऐसी विचित्र गति होती है॥ ५८॥

समय ही मनुष्यको धर्मात्मा तथा ज्ञानवान् बनाता है और फिर उसी व्यक्तिको पापी तथा अत्यल्प ज्ञानसे भी हीन बना देता है॥ ५९॥

अतः कालकी इस अद्भुत गतिके विषयमें कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिये। यही काल ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिको भी इसी प्रकार संकटमें डाल देता है। बलवान् कालके ही प्रभावसे भगवान् विष्णुको सूकर आदि योनियोंमें जन्म लेना पड़ा और शिवजीको कपाली होना पड़ा॥ ६०-६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भनिशुम्भद्वारा स्वर्गविजयवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और उनका प्राकट्य

व्यास उवाच

पराजिताः सुराः सर्वे राज्यं शुम्भः शशास ह।
एवं वर्षसहस्रं तु जगाम नृपसत्तम॥ १

भ्रष्टराज्यास्ततो देवाश्चिन्तामापुः सुदुस्तराम्।
गुरुं दुःखातुरास्ते तु पप्रच्छुरिदमादृताः॥ २

किं कर्तव्यं गुरो ब्रूहि सर्वज्ञस्त्वं महामुनिः।
उपायोऽस्ति महाभाग दुःखस्य विनिवृत्तये॥ ३

उपचारपरा नूनं वेदमन्त्राः सहस्रशः।
वाञ्छितार्थकरा नूनं सूत्रैः संलक्षिताः किल॥ ४

इष्टयो विविधाः प्रोक्ताः सर्वकामफलप्रदाः।
ताः कुरुष्व मुने नूनं त्वं जानासि च तत्क्रियाः॥ ५

विधिः शत्रुविनाशाय यथोद्दिष्टः सदागमे।
तं कुरुष्वाद्य विधिवद्यथा नो दुःखसंक्षयः॥ ६

भवेदांगिरसाद्यैव तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
दानवानां विनाशाय अभिचारं यथामति॥ ७

बृहस्पतिरुवाच

सर्वे मन्त्राश्च वेदोक्ता दैवाधीनफलाश्च ते।
न स्वतन्त्राः सुराधीश तथैकान्तफलप्रदाः॥ ८

मन्त्राणां देवता यूयं ते तु दुःखैकभाजनम्।
जाताः स्म कालयोगेन किं करोमि प्रसाधनम्॥ ९

इन्द्राग्निवरुणादीनां यजनं यज्ञकर्मसु।
ते यूयं विपदं प्राप्ताः करिष्यन्ति किमिष्टयः॥ १०

अवश्यम्भाविभावानां प्रतीकारो न विद्यते।
उपायस्त्वथ कर्तव्य इति शिष्टानुशासनम्॥ ११

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सभी देवता पराजित हो गये। इसके बाद शुम्भ राज्यपर शासन करने लगा। इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो गये॥ १॥

तत्पश्चात् राज्यच्युत होनेके कारण देवता महान् दुस्सह चिन्तामें पड़ गये। दुःखसे व्याकुल हुए वे देवता गुरु बृहस्पतिसे आदरपूर्वक यह पूछने लगे॥ २॥

हे गुरो! अब हम क्या करें, आप हमें बतायें। आप सर्वज्ञ महामुनि हैं। हे महाभाग! दुःखकी निवृत्तिका उपाय भी तो होता है। हजारों ऐसे वैदिक मन्त्र हैं, जो उपचारोंसे परिपूर्ण हैं और सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले हैं। सूत्रोंने उनका भलीभाँति निदर्शन भी किया है। सभी वांछित फल प्रदान करनेवाले अनेक प्रकारके यज्ञ भी बताये गये हैं। हे मुने! आप उनका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि आप उनकी क्रिया-विधिको भलीभाँति जानते हैं॥ ३—५॥

शत्रुओंके विनाशके लिये वेदमें जैसा उपाय बताया गया है, अब आप विधिपूर्वक उसका अनुष्ठान कीजिये, जिससे हमारे दुःखका पूर्णरूपसे नाश हो जाय। हे आंगिरस! दानवोंके विनाशके लिये आप अपनी बुद्धिके अनुसार आज ही अभिचारकर्म आरम्भ करनेकी कृपा कीजिये॥ ६-७॥

बृहस्पति बोले—हे देवराज! वेदोंमें बताये गये सभी मन्त्र प्रारब्धके अनुसार ही फल प्रदान करनेवाले हैं। वे स्वतन्त्र नहीं हैं और नियमके अनुसार ही फल प्रदान करते हैं॥ ८॥

उन मन्त्रोंके देवता तो आप ही लोग हैं। जब आपलोग स्वयं समयके फेरसे कष्टमें पड़े हुए हैं तो मैं कौन-सा उपाय करूँ?॥ ९॥

यज्ञ-कर्मोंमें इन्द्र, अग्नि, वरुण आदिकी पूजा की जाती है और वे आप सब देवता ही स्वयं विपत्ति भोग रहे हैं, तब यज्ञ क्या कर सकेंगे?॥ १०॥

अवश्यम्भावी घटनाओंका कोई प्रतीकार नहीं है; फिर भी [संकटसे बचनेके लिये] उपाय तो करना ही चाहिये, यह शिष्ट पुरुषोंका उपदेश है॥ ११॥

दैवं हि बलवत्केचित्प्रवदन्ति मनीषिणः।
उपायवादिनो दैवं प्रवदन्ति निरर्थकम्॥ १२

दैवं चैवाप्युपायश्च द्वावेवाभिमतौ नृणाम्।
केवलं दैवमाश्रित्य न स्थातव्यं कदाचन॥ १३

उपायः सर्वथा कार्यो विचार्य स्वधिया पुनः।
तस्माद् ब्रवीमि वः सर्वान्संविचार्य पुनः पुनः॥ १४

पुरा भगवती तुष्टा जघान महिषासुरम्।
युष्माभिस्तु स्तुता देवी वरदानं ददावथ॥ १५

आपदं नाशयिष्यामि संस्मृता वा सदैव हि।
यदा यदा वो देवेशा आपदो दैवसम्भवाः॥ १६

प्रभवन्ति तदा कामं स्मर्तव्याहं सुरैः सदा।
स्मृताहं नाशयिष्यामि युष्माकं परमापदः॥ १७

तस्माद्धिमाचले गत्वा पर्वते सुमनोहरे।
आराधनं चण्डिकायाः कुरुध्वं प्रेमपूर्वकम्॥ १८

मायाबीजविधानज्ञास्तत्पुरश्चरणे रताः।
जानाम्यहं योगबलात्प्रसन्ना सा भविष्यति॥ १९

दुःखस्यान्तोऽद्य युष्माकं दृश्यते नात्र संशयः।
तस्मिञ्छैले सदा देवी तिष्ठतीति मया श्रुतम्॥ २०

स्तुता सम्पूजिता सद्यो वाञ्छितार्थान् प्रदास्यति।
निश्चयं परमं कृत्वा गच्छध्वं वै हिमालयम्॥ २१

सुराः सर्वाणि कार्याणि सा वः कामं विधास्यति।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवास्ते प्रययुर्गिरिम्॥ २२

हिमालयं महाराज देवीध्यानपरायणाः।
मायाबीजं हृदा नित्यं जपन्तः सर्व एव हि॥ २३

नमश्चक्रुर्महामायां भक्तानामभयप्रदाम्।
तुष्टुवुः स्तोत्रमन्त्रैश्च भक्त्या परमया युताः॥ २४

कुछ विद्वान् कहते हैं कि दैव सबसे बलवान् होता है और उपायवादी लोग दैवको निरर्थक बताते हैं, किंतु मनुष्योंके लिये दैव और उपाय दोनों ही आवश्यक माने गये हैं। मात्र दैवका आश्रय लेकर कभी भी बैठे नहीं रहना चाहिये। अपनी बुद्धिसे विचार करके सम्यक् रूपसे प्रयत्न करनेमें तत्पर हो जाना चाहिये। इसलिये भलीभाँति बार-बार सोच-विचारकर मैं आप सभीको उपाय बता रहा हूँ॥ १२—१४॥

पूर्वकालमें जब भगवती जगदम्बाने आपलोगोंपर प्रसन्न होकर महिषासुरका वध किया था, उस समय आपलोगोंके स्तुति करनेपर उन्होंने यह वरदान दिया था—'आपलोगोंके स्मरण करनेपर मैं सदा आपलोगोंकी विपत्ति दूर करूँगी। हे देवेश्वरो! जब-जब आपलोगोंपर दैव-जन्य आपदाएँ आयें, तब-तब आप देवतागण मेरा ध्यान कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं आपलोगोंकी बड़ी-से-बड़ी विपत्तियोंका नाश कर दूँगी'॥ १५—१७॥

अतः अब आपलोग परम रमणीक हिमालय-पर्वतपर जाकर प्रेमपूर्वक भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये। आपलोग मायाबीजके विधानके ज्ञाता हैं, उसीके पुरश्चरणमें तत्पर हो जाइये। मैं जानता हूँ कि इस अनुष्ठानके प्रभावसे वे भगवती प्रसन्न हो जायँगी॥ १८-१९॥

अब आपलोगोंके दुःखका अन्त दिखायी पड़ रहा है; इसमें सन्देह नहीं है। मैंने सुना है कि वे भगवती उस हिमालयपर्वतपर सदा विराजमान रहती हैं। उनकी स्तुति तथा विधिवत् पूजा करनेपर वे शीघ्र ही आपलोगोंको वांछित फल प्रदान करेंगी। अतः हे देवताओ! आपलोग दृढ़ निश्चय करके हिमालयपर्वतपर जाइये; वे भगवती आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध कर देंगी॥ २०-२१ १/२॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! उनका वचन सुनकर देवता हिमालयपर्वतपर चले गये। वहाँ देवीके ध्यानमें लीन होकर एकाग्र मनसे निरन्तर मायाबीज-मन्त्रका जप करते हुए उन सब देवताओंने भक्तोंके लिये अभयदायिनी महामाया भगवतीको प्रणाम किया और पूर्णभक्तिसे युक्त होकर स्तोत्र-मन्त्रोंसे वे इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे॥ २२—२४॥

नमो देवि विश्वेश्वरि प्राणनाथे
सदानन्दरूपे सुरानन्ददे ते।
नमो दानवान्तप्रदे मानवाना-
मनेकार्थदे भक्तिगम्यस्वरूपे॥ २५

न ते नामसंख्यां न ते रूपमीदृ-
क्तथा कोऽपि वेदादिदेवस्वरूपे।
त्वमेवासि सर्वेषु शक्तिस्वरूपा
प्रजासृष्टिसंहारकाले सदैव॥ २६

स्मृतिस्त्वं धृतिस्त्वं त्वमेवासि बुद्धि-
र्जरा पुष्टितुष्टी धृतिः कान्तिशान्ती।
सुविद्या सुलक्ष्मीर्गतिः कीर्तिमेधे
त्वमेवासि विश्वस्य बीजं पुराणम्॥ २७

यदा यैः स्वरूपैः करोषीह कार्यं
सुराणां च तेभ्यो नमामोऽद्य शान्त्यै।
क्षमा योगनिद्रा दया त्वं विवक्षा
स्थिता सर्वभूतेषु शस्तैः स्वरूपैः॥ २८

कृतं कार्यमादौ त्वया यत्सुराणां
हतोऽसौ महारिर्मदान्धो हयारिः।
दया ते सदा सर्वदेवेषु देवि
प्रसिद्धा पुराणेषु वेदेषु गीता॥ २९

किमत्रास्ति चित्रं यदम्बा सुतं स्वं
मुदा पालयेत्पोषयेत्सम्यगेव।
यतस्त्वं जनित्री सुराणां सहाया
कुरुष्वैकचित्तेन कार्यं समग्रम्॥ ३०

न वा ते गुणानामियत्तां स्वरूपं
वयं देवि जानीमहे विश्ववन्द्ये।
कृपापात्रमित्येव मत्वा तथास्मा-
न्भयेभ्यः सदा पाहि पातुं समर्थे॥ ३१

हे विश्वेश्वरि! हे प्राणोंकी स्वामिनि! सदा आनन्दरूपमें रहनेवाली तथा देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है। दानवोंका अन्त करनेवाली, मनुष्योंकी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाली तथा भक्तिके द्वारा अपने रूपका दर्शन देनेवाली हे देवि! आपको नमस्कार है॥ २५॥

हे आदिदेवस्वरूपिणि! आपके नामोंकी निश्चित संख्या तथा आपके इस रूपको कोई भी नहीं जान सकता। सबमें आप ही विराजमान हैं। जीवोंके सृजन और संहारकालमें शक्तिस्वरूपसे सदा आप ही कार्य करती हैं॥ २६॥

आप ही स्मृति, धृति, बुद्धि, जरा, पुष्टि, तुष्टि, धृति, कान्ति, शान्ति, सुविद्या, सुलक्ष्मी, गति, कीर्ति, मेधा और विश्वकी पुरातन मूल प्रकृति हैं॥ २७॥

आप जिस समय जिन स्वरूपोंसे देवताओंका कार्य सम्पन्न करती हैं, हम शान्तिके लिये आपके उन स्वरूपोंको नमस्कार करते हैं। आप ही क्षमा, योगनिद्रा, दया तथा विवक्षा—इन कल्याणकारी रूपोंसे सभी जीवोंमें निवास करती हैं॥ २८॥

पूर्वकालमें आपने हम देवताओंका कार्य किया था जो कि महान् शत्रु मदान्ध महिषासुरका वध कर डाला था। हे देवि! सभी देवताओंपर आपकी दया सदैव रहती है, आपकी दया पूर्ण प्रसिद्ध है और पुराणों तथा वेदोंमें भी उसका वर्णन किया गया है॥ २९॥

इसमें आश्चर्यकी क्या बात; क्योंकि माता प्रसन्नतापूर्वक सम्यक् प्रकारसे अपने पुत्रका पालन-पोषण करती ही है। क्योंकि आप देवताओंकी जननी हैं, अत: उनका सहायक बनकर एकाग्र मनसे हमलोगोंका सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करें॥ ३०॥

हे देवि! हे विश्ववन्द्ये! हमलोग न आपके गुणोंकी सीमा जानते हैं और न आपका स्वरूप ही जानते हैं। अत: रक्षा करनेमें समर्थ हे देवि! हमें केवल अपना कृपापात्र मानकर आप भयोंसे निरन्तर हमारी रक्षा करती रहें॥ ३१॥

विना बाणपातैर्विना मुष्टिघातै-
र्विना शूलखड्गैर्विना शक्तिदण्डैः।
रिपून्हन्तुमेवासि शक्ता विनोदा-
त्तथापीह लोकोपकाराय लीला॥ ३२

इदं शाश्वतं नैव जानन्ति मूढा
न कार्यं विना कारणं सम्भवेद्वा।
वयं तर्कयामोऽनुमानं प्रमाणं
त्वमेवासि कर्तास्य विश्वस्य चेति॥ ३३

अजः सृष्टिकर्ता मुकुन्दोऽवितायं
हरो नाशकृद्वै पुराणे प्रसिद्धः।
न किं त्वत्प्रसूतास्त्रयस्ते युगादौ
त्वमेवासि सर्वस्य तेनैव माता॥ ३४

त्रिभिस्त्वं पुराराधिता देवि दत्ता
त्वया शक्तिरुग्रा च तेभ्यः समग्रा।
त्वया संयुतास्ते प्रकुर्वन्ति कामं
जगत्पालनोत्पत्तिसंहारमेव ॥ ३५

ते किं न मन्दमतयो यतयो विमूढा-
स्त्वां ये न विश्वजननीं समुपाश्रयन्ति।
विद्यां परां सकलकामफलप्रदां तां
मुक्तिप्रदां विबुधवृन्दसुवन्दिताङ्घ्रिम्॥ ३६

ये वैष्णवाः पाशुपताश्च सौरा
दम्भास्त एव प्रतिभान्ति नूनम्।
ध्यायन्ति न त्वां कमलाञ्च लज्जां
कान्तिं स्थितिं कीर्तिमथापि पुष्टिम्॥ ३७

हरिहरादिभिरप्यथ सेविता
त्वमिह देववरैरसुरैस्तथा।
भुवि भजन्ति न येऽल्पधियो नरा
जननि ते विधिना खलु वञ्चिताः॥ ३८

जलधिजापदपङ्कजरञ्जनं
जतुरसेन करोति हरिः स्वयम्।
त्रिनयनोऽपि धराधरजाङ्घ्रिपं-
कजपरागनिषेवणतत्परः ॥ ३९

यद्यपि बिना बाण चलाये; बिना मुष्टिप्रहार किये और बिना त्रिशूल, तलवार, बर्छी, दण्ड आदिका प्रयोग किये भी आप विनोदपूर्वक शत्रुओंका संहार करनेमें समर्थ हैं, फिर भी जगत्के उपकारके लिये ही आपकी यह लीला दृष्टिगोचर होती है॥ ३२॥

आपका यह रूप सनातन है—इस रहस्यको अविवेकी लोग नहीं जानते हैं। [हे माता!] बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता। अतः अनुमान और प्रमाणके आधारपर हम यही जानते हैं कि इस विश्वकी रचना करनेवाली आप ही हैं॥ ३३॥

ब्रह्मा सृष्टिकर्ता, विष्णु पालनकर्ता और शंकर संहारकर्ताके रूपमें पुराणमें प्रसिद्ध हैं, किंतु क्या वे तीनों देव आपसे उत्पन्न नहीं हुए हैं? युगके प्रारम्भमें केवल आप ही रहती हैं, अतः आप ही सबकी माता हैं॥ ३४॥

हे देवि! पूर्वकालमें इन तीनोंने आपकी आराधना की थी, तब आपने उन्हें अपनी समस्त प्रबल शक्ति प्रदान की थी। वास्तवमें उसी शक्तिसे सम्पन्न होकर वे जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करते हैं॥ ३५॥

जो संन्यासी लोग विश्वकी जननी, परम विद्या-स्वरूपिणी, समस्त वांछित फल प्रदान करनेवाली, मुक्तिदायिनी तथा सभी देवताओंसे वन्दित चरणोंवाली आप भगवतीकी उपासना नहीं करते, क्या वे मन्दबुद्धि तथा अज्ञानी नहीं हैं?॥ ३६॥

विष्णु, शिव तथा सूर्यकी आराधना करनेवाले जो लोग कमला, लज्जा, कान्ति, स्थिति, कीर्ति और पुष्टि नामोंसे विख्यात आप भगवतीका ध्यान नहीं करते हैं, वे निश्चितरूपसे दम्भी प्रतीत होते हैं॥ ३७॥

विष्णु और शंकर आदि श्रेष्ठ देवता तथा असुर भी आपकी पूजा करते हैं। अतः हे माता! इस जगत्में जो मन्दबुद्धि मनुष्य आपकी आराधना नहीं करते, निश्चय ही विधाताने उन्हें ठग लिया है॥ ३८॥

भगवान् विष्णु अपने पास लक्ष्मीरूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलोंमें स्वयं महावर लगाते हैं। इसी प्रकार त्रिनेत्र भगवान् शिव भी अपने पास पार्वती-रूपमें विराजमान आप भगवतीके चरणकमलकी रजके सेवनमें निरन्तर तत्पर रहते हैं; तब अन्य

किमपरस्य नरस्य कथानके-
स्तव पदाब्जयुगं न भजन्ति के।
विगतरागगृहाश्च दयां क्षमां
कृतधियो मुनयोऽपि भजन्ति ते॥ ४०

देवि त्वदङ्घ्रिभजने न जना रता ये
संसारकूपपतिताः पतिताः किलामी।
ते कुष्ठगुल्मशिरआधियुता भवन्ति
दारिद्र्यदैन्यसहिता रहिताः सुखौघैः॥ ४१

ये काष्ठभारवहने यवसावहारे
कार्ये भवन्ति निपुणा धनदारहीनाः।
जानीमहेऽल्पमतिभिर्भवदङ्घ्रिसेवा
पूर्वे भवे जननि तैर्न कृता कदापि॥ ४२

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैः सर्वैरम्बिका करुणान्विता।
प्रादुर्बभूव तरसा रूपयौवनसंयुता॥ ४३

दिव्याम्बरधरा देवी दिव्यभूषणभूषिता।
दिव्यमाल्यसमायुक्ता दिव्यचन्दनचर्चिता॥ ४४

जगन्मोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता।
अद्वितीयस्वरूपा सा देवानां दर्शनं गता॥ ४५

जाह्नव्यां स्नातुकामा सा निर्गता गिरिगह्वरात्।
दिव्यरूपधरा देवी विश्वमोहनमोहिनी॥ ४६

देवान्स्तुतिपरानाह मेघगम्भीरया गिरा।
प्रेमपूर्वं स्मितं कृत्वा कोकिलामञ्जुवादिनी॥ ४७

देव्युवाच

भो भोः सुरवराः कात्र भवद्भिः स्तूयते भृशम्।
किमर्थं ब्रूत वः कार्यं चिन्ताविष्टाः कुतः पुनः॥ ४८

मनुष्यकी बात ही क्या! आपके चरणकमलोंकी आराधना कौन नहीं करते? घर-गृहस्थीसे विरक्त बुद्धिमान् मुनिगण भी दया और क्षमारूपमें प्रतिष्ठित आप भगवतीकी उपासना करते हैं॥ ३९-४०॥

हे देवि! जो लोग आपके चरणोंकी उपासनामें संलग्न नहीं रहते, उन्हें निश्चय ही इस संसाररूप अगाध कूपमें गिरना पड़ता है। वे पतित लोग कुष्ठ, गुल्म और शिरोरोगसे ग्रस्त रहते हैं, दरिद्रता तथा दीनतासे युक्त रहते हैं और सुखोंसे सदा वंचित रहते हैं॥ ४१॥

हे माता! धन और स्त्रीसे रहित जो मनुष्य लकड़ीका बोझ ढोने और तृण आदिका वहन करनेमें लगे हैं, [उनके विषयमें] हम तो यही समझते हैं कि उन मन्दबुद्धि मनुष्योंने पूर्वजन्ममें आपके चरणोंकी उपासना कभी नहीं की॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार समस्त देवताओंके स्तुति करनेपर अम्बिका करुणासे ओत-प्रोत होकर तुरंत प्रकट हो गयीं। [उस समय] वे भगवती रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थीं, उन्होंने दिव्य वस्त्र धारण कर रखा था, वे अलौकिक आभूषणोंसे अलंकृत थीं, दिव्य मालाओंसे सुशोभित हो रही थीं, दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त थीं, जगत्‌को मोहित कर देनेवाले सौन्दर्यसे सम्पन्न थीं और समस्त शुभ लक्षणोंसे समन्वित थीं। इस प्रकार अद्वितीय स्वरूपवाली वे भगवती देवताओंके समक्ष प्रकट हुईं॥ ४३—४५॥

दिव्य रूप धारण करनेवाली तथा विश्वको मोह लेनेमें समर्थ कामदेवको भी मोहित करनेवाली वे भगवती गंगामें स्नान करनेकी अभिलाषासे पर्वतकी कन्दरासे बाहर निकली थीं॥ ४६॥

कोकिलके समान मधुर बोलनेवाली भगवती प्रेमपूर्ण भावसे मुसकराकर स्तुति करनेमें संलग्न देवताओंसे मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहने लगीं॥ ४७॥

देवी बोलीं—हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग यहाँपर इतनी बड़ी स्तुति किसलिये कर रहे हैं? आपलोग इस प्रकार चिन्तासे व्याकुल क्यों हैं? मुझे अपना कार्य बताइये॥ ४८॥

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मोहिता रूपसम्पदा।
प्रेमपूर्वं हृदुत्साहास्तामूचुः सुरसत्तमाः॥ ४९

देवा ऊचुः

देवि स्तुमस्त्वां विश्वेशि प्रणताः स्म कृपार्णवे।
पाहि नः सर्वदुःखेभ्यः संविग्नान्दैत्यतापितान्॥ ५०

पुरा त्वया महादेवि निहत्यासुरकण्टकम्।
महिषं नो वरो दत्तः स्मर्तव्याहं सदापदि॥ ५१

स्मरणाद्दैत्यजां पीडां नाशयिष्याम्यसंशयम्।
तेन त्वं संस्मृता देवि नूनमस्माभिरित्यपि॥ ५२

अद्य शुम्भनिशुम्भौ द्वावसुरौ घोरदर्शनौ।
उत्पन्नौ विघ्नकर्तारावहन्यौ पुरुषैः किल॥ ५३

रक्तबीजश्च बलवांश्चण्डमुण्डौ तथासुरौ।
एतैरन्यैश्च देवानां हृतं राज्यं महाबलैः॥ ५४

गतिरन्या न चास्माकं त्वमेवासि महाबले।
कुरु कार्यं सुराणां वै दुःखितानां सुमध्यमे॥ ५५

देवास्त्वदङ्घ्रिभजने निरताः सदैव
ते दानवैरतिबलैर्विपदं सुनीताः।
तान्देवि दुःखरहितान् कुरु भक्तियुक्ता-
न्मातस्त्वमेव शरणं भव दुःखितानाम्॥ ५६

सकलभुवनरक्षा देवि कार्या त्वयाद्य
स्वकृतमिति विदित्वा विश्वमेतद् युगादौ।
जननि जगति पीडां दानवा दर्पयुक्ताः
स्वबलमदसमेतास्ते प्रकुर्वन्ति मातः॥ ५७

व्यासजी बोले—भगवतीका यह वचन सुनकर उनके रूप-वैभवसे मोहित श्रेष्ठ देवताओंका हृदय उत्साहसे परिपूर्ण हो गया, जिससे वे प्रेमपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ४९॥

देवता बोले—जगत्को नियन्त्रणमें रखनेवाली हे देवि! हम आपकी स्तुति कर रहे हैं, हम आपके शरणागत हैं। हे कृपासिन्धो! दैत्योंसे सताये गये हम देवताओंकी सम्पूर्ण दुःखोंसे रक्षा कीजिये॥ ५०॥

हे महादेवि! पूर्वकालमें देवताओंके लिये कंटक बने महिषासुरका वध करके आपने हमें वर प्रदान किया था—'आपलोग संकटमें मुझे सदा याद कीजियेगा, स्मरण करते ही मैं दैत्योंके द्वारा आपलोगोंको पहुँचायी गयी पीड़ाका निःसन्देह नाश कर दूँगी।' हे देवि! इसीलिये हमलोगोंने आपका स्मरण किया है॥ ५१-५२॥

इस समय शुम्भ और निशुम्भ नामक दो दानव उत्पन्न हुए हैं, जो देखनेमें महाभयंकर हैं। वे [हमारे कार्योंमें] विघ्न डाला करते हैं। वे पुरुषोंसे सर्वथा अवध्य हैं। ऐसे ही बलशाली दानव रक्तबीज तथा चण्ड और मुण्ड भी हैं। इन सभी तथा अन्य महाबली दानवोंने हम देवताओंका राज्य छीन लिया है। हे महाबले! हमलोगोंका दूसरा कोई अवलम्ब नहीं, एकमात्र आप ही हमारी शरण हैं। हे सुमध्यमे! आप दुःखित देवताओंका कार्य सिद्ध करें॥ ५३—५५॥

देवता आपके चरणोंकी उपासनामें सदैव संलग्न रहते हैं। [इस समय] वे सब महान् बलशाली दैत्योंके द्वारा विपत्तिमें डाल दिये गये हैं। अतः हे देवि! आप उन भक्तिपरायण देवताओंको दुःखरहित कर दीजिये। हे माता! आप दुःखित देवताओंका आश्रय बन जाइये॥ ५६॥

हे देवि! युगके आरम्भमें इस विश्वकी रचना आप भगवतीने स्वयं की थी—यह जानकर आप इस समय सम्पूर्ण भूमण्डलकी रक्षा करें। हे जननि! हे माता! अपने बलसे मदान्वित तथा अभिमानमें चूर दानव जगत्में लोगोंको पीड़ित कर रहे हैं॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देवकृतदेव्याराधनवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

◆

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवतीके श्रीविग्रहसे कौशिकीका प्राकट्य, देवीकी कालिकारूपमें परिणति, चण्ड-मुण्डसे देवीके अद्भुत सौन्दर्यको सुनकर शुम्भका सुग्रीवको दूत बनाकर भेजना, जगदम्बाका विवाहके विषयमें अपनी शर्त बताना

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी दैवतैः शत्रुतापितैः।
स्वशरीरात्परं रूपं प्रादुर्भूतं चकार ह॥ १

पार्वत्यास्तु शरीराद्वै निःसृता चाम्बिका यदा।
कौशिकीति समस्तेषु ततो लोकेषु पठ्यते॥ २

निःसृतायां तु तस्यां सा पार्वती तनुव्यत्ययात्।
कृष्णरूपाथ सञ्जाता कालिका सा प्रकीर्तिता॥ ३

मषीवर्णा महाघोरा दैत्यानां भयवर्धिनी।
कालरात्रीति सा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा॥ ४

अम्बिकायाः परं रूपं विरराज मनोहरम्।
सर्वभूषणसंयुक्तं लावण्यगुणसंयुतम्॥ ५

ततोऽम्बिका तदा देवानित्युवाच ह सस्मिता।
तिष्ठन्तु निर्भया यूयं हनिष्यामि रिपूनिह॥ ६

कार्यं वः सर्वथा कार्यं विहरिष्याम्यहं रणे।
निशुम्भादीन्वधिष्यामि युष्माकं सुखहेतवे॥ ७

इत्युक्त्वा सा तदा देवी सिंहारूढा मदोत्कटा।
कालिकां पार्श्वतः कृत्वा जगाम नगरे रिपोः॥ ८

सा गत्वोपवने तस्थावम्बिका कालिकान्विता।
जगावथ कलं तत्र जगन्मोहनमोहनम्॥ ९

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब शत्रुओंसे सन्त्रस्त देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवतीने अपने शरीरसे एक दूसरा रूप प्रकट कर दिया॥ १॥

जब भगवती पार्वतीके विग्रहकोशसे अम्बिका प्रकट हुईं, तब वे सम्पूर्ण जगत्‌में 'कौशिकी' इस नामसे कही जाने लगीं। पार्वतीके शरीरसे उन भगवती कौशिकीके निकल जानेसे शरीर क्षीण हो जानेके कारण वे पार्वती कृष्णवर्णकी हो गयीं। अतः वे कालिका नामसे विख्यात हुईं॥ २-३॥

वे कालिका स्याहीके समान काले वर्णकी थीं तथा महाभयंकर प्रतीत होती थीं। दैत्योंके लिये भयवर्धिनी तथा [भक्तोंके लिये] समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे भगवती 'कालरात्रि' इस नामसे पुकारी जाने लगीं॥ ४॥

समस्त आभूषणोंसे मण्डित और लावण्यगुणसे सम्पन्न वह भगवतीका दूसरा रूप (कौशिकी) अत्यन्त मनोहर प्रतीत हो रहा था॥ ५॥

तदनन्तर अम्बिकाने मुसकराकर देवताओंसे यह कहा—आपलोग निर्भय रहें, मैं आपके शत्रुओंका वध अभी कर डालूँगी। आपलोगोंका कार्य मुझे सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न करना है। मैं समरांगणमें विचरण करूँगी और आपलोगोंके कल्याणके लिये निशुम्भ आदि दानवोंका संहार करूँगी॥ ६-७॥

तब ऐसा कहकर गर्वोन्मत्त वे भगवती कौशिकी सिंहपर सवार हो गयीं और देवी कालिकाको साथमें लेकर शत्रुके नगरकी ओर चल पड़ीं॥ ८॥

कालिकासहित देवी अम्बिका वहाँ पहुँचकर नगरके उपवनमें रुक गयीं। तत्पश्चात् उन्होंने जगत्‌को मोहमें डालनेवालेको भी मोहित करनेवाला गीत गाना आरम्भ कर दिया॥ ९॥

श्रुत्वा तन्मधुरं गानं मोहमीयुः खगा मृगाः।
मुदञ्च परमां प्रापुरमरा गगने स्थिताः॥ १०

तस्मिन्नवसरे तत्र दानवौ शुम्भसेवकौ।
चण्डमुण्डाभिधौ घोरौ रममाणौ यदृच्छया॥ ११

आगतौ ददृशाते तु तां तदा दिव्यरूपिणीम्।
अम्बिकां गानसंयुक्तां कालिकां पुरतः स्थिताम्॥ १२

दृष्ट्वा तां दिव्यरूपाञ्च दानवौ विस्मयान्वितौ।
जग्मतुस्तरसा पार्श्वं शुम्भस्य नृपसत्तम॥ १३

तौ गत्वा तं समासीनं दैत्यानामधिपं गृहे।
ऊचतुर्मधुरां वाणीं प्रणम्य शिरसा नृपम्॥ १४

राजन् हिमालयात्कामं कामिनी काममोहिनी।
सम्प्राप्ता सिंहमारूढा सर्वलक्षणसंयुता॥ १५

नेदृशी देवलोकेऽस्ति न गन्धर्वपुरे तथा।
न दृष्टा न श्रुता क्वापि पृथिव्यां प्रमदोत्तमा॥ १६

गानञ्च तादृशं राजन् करोति जनरञ्जनम्।
मृगास्तिष्ठन्ति तत्पार्श्वे मधुरस्वरमोहिताः॥ १७

ज्ञायतां कस्य पुत्रीयं किमर्थमिह चागता।
गृह्यतां राजशार्दूल तव योग्यास्ति कामिनी॥ १८

ज्ञात्वानय गृहे भार्यां कुरु कल्याणलोचनाम्।
निश्चितं नास्ति संसारे नारी त्वेवंविधा किल॥ १९

देवानां सर्वरत्नानि गृहीतानि त्वया नृप।
कस्मान्नेमां वरारोहां प्रगृह्णासि नृपोत्तम॥ २०

इन्द्रस्यैरावतः श्रीमान्पारिजाततरुस्तथा।
गृहीतोऽश्वः सप्तमुखस्त्वया नृप बलात्किल॥ २१

उस मधुर गानको सुनकर पशु-पक्षी भी मोहित हो गये और आकाशमण्डलमें स्थित देवतागण अत्यन्त आनन्दित हो उठे॥ १०॥

उसी समय शुम्भके चण्ड तथा मुण्ड नामक दो सेवक जो भयंकर दानव थे, स्वेच्छापूर्वक घूमते हुए वहाँ आ गये। उन्होंने देखा कि दिव्य स्वरूपवाली भगवती अम्बिका गायनमें लीन हैं और कालिका उनके सम्मुख विराजमान हैं॥ ११-१२॥

हे नृपश्रेष्ठ! उन दिव्य रूपवाली भगवतीको देखकर दोनों दानव विस्मयमें पड़ गये। वे तुरंत शुम्भके पास जा पहुँचे॥ १३॥

अपने महलमें बैठे हुए उस दानवराज शुम्भके पास जाकर उन दोनोंने सिर झुकाकर राजाको प्रणाम करके मधुर वाणीमें कहा—॥ १४॥

हे राजन्! कामदेवको भी मोहित कर देनेवाली एक सुन्दरी हिमालयसे यहाँ आयी हुई है। वह सिंहपर सवार है तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न है॥ १५॥

ऐसी उत्तम स्त्री न स्वर्गमें है और न गन्धर्वलोकमें। सम्पूर्ण पृथ्वीपर ऐसी सुन्दरी न तो कहीं देखी गयी और न सुनी ही गयी॥ १६॥

हे राजन्! वह ऐसा गाती है कि उसके गानेपर सभी मुग्ध हो जाते हैं। उसके मधुर स्वरसे मोहित होकर मृग भी उसके पास बैठे रह जाते हैं॥ १७॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब आप यह पता लगाइये कि यह किसकी पुत्री है और किसलिये यहाँ आयी हुई है? [उसके बाद] उसे अपने यहाँ रख लीजिये; क्योंकि वह सुन्दरी आपके योग्य है॥ १८॥

यह जानकारी प्राप्त करके आप उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको अपने घर ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये; क्योंकि ऐसी स्त्री निश्चितरूपसे संसारमें नहीं है॥ १९॥

हे राजन्! आप देवताओंके सम्पूर्ण रत्न अपने अधिकारमें कर चुके हैं, तो फिर हे नृपश्रेष्ठ! इस सुन्दरीको भी आप अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते?॥ २०॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक इन्द्रका ऐश्वर्ययुक्त ऐरावत हाथी, पारिजात वृक्ष और सप्तमुखवाला उच्चैःश्रवा घोड़ा छीन लिया॥ २१॥

विमानं वैधसं दिव्यं मरालध्वजसंयुतम्।
त्वयात्तं रत्नभूतं तद्बलेन नृप चाद्भुतम्॥ २२

कुबेरस्य निधिः पद्मस्त्वया राजन् समाहृतः।
छत्रं जलपतेः शुभ्रं गृहीतं तत्त्वया बलात्॥ २३

पाशश्चापि निशुम्भेन भ्रात्रा तव नृपोत्तम।
गृहीतोऽस्ति हठात्कामं वरुणस्य जितस्य च॥ २४

अम्लानपङ्कजां तुभ्यं मालां जलनिधिर्ददौ।
भयात्तव महाराज रत्नानि विविधानि च॥ २५

मृत्योः शक्तिर्यमस्यापि दण्डः परमदारुणः।
त्वया जित्वा हृतः कामं किमन्यद्वर्ण्यते नृप॥ २६

कामधेनुर्गृहीताद्य वर्तते सागरोद्भवा।
मेनकाद्या वशे राजंस्तव तिष्ठन्ति चाप्सराः॥ २७

एवं सर्वाणि रत्नानि त्वयात्तानि बलादपि।
कस्मान्न गृह्यते कान्तारत्नमेषा वराङ्गना॥ २८

सर्वाणि ते गृहस्थानि रत्नानि विशदान्यथ।
अनया सम्भविष्यन्ति रत्नभूतानि भूपते॥ २९

त्रिषु लोकेषु दैत्येन्द्र नेदृशी वर्तते प्रिया।
तस्मात्तामानयाशु त्वं कुरु भार्यां मनोहराम्॥ ३०

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा तयोर्वाक्यं मधुरं मधुराक्षरम्।
प्रसन्नवदनः प्राह सुग्रीवं सन्निधौ स्थितम्॥ ३१

गच्छ सुग्रीव दूतत्वं कुरु कार्यं विचक्षण।
वक्तव्यञ्च तथा तत्र यथाभ्येति कृशोदरी॥ ३२

उपायौ द्वौ प्रयोक्तव्यौ कान्तासु सुविचक्षणैः।
सामदाने इति प्राहुः शृङ्गाररसकोविदाः॥ ३३

हे नृप! आपने ब्रह्माजीके हंसध्वजसम्पन्न, दिव्य तथा रत्नमय अद्भुत विमानको बलपूर्वक अपने अधिकारमें कर लिया॥ २२॥

हे राजन्! आपने बलपूर्वक कुबेरकी पद्म नामक निधिको छीन लिया है और वरुणके श्वेत छत्रको अपने अधिकारमें कर लिया है॥ २३॥

हे नृपश्रेष्ठ! आपके भाई निशुम्भने भी वरुणको पराजित करके उसके पाशको हठपूर्वक छीन लिया है॥ २४॥

हे महाराज! आपके भयसे समुद्रने कभी भी न मुरझानेवाली कमल-पुष्पोंकी माला और विविध प्रकारके रत्न आपको प्रदान किये हैं॥ २५॥

आपने मृत्युको जीतकर उसकी शक्तिको तथा यमराजको जीतकर उसके अति भीषण दण्डको अपने पूर्ण अधिकारमें कर लिया है। हे राजन्! आपके पराक्रमका और क्या वर्णन किया जाय? समुद्रसे प्रादुर्भूत कामधेनु आपने छीन ली, जो इस समय आपके पास विद्यमान है। हे राजन्! मेनका आदि अप्सराएँ भी आपके अधीन पड़ी हुई हैं॥ २६-२७॥

इस प्रकार जब आपने सभी रत्न बलपूर्वक छीन लिये हैं, तब नारियोंमें रत्नस्वरूपा इस सुन्दरीको भी अपने अधिकारमें क्यों नहीं कर लेते?॥ २८॥

हे भूपते! आपके गृहमें विद्यमान समस्त विपुल रत्न इस सुन्दरीसे सुशोभित होकर यथार्थरूपमें रत्नस्वरूप हो जायँगे॥ २९॥

हे दैत्यराज! तीनों लोकोंमें ऐसी सुन्दरी स्त्री नहीं है। अतः आप उस मनोहारिणी स्त्रीको शीघ्र ले आइये और अपनी भार्या बना लीजिये॥ ३०॥

व्यासजी बोले—चण्ड-मुण्डके मधुमय अक्षरोंसे युक्त यह मधुर वचन सुनकर प्रसन्न मुखमण्डलवाला शुम्भ अपने समीपमें बैठे हुए सुग्रीवसे कहने लगा—॥ ३१॥

हे बुद्धिसम्पन्न सुग्रीव! तुम दूत बनकर जाओ और मेरा यह कार्य सम्पन्न करो। वहाँ तुम ऐसी बातचीत करना, जिससे वह कृशोदरी यहाँ आ जाय॥ ३२॥

बुद्धिमान् पुरुषोंको स्त्रियोंके विषयमें साम और दान—इन दो उपायोंका प्रयोग करना चाहिये—ऐसा शृंगाररसके विद्वानोंने कहा है॥ ३३॥

भेदे प्रयुज्यमानेऽपि रसाभासस्तु जायते।
निग्रहे रसभङ्गः स्यात्तस्मात्तौ दूषितौ बुधैः॥ ३४

सामदानमुखैर्वाक्यैः श्लक्ष्णैर्नर्मयुतैस्तथा।
का न याति वशे दूत कामिनी कामपीडिता॥ ३५

व्यास उवाच

सुग्रीवस्तु वचः श्रुत्वा शुम्भोक्तं सुप्रियं पटु।
जगाम तरसा तत्र यत्रास्ते जगदम्बिका॥ ३६

सोऽपश्यत्सुमुखीं कान्तां सिंहस्योपरि संस्थिताम्।
प्रणम्य मधुरं वाक्यमुवाच जगदम्बिकाम्॥ ३७

दूत उवाच

वरोरु त्रिदशारातिः शुम्भः सर्वाङ्गसुन्दरः।
त्रैलोक्याधिपतिः शूरः सर्वजिद्राजते नृपः॥ ३८

तेनाहं प्रेषितः कामं त्वत्सकाशं महात्मना।
त्वद्रूपश्रवणासक्तचित्तेनातिविदूयता॥ ३९

वचनं तस्य तन्वङ्गि शृणु प्रेमपुरःसरम्।
प्रणिपत्य यथा प्राह दैत्यानामधिपस्त्वयि॥ ४०

देवा मया जिताः सर्वे त्रैलोक्याधिपतिस्त्वहम्।
यज्ञभागानहं कान्ते गृह्णामीह स्थितः सदा॥ ४१

हृतसारा कृता नूनं द्यौर्मया रत्नवर्जिता।
यानि रत्नानि देवानां तानि चाहृतवानहम्॥ ४२

भोक्ताहं सर्वरत्नानां त्रिषु लोकेषु भामिनि।
वशानुगाः सुराः सर्वे मम दैत्याश्च मानवाः॥ ४३

त्वद्गुणैः कर्णमागत्य प्रविश्य हृदयान्तरम्।
त्वदधीनः कृतः कामं किङ्करोऽस्मि करोमि किम्॥ ४४

भेदनीतिका प्रयोग करनेपर रसका आभासमात्र हो पाता है और दण्डनीतिका प्रयोग करनेपर रसभंग ही हो जाता है, अतः विद्वान् पुरुषोंने इन दोनोंको दोषपूर्ण बताया है॥ ३४॥

हे दूत! ऐसी कौन स्त्री होगी; जो साम, दान—इन मुख्य नीतियोंसे सम्पन्न, मधुर तथा हास-परिहाससे परिपूर्ण वाक्योंके द्वारा कामपीड़ित होकर वशमें न हो जाय॥ ३५॥

व्यासजी बोले—शुम्भके द्वारा कही गयी अत्यन्त प्रिय तथा चातुर्यपूर्ण बात सुनकर सुग्रीव बड़े वेगसे उधर चल पड़ा, जहाँ जगदम्बिका विराजमान थीं॥ ३६॥

वहाँपर उसने देखा कि एक सुन्दर मुखवाली युवती सिंहपर सवार है। तब जगदम्बिकाको प्रणाम करके वह मधुर वाणीमें कहने लगा—॥ ३७॥

दूत बोला—हे सुजघने! देवताओंके शत्रु राजा शुम्भ सर्वांगसुन्दर और पराक्रमी हैं। सबको जीतकर वे तीनों लोकोंके अधिपति हो गये हैं॥ ३८॥

आपके सौन्दर्यके विषयमें सुनकर आपपर आसक्त मनवाले उन्हीं महाराज शुम्भने व्याकुल होकर मुझे आपके पास भेजा है॥ ३९॥

हे तन्वंगि! दैत्यपति शुम्भने आपको प्रणाम करके जो प्रेमपूर्ण वचन कहा है, उनके उस वचनको आप सुनें—॥ ४०॥

हे कान्ते! मैंने सभी देवताओंको जीत लिया है, इस समय मैं तीनों लोकोंका स्वामी हूँ। मैं यहाँ रहते हुए सदा यज्ञभाग प्राप्त करता हूँ॥ ४१॥

मैंने स्वर्गलोककी सभी सार वस्तुएँ छीन ली हैं और उसे रत्नविहीन कर दिया है। देवताओंके पास जो भी रत्न थे, उन सबको मैंने हर लिया है॥ ४२॥

हे भामिनि! तीनों लोकोंमें सभी रत्नोंका भोग करनेवाला एकमात्र मैं ही हूँ। देवता, दैत्य और मनुष्य—ये सब मेरे अधीन रहते हैं॥ ४३॥

तुम्हारे गुणोंने कानोंके मार्गसे मेरे हृदयमें प्रवेश करके मुझे पूर्णरूपसे तुम्हारे वशमें कर दिया है। अब मैं क्या करूँ? मैं तो तुम्हारा दास बन गया हूँ॥ ४४॥

त्वमाज्ञापय रम्भोरु तत्करोमि वशानुगः।
दासोऽहं तव चार्वङ्गि रक्ष मां कामबाणतः॥ ४५

भज मां त्वं मरालाक्षि तवाधीनं स्मराकुलम्।
त्रैलोक्यस्वामिनी भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्॥ ४६

तव चाज्ञाकरः कान्ते भवामि मरणावधि।
अवध्योऽस्मि वरारोहे सदेवासुरमानुषैः॥ ४७

सदा सौभाग्यसंयुक्ता भविष्यसि वरानने।
यत्र ते रमते चित्तं तत्र क्रीडस्व सुन्दरि॥ ४८

इति तस्य वचश्चित्ते विमृश्य मदमन्थरे।
वक्तव्यं यद्भवेत्प्रेम्णा तद् ब्रूहि मधुरं वचः॥ ४९

शुम्भाय चञ्चलापाङ्गि तद् ब्रवीम्यहमाशु वै।

व्यास उवाच

तद्दूतवचनं श्रुत्वा स्मितं कृत्वा सुपेशलम्॥ ५०

तं प्राह मधुरां वाचं देवी देवार्थसाधिका।

देव्युवाच

जानाम्यहं निशुम्भं च शुम्भं चातिबलं नृपम्॥ ५१

जेतारं सर्वदेवानां हन्तारञ्चैव विद्विषाम्।
राशिं सर्वगुणानाञ्च भोक्तारं सर्वसम्पदाम्॥ ५२

दातारं चातिशूरं च सुन्दरं मन्मथाकृतिम्।
द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तमवध्यं सुरमानुषैः॥ ५३

ज्ञात्वा समागतास्म्यत्र द्रष्टुकामा महासुरम्।
रत्नं कनकमायाति स्वशोभाधिकवृद्धये॥ ५४

तत्राहं स्वपतिं द्रष्टुं दूरादेवागतास्मि वै।
दृष्टा मया सुराः सर्वे मानवा भुवि मानदाः॥ ५५

गन्धर्वा राक्षसाश्चान्ये ये चातिप्रियदर्शनाः।
सर्वे शुम्भभयाद्भीता वेपमाना विचेतसः॥ ५६

हे रम्भोरु! मैं तुम्हारे अधीन हूँ, तुम मुझे जो भी आज्ञा प्रदान करो, उसे मैं करूँगा। हे सुन्दर अंगोंवाली! मैं तुम्हारा दास हूँ, कामबाणसे मेरी रक्षा करो॥ ४५॥

हे मरालाक्षि! तुम्हारे अधीन हुए मुझ कामातुरको तुम स्वीकार कर लो और तीनों लोकोंकी स्वामिनी बनकर उत्कृष्ट सुखोंका उपभोग करो॥ ४६॥

हे कान्ते! मैं मरणपर्यन्त तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा। हे वरारोहे! मैं देवता, असुर तथा मनुष्योंसे अवध्य हूँ। हे सुमुखि! [मुझे पति बनाकर] तुम सदा सौभाग्यवती रहोगी। हे सुन्दरि! जहाँ तुम्हारा मन लगे, वहाँ विहार करना॥ ४७-४८॥

मदसे अलसायी हुई हे कामिनि! [मेरे स्वामी] उन शुम्भकी बातपर अपने मनमें भलीभाँति विचार करके तुम्हें जो कुछ कहना हो, उसे प्रेमपूर्वक मधुर वाणीमें कहो। हे चंचल कटाक्षवाली! मैं वह सन्देश तुरंत शुम्भसे निवेदन करूँगा॥ ४९$\frac{१}{२}$॥

व्यासजी बोले—दूतका वह वचन सुनकर देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली भगवती अत्यन्त मधुर मुसकान करके मीठी वाणीमें उससे कहने लगीं॥ ५०$\frac{१}{२}$॥

देवी बोलीं—मैं महाबली राजा शुम्भ तथा निशुम्भ—दोनोंको जानती हूँ। उन्होंने सभी देवताओंको जीत लिया है और अपने शत्रुओंका संहार कर डाला है, वे सभी गुणोंकी राशि हैं और सब सम्पदाओंका भोग करनेवाले हैं। वे दानी, महापराक्रमी, सुन्दर, कामदेवसदृश रूपवाले, बत्तीस लक्षणोंसे सम्पन्न और देवताओं तथा मनुष्योंसे अवध्य हैं—यह जानकर मैं उस महान् असुरको देखनेकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। जैसे रत्न अपनी शोभाको और अधिक बढ़ानेके लिये सुवर्णके पास आता है, वैसे ही मैं अपने पतिको देखनेके लिये दूरसे यहाँ आयी हूँ॥ ५१—५४$\frac{१}{२}$॥

सभी देवताओं, पृथ्वीलोकमें मान प्रदान करनेवाले सभी मनुष्यों, गन्धर्वों, राक्षसों तथा देखनेमें सुन्दर लगनेवाले जो भी अन्य लोग हैं; उन सबको मैंने देख लिया है। सब-के-सब शुम्भके आतंकसे डरे हुए हैं, भयके मारे काँपते रहते हैं और सदा व्याकुल रहते हैं॥ ५५-५६॥

श्रुत्वा शुम्भगुणानत्र प्राप्तास्म्यद्य दिदृक्षया।
गच्छ दूत महाभाग ब्रूहि शुम्भं महाबलम्॥ ५७

निर्जने श्लक्ष्णया वाचा वचनं वचनान्मम।
त्वां ज्ञात्वा बलिनां श्रेष्ठं सुन्दराणां च सुन्दरम्॥ ५८

दातारं गुणिनं शूरं सर्वविद्याविशारदम्।
जेतारं सर्वदेवानां दक्षं चोग्रं कुलोत्तरम्॥ ५९

भोक्तारं सर्वरत्नानां स्वाधीनं स्वबलोन्नतम्।
पतिकामास्म्यहं सत्यं तव योग्या नराधिप॥ ६०

स्वेच्छया नगरे तेऽत्र समायाता महामते।
ममास्ति कारणं किञ्चिद्विवाहे राक्षसोत्तम॥ ६१

बालभावाद् व्रतं किञ्चित्कृतं राजन् मया पुरा।
क्रीडन्त्या च वयस्याभिः सहैकान्ते यदृच्छया॥ ६२

स्वदेहबलदर्पेण सखीनां पुरतो रहः।
मत्समानबलः शूरो रणे मां जेष्यति स्फुटम्॥ ६३

तं वरिष्याम्यहं कामं ज्ञात्वा तस्य बलाबलम्।
जहसुर्वचनं श्रुत्वा सख्यो विस्मितमानसाः॥ ६४

किमेतया कृतं क्रूरं व्रतमद्भुतमाशु वै।
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र ज्ञात्वा मे हीदृशं बलम्। ६५

जित्वा मां स्वबलेनात्र वाञ्छितं कुरु चात्मनः।
त्वं वा तवानुजो भ्राता समेत्य समराङ्गणे।
जित्वा मां समरेणात्र विवाहं कुरु सुन्दर॥ ६६

शुम्भके गुण सुनकर उन्हें देखनेकी इच्छासे मैं इस समय यहाँ आयी हुई हूँ। हे महाभाग्यशाली दूत! तुम जाओ और महाबली शुम्भसे एकान्त स्थानमें मधुर वाणीमें मेरे शब्दोंमें यह बात कहो—हे राजन्! आपको बलवानोंमें सबसे बली, सुन्दरोंमें अति सुन्दर, दानी, गुणी, पराक्रमी, सभी विद्याओंमें पारंगत, सभी देवताओंको जीत लेनेवाला, कुशल, प्रतापी, श्रेष्ठ कुलवाला, समस्त रत्नोंका भोग करनेवाला, स्वतन्त्र तथा अपनी शक्तिसे समृद्धिशाली बना हुआ जानकर मैं आपको पति बनानेकी इच्छुक हूँ। हे नराधिप! मैं भी निश्चितरूपसे आपके योग्य हूँ। हे महामते! मैं आपके इस नगरमें अपनी इच्छासे आयी हूँ। किंतु हे राक्षसश्रेष्ठ! मेरे विवाहमें कुछ शर्त है। हे राजन्! पूर्वमें मैंने सखियोंके साथ खेलते समय बालस्वभाववश अपने शारीरिक बलके अभिमानके कारण संयोगसे उन सखियोंके समक्ष एकान्तमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि मेरे समान पराक्रम रखनेवाला जो वीर रणमें मुझे स्पष्टरूपसे जीत लेगा, उसके बलाबलको जानकर ही मैं पतिरूपमें उसका वरण करूँगी। मेरी यह बात सुनकर सखियोंके मनमें बड़ा विस्मय हुआ और वे जोर-जोरसे हँसने लगीं। [वे कहने लगीं] 'इसने शीघ्रतापूर्वक यह कैसी भीषण तथा अद्भुत प्रतिज्ञा कर ली।' अतएव हे राजेन्द्र! आप भी मेरे ऐसे पराक्रमको जानकर यहींपर अपने बलसे मुझे जीतकर अपना मनोरथ पूर्ण कर लीजिये। हे सुन्दर! आप अथवा आपका छोटा भाई समरांगणमें आकर युद्धके द्वारा मुझे जीतकर [मेरे साथ] विवाह कर लें॥ ५७—६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
देव्या सुग्रीवदूताय स्वव्रतकथनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शुम्भका धूम्रलोचनको देवीके पास भेजना और धूम्रलोचनका देवीको समझानेका प्रयास करना

व्यास उवाच

देव्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स दूतः प्राह विस्मितः।
किं ब्रूषे रुचिरापाङ्गि स्त्रीस्वभावाद्धि साहसात्॥ १

व्यासजी बोले—भगवतीका वह वचन सुनकर वह दूत विस्मित हो गया और उसने देवीसे कहा—हे सुन्दर कटाक्षवाली! तुम स्त्रीस्वभावके कारण साहसपूर्वक यह क्या बोल रही हो?॥ १॥

इन्द्राद्या निर्जिता येन देवा दैत्यास्तथापरे।
तं कथं समरे देवि जेतुमिच्छसि भामिनि॥ २

त्रैलोक्ये तादृशो नास्ति यः शुम्भं समरे जयेत्।
का त्वं कमलपत्राक्षि तस्याग्रे युधि साम्प्रतम्॥ ३

अविचार्य न वक्तव्यं वचनं क्वापि सुन्दरि।
बलं स्वपरयोर्ज्ञात्वा वक्तव्यं समयोचितम्॥ ४

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भस्तव रूपेण मोहितः।
त्वाञ्च प्रार्थयते राजा कुरु तस्येप्सितं प्रिये॥ ५

त्यक्त्वा मूर्खस्वभावं त्वं सम्मान्य वचनं मम।
भज शुम्भं निशुम्भं वा हितमेतद् ब्रवीमि ते॥ ६

शृङ्गारः सर्वथा सर्वैः प्राणिभिः परया मुदा।
सेवनीयो बुद्धिमद्भिर्नवानामुत्तमो यतः॥ ७

नागमिष्यसि चेद् बाले संक्रुद्धः पृथिवीपतिः।
अन्यानाज्ञाकरान्प्रेष्य बलान्नेष्यति साम्प्रतम्॥ ८

केशेष्वाकृष्य ते नूनं दानवा बलदर्पिताः।
त्वां नयिष्यन्ति वामोरु तरसा शुम्भसन्निधौ॥ ९

स्वलज्जां रक्ष तन्वङ्गि साहसं सर्वथा त्यज।
मानिता गच्छ तत्पार्श्वे मानपात्रं यतोऽसि वै॥ १०

क्व युद्धं निशितैर्बाणैः क्व सुखं रतिसङ्गजम्।
सारासारं परिच्छेद्य कुरु मे वचनं पटु॥ ११
भज शुम्भं निशुम्भं वा लब्धासि परमं सुखम्।

हे भामिनि! हे देवि! जिन्होंने इन्द्र आदि देवताओं तथा अन्य दैत्योंको पराजित कर दिया है, उन्हें तुम संग्राममें जीतनेकी अभिलाषा कैसे रखती हो?॥ २॥

त्रिलोकीमें वैसा कोई नहीं है, जो शुम्भको संग्राममें जीत सके; तब हे कमलसदृश नेत्रोंवाली! तुम कौन-सी सामर्थ्यशालिनी हो जो इस समय युद्धमें उनके सामने टिक सको?॥ ३॥

हे सुन्दरि! बिना सोचे-समझे कोई बात नहीं बोलनी चाहिये, अपितु अपने तथा शत्रुके बलको जानकर ही समयके अनुसार बोलना चाहिये॥ ४॥

तीनों लोकोंके अधिपति महाराज शुम्भ तुम्हारे रूपपर मोहित हो गये हैं और तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं। अतः हे प्रिये! उनका मनोरथ पूर्ण करो॥ ५॥

मूर्खतापूर्ण स्वभाव त्यागकर मेरी बातको मान करके तुम शुम्भ अथवा निशुम्भ किसीको [पतिरूपमें] स्वीकार कर लो; मैं तुम्हारे लिये यह हितकर बात कह रहा हूँ॥ ६॥

सभी बुद्धिमान् प्राणियोंको चाहिये कि बड़े हर्षके साथ शृंगाररसका उपभोग करें; क्योंकि यह सभी नौ रसोंमें उत्तम माना गया है॥ ७॥

हे बाले! यदि तुम मेरे साथ नहीं चलोगी तो राजा शुम्भ अत्यन्त कुपित होकर अन्य बहुत-से सेवकोंको अभी भेजकर तुम्हें बलपूर्वक पकड़वाकर ले जायँगे॥ ८॥

हे वामोरु! वे बलाभिमानी दानव तुम्हारे केश-पाश पकड़कर बलपूर्वक तुम्हें निश्चय ही शुम्भके पास ले जायँगे॥ ९॥

अतः हे कोमलांगी! अपनी लज्जाकी रक्षा करो और इस दुस्साहसको पूर्णरूपसे छोड़ दो। तुम सम्मानित होकर उनके पास चलो; क्योंकि तुम सम्मानकी पात्र हो॥ १०॥

कहाँ तीक्ष्ण बाणोंसे होनेवाला युद्ध और कहाँ रतिक्रीड़ासे उत्पन्न होनेवाला सुख! सार-असार बातपर सही-सही विचार करके तुम मेरे हितकर वचनको मान लो और शुम्भ अथवा निशुम्भको अपना पति स्वीकार कर लो; इससे तुम परम सुख प्राप्त करोगी॥ ११$\frac{1}{2}$॥

देव्युवाच

सत्यं दूत महाभाग प्रवक्तुं निपुणो ह्यसि॥ १२

निशुम्भशुम्भौ जानामि बलवन्ताविति ध्रुवम्।
प्रतिज्ञा मे कृता बाल्यादन्यथा सा कथं भवेत्॥ १३

तस्माद् ब्रूहि निशुम्भञ्च शुम्भं वा बलवत्तरम्।
विना युद्धं न मे भर्ता भविता कोऽपि सौष्ठवात्॥ १४

जित्वा मां तरसा कामं करं गृह्णातु साम्प्रतम्।
युद्धेच्छया समायातां विद्धि मामबलां नृप॥ १५

युद्धं देहि समर्थोऽसि वीरधर्मं समाचर।
बिभेषि मम शूलाच्चेत्पातालं गच्छ मा चिरम्॥ १६

त्रिदिवं च धरां त्यक्त्वा जीवितेच्छा यदस्ति ते।
इति दूत वदाशु त्वं गत्वा स्वपतिमादरात्॥ १७

स विचार्य यथायुक्तं करिष्यति महाबलः।
संसारे दूतधर्मोऽयं यत्सत्यं भाषणं किल॥ १८

शत्रौ पत्यौ च धर्मज्ञ तथा त्वं कुरु मा चिरम्।

व्यास उवाच

अथ तद्वचनं श्रुत्वा नीतिमद् बलसंयुतम्॥ १९

हेतुयुक्तं प्रगल्भञ्च विस्मितः प्रययौ तदा।
गत्वा दैत्यपतिं दूतो विचार्य च पुनः पुनः॥ २०

प्रणम्य पादयोः प्रह्वः प्रत्युवाच नृपञ्च तम्।
राजनीतिकरं वाक्यं मृदुपूर्वं प्रियं वचः॥ २१

दूत उवाच

सत्यं प्रियं च वक्तव्यं तेन चिन्तापरो ह्यहम्।
सत्यं प्रियं च राजेन्द्र वचनं दुर्लभं किल॥ २२

अप्रियं वदतां कामं राजा कुप्यति सर्वथा।
साक्षात्कुतः समायाता कस्य वा किंबलाबला॥ २३

देवी बोलीं—हे महाभाग दूत! तुम बात करनेमें निपुण हो; यह सत्य है। शुम्भ और निशुम्भ निश्चय ही बलवान् हैं—यह मैं जानती हूँ। किंतु मैंने बाल्यकालसे ही जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे मिथ्या कैसे किया जाय? अतः तुम निशुम्भसे अथवा उससे भी बलवान् शुम्भसे कह दो कि बिना युद्ध किये मात्र सौन्दर्यके बलपर कोई भी मेरा पति नहीं बन सकेगा। मुझे अपने बलसे जीतकर वह अभी पाणिग्रहण कर ले। हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मैं अबला होती हुई भी युद्धकी इच्छासे यहाँ आयी हूँ। यदि तुम समर्थ हो तो मेरे साथ युद्ध करो और वीरधर्मका पालन करो। इसके अतिरिक्त यदि मेरे त्रिशूलसे डरते हो और यदि जीनेकी तुम्हारी अभिलाषा है तो स्वर्ग और पृथ्वीलोकको छोड़कर अविलम्ब पाताललोक चले जाओ। हे दूत! अभी जाकर अपने स्वामीसे आदरपूर्वक ये बातें कह दो। इसके बाद वे महाबली शुम्भ विचार करके जो उचित होगा, उसे करेंगे। संसारमें यही दूतधर्म है कि जो सच्ची बात हो, उसे वैसा-का-वैसा शत्रु और स्वामी—दोनोंके प्रति अवश्य कह दे। हे धर्मज्ञ! तुम भी वैसा ही व्यवहार करो; विलम्ब मत करो॥ १२—१८$\frac{१}{२}$ ॥

व्यासजी बोले—उस समय भगवती जगदम्बाके नीतियुक्त, शक्तिसम्पन्न, हेतुपूर्ण और ओजस्वी वचन सुनकर वह दूत आश्चर्यचकित हो गया और वहाँसे लौट गया। दैत्यपति शुम्भके पास पहुँचकर बार-बार विचार करके वह दूत विनम्र भावसे अपने राजाको प्रणाम करके उनसे नीतिपूर्ण, मधुरतासे युक्त तथा मनोहर बात कहने लगा॥ १९—२१॥

दूत बोला—हे राजेन्द्र! सत्य और प्रिय बात कहनी चाहिये, इसीलिये मैं अत्यन्त चिन्तामें पड़ा हुआ हूँ; क्योंकि जो सत्य हो और प्रिय भी हो, वैसा वचन निश्चय ही दुर्लभ है। अप्रिय बोलनेवाले दूतोंपर राजा सर्वथा कुपित हो सकते हैं, [तथापि अपना धर्मपालन करते हुए मैं सच्ची बात कह रहा हूँ] वह स्त्री कहाँसे आयी है, किसकी पुत्री है और कितनी

न ज्ञानगोचरं किञ्चित्किं ब्रवीमि विचेष्टितम्।
युद्धकामा मया दृष्टा गर्विता कटुभाषिणी॥ २४

तया यत्कथितं सम्यक् तच्छृणुष्व महामते।
मया बाल्यात्प्रतिज्ञेयं कृता पूर्वं विनोदतः॥ २५

सखीनां पुरतः कामं विवाहं प्रति सर्वथा।
यो मां युद्धे जयेदद्धा दर्पञ्च विधुनोति वै॥ २६

तं वरिष्याम्यहं कामं पतिं समबलं किल।
न मे प्रतिज्ञा मिथ्या सा कर्तव्या नृपसत्तम॥ २७

तस्माद्युध्यस्व धर्मज्ञ जित्वा मां स्ववशं कुरु।
तयेति व्याहृतं वाक्यं श्रुत्वाहं समुपागतः॥ २८

यथेच्छसि महाराज तथा कुरु तव प्रियम्।
सा युद्धार्थं कृतमतिः सायुधा सिंहगामिनी॥ २९

निश्चला वर्तते भूप यद्योग्यं तद्विधीयताम्।

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य सुग्रीवस्य नराधिपः॥ ३०

पप्रच्छ भ्रातरं शूरं समीपस्थं महाबलम्।

शुम्भ उवाच

भ्रातः किमत्र कर्तव्यं ब्रूहि सत्यं महामते॥ ३१

नार्येका योद्धुकामास्ति समाह्वयति साम्प्रतम्।
अहं गच्छामि संग्रामे त्वं वा गच्छ बलान्वितः॥ ३२

यद्रोचते निशुम्भात्र तत्कर्तव्यं मया किल।

निशुम्भ उवाच

न मया न त्वया वीर गन्तव्यं रणमूर्धनि॥ ३३

प्रेषयस्व महाराज त्वरितं धूम्रलोचनम्।
स गत्वा तां रणे जित्वा गृहीत्वा चारुलोचनाम्॥ ३४
आगमिष्यति शुम्भात्र विवाहः संविधीयताम्।

सबल अथवा निर्बल है—इनमेंसे कुछ भी मैं नहीं जान सका, तब मैं उसके मनकी बात क्या बताऊँ! मुझे तो वह घमण्डी, कटु बोलनेवाली और सदा युद्धके लिये उत्सुक दिखायी पड़ती थी॥ २२—२४॥

हे महामते! उस स्त्रीने जो कुछ कहा है, उसे आप भलीभाँति सुनें—'मैंने पहले ही बाल्यावस्थामें सखियोंके समक्ष विनोदवश विवाहके विषयमें यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि जो युद्धमें मुझे जीत लेगा और मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा, उसी समान बलवालेका मैं पतिरूपसे वरण करूँगी। हे नृपश्रेष्ठ! मेरी वह प्रतिज्ञा मिथ्या नहीं की जानी चाहिये। अतः हे धर्मज्ञ! मेरे साथ युद्ध करो और मुझे जीतकर अपने अधीन कर लो'॥ २५—२७½॥

उस स्त्रीके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर मैं आपके पास आया हूँ। हे महाराज! अब आप जैसे भी अपना हित समझते हों, वैसा ही करें। आयुधोंसे सुसज्जित तथा सिंहपर सवार वह युद्धके लिये दृढ़ संकल्प किये हुए है। हे भूप! वह अपनी बातपर अडिग है, अतः जो उचित हो उसे आप करें॥ २८-२९½॥

व्यासजी बोले—अपने दूत सुग्रीवका यह वचन सुनकर राजा शुम्भने पासमें ही बैठे हुए शूरवीर तथा महाबली भाई निशुम्भसे पूछा॥ ३०½॥

शुम्भ बोला—हे भाई! इस स्थितिमें मुझे क्या करना चाहिये, हे महामते! सच-सच बताओ। एक स्त्री युद्ध करनेकी अभिलाषा रखती है, इस समय [हमें युद्धके लिये] बुला रही है। अतः युद्धस्थलमें मैं जाऊँ अथवा सेना लेकर तुम जाओगे? हे निशुम्भ! इस विषयमें तुम्हें जो अच्छा लगेगा, निश्चय ही मैं वही करूँगा॥ ३१-३२½॥

निशुम्भ बोला—हे वीर! अभी रणक्षेत्रमें न मुझे और न तो आपको ही जाना चाहिये। हे महाराज! शीघ्र ही धूम्रलोचनको भेज दीजिये। वहाँ जाकर युद्धमें उस सुन्दर नेत्रोंवाली स्त्रीको जीतकर और उसे पकड़कर वह यहाँ ले आयेगा। तत्पश्चात् हे शुम्भ! आप उसके साथ सम्यक् विवाह कर लीजिये॥ ३३-३४½॥

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तस्य शुम्भो भ्रातुः कनीयसः॥ ३५
कोपात्सम्प्रेषयामास पार्श्वस्थं धूम्रलोचनम्।

शुम्भ उवाच

धूम्रलोचन गच्छाशु सैन्येन महतावृतः॥ ३६
गृहीत्वानय तां मुग्धां स्ववीर्यमदमोहिताम्।
देवो वा दानवो वापि मनुष्यो वा महाबलः॥ ३७
तत्पार्ष्णिग्राहतां प्राप्तो हन्तव्यस्तरसा त्वया।
तत्पार्श्ववर्तिनीं कालीं हत्वा संगृह्य तां पुनः॥ ३८
शीघ्रमत्र समागच्छ कृत्वा कार्यमनुत्तमम्।
रक्षणीया त्वया साध्वी मुञ्चन्ती मृदुमार्गणान्॥ ३९
यत्नेन महता वीर मृदुदेहा कृशोदरी।
तत्सहायाश्च हन्तव्या ये रणे शस्त्रपाणयः॥ ४०
सर्वथा सा न हन्तव्या रक्षणीया प्रयत्नतः।

व्यास उवाच

इत्यादिष्टस्तदा राज्ञा तरसा धूम्रलोचनः॥ ४१
प्रणम्य शुम्भं सैन्येन वृतः शीघ्रं ययौ रणे।
असाधूनां सहस्राणां षष्ट्या तेषां वृतस्तथा॥ ४२
स ददर्श ततो देवीं रम्योपवनसंस्थिताम्।
दृष्ट्वा तां मृगशावाक्षीं विनयेन समन्वितः॥ ४३
उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुमद्रसभूषितम्।
शृणु देवि महाभागे शुम्भस्त्वद्विरहातुरः॥ ४४
दूतं प्रेषितवान्पार्श्वे तव नीतिविशारदः।
रसभङ्गभयोद्विग्नः सामपूर्वं त्वयि स्वयम्॥ ४५
तेनागत्य वचः प्रोक्तं विपरीतं वरानने।
वचसा तेन मे भर्ता चिन्ताविष्टमना नृपः॥ ४६
बभूव रसमार्गज्ञे शुम्भः कामविमोहितः।
दूतेन तेन न ज्ञातं हेतुगर्भं वचस्तव॥ ४७
यो मां जयति संग्रामे यदुक्तं कठिनं वचः।
न ज्ञातस्तेन संग्रामो द्विविधः खलु मानिनि॥ ४८

व्यासजी बोले—अपने छोटे भाईकी वह बात सुनकर शुम्भने पासमें ही बैठे हुए धूम्रलोचनको जानेके लिये क्रोधपूर्वक आदेश दिया॥ ३५$\frac{१}{२}$ ॥

शुम्भ बोला—हे धूम्रलोचन! तुम एक विशाल सेना लेकर अभी जाओ और अपने बलके मदमें चूर रहनेवाली उस मूढ़ स्त्रीको पकड़कर ले आओ। देवता, दानव या महाबली मनुष्य—कोई भी जो उसकी सहायताके लिये उपस्थित हो, उसे तुम तुरंत मार डालना। उसके साथमें रहनेवाली कालीको भी मारकर पुनः उस सुन्दरीको पकड़ करके और इस प्रकार मेरा यह अत्युत्तम कार्य सम्पन्नकर यहाँ शीघ्र आ जाओ। हे वीर! कोमल बाणोंको छोड़ती हुई उस सुकोमल शरीरवाली कृशोदरी साध्वी स्त्रीकी तुम प्रयत्नपूर्वक रक्षा करना। हाथमें शस्त्र धारण किये हुए उसके जो भी सहायक रणमें हों, उन्हें मार डालना, किंतु उसे मत मारना; सब तरहसे प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा करना॥ ३६—४०$\frac{१}{२}$ ॥

व्यासजी बोले—अपने राजा शुम्भका यह आदेश पाकर धूम्रलोचन उसे प्रणाम करके सेना साथ लेकर तुरंत युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उसके साथमें साठ हजार राक्षस थे॥ ४१-४२॥

वहाँ पहुँचकर उसने एक मनोहर उपवनमें विराजमान भगवती जगदम्बाको देखा। हरिणके बच्चेके समान नेत्रोंवाली देवीको देखकर वह विनम्रतापूर्वक उनसे मधुर, हेतुयुक्त तथा सरस वचन कहने लगा—हे महाभाग्यवती देवि! सुनो, शुम्भ तुम्हारे विरहसे अत्यन्त व्याकुल हैं। नीतिनिपुण महाराजने रसभंग होनेके भयसे उद्विग्न होकर शान्तिपूर्वक तुम्हारे पास स्वयं एक दूत भेजा था॥ ४३—४५॥

हे सुमुखि! उसने लौटकर विपरीत बात कह दी। उस बातसे मेरे स्वामी महाराज शुम्भके मनमें बहुत चिन्ता व्याप्त हो गयी है। हे रसतत्त्वको जाननेवाली! शुम्भ इस समय कामसे विमोहित हो गये हैं। वह दूत तुम्हारे सहेतुक वचनोंको नहीं समझ सका। तुमने जो यह कठिन वचन कहा था कि 'जो मुझे संग्राममें जीतेगा', उस संग्रामका

रतिजोऽथोत्साहजश्च पात्रभेदे विवक्षितः।
रतिजस्त्वयि वामोरु शत्रोरुत्साहजः स्मृतः॥ ४९

सुखदः प्रथमः कान्ते दुःखदश्चारिजः स्मृतः।
जानाम्यहं वरारोहे भवत्या मानसं किल॥ ५०

रतिसंग्रामभावस्ते हृदये परिवर्तते।
इति तज्ज्ञं विदित्वा मां त्वत्सकाशं नराधिपः॥ ५१

प्रेषयामास शुम्भोऽद्य बलेन महतावृतम्।
चतुरासि महाभागे शृणु मे वचनं मृदु॥ ५२

भज शुम्भं त्रिलोकेशं देवदर्पनिबर्हणम्।
पट्टराज्ञी प्रिया भूत्वा भुंक्ष्व भोगाननुत्तमान्॥ ५३

जेष्यति त्वां महाबाहुः शुम्भः कामबलार्थवित्।
विचित्रान्कुरु हावांस्त्वं सोऽपि भावान्करिष्यति॥ ५४

भविष्यति कालिकेयं तत्र वै नर्मसाक्षिणी।
एवं सङ्गरयोगेन पतिर्मे परमार्थवित्॥ ५५

जित्वा त्वां सुखशय्यायां परिश्रान्तां करिष्यति।
रक्तदेहां नखाघातैर्दन्तैश्च खण्डिताधराम्॥ ५६

स्वेदक्लिन्नां प्रभग्नां त्वां संविधास्यति भूपतिः।
भविता मानसः कामो रतिसंग्रामजस्तव॥ ५७

दर्शनाद्वश एवास्ते शुम्भः सर्वात्मना प्रिये।
वचनं कुरु मे पथ्यं हितकृच्चापि पेशलम्॥ ५८

भज शुम्भं गणाध्यक्षं माननीयातिमानिनी।
मन्दभाग्याश्च ते नूनं ह्यस्त्रयुद्धप्रियाश्च ये॥ ५९

तात्पर्य वह नहीं जान सका। हे मानिनि! संग्राम दो प्रकारका होता है—कामजनित और उत्साहजनित। पात्रभेदसे समय-समयपर इनका अलग-अलग अर्थ किया जाता है। हे वामोरु! उन दोनोंमें आप-जैसी युवतीके साथ होनेवाले संग्रामको कामजनित संग्राम और शत्रुके साथ होनेवाले संग्रामको उत्साहजनित संग्राम कहा गया है॥ ४६—४९॥

हे कान्ते! उनमें प्रथम रतिजन्य संग्राम सुखदायक और शत्रुके साथ किया जानेवाला उत्साहजन्य संग्राम दुःखदायक कहा गया है। हे सुन्दरि! मैं तुम्हारे मनकी बात जानता हूँ; तुम्हारे मनमें रतिजन्य संग्रामका भाव है। मुझको यह सब जाननेमें निपुण समझकर ही महाराज शुम्भने विशाल सेनाके साथ इस समय मुझे आपके पास भेजा है॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$॥

हे महाभागे! तुम बड़ी चतुर हो। मेरे मधुर वचन सुनो। देवताओंका अभिमान चूर्ण कर देनेवाले त्रिलोकाधिपति शुम्भको [पतिरूपसे] स्वीकार कर लो और उनकी प्रिय पटरानी बनकर अत्युत्तम सुखोंका उपभोग करो॥ ५२-५३॥

कामसम्बन्धी बलका रहस्य जाननेवाले विशालबाहु शुम्भ तुम्हें जीत लेंगे। तुम उनके साथ विचित्र हाव-भाव करो, वे भी वैसे ही हाव-भाव प्रदर्शित करेंगे। यह कालिका [उस अवसरपर] हास-विलासकी साक्षी रहेगी। इस प्रकार कामतत्त्वके परमवेत्ता मेरे स्वामी शुम्भ कामयुद्धके द्वारा तुम्हें सुखशय्यापर जीतकर शिथिल कर देंगे। वे महाराज शुम्भ अपने नखोंके आघातसे तुम्हें रक्तरंजित शरीरवाली बना देंगे, दाँतोंसे काटकर तुम्हारे ओठोंको खण्डित कर देंगे, तुम्हें पसीनेसे तर कर देंगे और मर्दित कर डालेंगे; तब तुम्हारा रतिसंग्रामसम्बन्धी मनोरथ पूर्ण हो जायगा॥ ५४—५७॥

हे प्रिये! तुम्हें देखते ही शुम्भ पूर्णरूपसे तुम्हारे वशीभूत हो जायँगे। अतएव मेरी उचित, कल्याणकारी और सुखकर बात मान लो। तुम माननीयोंमें अत्यन्त मानिनी हो, अतः गणाध्यक्ष शुम्भको स्वीकार कर लो। जो शस्त्रयुद्धसे प्रेम रखते हैं, वे अवश्य ही मन्दभाग्य हैं। रतिक्रीड़ामें प्रीति रखनेवाली हे कान्ते!

न तदर्हासि कान्ते त्वं सदा सुरतवल्लभे।
अशोकं कुरु राजानं पादाघातविकासितम्॥ ६०

बकुलं सीधुसेकेन तथा कुरबकं कुरु॥ ६१

तुम शस्त्रयुद्धके योग्य नहीं हो। जैसे कामिनीके पदप्रहारसे अशोक, मुख मदिराके सेचनसे मौलसिरी और कुरबक प्रफुल्लित हो उठता है, उसी प्रकार तुम भी महाराज शुम्भको शोकरहित और आह्लादित करो॥ ५८—६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये देवीपार्श्वे धूम्रलोचनदूतप्रेषणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

भगवती काली और धूम्रलोचनका संवाद, कालीके हुंकारसे धूम्रलोचनका भस्म होना तथा शुम्भका चण्ड-मुण्डको युद्धहेतु प्रस्थानका आदेश देना

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा विररामासौ वचनं धूम्रलोचनः।
प्रत्युवाच तदा काली प्रहस्य ललितं वचः॥ १

विदूषकोऽसि जाल्म त्वं शैलूष इव भाषसे।
वृथा मनोरथांश्चित्ते करोषि मधुरं वदन्॥ २

बलवान्बलसंयुक्तः प्रेषितोऽसि दुरात्मना।
कुरु युद्धं वृथा वादं मुञ्च मूढमतेऽधुना॥ ३

हत्वा शुम्भं निशुम्भञ्च त्वदन्यान्वा बलाधिकान्।
देवी क्रुद्धा शराघातैर्व्रजिष्यति निजालयम्॥ ४

क्वासौ मन्दमतिः शुम्भः क्व वा विश्वविमोहिनी।
अयुक्तः खलु संसारे विवाहविधिरेतयोः॥ ५

सिंही किं त्वतिकामार्ता जम्बुकं कुरुते पतिम्।
करिणी गर्दभं वापि गवयं सुरभिः किमु॥ ६

गच्छ शुम्भं निशुम्भं च वद सत्यं वचो मम।
कुरु युद्धं न चेद्याहि पातालं तरसाधुना॥ ७

व्यास उवाच

कालिकाया वचः श्रुत्वा स दैत्यो धूम्रलोचनः।
तामुवाच महाभाग क्रोधसंरक्तलोचनः॥ ८

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] यह बात कहकर धूम्रलोचन चुप हो गया। तब भगवती काली हँसकर सुन्दर वचन बोलीं—धूर्त! तुम तो पूरे विदूषक हो और नटों-जैसी बात करते हो। मधुर बोलते हुए तुम व्यर्थ ही मनमें अनेकविध कामनाएँ कर रहे हो॥ १-२॥

हे मूढमते! दुष्टात्मा शुम्भने तुझ बलवान्‌को सेनासे सुसज्जित करके युद्धहेतु भेजा है, अतः अब युद्ध करो और व्यर्थकी बातें छोड़ दो॥ ३॥

ये देवी कुपित होकर शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे अन्य बलवान् दैत्योंका अपने बाणोंके प्रहारसे संहार करके अपने धामको चली जायँगी॥ ४॥

कहाँ वह मन्दमति शुम्भ और कहाँ ये विश्व-मोहिनी जगदम्बा! इन दोनोंका विवाह इस संसारमें सर्वथा अनुपयुक्त है॥ ५॥

क्या अत्यधिक कामार्त होनेपर भी सिंहिनी सियारको, हथिनी किसी गर्दभको अथवा सुरभि किसी सामान्य वृषभको अपना पति बना सकती है?॥ ६॥

अब तुम शुम्भ-निशुम्भके पास चले जाओ और उनसे मेरी यह सच्ची बात कह दो कि 'तुम मेरे साथ युद्ध करो; अन्यथा इसी समय शीघ्र पाताललोक चले जाओ'॥ ७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! देवी कालिकाका यह वचन सुनते ही वह दैत्य धूम्रलोचन क्रोधके मारे आँखें लाल करके उनसे कहने लगा—

दुर्दर्शे त्वां निहत्याजौ सिंहञ्च मदगर्वितम्।
गृहीत्वैनां गमिष्यामि राजानं प्रत्यहं किल॥ ९

रसभङ्गभयात्कालि बिभेमि त्विह साम्प्रतम्।
नोचेत्त्वां निशितैर्बाणैर्हन्म्यद्य कलहप्रिये॥ १०

कालिकोवाच

किं विकत्थसि मन्दात्मन्नायं धर्मो धनुष्मताम्।
स्वशक्त्या मुञ्च विशिखान्गन्तासि यमसंसदि॥ ११

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दैत्यः संगृह्य कार्मुकं दृढम्।
कालिकां तां शरासारैर्ववर्षातिशिलाशितैः॥ १२

देवास्तु प्रेक्षकास्तत्र विमानवरसंस्थिताः।
तां स्तुवन्तो जयेत्यूचुर्देवीं शक्रपुरोगमाः॥ १३

तयोः परस्परं युद्धं प्रवृत्तं चातिदारुणम्।
बाणखड्गगदाशक्तिमुसलादिभिरुत्कटम् ॥ १४

कालिका बाणपातैस्तु हत्वा पूर्वं खरानथ।
बभञ्ज तद्रथं व्यूढं जहास च मुहुर्मुहुः॥ १५

स चान्यं रथमारूढः कोपेन प्रज्वलन्निव।
बाणवृष्टिं चकारोग्रां कालिकोपरि भारत॥ १६

सापि चिच्छेद तरसा तस्य बाणानसङ्गतान्।
मुमोचान्यानुग्रवेगान्दानवोपरि कालिका॥ १७

तैर्बाणैर्निहतास्तस्य पार्ष्णिग्राहाः सहस्रशः।
बभञ्ज च रथं वेगात्सूतं हत्वा खरानपि॥ १८

चिच्छेद तद्धनुः सद्यो बाणैरुरगसन्निभैः।
मुदं चक्रे सुराणां सा शङ्खनादं तथाकरोत्॥ १९

दुर्दर्शे! अभी तुझे तथा इस मदोन्मत्त सिंहको युद्धमें मारकर और इस स्त्रीको लेकर मैं राजा शुम्भके पास अवश्य चला जाऊँगा॥ ८-९॥

कलहमें अनुराग रखनेवाली हे काली! रसमें भंग पड़नेकी शंकासे मैं इस समय डर रहा हूँ, नहीं तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हें अभी मार डालता॥ १०॥

कालिका बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम अनर्गल प्रलाप क्यों कर रहे हो, धनुर्धर वीरोंका यह धर्म नहीं है। तुम अपनी पूरी शक्तिसे बाण चलाओ। तुम तो अभी यमलोक जानेवाले हो॥ ११॥

व्यासजी बोले—यह वचन सुनकर वह दैत्य धूम्रलोचन अपना सुदृढ़ धनुष लेकर भगवती कालिकाके ऊपर पत्थरकी सानपर चढ़ाकर तेज किये गये बाणोंकी घोर वर्षा करने लगा॥ १२॥

उस समय इन्द्र आदि प्रधान देवता उत्तम विमानोंमें बैठकर यह युद्ध देख रहे थे। वे देवीकी स्तुति करते हुए उनकी जयकार कर रहे थे॥ १३॥

परस्पर उन दोनोंमें बाण, खड्ग, गदा, शक्ति तथा मुसल आदि शस्त्रोंसे अत्यन्त भीषण तथा उग्र युद्ध होने लगा॥ १४॥

भगवती कालिकाने पहले अपने बाण-प्रहारोंसे [उसके रथमें जुते] खच्चरोंको मारकर बादमें उसके सुदृढ़ रथको भी चूर्ण कर दिया, फिर वे बार-बार अट्टहास करने लगीं॥ १५॥

हे भारत! क्रोधाग्निमें जलता हुआ-सा वह दानव धूम्रलोचन दूसरे रथपर सवार हो गया और कालिकाके ऊपर भयंकर बाण-वृष्टि करने लगा॥ १६॥

उसके बाण भगवतीके पास पहुँच भी नहीं पाते थे कि वे उन बाणोंको काट डालती थीं। तत्पश्चात् वे कालिका अन्य तीव्रगामी बाण उस दानवके ऊपर छोड़ने लगीं॥ १७॥

उन बाणोंसे उसके हजारों सहायक सैनिक मारे गये। तत्पश्चात् देवी कालिकाने उसके खच्चरों तथा सारथिको शीघ्रतापूर्वक मारकर उस रथको भी नष्ट कर दिया। उसके बाद देवीने अपने सर्प-सदृश बाणोंसे शीघ्रतापूर्वक उसका धनुष काट डाला। ऐसा करके देवीने देवताओंको आनन्दित कर दिया और वे शंखनाद करने लगीं॥ १८-१९॥

विरथः परिघं गृह्य सर्वलोहमयं दृढम्।
आजगाम रथोपस्थं कुपितो धूम्रलोचनः॥ २०

वाचा निर्भर्त्सयन्कालीं करालः कालसन्निभः।
अद्यैव त्वां हनिष्यामि कुरूपे पिङ्गलोचने॥ २१

इत्युक्त्वा सहसागत्य परिघं क्षिपते यदा।
हुङ्कारेणैव तं भस्म चकार तरसाम्बिका॥ २२

दृष्ट्वा भस्मीकृतं दैत्यं सैनिका भयविह्वलाः।
चक्रुः पलायनं सद्यो हा तातेत्यब्रुवन्पथि॥ २३

देवास्तं निहतं दृष्ट्वा दानवं धूम्रलोचनम्।
मुमुचुः पुष्पवृष्टिं ते मुदिता गगने स्थिताः॥ २४

रणभूमिस्तदा राजन् दारुणा समपद्यत।
निहतैर्दानवैरश्वैः खरैश्च वारणैस्तथा॥ २५

गृध्राः काका वटाः श्येना वरफा जम्बुकास्तथा।
ननृतुश्चुक्रुशुः प्रेतान्पतितान् रणभूमिषु॥ २६

अम्बिका तद्रणस्थानं त्यक्त्वा दूरं स्थलान्तरे।
गत्वा चकार चाप्युग्रं शङ्खनादं भयप्रदम्॥ २७

तं श्रुत्वा दरशब्दं तु शुम्भः सद्मनि संस्थितः।
दृष्ट्वाथ दानवान्भग्नानागतान् रुधिरोक्षितान्॥ २८

छिन्नपादकराक्षांश्च मञ्चकारोपितानपि।
भग्नपृष्ठकटिग्रीवान्क्रन्दमानाननेकशः ॥ २९

वीक्ष्य शुम्भो निशुम्भश्च क्व गतो धूम्रलोचनः।
कथं भग्नाः समायाता नानीता किं वरानना॥ ३०

सैन्यं कुत्र गतं मन्दाः कथयन्तु यथोचितम्।
कस्यायं शङ्खनादोऽद्य श्रूयते भयवर्धनः॥ ३१

अब रथसे विहीन वह धूम्रलोचन कुपित होकर एक लोहमय मजबूत परिघ लेकर देवीके रथके सन्निकट आ गया॥ २०॥

कालसदृश भयंकर वह धूम्रलोचन वाणीसे भगवती कालीको फटकारते हुए कहने लगा—'कुरूपा तथा पिंगलनेत्रोंवाली! मैं तुम्हें अभी मार डालूँगा' ऐसा कहकर वह ज्यों ही कालिकापर परिघ चलानेको उद्यत हुआ, देवीने अपने हुंकारमात्रसे उसे तुरंत भस्म कर दिया॥ २१-२२॥

तब दैत्य धूम्रलोचनको भस्म हुआ देखकर सभी सैनिक भयाक्रान्त होकर 'हा तात'—ऐसा कहते हुए तुरंत मार्ग पकड़कर भाग चले॥ २३॥

उस धूम्रलोचनको मारा गया देखकर आकाशमें विद्यमान देवगण प्रसन्न होकर भगवतीपर पुष्प बरसाने लगे॥ २४॥

हे राजन्! मरे हुए दानवों, घोड़ों, खच्चरों और हाथियोंसे [पट जानेके कारण] वह रणभूमि उस समय बड़ी भयानक लग रही थी। युद्धभूमिमें पड़े हुए मृत दानवोंको देखकर गीध, कौए, बाज, सियार और पिशाच नाचने तथा कोलाहल करने लगे॥ २५-२६॥

अब भगवती अम्बिकाने उस रणभूमिको छोड़कर वहाँसे कुछ दूरीपर जाकर अत्यन्त तीव्र तथा भयदायक शंखनाद किया॥ २७॥

अपने महलमें स्थित शुम्भको भी वह भयानक शंख-ध्वनि सुनायी पड़ी। उसी समय उसने भागकर आये हुए बहुत-से दैत्योंको देखा। उनमेंसे बहुतोंके अंग भंग हो गये थे और वे रक्तसे लथपथ थे। अनेक दैत्योंके हाथ-पैर कट गये थे और नेत्र भग्न हो गये थे। कुछ दैत्य तो शय्या आदिपर लादकर लाये जा रहे थे; बहुतोंकी पीठ, कमर और गर्दन टूट गयी थी। सब-के-सब जोर-जोरसे चीख रहे थे। उन्हें देखकर शुम्भ-निशुम्भने सैनिकोंसे पूछा—'धूम्रलोचन कहाँ गया? तुमलोग इस तरह अंग-भंग होकर क्यों आये हो और उस सुन्दर मुखवाली स्त्रीको क्यों नहीं ले आये? हे मूर्खो! सही-सही बताओ कि मेरी सेना कहाँ गयी और भयको बढ़ानेवाला यह किसका शंखनाद इस समय सुनायी पड़ रहा है?'॥ २८—३१॥

गणा ऊचुः

बलञ्च पातितं सर्वं निहतो धूम्रलोचनः।
कृतं कालिकया कर्म रणभूमावमानुषम्॥ ३२

शङ्खनादोऽम्बिकायास्तु गगनं व्याप्य राजते।
हर्षदः सुरसङ्घानां दानवानाञ्च शोककृत्॥ ३३

यदा निपातिताः सर्वे तेन केसरिणा विभो।
रथा भग्ना हयाश्चैव बाणपातैर्विनाशिताः॥ ३४

गगनस्थाः सुराश्चक्रुः पुष्पवृष्टिं मुदान्विताः।
दृष्ट्वा भग्नं बलं सर्वं पातितं धूम्रलोचनम्॥ ३५

निश्चयस्तु कृतोऽस्माभिर्जयो नैव भवेदिति।
विचारं कुरु राजेन्द्र मन्त्रिभिर्मन्त्रवित्तमैः॥ ३६

विस्मयोऽयं महाराज यदेका जगदम्बिका।
भवद्भिः सह युद्धाय संस्थिता सैन्यवर्जिता॥ ३७

निर्भयैकाकिनी बाला सिंहारूढा मदोत्कटा।
चित्रमेतन्महाराज भासतेऽद्भुतमञ्जसा॥ ३८

सन्धिर्वा विग्रहो वाद्य स्थानं निर्याणमेव च।
मन्त्रयित्वा महाराज कुरु कार्यं यथारुचि॥ ३९

तत्सन्निधौ बलं नास्ति तथापि शत्रुतापन।
पार्ष्णिग्राहाः सुराः सर्वे भविष्यन्ति किलापदि॥ ४०

समये तत्समीपस्थौ ज्ञातौ च हरिशङ्करौ।
लोकपालाः समीपेऽद्य वर्तन्ते गगने स्थिताः॥ ४१

रक्षोगणाश्च गन्धर्वाः किन्नरा मानुषास्तथा।
तत्सहायाश्च मन्तव्याः समये सुरतापन॥ ४२

अस्माकं मतिमानेन ज्ञायते सर्वथेदृशम्।
अम्बिकायाः सहायाशा तत्कार्याशा न काचन॥ ४३

एका नाशयितुं शक्ता जगत्सर्वं चराचरम्।
का कथा दानवानां तु सर्वेषामिति निश्चयः॥ ४४

गण बोले—सम्पूर्ण सेना मार डाली गयी और धूम्रलोचनका भी संहार कर दिया गया। रणभूमिमें यह अमानुषिक कार्य कालिकाके द्वारा किया गया है॥ ३२॥

उसी अम्बिकाकी यह शंखध्वनि है, जो सम्पूर्ण नभमण्डलको व्याप्त करके सुशोभित हो रही है। यह ध्वनि देवगणोंके लिये हर्षप्रद और दानवोंके लिये कष्टदायक है॥ ३३॥

हे विभो! जब देवीके सिंहने सारे सैनिकोंका विनाश कर डाला और उनके बाण-प्रहारोंसे दैत्योंके रथ टूट गये तथा घोड़े मार डाले गये, तब आकाशमें स्थित देवता प्रसन्न होकर पुष्प-वृष्टि करने लगे॥ ३४$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार समस्त सेनाका विनाश तथा धूम्रलोचनका वध देखकर हमलोगोंने निश्चय कर लिया कि अब हमारी विजय नहीं हो सकती। अतएव हे राजेन्द्र! अब आप मन्त्रणाका उत्तम ज्ञान रखनेवाले अपने मन्त्रियोंसे इस विषयपर विचार कर लीजिये। हे महाराज! यह आश्चर्य है कि जगदम्बास्वरूपिणी वह मदमत्त बाला बिना किसी सेनाके ही सिंहपर सवार होकर निर्भयभावसे आपसे युद्ध करनेके लिये रणभूमिमें अकेली खड़ी है। हे महाराज! हमें तो यह सब बड़ा विचित्र और अद्भुत प्रतीत हो रहा है। अतएव अब आप शीघ्र मन्त्रणा करके सन्धि, युद्ध, उदासीन होकर स्थित रहना अथवा पलायन—इनमेंसे अपनी रुचिके अनुसार जो चाहें, वह कार्य करें॥ ३५—३९॥

हे शत्रुतापन! यद्यपि उसके पास सेना नहीं है फिर भी उसकी विपत्तिमें सभी देवता उसके सहायक बनकर उपस्थित हो जायँगे। ज्ञात हुआ है कि भगवान् विष्णु और शिव भी समयानुसार उसके पासमें विद्यमान रहते हैं; सभी लोकपाल आकाशमें रहते हुए भी इस समय उस देवीके पास विद्यमान हैं। हे सुरतापन! राक्षसगण, गन्धर्व, किन्नर और मनुष्य—इन सबको समय आनेपर उसका सहायक समझना चाहिये॥ ४०—४२॥

हमारी बुद्धिसे तो हर तरहसे ऐसा जान पड़ता है कि वे अम्बिका किसीसे भी कोई सहायता अथवा कार्यकी अपेक्षा नहीं रखतीं। वे अकेली ही सम्पूर्ण चराचर जगत्का नाश करनेमें समर्थ हैं, तो फिर सब दानवोंकी बात ही क्या—यह सत्य है॥ ४३-४४॥

इति ज्ञात्वा महाभाग यथारुचि तथा कुरु।
हितं सत्यं मितं वाक्यं वक्तव्यमनुयायिभिः॥ ४५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां शुम्भः परबलार्दनः।
कनीयांसं समानीय पप्रच्छ रहसि स्थितः॥ ४६

भ्रातः कालिकयाद्यैव निहतो धूम्रलोचनः।
बलञ्च शातितं सर्वं गणा भग्नाः समागताः॥ ४७

अम्बिका शङ्खनादं वै करोति मदगर्विता।
ज्ञानिनां चैव दुर्ज्ञेया गतिः कालस्य सर्वथा॥ ४८

तृणं वज्रायते नूनं वज्रं चैव तृणायते।
बलवान्बलहीनः स्याद्दैवस्य गतिरीदृशी॥ ४९

पृच्छामि त्वां महाभाग किं कर्तव्यमितः परम्।
अभोग्या चाम्बिका नूनं कारणादत्र चागता॥ ५०

युक्तं पलायनं वीर युद्धं वा वद सत्वरम्।
लघुं ज्येष्ठं विजानामि त्वामहं कार्यसङ्कटे॥ ५१

निशुम्भ उवाच

न वा पलायनं युक्तं न दुर्गग्रहणं तथा।
युद्धमेव परं श्रेयः सर्वथैवानयानघ॥ ५२

ससैन्योऽहं गमिष्यामि रणे तु प्रवराश्रितः।
हत्वा तामागमिष्यामि तरसा त्वबलामिमाम्॥ ५३

अथवा बलवद्दैवादन्यथा चेद्भविष्यति।
मृते मयि त्वया कार्यं विमृश्य च पुनः पुनः॥ ५४

हे महाभाग! यह सब भलीभाँति समझ-बूझकर आपकी जैसी रुचि हो, वैसा कीजिये। सेवकोंको तो अपने स्वामीसे हितकर, सत्य और नपी-तुली बात कहनी चाहिये॥ ४५॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर शत्रुसेनाको विनष्ट कर डालनेवाले शुम्भने अपने छोटे भाई निशुम्भको एकान्त स्थानमें ले जाकर वहाँ स्थित हो उससे पूछा—हे भाई! आज कालिकाने अकेले ही धूम्रलोचनको मार डाला, सारी सेना नष्ट कर दी और शेष सैनिक अंग-भंग होकर भाग आये हैं। अभिमानमें चूर रहनेवाली वही अम्बिका शंखनाद कर रही है॥ ४६-४७½ ॥

कालकी गतिको पूर्णरूपसे समझना ज्ञानियोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। [कालकी प्रेरणासे] तृण वज्र बन जाता है, वज्र तृण बन जाता है और बलशाली प्राणी बलहीन हो जाता है; दैवकी ऐसी विचित्र गति है॥ ४८-४९॥

हे महाभाग! मैं तुमसे पूछता हूँ कि अब आगे मुझे क्या करना चाहिये? ऐसा लगता है कि यह अम्बिका किसी उद्देश्यसे यहाँ आयी हुई है। अतः निश्चय ही वह हमारे भोगके योग्य नहीं है॥ ५०॥

हे वीर! तुम मुझे शीघ्र बताओ कि इस समय भाग जाना उचित है या युद्ध करना? यद्यपि तुम छोटे हो, फिर भी इस संकटके समय मैं तुम्हें बड़ा मान रहा हूँ॥ ५१॥

निशुम्भ बोला—हे अनघ! इस समय न तो भागना उचित है और न तो किलेमें छिपना ही ठीक है। अब तो इस स्त्रीके साथ हर प्रकारसे युद्ध करना ही श्रेयस्कर है॥ ५२॥

श्रेष्ठ सेनापतियोंको लेकर मैं अपनी सेनाके साथ युद्धभूमिमें जाऊँगा और उस कालिकाको मारकर तथा अबला अम्बिकाको पकड़कर शीघ्र यहाँ ले आऊँगा और यदि बलवान् दैवके कारण इसके विपरीत हो जाय तो मेरे मर जानेपर बार-बार सोच-विचारकर ही आप कोई कार्य कीजियेगा॥ ५३-५४॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा शुम्भः प्रोवाच चानुजम्।
तिष्ठ त्वं चण्डमुण्डौ द्वौ गच्छेतां बलसंयुतौ॥ ५५

शशकग्रहणायात्र न युक्तं गजमोचनम्।
चण्डमुण्डौ महावीरौ तां हन्तुं सर्वथा क्षमौ॥ ५६

इत्युक्त्वा भ्रातरं शुम्भः सम्भाष्य च महाबलौ।
उवाच वचनं राजा चण्डमुण्डौ पुरःस्थितौ॥ ५७

गच्छतं चण्डमुण्डौ द्वौ स्वसैन्यपरिवारितौ।
हन्तुं तामबलां शीघ्रं निर्लज्जां मदगर्विताम्॥ ५८

गृहीत्वाथ निहत्याजौ कालिकां पिङ्गलोचनाम्।
आगम्यतां महाभागौ कृत्वा कार्यं महत्तरम्॥ ५९

सा नायाति गृहीतापि गर्विता चाम्बिका यदि।
तदा बाणैर्महातीक्ष्णैर्हन्तव्याहवमण्डिता॥ ६०

छोटे भाई निशुम्भकी यह बात सुनकर शुम्भने उससे कहा—अभी तुम ठहरो, पहले पराक्रमी चण्ड-मुण्ड जायँ। खरगोश पकड़नेके लिये हाथी छोड़ना उचित नहीं है। चण्ड-मुण्ड बड़े वीर हैं, अतः ये दोनों उसे मार डालनेमें हर तरहसे समर्थ हैं॥ ५५-५६॥

अपने भाई निशुम्भसे ऐसा कहकर और उससे परामर्श करके राजा शुम्भने समक्ष बैठे हुए महान् बलशाली चण्ड-मुण्डसे कहा—हे चण्ड-मुण्ड! तुम दोनों अपनी सेना लेकर उस निर्लज्ज और मदोन्मत्त अबलाका वध करनेके लिये शीघ्र जाओ। हे महाभागो! रणभूमिमें पिंग-नेत्रोंवाली उस कालिकाको मारकर और अम्बिकाको पकड़कर—यह महान् कार्य करके यहाँ लौट आओ। यदि वह मदोन्मत्त अम्बिका पकड़ी जानेपर भी नहीं आती तो अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंसे उस रणभूषिताका भी वध कर देना॥ ५७—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देव्या सह युद्धाय चण्डमुण्डप्रेषणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

~~O~~

अथ षड्विंशोऽध्यायः

भगवती अम्बिकासे चण्ड-मुण्डका संवाद और युद्ध, देवी कालिकाद्वारा चण्ड-मुण्डका वध

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तौ तदा वीरौ चण्डमुण्डौ महाबलौ।
जग्मतुस्तरसैवाजौ सैन्येन महतान्वितौ॥ १

दृष्ट्वा तत्र स्थितां देवीं देवानां हितकारिणीम्।
ऊचतुस्तौ महावीर्यौ तदा सामान्वितं वचः॥ २

बाले त्वं किं न जानासि शुम्भं सुरबलार्दनम्।
निशुम्भञ्च महावीर्यं तुराषाड्विजयोद्धतम्॥ ३

त्वमेकासि वरारोहे कालिकासिंहसंयुता।
जेतुमिच्छसि दुर्बुद्धे शुम्भं सर्वबलान्वितम्॥ ४

व्यासजी बोले—[हे महाराज!] तदनन्तर शुम्भसे ऐसा आदेश पाकर महाबली चण्ड-मुण्ड विशाल सेनाके साथ बड़े वेगसे रणभूमिकी ओर चल पड़े॥ १॥

तब देवताओंका हित करनेवाली देवीको वहाँ युद्धभूमिमें विद्यमान देखकर वे दोनों महापराक्रमी दानव उनसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ २॥

हे बाले! क्या तुम देवताओंकी सेनाका नाश करनेवाले शुम्भ तथा इन्द्रपर विजय प्राप्त करनेके कारण उद्धत स्वभाववाले महापराक्रमी निशुम्भको नहीं जानती हो?॥ ३॥

हे सुन्दरि! तुम यहाँ अकेली हो। हे दुर्बुद्धे! तुम मात्र कालिका और सिंहको साथ लेकर सभी प्रकारकी सेनाओंसे सम्पन्न शुम्भको जीतना चाहती हो!॥ ४॥

मतिदः कोऽपि ते नास्ति नारी वापि नरोऽपि वा।
देवास्त्वां प्रेरयन्त्येव विनाशाय तवैव ते॥ ५

विमृश्य कुरु तन्वङ्गि कार्यं स्वपरयोर्बलम्।
अष्टादशभुजत्वात्त्वं गर्वञ्च कुरुषे मृषा॥ ६

किं भुजैर्बहुभिर्व्यर्थैरायुधैः किं श्रमप्रदैः।
शुम्भस्याग्रे सुराणां वै जेतुः समरशालिनः॥ ७

ऐरावतकरच्छेत्तुर्दन्तिदारणकारिणः ।
जयिनः सुरसङ्घानां कार्यं कुरु मनोगतम्॥ ८

वृथा गर्वायसे कान्ते कुरु मे वचनं प्रियम्।
हितं तव विशालाक्षि सुखदं दुःखनाशनम्॥ ९

दुःखदानि च कार्याणि त्याज्यानि दूरतो बुधैः।
सुखदानि च सेव्यानि शास्त्रतत्त्वविशारदैः॥ १०

चतुरासि पिकालापे पश्य शुम्भबलं महत्।
प्रत्यक्षं सुरसङ्घानां मर्दनेन महोदयम्॥ ११

प्रत्यक्षञ्च परित्यज्य वृथैवानुमितिः किल।
सन्देहसहिते कार्ये न विपश्चित्प्रवर्तते॥ १२

शत्रुः सुराणां परमः शुम्भः समरदुर्जयः।
तस्मात्त्वां प्रेरयन्त्यत्र देवा दैत्येशपीडिताः॥ १३

तस्मात्तद्वचनैः स्निग्धैर्वञ्चितासि शुचिस्मिते।
दुःखाय तव देवानां शिक्षा स्वार्थस्य साधिका॥ १४

क्या कोई स्त्री या पुरुष तुम्हें सत्परामर्श देनेवाला नहीं है? देवतालोग तो तुम्हारे विनाशके लिये ही तुम्हें प्रेरित कर रहे हैं॥ ५॥

हे सुकुमार अंगोंवाली! तुम अपने तथा शत्रुके बलके विषयमें सम्यक् विचार करके ही कार्य करो। अठारह भुजाओंके कारण तुम अपनेपर व्यर्थ ही अभिमान करती हो॥ ६॥

देवताओंको जीतनेवाले तथा समरभूमिमें पराक्रम दिखानेवाले शुम्भके समक्ष तुम्हारी इन बहुत-सी व्यर्थ भुजाओं तथा श्रम प्रदान करनेवाले आयुधोंसे क्या लाभ? अतः तुम ऐरावतकी सूँड़ काट डालनेवाले, हाथियोंको विदीर्ण करनेवाले और देवताओंको जीत लेनेवाले शुम्भका मनोवांछित कार्य करो॥ ७-८॥

हे कान्ते! तुम वृथा गर्व करती हो। हे विशालाक्षि! तुम मेरी प्रिय बात मान लो, जो तुम्हारे लिये हितकर, सुखद तथा दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ ९॥

शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले विद्वान् तथा बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि दुःख देनेवाले कार्योंका दूरसे ही त्याग कर दें और सुख प्रदान करनेवाले कार्योंका सेवन करें॥ १०॥

हे कोयलके समान मधुर बोलनेवाली! तुम तो बड़ी चतुर हो। तुम देवताओंके मर्दनसे अभ्युदयको प्राप्त तथा महान् शुम्भबलको प्रत्यक्ष देख लो। प्रत्यक्ष प्रमाणका त्याग करके अनुमानका आश्रय लेना बिलकुल व्यर्थ है। किसी सन्देहात्मक कार्यमें विद्वान् पुरुष प्रवृत्त नहीं होते॥ ११-१२॥

शुम्भ देवताओंके महान् शत्रु हैं। वे संग्राममें अजेय हैं। इसीलिये दैत्येन्द्र शुम्भके द्वारा प्रताड़ित किये गये देवता तुम्हें युद्धके लिये प्रेरित कर रहे हैं॥ १३॥

हे सुन्दर मुसकानवाली! तुम देवताओंके मधुर वचनोंसे ठग ली गयी हो। तुम्हारे प्रति देवताओंकी यह शिक्षा उनका कार्य सिद्ध करनेवाली तथा तुम्हें दुःख प्रदान करनेवाली है॥ १४॥

कार्यमित्रं परिक्षिप्य धर्ममित्रं समाश्रयेत्।
देवाः स्वार्थपराः कामं त्वामहं सत्यमब्रवम्॥ १५

भज शुम्भं सुरेशानं जेतारं भुवनेश्वरम्।
चतुरं सुन्दरं शूरं कामशास्त्रविशारदम्॥ १६

ऐश्वर्यं सर्वलोकानां प्राप्स्यसे शुम्भशासनात्।
निश्चयं परमं कृत्वा भर्तारं भज शोभनम्॥ १७

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा चण्डस्य जगदम्बिका।
मेघगम्भीरनिनदं जगर्ज पुनरब्रवीत्॥ १८

गच्छ जाल्म मृषा किं त्वं भाषसे वञ्चकं वचः।
त्यक्त्वा हरिहरादींश्च शुम्भं कस्माद्व्रजे पतिम्॥ १९

न मे कश्चित्पतिः कार्यो न कार्यं पतिना सह।
स्वामिनी सर्वभूतानामहमेव निशामय॥ २०

शुम्भा मे बहवो दृष्टा निशुम्भाश्च सहस्रशः।
घातिताश्च मया पूर्वं शतशो दैत्यदानवाः॥ २१

ममाग्रे देववृन्दानि विनष्टानि युगे युगे।
नाशं यास्यन्ति दैत्यानां यूथानि पुनरद्य वै॥ २२

काल एवागतोऽस्त्यत्र दैत्यसंहारकारकः।
वृथा त्वं कुरुषे यत्नं रक्षणायात्मसन्ततेः॥ २३

कुरु युद्धं वीरधर्मरक्षायै त्वं महामते।
मरणं भावि दुस्त्याज्यं यशो रक्ष्यं महात्मभिः॥ २४

किं ते कार्यं निशुम्भेन शुम्भेन च दुरात्मना।
वीरधर्मं परं प्राप्य गच्छ स्वर्गं सुरालयम्॥ २५

शुम्भो निशुम्भश्चैवान्ये ये चात्र तव बान्धवाः।
सर्वे तवानुगाः पश्चादागमिष्यन्ति साम्प्रतम्॥ २६

अपना ही कार्य साधनेमें तत्पर रहनेवाले मित्रका त्यागकर धर्ममार्गपर चलनेवाले मित्रका ही अवलम्बन करना चाहिये। देवता बड़े ही स्वार्थी हैं, मैंने तुमसे यह सत्य कहा है, अतः तुम देवताओंके शासक, विजेता, तीनों लोकोंके स्वामी, चतुर, सुन्दर, वीर और कामशास्त्रमें प्रवीण शुम्भको स्वीकार कर लो। शुम्भके अधीन रहनेसे तुम समस्त लोकोंका वैभव प्राप्त करोगी। अतएव दृढ़ निश्चय करके तुम सौन्दर्यसम्पन्न शुम्भको अपना पति बना लो॥ १५—१७॥

व्यासजी बोले—चण्डकी यह बात सुनकर जगदम्बाने मेघके समान गम्भीर ध्वनिमें गर्जना की और वे बोलीं—धूर्त! भाग जाओ; तुम यह छलयुक्त बात व्यर्थ क्यों बोल रहे हो? विष्णु, शिव आदिको छोड़कर मैं शुम्भको अपना पति किसलिये बनाऊँ?॥ १८-१९॥

न तो मुझे किसीको पति बनाना है और न तो पतिसे मेरा कोई काम ही है; क्योंकि जगत‍्के सभी प्राणियोंकी स्वामिनी मैं ही हूँ; इसे तुम सुन लो॥ २०॥

मैंने हजारों-हजार शुम्भ तथा निशुम्भ देखे हैं और पूर्वकालमें मैंने सैकड़ों दैत्यों तथा दानवोंका वध किया है॥ २१॥

प्रत्येक युगमें अनेक देवसमुदाय मेरे सामने ही नष्ट हो चुके हैं। दैत्योंके समूह अब फिर विनाशको प्राप्त होंगे। दैत्योंका विनाशकारी समय अब आ ही गया है। अतएव तुम अपनी सन्ततिकी रक्षाके लिये व्यर्थ प्रयत्न कर रहे हो॥ २२-२३॥

हे महामते! तुम वीरधर्मकी रक्षाके लिये मेरे साथ युद्ध करो। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, इसे टाला नहीं जा सकता। अतः महात्मा लोगोंको यशकी रक्षा करनी चाहिये॥ २४॥

दुराचारी शुम्भ तथा निशुम्भसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है? अतः अब तुम श्रेष्ठ वीरधर्मका आश्रय लेकर देवलोक स्वर्ग चले जाओ॥२५॥

अब शुम्भ, निशुम्भ तथा तुम्हारे जो अन्य बन्धु-बान्धव हैं, वे सब भी बादमें तुम्हारा अनुसरण करते हुए वहाँ पहुँचेंगे॥ २६॥

क्रमशः सर्वदैत्यानां करिष्याम्यद्य संक्षयम्।
विषादं त्यज मन्दात्मन् कुरु युद्धं विशांपते॥ २७

त्वामहं निहनिष्यामि भ्रातरं तव साम्प्रतम्।
ततः शुम्भं निशुम्भं च रक्तबीजं मदोत्कटम्॥ २८

अन्यांश्च दानवान्सर्वान्हत्वाहं समराङ्गणे।
गमिष्यामि यथास्थानं तिष्ठ वा गच्छ वा द्रुतम्॥ २९

गृहाणास्त्रं वृथापुष्ट कुरु युद्धं मयाधुना।
किं जल्पसि मृषा वाक्यं सर्वथा कातरप्रियम्॥ ३०

व्यास उवाच

तयेत्थं प्रेरितौ दैत्यौ चण्डमुण्डौ क्रुधान्वितौ।
ज्याशब्दं तरसा घोरं चक्रतुर्बलदर्पितौ॥ ३१

सापि शङ्खस्वनं चक्रे पूरयन्ती दिशो दश।
सिंहोऽपि कुपितस्तावन्नादं समकरोद् बली॥ ३२

तेन नादेन शक्राद्या जहर्षुरमरास्तदा।
मुनयो यक्षगन्धर्वाः सिद्धाः साध्याश्च किन्नराः॥ ३३

युद्धं परस्परं तत्र जातं कातरभीतिदम्।
चण्डिकाचण्डयोस्तीव्रं बाणखड्गगदादिभिः॥ ३४

चण्डमुक्ताञ्छरान्देवी चिच्छेद निशितैः शरैः।
मुमोच पुनरुग्रान्सा बाणांश्च पन्नगानिव॥ ३५

गगनं छादितं तत्र संग्रामे विशिखैस्तदा।
शलभैरिव मेघान्ते कर्षकाणां भयप्रदैः॥ ३६

मुण्डोऽपि सैनिकैः सार्धं पपात तरसा रणे।
मुमोच बाणवृष्टिं वै क्रुद्धः परमदारुणः॥ ३७

बाणजालं महद् दृष्ट्वा क्रुद्धा तत्राम्बिका भृशम्।
कोपेन वदनं तस्या बभूव घनसन्निभम्॥ ३८
कदलीपुष्पनेत्रञ्च भृकुटीकुटिलं तदा।

हे मन्दात्मन्! मैं अब क्रमशः सभी दैत्योंका संहार कर डालूँगी। हे विशांपते! अब विषाद त्यागो और मेरे साथ युद्ध करो॥ २७॥

मैं इसी समय तुम्हारा तथा तुम्हारे भाईका वध कर दूँगी। तत्पश्चात् शुम्भ, निशुम्भ, मदोन्मत्त रक्तबीज तथा अन्य दानवोंको रणभूमिमें मारकर मैं अपने धामको चली जाऊँगी। अब तुम यहाँ ठहरो अथवा शीघ्र भाग जाओ॥ २८-२९॥

व्यर्थ ही स्थूल शरीर धारण करनेवाले हे दैत्य! तुरंत शस्त्र उठा लो और मेरे साथ अभी युद्ध करो। कायरोंको सदा प्रिय लगनेवाली व्यर्थ बातें क्यों बोल रहे हो?॥ ३०॥

व्यासजी बोले—देवीके इस प्रकार उत्तेजित करनेपर दैत्य चण्ड-मुण्ड क्रोधसे भर उठे और अपने बलके अभिमानमें चूर उन दोनोंने वेगपूर्वक अपने धनुषकी प्रत्यंचाकी भीषण टंकार की॥ ३१॥

उसी समय दसों दिशाओंको गुंजित करती हुई भगवतीने भी शंखनाद किया और बलवान् सिंहने भी कुपित होकर गर्जन किया। उस गर्जनसे इन्द्र आदि देवता, मुनि, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध, साध्य और किन्नर बहुत हर्षित हुए॥ ३२-३३॥

तदनन्तर चण्डिका और चण्डमें परस्पर बाण, तलवार, गदा आदिके द्वारा भीषण संग्राम होने लगा; जो कायरोंके लिये भयदायक था॥ ३४॥

चण्डिकाने दैत्य चण्डके द्वारा छोड़े गये बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट दिया और फिर वे चण्डपर अपने सर्पसदृश भयंकर बाण छोड़ने लगीं॥ ३५॥

उस समय संग्राममें आकाशमण्डल बाणोंसे उसी प्रकार आच्छादित हो गया, जैसे वर्षाऋतुके अन्तमें किसानोंको भय प्रदान करनेवाली टिड्डियोंसे आकाश छा जाता है॥ ३६॥

उसी समय अतीव भयंकर मुण्ड भी सैनिकोंके साथ बड़ी तेजीसे रणभूमिमें आ पहुँचा और क्रोधित होकर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ३७॥

तब [मुण्डके द्वारा प्रक्षिप्त] महान् बाण-समूहको देखकर अम्बिका बहुत कुपित हुईं। क्रोधके कारण उनका मुख मेघके समान काला, आँखें केलेके पुष्पके समान लाल और भौंहें टेढ़ी हो गयीं॥ ३८ १/२॥

निष्क्रान्ता च तदा काली ललाटफलकाद्द्रुतम्॥ ३९

व्याघ्रचर्माम्बरा क्रूरा गजचर्मोत्तरीयका।
मुण्डमालाधरा घोरा शुष्कवापीसमोदरा॥ ४०

खड्गपाशधरातीव भीषणा भयदायिनी।
खट्वाङ्गधारिणी रौद्रा कालरात्रिरिवापरा॥ ४१

विस्तीर्णवदना जिह्वां चालयन्ती मुहुर्मुहुः।
विस्तारजघना वेगाज्जघानासुरसैनिकान्॥ ४२

करे कृत्वा महावीरांस्तरसा सा रुषान्विता।
मुखे चिक्षेप दैतेयान्पिपेष दशनैः शनैः॥ ४३

गजान्घण्टान्वितान्हस्ते गृहीत्वा निदधौ मुखे।
सारोहान्भक्षयित्वाजौ साट्टहासं चकार ह॥ ४४

तथैव तुरगानुष्ट्रांस्तथा सारथिभिः सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयत्यतिभैरवम्॥ ४५

हन्यमानं बलं प्रेक्ष्य चण्डमुण्डौ महासुरौ।
छादयामासतुर्देवीं बाणासारैरनन्तरैः॥ ४६

चण्डश्चण्डकरच्छायं चक्रं चक्रधरायुधम्।
चिक्षेप तरसा देवीं ननाद च मुहुर्मुहुः॥ ४७

नदन्तं वीक्ष्य तं काली रथाङ्गञ्च रविप्रभम्।
बाणेनैकेन चिच्छेद सुप्रभं तत्सुदर्शनम्॥ ४८

तं जघान शरैस्तीक्ष्णैश्चण्डं चण्डी शिलाशितैः।
मूर्च्छितोऽसौ पपातोर्व्यां देवीबाणार्दितो भृशम्॥ ४९

उसी समय देवीके ललाटपटलसे सहसा भगवती काली प्रकट हुईं। अत्यन्त क्रूर वे काली व्याघ्रचर्म पहने थीं और गजचर्मके उत्तरीय वस्त्रोंसे सुशोभित थीं। उन भयानक कालीने गलेमें मुण्डमाला धारण कर रखी थी और उनका उदर सूखी बावलीके समान प्रतीत हो रहा था। अत्यन्त भीषण तथा भय प्रदान करनेवाली वे भगवती काली हाथमें खड्ग, पाश तथा खट्वांग धारण किये हुई थीं। रौद्र रूपवाली वे काली साक्षात् दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत हो रही थीं॥ ३९—४१॥

विशाल मुख तथा विस्तृत जघनप्रदेशवाली वे भगवती काली बार-बार जिह्वा लपलपाती हुई बड़े वेगसे असुर-सैनिकोंका संहार करने लगीं॥ ४२॥

वे कुपित होकर बड़े-बड़े दैत्यवीरोंको हाथमें पकड़कर अपने मुखमें डाल लेती थीं और धीरे-धीरे उन्हें दाँतोंसे पीस डालती थीं॥ ४३॥

घंटा तथा आरोहियोंसमेत हाथियोंको अपने हाथमें पकड़कर वे देवी उन्हें मुखमें डाल लेती थीं और उन्हें चबा-चबाकर अट्टहास करने लगती थीं। उसी प्रकार वे घोड़ों, ऊँटों और सारथियोंसहित रथोंको अपने मुखमें डालकर दाँतोंसे अत्यन्त भयानक रूपसे चबाने लगती थीं॥ ४४-४५॥

अपनी सेनाको मारे जाते देखकर महान् असुर चण्ड-मुण्डने निरन्तर बाण-वृष्टिके द्वारा भगवतीको आच्छादित कर दिया॥ ४६॥

चण्डने सूर्यके समान तेजस्वी तथा भगवान् विष्णुके सुदर्शनचक्रके तुल्य प्रभाववाला चक्र बड़े वेगसे देवीपर चला दिया और वह बार-बार गरजने लगा॥ ४७॥

उसे गर्जन करते देखकर कालीने अपने एक ही बाणसे उसके सूर्य-तुल्य तेजस्वी तथा सुदर्शनचक्र-सदृश प्रभावाले चक्रको काट डाला॥ ४८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने पत्थरकी सानपर चढ़ाये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उस चण्डपर प्रहार किया। देवीके बाणोंसे अत्यधिक घायल होकर वह मूर्च्छित हो गया और पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ४९॥

पतितं भ्रातरं वीक्ष्य मुण्डो दुःखार्दितस्तदा।
चकार शरवृष्टिञ्च कालिकोपरि कोपतः॥ ५०

चण्डिका मुण्डनिर्मुक्तां शरवृष्टिं सुदारुणाम्।
ईषिकास्त्रैर्बलान्मुक्तैश्चकार तिलशः क्षणात्॥ ५१

अर्धचन्द्रेण बाणेन ताडयामास तं पुनः।
पतितोऽसौ महावीर्यो मेदिन्यां मदवर्जितः॥ ५२

हाहाकारो महानासीद्दानवानां बले तदा।
जहर्षुरमराः सर्वे गगनस्था गतव्यथाः॥ ५३

विहाय मूर्च्छां चण्डस्तु संगृह्य महतीं गदाम्।
तरसा ताडयामास कालिकां दक्षिणे भुजे॥ ५४

वञ्चयित्वा गदाघातं तं बबन्ध महासुरम्।
तरसा बाणपाशेन मन्त्रमुक्तेन कालिका॥ ५५

उत्थितस्तु तदा मुण्डो बद्धं दृष्ट्वानुजं बलात्।
आजगाम सुसन्नद्धः शक्तिं कृत्वा करे दृढाम्॥ ५६

आगच्छन्तं तदा काली दानवं वीक्ष्य सत्वरम्।
बबन्ध तरसा तं तु द्वितीयं भ्रातरं भृशम्॥ ५७

गृहीत्वा तौ महावीर्यौ चण्डमुण्डौ शशाविव।
कुर्वती विपुलं हासमाजगामाम्बिकां प्रति॥ ५८

आगत्य तामथोवाच गृहाणेमौ पशू प्रिये।
रणयज्ञार्थमानीतौ दानवौ रणदुर्जयौ॥ ५९

तावानीतौ तदा वीक्ष्य चण्डिका तौ वृकाविव।
अम्बिका कालिकां प्राह माधुरीसंयुतं वचः॥ ६०

वधं मा कुरु मा मुञ्च चतुरासि रणप्रिये।
देवानां कार्यसंसिद्धिः कर्तव्या तरसा त्वया॥ ६१

उस समय अपने भाईको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर मुण्ड दुःखसे व्याकुल हो उठा और कुपित होकर कालिकाके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा॥ ५०॥

भगवती चण्डिकाने मुण्डके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण बाणवर्षाको अपने द्वारा छोड़े गये ईषिकास्त्रोंसे बलपूर्वक तिल-तिल करके क्षणभरमें ही नष्ट कर डाला॥ ५१॥

तत्पश्चात् चण्डिकाने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे मुण्डपर पुनः प्रहार किया, जिससे वह महाशक्तिशाली दैत्य मदहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ५२॥

[यह देखकर] उस समय दानवोंकी सेनामें महान् हाहाकार मच गया। आकाशमें विद्यमान सभी देवताओंकी व्यथा दूर हो गयी और वे हर्षसे भर उठे॥ ५३॥

इसके बाद कुछ देरमें मूर्च्छा दूर होनेपर चण्डने एक विशाल गदा लेकर बड़े वेगसे कालिकाकी दाहिनी भुजापर प्रहार किया॥ ५४॥

भगवती कालिकाने उसके गदाप्रहारको रोककर अभिमन्त्रित करके छोड़े गये बाण-पाशसे उस महान् असुरको शीघ्र ही बाँध लिया॥ ५५॥

उधर जब मुण्ड चेतनामें आया तब अपने अनुजको पाशास्त्रमें बलपूर्वक बँधा देखकर कवच पहने हुए वह अपने हाथमें एक सुदृढ़ शक्ति लेकर आ गया॥ ५६॥

तब भगवती कालीने उस दूसरे भाई दानव मुण्डको बड़े वेगसे अपनी ओर आता हुआ देखकर उसे भी बड़ी मजबूतीसे बाँध लिया॥ ५७॥

इस प्रकार महाबली चण्ड-मुण्डको खरगोशकी तरह पकड़कर जोर-जोरसे हँसती हुई वे कालिका अम्बिकाके पास जा पहुँची। उनके पास आकर कालिका कहने लगीं—हे प्रिये! मैं रणयज्ञमें पशुबलिके लिये इन रणदुर्जय दानवोंको यहाँ ले आयी हूँ, आप इन्हें स्वीकार करें॥ ५८-५९॥

तब उन लाये गये दोनों दानवोंको भेड़ियेकी तरह दीन-हीन देखकर भगवती अम्बिकाने कालिकासे मधुरताभरी वाणीमें कहा—हे रणप्रिये! न इनका वध करो और न छोड़ो ही। तुम चतुर हो अतः किसी उपायसे अब तुम्हें शीघ्र ही देवताओंका कार्य सिद्ध करना चाहिये॥ ६०-६१॥

व्यास उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा कालिका प्राह तां पुनः।
युद्धयज्ञेऽतिविख्याते खड्गयूपे प्रतिष्ठिते॥ ६२

आलम्भञ्च करिष्यामि यथा हिंसा न जायते।
इत्युक्त्वा सा तदा देवी खड्गेन शिरसी तयोः॥ ६३

चकर्त तरसा काली पपौ च रुधिरं मुदा।
एवं दैत्यौ हतौ दृष्ट्वा मुदितोवाच चाम्बिका॥ ६४

कृतं कार्यं सुराणां ते ददाम्यद्य वरं शुभम्।
चण्डमुण्डौ हतौ यस्मात्तस्मात्ते नाम कालिके।
चामुण्डेति सुविख्यातं भविष्यति धरातले॥ ६५

व्यासजी बोले—अम्बिकाकी यह बात सुनकर कालिकाने उनसे पुनः कहा—जिस प्रकार यज्ञभूमिमें यूप स्थापित किये जाते हैं, उसी प्रकार विख्यात युद्धयज्ञमें बलिदान-स्तम्भके रूपमें प्रतिष्ठित खड्गके द्वारा मैं आलम्भनपूर्वक इस तरह इनका वध करूँगी, जिससे हिंसा नहीं होगी॥ ६२$\frac{१}{२}$ ॥

ऐसा कहकर देवी कालिकाने तुरंत तलवारसे उन दोनोंका सिर काट लिया और वे आनन्दपूर्वक रुधिरपान करने लगीं॥ ६३$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर अम्बिकाने प्रसन्न होकर कहा—तुमने आज देवताओंका महान् कार्य किया है इसीलिये मैं तुम्हें एक शुभ वरदान दे रही हूँ। हे कालिके! चूँकि तुमने चण्ड-मुण्डका वध किया है, इसलिये अब तुम इस पृथ्वीलोकमें 'चामुण्डा'—इस नामसे अत्यधिक विख्यात होओगी॥ ६४-६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे चण्डमुण्डवधेन देव्याश्चामुण्डेतिनामवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

शुम्भका रक्तबीजको भगवती अम्बिकाके पास भेजना और उसका देवीसे वार्तालाप

व्यास उवाच

हतौ तौ दानवौ दृष्ट्वा हतशेषाश्च सैनिकाः।
पलायनं ततः कृत्वा जग्मुः सर्वे नृपं प्रति॥ १

भिन्नाङ्गा विशिखैः केचित्केचिच्छिन्नकरास्तथा।
रुधिरस्रावदेहाश्च रुदन्तोऽभिययुः पुरे॥ २

गत्वा दैत्यपतिं सर्वे चक्रुर्बुम्बारवं मुहुः।
रक्ष रक्ष महाराज भक्षयत्यद्य कालिका॥ ३

तया हतौ महावीरौ चण्डमुण्डौ सुरार्दनौ।
भक्षिताः सैनिकाः सर्वे वयं भग्ना भयातुराः॥ ४

भीतिदञ्च रणस्थानं कृतं कालिकया प्रभो।
पातितैर्गजवीराश्वैर्दासेरकपदातिभिः ॥ ५

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन दोनों दैत्योंको मारा गया देखकर मरनेसे बचे सभी सैनिक भागकर राजा शुम्भके पास गये। कुछ सैनिकोंके अंग बाणोंसे छिद गये थे, कुछके हाथ कट गये थे, उनके पूरे शरीरसे रक्त बह रहा था; वे सब रोते हुए नगरमें पहुँचे॥ १-२॥

दैत्यराज शुम्भके पास जाकर वे सब बार-बार चीख-पुकार करने लगे—हे महाराज! हमें बचा लीजिये, बचा लीजिये; नहीं तो आज हमें कालिका खा जायगी। उसने देवताओंका मर्दन करनेवाले महावीर चण्ड-मुण्डको मार डाला और वह बहुत-से सैनिकोंको खा गयी। अंग-भंग हुए हमलोग इस समय भयसे व्याकुल हैं॥ ३-४॥

हे प्रभो! मरे पड़े हाथियों, घोड़ों, ऊँटों तथा पैदल सैनिकोंसे उस कालिकाने युद्धभूमिको अत्यन्त डरावना बना दिया है॥ ५॥

शोणितौघवहा कुल्या कृता मांसातिकर्दमा।
केशशैवलिनी भग्नरथचक्रविराजिता॥ ६

छिन्नबाह्वादिमत्स्याढ्या शीर्षतुम्बीफलान्विता।
भयदा कातराणां वै सुराणां मोदवर्धिनी॥ ७

कुलं रक्ष महाराज पातालं गच्छ सत्वरम्।
क्रुद्धा देवी क्षयं सद्यः करिष्यति न संशयः॥ ८

सिंहोऽपि भक्षयत्याजौ दानवान्दनुजेश्वर।
तथैव कालिका देवी हन्ति बाणैरनेकधा॥ ९

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र मरणाय मृषा मतिम्।
करोषि सहितो भ्रात्रा शुम्भेन कुपिताशयः॥ १०

किं करिष्यति नार्येषा क्रूरा कुलविनाशिनी।
यस्या हेतोर्महाराज हन्तुमिच्छसि बान्धवान्॥ ११

दैवाधीनौ महाराज लोके जयपराजयौ।
अल्पार्थाय महद्दुःखं बुद्धिमान्न प्रकल्पयेत्॥ १२

चित्रं पश्य विधेः कर्म यदधीनं जगत् प्रभो।
निहता राक्षसाः सर्वे स्त्रिया पश्यैकयानया॥ १३

जेता त्वं लोकपालानां सैन्ययुक्तो हि साम्प्रतम्।
एका प्रार्थयते बाला युद्धायेति सुसम्भ्रमः॥ १४

पुरा त्वया तपस्तप्तं पुष्करे देवतायने।
वरदानाय सम्प्राप्तो ब्रह्मा लोकपितामहः॥ १५

धात्रोक्तस्त्वं महाराज वरं वरय सुव्रत।
तदा त्वयामरत्वं च प्रार्थितं ब्रह्मणः किल॥ १६

उसने समरभूमिमें रक्तकी नदी बना डाली है, जिसमें मांस कीचड़की भाँति, मस्तकके केश सेवारके सदृश और टूटे हुए रथोंके पहिये भँवरके समान, सैनिकोंके कटे हाथ आदि मछलीके समान और सिर तुम्बीके फलके तुल्य प्रतीत हो रहे हैं। वह [रुधिर-नदी] कायरोंको भयभीत करनेवाली तथा देवताओंके हर्षको बढ़ानेवाली है॥ ६-७॥

हे महाराज! अब आप दैत्यकुलकी रक्षा कीजिये और शीघ्र पाताललोक चले जाइये; अन्यथा क्रोधमें भरी वह देवी आज ही [सभी दानवोंका] विनाश कर डालेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ८॥

हे दानवेन्द्र! अम्बिकाका वाहन सिंह भी युद्धभूमिमें दानवोंको खाता जा रहा है और कालिकादेवी अपने बाणोंसे [दैत्य सैनिकोंका] अनेक तरहसे वध कर रही है। अतएव हे राजेन्द्र! आप भी कोपके वशीभूत होकर अपने भाई निशुम्भसहित मरनेका व्यर्थ विचार कर रहे हैं॥ ९-१०॥

हे महाराज! राक्षसकुलका नाश करनेवाली यह क्रूर स्त्री, जिसके लिये आप अपने बन्धुओंको मरवा डालना चाहते हैं, यदि आपको प्राप्त हो ही गयी तो यह आपको क्या सुख प्रदान करेगी?॥ ११॥

हे महाराज! जगत्‌में जय तथा पराजय दैवके अधीन होती है। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि अल्प प्रयोजनके लिये भारी कष्ट न उठाये॥ १२॥

हे प्रभो! जिसके अधीन यह सारा जगत् रहता है, उस विधाताका अद्भुत कर्म देखिये कि इस स्त्रीने अकेले ही सम्पूर्ण राक्षसोंका संहार कर डाला॥ १३॥

आप लोकपालोंको जीत चुके हैं और इस समय आपके पास बहुत-से सैनिक भी हैं तथापि एक स्त्री युद्धके लिये आपको ललकार रही है; यह महान् आश्चर्य है!॥ १४॥

पूर्वकालमें आपने पुष्कर तीर्थमें एक देवालयमें तप किया था। उस समय वर प्रदान करनेके लिये लोकपितामह ब्रह्माजी आपके पास आये थे। हे महाराज! जब ब्रह्माजीने आपसे कहा—'हे सुव्रत! वर माँगो' तब आपने ब्रह्माजीसे अमर होनेकी यह

देवदैत्यमनुष्येभ्यो न भवेन्मरणं मम।
सर्पकिन्नरयक्षेभ्यः पुंल्लिङ्गवाचकादपि॥ १७

तस्मात्त्वां हन्तुकामैषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो।
युद्धं मा कुरु राजेन्द्र विचार्यैवं धियाधुना॥ १८

देवी ह्येषा महामाया प्रकृतिः परमा मता।
कल्पान्तकाले राजेन्द्र सर्वसंहारकारिणी॥ १९

उत्पादयित्री लोकानां देवानामीश्वरी शुभा।
त्रिगुणा तामसी देवी सर्वशक्तिसमन्विता॥ २०

अजय्या चाक्षया नित्या सर्वज्ञा च सदोदिता।
वेदमाता च गायत्री सन्ध्या सर्वसुरालया॥ २१

निर्गुणा सगुणा सिद्धा सर्वसिद्धिप्रदाव्यया।
आनन्दानन्ददा गौरी देवानामभयप्रदा॥ २२

एवं ज्ञात्वा महाराज वैरभावं त्यजानया।
शरणं व्रज राजेन्द्र देवी त्वां पालयिष्यति॥ २३

आज्ञाकरो भवैतस्याः सञ्जीवय निजं कुलम्।
हतशेषाश्च ये दैत्यास्ते भवन्तु चिरायुषः॥ २४

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भः सुरबलार्दनः।
उवाच वचनं तथ्यं वीरवर्यगुणान्वितम्॥ २५

शुम्भ उवाच

मौनं कुर्वन्तु भो मन्दा यूयं भग्ना रणाजिरात्।
शीघ्रं गच्छत पातालं जीविताशा बलीयसी॥ २६

प्रार्थना की थी—'देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, किन्नर, यक्ष और पुरुषवाचक जो भी प्राणी हैं—इनमें किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो'॥ १५—१७॥

हे प्रभो! इसी कारणसे यह श्रेष्ठ स्त्री आपका वध करनेकी इच्छासे आयी हुई है। अतएव हे राजेन्द्र! बुद्धिसे ऐसा विचार करके अब आप युद्ध मत कीजिये॥ १८॥

इन देवी अम्बिकाको ही महामाया और परमा प्रकृति कहा गया है। हे राजेन्द्र! कल्पके अन्तमें ये भगवती ही सम्पूर्ण सृष्टिका संहार करती हैं॥ १९॥

सबपर शासन करनेवाली ये कल्याणमयी देवी सम्पूर्ण लोकों तथा देवताओंको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। ये देवी तीनों गुणोंसे युक्त हैं, फिर भी ये विशेषरूपसे तमोगुणसे युक्त और सभी प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न हैं। ये अजेय, विनाशरहित, नित्य, सर्वज्ञ तथा सदा विराजमान रहती हैं। वेदमाता गायत्री और सन्ध्याके रूपमें प्रतिष्ठित ये देवी सम्पूर्ण देवताओंको आश्रय प्रदान करती हैं। ये देवी निर्गुण तथा सगुण-रूपवाली, स्वयं सिद्धिस्वरूपिणी, सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली, अविनाशिनी, आनन्दस्वरूपा, सबको आनन्द देनेवाली, गौरी नामसे विख्यात तथा देवताओंको अभय प्रदान करनेवाली हैं॥ २०—२२॥

हे महाराज! ऐसा जानकर आप इनके साथ वैरभावका परित्याग कर दीजिये। हे राजेन्द्र! आप इनकी शरणमें चले जाइये; ये भगवती आपकी रक्षा करेंगी। आप इनके सेवक बन जाइये [और इस प्रकार] अपने कुलका जीवन बचा लीजिये; मरनेसे बचे हुए जो दैत्य हैं, वे भी दीर्घजीवी हो जायँ॥ २३-२४॥

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर देवसेनाका मर्दन करनेवाले शुम्भने महान् वीरोंके पराक्रम-गुणसे सम्पन्न यथार्थ वचन कहना आरम्भ किया॥ २५॥

शुम्भ बोला—अरे मूर्खो! चुप रहो; तुमलोग युद्धभूमिसे भाग आये हो। तुम्हें यदि जीवित रहनेकी प्रबल अभिलाषा है तो तुम सब अभी पाताललोक चले जाओ॥ २६॥

दैवाधीनं जगत्सर्वं का चिन्तात्र जये मम।
देवास्तथैव ब्रह्माद्या दैवाधीना वयं यथा॥ २७

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रोऽयं यमोऽग्निर्वरुणस्तथा।
सूर्यश्चन्द्रस्तथा शक्रः सर्वे दैववशाः किल॥ २८

का चिन्ता तर्हि मे मन्दा यद्भावि तद्भविष्यति।
उद्यमस्तादृशो भूयाद्यादृशी भवितव्यता॥ २९

सर्वथैवं विचार्यैव न शोचन्ति बुधाः क्वचित्।
स्वधर्मं न त्यजन्तीह ज्ञानिनो मरणाद्भयात्॥ ३०

सुखं दुःखं तथैवायुर्जीवितं मरणं नृणाम्।
काले भवति सम्प्राप्ते सर्वथा दैवनिर्मितम्॥ ३१

ब्रह्मा पतति काले स्वे विष्णुश्च पार्वतीपतिः।
नाशं गच्छन्त्यायुषोऽन्ते सर्वे देवाः सवासवाः॥ ३२

तथाहमपि कालस्य वशगः सर्वथाधुना।
नाशं जयं वा गन्तास्मि स्वधर्मपरिपालनात्॥ ३३

आहूतोऽप्यनया कामं युद्धायाबलया किल।
कथं पलायनपरो जीवेयं शरदां शतम्॥ ३४

करिष्याम्यद्य संग्रामं यद्भावि तद्भवत्विह।
जयो वा मरणं वापि स्वीकरोमि यथा तथा॥ ३५

दैवं मिथ्येति विद्वांसो वदन्त्युद्यमवादिनः।
युक्तियुक्तं वचस्तेषां ये जानन्त्यभिभाषितम्॥ ३६

उद्यमेन विना कामं न सिध्यन्ति मनोरथाः।
कातरा एव जल्पन्ति यद्भाव्यं तद्भविष्यति॥ ३७

अदृष्टं बलवन्मूढाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
प्रमाणं तस्य सत्त्वे किमदृश्यं दृश्यते कथम्॥ ३८

जब यह सारा संसार ही दैवके अधीन है, तब विजयके सम्बन्धमें मुझे क्या चिन्ता हो सकती है? जैसे हमलोग दैवके अधीन हैं, वैसे ही ब्रह्मा आदि देवता भी सदा दैवके अधीन रहते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, यम, अग्नि, वरुण, सूर्य, चन्द्र और इन्द्र—ये सब देवता सदा दैवके अधीन हैं। हे मूर्खो! तब मुझे किस बातकी चिन्ता? जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। जैसी भवितव्यता होती है, उसी प्रकारका उद्यम भी आरम्भ हो जाता है। सब प्रकारसे ऐसा विचार करके विद्वान् लोग कभी शोक नहीं करते। ज्ञानी लोग मृत्युके भयसे अपने धर्मका त्याग नहीं करते॥ २७—३०॥

समय आनेपर दैवकी प्रेरणासे मनुष्योंको सुख, दुःख, आयु, जीवन तथा मरण—ये सब निश्चितरूपसे प्राप्त होते हैं। अपना-अपना समय पूरा हो जानेपर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रसहित सभी देवता भी अपनी आयुके अन्तमें विनाशको प्राप्त होते हैं। उसी प्रकार मैं भी सर्वथा कालका वशवर्ती हूँ। अतः अब मुझे विनाश अथवा विजय जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं अपने धर्मका सम्यक् पालन करते हुए स्वीकार करूँगा॥ ३१—३३॥

जब इस स्त्रीने मुझे युद्धके लिये ललकारा है, तब [उसके भयसे] भागकर मैं सैकड़ों वर्ष जीवित रहनेकी आशा क्यों करूँ? मैं आज ही उसके साथ युद्ध करूँगा, फिर जो होना है वह होवे। युद्धमें विजय अथवा मृत्यु जो भी प्राप्त होगी, उसे मैं स्वीकार करूँगा॥ ३४-३५॥

'दैव मिथ्या है'—ऐसा उद्यमवादी विद्वान् कहते हैं। इस प्रकार जो शास्त्रको जानते हैं, उन उद्यमवादी विद्वानोंकी बात युक्तियुक्त भी है॥ ३६॥

बिना उद्यम किये मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होते। केवल कायरलोग ही कहते हैं कि जो होना होगा, वह तो होकर रहेगा। अदृष्ट—प्रारब्ध बलवान् होता है—ऐसी बात मूर्ख कहते हैं न कि पण्डितजन। प्रारब्धकी सत्ता है—इसमें क्या प्रमाण हो सकता है? क्योंकि जो स्वयं अदृष्ट है, वह भला कैसे दिखायी पड़ सकता है?॥ ३७-३८॥

अदृष्टं क्वापि दृष्टं स्यादेषा मूर्खविभीषिका।
अवलम्बं विनैवैषा दुःखे चित्तस्य धारणा॥ ३९

चक्रीसमीपे संविष्टा संस्थिता पिष्टकारिणी।
उद्यमेन विना पिष्टं न भवत्येव सर्वथा॥ ४०

उद्यमे च कृते कार्यं सिद्धिं यात्येव सर्वथा।
कदाचित्तस्य न्यूनत्वे कार्यं नैव भवेदपि॥ ४१

देशं कालञ्च विज्ञाय स्वबलं शत्रुजं बलम्।
कृतं कार्यं भवत्येव बृहस्पतिवचो यथा॥ ४२

व्यास उवाच

इति निश्चित्य दैत्येन्द्रो रक्तबीजं महासुरम्।
प्रेषयामास संग्रामे सैन्येन महतावृतम्॥ ४३

शुम्भ उवाच

रक्तबीज महाबाहो गच्छ त्वं समराङ्गणे।
कुरु युद्धं महाभाग यथा ते बलमाहितम्॥ ४४

रक्तबीज उवाच

महाराज न ते कार्या चिन्ता स्वल्पतरापि वा।
अहमेनां हनिष्यामि करिष्यामि वशे तव॥ ४५

पश्य मे युद्धचातुर्यं क्वेयं बाला सुरप्रिया।
दासीं तेऽहं करिष्यामि जित्वेमां समरे बलात्॥ ४६

व्यास उवाच

इत्याभाष्य कुरुश्रेष्ठ रक्तबीजो महासुरः।
जगाम रथमारुह्य स्वसैन्यपरिवारितः॥ ४७

हस्त्यश्वरथपादातवृन्दैश्च परिवेष्टितः।
निर्जगाम रथारूढो देवीं शैलोपरिस्थिताम्॥ ४८

तमागतं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
भयदं सर्वदैत्यानां देवानां मोदवर्धनम्॥ ४९

अदृष्टको कभी किसीने देखा भी है क्या? यह तो मूर्खोंके लिये विभीषिकामात्र है। इसका कोई आधार नहीं है; केवल कष्टकी स्थितिमें मनको ढाँढ़स देनेके लिये वह सहारामात्र अवश्य बन जाता है॥ ३९॥

आटा पीसनेवाली कोई स्त्री चक्कीके पास चुपचाप बैठी रहे, तो बिना उद्यम किये किसी प्रकार भी आटा तैयार नहीं हो सकता॥ ४०॥

उद्यम करनेपर ही हर प्रकारसे कार्य सिद्ध होता है। जब कभी उद्यम करनेमें कमी रह जाती है, तब कार्य किसी तरह सिद्ध नहीं हो पाता है॥ ४१॥

देश, काल, अपना बल तथा शत्रुका बल—इन सबकी पूरी जानकारी करके किया गया कार्य निश्चय ही सिद्ध होता है—यह आचार्य बृहस्पतिका वचन है॥ ४२॥

व्यासजी बोले—ऐसा निश्चय करके दैत्यराज शुम्भने महान् असुर रक्तबीजको विशाल सेनाके साथ समरभूमिमें जानेकी आज्ञा दी॥ ४३॥

शुम्भ बोला—हे विशाल भुजाओंवाले रक्तबीज! तुम युद्धभूमिमें जाओ; और हे महाभाग! अपनी पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करो॥ ४४॥

रक्तबीज बोला—हे महाराज! आपको तनिक भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। मैं इस स्त्रीको या तो मार डालूँगा और या तो इसे आपके अधीन कर दूँगा। आप मेरा बुद्धिचातुर्य देखें। [मेरे आगे] देवताओंकी प्रिय यह बाला है ही क्या? मैं इसे युद्धमें बलपूर्वक जीतकर आपकी दासी बना दूँगा॥ ४५-४६॥

व्यासजी बोले—हे कुरुश्रेष्ठ! ऐसा कहकर महान् असुर रक्तबीज रथपर आरूढ होकर अपनी सेनाके साथ चल पड़ा॥ ४७॥

हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे चारों ओरसे आवृत हुआ रक्तबीज रथपर आरूढ़ होकर पर्वतपर विराजमान भगवतीकी ओर चल दिया॥ ४८॥

उसे आया हुआ देखकर देवीने शंख बजाया। वह शंखनाद सभी दैत्योंके लिये भयदायक तथा देवताओंके लिये हर्षवर्धक था॥ ४९॥

श्रुत्वा शङ्खस्वनं चोग्रं रक्तबीजोऽतिवेगवान्।
गत्वा समीपे चामुण्डां बभाषे वचनं मृदु॥ ५०

रक्तबीज उवाच

बाले किं मां भीषयसि मत्वा त्वं कातरं किल।
शङ्खनादेन तन्वङ्गि वेत्सि किं धूम्रलोचनम्॥ ५१

रक्तबीजोऽस्मि नाम्नाहं त्वत्सकाशमिहागतः।
युद्धेच्छा चेत्पिकालापे सज्जा भव भयं न मे॥ ५२

पश्याद्य मे बलं कान्ते दृष्टा ये कातरास्त्वया।
नाहं पङ्क्तिगतस्तेषां कुरु युद्धं यथेच्छसि॥ ५३

वृद्धाश्च सेविताः पूर्वं नीतिशास्त्रं श्रुतं त्वया।
पठितं चार्थविज्ञानं विद्वद्गोष्ठी कृताथ वा॥ ५४

साहित्यतन्त्रविज्ञानं चेदस्ति तव सुन्दरि।
शृणु मे वचनं पथ्यं तथ्यं प्रमितिबृंहितम्॥ ५५

रसानाञ्च नवानां वै द्वावेव मुख्यतां गतौ।
शृङ्गारकः शान्तिरसो विद्वज्जनसभासु च॥ ५६

तयोः शृङ्गार एवादौ नृपभावे प्रतिष्ठितः।
विष्णुर्लक्ष्म्या सहास्ते वै सावित्र्या चतुराननः॥ ५७

शच्येन्द्रः शैलसुतया शङ्करः सह शेरते।
वल्ल्या वृक्षो मृगो मृग्या कपोत्या च कपोतकः॥ ५८

एवं सर्वे प्राणभृतः संयोगरसिका भृशम्।
अप्राप्तभोगविभवा ये चान्ये कातरा नराः॥ ५९

भवन्ति यतयस्ते वै मूढा दैवेन वञ्चिताः।
असंसाररसज्ञास्ते वञ्चिता वञ्चनापरैः॥ ६०

मधुरालापनिपुणै रताः शान्तिरसे हि ते।
क्व ज्ञानं क्व च वैराग्यं वर्तमाने मनोभवे॥ ६१

उस भीषण शंखध्वनिको सुनकर वह रक्तबीज बड़े वेगसे देवी चामुण्डाके पास पहुँचकर मधुर वाणीमें उनसे कहने लगा॥ ५०॥

रक्तबीज बोला—हे बाले! क्या तुम कायर समझकर अपने शंखनादसे मुझको डरा रही हो? हे कोमलांगि! क्या तुमने मुझे धूम्रलोचन समझ रखा है?॥ ५१॥

मेरा नाम रक्तबीज है। मैं यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ। हे पिकभाषिणि! यदि तुम्हारी युद्ध करनेकी इच्छा हो तो तैयार हो जाओ; मुझे तुमसे भय नहीं है॥ ५२॥

हे कान्ते! अब तुम मेरा पराक्रम देखो। अभीतक तुमने जिन-जिन कायर दैत्योंको देखा है, उनकी श्रेणीका मैं नहीं हूँ। तुम जिस तरहसे चाहो, वैसे लड़ लो॥ ५३॥

हे सुन्दरि! यदि तुमने वृद्धजनोंकी सेवा की हो, नीतिशास्त्रका अध्ययन किया हो, अर्थशास्त्र पढ़ा हो, विद्वानोंकी गोष्ठीमें भाग लिया हो और यदि तुम्हें साहित्य तथा तन्त्रविज्ञानका ज्ञान हो, तो मेरी हितकर, यथार्थ तथा प्रामाणिक बात सुन लो॥ ५४-५५॥

विद्वानोंकी सभाओंमें नौ रसोंके अन्तर्गत शृंगाररस तथा शान्तिरस—ये दो रस ही मुख्य माने गये हैं। उन दोनोंमें भी शृंगाररस रसोंके राजाके रूपमें प्रतिष्ठित है। [इसीके प्रभावसे] विष्णु लक्ष्मीके साथ, ब्रह्मा सावित्रीके साथ, इन्द्र शचीके साथ और भगवान् शिव पार्वतीके साथ निवास करते हैं; उसी प्रकार वृक्ष लताके साथ, मृग मृगीके साथ और कपोत कपोतीके साथ आनन्दपूर्वक रहते हैं॥ ५६—५८॥

इस प्रकार जगत्के समस्त जीवधारी संयोगजनित सुखका अत्यधिक उपभोग करते हैं। जो लोग भोग तथा वैभवका सुख नहीं प्राप्त कर सके हैं और अन्य जो कातर मनुष्य हैं, वे निश्चय ही मूर्ख हैं और दैवसे वंचित होकर यति हो जाते हैं। संसारके रसका ज्ञान न रखनेवाले वे लोग मीठी-मीठी बात बोलनेमें निपुण धूर्तों तथा वंचकोंद्वारा ठग लिये जाते हैं और सदा शान्तरसमें निमग्न रहते हैं; किंतु काम, लोभ, भयंकर क्रोध और बुद्धिनाशक मोहके उत्पन्न होते ही

लोभे क्रोधे च दुर्धर्षे मोहे मतिविनाशके।
तस्मात्त्वमपि कल्याणि कुरु कान्तं मनोहरम्॥ ६२
शुम्भं सुराणां जेतारं निशुम्भं वा महाबलम्।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा रक्तबीजोऽसौ विरराम पुरःस्थितः।
श्रुत्वा जहास चामुण्डा कालिका चाम्बिका तथा॥ ६३

कहाँ ज्ञान रह जाता है और कहाँ वैराग्य! अतएव हे कल्याणि! तुम भी देवताओंपर विजय प्राप्त कर लेनेवाले मनोहर तथा महाबली शुम्भ अथवा निशुम्भको पति बना लो॥ ५९—६२½ ॥

व्यासजी बोले—इतना कहकर वह रक्तबीज देवीके सामने चुपचाप खड़ा हो गया। उसकी बातें सुनकर चामुण्डा, कालिका और अम्बिका हँसने लगीं॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे रक्तबीजद्वारा देवीसमीपे शुम्भनिशुम्भसंवादवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

देवीके साथ रक्तबीजका युद्ध, विभिन्न शक्तियोंके साथ भगवान् शिवका रणस्थलमें आना तथा भगवतीका उन्हें दूत बनाकर शुम्भके पास भेजना, भगवान् शिवके सन्देशसे दानवोंका क्रुद्ध होकर युद्धके लिये आना

व्यास उवाच

कृत्वा हास्यं ततो देवी तमुवाच विशांपते।
मेघगम्भीरया वाचा युक्तियुक्तमिदं वचः॥ १

पूर्वमेव मया प्रोक्तं मन्दात्मन् किं विकत्थसे।
दूतस्याग्रे यथायोग्यं वचनं हितसंयुतम्॥ २

सदृशो मम रूपेण बलेन विभवेन च।
त्रिलोक्यां यदि कोऽपि स्यात्तं पतिं प्रवृणोम्यहम्॥ ३

ब्रूहि शुम्भं निशुम्भञ्च प्रतिज्ञा मे पुरा कृता।
तस्माद्युध्यस्व जित्वा मां विवाहं विधिवत्कुरु॥ ४

त्वं वै तदाज्ञया प्राप्तस्तस्य कार्यार्थसिद्धये।
संग्रामं कुरु पातालं गच्छ वा पतिना सह॥ ५

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः स दैत्योऽमर्षपूरितः।
मुमोच तरसा बाणान्सिंहस्योपरि दारुणान्॥ ६

अम्बिका ताञ्छरान्वीक्ष्य गगने पन्नगोपमान्।
चिच्छेद सायकैस्तीक्ष्णैर्लघुहस्ततया क्षणात्॥ ७

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे देवी हँसकर मेघके समान गम्भीर वाणीमें उस रक्तबीजसे यह युक्तिसंगत वचन बोलीं—हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों व्यर्थ प्रलाप कर रहे हो? मैं तो पहले ही दूतके सामने उचित और हितकर बात कह चुकी हूँ कि यदि तीनों लोकोंमें कोई भी पुरुष रूप, बल और वैभवमें मेरे समान हो तो मैं पतिरूपमें उसका वरण कर लूँगी। अब तुम शुम्भ-निशुम्भसे कह दो कि मैं पूर्वकालमें ऐसी प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, अतः मेरे साथ युद्ध करो और रणमें मुझे जीतकर [मेरे साथ] विधिवत् विवाह कर लो॥ १—४॥

तुम भी शुम्भकी आज्ञासे उसका कार्य सिद्ध करनेके लिये यहाँ आये हो। अतएव यदि चाहो तो मेरे साथ युद्ध करो अथवा अपने स्वामीके साथ पाताललोक चले जाओ॥ ५॥

व्यासजी बोले—देवीकी बात सुनकर वह दैत्य क्रोधमें भर उठा और बड़े वेगसे देवीके सिंहपर भीषण बाण छोड़ने लगा॥ ६॥

सर्पसदृश उन बाणोंको देखकर अम्बिकाने दक्षतापूर्वक बड़ी फुर्तीके साथ अपने तीखे बाणोंसे उन्हें आकाशमें ही क्षणभरमें काट डाला॥ ७॥

अन्यैर्जघान विशिखै रक्तबीजं महासुरम्।
अम्बिका चापनिर्मुक्तैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ ८

देवीबाणहतः पापो मूर्च्छामाप रथोपरि।
पतिते रक्तबीजे तु हाहाकारो महानभूत्॥ ९

सैनिकाश्चुक्रुशुः सर्वे हताः स्म इति चाब्रुवन्।
ततो बुम्बारवं श्रुत्वा शुम्भः परमदारुणम्॥ १०

उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह।

शुम्भ उवाच

निर्यान्तु दानवाः सर्वे काम्बोजाः स्वबलैर्वृताः॥ ११

अन्येऽप्यतिबलाः शूराः कालकेया विशेषतः।

व्यास उवाच

इत्याज्ञप्तं बलं सर्वं शुम्भेन च चतुर्विधम्॥ १२

निर्जगाम मदाविष्टं देवीसमरमण्डले।
तमागतं समालोक्य चण्डिका दानवं बलम्॥ १३

घण्टानादं चकाराशु भीषणं भयदं मुहुः।
ज्यास्वनं शङ्खनादञ्च चकार जगदम्बिका॥ १४

तेन नादेन सा जाता काली विस्तारितानना।
श्रुत्वा तन्निनदं घोरं सिंहो देव्याश्च वाहनम्॥ १५

जगर्ज सोऽपि बलवाञ्जनयन्भयमद्भुतम्।
तन्निनादमुपश्रुत्य दानवाः क्रोधमूर्च्छिताः॥ १६

सर्वे चिक्षिपुरस्त्राणि देवीं प्रति महाबलाः।
तस्मिन्नेवायते युद्धे दारुणे लोमहर्षणे॥ १७

ब्रह्मादीनाञ्च देवानां शक्तयश्चण्डिकां ययुः।
यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम्॥ १८
तादृग्रूपास्तदा देव्यः प्रययुः समराङ्गणे।

इसके बाद अम्बिकाने कानतक खींचकर धनुषसे छोड़े गये तथा पत्थरपर घिसकर तीक्ष्ण बनाये गये अन्य बाणोंसे महान् असुर रक्तबीजपर प्रहार किया॥ ८॥

भगवतीके बाणोंसे आहत होकर पापी रक्तबीज रथपर ही मूर्च्छित हो गया। रक्तबीजके गिर जानेपर बड़ा हाहाकार मच गया। उसके सभी सैनिक चीखने-चिल्लाने लगे और 'हाय! हम मारे गये'— ऐसा कहने लगे॥ ९ १/२ ॥

तब अपने सैनिकोंका अत्यन्त भीषण क्रन्दन सुनकर शुम्भने सभी दैत्ययोद्धाओंको शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित होनेका आदेश दिया॥ १० १/२ ॥

शुम्भ बोला—कम्बोजदेशके सभी दानव तथा उनके अतिरिक्त अन्य महाबली वीर विशेष करके कालकेयसंज्ञक पराक्रमी योद्धा भी अपनी-अपनी सेनाके साथ निकल पड़ें॥ ११ १/२ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शुम्भके आदेश देनेपर उसकी सारी चतुरंगिणी सेना मदमत्त होकर देवीके संग्रामस्थलके लिये निकल पड़ी। समरभूमिमें आयी हुई उस दानवी सेनाको देखकर भगवती चण्डिका बार-बार भीषण तथा भयदायक घंटानाद करने लगीं। जगदम्बाने धनुषका टंकार तथा शंखनाद किया। उस नादके होते ही भगवती काली भी अपना मुख फैलाकर घोर ध्वनि करने लगीं॥ १२—१४ १/२ ॥

उस भयंकर शब्दको सुनकर भगवतीका वाहन बलशाली सिंह भी अद्भुत भय उत्पन्न करता हुआ बड़े जोरका गर्जन करने लगा। वह निनाद सुनकर सभी दैत्य क्रोधके मारे बौखला उठे और वे महाबली दैत्य देवीपर अस्त्र छोड़ने लगे॥ १५-१६ १/२ ॥

उस भयानक तथा रोमांचकारी महासंग्राममें ब्रह्मा आदि देवताओंकी विभिन्न शक्तियाँ भी चण्डिकाके पास पहुँच गयीं। जिस देवताका जैसा रूप, भूषण तथा वाहन था; ठीक उसी प्रकारके रूप, भूषण तथा वाहनसे युक्त होकर सभी देवियाँ रणक्षेत्रमें पहुँची थीं॥ १७-१८ १/२ ॥

ब्रह्माणी वरटारूढा साक्षसूत्रकमण्डलुः॥ १९

आगता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणीति प्रतिश्रुता।
वैष्णवी गरुडारूढा शङ्खचक्रगदाधरा॥ २०

पद्महस्ता समायाता पीताम्बरविभूषिता।
शाङ्करी तु वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी॥ २१

अर्धचन्द्रधरा देवी तथाहिवलया शिवा।
कौमारी शिखिसंरूढा शक्तिहस्ता वरानना॥ २२

युद्धकामा समायाता कार्तिकेयस्वरूपिणी।
इन्द्राणी सुष्ठुवदना सुश्वेतगजवाहना॥ २३

वज्रहस्तातिरोषाढ्या संग्रामाभिमुखी ययौ।
वाराही शूकराकारा प्रौढप्रेतासना मता॥ २४

नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
याम्या च महिषारूढा दण्डहस्ता भयप्रदा॥ २५

समायाताथ संग्रामे यमरूपा शुचिस्मिता।
तथैव वारुणी शक्तिः कौबेरी च मदोत्कटा॥ २६

एवंविधास्तथाकारा ययुः स्वस्वबलैर्वृताः।
आगतास्ताः समालोक्य देवी मुदमवाप च॥ २७

स्वस्था मुमुदिरे देवा दैत्याश्च भयमाययुः।
ताभिः परिवृतस्तत्र शङ्करो लोकशङ्करः॥ २८

समागम्य च संग्रामे चण्डिकामित्युवाच ह।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं देवानां कार्यसिद्धये॥ २९

निशुम्भं चैव शुम्भं च ये चान्ये दानवाः स्थिताः।
हत्वा दैत्यबलं सर्वं कृत्वा च निर्भयं जगत्॥ ३०

ब्रह्माजीकी शक्ति, जो ब्रह्माणी नामसे प्रख्यात हैं, हाथमें अक्षसूत्र तथा कमण्डलु धारण करके हंसपर आरूढ़ हो वहाँ आयीं। भगवान् विष्णुकी शक्ति वैष्णवी गरुडपर सवार होकर रणभूमिमें आयीं। वे पीताम्बरसे विभूषित थीं तथा उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा था। शंकरकी शक्ति भगवती शिवा बैलपर सवार होकर हाथमें उत्तम त्रिशूल लिये मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण किये तथा सर्पोंके कंगन पहने वहाँ उपस्थित हुईं॥ १९—२१½ ॥

भगवान् कार्तिकेयके समान ही रूप धारण करके सुन्दर मुखवाली भगवती कौमारी युद्धकी इच्छासे हाथमें शक्ति धारण करके मयूरपर आरूढ़ होकर आयीं। सुन्दर मुखवाली इन्द्राणी अतिशय उज्ज्वल हाथीपर सवार होकर हाथमें वज्र लिये उग्र क्रोधसे आविष्ट हो समरभूमिमें पहुँचीं। इसी प्रकार सूकरका रूप धारण करके एक विशाल प्रेतपर सवार होकर भगवती वाराही, नृसिंहके समान रूप धारण करके भगवती नारसिंही और यमराजके ही समान रूपवाली भयदायिनी शक्ति भगवती याम्या हाथमें दण्ड धारण किये तथा महिषपर आरूढ़ होकर मधुर-मधुर मुसकराती हुई संग्राममें आयीं। उसी प्रकार वरुणकी शक्ति वारुणी तथा कुबेरकी मदोन्मत्त शक्ति कौबेरी भी समरभूमिमें पहुँच गयीं। इसी तरह अन्य देवताओंकी शक्तियाँ भी उन्हीं देवोंका रूप धारणकर अपनी-अपनी सेनाओंके साथ रणभूमिमें उपस्थित हुईं। उन शक्तियोंको वहाँ उपस्थित देखकर भगवती अम्बिका बहुत हर्षित हुईं। इससे देवता निश्चिन्त तथा प्रसन्न हो गये और दैत्य भयभीत हो उठे॥ २२—२७½ ॥

लोककल्याणकारी शिवजी भी उन शक्तियोंके साथ वहाँ संग्राममें भगवती चण्डिकाके पास आकर उनसे कहने लगे—देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये आप शुम्भ-निशुम्भ तथा अन्य जो भी दानव उपस्थित हैं, उन सबका वध कर दीजिये। साथ ही सारी असुर-सेनाका संहार करके और इस प्रकार संसारको भयमुक्त करके ये समस्त शक्तियाँ अपने-अपने

स्वानि स्वानि च धिष्ण्यानि समागच्छन्तु शक्तयः।
देवा यज्ञभुजः सन्तु ब्राह्मणा यजने रताः॥ ३१

प्राणिनः सन्तु सन्तुष्टाः सर्वे स्थावरजङ्गमाः।
शमं यान्तु तथोत्पाता ईतयश्च तथा पुनः॥ ३२

घनाः काले प्रवर्षन्तु कृषिर्बहुफला तथा।

व्यास उवाच

एवं ब्रुवति देवेशे शङ्करे लोकशङ्करे॥ ३३

चण्डिकायाः शरीरात्तु निर्गता शक्तिरद्भुता।
भीषणातिप्रचण्डा च शिवाशतनिनादिनी॥ ३४

घोररूपाथ पञ्चास्यमित्युवाच स्मितानना।
देवदेव व्रजाशु त्वं दैत्यानामधिपं प्रति॥ ३५

दूतत्वं कुरु कामारे ब्रूहि शुम्भं स्मराकुलम्।
निशुम्भञ्च मदोत्सिक्तं वचनान्मम शङ्कर॥ ३६

मुक्त्वा त्रिविष्टपं यात यूयं पातालमाशु वै।
देवाः स्वर्गे सुखं यान्तु तुराषाट् स्वासनं शुभम्॥ ३७

प्राप्नोतु त्रिदिवं स्थानं यज्ञभागांश्च देवताः।
जीवितेच्छा च युष्माकं यदि स्यात्तु महत्तरा॥ ३८

तर्हि गच्छत पातालं तरसा यत्र दानवाः।
अथवा बलमास्थाय युद्धेच्छा मरणाय चेत्॥ ३९

तदागच्छन्तु तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः शूलपाणिस्त्वरान्वितः॥ ४०

गत्वाह दैत्यराजानं शुम्भं सदसि संस्थितम्।

शिव उवाच

राजन् दूतोऽहमम्बायास्त्रिपुरान्तकरो हरः॥ ४१

त्वत्सकाशमिहायातो हितं कर्तुं तवाखिलम्।
त्यक्त्वा स्वर्गं तथा भूमिं यूयं गच्छत सत्वरम्॥ ४२

स्थानोंको चली जायँ। [आप यह कार्य सम्पन्न करें जिससे] देवता यज्ञभाग पाने लगें, ब्राह्मण [निर्भय होकर] यज्ञ आदि करनेमें तत्पर हो जायँ, सभी स्थावर-जंगम प्राणी सन्तुष्ट हो जायँ, सब प्रकारके उपद्रव और अकाल आदि आपदाएँ समाप्त हो जायँ, मेघ समयपर वृष्टि करें और कृषि लोगोंके लिये अधिक फलदायिनी हो॥ २८—३२½ ॥

व्यासजी बोले—लोकका कल्याण करनेवाले देवेश्वर शिवके ऐसा कहनेपर भगवती चण्डिकाके शरीरसे एक अद्भुत शक्ति प्रकट हुई। वह शक्ति अत्यन्त भयंकर तथा प्रचण्ड थी, वह सैकड़ों सियारिनोंके समवेत स्वरके समान ध्वनि कर रही थी और उसका रूप बहुत भयानक था। मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली उस शक्तिने पंचमुख शिवजीसे कहा—हे देवदेव! आप दैत्यराज शुम्भके पास शीघ्र जाइये। हे कामरिपु! इस समय आप मेरे दूतका काम कीजिये। हे शंकर! कामपीड़ित शुम्भ तथा मदोन्मत्त निशुम्भसे मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'तुम सब तत्काल स्वर्ग त्यागकर पाताललोक चले जाओ, जिससे देवगण सुखपूर्वक स्वर्गमें प्रविष्ट हो सकें और इन्द्रको स्वर्गलोक तथा अपना उत्तम इन्द्रासन पुनः प्राप्त हो जाय; साथ ही सभी देवताओंको उनके यज्ञभाग पुनः मिलने लगें। यदि जीवित रहनेकी तुमलोगोंकी बलवती इच्छा हो तो तुमलोग बहुत शीघ्र पाताललोक चले जाओ, जहाँ दानवलोग रहते हैं। अथवा अपने बलका आश्रय लेकर यदि तुम सब युद्धकी इच्छा रखते हो, तो मरनेके लिये आ जाओ, जिससे मेरी सियारिनें तुमलोगोंके कच्चे मांससे तृप्त हो जायँ॥ ३३—३९½ ॥

व्यासजी बोले—चण्डिकाका यह वचन सुनकर शिव अपनी सभामें बैठे हुए दैत्यराज शुम्भके पास शीघ्र जाकर उससे कहने लगे॥ ४०½ ॥

शिवजी बोले—हे राजन्! मैं त्रिपुरासुरका संहार करनेवाला महादेव हूँ। अम्बिकाका दूत बनकर मैं इस समय तुम्हारा सम्पूर्ण हित करनेके लिये यहाँ तुम्हारे पास आया हूँ। [देवीने कहलाया है कि] तुमलोग स्वर्ग तथा भूलोक त्यागकर शीघ्र पाताललोक

पातालं यत्र प्रह्लादो बलिश्च बलिनां वरः।
अथवा मरणेच्छा चेत्तर्ह्यागच्छत सत्वरम्॥ ४३

संग्रामे वो हनिष्यामि सर्वानेवाहमाशु वै।
इत्युवाच महाराज्ञी युष्मत्कल्याणहेतवे॥ ४४

व्यास उवाच

इति दैत्यवरान्देवीवाक्यं पीयूषसन्निभम्।
हितकृच्छ्रावयित्वा स प्रत्यायातश्च शूलभृत्॥ ४५

ययासौ प्रेरितः शम्भुर्दूतत्वे दानवान्प्रति।
शिवदूतीति विख्याता जाता त्रिभुवनेऽखिले॥ ४६

तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शङ्करोक्तं तु दुष्करम्।
युद्धाय निर्ययुः शीघ्रं दंशिताः शस्त्रपाणयः॥ ४७

तरसा रणमागत्य चण्डिकां प्रति दानवाः।
निर्जघ्नुश्च शरैस्तीक्ष्णैः कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः॥ ४८

कालिका शूलपातैस्तान् गदाशक्तिविदारितान्।
कुर्वन्ती व्यचरत्तत्र भक्षयन्ती च दानवान्॥ ४९

कमण्डलुजलाक्षेपगतप्राणान् महाबलान्।
ब्रह्माणी चाकरोत्तत्र दानवान्समराङ्गणे॥ ५०

माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलेनातिरंहसा।
जघान दानवान्संख्ये पातयामास भूतले॥ ५१

वैष्णवी चक्रपातेन गदापातेन दानवान्।
गतप्राणांश्चकाराशु चोत्तमाङ्गविवर्जितान्॥ ५२

ऐन्द्री वज्रप्रहारेण पातयामास भूतले।
ऐरावतकराघातपीडितान्दैत्यपुङ्गवान्॥ ५३

वाराही तुण्डघातेन दंष्ट्राग्रपातनेन च।
जघान क्रोधसंयुक्ता शतशो दैत्यदानवान्॥ ५४

नारसिंही नखैस्तीव्रैर्दारितान्दैत्यपुङ्गवान्।
भक्षयन्ती चचाराजौ ननाद च मुहुर्मुहुः॥ ५५

चले जाओ, जहाँ प्रह्लाद तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ राजा बलि रहते हैं। अथवा यदि मरनेकी ही इच्छा हो तो तुरंत सामने आ जाओ; मैं तुम सबको संग्राममें शीघ्र ही मार डालूँगी। तुमलोगोंके कल्याणके लिये महारानी अम्बिकाने ऐसा कहा है॥ ४१—४४॥

व्यासजी बोले—भगवतीका यह अमृत-तुल्य कल्याणकारी सन्देश उन प्रधान दैत्योंको सुनाकर शूलधारी भगवान् शंकर लौट आये॥ ४५॥

भगवती अम्बिकाने शिवजीको दूत बनाकर दानवोंके पास भेजा था, अतः वे सम्पूर्ण त्रिलोकीमें 'शिवदूती' इस नामसे विख्यात हुईं॥ ४६॥

शंकरजीके मुखसे कहे गये भगवतीके इस दुष्कर सन्देशको सुनते ही वे दैत्य भी कवच धारण करके तथा हाथोंमें शस्त्र लेकर शीघ्र ही युद्धके लिये निकल पड़े॥ ४७॥

वे दानव बड़े वेगसे रणभूमिमें चण्डिकाके समक्ष आकर कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीखे बाणोंसे प्रहार करने लगे॥ ४८॥

भगवती कालिका त्रिशूल, गदा और शक्तिसे दानवोंको विदीर्ण करती हुई और उनका भक्षण करती हुई युद्धमें विचरने लगीं॥ ४९॥

भगवती ब्रह्माणी युद्धभूमिमें अपने कमण्डलुके जलके प्रक्षेपमात्रसे उन महाबली दानवोंको प्राणशून्य कर देती थीं॥ ५०॥

वृषभपर विराजमान भगवती माहेश्वरी अपने त्रिशूलसे रणमें दानवोंपर बड़े वेगसे प्रहार करती थीं और उन्हें मारकर धराशायी कर देती थीं॥ ५१॥

भगवती वैष्णवी गदा तथा चक्रके प्रहारसे दानवोंको निष्प्राण तथा सिरविहीन कर डालती थीं॥ ५२॥

इन्द्रकी शक्ति देवी ऐन्द्री ऐरावत हाथीकी सूँड़की चोटसे पीड़ित बड़े-बड़े दैत्योंको अपने वज्रके प्रहारसे भूतलपर गिरा देती थीं॥ ५३॥

देवी वाराही कुपित होकर अपने तुण्ड तथा भयंकर दाढ़ोंके प्रहारसे सैकड़ों दैत्यों और दानवोंको मार डालती थीं॥ ५४॥

देवी नारसिंही अपने तीक्ष्ण नखोंसे बड़े-बड़े दैत्योंको फाड़-फाड़कर खाती हुई रणभूमिमें विचर रही थीं तथा बार-बार गर्जना कर रही थीं॥ ५५॥

शिवदूती अट्टहासैः पातयामास भूतले।
तांश्चखादाथ चामुण्डा कालिका च त्वरान्विता॥ ५६

शिखिसंस्था च कौमारी कर्णाकृष्टैः शिलाशितैः।
निजघान रणे शत्रून्देवानां च हिताय वै॥ ५७

वारुणी पाशसम्बद्धान्दैत्यान्समरमस्तके।
पातयामास तत्पृष्ठे मूर्च्छितान्गतचेतनान्॥ ५८

एवं मातृगणेनाजावतिवीर्यपराक्रमम्।
मर्दितं दानवं सैन्यं पलायनपरं ह्यभूत्॥ ५९

बुम्बारवस्तु सुमहानभूत्तत्र बलार्णवे।
पुष्पवृष्टिं तदा देवाश्चक्रुर्देव्या गणोपरि॥ ६०

तच्छ्रुत्वा निनदं घोरं जयशब्दं च दानवाः।
रक्तबीजश्चुकोपाशु दृष्ट्वा दैत्यान्पलायितान्॥ ६१

गर्जमानांस्तथा देवान्वीक्ष्य दैत्यो महाबलः।
रक्तबीजस्तु तेजस्वी रणमभ्याययौ तदा॥ ६२

सायुधो रथसंविष्टः कुर्वञ्ज्याशब्दमद्भुतम्।
आजगाम तदा देवीं क्रोधरक्तेक्षणोद्यतः॥ ६३

शिवदूती अपने अट्टहाससे ही दैत्योंको धराशायी कर देती थीं और चामुण्डा तथा कालिका बड़ी शीघ्रतासे उन्हें खाने लगती थीं॥ ५६॥

मयूरपर विराजमान भगवती कौमारी देवताओंके कल्याणके लिये कानोंतक खींचे गये तथा पत्थरपर सान चढ़े तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंका संहार करने लगीं॥ ५७॥

भगवती वारुणी समरांगणमें दैत्योंको अपने पाशमें बाँधकर उन्हें अचेत करके एकके ऊपर एकके क्रमसे गिरा देती थीं और वे निष्प्राण हो जाते थे॥ ५८॥

इस प्रकार उन मातृशक्तियोंके प्रयाससे दानवोंकी वह ओजस्विनी तथा पराक्रमी सेना युद्धभूमिमें तहस-नहस होकर भाग खड़ी हुई॥ ५९॥

उस सेनारूपी समुद्रमें बड़े जोरसे रोने-चिल्लानेकी ध्वनि होने लगी। देवीके गणोंके ऊपर देवता पुष्पोंकी वर्षा करने लगे॥ ६०॥

दानवोंकी भयंकर चीत्कार तथा देवताओंकी जयध्वनि सुनकर रक्तबीज बहुत कुपित हुआ। उस समय दैत्योंको पलायित देखकर तथा देवताओंको गरजते हुए देखकर वह महाबली तथा तेजस्वी दैत्य रक्तबीज युद्धभूमिमें स्वयं आ डटा। वह आयुधोंसे सुसज्जित होकर रथपर सवार था और प्रत्यंचाकी अद्भुत टंकार करता हुआ क्रोधके मारे आँखें लाल किये युद्धके लिये देवीके सम्मुख आ गया॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
रक्तबीजेन देव्या युद्धवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

* * *

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

रक्तबीजका वध और निशुम्भका युद्धक्षेत्रके लिये प्रस्थान

व्यास उवाच

वरदानमिदं तस्य दानवस्य शिवार्पितम्।
अत्यद्भुततरं राजञ्छृणु तत्प्रब्रवीम्यहम्॥ १
तस्य देहाद्रक्तबिन्दुर्यदा पतति भूतले।
समुत्पतन्ति दैतेयास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय शंकरजीने उस दानव रक्तबीजको यह बड़ा ही अद्भुत वर दे डाला था, मैं उसे बता रहा हूँ; आप सुनिये॥ १॥

उस दानवके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती थी, तब उसीके रूप तथा पराक्रमवाले दानव तुरंत उत्पन्न हो जाते थे। भगवान् शंकरने

असंख्याता महावीर्या दानवा रक्तसम्भवाः।
प्रभवन्त्विति रुद्रेण दत्तोऽस्त्यत्यद्भुतो वरः॥ ३

स तेन वरदानेन दर्पितः क्रोधसंयुतः।
अभ्यगात्तरसा संख्ये हन्तुं देवीं सकालिकाम्॥ ४

स दृष्ट्वा वैष्णवीं शक्तिं गरुडोपरिसंस्थिताम्।
शक्त्या जघान दैत्येन्द्रस्तां वै कमललोचनाम्॥ ५

गदया वारयामास शक्तिः सा शक्तिसंयुता।
अताडयच्च चक्रेण रक्तबीजं महासुरम्॥ ६

रथाङ्गहतदेहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्।
वज्राहतगिरेः शृङ्गान्निर्झरा इव गैरिकाः॥ ७

यत्र यत्र यदा भूमौ पतन्ति रक्तबिन्दवः।
समुत्तस्थुस्तदाकाराः पुरुषाश्च सहस्रशः॥ ८

ऐन्द्री तमसुरं घोरं वज्रेणाभिजघान च।
रक्तबीजं क्रुधाविष्टा निःससार च शोणितम्॥ ९

ततस्तत्क्षतजाज्जाता रक्तबीजा ह्यनेकशः।
तद्वीर्याश्च तदाकाराः सायुधा युद्धदुर्मदाः॥ १०

ब्रह्माणी ब्रह्मदण्डेन कुपिता ह्यहनद् भृशम्।
माहेश्वरी त्रिशूलेन दारयामास दानवम्॥ ११

नारसिंही नखाघातैस्तं विव्याध महासुरम्।
अहनत्तुण्डघातेन क्रुद्धा तं राक्षसाधमम्॥ १२

कौमारी च तथा शक्त्या वक्षस्येनमताडयत्।
सोऽपि क्रुद्धः शरासारैर्बिभेद निशितैश्च ताः॥ १३

उसे यह बड़ा ही अद्भुत वर दे दिया था कि तुम्हारे रक्तसे असंख्य महान् पराक्रमी दानव उत्पन्न हो जायँगे॥ २-३॥

उस वरदानके कारण अभिमानमें भरा हुआ वह दैत्य अत्यन्त कुपित होकर कालिकासमेत अम्बिकाको मारनेके लिये बड़े वेगसे रणभूमिमें पहुँचा॥ ४॥

गरुडपर विराजमान वैष्णवी शक्तिको देखकर उस दैत्येन्द्रने उन कमलनयनी देवीपर शक्ति (बर्छी)-से प्रहार कर दिया॥ ५॥

तब उस शक्तिशालिनी वैष्णवी शक्तिने अपनी गदासे उस प्रहारको विफल कर दिया और अपने चक्रसे महान् असुर रक्तबीजपर आघात किया॥ ६॥

उस चक्रके लगनेपर रक्तबीजके घायल शरीरसे रक्तकी विशाल धारा बह चली मानो वज्रप्रहारसे घायल पर्वतके शिखरसे गेरूकी धारा बह चली हो॥ ७॥

पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ रक्तकी बूँदें गिरती थीं, वहाँ-वहाँ उसीके समान आकारवाले हजारों पुरुष उत्पन्न हो जाते थे॥ ८॥

तदनन्तर इन्द्रकी शक्ति ऐन्द्रीने क्रोधमें भरकर उस महान् असुर रक्तबीजपर वज्रसे आघात किया, जिससे उसके शरीरसे और रक्त निकलने लगा॥ ९॥

तब उसके रक्तसे अनेक रक्तबीज उत्पन्न हो गये, जो उसीके समान पराक्रमी तथा आकारवाले थे। वे सब-के-सब शस्त्रसम्पन्न तथा युद्धोन्मत्त थे॥ १०॥

ब्रह्माणीने कुपित होकर उसे ब्रह्मदण्डसे बहुत मारा और देवी माहेश्वरीने अपने त्रिशूलसे उस दानवको विदीर्ण कर दिया। देवी नारसिंहीने अपने नखोंके प्रहारोंसे उस महान् असुरको बींध डाला, देवी वाराहीने क्रुद्ध होकर उस अधम राक्षसको अपने तुण्डप्रहारसे चोट पहुँचायी और भगवती कौमारीने अपनी शक्तिसे उसके वक्षपर प्रहार किया॥ ११-१२½॥

तब वह दानव रक्तबीज भी क्रुद्ध होकर अलग-अलग उन सभी देवियोंको तीखे बाणोंकी घोर वर्षा तथा गदा और शक्तिके प्रहारोंसे चोट पहुँचाने लगा।

गदाशक्तिप्रहारैस्तु मातृः सर्वाः पृथक्पृथक्।
शक्तयस्तं शराघातैर्विव्यधुस्तत्प्रकोपिताः॥ १४

तस्य शस्त्राणि चिच्छेद चण्डिका स्वशरैः शितैः।
जघानान्यैश्च विशिखैस्तं देवी कुपिता भृशम्॥ १५

तस्य देहाच्च सुस्राव रुधिरं बहुधा तु यत्।
तस्मात्तत्सदृशाः शूराः प्रादुरासन्सहस्रशः॥ १६

रक्तबीजैर्जगद्व्याप्तं रुधिरौघसमुद्भवैः।
सन्नद्धैः सायुधैः कामं कुर्वद्भिर्युद्धमद्भुतम्॥ १७

प्रहरन्तश्च तान्दृष्ट्वा रक्तबीजाननेकशः।
भयभीताः सुरास्त्रेसुर्विषण्णाः शोककर्षिताः॥ १८

कथमद्य क्षयं दैत्या गमिष्यन्ति सहस्रशः।
महाकाया महावीर्या दानवा रक्तसम्भवाः॥ १९

एकैव चण्डिकात्रास्ति तथा काली च मातरः।
एताभिर्दानवाः सर्वे जेतव्याः कष्टमेव तत्॥ २०

निशुम्भो वाथ शुम्भो वा सहसा बलसंवृतः।
आगमिष्यति संग्रामे ततोऽनर्थो महान्भवेत्॥ २१

व्यास उवाच

एवं देवा भयोद्विग्नाश्चिन्तामापुर्महत्तराम्।
यदा तदाम्बिका प्राह कालीं कमललोचनाम्॥ २२

चामुण्डे कुरु विस्तीर्णं वदनं त्वरिता भृशम्।
मच्छस्त्रपातसम्भूतं रुधिरं पिब सत्वरा॥ २३

भक्षयन्ती चर रणे दानवानद्य कामतः।
हनिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैर्गदासिमुसलैस्तथा॥ २४

तथा कुरु विशालाक्षि पानं तद्रुधिरस्य च।
बिन्दुमात्रं यथा भूम्यां न पतेदपि साम्प्रतम्॥ २५

भक्ष्यमाणास्तदा दैत्या न चोत्पत्स्यन्ति चापरे।
एवमेषां क्षयो नूनं भविष्यति न चान्यथा॥ २६

उसके आघातसे कुपित होकर सभी देवियोंने बाणोंके प्रहारसे उसको बींध डाला। भगवती चण्डिकाने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके शस्त्रोंको काट डाला और अत्यन्त कुपित होकर वे अन्य बाणोंसे उस दानवको मारने लगीं॥ १३—१५॥

अब उसके शरीरसे अत्यधिक रक्त निकलने लगा। उस रक्तसे उसी रक्तबीजके समान हजारों वीर उत्पन्न हो गये। इस प्रकार उस रुधिर-राशिसे उत्पन्न रक्तबीजोंसे सारा जगत् भर गया; वे सब कवच पहने हुए थे, आयुधोंसे सुसज्जित थे और अद्भुत युद्ध कर रहे थे॥ १६-१७॥

उन असंख्य रक्तबीजोंको प्रहार करते देखकर देवता भयभीत, आतंकित, विषादग्रस्त और शोकसंतप्त हो गये। [वे सोचने लगे] इस समय रक्तबीजके रक्तसे उत्पन्न ये हजारों विशालकाय और महापराक्रमी दानव किस प्रकार विनष्ट होंगे? यहाँ रणभूमिमें केवल भगवती चण्डिका हैं और उनके साथमें देवी काली तथा कुछ मातृकाएँ हैं; केवल इन्हीं देवियोंको मिलकर सभी दानवोंको जीतना है—यह तो महान् कष्ट है। इसी समय यदि अचानक शुम्भ अथवा निशुम्भ भी सेनाके साथ संग्राममें आ जायगा, तब तो बहुत बड़ा अनर्थ हो जायगा॥ १८—२१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार जब सभी देवता भयसे व्याकुल होकर अत्यधिक चिन्तित हो उठे, तब भगवती अम्बिकाने कमलसदृश नेत्रोंवाली कालीसे कहा—हे चामुण्डे! तुम शीघ्रतापूर्वक अपना मुख पूर्णरूपसे फैला लो और मेरे शस्त्राघातके द्वारा [रक्तबीजके शरीरसे] निकले रक्तको जल्दी-जल्दी पीती जाओ। तुम दानवोंका भक्षण करती हुई इच्छानुसार युद्धभूमिमें विचरण करो। मैं तीक्ष्ण बाणों, गदा, तलवार तथा मुसलोंसे इन दैत्योंको मार डालूँगी॥ २२—२४॥

हे विशाल नयनोंवाली! तुम इस प्रकारसे इस दैत्यके रुधिरका पान करो, जिससे कि अब एक भी बूँद रक्त भूमिपर न गिरने पाये; तब इस ढंगसे भक्षण किये जानेपर दूसरे दानव उत्पन्न नहीं हो सकेंगे। इस प्रकार इन दैत्योंका नाश अवश्य हो जायगा, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है॥ २५-२६॥

घातयिष्याम्यहं दैत्यं त्वं भक्षय च सत्वरा।
पिबन्ती क्षतजं सर्वं यतमानारिसंक्षये॥ २७

इत्थं दैत्यक्षयं कृत्वा दत्त्वा राज्यं सुरालयम्।
इन्द्राय सुस्थिरं सर्वं गमिष्यामो यथासुखम्॥ २८

व्यास उवाच

इत्युक्ताम्बिकया देवी चामुण्डा चण्डविक्रमा।
पपौ च क्षतजं सर्वं रक्तबीजशरीरजम्॥ २९

अम्बिका तं जघानाशु खड्गेन मुसलेन च।
चखाद देहशकलांश्चामुण्डा तान्कृशोदरी॥ ३०

सोऽपि क्रुद्धो गदाघातैश्चामुण्डां समघातयत्।
तथापि सा पपावाशु क्षतजं तमभक्षयत्॥ ३१

येऽन्ये रुधिरजाः क्रूरा रक्तबीजा महाबलाः।
तेऽपि निष्पातिताः सर्वे भक्षिता गतशोणिताः॥ ३२

कृत्रिमा भक्षिताः सर्वे यस्तु स्वाभाविकोऽसुरः।
सोऽपि प्रपातितो हत्वा खड्गेनातिविखण्डितः॥ ३३

रक्तबीजे हते रौद्रे ये चान्ये दानवा रणे।
पलायनं ततः कृत्वा गतास्ते भयकम्पिताः॥ ३४

हाहेति विब्रुवन्तस्ते शुम्भं प्रोचुः सविह्वलाः।
रुधिरारक्तदेहाश्च विगतास्त्रा विचेतसः॥ ३५

राजन्नम्बिकया रक्तबीजोऽसौ विनिपातितः।
चामुण्डा तस्य देहात्तु पपौ सर्वं च शोणितम्॥ ३६

ये चान्ये दानवाः शूरा वाहनेनातिरंहसा।
सिंहेन निहताः सर्वे काल्या च भक्षिताः परे॥ ३७

वयं त्वां कथितुं राजन्नागता युद्धचेष्टितम्।
चरितञ्च तथा देव्याः संग्रामे परमाद्भुतम्॥ ३८

जब मैं इस दैत्यको मारूँ, तब तुम शत्रुसंहाररूपी इस कार्यमें प्रयत्नशील होकर सारा रक्त पीती हुई शीघ्रतापूर्वक इसका भक्षण कर जाना। इस प्रकार दैत्यवध करके स्वर्गका सारा राज्य इन्द्रको देकर हम सब आनन्दपूर्वक यहाँसे चली जायँगी॥ २७-२८॥

व्यासजी बोले—भगवती अम्बिकाके ऐसा कहनेपर प्रचण्ड पराक्रमवाली देवी चामुण्डा रक्तबीजके शरीरसे निकले हुए समस्त रुधिरको पीने लगीं। जगदम्बा खड्ग तथा मुसलसे उस दैत्यको मारने लगीं और कृशोदरी चामुण्डा उसके शरीरके कटे हुए अंगोंका भक्षण करने लगीं॥ २९-३०॥

अब वह रक्तबीज भी कुपित होकर गदाके प्रहारोंसे चामुण्डाको घायल करने लगा, फिर भी वे शीघ्रतापूर्वक उसका रुधिर पीती रहीं और उसका भक्षण करती रहीं॥ ३१॥

उस दैत्यके रुधिरसे उत्पन्न हुए अन्य जो भी महाबली और क्रूर रक्तबीज थे, उन्हें भी चामुण्डाने मार डाला। वे देवी उनका भी रक्त पी गयीं और उन सबको खा गयीं॥ ३२॥

इस प्रकार भगवतीने जब सभी कृत्रिम रक्तबीजोंका भक्षण कर लिया, तब जो वास्तविक रक्तबीज था, उसे भी मारकर उन्होंने खड्गसे उसके अनेक टुकड़े करके भूमिपर गिरा दिया॥ ३३॥

तत्पश्चात् भयंकर रक्तबीजका वध हो जानेपर जो अन्य दानव रणभूमिमें थे, वे भयसे काँपते हुए भाग करके शुम्भके पास पहुँचे। उनका चित्त बहुत व्याकुल था, उनका शरीर रुधिरसे लथपथ था, वे शस्त्रविहीन हो गये थे और अचेत-से हो गये थे। वे हाय, हाय—ऐसा पुकारते हुए शुम्भसे कहने लगे—हे राजन्! अम्बिकाने उस रक्तबीजको मार डाला और चामुण्डा उसकी देहसे निकला सारा रुधिर पी गयी। जो अन्य दानववीर थे, उन सबको देवीके वाहन सिंहने बड़ी तेजीसे मार डाला और शेष दानवोंको भगवती काली खा गयीं॥ ३४—३७॥

हे राजन्! हमलोग आपको युद्धका वृत्तान्त तथा संग्राममें देवीके द्वारा प्रदर्शित किये गये उनके अत्यन्त अद्भुत चरित्रको बतानेके लिये आपके पास आये हुए हैं॥ ३८॥

अजेयेयं महाराज सर्वथा दैत्यदानवैः।
गन्धर्वासुरयक्षैश्च पन्नगोरगराक्षसैः॥ ३९

अन्यास्तत्रागता देव्य इन्द्राणीप्रमुखा भृशम्।
युध्यमाना महाराज वाहनैरायुधैर्युताः॥ ४०

ताभिः सर्वं हतं सैन्यं दानवानां वरायुधैः।
रक्तबीजोऽपि राजेन्द्र तरसा विनिपातितः॥ ४१

एकापि दुःसहा देवी किं पुनस्ताभिरन्विता।
सिंहोऽपि हन्ति संग्रामे राक्षसानमितप्रभः॥ ४२

अतो विचार्य सचिवैर्यद्युक्तं तद्विधीयताम्।
न वैरमनया युक्तं सन्धिरेव सुखप्रदः॥ ४३

आश्चर्यमेतदखिलं यन्नारी हन्ति राक्षसान्।
रक्तबीजोऽपि निहतः पीतं तस्यापि शोणितम्॥ ४४

अन्ये निपातिता दैत्याः संग्रामेऽम्बिकया नृप।
चामुण्डया च मांसं वै भक्षितं सकलं रणे॥ ४५

वरं पातालगमनं तस्याः सेवाथवा वरा।
न तु युद्धं महाराज कार्यमम्बिकया सह॥ ४६

न नारी प्राकृता ह्येषा देवकार्यार्थसाधिनी।
मायेयं प्रबला देवी क्षपयन्तीयमुत्थिता॥ ४७

व्यास उवाच

इति तेषां वचस्तथ्यं श्रुत्वा कालविमोहितः।
मुमूर्षुः प्रत्युवाचेदं शुम्भः प्रस्फुरिताधरः॥ ४८

शुम्भ उवाच

यूयं गच्छत पातालं शरणं वा भयातुराः।
हनिष्याम्यहमद्यैव तांश्च ताश्च समुद्यतः॥ ४९

हे महाराज! यह देवी दैत्य, दानव, गन्धर्व, असुर, यक्ष, पन्नग, उरग और राक्षस—इन सभीसे सर्वथा अजेय है॥ ३९॥

हे महाराज! इन्द्राणी आदि अन्य प्रमुख देवियाँ भी वहाँ आयी हुई हैं। वे अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर नानाविध आयुध धारण करके घोर युद्ध कर रही हैं। हे राजेन्द्र! उन देवियोंने अपने उत्तम अस्त्रोंसे दानवोंकी सारी सेनाका विध्वंस कर डाला और रक्तबीजको भी बड़ी शीघ्रतासे मार गिराया॥ ४०-४१॥

एकमात्र देवी अम्बिका ही हमलोगोंके लिये असह्य थी, और फिर जब वह उन देवियोंके साथ हो गयी है तब कहना ही क्या? असीम तेजवाला उसका वाहन सिंह भी संग्राममें राक्षसोंका वध कर रहा है॥ ४२॥

अतएव मन्त्रियोंके साथ विचार-विमर्श करके जो उचित हो, वह कीजिये। इसके साथ शत्रुता उचित नहीं है, अपितु सन्धि कर लेना ही सुखदायक होगा॥ ४३॥

यह आश्चर्य है कि एक स्त्री राक्षसोंका संहार कर रही है! रक्तबीज भी मार डाला गया! देवी चामुण्डा उसका सारा रक्त भी पी गयी! हे नृप! अम्बिकाने संग्राममें अन्य दैत्योंको मार डाला और देवी चामुण्डा उनका सम्पूर्ण मांस खा गयी॥ ४४-४५॥

हे महाराज! अब हमलोगोंके लिये या तो पाताल चला जाना श्रेयस्कर है अथवा उसकी दासता स्वीकार कर लेना; किंतु उस अम्बिकाके साथ युद्ध नहीं करना चाहिये। यह साधारण स्त्री नहीं है, यह देवताओंका कार्य सिद्ध करनेवाली है और यह मायारूपिणी शक्तिसम्पन्न देवीके रूपमें दैत्योंका नाश करनेके लिये प्रकट हुई है॥ ४६-४७॥

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंकी यह यथार्थ बात सुनकर कालसे मोहित तथा मरनेके लिये उद्यत वह काँपते हुए ओठोंवाला शुम्भ उनसे कहने लगा॥ ४८॥

शुम्भ बोला—तुमलोग भयभीत होकर पाताल चले जाओ अथवा उसकी शरणमें चले जाओ, किंतु मैं तो युद्धमें पूर्णरूपसे तत्पर रहते हुए उस अम्बिका तथा उन देवियोंको आज ही मार डालूँगा॥ ४९॥

जित्वा सर्वान्सुरानाजौ कृत्वा राज्यं सुपुष्कलम्।
कथं नारीभयोद्विग्नः पातालं प्रविशाम्यहम्॥ ५०

निहत्य पार्षदान्सर्वान् रक्तबीजमुखान् रणे।
प्राणत्राणाय गच्छामि हित्वा किं विपुलं यशः॥ ५१

मरणं त्वनिवार्यं वै प्राणिनां कालकल्पितम्।
तद्भयं जन्मनोपात्तं त्यजेत्को दुर्लभं यशः॥ ५२

निशुम्भाहं गमिष्यामि रथारूढो रणाजिरे।
हत्वा तामागमिष्यामि नागमिष्यामि चान्यथा॥ ५३

त्वं तु सेनायुतो वीर पार्ष्णिग्राहो भवस्व मे।
तरसा तां शरैस्तीक्ष्णैर्नारीं नय यमालये॥ ५४

निशुम्भ उवाच

अहमद्य हनिष्यामि गत्वा दुष्टाञ्च कालिकाम्।
आगमिष्याम्यहं शीघ्रं गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्॥ ५५

मा चिन्तां कुरु राजेन्द्र वराकायास्तु कारणे।
क्वैषा बाला क्व मे बाहुवीर्यं विश्ववशङ्करम्॥ ५६

त्यक्त्वार्तिं विपुलां भ्रातर्भुङ्क्ष्व भोगाननुत्तमान्।
आनयिष्याम्यहं कामं मानिनीं मानसंयुताम्॥ ५७

मयि तिष्ठति ते राजन्न युक्तं गमनं रणे।
गत्वाहमानयिष्यामि तवार्थे वै जयश्रियम्॥ ५८

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा भ्रातरं ज्येष्ठं कनीयान्बलगर्वितः।
रथमास्थाय विपुलं सन्नद्धः स्वबलावृतः॥ ५९

रणभूमिमें सभी देवताओंको जीतकर तथा विशाल राज्यका भोग करके भला एक स्त्रीके भयसे व्याकुल होकर मैं पाताल क्यों चला जाऊँ? रक्तबीज आदि प्रमुख पार्षदोंको रणमें मरवाकर और अपनी विशद कीर्तिका नाश करके प्राणरक्षाके लिये मैं पाताल क्यों चला जाऊँ?॥ ५०-५१॥

कालके द्वारा निर्धारित प्राणियोंकी मृत्यु तो अनिवार्य है। जन्मके साथ ही मृत्युका भय प्राणीके साथ लग जाता है। तब भला कौन (बुद्धिमान्) व्यक्ति दुर्लभ यशका त्याग कर सकता है?॥ ५२॥

हे निशुम्भ! मैं रथपर सवार होकर युद्धभूमिमें जाऊँगा और उसे मारकर ही वापस आऊँगा और यदि मैं उसे मार न सका तो फिर वापस नहीं लौटूँगा॥ ५३॥

हे वीर! तुम भी सेना साथमें लेकर चलो और युद्धमें मेरे सहायक बनो। वहाँ अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर तुम उस स्त्रीको शीघ्र ही यमलोक पहुँचा दो॥ ५४॥

निशुम्भ बोला—मैं अभी युद्धक्षेत्रमें जाकर दुष्ट कालिकाको मार डालूँगा और उस अम्बिकाको लेकर शीघ्र ही आपके पास आ जाऊँगा॥ ५५॥

हे राजेन्द्र! आप उस बेचारीके विषयमें चिन्ता मत कीजिये। कहाँ यह एक साधारण स्त्री और कहाँ पूरे विश्वको अपने वशमें कर लेनेवाला मेरा बाहुबल! हे भाई! आप इस भारी चिन्ताको छोड़कर सर्वोत्तम सुखोंका उपभोग कीजिये। मैं आदरकी पात्र उस मानिनीको अवश्य ही ले आऊँगा॥ ५६-५७॥

हे राजन्! मेरे रहते युद्धक्षेत्रमें आपका जाना उचित नहीं है। आपका कार्य सिद्ध करनेके लिये मैं वहाँ जाकर विजयश्री अवश्य ही प्राप्त करूँगा॥ ५८॥

व्यासजी बोले—बड़े भाई शुम्भसे ऐसा कहकर अपने बलपर अभिमान रखनेवाले छोटे भाई निशुम्भने कवच धारण कर लिया और अपनी सेना साथमें लेकर एक विशाल रथपर आरूढ़ हो स्वयं अनेकविध

जगाम तरसा तूर्णं सङ्गरे कृतमङ्गलः।
संस्तुतो बन्दिसूतैश्च सायुधः सपरिष्करः॥ ६०

आयुध लेकर वह पूरी तैयारीके साथ तुरंत बड़ी तेजीसे युद्धभूमिकी ओर चल पड़ा। उस समय मंगलाचार किया जा रहा था और बन्दीजन तथा चारण उसका यशोगान कर रहे थे॥ ५९-६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देव्या सह युद्धकरणाय निशुम्भप्रयाणं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

* * *

अथ त्रिंशोऽध्यायः

देवीद्वारा निशुम्भका वध

व्यास उवाच

निशुम्भो निश्चयं कृत्वा मरणाय जयाय वा।
सोद्यमः सबलः शूरो रणे देवीमुपाययौ॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वह पराक्रमी निशुम्भ अब मृत्यु अथवा विजयका निश्चय करके पूरी तैयारीके साथ सेनासहित समरभूमिमें उपस्थित हो गया॥ १॥

तमाजगाम शुम्भोऽपि स्वबलेन समावृतः।
प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा संग्रामरसपण्डितः॥ २

अपनी सेना साथमें लेकर शुम्भ भी उस निशुम्भके पास आ गया और युद्धकलाका पूर्ण ज्ञान रखनेवाला वह दैत्यराज शुम्भ रणमें दर्शक बनकर युद्धका अवलोकन करने लगा॥ २॥

गगने संस्थिता देवास्तदाभ्रपटलावृताः।
दिदृक्षवस्तु संग्रामे सेन्द्रा यक्षगणास्तथा॥ ३

इन्द्रसहित समस्त देवता तथा यक्षगण संग्राम देखनेकी इच्छासे आकाशमण्डलमें मेघपटलोंमें छिपकर विराजमान हो गये॥ ३॥

निशुम्भोऽथ रणे गत्वा धनुरादाय शार्ङ्गकम्।
चकार शरवृष्टिं स भीषयञ्जगदम्बिकाम्॥ ४

निशुम्भ रणभूमिमें पहुँचकर सींगका बना हुआ धनुष लेकर भगवती जगदम्बाको भयभीत करता हुआ उनके ऊपर बाणोंकी बौछार करने लगा॥ ४॥

मुञ्चन्तं शरजालानि निशुम्भं चण्डिका रणे।
वीक्ष्यादाय धनुः श्रेष्ठं जहास सुस्वरं मुहुः॥ ५

उवाच कालिकां देवी पश्य मूर्खत्वमेतयोः।
मरणायागतौ कालि मत्समीपमिहाधुना॥ ६

युद्धभूमिमें निशुम्भको बाण-समूह छोड़ते हुए देखकर भगवती चण्डिका अपना उत्कृष्ट धनुष धारण करके उच्च स्वरमें बार-बार हँसने लगीं। देवी चण्डिकाने कालीसे कहा—हे काली! इन दोनोंकी मूर्खता तो देखो, ये दोनों इस समय यहाँ मेरे पास मरनेके लिये ही आये हुए हैं॥ ५-६॥

दृष्ट्वा दैत्यवधं घोरं रक्तबीजात्ययं तथा।
जयाशां कुरुतस्त्वेतौ मोहितौ मम मायया॥ ७

दैत्योंका भीषण संहार तथा रक्तबीजकी मृत्यु देखकर भी मेरी मायासे विमोहित हुए ये दोनों दैत्य विजयकी आशा कर रहे हैं॥ ७॥

आशा बलवती ह्येषा न जहाति नरं क्वचित्।
भग्नं हतबलं नष्टं गतपक्षं विचेतनम्॥ ८

यह आशा बड़ी बलवती होती है; यह प्राणियोंको कभी नहीं छोड़ती है। यहाँतक कि अंगहीन, बलहीन, नष्टप्राय, असहाय तथा अचेत प्राणी भी आशाके प्रभावसे छूट नहीं पाता है॥ ८॥

आशापाशनिबद्धौ द्वौ युद्धाय समुपागतौ।
निहन्तव्यौ मया कालि रणे शुम्भनिशुम्भकौ॥ ९

आसन्नमरणावेतौ सम्प्राप्तौ दैवमोहितौ।
पश्यतां सर्वदेवानां हनिष्याम्यहमद्य तौ॥ १०

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा कालिकां चण्डी कर्णाकृष्टशरोत्करैः।
छादयामास तरसा निशुम्भं पुरतः स्थितम्॥ ११

दानवोऽपि शरांस्तस्याश्चिच्छेद निशितैः शरैः।
तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम्॥ १२

केसरी केशजालानि धुन्वानः सैन्यसागरम्।
गाहयामास बलवान्सरसीं वारणो यथा॥ १३

नखैर्दन्तप्रहारैस्तु दानवान्पुरतः स्थितान्।
चखाद च विशीर्णाङ्गान् गजानिव मदोत्कटान्॥ १४

एवं विमथ्यमाने तु सैन्ये केसरिणा तदा।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ विकृष्टवरकार्मुकः॥ १५

अन्येऽपि क्रुद्धा दैत्येन्द्रा देवीं हन्तुमुपाययुः।
सन्दष्टदन्तरसना रक्तनेत्रा ह्यनेकशः॥ १६

तत्राजगाम तरसा शुम्भः सैन्यसमावृतः।
निहत्य कालिकां कोपाद् ग्रहीतुं जगदम्बिकाम्॥ १७

तत्रागत्य ददर्शाजावम्बिकाञ्च पुरःस्थिताम्।
रौद्ररसयुतां कान्तां शृङ्गाररससंयुताम्॥ १८

हे कालि! इस प्रकार आशा-पाशमें बँधे हुए ये दोनों शुम्भ-निशुम्भ युद्धके लिये समरभूमिमें आये हुए हैं, अब मुझे इन दोनोंका वध कर देना चाहिये॥ ९॥

आसन्न मृत्युवाले ये दोनों दैत्य प्रारब्धकी प्रेरणासे यहाँ आये हुए हैं। सभी देवताओंके समक्ष आज ही मैं इन्हें मार डालूँगी॥ १०॥

व्यासजी बोले—भगवती चण्डिकाने कालिकासे ऐसा कहकर कानोंतक खींचकर छोड़े गये बाण-समूहोंसे अपने समक्ष खड़े निशुम्भको शीघ्र ही आच्छादित कर दिया॥ ११॥

दैत्य निशुम्भने भी उन चण्डिकाके बाणोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काट डाला। इस प्रकार उन दोनोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध होने लगा॥ १२॥

देवीका सिंह भी अपने गर्दनके बालोंको झाड़ता हुआ दैत्योंके सेनारूपी समुद्रको उसी प्रकार मथने लगा, जैसे कोई बलवान् हाथी तालाबको मथ रहा हो॥ १३॥

जिस प्रकार कोई सिंह मतवाले हाथियोंके अंग-प्रत्यंग चीरकर खा डालता है, उसी प्रकार भगवतीका वह सिंह अपने समक्ष स्थित दानवोंको अपने नखों तथा दाँतोंके प्रहारसे फाड़कर खाने लगा॥ १४॥

भगवतीके उस सिंहद्वारा दानवी सेनाका इस प्रकार संहार होते देखकर निशुम्भ अपना श्रेष्ठ धनुष चढ़ाकर सिंहके पीछे दौड़ा॥ १५॥

उसी समय कोपके कारण लाल नेत्रोंवाले अन्य बहुत-से प्रधान दानव भी दाँतोंसे अपनी जीभ चबाते हुए भगवतीको मारनेके लिये उनपर टूट पड़े॥ १६॥

उसी अवसरपर कुपित होकर शुम्भ भी कालिकापर प्रहार करके भगवती अम्बिकाको पकड़नेके लिये अपनी सेनाके साथ बड़े वेगसे वहाँ आ पहुँचा॥ १७॥

वहाँ आकर उसने जगदम्बिकाको युद्धभूमिमें अपने सामने खड़ी देखा; जो परम सुन्दरी, शृंगाररससे परिपूर्ण तथा रौद्ररससे भरी हुई थीं॥ १८॥

तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं त्रैलोक्यवरसुन्दरीम्।
सुरक्तनयनां रम्यां क्रोधरक्तेक्षणां तथा॥ १९

विवाहेच्छां परित्यज्य जयाशां दूरतस्तथा।
मरणे निश्चयं कृत्वा तस्थावाहितकार्मुकः॥ २०

तं तथा दानवं देवी स्मितपूर्वमिदं वचः।
बभाषे शृण्वतां तेषां दैत्यानां रणमस्तके॥ २१

गच्छध्वं पामरा यूयं पातालं वा जलार्णवम्।
जीविताशां स्थिरां कृत्वा त्यक्त्वात्रैवायुधानि च॥ २२

अथवा मच्छराघातहतप्राणा रणाजिरे।
प्राप्य स्वर्गसुखं सर्वे क्रीडन्तु विगतज्वराः॥ २३

कातरत्वं च शूरत्वं न भवत्येव सर्वथा।
ददाम्यभयदानं वै यान्तु सर्वे यथासुखम्॥ २४

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या निशुम्भो मदगर्वितः।
निशितं खड्गमादाय चर्म चैवाष्टचन्द्रकम्॥ २५

धावमानस्तु तरसासिना सिंहं मदोत्कटम्।
जघानातिबलान्मूर्ध्नि भ्रामयञ्जगदम्बिकाम्॥ २६

ततो देवी स्वगदया वञ्चयित्वासिपातनम्।
ताडयामास तं बाहोर्मूले परशुना तदा॥ २७

खड्गेन निहतः सोऽपि बाहुमूले महामदः।
संस्तभ्य वेदनां भूयो जघान चण्डिकां तदा॥ २८

सापि घण्टास्वनं घोरं चकार भयदं नृणाम्।
पपौ पुनः पुनः पानं निशुम्भं हन्तुमिच्छती॥ २९

एवं परस्परं युद्धं बभूवातिभयप्रदम्।
देवानां दानवानाञ्च परस्परजयैषिणाम्॥ ३०

[स्वभावतः] लाल नेत्रोंवाली, किंतु उस समय कोपके कारण अतिरक्त नयनोंवाली, तीनों लोकोंमें परम सुन्दरी तथा विशाल नेत्रप्रान्तोंवाली उन मनोहर भगवतीको देखकर विजयकी आशा तथा विवाहकी अभिलाषाका दूरसे ही परित्याग करके वह दानव अब अपने मरणका निश्चय-कर हाथमें धनुष लिये हुए खड़ा ही रह गया॥ १९-२०॥

तब भगवतीने युद्धस्थलमें उपस्थित उन सभी दानवोंको सुनाते हुए मुसकराकर उस दैत्यसे यह वचन कहा—हे नीच दानवो! यदि तुम सब जीवित रहनेकी इच्छा रखते हो तो अपने आयुध यहीं छोड़कर पाताललोक या समुद्रमें चले जाओ अथवा तुमलोग समरांगणमें मेरे बाणोंके प्रहारसे निष्प्राण होकर स्वर्गमें सुख प्राप्तकर वहाँ निर्भय होकर विहार करो। कायरता तथा पराक्रम दोनोंका एक साथ रह पाना सम्भव नहीं है। मैं तुम सबको अभयदान देती हूँ; तुम सब सुखपूर्वक चले जाओ॥ २१—२४॥

व्यासजी बोले—उन भगवतीका वचन सुनकर मदोन्मत्त निशुम्भ तीक्ष्ण खड्ग तथा अष्टचन्द्र नामक ढाल लेकर बड़े वेगसे दौड़ा और उसने बलपूर्वक अपने खड्गसे मतवाले सिंहके मस्तकपर प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने तलवार घुमाकर जगदम्बापर भी प्रहार किया॥ २५-२६॥

तब भगवतीने अपनी गदासे उसके तलवारके प्रहारको रोककर अपने परशुसे उसके बाहुमूल (कन्धे)-पर आघात किया॥ २७॥

अपने कन्धेपर खड्गसे प्रहार होनेपर भी उस महाभिमानी अहंकारी निशुम्भने उस आघातकी वेदना सहकर भगवती चण्डिकापर पुनः प्रहार किया॥ २८॥

तत्पश्चात् भगवती चण्डिकाने भी प्राणियोंको भयभीत कर देनेवाली भीषण घंटाध्वनि की और निशुम्भको मारनेकी इच्छा प्रकट करती हुई उन्होंने बार-बार मधुपान किया॥ २९॥

इस प्रकार एक-दूसरेको जीतनेकी प्रबल इच्छावाले देवताओं तथा दानवोंमें परस्पर अत्यन्त भयंकर युद्ध आरम्भ हो गया॥ ३०॥

पलादाः पक्षिणः क्रूराः सारमेयाश्च जम्बुकाः।
ननृतुश्चातिसन्तुष्टा गृध्राः कङ्काश्च वायसाः॥ ३१

रणभूर्भाति भूयिष्ठपतितासुरवर्ष्मकैः।
रुधिरस्त्रावसंयुक्तैर्गजाश्वदेहसंकुला॥ ३२

पतितान्दानवान्दृष्ट्वा निशुम्भोऽतिरुषान्वितः।
प्रययौ चण्डिकां तूर्णं गदामादाय दारुणाम्॥ ३३

सिंहं जघान गदया मस्तके मदगर्वितः।
प्रहृत्य च स्मितं कृत्वा पुनर्देवीमताडयत्॥ ३४

सापि तं कुपितातीव निशुम्भं पुरतः स्थितम्।
प्रहरन्तं समीक्ष्याथ देवी वचनमब्रवीत्॥ ३५

देव्युवाच

तिष्ठ मन्दमते तावद्यावत्खड्गमिदं तव।
ग्रीवायां प्रेरयाम्यस्माद् गन्तासि यमसादनम्॥ ३६

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तरसा देवी कृपाणेन समाहिता।
चिच्छेद मस्तकं तस्य निशुम्भस्याथ चण्डिका॥ ३७

सञ्छिन्नमस्तको देव्या कबन्धोऽतीव दारुणः।
बभ्राम च गदापाणिस्त्रासयन्देवतागणान्॥ ३८

देवी तस्य शितैर्बाणैश्चिच्छेद चरणौ करौ।
पपातोर्व्यां ततः पापी गतासुः पर्वतोपमः॥ ३९

तस्मिन्निपतिते दैत्ये निशुम्भे भीमविक्रमे।
हाहाकारो महानासीत्तत्सैन्ये भयकम्पिते॥ ४०

त्यक्त्वायुधानि सर्वाणि सैनिकाः क्षतजाप्लुताः।
जग्मुर्बुम्बारवं सर्वे कुर्वाणा राजमन्दिरम्॥ ४१

तानागतान्सुसम्प्रेक्ष्य शुम्भः शत्रुनिषूदनः।
पप्रच्छ क्व निशुम्भोऽसौ कथं भग्नाः पलायिताः॥ ४२

मांसाहारी क्रूर पक्षी, कुत्ते, सियार, गीध, कंक तथा कौए अति प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे॥ ३१॥

उस समय बहुत-से गिरे हुए दैत्योंके रक्त बहते हुए शरीरोंसे तथा हाथियों और घोड़ोंके देहसे पटी हुई वह रणभूमि अत्यधिक [भयानक] प्रतीत हो रही थी॥ ३२॥

[भूमिपर] गिरे हुए दानवोंको देखकर निशुम्भ अत्यन्त कुपित हो उठा और एक भयंकर गदा लेकर शीघ्रतापूर्वक भगवतीके समक्ष पहुँच गया॥ ३३॥

अभिमानमें चूर उस निशुम्भने सिंहके मस्तकपर गदासे प्रहार किया। तत्पश्चात् उसने मुसकराकर पुनः देवीपर प्रहार करके उन्हें चोट पहुँचायी॥ ३४॥

इससे वे भगवती भी अत्यन्त कुपित हो गयीं और समक्ष स्थित होकर प्रहार कर रहे उस निशुम्भको देखकर कहने लगीं—॥ ३५॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! मैं तलवार चला रही हूँ। तुम तबतकके लिये ठहर जाओ, जबतक मेरी यह तलवार तुम्हारी गर्दनतक नहीं पहुँच जाती। इसके बाद तुम यमपुरी निश्चय ही पहुँच जाओगे॥ ३६॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर भगवती चण्डिकाने एकाग्रचित्त होकर बड़ी शीघ्रतासे अपने कृपाणसे उस निशुम्भका मस्तक काट दिया॥ ३७॥

इस प्रकार भगवतीके द्वारा सिर कटा हुआ अत्यन्त विकराल वह धड़ हाथमें गदा धारण किये देवगणोंको भयभीत करता हुआ इधर-उधर घूमने लगा॥ ३८॥

तत्पश्चात् भगवतीने तीक्ष्ण बाणोंसे उसके दोनों हाथ तथा पैर भी काट दिये। इसके बाद पर्वतके समान शरीरवाला वह पापी दैत्य प्राणहीन होकर धरतीपर गिर पड़ा॥ ३९॥

प्रचण्ड पराक्रमवाले उस निशुम्भ दैत्यके गिर जानेपर भयसे कम्पित दानवसेनामें महान् हाहाकार मच गया। रक्तसे लथपथ समस्त दानवसैनिक अपने-अपने सभी आयुध फेंककर चीख-पुकार करते हुए राजभवनकी ओर भाग गये॥ ४०-४१॥

शत्रुओंके संहारकी शक्ति रखनेवाले शुम्भने वहाँ आये हुए उन सैनिकोंको देखकर उनसे पूछा—निशुम्भ कहाँ है और घायल होकर तुम सब युद्धभूमिसे भाग क्यों आये?॥ ४२॥

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्ते प्रोचुः प्रणता भृशम्।
राजंस्ते निहतो भ्राता शेते समरमूर्धनि॥ ४३

तया निपातिताः शूरा ये च तेऽप्यनुजानुगाः।
वयं त्वां कथितुं सर्वं वृत्तान्तं समुपागताः॥ ४४

निशुम्भो निहतस्तत्र तया चण्डिकयाधुना।
न हि युद्धस्य कालोऽद्य तव राजन् रणाङ्गणे॥ ४५

देवकार्यं समुद्दिश्य कापीयं परमाङ्गना।
हन्तुं दैत्यकुलं नूनं प्राप्तेति परिचिन्तय॥ ४६

नैषा प्राकृतयोषैव देवी शक्तिरनुत्तमा।
अचिन्त्यचरिता क्वापि दुर्ज्ञेया दैवतैरपि॥ ४७

नानारूपधरातीव मायामूलविशारदा।
विचित्रभूषणा देवी सर्वायुधधरा शुभा॥ ४८

गहना गूढचरिता कालरात्रिरिवापरा।
अपारपारगा पूर्णा सर्वलक्षणसंयुता॥ ४९

अन्तरिक्षस्थिता देवास्तां स्तुवन्त्यकुतोभयाः।
देवकार्यञ्च कुर्वाणां श्रीदेवीं परमाद्भुताम्॥ ५०

पलायनं परो धर्मः सर्वथा देहरक्षणम्।
रक्षिते किल देहेस्मिन्कालेऽस्मत्सुखताङ्गते॥ ५१

संग्रामे विजयो राजन् भविता ते न संशयः।
कालः करोति बलिनं समये निर्बलं क्वचित्॥ ५२

दानवराज शुम्भका वह वचन सुनकर उन सैनिकोंने अति विनम्रतापूर्वक कहा—हे राजन्! आपके भाई निशुम्भ मृत होकर रणभूमिमें सोये पड़े हैं॥ ४३॥

उस स्त्रीने आपके अनुज (निशुम्भ)-के जो भी अनुचर दानववीर थे, उन्हें मार डाला। यही सब समाचार आपको बतानेके लिये हम यहाँ आये हुए हैं॥ ४४॥

उस चण्डिकाने इसी समय युद्धभूमिमें निशुम्भका संहार किया है। अतएव हे राजन्! उसके साथ समरभूमिमें आपके लिये आज युद्ध करनेका [उचित] अवसर नहीं है॥ ४५॥

आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे दानवकुलका संहार करनेके लिये यह कोई अद्भुत देवी प्रकट हुई है॥ ४६॥

यह सामान्य नारी नहीं है, अपितु देवीरूपिणी कोई अत्युत्तम शक्ति है। अद्भुत चरित्रोंवाली ये देवी देवताओंके भी ज्ञानसे परे हैं॥ ४७॥

ये कल्याणी भगवती अनेक रूप धारण करनेमें समर्थ हैं, मायाके मूल तत्त्वका पूर्ण ज्ञान रखनेवाली हैं और अद्भुत भूषण तथा समस्त प्रकारके आयुध धारण करनेवाली हैं॥ ४८॥

गूढ़ चरित्रोंवाली इन देवीको जान पाना अत्यन्त कठिन है। ये दूसरी कालरात्रिके समान प्रतीत होती हैं। असीमके भी पार जा सकनेमें समर्थ ये पूर्णतामयी देवी सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं॥ ४९॥

समस्त देवतागण अन्तरिक्षमें स्थित होकर देवकार्य सिद्ध करनेवाली परम अद्भुतस्वरूपिणी उन देवीका निर्भीकतापूर्वक स्तवन कर रहे हैं॥ ५०॥

यदि आप शरीरकी रक्षा करना चाहते हैं तो इस समय पलायन ही परम धर्म है। इस शरीरकी रक्षा हो जानेके बाद पुनः आनन्ददायक अनुकूल समय आनेपर संग्राममें आपकी विजय होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे राजन्! कभी-कभी काल बलवान्‌को भी बलहीन बना देता है और पुनः समय आनेपर उसे बलशाली बनाकर विजयकी प्राप्ति

तं पुनः सबलं कृत्वा जयायोपदधाति हि।
दातारं याचकं कालः करोति समये क्वचित्॥ ५३

भिक्षुकं धनदातारं करोति समयान्तरे।
विष्णुः कालवशे नूनं ब्रह्मा वा पार्वतीपतिः॥ ५४

इन्द्राद्या निर्जराः सर्वे काल एव प्रभुः स्वयम्।
तस्मात्कालं प्रतीक्षस्व विपरीतं तवाधुना॥ ५५

सम्मुखो देवतानाञ्च दैत्यानां नाशहेतुकः।
एकैव च गतिर्नास्ति कालस्य किल भूपते॥ ५६

नानारूपधराप्यस्ति ज्ञातव्यं तस्य चेष्टितम्।
कदाचित्सम्भवो नृणां कदाचित्प्रलयस्तथा॥ ५७

उत्पत्तिहेतुः कालोऽन्यः क्षयहेतुस्तथापरः।
प्रत्यक्षं ते महाराज देवाः सर्वे सवासवाः॥ ५८

करदास्ते कृताः पूर्वं कालेन सम्मुखेन च।
तेनैव विमुखेनाद्य बलिनोऽबलयासुराः॥ ५९

निहता नितरां कालः करोति च शुभाशुभम्।
नैवात्र कारणं काली नैव देवाः सनातनाः॥ ६०

यथा ते रोचते राजंस्तथा कुरु विमृश्य च।
कालोऽयं नात्र हेतुस्ते दानवानां तथा पुनः॥ ६१

त्वदग्रतो गतः शक्रो भग्नः संख्ये निरायुधः।
तथा विष्णुस्तथा रुद्रो वरुणो धनदो यमः॥ ६२

तथा त्वमपि राजेन्द्र वीक्ष्य कालवशं जगत्।
पातालं गच्छ तरसा जीवन्भद्रमवाप्स्यसि॥ ६३

करा देता है। कभी-कभी काल विषम परिस्थितिमें दाताको भिखारी बना देता है और पुनः कुछ समय बीतनेपर उसी भिखारीको धन देनेवाला बना देता है॥ ५१—५३½ ॥

विष्णु, ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता निश्चितरूपसे सदा कालके वशवर्ती हैं। यह काल स्वयं ही सबका स्वामी है। हे राजन्! अभी काल आपके लिये विपरीत है, अतएव आप समयकी प्रतीक्षा कीजिये॥ ५४-५५ ॥

हे पृथ्वीपते! इस समय काल देवताओंके लिये अनुकूल तथा दैत्योंके लिये विनाशकारी है। कालकी गति सर्वथा एक ही तरहकी नहीं बनी रहती है। यह काल-गति नानाविध रूप भी धारण करती है। अतः कालकी चेष्टापर विचार करते रहना चाहिये। कभी प्राणियोंका जन्म होता है और कभी उनका मरण उपस्थित हो जाता है। एक काल उत्पत्तिका हेतु होता है तो दूसरा काल विनाशका हेतु बन जाता है॥ ५६-५७½ ॥

हे महाराज! आपके समक्ष इसका प्रमाण विद्यमान है कि पहले इन्द्र आदि सभी देवता आपके लिये अनुकूल समय रहनेपर आपके करदाता बन गये थे, किंतु आज उसी कालके विपरीत हो जानेके कारण एक अबलाने बलशाली असुरोंका संहार कर डाला। यही काल हित भी करता है तथा अहित भी करता है। इस पराजयमें न तो काली कारण हैं और न तो सनातन देवता ही कारण हैं॥ ५८—६० ॥

हे राजन्! आपको जैसा उचित जान पड़े भलीभाँति सोच-समझकर आप वैसा ही कीजिये। हमारी समझमें तो यह काल अभी आपके तथा अन्य दानवोंके लिये भी अनुकूल नहीं है॥ ६१ ॥

किसी समय संग्राममें घायल होकर तथा अपने आयुध छोड़कर इन्द्र आपके सामनेसे भाग गये थे। ऐसे ही विष्णु, रुद्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवता भी आपके समक्ष टिक नहीं पाये थे। अतः हे राजेन्द्र! इस समस्त जगत्को कालके अधीन मानकर आप भी तत्काल पाताललोक चले जाइये; जीवन बचा रहा तो आप कल्याण अवश्य प्राप्त करेंगे॥ ६२-६३ ॥

मृते त्वयि महाराज शत्रवस्ते मुदान्विताः।
मङ्गलानि प्रगायन्तो विचरिष्यन्ति सर्वतः॥ ६४

हे महाराज! यदि कहीं आपका निधन हो गया तो आपके शत्रु प्रसन्नतापूर्वक मंगलगान करते हुए निर्भय होकर सर्वत्र विचरण करेंगे॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे युद्धात्प्रत्यागतानां रक्षसां शुम्भाय वार्तावर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

शुम्भका रणभूमिमें आना और देवीसे वार्तालाप करना, भगवती कालिकाद्वारा उसका वध, देवीके इस उत्तम चरित्रके पठन और श्रवणका फल

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शुम्भो दैत्यपतिस्तथा।
उवाच सैनिकानाशु कोपाकुलितलोचनः॥ १

शुम्भ उवाच

जाल्माः किं ब्रूत दुर्वाच्यं कृत्वा जीवितुमुत्सहे।
निहत्य सचिवान्भ्रातॄन्निर्लज्जो विचरामि किम्॥ २

कालः कर्ता शुभानां वाशुभानां बलवत्तरः।
का चिन्ता मम दुर्वारे तस्मिन्नीशेऽप्यरूपके॥ ३

यद्भवति तद्भवतु यत्करोति करोतु तत्।
न मे चिन्तास्ति कुत्रापि मरणाज्जीवनात्तथा॥ ४

स कालोऽप्यन्यथाकर्तुं भावितो नेशते क्वचित्।
न वर्षति च पर्जन्यः श्रावणे मासि सर्वथा॥ ५

कदाचिन्मार्गशीर्षे वा पौषे माघेऽथ फाल्गुने।
अकाले वर्षतीवाशु तस्मान्मुख्यो न चास्त्ययम्॥ ६

कालो निमित्तमात्रं तु दैवं हि बलवत्तरम्।
दैवेन निर्मितं सर्वं नान्यथा भवतीत्यदः॥ ७

दैवमेव परं मन्ये धिक्पौरुषमनर्थकम्।
जेता यः सर्वदेवानां निशुम्भोऽप्यनया हतः॥ ८

व्यासजी बोले—उन सैनिकोंका यह वचन सुनकर क्रोधसे आकुलित नेत्रोंवाले दानवराज शुम्भने उनसे तुरन्त कहा॥ १॥

शुम्भ बोला—हे मूर्खो! तुम सब खोटी बात क्यों बोल रहे हो? तुम्हारे वचनोंको मानकर मैं भला अपने जीवनकी रक्षा क्यों करूँ? क्या अपने सचिवों तथा भाई-बन्धुओंका वध कराकर मैं निर्लज्ज बनकर विचरण करूँ?॥ २॥

प्राणियोंके शुभ अथवा अशुभका कर्ता जब एकमात्र वही अति बलवान् काल है तो मुझे चिन्ता क्या? क्योंकि परोक्षरूपसे सबपर शासन करनेवाला वह काल टाला नहीं जा सकता॥ ३॥

जो हो रहा है, वह होता रहे तथा काल जो कुछ भी कर रहा है, उसे करता रहे; अब तो मुझे जीवन तथा मृत्युके विषयमें किसी भी प्रकारकी चिन्ता नहीं है॥ ४॥

वह काल भी भवितव्यताको मिटा सकनेमें समर्थ नहीं है। ऐसा भी होता है कि सावनके महीनेमें मेघ सदा नहीं बरसते; अपितु कभी-कभी अगहन, पौष, माघ तथा फाल्गुनमें असमय ही तेज वृष्टि होने लगती है। अतएव [समस्त कार्योंमें] काल ही प्रधान नहीं है॥ ५-६॥

काल तो निमित्तमात्र है, अपितु [इसकी तुलनामें] दैव अधिक बलवान् है। सब कुछ दैवनिर्मित है; इसके विपरीत कुछ नहीं होता॥ ७॥

मैं तो दैवको ही प्रधान मानता हूँ। अनर्थकारी पुरुषार्थको धिक्कार है; क्योंकि जिस निशुम्भने सभी देवताओंपर विजय प्राप्त कर ली थी, उसे इस स्त्रीने मार डाला॥ ८॥

रक्तबीजो महाशूरः सोऽपि नाशं गतो यदा।
तदाहं कीर्तिमुत्सृज्य जीविताशां करोमि किम्॥ ९

प्राप्ते काले स्वयं ब्रह्मा परार्धद्वयसम्मिते।
निधनं याति तरसा जगत्कर्ता स्वयं प्रभुः॥ १०

चतुर्युगसहस्रं तु ब्रह्मणो दिवसे किल।
पतन्ति भवनात्पञ्च नव चेन्द्रास्तथा पुनः॥ ११

तथैव द्विगुणे विष्णुर्मरणायोपकल्पते।
तथैव द्विगुणे काले शङ्करः शान्तिमेति च॥ १२

का चिन्ता मरणे मूढा निश्चले दैवनिर्मिते।
मही महीधराणाञ्च नाशः सूर्यशशाङ्कयोः॥ १३

जातस्य हि ध्रुवं मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
अध्रुवेऽस्मिञ्छरीरे तु रक्षणीयं यशः स्थिरम्॥ १४

रथो मे कल्प्यतां शीघ्रं गमिष्यामि रणाजिरे।
जयो वा मरणं वापि भवत्वद्यैव दैवतः॥ १५

इत्युक्त्वा सैनिकाञ्छुम्भो रथमास्थाय सत्वरः।
प्रययावम्बिका यत्र संस्थिता तु हिमाचले॥ १६

सैन्यं प्रचलितं तस्य सङ्गे तत्र चतुर्विधम्।
हस्त्यश्वरथपादातिसंयुतं सायुधं बहु॥ १७

तत्र गत्वाचले शुम्भः संस्थितां जगदम्बिकाम्।
त्रैलोक्यमोहिनीं कान्तामपश्यत्सिंहवाहिनीम्॥ १८

सर्वाभरणभूषाढ्यां सर्वलक्षणसंवृताम्।
स्तूयमानां सुरैः खस्थैर्गन्धर्वयक्षकिन्नरैः॥ १९

पुष्पैश्च पूज्यमानाञ्च मन्दारपादपोद्भवैः।
कुर्वाणां शङ्खनिनदं घण्टानादं मनोहरम्॥ २०

जब महान् शूरवीर रक्तबीज भी विनाशको प्राप्त हो गया, तब अपनी कीर्तिको कलंकित करके मैं ही जीवनकी आशा क्यों करूँ?॥ ९॥

जगत्‌के रचयिता सर्वसमर्थ स्वयं ब्रह्मा भी दो परार्धका समय बीत जानेपर तत्क्षण ही निधनको प्राप्त हो जाते हैं॥ १०॥

ब्रह्माजीके एक दिनमें एक हजार चतुर्युग समाप्त हो जाते हैं और इतनी ही अवधिमें चौदह इन्द्रोंका स्वर्गसे पतन हो चुकता है॥ ११॥

इसी प्रकार [ब्रह्माजीके जीवनकालका] दुगुना समय बीतनेपर विष्णुका अन्त हो जाता है तथा इससे भी दूने समयके पश्चात् शंकर भी समाप्त हो जाते हैं॥ १२॥

इसी प्रकार पृथ्वी, पर्वत, सूर्य तथा चन्द्रमा आदिका भी विनाश हो जाता है, तब हे मूर्खो! दैवकी बनायी हुई इस अटल मृत्युके विषयमें क्या चिन्ता है?॥ १३॥

जन्म लेनेवालेकी मृत्यु निश्चित है तथा मरनेवालेका जन्म निश्चित है। अतः इस अनित्य शरीरके द्वारा अपनी स्थिर कीर्तिकी रक्षा करनी चाहिये॥ १४॥

शीघ्रतापूर्वक मेरा रथ तैयार करो। मैं समरांगणमें जाऊँगा। विजय अथवा मरण प्रारब्धानुसार जो भी होनेवाला हो, वह आज ही हो जाय॥ १५॥

सैनिकोंसे ऐसा कहकर वह शुम्भ तुरंत रथपर सवार होकर हिमालयकी ओर चल दिया, जहाँ भगवती विराजमान थीं॥ १६॥

उस समय हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल चलनेवालोंसे सुसज्जित एवं नानाविध आयुधोंसे युक्त विशाल चतुरंगिणी सेना भी उसके साथ चल पड़ी॥ १७॥

उस पर्वतपर पहुँचकर शुम्भने त्रिभुवनको मोहित करनेवाली परम सुन्दरी सिंहवाहिनी भगवती जगदम्बिकाको वहाँ विराजमान देखा। वे सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं; देवता, यक्ष तथा किन्नर आकाशमें स्थित होकर उनकी स्तुति कर रहे थे तथा मन्दारवृक्षके पुष्पोंसे पूजा कर रहे थे और वे मनोहर शंखध्वनि तथा घंटानाद कर रही थीं॥ १८—२०॥

दृष्ट्वा तां मोहमगमच्छुम्भः कामविमोहितः।
पञ्चबाणाहतः कामं मनसा समचिन्तयत्॥ २१

अहो रूपमिदं सम्यगहो चातुर्यमद्भुतम्।
सौकुमार्यञ्च धैर्यञ्च परस्परविरोधि यत्॥ २२

सुकुमारातितन्वङ्गी सद्यः प्रकटयौवना।
चित्रमेतदसौ बाला कामभावविवर्जिता॥ २३

कामकान्तासमा रूपे सर्वलक्षणलक्षिता।
अम्बिकेयं किमेतत्तु हन्ति सर्वान्महाबलान्॥ २४

उपायः कोऽत्र कर्तव्यो येन मे वशगा भवेत्।
न मन्त्रा वा मरालाक्षीसाधने सन्निधौ मम॥ २५

सर्वमन्त्रमयी ह्येषा मोहिनी मदगर्विता।
सुन्दरीयं कथं मे स्याद्वशगा वरवर्णिनी॥ २६

पातालगमनं मेऽद्य न युक्तं समराङ्गणात्।
सामदानविभेदैश्च नेयं साध्या महाबला॥ २७

किं कर्तव्यं क्व गन्तव्यं विषमे समुपस्थिते।
मरणं नोत्तमं चात्र स्त्रीकृतं तु यशोऽपहृत्॥ २८

मरणमृषिभिः प्रोक्तं सङ्गरे मङ्गलास्पदम्।
यत्तत्समानबलयोर्योधयोर्युध्यतोः किल॥ २९

प्राप्तेयं दैवरचिता नारी नरशतोत्तमा।
नाशायास्मत्कुलस्येह सर्वथातिबलाबला॥ ३०

वृथा किं सामवाक्यानि मया योज्यानि साम्प्रतम्।
हननायागता ह्येषा किं नु साम्ना प्रसीदति॥ ३१

उन्हें देखकर शुम्भ मोहित हो गया। कामबाणसे आहत वह शुम्भ कामासक्त होकर मन-ही-मन सोचने लगा— ॥ २१ ॥

अहो, इसका ऐसा आकर्षक रूप तथा ऐसा अद्भुत चातुर्य है। सुकुमारता तथा धीरता—ये दोनों परस्पर विरोधीभाव इसमें एक साथ विद्यमान हैं!॥ २२ ॥

अत्यन्त कृश शरीरवाली इस सुकुमारीमें अभी-अभी यौवन प्रस्फुटित हुआ है, किंतु आश्चर्य है कि यह रमणी कामभावनासे रहित है॥ २३ ॥

रूपमें कामदेवकी पत्नी रतिके समान सुन्दर तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न यह स्त्री कहीं अम्बिका ही तो नहीं, जो सभी महाबली दानवोंका संहार कर रही है॥ २४ ॥

इस अवसरपर मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे यह मेरी वशवर्तिनी हो जाय? इस हंस-सदृश नेत्रोंवालीको वशमें करनेहेतु मेरे पास कोई मन्त्र भी नहीं है॥ २५ ॥

सर्वमन्त्रमयी, सबको मोहित करनेवाली, अभिमानमें मत्त रहनेवाली तथा उत्तम लक्षणोंवाली यह सुन्दरी किस प्रकार मेरे वशमें होगी?॥ २६ ॥

अब युद्धभूमि छोड़कर पाताललोक जाना भी मेरे लिये उचित नहीं है। साम, दान तथा भेद आदि उपायोंसे भी यह महाबलशालिनी वशमें नहीं की जा सकती॥ २७ ॥

इस विषम परिस्थितिके आ जानेपर अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? स्त्रीके हाथों मर जाना भी उचित नहीं है; क्योंकि ऐसी मृत्यु यशको नष्ट करनेवाली होती है॥ २८ ॥

ऋषियोंने उस मृत्युको श्रेयस्कर कहा है, जो समरभूमिमें समान बलवाले योद्धाओंके साथ लड़ते-लड़ते प्राप्त हो॥ २९ ॥

सैकड़ों वीरोंसे श्रेष्ठ, महाबलशालिनी तथा दैव-विरचित यह नारी मेरे कुलके पूर्ण विनाशके लिये यहाँ उपस्थित हुई है॥ ३० ॥

मैं इस समय सामनीतिसे युक्त वचनोंका प्रयोग व्यर्थमें क्यों करूँ? क्योंकि यह तो संहारके लिये आयी हुई है, तो फिर सामवचनोंसे यह कैसे

न दानैश्चालितुं योग्या नानाशस्त्रविभूषिता।
भेदस्तु विफलः कामं सर्वदेववशानुगा॥ ३२

तस्मात्तु मरणं श्रेयो न संग्रामे पलायनम्।
जयो वा मरणं वाद्य भवत्वेव यथाविधि॥ ३३

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य मनसा शुम्भः सत्त्वाश्रितोऽभवत्।
युद्धाय सुस्थिरो भूत्वा तामुवाच पुरःस्थिताम्॥ ३४

देवि युध्यस्व कान्तेऽद्य वृथायं ते परिश्रमः।
मूर्खासि किल नारीणां नायं धर्मः कदाचन॥ ३५

नारीणां लोचने बाणा भ्रुवावेव शरासनम्।
हावभावास्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्यं विचक्षणः॥ ३६

सन्नाहश्चाङ्गरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथः।
मन्दप्रजल्पितं भेरीशब्दो नान्यः कदाचन॥ ३७

अन्यास्त्रधारणं स्त्रीणां विडम्बनमसंशयम्।
लज्जैव भूषणं कान्ते न च धाष्टर्यं कदाचन॥ ३८

युध्यमाना वरा नारी कर्कशेवाभिदृश्यते।
स्तनौ सङ्गोपनीयौ वा धनुषः कर्षणे कथम्॥ ३९

क्व मन्दगमनं कुत्र गदामादाय धावनम्।
बुद्धिदा कालिका तेऽत्र चामुण्डा परनायिका॥ ४०

चण्डिका मन्त्रमध्यस्था लालनेऽसुस्वरा शिवा।
वाहनं मृगराडास्ते सर्वसत्त्वभयङ्करः॥ ४१

प्रसन्न हो सकती है? अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे विभूषित होनेके कारण दान आदिके प्रलोभनोंसे भी यह विचलित नहीं की जा सकती। भेदनीति भी निष्फल सिद्ध होगी; क्योंकि सभी देवता इसके वशमें हैं॥ ३१-३२॥

अतएव संग्राममें मर जाना श्रेयस्कर है, किंतु पलायन करना ठीक नहीं है। अब तो प्रारब्धके अनुसार विजय अथवा मृत्यु जो भी होना हो, वह हो॥ ३३॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपने मनमें विचार करके शुम्भने धैर्यका सहारा लिया। अब युद्धके लिये दृढ़ निश्चय करके उसने अपने सामने खड़ी भगवतीसे कहा॥ ३४॥

हे देवि! युद्ध करो, किंतु हे प्रिये! इस समय तुम्हारा यह परिश्रम व्यर्थ है। तुम मूर्ख हो; क्योंकि युद्ध करना स्त्रियोंका धर्म कदापि नहीं है॥ ३५॥

स्त्रियोंके नेत्र ही बाण हैं, उनकी भौंहें ही धनुष हैं, उनके हाव-भाव ही शस्त्र हैं और रसज्ञ पुरुष उनका लक्ष्य है॥ ३६॥

अंगराग (शीतल चन्दन आदि) ही उनका कवच है, मनोकामना रथ है तथा धीरे-धीरे मधुर वाणीमें बोलना भेरी-ध्वनि है। अतएव स्त्रियोंके लिये अन्य शस्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं रहती॥ ३७॥

यदि स्त्रियाँ इनके अतिरिक्त अन्य अस्त्र धारण करें तो यह निश्चितरूपसे उनके लिये विडम्बना ही है। हे प्रिये! लज्जा ही नारियोंका आभूषण है, धृष्टता उन्हें कभी भी शोभा नहीं देती॥ ३८॥

युद्ध करती हुई उत्तम नारी भी कर्कशाके सदृश दिखायी देती है। धनुष खींचते समय कोई स्त्री अपने दोनों स्तनोंको छिपानेमें कैसे सफल हो सकती है?॥ ३९॥

कहाँ नारियोंकी मन्थरगति और कहाँ युद्धमें गदा लेकर दौड़ना। इस समय यह कालिका तथा दूसरी स्त्री चामुण्डा ही तुम्हें बुद्धि देनेवाली हैं। मध्यस्थ होकर चण्डिका मन्त्रणा देती है, कर्कश स्वरवाली शिवा तुम्हारी शुश्रूषामें रहती है और सभी प्राणियोंमें भयंकर सिंह तुम्हारा वाहन है॥ ४०-४१॥

वीणानादं परित्यज्य घण्टानादं करोषि यत्।
रूपयौवनयोः सर्वं विरोधि वरवर्णिनि॥ ४२

यदि ते सङ्गरेच्छास्ति कुरूपा भव भामिनि।
लम्बोष्ठी कुनखी क्रूरा ध्वांक्षवर्णा विलोचना॥ ४३

लम्बपादा कुदन्ती च मार्जारनयनाकृतिः।
ईदृशं रूपमास्थाय तिष्ठ युद्धे स्थिरा भव॥ ४४

कर्कशं वचनं ब्रूहि ततो युद्धं करोम्यहम्।
ईदृशीं सुदतीं दृष्ट्वा न मे पाणिः प्रसीदति॥ ४५

हन्तुं त्वां मृगशावाक्षि कामकान्तोपमे मृधे।
व्यास उवाच
इति ब्रुवाणं कामार्तं वीक्ष्य तं जगदम्बिका॥ ४६

स्मितपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भरतोत्तम।
देव्युवाच
किं विषीदसि मन्दात्मन् कामबाणविमोहितः॥ ४७

प्रेक्षिकाहं स्थिता मूढ कुरु कालिकया मृधम्।
चामुण्डया वा कुर्वेते तव योग्ये रणाङ्गणे॥ ४८

प्रहरस्व यथाकामं नाहं त्वां योद्धुमुत्सहे।
इत्युक्त्वा कालिकां प्राह देवी मधुरया गिरा॥ ४९

जह्येनं कालिके क्रूरे कुरूपप्रियमाहवे।
व्यास उवाच
इत्युक्ता कालिका कालप्रेरिता कालरूपिणी॥ ५०

गदां प्रगृह्य तरसा तस्थावाजौ कृतोद्यमा।
तयोः परस्परं युद्धं बभूवातिभयानकम्॥ ५१
पश्यतां सर्वदेवानां मुनीनाञ्च महात्मनाम्।

हे सुन्दरि! वीणा-वादन छोड़कर तुम यह जो घंटा-नाद कर रही हो, वह सब तुम्हारे रूप तथा यौवनके सर्वथा विपरीत है॥ ४२॥

हे भामिनि! यदि युद्ध करना ही तुम्हें अभीष्ट है तो तुम सर्वप्रथम लम्बे ओठोंवाली, विचित्र नखोंवाली, क्रूर स्वभाववाली, कौए-जैसे वर्णवाली, विकृत आँखोंवाली, लम्बे पैरोंवाली, भयंकर दाँतोंवाली और बिल्लीसदृश नेत्रोंवाली कुरूप स्त्री बन जाओ। ऐसा ही विकराल रूप धारण करके तुम युद्धभूमिमें स्थिरतापूर्वक खड़ी हो जाओ और कर्कश वचन बोलो, तभी मैं तुम्हारे साथ युद्ध करूँगा; क्योंकि हे मृगशावक-सदृश नेत्रोंवाली! हे रतितुल्य सुन्दरि! सुन्दर दाँतोंवाली ऐसी रमणीको देखकर तुम्हें युद्धमें मारनेके लिये मेरा हाथ नहीं उठ पा रहा है॥ ४३—४५½॥

व्यासजी बोले—हे भरतवंशियोंमें श्रेष्ठ जनमेजय! उस कामातुर शुम्भको ऐसा बोलते हुए देखकर भगवती जगदम्बा मुसकराकर यह वचन कहने लगीं—॥ ४६½॥

देवी बोलीं—हे मन्दबुद्धि! कामबाणसे विमोहित होकर तुम इस प्रकार विषाद क्यों कर रहे हो? हे मूढ! तुम पहले कालिका अथवा चामुण्डाके साथ ही युद्ध कर लो। ये दोनों देवियाँ ही समरांगणमें तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। मैं तो केवल दर्शक बनकर खड़ी हूँ। तुम इन दोनोंपर यथेच्छ प्रहार करो। मैं तुमसे लड़नेकी इच्छा नहीं करती॥ ४७-४८½॥

शुम्भसे ऐसा कहकर भगवतीने मधुर वाणीमें कालिकासे कहा—हे क्रूर कालिके! कुरूपाके साथ लड़नेकी इच्छावाले इस दानवको तुम युद्धमें मार डालो॥ ४९½॥

व्यासजी बोले—भगवतीके इस प्रकार कहनेपर कालरूपिणी कालिका कालसे प्रेरित होकर बड़ी तेजीसे तत्काल गदा उठाकर सावधानीपूर्वक रणमें खड़ी हो गयीं। इसके बाद सभी देवताओं, मुनियों और महात्माओंके देखते-देखते उन दोनोंमें अतीव भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया॥ ५०-५१½॥

गदामुद्यम्य शुम्भोऽथ जघान कालिकां रणे॥ ५२

कालिका दैत्यराजानं गदया न्यहनद् भृशम्।
बभंजास्य रथं चण्डी गदया कनकोज्ज्वलम्॥ ५३

खरान्हत्वा जघानाशु दारुकं दारुणस्वना।
स पदातिर्गदां गुर्वीं समादाय क्रुधान्वितः॥ ५४

कालिकाभुजयोर्मध्ये प्रहसन्नहनत्तदा।
वञ्चयित्वा गदाघातं खड्गमादाय सत्वरा॥ ५५

चिच्छेदास्य भुजं सव्यं सायुधं चन्दनार्चितम्।
स छिन्नबाहुर्विरथो गदापाणिः परिप्लुतः॥ ५६

अचिरेण समागम्य कालिकामहनत्तदा।
काली च करवालेन भुजं तस्याथ दक्षिणम्॥ ५७

चिच्छेद प्रहसन्ती सा सगदं किल साङ्गदम्।
कर्तुं पादप्रहारं स कुपितः प्रययौ जवात्॥ ५८

काली चिच्छेद चरणौ खड्गेनास्य त्वरान्विता।
सच्छिन्नकरपादोऽपि तिष्ठ तिष्ठेति च ब्रुवन्॥ ५९

धावमानो ययावाशु कालिकां भीषयन्निव।
तमागच्छन्तमालोक्य कालिका कमलोपमम्॥ ६०

चकर्त मस्तकं कण्ठाद्रुधिरौघवहं भृशम्।
छिन्नेऽसौ मस्तके भूमौ पपात गिरिसन्निभः॥ ६१

प्राणा विनिर्ययुस्तस्य देहादुत्क्रम्य सत्वरम्।
गतासुं पतितं दैत्यं दृष्ट्वा देवाः सवासवाः॥ ६२
तुष्टुवुस्तां तदा देवीं चामुण्डां कालिकां तथा।

शुम्भने अपनी गदा लेकर उससे कालिकापर प्रहार किया। भगवती कालिका भी अपनी गदासे दैत्यराज शुम्भपर तेज प्रहार करने लगीं। भयानक स्वरवाली चण्डीने गदासे उस दैत्यके सुवर्णमय चमकीले रथको चूर-चूर कर डाला और [शुम्भका रथ खींचनेवाले] गदहोंको मारकर उसके सारथिको भी मार डाला॥ ५२-५३$\frac{१}{२}$ ॥

अब क्रोधमें भरे हुए शुम्भने अपनी विशाल गदा लेकर अट्टहास करते हुए पैदल ही पहुँचकर कालिकाकी दोनों भुजाओंके मध्यभाग (वक्षःस्थल)-पर प्रहार किया॥ ५४$\frac{१}{२}$ ॥

तब कालिकाने उसके गदा-प्रहारको निष्फल करके शीघ्रतापूर्वक तलवार उठाकर शुम्भके चन्दनचर्चित तथा आयुधयुक्त बायें हाथको काट दिया॥ ५५$\frac{१}{२}$ ॥

हाथ कट जाने तथा रथविहीन होनेके बावजूद भी रक्तसे लथपथ वह शुम्भ हाथमें गदा लिये हुए शीघ्रतापूर्वक कालिकाके पास पहुँचकर उनके ऊपर प्रहार करने लगा॥ ५६$\frac{१}{२}$ ॥

तब कालीने अपने करवाल (तलवार)-से उसके गदायुक्त तथा बाजूबन्दसे सुशोभित दाहिने हाथको हँसते-हँसते काट डाला॥ ५७$\frac{१}{२}$ ॥

इसके बाद वह शुम्भ कुपित होकर कालिकापर पैरसे प्रहार करनेके लिये शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ा। तभी कालिकाने अपनी तलवारसे तुरंत उसके दोनों पैर भी काट डाले॥ ५८$\frac{१}{२}$ ॥

हाथ-पैर कट जानेपर भी 'ठहरो-ठहरो' ऐसा कहता हुआ वह शुम्भ कालिकाको भयभीत करते हुए वेगपूर्वक दौड़ता हुआ उनकी ओर बढ़ा॥ ५९$\frac{१}{२}$ ॥

उसे आते देखकर कालिकाने उसके कमलसदृश मस्तकको काट दिया, जिससे उसके कण्ठसे रक्तकी अजस्र धारा बहने लगी। मस्तक कट जानेपर पर्वततुल्य वह शुम्भ जमीनपर गिर पड़ा और उसके प्राण शरीरसे निकलकर तत्काल प्रयाण कर गये॥ ६०-६१$\frac{१}{२}$ ॥

दैत्य शुम्भको इस प्रकार प्राणविहीन होकर गिरा हुआ देखकर इन्द्रसहित सभी देवता भगवती चामुण्डा तथा कालिकाकी स्तुति करने लगे॥ ६२$\frac{१}{२}$ ॥

ववुर्वाताः शिवास्तत्र दिशश्च विमला भृशम्॥ ६३

बभूवुश्चाग्नयो होमे प्रदक्षिणशिखाः शुभाः।
हतशेषाश्च ये दैत्याः प्रणम्य जगदम्बिकाम्॥ ६४

त्यक्त्वायुधानि ते सर्वे पातालं प्रययुर्नृप।
एतत्ते सर्वमाख्यातं देव्याश्चरितमुत्तमम्॥ ६५

शुम्भादीनां वधं चैव सुराणां रक्षणं तथा।
एतदाख्यानकं सर्वं पठन्ति भुवि मानवाः॥ ६६

शृण्वन्ति च सदा भक्त्या ते कृतार्था भवन्ति हि।
अपुत्रो लभते पुत्रान्निर्धनश्च धनं बहु॥ ६७

रोगी च मुच्यते रोगात्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
शत्रुतो न भयं तस्य य इदं चरितं शुभम्।
शृणोति पठते नित्यं मुक्तिभाञ्जायते नरः॥ ६८

सुखदायक पवन बहने लगा तथा सभी दिशाएँ अत्यन्त निर्मल हो गयीं। हवन करते समय [शुभ सूचनाके रूपमें] अग्निकी पवित्र ज्वालाएँ दाहिनी ओरसे उठने लगीं॥ ६३$\frac{१}{२}$॥

हे राजन्! जो दानव मरनेसे बच गये थे, वे सभी जगदम्बिकाको प्रणाम करके अपने-अपने आयुध त्यागकर पाताल चले गये॥ ६४$\frac{१}{२}$॥

देवीका उत्तम चरित्र, शुम्भ आदि दैत्योंका वध तथा देवताओंकी रक्षा—इन सबका वर्णन आपसे कर दिया। पृथ्वीपर रहनेवाले जो मनुष्य इस समस्त आख्यानका भक्तिभावसे निरन्तर पठन तथा श्रवण करते हैं, वे निश्चितरूपसे कृतार्थ हो जाते हैं। पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त होते हैं, निर्धनको विपुल सम्पदा सुलभ हो जाती है तथा रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है। वह सभी वांछित फल प्राप्त कर लेता है और उसे शत्रुओंसे किसी प्रकारका भय नहीं रह जाता है। जो मनुष्य इस पवित्र आख्यानका नित्य पठन तथा श्रवण करता है, वह अन्तमें मोक्षका भागी हो जाता है॥ ६५—६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे
शुम्भवधो नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

देवीमाहात्म्यके प्रसंगमें राजा सुरथ और समाधि वैश्यकी कथा

जनमेजय उवाच

महिमा वर्णितः सम्यक्चण्डिकायास्त्वया मुने।
केन चाराधिता पूर्वं चरित्रत्रययोगतः॥ १

प्रसन्ना कस्य वरदा केन प्राप्तं फलं महत्।
आराध्य कामदां देवीं कथयस्व कृपानिधे॥ २

उपासनाविधिं ब्रह्मंस्तथा पूजाविधिं वद।
विस्तरेण महाभाग होमस्य च विधिं पुनः॥ ३

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने भगवती चण्डिकाकी महिमाका भलीभाँति वर्णन किया। अब आप यह बतानेकी कृपा करें कि तीन चरित्रोंका प्रयोग करके पहले किसने भगवतीकी आराधना की थी?॥ १॥

वे वरदायिनी भगवती किसके ऊपर प्रसन्न हुईं? सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाली देवीकी उपासना करके किसने महान् फल प्राप्त किया? हे कृपानिधान! यह सब बताइये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! हे महाभाग! जगदम्बाकी उपासनाविधि, पूजाविधि तथा हवनविधिका भी विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ ३॥

सूत उवाच

इति भूपवचः श्रुत्वा प्रीतः सत्यवतीसुतः।
प्रत्युवाच नृपं कृष्णो महामायाप्रपूजनम्॥ ४

व्यास उवाच

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं सुरथो नाम पार्थिवः।
बभूव परमोदारः प्रजापालनतत्परः॥ ५

सत्यवादी कर्मपरो ब्राह्मणानाञ्च पूजकः।
गुरुभक्तिरतो नित्यं स्वदारगमने रतः॥ ६

दानशीलोऽविरोधी च धनुर्वेदैकपारगः।
एवं पालयतो राज्यं म्लेच्छाः पर्वतवासिनः॥ ७

बलाच्छत्रुत्वमापन्नाः सैन्यं कृत्वा चतुर्विधम्।
हस्त्यश्वरथपादातिसहितास्ते मदोत्कटाः॥ ८

कोलाविध्वंसिनः प्राप्ताः पृथ्वीग्रहणतत्पराः।
सुरथः सैन्यमादाय सम्मुखः समपद्यत॥ ९

युद्धं समभवद् घोरं तस्य तैरतिदारुणैः।
म्लेच्छानां तु बलं स्वल्पं राज्ञस्तद्बलमद्भुतम्॥ १०

तथापि तैर्जितो युद्धे दैवाद्राजा पराजितः।
भग्नश्च स्वपुरं प्राप्तः सुरक्षं दुर्गमण्डितम्॥ ११

चिन्तयामास मेधावी राजा नीतिविचक्षणः।
प्रधानान्विमना दृष्ट्वा शत्रुपक्षसमाश्रितान्॥ १२

स्थानं गृहीत्वा विपुलं परिखादुर्गमण्डितम्।
कालप्रतीक्षा कर्तव्या किं वा युद्धं वरं मतम्॥ १३

मन्त्रिणः शत्रुवशगा मन्त्रयोग्या न ते किल।
किं करोमीति मनसा भूपतिः समचिन्तयत्॥ १४

कदाचित्ते गृहीत्वा मां पापाचाराः पराश्रिताः।
शत्रुभ्योऽथ प्रदास्यन्ति तदा किं वा भविष्यति॥ १५

पापबुद्धिषु विश्वासो न कर्तव्यः कदाचन।
किन्न ते वै प्रकुर्वन्ति ये लोभवशगा नराः॥ १६
भ्रातरं पितरं मित्रं सुहृदं बान्धवं तथा।

सूतजी बोले—राजाकी यह बात सुनकर सत्यवतीनन्दन कृष्णद्वैपायन प्रसन्न होकर उन्हें महामाया भगवतीका पूजन-विधान बताने लगे॥ ४॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें स्वारोचिष-मन्वन्तरमें सुरथ नामक एक राजा हुए; जो परम उदार, प्रजापालनमें तत्पर, सत्यवादी, कर्मनिष्ठ, ब्राह्मणोंके उपासक, गुरुजनोंके प्रति भक्ति रखनेवाले, सदा अपनी ही भार्यामें अनुरक्त, दानशील, किसीके साथ विरोधभाव न रखनेवाले तथा धनुर्विद्यामें पूर्ण पारंगत थे॥ ५-६½ ॥

इस प्रकार प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले राजा सुरथसे कुछ पर्वतवासी म्लेच्छोंने अनायास ही शत्रुता ठान ली। हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकोंसे सुसज्जित चतुरंगिणी सेना लेकर अभिमानमें चूर वे कोलाविध्वंसी सुरथके राज्यपर अधिकार करनेकी लालसासे वहाँ आ पहुँचे। सुरथ भी अपनी सेना लेकर सामने डट गये। उन महाभयंकर म्लेच्छोंके साथ राजा सुरथका भीषण युद्ध होने लगा॥ ७—९½ ॥

यद्यपि म्लेच्छोंकी सेना बहुत थोड़ी थी तथा राजाकी सेना अत्यन्त विशाल थी, फिर भी दैवयोगसे उन्होंने राजा सुरथको युद्धमें जीत लिया। इस प्रकार उनसे पराजित हुए राजा सुरथ हताश होकर अपने दुर्गवेष्टित सुरक्षित नगरमें आ गये॥ १०-११॥

तत्पश्चात् प्रतिभासम्पन्न तथा नीतिविशारद राजा सुरथ अपने मन्त्रियोंको शत्रुपक्षके अधीन देखकर अत्यन्त खिन्नमनस्क होकर विचार करने लगे कि मैं खाईं तथा किलेसे सुरक्षित किसी बड़े स्थानपर रहकर समयकी प्रतीक्षा करूँ अथवा मेरे लिये युद्ध करना उचित होगा। मेरे मन्त्री शत्रुके वशीभूत हो गये हैं, इसलिये वे अब परामर्श करनेयोग्य नहीं रह गये हैं, तो अब मैं क्या करूँ? वे राजा सुरथ पुनः मन-ही-मन विचार करने लगे। कदाचित् वे पापी तथा शत्रुके साथ मिले हुए मन्त्री मुझे पकड़कर शत्रुओंको सौंप देंगे, तब क्या होगा? पापबुद्धि पुरुषोंपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि जो मनुष्य लोभके वशीभूत होते हैं वे क्या-क्या नहीं कर बैठते? लोभपरायण मनुष्य अपने भाई, पिता, मित्र, सुहृद्,

गुरुं पूज्यं द्विजं द्वेष्टि लोभाविष्टः सदा नरः ॥ १७

तस्मान्मया न कर्तव्यो विश्वासः सर्वथाधुना।
मन्त्रिवर्गेऽतिपापिष्ठे शत्रुपक्षसमाश्रिते ॥ १८

इति सञ्चिन्त्य मनसा राजा परमदुर्मनाः।
एकाकी हयमारुह्य निर्जगाम पुरात्ततः ॥ १९

असहायोऽथ निर्गत्य गहनं वनमाश्रितः।
चिन्तयामास मेधावी क्व गन्तव्यं मया पुनः ॥ २०

योजनत्रयमात्रे तु मुनेराश्रममुत्तमम्।
ज्ञात्वा जगाम भूपालस्तापसस्य सुमेधसः ॥ २१

बहुवृक्षसमायुक्तं नदीपुलिनसंश्रितम्।
निर्वैरश्वापदाकीर्णं कोकिलारावमण्डितम् ॥ २२

शिष्याध्ययनशब्दाढ्यं मृगयूथशतावृतम्।
नीवारान्नसुपक्वाढ्यं सुपुष्पफलपादपम् ॥ २३

होमधूमसुगन्धेन प्रीतिदं प्राणिनां सदा।
वेदध्वनिसमाक्रान्तं स्वर्गादपि मनोहरम् ॥ २४

दृष्ट्वा तमाश्रमं राजा बभूवासौ मुदान्वितः।
भयं त्यक्त्वा मतिं चक्रे विश्रामाय द्विजाश्रमे ॥ २५

आसज्य पादपेऽश्वं तु जगाम विनयान्वितः।
दृष्ट्वा तं मुनिमासीनं सालच्छायासु संश्रितम् ॥ २६

मृगाजिनासनं शान्तं तपसातिकृशं ऋजुम्।
अध्यापयन्तं शिष्यांश्च वेदशास्त्रार्थदर्शिनम् ॥ २७

रहितं क्रोधलोभाद्यैर्द्वन्द्वातीतं विमत्सरम्।
आत्मज्ञानरतं सत्यवादिनं शमसंयुतम् ॥ २८

तं वीक्ष्य भूपतिर्भूमौ पपात दण्डवत्तदा।
तदग्रेऽश्रुजलापूर्णनयनः प्रेमसंयुतः ॥ २९

बन्धु-बान्धव, पूजनीय गुरु तथा ब्राह्मणसे भी सदा द्वेष करता है। अतएव इस समय शत्रुपक्षके आश्रयको प्राप्त अत्यन्त पापपरायण अपने मन्त्रिसमुदायपर मुझे बिलकुल विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ १२—१८ ॥

इस प्रकार अपने मनमें भलीभाँति विचार करके अत्यन्त दुःखीचित्त राजा सुरथ घोड़ेपर आरूढ होकर अकेले ही उस नगरसे निकल पड़े ॥ १९ ॥

वे बिना किसी सहायकको साथ लिये ही नगरसे बाहर निकलकर एक घने जंगलमें चले गये। प्रतिभासम्पन्न राजा सुरथ सोचने लगे कि अब मुझे कहाँ चलना चाहिये? ॥ २० ॥

तपस्वी सुमेधाका पवित्र आश्रम यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है—यह जानकर राजा सुरथ वहाँ चले गये ॥ २१ ॥

बहुत प्रकारके वृक्षोंसे युक्त, नदीके तटपर विराजमान, वैरभावसे रहित होकर विचरण करनेवाले पशुओंसे समन्वित, कोयलोंकी मधुर ध्वनिसे मण्डित, अध्ययनरत शिष्योंके स्वरसे निनादित, सैकड़ों मृगसमूहोंसे घिरे हुए, भलीभाँति पके हुए नीवारान्नसे परिपूर्ण, सुन्दर फल-फूलसे लदे हुए पादपोंसे सुशोभित, होमके सुगन्धित धूमसे प्राणियोंको सदा आनन्दित करनेवाले, निरन्तर वेदध्वनिसे परिव्याप्त तथा स्वर्गसे भी मनोहर उस आश्रमको देखकर वे राजा अत्यन्त आनन्दित हुए और उन्होंने भय त्यागकर मुनिके आश्रममें विश्राम करनेका निश्चय कर लिया ॥ २२—२५ ॥

तत्पश्चात् अपने घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर उन्होंने विनम्रतापूर्वक आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने देखा कि मुनि एक सालवृक्षकी छायामें मृगचर्मके आसनपर बैठे हुए हैं, उनकी आकृति शान्त है, तपस्या करनेके कारण उनका शरीर क्षीण हो गया है, उनका स्वभाव अति कोमल है, वे शिष्योंको पढ़ा रहे हैं, वे वेद-शास्त्रोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् हैं, क्रोध-लोभ आदि विकारोंसे मुक्त हैं, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे परे हैं, ईर्ष्यारहित हैं, आत्मज्ञानके चिन्तनमें संलग्न हैं, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय हैं। उन्हें देखकर अश्रुपूरित नयनोंवाले राजा सुरथ प्रेमपूर्वक उनके आगे दण्डकी भाँति भूतलपर गिर पड़े ॥ २६—२९ ॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तमुवाच तदा मुनिः।
शिष्यो ददौ बृसीं तस्मै गुरुणा नोदितस्तदा॥ ३०

उत्थाय नृपतिस्तस्यां समासीनस्तदाज्ञया।
अर्घ्यपाद्यार्हणं चक्रे सुमेधा विधिपूर्वकम्॥ ३१

पप्रच्छात्र कुतः प्राप्तः कस्त्वं चिन्तापरः कथम्।
कथयस्व यथाकामं संवृतं कारणं त्विह॥ ३२

किमागमनकृत्यं ते ब्रूहि कार्यं मनोगतम्।
करिष्ये वाञ्छितं काममसाध्यमपि यत्तव॥ ३३

राजोवाच

सुरथो नाम राजाहं शत्रुभिश्च पराजितः।
त्यक्त्वा राज्यं गृहं भार्यामहं ते शरणं गतः॥ ३४

यदाज्ञापयसे ब्रह्मंस्तदहं भक्तितत्परः।
करिष्यामि न मे त्राता त्वदन्यः पृथिवीतले॥ ३५

शत्रुभ्यो मे भयं घोरं प्राप्तोऽस्म्यद्य तवान्तिकम्।
त्रायस्व मुनिशार्दूल शरणागतवत्सल॥ ३६

ऋषिरुवाच

निर्भयं वस राजेन्द्र नात्र ते शत्रवः किल।
आगमिष्यन्ति बलिनो निश्चयं तपसो बलात्॥ ३७

नात्र हिंसा प्रकर्तव्या वनवृत्त्या नृपोत्तम।
कर्तव्यं जीवनं शस्तैर्नीवारफलमूलकैः॥ ३८

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा निर्भयः स नृपस्तदा।
उवासाश्रम एवासौ फलमूलाशनः शुचिः॥ ३९

कदाचित्स नृपस्तत्र वृक्षच्छायां समाश्रितः।
चिन्तयामास चिन्तार्तो गृह एव गताशयः॥ ४०

राज्यं मे शत्रुभिः प्राप्तं म्लेच्छैः पापरतैः सदा।
सम्पीडिताः स्युर्लोकास्तैर्दुराचारैर्गतत्रपैः॥ ४१

तब मुनिने उनसे कहा—उठिये-उठिये, आपका कल्याण हो। तत्पश्चात् गुरुसे आदेश पाकर एक शिष्यने उन्हें आसन प्रदान किया॥ ३०॥

तब वे उठकर मुनिसे आज्ञा लेकर उस आसनपर बैठ गये। इसके बाद सुमेधाऋषिने अर्घ्य-पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक सत्कार किया। मुनिने उनसे पूछा कि आप यहाँ कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं तथा चिन्तित क्यों हैं? यहाँ आनेका जो भी कारण हो, उसे आप यथारुचि बतायें। आपके आगमनका प्रयोजन क्या है? आप अपने मनके विचारोंको अवश्य बताइये। आपका कोई असाध्य मनोरथ होगा तो उसे भी मैं पूर्ण करूँगा॥ ३१—३३॥

राजा बोले—मैं सुरथ नामवाला राजा हूँ। शत्रुओंसे पराजित होकर मैं राज्य, महल तथा स्त्री—सब कुछ छोड़कर आपकी शरणमें आया हूँ॥ ३४॥

हे ब्रह्मन्! अब आप मुझे जो भी आज्ञा देंगे, मैं श्रद्धापूर्वक वही करूँगा। इस पृथ्वीतलपर आपके अतिरिक्त अब कोई दूसरा मेरा रक्षक नहीं है॥ ३५॥

हे मुनिराज! हे शरणागतवत्सल! शत्रुओंसे मुझे महान् भय उपस्थित है, अतएव मैं आपके पास आया हूँ; अब आप मेरी रक्षा कीजिये॥ ३६॥

ऋषि बोले—हे राजेन्द्र! आप निर्भीक होकर यहाँ रहिये। यह निश्चित है कि मेरी तपस्याके प्रभावसे आपके पराक्रमी शत्रु यहाँ नहीं आ सकेंगे॥ ३७॥

हे नृपश्रेष्ठ! यहाँपर आपको हिंसा नहीं करनी चाहिये और वनवासियोंकी भाँति पवित्र नीवार तथा फल-मूल आदिके द्वारा जीवन-निर्वाह करना चाहिये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—तब मुनिकी यह बात सुनकर राजा सुरथ निर्भय हो गये। अब वे फल-मूलका आहार करते हुए पवित्रताके साथ उस आश्रममें ही रहने लगे॥ ३९॥

किसी समय उस आश्रममें एक वृक्षकी छायामें बैठे हुए चिन्ताकुल राजा सुरथका चित्त घरकी ओर चला गया और वे सोचने लगे—॥ ४०॥

निरन्तर पापकर्ममें लगे रहनेवाले म्लेच्छ शत्रुओंने मेरा राज्य छीन लिया है। उन दुराचारी तथा निर्लज्ज म्लेच्छोंके द्वारा मेरी प्रजा बहुत सतायी जाती होगी॥ ४१॥

गजाश्च तुरगाः सर्वे दुर्बला भक्ष्यवर्जिताः।
जाताः स्युर्नात्र सन्देहः शत्रुणा परिपीडिताः॥ ४२

सेवका मम सर्वे ते शत्रूणां वशवर्तिनः।
दुःखिता एव जाताः स्युः पालिता ये मया पुरा॥ ४३

धनं मे सुदुराचारैरसद्व्ययपरैः परैः।
द्यूतासवभुजिष्यादिस्थाने स्यात्प्रापितं किल॥ ४४

कोशक्षयं करिष्यन्ति व्यसनैः पापबुद्धयः।
न पात्रदाननिपुणा म्लेच्छास्ते मन्त्रिणोऽपि मे॥ ४५

इति चिन्तापरो राजा वृक्षमूलस्थितो यदा।
तदाजगाम वैश्यस्तु कश्चिदार्तिपरस्तथा॥ ४६

नृपेण पुरतो दृष्टः पार्श्वे तत्रोपवेशितः।
पप्रच्छ तं नृपः कोऽसि कुत एवागतो वनम्॥ ४७

कोऽसि कस्माच्च दीनोऽसि हरिणः शोकपीडितः।
ब्रूहि सत्यं महाभाग मैत्री साप्तपदी मता॥ ४८

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञस्तमुवाच विशोत्तमः।
उपविश्य स्थिरो भूत्वा मत्वा साधुसमागमम्॥ ४९

वैश्य उवाच

मित्राहं वैश्यजातीयः समाधिर्नाम विश्रुतः।
धनवान्धर्मनिपुणः सत्यवागनसूयकः॥ ५०

पुत्रदारैर्निरस्तोऽहं धनलुब्धैरसाधुभिः।
(कृपणेति मिषं कृत्वा त्यक्त्वा मायां सुदुस्त्यजाम्।)
स्वजनेन च संत्यक्तः प्राप्तोऽस्मि वनमाशु वै॥ ५१
कोऽसि त्वं भाग्यवान्भासि कथयस्व प्रियाधुना।

मेरे सभी हाथी तथा घोड़े आहार न पाने तथा शत्रुसे प्रताड़ित किये जानेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे; इसमें तो कोई सन्देह नहीं है॥ ४२॥

अपने जिन सेवकोंका मैंने पहले पालन-पोषण किया था, वे सब शत्रुओंके अधीन हो जानेके कारण कष्टका अनुभव करते होंगे॥ ४३॥

उन अति दुराचारी तथा अपव्यय करनेके स्वभाववाले शत्रुओंने मेरा धन द्यूत, मदिरालय एवं वेश्यालयोंमें निश्चित-रूपसे खर्च कर दिया होगा॥ ४४॥

वे पापबुद्धि मेरा समस्त राजकोष व्यसनोंमें नष्ट कर डालेंगे, सत्पात्रोंको दान देनेकी योग्यता भी उन म्लेच्छोंमें नहीं है और मेरे मन्त्री भी अधीनतामें रहनेके कारण उन्हींके जैसे हो गये होंगे॥ ४५॥

महाराज सुरथ वृक्षके नीचे बैठकर इसी चिन्तामें पड़े हुए थे कि उसी समय एक विषादग्रस्त वैश्य वहाँ आ पहुँचा॥ ४६॥

राजाने उस वैश्यको सामने देख लिया। उन्होंने उसे अपने समीपमें बैठा लिया और पुनः उससे पूछा—आप कौन हैं तथा इस वनमें कहाँसे आये हैं? आप कौन हैं, आप उदास क्यों हैं? चिन्ताग्रस्त रहनेके कारण आप तो पीले वर्णके हो गये हैं? हे महाभाग! सात पग एक साथ चलनेपर ही मैत्री समझ ली जाती है, अतः आप मुझे सब कुछ सच-सच बता दीजिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—राजाका वचन सुनकर वह वैश्यश्रेष्ठ उनके पास बैठ गया और इसे सज्जनसमागम समझकर शान्तचित्त होकर उनसे कहने लगा॥ ४९॥

वैश्य बोला—हे मित्र! मैं वैश्यजातिमें उत्पन्न हूँ और समाधि नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं धनवान्, धर्मकार्योंमें निपुण, सत्यवादी और ईर्ष्यासे रहित हूँ, फिर भी धनके लोभी और कुटिल स्त्री-पुत्रोंने मुझे घरसे निकाल दिया (उन्होंने मुझे कृपण कहकर कठिनाईसे टूटनेवाला माया-बन्धन भी तोड़ दिया), अतः अपने कुटुम्बियोंसे परित्यक्त होकर मैं अभी-अभी इस वनमें आया हूँ। हे प्रिय! आप कौन हैं? मुझे बतायें; आप भाग्यवान् प्रतीत होते हैं॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$॥

राजोवाच

सुरथो नाम राजाहं दस्युभिः पीडितोऽभवम्॥ ५२

प्राप्तोऽस्मि गतराज्योऽत्र मन्त्रिभिः परिवञ्चितः।
दिष्ट्या त्वमत्र मित्रं मे मिलितोऽसि विशोत्तम॥ ५३

सुखेन विहरिष्यावो वनेऽत्र शुभपादपे।
शोकं त्यज महाबुद्धे स्वस्थो भव विशोत्तम॥ ५४
(अत्रैव च यथाकामं सुखं तिष्ठ मया सह।)

वैश्य उवाच

कुटुम्बं मे निरालम्बं मया हीनं सुदुःखितम्।
भविष्यति च चिन्तार्तं व्याधिशोकोपतापितम्॥ ५५

भार्यादेहे सुखं नो वा पुत्रदेहे न वा सुखम्।
इति चिन्तातुरं चेतो न मे शाम्यति भूमिप॥ ५६

कदा द्रक्ष्ये सुतं भार्यां गृहं स्वजनमेव च।
स्वस्थं न मन्मनो राजन् गृहचिन्ताकुलं भृशम्॥ ५७

राजोवाच

यैर्निरस्तोऽसि पुत्राद्यैरसद्वृत्तैः सुबालिशैः।
तान्दृष्ट्वा किं सुखं तेऽद्य भविष्यति महामते॥ ५८

हितकारी वरः शत्रुर्दुःखदाः सुहृदः कुतः।
तस्मात्स्थिरं मनः कृत्वा विहरस्व मया सह॥ ५९

वैश्य उवाच

मनो मे न स्थिरं राजन् भवत्यद्य सुदुःखितम्।
चिन्तयात्र कुटुम्बस्य दुस्त्यजस्य दुरात्मभिः॥ ६०

राजोवाच

ममापि राज्यजं दुःखं दुनोति किल मानसम्।
पृच्छावोऽद्य मुनिं शान्तं शोकनाशनमौषधम्॥ ६१

व्यास उवाच

इति कृत्वा मतिं तौ तु राजा वैश्यश्च जग्मतुः।
मुनिं तौ विनयोपेतौ प्रष्टुं शोकस्य कारणम्॥ ६२

राजा बोले—मैं सुरथ नामका राजा हूँ, मैं दस्युओंसे पीड़ित हूँ। मन्त्रियोंके द्वारा ठगे जानेके कारण राज्यविहीन होकर मैं यहाँ आया हूँ। हे वैश्यश्रेष्ठ! भाग्यवश आप मुझे यहाँ मित्रके रूपमें मिल गये हैं। अब हम दोनों सुन्दर वृक्षोंसे युक्त इस वनमें विहार करेंगे। हे महाबुद्धिमान् वैश्यश्रेष्ठ! चिन्ता छोड़िये और प्रसन्नचित्त होइये (अब आप मेरे साथ यहींपर इच्छानुसार सुखपूर्वक रहिये)॥ ५२—५४॥

वैश्य बोला—मेरा परिवार आश्रयरहित है, मेरे बिना परिवारके लोग अत्यन्त दुःखी होंगे। मेरे बारेमें चिन्ता करते हुए वे रोग तथा शोकसे व्याकुल हो जायँगे॥ ५५॥

हे राजन्! मेरी पत्नी तथा पुत्र शारीरिक सुख पा रहे होंगे अथवा नहीं, इसी चिन्तासे व्याकुल रहनेके कारण मेरा मन शान्त नहीं रह पाता॥ ५६॥

हे राजन्! मैं पुत्र, पत्नी, घर और स्वजनोंको कब देख सकूँगा? गृहकी चिन्तासे अत्यन्त व्याकुल मेरा मन स्वस्थ नहीं हो पाता है॥ ५७॥

राजा बोले—हे महामते! जिन दुराचारी तथा महामूर्ख पुत्र आदिके द्वारा आप घरसे निकाल दिये गये, उन्हें देखकर अब आपको कौन-सा सुख मिलेगा? दुःख देनेवाले सुहृदोंकी अपेक्षा सुख देनेवाला शत्रु श्रेष्ठ है; अतः अपने मनको स्थिर करके आप मेरे साथ आनन्द कीजिये॥ ५८-५९॥

वैश्य बोला—हे राजन्! दुर्जनोंके द्वारा भी अत्यन्त कठिनतासे त्यागे जानेवाले कुटुम्बकी चिन्तासे अत्यन्त दुःखित मेरा मन इस समय स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६०॥

राजा बोले—राज्यसम्बन्धी चिन्ता मेरे मनको भी दुःखी करती रहती है। अतः अब हम दोनों शान्त प्रकृतिवाले मुनिसे शोकके नाशकी औषधि पूछें॥ ६१॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचार करके राजा और वैश्य—दोनों ही अत्यन्त विनम्र होकर शोकका कारण पूछनेके लिये मुनिके पास गये॥ ६२॥

गत्वा तं प्रणिपत्याह राजा ऋषिमनुत्तमम्।
आसीनं सम्यगासीनः शान्तं शान्तिमुपागतः॥ ६३

वहाँ जाकर राजा सुरथ आसन लगाकर शान्त बैठे हुए मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके स्वयं भी सम्यक् रूपसे आसनपर बैठकर शान्तिपूर्वक उनसे कहने लगे॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधि-वैश्ययोर्मुनिसमीपे गमनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिशोऽध्यायः

मुनि सुमेधाका सुरथ और समाधिको देवीकी महिमा बताना

राजोवाच

मुने वैश्योऽयमधुना वने मे मित्रतां गतः।
पुत्रदारैर्निरस्तोऽयं प्राप्तोऽत्र मम सङ्गमम्॥ १

(कुटुम्बविरहेणासौ दुःखितोऽतीव दुर्मनाः।
न शान्तिमुपयात्येष तथापि मम साम्प्रतम्।
गतराज्यस्य दुःखेन शोकार्तोऽस्मि महामते।)
निष्कारणञ्च मे चिन्ता हृदयान्न निवर्तते।
हया मे दुर्बलाः स्युः किं गजाः शत्रुवशं गताः॥ २

भृत्यवर्गस्तथा दुःखी जातः स्यात्तु मया विना।
कोशक्षयं करिष्यन्ति रिपवोऽतिबलात्क्षणात्॥ ३

इत्येवं चिन्तयानस्य न मे निद्रा तनौ सुखम्।
जानामीदं जगन्मिथ्या स्वप्नवत्सर्वमेव हि॥ ४

जानतोऽपि मनो भ्रान्तं न स्थिरं भवति प्रभो।
कोऽहं केऽश्वा गजाः केऽमी न ते मे च सहोदराः॥ ५

न पुत्रा न च मित्राणि येषां दुःखं दुनोति माम्।
भ्रमोऽयमिति जानामि तथापि मम मानसः॥ ६

मोहो नैवापसरति किं तत्कारणमद्भुतम्।
स्वामिंस्त्वमसि सर्वज्ञः सर्वसंशयनाशकृत्॥ ७

कारणं ब्रूहि मोहस्य ममास्य च दयानिधे।

व्यास उवाच

इति पृष्टस्तदा राज्ञा सुमेधा मुनिसत्तमः॥ ८
तमुवाच परं ज्ञानं शोकमोहविनाशनम्।

राजा बोले—हे मुने! ये वैश्य हैं, आज ही वनमें इनसे मेरी मित्रता हुई है। पत्नी और पुत्रोंने इन्हें निकाल दिया है और अब यहाँ इन्हें मेरा साथ प्राप्त हुआ है॥ १॥

(परिवारके वियोगसे ये अत्यन्त दुःखी और विक्षुब्ध हैं; इन्हें शान्ति नहीं मिल पा रही है और इस समय मेरी भी ऐसी ही स्थिति है। हे महामते! राज्य चले जानेके दुःखसे मैं शोकसन्तप्त हूँ।) व्यर्थकी यह चिन्ता मेरे हृदयसे निकल नहीं रही है—मेरे घोड़े दुर्बल हो गये होंगे और हाथी शत्रुओंके अधीन हो गये होंगे। उसी प्रकार सेवकगण भी मेरे बिना दुःखी रहते होंगे। शत्रुगण राजकोशको क्षणभरमें बलपूर्वक रिक्त कर देंगे॥ २-३॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए मुझे न निद्रा आती है और न मेरे शरीरको सुख मिलता है। मैं जानता हूँ कि यह सम्पूर्ण जगत् स्वप्नकी भाँति मिथ्या है, किंतु हे प्रभो! यह जानते हुए भी मेरा भ्रमित मन स्थिर नहीं होता। मैं कौन हूँ? ये हाथी-घोड़े कौन हैं? ये मेरे कोई सगे-सम्बन्धी भी नहीं हैं। न ये मेरे पुत्र हैं, और न मेरे मित्र हैं, जिनका दुःख मुझे पीड़ित कर रहा है। मैं जानता हूँ कि यह भ्रम है, फिर भी मेरे मनसे सम्बन्ध रखनेवाला मोह दूर नहीं होता, यह बड़ा ही अद्भुत कारण है! हे स्वामिन्! आप सर्वज्ञ और सभी संशयोंका नाश करनेवाले हैं, अतः हे दयानिधे! मेरे इस मोहका कारण बतायें॥ ४—७½॥

व्यासजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधा उनसे शोक और मोहका नाश करनेवाले परम ज्ञानका वर्णन करने लगे॥ ८½॥

ऋषिरुवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कारणं बन्धमोक्षयोः॥ ९

महामायेति विख्याता सर्वेषां प्राणिनामिह।
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्तुराषाड् वरुणोऽनिलः॥ १०

सर्वे देवा मनुष्याश्च गन्धर्वोरगराक्षसाः।
वृक्षाश्च विविधा वल्ल्यः पशवो मृगपक्षिणः॥ ११

मायाधीनाश्च ते सर्वे भाजनं बन्धमोक्षयोः।
तया सृष्टमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ १२

तद्वशे वर्तते नूनं मोहजालेन यन्त्रितम्।
त्वं कियान्मानुषेष्वेकः क्षत्रियो रजसाविलः॥ १३

ज्ञानिनामपि चेतांसि मोहयत्यनिशं हि सा।
ब्रह्मेशवासुदेवाद्या ज्ञाने सत्यपि शेषतः॥ १४

तेऽपि रागवशाल्लोके भ्रमन्ति परिमोहिताः।
पुरा सत्ययुगे राजन् विष्णुर्नारायणः स्वयम्॥ १५

श्वेतद्वीपं समासाद्य चकार विपुलं तपः।
वर्षाणामयुतं यावद् ब्रह्मविद्याप्रसक्तये॥ १६

अनश्वरसुखायासौ चिन्तयानस्ततः परम्।
एकस्मिन्निर्जने देशे ब्रह्मापि परमाद्भुते॥ १७

स्थितस्तपसि राजेन्द्र मोहस्य विनिवृत्तये।
कदाचिद्वासुदेवोऽसौ स्थलान्तरमतिर्हरिः॥ १८

तस्माद्देशात्समुत्थाय जगामान्यदिदृक्षया।
चतुर्मुखोऽपि राजेन्द्र तथैव निःसृतः स्थलात्॥ १९

मिलितौ मार्गमध्ये तु चतुर्मुखचतुर्भुजौ।
अन्योन्यं पृष्टवन्तौ तौ कस्त्वं कस्त्वमिति स्म ह॥ २०

ब्रह्मा प्रोवाच तं देवं कर्ताहं जगतः किल।
विष्णुस्तमाह भो मूर्ख जगत्कर्ताहमच्युतः॥ २१

त्वं कियान्बलहीनोऽसि रजोगुणसमाश्रितः।
सत्त्वाश्रितं हि मां विद्धि वासुदेवं सनातनम्॥ २२

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं बताता हूँ। महामायाके नामसे विख्यात वे भगवती ही सभी प्राणियोंके बन्धन और मोक्षकी कारण हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, पवन आदि सभी देवता, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, वृक्ष, विविध लताएँ, पशु, मृग और पक्षी—ये सब मायाके आधीन हैं और बन्धन तथा मोक्षके भाजन हैं। उन महामायाने ही इस जड़-चेतनमय सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है। जब यह जगत् सदा उन्हींके अधीन रहता है और मोहजालमें जकड़ा हुआ है, तब आप किस गणनामें हैं? आप तो मनुष्योंमें रजोगुणसे युक्त एक क्षत्रियमात्र हैं॥ ९—१३॥

वे महामाया ज्ञानियोंकी बुद्धिको भी सदा मोहित किये रहती हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि परम ज्ञानी होते हुए भी रागके वशीभूत होकर व्यामोहमें पड़ जाते हैं और संसारमें चक्कर काटा करते हैं॥ १४½॥

हे राजन्! प्राचीन कालमें स्वयं उन भगवान् नारायणने ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति तथा अविनाशी सुखके लिये श्वेतद्वीपमें जाकर ध्यान करते हुए दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या की थी। हे राजेन्द्र! इसके साथ ही मोहकी निवृत्तिके लिये एक निर्जन प्रदेशमें ब्रह्माजी भी परम अद्भुत तपस्यामें संलग्न हो गये॥ १५—१७½॥

हे राजेन्द्र! किसी समय वासुदेव भगवान् श्रीहरिने दूसरे स्थानपर जानेका विचार किया और वे उस स्थानसे उठकर अन्य स्थलको देखनेकी इच्छासे चल दिये। ब्रह्माजी भी उसी प्रकार अपने स्थानसे निकल पड़े। चतुर्मुख ब्रह्माजी और चतुर्भुज भगवान् विष्णु मार्गमें मिल गये। तब वे दोनों एक-दूसरेसे पूछने लगे—तुम कौन हो, तुम कौन हो?॥ १८—२०॥

ब्रह्माजी भगवान् विष्णुसे बोले—मैं जगत्का स्रष्टा हूँ। तब विष्णुने उनसे कहा—हे मूर्ख! अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाला मैं विष्णु ही जगत्का कर्ता हूँ। तुम कितने शक्तिशाली हो? तुम तो रजोगुणयुक्त और बलहीन हो! मुझे सत्त्वगुणसम्पन्न सनातन नारायण जानो॥ २१-२२॥

मया त्वं रक्षितोऽद्यैव कृत्वा युद्धं सुदारुणम्।
शरणं मे समायातो दानवाभ्यां प्रपीडितः॥ २३
मया तौ निहतौ कामं दानवौ मधुकैटभौ।
कथं गर्वायसे मन्द मोहोऽयं त्यज साम्प्रतम्॥ २४
न मत्तोऽप्यधिकः कश्चित्संसारेऽस्मिन्प्रसारिते।

ऋषिरुवाच

एवं प्रवदमानौ तौ ब्रह्मविष्णू परस्परम्॥ २५
स्फुरदोष्ठौ वेपमानौ लोहिताक्षौ बभूवतुः।
प्रादुर्बभूव सहसा तयोर्विवदमानयोः॥ २६
मध्ये लिङ्गं सुधाश्वेतं विपुलं दीर्घमद्भुतम्।
आकाशे तरसा तत्र वागुवाचाशरीरिणी॥ २७
तौ सम्बोध्य महाभागौ विवदन्तौ परस्परम्।
ब्रह्मन् विष्णो विवादं मा कुरुतां वां परस्परम्॥ २८
लिङ्गस्यास्य परं पारमधस्तादुपरि ध्रुवम्।
यो याति युवयोर्मध्ये स श्रेष्ठो वां सदैव हि॥ २९
एकः प्रयातु पातालमाकाशमपरोऽधुना।
प्रमाणं मे वचः कार्यं त्यक्त्वा वादं निरर्थकम्॥ ३०
मध्यस्थः सर्वदा कार्यो विवादेऽस्मिन्द्वयोरिह।

ऋषिरुवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं दिव्यं सज्जीभूतौ कृतोद्यमौ॥ ३१
जग्मतुर्मातुमग्रस्थं लिङ्गमद्भुतदर्शनम्।
पातालमगमद्विष्णुर्ब्रह्माप्याकाशमेव च॥ ३२
परिमातुं महालिङ्गं स्वमहत्त्वविवृद्धये।
विष्णुर्गत्वा कियद्देशं श्रान्तः सर्वात्मना यतः॥ ३३
न प्रापान्तं स लिङ्गस्य परिवृत्य ययौ स्थलम्।
ब्रह्मागच्छत्ततश्चोर्ध्वं पतितं केतकीदलम्॥ ३४
शिवस्य मस्तकात्प्राप्य परावृत्तो मुदावृतः।
आगत्य तरसा ब्रह्मा विष्णवे केतकीदलम्॥ ३५
दर्शयित्वा च वितथमुवाच मदमोहितः।
लिङ्गस्य मस्तकादेतद् गृहीतं केतकीदलम्॥ ३६
अभिज्ञानाय चानीतं तव चित्तप्रशान्तये।

दोनों दानवों (मधु-कैटभ)-के द्वारा पीड़ित किये जानेपर तुम मेरी ही शरणमें आये थे, उस समय अत्यन्त भीषण युद्ध करके मैंने तुम्हारी रक्षा की। मैंने ही उन मधु-कैटभ दानवोंका वध किया है, अतः हे मन्दबुद्धि! तुम क्यों गर्व करते हो? यह तुम्हारा अज्ञान है, इसका शीघ्र त्याग कर दो; क्योंकि इस सम्पूर्ण संसारमें मुझसे बढ़कर कोई नहीं है॥ २३-२४$\frac{१}{२}$॥

ऋषि बोले—इस प्रकार परस्पर विवाद करते हुए उन दोनों—ब्रह्मा-विष्णुके ओठ फड़कने लगे, वे क्रोधमें काँपने लगे और उनकी आँखें रक्तवर्ण हो गयीं। तभी विवादरत उन दोनोंके मध्य अचानक एक श्वेतवर्ण, अत्यन्त विशाल तथा अद्भुत लिंग प्रकट हो गया। तदनन्तर विवाद करते हुए उन दोनों महानुभावोंको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—हे ब्रह्मन्! हे विष्णो! तुम दोनों परस्पर विवाद मत करो॥ २५—२८॥

इस लिंगके ऊपरी या निचले छोरका आप दोनोंमेंसे जो पता लगा लेगा, आप दोनोंमें वह सदैवके लिये श्रेष्ठ हो जायगा। इसलिये मेरी वाणीको प्रमाण मानकर तथा इस निरर्थक विवादका त्यागकर आपलोगोंमेंसे एक आकाश और दूसरा पातालकी ओर अभी जाय। इस विवादमें आप दोनोंको एक मध्यस्थ भी अवश्य कर लेना चाहिये॥ २९-३०$\frac{१}{२}$॥

ऋषि बोले—उस दिव्य वाणीको सुनकर वे दोनों चेष्टापूर्वक उद्यम करनेके लिये तैयार हो गये और अपने समक्ष स्थित उस देखनेमें अद्भुत लिंगको मापनेके लिये चल पड़े। अपने-अपने महत्त्वकी वृद्धिके लिये उस महालिंगको नापनेहेतु विष्णु पातालकी ओर और ब्रह्मा आकाशकी ओर गये॥ ३१-३२$\frac{१}{२}$॥

कुछ दूरतक जानेपर विष्णु पूर्णरूपसे थक गये। वे लिंगका अन्त नहीं प्राप्त कर सके और तब उसी स्थलपर वापस लौट आये। ब्रह्माजी ऊपरकी ओर गये और शिवके मस्तकसे गिरे हुए केतकी पुष्पको लेकर वे भी प्रसन्न हो लौट आये॥ ३३-३४$\frac{१}{२}$॥

तब अहंकारसे मोहित ब्रह्मा शीघ्रतापूर्वक आकर विष्णुको केतकी पुष्प दिखाकर यह झूठ बोलने लगे कि मैंने यह केतकी पुष्प इस लिंगके मस्तकसे प्राप्त किया है। आपके चित्तकी शान्तिके लिये पहचानचिह्नके रूपमें मैं इसे लेता आया हूँ॥ ३५-३६$\frac{१}{२}$॥

श्रुत्वा तद् ब्रह्मणो वाक्यं दृष्ट्वा च केतकीदलम्॥ ३७

हरिस्तं प्रत्युवाचेदं साक्षी कः कथयाधुना।
यथार्थवादी मेधावी सदाचारः शुचिः समः॥ ३८

साक्षी भवति सर्वत्र विवादे समुपस्थिते।

ब्रह्मोवाच

दूरदेशात्समायाति साक्षी कः समयेऽधुना॥ ३९

यत्सत्यं तद्वचः सेयं केतकी कथयिष्यति।
इत्युक्त्वा प्रेरिता तत्र ब्रह्मणा केतकी स्फुटम्॥ ४०

वचनं प्राह तरसा शार्ङ्गिणं प्रत्यबोधयत्।
शिवमूर्ध्नि स्थितां ब्रह्मा गृहीत्वा मां समागतः॥ ४१

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यस्त्वया विष्णो कदाचन।
मम वाक्यं प्रमाणं हि ब्रह्मा पारङ्गतोऽस्य ह॥ ४२

गृहीत्वा मां समायातः शिवभक्तैः समर्पिताम्।
केतक्या वचनं श्रुत्वा हरिराह स्मयन्निव॥ ४३

महादेवः प्रमाणं मे यद्यसौ वचनं वदेत्।

ऋषिरुवाच

तदाकर्ण्य हरेर्वाक्यं महादेवः सनातनः॥ ४४

कुपितः केतकीं प्राह मिथ्यावादिनि मा वद।
गच्छतो मध्यतः प्राप्ता पतिता मस्तकान्मम॥ ४५

मिथ्याभिभाषिणी त्यक्ता मया त्वं सर्वदैव हि।
ब्रह्मा लज्जापरो भूत्वा ननाम मधुसूदनम्॥ ४६

शिवेन केतकी त्यक्ता तद्दिनात्कुसुमेषु वै।
एवं मायाबलं विद्धि ज्ञानिनामपि मोहदम्॥ ४७

अन्येषां प्राणिनां राजन् का वार्ता विभ्रमं प्रति।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वदैव रमापतिः॥ ४८

ब्रह्माजीके उस वचनको सुनकर और केतकी पुष्पको देखकर विष्णुने उनसे कहा—इसका साक्षी कौन है, बताइये। किसी विवादके उपस्थित होनेपर किसी सत्यवादी, बुद्धिमान्, सदाचारी, पवित्र और निष्पक्ष व्यक्तिको साक्षी बनाया जाता है॥ ३७-३८½॥

ब्रह्माजी बोले—इस समय इतने दूर देशसे कौन साक्षी आयेगा? जो सत्य बात है, उसे यह केतकी स्वयं कह देगी॥ ३९½॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने केतकीको [साक्ष्यके लिये] प्रेरित किया। तब उसने शीघ्रतापूर्वक विष्णुको सम्बोधित करते हुए कहा कि शिव (लिंग)-के मस्तकपर स्थित मुझे ब्रह्माजी वहाँसे लेकर आये हैं। हे विष्णो! इसमें आपको किसी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। ब्रह्माजी इस लिंगके पार गये हैं और शिवभक्तोंके द्वारा समर्पित की गयी मुझको लेकर आये हैं—यह मेरा कथन ही प्रमाण है॥ ४०—४२½॥

केतकीकी बात सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराते हुए बोले कि मेरे लिये तो महादेव ही प्रमाण हैं। यदि वे ऐसी बात बोल दें तो मैं मान लूँगा॥ ४३½॥

ऋषि बोले—तब विष्णुकी बात सुनकर सनातन भगवान् महादेवने क्रुद्ध होकर केतकीसे कहा—असत्यभाषिणि! ऐसा मत बोलो। मेरे मस्तकसे गिरी हुई तुझे ब्रह्मा बीचमें ही पा गये थे। तुमने झूठ बोला है, इसलिये अब मैंने सदैवके लिये तुम्हारा त्याग कर दिया। तब ब्रह्माजीने लज्जित होकर भगवान् विष्णुको नमस्कार किया। उसी दिनसे शिवद्वारा पुष्पोंमेंसे केतकीका त्याग कर दिया गया॥ ४४—४६½॥

हे राजन्! आप यह जान लीजिये कि मायाका बल ज्ञानियोंको भी मोहमें डाल देता है, तब दूसरे प्राणियोंके मोहित हो जानेकी क्या बात? स्वयं देवाधिदेव लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु देवताओंके कार्यकी सिद्धिके लिये पापका भय छोड़कर दैत्योंके साथ छल करते रहते हैं। वे ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् माधव अपने सुख और आनन्दको त्यागकर विविध योनियोंमें अवतार लेकर दैत्योंके साथ युद्ध करते हैं। देवताओंके कार्यहेतु अंशावतार ग्रहण करनेवाले सर्वज्ञ नर

दैत्यान्वञ्चयते चाशु त्यक्त्वा पापभयं हरिः।
अवतारकरो देवो नानायोनिषु माधवः॥ ४९

त्यक्त्वानन्दसुखं दैत्यैर्युद्धं चैवाकरोद्विभुः।
नूनं मायाबलं चैतन्माधवेऽपि जगद्गुरौ॥ ५०

सर्वज्ञे देवकार्यांशे का वार्तान्यस्य भूपते।
ज्ञानिनामपि चेतांसि परमा प्रकृतिः किल॥ ५१

बलादाकृष्य मोहाय प्रयच्छति महीपते।
यया व्याप्तमिदं सर्वं भगवत्या चराचरम्॥ ५२

मोहदा ज्ञानदा सैव बन्धमोक्षप्रदा सदा।

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे तस्याः स्वरूपं बलमुत्तमम्॥ ५३

उत्पत्तिकारणं वापि स्थानं परमकं च यत्।

ऋषिरुवाच

न चोत्पत्तिरनादित्वान्नृप तस्याः कदाचन॥ ५४

नित्यैव सा परा देवी कारणानां च कारणम्।
वर्तते सर्वभूतेषु शक्तिः सर्वात्मना नृप॥ ५५

शववच्छक्तिहीनस्तु प्राणी भवति सर्वथा।
चिच्छक्तिः सर्वभूतेषु रूपं तस्यास्तदेव हि॥ ५६

आविर्भावतिरोभावौ देवानां कार्यसिद्धये।
यदा स्तुवन्ति तां देवा मनुजाश्च विशाम्पते॥ ५७

प्रादुर्भवति भूतानां दुःखनाशाय चाम्बिका।
नानारूपधरा देवी नानाशक्तिसमन्विता॥ ५८

आविर्भवति कार्यार्थं स्वेच्छया परमेश्वरी।
दैवाधीना न सा देवी यथा सर्वे सुरा नृप॥ ५९

न कालवशगा नित्यं पुरुषार्थप्रवर्तिनी।
अकर्ता पुरुषो द्रष्टा दृश्यं सर्वमिदं जगत्॥ ६०

दृश्यस्य जननी सैव देवी सदसदात्मिका।
पुरुषं रञ्जयत्येका कृत्वा ब्रह्माण्डनाटकम्॥ ६१

रञ्जिते पुरुषे सर्वं संहरत्यतिरंहसा।
तया निमित्तभूतास्ते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ६२

जगद्गुरु भगवान् विष्णुमें भी यह मायाशक्ति अपना प्रभाव डालती है, तब हे राजन्! अन्यकी क्या बात! हे राजन्! वे परम प्रकृतिस्वरूपा महामाया ज्ञानियोंके मनको भी बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं, जिन भगवतीके द्वारा स्थावर-जंगमात्मक यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है; वे ही ज्ञानदायिनी, मोहदायिनी तथा बन्धन एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं॥ ४७—५२½ ॥

राजा बोले—हे भगवन्! मुझे उनके स्वरूप, उत्तम बल, उनकी उत्पत्तिका कारण और उनके परम धामके विषयमें बताइये॥ ५३½ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! अनादि होनेके कारण उनकी कभी उत्पत्ति नहीं होती। नित्य और सर्वोपरि वे देवी समस्त कारणोंकी भी कारण हैं। हे नृप! वे शक्तिस्वरूपा भगवती सभी प्राणियोंमें सर्वात्मारूपसे विद्यमान रहती हैं। यदि प्राणी शक्तिसे रहित हो जाय तो वह प्राणी शवतुल्य हो जाता है; क्योंकि सभी प्राणियोंमें जो चैतन्य शक्ति है, वह इन्हींका रूप है। देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये ही उनका प्राकट्य और तिरोधान होता है॥ ५४—५६½ ॥

हे राजन्! जब देवता या मनुष्य उनकी स्तुति करते हैं, तब प्राणियोंके दुःखका नाश करनेके लिये ये भगवती जगदम्बा प्रकट होती हैं, वे देवी परमेश्वरी अनेक रूप धारण करके अनेक प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न होकर कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वेच्छापूर्वक आविर्भूत होती हैं। हे राजन्! अन्य देवताओंकी भाँति वे भगवती दैवके अधीन नहीं हैं। सदा पुरुषार्थका प्रवर्तन करनेवाली वे देवी कालके वशमें नहीं हैं॥ ५७—५९½ ॥

यह सम्पूर्ण जगत् दृश्य है, परमपुरुष इसका द्रष्टा है, वह कर्ता नहीं है। वे सत्-असत्स्वरूपा देवी ही इस दृश्यमान जगत्की जननी हैं, वे स्वयं अकेले इस ब्रह्माण्डकी रचना करके परमपुरुषको आनन्दित करती हैं और उन परमपुरुषका मनोरंजन हो जानेके बाद वे भगवती शीघ्र ही सम्पूर्ण सृष्टि-प्रपंचका संहार भी कर देती हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश तो निमित्तमात्र हैं। वे भगवती ही अपनी लीलासे

कल्पिताः स्वस्वकार्येषु प्रेरिता लीलया त्वमी।
स्वांशं तेषु समारोप्य कृतास्ते बलवत्तराः॥ ६३

दत्ताश्च शक्तयस्तेभ्यो गीर्लक्ष्मीर्गिरिजा तथा।
ते तां ध्यायन्ति देवेशाः पूजयन्ति परां मुदा॥ ६४

ज्ञात्वा सर्वेश्वरीं शक्तिं सृष्टिस्थितिविनाशिनीम्।
एतत्ते सर्वमाख्यातं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
मम बुद्ध्यनुसारेण नान्तं जानामि भूपते॥ ६५

उनकी रचना करती हैं और उन्हें अपने-अपने कार्यों (जगत्‌का सृजन, पालन और संहार)-में प्रवृत्त करती हैं। वे (देवी) उनमें अपने अंश (शक्ति)-का आरोपणकर उन्हें बलवान् बनाती हैं। उन्होंने सरस्वती, लक्ष्मी और पार्वतीके रूपमें उन्हें अपनी शक्तियाँ दी हैं। अतः वे त्रिदेव उन्हीं पराम्बाको सृजन, पालन और संहार करनेवाली जानकर प्रसन्नतापूर्वक उनका ध्यान और पूजन करते हैं॥ ६०—६४$\frac{१}{२}$॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार देवीका यह उत्तम माहात्म्य आपसे कह दिया, मैं इसका अन्त नहीं जानता हूँ॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे देवीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

* * *

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मुनि सुमेधाद्वारा देवीकी पूजा-विधिका वर्णन

राजोवाच

भगवन्ब्रूहि मे सम्यक्तस्या आराधने विधिम्।
पूजाविधिञ्च मन्त्रांश्च तथा होमविधिं वद॥ १

ऋषिरुवाच

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तस्याः पूजाविधिं शुभम्।
कामदं मोक्षदं नृणां ज्ञानदं दुःखनाशनम्॥ २

आदौ स्नानविधिं कृत्वा शुचिः शुक्लाम्बरो नरः।
आचम्य प्रयतः कृत्वा शुभमायतनं निजम्॥ ३

ततोऽवलिप्तभूम्यां तु संस्थाप्यासनमुत्तमम्।
तत्रोपविश्य विधिवत् त्रिराचम्य मुदान्वितः॥ ४

पूजाद्रव्यं सुसंस्थाप्य यथाशक्त्यनुसारतः।
प्राणायामं ततः कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय च॥ ५

कुर्यात्प्राणप्रतिष्ठां तु सम्भारं प्रोक्ष्य मन्त्रतः।
कालज्ञानं ततः कृत्वा न्यासं कुर्याद्यथाविधि॥ ६

राजा बोले—हे भगवन्! अब मुझे उन देवीकी आराधना-विधि भलीभाँति बताइये; साथ ही पूजा-विधि, हवनकी विधि और मन्त्र भी बताइये॥ १॥

ऋषि बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उनके पूजनकी शुभ विधि बताता हूँ, जो मनुष्योंको काम, मोक्ष और ज्ञानको देनेवाली तथा उनके दुःखोंका नाश करनेवाली है॥ २॥

मनुष्यको सर्वप्रथम विधिपूर्वक स्नान करके पवित्र हो श्वेत वस्त्र धारण कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् वह सावधानीपूर्वक आचमन करके पूजा-स्थानको शुद्ध करनेके बाद लिपी हुई भूमिपर उत्तम आसन बिछाकर उसपर बैठ जाय और प्रसन्न होकर विधिपूर्वक तीन बार आचमन करे। अपनी शक्तिके अनुसार पूजाद्रव्यको सुव्यवस्थित ढंगसे रखकर प्राणायाम कर ले, उसके बाद भूतशुद्धि करके और पुनः मन्त्र पढ़कर समस्त पूजन-सामग्रीका प्रोक्षण करके देवीमूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये। तत्पश्चात् देशकालका उच्चारणकर विधिपूर्वक न्यास करना चाहिये॥ ३—६॥

शुभे ताम्रमये पात्रे चन्दनेन सितेन च।
षट्कोणं विलिखेद्यन्त्रं चाष्टकोणं ततो बहिः॥ ७

नवाक्षरस्य मन्त्रस्य बीजानि विलिखेत्ततः।
कृत्वा यन्त्रप्रतिष्ठाञ्च वेदोक्तां संविधाय च॥ ८

अर्चां वा धातवीं कुर्यात्पूजामन्त्रैः शिवोदितैः।
पूजनं पृथिवीपाल भगवत्याः प्रयत्नतः॥ ९

कृत्वा वा विधिवत्पूजामागमोक्तां समाहितः।
जपेन्नवाक्षरं मन्त्रं सततं ध्यानपूर्वकम्॥ १०

होमं दशांशतः कुर्याद्दशांशेन च तर्पणम्।
भोजनं ब्राह्मणानाञ्च तद्दशांशेन कारयेत्॥ ११

चरित्रत्रयपाठञ्च नित्यं कुर्याद्विसर्जयेत्।
नवरात्रव्रतं चैव विधेयं विधिपूर्वकम्॥ १२

आश्विने च तथा चैत्रे शुक्ले पक्षे नराधिप।
नवरात्रोपवासो वै कर्तव्यः शुभमिच्छता॥ १३

होमः सुविपुलः कार्यो जप्यमन्त्रैः सुपायसैः।
शर्कराघृतमिश्रैश्च मधुयुक्तैः सुसंस्कृतैः॥ १४

छागमांसेन वा कार्यो बिल्वपत्रैस्तथा शुभैः।
हयारिकुसुमै रक्तैस्तिलैर्वा शर्करायुतैः॥ १५

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्च विशेषतः।
कर्तव्यं पूजनं देव्या ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्॥ १६

निर्धनो धनमाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते।
अपुत्रो लभते पुत्राञ्छुभांश्च वशवर्तिनः॥ १७

राज्यभ्रष्टो नृपो राज्यं प्राप्नोति सार्वभौमिकम्।
शत्रुभिः पीडितो हन्ति रिपुं मायाप्रसादतः॥ १८

विद्यार्थी पूजनं यस्तु करोति नियतेन्द्रियः।
अनवद्यां शुभां विद्यां विन्दते नात्र संशयः॥ १९

इसके बाद सुन्दर ताम्रपात्रपर श्वेत चन्दनसे षट्कोण यन्त्र तथा उसके बाहर अष्टकोण यन्त्र लिखना चाहिये। तदनन्तर नवाक्षर मन्त्रके आठ बीज अक्षर आठों कोणोंमें लिखना चाहिये और नौवाँ अक्षर यन्त्रकी कर्णिका (बीच)-में लिखना चाहिये। तदनन्तर वेदमें बतायी गयी विधिसे यन्त्रकी प्रतिष्ठा करके अथवा हे राजन्! भगवतीकी धातुमयी प्रतिमा बनाकर शिवतन्त्रोक्त पूजामन्त्रोंसे प्रयत्नपूर्वक पूजन करना चाहिये। अथवा सावधान होकर आगमशास्त्रमें बतायी गयी विधिसे विधानपूर्वक पूजन करके ध्यानपूर्वक नवाक्षरमन्त्रका सतत जप करना चाहिये। जपका दशांश होम करना चाहिये, होमका दशांश तर्पण करना चाहिये और तर्पणका दशांश ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। प्रतिदिन तीनों चरित्रों (प्रथम चरित्र, मध्यम चरित्र तथा उत्तर चरित्र)-का पाठ करना चाहिये। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये॥ ७—११½ ॥

हे राजन्! कल्याण चाहनेवालेको आश्विन और चैत्र माहके शुक्लपक्षमें विधिपूर्वक नवरात्रव्रत करना चाहिये। इन नवरात्रोंमें उपवास भी करना चाहिये॥ १२-१३ ॥

अनुष्ठानमें जपे गये मन्त्रोंके द्वारा शर्करा, घी और मधुमिश्रित पवित्र खीरसे विस्तारपूर्वक हवन करना चाहिये अथवा उत्तम बिल्वपत्रों, लाल कनैलके पुष्पों अथवा शर्करामिश्रित तिलोंसे हवन करना चाहिये। अष्टमी, नवमी एवं चतुर्दशीको विशेषरूपसे देवीपूजन करना चाहिये और इस अवसरपर ब्राह्मणभोजन भी कराना चाहिये। ऐसा करनेसे निर्धनको धनकी प्राप्ति होती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, पुत्रहीन व्यक्ति सुन्दर और आज्ञाकारी पुत्रोंको प्राप्त करता है और राज्यच्युत राजाको सार्वभौम राज्य प्राप्त हो जाता है। देवी महामायाकी कृपासे शत्रुओंसे पीड़ित मनुष्य अपने शत्रुओंका नाश कर देता है। जो विद्यार्थी इन्द्रियोंको वशमें करके इस पूजनको करता है, वह शीघ्र ही पुण्यमयी उत्तम विद्या प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१९ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा भक्तिसंयुतः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं स सर्वसुखभाग्भवेत्॥ २०

नवरात्रव्रतं कुर्यान्नरनारीगणश्च यः।
वाञ्छितं फलमाप्नोति सर्वदा भक्तितत्परः॥ २१

आश्विने शुक्लपक्षे तु नवरात्रव्रतं शुभम्।
करोति भावसंयुक्तः सर्वान्कामानवाप्नुयात्॥ २२

विधिवन्मण्डलं कृत्वा पूजास्थानं प्रकल्पयेत्।
कलशं स्थापयेत्तत्र वेदमन्त्रविधानतः॥ २३

यन्त्रं सुरुचिरं कृत्वा स्थापयेत्कलशोपरि।
वापयित्वा यवांश्चारून्पार्श्वतः परिवर्तितान्॥ २४

कृत्वोपरि वितानञ्च पुष्पमालासमावृतम्।
धूपदीपसुसंयुक्तं कर्तव्यं चण्डिकागृहम्॥ २५

त्रिकालं तत्र कर्तव्या पूजा शक्त्यनुसारतः।
वित्तशाठ्यं न कर्तव्यं चण्डिकायाश्च पूजने॥ २६

धूपैर्दीपैः सुनैवेद्यैः फलपुष्पैरनेकशः।
गीतवाद्यैः स्तोत्रपाठैर्वेदपारायणैस्तथा॥ २७

उत्सवस्तत्र कर्तव्यो नानावादित्रसंयुतैः।
कन्यकानां पूजनञ्च विधेयं विधिपूर्वकम्॥ २८

चन्दनैर्भूषणैर्वस्त्रैर्भक्ष्यैश्च विविधैस्तथा।
सुगन्धतैलमाल्यैश्च मनसो रुचिकारकैः॥ २९

एवं सम्पूजनं कृत्वा होमं मन्त्रविधानतः।
अष्टम्यां वा नवम्यां वा कारयेद्विधिपूर्वकम्॥ ३०

ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्पारणं दशमीदिने।
कर्तव्यं शक्तितो दानं देयं भक्तिपरैर्नृपैः॥ ३१

एवं यः कुरुते भक्त्या नवरात्रव्रतं नरः।
नारी वा सधवा भक्त्या विधवा वा पतिव्रता॥ ३२

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र—जो भी भक्तिपरायण होकर जगज्जननी जगदम्बाकी पूजा करता है, वह सब प्रकारके सुखका भागी हो जाता है। जो स्त्री अथवा पुरुष भक्तितत्पर होकर नवरात्रव्रत करता है, वह सदा मनोवांछित फल प्राप्त करता है॥ २०-२१॥

जो मनुष्य आश्विन शुक्लपक्षमें इस उत्तम नवरात्रव्रतको श्रद्धाभावसे करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं॥ २२॥

विधिपूर्वक मण्डलका निर्माण करके पूजा-स्थानका निर्माण करना चाहिये और वहाँपर विधि-विधानसे वैदिक मन्त्रोंद्वारा कलशकी स्थापना करनी चाहिये॥ २३॥

अत्यन्त सुन्दर यन्त्रका निर्माण करके उसे कलशके ऊपर स्थापित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् कलशके चारों ओर परिष्कृत तथा उत्तम जौका वपन करके पूजा-स्थानके ऊपर पुष्पमालासे अलंकृत चाँदनी लगाकर देवीका मण्डप बनाना चाहिये तथा उसे सदा धूप-दीपसे सम्पन्न रखना चाहिये॥ २४-२५॥

अपनी शक्तिके अनुसार वहाँ [प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल] तीनों समय पूजा करनी चाहिये। देवीकी पूजामें धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये। धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, अनेक प्रकारके फल-पुष्प, गीत, वाद्य, स्तोत्रपाठ तथा वेदपारायण—इनके द्वारा भगवतीकी पूजा होनी चाहिये। नानाविध वाद्य बजाकर उत्सव मनाना चाहिये। इस अवसरपर चन्दन, आभूषण, वस्त्र, विविध प्रकारके व्यंजन, सुगन्धित तेल, हार—मनको प्रसन्न करनेवाले इन पदार्थोंसे विधिपूर्वक कन्याओंका पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन सम्पन्न करके अष्टमी या नवमीको मन्त्रोच्चारपूर्वक विधिवत् हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। इसके बाद दशमीको पारण करना चाहिये। भक्तिनिष्ठ राजाओंको यथाशक्ति दान भी करना चाहिये॥ २६—३१॥

इस प्रकार पुरुष अथवा पतिव्रता सधवा या विधवा स्त्री जो कोई भी भक्तिपूर्वक नवरात्रव्रत करता है, वह इस लोकमें सुख तथा मनोभिलषित

इह लोके सुखं भोगान्प्राप्नोति मनसेप्सितान्।
देहान्ते परमं स्थानं प्राप्नोति व्रततत्परः॥ ३३

जन्मान्तरेऽम्बिकाभक्तिर्भवत्यव्यभिचारिणी।
जन्मोत्तमकुले प्राप्य सदाचारो भवेद्धि सः॥ ३४

नवरात्रव्रतं प्रोक्तं व्रतानामुत्तमं व्रतम्।
आराधनं शिवायास्तु सर्वसौख्यकरं परम्॥ ३५

अनेन विधिना राजन् समाराधय चण्डिकाम्।
जित्वा रिपूनस्खलितं राज्यं प्राप्स्यस्यनुत्तमम्॥ ३६

सुखञ्च परमं भूप देहेऽस्मिन्स्वगृहे पुनः।
पुत्रदारान्समासाद्य लप्स्यसे नात्र संशयः॥ ३७

वैश्योत्तम त्वमेवाद्य समाराधय कामदाम्।
देवीं विश्वेश्वरीं मायां सृष्टिसंहारकारिणीम्॥ ३८

स्वजनानां च मान्यस्त्वं भविष्यसि गृहे गतः।
सुखं सांसारिकं प्राप्य यथाभिलषितं पुनः॥ ३९

देवीलोके शुभे वासो भविता ते न संशयः।
नाराधिता भगवती यैस्ते नरकभागिनः॥ ४०

इह लोकेऽतिदुःखार्ता नानारोगैः प्रपीडिताः।
भवन्ति मानवा राजञ्छत्रुभिश्च पराजिताः॥ ४१

निष्कलत्रा ह्यपुत्राश्च तृष्णार्ताः स्तब्धबुद्धयः।
बिल्वीदलैः करवीरैः शतपत्रैश्च चम्पकैः॥ ४२

अर्चिता जगतां धात्री यैस्तेऽतीव विलासिनः।
भवन्ति कृतपुण्यास्ते शक्तिभक्तिपरायणाः॥ ४३

धनविभवसुखाढ्या मानवा मानवन्तः
सकलगुणगणानां भाजनं भारतीशाः।
निगमपठितमन्त्रैः पूजिता यैर्भवानी
नृपतितिलकमुख्यास्ते भवन्तीह लोके॥ ४४

भोगोंको प्राप्त करता है और वह व्रतपरायण व्यक्ति देह-त्याग होनेपर परम दिव्य देवीलोकको प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

उसे जन्मान्तरमें देवी जगदम्बाकी अविचल भक्ति प्राप्त होती है और उत्तम कुलमें जन्म पाकर वह स्वभावतः सदाचारी होता है॥ ३४॥

नवरात्रव्रतको व्रतोंमें उत्तम व्रत कहा गया है; भगवती शिवाका आराधन सब प्रकारके उत्तम सुखको देनेवाला है॥ ३५॥

हे राजन्! इस विधिसे भगवती चण्डिकाकी आराधना कीजिये, इससे शत्रुओंको जीतकर आप अपना उत्तम राज्य पुनः प्राप्त कर लेंगे और हे भूप! अपनी स्त्री-पुत्र आदि स्वजनोंको प्राप्तकर आप अपने भवनमें परम उत्तम सुखका इसी शरीरसे उपभोग करेंगे; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६-३७॥

हे वैश्यश्रेष्ठ! आप भी आजसे समस्त कामनाओंको देनेवाली, सृष्टि और संहारकी कारणभूता विश्वेश्वरी देवी महामायाकी आराधना कीजिये। इससे आप अपने घर जानेपर अपने लोगोंमें मान्य हो जायँगे और मनोभिलषित सांसारिक सुख प्राप्त करके अन्तमें शुभ देवीलोकमें वास करेंगे—इसमें सन्देह नहीं है॥ ३८-३९½॥

हे राजन्! जो मनुष्य भगवतीकी आराधना नहीं करते, वे नरकके भागी होते हैं। वे इस लोकमें अत्यन्त दुःखी, विविध व्याधियोंसे पीड़ित, शत्रुओंद्वारा पराजित, स्त्री-पुत्रसे हीन, तृष्णाग्रस्त और बुद्धिभ्रष्ट होते हैं॥ ४०-४१½॥

बिल्वपत्रोंसे तथा कनैल, कमल और चम्पाके फूलोंसे जो जगज्जननीकी आराधना करते हैं, शक्तिस्वरूपा भगवतीकी भक्तिमें रत वे पुण्यशाली लोग विविध प्रकारके सुख प्राप्त करते हैं॥ ४२-४३॥

[हे नृपश्रेष्ठ!] जो लोग वेदोक्त मन्त्रोंसे भवानीका पूजन करते हैं, वे मानव इस संसारमें सब प्रकारके धन, वैभव तथा सुखसे परिपूर्ण, समस्त गुणोंके आगार, माननीय, विद्वान् और राजाओंके शिरोमणि होते हैं॥ ४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे भगवत्याः
पूजाराधनविधिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

* * *

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

सुरथ और समाधिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवतीका प्रकट होना और उन्हें इच्छित वरदान देना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दुःखितौ वैश्यपार्थिवौ।
प्रणिपत्य मुनिं प्रीत्या प्रश्रयावनतौ भृशम्॥ १

हर्षेणोत्फुल्लनयनावूचतुर्वाक्यकोविदौ।
कृताञ्जलिपुटौ शान्तौ भक्तिप्रवणचेतसौ॥ २

भगवन्पावितावद्य शान्तौ दीनौ शुचान्वितौ।
तव सूक्तसरस्वत्या गङ्गयेव भगीरथः॥ ३

साधवः सम्भवन्तीह परोपकृतितत्पराः।
अकृत्रिमगुणारामाः सुखदाः सर्वदेहिनाम्॥ ४

पूर्वपुण्यप्रसङ्गेन प्राप्तोऽयमाश्रमः शुभः।
तवावाभ्यां महाभाग महादुःखविनाशकः॥ ५

भवन्ति मानवा भूमौ बहवः स्वार्थतत्पराः।
परार्थसाधने दक्षाः केचित्क्वापि भवादृशाः॥ ६

दुःखितोऽहं मुनिश्रेष्ठ वैश्योऽयं चातिदुःखितः।
उभौ संसारसन्तप्तौ तवाश्रमपदे मुदा॥ ७

दर्शनादेव हे विद्वन् गतं दुःखमिहावयोः।
देहजं मानसं वाक्यश्रवणादेव साम्प्रतम्॥ ८

धन्यावावां कृतकृत्यौ जातौ सूक्तिसुधारसात्।
पावितौ भवता ब्रह्मन् कृपया करुणार्णव॥ ९

गृहाणास्मत्करौ साधो नय पारं भवार्णवे।
मग्नौ श्रान्ताविति ज्ञात्वा मन्त्रदानेन साम्प्रतम्॥ १०

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर दुःखित हृदयवाले वैश्य और राजाने प्रसन्नतापूर्वक विनम्रभावसे मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया। भक्तिपरायण चित्तवाले, शान्त स्वभाववाले तथा हर्षके कारण खिले हुए नेत्रोंवाले वे दोनों वाक्य-विशारद राजा और वैश्य हाथ जोड़कर कहने लगे॥ १-२॥

हे भगवन्! हम दोनों दुःखी जनोंको आपकी सूक्तिरूपिणी वाणीने उसी प्रकार शान्त तथा पवित्र कर दिया, जैसे गंगाने राजा भगीरथको कर दिया था॥ ३॥

सज्जन लोग परोपकारपरायण, स्वाभाविक रूपसे गुणोंके भण्डार और सभी प्राणियोंको सुख देनेवाले होते हैं। पूर्वजन्मोंके पुण्यके कारण ही महान् दुःखका नाश करनेवाले आपके इस शुभ आश्रममें हम दोनोंका आना हुआ। पृथ्वीपर बहुत-से स्वार्थी मनुष्य होते हैं, परंतु दूसरोंके हित-साधनमें कुशल आप-जैसे कुछ ही लोग कहीं-कहीं मिलते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं दुःखी हूँ और ये वैश्य अत्यन्त दुःखी हैं। हम दोनों इस संसारसे पीड़ित हैं। हे विद्वन्! आपके इस आश्रममें आकर प्रसन्नतापूर्वक आपके दर्शन और उपदेश-श्रवणसे हमारा शारीरिक तथा मानसिक क्लेश दूर हो गया॥ ४—८॥

हे ब्रह्मन्! आपकी अमृतमयी वाणीके रससे हम दोनों धन्य और कृतकृत्य हो गये। हे करुणासागर! आपने अपनी कृपासे हम दोनोंको पवित्र कर दिया॥ ९॥

हे साधो! हम दोनों थककर इस संसाररूपी महासागरमें डूब रहे हैं—यह जानकर अब आप हम दोनोंका हाथ पकड़िये और मन्त्रदान देकर भवसागरसे पार कर दीजिये॥ १०॥

तपः कृत्वातिविपुलं समाराध्य सुखप्रदाम्।
सम्प्राप्य दर्शनं भूयो यास्यावो निजमन्दिरम्॥ ११

वदनात्तव सम्प्राप्य देवीमन्त्रं नवाक्षरम्।
स्मरणञ्च करिष्यावो निराहारौ धृतव्रतौ॥ १२

व्यास उवाच

इति संचोदितस्ताभ्यां सुमेधा मुनिसत्तमः।
ददौ मन्त्रं शुभं ताभ्यां ध्यानबीजपुरःसरम्॥ १३

तौ च प्राप्य मुनेर्मन्त्रं सम्मन्त्र्य गुरुदैवतौ।
जग्मतुर्वैश्यराजानौ नदीतीरमनुत्तमम्॥ १४

एकान्ते विजने स्थाने कृत्वासनपरिग्रहम्।
उपविष्टौ स्थिरप्रज्ञौ तावतीव कृशोदरौ॥ १५

मन्त्रजाप्यरतौ शान्तौ चरित्रत्रयपाठकौ।
निन्यतुर्मासमेकं तु तत्र ध्यानपरायणौ॥ १६

तयोर्मासव्रतेनैव जाता प्रीतिरनुत्तमा।
पादाम्बुजे भवान्यास्तु स्थिरा बुद्धिस्तथाप्यलम्॥ १७

कदाचित्पादयोर्गत्वा मुनेस्तस्य महात्मनः।
कृतप्रणामावागत्य तस्थतुश्च कुशासने॥ १८

नान्यकार्यपरौ क्वापि बभूवतुः कदाचन।
देवीध्यानपरौ नित्यं जपमन्त्ररतौ सदा॥ १९

एवं जाते तदा पूर्णे तत्र संवत्सरे नृप।
बभूवतुः फलाहारं त्यक्त्वा पर्णाशनौ नृप॥ २०

वर्षमेकं तपस्तत्र चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ।
शुष्कपर्णाशनौ दान्तौ जपध्यानपरायणौ॥ २१

पूर्णे वर्षद्वये जाते कदाचिद्दर्शनञ्च तौ।
प्रापतुः स्वप्नमध्ये तु भगवत्या मनोहरम्॥ २२

रक्ताम्बरधरां देवीं चारुभूषणभूषिताम्।
कदाचिन्नृपतिः स्वप्नेऽप्यपश्यज्जगदम्बिकाम्॥ २३

अब अत्यन्त कठोर तपस्या करके हम दोनों सुख प्रदान करनेवाली जगदम्बाका आराधन करके उनका दर्शन प्राप्तकर अपने-अपने घरोंको वापस जायँगे॥ ११॥

आपके मुखसे देवीका नवाक्षरमन्त्र ग्रहण करके हम दोनों निराहार रहकर व्रत करेंगे और उस मन्त्रका जप करेंगे॥ १२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार उन दोनोंके आग्रह करनेपर मुनिश्रेष्ठ सुमेधाने उन्हें ध्यान-बीजसहित देवीका मंगलकारी नवाक्षरमन्त्र प्रदान किया॥ १३॥

वे दोनों वैश्य और राजा मुनिसे मन्त्र और उसके ऋषि, छंद, देवताका ज्ञान प्राप्त करके तथा उनसे आज्ञा लेकर नदीके अत्युत्तम तटपर चले गये॥ १४॥

अत्यन्त कृशकाय वे दोनों एकान्तमें निर्जन स्थानपर आसन लगाकर स्थिरचित्त होकर बैठ गये॥ १५॥

उन दोनोंने शान्तचित्त तथा ध्यानपरायण होकर मन्त्रजप और भगवतीके तीनों चरित्रोंका पाठ करते हुए एक मासका समय व्यतीत कर दिया॥ १६॥

उनके एक मासके व्रतसे ही उनमें भगवती भवानीके चरणकमलमें उत्तम प्रीति उत्पन्न हो गयी और उनकी बुद्धि स्थिर हो गयी॥ १७॥

वे दोनों नित्य जाकर एक बार महात्मा [सुमेधा] मुनिके चरणोंमें प्रणाम करते थे और वहाँसे लौटकर फिर अपने कुशासनपर बैठ जाते थे। वे दोनों अन्य कोई भी कार्य नहीं करते थे और सदैव देवीके ध्यान तथा मन्त्रजपमें संलग्न रहते थे॥ १८-१९॥

हे राजन्! इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण होनेपर वे फलाहारका त्याग करके पत्तेके आहारपर रहने लगे। हे नृप! उन दोनों—वैश्य और राजाने एक वर्षतक सूखे पत्ते खाकर इन्द्रियोंको वशमें करके जप और ध्यानमें रत रहते हुए तप किया॥ २०-२१॥

इस प्रकार दो वर्ष व्यतीत होनेपर उन दोनोंको किसी समय स्वप्नमें भगवतीका मनोहारी दर्शन प्राप्त हुआ। राजाने स्वप्नमें देवी जगदम्बिकाको लाल वस्त्र धारण किये हुए तथा सुन्दर आभूषणोंसे अलंकृत देखा॥ २२-२३॥

वीक्ष्य स्वप्ने च तौ देवीं प्रीतियुक्तौ बभूवतुः।
जलाहारैस्तृतीये तु स्थितौ संवत्सरे तु तौ॥ २४

एवं वर्षत्रयं कृत्वा ततस्तौ वैश्यपार्थिवौ।
चक्रतुस्तौ तदा चिन्तां चित्ते दर्शनलालसौ॥ २५

प्रत्यक्षं दर्शनं देव्या न प्राप्तं शान्तिदं नृणाम्।
देहत्यागं करिष्यावो दुःखितौ भृशमातुरौ॥ २६

इति सञ्चिन्त्य मनसा राजा कुण्डं चकार ह।
त्रिकोणं सुस्थिरं सौम्यं हस्तमात्रप्रमाणतः॥ २७

संस्थाप्य पावकं राजा तथा वैश्योऽतिभक्तिमान्।
जुहावासौ निजं मांसं छित्त्वा छित्त्वा पुनः पुनः॥ २८

तथा वैश्योऽपि दीप्तेऽग्नौ स्वमांसं प्राक्षिपत्तदा।
रुधिरेण बलिं चास्यै ददतुस्तौ कृतोद्यमौ॥ २९

तदा भगवती दत्त्वा प्रत्यक्षं दर्शनं तयोः।
प्राह प्रीतिभरोद्भ्रान्तौ दृष्ट्वा तौ दुःखितौ भृशम्॥ ३०

देव्युवाच

वरं वरय भो राजन् यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
तुष्टाहं तपसा तेऽद्य भक्तोऽसि त्वं मतो मम॥ ३१

वैश्यं प्राह तदा देवी प्रसन्नाहं महामते।
किं तेऽभीष्टं ददाम्यद्य प्रार्थयाशु मनोगतम्॥ ३२

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा तामुवाच मुदान्वितः।
देहि मेऽद्य निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥ ३३

तमुवाच तदा देवी गच्छ राजन् निजं गृहम्।
शत्रवः क्षीणसत्त्वास्ते गमिष्यन्ति पराजिताः॥ ३४

मन्त्रिणस्ते समागम्य ते पतिष्यन्ति पादयोः।
कुरु राज्यं महाभाग नगरे स्वं यथासुखम्॥ ३५

स्वप्नमें देवीका दर्शन प्राप्तकर दोनों प्रेमभावसे परिपूर्ण हो गये। अब वे दोनों तीसरे वर्षमें मात्र जलके आहारपर रहने लगे॥ २४॥

इस प्रकार तीन वर्षतक तपस्या करनेके पश्चात् वे दोनों—राजा और वैश्य मनमें देवीके साक्षात् दर्शनकी लालसासे चिन्तित हो उठे॥ २५॥

अत्यन्त दुःखी तथा व्याकुल होकर उन दोनोंने निश्चय किया कि मनुष्योंको शान्ति प्रदान करनेवाली देवीका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं प्राप्त हुआ, अतः अब हम शरीरका त्याग कर देंगे॥ २६॥

ऐसा मनमें विचारकर राजाने एक हाथ प्रमाणका त्रिभुजाकार, सुन्दर तथा सुस्थिर अग्निकुण्ड बनाया। उसमें अग्निकी स्थापना करके राजा अपना मांस काट-काटकर बार-बार हवन करने लगे। साथ ही अत्यन्त भक्तिमान् वह वैश्य भी प्रदीप्त अग्निमें अपना मांस डालने लगा। तत्पश्चात् वे दोनों जब अपने रुधिरसे इन देवीको बलि देनेके लिये उद्यत हुए तब भगवती उन दोनोंको प्रेम-भक्तिमें तन्मय और अत्यन्त दुःखी देखकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन देकर उनसे कहने लगीं— ॥ २७—३०॥

देवी बोलीं—हे राजन्! अपना मनोभिलषित वर माँगो, मैं आज तुम्हारी तपस्यासे सन्तुष्ट हूँ। अब मैंने समझ लिया कि तुम मेरे भक्त हो। उसके बाद देवीने वैश्यसे कहा—हे महामते! मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा अभीष्ट क्या है? तुम्हारे मनमें जो भी हो माँग लो, मैं उसे दूँगी॥ ३१-३२॥

व्यासजी बोले—उनके इस वचनको सुनकर प्रसन्न मनवाले राजाने उनसे कहा कि बलपूर्वक मैं शत्रुओंका नाशकर अपना राज्य प्राप्त करूँ—मुझे आज यह वरदान दीजिये॥ ३३॥

तब देवीने उनसे कहा—हे राजन्! अपने घरको जाओ, तुम्हारे शत्रु शीघ्र ही क्षीण बलवाले होकर पराजित हो जायँगे। हे महाभाग! तुम्हारे मन्त्रिगण आकर तुम्हारे पैरोंपर गिरेंगे। अब आप अपने नगरमें सुखपूर्वक राज्य करें। हे राजन्! अपने विस्तृत

कृत्वा राज्यं सुविपुलं वर्षाणामयुतं नृप।
देहान्ते जन्म सम्प्राप्य सूर्याच्च भविता मनुः॥ ३६

व्यास उवाच

वैश्यस्तामप्युवाचेदं कृताञ्जलिपुटः शुचिः।
न मे गृहेण कार्यं वै न पुत्रेण धनेन वा॥ ३७
सर्वं बन्धकरं मातः स्वप्नवन्नश्वरं स्फुटम्।
ज्ञानं मे देहि विशदं मोक्षदं बन्धनाशनम्॥ ३८
असारेऽस्मिंश्च संसारे मूढा मज्जन्ति पामराः।
पण्डिताः सन्तरन्तीह तस्मान्नेच्छन्ति संसृतिम्॥ ३९

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य महामाया वैश्यं प्राह पुरःस्थितम्।
वैश्यवर्य तव ज्ञानं भविष्यति न संशयः॥ ४०
इति दत्त्वा वरं ताभ्यां तत्रैवान्तरधीयत।
अदर्शनं गतायां तु राजा तं मुनिसत्तमम्॥ ४१
प्रणम्य हयमारुह्य गमनाय मनो दधे।
तदैव तस्य सचिवास्तत्रागत्य नृपं प्रजाः॥ ४२
प्रणेमुर्विनयोपेतास्तमूचुः प्राञ्जलिस्थिताः।
राजंस्ते शत्रवः सर्वे पापाच्च निहता रणे॥ ४३
राज्यं निष्कण्टकं भूप कुरुष्व पुरमास्थितः।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा नत्वा तं मुनिसत्तमम्॥ ४४
आपृच्छ्य निर्ययौ तत्र मन्त्रिभिः परिवारितः।
सम्प्राप्य च निजं राज्यं दारान्स्वजनबान्धवान्॥ ४५
बुभुजे पृथिवीं सर्वां ततः सागरमेखलाम्।
वैश्योऽपि ज्ञानमासाद्य मुक्तसङ्गः समन्ततः॥ ४६
कालातिवाहनं तत्र मुक्तबन्धश्चकार ह।
तीर्थेषु विचरन्गायन्भगवत्या गुणानथ॥ ४७
एतत्ते कथितं देव्याश्चरितं परमाद्भुतम्।
आराधनफलप्राप्तिर्यथावद्भूपवैश्ययोः॥ ४८
दैत्यानां हननं प्रोक्तं प्रादुर्भावस्तथा शुभः।
एवंप्रभावा सा देवी भक्तानामभयप्रदा॥ ४९

साम्राज्यका दस हजार वर्षोंतक शासन करके देहत्यागके बाद सूर्यसे जन्म प्राप्त करके तुम [सावर्णि] मनु होओगे॥ ३४—३६॥

व्यासजी बोले—शुद्धहृदय वैश्यने हाथ जोड़कर कहा—अब मुझे न घरकी आवश्यकता है, न धनकी और न पुत्रकी ही। हे माता! ये सभी बन्धनमें डालनेवाले और स्वप्नकी भाँति नश्वर हैं, अतः आप मुझे बन्धनका नाश करनेवाला और मोक्ष देनेवाला दिव्य ज्ञान प्रदान करें। इस असार संसारमें अज्ञानी डूब जाते हैं और ज्ञानी पार उतर जाते हैं, इसलिये वे संसारकी इच्छा नहीं करते॥ ३७—३९॥

व्यासजी बोले—तब अपने समक्ष खड़े वैश्यकी बात सुनकर देवी महामायाने कहा—हे वैश्यश्रेष्ठ! तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०॥

इस प्रकार उन दोनोंको वरदान देकर देवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। तब भगवतीके अन्तर्धान हो जानेपर राजा सुरथने उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके घोड़ेपर चढ़कर चलनेका निश्चय किया, तभी उनके प्रजाजनों और मन्त्रिगणोंने वहाँ आकर प्रणाम किया; वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये तथा विनम्र होकर राजासे कहने लगे—हे राजन्! आपके शत्रुगण अपने पापके कारण युद्धमें मारे गये। हे भूप! अब आप अपने नगरमें निवास करके निष्कण्टक राज्य कीजिये॥ ४१—४३$\frac{१}{२}$॥

उनकी बात सुनकर राजा मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके उनसे आज्ञा लेकर मन्त्रियोंके साथ चल दिये। वे अपने राज्य, स्त्री और बन्धु-बान्धवोंको पाकर समुद्रपर्यन्त सम्पूर्ण पृथ्वीका राज्य भोगने लगे॥ ४४-४५$\frac{१}{२}$॥

वैश्य भी ज्ञान प्राप्त करके सर्वथा आसक्तिरहित और बन्धनसे मुक्त होकर तीर्थोंमें भ्रमण करता हुआ तथा भगवतीके गुणोंका गान करता हुआ समय व्यतीत करने लगा॥ ४६-४७॥

इस प्रकार देवीकी परम अद्भुत लीला तथा राजा और वैश्यद्वारा की गयी उनकी आराधना एवं फलप्राप्तिको मैंने यथार्थ रूपसे आपसे कहा। देवीके शुभ आविर्भाव और उनके द्वारा दैत्योंके विनाशकी कथा भी मैंने आपसे कही। भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाली वे भगवती ऐसे प्रभाववाली हैं!॥ ४८-४९॥

यः शृणोति नरो नित्यमेतदाख्यानमुत्तमम्।
सम्प्राप्नोति नरः सत्यं संसासुखमद्भुतम्॥ ५०

ज्ञानदं मोक्षदं चैव कीर्तिदं सुखदं तथा।
पावनं श्रवणान्नूनमेतदाख्यानमद्भुतम्॥ ५१

अखिलार्थप्रदं नृणां सर्वधर्मसमावृतम्।
धर्मार्थकाममोक्षाणां कारणं परमं मतम्॥ ५२

सूत उवाच

जनमेजयेन राज्ञासौ पृष्टः सत्यवतीसुतः।
उवाच संहितां दिव्यां व्यासः सर्वार्थतत्त्ववित्॥ ५३

चरितं चण्डिकायास्तु शुम्भदैत्यवधाश्रितम्।
कथयामास भगवान्कृष्णः कारुणिको मुनिः।
इति वः कथितः सारः पुराणानां मुनीश्वराः॥ ५४

जो मनुष्य उनके इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह संसारमें अद्भुत सुख प्राप्त करता है, यह सत्य है। इस पवित्र और अद्भुत आख्यानका श्रवण करनेसे यह ज्ञान, मोक्ष, कीर्ति और सुख प्रदान करता है। यह मनुष्योंकी सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा समस्त धर्मोंका सार और धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिका परम कारण बताया गया है॥ ५०—५२॥

सूतजी बोले—राजा जनमेजयके पूछनेपर सभी अर्थ-तत्त्वोंको जाननेवाले सत्यवतीपुत्र व्यासने उनसे यह दिव्य देवीभागवतसंहिता कही। परम दयालु भगवान् कृष्णद्वैपायन मुनि व्यासने शुम्भदैत्यके वधकी कथापर आधारित देवी चण्डिकाके चरित्रका वर्णन किया था। हे मुनीश्वरो! समस्त पुराणोंका सारस्वरूप यह इतिहास मैंने आपलोगोंसे कह दिया॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे सुरथराजसमाधिवैश्ययोर्देवीभक्त्येष्टप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

* * *

॥ पंचमः स्कन्धः समाप्तः॥

श्रुतिस्मृती तु नेत्रे द्वे पुराणं हृदयं स्मृतम्। श्रुतिस्मृतिभ्यां हीनोऽन्धः काणः स्यादेकया विना॥
पुराणहीनाद्धृच्छून्यात् काणान्धावपि तौ वरौ। श्रुतिस्मृत्युदितो धर्मः पुराणे परिगीयते॥
यस्य धर्मेऽस्ति जिज्ञासा यस्य पापाद्भयं महत्। श्रोतव्यानि पुराणानि धर्ममूलानि तेन वै॥
चतुर्दशसु विद्यासु पुराणं दीप उत्तमः। अन्धोऽपि न तदालोकात् संसाराब्धौ क्वचित् पतेत्॥

विद्वानोंके श्रुति-स्मृति—ये दो नेत्र हैं और पुराण हृदय है। इनमेंसे जिसे श्रुति-स्मृतिमेंसे किसी एकका ज्ञान नहीं है; वह काना, दोनोंके ज्ञानसे हीन अन्धा है, किंतु जो पुराणरूपी विद्यासे हीन है वह तो हृदयहीन या शून्य होनेके कारण इन दोनोंसे भी निकृष्ट है। श्रुति तथा स्मृतियोंमें कहा गया धर्म पुराणमें प्रतिपादित है। जिसकी धर्ममें जिज्ञासा या रुचि हो, जो पापोंसे डरता हो, उसे पुराणोंका श्रवण करना चाहिये; क्योंकि वे ही धर्मके मूल हैं। चौदहों विद्याओंमें पुराण-विद्या ही उत्तम दीपक है। इसके आलोक—प्रकाशमें स्थित अन्धा भी संसार-सागरमें कभी नहीं गिरता।

[स्कन्दपु० का० २। ९६-९७, ९९-१००]

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

षष्ठः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

त्रिशिराकी तपस्यासे चिन्तित इन्द्रद्वारा तपभंगहेतु अप्सराओंको भेजना

ऋषय ऊचुः

सूत सूत महाभाग मिष्टं ते वचनामृतम्।
न तृप्ताः स्मो वयं पीत्वा द्वैपायनकृतं शुभम्॥ १

पुनस्त्वां प्रष्टुमिच्छामः कथां पौराणिकीं शुभाम्।
वेदेऽपि कथितां रम्यां प्रसिद्धां पापनाशिनीम्॥ २

वृत्रासुर इति ख्यातो वीर्यवांस्त्वष्टुरात्मजः।
स कथं निहतः संख्ये वासवेन महात्मना॥ ३

त्वष्टा वै सुरपक्षीयस्तत्पुत्रो बलवत्तरः।
शक्रेण घातितः कस्माद् ब्रह्मयोनिर्महाबलः॥ ४

देवाः सत्त्वगुणोत्पन्ना मानुषा राजसाः स्मृताः।
तिर्यञ्चस्तामसाः प्रोक्ताः पुराणागमवादिभिः॥ ५

विरोधोऽत्र महान् भाति नूनं शतमखेन ह।
छलेन बलवान् वृत्रः शक्रेण विनिपातितः॥ ६

विष्णुः प्रेरयिता तत्र स तु सत्त्वधरः परः।
प्रविष्टः पविमध्ये स छद्मना भगवान् प्रभुः॥ ७

सन्धिं विधाय स ह्येवं मन्त्रितोऽसौ महाबलः।
हरिभ्यां सत्यमुत्सृज्य जलफेनेन शातितः॥ ८

कृतमिन्द्रेण हरिणा किमेतत्सूत साहसम्।
महान्तोऽपि च मोहेन वञ्चिताः पापबुद्धयः॥ ९

ऋषिगण बोले—हे महाभाग सूतजी! आपकी वाणीरूपी अत्यन्त मधुर सुधाका पान करके अभी हम सन्तृप्त नहीं हुए हैं। कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने जिस उत्तम श्रीमद्देवीभागवत-महापुराणका प्रणयन किया है; उस पुराणकी मंगलमयी, वेदवर्णित, मनोहर, प्रसिद्ध और पापोंका नाश करनेवाली कथाको हम आपसे पुनः पूछना चाहते हैं॥ १-२॥

त्वष्टाका वृत्रासुर नामसे विख्यात पराक्रमी पुत्र महात्मा इन्द्रके द्वारा क्यों मारा गया? त्वष्टा तो देवपक्षके थे और उनका पुत्र अत्यन्त बलवान् था, ब्राह्मणवंशमें उत्पन्न उस महाबलीका इन्द्रके द्वारा क्यों वध किया गया? पुराणों और शास्त्रोंके तत्त्वज्ञलोगोंने देवताओंको सत्त्वगुणसे, मनुष्योंको रजोगुणसे और पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंको तमोगुणसे उत्पन्न कहा है, परंतु यहाँ तो महान् विरोध प्रतीत होता है कि बलवान् वृत्रासुर सौ यज्ञोंके कर्ता इन्द्रके द्वारा छलपूर्वक मारा गया और इसके लिये भगवान् विष्णुद्वारा प्रेरणा दी गयी जो कि स्वयं महान् सत्त्वगुणी हैं तथा वे परम प्रभु छलपूर्वक वज्रमें प्रविष्ट हुए! सन्धि करके उस महाबली वृत्रको पहले आश्वस्त कर दिया गया, किंतु पुनः विष्णु और इन्द्रने सत्य (सन्धिकी बात)-को छोड़कर जलके फेनसे उसे मार डाला!॥ ३—८॥

हे सूतजी! इन्द्र और विष्णुके द्वारा ऐसा दुःसाहस क्यों किया गया? महान् लोग भी मोहमें फँसकर पापबुद्धि हो जाते हैं॥ ९॥

अन्यायवर्तिनोऽत्यर्थं भवन्ति सुरसत्तमाः।
सदाचारेण युक्तेन देवाः शिष्टत्वमागताः॥ १०
एवं विशिष्टधर्मेण शिष्टत्वं कीदृशं पुनः।
हत्वा वृत्रं तु विश्वस्तं शक्रेण छद्मना पुनः॥ ११
प्राप्तं पापफलं नो वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम्।
किं च त्वया पुरा प्रोक्तं वृत्रासुरवधः कृतः॥ १२
श्रीदेव्या इति तच्चापि चित्तं मोहयतीह नः।

सूत उवाच

शृण्वन्तु मुनयो वृत्तं वृत्रासुरवधाश्रयम्॥ १३
यथेन्द्रेण च सम्प्राप्तं दुःखं हत्यासमुद्भवम्।
एवमेव पुरा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः॥ १४
पारीक्षितेन राज्ञापि स यदाह च तद् ब्रुवे।

जनमेजय उवाच

कथं वृत्रासुरः पूर्वं हतो मघवता मुने॥ १५
सहायं विष्णुमासाद्य छद्मना सात्त्विकेन ह।
कथं च देव्या निहतो दैत्योऽसौ केन हेतुना॥ १६
कथमेकवधो द्वाभ्यां कृतः स्यान्मुनिपुङ्गव।
तदेतच्छ्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे॥ १७
महतां चरितं शृण्वन् को विरज्येत मानवः।
कथयाम्बावैभवं त्वं वृत्रासुरवधाश्रितम्॥ १८

व्यास उवाच

धन्योऽसि राजंस्तव बुद्धिरीदृशी
जाता पुराणश्रवणेऽतिसादरा।
पीत्वामृतं देववरास्तु सर्वथा
पाने वितृष्णाः प्रभवन्ति वै पुनः॥ १९
दिने दिने तेऽधिकभक्तिभावः
कथासु राजन् महनीयकीर्तेः।
श्रोता यदैकप्रवणः शृणोति
वक्ता तदा प्रीतमना ब्रवीति॥ २०
युद्धं पुरा वासववृत्रयोर्यद्
वेदे प्रसिद्धं च तथा पुराणे।
दुःखं सुरेन्द्रेण तथैव लब्धं
हत्वा रिपुं त्वाष्ट्रमपापमेव॥ २१

श्रेष्ठ देवगण भी घोर अन्याय-मार्गके अनुगामी हो जाते हैं, जबकि सदाचारके कारण ही देवताओंको विशिष्टता प्राप्त है॥ १०॥

इन्द्रके द्वारा विश्वासमें लेकर वृत्रासुरकी हत्या कर दी गयी—ऐसे विशिष्ट धर्मके द्वारा उनका सदाचार कहाँ रह गया? उन्हें इस ब्रह्महत्या-जनित पापका फल मिला या नहीं? आपने पहले कहा था कि वृत्रासुरका वध स्वयं देवीने ही किया था—इससे हमारा चित्त और भी मोहमें पड़ गया है॥ ११-१२½ ॥

सूतजी बोले—हे मुनिगण! वृत्रासुरके वधसे सम्बन्धित और उस हत्यासे इन्द्रको प्राप्त महान् दुःखकी कथा सुनें। ऐसा ही पूर्वकालमें परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयने सत्यवतीनन्दन व्यासजीसे पूछा था; तब उन्होंने जो कहा, उसे मैं कहता हूँ॥ १३-१४½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुने! सत्त्वगुणसे सम्पन्न इन्द्रने भगवान् विष्णुकी सहायता लेकर वृत्रासुरको पूर्वकालमें छलपूर्वक क्यों मारा? देवीके द्वारा उस दैत्यका क्यों और किस प्रकार वध किया गया? हे मुनिश्रेष्ठ! एक व्यक्तिका दो लोगोंके द्वारा कैसे वध किया गया—इसे मैं सुनना चाहता हूँ; मुझे महान् कौतूहल है॥ १५—१७॥

कौन मनुष्य महापुरुषोंके चरित्रको सुननेसे विरत होगा। अतः आप वृत्रासुरके वधपर आधारित जगदम्बाके माहात्म्यको कहिये॥ १८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! आप धन्य हैं, जो कि आपकी इस प्रकारकी बुद्धि पुराणश्रवणमें अत्यन्त आदरपूर्वक लगी हुई है। श्रेष्ठ देवगण अमृतका पान करके पूर्ण तृप्त हो जाते हैं, परंतु आप इस कथामृतका बार-बार पान करके भी अतृप्त ही हैं। हे राजन्! महान् कीर्तिवाले आपका भक्तिभाव कथाओंमें दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है। श्रोता जब एकाग्रमनसे सुनता है तब वक्ता भी प्रसन्नमनसे कथा कहता है॥ १९-२०॥

पूर्वकालमें इन्द्र तथा वृत्रासुरका जो युद्ध हुआ था और निरपराध शत्रु वृत्रासुरका वध करके देवराज इन्द्रको जो दुःख प्राप्त हुआ था, वह वेद और पुराणमें प्रसिद्ध है॥ २१॥

चित्रं किमत्र नृपते हरिवज्रभृद्भ्यां
यच्छद्मना विनिहतस्त्रिशिरोऽथ वृत्रः।
मायाबलेन मुनयोऽपि विमोहितास्ते
चक्रुश्च निन्द्यमनिशं किल पापभीताः॥ २२

विष्णुः सदैव कपटेन जघान दैत्यान्
सत्त्वात्ममूर्तिरपि मोहमवाप्य कामम्।
कोऽन्योऽस्ति तां भगवतीं मनसापि जेतुं
शक्तः समस्तजनमोहकरीं भवानीम्॥ २३

मत्स्यादियोनिषु सहस्त्रयुगेषु सद्यः
साक्षाद्भवत्यपि यया विनियोजितोऽत्र।
नारायणो नरसखो भगवाननन्तः
कार्यं करोति विहिताविहितं कदाचित्॥ २४

देहं धनं गृहमिदं स्वजना मदीयं
पुत्राः कलत्रमिति मोहमुपेत्य सर्वः।
पुण्यं करोत्यथ च पापचयं करोति
मायागुणैरतिबलैर्विकलीकृतो यत्॥ २५

न जातु मोहं क्षपितुं नरः क्षमः
कश्चिद्भवेद्भूप परावरार्थवित्।
विमोहितस्तैस्त्रिभिरेव मूलतो
वशीकृतात्मा जगतीतले भृशम्॥ २६

अथ तौ मायया विष्णुवासवौ मोहितौ भृशम्।
जघ्नतुश्छद्मना वृत्रं स्वार्थसाधनतत्परौ॥ २७

तदहं सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तान्तमवनीपते।
कारणं पूर्ववैरस्य वृत्रवासवयोर्मिथः॥ २८

त्वष्टा प्रजापतिर्ह्यासीद्देवश्रेष्ठो महातपाः।
देवानां कार्यकर्ता च निपुणो ब्राह्मणप्रियः॥ २९

स पुत्रं वै त्रिशिरसमिन्द्रद्वेषात्किलासृजत्।
विश्वरूपेति विख्यातं नाम्ना रूपेण मोहनम्॥ ३०

जब मायाके बलसे मुनिगण भी मोहमें पड़ जाते हैं और वे पापभीरु होकर निरन्तर निन्दनीय कर्म करने लग जाते हैं तब हे राजन्! विष्णु और वज्रधारी इन्द्रने छलसे त्रिशिरा और वृत्रासुरका वध कर दिया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?॥ २२॥

सत्त्वगुणके मूर्तिमान् विग्रह होते हुए भी भगवान् विष्णुने जिनकी मायासे मोहित होकर सदैव छलपूर्वक दैत्योंका संहार किया तब भला ऐसा कौन प्राणी होगा जो सब लोगोंको मोहमें डाल देनेवाली उन भगवती भवानीको अपने मनोबलसे जीतनेमें सक्षम हो सके!॥ २३॥

भगवतीकी ही प्रेरणासे नरऋषिके सखा नारायण भगवान् अनन्त हजारों युगोंमें मत्स्यादि योनियोंमें अवतार लेते हैं और कभी अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल कार्य करते हैं॥ २४॥

यह मेरा शरीर है, यह मेरा धन है, यह मेरा घर है, ये मेरे स्त्री-पुत्र और बन्धु-बान्धव हैं—इस मोहमें पड़कर सभी प्राणी पुण्य तथा पापकर्म करते रहते हैं; क्योंकि अत्यन्त बलशाली मायागुणोंसे वे मोहित कर दिये गये हैं॥ २५॥

हे राजन्! इस पृथ्वीपर कार्य और कारणका विज्ञ कोई भी व्यक्ति [उन जगदम्बाकी मायाके] मोहसे छुटकारा नहीं पा सकता; क्योंकि भगवती महामायाके तीनों गुणोंसे मोहित होकर वह पूर्णरूपसे सदा उनके अधीन रहता है॥ २६॥

इसलिये [उन्हीं देवीकी] मायासे मोहित होकर अपना स्वार्थ साधनेमें तत्पर रहनेवाले विष्णु और इन्द्रने छलपूर्वक वृत्रासुरको मार डाला। हे पृथ्वीपते! अब मैं वृत्रासुर और इन्द्रके पारस्परिक पूर्ववैरके कारणकी कथा बताता हूँ॥ २७-२८॥

देवताओंमें श्रेष्ठ त्वष्टा नामके एक प्रजापति थे। वे महान् तपस्वी, देवताओंका कार्य करनेवाले, अति कुशल तथा ब्राह्मणोंके प्रिय थे॥ २९॥

उन्होंने इन्द्रसे द्वेषके कारण तीन मस्तकोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न किया, जो विश्वरूप नामसे विख्यात हुआ। वह परम मनोहर रूपवाला था॥ ३०॥

त्रिभिः स वदनैः श्रेष्ठैर्व्यरोचत मनोहरैः।
त्रिभिर्भिन्नानि कार्याणि मुखैः समकरोन्मुनिः॥ ३१

वेदानेकेन सोऽधीते सुरां चैकेन सोऽपिबत्।
तृतीयेन दिशः सर्वा युगपच्च निरीक्षते॥ ३२

त्रिशिरा भोगमुत्सृज्य तपश्चक्रे सुदुष्करम्।
तपस्वी स मृदुर्दान्तो धर्ममेव समाश्रितः॥ ३३

पञ्चाग्निसाधनं काले पादपाग्रे निवेशनम्।
जलमध्ये निवासं च हेमन्ते शिशिरे तथा॥ ३४

निराहारो जितात्मासौ त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
तपश्चचार मेधावी दुष्करं मन्दबुद्धिभिः॥ ३५

तं च दृष्ट्वा तपस्यन्तं खेदमाप शचीपतिः।
विषादमगमत्तत्र शक्रोऽयं मास्मभूदिति॥ ३६

दृष्ट्वा तस्य तपो वीर्यं सत्यं चामिततेजसः।
चिन्तां च महतीं प्राप ह्यनिशं पाकशासनः॥ ३७

विवर्धमानस्त्रिशिरा मामयं शातयिष्यति।
नोपेक्ष्यः सर्वथा शत्रुर्वर्धमानबलो बुधैः॥ ३८

तस्मादुपायः कर्तव्यस्तपोनाशाय साम्प्रतम्।
कामस्तु तपसां शत्रुः कामान्नश्यति वै तपः॥ ३९

तथैवाद्य प्रकर्तव्यं भोगासक्तो भवेद्यथा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा बुद्धिमान्बलमर्दनः॥ ४०

आज्ञापयत्सोऽप्सरसस्त्वाष्ट्रपुत्रप्रलोभने।
उर्वशीं मेनकां रम्भां घृताचीं च तिलोत्तमाम्॥ ४१

समाहूयाब्रवीच्छक्रस्तास्तदा रूपगर्विताः।
प्रियं कुरुध्वं मे सर्वाः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥ ४२

यत्तो मेऽद्य महाञ्छत्रुस्तपस्तपति दुर्जयः।
कार्यं कुरुत गच्छध्वं प्रलोभयत माचिरम्॥ ४३

अपने तीन श्रेष्ठ तथा मनोहर मुखोंके कारण वह अत्यन्त शोभासम्पन्न दिखायी देता था। वह मुनि अपने तीन मुखोंसे तीन भिन्न-भिन्न कार्य करता था। वह एक मुखसे वेदाध्ययन करता था, एक मुखसे मधुपान करता था और तीसरे मुखसे सब दिशाओंका एक साथ निरीक्षण करता था॥ ३१-३२॥

वह त्रिशिरा भोगका त्याग करके मृदु, संयमी और धर्मपरायण तपस्वी होकर अत्यन्त कठोर तप करने लगा॥ ३३॥

ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापते, वृक्षकी डालीमें पैरके बल अधोमुख लटके रहते एवं हेमन्त और शिशिर ऋतुमें जलमें स्थित रहते थे। सब कुछ त्याग करके जितेन्द्रिय भावसे निराहार रहकर उस बुद्धिमान् [त्रिशिरा]-ने मन्दबुद्धि प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुष्कर तपस्या आरम्भ कर दी॥ ३४-३५॥

उसको तप करते देखकर शचीपति इन्द्र दुःखित हुए। उन्हें यह विषाद हुआ कि कहीं यह इन्द्र न बन जाय॥ ३६॥

उस अत्यन्त तेजस्वी [विश्वरूप]-का तप, पराक्रम और सत्य देखकर इन्द्र निरन्तर इस प्रकार चिन्तित रहने लगे—उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त होता हुआ यह त्रिशिरा मुझे ही समाप्त कर देगा, इसीलिये बुद्धिमानोंने कहा है कि बढ़ते हुए पराक्रमवाले शत्रुकी कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इसके तपके नाशका उपाय इसी समय करना चाहिये। कामदेव तपस्वियोंका शत्रु है, कामसे ही तपका नाश होता है। अतः मुझे वैसा ही करना चाहिये, जिससे यह भोगोंमें आसक्त हो जाय॥ ३७—३९½॥

ऐसा मनमें विचारकर बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले उन बुद्धिमान् इन्द्रने त्वष्टाके पुत्र त्रिशिराको प्रलोभनमें डालनेके लिये अप्सराओंको आज्ञा दी। उन्होंने उर्वशी, मेनका, रम्भा, घृताची, तिलोत्तमा आदिको बुलाकर कहा—अपने रूपपर गर्व करनेवाली हे अप्सराओ! आज मेरा कार्य आ पड़ा है, तुम सब मेरे उस प्रिय कार्यको सम्पन्न करो॥ ४०—४२॥

मेरा एक महान् दुर्धर्ष शत्रु संयत होकर तपस्या कर रहा है। शीघ्र ही उसके पास जाओ और उसे प्रलोभित करो; इस प्रकार शीघ्र ही मेरा कार्य करो॥ ४३॥

शृङ्गारवेषैर्विविधैर्हावैर्देहसमुद्भवैः ।
प्रलोभयत भद्रं वः शमयध्वं ज्वरं मम॥ ४४

अस्वस्थोऽहं महाभागास्तस्य ज्ञात्वा तपोबलम्।
बलवानासनं मेऽद्य ग्रहीष्यत्यविलम्बितः॥ ४५

भयं मे समुपायातं क्षिप्रं नाशयताबलाः।
उपकुर्वन्तु सहिताः कार्येऽद्य समुपस्थिते॥ ४६

तच्छ्रुत्वा वचनं नार्य ऊचुस्तं प्रणताः पुरः।
मा भयं कुरु देवेश यतिष्यामः प्रलोभने॥ ४७

यथा न स्याद्भयं तस्मात्तथा कार्यं महाद्युते।
नृत्यगीतविहारैश्च मुनेस्तस्य प्रलोभने॥ ४८

कटाक्षैरङ्गभेदैश्च मोहयित्वा मुनिं विभो।
लोलुपं वशमस्माकं करिष्यामो नियन्त्रितम्॥ ४९

व्यास उवाच

इत्याभाष्य हरिं नार्यो ययुस्त्रिशिरसोऽन्तिकम्।
कुर्वन्त्यो विविधान्भावान्कामशास्त्रोचितानपि॥ ५०

गायन्त्यस्तालभेदैस्ता नृत्यन्त्यः पुरतो मुनेः।
तं प्रलोभयितुं चक्रुर्नानाभावान्वराङ्गनाः॥ ५१

नापश्यत्स तपोराशिरङ्गनानां विडम्बनम्।
इन्द्रियाणि वशे कृत्वा मूकान्धबधिरः स्थितः॥ ५२

दिनानि कतिचित्तस्थुर्नार्यस्तस्याश्रमे वरे।
कुर्वन्त्यो गाननृत्यादिप्रपञ्चानतिमोहदान्॥ ५३

न चचाल यदा कामं ध्यानाच्च त्रिशिरा मुनिः।
परावृत्य तदा देव्यः पुनः शक्रमुपस्थिताः॥ ५४

कृताञ्जलिपुटाः सर्वा देवराजमथाब्रुवन्।
श्रान्ता दीना भयत्रस्ता विवर्णवदना भृशम्॥ ५५

अनेक प्रकारके शृंगार-वेषों तथा शरीरके हाव-भावोंसे उसे प्रलोभित करो और मेरे मानसिक सन्तापको शान्त करो; तुमलोगोंका कल्याण हो॥ ४४॥

हे महाभागा अप्सराओ! उसके तपोबलको जानकर मैं व्याकुल हो गया हूँ, वह बलवान् शीघ्र ही मेरा पद छीन लेगा॥ ४५॥

हे अबलाओ! मेरे सामने यह भय आ गया है, तुमलोग शीघ्र ही इसका नाश कर दो। इस कार्यके आ पड़नेपर तुम सब मिलकर आज मेरा उपकार करो॥ ४६॥

उनके इस वचनको सुनकर नारियों (अप्सराओं)-ने उन्हें नमन करते हुए कहा—हे देवराज! आप भय न करें, हम उसे प्रलोभनमें डालनेका प्रयत्न करेंगी॥ ४७॥

हे महातेजस्विन्! जिस प्रकारसे आपको भय न हो, हम वैसा ही करेंगी। उस मुनिको लुभानेके लिये हम नृत्य, गीत और विहार करेंगी। हे विभो! कटाक्षों और अंगोंकी विविध भंगिमाओंसे मुनिको मोहित करके उन्हें लोलुप, अपने वशीभूत तथा नियन्त्रणमें कर लेंगी॥ ४८-४९॥

व्यासजी बोले—इन्द्रसे ऐसा कहकर वे अप्सराएँ त्रिशिराके समीप गयीं और कामशास्त्रमें कहे गये विभिन्न प्रकारके हाव-भावका प्रदर्शन करने लगीं॥ ५०॥

वे अप्सराएँ मुनिके सम्मुख अनेक प्रकारके तालोंमें गाती और नाचती हुई उन्हें मोहित करनेके लिये विविध प्रकारके हाव-भाव करती थीं॥ ५१॥

किंतु उन तपस्वीने अप्सराओंकी चेष्टाको देखातक नहीं और इन्द्रियोंको वशमें करके वे गूँगे, अन्धे और बहरेकी तरह बैठे रहे॥ ५२॥

वे अप्सराएँ गान, नृत्य आदि मोहित करनेवाले प्रपंच करती हुई कुछ दिनोंतक उनके श्रेष्ठ आश्रममें रहीं॥ ५३॥

जब उनकी कामचेष्टाओंसे मुनि त्रिशिराका ध्यान विचलित नहीं हुआ, तब वे अप्सराएँ पुनः लौटकर इन्द्रके सम्मुख उपस्थित हुईं॥ ५४॥

अत्यन्त थकी हुई, दीन अवस्थावाली, भयभीत और उदास मुखवाली उन सबने हाथ जोड़कर देवराजसे इस प्रकार कहा—॥ ५५॥

देवदेव महाराज यत्नश्च परमः कृतः।
न स शक्यो दुराधर्षो धैर्याच्चालयितुं विभो॥ ५६

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यः सर्वथा पाकशासन।
नास्माकं बलमेतस्मिंस्तापसे विजितेन्द्रिये॥ ५७

दिष्ट्या वयं न शप्ताः स्म यदनेन महात्मना।
मुनिना वह्नितुल्येन तपसा द्योतितेन हि॥ ५८

विसृज्याप्सरसः शक्रश्चिन्तयामास मन्दधीः।
तस्यैव च वधोपायं पापबुद्धिरसाम्प्रतम्॥ ५९

विसृज्य लोकलज्जां स तथा पापभयं भृशम्।
चकार पापबुद्धिं तु तद्वधाय महीपते॥ ६०

हे देवदेव! हे महाराज! हे विभो! हमने महान् प्रयत्न किया, परंतु हम उस दुर्धर्ष मुनिको धैर्यसे विचलित करनेमें समर्थ नहीं हो पायीं॥ ५६॥

हे पाकशासन! आपको कोई दूसरा ही उपाय करना चाहिये, उन जितेन्द्रिय तपस्वीपर हमारा कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता॥ ५७॥

हमारा बड़ा भाग्य है कि तपस्यासे अग्निके समान प्रकाशित होनेवाले उन महात्मा मुनिने हमें शाप नहीं दिया॥ ५८॥

अप्सराओंको विदा करके क्षुद्रबुद्धि तथा पापबुद्धि इन्द्र उसके ही वधका अनुचित उपाय सोचने लगे॥ ५९॥

हे राजन्! लोक-लज्जा और महान् पापके भयको छोड़कर उन्होंने उसके वधके लिये अपनी बुद्धिको पापमय बना दिया॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
त्रिशिरसस्तपोभङ्गाय देवराजेन्द्रद्वारा नानोपायचिन्तनवर्णनं
नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा त्रिशिराका वध, क्रुद्ध त्वष्टाद्वारा अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे हवन करके वृत्रासुरको उत्पन्न करना और उसे इन्द्रके वधके लिये प्रेरित करना

व्यास उवाच

अथ स लोभमुपेत्य सुराधिपः
समधिगम्य गजासनसंस्थितः।
त्रिशिरसं प्रति दुष्टमतिस्तदा
मुनिमपश्यदमेयपराक्रमम्॥ १
तमभिवीक्ष्य दृढासनसंस्थितं
जितगिरं सुसमाधिवशं गतम्।
रविविभावसुसन्निभमोजसा
सुरपतिः परमापदमभ्यगात्॥ २
कथमसौ विनिहन्तुमहो मया
मुनिरपापमतिः किल सम्मतः।
रिपुरयं सुसमिद्धतपोबलः
कथमुपेक्ष्य इहासनकामुकः॥ ३

व्यासजी बोले—इस प्रकार लोभके वशीभूत होकर पापबुद्धि देवराज इन्द्रने ऐरावत हाथीपर सवार हो त्रिशिराके पास जाकर उस अमेय पराक्रमवाले मुनिको देखा॥ १॥

उसे दृढ़ आसनपर बैठे, वाणीको वशमें किये, पूर्ण समाधिमें स्थित और सूर्य तथा अग्निके समान तेजस्वी देखकर देवराज इन्द्र बहुत दुःखित हुए॥ २॥

यह मुनि निष्पापबुद्धि है; इसे मारनेमें मैं कैसे समर्थ हो सकूँगा? तपोबलसे अत्यन्त समृद्ध तथा मेरा आसन प्राप्त करनेकी इच्छावाले इस शत्रुकी उपेक्षा भी कैसे करूँ—ऐसा सोचकर देवसंघके

इति विचिन्त्य पविं परमायुधं
प्रति मुमोच मुनिं तपसि स्थितम्।
शशिदिवाकरसन्निभमाशुगं
त्रिशिरसं सुरसङ्घपतिः स्वयम्॥ ४
तदभिघातहतः स धरातले
किल पपात ममार च तापसः।
शिखरिणः शिखरं कुलिशार्दितं
निपतितं भुवि चाद्भुतदर्शनम्॥ ५
तं निहत्य मुदमाप सुरेश-
श्चुक्रुशुश्च मुनयस्तु संस्थिताः।
हा हतेति भृशमार्तनिस्वनाः
किं कृतं शतमखेन पापिना॥ ६
विनापराधं तपसां निधिर्हतः
शचीपतिः पापमतिर्दुरात्मा।
फलं किलायं तरसा कृतस्य
प्राप्नोतु पापी हननोद्भवस्य॥ ७
तं निहत्य तरसा सुरराजो
निर्जगाम निजमन्दिरमाशु।
स हतोऽपि विरराज महात्मा
जीवमान इव तेजसां निधिः॥ ८
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ जीवन्तमिव वृत्रहा।
चिन्तामापातिखिन्नाङ्गः किं वा जीवेदयं पुनः॥ ९
विमृश्य मनसातीव तक्षाणं पुरतः स्थितम्।
मघवा वीक्ष्य तं प्राह स्वकार्यसदृशं वचः॥ १०
तक्षंश्छिन्धि शिरांस्यस्य कुरुष्व वचनं मम।
मा जीवतु महातेजा भाति जीवन्निव स्वयम्॥ ११
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य तक्षोवाच विगर्हयन्।

तक्षोवाच

महास्कन्धो भृशं भाति परशुर्न तरिष्यति॥ १२
ततो नाहं करिष्यामि कार्यमेतद्विगर्हितम्।
त्वया वै निन्दितं कर्म कृतं सद्भिर्विगर्हितम्॥ १३
अहं बिभेमि पापाद्वै मृतस्यैव च मारणे।
मृतोऽयं मुनिरस्त्येव शिरसः कृन्तनेन किम्॥ १४
भयं किं तेऽत्र सञ्जातं पाकशासन कथ्यताम्।

स्वामी इन्द्रने अपने तीव्रगामी तथा श्रेष्ठ आयुध वज्रको सूर्य-चन्द्रमाके समान तेजस्वी, तपमें स्थित मुनि त्रिशिराके ऊपर चला दिया॥ ३-४॥

उसके प्रहारसे घायल होकर वे तपस्वी उसी प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े और निष्प्राण हो गये, जैसे वज्रसे विदीर्ण होकर पर्वतोंके शिखर पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं; यह घटना देखनेमें बड़ी अद्भुत थी॥ ५॥

उनको मारकर इन्द्र प्रसन्न हो गये, परंतु वहाँ स्थित अन्य मुनिगण आर्तस्वरमें चिल्लाने लगे कि हाय! हाय! सौ यज्ञ करनेवाले पापी इन्द्रने यह क्या कर डाला!॥ ६॥

पापबुद्धि और दुष्टात्मा शचीपति इन्द्रने इस निरपराध तपोनिधिको मार डाला। इस हत्याजनित पापका फल यह पापी अब शीघ्र ही प्राप्त करे॥ ७॥

उन्हें मारकर देवराज तुरंत ही अपने भवनको जानेके लिये उद्यत हुए। तेजके निधि वे महात्मा (त्रिशिरा) मर जानेपर भी जीवितकी भाँति प्रतीत होते थे॥ ८॥

उसे जीवितकी भाँति भूमिपर गिरा हुआ देखकर अति उदास मनवाले वे वृत्रहन्ता इन्द्र इस चिन्तामें पड़ गये कि कहीं यह फिर जीवित न हो जाय॥ ९॥

मनमें बहुत देरतक विचार करनेके बाद इन्द्रने सामने खड़े तक्षा (बढ़ई)-को देखकर अपने कार्यके अनुरूप बात कही॥ १०॥

हे तक्षन्! मेरा कहा हुआ करो; इसके सिर काट लो, जिससे यह जीवित न रहे। यह महातेजस्वी जीवित न होते हुए भी जीवितकी भाँति प्रतीत होता है। उनकी यह बात सुनकर तक्षाने धिक्कारते हुए कहा—॥ ११½॥

तक्षा बोला—ये अति विशाल कन्धेवाले प्रतीत हो रहे हैं। मेरा परशु इस कन्धेको काट नहीं सकेगा। अतः मैं इस निन्दनीय कार्यको नहीं करूँगा, आपने तो निन्दित और सत्पुरुषोंद्वारा गर्हित कर्म कर डाला है, मैं पापसे डरता हूँ; फिर मरे हुएको क्यों मारूँ? ये मुनि तो मर गये हैं, फिर इनका सिर काटनेसे क्या प्रयोजन? हे पाकशासन! कहिये, इनसे आपको क्या भय उत्पन्न हुआ है?॥ १२—१४½॥

इन्द्र उवाच

सजीव इव देहोऽयमाभाति विशदाकृतिः॥ १५
तस्माद् बिभेमि मा जीवेन्मुनिः शत्रुरयं मम।

तक्षोवाच

नात्र किं त्रपसे विद्वन् क्रूरेणानेन कर्मणा॥ १६
ऋषिपुत्रमिमं हत्वा ब्रह्महत्याभयं न किम्।

इन्द्र उवाच

प्रायश्चित्तं करिष्यामि पश्चात्पापक्षयाय वै॥ १७
शत्रुस्तु सर्वथा वध्यश्छलेनापि महामते।

तक्षोवाच

त्वं लोभाभिहतः पापं करोषि मघवन्निह॥ १८
तं विनाहं कथं पापं करोमि वद मे विभो।

इन्द्र उवाच

मखेषु खलु भागं ते करिष्यामि सदैव हि॥ १९
शिरः पशोस्तु ते भागं यज्ञे दास्यन्ति मानवाः।
शुल्केनानेन छिन्धि त्वं शिरांस्यस्य कुरु प्रियम्॥ २०

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महेन्द्रस्य वचस्तक्षा मुदान्वितः।
कुठारेण शिरांस्यस्य चकर्त सुदृढेन हि॥ २१
छिन्नानि त्रीणि शीर्षाणि पतितानि यदा भुवि।
तेभ्यस्तु पक्षिणः क्षिप्रं विनिष्पेतुः सहस्रशः॥ २२
कलविङ्कास्तित्तिरयस्तथैव च कपिञ्जलाः।
पृथक्पृथग्विनिष्पेतुर्मुखतस्तरसा तदा॥ २३
येन वेदानधीते स्म सोमं च पिबते तथा।
तस्माद्वक्त्रात्किलोत्पेतुः सद्य एव कपिञ्जलाः॥ २४
येन सर्वा दिशः कामं पिबन्निव निरीक्षते।
तस्मात्तु तित्तिरास्तत्र निःसृतास्तिग्मतेजसः॥ २५
यत्सुरापं तु तद्वक्त्रं तस्मात्तु चटकाः किल।
विनिष्पेतुस्त्रिशिरस एवं ते विहगा नृप॥ २६
एवं विनिःसृतान्दृष्ट्वा तेभ्यः शक्रस्तदाण्डजान्।
मुमोद मनसा राजन् जगाम त्रिदिवं पुनः॥ २७
गते शक्रे तु तक्षापि स्वगृहं तरसा ययौ।
यज्ञभागं परं लब्ध्वा मुदमाप महीपते॥ २८
इन्द्रोऽथ स्वगृहं गत्वा हत्वा शत्रुं महाबलम्।
मेने कृतार्थमात्मानं ब्रह्महत्यामचिन्तयन्॥ २९

इन्द्र बोले—यह निर्मल आकृतिवाली देह सजीवकी भाँति दिखायी देती है। यह मेरा शत्रु मुनि पुनः न जीवित हो जाय, इसलिये मैं डरता हूँ॥ १५$\frac{१}{२}$ ॥

तक्षा बोला—हे विद्वन्! क्या इस क्रूर कर्मको करते हुए आपको लज्जा नहीं आती? इस ऋषिपुत्रको मारकर क्या आपको ब्रह्महत्याका भय नहीं है?॥ १६$\frac{१}{२}$ ॥

इन्द्र बोले—मैं बादमें पापके नष्ट होनेके लिये प्रायश्चित्त कर लूँगा। हे महामते! शत्रुको तो सब प्रकारसे छलके द्वारा भी मार देना चाहिये॥ १७$\frac{१}{२}$ ॥

तक्षा बोला—हे इन्द्र! आप लोभके वशीभूत होकर पाप कर रहे हैं। हे विभो! बतायें, मैं उसके बिना पाप क्यों करूँ?॥ १८$\frac{१}{२}$ ॥

इन्द्र बोले—मैं सदैवके लिये तुम्हारे यज्ञभागकी व्यवस्था कर दूँगा। मनुष्य यज्ञभागके रूपमें पशुका सिर तुम्हें देंगे। इस शुल्कके बदलेमें तुम इसके सिर काट दो और मेरा प्रिय कार्य कर दो॥ १९-२०॥

व्यासजी बोले—देवराज इन्द्रका यह वचन सुनकर प्रसन्न हो बढ़ईने अपने सुदृढ़ कुठारसे उसके सिर काट डाले॥ २१॥

कटे हुए तीनों सिर जब भूमिपर गिरे तब उनमेंसे हजारों पक्षी शीघ्रतापूर्वक निकल पड़े। तब गौरैया, तित्तिर और कपिंजल पक्षी शीघ्रतापूर्वक उसके अलग-अलग मुखोंसे निकले॥ २२-२३॥

जिस मुखसे वह वेदपाठ और सोमपान करता था, उस मुखसे तत्काल बहुत-से कपिंजल पक्षी निकले; जिससे वह सभी दिशाओंका निरीक्षण करता था, उससे अत्यन्त तेजस्वी तित्तिर निकले और हे राजन्! जिससे वह मधुपान करता था, उस मुखसे गौरैया पक्षी निकले। इस प्रकार त्रिशिरासे वे पक्षी निकले॥ २४—२६॥

हे राजन्! इस प्रकार उन मुखोंसे पक्षियोंको निकला हुआ देखकर इन्द्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे पुनः स्वर्गको चल दिये॥ २७॥

हे पृथ्वीपते! इन्द्रके चले जानेपर तक्षा भी शीघ्र ही अपने घर चल दिया। श्रेष्ठ यज्ञभाग पाकर वह बहुत प्रसन्न था॥ २८॥

इन्द्रने भी अपने महाबली शत्रुको मारकर अपने भवन जा करके ब्रह्महत्याकी चिन्ता न करते हुए अपनेको कृतकृत्य मान लिया॥ २९॥

तं श्रुत्वा निहतं त्वष्टा पुत्रं परमधार्मिकम्।
चुकोपातीव मनसा वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३०

अनागसं मुनिं यस्मात्पुत्रं निहतवान्मम।
तस्मादुत्पादयिष्यामि तद्वधार्थं सुतं पुनः॥ ३१

सुराः पश्यन्तु मे वीर्यं तपसश्च बलं तथा।
जानातु सर्वं पापात्मा स्वकृतस्य फलं महत्॥ ३२

इत्युक्त्वाग्निं जुहावाथ मन्त्रैराथर्वणोदितैः।
पुत्रस्योत्पादनार्थाय त्वष्टा क्रोधसमाकुलः॥ ३३

कृते होमेऽष्टरात्रं तु सन्दीप्ताच्च विभावसोः।
प्रादुर्बभूव तरसा पुरुषः पावकोपमः॥ ३४

तं दृष्ट्वाग्रे सुतं त्वष्टा तेजोबलसमन्वितम्।
वेगात्प्रकटितं वह्नेर्दीप्यमानमिवानलम्॥ ३५

उवाच वचनं त्वष्टा सुतं वीक्ष्य पुरःस्थितम्।
इन्द्रशत्रो विवर्धस्व प्रतापात्तपसो मम॥ ३६

इत्युक्ते वचने त्वष्ट्रा क्रोधप्रज्वलितेन च।
सोऽवर्धत दिवं स्तब्ध्वा वैश्वानरसमद्युतिः॥ ३७

जातः स पर्वताकारः कालमृत्युसमः स्वराट्।
किं करोमीति तं प्राह पितरं परमातुरम्॥ ३८

कुरु मे नामकं नाथ कार्यं कथय सुव्रत।
चिन्तातुरोऽसि कस्मात्त्वं ब्रूहि मे शोककारणम्॥ ३९

नाशयाम्यद्य ते शोकमिति मे व्रतमाहितम्।
तेन जातेन किं भूयः पिता भवति दुःखितः॥ ४०

पिबामि सागरं सद्यश्चूर्णयामि धराधरान्।
उद्यन्तं वारयाम्यद्य तरणिं तिग्मतेजसम्॥ ४१

हन्मीन्द्रं ससुरं सद्यो यमं वा देवतान्तरम्।
क्षिपामि सागरे सर्वान्समुत्पाट्य च मेदिनीम्॥ ४२

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य त्वष्टा पुत्रस्य पेशलम्।
प्रत्युवाचातिमुदितस्तं सुतं पर्वतोपमम्॥ ४३

उस परम धार्मिक पुत्रको मारा गया सुनकर त्वष्टाने मनमें अत्यन्त क्रोधित हो यह वचन कहा—जिसने मेरे निरपराध मुनिवृत्तिवाले पुत्रको मार डाला है, उसके वधके लिये मैं पुनः पुत्र उत्पन्न करूँगा। देवतालोग मेरे पराक्रम और तपोबलको देख लें; वह पापात्मा भी अपनी करनीका महान् फल जान ले॥ ३०—३२॥

ऐसा कहकर क्रोधसे अत्यन्त व्याकुल त्वष्टा पुत्रकी उत्पत्तिके लिये अथर्ववेदोक्त मन्त्रोंसे अग्निमें हवन करने लगे॥ ३३॥

आठ रात्रियोंतक प्रज्वलित अग्निमें हवन करनेपर सहसा अग्निसदृश एक पुरुष प्रकट हुआ॥ ३४॥

वेगपूर्वक अग्निसे प्रकट हुए और अग्निके सदृश प्रकाशमान तथा तेज-बलसे युक्त उस पुत्रको अपने सम्मुख देखकर त्वष्टाने कहा—हे इन्द्रशत्रु! मेरे तपोबलसे तुम शीघ्र बढ़ जाओ॥ ३५-३६॥

क्रोधसे जाज्वल्यमान त्वष्टाके ऐसा कहते ही अग्निके समान कान्तिवाला वह पुत्र द्युलोकको स्तब्ध करता हुआ बड़ा होने लगा॥ ३७॥

बढ़ते-बढ़ते वह पर्वताकार विशाल और काल पुरुषके समान भयानक हो गया। उसने अत्यन्त दुःखित अपने पितासे कहा—मैं क्या करूँ? हे नाथ! मेरा नामकरण कीजिये। हे सुव्रत! मुझे कार्य बताइये, आप चिन्तित क्यों हैं? मुझे अपने दुःखका कारण बताइये। मैं आज ही आपके शोकका नाश कर दूँगा—ऐसा मेरा दृढ़ संकल्प है। जिस पुत्रके रहते पिता दुःखी हो, उस पुत्रसे क्या लाभ! मैं शीघ्र ही समुद्रको पी जाऊँगा, पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा और उगते हुए प्रचण्ड तेजस्वी सूर्यको रोक दूँगा। मैं देवताओंसहित इन्द्रको तथा यमको अथवा अन्य किसी भी देवताको मार डालूँगा। इन सबको तथा पृथ्वीको भी उखाड़कर समुद्रमें फेंक दूँगा॥ ३८—४२॥

उसका यह प्रिय वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न हो पर्वतके समान विशाल उस पुत्रसे कहा—॥ ४३॥

वृजिनात्त्रातुमधुना यस्माच्छक्तोऽसि पुत्रक।
तस्माद् वृत्र इति ख्यातं तव नाम भविष्यति॥ ४४
भ्राता तव महाभाग त्रिशिरा नाम तापसः।
त्रीणि तस्य च शीर्षाणि ह्यभवन्वीर्यवन्ति च॥ ४५
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वविद्याविशारदः।
संस्थितस्तपसि प्रायस्त्रिलोकीविस्मयप्रदे॥ ४६
शक्रेण तु हतः सोऽद्य वज्रघातेन साम्प्रतम्।
विनापराधं सहसा छिन्नानि मस्तकानि च॥ ४७
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र जहि शक्रं कृतागसम्।
ब्रह्महत्यायुतं पापं निस्त्रपं दुर्मतिं शठम्॥ ४८
इत्युक्त्वा च तदा त्वष्टा पुत्रशोकसमाकुलः।
आयुधानि च दिव्यानि चकार विविधानि च॥ ४९
ददावस्मै सहस्राक्षवधाय प्रबलानि च।
खड्गशूलगदाशक्तितोमरप्रमुखानि वै॥ ५०
शार्ङ्गं धनुस्तथा बाणं परिघं पट्टिशं तथा।
चक्रं दिव्यं सहस्रारं सुदर्शनसमप्रभम्॥ ५१
तूणीरौ चाक्षयौ दिव्यौ कवचं चातिसुन्दरम्।
रथं मेघप्रतीकाशं दृढं भारसहं जवम्॥ ५२
युद्धोपकरणं सर्वं कृत्वा पुत्राय पार्थिव।
दत्त्वासौ प्रेरयामास त्वष्टा क्रोधसमन्वितः॥ ५३

हे पुत्र! तुम अभी वृजिन (कष्ट)-से त्राण दिलानेमें समर्थ हो, इसलिये तुम्हारा 'वृत्र'—यह नाम प्रसिद्ध होगा। हे महाभाग! तुम्हारा त्रिशिरा नामका एक तपस्वी भाई था। उसके अत्यन्त शक्तिशाली तीन सिर थे। वह वेद-वेदांगोंके तत्त्वको जाननेवाला, सभी विद्याओंमें निपुण और तीनों लोकोंको आश्चर्यमें डाल देनेवाली तपस्यामें रत था। इन्द्रने वज्रका प्रहार करके उस निरपराधको मार डाला और उसके मस्तक काट डाले। इसलिये हे पुरुषसिंह! तुम उस ब्रह्म-हत्यारे, पापी, निर्लज्ज, दुष्टबुद्धि तथा मूर्ख इन्द्रको मार डालो॥ ४४—४८॥

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे व्याकुल त्वष्टाने विविध प्रकारके दिव्य तथा प्रबल आयुधोंका निर्माण किया और इन्द्रका वध करनेके लिये उस महाबली (वृत्र)-को दे दिया। उनमें खड्ग, शूल, गदा, शक्ति, तोमर, शार्ङ्गधनुष, बाण, परिघ, पट्टिश, सुदर्शन चक्रके समान कान्तिमान् हजार अरोंवाला दिव्य चक्र, दो दिव्य तथा अक्षय तरकस और अत्यन्त सुन्दर कवच एवं मेघके समान श्याम आभावाला, सुदृढ़, भार सहनेमें समर्थ और तीव्रगामी रथ था। इस प्रकार हे राजन्! समस्त युद्धसामग्री तैयार करके क्रोधसे व्याकुल त्वष्टाने अपने पुत्रको देकर उसे भेज दिया॥ ४९—५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
त्रिशिरवधानन्तरं वृत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

वृत्रासुरका देवलोकपर आक्रमण, बृहस्पतिद्वारा इन्द्रकी भर्त्सना करना और वृत्रासुरको अजेय बतलाना, इन्द्रकी पराजय, त्वष्टाके निर्देशसे वृत्रासुरका ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये तपस्यारत होना

व्यास उवाच

कृतस्वस्त्ययनो वृत्रो ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
निर्जगाम रथारूढो हन्तुं शक्रं महाबलः॥ १

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वेदोंमें पारंगत ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर महाबली वृत्रासुर रथपर सवार हो इन्द्रको मारनेके लिये चला॥ १॥

तदैव राक्षसाः क्रूराः पुरा देवपराजिताः।
समाजग्मुश्च सेवार्थं वृत्रं ज्ञात्वा महाबलम्॥ २

उस समय बहुत-से क्रूर राक्षस जो पहले देवताओंसे पराजित हो गये थे, वृत्रासुरको महान् बलशाली जानकर उसकी सेवाके लिये आ गये॥ २॥

इन्द्रदूतास्तु तं दृष्ट्वा युद्धाय तु समागतम्।
वेगादागत्य वृत्तान्तं शशंसुस्तस्य चेष्टितम्॥ ३

दूता ऊचुः

स्वामिञ्छीघ्रमिहायाति वृत्रो नाम रिपुस्तव।
बलवान्स्यन्दने रूढस्त्वष्ट्रा चोत्पादितः किल॥ ४

अभिचारेण नाशार्थं तव क्रोधान्वितेन वै।
पुत्रघाताभितप्तेन दुःसहो राक्षसैर्युतः॥ ५

यत्नं कुरु महाभाग शीघ्रमायाति साम्प्रतम्।
मेरुमन्दरसंकाशो घोरशब्दोऽतिदारुणः॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भीता देवगणा भृशम्।
आगत्योचुः सुरपतिं शृण्वन्तं दूतभाषितम्॥ ७

गणा ऊचुः

मघवन् दुर्निमित्तानि भवन्ति त्रिदशालये।
बहूनि भयशंसीनि पक्षिणां विरुतानि च॥ ८

काकगृध्रास्तथा श्येनाः कङ्काद्या दारुणाः खगाः।
रुदन्ति विकृतैः शब्दैरुत्कारैर्भवनोपरि॥ ९

चीचीकूचीति निनदान्कुर्वन्ति विहगा भृशम्।
वाहनानां च नेत्रेभ्यो जलधाराः पतन्त्यधः॥ १०

श्रूयतेऽतिमहाञ्छब्दो रुदतीनां निशासु च।
राक्षसीनां महाभाग भवनोपरि दारुणः॥ ११

प्रपतन्ति ध्वजास्तूर्णं विना वातेन मानद।
प्रभवन्ति महोत्पाता दिवि भूम्यन्तरिक्षजाः॥ १२

कृष्णाम्बरधरा नार्यो भ्रमन्ति च गृहे गृहे।
यान्तु यान्तु गृहात्तूर्णं कुर्वन्त्यो विकृताननाः॥ १३

रात्रौ स्वप्नेषु कान्तानां सुप्तानां निजमन्दिरे।
केशाँल्लुनन्ति राक्षस्यो भीषयन्त्यो भृशातुराः॥ १४

एवंविधानि देवेश भूकम्पोल्कादयस्तथा।
गोमायवो रुदन्ति स्म निशायां भवनाङ्गणे॥ १५

सरटानां च जालानि प्रभवन्ति गृहे गृहे।
अङ्गप्रस्फुरणादीनि दुर्निमित्तानि सर्वशः॥ १६

इन्द्रके दूत उसे युद्धके लिये आया देखकर शीघ्रतापूर्वक [इन्द्रके पास] आकर सम्पूर्ण वृत्तान्त और उसकी गतिविधि बताने लगे॥ ३॥

दूत बोले—हे स्वामिन्! वृत्र नामका आपका बलवान् और दुर्धर्ष शत्रु रथपर आरूढ़ होकर राक्षसोंके साथ शीघ्र ही यहाँ आ रहा है; पुत्रशोकसे सन्तप्त और क्रोधाभिभूत त्वष्टाने आपके नाशके लिये अभिचारकर्मसे उसे उत्पन्न किया है॥ ४-५॥

हे महाभाग! शीघ्र ही [रक्षाका] उपाय कीजिये। सुमेरु और मन्दराचलके समान अत्यन्त भयंकर प्रतीत होनेवाला वह (वृत्रासुर) घोर गर्जन करता हुआ अब शीघ्र यहाँ आ रहा है॥ ६॥

इसी बीच अत्यन्त भयभीत देवगण वहाँ आ करके दूतोंकी बात सुन रहे देवराज इन्द्रसे इस प्रकार कहने लगे॥ ७॥

गण बोले—हे इन्द्र! इस समय स्वर्गमें अनेक प्रकारके अपशकुन हो रहे हैं। पक्षियोंके बहुत ही डरावने शब्द हो रहे हैं। कौए, गिद्ध, बाज और चील आदि क्रूर पक्षी भवनोंके ऊपर बैठकर भयानक स्वरोंमें रोते हैं और अन्य पक्षी भी बार-बार चीची-कूची—ऐसे शब्द कर रहे हैं। [हाथी, घोड़े आदि] वाहनोंकी आँखोंसे लगातार जल (अश्रु)-की धाराएँ नीचे गिर रही हैं। हे महाभाग! भवनोंके ऊपरी भागमें रातमें रोती हुई राक्षसियोंका महाभयानक शब्द सुनायी देता है। हे मानद! हवाके बिना ही ध्वजाएँ टूट-टूटकर गिर पड़ती हैं। स्वर्ग, पृथ्वी और आकाशमें महान् उत्पात हो रहे हैं। काले वस्त्र धारण की हुई भयानक मुखवाली स्त्रियाँ 'निकल जाओ; घरसे शीघ्र निकल जाओ'—ऐसा कहती हुई घर-घरमें घूमती हैं। रातमें अपने घरमें सोयी हुई स्त्रियोंको भयभीत करती हुई भयानक राक्षसियाँ स्वप्नोंमें उनके बाल नोचती हैं॥ ८—१४॥

हे देवेन्द्र! इसी प्रकार भूकम्प और उल्कापात आदि उपद्रव भी हो रहे हैं, रात्रिमें हमारे भवनोंके आँगनमें सियार रुदन करते हैं। गिरगिटोंके समूह घर-घरमें उत्पन्न हो रहे हैं, सर्वथा अनिष्टके सूचक अंग-प्रस्फुरण आदि भी होते हैं॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा चिन्तामाप सुरेश्वरः।
बृहस्पतिं समाहूय पप्रच्छ च मनोगतम्॥ १७

इन्द्र उवाच

ब्रह्मन् किमुत घोराणि निमित्तानि भवन्ति वै।
वाताश्च दारुणा वान्ति प्रपतन्त्युलकाः खतः॥ १८

सर्वज्ञोऽसि महाभाग समर्थो विघ्ननाशने।
बुद्धिमाञ्छास्त्रतत्त्वज्ञो देवतानां गुरुस्तथा॥ १९

कुरु शान्तिं विधानज्ञ शत्रुक्षयविधायिनीम्।
यथा मे न भवेद्दुःखं तथा कार्यं विधीयताम्॥ २०

बृहस्पतिरुवाच

किं करोमि सहस्राक्ष त्वयाद्य दुष्कृतं कृतम्।
अनागसं मुनिं हत्वा किं फलं समुपार्जितम्॥ २१

अत्युग्रं पुण्यपापानां फलं भवति सत्वरम्।
विचार्य खलु कर्तव्यं कार्यं तद्भूतिमिच्छता॥ २२

परोपतापनं कर्म न कर्तव्यं कदाचन।
न सुखं विन्दते प्राणी परपीडापरायणः॥ २३

मोहाल्लोभाद् ब्रह्महत्या कृता शक्र त्वयाधुना।
तस्य पापस्य सहसा फलमेतदुपागतम्॥ २४

अवध्यः सर्वदेवानां जातोऽसौ वृत्रसंज्ञकः।
हन्तुं त्वां स समायाति दानवैर्बहुभिर्वृतः॥ २५

आयुधानि च सर्वाणि वज्रतुल्यानि वासव।
त्वष्ट्रा दत्तानि दिव्यानि गृहीत्वा समुपस्थितः॥ २६

समागच्छति दुर्धर्षो रथारूढः प्रतापवान्।
देवेन्द्र प्रलयं कुर्वन्नास्य मृत्युर्भविष्यति॥ २७

कोलाहलस्तदा जातस्तथा ब्रुवति वाक्पतौ।
गन्धर्वाः किन्नरा यक्षा मुनयश्च तपोधनाः॥ २८

सदनानि विहायैवामराः सर्वे पलायिताः।
तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं शक्रश्चिन्तापरायणः॥ २९

व्यासजी बोले—उन लोगोंका यह वचन सुनकर इन्द्र चिन्तित हो उठे और बृहस्पतिको बुलाकर उन्होंने अपनी मनोगत बात पूछी॥ १७॥

इन्द्र बोले—हे ब्रह्मन्! ये भयानक अपशकुन क्यों हो रहे हैं? भयानक आँधियाँ चलती हैं और आकाशसे उल्कापात होते हैं। हे महाभाग! आप सर्वज्ञ, विघ्नका नाश करनेमें समर्थ, बुद्धिमान्, शास्त्रोंके तत्त्वोंको जाननेवाले और देवताओंके गुरु हैं। इसलिये हे विधानज्ञ! आप हमारी शान्तिके लिये शत्रुओंका नाश करनेवाला कोई शान्तिकर्म कीजिये। जिस प्रकार मुझे दुःख न हो, आप वैसा कार्य कीजिये॥ १८—२०॥

बृहस्पति बोले—हे सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्र! मैं क्या करूँ? तुमने बहुत बड़ा पाप कर डाला है। निरपराध मुनिको मारकर तुमने क्या लाभ प्राप्त कर लिया?॥ २१॥

पुण्य और पापका अत्यन्त उग्र फल शीघ्र ही प्राप्त होता है, इसलिये ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवालोंको विचारपूर्वक कार्य करना चाहिये। दूसरेको कष्ट पहुँचानेका कृत्य कभी नहीं करना चाहिये। दूसरेको कष्ट देनेमें संलग्न प्राणी कभी सुख नहीं पाता॥ २२-२३॥

हे इन्द्र! तुमने मोह और लोभके वशीभूत होकर ब्रह्महत्या कर डाली, उसी पापका यह फल आज सहसा उपस्थित हो गया है॥ २४॥

वृत्र नामवाला यह असुर जन्मसे ही देवताओंसे अवध्य है; बहुत-से दानवोंसे घिरा हुआ वह तुम्हें मारनेके लिये चला आ रहा है॥ २५॥

हे इन्द्र! त्वष्टाके द्वारा दिये हुए उन सभी वज्रतुल्य तथा दिव्य आयुधोंको लेकर वह उपस्थित हो रहा है॥ २६॥

दुर्धर्ष तथा प्रतापी वह रथपर आरूढ़ होकर प्रलय मचाते हुए चला आ रहा है। हे देवेन्द्र! उसकी मृत्यु नहीं होगी॥ २७॥

बृहस्पति ऐसा कह ही रहे थे कि वहाँ कोलाहल मच गया। गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, मुनि, तपस्वी और सभी देवता अपने-अपने भवन छोड़कर भाग चले। उस महान् आश्चर्यको देखकर इन्द्र चिन्तित हो उठे॥ २८-२९॥

आज्ञापयामास तदा सेनोद्योगाय सेवकान्।
आनयध्वं वसून् रुद्रानश्विनौ च दिवाकरान्॥ ३०

पूषणं च भगं वायुं कुबेरं वरुणं यमम्।
विमानेषु समारुह्य सायुधाः सुरसत्तमाः॥ ३१

समागच्छन्तु तरसा शत्रुरायाति साम्प्रतम्।
इत्याज्ञाप्य सुरपतिः समारुह्य गजोत्तमम्॥ ३२

बृहस्पतिं पुरोधाय निर्गतो निजमन्दिरात्।
तथैव त्रिदशाः सर्वे स्वं स्वं वाहनमास्थिताः॥ ३३

युद्धाय कृतसंकल्पा निर्ययुः शस्त्रपाणयः।
वृत्रोऽथ दानवैर्युक्तः सम्प्राप्तो मानसोत्तरम्॥ ३४

पर्वतं देवतावासं रम्यं पादपशोभितम्।
इन्द्रोऽप्यागत्य संग्रामं चकार मानसोत्तरे॥ ३५

पर्वते देवतायुक्तो वाचस्पतिपुरःसरः।
तत्राभूद्दारुणं युद्धं वृत्रवासवयोस्तदा॥ ३६

गदासिपरिघैः पाशैर्बाणैः शक्तिपरश्वधैः।
मानुषेण प्रमाणेन संग्रामः शरदां शतम्॥ ३७

बभूव भयदो नृणामृषीणां भावितात्मनाम्।
वरुणः प्रथमं भग्नस्ततो वायुगणः किल॥ ३८

यमो विभावसुः शक्रः सर्वे ते निर्गता रणात्।
पलायनपरान्दृष्ट्वा देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ३९

वृत्रोऽपि पितरं प्रागादाश्रमस्थं मुदान्वितम्।
प्रणम्य प्राह त्वष्टारं पितः कार्यं मया कृतम्॥ ४०

देवा विनिर्जिताः सर्वे सेन्द्राः समरसंस्थिताः।
विद्रुतास्ते गताः स्थानं यथा सिंहान्मृगा गजाः॥ ४१

इन्द्रः पदातिरगमन्मयानीतो गजोत्तमः।
ऐरावतोऽयं भगवन् गृहाण द्विरदोत्तमम्॥ ४२

न हतास्ते मया यस्मादयुक्तं भीतमारणम्।
आज्ञापय पुनस्तात किं करोमि तवेप्सितम्॥ ४३

तब उन्होंने सेवकोंको सेना तैयार करनेका आदेश दिया। 'वसुओं, रुद्रों, अश्विनीकुमारों, आदित्यों, पूषा, भग, वायु, कुबेर, वरुण और यमको बुलाओ। सभी श्रेष्ठ देवता आयुधोंके साथ विमानोंपर आरूढ़ होकर यहाँ शीघ्र आ जायँ; क्योंकि अब शत्रु आने ही वाला है'—ऐसी आज्ञा देकर देवराज अपने श्रेष्ठ गजराज ऐरावतपर सवार होकर बृहस्पतिको आगे करके अपने भवनसे बाहर निकले॥ ३०—३२½ ॥

वैसे ही अन्य सभी देवता भी हाथोंमें शस्त्र लेकर अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर युद्धका संकल्प करके चल पड़े। उधर वृत्रासुर भी विशाल दानवी सेनाके साथ वृक्षोंसे सुशोभित, रमणीय तथा देवताओंसे सेवित मानसरोवरके उत्तरवर्ती पर्वतपर आ गया। बृहस्पतिको आगे करके सभी देवताओंके साथ इन्द्रने भी उस मानसोत्तर पर्वतपर आकर संग्राम किया॥ ३३—३५½ ॥

तब गदा, तलवार, परिघ, पाश, बाण, शक्ति और परशु आदि युद्धास्त्रोंके द्वारा वृत्रासुर और इन्द्रमें भयानक युद्ध हुआ। मनुष्यों और विशुद्ध हृदयवाले ऋषियोंके लिये अत्यन्त भयकारी वह युद्ध मानववर्षकी गणनासे सौ वर्षोंतक चला॥ ३६-३७½ ॥

उस युद्धमें सबसे पहले वरुण और उसके बाद मरुद्गण पलायन कर गये। इसी प्रकार यम, अग्नि, इन्द्र—जो भी थे वे सभी युद्धसे निकल भागे। इन्द्र आदि प्रमुख देवताओंको भागकर जाते देखकर वृत्रासुर भी प्रसन्नतापूर्वक आश्रमस्थित अपने पिताके पास गया और उन्हें प्रणाम करके बोला—हे पिताजी! मैंने [आपका] कार्य कर दिया॥ ३८—४० ॥

युद्धभूमिमें आये हुए इन्द्रसहित सभी देवता मुझसे पराजित हो गये। वे सब उसी प्रकार भयभीत होकर अपने स्थानोंको भाग गये, जैसे सिंहसे डरकर हाथी और मृग भाग जाते हैं। इन्द्र तो पैदल ही भाग गये; मैं हाथियोंमें श्रेष्ठ इस ऐरावतको ले आया हूँ। हे भगवन्! आप इस गजश्रेष्ठको ग्रहण करें॥ ४१-४२ ॥

मैंने उन सबको इसलिये नहीं मारा; क्योंकि डरे हुएको मारना अनुचित होता है। हे तात! आप पुनः आज्ञा कीजिये कि मैं आपका कौन-सा इच्छित कार्य करूँ?॥ ४३ ॥

निर्जरा निर्गताः सर्वे भयभीताः श्रमातुराः।
इन्द्रोऽप्यैरावतं त्यक्त्वा भयभीतः पलायितः॥ ४४

व्यास उवाच

इति पुत्रवचः श्रुत्वा त्वष्टा प्राह मुदान्वितः।
पुत्रवानद्य जातोऽस्मि सफलं मम जीवितम्॥ ४५

त्वयाहं पावितः पुत्र गतो मे मानसो ज्वरः।
निश्चलं मे मनो जातं दृष्ट्वा वीर्यं तवाद्भुतम्॥ ४६

शृणु वक्ष्याम्यहं पुत्र हितं तेऽद्य निशामय।
तपः कुरु महाभाग सावधानः स्थिरासनः॥ ४७

विश्वासो नैव कर्तव्यः केषाञ्चित्पाकशासनः।
शत्रुस्ते छलकर्तास्ति नानाभेदविशारदः॥ ४८

तपसा प्राप्यते लक्ष्मीस्तपसा राज्यमुत्तमम्।
तपसा बलवृद्धिः स्यात्संग्रामे विजयस्तथा॥ ४९

आराध्य द्रुहिणं देवं लब्ध्वा वरमनुत्तमम्।
जहि शक्रं दुराचारं ब्रह्महत्यासमावृतम्॥ ५०

सावधानः स्थिरो भूत्वा दातारं भज शङ्करम्।
वाञ्छितं स वरं दद्यात्सन्तुष्टश्चतुराननः॥ ५१

तोषयित्वा विश्वयोनिं ब्रह्माणममितौजसम्।
अविनाशित्वमासाद्य जहि शक्रं कृतागसम्॥ ५२

वैरं मनसि मे पुत्र वर्तते सुतघातजम्।
न शान्तिमनुगच्छामि न स्वपामि सुखेन ह॥ ५३

तापसो मे हतः पुत्रो निरागाः पाप्मना यतः।
न विन्दामि सुखं वृत्र त्वं मामुद्धर दुःखितम्॥ ५४

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य पितुर्वाक्यं वृत्रः क्रोधयुतस्तदा।
आज्ञामादाय च पितुर्जगाम तपसे मुदा॥ ५५

सभी देवता भयभीत और युद्धश्रमसे क्लान्त होकर भाग गये; भयभीत इन्द्र भी ऐरावत छोड़कर भाग गया॥ ४४॥

व्यासजी बोले—पुत्रका यह वचन सुनकर त्वष्टाने प्रसन्न होकर कहा—आज मैं पुत्रवान् हो गया हूँ; मेरा जीवन सफल हो गया॥ ४५॥

हे पुत्र! तुमने आज मुझे पवित्र कर दिया; मेरा मानसिक सन्ताप चला गया। तुम्हारे अद्भुत पराक्रमको देखकर मेरा मन शान्त हो गया॥ ४६॥

हे पुत्र! सुनो, अब मैं तुम्हारे हितकी बात कह रहा हूँ। हे महाभाग! अब तुम दृढ़तापूर्वक आसनपर बैठकर सावधान होकर तपस्या करो॥ ४७॥

किसीका भी विश्वास मत करना। वह तुम्हारा शत्रु इन्द्र छल करनेवाला तथा अनेक प्रकारकी भेदनीतिमें निपुण है॥ ४८॥

तपसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है, तपसे उत्तम राज्यकी प्राप्ति होती है। तपसे बलकी वृद्धि होती है और संग्राममें विजयकी प्राप्ति होती है॥ ४९॥

भगवान् ब्रह्माकी आराधना करके उनसे उत्तम वर प्राप्तकर तुम उस दुराचारी और ब्राह्मणके हत्यारे इन्द्रको मार डालो॥ ५०॥

तुम सावधान और स्थिर होकर कल्याणकारी तथा वरदाता ब्रह्माजीकी आराधना करो। प्रसन्न होनेपर चार मुखवाले वे ब्रह्माजी तुम्हें अभीष्ट वरदान देंगे॥ ५१॥

विश्वकी सृष्टि करनेवाले अमिततेजस्वी ब्रह्माजीको प्रसन्न करके अमरत्व प्राप्तकर तुम अपराधी इन्द्रको मार डालो॥ ५२॥

हे पुत्र! मेरे मनमें उस पुत्रघातीके प्रति वैर बना हुआ है, न मुझे शान्ति प्राप्त होती है और न ही मैं सुखसे सो पाता हूँ॥ ५३॥

उस पापीने मेरे निर्दोष तपस्वी पुत्रको मार डाला है, इसलिये मुझे शान्ति नहीं मिलती। हे वृत्र! तुम मुझ दुःखीका उद्धार करो॥ ५४॥

व्यासजी बोले—तब पिताका वचन सुनकर वृत्रासुर कुपित हो उठा। पितासे आज्ञा लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक तपस्या करनेके लिये चला गया॥ ५५॥

गन्धमादनमासाद्य पुण्यां देवधुनीं शुभाम्।
स्नात्वा कुशासनं कृत्वा संस्थितश्च स्थिरासनः॥ ५६

त्यक्त्वान्नं वारिपानं च योगाभ्यासपरायणः।
ध्यायन्विश्वसृजं चित्ते सोपविष्टः स्थिरासने॥ ५७

मघवा तं तपस्यन्तं ज्ञात्वा चिन्तातुरो ह्यभूत्।
गन्धर्वान्प्रेषयामास विघ्नार्थं पाकशासनः॥ ५८

यक्षांश्च पन्नगान्सर्पान्किन्नरानमितौजसः।
विद्याधरानप्सरसो देवदूताननेकशः॥ ५९

उपायास्तैः कृताः सम्यक् तपोविघ्नाय मायिभिः।
न चचाल ततो ध्यानात्त्वाष्ट्रः परमतापसः॥ ६०

गन्धमादनपर्वतपर पहुँचकर पवित्र और मंगलकारिणी देवनदी गंगाजीमें स्नान करके कुशका आसन बिछाकर वह दृढ़तापूर्वक बैठ गया॥ ५६॥

अन्न और जलका त्याग करके योगाभ्यासमें तत्पर होकर मनमें विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीका ध्यान करता हुआ वह दृढ़भावसे आसनपर बैठा रहा॥ ५७॥

उसे तपस्या करता हुआ जानकर इन्द्र चिन्तासे व्यग्र हो उठे। तब [उसके तपमें] विघ्न डालनेके लिये इन्द्रने गन्धर्वों, अत्यन्त ओजस्वी यक्षों, नागों, सर्पों, किन्नरों, विद्याधरों, अप्सराओं और अनेक देवदूतोंको भेजा। उन मायावियोंद्वारा तपमें विघ्नके लिये भलीभाँति उपाय किये गये, किंतु परम तपस्वी त्वष्टापुत्र वृत्र ध्यानसे विचलित नहीं हुआ॥ ५८—६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे ब्रह्मणः समाराधनाय त्वष्ट्रा वृत्रोपदेशवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीका वृत्रासुरको वरदान देना, त्वष्टाकी प्रेरणासे वृत्रासुरका स्वर्गपर आक्रमण करके अपने अधिकारमें कर लेना, इन्द्रका पितामह ब्रह्मा और भगवान् शंकरके साथ वैकुण्ठधाम जाना

व्यास उवाच

निर्गतास्ते परावृत्तास्तपोविघ्नकराः सुराः।
निराशाः कार्यसंसिद्ध्यै तं दृष्ट्वा दृढचेतसम्॥ १
जाते वर्षशते पूर्णे ब्रह्मा लोकपितामहः।
तत्राजगाम तरसा हंसारूढश्चतुर्मुखः॥ २
आगत्य तमुवाचेदं त्वष्टृपुत्र सुखी भव।
त्यक्त्वा ध्यानं वरं ब्रूहि ददामि तव वाञ्छितम्॥ ३
तपसा तेऽद्य तुष्टोऽस्मि त्वां दृष्ट्वा चातिकर्शितम्।
वरं वरय भद्रं ते मनोऽभिलषितं तव॥ ४

व्यास उवाच

वृत्रस्तदातिविशदां पुरतो निशम्य
वाचं सुधासमरसां जगदेककर्तुः।
सन्त्यज्य योगकलनां सहसोदतिष्ठ-
त्सञ्जातहर्षनयनाश्रुकलाकलापः॥ ५

व्यासजी बोले—उस वृत्रासुरको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर तपमें विघ्न डालनेके लिये गये हुए देवगण अपने कार्यकी सिद्धिसे निराश होकर वापस लौट आये॥ १॥

सौ वर्ष पूर्ण होनेपर लोकपितामह चतुर्मुख ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ हो शीघ्रतापूर्वक उसके पास आये॥ २॥

आकर उन्होंने उससे यह कहा—हे त्वष्टाके पुत्र! तुम सुखी होओ, ध्यानका त्यागकर वरदान माँगो, मैं तुम्हारा इच्छित वर दूँगा॥ ३॥

तुम्हें तपस्यासे अत्यन्त कृशकाय देखकर मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोभिलषित वर माँग लो॥ ४॥

व्यासजी बोले—अपने समक्ष खड़े जगत्के एकमात्र स्रष्टा [ब्रह्माजी]-की अत्यन्त गम्भीर और अमृतरसतुल्य वाणी सुनकर वह वृत्रासुर योग-ध्यान त्यागकर सहसा उठ खड़ा हुआ। हर्षातिरेकसे उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी॥ ५॥

पादौ प्रणम्य शिरसा प्रणयाद्विधातु-
बद्धाञ्जलिः पुरत एव समाससाद।
प्रोवाच तं सुवरदं तपसा प्रसन्नं
प्रेम्णातिगद्गदगिरा विनयेन नम्रः॥ ६

प्राप्तं मया सकलदेवपदं प्रभोऽद्य
यद्दर्शनं तव सुदुर्लभमाशु जातम्।
वाञ्छास्ति नाथ मनसि प्रवणे दुरापा
तां प्रब्रवीमि कमलासन वेत्सि भावम्॥ ७

मृत्युश्च मा भवतु मे किल लोहकाष्ठ-
शुष्कार्द्रवंशनिचयैरपरैश्च शस्त्रैः।
वृद्धिं प्रयातु मम वीर्यमतीव युद्धे
यस्माद्भवामि सबलैरमरैरजेयः॥ ८

व्यास उवाच

इत्थं सम्प्रार्थितो ब्रह्मा तमाह प्रहसन्निव।
उत्तिष्ठ गच्छ भद्रं ते वाञ्छितं सफलं सदा॥ ९

न शुष्केण न चार्द्रेण न पाषाणेन दारुणा।
भविष्यति च ते मृत्युरिति सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ १०

इति दत्त्वा वरं ब्रह्मा जगाम भुवनं परम्।
वृत्रस्तु तं वरं लब्ध्वा मुदितः स्वगृहं ययौ॥ ११

शशंस पितुरग्रे तद्वरदानं महामतिः।
त्वष्टा तु मुदितः प्राप्तं पुत्रं प्राप्तवरं तदा॥ १२

स्वस्ति तेऽस्तु महाभाग जहि शक्रं रिपुं मम।
हत्वागच्छ त्रिशिरसो हन्तारं पापसंयुतम्॥ १३

भव त्वं त्रिदशाधीशः सम्प्राप्य विजयं रणे।
ममाधिं छिन्धि विपुलं पुत्रनाशसमुद्भवम्॥ १४

जीवतो वाक्यकरणात्क्षयाहे भूरिभोजनात्।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता॥ १५

प्रेमपूर्वक विधाता ब्रह्माजीके चरणोंमें सिर रखकर प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वह उनके समक्ष स्थित हो गया और तपस्यासे प्रसन्न तथा उत्तम वर देनेवाले ब्रह्माजीसे विनयावनत होकर प्रेमपूर्ण गद्गद वाणीमें कहने लगा— ॥ ६ ॥

हे प्रभो! मैंने आज समस्त देवताओंका पद प्राप्त कर लिया जो कि मुझे शीघ्र ही आपका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन प्राप्त हो गया। हे नाथ! हे कमलासन! आप सबके मनके भाव जानते हैं, फिर भी मेरे भक्तिपूर्ण मनमें एक दुर्लभ अभिलाषा है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ७॥

लोहे, काष्ठ, सूखे या गीले बाँसद्वारा निर्मित तथा अन्य किसी शस्त्रसे मेरी कभी मृत्यु न हो। मेरा पराक्रम अत्यन्त बढ़ जाय, जिससे युद्धमें मैं उन बलवान् देवताओंसे अजेय हो जाऊँ॥ ८॥

व्यासजी बोले—उसके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर ब्रह्माजी उससे हँसते हुए बोले—[हे वत्स!] उठो और [घर] जाओ, तुम्हारा मनोरथ निश्चय ही पूर्ण होगा। तुम्हारा कल्याण हो॥ ९॥

न सूखी, न गीली वस्तुसे, न तो पत्थर या लकड़ीद्वारा निर्मित शस्त्रसे ही तुम्हारी मृत्यु होगी—यह मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १०॥

ऐसा वरदान देकर ब्रह्माजी अपने दिव्य लोकको चले गये और वृत्रासुर भी वरदान प्राप्तकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर चला गया॥ ११॥

महाबुद्धिमान् वृत्रासुरने पिताके सम्मुख उस वरदानको सुनाया, तब त्वष्टा भी पुत्रके वरदान प्राप्त करनेसे अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ १२॥

उन्होंने कहा—हे महाभाग! तुम्हारा कल्याण हो, मेरे शत्रु और त्रिशिराके हत्यारे पापी इन्द्रको मार डालो; उसे मारकर आ जाओ॥ १३॥

युद्धमें विजय प्राप्तकर तुम देवताओंके अधिपति बनो। पुत्रहत्यासे उत्पन्न मेरे महान् मानसिक सन्तापको तुम दूर करो॥ १४॥

जीवित [अवस्थामें] पिताकी आज्ञाका पालन करने, मृत्युतिथिपर पर्याप्त भोजन कराने तथा गयामें पिण्डदान करने—इन तीनोंसे ही पुत्रका पुत्रत्व सार्थक होता है॥ १५॥

तस्मात्पुत्र ममात्यर्थं दुःखं नाशितुमर्हसि।
त्रिशिरा मम चित्तात्तु नापसर्पति कर्हिचित्॥ १६

सुशीलः सत्यवादी च तापसो वेदवित्तमः।
अपराधं विना तेन निहतः पापबुद्धिना ॥ १७

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा वृत्रः परमदुर्जयः।
रथमारुह्य तरसा निर्जगाम पितुर्गृहात्॥ १८

रणदुन्दुभिनिर्घोषं शङ्खनादं महाबलम्।
कारयित्वा प्रयाणं स चकार मदगर्वितः ॥ १९

निर्ययौ नयसंयुक्तः सेवकानिति संवदन्।
हत्वा शक्रं ग्रहीष्यामि सुरराज्यमकण्टकम्॥ २०

इत्युक्त्वा निर्जगामाशु स्वसैन्यपरिवारितः।
महता सैन्यनादेन भीषयन्नमरावतीम्॥ २१

तमागच्छन्तमाज्ञाय तुराषाडपि सत्वरः।
सेनोद्योगं भयत्रस्तः कारयामास भारत ॥ २२

सर्वानाहूय तरसा लोकपालानरिन्दमः।
युद्धार्थं प्रेरयन्सर्वान्व्यरोचत महाद्युतिः॥ २३

गृध्रव्यूहं ततः कृत्वा संस्थितः पाकशासनः।
तत्राजगाम वेगात्तु वृत्रः परबलार्दनः॥ २४

देवदानवयोस्तावत्संग्रामस्तुमुलोऽभवत्।
वृत्रवासवयोः संख्ये मनसा विजयैषिणोः॥ २५

एवं परस्परं युद्धे सन्दीप्ते भयदे भृशम्।
आकूतं देवताः प्रापुर्दैत्याश्च परमां मुदम्॥ २६

तोमरैर्भिन्दिपालैश्च खड्गैः परशुपट्टिशैः।
जघ्नुः परस्परं देवदैत्याः स्वस्ववरायुधैः॥ २७

अतः हे पुत्र! तुम मेरे बहुत बड़े दुःखको दूर करनेमें समर्थ हो; त्रिशिरा मेरे चित्तसे कभी हटता नहीं है॥ १६॥

उस सुशील, सत्यवादी, तपस्वी और वेदवेत्ताको बिना किसी अपराधके ही पापबुद्धिवाले उस इन्द्रने मार डाला॥ १७॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर परम दुर्जय वृत्रासुर रथपर सवार हो शीघ्र ही [अपने] पिताके घरसे निकल पड़ा। रणभेरियोंकी ध्वनि तथा महान् शंखनाद कराकर उस मदोन्मत्तने प्रस्थान किया॥ १८-१९॥

'इन्द्रको मारकर निष्कण्टक देव-राज्य अधिकृत कर लूँगा'—ऐसा सेवकोंसे कहते हुए वह नीतिवान् वृत्र निकल पड़ा॥ २०॥

ऐसा कहकर सैनिकोंके महान् घोषसे अमरावती (इन्द्रपुरी)-को भयभीत करता हुआ वह अपनी सेनाके साथ शीघ्रतापूर्वक निकला॥ २१॥

हे भारत! उसे आता हुआ जानकर भयभीत इन्द्र भी शीघ्रतापूर्वक सेनाकी तैयारी कराने लगे॥ २२॥

उन शत्रुदमन इन्द्रने शीघ्र ही सभी लोकपालोंको बुलाकर उन्हें युद्धकी तैयारी करनेके लिये प्रेरित किया, उस समय वे अत्यन्त कान्तिमान् लग रहे थे॥ २३॥

तत्पश्चात् गृध्रव्यूहका निर्माण करके इन्द्र युद्धके लिये डट गये; उसी समय शत्रुसेनाका विध्वंस कर डालनेवाला वृत्रासुर भी वहाँ वेगपूर्वक आ पहुँचा॥ २४॥

तब युद्धक्षेत्रमें अपने-अपने मनमें विजयकी इच्छा रखनेवाले इन्द्र तथा वृत्रासुरकी देव-दानव सेनाओंमें भीषण संग्राम होने लगा॥ २५॥

इस प्रकार परस्पर युद्धके उग्र और भयंकर हो जानेपर देवगण व्याकुल और दानव अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ २६॥

उस युद्धमें तोमर, भिन्दिपाल, तलवार, परशु और पट्टिश—इन अपने-अपने श्रेष्ठ आयुधोंसे देवता और दैत्य एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे॥ २७॥

एवं युद्धे वर्तमाने दारुणे लोमहर्षणे।
शक्रं जग्राह सहसा वृत्रः क्रोधसमन्वितः॥ २८

अपावृत्य मुखे क्षिप्त्वा स्थितो वृत्रः शतक्रतुम्।
मुदितोऽभून्महाराज पूर्ववैरमनुस्मरन्॥ २९

शक्रे ग्रस्तेऽथ वृत्रेण संभ्रान्ता निर्जरास्तदा।
चुक्रुशुः परमार्तास्ते हा शक्रेति मुहुर्मुहुः॥ ३०

अपावृतं मुखे शक्रं ज्ञात्वा सर्वे दिवौकसः।
बृहस्पतिं प्रणम्योचुर्दीना व्यथितचेतसः॥ ३१

किं कर्तव्यं द्विजश्रेष्ठ त्वमस्माकं गुरुः परः।
शक्रो ग्रस्तस्तु वृत्रेण रक्षितो देवतान्तरैः॥ ३२

विना शक्रेण किं कुर्मः सर्वे हीनपराक्रमाः।
अभिचारं कुरु विभो सत्वरः शक्रमुक्तये॥ ३३

बृहस्पतिरुवाच

किं कर्तव्यं सुराः क्षिप्तो मुखमध्येऽस्ति वासवः।
वृत्रेणोत्सादितो जीवन्नस्ति कोष्ठान्तरे रिपोः॥ ३४

व्यास उवाच

देवाश्चिन्तातुराः सर्वे तुरासाहं तथाकृतम्।
दृष्ट्वा विमृश्य तरसा चक्रुर्यत्नं विमुक्तये॥ ३५

असृजन्त महासत्त्वां जृम्भिकां रिपुनाशिनीम्।
ततो विजृम्भमाणः स व्यावृतास्यो बभूव ह॥ ३६

विजृम्भमाणस्य ततो वृत्रस्यास्यादवापतत्।
स्वान्यङ्गान्यपि संक्षिप्य निष्क्रान्तो बलसूदनः॥ ३७

ततः प्रभृति लोकेषु जृम्भिका प्राणिसंस्थिता।
जहृषुश्च सुराः सर्वे शक्रं दृष्ट्वा विनिर्गतम्॥ ३८

ततः प्रववृते युद्धं तयोर्लोकभयप्रदम्।
वर्षाणामयुतं यावद्दारुणं लोमहर्षणम्॥ ३९

इस प्रकारके हो रहे रोमांचकारी और भयंकर संग्राममें क्रोधाभिभूत वृत्रासुरने अचानक इन्द्रको पकड़ लिया॥ २८॥

हे महाराज! वृत्रासुर इन्द्रको कवच-वस्त्र आदिसे रहित करके अपने मुखमें डालकर स्थित हो गया और पूर्ववैरका स्मरण करते हुए वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ २९॥

वृत्रासुरके द्वारा इन्द्रको निगला गया देखकर देवता विस्मित हो गये और अत्यन्त दुःखी होकर 'हा इन्द्र! हा इन्द्र!' कहकर चिल्लाने लगे॥ ३०॥

जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि इन्द्रको वृत्रने मुखमें रखकर छिपा लिया है तो वे अत्यन्त दुःखित होकर बृहस्पतिके पास गये और उनसे दीन वाणीमें बोले—॥ ३१॥

हे द्विजश्रेष्ठ! देवसेनासे सुरक्षित इन्द्रको वृत्रासुरने अपने मुखमें रख लिया है। अब हम क्या करें? आप हमारे परम गुरु हैं॥ ३२॥

इन्द्रके बिना हमलोग क्या करें, हम सब पराक्रमहीन हो गये हैं। हे विभो! इन्द्रकी मुक्तिके लिये आप शीघ्र ही अभिचार-क्रिया कीजिये॥ ३३॥

बृहस्पति बोले—हे देवताओ! क्या किया जाय? उसने इन्द्रको मुखमें रख लिया है, वृत्रासुरके द्वारा पीड़ित वे इन्द्र उस शत्रुके मुखमें भी जीवित हैं॥ ३४॥

व्यासजी बोले—इन्द्रको उस स्थितिमें प्राप्त देखकर चिन्तित देवताओंने भलीभाँति सोचकर उनकी मुक्तिके लिये शीघ्र ही एक उपाय किया॥ ३५॥

उन्होंने अत्यन्त शक्तिशालिनी और शत्रुनाशिनी जम्हाईका सृजन किया; इससे उसे जम्हाई आते ही उस वृत्रासुरका मुख खुल गया॥ ३६॥

तत्पश्चात् जम्हाई लेते हुए वृत्रासुरके मुखसे बल नामक दैत्यका नाश करनेवाले इन्द्र अपने अंगोंको संकुचित करके बाहर निकल आये॥ ३७॥

उसी समयसे संसारके सभी प्राणियोंके शरीरमें जम्हाई विद्यमान रहने लगी। इन्द्रको बाहर निकला हुआ देखकर सभी देवता हर्षित हो उठे॥ ३८॥

तब उन दोनोंमें तीनों लोकोंके लिये भयदायक, रोमांचकारी और भीषण युद्ध प्रारम्भ हो गया, जो दस हजार वर्षोंतक चला॥ ३९॥

एकतश्च सुराः सर्वे युद्धाय समुपस्थिताः।
एकतो बलवांस्त्वाष्ट्रः संग्रामे समवर्तत॥ ४०

यदा व्यवर्धत रणे वृत्रो वरमदावृतः।
पराजितस्तदा शक्रस्तेजसा तस्य धर्षितः॥ ४१

विव्यथे मघवा युद्धे ततः प्राप्य पराजयम्।
विषादमगमन्देवा दृष्ट्वा शक्रं पराजितम्॥ ४२

जग्मुस्त्यक्त्वा रणं सर्वे देवा इन्द्रपुरोगमाः।
गृहीतं देवसदनं वृत्रेणागत्य रंहसा॥ ४३

देवोद्यानानि सर्वाणि भुङ्क्तेऽसौ दानवो बलात्।
ऐरावतोऽपि दैत्येन गृहीतोऽसौ गजोत्तमः॥ ४४

विमानानि च सर्वाणि गृहीतानि विशाम्पते।
उच्चैःश्रवा हयवरो जातस्तस्य वशे तदा॥ ४५

कामधेनुः पारिजातो गणश्चाप्सरसां तथा।
गृहीतं रत्नमात्रं तु तेन त्वष्टृसुतेन ह॥ ४६

स्थानभ्रष्टाः सुराः सर्वे गिरिदुर्गेषु संस्थिताः।
दुःखमापुः परिभ्रष्टा यज्ञभागात्सुरालयात्॥ ४७

वृत्रः सुरपदं प्राप्य बभूव मदगर्वितः।
त्वष्टातीव सुखं प्राप्य मुमोद सुतसंयुतः॥ ४८

अमन्त्रयन्हितं देवा मुनिभिः सह भारत।
किं कर्तव्यमिति प्राप्ते विचिन्त्य भयमोहिताः॥ ४९

जग्मुः कैलासमचलं सुराः शक्रसमन्विताः।
महादेवं प्रणम्योचुः प्रह्वाः प्राञ्जलयो भृशम्॥ ५०

देवदेव महादेव कृपासिन्धो महेश्वर।
रक्षास्मान्भयभीतांस्तु वृत्रेणातिपराजितान्॥ ५१

युद्ध करनेके लिये संग्राममें एक ओर सभी देवता उपस्थित थे तो दूसरी ओर त्वष्टाका बलशाली पुत्र वृत्रासुर डटा हुआ था॥ ४०॥

वरदानके अहंकारसे उन्मत्त वृत्रासुरका उत्कर्ष जब रणमें प्रबल हो गया, तब उसके तेजसे पराक्रमहीन इन्द्र पराजित हो गये॥ ४१॥

उससे युद्धमें पराजय प्राप्त करके इन्द्रको बहुत व्यथा हुई और उन्हें पराजित देखकर देवगण भी विषादग्रस्त हो गये॥ ४२॥

तब इन्द्र आदि समस्त देवता युद्ध छोड़कर भाग गये और वृत्रासुरने शीघ्रतापूर्वक आकर अमरावतीपर अधिकार कर लिया॥ ४३॥

अब वह दानव समस्त देवोद्यानोंका बलपूर्वक उपभोग करने लगा। उस दैत्य वृत्रासुरके द्वारा गजश्रेष्ठ ऐरावत भी अधिकारमें कर लिया गया॥ ४४॥

हे राजन्! तत्पश्चात् उसने समस्त विमानोंको ग्रहण कर लिया और अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवाको भी अपने अधीन कर लिया॥ ४५॥

उसी प्रकार कामधेनु, कल्पवृक्ष, अप्सराओंका समूह तथा रत्न आदि जो कुछ था; वह सब उस त्वष्टापुत्र वृत्रने अपने अधिकारमें कर लिया॥ ४६॥

अब राज्यच्युत होकर सभी देवता पर्वतोंकी कन्दराओंमें रहकर अत्यन्त दुःख प्राप्त करने लगे। वे यज्ञभाग और देवसदन—दोनोंसे वंचित हो गये॥ ४७॥

वृत्रासुर देव-राज्य पाकर मदोन्मत्त हो गया। त्वष्टा भी अत्यन्त सुख प्राप्तकर पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे॥ ४८॥

हे भारत! देवगण अपने कल्याणके लिये मुनियोंके साथ विचार-विमर्श करने लगे कि इस स्थितिके प्राप्त होनेपर अब हमें क्या करना चाहिये—ऐसा विचार करके भयमोहित वे देवगण इन्द्रके साथ कैलासपर्वतपर गये और वहाँ देवाधिदेव भगवान् शंकरको प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे—॥ ४९-५०॥

हे देव! हे महादेव! हे कृपासागर! हे महेश्वर! वृत्रासुरसे पूर्णतः पराजित हम भयभीत देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ५१॥

गृहीतं देवसदनं तेन देव बलीयसा।
किं कर्तव्यमतः शम्भो ब्रूहि सत्यं शिवाद्य नः॥ ५२

किं कुर्मः क्व च गच्छामः स्थानभ्रष्टा महेश्वर।
दुःखस्य नाधिगच्छामो विनाशोपायमीश्वर॥ ५३

साहाय्यं कुरु भूतेश व्यथिताः स्म कृपानिधे।
वृत्रं जहि मदोत्सिक्तं वरदानबलाद्विभो॥ ५४

शिव उवाच

ब्रह्माणं पुरतः कृत्वा वयं सर्वे हरेः क्षयम्।
गत्वा समेत्य तं विष्णुं चिन्तयामो वधोद्यमम्॥ ५५

स शक्तश्च छलज्ञश्च बलवान्बुद्धिमत्तरः।
शरण्यश्च दयाब्धिश्च वासुदेवो जनार्दनः॥ ५६

विना तं देवदेवेशं नार्थसिद्धिर्भविष्यति।
तस्मात्तत्र च गन्तव्यं सर्वकार्यार्थसिद्धये॥ ५७

व्यास उवाच

इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे ब्रह्मा शक्रः सशङ्करः।
जग्मुर्विष्णोः क्षयं देवाः शरण्यं भक्तवत्सलम्॥ ५८

गत्वा विष्णुपदं देवास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्।
हरिं पुरुषसूक्तेन वेदोक्तेन जगद्गुरुम्॥ ५९

प्रत्यक्षोऽभूज्जगन्नाथस्तेषां स कमलापतिः।
सम्मान्य च सुरान्सर्वानित्युवाच पुरःस्थितः॥ ६०

किमागताः स्म लोकेशा हरब्रह्मसमन्विताः।
कारणं कथयध्वं वः सर्वेषां सुरसत्तमाः॥ ६१

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा हरेर्वाक्यं नोचुर्देवा रमापतिम्।
चिन्ताविष्टाः स्थिताः प्रायः सर्वे प्राञ्जलयस्तथा॥ ६२

हे देव! उस महाबलीने देवलोकपर अधिकार कर लिया है। हे शम्भो! हे शिव! अब हमें क्या करना चाहिये, आप हमें सही-सही बताइये॥ ५२॥

हे महेश्वर! हम राज्यभ्रष्ट क्या करें और कहाँ जायँ? हे ईश्वर! हम इस दुःखके विनाशके लिये कोई भी उपाय नहीं जान पा रहे हैं॥ ५३॥

हे भूतेश! हमारी सहायता कीजिये। हे कृपानिधान! हम सब बहुत दुःखी हैं। हे विभो! वरदानके प्रभावसे मदोन्मत्त वृत्रासुरका वध कीजिये॥ ५४॥

शिवजी बोले—ब्रह्माजीको आगे करके हमलोग विष्णुलोक चल करके वहाँ उन श्रीहरिके पास जाकर उस वृत्रासुरके वधके उपायपर विचार करेंगे॥ ५५॥

वे जनार्दन भगवान् विष्णु शक्तिशाली, छलकार्यमें निपुण, बलवान्, सबसे बुद्धिमान्, शरणदाता और दयाके सागर हैं॥ ५६॥

उन देवदेवेशके बिना हमारा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा, इसलिये सभी कार्योंकी सिद्धिके लिये हमें वहीं चलना चाहिये॥ ५७॥

व्यासजी बोले—ऐसा विचारकर ब्रह्मा, शिव तथा इन्द्र आदि सभी देवता शरणदाता और भक्तवत्सल भगवान् विष्णुके लोक गये॥ ५८॥

वैकुण्ठधाममें पहुँचकर वे देवता वेदोक्त पुरुषसूक्तसे उन परमेश्वर जगद्गुरु श्रीहरिकी स्तुति करने लगे॥ ५९॥

तब भगवान् जगन्नाथ कमलापति विष्णु उनके सम्मुख उपस्थित हो गये और सभी देवताओंका सम्मान करके उनसे बोले—॥ ६०॥

हे लोकपालगण! आपलोग ब्रह्मा और शिवजीके साथ यहाँ क्यों आये हैं? हे श्रेष्ठ देवताओ! आप सभी अपने आगमनका कारण बतायें॥ ६१॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णुका यह वचन सुनकर भी देवगण उन रमापतिसे कुछ बोल न सके और वे चिन्तातुर होकर हाथ जोड़े खड़े ही रहे॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे ब्रह्मनेतृत्वे
सेन्द्रैः सुरैर्विष्णोः शरणगमनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे देवताओंका भगवतीकी स्तुति करना और प्रसन्न होकर भगवतीका वरदान देना

व्यास उवाच

तथा चिन्तातुरान्वीक्ष्य सर्वान्सर्वार्थतत्त्ववित्।
प्राह प्रेमभरोद्भ्रान्तान्माधवो मेदिनीपते॥ १

विष्णुरुवाच

किं मौनमाश्रिता यूयं ब्रुवन्तु कारणं सुराः।
सदसद्वापि यच्छ्रुत्वा यतिष्ये तन्निवारणे॥ २

देवा ऊचुः

किमज्ञातं तव विभो त्रिषु लोकेषु वर्तते।
सर्वं वेद भवान्कार्यं किं पृच्छसि पुनः पुनः॥ ३

त्वया पूर्वं बलिर्बद्धः शक्रो देवाधिपः कृतः।
वामनं वपुरास्थाय क्रान्तं त्रिभुवनं पदैः॥ ४

अमृतं त्वाहृतं विष्णो दैत्याश्च विनिपातिताः।
त्वं प्रभुः सर्वदेवानां सर्वापद्विनिवारणे॥ ५

विष्णुरुवाच

न भेतव्यं सुरवरा वेद्म्युपायं सुसम्मतम्।
तद्वधाय प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं भविष्यति॥ ६

अवश्यं करणीयं मे भवतां हितमात्मना।
बुद्ध्या बलेन चार्थेन येन केनच्छलेन वा॥ ७

उपायाः खलु चत्वारः कथितास्तत्त्वदर्शिभिः।
सामादयः सुहृत्स्वेव दुर्हृदेषु विशेषतः॥ ८

ब्रह्मणास्य वरो दत्तस्तपसाराधितेन च।
दुर्जयत्वं च सम्प्राप्तं वरदानप्रभावतः॥ ९

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब सभी तत्त्वोंके ज्ञाता माधव भगवान् विष्णु समस्त देवताओंको चिन्तासे व्याकुल तथा अत्यन्त प्रेमविह्वल देखकर कहने लगे॥ १॥

विष्णु बोले—हे देवगण! आप सबने मौन धारण क्यों कर रखा है? आप सब अपने दुःखका सत्-असत् जो भी कारण हो बतायें, जिसे सुनकर मैं उसे दूर करनेका उपाय करूँगा॥ २॥

देवता बोले—हे विभो! तीनों लोकोंमें कौन-सी वस्तु आपसे अज्ञात है, आप हमारा सारा कार्य [भली प्रकारसे] जानते हैं; तो क्यों बार-बार पूछ रहे हैं?॥ ३॥

पूर्वकालमें आपने बलिको बाँध लिया था और इन्द्रको देवताओंका राजा बनाया था; आपने वामन-शरीर धारणकर तीनों लोकोंको अपने चरणोंसे नाप लिया था॥ ४॥

हे विष्णो! आपने ही अमृत छीनकर दैत्योंका नाश किया था; आप सभी देवताओंकी समस्त विपत्तियोंको दूर करनेमें समर्थ हैं॥ ५॥

विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवताओ! आपलोग भयभीत न हों। मैं उस वृत्रासुरके वधका सुसंगत उपाय जानता हूँ, उसे मैं बताऊँगा, जिससे आपलोगोंको सुख होगा॥ ६॥

अपनी बुद्धिसे, बलसे, धनसे या जिस किसी भी उपायसे मुझे आपलोगोंका हित अवश्य करना है॥ ७॥

मित्रों और विशेषरूपसे शत्रुओंके प्रति [प्रयोगहेतु] तत्त्वदर्शियोंने साम, दान, दण्ड, भेद—ये चार उपाय बताये हैं॥ ८॥

वृत्रासुरकी तपस्यासे प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने इसे वरदान दिया है और उस वरदानके प्रभावसे यह दुर्जय हो गया है॥ ९॥

अजेयः सर्वभूतानां त्वष्ट्रा समुपपादितः।
ततो बलेन वृद्धिं स प्राप्तः परपुरञ्जयः॥ १०

दुःसाध्योऽसौ सुराः शत्रुर्विना सामप्रतारणम्।
प्रलोभ्य वशमानेयो हन्तव्यस्तु ततः परम्॥ ११

गच्छध्वं सर्वगन्धर्वा यत्रास्ति बलवत्तरः।
साम तस्य प्रयुञ्जध्वं तत एनं विजेष्यथ॥ १२

सङ्गम्य शपथान्कृत्वा विश्वास्य समयेन हि।
मित्रत्वं च समाधाय हन्तव्यः प्रबलो रिपुः॥ १३

अदृश्यः सम्प्रवेक्ष्यामि वज्रमस्य वरायुधम्।
साहाय्यं च करिष्यामि शक्रस्याहं सुरोत्तमाः॥ १४

समयं च प्रतीक्षध्वं सर्वथैवायुषः क्षये।
मरणं विबुधास्तस्य नान्यथा सम्भविष्यति॥ १५

गच्छध्वमृषिभिः सार्धं गन्धर्वाः कपटावृताः।
इन्द्रेण सह मित्रत्वं कुरुध्वं वाक्यदानतः॥ १६

यथा स याति विश्वासं तथा कार्यं प्रतारणम्।
गुप्तोऽहं सम्प्रवेक्ष्यामि पविं सञ्छादितं दृढम्॥ १७

विश्वस्तं मघवा शत्रुं हनिष्यति न चान्यथा।
विश्वासस्य कृते पापं कृत्वा शक्रस्तु पृष्ठतः॥ १८

मत्सहायोऽथ वज्रेण शातयिष्यति पापिनम्।
न दोषोऽत्र शठे शत्रौ शाठ्यमेव प्रकुर्वतः॥ १९

नान्यथा बलवान्वध्यः शूरधर्मेण जायते।
वामनं रूपमाधाय मयायं वञ्चितो बलिः॥ २०

कृत्वा च मोहिनीवेषं दैत्याः सर्वेऽपि वञ्चिताः।
भवन्तः सहिताः सर्वे देवीं भगवतीं शिवाम्॥ २१

त्वष्टाके द्वारा उत्पन्न किया गया यह वृत्रासुर समस्त प्राणियोंके लिये अजेय हो गया है। शत्रुओंके राज्यको जीत लेनेवाला वह अपनी शक्तिसे अधिक प्रबल हो गया है॥ १०॥

हे देवताओ! बिना सामनीतिके प्रयोगके वह वृत्रासुर देवताओंके लिये दुःसाध्य है, अतः पहले इसे प्रलोभन देकर वशमें करना चाहिये, तत्पश्चात् मार डालना चाहिये॥ ११॥

हे गन्धर्वगण! जहाँ वह बलवान् वृत्रासुर रहता है, वहाँ तुमलोग जाओ और उसपर सामनीतिका प्रयोग करो; तभी उसपर विजय प्राप्त कर सकोगे॥ १२॥

वहाँ जाकर अनेक शपथें खाकर सन्धिके द्वारा उसे विश्वासमें ले करके और पुनः मित्रताकर बादमें उस प्रबल शत्रुको मार डालना चाहिये॥ १३॥

हे श्रेष्ठ देवगण! मैं अदृश्य रूपमें इन्द्रके श्रेष्ठ आयुध वज्रमें प्रवेश कर जाऊँगा और उनकी सहायता करूँगा॥ १४॥

हे देवताओ! अब आपलोग समयकी प्रतीक्षा करें, वृत्रासुरकी आयुके क्षीण होनेपर ही उसकी मृत्यु होगी, अन्य किसी भी प्रकारसे नहीं॥ १५॥

हे गन्धर्वगण! तुमलोग वेष बदलकर ऋषियोंके साथ उसके पास जाओ और वचनबद्धतापूर्वक इन्द्रके साथ उसकी मित्रता करा दो॥ १६॥

जिस प्रकारसे उसका विश्वास दृढ़ हो जाय, वैसा ही आप सबको करना चाहिये। मैं सुदृढ़ तथा आवरणयुक्त वज्रमें गुप्तरूपसे प्रवेश कर जाऊँगा॥ १७॥

जब वृत्रासुरको पूर्ण विश्वास हो जाय तभी इन्द्र उस शत्रुका वध करेंगे। उसके वधका अन्य कोई उपाय नहीं है। वे इन्द्र विश्वासघात करके मेरी सहायतासे वज्रद्वारा पीछेसे उस पापीको मार डालेंगे। इस दुष्ट शत्रुके साथ शठता करनेमें दोष नहीं है। अन्यथा वह बलवान् वीरधर्मसे नहीं मारा जा सकेगा। पूर्वकालमें मैंने भी वामनरूप धारणकर बलिको वंचित किया था और मोहिनीरूप धारणकर सभी दैत्योंको छला था॥ १८—२०½॥

हे देवताओ! अब आप सब लोग एक साथ देवी भगवती शिवाकी शरणमें जायँ और भावपूर्वक

गच्छध्वं शरणं भावैः स्तोत्रमन्त्रैः सुरोत्तमाः।
साहाय्यं सा योगमाया भवतां संविधास्यति॥ २२

वन्दामहे सदा देवीं सात्त्विकीं प्रकृतिं पराम्।
सिद्धिदां कामदां कामां दुरापामकृतात्मभिः॥ २३

इन्द्रोऽपि तां समाराध्य हनिष्यति रिपुं रणे।
मोहिनी सा महामाया मोहयिष्यति दानवम्॥ २४

मोहितो मायया वृत्रः सुखसाध्यो भविष्यति।
प्रसन्नायां पराम्बायां सर्वं साध्यं भविष्यति॥ २५

नोचेन्मनोरथावाप्तिर्न कस्यापि भविष्यति।
अन्तर्यामिस्वरूपा सा सर्वकारणकारणा॥ २६

तस्मात्तां विश्वजननीं प्रकृतिं परमादृताः।
भजध्वं सात्त्विकैर्भावैः शत्रुनाशाय सत्तमाः॥ २७

पुरा मयापि संग्रामं कृत्वा परमदारुणम्।
पञ्चवर्षसहस्राणि निहतौ मधुकैटभौ॥ २८

स्तुता मया तदात्यर्थं प्रसन्ना प्रकृतिः परा।
मोहितौ तौ तदा दैत्यौ छलेन च मया हतौ॥ २९

विप्रलब्धौ महाबाहू दानवौ मदगर्वितौ।
तथा कुरुध्वं प्रकृतेर्भजनं भावसंयुताः॥ ३०

सर्वथा कार्यसिद्धिं सा करिष्यति सुरोत्तमाः।
एवं ते दत्तमतयो विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ३१

जग्मुस्ते मेरुशिखरं मन्दारद्रुममण्डितम्।
एकान्ते संस्थिता देवाः कृत्वा ध्यानं जपं तपः॥ ३२

तुष्टुवुर्जगतां धात्रीं सृष्टिसंहारकारिणीम्।
भक्तकामदुघामम्बां संसारक्लेशनाशिनीम्॥ ३३

देवा ऊचुः

देवि प्रसीद परिपाहि सुरान्प्रतप्तान्
वृत्रासुरेण समरे परिपीडितांश्च।
दीनार्तिनाशनपरे परमार्थतत्त्वे
प्राप्तांस्त्वदङ्घ्रिकमलं शरणं सदैव॥ ३४

स्तोत्रों और मन्त्रोंसे उनकी स्तुति करें। वे भगवती योगमाया आपलोगोंकी सहायता करेंगी॥ २१-२२॥

हम सभी उन सात्त्विकी, परा प्रकृति, सिद्धिदात्री, कामनास्वरूपिणी, भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली और दुराचारियोंके लिये दुर्लभ देवीकी सदा वन्दना करते हैं॥ २३॥

इन्द्र भी उनकी आराधना करके युद्धमें शत्रुको मार डालेंगे। वे मोहिनी महामाया उस दानव वृत्रासुरको मोहित कर देंगी। तब मायासे मोहित वृत्रासुर सुगमतापूर्वक मारा जा सकेगा। उन पराम्बाके प्रसन्न होनेपर सब कुछ साध्य हो जायगा। अन्यथा किसीकी भी कामनाकी पूर्ति नहीं होगी। वे भगवती सबकी अन्तर्यामिस्वरूपिणी और सभी कारणोंकी भी कारण हैं। इसलिये हे श्रेष्ठ देवगण! शत्रुके विनाशके लिये सात्त्विक भावोंसे युक्त होकर उन प्रकृतिस्वरूपा जगज्जननीका परम आदरपूर्वक भजन कीजिये॥ २४—२७॥

पूर्वकालमें मैंने भी पाँच हजार वर्षोंतक अत्यन्त भीषण युद्ध करके मधु-कैटभका वध किया था। उस समय मैंने उन पराप्रकृतिकी स्तुति की थी, तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गयी थीं। तत्पश्चात् उनके द्वारा मोहित दोनों दैत्योंको मैंने छलपूर्वक मार डाला था। मोहित किये गये विशाल भुजाओंवाले वे दोनों दानव अत्यन्त मदोन्मत्त थे। इसीलिये आपलोग भी उसी प्रकार भावपूर्वक उन पराप्रकृतिका भजन कीजिये। हे देवगण! वे सब प्रकारसे कार्यकी सिद्धि करेंगी॥ २८—३०½॥

इस प्रकार भगवान् विष्णुसे परामर्श प्राप्त करके वे मन्दार वृक्षोंसे सुशोभित सुमेरुपर्वतके शिखरपर चले गये। वे देवता वहाँ एकान्तमें बैठकर ध्यान, जप और तप करके जगत्‌का सृजन-पालन-संहार करनेवाली, भक्तोंके लिये कामधेनुस्वरूपा एवं संसारके क्लेशोंका नाश करनेवाली पराम्बा भगवतीकी इस प्रकार स्तुति करने लगे॥ ३१—३३॥

देवता बोले—हे देवि! हे दीनोंके कष्ट दूर करनेवाली! हे परमार्थतत्त्वस्वरूपिणि! हमपर प्रसन्न हों, वृत्रासुरके द्वारा सताये गये, युद्धमें अत्यन्त पीड़ित किये गये तथा आपके चरणकमलकी शरणमें सदासे पड़े हुए हम देवताओंकी रक्षा कीजिये॥ ३४॥

त्वं सर्वविश्वजननी परिपालयास्मान्
पुत्रानिवातिपतितान् रिपुसङ्कटेऽस्मिन् ।
मातर्न तेऽस्त्यविदितं भुवनत्रयेऽपि
कस्मादुपेक्षसि सुरानसुरप्रतप्तान्॥ ३५

त्रैलोक्यमेतदखिलं विहितं त्वयैव
ब्रह्मा हरिः पशुपतिस्तव वासनोत्थाः।
कुर्वन्ति कार्यमखिलं स्ववशा न ते ते
भ्रूभङ्गचालनवशाद्विहरन्ति कामम्॥ ३६

माता सुतान्परिभवात्परिपाति दीनान्
रीतिस्त्वयैव रचिता प्रकटापराधान्।
कस्मान्न पालयसि देवि विनापराधा-
नस्मांस्त्वदङ्घ्रिशरणान्करुणारसाब्धे ॥ ३७

नूनं मदङ्घ्रिभजनाप्तपदाः किलैते
भक्तिं विहाय विभवे सुखभोगलुब्धाः।
नेमे कटाक्षविषया इति चेन्न चैषा
रीतिः सुते जननकर्तरि चापि दृष्टा॥ ३८

दोषो न नोऽत्र जननि प्रतिभाति चित्ते
यत्ते विहाय भजनं विभवे निमग्नाः।
मोहस्त्वया विरचितः प्रभवत्यसौ न-
स्तस्मात्स्वभावकरुणे दयसे कथं न॥ ३९

पूर्वं त्वया जननि दैत्यपतिर्बलिष्ठो
व्यापादितो महिषरूपधरः किलाजौ।
अस्मत्कृते सकललोकभयावहोऽसौ
वृत्रं कथं न भयदं विधुनोषि मातः॥ ४०

हे माता! आप समस्त विश्वकी जननी हैं, शत्रुद्वारा उपस्थित किये गये इस संकटमें पड़े हुए हम सबका आप पुत्रोंके समान परिपालन कीजिये। आपसे तीनों लोकोंमें कुछ भी अज्ञात नहीं है, तो आप असुरोंके द्वारा पीड़ित देवताओंकी उपेक्षा क्यों कर रही हैं?॥ ३५॥

आपने ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकीकी रचना की है। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके ही संकल्पसे उत्पन्न हुए हैं। आपके भृकुटि-विलासमात्रसे वे [सृजन, पालन तथा संहार] समस्त कार्य करते हैं और यथेच्छ विहार करते हैं; वे भी स्वतन्त्र नहीं हैं॥ ३६॥

हे देवि! माता प्रत्यक्ष अपराधवाले अपने दुःखी पुत्रोंकी भी कष्टसे सब प्रकारसे रक्षा करती है—यह रीति आपके ही द्वारा निर्मित है; तब हे करुणरसकी समुद्रस्वरूपिणि! आप अपने चरणोंकी शरणमें पड़े हुए हम निरपराध देवताओंका पालन क्यों नहीं कर रही हैं?॥ ३७॥

हे जननि! यदि आप सोचती हों कि मेरे चरणकमलोंकी आराधनासे राज्य प्राप्त करके देवता मेरी भक्ति छोड़कर वैभव-सुखोंके भोगमें आसक्त हो जायँगे और इन्हें मेरे कृपाकटाक्षकी आवश्यकता नहीं रह जायगी तो ऐसा सामान्यतः होता ही है, फिर भी जन्म देनेवाली माता अपने पुत्रके प्रति ऐसी भावना रखे—यह रीति कहीं देखी नहीं गयी॥ ३८॥

हे जननि! आपका भजन त्यागकर हमलोग जो भोगमें निमग्न हैं—इसमें हमारे चित्तमें अपना दोष नहीं प्रतीत होता; क्योंकि मोहकी रचना आपने ही की है और वह हमलोगोंको मोहित कर देता है। ऐसी परिस्थितिमें हे करुणामय स्वभाववाली! आप हमपर दया क्यों नहीं करतीं?॥ ३९॥

हे जननि! पूर्वकालमें आपने हमलोगोंके कल्याणार्थ सभीके लिये भयकारी महिषरूप धारण करनेवाले बलवान् दैत्यराजका वध किया था। हे माता! भय प्रदान करनेवाले वृत्रासुरका भी वध आप क्यों नहीं करतीं?॥ ४०॥

शुम्भस्तथातिबलवाननुजो निशुम्भ-
स्तौ भ्रातरौ तदनुगा निहता हतौ च।
वृत्रं तथा जहि खलं प्रबलं दयार्द्रे
मत्तं विमोहय तथा न भवेद्यथासौ॥ ४१

त्वं पालयाद्य विबुधानसुरेण मातः
सन्तापितानतितरां भयविह्वलांश्च।
नान्योऽस्ति कोऽपि भुवनेषु सुरार्तिहन्ता
यः क्लेशजालमखिलं निदहेत्स्वशक्त्या॥ ४२

वृत्रे दया तव यदि प्रथिता तथापि
जह्येनमाशु जनदुःखकरं खलं च।
पापात्समुद्धर भवानि शरैः पुनाना
नोचेत्प्रयास्यति तमो ननु दुष्टबुद्धिः॥ ४३

ते प्रापिताः सुरवनं विबुधारयो ये
हत्वा रणेऽपि विशिखैः किल पावितास्ते।
त्राता न किं निरयपातभयाद्दयार्द्रे
यच्छत्रवोऽपि न हि किं विनिहंसि वृत्रम्॥ ४४

जानीमहे रिपुरसौ तव सेवको न
प्रायेण पीडयति नः किल पापबुद्धिः।
यस्तावकस्त्विह भवेदमरानसौ किं
त्वत्पादपङ्कजरतान्ननु पीडयेद्वा॥ ४५

कुर्मः कथं जननि पूजनमद्य तेऽम्ब
पुष्पादिकं तव विनिर्मितमेव यस्मात्।
मन्त्रा वयं च सकलं परशक्तिरूपं
तस्माद्भवानि चरणे प्रणताः स्म नूनम्॥ ४६

धन्यास्त एव मनुजा हि भजन्ति भक्त्या
पादाम्बुजं तव भवाब्धिजलेषु पोतम्।
यं योगिनोऽपि मनसा सततं स्मरन्ति
मोक्षार्थिनो विगतरागविकारमोहाः॥ ४७

शुम्भ और उसके बलवान् भाई निशुम्भ—उन दोनों भाइयोंको आपने मार डाला था और उनके अनुचरोंका भी वध कर दिया था। उसी प्रकार हे दयासे आर्द्रहृदयवाली! अत्यन्त बलशाली, उन्मत्त तथा दुष्ट वृत्रासुरको भी मार डालिये। आप इसे विमोहित कर दें, जिससे यह भी उनकी तरह न हो सके। हे माता! असुरोंके द्वारा अत्यधिक पीड़ित किये गये तथा भयसे व्याकुल हम देवताओंका अब आप ही पालन कीजिये; क्योंकि तीनों लोकोंमें ऐसा कोई नहीं है जो देवताओंका दुःख दूर कर सके और अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण कष्टके समूहको नष्ट कर सके॥ ४१-४२॥

यदि वृत्रासुरपर आपकी अत्यधिक दया हो तो भी आप हमलोगोंके लिये संतापकारक इस दुष्टको शीघ्र ही मार डालिये। हे भवानि! अपने बाणोंसे इसको पवित्र करती हुई आप पापसे इसका उद्धार कर दीजिये, अन्यथा यह दुष्टबुद्धि वृत्रासुर नरक प्राप्त करेगा॥ ४३॥

जिन दानवोंको युद्धमें आपने बाणोंद्वारा मारकर पवित्र बना दिया, वे नन्दनवनको प्राप्त हो गये। हे दयार्द्र स्वभाववाली! क्या आपने नरकमें गिरनेके भयसे उन शत्रुओंकी रक्षा नहीं की? तो फिर आप वृत्रासुरको क्यों नहीं मारती हैं॥ ४४॥

हम यह जानते हैं कि वह आपका सेवक नहीं, शत्रु ही है; क्योंकि वह दुष्ट पापबुद्धि हम सबको सदैव सताया करता है। आपके चरणकमलोंकी भक्तिमें रत हम देवताओंको पीड़ित करनेवाला वह (वृत्रासुर) आपका भक्त कैसे हो सकता है?॥ ४५॥

हे जननि! हे अम्ब! हम आज आपकी पूजा कैसे करें; क्योंकि पुष्पादि [पूजोपचार] तो आपके द्वारा ही बनाये गये हैं। मन्त्र, हमलोग तथा अन्य सब कुछ आपकी पराशक्तिके ही रूप हैं, अतः हे भवानि! हम केवल आपके चरणोंकी शरण ले सकते हैं॥ ४६॥

वे ही मनुष्य धन्य हैं, जो भवसागरसे पार उतारनेवाले पोतसदृश आपके चरणकमलका निरन्तर भक्तिभावसे भजन करते हैं और राग, मोह आदि विकारोंसे रहित मोक्षकामी योगी भी मनसे जिसका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४७॥

ये याज्ञिकाः सकलवेदविदोऽपि नूनं
त्वां संस्मरन्ति सततं किल होमकाले।
स्वाहां तु तृप्तिजननीममरेश्वराणां
भूयः स्वधां पितृगणस्य च तृप्तिहेतुम्॥ ४८

मेधासि कान्तिरसि शान्तिरपि प्रसिद्धा
बुद्धिस्त्वमेव विशदार्थकरी नराणाम्।
सर्वं त्वमेव विभवं भुवनत्रयेऽस्मि-
न्कृत्वा ददासि भजतां कृपया सदैव॥ ४९

व्यास उवाच

एवं स्तुता सुरैर्देवी प्रत्यक्षा साभवत्तदा।
चारुरूपधरा तन्वी सर्वाभरणभूषिता॥ ५०

पाशांकुशवराभीतिलसद्बाहुचतुष्टया।
रणत्किङ्किणिकाजालरसनाबद्धसत्कटिः॥ ५१

कलकण्ठीरवा कान्ता क्वणत्कङ्कणनूपुरा।
चन्द्रखण्डसमाबद्धरत्नमौलिविराजिता॥ ५२

मन्दस्मितारविन्दास्या नेत्रत्रयविभूषिता।
पारिजातप्रसूनाच्छनालवर्णसमप्रभा॥ ५३

रक्ताम्बरपरीधाना रक्तचन्दनचर्चिता।
प्रसादसुमुखी देवी करुणारससागरा॥ ५४

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्वद्वैतारणिः परा।
सर्वज्ञा सर्वकर्त्री च सर्वाधिष्ठानरूपिणी॥ ५५

सर्ववेदान्तसंसिद्धा सच्चिदानन्दरूपिणी।
प्रणेमुस्तां समालोक्य सुरा देवीं पुरःस्थिताम्॥ ५६
तानाह प्रणतानम्बा किं वः कार्यं ब्रुवन्तु माम्।

समस्त वेदोंमें पारंगत वे यज्ञकर्ता भी निश्चय ही धन्य हैं, जो हवनके समय देवताओंको तृप्ति देनेवाली स्वाहा और पितरोंको तृप्ति देनेवाली स्वधाके रूपमें आपका निरन्तर स्मरण करते हैं॥ ४८॥

आप ही मेधा हैं, आप ही कान्ति हैं, आप ही शान्ति हैं और मनुष्योंका महान् मनोरथ पूर्ण करनेवाली प्रख्यात बुद्धि भी आप ही हैं। समस्त ऐश्वर्यकी रचना करके आप इस त्रिलोकीमें कृपा करके अपनी आराधना करनेवालेको वैभव प्रदान करती रहती हैं॥ ४९॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवताओंके स्तुति करनेपर वे भगवती प्रकट हो गयीं। उन्होंने सुन्दर रूप धारण कर रखा था, वे कोमल विग्रहवाली थीं और समस्त आभूषणोंसे सुसज्जित थीं॥ ५०॥

वे पाश, अंकुश, वर और अभयमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे युक्त थीं, उनकी कमरमें बँधी हुई करधनीके घुँघरू बज रहे थे॥ ५१॥

उन कान्तिमयी भगवतीकी ध्वनि कोयलके समान थी, उनके हाथोंके कंकण और चरणोंके नूपुर बज रहे थे। उनके मस्तकपर अर्धचन्द्रसे मण्डित रत्नमुकुट सुशोभित हो रहा था॥ ५२॥

वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं, उनका मुख कमलके समान सुशोभित हो रहा था, वे तीन नेत्रोंसे विभूषित थीं तथा पारिजातके पुष्प-नालकी भाँति उनके शरीरकी कान्ति रक्तवर्ण थी॥ ५३॥

वे लाल रंगके वस्त्र धारण किये हुए थीं और उनके शरीरपर रक्त चन्दन अनुलिप्त था। करुणारसकी सागर वे भगवती प्रसन्न मुख-मण्डलसे शोभा पा रही थीं। वे समस्त शृंगार-वेषसे विभूषित थीं। वे देवी द्वैतभावके लिये अरणीस्वरूपा, परा, सब कुछ जाननेवाली, सबकी रचना करनेवाली, सबकी अधिष्ठानस्वरूपा, सभी वेदान्तोंद्वारा प्रतिपादित और सच्चिदानन्दरूपिणी हैं। उन देवीको अपने सम्मुख स्थित देखकर देवताओंने उन्हें प्रणाम किया। तब उन प्रणत देवताओंसे भगवती अम्बिकाने कहा—आपलोग मुझे अपना कार्य बतायें॥ ५४—५६ १/२॥

देवा ऊचुः

मोहयैनं रिपुं वृत्रं देवानामतिदुःखदम्॥ ५७

यथा विश्वसते देवांस्तथा कुरु विमोहितम्।
आयुधे च बलं देहि हतः स्याद्येन वा रिपुः॥ ५८

व्यास उवाच

तथेत्युक्त्वा भगवती तत्रैवान्तरधीयत।
स्वानि स्वानि निकेतानि जग्मुर्देवा मुदान्विताः॥ ५९

देवता बोले—आप देवताओंके लिये अत्यन्त दुःखदायी इस शत्रु वृत्रासुरको विमोहित कर दीजिये। उसे आप ऐसा विमोहित कर दें, जिससे वह देवताओंपर विश्वास करने लगे और हमारे आयुधमें इतनी शक्ति भर दीजिये, जिससे यह शत्रु मारा जा सके॥ ५७-५८॥

व्यासजी बोले—तब 'तथास्तु'—ऐसा कहकर भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी प्रसन्न होकर अपने-अपने भवनोंको चले गये॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
देवीसमाराधनाय देवकृतस्तुतिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका इन्द्रको वृत्रासुरसे सन्धिका परामर्श देना, ऋषियोंकी मध्यस्थतासे इन्द्र और वृत्रासुरमें सन्धि, इन्द्रद्वारा छलपूर्वक वृत्रासुरका वध

व्यास उवाच

एवं प्राप्तवरा देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
(जग्मुः सर्वे च सम्मन्त्र्य वृत्रस्याश्रममुत्तमम् ।)
ददृशुस्तत्र तं वृत्रं ज्वलन्तमिव तेजसा॥ १

धक्ष्यन्तमिव लोकांस्त्रीन्ग्रसन्तमिव चामरान्।
ऋषयोऽथ ततोऽभ्येत्य वृत्रमूचुः प्रियं वचः॥ २

देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं सामयुक्तं रसात्मकम्।

ऋषय ऊचुः

वृत्र वृत्र महाभाग सर्वलोकभयङ्कर॥ ३

व्याप्तं त्वयैतत्सकलं ब्रह्माण्डमखिलं किल।
शक्रेण तव वैरं यत्तत्तु सौख्यविघातकम्॥ ४

युवयोर्दुःखदं कामं चिन्तावृद्धिकरं परम्।
न त्वं स्वपिषि सन्तुष्टो न चापि मघवा तथा॥ ५

सुखं स्वपिति चिन्तार्तो द्वयोर्यद्वैरिजं भयम्।
युवयोर्युध्यतोः कालो व्यतीतस्तु महानिह॥ ६

पीड्यन्ते च प्रजाः सर्वाः सदेवासुरमानवाः।

व्यासजी बोले—इस प्रकार वरप्राप्त उन देवता और तपस्वी ऋषिगणोंने (परस्पर मन्त्रणा करके वृत्रासुरके उत्तम आश्रमके लिये प्रस्थान किया) वहाँ तेजसे प्रकाशमान वृत्रासुरको देखा, जो तीनों लोकोंको भस्मसात् करने और देवताओंको निगल जानेके लिये उद्यत प्रतीत होता था। ऋषियोंने वृत्रासुरके समीप जाकर देवताओंकी कार्य-सिद्धिके लिये उससे सामनीतिपूर्ण तथा रसमय प्रिय वचन कहा॥ १-२½॥

ऋषि बोले—सब लोकोंके लिये भयंकर हे महाभाग वृत्रासुर! आपने इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको व्याप्त कर लिया है, परंतु इन्द्रके साथ आपका वैर आपके सुखको नष्ट करनेवाला है। यह आप दोनोंके लिये दुःखद और चिन्ता बढ़ानेका परम कारण है। न आप सुखसे सो पाते हैं, न ही इन्द्र सन्तुष्ट होकर सोते हैं; क्योंकि आप दोनोंको शत्रु-जन्य भय बना रहता है। आप दोनोंको युद्ध करते हुए भी बहुत समय व्यतीत हो गया है; इससे देवताओं, राक्षसों तथा मनुष्योंसहित समस्त प्रजाको कष्ट हो रहा है॥ ३—६½॥

संसारेऽत्र सुखं ग्राह्यं दुःखं हेयमिति स्थितिः ॥ ७

न सुखं कृतवैरस्य भवतीति विनिर्णयः ।
संग्रामरसिकाः शूराः प्रशंसन्ति न पण्डिताः ॥ ८

युद्धं शृङ्गारचतुरा इन्द्रियार्थविघातकम् ।
पुष्पैरपि न योद्धव्यं किं पुनर्निशितैः शरैः ॥ ९

युद्धे विजयसन्देहो निश्चयं बाणताडनम् ।
दैवाधीनमिदं विश्वं तथा जयपराजयौ ॥ १०

दैवाधीनाविति ज्ञात्वा न योद्धव्यं कदाचन ।
कालेऽथ भोजनं स्नानं शय्यायां शयनं तथा ॥ ११

परिचर्यापरा भार्या संसारे सुखसाधनम् ।
किं सुखं युध्यतः संख्ये बाणवृष्टिभयङ्करे ॥ १२

खड्गपातातिरौद्रे च तथारातिसुखप्रदे ।
संग्रामे मरणात्स्वर्गसुखप्राप्तिरिति स्फुटम् ॥ १३

प्रलोभनपरं वाक्यं नोदनार्थं निरर्थकम् ।
छित्त्वा देहं व्यथां प्राप्य शृगालकरटादिभिः ॥ १४

पश्चात्स्वर्गसुखावाप्तिं को वा वाञ्छति मन्दधीः ।
सख्यं भवतु ते वृत्र शक्रेण सह नित्यदा ॥ १५

अवाप्स्यसि सुखं त्वं च शक्रश्चापि निरन्तरम् ।
वयं च तापसाः सर्वे गन्धर्वाश्च निजाश्रमे ॥ १६

सुखवासं गमिष्यामः शान्ते वैरेऽधुनैव वाम् ।
संग्रामे युवयोर्धीर वर्तमाने दिवानिशम् ॥ १७

पीड्यन्ते मुनयः सर्वे गन्धर्वाः किन्नरा नराः ।
सर्वेषां शान्तिकामानां सख्यमिच्छामहे वयम् ॥ १८

मुनयस्त्वं च शक्रश्च प्राप्नुवन्तु सुखं किल ।
मध्यस्थाश्च वयं वृत्र युवयोः सख्यकारणे ॥ १९

शपथं कारयित्वात्र योजयामो मिथः प्रियम् ।
शक्रस्तु शपथान्कृत्वा यथोक्तांश्च तवाग्रतः ॥ २०

इस संसारमें सुख ही ग्राह्य है और दुःख सर्वथा त्याज्य है—यही परम्परा है। वैर करनेवालेको सुख नहीं प्राप्त होता, यह निश्चित सिद्धान्त है। इसलिये युद्धप्रेमी वीर इन्द्रिय सुखको नष्ट करनेवाले युद्धकी प्रशंसा करते हैं, किंतु शृंगाररसके प्रेमी विद्वान् उसकी प्रशंसा नहीं करते। पुष्पोंसे भी युद्ध नहीं करना चाहिये, फिर तीक्ष्ण बाणोंकी तो बात ही क्या? ॥ ७—९ ॥

युद्धमें विजय ही हो—यह सन्देहास्पद है, परंतु उसमें बाणोंसे शरीरको पीड़ा प्राप्त होना निश्चित है। यह समस्त विश्व दैवके अधीन है, उसी प्रकार जय-पराजय भी उसीके अधीन हैं। अतः इन्हें दैवाधीन जानकर युद्ध कभी नहीं करना चाहिये। समयपर स्नान, भोजन, शय्यापर शयन और सेवा-परायण पत्नी—ये ही संसारमें सुखके साधन हैं। बाणवर्षासे भयंकर, खड्ग-प्रहारसे अत्यन्त रौद्र तथा शत्रुको सुख प्रदान करनेवाले संग्राममें युद्ध करनेसे क्या सुख प्राप्त हो सकता है? ॥ १०—१२½ ॥

ऐसा स्पष्ट कथन है कि युद्धमें मरनेसे स्वर्ग-सुखकी प्राप्ति होती है—यह तो प्रलोभन और प्रेरणा देनेवाला तथा निरर्थक वचन है। ऐसा कौन मन्दबुद्धि है जो शरीरको अस्त्र-शस्त्रोंसे घायल कराकर सियार और कौओंसे नोचवाकर स्वर्गसुखकी प्राप्तिकी कामना करेगा! ॥ १३-१४½ ॥

हे वृत्र! इन्द्रके साथ तुम्हारी स्थायी मैत्री हो जाय, जिससे तुम्हें और इन्द्र—दोनोंको निरन्तर सुखकी प्राप्ति हो। आप दोनोंका वैर शान्त हो जानेसे हम सब तपस्वी और गन्धर्वगण भी अपने-अपने आश्रमोंमें सुखपूर्वक रह सकेंगे। हे धीर! आप दोनोंके दिन-रातके युद्धमें हम सभी मुनियों, गन्धर्वों, किन्नरों और मनुष्योंको कष्ट प्राप्त होता है। सभी लोगोंको शान्ति प्राप्त हो सके—इस कामनासे हम सब आप दोनोंमें मैत्री कराना चाहते हैं ॥ १५—१८ ॥

हे वृत्र! मुनिगण, तुम्हें और इन्द्रको सुख प्राप्त हो। हमलोग तुम दोनोंकी मित्रता करानेमें मध्यस्थ बनेंगे। हम शपथ कराकर आप दोनोंको एक-दूसरेका प्रिय मित्र बना देंगे। आप जैसा कहेंगे, वैसे ही इन्द्र भी आपके सम्मुख शपथ लेकर आपके मनको प्रेमसे

चित्तं ते प्रीतिसंयुक्तं करिष्यति तु साम्प्रतम्।
सत्याधारा धरा नूनं सत्येन च दिवाकरः॥ २१
तपत्ययं यथाकालं वायुः सत्येन वात्यथ।
उदन्वानपि मर्यादां सत्येनैव न मुञ्चति॥ २२
तस्मात्सत्येन सख्यं वा भवत्वद्य यथासुखम्।
एकत्र शयनं क्रीडा जलकेलिः सुखासनम्॥ २३
युवाभ्यां सर्वथा कार्यं कर्तव्यं सख्यमेत्य च।

व्यास उवाच

महर्षिवचनं श्रुत्वा तानुवाच महामतिः॥ २४
अवश्यं भगवन्तो मे माननीयास्तपस्विनः।
भवन्तो मुनयः क्वापि न मिथ्यावादिनो भृशम्॥ २५
सदाचाराः सुशान्ताश्च न विदुश्छलकारणम्।
कृतवैरे शठे स्तब्धे कामुके च गतत्विषि॥ २६
निर्लज्जे नैव कर्तव्यं सख्यं मतिमता सदा।
निर्लज्जोऽयं दुराचारो ब्रह्महा लम्पटः शठः॥ २७
न विश्वासस्तु कर्तव्यः सर्वथैवेदृशे जने।
भवन्तो निपुणाः सर्वे न द्रोहमतयः सदा॥ २८
अनभिज्ञास्तु शान्तत्वाच्चित्तानामतिवादिनाम्।

मुनय ऊचुः

जन्तुः कृतस्य भोक्ता वै शुभस्य त्वशुभस्य च॥ २९
द्रोहं कृत्वा कुतः शान्तिमाप्नुयान्नष्टचेतनः।
विश्वासघातकर्तारो नरकं यान्ति निश्चयम्॥ ३०
दुःखं च समवाप्नोति नूनं विश्वासघातकः।
निष्कृतिर्ब्रह्महन्तॄणां सुरापानां च निष्कृतिः॥ ३१
विश्वासघातिनां नैव मित्रद्रोहकृतामपि।
समयं ब्रूहि सर्वज्ञ यथा ते चेतसि ध्रुवम्॥ ३२
तेनैव समयेनाद्य सन्धिः स्यादुभयोः किल।

वृत्र उवाच

न शुष्केण न चार्द्रेण नाश्मना न च दारुणा॥ ३३
न वज्रेण महाभाग न दिवा निशि नैव च।
वध्यो भवेयं विप्रेन्द्राः शक्रस्य सह दैवतैः॥ ३४
एवं मे रोचते सन्धिः शक्रेण सह नान्यथा।

परिपूर्ण कर देंगे। सत्यके आधारपर ही यह पृथ्वी स्थित है, सत्यसे ही भगवान् सूर्य नित्य तपते हैं, सत्यसे ही समयके अनुसार वायु बहती है और सत्यके कारण ही समुद्र भी अपनी मर्यादाका परित्याग नहीं करता। इसलिये सत्यके आधारपर ही आज आप दोनोंमें मित्रता हो जाय, जिससे आपलोग सुखपूर्वक साथ-साथ शयन, क्रीडा, जलकेलि कर सकें और बैठ सकें। इसलिये आप दोनोंको एकत्रित होकर अवश्य ही मित्रता कर लेनी चाहिये। १९—२३½ ॥

व्यासजी बोले—उन महर्षियोंका वचन सुनकर अत्यन्त बुद्धिमान् वृत्रासुरने कहा—हे भगवन्! आप सभी तपस्वीगण मेरे मान्य हैं। आप मुनिगण कभी असत्य भाषण नहीं करते। आपलोग सदाचारी तथा अति शान्त स्वभाववाले हैं और छल करना नहीं जानते। किंतु वैरी, मूर्ख, जड़, कामी, कलंकित और निर्लज्जसे बुद्धिमान्‌को मित्रता नहीं करनी चाहिये। यह (इन्द्र) निर्लज्ज, दुराचारी, ब्राह्मणघाती, लम्पट और मूर्ख है—इस प्रकारके व्यक्तिका विश्वास नहीं करना चाहिये। आप सभी लोग कुशल हैं, किंतु द्रोह-बुद्धिवाले कभी नहीं हैं। आप सब शान्तचित्त होनेके कारण अतिवादियोंके मनकी बात नहीं जानते॥ २४—२८½ ॥

मुनि बोले—प्रत्येक प्राणी अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल भोगता है। जिसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी हो, वह द्रोह करके भी क्या शान्ति प्राप्त कर सकता है? विश्वासघात करनेवाले निश्चय ही नरकमें जाते हैं। विश्वासघाती निश्चितरूपसे दुःख प्राप्त करता है। ब्राह्मणकी हत्या करनेवालों और मद्यपान करनेवालोंके लिये तो प्रायश्चित्त है, परंतु विश्वासघातियों और मित्रद्रोहियोंके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। अतः हे सर्वज्ञ! आपने मनमें जो शर्त निश्चय कर रखी हो, उसे बताइये; जिससे उस शर्तके अनुसार आज ही आप दोनोंमें सन्धि हो जाय॥ २९—३२½ ॥

वृत्रासुर बोला—हे महाभाग! सभी देवताओंसहित इन्द्र न शुष्क या गीली वस्तुसे, न पत्थरसे, न काष्ठसे, न वज्रसे, न दिनमें और न रातमें मेरा वध कर सकें। हे विप्रेन्द्रो! इसी शर्तपर मैं इन्द्रसे सन्धि करना चाहता हूँ, अन्यथा नहीं॥ ३३-३४½ ॥

व्यास उवाच

ऋषयस्तं तदा प्राहुर्बाढमित्येव चादृताः॥ ३५

समयं श्रावयामासुस्तत्रानीय सुरेश्वरम्।
इन्द्रोऽपि शपथांस्तत्र चकार विगतज्वरः॥ ३६

साक्षिणं पावकं कृत्वा मुनीनां सन्निधौ किल।
वृत्रस्तु वचनैस्तस्य विश्वासमगमत्तदा॥ ३७

बभूव मित्रवच्छक्रे सहचर्यापरायणः।
कदाचिन्नन्दने चोभौ कदाचिद् गन्धमादने॥ ३८

कदाचिदुदधेस्तीरे मोदमानौ विचेरतुः।
एवं कृते च सन्धाने वृत्रः प्रमुदितोऽभवत्॥ ३९

शक्रोऽपि वधकामस्तु तदुपायानचिन्तयत्।
रन्ध्रान्वेषी समुद्विग्नस्तदासीन्मघवा भृशम्॥ ४०

एवं चिन्तयतस्तस्य कालः समभिवर्तत।
विश्वासं परमं प्राप वृत्रः शक्रेऽतिदारुणे॥ ४१

एवं कतिचिदब्दानि गतानि समये कृते।
वृत्रस्य मरणोपायान्मनसीन्द्रोऽप्यचिन्तयत्॥ ४२

त्वष्टैकदा सुतं प्राह विश्वस्तं पाकशासने।
पुत्र वृत्र महाभाग शृणु मे वचनं हितम्॥ ४३

न विश्वासस्तु कर्तव्यः कृतवैरे कथञ्चन।
मघवा कृतवैरस्ते सदासूयापरः परैः॥ ४४

लोभान्मत्तो द्वेषरतः परदुःखोत्सवान्वितः।
परदारलम्पटः स पापबुद्धिः प्रतारकः॥ ४५

रन्ध्रान्वेषी द्रोहपरो मायावी मदगर्वितः।
यः प्रविश्योदरे मातुर्गर्भच्छेदं चकार ह॥ ४६

सप्तकृत्वः सप्तकृत्वः क्रन्दमानमनातुरः।
तस्मात्पुत्र न कर्तव्यो विश्वासस्तु कथञ्चन॥ ४७

कृतपापस्य का लज्जा पुनः पुत्र प्रकुर्वतः।

व्यासजी बोले—ऋषियोंने उससे आदरपूर्वक कहा—'ठीक है' और तत्पश्चात् देवराज इन्द्रको वहाँ बुलाकर उन्हें वह शर्त सुना दी। इन्द्रने भी मुनियोंकी उपस्थितिमें अग्निको साक्षी करके शपथें लीं और वे सन्तापसे मुक्त हो गये। वृत्रासुर भी उनकी बातोंसे विश्वासमें आ गया और इन्द्रके साथ मित्रकी भाँति व्यवहारपरायण हो गया॥ ३५—३७½ ॥

वे दोनों कभी नन्दनवनमें, कभी गन्धमादनपर्वतपर और कभी समुद्रके तटपर आनन्दपूर्वक विचरण करते थे। इस प्रकार सन्धि हो जानेपर वृत्रासुर बहुत प्रसन्न रहता था। लेकिन वधकी इच्छावाले इन्द्र उसके वधके उपाय सोचा करते थे। इन्द्र उसकी कमजोरी ढूँढ़नेके लिये सदा उद्विग्न रहते थे॥ ३८—४०॥

इन्द्रके इस प्रकार विचार करते हुए कुछ समय बीत गया। वृत्रासुरको अत्यन्त क्रूर इन्द्रपर अत्यधिक विश्वास हो गया। इस प्रकार सन्धिके कुछ वर्ष बीत जानेपर इन्द्रने मन-ही-मन वृत्रासुरके मरणका उपाय सोच लिया॥ ४१-४२॥

एक बार त्वष्टाने इन्द्रपर बहुत अधिक विश्वास करनेवाले पुत्रसे कहा—हे पुत्र वृत्रासुर! हे महाभाग! मेरी हितकर बात सुनो, जिसके साथ शत्रुता हो चुकी हो, उसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिये। इन्द्र तुम्हारा शत्रु है, वह दूसरोंके द्वारा तुम्हारे गुणोंमें सदा दोष ढूँढ़ा करता है॥ ४३-४४॥

वह सदा लोभसे उन्मत्त रहनेवाला, सबसे द्वेष रखनेवाला, दूसरोंका दुःख देखकर सुखी रहनेवाला, परस्त्रीगामी, पापबुद्धि, कपटी, छिद्रान्वेषी, दूसरोंसे द्रोह करनेवाला, मायावी और अहंकारी है, जिसने कि एक बार माताके उदरमें प्रवेश करके उसके गर्भको सात भागोंमें काट डाला। तब उन्हें रोते देखकर उस निर्दयीने उनके भी पृथक्-पृथक् सात भाग कर दिये।* इसलिये हे पुत्र! उसपर किसी प्रकार भी विश्वास नहीं करना चाहिये। हे पुत्र! पाप करनेवालेको दुबारा पाप करनेमें क्या लज्जा!॥ ४५—४७½ ॥

---

* वे ही उनचास मरुद्गण बने।

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः पित्रा वचनैर्हेतुसंयुतैः॥ ४८

न बुबोध तदा वृत्र आसन्नमरणः किल।
स कदाचित्समुद्रान्ते तमपश्यन्महासुरम्॥ ४९

सन्ध्याकाल उपावृत्ते मुहूर्तेऽतीव दारुणे।
ततः सञ्चिन्त्य मघवा वरदानं महात्मनाम्॥ ५०

सन्ध्येयं वर्तते रौद्रा न रात्रिर्दिवसो न च।
हन्तव्योऽयं मया चाद्य बलेनैव न संशयः॥ ५१

एकाकी विजने चात्र सम्प्राप्तः समयोचितः।
एवं विचार्य मनसा सस्मार हरिमव्ययम्॥ ५२

तत्राजगाम भगवानदृश्यः पुरुषोत्तमः।
वज्रमध्ये प्रविश्यासौ संस्थितो भगवान्हरिः॥ ५३

इन्द्रो बुद्धिं चकाराशु तदा वृत्रवधं प्रति।
इति सञ्चिन्त्य मनसा कथं हन्यां रिपुं रणे॥ ५४

अजेयं सर्वथा सर्वदेवैश्च दानवैस्तथा।
यदि वृत्रं न हन्म्यद्य वञ्चयित्वा महाबलम्॥ ५५

न श्रेयो मम नूनं स्यात्सर्वथा रिपुरक्षणात्।
अपां फेनं तदापश्यत्समुद्रे पर्वतोपमम्॥ ५६

नायं शुष्को न चार्द्रोऽयं न च शस्त्रमिदं तथा।
अपां फेनं तदा शक्रो जग्राह किल लीलया॥ ५७

परां शक्तिं च सस्मार भक्त्या परमया युतः।
स्मृतमात्रा तदा देवी स्वांशं फेने न्यधापयत्॥ ५८

वज्रं तदावृतं तत्र चकार हरिसंयुतम्।
फेनावृतं पविं तत्र शक्रश्चिक्षेप तं प्रति॥ ५९

सहसा निपपाताशु वज्राहत इवाचलः।
वासवस्तु प्रहृष्टात्मा बभूव निहते तदा॥ ६०

ऋषयश्च महेन्द्रं तमस्तुवन्विविधैः स्तवैः।
हतशत्रुः प्रहृष्टात्मा वासवः सह दैवतैः॥ ६१

व्यासजी बोले—इस प्रकार पिताद्वारा कल्याणकारी वचनोंसे समझाये जानेपर भी आसन्न-मृत्यु वृत्रासुरको कुछ भी चेत नहीं हुआ॥ ४८½ ॥

एक दिन उन्होंने (इन्द्रने) उस महान् दैत्यको समुद्रके तटपर देखा। उस समय संध्याकालका अत्यन्त भयंकर मुहूर्त उपस्थित था। तब इन्द्रने महात्मा मुनियोंद्वारा निर्धारित शर्त—वरदानपर यह विचार करके कि यह भयंकर संध्याकाल है, इस समय न दिन है, न रात है, अतः मुझे आज ही इसे अपनी शक्तिसे मार डालना चाहिये; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४९—५१ ॥

यहाँ एकान्त है और यह अकेला है तथा समय भी अनुकूल है—ऐसा विचारकर उन्होंने अपने मनमें अविनाशी भगवान् श्रीहरिका स्मरण किया। [स्मरण करते ही] पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु वहाँ अदृश्यरूपसे आ गये और वे प्रभु श्रीहरि इन्द्रके वज्रमें प्रविष्ट होकर विराजमान हो गये॥ ५२-५३ ॥

तब इन्द्र वृत्रासुरको मारनेकी युक्ति सोचने लगे कि सभी देवताओं तथा दानवोंसे सर्वथा अजेय इस शत्रुको युद्धमें कैसे मारूँ? यदि छल करके इस महाबलीको आज नहीं मारता तो इस शत्रुके जीवित रहते किसी भी प्रकार कल्याण नहीं है। इन्द्र ऐसा विचार कर ही रहे थे तभी उन्होंने समुद्रमें पर्वतके समान जलफेनको देखा॥ ५४—५६ ॥

यह न सूखा है, न गीला है और यह न तो कोई शस्त्र है, [ऐसा विचारकर] इन्द्रने उस समुद्रफेनको लीलापूर्वक उठा लिया॥ ५७ ॥

तदनन्तर उन्होंने परम भक्तिपूर्वक, पराशक्ति जगदम्बाका स्मरण किया, तब स्मरण करते ही देवीने अपना अंश उस फेनमें स्थापित कर दिया॥ ५८ ॥

इन्द्रने भगवान् श्रीहरिसे युक्त वज्रको उस फेनसे आवृत कर दिया और उस फेनसे आवृत वज्रको वृत्रासुरके ऊपर फेंका॥ ५९ ॥

उस वज्रके अचानक प्रहारसे वह पर्वतकी भाँति गिर पड़ा। तब उसके मर जानेपर इन्द्र अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उठे और ऋषिगण विविध स्तोत्रोंसे देवराज इन्द्रकी स्तुति करने लगे। उस शत्रुके मारे जानेसे प्रसन्नचित्त इन्द्रने देवताओंके साथ उन भगवतीकी

देवीं सम्पूजयामास यत्प्रसादाद्धतो रिपुः।
प्रसादयामास तदा स्तोत्रैर्नानाविधैरपि॥ ६२

देवोद्याने पराशक्तेः प्रासादमकरोद्धरिः।
पद्मरागमयीं मूर्तिं स्थापयामास वासवः॥ ६३

त्रिकालं महतीं पूजां चक्रुः सर्वेऽपि निर्जराः।
तदाप्रभृति देवानां श्रीदेवी कुलदैवतम्॥ ६४

विष्णुं त्रिभुवनश्रेष्ठं पूजयामास वासवः।
ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयङ्करे॥ ६५

प्रववौ च शिवो वायुर्जहृषुर्देवतास्तथा।
हते तस्मिन्सगन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः॥ ६६

इत्थं वृत्रः पराशक्तिप्रवेशयुतफेनतः।
तया कृतविमोहाच्च शक्रेण सहसा हतः॥ ६७

ततो वृत्रनिहन्त्रीति देवी लोकेषु गीयते।
शक्रेण निहतत्वाच्च शक्रेण हत उच्यते॥ ६८

पूजा की तथा विविध स्तोत्रोंसे उन्हें प्रसन्न किया, जिनकी कृपासे शत्रु मारा गया॥ ६०—६२॥

तत्पश्चात् इन्द्रने देवोद्यान नन्दनवनमें पराशक्ति भगवतीका मन्दिर बनवाया और उसमें पद्मराग मणियोंसे निर्मित मूर्तिकी स्थापना की और सभी देवता भी तीनों समय उनकी महती पूजा करने लगे; तभीसे श्रीदेवी ही उन देवताओंकी कुलदेवी हो गयीं॥ ६३-६४॥

तब महापराक्रमी और देवताओंके लिये भयंकर वृत्रके मारे जानेपर इन्द्रने तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा की। उस वृत्रासुरके मर जानेपर कल्याण-कारी वायु बहने लगी तथा देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरगण हर्षित हो उठे॥ ६५-६६॥

इस प्रकार भगवती पराशक्तिके समुद्रफेनसे संयुक्त होने और उनके द्वारा ही विमोहित किये जानेके कारण वृत्रासुर सहसा इन्द्रके द्वारा मारा गया। इसलिये वे भगवती देवी संसारमें 'वृत्रनिहन्त्री' इस नामसे विख्यात हुईं और वह वृत्रासुर चूँकि प्रकटरूपसे इन्द्रके द्वारा मारा गया था, इसलिये उसे इन्द्रके द्वारा मारा गया, ऐसा कहा जाता है॥ ६७-६८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे छद्मनेन्द्रेण फेनद्वारा पराशक्तिस्मरणपूर्वकं वृत्रहननवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

⁂

अथ सप्तमोऽध्यायः

त्वष्टाका वृत्रासुरकी पारलौकिक क्रिया करके इन्द्रको शाप देना, इन्द्रको ब्रह्महत्या लगना, नहुषका स्वर्गाधिपति बनना और इन्द्राणीपर आसक्त होना

व्यास उवाच

अथ तं पतितं दृष्ट्वा विष्णुर्विष्णुपुरीं ययौ।
मनसा शङ्कमानस्तु तस्य हत्याकृतं भयम्॥ १

इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो ययाविन्द्रपुरीं ततः।
मुनयो भयसंविग्ना ह्यभवन्निहते रिपौ॥ २

किमस्माभिः कृतं पापं यदसौ वञ्चितः किल।
मुनिशब्दो वृथा जातः सुरेशस्य च सङ्गमात्॥ ३

अस्माकं वचनाद् वृत्रो विश्वासमगमत्किल।
विश्वासघातिनः सङ्गाद्वयं विश्वासघातकाः॥ ४

व्यासजी बोले—इस प्रकार उसे गिरा हुआ देखकर मन-ही-मन हत्याके भयसे सशंकित भगवान् विष्णु वैकुण्ठलोकको चले गये॥ १॥

तत्पश्चात् इन्द्र भी भयभीत होकर इन्द्रपुरीको चल दिये। उस शत्रु (वृत्रासुर)-के मारे जानेपर मुनिगण भी भयग्रस्त हो गये कि हमने छलपूर्ण यह कैसा पापकृत्य कर डाला। इन्द्रका साथ देनेसे हमारा 'मुनि' नाम व्यर्थ हो गया॥ २-३॥

हमारी ही बातोंसे वृत्रासुरको विश्वास आया; विश्वासघातीके संगसे हम सब भी विश्वासघाती हो गये॥ ४॥

धिगियं ममता पापमूलमेवमनर्थकृत्।
यदस्माभिश्छलं कृत्वा शपथैर्वञ्चितोऽसुरः॥ ५

मन्त्रकृद् बुद्धिदाता च प्रेरकः पापकारिणाम्।
पापभाक्स भवेन्नूनं पक्षकर्ता तथैव च॥ ६

विष्णुनापि कृतं पापं यत्साहाय्यमवाप्तवान्।
वज्रं प्रविश्य येनासौ पातितः सत्त्वमूर्तिना॥ ७

नूनं स्वार्थपरः प्राणी न पापात् त्रासमश्नुते।
हरिणा हरिसङ्गेन सर्वथा दुष्कृतं कृतम्॥ ८

द्वावेव स्तः पदार्थानां द्वावेव निधनं गतौ।
प्रथमश्च तुरीयश्च यौ त्रिलोक्यां तु दुर्लभौ॥ ९

अर्थकामौ प्रशस्तौ द्वौ सर्वेषां सम्मतौ प्रियौ।
धर्माधर्मेति वाग्वादो दम्भोऽयं महतामपि॥ १०

मुनयोऽपि मनस्तापमेवं कृत्वा पुनः पुनः।
जग्मुः स्वानाश्रमानेव विमनस्का हतोद्यमाः॥ ११

त्वष्टा तु निहतं श्रुत्वा पुत्रमिन्द्रेण भारत।
रुरोद दुःखसन्तप्तो निर्वेदमगमत्पुनः॥ १२

यत्रासौ पतितस्तत्र गत्वा वीक्ष्य तथागतम्।
संस्कारं कारयामास विधिवत्पारलौकिकम्॥ १३

स्नात्वास्य सलिलं दत्त्वा कृत्वा चैवौर्ध्वदैहिकम्।
शशापेन्द्रं स शोकार्तः पापिष्ठं मित्रघातकम्॥ १४

यथा मे निहतः पुत्रः प्रलोभ्य शपथैर्भृशम्।
तथेन्द्रोऽपि महद्दुःखं प्राप्नोतु विधिनिर्मितम्॥ १५

पापकी जड़ और अनर्थकारी इस ममताको धिक्कार है, जिसके कारण हमलोगोंने छलपूर्वक शपथ ली और उस असुर (वृत्रासुर)-को धोखा दिया॥ ५॥

पाप करनेका परामर्श देनेवाला, पाप करनेके लिये बुद्धि देनेवाला, पापकी प्रेरणा देनेवाला तथा पाप करनेवालोंका पक्ष लेनेवाला भी निश्चय ही पापकर्ताके समान पापभाजन होता है॥ ६॥

वज्रमें प्रविष्ट होकर वृत्रकी हत्या करनेमें सत्त्वगुणके मूर्तरूप भगवान् विष्णुने इन्द्रकी सहायता की और उसे मारा, अतः उन्होंने भी पाप किया॥ ७॥

स्वार्थपरायण प्राणी पापसे भयभीत नहीं होता। विष्णुने इन्द्रका साथ देकर सर्वथा दुष्कृत कर्म किया॥ ८॥

चार पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष)-मेंसे दो ही रह गये हैं और दो समाप्त हो गये हैं। उनमें भी प्रथम पदार्थ धर्म और चतुर्थ पदार्थ मोक्ष दोनों त्रिलोकमें दुर्लभ ही हो गये हैं॥ ९॥

अर्थ और काम ही सबके प्रिय और प्रशस्त माने गये हैं। धर्म और अधर्मकी विवेचना—यह बड़े लोगोंका वाचिक दम्भमात्र ही रह गया है॥ १०॥

इस प्रकार मुनिगण भी बार-बार मनमें सन्ताप करके उदासमनसे हतोत्साह होकर अपने-अपने आश्रमोंको चले गये॥ ११॥

हे भारत! उधर अपने पुत्रको इन्द्रद्वारा मारा गया सुनकर त्वष्टा दुःखसे सन्तप्त होकर अत्यन्त दुःखित हो रोने लगे; उन्हें इससे बहुत वेदना हुई॥ १२॥

तदनन्तर जहाँ वह (वृत्र) गिरा पड़ा था, वहाँ जाकर उसे उस स्थितिमें देखकर त्वष्टाने विधिपूर्वक उसका पारलौकिक संस्कार कराया॥ १३॥

तत्पश्चात् स्नान करके, जलाञ्जलि देकर उसका और्ध्वदैहिक कर्म सम्पन्न करनेके पश्चात् उन शोकसन्तप्त त्वष्टाने पापी और मित्रघाती इन्द्रको इस प्रकार शाप दे दिया कि जिस प्रकार शपथोंसे प्रलोभितकर इन्द्रने मेरे पुत्रको मार डाला है, उसी प्रकार वह भी विधाताद्वारा दिये हुए महान् दुःख प्राप्त करे॥ १४—१५॥

इति शप्त्वा सुरेशानं त्वष्टा तापसमन्वितः।
मेरोः शिखरमास्थाय तपस्तेपे सुदुष्करम्॥ १६

जनमेजय उवाच

हत्वा त्वाष्ट्रं सुरेशोऽथ कामवस्थामवाप्तवान्।
सुखं वा दुःखमेवाग्रे तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १७

व्यास उवाच

किं पृच्छसि महाभाग सन्देहः कीदृशस्तव।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ १८

बलिष्ठैर्दुर्बलैर्वापि स्वल्पं वा बहु वा कृतम्।
सर्वथैव हि भोक्तव्यं सदेवासुरमानुषैः॥ १९

शक्रायेत्थं मतिर्दत्ता हरिणा वृत्रघातिने।
प्रविष्टोऽथ पविं विष्णुः सहायः प्रत्यपद्यत॥ २०

न चापदि सहायोऽभूद्वासुदेवः कथञ्चन।
समये स्वजनः सर्वः संसारेऽस्मिन्नराधिप॥ २१

दैवे विमुखतां प्राप्ते न कोऽप्यस्ति सहायवान्।
पिता माता तथा भार्या भ्राता वाथ सहोदरः॥ २२

सेवको वापि मित्रं वा पुत्रश्चैव तथौरसः।
प्रतिकूले गते दैवे न कोऽप्येति सहायताम्॥ २३

भोक्ता पापस्य पुण्यस्य कर्ता भवति सर्वथा।
वृत्रं हत्वा गताः सर्वे निस्तेजस्कः शचीपतिः॥ २४

शेपुस्तं त्रिदशाः सर्वे ब्रह्महेत्यब्रुवञ्छनैः।
को नाम शपथान्कृत्वा सत्यं दत्त्वा वचः पुनः॥ २५

जिघांसति सुविश्वस्तं मुनिं मित्रत्वमागतम्।
देवगोष्ठ्यां सुरोद्याने गन्धर्वाणां समागमे॥ २६

सर्वत्रैव कथा तस्य विस्तारमगमत्किल।
किं कृतं दुष्कृतं कर्म शक्रेणाद्य जिघांसता॥ २७

वृत्रं छलेन विश्वस्तं मुनिभिश्च प्रतारितम्।
वेदप्रमाणमुत्सृज्य स्वीकृतं सौगतं मतम्॥ २८

इस प्रकार देवराज इन्द्रको शाप देकर सन्तप्त त्वष्टा सुमेरुपर्वतके शिखरका आश्रय लेकर अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे॥ १६॥

जनमेजय बोले—हे पितामह! वृत्रासुरको मारनेके बाद इन्द्रकी क्या दशा हुई? उन्हें बादमें सुख मिला या दुःख, इसे मुझे बताइये॥ १७॥

व्यासजी बोले—हे महाभाग! तुम क्या पूछ रहे हो, [इस विषयमें] तुम्हें क्या सन्देह है? किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। देवता, राक्षस और मनुष्यसहित बलवान् या दुर्बल कोई भी हो—सभीको अपने द्वारा किये गये अत्यन्त अल्प या अधिक कर्मका फल सर्वथा भोगना ही पड़ता है॥ १८-१९॥

भगवान् विष्णुने वृत्रघाती इन्द्रको इस प्रकारकी मति प्रदान की थी। वे विष्णु उनके वज्रमें प्रविष्ट हुए थे तथा उनके सहायक बने थे; परंतु विपत्तिमें उन्होंने किसी भी तरह सहायता नहीं की। हे राजन्! इस संसारमें अच्छे समयमें सभी लोग अपने बन जाते हैं, किंतु दैवके प्रतिकूल होनेपर कोई भी सहायक नहीं होता। पिता, माता, पत्नी, सहोदर भाई, सेवक, मित्र एवं औरस पुत्र—कोई भी दैवके प्रतिकूल हो जानेपर सहायता नहीं करता। पाप या पुण्य करनेवाला ही उसका भागी होता है॥ २०—२३$\frac{१}{२}$॥

वृत्रके मारे जानेपर अन्य सभी लोग चले गये; इन्द्र तेजहीन हो गये। सभी देवता उसकी निन्दा करने लगे और 'यह ब्रह्महत्यारा है'—ऐसा मन्द स्वरमें कहने लगे। कौन ऐसा होगा जो शपथ खाकर और वचन देकर अत्यन्त विश्वासमें आये हुए तथा मित्रताको प्राप्त मुनिको मारनेकी इच्छा करेगा! उसकी यह बात देवताओंकी सभामें, देवोद्यानमें तथा गन्धर्वोंके समाजमें सर्वत्र फैल गयी। हत्या करनेकी इच्छावाले इन्द्रने आज यह कैसा दुष्कृत कर्म कर डाला! मुनियोंके द्वारा विश्वास दिलाये गये वृत्रासुरको छलपूर्वक मार करके (मानो) इन्द्रने वेदोंकी प्रामाणिकताका त्यागकर सौगतोंका मत स्वीकार कर लिया। इन्द्रने छल करके अत्यन्त साहससे शत्रुको

यदयं निहतः शत्रुर्वञ्चयित्वातिसाहसात्।
को नाम वचनं दत्त्वा विपरीतमथाचरेत्॥ २९

विना शक्रं हरिं वापि यथायं विनिपातितः।
एवंविधाः कथाश्चान्याः समाजेष्वभवन्भृशम्॥ ३०

शुश्रावेन्द्रोऽपि विविधाः स्वकीर्तेर्हानिकारकाः।
यस्य कीर्तिर्हता लोके धिक्तस्यैव कुजीवितम्॥ ३१

यं दृष्ट्वा पथि गच्छन्तं शत्रुः स्मेरमुखो भवेत्।
इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिः पतितः कीर्तिसंक्षयात्॥ ३२

स्वर्गादकृतपापोऽसौ पापकृत्किं न पात्यते।
स्वल्पेऽपराधेऽपि नृपो ययातिः पतितः किल॥ ३३

नृपः कर्कटतां प्राप्तो युगानष्टादशैव तु।
भृगुपत्नीशिरश्छेदाद्भगवान्हरिरच्युतः ॥ ३४

ब्रह्मशापात्पशोर्योनौ सञ्जातो मकरादिषु।
विष्णुश्च वामनो भूत्वा याचनार्थं बलेर्गृहे॥ ३५

गतः किमपरं दुःखं प्राप्नोति दुष्कृती नरः।
रामोऽपि वनवासेषु सीताविरहजं बहु॥ ३६

दुःखं च प्राप्तवान्घोरं भृगुशापेन भारत।
तथेन्द्रोऽपि ब्रह्महत्याकृतं प्राप्य महद्भयम्॥ ३७

न स्वास्थ्यं प्राप गेहेऽसौ सर्वसिद्धिसमन्विते।
पौलोमी तं सभाहीनं दृष्ट्वा प्रोवाच वासवम्॥ ३८

निःश्वसन्तं भयत्रस्तं नष्टसंज्ञं विचेतसम्।
किं प्रभोऽद्य भयार्तोऽसि मृतस्ते दारुणो रिपुः॥ ३९

का चिन्ता वर्तते कान्त तव शत्रुनिषूदन।
कस्माच्छोचसि लोकेश निःश्वसन्प्राकृतो यथा॥ ४०

नान्योऽस्ति बलवाञ्छत्रुर्येन चिन्तापरो भवान्।

इन्द्र उवाच

नारातिर्बलवान्मेऽस्ति न शान्तिर्न सुखं तथा॥ ४१

ब्रह्महत्याभयाद्राज्ञि बिभेमि सततं गृहे।
न नन्दनं सुखकरं नामृतं न गृहं वनम्॥ ४२

मार डाला। वचन देकर भी जिस प्रकार [छलपूर्वक] यह वृत्रासुर मारा गया, वैसा विपरीत आचरण इन्द्र और विष्णुके अतिरिक्त कौन होगा, जो कर सकता है! इस प्रकारकी कथाएँ तथा और भी बातें लोगोंमें व्यापक रूपसे होने लगीं॥ २४—३०॥

इन्द्र भी अपनी कीर्ति नष्ट करनेवाली तरह-तरहकी बातें सुनते रहे। संसारमें जिसकी कीर्ति नष्ट हो गयी, उसके कलुषित जीवनको धिक्कार है। रास्तेमें जाते हुए ऐसे व्यक्तिको देखकर शत्रु हँस पड़ता है। राजर्षि इन्द्रद्युम्नने कोई पाप नहीं किया था फिर भी कीर्ति नष्ट हो जानेसे वे स्वर्गसे गिर गये थे; तब पाप करनेवाला कैसे नहीं गिरेगा? राजा ययातिका बहुत थोड़ेसे अपराधपर पतन हो गया था। इसी प्रकार एक राजाको अठारह युगोंतक केकड़ेकी योनिमें रहना पड़ा था। भृगुकी पत्नीका मस्तक काटनेके कारण अच्युत भगवान् श्रीहरिको ब्रह्मशापसे मकर आदि रूपोंमें पशुयोनिमें जन्म लेना पड़ा। विष्णुको भी वामन होकर याचनाके लिये बलिके घर जाना पड़ा; तब यदि कुकर्मी मनुष्य दुःख पाये तो क्या आश्चर्य है! हे भारत! श्रीरामचन्द्रजीको भी भृगुके शापसे वनवासकालमें सीतासे वियोगका महान् कष्ट उठाना पड़ा। उसी प्रकार इन्द्रको भी ब्रह्महत्याजनित महान् भय प्राप्त करके समस्त सिद्धियोंसे युक्त भवनमें भी सुख नहीं प्राप्त होता था। उन्हें दीर्घ श्वास लेते, भयग्रस्त, चेतनारहित, खिन्नमनस्क और सभामें न जाते देखकर शचीने पूछा—हे प्रभो! आजकल आप भयभीत क्यों रहते हैं, आपका भयंकर शत्रु तो मर गया है। हे कान्त! हे शत्रुहन्ता! आपको क्या चिन्ता है? हे लोकेश! साधारण मनुष्यकी भाँति लम्बी-लम्बी साँसें लेते हुए आप शोक क्यों करते हैं? आपका कोई बलवान् शत्रु भी तो नहीं है, जिससे आप चिन्ताकुल हों॥ ३१—४०½ ॥

इन्द्र बोले—हे राज्ञि! यद्यपि अब मेरा कोई बलवान् शत्रु नहीं है तथापि ब्रह्महत्याके भयसे मैं निरन्तर डरता रहता हूँ। घरमें रहते हुए भी मुझे न सुख है और न शान्ति। नन्दनवन, अमृत, घर तथा वन—कुछ भी मुझे सुखकर नहीं लगता। गन्धर्वोंका

गन्धर्वाणां तथा गेयं नृत्यमप्सरसां पुनः।
न त्वं सुखकरा नारी नाना च सुरयोषितः॥ ४३

न तथा कामधेनुश्च देववृक्षः सुखप्रदः।
किं करोमि क्व गच्छामि क्व शर्म मम जायते॥ ४४

इति चिन्तापरः कान्ते न लभे सुखमात्मनि।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा वचनं शक्रः प्रियां परमकातराम्॥ ४५

निर्जगाम गृहान्मन्दो मानसं सर उत्तमम्।
पद्मनाले प्रविष्टोऽसौ भयार्तः शोककर्षितः॥ ४६

न प्राज्ञायत देवेन्द्रस्त्वभिभूतश्च कल्मषैः।
प्रतिच्छन्नो वसत्यप्सु चेष्टमान इवोरगः॥ ४७

असहायस्तुराषाडैच्चिन्तार्तो विकलेन्द्रियः।
ततः प्रनष्टे देवेन्द्रे ब्रह्महत्याभयार्दिते॥ ४८

सुराश्चिन्तातुराश्चासन्नुत्पाताश्चाभवन्नथ ।
ऋषयः सिद्धगन्धर्वा भयार्ताश्चाभवन्भृशम्॥ ४९

अराजकं जगत्सर्वमभिभूतमुपद्रवैः।
अवर्षणं तदा जातं पृथिवी क्षीणवैभवा॥ ५०

विच्छिन्नस्त्रोतसो नद्यः सरांस्यनुदकानि वै।
एवं त्वराजके जाते देवता मुनयस्तथा॥ ५१

विचार्य नहुषं चक्रुः शक्रं सर्वे दिवौकसः।
सम्प्राप्य नहुषो राजा धर्मिष्ठोऽपि रजोबलात्॥ ५२

बभूव विषयासक्तः पञ्चबाणशराहतः।
अप्सरोभिर्वृतः क्रीडन्देवोद्यानेषु भारत॥ ५३

शक्रपत्नीगुणाञ्छ्रुत्वा चकमे तां स पार्थिवः।
ऋषीनाह किमिन्द्राणी नोपगच्छति मां किल॥ ५४

भवद्भिश्चामरैः सर्वैः कृतोऽहं वासवस्त्विह।
प्रेषयध्वं सुराः कामं सेवार्थं मम वै शचीम्॥ ५५

प्रियं चेन्मम कर्तव्यं सर्वथा मुनयोऽमराः।
अहमिन्द्रोऽद्य देवानां लोकानां च तथेश्वरः॥ ५६

आगच्छतु शची मह्यं क्षिप्रमद्य निवेशनम्।

गान और अप्सराओंका नृत्य तथा यहाँतक कि तुम और अन्य देवांगनाएँ भी मुझे सुखकर नहीं लगतीं। न कामधेनु और न ही कल्पवृक्ष मुझे सुख प्रदान करते हैं। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मुझे शान्ति कहाँ मिलेगी? हे प्रिये! इसी चिन्तामें पड़ा हुआ मैं अपने मनमें शान्ति नहीं प्राप्त कर पा रहा हूँ॥ ४१—४४½ ॥

व्यासजी बोले—अत्यन्त घबरायी हुई अपनी प्रिय पत्नीसे ऐसा कहकर मूढ इन्द्र घरसे निकल पड़े और उत्तम मानसरोवरको चले गये। भयसे पीडित और शोकसन्तप्त होकर वे एक कमलनालमें प्रविष्ट हो गये। पापकर्मोंसे पराभूत हुए देवराज इन्द्रको कोई जान नहीं सका। वे सर्पके समान चेष्टा करते हुए जलमें छिपकर रह रहे थे। उस समय वे इन्द्र असहाय, चिन्तित और व्याकुल इन्द्रियोंवाले हो गये॥ ४५—४७½ ॥

ब्रह्महत्याके भयसे दुःखी होकर देवराज इन्द्रके अदृश्य हो जानेपर देवगण चिन्तातुर हो उठे तथा अनेक प्रकारके उत्पात होने लगे। ऋषि, सिद्ध और गन्धर्वगण भी अत्यन्त भयभीत हो गये। उपद्रवोंके होनेसे सम्पूर्ण जगत् अराजकतासे ग्रस्त हो गया। उस समय अनावृष्टि उपस्थित हो गयी और पृथ्वी वैभवशून्य हो गयी, नदियोंके स्रोत सूख गये और तालाब बिना जलके हो गये—इस प्रकारकी अराजकताको देखकर स्वर्गके देवताओं और मुनियोंने विचार करके नहुषको इन्द्र बना दिया॥ ४८—५१½ ॥

राज्य प्राप्त करनेपर राजा नहुष धर्मात्मा होते हुए भी राजसी वृत्तिके कारण कामबाणसे आहत हो विषयासक्त हो गये। हे भारत! देवोद्यानोंमें क्रीडारत रहते हुए वे सदा अप्सराओंसे घिरे रहते थे॥ ५२-५३॥

उस राजा नहुषके मनमें इन्द्राणी शचीके गुणोंको सुनकर उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हुई। उसने ऋषियोंसे कहा—मेरे पास इन्द्राणी क्यों नहीं आती? आपलोग और देवताओंने मुझे इन्द्र बनाया, इसलिये हे देवताओ! शचीको मेरी सेवाके लिये भेजिये। हे मुनियो तथा देवताओ! आपलोगोंको मेरा प्रिय कार्य अवश्य करना चाहिये। इस समय मैं देवताओंका इन्द्र और समस्त लोकोंका स्वामी हूँ; शची शीघ्र ही आज मेरे भवनमें आ जायँ॥ ५४—५६½ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयस्तथा॥ ५७

गत्वा चिन्तातुराः प्रोचुः पौलोमीं प्रणतास्ततः।
इन्द्रपत्नि दुराचारो नहुषस्त्वामिहेच्छति॥ ५८

कुपितोऽस्मानुवाचेदं प्रेषयध्वं शचीमिह।
किं कुर्मस्तदधीनाः स्मो येनेन्द्रोऽयं कृतः किल॥ ५९

तच्छ्रुत्वा दुर्मना देवी बृहस्पतिमुवाच ह।
रक्ष मां नहुषाद् ब्रह्मंस्तवास्मि शरणं गता॥ ६०

बृहस्पतिरुवाच

न भेतव्यं त्वया देवि नहुषात्पापमोहितात्।
न त्वां दास्याम्यहं वत्से त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्॥ ६१

शरणागतमार्तं च यो ददाति नराधमः।
स एव नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम्।
स्वस्था भव पृथुश्रोणि न त्यक्ष्ये त्वां कदाचन॥ ६२

उसकी यह बात सुनकर चिन्तासे व्याकुल देवता तथा ऋषिगण शचीके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके कहने लगे—हे इन्द्रपत्नि! दुराचारी नहुष इस समय आपकी कामना करता है। उसने क्रुद्ध होकर हमसे यह बात कही है 'शचीको यहाँ भेज दीजिये।' हम उसके अधीन हैं, अतः कर ही क्या सकते हैं; क्योंकि उसे इन्द्र बना दिया गया है॥ ५७—५९॥

यह सुनकर दुःखितमन शचीने बृहस्पतिसे कहा—'हे ब्रह्मन्! नहुषसे मेरी रक्षा कीजिये; मैं आपकी शरणमें हूँ'॥ ६०॥

बृहस्पति बोले—हे देवि! पापसे मोहित नहुषसे तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। हे पुत्रि! मैं सनातनधर्मका त्यागकर तुम्हें उसको नहीं दूँगा॥ ६१॥

जो अधम मनुष्य शरणमें आये हुए तथा दुःखी प्राणीको दूसरोंको सौंप देता है वह प्रलयपर्यन्त नरकमें वास करता है। अतः हे पृथुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो, मैं तुम्हारा त्याग कभी नहीं करूँगा॥ ६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे इन्द्रस्य पद्मनालप्रवेशानन्तरं नहुषस्य देवेन्द्रपदेऽभिषेकवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

* * *

अथाष्टमोऽध्यायः

इन्द्राणीको बृहस्पतिकी शरणमें जानकर नहुषका क्रुद्ध होना, देवताओंका नहुषको समझाना, बृहस्पतिके परामर्शसे इन्द्राणीका नहुषसे समय माँगना, देवताओंका भगवान् विष्णुके पास जाना और विष्णुका उन्हें देवीको प्रसन्न करनेके लिये अश्वमेधयज्ञ करनेको कहना, बृहस्पतिका शचीको भगवतीकी आराधना करनेको कहना, शचीकी आराधनासे प्रसन्न होकर देवीका प्रकट होना और शचीको इन्द्रका दर्शन होना

व्यास उवाच

नहुषस्त्वथ तां श्रुत्वा गुरोस्तु शरणं गताम्।
चुक्रोध स्मरबाणार्तस्तमाङ्गिरसमाशु वै॥ १

देवानाहाङ्गिरासूनुर्हन्तव्योऽयं मया किल।
इतीन्द्राणीं गृहे मूढो रक्षतीति मया श्रुतम्॥ २

इति तं कुपितं दृष्ट्वा देवाः सर्षिपुरोगमाः।
अब्रुवन्नहुषं घोरं सामपूर्वं वचस्तदा॥ ३

व्यासजी बोले—वे शची देवगुरुकी शरणमें चली गयी हैं—ऐसा सुनकर कामबाणसे आहत नहुष अंगिरापुत्र बृहस्पतिपर बहुत कुपित हुआ और उसने देवताओंसे कहा—यह अंगिरापुत्र बृहस्पति आज मेरेद्वारा निश्चय ही मारा जायगा; क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि उस मूर्खने इन्द्राणीको अपने घरमें रखा है॥ १-२॥

इस प्रकार नहुषको क्रुद्ध देखकर प्रधान ऋषियोंसहित देवतागण उस दुष्टसे सामनीतियुक्त वचन बोले—॥ ३॥

क्रोधं संहर राजेन्द्र त्यज पापमतिं प्रभो।
निन्दन्ति धर्मशास्त्रेषु परदाराभिमर्शनम्॥ ४

शक्रपत्नी सदा साध्वी जीवमाने पतौ पुनः।
कथमन्यं पतिं कुर्यात्सुभगातिपतिव्रता॥ ५

त्रिलोकीशस्त्वमधुना शास्ता धर्मस्य वै विभो।
त्वादृशोऽधर्ममातिष्ठेत्तदा नश्येत्प्रजा ध्रुवम्॥ ६

सर्वथा प्रभुणा कार्यं शिष्टाचारस्य रक्षणम्।
वारमुख्याश्च शतशो वर्तन्तेऽत्र शचीसमाः॥ ७

रतिस्तु कारणं प्रोक्तं शृङ्गारस्य महात्मभिः।
रसहानिर्बलात्कारे कृते सति तु जायते॥ ८

उभयोः सदृशं प्रेम यदि पार्थिवसत्तम।
तदा वै सुखसम्पत्तिरुभयोरुपजायते॥ ९

तस्माद्भावमिमं मुञ्च परदाराभिमर्शने।
सद्भावं कुरु देवेन्द्र पदं प्राप्तोऽस्यनुत्तमम्॥ १०

ऋद्धिक्षयस्तु पापेन पुण्येनातिविवर्धनम्।
तस्मात्पापं परित्यज्य सन्मतिं कुरु पार्थिव॥ ११

नहुष उवाच

गौतमस्य यदा भुक्ता दाराः शक्रेण देवताः।
वाचस्पतेस्तु सोमेन क्व यूयं संस्थितास्तदा॥ १२

परोपदेशे कुशला प्रभवन्ति नराः किल।
कर्ता चैवोपदेष्टा च दुर्लभः पुरुषो भवेत्॥ १३

मामागच्छतु सा देवी हितं स्याददद्भुतं हि वः।
एतस्याः परमं देवाः सुखमेवं भविष्यति॥ १४

अन्यथा न हि तुष्येऽहं सत्यमेतद् ब्रवीमि वः।
विनयाद्वा बलाद्वापि तामाशु प्रापयन्त्विह॥ १५

हे राजेन्द्र! क्रोध दूर करो और पापकारिणी बुद्धिका त्याग करो। हे प्रभो! [मनीषियोंने] धर्मशास्त्रोंमें परस्त्रीगमनकी निन्दा की है॥ ४॥

इन्द्रकी पत्नी शची सदासे अत्यन्त साध्वी, सौभाग्यवती और पतिव्रता हैं; फिर अपने पतिके जीवित रहते वे कैसे दूसरेको पति बना सकती हैं?॥ ५॥

हे विभो! आज इस समय आप तीनों लोकोंके स्वामी तथा धर्मके रक्षक हैं। आप-जैसा राजा अधर्ममें स्थित हो जाय तब तो निश्चितरूपसे प्रजाका नाश हो जायगा॥ ६॥

राजाको सब प्रकारसे सदाचारकी रक्षा करनी चाहिये। यहाँ स्वर्गमें तो शचीके सदृश सैकड़ों प्रमुख अप्सराएँ हैं॥ ७॥

महात्माओंने रतिको ही शृंगारका कारण बताया है, बलप्रयोग किये जानेपर तो रसकी हानि ही होती है॥ ८॥

हे नृपश्रेष्ठ! जब [स्त्री-पुरुष] दोनोंमें एक समान प्रेम रहता है, तभी उन दोनोंको अधिक सुख प्राप्त होता है॥ ९॥

अतः हे देवेन्द्र! परस्त्रीगमनकी यह भावना छोड़ दीजिये और श्रेष्ठ आचरण कीजिये; क्योंकि आपको इन्द्र-जैसा अतिश्रेष्ठ पद प्राप्त है॥ १०॥

हे राजन्! पापसे सम्पत्तिका क्षय होता है और पुण्यसे महान् वृद्धि होती है, इसलिये पापकर्म छोड़कर सात्त्विक बुद्धिका आश्रय लीजिये॥ ११॥

नहुषने कहा—हे देवताओ! जब देवराज इन्द्रने गौतमकी पत्नीके साथ और चन्द्रमाने बृहस्पतिकी पत्नीके साथ अनाचार किया था, तब तुमलोग कहाँ थे?॥ १२॥

लोग दूसरोंको उपदेश देनेमें बहुत कुशल होते हैं, परंतु उपदेश देनेवाला तथा उसका पालन करनेवाला पुरुष दुर्लभ होता है॥ १३॥

हे देवताओ! वह शची मेरे पास आ जाय, इसीमें आप सबका परम कल्याण है; इससे उसको भी अत्यन्त सुख मिलेगा॥ १४॥

अन्य किसी भी प्रकारसे मैं सन्तुष्ट नहीं होऊँगा, यह मैं तुमलोगोंसे कह रहा हूँ। इसलिये विनयसे या बलपूर्वक तुमलोग उसे शीघ्र ही मुझे प्राप्त कराओ॥ १५॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाश्च मुनयस्तथा।
तमूचुश्चातिसन्त्रस्ता नहुषं मदनातुरम्॥ १६

इन्द्राणीमानयिष्यामः सामपूर्वं तवान्तिकम्।
इत्युक्त्वा ते तदा जग्मुर्बृहस्पतिनिकेतनम्॥ १७

व्यास उवाच

ते गत्वाङ्गिरसः पुत्रं प्रोचुः प्राञ्जलयः सुराः।
जानीमः शरणं प्राप्तामिन्द्राणीं तव वेश्मनि॥ १८

सा देया नहुषायाद्य वासवोऽसौ कृतो यतः।
वृणोत्वियं वरारोहा पतित्वे वरवर्णिनी॥ १९

बृहस्पतिः सुरानाह तच्छ्रुत्वा दारुणं वचः।
नाहं त्यक्ष्ये तु पौलोमीं सतीं च शरणागताम्॥ २०

देवा ऊचुः

उपायोऽन्यः प्रकर्तव्यो येन सोऽद्य प्रसीदति।
अन्यथा कोपसंयुक्तो दुराराध्यो भविष्यति॥ २१

गुरुरुवाच

तत्र गत्वा शची भूपं प्रलोभ्य वचसा भृशम्।
करोतु समयं बाला पतिं ज्ञात्वा मृतं भजे॥ २२

इन्द्रे जीवति मे कान्ते कथमन्यं करोम्यहम्।
अन्वेषणार्थं गन्तव्यं मया तस्य महात्मनः॥ २३

इति सा समयं कृत्वा वञ्चयित्वा च भूपतिम्।
भर्तुरानयने यत्नं करोतु मम वाक्यतः॥ २४

इति सञ्चिन्त्य मे सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः।
नहुषं सहिता जग्मुरिन्द्रपत्न्या दिवौकसः॥ २५

तानागतान्समीक्ष्याह तदा कृत्रिमवासवः।
जहर्ष च मुदायुक्तस्तां वीक्ष्य मुदितोऽब्रवीत्॥ २६

अद्यास्मि वासवः कान्ते भज मां चारुलोचने।
पतित्वे सर्वलोकस्य पूज्योऽहं विहितः सुरैः॥ २७

इत्युक्ता सा नृपं प्राह वेपमाना त्रपायुता।
वरमिच्छाम्यहं राजंस्त्वत्तः प्राप्तं सुरेश्वर॥ २८

उसकी यह बात सुनकर भयभीत देवताओं और मुनियोंने उस कामातुर नहुषसे कहा—हमलोग सामनीतिसे इन्द्राणीको आपके पास लायेंगे—ऐसा कहकर वे लोग बृहस्पतिके निवासपर चले गये॥ १६-१७॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर वे देवगण अंगिराके पुत्र बृहस्पतिके पास जाकर हाथ जोड़कर उनसे बोले—हमें ज्ञात हुआ है कि इन्द्राणीको आपके घरमें शरण प्राप्त है, उन्हें आज ही नहुषको देना है; क्योंकि वह इन्द्र बना दिया गया है। यह सुलक्षणा सुन्दरी उन्हें पतिके रूपमें वरण कर ले॥ १८-१९॥

यह दारुण वचन सुनकर बृहस्पतिने देवताओंसे कहा—मैं शरणमें आयी हुई इस पतिव्रता शचीका त्याग नहीं करूँगा॥ २०॥

देवगण बोले—तब दूसरा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे वह आज प्रसन्न हो जाय, अन्यथा क्रुद्ध होनेपर वह दुराराध्य हो जायगा॥ २१॥

देवगुरु बोले—सुन्दरी शची वहाँ जाकर राजाको अपनी बातसे अत्यन्त मोहित करके यह शपथ ले कि 'अपने पतिको मृत जाननेके बाद ही मैं आपको अंगीकार करूँगी। अपने पति इन्द्रके जीवित रहते मैं किसी दूसरेको पति कैसे बना लूँ? इसलिये उन महाभागकी खोजके लिये मुझे जाना पड़ेगा।' इस प्रकार वह मेरे कथनके अनुसार शपथ लेकर और राजाको छलकर अपने पतिको लानेका प्रयत्न करे॥ २२—२४॥

ऐसा विचार करके सभी देवता बृहस्पतिको आगे करके इन्द्रपत्नी शचीके साथ नहुषके पास गये॥ २५॥

उन सभीको आया हुआ देखकर वह कृत्रिम इन्द्र नहुष हर्षित हुआ। उस शचीको देखकर वह आनन्दित हो गया और प्रसन्नतापूर्वक बोला—हे प्रिये! आज मैं इन्द्र हूँ, हे सुन्दर नेत्रोंवाली! मुझे पतिरूपमें अंगीकार करो। मैं देवताओंके द्वारा सम्पूर्ण लोकका पूज्य बना दिया गया हूँ॥ २६-२७॥

नहुषके ऐसा कहनेपर शचीने लज्जित होकर काँपते हुए कहा—हे राजन्! हे सुरेश्वर! मैं आपसे एक वरप्राप्तिकी इच्छा करती हूँ। आप कुछ समयतक

किञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्कुर्वे विनिर्णयम्।
इन्द्रोऽस्तीति न वास्तीति सन्देहो मे हृदि स्थितः॥ २९

ततस्त्वां समुपस्थास्ये कृत्वा निश्चयमात्मनि।
तावत्क्षमस्व राजेन्द्र सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ३०

न हि विज्ञायते शक्रो नष्टः किं वा क्व वा गतः।
एवमुक्तः स चेन्द्राण्या नहुषः प्रीतिमानभूत्॥ ३१

व्यसर्जयत्स तां देवीं तथेत्युक्त्वा मुदान्वितः।
सा विसृष्टा नृपेणाशु गत्वा प्राह सुरान्सती॥ ३२

इन्द्रस्यागमने यत्नं कुरुताद्य कृतोद्यमाः।
श्रुत्वा तद्वचनं देवा इन्द्राण्या रसवच्छुचि॥ ३३

मन्त्रयामासुरेकाग्राः शक्रार्थं नृपसत्तम।
ते गत्वा वैष्णवं धाम तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ ३४

आदिदेवं जगन्नाथं शरणागतवत्सलम्।
ऊचुश्चैनं समुद्विग्ना वाक्यं वाक्यविशारदाः॥ ३५

देवदेव सुरपतिर्ब्रह्महत्याप्रपीडितः।
अदृश्यः सर्वभूतानां क्वापि तिष्ठति वासवः॥ ३६

त्वद्धिया निहते विप्रे ब्रह्महत्या कुतः प्रभो।
त्वं गतिस्तस्य भगवन्नस्माकं च तथैव हि॥ ३७

त्राहि नः परमापन्नान्मोक्षं तस्य विनिर्दिश।
देवानां वचनं श्रुत्वा कातरं विष्णुरब्रवीत्॥ ३८

यजतामश्वमेधेन शक्रपापनिवृत्तये।
पुण्येन हयमेधेन पावितः पाकशासनः॥ ३९

पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः।
हयमेधेन सन्तुष्टा देवी श्रीजगदम्बिका॥ ४०

ब्रह्महत्यादिपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण पापजालं विनश्यति॥ ४१

किं पुनर्वाजिमेधेन तत्प्रीत्यर्थं कृतेन च।
इन्द्राणी कुरुतान्नित्यं भगवत्याः प्रपूजनम्॥ ४२

प्रतीक्षा करें, जबतक मैं यह निर्णय कर लूँ कि मेरे पति इन्द्र जीवित हैं या नहीं; क्योंकि इस बातका मेरे मनमें सन्देह है। मनमें इसका निश्चय करनेके अनन्तर मैं आपकी सेवामें उपस्थित होऊँगी। हे राजेन्द्र! तबतकके लिये क्षमा कीजिये; यह मैं सत्य कह रही हूँ। अभी यह ज्ञात नहीं है कि इन्द्र नष्ट हो गये हैं या कहीं चले गये हैं॥ २८—३०½ ॥

इन्द्राणीके ऐसा कहनेपर नहुष प्रसन्न हो गया और 'ऐसा ही हो'—यह कहकर उसने उन देवी शचीको प्रसन्नतापूर्वक विदा किया। राजासे मुक्ति पाकर वह पतिव्रता शची शीघ्रतापूर्वक देवताओंके पास जाकर बोली—आपलोग उद्यमशील होकर इन्द्रको ले आनेका प्रयास करें॥ ३१-३२½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! इन्द्राणीका पवित्र और मधुर वचन सुनकर सभी देवताओंने एकाग्र होकर इन्द्रके विषयमें विचार-विमर्श किया। तदनन्तर वे वैकुण्ठलोक जाकर शरणागतवत्सल आदिदेव भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे। उन वाक्पटुविशारद देवताओंने उद्विग्न होकर इस प्रकार कहा— ॥ ३३—३५ ॥

हे देवाधिदेव! ब्रह्महत्यासे पीड़ित देवराज इन्द्र सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर कहीं रह रहे हैं। हे प्रभो! आपके परामर्शसे ही उन्होंने ब्राह्मण वृत्रासुरका वध किया था। तब ब्रह्महत्या कहाँ हुई? हे भगवन्! आप ही उनकी और हम सबकी एकमात्र गति हैं। इस महान् कष्टमें पड़े हुए हम सबकी रक्षा कीजिये और उन इन्द्रके ब्रह्महत्यासे छूटनेका उपाय बताइये।॥ ३६-३७½ ॥

देवताओंका करुण वचन सुनकर भगवान् विष्णु बोले—इन्द्रके पापकी निवृत्तिके लिये अश्वमेधयज्ञ कीजिये; अश्वमेध करनेसे प्राप्त पुण्यसे इन्द्र पवित्र हो जायँगे। इससे वे पुनः देवताओंके इन्द्रत्वको पा जायँगे, फिर कोई भय नहीं रहेगा। अश्वमेधयज्ञसे भगवती श्रीजगदम्बिका प्रसन्न होकर ब्रह्महत्या आदि पाप निश्चितरूपसे नष्ट कर देंगी। जिनके स्मरणमात्रसे पापोंका समूह नष्ट हो जाता है, उन जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये किये गये अश्वमेधयज्ञका क्या कहना! इन्द्राणी भी नित्य भगवती जगदम्बाकी पूजा

आराधनं शिवायास्तु सुखकारि भविष्यति।
नहुषोऽपि जगन्मातुर्मायया मोहितः किल॥ ४३

विनाशं स्वकृतेनाशु गमिष्यत्येनसा सुराः।
पावितश्चाश्वमेधेन तुराषाडपि वैभवम्॥ ४४

प्राप्स्यत्यचिरकालेन स्वमासनमनुत्तमम्।
ते तु श्रुत्वा शुभां वाणीं विष्णोरमिततेजसः॥ ४५

जग्मुस्तं देशमनिशं यत्रास्ते पाकशासनः।
तमाश्वास्य सुराः शक्रं बृहस्पतिपुरोगमाः॥ ४६

कारयामासुरखिलं हयमेधं महाक्रतुम्।
विभज्य ब्रह्महत्यां तु वृक्षेषु च नदीषु च॥ ४७

पर्वतेषु पृथिव्यां च स्त्रीषु चैवाक्षिपद्विभुः।
तां विसृज्य च भूतेषु विपापः पाकशासनः॥ ४८

विज्वरः समभूद् भूयः कालाकाङ्क्षी स्थितो जले।
अदृश्यः सर्वभूतानां पद्मनाले व्यतिष्ठत॥ ४९

देवास्तु निर्गताः स्थाने कृत्वा कार्यं तदद्भुतम्।
पौलोमी तु गुरुं प्राह दुःखिता विरहाकुला॥ ५०

कृतयज्ञोऽपि मे भर्ता किमदृश्यः पुरन्दरः।
कथं द्रक्ष्ये प्रियं स्वामिंस्तमुपायं वदस्व मे॥ ५१

बृहस्पतिरुवाच

त्वमाराधय पौलोमि देवीं भगवतीं शिवाम्।
दर्शयिष्यति ते नाथं देवी विगतकल्मषम्॥ ५२

आराधिता जगद्धात्री नहुषं वारयिष्यति।
मोहयित्वा नृपं स्थानात्पातयिष्यति चाम्बिका॥ ५३

इत्युक्ता सा तदा तेन पुलोमतनया नृप।
जग्राह मन्त्रं विधिवद् गुरोर्देव्याः ससाधनम्॥ ५४

विद्यां प्राप्य गुरोर्देवी देवीं श्रीभुवनेश्वरीम्।
सम्यगाराधयामास बलिपुष्पार्चनैः शुभैः॥ ५५

करें; भगवती शिवाकी आराधना सुखकारी होगी। हे देवताओ! नहुष भी जगदम्बिकाकी मायासे मोहित होकर शीघ्र ही अपने किये हुए पापसे अवश्य विनष्ट हो जायगा। अश्वमेधयज्ञसे पवित्र होकर इन्द्र भी शीघ्र ही अपने उत्तम इन्द्रपद और वैभवको प्राप्त करेंगे॥ ३८—४४½ ॥

अमित तेजवाले भगवान् विष्णुकी इस शुभ वाणीको सुनकर वे देवगण उस स्थानको चल दिये जहाँ इन्द्र रह रहे थे। बृहस्पतिके नेतृत्वमें देवताओंने इन्द्रको आश्वासन देकर सम्पूर्ण अश्वमेध महायज्ञ सम्पन्न कराया॥ ४५-४६½ ॥

तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने ब्रह्महत्याको विभाजितकर वृक्षों, नदियों, पर्वतों, पृथ्वी और स्त्रियोंपर फेंक दिया। इस प्रकार उसको प्राणि-पदार्थोंमें विसर्जित करके इन्द्र पापरहित हो गये। सन्तापरहित होनेपर भी इन्द्र अच्छे समयकी प्रतीक्षा करते हुए जलमें ही ठहरे रहे। वहाँ सभी प्राणियोंसे अदृश्य रहते हुए जलमें वे एक कमलनालमें स्थित रहे॥ ४७—४९ ॥

देवगण उस अद्भुत कार्यको करके अपने स्थानको चले गये। तब शचीने दुःख और वियोगसे व्याकुल होकर देवगुरु बृहस्पतिसे कहा—यज्ञ करनेपर भी मेरे स्वामी इन्द्र क्यों अदृश्य हैं? हे स्वामिन्! मैं अपने प्रियको कैसे देख सकूँगी; आप मुझे उस उपायको बतायें॥ ५०-५१ ॥

बृहस्पति बोले—हे पौलोमि! तुम देवी भगवती शिवाकी आराधना करो। वे देवी तुम्हारे पापरहित पतिका तुम्हें दर्शन करायेंगी। आराधना करनेपर जगत्का पालन करनेवाली वे भगवती नहुषको शक्तिहीन कर देंगी। वे अम्बिका राजाको मोहित करके उसे उसके स्थानसे गिरा देंगी॥ ५२-५३ ॥

हे राजन्! बृहस्पतिजीके ऐसा कहनेपर पुलोमापुत्री शचीने देवगुरुसे पूजाविधिसहित देवीका मन्त्र विधिवत् प्राप्त कर लिया॥ ५४॥

गुरुसे मन्त्रविद्या प्राप्त करके देवी शचीने बलि, पुष्प आदि शुभ अर्चनोंसे भगवती श्रीभुवनेश्वरीकी सम्यक् आराधना की॥ ५५ ॥

त्यक्तान्यभोगसम्भारा तापसीवेषधारिणी।
चकार पूजनं देव्याः प्रियदर्शनलालसा॥ ५६

कालेन कियता तुष्टा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
सौम्यरूपधरा देवी वरदा हंसवाहिनी॥ ५७

सूर्यकोटिप्रतीकाशा चन्द्रकोटिसुशीतला।
विद्युत्कोटिसमानाभा चतुर्वेदसमन्विता॥ ५८

पाशांकुशाभयवरान्दधती निजबाहुभिः।
आपादलम्बिनीं स्वच्छां मुक्तामालां च बिभ्रती॥ ५९

प्रसन्नस्मेरवदना लोचनत्रयभूषिता।
आब्रह्मकीटजननी करुणामृतसागरा॥ ६०

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिका परमेश्वरी।
सौम्यानन्तरसैर्युक्तस्तनद्वयविराजिता ॥ ६१

सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा कूटस्थाक्षररूपिणी।
तामुवाच प्रसन्ना सा शक्रपत्नीं कृतोद्यमाम्॥ ६२

मेघगम्भीरशब्देन मुदमाददती भृशम्।

देव्युवाच

वरं वरय सुश्रोणि वाञ्छितं शक्रवल्लभे॥ ६३

ददाम्यद्य प्रसन्नास्मि पूजिता सुभृशं त्वया।
वरदाहं समायाता दर्शनं सहजं न मे॥ ६४

अनेककोटिजन्मोत्थपुण्यपुञ्जैर्हि लभ्यते।
इत्युक्ता सा तदा देवी तामाह प्रणता पुरः॥ ६५

शक्रपत्नी भगवतीं प्रसन्नां परमेश्वरीम्।
वाञ्छामि दर्शनं मातः पत्युः परमदुर्लभम्॥ ६६

नहुषाद्भयनाशं च स्वपदप्रापणं तथा।

देव्युवाच

गच्छ त्वमनया दूत्या सार्धं श्रीमानसं सरः॥ ६७

यत्र मे मूर्तिरचला विश्वकामाभिधा मता।
तत्र पश्यसि शक्रं त्वं दुःखितं भयविह्वलम्॥ ६८

मोहयिष्यामि राजानं कालेन कियता पुनः।

अपने प्रिय पतिके दर्शनकी लालसासे युक्त शची समस्त भोगोंका त्यागकर तपस्विनीका वेश धारणकर देवीका पूजन करने लगीं॥ ५६॥

[आराधना करनेपर] कुछ समय बाद प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिया। वे वरदायिनी देवी सौम्य रूप धारण किये हुए हंसपर सवार थीं। वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान शीतल, करोड़ों विद्युत्‌के समान प्रभासे युक्त और चारों वेदोंसे समन्वित थीं। उन्होंने अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, अभय तथा वर-मुद्राएँ धारण कर रखी थीं, वे चरणोंतक लटकती हुई स्वच्छ मोतियोंकी माला पहने हुए थीं। उनके मुखपर मधुर मुसकान थी और वे तीन नेत्रोंसे सुशोभित थीं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सभी प्राणियोंकी जननी, करुणारूपी अमृतकी सागरस्वरूपा तथा अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरी वे परमेश्वरी सौम्य थीं तथा अनन्त रसोंसे आपूरित स्तनयुगलसे सुशोभित हो रही थीं। सबकी अधीश्वरी, सब कुछ जाननेवाली, कूटस्थ और बीजाक्षरस्वरूपिणी वे भगवती उद्यमशील इन्द्रपत्नी शचीसे प्रसन्न होकर मेघके समान अत्यन्त गम्भीर वाणीके द्वारा उन्हें परम हर्षित करती हुई कहने लगीं॥ ५७—६२½॥

देवी बोलीं—हे सुन्दर कटिप्रदेशवाली इन्द्रप्रिये! अपना अभिलषित वर माँगो, तुम्हारे द्वारा सम्यक् प्रकारसे पूजित मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हें आज वरदान दूँगी। मैं वर प्रदान करनेके लिये आयी हूँ; मेरा दर्शन सहज सुलभ नहीं है। करोड़ों जन्मोंकी संचित पुण्यराशिसे ही यह प्राप्त होता है॥ ६३-६४½॥

उनके ऐसा कहनेपर इन्द्रपत्नी देवी शचीने सम्मुख स्थित होकर उन प्रसन्न भगवती परमेश्वरीसे विनतभावसे कहा—हे माता! मैं अपने पतिका अत्यन्त दुर्लभ दर्शन, नहुषसे उत्पन्न भयका नाश और अपने पदकी पुनः प्राप्ति चाहती हूँ॥ ६५-६६½॥

देवी बोलीं—तुम [मेरी] इस दूतीके साथ मानसरोवर चली जाओ, जहाँ मेरी विश्वकामा नामक अचल मूर्ति प्रतिष्ठित है, वहीं तुम्हें भयभीत और दुःखी इन्द्रके दर्शन हो जायँगे। कुछ समय बाद मैं पुनः राजाको मोहित करूँगी। हे विशालाक्षि! तुम

स्वस्था भव विशालाक्षि करोमि तव चेप्सितम्॥ ६९

भ्रंशयिष्यामि भूपालं मोहितं त्रिदशासनात्।

व्यास उवाच

देवीदूती तां गृहीत्वा शक्रपत्नीं त्वरान्विता॥ ७०

प्रापयामास सान्निध्यं स्वपत्युः परमेश्वरीम्।
सा दृष्ट्वा तं पतिं बाला सुरेशं गुप्तसंस्थितम्।
मुदिताभूद्वरं वीक्ष्य बहुकालाभिवाञ्छितम्॥ ७१

शान्तचित्त हो जाओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करूँगी। मैं मोहग्रस्त राजा [नहुष]-को इन्द्रपदसे गिरा दूँगी॥ ६७—६९½॥

व्यासजी बोले—तदनन्तर परमेश्वरी इन्द्रपत्नीको ले जाकर देवीकी दूतीने शीघ्रतापूर्वक उनके पति इन्द्रके पास पहुँचा दिया। गुप्तरूपसे रहते हुए अपने पति उन देवराज इन्द्रको देखकर और इस प्रकार चिरकालसे वांछित अपने वरकी प्राप्ति करके वे शची अत्यन्त प्रसन्न हुईं॥ ७०-७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
इन्द्राण्या शक्रदर्शनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

शचीका इन्द्रसे अपना दुःख कहना, इन्द्रका शचीको सलाह देना कि वह नहुषसे ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें आनेको कहे, नहुषका ऋषियोंद्वारा वहन की जा रही पालकीमें सवार होना और शापित होकर सर्प होना तथा इन्द्रका पुनः स्वर्गाधिपति बनना

व्यास उवाच

तां वीक्ष्य विपुलापाङ्गीं रहः शोकसमन्विताम्।
आखण्डलः प्रियां भार्यां विस्मितश्चाब्रवीत्तदा॥ १

कथमत्रागता कान्ते कथं ज्ञातस्त्वया ह्यहम्।
दुर्ज्ञेयः सर्वभूतानां संस्थितोऽस्मि शुभानने॥ २

शच्युवाच

देव देव्याः प्रसादेन ज्ञातोऽस्यद्य भवानिह।
पुनस्तस्याः प्रसादेन प्राप्तास्मि त्वां दिवस्पते॥ ३

नहुषो नाम राजर्षिः स्थापितो भवदासने।
त्रिदशैर्मुनिभिश्चैव स मां बाधति नित्यशः॥ ४

पतिं मां कुरु चार्वङ्गि तुरासाहं सुराधिपम्।
एवं वदति मां पाप्मा किं करोमि बलार्दन॥ ५

इन्द्र उवाच

कालाकाङ्क्षी वरारोहे संस्थितोऽस्मि यदृच्छया।
तथा त्वमपि कल्याणि सुस्थिरं स्वमनः कुरु॥ ६

व्यासजी बोले—विशाल नेत्रोंवाली अपनी शोकाकुल प्रिय पत्नीको वहाँ एकान्तमें देखकर इन्द्र आश्चर्यचकित हो गये और बोले—॥ १॥

हे प्रिये! तुम यहाँ कैसे आयी? तुम्हें कैसे ज्ञात हुआ कि मैं यहाँ हूँ? हे शुभानने! मैं सभी प्राणियोंसे अज्ञात रहते हुए यहाँ निवास कर रहा हूँ॥ २॥

शची बोली—हे देव! देवी भगवतीकी कृपासे आप आज मुझे यहाँ ज्ञात हुए हैं। हे देवेन्द्र! उन्हींकी कृपासे मैं आपको पुनः प्राप्त कर सकी हूँ॥ ३॥

देवताओं और मुनियोंने नहुष नामक राजर्षिको आपके आसनपर बैठा दिया है; वह मुझे नित्य कष्ट देता है। वह पापी मुझसे इस प्रकार कहता है—हे सुन्दरि! मुझ देवराज इन्द्रको अपना पति बना लो। हे बलार्दन! अब मैं क्या करूँ?॥ ४-५॥

इन्द्र बोले—हे वरारोहे! हे कल्याणि! जिस प्रकार मैं [अनुकूल] समयकी प्रतीक्षा करते हुए प्रारब्धवश यहाँ रह रहा हूँ, वैसे ही तुम भी अपने मनको पूर्णरूपसे स्थिर करो॥ ६॥

व्यास उवाच

इत्युक्ता तेन सा देवी पतिनातिप्रशंसिना।
निःश्वसन्त्याह तं शक्रं वेपमानातिदुःखिता॥ ७

कथं तिष्ठे महाभाग पापात्मा मां वशानुगाम्।
करिष्यति मदोन्मत्तो वरदानेन गर्वितः॥ ८

देवाश्च मुनयः सर्वे मामूचुस्तद्भयाकुलाः।
तं भजस्व वरारोहे देवराजं स्मरातुरम्॥ ९

बृहस्पतिस्तु शत्रुघ्न वाडवो बलवर्जितः।
कथं मां रक्षितुं शक्तो भवेद्देवानुगः सदा॥ १०

तस्माच्चिन्तास्ति महती नार्यहं वशवर्तिनी।
अनाथा किं करिष्यामि विपरीते विधौ विभो॥ ११

नार्यस्म्यहं न कुलटा त्वच्चित्तातिपतिव्रता।
नास्ति मे शरणं तत्र यो मां रक्षति दुःखिताम्॥ १२

इन्द्र उवाच

उपायं प्रब्रवीम्यद्य तं कुरुष्व वरानने।
शीलं ते दुःखिते काले परित्रातं भविष्यति॥ १३

परेण रक्षिता नारी न भवेच्च पतिव्रता।
उपायैः कोटिभिः कामभिन्नचित्तातिचञ्चला॥ १४

शीलमेव हि नारीणां सदा रक्षति पापतः।
तस्मात्त्वं शीलमास्थाय स्थिरा भव शुचिस्मिते॥ १५

यदा त्वां नहुषो राजा बलादाकर्षयेत्खलः।
तदा त्वं समयं कृत्वा गुप्तं वञ्चय भूपतिम्॥ १६

एकान्ते तत्समीपे त्वं गत्वा वद मदालसे।
ऋषियानेन दिव्येन मामुपैहि जगत्पते॥ १७

एवं तव वशे प्रीता भविष्यामीति मे व्रतम्।
इति तं वद सुश्रोणि तदा तु परिमोहितः॥ १८

कामान्धः स मुनीन् याने योजयिष्यति पार्थिवः।
अवश्यं तापसो भूपं शापदग्धं करिष्यति॥ १९

व्यासजी बोले—अपने परम आदरणीय पतिके ऐसा कहनेपर लम्बी साँसें खींचती तथा काँपती हुई वे शची अत्यन्त दुःखित होकर इन्द्रसे कहने लगीं—॥ ७॥

हे महाभाग! मैं कैसे रहूँ? वरदानके द्वारा मदोन्मत्त और अहंकारी बना हुआ वह पापात्मा मुझे अपने वशमें कर लेगा। उससे भयभीत सभी देवताओं और मुनियोंने मुझसे कहा—हे वरारोहे! तुम उस कामातुर देवराजको अंगीकार कर लो॥ ८-९॥

हे शत्रुसूदन! बृहस्पति भी निर्बल ब्राह्मण हैं; वे मेरी रक्षा करनेमें कैसे समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि वे भी तो सदा देवताओंके ही अनुगामी हैं॥ १०॥

अतः हे विभो! मैं वशवर्तिनी नारी हूँ, मुझे यह महान् चिन्ता है कि भाग्यकी इस विपरीत अवस्थामें मैं अनाथ क्या करूँगी?॥ ११॥

मैं कुलटा नहीं हूँ अपितु आपका ही ध्यान करनेवाली पतिव्रता स्त्री हूँ। वहाँ मेरे लिये ऐसा कोई शरण नहीं है, जो मुझ दुःखितकी रक्षा करे॥ १२॥

इन्द्र बोले—हे वरानने! मैं एक उपाय बताता हूँ, तुम उसे इस समय करो। इससे दुःखके समयमें तुम्हारे शीलकी रक्षा हो जायगी॥ १३॥

करोड़ों उपाय करनेपर भी दूसरेके द्वारा रक्षित स्त्री पतिव्रता नहीं रह सकती; क्योंकि वह कामसे विचलित मनवाली तथा अत्यन्त चंचल होती है॥ १४॥

स्त्रियोंका शील ही पापसे इनकी रक्षा करता है। इसलिये हे पवित्र मुसकानवाली! तुम शीलका आश्रय लेकर धैर्य धारण करो॥ १५॥

जब दुष्ट राजा नहुष तुम्हें बलपूर्वक प्राप्त करनेकी चेष्टा करे तब तुम गुप्त प्रतिज्ञा करके राजाको धोखेमें डाल देना। हे मदालसे! तुम एकान्तमें उसके समीप जाकर कहो—हे जगत्पते! आप ऋषियोंके द्वारा वहन किये जानेवाले दिव्य वाहनसे मेरे पास आयें, ऐसा होनेपर मैं प्रेमपूर्वक आपके वशमें हो जाऊँगी—यह मेरी प्रतिज्ञा है। हे सुश्रोणि! तुम उससे ऐसा बोलना, तब मोहित और कामान्ध वह राजा मुनियोंको अपने वाहनमें लगायेगा; इससे तपस्वी अवश्य ही नहुषको शापसे दग्ध कर देंगे॥ १६—१९॥

साहाय्यं जगदम्बा ते करिष्यति न संशयः।
जगदम्बापदस्मर्तुः सङ्कटं न कदाचन॥ २०

यदि जायेत तच्चापि ज्ञेयं तत्स्वस्तये किल।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मणिद्वीपाधिवासिनीम्॥ २१

भज त्वं भुवनेशानीं गुरुवाक्यानुसारतः।

व्यास उवाच

इत्याख्याता शची तेन जगाम नहुषं प्रति॥ २२

तथेत्युक्त्वातिविश्वस्ता भाविकार्ये कृतोद्यमा।
नहुषस्तां समालोक्य मुदितो वाक्यमब्रवीत्॥ २३

स्वागतं सत्यवचनैस्त्वदधीनोऽस्मि कामिनि।
दासोऽहं तव सत्येन पालितं वचनं त्वया॥ २४

यदागता समीपे मे तुष्टोऽस्मि मितभाषिणि।
न च व्रीडा त्वया कार्या भक्तं मां भज सुस्मिते॥ २५

कार्यं वद विशालाक्षि करिष्यामि तव प्रियम्।

शच्युवाच

सर्वं कृतं त्वया कार्यं मम कृत्रिमवासव॥ २६

मनोरथोऽस्ति मे देव शृणु चित्तेऽधुना विभो।
वाञ्छितं कुरु कल्याण त्वद्वशाहमतः परम्॥ २७

ब्रवीमि मानसोत्साहं त्वं तं कर्तुमिहार्हसि।

नहुष उवाच

कार्यं त्वं ब्रूहि चन्द्रास्ये करोमि तव वाञ्छितम्॥ २८

अलभ्यमपि दास्यामि तुभ्यं सुभ्रु वदस्व माम्।

शच्युवाच

कथं ब्रवीमि राजेन्द्र प्रत्ययो नास्ति मे तव॥ २९

शपथं कुरु राजेन्द्र यत्करोमि प्रियं तव।
राजानः सत्यवचसो दुर्लभा एव भूतले॥ ३०

भगवती जगदम्बा तुम्हारी सहायता करेंगी; इसमें सन्देह नहीं है। भगवती जगदम्बाके चरणोंका स्मरण करनेवालेको कभी संकट नहीं होता। यदि संकट उत्पन्न भी हो जाय तो उसे भी अपने कल्याणके लिये ही समझना चाहिये। अतः तुम गुरु बृहस्पतिके कथनानुसार पूर्ण प्रयत्नसे मणिद्वीपवासिनी भगवती भुवनेश्वरीका भजन करो॥ २०-२१½॥

व्यासजी बोले—उनके ऐसा कहनेपर 'वैसा ही होगा'—यह कहकर अत्यन्त विश्वस्त तथा भावी कार्यके प्रति प्रयत्नशील शची नहुषके पास गयीं। नहुष उन्हें देखकर प्रसन्न होता हुआ यह वचन बोला—हे कामिनि! तुम्हारा स्वागत है, मैं तुम्हारे सत्य वचनोंके कारण तुम्हारे अधीन हूँ। तुमने अपने वचनका सत्यतापूर्वक पालन किया, इसलिये मैं तुम्हारा दास हो गया हूँ। हे मितभाषिणि! तुम जब मेरे समीप आ गयी हो तो मैं सन्तुष्ट हो गया हूँ। तुम्हें अब लज्जा नहीं करनी चाहिये। हे सुन्दर मुसकानवाली! मुझ अनुरक्तको अंगीकार करो। हे विशाल नेत्रोंवाली! अपना कार्य बताओ; मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा॥ २२—२५½॥

शची बोलीं—हे कृत्रिम वासव! आपने मेरा सम्पूर्ण कार्य कर दिया है। हे देव! हे विभो! इस समय मेरे मनमें एक अभिलाषा है, उसे आप सुनें। हे कल्याण! मेरा मनोरथ पूर्ण कर दीजिये; इसके बाद मैं आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी, मैं बड़े उत्साहसे अपना मनोरथ कह रही हूँ, आप उसे पूरा करनेमें समर्थ हैं॥ २६-२७½॥

नहुष बोला—हे चन्द्रमुखि! तुम अपना कार्य बताओ, मैं तुम्हारा अभिलषित कार्य करता हूँ। हे सुभ्रु! यदि अलभ्य वस्तु होगी तो भी मैं तुम्हें दूँगा; मुझे बताओ॥ २८½॥

शची बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं कैसे बताऊँ, मुझे आपका विश्वास नहीं है। हे राजेन्द्र! आप शपथ लें कि मैं तुम्हारा प्रिय करूँगा; क्योंकि पृथ्वीतलपर सत्यवादी राजा दुर्लभ हैं। हे राजन्! आपको सत्यसे बँधा जाननेके बाद ही मैं अपना अभिलषित बताऊँगी।

पश्चाद् ब्रवीम्यहं राजन् ज्ञात्वा सत्येन यन्त्रितम्।
कृते चेद्वाञ्छिते भूप सदा ते वशवर्तिनी॥ ३१
भविष्यामि तुराषाड् वै सत्यमेतद्वचो मम।

नहुष उवाच

अवश्यमेव कर्तव्यं वचनं तव सुन्दरि॥ ३२
शपामि सुकृतेनाहं यज्ञदानकृतेन वै।

शच्युवाच

इन्द्रस्य हरयो वाहा गजश्चैव रथस्तथा॥ ३३
गरुडो वासुदेवस्य यमस्य महिषस्तथा।
वृषभः शङ्करस्यापि ब्रह्मणो वरटापतिः॥ ३४
मयूरः कार्तिकेयस्य गजास्यस्य तु मूषकः।
इच्छाम्यहमपूर्वं वै वाहनं ते सुराधिप॥ ३५
यन्न विष्णोर्न रुद्रस्य नासुराणां न रक्षसाम्।
वहन्तु त्वां महाराज मुनयः संशितव्रताः॥ ३६
सर्वे शिबिकया राजन्नेतद्धि मम वाञ्छितम्।
सर्वदेवाधिकं त्वां वै जानामि वसुधाधिप॥ ३७
तेन ते तेजसो वृद्धिं वाञ्छाम्यहमतन्द्रिता।

व्यास उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य ज्ञानदुर्बलः॥ ३८
मोहितस्तु महादेव्या कृतमोहेन तत्क्षणम्।
उवाच वचनं भूपः संस्तुवन्वासवप्रियाम्॥ ३९

नहुष उवाच

सत्यमुक्तं त्वया तन्वि वाहनं रुचिरं मम।
करिष्यामि सुकेशान्ते वचनं तव सर्वथा॥ ४०
न ह्यल्पवीर्यो भवति यो वाहान्कुरुते मुनीन्।
अहमारुह्य यानेन त्वामेष्यामि शुचिस्मिते॥ ४१
सप्तर्षयो मां वक्ष्यन्ति सर्वे देवर्षयस्तथा।
समर्थं त्रिषु लोकेषु ज्ञात्वा मां तपसाधिकम्॥ ४२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तां सुसन्तुष्टो विससर्ज हरिप्रियाम्।
मुनीनाहूय सर्वांस्तानित्युवाच स्मरान्वितः॥ ४३

हे राजन्! मेरी उस अभिलाषाको पूर्ण कर देनेपर मैं सदाके लिये आपकी वशवर्तिनी हो जाऊँगी। हे इन्द्र! यह मेरा सत्यवचन है॥ २९—३१½॥

नहुष बोला—हे सुन्दरि! मैं यज्ञ, दान आदि कृत्योंसे संचित पुण्यकी शपथ लेकर कहता हूँ कि मैं तुम्हारे वचनका अवश्य पालन करूँगा॥ ३२½॥

शची बोलीं—इन्द्रके वाहन अश्व, गज और रथ हैं। भगवान् विष्णुका वाहन गरुड़, यमराजका वाहन महिष, शिवका वाहन वृषभ, ब्रह्माका वाहन हंस, कार्तिकेयका वाहन मयूर और गजाननका वाहन मूषक है। हे सुराधिप! मैं चाहती हूँ कि आपका वाहन ऐसा विलक्षण हो जो विष्णु, रुद्र, असुरों तथा राक्षसोंके भी पास न हो॥ ३३—३५½॥

हे महाराज! अपने व्रतमें अटल रहनेवाले समस्त मुनिगण शिबिका (पालकी)-में आपको ढोयें—हे राजन्! यही मेरी इच्छा है। हे पृथ्वीपते! मैं आपको सभी देवताओंसे महान् समझती हूँ; इसीलिये मैं सावधान रहती हुई आपके तेजकी वृद्धि चाहती हूँ॥ ३६-३७½॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर महादेवीद्वारा प्रकट किये गये मोहसे मोहित हुआ बुद्धिहीन राजा नहुष हँसकर इन्द्रप्रिया शचीको सन्तुष्ट करते हुए यह वचन कहने लगा—॥ ३८-३९॥

नहुष बोला—हे तन्वंगि! तुमने सत्य ही कहा है, यह वाहन मुझे भी रुचिकर है। हे सुन्दर केशपाशवाली! मैं तुम्हारे वचनोंका सम्यक् रूपसे पालन करूँगा॥ ४०॥

हे पवित्र मुसकानवाली! जो अल्प पराक्रमवाला होता है, वही ऋषियोंको पालकी ढोनेमें नहीं लगा सकता; मैं [तुम्हारी इच्छाके अनुसार] वाहनपर आरूढ़ होकर तुम्हारे पास आऊँगा॥ ४१॥

मुझे तीनों लोकोंमें सबसे बड़ा तपस्वी और समर्थ जानकर सप्तर्षि तथा सभी देवर्षि मेरा वहन करेंगे॥ ४२॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर परम सन्तुष्ट उस नहुषने उन इन्द्रप्रिया शचीको विदा किया, इसके बाद सभी मुनियोंको बुलाकर वह कामातुर उनसे इस प्रकार कहने लगा—॥ ४३॥

नहुष उवाच

अहमिन्द्रोऽद्य भो विप्राः सर्वशक्तिसमन्वितः।
कार्यमत्र प्रकुर्वन्तु भवन्तो विगतस्मयाः॥ ४४

इन्द्रासनं मया प्राप्तं नेन्द्राणी मामुपैति च।
आकारिता च मां ब्रूते प्रेमपूर्वमिदं वचः॥ ४५

मुनियानेन देवेन्द्र मामुपैहि सुराधिप।
देवदेव महाराज मत्प्रियं कुरु मानद॥ ४६

एतत्कार्यं मुनिश्रेष्ठा ममात्यन्तं दुरासदम्।
भवद्भिस्तु प्रकर्तव्यं सर्वथैव दयालुभिः॥ ४७

मनो दहति मे कामः शक्रपत्न्यां प्रवर्तितम्।
भवन्तः शरणं मेऽद्य कुरुध्वं कार्यमद्भुतम्॥ ४८

अगस्तिप्रमुखास्तस्य श्रुत्वा वाक्यमसत्करम्।
अङ्गीचक्रुश्च भावित्वात्कृपया परमर्षयः॥ ४९

अङ्गीकृतेऽथ तद्वाक्ये मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
मुदं प्राप नृपः कामं पौलोमीकृतमानसः॥ ५०

आरुह्य शिबिकां रम्यां संस्थितस्त्वरयान्वितः।
वाहान्कृत्वा मुनीन्दिव्यान्सर्प सर्पेति चाब्रवीत्॥ ५१

कामार्तः सोऽस्पृशन्मूढः पादेन मुनिमस्तकम्।
अगस्तिं तापसश्रेष्ठं लोपामुद्रापतिं तदा॥ ५२

वातापिभक्षकर्तारं समुद्रस्यापि शोषकम्।
कशया ताडयामास पञ्चबाणशराहतः॥ ५३

इन्द्राणीहृतचित्तोऽसौ सर्पेति प्रब्रुवन्मुनिम्।
तं शशाप मुनिः क्रुद्धः कशाघातमनुस्मरन्॥ ५४

सर्पो भव दुराचार वने घोरवपुर्महान्।
बहुवर्षसहस्राणि यत्र क्लेशो महान्भवेत्॥ ५५

नहुष बोला—हे विप्रगण! मैं आज सर्वशक्ति-सम्पन्न इन्द्र हूँ। आपलोग गर्वरहित होकर मेरा कार्य करें॥ ४४॥

इन्द्रपद मुझे प्राप्त हो गया है, परंतु इन्द्राणी अभी मुझे नहीं प्राप्त हो सकी हैं। उन्होंने मेरे पास आकर प्रेमपूर्वक यह बात कही है—'हे सुरेन्द्र! हे सुराधिप! मुनियोंद्वारा ढोयी जानेवाली पालकीसे आप मेरे पास आयें। हे देवाधिदेव! हे महाराज! हे मानद! आप मेरा यह प्रिय कार्य करें'॥ ४५-४६॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! मेरा यह कार्य अत्यन्त दुष्कर है, परंतु आप सब दयालुओंको मेरा यह कार्य अवश्य करना चाहिये। इन्द्रपत्नी शचीमें अत्यन्त आसक्त मेरे मनको काम जला रहा है, मैं आप सबकी शरणमें हूँ। अतः मेरे इस महान् कार्यको सम्पन्न करें॥ ४७-४८॥

अगस्त्य आदि प्रमुख ऋषियोंने उसकी यह अनादरपूर्ण बात सुनकर भावीवश उसे कृपापूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४९॥

उन तत्त्वदर्शी मुनियोंके द्वारा उस वचनके स्वीकार कर लिये जानेपर शचीके प्रति आसक्त-चित्तवाला राजा नहुष प्रसन्न हो गया॥ ५०॥

वह तुरंत एक सुन्दर पालकीपर चढ़कर उसमें बैठ गया और दिव्य मुनियोंको उसे ढोनेके लिये नियुक्तकर उन्हें 'सर्प-सर्प' (शीघ्र चलो-शीघ्र चलो) ऐसा कहने लगा॥ ५१॥

उस कामातुर मूर्खने मुनि अगस्तिके मस्तकका पैरसे स्पर्श कर दिया। कामबाणसे आहत तथा इन्द्राणीके द्वारा आकृष्टचित्तवाले उस राजा नहुषने शीघ्र चलो—ऐसा कहते हुए वातापि नामक राक्षसका भक्षण करनेवाले तथा समुद्रको भी पी जानेवाले उन तपस्विश्रेष्ठ लोपामुद्रापति मुनि अगस्तिपर कोड़ेसे प्रहार भी किया॥ ५२-५३½॥

तब उस कोड़ेके आघातका स्मरण करते हुए मुनिने उसे यह शाप दे दिया। हे दुराचारी! तुम वनमें भयंकर शरीरवाले विशाल सर्प हो जाओ, जहाँ तुम्हें हजारों वर्षोंतक बहुत कष्ट भोगते हुए विचरण करना पड़ेगा और अपने प्रभावसे तुम पुनः स्वर्ग प्राप्त

विचरिष्यसि वीर्येण पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि।
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं नाम तव मोक्षो भविष्यति॥ ५६

प्रश्नानामुत्तरं श्रुत्वा धर्मपुत्रमुखात्ततः।

व्यास उवाच

एवं शप्तः स राजर्षिः स्तुत्वा तं मुनिसत्तमम्॥ ५७

स्वर्गात्पपात सहसा सर्परूपधरोऽभवत्।
बृहस्पतिस्ततो गत्वा तरसा मानसं प्रति॥ ५८

इन्द्राय सर्ववृत्तान्तं कथयामास विस्तरात्।
तच्छ्रुत्वा मघवा राज्ञः स्वर्गात्प्रच्यवनादिकम्॥ ५९

मुदितोऽभून्महाराज स्थितस्तत्रैव वासवः।
देवाश्च मुनयो दृष्ट्वा नहुषं पतितं भुवि॥ ६०

जग्मुः सर्वेऽपि तत्रैव यत्रेन्द्रः सरसि स्थितः।
तमाश्वास्य सुराः सर्वे मुनिभिः सहितास्तदा॥ ६१

स्वर्गे समानयामासुर्मानपूर्वं शचीपतिम्।
समागतं ततः शक्रं सर्वे ते मुनयः सुराः॥ ६२

स्थापयित्वासने पश्चादभिषेकं दधुः शिवम्।
इन्द्रोऽपि स्वासनं प्राप्य शच्या सह सुरालये॥ ६३

चिक्रीड नन्दने रम्ये कानने प्रेमयुक्तया।

व्यास उवाच

एवमिन्द्रेण सम्प्राप्तं दुःखं परमदारुणम्॥ ६४

हत्वासुरं कामरूपं विश्वरूपं महामुनिम्।
पुनर्देव्याः प्रसादेन स्वस्थानं प्राप्तवान्नृप॥ ६५

एतत्ते सर्वमाख्यातं वृत्रासुरवधाश्रयम्।
यत्पृष्टोऽहं त्वया राजन् कथानकमनुत्तमम्॥ ६६

यादृशं कुरुते कर्म तादृशं फलमाप्नुयात्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ६७

करोगे। युधिष्ठिर नामवाले धर्मपुत्रका दर्शनकर और उनके मुखसे अपने प्रश्नोंके उत्तर सुनकर तुम्हारी मुक्ति हो जायगी॥ ५४—५६½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार शाप प्राप्तकर राजर्षि नहुष उन मुनिश्रेष्ठकी स्तुति करके अचानक स्वर्गसे गिर पड़ा और सर्परूपधारी हो गया॥ ५७½ ॥

तब बृहस्पतिने शीघ्रतापूर्वक मानसरोवर जाकर इन्द्रसे सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कहा। हे महाराज (जनमेजय)! राजा नहुषके स्वर्गसे पतन आदिकी बात सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। वे इन्द्र अब भी वहींपर स्थित रहे। सभी देवता और मुनि नहुषको पृथ्वीपर गिरा देखकर उसी सरोवरके पास गये, जहाँ इन्द्र रहते थे॥ ५८—६०½ ॥

तत्पश्चात् उन शचीपति इन्द्रको आश्वासन देकर मुनियोंसहित सभी देवता उन्हें सम्मानपूर्वक स्वर्ग ले आये। तदनन्तर वापस आये हुए उन इन्द्रको सभी मुनियों और देवताओंने आसनपर स्थापित करके उनका पवित्र अभिषेक किया। इन्द्र भी अपने पदको प्राप्तकर प्रेमयुक्त शचीके साथ देवप्रासाद और मनोहर नन्दनवनमें क्रीड़ा करने लगे॥ ६१—६३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले महामुनि विश्वरूप और वृत्रासुरको मारनेके कारण इन्द्रको अत्यन्त भीषण दुःख प्राप्त हुआ और देवीकी कृपासे उन्होंने पुनः अपना स्थान प्राप्त कर लिया॥ ६४-६५॥

हे राजन्! इस प्रकार आपने मुझसे जो पूछा था, वृत्रासुरवधपर आधारित वह सम्पूर्ण उत्तम आख्यान मैंने आपको कह दिया॥ ६६॥

जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा फल प्राप्त होता है। किये गये शुभ-अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है॥ ६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
नहुषस्वर्गच्युतिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

कर्मकी गहन गतिका वर्णन तथा इस सम्बन्धमें भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका उदाहरण

जनमेजय उवाच

कथितं चरितं ब्रह्मञ्छक्रस्याद्भुतकर्मणः।
स्थानभ्रंशस्तथा दुःखप्राप्तिरुक्ता विशेषतः॥ १

यत्र देवाधिदेव्याश्च महिमातीव वर्णितः।
सन्देहोऽत्र ममाप्यस्ति यच्छक्रोऽपि महातपाः॥ २

देवाधिपत्यमासाद्य दुःसहं दुःखमन्वभूत्।
मखानां तु शतं कृत्वा प्राप्तं स्थानमनुत्तमम्॥ ३

देवेशत्वं च सम्प्राप्य भ्रष्टः स्थानादसौ कथम्।
एतत्सर्वं समाचक्ष्व कारणं करुणानिधे॥ ४

सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ पुराणानां प्रवर्तकः।
नावाच्यं महतां किञ्चिच्छिष्ये च श्रद्धयान्विते॥ ५

तस्मात्कुरु महाभाग मत्सन्देहापनोदनम्।

सूत उवाच

इति पृष्टः स राज्ञा वै तदा सत्यवतीसुतः॥ ६

तमाहातिप्रसन्नात्मा यथानुक्रममुत्तरम्।

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ कारणं परमाद्भुतम्॥ ७

कर्मणस्तु त्रिधा प्रोक्ता गतिस्तत्त्वविदां वरैः।
सञ्चितं वर्तमानं च प्रारब्धमिति भेदतः॥ ८

अनेकजन्मसञ्जातं प्राक्तनं सञ्चितं स्मृतम्।
सात्त्विकं राजसं कर्म तामसं त्रिविधं पुनः॥ ९

शुभं वाप्यशुभं भूप सञ्चितं बहुकालिकम्।
अवश्यमेव भोक्तव्यं सुकृतं दुष्कृतं तथा॥ १०

जन्मजन्मनि जीवानां सञ्चितानां च कर्मणाम्।
निःशेषस्तु क्षयो नाभूत्कल्पकोटिशतैरपि॥ ११

क्रियमाणं च यत्कर्म वर्तमानं तदुच्यते।
देहं प्राप्य शुभं वापि ह्यशुभं वा समाचरेत्॥ १२

सञ्चितानां पुनर्मध्यात्समाहृत्य कियान्किल।
देहारम्भे च समये कालः प्रेरयतीव तत्॥ १३

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने अद्भुत कर्म करनेवाले इन्द्रका आख्यान कहा, जिसमें उनके पदच्युत होने और दुःख प्राप्त करनेका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है तथा जिसमें देवताओंकी भी अधीश्वरी देवी भगवतीकी महिमा विस्तारसे वर्णित हुई है॥ १½॥

मुझे महान् सन्देह है कि महान् तपस्वी इन्द्रको देवाधिपतिका पद प्राप्त होनेपर भी दारुण दुःख प्राप्त हुआ। सौ यज्ञ करके उन्होंने अतिश्रेष्ठ स्थान प्राप्त किया; और देवताओंके स्वामीका पद प्राप्त करके भी वे अपने स्थानसे कैसे च्युत हो गये?॥ २-३½॥

हे दयानिधे! इस सबका कारण सम्यक् रूपसे बताइये। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सब कुछ जाननेवाले और पुराणोंके प्रवर्तक हैं, महापुरुषोंके लिये अपने श्रद्धालु शिष्यसे कुछ भी अकथ्य नहीं होता, इसलिये हे महाभाग! मेरे सन्देहका निवारण कीजिये॥ ४-५½॥

सूतजी बोले—तब राजाके ऐसा पूछनेपर सत्यवतीपुत्र वेदव्यासजी प्रसन्नतापूर्वक उनके प्रश्नोंका क्रमसे उत्तर देने लगे॥ ६½॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! इसका अत्यन्त अद्भुत कारण सुनो। श्रेष्ठ तत्त्वज्ञानियोंने संचित, वर्तमान और प्रारब्धके भेदसे कर्मकी तीन गतियाँ बतलायी हैं। अनेक जन्मोंका संचित प्राक्तन कर्म संचित-कर्म कहा गया है; फिर वे कर्म भी सात्त्विक, राजस और तामस—तीन प्रकारके होते हैं॥ ७—९॥

हे राजन्! बहुत समयके संचित शुभ या अशुभ कर्म पुण्य या पापके रूपमें अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। जीवोंके प्रत्येक जन्मके संचित कर्म बिना भोग किये करोड़ों कल्पोंमें भी नहीं नष्ट होते॥ १०-११॥

जो कर्म किया जा रहा है, उसे वर्तमान कहा जाता है, जीव देह प्राप्तकर शुभ या अशुभ कार्यमें प्रवृत्त होता है। संचित कर्मोंके कारण देह प्राप्त होनेपर काल जीवको पुनः कर्मके लिये प्रेरित करता है॥ १२-१३॥

प्रारब्धं कर्म विज्ञेयं भोगात्तस्य क्षयः स्मृतः।
प्राणिभिः खलु भोक्तव्यं प्रारब्धं नात्र संशयः॥ १४

पुरा कृतानि राजेन्द्र ह्यशुभानि शुभानि च।
अवश्यमेव कर्माणि भोक्तव्यानीति निश्चयः॥ १५

देवैर्मनुष्यैरसुरैर्यक्षगन्धर्वकिन्नरैः।
कर्मैव हि महाराज देहारम्भस्य कारणम्॥ १६

कर्मक्षये जन्मनाशः प्राणिनां नात्र संशयः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्र इन्द्राद्याश्च सुरास्तथा॥ १७

दानवा यक्षगन्धर्वाः सर्वे कर्मवशाः किल।
अन्यथा देहसम्बन्धः कथं भवति भूपते॥ १८

कारणं यस्तु भोगस्य देहिनः सुखदुःखयोः।
तस्मादनेकजन्मोत्थसञ्चितानां च कर्मणाम्॥ १९

मध्ये वेगः समायाति कस्यचित्कालपाकतः।
तत्प्रारब्धवशात्पुण्यं करोति च यथा तथा॥ २०

पापं करोति मनुजस्तथा देवादयोऽपि च।
तथा नारायणो राजन्नरश्च धर्मजावुभौ॥ २१

जातौ कृष्णार्जुनौ काममंशौ नारायणस्य तौ।
पुराणपीठिकेयं वै मुनिभिः परिकीर्तिता॥ २२

देवांशः स तु विज्ञेयो यो भवेद्विभवाधिकः।
नानृषिः कुरुते काव्यं नारुद्रो रुद्रमर्चते॥ २३

नादेवांशो ददात्यन्नं नाविष्णुः पृथिवीपतिः।
इन्द्रादग्नेर्यमाद्विष्णोर्धनदादिति भूपते॥ २४

प्रभुत्वं च प्रभावं च कोपं चैव पराक्रमम्।
आदाय क्रियते नूनं शरीरमिति निश्चयः॥ २५

यः कश्चिद्बलवाँल्लोके भाग्यवानथ भोगवान्।
विद्यावान्दानवान्वापि स देवांशः प्रपठ्यते॥ २६

तथैवैते मयाख्याताः पाण्डवाः पृथिवीपते।
देवांशो वासुदेवोऽपि नारायणसमद्युतिः॥ २७

प्रारब्ध कर्म उसे जानना चाहिये, जिसका भोगसे क्षय हो जाता है। प्राणियोंको यहाँ प्रारब्ध कर्म अवश्य भोगना पड़ता है; इसमें सन्देह नहीं है। हे राजेन्द्र! देवता, मनुष्य, असुर, यक्ष, गन्धर्व और किन्नर—इन सभीको पूर्वकालमें किये गये शुभ-अशुभ कर्मोंका फल भोगना पड़ता है—यह निश्चित है। हे महाराज! सबके देह-धारणका कारण उनका कर्म ही होता है। कर्मके समाप्त हो जानेपर प्राणियोंका जन्म लेना भी समाप्त हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं है॥ १४—१६½॥

हे राजन्! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र आदि देवता, दानव, यक्ष और गन्धर्व—ये सभी कर्मके वशीभूत हैं, अन्यथा जीवके सुख-दुःखमें भोगका जो कारणरूप देहसम्बन्ध है वह कैसे होता? इसीलिये किसी कालविपाकके योगसे यथासमय अनेक जन्मोंमें किये हुए संचित कर्मोंका प्रभाव प्रकट हो जाता है। उसी प्रारब्धकर्मके वशमें होकर ही मनुष्य पुण्य या पाप करता है, उसी प्रकार देवता आदि भी करते हैं॥ १७—२०½॥

हे राजन्! भगवान् विष्णुके अंशसे धर्मपुत्र नर और नारायण ही कृष्ण और अर्जुनके रूपमें प्रकट हुए। मुनियोंके द्वारा इस पौराणिक आख्यानका विवेचन किया गया है॥ २१-२२॥

जो अधिक वैभवशाली होता है उसे देवांश जानना चाहिये। जो ऋषि नहीं है वह काव्यकी रचना नहीं कर सकता; जो रुद्र नहीं है वह रुद्रकी अर्चना नहीं कर सकता। जिसमें देवांश नहीं है वह अन्नदान नहीं कर सकता और जिसमें विष्णुका अंश नहीं है वह राजा नहीं हो सकता। हे राजन्! विष्णु, इन्द्र, अग्नि, यम और कुबेरसे प्रभुत्व, प्रभाव, कोप और पराक्रम प्राप्त करके ही निश्चितरूपसे यह शरीर बनता है॥ २३—२५॥

इस संसारमें जो कोई बलवान्, भाग्यवान्, भोगवान्, विद्यावान् या दानशील है, उसे देवांश कहा जाता है॥ २६॥

हे राजन्! उसी प्रकार मैंने पाण्डवोंको भी देवांश बताया था। वासुदेव श्रीकृष्ण तो नारायणके अंश और उन्हींके समान कान्तियुक्त थे॥ २७॥

शरीरं प्राणिनां नूनं भाजनं सुखदुःखयोः।
शरीरी प्राप्नुयात्कामं सुखं दुःखमनन्तरम्॥ २८

देही नास्ति वशः कोऽपि दैवाधीनः सदैव हि।
जननं मरणं दुःखं सुखं प्राप्नोति चावशः॥ २९

पाण्डवास्ते वने जाताः प्राप्तास्तु स्वगृहं पुनः।
स्वबाहुबलतः पश्चाद्राजसूयं क्रतूत्तमम्॥ ३०

वनवासं पुनः प्राप्ता बहुदुःखकरं परम्।
अर्जुनेन तपस्तप्तं दुष्करं ह्यजितेन्द्रियैः॥ ३१

सन्तुष्टैस्तु सुरैर्दत्तं वरदानं पुनः शुभम्।
नरदेहकृतं पुण्यं क्व गतं वनवासजम्॥ ३२

नरदेहे तपस्तप्तं चोग्रं बदरिकाश्रमे।
नार्जुनस्य शरीरे तत्फलदं सम्बभूव ह॥ ३३

प्राणिनां देहसम्बन्धे गहना कर्मणो गतिः।
दुर्ज्ञेया सर्वथा देवैर्मानवानां तु का कथा॥ ३४

वासुदेवोऽपि सञ्जातः कारागारेऽतिसङ्कटे।
नीतोऽसौ वसुदेवेन नन्दगोपस्य गोकुलम्॥ ३५

एकादशैव वर्षाणि संस्थितस्तत्र भारत।
पुनः स मथुरां गत्वा जघानोग्रसुतं बलात्॥ ३६

मोचयामास पितरौ बन्धनाद् भृशदुःखितौ।
उग्रसेनं च राजानञ्चकार मथुरापुरे॥ ३७

जगाम द्वारवत्यां स म्लेच्छराजभयात्पुनः।
सर्वं भाविवशात्कृष्णः कृतवान्पौरुषं महत्॥ ३८

कृत्वा कार्याण्यनेकानि द्वारवत्यां जनार्दनः।
देहं त्यक्त्वा प्रभासे तु सकुटुम्बो दिवं गतः॥ ३९

पुत्राः पौत्राश्च सुहृदो भ्रातरो जामयस्तथा।
प्रभासे यादवाः सर्वे विप्रशापात्क्षयं गताः॥ ४०

एवं ते कथिता राजन् कर्मणो गहना गतिः।
वासुदेवोऽपि व्याधस्य बाणेन निधनं गतः॥ ४१

प्राणियोंका शरीर सुख-दुःखका भाजन होता है; शरीरधारी सुख-दुःख प्राप्त करता रहता है॥ २८॥

कोई भी प्राणी स्वतन्त्र नहीं है, बल्कि सदैव दैवके अधीन रहता है। वह विवश होकर जन्म, मरण, सुख तथा दुःख प्राप्त करता है॥ २९॥

दैववश ही पाण्डव वन गये और पुनः उन्होंने अपना राज्य प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने अपने बाहुबलसे राजसूय नामक उत्तम यज्ञ किया और बादमें अत्यन्त दुःखदायक वनवास उन्हें पुनः प्राप्त हुआ। वहाँ अर्जुनने अजितेन्द्रिय पुरुषोंके लिये दुष्कर तपस्या की। तब [उस तपस्यासे] सन्तुष्ट होकर देवताओंने उन्हें कल्याणकारी वरदान दिया। उस वनवास और नरावतारमें किया गया पुण्य कहाँ गया? नरावतारमें उन्होंने बदरिकाश्रममें उग्र तपस्या की थी, परंतु अर्जुनके रूपमें उन्हें उस तपस्याका फल नहीं मिला!॥ ३०—३३॥

प्राणियोंके देह-सम्बन्धी कर्मोंकी गति अत्यन्त गहन है; यह देवताओंके लिये भी दुर्ज्ञेय है तो मनुष्योंकी क्या बात!॥ ३४॥

वासुदेव श्रीकृष्ण भी अत्यन्त संकटमय कारागारमें उत्पन्न हुए और वसुदेवके द्वारा गोकुलमें नन्दगोपके घर ले जाये गये। हे भारत! वे वहाँ ग्यारह वर्षतक रहे और पुनः मथुरा जाकर उन्होंने बलपूर्वक उग्रसेनके पुत्र कंसका वध किया। तदनन्तर अत्यन्त दुःखित माता-पिताको बन्धनसे मुक्त किया तथा उग्रसेनको मथुरापुरीका राजा नियुक्त किया। पुनः वे म्लेच्छराज कालयवनके भयसे द्वारका चले गये। श्रीकृष्णने यह सब महान् पराक्रम दैवके अधीन होकर ही किया॥ ३५—३८॥

वे जनार्दन श्रीकृष्ण द्वारकामें अनेक कार्य करके और प्रभासक्षेत्रमें देहका परित्यागकर अपने कुटुम्बसहित स्वर्ग चले गये। विप्रशापके कारण समस्त यादवगण पुत्रों, पौत्रों, मित्रों, भाइयों और बहनोंसहित प्रभासक्षेत्रमें नष्ट हो गये और वासुदेव श्रीकृष्ण भी व्याधके बाणसे निधनको प्राप्त हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे कर्मकी गहन गतिका वर्णन कर दिया॥ ३९—४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
कर्मणां गहनगतिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

युगधर्म एवं तत्सम्बन्धी व्यवस्थाका वर्णन

जनमेजय उवाच

भारावतारणार्थाय कथितं जन्म कृष्णयोः।
संशयोऽयं द्विजश्रेष्ठ हृदये मम तिष्ठति॥ १

पृथिवी गोस्वरूपेण ब्रह्माणं शरणं गता।
द्वापरान्तेऽतिदीनार्ता गुरुभारप्रपीडिता॥ २

वेधसा प्रार्थितो विष्णुः कमलापतिरीश्वरः।
भूभारोत्तारणार्थाय साधूनां रक्षणाय च॥ ३

भगवन् भारते खण्डे देवैः सह जनार्दन।
अवतारं गृहाणाशु वसुदेवगृहे विभो॥ ४

एवं सम्प्रार्थितो धात्रा भगवान्देवकीसुतः।
बभूव सह रामेण भूभारोत्तारणाय वै॥ ५

कियानुत्तारितो भारो हत्वा दुष्टाननेकशः।
ज्ञात्वा सर्वान्दुराचारान्पापबुद्धिनृपानिह॥ ६

हतो भीष्मो हतो द्रोणो विराटो द्रुपदस्तथा।
बाह्लीकः सोमदत्तश्च कर्णो वैकर्तनस्तथा॥ ७

यैर्लुण्ठितं धनं सर्वं हृताश्च हरियोषितः।
कथं न नाशिता दुष्टा ये स्थिताः पृथिवीतले॥ ८

आभीराश्च शका म्लेच्छा निषादाः कोटिशस्तथा।
भारावतरणं किं तत्कृतं कृष्णेन धीमता॥ ९

सन्देहोऽयं महाभाग न निवर्तति चित्ततः।
कलावस्मिन्प्रजाः सर्वाः पश्यतः पापनिश्चयाः॥ १०

व्यास उवाच

राजन् यस्मिन्युगे यादृक्प्रजा भवति कालतः।
नान्यथा तद्भवेन्नूनं युगधर्मोऽत्र कारणम्॥ ११

ये धर्मरसिका जीवास्ते वै सत्ययुगेऽभवन्।
धर्मार्थरसिका ये तु ते वै त्रेतायुगेऽभवन्॥ १२

धर्मार्थकामरसिका द्वापरे चाभवन्युगे।
अर्थकामपराः सर्वे कलावस्मिन्भवन्ति हि॥ १३

जनमेजय बोले—हे द्विजश्रेष्ठ! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलराम और श्रीकृष्णके अवतारकी बात आपने कही, किंतु मेरे मनमें एक संशय है॥ १॥

द्वापरयुगके अन्तमें अत्यन्त दीन तथा आतुर होकर भारी बोझसे दबी हुई पृथ्वी गौका रूप धारण करके ब्रह्माजीकी शरणमें गयी॥ २॥

तब ब्रह्माजीने लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुसे प्रार्थना की—'हे भगवन्! हे विभो! हे जनार्दन! पृथ्वीका भार उतारनेके लिये और साधुजनोंकी रक्षाके लिये आप देवताओंके साथ भारतवर्षमें वसुदेवके घरमें शीघ्र ही अवतार लीजिये'॥ ३-४॥

ब्रह्माजीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किये जानेपर भगवान् पृथ्वीका भार उतारनेके लिये बलरामके साथ देवकीके पुत्र हुए; तब उन्होंने अनेक दुष्टों तथा सभी दुराचारी और पापबुद्धि राजाओंको ज्ञात करके उन्हें मारकर पृथ्वीका कितना भार उतारा?॥ ५-६॥

भीष्म मारे गये, द्रोणाचार्य मारे गये; इसी प्रकार विराट, द्रुपद, बाह्लीक, सोमदत्त और सूर्यपुत्र कर्ण मारे गये। परंतु जिन्होंने कृष्णकी पत्नियोंका हरण किया और उनका सारा धन लूट लिया, उन दुष्टोंको तथा जो करोड़ों आभीर, शक, म्लेच्छ और निषाद पृथ्वीतलपर स्थित थे—उन सबको उन्होंने नष्ट क्यों नहीं कर दिया? तब उन बुद्धिमान् श्रीकृष्णने पृथ्वीका कौन-सा भार उतार दिया! हे महाभाग! मेरे चित्तसे यह सन्देह नहीं हटता है; इस कलियुगमें तो समस्त प्रजा पापपरायण ही दिखायी देती है॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जैसा युग होता है, कालप्रभावसे प्रजा भी वैसी ही होती है, इसके विपरीत नहीं होता; इसमें युगधर्म ही कारण है॥ ११॥

जो धर्मानुरागी जीव हैं, वे सत्ययुगमें हुए; जो धर्म और अर्थसे प्रेम रखनेवाले प्राणी हैं, वे त्रेतायुगमें हुए; धर्म, अर्थ और कामके रसिक प्राणी द्वापरयुगमें हुए और अर्थ तथा काममें आसक्ति रखनेवाले सभी प्राणी इस कलियुगमें होते हैं॥ १२-१३॥

युगधर्मस्तु राजेन्द्र न याति व्यत्ययं पुनः।
कालः कर्तास्ति धर्मस्य ह्यधर्मस्य च वै पुनः॥ १४

राजोवाच

ये तु सत्ययुगे जीवा भवन्ति धर्मतत्पराः।
कुत्र तेऽद्य महाभाग तिष्ठन्ति पुण्यभागिनः॥ १५
त्रेतायुगे द्वापरे वा ये दानव्रतकारकाः।
वर्तन्ते मुनयः श्रेष्ठाः कुत्र ब्रूहि पितामह॥ १६
कलावद्य दुराचारा येऽत्र सन्ति गतत्रपाः।
आद्ये युगे क्व यास्यन्ति पापिष्ठा देवनिन्दकाः॥ १७
एतत्सर्वं समाचक्ष्व विस्तरेण महामते।
सर्वथा श्रोतुकामोऽस्मि यदेतद्धर्मनिर्णयम्॥ १८

व्यास उवाच

ये वै कृतयुगे राजन् सम्भवन्तीह मानवाः।
कृत्वा ते पुण्यकर्माणि देवलोकान्व्रजन्ति वै॥ १९
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च नृपसत्तम।
स्वधर्मनिरता यान्ति लोकान्कर्मजितान्किल॥ २०
सत्यं दया तथा दानं स्वदारगमनं तथा।
अद्रोहः सर्वभूतेषु समता सर्वजन्तुषु॥ २१
एतत्साधारणं धर्मं कृत्वा सत्ययुगे पुनः।
स्वर्गं यान्तीतरे वर्णा धर्मतो रजकादयः॥ २२
तथा त्रेतायुगे राजन् द्वापरेऽथ युगे तथा।
कलावस्मिन्युगे पापा नरकं यान्ति मानवाः॥ २३
तावत्तिष्ठन्ति ते तत्र यावत्स्याद्युगपर्ययः।
पुनश्च मानुषे लोके भवन्ति भुवि मानवाः॥ २४
यदा सत्ययुगस्यादिः कलेरन्तश्च पार्थिव।
तदा स्वर्गात्पुण्यकृतो जायन्ते किल मानवाः॥ २५
यदा कलियुगस्यादिर्द्वापरस्य क्षयस्तथा।
नरकात्पापिनः सर्वे भवन्ति भुवि मानवाः॥ २६
एवं कालसमाचारो नान्यथाभूत्कदाचन।
तस्मात्कलिरसत्कर्ता तस्मिंस्तु तादृशी प्रजा॥ २७

हे राजेन्द्र! युगधर्मका प्रभाव विपरीत नहीं होता है; काल ही धर्म और अधर्मका कर्ता है॥ १४॥

राजा बोले—हे महाभाग! सत्ययुगमें जो धर्मपरायण प्राणी हुए हैं, वे पुण्यशाली लोग इस समय कहाँ स्थित हैं? हे पितामह! त्रेतायुग या द्वापरमें जो दान तथा व्रत करनेवाले श्रेष्ठ मुनि हुए हैं, वे अब कहाँ विद्यमान हैं; मुझे बतायें। इस कलियुगमें जो दुराचारी, निर्लज्ज, देवनिन्दक और पापी लोग विद्यमान हैं, वे सत्ययुगमें कहाँ जायँगे? हे महामते! यह सब विस्तारपूर्वक कहिये; मैं इस धर्मनिर्णयके विषयमें सब कुछ सुनना चाहता हूँ॥ १५—१८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जो मनुष्य सत्ययुगमें उत्पन्न होते हैं, वे अपने पुण्यकार्योंके कारण देवलोकको चले जाते हैं॥ १९॥

हे नृपश्रेष्ठ! अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मोंमें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपने कर्मोंसे अर्जित लोकोंमें चले जाते हैं॥ २०॥

सत्य, दया, दान, एकपत्नीव्रत, सभी प्राणियोंमें अद्रोहभाव तथा सभी जीवोंमें समभाव रखना—यह सत्ययुगका साधारण धर्म है। सत्ययुगमें इसका धर्मपूर्वक पालन करके रजक आदि इतर वर्णके लोग भी स्वर्ग चले जाते हैं। हे राजन्! त्रेता और द्वापरयुगमें यही स्थिति रहती है, किंतु इस कलियुगमें पापी मनुष्य नरक जाते हैं और वे वहाँ तबतक रहते हैं जबतक युगका परिवर्तन नहीं होता, उसके बाद मनुष्यके रूपमें पुनः पृथ्वीपर जन्म लेते हैं॥ २१—२४॥

हे राजन्! जब कलियुगका अन्त और सत्ययुगका आरम्भ होता है, तब पुण्यशाली लोग स्वर्गसे पुनः मनुष्यके रूपमें जन्म लेते हैं॥ २५॥

जब द्वापरका अन्त और कलियुगका प्रारम्भ होता है, तब नरकके सभी पापी पृथ्वीपर मनुष्यके रूपमें उत्पन्न होते हैं॥ २६॥

इस प्रकार युगके अनुरूप ही आचार होता है, उसके विपरीत कभी नहीं। कलियुग असत्-प्रधान होता है, इसलिये उसमें प्रजा भी वैसी ही होती है।

कदाचिद्दैवयोगात्तु प्राणिनां व्यत्ययो भवेत्।
कलौ ये साधवः केचिद् द्वापरे सम्भवन्ति ते॥ २८
तथा त्रेतायुगे केचित्केचित्सत्ययुगे तथा।
दुष्टाः सत्ययुगे ये तु ते भवन्ति कलावपि॥ २९
कृतकर्मप्रभावेण प्राप्नुवन्त्यसुखानि च।
पुनश्च तादृशं कर्म कुर्वन्ति युगभावतः॥ ३०

जनमेजय उवाच

युगधर्मान्महाभाग ब्रूहि सर्वानशेषतः।
यस्मिन्वै यादृशो धर्मो ज्ञातुमिच्छामि तं तथा॥ ३१

व्यास उवाच

निबोध नृपशार्दूल दृष्टान्तं ते ब्रवीम्यहम्।
साधूनामपि चेतांसि युगभावाद् भ्रमन्ति हि॥ ३२
पितुर्यथा ते राजेन्द्र बुद्धिर्विप्रावहेलने।
कृता वै कलिना राजन् धर्मज्ञस्य महात्मनः॥ ३३
अन्यथा क्षत्रियो राजा ययातिकुलसम्भवः।
तापसस्य गले सर्पं मृतं कस्मादयोजयत्॥ ३४
सर्वं युगबलं राजन्वेदितव्यं विजानता।
प्रयत्नेन हि कर्तव्यं धर्मकर्म विशेषतः॥ ३५
नूनं सत्ययुगे राजन् ब्राह्मणा वेदपारगाः।
पराशक्त्यर्चनरता देवीदर्शनलालसाः॥ ३६
गायत्रीप्रणवासक्ता गायत्रीध्यानकारिणः।
गायत्रीजपसंसक्ता मायाबीजैकजापिनः॥ ३७
ग्रामे ग्रामे पराम्बायाः प्रासादकरणोत्सुकाः।
स्वकर्मनिरताः सर्वे सत्यशौचदयान्विताः॥ ३८
त्रय्युक्तकर्मनिरतास्तत्त्वज्ञानविशारदाः।
अभवन्क्षत्रियास्तत्र प्रजाभरणतत्पराः॥ ३९
वैश्यास्तु कृषिवाणिज्यगोसेवानिरतास्तथा।
शूद्राः सेवापरास्तत्र पुण्ये सत्ययुगे नृप॥ ४०
पराम्बापूजनासक्ताः सर्वे वर्णाः परे युगे।
तथा त्रेतायुगे किञ्चिन्न्यूना धर्मस्य संस्थितिः॥ ४१

दैवयोगसे कभी-कभी इन प्राणियोंके जन्म लेनेमें व्यतिक्रम भी हो जाता है। कलियुगमें कुछ जो साधुजन हैं, वे द्वापरके मनुष्य हैं। उसी प्रकार द्वापरके मनुष्य कभी-कभी त्रेतामें और त्रेताके मनुष्य सत्ययुगमें जन्म लेते हैं। जो सत्ययुगमें दुराचारी मनुष्य होते हैं, वे कलियुगके हैं। वे अपने किये हुए कर्मके प्रभावसे दुःख पाते हैं और पुनः युगप्रभावसे वे वैसा ही कर्म करते हैं॥ २७—३०॥

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप समस्त युगधर्मोंका पूर्णरूपसे वर्णन करें; जिस युगमें जैसा धर्म होता है, उसे मैं जानना चाहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—हे नृपशार्दूल! ध्यानपूर्वक सुनिये, इस सम्बन्धमें मैं एक दृष्टान्त कहता हूँ। साधुजनोंके मन भी युगधर्मसे प्रभावित होते हैं॥ ३२॥

हे राजेन्द्र! आपके महात्मा और धर्मज्ञ पिताकी भी बुद्धि कलियुगने विप्रका अपमान करनेकी ओर प्रेरित कर दी थी; अन्यथा ययातिके कुलमें पैदा हुए क्षत्रिय राजा परीक्षित् एक तपस्वीके गलेमें मरा हुआ सर्प क्यों डालते?॥ ३३-३४॥

हे राजन्! विद्वान‍्को इसे युगका ही प्रभाव समझना चाहिये। इसलिये विशेषरूपसे धर्माचरण ही प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३५॥

हे राजन्! सत्ययुगमें सभी ब्राह्मण वेदके ज्ञाता, पराशक्तिकी पूजामें तत्पर रहनेवाले, देवीदर्शनकी लालसासे युक्त, गायत्री और प्रणवमन्त्रमें अनुरक्त, गायत्रीका ध्यान करनेवाले, गायत्रीजपपरायण, एकमात्र मायाबीजमन्त्रका जप करनेवाले, प्रत्येक गाँवमें भगवती पराम्बाका मन्दिर बनानेके लिये उत्सुक रहनेवाले, अपने-अपने कर्मोंमें निरत रहनेवाले, सत्य-पवित्रता-दयासे समन्वित, वेदत्रयी कर्ममें संलग्न रहनेवाले और तत्त्वज्ञानमें पूर्ण निष्णात होते थे। क्षत्रिय प्रजाओंके भरण-पोषणमें संलग्न रहते थे। हे राजन्! उस पुण्यमय सत्ययुगमें वैश्यलोग कृषि, व्यापार और गो-पालन करते थे तथा शूद्र सेवापरायण रहते थे॥ ३६—४०॥

उस सत्ययुगमें सभी वर्णोंके लोग भगवती पराम्बाके पूजनमें आसक्त रहते थे। उसके बाद त्रेतायुगमें धर्मकी स्थिति कुछ कम हो गयी। सत्ययुगमें

द्वापरे च विशेषेण न्यूना सत्ययुगस्थितिः।
पूर्वं ये राक्षसा राजन् ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः॥ ४२

पाखण्डनिरताः प्रायो भवन्ति जनवञ्चकाः।
असत्यवादिनः सर्वे वेदधर्मविवर्जिताः॥ ४३

दाम्भिका लोकचतुरा मानिनो वेदवर्जिताः।
शूद्रसेवापराः केचिन्नानाधर्मप्रवर्तकाः॥ ४४

वेदनिन्दाकराः क्रूरा धर्मभ्रष्टातिवादुकाः।
यथा यथा कलिर्वृद्धिं याति राजंस्तथा तथा॥ ४५

धर्मस्य सत्यमूलस्य क्षयः सर्वात्मना भवेत्।
तथैव क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च धर्मवर्जिताः॥ ४६

असत्यवादिनः पापास्तथा वर्णेतराः कलौ।
शूद्रधर्मरता विप्राः प्रतिग्रहपरायणाः॥ ४७

भविष्यन्ति कलौ राजन् युगे वृद्धिं गताः किल।
कामचाराः स्त्रियः कामलोभमोहसमन्विताः॥ ४८

पापा मिथ्याभिवादिन्यः सदा क्लेशरता नृप।
स्वभर्तृवञ्चका नित्यं धर्मभाषणपण्डिताः॥ ४९

भवन्त्येवंविधा नार्यः पापिष्ठाश्च कलौ युगे।
आहारशुद्ध्या नृपते चित्तशुद्धिस्तु जायते॥ ५०

शुद्धे चित्ते प्रकाशः स्याद्धर्मस्य नृपसत्तम।
वृत्तसङ्करदोषेण जायते धर्मसङ्करः॥ ५१

धर्मस्य सङ्करे जाते नूनं स्याद्वर्णसङ्करः।
एवं कलियुगे भूप सर्वधर्मविवर्जिते॥ ५२

स्ववर्णधर्मवार्तैषा न कुत्राप्युपलभ्यते।
महान्तोऽपि च धर्मज्ञा अधर्मं कुर्वते नृप॥ ५३

कलिस्वभाव एवैष परिहार्यो न केनचित्।
तस्मादत्र मनुष्याणां स्वभावात्पापकारिणाम्॥ ५४

निष्कृतिर्न हि राजेन्द्र सामान्योपायतो भवेत्।

जो धर्मकी स्थिति थी, वह द्वापरमें विशेषरूपसे कम हो गयी। हे राजन्! पूर्वयुगोंमें जो राक्षस समझे जाते थे, वे ही कलियुगमें ब्राह्मण माने जाते हैं॥ ४१-४२॥

वे प्रायः पाखण्डी, लोगोंको ठगनेवाले, झूठ बोलनेवाले तथा वेद और धर्मसे दूर रहनेवाले होते हैं। उनमेंसे कुछ तो दम्भी, लोकव्यवहारमें चालाक, अभिमानी, वेदप्रतिपादित मार्गसे हटकर चलनेवाले, शूद्रोंकी सेवा करनेवाले, विभिन्न धर्मोंका प्रवर्तन करनेवाले, वेदनिन्दक, क्रूर, धर्मभ्रष्ट और व्यर्थ वाद-विवादमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे राजन्! जैसे-जैसे कलियुगकी वृद्धि होती है, वैसे-वैसे सत्यमूलक धर्मका सर्वथा क्षय होता जाता है और वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इतर वर्णोंके लोग भी धर्महीन, मिथ्यावादी तथा पापी होते हैं। ब्राह्मण शूद्रधर्ममें संलग्न और प्रतिग्रहपरायण हो जाते हैं॥ ४३—४७॥

हे राजन्! कलियुगका प्रभाव और बढ़नेपर स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी तथा काम, लोभ और मोहसे युक्त हो जायँगी। हे राजन्! वे पापाचारिणी, झूठ बोलनेवाली, सदा कलह करनेवाली, अपने पतिको ठगनेवाली और नित्य धर्मका भाषण करनेमें निपुण होंगी। कलियुगमें इस प्रकारकी पापपरायण स्त्रियाँ होती हैं॥ ४८-४९$\frac{१}{२}$॥

हे राजन्! आहारकी शुद्धिसे ही अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और हे नृपश्रेष्ठ! चित्त शुद्ध होनेपर ही धर्मका प्रकाश होता है। आचारसंकरता (दूसरे वर्णोंके अनुसार आचरण)-दोषसे धर्ममें व्यतिक्रम (विकार) उत्पन्न होता है और धर्ममें विकृति होनेपर वर्णसंकरता उत्पन्न होती है। हे राजन्! इस प्रकार सभी धर्मोंसे हीन कलियुगमें अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मकी चर्चा भी कहीं नहीं सुनायी देती। हे राजन्! धर्मज्ञ और श्रेष्ठजन भी अधर्म करने लग जाते हैं। यह कलियुगका स्वभाव ही है; किसीके भी द्वारा इसका प्रतीकार नहीं किया जा सकता। अतः हे राजेन्द्र! इस कालमें स्वभावसे ही पाप करनेवाले मनुष्योंकी निष्कृति सामान्य उपायसे नहीं हो सकती॥ ५०—५४$\frac{१}{२}$॥

जनमेजय उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ ५५

कलावधर्मबहुले नराणां का गतिर्भवेत्।
यद्यस्ति तदुपायश्चेद्दयया तं वदस्व मे ॥ ५६

व्यास उवाच

एक एव महाराज तत्रोपायोऽस्ति नापरः।
सर्वदोषनिरासार्थं ध्यायेद्देवीपदाम्बुजम् ॥ ५७

न सन्त्यघानि तावन्ति यावती शक्तिरस्ति हि।
नाम्नि देव्याः पापदाहे तस्माद्भीतिः कुतो नृप ॥ ५८

अवशेनापि यन्नाम लीलयोच्चारितं यदि।
किं किं ददाति तज्ज्ञातुं समर्था न हरादयः ॥ ५९

प्रायश्चित्तं तु पापानां श्रीदेवीनामसंस्मृतिः।
तस्मात्कलिभयाद्राजन् पुण्यक्षेत्रे वसेन्नरः ॥ ६०

निरन्तरं पराम्बाया नामसंस्मरणं चरेत्।
छित्त्वा भित्त्वा च भूतानि हत्वा सर्वमिदं जगत् ॥ ६१

देवीं नमति भक्त्या यो न स पापैर्विलिप्यते।
रहस्यं सर्वशास्त्राणां मया राजन्नुदीरितम् ॥ ६२

विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम्।
अजपां नाम गायत्रीं जपन्ति निखिला जनाः ॥ ६३

महिमानं न जानन्ति मायाया वैभवं महत्।
गायत्रीं ब्राह्मणाः सर्वे जपन्ति हृदयान्तरे ॥ ६४

महिमानं न जानन्ति मायाया वैभवं महत्।
एतत्सर्वं समाख्यातं यत्पृष्टं तत्त्वया नृप।
युगधर्मव्यवस्थायां किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ६५

जनमेजय बोले—हे भगवन्! हे समस्त धर्मोंके ज्ञाता! हे समस्त शास्त्रोंमें निपुण! अधर्मके बाहुल्यवाले कलियुगमें मनुष्योंकी क्या गति होती है? यदि उससे निस्तारका कोई उपाय हो तो उसे दयापूर्वक मुझे बतलाइये ॥ ५५-५६ ॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! इसका एक ही उपाय है दूसरा नहीं है; समस्त पापोंके शमनके लिये देवीके चरणकमलका ध्यान करना चाहिये। हे राजन्! देवीके पापदाहक नाममें जितनी शक्ति है, उतने पाप तो हैं ही नहीं। इसलिये भयकी क्या आवश्यकता? यदि विवशतापूर्वक भी भगवतीके नामका उच्चारण हो जाय, तो वे क्या-क्या दे देती हैं, उसे जाननेमें भगवान् शंकर आदि भी समर्थ नहीं हैं! ॥ ५७—५९ ॥

भगवती देवीके नामका स्मरण ही समस्त पापोंका प्रायश्चित्त है, इसलिये हे राजन्! मनुष्यको कलिके भयसे पुण्यक्षेत्रमें निवास करना चाहिये और पराम्बाके नामका निरन्तर स्मरण करना चाहिये। जो देवीको भक्तिभावसे नमस्कार करता है, वह प्राणियोंका छेदन-भेदन और सारे संसारको पीड़ित करके भी उन पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ६०-६१½ ॥

हे राजन्! यह मैंने आपसे सम्पूर्ण शास्त्रोंके रहस्यको कह दिया, इसपर भलीभाँति विचारकर आप देवीके चरणकमलकी आराधना करें। [वैसे तो] सभी लोग 'अजपा' नामक गायत्रीका जप करते हैं, लेकिन वे [मायासे मोहित होनेके कारण] उन महामायाकी महिमा और महान् वैभवको नहीं जानते। सभी ब्राह्मण अपने हृदयमें गायत्रीका जप करते हैं, परंतु वे भी उन महामायाकी महिमा और उनके महान् वैभवको नहीं जानते। हे राजन्! युगधर्मकी व्यवस्थाके विषयमें आपने जो कुछ पूछा था, यह सब मैंने कह दिया, अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६२—६५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
युगधर्मव्यवस्थावर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

* * *

अथ द्वादशोऽध्यायः

पवित्र तीर्थोंका वर्णन, चित्तशुद्धिकी प्रधानता तथा इस सम्बन्धमें विश्वामित्र और वसिष्ठके परस्पर वैरकी कथा, राजा हरिश्चन्द्रका वरुणदेवके शापसे जलोदरग्रस्त होना

राजोवाच

तीर्थानि भुवि पुण्यानि ब्रूहि मे मुनिसत्तम।
गम्यानि मानवैर्देवैः क्षेत्राणि सरितस्तथा॥ १
फलं च यादृशं यत्र तीर्थेषु स्नानदानतः।
विधिं तु तीर्थयात्रायां नियमांश्च विशेषतः॥ २

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि तीर्थानि विविधानि च।
येषु तीर्थेषु देवीनां प्रशस्तान्यायनानि च॥ ३
नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा यमुना च सरस्वती।
नर्मदा गण्डकी सिन्धुर्गोमती तमसा तथा॥ ४
कावेरी चन्द्रभागा च पुण्या वेत्रवती शुभा।
चर्मण्वती च सरयूस्तापी साभ्रमती तथा॥ ५
एताश्च कथिता राजन्नन्याश्च शतशः पुनः।
तासां समुद्रगाः पुण्याः स्वल्पपुण्या ह्यनब्धिगाः॥ ६
समुद्रगानां ताः पुण्याः सर्वदौघवहास्तु याः।
मासद्वयं श्रावणादौ ताश्च सर्वा रजस्वलाः॥ ७
भवन्ति वृष्टियोगेन ग्राम्यवारिवहास्तथा।
पुष्करं च कुरुक्षेत्रं धर्मारण्यं सुपावनम्॥ ८
प्रभासं च प्रयागं च नैमिषारण्यमेव च।
विश्रुतं चार्बुदारण्यं शैलाश्च पावनास्तथा॥ ९
श्रीशैलश्च सुमेरुश्च पर्वतो गन्धमादनः।
सरांसि चैव पुण्यानि मानसं सर्वविश्रुतम्॥ १०
तथा बिन्दुसरः श्रेष्ठमच्छोदं नाम पावनम्।
आश्रमास्तु तथा पुण्या मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ११
विश्रुतस्तु सदा पुण्यः ख्यातो बदरिकाश्रमः।
नरनारायणौ यत्र तेपाते तौ मुनी तपः॥ १२
वामनाश्रम आख्यातः शतयूपाश्रमस्तथा।
येन यत्र तपस्तप्तं तस्य नाम्नातिविश्रुतः॥ १३

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप मुझे मनुष्यों और देवताओंके द्वारा सेवनीय इस पृथ्वीपर स्थित पुण्य तीर्थों, क्षेत्रों तथा नदियोंके विषयमें बताइये। उन तीर्थोंमें स्नान तथा दानका जैसा फल मिलता है, उसे और विशेषरूपसे तीर्थयात्राकी विधि तथा नियमोंको भी बताइये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं उन विविध तीर्थोंका वर्णन करूँगा, जिन तीर्थोंमें देवियोंके प्रशस्त मन्दिर विद्यमान हैं॥ ३॥

नदियोंमें गंगा श्रेष्ठ हैं, इसी प्रकार यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गण्डकी, सिन्धु, गोमती, तमसा, कावेरी, चन्द्रभागा, पुण्या, शुभ वेत्रवती, चर्मण्वती, सरयू, तापी तथा साभ्रमती भी हैं—इन्हें मैंने बतला दिया। हे राजन्! इनके अतिरिक्त सैकड़ों अन्य नदियाँ भी हैं। उनमेंसे समुद्रमें गिरनेवाली नदियाँ पुण्यमयी हैं तथा समुद्रमें न गिरनेवाली नदियाँ अल्प पुण्यवाली हैं। समुद्रगामिनी नदियोंमें वे बहुत पवित्र हैं जो सदा जलपूरित होकर बहती हैं। श्रावण और भाद्रपद—इन दो महीनोंमें सभी नदियाँ रजस्वला होती हैं; क्योंकि उनमें वर्षाकालमें ग्रामीणजल प्रवाहित होता है॥ ४—७½॥

पुष्कर, कुरुक्षेत्र, धर्मारण्य, प्रभास, प्रयाग, नैमिषारण्य और विख्यात अर्बुदारण्य—ये अत्यन्त पवित्र तीर्थ हैं। इसी प्रकार श्रीशैल, सुमेरु और गन्धमादन पवित्र पर्वत हैं। सरोवरोंमें सर्वविख्यात मानसरोवर, श्रेष्ठ बिन्दुसर और पवित्र अच्छोदसरोवर पुण्य सरोवर हैं॥ ८—१०½॥

इसी प्रकार शुद्ध मनवाले मुनियोंके आश्रम भी पुण्यस्थल हैं। विख्यात बदरिकाश्रम सदैव पुण्यशाली आश्रमके रूपमें कहा गया है जहाँ नर-नारायण नामके दो मुनियोंने तपस्या की थी। ऐसे ही वामनाश्रम और शतयूपाश्रम भी विख्यात हैं। जिस ऋषिने जहाँ तपस्या की वह आश्रम उसीके नामसे प्रसिद्ध हो गया॥ ११—१३॥

एवं पुण्यानि स्थानानि ह्यसंख्यातानि भूतले।
मुनिभिः परिगीतानि पावनानि महीपते॥ १४
एषु स्थानेषु सर्वत्र देवीस्थानानि भूपते।
दर्शनात्पापहारीणि वसन्ति नियमेन च॥ १५
कथयिष्यामि तान्यग्रे प्रसङ्गेन च कानिचित्।
तीर्थानि नृप दानानि व्रतानि च मखास्तथा॥ १६
तपांसि पुण्यकर्माणि सापेक्षाणि महीपते।
द्रव्यशुद्धिं क्रियाशुद्धिं मनःशुद्धिमपेक्ष्य च॥ १७
पावनानि हि तीर्थानि तपांसि च व्रतानि च।
कदाचिद् द्रव्यशुद्धिः स्यात्क्रियाशुद्धिः कदाचन॥ १८
दुर्लभा मनसः शुद्धिः सर्वेषां सर्वदा नृप।
मनस्तु चञ्चलं राजन्ननेकविषयाश्रितम्॥ १९
कथं शुद्धं भवेद्राजन्नानाभावसमाश्रितम्।
कामक्रोधौ तथा लोभो ह्यहङ्कारो मदस्तथा॥ २०
सर्वविघ्नकरा ह्येते तपस्तीर्थव्रतेषु च।
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः॥ २१
स्वधर्मपालनं राजन् सर्वतीर्थफलप्रदम्।
नित्यकर्मपरित्यागान्मार्गे संसर्गदोषतः॥ २२
व्यर्थं तीर्थाधिगमनं पापमेवावशिष्यते।
क्षालयन्ति हि तीर्थानि सर्वथा देहजं मलम्॥ २३
मानसं क्षालितुं तानि न समर्थानि वै नृप।
शक्तानि यदि चेत्तानि गङ्गातीरनिवासिनः॥ २४
मुनयो द्रोहसंयुक्ताः कथं स्युर्भावितेश्वराः।
वसिष्ठसदृशाः प्रह्वा विश्वामित्रादयः किल॥ २५
रागद्वेषरताः सर्वे कामक्रोधाकुलाः सदा।
चित्तशुद्धिमयं तीर्थं गङ्गादिभ्योऽतिपावनम्॥ २६
यदि स्याद्दैवयोगेन क्षालयत्यान्तरं मलम्।
विशेषेण तु सत्सङ्गो ज्ञाननिष्ठस्य भूपते॥ २७
न वेदा न च शास्त्राणि न व्रतानि तपांसि न।
न मखा न च दानानि चित्तशुद्धेस्तु कारणम्॥ २८

हे राजन्! इस प्रकार इस भूतलपर असंख्य पवित्र पुण्यस्थल हैं, जो मुनियोंद्वारा पवित्र कहे गये हैं। हे राजन्! इन सभी स्थानोंमें देवीके मन्दिर हैं, जो दर्शन कर लेने मात्रसे पापका हरण करते हैं, वहाँ बहुत-से भक्त नियमपूर्वक वास करते हैं। उन कतिपय स्थानोंका वर्णन आगे करूँगा॥ १४-१५½ ॥

हे राजन्! तीर्थ, दान, व्रत, यज्ञ, तपस्या और सभी पुण्यकर्म शुद्धिसापेक्ष हैं। द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और मानसिक शुद्धिके आधारपर ही तीर्थ, तप और व्रत पवित्र होते हैं। कभी द्रव्यशुद्धि और कभी क्रियाशुद्धि हो पाती है, लेकिन हे राजन्! मानसिक शुद्धि सबके लिये सदा ही दुर्लभ होती है; क्योंकि हे नृप! मन बड़ा चंचल है और अनेक विषयोंमें भटकता रहता है। तब हे राजन्! विविध विषयोंके आश्रित रहनेवाला मन कैसे शुद्ध रह सकता है?॥ १६—१९½ ॥

काम, क्रोध, लोभ, अहंकार तथा मद—ये सभी तपस्या, तीर्थसेवन और व्रतोंमें विघ्नकारी होते हैं। हे राजन्! अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह और अपने धर्मका पालन—समस्त तीर्थोंका फल प्रदान करते हैं। नित्यकर्मके परित्याग और मार्गमें संसर्गदोषसे तीर्थमें जाना व्यर्थ हो जाता है, केवल पाप ही लगता है॥ २०—२२½ ॥

हे राजन्! तीर्थ तो केवल शरीरजन्य मलको ही धोते हैं, वे अन्तःकरणको धोनेमें समर्थ नहीं होते। यदि वे तीर्थ [मनको शुद्ध करनेमें] समर्थ होते तो गंगाके तटपर रहनेवाले विश्वामित्र और वसिष्ठसदृश ईश्वर-चिन्तनपरायण भक्त मुनि द्रोहभावसे युक्त क्यों होते? इस प्रकार तीर्थोंमें रहनेवाले लोग भी सदैव राग-द्वेषपरायण तथा काम-क्रोधसे व्याकुल रहते हैं। अतः चित्तशुद्धिरूपी तीर्थ गंगा आदि तीर्थोंसे भी अधिक पवित्र है॥ २३—२६ ॥

हे राजन्! यदि दैवयोगसे ज्ञाननिष्ठ पुरुषका सत्संग प्राप्त हो जाय तो वह आन्तरिक मैलको धो देता है। हे राजन्! वेद, शास्त्र, व्रत, तप, यज्ञ तथा दान—ये चित्तकी शुद्धिके कारण नहीं हैं॥ २७-२८ ॥

वसिष्ठो ब्रह्मणः पुत्रो वेदविद्याविशारदः।
रागद्वेषान्वितः कामं गङ्गातीरसमाश्रितः॥ २९
आडीबकं महायुद्धं विश्वामित्रवसिष्ठयोः।
जातं निरर्थकं द्वेषाद्देवानां विस्मयप्रदम्॥ ३०
विश्वामित्रो बकस्तत्र जातः परमतापसः।
शप्तः स तु वसिष्ठेन हरिश्चन्द्रस्य कारणात्॥ ३१
कौशिकेन वसिष्ठोऽपि शप्त्वाडीदेहभाक्कृतः।
शापादाडीबकौ जातौ तौ मुनी विशदप्रभौ॥ ३२
निवासं प्रापतुस्तीरे सरसो मानसस्य च।
चक्रतुर्दारुणं युद्धं नखचञ्चुप्रताडनैः॥ ३३
वर्षाणामयुतं यावत्तावृषी रोषसंयुतौ।
युयुधाते मदोन्मत्तौ सिंहाविव परस्परम्॥ ३४

राजोवाच

कथं तौ मुनिशार्दूलौ तापसौ धर्मतत्परौ।
परस्परं वैरपरौ सञ्जातौ केन हेतुना॥ ३५
शापं परस्परं केन कारणेन महामती।
दत्तवन्तौ मिथः क्लेशकारकौ दुःखदौ नृणाम्॥ ३६

व्यास उवाच

हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठस्त्रिशंकुतनयः पुरा।
बभूव रविवंशीयो रामचन्द्रस्य पूर्वजः॥ ३७
अनपत्यः स राजर्षिर्वरुणाय महाक्रतुम्।
प्रतिजज्ञे पुत्रकामो नरमेधं दुरासदम्॥ ३८
वरुणस्तस्य सन्तुष्टो यज्ञस्य नियमे कृते।
दधार गर्भं राज्ञस्तु भार्या परमसुन्दरी॥ ३९
राजा बभूव सन्तुष्टो दृष्ट्वा भार्यां सदोहदाम्।
चकार विधिवत्कर्म गर्भसंस्कारकारकम्॥ ४०
सुषुवे तनयं नारी सर्वलक्षणसंयुतम्।
मुदं प्राप नृपस्तत्र पुत्रे जाते विशाम्पते॥ ४१
कृतवाञ्जातकर्मादिसंस्कारविधिमुत्तमम् ।
ददौ हिरण्यं गा दोग्ध्रीर्ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः॥ ४२

ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठ वेदविद्यामें पारंगत थे और गंगाजीके तटपर रहते थे, फिर भी वे राग-द्वेषसे युक्त हो गये। विश्वामित्र और वसिष्ठके मध्य देवताओंको भी विस्मयमें डाल देनेवाला आडीबक नामक महायुद्ध हुआ, जो द्वेषके कारण व्यर्थ ही हुआ था। उस युद्धमें परम तपस्वी विश्वामित्र बक हुए थे, उन्हें वसिष्ठने हरिश्चन्द्रके कारण शाप दे दिया था। विश्वामित्रने भी वसिष्ठको शाप देकर आडी पक्षीके देहवाला बना दिया। इस प्रकार निर्मल कान्तिवाले वे दोनों मुनि शापके कारण आडी और बक पक्षीके रूपमें हो गये। वे मानसरोवरके तटपर रहने लगे और वहाँ नखों और चोंचके प्रहारसे भयंकर युद्ध करते रहे। वे दोनों ऋषि मदोन्मत्त सिंहोंके समान रोषयुक्त होकर दस हजार वर्षोंतक आपसमें युद्ध करते रहे॥ २९—३४॥

राजा बोले—श्रेष्ठ तपस्वी और धर्मपरायण वे दोनों मुनिश्रेष्ठ किस कारण परस्पर वैरपरायण हुए? उन दोनों बुद्धिमान् ऋषियोंने किस कारणसे एक-दूसरेको शाप दिया? जो मनुष्योंके लिये कष्टकारक और दुःखदायक सिद्ध हुए॥ ३५-३६॥

व्यासजी बोले—पूर्वकालमें सूर्यवंशमें त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र नामक एक श्रेष्ठ राजा हुए, जो रामचन्द्रजीके पूर्वज थे॥ ३७॥

वे राजर्षि सन्तानहीन थे, अतः पुत्रकी कामनासे वरुणदेवकी प्रसन्नताके लिये उन्होंने 'नरमेध' नामक दुष्कर महायज्ञ करनेकी प्रतिज्ञा की। उस यज्ञका व्रत लेनेसे वरुणदेव उनपर प्रसन्न हो गये और राजाकी परम रूपवती भार्याने गर्भ धारण किया॥ ३८-३९॥

रानीको गर्भवती देखकर राजा प्रसन्न हुए और उन्होंने विधिपूर्वक गर्भको संस्कारित करनेवाला कर्म सम्पन्न कराया॥ ४०॥

हे राजन्! रानीने समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्रको जन्म दिया। पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजा बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने जातकर्म आदि संस्कारकी उत्तम विधि सम्पन्न की। ब्राह्मणोंको विशेषरूपसे स्वर्ण और पयस्विनी गौएँ प्रदान कीं॥ ४१-४२॥

जन्मोत्सवेऽतिसंवृत्ते गेहे वै यादसाम्पतिः।
आजगाम महाराज विप्रवेषधरस्तथा॥ ४३

पूजितः पार्थिवेनाथ दत्त्वा विधिवदासनम्।
कार्ये पृष्टेऽब्रवीद्वाक्यं वरुणोऽस्मीति भूपतिम्॥ ४४

कुरु यज्ञं सुतं कृत्वा पशुं परमपावनम्।
सत्यवाग्भव राजेन्द्र संकल्पस्तु त्वया कृतः॥ ४५

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा विह्वलोऽतिव्यथाकुलः।
संस्तभ्याधिं नृपः प्राह वरुणं सत्कृताञ्जलिः॥ ४६

स्वामिन् करोमि तं यज्ञं सर्वथा विधिपूर्वकम्।
मया ते यत्प्रतिज्ञातं भवामि सत्यवागहम्॥ ४७

पूर्णे मासे विशुध्येत धर्मपत्नी सुरोत्तम।
विशुद्धायां तु भार्यायां कर्तव्यः स पशोर्मखः॥ ४८

व्यास उवाच

इत्युक्ते वचने राज्ञा वरुणः स्वगृहं गतः।
राजा बभूव सन्तुष्टः किञ्चिच्चिन्तातुरस्तथा॥ ४९

पूर्णे मासि पुनः पाशी परीक्षार्थं नृपालये।
आजगाम द्विजो भूत्वा सुवेषः सुष्ठुभाषकः॥ ५०

कृतार्हणं सुखासीनं भूपतिस्तं सुरोत्तमम्।
उवाच विनयोपेतो हेतुगर्भं वचस्तदा॥ ५१

असंस्कृतं सुतं स्वामिन् यूपे बध्नामि तं कथम्।
संस्कृत्य क्षत्रियं कृत्वा यजेऽहं यज्ञमुत्तमम्॥ ५२

दयसे यदि देव त्वं ज्ञात्वा दीनं स्वसेवकम्।
असंस्कृतस्य बालस्य नाधिकारोऽस्ति कुत्रचित्॥ ५३

वरुण उवाच

प्रतारयसि राजेन्द्र कृत्वा समयमग्रतः।
दुस्त्यजस्तव जानामि सुतस्नेहो ह्यपुत्रिणः॥ ५४

गृहं व्रजामि भूपाल वचनात्तव कोमलात्।
कियत्कालं प्रतीक्ष्याहमागमिष्यामि ते गृहम्॥ ५५

हे महाराज! जब घरमें जन्मोत्सव धूमधामसे मनाया जा रहा था। उसी समय ब्राह्मणका वेश धारण करके वरुणदेव आये, आसन प्रदान करके राजाने विधिवत् उनकी पूजा की। आगमनके विषयमें पूछे जानेपर 'मैं वरुण हूँ'—यह वाक्य उन्होंने राजासे कहा। हे राजेन्द्र! जैसा आपने संकल्प किया था, अब अपने पुत्रको बलिपशु बनाकर परम पवित्र यज्ञ कीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४३—४५॥

उनकी यह बात सुनकर राजा व्यथासे व्याकुल तथा विह्वल हो गये; पुनः अपनी मनोव्यथाको शान्त करके उन्होंने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर वरुणदेवसे कहा—हे स्वामिन्! मैंने जिस यज्ञका संकल्प लिया है, उस यज्ञको मैं विधिपूर्वक करूँगा और सत्यवादी होऊँगा॥ ४६-४७॥

हे सुरश्रेष्ठ! एक माह पूर्ण होनेपर मेरी धर्मपत्नी [जननाशौचसे] शुद्ध हो जायँगी, पत्नीके शुद्ध हो जानेपर मैं उस पशुयज्ञको करूँगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—राजाके यह कहनेपर वरुणदेव अपने घर चले गये। अब राजा सन्तुष्ट हो गये, किंतु कुछ-कुछ चिन्तातुर रहने लगे॥ ४९॥

एक माह पूर्ण होनेपर वरुणदेव सुन्दर और मृदुभाषी ब्राह्मणका वेश बनाकर परीक्षा लेनेके लिये पुनः राजमहलमें आये॥ ५०॥

तब सम्यक् रूपसे पूजित होकर सुखदायी आसनपर विराजमान उन सुरश्रेष्ठ वरुणसे राजाने विनयपूर्वक उद्देश्यपरक यह बात कही—॥ ५१॥

हे स्वामिन्! पुत्र तो अभी संस्काररहित है, उसे यूपमें कैसे बाँधूँ? संस्कार करके उसे क्षत्रिय बनाकर मैं उस उत्तम यज्ञको सम्पन्न करूँगा॥ ५२॥

हे देव! संस्कारहीन बालकका कहीं भी अधिकार नहीं होता है, अतः यदि मुझपर दया करें तो मुझे अपना सेवक और दीन जानकर कुछ समय और दे दीजिये॥ ५३॥

वरुण बोले—हे राजन्! आप समयको आगे बढ़ाकर धोखा दे रहे हैं; निःसन्तान होनेके कारण आपका पुत्रस्नेह छोड़ना दुष्कर है—इसे मैं जानता हूँ। हे राजेन्द्र! आपकी मधुर वाणी सुनकर मैं घर जा रहा हूँ, कुछ समयतक प्रतीक्षा करके मैं पुनः आपके

भवितव्यं त्वया तात तदा सत्यवचोऽन्वितम्।
अन्यथा त्वयि मुञ्चामि कोपं शापसमन्वितम्॥ ५६

राजोवाच

समावर्तनकर्मान्ते सर्वथा यादसांपते।
कृत्वा पुत्रपशुं यज्ञे यजिष्ये विधिपूर्वकम्॥ ५७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो वरुणः प्रीतमानसः।
तथेत्युक्त्वा ययौ तूर्णं नृपस्तु सुस्थितोऽभवत्॥ ५८

रोहिताख्य इति ख्यातः सुतस्तस्य विवृद्धिमान्।
सञ्जातश्चतुरः सर्वविद्यानां च विशारदः॥ ५९

यज्ञस्य कारणं तेन ज्ञातं सर्वं सविस्तरम्।
भयभीतस्ततः सोऽपि मत्वा मरणमात्मनः॥ ६०

कृत्वा पलायनं वीरो गतोऽसौ गिरिगह्वरे।
अगम्ये नृपतिस्थाने स्थितस्तत्र भयातुरः॥ ६१

प्राप्ते कालेऽथ वरुणो यज्ञार्थी नृपतेर्गृहम्।
गत्वा तमाह भूपालं कुरु यज्ञं विशांपते॥ ६२

प्रम्लानवदनो राजा तमाह व्यथितेन्द्रियः।
किं करोमि गतः क्वापि सुतो मे सुरसत्तम॥ ६३

श्रुत्वा तद्वचनं राज्ञः कुपितो यादसांपतिः।
शशाप तं नृपं कोपादसत्यवादिनं भृशम्॥ ६४

जलोदराभिधो व्याधिर्देहे भवतु ते नृप।
यतः प्रतारितश्चाहं कृत्वा कपटपण्डित॥ ६५

इति शप्त्वा ययौ धाम स्वकं पाशधरस्तदा।
राजा चिन्तातुरस्तस्थौ भवने व्याधिपीडितः॥ ६६

यदातिव्याधितो राजा रोगेण शापजेन ह।
तदा शुश्राव पुत्रोऽपि पितरं व्याधिपीडितम्॥ ६७

पान्थिकः प्राह पुत्रं हि पिता ते भृशदुःखितः।
जलोदरविकारेण शापजेन नृपात्मज॥ ६८

घर आऊँगा। हे तात! उस समय आपको अपनी बातको सत्य सिद्ध करना होगा, अन्यथा मैं क्रुद्ध होकर आपको शाप दे दूँगा॥ ५४—५६॥

राजा बोले—हे जलाधिनाथ! मैं समावर्तनसंस्कार हो जानेपर पुत्रको यज्ञ-पशु बनाकर विधिपूर्वक यज्ञ करूँगा॥ ५७॥

व्यासजी बोले—राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेव प्रसन्न होकर 'ठीक है'—ऐसा कहकर तुरंत चले गये और राजा भी स्वस्थचित्त हो गये॥ ५८॥

इधर राजाका रोहित नामका वह पुत्र बड़ा हो गया; वह बुद्धिमान् और समस्त विद्याओंमें पारंगत हो गया॥ ५९॥

उसे यज्ञका सब कारण विस्तारपूर्वक ज्ञात हो गया। तब वह अपनी मृत्यु जानकर अत्यन्त भयभीत हो गया॥ ६०॥

[एक दिन] वह बालक राजमहलसे भागकर एक अगम्य पर्वतकी गुफामें चला गया और भयग्रस्त होकर वहाँ रहने लगा॥ ६१॥

समय आनेपर वरुणदेव यज्ञकी अभिलाषासे राजमहलमें पहुँचकर उन राजासे बोले—हे राजन्! यज्ञ कीजिये॥ ६२॥

यह सुनकर उदास मुखवाले राजाने व्यथित होकर उनसे कहा—हे सुरश्रेष्ठ! मैं क्या करूँ? मेरा पुत्र कहीं चला गया है॥ ६३॥

राजाकी यह बात सुनकर जलचरोंके अधिपति वरुणदेवने क्रुद्ध होकर असत्यवादी राजाको शाप दे दिया—कपटविशारद हे राजन्! तुमने प्रतिज्ञा करके मुझे धोखा दिया है, अतः तुम्हारे शरीरमें जलोदर नामक रोग हो जाय॥ ६४-६५॥

ऐसा शाप देकर पाशधारी वरुणदेव अपने लोकको चले गये और रोगसे पीड़ित होकर राजा अपने महलमें चिन्तित रहने लगे॥ ६६॥

जब शापजन्य रोगसे राजा बहुत व्यथित हो गये तब उनके पुत्रने भी पिताके रोग-पीड़ित होनेकी बात सुनी॥ ६७॥

किसी पथिकने उससे कहा—हे राजपुत्र! शापके कारण जलोदर रोगसे ग्रस्त तुम्हारे पिता बहुत अधिक दुःखी हैं॥ ६८॥

विनष्टं जीवितं तेऽद्य वृथा जातस्य दुर्मते।
यत्त्यक्त्वा पितरं दुःस्थं प्राप्तोऽसि गिरिगह्वरम्॥ ६९

किमनेन शरीरेण प्राप्तं ते जन्मनः फलम्।
देहदं दुःखितं कृत्वा स्थितोऽस्यत्र सुताधम॥ ७०

प्राणास्त्याज्याः पितुः कार्ये सत्पुत्रेणेति निश्चयः।
त्वदर्थे दुःखितो राजा क्रन्दति व्याधिपीडितः॥ ७१

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य वचस्तथ्यं पान्थिकाद्धर्मसंयुतम्।
यदा चक्रे मनो गन्तुं द्रष्टुं तातं व्यथातुरम्॥ ७२

तदा विप्रवपुर्भूत्वा वासवस्तमुपागमत्।
रहः प्राह हितं वाक्यं दयावानिव भारत॥ ७३

मूर्खोऽसि राजपुत्र त्वं गमनाय मतिं वृथा।
करोषि पितरं त्वद्य न जानासि व्यथायुतम्॥ ७४

हे दुर्बुद्धि! तुम्हारा जीवन नष्ट हो गया, तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ है; क्योंकि तुम अपने पिताको दुःखी अवस्थामें छोड़कर पर्वतकी गुफामें छिपे हो॥ ६९॥

हे कुपुत्र! तुम्हारे इस शरीरसे तुम्हारे जन्म लेनेका क्या लाभ है, जो तुम अपने पिताको दुःखी करके यहाँ रह रहे हो?॥ ७०॥

राजा हरिश्चन्द्र तुम्हारे लिये दुःखी और व्याधिसे पीड़ित होकर विलाप कर रहे हैं। पिताके लिये सत्पुत्रको प्राणोंतकका त्याग कर देना चाहिये—यह सिद्धान्त है।॥ ७१॥

व्यासजी बोले—तब पथिककी धर्मसंगत बात सुनकर जैसे ही रोहितने पीडाग्रस्त अपने पिताको देखनेके लिये जानेका विचार किया, वैसे ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्र वहाँ आ गये। हे भारत! उन्होंने दयालुकी भाँति एकान्तमें हितकी यह बात कही—हे राजकुमार! तुम मूर्ख हो, जो वहाँ जानेका व्यर्थ विचार कर रहे हो। तुम नहीं जानते कि तुम्हारे पिता तुम्हारे लिये क्यों दुःखी हैं?॥ ७२—७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हरिश्चन्द्रस्य जलोदरव्याधिपीडावर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करना, विश्वामित्रसे प्राप्त वरुणमन्त्रके जपसे शुनःशेपका मुक्त होना, परस्पर शापसे विश्वामित्र और वसिष्ठका बक तथा आडी होना

इन्द्र उवाच

साहसं कृतवान् राजा पूर्वं यत्कथितो मखः।
वरुणाय प्रतिज्ञातः पुत्रं कृत्वा पशुं प्रियम्॥ १

गते त्वयि पिता पुत्रं बद्ध्वा यूपेऽघृणः पुनः।
पशुं कृत्वा महाबुद्धे वधिष्यति व्यथातुरः॥ २

इत्थं निषिद्धस्तत्पुत्रः शक्रेणामिततेजसा।
स्थितस्तत्रैव मायेशीमायया मोहितो भृशम्॥ ३

यदा पुनः पुनः श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्।
गमनाय मतिं चक्रे तदेन्द्रः प्रत्यषेधयत्॥ ४

इन्द्र बोले—पूर्वकालमें राजाने वरुणदेवसे यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं अपने प्रिय पुत्रको यज्ञीय पशु बनाकर यज्ञ करूँगा—यह उन्होंने बड़ा साहस किया था॥ १॥

हे महामते! तुम्हारे वहाँ जानेपर रोगसे दुःखी तुम्हारे निर्दयी पिता तुम्हें यज्ञीय पशु बनाकर यूपमें बाँधकर मार डालेंगे॥ २॥

अमित तेजस्वी इन्द्रके द्वारा इस प्रकार रोक दिये जानेपर मायेश्वरीकी मायासे अत्यन्त मोहित होकर वह राजपुत्र वहीं रुक गया॥ ३॥

इस प्रकार जब-जब वह पिताको रोगसे पीड़ित सुनकर जानेका विचार करता था, तब-तब इन्द्र उसे रोक देते थे॥ ४॥

हरिश्चन्द्रोऽतिदु:खार्त: पप्रच्छ गुरुमन्तिके।
स्थितं वसिष्ठमेकान्ते सर्वज्ञं हिततत्परम्॥ ५

राजोवाच

भगवन् किं करोम्यद्य कातरोऽस्मि व्यथाकुल:।
त्राहि मां दु:खमनसं महाव्याधिभयातुरम्॥ ६

वसिष्ठ उवाच

शृणु राजन्नुपायोऽस्ति रोगनाशं प्रति स्तुत:।
त्रयोद्दशविधा: पुत्रा: कथिता धर्मसंग्रहे॥ ७

तस्मात्क्रीतं सुतं कृत्वा यजस्व मखमुत्तमम्।
द्रव्यं दत्त्वा यथोद्दिष्टमानयस्व द्विजोत्तमम्॥ ८

एवं कृते मखे भूप रोगनाशो भविष्यति।
वरुणोऽपि प्रसन्नात्मा भविष्यति यथासुखम्॥ ९

व्यास उवाच

इति तस्य वच: श्रुत्वा राजा प्रोवाच मन्त्रिणम्।
अन्वेषय महाबुद्धे विषयेष्वतियत्नत:॥ १०

कदाचित्कोऽपि लोभार्थी ददाति स्वसुतं पिता।
समानय धनं दत्त्वा यावत्प्रार्थयतेऽप्यसौ॥ ११

सर्वथैव समानेयो यज्ञार्थे द्विजबालक:।
न कार्या कृपणा बुद्धिस्त्वया मत्कार्यहेतवे॥ १२

प्रार्थनीयस्त्वया पुत्र: कस्यचिद् द्विजवादिन:।
द्रव्येण देहि यज्ञार्थं कर्तव्योऽसौ पशु: किल॥ १३

इति सञ्चोदितस्तेन सचिव: कार्यहेतवे।
अन्वेषयामास पुरे ग्रामे ग्रामे गृहे गृहे॥ १४

एवमन्वेषतस्तस्य विषये कश्चिदातुर:।
निर्धनस्त्रिसुतश्चासीदजीगर्तेति नामत:॥ १५

तस्य पुत्रं शुन:शेपं मध्यमं मन्त्रिसत्तम:।
आनयामास दत्त्वार्थं प्रार्थितं यद्धनं तदा॥ १६

समानीय शुन:शेपं सचिव: कार्यतत्पर:।
राज्ञे निवेदयामास पशुयोग्यं द्विजात्मजम्॥ १७

एक दिन राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त दु:खी होकर एकान्तमें बैठे हुए सर्वज्ञ और कल्याणकारी गुरु वसिष्ठके पास जाकर पूछा—॥ ५॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं क्या करूँ? मैं अत्यन्त भयभीत और कष्टसे पीड़ित हूँ। इस महाव्याधिसे पीड़ित मुझ दु:खितचित्तकी रक्षा कीजिये॥ ६॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! सुनिये, रोगनाशका एक प्रशस्त उपाय है। धर्मशास्त्रमें तेरह प्रकारके पुत्र कहे गये हैं॥ ७॥

इसलिये किसी ब्राह्मणके उत्तम बालकको उसका मनोभिलषित धन देकर क्रय करके उसे ले आइये और उत्तम यज्ञको सम्पन्न कीजिये॥ ८॥

हे राजन्! इस प्रकार यज्ञ करनेसे आपका रोग नष्ट हो जायगा और वरुणदेव भी हर्षित होकर प्रसन्नचित्त हो जायँगे॥ ९॥

व्यासजी बोले—उनकी ऐसी बात सुनकर राजाने मन्त्रीसे कहा—हे महामते! सभी स्थानोंमें प्रयत्नपूर्वक पता लगाइये॥ १०॥

यदि कोई लोभी पिता अपने पुत्रको देता है तो वह जितना धन माँगे, उतना देकर उसे ले आइये॥ ११॥

सब प्रकारसे प्रयास करके यज्ञके लिये ब्राह्मणबालक लाना ही चाहिये। मेरे कार्यमें तुम्हें किसी भी प्रकारका बुद्धिशैथिल्य नहीं करना चाहिये॥ १२॥

तुम्हें प्रत्येक ब्राह्मणसे प्रार्थना करनी चाहिये कि धन लेकर राजाको पुत्र दे दीजिये, उसे यज्ञके लिये यज्ञीय पशु बनाना है॥ १३॥

उन राजासे यह आदेश प्राप्तकर मन्त्रीने यज्ञकार्यके लिये राज्यके प्रत्येक गाँव तथा घरमें पता लगाया॥ १४॥

इस प्रकार राज्यमें पता लगाते हुए उसे अजीगर्त नामक एक दु:खी और निर्धन ब्राह्मण मिला, जिसके तीन पुत्र थे॥ १५॥

उस ब्राह्मणने जितना धन माँगा, उतना देकर वह मन्त्रिश्रेष्ठ उसके मझले पुत्र शुन:शेपको ले आया॥ १६॥

कार्यकुशल मन्त्रीने पशुयोग्य ब्राह्मणपुत्र शुन:शेपको लाकर राजाको समर्पित कर दिया॥ १७॥

राजातिमुदितस्तेन विप्रानानीय सर्वतः।
कारयामास सम्भारान्यज्ञार्थं वेदवित्तमान्॥ १८

प्रारब्धे तु मखे तत्र विश्वामित्रो महामुनिः।
बद्धं दृष्ट्वा शुनःशेपं निषिषेध नृपं तदा॥ १९

राजन्मा साहसं कार्षीर्मुञ्चैनं द्विजबालकम्।
प्रार्थयाम्यहमायुष्मन् सुखं तेऽद्य भविष्यति॥ २०

क्रन्दत्ययं शुनःशेपः करुणा मां दुनोत्यपि।
दयावान्भव राजेन्द्र कुरु मे वचनं नृप॥ २१

परदेहस्य रक्षायै स्वदेहं ये दयापराः।
ददति क्षत्रियाः पूर्वं स्वर्गकामाः शुचिव्रताः॥ २२

त्वं स्वदेहस्य रक्षार्थं हंसि द्विजसुतं बलात्।
पापं मा कुरु राजेन्द्र दयावान्भव बालके॥ २३

सर्वेषां सदृशी प्रीतिर्देहे वेत्सि स्वयं नृप।
मुञ्चैनं बालकं तस्मात्प्रमाणं यदि मे वचः॥ २४

व्यास उवाच

अनादृत्य च तद्वाक्यं राजा दुःखातुरो भृशम्।
न मुमोच मुनिस्तस्मै चुकोपातीव तापसः॥ २५

उपदेशं ददौ तस्मै शुनःशेपाय कौशिकः।
मन्त्रं पाशधरस्याथ दयावान्वेदवित्तमः॥ २६

शुनःशेपोऽपि तं मन्त्रमसकृद्वधकर्शितः।
प्लुतस्वरेण चुक्रोश संस्मरन्वरुणं भृशम्॥ २७

स्तुवन्तं मुनिपुत्रं तं ज्ञात्वा वै यादसां पतिः।
तत्रागत्य शुनःशेपं मुमोच करुणार्णवः॥ २८

रोगहीनं नृपं कृत्वा वरुणः स्वगृहं ययौ।
विश्वामित्रस्तु तं पुत्रं कृतवान्मोचितं मृतेः॥ २९

इससे अत्यन्त प्रसन्न होकर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको बुलाकर यज्ञके लिये सामग्री एकत्र करवायी॥ १८॥

यज्ञके प्रारम्भ होनेपर महामुनि विश्वामित्रने वहाँ शुनः-शेपको बँधा देखकर राजाको मना करते हुए कहा—॥ १९॥

हे राजन्! ऐसा साहस न कीजिये, इस ब्राह्मणबालकको छोड़ दीजिये। हे आयुष्मन्! मैं प्रार्थना करता हूँ, इससे आपको सुखकी प्राप्ति होगी॥ २०॥

यह शुनःशेप क्रन्दन कर रहा है, अतः करुणा मुझे बहुत व्यथित कर रही है। हे राजेन्द्र! मेरी बात मानिये; हे नृप! दयावान् बनिये॥ २१॥

पूर्वकालमें स्वर्गके इच्छुक, पवित्रव्रती तथा दयापरायण जो क्षत्रियगण थे, वे दूसरोंके शरीरकी रक्षाके लिये अपने प्राण दे देते थे और आप अपने शरीरकी रक्षाके लिये बलपूर्वक ब्राह्मणपुत्रका वध कर रहे हैं। हे राजेन्द्र! पाप मत कीजिये और इस बालकपर दयावान् होइए॥ २२-२३॥

हे राजन्! अपने देहके प्रति सभीको एक-जैसी प्रीति होती है—यह बात आप स्वयं जानते हैं। यदि आप मेरी बातको प्रमाण मानते हैं तो इस बालकको छोड़ दीजिये॥ २४॥

व्यासजी बोले—दुःखसे अत्यन्त पीड़ित राजाने मुनिकी बातका अनादर करके उस बालकको नहीं छोड़ा; इससे वे तपस्वी मुनि उनके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये॥ २५॥

वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ उन दयालु विश्वामित्रने शुनःशेपको पाशधारी वरुणदेवके मन्त्रका उपदेश दिया। अपने वधके भयसे व्याकुल शुनःशेप भी वरुणदेवका स्मरण करते हुए उच्च स्वरसे बार-बार मन्त्रका जप करने लगा॥ २६-२७॥

जलचरोंके अधिपति करुणासिन्धु वरुणदेवने वहाँ आकर स्तुति करते हुए उस ब्राह्मणपुत्र शुनः-शेपको छुड़ा दिया और राजाको रोगमुक्त करके वे वरुणदेव अपने लोकको चले गये। विश्वामित्रने उस बालकको मृत्युसे मुक्ति प्रदान कर दी॥ २८-२९॥

न कृतं वचनं राज्ञा कौशिकस्य महात्मनः।
रोषं दधार मनसा राजोपरि स गाधिजः॥ ३०

एकस्मिन्समये राजा हयारूढो वनं गतः।
सूकरं हन्तुकामस्तु मध्याह्ने कौशिकीतटे॥ ३१

वृद्धब्राह्मणवेषेण विश्वामित्रेण वञ्चितः।
सर्वस्वं प्रार्थितं तस्य गृहीतं राज्यमद्भुतम्॥ ३२

पीडितोऽसौ हरिश्चन्द्रो यजमानो यतो भृशम्।
वसिष्ठः कौशिकं प्राह वने प्राप्तं यदृच्छया॥ ३३

क्षत्रियाधम दुर्बुद्धे वृथा ब्राह्मणवेषभृत्।
बकधर्म वृथा किं त्वं गर्वं वहसि दाम्भिक॥ ३४

कस्मात्त्वया नृपश्रेष्ठो यजमानो ममाप्यसौ।
अपराधं विना जाल्म गमितो दुःखमद्भुतम्॥ ३५

बकध्यानपरो यस्मात्तस्मात्त्वं वै बको भव।
इति शप्तो वसिष्ठेन कौशिकः प्राह तं पुनः॥ ३६

त्वमप्याडिर्भवायुष्मन् बकोऽहं यावदेव हि।

व्यास उवाच

एवं परस्परं दत्त्वा शापं तौ क्रोधपीडितौ॥ ३७

अण्डजौ तरसा जातौ सरस्याडीबकौ मुनी।
एकस्मिन्पादपे नीडं कृत्वासौ बकरूपभाक्॥ ३८

विश्वामित्रः स्थितस्तत्र दिव्ये सरसि मानसे।
अन्यस्मिन्पादपे कृत्वा वसिष्ठो नीडमुत्तमम्॥ ३९

आडीरूपधरस्तस्थावन्योन्यं द्वेषतत्परौ।
दिने दिने तौ संग्रामं चक्रतुः क्रोधसंयुतौ॥ ४०

दुःखदं सर्वलोकानां क्रन्दमानावुभौ भृशम्।
चञ्चुपक्षप्रहारैस्तु नखाघातैः परस्परम्॥ ४१

जघ्नतू रुधिरक्लिन्नौ पुष्पिताविव किंशुकौ।
एवं बहूनि वर्षाणि पक्षिरूपधरौ मुनी॥ ४२

स्थितौ तत्र महाराज शापपाशेन यन्त्रितौ।

राजोवाच

कथं मुक्तौ मुनिश्रेष्ठौ शापाद्वसिष्ठकौशिकौ॥ ४३

तन्ममाचक्ष्व विप्रर्षे परं कौतूहलं हि मे।

राजाने महात्मा विश्वामित्रकी बात नहीं मानी, अतः वे गाधिपुत्र विश्वामित्र मन-ही-मन राजाके ऊपर बहुत क्रुद्ध हुए॥ ३०॥

एक समय राजा घोड़ेपर सवार होकर वनमें गये। वे सूअरको मारनेकी इच्छासे ठीक दोपहरके समय कौशिकी नदीके तटपर पहुँचे॥ ३१॥

वहाँ विश्वामित्रने वृद्ध ब्राह्मणका वेश धारण करके छलपूर्वक उनका सर्वस्व माँग लिया और उनके महान् राज्यपर अपना अधिकार कर लिया॥ ३२॥

जिससे [वसिष्ठके] यजमान राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त कष्ट पाने लगे। एक बार संयोगवश वनमें आये हुए विश्वामित्रसे वसिष्ठने कहा—हे क्षत्रियाधम! हे दुर्बुद्धे! तुमने व्यर्थ ही ब्राह्मणका वेश बना रखा है, बगुलेके समान वृत्तिवाले हे दाम्भिक! तुम व्यर्थमें गर्व क्यों करते हो?॥ ३३-३४॥

हे जाल्म! तुमने मेरे यजमान नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रको बिना अपराधके महान् कष्टमें क्यों डाल दिया?॥ ३५॥

तुम बगुलेके समान ध्यानपरायण हो। अतः तुम 'बक' (बगुला) हो जाओ। वसिष्ठके द्वारा इस प्रकार शापप्राप्त विश्वामित्रने उनसे कहा—हे आयुष्मन्! जबतक मैं बक रहूँगा, तबतक तुम भी आडी पक्षी बनकर रहोगे॥ ३६½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार क्रोधसे व्याकुल उन दोनोंने एक-दूसरेको शाप दे दिया और एक सरोवरके समीप वे दोनों मुनि 'आडी' और 'बक' के रूपमें अण्डोंसे उत्पन्न हुए। दिव्य मानसरोवरके तटपर एक वृक्षपर घोंसला बनाकर बकरूपधारी विश्वामित्र और एक दूसरे वृक्षपर उत्तम घोंसला बनाकर आडीरूपधारी वसिष्ठ परस्पर द्वेषपरायण होकर रहने लगे। वे दोनों कोपाविष्ट होकर प्रतिदिन घोर क्रन्दन करते हुए सभी लोगोंके लिये दुःखदायी युद्ध करते थे। वे दोनों चोंच और पंखोंके प्रहार तथा नखोंके आघातसे परस्पर चोट पहुँचाते थे। रक्तसे लथपथ वे दोनों खिले हुए किंशुकके फूल-जैसे प्रतीत होते थे। हे महाराज! इस प्रकार पक्षीरूपधारी दोनों मुनि शापरूपी पाशमें जकड़े हुए वहाँ बहुत वर्षोंतक पड़े रहे॥ ३७—४२½॥

राजा बोले—हे विप्रर्षे! वे दोनों मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ और विश्वामित्र शापसे किस प्रकार मुक्त हुए, यह मुझे बताइये, मुझे बड़ा कौतूहल है॥ ४३½॥

व्यास उवाच

युध्यमानावुभौ दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४४

तत्राजगामानिमिषैर्वृतः सर्वैर्दयापरैः ।
तावाश्वास्य जगत्कर्ता युद्धतो विनिवार्य च ॥ ४५

शापं संमोचयामास तयोः क्षिप्तं परस्परम् ।
ततो जग्मुः सुराः सर्वे स्वानि धिष्ण्यानि पद्मभूः ॥ ४६

सत्यलोकं जगामाशु हंसारूढः प्रतापवान् ।
विश्वामित्रोऽप्यगात्तूर्णं वसिष्ठः स्वाश्रमं गतः ॥ ४७

मिथः स्नेहं ततः कृत्वा प्रजापत्युपदेशतः ।
मैत्रावरुणिनाप्येवं कृतं युद्धमकारणम् ॥ ४८

कौशिकेन समं भूप दुःखदं च परस्परम् ।
को नाम मानवो लोके देवो वा दानवोऽपि वा ॥ ४९

अहङ्कारजयं कृत्वा सर्वदा सुखभाग्भवेत् ।
तस्माद्राजंश्चित्तशुद्धिर्महतामपि दुर्लभा ॥ ५०

यत्नेन साधनीया सा तद्विहीनं निरर्थकम् ।
तीर्थं दानं तपः सत्यं यत्किञ्चिद्धर्मसाधनम् ॥ ५१

(श्रद्धात्र त्रिविधा प्रोक्ता सात्त्विकी राजसी तथा ।
तामसी सर्वदेहेषु देहिनां धर्मकर्मसु ॥
सात्त्विकी दुर्लभा लोके यथोक्तफलदा सदा ।
तदर्धफलदा प्रोक्ता राजसी विधिसंयुता ॥
तामसी त्वफला राजन्न तु कीर्तिकरी पुनः ।
कामक्रोधाभिभूतानां जनानां नृपसत्तम ॥)
वासनारहितं कृत्वा तच्चित्तं श्रवणादिना ।
तीर्थादिषु वसेन्नित्यं देवीपूजनतत्परः ॥ ५२

देवीनामानि वचसा गृह्णंस्तस्या गुणान्स्तुवन् ।
ध्यायंस्तस्याः पदाम्भोजं कलिदोषभयार्दितः ॥ ५३

एवं तु कुर्वतस्तस्य न कदाचित्कलेर्भयम् ।
अनायासेन संसारान्मुच्यते पातकी जनः ॥ ५४

व्यासजी बोले—लोकपितामह ब्रह्माजी उन दोनोंको युद्ध करते देखकर समस्त दयापरायण देवताओंके साथ वहाँ आये। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने उन दोनोंको समझाकर युद्धसे विरत करके परस्पर दिये गये शापसे भी मुक्त कर दिया ॥ ४४-४५ १/२ ॥

इसके बाद सभी देवगण अपने-अपने लोकोंको चले गये, कमलयोनि प्रतापी ब्रह्माजी शीघ्र हंसपर आरूढ़ होकर सत्यलोकको चले गये और प्रजापतिके उपदेशसे परस्पर स्नेह करके विश्वामित्र तथा वसिष्ठजी भी अपने-अपने आश्रमोंको शीघ्र चले गये। हे राजन्! इस प्रकार मैत्रावरुणि वसिष्ठने भी अकारण ही विश्वामित्रके साथ परस्पर दुःखप्रद युद्ध किया था ॥ ४६—४८ १/२ ॥

इस संसारमें मनुष्य, देवता या दैत्य—कौन ऐसा है, जो अहंकारपर विजय प्राप्तकर सदा सुखी रह सके। अतः हे राजन्! चित्तकी शुद्धि महापुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है। उसे प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करना चाहिये; उसके बिना तीर्थयात्रा, दान, तपस्या, सत्य आदि जो कुछ भी धर्मसाधन है; वह सब निरर्थक है ॥ ४९—५१ ॥

(सबके देहोंमें तथा प्राणियोंके धर्मकर्मोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसी—यह तीन प्रकारकी श्रद्धा कही गयी है। इनमें यथोक्त फल देनेवाली सात्त्विकी श्रद्धा जगत्‌में सदा दुर्लभ होती है। विधिविधानसे युक्त राजसी श्रद्धा उसका आधा फल देनेवाली कही गयी है। हे राजन्! काम-क्रोधके वशीभूत पुरुषोंकी श्रद्धा तामसी होती है। हे नृपश्रेष्ठ! वह फलविहीन होती है और कीर्ति करनेवाली भी नहीं होती।)

कलियुगके दोषोंसे भयभीत व्यक्तिको कथा-श्रवण आदिके द्वारा चित्तको वासनारहित करके देवीकी पूजामें तत्पर रहते हुए, वाणीसे देवीके नामोंको ग्रहण करते हुए, उनके गुणोंका कीर्तन करते हुए तथा उनके चरण-कमलका ध्यान करते हुए तीर्थ आदिमें नित्य वास करना चाहिये ॥ ५२-५३ ॥

ऐसा करनेसे उसे कभी कलियुगका भय नहीं होगा, इससे पापी प्राणी भी अनायास ही संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ ५४ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे आडीबकयुद्ध-वर्णनसहितं देवीमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

~~O~~

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

राजा निमि और वसिष्ठका एक-दूसरेको शाप देना, वसिष्ठका मित्रावरुणके पुत्रके रूपमें जन्म लेना

जनमेजय उवाच

मैत्रावरुणिरित्युक्तं नाम तस्य मुनेः कथम्।
वसिष्ठस्य महाभाग ब्रह्मणस्तनुजस्य ह॥ १

किमसौ कर्मतो नाम प्राप्तवान् गुणतस्तथा।
ब्रूहि मे वदतांश्रेष्ठ कारणं तस्य नामजम्॥ २

व्यास उवाच

निबोध नृपतिश्रेष्ठ वसिष्ठो ब्रह्मणः सुतः।
निमिशापात्तनुं त्यक्त्वा पुनर्जातो महाद्युतिः॥ ३

मित्रावरुणयोर्यस्मात्तस्मात्तन्नाम विश्रुतम्।
मैत्रावरुणिरित्यस्मिँल्लोके सर्वत्र पार्थिव॥ ४

राजोवाच

कस्माच्छप्तः स धर्मात्मा राज्ञा ब्रह्मात्मजो मुनिः।
चित्रमेतन्मुनिं लग्नो राज्ञः शापोऽतिदारुणः॥ ५

अनागसं मुनिं राजा किमसौ शप्तवान्मुने।
कारणं वद धर्मज्ञ तस्य शापस्य मूलतः॥ ६

व्यास उवाच

कारणं तु मया प्रोक्तं तव पूर्वं विनिश्चितम्।
संसारोऽयं त्रिभिर्व्याप्तो राजन्मायागुणैः किल॥ ७

धर्मं करोतु भूपालश्चरन्तु तापसास्तपः।
सर्वेषां तु गुणैर्विद्धं नोज्ज्वलं तद्भवेदिह॥ ८

कामक्रोधाभिभूताश्च राजानो मुनयस्तथा।
लोभाहङ्कारसंयुक्ताश्चरन्ति दुश्चरं तपः॥ ९

यजन्ति क्षत्रिया राजन् रजोगुणसमावृताः।
ब्राह्मणास्तु तथा राजन् न कोऽपि सत्त्वसंयुतः॥ १०

ऋषिणासौ निमिः शप्तस्तेन शप्तो मुनिः पुनः।
दुःखाद्दुःखतरं प्राप्तावुभावपि विधेर्बलात्॥ ११

द्रव्यशुद्धिः क्रियाशुद्धिर्मनसः शुद्धिरुज्ज्वला।
दुर्लभा प्राणिनां भूप संसारे त्रिगुणात्मके॥ १२

जनमेजय बोले—हे महाभाग! ब्रह्माके पुत्र मुनि वसिष्ठका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम कैसे पड़ा? हे वक्ताओंमें श्रेष्ठ! किस कर्म अथवा गुणके कारण उन्होंने यह नाम प्राप्त किया। उनके नाम पड़नेका कारण मुझे बताइये॥ १-२॥

व्यासजी बोले—हे नृपश्रेष्ठ! सुनिये, वसिष्ठजी ब्रह्माके पुत्र हैं, उन महातेजस्वीने निमिके शापसे वह शरीर त्यागकर पुनः जन्म लिया॥ ३॥

हे राजन्! उनका जन्म मित्र और वरुणके यहाँ हुआ था, इसीलिये इस संसारमें सर्वत्र उनका 'मैत्रावरुणि'—यह नाम विख्यात हुआ॥ ४॥

राजा बोले—राजा निमिने ब्रह्माजीके पुत्र धर्मात्मा वसिष्ठको शाप क्यों दिया? राजाका वह दारुण शाप मुनिको लग गया—यह तो आश्चर्य है!॥ ५॥

हे मुने! निरपराध मुनिको राजाने क्यों शाप दे दिया; हे धर्मज्ञ! उस शापका कारण यथार्थरूपमें बताइये?॥ ६॥

व्यासजी बोले—इसका सम्यक् रूपसे निर्णीत कारण तो मैं आपको पहले ही बता चुका हूँ। हे राजन्! यह संसार मायाके तीनों गुणोंसे व्याप्त है॥ ७॥

राजा धर्म करें और तपस्वी तप करें—यह स्वाभाविक कर्म है, परंतु सभी प्राणियोंका मन गुणोंसे आबद्ध रहनेके कारण विशुद्ध नहीं रह पाता॥ ८॥

राजालोग काम और क्रोधसे अभिभूत रहते हैं और उसी प्रकार तपस्वीगण भी लोभ और अहंकारयुक्त होकर कठोर तपस्या करते हैं॥ ९॥

हे राजन्! क्षत्रियगण रजोगुणसे युक्त होकर यज्ञ करते थे, वैसे ही ब्राह्मण भी थे। हे राजन्! कोई भी सत्त्वगुणसे युक्त नहीं था॥ १०॥

ऋषिने राजाको शाप दिया और तब राजाने भी मुनिको शाप दे दिया। इस प्रकार दैववशात् दोनोंको बहुत दुःख प्राप्त हुआ॥ ११॥

हे राजन्! इस त्रिगुणात्मक जगत्में प्राणियोंके लिये द्रव्यशुद्धि, क्रियाशुद्धि और उज्ज्वल मनःशुद्धि दुर्लभ है॥ १२॥

पराशक्तिप्रभावोऽयं नोल्लंघ्यः केनचित्क्वचित्।
यस्यानुग्रहमिच्छेत्सा मोचयत्येव तं क्षणात्॥ १३

महान्तोऽपि न मुच्यन्ते हरिब्रह्महरादयः।
पामरा अपि मुच्यन्ते यथा सत्यव्रतादयः॥ १४

तस्यास्तु हृदयं कोऽपि न वेत्ति भुवनत्रये।
तथापि भक्तवश्येयं भवत्येव सुनिश्चितम्॥ १५

तस्मात्तद्भक्तिरास्थेया दोषनिर्मूलनाय च।
रागदम्भादियुक्ता चेत्सा भक्तिर्नाशिनी भवेत्॥ १६

इक्ष्वाकुकुलसम्भूतो निमिर्नाम नराधिपः।
रूपवान् गुणसम्पन्नो धर्मज्ञो लोकरञ्जकः॥ १७

सत्यवादी दानपरो याजको ज्ञानवाञ्छुचिः।
द्वादशस्तनयो धीमान्प्रजापालनतत्परः॥ १८

पुरं निवेशयामास गौतमाश्रमसन्निधौ।
जयन्तपुरसंज्ञं तु ब्राह्मणानां हिताय सः॥ १९

बुद्धिस्तस्य समुत्पन्ना यजेयमिति राजसी।
यज्ञेन बहुकालेन दक्षिणासंयुतेन च॥ २०

इक्ष्वाकुं पितरं पृष्ट्वा यज्ञकार्याय पार्थिवः।
कारयामास सम्भारं यथोद्दिष्टं महात्मभिः॥ २१

भृगुमङ्गिरसं चैव वामदेवं च गौतमम्।
वसिष्ठं च पुलस्त्यं च ऋचीकं पुलहं क्रतुम्॥ २२

मुनीनामन्त्रयामास सर्वज्ञान्वेदपारगान्।
यज्ञविद्याप्रवीणांश्च तापसान्वेदवित्तमान्॥ २३

राजा सम्भृतसम्भारः सम्पूज्य गुरुमात्मनः।
वसिष्ठं प्राह धर्मज्ञो विनयेन समन्वितः॥ २४

यजेयं मुनिशार्दूल याजयस्व कृपानिधे।
गुरुस्त्वं सर्ववेत्तासि कार्यं मे कुरु साम्प्रतम्॥ २५

यज्ञोपकरणं सर्वं समानीतं सुसंस्कृतम्।
पञ्चवर्षसहस्रं तु दीक्षां कर्तुं मतिश्च मे॥ २६

यह पराशक्तिका ही प्रभाव है और कोई कभी इसका अतिक्रमण नहीं कर सकता। जिसपर वे भगवती कृपा करना चाहती हैं, उसे तत्काल मुक्त कर देती हैं॥ १३॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश आदि महान् देवता भी मुक्त नहीं हो पाते, किंतु सत्यव्रत आदि जैसे अधम भी मुक्त हो जाते हैं॥ १४॥

यद्यपि तीनों लोकोंमें भगवतीके रहस्यको कोई नहीं जानता है, फिर भी वे भक्तके वशमें हो जाती हैं—ऐसा निश्चित है॥ १५॥

अतः दोषोंके निर्मूलनके लिये उनकी भक्ति करनी चाहिये। यदि वह भक्ति राग, दम्भ आदिसे युक्त हो तो वह नाश करनेवाली होती है॥ १६॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न निमि नामके एक राजा थे। वे रूपवान्, गुणवान्, धर्मज्ञ, प्रजावत्सल सत्यवादी, दानशील, यज्ञ-कर्ता, ज्ञानी और पुण्यात्मा थे। वे बुद्धिमान् और प्रजापालक राजा निमि इक्ष्वाकुके बारहवें पुत्र थे॥ १७-१८॥

उन्होंने ब्राह्मणोंके हितके लिये गौतममुनिके आश्रमके समीप जयन्तपुर नामका एक नगर बसाया॥ १९॥

उनके मनमें एक बार यह राजसी बुद्धि उत्पन्न हुई कि बहुत समयतक चलनेवाले और विपुल दक्षिणावाले यज्ञके द्वारा आराधना करूँ॥ २०॥

तब राजाने यज्ञकार्यके लिये अपने पिता इक्ष्वाकुसे आज्ञा लेकर महात्माओंके कथनानुसार समस्त यज्ञीय सामग्री एकत्र करायी॥ २१॥

इसके बाद राजाने भृगु, अंगिरा, वामदेव, गौतम, वसिष्ठ, पुलस्त्य, ऋचीक, पुलह और क्रतु—इन सर्वज्ञ, वेदमें पारंगत, यज्ञविद्याओंमें कुशल एवं वेदज्ञ मुनियों और तपस्वियोंको आमन्त्रित किया॥ २२-२३॥

समस्त सामग्री एकत्र कर धर्मज्ञ राजाने अपने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके विनयसे युक्त होकर उनसे कहा—॥ २४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ। अतः यज्ञ करानेकी कृपा करें। हे कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं और मेरे गुरु हैं; इस समय आप मेरा कार्य सम्पन्न कीजिये॥ २५॥

मैंने समस्त यज्ञीय सामग्री मँगवा ली है और उसका संस्कार भी करा लिया है। मेरा विचार है कि मैं पाँच हजार वर्षके लिये यज्ञ-दीक्षा ग्रहण कर लूँ॥ २६॥

यस्मिन्यज्ञे समाराध्या देवी श्रीजगदम्बिका।
तत्प्रीत्यर्थमहं यज्ञं करोमि विधिपूर्वकम्॥ २७

तच्छ्रुत्वासौ निमेर्वाक्यं वसिष्ठः प्राह भूपतिम्।
इन्द्रेणाहं वृतः पूर्वं यज्ञार्थं नृपसत्तम॥ २८

पराशक्तिमखं कर्तुमुद्युक्तः पाकशासनः।
स दीक्षां गमितो देवः पञ्चवर्षशतात्मिकाम्॥ २९

तस्मात्त्वमन्तरं तावत्प्रतिपालय पार्थिव।
इन्द्रयज्ञे समाप्तेऽत्र कृत्वा कार्यं दिवस्पतेः॥ ३०

आगमिष्याम्यहं राजंस्तावत्त्वं प्रतिपालय।

राजोवाच

मया निमन्त्रिताश्चान्ये मुनयो यज्ञकारणात्॥ ३१

सम्भाराः सम्भृताः सर्वे पालयामि कथं गुरो।
इक्ष्वाकूणां कुले ब्रह्मन्गुरुस्त्वं वेदवित्तमः॥ ३२

कथं त्यक्त्वाद्य मे कार्यमुद्यतो गन्तुमाशु वै।
न ते युक्तं द्विजश्रेष्ठ यदुत्सृज्य मखं मम॥ ३३

गन्तासि धनलोभेन लोभाकुलितचेतनः।
निवारितोऽपि राज्ञा स जगामेन्द्रमखं गुरुः॥ ३४

राजापि विमना भूत्वा गौतमं प्रत्यपूजयत्।
इयाज हिमवत्पार्श्वे सागरस्य समीपतः॥ ३५

दक्षिणा बहुला दत्ता विप्रेभ्यो मखकर्मणि।
निमिना पञ्चसाहस्री दीक्षा तत्र कृता नृप॥ ३६

ऋत्विजः पूजिताः कामं धनैर्गोभिर्मुदा युताः।
शक्रयज्ञसमाप्ते तु पञ्चवर्षशतात्मके॥ ३७

आजगाम वसिष्ठस्तु राज्ञः सत्रदिदृक्षया।
आगत्य संस्थितस्तत्र दर्शनार्थं नृपस्य च॥ ३८

तदा राजा प्रसुप्तस्तु निद्रयापहृतो भृशम्।
नासौ प्रबोधितो भृत्यैर्नागतस्तु मुनिं नृपः॥ ३९

वसिष्ठस्य ततो मन्युः प्रादुर्भूतोऽवमानतः।
अदर्शनान्निमेस्तत्र चुकोप मुनिसत्तमः॥ ४०

जिस यज्ञमें भगवती जगदम्बाकी आराधना होती हो, उस यज्ञको मैं उनकी प्रसन्नताके लिये विधिपूर्वक करना चाहता हूँ॥ २७॥

निमिकी वह बात सुनकर वसिष्ठजीने राजासे कहा—हे नृपश्रेष्ठ! मैं इन्द्रके द्वारा यज्ञके लिये पहले ही वरण कर लिया गया हूँ। इन्द्र पराशक्तिके प्रीत्यर्थ यज्ञ करनेके लिये तत्पर हैं और देवेन्द्रने पाँच सौ वर्षतक चलनेवाले यज्ञकी दीक्षा ले ली है। अतः हे राजन्! तबतक आप यज्ञ-सामग्रियोंकी रक्षा करें, इन्द्रके यज्ञके पूर्ण हो जानेपर उन देवराजका कार्य सम्पन्न करके मैं आ जाऊँगा। हे राजन्! तबतक आप समयकी प्रतीक्षा करें॥ २८—३०½ ॥

राजा बोले—हे गुरुदेव! मैंने यज्ञके लिये दूसरे बहुत-से मुनियोंको निमन्त्रित कर दिया है तथा समस्त यज्ञीय सामग्रियाँ भी एकत्र कर ली हैं, मैं इन सबको [इतने समयतक] कैसे सुरक्षित रखूँगा? हे ब्रह्मन्! आप इक्ष्वाकुवंशके वेदवेत्ता गुरु हैं, आज मेरा कार्य छोड़कर आप अन्यत्र जानेके लिये क्यों उद्यत हैं? हे द्विजश्रेष्ठ! यह आपके लिये उचित नहीं है जो कि लोभसे व्याकुलचित्तवाले आप मेरा यज्ञ छोड़कर अन्यत्र जा रहे हैं॥ ३१—३३½ ॥

राजाके इस प्रकार रोकनेपर भी वे गुरु वसिष्ठ इन्द्रके यज्ञमें चले गये। राजाने भी उदास होकर [अपना आचार्य बनाकर] गौतमऋषिका पूजन किया। उन्होंने हिमालयके पार्श्वभागमें समुद्रके निकट यज्ञ किया और उस यज्ञकर्ममें ब्राह्मणोंको बहुत दक्षिणा दी। हे राजन्! निमिने उस पाँच हजार वर्षवाले यज्ञकी दीक्षा ली और ऋत्विजोंको उनके इच्छानुसार धन और गौएँ प्रदान करके उनकी पूजा की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए॥ ३४—३६½ ॥

इन्द्रके पाँच सौ वर्षवाले यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजी राजाके यज्ञको देखनेकी इच्छासे आये और आकरके राजाके दर्शनके लिये वहाँ रुके रहे॥ ३७-३८॥

उस समय राजा निमि सोये हुए थे और उन्हें गहरी नींद आ गयी थी। सेवकोंने उन्हें नहीं जगाया, जिससे वे राजा मुनिके पास न आ सके। तब अपमानके कारण वसिष्ठजीको क्रोध आ गया। मिलनेके लिये निमिके न आनेसे मुनिश्रेष्ठ कुपित हो उठे। क्रोधके वशीभूत हुए

शापं च दत्तवांस्तस्मै राज्ञे मन्युवशं गतः।
यस्मात्त्वं मां गुरुं त्यक्त्वा कृत्वान्यं गुरुमात्मनः॥ ४१

दीक्षितोऽसि बलान्मन्द मामवज्ञाय पार्थिव।
वारितोऽपि मया तस्माद्विदेहस्त्वं भविष्यसि॥ ४२

पतत्विदं शरीरं ते विदेहो भव भूपते।

व्यास उवाच

इति तद्व्याहृतं श्रुत्वा राज्ञस्तु परिचारकाः॥ ४३

सद्यः प्रबोधयामासुर्मुनिमाहुः प्रकोपितम्।
कुपितं तं समागत्य राजा विगतकल्मषः॥ ४४

उवाच वचनं श्लक्ष्णं हेतुगर्भं च युक्तिमत्।
मम दोषो न धर्मज्ञ गतस्त्वं तृष्णयाकुलः॥ ४५

हित्वा मां यजमानं वै प्रार्थितोऽपि मया भृशम्।
न लज्जसे द्विजश्रेष्ठ कृत्वा कर्म जुगुप्सितम्॥ ४६

सन्तोषे ब्राह्मणश्रेष्ठ जानन्धर्मस्य निश्चयम्।
पुत्रोऽसि ब्रह्मणः साक्षाद्वेदवेदाङ्गवित्तमः॥ ४७

न वेत्सि विप्रधर्मस्य गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम्।
आत्मदोषं मयि ज्ञात्वा मृषा मां शप्तुमिच्छसि॥ ४८

त्याज्यस्तु सुजनैः क्रोधश्चण्डालादधिको यतः।
वृथा क्रोधपरीतेन मयि शापः प्रपातितः॥ ४९

तवापि च पतत्वद्य देहोऽयं क्रोधसंयुतः।
एवं शप्तो मुनी राज्ञा राजा च मुनिना तथा॥ ५०

परस्परं प्राप्य शापं दुःखितौ तौ बभूवतुः।
वसिष्ठस्त्वतिचिन्तार्तो ब्रह्माणं शरणं गतः॥ ५१

निवेदयामास तथा शापं भूपकृतं महत्।

वसिष्ठ उवाच

राज्ञा शप्तोऽस्मि देहोऽयं पतत्वद्य तवेति वै॥ ५२

किं करोमि पितः प्राप्तं कष्टं कायप्रपातजम्।
अन्यदेहसमुत्पत्तौ जनकं वद साम्प्रतम्॥ ५३

उन मुनिने राजाको शाप दे दिया—'हे मूर्ख पार्थिव! मेरे द्वारा मना किये जानेपर भी तुम मुझ गुरुका त्याग करके दूसरेको अपना गुरु बनाकर शक्तिके अभिमानमें मेरी अवहेलना करके यज्ञमें दीक्षित हो गये हो, उससे तुम विदेह हो जाओगे। हे राजन्! तुम्हारा यह शरीर नष्ट हो जाय और तुम विदेह हो जाओ'॥ ३९—४२$\frac{1}{2}$॥

व्यासजी बोले—उनका यह शापवचन सुनकर राजाके सेवकोंने शीघ्रतासे जाकर राजाको जगाया और उन्हें बताया कि मुनि वसिष्ठ बहुत क्रोधित हो गये हैं, तब उन कुपित मुनिके पास आकर निष्पाप राजाने मधुर शब्दोंमें युक्तिपूर्ण तथा सारगर्भित वचन कहा—॥ ४३-४४$\frac{1}{2}$॥

हे धर्मज्ञ! इसमें मेरा दोष नहीं है, आप ही लोभके वशीभूत होकर मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर भी मुझ यजमानको छोड़कर चले गये। हे विप्रवर! हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ! ब्राह्मणको सदा सन्तोष रखना चाहिये—धर्मके इस सिद्धान्तको जानते हुए भी ऐसा निन्दित कर्म करके आपको लज्जा नहीं आ रही है। आप तो साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र और वेद-वेदांगोंके सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता हैं तो भी आप ब्राह्मणधर्मकी अत्यन्त कठिन और सूक्ष्म गतिको नहीं जानते। अपना दोष मुझमें आरोपित करके आप मुझे व्यर्थ ही शाप देना चाहते हैं। सज्जनोंको चाहिये कि क्रोधका त्याग कर दें; क्योंकि यह चण्डालसे भी अधिक दूषित है; क्रोधके वशीभूत होकर आपने मुझे व्यर्थ ही शाप दे दिया है। अतः आपकी भी यह क्रोधयुक्त देह आज ही नष्ट हो जाय॥ ४५—४९$\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार राजाके द्वारा मुनि और मुनिके द्वारा राजा शापित हो गये और दोनों एक-दूसरेसे शाप पाकर बहुत दुःखी हुए। तब वसिष्ठजी अत्यधिक चिन्तातुर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गये और उन्होंने राजाके द्वारा प्रदत्त कठिन शापके विषयमें उनसे निवेदन किया॥ ५०-५१$\frac{1}{2}$॥

वसिष्ठजी बोले—हे पिताजी! राजा निमिने मुझे शाप दे दिया है कि तुम्हारा यह शरीर आज ही नष्ट हो जाय। अतः शरीर नष्ट होनेसे प्राप्त कष्टके लिये मैं क्या करूँ? इस समय आप मुझे यह बतायें कि दूसरे शरीरकी प्राप्तिमें मेरे पिता कौन होंगे? हे पिताजी! दूसरे देहसे सम्बन्ध होनेपर भी मेरी स्थिति

तथा मे देहसंयोगः पूर्ववत्समपद्यताम्।
यादृशं ज्ञानमेतस्मिन्देहे तत्रास्तु तत्पितः॥ ५४

समर्थोऽसि महाराज प्रसादं कर्तुमर्हसि।
वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मा प्रोवाच तं सुतम्॥ ५५

मित्रावरुणयोस्तेजस्त्वं प्रविश्य स्थिरो भव।
तस्मादयोनिजः काले भविता त्वं न संशयः॥ ५६

पुनर्देहं समासाद्य धर्मयुक्तो भविष्यसि।
भूतात्मा वेदवित्कामं सर्वज्ञः सर्वपूजितः॥ ५७

एवमुक्तस्तदा पित्रा प्रययौ वरुणालयम्।
कृत्वा प्रदक्षिणं प्रीत्या प्रणम्य च पितामहम्॥ ५८

विवेश स तयोर्देहे मित्रावरुणयोः किल।
जीवांशेन वसिष्ठोऽथ त्यक्त्वा देहमनुत्तमम्॥ ५९

कदाचित्तूर्वशी राजन्नागता वरुणालयम्।
यदृच्छया वरारोहा सखीगणसमावृता॥ ६०

दृष्ट्वा तामप्सरां दिव्यां रूपयौवनसंयुताम्।
जातौ कामातुरौ देवौ तदा तामूचतुर्नृप॥ ६१

विवशौ चारुसर्वाङ्गीं देवकन्यां मनोरमाम्।
आवां त्वमनवद्याङ्गि वरयस्व समाकुलौ॥ ६२

विहरस्व यथाकामं स्थानेऽस्मिन्वरवर्णिनि।
तथोक्ता सा ततो देवी ताभ्यां तत्र स्थितावशा॥ ६३

कृत्वा भावं स्थिरं देवी मित्रावरुणयोर्गृहे।
सा गृहीत्वा तयोर्भावं संस्थिता चारुदर्शना॥ ६४

तयोस्तु पतितं वीर्यं कुम्भे दैवादनावृते।
तस्माज्जातौ मुनी राजन्द्वावेवातिमनोहरौ॥ ६५

अगस्तिः प्रथमस्तत्र वसिष्ठश्चापरस्तथा।
मित्रावरुणयोर्वीर्यात्तापसावृषिसत्तमौ ॥ ६६

प्रथमस्तु वनं प्राप्तो बाल एव महातपाः।
इक्ष्वाकुस्तु वसिष्ठं तं बालं वव्रे पुरोहितम्॥ ६७

पूर्ववत् ही रहे। इस शरीरमें जैसा ज्ञान है, वैसा ही उस शरीरमें भी रहे। हे महाराज! आप समर्थ हैं; मुझपर कृपा करने योग्य हैं॥ ५२—५४½ ॥

वसिष्ठकी बात सुनकर ब्रह्माजी अपने उस पुत्रसे बोले—तुम मित्रावरुणके तेज हो, अतः इन्हींमें प्रवेश करके स्थिर हो जाओ। कुछ समय बाद तुम उन्हींसे अयोनिज पुत्रके रूपमें प्रकट होओगे; इसमें सन्देह नहीं है। इस प्रकार पुनः शरीर प्राप्त करके तुम धर्मनिष्ठ, प्राणियोंके सुहृद्, वेदवेत्ता, सर्वज्ञ और सबके द्वारा पूजित होओगे॥ ५५—५७॥

पिताके ऐसा कहनेपर वसिष्ठजी प्रसन्नतापूर्वक पितामह ब्रह्माजीकी परिक्रमा करके और उन्हें प्रणाम करके वरुणके वासस्थानको चले गये। वसिष्ठजीने अपने उत्तम देहका त्याग करके मित्र और वरुणके शरीरमें जीवांशरूपसे प्रवेश किया॥ ५८-५९ ॥

हे राजन्! किसी समय परम सुन्दरी अप्सरा उर्वशी अपनी सखियोंके साथ स्वेच्छापूर्वक मित्रावरुणके स्थानपर आयी॥ ६०॥

हे राजन्! उस रूपयौवनसे सम्पन्न दिव्य अप्सराको देखकर वे दोनों देवता कामातुर हो गये और समस्त सुन्दर अंगोंवाली उस मनोरम देवकन्यासे कहने लगे—हे प्रशस्त अंगोंवाली! विवश तथा व्याकुल हम दोनोंका तुम वरण कर लो और हे वरवर्णिनि! तुम अपनी इच्छाके अनुसार इस स्थानपर विहार करो। उनके इस प्रकार कहनेपर वह देवी उर्वशी मन स्थिर करके मित्रावरुणके घरमें उन दोनोंके साथ विवश होकर रहने लगी। प्रिय दर्शनवाली वह अप्सरा उन दोनोंके भावोंको समझकर वहीं रहने लगी॥ ६१—६४॥

दैववशात् वहाँ रखे हुए एक आवरणरहित कुम्भमें दोनोंका वीर्य स्खलित हो गया; और हे राजन्! उसमेंसे दो अत्यन्त सुन्दर मुनिकुमारोंने जन्म लिया। उनमें पहले अगस्ति थे और दूसरे वसिष्ठ थे। इस प्रकार मित्र और वरुणके तेजसे वे दोनों ऋषिश्रेष्ठ तपस्वी प्रकट हुए॥ ६५-६६ ॥

महातपस्वी अगस्ति बाल्यावस्थामें ही वन चले गये और महाराज इक्ष्वाकुने अपने पुरोहितके रूपमें दूसरे बालक वसिष्ठका वरण कर लिया॥ ६७॥

वंशस्यास्य सुखार्थं ते पालयामास पार्थिव।
विशेषेण मुनिं ज्ञात्वा प्रीत्या युक्तो बभूव ह॥ ६८

एतत्ते सर्वमाख्यातं वसिष्ठस्य च कारणम्।
शापाद्देहान्तरप्राप्तिर्मित्रावरुणयोः कुले॥ ६९

हे राजन्! आपका यह वंश सुखी रहे, इसलिये राजा इक्ष्वाकुने वसिष्ठका पालन-पोषण किया और विशेषरूपसे इन्हें मुनि जानकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ ६८॥

इस प्रकार शापके कारण मित्रावरुणके कुलमें वसिष्ठजीके अन्य शरीरकी प्राप्तिका समस्त आख्यान मैंने आपको बता दिया॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे वसिष्ठस्य मैत्रावरुणिरितिनामवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भगवतीकी कृपासे निमिको मनुष्योंके नेत्र-पलकोंमें वासस्थान मिलना तथा संसारी प्राणियोंकी त्रिगुणात्मकताका वर्णन

जनमेजय उवाच

देहप्राप्तिर्वसिष्ठस्य कथिता भवता किल।
निमिः कथं पुनर्देहं प्राप्तवानिति मे वद॥ १

व्यास उवाच

वसिष्ठेन च सम्प्राप्तः पुनर्देहो नराधिप।
निमिना न तथा प्राप्तो देहः शापादनन्तरम्॥ २

यदा शप्तो वसिष्ठेन तदा ते ब्राह्मणाः क्रतौ।
ऋत्विजो ये वृता राज्ञा ते सर्वे समचिन्तयन्॥ ३

किं कर्तव्यमहोऽस्माभिः शापदग्धो महीपतिः।
अस्मिन्यज्ञे त्वसम्पूर्णे दीक्षायुक्तश्च धार्मिकः॥ ४

किं कर्तव्यं कार्यमेतद्विपरीतमभूत्किल।
अवश्यम्भाविभावत्वादशक्ताः स्म निवारणे॥ ५

मन्त्रैर्बहुविधैर्देहं तदा तस्य महात्मनः।
रक्षितं धारयामासुः किञ्चिच्छ्वसनसंयुतम्॥ ६

गन्धैर्माल्यैश्च विविधैः पूज्यमानं मुहुर्मुहुः।
मन्त्रशक्त्या प्रतिष्टभ्य निर्विकारं सुपूजितम्॥ ७

समाप्ते च क्रतौ तत्र देवाः सर्वे समागताः।
ऋत्विग्भिस्तु स्तुताः सर्वे सुप्रीताश्चाभवन्नृप॥ ८

जनमेजय बोले—आपने वसिष्ठकी शरीर-प्राप्तिका वर्णन किया; निमिने पुनः किस प्रकार देह प्राप्त की; यह मुझसे कहिये॥ १॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वसिष्ठने जिस प्रकार पुनः शरीर प्राप्त किया, उस प्रकार निमिको शापके बाद पुनः देह नहीं मिली॥ २॥

जब वसिष्ठजीने शाप दिया तो राजाके द्वारा यज्ञमें वरण किये गये ब्राह्मण और ऋत्विज् विचार करने लगे—॥ ३॥

अहो, यज्ञमें दीक्षित ये धर्मनिष्ठ राजा शापसे दग्ध हो गये हैं और यज्ञ भी अपूर्ण ही रह गया है—ऐसेमें हम सबको क्या करना चाहिये? अब हम क्या करें? यह तो विपरीत कार्य हो गया। भवितव्यताके अवश्य होनेके कारण इसका निवारण करनेमें हम असमर्थ हैं॥ ४-५॥

तब उन महात्मा राजाकी देहको ऋत्विजोंने अनेक प्रकारके मन्त्रोंसे सुरक्षित रखा; उनकी श्वास मन्द गतिसे चल रही थी। मन्त्रशक्तिसे उनकी निर्विकार आत्माको देहमें प्रतिष्ठित करके ऋत्विजोंने उसे अनेक प्रकारके गन्ध, माल्य आदिसे सुपूजित कर रखा था॥ ६-७॥

यज्ञके सम्पूर्ण होनेपर वहाँ सभी देवगण आये। हे राजन्! ऋत्विजोंने उन सबकी स्तुति की, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। मुनियोंके द्वारा राजाके विषयमें समस्त बातोंको जान लेनेपर स्तोत्रोंसे सन्तुष्ट देवताओंने

विज्ञप्ता मुनिभिः स्तोत्रैर्निर्विण्णात्मानमब्रुवन्।
प्रसन्नाः स्म महीपाल वरं वरय सुव्रत॥ ९

यज्ञेनानेन राजर्षे वरं जन्म विधीयते।
देवदेहं नृदेहं वा यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ १०

दृप्तः कामं पुरोधास्ते मृत्युलोके यथासुखम्।
एवमुक्तो निमेरात्मा सन्तुष्टस्तानुवाच ह॥ ११

न देहे मम वाञ्छास्ति सर्वदैव विनश्वरे।
वासो मे सर्वसत्त्वानां दृष्टावस्तु सुरोत्तमाः॥ १२

नेत्रेषु सर्वभूतानां वायुभूतश्चराम्यहम्।
एवमुक्ताः सुरास्तत्र निमेरात्मानमब्रुवन्॥ १३

प्रार्थय त्वं महाराज देवीं सर्वेश्वरीं शिवाम्।
मखेनानेन सन्तुष्टा सा तेऽभीष्टं विधास्यति॥ १४

स देवैरेवमुक्तस्तु प्रार्थयामास देवताम्।
स्तोत्रैर्नानाविधैर्दिव्यैर्भक्त्या गद्गदया गिरा॥ १५

प्रसन्ना सा तदा देवी प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं रूपं लावण्यदीपितम्।१६

दृष्ट्वा प्रमुदिताः सर्वे कृतकृत्याश्च चेतसि।
प्रसन्नायां देवतायां राजा वव्रे वरं नृप॥ १७

ज्ञानं तद्विमलं देहि येन मोक्षो भवेदपि।
नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासो मे भवेदिति॥ १८

ततः प्रसन्ना देवेशी प्रोवाच जगदम्बिका।
ज्ञानं ते विमलं भूयात्प्रारब्धस्यावशेषतः॥ १९

नेत्रेषु सर्वभूतानां निवासोऽपि भविष्यति।
निमिषं यान्ति चक्षूंषि त्वत्कृतेनैव देहिनाम्॥ २०

तव वासात्सनिमिषा मानवाः पशवस्तथा।
पतङ्गाश्च भविष्यन्ति पुनश्चानिमिषाः सुराः॥ २१

इति दत्त्वा वरं तस्मै तदा श्रीवरदेवता।
आमन्त्र्य च मुनीन्सर्वांस्तत्रैवान्तर्हिताभवत्॥ २२

दुःखी मनवाले राजासे कहा—हे राजन्! हे सुव्रत! हम प्रसन्न हैं; वर माँगिये। हे राजर्षे! इस यज्ञके कारण आपको श्रेष्ठ जन्म प्राप्त हो सकता है। देवशरीर, मनुष्यशरीर अथवा आपके मनमें जो इच्छा हो, उसे आप प्राप्त कर सकते हैं; जैसे कि आपके पुरोहित वसिष्ठ गर्वयुक्त होकर मर्त्यलोकमें सुखपूर्वक रह रहे हैं॥ ८—१०½॥

उनके ऐसा कहनेपर निमिकी आत्माने परम सन्तुष्ट होकर उनसे कहा—हे श्रेष्ठ देवगण! सर्वदा विनष्ट होनेवाली इस देहमें रहनेकी मेरी इच्छा नहीं है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी दृष्टिमें मेरा निवास हो, जिससे मैं वायुरूप होकर समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें विचरण करूँ॥ ११-१२½॥

उनसे ऐसा कहे जानेपर देवताओंने निमिकी आत्मासे कहा—हे महाराज! आप कल्याणकारिणी तथा सबकी ईश्वरी भगवतीकी आराधना करें। आपके इस यज्ञसे प्रसन्न होकर वे आपका अभीष्ट अवश्य पूर्ण करेंगी॥ १३-१४॥

देवताओंके ऐसा कहनेपर उन्होंने अनेक प्रकारके दिव्य स्तोत्रोंद्वारा भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें देवीकी प्रार्थना की॥ १५॥

तब प्रसन्न होकर देवीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिया। उनके करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान तथा लावण्यसे दीप्तिमान रूपको देखकर सभी कृतकृत्य हो गये और उनके मनमें परम प्रसन्नता हुई। हे राजन्! देवीके प्रसन्न हो जानेपर राजाने वर माँगा—मुझे वह विमल ज्ञान दीजिये, जिससे मोक्ष प्राप्त हो जाय तथा समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें मेरा निवास हो जाय॥ १६—१८॥

तब प्रसन्न हुई देवेश्वरी जगदम्बाने कहा—तुम्हें विमल ज्ञान प्राप्त होगा, परंतु अभी तुम्हारा प्रारब्ध शेष है। समस्त प्राणियोंके नेत्रोंमें तुम्हारा निवास भी होगा। तुम्हारे कारण ही प्राणियोंके नेत्रोंमें पलक गिरानेकी शक्ति होगी। तुम्हारे निवासके कारण ही मनुष्य, पशु तथा पक्षी 'निमिष' (पलक गिरानेवाले) तथा देवता 'अनिमिष' (पलक न गिरानेवाले) होंगे॥ १९—२१॥

इस प्रकार उन राजाको वर देकर और सब मुनियोंको बुलाकर वे श्रीवरदायिनी भगवती वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

अन्तर्हितायां देव्यां तु मुनयस्तत्र संस्थिताः।
विचिन्त्य विधिवत्सर्वे निमेर्देहं समाहरन्॥ २३
अरणिं तत्र संस्थाप्य ममन्थुर्मन्त्रवत्तदा।
मन्त्रहोमैर्महात्मानः पुत्रहेतोर्निमेरथ॥ २४
अरण्यां मथ्यमानायां पुत्रः प्रादुरभूत्तदा।
सर्वलक्षणसम्पन्नः साक्षान्निमिरिवापरः॥ २५
अरण्या मथनाज्जातस्तस्मान्मिथिरिति स्मृतः।
येनायं जनकाज्जातस्तेनासौ जनकोऽभवत्॥ २६
विदेहस्तु निमिर्जातो यस्मात्तस्मात्तदन्वये।
समुद्भूतास्तु राजानो विदेहा इति कीर्तिताः॥ २७
एवं निमिसुतो राजा प्रथितो जनकोऽभवत्।
नगरी निर्मिता तेन गङ्गातीरे मनोहरा॥ २८
मिथिलेति सुविख्याता गोपुराट्टालसंयुता।
धनधान्यसमायुक्ता हट्टशालाविराजिता॥ २९
वंशेऽस्मिन्येऽपि राजानस्ते सर्वे जनकास्तथा।
विख्याता ज्ञानिनः सर्वे विदेहाः परिकीर्तिताः॥ ३०
एतत्ते कथितं राजन्निमेराख्यानमुत्तमम्।
शापाद्यस्य विदेहत्वं विस्तरादुदितं मया॥ ३१

राजोवाच

भगवन्भवता प्रोक्तं निमिशापस्य कारणम्।
श्रुत्वा सन्देहमापन्नं मनो मेऽतीव चञ्चलम्॥ ३२
वसिष्ठो ब्राह्मणः श्रेष्ठो राज्ञश्चैव पुरोहितः।
पुत्रः पङ्कजयोनेस्तु राज्ञा शप्तः कथं मुनिः॥ ३३
गुरुं च ब्राह्मणं ज्ञात्वा निमिना न कृता क्षमा।
यज्ञकर्म शुभं कृत्वा कथं क्रोधमुपागतः॥ ३४
ज्ञात्वा धर्मस्य विज्ञानं कथमिक्ष्वाकुसम्भवः।
क्रोधस्य वशमापन्नः शप्तवान्ब्राह्मणं गुरुम्॥ ३५

व्यास उवाच

क्षमातिदुर्लभा राजन्प्राणिभिरजितात्मभिः।
क्षमावान्दुर्लभो लोके सुसमर्थो विशेषतः॥ ३६

देवीके अन्तर्धान हो जानेपर वहाँ उपस्थित मुनिगण विधिवत् विचार करके निमिके शरीरको ले आये और पुत्रप्राप्तिके लिये उसपर अरणिकाष्ठ रखकर वे महात्मा मन्त्र पढ़कर मन्त्रहोमके द्वारा निमिके देहका मन्थन करने लगे॥ २३-२४॥

तब अरणिके मन्थनसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न और साक्षात् दूसरे निमिकी भाँति था। अरणिके मन्थनसे इसका जन्म हुआ था, अतः यह 'मिथि'—ऐसा कहा गया और जनकसे जन्म होनेके कारण 'जनक' यह नामवाला हुआ। राजा निमि विदेह हुए, अतः उनके कुलमें उत्पन्न सभी राजा 'विदेह' ऐसा कहे गये॥ २५—२७॥

इस प्रकार निमिके पुत्र राजा जनक प्रसिद्ध हुए। उन्होंने गंगाके तटपर एक सुन्दर नगरीका निर्माण कराया, जो मिथिला नामसे विख्यात है। यह गोपुरों, अट्टालिकाओं तथा धन-धान्यसे सम्पन्न और बाजारोंसे सुशोभित है॥ २८-२९॥

इस वंशमें जो अन्य राजा हुए, वे सभी जनक कहे गये; वे सभी विख्यात ज्ञानी और विदेह कहे जाते थे॥ ३०॥

हे राजन्! इस प्रकार निमिकी उत्तम कथाका मैंने आपसे वर्णन किया, शापके कारण उनके विदेह होनेको भी मैंने विस्तारसे कह दिया॥ ३१॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने निमिके शापका कारण बताया, इसे सुनकर मेरा मन संशयग्रस्त और अत्यन्त चंचल हो गया है॥ ३२॥

वसिष्ठजी श्रेष्ठ ब्राह्मण थे, राजाके पुरोहित थे और वे कमलयोनि ब्रह्माजीके पुत्र थे, तब राजा निमिने उन मुनिको कैसे शाप दिया? निमिने उन्हें गुरु और ब्राह्मण जानकर क्षमा क्यों नहीं किया। यज्ञ-जैसा शुभ कार्य करनेपर भी उन्हें क्रोध कैसे आ गया? धर्मका रहस्य जान करके भी इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न राजाने क्रोधके वशीभूत होकर अपने ब्राह्मण गुरुको शाप क्यों दिया?॥ ३३—३५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजितेन्द्रिय प्राणियोंके लिये क्षमा अत्यन्त दुर्लभ है, विशेषरूपसे सामर्थ्यशाली व्यक्तिका क्षमाशील होना इस संसारमें दुर्लभ है॥ ३६॥

सर्वसङ्गपरित्यागी मुनिर्भवतु तापसः।
निद्राक्षुधोर्विजेता च योगाभ्यासे सुनिष्ठितः॥ ३७

कामः क्रोधस्तथा लोभो ह्यहङ्कारश्चतुर्थकः।
दुर्ज्ञेया देहमध्यस्था रिपवस्तेन सर्वथा॥ ३८

न भूतपूर्वः संसारे न चैव वर्ततेऽधुना।
भविता न पुमान्कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्॥ ३९

न स्वर्गे न च भूलोके ब्रह्मलोके हरेः पदे।
कैलासे नेदृशः कश्चिद्यो जयेत रिपूनिमान्॥ ४०

मुनयो ब्रह्मपुत्राश्च तथान्ये तापसोत्तमाः।
तेऽपि गुणत्रयाविद्धाः किं पुनर्मानवा भुवि॥ ४१

कपिलः सांख्यवेत्ता च योगाभ्यासरतः शुचिः।
तेनापि दैवयोगाद्धि प्रदग्धाः सगरात्मजाः॥ ४२

तस्माद्राजन्नहङ्कारात्सञ्जातं भुवनत्रयम्।
कार्यकारणभावात्तु तद्वियुक्तं कथं भवेत्॥ ४३

ब्रह्मा गुणत्रयाविष्टो विष्णुश्चैवाथ शङ्करः।
प्रभवन्ति शरीरेषु तेषां भावाः पृथक्पृथक्॥ ४४

मानवानां च का वार्ता सत्त्वैकान्तव्यवस्थितौ।
गुणानां सङ्करो राजन्सर्वत्र समवस्थितः॥ ४५

कदाचित्सत्त्ववृद्धिः स्यात्कदाचिद्रजसः किल।
कदाचित्तमसो वृद्धिः समभावः कदाचन॥ ४६

निर्गुणः परमात्मासौ निर्लेपः परमोऽव्ययः।
अलक्ष्यः सर्वसत्त्वानामप्रमेयः सनातनः॥ ४७

तथैव परमा शक्तिर्निर्गुणा ब्रह्मसंस्थिता।
दुर्ज्ञेया चाल्पमतिभिः सर्वभूतव्यवस्थितिः॥ ४८

परात्मनस्तथा शक्तेस्तयोरैक्यं सदैव हि।
अभिन्नं तद्वपुर्ज्ञात्वा मुच्यते सर्वदोषतः॥ ४९

तज्ज्ञानादेव मोक्षः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः।
यो वेद स विमुक्तोऽस्मिन्संसारे त्रिगुणात्मके॥ ५०

मुनिको चाहिये कि वह सभी आसक्तियोंका परित्याग करनेवाला, तपस्वी, निद्रा तथा भूखपर विजय प्राप्त करनेवाला और योगाभ्यासमें सम्यक् रूपसे निष्ठा रखनेवाला हो॥ ३७॥

काम, क्रोध, लोभ और चौथा अहंकार—ये शत्रु शरीरमें सदा विद्यमान रहते हैं जो सर्वथा दुर्ज्ञेय होते हैं। संसारमें न पहले कोई व्यक्ति हुआ है, न इस समय है और न तो आगे होगा जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ३८-३९॥

न स्वर्गमें, न पृथ्वीलोकमें, न ब्रह्मलोकमें, न विष्णुलोकमें और न तो कैलासमें भी ऐसा कोई व्यक्ति है, जो इन शत्रुओंको जीत सके॥ ४०॥

जो मुनिगण, ब्रह्माजीके सभी पुत्र तथा अन्य श्रेष्ठ तपस्वीलोग हैं, वे भी तीनों गुणोंसे बँधे रहते हैं, तो मर्त्यलोकके मनुष्योंकी बात ही क्या?॥ ४१॥

कपिलमुनि सांख्यशास्त्रके ज्ञाता, योगाभ्यास-परायण और शुद्ध चित्तवाले थे, किंतु उन्होंने भी दैववश सगर-पुत्रोंको भस्म कर दिया॥ ४२॥

अतः हे राजन्! कार्य-कारणस्वरूप अहंकारसे ही यह त्रिलोक उत्पन्न हुआ है, तो फिर मनुष्य उससे वियुक्त कैसे रह सकता है?॥ ४३॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी त्रिगुणसे बँधे हुए हैं; उनके भी शरीरोंमें गुणोंके पृथक्-पृथक् भाव उत्पन्न होते हैं। जब एकमात्र सत्त्वप्रधान देवताओंकी भी यह स्थिति है तो फिर मनुष्योंकी क्या बात? हे राजन्! गुणोंका संकर (मेल) सर्वत्र विद्यमान है। कभी सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, कभी रजोगुणकी वृद्धि होती है, कभी तमोगुणकी वृद्धि हो जाती है और कभी तीनों गुण बराबर हो जाते हैं॥ ४४—४६॥

वे परमात्मा निर्गुण, निर्लेप, परम अविनाशी, सभी प्राणियोंसे अलक्ष्य, अप्रमेय और सनातन हैं। उसी प्रकार वे परमा शक्ति भी निर्गुण, ब्रह्ममें स्थित, अल्पबुद्धि प्राणियोंके द्वारा दुर्ज्ञेय, समस्त प्राणियोंकी आश्रय हैं। परमात्मा और पराशक्ति—उन दोनोंमें सदासे ऐक्य है। उनका स्वरूप अभिन्न है—यह जानकर प्राणी समस्त दोषोंसे मुक्त हो जाता है। इस ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है—यह वेदान्तका डिंडिमघोष है। जो यह जान लेता है, वह इस त्रिगुणात्मक संसारसे मुक्त हो जाता है॥ ४७—५०॥

ज्ञानं तु द्विविधं प्रोक्तं शाब्दिकं प्रथमं स्मृतम्।
वेदशास्त्रार्थविज्ञानात्तद्भवेद् बुद्धियोगतः॥ ५१

विकल्पास्तत्र बहवो भवन्ति मतिकल्पिताः।
(कुतर्ककल्पिताः केचित्सुतर्ककल्पिताः परे।
वितर्कैर्विभ्रमोत्पत्तिर्विभ्रमाद् बुद्धिभ्रंशता।
बुद्धिभ्रंशाज्ज्ञाननाशः प्राणिनां परिकीर्तितः।)
अनुभवाख्यं द्वितीयं तु ज्ञानं तद्दुर्लभं नृप॥ ५२

तत्तदा प्राप्यते तस्य वेत्तुः सङ्गो यदा भवेत्।
शब्दज्ञानान्न कार्यस्य सिद्धिर्भवति भारत॥ ५३

तस्मान्नानुभवज्ञानं सम्भवत्यतिमानुषम्।
अन्तर्गतं तमश्छेत्तुं शाब्दबोधो हि न क्षमः॥ ५४

यथा न नश्यति तमः कृतया दीपवार्तया।
तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये॥ ५५

आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्।
शीलं परहितत्वं च कोपाभावः क्षमा धृतिः॥ ५६

सन्तोषश्चेति विद्यायाः परिपाकोज्ज्वलं फलम्।
विद्यया तपसा वापि योगाभ्यासेन भूपते॥ ५७

विना कामादिशत्रूणां नैव नाशः कदाचन।
(मनस्तु चञ्चलं राजन्स्वभावादतिदुर्ग्रहम्।
तद्वशः सर्वथा प्राणी त्रिविधो भुवनत्रये।)
कामक्रोधादयो भावाश्चित्तजाः परिकीर्तिताः॥ ५८

ते तदा न भवन्त्येव यदा वै निर्जितं मनः।
तस्मात्तु निमिना राजन्न क्षमा विहिता मुनौ॥ ५९

यथा ययातिना पूर्वं कृता शुक्रे कृतागसि।
भृगुपुत्रेण शप्तोऽपि ययातिर्नृपसत्तमः॥ ६०

न शशाप मुनिं क्रोधाज्जरां राजा गृहीतवान्।
कश्चित्सौम्यो भवेत्कश्चित्क्रूरो भवति पार्थिवः॥ ६१

स्वभावभेदान्नृपते कस्य दोषोऽत्र कल्प्यते।
हैहया भार्गवान्पूर्वं धनलोभात्पुरोहितान्॥ ६२

ज्ञान भी दो प्रकारका कहा गया है। प्रथम शाब्दिक ज्ञान बताया गया है। वह ज्ञान बुद्धिकी सहायतासे वेद और शास्त्रके अर्थविज्ञानद्वारा प्राप्त हो जाता है। बुद्धिवैभिन्न्यके अनुसार इस ज्ञानके भी बहुत-से भेद हो जाते हैं। (इनमेंसे कुछ ज्ञान कुतर्कसे और कुछ सुतर्कसे कल्पित होते हैं। कुतर्कोंसे भ्रान्तिकी उत्पत्ति होती है और विभ्रमसे बुद्धिनाश हो जाता है। बुद्धिनाशसे प्राणियोंका ज्ञान नष्ट हो जाना कहा गया है।) हे राजन्! अनुभव नामक वह दूसरा ज्ञान तो दुर्लभ होता है। वह ज्ञान तब प्राप्त होता है, जब उसके जाननेवालेका संग हो जाय। हे भारत! शब्दज्ञानसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती, इसलिये अनुभवज्ञान अत्यन्त अलौकिक होता है। शब्दज्ञान अन्तःकरणके अन्धकारको दूर करनेमें उसी प्रकार समर्थ नहीं है जैसे दीपकसम्बन्धी वार्ता करनेसे अन्धकार नष्ट नहीं होता॥ ५१—५४½ ॥

कर्म वही है, जो बन्धन न करे और विद्या वही है जो मुक्तिके लिये हो। अन्य कर्म तो मात्र परिश्रमके लिये होता है तथा दूसरी विद्या तो मात्र शिल्पसम्बन्धी कौशल है। शील, परोपकार, क्रोधका अभाव, क्षमा, धैर्य और सन्तोष—यह सब विद्याका अत्यन्त उत्तम फल है। हे भूपते! विद्या, तपस्या अथवा योगाभ्यासके बिना काम आदि शत्रुओंका नाश कभी नहीं हो सकता। (हे राजन्! मन चंचल और स्वभावतः अति दुर्ग्रह होता है, तीनों लोकोंमें तीनों प्रकारके प्राणी उसी मनके वशमें रहते हैं) काम-क्रोध आदि भाव चित्तजन्य कहे गये हैं। ये सब उस समय नहीं उत्पन्न होते, जब मनपर विजय पा ली जाती है। हे राजन्! इसीलिये निमिने मुनिको उस प्रकार क्षमा नहीं किया, जिस प्रकार ययातिने अपराध करनेपर भी शुक्राचार्यको क्षमा कर दिया था। पूर्वकालमें भृगुपुत्र शुक्राचार्यने नृपश्रेष्ठ ययातिको शाप दे दिया था, लेकिन राजाने क्रोधित होकर मुनिको शाप नहीं दिया और स्वयं वृद्धावस्थाको स्वीकार कर लिया था॥ ५५—६०½ ॥

हे राजन्! कोई राजा शान्तस्वभाव और कोई क्रूर होता है। स्वभावमें भेद होनेके कारण इसमें किसका दोष कहा जाय? पूर्वकालमें हैहयवंशी क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याजनित पापकी उपेक्षा करके धनके

ब्राह्मणान्मूलतः सर्वांश्चिच्छिदुः क्रोधमूर्च्छिताः।
पातकं पृष्ठतः कृत्वा ब्रह्महत्यासमुद्भवम्॥ ६३

लोभसे भृगुवंशी ब्राह्मण पुरोहितोंका कोपाविष्ट होकर समूलोच्छेद कर दिया था॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
देवीमहिम्नि नानाभाववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

हैहयवंशी क्षत्रियोंद्वारा भृगुवंशी ब्राह्मणोंका संहार

जनमेजय उवाच

कुले कस्य समुत्पन्नाः क्षत्रिया हैहयाश्च ते।
ब्रह्महत्यामनादृत्य निजघ्नुर्भार्गवांश्च ये॥ १

वैरस्य कारणं तेषां किं मे ब्रूहि पितामह।
निमित्तेन विना क्रोधं कथं कुर्वन्ति सत्तमाः॥ २

वैरं पुरोहितैः सार्धं कस्मात्तेषामजायत।
नाल्पहेतोर्हि तद्वैरं क्षत्रियाणां भविष्यति॥ ३

अन्यथा ब्राह्मणान्पूज्यान्कथं जघ्नुरनागसः।
बाहुजा बलवन्तोऽपि पापभीताः कथं न ते॥ ४

स्वल्पेऽपराधे को हन्याद्वाडवान्क्षत्रियर्षभः।
सन्देहो मे मुनिश्रेष्ठ कारणं वक्तुमर्हसि॥ ५

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा तेन राज्ञा सत्यवतीसुतः।
उवाच परमप्रीतः कथां संस्मृत्य चेतसा॥ ६

व्यास उवाच

शृणु पारिक्षिते वार्तां क्षत्रियाणां पुरातनीम्।
आश्चर्यकारिणीं सम्यग्विदितां च पुरा मया॥ ७

कार्तवीर्येति नाम्नाभूद्धैहयः पृथिवीपतिः।
सहस्रबाहुर्बलवानर्जुनो धर्मतत्परः॥ ८

दत्तात्रेयस्य शिष्योऽभूदवतारो हरेरिव।
सिद्धः सर्वार्थदः शाक्तो भृगूणां याज्य एव सः॥ ९

जनमेजय बोले—जिन हैहय क्षत्रियोंने ब्रह्महत्याकी लेशमात्र भी चिन्ता न करके भृगुवंशी ब्राह्मणोंका वध कर दिया, वे किसके कुलमें उत्पन्न हुए थे?॥ १॥

हे पितामह! उनके वैरका क्या कारण था, आप मुझे बतलाइये। श्रेष्ठजन किसी कारणविशेषके बिना क्रोध कैसे कर सकते हैं?॥ २॥

अपने ही पुरोहितोंके साथ उनकी शत्रुता किसलिये हो गयी थी? सम्भवतः उन क्षत्रियोंकी उस शत्रुताके पीछे कोई महान् कारण रहा होगा। अन्यथा पापसे भयभीत रहनेवाले वे पराक्रमी क्षत्रिय निरपराध एवं पूजनीय ब्राह्मणोंकी हत्या क्यों करते?॥ ३-४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कौन श्रेष्ठ क्षत्रिय होगा, जो अल्प अपराधके कारण ब्राह्मणोंका वध करेगा? मुझे तो इस विषयमें महान् शंका हो रही है, इसका कारण बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

सूतजी बोले—तब राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर सत्यवतीनन्दन व्यासजी परम प्रसन्न हुए और मनमें उस वृत्तान्तका स्मरण करके कहने लगे॥ ६॥

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! मेरे द्वारा पूर्वकालमें सम्यक् प्रकारसे ज्ञात, क्षत्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाली इस आश्चर्यजनक प्राचीन कथाको आप सुनिये?॥ ७॥

कार्तवीर्य नामक एक हैहयवंशीय राजा हो चुके हैं। सदा धर्ममें तत्पर रहनेवाले उन बलवान् राजाकी हजार भुजाएँ थीं, वे सहस्रार्जुन भी कहे जाते थे॥ ८॥

वे भगवान् विष्णुके अवतारस्वरूप, दत्तात्रेयके शिष्य, भगवतीके उपासक, परम सिद्ध, सब कुछ देनेमें समर्थ तथा भृगुवंशी ब्राह्मणोंके यजमान थे॥ ९॥

यज्वा परमधर्मिष्ठः सदा दानपरायणः।
ददौ वित्तं भृगुभ्योऽसौ कृत्वा यज्ञाननेकशः॥ १०

धनिनस्ते द्विजा जाता भृगवो नृपदानतः।
हयरत्नसमृद्ध्याढ्याः सञ्जाताः प्रथिता भुवि॥ ११

स्वर्याते नृपशार्दूले कार्तवीर्यार्जुने पुनः।
हैहया निर्धना जाताः कालेन महता नृप॥ १२

धनकार्यं समुत्पन्नं हैहयानां कदाचन।
याचिष्णवोऽभिजग्मुस्तान्भृगूंस्ते हैहया नृप॥ १३

विनयं क्षत्रियाः कृत्वाप्ययाचन्त धनं बहु।
न ददुस्तेऽतिलोभार्ता नास्ति नास्तीतिवादिनः॥ १४

भूमौ च निदधुः केचिद् भृगवो धनमुत्तमम्।
ददुः केचिद् द्विजातिभ्यो ज्ञात्वा क्षत्रियतो भयम्॥ १५

कृत्वा स्थानान्तरे द्रव्यं ब्राह्मणा भयविह्वलाः।
त्यक्त्वाश्रमान्ययुः सर्वे भृगवस्तृष्णयान्विताः॥ १६

याज्यांश्च दुःखितान्दृष्ट्वा न ददुर्लोभमोहिताः।
पलायित्वा गताः सर्वे गिरिदुर्गानुपाश्रिताः॥ १७

ततस्ते हैहयास्तात दुःखिताः कार्यगौरवात्।
भृगूणामाश्रमाञ्जग्मुर्द्रव्यार्थं क्षत्रियर्षभाः॥ १८

भृगूंस्तु निर्गतान्वीक्ष्य शून्यांस्त्यक्त्वा गृहानथ।
चखनुर्भूतलं तत्र द्रव्यार्थं हैहया भृशम्॥ १९

खनताधिगतं वित्तं केनचिद् भृगुवेश्मनि।
ददृशुः क्षत्रियाः सर्वे तद्वित्तं श्रमकर्शिताः॥ २०

यत्र यत्र समुत्पन्नं भूरि द्रव्यं महीतलात्।
तदा ते पार्श्वभागस्थब्राह्मणानां गृहाण्यपि॥ २१

वे यज्ञ करनेवाले, धर्मनिष्ठ तथा सदैव दान देनेमें रुचि रखनेवाले थे। उन्होंने अनेक यज्ञ करके अपनी विपुल सम्पदा भृगुवंशी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी। राजाके द्वारा दिये गये दानसे वे भृगुवंशी ब्राह्मण बड़े धनी हो गये। घोड़े तथा रत्न आदि सम्पदासे युक्त हो जानेके कारण जगत्में वे अतीव प्रसिद्ध हो गये॥ १०-११॥

हे राजन्! नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्यार्जुनके दीर्घकालतक राज्य करनेके पश्चात् उनके स्वर्ग चले जानेपर हैहयवंशी क्षत्रिय धनहीन हो गये॥ १२॥

हे राजन्! किसी समय हैहय क्षत्रियोंको कार्य-विशेषके लिये धनकी आवश्यकता पड़ गयी। तब वे धन माँगनेकी इच्छासे भृगुवंशी ब्राह्मणोंके पास गये॥ १३॥

उन क्षत्रियोंने अत्यधिक विनम्रतापूर्वक उन ब्राह्मणोंसे धनकी याचना की, किंतु लोभके वशीभूत उन ब्राह्मणोंने कुछ नहीं दिया और बार-बार कहते रहे—'मेरे पास नहीं है, मेरे पास नहीं है'॥ १४॥

हैहयवंशी क्षत्रियोंसे भयभीत होकर कुछ भृगुवंशी ब्राह्मणोंने अपनी प्रचुर सम्पत्ति जमीनमें गाड़ दी और कुछने अन्य ब्राह्मणोंको दे दी॥ १५॥

भयाक्रान्त तथा लोभके वशीभूत वे सभी भृगुवंशी ब्राह्मण अपना-अपना धन स्थानान्तरित करके अपने आश्रम छोड़कर अन्यत्र चले गये॥ १६॥

अपने यजमानोंको दुःखित देखकर भी लोभसे विमोहित ब्राह्मणोंने उन्हें कुछ भी नहीं दिया। उन सभीने भागकर पर्वतकी गुफाओंका आश्रय ग्रहण किया॥ १७॥

हे तात! तत्पश्चात् कष्ट झेल रहे अनेक हैहय क्षत्रियप्रमुख विशेष कार्यवश द्रव्यप्राप्तिके लिये भृगुवंशी ब्राह्मणोंके आश्रमोंपर पहुँचे॥ १८॥

अपने-अपने आश्रमको सुनसान छोड़कर भृगुवंशी ब्राह्मणोंको बाहर गया हुआ देखकर वे हैहय क्षत्रिय धनके लिये वहाँकी जमीन खोदने लगे॥ १९॥

तत्पश्चात् किसी ब्राह्मणके घरमें जमीन खोद रहे किसी क्षत्रियने कुछ पाया। अब परिश्रमके कारण क्षीणकाय सभी क्षत्रियोंने उस धनको देख लिया। उस समयसे जहाँ-जहाँ भी पता चलता, वे जमीन खोदकर समस्त धन ले लेते थे। धनके लोभसे आस-पास रहनेवाले ब्राह्मणोंके भी घरोंको खोदनेपर उन

निर्भिद्य हैहया द्रव्यं ददृशुर्धनलिप्सया।
ब्राह्मणाश्चुक्रुशुः सर्वे भीताश्च शरणं गताः॥ २२

अतिचिन्वत्सु विप्राणां भवनान्निःसृतं बहु।
निजघ्नुस्ताञ्छरैः कोपाद्बाडवाञ्छरणागतान्॥ २३

ययुस्ते गिरिदुर्गांश्च यत्र वै भृगवः स्थिताः।
आगर्भादनुकृन्तन्तश्चेरुश्चैव महीमिमाम्॥ २४

प्राप्तान्प्राप्तान्भृगून्सर्वान्निजघ्नुर्निशितैः शरैः।
आबालवृद्धानपरानवमन्य च पातकम्॥ २५

एवमुत्पाट्यमानेषु भार्गवेषु यतस्ततः।
हन्युर्गर्भांश्च नारीणां गृहीत्वा हैहया भृशम्॥ २६

रुरुदुस्ताः स्त्रियः कामं कुरर्य इव दुःखिताः।
गर्भाश्च कृन्तिता यासां क्षत्रियैः पापनिश्चयैः॥ २७

अन्येऽप्याहुश्च तान्दृप्तान्मुनयस्तीर्थवासिनः।
मुञ्चन्तु क्षत्रियाः क्रोधं ब्राह्मणेषु भयावहम्॥ २८

अयुक्तमेतदारब्धं भवद्भिः कर्म गर्हितम्।
यद् गर्भान्भृगुपत्नीनां निहन्युः क्षत्रियर्षभाः॥ २९

अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमाप्नुयात्।
तस्माज्जुगुप्सितं कर्म त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ३०

तानाहुर्हैहयाः क्रुद्धा मुनीनथ दयापरान्।
भवन्तः साधवः सर्वे नार्थज्ञाः पापकर्मणाम्॥ ३१

एभिर्हृतं धनं सर्वं पूर्वजानां महात्मनाम्।
वञ्चयित्वा छलाभिज्ञैर्मार्गे पाटच्चरैरिव॥ ३२

एते प्रतारका दम्भास्तादृशा बकवृत्तयः।
उत्पन्ने च महाकार्ये प्रार्थिता विनयेन ते॥ ३३

क्षत्रियोंको पर्याप्त धन दिखलायी पड़ा। इसपर सभी ब्राह्मण रोने-चिल्लाने लगे और भयभीत होकर क्षत्रियोंके शरणागत हो गये॥ २०—२२॥

बार-बार खोजते रहनेपर उन ब्राह्मणोंके घरसे प्रायः सभी धन निकल चुका था। फिर भी वे क्षत्रिय उन शरणागत ब्राह्मणोंपर कोप करके बाणोंसे प्रहार करते रहे॥ २३॥

इसके पश्चात् वे उन पर्वतकी गुफाओंमें पहुँच गये, जहाँ भृगुवंशी ब्राह्मण स्थित थे। इस प्रकार गर्भस्थ शिशुओंसहित ब्राह्मणोंको नष्ट करते हुए क्षत्रिय इस पृथ्वीमण्डलपर घूमने लगे॥ २४॥

उन्हें जहाँ कहीं भृगुवंशी बालक, वृद्ध तथा अन्य भी मिल जाते थे, वे पापकी परवा किये बिना उन सभीको तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालते थे॥ २५॥

इस प्रकार इधर-उधर सभी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके मार दिये जानेपर उन हैहय क्षत्रियोंने स्त्रियोंको पकड़-पकड़कर उनका गर्भ नष्ट कर डाला। पापकृत्यपर तुले हुए क्षत्रियोंके द्वारा जिन स्त्रियोंके गर्भ नष्ट कर दिये जाते थे, वे बेचारी अत्यन्त दुःखित होकर कुररी पक्षीकी भाँति विलाप करने लगती थीं॥ २६-२७॥

तब अन्य तीर्थवासी मुनियोंने भी अभिमानमें चूर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंसे कहा—हे क्षत्रियो! तुमलोग ब्राह्मणोंपर ऐसा भयंकर क्रोध करना छोड़ दो। हे श्रेष्ठ क्षत्रियो! तुमलोगोंने तो अत्यन्त निन्दनीय तथा अनुचित कार्य आरम्भ कर दिया है जो कि तुमलोग भृगुवंशी ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका गर्भोच्छेद कर रहे हो। अत्यन्त उग्र पाप अथवा पुण्यका फल इसी लोकमें प्राप्त हो जाता है। इसलिये कल्याणकी इच्छा रखनेवाले प्राणीको गर्हित कर्मका परित्याग कर देना चाहिये॥ २८—३०॥

तत्पश्चात् क्रोधमें भरे हुए उन हैहय क्षत्रियोंने उन परम दयालु मुनियोंसे कहा—आप सभी लोग साधु हैं, अतः पापकर्मोंका रहस्य नहीं जानते॥ ३१॥

छल-छद्मको जाननेवाले इन ब्राह्मणोंने कपट करके हमारे महात्मा पूर्वजोंका सारा धन उसी प्रकार छीन लिया था जैसे कोई लुटेरा किसी पथिकका धन छीन लेता है॥ ३२॥

ये सभी ठग, दम्भी तथा बकवृत्तिवाले (पाखण्डी) हैं। आवश्यक कार्य पड़नेपर हमने विनम्रतापूर्वक इनसे धनकी याचना की थी, किंतु इन्होंने नहीं दिया।

न ददुः प्रार्थितं विप्राः पादवृद्ध्यापि याचिताः।
नास्तीतिवादिनः स्तब्धाः दुःखिताान्वीक्ष्य याज्यकान्॥ ३४

धनं प्राप्तं कार्तवीर्याद्रक्षितं केन हेतुना।
न कृताः क्रतवः किं तैर्दानं चार्थिषु भूरिशः॥ ३५

न सञ्चितव्यं विप्रैस्तु धनं क्वापि कदाचन।
यष्टव्यं विधिवद्देयं भोक्तव्यं च यथासुखम्॥ ३६

द्रव्ये चौरभयं प्रोक्तं तथा राजभयं द्विजाः।
वह्नेर्भयं महाघोरं तथा धूर्तभयं महत्॥ ३७

येन केनाप्युपायेन धनं त्यजति रक्षकम्।
अथवासौ मृतो याति द्रव्यं त्यक्त्वा ह्यसद्गतिम्॥ ३८

पादवृद्ध्या तथास्माभिः प्रार्थितं विनयान्वितैः।
तथापि लोभसन्दिग्धैर्न दत्तं नः पुरोहितैः॥ ३९

दानं भोगस्तथा नाशो धनस्य गतिरीदृशी।
दानभोगौ कृतीनां च नाशः पापात्मनां किल॥ ४०

न दाता न च यो भोक्ता कृपणो गुप्तितत्परः।
राज्ञासौ सर्वथा दण्ड्यो वञ्चको दुःखभाङ्नरः॥ ४१

तस्माद्वयं गुरूनेतान्वञ्चकान्ब्राह्मणाधमान्।
हन्तुं समुद्यताः सर्वे न क्रोधव्यं महात्मभिः॥ ४२

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा हेतुमद्वाक्यं तानाश्वास्य मुनीनथ।
विचेरुश्च विचिन्वाना भृगुदारानेकशः॥ ४३

भयार्ता भृगुपत्न्यस्तु हिमवन्तं धराधरम्।
प्रपेदिरे रुदन्त्यश्च वेपमानाः कृशा भृशम्॥ ४४

एवं ते हैहयैर्विप्राः पीडिता धनकामुकैः।
निहताश्च यथाकामं संरब्धैः पापकर्मभिः॥ ४५

यहाँतक कि चतुर्थांशवृद्धिपर भी धन माँगनेपर हम याचकोंको अत्यन्त दुःखित देखकर इन निष्ठुर ब्राह्मणोंने 'हमारे पास नहीं है'—ऐसा कहा॥ ३३-३४॥

महाराज कार्तवीर्यसे धन प्राप्त करके इन्होंने किस प्रयोजनसे धनकी रक्षा की? इन्होंने न तो यज्ञ किये और न तो याचकोंको ही प्रचुर दान दिया॥ ३५॥

ब्राह्मणोंको कभी भी धनका संग्रह नहीं करना चाहिये। यज्ञ करने, दान देने तथा सुखोपभोगमें यथेच्छ धनका उपयोग करना चाहिये॥ ३६॥

हे विप्रो! पासमें धन रहनेपर चोर, राजा, अग्नि तथा धूर्तोंसे महान् भय कहा गया है॥ ३७॥

जिस किसी भी उपायसे अपनी ही रक्षा करनेवालेको धन छोड़ देता है अथवा वह व्यक्ति धन छोड़कर स्वयं मर जाता है और दुर्गतिको प्राप्त होता है॥ ३८॥

हम सबने बड़ी विनम्रताके साथ इन लोगोंसे चतुर्थांशवृद्धिपर धन माँगा था, फिर भी लोभके कारण संशयमें पड़े हुए पुरोहितोंने हमें धन नहीं दिया॥ ३९॥

दान, भोग तथा नाश—धनकी इस प्रकारकी गति होती है। पुण्यशाली प्राणियोंके धनकी गति दान तथा भोग है और दुष्ट आत्मावाले प्राणियोंके धनकी गति नाश है। जो कृपण व्यक्ति न दान करता है और न धनका उपभोग करता है, अपितु केवल धनके संग्रहमें लगा रहता है, वह वंचक प्राणी राजाके द्वारा सर्वथा दण्डनीय है और दुःखका भागी होता है॥ ४०-४१॥

इसीलिये इन वंचक गुरुओं तथा अधम ब्राह्मणोंको मारनेके लिये हम सभी उद्यत हुए हैं। आप महात्माजन इसके लिये हमपर कोप न करें॥ ४२॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सहेतुक वचन कहकर उन मुनियोंको पूर्ण आश्वस्त करनेके बाद वे पुनः भृगुकुलकी स्त्रियोंको खोजते हुए भ्रमण करने लगे॥ ४३॥

भयार्त तथा अत्यन्त कृश शरीरवाली भृगुवंशीय पत्नियाँ हिमवान् पर्वतपर रोती तथा काँपती हुई पहुचीं॥ ४४॥

इस प्रकार धनलोलुप तथा पापकर्मोंसे अभिभूत हैहयोंने उन ब्राह्मणोंको बहुत पीड़ित किया तथा उनका संहार किया॥ ४५॥

लोभ एव मनुष्याणां देहसंस्थो महारिपुः।
सर्वदुःखाकरः प्रोक्तो दुःखदः प्राणनाशकः॥ ४६

सर्वपापस्य मूलं हि सर्वदा तृष्णयान्वितः।
विरोधकृत्त्रिवर्णानां सर्वार्तेः कारणं तथा॥ ४७

लोभात्त्यजन्ति धर्मं वै कुलधर्मं तथैव हि।
मातरं भ्रातरं हन्ति पितरं बान्धवं तथा॥ ४८

गुरुं मित्रं तथा भार्यां पुत्रं च भगिनीं तथा।
लोभाविष्टो न किं कुर्यादकृत्यं पापमोहितः॥ ४९

क्रोधात्कामादहङ्काराल्लोभ एव महारिपुः।
प्राणांस्त्यजति लोभेन किं पुनः स्यादनावृतम्॥ ५०

पूर्वजास्ते महाराज धर्मज्ञाः सत्पथे स्थिताः।
पाण्डवाः कौरवाश्चैव लोभेन निधनं गताः॥ ५१

यत्र भीष्मश्च द्रोणश्च कृपः कर्णश्च बाह्लिकः।
भीमसेनो धर्मपुत्रस्तथैवार्जुनकेशवौ॥ ५२

तथापि युद्धमत्युग्रं कृतं तैश्च परस्परम्।
कुटुम्बकदनं भूरि कृतं लोभातुरैरिह॥ ५३

हतो द्रोणो हतो भीष्मस्तथैव पाण्डवात्मजाः।
भ्रातरः पितरः पुत्राः सर्वे वै निहता रणे॥ ५४

तस्माल्लोभाभिभूतस्तु किं न कुर्यान्नरः किल।
हैहयैर्निहताः सर्वे भृगवः पापबुद्धिभिः॥ ५५

लोभ मनुष्योंके देहमें रहनेवाला सबसे बड़ा शत्रु है। यह समस्त दुःखोंका आगार, दुःखदायी तथा प्राणोंका नाश करनेवाला कहा गया है॥ ४६॥

यह लोभ सम्पूर्ण पापोंकी जड़ तथा सभी दुःखोंका कारण है। लोभसे युक्त प्राणी सदा तीनों वर्णोंके लोगोंसे विरोध रखनेवाला होता है॥ ४७॥

लोभके वशीभूत प्राणी अपने सदाचार तथा कुल-धर्मका भी परित्याग कर देते हैं। वे अपने माता, पिता, भाई, बान्धव, गुरु, मित्र, पत्नी, पुत्र तथा बहनतकका वध कर देते हैं। इस प्रकार लोभके वशीभूत मनुष्य पापसे विमोहित होकर कौन-सा दुष्कर्म नहीं कर डालता॥ ४८-४९॥

क्रोध, काम तथा अहंकारसे भी बढ़कर लोभ महान् शत्रु है। लोभमें पड़कर मनुष्य अपने प्राणतक गँवा देता है; फिर इसके विषयमें और क्या कहा जाय!॥ ५०॥

हे महाराज! आपके पूर्वज धर्मज्ञ तथा सत्पथपर चलनेवाले थे, किंतु वे पाण्डव तथा कौरव लोभके कारण ही मारे गये। जहाँ भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, बाह्लीक, भीमसेन, धर्मपुत्र युधिष्ठिर, अर्जुन तथा श्रीकृष्ण थे, फिर भी लोभके वशीभूत उन्होंने आपसमें भीषण युद्ध किया और अपने कुटुम्बका महाविनाश कर डाला। उस युद्धमें द्रोण, भीष्म, पाण्डवोंके पुत्र, भाई, पिता, पुत्र सभी मारे गये॥ ५१—५४॥

अतएव लोभपरायण मनुष्य क्या नहीं कर डालता? [लोभके कारण ही] पापबुद्धि हैहयवंशी क्षत्रियोंने भृगुकुलके समस्त ब्राह्मणोंको मार डाला था॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयैर्धनाहरणेन सह भृगूणां वधवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवतीकी कृपासे भार्गव-ब्राह्मणीकी जंघासे तेजस्वी बालककी उत्पत्ति, हैहयवंशी क्षत्रियोंकी उत्पत्तिकी कथा

जनमेजय उवाच

कथं ताश्च स्त्रियः सर्वा भृगूणां दुःखसागरात्।
मुक्ता वंशः पुनस्तेषां ब्राह्मणानां स्थिरोऽभवत्॥ १
हैहयैः किं कृतं कार्यं हत्वा तान्ब्राह्मणानपि।
क्षत्रियैर्लोभसंयुक्तैः पापाचारैर्वदस्व तत्॥ २

जनमेजय बोले—भृगुवंशकी स्त्रियोंका पुनः दुःखरूप समुद्रसे कैसे उद्धार हुआ और उन ब्राह्मणोंकी वंशपरम्परा किस प्रकार स्थिर रही?॥ १॥

लोभके वशीभूत तथा पापाचारी हैहय क्षत्रियोंने उन ब्राह्मणोंको मारनेके पश्चात् कौन-सा कार्य किया? उसे आप बताइये॥ २॥

न तृप्तिरस्ति मे ब्रह्मन् पिबतस्ते कथामृतम्।
पावनं सुखदं नृणां परलोके फलप्रदम्॥ ३

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
यथा स्त्रियस्तु ता मुक्ता दुःखात्तस्माद्दुरत्ययात्॥ ४

भृगुपत्न्यो यदा राजन् हिमवन्तं गिरिं गताः।
भयत्रस्ता विभग्नाशा हैहयैः पीडिता भृशम्॥ ५

गौरीं तत्र तु संस्थाप्य मृण्मयीं सरितस्तटे।
उपोषणपराश्चक्रुर्निश्चयं मरणं प्रति॥ ६

स्वप्ने गत्वा तदा देवी प्राह ताः प्रमदोत्तमाः।
युष्मासु मध्ये कस्याश्चिद्भविता चोरुजः पुमान्॥ ७

मदंशशक्तिसम्भिन्नः स वः कार्यं विधास्यति।
इत्यादिश्य पराम्बा सा पश्चादन्तर्हिताभवत्॥ ८

जागृतास्तु ततः सर्वा मुदमापुर्वराङ्गनाः।
काचित्तासां भयोद्विग्ना कामिनी चतुरा भृशम्॥ ९

दधार चोरुणैकेन गर्भं सा कुलवृद्धये।
पलायनपरा दृष्टा क्षत्रियैर्ब्राह्मणी यदा॥ १०

विह्वला तेजसा युक्ता तदा ते दुद्रुवुर्भृशम्।
गृह्यतां वध्यतां नारी सगर्भा याति सत्वरा॥ ११

इति ब्रुवन्तः सम्प्राप्ताः कामिनीं खड्गपाणयः।
सा भयार्ता तु तान्दृष्ट्वा रुरोद समुपागतान्॥ १२

गर्भस्य रक्षणार्थं सा चुक्रोशातिभयातुरा।
रुदतीं मातरं श्रुत्वा दीनां प्राणविवर्जिताम्॥ १३

निराधारां क्रन्दमानां क्षत्रियैर्भृशतापिताम्।
गृहीतामिव सिंहेन सगर्भां हरिणीं यथा॥ १४

साश्रुनेत्रां वेपमानां सङ्क्रुध्य बालकस्तदा।
भित्त्वोरुं निर्जगामाशु गर्भः सूर्य इवापरः॥ १५
मुष्णन्दृष्टीः क्षत्रियाणां तेजसा बालकः शुभः।

हे ब्रह्मन्! आपके द्वारा कथित इस पवित्र, लोगोंके लिये सुखदायक तथा परलोकमें फल देनेवाले कथामृतका पान करते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है॥ ३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, वे स्त्रियाँ उस भयावह दुःखसे जिस प्रकार मुक्त हुईं, अब मैं उस पापनाशिनी कथाका वर्णन करूँगा॥ ४॥

हे राजन्! जब क्षत्रिय हैहय भृगुकुलकी नारियोंको बहुत पीड़ित करने लगे तब वे भयभीत तथा निराश होकर हिमालयपर्वतपर चली गयीं॥ ५॥

उन्होंने वहाँ नदीके तटपर गौरीकी मृण्मयी प्रतिमा स्थापित करके निराहार रहते हुए [उपासनामें लीन होकर] अपने मरणके प्रति पूरा निश्चय कर लिया॥ ६॥

एक समय स्वप्नमें भगवती जगदम्बाने उन उत्तम स्त्रियोंके पास पहुँचकर कहा—तुमलोगोंमेंसे किसीकी जंघासे एक पुरुष उत्पन्न होगा। मेरा अंशभूत वही शक्तिमान् पुरुष तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेगा। ऐसा कहकर पराम्बा भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ७-८॥

जागनेपर वे सभी स्त्रियाँ बहुत प्रसन्न हुईं। उनमेंसे किसी चतुर, कामिनी स्त्रीने जो भयसे त्रस्त थी; वंशवृद्धिहेतु अपनी एक जंघामें गर्भ धारण किया॥ ९½॥

जब उन हैहय क्षत्रियोंने व्याकुल तथा तेजयुक्त उस स्त्रीको भागती हुई देखा तब वे उसके पीछे दौड़ पड़े॥ १०½॥

'यह गर्भ धारण करके वेगपूर्वक भागी जा रही है, इसे पकड़ लो और मार डालो'—इस प्रकार कहते हुए हाथमें तलवार लेकर वे उस स्त्रीके पास पहुँच गये॥ ११½॥

भयसे घबरायी हुई वह स्त्री अपने समीप आये हुए उन क्षत्रियोंको देखकर रोने लगी और पुनः गर्भरक्षाके लिये भयसे विह्वल होकर जोर-जोरसे विलाप करने लगी॥ १२½॥

तब दयनीय दशावाली, प्राणहीन-सी प्रतीत हो रही, आश्रयहीन, क्षत्रियोंसे पीडित होनेके कारण क्रन्दन करती हुई, सिंहके द्वारा पकड़ी गयी गर्भवती हिरनीके समान प्रतीत होनेवाली, आँसूभरे नेत्रोंवाली तथा थर-थर काँपती हुई माताका रुदन सुनकर वह सुन्दर गर्भस्थ बालक कुपित होकर अपने तेजसे क्षत्रियोंकी नेत्र-ज्योतिका हरण करता हुआ जंघाका भेदन करके दूसरे सूर्यकी भाँति शीघ्र ही बाहर निकल आया॥ १३—१५½॥

दर्शनाद् बालकस्याशु सर्वे जाता विलोचनाः॥ १६

बभ्रमुर्गिरिदुर्गेषु जन्मान्धा इव क्षत्रियाः।
चिन्तितं मनसा सर्वैः किमेतदिति साम्प्रतम्॥ १७

सर्वे चक्षुर्विहीना यज्जाताः स्म बालदर्शनात्।
ब्राह्मण्यास्तु प्रभावोऽयं सतीव्रतबलं महत्॥ १८

क्षणाद्वामोघसङ्कल्पाः किं करिष्यन्ति दुःखिताः।
इति सञ्चिन्त्य मनसा नेत्रहीना निराश्रयाः॥ १९

ब्राह्मणीं शरणं जग्मुर्हैहया गतचेतसः।
प्रणेमुस्तां भयत्रस्तां कृताञ्जलिपुटाश्च ते॥ २०

ऊचुश्चैनां भयोद्विग्नां दृष्ट्यर्थं क्षत्रियर्षभाः।
प्रसीद सुभगे मातः सेवकास्ते वयं किल॥ २१

कृतापराधा रम्भोरु क्षत्रियाः पापबुद्धयः।
दर्शनात्तव तन्वङ्गि जाताः सर्वे विलोचनाः॥ २२

मुखं ते नैव पश्यामो जन्मान्धा इव भामिनि।
अद्भुतं ते तपो वीर्यं किं कुर्मः पापकारिणः॥ २३

शरणं ते प्रपन्नाः स्मो देहि चक्षूंषि मानदे।
अन्धत्वं मरणादुग्रं कृपां कर्तुं त्वमर्हसि॥ २४

पुनर्दृष्टिप्रदानेन सेवकान्क्षत्रियान्कुरु।
उपरम्य च गच्छेम सहिताः पापकर्मणः॥ २५

अतः परं न कर्तव्यमीदृशं कर्म कर्हिचित्।
भार्गवाणां तु सर्वेषां सेवकाः स्मो वयं किल॥ २६

अज्ञानाद्यत्कृतं पापं क्षन्तव्यं तत्त्वयाधुना।
वैरं नातः परं क्वापि भृगुभिः क्षत्रियैः सह॥ २७

कर्तव्यं शपथैः सम्यग्वर्तितव्यं तु हैहयैः।
सपुत्रा भव सुश्रोणि प्रणताः स्मो वयं च ते॥ २८

प्रसादं कुरु कल्याणि न द्विष्यामः कदाचन।

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी विस्मयान्विता॥ २९

उस बालककी ओर देखते ही वे सभी दृष्टिहीन हो गये। तत्पश्चात् वे क्षत्रिय जन्मान्धकी भाँति पर्वतकी गुफाओंमें इधर-उधर भटकने लगे। सभी क्षत्रिय मनमें विचार करने लगे कि इस समय यह क्या हो गया है कि हम सभी लोग बालकको देखनेमात्रसे चक्षुहीन हो गये। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी ब्राह्मणीका यह प्रभाव है; क्योंकि सतीव्रत एक महान् बल है। अमोघ संकल्पवाली दुःखित स्त्रियाँ क्षणभरमें न जाने क्या कर डालेंगी!॥ १६—१८½ ॥

ऐसा मनमें सोचकर नेत्रहीन, निराश्रय तथा चेतना-रहित हैहयवंशी क्षत्रिय उस ब्राह्मणीकी शरणमें गये और उन्होंने भयसे त्रस्त उस स्त्रीको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया। वे श्रेष्ठ क्षत्रिय अपनी नेत्रज्योतिके लिये इस भयाकुल ब्राह्मणीसे कहने लगे— ॥ १९-२०½ ॥

हे सुभगे! हे माता! हम सब आपके सेवक हैं। अब आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइये। हे रम्भोरु! पाप बुद्धिवाले हम क्षत्रियोंने अपराध किया है। हे तन्वंगि! इसीलिये आपको देखते ही हम सब चक्षुविहीन हो गये। हे भामिनि! जन्मसे अन्धे व्यक्तिकी भाँति हम आपका मुखदर्शन कर पानेमें समर्थ नहीं हैं। आपका तप तथा पराक्रम अद्भुत है; हम पापपरायण कर ही क्या सकते हैं? हे मानदे! हम आपकी शरणमें हैं। हमें नेत्र दीजिये; क्योंकि नेत्रज्योतिसे विहीन हो जाना मृत्युसे भी कष्टकारक होता है। आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये। फिरसे नेत्रज्योति देकर इन समस्त क्षत्रियोंको अपना सेवक बना लीजिये। इसके बाद पापकर्मसे रहित होकर हमलोग साथ-साथ चले जायँगे। अब हमलोग इस प्रकारका कर्म कभी नहीं करेंगे। अब हम सभी भार्गव ब्राह्मणोंके सेवक हो गये। हमलोगोंने अज्ञानवश जो भी पाप किया है उसे आप क्षमा करें। हम हैहय क्षत्रिय शपथपूर्वक कहते हैं कि आजसे कभी भी भृगुवंशी ब्राह्मणोंके साथ हमें वैरभाव नहीं रखना चाहिये और यथोचित व्यवहार करना चाहिये। हे सुश्रोणि! आप पुत्रवती होवें। हम आपकी शरणमें हैं। हे कल्याणि! आप कृपा करें; हमलोग अब कभी भी द्वेषभाव नहीं रखेंगे॥ २१—२८½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उन क्षत्रियोंकी यह बात सुनकर ब्राह्मणी विस्मयमें पड़ गयी और उसने शरणागत तथा दुर्गतिको प्राप्त उन नेत्रहीन

तानाह प्रणतान्दुःस्थानाश्वास्य गतलोचनान्।
गृहीता न मया दृष्टिर्युष्माकं क्षत्रियाः किल॥ ३०

नाहं रुषान्विता सत्यं कारणं शृणुताद्य यत्।
अयं च भार्गवो नूनमूरुजः कुपितोऽद्य वः॥ ३१

चक्षूंषि तेन युष्माकं स्तम्भितानि रुषावता।
स्वबन्धून्निहताञ्ज्ञात्वा गर्भस्थानपि क्षत्रियैः॥ ३२

अनागसो धर्मपरांस्तापसान्धनकाम्यया।
गर्भानपि यदा यूयं भृगूनघ्नंस्तु पुत्रकाः॥ ३३

तदायमूरुणा गर्भो मया वर्षशतं धृतः।
षडङ्गश्चाखिलो वेदो गृहीतोऽनेन चाञ्जसा॥ ३४

गर्भस्थेनापि बालेन भृगुवंशविवृद्धये।
सोऽपि पितृवधान्नूनं क्रोधेद्धो हन्तुमिच्छति॥ ३५

भगवत्याः प्रसादेन जातोऽयं मम बालकः।
तेजसा यस्य दिव्येन चक्षूंषि मुषितानि वः॥ ३६

तस्मादौर्वं सुतं मेऽद्य याचध्वं विनयान्विताः।
प्रणिपातेन तुष्टोऽसौ दृष्टिं वः प्रतिमोक्ष्यति॥ ३७

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्या हैहयास्तुष्टुवुश्च तम्।
प्रणेमुर्विनयोपेता ऊरुजं मुनिसत्तमम्॥ ३८

स सन्तुष्टो बभूवाथ तानुवाच विचक्षुषः।
गच्छध्वं स्वगृहान्भूपा ममाख्यानकृतं वचः॥ ३९

अवश्यम्भाविभावास्ते भवन्ति दैवनिर्मिताः।
नात्र शोकस्तु कर्तव्यः पुरुषेण विजानता॥ ४०

पूर्ववदृषयः सर्वे प्राप्नुवन्तु यथासुखम्।
व्रजन्तु विगतक्रोधा भवनानि यथासुखम्॥ ४१

क्षत्रियोंको आश्वासन देकर कहा—हे क्षत्रियो! आपलोग निश्चितरूपसे जान लें कि मैंने आप सबकी दृष्टिका हरण नहीं किया है॥ २९-३०॥

मैं आपलोगोंपर कुपित नहीं हूँ। अब मैं वास्तविक कारण बता रही हूँ, आपलोग सुनिये। मेरी जंघासे उत्पन्न यह भृगुवंशी बालक आज आपलोगोंपर कुपित है। क्षत्रियोंके द्वारा अपने बान्धवों और यहाँतक कि गर्भस्थित बालकोंका वध किये जानेकी बात जानकर कोपाविष्ट इसी बालकने आपलोगोंके नेत्र स्तम्भित कर दिये हैं॥ ३१-३२॥

हे वत्सगण! जब आपलोग निरपराध, धर्मनिष्ठ तथा तपस्वी भार्गव ब्राह्मणों और गर्भस्थ बालकोंको भी धन-लोलुपतामें पड़कर मार रहे थे तभी मैंने इसे अपनी जंघामें गर्भरूपसे एक सौ वर्षतक धारण किये रखा। भृगुवंशकी वृद्धिके लिये इस गर्भस्थ बालकने छहों अंगोंसहित सम्पूर्ण वेदोंका बड़े सहजभावसे अध्ययन कर लिया है और अब यह अपने पितृजनोंके वधसे अत्यन्त कुपित होकर आपलोगोंका संहार करना चाहता है॥ ३३—३५॥

मेरा यह पुत्र भगवतीकी कृपासे उत्पन्न हुआ है, जिसके अलौकिक तेजने आपलोगोंके नेत्र हर लिये हैं॥ ३६॥

अतएव आपलोग इसी समय मेरी जंघासे उत्पन्न इस बालकसे विनम्रतापूर्वक याचना कीजिये। चरणोंमें गिरनेसे प्रसन्न होकर यह बालक आपलोगोंकी नेत्रज्योति मुक्त कर देगा॥ ३७॥

व्यासजी बोले—उस ब्राह्मणीका वचन सुनकर हैहयोंने जंघासे उत्पन्न बालकरूप मुनिश्रेष्ठको प्रणाम किया और वे विनयसे युक्त होकर उसकी स्तुति करने लगे॥ ३८॥

तत्पश्चात् प्रसन्न होकर उस बालकने उन नेत्रहीन क्षत्रियोंसे कहा—हे राजाओ! अब तुमलोग मेरी कही हुई बातपर विश्वास करके अपने घर लौट जाओ॥ ३९॥

दैवने जो विधान सुनिश्चित कर दिये हैं, वे अवश्य होकर रहते हैं; ज्ञानी व्यक्तिको इस विषयमें चिन्ता नहीं करनी चाहिये॥ ४०॥

सभी ऋषिगण पूर्वकी भाँति सुख प्राप्त करें तथा सभी क्षत्रिय भी अब क्रोधरहित होकर सुखपूर्वक अपने-अपने घरोंके लिये प्रस्थान करें॥ ४१॥

इति तेन समादिष्टा हैहयाः प्राप्तलोचनाः।
औौर्वमामन्त्र्य जग्मुस्ते सदनानि यथारुचि॥ ४२

ब्राह्मणी तं सुतं दिव्यं गृहीत्वा स्वाश्रमं गता।
पालयामास भूपाल तेजस्विनमतन्द्रिता॥ ४३

एवं ते कथितं राजन् भृगूणां तु विनाशनम्।
लोभाविष्टैः क्षत्रियैश्च यत्कृतं पातकं किल॥ ४४

जनमेजय उवाच

श्रुतं मया महत्कर्म क्षत्रियाणाञ्च दारुणम्।
कारणं लोभ एवात्र दुःखदश्चोभयोस्तु सः॥ ४५

किञ्चित्प्रष्टुमिहेच्छामि संशयं वासवीसुत।
हैहयास्ते कथं नाम्ना ख्याता भुवि नृपात्मजाः॥ ४६

यदोस्तु यादवाः कामं भरताद्भारतास्तथा।
हैहयः कोऽपि राजाभूत्तेषां वंशे प्रतिष्ठितः॥ ४७

तदहं श्रोतुमिच्छामि कारणं करुणानिधे।
हैहयास्ते कथं जाताः क्षत्रियाः केन कर्मणा॥ ४८

व्यास उवाच

हैहयानां समुत्पत्तिं शृणु भूप सविस्तराम्।
पुरातनीं सुपुण्यां च कथां पापप्रणाशिनीम्॥ ४९

कस्मिंश्चित्समये भूप सूर्यपुत्रः सुशोभनः।
रेवन्तेति च विख्यातो रूपवानमितप्रभः॥ ५०

उच्चैःश्रवसमारुह्य हयरत्नं मनोहरम्।
जगाम विष्णुसदनं वैकुण्ठं भास्करात्मजः॥ ५१

भगवद्दर्शनाकांक्षी हयारूढो यदागतः।
हयस्थस्तु तदा दृष्टो लक्ष्म्यासौ रविनन्दनः॥ ५२

रमा वीक्ष्य हयं दिव्यं भ्रातरं सागरोद्भवम्।
रूपेण विस्मिता तस्य तस्थौ स्तम्भितलोचना॥ ५३

इस प्रकार उसके कहनेपर उन हैहयवंशी क्षत्रियोंको दृष्टि प्राप्त हो गयी और वे और्व (ऊरुसे उत्पन्न) उस बालकसे आज्ञा लेकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने घर चले गये॥ ४२॥

हे राजन्! वह ब्राह्मणी भी उस तेजस्वी तथा अलौकिक बालकको लेकर अपने आश्रम चली गयी और बड़ी सावधानीपूर्वक उसका पालन-पोषण करने लगी॥ ४३॥

हे राजन्! इस प्रकार भृगुवंशके विनाश तथा लोभके वशीभूत हैहय क्षत्रियोंने जो पापकर्म किया था; उसके विषयमें मैंने आपसे कहा॥ ४४॥

जनमेजय बोले—हे मुने! मैंने क्षत्रियोंके अत्यन्त दारुण कर्मके विषयमें सुन लिया। इहलोक तथा परलोकमें दुःख देनेवाला वह लोभ ही इसमें मूल कारण है॥ ४५॥

हे सत्यवतीनन्दन! मैं संशयग्रस्त हूँ; [इस विषयमें] आपसे कुछ पूछना चाहता हूँ। ये क्षत्रिय राजकुमार इस जगत्‌में हैहय नामसे क्यों प्रसिद्ध हुए?॥ ४६॥

यदुसे यादव हुए तथा भरतसे भारत हुए। उसी प्रकार क्या उन क्षत्रियोंके वंशमें 'हैहय' नामधारी कोई प्रतिष्ठित राजा हुआ था?॥ ४७॥

हे करुणानिधान! उन हैहय क्षत्रियोंकी उत्पत्ति कैसे हुई तथा किस कर्मसे उनका यह नाम पड़ा? वह कारण मैं सुनना चाहता हूँ॥ ४८॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अब मैं हैहयोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित अति प्राचीन, पुण्यदायिनी तथा पापनाशिनी कथाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, आप इसे सुनिये॥ ४९॥

हे महाराज! किसी समय अत्यन्त सुन्दर, रूपवान् तथा अपरिमित तेजवाले सूर्यपुत्र जो 'रेवन्त' नामसे विख्यात थे, अपने मनोहर अश्वरत्न उच्चैःश्रवापर आरूढ़ होकर भगवान् विष्णुके निवासस्थान वैकुण्ठलोक गये॥ ५०-५१॥

विष्णुके दर्शनके आकांक्षी वे भास्करनन्दन घोड़ेपर सवार होकर जब वहाँ पहुँचे तब लक्ष्मीजीकी दृष्टि अश्वपर विराजमान रेवन्तपर पड़ गयी॥ ५२॥

समुद्रसे प्रादुर्भूत अपने भाई अलौकिक उच्चैःश्रवा घोड़ेको देखकर वे महान् विस्मयमें पड़ गयीं और उसके रूपको स्थिर नेत्रोंसे देखती रह गयीं॥ ५३॥

भगवानपि तं दृष्ट्वा हयारूढं मनोहरम्।
आगच्छन्तं रमां विष्णुः पप्रच्छ प्रणयात्प्रभुः॥ ५४

कोऽयमायाति चार्वङ्गि हयारूढ इवापरः।
स्मरतेजस्तनुः कान्ते मोहयन्भुवनत्रयम्॥ ५५

प्रेक्षमाणा तदा लक्ष्मीस्तच्चित्ता दैवयोगतः।
नोवाच वचनं किञ्चित्पृष्टापि च पुनः पुनः॥ ५६

व्यास उवाच

अश्वासक्तमतिं वीक्ष्य कामिनीमतिमोहिताम्।
पश्यन्तीं परमप्रेम्णा चञ्चलाक्षीं च चञ्चलाम्॥ ५७

तामाह भगवान्क्रुद्धः किं पश्यसि सुलोचने।
मोहिता च हरिं दृष्ट्वा पृष्टा नैवाभिभाषसे॥ ५८

सर्वत्र रमसे यस्माद्रमा तस्माद् भविष्यसि।
चञ्चलत्वाच्चलेत्येवं सर्वथैव न संशयः॥ ५९

प्राकृता च यथा नारी नूनं भवति चञ्चला।
तथा त्वमपि कल्याणि स्थिरा नैव कदाचन॥ ६०

त्वं हयं मत्समीपस्था समीक्ष्य यदि मोहिता।
वडवा भव वामोरु मर्त्यलोकेऽतिदारुणे॥ ६१

इति शप्ता रमा देवी हरिणा दैवयोगतः।
रुरोद वेपमाना सा भयभीतातिदुःखिता॥ ६२

तमुवाच रमानाथं शङ्किता चारुहासिनी।
प्रणम्य शिरसा देवं स्वपतिं विनयान्विता॥ ६३

देवदेव जगन्नाथ करुणाकर केशव।
स्वल्पेऽपराधे गोविन्द कस्माच्छापं ददासि मे॥ ६४

न कदाचिन्मया दृष्टः क्रोधस्ते हीदृशः प्रभो।
क्व गतस्ते मयि स्नेहः सहजो न तु नश्वरः॥ ६५

भगवान् विष्णुने उस मनोहर रेवन्तको घोड़ेपर बैठकर आता हुआ देखकर लक्ष्मीजीसे प्रेमपूर्वक पूछा—हे सुन्दर अंगोंवाली! हे प्रिये! दूसरे कामदेवके समान तेजोमय शरीरवाला यह कौन है जो घोड़ेपर सवार होकर तीनों लोकोंको मोहित करता हुआ इधर चला आ रहा है॥ ५४-५५॥

उस समय घोड़ेको एकटक देखते रहनेसे दैववशात् उसीमें चित्तयोग हो जानेके कारण भगवान् विष्णुके बार-बार पूछनेपर भी लक्ष्मीजीने कुछ नहीं कहा॥ ५६॥

व्यासजी बोले—भगवान् विष्णु कामिनी, चपल नेत्रोंवाली तथा चंचला लक्ष्मीको अत्यन्त मोहित होकर अत्यधिक प्रेमके साथ निहारती हुई तथा उस अश्वमें अनुरक्त बुद्धिवाली देखकर क्रोधित हो उठे और उनसे बोले—हे सुलोचने! तुम क्या देख रही हो? इस घोड़ेको देखकर मोहित हुई तुम मेरे पूछनेपर भी उत्तर नहीं दे रही हो॥ ५७-५८॥

क्योंकि तुम्हारा चित्त सभी ओर रमण करता है अतएव 'रमा' और तुम्हारी चंचलताके कारण तुम 'चला' कही जाओगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५९॥

जिस प्रकार सामान्य नारी चंचल होती है, उसी प्रकार हे कल्याणि! तुम भी कभी स्थिर स्वभाववाली नहीं रहोगी॥ ६०॥

मेरे पास रहनेपर भी तुम यदि एक अश्वको देखकर मोहित हो गयी हो तो हे वामोरु! तुम अत्यन्त दारुण मर्त्यलोकमें घोड़ीके रूपमें जन्म ग्रहण करो॥ ६१॥

दैवयोगसे भगवान् विष्णुने जब देवी लक्ष्मीको ऐसा शाप दे दिया तब वे अत्यन्त भयभीत तथा दुःखी होकर काँपती हुई रोने लगीं॥ ६२॥

सुन्दर मुसकानवाली लक्ष्मीजी दुविधामें पड़ गयीं और अपने पति भगवान् विष्णुको विनयसे युक्त होकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनसे कहने लगीं—॥ ६३॥

हे देवदेव! हे जगदीश्वर! हे करुणानिधान! हे केशव! हे गोविन्द! एक छोटेसे अपराधके लिये आपने मुझे ऐसा शाप क्यों दे दिया?॥ ६४॥

हे प्रभो! मैंने आपका ऐसा क्रोध पहले कभी नहीं देखा। मेरे प्रति आपका वह सहज तथा शाश्वत प्रेम कहाँ चला गया?॥ ६५॥

वज्रपातस्तु शत्रौ वै कर्तव्यो न सुहृज्जने।
सदाहं वरयोग्या ते शापयोग्या कथं कृता॥ ६६

प्राणांस्त्यक्ष्यामि गोविन्द पश्यतोऽद्य तवाग्रतः।
कथं जीवे त्वया हीना विरहानलतापिता॥ ६७

प्रसादं कुरु देवेश शापादस्मात्सुदारुणात्।
कदा मुक्ता समीपं ते प्राप्नोमि सुखदं विभो॥ ६८

हरिरुवाच

यदा ते भविता पुत्रः पृथिव्यां मत्समः प्रिये।
तदा मां प्राप्य तन्वङ्गि सुखिता त्वं भविष्यसि॥ ६९

आपको वज्रपात शत्रुपर करना चाहिये न कि अपने स्नेहीजनपर। आपसे सदा वर पानेयोग्य मैं आज शापके योग्य कैसे हो गयी?॥ ६६॥

हे गोविन्द! मैं इसी समय आपके देखते-देखते आपके सामने प्राण त्याग दूँगी; क्योंकि आपसे वियुक्त होकर विरहाग्निमें जलती हुई मैं कैसे जीवित रह सकूँगी?॥ ६७॥

हे देवेश! मेरे ऊपर कृपा कीजिये। हे विभो! अब मैं इस दारुण शापसे मुक्त होकर आपका सुखदायी सांनिध्य कब प्राप्त करूँगी?॥ ६८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे तन्वंगि! जब पृथ्वीलोकमें तुम्हें मेरे समान एक पुत्रकी प्राप्ति हो जायगी तब पुनः मुझे प्राप्त करके तुम सुखी हो जाओगी॥ ६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयानामुत्पत्ति-प्रसङ्गे रमाविष्णुसंवादवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीद्वारा घोड़ीका रूप धारणकर तपस्या करना

जनमेजय उवाच

इति शप्ता भगवता सिन्धुजा कोपयोगतः।
कथं सा वडवा जाता रेवन्तेन च किं कृतम्॥ १

कस्मिन्देशेऽब्धिजा देवी वडवारूपधारिणी।
संस्थितैकाकिनी बाला परोषितपतिका यथा॥ २

कालं कियन्तमायुष्मन् वियुक्ता पतिना रमा।
संस्थिता विजनेऽरण्ये किं कृतं च तया पुनः॥ ३

समागमं कदा प्राप्ता वासुदेवस्य सिन्धुजा।
पुत्रः कथं तया प्राप्तो नारायणवियुक्तया॥ ४

एतद्वृत्तान्तमार्येश कथयस्व सविस्तरम्।
श्रोतुकामोऽस्मि विप्रेन्द्र कथाख्यानमनुत्तमम्॥ ५

सूत उवाच

इति पृष्टस्तदा व्यासः परीक्षित्तनयेन वै।
कथयामास भो विप्राः कथामेतां सुविस्तराम्॥ ६

जनमेजय बोले—[हे मुने!] इस प्रकार कोप करके भगवान्‌के द्वारा शापित लक्ष्मीजीने घोड़ीके रूपमें किस प्रकार जन्म लिया और इसके बाद रेवन्तने क्या किया?॥ १॥

अपने पतिके प्रवासमें रहनेके कारण उसके वियोगमें एकाकिनी समय व्यतीत करनेवाली नारीकी भाँति लक्ष्मीजीने घोड़ीका रूप धारण करके किस देशमें समय व्यतीत किया?॥ २॥

हे आयुष्मन्! पतिसे वियुक्त रहते हुए लक्ष्मीजीने कितना समय बिताया और पुनः उस निर्जन वनमें रहती हुई उन्होंने क्या किया?॥ ३॥

समुद्रतनया लक्ष्मीको पुनः भगवान् विष्णुका समागम कब प्राप्त हुआ तथा विष्णुसे अलग रहते हुए उन्होंने किस प्रकार पुत्र प्राप्त किया?॥ ४॥

हे आर्येश! इस वृत्तान्तका वर्णन विस्तारके साथ कीजिये। हे विप्रवर! मैं इस अत्युत्तम पौराणिक आख्यानको सुनना चाहता हूँ॥ ५॥

सूतजी बोले—हे विप्रो! परीक्षित्‌पुत्र जनमेजयके ऐसा पूछनेपर व्यासजी इस अति विस्तृत कथाका वर्णन करने लगे॥ ६॥

व्यास उवाच

श्रृणु राजन् प्रवक्ष्यामि कथां पौराणिकीं शुभाम्।
पावनीं सुखदां कर्णे विशदाक्षरसंयुताम्॥ ७

रेवन्तस्तु रमां दृष्ट्वा शप्तां देवेन कामिनीम्।
भयार्तः प्रययौ दूरात्प्रणम्य जगतां पतिम्॥ ८

पितुः सकाशं त्वरितो वीक्ष्य कोपं जगत्पतेः।
निवेदयामास कथां भास्कराय स शापजाम्॥ ९

दुःखिता सा रमा देवी प्रणम्य जगदीश्वरम्।
आज्ञप्ता मानुषं लोकं प्राप्ता कमललोचना॥ १०

सूर्यपत्न्या तपस्तप्तं यत्र पूर्वं सुदारुणम्।
तत्रैव सा ययावाशु वडवारूपधारिणी॥ ११

कालिन्दीतमसासङ्गे सुपर्णाक्षस्य चोत्तरे।
सर्वकामप्रदे स्थाने सुरम्यवनमण्डिते॥ १२

तत्र स्थिता महादेवं शङ्करं वाञ्छितप्रदम्।
दध्यौ चैकेन मनसा शूलिनं चन्द्रशेखरम्॥ १३

पञ्चाननं दशभुजं गौरीदेहार्धधारिणम्।
कर्पूरगौरदेहाभं नीलकण्ठं त्रिलोचनम्॥ १४

व्याघ्राजिनधरं देवं गजचर्मोत्तरीयकम्।
कपालमालाकलितं नागयज्ञोपवीतिनम्॥ १५

सागरस्य सुता कृत्वा हयीरूपं मनोहरम्।
तस्मिंस्तीर्थे रमादेवी चकार दुश्चरं तपः॥ १६

ध्यायमाना परं देवं वैराग्यं समुपाश्रिता।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु गतं तत्र महीपते॥ १७

ततस्तुष्टो महादेवो वृषारूढस्त्रिलोचनः।
प्रत्यक्षोऽभून्महेशानः पार्वतीसहितः प्रभुः॥ १८

तत्रैत्य सगणः शम्भुस्तामाह हरिवल्लभाम्।
तपस्यन्तीं महाभागामश्विनीरूपधारिणीम्॥ १९

किं तपस्यसि कल्याणि जगन्मातर्वदस्व मे।
सर्वार्थदः पतिस्तेऽस्ति सर्वलोकविधायकः॥ २०

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये मैं अब वह शुभ, पवित्र, स्पष्ट अक्षरोंसे युक्त तथा कानोंको प्रिय लगनेवाली पौराणिक कथा कहूँगा॥ ७॥

कामिनी रमाको विष्णुद्वारा शापित की गयी देखकर रेवन्त भयके कारण जगत्पति वासुदेवको दूरसे ही प्रणाम करके चले गये॥ ८॥

जगन्नाथ विष्णुका यह क्रोध देखकर वे तत्काल अपने पिताके पास गये और उन सूर्यसे शापसे सम्बन्धित कथा बतायी॥ ९॥

इसके बाद कमलके समान नेत्रोंवाली वे दुःखित लक्ष्मीजी जगदीश्वर विष्णुजीसे आज्ञा लेकर उन्हें प्रणाम करके मृत्युलोकमें आ गयीं। सूर्यकी पत्नीने पूर्वकालमें सुपर्णाक्षकी उत्तरदिशामें यमुना-तमसा नदीके संगमपर सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सुन्दर वनोंसे सुशोभित जिस स्थानपर कठोर तपस्या की थी, वहीं वडवारूपधारिणी वे लक्ष्मीजी शीघ्र पहुँच गयीं॥ १०—१२॥

वहाँ रहकर वे लक्ष्मीजी समस्त कामनाएँ पूर्ण करनेवाले, त्रिशूलधारी, चन्द्रशेखर, पाँच मुखोंवाले, दस भुजाओंवाले, गौरीके शरीरका अर्ध भाग धारण करनेवाले, कर्पूरके समान गौर शरीरवाले, नीले कण्ठसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाले, व्याघ्रचर्म धारण करनेवाले, हाथीके चर्मका उत्तरीय धारण करनेवाले, गलेमें नरमुण्डकी मालासे मण्डित तथा सर्पका यज्ञोपवीत धारण करनेवाले महादेव शंकरका एकाग्रमनसे ध्यान करने लगीं॥ १३—१५॥

सागरपुत्री लक्ष्मीजीने सुन्दर घोड़ीका रूप धारण करके उस तीर्थमें अत्यन्त कठोर तपस्या की॥ १६॥

हे राजन्! महादेव शंकरका ध्यान करते-करते लक्ष्मीजीके मनमें वैराग्यका प्रादुर्भाव हो गया। इस प्रकार [उनको तप करते हुए] एक हजार दिव्य वर्ष बीत गये॥ १७॥

तदनन्तर प्रसन्न होकर त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने वृषभपर सवार होकर पार्वतीजीके साथ उन्हें साक्षात् दर्शन दिया॥ १८॥

भगवान् शंकरने अपने गणोंसहित वहाँ आकर तप करती हुई वडवारूपधारिणी महाभागा विष्णुप्रिया लक्ष्मीजीसे कहा—॥ १९॥

हे कल्याणि! हे जगज्जननि! आप तपस्या क्यों कर रही हैं? मुझे इसका कारण बतायें। आपके पति विष्णु तो स्वयं सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सभी लोकोंका विधान करनेवाले हैं॥ २०॥

हरिं त्यक्त्वाद्य मां कस्मात्स्तौषि देवि जगत्पतिम्।
वासुदेवं जगन्नाथं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्॥ २१

वेदोक्तं वचनं कार्यं नारीणां देवता पतिः।
नान्यस्मिन्सर्वथा भावः कर्तव्यः कर्हिचित्क्वचित्॥ २२

पतिशुश्रूषणं स्त्रीणां धर्म एव सनातनः।
यादृशस्तादृशः सेव्यः सर्वथा शुभकाम्यया॥ २३

नारायणस्तु सर्वेषां सेव्यो योग्यः सदैव हि।
तं त्यक्त्वा देवदेवेशं किं मां ध्यायसि सिन्धुजे॥ २४

लक्ष्मीरुवाच

आशुतोष महेशान शप्ताहं पतिना शिव।
मां समुद्धर देवेश शापादस्माद्दयानिधे॥ २५

तदोक्तं हरिणा शम्भो शापानुग्रहकारणम्।
विज्ञप्तेन मया कामं दयायुक्तेन विष्णुना॥ २६

यदा ते भविता पुत्रस्तदा शापस्य मोक्षणम्।
भविष्यति च वैकुण्ठवासस्ते कमलालये॥ २७

इत्युक्ताहं तपस्तप्तुमागतास्मि तपोवने।
आराधितो मया देव त्वं सर्वार्थप्रदायकः॥ २८

पतिसङ्गं विना पुत्रं देवदेव लभे कथम्।
स तु तिष्ठति वैकुण्ठे त्यक्त्वा वामामनागसम्॥ २९

वरं मे देहि देवेश यदि तुष्टोऽसि शङ्कर।
तव तस्य द्विधा भावो नास्ति नूनं कदाचन॥ ३०

मयैतद् गिरिजाकान्त ज्ञातं पत्युः पुरो हर।
यस्त्वं योऽसौ पुनर्योऽसौ स त्वं नास्त्यत्र संशयः॥ ३१

एकत्वं च मया ज्ञात्वा मया ते स्मरणं कृतम्।
अन्यथा मम दोषस्त्वामाश्रयन्त्या भवेच्छिव॥ ३२

हे देवि! भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले जगत्पति वासुदेव जगन्नाथ विष्णुको छोड़कर इस समय आप मेरी आराधना किसलिये कर रही हैं?॥ २१॥

स्त्रियोंके लिये पति ही उनका देवता होता है—इस वेदोक्त वचनका उन्हें पालन करना चाहिये। किसी दूसरेमें कभी कहीं भी भावना नहीं करनी चाहिये॥ २२॥

पतिकी सेवा-शुश्रूषा ही स्त्रियोंका सनातन धर्म है। पति चाहे जैसा भी हो, कल्याणकी इच्छा रखनेवाली स्त्रीको निरन्तर उसकी सेवा करनी चाहिये॥ २३॥

भगवान् विष्णु तो सर्वदा सभी प्राणियोंकी आराधनाके योग्य हैं। अतएव हे सिन्धुजे! उन देवाधिदेवको छोड़कर आप मेरा ध्यान क्यों कर रही हैं?॥ २४॥

लक्ष्मी बोलीं—हे आशुतोष! हे महेशान! हे शिव! हे देवेश! हे दयानिधान! मेरे पतिने मुझे शाप दे दिया है; अतएव इस शापसे आप मेरा उद्धार कीजिये॥ २५॥

हे शम्भो! उस समय मेरे बहुत पूछनेपर दयालु भगवान् विष्णुने शापसे मुक्तिका यह उपाय भी बतला दिया था—'हे कमलालये! जब तुम्हें एक पुत्र उत्पन्न हो जायगा तब तुम शापसे मुक्त हो जाओगी और वैकुण्ठधाममें पुनः तुम्हारा वास होगा'॥ २६-२७॥

हे देव! श्रीविष्णुके इस प्रकार कहनेपर मैं तपस्या करनेके लिये इस तपोवनमें आ गयी और सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले आप परमेश्वरकी आराधना करने लगी॥ २८॥

हे देवदेव! मुझ निरपराध पत्नीको छोड़कर वे विष्णु तो वैकुण्ठमें विराजमान हैं; अतएव पतिके सांनिध्यके बिना मैं पुत्र कैसे प्राप्त कर सकती हूँ?॥ २९॥

हे देवेश! हे शंकर! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे वर दीजिये। आप तथा श्रीहरिमें निश्चितरूपसे कोई भेद नहीं है॥ ३०॥

हे गिरिजाकान्त! हे हर! जब मैं पतिदेवके पास थी तभीसे मुझे यह ज्ञात है कि जो आप हैं, वही वे हैं तथा जो वे हैं, वही आप हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ३१॥

[आप तथा श्रीविष्णुमें] एकत्व जानकर ही मैंने आपका स्मरण किया है, अन्यथा हे शिव! आपका आश्रय लेनेसे मुझे दोष ही लगता॥ ३२॥

शिव उवाच

कथं ज्ञातस्त्वया देवि मम तस्य च सुन्दरि।
ऐक्यभावो हरेर्नूनं सत्यं मे वद सिन्धुजे॥ ३३

एकत्वं च न जानन्ति देवाश्च मुनयस्तथा।
ज्ञानिनो वेदतत्त्वज्ञाः कुतर्कोपहताः किल॥ ३४

मद्भक्ता वासुदेवस्य निन्दका बहवस्तथा।
विष्णुभक्तास्तु बहवो मम निन्दापरायणाः॥ ३५

भवन्ति कालभेदेन कलौ देवि विशेषतः।
कथं ज्ञातस्त्वया भद्रे दुर्ज्ञेयो ह्यकृतात्मभिः॥ ३६

सर्वथा त्वैक्यभावस्तु हरेर्मम च दुर्लभः।

व्यास उवाच

इति सा शम्भुना पृष्टा तुष्टेन हरिवल्लभा॥ ३७

वृत्तान्तं तस्य विज्ञातं प्रवक्तुमुपचक्रमे।
शिवं प्रति रमा तत्र प्रसन्नवदना भृशम्॥ ३८

लक्ष्मीरुवाच

एकदा देवदेवेश विष्णुर्ध्यानपरो रहः।
दृष्टो मया तपः कुर्वन्पद्मासनगतो यदा॥ ३९

तदाहं विस्मिता देवं तमपृच्छं पतिं किल।
प्रबुद्धं सुप्रसन्नं च ज्ञात्वा विनयपूर्वकम्॥ ४०

देवदेव जगन्नाथ यदाहं निर्गतार्णवात्।
मथ्यमानात्सुरैर्दैत्यैः सर्वैर्ब्रह्मादिभिः प्रभो॥ ४१

वीक्षिताश्च मया सर्वे पतिकामनया तदा।
वृतस्त्वं सर्वदेवेभ्यः श्रेष्ठोऽसीति विनिश्चयात्॥ ४२

त्वं कं ध्यायसि सर्वेश संशयोऽयं महान्मम।
प्रियोऽसि कैटभारे मे कथयस्व मनोगतम्॥ ४३

विष्णुरुवाच

शृणु कान्ते प्रवक्ष्यामि यं ध्यायामि सुरोत्तमम्।
आशुतोषं महेशानं गिरिजावल्लभं हृदि॥ ४४

कदाचिद्देवदेवो मां ध्यायत्यमितविक्रमः।
ध्यायाम्यहं च देवेशं शङ्करं त्रिपुरान्तकम्॥ ४५

शिवस्याहं प्रियः प्राणः शङ्करस्तु तथा मम।
उभयोरन्तरं नास्ति मिथः संसक्तचेतसोः॥ ४६

शिव बोले—हे देवि! हे सुन्दरि! मेरे तथा उन विष्णुके एकत्वका ज्ञान तुम्हें किस प्रकार हुआ? हे सिन्धुजे! मुझे सच-सच बताओ॥ ३३॥

देवता, मुनि, ज्ञानी तथा वेदोंके तत्त्वदर्शी विद्वान् भी तरह-तरहके कुतर्कोंसे ग्रस्त पड़े रहनेके कारण इस ऐक्यभावको नहीं जानते॥ ३४॥

मेरे बहुत-से भक्त वासुदेव श्रीविष्णुके निन्दक हैं तथा श्रीविष्णुके बहुत-से भक्त मेरी निन्दामें लगे रहते हैं। हे देवि! कालभेदके कारण कलियुगमें ऐसे लोग विशेषरूपसे होंगे। हे भद्रे! दूषित आत्मावाले लोगोंद्वारा दुर्ज्ञेय इस एकत्वको आप कैसे जान गयीं? मेरे तथा श्रीविष्णुका ऐक्यभाव जान पाना सर्वथा दुर्लभ है॥ ३५-३६½॥

व्यासजी बोले—प्रसन्न हुए भगवान् शंकरके इस प्रकार पूछनेपर अत्यन्त प्रसन्नमुखवाली हरिप्रिया लक्ष्मीजीने [उस एकत्वसे सम्बन्धित] ज्ञात प्रसंगको शिवजीसे कहना प्रारम्भ किया॥ ३७-३८॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवदेवेश! एक बार भगवान् विष्णुको एकान्तमें पद्मासन लगाकर ध्यानस्थ हो तपस्या करते हुए जब मैंने देखा तब मुझे महान् विस्मय हुआ; और पुनः समाधिसे जगनेपर उन्हें अति प्रसन्न जानकर मैंने पतिदेवसे विनयपूर्वक पूछा— ॥ ३९-४०॥

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! हे प्रभो! जिस समय ब्रह्मा आदि सभी देवताओं तथा दैत्योंके द्वारा मथे जा रहे समुद्रसे मैं निकली, उस समय पतिकी इच्छासे मैंने सभीकी ओर देखा, सभी देवताओंकी अपेक्षा आप ही श्रेष्ठ हैं—ऐसा निश्चय करके मैंने आपका ही वरण किया था। अतः हे सर्वेश! आप किसका ध्यान कर रहे हैं? मुझे यह महान् सन्देह है। हे कैटभारे! आप मेरे प्रिय हैं। अतः अपने मनकी बात मुझे बतायें॥ ४१—४३॥

विष्णु बोले—हे प्रिये! मैं जिन सुरश्रेष्ठ, आशुतोष, महेश्वर तथा पार्वतीपति शंकरका ध्यान [अपने] हृदयमें कर रहा हूँ, उनके विषयमें बताऊँगा; सुनो॥ ४४॥

असीम पराक्रमसम्पन्न देवाधिदेव भगवान् शंकर कभी मेरा ध्यान करते हैं और कभी मैं त्रिपुरासुरके संहारक देवेश शंकरका ध्यान करने लगता हूँ॥ ४५॥

शिवका प्रिय प्राण मैं हूँ तथा मेरे प्रिय प्राण वे हैं। इस प्रकार परस्पर अनुरक्त चित्तवाले हम दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है॥ ४६॥

नरकं यान्ति ते नूनं ये द्विषन्ति महेश्वरम्।
भक्ता मम विशालाक्षि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४७

इत्युक्तं देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
एकान्ते किल पृष्टेन मया शैलसुताप्रिय॥ ४८

तस्मात्त्वां वल्लभं विष्णोर्ज्ञात्वा ध्यातवती ह्यहम्।
तथा कुरु महेशान यथा मे प्रियसङ्गमः॥ ४९

व्यास उवाच

इति श्रियो वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच महेश्वरः।
तामाश्वास्य प्रियैर्वाक्यैर्यथार्थं वाक्यकोविदः॥ ५०

स्वस्था भव पृथुश्रोणि तुष्टोऽहं तपसा तव।
समागमस्ते पतिना भविष्यति न संशयः॥ ५१

अत्रैव हयरूपेण भगवाञ्जगदीश्वरः।
आगमिष्यति ते कामं पूर्णं कर्तुं मयेरितः॥ ५२

तथाहं प्रेरयिष्यामि तं देवं मधुसूदनम्।
यथासौ हयरूपेण त्वामेष्यति मदातुरः॥ ५३

पुत्रस्ते भविता सुभ्रु नारायणसमः क्षितौ।
भविष्यति स भूपालः सर्वलोकनमस्कृतः॥ ५४

सुतं प्राप्य महाभागे त्वं तेन पतिना सह।
गन्तासि देवि वैकुण्ठं प्रिया तस्य भविष्यसि॥ ५५

एकवीरेति नाम्नासौ ख्यातिं यास्यति ते सुतः।
तस्मात्तु हैहयो वंशो भुवि विस्तारमेष्यति॥ ५६

परं तु विस्मृतासि त्वं हृदिस्थां परमेश्वरीम्।
मदान्धा मत्तचित्ता च तेन ते फलमीदृशम्॥ ५७

अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं हृदिस्थां परदेवताम्।
शरणं याहि सर्वात्मभावेन जलधेः सुते॥ ५८

अन्यथा तव चित्तं तु कथं गच्छेद्धयोत्तमे।

व्यास उवाच

इति दत्त्वा वरं देव्यै भगवाञ्छैलजापतिः॥ ५९
अन्तर्धानं गतः साक्षादुमया सहितः शिवः।

हे विशालनयने! मेरे जो भक्त भगवान् शंकरसे द्वेष करते हैं वे निश्चितरूपसे नरकमें पड़ते हैं; मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ४७॥

हे गिरिजावल्लभ! एकान्तमें मेरे पूछनेपर सर्वसमर्थ देवदेव भगवान् विष्णुने ऐसा बताया था। अतएव आपको विष्णुका परम प्रिय जानकर मैंने आपका ध्यान किया। हे महेशान! अब जैसे मुझे पतिसांनिध्य प्राप्त हो जाय, वैसा आप कीजिये॥ ४८-४९॥

व्यासजी बोले—लक्ष्मीजीका यह वचन सुनकर वाणीविशारद भगवान् शंकरने मधुर वचनोंसे उन्हें आश्वासन देकर कहा—हे पृथुश्रोणि! धैर्य रखो। मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। पतिसे तुम्हारा मिलन अवश्य होगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०-५१॥

वे भगवान् जगदीश्वर मुझसे प्रेरित होकर तुम्हारी कामना पूर्ण करनेके लिये अश्वका रूप धारण करके यहींपर आयेंगे॥ ५२॥

मैं उन मधुसूदनको इस प्रकार प्रेरित करूँगा, जिससे वे मदातुर होकर अश्वरूपमें तुम्हारे पास आयेंगे॥ ५३॥

हे सुभ्रु! उन्हीं नारायणके समान तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। वह पृथ्वीपर राजाके रूपमें प्रतिष्ठित तथा सभी लोगोंसे नमस्कृत होगा॥ ५४॥

हे महाभागे! इस प्रकार पुत्र प्राप्त करके तुम उन्हींके साथ वैकुण्ठलोक चली जाओगी और हे देवि! वहाँ उनकी प्रिया हो जाओगी॥ ५५॥

आपका वह पुत्र एकवीर—इस नामसे लोकमें ख्याति प्राप्त करेगा। उसीसे पृथ्वीपर हैहयवंश विस्तारको प्राप्त होगा॥ ५६॥

किंतु मदान्ध एवं मदचित्त होकर तुमने हृदयमें सदा विराजमान रहनेवाली परमेश्वरी जगदम्बाका विस्मरण कर दिया है, उसीसे तुम्हें ऐसा फल मिला है। अतः हे सिन्धुपुत्रि! उस दोषके शमनके लिये तुम हृदयमें विराजमान रहनेवाली परम देवीकी शरणमें सर्वात्मभावसे जाओ; यदि तुम्हारा मन भगवतीमें लगा होता तो उत्तम घोड़ेपर क्यों जाता?॥ ५७-५८½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार देवी लक्ष्मीको वरदान देकर गिरिजापति भगवान् शंकर पार्वतीसहित अन्तर्धान हो गये॥ ५९½ ॥

सापि तत्रैव चार्वङ्गी संस्थिता कमलासना॥ ६०

ध्यायन्ती चरणाम्भोजं देव्याः परमशोभनम्।
देवासुरशिरोरत्ननिघृष्टनखमण्डलम् ॥ ६१

प्रेमगद्गदया वाचा तुष्टाव च मुहुर्मुहुः।
प्रतीक्षमाणा भर्तारं हयरूपधरं हरिम्॥ ६२

सुन्दर अंगोंवाली वे लक्ष्मीजी वहीं स्थित रहकर भगवती जगदम्बाके देवासुरोंके शिरोरत्न (मुकुट)-से घर्षित नखमण्डलवाले परम सुन्दर चरणकमलका ध्यान करने लगीं और अपने पति श्रीहरिके अश्वरूप धारण करके आनेकी प्रतीक्षा करती हुई प्रेमयुक्त गद्गद वाणीसे बार-बार उनकी स्तुति करती रहीं॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे शिवप्रसादेन लक्ष्मीद्वारा भगवत्याः समाराधनवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

~~○~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीको अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुके दर्शन और उनका वैकुण्ठगमन

व्यास उवाच

तस्यै दत्त्वा वरं शम्भुः कैलासं त्वरितो ययौ।
रम्यं देवगणैर्जुष्टमप्सरोभिश्च मण्डितम्॥ १

तत्र गत्वा चित्ररूपं गणं कार्यविशारदम्।
प्रेषयामास वैकुण्ठे लक्ष्मीकार्यार्थसिद्धये॥ २

शिव उवाच

चित्ररूप हरिं गत्वा ब्रूहि त्वं वचनान्मम।
यथासौ दुःखितां पत्नीं विशोकां च करिष्यति॥ ३

इत्युक्तश्चित्ररूपोऽथ निर्जगाम त्वरान्वितः।
वैकुण्ठं परमं स्थानं वैष्णवैश्च गणैर्वृतम्॥ ४

नानाद्रुमगणाकीर्णं वापीशतविराजितम्।
संजुष्टं हंसकारण्डमयूरशुककोकिलैः॥ ५

उच्चप्रासादसंयुक्तं पताकाभिरलंकृतम्।
नृत्यगीतकलापूर्णं मन्दारद्रुमसंयुतम्॥ ६

बकुलाशोकतिलकचम्पकालिविमण्डितम् ।
कूजितैर्विहगानां तु कर्णाह्लादकरैर्युतम्॥ ७

संवीक्ष्य भवनं विष्णोर्द्वास्थौ प्राह प्रणम्य च।
जयविजयनामानौ वेत्रपाणी स्थितावुभौ॥ ८

व्यासजी बोले—उन लक्ष्मीजीको वरदान देकर भगवान् शंकर देवगणोंसे सेवित तथा अप्सराओंसे सुशोभित रमणीक कैलासपर शीघ्र चले गये॥ १॥

वहाँ पहुँचते ही शंकरजीने लक्ष्मीका कार्य सिद्ध करनेके उद्देश्यसे अपने कार्यकुशल गण चित्ररूपको वैकुण्ठ भेजा॥ २॥

शिवजी बोले—हे चित्ररूप! तुम विष्णुके पास जाकर मेरे शब्दोंमें यह बात कहो और इस प्रकार यत्न करना, जिससे वे अपनी दुःखी पत्नीको शोकमुक्त कर दें॥ ३॥

भगवान् शंकरके ऐसा कहनेपर वह चित्ररूप वैष्णवगणोंसे घिरे, अनेक प्रकारके वृक्षसमूहोंसे युक्त, सैकड़ों बावलियोंसे सुशोभित, हंस-सारस-मोर, शुक तथा कोकिलोंसे सुसेवित, पताकाओंसे सुशोभित ऊँचे-ऊँचे भवनोंवाले, नृत्य तथा गायनकलामें प्रवीण जनोंसे युक्त, मन्दारवृक्षोंसे परिपूर्ण, बकुल-अशोक-तिलक-चम्पक आदि वृक्षोंकी पंक्तियोंसे मण्डित तथा पक्षियोंके कर्णप्रिय कलरवोंसे गुंजित परम धाम वैकुण्ठके लिये शीघ्र ही निकल पड़ा। वहाँ भगवान् विष्णुका भवन देखकर हाथमें दण्ड (छड़ी) धारण किये हुए द्वारपर स्थित जय-विजय नामक दो द्वारपालोंको प्रणाम करके चित्ररूपने उनसे कहा—॥ ४—८॥

चित्ररूप उवाच

भो निवेदयतं शीघ्रं हरये परमात्मने।
दूतं प्राप्तं हरस्यात्र प्रेरितं शूलपाणिना॥ ९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य जयः परमबुद्धिमान्।
गत्वा हरिं प्रणम्याह कृताञ्जलिपुटः पुरः॥ १०

देवदेव रमाकान्त करुणाकर केशव।
द्वारि तिष्ठति दूतोऽत्र शङ्करस्य समागतः॥ ११

आज्ञापय प्रवेष्टव्यो न वेति गरुडध्वज।
चित्ररूपधरोऽप्यस्ति न जाने कार्यगौरवम्॥ १२

इत्याकर्ण्य हरिः प्राह जयं प्रज्ञातकारणः।
प्रवेशयात्र रुद्रस्य भृत्यं समयसंस्थितम्॥ १३

इत्याकर्ण्य जयस्तूर्णं गत्वा तं परमाद्भुतम्।
एहीत्याकारयामास जयः शङ्करसेवकम्॥ १४

प्रवेशितो जयेनाथ चित्ररूपस्तथाकृतिः।
प्रणम्य दण्डवद्विष्णुं कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ १५

दृष्ट्वा तं विस्मयं प्राप भगवान् गरुडध्वजः।
चित्ररूपधरं शम्भोः सेवकं विनयान्वितम्॥ १६

पप्रच्छ तं स्मितं कृत्वा चित्ररूपं रमापतिः।
कुशलं देवदेवस्य सकुटुम्बस्य चानघ॥ १७

कस्मात्त्वं प्रेषितोऽस्यत्र ब्रूहि कार्यं हरस्य किम्।
अथवा देवतानां च किञ्चित्कार्यं समुत्थितम्॥ १८

दूत उवाच

किमज्ञातं तवास्तीह संसारे गरुडध्वज।
वर्तमानं त्रिकालज्ञ यदहं प्रब्रवीमि वै॥ १९

प्रेषितोऽस्मि भवेनात्र विज्ञप्तुं त्वां जनार्दन।
हरस्य वचनाद्वाक्यं प्रब्रवीमि त्वयि प्रभो॥ २०

चित्ररूप बोला—[हे द्वारपालो!] तुमलोग शीघ्र ही भगवान् विष्णुको सूचित कर दो कि शूलपाणि शिवद्वारा भेजा गया उनका दूत यहाँ आया है॥ ९॥

उसकी बात सुनकर परम बुद्धिमान् जय श्रीहरिके पास जाकर उन्हें प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर बोला—हे देवदेव! हे रमाकान्त! हे करुणाकर! हे केशव! भगवान् शंकरका दूत आया हुआ है; वह द्वारपर खड़ा है। हे गरुडध्वज! आप आदेश दीजिये कि उसे प्रवेश कराया जाय अथवा नहीं। उसका नाम चित्ररूप है। मैं उसके आनेका प्रयोजन नहीं जानता॥ १०—१२॥

ऐसा सुनकर दूतके आनेका कारण पहलेसे ही जाननेवाले भगवान् विष्णुने जयसे कहा—द्वारपर रुके हुए शंकरके भृत्यको यहाँ ले आओ॥ १३॥

यह सुनकर शीघ्रतापूर्वक जाकर 'अंदर आइये'—ऐसा उस शंकरसेवक परम अद्भुत चित्ररूपसे जयने कहा॥ १४॥

अपने चित्ररूप नामके समान ही आकृतिवाले उसको जयने प्रवेश कराया। तब विष्णुको साष्टांग प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर वहाँ उनके समक्ष वह खड़ा हो गया॥ १५॥

विनयसे युक्त तथा विचित्र रूप धारण करनेवाले उस शम्भुसेवकको देखकर गरुडध्वज भगवान् विष्णु विस्मयमें पड़ गये॥ १६॥

तत्पश्चात् रमापति विष्णुने मुसकराकर उस चित्ररूपसे पूछा—हे पुण्यात्मन्! सपरिवार देवाधिदेव शंकरजीका कुशल तो है॥ १७॥

तुम यहाँ किसलिये भेजे गये हो, शंकरजीका कौन-सा कार्य है अथवा देवताओंका कोई काम तो नहीं आ पड़ा, मुझे बताओ॥ १८॥

दूत बोला—हे गरुडध्वज! हे त्रिकालज्ञ! इस संसारकी कौन-सी बात आपको विदित नहीं है; तथापि इस समय जो बात है, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ॥ १९॥

हे जनार्दन! उस बातको बतानेके लिये मैं शंकरजीके द्वारा यहाँ भेजा गया हूँ। हे प्रभो! शिवजीके कहे गये शब्दोंमें मैं आपसे कह रहा हूँ॥ २०॥

तेनोक्तमेतद्देवेश भार्या ते कमलालया।
तपस्तपति कालिन्दीतमसासङ्गमे विभो॥ २१

हयीरूपधरा देवी सर्वार्थसिद्धिदायिनी।
ध्यातुं योग्यामरगणैर्मानवैर्यक्षकिन्नरैः॥ २२

विना तया नरः कोऽपि सुखभागी भवेन्न हि।
तां त्यक्त्वा पुण्डरीकाक्ष प्राप्नोषि किं सुखं हरे॥ २३

दुर्बलोऽपि स्त्रियं पाति निर्धनोऽपि जगत्पते।
विनापराधं च विभो किं त्यक्ता जगदीश्वरी॥ २४

दुःखं प्राप्नोति संसारे यस्य भार्या जगद्गुरो।
धिक्तस्य जीवितं लोके निन्दितं त्वरिमण्डले॥ २५

सकामा रिपवस्तेऽद्य दृष्ट्वा तां दुःखितां भृशम्।
त्वां वियुक्तं च रमया हसिष्यन्ति दिवानिशम्॥ २६

रमां रमय देवेश त्वदुत्सङ्गगतां कुरु।
सर्वलक्षणसम्पन्नां सुशीलां च सुरूपिणीम्॥ २७

सुखितो भव तां प्राप्य वल्लभां चारुहासिनीम्।
कान्ताविरहजं दुःखं स्मराम्यहमनातुरः॥ २८

मम भार्या मृता विष्णो दक्षयज्ञे सती यदा।
तदाहं दुःसहं दुःखं भुक्तवानम्बुजेक्षण॥ २९

संसारेऽस्मिन्नरः कोऽपि माभून्मत्सदृशोऽपरः।
मनसाकरवं शोकं तस्या विरहपीडितः॥ ३०

कालेन महता प्राप्ता मया गिरिसुता पुनः।
तपस्तप्त्वातिदुःसाध्यं या दग्धा तु रुषाध्वरे॥ ३१

हरे किं सुखमापन्नं त्वया सन्त्यज्य कामिनीम्।
एकाकी तिष्ठता कालं सहस्रवत्सरात्मकम्॥ ३२

हे देवेश! उन्होंने कहा है कि 'हे विभो! आपकी भार्या लक्ष्मीजी यमुना और तमसा नदीके संगमपर तपस्या कर रही हैं॥ २१॥

देवगण, मानव, यक्ष तथा किन्नरोंके द्वारा आराधनाके योग्य एवं समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली वे देवी घोड़ीका रूप धारण किये हैं॥ २२॥

उन देवीके बिना इस जगत्का कोई भी प्राणी सुखी नहीं रह सकता। हे पुण्डरीकाक्ष! हे हरे! उनका परित्याग करके आप कौन-सा सुख प्राप्त कर रहे हैं?॥ २३॥

हे जगत्पते! दुर्बल तथा निर्धन व्यक्ति भी अपनी भार्याकी रक्षा करता है। तब हे विभो! आपने बिना अपराधके ही उन जगदीश्वरीका त्याग क्यों कर दिया है?॥ २४॥

हे जगद्गुरो! जिसकी भार्या संसारमें दुःख प्राप्त करती है, उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसा व्यक्ति शत्रुसमुदायमें निन्दित होता है॥ २५॥

आपके स्वार्थी शत्रु इस समय लक्ष्मीजीको अत्यन्त दुःखित तथा आपको उनसे विलग देखकर दिन-रात हँसते होंगे॥ २६॥

हे देवेश! आप सभी लक्षणोंसे सम्पन्न, सुशीला तथा सुन्दर रूपवाली लक्ष्मीजीको अपने अंकमें विराजमान कीजिये और उनके साथ आनन्द प्राप्त कीजिये। सुन्दर मुसकानवाली प्रिया लक्ष्मीको प्राप्तकर आप सुखी हो जाइये॥ २७½॥

उदास रहता हुआ मैं ही स्त्रीवियोगसे उत्पन्न दुःखको समझता हूँ। हे विष्णो! हे कमलनयन! जब मेरी भार्या सती दक्षके यज्ञमें मृत हो गयी थी तब मुझे असहनीय दुःख भोगना पड़ा था। उसके विरहसे पीडित होकर मैं मनमें यह शोक करता था कि इस संसारमें मेरे-जैसा कोई अन्य व्यक्ति न हो। जो सती क्रोधवश दक्षके यज्ञमें जलकर भस्म हो गयी थी, उसे मैंने बहुत समयतक कठोर तपस्या करके गिरिजाके रूपमें पुनः प्राप्त किया था॥ २८—३१॥

हे हरे! आपने अपनी भार्याको छोड़कर एक हजार वर्षकी अवधितक अकेले रहते हुए कौन-सा सुख प्राप्त कर लिया?॥ ३२॥

गत्वाश्वास्य महाभागां समानय निजालयम्।
माभूत्कोऽपीह संसारे विमुक्तो रमया तया॥ ३३

कृत्वा तुरगरूपं त्वं भज तां कमलालयाम्।
उत्पाद्य पुत्रमायुष्मंस्तामानय शुचिस्मिताम्॥ ३४

व्यास उवाच

हरिराकर्ण्य तद्वाक्यं चित्ररूपस्य भारत।
तथेत्युक्त्वा तु तं दूतं प्रेषयामास शङ्करम्॥ ३५

गते दूतेऽथ भगवान्वैकुण्ठात्कामसंयुतः।
जगाम धृत्वा तत्राशु वाजिरूपं मनोहरम्॥ ३६

यत्र सा वडवारूपं कृत्वा तपति सिन्धुजा।
विष्णुस्तं देशमासाद्य तामपश्यद्धयीं स्थिताम्॥ ३७

सापि तं वीक्ष्य गोविन्दं हयरूपधरं पतिम्।
ज्ञात्वा वीक्ष्य स्थिता साध्वी विस्मिता साश्रुलोचना॥ ३८

तयोस्तु सङ्गमस्तत्र प्रवृत्तो मन्मथार्तयोः।
कालिन्दीतमसासङ्गे पावने लोकविश्रुते॥ ३९

सगर्भा सा तदा जाता वडवा हरिवल्लभा।
सुषुवे सुन्दरं बालं तत्रैव सुगुणोत्तरम्॥ ४०

तामाह भगवान्वाक्यं प्रहस्य समयाश्रितम्।
त्यजाद्य वाडवं देहं पूर्वदेहा भवाधुना॥ ४१

गमिष्यावः स्ववैकुण्ठमावां कृत्वा निजं वपुः।
तिष्ठत्वत्र कुमारोऽयं त्वया जातः सुलोचने॥ ४२

लक्ष्मीरुवाच

स्वदेहसम्भवं पुत्रं कथं हित्वा व्रजाम्यहम्।
स्नेहः सुदुस्त्यजः कामं स्वात्मजस्य सुरर्षभ॥ ४३

का गतिः स्यादमेयात्मन् बालस्यास्य नदीतटे।
अनाथस्यासमर्थस्य विजनेऽल्पतनोरिह॥ ४४

अतः आप महाभागा लक्ष्मीके पास जायँ और उन्हें आश्वासन देकर अपने घर ले आयें। इस संसारमें कोई भी प्राणी उन रमा (लक्ष्मी)-से विमुक्त न होने पाये॥ ३३॥

हे आयुष्मन्! आप अभी अश्वरूप धारण करके पवित्र मुसकानवाली लक्ष्मीके पास जाइये और पुत्र उत्पन्न करके उन्हें [वैकुण्ठ] ले आइये॥ ३४॥

व्यासजी बोले—हे भारत! चित्ररूपकी वह बात सुनकर भगवान् विष्णुने 'ठीक है'—ऐसा कहकर उस दूतको शंकरजीके पास भेज दिया॥ ३५॥

तत्पश्चात् दूतके चले जानेपर भगवान् विष्णु मनोहर अश्वरूप धारणकर कामयुक्त होकर शीघ्र ही वैकुण्ठसे वहींपर पहुँचे जहाँ घोड़ीका रूप धारणकर सिन्धुतनया लक्ष्मीजी तपस्या कर रही थीं। विष्णुजीने उस स्थानपर पहुँचकर हयरूपधारिणी लक्ष्मीजीको विराजमान देखा। अश्वका रूप धारण किये हुए अपने पति गोविन्दको देखते ही लक्ष्मीजीने भी उन्हें पहचान लिया और वे साध्वी विस्मयमें पड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखती हुई वहीं खड़ी रहीं॥ ३६—३८॥

यमुना और तमसाके लोकप्रसिद्ध पवित्र संगमपर कामार्त उन दोनोंका समागम हुआ॥ ३९॥

इस प्रकार वडवारूपधारिणी वे विष्णुप्रिया गर्भवती हो गयीं और वहींपर उन्होंने सद्‌गुणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर पुत्रको जन्म दिया॥ ४०॥

भगवान् विष्णुने हँसकर उनसे यह समयोचित बात कही—तुम अब अपना यह अश्वीरूप छोड़ दो और पहले जैसा शरीर धारण कर लो॥ ४१॥

हे सुलोचने! हम दोनों अपनी दिव्य देह धारण करके अपने वैकुण्ठधाम चलेंगे और तुमसे उत्पन्न यह कुमार अब यहीं रहे॥ ४२॥

लक्ष्मीजी बोलीं—हे देवश्रेष्ठ! अपने शरीरसे उत्पन्न पुत्रको छोड़कर मैं कैसे जाऊँ? अपने पुत्रके प्रति स्नेहका त्याग अत्यन्त ही कठिन है॥ ४३॥

हे अमेयात्मन्! इस निर्जन नदीतटपर इस लघुकाय, अनाथ तथा असमर्थ बालककी क्या गति होगी?॥ ४४॥

अनाश्रयं सुतं त्यक्त्वा कथं गन्तुं मनो मम।
समर्थं सदयं स्वामिन् भवेदम्बुजलोचन॥ ४५

दिव्यदेहौ ततो जातौ लक्ष्मीनारायणावुभौ।
विमानवरसंविष्टौ स्तूयमानौ सुरैर्दिवि॥ ४६

गन्तुकामं पतिं प्राह कमला कमलापतिम्।
गृहाणेमं सुतं नाथ नाहं शक्तास्मि हापितुम्॥ ४७

प्राणप्रियोऽस्ति मे पुत्रः कान्त्या त्वत्सदृशः प्रभो।
गृहीत्वैनं गमिष्यावो वैकुण्ठं मधुसूदन॥ ४८

हरिरुवाच

मा विषादं प्रिये कर्तुं त्वमर्हसि वरानने।
तिष्ठत्वयं सुखेनात्र रक्षा मे विहिता त्विह॥ ४९

कार्यं किमपि वामोरु वर्तते महदद्भुतम्।
निबोध कथयाम्यद्य सुतस्यात्र विमोचने॥ ५०

तुर्वसुर्नाम विख्यातो ययातितनुजो भुवि।
हरिवर्मेति पित्रास्य कृतं नाम सुविश्रुतम्॥ ५१

स राजा पुत्रकामोऽद्य तपस्तपति पावने।
तीर्थे वर्षशतं जातं तस्य वै कुर्वतस्तपः॥ ५२

तस्यार्थे निर्मितः पुत्रो मयायं कमलालये।
तत्र गत्वा नृपं सुभ्रु प्रेरयिष्यामि साम्प्रतम्॥ ५३

तस्मै दास्याम्यहं पुत्रं पुत्रकामाय कामिनि।
गृहीत्वा स्वगृहं राजा प्रापयिष्यति बालकम्॥ ५४

व्यास उवाच

इत्याश्वास्य प्रियां पद्मां कृत्वा रक्षां च बालके।
विमानवरमारुह्य प्रययौ प्रियया सह॥ ५५

हे कमलनयन! हे स्वामिन्! इस आश्रयहीन पुत्रको छोड़कर मेरा दयालु मन यहाँसे जानेके लिये भला कैसे तैयार हो सकता है?॥ ४५॥

तत्पश्चात् लक्ष्मीजी तथा भगवान् विष्णु दोनों दिव्य शरीर धारणकर उत्तम विमानपर विराजमान हुए; देवगण अन्तरिक्षमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४६॥

वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेके इच्छुक भगवान् विष्णुसे लक्ष्मीजीने कहा—हे नाथ! मैं इस पुत्रका त्याग नहीं कर सकती, अतएव इसे भी साथ ले लीजिये। हे प्रभो! मेरा यह प्राणके समान प्रिय पुत्र कान्तिमें आपहीके सदृश है। हे मधुसूदन! इसे लेकर हम दोनों वैकुण्ठ चलेंगे॥ ४७-४८॥

हरि बोले—हे प्रिये! हे वरानने! इस पुत्रके विषयमें शोक करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। यह सुखपूर्वक यहीं रहे; मैंने इसकी रक्षाका उपाय कर दिया है॥ ४९॥

हे वामोरु! इस पुत्रके यहाँ छोड़नेके पीछे कोई महान् तथा आश्चर्यजनक कारण छिपा है। मैं उसे बता रहा हूँ; तुम जान लो॥ ५०॥

इस पृथ्वीपर ययातिके पुत्र तुर्वसु नामक एक प्रसिद्ध राजा हैं। उनके पिताने उनका लोक-प्रसिद्ध हरिवर्मा—यह नाम रखा था। इस समय पुत्रकी कामनावाले वे नरेश एक पवित्र तीर्थमें तपस्या कर रहे हैं। उन्हें तप करते हुए पूरे एक सौ वर्ष बीत चुके हैं। हे कमलालये! उन्हींके लिये मैंने यह पुत्र उत्पन्न किया है। हे सुभ्रु! वहाँ राजाके पास जाकर मैं उन्हें इसी समय भेज दूँगा। हे प्रिये! पुत्रके अभिलाषी उन्हीं राजाको मैं यह पुत्र दे दूँगा और वे इस बालकको लेकर अपने घर चले जायँगे॥ ५१—५४॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार अपनी प्रिय भार्याको आश्वासन देकर तथा बालककी रक्षाका प्रबन्ध करके भगवान् विष्णु उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रियाके साथ चले गये॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे पुत्रजन्मानन्तरं स्वस्वरूपेण वैकुण्ठगमनवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

राजा हरिवर्माको भगवान् विष्णुद्वारा अपना हैहयसंज्ञक पुत्र देना, राजाद्वारा उसका 'एकवीर' नाम रखना

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं महानत्र जातमात्रः शिशुस्तथा।
मुक्तः केन गृहीतोऽसावेकाकी विजने वने॥ १

का गतिस्तस्य बालस्य जाता सत्यवतीसुत।
व्याघ्रसिंहादिभिर्हिंस्त्रैर्गृहीतो नातिबालकः॥ २

व्यास उवाच

लक्ष्मीनारायणौ तस्मात्स्थानाच्च चलितौ यदा।
तदैव तत्र चम्पाख्यः प्राप्तो विद्याधरः किल॥ ३

विमानवरमारूढः कामिन्या सहितो नृप।
मदनालसया कामं क्रीडमानो यदृच्छया॥ ४

विलोक्य तं शिशुं भूमावेकाकिनमनुत्तमम्।
देवपुत्रप्रतीकाशं रममाणं यथासुखम्॥ ५

विमानात्तरसोत्तीर्य चम्पकस्तं शिशुं जवात्।
जग्राह च मुदं प्राप निधिं प्राप्य यथाधनः॥ ६

गृहीत्वा चम्पकः प्रादाद्देव्यै तं मदनोपमम्।
मदनालसायै तं बालं जातमात्रं मनोहरम्॥ ७

सा गृहीत्वा शिशुं प्रेम्णा सरोमाञ्चा सविस्मया।
मुखं चुचुम्ब बालस्य कृत्वा तु हृदये भृशम्॥ ८

आलिङ्गितश्चुम्बितश्च तयासौ प्रीतिपूर्वकम्।
उत्सङ्गे च कृतस्तन्व्या पुत्रभावेन भारत॥ ९

कृत्वाङ्के तौ समारूढौ विमानं दम्पती मुदा।
पतिं पप्रच्छ चार्वङ्गी प्रहस्य मदनालसा॥ १०

कस्यायं बालकः कान्त त्यक्तः केन च कानने।
पुत्रोऽयं मम देवेन दत्तस्त्र्यम्बकपाणिना॥ ११

जनमेजय बोले—[हे मुनिवर!] मुझे इस विषयमें यह महान् संशय हो रहा है कि भगवान्ने उत्पन्न होते ही उस बालकका त्याग कर दिया। निर्जन वनमें उस असहाय बालककी देखभाल किसने की?॥ १॥

हे सत्यवतीनन्दन! उस बालककी क्या गति हुई? बाघ, सिंह आदि हिंसक जानवर उस छोटे-से बालकको उठा तो नहीं ले गये॥ २॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! जब भगवान् विष्णु तथा लक्ष्मीजी उस स्थानसे चले गये, उसी समय चम्पक नामक विद्याधर उत्तम विमानपर आरूढ़ होकर अपनी प्रेयसी मदनालसाके साथ इच्छापूर्वक विहार करते हुए संयोगवश वहाँ आ पहुँचा॥ ३-४॥

देवपुत्र-तुल्य उस उत्तम शिशुको पृथ्वीपर सुखपूर्वक अकेले खेलते हुए देखकर चम्पकने शीघ्रतापूर्वक विमानसे उतरकर झटसे उस बालकको उठा लिया और वह उसी प्रकार आनन्दित हो गया, जिस प्रकार कोई धनहीन व्यक्ति धनका खजाना पाकर आनन्दित हो जाता है॥ ५-६॥

कामदेवके समान अत्यन्त सुन्दर उस नवजात शिशुको उठाकर चम्पकने (अपनी पत्नी) मदनालसाको सौंप दिया॥ ७॥

उस बालकको लेते ही प्रेमसे रोमांचित तथा विस्मित मदनालसा हृदयसे लगाकर उस बालकका मुख चूमने लगी॥ ८॥

हे भारत! प्रीतिपूर्वक हृदयसे लगाने तथा चूमनेके पश्चात् उस तन्वंगी मदनालसाने उसे अपना पुत्र समझकर गोदमें ले लिया॥ ९॥

उसे गोदमें लेकर पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक विमानपर आरूढ़ हो गये। तब कमनीय अंगोंवाली मदनालसाने हँसकर अपने पतिसे पूछा—हे कान्त! बालक किसका है तथा किसने इसे निर्जन वनमें छोड़ दिया है? त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने इसे मुझे पुत्ररूपमें दिया है॥ १०-११॥

चम्पक उवाच

प्रिये गत्वाद्य पृच्छेयं शक्रं सर्वज्ञमाशु वै।
देवो वा दानवो वापि गन्धर्वो वा शिशुः किल॥ १२

तेनाज्ञप्तः करिष्यामि पुत्रं प्राप्तं वनादमुम्।
अपृष्ट्वा नैव कर्तव्यं कार्यं किञ्चिन्मया ध्रुवम्॥ १३

इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा तं विमानेनाथ चम्पकः।
ययौ शक्रपुरं तूर्णं हर्षेणोत्फुल्ललोचनः॥ १४

प्रणम्य पादयोः प्रीत्या चम्पकस्तु शचीपतिम्।
निवेद्य बालकं प्राह कृताञ्जलिपुटः स्थितः॥ १५

देवदेव मया लब्धस्तीर्थे परमपावने।
कालिन्दीतमसासङ्गे बालकोऽयं स्मरप्रभः॥ १६

कस्यायं बालकः कान्तः कथं त्यक्तः शचीपते।
आज्ञा चेत्तव देवेश कुर्वेऽहं बालकं सुतम्॥ १७

अतीव सुन्दरो बालः प्रियाया वल्लभः सुतः।
कृत्रिमस्तु सुतः प्रोक्तो धर्मशास्त्रेषु सर्वथा॥ १८

इन्द्र उवाच

पुत्रोऽयं वासुदेवस्य वाजिरूपधरस्य ह।
हैहयोऽयं महाभाग लक्ष्म्यां जातः परन्तपः॥ १९

उत्पादितो भगवता कार्यार्थं किल बालकः।
दातुं नृपतये नूनं ययातितनयाय च॥ २०

हरिणा प्रेरितः सोऽद्य राजा परमधार्मिकः।
आगमिष्यति पुत्रार्थं तीर्थे तस्मिन्मनोरमे॥ २१

तावत् त्वं गच्छ तत्रैव गृहीत्वा बालकं शुभम्।
यावन्न याति नृपतिर्ग्रहीतुं हरिणेरितः॥ २२

गत्वा तत्र विमुञ्चैनं विलम्बं मा कृथा वर।
अदृष्ट्वा बालकं राजा दुःखितश्च भविष्यति॥ २३

चम्पक बोला—हे प्रिये! मैं आज ही सब कुछ जाननेवाले इन्द्रके पास जाकर पूछूँगा कि यह बालक देवता है, दानव है अथवा गन्धर्व है। उनसे आदेश प्राप्त करनेके बाद ही मैं वनमें प्राप्त इस बालकको अपना पुत्र बनाऊँगा; बिना उनसे पूछे मुझे कोई भी कार्य निश्चितरूपसे नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

ऐसा कहकर उस मदनालसा तथा पुत्रको लेकर हर्षातिरेकके कारण उत्फुल्ल नेत्रोंवाले उस चम्पकने तुरंत विमानसे इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया। [वहाँ पहुँचकर] प्रेमपूर्वक इन्द्रके चरणोंमें प्रणामकर उस बालकको उन्हें समर्पित करके दोनों हाथ जोड़कर चम्पक खड़ा हो गया और बोला—॥ १४-१५॥

हे देवदेव! कामदेवके समान प्रभावाला यह बालक मुझे परम पवित्र तीर्थ यमुना तथा तमसा नदीके संगम-स्थलपर प्राप्त हुआ था॥ १६॥

हे शचीपते! कान्तिसे सम्पन्न यह बालक किसका है; इसका त्याग क्यों कर दिया गया है? हे देवेश! यदि आपका आदेश हो तो मैं इस बालकको अपना पुत्र बना लूँ॥ १७॥

यह अत्यन्त सुन्दर बालक मेरी पत्नीका प्रिय पुत्र बन गया है। धर्मशास्त्रोंमें कृत्रिम पुत्र भी कहा गया है॥ १८॥

इन्द्र बोले—यह अश्वरूपधारी भगवान् विष्णुका पुत्र है। हे महाभाग! हैहयसंज्ञक यह परम तपस्वी बालक लक्ष्मीजीसे उत्पन्न हुआ है॥ १९॥

भगवान् विष्णुने ययातिके पुत्र राजा हरिवर्माको अर्पित करनेके उद्देश्यसे इस बालकको उत्पन्न किया है॥ २०॥

परम धार्मिक राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुसे प्रेरणा प्राप्तकर पुत्रके लिये आज ही उस पावन तीर्थमें पहुँचेंगे। अतएव जबतक भगवान् विष्णुके द्वारा प्रेरित होकर वे राजा उसे लेनेहेतु वहाँ पहुँच नहीं जाते, उससे पूर्व तुम इस सुन्दर बालकको लेकर वहींपर पहुँच जाओ॥ २१-२२॥

हे श्रेष्ठ! वहाँ जाकर इस बालकको छोड़ दो, विलम्ब मत करो; क्योंकि राजा हरिवर्मा [तुमसे पहले पहुँच गये तो] बालकको वहाँ न देखकर अत्यन्त दुःखी होंगे॥ २३॥

तस्माच्चम्पक मुञ्चैनं राजा प्राप्नोतु पुत्रकम्।
एकवीरेति नाम्नायं ख्यातः स्यात् पृथिवीतले॥ २४

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा चम्पकस्त्वरयान्वितः।
जगाम पुत्रमादाय स्थले तस्मिन्महीपते॥ २५
मुमोच बालकं तत्र यत्र पूर्वं स्थितो ह्यभूत्।
आरुह्य स्वविमानं तु ययौ स्वाश्रममण्डलम्॥ २६
तदैव कमलाकान्तो लक्ष्म्या सह जगद्गुरुः।
विमानवरमारूढो जगाम नृपतिं प्रति॥ २७
दृष्टस्तदा तेन नृपेण विष्णुः
समुत्तरंस्तत्र विमानमुख्यात्।
जहर्ष राजा हरिदर्शनेन
पपात भूमौ खलु दण्डवच्च॥ २८
उत्तिष्ठ वत्सेति हरिः पतन्त-
माश्वासयद्भूमिगतं स्वभक्तम्।
सोऽप्युत्सुको वासुदेवं पुरःस्थं
तुष्टाव भक्त्या मुखरीकृतोऽथ॥ २९
देवाधिदेवाखिललोकनाथ
कृपानिधे लोकगुरो रमेश।
मन्दस्य मे ते किल दर्शनं य-
त्सुदुर्लभं योगिजनैरलभ्यम्॥ ३०
ये निःस्पृहास्ते विषयैरपेता-
स्तेषां त्वदीयं खलु दर्शनं स्यात्।
आशापरोऽहं भगवन्ननन्त
योग्यो न ते दर्शने देवदेव॥ ३१
इति स्तुतस्तेन नृपेण विष्णु-
स्तमाह वाक्येन सुधामयेन।
वृणीष्व राजन् मनसेप्सितं ते
ददामि तुष्टस्तपसा तवेति॥ ३२
ततो नृपस्तं प्रणिपत्य पादयोः
प्रोवाच विष्णुं पुरतः स्थितं च।
तपस्तु तप्तं हि मया सुतार्थे
पुत्रं ददस्वात्मसमं मुरारे॥ ३३

अतएव हे चम्पक! इस बालकको छोड़ आओ, जिससे राजा पुत्र प्राप्त कर लें। यह पृथ्वीलोकमें 'एकवीर'—इस नामसे प्रसिद्ध होगा॥ २४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इन्द्रकी यह बात सुनकर चम्पक शीघ्रतापूर्वक उस बालकको लेकर उस स्थानपर पहुँच गया। बालक पहले जहाँ पड़ा हुआ था, वहींपर उसने बालकको रख दिया और अपने विमानपर चढ़कर अपने स्थानको लौट गया॥ २५-२६॥

इसके तुरंत बाद कमलाकान्त जगद्गुरु भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर राजाके यहाँ पहुँचे॥ २७॥

उस समय राजा हरिवर्माने भगवान् विष्णुको उत्तम विमानसे उतरते हुए देखा। भगवान्के दर्शनसे राजा अत्यन्त हर्षित हुए और दण्डकी भाँति उनके समक्ष पृथ्वीपर गिर पड़े॥ २८॥

'हे वत्स! उठो'—ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने भूमिपर पड़े हुए अपने भक्तको आश्वासन दिया। इसके बाद राजा हरिवर्मा भी उल्लसित होकर अपने सामने खड़े वासुदेवकी भक्तिपूर्वक स्पष्ट वाणीमें स्तुति करने लगे—॥ २९॥

हे देवाधिदेव! हे अखिललोकनाथ! हे कृपानिधे! हे लोकगुरो! हे रमेश! आपका जो दर्शन योगिजनोंके लिये भी अलभ्य है, वह मुझ अज्ञानीके लिये तो अत्यन्त ही दुर्लभ था॥ ३०॥

जो लोग कामनारहित तथा विषयोंसे मुक्त हैं, उन्हें ही आपका दर्शन हो सकता है। हे भगवन्! हे अनन्त! हे देवदेव! केवल आशापरायण मैं वास्तवमें आपके दर्शनके योग्य नहीं था॥ ३१॥

इस प्रकार उन राजाके स्तुति करनेपर भगवान् विष्णुने अमृतमयी वाणीमें उनसे कहा—हे राजन्! मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हूँ। अतः मैं तुम्हें मनोवांछित वरदान दूँगा; तुम माँग लो॥ ३२॥

तत्पश्चात् राजाने अपने सामने स्थित विष्णुके चरणोंमें सिर झुकाकर उनसे कहा—हे मुरारे! मैंने पुत्रप्राप्तिके लिये तपस्या की है। अतएव आप मुझे अपने ही सदृश पुत्र दीजिये॥ ३३॥

श्रुत्वा नृपप्रार्थितमादिदेव-
स्तमाह राजानममोघवाक्यम्।
ययातिसूनो व्रज तत्र तीर्थे
कलिन्दकन्यातमसाप्रसङ्गे ॥ ३४
मयाद्य पुत्रस्तु यथेप्सितस्ते
तत्रैव मुक्तोऽस्त्यमितप्रभावः।
लक्ष्म्याः प्रसूतो मम वीर्यजश्च
कृतस्तवार्थेऽथ गृहाण राजन्॥ ३५
श्रुत्वा हरेर्वाक्यमतीव मृष्टं
सन्तुष्टचित्तः प्रबभूव राजा।
हरिस्तु दत्त्वेति वरं जगाम
वैकुण्ठलोकं रमया युतश्च॥ ३६
गते हरौ सोऽथ ययातिसूनु-
र्ययावनुद्धातरथेन राजा।
प्रेमान्वितस्तत्र सुतोऽस्ति यत्र
वचो निशम्येति जनार्दनस्य॥ ३७
स तत्र गत्वातिमनोहरं तं
ददर्श बालं भुवि खेलमानम्।
मुखे निवेश्यैककरेण कृत्वा
श्लक्ष्णं पदाङ्गुष्ठमनन्यसत्त्वः॥ ३८
तं वीक्ष्य पुत्रं मदनस्वरूपं
नारायणांशं कमलाप्रसूतम्।
हरिप्रभावं हरिवर्मनामा
हर्षप्रफुल्लाननपङ्कजोऽभूत् ॥ ३९
गृह्णन् सुवेगात् करपङ्कजाभ्यां
बभूव प्रेमार्णवमग्नदेहः।
मूर्धन्युपाघ्राय मुदान्वितोऽसौ
ननन्द राजा सुतमालिलिङ्ग॥ ४०
मुखं समीक्ष्यातिमनोहरं त-
मुवाच नेत्राम्बुनिरुद्धकण्ठः।
दत्तोऽसि देवेन जनार्दनेन
मात्रा हि पुत्रावमदुःखभीतेः॥ ४१
तप्तं मया पुत्र तपस्तवार्थे
सुदुष्करं वर्षशतं च पूर्णम्।
तेनैव तुष्टेन रमाप्रियेण
दत्तोऽसि संसारसुखोदयाय॥ ४२

राजाकी प्रार्थना सुनकर आदिदेव भगवान् विष्णुने राजासे सार्थक वचन कहा—हे ययातिनन्दन! तुम इसी समय यमुना तथा तमसा नदीके उस पावन संगम तीर्थपर चले जाओ। हे राजन्! आप जैसा पुत्र चाहते हैं, वैसा ही पुत्र मैंने वहाँ रख दिया है। मेरे तेजसे प्रादुर्भूत वह पुत्र अमित प्रभाववाला है तथा लक्ष्मीजीने उसे उत्पन्न किया है। तुम्हारे लिये ही उसकी उत्पत्ति की गयी है, अतः तुम उसे ग्रहण करो॥ ३४-३५॥

भगवान् विष्णुकी अत्यन्त मधुर वाणी सुनकर राजाके मनमें प्रसन्नता हुई। राजाको यह वरदान देकर भगवान् विष्णु लक्ष्मीजीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ ३६॥

भगवान् विष्णुके चले जानेपर उन जनार्दनकी बात सुनकर आनन्दविभोर ययातिनन्दन राजा हरिवर्मा एक अप्रतिहत गति वाले रथपर आरूढ़ होकर उस स्थानपर गये, जहाँ बालक स्थित था॥ ३७॥

वहाँ पहुँचनेपर परम तेजस्वी राजाने उस अति मनोहर बालकको एक हाथसे पैरका कोमल अँगूठा मुखमें डालकर भूमिपर खेलता हुआ देखा॥ ३८॥

लक्ष्मीजीसे उत्पन्न भगवान् विष्णुके अंशस्वरूप तथा उन्हींके समान प्रभावशाली एवं कामदेवके सदृश रूपवान् उस पुत्रको देखकर राजा हरिवर्माका मुखारविन्द हर्षसे खिल उठा। उस बालकको अपने करकमलोंसे बड़ी तेजीसे उठाते हुए राजा हरिवर्मा प्रेमसागरमें मग्न हो गये। प्रसन्नतापूर्वक उसका मस्तक सूँघकर उन राजाने पुत्रका आलिंगन किया और अत्यन्त आनन्द प्राप्त किया॥ ३९-४०॥

उस बालकका अत्यन्त मनोहर मुख देखकर प्रेमके अश्रुसे रुँधे कण्ठवाले राजाने उससे कहा—हे पुत्र! भगवान् विष्णु तथा माता लक्ष्मीके द्वारा तुम मेरे लिये प्रदान किये गये हो। हे पुत्र! नरकभोगके दुःखसे भयभीत होकर मैंने तुम्हारे लिये पूरे सौ वर्षोंतक अत्यन्त कठोर तपस्या की है। उसी तपसे प्रसन्न होकर रमाकान्त विष्णुने सांसारिक सुख भोगनेके लिये तुम्हें पुत्ररूपमें मुझे प्रदान किया है॥ ४१-४२॥

माता रमा त्वां तनुजं मदर्थे
त्यक्त्वा गता सा हरिणा समेता।
धन्या तु सा या प्रहसन्तमङ्के
कृत्वा सुतं त्वां मुदितानना स्यात्॥ ४३
त्वमेव संसारसमुद्रनौका-
रूपः कृतः पुत्र लक्ष्मीधरेण।
इत्येवमुक्त्वा नृपतिः सुतं तं
मुदा समादाय ययौ गृहाय॥ ४४
पुरीसमीपे नृपमागतं त-
माकर्ण्य सर्वे सचिवास्तु राज्ञः।
ययुः समीपं नृपतेश्च लोकाः
सोपायनास्ते सपुरोहिताश्च॥ ४५
बन्दीजना गायनकाश्च सूताः
समाययुः सम्मुखमाशु राज्ञः।
नृपः पुरं प्राप्य पुरः समागतं
जनं समाश्वास्य वाक्यैश्च दृष्ट्या॥ ४६
सम्पूजितः पौरजनेन राजा
विवेश पुत्रेण युतो नगर्याम्।
मार्गेषु लाजैः कुसुमैः समन्ता-
द्विकीर्यमाणो नृपतिर्जगाम॥ ४७
गृहं समृद्धं सचिवैः समेतः
सुतं समादाय मुदा कराभ्याम्।
राज्ञ्यै ददौ चाथ सुतं मनोज्ञं
सद्यःप्रसूतं च मनोभवाभम्॥ ४८
राज्ञी गृहीत्वाभिनवं तनूजं
पप्रच्छ राजानमनिन्दिता सा।
राजन् कुतश्चैष सुतः सुजन्मा
प्राप्तस्त्वया मन्मथतुल्यरूपः॥ ४९
केनैष दत्तः कथयाशु कान्त
चेतो मदीयं प्रहृतं सुतेन।
नृपस्तदोवाच मुदान्वितोऽसौ
प्रिये रमेशेन सुतो हि मह्यम्॥ ५०
लोलाक्षि दत्तः कमलासमुत्थो
जनार्दनांशोऽयमहीनसत्त्वः।
सा तं गृहीत्वा मुदमाप राज्ञी
राजा चकारोत्सवमद्भुतं च॥ ५१

लक्ष्मीजी तुम्हारी जननी हैं; तुझ पुत्रको मेरे लिये छोड़कर वे भगवान् विष्णुके साथ वैकुण्ठ चली गयी हैं। अब वह माता धन्य होगी, जो तुझ-जैसे हँसते हुए पुत्रको अपनी गोदमें लेकर आनन्द प्राप्त करेगी। हे पुत्र! मेरे लिये संसारसागरको पार करनेके लिये तुम नौकास्वरूप हो, जिसे साक्षात् लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने उत्पन्न किया है। ऐसा कहकर राजा हरिवर्मा प्रसन्नतापूर्वक उस पुत्रको लेकर अपने घरकी ओर चले गये॥ ४३-४४॥

राजा नगरके समीप आ गये हैं—ऐसा सुनकर राजाके सभी सचिव तथा उनके प्रजावर्ग पुरोहितोंके साथ समस्त उपहार-सामग्री लेकर उनके पास पहुँच गये॥ ४५॥

सूत, बंदीजन तथा गायकगण भी राजाके सामने उनका यशोगान करते हुए शीघ्र ही आ गये। नगरमें आकर राजा हरिवर्मा अपने सम्मुख उपस्थित लोगोंको [स्नेहभरी] दृष्टि तथा [मधुर] वचनोंसे आश्वस्त करके नगरवासियोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर पुत्रके साथ नगरीमें प्रविष्ट हुए। नगरमें जाते समय रास्तेभर राजाके ऊपर लाजा तथा फूलोंकी वर्षा की जा रही थी॥ ४६-४७॥

सचिवोंके साथ अपने समृद्धिशाली महलमें पहुँचनेपर राजाने हर्षपूर्वक कामदेवके तुल्य कान्तिमान् तथा मनोहर नवजात पुत्रको दोनों हाथोंमें लेकर रानीको दे दिया॥ ४८॥

उस बालकको गोदमें लेकर पुण्यात्मा रानीने राजासे पूछा—हे राजन्! कामदेवके समान सुन्दर तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न इस पुत्रको आपने कहाँसे प्राप्त किया? हे कान्त! आप शीघ्र बताइये कि किसने आपको यह बालक दिया है? इस पुत्रने अपने सौन्दर्यसे मेरे मनको वशीभूत कर लिया है। तब राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ कहा—हे प्रिये! हे चंचल नेत्रोंवाली! लक्ष्मीजीसे उत्पन्न तथा भगवान् जनार्दनका अंशस्वरूप यह महान् शक्तिशाली पुत्र मुझे स्वयं लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने ही दिया है। उस पुत्रको लेकर रानी परम आनन्दित हुईं और राजाने अद्भुत उत्सव मनाया॥ ४९—५१॥

ददौ च दानं किल याचकेभ्यो
गीतानि वाद्यानि बहूनि नेदुः।
कृत्वोत्सवं भूपतिरात्मजस्य
नामैकवीरेति चकार विश्रुतम्॥ ५२
सुखं च सम्प्राप्य मुदान्वितोऽसौ
ननन्द देवाधिपतुल्यवीर्यः।
पुत्रं हरे रूपगुणानुरूपं
सम्प्राप्य वंशस्य ऋणाच्च मुक्तः॥ ५३
इति सकलसुराणामीश्वरेणार्पितं तं
सकलगुणगणाढ्यं पुत्रमासाद्य राजा।
विविधसुखविनोदैर्भार्यया सेव्यमानो
व्यहरत निजगेहे शक्रतुल्यप्रतापः॥ ५४

राजाने याचकोंको दान दिया। इस अवसरपर गीत गाये गये तथा अनेक वाद्य बजाये गये। सम्यक् उत्सव करके राजाने अपने पुत्रका 'एकवीर'—यह प्रसिद्ध नाम रखा। वे सुख पाकर बहुत प्रसन्न हुए तथा आनन्दित हुए। इन्द्रके समान पराक्रमशाली राजा हरिवर्मा भगवान् विष्णुके सदृश रूपवान् तथा गुणी पुत्र पाकर वंशऋण (पितृऋण)-से मुक्त हो गये॥ ५२-५३॥

इस प्रकार समस्त देवताओंके अधिपति भगवान् विष्णुके द्वारा अर्पित किये गये उस सर्वगुणसम्पन्न पुत्रको प्राप्त करके इन्द्रके समान प्रतापी राजा हरिवर्मा अपनी भार्याके साथ नानाविध सुख भोगते हुए तथा विनोद करते हुए अपने महलमें रहने लगे॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
एकवीराख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

आखेटके लिये वनमें गये राजासे एकावलीकी सखी यशोवतीकी भेंट, एकावलीके जन्मकी कथा

व्यास उवाच

जातकर्मादिसंस्कारांश्चकार नृपतिस्तदा।
दिने दिने जगामाशु वृद्धिं बालः सुलालितः॥ १

नृपः संसारजं प्राप्य सुखं पुत्रसमुद्भवम्।
ऋणत्रयविमोक्षं च मेने तेन महात्मना॥ २

षष्ठेऽन्नप्राशनं तस्य कृत्वा मासि यथाविधि।
तृतीयेऽथ तथा वर्षे चूडाकरणमुत्तमम्॥ ३

चकार ब्राह्मणान् द्रव्यैः सम्पूज्य विविधैर्धनैः।
गोभिश्च विविधैर्दानैर्याचकानितरानपि॥ ४

वर्षे चैकादशे तस्य मौञ्जीबन्धनकर्म वै।
कारयित्वा धनुर्वेदमध्यापयत पार्थिवः॥ ५

अधीतवेदं पुत्रं तं राजधर्मविशारदम्।
दृष्ट्वा तस्याभिषेकाय मतिं चक्रे जनाधिपः॥ ६

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् राजा हरिवर्माने बालकके जातकर्म आदि संस्कार किये। भलीभाँति पालित-पोषित होनेके कारण वह बालक दिनोदिन शीघ्रतासे बढ़ने लगा॥ १॥

इस प्रकार पुत्रजनित सांसारिक सुख प्राप्त करके उन महात्मा नरेशने अपनेको अब तीनों ऋणोंसे मुक्त मान लिया॥ २॥

राजा हरिवर्माने छठें महीनेमें बालकका अन्नप्राशन-संस्कार करके तीसरे वर्षमें शुभ मुण्डन-संस्कार विधि-विधानके साथ सम्पन्न किया। इनमें ब्राह्मणोंकी सम्यक् पूजा करके उन्हें विविध धन-द्रव्यों तथा गौओंका दान किया गया और अन्य याचकोंको भी नानाविध दान दिये॥ ३-४॥

ग्यारहवें वर्षमें उस बालकका यज्ञोपवीत-संस्कार कराकर राजाने उसको धनुर्वेद पढ़वाया॥ ५॥

राजा हरिवर्माने उस पुत्रको धनुर्वेद तथा राजधर्ममें पूर्ण निष्णात हुआ देखकर उसका राज्याभिषेक करनेका निश्चय किया॥ ६॥

पुष्यार्कयोगसंयुक्ते दिवसे नृपसत्तमः।
कारयामास सम्भारानभिषेकार्थमादरात्॥ ७

द्विजानाहूय वेदज्ञान् सर्वशास्त्रविचक्षणान्।
अभिषेकं चकारासौ विधिवत् स्वात्मजस्य ह॥ ८

जलमानीय तीर्थेभ्यः सागरेभ्यश्च पार्थिवः।
स्वयं चकार विधिवदभिषेकं शुभे दिने॥ ९

धनं दत्त्वाथ विप्रेभ्यो राज्यं पुत्रे निवेश्य सः।
जगाम वनमेवाशु स्वर्गकामः स भूपतिः॥ १०

एकवीरं नृपं कृत्वा सम्मान्य सचिवानथ।
भार्यया सह भूपालः प्रविवेश वनं वशी॥ ११

मैनाकशिखरे राजा कृत्वा तार्तीयमाश्रमम्।
नित्यं पत्रफलाहारश्चिन्तयामास पार्वतीम्॥ १२

एवं स नृपतिः कृत्वा दिष्टान्ते सह भार्यया।
मृतोऽसौ वासवं लोकं गतः पुण्येन कर्मणा॥ १३

इन्द्रलोकं पिता प्राप्त इति श्रुत्वाथ हैहयः।
चकार वेदनिर्दिष्टं कर्म चैवौर्ध्वदैहिकम्॥ १४

कृत्वोत्तराः क्रियाः सर्वाः पितुः पार्थिवनन्दनः।
राज्यं चकार मेधावी पित्रा दत्तं सुसम्मतम्॥ १५

एकवीरोऽथ धर्मज्ञः प्राप्य राज्यमनुत्तमम्।
बुभुजे विविधान् भोगान् सचिवैश्च सुमानितः॥ १६

एकस्मिन् दिवसे राजा मन्त्रिपुत्रैः समन्वितः।
जगाम जाह्नवीतीरे हयारूढः प्रतापवान्॥ १७

सम्पश्यन् पादपान् रम्यान् कोकिलालापसंयुतान्।
पुष्पितान् फलसंयुक्तान् षट्पदालिविराजितान्॥ १८

तत्पश्चात् श्रेष्ठ राजाने पुष्यार्क-योगसे युक्त शुभ दिनमें बड़े आदरके साथ अभिषेकहेतु सभी सामग्रियाँ एकत्र करवायीं॥ ७॥

सभी शास्त्रोंमें पूर्ण पारंगत तथा वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्होंने विधिवत् अपने पुत्रका अभिषेक सम्पन्न किया। सभी तीर्थों तथा समुद्रोंसे जल मँगाकर राजाने शुभ दिनमें पुत्रका स्वयं अभिषेक किया॥ ८-९॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणोंको धन देकर तथा पुत्रको राज्य सौंपकर उन राजा हरिवर्माने स्वर्गप्राप्तिकी कामनासे वनके लिये शीघ्र ही प्रस्थान किया॥ १०॥

इस प्रकार एकवीरको राजा बनाकर तथा योग्य मन्त्रियोंको नियुक्तकर इन्द्रियजित् राजा हरिवर्माने अपनी भार्याके साथ वनमें प्रवेश किया॥ ११॥

मैनाकपर्वतके शिखरपर तृतीय आश्रम (वानप्रस्थ)-का आश्रय लेकर वे राजा प्रतिदिन वनके पत्तों तथा फलोंका आहार करते हुए भगवती पार्वतीकी आराधना करने लगे॥ १२॥

इस प्रकार अपनी भार्याके साथ वानप्रस्थ-आश्रमका पालन करके वे राजा प्रारब्ध कर्मके समाप्त हो जानेपर मृत्युको प्राप्त हुए और अपने पुण्यकर्मके प्रभावसे इन्द्रलोक चले गये॥ १३॥

पिता इन्द्रलोक चले गये—ऐसा सुनकर हैहय एकवीरने वैदिक विधानके अनुसार उनका और्ध्वदैहिक संस्कार सम्पन्न किया॥ १४॥

पिताकी सभी श्राद्ध आदि क्रियाएँ सम्पन्न करके सबकी सहमतिसे पिताद्वारा दिये गये राज्यपर वह मेधावी राजकुमार एकवीर शासन करने लगा॥ १५॥

उत्कृष्ट राज्य प्राप्त करके धर्मपरायण एकवीर सभी मन्त्रियोंसे सम्मानित रहते हुए अनेकविध सुखोंका उपभोग करने लगे॥ १६॥

एक दिन प्रतापी राजा एकवीर मन्त्रियोंके पुत्रोंके साथ घोड़ेपर आरूढ़ होकर गंगाके तटपर गये। वहाँ उन्होंने कोकिलोंकी कूजसे गुंजित, भ्रमरोंकी पंक्तियोंसे सुशोभित तथा फलों-फूलोंसे लदे मनोहर वृक्षों; वेदपाठकी ध्वनिसे निनादित, हवनके धुएँसे आच्छादित आकाश-मण्डलवाले, मृगोंके छोटे शिशुओंसे आवृत

मुनीनामाश्रमान् दिव्यान् वेदध्वनिनिनादितान्।
होमधूमावृताकाशान् मृगशावसमावृतान्॥ १९

केदाराञ्छालिसम्पक्वान् गोपिकाभिः सुरक्षितान्।
प्रफुल्लपङ्कजारामान्निकुञ्जांश्च मनोरमान्॥ २०

प्रेक्षमाणः प्रियालांस्तु चम्पकान् पनसद्रुमान्।
बकुलांस्तिलकान्नीपान् मन्दारांश्च प्रफुल्लितान्॥ २१

शालांस्तालांस्तमालांश्च जम्बूचूतकदम्बकान्।
स गच्छञ्जाह्नवीतोये प्रफुल्लं शतपत्रकम्॥ २२

पङ्कजं चातिगन्धाढ्यमपश्यदवनीपतिः।
दक्षिणे जलजस्याथ पार्श्वे कमललोचनाम्॥ २३

कनकाभां सुकेशीं च कम्बुग्रीवां कृशोदरीम्।
बिम्बोष्ठीं सुन्दरीं किञ्चित्समुद्यत्सुपयोधराम्॥ २४

सुनासां चारुसर्वाङ्गीमपश्यत् कन्यकां नृपः।
रुदतीं तां सखीं त्यक्त्वा विह्वलां दुःखपीडिताम्॥ २५

साश्रुनेत्रां क्रन्दमानां विजने कुररीमिव।
संवीक्ष्य राजा पप्रच्छ कन्यकां शोककारणम्॥ २६

सुनसे ब्रूहि कासि त्वं कस्य पुत्री शुभानने।
गन्धर्वी देवकन्याथ कथं रोदिषि सुन्दरि॥ २७

कथमेकाकिनी बाले त्यक्ता केन पिकस्वरे।
पतिस्ते क्व गतः कान्ते पिता वा ब्रूहि साम्प्रतम्॥ २८

किं ते दुःखमरालभ्रु कथयाद्य ममान्तिके।
करोमि दुःखनाशं ते सर्वथैव कृशोदरि॥ २९

न राज्ये मम तन्वङ्गि पीडां कोऽपि करोत्यलम्।
न भयं चौरजं कान्ते न राक्षसभयं तथा॥ ३०

मयि शासति भूपाले नोत्पाता दारुणा भुवि।
भयं न व्याघ्रसिंहेभ्यो न भयं कस्यचिद्भवेत्॥ ३१

वद वामोरु कस्मात्त्वं विलापं जाह्नवीतटे।
करोषि त्राणहीनात्र किं ते दुःखं वदस्व मे॥ ३२

दिव्य मुनि-आश्रमों; गोपिकाओंके द्वारा सुरक्षित तथा पके हुए शालिधान्यसे युक्त खेतों; विकसित कमलोंसे सुशोभित अनेक सरोवरों तथा मनको आकर्षित करनेवाले निकुंजोंको देखा। उन राजा एकवीरने प्रियाल, चम्पक, कटहल, बकुल, तिलक, नीप, पुष्पित मन्दार, शाल, ताल, तमाल, जामुन, आम और कदम्बके आदि वृक्षोंको देखते हुए कुछ दूर आगे जानेपर गंगाके जलमें उत्कृष्ट गन्धयुक्त एक खिला हुआ शतदल कमल देखा। राजाने उस कमलके दक्षिण भागमें कमलसदृश नेत्रोंवाली, स्वर्णके समान कान्तिवाली, सुन्दर केश-पाशवाली, शंखतुल्य गर्दनवाली, कृश कटिप्रदेशवाली, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, किंचित् स्फुट पयोधरवाली, मनोहर नासिकावाली तथा समस्त सुन्दर अंगोंवाली एक सुन्दरी कन्याको देखा। अपनी सखीसे बिछुड़ जानेसे व्याकुल होकर दुःखपूर्वक विलाप करती हुई, निर्जन वनमें आँखोंमें आँसू भरकर कुररी पक्षीकी भाँति क्रन्दन करती हुई उस कन्याको देखकर राजा एकवीरने उससे शोकका कारण पूछा॥ १७—२६॥

हे सुन्दर नासिकावाली! तुम कौन हो? हे सुमुखि! तुम किसकी पुत्री हो? तुम गन्धर्वकन्या हो अथवा देवकन्या? हे सुन्दरि! तुम क्यों रो रही हो? यह मुझे बताओ॥ २७॥

हे बाले! तुम यहाँ अकेली क्यों हो? हे पिकस्वरे! तुम्हें यहाँ किसने छोड़ दिया है? हे प्रिये! तुम्हारे पति अथवा पिता इस समय कहाँ चले गये हैं? मुझे बताओ॥ २८॥

हे वक्र भौंहोंवाली! तुम्हें क्या दुःख है? उसे मेरे सामने अभी व्यक्त करो। हे कृशोदरि! मैं सब प्रकारसे तुम्हारा दुःख दूर करूँगा॥ २९॥

हे तन्वंगि! मेरे राज्यमें कोई भी प्राणी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचा सकता और हे कान्ते! कहीं न तो चोरोंका भय है और न राक्षसोंका ही भय है॥ ३०॥

मुझ नरेशके शासन करते हुए इस पृथ्वीपर भीषण उत्पात नहीं हो सकते; बाघ अथवा सिंहसे किसीको भय नहीं हो सकता और किसीको कोई भी भय नहीं रहता॥ ३१॥

हे वामोरु! असहाय होकर तुम गंगातटपर क्यों विलाप कर रही हो, तुम्हें क्या दुःख है? मुझे बताओ॥ ३२॥

हन्म्यहं दुःखमत्युग्रं प्राणिनां पृथिवीतले।
दैवं च मानुषं कान्ते व्रतमेतन्ममाद्भुतम्॥ ३३

विशाललोचने ब्रूहि करोमि तव चिन्तितम्।
इत्युक्ते वचने राज्ञा श्रुत्वोवाच मृदुस्वना॥ ३४

शृणु राजेन्द्र वक्ष्यामि मम शोकस्य कारणम्।
विपत्तिरहितः प्राणी कथं रुदति भूपते॥ ३५

प्रब्रवीमि महाबाहो यदर्थं रुदती त्वहम्।
तव राज्यादन्यदेशे राजा परमधार्मिकः॥ ३६

रैभ्यो नाम महाराजः सन्तानरहितो भृशम्।
तस्य भार्या सुविख्याता रुक्मरेखेति नामतः॥ ३७

सुरूपा चतुरा साध्वी सर्वलक्षणसंयुता।
अपुत्रा दुःखिता कान्तमित्युवाच पुनः पुनः॥ ३८

किं जीवितेन मे नाथ धिग्वृथा जीवितं मम।
वन्ध्यायाः सुखहीनाया ह्यपुत्राया धरातले॥ ३९

इत्येवं भार्यया भूपः प्रेरितो मखमुत्तमम्।
चकार ब्राह्मणांस्तज्ज्ञानाहूय विधिवत्तदा॥ ४०

पुत्रकामो धनं भूरि ददावथ यथोदितम्।
हूयमाने घृतेऽत्यर्थं पावकादतिसुप्रभात्॥ ४१

आविर्बभूव चार्वङ्गी कन्यका शुभलक्षणा।
बिम्बोष्ठी सुदती सुभ्रूः पूर्णचन्द्रनिभानना॥ ४२

कनकाभा सुकेशान्ता रक्तपाणितला मृदुः।
सुरक्तनयना तन्वी रक्तपादतला भृशम्॥ ४३

हुताशनात्समुद्भूता होत्रा सा स्वीकृता तदा।
होता प्रोवाच राजानं गृहीत्वा तां सुमध्यमाम्॥ ४४

राजन् पुत्रीं गृहाणेमां सर्वलक्षणसंयुताम्।
एकावलीव सम्भूता हूयमानाद्धुताशनात्॥ ४५

हे कान्ते! मैं जगत्‌के प्राणियोंके अत्यन्त भीषण दैविक तथा मानुषिक कष्टको भी दूर करता हूँ; यह मेरा अद्भुत व्रत है। हे विशालनयने! बताओ, मैं तुम्हारा वांछित कार्य करूँगा॥ ३३$\frac{1}{2}$॥

राजाके ऐसा कहनेपर उसे सुनकर मधुरभाषिणी कन्याने कहा—हे राजेन्द्र! सुनिये, मैं आपको अपने शोकका कारण बता रही हूँ। हे राजन्! विपदारहित प्राणी भला क्यों रोयेगा? हे महाबाहो! मैं जिसलिये रो रही हूँ, वह आपको बता रही हूँ। आपके राज्यसे भिन्न दूसरे देशमें रैभ्य नामक एक महान् धार्मिक राजा हैं, वे महाराज सन्तानहीन हैं, उनकी पत्नी रुक्मरेखा—इस नामसे प्रसिद्ध हैं। वे परम रूपवती, बुद्धिमती, पतिव्रता तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न हैं। पुत्रहीन होनेसे दुःखित रहनेके कारण वे अपने पतिसे बार-बार कहा करती थीं—हे नाथ! मेरे इस जीवनसे क्या लाभ? इस जगत्‌में मुझ वन्ध्या, पुत्रहीन तथा सुखरहित नारीके इस व्यर्थ जीवनको धिक्कार है॥ ३४—३९॥

इस प्रकार अपनी भार्यासे प्रेरणा पाकर राजा रैभ्यने यज्ञके ज्ञाता ब्राह्मणोंको बुलाकर विधिवत् उत्तम यज्ञ सम्पन्न किया॥ ४०॥

पुत्राभिलाषी राजा रैभ्यने शास्त्रोक्त रीतिसे प्रचुर धन दान दिया। घृतकी आहुति अधिक पड़ते रहनेसे तीव्र प्रभायुक्त अग्निसे सुन्दर अंगोंवाली, शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली, सुन्दर दाँतों तथा भौंहोंवाली, पूर्ण चन्द्रमाके समान मुखवाली, स्वर्णके समान आभावाली, सुन्दर केशोंवाली, रक्त हथेलियोंवाली, कोमल, सुन्दर लाल नेत्रोंवाली, कृश शरीरवाली तथा रक्त पादतल [तलवे]-वाली एक कन्या प्रकट हुई॥ ४१—४३॥

तब होताने अग्निसे उत्पन्न हुई उस कन्याको स्वीकार कर लिया। इसके बाद उस सुन्दर कन्याको लेकर होताने राजा रैभ्यसे कहा—हे राजन्! समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न इस पुत्रीको ग्रहण कीजिये। हवन करते समय अग्निसे उत्पन्न यह कन्या मोतियोंकी मालाके समान प्रतीत होती है। अतः हे राजन्! यह

नाम्ना चैकावली लोके ख्याता पुत्री भविष्यति।
सुखितो भव भूपाल पुत्र्या पुत्रसमानया॥ ४६

सन्तोषं कुरु राजेन्द्र दत्ता देवेन विष्णुना।
होतुर्वाक्यं नृपः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कन्यकां शुभाम्॥ ४७

जग्राह परमप्रीतो होत्रा दत्तां सुसम्मताम्।
गृहीत्वा नृपतिस्तां तु ददौ पत्न्यै वराननाम्॥ ४८

आभाष्य रुक्मरेखायै गृहाण सुभगे सुताम्।
सा तां कमलपत्राक्षीं प्राप्य कन्यां मनोरमाम्॥ ४९

जहर्ष मुदिता राज्ञी पुत्रं प्राप्य यथासुखम्।
चकार मङ्गलं कर्म जातकर्मादिकं शुभम्॥ ५०

पुत्रजन्मसमुत्थं यत्तत्सर्वं विधिवत्ततः।
समाप्य च मखं राजा द्विजेभ्यो दक्षिणां शुभाम्॥ ५१

दत्त्वा विसृज्य विप्रेन्द्रान् मुदं प्राप महीपतिः।
दिने दिनेऽसितापाङ्गी पुत्रवृद्ध्या भृशं बभौ॥ ५२

मुदं च परमां प्राप नृपभार्या सुतान्विता।
उत्सवस्तद्दिने तस्य प्रवृत्तः सुतजन्मजः॥ ५३

पुत्री पुत्रसमात्यर्थं बभूव वल्लभा किल।
राज्ञो मन्त्रिसुता चाहं सुबुद्धे मन्मथाकृते॥ ५४

यशोवती च मे नाम समानं वय आवयोः।
वयस्याहं कृता राज्ञा क्रीडनाय तया सह॥ ५५

सदा सहचरी जाता प्रेमयुक्ता दिवानिशम्।
एकावली गन्धवन्ति यत्र पद्मानि पश्यति॥ ५६

तत्र सा रमते बाला नान्यत्र सुखमाप्नुयात्।
सुदूरे जाह्नवीतीरे भवन्ति कमलान्यपि॥ ५७

पुत्री जगत्में 'एकावली' नामसे प्रसिद्ध होगी। पुत्रतुल्य इस कन्याको प्राप्तकर आप सुखी हो जायँ। हे राजेन्द्र! सन्तोष कीजिये; भगवान् विष्णुने आपको यह कन्या दी है॥ ४४—४६$\frac{१}{२}$ ॥

होताकी बात सुनकर राजाने उस सुन्दर कन्याकी ओर देखकर होताके द्वारा प्रदत्त उस कन्याको अति प्रसन्न होकर ले लिया। राजाने सुन्दर मुखवाली उस कन्याको ले करके अपनी पत्नी रुक्मरेखाको यह कहकर दे दिया कि हे सुभगे! इस कन्याको स्वीकार करो। कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली उस मनोहर कन्याको पाकर रानी बहुत हर्षित हुईं; वे ऐसी सुखी हो गयीं मानो उन्हें पुत्र प्राप्त हो गया हो॥ ४७—४९$\frac{१}{२}$ ॥

तत्पश्चात् राजाने उसके जातकर्म आदि सभी शुभ मंगल कार्य सम्पन्न किये तथा पुत्रजन्मके अवसरपर होनेवाले जो कुछ भी कार्य थे, वे सब उन्होंने विधिपूर्वक सम्पन्न कराये। यज्ञ सम्पन्न करके राजा रैभ्य ब्राह्मणोंको विपुल दक्षिणा देकर तथा सभी विप्रेन्द्रोंको विदाकर अत्यन्त आनन्दित हुए॥ ५०-५१$\frac{१}{२}$ ॥

श्याम नेत्रोंवाली वह कन्या पुत्रवृद्धिके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी। उसे देखकर उस समय रानी अपनेको पुत्रवती समझकर परम आनन्दित हुईं। उस दिन महलमें ऐसा उत्सव मनाया गया, जैसा पुत्रजन्मके अवसरपर मनाया जाता है। वह पुत्री उन दोनोंके लिये पुत्रके ही सदृश प्रिय हो गयी॥ ५२-५३$\frac{१}{२}$ ॥

हे सुबुद्धे! हे कामदेवसदृश रूपवाले! मैं उन्हीं राजा रैभ्यके मन्त्रीकी पुत्री हूँ। मेरा नाम यशोवती है। मेरी तथा एकावलीकी अवस्था समान है। उसके साथ खेलनेके लिये राजाने मुझे उसकी सखी बना दिया। इस प्रकार मैं उसकी सहचरी बनकर प्रेमपूर्वक दिन-रात उसके साथ रहने लगी॥ ५४-५५$\frac{१}{२}$ ॥

एकावली जहाँ भी सुगन्धित कमल देखती थी, वह बाला वहीं खेलने लग जाती थी; अन्यत्र कहीं भी उसे सुख नहीं मिलता था। [एक बार] गंगाके तटपर बहुत दूर कमल खिले हुए थे। राजकुमारी एकावली सखियोंसहित मेरे साथ घूमती हुई वहाँ

रममाणा तत्र याता मत्समेता सखीयुता।
मया निवेदितं राजन् पुत्री ते कमलाकरान्॥ ५८

प्रेक्षमाणातिदूरे सा प्रयाति निर्जने वने।
निषेधिताथ पित्रासौ गृहे कृत्वा जलाशयान्॥ ५९

कमलान् वापयित्वाथ पुष्पितान् भ्रमरावृतान्।
तथापि निर्ययौ बाला कमलासक्तचेतना॥ ६०

तदा राज्ञा रक्षपालाः प्रेरिताः शस्त्रपाणयः।
एवं रक्षायुता तन्वी मत्समेता सखीयुता।
क्रीडार्थं जाह्नवीतोये नित्यमायाति याति च॥ ६१

चली गयी। [इससे चिन्तित होकर] मैंने महाराज रैभ्यसे कहा—हे राजन्! आपकी पुत्री एकावली कमलोंको देखती हुई बहुत दूर निर्जन वनमें चली जाती है। तब उसके पिताने घरपर ही अनेक जलाशयोंका निर्माण कराकर उनमें पुष्पित तथा भौंरोंसे आवृत कमल लगवाकर उसे दूर जानेसे मना कर दिया। इसपर भी मनमें कमलोंके प्रति आसक्ति रखनेवाली वह कन्या बाहर निकल जाती थी। तब राजाने उसके साथ हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए रक्षक नियुक्त कर दिये। इस प्रकार रक्षित होकर वह सुन्दरी मेरे तथा सखियोंसहित क्रीडाके लिये गंगातटपर प्रतिदिन आया-जाया करती थी॥ ५६—६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
राजपुत्र्या एकावल्या वर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

यशोवतीका एकवीरसे कालकेतुद्वारा एकावलीके अपहृत होनेकी बात बताना

यशोवत्युवाच

प्रातरुत्थाय तन्वङ्गी चलिता च सखीयुता।
चामरैर्वीज्यमाना सा रक्षिता बहुरक्षिभिः॥ १

सायुधैश्चातिसन्नद्धैः सहिता वरवर्णिनी।
क्रीडार्थमत्र राजेन्द्र सम्प्राप्ता नलिनीं शुभाम्॥ २

अहमप्यनया सार्धं गङ्गातीरे समागता।
अप्सरोभिः समेता च कमलैः क्रीडमानया॥ ३

एकावली तथा चाहं जाते क्रीडापरे यदा।
सहसैव तदायातो दानवो बलसंयुतः॥ ४

कालकेतुरिति ख्यातो राक्षसैर्बहुभिर्युतः।
परिघासिगदाचापबाणतोमरपाणिभिः॥ ५

दृष्टा चैकावली तेन रूपयौवनशालिनी।
द्वितीया कामपत्नीव क्रीडमाना सुपङ्कजैः॥ ६

मयोक्तैकावली राजन् कोऽयं दैत्यः समागतः।
गच्छावो रक्षपालानां मध्ये पङ्कजलोचने॥ ७

यशोवती बोली—एक बार वह सुन्दरी एकावली प्रातःकाल उठकर अपनी सखियोंके साथ बाहर निकल पड़ी। वह बहुत-से रक्षकोंसे रक्षित थी तथा उसके ऊपर चँवर डुलाये जा रहे थे। हे राजेन्द्र! वह सुन्दरी यहाँ सुन्दर कमलोंके पास क्रीड़ा करनेके लिये आयी थी॥ १-२॥

कमलोंसे खेलनेकी रुचिवाली इस कन्याके साथ मैं भी अप्सराओंसहित गंगाके तटपर आयी थी॥ ३॥

जब मैं तथा एकावली दोनों खेलनेमें व्यस्त हो गयीं, उसी समय हाथोंमें परिघ, तलवार, गदा, धनुष, बाण तथा तोमर धारण किये हुए बहुत-से राक्षसोंके साथ कालकेतु नामक बलवान् दानव वहाँ अकस्मात् आ पहुँचा॥ ४-५॥

उसने कमलोंके साथ क्रीडा करती हुई उस रूप-यौवनसम्पन्न तथा दूसरी कामपत्नी रतिकी भाँति प्रतीत हो रही एकावलीको देख लिया॥ ६॥

हे राजन्! मैंने एकावलीसे कहा—हे कमलनयने! यह कौन-सा दैत्य आ गया है! अब हम दोनों रक्षकोंके पास भाग चलें॥ ७॥

विमृश्यैवं सखी चाहं त्वरयैव गते भयात्।
मध्ये वै सैनिकानां तु सायुधानां नृपात्मज॥ ८

कालकेतुस्तु तां दृष्ट्वा मोहिनीं मदनातुरः।
गदां गुर्वीं गृहीत्वा तु धावमानः समागतः॥ ९

रक्षकान्दूरतः कृत्वा जग्राहाम्बुजलोचनाम्।
त्रस्तां वेपथुसंयुक्तां क्रन्दमानां कृशोदरीम्॥ १०

त्यजैनां मां गृहाणेति मया चोक्तोऽपि दानवः।
न मां जग्राह कामार्तस्तां गृहीत्वा विनिःसृतः॥ ११

तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो रक्षकास्तं महाबलम्।
प्रतिषिध्य तु संग्रामं चक्रुर्विस्मयकारकम्॥ १२

तस्यापि राक्षसाः क्रूराः सर्वतः शस्त्रपाणयः।
युयुधू रक्षकैः सार्धं स्वामिकार्ये कृतोद्यमाः॥ १३

संग्रामस्तु तदा जातः कालकेतोस्तथा रणे।
निहत्य रक्षकान्सर्वान्गृहीत्वैनां महाबलः॥ १४

युक्तो राक्षससैन्येन निर्जगाम पुरं प्रति।
वीक्ष्य तां रुदतीं बालां गृहीतां दानवेन तु॥ १५

पृष्ठतोऽहं गता तत्र यत्र नीता सखी मम।
विक्रोशन्ती यथा सा मां पश्येदिति पदानुगा॥ १६

सापि मामागतां वीक्ष्य किञ्चित्स्वस्थाभवत्तदा।
गताहं तत्समीपे तु तामाभाष्य पुनः पुनः॥ १७

सा मां प्राप्यातिदुःखार्ता स्तम्भस्वेदसमाकुला।
कण्ठे गृहीत्वा मां भूप रुरोद भृशदुःखिता॥ १८

स मामाह कालकेतुः प्रीतिपूर्वमिदं वचः।
समाश्वासय भीतां त्वं सखीं चञ्चललोचनाम्॥ १९

हे राजकुमार! इस प्रकार विचारविमर्श करके सखी एकावली तथा मैं भयभीत होनेके कारण शस्त्रधारी सैनिकोंके बीच तुरंत चली गयी॥ ८॥

वह कामातुर कालकेतु उस मोहिनी एकावलीको देखकर अपनी विशाल गदा लेकर दौड़ता हुआ पासमें आ गया और उसने रक्षकोंको हटाकर डरके मारे काँपती तथा रोती हुई कृश कटिप्रदेशवाली तथा कमलके समान नेत्रोंवाली एकावलीको पकड़ लिया॥ ९-१०॥

'इस राजकुमारीको छोड़ दो और मुझे ग्रहण कर लो'—ऐसा मेरे कहनेपर भी उसने मुझे स्वीकार नहीं किया और कामके वशीभूत वह दानव एकावलीको लेकर वहाँसे निकल गया॥ ११॥

रक्षकोंने 'ठहरो-ठहरो'—ऐसा कहते हुए उस महाबलीको रोककर उसके साथ विस्मयकारक युद्ध किया॥ १२॥

अपने स्वामीके कार्यमें पूर्ण तत्पर तथा हाथोंमें शस्त्र धारण किये उसके सभी क्रूर राक्षसोंने भी रक्षकोंके साथ भीषण युद्ध किया। तब उन रक्षकोंके साथ कालकेतुका संग्राम होने लगा। वह महाबली युद्धमें सभी रक्षकोंको मारकर तथा एकावलीको लेकर राक्षसी सेनाके साथ अपने नगरके लिये चल दिया। दानव कालकेतुके द्वारा अधिकारमें की गयी उस राजकुमारीको रोती हुई देखकर मैं उसके पीछे-पीछे वहीं पहुँच जाती थी, जहाँ कालकेतु मेरी सखीको लेकर जाता था जिससे कि रोती हुई वह मुझे अपने पीछे आते हुए देख ले॥ १३—१६॥

मुझे आयी हुई देखकर वह भी कुछ स्वस्थचित्त हुई तब मैं उसके पास जाकर उससे बार-बार बातें करने लगी॥ १७॥

हे राजन्! दुःखसे व्याकुल तथा पसीनेसे संसिक्त उस एकावलीने मुझे पकड़कर गलेसे लगा लिया और वह अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगी॥ १८॥

तत्पश्चात् उस कालकेतुने प्रेम प्रदर्शित करते हुए मुझसे यह बात कही कि चंचल नेत्रोंवाली अपनी इस भयग्रस्त सखीको धीरज बँधाओ और अपनी इस सखीसे [मेरी बात] कहो—'हे प्रिये! देवलोकके समान अत्यन्त

प्राप्तं ममाद्य नगरं देवलोकसमं प्रिये।
दासोऽस्मि तव रत्या हि कस्मात्क्रन्दसि कातरा॥ २०

कथयैनां सखीं तेऽद्य स्वस्था भव सुलोचने।
इत्युक्त्वा मां सखीपार्श्वे समारोप्य रथोत्तमे॥ २१

जगाम तरसा दुष्टः पुरे स्वस्य मनोहरे।
सैन्येन महता युक्तः प्रफुल्लवदनाम्बुजः॥ २२

एकावलीं तथा मां च संस्थाप्य धवले गृहे।
राक्षसान् गृहरक्षार्थं कल्पयामास कोटिशः॥ २३

द्वितीये दिवसे सोऽथ मामुवाच रहो नृप।
प्रबोधय सखीं बालां शोचन्तीं विरहातुराम्॥ २४

पत्नी मे भव सुश्रोणि सुखं भुङ्क्ष्व यथेप्सितम्।
राज्यं त्वदीयं चन्द्रास्ये सेवकोऽहं सदा तव॥ २५

पुनरुक्तं मया वाक्यं श्रुत्वा तद्भाषितं खरम्।
नाहं क्षमाप्रियं वक्तुं त्वमेनां कथय प्रभो॥ २६

इत्युक्ते वचने दुष्टो मदनक्षतमानसः।
उवाच विनयादेनां सखीं क्षामोदरीं प्रियाम्॥ २७

कृशोदरि त्वया मन्त्रो निक्षिप्तोऽस्ति ममोपरि।
तेन मे हृदयं कान्ते हृतं ते वशतां गतम्॥ २८

तेनाहं तव दासोऽद्य कृतोऽस्मीति विनिश्चयः।
भज मां कामबाणेन पीडितं विवशं भृशम्॥ २९

यौवनं याति रम्भोरु चञ्चलं दुर्लभं तदा।
सफलं कुरु कल्याणि पतिं मां परिरभ्य च॥ ३०

एकावल्युवाच

पित्राहं कल्पिता पूर्वं दातुं राजसुताय वै।
हैहयस्तु महाभाग स मया मनसा वृतः॥ ३१

सुन्दर मेरा नगर अब आ ही गया है। तुम्हारे प्रेमके कारण मैं तुम्हारा दास हो चुका हूँ। तुम भयभीत होकर क्यों विलाप कर रही हो? हे सुलोचने! अब शान्त हो जाओ'—ऐसा कहकर उसी उत्तम रथमें सखीके पास मुझे भी बैठाकर प्रसन्नताके कारण खिले हुए कमलके समान मुखवाला दुष्ट कालकेतु अपनी भारी सेनाके साथ अपने सुन्दर नगरके लिये शीघ्र ही चल दिया॥ १९—२२॥

वहाँ उस दानवने मुझे तथा एकावलीको एक दिव्य महलमें ठहराकर उस महलकी रक्षाके लिये करोड़ों राक्षस नियुक्त कर दिये॥ २३॥

हे राजन्! दूसरे दिन उस कालकेतुने एकान्तमें मुझसे कहा—विरहसे दुःखित तथा शोक करती हुई अपनी सुन्दर सखीको [मेरे शब्दोंमें] समझाओ—'हे सुश्रोणि! तुम मेरी पत्नी हो जाओ और फिर यथेच्छ सुखोपभोग करो। हे चन्द्रमुखि! अब यह राज्य तुम्हारा है और मैं सदाके लिये तुम्हारा सेवक बन गया हूँ'॥ २४-२५॥

उसका ऐसा दुर्वचन सुनकर मैंने उससे यह बात कही कि हे प्रभो! मैं ऐसा अप्रिय वाक्य नहीं कह सकती, अतः आप ही इससे कहिये॥ २६॥

मेरे ऐसा कहनेपर कामसे आहत चित्तवाले उस दुष्ट दानवने कृश उदरवाली मेरी उस प्रिय सखीसे विनयपूर्वक कहा—॥ २७॥

हे कृशोदरि! तुमने मेरे ऊपर कोई मन्त्र-प्रयोग कर दिया है। हे कान्ते! उसीसे मोहित होकर मेरा मन तुम्हारे वशमें हो चुका है। उसी मन्त्रने मुझे अब तुम्हारा दास बना दिया है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इसलिये कामबाणसे आहत मुझ अत्यन्त विवशको अब तुम स्वीकार कर लो। हे रम्भोरु! तुम्हारा दुर्लभ तथा चंचल यौवन व्यर्थ जा रहा है। इसलिये हे कल्याणि! पतिभावसे मेरा आलिंगन करके इसे सफल कर लो॥ २८—३०॥

एकावली बोली—मेरे पिता राजकुमार हैहयको मुझे देनेका पहले ही निश्चय कर चुके हैं। मैंने भी उन महाभागका मनसे वरण कर लिया है॥ ३१॥

कथमन्यं भजे कान्तं त्यक्त्वा धर्मं सनातनम्।
कन्याधर्मं विहायाद्य वेत्सि शास्त्रविनिश्चयम्॥ ३२

यस्मै दद्यात्पिता कामं कन्या तं पतिमाप्नुयात्।
परतन्त्रा सदा कन्या न स्वातन्त्र्यं कदाचन॥ ३३

इत्युक्तोऽपि तया पापी विरराम न मोहितः।
न मुमोच विशालाक्षीं मां च पार्श्वस्थितां तथा॥ ३४

पातालविवरे तस्य पुरं परमसङ्कटे।
राक्षसै रक्षितं दुर्गं मण्डितं परिखावृतम्॥ ३५

तत्र तिष्ठति दुःखार्ता सखी मे प्राणवल्लभा।
तेनाहं विरहेणात्र रारटीमि सुदुःखिता॥ ३६

एकवीर उवाच

कथं त्वमत्र सम्प्राप्ता पुरात्तस्य दुरात्मनः।
विस्मयो मे महानत्र तत्त्वं ब्रूहि वरानने॥ ३७

त्वया च कथितं वाक्यं सन्दिग्धं भाति भामिनि।
हैहयार्थे कल्पिता सा पित्रेति मम साम्प्रतम्॥ ३८

हैहयो नाम राजाहं नान्योऽस्ति पृथिवीपतिः।
मदर्थे कथिता सा किं सखी तव सुलोचना॥ ३९

एतन्मे संशयं सुभ्रु छेत्तुमर्हसि भामिनि।
अहं तामानयिष्यामि तं हत्वा राक्षसाधमम्॥ ४०

स्थानं दर्शय मे तस्य यदि जानासि सुव्रते।
राज्ञे निवेदितं किं वा तत्पित्रे चातिदुःखिता॥ ४१

सनातनधर्मका त्याग करके तथा कन्याधर्म छोड़कर मैं दूसरेको पतिरूपमें कैसे स्वीकार करूँ? आप भी तो शास्त्रीय नियमको जानते ही हैं। पिता कन्याको जिसे सौंप दे, कन्या उसीको पति बना ले। कन्या इस विषयमें सदा पराधीन रहती है, उसे स्वतन्त्रता कभी नहीं रहती॥ ३२-३३॥

[हे राजकुमार!] उस एकावलीके ऐसा कहनेपर भी वह पापात्मा कालकेतु राजकुमारीपर मोहित रहनेके कारण अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और उसने विशाल नेत्रोंवाली एकावलीको तथा उसके पासमें स्थित मुझको नहीं छोड़ा॥ ३४॥

उस कालकेतुका नगर अनेक प्रकारके संकटोंसे युक्त एक पाताल-विवरमें विद्यमान है। वहींपर चारों ओर खाइयोंसे घिरा हुआ तथा राक्षसोंसे पूर्णतया रक्षित उसका सुन्दर दुर्ग है। मेरी प्राणप्यारी सखी एकावली वहींपर दुःखके साथ पड़ी हुई है। इसलिये उसके विरहसे अत्यन्त व्यथित होकर मैं यहाँ विलाप कर रही हूँ॥ ३५-३६॥

एकवीरने कहा—हे वरानने! उस दुष्टात्मा कालकेतुके नगरसे तुम यहाँ कैसे आ गयी? इस बातसे मैं बहुत ही आश्चर्यचकित हूँ; तुम मुझसे इस विषयमें बताओ॥ ३७॥

हे भामिनि! अभी तुमने जो कहा है कि एकावलीके पिताने उसका विवाह हैहयके साथ करनेका निश्चय किया है, वह बात मुझे अत्यन्त सन्देहास्पद प्रतीत हो रही है। हैहय नामका राजा मैं ही हूँ; अन्य कोई राजा नहीं है। सुन्दर नेत्रोंवाली वह तुम्हारी सखी अपने पिताके द्वारा कहीं मेरे लिये ही तो कल्पित नहीं की गयी है?॥ ३८-३९॥

हे सुभ्रु! हे भामिनि! तुम मेरे इस सन्देहको दूर करो। मैं उस अधम राक्षसका वध करके उस एकावलीको ले आऊँगा। हे सुव्रते! यदि तुम उस राक्षसका स्थान जानती हो तो वह स्थान मुझे दिखा दो। उसके पिता राजा रैभ्यको तुमने यह बताया अथवा नहीं कि वह अत्यन्त दुःखित है॥ ४०-४१॥

यस्यैषा वल्लभा पुत्री न किं जानाति तां हृताम्।
नोद्यमः किं कृतस्तेन ततो मोचनहेतवे॥ ४२

बन्दीकृतां सुतां ज्ञात्वा कथं तिष्ठति सुस्थिरः।
असमर्थो नृपः किं वा कारणं ब्रूहि सत्वरम्॥ ४३

त्वया मेऽपहृतं चेतो गुणानुक्त्वा ह्यमानुषान्।
सख्याः पङ्कजपत्राक्षि कृतः कामवशो भृशम्॥ ४४

कदा पश्यामि तां कान्तां मोचयित्वातिसङ्कटात्।
इति मे हृदयं चाद्य करोत्यतिमनोरथम्॥ ४५

ब्रूहि मे गमनोपायं पुरे तस्यातिदुर्गमे।
कथं त्वमागता तस्मात्सङ्कटादत्र तद्वद॥ ४६

यशोवत्युवाच

बालभावान्मया मन्त्रो भगवत्या विशांपते।
प्राप्तोऽस्ति ब्राह्मणात्सिद्धात्सबीजध्यानपूर्वकः॥ ४७

तत्रावस्थितया राजन् मया चित्ते विचारितम्।
आराधयामि सततं चण्डिकां चण्डविक्रमाम्॥ ४८

सा देवी सेविता कामं बन्धमोक्षं करिष्यति।
भक्तानुकम्पिनी शक्तिः समर्था सर्वसाधने॥ ४९

या विश्वं सृजते शक्त्या पालयत्येव सा पुनः।
कल्पान्ते संहरत्येव निराकारा निराश्रया॥ ५०

इति सञ्चिन्त्य मनसा देवीं विश्वेश्वरीं शिवाम्।
ध्यात्वा रक्ताम्बरां सौम्यां सुरक्तनयनां हृदि॥ ५१

संस्मृत्य मनसा रूपं मन्त्रजाप्यपराभवम्।
उपासिता मया देवी मासमेकं समाधिना॥ ५२

जिसकी ऐसी प्रिय पुत्री हो, क्या वह उसके हरणको नहीं जानता? और फिर उसने एकावलीकी मुक्तिके लिये क्या कोई प्रयास नहीं किया?॥ ४२॥

अपनी पुत्रीको बन्दी बनाया गया जाननेके बाद भी राजा स्थिरचित्त होकर कैसे चुप बैठे हैं? अथवा राजा कुछ कर पानेमें असमर्थ तो नहीं हैं? मुझे इसका कारण शीघ्र बताओ॥ ४३॥

हे कमलनयने! तुमने अपनी सखीके अलौकिक गुणोंको बताकर मेरे चित्तको हर लिया है तथा मैं पूर्ण-रूपसे कामके वशीभूत कर दिया गया हूँ॥ ४४॥

अब तो मेरे मनकी यही अभिलाषा है कि उस प्रियाको इस महान् संकटसे मुक्त करके मैं उसे कब देख लूँ॥ ४५॥

अब उस दानवके अत्यन्त दुर्गम नगरमें जानेका उपाय मुझे बताओ और यह भी बताओ कि उस महान् संकटसे छूटकर तुम यहाँ कैसे आयी?॥ ४६॥

यशोवती बोली—हे राजन्! मैंने बाल्यावस्थासे ही एक सिद्ध ब्राह्मणसे बीज तथा ध्यानसहित भगवतीका मन्त्र प्राप्त किया है॥ ४७॥

हे राजन्! जब मैं कालकेतुके यहाँ थी तभी मैंने अपने मनमें सोचा कि अब मैं प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिकाकी निरन्तर आराधना करूँ। वे भगवती पूर्णरूपसे आराधित होनेपर निश्चितरूपसे मुझे इस बन्धनसे मुक्त करेंगी; क्योंकि भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाली वे शक्तिस्वरूपा चण्डिका सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। जो निराकार तथा निरालम्ब भगवती अपनी शक्तिसे जगत्का सृजन करती हैं तथा पालन करती हैं, वे ही कल्पके अन्तमें उसका संहार भी कर देती हैं। मनमें ऐसा सोचकर मैं विश्वकी अधिष्ठात्री, कल्याणकारिणी, लाल वस्त्र धारण करनेवाली, सौम्य विग्रहवाली तथा सुन्दर रक्त नयनोंवाली भगवतीका ध्यान करके मन-ही-मन उनके रूपका स्मरण करके मन्त्रका जप करनेमें तत्पर हो गयी। इस प्रकार मैं समाधि लगाकर एक माहतक भगवती जगदम्बाकी उपासना करती रही॥ ४८—५२॥

स्वप्ने मम समायाता भक्तिभावेन तोषिता।
मामाहामृतया वाचा किं सुप्तासीति चण्डिका॥ ५३

उत्तिष्ठ याहि तरसा गङ्गातीरं मनोहरम्।
आगमिष्यति तत्रासौ हैहयो नृपपुङ्गवः॥ ५४

एकवीरो महाबाहुः सर्वशत्रुविमर्दनः।
दत्तात्रेयेण मन्मन्त्रो महाविद्याभिधः परः॥ ५५

दत्तोऽस्मै सोऽपि सततं मामुपास्तेऽतिभक्तितः।
मय्यासक्तमतिर्नित्यं मम पूजापरायणः॥ ५६

मामेव सर्वभूतेषु ध्यायन्नास्ते च मत्परः।
स ते दुःखविनाशं वै करिष्यति महामतिः॥ ५७

मासुतो विहरंस्तत्र तव त्राता भविष्यति।
हत्वा तं राक्षसं घोरं मोचयिष्यति मानिनीम्॥ ५८

एकावलीमेकवीरः सर्वशास्त्रविशारदः।
पश्चात्सैव पतिः कार्यस्त्वया राजसुतः शुभः॥ ५९

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी प्रबुद्धाहं तदैव हि।
कथितं स्वप्नवृत्तान्तं देव्याश्चाराधनं तथा॥ ६०

प्रसन्नवदना जाता श्रुत्वा सा कमलेक्षणा।
विशेषेण च सन्तुष्टा मामुवाच शुचिस्मिता॥ ६१

गच्छ तत्र त्वरायुक्ता कुरु कार्यं मम प्रिये।
सत्यवाक्या भगवती सावां मोक्षं विधास्यति॥ ६२

इत्याज्ञप्ता तया चाहं सख्या वै प्रेमयुक्तया।
मत्वोपसरणं युक्तं तस्मात्स्थानात्तदा नृप॥ ६३

चालिताहं ततः शीघ्रं महादेवीप्रसादतः।
मार्गज्ञानं शीघ्रगतिर्मया प्राप्ता नृपात्मज॥ ६४

तत्पश्चात् मेरे भक्तिभावसे प्रसन्न होकर देवी चण्डिकाने मुझे स्वप्नमें दर्शन दिया और अमृतमयी वाणीमें मुझसे कहा—'तुम सोयी क्यों हो? उठो और तत्काल गंगाजीके मनोहर तटपर चली जाओ; वहींपर विशाल भुजाओंवाले तथा सभी शत्रुओंका दमन करनेवाले नृपश्रेष्ठ हैहय एकवीर आयेंगे। दत्तात्रेयजीने महाविद्या नामक मेरा श्रेष्ठ मन्त्र उन्हें प्रदान किया है। वे भी भक्तिपूर्वक निरन्तर मेरी उपासना करते रहते हैं। उनका मन सदा मुझमें लगा रहता है तथा वे सदा मेरी पूजामें रत रहते हैं। मेरे प्रति आसक्तिभाव रखनेवाले वे सभी प्राणियोंमें एकमात्र मुझे ही देखते हुए सदा मेरे ही परायण रहते हैं। वे महामति एकवीर ही तुम्हारा दुःख दूर करेंगे। वे लक्ष्मीपुत्र एकवीर घूमते हुए गंगातटपर आकर तुम्हारी रक्षा करेंगे और उस भयानक राक्षस कालकेतुका वध करके मानिनी एकावलीको मुक्त करेंगे। इसके बाद तुम समस्त शास्त्रोंमें निष्णात उन्हीं सुन्दर राजकुमार एकवीरके साथ एकावलीका विवाह करवा देना'॥ ५३—५९॥

ऐसा कहकर देवी अन्तर्धान हो गयीं और मैं उसी समय जग गयी। तत्पश्चात् मैंने स्वप्नका वृत्तान्त तथा देवीकी आराधनाकी बात एकावलीको बतायी॥ ६०॥

सारी बातें सुनकर उस कमलनयनीके मुखमण्डलपर प्रसन्नता छा गयी। अत्यन्त सन्तुष्ट होकर पवित्र मुसकानवाली एकावलीने मुझसे कहा—हे प्रिये! तुम वहाँ शीघ्रतापूर्वक जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो। जो भगवती सत्य वाणीवाली हैं, वे हम दोनोंको मुक्त करेंगी॥ ६१-६२॥

हे राजन्! सखी एकावलीके इस प्रकार प्रेमपूर्वक आदेश देनेपर उस समय प्रस्थान कर देना उचित समझकर मैं उस स्थानसे तुरंत चल पड़ी। हे राजकुमार! भगवती जगदम्बाकी कृपासे मार्गकी जानकारी तथा द्रुतगतिसे चलनेकी क्षमता मुझे प्राप्त हो गयी थी॥ ६३-६४॥

इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं मम दुःखजम्।
कस्त्वं कस्य सुतश्चेति वद वीर यथा तथा॥ ६५

हे वीर! इस प्रकार मैंने अपने दुःखी होनेका समस्त कारण आपको बता दिया। अब जिस प्रकार मैंने आपको अपने विषयमें बताया, उसी प्रकार आप भी बताइये कि आप कौन हैं तथा किसके पुत्र हैं?॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे हैहयैकवीराय यशोवत्यैकावलीमोचनाय देवीस्वप्नवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवतीके सिद्धिप्रदायक मन्त्रसे दीक्षित एकवीरद्वारा कालकेतुका वध, एकवीर और एकावलीका विवाह तथा हैहयवंशकी परम्परा

व्यास उवाच

तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा रमापुत्रः प्रतापवान्।
प्रफुल्लवदनाम्भोजस्तामुवाच विशांपते॥ १

राजोवाच

रम्भोरु यस्त्वया पृष्टो वृत्तान्तो विशदाक्षरः।
हैहयोऽहं चैकवीरनाम्ना सिन्धुसुतासुतः॥ २

मनो मे यत्त्वया नूनं परतन्त्रं कृतं किल।
किं करोमि क्व गच्छामि विरहेणातिपीडितः॥ ३

प्रथमं रूपमाख्यातं सर्वलोकातिगं त्वया।
तेन मे विह्वलं जातं कामबाणहतं मनः॥ ४

ततस्तस्या गुणाः प्रोक्तास्तैस्तु चित्तं हृतं पुनः।
यत्त्वयोक्तं पुनर्वाक्यं तेन मे विस्मयोऽभवत्॥ ५

एकावल्या वचः प्रोक्तं दानवाग्रे मया वृतः।
हैहयस्तं विना नान्यं वृणोमीति विनिश्चयः॥ ६

तेन वाक्येन तन्वङ्गि भृत्योऽहमधुना कृतः।
त्वया तस्याः सुकेशान्ते ब्रूहि किं करवाणि वाम्॥ ७

व्यासजी बोले—हे राजन्! उस यशोवतीकी बात सुनकर लक्ष्मीपुत्र प्रतापी एकवीरका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा और वे उससे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे रम्भोरु! जो तुमने सुन्दर वाणीमें मेरा वृत्तान्त पूछा है, वह सुनो। एकवीर नामसे प्रसिद्ध लक्ष्मीपुत्र हैहय मैं ही हूँ॥ २॥

[एकावलीके विषयमें वर्णन करके] तुमने मेरे मनको परतन्त्र बना दिया है। विरहसे अत्यन्त पीडित मैं अब क्या करूँ, कहाँ जाऊँ?॥ ३॥

तुमने सर्वप्रथम एकावलीके सम्पूर्ण लोकको तिरस्कृत कर देनेवाले रूपका जो वर्णन किया है, उससे मेरा मन कामबाणसे आहत होकर व्याकुल हो उठा है॥ ४॥

तत्पश्चात् तुमने उसके जिन गुणोंका मुझसे वर्णन किया है, उनके द्वारा मेरा चित्त हर लिया गया है। पुनः तुमने जो बात कही, इससे मुझे बहुत विस्मय हो गया है। दानव कालकेतुके सामने एकावलीने यह बात कही थी कि मैं हैहयका वरण कर चुकी हूँ, उसके अतिरिक्त मैं किसी अन्यका वरण नहीं कर सकती; यह मेरा निश्चय है। हे तन्वंगि! एकावलीके इस कथनके द्वारा तुमने मुझे उसका दास बना दिया है। हे सुन्दर केशोंवाली! तुम्हीं बताओ, अब मैं तुम दोनोंके लिये क्या करूँ?॥ ५—७॥

स्थानं तस्य न जानामि राक्षसस्य दुरात्मनः।
गतिर्मे नास्ति गमने पुरे तस्मिन्सुलोचने॥ ८

वद मां त्वं विशालाक्षि तत्र प्रापयितुं क्षमा।
प्रापयाशु सखी ते सा यत्र तिष्ठति सुन्दरी॥ ९

हत्वा तं राक्षसं क्रूरं मोचयिष्यामि साम्प्रतम्।
विवशां शोकसन्तप्तां राजपुत्रीं तव प्रियाम्॥ १०

विमुक्तदुःखां कृत्वाशु प्रापयिष्यामि ते पुरम्।
पित्रे चास्याः प्रदास्यामि कन्यामेकावलीमहम्॥ ११

पश्चाद्विवाहं कर्तासौ राजा पुत्र्याः परन्तपः।
एवं ते मनसः कामो मम चापि प्रियंवदे॥ १२

भविष्यति स सम्पूर्णः साधनेन तवाधुना।
दर्शयाशु पुरं तस्य पश्य मे त्वं पराक्रमम्॥ १३

यथा हन्मि दुराचारं परदारापहारकम्।
तथा कुरु प्रियं कर्तुं शक्तासि वरवर्णिनि॥ १४

मार्गं दर्शय तस्याद्य पुरस्य दुर्गमस्य च।

व्यास उवाच

तन्निशम्य प्रियं वाक्यं मुदिता च यशोवती॥ १५

तमुवाच रमापुत्रं गमनोपायमादरात्।
मन्त्रं गृहाण राजेन्द्र भगवत्यास्तु सिद्धिदम्॥ १६

दर्शयिष्यामि तस्याद्य पुरं राक्षसपालितम्।
सज्जो भव महाभाग गमनाय मया सह॥ १७

सैन्येन महता युक्तस्तत्र युद्धं भविष्यति।
कालकेतुर्महावीरो राक्षसैर्बलिभिर्वृतः॥ १८

तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा त्वं व्रज तत्र मया सह।
दर्शयिष्यामि ते मार्गं पुरस्यास्य दुरात्मनः॥ १९
हत्वा तं पापकर्माणं मोचयाशु च मे सखीम्।

हे सुलोचने! मैं उस दुष्टात्मा राक्षस कालकेतुके स्थानको नहीं जानता। और फिर उस नगरतक पहुँच सकनेकी मेरी सामर्थ्य भी नहीं है। हे विशाल नयनोंवाली! अब तुम्हीं उपाय बताओ। मुझे वहाँ पहुँचानेमें तुम्हीं समर्थ हो। अतएव जहाँ तुम्हारी सुन्दर सखी एकावली विराजमान है, वहाँ मुझे शीघ्र पहुँचाओ॥ ८-९॥

उस क्रूर राक्षसका वध करके मैं इसी समय विवश तथा शोक-सन्तप्त तुम्हारी प्रिय सखी राजकुमारी एकावलीको मुक्त करा लूँगा॥ १०॥

राजकुमारी एकावलीको संकटसे मुक्ति दिलाकर शीघ्र ही उसे तुम्हारे पुरमें पहुँचा दूँगा और उसके पिताको सौंप दूँगा॥ ११॥

तत्पश्चात् शत्रुतापक राजा रैभ्य अपनी पुत्रीका विवाह कर सकेंगे। हे प्रियंवदे! इस प्रकार तुम्हारे सहयोगसे मेरे तथा तुम्हारे मनकी कामना अब पूरी हो जायगी। तुम मुझे उस कालकेतुका नगर शीघ्र दिखा दो, फिर मेरा पराक्रम देखो। हे वरवर्णिनि! मैं जिस प्रकार उस दुराचारी तथा परस्त्रीका हरण करनेवाले कालकेतुका वध कर सकूँ, तुम वैसा ही उपाय करो; क्योंकि तुम हित-साधन करनेमें पूर्ण सक्षम हो। उस दानवके दुर्गम नगरका मार्ग तुम मुझे आज ही दिखाओ॥ १२—१४½॥

व्यासजी बोले—एकवीरकी यह प्रिय वाणी सुनकर यशोवती प्रसन्न हो गयी और वह लक्ष्मीपुत्र एकवीरसे नगर पहुँचनेका उपाय आदरपूर्वक बताने लगी—हे राजेन्द्र! पहले आप भगवती जगदम्बाके सिद्धिप्रदायक मन्त्रको ग्रहण कीजिये। तत्पश्चात् मैं आपको अनेक राक्षसोंद्वारा रक्षित उस कालकेतुका नगर आज ही दिखाऊँगी। हे महाभाग! एक विशाल सेनासे युक्त होकर आप मेरे साथ वहाँ चलनेके लिये तैयार हो जाइये। वहाँ युद्ध होगा। कालकेतु स्वयं महापराक्रमी है तथा बलवान् राक्षसोंसे युक्त रहता है। अतएव भगवतीका मन्त्र ग्रहण करके ही आप मेरे साथ वहाँ चलिये। मैं उस दुष्टात्माके नगरका मार्ग आपको दिखाऊँगी। अब आप उस पापकर्मपरायण दानवको मारकर मेरी सखीको शीघ्र मुक्त कीजिये॥ १५—१९½॥

श्रुत्वा तद्वचनं वीरो मन्त्रं जग्राह सत्वरः॥ २०

दत्तात्रेयाद्दैवयोगात्प्राप्ताज्ज्ञानिवराच्छुभात् ।
योगेश्वरीमहामन्त्रं त्रिलोकीतिलकाभिधम्॥ २१

तेन सर्वज्ञता जाता सर्वान्तश्चारिता तथा।
तया सह जगामाशु पुरं तस्य सुदुर्गमम्॥ २२

रक्षितं राक्षसैर्घोरैः पातालमिव पन्नगैः।
यशोवत्या च सैन्येन महता संयुतो नृपः॥ २३

तमायान्तं समालोक्य दूतास्तस्य भयातुराः।
क्रोशन्तोऽभिययुः पार्श्वं कालकेतोस्तरस्विनः॥ २४

तमूचुः सहसा मत्वा राक्षसं काममोहितम्।
एकावलीसमीपस्थं कुर्वन्तं विनयान्बहून्॥ २५

दूता ऊचुः

राजन् यशोवती नारी कामिन्याः सहचारिणी।
आयाति सह सैन्येन राजपुत्रेण संयुता॥ २६

जयन्तो वा महाराज कार्तिकेयोऽथवा नु किम्।
आगच्छति बलोन्मत्तो वाहिनीसहितः किल॥ २७

संयत्तो भव राजेन्द्र संग्रामः समुपस्थितः।
देवपुत्रेण युध्यस्व त्यज वा कमलेक्षणाम्॥ २८

इतो दूरेऽस्ति सैन्यं तद्योजनत्रयमात्रतः।
सज्जो भव महीपाल दुन्दुभिं घोषयाशु वै॥ २९

व्यास उवाच

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसः क्रोधमूर्च्छितः।
राक्षसान्प्रेरयामास सायुधान्सबलान्बहून्॥ ३०
गच्छध्वं राक्षसाः सर्वे सम्मुखाः शस्त्रपाणयः।

उसका यह वचन सुनकर एकवीरने वहाँपर दैवयोगसे पधारे हुए पुण्यात्मा तथा ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ दत्तात्रेयजीसे त्रिलोकीका तिलक कहे जानेवाले योगेश्वरीके महामन्त्रको उसी क्षण ग्रहण कर लिया॥ २०-२१॥

उस मन्त्रके प्रभावसे एकवीरको सब कुछ जानने तथा सर्वत्र गमनकी क्षमता प्राप्त हो गयी। इसके बाद वे यशोवतीके साथ कालकेतुके दुर्गम नगरके लिये शीघ्र प्रस्थित हुए॥ २२॥

वह नगर राक्षसोंद्वारा इस प्रकार सुरक्षित था, जैसे सर्पोंद्वारा पातालकी निरन्तर सुरक्षा होती रहती है। कालकेतुके ऐसे नगरमें अब यशोवती तथा विशाल सेनाके साथ राजा एकवीर आ गये॥ २३॥

एकवीरको आते देखकर कालकेतुके दूत भयसे व्यग्र हो गये और चीखते-चिल्लाते हुए बड़ी तेजीसे भागकर उसके पास पहुँचे॥ २४॥

उस समय एकावलीके पास बैठकर अनेकविध विनती कर रहे कालकेतुको अत्यन्त काममोहित समझकर दूत एकाएक उससे कहने लगे॥ २५॥

दूतोंने कहा—हे राजन्! इस कामिनीकी सहचारिणी जो यशोवती नामकी स्त्री है, वह एक राजकुमारके साथ विशाल सेना लेकर आ रही है॥ २६॥

हे महाराज! पता नहीं, वह जयन्त है अथवा कार्तिकेय। बलके अभिमानसे मत्त वह राजकुमार सेनाके साथ चला आ रहा है॥ २७॥

हे राजेन्द्र! अब आप सावधान हो जाइये; क्योंकि युद्धकी स्थिति सामने आ गयी है। अब आप या तो इस देवपुत्रके साथ युद्ध कीजिये अथवा इस कमलनयनीको मुक्त कर दीजिये॥ २८॥

उसकी सेना यहाँसे मात्र तीन योजनकी दूरीपर है। अतएव हे राजन्! अब आप तैयार हो जाइये और रण-दुंदुभी बजानेकी तुरंत आज्ञा दीजिये॥ २९॥

व्यासजी बोले—दूतोंके मुखसे वैसी बात सुनकर कालकेतु क्रोधसे मूर्च्छित हो गया। उसने अपने सभी बलवान् तथा शस्त्रधारी राक्षसोंको उत्साहित करते हुए कहा—हे राक्षसो! तुम सब हाथोंमें शस्त्र लेकर शत्रुके सामने जाओ॥ ३०½॥

तानाज्ञाप्य कालकेतुः पप्रच्छ प्रणयान्वितः॥ ३१
एकावलीं समीपस्थां विवशां भृशदुःखिताम्।
कोऽयमायाति तन्वङ्गि पिता ते वापरः पुमान्॥ ३२
त्वदर्थे सैन्यसंयुक्तो ब्रूहि सत्यं कृशोदरि।
पिता ते यदि सम्प्राप्तो नेतुं त्वां विरहातुरः॥ ३३
ज्ञात्वा ते पितरं सम्यक् संग्रामं न करोम्यहम्।
आनयित्वा गृहे पूजां रत्नैर्वस्त्रैर्हयैः शुभैः॥ ३४
करोमि तस्य चातिथ्यं गृहे प्राप्तस्य सर्वथा।
अन्यश्चेद्यदि सम्प्राप्तस्तं हन्मि निशितैः शरैः॥ ३५
आनीतः किल कालेन मरणाय महात्मना।
तस्माद्वद विशालाक्षि कोऽयमायाति मन्दधीः॥ ३६
अज्ञात्वा मां दुराधर्षं कालरूपं महाबलम्।

एकावल्युवाच

न जानेऽहं महाभाग कोऽयमायाति सत्वरः॥ ३७
न मेऽस्ति विदितः कोऽपि स्थितायास्तव बन्धने।
नायं पिता मे न भ्राता कोऽप्यन्योऽस्ति महाबलः॥ ३८
किमर्थमिह चायाति नाहं वेद विनिश्चयम्।

दैत्य उवाच

एवं वदन्त्यमी दूता वयस्या ते यशोवती॥ ३९
समानीय च तं वीरमागतेति कृतोद्यमा।
क्व गता सा सखी कान्ते विदग्धा कार्यनिश्चये॥ ४०
नान्यः कोऽपि ममारातिर्यो मे प्रतिबलो भवेत्।

व्यास उवाच

एतस्मिन्नन्तरे दूतास्तत्रान्ये वै समागताः॥ ४१
ते होचुस्त्वरिता भीताः कालकेतुं गृहे स्थितम्।
किं स्वस्थोऽसि महाराज समीपे सैन्यमागतम्॥ ४२
निर्गच्छ नगरात्तूर्णं सैन्येन महतावृतः।
इति तेषां वचः श्रुत्वा कालकेतुर्महाबलः॥ ४३
रथमारुह्य त्वरितो निर्ययौ स्वपुराद् बहिः।

उन्हें आज्ञा देकर कालकेतुने अपने निकट बैठी हुई अत्यन्त विवश तथा दुःखित एकावलीसे विनम्रता-पूर्वक पूछा—'हे तन्वंगि! तुम्हें लेनेके लिये सेनासहित यह कौन आ रहा है? ये तुम्हारे पिता हैं अथवा कोई अन्य पुरुष? हे कृशोदरि! सच-सच बताओ। यदि विरहसे व्यथित होकर तुम्हारे पिता तुम्हें लेनेके लिये आ रहे हों, तो यह जानकर कि ये तुम्हारे पिता हैं, मैं इनके साथ युद्ध नहीं करूँगा, अपितु उन्हें घर लाकर उनकी पूजा करूँगा तथा बहुमूल्य रत्न, वस्त्र तथा अश्व भेंट करके घरमें आये हुए उनका विधिवत् आतिथ्य करूँगा। यदि कोई अन्य व्यक्ति आया होगा तो मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसे मार डालूँगा। निश्चित ही महान् कालने उसे मरनेके लिये यहाँ ला दिया है। अतएव हे विशाल नयनोंवाली! मुझ अपराजेय, कालरूप तथा अपार बलसम्पन्नके विषयमें न जानकर यह कौन मन्दमति चला आ रहा है? यह तुम मुझे बताओ'॥ ३१—३६½॥

एकावली बोली—हे महाभाग! मैं यह नहीं जानती कि इतनी तेजीसे यह कौन आ रहा है? आपके बन्धनमें पड़ी हुई मैं नहीं जानती कि यह कौन है? ये न तो मेरे पिता हैं और न मेरे भाई ही। यह दूसरा ही कोई महान् पराक्रमी पुरुष है, यह किसलिये यहाँ आ रहा है, यह भी मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती॥ ३७-३८½॥

दैत्य बोला—ये दूत तो कह रहे हैं कि तुम्हारी सखी यशोवती ही प्रयत्नपूर्वक उस वीरको साथमें लेकर आयी है। हे कान्ते! कार्य सिद्ध करनेमें अत्यन्त चतुर तुम्हारी वह सखी कहाँ गयी? कोई अन्य मेरा शत्रु भी नहीं है, जो मेरा विरोधी हो॥ ३९-४०½॥

व्यासजी बोले—इसी बीच दूसरे दूत वहाँ आ गये। भयभीत उन दूतोंने महलमें बैठे कालकेतुसे तुरंत कहा—हे महाराज! आप निश्चिन्त क्यों हैं? शत्रुसेना समीप आ पहुँची है। आप एक विशाल सेनाके साथ शीघ्र ही नगरसे बाहर निकलिये। उनकी यह बात सुनकर महान् बलशाली कालकेतु शीघ्र ही रथपर चढ़कर अपने नगरसे बाहर निकल गया॥ ४१—४३½॥

एकवीरोऽपि सहसा हयारूढः प्रतापवान्॥ ४४

आगतस्तत्र कामिन्या विरहेण समाकुलः।
युद्धं तयोरभूत्तत्र वृत्रवासवयोरिव॥ ४५

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
वर्तमाने तदा युद्धे कातराणां भयावहे॥ ४६

गदया ताडयामास दैत्यं सिन्धुसुतासुतः।
स गतासुः पपातोर्व्यां वज्राहत इवाचलः॥ ४७

पलायित्वा गताः सर्वे राक्षसा भयपीडिताः।
यशोवती ततो गत्वा वेगादेकावलीं तदा॥ ४८

उवाच मधुरां वाणीं विस्मितां मुदिता भृशम्।
एह्यालि नृपपुत्रेण दानवोऽसौ निपातितः॥ ४९

एकवीरेण धीरेण युद्धं कृत्वा सुदारुणम्।
स्कन्धावारेऽप्यसौ राजा तिष्ठत्यद्य श्रमातुरः॥ ५०

दर्शनं काङ्क्षमाणस्ते श्रुतरूपगुणस्तव।
पश्य तं कुटिलापाङ्गि मनोभवसमं नृपम्॥ ५१

कथिता त्वं मया पूर्वं तस्याग्रे जाह्नवीतटे।
पूर्णानुरागः सञ्जातस्तेनासौ विरहातुरः॥ ५२

वाञ्छति त्वां चारुरूपां द्रष्टुं नृपतिनन्दनः।
सा तस्या वचनं श्रुत्वा गमनाय मनो दधे॥ ५३

लज्जमाना भृशं भीत्या कौमारं प्राप्तया तया।
कथं तस्य मुखं द्रक्ष्ये कुमारी ह्यवशा भृशम्॥ ५४

स मां गृह्णाति कामार्त इति चिन्ताकुला सती।
यशोवत्या युता तत्र नरयानस्थिता ययौ॥ ५५

स्कन्धावारेऽतिमलिना मलिनाम्बरधारिणी।
तामागतां विशालाक्षीं दृष्ट्वा राजसुतोऽब्रवीत्॥ ५६
दर्शनं देहि तन्वङ्गि तृषिते नयने मम।

कामिनी एकावलीके विरहसे व्याकुल प्रतापी एकवीर भी घोड़ेपर आरूढ़ होकर अचानक वहींपर आ गया। उन दोनोंका वृत्रासुर तथा इन्द्रकी भाँति युद्ध होने लगा। उस युद्धमें छोड़े गये विविध अस्त्र-शस्त्रोंसे दिशाएँ प्रकाशित हो उठीं॥ ४४–४५½ ॥

भीरुजनोंको भयभीत कर देनेवाले उस युद्धमें लक्ष्मीपुत्र एकवीरने दानव कालकेतुपर अपनी गदासे प्रहार किया। गदाप्रहारसे वह कालकेतु वज्रसे आहत पर्वतकी भाँति प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तब भयभीत होकर अन्य सभी राक्षस भाग गये॥ ४६–४७½ ॥

तत्पश्चात् यशोवतीने विस्मयमें पड़ी एकावलीके पास जाकर प्रसन्नतापूर्वक मधुर वाणीमें उससे कहा—हे सखि! इधर आओ। कालकेतुके साथ भीषण युद्ध करके धीरतासम्पन्न राजकुमार एकवीरने उस राक्षसको मार गिराया है। इस समय वे राजकुमार एकवीर थक जानेके कारण अपने शिविरमें विद्यमान हैं। तुम्हारे रूप तथा गुणोंके विषयमें सुनकर वे तुम्हारा दर्शन करना चाहते हैं। हे कुटिलापांगि! कामदेवसदृश उन राजकुमारको तुम देखो। मैं उनसे तुम्हारे विषयमें गंगातटपर पहले ही बता चुकी हूँ। इससे तुम्हारे प्रति उनका पूर्ण अनुराग हो जानेके कारण वे विरहातुर राजकुमार अब तुझ सुन्दर रूपवालीका दर्शन करना चाहते हैं॥ ४८—५२½ ॥

यशोवतीकी बात सुनकर उसने वहाँ जानेका मन बना लिया। कुमारी अवस्थामें होनेके कारण वह भयवश लज्जित हो रही थी। [वह सोचने लगी] मैं एक अत्यन्त विवश कुमारी कन्या उनका मुख कैसे देखूँगी? वह साध्वी एकावली इस बातसे चिन्तित हो उठी कि वे कामासक्त राजकुमार मुझे ग्रहण कर लेंगे। तब वह एकावली मलिन वस्त्र धारण करके अत्यन्त उदास होकर पालकीमें बैठकर यशोवतीके साथ उनके शिविरमें पहुँच गयी॥ ५३—५५½ ॥

उस विशाल नयनोंवाली एकावलीको वहाँ आयी हुई देखकर राजकुमारने उससे कहा—हे तन्वंगि! मुझे दर्शन दो। मेरे नेत्र तुम्हारे दर्शनके लिये तृष्णाकुल हैं॥ ५६½ ॥

कामातुरं च तं वीक्ष्य तां च लज्जाभरावृताम्॥ ५७

नीतिज्ञा शिष्टमार्गज्ञा तमुवाच यशोवती।
राजपुत्र पिताप्यस्यास्त्वामेनां दातुमिच्छति॥ ५८

एषापि त्वद्वशा नूनं भविता सङ्गमस्तव।
कालं प्रतीक्ष्य राजेन्द्र नयैनां पितुरन्तिकम्॥ ५९

स विवाहविधिं कृत्वा दास्यतीति विनिश्चयः।
स तस्या वचनं तथ्यं मत्वा सैन्यसमन्वितः॥ ६०

समेतः कामिनीभ्यां तु ययौ तत्पितुराश्रमम्।
राजपुत्रीं तथायातां श्रुत्वा प्रेमसमन्वितः॥ ६१

प्रययौ सम्मुखस्तूर्णं सचिवैः परिवेष्टितः।
बहुभिर्दिवसैर्दृष्टा पुत्री सा मलिनाम्बरा॥ ६२

यशोवत्या तु वृत्तान्तः कथितो विस्तरात्पुनः।
एकवीरं मिलित्वासौ गृहमानीय चादरात्॥ ६३

पुण्येऽह्नि कारयामास विवाहं विधिपूर्वकम्।
पारिबर्हं ततो दत्त्वा सम्पूज्य विधिवत्तदा॥ ६४

पुत्रीं विसर्जयामास यशोवत्या समन्विताम्।
एवं विवाहे संवृत्ते रमापुत्रो मुदान्वितः॥ ६५

गृहं प्राप्य बहून्भोगान्बुभुजे प्रियया समम्।
बभूव तस्यां पुत्रस्तु कृतवीर्याभिधः किल।
तत्सुतः कार्तवीर्यस्तु वंशोऽयं कथितो मया॥ ६६

एकवीरको कामातुर तथा एकावलीको लज्जासे युक्त देखकर नीतिका ज्ञान रखनेवाली तथा श्रेष्ठजनोंके मार्गका अनुसरण करनेवाली यशोवतीने उस एकवीरसे कहा—हे राजकुमार! इसके पिता भी इसे आपको ही देना चाहते हैं। यह एकावली भी आपके वशीभूत है; इसलिये इसके साथ आपका मिलन अवश्य होगा, किंतु हे राजेन्द्र! कुछ समय प्रतीक्षा करके पहले इसे इसके पिताके पास पहुँचा दीजिये। वे विधिपूर्वक विवाह करके इसे आपको निश्चितरूपसे सौंप देंगे॥ ५७—५९½ ॥

यशोवतीकी बातको उचित मानकर उन दोनों कन्याओं—एकावली तथा यशोवतीको साथमें लेकर सेनासहित वे राजकुमार एकवीर उसके पिताके स्थानपर पहुँचे॥ ६०½ ॥

राजपुत्रीको आयी हुई सुनकर राजा रैभ्य प्रेमपूर्वक मन्त्रियोंके साथ उसके सम्मुख शीघ्रतासे पहुँच गये। मलिन वस्त्र धारण की हुई उस पुत्रीको राजाने बहुत दिनोंके बाद देखा, पुनः यशोवतीने रैभ्यको सारा वृत्तान्त विस्तारके साथ बताया। तत्पश्चात् एकवीरसे मिलकर राजा रैभ्य उन्हें आदरपूर्वक घर ले आये। पुनः उन्होंने शुभ दिनमें विधिविधानसे दोनोंका विवाह सम्पन्न कराया। तदुपरान्त राजाने पर्याप्त वैवाहिक उपहार देकर एकवीरको भलीभाँति सम्मानित करके पुत्रीको यशोवतीसहित विदा कर दिया॥ ६१—६४½ ॥

इस प्रकार विवाह हो जानेपर लक्ष्मीपुत्र एकवीर हर्षित हो गये और घर पहुँचकर अपनी भार्या एकावलीके साथ नानाविध सुखोपभोग करने लगे। यथासमय उस एकावलीसे कृतवीर्य नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस कृतवीर्यके पुत्र कार्तवीर्य हुए। इस प्रकार मैंने आपसे इस हैहयवंशका वर्णन कर दिया॥ ६५-६६ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
एकवीरैकावल्योर्विवाहवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

~~o~~

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

धृतराष्ट्रके जन्मकी कथा

राजोवाच

भगवंस्त्वन्मुखाम्भोजाच्च्युतं दिव्यकथारसम्।
न तृप्तिमधिगच्छामि पिबंस्तु सुधया समम्॥ १

विचित्रमिदमाख्यानं कथितं भवता मम।
हैहयानां समुत्पत्तिर्विस्तराद्विस्मयप्रदा॥ २

परं कौतूहलं मेऽत्र यद्विष्णुः कमलापतिः।
देवदेवो जगन्नाथः सृष्टिस्थित्यन्तकारकः॥ ३

सोऽप्यश्वभावमापन्नो भगवान्हरिरच्युतः।
परतन्त्रः कथं जातः स्वतन्त्रः पुरुषोत्तमः॥ ४

एतन्मे संशयं ब्रह्मञ्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
सर्वज्ञस्त्वं मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि वृत्तान्तमद्भुतम्॥ ५

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि सन्देहस्यास्य निर्णयम्।
यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदान्मुनिसत्तमात्॥ ६

ब्रह्मणो मानसः पुत्रो नारदो नाम तापसः।
सर्वज्ञः सर्वगः शान्तः सर्वलोकप्रियः कविः॥ ७

स चैकदा मुनिश्रेष्ठो विचरन्पृथिवीमिमाम्।
वादयन्महतीं वीणां स्वरतानसमन्विताम्॥ ८

बृहद्रथन्तरादीनां साम्नां भेदाननेकशः।
गायन्गायत्रममृतं सम्प्राप्तोऽथ ममाश्रमम्॥ ९

शम्याप्रासं महातीर्थं सरस्वत्याः सुपावनम्।
निवासं मुनिमुख्यानां शर्मदं ज्ञानदं तथा॥ १०

तमागतमहं प्रेक्ष्य ब्रह्मपुत्रं महाद्युतिम्।
अभ्युत्थानादिकं सर्वं कृतवानर्चनादिकम्॥ ११

राजा बोले—हे भगवन्! आपके मुखारविन्दसे निर्गत इस अमृततुल्य दिव्य कथारसका निरन्तर पान करते रहनेपर भी मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ १॥

आपके द्वारा मुझसे यह विचित्र आख्यान विस्तारपूर्वक कहा गया; हैहयवंशी राजाओंकी उत्पत्ति तो अत्यन्त आश्चर्यजनक है॥ २॥

मुझे इस विषयमें महान् कौतूहल हो रहा है कि देवाधिदेव जगत्पति लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णु स्वयं जगत्के उत्पत्तिकर्ता, पालनकर्ता तथा संहर्ता हैं; उन्हें भी अश्वरूप धारण करना पड़ गया? सर्वथा स्वतन्त्र रहनेवाले वे अच्युत पुरुषोत्तम भगवान् हरि परतन्त्र कैसे हो गये? हे ब्रह्मन्! इस समय मेरे इस सन्देहका निवारण करनेमें आप पूर्ण समर्थ हैं। हे मुनिवर! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव इस अद्भुत वृत्तान्तका वर्णन कीजिये॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, इस सन्देहका निर्णय पूर्व समयमें मैंने मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे जैसा सुना है, वैसा ही आपको बता रहा हूँ॥ ६॥

नारदजी ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। वे तपस्वी, सर्वज्ञानी, सर्वत्र गमन करनेवाले, शान्त, समस्त लोकोंके प्रिय एवं मनीषी हैं॥ ७॥

एक बार वे मुनिवर नारद स्वर तथा तानसे युक्त अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए तथा सामगानके बृहद्रथन्तर आदि अनेक भेदों और अमृतमय गायत्र-सामका गान करते हुए इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए मेरे आश्रमपर पहुँचे। वह शम्याप्रास महातीर्थ सरस्वतीके पावन तटपर विराजमान है। कल्याण और ज्ञान प्रदान करनेवाला वह तीर्थ प्रधान ऋषियोंका निवासस्थान है॥ ८—१०॥

ब्रह्माजीके पुत्र महान् तेजस्वी नारदजीको अपने आश्रममें आया देखकर मैं उठकर खड़ा हो गया और मैंने भलीभाँति उनकी पूजा आदि की॥ ११॥

अर्घ्यपाद्यविधिं कृत्वा तस्यासनस्थितस्य च।
उपविष्टः समीपेऽहं मुनेरमिततेजसः॥ १२

दृष्ट्वा विश्रमिणं शान्तं नारदं ज्ञानपारदम्।
तमपृच्छमहं राजन् यत्पृष्टोऽहं त्वयाधुना॥ १३

असारेऽस्मिंस्तु संसारे प्राणिनां किं सुखं मुने।
न पश्यामि विनिश्चित्य कदाचित्कुत्रचित्क्वचित्॥ १४

द्वीपे जातो जनन्याहं संत्यक्तस्तत्क्षणादपि।
अनाश्रयो वने वृद्धिं प्राप्तः कर्मानुसारतः॥ १५

तपस्तप्तं मया चोग्रं पर्वते बहुवार्षिकम्।
पुत्रकामेन देवर्षे शङ्करः समुपासितः॥ १६

ततो मया शुकः प्राप्तः पुत्रो ज्ञानवतां वरः।
पाठितस्तु मया सम्यग्वेदानां सार आदितः॥ १७

स त्यक्त्वा मां गतः क्वापि रुदन्तं विरहातुरम्।
लोकाल्लोकान्तरं साधो वचनात्तव बोधितः॥ १८

ततोऽहं पुत्रसन्तप्तस्त्यक्त्वा मेरुं महागिरिम्।
मातरं मनसा कृत्वा सम्प्राप्तः कुरुजाङ्गलम्॥ १९

पुत्रस्नेहादतितरां कृशाङ्गः शोकसंयुतः।
जानन्मिथ्येति संसारं मायापाशनियन्त्रितः॥ २०

ततो राज्ञा वृतां ज्ञात्वा मातरं वासवीं शुभाम्।
स्थितोऽत्रैवाश्रमं कृत्वा सरस्वत्यास्तटे शुभे॥ २१

शन्तनुः स्वर्गतिं प्राप्तो विधुरा जननी स्थिता।
पुत्रद्वययुता साध्वी भीष्मेण प्रतिपालिता॥ २२

अर्घ्य तथा पाद्य आदिसे उनका विधिपूर्वक पूजन करके आदरपूर्वक आसनपर विराजमान उन अमित तेजस्वी नारदके समीप मैं बैठ गया॥ १२॥

हे राजन्! तत्पश्चात् ज्ञानके पार पहुँचानेमें समर्थ मुनि नारदको मार्गश्रमसे रहित तथा शान्तचित्त देखकर मैंने उनसे वही प्रश्न पूछा था, जो आपने इस समय मुझसे पूछा है॥ १३॥

[मैंने उनसे पूछा—] हे मुने! इस सारहीन जगत्‌में प्राणियोंको क्या सुख प्राप्त होता है? विचार करनेपर मुझे तो कभी भी, कहीं भी तथा कुछ भी सुख नहीं दिखायी देता है॥ १४॥

मुझे ही देखिये, एक द्वीपमें जन्म लेते ही मेरी माताने मेरा त्याग कर दिया। तभीसे आश्रयहीन रहता हुआ मैं वनमें अपने कर्मके अनुसार बढ़ने लगा॥ १५॥

हे देवर्षे! तत्पश्चात् मैंने पुत्रप्राप्तिकी कामनासे एक पर्वतपर बहुत वर्षोंतक शंकरजीकी उपासना करते हुए कठोर तपस्या की॥ १६॥

तब ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुकदेव मुझे पुत्ररूपमें प्राप्त हुए। मैंने उन्हें आरम्भसे लेकर सम्यक् प्रकारसे वेदोंका सारभूत तत्त्व पढ़ा दिया॥ १७॥

हे साधो! आपके वचनोंसे ज्ञान प्राप्त करके मेरा वह पुत्र मुझ विरहातुरको रोता हुआ छोड़कर लोकलोकान्तरमें कहीं चला गया?॥ १८॥

तब पुत्रविरहसे सन्तप्त मैं महापर्वत सुमेरुको छोड़कर अपनी माताको मनमें याद करते हुए कुरुजांगल प्रदेशमें पहुँचा॥ १९॥

संसार मिथ्या है—ऐसा जानते हुए भी मायापाशमें बँधा हुआ मैं पुत्र-स्नेहके कारण शोकाकुल रहनेसे अत्यन्त दुर्बल शरीरवाला हो गया॥ २०॥

तत्पश्चात् जब मैंने यह जाना कि वासवराजसुता मेरी कल्याणमयी माताका राजा शन्तनुने वरण कर लिया है, तब मैं सरस्वतीके पवित्र तटपर आश्रम बनाकर रहने लगा॥ २१॥

इसके बाद महाराज शन्तनुके स्वर्ग प्राप्त कर लेनेपर मेरी माँ विधवा हो गयीं। तब भीष्मने दो पुत्रोंवाली मेरी माताका पालन किया॥ २२॥

चित्राङ्गदः कृतो राजा गङ्गापुत्रेण धीमता।
कालेन सोऽपि मे भ्राता मृतः कामसमद्युतिः॥ २३

ततः सत्यवती माता निमग्ना शोकसागरे।
चित्राङ्गदं मृतं पुत्रं रुरोद भृशमातुरा॥ २४

सम्प्राप्तोऽहं महाभाग ज्ञात्वा तां दुःखितां सतीम्।
आश्वासिता मयात्यर्थं भीष्मेण च महात्मना॥ २५

विचित्रवीर्यस्त्वपरो वीर्यवान्पृथिवीपतिः।
कृतो भीष्मेण भ्राता वै स्त्रीराज्यविमुखेन ह॥ २६

काशिराजसुते रम्ये विजित्य पृथिवीपतीन्।
भीष्मेणानीय स्वबलात्कन्यके द्वे समर्पिते॥ २७

सत्यवत्यै शुभे काले विवाहः परिकल्पितः।
भ्रातुर्विचित्रवीर्यस्य तदाहं सुखितोऽभवम्॥ २८

पुनः सोऽपि मृतो भ्राता यक्ष्मणा पीडितो भृशम्।
अनपत्यो युवा धन्वी माता मे दुःखिताभवत्॥ २९

काशिराजसुते द्वे तु मृतं दृष्ट्वा पतिं तदा।
पतिव्रताधर्मपरे भगिन्यौ सम्बभूवतुः॥ ३०

ते ऊचतुः सतीं श्वश्रूं रुदतीं भृशदुःखिताम्।
पतिना सहगामिन्यौ भविष्यावो हुताशने॥ ३१

पुत्रेण सह ते श्वश्रु स्वर्गे गत्वाथ नन्दने।
सुखेन विहरिष्यावः पतिना सह संयुते॥ ३२

निवारिते तदा मात्रा वध्वौ तस्मान्महोद्यमात्।
स्नेहभावं समाश्रित्य भीष्मस्य वचनात्तदा॥ ३३

गाङ्गेयेन च मात्रा मे सम्मन्त्र्य च परस्परम्।
कृत्वौर्ध्वदैहिकं सर्वं संस्मृतोऽहं गजाह्वये॥ ३४

बुद्धिमान् गंगापुत्र भीष्मने चित्रांगदको राजा बनाया। किंतु कुछ ही समयमें कामदेवके सदृश कान्तिमान् मेरे भाई चित्रांगद भी मृत्युको प्राप्त हो गये॥ २३॥

पुत्र चित्रांगदके मर जानेपर मेरी माता सत्यवती अत्यन्त दुःखित होकर रोने लगीं और नित्य शोकके समुद्रमें निमग्न रहने लगीं॥ २४॥

हे महाभाग! उन पतिव्रताको दुःखित जानकर मैं उनके पास गया। वहाँ मैंने तथा महात्मा भीष्मने उन्हें बहुत सान्त्वना दी॥ २५॥

तब स्त्री तथा राज्यसे विमुख भीष्मने अपने दूसरे भाई पराक्रमी विचित्रवीर्यको राजा बना दिया॥ २६॥

तत्पश्चात् भीष्मने अपने बलसे राजाओंको जीतकर काशिराजकी दो सुन्दर पुत्रियोंको लाकर माता सत्यवतीको समर्पित कर दिया। पुनः शुभ मुहूर्तमें जब भाई विचित्रवीर्यका विवाह सम्पन्न हो गया तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ॥ २७-२८॥

कुछ ही समयमें मेरे धनुर्धर भाई विचित्रवीर्य भी यक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर युवावस्थामें ही निःसन्तान मर गये, जिससे मेरी माता दुःखित हुईं॥ २९॥

इधर जब काशिराजकी दोनों पुत्रियोंने अपने पतिको मृत देखा तब वे दोनों बहनें पातिव्रत्य धर्मके पालनके लिये तत्पर हुईं॥ ३०॥

वे दारुण दुःखके कारण रोती हुई अपनी साध्वी साससे कहने लगीं—हे श्वश्रु! हम दोनों चिताग्निमें अपने पतिके साथ ही जायँगी। आपके पुत्रके साथ स्वर्गमें जाकर हम दोनों अपने पतिसे युक्त होकर नन्दनवनमें सुखपूर्वक विहार करेंगी॥ ३१-३२॥

तब स्नेहभावका आश्रय लेकर मेरी माताने भीष्मके परामर्शसे उन दोनों वधुओंको महान् चेष्टा करनेसे रोक दिया॥ ३३॥

विचित्रवीर्यकी सभी और्ध्वदैहिक क्रिया सम्पन्न करके गंगातनय भीष्म तथा मेरी माताने आपसमें मन्त्रणा करके मुझे हस्तिनापुर आनेके लिये मेरा स्मरण किया॥ ३४॥

स्मृतमात्रस्तु मात्रा वै ज्ञात्वा भावं मनोगतम्।
तरसैवागतश्चाहं नगरं नागसाह्वयम्॥ ३५

प्रणम्य मातरं मूर्ध्ना संस्थितोऽथ कृताञ्जलिः।
तामब्रवं सुतप्ताङ्गीं पुत्रशोकेन कर्शिताम्॥ ३६

मातस्त्वया किमाहूतो मनसाहं तपस्विनि।
आज्ञापय महत्कार्ये दासोऽस्मि करवाणि किम्॥ ३७

त्वं मे तीर्थं परं मातर्देवश्च प्रथितः परः।
आगतश्चिन्तितश्चात्र ब्रूहि कृत्यं तव प्रियम्॥ ३८

व्यास उवाच

इत्युक्त्वाहं स्थितस्तत्र मातुरग्रे यदा मुने।
तदा सा मामुवाचेदं पश्यन्ती भीष्ममन्तिके॥ ३९

पुत्र तेऽद्य मृतो भ्राता पीडितो राजयक्ष्मणा।
तेनाहं दुःखिता जाता वंशच्छेदभयादिह॥ ४०

तस्मात्त्वमद्य मेधाविन् मयाहूतः समाधिना।
गाङ्गेयस्य मतेनात्र पाराशर्यार्थसिद्धये॥ ४१

कुलं स्थापय नष्टं त्वं शन्तनोर्नामकारणात्।
रक्ष मां दुःखतः कृष्ण वंशच्छेदोद्भवाद् द्रुतम्॥ ४२

काशिराजसुते भार्ये भ्रातुस्तव यवीयसः।
साधोर्विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनभूषिते॥ ४३

ताभ्यां सङ्गम्य मेधाविन् पुत्रोत्पादनकं कुरु।
रक्षस्व भारतं वंशं नात्र दोषोऽस्ति कर्हिचित्॥ ४४

व्यास उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा जातश्चिन्तातुरो ह्यहम्।
लज्जयाकुलचित्तस्तामब्रवं विनयानतः॥ ४५

इस प्रकार माताके स्मरण करते ही उनके मनोगत भावको जानकर शीघ्र ही मैं हस्तिनापुरमें आ गया। सिर झुकाकर माताको प्रणाम करके मैं हाथ जोड़कर उनके समक्ष खड़ा हो गया और पुत्रशोकके कारण अत्यन्त दुर्बल तथा तप्त अंगोंवाली उन मातासे मैंने कहा— ॥ ३५—३६ ॥

हे माता! आपने अपने मनमें स्मरण करके यहाँ मुझे किसलिये बुलाया है? हे तपस्विनि! बड़े-से-बड़े कार्यके लिये मुझे आदेश दीजिये; मैं आपका दास हूँ, मैं क्या करूँ?॥ ३७॥

हे माता! मेरा परम तीर्थ तथा महान् परम देव आप ही हैं। आपके स्मरण करते ही मैं यहाँ उपस्थित हो गया हूँ। अब आप अपना प्रिय कार्य बताइये॥ ३८॥

व्यासजी बोले—हे मुने! ऐसा कहकर जब मैं माताके आगे खड़ा हो गया तब पास ही बैठे हुए भीष्मको देखती हुई वे मुझसे यह कहने लगीं॥ ३९॥

हे पुत्र! राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त होकर तुम्हारे भाई विचित्रवीर्य मृत्युको प्राप्त हो गये हैं। अतएव वंशके नष्ट होनेके भयसे मैं दुःखी हूँ॥ ४०॥

हे प्रतिभाशाली पराशरनन्दन! इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मैंने भीष्मके परामर्शसे समाधिद्वारा तुम्हें यहाँ बुलाया है॥ ४१॥

इस नष्ट होते हुए वंशको तुम स्थापित करो, जिससे महाराज शन्तनुका नाम बना रहे। हे द्वैपायन कृष्ण! वंशच्छेदजन्य दुःखसे मेरी शीघ्र रक्षा करो॥ ४२॥

तुम्हारे सदाचारी लघुभ्राता विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दो भार्याएँ हैं, जो काशिराजकी पुत्रियाँ हैं॥ ४३॥

हे मेधाविन्! उन दोनोंके साथ संसर्ग करके तुम पुत्र उत्पन्न करो, भरतवंशकी रक्षा करो; इसमें कोई दोष नहीं है॥ ४४॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] माताका यह वचन सुनकर मैं चिन्तामें पड़ गया और लज्जासे व्याकुल मनवाला होकर मैंने उनसे विनम्रतापूर्वक कहा—हे माता!

मातः पापाधिकं कर्म परदाराभिमर्शनम्।
ज्ञात्वा धर्मपथं सम्यक्करोमि कथमादरात्॥ ४६

तथा यवीयसो भ्रातुर्वधूः कन्या प्रकीर्तिता।
व्यभिचारं कथं कुर्यामधीत्य निगमानहम्॥ ४७

अन्यायेन न कर्तव्यं सर्वथा कुलरक्षणम्।
न तरन्ति हि संसारात्पितरः पापकारिणः॥ ४८

लोकानामुपदेष्टा यः पुराणानां प्रवर्तकः।
स कथं कुत्सितं कर्म ज्ञात्वा कुर्यान्महाद्भुतम्॥ ४९

पुनरुक्तो ह्यहं मात्रा रुदत्या भृशमन्तिके।
पुत्रशोकातितप्ता या वंशरक्षणकाम्यया॥ ५०

पाराशर्य न ते दोषो वचनान्मम पुत्रक।
गुरूणां वचनं तथ्यं सदोषमपि मानवैः॥ ५१

कर्तव्यमविचार्यैव शिष्टाचारप्रमाणतः।
वचनं कुरु मे पुत्र न ते दोषोऽस्ति मानद॥ ५२

पुत्रस्य जननं कृत्वा सुखिनीं कुरु मातरम्।
विशेषेण तु सन्तप्तां मग्नां शोकार्णवे सुत॥ ५३

इति तां ब्रुवतीं श्रुत्वा तदा सुरनदीसुतः।
मामुवाच विशेषज्ञः सूक्ष्मधर्मस्य निर्णये॥ ५४

द्वैपायन विचारोऽत्र न कर्तव्यस्त्वयानघ।
मातुर्वचनमादाय विहरस्व यथासुखम्॥ ५५

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा मातुश्च प्रार्थनं तथा।
निःशङ्कोऽहं तदा जातः कार्ये तस्मिञ्जुगुप्सिते॥ ५६

अम्बिकायां प्रवृत्तोऽहमृतुमत्यां मुदा निशि।
मयि विमनसायां तु तापसे कुत्सिते भृशम्॥ ५७

शप्ता मया सा सुश्रोणी प्रसङ्गे प्रथमे तदा।
अन्धस्ते भविता पुत्रो यतो नेत्रे निमीलिते॥ ५८

परनारीसंगम महान् पापकर्म है। धर्ममार्गका सम्यक् ज्ञान रखते हुए भी मैं आसक्तिपूर्वक ऐसा कर्म कैसे कर सकता हूँ? और फिर छोटे भाईकी पत्नी कन्याके समान कही गयी है। ऐसी स्थितिमें सभी वेदोंका अध्ययन करके भी मैं ऐसा व्यभिचार कैसे करूँ? अन्यायसे कुलकी रक्षा कदापि नहीं करनी चाहिये; क्योंकि पाप करनेवालेके पितृगण संसार-सागरसे कभी नहीं पार हो सकते। जो समग्र पुराणोंका प्रवर्तक तथा लोगोंको उपदेश करनेवाला हो, वह जान-बूझकर ऐसा अद्भुत तथा निन्दनीय कार्य कैसे कर सकता है?॥ ४५—४९॥

तत्पश्चात् वंश-रक्षाकी कामनासे युक्त मेरी माता, जो पुत्रशोकसे अत्यधिक सन्तप्त थीं, विलाप करती हुई समीपमें आकर मुझसे पुनः कहने लगीं—॥ ५०॥

हे पराशरनन्दन! हे पुत्र! मेरे कहनेपर ऐसा करनेसे तुम दोषभागी नहीं होओगे। शिष्टजनोंका आचार ही प्रमाण है—ऐसा मानकर मनुष्योंको गुरुजनोंके दोषपूर्ण वचनोंको भी उचित समझकर बिना कुछ सोच-विचार किये कर डालना चाहिये। हे पुत्र! मेरी बात मान लो! हे मानद! इससे तुम्हें दोष नहीं लगेगा। हे सुत! पुत्र उत्पन्न करके अत्यधिक सन्तप्त तथा शोकसागरमें निमग्न अपनी माताको सुखी करो॥ ५१—५३॥

माताकी यह बात सुनकर सूक्ष्मधर्मके निर्णयमें विशेष ज्ञान रखनेवाले गंगातनय भीष्मने मुझसे कहा—हे कृष्ण-द्वैपायन! तुम्हें इस विषयमें विचार नहीं करना चाहिये। हे पुण्यात्मन्! माताका वचन मानकर तुम सुखपूर्वक विहार करो॥ ५४-५५॥

व्यासजी बोले—[हे नारद!] भीष्मका यह वचन सुनकर तथा माताकी प्रार्थनापर मैं निःशंक भावसे उस निन्द्य कर्ममें प्रवृत्त हो गया॥ ५६॥

रात्रिमें मैं प्रसन्नतापूर्वक ऋतुमती अम्बिकाके साथ प्रवृत्त हुआ, किंतु मुझ कुरूप तपस्वीके प्रति उसके अनुरागहीन होनेके कारण मैंने उस सुश्रोणीको शाप दे दिया कि प्रथम संसर्गके समय ही तुमने अपनी दोनों आँखें बन्द कर ली थीं, अतः तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा॥ ५७-५८॥

द्वितीयेऽह्नि मुनिश्रेष्ठ पृष्टो मात्रा रहः पुनः।
भविष्यति सुतः पुत्र काशिराजसुतोदरे॥ ५९

मयोक्ता जननी तत्र व्रीडानम्रमुखेन ह।
विनेत्रो भविता पुत्रो मातः शापान्ममैव हि॥ ६०

तया निर्भर्त्सितस्तत्र कठोरवचसा मुने।
कथं पुत्र त्वया शप्ता पुत्रस्तेऽन्धो भविष्यति॥ ६१

हे मुनिवर! दूसरे दिन माताने एकान्तमें मुझसे फिर पूछा—हे पुत्र! क्या काशिराजकी पुत्री अम्बिकाके गर्भसे पुत्र उत्पन्न होगा? तब लज्जाके कारण मुख नीचे किये हुए मैंने मातासे कहा—हे माता! मेरे शापके प्रभावसे नेत्रहीन पुत्र उत्पन्न होगा॥ ५९-६०॥

हे मुने! इसपर माताने कठोर वाणीमें मेरी भर्त्सना की—'हे पुत्र! तुमने शाप क्यों दिया कि तुम्हारा पुत्र अन्धा होगा'॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे अम्बिकायां नियोगात्पुत्रोत्पादनाय गर्भधारणवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

~~~

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

पाण्डु और विदुरके जन्मकी कथा, पाण्डवोंका जन्म, पाण्डुकी मृत्यु, द्रौपदीस्वयंवर, राजसूययज्ञ, कपटद्यूत तथा वनवास और व्यासजीके मोहका वर्णन

व्यास उवाच

वासवी चकिता जाता श्रुत्वा मे वाक्यमीदृशम्।
दाशेयी मामुवाचेदं पुत्रार्थे भृशमातुरा॥ १

अम्बालिका वधूर्धन्या काशिराजसुता सुत।
भार्या विचित्रवीर्यस्य विधवा शोकसंयुता॥ २

सर्वलक्षणसम्पन्ना रूपयौवनशालिनी।
तस्यां जनय सङ्गं त्वं कृत्वा पुत्रं सुसम्मतम्॥ ३

नान्धो राजाधिकारी स्यात्तस्मात्पुत्रं मनोहरम्।
उत्पादय राजपुत्र्यां वचनान्मम मानद॥ ४

इत्युक्तोऽहं तदा मात्रा स्थितस्तत्र गजाह्वये।
यावदृतुमती जाता काशिराजसुता मुने॥ ५

एकान्ते शयनागारे प्राप्ता सा मम सन्निधौ।
लज्जमाना सुकेशान्ता स्वश्वश्रूवचनात्तदा॥ ६

दृष्ट्वा मां जटिलं दान्तं तापसं रसवर्जितम्।
सा स्वेदवदना जाता पाण्डुरा विमना भृशम्॥ ७

व्यासजी बोले—मेरी वह बात सुनकर वासवराजकुमारी सत्यवती चकित हो गयीं और पुत्रके लिये अत्यन्त व्यग्र होकर मुझसे कहने लगीं—हे पुत्र! काशिराजकी श्रेष्ठ पुत्री वधू अम्बालिका विचित्रवीर्यकी भार्या है, जो विधवा तथा पतिशोकसे सन्तप्त है। वह सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न और रूप तथा यौवनसे युक्त है। तुम उसके साथ संसर्ग करके प्रिय पुत्र उत्पन्न करो॥ १—३॥

नेत्रहीनको राजा बननेका अधिकार नहीं हो सकता। इसलिये हे मानद! मेरी बात मानकर तुम उस राजपुत्रीसे एक मनोहर पुत्र उत्पन्न करो॥ ४॥

हे मुने! तब मैं माताजीके ऐसा कहनेपर वहीं हस्तिनापुरमें ठहर गया और जब सुन्दर केशपाशवाली काशिराजकी पुत्री अम्बालिका ऋतुमती हुई तो अपनी सासके कहनेपर वह एकान्त शयनकक्षमें लज्जित होती मेरे पास आयी॥ ५-६॥

वहाँ मुझ जटाधारी, इन्द्रियनिग्रही तथा शृङ्गाररससे अनभिज्ञ तपस्वीको देखकर उसके मुखपर पसीना आ गया, शरीर पीला पड़ गया और उसका मन बहुत खिन्न हो गया॥ ७॥
~~~

कुपितोऽहं तदा दृष्ट्वा कामिनीं निशि सङ्गताम्।
वेपमानां स्थितां पार्श्वे ह्यब्रवं तामहं रुषा॥ ८

दृष्ट्वा मां यदि गर्वेण पाण्डुवर्णा समावृता।
अतस्ते तनयः पाण्डुर्भविष्यति सुमध्यमे॥ ९

इत्युक्त्वा निशि तत्रैव स्थितोऽम्बालिकया युतः।
भुक्त्वा तां निशि निर्यातः स्थानमापृच्छ्य मातरम्॥ १०

ततस्ताभ्यां सुतौ काले प्रसूतावन्धपाण्डुरौ।
धृतराष्ट्रश्च पाण्डुश्च प्रथितौ सम्बभूवतुः॥ ११

माता मे विमना जाता तादृशौ वीक्ष्य तौ सुतौ।
ततः संवत्सरस्यान्ते मामाहूय तदाब्रवीत्॥ १२

द्वैपायन सुतौ जातौ राज्ययोग्यौ न तादृशौ।
अन्यं मनोहरं पुत्रं समुत्पादय मे प्रियम्॥ १३

तथेति सा मया प्रोक्ता मुदिता जननी तदा।
अम्बिकां प्रार्थयामास सुतार्थे काल आगते॥ १४

पुत्रि व्यासं समालिङ्ग्य पुत्रमुत्पादयाद्भुतम्।
कुरुवंशस्य कर्तारं राज्ययोग्यं वरानने॥ १५

वधूर्लज्जान्विता किञ्चिन्नोवाच वचनं तदा।
गतोऽहं शयनागारे मातुस्तद्वचनान्निशि॥ १६

दासी विचित्रवीर्यस्य रूपयौवनसंयुता।
प्रेषिताम्बिकया त्वत्र विचित्राभरणाम्बरा॥ १७

चन्दनारक्तदेहा सा पुष्पमालाविभूषिता।
आयाता हावसंयुक्ता सुकेशी हंसगामिनी॥ १८

पर्यङ्के मां समावेश्य संस्थिता प्रेमसंयुता।
प्रसन्नोऽहं तदा तस्या विलासेनाभवं मुने॥ १९

तत्पश्चात् रात्रिमें सम्पर्कके लिये आयी हुई उस सुन्दरीको अपने पासमें बैठी देखकर मैं कुपित हो गया और रोषपूर्वक बोला—सुमध्यमे! मुझे देखकर यदि तुम अभिमानसे पीली पड़ गयी हो तो तुम्हारा पुत्र भी पीतवर्णका होगा॥ ८-९॥

ऐसा कहकर मैं उस अम्बालिकाके साथ रातभर वहीं रहा और फिर मातासे आज्ञा लेकर अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गया॥ १०॥

तदनन्तर समय आनेपर उन दोनोंने अन्धे तथा पाण्डुवर्णके दो पुत्र उत्पन्न किये। वे दोनों धृतराष्ट्र तथा पाण्डु नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ११॥

उन दोनों राजकुमारोंको इस प्रकारका देखकर मेरी माता खिन्नमनस्क हो गयीं। तत्पश्चात् एक वर्षके अनन्तर मुझे बुलाकर उन्होंने कहा—हे द्वैपायन! इस प्रकारके दोनों पुत्र राज्य करनेके योग्य नहीं हैं, अतएव तुम एक अन्य मनोहर पुत्र उत्पन्न करो, जो मुझे अत्यन्त प्रिय हो॥ १२-१३॥

'वैसा ही होगा'—मेरे इस प्रकार कहनेपर माता अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं। इसके बाद ऋतुकाल आनेपर माताने पुत्रहेतु अम्बिकासे प्रार्थना की—हे पुत्रि! हे सुमुखि! व्यासके साथ समागम करके तुम कुरुवंश चलानेवाला तथा राज्य करनेयोग्य एक अद्वितीय पुत्र उत्पन्न करो॥ १४-१५॥

उस समय लज्जासे युक्त वधू अम्बिकाने कुछ भी नहीं कहा और मैं माताकी वह बात मानकर रातमें शयनागारमें चला गया॥ १६॥

तत्पश्चात् अम्बिकाने विचित्रवीर्यकी रूप-यौवनसम्पन्न दासीको सुन्दर आभूषण तथा वस्त्र पहनाकर मेरे पास भेज दिया॥ १७॥

शरीरपर चन्दन लगाये, फूलकी मालाओंसे विभूषित तथा सुन्दर केशोंवाली वह सुन्दरी हंसकी भाँति मन्द-मन्द चलती हुई बड़े हाव-भावसे मेरे पास आयी॥ १८॥

मुझे पलंगपर बैठाकर वह भी प्रेमपूर्वक मेरे पास बैठ गयी। हे मुने! उसके इस प्रेमपूर्ण हाव-भावसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ॥ १९॥

रात्रौ संक्रीडितं प्रेम्णा तया सह मया भृशम्।
वरो दत्तः पुनस्तस्यै प्रसन्नेन तु नारद॥ २०

सुभगे भविता पुत्रः सर्वलक्षणसंयुतः।
सुरूपः सर्वधर्मज्ञः सत्यवादी शमे रतः॥ २१

स तदा विदुरो जातस्त्रयः पुत्रा मयाभवन्।
माया वृद्धिं गता साधो परक्षेत्रोद्भवे मम॥ २२

विस्मृतः शुकसम्बन्धी विरहः शोककारणम्।
दृष्ट्वा त्रीन्स्वसुतान्कामं बलिनो वीर्यसम्मतान्॥ २३

माया बलवती ब्रह्मन् दुस्त्यजा ह्यकृतात्मभिः।
अरूपा च निरालम्बा ज्ञानिनामपि मोहिनी॥ २४

मातरि स्नेहसम्बद्धं तथा पुत्रेषु संवृतम्।
न मे चित्तं वने शान्तिमगान्मुनिवरोत्तम॥ २५

दोलारूढं मनो जातं कदाचिद्धस्तिनापुरे।
पुनः सरस्वतीतीरे न चैकत्र व्यवस्थितिः॥ २६

कदाचिच्चिन्तयन् ज्ञानं मानसे प्रतिभाति वै।
केऽमी पुत्राः क्व मोहोऽयं न श्राद्धार्हा मृतस्य मे॥ २७

व्यभिचारोद्भवाः किं मे सुखदाः स्युः सुताः किल।
माया बलवती मोहं वितनोति हि मानसे॥ २८

जानन्मोहान्धकूपेऽस्मिन्पतितोऽहं मृषा मुने।
इत्यकुर्वं रहस्तापं कदाचित्सुसमाहितः॥ २९

राज्यं प्राप ततः पाण्डुर्बलवान्भीष्मसम्मतः।
तदा मम मनो जातं प्रसन्नं सुतकारणात्॥ ३०

हे नारद! रात्रिमें मैंने उसके साथ प्रेमपूर्वक विहार किया और पुनः प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया—हे सुभगे! तुम्हें सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, रूपवान्, सभी धर्मोंका ज्ञाता, सत्यवादी तथा शान्त स्वभाववाला पुत्र उत्पन्न होगा॥ २०-२१॥

समय आनेपर उसे विदुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार मुझसे तीन पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। हे साधो! परक्षेत्रमें मेरेद्वारा उत्पन्न किये गये इन पुत्रोंके प्रति मेरी ममता बढ़ने लगी॥ २२॥

उन तीनों पुत्रोंको अत्यन्त बलवान् तथा वीर्यवान् देखकर मैं अपने शोकके एकमात्र कारण शुकसम्बन्धी वियोगको भूल गया॥ २३॥

हे ब्रह्मन्! माया बलवती होती है, आत्मज्ञानसे रहित पुरुषोंके लिये यह अत्यन्त दुस्त्यज है। रूपहीन तथा आलम्बरहित यह माया ज्ञानियोंको भी मोहित कर देती है॥ २४॥

हे मुनिवर! मातामें तथा उन पुत्रोंमें स्नेहासक्तिसे आबद्ध मेरे मनको वनमें भी शान्ति नहीं मिल पाती थी॥ २५॥

मेरा मन दोलायमान हो गया। वह कभी हस्तिनापुरमें रहता था तो कभी सरस्वतीनदीके तटपर चला आता था; इस प्रकार मेरा मन किसी जगह स्थिर नहीं रहता था॥ २६॥

कभी-कभी मनमें ज्ञानका उदय हो जानेपर मैं सोचने लगता था कि ये पुत्र कौन हैं, यह मोह कैसा? मेरे मर जानेपर ये मेरा श्राद्ध भी तो नहीं कर सकेंगे॥ २७॥

दुराचारसे उत्पन्न ये पुत्र मुझे कौन-सा सुख देंगे। माया बड़ी प्रबल होती है; यह मनमें मोह पैदा कर देती है॥ २८॥

हे मुने! कभी-कभी शान्तचित्त होकर एकान्तमें मैं यह सन्ताप करने लगता था कि मैं जान-बूझकर इस मोहरूपी अन्धकूपमें व्यर्थ ही गिर गया हूँ॥ २९॥

भीष्मकी सम्मतिसे जब बलवान् पाण्डुको राज्य प्राप्त हुआ, उस समय मेरा मन इस बातसे बहुत प्रसन्न हुआ कि मेरा पुत्र राजसिंहासनपर बैठा है॥ ३०॥

कुन्ती माद्री सुरूपे द्वे भार्ये तस्य बभूवतुः।
शूरसेनसुता कुन्ती मद्रराजसुतापरा॥ ३१

स शापं द्विजतः प्राप्य कामिनीद्वयसंयुतः।
पाण्डुर्निर्वेदमापन्नस्त्यक्त्वा राज्यं वनं गतः॥ ३२

तदा मामाविशच्छोकः श्रुत्वा पुत्रं वने स्थितम्।
गतोऽहं तत्र यत्रासौ भार्याभ्यां सह संस्थितः॥ ३३

तमाश्वास्य वने पाण्डुं पुनः प्राप्तो गजाह्वये।
धृतराष्ट्रं समाभाष्य ह्यगमं ब्रह्मजातटे॥ ३४

क्षेत्रजान्पञ्चपुत्रान्स समुत्पाद्य वनाश्रमे।
धर्मतो वायुतः शक्रादश्विभ्यां पञ्च पाण्डवान्॥ ३५

युधिष्ठिरो भीमसेनस्तथैवार्जुन इत्यपि।
कुन्तीपुत्राः समाख्याता धर्मानिलसुरेशजाः॥ ३६

नकुलः सहदेवश्च मद्रराजसुतासुतौ।
कदाचित्तु रहो माद्रीं समालिङ्ग्य महीपतिः॥ ३७

मृतः शापात्तु मुनिभिः संस्कृतो हुतभुङ्मुखे।
माद्री तत्र सती भूत्वा प्रविष्टा पतिना सह॥ ३८

स्थिता पुत्रयुता कुन्ती ज्वलिते जातवेदसि।
मुनयः सुतसंयुक्तां शूरसेनसुतां तदा॥ ३९

दुःखितां पतिहीनां तामानिन्युर्गजसाह्वये।
समर्पिताथ भीष्माय विदुराय महात्मने॥ ४०

श्रुत्वाहं सुखदुःखाभ्यां पीडितस्तु परात्मभिः।
भीष्मेण पालिताः पुत्राः पाण्डोरिति विचिन्त्य ते॥ ४१

विदुरेण तथा प्रीत्या धृतराष्ट्रेण धीमता।
दुर्योधनादयस्तस्य पुत्रा ये क्रूरमानसाः॥ ४२

एकत्र स्थितिमापन्ना विरोधं चक्रुरद्भुतम्।
द्रोणाचार्यस्तु सम्प्राप्तस्तत्र भीष्मेण मानितः॥ ४३
अध्यापनाय पुत्राणां पुरे तस्मिन्निवासितः।

तत्पश्चात् सुन्दर रूपवाली कुन्ती तथा माद्री उनकी दो भार्याएँ हुईं। उनमें कुन्ती महाराज शूरसेनकी पुत्री थी तथा दूसरी रानी माद्री मद्रदेशके राजाकी कन्या थी॥ ३१॥

ब्राह्मणसे शाप प्राप्त करके राजा पाण्डु अत्यन्त दुःखित हुए और वे राज्यका परित्याग करके अपनी दोनों रानियोंके साथ वन चले गये॥ ३२॥

अपने पुत्रको वनमें स्थित सुनकर मुझे महान् शोक हुआ। मैं वहाँ पहुँच गया, जहाँ वे अपनी दोनों पत्नियोंके साथ रह रहे थे॥ ३३॥

वनमें उन पाण्डुको सान्त्वना देकर मैं पुनः हस्तिनापुर आ गया और वहाँ धृतराष्ट्रके साथ बातचीत करके सरस्वतीनदीके तटपर पुनः चला गया॥ ३४॥

वनमें अपने आश्रममें उन्होंने धर्म, वायु, इन्द्र तथा दोनों अश्विनीकुमारोंसे पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको पाँच पाण्डवोंके रूपमें उत्पन्न कराया। धर्म, वायु तथा इन्द्रसे उत्पन्न हुए युधिष्ठिर, भीमसेन तथा अर्जुन—ये कुन्तीपुत्र कहे गये हैं। इसी तरह नकुल तथा सहदेव—ये दोनों माद्रीके पुत्र हुए॥ ३५-३६½ ॥

एक दिन महाराज पाण्डु एकान्तमें माद्रीका आलिंगन करके पूर्वशापके कारण मृत्युको प्राप्त हो गये। तत्पश्चात् मुनियोंने उनका दाह-संस्कार किया और माद्री सती होकर पतिके साथ प्रज्वलित अग्निमें प्रविष्ट हो गयी और पुत्रोंसे युक्त कुन्ती वहीं स्थित रह गयी। तत्पश्चात् मुनिलोग पतिविहीन उस दुःखित शूरसेन-पुत्री कुन्तीको उसके पुत्रोंसहित हस्तिनापुर ले आये और उसे भीष्म तथा महात्मा विदुरको सौंप दिया। यह सुनकर मैं उन पाण्डुपुत्रोंके कारण सुख-दुःखसे पीड़ित हो गया। पाण्डुके ये पुत्र हैं—ऐसा सोचकर भीष्म, मतिमान् विदुर तथा धृतराष्ट्र प्रेमपूर्वक उनका पालन-पोषण करने लगे॥ ३७—४१½ ॥

धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदि जो क्रूर हृदयवाले पुत्र थे, वे एक समूह बनाकर उनका घोर विरोध करने लगे। तत्पश्चात् द्रोणाचार्य वहाँ आये और भीष्मने उनका सम्मान किया। उन्होंने पुत्रोंको धनुर्विद्याकी शिक्षा देनेके लिये उन्हें उसी पुरमें रख लिया॥ ४२-४३½ ॥

कर्णः कुन्त्या परित्यक्तो जातमात्रः शिशुर्यदा॥ ४४

सूतेन पालितो नद्यां प्राप्तश्चाधिरथेन ह।
दुर्योधनप्रियश्चाभूत्कर्णः शूरतमस्तथा॥ ४५

परस्परं विरोधोऽभूद्भीमदुर्योधनादिषु।
धृतराष्ट्रस्तु सञ्चिन्त्य क्लेशं पुत्रेषु तेषु च॥ ४६

निवासं कल्पयामास पाण्डवानां महात्मनाम्।
विरोधशमनायैव नगरे वारणावते॥ ४७

दुर्योधनेन तत्रैव द्रोहाज्जतुगृहाणि वै।
कारितानि च दिव्यानि प्रेष्य मित्रं पुरोचनम्॥ ४८

श्रुत्वा जतुगृहे दग्धान्पाण्डवान्पृथया युतान्।
पौत्रभावान्मुनिश्रेष्ठ मग्नोऽहं व्यसनार्णवे॥ ४९

शोकातुरो भृशं शून्ये वने पश्यन्नहर्निशम्।
दृष्टा मयैकचक्रायां पाण्डवा दुःखकर्शिताः॥ ५०

ततस्तुष्टमनाश्चाहं जातः पार्थान्विलोक्य च।
प्रेरितास्ते मया तूर्णं द्रुपदस्य पुरं प्रति॥ ५१

ते गतास्तत्र दुःखार्ता विप्रवेषधराः कृशाः।
मृगचर्मपरीधानाः सभायां संस्थितास्तदा॥ ५२

कृत्वा पराक्रमं जिष्णुः स जित्वा द्रुपदात्मजाम्।
चक्रुर्विवाहं मानिन्या पञ्चैव मातृवाक्यतः॥ ५३

दृष्ट्वा विवाहं तेषां तु मुदितोऽहं भृशं तदा।
ततो नागाह्वये प्राप्ताः पाञ्चालीसहिता मुने॥ ५४

निवासं खाण्डवप्रस्थं धृतराष्ट्रेण कल्पितम्।
पाण्डवानां द्विजश्रेष्ठ वसुदेवसुतेन वै॥ ५५

तर्पितः पावकस्तत्र विष्णुना सह जिष्णुना।
राजसूयः कृतो यज्ञस्तदाहं मुदितोऽभवम्॥ ५६

कुन्तीने उत्पन्न होते ही जब बालक कर्णका परित्याग कर दिया तब अधिरथ नामक सूतने नदीमें बहते हुए उस कर्णको पाया और उसका पालन-पोषण किया। सर्वश्रेष्ठ वीर होनेके कारण कर्ण दुर्योधनका प्रिय हो गया। बादमें भीम तथा दुर्योधन आदिमें परस्पर विरोध भाव उत्पन्न हो गया॥ ४४-४५½ ॥

तब धृतराष्ट्रने अपने पुत्रों तथा उन पाण्डवोंके परस्पर संकटका विचार करके तथा उनके विरोध-भावको समाप्त करनेके उद्देश्यसे वारणावत नगरमें महात्मा पाण्डवोंको बसानेका निश्चय किया॥ ४६-४७॥

द्रोहके कारण दुर्योधनने अपने मित्र पुरोचनको वहाँ भेजकर दिव्य लाक्षागृहका निर्माण करा दिया॥ ४८॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् कुन्तीसहित उन पाण्डवोंके उस लाक्षागृहमें दग्ध हो जानेका समाचार सुनकर उनके प्रति पौत्र-भाव होनेके कारण मैं दुःखके सागरमें डूब गया और उस निर्जन वनमें उन्हें दिन-रात खोजता हुआ अति शोकसन्तप्त रहता था। तभी मैंने दुःखके कारण अत्यन्त दुर्बल उन पाण्डवोंको एकचक्रा नगरीमें देखा। उन पाण्डवोंको देखकर मेरे मनमें अत्यधिक प्रसन्नता हुई और मैंने उन्हें तुरंत महाराज द्रुपदके नगरमें भेज दिया॥ ४९—५१॥

कृश शरीरवाले वे दुःखित पाण्डव मृगचर्म पहनकर ब्राह्मणका वेश धारण करके वहाँ गये और द्रुपदकी स्वयंवर-सभामें जा पहुँचे। वहाँपर अर्जुन अपने पराक्रमका प्रदर्शन करके द्रुपद-पुत्री द्रौपदीको जीतकर ले आये। पुनः माता कुन्तीके आदेशसे पाँचों भाइयोंने मानिनी द्रौपदीके साथ विवाह किया॥ ५२-५३॥

उनका विवाह देखकर मैं परम प्रसन्न हुआ। हे मुने! तत्पश्चात् वे सभी द्रौपदीसहित हस्तिनापुर चले आये॥ ५४॥

धृतराष्ट्रने उन पाण्डवोंके रहनेके लिये खाण्डवप्रस्थ देनेका निश्चय किया। हे द्विजश्रेष्ठ नारद! वसुदेवनन्दन भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनके साथ अग्निदेवको सन्तुष्ट किया। पाण्डवोंने जब राजसूय यज्ञ किया तब मैं बहुत प्रसन्न हुआ॥ ५५-५६॥

दृष्ट्वाथ विभवं तेषां तथा मयकृतां सभाम्।
दुर्योधनोऽतिसन्तप्तो दुरोदरमथाकरोत्॥ ५७

दुर्द्यूतवेदी शकुनिरनक्षज्ञश्च धर्मजः।
हृतं राज्यं धनं सर्वं याज्ञसेनी च क्लेशिता॥ ५८

वने द्वादश वर्षाणि पाण्डवास्ते विवासिताः।
पाञ्चालीसहितास्तेन दुःखं मे जनितं भृशम्॥ ५९

एवं नारद संसारे सुखदुःखात्मके भृशम्।
निमग्नोऽहं भ्रमेणैव जानन् धर्मं सनातनम्॥ ६०

कोऽहं कस्य सुतास्तेऽमी का माता किं सुखं पुनः।
येन मे हृदयं मोहाद् भ्रमतीति दिवानिशम्॥ ६१

किं करोमि क्व गच्छामि सन्तोषो नाधिगच्छति।
दोलारूढं मनो मेऽत्र चञ्चलं न स्थिरं भवेत्॥ ६२

सर्वज्ञोऽसि मुनिश्रेष्ठ सन्देहं मे निवर्तय।
तथा कुरु यथाहं स्यां सुखितो विगतज्वरः॥ ६३

उन पाण्डवोंका वैभव तथा मय दानवद्वारा निर्मित की गयी सभाको देखकर दुर्योधन अत्यन्त दुःखित हुआ और उसने द्यूतक्रीडाकी योजना बनायी। शकुनि कपटपूर्ण द्यूतमें अति निपुण था तथा धर्मराज युधिष्ठिर पासेके खेलसे अनभिज्ञ थे। अतएव दुर्योधनने [द्यूतक्रीडाके माध्यमसे] पाण्डवोंका सम्पूर्ण राज्य तथा धन छीन लिया तथा द्रौपदीको भी अपमानित किया। दुर्योधनने द्रौपदीसहित पाँचों पाण्डवोंको बारह वर्षकी अवधितक वनमें निवास करनेके लिये निर्वासित कर दिया; इससे मुझे बहुत दुःख हुआ॥ ५७—५९॥

हे नारद! इस प्रकार सनातन धर्मको जानते हुए भी मैं सुख तथा दुःखसे पूर्ण इस संसारमें भ्रमसे ही बन्धनमें पड़ा हूँ। मैं कौन हूँ, ये किसके पुत्र हैं, यह किसकी माता है और सुख क्या है? जिससे मेरा मन मोहित होकर दिन-रात इन्हींमें भ्रमण करता रहता है॥ ६०-६१॥

मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? किसी प्रकारसे भी मुझे सन्तोष नहीं मिलता। दोलायमान मेरा चंचल मन स्थिर नहीं हो पा रहा है॥ ६२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वज्ञ हैं, अतएव मेरे सन्देहका निवारण कीजिये। आप कोई ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मैं सन्तापरहित होकर सुखी हो जाऊँ॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
व्यासस्वकीयमोहवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

* * *

अथ षड्विंशोऽध्यायः

देवर्षि नारद और पर्वतमुनिका एक-दूसरेको शाप देना, राजकुमारी दमयन्तीका नारदसे विवाह करनेका निश्चय

व्यास उवाच

इति मे वचनं श्रुत्वा नारदः परमार्थवित्।
मामाह च स्मितं कृत्वा पृच्छन्तं मोहकारणम्॥ १

नारद उवाच

पाराशर्य पुराणज्ञ किं पृच्छसि सुनिश्चयम्।
संसारेऽस्मिन् विना मोहं कोऽपि नास्ति शरीरवान्॥ २

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब परमार्थवेत्ता नारदजी मेरी बात सुननेके पश्चात् मोहका कारण पूछनेवाले मुझसे मुसकराकर कहने लगे॥ १॥

नारदजी बोले—हे पुराणवेत्ता व्यासजी! आप क्या पूछ रहे हैं? यह पूर्णरूपसे निश्चित है कि इस संसारमें रहनेवाला कोई भी प्राणी मोहसे परे हो ही नहीं सकता॥ २॥

ब्रह्माविष्णुस्तथा रुद्रः सनकः कपिलस्तथा।
मायया वेष्टिताः सर्वे भ्रमन्ति भववर्त्मनि॥ ३

ज्ञानिनं मां जनो वेत्ति भ्रान्तोऽहं सर्वलोकवत्।
शृणु मे पूर्ववृत्तान्तं प्रब्रवीमि सुनिश्चितम्॥ ४

दुःखं मया यथा पूर्वमनुभूतं महत्तरम्।
स्वकृतेन च मोहेन भार्यार्थे वासवीसुत॥ ५

एकदा पर्वतश्चाहं देवलोकान्महीतलम्।
प्राप्तो विलोकनार्थाय भारतं खण्डमुत्तमम्॥ ६

भ्रमन्तौ सहितावुर्व्यां पश्यन्तौ तीर्थमण्डलम्।
पावनानि च स्थानानि मुनीनामाश्रमाञ्छुभान्॥ ७

शपथं देवलोकात्तु कृत्वा पूर्वं परस्परम्।
चलितौ समयं चेमं सम्मन्त्र्य निश्चयेन वै॥ ८

चित्तवृत्तिस्तु वक्तव्या यादृशी यस्य जायते।
शुभा वाप्यशुभा वापि न गोप्तव्या कदाचन॥ ९

भोजनेच्छा धनेच्छापि रतीच्छा वा भवेदपि।
यादृशी यस्य चित्ते तु कथनीया परस्परम्॥ १०

इत्यावां समयं कृत्वा स्वर्गाद्भूलोकमागतौ।
एकचित्तौ मुनीभूतौ विचरन्तौ यथेच्छया॥ ११

एवं भ्रमन्तौ लोकेऽस्मिन्ग्रीष्मान्ते समुपागते।
सञ्जयस्य पुरं रम्यं सम्प्राप्तौ नृपतेः पुनः॥ १२

तेन सम्पूजितौ भक्त्या राज्ञा सम्मानितौ भृशम्।
स्थितौ तत्र गृहे तस्य चातुर्मास्यं महात्मनः॥ १३

वार्षिकाश्चतुरो मासा दुर्गमाः पथि सर्वदा।
तस्मादेकत्र विबुधैः स्थातव्यमिति निश्चयः॥ १४

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनक तथा कपिल—ये सभी मायाके वशवर्ती होकर संसार-मार्गमें निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३॥

लोग मुझे ज्ञानी समझते हैं, किंतु मैं भी एक बार सभी लोगोंकी भाँति भ्रमित हो गया था। मैं अपना पूर्व वृत्तान्त यथार्थरूपसे बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४॥

हे व्यासजी! स्त्री-प्राप्तिके लिये अपने द्वारा स्वयं उत्पन्न किये गये मोहके कारण मुझे पूर्वकालमें महान् कष्टका अनुभव करना पड़ा था॥ ५॥

एक बार मैं तथा पर्वतमुनि उत्तम भारतवर्षको देखनेके लिये देवलोकसे पृथ्वीलोकपर आये थे॥ ६॥

विभिन्न तीर्थों, पवित्र स्थानों तथा मुनियोंके पावन आश्रमोंको देखते हुए हम दोनों साथ-साथ पृथ्वीतलपर विचरण करने लगे॥ ७॥

देवलोकसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने आपसमें निश्चयपूर्वक सोच-विचारकर यह प्रतिज्ञा की थी कि जिसके मनमें जैसा भी पवित्र अथवा अपवित्र भाव उत्पन्न होगा, वह उसे कभी गोपनीय नहीं रखेगा॥ ८-९॥

भोजनकी इच्छा, धनकी इच्छा अथवा काम-विषयक इच्छा—इनमेंसे जिस तरहकी भी इच्छा जिसके मनमें होगी, एक-दूसरेको बता दी जानी चाहिये॥ १०॥

ऐसी प्रतिज्ञा करके हम दोनों स्वर्गलोकसे पृथ्वीतलपर आये और एकचित्त होकर मुनिरूपमें इच्छापूर्वक विचरण करने लगे॥ ११॥

इस प्रकार इस लोकमें विचरण करते हुए हम दोनों ग्रीष्म ऋतुके समाप्त हो जानेपर राजा संजयके सुरम्य नगरमें पहुँचे॥ १२॥

राजा संजयने हम दोनोंकी भक्तिपूर्वक पूजा की तथा अत्यधिक सम्मान दिया। महान् आत्मावाले उन्हीं संजयके भवनमें रहकर हम दोनों अपना चातुर्मास्य व्यतीत करने लगे॥ १३॥

वर्षाकालके चार महीने मार्गमें बहुत कष्टकारक होते हैं, अतएव विज्ञजनोंको उस अवधिमें एक ही स्थानपर रहना चाहिये—ऐसा सिद्धान्त है॥ १४॥

अष्टौ मासांस्तु प्रवसेत्सदा कार्यवशाद् द्विजः।
वर्षाकाले न गन्तव्यं प्रवासे सुखमिच्छता॥ १५

इति सञ्चिन्त्य मनसा सञ्जयस्य गृहे तदा।
संस्थितौ मानितौ राज्ञा कृतातिथ्यौ महात्मना॥ १६

दमयन्तीति विख्याता तस्य पुत्री महीपतेः।
आज्ञप्ता परिचर्यार्थं सुदती सुन्दरी भृशम्॥ १७

विवेकज्ञा विशालाक्षी राजपुत्री कृतोद्यमा।
सेवनं सर्वकाले च व्यदधादुभयोरपि॥ १८

स्नानार्थमुदकं काले भोजनं मृष्टमायतम्।
मुखवासं तथा चान्यं यदिष्टं तद्ददाति सा॥ १९

मनोऽभिलषितान्कामानुभयोरपि कन्यका।
व्यजनासनशय्यादीन्वाञ्छितानप्यकल्पयत्॥ २०

एवं संसेव्यमानौ तु स्थितौ राज्ञो गृहे किल।
वेदाध्ययनसंशीलावावां वेदव्रते रतौ॥ २१

अहं वीणां करे कृत्वा साधयित्वा स्वरोत्तमम्।
गायत्रं साम सुस्वादमगां कर्णरसायनम्॥ २२

राजपुत्री तु तच्छ्रुत्वा सामगानं मनोहरम्।
बभूव मयि रागाढ्या प्रीतियुक्ता विशारदा॥ २३

दिने दिनेऽनुरागोऽस्या मयि वृद्धिं गतः परः।
ममापि प्रीतियुक्तायां मनो जातं स्पृहापरम्॥ २४

मम तस्य च सा कन्या भोजनादिषु कर्हिचित्।
अकरोदन्तरं किञ्चित्सेवाभेदं रसान्विता॥ २५

द्विजको चाहिये कि वह आठ महीनेतक अपने कार्यवश देशान्तरमें प्रवास करे, किंतु सुख चाहनेवाले पुरुषको वर्षाकालमें प्रवासके लिये नहीं जाना चाहिये॥ १५॥

ऐसा सोचकर हम दोनों राजा संजयके भवनमें ठहर गये और उन महात्मा नरेशने हमलोगोंका सम्मानपूर्वक आतिथ्य किया॥ १६॥

उन राजा संजयकी परम सुन्दरी तथा मनोहर दाँतोंवाली दमयन्ती नामसे विख्यात एक कन्या थी; उन्होंने उसे हमलोगोंकी सेवाके लिये आदेश दे दिया॥ १७॥

विवेकका ज्ञान रखनेवाली तथा उद्यमी स्वभाववाली वह विशालनयना राजकुमारी सभी समय हम दोनोंकी सेवा करती रहती थी॥ १८॥

वह हमारे स्नानके लिये जल, पर्याप्त मधुर भोजन, मुख-शुद्धिके लिये सुगन्धित गन्ध-द्रव्य तथा और भी जो हमारा अभीष्ट रहता, उसे समयसे हमलोगोंको दिया करती थी॥ १९॥

वह कन्या हम दोनोंकी मनोभिलषित वस्तुएँ उपस्थित किया करती थी। वह व्यजन (पंखा), आसन तथा शय्या आदि मनोवांछित सामग्रियोंको उपलब्ध कराती रहती थी॥ २०॥

इस प्रकार उसके द्वारा सेवित होते हुए हम दोनों राजा संजयके भवनमें रहने लगे। वेदाध्ययनके स्वभाववाले हम दोनों मुनि सदा वेदव्रतमें संलग्न रहते थे॥ २१॥

मैं हाथमें वीणा धारणकर उत्तम स्वरकी साधना करके कानोंके लिये रसायनस्वरूप अत्यन्त मधुर गायत्र-सामका गान करता रहता था॥ २२॥

मनोहर सामगान सुनकर वह विदुषी राजकुमारी मेरे प्रति अनुरागयुक्त तथा प्रीतिमय हो गयी॥ २३॥

मेरे प्रति उस राजकुमारीका अनुराग दिनोदिन बढ़ता ही चला गया और मुझमें प्रेम-भाव रखनेवाली उस कन्याके प्रति मेरा भी मन अत्यन्त आसक्त हो उठा॥ २४॥

मुझपर विशेष अनुराग रखनेवाली वह राजकुमारी मेरे तथा उस पर्वतमुनिके लिये किये जानेवाले भोजनादिके प्रबन्धमें तथा सेवाकार्यमें कुछ भेदभाव करने लगी॥ २५॥

स्नानायोष्णजलं मह्यं पर्वताय च शीतलम्।
दधि मह्यं तथा तक्रं पर्वतायाप्यकल्पयत्॥ २६

शयनास्तरणं शुभ्रं मदर्थे पर्यकल्पयत्।
प्रीत्या परमया यद्वत्पर्वताय न तादृशम्॥ २७

विलोकयति मां प्रेम्णा सुन्दरी न च पर्वतम्।
ततोऽस्यास्तादृशं दृष्ट्वा पर्वतः प्रेमकारणम्॥ २८

मनसा चिन्तयामास किमेतदिति विस्मितः।
पप्रच्छ मां रहः सम्यग्ब्रूहि नारद सर्वथा॥ २९

राजपुत्री त्वयि प्रेम करोति मुदिता भृशम्।
ददाति भक्ष्यभोज्यानि स्नेहयुक्ता समन्ततः॥ ३०

न तथा मयि भेदोऽत्र सन्देहं जनयत्यसौ।
मन्यते त्वां पतिं कर्तुं सर्वथा सञ्जयात्मजा॥ ३१

तवापि तादृशं भावं जानामि लक्षणैरहम्।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च ज्ञायते प्रीतिकारणम्॥ ३२

सत्यं वद न ते मिथ्या वक्तव्यं वचनं मुने।
स्वर्गतः समयं कृत्वा चलितौ संस्मराधुना॥ ३३

नारद उवाच

पृष्टोऽहं पर्वतेनेदं कारणं तु हठाद्यदा।
तदाहं ह्रीसमाक्रान्तः सञ्जातश्चाब्रुवं पुनः॥ ३४

पर्वतैषा विशालाक्षी पतिं मां कर्तुमुद्यता।
ममापि मानसो भावो वर्ततेऽस्यां विशेषतः॥ ३५

तच्छ्रुत्वा वचनं सत्यं पर्वतः कोपसंयुतः।
मामुवाच मुनिर्वाक्यं धिग्धिगिति पुनः पुनः॥ ३६

प्रथमं शपथान्कृत्वा वञ्चितोऽहं त्वया यतः।
भव वानरवक्त्रस्त्वं शापाच्च मम मित्रधुक्॥ ३७

इति शप्तस्तु तेनाहं कुपितेन महात्मना।
सहसा ह्यभवं क्रूरः शाखामृगमुखस्तदा॥ ३८

स्नानके लिये मुझे उष्ण जल तथा पर्वतमुनिके लिये शीतल जल और इसी प्रकार मेरे लिये दही तथा पर्वतमुनिके लिये मट्ठेकी व्यवस्था करती थी॥ २६॥

वह मेरे लिये अत्यन्त प्रेमपूर्वक जैसा धवल आस्तरण (बिछौना) बिछाती थी, वैसा पर्वतके लिये नहीं॥ २७॥

वह सुन्दरी मुझे अत्यन्त प्रेमपूर्ण भावसे देखती थी, किंतु पर्वतमुनिको नहीं। तब मुनि पर्वत उस प्रकारका प्रेम-भेद देखकर मन-ही-मन विस्मित होकर सोचने लगे कि ऐसा क्यों हो रहा है? एकान्तमें उन्होंने मुझसे पूछा—हे नारद! मुझे भलीभाँति बताइये, यह राजकुमारी अत्यन्त प्रसन्न होकर आपसे अत्यधिक प्रेम करती है और स्नेहयुक्त होकर आपको नानाविध भोज्य-पदार्थ देती है, किंतु वैसा मेरे साथ नहीं करती है; यह भेद-भाव मेरे मनमें सन्देह उत्पन्न कर रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि राजा संजयकी पुत्री आपको निश्चय ही पति बनाना चाहती है॥ २८—३१॥

आपकी चेष्टाओंसे आपका भी वैसा ही भाव मुझे परिलक्षित हो रहा है; क्योंकि नेत्र तथा मुखके विकारोंसे प्रेमके कारणका पता चल जाता है॥ ३२॥

हे मुने! सच-सच कहिये। मिथ्या वचन मत बोलिये। स्वर्गसे प्रस्थान करते समय हम दोनोंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसे इस समय याद कीजिये॥ ३३॥

नारदजी बोले—जब पर्वतमुनिने हठपूर्वक इसका कारण मुझसे पूछा तब मैं अत्यन्त लज्जित हो गया और पुनः बोला—हे पर्वत! विशाल नयनोंवाली यह राजकुमारी मुझे पति बनानेके लिये उद्यत है और उसके प्रति मेरे भी मनमें विशेष अनुराग भाव उत्पन्न हो गया है॥ ३४-३५॥

मेरा यह सत्य वचन सुनकर पर्वतमुनि कुपित हो उठे और उन्होंने मुझसे कहा, 'तुम्हें बार-बार धिक्कार है; क्योंकि प्रतिज्ञा करके पहले तुमने मुझे धोखा दिया है, अतएव हे मित्रद्रोही! मेरे शापसे तुम अभी बन्दरके मुखवाले हो जाओ'॥ ३६-३७॥

उस कुपित महात्मा पर्वतके ऐसा शाप देते ही मैं तत्काल भयंकर बन्दरकी मुखाकृतिवाला हो गया॥ ३८॥

मयापि न कृता तस्मिन्क्षमा तु भगिनीसुते।
सोऽपि शप्तोऽतिकोपाद्वै मा स्वर्गे ते गतिः किल॥ ३९

स्वल्पेऽपराधे यस्मान्मां शप्तवानसि पर्वत।
तस्मात्तवापि मन्दात्मन् मृत्युलोके स्थितिः किल॥ ४०

पर्वतस्तु गतस्तस्मान्नगराद्विमना भृशम्।
अहं वानरवक्त्रस्तु सञ्जातस्तत्क्षणादपि॥ ४१

दृष्ट्वा मां वानरं क्रूरं राजपुत्री विलक्षणा।
विमनातीव सञ्जाता वीणाश्रवणलालसा॥ ४२

व्यास उवाच

ततः किमभवद् ब्रह्मन् कथं शापान्निवर्तितः।
मानुषास्यः पुनर्जातो भवान्ब्रूहि यथाविधि॥ ४३

पर्वतः क्व गतो भूयः सङ्गमो युवयोरभूत्।
कदा कुत्र कथं सर्वं विस्तरेण वदस्व ह॥ ४४

नारद उवाच

किं ब्रवीमि महाभाग मायायाश्चरितं महत्।
दुःखितोऽहं भृशं तत्र पर्वते रुषिते गते॥ ४५

पुनः सेवापरात्यर्थं राजपुत्री ममाभवत्।
गतेऽथ पर्वते कामं स्थितस्तत्रैव सद्मनि॥ ४६

अहं दुःखान्वितो दीनस्तथा वानरवन्मुखः।
विशेषेण तु चिन्तार्तः किं मे स्यादिति चिन्तयन्॥ ४७

सञ्जयोऽथ सुतां दृष्ट्वा किञ्चित्प्रकटयौवनाम्।
विवाहार्थे राजसुतामपृच्छत्सचिवं तदा॥ ४८

विवाहकालः सम्प्राप्तः सुताया मम साम्प्रतम्।
योग्यं वरं मम ब्रूहि राजपुत्रं सुसम्मतम्॥ ४९
रूपौदार्यगुणैर्युक्तं शूरं सुकुलसम्भवम्।

तब मैंने भी अपने उस भगिनीपुत्र (भांजे) पर्वतको क्षमा नहीं किया। मैंने भी क्रोध करके उसे शाप दे दिया कि तुम भी अबसे स्वर्गके अधिकारी नहीं रहोगे॥ ३९॥

हे मन्दात्मन् पर्वत! क्योंकि मेरे छोटे-से अपराधके लिये तुमने मुझे ऐसा शाप दिया है, अतएव तुम्हारा भी अब मृत्युलोकमें निवास होगा॥ ४०॥

इसके बाद पर्वतमुनि अत्यन्त उदास मनसे उस नगरसे निकल पड़े और मैं भी उसी समयसे बन्दरके मुखवाला हो गया॥ ४१॥

वीणा सुननेकी उत्कट अभिलाषा रखनेवाली वह परम विलक्षण राजकुमारी मुझे भयंकर बन्दरके रूपमें देखकर अत्यन्त उदास मनवाली हो गयी॥ ४२॥

व्यासजी बोले—हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् क्या हुआ, आपको शापसे छुटकारा कैसे मिला तथा आप पुनः मानवकी मुखाकृतिवाले किस प्रकार हुए? ये सभी बातें भलीभाँति बताइये॥ ४३॥

पर्वतमुनि कहाँ चले गये? आप दोनोंका पुनर्मिलन कब, कहाँ और कैसे हुआ? यह सब विस्तारपूर्वक बताइये॥ ४४॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! क्या कहूँ? मायाकी गति बड़ी विचित्र होती है। पर्वतमुनिके कुपित होकर चले जानेके पश्चात् मैं अत्यन्त दुःखित हो गया॥ ४५॥

पर्वतमुनिके चले जानेपर मैं उसी भवनमें ठहरा रहा और वह राजकुमारी मेरी सेवामें पुनः तत्पर हो गयी॥ ४६॥

वानरके समान मुख हो जानेके कारण मैं दुःखी तथा उदास रहने लगा। अब मेरा क्या होगा? ऐसा सोच-सोचकर मैं विशेष चिन्तासे व्याकुल हो गया था॥ ४७॥

अपनी पुत्री राजकुमारी दमयन्तीको कुछ-कुछ प्रकट यौवनवाली देखकर उसके विवाहके सम्बन्धमें राजा संजयने मन्त्रीसे पूछा—अब मेरी पुत्रीका विवाह-योग्य समय हो गया है। अतएव योग्य वरके रूपमें कोई ऐसा राजकुमार आप मुझे बतलाइये, जो रूप-उदारता-गुण आदिसे सम्पन्न,

विवाहं विधिवत्पुत्र्याः करोमि किल साम्प्रतम्॥ ५०

प्रधानस्त्वब्रवीद्राजन् राजपुत्रा ह्यनेकशः।
वर्तन्ते भुवि पुत्र्यास्ते योग्याः सर्वगुणान्विताः॥ ५१

यस्मिन् रुचिस्ते राजेन्द्र तमाहूय नृपात्मजम्।
देहि कन्यां धनं भूरि हस्त्यश्वरथसंयुतम्॥ ५२

नारद उवाच

पितुश्चिकीर्षितं ज्ञात्वा दमयन्ती तदा नृपम्।
धात्र्या मुखेन वाक्यज्ञा तमुवाच रहः स्थितम्॥ ५३

धात्र्युवाच

दमयन्ती महाराज पुत्री ते मामथाब्रवीत्।
पितरं ब्रूहि धात्रेयि वचनान्मे सुखान्वितम्॥ ५४

मया वृतोऽथ मेधावी नारदो महतीयुतः।
नादमोहितया कामं नान्यः कोऽपि प्रियो मम॥ ५५

कुरु मे वाञ्छितं तात विवाहं मुनिना सह।
नान्यं वरिष्ये धर्मज्ञ नारदं तु पतिं विना॥ ५६

मग्नाहं नादसिन्धौ वै नक्रहीने रसात्मके।
अक्षारे सुखसम्पूर्णे तिमिङ्गिलविवर्जिते॥ ५७

पराक्रमी, उत्तम कुलमें उत्पन्न तथा सभीके लिये श्रेष्ठ हो। उसके साथ मैं अपनी पुत्रीका विधिवत् विवाह अभी कर दूँगा॥ ४८—५०॥

इसपर प्रधान सचिवने कहा—हे राजन्! आपकी कन्याके अनुरूप बहुतसे योग्य तथा सर्वगुणसम्पन्न राजकुमार इस पृथ्वीपर विद्यमान हैं॥ ५१॥

हे राजेन्द्र! जिसमें आपकी रुचि हो, उस राजपुत्रको बुलाकर बहुत-से हाथी, घोड़े, रथ और धनसहित अपनी कन्या उसे प्रदान कर दीजिये॥ ५२॥

नारदजी बोले—बातचीतमें परम कुशल दमयन्तीने पिताका अभिप्राय समझकर अपनी धायके मुखसे एकान्तमें स्थित राजासे कहलाया॥ ५३॥

धात्रीने कहा—हे महाराज! आपकी पुत्री दमयन्तीने मुझसे ऐसा कहा है—हे धात्रेयि! तुम मेरे वचनसे मेरे पिताजीसे यह सुखकर बात कह दो—नादसे मोहित मैं महती वीणा धारण करनेवाले प्रतिभासम्पन्न नारदका वरण कर चुकी हूँ; अन्य कोई भी मुझे प्रिय नहीं है॥ ५४-५५॥

हे तात! आप मेरी इच्छाके अनुरूप मुनिके साथ मेरा विवाह कर दीजिये। हे धर्मज्ञ! मैं नारदको छोड़कर किसी दूसरेको अपना पति नहीं बनाऊँगी॥ ५६॥

अब मैं घड़ियाल तथा भयंकर मत्स्य आदि जन्तुओंसे शून्य, खारेपनसे रहित, सुखसे परिपूर्ण एवं रसमय नादसिन्धुमें निमग्न हो गयी हूँ॥ ५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
दमयन्तीविवाहप्रस्ताववर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

वानरमुख नारदसे दमयन्तीका विवाह, नारद तथा पर्वतका परस्पर शापमोचन

नारद उवाच

तत्पुत्र्या वचनं श्रुत्वा राजा धात्रीमुखात्ततः।
भार्यां प्रोवाच कैकेयीं समीपस्थां सुलोचनाम्॥ १

राजोवाच

यदुक्तं वचनं कान्ते धात्र्या तत्तु त्वया श्रुतम्।
वृतोऽयं नारदः कामं मुनिर्वानरवक्त्रभाक्॥ २
किमिदं चिन्तितं पुत्र्या बुद्धिहीनं विचेष्टितम्।
कथमस्मै मया देया कन्या हरिमुखाय सा॥ ३

नारदजी बोले—धात्रीके मुखसे अपनी कन्याका वह वचन सुनकर राजा संजय पास ही बैठी सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी भार्या कैकेयीसे कहने लगे—॥ १॥

राजा बोले—हे प्रिये! धात्रीने जो बात कही है, वह तो तुमने सुन ही ली। बन्दरके समान मुखवाले नारदमुनिका उसने वरण कर लिया है॥ २॥

पुत्रीने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कार्य सोच लिया। इस वानरमुख मुनिको मैं अपनी कन्या कैसे दे दूँ?॥ ३॥

क्वासौ भिक्षुः कुरूपः क्व दमयन्ती ममात्मजा।
विपरीतमिदं कार्यं न विधेयं कदाचन॥ ४

तामेकान्ते सुकेशान्ते निवारय हठात्सुताम्।
युक्त्या मुनिरतां मुग्धां शास्त्रवृद्धानुसारया॥ ५

इति भर्तृवचः श्रुत्वा जननी तामथाब्रवीत्।
क्व ते रूपं मुनिः क्वासौ वानरास्योऽधनः पुनः॥ ६

कथं मोहमवाप्तासि भिक्षुके चतुरा पुनः।
लताकोमलदेहा त्वं भस्मरूक्षतनुस्त्वयम्॥ ७

वार्ता वानरवक्त्रेण कथं युक्ता तवानघे।
का प्रीतिः कुत्सिते पुंसि भविष्यति शुचिस्मिते॥ ८

वरस्ते राजपुत्रोऽस्तु मा कुरु त्वं वृथा हठम्।
पिता ते दुःखमाप्नोति श्रुत्वा धात्रीमुखाद्वचः॥ ९

लग्नां बुबूलवृक्षेण कोमलां मालतीलताम्।
दृष्ट्वा कस्य मनः खेदं चतुरस्य न गच्छति॥ १०

दासेरकाय ताम्बूलीदलानि कोमलानि कः।
ददाति भक्षणार्थाय मूर्खोऽपि धरणीतले॥ ११

वीक्ष्य त्वां करसंलग्नां नारदस्य समीपतः।
विवाहे वर्तमाने तु कस्य चेतो न दह्यति॥ १२

कुमुखेन समं वार्ता न रुचिं जनयत्यतः।
आमृतेस्तु कथं कालः क्षपितव्यस्त्वयामुना॥ १३

नारद उवाच

इति मातुर्वचः श्रुत्वा दमयन्ती भृशातुरा।
मातरं प्राह तन्वङ्गी मयि सा कृतनिश्चया॥ १४

किं मुखेन च रूपेण मूर्खस्य च धनेन किम्।
किं राज्येनाविदग्धस्य रसमार्गाविदोऽस्य च॥ १५

कहाँ भिक्षाटन करनेवाला यह कुरूप भिक्षुक और कहाँ मेरी पुत्री दमयन्ती! ऐसा विपरीत सम्बन्ध कभी नहीं करना चाहिये॥ ४॥

हे सुन्दर केशोंवाली! तुम मुनिपर आसक्त अपनी उस भोली पुत्रीको एकान्तमें शास्त्रों तथा वृद्ध पुरुषोंके मर्यादित वचन बतलाकर युक्तिपूर्वक इस हठसे मुक्त करो॥ ५॥

पतिकी बात सुनकर माताने उस कन्यासे कहा— कहाँ तुम्हारा ऐसा रूप और कहाँ वह धनहीन वानरमुख मुनि!॥ ६॥

तुम लताके समान कोमल देहवाली हो और यह मुनि भस्म लगानेके कारण कठोर देहवाला है; तुम बुद्धिमान् होकर भी उस भिक्षुकपर मोहित क्यों हो गयी हो?॥ ७॥

हे अनघे! वानरके समान मुखवाले इस मुनिके साथ तुम्हारा वार्तालाप कैसे उचित होगा? हे पवित्र मुसकानवाली! इस निन्दित पुरुषपर तुम्हारी कौन-सी प्रीति हो सकेगी?॥ ८॥

तुम्हारा वर तो कोई राजकुमार होना चाहिये, तुम व्यर्थ हठ मत करो। धात्रीके मुखसे ऐसी बात सुनकर तुम्हारे पिताजीको बहुत दुःख हुआ है॥ ९॥

बबूलके वृक्षसे लिपटी हुई कोमल मालती लताको देखकर किस बुद्धिमान् व्यक्तिका मन दुःखित नहीं होगा? इस पृथ्वीतलपर ऐसा कौन मूर्ख होगा जो खानेके लिये ऊँटको कोमल पानके पत्ते देगा?॥ १०-११॥

विवाह होते समय नारदके पास बैठकर तुम्हें उसका हाथ पकड़े हुए देखकर किसका हृदय नहीं जल उठेगा?॥ १२॥

इस कुत्सित मुखवालेके साथ बात करनेमें कोई रुचि भी तो नहीं उत्पन्न होगी; फिर इसके साथ तुम मृत्युपर्यन्त अपना समय कैसे व्यतीत करोगी?॥ १३॥

नारदजी बोले—माताकी यह बात सुनकर मेरे प्रति दृढ़ निश्चयवाली उस कोमलांगी दमयन्तीने अत्यन्त व्याकुलतापूर्वक अपनी मातासे कहा— रसमार्गसे अनभिज्ञ तथा कलाज्ञानसे रहित मूर्ख राजकुमारके सुन्दर मुख, रूप, धन तथा राज्यसे मेरा क्या प्रयोजन?॥ १४-१५॥

हरिण्योऽपि वने धन्या या नादेन विमोहिताः।
मातः प्राणान्प्रयच्छन्ति धिङ्मूर्खान्मानुषान्भुवि॥ १६

नारदो वेत्ति यां विद्यां मातः सप्तस्वरात्मिकाम्।
तृतीयः कोऽपि नो वेद शिवादन्यः पुमान्किल॥ १७

मूर्खेण सह संवासो मरणं तत्क्षणे क्षणे।
रूपवान्धनवांस्त्याज्यो गुणहीनो नरः सदा॥ १८

धिङ्मैत्रीं मूर्खभूपाले वृथा गर्वसमन्विते।
गुणज्ञे भिक्षुके श्रेष्ठा वचनात्सुखदायिनी॥ १९

स्वरज्ञो ग्रामवित्कामं मूर्च्छनाज्ञानभेदभाक्।
दुर्लभः पुरुषश्चाष्टरसज्ञो दुर्बलोऽपि वै॥ २०

यथा नयति कैलासं गङ्गा चैव सरस्वती।
तथा नयति कैलासं स्वरज्ञानविशारदः। २१

स्वरमानं तु यो वेद स देवो मानुषोऽपि सन्।
सप्तभेदं न यो वेद स पशुः सुरराडपि॥ २२

मूर्च्छनातानमार्गं तु श्रुत्वा मोदं न याति यः।
स पशुः सर्वथा ज्ञेयो हरिणाः पशवो न हि॥ २३

वरं विषधरः सर्पः श्रुत्वा नादं मनोहरम्।
अश्रोत्रोऽपि मुदं याति धिक्सकर्णांश्च मानवान्॥ २४

बालोऽपि सुस्वरं गेयं श्रुत्वा मुदितमानसः।
जायते किन्तु ते वृद्धा न जानन्ति धिगस्तु तान्॥ २५

पिता मे किं न जानाति नारदस्य गुणान् बहून्।
द्वितीयः सामगो नास्ति त्रिषु लोकेषु तत्समः॥ २६

तस्मादसौ मया नूनं वृतः पूर्वं समागमात्।
पश्चाच्छापवशाज्जातो वानरास्यो गुणाकरः॥ २७

हे माता! वनमें रहनेवाली वे हरिणियाँ धन्य हैं जो नादसे मोहित होकर अपने प्राण भी दे देती हैं, किंतु इस भूलोकमें रहनेवाले उन मूर्ख मनुष्योंको धिक्कार है, जो मधुर स्वरसे प्रेम नहीं करते हैं!॥ १६॥

हे माता! नारदजी जिस सप्तस्वरमयी विद्याको जानते हैं, उसे भगवान् शंकरको छोड़कर तीसरा अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं जानता है॥ १७॥

मूर्खके साथ रहना प्रतिक्षण मृत्युके समान होता है। अतएव सुन्दर रूपसे सम्पन्न तथा सम्पत्तिशाली होते हुए भी गुणरहित पुरुषको सर्वदाके लिये त्याग देना चाहिये। व्यर्थ गर्व करनेवाले मूर्ख राजाकी मित्रताको धिक्कार है; वचनोंसे सुख प्रदान करनेवाली गुणवान् भिक्षुककी मित्रता श्रेष्ठ है। स्वरका ज्ञाता, ग्रामोंकी पूरी जानकारी रखनेवाला, मूर्च्छनाके भेदोंको सम्यक् प्रकारसे समझनेवाला तथा आठों रसोंको जाननेवाला दुर्बल पुरुष भी इस संसारमें दुर्लभ है। जिस प्रकार गंगा तथा सरस्वती नदियाँ कैलास ले जाती हैं, उसी प्रकार स्वरज्ञानमें अत्यन्त प्रवीण पुरुष शिवलोक पहुँचा देता है। जो व्यक्ति स्वरके प्रमाणको जानता है, वह मनुष्य होता हुआ भी देवता है, किंतु जो स्वरोंके सप्तभेदका ज्ञान नहीं रखता, वह पशुके समान होता है, चाहे इन्द्र ही क्यों न हो। मूर्च्छना तथा तानमार्गको सुनकर जो आह्लादित नहीं होता, उसे साक्षात् पशु समझना चाहिये, बल्कि [स्वरप्रेमी] हरिणोंको पशु नहीं समझना चाहिये॥ १८—२३॥

विषधर सर्प श्रेष्ठ है; क्योंकि वह कान न होनेपर भी मनोहर नाद सुनकर प्रफुल्लित हो जाता है, किंतु उन मनुष्योंको धिक्कार है, जो कर्णयुक्त रहनेपर भी नाद सुनकर आनन्दित नहीं होते॥ २४॥

मधुर स्वरसे गाये गये गीतको सुनकर बालक भी प्रसन्नचित्त हो जाता है, किंतु जो वृद्ध गानके रहस्यको नहीं जानते, उन्हें धिक्कार है॥ २५॥

क्या मेरे पिताजी नारदके बहुतसे गुणोंको नहीं जानते? तीनों लोकोंमें उनके समान साम-गान करनेवाला दूसरा कोई भी नहीं है। अतः नारदसे प्रेम हो जानेके कारण मैंने पहलेसे ही इनका वरण कर लिया है। गुणोंके निधान ये नारद शापवश बादमें वानरके समान मुखवाले हो गये॥ २६-२७॥

किन्नरा न प्रियाः कस्य भवन्ति तुरगाननाः।
गानविद्यासमायुक्ताः किं मुखेन वरेण ह॥ २८

पितरं ब्रूहि मे मातर्वृतोऽयं मुनिसत्तमः।
तस्मात्त्वमाग्रहं त्यक्त्वा देहि तस्मै च मां मुदा॥ २९

नारद उवाच

इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा राज्ञी राज्ञे न्यवेदयत्।
आग्रहं सुन्दरी ज्ञात्वा सुताया नारदे मुनौ॥ ३०

विवाहं कुरु राजेन्द्र दमयन्त्याः शुभे दिने।
मुनिना स च सर्वज्ञो वृतोऽसौ मनसानया॥ ३१

नारद उवाच

इति सञ्चोदितो राज्ञ्या सञ्जयः पृथिवीपतिः।
चकार विधिवत्सर्वं विधिं वैवाहिकं ततः॥ ३२

एवं दारग्रहं कृत्वा वानरास्यः परन्तप।
स्थितस्तत्रैव मनसा दह्यमानेन चान्वहम्॥ ३३

यदागच्छद्राजसुता सेवार्थं मम सन्निधौ।
अभवं दुःखसन्तप्तस्तदाहं वानराननः॥ ३४

दमयन्ती तु मां वीक्ष्य प्रफुल्लवदनाम्बुजा।
शोकं वानरवक्त्रत्वान्न चकार कदाचन॥ ३५

एवं गच्छति काले तु सहसा पर्वतो मुनिः।
कुर्वंस्तीर्थान्यनेकानि द्रष्टुं मां समुपागतः॥ ३६

मयातिमानितः प्रेम्णा पूजितश्च यथाविधि।
आसीन आसने दिव्ये वीक्ष्य मां दुःखितो ह्यभूत्॥ ३७

कृतदारं वानरास्यं दीनं चिन्तातुरं भृशम्।
दयावान्मामुवाचेदं पर्वतो मातुलं कृशम्॥ ३८

मया नारद कोपात्त्वं शप्तोऽसि मुनिसत्तम।
निष्कृतिं तस्य शापस्य करोम्यद्य निशामय॥ ३९

अश्वके समान मुखवाले किन्नर गानविद्यासे सम्पन्न होनेके कारण किसको प्रिय नहीं होते, किसीके सुन्दर मुखसे क्या प्रयोजन?॥ २८॥

हे माता! आप मेरे पिताजीसे कह दें कि मैं मुनिश्रेष्ठ नारदका वरण कर चुकी हूँ; अतएव हठ छोड़कर आप प्रसन्नतापूर्वक मुझे उन्हीं नारदको सौंप दें॥ २९॥

नारदजी बोले—पुत्रीकी बात सुनकर तथा नारद-मुनिमें उसका अनुराग जानकर परम सुन्दरी रानीने राजासे कहा—हे राजेन्द्र! अब आप किसी शुभ दिनमें नारद-मुनिके साथ दमयन्तीका विवाह कर दीजिये; क्योंकि वह मन-ही-मन उन्हीं सर्वज्ञ मुनिका वरण कर चुकी है॥ ३०-३१॥

नारदजी बोले—इस प्रकार रानी कैकेयीके प्रेरित करनेपर राजा संजयने विधि-विधानसे समस्त वैवाहिक क्रिया सम्पन्न की॥ ३२॥

हे परन्तप! इस तरह विवाह हो जानेके पश्चात् वानरके समान मुखवाला मैं अत्यन्त दुःखी मनसे वहीं रहने लगा॥ ३३॥

जब राजकुमारी दमयन्ती सेवाके लिये मेरे पास आती थी तब वानरसदृश मुखवाला मैं दुःखसे पीड़ित हो उठता था॥ ३४॥

किंतु खिले हुए कमलके समान मुखवाली दमयन्ती मुझे देखकर मेरी वानर मुखाकृतिके लिये कभी भी शोक नहीं करती थी॥ ३५॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेपर अनेक तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए पर्वतमुनि मुझसे मिलनेके लिये अकस्मात् मेरे पास आये॥ ३६॥

मैंने प्रेमपूर्वक उनका पर्याप्त सम्मान किया तथा विधिवत् पूजा की। दिव्य आसनपर विराजमान मुनि पर्वत मुझे देखकर अत्यन्त दुःखित हो उठे॥ ३७॥

वानरमुख होनेके कारण विवाह करके अत्यन्त दयनीय, दुर्बल तथा चिन्तायुक्त दशाको प्राप्त मुझ अपने मामासे पर्वतमुनिने यह वचन कहा॥ ३८॥

हे मुनिश्रेष्ठ नारद! क्रोधमें आकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया था, किंतु मैं आज उस शापका निवारण करता हूँ, सुनो॥ ३९॥

भव त्वं चारुवदनो मम पुण्येन नारद।
दृष्ट्वा राजसुतां चित्ते कृपा जाता ममाधुना॥ ४०

नारद उवाच

मयापि प्रवणं चित्तं कृत्वा श्रुत्वास्य भाषितम्।
अनुग्रहः कृतः सद्यस्तस्य शापस्य तत्क्षणात्॥ ४१

भागिनेय तवाप्यस्तु गमनं सुरसद्मनि।
शापस्यानुग्रहः कामं कृतोऽयं पर्वताधुना॥ ४२

नारद उवाच

जातोऽहं चारुवदनो वचनात्तस्य पश्यतः।
राजपुत्री तु सन्तुष्टा मातरं प्राह सत्वरम्॥ ४३

मातस्ते सुमुखो जातो जामाता च महाद्युतिः।
वचनात्पर्वतस्याद्य मुक्तशापो मुनेरभूत्॥ ४४

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञ्या कथितं तत्तु राजनि।
ययौ द्रष्टुं मुनिं तत्र सञ्जयः प्रीतिमांस्तदा॥ ४५

धनं समर्पितं राज्ञा सन्तुष्टेन तदा महत्।
मह्यं च भागिनेयाय पारिबर्हं महात्मना॥ ४६

एतत्ते सर्वमाख्यातं वर्तनं यत्पुरातनम्।
मायाया बलमाहात्म्यं ह्यनुभूतं यथा मया॥ ४७

संसारेऽस्मिन्महाभाग मायागुणकृतेऽनृते।
तनुभृत्तु सुखी नास्ति न भूतो न भविष्यति॥ ४८

कामक्रोधौ तथा लोभो मत्सरो ममता तथा।
अहङ्कारो मदः केन जिताः सर्वे महाबलाः॥ ४९

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणास्त्रय इमे किल।
कारणं प्राणिनां देहसम्भवे सर्वथा मुने॥ ५०

कस्मिंश्चित्समये व्यास वनेऽहं विष्णुना सह।
गच्छन्हास्यविनोदेन स्त्रीभावं गमितः क्षणात्॥ ५१

राजपत्नीत्वमापन्नो मायाबलविमोहितः।
पुत्राः प्रसूता बहवो गेहे तस्य नृपस्य ह॥ ५२

हे नारद! अब तुम मेरे पुण्यके प्रभावसे सुन्दर मुखवाले हो जाओ; क्योंकि इस समय राजकुमारीको देखकर मेरे मनमें करुणाभाव उत्पन्न हो गया है॥ ४०॥

नारदजी बोले—उनकी बात सुनकर मैंने भी अपने मनको विनययुक्त करके उसी क्षण [अपने द्वारा उन्हें प्रदत्त] शापका मार्जन कर दिया। [मैंने कहा—] हे भागिनेय पर्वत! मैं तुम्हें मुक्त कर दे रहा हूँ। अब देवलोकमें तुम्हारा भी गमन हो; यह मैंने शापका विमोचन कर दिया॥ ४१-४२॥

नारदजी बोले—पर्वतमुनिके वचनानुसार उनके देखते-देखते मैं सुन्दर मुखवाला हो गया। इससे राजकुमारी बहुत प्रसन्न हो गयी और शीघ्र ही मातासे बोली—हे माता! तुम्हारे परम तेजस्वी जामाता नारद अब सुन्दर मुखवाले हो गये हैं। मुनि पर्वतके वचनसे अब वे शापसे मुक्त हो चुके हैं॥ ४३-४४॥

दमयन्तीकी बात सुनकर रानीने उसे राजासे कहा। तब प्रीतियुक्त होकर राजा संजय मुनिको देखनेके लिये वहाँ गये॥ ४५॥

तब सन्तुष्ट हुए महात्मा राजाने मुझे तथा भागिनेय पर्वतको बहुत सारा धन एवं उपहार-सामग्री प्रदान की॥ ४६॥

जैसा मैंने मायाके बलकी महिमाका अनुभव किया है और जो पुरातन वृत्तान्त है, वह सब मैंने आपको बता दिया॥ ४७॥

हे महाभाग! मायाके गुणोंसे विरचित इस मिथ्या जगत्‌में कोई भी जीव न सुखी रहा है, न सुखी है और न तो सुखी रहेगा॥ ४८॥

काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, ममता, अहंकार और मद—इन महाशक्तिशाली विषयोंको कौन जीत सका है?॥ ४९॥

हे मुने! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही प्राणियोंकी देहोत्पत्तिमें सर्वथा कारण होते हैं॥ ५०॥

हे व्यासजी! किसी समय भगवान् विष्णुके साथ वनमें जाता हुआ मैं परस्पर हास-परिहासमें सहसा स्त्रीभावको प्राप्त हो गया॥ ५१॥

मायाके प्रभावसे विमोहित होकर मैं राजाकी पत्नी बन गया और उस राजाके भवनमें रहकर मैंने अनेक पुत्र उत्पन्न किये॥ ५२॥

व्यास उवाच

संशयोऽयं महान्साधो श्रुत्वा ते वचनं किल।
कथं नारीत्वमापन्नस्त्वं मुने ज्ञानवान्भृशम्॥ ५३

कथं च पुरुषो जातो ब्रूहि सर्वमशेषतः।
कथं पुत्रास्त्वया जाताः कस्य राज्ञो गृहेऽञ्जसा॥ ५४

एतदाख्याहि चरितं मायाया महदद्भुतम्।
मोहितं च यया सर्वमिदं स्थावरजङ्गमम्॥ ५५

न तृप्तिमधिगच्छामि शृण्वंस्तव कथामृतम्।
सर्वग्रन्थार्थतत्त्वं च सर्वसंशयनाशनम्॥ ५६

व्यासजी बोले—हे साधो! हे मुने! आपकी बात सुनकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है कि आप महान् ज्ञानी होते हुए भी नारी-रूपमें कैसे परिणत हो गये? आप पुनः पुरुष किस प्रकार हुए? यह सब पूर्णरूपसे बताइये। आपने पुत्र कैसे उत्पन्न किये तथा किस राजाके घरमें आप भलीभाँति रहे?॥ ५३-५४॥

आप उन महामायाके अत्यन्त अद्भुत चरित्रका वर्णन कीजिये, जिन्होंने स्थावर-जंगमात्मक समग्र जगत्‌को विमोहित कर रखा है॥ ५५॥

सभी ग्रन्थोंके अर्थतत्त्वोंसे युक्त तथा समस्त संशयोंका नाश करनेवाले आपके कथामृतका श्रवण करता हुआ मैं तृप्त नहीं हो पा रहा हूँ॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदस्य
मायादमयन्त्या सह विवाहवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका नारदजीसे मायाकी अजेयताका वर्णन करना, मुनि नारदको मायावश स्त्रीरूपकी प्राप्ति तथा राजा तालध्वजका उनसे प्रणय-निवेदन करना

नारद उवाच

निशामय मुनिश्रेष्ठ गदतो मम सत्कथाम्।
मायाबलं सुदुर्ज्ञेयं मुनिभिर्योगवित्तमैः॥ १

मायया मोहितं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमजया दुर्विभाव्यया॥ २

कदाचित्सत्यलोकाद्वै श्वेतद्वीपे मनोहरे।
गतोऽहं दर्शनाकाङ्क्षी हरेरद्भुतकर्मणः॥ ३

वादयन्महतीं वीणां स्वरतानविभूषिताम्।
गायत्रं गायमानस्तु साम सप्तस्वरान्वितम्॥ ४

दृष्टो मया देवदेवश्चक्रपाणिर्गदाधरः।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को मेघश्यामश्चतुर्भुजः॥ ५

पीताम्बरपरीधानो मुकुटाङ्गदराजितः।
लक्ष्म्या सह विलासिन्या क्रीडमानो मुदा युतः॥ ६

नारदजी बोले—हे मुनिवर! अब आप मेरे द्वारा कही जा रही सत्कथाका श्रवण कीजिये। श्रेष्ठ योगवेत्ता मुनियोंके लिये भी मायाका बल अत्यन्त दुर्ज्ञेय है॥ १॥

उस अजेय तथा दुश्चिन्त्य मायाने ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जगत्‌को मोहित कर रखा है॥ २॥

किसी समय मैं स्वर तथा तानसे विभूषित महती वीणा बजाता हुआ एवं सप्त स्वरोंसे युक्त गायत्र-सामका गान करता हुआ अद्भुत कर्मवाले भगवान् विष्णुके दर्शनकी अभिलाषासे सत्यलोकसे मनोहर श्वेतद्वीपमें गया था॥ ३-४॥

वहाँ मैंने देवाधिदेव विष्णुभगवान्‌को देखा। वे हाथमें चक्र तथा गदा धारण किये हुए थे, उनके वक्षःस्थलपर कौस्तुभमणि शोभायमान हो रही थी, वे मेघ-सदृश श्याम वर्णवाले थे, उनकी चार भुजाएँ थीं। वे पीत वस्त्र धारण किये हुए थे, मुकुट तथा बाजूबन्दसे सुशोभित थे तथा वे विलासमयी लक्ष्मीके साथ प्रमुदित होकर क्रीडा कर रहे थे॥ ५-६॥

वीक्ष्य मां कमला देवी गतान्तर्धानमन्तिकात्।
सर्वलक्षणसम्पन्ना सर्वभूषणभूषिता॥ ७

नारीणां प्रवरा कान्ता रूपयौवनगर्विता।
सुप्रिया वासुदेवस्य वरचामीकरप्रभा॥ ८

अन्तर्गृहं गतां दृष्ट्वा सिन्धुजां व्यञ्जनान्विताम्।
मया पृष्टो देवदेवो वनमाली जगत्प्रभुः॥ ९

भगवन्देवदेवेश पद्मनाभ सुरारिहन्।
कथं च मा गता दृष्ट्वा मामागच्छन्तमन्तिकात्॥ १०

नाहं विटो न वा धूर्तः तापसोऽहं जगद्गुरो।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितमायो जनार्दन॥ ११

नारद उवाच

निशम्य वचनं किञ्चिद् गर्वयुक्तं जनार्दनः।
उवाच मां स्मितं कृत्वा वीणावन्मधुरां गिरम्॥ १२

विष्णुरुवाच

नारदैवंविधा नीतिर्न स्थातव्यं कदाचन।
पतिं विनान्यसान्निध्ये कस्यचिद्योषया क्वचित्॥ १३

माया सुदुर्जया विद्वन् योगिभिर्जितमारुतैः।
सांख्यविद्भिर्निराहारैस्तापसैश्च जितेन्द्रियैः॥ १४

देवैश्च मुनिशार्दूल यत्त्वयोक्तं वचोऽधुना।
जितमायोऽस्मि गीतज्ञ नैवं वाच्यं कदाचन॥ १५

नाहं शिवो न वा ब्रह्मा जेतुं तां प्रभवोऽप्यजाम्।
मुनयः सनकाद्याश्च कस्त्वं केऽन्ये क्षमा जये॥ १६

देवदेहं नृदेहं वा तिर्यग्देहमथापि वा।
बिभृयाद्यः शरीरं च स कथं तां जयेदजाम्॥ १७

त्रियुतस्तां कथं मायां जेतुं शक्तः पुमान्भवेत्।
वेदविद्योगविद्वापि सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः॥ १८

सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, समस्त आभूषणोंसे अलंकृत, कान्तियुक्त, अपने रूप-यौवनपर गर्व करनेवाली, नारियोंमें सर्वश्रेष्ठ, भगवान् विष्णुको अतिप्रिय तथा स्वर्णके समान आभावाली भगवती लक्ष्मी मुझे देखकर उनके पाससे अन्तःपुरमें चली गयीं॥ ७-८॥

व्यंजित अंगोंवाली लक्ष्मीजीको भवनमें गयी देखकर मैंने वनमाला धारण करनेवाले देवाधिदेव जगन्नाथ विष्णुसे पूछा—हे भगवन्! हे देवाधिदेव! हे पद्मनाभ! हे असुरविनाशन! मुझे आते हुए देखकर माता लक्ष्मीजी आपके पाससे क्यों चली गयीं? हे जगद्गुरो! मैं न तो कोई नीच हूँ और न धूर्त! हे जनार्दन! मैं इन्द्रियों, क्रोध तथा मायाको जीत लेनेवाला एक तपस्वी हूँ॥ ९—११॥

नारदजी बोले—मेरा कुछ-कुछ अभिमानपूर्ण वचन सुनकर भगवान् विष्णु मुसकराकर वीणाके समान मधुर वाणीमें मुझसे कहने लगे॥ १२॥

भगवान् विष्णु बोले—हे नारद! ऐसी नीति है कि पतिके अतिरिक्त अन्य किसी भी पुरुषके सांनिध्यमें स्त्रीको कभी नहीं रहना चाहिये॥ १३॥

हे विद्वन्! वायु (श्वास)-को जीत लेनेवाले योगियों, सांख्यशास्त्रके ज्ञाताओं, निराहार रहनेवाले तपस्वियों तथा जितेन्द्रिय पुरुषों एवं देवताओंके लिये भी माया अत्यन्त दुर्जय है। हे मुनिवर! अभी आपने जो कहा है कि 'मैंने मायापर विजय प्राप्त कर ली है' तो हे गीतज्ञ! आपको ऐसा कभी नहीं बोलना चाहिये॥ १४-१५॥

जब मैं, शिव, ब्रह्मा तथा सनक आदि मुनि भी उस अजन्मा मायापर विजय नहीं प्राप्त कर सके तब आप तथा अन्य कौन हैं, जो उसे जीतनेमें समर्थ हो सकते हैं?॥ १६॥

देवता, मानव तथा पशु-पक्षी अथवा जो कोई शरीर धारण करनेवाला प्राणी हो, वह उस अजन्मा मायाको कैसे जीत सकता है?॥ १७॥

वेदका ज्ञाता, योगी, सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय एवं सत्त्व-रज-तमसे युक्त कोई भी पुरुष मायाको जीतनेमें कैसे समर्थ हो सकता है?॥ १८॥

कालोऽपि तस्या रूपं हि रूपहीनः स्वरूपकृत्।
तद्वशे वर्तते देही विद्वान्मूर्खोऽथ मध्यमः॥ १९

कालः करोति धर्मज्ञं कदाचिद्विकलं पुनः।
स्वभावात्कर्मतो वापि दुर्ज्ञेयं तस्य चेष्टितम्॥ २०

नारद उवाच

इत्युक्त्वा विरतो विष्णुरहं विस्मयमानसः।
तमब्रवं जगन्नाथं वासुदेवं सनातनम्॥ २१

रमापते कथंरूपा माया सा कीदृशी पुनः।
कियद्बला क्वसंस्थाना कस्याधारा वदस्व मे॥ २२

द्रष्टुकामोऽस्मि तां मायां दर्शयाशु महीधर।
ज्ञातुमिच्छामि तां सम्यक्प्रसादं कुरु मापते॥ २३

विष्णुरुवाच

त्रिगुणा साखिलाधारा सर्वज्ञा सर्वसम्मता।
अजेयानेकरूपा च सर्वं व्याप्य स्थिता जगत्॥ २४

दिदृक्षा यदि ते चित्ते नारदारोहणं कुरु।
गरुडे मत्समेतोऽद्य गच्छावोऽन्यत्र साम्प्रतम्॥ २५

दर्शयिष्यामि ते मायां दुर्जयामजितात्मभिः।
दृष्ट्वा तां ब्रह्मपुत्र त्वं विषादे मा मनः कृथाः॥ २६

इत्युक्त्वा देवदेवो मां सस्मार विनतासुतम्।
स्मृतमात्रस्तु गरुडस्तदागाद्धरिसन्निधौ॥ २७

आगतं गरुडं वीक्ष्य आरुरोह जनार्दनः।
समारोप्य च मां पृष्ठे गमनाय कृतादरः॥ २८

चलितो विनतापुत्रो वैकुण्ठाद्वायुवेगवान्।
प्रेरितो यत्र कृष्णेन गन्तुकामेन काननम्॥ २९

काल भी उसी मायाका ही रूप है। वह रूपहीन होते हुए भी स्वरूप धारण कर लेता है। विद्वान्, मूर्ख अथवा मध्यम श्रेणीका कोई भी व्यक्ति हो, वह उसके वशमें रहता है॥ १९॥

कभी-कभी काल धर्मज्ञ पुरुषको भी उद्विग्न कर देता है। स्वभाव अथवा कर्मसे उस कालकी चेष्टा नहीं जानी जा सकती॥ २०॥

नारदजी बोले—ऐसा कहकर विष्णुके चुप हो जानेपर मेरा मन सन्देहसे भर गया और मैंने उन जगन्नाथ सनातन वासुदेवसे पूछा—हे रमाकान्त! आप मुझे यह बतायें कि उस मायाका रूप क्या है, उसकी आकृति कैसी है, उसमें कितनी शक्ति है, वह कहाँ रहती है तथा उसका आधार क्या है? हे महीधर! मैं उस मायाको देखना चाहता हूँ, अतः मुझे उसका शीघ्र दर्शन कराइये। हे लक्ष्मीकान्त! मैं उसके विषयमें सम्यक् जानना चाहता हूँ; मुझपर कृपा कीजिये॥ २१—२३॥

भगवान् विष्णु बोले—अखिल जगत्को धारण करनेवाली वह माया त्रिगुणात्मिका, सर्वज्ञा, सर्वसम्मता, अजेया, अनेकरूपा तथा सम्पूर्ण संसारको अपनेमें व्याप्त करके स्थित है॥ २४॥

हे नारद! यदि तुम्हारे मनमें उस मायाको देखनेकी इच्छा है तो मेरे साथ अभी गरुडपर आरूढ़ हो जाओ; हम दोनों अन्य लोकमें इसी समय चलते हैं॥ २५॥

हे ब्रह्मपुत्र! वहाँ मैं तुम्हें अजितात्माओंके लिये अजेय मायाका दर्शन कराऊँगा, किंतु उसे देखकर तुम अपने मनको विषादग्रस्त मत होने देना॥ २६॥

मुझसे ऐसा कहकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने विनतापुत्र गरुडका स्मरण किया। स्मरण करते ही गरुड भगवान् विष्णुके समक्ष उपस्थित हो गये॥ २७॥

गरुडको आया हुआ देखकर भगवान् विष्णु मुझे अत्यन्त आदरपूर्वक पीछे बैठाकर प्रस्थान करनेके लिये उसपर आरूढ़ हो गये॥ २८॥

जिस वन-प्रदेशमें भगवान् विष्णु जाना चाहते थे, वहाँके लिये प्रेरित किये गये वायुसदृश वेगवान् विनतापुत्र गरुडने वैकुण्ठसे प्रस्थान किया॥ २९॥

महावनानि दिव्यानि सरांसि सरितस्तथा।
पुरग्रामाकरादींश्च खेटखर्वटगोव्रजान्॥ ३०

मुनीनामाश्रमान् रम्यान् वापीश्च सुमनोहराः।
पल्वलानि विशालानि ह्रदान् पङ्कजभूषितान्॥ ३१

मृगाणां च वराहाणां वृन्दान्यप्यवलोक्य च।
गतावावां कान्यकुब्जसमीपं गरुडासनौ॥ ३२

तत्र रम्यं सरो दिव्यं दृष्टं पङ्कजमण्डितम्।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्॥ ३३

नानावर्णैः प्रफुल्लैश्च पङ्कजैरुपरञ्जितम्।
शुचि मिष्टजलं भृङ्गयूथनादविराजितम्॥ ३४

मामाह भगवान् वीक्ष्य तडागं परमाद्भुतम्।
स्पर्धकं चोदधेः क्षीरं मिष्टं वारि विशेषतः॥ ३५

श्रीभगवानुवाच

पश्य नारद गम्भीरं सरः सारसनादितम्।
सर्वत्र पङ्कजैश्छन्नं स्वच्छनीरप्रपूरितम्॥ ३६

अत्र स्नात्वा गमिष्यावः कान्यकुब्जं पुरोत्तमम्।
इत्युक्त्वा गरुडादाशु मामुत्तार्य व्यतारयत्॥ ३७

विहस्य भगवांस्तत्र जग्राह मम तर्जनीम्।
स्तुवन्सरोवरं भूयस्तीरे मामनयत्प्रभुः॥ ३८

विश्रम्य तटभागे तु स्निग्धच्छाये मनोहरे।
मामुवाच मुने स्नानं कुरु त्वं विमले जले॥ ३९

पश्चादहं करिष्यामि तडागेऽस्मिन्सुपावने।
साधूनामिव चेतांसि जलानि निर्मलानि च॥ ४०

सुरभीणि परागैस्तु पङ्कजानां विशेषतः।
इत्युक्तोऽहं भगवता मुक्त्वा वीणां मृगाजिनम्॥ ४१

स्नानाय कृतधीस्तीरे गतः प्रेमसमन्वितः।
पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ च शिखां बद्ध्वा कुशग्रहम्॥ ४२

कृत्वाचम्य शुचिस्तोये स्नातवानस्मि तज्जले।

गरुडपर आसीन हम दोनों बहुत-से विशाल वनों, दिव्य सरोवरों, नदियों, ग्राम-नगरों, पर्वतके आस-पासकी बस्तियों, गायोंके गोष्ठों, मुनियोंके मनोहर आश्रमों, सुन्दर बावलियों, छोटे-बड़े तालाबों, कमलोंसे सुशोभित विस्तृत तथा गहरे ह्रदों एवं मृगों तथा वराहोंके बहुतसे समूहोंको देखते हुए कान्यकुब्जनगरके पास पहुँच गये॥ ३०—३२॥

वहाँ कमलोंसे मण्डित, हंस तथा सारसोंसे युक्त, चक्रवाकोंसे सुशोभित, अनेक वर्णोंवाले खिले हुए कमलोंसे शोभायमान, झुण्ड-के-झुण्ड भौरोंकी ध्वनिसे गुंजित एवं पवित्र तथा मधुर जलवाला एक दिव्य तथा रमणीय सरोवर दिखायी पड़ा॥ ३३-३४॥

क्षीरसागरके मधुर दुग्धकी समानता करनेवाले विशिष्ट जलसे युक्त उस परम अद्भुत सरोवरको देखकर भगवान् विष्णु मुझसे कहने लगे॥ ३५॥

श्रीभगवान् बोले—हे नारद! सर्वत्र कमलोंसे आच्छादित, स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तथा सारसकी ध्वनिसे निनादित हो रहे इस अगाध सरोवरको देखो॥ ३६॥

इसीमें स्नान करके हमलोग श्रेष्ठ नगर कान्यकुब्जमें चलेंगे—ऐसा कहकर भगवान् विष्णु मुझे शीघ्र ही गरुडसे उतारकर आगे ले गये॥ ३७॥

उन्होंने हँसते हुए मेरी तर्जनी अँगुली पकड़ी और बार-बार उस सरोवरकी प्रशंसा करते हुए वे मुझे तीरपर ले गये॥ ३८॥

वृक्षोंकी घनी छायावाले मनोहर तटभागपर कुछ समय विश्राम करनेके बाद भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे मुने! आप इस स्वच्छ जलमें पहले स्नान कर लें, तत्पश्चात् मैं इस परम पवित्र सरोवरमें स्नान करूँगा। इस सरोवरका जल साधुजनोंके चित्तकी भाँति निर्मल तथा कमलोंके परागसे विशेषरूपसे सुगन्धित है॥ ३९-४०½॥

भगवान्के ऐसा कहनेपर मैंने स्नान करनेका मन बना लिया और अपनी वीणा तथा मृगचर्म वहीं रखकर मैं प्रेमपूर्वक तटपर चला गया॥ ४१½॥

हाथ-पैर धोकर और शिखा बाँधकर मैंने हाथमें कुश ले लिया। पुनः पवित्र जलसे आचमन करके मैं उस जलमें स्नान करने लगा। जब मैं उस मनोहर

यदा तस्मिञ्जले रम्ये स्नातोऽहं पश्यतो हरेः॥ ४३

विहाय पौरुषं रूपं प्राप्तः स्त्रीत्वमनुत्तमम्।
हरिर्गृहीत्वा वीणां मे तथा कृष्णाजिनं शुभम्॥ ४४

आरुह्य गरुडं तूर्णं जगाम स्वगृहं क्षणात्।
ततोऽहं स्त्रीत्वमापन्नश्चारुभूषणभूषितः॥ ४५

तत्क्षणान्मनसो जाता पूर्वदेहस्य विस्मृतिः।
विस्मृतोऽसौ जगन्नाथो महती विस्मृता पुनः॥ ४६

सम्प्राप्य मोहिनीरूपं तडागान्निर्गतो बहिः।
अपश्यं नलिनीजुष्टं सरस्तद्विमलोदकम्॥ ४७

किमेतदिति मनसाकरवं विस्मयं मुहुः।
एवं चिन्तयमानस्य नारीरूपधरस्य मे॥ ४८

सहसा दृक्पथं प्राप्तस्तत्र तालध्वजो नृपः।
गजाश्वरथवृन्दैश्च संवृतो रथसंस्थितः॥ ४९

युवा भूषणसंवीतो देहवानिव मन्मथः।
वीक्ष्य मां भूपतिस्तत्र दिव्यभूषणभूषिताम्॥ ५०

राकाचन्द्रमुखीं योषां विस्मयं परमं गतः।
पप्रच्छ कासि कल्याणि कस्य पुत्री सुरस्य वा॥ ५१

मानुषस्य च वा कान्ते गन्धर्वस्योरगस्य च।
एकाकिनी कथं बाला रूपयौवनभूषिता॥ ५२

विवाहिताथ कन्या वा सत्यं वद सुलोचने।
किं पश्यसि सुकेशान्ते तडागेऽस्मिन्सुमध्यमे॥ ५३

चिकीर्षितं पिकालापे ब्रूहि मन्मथमोहिनि।
भुङ्क्ष्व भोगान्मरालाक्षि मया सह कृशोदरि।
वाञ्छितान्मनसा नूनं कृत्वा मां पतिमुत्तमम्॥ ५४

जलमें स्नान कर रहा था, उसी समय भगवान्‌के देखते-देखते मैं अपना पुरुषरूप छोड़कर एक सुन्दर नारीके रूपमें परिणत हो गया॥ ४२-४३½ ॥

उसी क्षण मेरी वीणा तथा पवित्र मृगचर्म लेकर भगवान् विष्णु गरुडपर आरूढ़ होकर शीघ्र ही अपने धाम चले गये। इधर मैं सुन्दर भूषणोंसे भूषित होकर स्त्रीके रूपमें हो गया॥ ४४-४५ ॥

उसी समयसे मेरे मनमें पूर्वदेहकी विस्मृति हो गयी। मैं भगवान् विष्णु तथा अपनी महती वीणाको भी भूल गया॥ ४६ ॥

मोहिनीरूप प्राप्त करके मैं सरोवरसे बाहर निकला और स्वच्छ जलवाले तथा कमलोंसे परिपूर्ण उस सरोवरको देखने लगा॥ ४७ ॥

मैं मनमें बार-बार विस्मय कर रहा था कि 'यह क्या है!' नारीरूपको प्राप्त मैं ऐसा सोच ही रहा था कि मुझे तालध्वज नामक राजा अचानक दिखायी पड़े। हाथीके समूहोंसे घिरे हुए वे रथपर बैठे हुए थे। युवावस्थावाले तथा आभूषणोंसे सुशोभित राजा तालध्वज शरीर धारण किये साक्षात् कामदेवके समान प्रतीत हो रहे थे॥ ४८-४९½ ॥

पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मुखवाली तथा दिव्य आभूषणोंसे मण्डित मुझ रमणीको देखकर राजाको महान् आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुझसे पूछा—हे कल्याणि! तुम कौन हो? हे कान्ते! तुम किस देवता, मनुष्य, गन्धर्व अथवा नागकी पुत्री हो? रूप तथा यौवनसे सम्पन्न युवती होते हुए भी तुम यहाँ अकेली क्यों हो?॥ ५०—५२॥

हे सुनयने! तुम सच-सच बताओ कि तुम विवाहिता हो अथवा कुमारी! हे सुकेशान्ते! हे सुमध्यमे! तुम इस सरोवरमें क्या देख रही हो?॥ ५३॥

हे पिकभाषिणि! मन्मथमोहिनि! तुम अपनी अभिलाषा व्यक्त करो। हे मरालाक्षि! हे कृशोदरि! मुझ उत्तम राजाको अपना पति बनाकर मेरे साथ तुम निःसन्देह मनोवांछित सुखोंका उपभोग करो॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
नारदेन स्वस्त्रीत्वप्राप्तिवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

~~○~~

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

राजा तालध्वजसे स्त्रीरूपधारी नारदजीका विवाह, अनेक पुत्र-पौत्रोंकी उत्पत्ति और युद्धमें उन सबकी मृत्यु, नारदजीका शोक और भगवान् विष्णुकी कृपासे पुनः स्वरूपबोध

नारद उवाच

इत्युक्तोऽहं तदा तेन राज्ञा तालध्वजेन च।
विमृश्य मनसात्यर्थं तमुवाच विशांपते॥ १

राजन्नाहं विजानामि पुत्री कस्येति निश्चयम्।
पितरौ क्व च मे केन स्थापिता च सरोवरे॥ २

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे सुकृतं भवेत्।
निराधारास्मि राजेन्द्र चिन्तयामि चिकीर्षितम्॥ ३

दैवमेव परं राजन्नास्त्यत्र पौरुषं मम।
धर्मज्ञोऽसि महीपाल यथेच्छसि तथा कुरु॥ ४

तवाधीनास्म्यहं भूप न मे कोऽप्यस्ति पालकः।
न पिता न च माता च न स्थानं न च बान्धवाः॥ ५

इत्युक्तोऽसौ मया राजा बभूव मदनातुरः।
मां निरीक्ष्य विशालाक्षीं सेवकानित्युवाच ह॥ ६

नरयानमानयध्वं चतुर्वाह्यं मनोहरम्।
आरोहणार्थमस्यास्तु कौशेयाम्बरवेष्टितम्॥ ७

मृद्वास्तरणसंयुक्तं मुक्ताजालविभूषितम्।
चतुरस्त्रं विशालं च सुवर्णरचितं शुभम्॥ ८

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भृत्याः सत्वरगामिनः।
आनिन्युः शिबिकां दिव्यां मदर्थे वस्त्रवेष्टिताम्॥ ९

आरूढाऽहं तदा तस्यां तस्य प्रियचिकीर्षया।
मुदितोऽसौ गृहे नीत्वा मां तदा पृथिवीपतिः॥ १०

विवाहविधिना राजा शुभे लग्ने शुभे दिने।
उपयेमे च मां तत्र हुतभुक्सन्निधौ ततः॥ ११

तस्याहं वल्लभा जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
सौभाग्यसुन्दरीत्येवं नाम तत्र कृतं मम॥ १२

नारदजी बोले—हे विशाम्पते! राजा तालध्वजके यह पूछनेपर मैंने अपने मनमें सम्यक् प्रकारसे विचार करके उनसे कहा—हे राजन्! मैं निश्चितरूपसे नहीं जानती कि मैं किसकी कन्या हूँ, मेरे माता-पिता कौन हैं और मुझे इस सरोवरपर कौन लाया है॥ १-२॥

अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, मेरा कल्याण कैसे हो सकेगा, मैं आश्रयहीन हूँ। हे राजेन्द्र! यही बात सोचती रहती हूँ॥ ३॥

हे राजन्! दैव ही सर्वोपरि है; इसमें मेरा पौरुष व्यर्थ ही है। हे भूपाल! आप धर्मज्ञ हैं; आप जैसा चाहते हों, वैसा करें॥ ४॥

हे राजन्! मैं आपके अधीन हूँ; क्योंकि मेरा यहाँ कोई भी रक्षक नहीं है। मेरे न पिता हैं, न माता हैं, न बन्धु-बान्धव हैं और न तो मेरा कोई स्थान ही है॥ ५॥

मेरे ऐसा कहनेपर वे राजा तालध्वज कामासक्त हो उठे और मुझ विशाल नयनोंवालीकी ओर दृष्टि डालकर उन्होंने अपने सेवकोंसे कहा—॥ ६॥

तुमलोग इस सुन्दर स्त्रीके आरोहणके लिये रेशमी वस्त्रसे आवेष्टित एक मनोहर पालकी ले आओ, जिसे ढोनेवाले चार पुरुष हों, उसमें कोमल आस्तरण बिछा हो तथा वह मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित हो, वह सोनेकी बनी हुई हो, चौकोर हो तथा पर्याप्त विशाल हो॥ ७-८॥

राजाकी बात सुनकर शीघ्रगामी सेवकोंने मेरे लिये वस्त्रसे ढकी हुई दिव्य पालकी लाकर उपस्थित कर दी॥ ९॥

उन राजा तालध्वजका प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे मैं उस पालकीपर आरूढ़ हो गया। मुझे अपने भवन ले जाकर राजा तालध्वज अत्यन्त प्रसन्न हुए॥ १०॥

किसी शुभ लग्न तथा उत्तम दिनमें राजाने वैवाहिक विधि-विधानसे अग्निके साक्ष्यमें मेरे साथ विवाह कर लिया॥ ११॥

उस समय मैं उनके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो गया। उन्होंने वहाँ मेरा नाम सौभाग्यसुन्दरी—ऐसा रख दिया॥ १२॥

रममाणो मया सार्धं सुखमाप महीपतिः।
नानाभोगविलासैश्च कामशास्त्रोदितैस्तथा॥ १३

राजकार्याणि सन्त्यज्य क्रीडासक्तो दिवानिशम्।
नासौ विवेद गच्छन्तं कालं कामकलारतः॥ १४

उद्यानेषु च रम्येषु वापीषु च गृहेषु च।
हर्म्येषु वरशैलेषु दीर्घिकासु वरासु च॥ १५

वारुणीमदमत्तोऽसौ विहरन्कानने शुभे।
विसृज्य सर्वकार्याणि मदधीनो बभूव ह॥ १६

व्यासाहं तेन संसक्ता क्रीडारसवशीकृता।
स्मृतवान्पूर्वदेहं न पुंभावं मुनिजन्म च॥ १७

ममैवायं पतिर्योषाहं पत्नीषु प्रिया सती।
पट्टराज्ञी विलासज्ञा सफलं जीवितं मम॥ १८

इति चिन्तयती तस्मिन्प्रेमबद्धा दिवानिशम्।
क्रीडासक्ता सुखे लुब्धा तं स्थिता वशवर्तिनी॥ १९

विस्मृतं ब्रह्मविज्ञानं ब्रह्मज्ञानं च शाश्वतम्।
धर्मशास्त्रपरिज्ञानं तदासक्तमनाः स्थिता॥ २०

एवं विहरतस्तत्र वर्षाणि द्वादशैव तु।
गतानि क्षणवत्कामक्रीडासक्तस्य मे मुने॥ २१

जाता गर्भवती चाहं मुदं प्राप नृपस्तदा।
कारयामास विधिवद् गर्भसंस्कारकर्म च॥ २२

अपृच्छद्दोहदं राजा प्रीणयन्मां पुनः पुनः।
नाब्रवं लज्जमानाहं नृपं प्रीतमना भृशम्॥ २३

सम्पूर्णे दशमे मासि पुत्रो जातस्ततो मम।
शुभेऽह्नि ग्रहनक्षत्रलग्नताराबलान्विते॥ २४

बभूव नृपतेर्गेहे पुत्रजन्ममहोत्सवः।
राजा परमसन्तुष्टो बभूव सुतजन्मतः॥ २५

कामशास्त्रानुकूल अनेक प्रकारके भोग-विलासोंके द्वारा मेरे साथ रमण करते हुए राजाको आनन्द मिलता था॥ १३॥

राज्यके कार्योंको छोड़कर वे दिन-रात मेरे साथ क्रीडारत रहते थे। कामकलामें आसक्त उन राजाको समय बीतनेका भी बोध नहीं रहता था॥ १४॥

मनोहर उद्यानों, बावलियों, सुन्दर महलों, अट्टालिकाओं, श्रेष्ठ पर्वतों, उत्तम जलाशयों तथा रमणीक काननमें विहार करते हुए मधुपानसे उन्मत्त वे राजा समस्त कार्य छोड़कर मेरे अधीन हो गये॥ १५-१६॥

हे व्यासजी! उनमें मेरी भी पूर्ण आसक्ति हो गयी और मैं क्रीडारसके वशीभूत हो गया। मुझे अपने पूर्व पुरुष-शरीर तथा मुनि-जन्मका भी स्मरण नहीं रहा॥ १७॥

ये ही मेरे पति हैं तथा इनकी अनेक पत्नियोंमें मैं ही इनकी प्रिय पतिव्रता भार्या हूँ, सम्पूर्ण विलासोंको जाननेवाली मैं इनकी पटरानी हूँ; इस प्रकार मेरा जीवन सफल है—ऐसा सोचती हुई मैं दिन-रात उन्हींके प्रेममें आबद्ध रहती थी तथा उनके साथ क्रीडारत रहती थी। इस तरह उनके सुखके लोभमें मैं सदा उन्हींके अधीन हो गयी। मेरा ब्रह्मविज्ञान, सनातन ब्रह्मज्ञान तथा धर्मशास्त्रका रहस्य पूर्णरूपसे विस्मृत हो गया और मैं उन्हींमें आसक्त-मन होकर रहने लगी॥ १८—२०॥

हे मुने! इस प्रकार कामक्रीडामें आसक्त मेरे वहाँ विहार करते हुए बारह वर्ष एक क्षणकी भाँति व्यतीत हो गये॥ २१॥

मेरे गर्भवती होनेपर राजाको परम प्रसन्नता हुई। राजाने विधिपूर्वक गर्भसम्बन्धी संस्कारकर्म सम्पन्न कराया॥ २२॥

गर्भके समय मेरी मनोवांछित वस्तुओंके विषयमें राजा मुझे प्रसन्न करते हुए बार-बार पूछा करते थे। तब अत्यन्त प्रसन्नचित्त मैं लज्जाके कारण कुछ भी नहीं कह पाती थी॥ २३॥

दस माह पूर्ण होनेपर ग्रह, नक्षत्र, लग्न तथा तारा-बलयुक्त शुभ दिनमें मुझे एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २४॥

राजाके भवनमें पुत्र-जन्मका उत्सव मनाया गया। पुत्र-जन्मसे राजा परम प्रसन्न हो गये॥ २५॥

सूतकान्ते सुतं वीक्ष्य राजा मुदमवाप ह।
अहं भूमिपतेश्चासं प्रिया भार्या परन्तप॥ २६

ततो वर्षद्वयान्ते वै पुनर्गर्भो मया धृतः।
द्वितीयस्तु सुतो जातः सर्वलक्षणसंयुतः॥ २७

सुधन्वेति सुतस्याथ नाम चक्रे नृपस्तदा।
वीरवर्मेति ज्येष्ठस्य ब्राह्मणैः प्रेरितस्त्वयम्॥ २८

एवं द्वादश पुत्राश्च प्रसूता भूपसम्मताः।
मोहितोऽहं तदा तेषां प्रीत्या पालनलालने॥ २९

पुनरष्ट सुताः काले काले जाताः स्वरूपिणः।
गार्हस्थ्यं मे ततः पूर्णं सम्पन्नं सुखसाधनम्॥ ३०

तेषां दारक्रियाः काले कृता राज्ञा यथोचिताः।
स्नुषाभिश्च तथा पुत्रैः परिवारो महानभूत्॥ ३१

ततः पौत्रादिसम्भूतास्तेऽपि क्रीडारसान्विताः।
आसन्नानारसोपेता मोहवृद्धिकरा भृशम्॥ ३२

कदाचित्सुखमैश्वर्यं कदाचिद्दुःखमद्भुतम्।
पुत्रेषु रोगजनितं देहसन्तापकारकम्॥ ३३

परस्परं कदाचित्तु विरोधोऽभूत्सुदारुणः।
पुत्राणां वा वधूनां च तेन सन्तापसम्भवः॥ ३४

सुखदुःखात्मके घोरे मिथ्याचारकरे भृशम्।
सङ्कल्पजनिते क्षुद्रे मग्नोऽहं मुनिसत्तम॥ ३५

विस्मृतं पूर्वविज्ञानं शास्त्रज्ञानं तथा गतम्।
योषाभावे विलीनोऽहं गृहकार्येषु सर्वथा॥ ३६

अहङ्कारस्तु सञ्जातो भृशं मोहविवर्धकः।
एते मे बलिनः पुत्राः स्नुषाः सुकुलसम्भवाः॥ ३७

जननाशौच समाप्त होनेपर पुत्रका दर्शन करके राजाको असीम प्रसन्नता हुई। हे परन्तप! अब मैं राजा तालध्वजकी अत्यन्त प्रिय भार्या हो गयी॥ २६॥

दो वर्षके अनन्तर मैंने पुनः गर्भ धारण किया। [यथासमय] सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ॥ २७॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंका आदेश पाकर राजाने इस पुत्रका नाम 'सुधन्वा' तथा बड़े पुत्रका नाम 'वीरवर्मा' रखा॥ २८॥

इस प्रकार मैंने राजाके मनोनुकूल बारह पुत्र उत्पन्न किये। मैं मोहके वशीभूत होकर उनके लालन-पालनमें प्रेमपूर्वक लगा रहा॥ २९॥

इसके बाद समय-समयपर मेरे परम रूपवान् आठ पुत्र और उत्पन्न हुए। इससे सुखका साधनभूत मेरा गार्हस्थ्य-जीवन सर्वथा पूर्ण हो गया॥ ३०॥

राजाने समयानुसार उचित रूपसे उनका विवाह कर दिया। इस प्रकार वधुओं तथा पुत्रोंसे युक्त मेरा परिवार बहुत बड़ा हो गया॥ ३१॥

फिर मेरे पौत्र उत्पन्न हुए, जो खेलकूदमें मग्न रहते थे तथा अनेक प्रकारकी बालक्रीडाओंसे मेरे मोहको बढ़ाते रहते थे। कभी सुख-समृद्धि मेरे सामने आती थी और कभी पुत्रोंके रोगग्रस्त होनेके कारण चित्तको अशान्त कर देनेवाला महान् दुःख भोगना पड़ता था॥ ३२-३३॥

कभी-कभी पुत्रों अथवा वधुओंमें परस्पर अत्यन्त भीषण विरोध हो जाता था, उससे मुझे सन्ताप होने लगता था॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! संकल्पसे उत्पन्न इस सुख-दुःखात्मक, तुच्छ, भयानक तथा मिथ्या व्यवहारवाले मोहमें मैं निमग्न रहता था॥ ३५॥

मेरा पूर्वकालिक विज्ञान विस्मृत हो गया तथा शास्त्र-ज्ञान भी समाप्त हो गया। स्त्रीभावमें होकर मैं घरके कार्योंमें ही सदा व्यस्त रहता था॥ ३६॥

मेरे ये पुत्र महान् पराक्रमी हैं तथा मेरी ये बहुएँ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हैं—ऐसा सोचकर मेरे मनमें अति मोह बढ़ानेवाला अहंकार उत्पन्न हो जाया करता था॥ ३७॥

एते पुत्राः सुसन्नद्धाः क्रीडन्ति मम वेश्मसु।
धन्याहं खलु नारीणां संसारेऽस्मिन्नहो भृशम्॥ ३८

नारदोऽहं भगवता वञ्चितो मायया किल।
न कदाचिन्मयाप्येवं चिन्तितं मनसा किल॥ ३९

राजपत्नी शुभाचारा बहुपुत्रा पतिव्रता।
धन्याहं किल संसारे कृष्णैवं मोहितस्त्वहम्॥ ४०

अथ कश्चिन्नृपः कामं दूरदेशाधिपो महान्।
अरातिभावमापन्नः पतिना सह मानद॥ ४१

कृत्वा सैन्यसमायोगं रथैश्च वारणैर्युतम्।
आजगाम कान्यकुब्जे पुरे युद्धमचिन्तयत्॥ ४२

वेष्टितं नगरं तेन राज्ञा सैन्ययुतेन च।
मम पुत्राश्च पौत्राश्च निर्गता नगरात्तदा॥ ४३

संग्रामस्तुमुलस्तत्र कृतस्तैस्तेन पुत्रकैः।
हता रणे सुताः सर्वे वैरिणा कालयोगतः॥ ४४

राजा भग्नस्तु संग्रामादागतः स्वगृहं पुनः।
श्रुतं मया मृताः पुत्राः संग्रामे भृशदारुणे॥ ४५

स हत्वा मे सुतान्पौत्रान्गतो राजा बलान्वितः।
क्रन्दमाना ह्यहं तत्र गता समरमण्डले॥ ४६

दृष्ट्वा तान्पतितान्पुत्रान्पौत्रांश्च दुःखपीडिता।
विललापाहमायुष्मञ्छोकसागरसंप्लवे॥ ४७

हा पुत्राः क्व गता मेऽद्य हा हतास्मि दुरात्मना।
दैवेनातिबलिष्ठेन दुर्वारेणातिपापिना॥ ४८

एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवान्मधुसूदनः।
कृत्वा रूपं द्विजस्यागाद् वृद्धः परमशोभनः॥ ४९

सुवासा वेदवित्कामं मत्समीपं समागतः।
मामुवाचातिदीनां स क्रन्दमानां रणाजिरे॥ ५०

मेरे ये बालक पूर्ण तत्पर होकर घरमें खेल रहे हैं। अहो, इस संसारमें सभी नारियोंमें मैं अवश्य ही धन्य हूँ॥ ३८॥

'मैं नारद हूँ तथा भगवान्ने अपनी मायाके प्रभावसे मुझे वंचित कर रखा है'—ऐसा मैं अपने मनमें कभी सोच भी नहीं पाता था॥ ३९॥

हे व्यासजी! इस प्रकार मायासे मोहित हुआ मैं केवल यही सोचा करता था कि मैं उत्तम आचरणवाली एक पतिव्रता राजमहिषी हूँ, मेरे बहुतसे पुत्र हैं तथा इस संसारमें मैं बड़ी धन्य हूँ॥ ४०॥

हे मानद! इसके बाद दूर देशमें रहनेवाले किसी महान् राजाने मेरे पतिके साथ शत्रुता ठान ली। वह हाथियों तथा रथोंसे अपनी सेना सुसज्जित करके कान्यकुब्जनगरमें आ गया और युद्धके विषयमें सोचने लगा॥ ४१-४२॥

उस राजाने अपनी सेनाके साथ मेरा नगर घेर लिया; तब मेरे पुत्र तथा पौत्र भी नगरसे बाहर निकल पड़े॥ ४३॥

मेरे उन पुत्र-पौत्रोंने उस राजाके साथ भयंकर युद्ध किया। कालयोगसे मेरे सभी पुत्र संग्राममें शत्रुके द्वारा मार डाले गये॥ ४४॥

तत्पश्चात् राजा तालध्वज हताश होकर युद्धस्थलसे अपने घर आ गये। मैंने सुना कि मेरे सभी पुत्र उस अत्यन्त भीषण संग्राममें मृत्युको प्राप्त हो गये॥ ४५॥

मेरे पुत्रों तथा पौत्रोंका संहार करके वह राजा सेनासहित चला गया। इसके बाद मैं विलाप करता हुआ युद्ध-भूमिमें जा पहुँचा॥ ४६॥

हे आयुष्मन्! वहाँ अपने पुत्रों तथा पौत्रोंको भूमिपर गिरा हुआ देखकर मैं दुःखसे अत्यन्त पीडित होकर शोक-सागरमें डूब गया तथा इस प्रकार विलाप करने लगा—हाय, मेरे पुत्र इस समय कहाँ चले गये? हाय, मुझे तो इस दुष्टात्मा, अति बलवान्, महापापी तथा दुर्लंघ्य दैवने मार डाला॥ ४७-४८॥

इसी बीच एक परम सुन्दर वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके मधुसूदन भगवान् विष्णु वहाँ पहुँच गये॥ ४९॥

हे वेदज्ञ! सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित वे मेरे पास आये और युद्धभूमिमें अति विलाप करती हुई मुझ अबलासे बोले॥ ५०॥

ब्राह्मण उवाच

किं विषीदसि तन्वङ्गि भ्रमोऽयं प्रकटीकृतः।
मोहेन कोकिलालापे पतिपुत्रगृहात्मके॥ ५१

का त्वं कस्याः सुताः केऽमी चिन्तयात्मगतिं पराम्।
उत्तिष्ठ रोदनं त्यक्त्वा स्वस्था भव सुलोचने॥ ५२

स्नानं च तिलदानं च पुत्राणां कुरु कामिनि।
परलोकगतानां च मर्यादारक्षणाय वै॥ ५३

कर्तव्यं सर्वथा तीर्थे स्नानं तु न गृहे क्वचित्।
मृतानां किल बन्धूनां धर्मशास्त्रविनिर्णयः॥ ५४

नारद उवाच

इत्युक्त्वा तेन विप्रेण वृद्धेन प्रतिबोधिता।
उत्थिताहं नृपेणाथ युक्ता बन्धुभिरावृता॥ ५५

अग्रतो द्विजरूपेण भगवान्भूतभावनः।
चलिताहं ततस्तूर्णं तीर्थं परमपावनम्॥ ५६

हरिर्मां कृपया तत्र पुंतीर्थे सरसि प्रभुः।
नीत्वाह भगवान्विष्णुर्द्विजरूपी जनार्दनः॥ ५७

स्नानं कुरु तडागेऽस्मिन्पावने गजगामिनि।
त्यज शोकं क्रियाकालः पुत्राणां च निरर्थकम्॥ ५८

कोटिशस्ते मृताः पुत्रा जन्मजन्मसमुद्भवाः।
पितरः पतयश्चैव भ्रातरो जामयस्तथा॥ ५९

केषां दुःखं त्वया कार्यं भ्रमेऽस्मिन्मानसोद्भवे।
वितथे स्वप्नसदृशे तापदे देहिनामिह॥ ६०

नारद उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा तीर्थे पुरुषसंज्ञके।
प्रविष्टा स्नातुकामाहं प्रेरिता तत्र विष्णुना॥ ६१

मज्जनादेव तीर्थेषु पुमाञ्जातः क्षणादपि।
हरिर्वीणां करे कृत्वा स्थितस्तीरे स्वदेहवान्॥ ६२

उन्मज्ज्य च मया तीरे दृष्टः कमललोचनः।
प्रत्यभिज्ञा तदा जाता मम चित्ते द्विजोत्तम॥ ६३

ब्राह्मण बोले—हे तन्वङ्गि! हे पिकालापे! तुम क्यों विषाद कर रही हो? पति-पुत्रादिसे सम्पन्न गृहस्थीमें मोहके कारण ही यह भ्रम उत्पन्न हुआ है। तुम कौन हो, ये किसके पुत्र हैं तथा ये कौन हैं? तुम परम आत्मगतिपर विचार करो। हे सुलोचने! अब उठो और विलाप करना छोड़कर स्वस्थ हो जाओ॥ ५१-५२॥

हे कामिनि! मर्यादाके रक्षणार्थ अब अपने परलोक गये हुए पुत्रोंके निमित्त स्नान तथा तिलदान करो। धर्मशास्त्रका निर्णय है कि मृत बन्धुओंके निमित्त तीर्थमें ही स्नान करना चाहिये; घरमें कभी नहीं॥ ५३-५४॥

नारदजी बोले—उस वृद्ध ब्राह्मणने इस प्रकार कहकर मुझे समझाया। तत्पश्चात् मैं उठा और बन्धु-बान्धवों तथा राजाको साथ लेकर द्विजरूपधारी भगवान् विष्णुको आगे करके तत्काल परम पवित्र तीर्थके लिये चल पड़ा॥ ५५-५६॥

ब्राह्मणरूपधारी जनार्दन जगन्नाथ श्रीहरि भगवान् विष्णु मेरे ऊपर कृपा करके पुंतीर्थ सरोवरपर मुझको ले जाकर बोले—हे गजगामिनि! इस पवित्र सरोवरमें स्नान करो और निरर्थक शोकका परित्याग करो। अब पुत्रोंकी [तिलांजलि आदि] क्रियाका समय उपस्थित है॥ ५७-५८॥

जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हारे करोड़ों पुत्र, पिता, पति, भाई तथा बहन हुए तथा वे मृत्युको भी प्राप्त हो गये। उनमेंसे तुम किस-किसका दुःख मनाओगी? यह तो मनमें उत्पन्न भ्रममात्र है, जो शरीरधारियोंको व्यर्थ ही स्वप्नके समान होकर भी दुःख पहुँचाता रहता है॥ ५९-६०॥

नारदजी बोले—उनका यह वचन सुनकर भगवान् विष्णुकी प्रेरणाके अनुसार स्नान करनेकी इच्छासे मैं उस पुरुषसंज्ञक तीर्थ (सरोवर)-में प्रविष्ट हुआ॥ ६१॥

उस तीर्थमें डुबकी लगाते ही मैं तत्क्षण पुरुषरूपमें हो गया तथा भगवान् विष्णु अपने हाथमें मेरी वीणा लिये हुए अपने स्वाभाविक स्वरूपमें सरोवरके तटपर विराजमान थे॥ ६२॥

हे द्विजश्रेष्ठ! स्नान करनेके पश्चात् मुझे तटपर कमललोचन भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ; तब मेरे चित्तमें सभी बातोंका स्मरण हो गया॥ ६३॥

सञ्चिन्तितं मया तत्र नारदोऽहमिहागतः।
हरिणा सह स्त्रीभावं प्राप्तो मायाविमोहितः॥ ६४

मैं सोचने लगा कि मैं नारद हूँ और भगवान् विष्णुके साथ यहाँ आया था; मायासे विमोहित होनेके कारण मैं स्त्रीभावको प्राप्त हो गया॥ ६४॥

इति चिन्तापरश्चाहं यदा जातस्तदा हरिः।
मामाह नारदागच्छ किं करोषि जले स्थितः॥ ६५

जब मैं इस तरहकी बातें सोच रहा था, उसी समय भगवान् विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! यहाँ आओ, वहाँ जलमें खड़े होकर क्या कर रहे हो?॥ ६५॥

विस्मितोऽहं तदा स्मृत्वा स्त्रीभावं दारुणं भृशम्।
पुनः पुरुषभावश्च सम्पन्नः केन हेतुना॥ ६६

अपने अत्यन्त दारुण स्त्रीभावका स्मरण करके तथा किस कारणसे मैं पुनः पुरुषभावको प्राप्त हुआ—यह सोचकर मैं आश्चर्यचकित हो गया॥ ६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे नारदस्य पुनः स्वरूपप्राप्तिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

* * *

अथ त्रिंशोऽध्यायः

राजा तालध्वजका विलाप और ब्राह्मणवेशधारी भगवान् विष्णुके प्रबोधनसे उन्हें वैराग्य होना, भगवान् विष्णुका नारदसे मायाके प्रभावका वर्णन करना

नारद उवाच

मां दृष्ट्वा नारदं विप्रं विस्मितोऽसौ महीपतिः।
क्व गता मम भार्या सा कुतोऽयं मुनिसत्तमः॥ १

नारदजी बोले—मुझ विप्ररूप नारदको देखकर वे राजा तालध्वज इस आश्चर्यमें पड़ गये कि मेरी वह पत्नी कहाँ चली गयी और ये मुनिश्रेष्ठ कहाँसे आ गये?॥ १॥

विललाप नृपस्तत्र हा प्रियेति मुहुर्मुहुः।
क्व गता मां परित्यज्य विलपन्तं वियोगिनम्॥ २

राजा तालध्वज बार-बार यह कहकर विलाप करने लगे—'हा प्रिये! मुझ वियोगीको विलाप करता हुआ छोड़कर तुम कहाँ चली गयी?'॥ २॥

विना त्वां विपुलश्रोणि वृथा मे जीवितं गृहम्।
राज्यं कमलपत्राक्षि किं करोमि शुचिस्मिते॥ ३

हे विपुलश्रोणि! हे कमलसदृश नेत्रवाली! हे पवित्र मुसकानवाली! तुम्हारे विना मेरा जीवन, घर तथा राज्य—ये सभी व्यर्थ हैं। अब मैं क्या करूँ?॥ ३॥

न प्राणा मे बहिर्यान्ति विरहेण तवाधुना।
गतो वै प्रीतिधर्मस्तु त्वामृते प्राणधारणात्॥ ४

तुम्हारे वियोगमें इस समय मेरे प्राण भी नहीं निकल रहे हैं। तुम्हारे विना प्राण धारण करनेसे प्रेम-धर्म भी सर्वथा विनष्ट हो गया॥ ४॥

विलपामि विशालाक्षि देहि प्रत्युत्तरं प्रियम्।
क्व गता सा मयि प्रीतिर्याभूत्प्रथमसङ्गमे॥ ५

हे विशाल नयनोंवाली! मैं विलाप कर रहा हूँ; तुम मुझे प्रिय उत्तर प्रदान करो। प्रथम-मिलनमें मेरे प्रति जो प्रीति थी, वह कहाँ चली गयी?॥ ५॥

निमग्ना किं जले सुभ्रूर्भक्षिता मत्स्यकच्छपैः।
गृहीता वरुणेनाशु मम दौर्भाग्ययोगतः॥ ६

हे सुभ्रु! क्या तुम जलमें डूब गयी? अथवा मछली या कछुए तुम्हें खा गये? या फिर मेरे दुर्भाग्यवश वरुणने तुम्हें शीघ्र ही अपने अधिकारमें कर लिया?॥ ६॥

धन्या सुचारुसर्वाङ्गि या त्वं पुत्रैः समागता।
अकृत्रिमस्तु पुत्रेषु स्नेहस्तेऽमृतभाषिणि॥ ७

हे सर्वांगसुन्दरि! हे अमृतभाषिणि! तुम धन्य हो, जो अपने पुत्रोंके साथ चली गयी; उन पुत्रोंके प्रति तुम्हारा वास्तविक प्रेम था॥ ७॥

न युक्तमधुना यन्मां विहाय त्रिदिवं गता।
विलपन्तं पतिं दीनं पुत्रस्नेहेन यन्त्रिता॥ ८

उभयं मे गतं कान्ते पुत्रास्त्वं प्राणवल्लभा।
तथापि मरणं नास्ति दुःखितस्य भृशं प्रिये॥ ९

किं करोमि क्व गच्छामि रामो नास्ति महीतले।
रामाविरहजं दुःखं जानाति रघुनन्दनः॥ १०

विधिना निष्ठुरेणात्र विपरीतं कृतं भुवि।
दम्पत्योर्मरणं भिन्नं सर्वथा समचित्तयोः॥ ११

उपकारस्तु नारीणां मुनिभिर्विहितः किल।
यदुक्तं धर्मशास्त्रेषु ज्वलनं पतिना सह॥ १२

एवं विलपमानं तं राजानं भगवान्हरिः।
निवारयामास तदा वचनैर्युक्तियोजितैः॥ १३

श्रीभगवानुवाच

किं विषीदसि राजेन्द्र क्व गता ते प्रियाङ्गना।
न श्रुतं किं त्वया शास्त्रं न कृतोऽसौ बुधाश्रयः॥ १४

का सा कस्त्वं क्व संयोगो वियोगः कीदृशस्तव।
प्रवाहरूपे संसारे नृणां नौतरतामिव॥ १५

गृहे गच्छ नृपश्रेष्ठ वृथा ते रुदितेन किम्।
संयोगश्च वियोगश्च दैवाधीनः सदा नृणाम्॥ १६

अनया सह ते राजन् संयोगस्त्विह संवृतः।
भुक्ता त्वया विशालाक्षी सुन्दरी तनुमध्यमा॥ १७

न दृष्टौ पितरावस्यास्त्वया प्राप्ता सरोवरे।
काकतालीप्रसङ्गेन यद्भूतं तत्तथा गतम्॥ १८

यह तुम्हारे लिये उचित नहीं है जो कि दीन-दशाको प्राप्त मुझ पतिको इस प्रकार विलाप करता हुआ छोड़कर पुत्र-स्नेहरूपी पाशमें बँधी हुई तुम स्वर्ग चली गयी॥ ८॥

हे कान्ते! हे प्रिये! मेरे पुत्र तथा प्राणप्रिय तुम—ये दोनों ही चले गये फिर भी मुझ अत्यन्त दुःखितका मरण नहीं हो रहा है॥ ९॥

मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस समय पृथ्वीपर राम भी नहीं हैं; क्योंकि पत्नीवियोगजन्य दुःखको एकमात्र वे रघुनन्दन राम ही जानते हैं॥ १०॥

इस जगत्‌में निष्ठुर ब्रह्माने यह बहुत विपरीत कार्य किया है, जो कि वे समान चित्तवाले पति-पत्नीका मरण भिन्न-भिन्न समयोंमें किया करते हैं॥ ११॥

मुनियोंने नारियोंका अवश्य ही बड़ा उपकार कर दिया है, जो उन्होंने धर्मशास्त्रोंमें पतिके साथ पत्नीके भी जल जाने (सती होने)-का उल्लेख किया है॥ १२॥

इस प्रकार विलाप कर रहे उन तालध्वजको भगवान् विष्णुने अनेक प्रकारके युक्तिपूर्ण वचनोंसे सान्त्वना दी॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे राजेन्द्र! क्यों रो रहे हो? तुम्हारी प्रिय भार्या कहाँ चली गयी? क्या तुमने कभी शास्त्रश्रवण नहीं किया है अथवा विद्वज्जनोंकी संगति नहीं की है?। वह तुम्हारी कौन थी? तुम कौन हो? कैसा संयोग तथा कैसा वियोग? प्रवहमान इस संसारसागरमें मनुष्योंका सम्बन्ध नौकापर चढ़े हुए मनुष्योंकी भाँति है। हे नृपश्रेष्ठ! अब तुम घर जाओ। तुम्हारे व्यर्थ रोनेसे क्या लाभ? मनुष्योंका संयोग तथा वियोग सदा दैवके अधीन रहता है। हे राजन्! विशाल नयनोंवाली इस कृशोदरी सुन्दर स्त्रीके साथ जो भोग करना था, उसे आपने कर लिया। अब इसके साथ आपके संयोगका समय समाप्त हो चुका है। एक सरोवरपर इसके साथ आपका संयोग हुआ था; उस समय इसके माता-पिता आपको दिखायी नहीं पड़े थे। यह अवसर काकतालीय न्यायके अनुसार जैसे आया था, वैसे ही चला गया॥ १८॥

मा शोकं कुरु राजेन्द्र कालो हि दुरतिक्रमः।
कालयोगं समासाद्य भुङ्क्ष्व भोगान् गृहे यथा॥ १९

यथागता गता सा तु तथैव वरवर्णिनी।
यथा पूर्वं तथा तत्र गच्छ कार्यं कुरु प्रभो॥ २०

रुदितेन तवाद्यैव नागमिष्यति कामिनी।
वृथा शोचसि पृथ्वीश योगयुक्तो भवाधुना॥ २१

भोगः कालवशादेति तथैव प्रतियाति च।
नात्र शोकस्तु कर्तव्यो निष्फले भववर्त्मनि॥ २२

नैकत्र सुखसंयोगो दुःखयोगस्तु नैकतः।
घटिकायन्त्रवत्कामं भ्रमणं सुखदुःखयोः॥ २३

मनः कृत्वा स्थिरं भूप कुरु राज्यं यथासुखम्।
अथवा न्यस्य दायादे वनं सेवय साम्प्रतम्॥ २४

दुर्लभो मानुषो देहः प्राणिनां क्षणभङ्गुरः।
तस्मिन्प्राप्ते तु कर्तव्यं सर्वथैवात्मसाधनम्॥ २५

जिह्वोपस्थरसो राजन् पशुयोनिषु वर्तते।
ज्ञानं मानुषदेहे वै नान्यासु च कुयोनिषु॥ २६

तस्माद् गच्छ गृहं त्यक्त्वा शोकं कान्तासमुद्भवम्।
मायेयं भगवत्यास्तु यया सम्मोहितं जगत्॥ २७

नारद उवाच

इत्युक्तो हरिणा राजा प्रणम्य कमलापतिम्।
कृत्वा स्नानविधिं सम्यग्जगाम निजमन्दिरम्॥ २८

दत्त्वा राज्यं स्वपौत्राय प्राप्य निर्वेदमद्भुतम्।
वनं जगाम भूपालस्तत्त्वज्ञानमवाप च॥ २९

गते राजन्यहं वीक्ष्य भगवन्तमधोक्षजम्।
तमब्रवं जगन्नाथं हसन्तं मां पुनः पुनः॥ ३०

अतः हे राजेन्द्र! शोक मत कीजिये। कालका अतिक्रमण नहीं किया जा सकता है। अपने घर जाकर समयानुसार प्राप्त भोगोंका उपभोग कीजिये। वह सुन्दरी जैसे आयी थी वैसे ही चली भी गयी। आप जैसे पहले थे, अब वैसे ही हो गये। हे राजन्! अब आप घर जाइये और अपना कार्य कीजिये॥ १९-२०॥

आपके इस तरह रोनेसे वह स्त्री अब लौट तो आयेगी नहीं। आप व्यर्थ चिन्ता कर रहे हैं। हे पृथ्वीपते! अब आप योगयुक्त बनिये॥ २१॥

समयानुसार जिस प्रकार भोग आता है, उसी प्रकार चला भी जाता है। अतएव इस सारहीन भवमार्गके विषयमें शोक नहीं करना चाहिये॥ २२॥

न तो अकेले सुखका संयोग होता है और न तो दुःखका; घटीयन्त्रकी भाँति सुख तथा दुःखका भ्रमण होता रहता है॥ २३॥

हे राजन्! अब आप मनको स्थिर करके सुखपूर्वक राज्य कीजिये अथवा अपने उत्तराधिकारीको राज्य सौंपकर वनमें निवास कीजिये॥ २४॥

क्षणभरमें नष्ट हो जानेवाला यह मानवशरीर प्राणियोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। इसके प्राप्त होनेपर सम्यक् प्रकारसे आत्मकल्याण कर लेना चाहिये॥ २५॥

हे राजन्! जिह्वा तथा जननेन्द्रियका आस्वाद तो पशुयोनियोंमें भी सुलभ होता है, किंतु ज्ञान केवल मानव-योनिमें ही सुलभ है, अन्य क्षुद्र योनियोंमें नहीं॥ २६॥

अतएव आप पत्नीवियोगसे उत्पन्न शोकका परित्याग करके घर चले जाइये। यह सब उन्हीं भगवतीकी माया है, जिससे सम्पूर्ण जगत् मोहित है॥ २७॥

नारदजी बोले—इस प्रकार भगवान् विष्णुके कहनेपर राजा तालध्वज उन लक्ष्मीपतिको प्रणाम करके भलीभाँति स्नान-विधि सम्पन्न करके अपने घर चले गये। अद्भुत वैराग्यको प्राप्त करके उन राजाने अपने पौत्रको राज्य सौंपकर वनके लिये प्रस्थान किया और उन्होंने तत्त्वज्ञान प्राप्त किया॥ २८-२९॥

राजा तालध्वजके चले जानेपर मुझको देखकर बार-बार हँस रहे उन जगत्पति भगवान् विष्णुसे मैंने कहा॥ ३०॥

वञ्चितोऽहं त्वया देव ज्ञातं मायाबलं महत्।
स्मरामि चरितं सर्वं स्त्रीदेहे यत्कृतं मया॥ ३१

ब्रूहि मे देवदेवेश प्रविष्टोऽहं सरोवरे।
विगतं पूर्वविज्ञानं स्नानादेव कथं हरे॥ ३२

योषिद्देहं समासाद्य मोहितोऽहं जगद्गुरो।
पतिं प्राप्य नृपश्रेष्ठं पुलोमी वासवं यथा॥ ३३

मनस्तदेव तच्चित्तं देहः स च पुरातनः।
लिङ्गं तदेव देवेश स्मृतेर्नाशः कथं हरे॥ ३४

विस्मयोऽयं महान्मेऽत्र ज्ञाननाशं प्रति प्रभो।
कथयाद्य रमाकान्त कारणं परमं च यत्॥ ३५

नारीदेहं मया प्राप्य भुक्ता भोगा ह्यनेकशः।
सुरापानं कृतं नित्यं विधिहीनं च भोजनम्॥ ३६

मया तदेव न ज्ञातं नारदोऽहमिति स्फुटम्।
जानाम्यद्य यथा सर्वं विविक्तं न तथा तदा॥ ३७

विष्णुरुवाच

पश्य नारद मायावी विलासोऽयं महामते।
देहेषु सर्वजन्तूनां दशाभेदा ह्यनेकशः॥ ३८

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिश्च तुरीया देहिनां दशा।
तथा देहान्तरे प्राप्ते सन्देहः कीदृशः पुनः॥ ३९

सुप्तो नरो न जानाति न शृणोति वदत्यपि।
पुनः प्रबुद्धो जानाति सर्वं ज्ञातमशेषतः॥ ४०

निद्रया चाल्यते चित्तं भवन्ति स्वप्नसम्भवाः।
नानाविधा मनोभेदा मनोभावा ह्यनेकशः॥ ४१

गजो मां हन्तुमायाति न शक्तोऽस्मि पलायने।
किं करोमि न मे स्थानं यत्र गच्छामि सत्वरः॥ ४२

हे देव! आपने मुझे भ्रमित कर दिया था; अब मायाकी महान् शक्तिको मैंने जान लिया। स्त्रीका शरीर प्राप्त होनेपर मैंने जो भी कार्य किया था, वह सब मैं अब याद कर रहा हूँ॥ ३१॥

हे देवाधिदेव! हे हरे! आप मुझे यह बताइये कि जब मैं सरोवरमें प्रविष्ट हुआ तब स्नान करते ही मेरी पूर्वस्मृति क्यों नष्ट हो गयी थी?॥ ३२॥

हे जगद्गुरो! स्त्रीशरीर पानेके पश्चात् उन उत्तम नरेश तालध्वजको पतिरूपमें प्राप्त करके मैं उसी प्रकार मोहित हो गया था, जैसे इन्द्रको पाकर शची॥ ३३॥

हे देवेश! मेरा मन वही था, चित्त वही था, वही प्राचीन देह था तथा वही लिंगरूप लक्षण भी था; तब हे हरे! मेरी स्मृतिका नाश कैसे हो गया?॥ ३४॥

हे प्रभो! उस समय अपने ज्ञानके नष्ट हो जानेके विषयमें मुझे अब महान् आश्चर्य हो रहा है। हे रमाकान्त! इसका वास्तविक कारण बताइये॥ ३५॥

स्त्रीशरीर पाकर मैंने अनेक प्रकारके भोगोंका आनन्द लिया, नित्य मद्य-पान किया तथा निषिद्ध भोजन किया। उस समय मैं स्पष्टरूपसे यह नहीं जान सका कि मैं नारद हूँ। इस समय मैं जिस प्रकार जान रहा हूँ, वैसा उस समय मैं नहीं जानता था॥ ३६-३७॥

विष्णु बोले—हे महामते नारद! देखो, यह सब खेल महामायाजनित है। उसीके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें अनेक प्रकारकी अवस्थाएँ उपस्थित होती रहती हैं। जैसे शरीरधारियोंमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय—ये अवस्थाएँ होती हैं, उसी प्रकार दूसरे शरीरकी प्राप्ति भी होती है; इसमें सन्देह कैसा?। सोया हुआ प्राणी न जानता है, न सुनता है और न तो बोलता ही है, किंतु जाग जानेपर वही अपने सम्पूर्ण ज्ञात विषयोंको फिरसे जान लेता है। निद्रासे चित्त विचलित हो जाता है और स्वप्नसे उत्पन्न होनेवाले अनेक प्रकारके मनोभाव तथा मनोभेद उपस्थित होते रहते हैं। उस अवस्थामें प्राणी सोचता है कि हाथी मुझे मारने आ रहा है, किंतु मैं भागनेमें समर्थ नहीं हूँ। क्या करूँ? मेरे लिये कोई स्थान नहीं है, जहाँ मैं शीघ्र भाग चलूँ॥ ३८—४२॥

मृतं पितामहं स्वप्ने पश्यति स्वगृहागतम्।
संयोगस्तेन वार्ता च भोजनं सह मन्यते॥ ४३

प्रबुद्धः खलु जानाति स्वप्ने दृष्टं सुखासुखम्।
स्मृत्वा सर्वं जनेभ्यस्तु विस्तरात्प्रवदत्यपि॥ ४४

स्वप्ने कोऽपि न जानाति भ्रमोऽयमिति निश्चयः।
तथा तथैव विभवो मायाया दुर्गमः किल॥ ४५

नाहं नारद जानामि पारं परमदुर्घटम्।
गुणानां किल मायाया नैव शम्भुर्न पद्मजः॥ ४६

कोऽन्यो ज्ञातुं समर्थोऽभून्मानतो मन्दधीः पुनः।
मायागुणपरिज्ञानं न कस्यापि भवेदिह॥ ४७

गुणत्रयकृतं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
विना गुणैर्न संसारो वर्तते किञ्चिदप्यदः॥ ४८

अहं सत्त्वप्रधानोऽस्मि रजस्तमसमन्वितः।
न कदाचित्त्रिभिर्हीनो भवामि भुवनेश्वरः॥ ४९

तथा ब्रह्मा पिता तेऽत्र रजोमुख्यः प्रकीर्तितः।
तमःसत्त्वसमायुक्तो न ताभ्यामुज्झितः किल॥ ५०

शिवस्तथा तमोमुख्यो रजःसत्त्वसमावृतः।
गुणत्रयविहीनस्तु नैव कोऽपि मया श्रुतः॥ ५१

तस्मान्मोहो न कर्तव्यः संसारेऽस्मिन्मुनीश्वर।
मायाविनिर्मितेऽसारेऽपारे परमदुर्घटे॥ ५२

दृष्टा माया त्वयाद्यैव भुक्ता भोगा ह्यनेकशः।
किं पृच्छसि महाभाग तस्याश्चरितमद्भुतम्॥ ५३

कभी-कभी प्राणी स्वप्नमें अपने मृत पितामहको घरपर आया हुआ देखता है। वह समझता है कि मैं उनके साथ मिल रहा हूँ, बात कर रहा हूँ, भोजन कर रहा हूँ। जागनेपर वह समझ जाता है कि सुख-दु:ख-सम्बन्धी ये बातें मैंने स्वप्नमें देखी हैं। उन बातोंको याद करके वह लोगोंको विस्तारपूर्वक उनके बारेमें बताता भी है। जिस प्रकार कोई भी प्राणी स्वप्नमें यह नहीं जान पाता कि यह निश्चय ही भ्रम है, उसी प्रकार मायाका ऐश्वर्य जान पाना अत्यन्त कठिन है। हे नारद! मायाके गुणोंकी अगम्य सीमाको न तो मैं जानता हूँ और न तो शिव तथा न ब्रह्मा ही जानते हैं तो फिर मन्दबुद्धिवाला दूसरा कौन मनुष्य उसे पूर्णतः जाननेमें समर्थ हो सकता है? इस जगत्का कोई भी प्राणी मायाके गुणोंको नहीं जान सका है॥ ४३—४७॥

यह सम्पूर्ण चराचर जगत् सत्त्व, रज तथा तम—इन तीनों गुणोंके संयोगसे विरचित है। इन गुणोंके बिना यह संसार क्षणभर भी स्थित नहीं रह सकता। मैं सत्त्वगुणप्रधान हूँ; रजोगुण और तमोगुण मुझमें गौणरूपमें विद्यमान हैं। तीनों गुणोंसे रहित होनेपर मैं अखिल भुवनका नियन्ता कभी नहीं हो सकता। उसी प्रकार आपके पिता ब्रह्मा रजोगुणप्रधान कहे जाते हैं। वे सत्त्वगुण तथा तमोगुणसे भी युक्त हैं; इन दोनों गुणोंसे रहित नहीं हैं। उसी प्रकार भगवान् शंकर भी तमोगुणप्रधान हैं तथा सत्त्वगुण और रजोगुण उनमें गौणरूपसे विद्यमान हैं। मैंने ऐसे किसी प्राणीके विषयमें नहीं सुना है, जो इन तीनों गुणोंसे रहित हो॥ ४८—५१॥

अतएव हे मुनीश्वर! मायाके द्वारा विरचित, सारहीन, सीमारहित तथा परम दुर्घट इस संसारमें प्राणीको मोह नहीं करना चाहिये। आपने अभी-अभी मायाका प्रभाव देखा है; आपने अनेक प्रकारके भोगोंका उपभोग किया। तब हे महाभाग! आप उस महामायाके अद्भुत चरित्रके विषयमें मुझसे क्यों पूछ रहे हैं?॥ ५२-५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
मायाप्राबल्यवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

* * *

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना

व्यास उवाच

निशामय महाराज ब्रवीमि विशदाक्षरम्।
माहात्म्यं खलु मायाया नारदात्तु मया श्रुतम्॥ १

मया पुनर्मुनिः पृष्टो नारदः सर्ववित्तमः।
श्रुत्वा कथां मुनेस्तस्य नारीदेहसमुद्भवाम्॥ २

ब्रूहि नारद पश्चात्किं कथितं हरिणा तदा।
क्व गतश्च जगन्नाथो भवता सह माधवः॥ ३

नारद उवाच

इत्युक्त्वा भगवांस्तस्मिंस्तडागेऽतिमनोहरे।
आरुह्य गरुडं गन्तुं वैकुण्ठे च मनो दधे॥ ४

मामुवाच रमाकान्तो यथेष्टं गच्छ नारद।
एहि वा मम लोकं त्वं यथारुचि तथा कुरु॥ ५

ब्रह्मलोकं गतश्चाहमापृच्छ्य मधुसूदनम्।
भगवानपि देवेशस्तत्क्षणाद् गरुडासनः॥ ६

वैकुण्ठमगमत्तूर्णं मामादिश्य यथासुखम्।
ततोऽहं पितृसदनं गतो याते जनार्दने॥ ७

चिन्तयन्सकलं दुःखं सुखं च परमाद्भुतम्।
गत्वा प्रणम्य पितरं स्थितो यावत्पुरः पितुः॥ ८

तावत्पृष्टो मुने पित्रा वीक्ष्य चिन्तातुरं तु माम्।

ब्रह्मोवाच

क्व गतोऽसि महाभाग कस्माच्चिन्तातुरः सुत॥ ९

स्वस्थं नैवाद्य पश्यामि मनस्ते मुनिसत्तम।
केनापि वञ्चितोऽसि त्वं दृष्टं वा किञ्चिदद्भुतम्॥ १०

विषण्णं गतविज्ञानं पश्यामि त्वां कथं सुत।

नारद उवाच

इति पृष्टस्तदा पित्रा बृस्यां समुपवेश्य च॥ ११

तमब्रवं स्ववृत्तान्तं मायाबलसमुद्भवम्।
वञ्चितोऽहं पितः कामं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ १२

व्यासजी बोले—हे महाराज! मैंने नारदजीसे योगमायाके पवित्र अक्षरोंवाले जिस माहात्म्यको सुना है, उसे कहता हूँ; आप सुनें॥ १॥

महर्षि नारदकी नारी-देहसे सम्बन्धित कथा सुनकर मैंने उन सर्वज्ञशिरोमणि मुनिसे पुनः पूछा—हे नारदजी! अब आप यह बताइये कि इसके बाद भगवान् विष्णुने आपसे क्या कहा और आपके साथ वे जगत्पति लक्ष्मीकान्त कहाँ गये?॥ २-३॥

नारदजी बोले—उस अत्यन्त मनोहर सरोवरके तटपर मुझसे इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णुने गरुडपर आरूढ़ होकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थान करनेका विचार किया॥ ४॥

तदनन्तर रमापति विष्णुने मुझसे कहा—हे नारद! अब आप जहाँ जाना चाहें, जायँ। अथवा मेरे लोक चलिये। जैसी आपकी रुचि हो वैसा कीजिये॥ ५॥

इसके बाद मैं मधुसूदन श्रीविष्णुसे आज्ञा लेकर ब्रह्मलोक चला गया। गरुडासीन होकर वे देवेश भगवान् विष्णु भी मुझे आदेश देकर उसी क्षण बड़े आनन्दसे शीघ्र ही वैकुण्ठ चले गये॥ ६½॥

तत्पश्चात् श्रीविष्णुके चले जानेपर समस्त परम अद्भुत सुखों तथा दुःखोंके सम्बन्धमें विचार करता हुआ मैं अपने पिता ब्रह्माजीके भवनपर जा पहुँचा। हे मुने! वहाँ पहुँचकर पिताजीको प्रणाम करके ज्यों ही मैं उनके सामने खड़ा हुआ, तभी उन्होंने मुझे चिन्तासे व्यग्र देखकर पूछा॥ ७-८½॥

ब्रह्माजी बोले—हे महाभाग! आप कहाँ गये थे? हे सुत! आप क्यों इतने घबराये हुए हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आपका चित्त इस समय स्वस्थ नहीं दिखायी पड़ रहा है। क्या किसीने आपको धोखेमें डाल दिया है अथवा आपने कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखा है? हे पुत्र! आज मैं आपको उदास तथा विवेकसे कुण्ठित क्यों देख रहा हूँ?॥ ९-१०½॥

नारदजी बोले—पिता ब्रह्माजीके ऐसा पूछनेपर मैंने आसनपर बैठकर मायाके प्रभावसे उत्पन्न अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहा—हे पिताजी! महान् शक्तिशाली विष्णुने मुझे ठग लिया था। बहुत वर्षोंतक

स्त्रीभावं गमितः कामं वर्षाणि सुबहून्यपि।
अनुभूतं महद्दुःखं पुत्रशोकसमुद्भवम्॥ १३

प्रबोधितोऽहं तेनैव मृदुवाक्यामृतेन च।
पुनः सरोवरे स्नात्वा जातोऽहं नारदः पुमान्॥ १४

किमेतत्कारणं ब्रह्मन् यन्मोहमगमं तदा।
विस्मृतं पूर्वविज्ञानं तन्मयस्तरसा कृतः॥ १५

एतन्मायाबलं ब्रह्मन्न जानेऽहं दुरत्ययम्।
ज्ञानहानिकरं जातं मूलं मोहस्य विस्फुटम्॥ १६

अनुभूतं मया सम्यग्ज्ञातं सर्वं शुभाशुभम्।
कथं त्वं जितवांस्तात तमुपायं वदस्व मे॥ १७

नारद उवाच

विज्ञप्तोऽसौ मया धाता प्रीतिपूर्वमतः परम्।
मामुवाच स्मितं कृत्वा पिता मे वासवीसुत॥ १८

ब्रह्मोवाच

दुर्जयैषा सुरैः सर्वैर्मुनिभिश्च महात्मभिः।
तापसैर्ज्ञानयुक्तैश्च योगिभिः पवनाशनैः॥ १९

नाहं तां सर्वथा ज्ञातुं शक्तो मायां महाबलाम्।
विष्णुर्ज्ञातुं न शक्तश्च तथा शम्भुरुमापतिः॥ २०

दुर्ज्ञेया सा महामाया सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी।
कालकर्मस्वभावाद्यैर्निमित्तकारणैर्वृता ॥ २१

शोकं मा कुरु मेधाविंस्तत्र मायामहाबले।
न चैव विस्मयः कार्यो वयं सर्वे विमोहिताः॥ २२

नारद उवाच

पित्रेत्युक्तस्तदा व्यास तमापृच्छ्य गतस्मयः।
आगतोऽस्म्यत्र पश्यन्वै तीर्थानि च वराणि च॥ २३

तस्मात्त्वमपि सन्त्यज्य मोहं कौरवनाशजम्।
कालक्षयं सुखासीनः स्थानेऽस्मिन् कुरु सत्तम॥ २४

मैं स्त्रीशरीर धारण किये रहा और मैंने पुत्रशोकजनित भीषण दुःखका अनुभव किया॥ ११—१३॥

तत्पश्चात् उन्होंने ही अपने अमृतमय मधुर वचनसे मुझे समझाया और पुनः सरोवरमें स्नान करके मैं पुरुषरूप नारद हो गया॥ १४॥

हे ब्रह्मन्! उस समय मुझे जो मोह हो गया था, उसका क्या कारण है? उस समय मेरा पूर्वज्ञान विस्मृत हो गया था और मैं शीघ्र ही उन [राजा तालध्वज]-में पूर्णरूपसे अनुरक्त हो गया। हे ब्रह्मन्! मैं मायाके इस बलको दुर्लंघ्य, ज्ञानकी हानि करनेवाला तथा मोहकी विस्तृत जड़ मानता हूँ॥ १६॥

मैंने सम्पूर्ण शुभ तथा अशुभ परिस्थितियोंका अनुभव किया तथा सम्यक् प्रकारसे उनके विषयमें जाना। हे तात! आपने उस मायाको कैसे जीता है? वह उपाय मुझे भी बताइये॥ १७॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिता ब्रह्माजीसे मेरे इस प्रकार बतानेपर वे मुसकराकर मुझसे प्रेमपूर्वक कहने लगे॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—सभी देवता, मुनि, महात्मा, तपस्वी, ज्ञानी तथा वायुसेवन करनेवाले योगियोंके लिये भी यह माया कठिनतासे जीती जानेवाली है॥ १९॥

उस महाशक्तिशालिनी मायाको सम्यक् प्रकारसे जाननेमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। उसी प्रकार विष्णु तथा उमापति शंकर भी उसे जाननेमें समर्थ नहीं हैं॥ २०॥

सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली वह महामाया सभीके लिये दुर्ज्ञेय है। काल, कर्म तथा स्वभाव आदि निमित्त कारणोंसे वह सदा समन्वित है॥ २१॥

हे मेधाविन्! अपरिमित बलसे सम्पन्न इस मायाके विषयमें आप शोक न करें। इसके विषयमें किसी प्रकारका विस्मय नहीं करना चाहिये। हमलोग भी मायासे विमोहित हैं॥ २२॥

नारदजी बोले—हे व्यासजी! पिताजीके ऐसा कहनेपर मेरा विस्मय दूर हो गया। इसके बाद उनसे आज्ञा लेकर उत्तम तीर्थोंका दर्शन करता हुआ मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ॥ २३॥

अतएव हे श्रेष्ठ व्यासजी! कौरवोंके नाशसे उत्पन्न मोहका परित्याग करके आप भी इस स्थानपर सुखपूर्वक रहते हुए समय व्यतीत कीजिये॥ २४॥

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
निश्चयं हृदये कृत्वा विचरस्व यथासुखम्॥ २५

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा नारदो राजन् गतो मां प्रतिबोध्य च।
अहं तच्चिन्तयन्वाक्यं यदुक्तं मुनिना तदा॥ २६

स्थितः सरस्वतीतीरे कल्पे सारस्वते वरे।
कालातिवाहनायैतत्कृतं भागवतं मया॥ २७

पुराणमुत्तमं भूप सर्वसंशयनाशनम्।
नानाख्यानसमायुक्तं वेदप्रामाण्यसंश्रितम्॥ २८

सन्देहोऽत्र न कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम।
यथेन्द्रजालिकः कश्चित्पाञ्चालीं दारवीं करे॥ २९

कृत्वा नर्तयते कामं स्वेच्छया वशवर्तिनीम्।
तथा नर्तयते माया जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३०

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं सदेवासुरमानुषम्।
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं मनश्चित्तानुवर्तनम्॥ ३१

गुणास्तु कारणं राजन् सर्वेषां सर्वथा त्रयः।
कार्यं कारणसंयुक्तं भवतीति विनिश्चयः॥ ३२

भिन्नभिन्नस्वभावास्ते गुणा मायासमुद्भवाः।
शान्तो घोरस्तथा मूढस्त्रयस्तु विविधा यतः॥ ३३

तत्समेतः पुमान्नित्यं तद्विहीनः कथं भवेत्।
न भवत्येव संसारे रहितस्तन्तुभिः पटः॥ ३४

तथा गुणैस्त्रिभिर्हीनो न देहीति विनिश्चयः।
देवदेहो मनुष्यो वा तिरश्चो वा नराधिप॥ ३५

गुणैर्विरहितो न स्यान्मृद्विहीनो घटो यथा।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रस्त्रयश्चामी गुणाश्रयाः॥ ३६

कदाचित्प्रीतियुक्तास्ते तथाप्रीतियुताः पुनः।
तथा विषादयुक्तास्ते भवन्ति गुणयोगतः॥ ३७

किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा मनमें निश्चय करके आनन्दपूर्वक विचरण कीजिये॥ २५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! ऐसा कहकर मुझे समझानेके पश्चात् नारदजी वहाँसे चले गये। मुनि नारदने मुझसे जो वाक्य कहा था उसपर विचार करता हुआ मैं उस श्रेष्ठ सारस्वतकल्पमें सरस्वतीके तटपर ठहर गया। हे राजन्! समय व्यतीत करनेके उद्देश्यसे वहींपर मैंने सम्पूर्ण सन्देहोंको दूर करनेवाले, नानाविध आख्यानोंसे युक्त, वैदिक प्रमाणोंसे ओतप्रोत तथा पुराणोंमें उत्तम इस श्रीमद्देवीभागवतकी रचना की थी॥ २६—२८॥

हे राजेन्द्र! इसमें किसी तरहका संशय नहीं करना चाहिये। जिस प्रकार कोई इन्द्रजाल करनेवाला अपने हाथमें काठकी पुतली लेकर उसे अपने अधीन करके अपने इच्छानुसार नचाता है, उसी प्रकार यह माया चराचर जगत्को नचाती रहती है॥ २९-३०॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त जितने भी पाँच इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले देवता, मानव तथा दानव हैं; वे सभी मन तथा चित्तका अनुसरण करते हैं॥ ३१॥

हे राजन्! सत्त्व, रज तथा तम—ये तीनों गुण ही सभी कार्योंके सर्वथा कारण होते हैं। यह निश्चित है कि कोई भी कार्य किसी-न-किसी कारणसे अवश्य सम्बद्ध रहता है॥ ३२॥

मायासे उत्पन्न हुए ये तीनों गुण भिन्न-भिन्न स्वभाववाले होते हैं; क्योंकि ये तीनों गुण (क्रमशः) शान्त, घोर तथा मूढ-भेदानुसार तीन प्रकारके होते हैं॥ ३३॥

इन तीनों गुणोंसे सदा युक्त रहनेवाला प्राणी इन गुणोंसे विहीन कैसे रह सकता है? जिस प्रकार संसारमें तन्तुविहीन वस्त्रकी सत्ता नहीं हो सकती, उसी प्रकार तीनों गुणोंसे रहित प्राणीकी सत्ता नहीं हो सकती, यह पूर्णरूपेण निश्चित है। हे नरेश! जिस प्रकार मिट्टीके बिना घटका होना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार देवता, मानव अथवा पशु-पक्षी भी गुणोंके बिना नहीं रह सकते। यहाँतक कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये तीनों भी इन गुणोंके आश्रित रहते हैं। गुणोंका संयोग होनेसे ही वे कभी प्रसन्न रहते हैं, कभी अप्रसन्न रहते हैं तथा कभी विषादग्रस्त हो जाते हैं॥ ३४—३७॥

ब्रह्मा कदाचित्सत्त्वस्थस्तदा शान्तः समाधिमान्।
प्रीतियुक्तो भवेत्सर्वभूतेषु ज्ञानसंयुतः॥ ३८

पुनः सत्त्वविहीनस्तु रजोगुणसमावृतः।
तदा भवेद् घोररूपः सर्वत्राप्रीतिसंयुतः॥ ३९

यदा तमोगुणाविष्टो बाहुल्येन भवेद्विधिः।
तदा विषादसम्पन्नो मूढो भवति नान्यथा॥ ४०

माधवोऽपि सदा सत्त्वसंश्रितः सर्वथा भवेत्।
यदा शान्तः प्रीतियुक्तो भवेज्ज्ञानसमन्वितः॥ ४१

स एव रजआधिक्यादप्रीतिसंयुतो भवेत्।
घोरश्च सर्वभूतेषु गुणाधीनो रमापतिः॥ ४२

रुद्रोऽपि सत्त्वसंयुक्तः प्रीतिमाञ्छान्तिमान्भवेत्।
रजोनिमीलितः सोऽपि घोरः प्रीतिविवर्जितः॥ ४३

तमोगुणयुतः सोऽपि मूढो विषादयुग्भवेत्।
एते यदि गुणाधीना ब्रह्मविष्णुहरादयः॥ ४४

सूर्यवंशोद्भवास्तद्वत्सोमवंशभवा अपि।
मन्वादयश्च ये प्रोक्ताश्चतुर्दश युगे युगे॥ ४५

अन्येषां चैव का वार्ता संसारेऽस्मिन्नृपोत्तम।
मायाधीनं जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ४६

तस्माद् राजन्न कर्तव्यः सन्देहोऽत्र कदाचन।
देही मायापराधीनश्चेष्टते तद्वशानुगः॥ ४७

सा च माया परे तत्त्वे संविद्रूपेऽपि सर्वदा।
तदधीना प्रेरिता च तेन जीवेषु सर्वदा॥ ४८

ततो मायाविशिष्टां तां संविदं परमेश्वरीम्।
मायेश्वरीं भगवतीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ४९

ध्यायेत्तथाराधयेच्च प्रणमेच्च जपेदपि।
तेन सा सदया भूत्वा मोचयत्येव देहिनम्॥ ५०

जब ब्रह्मा सत्त्वगुणमें स्थित रहते हैं तब वे शान्त, समाधिस्थ, ज्ञानसम्पन्न तथा सभी प्राणियोंके प्रति प्रेमसे युक्त हो जाते हैं। वे ही जब सत्त्वगुणसे विहीन होकर रजोगुणकी अधिकतासे युक्त होते हैं, तब उनका रूप भयावह हो जाता है और वे सबके प्रति अप्रीतिकी भावनासे युक्त हो जाते हैं। वे ही ब्रह्मा जब तमोगुणकी अधिकतासे आविष्ट हो जाते हैं, तब वे विषादग्रस्त तथा मूढ़ हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है॥ ३८—४०॥

सदा सत्त्वगुणमें स्थित रहनेवाले विष्णु इसी गुणके कारण शान्त, प्रीतिमान् तथा ज्ञानसम्पन्न रहते हैं। वे ही रमापति विष्णु रजोगुणकी अधिकताके कारण अप्रीतिसे युक्त हो जाते हैं और तमोगुणके अधीन होकर सभी प्राणियोंके लिये घोररूप हो जाते हैं॥ ४१-४२॥

इसी प्रकार रुद्र भी सत्त्वगुणसे युक्त होनेपर प्रेम तथा शान्तिसे समन्वित रहते हैं, किंतु रजोगुणसे आविष्ट होनेपर वे भी भयानक तथा प्रेमविहीन हो जाते हैं। इसी तरह तमोगुणसे आविष्ट होनेपर वे रुद्र मूढ तथा विषादग्रस्त हो जाते हैं॥ ४३½॥

हे नृपश्रेष्ठ! यदि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि तथा युग-युगमें जो सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी चौदहों मनु कहे गये हैं—वे भी गुणोंके अधीन रहते हैं, तब इस संसारमें अन्य लोगोंकी कौन-सी बात? देवता, दानव तथा मानवसमेत यह सम्पूर्ण जगत् मायाका वशवर्ती है॥ ४४—४६॥

अतएव हे राजन्! इस विषयमें कदापि सन्देह नहीं करना चाहिये। प्राणी मायाके अधीन है और वह उसीके वशवर्ती होकर चेष्टा करता है॥ ४७॥

वह माया भी सदा संविद्‌रूप परमतत्त्वमें स्थित रहती है। वह उसीके अधीन रहती हुई उसीसे प्रेरित होकर जीवोंमें सदा मोहका संचार करती है॥ ४८॥

अतः विशिष्टमायास्वरूपा, प्रज्ञामयी, परमेश्वरी, मायाकी अधिष्ठात्री, सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान, पूजन, वन्दन तथा जप करना चाहिये। उससे वे भगवती प्राणीपर दया करके उसे मुक्त कर देती हैं और अपनी अनुभूति कराकर अपनी

स्वमायां संहरत्येव स्वानुभूतिप्रदानतः।
भुवनं खलु माया स्यादीश्वरी तस्य नायिका॥ ५१

भुवनेशी ततः प्रोक्ता देवी त्रैलोक्यसुन्दरी।
तद्रूपे यदि सक्तं स्याच्चित्तं भूमिपते सदा॥ ५२

मायया किं भवेत्तत्र सदसद्भूतया नृप।
तस्मान्मायानिरासार्थं नान्यद्वै देवतान्तरम्॥ ५३

समर्थं तु विना देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
तमोराशिं नाशयितुं शक्तं नैव तमो भवेत्॥ ५४

किन्तु भानुप्रभाचन्द्रविद्युद्वह्निप्रभादयः।
तस्मान्मायेश्वरीमम्बां स्वप्रकाशां तु संविदम्॥ ५५

आराधयेदतिप्रीत्या मायागुणनिवृत्तये।
इति सम्यङ्मयाख्यातं वृत्रासुरवधादिकम्॥ ५६

यत्पृष्टं राजशार्दूल किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।
पूर्वार्धोऽयं पुराणस्य कथितस्तव सुव्रत॥ ५७

यत्र देव्यास्तु महिमा विस्तरेणोपपादितः।
एतद्रहस्यं श्रीमातुर्न देयं यस्य कस्यचित्॥ ५८

देयं भक्ताय शान्ताय देवीभक्तिरताय च।
शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय गुरुभक्तियुताय च॥ ५९

इदमखिलकथानां सारभूतं पुराणं
निखिलनिगमतुल्यं सप्रमाणानुविद्धम्।
पठति परमभावाद्यः शृणोतीह भक्त्या
स भवति धनवान्वै ज्ञानवान्मानवोऽत्र॥ ६०

मायाको हर लेती हैं। समस्त भुवन मायारूप है तथा वे ईश्वरी उसकी नायिका हैं। इसीलिये त्रैलोक्यसुन्दरी भगवतीको 'भुवनेशी' कहा गया है। हे पृथ्वीपते! यदि उन भगवतीके रूपमें चित्त सदा आसक्त हो जाय तो सत्-असत्स्वरूपा माया अपना क्या प्रभाव डाल सकती है? अतः हे राजन्! सच्चिदानन्दरूपिणी भगवती परमेश्वरीको छोड़कर अन्य कोई भी देवता उस मायाको दूर करनेमें समर्थ नहीं है॥ ४९—५३½॥

एक अन्धकार किसी दूसरे अन्धकारको दूर करनेमें समर्थ नहीं हो सकता; किंतु सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् तथा अग्नि आदिकी प्रभा उस अन्धकारको मिटा देती है। अतएव मायाके गुणोंसे निवृत्ति प्राप्त करनेके लिये प्रसन्नतापूर्वक स्वयंप्रकाशित तथा ज्ञानस्वरूपिणी भगवती मायेश्वरीकी आराधना करनी चाहिये॥ ५४-५५½॥

हे राजेन्द्र! वृत्रासुर-वध आदिकी कथाके विषयमें आपने जो पूछा था, उसका वर्णन मैंने भलीभाँति कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५६½॥

हे सुव्रत! श्रीमद्देवीभागवतपुराणका पूर्वार्ध मैंने आपसे कहा, जिसमें देवीकी महिमाका विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। भगवती जगदम्बाका यह रहस्य जिस किसीको नहीं सुना देना चाहिये। भक्त, शान्त, देवीकी भक्तिमें लीन, ज्येष्ठ पुत्र तथा गुरुभक्तिसे युक्त शिष्यके समक्ष ही इसका वर्णन करना चाहिये॥ ५७—५९॥

इस संसारमें जो मनुष्य सम्पूर्ण कथाओंके सारस्वरूप, समस्त वेदोंकी तुलना करनेवाले तथा नानाविध प्रमाणोंसे परिपूर्ण इस श्रीमद्देवीभागवतपुराणका विशेष श्रद्धाके साथ भक्तिपूर्वक पाठ करता है तथा इसका श्रवण करता है, वह ऐश्वर्यसम्पन्न तथा ज्ञानवान् हो जाता है॥ ६०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां षष्ठस्कन्धे
भगवतीमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

◆

॥ षष्ठः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण पूर्वार्ध सम्पूर्णम्॥

◆

॥ श्रीहरिः ॥

1898

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

1898

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध ७ से १२ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०६७ प्रथम संस्करण १०,०००

❖ मूल्य—१५० रु०
(एक सौ पचास रुपये)

प्रकाशक एवं मुद्रक—

गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : (०५५१) २३३४७२१, २३३१२५०; फैक्स : (०५५१) २३३६९९७
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

सप्तम स्कन्ध

१-पितामह ब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको सन्तानोत्पत्तिसे विरत करना और दक्षका उन्हें शाप देना, दक्षकन्याओंसे देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति ९
२-सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा १२
३-सुकन्याका च्यवनमुनिके साथ विवाह .. १८
४-सुकन्याकी पतिसेवा तथा वनमें अश्विनीकुमारोंसे भेंटका वर्णन २४
५-अश्विनीकुमारोंका च्यवनमुनिको नेत्र तथा नवयौवनसे सम्पन्न बनाना................ २९
६-राजा शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिका अश्विनीकुमारोंको सोमरस देना ३५
७-क्रुद्ध इन्द्रका विरोध करना; परंतु च्यवनके प्रभावको देखकर शान्त हो जाना, शर्यातिके बादके सूर्यवंशी राजाओंका विवरण..... ४१
८-राजा रेवतकी कथा ४५
९-सूर्यवंशी राजाओंके वर्णनके क्रममें राजा ककुत्स्थ, युवनाश्व और मान्धाताकी कथा ५०
१०-सूर्यवंशी राजा अरुणद्वारा राजकुमार सत्यव्रतका त्याग, सत्यव्रतका वनमें भगवती जगदम्बाके मन्त्र-जपमें रत होना........ ५६
११-भगवती जगदम्बाकी कृपासे सत्यव्रतका राज्याभिषेक और राजा अरुणद्वारा उन्हें नीतिशास्त्रकी शिक्षा देना ६१
१२-राजा सत्यव्रतको महर्षि वसिष्ठका शाप तथा युवराज हरिश्चन्द्रका राजा बनना. ६५
१३-राजर्षि विश्वामित्रका अपने आश्रममें आना और सत्यव्रतद्वारा किये गये उपकारको जानना ७१
१४-विश्वामित्रका सत्यव्रत (त्रिशंकु)-को सशरीर स्वर्ग भेजना, वरुणदेवकी आराधनासे राजा हरिश्चन्द्रको पुत्रकी प्राप्ति.. ७६
१५-प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेसे वरुणका क्रुद्ध होना और राजा हरिश्चन्द्रको जलोदरग्रस्त होनेका शाप देना.................................... ८१
१६-राजा हरिश्चन्द्रका शुन:शेपको स्तम्भमें बाँधकर यज्ञ प्रारम्भ करना ८७
१७-विश्वामित्रका शुन:शेपको वरुणमन्त्र देना और उसके जपसे वरुणका प्रकट होकर उसे बन्धनमुक्त तथा राजाको रोगमुक्त करना, राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसासे विश्वामित्रका वसिष्ठपर क्रोधित होना.. ९३
१८-विश्वामित्रका मायाशूकरके द्वारा हरिश्चन्द्रके उद्यानको नष्ट कराना ९८
१९-विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर राजा हरिश्चन्द्रका राज्यदान करना...... १०३
२०-हरिश्चन्द्रका दक्षिणा देनेहेतु स्वयं, रानी और पुत्रको बेचनेके लिये काशी जाना १०९
२१-विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगना और रानीका अपनेको विक्रयहेतु प्रस्तुत करना ११३
२२-राजा हरिश्चन्द्रका रानी और राजकुमारका विक्रय करना और विश्वामित्रको ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देना तथा विश्वामित्रका और अधिक धनके लिये आग्रह करना.................................. ११६

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

२३-विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचकर ऋणमुक्त करना............ १२१
२४-चाण्डालका राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानघाटमें नियुक्त करना................................ १२५
२५-सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु, रानीका करुण विलाप, पहरेदारोंका रानीको राक्षसी समझकर चाण्डालको सौंपना और चाण्डालका हरिश्चन्द्रको उसके वधकी आज्ञा देना १२७
२६-रानीका चाण्डालवेशधारी राजा हरिश्चन्द्रसे अनुमति लेकर पुत्रके शवको लाना और करुण विलाप करना, राजाका पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित होना और विलाप करना १३५
२७-चिता बनाकर राजाका रोहितको उसपर लिटाना और राजा-रानीका भगवतीका ध्यानकर स्वयं भी पुत्रकी चितामें जल जानेको उद्यत होना, ब्रह्माजीसहित समस्त देवताओंका राजाके पास आना, इन्द्रका अमृत-वर्षा करके रोहितको जीवित करना और राजा-रानीसे स्वर्ग चलनेके लिये आग्रह करना, राजाका सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग जानेका निश्चय.............. १४२
२८-दुर्गम दैत्यकी तपस्या; वर-प्राप्ति तथा अत्याचार, देवताओंका भगवतीकी प्रार्थना करना, भगवतीका शताक्षी और शाकम्भरीरूपमें प्राकट्य, दुर्गमका वध और देवगणोंद्वारा भगवतीकी स्तुति १४६
२९-व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उनसे उन्हींकी आराधना करनेको कहना, भगवान् शंकर और विष्णुके अभिमानको देखकर गौरी तथा लक्ष्मीका अन्तर्धान होना और शिव तथा विष्णुका शक्तिहीन होना........... १५३

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

३०-शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा तथा उनके नाम एवं उनका माहात्म्य................ १५७
३१-तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भगवतीका हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देना.... १६५
३२-देवीगीताके प्रसंगमें भगवतीका हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका वर्णन....... १७२
३३-भगवतीका अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए विराट्रूप प्रकट करना, भयभीत देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न भगवतीका पुन: सौम्यरूप धारण करना............. १७७
३४-भगवतीका हिमालय तथा देवताओंसे परमपदकी प्राप्तिका उपाय बताना....... १८२
३५-भगवतीद्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा कुण्डलीजागरणकी विधि बताना................................ १८७
३६-भगवतीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन........................ १९२
३७-भगवतीद्वारा अपनी श्रेष्ठ भक्तिका वर्णन.. १९६
३८-भगवतीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों तथा उत्सवोंका वर्णन............................ २००
३९-देवी-पूजनके विविध प्रकारोंका वर्णन.. २०४
४०-देवीकी पूजा-विधि तथा फलश्रुति २०९

अष्टम स्कन्ध

१-प्रजाकी सृष्टिके लिये ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मनुका देवीकी आराधना करना तथा देवीका उन्हें वरदान देना................. २१३
२-ब्रह्माजीकी नासिकासे वराहके रूपमें भगवान् श्रीहरिका प्रकट होना और पृथ्वीका उद्धार करना, ब्रह्माजीका उनकी स्तुति करना. २१७
३-महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन. २२१
४-महाराज प्रियव्रतका आख्यान तथा समुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्तिका प्रसंग........... २२३

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

५-भूमण्डलपर स्थित विभिन्न द्वीपों और वर्षोंका संक्षिप्त परिचय २२५
६-भूमण्डलके विभिन्न पर्वतोंसे निकलनेवाली विभिन्न नदियोंका वर्णन २२८
७-सुमेरुपर्वतका वर्णन तथा गंगावतरणका आख्यान २३०
८-इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी आराधना तथा भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाद्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना २३३
९-हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी आराधना, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी तथा रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना २३६
१०-हिरण्मयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी आराधना, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीद्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना २४०
११-जम्बूद्वीपस्थित भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासना तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन २४३
१२-प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीपका वर्णन २४७
१३-क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीपका वर्णन .. २५०
१४-लोकालोकपर्वतका वर्णन २५३
१५-सूर्यकी गतिका वर्णन २५५
१६-चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतिका वर्णन २५९
१७-शिशुमारचक्र तथा ध्रुवमण्डलका वर्णन २६२
१८-राहुमण्डलका वर्णन २६४
१९-अतल, वितल तथा सुतललोकका वर्णन २६७
२०-तलातल, महातल, रसातल और पाताल तथा भगवान् अनन्तका वर्णन २७०
२१-देवर्षि नारदद्वारा भगवान् अनन्तकी महिमाका गान तथा नरकोंकी नामावली २७३
२२-विभिन्न नरकोंका वर्णन २७६
२३-नरक प्रदान करनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन २८०
२४-देवीकी उपासनाके विविध प्रसंगोंका वर्णन २८३

नवम स्कन्ध

१-प्रकृतितत्त्वविमर्श; प्रकृतिके अंश, कला एवं कलांशसे उत्पन्न देवियोंका वर्णन . २८९
२-परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन . ३०१
३-परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे प्रकट विराट्‌रूप बालकका वर्णन ३०८
४-सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच ३१३
५-याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति ३२१
६-लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना ३२४
७-भगवान् नारायणका गंगा, लक्ष्मी और सरस्वतीसे उनके शापकी अवधि बताना तथा अपने भक्तोंके महत्त्वका वर्णन करना ३३०
८-कलियुगका वर्णन, परब्रह्म परमात्मा एवं शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिकी कृपासे त्रिदेवों तथा देवियोंके प्रभावका वर्णन और गोलोकमें राधा-कृष्णका दर्शन ३३५
९-पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा उनकी स्तुति ३४५
१०-पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन........ ३५१
११-गंगाकी उत्पत्ति एवं उनका माहात्म्य ... ३५४
१२-गंगाके ध्यान एवं स्तवनका वर्णन, गोलोकमें श्रीराधा-कृष्णके अंशसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा ३६०

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

१३-श्रीराधाजीके रोषसे भयभीत गंगाका श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शरण लेना, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गंगाका प्रकट होना ३६७
१४-गंगाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग ३७९
१५-तुलसीके कथा-प्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन ३८२
१६-वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् श्रीरामके चरित्रके एक अंशका कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त ३८६
१७-भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग..... ३९२
१८-तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़का दर्शन, ब्रह्माजीका शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिये आदेश देना ३९६
१९-तुलसीके साथ शंखचूड़का गान्धर्व-विवाह, शंखचूड़से पराजित और निर्वासित देवताओंका ब्रह्मा तथा शंकरजीके साथ वैकुण्ठधाम जाना, श्रीहरिका शंखचूड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना.............................. ४०५
२०-पुष्पदन्तका शंखचूड़के पास जाकर भगवान् शंकरका सन्देश सुनाना, युद्धकी बात सुनकर तुलसीका सन्तप्त होना और शंखचूड़का उसे ज्ञानोपदेश देना......... ४१३
२१-शंखचूड़ और भगवान् शंकरका विशद वार्तालाप ४१९
२२-कुमार कार्तिकेय और भगवती भद्रकालीसे शंखचूड़का भयंकर युद्ध और आकाशवाणीका पाशुपतास्त्रसे शंखचूड़की अवध्यताका कारण बताना ४२७
२३-भगवान् शंकर और शंखचूड़का युद्ध, भगवान् श्रीहरिका वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें शंखचूड़से कवच माँग लेना तथा शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे हास-विलास करना, शंखचूड़का भस्म होना और सुदामागोपके रूपमें गोलोक पहुँचना ४३३
२४-शंखचूड़रूपधारी श्रीहरिका तुलसीके भवनमें जाना, तुलसीका श्रीहरिको पाषाण होनेका शाप देना, तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण एवं माहात्म्यका वर्णन. ४३६
२५-तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन....................... ४४५
२६-सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान... ४४९
२७-भगवती सावित्रीकी उपासनासे राजा अश्वपतिको सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति, सत्यवान्के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद ४५७
२८-सावित्री-यमराज-संवाद ४५९
२९-सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर और धर्मराजद्वारा सावित्रीको वरदान.......... ४६२
३०-दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंका वर्णन ४६८
३१-सावित्रीका यमाष्टकद्वारा धर्मराजका स्तवन ४७९
३२-धर्मराजका सावित्रीको अशुभ कर्मोंके फल बताना................................. ४८१
३३-विभिन्न नरककुण्डोंमें जानेवाले पापियों तथा उनके पापोंका वर्णन................ ४८३
३४-विभिन्न पापकर्म तथा उनके कारण प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन.......... ४९५
३५-विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाली विभिन्न योनियोंका वर्णन.............. ५०३
३६-धर्मराजद्वारा सावित्रीसे देवोपासनासे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलोंको कहना..... ५०८
३७-विभिन्न नरककुण्ड तथा वहाँ दी जानेवाली यातनाका वर्णन ५११

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

३८-धर्मराजका सावित्रीसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उसके पतिको जीवनदान देना ५२३
३९-भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य, समस्त देवताओंद्वारा उनका पूजन.............. ५३१
४०-दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना ५३४
४१-ब्रह्माजीका इन्द्र तथा देवताओंको साथ लेकर श्रीहरिके पास जाना, श्रीहरिका उनसे लक्ष्मीके रुष्ट होनेके कारणोंको बताना, समुद्रमन्थन तथा उससे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव ५४२
४२-इन्द्रद्वारा भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन एवं स्तवन ५४८
४३-भगवती स्वाहाका उपाख्यान............. ५५४
४४-भगवती स्वधाका उपाख्यान ५५९
४५-भगवती दक्षिणाका उपाख्यान ५६३
४६-भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा...................... ५७१
४७-भगवती मंगलचण्डी तथा भगवती मनसाका आख्यान ५७८
४८-भगवती मनसाका पूजन-विधान, मनसापुत्र आस्तीकका जनमेजयके सर्पसत्रमें नागोंकी रक्षा करना, इन्द्रद्वारा मनसादेवीका स्तवन करना ५८२
४९-आदि गौ सुरभिदेवीका आख्यान......... ५९५
५०-भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन ५९८

दशम स्कन्ध

१-स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना....................... ६०७
२-देवीद्वारा मनुको वरदान, नारदजीका विन्ध्यपर्वतसे सुमेरुपर्वतकी श्रेष्ठता कहना.. ६०९
३-विन्ध्यपर्वतका आकाशतक बढ़कर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध कर लेना........ ६११
४- देवताओंका भगवान् शंकरसे विन्ध्य-पर्वतकी वृद्धि रोकनेकी प्रार्थना करना और शिवजीका उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेजना.. ६१४
५-देवताओंका वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करना ६१६
६-भगवान् विष्णुका देवताओंको काशीमें अगस्त्यजीके पास भेजना, देवताओंकी अगस्त्यजीसे प्रार्थना ६१८
७-अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना.. ६२१
८-स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक मनुओंका वर्णन............................. ६२३
९-चाक्षुष मनुकी कथा, उनके द्वारा देवीकी आराधनाका वर्णन ६२५
१०-वैवस्वत मनुका भगवतीकी कृपासे मन्वन्तराधिप होना, सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथा ६२८
११-सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथाके प्रसंगमें मधु-कैटभकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुद्वारा उनके वधका वर्णन ६३०
१२-समस्त देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका प्राकट्य और उनके द्वारा महिषासुरका वध, शुम्भ-निशुम्भका अत्याचार और देवीद्वारा चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध ६३४
१३-मनुपुत्रोंकी तपस्या, भगवतीका उन्हें मन्वन्तराधिपति होनेका वरदान देना, दैत्यराज अरुणकी तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान, देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और भगवतीका भ्रामरीके रूपमें अवतार लेकर अरुणका वध करना ६४१

अध्याय विषय पृष्ठ-संख्या

एकादश स्कन्ध

१-भगवान् नारायणका नारदजीसे देवीको प्रसन्न करनेवाले सदाचारका वर्णन ६५३
२-शौचाचारका वर्णन........................ ६५८
३-सदाचार-वर्णन और रुद्राक्ष-धारणका माहात्म्य........................ ६६२
४-रुद्राक्षकी उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन ६६६
५-जपमालाका स्वरूप तथा रुद्राक्ष-धारणका विधान........................ ६६९
६-रुद्राक्षधारणकी महिमाके सन्दर्भमें गुणनिधिका उपाख्यान..................... ६७३
७-विभिन्न प्रकारके रुद्राक्ष और उनके अधिदेवता........................ ६७७
८-भूतशुद्धि........................ ६८१
९-भस्म-धारण (शिरोव्रत).................. ६८३
१०-भस्म-धारणकी विधि ६८७
११-भस्मके प्रकार........................ ६९०
१२-भस्म न धारण करनेपर दोष ६९३
१३-भस्म तथा त्रिपुण्ड्र-धारणका माहात्म्य ६९७
१४-भस्मस्नानका महत्त्व ७००
१५-भस्म-माहात्म्यके सम्बन्धमें दुर्वासामुनि और कुम्भीपाकस्थ जीवोंका आख्यान, ऊर्ध्वपुण्ड्रका माहात्म्य ७०६
१६-सन्ध्योपासना तथा उसका माहात्म्य..... ७१६
१७-गायत्री-महिमा ७२६
१८-भगवतीकी पूजा-विधिका वर्णन, अन्नपूर्णा-देवीके माहात्म्यमें राजा बृहद्रथका आख्यान........................ ७३०
१९-मध्याह्नसन्ध्या तथा गायत्रीजपका फल . ७३६
२०-तर्पण तथा सायंसन्ध्याका वर्णन ७३८
२१-गायत्रीपुरश्चरण और उसका फल ७४२
२२-बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधि ७४७
२३-कृच्छ्रचान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन........................ ७५१
२४-कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग.................... ७५७

द्वादश स्कन्ध

१-गायत्रीजपका माहात्म्य तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द आदिका वर्णन........................ ७६७
२-गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी शक्तियों, रंगों एवं मुद्राओंका वर्णन................ ७६९
३-श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन........................ ७७०
४-गायत्रीहृदय तथा उसका अंगन्यास...... ७७२
५-गायत्रीस्तोत्र तथा उसके पाठका फल.. ७७४
६-गायत्रीसहस्रनामस्तोत्र तथा उसके पाठका फल........................ ७७६
७-दीक्षाविधि........................ ८००
८-देवताओंका विजयगर्व तथा भगवती उमाद्वारा उसका भंजन, भगवती उमाका इन्द्रको दर्शन देकर ज्ञानोपदेश देना..... ८१३
९-भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतमके द्वारा अनेक ब्राह्मण-परिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान ८२०
१०-मणिद्वीपका वर्णन ८२९
११-मणिद्वीपके रत्नमय नौ प्राकारोंका वर्णन ८३७
१२-भगवती जगदम्बाके मण्डपका वर्णन तथा मणिद्वीपकी महिमा.................. ८४५
१३-राजा जनमेजयद्वारा अम्बायज्ञ और श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका माहात्म्य .. ८५१
१४-श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणकी महिमा..... ८५४
१५-श्रीदुर्गायन्त्रम् [रेखाचित्र]................. ८५७
१६-श्रीगायत्रीयन्त्रम् (क) [रेखाचित्र]....... ८५८
१७-श्रीगायत्रीयन्त्रम् (ख) [रेखाचित्र] ८५९
१८-सप्तश्लोकी दुर्गा ८६०
१९-देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्.................. ८६१
२०-श्रीदुर्गाजीकी आरती ८६४

* * *

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[उत्तरार्ध]

सप्तमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

पितामह ब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको सन्तानोत्पत्तिसे विरत करना और दक्षका उन्हें शाप देना, दक्षकन्याओंसे देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति

सूत उवाच

श्रुत्वैतां तापसाद्दिव्यां कथां राजा मुदान्वितः।
व्यासं पप्रच्छ धर्मात्मा परीक्षितसुतः पुनः॥ १

जनमेजय उवाच

स्वामिन् सूर्यान्वयानां च राज्ञां वंशस्य विस्तरम्।
तथा सोमान्वयानां च श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ २

कथयानघ सर्वज्ञ कथां पापप्रणाशिनीम्।
चरितं भूपतीनां च विस्तराद्वंशयोर्द्वयोः॥ ३

ते हि सर्वे पराशक्तिभक्ता इति मया श्रुतम्।
देवीभक्तस्य चरितं शृण्वन्कोऽस्ति विरक्तिभाक्॥ ४

इति राजर्षिणा पृष्टो व्यासः सत्यवतीसुतः।
तमुवाच मुनिश्रेष्ठः प्रसन्नवदनो मुनिः॥ ५

व्यास उवाच

निशामय महाराज विस्तराद् गदतो मम।
सोमसूर्यान्वयानां च तथान्येषां समुद्भवम्॥ ६

विष्णोर्नाभिसरोजाद्वै ब्रह्माभूच्चतुराननः।
तपस्तप्त्वा समाराध्य महादेवीं सुदुर्गमाम्॥ ७

तया दत्तवरो धाता जगत्कर्तुं समुद्यतः।
नाशकन्मानुषीं सृष्टिं कर्तुं लोकपितामहः॥ ८

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तपस्वी व्यासजीसे यह दिव्य कथा सुनकर परीक्षित्‌के पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा॥ १॥

जनमेजय बोले—हे स्वामिन्! मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विस्तृत वर्णन सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ॥ २॥

हे पुण्यात्मन्! हे सर्वज्ञ! आप उन राजाओंके चरित्र तथा उनके दोनों वंशोंसे सम्बन्धित उस पापनाशिनी कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

मैंने ऐसा सुना है कि वे सभी पराशक्ति जगदम्बाके महान् भक्त थे; अतः देवीभक्तका चरित्र सुननेसे भला कौन विमुख होना चाहेगा?॥ ४॥

राजर्षि जनमेजयके ऐसा पूछनेपर प्रसन्न मुखमण्डलवाले सत्यवतीनन्दन मुनि व्यासने उनसे कहा॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! अब मैं सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अन्य वंशोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित कथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, आप सुनिये॥ ६॥

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने घोर तपस्या करके अत्यन्त कठिनतापूर्वक प्राप्त होनेवाली महादेवीकी आराधना की॥ ७॥

उन भगवतीसे वरदान प्राप्त करके ब्रह्माजी जगत्‌की रचना करनेमें प्रवृत्त हुए, किंतु लोकपितामह ब्रह्माजी मानवी सृष्टि कर पानेमें सफल नहीं हुए॥ ८॥

विचिन्त्य बहुधा चित्ते सृष्ट्यर्थं चतुराननः।
न विस्तारं जगामाशु रचितापि महात्मना॥ ९

(ससर्ज मानसान्पुत्रान्सप्तसंख्यान्प्रजापतिः।)
मरीचिरङ्गिरात्रिश्च वसिष्ठः पुलहः क्रतुः।
पुलस्त्यश्चेति विख्याताः सप्तैते मानसाः सुताः॥ १०

रुद्रो रोषात्समुत्पन्नोऽप्युत्सङ्गान्नारदोऽभवत्।
दक्षोऽङ्गुष्ठात्तथान्येऽपि मानसाः सनकादयः॥ ११

वामाङ्गुष्ठाद्दक्षपत्नी जाता सर्वाङ्गसुन्दरी।
वीरिणी नाम विख्याता पुराणेषु महीपते॥ १२

असिक्नीति च नाम्ना सा यस्यां जातोऽथ नारदः।
देवर्षिप्रवरः कामं ब्रह्मणो मानसः सुतः॥ १३

जनमेजय उवाच

अत्र मे संशयो ब्रह्मन् यदुक्तं भवता वचः।
वीरिण्यां नारदो जातो दक्षादिति महातपाः॥ १४

कथं दक्षस्य पत्न्यां तु वीरिण्यां नारदो मुनिः।
जातो हि ब्रह्मणः पुत्रो धर्मज्ञस्तापसोत्तमः॥ १५

विचित्रमिदमाख्यातं भवता नारदस्य च।
दक्षाज्जन्मास्य भार्यायां तद्वदस्व सविस्तरम्॥ १६

पूर्वदेहः कथं मुक्तः शापात्कस्य महात्मना।
नारदेन बहुज्ञेन कस्माज्जन्म कृतं मुने॥ १७

व्यास उवाच

ब्रह्मणासौ समादिष्टो दक्षः सृष्ट्यर्थमादितः।
प्रजाः सृजेति सुभृशं वृद्धिहेतोः स्वयम्भुवा॥ १८

ततः पञ्चसहस्रांश्च जनयामास वीर्यवान्।
दक्षः प्रजापतिः पुत्रान्वीरिण्यां बलवत्तरान्॥ १९

ब्रह्माजीके मनमें सृष्टिके लिये अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए, किंतु वे महात्मा अपनी रचनाको शीघ्र विस्तार प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ९॥

(तत्पश्चात् प्रजापति ब्रह्माजीने अपने सात मानस पुत्रोंका सृजन किया।) मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन नामोंसे उन सात मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई॥ १०॥

ब्रह्माजीके रोषसे रुद्र उत्पन्न हुए तथा उनकी गोदसे नारदजीका प्राकट्य हुआ। अँगूठेसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए। इसी प्रकार सनक आदि अन्य मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई॥ ११॥

बायें हाथके अँगूठेसे समस्त सुन्दर अंगोंवाली दक्षपत्नीका प्रादुर्भाव हुआ। हे राजन्! वे पुराणोंमें 'वीरिणी' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

वे असिक्नी नामसे भी विख्यात हैं और उन्हींसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र देवर्षिश्रेष्ठ नारदजीका प्रादुर्भाव हुआ है॥ १३॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! अभी-अभी आपने जो बात कही है कि महान् तपस्वी नारदजी दक्षसे तथा वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस विषयमें मुझे सन्देह हो रहा है॥ १४॥

धर्मके पूर्ण ज्ञाता तथा तपस्वियोंमें श्रेष्ठ नारदमुनि तो ब्रह्माके मानस पुत्र हैं तो फिर वे दक्षपत्नी वीरिणीसे किस प्रकार उत्पन्न हुए?॥ १५॥

आपके द्वारा कथित यह वार्ता अत्यन्त विस्मयमें डालनेवाली है। दक्षसे तथा उनकी भार्या 'वीरिणी' से इन नारदजीके जन्मके विषयमें आप मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १६॥

हे मुने! विपुल ज्ञान रखनेवाले महात्मा नारदजीने किसके शापसे अपने पूर्व शरीरका त्याग करके किसलिये फिरसे जन्म धारण किया?॥ १७॥

व्यासजी बोले—स्वयम्भू ब्रह्माजीने सबसे पहले दक्षप्रजापतिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी और कहा कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे प्रजाकी अधिकाधिक वृद्धि हो सके॥ १८॥

तब दक्षप्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये॥ १९॥

दृष्ट्वा तान्नारदः पुत्रान्सर्वान्वर्धयिषून्प्रजाः।
उवाच प्रहसन्वाचं देवर्षिः कालनोदितः॥ २०

भुवः प्रमाणमज्ञात्वा स्त्रष्टुकामाः प्रजाः कथम्।
लोकानां हास्यतां यूयं गमिष्यथ न संशयः॥ २१

पृथिव्या वै प्रमाणं तु ज्ञात्वा कार्यः समुद्यमः।
कृतोऽसौ सिद्धिमायाति नान्यथेति विनिश्चयः॥ २२

बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवस्तलम्।
समुद्यताः प्रजाः कर्तुं कथं सिद्धिर्भविष्यति॥ २३

व्यास उवाच

नारदेनैवमुक्तास्ते हर्यश्वा दैवयोगतः।
अन्योन्यमूचुः सहसा सम्यगाह मुनिः किल॥ २४

ज्ञात्वा प्रमाणमुर्व्यास्तु सुखं स्त्रक्ष्यामहे प्रजाः।
इति सञ्चिन्त्य ते सर्वे प्रयाताः प्रेक्षितुं भुवः॥ २५

तलं सर्वं परिज्ञातुं वचनान्नारदस्य च।
प्राच्यां केचिद् गताः कामं दक्षिणस्यां तथापरे॥ २६

प्रतीच्यामुत्तरस्यां तु कृतोत्साहाः समन्ततः।
दक्षः पुत्रान्गतान्दृष्ट्वा पीडितस्तु शुचा भृशम्॥ २७

अन्यानुत्पादयामास प्रजार्थं कृतनिश्चयः।
तेऽपि तत्रोद्यताः कर्तुं प्रजार्थमुद्यमं सुताः॥ २८

नारदः प्राह तान्दृष्ट्वा पूर्वं यद्वचनं मुनिः।
बालिशा बत यूयं वै यदज्ञात्वा भुवः किल॥ २९

प्रमाणं तु प्रजाः कर्तुं प्रवृत्ताः केन हेतुना।
श्रुत्वा वाक्यं मुनेस्तेऽपि मत्वा सत्यं विमोहिताः॥ ३०

प्रजाकी वृद्धिहेतु विपुल उत्साहसे सम्पन्न उन सभी पुत्रोंको देखकर कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारदजी हँसते हुए यह बात कहने लगे॥ २०॥

पृथ्वीकी वास्तविक परिमितिका बिना ज्ञान किये ही तुमलोग प्रजाके सृष्टिकार्यमें कैसे तत्पर हो गये? इससे तो तुमलोग निःसन्देह जगत्‌में उपहासके पात्र बनोगे॥ २१॥

पृथ्वीका परिमाण जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें संलग्न होना चाहिये। ऐसा करनेपर ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २२॥

तुमलोग तो मूर्ख हो जो कि पृथ्वीके परिमाणको जाने बिना ही प्रजोत्पत्तिमें संलग्न हो गये हो; इसमें सफलता कैसे मिल सकती है?॥ २३॥

व्यासजी बोले—नारदजीके इस प्रकार कहनेपर दैवयोगसे दक्षपुत्र हर्यश्व परस्पर कहने लगे कि मुनिने तो ठीक ही कहा है। अब हमलोग पृथ्वीका परिमाण जान लेनेके पश्चात् ही सुखपूर्वक प्रजाकी सृष्टि करेंगे। ऐसा विचार करके वे सभी पृथ्वीका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सम्पूर्ण तलका ज्ञान करनेके लिये कुछ पूर्व दिशामें, कुछ पश्चिम दिशामें, कुछ उत्तर दिशामें तथा कुछ दक्षिण दिशामें बड़े उत्साहके साथ चले। इधर, दक्षप्रजापति सभी पुत्रोंको गया हुआ देखकर बहुत ही शोकाकुल हो गये॥ २६-२७॥

दृढ़निश्चयी दक्षप्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये पुनः अन्य पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी पुत्र भी प्रजा-सृष्टिके कार्यमें उत्साहपूर्वक तत्पर हो गये॥ २८॥

उन्हें देखकर नारदमुनिने पूर्वकी भाँति वही बात उनसे भी कही—तुमलोग बड़े ही मूर्ख हो। अरे, पृथ्वीके वास्तविक परिमाणका ज्ञान किये बिना ही तुमलोग प्रजाकी सृष्टि करनेमें किस कारणसे संलग्न हो गये हो?॥ २९½॥

मुनिकी वाणी सुनकर तथा उसे सत्य मानकर वे भी भ्रमित हो गये। वे सभी पुत्र उसी प्रकार भूमण्डलका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े, जिस

जग्मुः सर्वे यथापूर्वं भ्रातरश्चलितास्तथा।
तान्सुतान्प्रस्थितान्दृष्ट्वा दक्षः कोपसमन्वितः॥ ३१

शशाप नारदं कोपात् पुत्रशोकसमुद्भवात्।

दक्ष उवाच

नाशिता मे सुता यस्मात्तस्मान्नाशमवाप्नुहि॥ ३२

पापेनानेन दुर्बुद्धे गर्भवासं व्रजेति च।
पुत्रो मे भव कामं त्वं यतो मे भ्रंशिताः सुताः॥ ३३

इति शप्तस्ततो जातो वीरिण्यां नारदो मुनिः।
षष्टिर्भूयोऽसृजत्कन्या वीरिण्यामिति नः श्रुतम्॥ ३४

शोकं विहाय पुत्राणां दक्षः परमधर्मवित्।
तासां त्रयोदश प्रादात्कश्यपाय महात्मने॥ ३५

दश धर्माय सोमाय सप्तविंशति भूपते।
द्वे चैव भृगवे प्रादाच्चतस्रोऽरिष्टनेमिने॥ ३६

द्वे चैवाङ्गिरसे कन्ये तथैवाङ्गिरसे पुनः।
तासां पुत्राश्च पौत्राश्च देवाश्च दानवास्तथा॥ ३७

जाता बलसमायुक्ताः परस्परविरोधकाः।
रागद्वेषान्विताः सर्वे परस्परविरोधिनः।
सर्वे मोहावृताः शूरा ह्यभवन्नतिमायिनः॥ ३८

प्रकार उनके भाईलोग पहले चले गये थे। उन पुत्रोंको वहाँसे प्रस्थित देखकर दक्ष अत्यन्त कुपित हो उठे और पुत्रशोकजन्य कोपसे उन्होंने नारदजीको शाप दे दिया॥ ३०-३१½॥

दक्ष बोले—[हे नारद!] जिस प्रकार तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है, उसी प्रकार तुम भी नाशको प्राप्त हो जाओ। हे दुर्बुद्धे! तुमने मेरे पुत्रोंको भ्रष्ट किया है, अतएव इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें वास करना होगा और मेरा पुत्र बनना पड़ेगा॥ ३२-३३॥

इस प्रकार शापके प्रभावसे मुनि नारद वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए। तदनन्तर दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया, ऐसा हमने सुना है॥ ३४॥

पुत्रोंका शोक त्यागकर परम धर्मनिष्ठ दक्षप्रजापतिने उन कन्याओंमेंसे तेरह कन्याएँ महात्मा कश्यपको अर्पित कर दीं। हे पृथ्वीपते! उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भृगुमुनिको, चार अरिष्टनेमिको, दो अंगिरा-ऋषिको तथा शेष दोको पुनः अंगिराऋषिको ही सौंप दिया। उन्हीं कन्याओंके पुत्र तथा पौत्र देवता एवं दानवके रूपमें उत्पन्न हुए। वे महान् बलशाली तथा आपसमें विरोधभाव रखते थे। एक-दूसरेके विरोधी तथा परस्पर रागद्वेषकी भावना रखनेवाले वे सभी पराक्रमी देवता तथा दानव अत्यन्त मायावी थे तथा सदा मोहसे ग्रस्त रहते थे॥ ३५—३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे सोमसूर्यवंशवर्णने दक्षप्रजापतिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

~~~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा

जनमेजय उवाच

ममाख्याहि महाभाग राज्ञां वंशं सुविस्तरम्।

सूर्यान्वयप्रसूतानां धर्मज्ञानां विशेषतः॥ १

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप मुझसे राजाओंके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और विशेषरूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न धर्मज्ञ राजाओंके वंशके विषयमें बताइये॥ १॥
~~~

व्यास उवाच

शृणु भारत वक्ष्यामि रविवंशस्य विस्तरम्।
यथा श्रुतं मया पूर्वं नारदादृषिसत्तमात्॥ २

एकदा नारदः श्रीमान्सरस्वत्यास्तटे शुभे।
आजगामाश्रमे पुण्ये विचरन्स्वेच्छया मुनिः॥ ३

प्रणम्य शिरसा पादौ तस्याग्रे संस्थितस्तदा।
ततस्तस्यासनं दत्त्वा कृत्वार्हणमथादरात्॥ ४

विधिवत्पूजयित्वा तमुक्तवान्वचनं त्विदम्।
पावितोऽहं मुनिश्रेष्ठ पूज्यस्यागमनेन वै॥ ५

कथां कथय सर्वज्ञ राज्ञां चरितसंयुताम्।
राजानो ये समाख्याताः सप्तमेऽस्मिन्मनोः कुले॥ ६

तेषामुत्पत्तिरतुला चरितं परमाद्भुतम्।
श्रोतुकामोऽस्म्यहं ब्रह्मन् सूर्यवंशस्य विस्तरम्॥ ७

समाख्याहि मुनिश्रेष्ठ समासव्यासपूर्वकम्।
इति पृष्टो मया राजन्नारदः परमार्थवित्॥ ८

उवाच प्रहसन्प्रीतः समाभाष्य मुदान्वयम्।

नारद उवाच

शृणु सत्यवतीसूनो राज्ञां वंशमनुत्तमम्॥ ९

पावनं कर्णसुखदं धर्मज्ञानादिभिर्युतम्।
ब्रह्मा पूर्वं जगत्कर्ता नाभिपङ्कजसम्भवः॥ १०

विष्णोरिति पुराणेषु प्रसिद्धः परिकीर्तितः।
सर्वज्ञः सर्वकर्तासौ स्वयम्भूः सर्वशक्तिमान्॥ ११

तपस्तप्त्वा स विश्वात्मा वर्षाणामयुतं पुरा।
सृष्टिकामः शिवां ध्यात्वा प्राप्य शक्तिमनुत्तमाम्॥ १२

पुत्रानुत्पादयामास मानसाञ्शुभलक्षणान्।
मरीचिः प्रथितस्तेषामभवत्सृष्टिकर्मणि॥ १३

व्यासजी बोले—हे भारत! ऋषिश्रेष्ठ नारदजीसे पूर्वकालमें जैसा मैंने सुना है, उसीके अनुसार सूर्यवंशका विस्तृत वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ २॥

एक समयकी बात है—श्रीमान् नारदमुनि स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए सरस्वतीनदीके पावन तटपर पवित्र आश्रममें पधारे॥ ३॥

मैं सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनके सामने स्थित हो गया। तत्पश्चात् बैठनेके लिये आसन प्रदान करके मैंने आदरपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उनकी विधिवत् पूजा करके मैंने उनसे यह वचन कहा—हे मुनिवर! आप पूजनीयके आगमनसे मैं पवित्र हो गया॥ ५॥

हे सर्वज्ञ! इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजागण हो चुके हैं, उन राजाओंके चरित्रसे सम्बन्धित कथा कहिये। उन राजाओंकी उत्पत्ति अनुपम है और उनका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है; अतएव हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारके साथ सूर्यवंशका वर्णन सुननेका इच्छुक हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! संक्षिप्त या विस्तृत जिस किसी भी रूपमें आप मुझसे इसका वर्णन कीजिये॥ ६-७½ ॥

हे राजन्! मेरे ऐसा पूछनेपर परमार्थके ज्ञाता नारदजी हँसते हुए मुझे सम्बोधित करके प्रेमपूर्वक प्रसन्नताके साथ कहने लगे॥ ८½ ॥

नारदजी बोले—हे सत्यवतीतनय! राजाओंके अत्युत्तम वंशके विषयमें सुनिये। कानोंको सुख प्रदान करनेवाला यह वंशचरित अत्यन्त पवित्र और धर्म, ज्ञान आदिसे समन्वित है॥ ९½ ॥

सर्वप्रथम जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट हुए; ऐसा उनके विषयमें पुराणोंमें प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण जगत्के कर्ता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ १०-११॥

सृष्टि करनेकी अभिलाषावाले उन विश्वात्मा ब्रह्माजीने पहले देवी शिवाका ध्यान करके दस हजार वर्षोंतक तपस्या की और उनसे महान् शक्ति प्राप्त करके शुभ लक्षणोंवाले मानस पुत्र उत्पन्न किये। उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि उत्पन्न हुए, जो सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त हुए॥ १२-१३॥

तस्य पुत्रोऽतिविख्यातः कश्यपः सर्वसम्मतः।
त्रयोदशैव तस्यासन्भार्या दक्षसुताः किल॥ १४

देवाः सर्वे समुत्पन्ना दैत्या यक्षाश्च पन्नगाः।
पशवः पक्षिणश्चैव तस्मात्सृष्टिस्तु काश्यपी॥ १५

देवानां प्रथितः सूर्यो विवस्वान्नाम तस्य तु।
तस्य पुत्रः स विख्यातो वैवस्वतमनुर्नृपः॥ १६

तस्य पुत्रस्तथेक्ष्वाकुः सूर्यवंशविवर्धनः।
नवाभवन्सुतास्तस्य मनोरिक्ष्वाकुपूर्वजाः॥ १७

तेषां नामानि राजेन्द्र शृणुष्वैकमनाः पुनः।
इक्ष्वाकुरथ नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च॥ १८

नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नृगो दिष्टश्च सप्तमः।
करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मानवाः स्मृताः॥ १९

इक्ष्वाकुस्तु मनोः पुत्रः प्रथमः समजायत।
तस्य पुत्रशतं चासीज्ज्येष्ठो विकुक्षिरात्मवान्॥ २०

नवानां वंशविस्तारं संक्षेपेण निशामय।
शूराणां मनुपुत्राणां मनोरन्तरजन्मनाम्॥ २१

नाभागस्य तु पुत्रोऽभूदम्बरीषः प्रतापवान्।
धर्मज्ञः सत्यसन्धश्च प्रजापालनतत्परः॥ २२

धृष्टात्तु धार्ष्टकं क्षत्रं ब्रह्मभूतमजायत।
संग्रामकातरं सम्यग्ब्रह्मकर्मरतं तथा॥ २३

शर्यातेस्तनयश्चाभूदानर्तो नाम विश्रुतः।
सुकन्या च तथा पुत्री रूपलावण्यसंयुता॥ २४

च्यवनाय सुता दत्ता राज्ञाप्यन्धाय सुन्दरी।
मुनिः सुलोचनो जातस्तस्याः शीलगुणेन ह॥ २५
विहितो रविपुत्राभ्यामश्विभ्यामिति नः श्रुतम्।

उन मरीचिके परम प्रसिद्ध तथा सर्वमान्य पुत्र कश्यपजी हुए। दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन्हींकी भार्याएँ थीं॥ १४॥

देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, पशु और पक्षी—सब-के-सब उन्हींसे उत्पन्न हुए; अतएव यह सृष्टि काश्यपी है॥ १५॥

देवताओंमें सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं। उनका नाम विवस्वान् भी है। उनके पुत्र वैवस्वत मनु थे, वे परम प्रसिद्ध राजा हुए॥ १६॥

उन वैवस्वत मनुके पुत्ररूपमें सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले इक्ष्वाकुका प्रादुर्भाव हुआ। इक्ष्वाकुके जन्मके बाद उन मनुके नौ पुत्र और उत्पन्न हुए। हे राजेन्द्र! आप एकाग्रचित्त होकर उनके नाम सुनिये; इक्ष्वाकुके अतिरिक्त नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, सातवें दिष्ट एवं करूष और पृषध्र—ये नौ 'मनुपुत्र' के रूपमें प्रसिद्ध हैं॥ १७—१९॥

इन मनुपुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे पहले उत्पन्न हुए थे। उनके सौ पुत्र हुए; उनमें आत्मज्ञानी विकुक्षि सबसे बड़े थे॥ २०॥

अब आप मनुवंशमें जन्म लेनेवाले पराक्रमी सभी नौ मनुपुत्रोंके वंश-विस्तारके विषयमें संक्षेपमें सुनिये॥ २१॥

नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए। वे प्रतापी, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले थे॥ २२॥

धृष्टसे धार्ष्ट हुए, जो क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। संग्रामसे विमुख रहकर वे सम्यक्‌रूपसे ब्राह्मणोचित कर्ममें निरत रहते थे॥ २३॥

शर्यातिके आनर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए; वे अति प्रसिद्ध हुए। रूप तथा सौन्दर्यसे युक्त एक सुकन्या नामक पुत्री भी उनसे उत्पन्न हुई। राजा शर्यातिने अपनी वह सुन्दरी पुत्री नेत्रहीन च्यवनमुनिको सौंप दी। बादमें उसी सुकन्याके शील तथा गुणके प्रभावसे च्यवनमुनि सुन्दर नेत्रोंवाले हो गये। सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंने उन्हें नेत्रयुक्त कर दिया था—ऐसा हमने सुना है॥ २४-२५½॥

जनमेजय उवाच

सन्देहोऽयं महान् ब्रह्मन् कथायां कथितस्त्वया॥ २६

यद्राज्ञा मुनयेऽन्धाय दत्ता पुत्री सुलोचना।
कुरूपा गुणहीना वा नारी लक्षणवर्जिता॥ २७

पुत्री यदा भवेद्राजा तदान्धाय प्रयच्छति।
ज्ञात्वान्धं सुमुखीं कस्माद्दत्तवान्नृपसत्तमः॥ २८

कारणं ब्रूहि मे ब्रह्मन्ननुग्राह्योऽस्मि सर्वदा।

सूत उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा परीक्षितसुतस्य वै॥ २९

द्वैपायनः प्रसन्नात्मा तमुवाच हसन्निव।

व्यास उवाच

वैवस्वतसुतः श्रीमाञ्छर्यातिर्नाम पार्थिवः॥ ३०

तस्य स्त्रीणां सहस्राणि चत्वार्यासन्परिग्रहाः।
राजपुत्र्यः सरूपाश्च सर्वलक्षणसंयुताः॥ ३१

पत्न्यः प्रेमयुताः सर्वाः प्रिया राज्ञः सुसम्मताः।
एका पुत्री तु तासां वै सुकन्या नाम सुन्दरी॥ ३२

पितुः प्रिया च मातॄणां सर्वासां चारुहासिनी।
नगरान्नातिदूरेऽभूत्सरो मानससन्निभम्॥ ३३

बद्धसोपानमार्गं च स्वच्छपानीयपूरितम्।
हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्॥ ३४

दात्यूहसारसाकीर्णं सर्वपक्षिगणावृतम्।
पञ्चधाकमलोपेतं चञ्चरीकसुसेवितम्॥ ३५

पार्श्वतश्च द्रुमाकीर्णं वेष्टितं पादपैः शुभैः।
सालैस्तमालैः सरलैः पुन्नागाशोकमण्डितम्॥ ३६

वटाश्वत्थकदम्बैश्च कदलीखण्डराजितम्।
जम्बीरैर्बीजपूरैश्च खर्जूरैः पनसैस्तथा॥ ३७

क्रमुकैर्नारिकेलैश्च केतकैः काञ्चनद्रुमैः।
यूथिकाजालकैः शुभ्रैः संवृतं मल्लिकागणैः॥ ३८

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने कथामें जो यह कहा कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिको अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या प्रदान कर दी; तो इसमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है। यदि उनकी पुत्री कुरूप, गुणहीन और शुभ लक्षणोंसे हीन होती, तब वे राजा शर्याति उसका विवाह नेत्रहीनके साथ कर भी सकते थे, किंतु [च्यवनमुनिको] दृष्टिहीन जानते हुए भी उन नृपश्रेष्ठने उन्हें अपनी सुमुखी कन्या कैसे सौंप दी? हे ब्रह्मन्! मुझे इसका कारण बतायें; मैं सदा आपके अनुग्रहके योग्य हूँ॥ २६—२८½॥

सूतजी बोले—परीक्षित्के पुत्र राजा जनमेजयकी बात सुनकर प्रसन्न मनवाले व्यासजी हँसते हुए उनसे कहने लगे॥ २९½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वैवस्वत मनुके पुत्र शर्याति नामवाले ऐश्वर्यशाली राजा थे। उनकी चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी राजकुमारियाँ अत्यन्त रूपवती तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं। राजाकी सभी पत्नियाँ प्रेमयुक्त रहती हुई सदा उनके अनुकूल व्यवहार करती थीं॥ ३०-३१½॥

उन सबके बीचमें सुकन्या नामक एक ही सुन्दरी पुत्री थी। सुन्दर मुसकानवाली वह कन्या पिता तथा समस्त माताओंके लिये अत्यन्त प्रिय थी॥ ३२½॥

उस नगरसे थोड़ी ही दूरीपर मानसरोवरके तुल्य एक तालाब था। उसमें उतरनेके लिये सीढ़ियोंका मार्ग बना हुआ था। वह सरोवर स्वच्छ जलसे परिपूर्ण था। हंस, बत्तख, चक्रवाक, जलकाक और सारस पक्षियोंसे वह सरोवर व्याप्त और सुशोभित था। अन्य पक्षिसमूहोंसे भी वह आवृत रहता था। वह पाँच प्रकारके कमलोंसे सुशोभित था, जिनपर भौंरे मँडराते रहते थे॥ ३३—३५॥

उस सरोवरका तट बहुत-से वृक्षों तथा सुन्दर पौधों आदिसे घिरा हुआ था। वह सरोवर साल, तमाल, देवदारु, पुन्नाग और अशोकके वृक्षोंसे सुशोभित था। वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, बीजपूर (बिजौरा नीबू), खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल तथा केतकी, कचनार, जूही, मालती-जैसी सुन्दर एवं स्वच्छ

जम्ब्वाम्रतिन्तिणीभिश्च करञ्जकुटजावृतम्।
पलाशनिम्बखदिरबिल्वामलकमण्डितम्॥ ३९

बभूव कोकिलारावः केकास्वनविराजितम्।
तत्समीपे शुभे देशे पादपानां गणावृते॥ ४०

भार्गवश्च्यवनः शान्तस्तापसः संस्थितो मुनिः।
ज्ञात्वासौ विजनं स्थानं तपस्तेपे समाहितः॥ ४१

कृत्वा दृढासनं मौनमाधाय जितमारुतः।
इन्द्रियाणि च संयम्य त्यक्ताहारस्तपोनिधिः॥ ४२

जलपानादिरहितो ध्यायन्नास्ते पराम्बिकाम्।
सवल्मीकोऽभवद्राजल्ँलताभिः परिवेष्टितः॥ ४३

कालेन महता राजन् समाकीर्णः पिपीलिकैः।
तथा स संवृतो धीमान्मृत्पिण्ड इव सर्वतः॥ ४४

कदाचित्स महीपालः कामिनीगणसंवृतः।
आजगाम सरो राजन् विहर्तुमिदमुत्तमम्॥ ४५

शर्यातिः सुन्दरीवृन्दसंयुतः सलिलेऽमले।
क्रीडासक्तो महीपालो बभूव कमलाकरे॥ ४६

सुकन्या वनमासाद्य विजहार सखीवृता।
सुमनांसि विचिन्वन्ती चञ्चला चञ्चलोपमा॥ ४७

सर्वाभरणसंयुक्ता रणच्चरणनूपुरा।
चंक्रममाणा वल्मीकं च्यवनस्य समासदत्॥ ४८

क्रीडासक्तोपविष्टा सा वल्मीकस्य समीपतः।
ददर्श चास्य रन्ध्रे वै खद्योत इव ज्योतिषी॥ ४९

लताओं तथा वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था। जामुन, आम, इमली, करंज, कोरैया, पलाश, नीम, खैर और बेल तथा आमला आदि वृक्षोंसे सुशोभित था॥ ३६—३९॥

कोकिलों और मयूरोंकी ध्वनिसे वह सदा निनादित रहता था। उस सरोवरके पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक शुभ स्थानपर शान्त चित्तवाले महातपस्वी भृगुवंशी च्यवनमुनि रहते थे। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको एकाग्र करके तपस्या प्रारम्भ कर दी॥ ४०-४१॥

वे आसनपर दृढ़तापूर्वक विराजमान होकर मौन धारण किये हुए थे। प्राणवायुपर उनका पूर्ण अधिकार था तथा सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं। उन तपोनिधिने भोजन भी त्याग दिया था॥ ४२॥

वे जल ग्रहण किये बिना जगदम्बाका ध्यान करते थे। हे राजन्! उनके शरीरपर लताएँ घिरी हुई थीं तथा दीमकोंद्वारा वे पूरी तरहसे ढक लिये गये थे॥ ४३॥

हे राजन्! बहुत दिनोंतक इस प्रकार बैठे रहनेके कारण उनपर दीमककी चींटियाँ चढ़ गयीं और उनसे वे घिर गये। वे बुद्धिसम्पन्न मुनि पूरी तरहसे मिट्टीके ढेर-सदृश हो गये थे॥ ४४॥

हे राजन्! किसी समय वे राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करनेके लिये उस उत्तम सरोवरपर आये॥ ४५॥

सरोवरका जल स्वच्छ था, कमल खिले हुए थे। अतएव राजा शर्याति सुन्दरियोंको साथ लेकर जल-क्रीड़ा करने लगे॥ ४६॥

लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली तथा चंचल स्वभाववाली वह सुकन्या वनमें आकर सुन्दर फूलोंको चुनती हुई सखियोंके साथ विहार करने लगी। वह सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थी तथा उसके चरणके नूपुर मधुर ध्वनि कर रहे थे। इधर-उधर भ्रमण करती हुई वह राजकुमारी [सुकन्या] वल्मीक बने हुए च्यवनमुनिके निकट पहुँच गयी। क्रीडामें आसक्त वह सुकन्या वल्मीकके निकट बैठ गयी और उसे वल्मीकके छिद्रोंसे जुगुनूकी तरह चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखायी पड़ीं॥ ४७—४९॥

किमेतदिति सञ्चिन्त्य समुद्धर्तुं मनो दधे।
गृहीत्वा कण्टकं तीक्ष्णं त्वरमाणा कृशोदरी॥ ५०

सा दृष्टा मुनिना बाला समीपस्था कृतोद्यमा।
विचरन्ती सुकेशान्ता मन्मथस्येव कामिनी॥ ५१

तां वीक्ष्य सुदतीं तत्र क्षामकण्ठस्तपोनिधिः।
तामभाषत कल्याणीं किमेतदिति भार्गवः॥ ५२

दूरं गच्छ विशालाक्षि तापसोऽहं वरानने।
मा भिन्दस्वाद्य वल्मीकं कण्टकेन कृशोदरि॥ ५३

तेनेदं प्रोच्यमानापि सा चास्य न शृणोति वै।
किमु खल्विदमित्युक्त्वा निर्बिभेदास्य लोचने॥ ५४

दैवेन नोदिता भित्त्वा जगाम नृपकन्यका।
क्रीडन्ती शङ्कमाना सा किं कृतं तु मयेति च॥ ५५

चुक्रोध स तथा विद्धनेत्रः परममन्युमान्।
वेदनाभ्यर्दितः कामं परितापं जगाम ह॥ ५६

शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत्सैनिकानां तु तत्क्षणात्।
विशेषेण तु भूपस्य सामात्यस्य समन्ततः॥ ५७

गजोष्ट्रतुरगाणां च सर्वेषां प्राणिनां तदा।
ततो रुद्धे शकृन्मूत्रे शर्यातिर्दुःखितोऽभवत्॥ ५८

सैनिकैः कथितं तस्मै शकृन्मूत्रनिरोधनम्।
चिन्तयामास भूपालः कारणं दुःखसम्भवे॥ ५९

विचिन्त्याह ततो राजा सैनिकान्स्वजनांस्तथा।
गृहमागत्य चिन्तार्तः केनेदं दुष्कृतं कृतम्॥ ६०

सरसः पश्चिमे भागे वनमध्ये महातपाः।
च्यवनस्तापसस्तत्र तपश्चरति दुश्चरम्॥ ६१

केनाप्यपकृतं तत्र तापसेऽग्निसमप्रभे।
तस्मात्पीडा समुत्पन्ना सर्वेषामिति निश्चयः॥ ६२

यह क्या है?—ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसने आवरण हटानेका मनमें निश्चय किया। तत्पश्चात् वह सुन्दरी एक नुकीला काँटा लेकर शीघ्रतापूर्वक मिट्टी हटाने लगी॥ ५०॥

मुनि च्यवनने विचरण करनेवाली, कामदेवकी स्त्री रतिके सदृश तथा सुन्दर केशोंवाली उस राजकुमारीको पासमें स्थित होकर मिट्टी हटानेमें संलग्न देखा॥ ५१॥

क्षीण स्वरवाले तपोनिधि च्यवनमुनि सुन्दर दाँतोंवाली उस सुन्दरी सुकन्याको देखकर उससे कहने लगे—यह क्या! हे विशाल नयनोंवाली! दूर चली जाओ। हे सुमुखि! मैं एक तपस्वी हूँ। हे कृशोदरि! इस बाँबीको काँटेसे मत हटाओ॥ ५२-५३॥

मुनिके कहनेपर भी उसने उनकी बातें न सुनीं। यह कौन-सी [चमकनेवाली] वस्तु है—यह कहकर उसने मुनिके नेत्र भेद डाले॥ ५४॥

दैवकी प्रेरणासे राजकुमारी उनके नेत्र बींधकर सशंक भावसे खेलती हुई और 'मैंने यह क्या कर डाला'—यह सोचती हुई वहाँसे चली गयी। नेत्रोंके बिँध जानेसे महर्षिको क्रोध हुआ और अत्यधिक वेदनासे पीड़ित होनेके कारण वे बहुत दुःखित हुए॥ ५५-५६॥

उसी समयसे राजाके सभी सैनिकोंका मल-मूत्र अवरुद्ध हो गया। मन्त्रीसहित राजाको विशेषरूपसे यह कष्ट झेलना पड़ा। हाथी, घोड़े और ऊँट आदि सभी प्राणियोंके मल तथा मूत्रका अवरोध हो जानेपर राजा शर्याति अत्यन्त दुःखी हुए॥ ५७-५८॥

सैनिकोंने मल-मूत्रके अवरोधकी बात उन्हें बतायी, तब उन्होंने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय सोचनेके बाद राजा घरपर आकर अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त व्याकुल होकर पूछने लगे—किसके द्वारा यह निकृष्ट कार्य किया गया है? उस सरोवरके पश्चिमी तटवाले वनमें महान् तपस्वी च्यवनमुनि कठिन तपस्या कर रहे हैं॥ ५९—६१॥

अग्निके समान तेजस्वी उन तपस्वीके प्रति किसीने कोई अपकार अवश्य ही किया है। इसलिये हम सबको ऐसा कष्ट हुआ है—यह निश्चित है॥ ६२॥

तपोवृद्धस्य वृद्धस्य वरिष्ठस्य विशेषतः।
केनाप्यपकृतं मन्ये भार्गवस्य महात्मनः॥ ६३

महातपस्वी, वृद्ध तथा श्रेष्ठ भृगुनन्दन महात्मा च्यवनका अवश्य ही किसीने अनिष्ट कर दिया है—ऐसा मैं मानता हूँ॥ ६३॥

ज्ञातं वा यदि वाज्ञातं तस्येदं फलमुत्तमम्।
कैश्च दुष्टैः कृतं तस्य हेलनं तापसस्य ह॥ ६४

यह अनिष्ट जानमें किया गया हो अथवा अनजानमें, उसका नियत फल तो भोगना ही पड़ेगा। न जाने किन दुष्टोंने उन तपस्वीका अपमान किया है?॥ ६४॥

इति पृष्टास्तमूचुस्ते सैनिका वेदनार्दिताः।
मनोवाक्कायजनितं न विद्मोऽपकृतं वयम्॥ ६५

राजाके ऐसा पूछनेपर दुःखसे व्याकुल हुए सैनिकोंने उनसे कहा—हमलोगोंके द्वारा मन-वाणी-कर्मसे मुनिका कुछ भी अपकार हुआ हो—इसे हमलोग नहीं जानते॥ ६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे शर्यातिराजवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

~~~

अथ तृतीयोऽध्यायः

सुकन्याका च्यवनमुनिके साथ विवाह

व्यास उवाच

इति पप्रच्छ तान्सर्वान् राजा चिन्ताकुलस्तथा।
पर्यपृच्छत्सुहृद्वर्गं साम्ना चोग्रतयापि च॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस घटनासे अत्यन्त चिन्तित राजा शर्यातिने उन सबसे पूछनेके पश्चात् शान्ति तथा उग्रतापूर्वक भी अपने बन्धुजनोंसे पूछा॥ १॥

पीड्यमानं जनं वीक्ष्य पितरं दुःखितं तथा।
विचिन्त्य शूलभेदं सा सुकन्या चेदमब्रवीत्॥ २

वने मया पितस्तत्र वल्मीको वीरुधावृतः।
क्रीडन्त्या सुदृढो दृष्टश्छिद्रद्वयसमन्वितः॥ ३

समस्त प्रजाजन और अपने पिताको अत्यन्त दुःखी देखकर तथा अपने द्वारा उन छिद्रोंमें काँटा चुभानेकी बातको सोचकर उस सुकन्याने यह कहा—हे पिताजी! वनमें खेलती हुई मैंने लताओंसे घिरा हुआ दो छिद्रोंवाला एक विशाल वल्मीक देखा॥ २-३॥

तत्र खद्योतवद्दीप्तज्योतिषी वीक्षिते मया।
सूच्याविद्धे महाराज पुनः खद्योतशङ्कया॥ ४

उन छिद्रोंमेंसे जुगनूकी भाँति तीव्र प्रकाशमान दो ज्योतियाँ मैंने देखीं। तब हे महाराज! जुगनूकी शंका करके मैंने उन छिद्रोंमें सूई चुभो दी॥ ४॥

जलक्लिन्ना तदा सूची मया दृष्टा पितः किल।
हाहेति च श्रुतः शब्दो मन्दो वल्मीकमध्यतः॥ ५

हे पिताजी! उस समय मैंने देखा कि वह सूई जलसे भींग गयी थी और उस वल्मीकमेंसे 'हा-हा' की मन्द-मन्द ध्वनि मुझे सुनायी पड़ी॥ ५॥

तदाहं विस्मिता राजन्किमेतदिति शङ्कया।
न जाने किं मया विद्धं तस्मिन्वल्मीकमण्डले॥ ६

हे राजन्! तब मैं आश्चर्यमें पड़ गयी कि यह क्या हो गया। मैं इस शंकासे ग्रस्त हो गयी कि न जाने मेरे द्वारा उस वल्मीकके मध्यमें कौन-सी वस्तु बिँध गयी॥ ६॥

राजा श्रुत्वा तु शर्यातिः सुकन्यावचनं मृदु।
मुनेस्तद्धेलनं ज्ञात्वा वल्मीकं क्षिप्रमभ्यगात्॥ ७

सुकन्याका यह मधुर वचन सुनकर राजा शर्याति इस कृत्यको मुनिका अपमान समझकर शीघ्रतापूर्वक उस वल्मीकके पास जा पहुँचे॥ ७॥
~~~

तत्रापश्यत्तपोवृद्धं च्यवनं दुःखितं भृशम्।
स्फोटयामास वल्मीकं मुनिदेहावृतं भृशम्॥ ८

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ राजा तं भार्गवं प्रति।
तुष्टाव विनयोपेतस्तमुवाच कृताञ्जलिः॥ ९

पुत्र्या मम महाभाग क्रीडन्त्या दुष्कृतं कृतम्।
अज्ञानाद् बालया ब्रह्मन् कृतं तत्क्षन्तुमर्हसि॥ १०

अक्रोधना हि मुनयो भवन्तीति मया श्रुतम्।
तस्मात्त्वमपि बालायाः क्षन्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ११

व्यास उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तस्य च्यवनो वाक्यमब्रवीत्।
विनयोपनतं दृष्ट्वा राजानं दुःखितं भृशम्॥ १२

च्यवन उवाच

राजन्नाहं कदाचिद्वै करोमि क्रोधमण्वपि।
न मयाद्यैव शप्तस्त्वं दुहित्रा पीडने कृते॥ १३

नेत्रे पीडा समुत्पन्ना मम चाद्य निरागसः।
तेन पापेन जानामि दुःखितस्त्वं महीपते॥ १४

अपराधं परं कृत्वा देवीभक्तस्य को जनः।
सुखं लभेत यदपि भवेत् त्राता शिवः स्वयम्॥ १५

किं करोमि महीपाल नेत्रहीनो जरावृतः।
अन्धस्य परिचर्यां च कः करिष्यति पार्थिव॥ १६

राजोवाच

सेवका बहवः सेवां करिष्यन्ति तवानिशम्।
क्षमस्व मुनिशार्दूल स्वल्पक्रोधा हि तापसाः॥ १७

च्यवन उवाच

अन्धोऽहं निर्जनो राजंस्तपस्तप्तुं कथं क्षमः।
त्वदीयाः सेवकाः किं ते करिष्यन्ति मम प्रियम्॥ १८

वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवनमुनिको देखा। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिके शरीरपर जमी हुई विशाल वल्मीक (बाँबी)-को हटाया॥ ८॥

इसके बाद राजा शर्यातिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर मुनि भार्गवको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और पुनः वे हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उनसे कहने लगे—हे महाभाग! मेरी पुत्री खेल रही थी, उसीने यह दुष्कर्म कर दिया है। हे ब्रह्मन्! उस बालिकाके द्वारा अनजानमें किये गये इस अपराधको आप क्षमा कर दें। मुनिगण क्रोधशून्य होते हैं—ऐसा मैंने सुना है; अतएव आप इस समय बालिकाका अपराध क्षमा कर दीजिये॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर च्यवनमुनि नम्रतापूर्वक खड़े उन राजाको अत्यन्त दुःखित जानकर उनसे कहने लगे॥ १२॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं कभी भी लेशमात्र क्रोध नहीं करता। आपकी पुत्रीके द्वारा मुझे पीड़ा पहुँचाये जानेपर भी मैंने अभीतक आपको शाप नहीं दिया है॥ १३॥

हे महीपते! इस समय मुझ निरपराधके नेत्रोंमें पीड़ा उत्पन्न हो रही है। मैं जानता हूँ कि इसी पापकर्मके कारण आप कष्टमें पड़ गये हैं॥ १४॥

भगवतीके भक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन-सा व्यक्ति सुख पा सकता है, चाहे साक्षात् शंकर ही उसके रक्षक क्यों न हों॥ १५॥

हे महीपाल! मैं क्या करूँ? मैं अन्धा हो गया हूँ और बुढ़ापेने मुझे घेर रखा है। हे राजन्! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा?॥ १६॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे बहुत-से सेवक दिन-रात आपकी सेवा करेंगे। आप अपराध क्षमा करें; क्योंकि तपस्वीलोग अत्यन्त अल्प क्रोधवाले होते हैं॥ १७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं अन्धा हूँ, अतः अकेले रहकर मैं तप करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? क्या आपके वे सेवक सम्यक् रूपसे मेरा प्रिय कार्य कर सकेंगे?॥ १८॥

क्षमापयसि चेन्मां त्वं कुरु मे वचनं नृप।
देहि मे परिचर्यार्थं कन्यां कमललोचनाम्॥ १९

तुष्येऽनया महाराज पुत्र्या तव महामते।
करिष्यामि तपश्चाहं सा मे सेवां करिष्यति॥ २०

एवं कृते सुखं मे स्यात्तव चैव भविष्यति।
सन्तुष्टे मयि राजेन्द्र सैनिकानां न संशयः॥ २१

विचिन्त्य मनसा भूप कन्यादानं समाचर।
न चात्र दूषणं किञ्चित्तापसोऽहं यतव्रतः॥ २२

व्यास उवाच

शर्यातिर्वचनं श्रुत्वा मुनेश्चिन्तातुरोऽभवत्।
न दास्येऽप्यथवा दास्ये किञ्चिन्नोवाच भारत॥ २३

कथमन्धाय वृद्धाय कुरूपाय सुतामिमाम्।
देवकन्योपमां दत्त्वा सुखी स्यामात्मसम्भवाम्॥ २४

को वात्मनः सुखार्थाय पुत्र्याः संसारजं सुखम्।
हरतेऽल्पमतिः पापो जानन्नपि शुभाशुभम्॥ २५

प्राप्य सा च्यवनं सुभ्रूः पञ्चबाणशरार्दिता।
अन्धं वृद्धं पतिं प्राप्य कथं कालं नयिष्यति॥ २६

यौवने दुर्जयः कामो विशेषेण सुरूपया।
आत्मतुल्यं पतिं प्राप्य किमु वृद्धं विलोचनम्॥ २७

गौतमं तापसं प्राप्य रूपयौवनसंयुता।
अहल्या वासवेनाशु वञ्चिता वरवर्णिनी॥ २८

शप्ता च पतिना पश्चाज्ज्ञात्वा धर्मविपर्ययम्।
तस्माद्भवतु मे दुःखं न ददामि सुकन्यकाम्॥ २९

हे राजन्! यदि आप क्षमा करनेके लिये मुझसे कहते हैं तो मेरी एक बात मान लीजिये। मेरी सेवाके लिये कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या मुझे सौंप दीजिये॥ १९॥

हे महाराज! मैं आपकी इस कन्यापर प्रसन्न हूँ। हे महामते! मैं तपस्या करूँगा और वह मेरी सेवा करेगी॥ २०॥

हे राजन्! ऐसा करनेपर मुझे सुख मिलेगा और आपका भी कल्याण होगा। मेरे प्रसन्न हो जानेपर आपके सैनिकोंको भी सुख प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१॥

हे भूप! मनमें यह विचार करके आप कन्यादान कर दीजिये। इसमें आपको कुछ भी दोष नहीं लगेगा; क्योंकि मैं एक संयमशील तपस्वी हूँ॥ २२॥

व्यासजी बोले—हे भारत! मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति घोर चिन्तामें पड़ गये। 'दूँगा' या 'नहीं दूँगा'—कुछ भी उन्होंने नहीं कहा॥ २३॥

वे सोचने लगे कि देवकन्याके तुल्य अपनी यह पुत्री इस अन्धे, कुरूप तथा बूढ़े मुनिको देकर मैं कैसे सुखी रह सकता हूँ!॥ २४॥

ऐसा अल्पबुद्धि तथा पापी कौन होगा, जो शुभ तथा अशुभका ज्ञान रखते हुए भी अपने सुखके लिये अपनी ही कन्याके सांसारिक सुखको नष्ट कर देगा!॥ २५॥

अन्धे तथा वृद्ध च्यवनमुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके सुन्दर भौंहोंवाली तथा कामबाणसे व्यथित वह कन्या उनके साथ किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेगी!॥ २६॥

अपने अनुकूल पति पाकर भी यौवनावस्थामें [किसी स्त्रीके द्वारा] और वह भी विशेष रूपसे रूपसम्पन्न स्त्रीके द्वारा कामको जीतना अत्यन्त कठिन है तो फिर इस वृद्ध तथा नेत्रहीन पतिको पाकर उसकी क्या स्थिति होगी?॥ २७॥

तपस्वी गौतमऋषिको पतिरूपमें प्राप्त करके रूप तथा यौवनसे युक्त सुन्दरी अहल्या इन्द्रके द्वारा शीघ्र ही ठग ली गयी थी और बादमें इसे धर्मविरुद्ध जानकर उसके पति गौतमने शाप दे दिया था। अतएव मुझे कष्ट भले ही मिले, किंतु मैं मुनिको अपनी पुत्री सुकन्या नहीं दूँगा॥ २८-२९॥

इति सञ्चिन्त्य शर्यातिर्विमनाः स्वगृहं ययौ।
सचिवांश्च समादाय मन्त्रं चक्रेऽतिदुःखितः॥ ३०

भो मन्त्रिणो ब्रुवन्त्वद्य किं कर्तव्यं मयाधुना।
पुत्री देयाथ विप्राय भोक्तव्यं दुःखमेव वा॥ ३१

विचारयध्वं मिलिता हितं स्यान्मम वै कथम्।

मन्त्रिण ऊचुः

किं ब्रूमोऽस्मिन्महाराज सङ्कटेऽतिदुरासदे॥ ३२

दुर्भगाय सुकन्यैषा कथं देयातिसुन्दरी।

व्यास उवाच

तदा चिन्ताकुलं वीक्ष्य पितरं मन्त्रिणस्तदा॥ ३३

सुकन्या त्विङ्गितं ज्ञात्वा प्रहस्येदमुवाच ह।
पितः कस्माद्भवानद्य चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः॥ ३४

मत्कृते दुःखसंविग्नो विषण्णवदनोऽसि वै।
अहं गत्वा मुनिं तत्र समाश्वास्य भयार्दितम्॥ ३५

करिष्यामि प्रसन्नं तमात्मदानेन वै पितः।
इति राजा वचः श्रुत्वा भाषितं यत्सुकन्यया॥ ३६

तामुवाच प्रसन्नात्मा सचिवानां च शृण्वताम्।
कथं पुत्रि त्वमन्धस्य परिचर्यां वनेऽबला॥ ३७

करिष्यसि जरार्तस्य क्रोधनस्य विशेषतः।
कथमन्धाय चानेन रूपेण रतिसन्निभाम्॥ ३८

ददामि जरया ग्रस्तदेहाय सुखवाञ्छया।
पित्रा पुत्री प्रदातव्या वयोज्ञातिबलाय च॥ ३९

धनधान्यसमृद्धाय नाधनाय कदाचन।
क्व ते रूपं विशालाक्षि क्वासौ वृद्धो वनेचरः॥ ४०
कथं देया मया पुत्री तस्मै नातिवराय च।

ऐसा विचार करके राजा शर्याति सन्तप्त मनसे अपने घर चले गये और अत्यन्त विषादग्रस्त होकर उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे मन्त्रणा की—हे मन्त्रियो! आपलोग बताइये कि मैं इस समय क्या करूँ? अपनी पुत्री मुनिको सौंप दूँ अथवा स्वयं दुःख भोगूँ? अब आपलोग मिलकर इसपर सम्यक् विचार कीजिये कि मेरा हित किस प्रकार होगा?॥ ३०–३१½॥

मन्त्रिगण बोले—हे महाराज! इस विषम संकटकी स्थितिमें हम आपसे क्या कहें? यह अत्यन्त लावण्यमयी सुकन्या इस अभागेको देना कैसे उचित होगा?॥ ३२½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपने पिता तथा मन्त्रियोंको चिन्तासे आकुल देखकर सुकन्या उनका अभिप्राय समझ गयी और मुसकराकर बोली—हे पिताजी! आज आप चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियोंवाले किसलिये हैं? निश्चित ही आप मेरे लिये ही अत्यन्त दुःखार्त तथा म्लानमुख हैं। अतएव हे पिताजी! मैं अभी भयाक्रान्त मुनि च्यवनके पास जाकर और उन्हें आश्वस्त करके अपनेको अर्पितकर प्रसन्न करूँगी॥ ३३—३५½॥

इस प्रकार सुकन्याने जो बात कही, उसे सुनकर प्रसन्न मनवाले राजा शर्यातिने सचिवोंके समक्ष उससे कहा—हे पुत्रि! तुम अबला हो, अतएव वृद्धतासे ग्रस्त उस अन्धे तथा विशेष रूपसे क्रोधी मुनिकी सेवा उस वनमें कैसे कर पाओगी?॥ ३६–३७½॥

मैं इस प्रकारके रूपसे युक्त तथा रतिके तुल्य सुन्दरी कन्याको वार्धक्यसे ग्रस्त शरीरवाले अन्धे मुनिको अपने सुखके लिये भला कैसे दे दूँ? पिताको चाहिये कि वह अपनी पुत्री समान अवस्था, जाति तथा सामर्थ्यवाले और धन-धान्यसे सम्पन्न व्यक्तिको सौंपे, किंतु धनहीनको कभी भी नहीं सौंपे॥ ३८–३९½॥

हे विशाल नयनोंवाली पुत्रि! कहाँ तो तुम ऐसी रूपवती और कहाँ वनमें रहनेवाला वह वृद्ध मुनि! ऐसी स्थितिमें मैं अपनी पुत्रीको उस अयोग्यको भला कैसे अर्पित करूँ?॥ ४०½॥

उटजे नियतं वासो यस्य नित्यं मनोहरे॥ ४१

कथमम्बुजपत्राक्षि कल्पनीयो मया तव।
मरणं मे वरं प्राप्तं सैनिकानां तथैव च॥ ४२

न ते प्रदानमन्धाय रोचते पिकभाषिणि।
भवितव्यं भवत्येव धैर्यं नैव त्यजाम्यहम्॥ ४३

सुस्थिरा भव सुश्रोणि न दास्येऽन्धाय कर्हिचित्।
राज्यं तिष्ठतु वा यातु देहोऽयं च तथैव मे॥ ४४

न त्वां दास्याम्यहं तस्मै नेत्रहीनाय बालिके।
सुकन्या तं तदा प्राह श्रुत्वा तद्वचनं पितुः॥ ४५

प्रसन्नवदनातीव स्नेहयुक्तमिदं वचः।

सुकन्योवाच

न मे चिन्ता पितः कार्या देहि मां मुनयेऽधुना॥ ४६

सुखं भवतु सर्वेषां लोकानां मत्कृतेन हि।
सेवयिष्यामि सन्तुष्टा पतिं परमपावनम्॥ ४७

भक्त्या परमया चापि वृद्धं च विजने वने।
सतीधर्मपरा चाहं चरिष्यामि सुसम्मतम्॥ ४८

न भोगेच्छास्ति मे तात स्वस्थं चित्तं ममानघ।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा भाषितं तस्या मन्त्रिणो विस्मयं गताः॥ ४९

राजा च परमप्रीतो जगाम मुनिसन्निधौ।
गत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच तपोधनम्॥ ५०

स्वामिन् गृहाण पुत्रीं मे सेवार्थं विधिवद्विभो।
इत्युक्त्वासौ ददौ पुत्रीं विवाहविधिना नृपः॥ ५१

हे मनोहरे! हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली! छोटी-सी पर्णकुटीमें जो सदा निवास करता है, ऐसे वरके साथ तुम्हारे विवाहकी कल्पना भी मैं कैसे कर सकता हूँ!॥ ४१½ ॥

मेरी तथा मेरे सैनिकोंकी मृत्यु हो जाय यह तो मेरे लिये उत्तम है, किंतु हे पिकभाषिणि! तुम्हें एक अन्धेको सौंप देना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है॥ ४२½ ॥

होनहार तो होकर ही रहता है, किंतु मैं अपने धैर्यका त्याग नहीं करूँगा और हे सुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो; मैं तुम्हें उस अन्धे मुनिको कभी भी नहीं सौंप सकता॥ ४३½ ॥

हे पुत्रि! मेरा राज्य और यहाँतक कि मेरा शरीर भी रहे अथवा चला जाय, किंतु मैं उस नेत्रहीन मुनिको तुम्हें किसी भी स्थितिमें नहीं दूँगा॥ ४४½ ॥

तत्पश्चात् पिताका वह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली सुकन्याने उनसे यह स्नेहयुक्त वचन कहा—॥ ४५½ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! मेरे लिये आप चिन्ता न करें और अब मुझे मुनिको सौंप दीजिये; क्योंकि मेरे लिये ऐसा कर देनेसे सम्पूर्ण प्रजाको सुख प्राप्त होगा। मैं हर प्रकारसे सन्तुष्ट होकर उस निर्जन वनमें अपने परम पवित्र वृद्ध पतिकी अगाध श्रद्धासे सेवा करूँगी और शास्त्रसम्मत सती-धर्मका पूर्ण तत्परताके साथ पालन करूँगी। हे निष्पाप पिताजी! भोग-विलासमें मेरी अभिरुचि नहीं है। आप अपने चित्तमें स्थिरता रखिये॥ ४६—४८½ ॥

व्यासजी बोले—उस सुकन्याकी बातें सुनकर सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और राजा भी परम प्रसन्न होकर मुनिके पास गये॥ ४९½ ॥

वहाँ पहुँचकर उन तपोनिधिको सिर झुकाकर प्रणाम करके राजाने कहा—हे स्वामिन्! हे प्रभो! मेरी इस पुत्रीको आप अपनी सेवाके लिये विधिपूर्वक स्वीकार कीजिये॥ ५०½ ॥

ऐसा कहकर उन राजाने विधि-विधानसे विवाह सम्पन्न करके अपनी पुत्री मुनिको सौंप दी और उस कन्याको ग्रहण करके च्यवनऋषि भी प्रसन्न

प्रतिगृह्य मुनिः कन्यां प्रसन्नो भार्गवोऽभवत्।
पारिबर्हं न जग्राह दीयमानं नृपेण ह॥ ५२

कन्यामेवाग्रहीत्कामं परिचर्यार्थमात्मनः।
प्रसन्नेऽस्मिन्मुनौ जातं सैनिकानां सुखं तदा॥ ५३

राज्ञश्च परमाह्लादः सञ्जातस्तत्क्षणादपि।
दत्त्वा पुत्रीं यदा राजा गमनाय गृहं प्रति॥ ५४

मतिं चकार तन्वङ्गी तदोवाच नृपं सुता।

सुकन्योवाच

गृहाण मम वासांसि भूषणानि च मे पितः॥ ५५

वल्कलं परिधानाय प्रयच्छाजिनमुत्तमम्।
वेषं तु मुनिपत्नीनां कृत्वा तपसि सेवनम्॥ ५६

करिष्यामि तथा तात यथा ते कीर्तिरच्युता।
भविष्यति भुवः पृष्ठे तथा स्वर्गे रसातले॥ ५७

परलोकसुखायाहं चरिष्यामि दिवानिशम्।
दत्त्वान्धाय च वृद्धाय सुन्दरीं युवतीं तु माम्॥ ५८

चिन्ता त्वया न कर्तव्या शीलनाशसमुद्भवा।
अरुन्धती वसिष्ठस्य धर्मपत्नी यथा भुवि॥ ५९

तथैवाहं भविष्यामि नात्र कार्या विचारणा।
अनसूया यथा साध्वी भार्यात्रेः प्रथिता भुवि॥ ६०

तथैवाहं भविष्यामि पुत्री कीर्तिकरी तव।
सुकन्यावचनं श्रुत्वा राजा परमधर्मवित्॥ ६१

दत्त्वाजिनं रुरोदाशु वीक्ष्य तां चारुहासिनीम्।
त्यक्त्वा भूषणवासांसि मुनिवेषधरां सुताम्॥ ६२

विवर्णवदनो भूत्वा स्थितस्तत्रैव पार्थिवः।
राज्ञ्यः सर्वाः सुतां दृष्ट्वा वल्कलाजिनधारिणीम्॥ ६३
रुरुदुर्भृशशोकार्ता वेपमाना इवाभवन्।

हो गये। मुनिने राजाके द्वारा प्रदत्त उपहार ग्रहण नहीं किया। अपनी सेवाके लिये उन्होंने केवल राजकुमारीको ही स्वीकार किया॥ ५१-५२½ ॥

उन मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सैनिकोंको सुख प्राप्त हो गया। उसी समयसे राजा भी परम आह्लादित रहने लगे॥ ५३½ ॥

जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब कोमल अंगोंवाली राजकुमारी सुकन्या राजासे कहने लगी— ॥ ५४½ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! आप मेरे वस्त्र तथा आभूषण ले लीजिये और पहननेके लिये मुझे वल्कल एवं उत्तम मृगचर्म प्रदान कीजिये। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपमें निरत रहती हुई पतिसेवा करूँगी; जिससे पृथ्वीतल, रसातल और स्वर्गलोकमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी; परलोकके सुखके लिये मैं दिन-रात मुनिकी सेवा करती रहूँगी॥ ५५—५७½ ॥

सुन्दर तथा यौवनसम्पन्न अपनी पुत्री मुझ सुकन्याको एक अन्धे तथा वृद्ध मुनिको सौंपकर मेरे आचरणच्युत हो जानेकी शंका करके आप तनिक भी चिन्ता न कीजियेगा॥ ५८½ ॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती थी, उसी प्रकार मैं भी होऊँगी और जिस प्रकार अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया प्रसिद्ध हुईं, उसी प्रकार आपकी पुत्री मैं सुकन्या भी [अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे] कीर्ति बढ़ानेवाली होऊँगी; इसमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५९-६०½ ॥

सुकन्याकी बात सुनकर महान् धर्मज्ञ राजा शर्याति वस्त्रके रूपमें उसे मृगचर्म प्रदान करके रोने लगे। उस सुन्दर मुसकानवाली अपनी पुत्रीको शीघ्र ही आभूषण तथा वस्त्र त्यागकर मुनिवेष धारण किये देखकर राजा म्लानमुख होकर वहींपर ठहरे रहे॥ ६१-६२½ ॥

अपनी पुत्रीको वल्कल तथा मृगचर्म धारण की हुई देखकर सभी रानियाँ भी रो पड़ीं। वे परम शोकाकुल हो उठीं और काँपने लगीं॥ ६३½ ॥

तामापृच्छ्य महीपालो मन्त्रिभिः परिवारितः।
ययौ स्वनगरं राजन् मुक्त्वा पुत्रीं शुचार्पिताम्॥ ६४

[व्यासजी बोले—] हे राजन्! तत्पश्चात् अपनी उस समर्पित पुत्री सुकन्यासे विदा लेकर तथा उसे वहीं छोड़कर चिन्तित राजा मन्त्रियोंके साथ अपने नगरको चले गये॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे च्यवनसुकन्ययोर्गार्हस्थ्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सुकन्याकी पतिसेवा तथा वनमें अश्विनीकुमारोंसे भेंटका वर्णन

व्यास उवाच

गते राजनि सा बाला पतिसेवापरायणा।
बभूव च तथाग्नीनां सेवने धर्मतत्परा॥ १

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या अपने पति च्यवन-मुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्मपरायण वह उस आश्रममें अग्नियोंकी सेवामें सदा निरत रहने लगी॥ १॥

फलान्यादाय स्वादूनि मूलानि विविधानि च।
ददौ सा मुनये बाला पतिसेवापरायणा॥ २

सर्वदा पतिसेवामें संलग्न रहनेवाली वह बाला विविध प्रकारके स्वादिष्ट फल तथा कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी॥ २॥

पतिं तप्तोदकेनाशु स्नापयित्वा मृगत्वचा।
परिवेष्ट्य शुभायां तु बृस्यां स्थापितवत्यपि॥ ३

तिलान् यवकुशानग्रे परिकल्प्य कमण्डलुम्।
तमुवाच नित्यकर्म कुरुष्व मुनिसत्तम॥ ४

वह [शीतकालमें] ऊष्ण जलसे उन्हें शीघ्रता-पूर्वक स्नान करानेके पश्चात् मृगचर्म पहनाकर पवित्र आसनपर विराजमान कर देती थी। पुनः उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर उनसे कहती थी—मुनिश्रेष्ठ! अब आप अपना नित्यकर्म करें॥ ३-४॥

तमुत्थाप्य करे कृत्वा समाप्ते नित्यकर्मणि।
बृस्यां वा संस्तरे बाला भर्तारं संन्यवेशयत्॥ ५

मुनिका नित्यकर्म समाप्त हो जानेपर वह सुकन्या पतिका हाथ पकड़कर उठाती और पुनः किसी आसन अथवा कोमल शय्यापर उन्हें बिठा देती थी॥ ५॥

पश्चादानीय पक्वानि फलानि च नृपात्मजा।
भोजयामास च्यवनं नीवारान्नं सुसंस्कृतम्॥ ६

तत्पश्चात् वह राजकुमारी पके हुए फल तथा भली-भाँति सिद्ध किये गये नीवारान्न (धान्यविशेष) च्यवन-मुनिको भोजन कराती थी॥ ६॥

भुक्तवन्तं पतिं तृप्तं दत्त्वाचमनमादरात्।
पश्चाच्च पूगं पत्राणि ददौ चादरसंयुता॥ ७

वह सुकन्या भोजन करके तृप्त हुए पतिको आदरपूर्वक आचमन करानेके पश्चात् बड़े प्रेमके साथ उन्हें ताम्बूल तथा पूगीफल प्रदान करती थी॥ ७॥

गृहीतमुखवासं तं संवेश्य च शुभासने।
गृहीत्वाज्ञां शरीरस्य चकार साधनं ततः॥ ८

च्यवनमुनिके मुखशुद्धि कर लेनेपर सुकन्या उन्हें सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर वह अपने शरीर-सम्बन्धी कृत्य सम्पन्न करती थी॥ ८॥

फलाहारं स्वयं कृत्वा पुनर्गत्वा च सन्निधौ।
प्रोवाच प्रणयोपेता किमाज्ञापयसे प्रभो॥ ९

पादसंवाहनं तेऽद्य करोमि यदि मन्यसे।
एवं सेवापरा नित्यं बभूव पतितत्परा॥ १०

सायं होमावसाने सा फलान्याहृत्य सुन्दरी।
अर्पयामास मुनये स्वादूनि च मृदूनि च॥ ११

ततः शेषाणि बुभुजे प्रेमयुक्ता तदाज्ञया।
सुस्पर्शास्तरणं कृत्वा शाययामास तं मुदा॥ १२

सुप्ते सुखं प्रिये कान्ता पादसंवाहनं तदा।
चकार पृच्छती धर्मं कुलस्त्रीणां कृशोदरी॥ १३

पादसंवाहनं कृत्वा निशि भक्तिपरायणा।
निद्रितं च मुनिं ज्ञात्वा सुष्वाप चरणान्तिके॥ १४

शुचौ प्रतिष्ठितं वीक्ष्य तालवृन्तेन भामिनी।
कुर्वाणा शीतलं वायुं सिषेवे स्वपतिं तदा॥ १५

हेमन्ते काष्ठसम्भारं कृत्वाग्निज्वलनं पुरः।
स्थापयित्वा तथापृच्छत्सुखं तेऽस्तीति चासकृत्॥ १६

ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय जलं पात्रं च मृत्तिकाम्।
समर्पयित्वा शौचार्थं समुत्थाप्य पतिं प्रिया॥ १७

स्थानाद्दूरे च संस्थाप्य दूरं गत्वा स्थिराभवत्।
कृतशौचं पतिं ज्ञात्वा गत्वा जग्राह तं पुनः॥ १८

आनीयाश्रममव्यग्रा चोपवेश्यासने शुभे।
मृज्जलाभ्यां च प्रक्षाल्य पादावस्य यथाविधि॥ १९

दत्त्वाचमनपात्रं तु दन्तधावनमाहरत्।
समर्प्य दन्तकाष्ठं च यथोक्तं नृपनन्दिनी॥ २०

चकारोष्णं जलं शुद्धं समानीतं सुपावनम्।
स्नानार्थं जलमाहृत्य पप्रच्छ प्रणयान्विता॥ २१

तत्पश्चात् स्वयं फलाहार करके वह पुनः मुनिके पास जाकर नम्रतापूर्वक उनसे कहती थी—'हे प्रभो! मुझे क्या आज्ञा दे रहे हैं? यदि आपकी सम्मति हो तो मैं अब आपके चरण दबाऊँ।' इस प्रकार पतिपरायणा वह सुकन्या उनकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी॥ ९-१०॥

सायंकालीन हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी स्वादिष्ट तथा मधुर फल लाकर मुनिको अर्पित करती थी। पुनः उनकी आज्ञासे भोजनसे बचे हुए आहारको बड़े प्रेमके साथ स्वयं ग्रहण करती थी। इसके बाद अत्यन्त कोमल तथा सुन्दर आसन बिछाकर उन्हें प्रेमपूर्वक उसपर लिटा देती थी॥ ११-१२॥

अपने प्रिय पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर वह सुन्दरी उनके पैर दबाने लगती थी। उस समय क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कुलीन स्त्रियोंके धर्मके विषयमें उनसे पूछा करती थी॥ १३॥

चरण दबा करके रातमें वह भक्तिपरायणा सुकन्या जब यह जान जाती थी कि च्यवनमुनि सो गये हैं, तब वह भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती थी॥ १४॥

ग्रीष्मकालमें अपने पति च्यवनमुनिको बैठा देखकर वह सुन्दरी सुकन्या ताड़के पंखेसे शीतल वायु करती हुई उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। शीतकालमें सूखी लकड़ियाँ एकत्रकर उनके सम्मुख प्रज्वलित अग्नि रख करके वह उनसे बार-बार पूछा करती थी कि आप सुखपूर्वक तो हैं?॥ १५-१६॥

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वह सुकन्या जल, पात्र तथा मिट्टी पतिके पास रखकर उन्हें शौचके लिये उठाती थी। इसके बाद उन्हें आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देनेके बाद वहाँसे स्वयं कुछ दूर हटकर बैठी रहती थी। 'मेरे पतिदेव शौच कर चुके होंगे'—ऐसा जानकर वह उनके पास जा करके उन्हें उठाती थी और आश्रममें ले आकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक एक सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे विधिवत् उनके दोनों चरण धोकर फिर आचमनपात्र दे करके दन्तधावन (दातौन) ले आती थी। शास्त्रोक्त दातौन मुनिको देनेके बाद वह राजकुमारी मुनिके स्नानके लिये लाये गये शुद्ध तथा परम पवित्र

किमाज्ञापयसे ब्रह्मन् कृतं वै दन्तधावनम्।
उष्णोदकं सुसम्पन्नं कुरु स्नानं समन्त्रकम्॥ २२

वर्तते होमकालोऽयं सन्ध्या पूर्वा प्रवर्तते।
विधिवद्धवनं कृत्वा देवतापूजनं कुरु॥ २३

एवं कन्या पतिं लब्ध्वा तपस्विनमनिन्दिता।
नित्यं पर्यचरत्प्रीत्या तपसा नियमेन च॥ २४

अग्नीनामतिथीनां च शुश्रूषां कुर्वती सदा।
आराधयामास मुदा च्यवनं सा शुभानना॥ २५

कस्मिंश्चिदथ काले तु रविजावश्विनावुभौ।
च्यवनस्याश्रमाभ्याशे क्रीडमानौ समागतौ॥ २६

जले स्नात्वा तु तां कन्यां निवृत्तां स्वाश्रमं प्रति।
गच्छन्तीं चारुसर्वाङ्गीं रविपुत्रावपश्यताम्॥ २७

तां दृष्ट्वा देवकन्याभां गत्वा चान्तिकमादरात्।
ऊचतुः समभिद्रुत्य नासत्यावतिमोहितौ॥ २८

क्षणं तिष्ठ वरारोहे प्रष्टुं त्वां गजगामिनि।
आवां देवसुतौ प्राप्तौ ब्रूहि सत्यं शुचिस्मिते॥ २९

पुत्री कस्य पतिः कस्ते कथमुद्यानमागता।
एकाकिनी तडागेऽस्मिन् स्नानार्थं चारुलोचने॥ ३०

द्वितीया श्रीरिवाभासि कान्त्या कमललोचने।
इच्छामस्तु वयं ज्ञातुं तत्त्वमाख्याहि शोभने॥ ३१

कोमलौ चरणौ कान्ते स्थितौ भूमावनावृतौ।
हृदये कुरुतः पीडां चलन्तौ चललोचने॥ ३२

विमानार्हासि तन्वङ्गि कथं पद्भ्यां व्रजस्यदः।
अनावृतात्र विपिने किमर्थं गमनं तव॥ ३३

जलको गरम करने लगती थी। तत्पश्चात् उस जलको ले आकर प्रेमपूर्वक उनसे पूछती थी—'हे ब्रह्मन्! आप क्या आज्ञा दे रहे हैं? आपने दन्तधावन तो कर लिया? उष्ण जल तैयार है, अतः अब आप मन्त्रोच्चारपूर्वक स्नान कर लीजिये। हवन और प्रातःकालीन संध्याका समय उपस्थित है; आप विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके देवताओंका पूजन कीजिये'॥ १७—२३॥

इस प्रकार वह श्रेष्ठ सुकन्या तपस्वी पति प्राप्तकर तप तथा नियमके साथ प्रेमपूर्वक प्रतिदिन उनकी सेवा करती रहती थी॥ २४॥

सुन्दर मुखवाली वह सुकन्या अग्नि तथा अतिथियोंकी सेवा करती हुई प्रसन्नतापूर्वक सदा च्यवनमुनिकी सेवामें तल्लीन रहती थी॥ २५॥

किसी समय सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए च्यवनमुनिके आश्रमके पास आ पहुँचे॥ २६॥

उन अश्विनीकुमारोंने जलमें स्नान करके निवृत्त हुई तथा अपने आश्रमकी ओर जाती हुई उस सर्वांगसुन्दरी सुकन्याको देख लिया॥ २७॥

देवकन्याके समान कान्तिवाली उस सुकन्याको देखकर दोनों अश्विनीकुमार अत्यधिक मुग्ध हो गये और शीघ्र ही उसके पास पहुँचकर आदरपूर्वक कहने लगे—॥ २८॥

हे वरारोहे! थोड़ी देर ठहरो। हे गजगामिनि! हम दोनों सूर्यदेवके पुत्र अश्विनीकुमार तुमसे कुछ पूछनेके लिये यहाँ आये हैं। हे शुचिस्मिते! सच-सच बताओ कि तुम किसकी पुत्री हो, तुम्हारे पति कौन हैं? हे चारुलोचने! इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये तुम अकेली ही उद्यानमें क्यों आयी हुई हो?॥ २९-३०॥

हे कमललोचने! तुम तो सौन्दर्यमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही हो। हे शोभने! हम यह रहस्य जानना चाहते हैं, तुम बताओ॥ ३१॥

हे कान्ते! हे चंचल नयनोंवाली! जब तुम्हारे ये कोमल तथा नग्न चरण कठोर भूमिपर पड़ते हैं तथा आगेकी ओर बढ़ते हैं, तब ये हमारे हृदयमें व्यथा उत्पन्न करते हैं। हे तन्वंगि! तुम विमानपर चलनेयोग्य हो; तब तुम नंगे पाँव पैदल ही क्यों चल रही हो? इस वनमें तुम्हारा भ्रमण क्यों हो रहा है?॥ ३२-३३॥

दासीशतसमायुक्ता कथं न त्वं विनिर्गता।
राजपुत्र्यप्सरा वासि वद सत्यं वरानने॥ ३४

धन्या माता यतो जाता धन्योऽसौ जनकस्तव।
वक्तुं त्वां नैव शक्तौ च भर्तुर्भाग्यं तवानघे॥ ३५

देवलोकाधिका भूमिरियं चैव सुलोचने।
प्रचलंश्चरणस्तेऽद्य सम्पावयति भूतलम्॥ ३६

सौभाग्याश्च मृगाः कामं ये त्वां पश्यन्ति वै वने।
ये चान्ये पक्षिणः सर्वे भूरियं चातिपावना॥ ३७

स्तुत्यालं तव चात्यर्थं सत्यं ब्रूहि सुलोचने।
पिता कस्ते पतिः क्वासौ द्रष्टुमिच्छास्ति सादरम्॥ ३८

व्यास उवाच

तयोरिति वचः श्रुत्वा राजकन्यातिसुन्दरी।
तावुवाच त्रपाक्रान्ता देवपुत्री नृपात्मजा॥ ३९

शर्यातितनयां मां वां वित्तं भार्यां मुनेरिह।
च्यवनस्य सतीं कान्तां पित्रा दत्तां यदृच्छया॥ ४०

पतिरन्धोऽस्ति मे देवौ वृद्धश्चातीव तापसः।
तस्य सेवामहोरात्रं करोमि प्रीतिमानसा॥ ४१

कौ युवां किमिहायातौ पतिस्तिष्ठति चाश्रमे।
तत्रागत्य प्रकुरुतमाश्रमं चाद्य पावनम्॥ ४२

तदाकर्ण्य वचो दस्त्रावूचतुस्तां नराधिप।
कथं त्वमपि कल्याणि पित्रा दत्ता तपस्विने॥ ४३

भ्राजसेऽस्मिन्वनोद्देशे विद्युत्सौदामिनी यथा।
न देवेष्वपि तुल्या हि तव दृष्टास्ति भामिनि॥ ४४

तुम सैकड़ों दासियोंको साथ लेकर घरसे क्यों नहीं निकली? हे वरानने! तुम राजपुत्री हो अथवा अप्सरा हो, यह सच-सच बता दो॥ ३४॥

तुम्हारी माता धन्य हैं, जिनसे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे वे पिता भी धन्य हैं। हे अनघे! तुम्हारे पतिके भाग्यके विषयमें तो हम तुमसे कह ही नहीं सकते॥ ३५॥

हे सुलोचने! यहाँकी भूमि देवलोकसे भी बढ़कर है। पृथ्वीतलपर पड़ता हुआ तुम्हारा चरण इसे पवित्र बना रहा है॥ ३६॥

इस वनमें रहनेवाले सभी मृग तथा दूसरे पक्षी जो तुम्हें देख रहे हैं, वे परम भाग्यशाली हैं। यह भूमि भी परम पवित्र हो गयी है॥ ३७॥

हे सुलोचने! तुम्हारी अधिक प्रशंसा क्या करें? अब तुम सत्य बता दो कि तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं? उन्हें आदरपूर्वक देखनेकी हमारी इच्छा है॥ ३८॥

व्यासजी बोले—अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित हो गयी। देवकन्याके सदृश वह राजपुत्री उनसे कहने लगी—॥ ३९॥

आपलोग मुझे राजा शर्यातिकी पुत्री तथा च्यवनमुनिकी भार्या समझें। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। मेरे पिताजीने स्वेच्छासे मुझे इन्हें सौंप दिया है॥ ४०॥

हे देवताओ! मेरे पतिदेव वृद्ध तथा नेत्रहीन हैं। वे परम तपस्वी हैं। मैं प्रसन्न मनसे दिन-रात उनकी सेवा करती रहती हूँ॥ ४१॥

आप दोनों कौन हैं और यहाँ क्यों पधारे हुए हैं? मेरे पतिदेव इस समय आश्रममें विराजमान हैं। आपलोग वहाँ चलकर आश्रमको पवित्र कीजिये॥ ४२॥

हे राजन्! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याकी बात सुनकर उससे कहा—हे कल्याणि! तुम्हारे पिताने तुम्हें उन तपस्वीको कैसे सौंप दिया?॥ ४३॥

तुम तो बादलमें चमकनेवाली विद्युत्की भाँति इस वन-प्रदेशमें सुशोभित हो रही हो। हे भामिनि! तुम्हारे सदृश स्त्री तो देवताओंके यहाँ भी नहीं देखी गयी है॥ ४४॥

त्वं दिव्याम्बरयोग्यासि शोभसे नाजिनैर्वृता।
सर्वाभरणसंयुक्ता नीलालकवरूथिनी॥ ४५

अहो विधेर्दुष्कलितं विचेष्टितं
यदत्र रम्भोरु वने विषीदसि।
विशालनेत्रेऽन्धमिमं पतिं प्रिये
मुनिं समासाद्य जरातुरं भृशम्॥ ४६

वृथा वृतस्तेन भृशं न शोभसे
नवं वयः प्राप्य सुनृत्यपण्डिते।
मनोभवेनाशु शराः सुसन्धिताः
पतन्ति कस्मिन्पतिरीदृशस्तव॥ ४७

त्वमन्धभार्या नवयौवनान्विता
कृतासि धात्रा ननु मन्दबुद्धिना।
न चैनमर्हस्यसितायतेक्षणे
पतिं त्वमन्यं कुरु चारुलोचने॥ ४८

वृथैव ते जीवितमम्बुजेक्षणे
पतिं च सम्प्राप्य मुनिं गतेक्षणम्।
वने निवासं च तथाजिनाम्बर-
प्रधारणं योग्यतरं न मन्महे॥ ४९

अतोऽनवद्याङ्ग्युभयोस्त्वमेकं
वरं कुरुष्वावहिता सुलोचने।
किं यौवनं मानिनि सङ्करोषि
वृथा मुनिं सुन्दरि सेवमाना॥ ५०

किं सेवसे भाग्यविवर्जितं तं
समुज्झितं पोषणरक्षणाभ्याम्।
त्यक्त्वा मुनिं सर्वसुखापवर्जितं
भजानवद्याङ्ग्युभयोस्त्वमेकम् ॥ ५१

त्वं नन्दने चैत्ररथे वने च
कुरुष्व कान्ते प्रथितं विहारम्।
अन्धेन वृद्धेन कथं हि कालं
विनेष्यसे मानिनि मानहीनम्॥ ५२

काले केशपाशवाली तुम दिव्य वस्त्र तथा सर्वविध आभूषण धारण करनेके योग्य हो। इन वल्कल वस्त्रोंको धारण करके तुम शोभा नहीं पा रही हो॥ ४५॥

हे रम्भोरु! हे विशालनेत्रे! हे प्रिये! विधाताने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कृत्य किया है, जो कि तुम वार्धक्यसे पीड़ित इस नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके इस वनमें महान् कष्ट भोग रही हो!॥ ४६॥

हे नृत्यविशारदे! तुमने इन्हें व्यर्थ ही वरण किया। नवीन अवस्था प्राप्त करके तुम उनके साथ शोभा नहीं पा रही हो। भलीभाँति लक्ष्य साध करके कामदेवके द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये बाण किसपर गिरेंगे; तुम्हारे पति तो इस प्रकारके [असमर्थ] हैं॥ ४७॥

विधाता निश्चय ही मन्द बुद्धिवाले हैं, जो उन्होंने नवयौवनसे सम्पन्न तुम्हें नेत्रहीनकी पत्नी बना दिया। हे विशाललोचने! तुम इनके योग्य नहीं हो। अतः हे चारुलोचने! तुम किसी दूसरेको अपना पति बना लो॥ ४८॥

हे कमललोचने! ऐसे नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें पाकर तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो गया है। हमलोग इस तरहसे वनमें तुम्हारे निवास करने तथा वल्कलवस्त्र धारण करनेको उचित नहीं मानते हैं॥ ४९॥

अतः हे प्रशस्त अंगोंवाली! तुम सम्यक् विचार करके हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लो। हे सुलोचने! हे मानिनि! हे सुन्दरि! तुम इस [अन्धे तथा बूढ़े] मुनिकी सेवा करती हुई अपने यौवनको व्यर्थ क्यों कर रही हो?॥ ५०॥

भाग्यसे हीन तथा पोषण-भरण और रक्षाके सामर्थ्यसे रहित उस मुनिकी सेवा तुम क्यों कर रही हो? हे निर्दोष अंगोंवाली! सभी प्रकारके सुखोपभोगोंसे वंचित इस मुनिको छोड़कर तुम हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो॥ ५१॥

हे कान्ते! हमें वरण करके तुम इन्द्रके नन्दनवनमें तथा कुबेरके चैत्ररथवनमें स्वेच्छापूर्वक विहार करो। हे मानिनि! तुम इस अन्धे तथा वृद्धके साथ अपमानित होकर अपना जीवन कैसे बिताओगी?॥ ५२॥

भूपात्मजा त्वं शुभलक्षणा च
जानासि संसारविहारभावम्।
भाग्येन हीना विजने वनेऽत्र
कालं कथं वाहयसे वृथा च॥ ५३

तस्माद्व्रजस्व पिकभाषिणि चारुवक्त्रे
एवं द्वयोस्तव सुखाय विशालनेत्रे।
देवालयेषु च कृशोदरि भुङ्क्ष्व भोगां-
स्त्यक्त्वा मुनिं जरठमाशु नृपेन्द्रपुत्रि॥ ५४

किं ते सुखं चात्र वने सुकेशि
वृद्धेन सार्धं विजने मृगाक्षि।
सेवा तथान्धस्य नवं वयश्च
किं ते मतं भूपतिपुत्रि दुःखम्॥ ५५

शशिमुखि त्वमतीव सुकोमला
फलजलाहरणं तव नोचितम्॥ ५६

तुम समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक राजकुमारी हो तथा सांसारिक हाव-भावोंको भलीभाँति जानती हो। अतः तुम भाग्यहीन स्त्रीकी भाँति इस निर्जन वनमें अपना समय व्यर्थ क्यों बिता रही हो?॥ ५३॥

अतः हे पिकभाषिणि! हे सुमुखि! हे विशालनेत्रे! तुम अपने सुखके लिये हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो। कृश कटि-प्रदेशवाली हे राजकुमारी! तुम इस वृद्ध मुनिको शीघ्र छोड़कर हमारे साथ देवभवनोंमें चलकर नानाविध सुखोंका भोग करो॥ ५४॥

हे सुन्दर केशोंवाली! हे मृगनयनी! इस निर्जन वनमें एक वृद्धके साथ रहते हुए तुम्हें कौन-सा सुख है? एक तो तुम्हारी यह नयी युवावस्था और उसपर भी एक अन्धेकी सेवा तुम्हें करनी पड़ रही है। हे राजकुमारी! क्या दुःख भोगना ही तुम्हारा अभीष्ट है?॥ ५५॥

हे चन्द्रमुखी! तुम अत्यन्त कोमल हो, अतः [वनसे] तुम्हारा इस प्रकार फल तथा जल ले आना कदापि उचित नहीं है॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे अश्विनीकुमारयोः सुकन्यां प्रति बोधवचनवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

अश्विनीकुमारोंका च्यवनमुनिको नेत्र तथा नवयौवनसे सम्पन्न बनाना

व्यास उवाच

तयोस्तद्भाषितं श्रुत्वा वेपमाना नृपात्मजा।
धैर्यमालम्ब्य तौ तत्र बभाषे मितभाषिणी॥ १

देवौ वां रविपुत्रौ च सर्वज्ञौ सुरसम्मतौ।
सतीं मां धर्मशीलां च नैवं वदितुमर्हथः॥ २

पित्रा दत्ता सुरश्रेष्ठौ मुनये योगधर्मिणे।
कथं गच्छामि तं मार्गं पुंश्चलीगणसेवितम्॥ ३

व्यासजी बोले—उन अश्विनीकुमारोंकी वह बात सुनकर मितभाषिणी राजपुत्री सुकन्या थर-थर काँपने लगी और धैर्य धारण करके उनसे बोली॥ १॥

हे देवताओ! आप दोनों सूर्यपुत्र हैं। आपलोग सर्वज्ञ तथा देवताओंमें सम्मान्य हैं। मुझ पतिव्रता तथा धर्मपरायणा स्त्रीके प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ २॥

हे सुरश्रेष्ठो! मेरे पिताजीने मुझे इन्हीं योग-परायण मुनिको सौंप दिया है, तब मैं व्यभिचारिणी स्त्रियोंके द्वारा सेवित उस मार्गका अनुसरण कैसे करूँ?॥ ३॥

द्रष्टायं सर्वलोकस्य कर्मसाक्षी दिवाकरः।
कश्यपाच्चैव सम्भूतो नैवं भाषितुमर्हथः॥ ४

कुलकन्या पतिं त्यक्त्वा कथमन्यं भजेन्नरम्।
असारेऽस्मिन्हि संसारे जानन्तौ धर्मनिर्णयम्॥ ५

यथेच्छं गच्छतं देवौ शापं दास्यामि वानघौ।
सुकन्याहं च शर्यातेः पतिभक्तिपरायणा॥ ६

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्या नासत्यौ विस्मितौ भृशम्।
तावब्रूतां पुनस्त्वेनां शङ्कमानौ भयं मुनेः॥ ७

राजपुत्रि प्रसन्नौ ते धर्मेण वरवर्णिनि।
वरं वरय सुश्रोणि दास्यावः श्रेयसे तव॥ ८

जानीहि प्रमदे नूनमावां देवभिषग्वरौ।
युवानं रूपसम्पन्नं प्रकुर्यावः पतिं तव॥ ९

ततस्त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु।
समानरूपदेहानां मध्ये चातुर्यपण्डिते॥ १०

सा तयोर्वचनं श्रुत्वा विस्मिता स्वपतिं तदा।
गत्वोवाच तयोर्वाक्यं ताभ्यामुक्तं यदद्भुतम्॥ ११

सुकन्योवाच

स्वामिन् सूर्यसुतौ देवौ सम्प्राप्तौ च्यवनाश्रमे।
दृष्टौ मया दिव्यदेहौ नासत्यौ भृगुनन्दन॥ १२

वीक्ष्य मां चारुसर्वाङ्गीं जातौ कामातुरावुभौ।
कथितं वचनं स्वामिन् पतिं ते नवयौवनम्॥ १३

दिव्यदेहं करिष्यावश्चक्षुष्मन्तं मुनिं किल।
एतेन समयेनाद्य तं शृणु त्वं मयोदितम्॥ १४

कश्यपसे उत्पन्न हुए भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। [इन्हींके साक्षात् पुत्ररूप] आपलोगोंको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ४॥

कोई भी कुलीन कन्या अपने पतिको छोड़कर किसी अन्य पुरुषको इस सारहीन जगत्में भला कैसे स्वीकार कर सकती है? धर्मसिद्धान्तोंको जाननेवाले आप दोनों अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहें चले जाइये, अन्यथा हे निष्पाप देवताओ! मैं आपलोंगोको शाप दे दूँगी; पतिकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाली मैं महाराज शर्यातिकी पुत्री सुकन्या हूँ॥ ५-६॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुकन्याकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार बहुत विस्मयमें पड़ गये। उसके बाद मुनि च्यवनके भयसे सशंकित उन दोनोंने सुकन्यासे कहा—॥ ७॥

सुन्दर अंगोंवाली हे राजपुत्रि! तुम्हारे इस पतिधर्मसे हम दोनों परम प्रसन्न हैं। हे सुश्रोणि! तुम वर माँगो, हम तुम्हारे कल्याणार्थ अवश्य देंगे॥ ८॥

हे प्रमदे! तुम यह निश्चय जान लो कि हम देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं। हम [अपनी चिकित्सासे] तुम्हारे पतिको रूपवान् तथा युवा बना देंगे। हे चातुर्यपण्डिते! जब हम ऐसा कर दें, तब तुम समानरूप और देहवाले हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना॥ ९-१०॥

तब उन दोनोंकी बात सुनकर सुकन्याको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने पतिके पास जाकर वह सुकन्या अश्विनीकुमारोंके द्वारा कही गयी वह अद्भुत बात उनसे कहने लगी॥ ११॥

सुकन्या बोली—हे स्वामिन्! आपके आश्रममें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार आये हुए हैं। हे भृगुनन्दन! दिव्य देहवाले उन देवताओंको मैंने स्वयं देखा है॥ १२॥

मुझ सर्वांगसुन्दरीको देखते ही वे दोनों कामासक्त हो गये। हे स्वामिन्! उन्होंने मुझसे यह बात कही—'हमलोग तुम्हारे पति इन च्यवनमुनिको निश्चय ही नवयौवनसे सम्पन्न, दिव्य शरीरवाला तथा नेत्रोंसे युक्त बना देंगे, इसमें यह एक शर्त है, उसे तुम मुझसे सुन

समावयवरूपं च करिष्यावः पतिं तव।
तत्र त्रयाणामस्माकं पतिमेकतमं वृणु॥ १५

तच्छ्रुत्वाहमिहायाता प्रष्टुं त्वां कार्यमद्भुतम्।
किं कर्तव्यमतः साधो ब्रूह्यस्मिन्कार्यसङ्कटे॥ १६

देवमायापि दुर्ज्ञेया न जाने कपटं तयोः।
यदाज्ञापय सर्वज्ञ तत्करोमि तवेप्सितम्॥ १७

च्यवन उवाच

गच्छ कान्तेऽद्य नासत्यौ वचनान्मम सुव्रते।
आनयस्व समीपं मे शीघ्रं देवभिषग्वरौ॥ १८

क्रियतामाशु तद्वाक्यं नात्र कार्या विचारणा।

व्यास उवाच

एवं सा समनुज्ञाता तत्र गत्वा वचोऽब्रवीत्॥ १९

क्रियतामाशु नासत्यौ समयेन सुरोत्तमौ।
तच्छ्रुत्वा चाश्विनौ वाक्यं तस्यास्तौ तत्र चागतौ॥ २०

ऊचतू राजपुत्रीं तां पतिस्तव विशत्वपः।
रूपार्थं च्यवनस्तूर्णं ततोऽम्भः प्रविवेश ह॥ २१

अश्विनावपि पश्चात्तत्प्रविष्टौ सर उत्तमम्।
ततस्ते निःसृतास्तस्मात्सरसस्तत्क्षणात्त्रयः॥ २२

तुल्यरूपा दिव्यदेहा युवानः सदृशाः किल।
दिव्यकुण्डलभूषाढ्याः समानावयवास्तथा॥ २३

तेऽब्रुवन्सहिताः सर्वे वृणीष्व वरवर्णिनि।
अस्माकमीप्सितं भद्रे पतिं त्वममलानने॥ २४
यस्मिन्वाप्यधिका प्रीतिस्तं वृणुष्व वरानने।

लो। जब हम तुम्हारे पतिको अपने समान अंग तथा रूपवाला बना दें, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा'॥ १३—१५॥

उनकी यह बात सुनकर आपसे इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। हे साधो! अब आप मुझे बतायें कि इस संकटमय कार्यके आ जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? देवताओंकी माया बड़ी दुर्बोध होती है। उन दोनोंके इस छद्मको मैं नहीं समझ पा रही हूँ। अतः हे सर्वज्ञ! अब आप ही मुझे आदेश दीजिये, आपकी जो इच्छा होगी, मैं वही करूँगी॥ १६-१७॥

च्यवन बोले—हे कान्ते! हे सुव्रते! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम देवताओंके श्रेष्ठ चिकित्सक अश्विनी-कुमारोंके समीप जाओ और उन्हें मेरे पास शीघ्र ले आओ। तुम उनकी शर्त तुरंत स्वीकार कर लो, इसमें किसी प्रकारका सोच-विचार नहीं करना चाहिये॥ १८½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार च्यवनमुनिकी आज्ञा पा जानेपर वह अश्विनीकुमारोंके पास जाकर उनसे बोली—हे देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारो! आपलोग प्रतिज्ञाके अनुसार शीघ्र ही कार्य करें॥ १९½ ॥

सुकन्याकी बात सुनकर वे अश्विनीकुमार वहाँ आये और राजकुमारीसे बोले—'तुम्हारे पति इस सरोवरमें प्रवेश करें।' तब रूपप्राप्तिके लिये च्यवनमुनि शीघ्रतापूर्वक सरोवरमें प्रविष्ट हो गये। उनके बादमें दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरमें प्रवेश किया॥ २०-२१½ ॥

तदनन्तर वे तीनों तुरंत ही उस सरोवरसे बाहर निकल आये। उन तीनोंका शरीर दिव्य था, वे समान रूपवाले थे और एकसमान युवा बन गये थे। शरीरके सभी समान अंगोंवाले वे तीनों युवक दिव्य कुण्डलों तथा आभूषणोंसे सुशोभित थे॥ २२-२३॥

वे सभी एक साथ बोल उठे—'हे वरवर्णिनि! हे भद्रे! हे अमलानने! हम लोगोंमें जिसे तुम चाहती हो, उसका पतिरूपमें वरण कर लो। हे वरानने! जिसमें तुम्हारी सबसे अधिक प्रीति हो, उसे पतिरूपमें चुन लो॥ २४½ ॥

व्यास उवाच

सा दृष्ट्वा तुल्यरूपांस्तान्समानवयसस्तथा॥ २५

एकस्वरांस्तुल्यवेषांस्त्रीन्वै देवसुतोपमान्।
सा तु संशयमापन्ना वीक्ष्य तान्सदृशाकृतीन्॥ २६

अजानन्ती पतिं सम्यग्व्याकुला समचिन्तयत्।
किं करोमि त्रयस्तुल्याः कं वृणोमि न वेद्म्यहम्॥ २७

पतिं देवसुता ह्येते संशये पतितास्म्यहम्।
इन्द्रजालमिदं सम्यग्देवाभ्यामिह कल्पितम्॥ २८

कर्तव्यं किं मया चात्र मरणं समुपागतम्।
न मया पतिमुत्सृज्य वरणीयः कथञ्चन॥ २९

देवस्त्वाधुनिकः कश्चिदित्येषा मम धारणा।
इति सञ्चिन्त्य मनसा परां विश्वेश्वरीं शिवाम्॥ ३०

दध्यौ भगवतीं देवीं तुष्टाव च कृशोदरी।

सुकन्योवाच

शरणं त्वां जगन्मातः प्राप्तास्मि भृशदुःखिता॥ ३१

रक्ष मेऽद्य सतीधर्मं नमामि चरणौ तव।
नमः पद्मोद्भवे देवि नमः शङ्करवल्लभे॥ ३२

विष्णुप्रिये नमो लक्ष्मि वेदमातः सरस्वति।
इदं जगत्त्वया सृष्टं सर्वं स्थावरजङ्गमम्॥ ३३

पासि त्वमिदमव्यग्रा तथात्सि लोकशान्तये।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां जननी त्वं सुसम्मता॥ ३४

बुद्धिदासि त्वमज्ञानां ज्ञानिनां मोक्षदा सदा।
आज्ञा त्वं प्रकृतिः पूर्णा पुरुषप्रियदर्शना॥ ३५

भुक्तिमुक्तिप्रदासि त्वं प्राणिनां विशदात्मनाम्।
अज्ञानां दुःखदा कामं सत्त्वानां सुखसाधना॥ ३६
सिद्धिदा योगिनामम्ब जयदा कीर्तिदा पुनः।

व्यासजी बोले—देवकुमारोंके समान प्रतीत होनेवाले उन तीनोंको रूप, अवस्था, स्वर, वेषभूषा तथा आकृतिमें पूर्णतः एक-जैसा देखकर वह सुकन्या बड़े असमंजसमें पड़ गयी॥ २५-२६॥

वह अपने पति [च्यवनमुनि]-को ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रही थी, अतः व्याकुल होकर सोचने लगी—मैं क्या करूँ? ये तीनों देवकुमार एक-जैसे हैं। अतः मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि इनमेंसे मैं पतिरूपमें किसका वरण करूँ? मैं तो बड़े संशयकी स्थितिमें पड़ गयी हूँ। दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने यह विचित्र इन्द्रजाल यहाँ रच डाला है; इस स्थितिमें मुझे अब क्या करना चाहिये? मेरे लिये तो यह मृत्यु ही उपस्थित हो गयी है। मैं अपने पतिको छोड़कर किसी दूसरेको कभी नहीं चुन सकती, चाहे वह कोई परम सुन्दर देवता ही क्यों न हो—यह मेरा दृढ़ विचार है॥ २७—२९½॥

इस प्रकार मनमें भलीभाँति सोचकर क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी पराम्बा भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें लीन हो गयी और उनकी स्तुति करने लगी॥ ३०½॥

सुकन्या बोली—हे जगदम्बे! मैं महान् कष्टसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा करें; मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। हे पद्मोद्भवे! आपको नमस्कार है। हे शंकरप्रिये! हे देवि! आपको नमस्कार है। हे विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी! हे वेदमाता सरस्वती! आपको नमस्कार है॥ ३१-३२½॥

आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्‌का सृजन किया है। आप ही सावधान होकर जगत्‌का पालन करती हैं और [प्रलयकालमें] लोक-शान्तिके लिये इसे अपनेमें लीन भी कर लेती हैं॥ ३३½॥

आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशकी सुसम्मत जननी हैं। आप अज्ञानियोंको बुद्धि तथा ज्ञानियोंको सदा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परम पुरुषके लिये प्रिय दर्शनवाली आप आज्ञामयी तथा पूर्ण प्रकृतिस्वरूपिणी हैं। आप श्रेष्ठ विचारवाले प्राणियोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। आप ही अज्ञानियोंको दुःख देती हैं तथा सात्त्विक प्राणियोंके सुखका साधन भी आप ही हैं। हे माता! आप ही योगिजनोंको सिद्धि, विजय तथा कीर्ति भी प्रदान करती हैं॥ ३४—३६½॥

शरणं त्वां प्रपन्नास्मि विस्मयं परमं गता॥ ३७

पतिं दर्शय मे मातर्मग्नास्मि शोकसागरे।
देवाभ्यां चरितं कूटं कं वृणोमि विमोहिता॥ ३८

पतिं दर्शय सर्वज्ञे विदित्वा मे सतीव्रतम्।

व्यास उवाच

एवं स्तुता तदा देवी तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ३९

हृदयेऽस्यास्तदा ज्ञानं ददावाशु सुखोदयम्।
निश्चित्य मनसा तुल्यवयोरूपधरान्सती॥ ४०

प्रसमीक्ष्य तु तान्सर्वान्वव्रे बाला स्वकं पतिम्।
वृतेऽथ च्यवने देवौ सन्तुष्टौ तौ बभूवतुः॥ ४१

सतीधर्मं समालोक्य सम्प्रीतौ ददतुर्वरम्।
भगवत्याः प्रसादेन प्रसन्नौ तौ सुरोत्तमौ॥ ४२

मुनिमामन्त्र्य तरसा गमनायोद्यतावुभौ।
लब्ध्वा तु च्यवनो रूपं नेत्रे भार्यां च यौवनम्॥ ४३

हृष्टोऽब्रवीन्महातेजास्तौ नासत्याविदं वचः।
उपकारः कृतोऽयं मे युवाभ्यां सुरसत्तमौ॥ ४४

किं ब्रवीमि सुखं प्राप्तं संसारेऽस्मिन्ननुत्तमे।
प्राप्य भार्यां सुकेशान्तां दुःखं मेऽभवदन्वहम्॥ ४५

अन्धस्य चातिवृद्धस्य भोगहीनस्य कानने।
युवाभ्यां नयने दत्ते यौवनं रूपमद्भुतम्॥ ४६

सम्पादितं ततः किञ्चिदुपकर्तुमहं ब्रुवे।
उपकारिणि मित्रे यो नोपकुर्यात्कथञ्चन॥ ४७
तं धिगस्तु नरं देवौ भवेच्च ऋणवान्भुवि।

हे माता! महान् असमंजसमें पड़ी हुई मैं इस समय आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पतिको दिखानेकी कृपा करें। मैं इस समय शोक-सागरमें डूबी हुई हूँ; क्योंकि इन दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने अत्यन्त कपटपूर्ण चरित्र उपस्थित कर दिया है। मेरी बुद्धि तो कुण्ठित हो गयी है। मैं इनमें किसका वरण करूँ? हे सर्वज्ञे! मेरे पातिव्रत्यपर सम्यक् ध्यान देकर आप मेरे पतिका दर्शन करा दें॥ ३७-३८½ ॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार सुकन्याके स्तुति करनेपर भगवती त्रिपुरसुन्दरीने शीघ्र ही सुखका उदय करनेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया॥ ३९½ ॥

तदनन्तर [अपने पतिको पा लेनेका] मनमें निश्चय करके साध्वी सुकन्याने समान रूप तथा अवस्थावाले उन तीनोंपर भलीभाँति दृष्टिपात करके अपने पतिका वरण कर लिया॥ ४०½ ॥

इस प्रकार सुकन्याके द्वारा च्यवनमुनिके वरण कर लिये जानेपर वे दोनों देवता परम सन्तुष्ट हुए और सुकन्याका सतीधर्म देखकर उन्होंने उसे अति प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान किया॥ ४१½ ॥

तत्पश्चात् भगवतीकी कृपासे प्रसन्नताको प्राप्त वे दोनों देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमार मुनिसे आज्ञा लेकर तुरंत वहाँसे प्रस्थान करनेको उद्यत हो गये॥ ४२॥

सुन्दर रूप, नेत्र, यौवन तथा अपनी भार्याको पाकर च्यवनमुनि अत्यन्त हर्षित हुए। उन महातेजस्वी मुनिने अश्विनीकुमारोंसे यह वचन कहा—हे देववरो! आप दोनोंने मेरा यह महान् उपकार किया है। क्या कहूँ, ऐसा हो जानेसे इस सुन्दर संसारमें अब मुझे परम सुख मिल गया है। इसके पूर्व मुझ अन्धे, अत्यन्त वृद्ध तथा भोग-सामर्थ्यसे हीन पुरुषको ऐसी सुन्दर केशपाशवाली भार्या पाकर भी इस वनमें सदा दुःख-ही-दुःख रहता था॥ ४३—४५½ ॥

आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था तथा अद्भुत रूप प्रदान किया है, अतः मैं भी आपका कुछ उपकार करूँ; इसके लिये आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। हे देवताओ! जो मनुष्य उपकार करनेवाले मित्रका किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मनुष्यको धिक्कार है। ऐसा मनुष्य पृथ्वीलोकमें अपने उपकारी मित्रका ऋणी होता है॥ ४६-४७½ ॥

तस्माद्वां वाञ्छितं किञ्चिद्दातुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ४८

आत्मनो ऋणमोक्षाय देवेशौ नूतनस्य च।
प्रार्थितं वां प्रदास्यामि यदलभ्यं सुरासुरैः॥ ४९

ब्रुवाथां वां मनोद्दिष्टं प्रीतोऽस्मि सुकृतेन वाम्।
श्रुत्वा तौ तु मुनेर्वाक्यमभिमन्त्र्य परस्परम्॥ ५०

तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं सुकन्यासहितं स्थितम्।
मुने पितुः प्रसादेन सर्वं नो मनसेप्सितम्॥ ५१

उत्कण्ठा सोमपानस्य वर्तते नौ सुरैः सह।
भिषजाविति देवेन निषिद्धौ चमसग्रहे॥ ५२

शक्रेण वितते यज्ञे ब्रह्मणः कनकाचले।
तस्मात्त्वमपि धर्मज्ञ यदि शक्तोऽसि तापस॥ ५३

कार्यमेतद्धि कर्तव्यं वाञ्छितं नौ सुसम्मतम्।
एतद्विज्ञाय वा ब्रह्मन्कुरु वां सोमपायिनौ॥ ५४

पिपासास्ति सुदुष्प्रापा त्वत्तः समुपयास्यति।
च्यवनस्तु तयोः प्राह तच्छ्रुत्वा वचनं मृदु॥ ५५

यदहं रूपसम्पन्नो वयसा च समन्वितः।
कृतो भवद्भ्यां वृद्धः सन्भार्यां च प्राप्तवानिति॥ ५६

तस्माद्युवां करिष्यामि प्रीत्याहं सोमपायिनौ।
मिषतो देवराजस्य सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ५७

राज्ञस्तु वितते यज्ञे शर्यातेरमितद्युतेः।
इत्याकर्ण्य वचो हृष्टौ तौ दिवं प्रतिजग्मतुः॥ ५८

च्यवनस्तां गृहीत्वा तु जगामाश्रममण्डलम्॥ ५९

अतएव हे देवेश्वरो! मुझे नूतन शरीर प्रदान करनेके आपके ऋणसे मुक्तिके लिये मैं इस समय आपकी कोई अभिलषित वस्तु आपको प्रदान करना चाहता हूँ। मैं आप दोनोंको वह अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिये भी अलभ्य है। मैं आपलोगोंके इस उत्तम कार्यसे बहुत प्रसन्न हूँ; अब आपलोग अपना मनोरथ व्यक्त करें॥ ४८–४९½॥

च्यवनमुनिका वचन सुनकर परस्पर विचार-विमर्श करके वे दोनों अश्विनीकुमार सुकन्याके साथ बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे कहने लगे—हे मुने! पिताजीकी कृपासे हमारा सारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है, किंतु देवताओंके साथ सम्मिलित होकर सोमरस पीनेकी हमारी इच्छा शेष रह गयी है। एक बार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्माजीके महायज्ञमें इन्द्रदेवने हम दोनोंको 'वैद्य' कहकर सोमपात्र ग्रहण करनेसे रोक दिया था। अतएव हे धर्मज्ञ! हे तापस! यदि आप समर्थ हों तो हमारा यह कार्य कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हमारी इस प्रिय इच्छापर विचार करके आप हम दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दीजिये। सोमपानकी अभिलाषा हमारे लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है, वह आपसे शान्त हो जायगी॥ ५०—५४½॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर च्यवनमुनिने मधुर वाणीमें कहा—आप दोनोंने मुझ वृद्धको रूपवान् तथा युवावस्थासे सम्पन्न बना दिया है और [आपके अनुग्रहसे] मैंने साध्वी भार्या भी प्राप्त कर ली है। अतः मैं अमित-तेजस्वी राजा शर्यातिके विशाल यज्ञमें देवराज इन्द्रके समक्ष ही आप दोनोंको प्रसन्नतापूर्वक सोमपानका अधिकारी बना दूँगा; मैं यह सत्य कह रहा हूँ। यह बात सुनकर अश्विनीकुमारोंने हर्षपूर्वक स्वर्गके लिये प्रस्थान किया और च्यवनमुनि भी सुकन्याको साथ लेकर अपने आश्रमपर चले गये॥ ५५—५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे अश्विभ्यां च्यवनद्वारा सोमपानाय प्रतिज्ञावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

◆

अथ षष्ठोऽध्यायः

राजा शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिका अश्विनीकुमारोंको सोमरस देना

जनमेजय उवाच

च्यवनेन कथं वैद्यौ तौ कृतौ सोमपायिनौ।
वचनं च कथं सत्यं जातं तस्य महात्मनः॥ १

मानुषस्य बलं कीदृग्देवराजबलं प्रति।
निषिद्धौ भिषजौ तेन कृतौ तौ सोमपायिनौ॥ २

धर्मनिष्ठ तदाश्चर्यं विस्तरेण वद प्रभो।
चरितं च्यवनस्याद्य श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ ३

व्यास उवाच

निशामय महाराज चरितं परमाद्भुतम्।
च्यवनस्य मखे तस्मिञ्छर्यातेर्भुवि भारत॥ ४

सुकन्यां सुन्दरीं प्राप्य च्यवनः सुरसन्निभः।
विजहार प्रसन्नात्मा देवकन्यामिवापरः॥ ५

कदाचिदथ शर्यातिभार्या चिन्तातुरा भृशम्।
पतिं प्राह वेपमाना वचनं रुदती प्रिया॥ ६

राजन् पुत्री त्वया दत्ता मुनयेऽन्धाय कानने।
मृता जीवति वा सा तु द्रष्टव्या सर्वथा त्वया॥ ७
गच्छ नाथ मुनेस्तावदाश्रमं द्रष्टुमादरात्।

किं करोति सुकन्या सा प्राप्य नाथं तथाविधम्॥ ८

पुत्रीदुःखेन राजर्षे दग्धास्मि सर्वथा हृदि।
तामानय विशालाक्षीं तपःक्षामां मदन्तिके॥ ९

पश्यामि सर्वथा पुत्रीं कृशाङ्गीं वल्कलावृताम्।
अन्धं पतिं समासाद्य दुःखभाजं कृशोदरीम्॥ १०

जनमेजय बोले—[हे व्यासजी!] च्यवनने उन दोनों वैद्योंको सोमरस पीनेका अधिकारी किस प्रकार बनाया? उन महात्मा च्यवनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई?॥ १॥

देवराज इन्द्रके बलके सामने मानव-बलकी क्या तुलना हो सकती है? फिर भी उन इन्द्रके द्वारा सोमरसके पानसे निषिद्ध किये गये उन दोनों अश्विनी-कुमारोंको च्यवनमुनिने सोमरस-पानका अधिकारी बना दिया। हे धर्मनिष्ठ! हे प्रभो! इस आश्चर्यमय विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि मैं इस समय च्यवनमुनिका चरित्र पूर्णरूपसे सुननेका इच्छुक हूँ॥ २-३॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! हे भारत! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया था, च्यवनमुनिके तत्कालीन उस अत्यन्त अद्भुत चरित्रके विषयमें सुनिये। दूसरे देवताके समान तेजस्वी मुनि च्यवन सुन्दर रूपवाली उस देवकन्यास्वरूपिणी सुकन्याको पाकर प्रसन्नचित्त हो गये और उसके साथ विहार करने लगे॥ ४-५॥

एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी [अपनी कन्याके विषयमें] अत्यन्त चिन्तित हो उठीं। काँपती और रोती हुई वे अपने पतिसे बोलीं—हे राजन्! आपने वनमें एक अन्धे मुनिको पुत्री सौंप दी थी। वह न जाने जीवित है अथवा मर गयी। अतः आपको उसे सम्यक् रूपसे देखना चाहिये॥ ६-७॥

हे नाथ! आप मुनि च्यवनके आश्रममें आदरपूर्वक यह देखनेके लिये जाइये कि उस प्रकारका पति पाकर वह सुकन्या क्या कर रही है?॥ ८॥

हे राजर्षे! पुत्रीके दुःखके कारण मेरा हृदय जल रहा है। तपस्या करनेसे क्षीण शरीरवाली मेरी उस विशालनयना पुत्रीको मेरे पास ले आइये॥ ९॥

नेत्रहीन पति पाकर महान् कष्ट भोगनेवाली, [तपके कारण] कृश शरीरवाली, वल्कल धारण करनेवाली तथा क्षीण कटिप्रदेशवाली अपनी पुत्रीको मैं देखना चाहती हूँ॥ १०॥

शर्यातिरुवाच

गच्छामोऽद्य विशालाक्षि सुकन्यां द्रष्टुमादरात्।
प्रियपुत्रीं वरारोहे मुनिं तं संशितव्रतम्॥ ११

व्यास उवाच

एवमुक्त्वा तु शर्यातिः कामिनीं शोकसंकुलाम्।
जगाम रथमारुह्य त्वरितश्चाश्रमं मुनेः॥ १२

गत्वाश्रमसमीपे तु तमपश्यन्महीपतिः।
नवयौवनसम्पन्नं देवपुत्रोपमं मुनिम्॥ १३

तं विलोक्यामराकारं विस्मयं नृपतिर्गतः।
किं कृतं कुत्सितं कर्म पुत्र्या लोकविगर्हितम्॥ १४

निहतोऽसौ मुनिर्वृद्धस्त्वनयान्यः पतिः कृतः।
कामपीडितया कामं प्रशान्तोऽप्यतिनिर्धनः॥ १५

दुःसहोऽयं पुष्पधन्वा विशेषेण च यौवने।
कुले कलङ्कः सुमहाननया मानवे कृतः॥ १६

धिक्तस्य जीवितं लोके यस्य पुत्री हि कुत्सिता।
सर्वपापैस्तु दुःखाय पुत्री भवति देहिनाम्॥ १७

मया त्वनुचितं कर्म कृतं स्वार्थस्य सिद्धये।
वृद्धायान्धाय या दत्ता पुत्री सर्वात्मना किल॥ १८

कन्या योग्याय दातव्या पित्रा सर्वात्मना किल।
तादृशं हि फलं प्राप्तं यादृशं वै कृतं मया॥ १९

हन्मि चेदद्य तनयां दुःशीलां पापकारिणीम्।
स्त्रीहत्या दुस्तरा स्यान्मे तथा पुत्र्या विशेषतः॥ २०

शर्याति बोले—हे विशालाक्षि! हे वरारोहे! मैं अभी अपनी प्रिय पुत्री सुकन्याको आदरपूर्वक देखनेके लिये उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले उन च्यवनऋषिके पास जा रहा हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—शोकसे अत्यन्त व्याकुल अपनी पत्नीसे ऐसा कहकर राजा शर्याति रथपर बैठकर च्यवनमुनिके आश्रमकी ओर तुरंत चल पड़े॥ १२॥

आश्रमके निकट पहुँचकर राजा शर्यातिने देवपुत्रके समान प्रतीत होनेवाले एक नवयौवनसे सम्पन्न मुनिको वहाँ देखा॥ १३॥

देवताओंके स्वरूपवाले उस मुनिको देखकर राजा शर्याति विस्मयमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि मेरी पुत्रीने लोकमें निन्दा करानेवाला यह कैसा नीच कर्म कर डाला है?॥ १४॥

प्रतीत होता है कि इसने कामपीड़ित होकर उन वृद्ध, शान्तचित्त तथा अति निर्धन मुनिका वध कर दिया एवं किसी अन्यको अपना पति बना लिया है। यह कामदेव बड़ा दुःसह है और युवावस्थामें तो यह विशेषरूपसे और भी दुःसह हो जाता है। इस पुत्रीने तो मनुवंशमें बड़ा भारी कलंक लगा दिया॥ १५-१६॥

जिस मनुष्यकी पुत्री ऐसा नीच कर्म करनेवाली हो, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसी पुत्री मनुष्योंके लिये सभी पापोंसे बढ़कर दुःख देनेवाली होती है। मैंने भी तो स्वार्थकी सिद्धिके लिये ऐसा अनुचित कार्य कर दिया था, जो कि जानबूझकर नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको अपनी पुत्री सौंप दी। पिताको चाहिये कि वह भलीभाँति सोच-समझकर ही एक योग्य वरको अपनी कन्या प्रदान करे। मैंने जैसा कर्म किया था, वैसा फल भी पाया॥ १७—१९॥

अब यदि मैं पापकर्म करनेवाली इस दुश्चरित्र कन्याको मार डालता हूँ, तो मुझे दुस्तर स्त्री-हत्या और विशेषरूपसे पुत्री-हत्याका बड़ा भारी दोष लगेगा॥ २०॥

मनुवंशस्तु विख्यातः सकलङ्कः कृतो मया।
लोकापवादो बलवान्दुस्त्याज्या स्नेहशृङ्खला॥ २१

किं करोमीति चिन्ताब्धौ यदा मग्नः स पार्थिवः।
सुकन्यया तदा दैवाद् दृष्टश्चिन्ताकुलः पिता॥ २२

सा दृष्ट्वा तं जगामाशु सुकन्या पितुरन्तिके।
गत्वा पप्रच्छ भूपालं प्रेमपूरितमानसा॥ २३

किं विचारयसे राजंश्चिन्ताव्याकुलिताननः।
उपविष्टं मुनिं वीक्ष्य युवानमम्बुजेक्षणम्॥ २४

एह्येहि पुरुषव्याघ्र प्रणमस्व पतिं मम।
मा विषादं नृपश्रेष्ठ साम्प्रतं कुरु मानव॥ २५

व्यास उवाच

इति पुत्र्या वचः श्रुत्वा शर्यातिः क्रोधपीडितः।
प्रोवाच वचनं राजा पुरःस्थां तनयां ततः॥ २६

राजोवाच

क्व मुनिश्च्यवनः पुत्रि वृद्धोऽन्धस्तापसोत्तमः।
कोऽयं युवा मदोन्मत्तः सन्देहोऽत्र महान्मम॥ २७

मुनिः किं निहतः पापे त्वया दुष्कृतकारिणि।
नूतनोऽसौ पतिः कामात्कृतः कुलविनाशिनि॥ २८

सोऽहं चिन्तातुरस्तं न पश्याम्याश्रमसंस्थितम्।
किं कृतं दुष्कृतं कर्म कुलटाचरितं किल॥ २९

निमग्नोऽहं दुराचारे शोकाब्धौ त्वत्कृतेऽधुना।
दृष्ट्वैनं पुरुषं दिव्यमदृष्ट्वा च्यवनं मुनिम्॥ ३०

विहस्य तमुवाचाशु सा श्रुत्वा वचनं पितुः।
गृहीत्वानीय पितरं भर्तुरन्तिकमादरात्॥ ३१

मैंने तो इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको कलंकित कर दिया। एक ओर बलवती लोकनिन्दा है और दूसरी ओर न छोड़ी जा सकनेवाली [सन्तानके प्रति] स्नेहशृंखला; अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार सोचते हुए राजा शर्याति जब चिन्ताके सागरमें डूबे हुए थे, उसी समय सुकन्याने चिन्तासे आकुल अपने पिताको संयोगवश देख लिया॥ २१-२२॥

उन्हें देखते ही प्रेमसे परिपूर्ण हृदयवाली वह सुकन्या अपने पिता राजा शर्यातिके पास गयी और वहाँ जाकर उनसे पूछने लगी—हे राजन्! कमलके समान नेत्रवाले बैठे हुए इन युवा मुनिको देखकर चिन्ताके कारण व्याकुल मुखमण्डलवाले आप इस समय क्या सोच रहे हैं? हे पुरुषव्याघ्र! इधर आइये और मेरे पतिको प्रणाम कीजिये। हे मनुवंशी राजेन्द्र! इस समय आप शोक मत कीजिये॥ २३—२५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर क्रोधसे सन्तप्त राजा शर्याति अपने सामने खड़ी उस कन्यासे कहने लगे॥ २६॥

राजा बोले—हे पुत्रि! परम तपस्वी, वृद्ध तथा नेत्रहीन वे मुनि च्यवन कहाँ हैं और यह मदोन्मत्त युवक कौन है? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है॥ २७॥

दुराचारमें लिप्त रहनेवाली हे पापिनि! हे कुल-नाशिनि! क्या तुमने च्यवनमुनिको मार डाला और कामके वशीभूत होकर इस पुरुषका नये पतिके रूपमें वरण कर लिया?॥ २८॥

इस आश्रममें रहनेवाले उन मुनिको मैं इस समय नहीं देख रहा हूँ, इसीलिये मैं चिन्ताग्रस्त हूँ। तुमने यह नीच कर्म क्यों किया? यह तो निश्चय ही व्यभिचारिणी स्त्रियोंका चरित्र है॥ २९॥

हे दुराचारिणि! इस समय तुम्हारे पास इस दिव्य पुरुषको देखकर तथा उन च्यवनमुनिको न देखकर मैं तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये गये शोकसागरमें डूबा हुआ हूँ॥ ३०॥

अपने पिताकी बात सुनकर उन्हें साथ लेकर वह सुकन्या तुरंत पतिके पास पहुँची और उनसे आदरपूर्वक कहने लगी—॥ ३१॥

च्यवनोऽसौ मुनिस्तात जामाता ते न संशयः।
अश्विभ्यामीदृशः कान्तः कृतः कमललोचनः॥ ३२

यदृच्छयात्र सम्प्राप्तौ नासत्यावाश्रमे मम।
ताभ्यां करुणया नूनं च्यवनस्तादृशः कृतः॥ ३३

नाहं तव सुता तात तथा स्यां पापकारिणी।
यथा त्वं मन्यसे राजन् विमूढो रूपसंशये॥ ३४

प्रणम त्वं मुनिं राजन् भार्गवं च्यवनं पितः।
आपृच्छ कारणं सर्वं कथयिष्यति विस्तरम्॥ ३५

इति श्रुत्वा वचः पुत्र्याः शर्यातिस्त्वरितस्तदा।
प्रणनाम मुनिं तत्र गत्वा पप्रच्छ सादरम्॥ ३६

राजोवाच

कथयस्व स्ववृत्तान्तं भार्गवाशु यथोचितम्।
नयने च कथं प्राप्ते क्व गता ते जरा पुनः॥ ३७

संशयोऽयं महान्मेऽस्ति रूपं दृष्ट्वातिसुन्दरम्।
वद विस्तरतो ब्रह्मञ्छ्रुत्वाहं सुखमाप्नुयाम्॥ ३८

च्यवन उवाच

नासत्यावत्र सम्प्राप्तौ देवानां भिषजावुभौ।
उपकारः कृतस्ताभ्यां कृपया नृपसत्तम॥ ३९

मया ताभ्यां वरो दत्त उपकारस्य हेतवे।
करिष्यामि मखे राज्ञो भवन्तौ सोमपायिनौ॥ ४०

एवं मया वयः प्राप्तं लोचने विमले तथा।
स्वस्थो भव महाराज संविशस्वासने शुभे॥ ४१

इत्युक्तः स तु विप्रेण सभार्यः पृथिवीपतिः।
सुखोपविष्टः कल्याणीः कथाश्चक्रे महात्मना॥ ४२

हे तात! ये आपके जामाता च्यवनमुनि ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अश्विनीकुमारोंने इन्हें ऐसा कान्तिमान् तथा कमलके समान नेत्रवाला बना दिया है॥ ३२॥

वे दोनों अश्विनीकुमार एक बार दैवयोगसे मेरे आश्रममें पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतापूर्वक च्यवनमुनिको ऐसा कर दिया है॥ ३३॥

हे पिताजी! मैं आपकी पुत्री हूँ। हे राजन्! [मेरे पतिदेवका] यह रूप देखकर संशयमें पड़े हुए आप मोहके वशीभूत होकर मुझे जैसी समझ रहे हैं, मैं वैसी पापकृत्य करनेवाली नहीं हूँ॥ ३४॥

हे राजन्! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले च्यवनमुनिको आप प्रणाम करें। हे पिताजी! आप इन्हींसे पूछ लीजिये; ये आपको सारी बात विस्तारपूर्वक बता देंगे॥ ३५॥

तब पुत्रीकी यह बात सुनकर राजा शर्यातिने तुरंत मुनिके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और वे उनसे आदरपूर्वक पूछने लगे॥ ३६॥

राजा बोले—हे भार्गव! आप अपना सारा वृत्तान्त समुचितरूपसे मुझे शीघ्र बतलाइये। आपने फिरसे किस प्रकार अपने दोनों नेत्र प्राप्त किये और आपका बुढ़ापा कैसे दूर हुआ? आपका परम सुन्दर रूप देखकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है। हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक यह सब बतलाइये, जिसे सुनकर मुझे सुख प्राप्त हो॥ ३७-३८॥

च्यवन बोले—हे नृपश्रेष्ठ! देवताओंकी चिकित्सा करनेवाले दोनों अश्विनीकुमार एक बार यहाँ आये थे। उन दोनोंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है। उस उपकारके बदले मैंने उन दोनोंको वर दिया है कि मैं आप दोनोंको राजा शर्यातिके यज्ञमें सोमपानका अधिकारी बना दूँगा॥ ३९-४०॥

हे महाराज! इस प्रकार अश्विनीकुमारोंद्वारा मुझे यह युवावस्था तथा ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं; आप निश्चिन्त रहें और इस पवित्र आसनपर विराजमान हों॥ ४१॥

मुनिके यह कहनेपर राजा शर्याति रानीसहित सुखपूर्वक आसनपर बैठ गये। इसके बाद वे महात्मा च्यवनजीसे कल्याणमयी बातें करने लगे॥ ४२॥

अथैनं भार्गवः प्राह राजानं परिसान्त्वयन्।
याजयिष्यामि राजंस्त्वां सम्भारानुपकल्पय॥ ४३

मया प्रतिश्रुतं ताभ्यां कर्तव्यौ सोमपौ युवाम्।
तत्कर्तव्यं नृपश्रेष्ठ तव यज्ञेऽतिविस्तरे॥ ४४

इन्द्रं निवारयिष्यामि क्रुद्धं तेजोबलेन वै।
पाययिष्यामि राजेन्द्र सोमं सोममखे तव॥ ४५

ततः परमसन्तुष्टः शर्यातिः पृथिवीपतिः।
च्यवनस्य महाराज तद्वाक्यं प्रत्यपूजयत्॥ ४६

सम्मान्य च्यवनं राजा जगाम नगरं प्रति।
सभार्यश्चातिसन्तुष्टः कुर्वन्वार्तां मुनेः किल॥ ४७

प्रशस्तेऽहनि यज्ञीये सर्वकामसमृद्धिमान्।
कारयामास शर्यातिर्यज्ञायतनमुत्तमम्॥ ४८

समानीय मुनीन्पूज्यान्वसिष्ठप्रमुखानसौ।
भार्गवो याजयामास च्यवनः पृथिवीपतिम्॥ ४९

वितते तु तथा यज्ञे देवाः सर्वे सवासवाः।
आजग्मुश्चाश्विनौ तत्र सोमार्थमुपजग्मतुः॥ ५०

इन्द्रस्तु शङ्कितस्तत्र वीक्ष्य तावश्विनावुभौ।
पप्रच्छ च सुरान्सर्वान्किमेतौ समुपागतौ॥ ५१

चिकित्सकौ न सोमार्हौ केनानीताविहेति च।
नाब्रुवन्नमरास्तत्र राज्ञस्तु वितते मखे॥ ५२

अगृह्णाच्च्यवनः सोममश्विनोर्देवयोस्तदा।
शक्रस्तं वारयामास मा गृहाणैतयोर्ग्रहम्॥ ५३

तत्पश्चात् भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजाको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाइये। मैं दोनों अश्विनीकुमारोंसे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि 'मैं आप दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दूँगा?' हे नृपश्रेष्ठ! आपके महान् यज्ञमें मुझे वह कार्य सम्पन्न करना है और हे राजेन्द्र! आपके सोमयज्ञमें इन्द्रके कोप करनेपर मैं अपने तेजबलसे उन्हें शान्त कर दूँगा और [उन देववैद्योंको] सोमरस पिलाऊँगा॥ ४३—४५॥

हे राजन्! इस बातसे राजा शर्याति परम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने च्यवनमुनिकी उस बातको आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४६॥

तत्पश्चात् च्यवनमुनिका सम्मान करके परम सन्तुष्ट होकर राजा शर्याति अपनी पत्नीके साथ मुनिसे सम्बन्धित चर्चा करते हुए अपने नगरको चले गये॥ ४७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण राजा शर्यातिने किसी शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया॥ ४८॥

इसके बाद वसिष्ठ आदि प्रमुख पूज्य मुनियोंको बुलाकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ कर दिया॥ ४९॥

उस महायज्ञमें इन्द्रसहित सभी देवता उपस्थित हुए और दोनों अश्विनीकुमार भी सोमपानकी इच्छासे वहाँ आये॥ ५०॥

वहाँ दोनों अश्विनीकुमारोंको भी उपस्थित देखकर इन्द्र सशंकित हो उठे और वे सभी देवताओंसे पूछने लगे—'ये दोनों यहाँ क्यों आये हुए हैं? ये चिकित्सक हैं; अतः ये सोमरस पीनेके अधिकारी नहीं हैं। इन्हें यहाँ किसने बुलाया है?' इसपर राजाके उस महायज्ञमें उपस्थित देवताओंने कोई उत्तर नहीं दिया॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् जब च्यवनमुनि दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमरस ग्रहण कराने लगे, तब इन्द्रने [यह कहते हुए] उन्हें रोका—'इन दोनोंको सोमभाग ग्रहण मत कराइये'॥ ५३॥

तमाह च्यवनस्तत्र कथमेतौ रवेः सुतौ।
न ग्रहार्हौ च नासत्यौ ब्रूहि सत्यं शचीपते॥ ५४

न सङ्करौ समुत्पन्नौ धर्मपत्नीसुतौ रवेः।
केन दोषेण देवेन्द्र नार्हौ सोमं भिषग्वरौ॥ ५५

निर्णयोऽत्र मखे शक्र कर्तव्यः सर्वदैवतैः।
ग्राहयिष्याम्यहं सोमं कृतौ तौ सोमपौ मया॥ ५६

प्रेरितोऽसौ मया राजा मखाय मघवन्किल।
एतदर्थं करिष्यामि सत्यं मे वचनं विभो॥ ५७

आभ्यामुपकृतं शक्र तथा दत्तं नवं वयः।
तस्मात्प्रत्युपकारस्तु कर्तव्यः सर्वथा मया॥ ५८

इन्द्र उवाच

चिकित्सकौ कृतावेतौ नासत्यौ निन्दितौ सुरैः।
उभावेतौ न सोमार्हौ मा गृहाणैतयोर्ग्रहम्॥ ५९

च्यवन उवाच

अहल्याजार संयच्छ कोपं चाद्य निरर्थकम्।
वृत्रघ्न किं हि नासत्यौ न सोमार्हौ सुरात्मजौ॥ ६०

एवं विवादे समुपस्थिते च
न कोऽपि वाचं तमुवाच भूप।
ग्रहं तयोर्भार्गवतिग्मतेजाः
संग्राहयामास तपोबलेन॥ ६१

तब च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार सोमरस ग्रहण करनेके अधिकारी कैसे नहीं हैं? हे शचीपते! आप इस बातको प्रमाणित कीजिये॥ ५४॥

ये वर्णसंकर नहीं हैं, अपितु सूर्यकी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुए हैं। तब हे देवेन्द्र! ये दोनों श्रेष्ठ चिकित्सक किस दोषके कारण सोमपानके योग्य नहीं हैं?॥ ५५॥

हे इन्द्र! इस यज्ञमें उपस्थित सभी देवता ही इसका निर्णय कर दें। मैं तो इन्हें सोमरस अवश्य पिलाऊँगा; क्योंकि मैंने इन्हें सोमपानका अधिकारी बना दिया है॥ ५६॥

हे मघवन्! मैंने ही इस यज्ञके लिये राजा शर्यातिको प्रेरित किया है। हे विभो! इनके लिये मैं ऐसा अवश्य करूँगा; मेरा यह कथन सत्य है॥ ५७॥

हे शक्र! मुझे नवीन अवस्था प्रदान करके इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है, अतः उसके बदलेमें मुझे सभी प्रकारसे इनका प्रत्युपकार करना चाहिये॥ ५८॥

इन्द्र बोले—चिकित्सावृत्तिवाले ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके द्वारा निन्दनीय माने गये हैं। अतः ये सोमपानके अधिकारी नहीं हैं। इनके लिये सोमरसका भाग मत ग्रहण कीजिये॥ ५९॥

च्यवनमुनि बोले—हे अहल्याजार! इस समय व्यर्थ कोप मत करो। वृत्रका वध करनेवाले हे इन्द्र! ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी क्यों नहीं हैं?॥ ६०॥

[व्यासजी बोले—] हे राजन्! इस प्रकारका विवाद छिड़ जानेपर वहाँ उपस्थित कोई भी देवता च्यवनमुनिसे कुछ भी नहीं कह सका। तब अपने तपोबलके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी च्यवनमुनिने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको दे दिया॥ ६१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे च्यवनेनाश्विनोः कृते सोमपानाधिकारत्वचेष्टावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~○~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

क्रुद्ध इन्द्रका विरोध करना; परंतु च्यवनके प्रभावको देखकर शान्त हो जाना, शर्यातिके बादके सूर्यवंशी राजाओंका विवरण

व्यास उवाच

दत्ते ग्रहे तु राजेन्द्र वासवः कुपितो भृशम्।
प्रोवाच च्यवनं तत्र दर्शयन्बलमात्मनः॥ १

मा ब्रह्मबन्धो मर्यादामिमां त्वं कर्तुमर्हसि।
वधिष्यामि द्विषन्तं त्वां विश्वरूपमिवाऽपरम्॥ २

च्यवन उवाच

मावमंस्था महात्मानौ रूपद्रविणवर्चसा।
यौ चक्रतुर्मां मघवन् वृन्दारकमिवापरम्॥ ३

ऋते त्वां विबुधाश्चान्ये कथं वाददते ग्रहम्।
अश्विनावपि देवेन्द्र देवौ विद्धि परन्तपौ॥ ४

इन्द्र उवाच

भिषजौ नार्हतः कामं ग्रहं यज्ञे कथञ्चन।
यदि दित्ससि मन्दात्मन् शिरश्छेत्स्यामि साम्प्रतम्॥ ५

व्यास उवाच

अनादृत्य तु तद्वाक्यं वासवस्य च भार्गवः।
ग्रहं तु ग्राहयामास भर्त्सयन्निव तं भृशम्॥ ६

सोमपात्रं यदा ताभ्यां गृहीतं तु पिपासया।
समीक्ष्य बलभिद्देव इदं वचनमब्रवीत्॥ ७

आभ्यामर्थाय सोमं त्वं ग्राहयिष्यसि चेत्स्वयम्।
वज्रं तु प्रहरिष्यामि विश्वरूपमिवापरम्॥ ८

वासवेनैवमुक्तस्तु भार्गवश्चातिगर्वितः।
जग्राह विधिवत्सोममश्विभ्यामतिमन्युमान्॥ ९

इन्द्रोऽपि प्राक्षिपत्कोपाद्वज्रमस्मै स्वमायुधम्।
पश्यतां सर्वदेवानां सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १०

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! [च्यवनमुनिके द्वारा अश्विनीकुमारोंको] सोमभाग दे दिये जानेपर इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने अपना पराक्रम दिखाते हुए मुनिसे कहा—हे ब्रह्मबन्धो! आप इस प्रकारकी अनुचित मर्यादा स्थापित मत कीजिये, अन्यथा मेरा विरोध करनेवाले आप मुनिका भी दूसरे विश्वरूपकी भाँति वध कर डालूँगा॥ १-२॥

च्यवन बोले—हे मघवन्! जिन महात्मा अश्विनी-कुमारोंने रूपसम्पदाके तेजके द्वारा मुझे दूसरे देवताकी भाँति बना दिया है, उनका अपमान मत कीजिये। हे देवेन्द्र! आपके अतिरिक्त अन्य देवता सोमभाग क्यों पाते हैं? परम तपस्वी इन अश्विनीकुमारोंको भी आप देवता समझें॥ ३-४॥

इन्द्र बोले—हे मन्दात्मन्! ये दोनों चिकित्सक किसी प्रकार भी यज्ञमें सोमभाग पानेके अधिकारी नहीं हैं। यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं अभी आपका सिर काट दूँगा॥ ५॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] इन्द्रकी उस बातकी उपेक्षा करके उनकी बहुत भर्त्सना करते हुए च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग प्रदान कर दिया॥ ६॥

जब उन दोनोंने पीनेकी इच्छासे सोमपात्र ग्रहण किया, तब शत्रुसेनाका भेदन करनेवाले इन्द्रने मुनिसे यह वचन कहा—यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं स्वयं आपके ऊपर वज्रसे उसी प्रकार प्रहार करूँगा, जैसे मैंने विश्वरूपको वज्रसे मार डाला था॥ ७-८॥

इन्द्रके ऐसा कहनेपर [तपोबलसे] गर्वित च्यवनमुनि अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने विधिपूर्वक अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया॥ ९॥

इसपर इन्द्रने भी क्रोध करके करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाला अपना आयुध वज्र सभी देवताओंके सामने ही च्यवनमुनिपर चला दिया॥ १०॥

प्रेरितं चाशनिं प्रेक्ष्य च्यवनस्तपसा ततः।
स्तम्भयामास वज्रं स शक्रस्यामिततेजसः॥ ११

कृत्यया स महाबाहुरिन्द्रं हन्तुमिहोद्यतः।
जुहावाग्नौ शृतं हव्यं मन्त्रेण मुनिसत्तमः॥ १२

तत्र कृत्या समुत्पन्ना च्यवनस्य तपोबलात्।
प्रबलः पुरुषः क्रूरो बृहत्कायो महासुरः॥ १३

मदो नाम महाघोरो भयदः प्राणिनामिह।
शरीरे पर्वताकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रो भयानकः॥ १४

चतस्रश्चायता दंष्ट्रा योजनानां शतं शतम्।
इतरे त्वस्य दशना बभूवुर्दशयोजनाः॥ १५

बाहू पर्वतसंकाशावायतौ क्रूरदर्शनौ।
जिह्वा तु भीषणा क्रूरा लेलिहाना नभस्तलम्॥ १६

ग्रीवा तु गिरिशृङ्गाभा कठिना भीषणा भृशम्।
नखा व्याघ्रनखप्रख्याः केशाश्चातीवभीषणाः॥ १७

शरीरं कज्जलाभं च तस्य चास्यं भयानकम्।
नेत्रे दावानलप्रख्ये भीषणेऽतिभयानके॥ १८

हनुरेका स्थिता तस्य भूमावेका दिवं गता।
एवंविधः समुत्पन्नो मदो नाम बृहत्तनुः॥ १९

तं विलोक्य सुराः सर्वे भयमाजग्मुरंहसा।
इन्द्रोऽपि भयसंत्रस्तो युद्धाय न मनो दधे॥ २०

दैत्योऽपि वदने कामं वज्रमादाय संस्थितः।
व्याप्तं नभो घोरदृष्टिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम्॥ २१

तब अमित तेजवाले इन्द्रके चलाये गये उस वज्रको देखकर च्यवनमुनिने अपने तपोबलसे उसे स्तम्भित कर दिया॥ ११॥

इसके बाद वे महाबाहु मुनियोंमें श्रेष्ठ च्यवन कृत्या राक्षसीके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके लिये उद्यत हो गये और पकाये गये हव्यसे मन्त्रसहित अग्निमें आहुति देने लगे॥ १२॥

उन च्यवनके तपोबलसे वहाँपर कृत्या उत्पन्न हो गयी। अत्यन्त बलशाली तथा क्रूर पुरुषके रूपमें वह आविर्भूत हुई। उस पुरुषका शरीर महान् दैत्यके समान बहुत विशाल था॥ १३॥

उसका नाम 'मद' था। वह अत्यन्त उग्र तथा संसारके प्राणियोंके लिये बहुत भयदायक था। वह शरीरसे पर्वतके आकारका था, उसके दाँत तीक्ष्ण थे, वह बड़ा ही भयावह था। उसके चार दाँत तो सौ-सौ योजन लम्बे थे और इसके अन्य दाँत दस योजनके विस्तारवाले थे। देखनेमें क्रूर लगनेवाली उसकी दोनों भुजाएँ पर्वतके समान दूरतक फैली हुई थीं। अत्यन्त क्रूर तथा भयानक लगनेवाली उसकी जिह्वा आकाश और पातालको चाट रही थी॥ १४—१६॥

उसकी अत्यन्त डरावनी तथा कठोर गर्दन पर्वतकी चोटीके समान थी, उसके नाखून बाघके नाखूनके सदृश थे, उसके केश तो अत्यन्त भयंकर थे। उसका शरीर काजलकी आभावाला तथा मुख भयानक था और उसके अत्यन्त भीषण तथा भयावह दोनों नेत्र दावानलके समान प्रतीत हो रहे थे। उसका एक ओठ पृथ्वीपर स्थित था तो दूसरा ओठ आकाशतक गया हुआ था। इस प्रकारका विशाल शरीरवाला 'मद' नामक दानव उत्पन्न हुआ॥ १७—१९॥

उसे देखते ही सभी देवता शीघ्र ही भयभीत हो गये। इन्द्र भी भयसे व्याकुल हो उठे और उनके मनमें युद्धका विचार नहीं रह गया॥ २०॥

वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके सामने खड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो भयावनी दृष्टिवाला वह दानव तीनों लोकोंको निगल जायगा॥ २१॥

स भक्षयिष्यन्संक्रुद्धः शतक्रतुमुपाद्रवत्।
चक्रुशुश्च सुराः सर्वे हा हताः स्मेति संस्थिताः॥ २२

इन्द्रः स्तम्भितबाहुस्तु मुमुक्षुर्वज्रमन्तिकात्।
न शशाक पविं तस्मिन्प्रहर्तुं पाकशासनः॥ २३

वज्रहस्तः सुरेशानस्तं वीक्ष्य कालसन्निभम्।
सस्मार मनसा तत्र गुरुं समयकोविदम्॥ २४

स्मरणादाजगामाशु बृहस्पतिरुदारधीः।
गुरुस्तत्समयं दृष्ट्वा विपत्तिसदृशं महत्॥ २५

विचार्य मनसा कृत्यं तमुवाच शचीपतिम्।
दुःसाध्योऽयं महामन्त्रैस्त्वयं वज्रेण वासव॥ २६

असुरो मदसंज्ञस्तु यज्ञकुण्डात्समुत्थितः।
तपोबलमृषेः सम्यक् च्यवनस्य महाबलः॥ २७

अनिवार्यो ह्ययं शत्रुस्त्वया देवैस्तथा मया।
शरणं याहि देवेश च्यवनस्य महात्मनः॥ २८

स निवारयिता नूनं कृत्यामात्मकृतां किल।
न निवारयितुं शक्ताः शक्तिभक्तरुषं क्वचित्॥ २९

व्यास उवाच

इत्युक्तो गुरुणा शक्रस्तदागच्छन्मुनिं प्रति।
प्रणम्य शिरसा नम्रस्तमुवाच भयान्वितः॥ ३०

क्षमस्व मुनिशार्दूल शमयासुरमुद्यतम्।
प्रसन्नो भव सर्वज्ञ वचनं ते करोम्यहम्॥ ३१

सोमार्हावश्विनावेतावद्यप्रभृति भार्गव।
भविष्यतः सत्यमेतद्वचो विप्र प्रसीद मे॥ ३२

इन्द्रको खा जानेके विचारसे वह क्रोधित होकर उनकी ओर दौड़ा। इसपर 'हाय, हम सब मारे गये'—ऐसा कहकर सभी देवता जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ २२॥

इन्द्र वज्र चलाना चाहते थे, किंतु भुजाओंके कुण्ठित हो जानेके कारण वे उसपर वज्र-प्रहार करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ २३॥

तब हाथमें वज्र धारण करनेवाले देवराज इन्द्रने काल-सदृश उस दानवको देखकर सामयिक समस्याका समाधान करनेमें कुशल देवगुरु बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया॥ २४॥

इन्द्रके स्मरण करते ही उदार बुद्धिवाले गुरु बृहस्पति वहाँ शीघ्र आ गये। इन्द्रकी बड़ी दयनीय दशा देखकर तथा मन-ही-मन सारे कृत्यपर विचार करके वे शचीपति इन्द्रसे कहने लगे—॥ २५½॥

हे इन्द्र! मद नामक इस असुरको महामन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार पाना अत्यन्त कठिन है। च्यवनमुनिका तपोबलस्वरूप यह महाबली दैत्य सम्यक् रूपसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुआ है। यह शत्रु तुम्हारे, देवगणोंके तथा मेरे द्वारा भी पराभूत नहीं किया जा सकता। अतः हे देवेश! आप महात्मा च्यवनकी शरणमें जायँ, वे अपने द्वारा उत्पन्न की गयी इस 'कृत्या' का शमन अवश्य कर देंगे। आदिशक्तिके भक्तका रोष निवारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ २६—२९॥

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिके यह कहनेपर इन्द्र च्यवनमुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके भयभीत होते हुए उनसे बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! क्षमा कीजिये। संहारके लिये तत्पर इस असुरको शान्त कीजिये। आप प्रसन्न हो जाइये। हे सर्वज्ञ! मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा॥ ३०-३१॥

हे भार्गव! ये दोनों अश्विनीकुमार आजसे सोमपानके अधिकारी हो जायँगे। हे विप्र! मेरा यह वचन सत्य है, अब आप प्रसन्न हो जायँ॥ ३२॥

मिथ्या ते नोद्यमो ह्येष भवत्वेव तपोधन।
जाने त्वमपि धर्मज्ञ मिथ्या नैव करिष्यसि॥ ३३

सोमपावश्विनावेतौ त्वत्कृतौ च सदैव हि।
भविष्यतश्च शर्यातेः कीर्तिस्तु विपुला भवेत्॥ ३४

मया यद्धि कृतं कर्म सर्वथा मुनिसत्तम।
परीक्षार्थं तु विज्ञेयं तव वीर्यप्रकाशनम्॥ ३५

प्रसादं कुरु मे ब्रह्मन् मदं संहर चोत्थितम्।
कल्याणं सर्वदेवानां तथा भूयो विधीयताम्॥ ३६

एवमुक्तस्तु शक्रेण च्यवनः परमार्थवित्।

संजहार तपः कोपं समुत्पन्नं विरोधजम्॥ ३७

देवमाश्वास्य संविग्नं भार्गवस्तु मदं ततः।
व्यभजत्स्त्रीषु पानेषु द्यूतेषु मृगयासु च॥ ३८

मदं विभज्य देवेन्द्रमाश्वास्य चकितं भिया।
संस्थाप्य च सुरान्सर्वान्मखं तस्य न्यवर्तयत्॥ ३९

ततस्तु संस्कृतं सोमं वासवाय महात्मने।

अश्विभ्यां सर्वधर्मात्मा पाययामास भार्गवः॥ ४०

एवं तौ च्यवनेनार्यावश्विनौ रविपुत्रकौ।
विहितौ सोमपौ राजन् सर्वथा तपसो बलात्॥ ४१

सरस्तदपि विख्यातं जातं यूपविमण्डितम्।
आश्रमस्तु मुनेः सम्यक् पृथिव्यां विश्रुतोऽभवत्॥ ४२

शर्यातिरपि सन्तुष्टो ह्यभवत्तेन कर्मणा।
यज्ञं समाप्य नगरे जगाम सचिवैर्वृतः॥ ४३

हे तपोधन! अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बनानेका आपका उद्यम व्यर्थ नहीं हुआ; यह उचित ही है। हे धर्मज्ञ! मैं जानता हूँ कि आप निष्प्रयोजन कोई भी कार्य नहीं करेंगे। आपने इन अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बना दिया, अतः अब ये यज्ञोंमें सदा सोमरसका पान कर सकेंगे। साथ ही राजा शर्यातिका महान् यश भी स्थापित हो जायगा॥ ३३-३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने यह जो भी कार्य किया है, उसे आपके पराक्रमको प्रकट करनेके उद्देश्यसे ही किया है—ऐसा आप समझिये॥ ३५॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये इस 'मद' नामक दैत्यको तिरोहित कर दीजिये और ऐसा करके सभी देवताओंका पुनः कल्याण कीजिये॥ ३६॥

इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता च्यवनमुनिने विरोधके कारण उत्पन्न अपने क्रोधको दबा लिया। तत्पश्चात् उद्विग्न चित्तवाले देवराज इन्द्रको सान्त्वना देकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने स्त्री, मदिरापान, द्यूत और आखेट—इन सबमें 'मद' को स्थापित कर दिया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार 'मद' को विभिन्न जगहोंपर विभक्त करके, भयसे घबराये हुए इन्द्रको आश्वासन देकर तथा सभी देवताओंको अपने-अपने कार्यपर लगाकर च्यवनमुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ सम्पन्न कराया॥ ३९॥

तदनन्तर सभी धर्मोंके आत्मास्वरूप भृगुवंशी च्यवनमुनिने महात्मा इन्द्रको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको परिष्कृत सोमरस पिलाया॥ ४०॥

हे राजन्! इस प्रकार च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे उन दोनों सूर्यपुत्र श्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंको पूर्णरूपसे सोमपानका अधिकारी बना दिया॥ ४१॥

उसी समयसे यज्ञ-स्तम्भसे सुशोभित वह सरोवर भी विख्यात हो गया तथा मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि सम्यक्-रूपसे पृथ्वीपर सर्वत्र व्याप्त हो गयी॥ ४२॥

उस कर्मसे राजा शर्याति भी सन्तुष्ट हो गये और यज्ञसम्पन्न करके मन्त्रियोंके साथ नगरको चले गये॥ ४३॥

राज्यं चकार धर्मज्ञो मनुपुत्रः प्रतापवान्।
आनर्तस्तस्य पुत्रोऽभूदानर्ताद्रेवतोऽभवत्॥ ४४

सोऽन्तःसमुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम्।
आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिन्दमः॥ ४५

तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम्।
पुत्री च रेवती नाम्ना सुन्दरी शुभलक्षणा॥ ४६

वरयोग्या यदा जाता तदा राजा च रेवतः।

चिन्तयामास राजेन्द्रो राजपुत्रान्कुलोद्भवान्॥ ४७

रैवतं नाम च गिरिमाश्रितः पृथिवीपतिः।
चकार राज्यं बलवानानर्तेषु नराधिपः॥ ४८

विचिन्त्य मनसा राजा कस्मै देया मया सुता।
गत्वा पृच्छामि ब्रह्माणं सर्वज्ञं सुरपूजितम्॥ ४९

इति सञ्चिन्त्य भूपालः सुतामादाय रेवतीम्।
ब्रह्मलोकं जगामाशु प्रष्टुकामः पितामहम्॥ ५०

यत्र देवाश्च यज्ञाश्च छन्दांसि पर्वतास्तथा।
अब्धयः सरितश्चापि दिव्यरूपधराः स्थिताः॥ ५१

ऋषयः सिद्धगन्धर्वाः पन्नगाश्चारणास्तथा।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे स्तुवन्तश्च पुरातनाः॥ ५२

इसके बाद धर्मज्ञ तथा प्रतापी मनुपुत्र शर्याति राज्य करने लगे। उनके पुत्र 'आनर्त' हुए और आनर्तसे 'रेवत' उत्पन्न हुए। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे रेवत समुद्रके मध्य कुशस्थली नामक नगरी स्थापित करके वहींपर रहकर आनर्त आदि देशोंपर शासन करने लगे॥ ४४-४५॥

उनके सौ पुत्र हुए, उनमें ककुद्मी सबसे ज्येष्ठ तथा उत्तम था। उनकी रेवती नामक एक पुत्री भी थी, जो परम सुन्दर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त थी॥ ४६॥

जब वह कन्या विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत उत्तम कुलमें उत्पन्न राजकुमारोंके विषयमें सोचने लगे॥ ४७॥

उस समय वे बलशाली नरेश 'रैवत' नामक पर्वतपर रहते हुए आनर्त आदि देशोंपर राज्य कर रहे थे॥ ४८॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे 'मैं यह कन्या किसे प्रदान करूँ, अतः सर्वज्ञ तथा देवपूजित ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछ लूँ'—ऐसा विचार करके राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे वर पूछनेकी अभिलाषासे शीघ्र ही ब्रह्मलोक जा पहुँचे; जहाँपर देवता, यज्ञ, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्य रूप धारण करके विराजमान थे और सनातन ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग तथा चारणवृन्द—ये सभी हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए खड़े थे॥ ४९—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे रेवतस्य रेवतीवरार्थं ब्रह्मलोकगमनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

राजा रेवतकी कथा

जनमेजय उवाच

संशयोऽयं महान् ब्रह्मन् वर्तते मम मानसे।
ब्रह्मलोकं गतो राजा रेवतीसंयुतः स्वयम्॥ १

मया पूर्वं श्रुतं कृत्स्नं ब्राह्मणेभ्यः कथान्तरे।
ब्राह्मणो ब्रह्मविच्छान्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ २

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे मनमें यह महान् संशय हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोक चले गये। मैंने पूर्वकालमें ब्राह्मणोंसे कथा-प्रसंगमें यह अनेक बार सुना है कि ब्रह्मको जाननेवाला शान्त-स्वभाव ब्राह्मण ही ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकता है॥ १-२॥

राजा कथं गतस्तत्र रेवतीसंयुतः स्वयम्।
सत्यलोकेऽतिदुष्प्रापे भूर्लोकादिति संशयः॥ ३

मृतः स्वर्गमवाप्नोति सर्वशास्त्रेषु निर्णयः।
(मानुषेण तु देहेन ब्रह्मलोके गतिः कथम्)
स्वर्गात्पुनः कथं लोके मानुषे जायते गतिः॥ ४

एतन्मे संशयं विद्वंश्छेत्तुमर्हसि साम्प्रतम्।
यथा राजा गतस्तत्र प्रष्टुकामः प्रजापतिम्॥ ५

व्यास उवाच

मेरोस्तु शिखरे राजन् सर्वे लोकाः प्रतिष्ठिताः।
इन्द्रलोको वह्निलोको या च संयमिनी पुरी॥ ६

तथैव सत्यलोकश्च कैलासश्च तथा पुनः।
वैकुण्ठश्च पुनस्तत्र वैष्णवं पदमुच्यते॥ ७

यथार्जुनः शक्रलोके गतः पार्थो धनुर्धरः।
पञ्चवर्षाणि कौन्तेयः स्थितस्तत्र सुरालये॥ ८

मानुषेणैव देहेन वासवस्य च सन्निधौ।
तथैवान्येऽपि भूपालाः ककुत्स्थप्रमुखाः किल॥ ९

स्वर्लोकगतयः पश्चाद्दैत्याश्चापि महाबलाः।

जित्वेन्द्रसदनं प्राप्य संस्थितास्तत्र कामतः॥ १०

महाभिषः पुरा राजा ब्रह्मलोकं गतः स्वराट्।
आगच्छन्तीं नृपो गङ्गामपश्यच्चातिसुन्दरीम्॥ ११

वायुनाम्बरमस्यास्तु दैवादपहृतं नृप।
किञ्चिन्नग्ना नृपेणाथ दृष्टा सा सुन्दरी तथा॥ १२

स्मितं चकार कामार्तः सा च किञ्चिज्जहास वै।
ब्रह्मणा तौ तदा दृष्टौ शप्तौ जातौ वसुन्धराम्॥ १३

वैकुण्ठेऽपि सुराः सर्वे पीडिता दैत्यदानवैः।
गत्वा हरिं जगन्नाथमस्तुवन्कमलापतिम्॥ १४

सन्देहो नात्र कर्तव्यः सर्वथा नृपसत्तम।
गम्याः सर्वेऽपि लोकाः स्युर्मानवानां नराधिप॥ १५

अवश्यं कृतपुण्यानां तापसानां नराधिप।
पुण्यसद्भाव एवात्र गमने कारणं नृप॥ १६
तथैव यजमानानां यज्ञेन भावितात्मनाम्।

राजा रेवत अत्यन्त दुष्प्राप्य सत्यलोकमें स्वयं अपनी पुत्री रेवतीके साथ पृथ्वीलोकसे कैसे पहुँच गये—इसी बातका मुझे सन्देह है। सभी शास्त्रोंमें यही निर्णय विद्यमान है कि मृत व्यक्ति ही स्वर्ग प्राप्त कर सकता है; (इस मानवदेहसे ब्रह्मलोकमें जाना कैसे सम्भव है?) और स्वर्गसे पुनः इस मनुष्यलोकमें पहुँच जाना कैसे हो सकता है? हे विद्वन्! महाराज रेवत जिस तरह ब्रह्माजीसे अपनी कन्याके लिये वर पूछनेकी इच्छासे वहाँ गये थे—इसे बताकर इस समय मेरे इस सन्देहको दूर करनेकी कृपा करें॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुमेरुपर्वतके शिखरपर ही इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमिनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ—ये सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णव पद कहा जाता है॥ ६-७॥

जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन इन्द्रलोक गये थे और वे इसी मनुष्य-शरीरसे उस इन्द्रलोकमें पाँच वर्षतक इन्द्रके सान्निध्यमें रहे, उसी प्रकार ककुत्स्थ आदि अन्य प्रमुख राजा भी स्वर्गलोक जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त महाबलशाली दैत्य भी इन्द्रलोकको जीतकर वहाँ पहुँचकर अपनी इच्छाके अनुसार रह चुके हैं॥ ८—१०॥

पूर्वकालमें महाराज महाभिष भी ब्रह्मलोक गये थे। उन नरेशने परम सुन्दरी गंगाजीको आते देखा। हे राजन्! उस समय दैवयोगसे वायुने उनके वस्त्र उड़ा दिये, जिससे राजाने उन सुन्दरी गंगाको कुछ अनावृत अवस्थामें देख लिया। इसपर कामसे व्यथित राजा मुसकराने लगे और गंगाजी भी हँस पड़ीं। उस समय ब्रह्माजीने उन दोनोंको देख लिया और शाप दे दिया, जिससे उन दोनोंको पृथ्वीपर जन्म लेना पड़ा। दैत्यों और दानवोंसे पीड़ित सभी देवताओंने भी वैकुण्ठधाममें जाकर कमलाकान्त जगत्पति भगवान् विष्णुकी स्तुति की थी॥ ११—१४॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। हे नराधिप! पुण्यात्मा, तपस्वी और महापुरुष सभी लोकोंमें जा सकते हैं। हे नरेन्द्र! हे राजन्! जैसे पवित्र सदाचरण ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेका कारण है, वैसे ही पवित्र मनवाले यजमानलोग भी यज्ञके प्रभावसे वहाँ पहुँच जाते हैं॥ १५-१६½ ॥

जनमेजय उवाच

रेवतो रेवतीं कन्यां गृहीत्वा चारुलोचनाम्॥ १७
ब्रह्मलोकं गतः पश्चात्किं कृतं तेन भूभुजा।
ब्रह्मणा किं समादिष्टं कस्मै दत्ता सुता पुनः॥ १८
तत्सर्वं विस्तराद् ब्रह्मन् कथय त्वं ममाधुना।

व्यास उवाच

निशामय महीपाल राजा रेवतकः किल॥ १९
पुत्र्या वरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकं गतो यदा।
आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितो लब्धक्षणः क्षणम्॥ २०
शृण्वन्नतृप्यद्धृष्टात्मा सभायां तु सकन्यकः।
समाप्ते तत्र गान्धर्वे प्रणम्य परमेश्वरम्॥ २१
दर्शयित्वा सुतां तस्मै स्वाभिप्रायं न्यवेदयत्।

राजोवाच

वरं कथय देवेश कन्येयं मम पुत्रिका॥ २२
देया कस्मै मया ब्रह्मन् प्रष्टुं त्वां समुपागतः।
बहवो राजपुत्रा मे वीक्षिताः कुलसम्भवाः॥ २३
कस्मिंश्चिन्मे मनः कामं नोपतिष्ठति चञ्चलम्।
तस्मात्त्वां देवदेवेश प्रष्टुमत्रागतोऽस्म्यहम्॥ २४
तदाज्ञापय सर्वज्ञ योग्यं राजसुतं वरम्।
कुलीनं बलवन्तं च सर्वलक्षणसंयुतम्॥ २५
दातारं धर्मशीलं च राजपुत्रं समादिश।

व्यास उवाच

तदाकर्ण्य जगत्कर्ता वचनं नृपतेस्तदा॥ २६
तमुवाच हसन्वाक्यं दृष्ट्वा कालस्य पर्ययम्।

ब्रह्मोवाच

राजपुत्रास्त्वया राजन् वरा ये हृदये कृताः॥ २७
ग्रस्ताः कालेन ते सर्वे सपितृपौत्रबान्धवाः।
सप्तविंशतिमोऽद्यैव द्वापरस्तु प्रवर्तते॥ २८
वंशजास्ते मृताः सर्वे पुरी दैत्यैर्विलुण्ठिता।
सोमवंशोद्भवस्तत्र राजा राज्यं प्रशास्ति हि॥ २९

जनमेजय बोले—महाराज रेवत सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी पुत्री रेवतीको साथमें लेकर ब्रह्मलोक पहुँच गये; उसके बाद उन्होंने क्या किया, ब्रह्माजीने उन्हें क्या आदेश दिया और उन रेवतने अपनी पुत्री किसे सौंपी? हे ब्रह्मन्! अब आप इन सारी बातोंको विस्तारपूर्वक मुझको बतलाइये॥ १७-१८½ ॥

व्यासजी बोले—हे महीपाल! सुनिये, जब राजा रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिये ब्रह्मलोक पहुँचे, उस समय गन्धर्वलोगोंका संगीत हो रहा था। वे अपनी कन्याके साथ कुछ देरतक सभामें रुककर संगीत सुनते हुए परम तृप्त हुए। पुनः गन्धर्वोंका संगीत समाप्त हो जानेपर परमेश्वर (ब्रह्माजी)-को प्रणाम करके उन्हें अपनी कन्या रेवतीको दिखाकर अपना आशय प्रकट कर दिया॥ १९—२१½ ॥

राजा बोले—हे देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है, मैं इसे किसको प्रदान करूँ—यही पूछनेके लिये आपके पास आया हूँ। अतः हे ब्रह्मन्! आप इसके योग्य वर बतायें। मैंने उत्तम कुलमें उत्पन्न बहुतसे राजकुमारोंको देखा है, किंतु किसीमें भी मेरा चंचल मन स्थिर नहीं होता है। इसलिये हे देवदेवेश! [वरके विषयमें] आपसे पूछनेके लिये यहाँ आया हूँ। हे सर्वज्ञ! आप किसी योग्य राजकुमार वरके विषयमें बताइये। ऐसे राजकुमारका निर्देश कीजिये; जो कुलीन, बलवान्, समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न, दानी तथा धर्मपरायण हो॥ २२—२५½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब राजाकी बात सुनकर जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी कालपर्यय (ब्रह्मलोकके थोड़े समयमें पृथ्वीलोकका बड़ा लम्बा समय बीता हुआ) देखकर हँस करके उनसे कहने लगे—॥ २६½ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! आपने अपने हृदयमें जिन राजकुमारोंको वरके रूपमें समझ रखा था, वे सब-के-सब पुत्र-पौत्र तथा बन्धुओंसमेत काल-कवलित हो चुके हैं। इस समय वहाँ सत्ताईसवाँ द्वापर चल रहा है। आपके सभी वंशज मृत हो चुके हैं और दैत्योंने आपकी पुरी भी विनष्ट कर डाली है। इस समय वहाँ चन्द्रवंशी राजा शासन कर रहे हैं। अब

उग्रसेन इति ख्यातो मथुराधिपतिः किल।
ययातिवंशसम्भूतो राजा माथुरमण्डले॥ ३०

उग्रसेनात्मजः कंसः सुरद्वेषी महाबलः।
दैत्यांशः पितरं सोऽपि कारागारं न्यवेशयत्॥ ३१

स्वयं राज्यं चकारासौ नृपाणां मदगर्वितः।
मेदिनी चातिभारार्ता ब्रह्माणं शरणं गता॥ ३२

दुष्टराजन्यसैन्यायां भारेणातिसमाकुला।
अंशावतरणं तत्र गदितं सुरसत्तमैः॥ ३३

वासुदेवः समुत्पन्नः कृष्णः कमललोचनः।
देवक्यां देवरूपिण्यां योऽसौ नारायणो मुनिः॥ ३४

तपश्चचार दुःसाध्यं धर्मपुत्रः सनातनः।
गङ्गातीरे नरसखः पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ ३५

सोऽवतीर्णो यदुकुले वासुदेवोऽपि विश्रुतः।
तेनासौ निहतः पापः कंसः कृष्णेन सत्तम॥ ३६

उग्रसेनाय राज्यं वै दत्तं हत्वा खलं सुतम्।

कंसस्य श्वशुरः पापो जरासन्धो महाबलः॥ ३७

आगत्य मथुरां क्रोधाच्चकार सङ्गरं मुदा।
कृष्णेनासौ जितः संख्ये जरासन्धो महाबलः॥ ३८

प्रेषयामास युद्धाय सबलं यवनं ततः।
श्रुत्वायान्तं महाशूरं ससैन्यं यवनाधिपम्॥ ३९

(कृष्णस्तु मथुरां त्यक्त्वा पुरीं द्वारावतीमगात्।
प्रभग्नां तां पुरीं कृष्णः शिल्पिभिः सह सङ्गतैः॥
कारयामास दुर्गाढ्यां हट्टशालाविमण्डिताम्।
जीर्णोद्धारं पुरः कृत्वा वासुदेवः प्रतापवान्।
उग्रसेनं च राजानं चकार वशवर्तिनम्॥)

यादवान्स्थापयामास द्वारवत्यां यदूत्तमः।
वासुदेवस्तु तत्राद्य वर्तते बान्धवैः सह॥ ४०

मथुरा नामसे प्रसिद्ध उस पुरीके अधिपतिके रूपमें उग्रसेन विख्यात हैं। ययातिवंशमें उत्पन्न वे उग्रसेन सम्पूर्ण मथुरामण्डलके नरेश हैं। उन महाराज उग्रसेनका एक कंस नामक पुत्र हुआ, जो महान् बलशाली तथा देवताओंसे द्वेष रखनेवाला था। राजाओंमें सबसे अधिक मदोन्मत्त उस दानववंशी कंसने अपने पिताको भी कारागारमें डाल दिया और वह स्वयं राज्य करने लगा॥ २७—३१ १/२ ॥

तब पृथ्वी असह्य भारसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। श्रेष्ठ देवगणोंने ऐसा कहा है कि दुष्ट राजाओं तथा उनके सैनिकोंके भारसे पृथ्वीके अति व्याकुल होनेपर ही भगवान्‌का अंशावतार होता है। अतः उस समय कमलके समान नेत्रवाले वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण देवीस्वरूपा देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे साक्षात् नारायणमुनि ही थे॥ ३२—३४॥

उन सनातन धर्मपुत्र नरसखा नारायणमुनिने बदरिकाश्रममें गंगाजीके तटपर अत्यन्त कठोर तपस्या की थी। वे ही यदुकुलमें अवतार लेकर 'वासुदेव' नामसे विख्यात हुए। हे महाभाग! उन्हीं वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णने पापी कंसका संहार किया और इस प्रकार उस दुष्ट राजाको मारकर उन्होंने [उसके पिता] उग्रसेनको सम्पूर्ण राज्य दे दिया॥ ३५-३६ १/२ ॥

कंसका श्वसुर जरासन्ध महान् बलशाली तथा पापी था। वह अत्यन्त क्रोधित हो मथुरा आकर श्रीकृष्णके साथ आवेगपूर्वक युद्ध करने लगा। अन्तमें श्रीकृष्णने उस महाबली जरासन्धको युद्धमें जीत लिया। तब उसने सेनासहित कालयवनको [कृष्णके साथ] युद्ध करनेके लिये भेजा॥ ३७-३८ १/२ ॥

महापराक्रमी यवनाधिप कालयवनको सेनासहित आता सुनकर (कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका चले गये। भगवान् श्रीकृष्णने कुशल शिल्पियोंके द्वारा बड़े-बड़े दुर्ग तथा बाजारोंसे सुशोभित उस नष्ट-भ्रष्ट पुरीका पुनः निर्माण कराया, उस पुरीका जीर्णोद्धार करके प्रतापी श्रीकृष्णने उग्रसेनको वहाँका अपना आज्ञाकारी राजा बनाया।) तत्पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने उस द्वारकापुरीमें यादवोंको भलीभाँति बसाया। इस समय वे वासुदेव अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ उस द्वारकामें रह रहे हैं॥ ३९-४०॥

तस्याग्रजः स विख्यातो बलदेवो हलायुधः।
शेषांशो मुसली वीरो वरोऽस्तु तव सम्मतः॥ ४१

सङ्कर्षणाय देह्याशु कन्यां कमललोचनाम्।
रेवतीं बलभद्राय विवाहविधिना ततः॥ ४२

दत्त्वा पुत्रीं नृपश्रेष्ठ गच्छ त्वं बदरिकाश्रमम्।
तपस्तप्तुं सुरारामं पावनं कामदं नृणाम्॥ ४३

व्यास उवाच

इति राजा समादिष्टो ब्रह्मणा पद्मयोनिना।
जगाम तरसा राजन् द्वारकां कन्ययान्वितः॥ ४४

ददौ तां बलदेवाय कन्यां वै शुभलक्षणाम्।
ततस्तप्त्वा तपस्तीव्रं नृपतिः कालपर्यये॥ ४५

जगाम त्रिदशावासं त्यक्त्वा देहं सरित्तटे।

राजोवाच

भगवन्महदाश्चर्यं भवता समुदाहृतम्॥ ४६

रेवतस्तु स्थितस्तत्र ब्रह्मलोके सुतार्थतः।
युगानां तु गतं तत्र शतमष्टोत्तरं किल॥ ४७

कन्या वृद्धा न सञ्जाता राजा वातितरां नु किम्।
एतावन्तं तथा कालमायुः पूर्णं तयोः कथम्॥ ४८

व्यास उवाच

न जरा क्षुत्पिपासा वा न मृत्युर्न भयं पुनः।
न तु ग्लानिः प्रभवति ब्रह्मलोके सदानघ॥ ४९

मेरुं गतस्य शर्यातेः सन्तती राक्षसैर्हता।
गताः कुशस्थलीं त्यक्त्वा भयभीता इतस्ततः॥ ५०

मनोश्च क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो वीर्यवत्तरः।
इक्ष्वाकुरिति विख्यातः सूर्यवंशकरस्तु सः॥ ५१

वंशार्थं तप आतिष्ठद्देवीं ध्यात्वा निरन्तरम्।
नारदस्योपदेशेन प्राप्य दीक्षामनुत्तमाम्॥ ५२

उनके बड़े भाई बलराम हैं। हल तथा मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले वे शूरवीर बलराम शेषके अंशावतार कहे जाते हैं। वे ही आपकी कन्याके लिये उपयुक्त वर हैं॥ ४१॥

अब आप वैवाहिक विधिके अनुसार शीघ्र ही संकर्षण बलरामको कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या रेवती सौंप दीजिये। हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें कन्या प्रदानकर आप तप करनेके लिये देवोद्यान बदरिकाश्रम चले जाइये; क्योंकि तप मनुष्योंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देता है और उनके अन्तःकरणको पवित्र बना देता है॥ ४२-४३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह आदेश पाकर राजा रेवत अपनी कन्याके साथ शीघ्र ही द्वारका चले गये। वहाँ उन्होंने बलरामजीको शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी पुत्री सौंप दी। उसके बाद सुदीर्घ कालतक कठोर तपस्या करके वे राजा रेवत नदीके तटपर अपना शरीर त्यागकर देवलोक चले गये॥ ४४-४५½॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने यह तो महान् आश्चर्यजनक बात कही कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोक गये और उनके वहाँ ठहरे हुए एक सौ आठ युग बीत गये, तबतक वह कन्या तथा वे राजा वृद्ध क्यों नहीं हुए अथवा इतने दीर्घ समयकी पूर्ण आयु ही उन्हें कैसे प्राप्त हुई?॥ ४६—४८॥

व्यासजी बोले—हे निष्पाप जनमेजय! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, वृद्धावस्था तथा ग्लानि—इनमें कोई भी विकार कभी भी उत्पन्न नहीं होता॥ ४९॥

जब राजा रेवत वहाँसे सुमेरुपर्वतपर चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी संततियोंको नष्ट कर डाला। वहाँके सभी लोग भयभीत होकर कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर भाग गये॥ ५०॥

कुछ समयके बाद क्षुव नामक मनुसे एक परम ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु नामसे विख्यात वे ही सूर्यवंशके प्रवर्तक माने जाते हैं॥ ५१॥

नारदजीके उपदेशसे और उनसे श्रेष्ठ दीक्षा प्राप्त करके उन्होंने वंशवृद्धिके उद्देश्यसे भगवतीके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहकर कठोर तपस्या की॥ ५२॥

तस्य पुत्रशतं राजन्निक्ष्वाकोरिति विश्रुतम्।
विकुक्षिः प्रथमस्तेषां बलवीर्यसमन्वितः॥ ५३

अयोध्यायां स्थितो राजा इक्ष्वाकुरिति विश्रुतः।
शकुनिप्रमुखाः पुत्राः पञ्चाशद् बलवत्तराः॥ ५४

उत्तरापथदेशस्य रक्षितारः कृताः किल।
दक्षिणस्यां तथा राजन्नादिष्टास्तेन ते सुताः॥ ५५

चत्वारिंशत्तथाष्टौ च रक्षणार्थं महात्मना।
अन्यौ द्वौ संस्थितौ पार्श्वे सेवार्थं तस्य भूपतेः॥ ५६

हे राजन्! ऐसा सुना गया है कि उन इक्ष्वाकुके एक सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े विकुक्षि थे, जो बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे॥ ५३॥

वे इक्ष्वाकु राजाके रूपमें अयोध्यामें निवास करते थे—यह बात प्रसिद्ध है। उनके शकुनि आदि पचास परम बलवान् पुत्र उत्तरापथ नामक देशके रक्षक नियुक्त किये गये और हे राजन्! उनके जो अड़तालीस पुत्र थे, वे सब उन महात्मा इक्ष्वाकुके द्वारा दक्षिणी देशोंकी रक्षाके लिये आदेशित किये गये। इनके अतिरिक्त अन्य दो पुत्र राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिये उनके पास रहने लगे॥ ५४—५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

सूर्यवंशी राजाओंके वर्णनके क्रममें राजा ककुत्स्थ, युवनाश्व और मान्धाताकी कथा

व्यास उवाच

कदाचिदष्टकाश्राद्धे विकुक्षिं पृथिवीपतिः।
आज्ञापयदसंमूढो मांसमानय सत्वरम्॥ १

मेध्यं श्राद्धार्थमधुना वने गत्वा सुतादरात्।
इत्युक्तोऽसौ तथेत्याशु जगाम वनमस्त्रभृत्॥ २

गत्वा जघान बाणैः स वराहान्सूकरान्मृगान्।
शशांश्चापि परिश्रान्तो बभूवाथ बुभुक्षितः॥ ३

विस्मृता चाष्टका तस्य शशं चाददसौ वने।
शेषं निवेदयामास पित्रे मांसमनुत्तमम्॥ ४

प्रोक्षणाय समानीतं मांसं दृष्ट्वा गुरुस्तदा।
अनर्हमिति तज्ज्ञात्वा चुकोप मुनिसत्तमः॥ ५

भुक्तशेषं तु न श्राद्धे प्रोक्षणीयमिति स्थितिः।
राज्ञे निवेदयामास वसिष्ठः पाकदूषणम्॥ ६

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय अष्टका-श्राद्धके अवसरपर बुद्धिमान् भूपति इक्ष्वाकुने विकुक्षिको आज्ञा दी कि हे पुत्र! इस समय वनमें जाकर श्राद्धके लिये शीघ्र ही आदरपूर्वक पवित्र कव्य ले आओ॥ १$\frac{१}{२}$॥

राजाके इस प्रकार कहनेपर विकुक्षि आयुध धारण करके तुरंत वनकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर वह थक गया तथा भूखसे व्याकुल हो उठा। इस कारणसे वह अष्टका-श्राद्धकी बात भूल गया और उसने वनमें ही एकत्रित किये गये श्राद्धद्रव्यके कुछ अंशका भक्षण कर लिया और बचा हुआ लाकर पिताजीको दे दिया। तब प्रोक्षणके निमित्त समक्ष लाये गये उस कव्यको देखकर और फिर उसे श्राद्धके लिये अनुपयुक्त जानकर मुनिश्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ अत्यन्त कुपित हो उठे॥ २—५॥

'भोजनसे शेष बचे हुए द्रव्यका श्राद्धमें प्रोक्षण नहीं करना चाहिये—ऐसा नियम है'—इस पाकदोषके विषयमें वसिष्ठने राजाको बता दिया॥ ६॥

पुत्रस्य कर्म तज्ज्ञात्वा भूपतिर्गुरुणोदितम्।
चुकोप विधिलोपात्तं देशान्निःसारयत्ततः॥ ७

शशाद इति विख्यातो नाम्ना जातो नृपात्मजः।
गतो वने शशादस्तु पितृकोपादसम्भ्रमः॥ ८

वन्येन वर्तयन्कालं नीतवान् धर्मतत्परः।
पितर्युपरते राज्यं प्राप्तं तेन महात्मना॥ ९

शशादस्त्वकरोद्राज्यमयोध्यायाः पतिः स्वयम्।
यज्ञाननेकशः पूर्णांश्चकार सरयूतटे॥ १०

शशादस्याभवत्पुत्रः ककुत्स्थ इति विश्रुतः।
तस्यैव नामभेदाद्वै इन्द्रवाहः पुरञ्जयः॥ ११

जनमेजय उवाच

नामभेदः कथं जातो राजपुत्रस्य चानघ।
कारणं ब्रूहि मे सर्वं कर्मणा येन चाभवत्॥ १२

व्यास उवाच

शशादे स्वर्गते राजा ककुत्स्थ इति चाभवत्।
(राज्यं चकार धर्मज्ञः पितृपैतामहं बलात्।)
एतस्मिन्नन्तरे देवा दैत्यैः सर्वे पराजिताः॥ १३

जग्मुस्त्रिलोकाधिपतिं विष्णुं शरणमव्ययम्।
तान्प्रोवाच महाविष्णुस्तदा देवान्सनातनः॥ १४

विष्णुरुवाच

पार्ष्णिग्राहं महीपालं प्रार्थयन्तु शशादजम्।
स हनिष्यति वै दैत्यान्संग्रामे सुरसत्तमाः॥ १५

आगमिष्यति धर्मात्मा साहाय्यार्थं धनुर्धरः।
पराशक्तेः प्रसादेन सामर्थ्यं तस्य चातुलम्॥ १६

हरेः सुवचनाद्देवा ययुः सर्वे सवासवाः।
अयोध्यायां महाराज शशादतनयं प्रति॥ १७

तानागतान् सुरान् राजा पूजयामास धर्मतः।
पप्रच्छागमने राजा प्रयोजनमतन्द्रितः॥ १८

गुरु वसिष्ठके कथनानुसार अपने पुत्र विकुक्षिका वह दुष्कर्म जानकर विधिलोपके कारण उन्होंने उसे अपने देशसे बाहर निकाल दिया। वह राजकुमार तभीसे 'शशाद'—इस नामसे विख्यात हो गया। वह शशाद पिताके कोपसे किंचित् भयभीत होकर वनमें चला गया॥ ७-८॥

वह विकुक्षि वहाँ वन्य आहारपर जीवनयापन करते हुए धर्मपरायण होकर रहने लगा। तत्पश्चात् पिताकी मृत्यु हो जानेपर उस मनस्वी शशादको राज्य प्राप्त हो गया और वह शासन करने लगा। उस अयोध्यापति शशादने स्वयं सरयूनदीके तटपर अनेक यज्ञ सम्पन्न किये॥ ९-१०॥

उस शशादको एक पुत्र हुआ जो 'ककुत्स्थ'—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस ककुत्स्थके इन्द्रवाह और पुरंजय—ये दो नाम और भी थे॥ ११॥

जनमेजय बोले—हे निष्पाप मुने! उस राजकुमारके अनेक नाम कैसे हुए? उसके जिस-जिस कर्मके कारण ये नाम हुए, वह सब मुझे बताइये॥ १२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर 'ककुत्स्थ' राजा बने। (वे धर्मज्ञ ककुत्स्थ पिता-पितामहसे परम्पराप्राप्त राज्यपर बलपूर्वक शासन करने लगे।) उसी समय सभी देवगण दैत्योंसे पराजित होकर तीनों लोकोंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब सनातन भगवान् श्रीहरि उन देवताओंसे कहने लगे॥ १३-१४॥

भगवान् विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग शशादपुत्र राजा ककुत्स्थसे युद्धमें सहायक बननेके लिये प्रार्थना कीजिये। वे ही युद्धमें दैत्योंको मार सकेंगे। वे धर्मात्मा ककुत्स्थ धनुष धारण करके सहायताके लिये अवश्य आयेंगे। भगवती पराशक्तिकी कृपासे उनके पास अतुलनीय सामर्थ्य है॥ १५-१६॥

हे महाराज! भगवान् विष्णुकी यह उत्तम वाणी सुनकर इन्द्रसमेत सभी देवतागण अयोध्यामें रहनेवाले शशादपुत्र महाराज ककुत्स्थके पास जा पहुँचे॥ १७॥

राजा ककुत्स्थने उन आये हुए देवताओंका धर्मपूर्वक अत्यन्त उत्साहके साथ पूजन किया और इसके बाद वे उनसे आनेका प्रयोजन पूछने लगे॥ १८॥

राजोवाच

धन्योऽहं पावितश्चास्मि जीवितं सफलं मम।
यदागत्य गृहे देवा ददुश्च दर्शनं महत्॥ १९

ब्रुवन्तु कृत्यं देवेशा दुःसाध्यमपि मानवैः।
करिष्यामि महत्कार्यं सर्वथा भवतां महत्॥ २०

देवा ऊचुः

साहाय्यं कुरु राजेन्द्र सखा भव शचीपतेः।
संग्रामे जय दैत्येन्द्रान्दुर्जयांस्त्रिदशैरपि॥ २१

पराशक्तिप्रसादेन दुर्लभं नास्ति ते क्वचित्।
विष्णुना प्रेरिताश्चैवमागतास्तव सन्निधौ॥ २२

राजोवाच

पार्ष्णिग्राहो भवाम्यद्य देवानां सुरसत्तमाः।
इन्द्रो मे वाहनं तत्र भवेद्यदि सुराधिपः॥ २३

संग्रामं तु करिष्यामि दैत्यैर्देवकृतेऽधुना।
आरुह्येन्द्रं गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ २४

तदोचुर्वासवं देवाः कर्तव्यं कार्यमद्भुतम्।
पत्रं भव नरेन्द्रस्य त्यक्त्वा लज्जां शचीपते॥ २५

लज्जमानस्तदा शक्रः प्रेरितो हरिणा भृशम्।
बभूव वृषभस्तूर्णं रुद्रस्येवापरो महान्॥ २६

तमारुरोह राजासौ संग्रामगमनाय वै।
स्थितः ककुदि येनास्य ककुत्स्थस्तेन चाभवत्॥ २७

इन्द्रो वाहः कृतो येन तेन नाम्नेन्द्रवाहकः।
पुरं जितं तु दैत्यानां तेनाभूच्च पुरञ्जयः॥ २८

जित्वा दैत्यान्महाबाहुर्धनं तेषां प्रदत्तवान्।
पप्रच्छ चैवं राजर्षेरिति सख्यं बभूव ह॥ २९

राजा बोले—हे देवगण! मैं धन्य और पवित्र हो गया; मेरा जीवन सार्थक हो गया, जो कि आपलोगोंने मेरे घर पधारकर मुझे अपना महनीय दर्शन दिया है। हे देवेश्वरो! आप मुझे अपने कार्यके विषयमें बतलाएँ। आपका वह कार्य चाहे मनुष्योंके लिये परम दुःसाध्य ही हो, मैं वह महान् कार्य हर प्रकारसे सम्पन्न करूँगा॥ १९-२०॥

देवता बोले—हे राजेन्द्र! हमारी सहायता कीजिये; शचीपति इन्द्रके सखा बन जाइये और देवताओंके लिये भी अजेय महान् दैत्योंको युद्धमें परास्त कर दीजिये। पराशक्ति जगदम्बाके अनुग्रहसे आपके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। भगवान् विष्णुके भेजनेपर ही हमलोग आपके पास आये हैं॥ २१-२२॥

राजा बोले—हे श्रेष्ठ देवतागण! यदि इन्द्र उस युद्धमें मेरा वाहन बनें तो मैं अभी देवताओंकी ओरसे सेनापति बन जाऊँगा। मैं इसी समय इन्द्रपर आरूढ़ होकर युद्धक्षेत्रमें जाऊँगा और देवताओंके लिये युद्ध करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ २३-२४॥

तब देवताओंने इन्द्रसे कहा—हे शचीपते! [इस समय] आपको यह अद्भुत कार्य करना है। आप लज्जा छोड़कर राजा ककुत्स्थका वाहन बन जाइये॥ २५॥

उस समय इन्द्र बड़े संकोचमें पड़ गये, फिर भगवान् श्रीहरिके बार-बार प्रेरणा करनेपर वे तुरंत एक ऐसे वृषभके रूपमें प्रकट हो गये मानो भगवान् रुद्रके दूसरे महान् नन्दी ही हों॥ २६॥

तब संग्राममें जानेके लिये वे राजा उस वृषभपर चढ़े और उसके ककुद्पर बैठे, इसी कारणसे वे 'ककुत्स्थ' नामवाले हो गये। उन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था, इसलिये वे 'इन्द्रवाहक' नामसे प्रसिद्ध हुए और उन्होंने दैत्योंके पुर (नगर)-पर विजय प्राप्त की थी, इसलिये वे 'पुरंजय' नामवाले भी हो गये॥ २७-२८॥

तत्पश्चात् उन महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंको जीतकर उनका धन देवताओंको दे दिया और [फिर वहाँसे प्रस्थान करनेके लिये देवताओंसे] पूछा। इस प्रकार इन्द्रके साथ राजर्षि ककुत्स्थकी मैत्री हुई॥ २९॥

ककुत्स्थश्चातिविख्यातो नृपतिस्तस्य वंशजाः ।
काकुत्स्था भुवि राजानो बभूवुर्बहुविश्रुताः ॥ ३०

ककुत्स्थस्याभवत्पुत्रो धर्मपत्न्यां महाबलः ।
अनेना विश्रुतस्तस्य पृथुः पुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ३१

विष्णोरंशः स्मृतः साक्षात्पराशक्तिपदार्चकः ।
विश्वरन्धिस्तु विज्ञेयः पृथोः पुत्रो नराधिपः ॥ ३२

चन्द्रस्तस्य सुतः श्रीमान् राजा वंशकरः स्मृतः ।
तत्सुतो युवनाश्वस्तु तेजस्वी बलवत्तरः ॥ ३३

शावन्तो युवनाश्वस्य जज्ञे परमधार्मिकः ।
शावन्ती निर्मिता तेन पुरी शक्रपुरीसमा ॥ ३४

बृहदश्वस्तु पुत्रोऽभूच्छावन्तस्य महात्मनः ।
कुवलयाश्वः सुतस्तस्य बभूव पृथिवीपतिः ॥ ३५

धुन्धुर्नामा हतो दैत्यस्तेनासौ पृथिवीतले ।
धुन्धुमारेति विख्यातं नाम प्रापातिविश्रुतम् ॥ ३६

पुत्रस्तस्य दृढाश्वस्तु पालयामास मेदिनीम् ।
दृढाश्वस्य सुतः श्रीमान्हर्यश्व इति कीर्तितः ॥ ३७

निकुम्भस्तत्सुतः प्रोक्तो बभूव पृथिवीपतिः ।
बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वस्तस्य वै सुतः ॥ ३८

प्रसेनजित्कृशाश्वस्य बलवान्सत्यविक्रमः ।
तस्य पुत्रो महाभागो यौवनाश्वेति विश्रुतः ॥ ३९

यौवनाश्वसुतः श्रीमान्मान्धातेति महीपतिः ।
अष्टोत्तरसहस्रं तु प्रासादा येन निर्मिताः ॥ ४०

भगवत्यास्तु तुष्ट्यर्थं महातीर्थेषु मानद ।
मातृगर्भे न जातोऽसावुत्पन्नो जनकोदरे ॥ ४१

निःसारितस्ततः पुत्रः कुक्षिं भित्त्वा पितुः पुनः ।

महाराज ककुत्स्थ महान् प्रसिद्ध राजा थे। उनके वंशमें उत्पन्न सभी राजा 'काकुत्स्थ' नामसे पृथ्वीलोकमें अत्यधिक प्रसिद्ध हुए॥ ३० ॥

राजा ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके गर्भसे एक महाबली पुत्र हुआ, जो 'अनेना' नामसे विख्यात हुआ। उस 'अनेना' को एक पृथु नामक पराक्रमी पुत्र हुआ; उसे साक्षात् भगवान् विष्णुका अंश कहा गया है। वह पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंका उपासक था, उन पृथुके पुत्ररूपमें राजा विश्वरन्धिको जानना चाहिये ॥ ३१-३२ ॥

उन 'विश्वरन्धि' के चन्द्र नामक परम ऐश्वर्यशाली पुत्र हुए, वे चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले कहे जाते हैं। उनके पुत्र युवनाश्व थे, जो परम तेजस्वी तथा महान् बलशाली थे॥ ३३ ॥

उन युवनाश्वके 'शावन्त' नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने इन्द्रपुरीके समान प्रतीत होनेवाली शावन्ती नामकी पुरीका निर्माण कराया ॥ ३४ ॥

उन महात्मा शावन्तके 'बृहदश्व' नामक पुत्र हुए और बृहदश्वके पुत्र राजा कुवलयाश्व हुए। उन कुवलयाश्वने 'धुन्धु' नामक दैत्यका संहार किया, तभीसे उन्होंने पृथ्वीलोकमें 'धुन्धुमार' नामसे परम प्रसिद्धि प्राप्त की॥ ३५-३६ ॥

उनके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी भलीभाँति रक्षा की। उन दृढाश्वके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं॥ ३७॥

उन हर्यश्वके 'निकुम्भ' नामक पुत्र कहे गये हैं। वे महान् राजा हुए; निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और उनके पुत्र कृशाश्व हुए॥ ३८ ॥

उन कृशाश्वके प्रसेनजित् नामक बलवान् तथा सत्यपराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए और प्रसेनजित्के एक भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए, वे 'यौवनाश्व'—इस नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ३९ ॥

उन यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् राजा मान्धाता थे। हे मानद! उन्होंने भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये महातीर्थोंमें एक हजार आठ देवालयोंका निर्माण कराया था। ये माताके गर्भसे जन्म न लेकर पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे। पिताकी कुक्षिका भेदनकर उन्हें वहाँसे निकाला गया था॥ ४०-४१$\frac{१}{२}$ ॥

राजोवाच

न श्रुतं न च दृष्टं वा भवता तदुदाहृतम्॥ ४२

असम्भाव्यं महाभाग तस्य जन्म यथोदितम्।
विस्तरेण वदस्वाद्य मान्धातुर्जन्मकारणम्॥ ४३

राजोदरे यथोत्पन्नः पुत्रः सर्वाङ्गसुन्दरः।

व्यास उवाच

यौवनाश्वोऽनपत्योऽभूद्राजा परमधार्मिकः॥ ४४

भार्याणां च शतं तस्य बभूव नृपतेर्नृप।
राजा चिन्तापरः प्रायश्चिन्तयामास नित्यशः॥ ४५

अपत्यार्थे यौवनाश्वो दुःखितस्तु वनं गतः।
ऋषीणामाश्रमे पुण्ये निर्विण्णः स च पार्थिवः॥ ४६

मुमोच दुःखितः श्वासांस्तापसानां च पश्यताम्।
दृष्ट्वा तु दुःखितं विप्रा बभूवुश्च कृपालवः॥ ४७

तमूचुर्ब्राह्मणा राजन्कस्माच्छोचसि पार्थिव।
किं ते दुःखं महाराज ब्रूहि सत्यं मनोगतम्॥ ४८

प्रतीकारं करिष्यामो दुःखस्य तव सर्वथा।

यौवनाश्व उवाच

राज्यं धनं सदश्वाश्च वर्तन्ते मुनयो मम॥ ४९

भार्याणां च शतं शुद्धं वर्तते विशदप्रभम्।
नारातिस्त्रिषु लोकेषु कोऽप्यस्ति बलवान्मम॥ ५०

आज्ञाकरास्तु सामन्ता वर्तन्ते मन्त्रिणस्तथा।
एकं सन्तानजं दुःखं नान्यत्पश्यामि तापसाः॥ ५१

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
तस्माच्छोचामि विप्रेन्द्राः सन्तानार्थं भृशं ततः॥ ५२

राजा बोले—हे महाभाग [व्यासजी!] उन महाराज मान्धाताके जन्मके विषयमें जैसा आपने कहा है, वह तो असम्भव-सी घटना है, मैंने ऐसा न तो सुना है और न देखा ही है। अब आप राजा मान्धाताके जन्मका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताइये। वह सर्वांगसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे कहिये॥ ४२-४३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! परम धर्मनिष्ठ राजा यौवनाश्व सन्तानहीन थे। उन महाराजकी एक सौ रानियाँ थीं, किंतु किसीसे भी सन्तान न होनेके कारण वे प्रायः चिन्तित रहते और सन्तानके लिये नित्य सोचमें पड़े रहते थे। अन्तमें अत्यन्त दुःखित होकर वे यौवनाश्व वनमें चले गये॥ ४४-४५½ ॥

वहाँ ऋषियोंके पवित्र आश्रममें रहते हुए वे महाराज यौवनाश्व सदा खिन्न रहते थे और व्यथित होकर सदा दीर्घ श्वास छोड़ते रहते थे, इसे वहाँ रहनेवाले तपस्वीजन बराबर देखा करते थे। उन्हें इस प्रकार दुःखित देखकर सभी विप्रोंको उनपर दया आ गयी। ब्राह्मणोंने उनसे पूछा—हे राजन्! आप यह चिन्ता किसलिये कर रहे हैं? हे पार्थिव! आपको कौन-सा कष्ट है? हे महाराज! आप अपने मनकी बात सच-सच बताइये, हमलोग हर तरहसे आपका दुःख दूर करनेका उपाय करेंगे॥ ४६—४८½ ॥

यौवनाश्व बोले—हे मुनियो! मेरे पास राज्य, धन तथा उत्तम कोटिके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं; दिव्य प्रभासे युक्त एक सौ साध्वी रानियाँ मेरे पास हैं, तीनों लोकोंमें मेरा कोई भी बलवान् शत्रु नहीं है और मेरे सभी मन्त्री तथा सामन्त सदा मेरे आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं॥ ४९-५०½ ॥

हे तपस्वियो! मुझे एकमात्र दुःख सन्तान न होनेका है; इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी दुःख मेरी दृष्टिमें नहीं है। हे विप्रेन्द्रो! पुत्रहीन व्यक्तिकी न तो सद्गति होती है और न उसे स्वर्ग ही मिलता है, अतः सन्तानके लिये मैं सदा अत्यधिक शोकाकुल रहता हूँ। हे तपस्वियो! आपलोग महान् परिश्रम

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञास्तापसाश्च कृतश्रमाः।
इष्टिं सन्तानकामस्य युक्तां ज्ञात्वा दिशन्तु मे॥ ५३

कुर्वन्तु मम कार्यं वै कृपा चेदस्ति तापसाः।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञः कृपया पूर्णमानसाः॥ ५४

कारयामासुरव्यग्रास्तस्येष्टिमिन्द्रदेवताम्।
कलशः स्थापितस्तत्र जलपूर्णस्तु वाडवैः॥ ५५

मन्त्रितो वेदमन्त्रैश्च पुत्रार्थं तस्य भूपतेः।
राजा तद्यज्ञसदनं प्रविष्टस्तृषितो निशि॥ ५६

विप्रान्दृष्ट्वा शयानान्स पपौ मन्त्रजलं स्वयम्।
भार्यार्थं संस्कृतं विप्रैर्मन्त्रितं विधिनोद्धृतम्॥ ५७

पीतं राज्ञा तृषार्तेन तदज्ञानान्नृपोत्तम।
व्युदकं कलशं दृष्ट्वा तदा विप्रा विशङ्किताः॥ ५८

पप्रच्छुस्ते नृपं केन पीतं जलमिति द्विजाः।
राज्ञा पीतं विदित्वा ते ज्ञात्वा दैवबलं महत्॥ ५९

इष्टिं समापयामासुर्गतास्ते मुनयो गृहान्।
गर्भं दधार नृपतिस्ततो मन्त्रबलादथ॥ ६०

ततः काले स उत्पन्नः कुक्षिं भित्त्वाऽस्य दक्षिणाम्।
पुत्रं निष्कासयामासुर्मन्त्रिणस्तस्य भूपतेः॥ ६१

देवानां कृपया तत्र न ममार महीपतिः।
कं धास्यति कुमारोऽयं मन्त्रिणश्चुक्रुशुर्भृशम्॥ ६२

करके वेद-शास्त्रोंके रहस्य जाननेवाले हैं, मुझ सन्तानकामीके लिये करणीय जो उपयुक्त यज्ञ हो, उसे सोच-समझकर मुझे बतायें। हे तापसो! यदि मुझपर आपलोगोंकी कृपा हो, तो मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें॥ ५१—५३½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा यौवनाश्वकी बात सुनकर दयासे परिपूर्ण हृदयवाले उन ब्राह्मणोंने इन्द्रको प्रधान देवता बनाकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन नरेशसे एक यज्ञ करवाया। ब्राह्मणोंने वहाँपर जलसे परिपूर्ण एक कलश स्थापित कराया और राजा यौवनाश्वकी पुत्रप्राप्तिके निमित्त वेदमन्त्रोंके द्वारा उस कलशका अभिमन्त्रण किया॥ ५४-५५½ ॥

राजा यौवनाश्वको रातमें प्यास लग गयी, जिससे वे यज्ञशालामें चले गये। [वहाँ कहीं भी जल न देखकर तथा] ब्राह्मणोंको सोता हुआ देखकर उन्होंने कलशवाला अभिमन्त्रित जल स्वयं ही पी लिया॥ ५६½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! प्याससे व्याकुल राजा यौवनाश्व ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके रानीके लिये रखे गये उस पवित्र जलको अज्ञानपूर्वक पी गये॥ ५७½ ॥

तत्पश्चात् कलशको जल-विहीन देखकर ब्राह्मण सशंकित हो गये। उन विप्रोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा कि इस जलको किसने पीया है?॥ ५८½ ॥

स्वयं राजा यौवनाश्वने जल पीया है—इस बातको जानकर और दैव सबसे बढ़कर बलवान् होता है—यह समझकर उन महर्षियोंने यज्ञ सम्पन्न किया और बादमें वे अपने-अपने घर चले गये॥ ५९½ ॥

तदनन्तर मन्त्रके प्रभावसे राजा यौवनाश्वने गर्भ धारण कर लिया। तब गर्भके पूर्ण होनेपर राजाकी दाहिनी कोखका भेदन करके वे (मान्धाता) उत्पन्न हुए॥ ६०½ ॥

राजाके मन्त्रियोंने पुत्रको बाहर निकाला। देवताओंकी कृपासे राजा यौवनाश्वकी मृत्यु नहीं हुई। तब चिन्तित होकर मन्त्रीलोग यह कहकर जोरसे चिल्ला उठे—यह कुमार किसका दूध पीयेगा? इतनेमें इन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली

तदेन्द्रो देशिनीं प्रादान्मां धातेत्यवदद्वचः।
सोऽभवद् बलवान् राजा मान्धाता पृथिवीपतिः।
तदुत्पत्तिस्तु भूपाल कथिता तव विस्तरात्॥ ६३

डाल दी और यह वचन कहा—'**मां धाता**' अर्थात् यह मेरा दुग्ध-पान करेगा। वे ही मान्धाता नामक महान् बलशाली राजा हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने उनकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन आपसे कर दिया॥ ६१—६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
मान्धातोत्पत्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः

सूर्यवंशी राजा अरुणद्वारा राजकुमार सत्यव्रतका त्याग, सत्यव्रतका वनमें भगवती जगदम्बाके मन्त्र-जपमें रत होना

व्यास उवाच

बभूव चक्रवर्ती स नृपतिः सत्यसङ्गरः।
मान्धाता पृथिवीं सर्वामजयन्नृपतीश्वरः॥ १

दस्यवोऽस्य भयत्रस्ता ययुर्गिरिगुहासु च।
इन्द्रेणास्य कृतं नाम त्रसदस्युरिति स्फुटम्॥ २

तस्य बिन्दुमती भार्या शशबिन्दोः सुताभवत्।
पतिव्रता सुरूपा च सर्वलक्षणसंयुता॥ ३

तस्यामुत्पादयामास मान्धाता द्वौ सुतौ नृप।
पुरुकुत्सं सुविख्यातं मुचुकुन्दं तथापरम्॥ ४

पुरुकुत्सात्ततोऽरण्यः पुत्रः परमधार्मिकः।
पितृभक्तिरतश्चाभूद् बृहदश्वस्तदात्मजः॥ ५

हर्यश्वस्तस्य पुत्रोऽभूद्धार्मिकः परमार्थवित्।
तस्यात्मजस्त्रिधन्वाभूदरुणस्तस्य चात्मजः॥ ६

अरुणस्य सुतः श्रीमान्सत्यव्रत इति श्रुतः।
सोऽभूदिच्छाचरः कामी मन्दात्मा ह्यतिलोलुपः॥ ७

स पापात्मा विप्रभार्यां हृतवान्काममोहितः।
विवाहे तस्य विघ्नं स चकार नृपतेः सुतः॥ ८

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] वे महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ तथा चक्रवर्ती नरेश हुए। उन राजाधिराजने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था॥ १॥

उनके भयसे त्रस्त होकर सभी दस्यु (लुटेरे) पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये थे। इसी कारण इन्द्रने इन्हें 'त्रसदस्यु' इस नामसे विख्यात कर दिया॥ २॥

महाराज शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती उनकी भार्या थीं; जो पतिव्रता, रूपवती तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं॥ ३॥

हे राजन्! मान्धाताने उनसे दो पुत्र उत्पन्न किये। उनमें एक पुत्र पुरुकुत्स तथा दूसरा पुत्र मुचुकुन्द नामसे विख्यात हुआ॥ ४॥

उसके बाद पुरुकुत्ससे अरण्य नामक एक पुत्र हुआ। वे परम धार्मिक तथा पितृभक्त थे। उनके पुत्र बृहदश्व थे। उन बृहदश्वके भी हर्यश्व नामक पुत्र हुए, जो परम धर्मिष्ठ तथा परमार्थज्ञानी थे। उनके पुत्र त्रिधन्वा हुए और त्रिधन्वाके अरुण नामक पुत्र हुए। अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न था; किंतु वह स्वेच्छाचारी, कामी, मन्दबुद्धि तथा अत्यन्त लोभी निकला॥ ५—७॥

एक समयकी बात है—उस पापीने कामासक्त होकर एक विप्रकी भार्याका अपहरण कर लिया। जब उस विप्रका विवाह कन्याके साथ हो रहा था, उसी समय विवाह-मण्डपमें ही उस राजकुमारने यह विघ्न उपस्थित किया था॥ ८॥

मिलिता ब्राह्मणास्तत्र राजानमरुणं नृप।
ऊचुर्भृशं सुदुःखार्ता हा हताःस्मेति चासकृत्॥ ९

पप्रच्छ राजा तान्विप्रान्दुःखितान्पुरवासिनः।
किं कृतं मम पुत्रेण भवतामशुभं द्विजाः॥ १०

तन्निशम्य द्विजा वाक्यं राज्ञो विनयपूर्वकम्।
तदोचुस्त्वरुणं विप्राः कृताशीर्वचना भृशम्॥ ११

ब्राह्मणा ऊचुः

राजंस्तव सुतेनाद्य विवाहे प्रहृता किल।
विवाहिता विप्रकन्या बलेन बलिनांवर॥ १२

व्यास उवाच

श्रुत्वा तेषां वचस्तथ्यं राजा परमधार्मिकः।
पुत्रमाह वृथा नाम कृतं ते दुष्टकर्मणा॥ १३

गच्छ दूरं सुमन्दात्मन्दुराचार गृहान्मम।
न स्थातव्यं त्वया पाप विषये मम सर्वथा॥ १४

कुपितं पितरं प्राह क्व गच्छामीति वै मुहुः।
अरुणस्तमथोवाच श्वपाकैः सह वर्तय॥ १५

श्वपचस्य कृतं कर्म द्विजदारापहारणम्।
तस्मात्तैः सह संसर्गं कृत्वा तिष्ठ यथासुखम्॥ १६

नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वया च कुलपांसन।
यथेष्टं व्रज दुष्टात्मन् कीर्तिनाशः कृतस्त्वया॥ १७

स निशम्य पितुर्वाक्यं कुपितस्य महात्मनः।
निश्चक्राम पुरात्तस्मात्तरसा श्वपचान्ययौ॥ १८

सत्यव्रतस्तदा तत्र श्वपाकैः सह वर्तते।
धनुर्बाणधरः श्रीमान्कवची करुणालयः॥ १९

हे राजन्! तत्पश्चात् सभी ब्राह्मण एक साथ राजा अरुणके पास पहुँचे और अत्यधिक दुःखित होकर बार-बार कहने लगे—'हाय, हमलोग मारे गये'॥ ९॥

तब राजा अरुणने दुःखसे पीड़ित उन नगरवासी ब्राह्मणोंसे पूछा—हे विप्रगण! मेरे पुत्रने आपलोगोंका क्या अनिष्ट किया है?॥ १०॥

तब राजाकी यह वाणी सुनकर विप्रगण विपुल आशीर्वाद देते हुए उनसे विनम्रतापूर्वक कहने लगे॥ ११॥

ब्राह्मण बोले—बलशालियोंमें श्रेष्ठ हे राजन्! आज आपके पुत्र सत्यव्रतने विवाहमण्डपसे एक ब्राह्मणकी विवाहिता कन्याका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ १२॥

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] उनकी तथ्यपूर्ण बात सुनकर परम धार्मिक राजा अरुणने पुत्रसे कहा—इस कुकर्मके कारण तुम्हारा 'सत्यव्रत' नाम व्यर्थ हो गया है। हे दुर्बुद्धि! दुराचारी! तुम मेरे घरसे दूर चले जाओ। अरे पापी! अब तुम मेरे राज्यमें ठहरनेके योग्य बिलकुल ही नहीं रह गये हो॥ १३-१४॥

अपने पिताको कुपित देखकर वह बार-बार कहने लगा कि मैं कहाँ जाऊँ? तब राजा अरुणने उससे कहा कि तुम चाण्डालोंके साथ रहो। विप्रकी भार्याका अपहरण करके तुमने चाण्डालका कर्म किया है, इसलिये अब तुम उन्हींके साथ संसर्ग करते हुए स्वेच्छापूर्वक रहो। अरे कुलकलंकी! तुझ-जैसे पुत्रसे मैं पुत्रवान् नहीं बनना चाहता। अरे दुष्ट! तुमने मेरी सारी कीर्ति नष्ट कर दी है; इसलिये जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ॥ १५—१७॥

कोपसे युक्त अपने महात्मा पिताकी बात सुनकर सत्यव्रत उस नगरसे तत्काल निकल गया और चाण्डालोंके पास चला गया। उस समय ऐश्वर्यसम्पन्न तथा करुणालय सत्यव्रत कवच पहनकर तथा धनुष-बाण लेकर उन चाण्डालोंके साथ रहने लगा॥ १८-१९॥

यदा निष्कासितः पित्रा कुपितेन महात्मना।
गुरुणाथ वसिष्ठेन प्रेरितोऽसौ महीपतिः॥ २०

तस्मात्सत्यव्रतस्तस्मिन्बभूव क्रोधसंयुतः।
वसिष्ठे धर्मशास्त्रज्ञे निवारणपराङ्मुखे॥ २१

केनचित्कारणेनाथ पिता तस्य महीपतिः।

पुत्रार्थेऽसौ तपस्तप्तुं पुरं त्यक्त्वा वनं गतः॥ २२

न ववर्ष तदा तस्मिन्विषये पाकशासनः।
समा द्वादश राजेन्द्र तेनाधर्मेण सर्वथा॥ २३

विश्वामित्रस्तदा दारांस्तस्मिंस्तु विषये नृप।
संन्यस्य कौशिकीतीरे चचार विपुलं तपः॥ २४

कातरा तत्र सञ्जाता भार्या वै कौशिकस्य ह।
कुटुम्बभरणार्थाय दुःखिता वरवर्णिनी॥ २५

बालकान्क्षुधयाक्रान्तान्रुदतः पश्यती भृशम्।
याचमानांश्च नीवारान्कष्टमाप पतिव्रता॥ २६

चिन्तयामास दुःखार्ता तोकान्वीक्ष्य क्षुधातुरान्।
नृपो नास्ति पुरे ह्यद्य कं याचे वा करोमि किम्॥ २७

न मे त्रातास्ति पुत्राणां पतिर्मे नास्ति सन्निधौ।
रुदन्ति बालकाः कामं धिङ्मे जीवनमद्य वै॥ २८

धनहीनां च मां त्यक्त्वा तपस्तप्तुं गतः पतिः।
न जानाति समर्थोऽपि दुःखितां धनवर्जिताम्॥ २९

बालानां भरणं केन करोमि पतिना विना।
मरिष्यन्ति सुताः सर्वे क्षुधया पीडिता भृशम्॥ ३०

एकं सुतं तु विक्रीय द्रव्येण कियता पुनः।
पालयामि सुतानन्यानेष मे विहितो विधिः॥ ३१

जब महात्मा राजा अरुणने कुपित होकर अपने पुत्र सत्यव्रतको निष्कासित किया था, तब गुरु वसिष्ठने उन्हें इस कार्यके लिये प्रेरित किया था। इसलिये राजकुमार सत्यव्रत निष्कासनसे न रोकनेवाले उन धर्मशास्त्रके ज्ञाता वसिष्ठजीपर कुपित था॥ २०-२१॥

एक समय किसी प्रसंगवश उस सत्यव्रतके पिता राजा अरुण अयोध्यापुरी छोड़कर पुत्रकी कल्याण-कामनासे तप करनेके लिये वनमें चले गये॥ २२॥

हे महाराज! उस समय उस अधर्मके कारण इन्द्रने उस राज्यमें बारह वर्षोंतक बिलकुल जल नहीं बरसाया॥ २३॥

हे राजन्! उस समय मुनि विश्वामित्र अपनी पत्नीको उस राज्यमें छोड़कर स्वयं कौशिकीनदीके तटपर कठोर तपस्या करने लगे थे॥ २४॥

विश्वामित्रकी सुन्दर रूपवाली भार्या उस अकालके समय कुटुम्बके भरण-पोषणकी समस्याके कारण दुःखित होकर चिन्तासे व्याकुल हो उठीं॥ २५॥

भूखसे पीड़ित होकर रोते-कलपते तथा नीवार अन्न माँगते हुए अपने पुत्रोंको देख-देखकर उस पतिव्रताको महान् कष्ट होता था॥ २६॥

भूखसे आक्रान्त पुत्रोंको देखकर दुःखसे व्याकुल हो वे सोचने लगीं कि इस समय नरेश भी नगरमें नहीं हैं; अतः अब मैं किससे माँगूँ अथवा अन्य कौन-सा उपाय करूँ॥ २७॥

यहाँ मेरे पुत्रोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। मेरे पतिदेव भी इस समय मेरे पास नहीं हैं। ये बालक बहुत रो रहे हैं, अब तो मेरे जीवनको धिक्कार है॥ २८॥

मैं धनरहित हूँ—ऐसा जानते हुए भी मुझे छोड़कर पतिदेव तप करनेके लिये चले गये। समर्थ होकर भी वे इस बातको नहीं समझते कि धनके अभावमें मैं यह कष्ट भोग रही हूँ॥ २९॥

पतिकी अनुपस्थितिमें अब मैं किसकी सहायतासे बालकोंका भरण-पोषण करूँ। अब तो भूखसे तड़प-तड़पकर मेरे सभी पुत्र मर जायँगे। अतः अब एक यह उपाय मुझे सूझ रहा है कि इनमेंसे एक पुत्रको बेचकर जो कुछ भी धन प्राप्त हो, उस धनसे अन्य पुत्रोंका पालन-पोषण करूँ॥ ३०-३१॥

सर्वेषां मारणं नाद्धा युक्तं मम विपर्यये।
कालस्य कलनायाहं विक्रीणामि तथात्मजम्॥ ३२

हृदयं कठिनं कृत्वा संचिन्त्य मनसा सती।
सा दर्भरज्ज्वा बद्ध्वाथ गले पुत्रं विनिर्गता॥ ३३

मुनिपत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम्।
शेषस्य भरणार्थाय गृहीत्वा चलिता गृहात्॥ ३४

दृष्टा सत्यव्रतेनार्ता तापसी शोकसंयुता।
पप्रच्छ नृपतिस्तां तु किं चिकीर्षसि शोभने॥ ३५

रुदन्तं बालकं कण्ठे बद्ध्वा नयसि काधुना।
किमर्थं चारुसर्वाङ्गि सत्यं ब्रूहि ममाग्रतः॥ ३६

ऋषिपत्न्युवाच

विश्वामित्रस्य भार्याहं पुत्रोऽयं मे नृपात्मज।
विक्रेतुमौरसं कामं गमिष्ये विषमे सुतम्॥ ३७

अन्नं नास्ति पतिर्मुक्त्वा गतस्तप्तुं नृप क्वचित्।
विक्रीणामि क्षुधार्तैनं शेषस्य भरणाय वै॥ ३८

राजोवाच

पतिव्रते रक्ष पुत्रं दास्यामि भरणं तव।
तावदेव पतिस्तेऽत्र वनाच्चैवागमिष्यति॥ ३९

वृक्षे तवाश्रमाभ्याशे भक्ष्यं किञ्चिन्निरन्तरम्।
बन्धयित्वा गमिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम्॥ ४०

इत्युक्ता सा तदा तेन राज्ञा कौशिककामिनी।
विबन्धं तनयं कृत्वा जगामाश्रममण्डलम्॥ ४१

सोऽभवद् गालवो नाम गलबन्धान्महातपाः।
सा तु स्वस्याश्रमे गत्वा मुमोद बालकैर्वृता॥ ४२

इस प्रकार भूखसे सभी पुत्रोंको मार डालना मेरे विचारसे उचित नहीं है। अतः इस संकटकी स्थितिसे निबटनेके लिये मैं एक पुत्रको बेचूँगी॥ ३२॥

मन-ही-मन इस तरहका संकल्प करके अपने हृदयको कठोर बनाकर वह साध्वी एक पुत्रके गलेमें कुशकी रस्सी बाँधकर घरसे निकल पड़ी॥ ३३॥

जब वह मुनि-पत्नी शेष पुत्रोंके रक्षार्थ अपने औरस मझले पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उसे लेकर अपने घरसे निकली, तभी [उसके कुछ दूर जानेपर] राजकुमार सत्यव्रतने उस शोक-सन्तप्त तथा घबरायी हुई तपस्विनीको देख लिया और उससे पूछा—हे शोभने! आप क्या करना चाहती हो? हे सर्वांगसुन्दरि! आप कौन हैं और इस रोते हुए बालकके गलेमें रस्सी बाँधकर किसलिये ले जा रही हैं? यह सब आप मेरे समक्ष सच-सच बताइये॥ ३४—३६॥

ऋषिपत्नी बोलीं—हे राजकुमार! मैं ऋषि विश्वामित्रकी पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है। विषम संकटमें पड़कर मैं अपने इस औरस पुत्रको बेचनेके लिये जा रही हूँ। हे राजन्! मेरे पास अन्न नहीं है और मेरे पति मुझे छोड़कर तपस्या करनेके लिये कहीं चले गये हैं, अतः भूखसे व्याकुल मैं अब अपने शेष पुत्रोंके भरण-पोषणके निमित्त इसे बेचूँगी॥ ३७-३८॥

राजा बोले—हे पतिव्रते! आप अपने पुत्रकी रक्षा करें। जबतक आपके पति वनसे यहाँ वापस नहीं आ जाते, तबतक मैं आपके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर दे रहा हूँ। मैं आपके आश्रमके समीपवाले वृक्षपर कुछ भोज्य-सामग्री प्रतिदिन बाँधकर चला जाया करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ ३९-४०॥

राजकुमारके यह कहनेपर विश्वामित्रकी भार्या अपने पुत्रके गलेसे रस्सी खोलकर अपने आश्रमको लौट गयीं॥ ४१॥

गला बँधनेके कारण उस बालकका नाम 'गालव' पड़ गया और वह महान् तपस्वी हुआ। अपने आश्रममें जाकर वे बालकोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगीं॥ ४२॥

सत्यव्रतस्तु भक्त्या च कृपया च परिप्लुतः।
विश्वामित्रस्य च मुनेः कलत्रं तद् बभार ह॥ ४३

वने स्थितान्मृगान्हत्वा वराहान्महिषांस्तथा।
विश्वामित्रवनाभ्याशे मांसं वृक्षे बबन्ध ह॥ ४४

ऋषिपत्नी गृहीत्वा तन्मांसं पुत्रानदात्ततः।

निर्वृतिं परमां प्राप प्राप्य भक्ष्यमनुत्तमम्॥ ४५

अयोध्यां चैव राज्यं च तथैवान्तःपुरं मुनिः।
गते तप्तुं नृपे तस्मिन्वसिष्ठः पर्यरक्षत॥ ४६

सत्यव्रतोऽपि धर्मात्मा ह्यतिष्ठन्नगराद् बहिः।
पितुराज्ञां समास्थाय पशुघ्नव्रतवान्वने॥ ४७

सत्यव्रतो ह्यकस्माच्च कस्यचित्कारणान्नृपः।
वसिष्ठे चाधिकं मन्युं धारयामास नित्यदा॥ ४८

त्यज्यमानं वने पित्रा धर्मिष्ठं च प्रियं सुतम्।
न वारयामास मुनिर्वसिष्ठः कारणेन ह॥ ४९

पाणिग्रहणमन्त्राणां निष्ठा स्यात्सप्तमे पदे।
जानन्नपि स धर्मात्मा विप्रदारपरिग्रहे॥ ५०

कस्मिंश्चिद्दिवसेऽरण्ये मृगाभावे महीपतिः।
वसिष्ठस्य च गां दोग्ध्रीमपश्यद्वनमध्यगाम्॥ ५१

तां जघान क्षुधार्तस्तु क्रोधान्मोहाच्च दस्युवत्।
वृक्षे बबन्ध तन्मांसं नीत्वा स्वयमभक्षयत्॥ ५२

ऋषिपत्नी सुतान्सर्वान्भोजयामास तत्तदा।
शङ्कमाना मृगस्येति न गोरिति च सुव्रता॥ ५३

वसिष्ठस्तु हतां दोग्ध्रीं ज्ञात्वा क्रुद्धस्तमब्रवीत्।
दुरात्मन् किं कृतं पापं धेनुघातात्पिशाचवत्॥ ५४

एवं ते शङ्कवः क्रूराः पतन्तु त्वरितास्त्रयः।
गोवधाद्दारहरणात्पितुः क्रोधात्तथा भृशम्॥ ५५

राजकुमार सत्यव्रत भी आदर और दयासे परिपूर्ण होकर मुनि विश्वामित्रकी पत्नीका भरण-पोषण करने लगे। वे वन्य भोज्य-पदार्थोंको लाकर विश्वामित्रके तपोवनके समीपवाले वृक्षपर बाँध दिया करते थे और ऋषिपत्नी प्रतिदिन उसे लाकर अपने पुत्रोंको देती थी। वह उत्तम भोज्य-पदार्थ प्राप्त करके उसे परम तृप्ति मिलती थी॥ ४३—४५॥

राजा अरुणके तपस्या करनेके लिये चले जानेके बाद महर्षि वसिष्ठ अयोध्यानगरीके सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुरकी भलीभाँति रक्षा करने लगे॥ ४६॥

धर्मात्मा सत्यव्रत भी पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा नगरके बाहर ही रहते थे तथा वनमें पशुओंका आखेट किया करते थे॥ ४७॥

अकस्मात् एक समय राजकुमार सत्यव्रत किसी कारणवश महर्षि वसिष्ठके प्रति अत्यधिक कुपित हो उठे और उनका यह कोप निरन्तर बढ़ता ही गया॥ ४८॥

[वे बार-बार यही सोचते थे कि] जब मेरे पिता राजा अरुण मुझ धर्मपरायण तथा प्रिय पुत्रका त्याग कर रहे थे, उस समय मुनि वसिष्ठने उन्हें किस कारणसे नहीं रोका?॥ ४९॥

सप्तपदी होनेके अनन्तर ही विवाहके मन्त्रोंकी पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। [जब मैंने सप्तपदीके पहले ही कन्याका हरण कर लिया तो] यह विवाहित विप्र-स्त्रीका हरण हुआ ही नहीं—यह सब जानते हुए भी धर्मात्मा वसिष्ठने उन्हें ऐसा करनेसे नहीं रोका॥ ५०॥

किसी दिन वनमें आखेटके लिये गये सत्यव्रतको कोई भी मृग न मिलनेपर वे घूमते-घूमते वनके मध्यमें पहुँच गये। वहाँपर उन्हें मुनि वसिष्ठकी दुधारू गौ दिखायी पड़ गयी। भूखसे पीड़ित रहने तथा मुनि वसिष्ठपर कुपित होनेके कारण अज्ञानपूर्वक राजकुमार सत्यव्रतने एक दस्युकी भाँति उसका वध कर डाला। 'सत्यव्रतने मेरी दुधारू गायको मार डाला है'—यह जानकारी होनेपर मुनि वसिष्ठने कुपित होकर उससे कहा—अरे दुरात्मन्! पिशाचकी भाँति गायका वध करके तुमने यह कैसा पाप कर डाला! उन्होंने [शाप देते हुए] कहा—'गोवध, विप्रभार्याके हरण और

त्रिशङ्कुरिति नाम्ना वै भुवि ख्यातो भविष्यसि।
पिशाचरूपमात्मानं दर्शयन्सर्वदेहिनाम्॥ ५६

पिताके भयंकर कोप—इन तीनोंके कारण तुम्हारे मस्तकपर तत्काल तीन गहरे शंकु (पाप-चिह्न) पड़ जायँ। अब सभी प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप दिखलाते हुए तुम संसारमें 'त्रिशंकु' नामसे प्रसिद्ध होओगे'॥ ५१—५६॥

व्यास उवाच

एवं शप्तो वसिष्ठेन तदा सत्यव्रतो नृपः।
चचार च तपस्तीव्रं तस्मिन्नेवाश्रमे स्थितः॥ ५७

कस्माच्चिन्मुनिपुत्रात्तु प्राप्य मन्त्रमनुत्तमम्।
ध्यायन्भगवतीं देवीं प्रकृतिं परमां शिवाम्॥ ५८

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] तब मुनि वसिष्ठसे इस तरह शापग्रस्त होकर राजकुमार सत्यव्रतने उसी आश्रममें रहते हुए कठोर तप आरम्भ कर दिया। किसी मुनि-पुत्रसे श्रेष्ठ देवी-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके परम कल्याणमयी प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह सत्यव्रत उस मन्त्रका जप करने लगा॥ ५७-५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
सत्यव्रताख्यानवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

~~~

अथैकादशोऽध्यायः

भगवती जगदम्बाकी कृपासे सत्यव्रतका राज्याभिषेक और राजा अरुणद्वारा उन्हें नीतिशास्त्रकी शिक्षा देना

जनमेजय उवाच

वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ त्रिशङ्कुर्नृपतेः सुतः।
कथं शापाद्विनिर्मुक्तस्तन्मे ब्रूहि महामते॥ १

व्यास उवाच

सत्यव्रतस्तथा शप्तः पिशाचत्वमवाप्तवान्।
तस्मिन्नेवाश्रमे तस्थौ देवीभक्तिपरायणः॥ २

कदाचिन्नृपतिस्तत्र जप्त्वा मन्त्रं नवाक्षरम्।
होमार्थं ब्राह्मणान्गत्वा प्रणम्योवाच भक्तितः॥ ३

भूमिदेवाः शृणुध्वं वै वचनं प्रणतस्य मे।
ऋत्विजो मम सर्वेऽत्र भवन्तः प्रभवन्तु ह॥ ४

जपस्य च दशांशेन होमः कार्यो विधानतः।
भवद्भिः कार्यसिद्ध्यर्थं वेदविद्भिः कृपापरैः॥ ५

सत्यव्रतोऽहं नृपतेः पुत्रो ब्रह्मविदांवराः।
कार्यं मम विधातव्यं सर्वथा सुखहेतवे॥ ६

जनमेजय बोले—हे महामते! वसिष्ठजी द्वारा शापित वह राजकुमार त्रिशंकु उस शापसे किस प्रकार मुक्त हुआ, उसे मुझे बताइये॥ १॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार शापग्रस्त सत्यव्रत पिशाचत्वको प्राप्त हो गये। वे देवीभक्तिमें संलग्न होकर उसी आश्रममें रहने लगे॥ २॥

किसी समय राजा सत्यव्रत नवाक्षर मन्त्रका जप समाप्त करके हवन करानेके लिये ब्राह्मणोंके पास जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनसे बोले—हे भूदेवगण! आपलोग मुझ शरणागतकी प्रार्थना सुनिये। इस समय आप सभी लोग मेरे यज्ञमें ऋत्विक् होनेकी कृपा कीजिये। आप सब कृपालु तथा वेदवेत्ता विप्रगण मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये जपके दशांशसे हवन-कर्म सम्पन्न करा दीजिये। हे ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ विप्रगण! मेरा नाम सत्यव्रत है; मैं एक राजकुमार हूँ। मेरे सर्वविध सुखके लिये आपलोग मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें॥ ३—६॥
~~~

तच्छ्रुत्वा ब्राह्मणास्तत्र तमूचुर्नृपतेः सुतम्।
शप्तस्त्वं गुरुणा प्राप्तं पिशाचत्वं त्वयाधुना॥ ७

न यागार्होऽसि तस्मात्त्वं वेदेष्वनधिकारतः।
पिशाचत्वमनुप्राप्तं सर्वलोकेषु गर्हितम्॥ ८

व्यास उवाच

तन्निशम्य वचस्तेषां राजा दुःखमवाप ह।
धिग्जीवितमिदं मेऽद्य किं करोमि वने स्थितः॥ ९

पित्रा चाहं परित्यक्तः शप्तश्च गुरुणा भृशम्।
राज्याद् भ्रष्टः पिशाचत्वमनुप्राप्तः करोमि किम्॥ १०

तदा पृथुतरां कृत्वा चितां काष्ठैर्नृपात्मजः।
सस्मार चण्डिकां देवीं प्रवेशमनुचिन्तयन्॥ ११

स्मृत्वा देवीं महामायां चितां प्रज्वलितां पुरः।
कृत्वा स्नात्वा प्रवेशार्थं स्थितः प्राञ्जलिरग्रतः॥ १२

ज्ञात्वा भगवती तं तु मर्तुकामं महीपतिम्।
आजगाम तदाकाशं प्रत्यक्षं तस्य चाग्रतः॥ १३

दत्त्वाथ दर्शनं देवी तमुवाच नृपात्मजम्।
सिंहारूढा महाराज मेघगम्भीरया गिरा॥ १४

देव्युवाच

किं ते व्यवसितं साधो हुताशे मा तनुं त्यज।
स्थिरो भव महाभाग पिता ते जरसान्वितः॥ १५

राज्यं दत्त्वा वने तुभ्यं गन्तास्ति तपसे किल।
विषादं त्यज हे वीर परश्वोऽहनि भूपते॥ १६

नेतुं त्वामागमिष्यन्ति सचिवाश्च पितुस्तव।
मत्प्रसादात्पिता च त्वामभिषिच्य नृपासने॥ १७

जित्वा कामं ब्रह्मलोकं गमिष्यत्येष निश्चयः।

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा तं तदा देवी तत्रैवान्तरधीयत॥ १८
राजपुत्रो विरमितो मरणात्पावकात्ततः।

यह सुनकर ब्राह्मणोंने उस राजकुमारसे कहा—अपने गुरुसे शापग्रस्त होकर इस समय तुम पिशाच बन गये हो, इसलिये वेदोंपर अधिकार न रहनेके कारण तुम यज्ञ करनेके योग्य नहीं हो। तुम सभी लोकोंमें निन्द्य पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुके हो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी बात सुनकर राजा अत्यन्त दुःखित हुए। [वे सोचने लगे—] मेरे जीवनको धिक्कार है, अब मैं वनमें रहकर क्या करूँ? पिताने मेरा परित्याग कर दिया है, गुरुने मुझे घोर शाप दे दिया है, राज्यसे च्युत हो गया हूँ और पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुका हूँ, तो ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ?॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् उस राजकुमारने लकड़ियोंसे बहुत बड़ी चिता तैयार करके उसमें प्रवेश करनेका विचार करते हुए भगवती चण्डिकाका स्मरण किया॥ ११॥

भगवती महामायाका स्मरण करके उसने चिता प्रज्वलित की और स्नान करके उसमें प्रविष्ट होनेके लिये दोनों हाथ जोड़कर चिताके सामने खड़ा हो गया॥ १२॥

राजकुमार सत्यव्रत मरनेहेतु उद्यत हैं—ऐसा जानकर भगवती जगदम्बा उनके सामने आकाशमें प्रत्यक्ष स्थित हो गयीं। हे महाराज! सिंहपर आरूढ़ वे देवी राजकुमारको दर्शन प्रदान करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं॥ १३-१४॥

देवी बोलीं—हे साधो! आप यह दुष्प्रयास क्यों कर रहे हैं? इस तरह अग्निमें देहत्याग मत कीजिये। हे महाभाग! आप स्वस्थचित्त हो जाइये। आपके वृद्ध पिता आपको राज्य सौंपकर तपस्याके लिये वनमें जानेवाले हैं। हे वीर! शोकका त्याग कीजिये। हे राजन्! आपके पिताके मन्त्रीगण आपको ले जानेके लिये परसों आयेंगे। मेरी कृपाके प्रभावसे आपके पिताजी राजसिंहासनपर आपका अभिषेक करके कामनापर विजय प्राप्तकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करेंगे; यह सुनिश्चित है॥ १५—१७½॥

व्यासजी बोले—राजकुमारसे ऐसा कहकर देवी वहींपर अन्तर्धान हो गयीं। तब राजकुमार सत्यव्रतने चितामें जलकर मरनेका विचार छोड़ दिया॥ १८½॥

अयोध्यायां तदागत्य नारदेन महात्मना॥ १९

वृत्तान्तः कथितः सर्वो राज्ञे सत्वरमादितः।
श्रुत्वा राजाथ पुत्रस्य तं तथा मरणोद्यमम्॥ २०

खेदमाधाय मनसि शुशोच बहुधा नृपः।
सचिवानाह धर्मात्मा पुत्रशोकपरिप्लुतः॥ २१

ज्ञातं भवद्भिरत्युग्रं पुत्रस्य मम चेष्टितम्।
त्यक्तो मया वने धीमान्पुत्रः सत्यव्रतो मम॥ २२

आज्ञयासौ गतः सद्यो राज्यार्हः परमार्थवित्।
स्थितस्तत्रैव विज्ञाने धनहीनः क्षमान्वितः॥ २३

वसिष्ठेन तथा शप्तः पिशाचसदृशः कृतः।
सोऽद्य दुःखेन सन्तप्तः प्रवेष्टुञ्च हुताशनम्॥ २४

उद्यतः श्रीमहादेव्या निषिद्धः संस्थितः पुनः।
तस्माद् गच्छन्तु तं शीघ्रं ज्येष्ठपुत्रं महाबलम्॥ २५

आश्वास्य वचनैरत्र तरसैवानयन्त्विह।

अभिषिच्य सुतं राज्ये औरसं पालनक्षमम्॥ २६

वनं यास्यामि शान्तोऽहं तपसे कृतनिश्चयः।
इत्युक्त्वा मन्त्रिणः सर्वान्प्रेषयामास पार्थिवः॥ २७

तस्यैवानयनार्थं हि प्रीतिप्रवणमानसः।
ते गत्वा तं समाश्वास्य मन्त्रिणः पार्थिवात्मजम्॥ २८

अयोध्यायां महात्मानं मानपूर्वं समानयन्।
दृष्ट्वा सत्यव्रतं राजा दुर्बलं मलिनाम्बरम्॥ २९

जटाजूटधरं क्रूरं चिन्तातुरमचिन्तयत्।
किं कृतं निष्ठुरं कर्म मया पुत्रो विवासितः॥ ३०

राज्यार्हश्चातिमेधावी जानता धर्मनिश्चयम्।

तत्पश्चात् महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आकर आरम्भसे लेकर सत्यव्रतका सारा वृत्तान्त राजा अरुणसे कह दिया॥ १९½ ॥

अपने पुत्रकी उस प्रकारकी जलकर मरनेकी चेष्टा सुनकर राजा अत्यन्त दुःखीचित्त होकर तरह-तरहकी बात सोचने लगे॥ २०½ ॥

पुत्रके शोकमें निमग्न धर्मात्मा राजा अरुणने मन्त्रियोंसे कहा—आपलोग मेरे पुत्रके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण चेष्टाके विषयमें जान गये हैं। मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतका वनमें त्याग कर दिया था। परमार्थका ज्ञान रखनेवाला वह पुत्र यद्यपि राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तत्काल वन चला गया। मेरा वह क्षमाशील पुत्र धनहीन होकर अभी उसी वनमें [देवीकी] उपासनामें रत होकर रह रहा है। वसिष्ठजीने उसे शाप दे दिया है और पिशाचतुल्य बना दिया है॥ २१—२३½ ॥

दुःखसे सन्तप्त वह सत्यव्रत आज अग्निमें प्रवेश करनेको तत्पर हो गया था, किंतु भगवतीने उसे ऐसा करनेसे मना कर दिया। इस समय वह वहींपर स्थित है। अतः आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस महाबली ज्येष्ठ पुत्रको अपने वचनोंसे आश्वासन देकर तुरंत यहाँ ले आइये। प्रजापालन करनेमें समर्थ अपने औरस पुत्रका राज्याभिषेक करके मैं शान्त होकर वनमें चला जाऊँगा। अब मैंने तपस्याके लिये निश्चय कर लिया है॥ २४—२६½ ॥

ऐसा कहकर पुत्रप्रेममें प्रवृत्त मनवाले राजा अरुणने सत्यव्रतको लानेके लिये अपने सभी मन्त्रियोंको वहाँ भेज दिया॥ २७½ ॥

वनमें जाकर वे मन्त्री महात्मा राजकुमार सत्यव्रतको आश्वासन देकर उन्हें सम्मानपूर्वक अयोध्या ले आये॥ २८½ ॥

सत्यव्रतको अत्यन्त दुर्बल, मलिन वस्त्र धारण किये, बड़े-बड़े जटा-जूटवाला, भयंकर तथा चिन्तासे व्यग्र देखकर राजा [अरुण] सोचने लगे कि मैंने यह कैसा निष्ठुर कर्म कर डाला था, जो कि धर्मका वास्तविक स्वरूप जानते हुए भी मैंने राजपदके योग्य तथा अत्यन्त मेधावी पुत्रको निर्वासित कर दिया था॥ २९-३०½ ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा तमालिङ्ग्य महीपतिः॥ ३१

आसने स्वसमीपस्थे समाश्वास्योपवेशयत्।
उपविष्टं सुतं राजा प्रेमपूर्वमुवाच ह॥ ३२

प्रेमगद्‌गदया वाचा नीतिशास्त्रविशारदः।

राजोवाच

पुत्र धर्मे मतिः कार्या माननीया मुखोद्भवाः॥ ३३

न्यायागतं धनं ग्राह्यं रक्षणीयाः सदा प्रजाः।
नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित्॥ ३४

शिष्टप्रोक्तं प्रकर्तव्यं पूजनीयास्तपस्विनः।
हन्तव्या दस्यवः क्रूरा इन्द्रियाणां तथा जयः॥ ३५

कर्तव्यः कार्यसिद्ध्यर्थं राज्ञा पुत्र सदैव हि।
मन्त्रस्तु सर्वथा गोप्यः कर्तव्यः सचिवैः सह॥ ३६

नोपेक्ष्योऽल्पोऽपि कृतिना रिपुः सर्वात्मना सुत।
न विश्वसेत्परासक्तं सचिवं च तथा नतम्॥ ३७

चाराः सर्वत्र योक्तव्याः शत्रुमित्रेषु सर्वथा।
धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः॥ ३८

शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसङ्गं च वर्जयेत्।

यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः॥ ३९

न विश्वसेत्स्त्रियं क्वापि स्त्रैणं द्यूतरतं नरम्।
अत्यादरो न कर्तव्यो मृगयायां कदाचन॥ ४०

द्यूते मद्ये तथा गेये नूनं वारवधूषु च।
स्वयं तद्विमुखो भूयात्प्रजास्तेभ्यश्च रक्षयेत्॥ ४१

ब्राह्मे मुहूर्ते कर्तव्यमुत्थानं सर्वथा सदा।
स्नानादिकं सर्वविधिं विधाय विधिवद्यथा॥ ४२

पराशक्तेः परां पूजां भक्त्या कुर्यात्सुदीक्षितः।
पुत्रैतज्जन्मसाफल्यं पराशक्तेः पदार्चनम्॥ ४३

[हे राजन्!] इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर महाराज [अरुण]-ने राजकुमार सत्यव्रतको वक्षःस्थलसे लगा लिया और उसे सम्यक् आश्वासन देकर अपने पासमें ही स्थित आसनपर बैठा लिया। तत्पश्चात् नीतिशास्त्रके पारगामी विद्वान् राजा अरुण पासमें बैठे हुए अपने उस पुत्रसे प्रेमयुक्त गद्‌गद वाणीमें कहने लगे॥ ३१-३२½॥

राजा बोले—हे पुत्र! तुम सदा धर्ममें ही अपनी बुद्धि लगाना, विप्रोंका सम्मान करना, न्यायपूर्वक प्राप्त धन ही ग्रहण करना, प्रजाओंकी सर्वदा रक्षा करना, कभी असत्य भाषण मत करना, निन्दित मार्गका अनुसरण मत करना, शिष्टजनोंके आज्ञानुसार कार्य करना, तपस्वियोंकी पूजा करना, क्रूर लुटेरोंका दमन करना और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना। हे पुत्र! कार्यसिद्धिके लिये राजाको अपने मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करते रहना चाहिये। हे सुत! सबके आत्मास्वरूप राजाको चाहिये कि छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। शत्रुसे मिले हुए अपने अत्यन्त विनम्र मन्त्रीपर भी राजाको विश्वास नहीं करना चाहिये॥ ३३—३७॥

सर्वत्र शत्रु तथा मित्रकी गतिविधियोंको जाननेके लिये सर्वदा गुप्तचरोंकी नियुक्ति करनी चाहिये, धर्ममें सदा बुद्धि लगाये रखनी चाहिये और प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये। नीरस सम्भाषण नहीं करना चाहिये, दुष्टोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये, विविध यज्ञानुष्ठान करते रहना चाहिये और महर्षियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। स्त्री, नपुंसक तथा द्यूतपरायण व्यक्तिपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये और आखेटके प्रति अत्यन्त आदरबुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिये॥ ३८—४०॥

द्यूत, मदिरा, अश्लील संगीत तथा वेश्याओंसे स्वयं बचना चाहिये और अपनी प्रजाओंको भी इनसे बचाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें [शयनसे] सदा निश्चय ही उठ जाना चाहिये। तत्पश्चात् दीक्षित मनुष्यको स्नान आदि सभी नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर भलीभाँति भक्तिपूर्वक पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करनी चाहिये। हे पुत्र! पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंकी पूजा ही इस जन्मकी सफलता है॥ ४१—४३॥

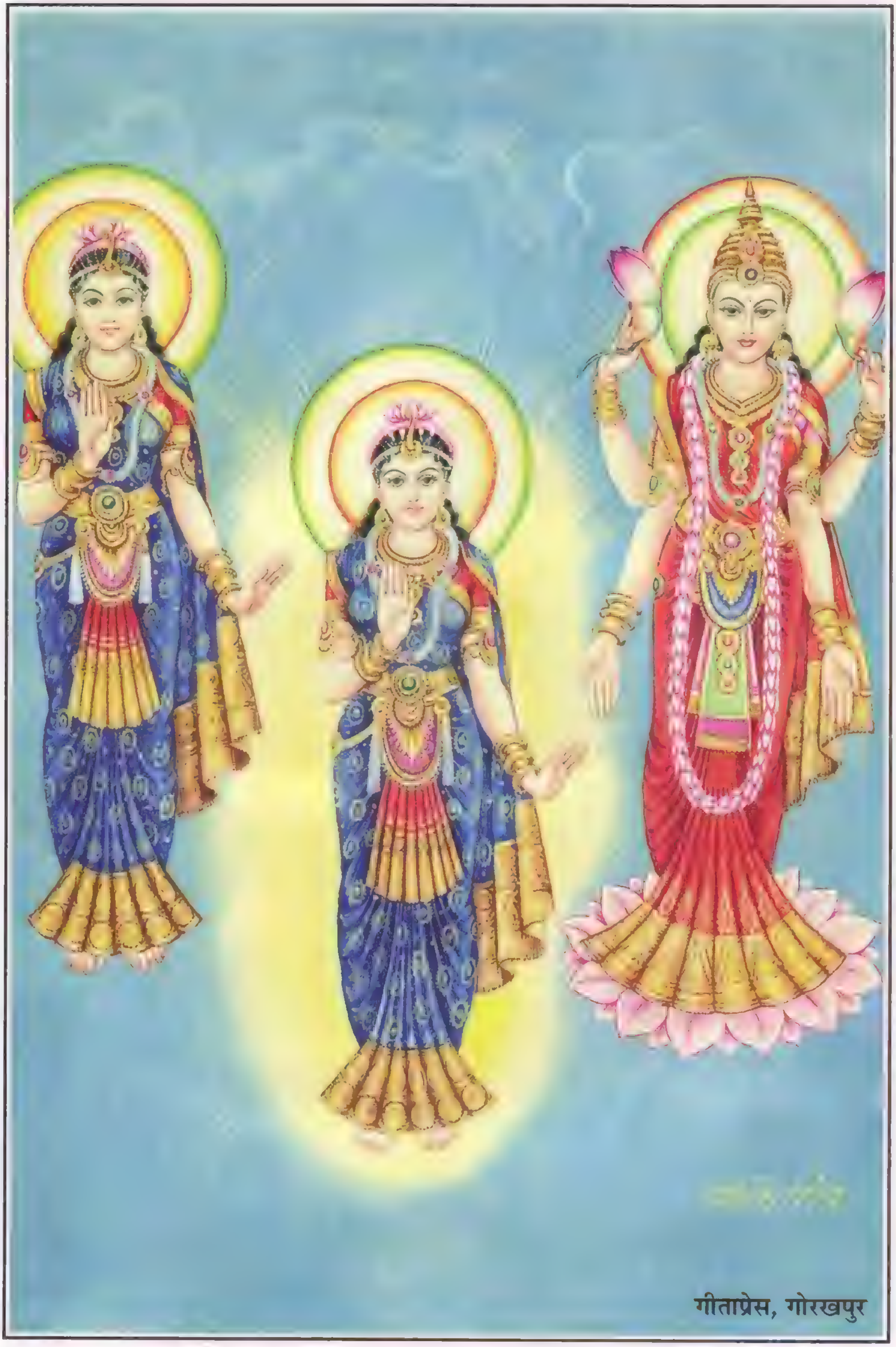
गीताप्रेस, गोरखपुर

मूलप्रकृतिके दक्षिण अंगसे राधाका और वाम अंगसे लक्ष्मीका प्राकट्य

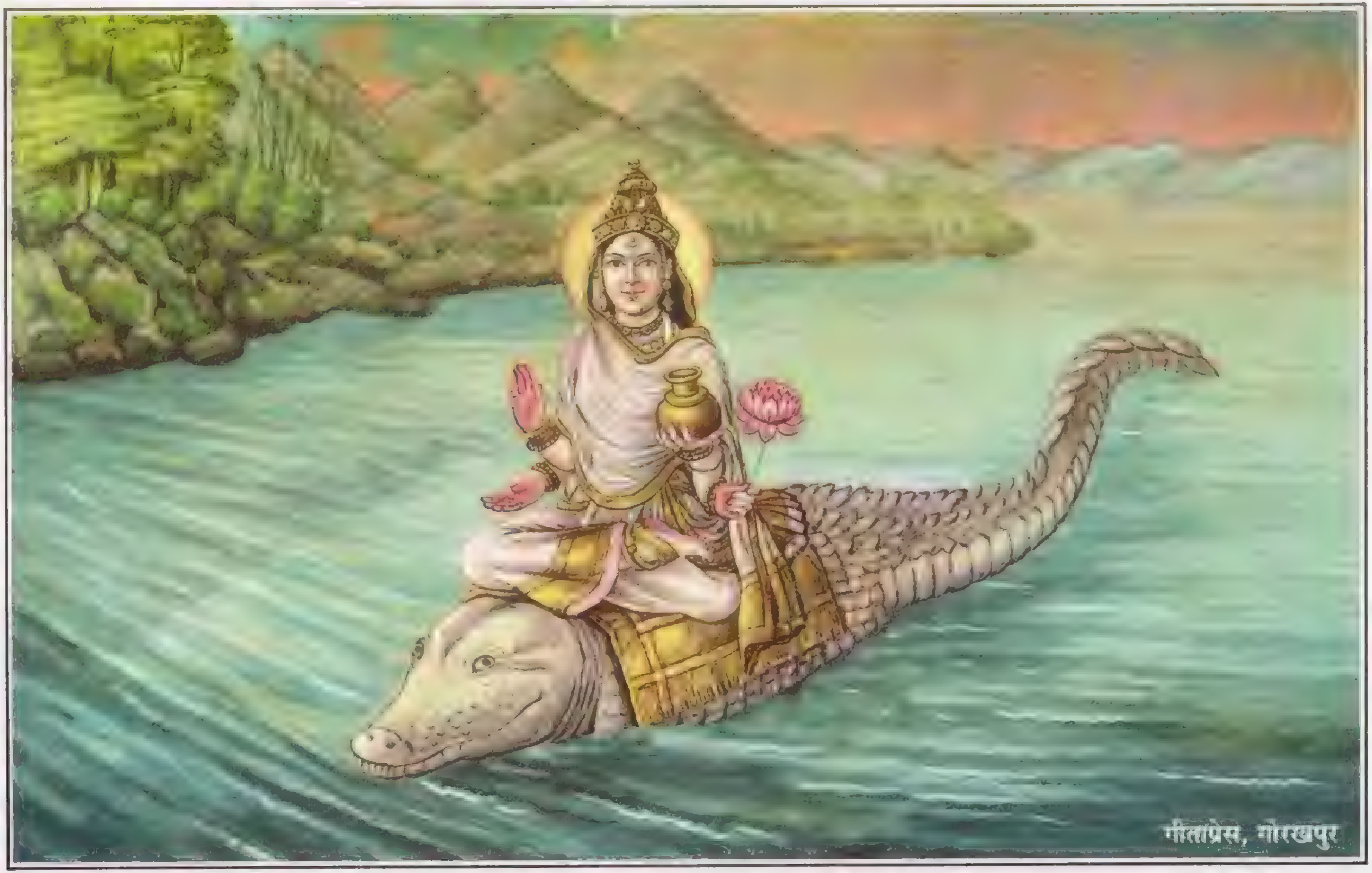
गीताप्रेस, गोरखपुर

मकरवाहिनी भगवती गङ्गा

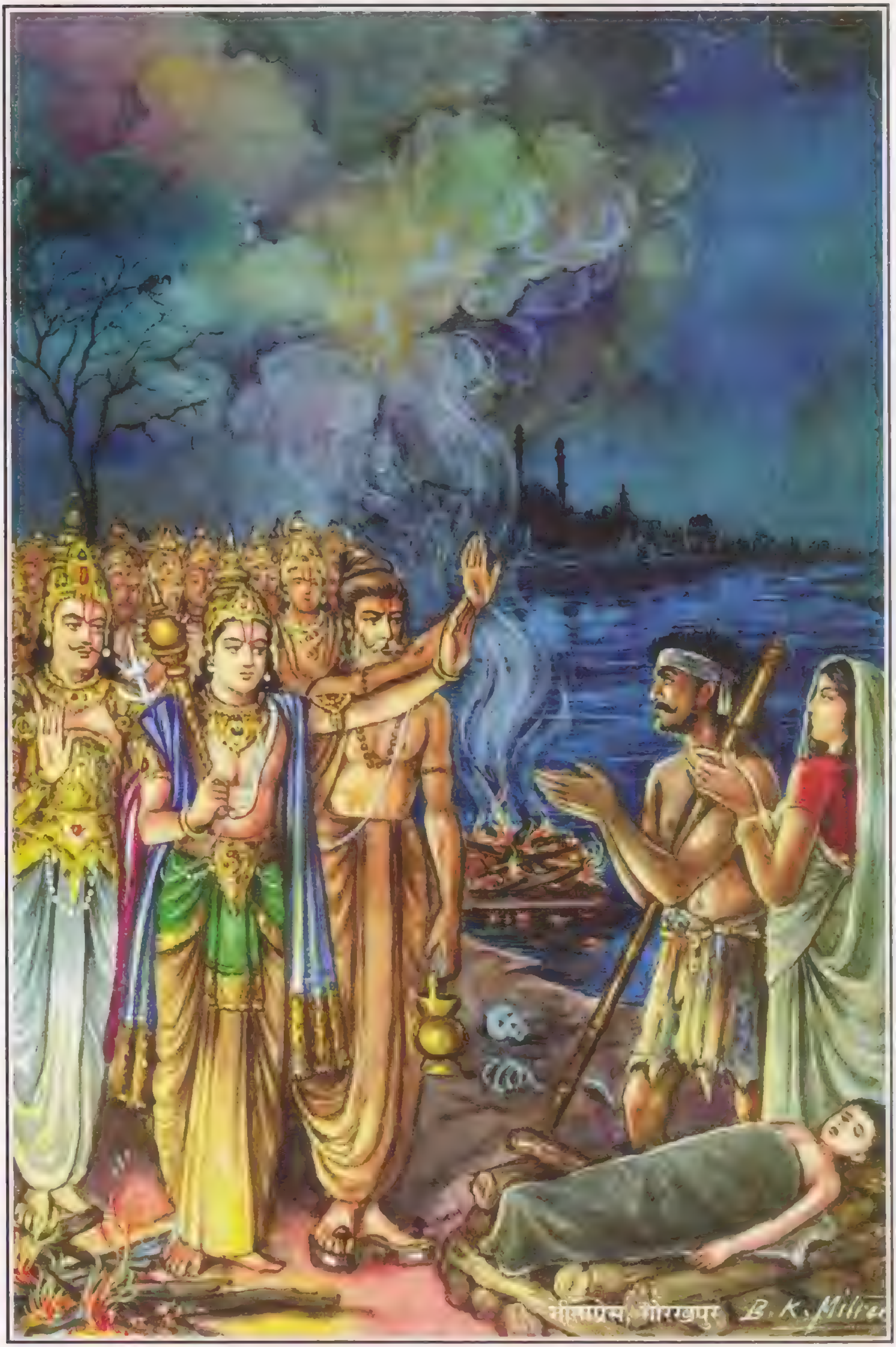
गीताप्रेस, गोरखपुर
B. K. Mitr

इन्द्र आदि देवताओं तथा महर्षि विश्वामित्रद्वारा हरिश्चन्द्रको आशीर्वाद

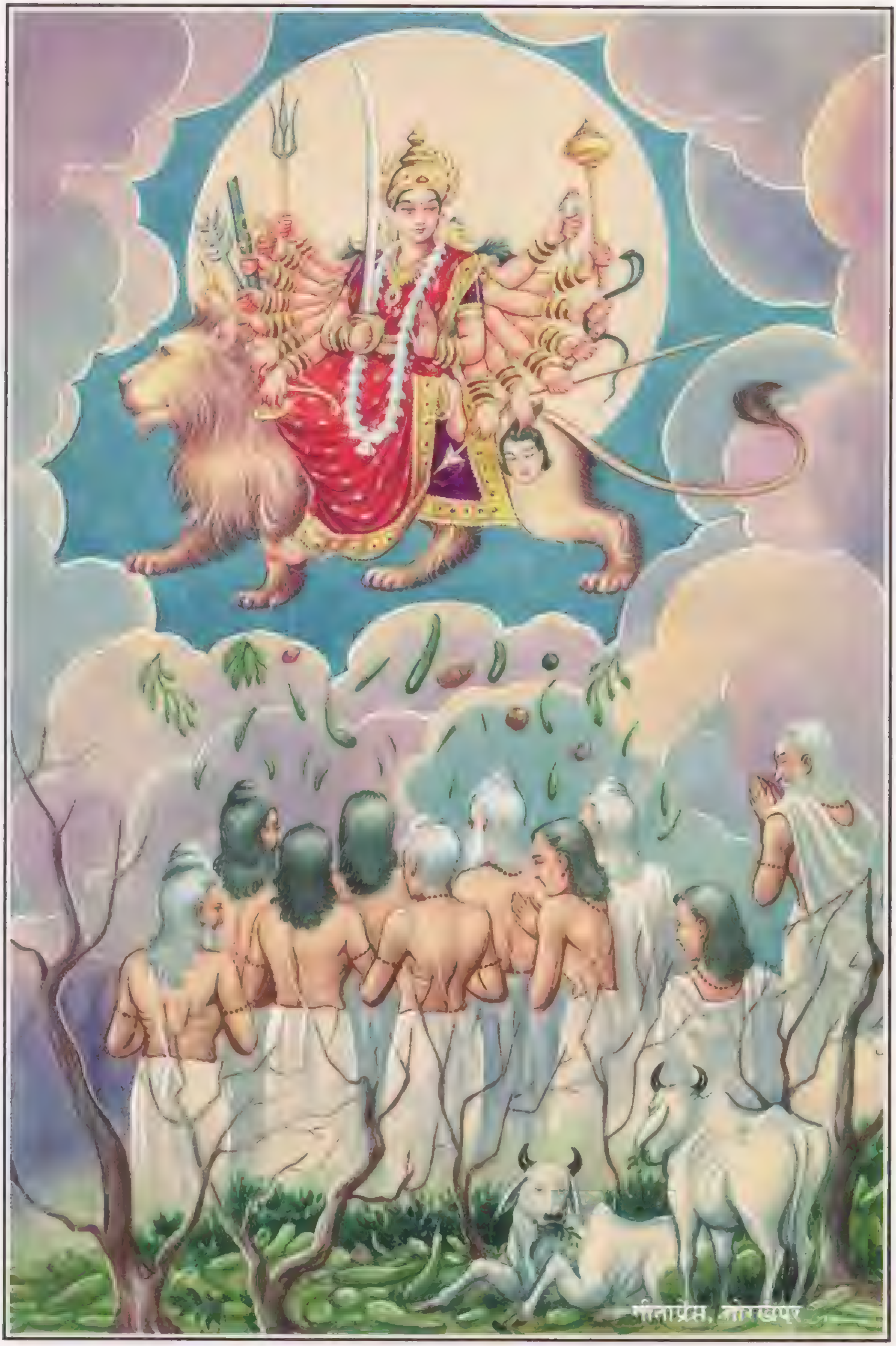
गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवती शाकम्भरीदेवीद्वारा शाककी वर्षा

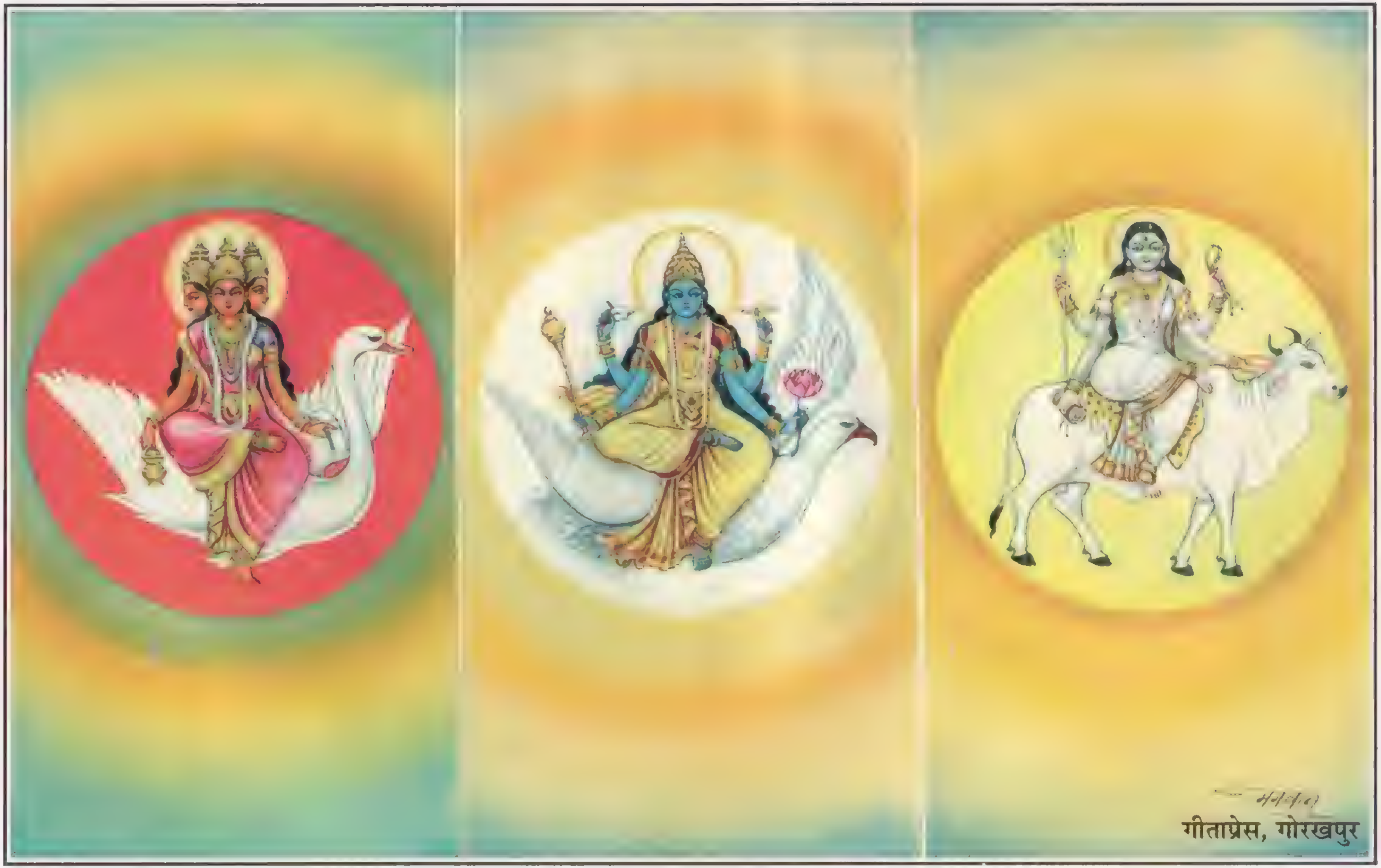
गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—तीनों सन्ध्या-कालोंका ध्यान-स्वरूप

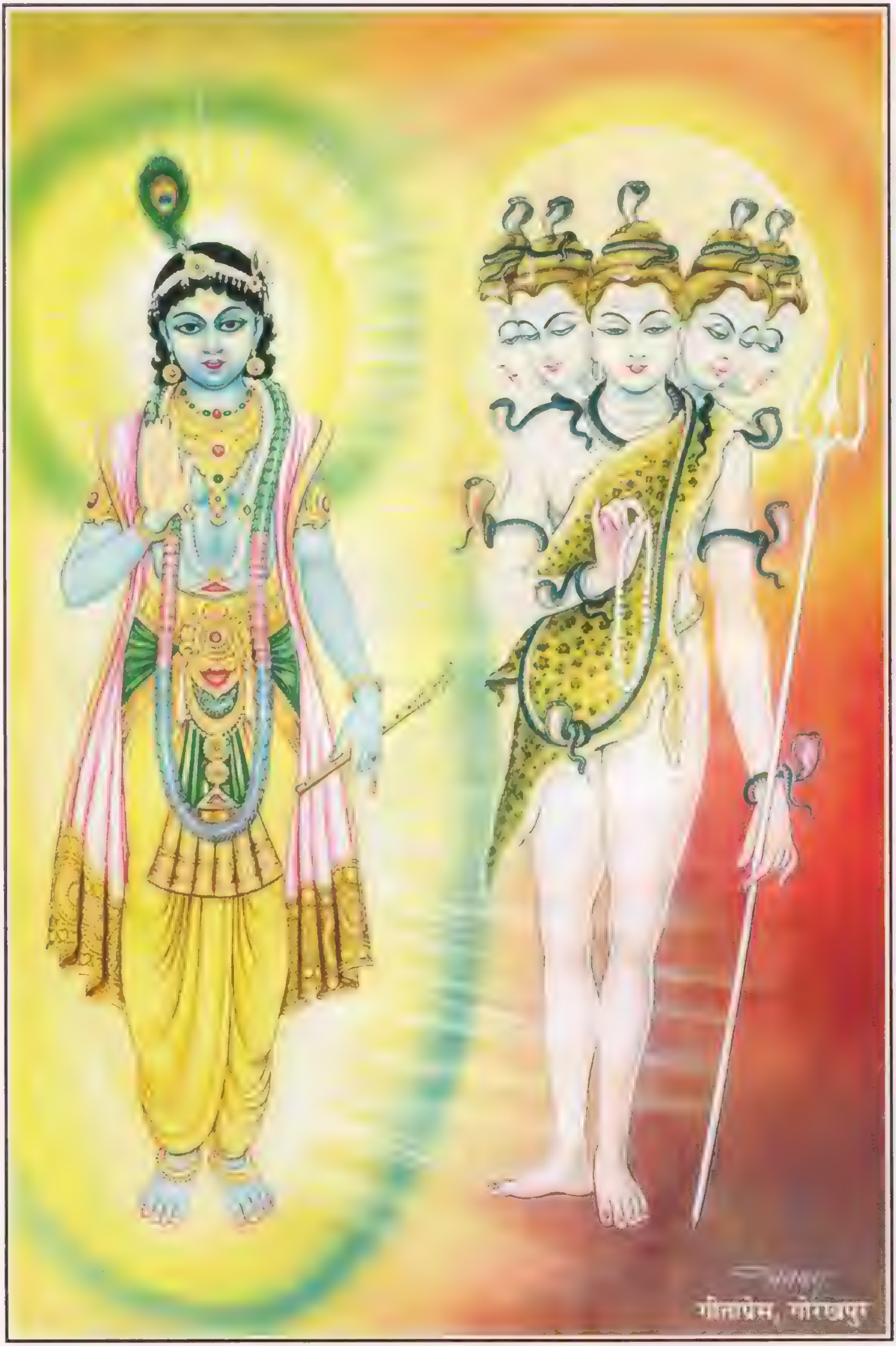
गीताप्रेस, गोरखपुर

श्रीकृष्णसे पंचमुख महादेवका प्राकट्य

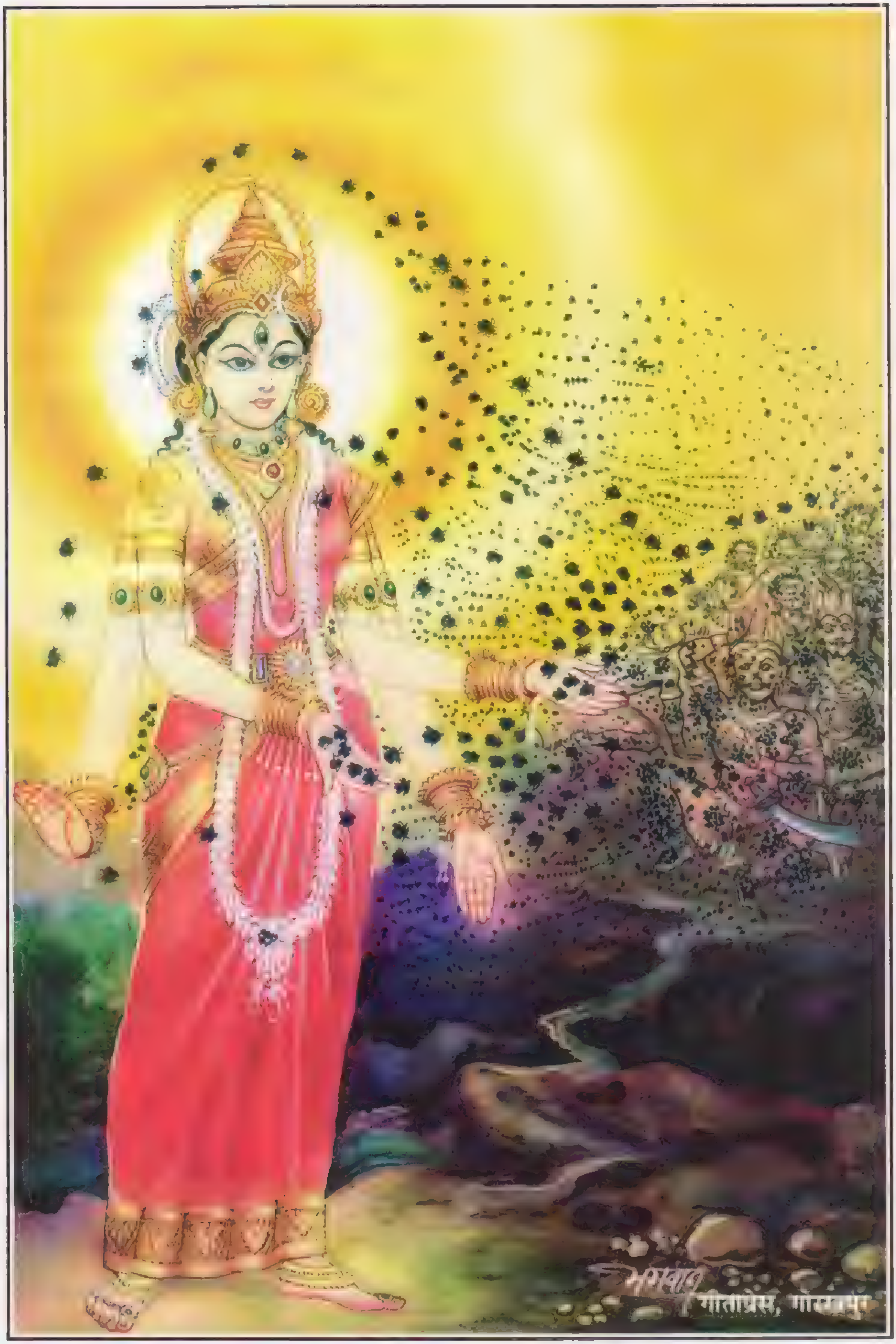
भगवान
गीताप्रेस, गोरखपुर

भगवती भ्रामरीदेवी

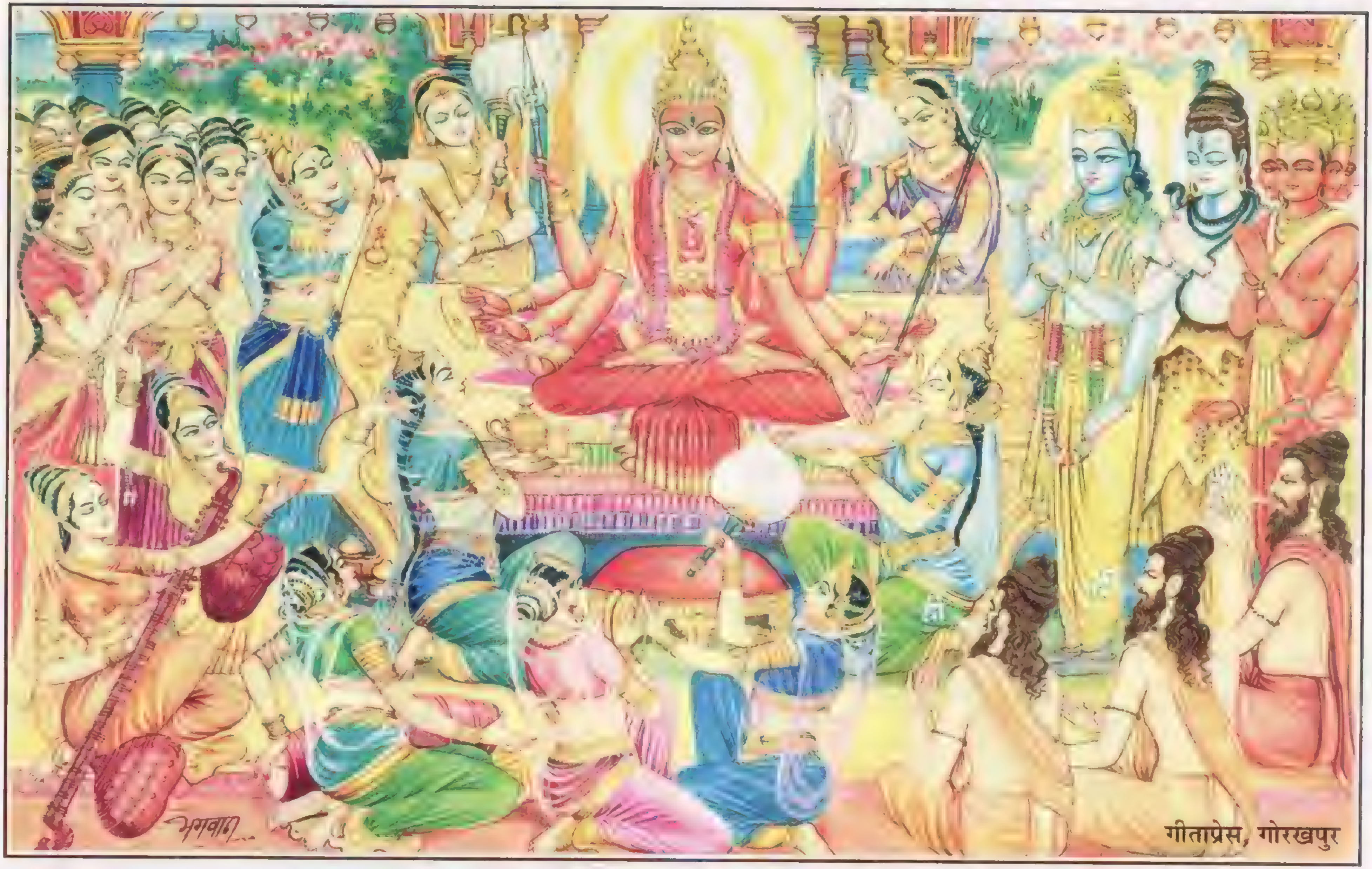
भगवान
गीताप्रेस, गोरखपुर

मणिद्वीपाधिष्ठात्री भगवती श्रीभुवनेश्वरी

सकृत्कृत्वा महापूजां देवीपादजलं पिबन्।
न जातु जननीगर्भे गच्छेदिति विनिश्चयः॥ ४४

सर्वं दृश्यं महादेवी द्रष्टा साक्षी च सैव हि।
इति तद्भावभरितस्तिष्ठेन्निर्भयचेतसा॥ ४५

कृत्वा नित्यविधिं सम्यग्गन्तव्यं सदसि द्विजान्।
समाहूय च प्रष्टव्यो धर्मशास्त्रविनिर्णयः॥ ४६

सम्पूज्य ब्राह्मणान्पूज्यान्वेदवेदान्तपारगान्।
गोभूहिरण्यादिकं च देयं पात्रेषु सर्वदा॥ ४७

अविद्वान्ब्राह्मणः कोऽपि नैव पूज्यः कदाचन।
आहारादधिकं नैव देयं मूर्खाय कर्हिचित्॥ ४८

न वा लोभात्त्वया पुत्र कर्तव्यं धर्मलङ्घनम्।
अतः परं न कर्तव्यं क्वचिद्विप्रावमाननम्॥ ४९

ब्राह्मणा भूमिदेवाश्च माननीयाः प्रयत्नतः।
कारणं क्षत्रियाणां च द्विजा एव न संशयः॥ ५०

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मणः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति॥ ५१

तस्माद्राज्ञा विशेषेण माननीया मुखोद्भवाः।
दानेन विनयेनैव सर्वथा भूतिमिच्छता॥ ५२

दण्डनीतिः सदा कार्या धर्मशास्त्रानुसारतः।
कोशस्य संग्रहः कार्यो नूनं न्यायागतस्य ह॥ ५३

एक बार भी भगवती जगदम्बाकी महापूजा करके उनके चरणोदकका पान करनेवाला मनुष्य फिर कभी माताके गर्भमें नहीं जाता, यह सर्वथा निश्चित है॥ ४४॥

सारा जगत् दृश्य है और महादेवी द्रष्टा तथा साक्षी हैं—इस प्रकारकी भावनासे युक्त होकर सदा भयमुक्त चित्तसे रहना चाहिये॥ ४५॥

[हे पुत्र!] तुम प्रतिदिन नित्य-नियमका पालन करके सभामें जाना और द्विजोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णय पूछना॥ ४६॥

वेद-वेदान्तके पारगामी आदरणीय विद्वानोंकी विधिवत् पूजा करके सुयोग्य पात्रोंको गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका सदा दान करना॥ ४७॥

तुम कभी भी किसी मूर्ख ब्राह्मणकी पूजा मत करना और मूर्ख व्यक्तिको कभी भी भोजनसे अधिक कुछ भी मत देना। हे पुत्र! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन मत करना। इसके अतिरिक्त तुम्हें कभी भी विप्रोंका अपमान नहीं करना चाहिये। पृथ्वीके देवतास्वरूप ब्राह्मणोंका प्रयत्नपूर्वक सम्मान करना चाहिये। क्षत्रियोंके एकमात्र आधार ब्राह्मण ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८—५०॥

जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है। उनका सर्वत्रगामी तेज अपनी ही योनिमें शान्त होता है। अतः ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले राजाको विशेषरूपसे विनम्रतापूर्वक दानके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका पालन करे और न्यायसे उपार्जित धनका निरन्तर संग्रह करे॥ ५१—५३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
सत्यव्रताय राजनीत्युपदेशवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

राजा सत्यव्रतको महर्षि वसिष्ठका शाप तथा युवराज हरिश्चन्द्रका राजा बनना

व्यास उवाच

एवं प्रबोधितः पित्रा त्रिशङ्कुः प्रणतो नृपः।
तथेति पितरं प्राह प्रेमगद्‌गदया गिरा॥ १

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्‌गद वाणीमें पितासे कहा—'मैं वैसा ही करूँगा'॥ १॥

विप्रानाहूय मन्त्रज्ञान्वेदशास्त्रविशारदान्।
अभिषेकाय सम्भारान् कारयामास सत्वरम्॥ २

सलिलं सर्वतीर्थानां समानाय्य विशांपतिः।
प्रकृतीश्च समाहूय सामन्तान्भूपतींस्तथा॥ ३

पुण्येऽह्नि विधिवत्तस्मै ददावासनमुत्तमम्।
अभिषिच्य सुतं राज्ये त्रिशङ्कुं विधिवत्पिता॥ ४

तृतीयमाश्रमं पुण्यं जग्राह भार्यया युतः।
वने त्रिपथगाकूले चचार दुश्चरं तपः॥ ५

काले प्राप्ते ययौ स्वर्गं पूजितस्त्रिदशैरपि।
इन्द्रासनसमीपस्थो रराज रविवत्सदा॥ ६

राजोवाच

पूर्वं भगवता प्रोक्तं कथायोगेन साम्प्रतम्।
सत्यव्रतो वसिष्ठेन शप्तो दोग्ध्रीवधात्किल॥ ७

कुपितेन पिशाचत्वं प्रापितो गुरुणा ततः।
कथं मुक्तः पिशाचत्वादित्येतत्संशयः प्रभो॥ ८

न सिंहासनयोग्यो हि भवेच्छापसमन्वितः।
मुनिना मोचितः शापात्केनान्येन च कर्मणा॥ ९

एतन्मे ब्रूहि विप्रर्षे शापमोक्षणकारणम्।
आनीतस्तु कथं पित्रा स्वगृहे तादृशाकृतिः॥ १०

व्यास उवाच

वसिष्ठेन च शप्तोऽसौ सद्यः पैशाचतां गतः।
दुर्वेषश्चातिदुर्धर्षः सर्वलोकभयङ्करः॥ ११

यदैवोपासिता देवी भक्त्या सत्यव्रतेन ह।
तया प्रसन्नया राजन् दिव्यदेहः कृतः क्षणात्॥ १२

पिशाचत्वं गतं तस्य पापं चैव क्षयं गतम्।
विपाप्मा चातितेजस्वी सम्भूतस्तत्कृपामृतात्॥ १३

तत्पश्चात् महाराज अरुणने वेदशास्त्रके पारगामी विद्वान् तथा मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर अभिषेककी सारी सामग्रियाँ तुरंत एकत्र करायीं और सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाकर तथा सभी मन्त्रियों, सामन्तों और नरेशोंको बुलाकर शुभ दिनमें उस राजकुमारको विधिपूर्वक श्रेष्ठ राज्यासनपर आसीन कर दिया॥ २-३½॥

इस प्रकार पिताने पुत्र त्रिशंकुको राज्यपर विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ)-को ग्रहण किया और वे वनमें गंगाके तटपर कठोर तप करने लगे॥ ४-५॥

आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गको चले गये। वहाँ वे देवताओंके द्वारा भी पूजित हुए और इन्द्रके समीप स्थित रहते हुए सदा सूर्यकी भाँति सुशोभित होने लगे॥ ६॥

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] आप पूज्यवरने कथाके प्रसंगमें अभी-अभी बताया कि गुरुदेव वसिष्ठने पयस्विनी गौका वध कर देनेके कारण राजकुमार सत्यव्रतको कुपित होकर शाप दे दिया और वह पिशाचत्वको प्राप्त हो गया। हे प्रभो! तदनन्तर पैशाचिकतासे उसका कैसे उद्धार हुआ? इस विषयमें मुझे संशय हो रहा है। शापग्रस्त मनुष्य सिंहासनके योग्य नहीं होता। सत्यव्रतके दूसरे किस कर्मके प्रभावसे मुनि वसिष्ठने उसे अपने शापसे मुक्त कर दिया। हे विप्रर्षे! शापसे मुक्तिका कारण बताइये और मुझे यह भी बताइये कि वैसे [निन्द्य] आकृतिवाले पुत्रको उसके पिता [राजा अरुण]-ने अपने घर वापस क्यों बुला लिया?॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] मुनि वसिष्ठके द्वारा शापित वह सत्यव्रत तत्काल पैशाचिकताको प्राप्त हो गया। इसके फलस्वरूप वह कुरूप, दुर्धर्ष तथा सभी प्राणियोंके लिये भयंकर हो गया, किंतु हे राजन्! जब उस सत्यव्रतने भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना की, तब भगवतीने प्रसन्न होकर क्षणभरमें उसे दिव्य शरीरवाला बना दिया॥ ११-१२॥

भगवतीके कृपारूपी अमृतसे उसकी पैशाचिकता समाप्त हो गयी और उसका पाप विनष्ट हो गया। अब वह पापरहित तथा अतितेजस्वी हो गया॥ १३॥

वसिष्ठोऽपि प्रसन्नात्मा जातः शक्तिप्रसादतः।
पितापि च बभूवास्य प्रेमयुक्तस्त्वनुग्रहात्॥ १४

राज्यं शशास धर्मात्मा मृते पितरि पार्थिवः।
ईजे च विविधैर्यज्ञैर्देवदेवीं सनातनीम्॥ १५

तस्य पुत्रो बभूवाथ हरिश्चन्द्रः सुशोभनः।
लक्षणैः शास्त्रनिर्दिष्टैः संयुतश्चातिसुन्दरः॥ १६

युवराजं सुतं कृत्वा त्रिशङ्कुः पृथिवीपतिः।
मानुषेण शरीरेण स्वर्गं भोक्तुं मनो दधे॥ १७

वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य विधिवन्नृपः।
उवाच वचनं प्रीतः कृताञ्जलिपुटस्तदा॥ १८

राजोवाच

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वमन्त्रविशारद।
विज्ञप्तिं मे सुमनसा श्रोतुमर्हसि तापस॥ १९

इच्छा मेऽद्य समुत्पन्ना स्वर्गलोकसुखाय च।
अनेनैव शरीरेण भोगान्भोक्तुममानुषान्॥ २०

अप्सरोभिश्च संवासः क्रीडितुं नन्दने वने।
देवगन्धर्वगानं च श्रोतव्यं मधुरं किल॥ २१

याजय त्वं मखेनाशु तादृशेन महामुने।
यथानेन शरीरेण वसे लोकं त्रिविष्टपम्॥ २२

समर्थोऽसि मुनिश्रेष्ठ कुरु कार्यं ममाधुना।
प्रापयाशु मखं कृत्वा देवलोकं दुरासदम्॥ २३

वसिष्ठ उवाच

राजन् मानुषदेहेन स्वर्गे वासः सुदुर्लभः।
मृतस्य हि ध्रुवं स्वर्गः कथितः पुण्यकर्मणा॥ २४

तस्माद् बिभेमि सर्वज्ञ दुर्लभाच्च मनोरथात्।
अप्सरोभिश्च संवासो जीवमानस्य दुर्लभः॥ २५

कुरु यज्ञान्महाभाग मृतः स्वर्गमवाप्स्यसि।

भगवतीकी कृपासे वसिष्ठजी भी प्रसन्नचित्त हो गये और उसके पिता [अरुण] भी प्रेमसे परिपूर्ण हो गये॥ १४॥

पिताके मृत हो जानेपर धर्मात्मा राजा सत्यव्रत राज्यपर सम्यक् शासन करने लगा। वह अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा देवेश्वरी सनातनी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहने लगा॥ १५॥

उस त्रिशंकु (सत्यव्रत)-के पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जो शास्त्रोक्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा परम सुन्दर स्वरूपवाले थे॥ १६॥

[कुछ समयके बाद] राजा त्रिशंकुने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्ग-सुख भोगनेका निश्चय किया॥ १७॥

तब राजा त्रिशंकु वसिष्ठके आश्रममें गये और उन्हें विधिवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक उनसे यह वचन कहने लगे॥ १८॥

राजा बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाभाग! हे सर्वमन्त्र-विशारद! हे तापस! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये। अब स्वर्ग-लोकका सुख भोगनेकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई है। अप्सराओंके साथ रहने, नन्दनवनमें क्रीड़ा करने तथा देव-गन्धर्वोंका मधुर गीत सुनने आदि दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे भोगना चाहता हूँ॥ १९—२१॥

हे महामुने! आप शीघ्र ही मुझसे ऐसा यज्ञ सम्पन्न कराइये, जिससे मैं इसी मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास कर सकूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरा यह कार्य अब पूर्ण कर दीजिये; यज्ञ सम्पन्न कराकर मुझे अत्यन्त दुर्लभ देवलोककी प्राप्ति करा दीजिये॥ २२-२३॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास अत्यन्त दुर्लभ है। मरनेके पश्चात् ही पुण्य कर्मके प्रभावसे स्वर्गकी सुनिश्चित प्राप्ति कही गयी है। अतः हे सर्वज्ञ! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करनेमें मैं डर रहा हूँ। जीवित प्राणीके लिये अप्सराओंके साथ निवास दुर्लभ है। अतः हे महाभाग! आप अनेक यज्ञ कीजिये, मृत्युके अनन्तर आप स्वर्ग प्राप्त कर लेंगे॥ २४-२५$\frac{१}{२}$॥

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा परमदुर्मनाः॥ २६

उवाच वचनं भूयो वसिष्ठं पूर्वरोषितम्।
न त्वं याजयसे ब्रह्मन् गर्वावेशाच्च मां यदि॥ २७

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं किल साम्प्रतम्।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वसिष्ठः कोपसंयुतः॥ २८

शशाप भूपतिं चेति चाण्डालो भव दुर्मते।
अनेन त्वं शरीरेण श्वपचो भव सत्वरम्॥ २९

स्वर्गकृन्तन पापिष्ठ सुरभीवधदूषित।
ब्रह्मपत्नीहरोच्छिन्न धर्ममार्गविदूषक॥ ३०

न ते स्वर्गगतिः पाप मृतस्यापि कथञ्चन।

व्यास उवाच

इत्युक्तो गुरुणा राजंस्त्रिशङ्कुस्तत्क्षणादपि॥ ३१

तत्र तेन शरीरेण बभूव श्वपचाकृतिः।
कुण्डलेऽश्ममये वापि जाते तस्य च तत्क्षणात्॥ ३२

देहे चन्दनगन्धश्च विगन्धो ह्यभवत्तदा।
नीलवर्णेऽथ सञ्जाते दिव्ये पीताम्बरे तनौ॥ ३३

गजवर्णोऽभवद्देहः शापात्तस्य महात्मनः।
शक्त्युपासकरोषेण फलमेतदभून्नृप॥ ३४

तस्माच्छ्रीशक्तिभक्तो हि नावमान्यः कदाचन।
गायत्रीजपनिष्ठो हि वसिष्ठो मुनिसत्तमः॥ ३५

दृष्ट्वा निन्द्यं निजं देहं राजा दुःखमवाप्तवान्।
न जगाम गृहे दीनो वनमेवाभितो ययौ॥ ३६

चिन्तयामास दुःखार्तस्त्रिशङ्कुः शोकविह्वलः।
किं करोमि क्व गच्छामि देहो मेऽतीव निन्दितः॥ ३७

कर्तव्यं नैव पश्यामि येन मे दुःखसंक्षयः।
गृहे गच्छामि चेत्पुत्रः पीडितोऽद्य भविष्यति॥ ३८

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वसिष्ठजीक यह वचन सुनकर अत्यन्त उदास मनवाले राजा त्रिशंकुने पहलेसे ही कुपित उन मुनिवर वसिष्ठसे कहा—हे ब्रह्मन्! यदि आप अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं करायेंगे, तो मैं किसी दूसरेको अपना पुरोहित बनाकर इसी समय यज्ञ करूँगा॥ २६-२७½॥

उनका यह वचन सुनते ही वसिष्ठजीने क्रोधित होकर राजाको शाप दे दिया—'हे दुर्बुद्धि! चाण्डाल हो जाओ। इसी शरीरसे तुम अभी नीच योनिको प्राप्त हो जाओ। स्वर्गको नष्ट करनेवाले तथा सुरभीके वधके दोषसे युक्त हे पापिष्ठ! विप्रकी भार्याका हरण करनेवाले तथा धर्ममार्गको दूषित करनेवाले हे पापी! मरनेके बाद भी तुम किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते॥ २८—३०½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! गुरु वसिष्ठके ऐसा कहते ही त्रिशंकु तत्क्षण उसी शरीरसे चाण्डाल हो गये। उनके रत्नमय कुण्डल उसी क्षण पत्थर हो गये तथा शरीरमें लगा हुआ सुगन्धित चन्दन दुर्गन्धयुक्त हो गया। उनके शरीरपर धारण किये हुए दिव्य पीताम्बर कृष्ण वर्णके हो गये। महात्मा वसिष्ठके शापसे उनका शरीर गजवर्ण-जैसा धूमिल हो गया॥ ३१—३३½॥

हे राजन्! भगवतीके उपासक मुनि वसिष्ठके रोषके कारण ही त्रिशंकुको यह फल प्राप्त हुआ। इसलिये भगवती जगदम्बाके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीजपमें संलग्न रहते थे॥ ३४-३५॥

[हे राजन्!] उस समय अपना कलंकित शरीर देखकर राजा त्रिशंकु अत्यन्त दुःखित हुए। इस प्रकार दीन-दशाको प्राप्त वे राजा घर नहीं गये, अपितु जंगलकी ओर चले गये॥ ३६॥

शोक-सन्तप्त वे त्रिशंकु दुःखित होकर सोचने लगे—अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा शरीर तो अत्यन्त निन्दित हो गया। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, जिससे मेरा दुःख दूर हो सके। यदि मैं आज घर जाता हूँ, तो मुझे इस स्वरूपमें देखकर पुत्रको महान् पीड़ा होगी और भार्या भी मुझे चाण्डालके

भार्यापि श्वपचं दृष्ट्वा नाङ्गीकारं करिष्यति।
सचिवा नादरिष्यन्ति वीक्ष्य मामीदृशं पुनः॥ ३९

ज्ञातयो बन्धुवर्गश्च सङ्गतो न भजिष्यति।
सर्वैस्त्यक्तस्य मे नूनं जीवितान्मरणं वरम्॥ ४०

विषं वा भक्षयित्वाद्य पतित्वा वा जलाशये।
कृत्वा वा कण्ठपाशं च देहत्यागं करोम्यहम्॥ ४१

अग्नौ वा ज्वलिते देहं जुहोमि विधिवद् बलात्।
कृत्वा वानशनं प्राणांस्त्यजामि दूषितान्भृशम्॥ ४२

आत्महत्या भवेन्नूनं पुनर्जन्मनि जन्मनि।
श्वपचत्वं च शापश्च हत्यादोषाद्भवेदपि॥ ४३

पुनर्विचार्य भूपालश्चेतसा समचिन्तयत्।
आत्महत्या न कर्तव्या सर्वथैव मयाधुना॥ ४४

भोक्तव्यं स्वकृतं कर्म देहेनानेन कानने।
भोगेनास्य विपाकस्य भविता सर्वथा क्षयः॥ ४५

प्रारब्धकर्मणां भोगादन्यथा न क्षयो भवेत्।
तस्मान्मयात्र भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ ४६

कुर्वन्पुण्याश्रमाभ्याशे तीर्थानां सेवनं तथा।
स्मरणं चाम्बिकायास्तु साधूनां सेवनं तथा॥ ४७

एवं कर्मक्षयं नूनं करिष्यामि वने वसन्।
भाग्ययोगात्कदाचित्तु भवेत्साधुसमागमः॥ ४८

इति सञ्चिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्वनगरं नृपः।
गङ्गातीरे गतः कामं शोचंस्तत्रैव संस्थितः॥ ४९

हरिश्चन्द्रस्तदा ज्ञात्वा पितुः शापस्य कारणम्।
दुःखितः सचिवांस्तत्र प्रेषयामास पार्थिवः॥ ५०

रूपमें देखकर स्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकारके चाण्डाल रूपवाले मुझ निन्द्यको देखकर मेरे मन्त्रीगण तथा जातिवाले भी आदर नहीं करेंगे और भाई-बन्धु भी संगमें नहीं रहेंगे। इस प्रकार सभी लोगोंके द्वारा परित्यक्त किये जानेवाले मेरे लिये तो जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है। अतः अब मैं विष खाकर, जलाशयमें कूदकर या गलेमें फाँसी लगाकर देह-त्याग कर दूँ अथवा विधिवत् प्रज्वलित अग्निमें अपने देहको जला डालूँ या फिर अनशन करके अपने कलंकित प्राणोंका त्याग कर दूँ॥ ३७—४२॥

[ऐसा विचार आते ही उन्होंने पुनः सोचा] आत्महत्या करनेसे मुझे निश्चय ही जन्म-जन्मान्तरमें पुनः चाण्डाल होना पड़ेगा और आत्महत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा॥ ४३॥

ऐसा सोचनेके बाद राजाने अपने मनमें पुनः विचार किया कि इस समय मुझे किसी भी स्थितिमें आत्महत्या नहीं करनी चाहिये, अपितु वनमें रहकर मुझे अपने द्वारा किये गये कर्मका फल इसी शरीरसे भोग लेना चाहिये; क्योंकि इससे इस कुकर्मका फल सर्वथा समाप्त हो जायगा॥ ४४-४५॥

भोगसे ही प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होता है, अन्यथा इनका क्षय नहीं होता। इसलिये अब यहींपर तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण तथा साधुजनोंकी सेवा करते हुए मुझे अपने द्वारा किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोग लेना चाहिये। इस प्रकार वनमें रहते हुए मैं अपने कर्मोंका क्षय अवश्य ही करूँगा। साथ ही, सम्भव है कि भाग्यवश किसी साधुजनसे मिलनेका भी कभी अवसर प्राप्त हो जाय॥ ४६—४८॥

मनमें ऐसा सोचकर राजा [त्रिशंकु] अपना नगर छोड़कर गंगाके तटपर चले गये और अत्यधिक चिन्तित रहते हुए वहीं रहने लगे॥ ४९॥

उसी समय पिताके शापका कारण जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने अपने मन्त्रियोंको पिता त्रिशंकुके पास भेजा॥ ५०॥

सचिवास्तत्र गत्वाशु तमूचुः प्रश्रयान्विताः।
प्रणम्य श्वपचाकारं निःश्वसन्तं मुहुर्मुहुः॥ ५१

राजन् पुत्रेण ते नूनं प्रेषितान्समुपागतान्।
अवेहि सचिवांस्त्वं नो हरिश्चन्द्राज्ञया स्थितान्॥ ५२

युवराजसुतः प्राह यत्तच्छृणु नराधिप।
आनयध्वं नृपं यूयं सम्मान्य पितरं मम॥ ५३

तस्माद्राजन् समागच्छ राज्यं प्रति गतव्यथः।
सेवां सर्वे करिष्यन्ति सचिवाश्च प्रजास्तथा॥ ५४

गुरुं प्रसादयिष्यामः स यथा तु दयेत वै।
प्रसन्नोऽसौ महातेजा दुःखस्यान्तं करिष्यति॥ ५५

इति पुत्रेण ते राजन् कथितं बहुधा किल।
तस्माद् गमनमेवाशु रोचतां निजसद्मनि॥ ५६

व्यास उवाच

इति तेषां नृपः श्रुत्वा भाषितं श्वपचाकृतिः।
स्वगृहं गमनायासौ न मतिं कृतवानतः॥ ५७

तानुवाच तदा वाक्यं व्रजन्तु सचिवाः पुरम्।
गत्वा पुरं महाभागा ब्रुवन्तु वचनाच्च मे॥ ५८

नागमिष्याम्यहं पुत्र कुरु राज्यमतन्द्रितः।
मानयन्ब्राह्मणान्देवान्यजन्यज्ञैरनेकशः॥ ५९

नाहं श्वपचवेषेण गर्हितेन महात्मभिः।
आगमिष्याम्ययोध्यायां सर्वे गच्छन्तु मा चिरम्॥ ६०

पुत्रं सिंहासने स्थाप्य हरिश्चन्द्रं महाबलम्।
कुर्वन्तु राज्यकर्माणि यूयं तत्र ममाज्ञया॥ ६१

इत्यादिष्टास्ततस्ते तु रुरुदुश्चातुरा भृशम्।
सचिवा निर्ययुस्तूर्णं नत्वा तं च वनाश्रमात्॥ ६२

अयोध्यायामुपागत्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम्।
अभिषेकं तदा चक्रुर्हरिश्चन्द्रस्य मूर्ध्नि ते॥ ६३

मन्त्रीगण वहाँ शीघ्र पहुँचकर बार-बार दीर्घ श्वास ले रहे चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुको प्रणामकर विनम्रतापूर्वक उनसे बोले—हे राजन्! आपके पुत्र हरिश्चन्द्रकी आज्ञासे यहाँ आये हुए हमलोगोंको आप मन्त्री समझिये। हे महाराज! आपके पुत्र युवराज हरिश्चन्द्रने [हमसे] जो कहा है, उसे आप सुनिये—'आपलोग मेरे पिता राजा त्रिशंकुको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आइये'॥ ५१—५३॥

अतः हे राजन्! अब आप सारी चिन्ता छोड़कर अपने राज्य वापस लौट चलिये। वहाँ सभी मन्त्रीगण तथा प्रजाजन आपकी सेवा करेंगे॥ ५४॥

हमलोग भी गुरु वसिष्ठको प्रसन्न करेंगे, जिससे वे आपके ऊपर दया करें। प्रसन्न हो जानेपर वे महान् तेजस्वी आपका कष्ट अवश्य दूर कर देंगे॥ ५५॥

हे राजन्! इस प्रकार आपके पुत्रने बहुत प्रकारसे कहा है। अतः अब शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट चलनेकी कृपा कीजिये॥ ५६॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुने अपने घर चलनेका कोई विचार मनमें नहीं किया। उस समय राजाने उनसे कहा—हे सचिवगण! आपलोग नगरको लौट जाइये और हे महाभाग! वहाँ जाकर [हरिश्चन्द्रसे] मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'हे पुत्र! मैं नहीं आऊँगा। तुम अनेकविध यज्ञोंके द्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान करते हुए तथा देवताओंकी पूजा करते हुए सदा सावधान होकर राज्य करो'॥ ५७—५९॥

[हे सचिवगण!] महात्माओंके द्वारा सर्वथा निन्दित इस चाण्डाल-वेशसे अब मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा। आप सभी लोग यहाँसे शीघ्र लौट जाइये। [वहाँ जाकर] मेरे महाबली पुत्र हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर बिठाकर आपलोग मेरी आज्ञासे राज्यके समस्त कार्य कीजिये॥ ६०-६१॥

इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर सभी मन्त्री अत्यधिक दुःखी होकर रोने लगे और उन्हें प्रणाम करके वानप्रस्थ-आश्रममें जीवन व्यतीत करनेवाले उन [राजा त्रिशंकु]-के पाससे लौट आये। अयोध्यामें आकर उन मन्त्रियोंने शुभ दिनमें हरिश्चन्द्रके मस्तकपर विधिपूर्वक अभिषेक किया॥ ६२-६३॥

अभिषिक्तस्तु तेजस्वी सचिवैश्च नृपाज्ञया।
राज्यं चकार धर्मिष्ठः पितरं चिन्तयन्भृशम्॥ ६४

राजा [त्रिशंकु]-की आज्ञासे मन्त्रियोंके द्वारा राज्याभिषिक्त होकर तेजस्वी तथा धर्मपरायण हरिश्चन्द्र अपने पिताका निरन्तर स्मरण करते हुए राज्य करने लगे॥ ६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
त्रिशङ्कूपाख्यानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजर्षि विश्वामित्रका अपने आश्रममें आना और सत्यव्रतद्वारा किये गये उपकारको जानना

राजोवाच

हरिश्चन्द्रः कृतो राजा सचिवैर्नृपशासनात्।
त्रिशङ्कुस्तु कथं मुक्तस्तस्माच्चाण्डालदेहतः॥ १

मृतो वा वनमध्ये तु गङ्गातीरे परिप्लुतः।
गुरुणा वा कृपां कृत्वा शापात्तस्माद्विमोचितः॥ २

एतद् वृत्तान्तमखिलं कथयस्व ममाग्रतः।
चरितं तस्य नृपतेः श्रोतुकामोऽस्मि सर्वथा॥ ३

व्यास उवाच

अभिषिक्तं सुतं कृत्वा राजा सन्तुष्टमानसः।
कालातिक्रमणं तत्र चकार चिन्तयञ्छिवाम्॥ ४

एवं गच्छति काले तु तपस्तप्त्वा समाहितः।
द्रष्टुं दारान्सुतादींश्च तदागात्कौशिको मुनिः॥ ५

आगत्य स्वजनं दृष्ट्वा सुस्थितं मुदमाप्तवान्।
भार्यां पप्रच्छ मेधावी स्थितामग्रे सपर्यया॥ ६

दुर्भिक्षे तु कथं कालस्त्वया नीतः सुलोचने।
अन्नं विना त्विमे बालाः पालिता केन तद्वद॥ ७

अहं तपसि सन्नद्धो नागतः शृणु सुन्दरि।
किं कृतं तु त्वया कान्ते विना द्रव्येण शोभने॥ ८

मया चिन्ता कृता तत्र श्रुत्वा दुर्भिक्षमद्भुतम्।
नागतोऽहं विचार्यैवं किं करिष्यामि निर्धनः॥ ९

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] राजा त्रिशंकुके आदेशसे सचिवोंने हरिश्चन्द्रको राजा बना दिया, किंतु स्वयं त्रिशंकुने उस चाण्डाल-देहसे मुक्ति कैसे प्राप्त की? वे वनमें कहीं मर गये अथवा गंगा-तटपर जलमें डूब गये अथवा गुरु वसिष्ठने कृपा करके उन्हें शापसे मुक्त कर दिया। यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मेरे समक्ष कहिये; मैं राजा त्रिशंकुका चरित्र भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके राजा त्रिशंकुका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे वहीं जंगलमें कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय व्यतीत करने लगे॥ ४॥

इस तरह कुछ समय बीतनेके बाद कौशिकमुनि एकाग्रचित्त होकर तपस्या पूर्ण करके अपनी पत्नी तथा पुत्रों आदिको देखनेके लिये [अपने आश्रममें] आये। वहाँ आकर अपने स्त्री-पुत्रादिको स्वस्थ देखकर वे परम हर्षित हुए। मेधावी ऋषिने पूजाके लिये आगे स्थित अपनी भार्यासे पूछा—हे सुनयने! दुर्भिक्षकी स्थितिमें तुमने समय कैसे व्यतीत किया? तुमने अन्नके बिना इन बालकोंको किस उपायसे पाला; यह मुझे बताओ॥ ५—७॥

हे सुन्दरि! मैं तो तपस्यामें संलग्न था, इसलिये नहीं आ सका। हे प्रिये! हे शोभने! बिना धनके तुमने क्या व्यवस्था की?॥ ८॥

यहाँ पर भीषण अकालका समाचार सुनकर मैं अत्यधिक चिन्तित था, किंतु यह सोचकर नहीं आया कि धनहीन मैं [वहाँ जाकर] करूँगा ही क्या!॥ ९॥

अहमप्यति वामोरु पीडितः क्षुधया वने।
प्रविष्टश्चौरभावेन कुत्रचिच्छ्वपचालये॥ १०

श्वपचं निद्रितं दृष्ट्वा क्षुधया पीडितो भृशम्।
महानसं परिज्ञाय भक्ष्यार्थं समुपस्थितः॥ ११

यदा भाण्डं समुद्घाट्य पक्वं श्वतनुजामिषम्।
गृह्णामि भक्षणार्थाय तदा दृष्टस्तु तेन वै॥ १२

पृष्टः कस्त्वं कथं प्राप्तो गृहे मे निशि सादरम्।
ब्रूहि कार्यं किमर्थं त्वमुद्घाटयसि भाण्डकम्॥ १३

इत्युक्तः श्वपचेनाहं क्षुधया पीडितो भृशम्।
तमवोचं सुकेशान्ते कामं गद्गदया गिरा॥ १४

ब्राह्मणोऽहं महाभाग तापसः क्षुधयार्दितः।
चौरभावमनुप्राप्तो भक्ष्यं पश्यामि भाण्डके॥ १५

चौरभावेन सम्प्राप्तोऽस्म्यतिथिस्ते महामते।
क्षुधितोऽस्मि ददस्वाज्ञां मांसमद्मि सुसंस्कृतम्॥ १६

विश्वामित्र उवाच

श्वपचस्तु वचः श्रुत्वा मामुवाच सुनिश्चितम्।
भक्षं मा कुरु वर्णाग्र्य जानीहि श्वपचालयम्॥ १७

दुर्लभं खलु मानुष्यं तत्रापि च द्विजन्मता।
द्विजत्वे ब्राह्मणत्वं च दुर्लभं वेत्सि किं न हि॥ १८

दुष्टाहारो न कर्तव्यः सर्वथा लोकमिच्छता।
अग्राह्या मनुना प्रोक्ताः कर्मणा सप्त चान्त्यजाः॥ १९

त्याज्योऽहं कर्मणा विप्र श्वपचो नात्र संशयः।
निवारयामि भक्ष्यात्त्वां न लोभेनाञ्जसा द्विज॥ २०

वर्णसङ्करदोषोऽयं मा यातु त्वां द्विजोत्तम।

हे सुजघने! वनमें एक दिन मैं भी भूखसे अत्यधिक विकल होकर चोरकी भाँति एक चाण्डालके घरमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ चाण्डालको सोया हुआ देखकर भूखसे अत्यन्त व्याकुल मैं रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिये उसमें पहुँच गया॥ १०-११॥

बर्तन खोलकर भोजन प्राप्त करनेके लिये मैंने ज्यों ही बर्तनमें हाथ डाला, तभी उस चाण्डालने मुझे देख लिया। उसने आदरपूर्वक मुझसे पूछा—आप कौन हैं? रातके समय मेरे घरमें आप क्यों प्रविष्ट हुए हैं और मेरे बर्तनको क्यों खोल रहे हैं? आप अपना उद्देश्य बताइये॥ १२-१३॥

हे सुन्दर केशोंवाली! चाण्डालके यह पूछनेपर क्षुधासे अत्यधिक पीड़ित मैं गद्गद वाणीमें उससे कहने लगा—हे महाभाग! मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूँ। मैं भूखसे विकल होकर चोरीके विचारसे युक्त होकर यहाँ आया हूँ और इस बर्तनमें कोई खानेकी वस्तु देख रहा हूँ। हे महामते! चोरीके विचारसे यहाँ आया हुआ मैं आपका अतिथि हूँ। इस समय मैं भूखा हूँ। अतः आप मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं आपके द्वारा भलीभाँति पकाये गये पदार्थका भक्षण करूँ॥ १४—१६॥

विश्वामित्र बोले—[हे सुन्दरि!] मेरी बात सुनकर चाण्डालने मुझसे कहा—हे चारों वर्णोंमें अग्रगण्य! इसे चाण्डालका घर जानिये, अतः आप मेरे यहाँ भोजन मत कीजिये; क्योंकि एक तो मानव-योनिमें जन्म पाना दुर्लभ है, उसमें भी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-के यहाँ बड़ा ही दुर्लभ है। द्विजोंमें भी ब्राह्मण-कुलमें जन्म तो सर्वथा दुर्लभ है। क्या आप इसे नहीं जानते हैं? उत्तम लोककी कामना करनेवाले व्यक्तिको कभी भी दूषित आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये। भगवान् मनुने कर्मानुसार सात जातियोंको अन्त्यज मानकर उन्हें अग्राह्य बतलाया है। हे विप्र! मैं चाण्डाल हूँ, अतः अपने कर्मके अनुसार त्याज्य हूँ; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे द्विज! मैं अपना धर्म समझकर ही आपको भोजन करनेसे रोक रहा हूँ, न कि [अपने पदार्थके] लोभसे। हे द्विजवर! वर्णसंकरताका दोष आपको न लगे, केवल यही मेरा अभिप्राय है॥ १७—२०$\frac{1}{2}$॥

विश्वामित्र उवाच

सत्यं वदसि धर्मज्ञ मतिस्ते विशदान्त्यज॥ २१

तथाप्यापदि धर्मस्य सूक्ष्ममार्गं ब्रवीम्यहम्।
देहस्य रक्षणं कार्यं सर्वथा यदि मानद॥ २२

पापस्यान्ते पुनः कार्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये।
दुर्गतिस्तु भवेत्पापादनापदि न चापदि॥ २३

मरणात्क्षुधितस्याथ नरको नात्र संशयः।
तस्मात्क्षुधापहरणं कर्तव्यं शुभमिच्छता॥ २४

तेनाहं चौर्यधर्मेण देहं रक्षेऽप्यथान्त्यज।
अवर्षणे च चौर्येण यत्पापं कथितं बुधैः॥ २५

यो न वर्षति पर्जन्यस्तत्तु तस्मै भविष्यति।

विश्वामित्र उवाच

इत्युक्ते वचने कान्ते पर्जन्यः सहसापतत्॥ २६

गगनाद्धस्तिहस्ताभिर्धाराभिरभिकाङ्क्षितः।
मुदितोऽहं घनं वीक्ष्य वर्षन्तं विद्युता सह॥ २७

तदाहं तद्गृहं त्यक्त्वा निःसृतः परया मुदा।
कथय त्वं वरारोहे कालो नीतस्त्वया कथम्॥ २८

कान्तारे परमः क्रूरः क्षयकृत्प्राणिनामिह।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा पतिमाह प्रियंवदा॥ २९

यथा शृणु मया नीतः कालः परमदारुणः।
गते त्वयि मुनिश्रेष्ठ दुर्भिक्षं समुपागतम्॥ ३०

अन्नार्थं पुत्रकाः सर्वे बभूवुश्चातिदुःखिताः।
क्षुधितान्बालकान्वीक्ष्य नीवारार्थं वने वने॥ ३१

भ्रान्ताहं चिन्तयाविष्टा किञ्चित्प्राप्तं फलं तदा।
एवं च कतिचिन्मासा नीवारेणातिवाहिताः॥ ३२

विश्वामित्र बोले—हे धर्मज्ञ! तुम सत्य कह रहे हो। हे अन्त्यज! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त विशाल है, फिर भी मैं तुम्हें आपत्तिकालमें पालनीय धर्मका सूक्ष्म मार्ग बता रहा हूँ॥ २१½ ॥

हे मानद! मनुष्यको चाहिये कि जिस किसी भी उपायसे शरीरकी रक्षा करे। इसमें यदि कोई पाप हो जाय, तो बादमें पापसे मुक्तिके लिये प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। आपत्तिकालमें किये गये पापकर्मके कारण दुर्गति नहीं होती, किंतु सामान्य समयमें किये गये पापके कारण दुर्गति अवश्य होती है॥ २२-२३॥

भूखसे मरनेवालेको नरक होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको भूख मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। हे अन्त्यज! इसीलिये मैं भी चौर-कर्मसे अपने देहकी रक्षा कर रहा हूँ। विद्वानोंने कहा है कि अनावृष्टिके समय चोरी करनेसे जो पाप होता है, वह पाप उस मेघको लगता है, जो पानी नहीं बरसाता है॥ २४-२५½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे प्रिये! मेरे ऐसा यह वचन कहते ही आकाशसे हाथीकी सूँड़की तरह मोटी धारवाली मनोभिलषित जलवृष्टि सहसा होने लगी। बिजलीकी चमकके साथ बरसते हुए मेघको देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ॥ २६-२७॥

उसी समय उस चाण्डालका घर छोड़कर मैं परम प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकल पड़ा। हे सुन्दरि! अब यह बताओ कि तुमने प्राणियोंका विनाश करनेवाले उस अत्यन्त भीषण समयको इस वनमें किस प्रकार बिताया?॥ २८½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] पतिकी यह बात सुनकर उस प्रियभाषिणी स्त्रीने पतिसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने जिस प्रकार उस अत्यन्त कष्टकारी समयको व्यतीत किया, उसे आप सुनिये। आपके चले जानेके बाद यहाँ अकाल पड़ गया था। मेरे सभी पुत्र अन्नके लिये बड़े दुःखित हुए॥ २९-३०½ ॥

बालकोंको भूखा देखकर घोर चिन्तासे ग्रस्त मैं नीवार (जंगली धान्य)-के लिये वन-वन घूमती रही। उस समय मुझे कुछ फल मिल गये। इस प्रकार नीवार अन्नके द्वारा मैंने कुछ महीने व्यतीत किये॥ ३१-३२॥

तदभावे मया कान्त चिन्तितं मनसा पुनः।
न भिक्षा किल दुर्भिक्षे नीवारा नापि कानने॥ ३३

न वृक्षेषु फलान्यासुर्न मूलानि धरातले।
क्षुधया पीडिता बाला रुदन्ति भृशमातुराः॥ ३४

किं करोमि क्व गच्छामि किं ब्रवीमि क्षुधार्दितान्।
एवं विचिन्त्य मनसा निश्चयस्तु मया कृतः॥ ३५

पुत्रमेकं ददाम्यद्य कस्मैचिद्धनिने किल।
गृहीत्वा तस्य मौल्यं तु तेन द्रव्येण बालकान्॥ ३६

पालयेऽहं क्षुधार्तांस्तु नान्योपायोऽस्ति पालने।
इति सञ्चिन्त्य मनसा पुत्रोऽयं प्रहितो मया॥ ३७

विक्रयार्थं महाभाग क्रन्दमानो भृशातुरः।
क्रन्दमानं गृहीत्वैनं निर्गताहं गतत्रपा॥ ३८

तदा सत्यव्रतो मार्गे मामुद्वीक्ष्य भृशातुराम्।
पप्रच्छ स च राजर्षिः कस्माद्रोदिति बालकः॥ ३९

तदाहं तमुवाचेदं वचनं मुनिसत्तम।
विक्रयार्थं नीयतेऽसौ बालकोऽद्य मया नृप॥ ४०

श्रुत्वा मे वचनं राजा दयार्द्रहृदयस्ततः।
मामुवाच गृहं याहि गृहीत्वैनं कुमारकम्॥ ४१

भोजनार्थे कुमाराणामामिषं विहितं तव।
प्रापयिष्याम्यहं नित्यं यावन्मुनिसमागमः॥ ४२

अहन्यहनि भूपालो वृक्षेऽस्मिन्मृगसूकरान्।
विन्यस्य याति हत्वासौ प्रत्यहं दययान्वितः॥ ४३

तेनैव बालकाः कान्त पालिता वृजिनार्णवात्।
वसिष्ठेनाथ शप्तोऽसौ भूपतिर्मम कारणात्॥ ४४

हे कान्त! उसके भी समाप्त हो जानेपर मैं मन-ही-मन पुनः सोचने लगी—'इस वनमें अब नीवारान्न भी नहीं मिल रहा है और इस अकालमें भिक्षा भी नहीं मिल सकती। वृक्षोंपर फल नहीं रह गये और धरतीमें कन्दमूल भी नहीं रहे। भूखसे पीड़ित बालक व्याकुल होकर बहुत रो रहे हैं। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और भूखसे तड़पते हुए इन बालकोंसे क्या कहूँ'॥ ३३-३४$\frac{1}{2}$॥

ऐसा सोचकर मैंने मनमें यही निश्चय किया कि किसी धनी व्यक्तिके हाथ आज अपने एक पुत्रको बेचूँगी और उसका मूल्य लेकर उस द्रव्यसे भूखसे पीड़ित अपने बालकोंका पालन करूँगी; क्योंकि इनके पालन-पोषणका कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया है॥ ३५-३६$\frac{1}{2}$॥

अपने मनमें यह विचार करके मैंने इस पुत्रको बेचनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। हे महाभाग! उस समय मेरा यह पुत्र व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगा, किंतु मैं निर्लज्ज होकर अपने रोते-चिल्लाते इस पुत्रको लेकर घरसे निकल पड़ी॥ ३७-३८॥

उस समय राजर्षि सत्यव्रतने मार्गमें मुझ अति व्याकुल चित्तवालीको देखकर पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है?॥ ३९॥

हे मुनिवर! तब मैंने उनसे यह वचन कहा—हे राजन्! मैं इस बालकको आज बेचनेके लिये ले जा रही हूँ॥ ४०॥

तब मेरी बात सुनकर राजाका हृदय दयासे भर गया और उन्होंने मुझसे कहा—'तुम इस बालकको लेकर अपने घर लौट जाओ। जबतक मुनि विश्वामित्र लौटकर आ नहीं जाते, तबतक तुम्हारे इन बालकोंके भोजनके लिये सामग्री प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ पहुँचा दिया करूँगा'॥ ४१-४२॥

तभीसे दयालु राजा सत्यव्रत प्रतिदिन कुछ भोज्य-सामग्री इस पेड़पर रखकर चले जाते थे॥ ४३॥

हे कान्त! उन्होंने ही संकटके सागरसे इन बालकोंकी रक्षा की, किंतु मेरे ही कारण राजा सत्यव्रतको मुनि वसिष्ठके शापका भागी होना पड़ा॥ ४४॥

कस्मिंश्चिद्दिवसे मांसं न प्राप्तं तेन कानने।
हता दोग्ध्री वसिष्ठस्य तेनासौ कुपितो मुनिः॥ ४५

त्रिशङ्कुरिति भूपस्य कृतं नाम महात्मना।
कुपितेन वधाद्धेतोश्चाण्डालश्च कृतो नृपः॥ ४६

तेनाहं दुःखिता जाता तस्य दुःखेन कौशिक।
श्वपचत्वमसौ प्राप्तो मत्कृते नृपनन्दनः॥ ४७

येन केनाप्युपायेन भवता नृपतेः किल।
तस्माद्रक्षा प्रकर्तव्या तपसा प्रबलेन ह॥ ४८

व्यास उवाच

इति भार्यावचः श्रुत्वा कौशिको मुनिसत्तमः।
तामाह कामिनीं दीनां सान्त्वपूर्वमरिन्दम॥ ४९

विश्वामित्र उवाच

मोचयिष्यामि तं शापान्नृपं कमललोचने।
उपकारः कृतो येन कान्ताराद्रक्षितासि वै॥ ५०

विद्यातपोबलेनाहं करिष्ये दुःखसंक्षयम्।
इत्याश्वास्य प्रियां तत्र कौशिकः परमार्थवित्॥ ५१

चिन्तयामास नृपतेः कथं स्याद्दुःखनाशनम्।
संविमृश्य मुनिस्तत्र जगाम यत्र पार्थिवः॥ ५२

त्रिशङ्कुः पक्वणे दीनः संस्थितः श्वपचाकृतिः।
आगच्छन्तं मुनिं दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ नराधिपः॥ ५३

दण्डवन्निपपातोर्व्यां पादयोस्तरसा मुनेः।
गृहीत्वा तं करे भूपं पतितं कौशिकस्तदा॥ ५४

उत्थाप्योवाच वचनं सान्त्वपूर्वं द्विजोत्तमः।
मत्कृते त्वं महीपाल शप्तोऽसि मुनिना यतः॥ ५५

वाञ्छितं ते करिष्यामि ब्रूहि किं करवाण्यहम्।

किसी दिन राजा सत्यव्रत जंगलमें कोई सामग्री नहीं पा सके। तब उन्होंने वसिष्ठजीकी दूध देनेवाली गाय मार डाली; इससे मुनि वसिष्ठ उनपर बहुत कुपित हुए॥ ४५॥

कुपित महात्मा वसिष्ठने राजाका नाम 'त्रिशंकु' रख दिया और गोवध करनेके कारण राजाको चाण्डाल बना दिया॥ ४६॥

हे कौशिक! उनके इसी कष्टसे मैं अत्यन्त दुःखित हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण वे राजकुमार सत्यव्रत चाण्डाल हो गये हैं। इसलिये अब आपको जिस किसी भी उपायसे; यहाँतक कि अपनी उग्र तपस्याके प्रभावसे राजाकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—हे शत्रुका दमन करनेवाले [राजा जनमेजय]! अपनी पत्नीकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र उस दुःखित स्त्रीको सान्त्वना देते हुए कहने लगे॥ ४९॥

विश्वामित्र बोले—हे कमलनयने! जिन्होंने तुम्हारा उपकार किया है और घोर वनमें तुम्हारी रक्षा की है, उन राजा सत्यव्रतको मैं शापमुक्त अवश्य करूँगा। मैं अपनी योगविद्या तथा तपस्याके प्रभावसे उनका दुःख दूर कर दूँगा॥ ५०½॥

परमतत्त्ववेत्ता विश्वामित्रजी अपनी भार्याको इस तरह आश्वस्त करके सोचने लगे कि राजा सत्यव्रतका दुःख किस प्रकार दूर हो सकता है? तब भलीभाँति विचार करके मुनि विश्वामित्र उस स्थानपर गये, जहाँ राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) दीन अवस्थाको प्राप्त होकर चाण्डालके रूपमें एक कुटियामें रह रहे थे॥ ५१-५२½॥

मुनिको आते देखकर राजा त्रिशंकु विस्मयमें पड़ गये। वे तत्काल मुनिके चरणोंपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब भूमिपर पड़े हुए राजाको हाथसे पकड़कर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने उठाया और उन्हें सान्त्वना देते हुए यह वचन कहा—'हे राजन्! मेरे ही कारण वसिष्ठमुनिने आपको शाप दिया है, अतः मैं आपकी सारी कामना पूर्ण करूँगा। अब आप बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?'॥ ५३—५५½॥

राजोवाच

मया सम्प्रार्थितः पूर्वं वसिष्ठो मखहेतवे॥ ५६

मां याजय मुनिश्रेष्ठ करोमि मखमुत्तमम्।
यथेष्टं कुरु विप्रेन्द्र यथा स्वर्गं व्रजाम्यहम्॥ ५७

अनेनैव शरीरेण शक्रलोकं सुखालयम्।
कोपं कृत्वा वसिष्ठोऽसौ मामाहेति सुदुर्मते॥ ५८

मानुषेण हि देहेन स्वर्गवासः कुतस्तव।
पुनर्मयोक्तो भगवान्स्वर्गलुब्धेन चानघ॥ ५९

अन्यं पुरोहितं कृत्वा यक्ष्येऽहं यज्ञमुत्तमम्।

तदा तेनैव शप्तोऽहं चाण्डालो भव पामर॥ ६०

इत्येतत्कथितं सर्वं कारणं शापसम्भवम्।
मम दुःखविनाशाय समर्थोऽसि मुनीश्वर॥ ६१

इत्युक्त्वा विररामासौ राजा दुःखरुजार्दितः।
कौशिकोऽपि निराकर्तुं शापं तस्य व्यचिन्तयत्॥ ६२

राजा बोले—पूर्वकालमें मैंने यज्ञ करानेके लिये वसिष्ठजीसे यह प्रार्थना की थी—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं महान् यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे यज्ञ सम्पन्न कराइये। हे विप्रेन्द्र! आप मेरा यह अभीष्ट कार्य कीजिये, जिससे मैं स्वर्ग चला जाऊँ; मैं इसी मानव-देहसे सुखोंके निधान इन्द्रलोक जाना चाहता हूँ॥ ५६-५७½ ॥

इसपर वसिष्ठमुनिने क्रोधित होकर मुझसे कहा—अरे दुर्बुद्धि! इस मानवशरीरसे तुम्हारा स्वर्गमें वास कैसे हो सकता है?॥ ५८½ ॥

तब स्वर्गकी उत्कट लालसावाले मैंने भगवान् वसिष्ठसे पुनः कहा—हे निष्पाप! तब मैं किसी अन्यको पुरोहित बनाकर वह श्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ करूँगा। उसी समय उन्होंने मुझे यह शाप दे दिया 'हे नीच! तुम चाण्डाल हो जाओ'॥ ५९-६० ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने शाप पानेका सारा कारण आपसे कह दिया। अब एकमात्र आप ही मेरा दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं॥ ६१ ॥

कष्टकी पीड़ासे व्यथित राजा त्रिशंकु इतना कहकर चुप हो गये और विश्वामित्रजी भी उनके शापको दूर करनेका उपाय सोचने लगे॥ ६२ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे त्रिशङ्कुशापोद्धाराय विश्वामित्रसान्त्वनवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

~~~

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

विश्वामित्रका सत्यव्रत (त्रिशंकु)-को सशरीर स्वर्ग भेजना, वरुणदेवकी आराधनासे राजा हरिश्चन्द्रको पुत्रकी प्राप्ति

व्यास उवाच

विचिन्त्य मनसा कृत्यं गाधिसूनुर्महातपाः।
प्रकल्प्य यज्ञसम्भारान्मुनीनामन्त्रयत्तदा॥ १

मुनयस्तं मखं ज्ञात्वा विश्वामित्रनिमन्त्रिताः।
नागताः सर्व एवैते वसिष्ठेन निवारिताः॥ २

व्यासजी बोले—हे राजन्! महातपस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्रने यज्ञानुष्ठानका विचार करके यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाकर सभी मुनियोंको निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् विश्वामित्रके द्वारा निमन्त्रित किये गये मुनिगण उस यज्ञके बारेमें जानकर भी वहाँ नहीं आये; क्योंकि वसिष्ठजीने उन सबको आनेसे मना कर दिया था॥ १-२ ॥
~~~

गाधिसूनुस्तदाज्ञाय विमनाश्चातिदुःखितः।
आजगामाश्रमं तत्र यत्रासौ नृपतिः स्थितः॥ ३

तमाह कौशिकः क्रुद्धो वसिष्ठेन निवारिताः।
नागता ब्राह्मणाः सर्वे यज्ञार्थं नृपसत्तम॥ ४

पश्य मे तपसः सिद्धिं यथा त्वां सुरसद्मनि।
प्रापयामि महाराज वाञ्छितं ते करोम्यहम्॥ ५

इत्युक्त्वा जलमादाय हस्तेन मुनिसत्तमः।
ददौ पुण्यं तदा तस्मै गायत्रीजपसम्भवम्॥ ६

दत्त्वाथ सुकृतं राज्ञे तमुवाच महीपतिम्।
यथेष्टं गच्छ राजर्षे त्रिविष्टपमतन्द्रितः॥ ७

पुण्येन मम राजेन्द्र बहुकालार्जितेन च।
याहि शक्रपुरीं प्रीतः स्वस्ति तेऽस्तु सुरालये॥ ८

व्यास उवाच

इत्युक्तवति विप्रेन्द्रे त्रिशङ्कुस्तरसा ततः।
उत्पपात यथा पक्षी वेगवांस्तपसो बलात्॥ ९

उत्पत्य गगने राजा गतः शक्रपुरीं यदा।
दृष्टो देवगणैस्तत्र क्रूरश्चाण्डालवेषभाक्॥ १०

कथितोऽसौ सुरेन्द्राय कोऽयमायाति सत्वरः।
गगने देववद्धा यो दुर्दर्शः श्वपचाकृतिः॥ ११

सहसोत्थाय शक्रस्तमपश्यत्पुरुषाधमम्।
ज्ञात्वा त्रिशङ्कुमपि स निर्भर्त्स्य तरसाब्रवीत्॥ १२

श्वपच क्व समायासि देवलोके जुगुप्सितः।

याहि शीघ्रं ततो भूमौ नात्र स्थातुं त्वयोचितम्॥ १३

इत्युक्तः स्खलितः स्वर्गाच्छक्रेणामित्रकर्शन।
निपपात तदा राजा क्षीणपुण्यो यथामरः॥ १४

यह जानकर गाधिपुत्र विश्वामित्र खिन्नमनस्क तथा अतिदुःखित हुए और उस आश्रममें आये, जहाँ राजा [त्रिशंकु] विराजमान थे॥ ३॥

कुपित विश्वामित्रने उन त्रिशंकुसे कहा—हे नृपश्रेष्ठ! वसिष्ठजीके मना कर देनेके कारण सभी ब्राह्मण तो यज्ञमें नहीं आये, किंतु हे महाराज! मेरे तपका वह प्रभाव देखिये, जिससे मैं आपको अभी सुरलोक पहुँचाता हूँ और आपकी अभिलाषा पूरी करता हूँ॥ ४-५॥

यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने हाथमें जल लेकर गायत्रीजपसे अर्जित अपना समस्त पुण्य उन्हें दे दिया॥ ६॥

राजाको अपना पुण्य देकर विश्वामित्रने उन पृथ्वीपतिसे कहा—हे राजर्षे! अब आप अपने अभीष्ट स्वर्गलोकको जाइये। हे राजेन्द्र! बहुत दिनोंसे मेरे द्वारा अर्जित किये गये पुण्यसे अब आप प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रलोक जायँ और वहाँ देवलोकमें आपका कल्याण हो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] विप्रेन्द्र विश्वामित्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु मुनिके तपोबलसे बड़े वेगसे उड़नेवाले पक्षीकी भाँति तुरंत ऊपरकी ओर उड़े॥ ९॥

आकाशमें उड़कर जब राजा त्रिशंकु इन्द्रपुरी पहुँचे, तब सभी देवताओंने देखा कि चाण्डालवेषधारी कोई क्रूर व्यक्ति चला आ रहा है। तत्पश्चात् उन लोगोंने इन्द्रसे पूछा कि चाण्डालके समान आकृतिवाला तथा दुर्दर्श यह कौन व्यक्ति देवताकी भाँति आकाशमार्गसे बड़े वेगसे चला आ रहा है?॥ १०-११॥

तब इन्द्रने सहसा उठकर उस अधम पुरुषकी ओर देखा। उसे त्रिशंकुके रूपमें पहचानकर तत्काल डाँटते हुए इन्द्र कहने लगे—हे चाण्डाल! घृणित कर्मवाले तुम देवलोकमें कहाँ चले आ रहे हो! तुम अभी पृथ्वीलोकको लौट जाओ; क्योंकि तुम्हारे लिये यहाँ निवास करना सर्वथा उचित नहीं है॥ १२-१३॥

[व्यासजी बोले—] हे शत्रुओंका दमन करनेवाले जनमेजय! इन्द्रके ऐसा कहते ही त्रिशंकु स्वर्गसे वैसे ही नीचे गिरने लगे, जैसे पुण्यके क्षीण होनेपर देवताओंका स्वर्गसे पतन हो जाता है॥ १४॥

पुनश्चुक्रोश भूपालो विश्वामित्रेति चासकृत्।
पतामि रक्ष दुःखार्तं स्वर्गाच्चलितमाशुगम्॥ १५

तस्य तत्क्रन्दितं राजन् पततः कौशिको मुनिः।
श्रुत्वा तिष्ठेति होवाच पतन्तं वीक्ष्य भूपतिम्॥ १६

वचनात्तस्य तत्रैव स्थितोऽसौ गगने नृपः।
मुनेस्तपःप्रभावेण चलितोऽपि सुरालयात्॥ १७

विश्वामित्रोऽप्यपः स्पृष्ट्वा चकारेष्टिं सुविस्तराम्।
विधातुं नूतनां सृष्टिं स्वर्गलोकं द्वितीयकम्॥ १८

तस्योद्यमं तथा ज्ञात्वा त्वरितस्तु शचीपतिः।
तत्राजगाम सहसा मुनिं प्रति तु गाधिजम्॥ १९

किं ब्रह्मन् क्रियते साधो कस्मात्कोपसमाकुलः।
अलं सृष्ट्या मुनिश्रेष्ठ ब्रूहि किं करवाणि ते॥ २०

विश्वामित्र उवाच

स्वं निवासं महीपालं च्युतं त्वद्भुवनाद् विभो।
नयस्व प्रीतियोगेन त्रिशङ्कुं चातिदुःखितम्॥ २१

व्यास उवाच

तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा तुराषाडतिशङ्कितः।
तपोबलं विदित्वोग्रमोमित्योवाच वासवः॥ २२

दिव्यदेहं नृपं कृत्वा विमानवरसंस्थितम्।
आपृच्छ्य कौशिकं शक्रोऽगमन्निजपुरीं तदा॥ २३

गते शक्रे तु वै स्वर्गं त्रिशङ्कुसहिते ततः।
विश्वामित्रः सुखं प्राप्य स्वाश्रमे सुस्थिरोऽभवत्॥ २४

हरिश्चन्द्रोऽथ तच्छ्रुत्वा विश्वामित्रोपकारकम्।
पितुः स्वर्गमनं कामं मुदितो राज्यमन्वशात्॥ २५

तब राजा त्रिशंकु वहींसे बार-बार चिल्लाने लगे—हे विश्वामित्र! हे विश्वामित्र! मैं स्वर्गसे च्युत होकर बड़े वेगसे नीचेकी ओर गिर रहा हूँ, अतः आप मुझ कष्टपीड़ितकी रक्षा कीजिये॥ १५॥

हे राजन्! गिरते हुए त्रिशंकुका करुणक्रन्दन सुनकर तथा उन्हें नीचेकी ओर गिरते देखकर विश्वामित्रने कहा—'वहीं रुक जाइये'॥ १६॥

[हे राजन्!] यद्यपि त्रिशंकु देवलोकसे च्युत हो चुके थे तथापि मुनि विश्वामित्रके ऐसा कहते ही उनके तपोबलके प्रभावसे वे त्रिशंकु वहींपर आकाशमें ही स्थित हो गये॥ १७॥

तत्पश्चात् विश्वामित्रने नयी सृष्टिकी रचनाद्वारा दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये जलका स्पर्श करके एक दीर्घकालीन यज्ञ आरम्भ किया॥ १८॥

उनके उस प्रकारके प्रयत्नको जानकर इन्द्र गाधि-पुत्र मुनि विश्वामित्रके पास तुरंत आ पहुँचे। [इन्द्र बोले—] हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? हे साधो! आप कुपित क्यों हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आप दूसरी सृष्टि मत कीजिये और बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १९-२०॥

विश्वामित्र बोले—हे विभो! आपके लोकसे च्युत होकर अत्यन्त दुःखमें पड़े हुए राजा त्रिशंकुको आप प्रेमपूर्वक अपने निवास-स्थान (स्वर्गलोक)-में ले जाइये॥ २१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! विश्वामित्रका वह निश्चय जानकर इन्द्रको बहुत भय हुआ। उन्होंने मुनिका उग्र तपोबल समझकर कहा—'ठीक है।' तत्पश्चात् राजाको दिव्य शरीरवाला बनाकर तथा उन्हें एक उत्तम विमानपर बैठाकर इन्द्रने विश्वामित्रसे आज्ञा लेकर अपनी पुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २२-२३॥

राजा त्रिशंकुसहित इन्द्रके स्वर्ग चले जानेके उपरान्त विश्वामित्र सुखी होकर अपने आश्रममें निश्चिन्त होकर रहने लगे॥ २४॥

इधर राजा हरिश्चन्द्र मुनि विश्वामित्रके द्वारा किये गये अपने पिताके स्वर्गगमन-सम्बन्धी उपकारको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और राज्य-शासन करने लगे॥ २५॥

अयोध्याधिपतिः क्रीडां चकार सह भार्यया।
रूपयौवनचातुर्ययुक्तया प्रीतिसंयुतः॥ २६

अतीतकाले युवती न सा गर्भवती ह्यभूत्।
तदा चिन्तातुरो राजा बभूवातीव दुःखितः॥ २७

वसिष्ठस्याश्रमं गत्वा प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
अनपत्यत्वजां चिन्तां गुरवे समवेदयत्॥ २८

दैवज्ञोऽसि भवान्कामं मन्त्रविद्याविशारदः।
उपायं कुरु धर्मज्ञ सन्ततेर्मम मानद॥ २९

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति जानासि द्विजसत्तम।
कस्मादुपेक्षसे जानन् दुःखं मम च शक्तिमान्॥ ३०

कलविंकास्त्विमे धन्या ये शिशुं लालयन्ति हि।
मन्दभाग्योऽहमनिशं चिन्तयामि दिवानिशम्॥ ३१

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य मुनिस्तस्य निर्वेदमिश्रितं वचः।
सञ्चिन्त्य मनसा सम्यक् तमुवाच विधेः सुतः॥ ३२

वसिष्ठ उवाच

सत्यं ब्रूषे महाराज संसारेऽस्मिन्न विद्यते।
अनपत्यत्वजं दुःखं यत्तथा दुःखमद्भुतम्॥ ३३

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र वरुणं यादसां पतिम्।
समाराधय यत्नेन स ते कार्यं करिष्यति॥ ३४

वरुणादधिको नास्ति देवः सन्तानदायकः।
तमाराधय धर्मिष्ठ कार्यसिद्धिर्भविष्यति॥ ३५

दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः।
उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः सञ्जायते कथम्॥ ३६

न्यायतस्तु नरैः कार्य उद्यमस्तत्त्वदर्शिभिः।
कृते तस्मिन्भवेत्सिद्धिर्नान्यथा नृपसत्तम॥ ३७

अयोध्यापति [हरिश्चन्द्र] रूप, यौवन तथा चातुर्यसे सम्पन्न अपनी भार्याके साथ प्रेमपूर्वक विहार करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर भी जब वह युवती रानी गर्भवती नहीं हुई, तब राजा बड़े चिन्तित तथा दुःखी हुए॥ २७॥

इसके बाद वसिष्ठमुनिके आश्रममें जाकर तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने सन्तान उत्पन्न न होनेके कारण अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए गुरुसे कहा—हे धर्मज्ञ! हे मानद! आप महान् ज्योतिर्विद् तथा मन्त्रविद्याके परम विद्वान् हैं। अतः आप मेरे लिये सन्तानप्राप्तिका कोई उपाय कीजिये॥ २८-२९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आप तो जानते ही हैं कि पुत्रहीनकी गति नहीं होती। मेरे दुःखको जानते हुए तथा [उसे दूर करनेमें] समर्थ होते हुए भी आप उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?॥ ३०॥

ये गौरैया पक्षी बड़े धन्य हैं, जो अपने शिशुका लालन-पालन कर रहे हैं। मैं ही ऐसा भाग्यहीन हूँ, जो सदा दिन-रात चिन्तित रहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी व्यथाभरी वाणी सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी भलीभाँति मनमें विचार करके उनसे कहने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—हे महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। जो दुःख पुत्र न होनेके कारण होता है, वैसा अद्भुत दुःख इस संसारमें नहीं है। अतएव हे राजेन्द्र! आप प्रयत्नपूर्वक जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना कीजिये, वे ही आपका कार्य करेंगे॥ ३३-३४॥

हे धर्मिष्ठ! वरुणदेवसे बढ़कर कोई दूसरा सन्तानदाता देवता नहीं है। इसलिये आप उन्हींकी आराधना कीजिये, इससे आपका प्रयोजन अवश्य सिद्ध हो जायगा॥ ३५॥

मनुष्योंको भाग्य तथा पुरुषार्थ—इन दोनोंका आदर करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्योग किये कार्य-सिद्धि कैसे हो सकती है?॥ ३६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तत्त्वदर्शी मनुष्योंको न्यायपूर्वक उद्योग करना चाहिये। वैसा करनेसे सिद्धि अवश्य मिलती है, अन्यथा नहीं॥ ३७॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा गुरोरमिततेजसः।
प्रणम्य निर्ययौ राजा तपसे कृतनिश्चयः॥ ३८

गङ्गातीरे शुभे स्थाने कृतपद्मासनो नृपः।
ध्यायन्पाशधरं चित्ते चचार दुश्चरं तपः॥ ३९

एवं तपस्यतस्तस्य प्रचेता दृष्टिगोचरः।
कृपयाभून्महाराज प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ४०

हरिश्चन्द्रमुवाचेदं वचनं यादसां पतिः।
वरं वरय धर्मज्ञ तुष्टोऽस्मि तपसा तव॥ ४१

राजोवाच

अनपत्योऽस्मि देवेश पुत्रं देहि सुखप्रदम्।
ऋणत्रयापहारार्थमुद्यमोऽयं मया कृतः॥ ४२

नृपस्य वचनं श्रुत्वा प्रगल्भं दुःखितस्य च।
स्मितपूर्वं ततः पाशी तमाह पुरतः स्थितम्॥ ४३

वरुण उवाच

पुत्रो यदि भवेद्राजन् गुणी मनसि वाञ्छितः।
सिद्धे कार्ये ततः पश्चात्किं करिष्यसि मे प्रियम्॥ ४४

यदि त्वं तेन पुत्रेण मां यजेथा विशङ्कितः।
पशुबन्धेन तेनैव ददामि नृपते वरम्॥ ४५

राजोवाच

देव मे मास्तु वन्ध्यत्वं यजिष्येऽहं जलाधिप।
पशुं कृत्वा सुतं पुत्रं सत्यमेतद् ब्रवीमि ते॥ ४६

वन्ध्यत्वे परमं दुःखमसह्यं भुवि मानद।
शोकाग्निशमनं नृणां तस्माद्देहि सुतं शुभम्॥ ४७

वरुण उवाच

भविष्यति सुतः कामं राजन् गच्छ गृहाय वै।
सत्यं तद्वचनं कार्यं यद् ब्रवीषि ममाग्रतः॥ ४८

अपरिमित तेजवाले उन गुरु वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय किया और गुरुको प्रणाम करके वे निकल पड़े॥ ३८॥

राजा हरिश्चन्द्र गंगानदीके तटपर एक शुभ स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ गये और अपने मनमें पाशधारी वरुणदेवका ध्यान करते हुए कठोर तप करने लगे॥ ३९॥

हे महाराज! इस प्रकारका तप करनेवाले उन [राजा हरिश्चन्द्र]-पर कृपा करके प्रसन्न मुख-कमलवाले वरुणदेव उनके सम्मुख प्रकट हो गये। जलाधिपति वरुणदेवने हरिश्चन्द्रसे यह वचन कहा—हे धर्मज्ञ! आपके तपसे मैं प्रसन्न हूँ, आप मुझसे वर माँगिये॥ ४०-४१॥

राजा बोले—हे देवेश! मैं सन्तानहीन हूँ, अतः आप मुझे सुखदायक पुत्र दीजिये। मैंने देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेके लिये यह [तपरूप] उद्यम किया है॥ ४२॥

तब दुःखित राजाका यह प्रगल्भ वचन सुनकर वरुणदेव अपने सम्मुख स्थित राजा हरिश्चन्द्रसे मुसकराते हुए कहने लगे॥ ४३॥

वरुण बोले—हे राजन्! यदि आपको मनोवांछित गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो तब मनोरथ पूरा हो जानेके पश्चात् आप मेरा कौन-सा प्रिय कार्य करेंगे?॥ ४४॥

हे राजन्! यदि आप शंकारहित भावसे उस पुत्रको बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें, तो मैं आपको वर प्रदान करूँगा॥ ४५॥

राजा बोले—हे देव! मैं सन्तानहीन न रहूँ। हे जलाधिप! मैं उस पुत्रको बलिपशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा। मैं आपसे यह सत्य कह रहा हूँ। हे मानद! इस पृथ्वीलोकमें मनुष्योंके लिये सन्तान न होनेका दुःख अत्यन्त असह्य होता है, अतः आप मुझे कल्याणकारी तथा मेरी शोकाग्निको शान्त करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४६-४७॥

वरुण बोले—राजन्! आपको अपनी कामनाके अनुकूल पुत्र प्राप्त होगा। अब आप घर लौट जाइये, किंतु अभी मेरे सामने आपने जो वचन कहा है, उसे सत्य कीजियेगा॥ ४८॥

व्यास उवाच

इत्युक्तो वरुणेनासौ हरिश्चन्द्रो गृहं ययौ।
भार्यायै कथयामास वृत्तान्तं वरदानजम्॥ ४९

तस्य भार्याशतं पूर्णं बभूवातिमनोहरम्।
पट्टराज्ञी शुभा शैव्या धर्मपत्नी पतिव्रता॥ ५०

काले गतेऽथ सा गर्भं दधार वरवर्णिनी।
बभूव मुदितो राजा श्रुत्वा दोहदचेष्टितम्॥ ५१

कारयामास विधिवत्संस्कारान्नृपतिस्तदा।
मासेऽथ दशमे पूर्णे सुषुवे सा शुभे दिने॥ ५२

ताराग्रहबलोपेते पुत्रं देवसुतोपमम्।
पुत्रे जाते नृपः स्नात्वा ब्राह्मणैः परिवेष्टितः॥ ५३

चकार जातकर्मादौ ददौ दानानि भूरिशः।
राज्ञश्चातिप्रमोदोऽभूत्पुत्रजन्मसमुद्भवः॥ ५४

बभूव परमोदारो धनधान्यसमन्वितः।
विशेषदानसंयुक्तो गीतवादित्रसंकुलः॥ ५५

व्यासजी बोले—वरुणदेवके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये और वरदान-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त अपनी रानीसे कहा॥ ४९॥

उनकी एक सौ परम सुन्दर रानियाँ थीं। उनमेंसे कल्याणी तथा पतिव्रता शैव्या ही उनकी प्रधान धर्मपत्नी तथा पटरानी थीं॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर सुन्दरी शैव्याने गर्भ धारण किया। तब उनकी गर्भकालीन अभिलाषाको सुनकर राजा परम प्रसन्न हुए॥ ५१॥

उस समय राजाने विधिपूर्वक [पुंसवन आदि] सभी संस्कार सम्पन्न कराये। दसवाँ महीना पूरा होनेपर रानीने नक्षत्र तथा ग्रहके उत्तम प्रभावसे युक्त शुभ दिनमें देवपुत्रके समान कान्तिमान् पुत्रको जन्म दिया॥ ५२$\frac{१}{२}$॥

पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके साथ जाकर स्नान करके सर्वप्रथम बालकका जातकर्म-संस्कार किया और बहुत दान दिये। पुत्रका जन्म होनेसे राजाको परम प्रसन्नता हुई। उस समय उन्होंने धन-धान्यसे युक्त होकर परम उदारतापूर्वक अनेक प्रकारके विशिष्ट दान दिये और गीत-वाद्योंके साथ महोत्सव मनाया॥ ५३—५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे वरुणकृपया शैव्यायां पुत्रोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेसे वरुणका क्रुद्ध होना और राजा हरिश्चन्द्रको जलोदरग्रस्त होनेका शाप देना

व्यास उवाच

प्रवृत्ते सदने तस्य राज्ञः पुत्रमहोत्सवे।
आजगाम तदा पाशी विप्रवेषधरः शुभः॥ १

स्वस्तीत्युक्त्वा नृपं प्राह वरुणोऽहं निशामय।
पुत्रो जातस्तवाधीश यजानेन नृपाशु माम्॥ २

सत्यं कुरु वचो राजन् यत्प्रोक्तं भवतः पुरा।
वन्ध्यत्वं तु गतं तेऽद्य वरदानेन मे किल॥ ३

व्यासजी बोले—[राजा जनमेजय!] राजा हरिश्चन्द्रके घरमें पुत्रका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय सुन्दर ब्राह्मणका वेष धारण करके वरुणदेव वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

'आपका कल्याण हो'—ऐसा कहकर उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! मैं वरुणदेव हूँ, मेरी बात सुनिये। हे नृप! आपको पुत्र हो गया है, इसलिये अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ कीजिये। हे राजन्! मेरे वरदानसे अब आपकी सन्तानहीनताका दोष समाप्त हो चुका है, अतः आपने जो बात पहले कही है, उसे सत्य कीजिये॥ २-३॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजा चिन्तां चकार ह।
कथं हन्मि सुतं जातं जलजेन समाननम्॥ ४

लोकपालः समायातो विप्रवेषेण वीर्यवान्।
न देवहेलनं कार्यं सर्वथा शुभमिच्छता॥ ५

पुत्रस्नेहः सुदुश्छेद्यः सर्वथा प्राणिभिः सदा।
किं करोमि कथं मे स्यात्सुखं सन्ततिसम्भवम्॥ ६

धैर्यमालम्ब्य भूपालस्तं नत्वा प्रतिपूज्य च।
उवाच वचनं श्लक्ष्णं युक्तं विनयपूर्वकम्॥ ७

राजोवाच

देवदेव तवानुज्ञां करोमि करुणानिधे।
वेदोक्तेन विधानेन मखं च बहुदक्षिणम्॥ ८

पुत्रे जाते दशाहेन कर्मयोग्यो भवेत्पिता।
मासेन शुध्येज्जननी दम्पती तत्र कारणम्॥ ९

सर्वज्ञोऽसि प्रचेतस्त्वं धर्मं जानासि शाश्वतम्।
कृपां कुरु त्वं वारीश क्षमस्व परमेश्वर॥ १०

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तु प्रचेतास्तं प्रत्युवाच जनाधिपम्।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि कुरु कार्याणि पार्थिव॥ ११

आगमिष्यामि मासान्ते यष्टव्यं सर्वथा त्वया।
कृत्वौत्थानिकमाचारं पुत्रस्य नृपसत्तम॥ १२

इत्युक्त्वा श्लक्ष्णया वाचा राजानं यादसां पतिः।
हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप गते पाशिनि पार्थिवः॥ १३

कोटिशः प्रददौ गास्ता घटोध्नीर्हेमपूरिताः।
विप्रेभ्यो वेदविद्भ्यश्च तथैव तिलपर्वतान्॥ १४

वरुणदेवकी बात सुनकर राजा चिन्तित हो उठे कि कमलके समान मुखवाले इस नवजात पुत्रका वध कैसे करूँ अर्थात् इसे बलिपशु बनाकर यज्ञ कैसे करूँ? किंतु स्वयं लोकपाल तथा पराक्रमी वरुणदेव विप्रवेषमें आये हुए हैं। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको देवताओंका अनादर कभी नहीं करना चाहिये। साथ ही, पुत्रस्नेहको दूर करना भी तो प्राणियोंके लिये सर्वदा अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अतः अब मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे सन्तानजनित सुख प्राप्त हो॥ ४—६॥

तब धैर्य धारण करके राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको प्रणामकर उनकी पूजा की और वे विनम्रतापूर्वक मधुर तथा युक्तियुक्त वचन कहने लगे॥ ७॥

राजा बोले—हे देवदेव! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे करुणानिधान! मैं वेदोक्त विधि-विधानसे प्रचुर दक्षिणावाला यज्ञ करूँगा, किंतु अभी यज्ञ न करनेका कारण यह है कि पुत्र उत्पन्न होनेके दस दिन बाद पिता शुद्ध होकर कर्मानुष्ठानके योग्य होता है और एक महीनेमें माता शुद्ध होती है। अतः जबतक पति-पत्नी दोनों शुद्ध नहीं हो जाते, तबतक यज्ञ कैसे होगा? वरुणदेव! आप तो सर्वज्ञ हैं और सनातन धर्मको भलीभाँति जानते हैं। हे वारीश! आप मुझपर दया कीजिये, हे परमेश्वर! मुझे क्षमा कीजिये॥ ८—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके यह कहनेपर वरुणदेवने उनसे कहा—हे पृथ्वीपते! आपका कल्याण हो; अब मैं जा रहा हूँ और आप अपने कार्य सम्पन्न करें। नृपश्रेष्ठ! अब मैं एक मासके अन्तमें आऊँगा, तब आप अपने पुत्रका जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करनेके पश्चात् ही भलीभाँति मेरा यज्ञ कीजियेगा॥ ११-१२॥

जलाधिपति वरुणदेव मधुर वाणीमें राजा हरिश्चन्द्रसे ऐसा कहकर जब चले गये तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वरुणदेवके चले जानेपर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको घट-जैसे बड़े-बड़े थनवाली तथा स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत करोड़ों गायों और तिलके पर्वतोंका दान किया॥ १३-१४॥

राजा पुत्रमुखं दृष्ट्वा सुखमाप महत्तरम्।
नामास्य रोहितश्चेति चकार विधिपूर्वकम्॥ १५

पूर्णे मासे ततः पाशी विप्रवेषेण भूपतेः।
आजगाम गृहे सद्यो यजस्वेति ब्रुवन्मुहुः॥ १६

वीक्ष्य तं नृपतिर्देवं निमग्नः शोकसागरे।
प्रणिपत्य कृतातिथ्यं तमुवाच कृताञ्जलिः॥ १७

दिष्ट्या देव त्वमायातो गृहं मे पावितं प्रभो।
मखं करोमि वारीश विधिवद्वाञ्छितं तव॥ १८

अदन्तो न पशुः श्लाघ्य इत्याहुर्वेदवादिनः।
तस्माद्दन्तोद्भवे तेऽहं करिष्यामि महामखम्॥ १९

व्यास उवाच

इत्युक्तस्तेन वरुणस्तथेत्युक्त्वा ययावथ।
हरिश्चन्द्रो मुदं प्राप्य विजहार गृहाश्रमे॥ २०

पुनर्दन्तोद्भवं ज्ञात्वा प्रचेता द्विजरूपवान्।
आजगाम गृहे तस्य कुरु कार्यमिति ब्रुवन्॥ २१

भूपालोऽपि जलाधीशं वीक्ष्य प्राप्तं द्विजाकृतिम्।
प्रणम्यासनसम्मानैः पूजयामास सादरम्॥ २२

स्तुत्वा प्रोवाच वचनं विनयानतकन्धरः।
करोमि विधिवत्कामं मखं प्रबलदक्षिणम्॥ २३

बालोऽप्यकृतचौलोऽयं गर्भकेशो न सम्मतः।
यज्ञार्थे पशुकरणे मया वृद्धमुखाच्छ्रुतम्॥ २४

तावत्क्षमस्व वारीश विधिं जानासि शाश्वतम्।
कर्तव्यः सर्वथा यज्ञो मुण्डनान्ते शिशोः किल॥ २५

अपने पुत्रका मुख देखकर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए और उन्होंने विधिपूर्वक उसका नाम 'रोहित' रखा॥ १५॥

तत्पश्चात् एक मास बीतनेपर वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारणकर 'शीघ्र यज्ञ करो'—ऐसा बार-बार कहते हुए पुनः राजाके घर आये॥ १६॥

वरुणदेवको देखकर राजा हरिश्चन्द्र शोकसागरमें डूब गये। उन्हें प्रणाम तथा उनका अतिथिसत्कार करके राजाने दोनों हाथ जोड़कर कहा—हे देव! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि आप मेरे यहाँ पधारे हुए हैं। हे प्रभो! आपने आज मेरे भवनको पवित्र कर दिया है। हे वारीश! मैं विधिपूर्वक आपका अभिलषित यज्ञ अवश्य करूँगा। वेदवेत्ताओंने कहा है कि दन्तविहीन पशु यज्ञके लिये श्रेष्ठ नहीं होता, अतः इस पुत्रके दाँत निकल आनेके बाद मैं आपका महायज्ञ करूँगा॥ १७—१९॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर वरुणदेव 'वैसा ही हो'—यह कहकर वहाँसे लौट गये। इधर, राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित होकर गृहस्थाश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उसके बाद बालकको दाँत निकल आनेकी बात जानकर वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारणकर 'अब मेरा कार्य कर दो'—ऐसा बोलते हुए राजाके महलमें पुनः पहुँचे॥ २१॥

ब्राह्मणके वेषमें जलाधिनाथ वरुणको आया देखकर राजाने उन्हें प्रणाम किया और आसन, अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा आदरपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर राजाने उनकी स्तुति करके विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर कहा—'मैं प्रचुर दान-दक्षिणाके साथ विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूँगा; किंतु अभी तो इस बालकका चूडाकर्म-संस्कार भी नहीं हुआ है। मैंने वृद्धजनोंके मुखसे सुना है कि गर्भकालीन केशवाला बालक यज्ञके लिये पशु बनानेके योग्य नहीं माना गया है। हे जलेश्वर! आप सनातन विधि तो जानते ही हैं, अतः चूडाकरणतककी अवधिके लिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं इस बालकके मुण्डन-संस्कारके पश्चात् आपका यज्ञ अवश्य करूँगा॥ २२—२५॥

तस्येति वचनं श्रुत्वा प्रचेताः प्राह तं पुनः।
प्रतारयसि मां राजन् पुनः पुनरिदं ब्रुवन्॥ २६

अपि ते सर्वसामग्री वर्तते नृपतेऽधुना।
पुत्रस्नेहनिबद्धस्त्वं वञ्चयस्येव साम्प्रतम्॥ २७

क्षौरकर्मविधिं कृत्वा न कर्तासि मखं यदि।
तदाहं दारुणं शापं दास्ये कोपसमन्वितः॥ २८

अद्य गच्छामि राजेन्द्र वचनात्तव मानद।
न मृषा वचनं कार्यं त्वयेक्ष्वाकुकुलोद्भव॥ २९

इत्याभाष्य ययावाशु प्रचेता नृपतेर्गृहात्।
राजा परमसन्तुष्टो ननन्द भवने तदा॥ ३०

चूडाकरणकाले तु प्रवृत्ते परमोत्सवे।
सम्प्राप्तस्तरसा पाशी भवनं नृपतेः पुनः॥ ३१

यदाङ्के सुतमादाय राज्ञी नृपतिसन्निधौ।
उपविष्टा क्रियाकाले तदैव वरुणोऽभ्यगात्॥ ३२

कुरु कर्मेति विस्पष्टं वचनं कथयन्नृपम्।
विप्ररूपधरः श्रीमान् प्रत्यक्ष इव पावकः॥ ३३

नृपतिस्तं समालोक्य बभूवातीव विह्वलः।
नमश्चकार तं भीत्या कृताञ्जलिपुटः पुरः॥ ३४

विधिवत्पूजयित्वा तं राजोवाच विनीतवान्।
स्वामिन् कार्यं करोम्यद्य मखस्य विधिपूर्वकम्॥ ३५

वक्तव्यमस्ति तत्रापि शृणुष्वैकमना विभो।
युक्तं चेन्मन्यसे स्वामिंस्तद् ब्रवीमि तवाग्रतः॥ ३६

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः।
संस्कृताश्चान्यथा शूद्रा एवं वेदविदो विदुः॥ ३७

तब राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेवने उनसे कहा—हे राजन्! आप बार-बार यही कहते हुए मुझे धोखा दे रहे हैं॥ २६॥

हे राजन्! इस समय आपके पास यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री तो विद्यमान है, किंतु पुत्रस्नेहमें बँधे होनेके कारण आप मुझे इस बार भी धोखा दे रहे हैं॥ २७॥

अब इसका मुण्डन-संस्कार हो जानेके बाद भी यदि आप यज्ञ नहीं करेंगे, तो मैं कोपाविष्ट होकर आपको भीषण शाप दे दूँगा। हे राजेन्द्र! हे मानद! आज तो मैं आपकी बात मानकर चला जा रहा हूँ, किंतु हे इक्ष्वाकुवंशज! आप अपनी बात असत्य मत कीजियेगा॥ २८-२९॥

ऐसा कहकर वरुणदेव राजाके भवनसे तुरंत चले गये। तब राजा हरिश्चन्द्र भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने राजमहलमें आनन्द करने लगे॥ ३०॥

इसके बाद जब चूडाकरणके समय महान् उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय वरुणदेव शीघ्रतापूर्वक राजाके महलमें पुनः आ पहुँचे। महारानी शैव्या पुत्रको अपनी गोदमें लेकर राजाके पासमें बैठी थीं और ज्यों ही मुण्डनका कार्य आरम्भ हुआ, उसी समय साक्षात् अग्निके समान तेजवाले विप्ररूपधारी श्रीमान् वरुणदेव 'यज्ञकर्म करो'—ऐसा स्पष्ट वचन बोलते हुए राजाके समीप पहुँच गये॥ ३१—३३॥

उन्हें देखकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत व्याकुल हो गये। राजाने डरते हुए उन्हें नमस्कार किया और वे दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३४॥

तत्पश्चात् वरुणदेवकी विधिपूर्वक पूजा करके विनयशील राजा हरिश्चन्द्रने उनसे कहा—हे स्वामिन्! मैं आज ही विधिपूर्वक आपका यज्ञकार्य करूँगा, किंतु हे विभो! इस सम्बन्धमें मुझे आपसे कुछ कहना है, आप एकाग्रचित्त होकर उसे सुनें। हे स्वामिन्! मैं आपके समक्ष उसे अब कह रहा हूँ, यदि आप उचित समझें तो स्वीकार कर लें॥ ३५-३६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण संस्कार-सम्पन्न हो जानेके बाद ही द्विजाति कहलाते हैं, अन्यथा ये शूद्र रहते हैं—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है; इसलिये मेरा यह पुत्र अभी शूद्रके समान है। कोई

तस्मादयं सुतो मेऽद्य शूद्रवद्वर्तते शिशुः।
उपनीतः क्रियार्हः स्यादिति वेदेषु निर्णयः॥ ३८

राज्ञामेकादशे वर्षे सदोपनयनं स्मृतम्।
अष्टमे ब्राह्मणानां च वैश्यानां द्वादशे किल॥ ३९

दयसे यदि देवेश दीनं मां सेवकं तव।
तदोपनीय कर्तास्मि पशुना यज्ञमुत्तमम्॥ ४०

लोकपालोऽसि धर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
मन्यसे मद्वचः सत्यं तद् गच्छ भवनं विभो॥ ४१

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा दयावान् यादसां पतिः।
ओमित्युक्त्वा ययावाशु प्रसन्नवदनो नृपः॥ ४२

गतेऽथ वरुणे राजा बभूवातिमुदान्वितः।
सुखं प्राप्य सुतस्यैवं राजा मुदमवाप ह॥ ४३

चकार राजकार्याणि हरिश्चन्द्रस्तदा नृपः।
कालेन व्रजता पुत्रो बभूव दशवार्षिकः॥ ४४

तस्योपवीतसामग्रीं विभूतिसदृशीं नृपः।
चकार ब्राह्मणैः शिष्टैरन्वितः सचिवैस्तथा॥ ४५

एकादशे सुतस्याब्दे व्रतबन्धविधौ नृपः।
विदधे विधिवत्कार्यं चित्ते चिन्तातुरः पुनः॥ ४६

वर्तमाने तथा कार्ये उपनीते कुमारके।
आजगामाथ वरुणो विप्रवेषधरस्तदा॥ ४७

तं वीक्ष्य नृपतिस्तूर्णं प्रणम्य पुरतः स्थितः।
कृताञ्जलिपुटः प्रीतः प्रत्युवाच सुरोत्तमम्॥ ४८

देव दत्तोपवीतोऽयं पशुयोग्योऽस्ति मे सुतः।
प्रसादात्तव मे शोको गतो वन्ध्यापवादजः॥ ४९

बालक उपनयन-संस्कारसे सम्पन्न हो जानेके पश्चात् ही यज्ञ-क्रियाके योग्य होता है—ऐसा निर्णय वेदोंमें उल्लिखित है। क्षत्रियोंका उपनयन संस्कार ग्यारहवें वर्ष, ब्राह्मणोंका आठवें वर्ष और वैश्योंका बारहवें वर्षमें हो जाना बताया गया है॥ ३७—३९॥

हे देवेश! यदि आप मुझ दीन सेवकपर दया करें तो मैं इसका उपनयनसंस्कार करनेके पश्चात् इसे यज्ञ-पशु बनाकर आपका श्रेष्ठ यज्ञ करूँ॥ ४०॥

सभी शास्त्रोंके विद्वान् तथा धर्मके ज्ञाता हे विभो! आप लोकपाल हैं, यदि आप मेरी बात सत्य मानते हों, तो अपने भवनको लौट जाइये॥ ४१॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर दयालु वरुणदेव 'ठीक है'—ऐसा कहकर वहाँसे तुरंत चले गये और राजा प्रसन्न मुखमण्डलवाले हो गये॥ ४२॥

वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए। इस प्रकार पुत्र-सुख प्राप्त करके राजाको अपार हर्ष प्राप्त हुआ॥ ४३॥

तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र अपने राज-कार्यमें तत्पर हो गये। इस प्रकार समय बीतनेके साथ उनका पुत्र दस वर्षका हो गया॥ ४४॥

तब राजाने श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा सचिवोंकी सम्मतिके अनुसार अपने विभवके अनुरूप राजकुमारके उपनयन-संस्कारकी सामग्री एकत्र की॥ ४५॥

पुत्रका ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही राजाने व्रतबन्धके विधानके अनुसार विधिवत् कार्य आरम्भ किया, किंतु उनके मनमें चिन्ताके कारण बड़ी उद्विग्नता थी। जब राजकुमारका यज्ञोपवीत हो गया तथा इससे सम्बन्धित अन्य कार्य हो रहे थे, उसी समय वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ आ पहुँचे॥ ४६-४७॥

उन्हें देखते ही राजा हरिश्चन्द्र तुरंत प्रणामकर उनके सामने खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक सुरश्रेष्ठ वरुणदेवसे बोले—हे देव! अब यज्ञोपवीत हो जानेके बाद मेरा पुत्र यज्ञपशुके योग्य हो गया है और अब आपकी कृपासे मेरा निःसन्तान रहनेसे होनेवाली लोकनिन्दासे उत्पन्न शोक भी दूर हो चुका है॥ ४८-४९॥

कर्तुमिच्छाम्यहं यज्ञं प्रभूतवरदक्षिणम्।
समये शृणु धर्मज्ञ सत्यमद्य ब्रवीम्यहम्॥ ५०

समावर्तनकर्मान्ते करिष्यामि तवेप्सितम्।
ममोपरि दयां कृत्वा तावत्त्वं क्षन्तुमर्हसि॥ ५१

वरुण उवाच

प्रतारयसि मां राजन् पुत्रप्रेमाकुलो भृशम्।
मुहुर्मुहुर्मतिं कृत्वा युक्तियुक्तां महामते॥ ५२

गच्छाम्यद्य महाराज वचसा तव नोदितः।
आगमिष्यामि समये समावर्तनकर्मणि॥ ५३

इत्युक्त्वा प्रययौ पाशी तमापृच्छ्य विशांपते।
राजा प्रमुदितः कार्यं चकार च यथोत्तरम्॥ ५४

आगतं वरुणं दृष्ट्वा कुमारोऽतिविचक्षणः।
यज्ञस्य समयं ज्ञात्वा तदा चिन्तातुरोऽभवत्॥ ५५

शोकस्य कारणं राज्ञः पर्यपृच्छदितस्ततः।
ज्ञात्वात्मवधमायुष्मन् गमनाय मतिं दधौ॥ ५६

निश्चयं परमं कृत्वा सम्मन्त्र्य सचिवात्मजैः।
प्रययौ नगरात्तस्मान्निर्गत्य वनमप्यसौ॥ ५७

गते पुत्रे नृपः कामं दुःखितोऽभूद् भृशं तदा।
प्रेरयामास दूतान्स्वांस्तस्यान्वेषणकाम्यया॥ ५८

एवं गतेऽथ कालेऽसौ वरुणस्तद्गृहं गतः।
राजानं शोकसन्तप्तं कुरु यज्ञमिति ब्रुवन्॥ ५९

राजा प्रणम्य तं प्राह देवदेव करोमि किम्।
न जाने क्वापि पुत्रो मे गतस्त्वद्य भयाकुलः॥ ६०

अब मैं चाहता हूँ कि प्रचुर दक्षिणावाला आपका श्रेष्ठ यज्ञ उपयुक्त अवसरपर कर डालूँ। हे धर्मज्ञ! आज मैं आपसे सत्य बात कह रहा हूँ, उसे सुन लीजिये। इस बालकके समावर्तन-संस्कारके पश्चात् मैं आपका अभिलषित यज्ञ करूँगा, मेरे ऊपर दया करके आप तबतकके लिये मुझे क्षमा करें॥ ५०-५१॥

वरुण बोले—हे राजन्! हे महामते! अत्यधिक पुत्र-प्रेममें बँधे होनेके कारण आप बार-बार कोई-न-कोई युक्तिसंगत बुद्धिका प्रयोग करके मुझे धोखा देते चले आ रहे हैं। हे महाराज! आपकी बात मानकर आज तो मैं बिना कुछ कहे चला जा रहा हूँ, किंतु समावर्तन-कर्मके समय पुनः आऊँगा॥ ५२-५३॥

हे राजा जनमेजय! राजा हरिश्चन्द्रसे यह कहकर तथा उनसे विदा लेकर वरुणदेव चले गये और राजा हर्षित होकर आगेका काम करने लगे॥ ५४॥

परम प्रतिभासम्पन्न राजकुमार (रोहित) बार-बार वरुणदेवको आते देखकर और यज्ञ-सम्बन्धी प्रतिज्ञा जानकर चिन्तित हो उठे॥ ५५॥

उन्होंने राजाके शोकका कारण इधर-उधर लोगोंसे पूछा। हे आयुष्मान् जनमेजय! वरुणदेवके यज्ञमें होनेवाले अपने वधकी बात जानकर राजकुमारने भाग जानेका निश्चय किया। तदनन्तर मन्त्रिकुमारोंसे परामर्श करनेके बाद दृढ़ निश्चय करके उस नगरसे निकलकर वे वनकी ओर चल पड़े॥ ५६-५७॥

पुत्रके चले जानेपर राजा बहुत दुःखी हुए और उन्होंने राजकुमारको खोजनेके उद्देश्यसे अपने दूतोंको भेजा॥ ५८॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेके पश्चात् वे वरुणदेव शोक-संतप्त राजासे 'मेरा यज्ञ करो'—ऐसा बोलते हुए उनके घर पहुँचे॥ ५९॥

राजाने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे देवदेव! अब मैं क्या करूँ? भयसे व्याकुल होकर मेरा पुत्र न जाने कहाँ चला गया है?॥ ६०॥

सर्वत्र गिरिदुर्गेषु मुनीनामाश्रमेषु च।
अन्वेषितो मे दूतैस्तु न प्राप्तो यादसांपते॥ ६१

आज्ञापय महाराज किं करोमि गते सुते।
न मे दोषोऽत्र सर्वज्ञ भाग्यदोषस्तु सर्वथा॥ ६२

व्यास उवाच

इति भूपवचः श्रुत्वा प्रचेताः कुपितो भृशम्।
शशाप च नृपं क्रोधाद्वञ्चितस्तु पुनः पुनः॥ ६३

नृपतेऽहं त्वया यस्माद्वचसा च प्रवञ्चितः।
तस्माज्जलोदरो व्याधिस्त्वां तुदत्वतिदारुणः॥ ६४

व्यास उवाच

इति शप्तो महीपालः कुपितेन प्रचेतसा।
पीडितोऽभूत्तदा राजा व्याधिना दुःखदेन तु॥ ६५

एवं शप्त्वा नृपं पाशी जगाम निजमास्पदम्।
राजा प्राप्य महाव्याधिं बभूवातीव दुःखितः॥ ६६

हे वरुणदेव! मैंने अपने दूतोंसे पर्वतकी कन्दराओं तथा मुनियोंके आश्रमोंमें उसे सर्वत्र खोजवाया, किंतु वह कहीं नहीं मिला। हे महाराज! पुत्रके चले जानेपर अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? हे सर्वज्ञ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, इसमें हर प्रकारसे भाग्यका ही दोष है॥ ६१-६२॥

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! राजाकी यह बात सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए। राजाके द्वारा बार-बार धोखा दिये जानेके कारण उन्होंने क्रोधपूर्वक शाप दे दिया—'हे राजन्! आपने तरह-तरहकी बातोंसे मुझे सदा धोखा दिया है, इसलिये अत्यन्त भयंकर जलोदर रोग आपको पीड़ित करे'॥ ६३-६४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब वरुणदेवके कुपित होकर इस प्रकारका शाप देनेसे राजा हरिश्चन्द्र कष्टदायक जलोदर रोगसे ग्रस्त हो गये॥ ६५॥

इस प्रकार राजाको शाप देकर पाश धारण करनेवाले वरुणदेव अपने लोकको चले गये और राजा हरिश्चन्द्र उस महाव्याधिसे ग्रस्त होकर महान् कष्टमें पड़ गये॥ ६६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रस्य जलोदरव्याधिप्राप्तिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको स्तम्भमें बाँधकर यज्ञ प्रारम्भ करना

व्यास उवाच

गतेऽथ वरुणे राजा रोगेणातीव पीडितः।
दुःखादुःखं परं प्राप्य व्यथितोऽभूद् भृशं तदा॥ १

कुमारोऽसौ वने श्रुत्वा पितरं रोगपीडितम्।
गमनाय मतिं राजंश्चकार स्नेहयन्त्रितः॥ २

संवत्सरे व्यतीते तु पितरं द्रष्टुमादरात्।
गन्तुकामं तु तं ज्ञात्वा शक्रस्तत्राजगाम ह॥ ३

वासवस्तु तदा रूपं कृत्वा विप्रस्य सत्वरः।
वारयामास युक्त्या वै कुमारं गन्तुमुद्यतम्॥ ४

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र [जलोदर] रोगसे अत्यन्त पीड़ित हुए; एक-पर-एक महान् कष्ट पाकर वे अति व्याकुल हो उठे॥ १॥

हे राजन्! वनमें स्थित राजकुमार रोहितने अपने पिताके [जलोदर] रोगसे पीड़ित होनेकी बात सुनकर स्नेहमें बँधे होनेके कारण [अयोध्या] लौट जानेका विचार किया॥ २॥

एक वर्ष बीतनेपर जब रोहितने अपने पिताका आदरपूर्वक दर्शन करनेके लिये अयोध्या जानेकी इच्छा की तब यह जानकर इन्द्र उसके पास पहुँचे। शीघ्र ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्रने अपने पिताके दर्शनार्थ जानेको उद्यत राजकुमारको युक्तिपूर्वक रोका॥ ३-४॥

इन्द्र उवाच

राजपुत्र न जानासि राजनीतिं सुदुर्लभाम्।
अतः करोषि मूढस्त्वं गमनाय मतिं वृथा॥ ५

पिता तव महाभाग ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
कारयिष्यति होमं ते ज्वलितेऽथ विभावसौ॥ ६

आत्मा हि वल्लभस्तात सर्वेषां प्राणिनां खलु।
तदर्थे वल्लभाः सन्ति पुत्रदारधनादयः॥ ७

आत्मनो देहरक्षार्थं हत्वा त्वां वल्लभं सुतम्।
हवनं कारयित्वासौ रोगमुक्तो भविष्यति॥ ८

तस्मात्त्वया न गन्तव्यं राजपुत्र पितुर्गृहे।
मृते पितरि गन्तव्यं राज्यार्थे सर्वथा पुनः॥ ९

एवं निषेधितस्तत्र वासवेन नृपात्मजः।
वनमध्ये स्थितः कामं पुनः संवत्सरं नृप॥ १०

अत्यन्तं दुःखितं श्रुत्वा हरिश्चन्द्रं तदात्मजः।
गमनाय मतिं चक्रे मरणे कृतनिश्चयः॥ ११

तुराषाड् द्विजरूपेण तत्रागत्य च रोहितम्।
निवारयामास सुतं युक्तिवाक्यैः पुनः पुनः॥ १२

हरिश्चन्द्रोऽतिदुःखार्तो वसिष्ठं स्वपुरोहितम्।
पप्रच्छ रोगनाशाय तत्रोपायं सुनिश्चितम्॥ १३

तमाह ब्रह्मणः पुत्रो यज्ञं कुरु नृपोत्तम।
क्रयक्रीतेन पुत्रेण शापमोक्षो भविष्यति॥ १४

पुत्रा दशविधाः प्रोक्ता ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
द्रव्येणानीय तस्मात्त्वं पुत्रं कुरु नृपोत्तम॥ १५

वरुणोऽपि प्रसन्नः सन्सुखकारी भविष्यति।
लोभात्कोऽपि द्विजः पुत्रं प्रदास्यति स्वराष्ट्रजः॥ १६

इन्द्र बोले—हे राजपुत्र! आप अत्यन्त दुष्कर राजनीतिके विषयमें नहीं जानते, इसीलिये मूर्खताको प्राप्त आपने अयोध्या जानेका व्यर्थ ही विचार किया है॥ ५॥

हे महाभाग! [आपके वहाँ जानेपर] आपके पिता वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंके द्वारा कराये गये यज्ञमें प्रज्वलित अग्निमें आपकी आहुति दे देंगे॥ ६॥

हे तात! अपना प्राण सभी जीवोंको अवश्य ही अत्यन्त प्रिय होता है। उसीकी रक्षाके लिये पुत्र, स्त्री और धन आदि प्रिय लगते हैं॥ ७॥

अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त आप-जैसे प्रिय पुत्रका अग्निमें हवन करवाकर वे रोगसे मुक्त हो जायँगे। अतएव हे राजपुत्र! इस समय आपको पिताके घर नहीं जाना चाहिये। पिताके मर जानेपर ही राज्य करनेके लिये आप वहाँ जायँ॥ ८-९॥

[हे राजन्!] इस प्रकार इन्द्रके मना कर देनेपर राजकुमार रोहित उस वनमें एक वर्षतक रुके रह गये॥ १०॥

इसके बाद राजकुमारने जब सुना कि मेरे पिता अब बहुत दुःखी हैं, तब उसने मर जानेका निश्चय करके उनके पास जानेका दृढ़ विचार कर लिया॥ ११॥

तब इन्द्रने पुनः ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आकर राजकुमारको अपनी तर्कसंगत बातोंसे बार-बार समझाकर उसे अयोध्या जानेसे रोक दिया॥ १२॥

इधर, कष्टसे अत्यधिक पीड़ित राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे इस रोगके नाशका निश्चित उपाय पूछा॥ १३॥

इसपर ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजीने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! अब आप धनके द्वारा खरीदे गये पुत्रसे यज्ञ कीजिये; इससे आप शापसे मुक्त हो जायँगे॥ १४॥

हे नृपश्रेष्ठ! वेदके पारगामी ब्राह्मणोंने दस प्रकारके पुत्र बतलाये हैं। अतः आप अपने द्रव्यसे क्रीत एक बालकको ले आकर उसे अपना पुत्र बना लीजिये। इससे वरुणदेव भी प्रसन्न होकर आपके लिये सुखकारी हो जायँगे। आपके राज्यका कोई-न-कोई द्विज धनके लोभसे अपना पुत्र बेच भी देगा॥ १५-१६॥

एवं प्रमोदितो राजा वसिष्ठेन महात्मना।
प्रधानं प्रेरयामास तदन्वेषणकाम्यया॥ १७

अजीगर्तो द्विजः कश्चिद्विषये तस्य भूपतेः।
तस्यासंश्च त्रयः पुत्रा निर्धनस्य विशेषतः॥ १८

प्रधानेनाप्यसौ पृष्टः पुत्रार्थं दुर्बलो द्विजः।
गवां शतं ददामीति देहि पुत्रं मखाय वै॥ १९

शुनःपुच्छः शुनःशेपः शुनोलांगूल इत्यमी।
तेषामेकतमं देहि ददामि तु गवां शतम्॥ २०

अजीगर्तस्तु तच्छ्रुत्वा क्षुधया पीडितो भृशम्।
पुत्रं च कतमं तेभ्यो विक्रेतुं वै मनो दधे॥ २१

कार्याधिकारिणं ज्येष्ठं मत्वा नासावदादमुम्।
कनिष्ठं नाप्यदान्माता ममैष इति वादिनी॥ २२

मध्यमं च शुनःशेपं ददौ गवां शतेन च।
आनिनाय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः॥ २३

रुदन्तं दुःखितं दीनं वेपमानं भृशातुरम्।
यूपे बद्धं निरीक्ष्यामुं चुक्रुशुर्मुनयस्तदा॥ २४

शामित्राय पशुं चक्रे नरमेधे नराधिपः।
शमिता नाददे शस्त्रं तमालम्भयितुं शिशुम्॥ २५

नाहं द्विजसुतं दीनं रुदन्तं करुणं भृशम्।
हनिष्यामि स्वलोभार्थमित्युवाचाप्यसौ तदा॥ २६

इत्युक्त्वा विररामासौ कर्मणो दुष्करादथ।
राजा सभासदः प्राह किं कर्तव्यमिति द्विजाः॥ २७

जातः किलकिलाशब्दो जनानां क्रोशतां तदा।
क्रन्दमाने शुनःशेपे सभायां भृशमद्भुतम्॥ २८

महात्मा वसिष्ठजीकी बातसे परम प्रसन्नताको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रने वैसा बालक ढूँढ़नेके उद्देश्यसे अपने प्रधान अमात्यको भेज दिया॥ १७॥

राजा हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त नामक कोई ब्राह्मण रहता था। अति निर्धन उस ब्राह्मणके तीन पुत्र थे। पुत्र खरीदनेके लिये गये हुए प्रधान सचिवने उस दुर्बल ब्राह्मणसे कहा—मैं आपको एक सौ गायें दूँगा; आप अपना पुत्र यज्ञके लिये मुझे दे दीजिये। 'शुनःपुच्छ', 'शुनःशेप' तथा 'शुनोलांगूल' नामक जो आपके तीन पुत्र हैं, उनमेंसे कोई एक मुझे दे दीजिये और उसके बदले मैं आपको एक सौ गायें दे दूँगा। यह सुनकर भूखसे अत्यधिक व्याकुल अजीगर्तने उनमेंसे किसी एक पुत्रको बेच डालनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ १८—२१॥

ज्येष्ठ पुत्र पिण्डदान आदि कर्मोंका अधिकारी होता है—ऐसा सोचकर अजीगर्तने उसे नहीं दिया। कनिष्ठ पुत्रको ममताके कारण माताने यह कहकर नहीं दिया कि यह मेरा है। अतः अजीगर्तने एक सौ गायें लेकर अपने मँझले पुत्र शुनःशेपको बेच दिया। तब मन्त्री उसे राजाके पास ले गये और राजाने उसे यज्ञमें बलिपशु बनाया॥ २२-२३॥

यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधे गये उस बालकको रोते हुए, दुःखित, दीन, भयके मारे थर-थर काँपते हुए तथा अत्यधिक व्याकुल देखकर उस समय ऋषिगण भी चिल्ला उठे॥ २४॥

तभी राजा हरिश्चन्द्रने नरमेध-यज्ञमें वध करनेके लिये उस बालकको पशुरूपसे शामित्र (वधकर्ता)-को सौंप दिया, किंतु उसने आलम्भनके लिये उसपर शस्त्र नहीं चलाया। उस समय उसने यह भी कहा—'मैं दुःखित तथा करुण स्वरसे बहुत विलाप करते हुए इस ब्राह्मणपुत्रको धनके लोभमें आकर नहीं मारूँगा'। ऐसा कहकर वह उस घृणित कर्मसे विरत हो गया। तब राजा हरिश्चन्द्रने सभासदोंसे पूछा—'हे विप्रगण! अब क्या किया जाय?'॥ २५—२७॥

उसी समय शुनःशेपके बड़े विचित्र ढंगसे करुण-क्रन्दन करनेपर सभामें चीखती-चिल्लाती जनताके बीच हाहाकार मच गया॥ २८॥

अजीगर्तस्तदोत्थाय तमुवाच नृपोत्तमम्।
राजन् कार्यं करिष्यामि तवाहं सुस्थिरो भव॥ २९

वेतनं द्विगुणं देहि हनिष्यामि पशुं किल।
कर्तव्यं मखकार्यं वै मया तेऽद्य धनार्थिना॥ ३०

दुःखितस्य धनार्थस्य सदासूया प्रसूयते।

व्यास उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य हरिश्चन्द्रो मुदान्वितः॥ ३१

तमुवाच ददाम्यद्य गवां शतमनुत्तमम्।
तदाकर्ण्य पिता तस्य पुत्रं हन्तुं समुद्यतः॥ ३२

लोभेनाकुलचित्तोऽसौ शामित्रे कृतनिश्चयः।
समुद्यतं च तं दृष्ट्वा जनाः सर्वे सभासदः॥ ३३

चुक्रुशुर्भृशदुःखार्ता हाहेति जगदुर्वचः।
पिशाचोऽयं महापापी क्रूरकर्मा द्विजाकृतिः॥ ३४

यत्स्वयं स्वसुतं हन्तुमुद्यतः कुलपांसनः।
धिक्चाण्डाल किमेतत्ते पापकर्म चिकीर्षितम्॥ ३५

हत्वा सुतं धनं प्राप्य किं सुखं ते भविष्यति।
आत्मा वै जायते पुत्र अङ्गाद्वै वेदभाषितम्॥ ३६

तत्कथं पापबुद्धे त्वमात्मानं हन्तुमिच्छसि।
एवं कोलाहले तत्र जाते कुशिकनन्दनः॥ ३७

समीपं नृपतेर्गत्वा तमुवाच दयापरः।

विश्वामित्र उवाच

राजन्नमुं शुनःशेपं रुदन्तं भृशदुःखितम्॥ ३८

क्रतुस्ते भविता पूर्णो रोगनाशश्च सर्वथा।

तभी अजीगर्त उठकर उन नृपश्रेष्ठसे बोला—हे राजन्! आप निश्चिन्त रहें, मैं स्वयं आपका यह कार्य करूँगा। उस (वधकर्ता)-को दिये जानेवाले धनसे दूना धन मुझे दीजिये, तो मैं इस बलिपशुका वध अवश्य कर दूँगा। धन-लोलुप होनेके कारण मैं आज आपका यज्ञकार्य निश्चित-रूपसे पूर्ण कर दूँगा; जो दुःखी है अथवा धनका लोभी है, उसके गुणोंमें भी दोष आ जाते हैं॥ २९-३०½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजीगर्तकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले कि मैं अभी एक सौ श्रेष्ठ गायें आपको दूँगा॥ ३१½ ॥

उनकी यह बात सुनकर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेपका वध करने हेतु तैयार हो गया। लोभके कारण उद्विग्न चित्तवाले अजीगर्तने शामिता बननेका पूर्ण निश्चय कर लिया॥ ३२½ ॥

उसे हथियार उठाकर अपने पुत्रको मारनेहेतु उद्यत देखकर वहाँ उपस्थित सभासद्गण तथा सारी जनता दुःखसे विकल होकर चीखने-चिल्लाने लगी तथा हाय-हाय करते हुए कहने लगी कि ब्राह्मणके रूपमें यह पिशाच, महापापी तथा क्रूर कर्म करनेवाला है; यह अपने कुलको कलंकित करता हुआ स्वयं अपने ही पुत्रका वध करनेके लिये उद्यत है। हे चाण्डाल! तुम्हें धिक्कार है, तुमने यह पापकर्म करनेकी इच्छा क्यों की? पुत्रका वध करनेके बाद धन प्राप्त करके तुम कौन-सा सुख पा जाओगे? वेदोंमें कहा गया है कि पुत्ररूपमें अपनी आत्मा ही शरीरसे जन्म लेती है, इसलिये हे पापबुद्धि! तुम अपनी ही आत्माका वध किसलिये करना चाहते हो?। यज्ञस्थलमें इस प्रकारका कोलाहल होनेपर विश्वामित्रजी दयार्द्र हो गये और वे राजा हरिश्चन्द्रके पास जाकर उनसे कहने लगे॥ ३३—३७½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अत्यधिक दुःखित होकर करुण क्रन्दन करते हुए इस शुनःशेपको आप पाशमुक्त कर दीजिये। ऐसा करनेसे एक तो यज्ञ पूरा होगा और आपका रोग भी दूर हो जायगा॥ ३८½ ॥

दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥ ३९

रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय।
आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृन्तनम्॥ ४०

न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता।
दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥ ४१

सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः।
आत्मवत्सर्वभूतेषु चिन्तनीयं नृपोत्तम॥ ४२

जीवितव्यं प्रियं नूनं सर्वेषां सर्वदा किल।
त्वमिच्छसि सुखं कर्तुं देहे हत्वा त्वमुं द्विजम्॥ ४३

कथं नेच्छेदसौ देहं रक्षितुं स्वसुखास्पदम्।
पूर्वजन्मकृतं वैरं नानेन सह ते नृप॥ ४४

येनामुं हन्तुकामस्त्वं द्विजपुत्रं निरागसम्।

यो यं हन्ति विना वैरं स्वकामः सततं पुनः॥ ४५

हन्तारं हन्ति तं प्राप्य जननं जननान्तरे।
जनकोऽस्य सुदुष्टात्मा येनासौ ते समर्पितः॥ ४६

स्वात्मजो धनलोभेन पापाचारः सुदुर्मतिः।
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ ४७

यजेत चाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्।

दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। यज्ञोंमें हिंसा करनेका जो विधिवाद बना, उसका उद्देश्य जिह्वालोलुपोंके जिह्वास्वादकी पूर्तिके माध्यमसे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना है, किंतु यथासम्भव हिंसासे विरत रहना ही शास्त्रका आशय है*॥ ३९½ ॥

हे महाराज! सब प्रकारसे अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको अपने शरीरकी रक्षाके लिये दूसरेके शरीरको विनष्ट नहीं करना चाहिये॥ ४०½ ॥

जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय; उसीसे सन्तोष करता और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४१½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! सभी प्राणियोंमें आत्मभावका चिन्तन करना चाहिये। जिस प्रकार अपनेको देह प्रिय होती है, उसी प्रकार सभी जीवोंको अपना शरीर प्रिय होता है। आप इस शुनःशेप द्विजका वध करके शरीरको रोगमुक्त करके सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह बालक सुखके आश्रयस्वरूप अपने देहको क्यों नहीं बचाना चाहेगा॥ ४२-४३½ ॥

हे नृप! इसके साथ आपका पूर्वजन्मका कोई वैर नहीं है, जो कि आप इस निरपराध द्विजपुत्रका वध करनेके इच्छुक हैं। जो व्यक्ति सदा अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये बिना वैरभावके ही किसी प्राणीका वध करता है, दूसरी योनिमें जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ताका वध करता है॥ ४४-४५½ ॥

इस बालकका पिता अत्यन्त दुष्टात्मा, दुर्बुद्धि तथा पापाचारी है, जिसने धनके लोभमें अपने ही पुत्रको आपके हाथों बेच डाला॥ ४६½ ॥

लोगोंको यह इच्छा रखनी चाहिये कि मेरे बहुतसे पुत्र हों, जिससे उनमेंसे कोई एक भी पुत्र गयातीर्थ जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ छोड़े॥ ४७½ ॥

---

* **लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा॥**

(वेद विधिके रूपमें ऐसे ही कर्मोंके करनेकी आज्ञा देता है कि जिनमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।) संसारमें देखा जाता है कि मैथुन, मांस और मद्यकी ओर प्राणीकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। तब उसे उसमें प्रवृत्त करनेके लिये विधान तो हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें विवाह, यज्ञ और सौत्रामणियज्ञके द्वारा ही जो उनके सेवनकी व्यवस्था दी गयी है, उसका अर्थ है लोगोंकी उच्छृंखल प्रवृत्तिका नियन्त्रण, उनका मर्यादामें स्थापन। वास्तवमें उनकी ओरसे लोगोंको हटाना ही श्रुतिको अभीष्ट है। (श्रीमद्भा० ११।५।११)

देशमध्ये च यः कश्चित्पापकर्म समाचरेत्॥ ४८

षष्ठांशस्तस्य पापस्य राजा भुङ्क्ते न संशयः।
निषेधनीयो राज्ञासौ पापं कर्तुं समुद्यतः॥ ४९

न निषिद्धस्त्वया कस्मात्पुत्रं विक्रेतुमुद्यतः।
सूर्यवंशे समुत्पन्नस्त्रिशङ्कुतनयः शुभः॥ ५०

आर्यस्त्वनार्यवत्कर्म कर्तुमिच्छसि पार्थिव।
मोचनान्मुनिपुत्रस्य करणाद्वचनस्य मे॥ ५१

तव देहे सुखं राजन् भविष्यत्यविचारणात्।
पिता ते शापयोगेन चाण्डालत्वमुपागतः॥ ५२

मयासौ तेन देहेन स्वर्लोकं प्रापितः किल।
तेनैव प्रीतियोगेन कुरु मे वचनं नृप॥ ५३

मुञ्चैनं बालकं दीनं रुदन्तं भृशमातुरम्।
याचितोऽसि मया नूनं यज्ञेऽस्मिन् राजसूयके॥ ५४

प्रार्थनाभङ्गजं दोषं कथं त्वं नावबुध्यसे।
प्रार्थितं सर्वदा देयं मखेऽस्मिन्नृपसत्तम॥ ५५

अन्यथा पापमेव स्यात्तव राजन्न संशयः।

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा कौशिकस्य नृपोत्तमः॥ ५६

प्रत्युवाच महाराज कौशिकं मुनिसत्तमम्।

जलोदरेण गाधेय दुःखितोऽहं भृशं मुने॥ ५७

तस्मान्न मोचयाम्येनमन्यत्प्रार्थय कौशिक।
न त्वया विग्रहः कार्यः कार्येऽस्मिन्मम सर्वथा॥ ५८

तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो विश्वामित्रोऽतिकोपनः।
बभूव दुःखसन्तप्तो वीक्ष्य दीनं द्विजात्मजम्॥ ५९

[हे राजन्!] राज्यमें जो कोई भी व्यक्ति पापकर्म करता है तो उसके पापका छठाँ अंश राजाको भोगना पड़ता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अतः राजाको चाहिये कि पापकर्म करनेके लिये उद्यत उस व्यक्तिको मना करे, तो फिर आपने पुत्रको बेचनेके लिये तत्पर उस अजीगर्तको क्यों नहीं रोका?॥ ४८-४९½ ॥

हे राजन्! आप सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं और महाराज त्रिशंकुके कल्याणकारी पुत्र हैं। आप आर्य होकर भी अनार्यों-जैसा कर्म करना चाहते हैं?॥ ५०½ ॥

हे राजन्! मेरी बात मानकर मुनिपुत्र शुनःशेपको बन्धनमुक्त कर देनेसे आपका देह अवश्य ही रोगमुक्त हो जायगा॥ ५१½ ॥

महर्षि वसिष्ठके शापके कारण आपके पिता चाण्डाल हो गये थे, तब मैंने उसी देहसे उन्हें स्वर्गलोक पहुँचा दिया था। हे राजन्! उसी उपकारको समझकर आप मेरी बात मान लीजिये और अत्यधिक विलाप करते हुए इस दीन तथा भयाकुल बालकको मुक्त कर दीजिये॥ ५२-५३½ ॥

हे राजन्! आपके इस राजसूययज्ञमें मैं आपसे मात्र इसकी प्राण-रक्षाकी याचना कर रहा हूँ। क्या आप प्रार्थनाभंगसे होनेवाले दोषके विषयमें नहीं जानते? हे नृपश्रेष्ठ! इस राजसूययज्ञमें प्रार्थीको उसकी कामनाके अनुकूल वस्तु दी जानी चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको पाप ही लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४-५५½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] विश्वामित्रकी यह बात सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रसे कहा—गाधिपुत्र! मुने! मैं जलोदर रोगसे बहुत पीड़ित हूँ, इसलिये इस बालकको नहीं छोड़ सकता। हे कौशिक! इसके अतिरिक्त आप दूसरी वस्तु माँग लीजिये और मेरे इस कार्यमें किसी तरहकी बाधा मत उत्पन्न कीजिये॥ ५६—५८॥

राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर तथा दुःखित ब्राह्मण-पुत्र शुनःशेपको देखकर मुनि विश्वामित्र अत्यधिक कुपित हो उठे॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे यज्ञपशुभूतस्य ब्राह्मणपुत्रस्य वधकरणाय विश्वामित्रनिषेधवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

~~O~~

अथ सप्तदशोऽध्यायः

विश्वामित्रका शुनःशेपको वरुणमन्त्र देना और उसके जपसे वरुणका प्रकट होकर उसे बन्धनमुक्त तथा राजाको रोगमुक्त करना, राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसासे विश्वामित्रका वसिष्ठपर क्रोधित होना

व्यास उवाच

रुदन्तं बालकं वीक्ष्य विश्वामित्रो दयातुरः।
शुनःशेपमुवाचेदं गत्वा पार्श्वेऽतिदुःखितम्॥ १

मन्त्रं प्रचेतसः पुत्र मयोक्तं मनसा स्मरन्।
जपतस्तव कल्याणं भविष्यति ममाज्ञया॥ २

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा शुनःशेपः शुचाकुलः।
मन्त्रं जजाप मनसा कौशिकोक्तं स्फुटाक्षरम्॥ ३

जपतस्तत्र तस्याशु प्रचेतास्तु कृपाकरः।
प्रादुर्बभूव सहसा प्रसन्नो नृप बालके॥ ४

दृष्ट्वा तमागतं सर्वे विस्मयं परमं गताः।
तुष्टुवुर्वरुणं देवं मुदिता दर्शनेन ते॥ ५

राजातिविस्मितः पादौ प्रणनाम रुजातुरः।
बद्धाञ्जलिपुटो देवं तुष्टाव पुरतः स्थितम्॥ ६

हरिश्चन्द्र उवाच

देवदेव कृपासिन्धो पापात्माहं सुमन्दधीः।
कृतापराधः कृपणः पावितः परमेष्ठिना॥ ७

मया ते पुत्रकामेन दुःखसंस्थेन हेलनम्।
कृतं क्षमाप्यं प्रभुणा कोऽपराधः सुदुर्मतेः॥ ८

व्यासजी बोले—राजन्! अत्यन्त दुःखित तथा करुण-क्रन्दन करते हुए बालक शुनःशेपको देखकर महर्षि विश्वामित्रको बड़ी दया आयी और वे उसके पास जाकर यह बोले—'हे पुत्र! मैं तुम्हें वरुणदेवका मन्त्र बतला रहा हूँ। तुम मनमें उनका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। मेरी आज्ञासे इसका जप करनेसे तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा'॥ १-२॥

दुःखसे अत्यन्त व्यग्र शुनःशेप मुनि विश्वामित्रकी बात सुनकर उनके द्वारा बताये गये स्पष्ट अक्षरोंवाले उस मन्त्रका मन-ही-मन जप करने लगा॥ ३॥

हे राजन्! शुनःशेपके जप करते ही कृपानिधान वरुणदेव उस बालकपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही प्रकट हो गये॥ ४॥

इस प्रकार वहाँ प्रकट हुए वरुणदेवको देखकर सभी लोग अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। उनके दर्शनसे आनन्दित होकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

जलोदर रोगसे पीड़ित राजा हरिश्चन्द्र अतीव विस्मित होकर उनके चरणोंमें प्रणाम करने लगे और दोनों हाथ जोड़कर वे अपने सम्मुख स्थित वरुणदेवकी स्तुति करने लगे॥ ६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवदेव! हे कृपासागर! आप परमेश्वरने यहाँ आकर मुझ पापात्मा, अत्यन्त मन्दबुद्धि, अपराधी तथा भाग्यहीनको आज पवित्र कर दिया है॥ ७॥

मैं पुत्रके अभावमें दुःखित था और आपकी कृपासे पुत्र होनेपर आपकी अवहेलना की। अतः आप प्रभु मेरे द्वारा किये गये अपराधको क्षमा कर दें; क्योंकि भ्रष्ट बुद्धिवालेका दोष ही क्या?॥ ८॥

अर्थी दोषं न जानाति तस्मात्पुत्रार्थिना मया।
वञ्चितस्त्वं देवदेव भीतेन नरकाद्विभो॥ ९

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च।
भीतोऽहं तेन वाक्येन तस्मात्ते हेलनं कृतम्॥ १०

नाज्ञस्य दूषणं चिन्त्यं नूनं ज्ञानवता विभो।
दुःखितोऽहं रुजाक्रान्तो वञ्चितः स्वसुतेन ह॥ ११

न जानेऽहं महाराज पुत्रो मे क्व गतः प्रभो।
वञ्चयित्वा वने भीतो मरणान्मां कृपानिधे॥ १२

प्रययौ द्रविणं दत्त्वा गृहीतो द्विजबालकः।
यज्ञोऽयं क्रीतपुत्रेण प्रारब्धस्तव तुष्टये॥ १३

दर्शनं तव सम्प्राप्य गतं दुःखं ममाद्भुतम्।
जलोदरकृतं सर्वं प्रसन्ने त्वयि साम्प्रतम्॥ १४

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राज्ञो रोगातुरस्य च।
दयावान्देवदेवेशः प्रत्युवाच नृपोत्तमम्॥ १५

वरुण उवाच

मुञ्च राजञ्छुनःशेपं स्तुवन्तं मां भृशातुरम्।
यज्ञोऽयं परिपूर्णस्ते रोगमुक्तो भवात्मना॥ १६

इत्युक्त्वा वरुणस्तूर्णं राजानं विरुजं तथा।
चकार पश्यतां तत्र सदस्यानां सुसंस्थितम्॥ १७

विमुक्तोऽसौ द्विजः पाशाद्वरुणेन महात्मना।
जयशब्दस्ततस्तत्र सञ्जातो मखमण्डपे॥ १८

राजा प्रमुदितः सद्यो रोगान्मुक्तः सुदारुणात्।
यूपान्मुक्तः शुनःशेपो बभूवातीव संस्थितः॥ १९

हे देवदेव! स्वार्थपरायण व्यक्तिको अपने दोषका ज्ञान नहीं रहता। इसीलिये पुत्र पानेका स्वार्थी मैं अपना दोष नहीं देख सका और हे विभो! नरकमें पड़नेके भयसे आपको धोखा देता रहा। पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग नहीं मिलता—इस शास्त्रवचनसे मैं डर गया था, इसीलिये मैंने आपकी अवहेलना की॥ ९-१०॥

हे विभो! आप ज्ञानसम्पन्न हैं, अतः मुझ अज्ञानीके अपराधपर ध्यान न दें। इस समय मैं बहुत दुःखित तथा भयंकर रोगसे ग्रस्त हूँ और अपने पुत्रसे वंचित हो गया हूँ॥ ११॥

हे महाराज! हे प्रभो! मुझे ज्ञात नहीं कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया है। हे कृपानिधे! ऐसा प्रतीत होता है कि मारे जानेके डरसे वह मुझे धोखा देकर वनमें चला गया है। तब मैंने धन देकर इस ब्राह्मण-बालकको खरीदा और फिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये इस क्रीतपुत्रसे यह यज्ञ आरम्भ कर दिया। अब आपका दर्शन प्राप्त हो जानेसे मेरा महान् दुःख दूर हो गया और आपके प्रसन्न हो जानेपर [भयंकर] जलोदर रोगसे होनेवाला सारा कष्ट भी समाप्त हो जायगा॥ १२—१४॥

व्यासजी बोले—रोगग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर देवदेवेश्वर दयालु वरुण नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रसे कहने लगे—॥ १५॥

वरुण बोले—हे राजन्! अत्यन्त दुःखी होकर मेरी स्तुति करते हुए इस शुनःशेपको आप मुक्त कर दें। अब आपका यह यज्ञ भलीभाँति पूरा हो जायगा और आप रोगसे भी मुक्त हो जायँगे॥ १६॥

यह कहकर वरुणदेवने वहाँ यज्ञमण्डपमें स्थित राजा हरिश्चन्द्रको सभी सभासदोंके समक्ष ही रोगरहित कर दिया॥ १७॥

महात्मा वरुणदेवके द्वारा उस ब्राह्मणपुत्रके बन्धनमुक्त करा देनेपर वहाँ यज्ञमण्डपमें जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ १८॥

अत्यन्त भीषण रोगसे तत्काल मुक्त हो जानेपर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और शुनःशेप भी यज्ञस्तम्भसे मुक्त होकर अत्यन्त स्वस्थचित्त हो गया॥ १९॥

राजा त्विमं मखं पूर्णं चकार विनयान्वितः।
शुनःशेपस्तदा सभ्यानित्युवाच कृताञ्जलिः॥ २०

भो भोः सभ्याः सुधर्मज्ञाः ब्रुवन्तु धर्मनिर्णयम्।
वेदशास्त्रानुसारेण यथार्थवादिनः किल॥ २१

पुत्रोऽहं कस्य सर्वज्ञाः पिता मे कोऽग्रतः परम्।
भवतां वचनात्तस्य शरणं प्रव्रजाम्यहम्॥ २२

इत्युक्ते वचने तत्र सभ्याः प्रोचुः परस्परम्।

सभ्या ऊचुः

अजीगर्तस्य पुत्रोऽयं कस्यान्यस्य भवेदसौ॥ २३

अङ्गादङ्गात्समुद्भूतः पालितस्तेन भक्तितः।
अन्यस्य कस्य पुत्रोऽसौ प्रभवेदिति निश्चयः॥ २४

तच्छ्रुत्वा वामदेवस्तु तानुवाच सभासदः।
विक्रीतस्तेन तातेन द्रव्यलोभात्सुतः किल॥ २५

पुत्रोऽयं धनदातुश्च राज्ञस्तत्र न संशयः।
अथवा वरुणस्यैष पाशान्मुक्तोऽस्त्यनेन वै॥ २६

अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः।
तथा वित्तप्रदश्चैव पञ्चैते पितरः स्मृताः॥ २७

तदा केचित्पितुः प्राहुः केचिद्राज्ञस्तथापरे।
वरुणस्येति संवादे निर्णयं न ययुश्च ते॥ २८

इत्थं सन्देहमापन्ने वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत्।
सभ्यान्विवदतस्तत्र सर्वज्ञः सर्वपूजितः॥ २९

शृणुध्वं भो महाभागा निर्णयं श्रुतिसम्मतम्।
निःस्नेहेन यदा पित्रा विक्रीतोऽयं सुतः शिशुः॥ ३०

सम्बन्धस्तु गतस्तस्य तदैव धनसंग्रहात्।
हरिश्चन्द्रस्य सञ्जातः पुत्रोऽसौ क्रीत एव च॥ ३१

तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक इस यज्ञको सम्पन्न किया। इसके बाद शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा—हे सभासद्गण! आपलोग धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता तथा यथार्थवादी हैं; अतः आपलोग वेदशास्त्रानुसार धर्मका निर्णय कीजिये॥ २०-२१॥

हे सर्वज्ञ [ऋषिगण]! अब मैं किसका पुत्र हुआ और आगे मेरा पिता कौन होगा? आपलोगोंके वचनानुसार ही मैं उसीकी शरणमें जाऊँगा। शुनःशेपके द्वारा यह वचन कहे जानेपर सभी सभासद् आपसमें परामर्श करने लगे॥ २२½॥

सभासद् बोले—यह तो अजीगर्तका पुत्र है, तब यह अन्य किसका पुत्र हो सकता है? यह उसीके अंगसे उत्पन्न हुआ है तथा उसीने स्नेहपूर्वक इसका लालन-पालन किया है तो फिर यह अन्य किस व्यक्तिका पुत्र हो सकता है, हमलोगोंका यही निर्णय है॥ २३-२४॥

यह निर्णय सुनकर महर्षि वामदेवने उन सभासदोंसे कहा कि उस पिताने धनके लोभसे अपने पुत्रको बेच दिया है, इसलिये अब यह बालक धन देकर क्रय करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र हुआ; इसमें संशय नहीं है। अथवा यह वरुणदेवका पुत्र हुआ; क्योंकि इन्होंने ही इसे बन्धनसे मुक्त कराया है॥ २५-२६॥

अन्न प्रदान करनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्याका दान करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और जन्म देनेवाला—ये पाँच पिता कहे गये हैं॥ २७॥

उस समय कुछ सभासदोंने उसे पिता अजीगर्तका पुत्र, कुछ सभासदोंने राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र और अन्यने उसे वरुणदेवका पुत्र बतलाया। इस प्रकार परस्पर बातचीतमें वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे॥ २८॥

इस तरहकी सन्देहकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर सर्वज्ञ तथा सर्वपूजित महर्षि वसिष्ठने वहाँ परस्पर विवाद करते हुए सभासदोंसे यह बात कही—हे महाभाग! अब आपलोग मेरा वेदानुकूल निर्णय सुनिये—जिस समय इसके पिता अजीगर्तने स्नेहका त्याग करके इस बालकको बेच दिया था, उसी समय धन लेते ही अपने पुत्रसे उसका सम्बन्ध समाप्त हो गया और यह राजा हरिश्चन्द्रका क्रीतपुत्र हो गया।

यूपे बद्धो यदा राज्ञा तदा तस्य न वै सुतः।
वरुणस्तु स्तुतोऽनेन तेन तुष्टेन मोचितः॥ ३२

तस्मान्नायं महाभागा ह्यसौ पुत्रः प्रचेतसः।
यो यं स्तौति महामन्त्रैः सोऽपि तुष्टो ददाति च॥ ३३

धनं प्राणान्पशून् राज्यं तथा मोक्षं किलेप्सितम्।
कौशिकस्य सुतश्चायमरिष्टे येन रक्षितः॥ ३४

मन्त्रं दत्त्वा महावीर्यं वरुणस्यातिसङ्कटे।

व्यास उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसिष्ठस्य बाढमूचुः सभासदः॥ ३५

विश्वामित्रस्तु जग्राह तं करे दक्षिणे तदा।
एहि पुत्र गृहं मे त्वमित्युक्त्वा प्रेमपूरितः॥ ३६

शुनःशेपो जगामाशु तेनैव सह सत्वरः।
वरुणस्तु प्रसन्नात्मा जगाम च स्वमालयम्॥ ३७

ऋत्विजश्च तथा सभ्याः स्वगृहान्निर्ययुस्तदा।
राजापि रोगनिर्मुक्तो बभूवातिमुदान्वितः॥ ३८

प्रजास्तु पालयामास सुप्रसन्नेन चेतसा।
रोहिताख्यस्तु तच्छ्रुत्वा वृत्तान्तं वरुणस्य ह॥ ३९

आजगाम गृहं प्रीतो दुर्गमाद्वनपर्वतात्।
दूता राजानमभ्येत्य प्रोचुः पुत्रं समागतम्॥ ४०

मुदितोऽसौ जगामाशु सम्मुखः कोसलाधिपः।
दृष्ट्वा पितरमायान्तं प्रेमोद्रिक्तः सुसम्भ्रमः॥ ४१

दण्डवत्पतितो भूमावश्रुपूर्णमुखः शुचा।

बादमें जब राजाने यज्ञके स्तम्भमें इस बालकको बाँध दिया, तब यह उनका भी पुत्र नहीं रहा। जब इसने वरुणदेवकी स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर इसे बन्धनमुक्त करा दिया, अतः हे महाभाग सभासद्गण! यह वरुणदेवका भी पुत्र नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि जब जो व्यक्ति महामन्त्रोंके द्वारा जिस देवताकी स्तुति करता है, तभी वह प्रसन्न होकर उस व्यक्तिकी कामनाके अनुसार उसे धन, प्राण, पशु, राज्य तथा मोक्ष प्रदान करता है। वास्तवमें यह बालक मुनि विश्वामित्रका पुत्र हुआ, जिन्होंने विषम प्राण-संकटके समय परम शक्तिशाली वरुणमन्त्र देकर इसकी रक्षा की है॥ २९—३४$\frac{१}{२}$ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! महर्षि वसिष्ठकी बात सुनकर सभासदोंने 'बहुत ठीक' ऐसा कहकर उनका समर्थन कर दिया। तब मुनि विश्वामित्र प्रेमसे पूरित हो उठे। 'हे पुत्र! अब तुम मेरे आश्रममें चलो'—ऐसा कहकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। तब शुनःशेप भी तुरंत उनके साथ शीघ्रतापूर्वक चल दिया और वरुणदेव भी प्रसन्नचित्त होकर अपने लोकको चले गये। सभी ऋत्विक् और सभासद् भी अपने-अपने भवनोंके लिये प्रस्थित हो गये॥ ३५—३७$\frac{१}{२}$ ॥

राजा हरिश्चन्द्र भी जलोदर रोगसे मुक्त हो जानेसे परम आनन्दित हो गये। वे अत्यन्त प्रसन्न मनसे प्रजापालनमें तत्पर हो गये॥ ३८$\frac{१}{२}$ ॥

इधर, वरुणदेवसम्बन्धी सारा वृत्तान्त सुनकर राजकुमार रोहितको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे दुर्गम वनों तथा पर्वतोंको पार करते हुए अपने राजमहलके पास आ पहुँचे॥ ३९$\frac{१}{२}$ ॥

तब दूतोंने राजाके पास जाकर उनसे पुत्रके आ जानेकी बात बतायी। यह सुनते ही कोसलराज हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे शीघ्र उसके समीप पहुँच गये॥ ४०$\frac{१}{२}$ ॥

पिताको आया हुआ देखकर रोहितका प्रेम उमड़ पड़ा और वे बड़े सम्मानपूर्वक भूमिपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। शोकके कारण रोहितका मुखमण्डल अश्रुसे भीग गया॥ ४१$\frac{१}{२}$ ॥

राजापि तं समुत्थाप्य परिरभ्य मुदान्वितः॥ ४२

तमाघ्राय सुतं मूर्ध्नि पप्रच्छ कुशलं पुनः।
उत्सङ्गे तं समारोप्य मुदितो मेदिनीपतिः॥ ४३

उष्णैर्नेत्रजलैः शीर्षण्यभिषेकमथाकरोत्।
राज्यं शशास तेनासौ पुत्रेणातिप्रियेण च॥ ४४

वृत्तान्तं नरमेधस्य कथयामास विस्तरात्।
राजसूयं क्रतुवरं चकार नृपसत्तमः॥ ४५

वसिष्ठं पूजयित्वाथ होतारमकरोद्विभुः।
समाप्ते त्वथ यज्ञेशे वसिष्ठोऽतीव पूजितः॥ ४६

शक्रस्य सदनं रम्यं जगाम मुनिरादरात्।
विश्वामित्रोऽपि तत्रैव वसिष्ठेन च सङ्गतः॥ ४७

मिलित्वा तौ स्थितौ देवसदने मुनिसत्तम।
विश्वामित्रोऽपि पप्रच्छ वसिष्ठं प्रतिपूजितम्॥ ४८

वीक्ष्य विस्मयचित्तस्तं सभायां तु शचीपतेः।

विश्वामित्र उवाच

क्वेयं पूजा त्वया प्राप्ता महती मुनिसत्तम॥ ४९

कृता केन महाभाग सत्यं ब्रूहि ममान्तिके।

वसिष्ठ उवाच

यजमानोऽस्ति मे राजा हरिश्चन्द्रः प्रतापवान्॥ ५०

राजसूयः कृतस्तेन राज्ञा प्रवरदक्षिणः।
नेदृशोऽस्ति नृपश्चान्यः सत्यवादी धृतव्रतः॥ ५१

दाता च धर्मशीलश्च प्रजारञ्जनतत्परः।
तस्य यज्ञे मया पूजा प्राप्ता कौशिकनन्दन॥ ५२

(किं पृच्छसि पुनः सत्यं ब्रवीम्यकृत्रिमं द्विज।)
हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति।
सत्यवादी तथा दाता शूरः परमधार्मिकः॥ ५३

राजा हरिश्चन्द्रने भी उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और आनन्दपूर्वक पुत्रका मस्तक सूँघकर उससे कुशल-क्षेम पूछा। राजकुमार रोहितको गोदमें बिठाकर हर्षसे परिपूर्ण पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने प्रेमातिरेकके कारण नेत्रोंसे गिरते हुए उष्ण अश्रुओंसे उनका अभिषेक कर दिया। वे अपने परम प्रिय पुत्र रोहितके साथ राज्यका शासन करने लगे। बादमें उन्होंने राजकुमारसे यज्ञकी सारी बातें विस्तारपूर्वक बतलायीं॥ ४२—४४½ ॥

कुछ दिनोंके अनन्तर नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने सभी यज्ञोंमें उत्तम राजसूययज्ञ प्रारम्भ किया। राजाने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके उन्हें उस यज्ञका 'होता' बनाया॥ ४५½ ॥

उस सर्वश्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजीका बहुत अधिक सम्मान किया गया। तदनन्तर मुनि वसिष्ठ श्रद्धापूर्वक इन्द्रकी रमणीक नगरी अमरावतीपुरीमें गये॥ ४६½ ॥

वहींपर विश्वामित्र भी वसिष्ठजीको मिल गये। मिलनेके बाद वे दोनों महर्षि देवसभामें एक साथ बैठे। तब ऐसी विशेष पूजा पाये हुए महर्षि वसिष्ठको देखकर विश्वामित्रके मनमें महान् आश्चर्य हुआ और वे हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा सम्बोधन करके शचीपति इन्द्रकी सभामें ही उनसे पूछने लगे॥ ४७-४८½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने इतना बड़ा सम्मान कहाँ पाया? हे महाभाग! आपकी ऐसी पूजा किसने की; आप मुझे यह बात सच-सच बतलाइये॥ ४९½ ॥

वसिष्ठजी बोले—परम प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र मेरे यजमान हैं। उन्होंने प्रचुर दक्षिणावाला राजसूययज्ञ किया है। उनके-जैसा सत्यवादी, दृढव्रती, दानी, धर्मपरायण तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला दूसरा राजा नहीं है। हे विश्वामित्र! उन्हींके यज्ञमें मुझे यह पूजा प्राप्त हुई है। (हे द्विज! आप मुझसे बार-बार क्या पूछ रहे हैं! मैं आपसे सत्य तथा यथार्थ कह रहा हूँ।) हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, दानी, पराक्रमी तथा परम धार्मिक राजा न तो हुआ है और न होगा॥ ५०—५३॥

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा विश्वामित्रोऽतिकोपनः।
बभूव क्रोधसंरक्तलोचनोऽप्यब्रवीच्च तम्॥ ५४

विश्वामित्र उवाच

एवं स्तौषि नृपं मिथ्यावादिनं कपटप्रियम्।
वञ्चितो वरुणो येन प्रतिश्रुत्य वरं पुनः॥ ५५

मम जन्मार्जितं पुण्यं तपसः पठितस्य च।
त्वदीयं वातितपसो ग्लहं कुरु महामते॥ ५६

अहं चेत्तं नृपं सद्यो न करोम्यतिसंस्तुतम्।
असत्यवादिनं काममदातारं महाखलम्॥ ५७

आजन्मसञ्चितं सर्वं पुण्यं मम विनश्यतु।
अन्यथा त्वत्कृतं सर्वं पुण्यं त्विति पणावहे॥ ५८

ग्लहं कृत्वा ततस्तौ तु विवदन्तौ मुनी तदा।
स्वाश्रमं स्वर्गलोकाच्च गतौ परमकोपनौ॥ ५९

व्यासजी बोले—हे राजन्! उनकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी बहुत कुपित हो उठे और क्रोधसे आँखें लाल करके उनसे कहने लगे—॥ ५४॥

विश्वामित्र बोले—आप ऐसे मिथ्याभाषी तथा कपटी राजाकी प्रशंसा कर रहे हैं, जिसने पुत्रप्राप्तिका वर पाकर प्रतिज्ञा करके भी वरुणदेवको बार-बार धोखा दिया॥ ५५॥

हे महामते! इस जन्ममें मेरे द्वारा किये गये तप तथा वेदाध्ययनके फलस्वरूप संचित पुण्य तथा अपने महान् तपकी शर्त लगा लीजिये। यदि मैं आपके द्वारा अति प्रशंसित किये गये राजा हरिश्चन्द्रको शीघ्र ही मिथ्याभाषी, दान न देनेवाला तथा महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो सम्पूर्ण जन्मका मेरा संचित पुण्य नष्ट हो जाय; अन्यथा आपके द्वारा उपार्जित सारा पुण्य नष्ट हो जाय—इसी बातकी हम दोनों शर्त लगा लें॥ ५६—५८॥

तब यह शर्त लगाकर अत्यधिक कुपित हुए वे दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए स्वर्गलोकसे अपने-अपने आश्रमको लौट गये॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
वसिष्ठविश्वामित्रपणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

* * *

अथाष्टादशोऽध्यायः

विश्वामित्रका मायाशूकरके द्वारा हरिश्चन्द्रके उद्यानको नष्ट कराना

व्यास उवाच

कदाचित्तु हरिश्चन्द्रो मृगयार्थं वनं ययौ।
अपश्यद्रुदतीं बालां सुन्दरीं चारुलोचनाम्॥ १

तामपृच्छन्महाराजः कामिनीं करुणापरः।
पद्मपत्रविशालाक्षि किं रोदिषि वरानने॥ २

केनासि पीडितात्यर्थं किं ते दुःखं वदाशु मे।
का च त्वं विजने घोरे कस्ते भर्ता पिताथवा॥ ३

व्यासजी बोले—राजन्! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र आखेट करनेके लिये वनमें गये हुए थे। उन्होंने वहाँ मनोहर नेत्रोंवाली रोती हुई एक सुन्दर युवतीको देखा॥ १॥

करुणामय महाराज हरिश्चन्द्रने उस कामिनीसे पूछा—कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली हे वरानने! तुम क्यों रो रही हो, तुम्हें किसने कष्ट दिया है, तुम्हें कौन-सा अपार दुःख आ पड़ा है, इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और तुम्हारे पिता तथा पति कौन हैं? यह सब मुझे शीघ्र बताओ॥ २-३॥

न बाधते च राज्ये मे राक्षसोऽपि पराङ्गनाम्।
तं हन्मि तरसा कान्ते यस्त्वां सुन्दरि बाधते॥ ४

ब्रूहि दुःखं वरारोहे स्वस्था भव कृशोदरि।
विषये मम पापात्मा न तिष्ठति सुमध्यमे॥ ५

इति तस्य वचः श्रुत्वा नारी तमब्रवीन्नृपम्।
प्रमृज्याश्रूणि वदनाद्धरिश्चन्द्रं नृपोत्तमम्॥ ६

नार्युवाच

राजन् मां बाधतेत्यर्थं विश्वामित्रो महामुनिः।
तपः करोति यद्घोरं मदर्थं कौशिको वने॥ ७

तेनाहं दुःखिता राजन् विषये तव सुव्रत।
विद्धि मां कमनां कान्तां पीडितां मुनिना भृशम्॥ ८

राजोवाच

स्वस्था भव विशालाक्षि न ते दुःखं भविष्यति।
तमहं वारयिष्यामि मुनिं तापपरायणम्॥ ९

इत्याश्वास्य स्त्रियं राजा तरसा मुनिसन्निधौ।
नत्वा प्रणम्य शिरसा तमुवाच महीपतिः॥ १०

स्वामिन्किं क्रियतेऽत्यर्थं तपसा देहपीडनम्।
किमर्थं ते समारम्भो ब्रूहि सत्यं महामते॥ ११

वाञ्छितं तव गाधेय करोमि सफलं किल।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ तरसा तपसालमतः परम्॥ १२

विषये मम सर्वज्ञ न कर्तव्यं सुदारुणम्।
लोकपीडाकरं घोरं तपः केनापि कर्हिचित्॥ १३

इत्थं निषिध्य तं राजा विश्वामित्रं गृहं ययौ।
मनसा क्रोधमाधाय गतोऽसौ कौशिको मुनिः॥ १४

हे कान्ते! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी परायी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते। हे सुन्दरि! जो व्यक्ति तुम्हें पीड़ित करता होगा, उसे मैं अभी मार डालूँगा। हे वरारोहे! तुम मुझे अपना दुःख बताओ और निश्चिन्त हो जाओ। हे कृशोदरि! हे सुमध्यमे! मेरे राज्यमें दुराचारी व्यक्ति नहीं रह सकता॥ ४-५॥

उनकी यह बात सुनकर वह स्त्री अपने मुखमण्डलके आँसू पोंछकर उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगी॥ ६॥

नारी बोली—हे राजन्! मेरे लिये वनमें रहकर जो घोर तपस्या कर रहे हैं, वे महामुनि विश्वामित्र मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं; उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन्! आपके राज्यमें मैं इसी कारणसे दुःखी हूँ। उन मुनिके द्वारा अत्यधिक सतायी जानेवाली मुझ स्त्रीको आप 'कमना' नामवाली जान लीजिये॥ ७-८॥

राजा बोले—हे विशाल नयनोंवाली! तुम प्रसन्नचित्त रहो, अब तुम्हें कष्ट नहीं होगा। तपस्यामें तत्पर रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा॥ ९॥

उस स्त्रीको यह आश्वासन देकर पृथ्वीपति राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र ही मुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले—हे स्वामिन्! आप ऐसी कठिन तपस्यासे अपने शरीरको अत्यधिक पीड़ित क्यों कर रहे हैं? हे महामते! किस प्रयोजनसे आप यह करनेके लिये उद्यत हैं? सच-सच बताइये॥ १०-११॥

हे गाधितनय! मैं आपकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा। अब इसी समय उठ जाइये और आगे तपस्या करनेका विचार त्याग दीजिये। हे सर्वज्ञ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी अत्यन्त भीषण, लोकके लिये पीड़ाकारक तथा उग्र तप नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

इस प्रकार विश्वामित्रजीको तपस्यासे रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने भवन चले गये और उनके इस कृत्यसे मुनि विश्वामित्र भी मन-ही-मन कुपित होकर वहाँसे चल दिये॥ १४॥

स गत्वा चिन्तयामास नृपकृत्यमसाम्प्रतम्।
वसिष्ठस्य च संवादं तपसः प्रतिषेधनम्॥ १५

कोपाविष्टेन मनसा प्रतीकारमथाकरोत्।
विचिन्त्य बहुधा चित्ते दानवं घोरविग्रहम्॥ १६

प्रेषयामास तद्देशं विधाय सूकराकृतिम्।
सोऽतिकायो महाकालः कुर्वन्नादं सुदारुणम्॥ १७

राज्ञश्चोपवने प्राप्तस्त्रासयन् रक्षकांस्तदा।
मालतीनां च खण्डानि कदम्बानां तथैव च॥ १८

यूथिकानां च वृन्दानि कम्पयंश्च मुहुर्मुहुः।
दन्तेन विलिखन्भूमिं समुन्मूलयते द्रुमान्॥ १९

चम्पकान्केतकीखण्डान्मल्लिकानां च पादपान्।
करवीरानुशीरांश्च निचखान शुभान्मृदून्॥ २०

मुचुकुन्दानशोकांश्च बकुलांस्तिलकांस्तथा।
उन्मूल्य कदनं तत्र चकार सूकरो वने॥ २१

वाटिकारक्षकाः सर्वे दुद्रुवुः शस्त्रपाणयः।
हाहेति चुक्रुशुस्तत्र मालाकारा भृशातुराः॥ २२

बाणैः सन्ताड्यमानोऽपि यदा त्रस्तो न वै मृगः।
रक्षकान्पीडयामास कोलः कालसमद्युतिः॥ २३

ते तदातिभयाक्रान्ता राजानं शरणं ययुः।
तमूचुस्त्राहि त्राहीति वेपमाना भयाकुलाः॥ २४

तानागतान्समालोक्य भयार्तान्भूपतिस्तदा।
पप्रच्छ किं भयं कस्मान्मां ब्रुवन्तु समागताः॥ २५

नाहं बिभेमि देवेभ्यो राक्षसेभ्यश्च रक्षकाः।
कस्माद्भयं समुत्पन्नं तद् ब्रुवन्तु ममाग्रतः॥ २६

घर जाकर विश्वामित्रजी राजा हरिश्चन्द्रके अनुचित कृत्य, वसिष्ठकी कही हुई बात तथा तपस्यासे विरत कर दिये जानेके विषयमें सोचने लगे। वे कोपाविष्ट मनसे बदला लेनेके लिये तत्पर हो गये। इस प्रकार मनमें बहुत प्रकारसे सोचकर उन्होंने एक भयानक शरीरवाले दानवको सूअरके रूपमें बनाकर उसे राजाके यहाँ भेजा॥ १५-१६½ ॥

महाकालके समान प्रतीत होनेवाला तथा विशाल शरीरवाला वह सूअर अत्यन्त भयावह शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करते हुए, मालतीकी तथा कदम्बोंकी लताको एवं जूहीसमूहोंको बार-बार रौंदते हुए और अपने दाँतसे जमीनको खोदते हुए उस सूअरने बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़ डाला; उसने चम्पक, केतकी, मल्लिका, कनेर तथा उशीरके सुन्दर तथा कोमल पौधोंको बींध डाला तथा मुचुकुन्द, अशोक, मौलसिरी एवं तिलक आदि वृक्षोंको उखाड़कर उस सूअरने उपवनको विनष्ट कर दिया॥ १७—२१ ॥

हाथोंमें शस्त्र लिये हुए उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले और अत्यन्त भयभीत मालियोंने हाय-हायकी ध्वनि करते हुए चिल्लाना आरम्भ कर दिया॥ २२ ॥

साक्षात् कालके समान तेजवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारे जानेपर भी त्रस्त नहीं हुआ और रक्षकोंको पीड़ित करता रहा, तब वे अत्यन्त भयाक्रान्त होकर राजा हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। भयसे व्याकुल तथा थर-थर काँपते हुए वे रक्षकगण 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा उनसे कहने लगे॥ २३-२४ ॥

तब भयसे घबड़ाये हुए उन रक्षकोंको समक्ष उपस्थित देखकर राजाने उनसे पूछा—आपलोगोंको क्या भय है और किसलिये आप सब यहाँ आये हुए हैं? मुझे यह बताइये। हे रक्षको! मैं देवताओं तथा राक्षसों—किसीसे भी नहीं डरता। तुम्हें यह भय किससे उत्पन्न हुआ है, मेरे सामने उसे बताओ, मैं

हन्मि चैकेन बाणेन तं शत्रुं दुर्भगं किल।
यो मेऽरातिः समुत्पन्नो लोके पापमतिः खलः॥ २७

देवो वा दानवो वापि तं निहन्मि शरैः शितैः।
क्व तिष्ठति कियद्रूपः कियद्बलसमन्वितः॥ २८

मालाकारा ऊचुः

न देवो न च दैत्योऽस्ति न यक्षो न च किन्नरः।
कश्चित्कोलो महाकायो राजंस्तिष्ठति कानने॥ २९

पुष्पवृक्षानतिमृदून्दन्तेनोन्मूलयत्यसौ ।
विदीर्णं तद्वनं सर्वं सूकरेणातिरंहसा॥ ३०

विशिखैस्ताडितोऽस्माभिर्दृषद्भिर्लकुटैस्तथा ।
न बिभेति महाराज हन्तुमस्मानुपाद्रवत्॥ ३१

व्यास उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्तेषां राजा कोपसमाकुलः।
अश्वमारुह्य तरसा जगामोपवनं प्रति॥ ३२

सैन्येन महता युक्तो गजाश्वरथसंयुतः।
पदातिवृन्दसहितः प्रययौ वनमुत्तमम्॥ ३३

तत्रापश्यन्महाकोलं घुर्घुरन्तं भयानकम्।
वनं भग्नं च संवीक्ष्य राजा क्रोधयुतोऽभवत्॥ ३४

चापे बाणं समारोप्य विकृष्य च शरासनम्।
तं हन्तुं सूकरं पापं तरसा समुपाक्रमत्॥ ३५

समालोक्य च राजानं चापहस्तं रुषाकुलम्।
सम्मुखोऽभ्यद्रवत्तूर्णं कुर्वञ्छब्दं सुदारुणम्॥ ३६

तमायान्तं समालोक्य वराहं विकृताननम्।
मुमोच विशिखं तस्मिन्हन्तुकामो महीपतिः॥ ३७

वञ्चयित्वाथ तद्बाणं सूकरस्तरसा बलात्।
निर्जगाम महावेगात्तमुल्लंघ्य नृपं तदा॥ ३८

उस अभागे शत्रुको एक ही बाणसे अभी मार डालता हूँ। जो पापबुद्धि तथा दुष्ट इस लोकमें मेरे शत्रुके रूपमें उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह देवता हो या दानव, वह चाहे कहीं भी रहता हो, कैसे भी रूपवाला हो तथा कितना भी बलवान् हो, उसे मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालूँगा॥ २५—२८॥

मालाकार बोले—हे राजन्! वह न देवता है, न दैत्य है, न यक्ष है और न तो किन्नर ही है। विशाल शरीरवाला एक सूअर उपवनमें आया हुआ है। उसने अपने दाँतसे अत्यन्त कोमल पुष्पमय वृक्षोंको उखाड़ डाला है। अत्यन्त तीव्र गतिवाले उस सूअरने सारे उपवनको तहस-नहस कर दिया है। हे महाराज! बाणों, पत्थरों और लाठियोंसे हमलोगोंके प्रहार करनेपर भी वह भयभीत नहीं हुआ और हमें मारनेके लिये दौड़ पड़ा॥ २९—३१॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र कुपित हो उठे और उसी क्षण घोड़ेपर सवार होकर उपवनकी ओर शीघ्रतापूर्वक चल पड़े॥ ३२॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेनाके साथ वे उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये॥ ३३॥

वहाँ उन्होंने एक विशाल शरीरवाले भयानक सूअरको घुरघुराते हुए देखा। उसके द्वारा उजाड़े गये उपवनको देखकर राजा कुपित हो उठे। फिर वे धनुषपर बाण चढ़ाकर तथा धनुषको खींचकर उस दुष्ट सूअरको मारनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़े॥ ३४-३५॥

हाथमें धनुष लिये हुए कोपाविष्ट राजा हरिश्चन्द्रको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयानक शब्द करता हुआ तुरंत उनके सामने आ गया॥ ३६॥

उस विकृत मुखवाले सूअरको सामने आता हुआ देखकर राजा हरिश्चन्द्रने उसे मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाण छोड़ा॥ ३७॥

तब उस बाणसे अपनेको बचाकर वह सूअर राजाको बड़े वेगसे लाँघकर बलपूर्वक शीघ्रताके साथ वहाँसे निकल भागा॥ ३८॥

गच्छन्तं तं समालोक्य राजा कोपसमन्वितः।
मुमोच विशिखांस्तीक्ष्णांश्चापमाकृष्य यत्नतः॥ ३९

क्षणं दृष्टिपथं राज्ञः क्षणं चादर्शनं गतः।
कुर्वन्बहुविधारावं सूकरः समुपाद्रवत्॥ ४०

हरिश्चन्द्रोऽतिकुपितो मृगस्यानुजगाम ह।
अश्वेन वायुवेगेन विकृष्य च शरासनम्॥ ४१

इतस्ततस्ततः सैन्यमगमच्च वनान्तरम्।
एकाकी नृपतिः कोलं व्रजन्तं समुपाद्रवत्॥ ४२

मध्याह्नसमये राजा सम्प्राप्तो विजने वने।
तृषितः क्षुधितोऽत्यर्थं बभूव श्रान्तवाहनः॥ ४३

सूकरोऽदर्शनं प्राप्तो राजा चिन्तातुरोऽभवत्।
मार्गभ्रष्टोऽतिविपिने दारुणे दीनवत्स्थितः॥ ४४

किं करोमि क्व गच्छामि न सहायोऽस्ति मे वने।
अज्ञातस्वपथः कुत्र व्रजामीति व्यचिन्तयत्॥ ४५

एवं चिन्तयतस्तत्र विपिने जनवर्जिते।
राजा चिन्तातुरोऽपश्यन्नदीं सुविमलोदकाम्॥ ४६

वीक्ष्य तां मुदितो राजा पाययित्वा तुरङ्गकम्।
अश्वादुत्तीर्य विमलं पपौ पानीयमुत्तमम्॥ ४७

जलं पीत्वा नृपस्तत्र सुखमाप महीपतिः।
इयेष नगरं गन्तुं दिग्भ्रमेणातिमोहितः॥ ४८

विश्वामित्रस्तु सम्प्राप्तो वृद्धब्राह्मणरूपधृक्।
ननाम वीक्ष्य राजा तं प्रीतिपूर्वं द्विजोत्तमम्॥ ४९

उसे भागते हुए देखकर राजा हरिश्चन्द्र क्रोधित होकर धनुष खींचकर सावधानीपूर्वक उसपर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे॥ ३९॥

वह सूअर किसी क्षण दिखायी पड़ता था, दूसरे क्षण आँखोंसे ओझल हो जाता था और क्षणभरमें ही अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ राजाके पास पहुँच जाता था॥ ४०॥

तब राजा हरिश्चन्द्र वायुके समान तीव्रगामी अश्वपर सवार होकर और धनुष खींचकर अत्यन्त क्रोधके साथ उस सूअरका पीछा करने लगे। तत्पश्चात् उनकी सेना इधर-उधर उनके साथ दौड़ती हुई दूसरे वनमें चली गयी और राजा उस भागते हुए सूअरका अकेले ही पीछा करते रहे॥ ४१-४२॥

इस तरह राजा मध्याह्नकालमें एक निर्जन वनमें जा पहुँचे। वे अत्यधिक भूख तथा प्याससे व्याकुल हो गये तथा उनका वाहन बहुत थक गया॥ ४३॥

सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था, अतः वे चिन्तासे व्यग्र हो गये। उस घने जंगलमें मार्गज्ञान न होनेके कारण वे रास्तेसे भटक भी गये; उनकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी। वे सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस वनमें मेरा कोई सहायक भी नहीं है। अब अपना मार्ग भूल जानेके कारण मैं किधर जाऊँ?॥ ४४-४५॥

इस प्रकार उस निर्जन वनमें सोचते हुए चिन्तातुर राजा हरिश्चन्द्रकी दृष्टि एक स्वच्छ जलवाली नदीपर पड़ गयी॥ ४६॥

उसे देखकर राजा बहुत हर्षित हुए। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने उसे स्वादिष्ट जल पिलाकर स्वयं भी पीया। जल पी लेनेपर राजाको बड़ी शान्ति मिली। अब वे अपने नगर जानेकी इच्छा करने लगे, किंतु दिशाज्ञान न रहनेसे उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी॥ ४७-४८॥

इतनेमें विश्वामित्रजी एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आ गये। उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखकर राजा हरिश्चन्द्रने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ४९॥

तमुवाच गाधिराजः प्रणमन्तं नृपोत्तमम्।
स्वस्ति तेऽस्तु महाराज किमर्थमिह चागतः॥ ५०

एकाकी विजने राजन् किं चिकीर्षितमत्र ते।
ब्रूहि सर्वं स्थिरो भूत्वा कारणं नृपसत्तम॥ ५१

राजोवाच

सूकरोऽतिमहाकायो बलवान्पुष्पकाननम्।
समुपेत्य ममर्दाशु कोमलान्पुष्पपादपान्॥ ५२

तं निवारयितुं दुष्टं करे कृत्वा च कार्मुकम्।
ससैन्योऽहं स्वनगरान्निर्गतो मुनिसत्तम॥ ५३

गतोऽसौ दृक्पथात्पापो मायावी क्वापि वेगवान्।
पृष्ठतोऽहमपि प्राप्तः सैन्यं क्वापि गतं मम॥ ५४

क्षुधितस्तृषितश्चाहं सैन्यभ्रष्टस्त्विहागतः।
न जाने पुरमार्गं च तथा सैन्यगतिं मुने॥ ५५

पन्थानं दर्शय विभो व्रजामि नगरं प्रति।
ममात्र भाग्ययोगेन प्राप्तस्त्वं विजने वने॥ ५६

अयोध्याधिपतिश्चाहं हरिश्चन्द्रोऽतिविश्रुतः।
राजसूयस्य कर्ता च वाञ्छितार्थप्रदः सदा॥ ५७

धनेच्छा यदि ते ब्रह्मन् यज्ञार्थं द्विजसत्तम।
आगन्तव्यमयोध्यायां दास्यामि विपुलं धनम्॥ ५८

प्रणाम करते हुए उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्र कहने लगे—हे महाराज! आपका कल्याण हो। आप यहाँ किसलिये आये हुए हैं? हे राजन्! इस निर्जन वनमें अकेले आनेका आपका क्या उद्देश्य है? हे नृपश्रेष्ठ! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका सारा कारण बताइये॥ ५०-५१॥

राजा बोले—विशाल शरीरवाला एक बलशाली सूअर मेरे पुष्पोद्यानमें पहुँचकर वहाँके कोमल पुष्पमय वृक्षोंको रौंदने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! उसी दुष्टको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा॥ ५२-५३॥

अब वह पापी तथा मायावी सूअर वेगपूर्वक मेरी आँखोंसे ओझल होकर न जाने कहाँ चला गया! मैं भी उसके पीछे-पीछे यहाँ आ गया तथा मेरी सेना कहीं और निकल गयी॥ ५४॥

सेनाका साथ छूट जानेपर भूख तथा प्याससे व्याकुल होकर मैं यहाँ आ पहुँचा। हे मुने! मुझे अपने नगरके मार्गका ज्ञान नहीं रहा और मेरी सेना किधर गयी—यह भी मैं नहीं जानता। हे विभो! आप मुझे मार्ग दिखा दीजिये, जिससे मैं अपने नगर चला जाऊँ; मेरे सौभाग्यसे आप इस निर्जन वनमें पधारे हुए हैं॥ ५५-५६॥

मैं अयोध्याका राजा हूँ और हरिश्चन्द्र नामसे विख्यात हूँ। मैं राजसूययज्ञ कर चुका हूँ और याचना करनेवालोंको उनकी हर अभिलषित वस्तु सर्वदा प्रदान करता हूँ। हे ब्रह्मन्! हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आपको भी यज्ञके निमित्त धनकी आवश्यकता हो तो अयोध्या आयें, मैं आपको प्रचुर धन प्रदान करूँगा॥ ५७-५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रद्वारा वृद्धब्राह्मणाय धनदानप्रतिज्ञावर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

* * *

अथैकोनविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर राजा हरिश्चन्द्रका राज्यदान करना

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा भूपतेः कौशिको मुनिः।
प्रहस्य प्रत्युवाचेदं हरिश्चन्द्रं तथा नृप॥ १

व्यासजी बोले—हे नृप [जनमेजय]! हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर मुनि विश्वामित्र हँस करके उनसे कहने लगे—॥ १॥

राजंस्तीर्थमिदं पुण्यं पावनं पापनाशनम्।
स्नानं कुरु महाभाग पितॄणां तर्पणं तथा॥ २

कालः शुभतमोऽस्तीह तीर्थे स्नात्वा विशांपते।
दानं ददस्व शक्त्यात्र पुण्यतीर्थेऽतिपावने॥ ३

प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति।
स भवेदात्महा भूय इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ४

तस्मात्तीर्थवरे राजन् कुरु पुण्यं स्वशक्तितः।
दर्शयिष्यामि मार्गं ते गन्तासि नगरं ततः॥ ५

आगमिष्याम्यहं मार्गदर्शनार्थं तवानघ।
त्वया सहाद्य काकुत्स्थ तव दानेन तोषितः॥ ६

तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मुनेः कपटमण्डितम्।
वासांस्युत्तार्य विधिवत्स्नातुमभ्याययौ नदीम्॥ ७

बन्धयित्वा हयं वृक्षे मुनिवाक्येन मोहितः।
अवश्यंभावियोगेन तद्वशस्तु तदाभवत्॥ ८

राजा स्नानविधिं कृत्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
विश्वामित्रमुवाचेदं स्वामिन् दानं ददामि ते॥ ९

यदिच्छसि महाभाग तत्ते दास्यामि साम्प्रतम्।
गावो भूमिर्हिरण्यं च गजाश्वरथवाहनम्॥ १०

नादेयं मे किमप्यस्ति कृतमेतद् व्रतं पुरा।
राजसूये मखश्रेष्ठे मुनीनां सन्निधावपि॥ ११

तस्मात्त्वमिह सम्प्राप्तस्तीर्थेऽस्मिन्प्रवरे मुने।
यत्तेऽस्ति वाञ्छितं ब्रूहि ददामि तव वाञ्छितम्॥ १२

विश्वामित्र उवाच

मया पूर्वं श्रुता राजन् कीर्तिस्ते विपुला भुवि।
वसिष्ठेन च सम्प्रोक्ता दाता नास्ति महीतले॥ १३

हरिश्चन्द्रो नृपश्रेष्ठः सूर्यवंशे महीपतिः।
तादृशो नृपतिर्दाता न भूतो न भविष्यति॥ १४

हे राजन्! यह तीर्थ अत्यन्त पुण्यमय, पवित्र तथा पापनाशक है। हे महाभाग! इसमें स्नान करो और पितरोंका तर्पण करो॥ २॥

हे भूपते! यह समय भी अति उत्तम है; इसलिये इस पुण्यमय तथा परम पावन तीर्थमें स्नान करके आप इस समय अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान दीजिये॥ ३॥

'जो परम पवित्र तीर्थमें पहुँचकर बिना स्नान किये ही लौट जाता है, वह आत्मघाती होता है'—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है॥ ४॥

अतएव हे राजन्! आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार पुण्यकर्म कीजिये। इससे [प्रसन्न होकर] मैं आपको मार्ग दिखा दूँगा और तब आप अपने नगरको चले जाइयेगा। हे अनघ! हे काकुत्स्थ! आपके दानसे प्रसन्न होकर आपको मार्ग दिखानेके लिये इसी समय मैं आपके साथ चलूँगा॥ ५-६॥

मुनिकी यह कपटभरी वाणी सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर तथा अपने वस्त्र उतारकर विधिवत् स्नान करनेके लिये नदीके तटपर आ गये। होनहारके प्राबल्यके कारण उस समय राजा हरिश्चन्द्र मुनिके वाक्यसे मोहित होकर उनके वशीभूत हो गये थे॥ ७-८॥

विधिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् पितरों तथा देवताओंका तर्पण करके राजाने विश्वामित्रसे यह कहा—हे स्वामिन्! अब मैं आपको दान देता हूँ। हे महाभाग! इस समय आप जो चाहते हैं, उसे मैं आपको दूँगा। गाय, भूमि, सोना, हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन आदि कुछ भी मेरे लिये अदेय नहीं है—ऐसी प्रतिज्ञा मैं पूर्वकालमें सर्वोत्तम राजसूययज्ञमें मुनियोंके समक्ष कर चुका हूँ। अतः हे मुने! आपकी जो आकांक्षा हो उसे बताइये; मैं आपकी वह अभिलषित वस्तु आपको दूँगा; क्योंकि आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें पधारे हुए हैं॥ ९—१२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! संसारमें व्याप्त आपकी विपुल कीर्तिके विषयमें मैं बहुत पहले सुन चुका हूँ। महर्षि वसिष्ठने भी कहा था कि पृथ्वीतलपर उनके समान कोई दानी नहीं है। राजाओंमें श्रेष्ठ वे राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। जैसे दानी

पृथिव्यां परमोदारस्त्रिशङ्कुतनयो यथा।
अतस्त्वां प्रार्थयाम्यद्य विवाहो मेऽस्ति पार्थिव॥ १५

पुत्रस्य च महाभाग तदर्थं देहि मे धनम्।

राजोवाच

विवाहं कुरु विप्रेन्द्र ददामि प्रार्थितं तव॥ १६
यदिच्छसि धनं कामं दाता तस्यास्मि निश्चितम्।

व्यास उवाच

इत्युक्तः कौशिकस्तेन वञ्चनातत्परो मुनिः॥ १७

उद्भाव्य मायां गान्धर्वीं पार्थिवायाप्यदर्शयत्।
कुमारः सुकुमारश्च कन्या च दशवार्षिकी॥ १८

एतयोः कार्यमप्यद्य कर्तव्यं नृपसत्तम।
राजसूयाधिकं पुण्यं गृहस्थस्य विवाहतः॥ १९

भविष्यति तवाद्यैव विप्रपुत्रविवाहतः।
तच्छ्रुत्वा वचनं राजा मायया तस्य मोहितः॥ २०

तथेति च प्रतिज्ञाय नोवाचाल्पं वचस्तथा।
तेन दर्शितमार्गोऽसौ नगरं प्रति जग्मिवान्॥ २१

विश्वामित्रोऽपि राजानं वञ्चयित्वाश्रमं ययौ।
कृतोद्वाहविधिस्तावद्विश्वामित्रोऽब्रवीन्नृपम्॥ २२

वेदीमध्ये नृपाद्य त्वं देहि दानं यथेप्सितम्।

राजोवाच

किं तेऽभीष्टं द्विज ब्रूहि ददामि वाञ्छितं किल॥ २३

अदेयमपि संसारे यशःकामोऽस्मि साम्प्रतम्।
व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै॥ २४

नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम्।

विश्वामित्र उवाच

राज्यं देहि महाराज वराय सपरिच्छदम्॥ २५
गजाश्वरथरत्नाढ्यं वेदीमध्येऽतिपावने।

तथा परम उदार त्रिशंकुपुत्र महाराज हरिश्चन्द्र हैं, वैसा राजा पृथ्वीपर पहले न हुआ है और न तो आगे होगा। हे महाभाग! हे पार्थिव! आज मेरे पुत्रका विवाह होनेवाला है, अतः मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि इसके लिये आप मुझे धन प्रदान करें॥ १३—१५½ ॥

राजा बोले—हे विप्रेन्द्र! आप विवाह कीजिये, मैं आपकी अभिलषित वस्तु दूँगा। आप अधिकसे अधिक जितना धन चाहते हैं, मैं उसे अवश्य दूँगा॥ १६½ ॥

व्यासजी बोले—हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर उन्हें ठगनेके लिये तत्पर मुनि विश्वामित्रने गान्धर्वी माया रचकर राजाके समक्ष एक सुकुमार पुत्र और दस वर्षकी कन्या उपस्थित कर दी और कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह सम्पन्न करना है। किसी गृहस्थकी सन्तानका विवाह करा देनेका पुण्य राजसूययज्ञसे भी बढ़कर होता है। अतः आज ही इस विप्रपुत्रका विवाह सम्पन्न करा देनेसे आपको महान् पुण्य होगा॥ १७—१९½ ॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर उनकी मायासे मोहित हुए राजा हरिश्चन्द्र 'वैसा ही करूँगा'—यह प्रतिज्ञा करके आगे कुछ भी नहीं बोले। इसके बाद मुनिके द्वारा मार्ग दिखा दिये जानेपर वे अपने नगरको चले गये और राजाको ठगकर विश्वामित्र भी अपने आश्रमके लिये प्रस्थान कर गये॥ २०-२१½ ॥

विवाह-कार्य पूर्ण होनेके पूर्व विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! अब आप हवनवेदीके मध्य मुझे अभिलषित दान दीजिये॥ २२½ ॥

राजा बोले—हे द्विज! आपकी क्या अभिलाषा है, उसे बताइए; मैं आपको अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा। इस संसारमें मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। अब मैं केवल यश प्राप्त करना चाहता हूँ; क्योंकि वैभव प्राप्त करके भी जिसने परलोकमें सुख देनेवाले पवित्र यशका उपार्जन नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २३-२४½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! इस परम पुनीत हवनवेदीके मध्य आप हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और अनुचरोंसे युक्त सम्पूर्ण राज्य वरको दे दीजिये॥ २५½ ॥

व्यास उवाच

मोहितो मायया तस्य श्रुत्वा वाक्यं मुनेर्नृपः॥ २६

दत्तमित्युक्तवान् राज्यमविचार्य यदृच्छया।
गृहीतमिति तं प्राह विश्वामित्रोऽतिनिष्ठुरः॥ २७

दक्षिणां देहि राजेन्द्र दानयोग्यां महामते।
दक्षिणारहितं दानं निष्फलं मनुरब्रवीत्॥ २८

तस्माद्दानफलाय त्वं यथोक्तां देहि दक्षिणाम्।
इत्युक्तस्तु तदा राजा तमुवाचातिविस्मितः॥ २९

ब्रूहि कियद्धनं तुभ्यं देयं स्वामिन् मयाधुना।
दक्षिणानिष्क्रयं साधो वद तावत्प्रमाणकम्॥ ३०

दानपूर्त्यै प्रदास्यामि स्वस्थो भव तपोधन।
विश्वामित्रस्तु तच्छ्रुत्वा तमाह मेदिनीपतिम्॥ ३१

हेमभारद्वयं सार्धं दक्षिणां देहि साम्प्रतम्।
दास्यामीति प्रतिश्रुत्य तस्मै राजातिविस्मितः॥ ३२

तदैव सैनिकास्तस्य वीक्षमाणाः समागताः।
दृष्ट्वा महीपतिं व्यग्रं तुष्टुवुस्ते मुदान्विताः॥ ३३

व्यास उवाच

श्रुत्वा तेषां वचो राजा नोक्त्वा किञ्चिच्छुभाशुभम्।
चिन्तयन्स्वकृतं कर्म ययावन्तःपुरे ततः॥ ३४

किं मया स्वीकृतं दानं सर्वस्वं यत्समर्पितम्।
वञ्चितोऽहं द्विजेनात्र वने पाटच्चरैरिव॥ ३५

राज्यं सोपस्करं तस्मै मया सर्वं प्रतिश्रुतम्।
भारद्वयं सुवर्णस्य सार्धं च दक्षिणा पुनः॥ ३६

किं करोमि मतिर्भ्रष्टा न ज्ञातं कपटं मुनेः।
प्रतारितोऽहं सहसा ब्राह्मणेन तपस्विना॥ ३७

न जाने दैवकार्यं वै हा दैव किं भविष्यति।
इति चिन्तापरो राजा गृहं प्राप्तोऽतिविह्वलः॥ ३८

व्यासजी बोले—मुनिकी बात सुनते ही उनकी मायासे मोहित होनेके कारण बिना कुछ सोचे-विचारे राजाने अकस्मात् कह दिया—'सारा राज्य आपको दे दिया।' तत्पश्चात् परम निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा—'मैंने पा लिया और हे राजेन्द्र! हे महामते! अब दानकी सांगता-सिद्धिके लिये उसके योग्य दक्षिणा भी दे दीजिये; क्योंकि मनुने कहा है कि दक्षिणारहित दान व्यर्थ होता है। अतएव दानका पूर्ण फल प्राप्त करनेके लिये आप यथोचित दक्षिणा भी दीजिये'॥ २६—२८½ ॥

मुनिके यह कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र उस समय बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने मुनिसे कहा—हे स्वामिन्! आप यह तो बताइये कि इस समय कितना धन आपको और देना है। हे साधो! दक्षिणाके रूपमें निष्क्रय-द्रव्यका परिमाण बता दीजिये। हे तपोधन! आप निश्चिन्त रहिये; दानकी पूर्णताके लिये मैं वह दक्षिणा अवश्य दूँगा॥ २९-३०½ ॥

यह सुनकर विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा कि आप दक्षिणाके रूपमें ढाई भार सोना अभी दीजिये। तत्पश्चात् 'आपको दूँगा'—यह प्रतिज्ञा विश्वामित्रसे करके राजा बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ३१-३२॥

उसी समय उनके सभी सैनिक भी उन्हें खोजते हुए वहाँ आ गये। राजाको देखकर वे बहुत हर्षित हुए और उन्हें चिन्तित देखकर सान्त्वना देने लगे॥ ३३॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शुभाशुभ कुछ भी उत्तर न देकर अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए अन्तःपुरमें चले गये॥ ३४॥

यह मैंने कैसा दान देना स्वीकार कर लिया, जो कि मैंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वनमें मुझे बड़ा धोखा दिया। सामग्रियों-सहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी और फिर साथमें ढाई भार स्वर्णकी भी प्रतिज्ञा कर ली है। अब मैं क्या करूँ? मेरी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी है। मुनिके कपटको मैं नहीं जान पाया और उस तपस्वी ब्राह्मणने मुझे अकस्मात् ही ठग लिया। विधिका विधान मैं बिलकुल नहीं समझ पा रहा हूँ। हा दैव! पता नहीं भविष्यमें क्या होनेवाला है—इसी चिन्तामें पड़े हुए अत्यन्त क्षुब्धचित्त राजा हरिश्चन्द्र अपने महलमें पहुँचे॥ ३५—३८॥

पतिं चिन्तापरं दृष्ट्वा राज्ञी पप्रच्छ कारणम्।
किं प्रभो विमना भासि का चिन्ता ब्रूहि साम्प्रतम् ॥ ३९

वनात्पुत्रः समायातो राजसूयः कृतः पुरा।
कस्माच्छोचसि राजेन्द्र शोकस्य कारणं वद ॥ ४०

नारातिर्विद्यते क्वापि बलवान्दुर्बलोऽपि वा।
वरुणोऽपि सुसन्तुष्टः कृतकृत्योऽसि भूतले ॥ ४१

चिन्तया क्षीयते देहो नास्ति चिन्तासमा मृतिः।
त्यज्यतां नृपशार्दूल स्वस्थो भव विचक्षण ॥ ४२

तन्निशम्य प्रियावाक्यं प्रीतिपूर्वं नराधिपः।
प्रोवाच किञ्चिच्चिन्तायाः कारणं च शुभाशुभम् ॥ ४३

भोजनं न चकाराऽसौ चिन्ताविष्टस्तथा नृपः।
सुप्त्वापि शयने शुभ्रे लेभे निद्रां न भूमिपः ॥ ४४

प्रातरुत्थाय चिन्तार्तो यावत्सन्ध्यादिकाः क्रियाः।
करोति नृपतिस्तावद्विश्वामित्रः समागतः ॥ ४५

क्षत्रा निवेदितो राज्ञे मुनिः सर्वस्वहारकः।
आगत्योवाच राजानं प्रणमन्तं पुनः पुनः ॥ ४६

विश्वामित्र उवाच

राजंस्त्यज स्वराज्यं मे देहि वाचा प्रतिश्रुतम्।
सुवर्णं स्पृश राजेन्द्र सत्यवाग्भव साम्प्रतम् ॥ ४७

हरिश्चन्द्र उवाच

स्वामिन् राज्यं तवेदं मे मया दत्तं किलाधुना।
त्यक्त्वान्यत्र गमिष्यामि मा चिन्तां कुरु कौशिक ॥ ४८

अपने पति राजा हरिश्चन्द्रको चिन्ताग्रस्त देखकर रानीने इसका कारण पूछा—हे प्रभो! इस समय आप उदास क्यों दिखायी दे रहे हैं, आपको कौन-सी चिन्ता है? मुझे बताइये ॥ ३९ ॥

अब तो आपका पुत्र भी वनसे लौट आया है और आपने बहुत पहले ही राजसूययज्ञ भी सम्पन्न कर लिया है, तो फिर आप किसलिये शोक कर रहे हैं? हे राजेन्द्र! अपनी चिन्ताका कारण बताइये ॥ ४० ॥

इस समय बलशाली अथवा बलहीन आपका कोई शत्रु भी कहीं नहीं है। वरुणदेव भी आपसे परम सन्तुष्ट हैं। आपने संसारमें अपने सारे मनोरथ सफल कर लिये हैं। हे बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ! चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है, चिन्ताके समान तो मृत्यु भी नहीं है; इसलिये आप चिन्ता छोड़िये और स्वस्थ रहिये ॥ ४१-४२ ॥

[हे जनमेजय!] अपनी पत्नीकी बात सुनकर राजाने प्रेमपूर्वक उन्हें चिन्ताका शुभाशुभ थोड़ा-बहुत कारण बतला दिया ॥ ४३ ॥

उस समय चिन्तासे आकुल राजा हरिश्चन्द्रने भोजनतक नहीं किया। सुन्दर शय्यापर लेटे रहनेपर भी राजाको निद्रा नहीं आयी ॥ ४४ ॥

चिन्ताग्रस्त राजा हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब सन्ध्या-वन्दन आदि क्रियाएँ कर रहे थे, उसी समय मुनि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे ॥ ४५ ॥

राजाका सर्वस्व हरण कर लेनेवाले मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालने राजाको दी। तब मुनि विश्वामित्र उनके पास गये और बार-बार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे— ॥ ४६ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अपना राज्य छोड़िये और अपने वचनसे संकल्पित इस राज्यको मुझे दे दीजिये। हे राजेन्द्र! अब प्रतिज्ञा की हुई सुवर्णकी दक्षिणा भी दीजिये और सत्यवादी बनिये ॥ ४७ ॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे स्वामिन्! मेरा यह राज्य अब आपका है; क्योंकि मैंने इसे आपको दे दिया है। हे कौशिक! इसे छोड़कर अब मैं अन्यत्र चला जाऊँगा, आप चिन्ता न करें ॥ ४८ ॥

सर्वस्वं मम ते ब्रह्मन् गृहीतं विधिवद्विभो।
सुवर्णदक्षिणां दातुमशक्तोऽस्म्यधुना द्विज॥ ४९

दानं ददामि ते तावद्यावन्मे स्याद्धनागमः।
पुनश्चेत्कालयोगेन तदा दास्यामि दक्षिणाम्॥ ५०

इत्युक्त्वा नृपतिः प्राह पुत्रं भार्यां च माधवीम्।
राज्यमस्मै प्रदत्तं वै मया वेद्यां सुविस्तरम्॥ ५१

हस्त्यश्वरथसंयुक्तं रत्नहेमसमन्वितम्।
त्यक्त्वा त्रीणि शरीराणि सर्वं चास्मै समर्पितम्॥ ५२

त्यक्त्वायोध्यां गमिष्यामि कुत्रचिद्वनगह्वरे।
गृह्णात्विदं मुनिः सम्यग्राज्यं सर्वसमृद्धिमत्॥ ५३

इत्याभाष्य सुतं भार्यां हरिश्चन्द्रः स्वमन्दिरात्।
विनिर्गतः सुधर्मात्मा मानयंस्तं द्विजोत्तमम्॥ ५४

व्रजन्तं भूपतिं वीक्ष्य भार्यापुत्रावुभावपि।
चिन्तातुरौ सुदीनास्यौ जग्मतुः पृष्ठतस्तदा॥ ५५

हाहाकारो महानासीन्नगरे वीक्ष्य तांस्तथा।
चुक्रुशुः प्राणिनः सर्वे साकेतपुरवासिनः॥ ५६

हा राजन् किं कृतं कर्म कुतः क्लेशः समागतः।
वञ्चितोऽसि महाराज विधिनापण्डितेन ह॥ ५७

सर्वे वर्णास्तदा दुःखमाप्नुयुस्तं महीपतिम्।
विलोक्य भार्यया सार्धं पुत्रेण च महात्मना॥ ५८

निनिन्दुर्ब्राह्मणं तं तु दुराचारं पुरौकसः।
धूर्तोऽयमिति भाषन्तो दुःखार्ता ब्राह्मणादयः॥ ५९

हे ब्रह्मन्! मेरा सर्वस्व तो विधिपूर्वक आपने ग्रहण कर लिया है, अतः हे विभो! इस समय मैं आपको स्वर्ण-दक्षिणा देनेमें असमर्थ हूँ। हे द्विज! जब मेरे पास धन हो जायगा, तब मैं आपको दक्षिणा दे दूँगा और यदि दैवयोगसे धन उपलब्ध हो गया, तो उसी समय मैं आपकी दक्षिणा चुका दूँगा॥ ४९-५०॥

विश्वामित्रसे यह कहकर राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा पत्नी माधवीसे कहा—हाथी, घोड़े, रथ, स्वर्ण तथा रत्न आदिसहित अपना सारा विस्तृत राज्य मैं विवाहवेदीपर इन ब्राह्मणदेवको दान कर चुका हूँ; केवल हमलोगोंके इन तीन शरीरोंको छोड़कर और सब कुछ इन्हें समर्पित कर दिया है। अतः अब मैं अयोध्या छोड़कर किसी वनकी गुफामें चला जाऊँगा। अब ये मुनि इस सर्वसमृद्धिशाली राज्यको भलीभाँति ग्रहण करें॥ ५१—५३॥

[हे जनमेजय!] अपने पुत्र तथा पत्नीसे यह कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको सम्मान देते हुए अपने भवनसे निकल पड़े॥ ५४॥

राजाको जाते देखकर उनकी पत्नी माधवी तथा पुत्र रोहित चिन्तित हो गये तथा उनके मुखपर उदासी छा गयी। वे दोनों भी उनके पीछे-पीछे चल दिये॥ ५५॥

उन सभीको इस स्थितिमें देखकर नगरमें बड़ा हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सभी प्राणी चीख-चीखकर रोने लगे—हा राजन्! आपने यह कैसा कर्म कर डाला! आपके ऊपर यह संकट कहाँसे आ पड़ा। हे महाराज! यह निश्चय है कि आप विवेकहीन विधाताद्वारा ठग लिये गये हैं॥ ५६-५७॥

महात्मा पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीके सहित उन राजा हरिश्चन्द्रको इस दशामें देखकर सभी वर्णके लोग बहुत दुःखी हुए॥ ५८॥

'यह महान् धूर्त है'—ऐसा कहते हुए नगरवासी ब्राह्मण आदि लोग दुःखसे व्याकुल होकर उस दुराचारी ब्राह्मण (विश्वामित्र)-की निन्दा करने लगे॥ ५९॥

निर्गत्य नगरात्तस्माद्विश्वामित्रः क्षितीश्वरम्।
गच्छन्तं तमुवाचेदं समेत्य निष्ठुरं वचः॥ ६०

दक्षिणायाः सुवर्णं मे दत्त्वा गच्छ नराधिप।
नाहं दास्यामि वा ब्रूहि मया त्यक्तं सुवर्णकम्॥ ६१

राज्यं गृहाण वा सर्वं लोभश्चेद्धृदि वर्तते।
दत्तं चेन्मन्यसे राजन् देहि यत्तत्प्रतिश्रुतम्॥ ६२

एवं ब्रुवन्तं गाधेयं हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
प्रणिपत्य सुदीनात्मा कृताञ्जलिपुटोऽब्रवीत्॥ ६३

महाराज हरिश्चन्द्र अभी नगरसे निकलकर जा ही रहे थे कि इतनेमें विश्वामित्र पुनः उनके सम्मुख आकर उनसे यह निष्ठुर वचन कहने लगे—हे राजन्! मेरी सुवर्ण दक्षिणा देकर आप जाइये अथवा यह कह दीजिये कि मैं नहीं दूँगा तो मैं वह सुवर्ण छोड़ दूँगा। हे राजन्! यदि आपके हृदयमें लोभ हो तो आप अपना सारा राज्य वापस ले लीजिये और यदि आप यह मानते हैं कि 'मैं वस्तुतः दान दे चुका हूँ' तो जिस सुवर्णकी आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं, उसे मुझको दे दीजिये॥ ६०—६२॥

विश्वामित्रके यह कहनेपर अत्यन्त उदास मनवाले राजा हरिश्चन्द्र उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
कौशिकाय सर्वस्वसमर्पणं तद्दक्षिणादानवर्णनं
नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रका दक्षिणा देनेहेतु स्वयं, रानी और पुत्रको बेचनेके लिये काशी जाना

हरिश्चन्द्र उवाच

अदत्त्वा ते हिरण्यं वै न करिष्यामि भोजनम्।
प्रतिज्ञा मे मुनिश्रेष्ठ विषादं त्यज सुव्रत॥ १

सूर्यवंशसमुद्भूतः क्षत्रियोऽहं महीपतिः।
राजसूयस्य यज्ञस्य कर्ता वाञ्छितदो नृषु॥ २

कथं करोमि नाकारं स्वामिन्दत्त्वा यदृच्छया।
अवश्यमेव दातव्यमृणं ते द्विजसत्तम॥ ३

स्वस्थो भव प्रदास्यामि सुवर्णं मनसेप्सितम्।
कञ्चित्कालं प्रतीक्षस्व यावत्प्राप्स्याम्यहं धनम्॥ ४

विश्वामित्र उवाच

कुतस्ते भविता राजन् धनप्राप्तिरतः परम्।
गतं राज्यं तथा कोशो बलं चैवार्थसाधनम्॥ ५

हरिश्चन्द्र बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे मुनिवर! आप विषाद छोड़िये, मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना स्वर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा॥ १॥

मैं सूर्यवंशमें उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा हूँ। मनुष्योंकी सारी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला मैं राजसूययज्ञ सम्पन्न कर चुका हूँ॥ २॥

हे स्वामिन्! इच्छानुसार दान दे करके मैं 'नहीं' ऐसा शब्द किस प्रकार उच्चारित कर सकता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। आप निश्चिन्त रहें, मैं आपका मनोवांछित स्वर्ण आपको अवश्य दूँगा, किंतु जबतक मुझे धन उपलब्ध नहीं हो जाता, तबतक कुछ समयके लिये आप प्रतीक्षा करें॥ ३-४॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अब आपको धनप्राप्ति कहाँसे होगी? आपका राज्य, कोष, सेना तथा अर्थोपार्जनका समस्त साधन—यह सब [आपके अधिकारसे] चला गया। अतः हे राजन्! धनके लिये

वृथाशा ते महीपाल धनार्थे किं करोम्यहम्।
निर्धनं त्वां च लोभेन पीडयामि कथं नृप॥ ६

तस्मात्कथय भूपाल न दास्यामीति साम्प्रतम्।
त्यक्त्वाशां महतीं कामं गच्छाम्यहमतः परम्॥ ७

यथेष्टं व्रज राजेन्द्र भार्यापुत्रसमन्वितः।
सुवर्णं नास्ति किं तुभ्यं ददामीति वदाधुना॥ ८

व्यास उवाच

गच्छन्वाक्यमिदं श्रुत्वा ब्राह्मणस्य च भूपतिः।
प्रत्युवाच मुनिं ब्रह्मन् धैर्यं कुरु ददाम्यहम्॥ ९

मम देहोऽस्ति भार्यायाः पुत्रस्य च ह्यनामयः।
क्रीत्वा देहं तु तं नूनमृणं दास्यामि ते द्विज॥ १०

ग्राहकं पश्य विप्रेन्द्र वाराणस्यां पुरि प्रभो।
दासभावं गमिष्यामि सदारोऽहं सपुत्रकः॥ ११

गृहाण काञ्चनं पूर्णं सार्धं भारद्वयं मुने।
मौल्येन दत्त्वा सर्वान्नः सन्तुष्टो भव भूधर॥ १२

इति ब्रुवञ्जगामाथ सह पत्न्या सुतान्वितः।
उमया कान्तया सार्धं यत्रास्ते शङ्करः स्वयम्॥ १३

तां दृष्ट्वा च पुरीं रम्यां मनसो ह्लादकारिणीम्।
उवाच स कृतार्थोऽस्मि पुरीं पश्यन्सुवर्चसम्॥ १४

ततो भागीरथीं प्राप्य स्नात्वा देवादितर्पणम्।
देवार्चनं च निर्वर्त्य कृतवान् दिग्विलोकनम्॥ १५

प्रविश्य वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम्।
नैषा मनुष्यभुक्तेति शूलपाणेः परिग्रहः॥ १६

जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्या समाकुलः।
पुरीं प्रविश्य स नृपो विश्वासमकरोत्तदा॥ १७

आपको आशा करना व्यर्थ है। हे नृप! इस स्थितिमें मैं क्या करूँ? मैं धनके लोभसे आप-जैसे निर्धन व्यक्तिको पीड़ित भी कैसे करूँ? इसलिये हे राजन्! आप कह दीजिये—'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धनप्राप्तिकी आशा त्यागकर यहाँसे इच्छानुसार चला जाऊँगा। हे राजेन्द्र! 'अब मेरे पास स्वर्ण नहीं है, तो आपको क्या दूँ'—ऐसा बोल दीजिये और पत्नी तथा पुत्रके साथ अपने इच्छानुसार चले जाइये॥ ५—८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्राह्मणकी यह बात सुनकर उस समय जा रहे राजा हरिश्चन्द्रने मुनिको उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! आप धैर्य रखिये, मैं आपको धन अवश्य दूँगा। हे द्विज! अभी भी मेरा, मेरी पत्नी तथा मेरे पुत्रका शरीर स्वस्थ है; मैं उस शरीरको बेचकर आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। हे विप्रवर! हे प्रभो! आप वाराणसी पुरीमें किसी ग्राहकका अन्वेषण कीजिये, मैं अपनी पत्नी तथा पुत्रसहित उसका दास बन जाऊँगा। हे मुने! हे भूधर! उसके हाथों हमें बेचकर आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना ले लीजिये और सन्तुष्ट हो जाइये॥ ९—१२॥

ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या तथा पुत्रके साथ उस काशीपुरीमें गये, जहाँ साक्षात् भगवान् शिव अपनी प्रिया उमाके साथ विराजमान रहते हैं॥ १३॥

मनको आह्लादित करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर उन्होंने कहा कि इस परम तेजोमयी काशीपुरीका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया॥ १४॥

तत्पश्चात् गंगातटपर आकर स्नान करके उन्होंने देवता आदिका तर्पण किया। इसके बाद देवताओंकी पूजासे निवृत्त होकर वे चारों ओर घूमकर देखने लगे॥ १५॥

राजा हरिश्चन्द्र उस दिव्य वाराणसीपुरीमें प्रविष्ट होकर सोचने लगे कि यह पुरी मानवोंके भोगकी वस्तु नहीं है; क्योंकि यह भगवान् शिवकी सम्पदा है। दुःखसे अधीर होकर घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्याके साथ पैदल ही चलते रहे। पुरीमें प्रवेश हो जानेपर राजा आश्वस्त हो गये॥ १६-१७॥

ददृशेऽथ मुनिश्रेष्ठं ब्राह्मणं दक्षिणार्थिनम्।
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत्॥ १८

प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम्।
इमे प्राणाः सुतश्चायं प्रिया पत्नी मुने मम॥ १९

येन ते कृत्यमस्त्याशु गृहाणाद्य द्विजोत्तम।
यच्चान्यत्कार्यमस्माभिस्तन्ममाख्यातुमर्हसि॥ २०

विश्वामित्र उवाच

पूर्णः स मासो भद्रं ते दीयतां मम दक्षिणा।
पूर्वं तस्य निमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि॥ २१

राजोवाच

ब्रह्मन्नाद्यापि सम्पूर्णो मासो ज्ञानतपोबल।
तिष्ठत्येकदिनार्धं यत्तत्प्रतीक्षस्व नापरम्॥ २२

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज आगमिष्याम्यहं पुनः।
शापं तव प्रदास्यामि न चेदद्य प्रयच्छसि॥ २३

इत्युक्त्वाथ ययौ विप्रो राजा चाचिन्तयत्तदा।
कथमस्मै प्रयच्छामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता॥ २४

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुत्रार्थः साम्प्रतं मम।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टो मे तत्र याच्ञा कथं भवेत्॥ २५

राज्ञां वृत्तित्रयं प्रोक्तं धर्मशास्त्रेषु निश्चितम्।
यदि प्राणान्विमुञ्चामि ह्यप्रदाय च दक्षिणाम्॥ २६

ब्रह्मस्वहा कृमिः पापो भविष्याम्यधमाधमः।
अथवा प्रेततां यास्ये वर एवात्मविक्रयः॥ २७

उसी समय उन्होंने दक्षिणाकी अभिलाषा रखनेवाले ब्राह्मणवेशधारी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रको देखा। उन महामुनिको सामने उपस्थित देखकर महाराज हरिश्चन्द्र विनयावनत हो गये और दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—हे मुने! मेरे प्राण, पुत्र तथा प्रिय पत्नी—सब उपस्थित हैं। इनमेंसे जिससे भी आपकी कार्यसिद्धि हो सके, उसे आप शीघ्रतापूर्वक अभी ले लीजिये। साथ ही हे द्विजश्रेष्ठ! हमसे आपका अन्य जो भी कार्य बन सकता हो, उसे भी आप बतानेकी कृपा करें॥ १८—२०॥

विश्वामित्र बोले—[हे राजन्!] आपका कल्याण हो। वह महीना पूर्ण हो गया, इसलिये यदि आपको अपने वचनका स्मरण हो तो पूर्वमें की गयी प्रतिज्ञाकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २१॥

राजा बोले—ज्ञान और तपके बलसे सम्पन्न हे ब्रह्मन्! आज अवश्य ही महीना पूर्ण हो गया, किंतु अभी दिनका आधा भाग अवशिष्ट है। अतः आप तबतक प्रतीक्षा करें, इसके बाद नहीं॥ २२॥

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, मैं पुनः आऊँगा। किंतु यदि आपने आज दक्षिणा नहीं दी, तो मैं आपको शाप दे दूँगा॥ २३॥

ऐसा कहकर जब विप्ररूप विश्वामित्र चले गये, तब राजा हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इन विप्रदेवके लिये जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ, उसे अब इन्हें कैसे दूँ?॥ २४॥

इस समय कहाँसे मेरे धनसम्पन्न मित्र मिल जायँगे अथवा इतनी सम्पत्ति ही कहाँसे मिल जायगी। साथ ही किसीसे धन लेना मेरे लिये दोषकारक है, अतः धनकी याचना भी कैसे की जा सकती है? धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिये तीन प्रकारकी ही सुनिश्चित वृत्तियाँ (दान देना, विद्याध्ययन करना तथा यज्ञ करना) बतायी गयी हैं। यदि दक्षिणा दिये बिना ही प्राणत्याग कर देता हूँ तो ब्राह्मणका धन अपहरण करनेके कारण मुझ अधमसे भी अधम पापीको दूसरे जन्ममें कीड़ा होना पड़ेगा अथवा मैं प्रेतयोनिमें चला जाऊँगा। अतः अपनेको बेच डालना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है॥ २५—२७॥

सूत उवाच

राजानं व्याकुलं दीनं चिन्तयानमधोमुखम्।
प्रत्युवाच तदा पत्नी बाष्पगद्गदया गिरा॥ २८

त्यज चिन्तां महाराज स्वधर्ममनुपालय।
प्रेतवद्वर्जनीयो हि नरः सत्यबहिष्कृतः॥ २९

नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य च।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्यानुपालनम्॥ ३०

अग्निहोत्रमधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः।
भवन्ति तस्य वैफल्यं वाक्यं यस्यानृतं भवेत्॥ ३१

सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम्॥ ३२

शताश्वमेधानादृत्य राजसूयं च पार्थिवः।
कृत्वा राजा सकृत्स्वर्गादसत्यवचनाच्च्युतः॥ ३३

राजोवाच

वंशवृद्धिकरश्चायं पुत्रस्तिष्ठति बालकः।
उच्यतां वक्तुकामासि यद्वाक्यं गजगामिनि॥ ३४

पत्न्युवाच

राजन् माभूदसत्यं ते पुंसां पुत्रफलाः स्त्रियः।
तन्मां प्रदाय वित्तेन देहि विप्राय दक्षिणाम्॥ ३५

व्यास उवाच

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौ मोहं महीपतिः।
प्रतिलभ्य च संज्ञां वै विललापातिदुःखितः॥ ३६

महद्दुःखमिदं भद्रे यत्त्वमेवं ब्रवीषि मे।
किं तव स्मितसंल्लापा मम पापस्य विस्मृताः॥ ३७

हा हा त्वया कथं योग्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कथं वदसि भामिनि॥ ३८

सूतजी बोले—उस समय व्याकुल होकर नीचेकी ओर मुख करके ऐसा सोचते हुए दयनीय दशाको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रसे उनकी पत्नी अश्रुके कारण रुँधे कंठसे गद्गद वाणीमें कहने लगीं—॥ २८॥

हे महाराज! आप चिन्ता छोड़िये और अपने धर्मका पालन कीजिये; क्योंकि सत्यसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य है॥ २९॥

हे पुरुषव्याघ्र! अपने सत्य वचनका अनुपालनरूप जो धर्म है, उससे बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म मनुष्यके लिये नहीं कहा गया है॥ ३०॥

जिस व्यक्तिका वचन मिथ्या हो जाय, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते हैं॥ ३१॥

जिस प्रकार धर्मशास्त्रोंमें पुण्यात्माओंके उद्धारके लिये सत्यपालनको विशेष कारण बताया गया है, उसी प्रकार दुराचारियोंके पतनके लिये मिथ्याको परम हेतु कहा गया है॥ ३२॥

सैकड़ों अश्वमेध तथा राजसूययज्ञ आदरपूर्वक करके भी मात्र एक बार मिथ्या बोल देनेके कारण एक राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था॥ ३३॥

राजा बोले—हे गजगामिनि! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह बालक पुत्र तो विद्यमान है ही, अतः तुम जो भी बात कहना चाहती हो, उसे कहो; मैं उसे माननेके लिये तैयार हूँ॥ ३४॥

पत्नी बोली—हे राजन्! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। स्त्रियाँ पुत्रप्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं, अतः आप मुझे बेचकर उस धनसे विप्रकी दक्षिणा चुका दें॥ ३५॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] पत्नीकी यह बात सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये, पुनः चेतनामें आनेके बाद वे बहुत दुःखी होकर इस प्रकार विलाप करने लगे—हे भद्रे! यह मेरे लिये महान् दुःखप्रद है, जो तुम मुझसे ऐसा बोल रही हो। क्या तुम्हारे मुसकानयुक्त वचन मुझ पापीको विस्मृत हो गये हैं? हे शुचिस्मिते! ऐसा बोलना तुम्हारे लिये भला कैसे ठीक है? हे भामिनि! इस प्रकारकी अप्रिय बात तुम क्यों बोल रही हो?॥ ३६—३८॥

इत्युक्त्वा नृपतिश्रेष्ठो न धीरो दारविक्रये।
निपपात महीपृष्ठे मूर्च्छयातिपरिप्लुतः॥ ३९

शयानं भुवि तं दृष्ट्वा मूर्च्छयापि महीपतिम्।
उवाचेदं सुकरुणं राजपुत्री सुदुःखिता॥ ४०

हा महाराज कस्येदमपध्यानादुपागतम्।
यस्त्वं निपतितो भूमौ रङ्कवच्छरणोचितः॥ ४१

येनैव कोटिशो वित्तं विप्राणामपवर्जितम्।
स एव पृथिवीनाथो भुवि स्वपिति मे पतिः॥ ४२

हा कष्टं किं तवानेन कृतं दैव महीक्षिता।
यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयं नीतः पापामिमां दशाम्॥ ४३

इत्युक्त्वा सापि सुश्रोणी मूर्च्छिता निपपात ह।
भर्तुर्दुःखमहाभारेणासह्येनातिपीडिता॥ ४४

शिशुर्दृष्ट्वा क्षुधाविष्टः प्राह वाक्यं सुदुःखितः।
तात तात प्रदेह्यन्नं मातर्मे देहि भोजनम्॥ ४५

क्षुन्मे बलवती जाता जिह्वाग्रे मेऽतिशुष्यति॥ ४६

स्त्रीविक्रयकी बातसे अधीरताको प्राप्त नृपतिश्रेष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र यह कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छासे अत्यधिक व्याकुल हो गये॥ ३९॥

राजाको मूर्च्छाके कारण भूमिपर पड़ा हुआ देखकर राजपुत्री अत्यन्त दुःखित हो गयीं और वे उनसे परम करुणामय वचन कहने लगीं—हे महाराज! किसके अनिष्टचिन्तनसे यह संकट आ पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप शरणदाता होते हुए भी आप दरिद्रकी भाँति पृथ्वीपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी, वे ही पृथ्वीनाथ मेरे पति आज पृथ्वीपर सो रहे हैं। हाय, महान् कष्ट है। हे दैव! इन महाराजने आपका क्या कर दिया, जिसके कारण आपने इन्द्र तथा उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले इन नरेशको इस पापमयी दशामें पहुँचा दिया है॥ ४०—४३॥

ऐसा कहकर अपने स्वामीके असहनीय महान् दुःखके भारसे अत्यधिक सन्तप्त वे सुन्दर कटिप्रदेशवाली रानी भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं॥ ४४॥

उस समय क्षुधासे पीड़ित बालक रोहित यह देखकर अत्यन्त दुःखित होकर यह वचन कहने लगा—हे तात! हे तात! मुझे अन्न दीजिये, हे माता! मुझे भोजन दीजिये। इस समय मुझे अत्यधिक भूख लगी है और मेरी जिह्वाका अग्रभाग तेजीसे सूखा जा रहा है॥ ४५-४६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगना और रानीका अपनेको विक्रयहेतु प्रस्तुत करना

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो विश्वामित्रो महातपाः।
अन्तकेन समः क्रुद्धो धनं स्वं याचितुं हृदा॥ १

तमालोक्य हरिश्चन्द्रः पपात भुवि मूर्च्छितः।
स वारिणा तमभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत्॥ २

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र स्वां ददस्वेष्टदक्षिणाम्।
ऋणं धारयतां दुःखमहन्यहनि वर्धते॥ ३

सूतजी बोले—इतनेमें यमराजके समान क्रोधयुक्त महान् तपस्वी विश्वामित्र मनमें संकल्पित अपना दक्षिणा-सम्बन्धी धन माँगनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। विश्वामित्रने जलके छींटे देकर राजासे यह वचन कहा—हे राजेन्द्र! उठिये, उठिये और अपनी अभीष्ट दक्षिणा दीजिये। ऋण धारण करनेवालोंका दुःख दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है॥ २-३॥

आप्यायमानः स तदा हिमशीतेन वारिणा।
अवाप्य चेतनां राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च॥ ४

पुनर्मोहं समापेदे ह्यथ क्रोधं ययौ मुनिः।
समाश्वास्य च राजानं वाक्यमाह द्विजोत्तमः॥ ५

विश्वामित्र उवाच

दीयतां दक्षिणा सा मे यदि धैर्यमवेक्षसे।
सत्येनार्कः प्रतपति सत्ये तिष्ठति मेदिनी॥ ६

सत्ये प्रोक्तः परो धर्मः स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः।
अश्वमेधसहस्रं तु सत्यं च तुलया धृतम्॥ ७

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते।
अथवा किं ममैतेन प्रोक्तेनास्ति प्रयोजनम्॥ ८

मदीयां दक्षिणां राजन्न दास्यति भवान्यदि।
अस्ताचलगते ह्यर्के शप्स्यामि त्वामतो ध्रुवम्॥ ९

इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुरः।
दुःखीभूतोऽवनौ निःस्वो नृशंसमुनिनार्दितः॥ १०

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे तत्र ब्राह्मणो वेदपारगः।
ब्राह्मणैर्बहुभिः सार्धं निर्ययौ स्वगृहाद् बहिः॥ ११

ततो राज्ञी तु तं दृष्ट्वा आयान्तं तापसं स्थितम्।
उवाच वाक्यं राजानं धर्मार्थसहितं तदा॥ १२

त्रयाणामपि वर्णानां पिता ब्राह्मण उच्यते।
पितृद्रव्यं हि पुत्रेण ग्रहीतव्यं न संशयः॥ १३

तस्मादयं प्रार्थनीयो धनार्थमिति मे मतिः।

राजोवाच

नाहं प्रतिग्रहं काङ्क्षे क्षत्रियोऽहं सुमध्यमे॥ १४

याचनं खलु विप्राणां क्षत्रियाणां न विद्यते।
गुरुर्हि विप्रो वर्णानां पूजनीयोऽस्ति सर्वदा॥ १५
तस्माद् गुरुर्न याच्यः स्यात्क्षत्रियाणां विशेषतः।

तत्पश्चात् बर्फतुल्य शीतल जलके छींटेसे आप्यायित होकर राजा चेतनामें आ गये, किंतु विश्वामित्रको देखते ही वे पुनः मूर्च्छित हो गये। इससे मुनि कुपित हो उठे और राजा हरिश्चन्द्रको आश्वासन देते हुए द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र कहने लगे—॥ ४-५॥

विश्वामित्र बोले—यदि आपको धैर्य अभीष्ट है तो मेरी वह दक्षिणा दे दीजिये। सत्यसे ही सूर्य तपता है और सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। परमधर्मको भी सत्यमें स्थित कहा गया है और स्वर्गकी प्रतिष्ठा भी सत्यसे ही है। यदि एक हजार अश्वमेधयज्ञ और सत्य तुलापर रखे जायँ तो सत्य उन हजार अश्वमेधयज्ञोंसे बढ़ जायगा। मेरे यह सब कहनेसे क्या प्रयोजन? हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणा नहीं दे देते तो सूर्यास्त होते ही मैं आपको निश्चितरूपसे शाप दे दूँगा॥ ६—९॥

ऐसा कहकर वे विप्र विश्वामित्र चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्र भयसे व्याकुल हो उठे और उन नृशंस मुनिके द्वारा पीड़ित वे निर्धन राजा दुःखित होकर पृथ्वीपर बैठ गये॥ १०॥

सूतजी बोले—इसी बीच एक वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणोंके साथ अपने घरसे बाहर निकले। तत्पश्चात् वहाँ आकर रुके हुए उन तपस्वी ब्राह्मणको देखकर रानीने राजासे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा—ब्राह्मण तीनों वर्णोंका पिता कहा जाता है। पुत्रके द्वारा पितासे धन लिया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। अतः मेरी तो यह सम्मति है कि इस ब्राह्मणसे धनके लिये प्रार्थना की जाय॥ ११—१३½॥

राजा बोले—हे सुमध्यमे! मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिये किसीसे दान लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता। याचना करना ब्राह्मणोंका कार्य है, क्षत्रियोंका नहीं। ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है और सर्वदा पूजनीय है। इसलिये गुरुसे याचना नहीं करनी चाहिये और क्षत्रियोंको विशेषरूपसे इसका पालन करना चाहिये॥ १४-१५½॥

यजनाध्ययनं दानं क्षत्रियस्य विधीयते॥ १६

शरणागतानामभयं प्रजानां प्रतिपालनम्।
न चाप्येवं तु वक्तव्यं देहीति कृपणं वचः॥ १७

ददामीत्येव मे देवि हृदये निहितं वचः।
अर्जितं कुत्रचिद् द्रव्यं ब्राह्मणाय ददाम्यहम्॥ १८

पत्न्युवाच

कालः समविषमकरः परिभवसम्मानमानदः कालः।
कालः करोति पुरुषं दातारं याचितारं च॥ १९

विप्रेण विदुषा राजा क्रुद्धेनातिबलीयसा।
राज्यान्निरस्तः सौख्याच्च पश्य कालस्य चेष्टितम्॥ २०

राजोवाच

असिना तीक्ष्णधारेण वरं जिह्वा द्विधा कृता।
न तु मानं परित्यज्य देहि देहीति भाषितम्॥ २१

क्षत्रियोऽहं महाभागे न याचे किञ्चिदप्यहम्।
ददामि वाहं नित्यं हि भुजवीर्यार्जितं धनम्॥ २२

पत्न्युवाच

यदि ते हि महाराज याचितुं न क्षमं मनः।
अहं तु न्यायतो दत्ता देवैरपि सवासवैः॥ २३

अहं शास्या च पत्या च रक्ष्या चैव महाद्युते।
मन्मौल्यं संगृहीत्वाथ गुर्वर्थं सम्प्रदीयताम्॥ २४

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
कष्टं कष्टमिति प्रोच्य विललापातिदुःखितः॥ २५

भार्या च भूयः प्राहेदं क्रियतां वचनं मम।
विप्रशापाग्निदग्धत्वान्नीचत्वमुपयास्यसि ॥ २६

यज्ञ करना, अध्ययन करना, दान देना, शरणमें आये हुए लोगोंको अभय देना और प्रजाओंका पालन करना—ये ही कर्म क्षत्रियोंके लिये विहित हैं। 'मुझे कुछ दीजिये'—ऐसा दीन वचन क्षत्रियको नहीं बोलना चाहिये। हे देवि! 'देता हूँ'—ऐसा वचन मेरे हृदयमें सदा विद्यमान रहता है। अतः मैं कहीं से भी धन अर्जित करके उस ब्राह्मणको दूँगा॥ १६—१८॥

पत्नीने कहा—कालके प्रभावसे सम और विषम परिस्थितियाँ आया ही करती हैं। काल ही मनुष्यको सम्मान तथा अपमान प्रदान करता है। यह काल ही मनुष्यको दाता तथा याचक बना देता है॥ १९॥

एक विद्वान्, शक्तिशाली तथा कुपित ब्राह्मणने राजाको सौख्य तथा राज्यसे च्युत कर दिया, कालकी यह विचित्र गति तो देखिये॥ २०॥

राजा बोले—तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है, किंतु सम्मानका त्याग करके 'दीजिये-दीजिये'—ऐसा कहना ठीक नहीं है॥ २१॥

हे महाभागे! मैं क्षत्रिय हूँ, अतः किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता, अपितु अपने बाहुबलसे अर्जित धनका नित्य दान करता हूँ॥ २२॥

पत्नीने कहा—हे महाराज! यदि आपका मन याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो इन्द्रसहित सभी देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है और आपने स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी सदा रक्षा की है। अतएव हे महाद्युते! आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २३-२४॥

पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है'—ऐसा कहकर अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगे॥ २५॥

तब उनकी धर्मपत्नीने पुनः कहा—'आप मेरी यह बात मान लीजिये। अन्यथा विप्रके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो जानेपर आपको नीचयोनिमें पहुँचना पड़ेगा। न तो द्यूतक्रीडाके लिये, न मदिरापानके

न द्यूतहेतोर्न च मद्यहेतो-
र्न राज्यहेतोर्न च भोगहेतोः।
ददस्व गुर्वर्थमतो मया त्वं
सत्यव्रतत्वं सफलं कुरुष्व॥ २७

लिये, न राज्यके निमित्त और न तो भोग-विलासके लिये ही आप ऐसा करेंगे। अतः मेरे मूल्यसे गुरुकी दक्षिणा चुका दीजिये और अपने सत्यरूपी व्रतको सफल बनाइये॥ २६-२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

राजा हरिश्चन्द्रका रानी और राजकुमारका विक्रय करना और विश्वामित्रको ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देना तथा विश्वामित्रका और अधिक धनके लिये आग्रह करना

व्यास उवाच

स तया नोद्यमानस्तु राजा पत्न्या पुनः पुनः।
प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं ते सुनिर्घृणः॥ १

नृशंसैरपि यत्कर्तुं न शक्यं तत्करोम्यहम्।
यदि ते भ्राजते वाणी वक्तुमीदृक्सुनिष्ठुरम्॥ २

एवमुक्त्वा ततो राजा गत्वा नगरमातुरः।
अवतार्य तदा रङ्गे तां भार्यां नृपसत्तमः॥ ३

बाष्पगद्गदकण्ठस्तु ततो वचनमब्रवीत्।
भो भो नागरिकाः सर्वे शृणुध्वं वचनं मम॥ ४

कस्यचिद्यदि कार्यं स्याद्दास्या प्राणेष्टया मम।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्स्वं धारयाम्यहम्॥ ५

तेऽब्रुवन्पण्डिताः कस्त्वं पत्नीं विक्रेतुमागतः।

राजोवाच

किं मां पृच्छथ कस्त्वं भो नृशंसोऽहममानुषः॥ ६

राक्षसो वास्मि कठिनस्ततः पापं करोम्यहम्।

व्यास उवाच

तं शब्दं सहसा श्रुत्वा कौशिको विप्ररूपधृक्॥ ७

वृद्धरूपं समास्थाय हरिश्चन्द्रमभाषत।
समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः॥ ८

व्यासजी बोले—हे राजन्! अपनी धर्मपत्नीके द्वारा बार-बार प्रेरित किये जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे भद्रे! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हारे विक्रयकी बात स्वीकार करता हूँ। यदि तुम्हारी वाणी ऐसा निष्ठुर वचन बोलनेके लिये तत्पर है तो जिस कामको महान्-से-महान् क्रूर भी नहीं कर सकते, उसे मैं करूँगा॥ १-२॥

ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रतापूर्वक नगरमें गये और वहाँ नाटक आदि दिखाये जानेवाले स्थानपर अपनी भार्याको प्रस्तुत करके आँसुओंसे रुँधे हुए कण्ठसे उन्होंने कहा—हे नगरवासियो! आपलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनिये। आपलोगोंमेंसे किसीको भी यदि मेरी इस प्राणप्रिया भार्यासे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो वह शीघ्र बोले। मैं जितना धन चाहता हूँ, उतनेमें कोई भी इसे खरीद ले। इसपर वहाँ उपस्थित बहुतसे विद्वान् पुरुषोंने पूछा—'अपनी पत्नीका विक्रय करनेके लिये यहाँ आये हुए तुम कौन हो?'॥ ३—५½॥

राजा बोले—आपलोग मुझसे यह क्यों पूछते हैं—'तुम कौन हो?' मैं मनुष्य नहीं; बल्कि महान् क्रूर हूँ, अथवा यह समझिये कि एक भयानक राक्षस हूँ, तभी तो ऐसा पाप कर रहा हूँ॥ ६½॥

व्यासजी बोले—उस शब्दको सुनकर विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा हरिश्चन्द्रके सामने अचानक आ गये और बोले—मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिये तत्पर हूँ, अतः इसे मुझे दे दीजिये॥ ७-८॥

अस्ति मे वित्तमतुलं सुकुमारी च मे प्रिया।
गृहकर्म न शक्नोति कर्तुमस्मात्प्रयच्छ मे॥ ९

अहं गृह्णामि दासीं तु कति दास्यामि ते धनम्।
एवमुक्ते तु विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः॥ १०

विदीर्णं तु मनो दुःखान्न चैनं किञ्चिदब्रवीत्।

विप्र उवाच

कर्मणश्च वयोरूपशीलानां तव योषितः॥ ११

अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम्।
धर्मशास्त्रेषु यद् दृष्टं स्त्रियो मौल्यं नरस्य च॥ १२

द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता।
कोटिमौल्यं सुवर्णस्य स्त्रियः पुंसस्तथार्बुदम्॥ १३

इत्याकर्ण्य वचस्तस्य हरिश्चन्द्रो महीपतिः।
दुःखेन महताविष्टो न चैनं किञ्चिदब्रवीत्॥ १४

ततः स विप्रो नृपतेः पुरतो वल्कलोपरि।
धनं निधाय केशेषु धृत्वा राज्ञीमकर्षयत्॥ १५

राज्ञ्युवाच

मुञ्च मुञ्चार्य मां सद्यो यावत्पश्याम्यहं सुतम्।
दुर्लभं दर्शनं विप्र पुनरस्य भविष्यति॥ १६

पश्येह पुत्र मामेवं मातरं दास्यतां गताम्।
मां मास्प्राक्षी राजपुत्र न स्पृश्याहं त्वयाधुना॥ १७

ततः स बालः सहसा दृष्ट्वाकृष्टां तु मातरम्।
समभ्यधावदम्बेति वदन्साश्रुविलोचनः॥ १८

हस्ते वस्त्रं समाकर्षन् काकपक्षधरः स्खलन्।
तमागतं द्विजः क्रोधाद् बालमप्याहनत्तदा॥ १९
वदंस्तथापि सोऽम्बेति नैव मुञ्चति मातरम्।

मेरे पास बहुत धन है। मेरी पत्नी बहुत ही सुकुमार है, इसलिये वह गृहकार्य नहीं कर पाती, अतः इसे आप मुझे दे दीजिये। मैं इस दासीको स्वीकार तो कर लूँगा, किंतु मुझे इसके बदले आपको धन कितना देना होगा?॥ ९½ ॥

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया और वे कुछ भी नहीं बोले॥ १०½ ॥

विप्रने कहा—आपकी भार्याके कर्म, आयु, रूप और स्वभावके अनुसार यह धन दे रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये और स्त्री मुझे सौंप दें। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री तथा पुरुषका जो मूल्य निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है—यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, दक्ष, शीलवती और गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ स्वर्णमुद्रा है और उसी प्रकारके पुरुषका मूल्य दस करोड़ स्वर्णमुद्रा होता है॥ ११—१३ ॥

उस ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्याकुल हो उठे और उनसे कुछ भी नहीं कह सके॥ १४॥

तत्पश्चात् उस ब्राह्मणने राजाके सामने वल्कलके ऊपर धन रखकर रानीके बालोंको पकड़कर उन्हें खींचना आरम्भ कर दिया॥ १५ ॥

रानीने कहा—हे आर्य! जबतक मैं अपने पुत्रको भलीभाँति देख न लूँ तबतकके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये; क्योंकि हे विप्र! फिरसे इस पुत्रका दर्शन तो दुर्लभ ही हो जायगा॥ १६ ॥

[तत्पश्चात् रानीने कहा—] हे पुत्र! अब दासी बनी हुई अपनी इस माँकी ओर देखो। हे राजपुत्र! तुम मेरा स्पर्श मत करो; क्योंकि अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं रह गयी हूँ॥ १७ ॥

तदनन्तर [ब्राह्मणके द्वारा] खींची जाती हुई माताको सहसा देखकर उस बालकके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और वह 'माँ-माँ' कहता हुआ उनकी ओर दौड़ा॥ १८ ॥

कौवेके पंखके समान केशवाला वह राजकुमार जब हाथसे माताका वस्त्र पकड़कर गिरते हुए साथ चलने लगा, तब वह ब्राह्मण उस आये हुए बालकको क्रोधपूर्वक मारने लगा, फिर भी उस बालकने 'माँ-माँ' कहते हुए अपनी माताको नहीं छोड़ा॥ १९½ ॥

राज्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ क्रीणीष्वेमं हि बालकम्॥ २०

क्रीतापि नाहं भविता विनैनं कार्यसाधिका।
इत्थं ममाल्पभाग्यायाः प्रसादं कुरु मे प्रभो॥ २१

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां मम बालकः।
स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम्॥ २२

शतं सहस्रं लक्षं च कोटिमौल्यं तथापरैः।
द्वात्रिंशल्लक्षणोपेता दक्षा शीलगुणान्विता॥ २३

कोटिमौल्यं स्त्रियः प्रोक्तं पुरुषस्य तथार्बुदम्।

सूत उवाच

तथैव तस्य तद्वित्तं पुरः क्षिप्तं पटे पुनः॥ २४

प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत्।
प्रतस्थे स गृहं क्षिप्रं तया सह मुदान्वितः॥ २५

प्रदक्षिणां तु सा कृत्वा जानुभ्यां प्रणता स्थिता।
बाष्पपर्याकुला दीना त्विदं वचनमब्रवीत्॥ २६

यदि दत्तं यदि हुतं ब्राह्मणास्तर्पिता यदि।
तेन पुण्येन मे भर्ता हरिश्चन्द्रोऽस्तु वै पुनः॥ २७

पादयोः पतितां दृष्ट्वा प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम्।
हाहेति च वदन् राजा विललापाकुलेन्द्रियः॥ २८

वियुक्तेयं कथं जाता सत्यशीलगुणान्विता।
वृक्षच्छायापि वृक्षं तं न जहाति कदाचन॥ २९

एवं भार्यां वदित्वाथ सुसम्बद्धं परस्परम्।
पुत्रं च तमुवाचेदं मां त्वं हित्वा क्व यास्यसि॥ ३०
कां दिशं प्रति यास्यामि को मे दुःखं निवारयेत्।

रानी बोलीं—हे नाथ! मुझपर कृपा कीजिये और इस बालकको भी खरीद लीजिये; क्योंकि आपके द्वारा खरीदी गयी भी मैं इसके बिना आपका कार्य सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं रहूँगी। हे प्रभो! मुझ मन्दभागिनीपर इस प्रकारकी कृपा आप अवश्य कीजिये॥ २०–२१॥

ब्राह्मणने कहा—यह धन लीजिये और अपना पुत्र मुझे दे दीजिये। धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री-पुरुषका मूल्य निर्धारित कर दिया है—जैसे सौ, हजार, लाख और करोड़। उसी प्रकार अन्य विद्वानोंने शुभ लक्षणोंसे युक्त, कुशल तथा सुन्दर स्वभाववाली स्त्रीका मूल्य एक करोड़ तथा वैसे ही गुणोंवाले पुरुषका मूल्य दस करोड़ बताया है॥ २२–२३½॥

सूतजी बोले—तब ब्राह्मणने उसी प्रकार बालकका मूल्य भी सामने रखे हुए वस्त्रपर फेंक दिया और फिर बालकको पकड़कर उसे माताके साथ ही बन्धनमें बाँध दिया। इसके बाद वह ब्राह्मण उन्हें साथ लेकर हर्षपूर्वक शीघ्र ही अपने घरकी ओर चल दिया॥ २४–२५॥

उस समय अत्यन्त दयनीय अवस्थाको प्राप्त रानी राजा हरिश्चन्द्रकी प्रदक्षिणा करके दोनों घुटनोंके सहारे झुककर उन्हें प्रणामकर स्थित हो गयी और नेत्रोंमें आँसू भरकर यह वचन बोली—यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया हो तो उस पुण्यके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र पुनः मुझे पतिरूपमें प्राप्त हो जायँ॥ २६–२७॥

अपने प्राणसे भी बढ़कर प्रिय रानीको चरणोंपर पड़ी हुई देखकर 'हाय, हाय'—ऐसा कहते हुए व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा हरिश्चन्द्र विलाप करने लगे। सत्य, शील और गुणोंसे सम्पन्न मेरी यह भार्या मुझसे अलग कैसे हो गयी? वृक्षकी छाया भी उस वृक्षको कभी नहीं छोड़ती॥ २८–२९॥

इस प्रकार परस्पर घनिष्ठता प्रकट करनेवाला यह वचन भार्यासे कहकर राजाने उस पुत्रसे ऐसा कहा—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाओगे, फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और मेरा दुःख कौन दूर करेगा?॥ ३०½॥

राज्यत्यागे न मे दुःखं वनवासे न मे द्विज॥ ३१

यत्पुत्रेण वियोगो मे एवमाह स भूपतिः।
सद्भर्तृभोग्या हि सदा लोके भार्या भवन्ति हि॥ ३२

मया त्यक्तासि कल्याणि दुःखेन विनियोजिता।
इक्ष्वाकुवंशसम्भूतं सर्वराज्यसुखोचितम्॥ ३३

मामीदृशं पतिं प्राप्य दासीभावं गता ह्यसि।
ईदृशे मज्जमानं मां सुमहच्छोकसागरे॥ ३४

को मामुद्धरते देवि पौराणाख्यानविस्तरैः।

सूत उवाच

पश्यतस्तस्य राजर्षेः कशाघातैः सुदारुणैः॥ ३५

घातयित्वा तु विप्रेशो नेतुं समुपचक्रमे।
नीयमानौ तु तौ दृष्ट्वा भार्यापुत्रौ स पार्थिवः॥ ३६

विललापातिदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः।
यां न वायुर्न वादित्यो न चन्द्रो न पृथग्जनाः॥ ३७

दृष्टवन्तः पुरा पत्नीं सेयं दासीत्वमागता।
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः॥ ३८

सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम्।
हा प्रिये हा शिशो वत्स ममानार्यस्य दुर्नयः॥ ३९

दैवाधीनदशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक्।

व्यास उवाच

एवं विलपतो राज्ञोऽग्रे विप्रोऽन्तरधीयत॥ ४०

वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादाय त्वरान्वितः।
अत्रान्तरे मुनिश्रेष्ठस्त्वाजगाम महातपाः॥ ४१

सशिष्यः कौशिकेन्द्रोऽसौ निष्ठुरः क्रूरदर्शनः।

विश्वामित्र उवाच

या त्वयोक्ता पुरा राजन् राजसूयस्य दक्षिणा॥ ४२
तां ददस्व महाबाहो यदि सत्यं पुरस्कृतम्।

हे द्विज! राज्यका परित्याग करने और वनवास करनेमें मुझे वह दुःख नहीं होगा, जो पुत्रके वियोगसे हो रहा है—ऐसा उस राजाने कहा। [तत्पश्चात् रानीको लक्ष्य करके राजा कहने लगे—] इस लोकमें पत्नियाँ सदा अपने उत्तम पतिके सहयोगहेतु होती हैं, फिर भी हे कल्याणि! मैंने तुम्हारा परित्याग कर दिया है और तुम्हें दुःखी बना दिया है॥ ३१-३२½ ॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न तथा राज्यके सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न मुझ-जैसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन गयी हो। हे देवि! विस्तृत पौराणिक आख्यानोंके द्वारा इस महान् शोकरूपी सागरमें डूब रहे मुझ दीनका उद्धार अब कौन करेगा?॥ ३३-३४½ ॥

सूतजी बोले—तदनन्तर राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने ही कोड़ेसे निष्ठुरतापूर्वक पीटते हुए वह विप्रश्रेष्ठ उन्हें ले जानेका प्रयत्न करने लगा॥ ३५½ ॥

अपनी भार्या तथा पुत्रको ब्राह्मणके द्वारा ले जाते हुए देखकर वे राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर बार-बार उष्ण श्वास लेकर विलाप करने लगे—अबतक जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वीके लोग देख नहीं सके थे, वही मेरी यह भार्या आज दासी बन गयी! हाथोंकी कोमल अँगुलियोंवाला यह बालक, जो सूर्य-वंशमें उत्पन्न है, आज बिक गया। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हा बालक! हा वत्स! मुझ अधमकी दुर्नीतिके कारण ही तुम सब इस दैवाधीन दशाको प्राप्त हुए हो, फिर भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, अतः मुझे धिक्कार है॥ ३६—३९½ ॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंको लेकर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, घर आदिको पार करते हुए वे ब्राह्मण इस तरह विलाप कर रहे राजाके सामनेसे शीघ्रतापूर्वक अन्तर्धान हो गये। इसी समय महान् तपस्वी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र अपने शिष्यके साथ वहाँ आ पहुँचे; उस समय वे कौशिकेन्द्र अत्यन्त निष्ठुर तथा क्रूर दृष्टिगत हो रहे थे॥ ४०-४१½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! हे महाबाहो! यदि आपने सत्यको सदा स्वीकार किया है तो राजसूययज्ञकी जिस दक्षिणाका वचन आपने पहले दे रखा है, उसे अब दे दीजिये॥ ४२½ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

नमस्करोमि राजर्षे गृहाणेमां स्वदक्षिणाम्॥ ४३

राजसूयस्य यागस्य या मयोक्ता पुरानघ।

विश्वामित्र उवाच

कुतो लब्धमिदं द्रव्यं दक्षिणार्थे प्रदीयते॥ ४४

एतदाचक्ष्व राजेन्द्र यथा द्रव्यं त्वयार्जितम्।

राजोवाच

किमनेन महाभाग कथितेन तवानघ॥ ४५

शोकस्तु वर्धते विप्र श्रुतेनानेन सुव्रत।

ऋषिरुवाच

अशस्तं नैव गृह्णामि शस्तमेव प्रयच्छ मे॥ ४६

द्रव्यस्यागमनं राजन् कथयस्व यथातथम्।

राजोवाच

मया देवी तु सा भार्या विक्रीता कोटिसम्मितैः॥ ४७

निष्कैः पुत्रो रोहिताख्यो विक्रीतोऽर्बुदसंख्यया।
विप्रैकादशकोट्यस्त्वं सुवर्णस्य गृहाण मे॥ ४८

सूत उवाच

तद्वित्तं स्वल्पमालक्ष्य दारविक्रयसम्भवम्।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत्॥ ४९

ऋषिरुवाच

राजसूयस्य यज्ञस्य नैषा भवति दक्षिणा।
अन्यदुत्पादय क्षिप्रं सम्पूर्णा येन सा भवेत्॥ ५०

क्षत्रबन्धो ममेमां त्वं सदृशीं यदि दक्षिणाम्।
मन्यसे तर्हि तत्क्षिप्रं पश्य त्वं मे परं बलम्॥ ५१

तपसोऽस्य सुतप्तस्य ब्राह्मणस्यामलस्य च।
मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च॥ ५२

राजोवाच

अन्यद्दास्यामि भगवन् कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम्।
अधुनैवास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः॥ ५३

हरिश्चन्द्र बोले—हे राजर्षे! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे अनघ! राजसूययज्ञके अवसरपर पहले मैंने जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा की थी, यह अपनी दक्षिणा आप ग्रहण कीजिये॥ ४३½ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! दक्षिणाके निमित्त जो यह धन आप दे रहे हैं, उसे आपने कहाँसे प्राप्त किया है? आपने जिस तरहसे यह धन अर्जित किया है, उसे मुझे साफ-साफ बताइये॥ ४४½ ॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे अनघ! अब यह सब बतानेसे क्या प्रयोजन; क्योंकि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे विप्र! इसे सुननेसे आपका शोक ही बढ़ेगा॥ ४५½ ॥

ऋषि बोले—हे राजन्! मैं दूषित धन कदापि ग्रहण नहीं करता, मुझे पवित्र धन दीजिये और जिस उपायसे द्रव्य प्राप्त हुआ हो, उसे यथार्थरूपसे बता दीजिये॥ ४६½ ॥

राजा बोले—हे विप्र! मैंने अपनी उस साध्वी भार्याको एक करोड़ स्वर्णमुद्रामें और अपने रोहित नामक पुत्रको दस करोड़ स्वर्णमुद्रामें बेच दिया है। हे विप्र! इस प्रकार मेरे पास एकत्र इन ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राओंको आप स्वीकार करें॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—स्त्री और पुत्रको बेचनेपर प्राप्त हुए धनको अल्प समझकर विश्वामित्रने क्रोधित होकर शोकग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—॥ ४९॥

ऋषि बोले—राजसूययज्ञकी इतनी ही दक्षिणा नहीं होती, अतः शीघ्र ही और धनका उपार्जन कीजिये, जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो सके। क्षत्रियधर्मका पालन करनेसे विमुख हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणाको इतने द्रव्यके ही तुल्य मानते हैं तो फिर मेरे परम तेजको शीघ्र ही देख लीजिये। अत्यन्त पवित्र अन्तःकरणवाले मुझ ब्राह्मणकी कठोर तपस्या तथा मेरे विशुद्ध अध्ययनके प्रभावको आप अभी देख लें॥ ५०—५२॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं इसके अतिरिक्त और भी दक्षिणा दूँगा, किंतु कुछ समयतक प्रतीक्षा कीजिये। अभी-अभी मैंने अपनी पत्नी तथा अबोध पुत्रको बेचा है॥ ५३॥

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप।
एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया॥ ५४

विश्वामित्र बोले—हे नराधिप! दिनका चौथा प्रहर उपस्थित है; यही प्रतीक्षाका अन्तिम समय है। इसके बाद फिर आप मुझसे कुछ न कहियेगा॥ ५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हरिश्चन्द्रस्य पत्नीपुत्रविक्रयवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचकर ऋणमुक्त करना

व्यास उवाच

तमेवमुक्त्वा राजानं निर्घृणं निष्ठुरं वचः।
तदादाय धनं पूर्णं कुपितः कौशिको ययौ॥ १

व्यासजी बोले—राजा हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारका दयाहीन एवं निष्ठुर वचन कहकर और वह सम्पूर्ण धन लेकर कुपित विश्वामित्र वहाँसे चले गये॥ १॥

विश्वामित्रे गते राजा ततः शोकमुपागतः।
श्वासोच्छ्वासं मुहुः कृत्वा प्रोवाचोच्चैरधोमुखः॥ २

वित्तक्रीतेन यस्यार्तिर्मया प्रेतेन गच्छति।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यामे तिष्ठति भास्करः॥ ३

विश्वामित्रके चले जानेपर राजा शोकसन्तप्त हो उठे। वे बार-बार दीर्घ साँसें लेते हुए तथा नीचेकी ओर मुख करके उच्च स्वरसे बोलने लगे—धनसे बिक जानेके लिये उद्यत प्रेतरूप मुझसे जिसका दुःख दूर हो सके, वह अभी शीघ्रता करके सूर्यके चौथे प्रहरमें रहते-रहते मुझसे बात कर ले॥ २-३॥

अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चाण्डालरूपधृक्।
दुर्गन्धो विकृतोरस्कः श्मश्रुलो दन्तुरोऽघृणी॥ ४

कृष्णो लम्बोदरः स्निग्धः करालः पुरुषाधमः।
हस्तजर्जरयष्टिश्च शवमाल्यैरलङ्कृतः॥ ५

इतनेमें शीघ्र ही वहाँ चाण्डालका रूप धारण करके धर्मदेव आ पहुँचे। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध आ रही थी। उसका वक्ष भयानक था, उसकी विशाल दाढ़ी थी, उसके दाँत बड़े थे और वह बड़ा निर्दयी लग रहा था। उस नराधम तथा भयावने चाण्डालके शरीरका वर्ण काला था, उसका उदर लम्बा था, वह बहुत मोटा था, उसने अपने हाथमें एक जर्जर लाठी ले रखी थी और वह शवोंकी मालाओंसे अलंकृत था॥ ४-५॥

चाण्डाल उवाच

अहं गृह्णामि दासत्वे भृत्यार्थः सुमहान्मम।
क्षिप्रमाचक्ष्व मौल्यं किमेतत्ते सम्प्रदीयते॥ ६

चाण्डाल बोला—मैं तुम्हें दासके रूपमें रखना चाहता हूँ; क्योंकि मुझे सेवककी अत्यन्त आवश्यकता है। शीघ्र बताओ कि इसके लिये तुम्हें कितना मूल्य देना होगा?॥ ६॥

व्यास उवाच

तं तादृशमथालक्ष्य क्रूरदृष्टिं सुनिर्घृणम्।
वदन्तमतिदुःशीलं कस्त्वमित्याह पार्थिवः॥ ७

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अत्यन्त क्रूर दृष्टिवाले उस निष्ठुर तथा अविनीत चाण्डालको इस प्रकार बोलते हुए देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने यह पूछा—'तुम कौन हो?'॥ ७॥

चाण्डाल उवाच

चाण्डालोऽहमिह ख्यातः प्रवीरेति नृपोत्तम।
शासने सर्वदा तिष्ठ मृतचैलापहारकः॥ ८

एवमुक्तस्तदा राजा वचनं चेदमब्रवीत्।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि गृह्णात्विति मतिर्मम॥ ९

उत्तमस्योत्तमो धर्मो मध्यमस्य च मध्यमः।
अधमस्याधमश्चैव इति प्राहुर्मनीषिणः॥ १०

चाण्डाल उवाच

एवमेव त्वया धर्मः कथितो नृपसत्तम।
अविचार्य त्वया राजन्नधुनोक्तं ममाग्रतः॥ ११

विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः।
सामान्यमेव तत्प्रोक्तमविचार्य त्वयानघ॥ १२

यदि सत्यं प्रमाणं ते गृहीतोऽसि न संशयः।

हरिश्चन्द्र उवाच

असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः॥ १३

ततश्चाण्डालता साध्वी न वरा मे ह्यसत्यता।

व्यास उवाच

तस्यैवं वदतः प्राप्तो विश्वामित्रस्तपोनिधिः॥ १४

क्रोधामर्षविवृत्ताक्षः प्राह चेदं नराधिपम्।
चाण्डालोऽयं मनस्थं ते दातुं वित्तमुपस्थितः॥ १५

कस्मान्न दीयते मह्यमशेषा यज्ञदक्षिणा।

राजोवाच

भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक॥ १६

कथं चाण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामतः।

चाण्डाल बोला—हे राजेन्द्र! मैं 'प्रवीर' इस नामसे यहाँपर विख्यात एक चाण्डाल हूँ। मृत व्यक्तिका वस्त्र ग्रहण करना यहाँ तुम्हारा कार्य होगा और तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका पालन करना पड़ेगा॥ ८॥

चाण्डालके ऐसा कहनेपर राजाने यह वचन कहा, 'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण या क्षत्रिय—कोई भी मुझे ग्रहण कर ले; क्योंकि उत्तम पुरुषके साथ उत्तमका, मध्यमके साथ मध्यमका और अधमके साथ अधमका धर्म स्थित रहता है'—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ ९-१०॥

चाण्डाल बोला—हे नृपश्रेष्ठ! हे राजन्! आपने इस समय मेरे समक्ष जो धर्मका स्वरूप व्यक्त किया है, वह बिना सोचे-समझे ही आपने कहा है। जो मनुष्य सम्यक् सोच-समझकर बोलता है, वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, किंतु हे अनघ! आपने बिना विचार किये ही जो सामान्य बात है, उसे कह दिया। यदि आप सत्यको प्रमाण मानते हैं तो आप मेरे द्वारा खरीदे जा चुके हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ११-१२½॥

हरिश्चन्द्र बोले—असत्य भाषण करनेके कारण अधम मनुष्य शीघ्र ही भयानक नरकमें जाता है। अतः मेरे लिये चाण्डाल बन जाना उचित है, किंतु असत्यका आश्रय लेना श्रेष्ठ नहीं है॥ १३½॥

व्यासजी बोले—वे ऐसा बोल ही रहे थे कि क्रोध और अमर्षसे फैली हुई आँखोंवाले तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजासे यह कहा—यह चाण्डाल आपके मनके अनुसार धन देनेके लिये यहाँ उपस्थित है, तब आप [इससे अपना मूल्य लेकर] यज्ञकी सम्पूर्ण दक्षिणा मुझे क्यों नहीं दे देते?॥ १४-१५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ, अतः मैं धनके लोभसे चाण्डालके दासत्वको कैसे प्राप्त होऊँ?॥ १६½॥

विश्वामित्र उवाच

यदि चाण्डालवित्तं त्वमात्मविक्रयजं मम॥ १७

न प्रदास्यसि चेत्तर्हि शप्स्यामि त्वामसंशयम्।
चाण्डालादथवा विप्राद्देहि मे दक्षिणाधनम्॥ १८

विना चाण्डालमधुना नान्यः कश्चिद्धनप्रदः।
धनेनाहं विना राजन्न यास्यामि न संशयः॥ १९

इदानीमेव मे वित्तं न प्रदास्यसि चेन्नृप।
दिनेऽर्धघटिकाशेषे तत्त्वां शापाग्निना दहे॥ २०

व्यास उवाच

हरिश्चन्द्रस्ततो राजा मृतवच्छ्रितजीवितः।
प्रसीदेति वदन्पादौ ऋषेर्जग्राह विह्वलः॥ २१

हरिश्चन्द्र उवाच

दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि दीनोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषतः।
प्रसादं कुरु विप्रर्षे कष्टश्चाण्डालसङ्करः॥ २२

भवेयं वित्तशेषेण तव कर्मकरो वशः।
तवैव मुनिशार्दूल प्रेष्यश्चित्तानुवर्तकः॥ २३

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तु महाराज ममैव भव किङ्करः।
किंतु मद्वचनं कार्यं सर्वदैव नराधिप॥ २४

व्यास उवाच

एवमुक्तेऽथ वचने राजा हर्षसमन्वितः।
अमन्यत पुनर्जातमात्मानं प्राह कौशिकम्॥ २५

तवादेशं करिष्यामि सदैवाहं न संशयः।
आदेशय द्विजश्रेष्ठ किं करोमि तवानघ॥ २६

विश्वामित्र उवाच

चाण्डालागच्छ महासमौल्यं किं मे प्रयच्छसि।
गृहाण दासं मौल्येन मया दत्तं तवाधुना॥ २७
नास्ति दासेन मे कार्यं वित्ताशा वर्तते मम।

विश्वामित्र बोले—यदि आप स्वयंको चाण्डालके हाथ बेचकर उससे प्राप्त धन मुझे नहीं दे देते तो मैं आपको निःसन्देह शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण—किसीसे भी द्रव्य लेकर मेरी दक्षिणा दे दीजिये। फिर इस समय चाण्डालके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति आपको धन देनेवाला है नहीं। और हे राजन्! यह भी निश्चित है कि मैं धन लिये बिना नहीं जाऊँगा। हे नृप! यदि आप अभी मेरा धन नहीं देंगे तो दिनके चौथे प्रहरकी आधी घड़ी शेष रह जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे आपको भस्म कर दूँगा॥ १७—२०॥

व्यासजी बोले—तब राजा हरिश्चन्द्रने जीवित रहते हुए भी मृतकके समान होकर 'आप प्रसन्न हों'—ऐसा कहते हुए विकलतापूर्वक ऋषि विश्वामित्रके पाँव पकड़ लिये॥ २१॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे! मैं आपका दास हूँ, अत्यन्त दुःखी हूँ, दीन हूँ और विशेषरूपसे आपका भक्त हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना बड़ा ही कष्टप्रद है, अतः मुझपर अनुग्रह कीजिये। अवशिष्ट धन चुकानेके लिये मैं आपके अधीन आपका सेवक बनूँगा। हे मुनिश्रेष्ठ! आपके मनकी इच्छाओंके अनुसार कार्य करता हुआ मैं आपका सदा दास बना रहूँगा॥ २२-२३॥

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, आप मेरे ही दास हो जाइये, किंतु हे नराधिप! आपको सदा मेरे वचनोंका पालन करना पड़ेगा॥ २४॥

व्यासजी बोले—विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षित हो उठे और उन्होंने इसे अपना पुनर्जन्म समझा। वे विश्वामित्रसे कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं सदा आपकी आज्ञाका पालन करूँगा; इसमें कोई संशय नहीं है। हे अनघ! आदेश दीजिये, आपका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ॥ २५-२६॥

विश्वामित्र बोले—हे चाण्डाल! इधर आओ, तुम मेरे इस दासका क्या मूल्य दोगे? मूल्य लेकर मैं तुम्हें इसे इसी समय दे दूँगा। तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि मुझे दाससे कोई प्रयोजन नहीं है, मुझे तो केवल धनकी आवश्यकता है॥ २७½॥

व्यास उवाच

एवमुक्ते तदा तेन श्वपचो हृष्टमानसः॥ २८

आगत्य सन्निधौ तूर्णं विश्वामित्रमभाषत।

चाण्डाल उवाच

दशयोजनविस्तीर्णे प्रयागस्य च मण्डले॥ २९

भूमिं रत्नमयीं कृत्वा दास्ये तेऽहं द्विजोत्तम।
अस्य विक्रयणेनेयमार्तिश्च प्रहता त्वया॥ ३०

व्यास उवाच

ततो रत्नसहस्राणि सुवर्णमणिमौक्तिकैः।
चाण्डालेन प्रदत्तानि जग्राह द्विजसत्तमः॥ ३१

हरिश्चन्द्रस्तथा राजा निर्विकारमुखोऽभवत्।
अमन्यत तथा धैर्याद्विश्वामित्रो हि मे पतिः॥ ३२

तत्तदेव मया कार्यं यदयं कारयिष्यति।
अथान्तरिक्षे सहसा वागुवाचाशरीरिणी॥ ३३

अनृणोऽसि महाभाग दत्ता सा दक्षिणा त्वया।
ततो दिवः पुष्पवृष्टिः पपात नृपमूर्धनि॥ ३४

साधु साध्विति तं देवाः प्रोचुः सेन्द्रा महौजसः।
हर्षेण महताविष्टो राजा कौशिकमब्रवीत्॥ ३५

राजोवाच

त्वं हि माता पिता चैव त्वं हि बन्धुर्महामते।
यदर्थं मोचितोऽहं ते क्षणाच्चैवानृणीकृतः॥ ३६

किं करोमि महाबाहो श्रेयो मे वचनं तव।
एवमुक्ते तु वचने नृपं मुनिरभाषत॥ ३७

विश्वामित्र उवाच

चाण्डालवचनं कार्यमद्यप्रभृति ते नृप।
स्वस्ति तेऽस्त्विति तं प्रोच्य तदादाय धनं ययौ॥ ३८

व्यासजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर चाण्डालके मनमें प्रसन्नता आ गयी। विश्वामित्रके पास तत्काल आकर वह उनसे कहने लगा॥ २८½॥

चाण्डाल बोला—हे द्विजवर! प्रयागके दस योजन विस्तारवाले मण्डलकी भूमिको रत्नमय कराकर मैं आपको दे दूँगा। इसके विक्रयसे आपने मेरा यह महान् कष्ट दूर कर दिया॥ २९-३०॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् स्वर्ण, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके दिये गये रत्नोंको द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने प्राप्त किया॥ ३१॥

इससे राजा हरिश्चन्द्रके मुखपरसे उदासी दूर हो गयी और उन्होंने धैर्यपूर्वक यह मान लिया कि विश्वामित्र ही मेरे स्वामी हैं, मुझे तो केवल वही करना है जो ये करायेंगे॥ ३२½॥

उसी समय सहसा अन्तरिक्षमें यह आकाशवाणी हुई कि हे महाभाग! आपने मेरी वह दक्षिणा दे दी और अब आप ऋणसे मुक्त हो गये हैं॥ ३३½॥

इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी और इन्द्रसहित महान् ओजवाले सभी देवता उन महाराज हरिश्चन्द्रके प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। तब अत्यन्त हर्षित होकर राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे कहने लगे—॥ ३४-३५॥

राजा बोले—हे महामते! आप ही मेरे माता-पिता तथा आप ही मेरे बन्धु हैं; क्योंकि आपने मुझे मुक्त कर दिया और क्षणभरमें ऋणरहित भी बना दिया। हे महाबाहो! आपका वचन मेरे लिये कल्याणप्रद है। कहिये, अब मैं कौन-सा कार्य करूँ? राजाके इस प्रकार कहनेपर मुनि उनसे कहने लगे॥ ३६-३७॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! आजसे इस चाण्डालका वचन मानना आपका कर्तव्य होगा। आपका कल्याण हो—उनसे ऐसा कहकर और वह धन लेकर विश्वामित्र वहाँसे चले गये॥ ३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

चाण्डालका राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानघाटमें नियुक्त करना

शौनक उवाच

ततः किमकरोद्राजा चाण्डालस्य गृहे गतः।
तद् ब्रूहि सूतवर्य त्वं पृच्छतः सत्वरं हि मे॥ १

सूत उवाच

विश्वामित्रे गते विप्रे श्वपचो हृष्टमानसः।
विश्वामित्राय तद् द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम्॥ २

असत्यो यास्यसीत्युक्त्वा दण्डेनाताडयत्तदा।
दण्डप्रहारसम्भ्रान्तमतीव व्याकुलेन्द्रियम्॥ ३

इष्टबन्धुवियोगार्तमानीय निजपक्कणे।
निगडे स्थापयित्वा तं स्वयं सुष्वाप विज्वरः॥ ४

निगडस्थस्ततो राजा वसंश्चाण्डालपक्कणे।
अन्नपाने परित्यज्य सदा वै तदशोचयत्॥ ५

तन्वी दीनमुखी दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुरः।
मां स्मरन्त्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृपः॥ ६

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तं प्रतिश्रुतम्।
रोदमानं सुतं वीक्ष्य मां च सम्बोधयिष्यति॥ ७

तातपार्श्वं व्रजामीति रुदन्तं बालकं पुनः।
तात तातेति भाषन्तं तथा सम्बोधयिष्यति॥ ८

न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति चाण्डालतां गतम्।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥ ९

ततश्चाण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा।
एवं स निवसन्नित्यं स्मरंश्च दयितां सुतम्॥ १०

निनाय दिवसान् राजा चतुरो विधिपीडितः।
अथाह्नि पञ्चमे तेन निगडान्मोचितो नृपः॥ ११

चाण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारणे।
क्रुद्धेन परुषैर्वाक्यैर्निर्भर्त्स्य च पुनः पुनः॥ १२

शौनक बोले—हे श्रेष्ठ सूतजी! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया? आप मेरे प्रश्नका उत्तर शीघ्र ही दीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—विश्वामित्रको वह दक्षिणाद्रव्य देकर चाण्डाल प्रसन्नचित्त हो गया। तत्पश्चात् विप्र विश्वामित्रके चले जानेपर वह चाण्डाल नरेशको बाँधकर 'तुम पुनः झूठ बोलोगे'—ऐसा कहकर उन्हें दण्डसे मारने लगा। दण्डके प्रहारसे घबड़ाये हुए तथा अत्यन्त व्याकुल इन्द्रियोंवाले और अपने इष्ट-मित्रोंके वियोगसे दुःखित उन हरिश्चन्द्रको अपने गृहमें लाकर तथा जंजीरमें बाँधकर वह चाण्डाल स्वयं निश्चिन्त होकर सो गया॥ २—४॥

जंजीरमें जकड़े हुए वे राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके घरमें रहते हुए अन्न और जलका परित्याग करके निरन्तर मनमें यह सोचते रहते थे—'उदास मुखवाली मेरी दुर्बल स्त्री दीन मुखवाले बालकको सम्मुख देखकर असीम कष्टसे भर जाती होगी और मुझे याद करके सोचती होगी कि धन अर्जित करके प्रतिज्ञा की गयी दक्षिणा ब्राह्मणको देकर वे राजा हम दोनोंको बन्धनसे मुक्त कर देंगे। रोते हुए पुत्रको देखकर वह मुझे पुकारती होगी; पुनः 'हे तात! हे तात!'—ऐसा कहते हुए तथा रोते हुए बालकसे कहती होगी कि मैं तुम्हारे पिताके पास तुम्हें ले चल रही हूँ, किंतु वह मृगनयनी यह नहीं जानती कि मैं चाण्डालकी दासताको प्राप्त हो गया हूँ॥ ५—८$\frac{१}{२}$॥

राज्य नष्ट हो गया, इष्ट-मित्र अलग हो गये, स्त्री एवं पुत्र बिक गये, मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो! यह विधिकी कैसी दुःख-परम्परा है। इस प्रकार चाण्डालके घर रहते हुए तथा निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते हुए दैवके विधानसे परम दुःखी उन नरेशने चार दिन व्यतीत किये। पाँचवें दिन चाण्डालने उन्हें बन्धनसे मुक्त किया। तत्पश्चात् चाण्डालने उन्हें [श्मशानपर] मृत व्यक्तियोंके वस्त्र

काश्याश्च दक्षिणे भागे श्मशानं विद्यते महत्।
तद्रक्षस्व यथान्यायं न त्याज्यं तत्त्वया क्वचित्॥ १३

इमं च जर्जरं दण्डं गृहीत्वा याहि मा चिरम्।
वीरबाहोरयं दण्ड इति घोषस्व सर्वतः॥ १४

सूत उवाच

कस्मिंश्चिदथ काले तु मृतचैलापहारकः।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुगः॥ १५

चाण्डालेनानुशिष्टस्तु मृतचैलापहारिणा।
राजा तेन समादिष्टो जगाम शवमन्दिरम्॥ १६

पुर्यास्तु दक्षिणे देशे विद्यमानं भयानकम्।
शवमाल्यसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम्॥ १७

श्मशानं घोरसन्नादं शिवाशतसमाकुलम्।
गृध्रगोमायुसंकीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम्॥ १८

अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसंकुलम्।
अर्धदग्धशवास्यानि विकसद्दन्तपंक्तिभिः॥ १९

हसन्तीवाग्निमध्यस्थकायस्यैवं व्यवस्थितिः।
नानामृतसुहृन्नादं महाकोलाहलाकुलम्॥ २०

हा पुत्र मित्र हा बन्धो भ्रातर्वत्स प्रियाद्य मे।
हाप्यते भागिनेयार्हं हा मातुल पितामह॥ २१

मातामह पितः पौत्र क्व गतोऽस्येहि बान्धव।
इति शब्दैः समाकीर्णं भैरवैः सर्वदेहिनाम्॥ २२

ज्वलन्मांसवसामेदच्छूमिति ध्वनिसङ्कुलम्।
अग्नेश्चटचटाशब्दो भैरवो यत्र जायते॥ २३

कल्पान्तसदृशाकारं श्मशानं तत्सुदारुणम्।

लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चाण्डालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बार-बार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा—काशीके दक्षिणभागमें महान् श्मशान है। तुम न्यायपूर्वक उसकी रखवाली करो, तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं चाहिये। इस जर्जर दण्डको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ, विलम्ब मत करो। तुम भलीभाँति घोषित कर दो कि यह दण्ड वीरबाहुका है॥ ९—१४॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] कुछ समयके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र उस चाण्डालके वशवर्ती होकर श्मशानमें मृतकोंके वस्त्र (कफन) ग्रहण करनेवाले हो गये॥ १५॥

मृतकोंका वस्त्र लेनेवाले उस चाण्डालने राजाको आज्ञा प्रदान की, तब उससे आदेश पाकर वे श्मशानमें चले गये॥ १६॥

वह भयानक श्मशान काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहाँ शवकी मालाएँ बिखरी रहती थीं, वह दुर्गन्धियुक्त था तथा अत्यधिक धुएँसे भरा हुआ था। सर्वत्र भयंकर चीत्कार हो रहा था। सैकड़ों सियारिनोंसे व्याप्त था। गीधों और सियारोंसे सारा स्थान भरा था। वह श्मशान कुत्तोंसे सदा घिरा रहता था, चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं, महान् दुर्गन्धसे भरा हुआ था, अधजले शवोंके मुख निकले हुए दाँतोंसे हँसते-जैसे दीख रहे थे। चिताके मध्य-स्थित शवकी ऐसी दशा थी॥ १७—१९½॥

मरे हुए लोगोंके अनेक सुहृद्जनोंके रुदनकी ध्वनि तथा महान् कोलाहलसे वह स्थान व्याप्त था। 'हा मेरे पुत्र, मित्र, बन्धु, भ्राता, वत्स, प्रिया! इस समय मुझे छोड़ रहे हैं। हा पूज्य भागिनेय, मातुल, पितामह, मातामह, पिता, पौत्र! आप कहाँ चले गये हैं; हे बान्धव! लौट आइये'—इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंके भीषण शब्दोंसे वह श्मशान व्याप्त था। जलते हुए मांस, वसा और मेदसे साँय-साँयकी ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका जहाँ भयंकर शब्द होता रहता था, इस प्रकारका वह श्मशान अत्यन्त भीषण तथा प्रलयकालीन स्वरूपवाला था॥ २०—२३½॥

स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखादेवमशोचत॥ २४

हा भृत्या मन्त्रिणो यूयं क्व तद्राज्यं कुलोचितम्।
हा प्रिये पुत्र मे बाल मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम्॥ २५

ब्राह्मणस्य च कोपेन गता यूयं क्व दूरतः।
विना धर्मं मनुष्याणां जायते न शुभं क्वचित्॥ २६

यत्नतो धारयेत्तस्मात्पुरुषो धर्ममेव हि।
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चाण्डालोक्तं पुनः पुनः॥ २७

मलेन दिग्धसर्वाङ्गः शवानां दर्शने व्रजन्।
लकुटाकारकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः॥ २८

अस्मिञ्छव इदं मौल्यं शतं प्राप्स्यामि चाग्रतः।
इदं मम इदं राज्ञ इदं चाण्डालकस्य च॥ २९

इत्येवं चिन्तयन् राजा व्यवस्थां दुस्तरां गतः।
जीर्णैकपटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ॥ ३०

चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिकः ।
नानामेदोवसामज्जालिप्तपाण्यङ्गुलिः श्वसन्॥ ३१

नानाशवौदनकृतक्षुन्निवृत्तिपरायणः ।
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डलः ॥ ३२

न रात्रौ न दिवा शेते हाहेति प्रवदन्मुहुः।
एवं द्वादश मासास्तु नीता वर्षशतोपमाः॥ ३३

वहाँ पहुँचकर राजा हरिश्चन्द्र दुःखपूर्वक इस प्रकार सोचने लगे—हाय, मेरे भृत्य तथा मन्त्रीगण! तुम कहाँ हो? कुल-परम्परासे प्राप्त मेरा राज्य कहाँ गया? हे प्रिये! हे अबोध पुत्र! मुझ अभागेको छोड़कर ब्राह्मणके कोपसे तुमलोग दूर कहाँ चले गये? धर्मके बिना मनुष्यका कभी कल्याण नहीं हो सकता। अतएव मनुष्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक धर्मको धारण करे॥ २४—२६½ ॥

इन बातों तथा चाण्डालके कहे हुए वचनोंको वे पुनः-पुनः सोचते रहते थे। मैलसे लिप्त शरीरवाले तथा लकड़ीके समान दुर्बल देहवाले वे राजा शवोंको देखनेके लिये जाते थे तथा इधर-उधर दौड़ते भी रहते थे। इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः दूसरेसे सौ मुद्रा मूल्य मिलेगा, यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका—इस प्रकार सोचते हुए वे राजा महान् दुर्गतिको प्राप्त हुए॥ २७—२९½ ॥

उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें लगी थीं। एकमात्र कन्था (गुदड़ी) ही उनके पास थी। उनके मुख, हाथ, उदर और पैर चिताकी राख एवं धूलसे धूसरित थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मेद, वसा और मज्जासे सनी रहती थीं और वे दुर्गन्धयुक्त श्वास लेते रहते थे। शवोंके पिण्डदानार्थ जो भात बनता था, उससे वे अपनी भूख मिटाते थे। शवोंकी माला पहनकर अपने मस्तकको मण्डित किये रहते थे। 'हाय-हाय' ऐसा बार-बार कहते हुए न वे दिनमें सो पाते थे और न रातमें ही। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रने बारह महीने सौ वर्षके समान व्यतीत किये॥ ३०—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हरिश्चन्द्रचिन्तावर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु, रानीका करुण विलाप, पहरेदारोंका रानीको राक्षसी समझकर चाण्डालको सौंपना और चाण्डालका हरिश्चन्द्रको उसके वधकी आज्ञा देना

सूत उवाच

एकदा तु गतो रन्तुं बालकैः सहितो बहिः।
वाराणस्या नातिदूरे रोहिताख्यः कुमारकः॥ १

सूतजी बोले—[हे शौनक!] एक समयकी बात है, वह रोहित नामक राजकुमार लड़कोंके साथ बाहर खेलनेके लिये वाराणसीके समीप चला गया॥ १॥

क्रीडां कृत्वा ततो दर्भान् ग्रहीतुमुपचक्रमे।
कोमलानल्पमूलांश्च साग्राञ्छक्त्यनुसारतः॥ २

आर्यप्रीत्यर्थमित्युक्त्वा हस्तयुग्मेन यत्नतः।
सलक्षणाश्च समिधो बर्हिरिध्मं सलक्षणम्॥ ३

पलाशकाष्ठान्यादाय त्वग्निहोमार्थमादरात्।
मस्तके भारकं कृत्वा खिद्यमानः पदे पदे॥ ४

उदकस्थानमासाद्य तदा बालस्तृषान्वितः।
भुवि भारं विनिक्षिप्य जलस्थाने तदा शिशुः॥ ५

कामतः सलिलं पीत्वा विश्रम्य च मुहूर्तकम्।
वल्मीकोपरि विन्यस्तभारो हर्तुं प्रचक्रमे॥ ६

विश्वामित्राज्ञया तावत्कृष्णसर्पो भयावहः।
महाविषो महाघोरो वल्मीकान्निर्गतस्तदा॥ ७

तेनासौ बालको दष्टस्तदैव च पपात ह।
रोहिताख्यं मृतं दृष्ट्वा ययुर्बाला द्विजालयम्॥ ८

त्वरिता भयसंविग्नाः प्रोचुस्तन्मातुरग्रतः।
हे विप्रदासि ते पुत्रः क्रीडां कर्तुं बहिर्गतः॥ ९

अस्माभिः सहितस्तत्र सर्पदष्टो मृतस्ततः।
इति सा तद्वचः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा॥ १०

पपात मूर्च्छिता भूमौ छिन्नेव कदली यथा।
अथ तां ब्राह्मणो रुष्टः पानीयेनाभ्यषिञ्चत॥ ११

मुहूर्ताच्चेतनां प्राप्ता ब्राह्मणस्तामथाब्रवीत्।

ब्राह्मण उवाच

अलक्ष्मीकारकं निन्द्यं जानती त्वं निशामुखे॥ १२

रोदनं कुरुषे दुष्टे लज्जा ते हृदये न किम्।

तत्पश्चात् वहाँपर वह खेलनेके बाद कुश उखाड़ने लगा। उसने अपनी शक्तिके अनुसार अल्प जड़वाले तथा अग्रभागसे युक्त बहुतसे कोमल कुश उखाड़े। इससे मेरे आर्य (स्वामी) प्रसन्न होंगे—ऐसा बोलते हुए वह बड़ी सावधानीसे दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ता था। साथ ही वह उत्तम लक्षणोंवाली समिधाओं तथा ईंधनहेतु श्रेष्ठ लकड़ियों और यज्ञहेतु कुशों तथा अग्निमें हवन करनेके लिये पलाश-काष्ठोंको आदरपूर्वक एकत्र करके सम्पूर्ण बोझ मस्तकपर रखकर दुःखित होता हुआ पैदल चलने लगा और वह बालक प्याससे व्याकुल हो गया। वह शिशु एक जलाशयके पास पहुँचकर बोझको जमीनपर रखकर जल-स्थानपर गया और इच्छानुसार जल पीकर मुहूर्तभर विश्राम करके वल्मीकके ढेरपर रखे उस बोझको उठाने लगा॥ २—६॥

उसी समय विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक प्रचण्ड रूपवाला डरावना महाविषधर काला सर्प उस वल्मीकसे निकला॥ ७॥

उस सर्पने बालक रोहितको डँस लिया और वह उसी समय भूमिपर गिर पड़ा। रोहितको मृत देखकर भयसे व्याकुल सभी बालक शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणके घर गये और रोहितकी माताके सामने खड़े होकर कहने लगे—हे विप्रदासि! आपका पुत्र हमलोगोंके साथ खेलनेके लिये बाहर गया हुआ था। वहाँ उसे साँपने काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी॥ ८-९½॥

वज्रपात-सदृश वह बात सुनकर रानी मूर्च्छित हो गयीं और जड़से कटे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़ीं॥ १०½॥

इससे ब्राह्मण कुपित हो गया और उनपर जलसे छींटे मारने लगा। थोड़ी देरमें उन्हें चेतना आ गयी, तब ब्राह्मण उनसे कहने लगा॥ ११½॥

ब्राह्मण बोला—हे दुष्टे! सायंकालके समय रोना निन्दनीय तथा दरिद्रता प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानती हुई भी तुम इस समय रो रही हो। क्या तुम्हारे हृदयमें लज्जा नहीं है?॥ १२½॥

ब्राह्मणेनैवमुक्ता सा न किञ्चिद्वाक्यमब्रवीत्॥ १३

रुरोद करुणं दीना पुत्रशोकेन पीडिता।
अश्रुपूर्णमुखी दीना धूसरा मुक्तमूर्धजा॥ १४

अथ तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत।
धिक्त्वां दुष्टे क्रयं गृह्य मम कार्यं विलुम्पसि॥ १५

अशक्ता चेत्कथं तर्हि गृहीतं मम तद्धनम्।
एवं निर्भर्त्सिता तेन क्रूरवाक्यैः पुनः पुनः॥ १६

रुदिता कारणं प्राह विप्रं गद्‌गदया गिरा।
स्वामिन् मम सुतो बालः सर्पदष्टो मृतो बहिः॥ १७

अनुज्ञां मे प्रयच्छस्व द्रष्टुं यास्यामि बालकम्।
दुर्लभं दर्शनं तेन सञ्जातं मम सुव्रत॥ १८

इत्युक्त्वा करुणं बाला पुनरेव रुरोद ह।
पुनस्तां कुपितो विप्रो राजपत्नीमभाषत॥ १९

ब्राह्मण उवाच

शठे दुष्टसमाचारे किं न जानासि पातकम्।
यः स्वामिवेतनं गृह्य तस्य कार्यं विलुम्पति॥ २०

नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके।
उषित्वा नरके कल्पं ततोऽसौ कुक्कुटो भवेत्॥ २१

किमनेनाथवा कार्यं धर्मसंकीर्तनेन मे।
यस्तु पापरतो मूर्खः क्रूरो नीचोऽनृतः शठः॥ २२

तद्वाक्यं निष्फलं तस्मिन्भवेद् बीजमिवोषरे।
एहि ते विद्यते किञ्चित्परलोकभयं यदि॥ २३

एवमुक्ताथ सा विप्रं वेपमानाब्रवीद्वचः।
कारुण्यं कुरु मे नाथ प्रसीद सुमुखो भव॥ २४

प्रस्थापय मुहूर्तं मां यावद् द्रक्ष्यामि बालकम्।

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर वे कुछ भी नहीं बोलीं। पुत्र-शोकसे सन्तप्त तथा दीन होकर वे करुण क्रन्दन करने लगीं। उनका मुख आँसुओंसे भीग गया था, उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी, वे धूल-धूसरित हो गयी थीं तथा उनके सिरके केश अस्त-व्यस्त हो गये थे॥ १३-१४॥

तब क्रोधमें आकर ब्राह्मणने उस रानीसे कहा—दुष्टे! तुम्हें धिक्कार है; क्योंकि अपना मूल्य लेकर भी तुम मेरे कार्यकी उपेक्षा कर रही हो। यदि तुम काम करनेमें असमर्थ थी, तो मुझसे वह धन तुमने क्यों लिया?॥ १५½ ॥

इस प्रकार उस ब्राह्मणके द्वारा निष्ठुर वचनोंसे बार-बार फटकारनेपर रानीने रोते हुए गद्‌गद वाणीमें [अपने रुदनका] कारण बताते हुए कहा—हे स्वामिन्! [क्रीडाहेतु] बाहर गये हुए मेरे पुत्रको सर्पने डँस लिया और वह मर गया। मैं उस बालकको देखने जाऊँगी। अतः आप मुझे आज्ञा दीजिये। हे सुव्रत! अब मेरे लिये उस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो गया है॥ १६—१८॥

इस प्रकार करुणापूर्ण वचन कहकर रानी फिर रोने लगी, इसपर वह ब्राह्मण कुपित होकर उन राजमहिषीसे फिर कहने लगा॥ १९॥

ब्राह्मण बोला—कुटिल व्यवहारवाली हे शठे! क्या तुम्हें इस पापका ज्ञान नहीं है कि जो मनुष्य अपने स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है, एक कल्पतक नरकमें रहकर वह मुर्गेकी योनिमें जन्म लेता है॥ २०-२१॥

अथवा इस धार्मिक चर्चासे मेरा क्या प्रयोजन है; क्योंकि पापी, मूर्ख, क्रूर, नीच, मिथ्याभाषी एवं शठके प्रति वह वचन उसी प्रकार निष्फल होता है, जैसे ऊसरमें बोया गया बीज। अतः यदि तुम्हें परलोकका कुछ भी भय हो तो आओ, अपना कार्य करो॥ २२-२३॥

उसके ऐसा कहनेपर [भयके कारण] थर-थर काँपती हुई रानी ब्राह्मणसे यह वचन बोलीं—हे नाथ! मुझपर दया कीजिये, अनुग्रह कीजिये। प्रसन्नमुखवाले होइये। मुझे मुहूर्तभरके लिये वहाँ जाने दीजिये, जिससे मैं अपने पुत्रको देख सकूँ॥ २४½ ॥

एवमुक्त्वाथ सा मूर्ध्ना निपत्य द्विजपादयोः ॥ २५

रुरोद करुणं बाला पुत्रशोकेन पीडिता।
अथाह कुपितो विप्रः क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ २६

विप्र उवाच

किं ते पुत्रेण मे कार्यं गृहकर्म कुरुष्व मे।
किं न जानासि मे क्रोधं कशाघातफलप्रदम् ॥ २७

एवमुक्ता स्थिता धैर्याद् गृहकर्म चकार ह।
अर्धरात्रो गतस्तस्याः पादाभ्यङ्गादिकर्मणा ॥ २८

ब्राह्मणेनाथ सा प्रोक्ता पुत्रपार्श्वं व्रजाधुना।
तस्य दाहादिकं कृत्वा पुनरागच्छ सत्वरम् ॥ २९

न लुप्येत यथा प्रातर्गृहकर्म ममेति च।
ततस्त्वेकाकिनी रात्रौ विलपन्ती जगाम ह ॥ ३०

दृष्ट्वा मृतं निजं पुत्रं भृशं शोकेन पीडिता।
यूथभ्रष्टा कुरङ्गीव विवत्सा सौरभी यथा ॥ ३१

वाराणस्या बहिर्गत्वा क्षणाद् दृष्ट्वा निजं सुतम्।
शयानं रङ्कवद्भूमौ काष्ठदर्भतृणोपरि ॥ ३२

विललापातिदुःखार्ता शब्दं कृत्वा सुनिष्ठुरम्।
एहि मे सम्मुखं कस्माद्रोषितोऽसि वदाधुना ॥ ३३

आयास्यभिमुखो नित्यमम्बेत्युक्त्वा पुनः पुनः।
गत्वा स्खलत्पदा तस्य पपातोपरि मूर्च्छिता ॥ ३४

पुनः सा चेतनां प्राप्य दोर्भ्यामालिङ्ग्य बालकम्।
तन्मुखे वदनं न्यस्य रुरोदार्तस्वनैस्तदा ॥ ३५

कराभ्यां ताडनं चक्रे मस्तकस्योदरस्य च।
हा बाल हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर ॥ ३६

हा राजन् क्व गतोऽसि त्वं पश्येमं बालकं निजम्।
प्राणेभ्योऽपि गरीयांसं भूतले पतितं मृतम् ॥ ३७

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे सन्तप्त वे रानी ब्राह्मणके चरणोंपर सिर रखकर करुण विलाप करने लगीं। इसपर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाला वह ब्राह्मण कुपित होकर रानीसे कहने लगा ॥ २५-२६ ॥

विप्र बोला—तुम्हारे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन, तुम मेरे घरका कार्य सम्पन्न करो। क्या तुम कोड़ेके प्रहारका फल देनेवाले मेरे क्रोधको नहीं जानती हो? ॥ २७ ॥

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्य धारण करके उसके घरका काम करनेमें संलग्न हो गयीं। इस तरह पैर दबाने आदि कार्य करते रहनेमें उनकी आधी रात बीत गयी ॥ २८ ॥

इसके बाद ब्राह्मणने उनसे कहा—अब तुम अपने पुत्रके पास जाओ और उसका दाह-संस्कार आदि सम्पन्न करके शीघ्र पुनः वापस आ जाना, जिससे मेरा प्रातःकालीन गृहकार्य बाधित न हो ॥ २९$\frac{१}{२}$ ॥

तब रानी अकेली ही रातमें विलाप करती हुई गयीं और अपने पुत्रको मृत देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं। उस समय वे झुण्डसे बिछड़ी हुई हिरनी अथवा बिना बछड़ेकी गायकी भाँति प्रतीत हो रही थीं ॥ ३०-३१ ॥

थोड़ी ही देरमें वाराणसीसे बाहर निकलनेपर काष्ठ, कुश और तृणके ऊपर अपने पुत्रको रंककी भाँति भूमिपर सोया हुआ देखकर वे दुःखसे अत्यन्त अधीर हो गयीं और अत्यन्त निष्ठुर शब्द करके विलाप करने लगीं—मेरे सामने आओ और बताओ कि तुम इस समय मुझसे क्यों रूठ गये हो? पहले तुम बार-बार 'अम्बा'—ऐसा कहकर मेरे सामने नित्य आया करते थे। इसके बाद लड़खड़ाते हुए पैरोंसे कुछ दूर जाकर वे मूर्च्छित होकर उसके ऊपर गिर पड़ीं ॥ ३२—३४ ॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर बालकको दोनों हाथोंमें भरकर और उसके मुखसे अपना मुख लगाकर वे करुण स्वरमें रुदन करने लगीं और दोनों हाथोंसे अपना सिर तथा वक्षःस्थल पीटने लगीं—[वे ऐसा कहकर रो रही थीं] हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार! हा राजन्! आप कहाँ चले गये? मृत होकर भूमिपर पड़े हुए अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय पुत्रको देख तो लीजिये ॥ ३५—३७ ॥

तथापश्यन्मुखं तस्य भूयो जीवितशङ्कया।
निर्जीववदनं ज्ञात्वा मूर्च्छिता निपपात ह॥ ३८

हस्तेन वदनं गृह्य पुनरेवमभाषत।
शयनं त्यज हे बाल शीघ्रं जागृहि भीषणम्॥ ३९

निशार्धं वर्धते चेदं शिवाशतनिनादितम्।
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयूथनादितम् ॥ ४०

मित्राणि ते गतान्यस्तात्त्वमेकस्तु कुतः स्थितः।

सूत उवाच

एवमुक्त्वा पुनस्तन्वी करुणं प्ररुरोद ह॥ ४१

हा शिशो बाल हा वत्स रोहिताख्य कुमारक।
रे पुत्र प्रतिशब्दं मे कस्मात्त्वं न प्रयच्छसि॥ ४२

तवाहं जननी वत्स किं न जानासि पश्य माम्।
देशत्यागाद्राज्यनाशात्पुत्र भर्त्रा स्वविक्रयात्॥ ४३

यद्दासीत्वाच्च जीवामि त्वां दृष्ट्वा पुत्र केवलम्।
ते जन्मसमये विप्रैरादिष्टं यत्त्वनागतम्॥ ४४

दीर्घायुः पृथिवीराजः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
शौर्यदानरतिः सत्त्वो गुरुदेवद्विजार्चकः॥ ४५

मातापित्रोस्तु प्रियकृत्सत्यवादी जितेन्द्रियः।
इत्यादि सकलं जातमसत्यमधुना सुत॥ ४६

चक्रमत्स्यावातपत्रश्रीवत्सस्वस्तिकध्वजाः।
तव पाणितले पुत्र कलशश्चामरं तथा॥ ४७

लक्षणानि तथान्यानि त्वद्धस्ते यानि सन्ति च।
तानि सर्वाणि मोघानि सञ्जातान्यधुना सुत॥ ४८

हा राजन्पृथिवीनाथ क्व ते राज्यं क्व मन्त्रिणः।
क्व ते सिंहासनं छत्रं क्व ते खड्गः क्व तद्धनम्॥ ४९

क्व सायोध्या क्व हर्म्याणि क्व गजाश्वरथप्रजाः।
सर्वमेतत्तथा पुत्र मां त्यक्त्वा क्व गतोऽसि रे॥ ५०

तत्पश्चात् 'कहीं बालक जीवित तो नहीं है'—इस शंकासे वे उसका मुख बार-बार निहारने लगीं, किंतु मुखकी चेष्टासे उसे निष्प्राण जानकर पुनः मूर्च्छित होकर वे गिर पड़ीं। इसके बाद हाथमें बालकका मुख लेकर उन्होंने इस प्रकार कहा—हे पुत्र! तुम इस भयंकर निद्राका त्याग करो और शीघ्र जागो! आधी रातसे भी अधिक समय हो रहा है, सैकड़ों सियारिनें बोल रही हैं; भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदिके समूह ध्वनि कर रहे हैं। सूर्यास्त होते ही तुम्हारे सभी मित्र चले गये; केवल तुम्हीं यहाँ कैसे रह गये?॥ ३८—४०½ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर दुर्बल शरीरवाली रानी पुनः इस प्रकार करुण रुदन करने लगीं—'हा शिशो! हा बालक! हा वत्स! हा रोहित नामवाले कुमार! हे पुत्र! तुम मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो?'॥ ४१-४२॥

हे वत्स! क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं तुम्हारी माता हूँ; मेरी ओर देखो। हे पुत्र! मुझे अपना देश छोड़ना पड़ा, राज्यविहीन होना पड़ा और पतिके द्वारा बेच दिये जानेपर दासी बनना पड़ा, फिर भी हे पुत्र! केवल तुम्हें देखकर जी रही हूँ। तुम्हारे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यके सम्बन्धमें बताया था कि यह बालक दीर्घ आयुवाला, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, पराक्रम तथा दानके प्रति अनुराग रखनेवाला, बलवान्, ब्राह्मण-गुरु-देवताका उपासक, माता-पिताको प्रसन्न रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा, किंतु हे पुत्र! यह सब इस समय असत्य सिद्ध हो गया॥ ४३—४६॥

हे पुत्र! तुम्हारी हथेलीमें चक्र, मत्स्य, छत्र, श्रीवत्स, स्वस्तिक, ध्वजा, कलश तथा चामर आदिके चिह्न और हे सुत! अन्य जो भी शुभ लक्षण तुम्हारे हाथमें विद्यमान हैं, वे सब इस समय निष्फल हो गये हैं॥ ४७-४८॥

हा राजन्! हा पृथ्वीनाथ! आपका राज्य, आपके मन्त्री, आपका सिंहासन, आपका छत्र, आपका खड्ग, आपका वह धन-वैभव, वह अयोध्या, राजमहल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा—ये सब कहाँ चले गये? हे पुत्र! इन सबके साथ ही तुम भी मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?॥ ४९-५०॥

हा कान्त हा नृपागच्छ पश्येमं स्वसुतं प्रियम्।
येन ते रिङ्गता वक्षः कुंकुमेनावलेपितम्॥ ५१

स्वशरीररजःपङ्कैर्विशालं मलिनीकृतम्।
येन ते बालभावेन मृगनाभिविलेपितः॥ ५२

भ्रंशितो भालतिलकस्तवाङ्कस्थेन भूपते।
यस्य वक्त्रं मृदा लिप्तं स्नेहाद्वै चुम्बितं मया॥ ५३

तन्मुखं मक्षिकालिङ्ग्यं पश्ये कीटैर्विदूषितम्।
हा राजन् पश्य तं पुत्रं भुविस्थं रङ्कवन्मृतम्॥ ५४

हा देव किं मया कृत्यं कृतं पूर्वभवान्तरे।
तस्य कर्मफलस्येह न पारमुपलक्षये॥ ५५

हा पुत्र हा शिशो वत्स हा कुमारक सुन्दर।
एवं तस्या विलापं ते श्रुत्वा नगरपालकाः॥ ५६

जागृतास्त्वरितास्तस्याः पार्श्वमीयुः सुविस्मिताः।

जना ऊचुः

का त्वं बालश्च कस्यायं पतिस्ते कुत्र तिष्ठति॥ ५७

एकैव निर्भया रात्रौ कस्मात्त्वमिह रोदिषि।
एवमुक्ताथ सा तन्वी न किञ्चिद्वाक्यमब्रवीत्॥ ५८

भूयोऽपि पृष्टा सा तूष्णीं स्तब्धीभूता बभूव ह।
विललापातिदुःखार्ता शोकाश्रुप्लुतलोचना॥ ५९

अथ ते शङ्कितास्तस्यां रोमाञ्चिततनूरुहाः।
संत्रस्ताः प्राहुरन्योन्यमुद्धृतायुधपाणयः॥ ६०

नूनं स्त्री न भवत्येषा यतः किञ्चिन्न भाषते।
तस्माद्वध्या भवेदेषा यत्नतो बालघातिनी॥ ६१

शुभा चेत्तर्हि किं ह्यत्र निशार्धे तिष्ठते बहिः।
भक्षार्थमनया नूनमानीतः कस्यचिच्छिशुः॥ ६२

हा कान्त! हा राजन्! आइये, अपने इस प्रिय पुत्रको देख लीजिये, जो [खेलते-खेलते] आपके वक्षपर चढ़कर कुमकुमसे लिप्त उस विशाल वक्षको अपने शरीरमें लगे धूल तथा कीचड़से मलिन कर देता था, आपकी गोदमें बैठकर जो बालसुलभ स्वभावके कारण आपके ललाटपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनके तिलकको मिटा देता था। हे भूपते! जिसके मिट्टी लगे मुखको मैं स्नेहपूर्वक चूम लेती थी, उसी मुखको आज मैं देख रही हूँ कि कीड़ोंने उसे विकृत कर दिया है और उसपर मक्खियाँ बैठ रही हैं। हे राजन्! अकिंचनकी भाँति पृथ्वीपर पड़े इस मृत पुत्रको देख लीजिये॥ ५१—५४॥

हा दैव! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा कार्य कर दिया था कि उस कर्म-फलका अन्त मैं देख नहीं पा रही हूँ!॥ ५५॥

'हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार!' उस रानीका ऐसा विलाप सुनकर नगरपालक जाग गये और वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर शीघ्र ही उनके पास पहुँचे॥ ५६½॥

जनोंने कहा—तुम कौन हो, यह बालक किसका है, तुम्हारे पति कहाँ हैं और रातमें निर्भय होकर तुम अकेली यहाँ किस कारणसे रो रही हो?॥ ५७½॥

उनके ऐसा कहनेपर उस कृशकाय रानीने कुछ भी बात नहीं कही। उनके पुनः पूछनेपर भी वे चुप रहीं और स्तब्ध-जैसी हो गयीं। वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं और उनकी आँखोंसे शोकके आँसू निरन्तर निकलते रहे॥ ५८-५९॥

तब उनके मनमें रानीके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया, उनके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और वे भयभीत हो उठे; तब हाथोंमें आयुध लिये हुए वे परस्पर कहने लगे—॥ ६०॥

निश्चय ही यह स्त्री नहीं है; क्योंकि यह कुछ भी बोल नहीं रही है। यह बालकोंको मार डालनेवाली कोई राक्षसी है, अतः यत्नपूर्वक इसका वध कर देना चाहिये। यदि यह कोई उत्तम स्त्री होती तो इस अर्धरात्रिमें घरसे बाहर क्यों रहती? यह निश्चितरूपसे किसीके शिशुको खानेके लिये यहाँ ले आयी है॥ ६१-६२॥

इत्युक्त्वा तैर्गृहीता सा गाढं केशेषु सत्वरम्।
भुजयोरपरैश्चैव कैश्चापि गलके तथा॥ ६३

खेचरी यास्यतीत्युक्तं बहुभिः शस्त्रपाणिभिः।
आकृष्य पक्कणे नीता चाण्डालाय समर्पिता॥ ६४

हे चाण्डाल बहिर्दृष्टा ह्यस्माभिर्बालघातिनी।
वध्यतां वध्यतामेषा शीघ्रं नीत्वा बहिःस्थले॥ ६५

चाण्डालः प्राह तां दृष्ट्वा ज्ञातेयं लोकविश्रुता।
न दृष्टपूर्वा केनापि लोकडिम्भान्यनेकधा॥ ६६

भक्षितान्यनया भूरि भवद्भिः पुण्यमर्जितम्।
ख्यातिर्वः शाश्वती लोके गच्छध्वं च यथासुखम्॥ ६७

द्विजस्त्रीबालगोघाती स्वर्णस्तेयी च यो नरः।
अग्निदो वर्त्मघाती च मद्यपो गुरुतल्पगः॥ ६८

महाजनविरोधी च तस्य पुण्यप्रदो वधः।
द्विजस्यापि स्त्रियो वापि न दोषो विद्यते वधे॥ ६९

अस्या वधश्च मे योग्य इत्युक्त्वा गाढबन्धनैः।
बद्ध्वा केशेष्वथाकृष्य रज्जुभिस्तामताडयत्॥ ७०

हरिश्चन्द्रमथोवाच वाचा परुषया तदा।
रे दास वध्यतामेषा दुष्टात्मा मा विचारय॥ ७१

तद्वाक्यं भूपतिः श्रुत्वा वज्रपातोपमं तदा।
वेपमानोऽथ चाण्डालं प्राह स्त्रीवधशङ्कितः॥ ७२

न शक्तोऽहमिदं कर्तुं प्रेष्यं देहि ममापरम्।
असाध्यमपि यत्कर्म तत्करिष्ये त्वयोदितम्॥ ७३

ऐसा कहकर उनमेंसे कुछने शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक रानीके केश पकड़ लिये, कुछ अन्य व्यक्तियोंने उनकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और कुछने गर्दन पकड़ ली। 'यह खेचरी [कहीं] भाग जायगी'—ऐसा कहकर हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए बहुतसे पहरेदार रानीको घसीटते हुए चाण्डालके घर ले गये और उसे चाण्डालको सौंप दिया [और कहा]—हे चाण्डाल! इस बालघातिनीको हमलोगोंने बाहर देखा। तुम बाहर किसी स्थानपर शीघ्र ही ले जाकर इसे मार डालो, मार डालो॥ ६३—६५॥

रानीको देखकर चाण्डालने कहा—मैं इसे जानता हूँ; यह लोकमें प्रसिद्ध है। इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं था। इसने अनेक बार लोगोंके बच्चोंका भक्षण कर लिया है। आपलोगोंने इसे पकड़कर महान् पुण्य अर्जित किया है। इससे आपलोगोंका यश जगत्‌में सर्वदा बना रहेगा। अब आपलोग यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये॥ ६६-६७॥

जो मनुष्य ब्राह्मण, स्त्री, बालक तथा गायका वध करता है; स्वर्णकी चोरी करता है; आग लगाता है; मार्गमें अवरोध उत्पन्न करता है; मदिरा-पान करता है; गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करता है और श्रेष्ठजनोंके साथ विरोध-भाव रखता है, उसका वध कर देनेसे पुण्य प्राप्त होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर ब्राह्मणका अथवा स्त्रीका भी वध कर डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध मेरी दृष्टिमें उचित है—ऐसा कहकर चाण्डालने दृढ़ बन्धनोंसे बाँधकर और केश पकड़कर उन्हें रस्सियोंसे पीटा। इसके बाद उसने हरिश्चन्द्रको बुलाकर उनसे कठोर वाणीमें कहा—'हे दास! इस पापात्मा स्त्रीका तत्काल वध कर दो; इसमें सोच-विचार मत करो'॥ ६८—७१॥

वज्रपातके समान उस वचनको सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा हरिश्चन्द्र थर-थर काँपते हुए उस चाण्डालसे बोले—मैं ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतः मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके अतिरिक्त आप जो भी कठिन-से-कठिन कार्य करनेको कहेंगे, उसे मैं सम्पन्न कर दूँगा॥ ७२-७३॥

श्रुत्वा तदुक्तं वचनं श्वपचो वाक्यमब्रवीत्।
मा भैषीस्त्वं गृहाणासिं वधोऽस्याः पुण्यदो मतः॥ ७४

बालानामेव भयदा नेयं रक्ष्या कदाचन।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राजा बचनमब्रवीत्॥ ७५

स्त्रियो रक्ष्याः प्रयत्नेन न हन्तव्याः कदाचन।
स्त्रीवधे कीर्तितं पापं मुनिभिर्धर्मतत्परैः॥ ७६

पुरुषो यः स्त्रियं हन्याज्ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा।
नरके पच्यते सोऽथ महारौरवपूर्वके॥ ७७

चाण्डाल उवाच

मा वदासिं गृहाणैनं तीक्ष्णं विद्युत्समप्रभम्।
यत्रैकस्मिन्वधं नीते बहूनां तु सुखं भवेत्॥ ७८

तस्य हिंसा कृता नूनं बहुपुण्यप्रदा भवेत्।
भक्षितान्यनया भूरि लोके डिम्भानि दुष्टया॥ ७९

तत्क्षिप्रं वध्यतामेषा लोकः स्वस्थो भविष्यति।

राजोवाच

चाण्डालाधिपते तीव्रं व्रतं स्त्रीवधवर्जनम्॥ ८०

आजन्मतस्ततो यत्नं न कुर्यां स्त्रीवधे तव।

चाण्डाल उवाच

स्वामिकार्यं विना दुष्ट किं कार्यं विद्यतेऽपरम्॥ ८१

गृहीत्वा वेतनं मेऽद्य कस्मात्कार्यं विलुम्पसि।
यः स्वामिवेतनं गृह्य स्वामिकार्यं विलुम्पति॥ ८२

नरकान्निष्कृतिस्तस्य नास्ति कल्पायुतैरपि।

राजोवाच

चाण्डालनाथ मे देहि प्राप्यमन्यत्सुदारुणम्॥ ८३

स्वशत्रुं ब्रूहि तं क्षिप्रं घातयिष्याम्यसंशयम्।
घातयित्वा तु तं शत्रुं तव दास्यामि मेदिनीम्॥ ८४

देव देवोरगैः सिद्धैर्गन्धर्वैरपि संयुतम्।
देवेन्द्रमपि जेष्यामि निहत्य निशितैः शरैः॥ ८५

उनके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर चाण्डालने यह वचन कहा—तुम बिलकुल मत डरो। तलवार उठाओ और इसका वध कर दो; क्योंकि ऐसी स्त्रीका वध अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है। बालकोंको भय पहुँचानेवाली यह स्त्री कभी भी रक्षाके योग्य नहीं है॥ ७४½ ॥

चाण्डालकी वह बात सुनकर राजाने यह वचन कहा—जिस किसी भी उपायसे स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये, उनका वध कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीवधको पाप बताया है। जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीकी हत्या करता है, वह महारौरव नरकमें गिरकर यातना भोगता है॥ ७५—७७॥

चाण्डाल बोला—'यह सब मत बोलो, विद्युत्के समान चमकनेवाली यह तीक्ष्ण तलवार उठा लो; क्योंकि यदि एकका वध कर देनेसे बहुत प्राणियोंको सुख हो तो उसकी की गयी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है। यह दुष्टा संसारमें बहुत-से बच्चोंको खा चुकी है, अतः शीघ्र ही इसका वध कर दो, जिससे लोक शान्तिमय हो जाय॥ ७८-७९½ ॥

राजा बोले—हे चाण्डालराज! मैंने आजीवन स्त्रीवध न करनेका कठोर व्रत ले रखा है, अतः मैं स्त्रीवधके लिये प्रयत्न नहीं कर सकता; अपितु आपका अन्य कोई कार्य सम्पन्न करूँगा॥ ८०½ ॥

चाण्डाल बोला—अरे दुष्ट! स्वामीके इस कार्यको छोड़कर तुम्हारे लिये दूसरा कौन-सा कार्य है? वेतन लेकर मेरे कार्यकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? जो सेवक स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, उसका दस हजार कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता॥ ८१-८२½ ॥

राजा बोले—हे चाण्डालनाथ! आप मुझे कोई अन्य अत्यन्त कठिन कार्य करनेका आदेश दीजिये। आप अपने किसी शत्रुको बतायें, मैं उसे निःसन्देह शीघ्र ही मार डालूँगा और उस शत्रुका वध करके उसकी भूमि आपको सौंप दूँगा। हे देव! देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसहित इन्द्रको भी तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर उन्हें जीत लूँगा॥ ८३—८५॥

एतच्छ्रुत्वा ततो वाक्यं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः।
चाण्डालः कुपितः प्राह वेपमानं महीपतिम्॥ ८६

चाण्डाल उवाच

(नैतद्वाक्यं सुघटितं यद्वाक्यं दासकीर्तितम्।)
चाण्डालदासतां कृत्वा सुराणां भाषसे वचः।
दास किं बहुना नूनं शृणु मे गदतो वचः॥ ८७

निर्लज्ज तव चेदस्ति किञ्चित्पापभयं हृदि।
किमर्थं दासतां यातश्चाण्डालस्य तु वेश्मनि॥ ८८

गृहाणैनं ततः खड्गमस्याश्छिन्धि शिरोऽम्बुजम्।
एवमुक्त्वाथ चाण्डालो राज्ञे खड्गं न्यवेदयत्॥ ८९

तब राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर उस चाण्डालने क्रुद्ध होकर थर-थर काँप रहे उन राजासे कहा॥ ८६॥

चाण्डाल बोला—(सेवकोंके लिये जो बात कही गयी है, वह बात तुम्हारे व्यवहारमें लक्षित नहीं होती)। चाण्डालकी दासता करके तुम देवताओं-जैसी बात करते हो। अरे दास! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन? तुम मेरी बात ध्यानसे सुनो। निर्लज्ज! यदि तुम्हारे हृदयमें थोड़ा भी पापका भय था, तो चाण्डालके घरमें दासता करना तुमने स्वीकार ही क्यों किया? अतः इस तलवारको उठाओ और इसके कमलवत् सिरको काट दो—ऐसा कहकर चाण्डालने राजाको तलवार पकड़ा दी॥ ८७—८९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे चाण्डालाज्ञया हरिश्चन्द्रस्य खड्गग्रहणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

* * *

अथ षड्विंशोऽध्यायः

रानीका चाण्डालवेशधारी राजा हरिश्चन्द्रसे अनुमति लेकर पुत्रके शवको लाना और करुण विलाप करना, राजाका पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित होना और विलाप करना

सूत उवाच

ततोऽथ भूपतिः प्राह राज्ञीं स्थित्वा ह्यधोमुखः।
अत्रोपविश्यतां बाले पापस्य पुरतो मम॥ १

शिरस्ते छेदयिष्यामि हन्तुं शक्नोति चेत्करः।
एवमुक्त्वा समुद्यम्य खड्गं हन्तुं गतो नृपः॥ २

न जानाति नृपः पत्नीं सा न जानाति भूपतिम्।
अब्रवीद् भृशदुःखार्ता स्वमृत्युमभिकाङ्क्षति॥ ३

स्त्र्युवाच

चाण्डाल शृणु मे वाक्यं किञ्चित्त्वं यदि मन्यसे।
मृतस्तिष्ठति मे पुत्रो नातिदूरे बहिः पुरात्॥ ४

तं दहामि हतं यावदानयित्वा तवान्तिकम्।
तावत्प्रतीक्ष्यतां पश्चादसिना घातयस्व माम्॥ ५

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र नीचेकी ओर मुख करके रानीसे कहने लगे—हे बाले! मुझ पापीके सामने यहाँ आकर बैठ जाओ। यदि मेरा हाथ मारनेमें समर्थ हो सका तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा॥ १$\frac{१}{२}$॥

ऐसा कहकर हाथमें तलवार लेकर रानीको मारनेके लिये राजा हरिश्चन्द्र उनकी ओर गये। उस समय राजा न तो अपनी पत्नीको पहचान रहे थे और न तो रानी राजाको ही पहचान रही थीं। तब अत्यन्त दुःखसे पीड़ित रानी अपनी मृत्युकी इच्छा रखती हुई कहने लगीं॥ २-३॥

स्त्रीने कहा—हे चाण्डाल! यदि तुम थोड़ा भी उचित समझते हो तो मेरी बात सुनो। इस नगरसे बाहर थोड़ी ही दूरीपर मेरा पुत्र मृत पड़ा है। मैं जबतक उस बालकको आपके पास लाकर उसका दाह न कर दूँ, तबतकके लिये मेरी प्रतीक्षा कीजिये, इसके बाद मुझे तलवारसे मार डालियेगा॥ ४-५॥

तेनाथ बाढमित्युक्त्वा प्रेषिता बालकं प्रति।
सा जगामातिदुःखार्ता विलपन्ती सुदारुणम्॥ ६

भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम्।
हा पुत्र हा वत्स शिशो इत्येवं वदती मुहुः॥ ७

कृशा विवर्णा मलिना पांसुध्वस्तशिरोरुहा।
श्मशानभूमिमागत्य बालं स्थाप्याविशद्भुवि॥ ८

(राजन्नद्य स्वबालं तं पश्यसीह महीतले।
रममाणं स्वसखिभिर्दष्टं दुष्टाहिना मृतम्॥)
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य स नराधिपः।
शवसन्निधिमागत्य वस्त्रमस्याक्षिपत्तदा॥ ९

तां तथा रुदतीं भार्यां नाभिजानाति भूमिपः।
चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम्॥ १०

सापि तं चारुकेशान्तं पुरो दृष्ट्वा जटालकम्।
नाभ्यजानान्नृपवरं शुष्कवृक्षत्वचोपमम्॥ ११

भूमौ निपतितं बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम्।
नरेन्द्रलक्षणोपेतमचिन्तयदसौ नृपः॥ १२

अस्य पूर्णेन्दुवद्वक्त्रं शुभमुन्नसमव्रणम्।
दर्पणप्रतिमोत्तुङ्गकपोलयुगशोभितम् ॥ १३

नीलान्केशान्कुञ्चिताग्रान्सान्द्रान्दीर्घांस्तरङ्गिणः।
राजीवसदृशे नेत्रे ओष्ठौ बिम्बफलोपमौ॥ १४

विशालवक्षा दीर्घाक्षो दीर्घबाहून्नतांसकः।
विशालपादो गम्भीरः सूक्ष्माङ्गुल्यवनीधरः॥ १५

'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उसने रानीको बालकके पास भेज दिया। वे अत्यन्त शोकसे सन्तप्त होकर करुण विलाप करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ६॥

उन राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या 'हा पुत्र! हा वत्स! हा शिशो!' ऐसा बार-बार कहती हुई सर्पसे डँसे हुए उस बालकको लेकर तुरंत श्मशानभूमिमें आकर उसे जमीनपर लिटाकर स्वयं बैठ गयी। उस समय उनका शरीर दुर्बल हो गया था, उनका वर्ण विकृत था, उनका शरीर मलिन था और सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे॥ ७-८॥

[रानी यह कहकर विलाप कर रही थी] हे राजन्! अपने मित्रोंके साथ खेलते समय क्रूर सर्पके द्वारा डँस लिये जानेसे मरे हुए पुत्रको आज आप पृथ्वीतलपर पड़ा हुआ देख लीजिये। तब उनके रुदनकी वह ध्वनि सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके समीप आये और उन्होंने उसके ऊपरका वस्त्र हटाया। दीर्घ समयसे प्रवास-सम्बन्धी दुःख भोगनेके कारण दूसरे स्वरूपमें परिणत उन विलाप करती हुई अपनी अबला भार्याको उस समय राजा नहीं पहचान सके। पहले सुन्दर केशोंवाले उन नृपश्रेष्ठको अब जटाधारीके रूपमें तथा शुष्क वृक्षकी छाल-सदृश देखकर वे रानी भी उन्हें नहीं पहचान पायीं॥ ९—११॥

सर्पके विषसे ग्रस्त होकर धरतीपर पड़े हुए बालकको देखकर वे महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित लक्षणोंपर विचार करने लगे—इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश है; इसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर, उन्नत तथा व्रणरहित है और इसके दर्पणके समान चमकीले तथा ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं। इसके केश कृष्णवर्ण, घुँघराले अग्रभागवाले, स्निग्ध, लम्बे तथा लहरोंके समान हैं। इसके दोनों नेत्र कमलके समान हैं। इसके दोनों ओठ बिम्बाफलके सदृश हैं। यह बालक चौड़े वक्षःस्थल, विशाल नेत्र, लम्बी भुजाओं और ऊँचे स्कन्धोंवाला है। इसके बड़े-बड़े पैर हैं, इसकी छोटी-छोटी अँगुलियाँ हैं और यह गम्भीर स्वभाववाला कोई राजलक्षणयुक्त बालक

मृणालपादो गम्भीरनाभिरुद्धतकन्धरः।
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येष कुले शिशुः॥ १६

जातो नीतः कृतान्तेन कालपाशाद्दुरात्मना।

सूत उवाच

एवं दृष्ट्वाथ तं बालं मातुरङ्के प्रसारितम्॥ १७

स्मृतिमभ्यागतो राजा हाहेत्यश्रूण्यपातयत्।
सोऽप्युवाच च वत्सो मे दशामेतामुपागतः॥ १८

नीतो यदि च घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम्।
विचारयित्वा राजासौ हरिश्चन्द्रस्तथा स्थितः॥ १९

ततो राज्ञी महादुःखावेशादिदमभाषत।

राज्युवाच

हा वत्स कस्य पापस्य त्वपध्यानादिदं महत्॥ २०

दुःखमापतितं घोरं तद्रूपं नोपलभ्यते।
हा नाथ राजन् भवता मामपास्य सुदुःखिताम्॥ २१

कस्मिन्संस्थीयते स्थाने विश्रब्धं केन हेतुना।
राज्यनाशः सुहृत्त्यागो भार्यातनयविक्रयः॥ २२

हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधातः कृतं त्वया।
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्थानच्युतस्तदा॥ २३

प्रत्यभिज्ञाय देवीं तां पुत्रं च निधनं गतम्।
कष्टं ममैव पत्नीयं बालकश्चापि मे सुतः॥ २४

ज्ञात्वा पपात सन्तप्तो मूर्च्छामतिजगाम ह।
सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम्॥ २५

मूर्च्छिता निपपातार्ता निश्चेष्टा धरणीतले।
चेतनां प्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम्॥ २६

विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारेण पीडितौ।

जान पड़ता है। यह कमलनाल-सदृश चरणोंवाला, गहरी नाभिवाला और ऊँचे कन्धोंवाला है। अहो, महान् कष्टकी बात है कि किसी राजाके कुलमें उत्पन्न हुए इस बालकको दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशमें बाँध लिया॥ १२—१६½ ॥

सूतजी बोले—माताकी गोदमें पड़े हुए उस बालकको देखकर ऐसा विचार करनेके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्रको पूर्वकालकी स्मृति हो आयी और वे 'हाय, हाय'—ऐसा कहकर अश्रुपात करने लगे। वे कहने लगे कि 'कहीं मेरे ही पुत्रकी यह दशा तो नहीं हो गयी है और क्रूर यमराजने उसे अपने अधीन कर लिया है', इस प्रकार विचार करके वे राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिये ठहर गये। तत्पश्चात् अत्यन्त शोकसे सन्तप्त रानी ऐसा कहने लगीं॥ १७—१९½ ॥

रानी बोलीं—हा वत्स! किस पाप या अनिष्ट चिन्तनके परिणामस्वरूप यह महान् दारुण दुःख मेरे सामने आ पड़ा है? इसका कारण भी समझमें नहीं आ रहा है। हे नाथ! हे राजन्! मुझ अत्यन्त दुःखिनीको छोड़कर इस समय आप किस स्थानपर विद्यमान हैं? आप किस कारणसे निश्चिन्त हैं? राजर्षि हरिश्चन्द्रको राज्यसे हाथ धोना पड़ा, उनके सुहृद्वर्ग अलग हो गये और उन्हें भार्या तथा पुत्रतकको बेच देना पड़ा। हा विधाता! तुमने यह क्या कर दिया?॥ २०—२२½ ॥

तब रानीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने स्थानसे उठकर उनके समीप आ गये। तत्पश्चात् अपनी साध्वी पत्नी तथा मृत पुत्रको पहचानकर वे कहने लगे—'महान् कष्ट है कि यह स्त्री मेरी ही पत्नी है और यह बालक भी मेरा ही पुत्र है'॥ २३-२४॥

यह सब जानकर असीम दुःखसे सन्तप्त राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और वे रानी भी उन्हें पहचानकर उसी स्थितिको प्राप्त हो गयीं। वे दुःखके मारे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और उनकी समस्त इन्द्रियाँ चेष्टारहित हो गयीं। पुनः कुछ समय बाद चेतना आनेपर शोकके भारसे पीडित राजा और रानी दोनों अत्यन्त दुःखित होकर एक साथ विलाप करने लगे॥ २५-२६½ ॥

राजोवाच

हा वत्स सुकुमारं ते वदनं कुञ्चितालकम्॥ २७

पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्यते।
तात तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम्॥ २८

उपगुह्य कदा वक्ष्ये वत्सवत्सेति सौहृदात्।
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना॥ २९

ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति।
न वालं मम सम्भूतं मनो हृदयनन्दन॥ ३०

(मयासि पितृमान्पित्रा विक्रीतो येन वस्तुवत्।)
गतं राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत्।
(हीनदैवान्नृशंसेन दृष्टो मे तनयस्ततः।)
अहं महाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम्॥ ३१

निरीक्षन्नद्य घोरेण विषेणाधिकृतोऽधुना।
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः॥ ३२

परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छया निपपात ह।
ततस्तं पतितं दृष्ट्वा शैव्या चैवमचिन्तयत्॥ ३३

अयं स पुरुषव्याघ्रः स्वरेणैवोपलक्ष्यते।
विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशयः॥ ३४

तथास्य नासिका तुङ्गा तिलपुष्पोपमा शुभा।

दन्ताश्च मुकुलप्रख्याः ख्यातकीर्तेर्महात्मनः॥ ३५

श्मशानमागतः कस्माद्यद्येवं स नरेश्वरः।
विहाय पुत्रशोकं सा पश्यन्ती पतितं पतिम्॥ ३६

प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्रार्तिपीडिता।
वीक्षन्ती सा तदापतन्मूर्च्छया धरणीतले॥ ३७

प्राप्य चेतश्च शनकैः सा गद्गदमभाषत।
धिक्त्वां दैव ह्यकरुण निर्मर्याद जुगुप्सित॥ ३८

राजा बोले—हा वत्स! कुंचित अलकावलीसे घिरा हुआ तुम्हारा मुख बड़ा ही सुकुमार है। तुम्हारे दीन मुखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता? पहले तुम 'तात, तात'—ऐसा मधुर वाणीमें बोलते हुए मेरे पास स्वयं आ जाते थे, किंतु अब मैं तुम्हें बाहोंमें भरकर 'वत्स, वत्स'—ऐसा प्रेमपूर्वक कब पुकारूँगा? अब भूमिकी पीतवर्णवाली धूलसे सने हुए किसके घुटने मेरी चादर, गोद और शरीरके अंगोंको मलिन करेंगे? हे हृदयनन्दन! मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका; (क्योंकि जिसने सामान्य वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी पितासे तुम पितावाले बने थे।) बहुतसे बन्धु-बान्धवों तथा अपार धन-सहित मेरा सम्पूर्ण राज्य चला गया। (आज दुर्भाग्यके कारण मुझ निर्दयीको अपना ही पुत्र दिखायी पड़ गया।) विषधर सर्पके द्वारा डँसे गये पुत्रके कमलसदृश मुखको देखता हुआ मैं इस समय स्वयं भीषण विषसे ग्रस्त हो गया हूँ॥ २७—३१½॥

इस प्रकार विलाप करके आँसूसे भरे हुए कण्ठवाले राजा हरिश्चन्द्रने उस बालकको उठा लिया और वे उसे वक्षःस्थलसे लगाकर मूर्च्छासे अचेत होकर गिर पड़े॥ ३२½॥

तदनन्तर पृथ्वीपर गिरे हुए उन राजाको देखकर रानी शैव्याने मनमें ऐसा सोचा कि पुरुषोंमें श्रेष्ठ ये महानुभाव तो अपने स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि ये विद्वानोंके मनको प्रसन्न करनेवाले चन्द्रमारूपी हरिश्चन्द्र ही हैं। इन परम यशस्वी महात्मा पुरुषकी सुन्दर तथा ऊँची नासिका तिलके पुष्पके समान शुभ है और इनके दाँत पुष्पोंकी अधखिली कलियोंकी भाँति प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार यदि ये वे ही राजा हरिश्चन्द्र हैं, तो इस श्मशानपर वे कैसे आ गये?॥ ३३—३५½॥

अब पुत्र-शोकका त्याग करके वे रानी भूमिपर गिरे हुए अपने पतिको देखने लगीं। उस समय पति और पुत्र दोनोंके दुःखसे पीडित असहाय उन रानीके मनमें विस्मय और हर्ष—दोनों उत्पन्न हो उठे। राजाको देखती हुई वे सहसा मूर्च्छित होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ीं और धीरे-धीरे चेतनामें आनेपर गद्गद वाणीमें कहने लगीं—'अरे दयाहीन, मर्यादारहित तथा

येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम्।
राज्यनाशं सुहृत्त्यागं भार्यातनयविक्रयम्॥ ३९

प्रापयित्वापि येनाद्य चाण्डालोऽयं कृतो नृपः।
नाद्य पश्यामि ते छत्रं सिंहासनमथापि वा॥ ४०

चामरव्यजने वापि कोऽयं विधिविपर्ययः।
यस्यास्य व्रजतः पूर्वं राजानो भृत्यतां गताः॥ ४१

स्वोत्तरीयैः प्रकुर्वन्ति विरजस्कं महीतलम्।
सोऽयं कपालसंलग्ने घटीपटनिरन्तरे॥ ४२

मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्लग्नकेशसुदारुणे।
वसानिष्पन्दसंशुष्कमहापटलमण्डिते॥ ४३

भस्माङ्गारार्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे।
गृध्रगोमायुनादार्ते पुष्टक्षुद्रविहङ्गमे॥ ४४

चिताधूमायतपटे नीलीकृतदिगन्तरे।
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रकृष्टनिशाचरे॥ ४५

चरत्यमेध्ये राजेन्द्रः श्मशाने दुःखपीडितः।
एवमुक्त्वाथ संश्लिष्य कण्ठे राज्ञो नृपात्मजा॥ ४६

कष्टं शोकसमाविष्टा विललापार्तया गिरा।
राजन् स्वप्नोऽथ तथ्यं वा यदेतन्मन्यते भवान्॥ ४७

तत्कथ्यतां महाभाग मनो वै मुह्यते मम।
यद्येतदेवं धर्मज्ञ नास्ति धर्मे सहायता॥ ४८

तथैव विप्रदेवादिपूजने सत्यपालने।
नास्ति धर्मः कुतः सत्यं नार्जवं नानृशंसता॥ ४९

यत्र त्वं धर्मपरमः स्वराज्यादवरोपितः।

निन्दनीय दैव! तुम्हें धिक्कार है, जो कि तुमने देवतुल्य इन नरेशको चाण्डाल बना दिया। इनका राज्य नष्ट हो गया, इनके बन्धु-बान्धव इनसे अलग हो गये और इन्हें अपनी पत्नी तथा पुत्रतक बेचने पड़े, ऐसी स्थितिमें पहुँचानेके बाद भी तुमने इन्हें चाण्डाल बना दिया॥ ३६—३९½ ॥

[हे राजन्!] आज मैं आपके छत्र, सिंहासन, चामर अथवा व्यजन—कुछ भी नहीं देख रही हूँ; विधाताकी यह कैसी विडम्बना है!॥ ४०½ ॥

पहले जिनके यात्रा करते समय राजालोग भी सेवाकार्यमें लग जाते थे और अपने उत्तरीय वस्त्रोंसे धूलयुक्त भूमिमार्गको स्वच्छ करते थे, वे ही ये महाराज इस समय दुःखसे व्यथित होकर अपवित्र श्मशानमें भटक रहे हैं; जहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं, फूटे हुए घड़े तथा फटे वस्त्र पड़े हैं, जो मृतकोंके शरीरसे उतारे गये सूत्र तथा उनमें लगे हुए केशसे अत्यन्त भयंकर लगता है, जहाँकी भूमि शुष्क चर्बियोंकी विशाल स्थिर राशिसे पटी पड़ी है, जो भस्म, अंगारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंके समूहसे अति भीषण दिखायी पड़ता है, जहाँ गीध और सियार सदा बोलते रहते हैं, जहाँ क्षुद्र जातिके हृष्ट-पुष्ट पक्षी मँडराते रहते हैं, जहाँकी सभी दिशाएँ चितासे निकले धुएँरूपी मेघसे अन्धकारयुक्त रहती हैं और जहाँपर शवोंके मांसको खाकर प्रसन्नतासे युक्त निशाचर दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ ४१—४५½ ॥

ऐसा कहकर दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रानी शैव्या राजाके कण्ठसे लिपटकर कातर वाणीमें विलाप करने लगीं—हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य, जिसे आप मान रहे हैं। हे महाभाग! यह आप स्पष्ट बतायें; क्योंकि मेरा मन व्याकुल हो रहा है। हे धर्मज्ञ! यदि ऐसा ही है तो धर्ममें, सत्यपालनमें, ब्राह्मण और देवता आदिके पूजनमें सहायता करनेकी शक्ति विद्यमान नहीं है। जब आप-जैसे धर्मपरायण पुरुषको अपने राज्यसे च्युत होना पड़ा तो फिर धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसता (अहिंसा)-का कोई महत्त्व ही नहीं रहा॥ ४६—४९½ ॥

सूत उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदः॥ ५०

कथयामास तन्वङ्ग्यै यथा प्राप्तः श्वपाकताम्।
रुदित्वा सा तु सुचिरं निःश्वस्योष्णं सुदुःखिता॥ ५१

स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावत्तं न्यवेदयत्।
श्रुत्वा राजा तथा वाक्यं निपपात महीतले॥ ५२

मृतपुत्रं समानीय जिह्वया विलिहन्मुहुः।
हरिश्चन्द्रमथो प्राह शैव्या गद्गदया गिरा॥ ५३

कुरुष्व स्वामिनः प्रेष्यं छेदयित्वा शिरो मम।
स्वामिद्रोहो न तेऽस्त्वद्य मासत्यो भव भूपते॥ ५४

मासत्यं तव राजेन्द्र परद्रोहस्तु पातकम्।
एतदाकर्ण्य राजा तु पपात भुवि मूर्च्छितः॥ ५५

क्षणेन चेतनां प्राप्य विललापातिदुःखितः।

राजोवाच

कथं प्रिये त्वया प्रोक्तं वचनं त्वतिनिष्ठुरम्॥ ५६

यदशक्यं भवेद्वक्तुं तत्कर्म क्रियते कथम्।

पत्न्युवाच

मया च पूजिता गौरी देवा विप्रास्तथैव च॥ ५७

भविष्यसि पतिस्त्वं मे ह्यन्यस्मिञ्जन्मनि प्रभो।
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले॥ ५८

मृतस्य पुत्रस्य तदा चुचुम्ब दुःखितो मुखम्।

राजोवाच

प्रिये न रोचते दीर्घं कालं क्लेशं मयाशितुम्॥ ५९

नात्मायत्तोऽहं तन्वङ्गि पश्य मे मन्दभाग्यताम्।
चाण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि॥ ६०

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड़कर रुँधे कण्ठसे उन कृश शरीरवाली शैव्यासे वह सब कुछ बताया, जिस प्रकार उन्हें चाण्डालत्व प्राप्त हुआ था। इसके बाद वह वृत्तान्त सुनकर रानी अत्यन्त दुःखित होकर बहुत देरतक रोती रहीं; फिर उष्ण श्वास छोड़कर उन्होंने भीरुतापूर्वक अपने पुत्रके मरणसम्बन्धी वृत्तान्तका यथावत् वर्णन राजासे कर दिया। वह वृत्तान्त सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और फिर उठकर मृतपुत्रको बाहोंमें लेकर बार-बार जिह्वासे उसके मुखका स्पर्श करने लगे॥ ५०—५२½ ॥

तत्पश्चात् शैव्याने हरिश्चन्द्रसे गद्गद वाणीमें कहा—अब आप मेरा सिर काटकर अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन कीजिये, जिससे आपको स्वामिद्रोहका दोष न लगे और आप सत्यसे च्युत न हों। हे राजेन्द्र! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये और दूसरोंके प्रति द्रोह भी महान् पाप है॥ ५३-५४½ ॥

यह सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ५५½ ॥

राजा बोले—हे प्रिये! तुमने ऐसा अतिनिष्ठुर वचन कैसे कह दिया? जो बात कही नहीं जा सकती, उसे कार्यरूपमें कैसे परिणत किया जाय?॥ ५६½ ॥

पत्नीने कहा—हे प्रभो! मैंने भगवती गौरीकी उपासना की है और उसी प्रकार मैंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंकी भी भलीभाँति पूजा की है। उनके आशीर्वादसे आप अगले जन्ममें भी मेरे पति होंगे॥ ५७½ ॥

रानीकी यह बात सुनकर राजा भूमिपर गिर पड़े और दुःखित होकर अपने मरे हुए पुत्रका मुख चूमने लगे॥ ५८½ ॥

राजा बोले—हे प्रिये! अब दीर्घ समयतक इस प्रकारका कष्ट भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है। अब मैं अपने शरीरको स्वयं बचाये रखनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे तन्वंगि! मेरी मन्दभाग्यताको तो देखो कि यदि मैं इस चाण्डालसे बिना आज्ञा लिये ही आगमें जल

चाण्डालदासतां यास्ये पुनरप्यन्यजन्मनि।
नरकं च वरं प्राप्य खेदं प्राप्स्यामि दारुणम्॥ ६१

तापं प्राप्स्यामि सम्प्राप्य महारौरवरौरवे।
मग्नस्य दुःखजलधौ वरं प्राणैर्वियोजनम्॥ ६२

एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः।
मम दैवानुयोगेन मृतो सोऽपि बलीयसा॥ ६३

कथं प्राणान्विमुञ्चामि परायत्तोऽस्मि दुर्गतः।
तथापि दुःखबाहुल्यात्त्यक्ष्यामि तु निजां तनुम्॥ ६४

त्रैलोक्ये नास्ति तद्दुःखं नासिपत्रवने तथा।
वैतरण्यां कुतस्तद्वद्यादृशं पुत्रविप्लवे॥ ६५

सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने।
निपतिष्यामि तन्वङ्गि क्षन्तव्यं तन्ममाधुना॥ ६६

न वक्तव्यं त्वया किञ्चिदतः कमललोचने।
मम वाक्यं च तन्वङ्गि निबोधाहतमानसा॥ ६७

अनुज्ञाताथ गच्छ त्वं विप्रवेश्म शुचिस्मिते।
यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः॥ ६८

सङ्गमः परलोके मे निजपुत्रेण चेत्त्वया।
इहलोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति समीप्सितम्॥ ६९

यन्मया हसता किञ्चिद्रहसि त्वां शुचिस्मिते।
अशेषमुक्तं तत्सर्वं क्षन्तव्यं मम यास्यतः॥ ७०

राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स मे द्विजः।
सर्वयत्नेन तोष्यः स्यात्स्वामी दैवतवच्छुभे॥ ७१

जाऊँ तो अगले जन्ममें मुझे फिर चाण्डालकी दासता करनी पड़ेगी और मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर यातना भोगूँगा। इतना ही नहीं, महारौरव नरकमें भी गिरकर अनेक प्रकारके संताप सहने पड़ेंगे, फिर भी दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मुझ अभागेका अब प्राण त्याग देना ही श्रेयस्कर है॥ ५९—६२॥

वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा जो यह एकमात्र पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे मर गया। इस प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त हुआ मैं पराधीन होनेके कारण प्राणोंका त्याग कैसे करूँ? फिर भी इस असीम दुःखसे ऊबकर अब मैं अपना शरीर त्याग ही दूँगा॥ ६३-६४॥

तीनों लोकोंमें, असिपत्रवनमें और वैतरणीनदीमें वैसा क्लेश नहीं है; जैसा पुत्रशोकमें है। अतः हे तन्वंगि! मैं पुत्र-देहके साथ प्रज्वलित अग्निमें स्वयं भी कूद पड़ूँगा, इसके लिये तुम मुझे क्षमा करना॥ ६५-६६॥

हे कमललोचने! पुनः कुछ भी मत कहना। हे तन्वंगि! सन्तप्त मनवाली तुम मेरी बात सुन लो। हे पवित्र मुसकानवाली प्रिये! अब तुम मेरी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके घर जाओ। यदि मैंने दान किया है, हवन किया है और सेवा आदिसे गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप परलोकमें तुम्हारे साथ और अपने इस पुत्रके साथ मेरा मिलन अवश्य होगा। इस लोकमें अभिलषित मिलन अब कहाँसे होगा?॥ ६७—६९॥

हे शुचिस्मिते! अब यहाँसे प्रस्थान करते हुए मेरेद्वारा एकान्तमें हँसीके रूपमें जो कुछ भी अनुचित वचन तुम्हें कहा गया हो, उन सबको तुम क्षमा कर देना। हे शुभे! 'मैं राजाकी पत्नी हूँ'—ऐसा सोचकर अभिमानपूर्वक तुम्हें मेरे उस ब्राह्मणकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि स्वामीको देवतुल्य समझकर पूर्ण प्रयत्नके साथ उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहिये॥ ७०-७१॥

राज्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे निपतिष्ये हुताशने।
दुःखभारासहा देव सह यास्यामि वै त्वया॥ ७२

त्वया सह मम श्रेयो गमनं नान्यथा भवेत्।
सह स्वर्गं च नरकं त्वया भोक्ष्यामि मानद।
श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते॥ ७३

रानी बोली—हे राजर्षे! हे देव! अत्यधिक दुःखके भारको सहन करनेमें असमर्थ मैं भी इस आगमें कूद पड़ूँगी और आपके साथ ही चलूँगी। हे मानद! आपके साथ जानेमें मेरा परम कल्याण है, इसमें सन्देह नहीं है। आपके साथ रहकर मैं स्वर्ग और नरक—सबकुछ भोगूँगी। यह सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते! ऐसा ही हो॥ ७२-७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्याने राज्ञो हुताशनप्रवेशोद्योगवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

चिता बनाकर राजाका रोहितको उसपर लिटाना और राजा-रानीका भगवतीका ध्यानकर स्वयं भी पुत्रकी चितामें जल जानेको उद्यत होना, ब्रह्माजीसहित समस्त देवताओंका राजाके पास आना, इन्द्रका अमृत-वर्षा करके रोहितको जीवित करना और राजा-रानीसे स्वर्ग चलनेके लिये आग्रह करना, राजाका सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग जानेका निश्चय

सूत उवाच

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम्।
भार्यया सहितो राजा बद्धाञ्जलिपुटस्तदा॥ १

चिन्तयन्परमेशानीं शताक्षीं जगदीश्वरीम्।
पञ्चकोशान्तरगतां पुच्छब्रह्मस्वरूपिणीम्॥ २

रक्ताम्बरपरीधानां करुणारससागराम्।
नानायुधधरामम्बां जगत्पालनतत्पराम्॥ ३

तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः।
धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः॥ ४

आगत्य सर्वे प्रोचुस्ते राजञ्छृणु महाप्रभो।
अहं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान्स्वयम्॥ ५

साध्याः सविश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः।
नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाश्विनौ॥ ६

एते चान्येऽथ बहवो विश्वामित्रस्तथैव च।
विश्वत्रयेण यो मैत्रीं कर्तुमिच्छति धर्मतः॥ ७
विश्वामित्रः स तेऽभीष्टमाहर्तुं सम्यगिच्छति।

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार करके उसपर अपने पुत्रको लिटा दिया और भार्यासहित दोनों हाथ जोड़कर वे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) परमेश्वरी, जगत्की अधिष्ठात्री, पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली, पुच्छब्रह्मस्वरूपिणी, रक्तवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली, करुणारसकी सागरस्वरूपा, अनेक प्रकारके आयुध धारण करनेवाली और जगत्की रक्षा करनेमें निरन्तर तत्पर जगदम्बाका ध्यान करने लगे॥ १—३॥

इस प्रकार ध्यानमग्न उन राजा हरिश्चन्द्रके समक्ष इन्द्रसहित सभी देवता धर्मको आगे करके तुरन्त उपस्थित हुए॥ ४॥

वहाँ आकर उन सबने कहा—हे राजन्! हे महाप्रभो! सुनिये, [ब्रह्माने कहा—] मैं साक्षात् पितामह ब्रह्मा हूँ और ये स्वयं भगवान् धर्मदेव हैं; इसी प्रकार साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध, गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, महर्षि विश्वामित्र तथा अन्य ये बहुतसे देवता भी यहाँ उपस्थित हैं। जो धर्मपूर्वक तीनों लोकोंके साथ मित्रता करनेकी इच्छा रखते हैं, वे विश्वामित्र सम्यक् प्रकारसे आपका अभीष्ट सिद्ध करनेकी अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं॥ ५—७½॥

धर्म उवाच

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः॥ ८
तितिक्षादमसत्त्वाद्यैस्त्वद्गुणैः परितोषितः।

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र महाभाग प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम्॥ ९

त्वयाद्य भार्यापुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः।
आरोह त्रिदिवं राजन् भार्यापुत्रसमन्वितः॥ १०

सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः।

सूत उवाच

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम्॥ ११

इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितामध्यगते शिशौ।
पुष्पवृष्टिश्च महती दुन्दुभिस्वन एव च॥ १२

समुत्तस्थौ मृतः पुत्रो राज्ञस्तस्य महात्मनः।
सुकुमारतनुः स्वस्थः प्रसन्नः प्रीतमानसः॥ १३

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं तदा।
सभार्यः स्वश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरावृतः॥ १४

स्वस्थः सम्पूर्णहृदयो मुदा परमयावृतः।
बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूपं चैवमभाषत॥ १५

सभार्यस्त्वं सपुत्रश्च स्वर्लोकं सद्गतिं पराम्।
समारोह महाभाग निजानां कर्मणां फलम्॥ १६

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिना श्वपचेन हि।
अकृत्वा निष्कृतिं तस्य नारोक्ष्ये वै सुरालयम्॥ १७

धर्म उवाच

तवैवं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया।
आत्मा श्वपचतां नीतो दर्शितं तच्च पक्कणम्॥ १८

धर्म बोले—हे राजन्! आप ऐसा साहस मत कीजिये। आपमें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखनेकी शक्ति तथा सत्त्व आदि गुण विद्यमान हैं; उनसे परम सन्तुष्ट होकर मैं साक्षात् धर्म आपके पास आया हूँ॥ ८॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र आपके समक्ष उपस्थित हूँ। हे राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित आपने सनातन लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अतः अब आप अपनी भार्या तथा पुत्रको साथमें लेकर अपने श्रेष्ठ कर्मोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य तथा अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ स्वर्गके लिये प्रस्थान कीजिये॥ ९-१०॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् इन्द्रने आकाशसे चिताके मध्यभागमें सोये हुए शिशु रोहितपर अपमृत्युका नाश करनेवाली अमृतमयी वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय पुष्पोंकी विपुल वर्षा तथा दुन्दुभियोंकी तेज ध्वनि होने लगी॥ ११-१२॥

महान् आत्मावाले उन राजा हरिश्चन्द्रके सुकुमार अंगोंवाले मृत पुत्र रोहित स्वस्थ, प्रसन्न तथा आनन्दचित्त हो गये। तब राजाने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् पत्नीसहित वे राजा हरिश्चन्द्र दिव्य मालाओं तथा वस्त्रोंसे सहसा अलंकृत हो गये। उनके मनमें शान्ति छा गयी, उनके हृदय हर्षसे भर गये और वे परम आनन्दसे समन्वित हो गये। उस समय इन्द्रने राजासे कहा—हे महाभाग! अब आप स्त्री-पुत्रसहित स्वर्गलोकके लिये प्रस्थान कीजिये। आपने परम सद्गति प्राप्त की है, यह आपके अपने ही कर्मोंका फल है॥ १३—१६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! अपने स्वामी चाण्डालसे बिना आज्ञा प्राप्त किये और बिना उनका प्रत्युपकार किये, मैं स्वर्गलोक नहीं जाऊँगा॥ १७॥

धर्म बोले—आपके भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही अपनी मायाके प्रभावसे चाण्डाल बन गया था। आपको जो चाण्डालका घर दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी माया ही थी॥ १८॥

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यते यत्परं स्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि।
तदारोह हरिश्चन्द्र स्थानं पुण्यकृतां नृणाम्॥ १९

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज नमस्तुभ्यं वाक्यं चेदं निबोध मे।
मच्छोकमग्नमनसः कौसले नगरे नराः॥ २०

तिष्ठन्ति तानपास्यैवं कथं यास्याम्यहं दिवम्।
ब्रह्महत्या सुरापानं गोवधः स्त्रीवधस्तथा॥ २१

तुल्यमेभिर्महत्पापं भक्तत्यागादुदाहृतम्।
भजन्तं भक्तमत्याज्यं त्यजतः स्यात्कथं सुखम्॥ २२

तैर्विना न प्रयास्यामि तस्माच्छक्र दिवं व्रज।
यदि ते सहिताः स्वर्गं मया यान्ति सुरेश्वर॥ २३

ततोऽहमपि यास्यामि नरकं वापि तैः सह।

इन्द्र उवाच

बहूनि पुण्यपापानि तेषां भिन्नानि वै नृप॥ २४

कथं सङ्घातभोज्यं त्वं भूप स्वर्गमभीप्ससि।

हरिश्चन्द्र उवाच

भुङ्क्ते शक्र नृपो राज्यं प्रभावात्प्रकृतेर्ध्रुवम्॥ २५

यजते च महायज्ञैः कर्म पूर्तं करोति च।
तच्च तेषां प्रभावेण मया सर्वमनुष्ठितम्॥ २६

उपदादान्न सन्त्यक्ष्ये तानहं स्वर्गलिप्सया।
तस्माद्यन्मम देवेश किञ्चिदस्ति सुचेष्टितम्॥ २७

दत्तमिष्टमथो जप्तं सामान्यं तैस्तदस्तु नः।
बहुकालोपभोज्यं च फलं यन्मम कर्मगम्॥ २८

तदस्तु दिनमप्येकं तैः समं त्वत्प्रसादतः।

इन्द्र बोले—हे हरिश्चन्द्र! पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य जिस श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्तिहेतु कामना करते हैं, पुण्यात्मा पुरुषोंके उस पवित्र स्थानके लिये अब आप प्रस्थान कीजिये॥ १९॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! आपको नमस्कार है। अब मेरी एक बात सुन लीजिये। अयोध्या नगरमें रहनेवाले सभी मानव मेरे शोकसे सन्तप्त मनवाले हैं, उन्हें यहाँ छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा? ब्रह्महत्या, सुरापान, गोवध और स्त्रीहत्या-जैसे महापातकोंके ही समान अपने भक्तोंका त्याग भी महान् पाप बताया गया है। श्रद्धालु भक्त त्याज्य नहीं होता है, उसे त्यागनेवालेको सुख भला कैसे मिल सकता है? अतएव हे इन्द्र! उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा, अब आप स्वर्ग प्रस्थान करें। हे सुरेन्द्र! यदि मेरे साथ वे भी स्वर्ग चलें तो मैं स्वर्ग चल सकता हूँ। उनके साथ यदि नरकमें जाना हो तो मैं वहाँ भी चला जाऊँगा॥ २०—२३½॥

इन्द्र बोले—हे राजन्! उन अयोध्याके नागरिकोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके पुण्य और पाप हैं। हे भूप! समस्त जन-समूहके लिये स्वर्ग उपभोगका साधन हो जाय—ऐसी इच्छा आप क्यों प्रकट कर रहे हैं?॥ २४½॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे इन्द्र! प्रजाके प्रभावसे ही राजा राज्यका भोग करता है, यह सुनिश्चित है और उन्हींकी सहायतासे ही राजा बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा देवताओंकी उपासना करता है और पूर्तकर्म (कुएँ-तालाब आदिका निर्माण) करता है। मैंने भी उन्हींके बलपर यह सब कृत्य किया है। उनके द्वारा की गयी सहायताके कारण मैं स्वर्गके लोभसे उनका त्याग नहीं करूँगा। अतः हे देवेश! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया हो; दान, यज्ञ और जप आदि किया हो, उसका फल हमें उन सभीके साथ प्राप्त हो; और मेरे उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत समयतक भोग करनेका जो फल मिल रहा हो, वह भले ही एक दिनके लिये हो, उन नागरिकोंके साथ भोगनेके लिये मुझे आपकी कृपासे मिल जाय॥ २५—२८½॥

सूत उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा शक्रस्त्रिभुवनेश्वरः॥ २९
प्रसन्नचेता धर्मश्च विश्वामित्रश्च गाधिजः।
गत्वा तु नगरं सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाकुलम्॥ ३०
हरिश्चन्द्रस्य निकटे प्रोवाच विबुधाधिपः।
आगच्छन्तु जनाः शीघ्रं स्वर्गलोकं सुदुर्लभम्॥ ३१
धर्मप्रसादात्सम्प्राप्तं सर्वैर्युष्माभिरेव तु।
हरिश्चन्द्रोऽपि तान्सर्वाञ्जनान्नगरवासिनः॥ ३२
प्राह राजा धर्मपरो दिवमारुह्यतामिति।

सूत उवाच

तदिन्द्रस्य वचः श्रुत्वा प्रीतास्तस्य च भूपतेः॥ ३३
ये संसारेषु निर्विण्णास्ते धुरं स्वसुतेषु वै।
कृत्वा प्रहृष्टमनसो दिवमारुरुहुर्जनाः॥ ३४
विमानवरमारूढाः सर्वे भास्वरविग्रहाः।
तदा सम्भूतहर्षास्ते हरिश्चन्द्रश्च पार्थिवः॥ ३५
राज्येऽभिषिच्य तनयं रोहिताख्यं महामनाः।
अयोध्याख्ये पुरे रम्ये हृष्टपुष्टजनान्विते॥ ३६
तनयं सुहृदश्चापि प्रतिपूज्याभिनन्द्य च।
पुण्येन लभ्यां विपुलां देवादीनां सुदुर्लभाम्॥ ३७
सम्प्राप्य कीर्तिमतुलां विमाने स महीपतिः।
आसाञ्चक्रे कामगमे क्षुद्रघण्टाविराजिते॥ ३८
ततस्तर्हि समालोक्य श्लोकमन्त्रं तदा जगौ।
दैत्याचार्यो महाभागः सर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित्॥ ३९

शुक्र उवाच

अहो तितिक्षामाहात्म्यमहो दानफलं महत्।
यदागतो हरिश्चन्द्रो महेन्द्रस्य सलोकताम्॥ ४०

सूत उवाच

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रस्य चेष्टितम्।
यः शृणोति च दुःखार्तः स सुखं लभतेऽन्वहम्॥ ४१

सूतजी बोले—त्रिलोकीके स्वामी इन्द्रने 'ऐसा ही होगा'—इस प्रकार कहा। इससे धर्म और गाधिपुत्र विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नता छा गयी। तदनन्तर वे सभी लोग चारों वर्णोंके लोगोंसे भरी हुई अयोध्या नगरीमें पहुँचे। वहाँपर सुरपति इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके सन्निकट आकर कहा—हे नागरिको! अब आप सभी लोग परम दुर्लभ स्वर्गलोक चलिये। धर्मके फलस्वरूप ही आप सभीको यह स्वर्ग सुलभ हुआ है॥ २९—३१½॥

तत्पश्चात् धर्मपरायण राजा हरिश्चन्द्रने उन सभी नगरवासियोंसे कहा कि आप सभी लोग मेरे साथ स्वर्गलोक प्रस्थान कीजिये॥ ३२½॥

सूतजी बोले—देवराज इन्द्र तथा राजा हरिश्चन्द्रका वचन सुनकर सभी नागरिक प्रफुल्लित हो उठे। जो नागरिक सांसारिकतासे विरक्त हो चुके थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर प्रसन्न मनसे स्वर्ग जानेके लिये तैयार हो गये। वे सभी लोग उत्तम विमानोंपर चढ़ गये। उनके शरीरसे सूर्यके समान तेज निकलने लगा। उस समय वे परम आनन्दित हो गये। उदार चित्तवाले राजा हरिश्चन्द्र भी हृष्ट-पुष्ट नागरिकोंसे युक्त अयोध्या नामक रमणीक पुरीमें अपने रोहित नामसे प्रसिद्ध पुत्रका राज्याभिषेक करके अपने पुत्र तथा सुहृदोंका सम्मान-पूजन करके और पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवता आदिके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ महान् कीर्तिको प्राप्त करके छोटी-छोटी घण्टियोंसे सुशोभित तथा इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठ गये॥ ३३—३८॥

यह सब देखकर दैत्योंके आचार्य एवं सभी शास्त्रोंके अर्थों तथा तत्त्वोंको जाननेवाले महाभाग शुक्राचार्यने यह श्लोकरूपी मन्त्र उच्चारित किया—॥ ३९॥

शुक्राचार्य बोले—अहो, सहिष्णुताकी ऐसी महिमा और दानका इतना महान् फल कि राजा हरिश्चन्द्रने इन्द्रका लोक प्राप्त कर लिया॥ ४०॥

सूतजी बोले—इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन मैंने आपलोगोंसे कर दिया। जो दुःखी प्राणी इस आख्यानका श्रवण करता है, वह सदा सुखी रहता है। इसका श्रवण करनेसे स्वर्गकी

स्वर्गार्थी प्राप्नुयात्स्वर्गं सुतार्थी सुतमाप्नुयात्।
भार्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात्॥ ४२

इच्छा रखनेवाला स्वर्ग प्राप्त कर लेता है, पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र प्राप्त कर लेता है, पत्नीकी कामना करनेवाला पत्नी प्राप्त कर लेता है और राज्यकी वांछा रखनेवाला राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हरिश्चन्द्राख्यानश्रवणफलवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

* * *

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

दुर्गम दैत्यकी तपस्या; वर-प्राप्ति तथा अत्याचार, देवताओंका भगवतीकी प्रार्थना करना, भगवतीका शताक्षी और शाकम्भरीरूपमें प्राकट्य, दुर्गमका वध और देवगणोंद्वारा भगवतीकी स्तुति

जनमेजय उवाच

विचित्रमिदमाख्यानं हरिश्चन्द्रस्य कीर्तितम्।
शताक्षीपादभक्तस्य राजर्षेर्धार्मिकस्य च॥ १

शताक्षी सा कुतो जाता देवी भगवती शिवा।
तत्कारणं वद मुने सार्थकं जन्म मे कुरु॥ २

को हि देव्या गुणाञ्छृण्वंस्तृप्तिं यास्यति शुद्धधीः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमक्षय्यमश्नुते॥ ३

जनमेजय बोले—हे मुने! भगवती शताक्षीके चरणोंके उपासक एवं धर्मपरायण राजर्षि हरिश्चन्द्रकी यह बड़ी अद्भुत कथा आपने कही। हे मुने! वे कल्याणमयी देवी भगवती किस प्रकारसे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) हुईं? उसका कारण बताइये। मेरे जन्मको सार्थक कीजिये। कौन ऐसा विमल बुद्धिवाला मनुष्य होगा, जो भगवतीके गुणोंका श्रवण करके पूर्णरूपसे तृप्त हो जाय! इसे सुननेसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल मनुष्यको प्राप्त होता है॥ १—३॥

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि शताक्षीसम्भवं शुभम्।
तवावाच्यं न मे किञ्चिद्देवीभक्तस्य विद्यते॥ ४

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैं शताक्षीकी मंगलकारिणी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये। आपसदृश देवीभक्तके प्रति कोई भी बात मेरे लिये अवाच्य नहीं है॥ ४॥

दुर्गमाख्यो महादैत्यः पूर्वं परमदारुणः।
हिरण्याक्षान्वये जातो रुरुपुत्रो महाखलः॥ ५

प्राचीन कालकी बात है—दुर्गम नामक एक अत्यन्त भयंकर महादैत्य था। हिरण्याक्षके वंशमें उत्पन्न वह महान् दुष्ट दुर्गम रुरुका पुत्र था॥ ५॥

देवानां तु बलं वेदो नाशे तस्य सुरा अपि।
नंक्ष्यन्त्येव न संदेहो विधेयं तावदेव तत्॥ ६

विमृश्यैतत्तपश्चर्यां गतः कर्तुं हिमालये।
ब्रह्माणं मनसा ध्यात्वा वायुभक्षो व्यतिष्ठत॥ ७

सहस्रवर्षपर्यन्तं चकार परमं तपः।
तेजसा तस्य लोकास्तु सन्तप्ताः ससुरासुराः॥ ८

'देवताओंका बल वेद है। उस वेदके नष्ट हो जानेपर देवताओंका भी नाश हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। अतः पहले वही (वेदनाश) किया जाना चाहिये'—ऐसा सोचकर वह तप करनेके लिये हिमालयपर्वतपर चला गया। वहाँपर मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने केवल वायु पीकर रहते हुए एक हजार वर्षतक कठोर तपस्या की। उसके तेजसे देव-दानवसहित समस्त प्राणी सन्तप्त हो उठे॥ ६—८॥

ततः प्रसन्नो भगवान् हंसारूढश्चतुर्मुखः।
ययौ तस्मै वरं दातुं प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ९

समाधिस्थं मीलिताक्षं स्फुटमाह चतुर्मुखः।
वरं वरय भद्रं ते यस्ते मनसि वर्तते॥ १०

तवाद्य तपसा तुष्टो वरदेशोऽहमागतः।
श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं व्युत्थितः स समाधितः॥ ११

पूजयित्वा वरं वव्रे वेदान्देहि सुरेश्वर।
त्रिषु लोकेषु ये मन्त्रा ब्राह्मणेषु सुरेष्वपि॥ १२

विद्यन्ते ते तु सान्निध्ये मम सन्तु महेश्वर।
बलं च देहि येन स्याद्देवानां च पराजयः॥ १३

इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्विति वचो वदन्।
जगाम सत्यलोकं तु चतुर्वेदेश्वरः परः॥ १४

ततःप्रभृति विप्रैस्तु विस्मृता वेदराशयः।
स्नानसन्ध्यानित्यहोमश्राद्धयज्ञजपादयः॥ १५

विलुप्ता धरणीपृष्ठे हाहाकारो महानभूत्।
किमिदं किमिदं चेति विप्रा ऊचुः परस्परम्॥ १६

वेदाभावात्तदस्माभिः कर्तव्यं किमतः परम्।
इति भूमौ महानर्थे जाते परमदारुणे॥ १७

निर्जराः सजरा जाता हविर्भागाद्यभावतः।
रुरोध स तदा दैत्यो नगरीममरावतीम्॥ १८

अशक्तास्तेन ते योद्धुं वज्रदेहासुरेण च।
पलायनं तदा कृत्वा निर्गता निर्जराः क्वचित्॥ १९

निलयं गिरिदुर्गेषु रत्नसानुगुहासु च।
संस्थिताः परमां शक्तिं ध्यायन्तस्ते पराम्बिकाम्॥ २०

तब [उसके तपसे] प्रसन्न होकर विकसित कमलके समान सुन्दर मुखवाले चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ होकर उसे वर देनेके लिये वहाँ गये॥ ९॥

नेत्र मूँदकर समाधिकी स्थितिमें बैठे हुए उस दैत्यसे चार मुखवाले ब्रह्माजीने स्पष्ट वाणीमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो। वरदाताओंका स्वामी मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न होकर इस समय उपस्थित हुआ हूँ'॥ १०½॥

ब्रह्माजीके मुखसे यह वाणी सुनकर वह दैत्य समाधिसे उठ खड़ा हुआ और उसने पूजा करके वर माँगते हुए कहा—हे सुरेश्वर! मुझे सभी वेद देनेकी कृपा कीजिये। साथ ही हे महेश्वर! तीनों लोकोंमें ब्राह्मणों और देवताओंके पास जो मन्त्र हों, वे सब मेरे पास आ जायँ और मुझे वह बल दीजिये, जिससे मेरे द्वारा देवताओंकी पराजय हो जाय॥ ११—१३॥

उसकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहते हुए सत्यलोक चले गये॥ १४॥

उसी समयसे ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदिका लोप हो गया, जिससे भूमण्डलमें बड़ा हाहाकार मच गया। ब्राह्मण आपसमें कहने लगे—'यह क्या हो गया, यह क्या हो गया; अब इसके बाद वेदके अभावकी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?'॥ १५-१६½॥

इस प्रकार जगत्‌में अत्यन्त भयंकर तथा घोर अनर्थ उत्पन्न होनेपर हविभाग न मिलनेके कारण सभी देवता जरारहित होते हुए भी जराग्रस्त हो गये। तब उसने देवताओंकी नगरी अमरावतीको घेर लिया॥ १७-१८॥

देवतागण वज्रके समान शरीरवाले उस दैत्यके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हो गये। अतः भागकर वे देवता पर्वतकी कन्दराओं और सुमेरुपर्वतकी गुफाओंमें स्थान बनाकर परम शक्तिस्वरूपा पराम्बिकाका ध्यान करते हुए रहने लगे॥ १९-२०॥

अग्नौ होमाद्यभावात्तु वृष्ट्यभावोऽप्यभून्नृप।
वृष्टेरभावे संशुष्कं निर्जलं चापि भूतलम्॥ २१

कूपवापीतडागाश्च सरितः शुष्कतां गताः।
अनावृष्टिरियं राजन्नभूच्च शतवार्षिकी॥ २२

मृताः प्रजाश्च बहुधा गोमहिष्यादयस्तथा।
गृहे गृहे मनुष्याणामभवच्छवसंग्रहः॥ २३

अनर्थे त्वेवमुद्भूते ब्राह्मणाः शान्तचेतसः।
गत्वा हिमवतः पार्श्वे रिराधयिषवः शिवाम्॥ २४

समाधिध्यानपूजाभिर्देवीं तुष्टुवुरन्वहम्।
निराहारास्तदासक्तास्तामेव शरणं ययुः॥ २५

दयां कुरु महेशानि पामरेषु जनेषु हि।
सर्वापराधयुक्तेषु नैतच्छ्लाघ्यं तवाम्बिके॥ २६

कोपं संहर देवेशि सर्वान्तर्यामिरूपिणि।
त्वया यथा प्रेर्यतेऽयं करोति स तथा जनः॥ २७

नान्या गतिर्जनस्यास्य किं पश्यसि पुनः पुनः।
यथेच्छसि तथा कर्तुं समर्थासि महेश्वरि॥ २८

समुद्धर महेशानि संकटात्परमोत्थितात्।
जीवनेन विनास्माकं कथं स्यात्स्थितिरम्बिके॥ २९

प्रसीद त्वं महेशानि प्रसीद जगदम्बिके।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके ते नमो नमः॥ ३०

नमः कूटस्थरूपायै चिद्रूपायै नमो नमः।
नमो वेदान्तवेद्यायै भुवनेश्यै नमो नमः॥ ३१

नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः।
तां सर्वकारणां देवीं सर्वभावेन सन्नताः॥ ३२

हे राजन्! अग्निमें हवन आदि न होनेके कारण वर्षाका भी अभाव हो गया। वर्षाके अभावमें भूतल शुष्क तथा जलविहीन हो गया। कुएँ, बावलियाँ, तालाब और नदियाँ—ये सभी सूख गये। हे राजन्! यह अनावृष्टि सौ वर्षोंतक बनी रही, जिससे बहुत-सी प्रजाएँ और गाय-भैंस आदि पशु मर गये। इस प्रकार घर-घरमें मनुष्योंके शवके ढेर लग गये॥ २१—२३॥

इस प्रकार अनर्थके उपस्थित होनेपर शान्त चित्तवाले वे ब्राह्मण कल्याणस्वरूपिणी जगदम्बाकी आराधना करनेके विचारसे हिमालयपर्वतपर जाकर समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा भगवतीको निरन्तर प्रसन्न करने लगे। वे निराहार रहते हुए एकमात्र उन्हीं भगवतीमें चित्त लगाकर उनके शरणापन्न हो गये [और उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—]॥ २४-२५॥

हे महेश्वरि! हम असहाय जनोंपर दया कीजिये। हे अम्बिके! समस्त अपराधोंसे युक्त हमलोगोंपर कृपा न करना आपके लिये शोभनीय नहीं है। सभीके भीतर निवास करनेवाली हे देवेश्वरि! आप अपना कोप दूर कीजिये। आप प्राणीको जैसी प्रेरणा देती हैं, वैसा ही वह करता है। इस मानवकी अन्य गति है ही नहीं। हे महेश्वरि! आप बार-बार क्या देख रही हैं? आप जैसा चाहें, वैसा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। हे महेशानि! इस उत्पन्न हुए घोर संकटसे हमारा उद्धार कीजिये। हे अम्बिके! जीवनी शक्तिके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है? हे महेश्वरि! आप प्रसन्न हो जाइये। हे जगदम्बिके! आप प्रसन्न हो जाइये। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी अधीश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है। कूटस्थरूपिणी देवीको नमस्कार है, चिद्रूपा देवीको बार-बार नमस्कार है, वेदान्तोंके द्वारा ज्ञात होनेवालीको नमस्कार है और अखिल भुवनकी स्वामिनीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण आगमशास्त्र 'नेति-नेति' इन वचनोंसे जिनका ज्ञान कराते हैं, हम सब प्रकारसे उन सर्वकारण-स्वरूपिणी भगवतीके शरणागत हैं॥ २६—३२॥

इति सम्प्रार्थिता देवी भुवनेशी महेश्वरी।
अनन्ताक्षिमयं रूपं दर्शयामास पार्वती॥ ३३

नीलाञ्जनसमप्रख्यं नीलपद्मायतेक्षणम्।
सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनम्॥ ३४

बाणमुष्टिं च कमलं पुष्पपल्लवमूलकान्।
शाकादीन्फलसंयुक्ताननन्तरससंयुतान्॥ ३५

क्षुत्तृड्जरापहान् हस्तैर्बिभ्रती च महाधनुः।
सर्वसौन्दर्यसारं तद्रूपं लावण्यशोभितम्॥ ३६

कोटिसूर्यप्रतीकाशं करुणारससागरम्।
दर्शयित्वा जगद्धात्री सानन्तनयनोद्भवा॥ ३७

मोचयामास लोकेषु वारिधाराः सहस्रशः।
नवरात्रं महावृष्टिरभून्नेत्रोद्भवैर्जलैः॥ ३८

दुःखितान्वीक्ष्य सकलान्नेत्राश्रूणि विमुञ्चती।
तर्पितास्तेन ते लोका ओषध्यः सकला अपि॥ ३९

नदीनदप्रवाहास्तैर्जलैः समभवन्नृप।
निलीय संस्थिताः पूर्वं सुरास्ते निर्गता बहिः॥ ४०

मिलित्वा ससुरा विप्रा देवीं समभितुष्टुवुः।
नमो वेदान्तवेद्ये ते नमो ब्रह्मस्वरूपिणि॥ ४१

स्वमायया सर्वजगद्विधात्र्यै ते नमो नमः।
भक्तकल्पद्रुमे देवि भक्तार्थं देहधारिणि॥ ४२

नित्यतृप्ते निरुपमे भुवनेश्वरि ते नमः।
अस्मच्छान्त्यर्थमतुलं लोचनानां सहस्रकम्॥ ४३

त्वया यतो धृतं देवि शताक्षी त्वं ततो भव।
क्षुधया पीडिता मातः स्तोतुं शक्तिर्न चास्ति नः॥ ४४

कृपां कुरु महेशानि वेदानप्याहराम्बिके।

इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर समस्त भुवनपर शासन करनेवाली भगवती भुवनेशी महेश्वरी पार्वतीने उन्हें अनन्त नेत्रोंसे युक्त अपना रूप दिखाया। उनका विग्रह काले कज्जलके सदृश था, नीलकमलके समान विशाल नेत्रोंसे सम्पन्न था और अत्यन्त कठोर, समान आकार-प्रकारवाले, उन्नत, गोल, स्थूल एवं सुडौल स्तनोंसे सुशोभित था। वे अपने हाथोंमें मुट्ठीभर बाण, विशाल धनुष, कमल, पुष्प-पल्लव, जड़ तथा फलोंसे सम्पन्न, अनन्त रससे युक्त तथा भूख-प्यास और बुढ़ापेको दूर करनेवाले शाक आदि धारण किये हुए थीं॥ ३३—३५½॥

सम्पूर्ण सुन्दरताके सारस्वरूप, कमनीयता-सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और करुणारसके सागरस्वरूप उस विग्रहका दर्शन कराकर अनन्त नेत्रोंके साथ प्रकट वे जगद्धात्री भगवती समस्त लोकोंमें अपनी आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। इस तरह उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलसे नौ राततक महान् वृष्टि होती रही॥ ३६—३८॥

समस्त प्राणियोंको दुःखी देखकर भगवती अपने नेत्रोंसे आँसू गिराती रहीं, उससे वे सभी प्राणी और सभी औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। हे राजन्! उस वृष्टिके द्वारा सभी नदियाँ और समुद्र जलसे परिपूर्ण हो गये। पहले जो देवता छिपकर रह रहे थे, वे अब बाहर निकल आये। इसके बाद सभी देवता और ब्राह्मण एक साथ मिलकर देवीकी स्तुति करने लगे— ॥ ३९-४०½॥

हे वेदान्तवेद्ये! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। अपनी मायासे सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाली, भक्तोंके लिये देह धारण करनेवाली तथा कल्पवृक्षके समान उनके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! आपको बार-बार नमस्कार है। सदा सन्तुष्ट रहनेवाली और सभी उपमाओंसे रहित हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे देवि! हमारी शान्तिके लिये आपने सहस्र नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है, अतः आप 'शताक्षी' नामसे विख्यात हों। हे जननि! भूखसे अत्यन्त पीडित होनेके कारण आपकी स्तुति करनेके लिये हमलोगोंमें सामर्थ्य नहीं है। हे महेशानि! हे अम्बिके! अब आप कृपा कीजिये और हमें वेदोंको प्राप्त कराइये॥ ४१—४४½॥

व्यास उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शाकान्स्वकरसंस्थितान्॥ ४५

स्वादूनि फलमूलानि भक्षणार्थं ददौ शिवा।
नानाविधानि चान्नानि पशुभोज्यानि यानि च॥ ४६

काम्यानन्तरसैर्युक्तान्यानवीनोद्भवं ददौ।
शाकम्भरीति नामापि तद्दिनात्समभून्नृप॥ ४७

ततः कोलाहले जाते दूतवाक्येन बोधितः।
ससैन्यः सायुधो योद्धुं दुर्गमाख्योऽसुरो ययौ॥ ४८

सहस्राक्षौहिणीयुक्तः शरान्मुञ्चंस्त्वरान्वितः।
रुरोध देवसैन्यं तद्यद्देव्यग्रे स्थितं पुरा॥ ४९

तथा विप्रगणं चैव रोधयामास सर्वतः।
ततः किलकिला शब्दः समभूद्देवमण्डले॥ ५०

त्राहि त्राहीति वाक्यानि प्रोचुः सर्वे द्विजामराः।
ततस्तेजोमयं चक्रं देवानां परितः शिवा॥ ५१

चकार रक्षणार्थाय स्वयं तस्माद् बहिः स्थिता।
ततः समभवद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः॥ ५२

शरवर्षसमाच्छन्नं सूर्यमण्डलमद्भुतम्।
परस्परशरोद्घर्षसमुद्भूताग्निसुप्रभम्॥ ५३

कठोरज्याटणत्कारबधिरीकृतदिक्तटम्।
ततो देवीशरीरात्तु निर्गतास्तीव्रशक्तयः॥ ५४

कालिका तारिणी बाला त्रिपुरा भैरवी रमा।
बगला चैव मातङ्गी तथा त्रिपुरसुन्दरी॥ ५५

कामाक्षी तुलजा देवी जम्भिनी मोहिनी तथा।
छिन्नमस्ता गुह्यकाली दशसाहस्रबाहुका॥ ५६

द्वात्रिंशच्छक्तयश्चान्याश्चतुष्षष्टिमिताः पराः।
असंख्यातास्ततो देव्यः समुद्भूतास्तु सायुधाः॥ ५७

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर कल्याण-कारिणी भगवतीने उन्हें खानेके लिये अपने हाथमें स्थित शाक तथा स्वादिष्ट फल-मूल प्रदान किये। साथ ही नानाविध अन्न तथा पशुओंके खानेयोग्य पदार्थ और अनन्त काम्य रसोंसे सम्पन्न भोज्य पदार्थ उन्हें नवीन अन्नोत्पत्तितकके लिये प्रदान किये। हे नृप! उसी दिनसे शाकम्भरी—यह उनका एक और भी नाम पड़ गया॥ ४५—४७॥

इसके बाद जगत्‌में कोलाहल मच जाने तथा दूतके सब कुछ बता देनेपर वह दुर्गम नामक दैत्य युद्ध करनेके लिये अस्त्र-शस्त्र लेकर सेनाके साथ चल पड़ा। एक हजार अक्षौहिणी सेनासे युक्त उस दैत्यने शीघ्रतापूर्वक बाण छोड़ते हुए पहले देवीके आगे स्थित देवसेनाको अवरुद्ध कर दिया और उसी प्रकार उसने सभी ब्राह्मणोंको भी चारों ओरसे रोक दिया। इससे देवताओंकी मण्डलीमें चीख-पुकारकी ध्वनि होने लगी। सभी ब्राह्मण तथा देवता 'रक्षा करो, रक्षा करो'—इस प्रकारके शब्द बोलने लगे॥ ४८—५०½॥

तत्पश्चात् भगवती शिवाने देवताओंकी रक्षाके लिये उनके चारों ओर तेजयुक्त चक्र (मण्डल) बना दिया और स्वयं उससे बाहर आकर खड़ी हो गयीं॥ ५१½॥

तदनन्तर भगवती और दैत्य दुर्गम—इन दोनोंके मध्य युद्ध होने लगा। बाणोंकी वर्षासे अद्भुत सूर्यमण्डल आच्छादित हो गया। बाणोंके परस्पर घर्षणसे तीव्र प्रभावाली अग्नि निकलने लगती थीं। धनुषकी कठोर प्रत्यंचाके टंकारसे अपने प्रान्तभागतक दिशाएँ बहरी-सी हो जाती थीं॥ ५२-५३½॥

तत्पश्चात् देवीके शरीरसे अनेक उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं। उनमें कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातंगी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, तुलजादेवी, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली तथा दस हजार हाथोंवाली देवी [ये सोलह], पुनः बत्तीस, इसके बाद चौंसठ और फिर अनन्त देवियाँ हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए प्रकट हुईं॥ ५४—५७॥

मृदङ्गशङ्खवीणादिनादितं सङ्गरस्थलम्।
शक्तिभिर्दैत्यसैन्ये तु नाशितेऽक्षौहिणीशते॥ ५८

अग्रेसरः समभवद्दुर्गमो वाहिनीपतिः।
शक्तिभिः सह युद्धं च चकार प्रथमं रिपुः॥ ५९

महद्युद्धं समभवद्यत्राभूद्रक्तवाहिनी।
अक्षौहिण्यस्तु ताः सर्वा विनष्टा दशभिर्दिनैः॥ ६०

तत एकादशे प्राप्ते दिने परमदारुणे।
रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः॥ ६१

कृत्वोत्सवं महान्तं तु युद्धाय रथसंस्थितः।
संरम्भेणैव महता शक्तीः सर्वा विजित्य च॥ ६२

महादेवीरथाग्रे तु स्वरथं संन्यवेशयत्।
ततोऽभवन्महद्युद्धं देव्या दैत्यस्य चोभयोः॥ ६३

प्रहरद्वयपर्यन्तं हृदयत्रासकारकम्।
ततः पञ्चदशात्युग्रबाणान्देवी मुमोच ह॥ ६४

चतुर्भिश्चतुरो वाहान्बाणेनैकेन सारथिम्।
द्वाभ्यां नेत्रे भुजौ द्वाभ्यां ध्वजमेकेन पत्रिणा॥ ६५

पञ्चभिर्हृदयं तस्य विव्याध जगदम्बिका।
ततो वमन् स रुधिरं ममार पुर ईशितुः॥ ६६

तस्य तेजस्तु निर्गत्य देवीरूपे विवेश ह।
हते तस्मिन्महावीर्ये शान्तमासीज्जगत्त्रयम्॥ ६७

ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम्।
पुरस्कृत्य हरीशानौ भक्त्या गद्‌गदया गिरा॥ ६८

वह युद्धस्थल मृदंग, शंख, वीणा आदि वाद्योंसे गूँज उठा। उन शक्तियोंके द्वारा दैत्योंकी एक सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिये जानेपर देवशत्रु वह दैत्यसेनाध्यक्ष दुर्गम तुरन्त सामने आ खड़ा हुआ और शक्तियोंके साथ अद्भुत युद्ध करने लगा॥ ५८-५९॥

जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्तकी धारा बहने लगी। दस दिनोंमें उस दैत्यकी वे सभी अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हो गयीं॥ ६०॥

तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन आनेपर वह दैत्य लाल रंगकी माला एवं वस्त्र धारण किये तथा शरीरमें लाल चन्दन लगाये महान् उत्सव मनाकर युद्धके लिये रथपर आरूढ़ हुआ। बड़े उत्साहके साथ सभी शक्तियोंको जीतकर वह दैत्य महादेवीके रथके सामने अपना रथ ले गया॥ ६१-६२½॥

अब देवी और दुर्गम दैत्य—इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। हृदयको त्रास पहुँचानेवाला वह युद्ध दो प्रहरतक होता रहा। इसके बाद भगवतीने पाँच भीषण बाण छोड़े, जिनमें चार बाणोंसे उसके चार घोड़ों और एक बाणसे सारथिको मार डाला। पुनः जगदम्बाने दो बाणोंसे उसके दोनों नेत्रोंको वेध दिया, दो बाणोंसे उसकी दोनों भुजाएँ एवं एक बाणसे उसकी ध्वजा काट डाली और पाँच बाणोंसे उसके वक्षःस्थलका भेदन कर दिया॥ ६३—६५½॥

तदनन्तर वह दैत्य रुधिरका वमन करता हुआ भगवती परमेश्वरीके सामने मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे तेज निकलकर देवीके विग्रहमें प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार उस महापराक्रमी दैत्यका संहार हो जानेपर तीनों लोकोंमें शान्ति व्याप्त हो गयी॥ ६६-६७॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता भगवान् विष्णु और शिवको आगे करके भक्तिपूर्वक गद्‌गद वाणीमें जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ ६८॥

देवा ऊचुः

जगद्भ्रमविवर्तैककारणे परमेश्वरि।
नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते शतलोचने॥ ६९

सर्वोपनिषदुद्‌घुष्टे दुर्गमासुरनाशिनि।
नमो मायेश्वरि शिवे पञ्चकोशान्तरस्थिते॥ ७०

चेतसा निर्विकल्पेन यां ध्यायन्ति मुनीश्वराः।
प्रणवार्थस्वरूपां तां भजामो भुवनेश्वरीम्॥ ७१

अनन्तकोटिब्रह्माण्डजननीं दिव्यविग्रहाम्।
ब्रह्मविष्ण्वादिजननीं सर्वभावैर्नता वयम्॥ ७२

कः कुर्यात्पामरान्दृष्ट्वा रोदनं सकलेश्वरः।
सदयां परमेशानीं शताक्षीं मातरं विना॥ ७३

व्यास उवाच

इति स्तुता सुरैर्देवी ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्वरैः।
पूजिता विविधैर्द्रव्यैः सन्तुष्टाभूच्च तत्क्षणे॥ ७४

प्रसन्ना सा तदा देवी वेदानाहृत्य सा ददौ।
ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण प्रोवाच पिकभाषिणी॥ ७५

ममेयं तनुरुत्कृष्टा पालनीया विशेषतः।
यया विनानर्थ एष जातो दृष्टोऽधुनैव हि॥ ७६

पूज्याहं सर्वदा सेव्या युष्माभिः सर्वदैव हि।
नातः परतरं किञ्चित्कल्याणायोपदिश्यते॥ ७७

पठनीयं ममैतद्धि माहात्म्यं सर्वदोत्तमम्।
तेन तुष्टा भविष्यामि हरिष्यामि तथापदः॥ ७८

दुर्गमासुरहन्त्रीत्वाद्दुर्गेति मम नाम यः।
गृह्णाति च शताक्षीति मायां भित्त्वा व्रजत्यसौ॥ ७९

किमुक्तेनात्र बहुना सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः।
संसेव्याहं सदा देवाः सर्वैरपि सुरासुरैः॥ ८०

देवता बोले—भ्रान्ति तथा अविद्याजन्य मोहसे युक्त इस जगत्‌की एकमात्र कारण हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे शिवे! हे शाकम्भरि! हे शतलोचने! आपको नमस्कार है। समस्त उपनिषदोंका उद्‌घोष करनेवाली तथा दुर्गम नामक दैत्यका संहार करनेवाली हे मायेश्वरि! पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली हे शिवे! आपको नमस्कार है। मुनीश्वर विशुद्ध मनसे जिनका ध्यान करते हैं, उन प्रणवके अर्थरूप विग्रहवाली भगवती भुवनेश्वरीका हम आश्रय ग्रहण करते हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका प्रादुर्भाव करनेवाली, ब्रह्मा-विष्णु आदिको उत्पन्न करनेवाली तथा दिव्य विग्रहवाली भगवतीके समक्ष हमलोग सम्पूर्ण भावसे नतमस्तक हैं। दयामयी परमेश्वरी माता शताक्षीके अतिरिक्त ऐसा कौन सर्वेश्वर है, जो दीन-दु:खी प्राणियोंको देखकर रुदन कर सकता है?॥ ६९—७३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्मा, विष्णु आदि श्रेष्ठ देवताओंके इस प्रकार स्तवन तथा विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती उसी क्षण सन्तुष्ट हो गयीं॥ ७४॥

कोयलके समान मधुर स्वरवाली उन भगवतीने दुर्गम दैत्यसे वेदोंको वापस लाकर सौंप दिया और विशेषरूपसे ब्राह्मणोंसे कहा—जिस वेदराशिके अभावमें यह अनर्थ उत्पन्न हुआ था और उस अनर्थको आपलोगोंने अभी-अभी प्रत्यक्ष देखा भी है, वह वेदराशि मेरा उत्कृष्ट विग्रह है; आपलोगोंको विशेषरूपसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। आपलोगोंको सर्वदा मेरी पूजा तथा सेवा करनी चाहिये। आपलोगोंके कल्याणके लिये इससे बढ़कर कोई अन्य उपदेश नहीं है। आपलोगोंको चाहिये कि मेरे इस उत्तम माहात्म्यका सर्वदा पाठ करें, उससे प्रसन्न होकर मैं आपलोगोंके समस्त कष्ट दूर कर दूँगी। दुर्गम असुरका संहार करनेके कारण दुर्गा तथा शताक्षी—मेरे इन नामोंका जो प्राणी उच्चारण करता है, वह मायाका भेदन करके मेरे लोकको प्राप्त होता है। अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। हे देवगण! मैं वस्तुत: साररूपमें यही कहती हूँ कि सभी देवताओं तथा दैत्योंको सर्वदा मेरी उपासना करनी चाहिये॥ ७५—८०॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी देवानां चैव पश्यताम्।
सन्तोषं जनयन्त्येवं सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ८१

एतत्ते सर्वमाख्यातं रहस्यं परमं महत्।
गोपनीयं प्रयत्नेन सर्वकल्याणकारकम्॥ ८२

य इमं शृणुयान्नित्यमध्यायं भक्तितत्परः।
सर्वान्कामानवाप्नोति देवीलोके महीयते॥ ८३

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सच्चिदानन्दस्वरूपिणी जगदम्बा ऐसा कहकर देवताओंको आनन्दित करती हुई उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं। यह सब मैंने आपको बता दिया। सबका कल्याण करनेवाले इस अति महान् रहस्यको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये, जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर इस अध्यायका नित्य श्रवण करता है, वह सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है और देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८१—८३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
शताक्षीचरित्रवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

* * *

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उनसे उन्हींकी आराधना करनेको कहना, भगवान् शंकर और विष्णुके अभिमानको देखकर गौरी तथा लक्ष्मीका अन्तर्धान होना और शिव तथा विष्णुका शक्तिहीन होना

व्यास उवाच

इत्येवं सूर्यवंश्यानां राज्ञां चरितमुत्तमम्।
सोमवंशोद्भवानां च वर्णनीयं मया कियत्॥ १

पराशक्तिप्रसादेन महत्त्वं प्रतिपेदिरे।
राजन् सुनिश्चितं विद्धि पराशक्तिप्रसादतः॥ २

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं पराशक्त्यंशसम्भवम्॥ ३

एते चान्ये च राजानः पराशक्तेरुपासकाः।
संसारतरुमूलस्य कुठारा अभवन्नृप॥ ४

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संसेव्या भुवनेश्वरी।
पलालमिव धान्यार्थी त्यजेदन्यमशेषतः॥ ५

आमथ्य वेददुग्धाब्धिं प्राप्तं रत्नं मया नृप।
पराशक्तिपदाम्भोजं कृतकृत्योऽस्म्यहं ततः॥ ६

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने यत्किंचित् सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके उत्तम चरित्रका वर्णन किया। हे राजन्! पराशक्ति भगवतीकी कृपासे उन राजाओंने महती प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि उन पराशक्तिकी कृपासे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। जो-जो विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त तथा शक्तियुक्त पदार्थ हैं; उन सबको आप उन्हीं परम शक्तिमयी भगवतीके अंशसे ही उत्पन्न समझिये॥ १—३॥

हे नृप! ये तथा अन्य बहुतसे पराशक्तिके उपासक राजागण संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिये कुठारके समान हो चुके हैं। अतएव जिस प्रकार धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, उसी प्रकार अन्य व्यवसायोंका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये और सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये॥ ४-५॥

हे नृप! वेदरूपी क्षीरसागरका मन्थन करके मैंने भगवती पराशक्तिके चरण-कमलरूपी रत्नको प्राप्त किया है, उससे मैं कृतार्थ हो गया हूँ॥ ६॥

पञ्चब्रह्मासनारूढा नास्त्यन्या कापि देवता।
तत एव महादेव्या पञ्चब्रह्मासनं कृतम्॥ ७

पञ्चभ्यस्त्वधिकं वस्तु वेदेऽव्यक्तमितीर्यते।
यस्मिन्नोतं च प्रोतं च सैव श्रीभुवनेश्वरी॥ ८

तामविज्ञाय राजेन्द्र नैव मुक्तो भवेन्नरः।
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः॥ ९

तदा शिवामविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।
अत एव श्रुतौ प्राहुः श्वेताश्वतरशाखिनः॥ १०

ते ध्यानयोगानुगता अपश्य-
न्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्॥ ११

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन जन्मसाफल्यहेतवे।
लज्जया वा भयेनापि भक्त्या वा प्रेमयुक्तया।
सर्वसङ्गं परित्यज्य मनो हृदि निरुध्य च॥ १२

तन्निष्ठस्तत्परो भूयादिति वेदान्तडिण्डिमः।
येन केन मिषेणापि स्वपंस्तिष्ठन्व्रजन्नपि॥ १३

कीर्तयेत्सततं देवीं स वै मुच्येत बन्धनात्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भज राजन् महेश्वरीम्॥ १४

विराड्रूपां सूत्ररूपां तथान्तर्यामिरूपिणीम्।
सोपानक्रमतः पूर्वं ततः शुद्धे तु चेतसि॥ १५

सच्चिदानन्दलक्ष्यार्थरूपां तां ब्रह्मरूपिणीम्।
आराधय परां शक्तिं प्रपञ्चोल्लासवर्जिताम्॥ १६

तस्यां चित्तलयो यः स तस्या आराधनं स्मृतम्।

पंचब्रह्मके आसनपर कोई अन्य देवता स्थित नहीं है अर्थात् इन पंचदेवोंके अतिरिक्त उनका अतिक्रमण करके उनके अधिष्ठाताके रूपमें अपना प्रभाव स्थापित करनेमें कोई अन्य देवता समर्थ नहीं है, अतः ब्रह्मके रूपमें मान्यताप्राप्त उन पंचब्रह्मको भगवतीने अपना आसन बना लिया अर्थात् उन पंचदेवोंकी अधिष्ठात्री शक्तिके रूपमें वे अधिष्ठित हुईं। इन पाँचोंसे परेकी वस्तुको वेदमें 'अव्यक्त' कहा गया है। जिस अव्यक्तमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है, वह श्रीभुवनेश्वरी ही हैं। हे राजेन्द्र! उन भगवतीके स्वरूपको जाने बिना मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता॥ ७-८½ ॥

जब मनुष्य आकाशको चर्मसे आच्छादित कर लेंगे तब शिवाको न जानकर भी दुःखका अन्त होगा अर्थात् जैसे चर्मसे आकाशका ढकना सम्भव नहीं है, वैसे ही शिवातत्त्वके ज्ञानके बिना दुःखका अन्त होना सम्भव नहीं है। अतः श्वेताश्वतरशाखाध्यायी मनीषियोंने श्रुतिमें ऐसा कहा है कि उन महापुरुषोंने अपने गुणोंसे व्यक्त न होनेवाली दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवती जगदम्बाका दर्शन ध्यानयोगद्वारा प्राप्त किया था॥ ९—११ ॥

अतः जन्म सफल करनेके निमित्त सभी आसक्तियोंका परित्याग करके तथा अपने मनको हृदयमें रोककर लज्जा, भय अथवा प्रेममय भक्तिके साथ किसी भी तरहसे सम्यक् प्रयत्न करके उन भगवतीमें पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता रखनी चाहिये—ऐसा वेदान्तका स्पष्ट उद्घोष है। जो मनुष्य जिस किसी भी बहाने सोते, बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, वह [सांसारिक] बन्धनसे निश्चितरूपसे छूट जाता है॥ १२-१३½ ॥

अतः हे राजन्! आप विराट् रूपवाली, सूक्ष्म रूपवाली तथा अन्तर्यामिस्वरूपिणी महेश्वरीकी उपासना कीजिये। इस प्रकार आप पहले सोपान-क्रमसे उपासना करके पुनः अन्तःकरण शुद्ध हो जानेपर सांसारिक प्रपंच तथा उल्लासरहित सच्चिदानन्द, लक्ष्यार्थरूपिणी तथा ब्रह्मरूपिणी उन पराशक्ति भगवतीकी आराधना कीजिये। उन भगवतीमें चित्तको जो लीन कर देना है, वही उनका आराधन कहा गया है॥ १४—१६½ ॥

राजन् राज्ञां पराशक्तिभक्तानां चरितं मया॥ १७

धार्मिकाणां सूर्यसोमवंशजानां मनस्विनाम्।
पावनं कीर्तिदं धर्मबुद्धिदं सद्‌गतिप्रदम्॥ १८

कथितं पुण्यदं पश्चात्किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि।

जनमेजय उवाच

गौरीलक्ष्मीसरस्वत्यो दत्ताः पूर्वं पराम्बया॥ १९

हराय हरये तद्वन्नाभिपद्मोद्भवाय च।
तुषाराद्रेश्च दक्षस्य गौरी कन्येति विश्रुतम्॥ २०

क्षीरोदधेश्च कन्येति महालक्ष्मीरिति स्मृतम्।
मूलदेव्युद्भवानां च कथं कन्यात्वमन्ययोः॥ २१

असम्भाव्यमिदं भाति संशयोऽत्र महामुने।
छिन्धि ज्ञानासिना तं त्वं संशयच्छेदतत्परः॥ २२

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम्।
देवीभक्तस्य ते किञ्चिदवाच्यं न हि विद्यते॥ २३

देवीत्रयं यदा देवत्रयायादात्पराम्बिका।
तदाप्रभृति ते देवाः सृष्टिकार्याणि चक्रिरे॥ २४

कस्मिंश्चित्समये राजन् दैत्या हालाहलाभिधाः।
महापराक्रमा जातास्त्रैलोक्यं तैर्जितं क्षणात्॥ २५

ब्रह्मणो वरदानेन दर्पिता रजताचलम्।
रुरुधुर्निजसेनाभिस्तथा वैकुण्ठमेव च॥ २६

कामारिः कैटभारिश्च युद्धोद्योगं च चक्रतुः।
षष्टिवर्षसहस्राणामभूद्युद्धं महोत्कटम्॥ २७

हाहाकारो महानासीद्देवदानवसेनयोः।
महताथ प्रयत्नेन ताभ्यां ते दानवा हताः॥ २८

हे राजन्! इस प्रकार मैंने सूर्य और चन्द्र-वंशमें उत्पन्न, पराशक्तिके उपासक, धर्मपरायण तथा मनस्वी राजाओंके कीर्ति, धर्म, बुद्धि, उत्तम गति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले पावन चरित्रका वर्णन कर दिया, अब आप दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हैं?॥ १७-१८½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुने! पूर्वमें मणिद्वीप-निवासिनी पराम्बा भगवतीने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको उत्पन्न कर उन्हें क्रमशः शिव, विष्णु तथा पद्मयोनि ब्रह्माको सौंप दिया था। साथ ही यह भी सुना गया है कि गौरी हिमालय तथा दक्षप्रजापतिकी कन्या हैं और महालक्ष्मी क्षीरसमुद्रकी कन्या हैं—ऐसा कहा गया है। मूलप्रकृति भगवतीसे उत्पन्न ये देवियाँ दूसरोंकी कन्याएँ कैसे हुईं? महामुने! यह असम्भव-सी बात प्रतीत होती है, इसमें मुझे सन्देह है। अतः सन्देहोंका छेदन करनेमें पूर्ण तत्पर आप मेरे उस संशयको अपने ज्ञानरूपी खड्‌गसे काट दीजिये॥ १९—२२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। आप-सदृश देवीभक्तके लिये भगवतीका कोई भी रहस्य छिपानेयोग्य नहीं है॥ २३॥

जब पराम्बिकाने तीनों देवियाँ उन तीनों देवताओंको सौंप दीं, उसी समयसे उन देवताओंने सृष्टिके कार्य आरम्भ कर दिये॥ २४॥

हे राजन्! एक समयकी बात है कि हालाहल नामवाले अनेक महापराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए और उन्होंने क्षणभरमें तीनों लोकोंको जीत लिया॥ २५॥

ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानमें चूर उन दैत्योंने अपनी सेनाओंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया॥ २६॥

तब भगवान् शंकर और विष्णु उनके साथ युद्धके लिये तत्पर हो गये और साठ हजार वर्षोंतक उनके बीच अत्यन्त भीषण युद्ध होता रहा। देवता और दानव—दोनों सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब अन्तमें उन दोनोंने बड़े प्रयत्नके साथ उन दैत्योंको मार डाला॥ २७-२८॥

स्वस्वस्थानेषु गत्वा तावभिमानं च चक्रतुः।
स्वशक्त्योर्निकटे राजन् यद्वशादेव ते हताः॥ २९

अभिमानं तयोर्ज्ञात्वा छलहास्यं च चक्रतुः।
महालक्ष्मीश्च गौरी च हास्यं दृष्ट्वा तयोस्तु तौ॥ ३०

देवावतीव संक्रुद्धौ मोहितावादिमायया।
दुरुत्तरं च ददतुरवमानपुरःसरम्॥ ३१

ततस्ते देवते तस्मिन्क्षणे त्यक्त्वा तु तौ पुनः।
अन्तर्हिते चाभवतां हाहाकारस्तदा ह्यभूत्॥ ३२

निस्तेजस्कौ च निःशक्ती विक्षिप्तौ च विचेतनौ।
अवमानात्तयोः शक्त्योर्जातौ हरिहरौ तदा॥ ३३

ब्रह्मा चिन्तातुरो जातः किमेतत्समुपस्थितम्।
प्रधानौ देवतामध्ये कथं कार्याक्षमावमू॥ ३४

अकाण्डे किं निमित्तेन संकटं समुपस्थितम्।
प्रलयो भविता किं वा जगतोऽस्य निरागसः॥ ३५

निमित्तं नैव जानेऽहं कथं कार्या प्रतिक्रिया।
इति चिन्तातुरोऽत्यर्थं दध्यौ मीलितलोचनः॥ ३६

पराशक्तिप्रकोपात्तु जातमेतदिति स्म ह।
जानंस्तदा सावधानः पद्मजोऽभून्नृपोत्तम॥ ३७

ततस्तयोश्च यत्कार्यं स्वयमेवाऽकरोत्तदा।
स्वशक्तेश्च प्रभावेण कियत्कालं तपोनिधिः॥ ३८

ततस्तयोस्तु स्वस्त्यर्थं मन्वादीन्स्वसुतानथ।
आह्वयामास धर्मात्मा सनकादींश्च सत्वरः॥ ३९

उवाच वचनं तेभ्यः सन्नतेभ्यस्तपोनिधिः।
कार्यासक्तोऽहमधुना तपः कर्तुं न च क्षमः॥ ४०

पराशक्तेस्तु तोषार्थं जगद्भारयुतोऽस्म्यहम्।
शिवविष्णू च विक्षिप्तौ पराशक्तिप्रकोपतः॥ ४१

हे राजन्! तत्पश्चात् वे शंकर तथा विष्णु अपने-अपने लोकको जाकर अपनी शक्तियों (गौरी तथा लक्ष्मी)-के समक्ष, जिनके बल-प्रभावसे वे उन दैत्योंको मार सके थे, अपने बलका अभिमान करने लगे॥ २९॥

उन दोनोंका यह अभिमान देखकर महालक्ष्मी तथा गौरी छद्मपूर्ण हास करने लगीं। तब उन दोनों देवियोंकी हँसी देखकर आदिमायाके प्रभावसे विमोहित वे दोनों देवता अत्यन्त कुपित हो उठे और अवहेलनापूर्वक अनुचित उत्तर देने लगे॥ ३०-३१॥

तदनन्तर वे दोनों देवियाँ उसी क्षण उन दोनों (शंकर तथा विष्णु)-से पृथक् होकर अन्तर्धान हो गयीं, इससे हाहाकार मच गया॥ ३२॥

उन दोनों शक्तियोंके अपमानके कारण उस समय विष्णु तथा शंकर निस्तेज, शक्तिहीन, विक्षिप्त तथा चेतनारहित हो गये॥ ३३॥

इसपर ब्रह्माजी चिन्तासे अधीर हो गये और सोचने लगे कि यह क्या हो गया? देवताओंमें प्रधान वे विष्णु तथा शिव अपना-अपना कार्य करनेमें असमर्थ क्यों हो गये? यह संकट अचानक किस कारणसे उपस्थित हो गया? क्या इस निरपराध जगत्का प्रलय हो जायगा? मैं इसका कारण नहीं जान पा रहा हूँ, तो फिर इस स्थितिमें इसका प्रतीकार कैसे किया जाय॥ ३४-३५½॥

इसी महान् चिन्तामें निमग्न ब्रह्माजीने नेत्र बन्द करके ध्यान लगाया और तब उन्होंने जाना कि पराशक्तिके प्रकोपसे ही यह सब घटित हुआ है। हे नृपश्रेष्ठ! यह जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये। इसके अनन्तर विष्णु तथा शंकरका जो कार्य था, उसे तपोनिधि ब्रह्माजी अपनी शक्तिके प्रभावसे कुछ समयतक स्वयं करते रहे॥ ३६—३८॥

तदनन्तर धर्मात्मा ब्रह्माजीने उन विष्णु तथा शंकरके कल्याणार्थ अपने मनु आदि तथा सनक आदि पुत्रोंका शीघ्र आह्वान किया। तपोनिधि ब्रह्माजीने अपने समक्ष सिर झुकाये हुए उन कुमारोंसे कहा—मैं संसारके भारसे युक्त हूँ। अतः कार्यमें अत्यधिक आसक्त रहनेके कारण मैं इस समय पराशक्ति जगदम्बाको

तस्मात्तां परमां शक्तिं यूयं सन्तोषयन्त्वथ।
अत्यद्भुतं तपः कृत्वा भक्त्या परमया युताः॥ ४२

प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ। उन पराशक्तिके प्रकोपके कारण विष्णु तथा शिव विक्षिप्त हो गये हैं, अतः आपलोग परम भक्तिसे युक्त होकर अद्भुत तप करके उन पराशक्ति जगदम्बाको प्रसन्न कीजिये॥ ३९—४२॥

यथा तौ पूर्ववृत्तौ च स्यातां शक्तियुतावपि।
तथा कुरुत मत्पुत्रा यशोवृद्धिर्भवेद्धि वः॥ ४३

कुले यस्य भवेज्जन्म तयोः शक्त्योस्तु तत्कुलम्।
पावयेज्जगतीं सर्वां कृतकृत्यं स्वयं भवेत्॥ ४४

हे मेरे पुत्रो! जिस भी प्रकारसे शिव तथा विष्णु पूर्वकी भाँति हो जायँ और अपनी शक्तियोंसे सम्पन्न हो सकें, आपलोग वैसा प्रयत्न कीजिये; इससे आपलोगोंका यश ही बढ़ेगा। जिस कुलमें उन दोनों शक्तियोंका जन्म होगा, वह कुल सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र कर देगा और स्वयं कृतार्थ हो जायगा॥ ४३-४४॥

व्यास उवाच

पितामहवचः श्रुत्वा गताः सर्वे वनान्तरे।
रिराधयिषवः सर्वे दक्षाद्या विमलान्तराः॥ ४५

व्यासजी बोले—पितामह ब्रह्माकी बात सुनकर विशुद्ध अन्तःकरणवाले उनके दक्ष आदि सभी पुत्र भगवती जगदम्बाकी आराधना करनेकी इच्छासे वनमें चले गये॥ ४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे भगवतीं समाराधयिषूणां देवानां तपःकरणवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा तथा उनके नाम एवं उनका माहात्म्य

व्यास उवाच

ततस्ते तु वनोद्देशे हिमाचलतटाश्रयाः।
मायाबीजजपासक्तास्तपश्चेरुः समाहिताः॥ १

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे वन-प्रदेशमें हिमालयकी तलहटीमें स्थित रहकर समाहितचित्त हो मायाबीज (भुवनेश्वरीमन्त्र)-के जपमें तत्पर रहते हुए घोर तप करने लगे॥ १॥

ध्यायतां परमां शक्तिं लक्षवर्षाण्यभून्नृप।
ततः प्रसन्ना देवी सा प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ॥ २

पाशाङ्कुशवराभीतिचतुर्बाहुस्त्रिलोचना।
करुणारससम्पूर्णा सच्चिदानन्दरूपिणी॥ ३

हे राजन्! एक लाख वर्षपर्यन्त उन पराशक्तिका ध्यान करते रहनेके उपरान्त देवी उनके ऊपर प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय उन्होंने अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा धारण कर रखी थीं, वे तीन नेत्रोंसे युक्त थीं, वे करुणारससे परिपूर्ण थीं और उनका विग्रह सत्, चित् तथा आनन्दसे सम्पन्न था॥ २-३॥

दृष्ट्वा तां सर्वजननीं तुष्टुवुर्मुनयोऽमलाः।
नमस्ते विश्वरूपायै वैश्वानरसुमूर्तये॥ ४

उन सर्वजननीको देखकर विशुद्ध चित्तवाले वे मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे—विश्वरूप तथा वैश्वानररूपवाली आपको नमस्कार है। जिसमें समग्र लिंगदेह ओत-प्रोत होकर व्यवस्थित है, उस सूत्ररूप

नमस्तेजसरूपायै सूत्रात्मवपुषे नमः।
यस्मिन्सर्वे लिङ्गदेहा ओतप्रोता व्यवस्थिताः॥ ५

नमः प्राज्ञस्वरूपायै नमोऽव्याकृतमूर्तये।
नमः प्रत्यक्स्वरूपायै नमस्ते ब्रह्ममूर्तये॥ ६

नमस्ते सर्वरूपायै सर्वलक्ष्यात्ममूर्तये।
इति स्तुत्वा जगद्धात्रीं भक्तिगद्गदया गिरा॥ ७

प्रणेमुश्चरणाम्भोजं दक्षाद्या मुनयोऽमलाः।
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रोवाच पिकभाषिणी॥ ८

वरं ब्रूत महाभागा वरदाहं सदा मता।
तस्यास्तु वचनं श्रुत्वा हरविष्ण्वोस्तनोः शमम्॥ ९

तयोस्तच्छक्तिलाभं च वव्रिरे नृपसत्तम।
दक्षोऽथ पुनरप्याह जन्म देवि कुले मम॥ १०

भवेत्तवाम्ब येनाहं कृतकृत्यो भवे इति।
जपं ध्यानं तथा पूजां स्थानानि विविधानि च॥ ११

वद मे परमेशानि स्वमुखेनैव केवलम्।

देव्युवाच

मच्छक्त्योरवमानाच्च जातावस्था तयोर्द्वयोः॥ १२

नैतादृशः प्रकर्तव्यो मेऽपराधः कदाचन।
अधुना मत्कृपालेशाच्छरीरे स्वस्थता तयोः॥ १३

भविष्यति च ते शक्ती त्वद्गृहे क्षीरसागरे।
जनिष्यतस्तत्र ताभ्यां प्राप्स्यतः प्रेरिते मया॥ १४

मायाबीजं हि मन्त्रो मे मुख्यः प्रियकरः सदा।
ध्यानं विराट्स्वरूपं मेऽथवा त्वत्पुरतः स्थितम्॥ १५

सच्चिदानन्दरूपं वा स्थानं सर्वं जगन्मम।
युष्माभिः सर्वदा चाहं पूज्या ध्येया च सर्वदा॥ १६

विग्रहवाली तथा तेजसम्पन्न रूपवाली आपको बार-बार नमस्कार है। प्राज्ञस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, अव्यक्तस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, प्रत्यक्स्वरूप आपको नमस्कार है और परब्रह्मका स्वरूप धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। समस्त रूपोंवाली आपको नमस्कार है तथा सभी प्राणियोंमें आत्ममूर्तिके रूपमें लक्षित होनेवाली आपको नमस्कार है॥ ४—६½ ॥

इस प्रकार भक्तियुक्त गद्गद वाणीसे उन जगद्धात्रीकी स्तुति करके निर्मल मनवाले दक्ष आदि मुनियोंने भगवतीके चरण-कमलमें प्रणाम किया। तब कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली उन देवीने प्रसन्न होकर कहा—हे महान् भाग्यशाली मुनियो! आपलोग वर माँगिये, मैं सदा वर प्रदान करनेवाली मानी जाती हूँ॥ ७-८½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनकी वाणी सुनकर मुनियोंने यह वरदान माँगा कि शंकर तथा विष्णुका शरीर स्वस्थ हो जाय और उन्हें पुनः वही पूर्व शक्तियाँ प्राप्त हो जायँ॥ ९½ ॥

इसके बाद दक्षने कहा—हे देवि! हे अम्ब! मेरे कुलमें आपका जन्म हो, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। हे परमेश्वरि! आप अपने मुखसे अपने जप, ध्यान, पूजा तथा विविध स्थानोंके विषयमें बतानेकी कृपा कीजिये॥ १०-११½ ॥

देवी बोलीं—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही उन दोनों (विष्णु तथा शिव)-की यह दशा हुई है। उन्हें मेरे प्रति ऐसा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अब मेरी लेशमात्र कृपासे ही उन दोनोंके शरीरमें स्वस्थता आ जायगी। साथ ही गौरी और लक्ष्मी नामक वे दोनों शक्तियाँ आपके घरमें तथा क्षीरसागरमें जन्म लेंगी और मेरेद्वारा प्रेरित किये जानेपर वे शक्तियाँ उन दोनोंको प्राप्त हो जायँगी॥ १२—१४॥

मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला 'मायाबीज' ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा आपके समक्ष उपस्थित इस रूपका अथवा सच्चिदानन्द रूपका ध्यान करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् ही मेरा निवास-स्थान है। आपलोगोंको सर्वदा मेरा पूजन तथा ध्यान करना चाहिये॥ १५-१६॥

व्यास उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी मणिद्वीपाधिवासिनी।
दक्षाद्या मुनयः सर्वे ब्रह्माणं पुनराययुः॥ १७

ब्रह्मणे सर्ववृत्तान्तं कथयामासुरादरात्।
हरो हरिश्च स्वस्थौ तौ स्वस्वकार्यक्षमौ नृप॥ १८

जातौ पराम्बाकृपया गर्वेण रहितौ तदा।
कदाचिदथ काले तु महः शाक्तमवातरत्॥ १९

दक्षगेहे महाराज त्रैलोक्येऽप्युत्सवोऽभवत्।
देवाः प्रमुदिताः सर्वे पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे॥ २०

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे करकोणाहता नृप।
मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनाममलात्मनाम्॥ २१

सरितो मार्गवाहिन्यः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः।
मङ्गलायां तु जातायां जातं सर्वत्र मङ्गलम्॥ २२

तस्या नाम सतीं चक्रे सत्यत्वात्परसंविदः।
ददौ पुनः शिवायाथ तस्य शक्तिस्तु याभवत्॥ २३

सा पुनर्ज्वलने दग्धा दैवयोगान्मनोर्नृप।

जनमेजय उवाच

अनर्थकरमेतत्ते श्रावितं वचनं मुने॥ २४

एतादृशं महद्वस्तु कथं दग्धं हुताशने।
यन्नामस्मरणान्नृणां संसाराग्निभयं न हि॥ २५

केन कर्मविपाकेन मनोर्दग्धं तदेव हि।

व्यास उवाच

शृणु राजन् पुरा वृत्तं सतीदाहस्य कारणम्॥ २६

कदाचिदथ दुर्वासा गतो जाम्बूनदेश्वरीम्।
ददर्श देवीं तत्रासौ मायाबीजं जजाप सः॥ २७

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब दक्ष आदि सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उन्होंने ब्रह्माजीसे आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त कह दिया॥ १७½ ॥

हे राजन्! तब पराम्बाकी कृपासे वे दोनों विष्णु तथा शिव स्वस्थ हो गये, उनमें अपने-अपने कार्य-सम्पादनकी क्षमता आ गयी और वे अभिमानरहित भी हो गये॥ १८½ ॥

हे महाराज! कुछ समय व्यतीत होनेपर दक्षके भवनमें शक्तिसम्पन्न एक महान् तेज प्रकट हुआ। उस समय तीनों लोकोंमें उत्सव मनाया गया। सभी देवतागण प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और वे स्वर्गमें हाथोंसे आघात करके दुन्दुभियाँ बजाने लगे। हे नृप! निर्मल मनवाले साधुपुरुषोंके मन प्रसन्न हो गये, नदियाँ मार्गोंमें जलधारा बहाने लगीं और भगवान् सूर्य मनोहर प्रभासे युक्त हो गये। इस प्रकार मंगलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सभी स्थानोंपर मंगल ही मंगल हो गया॥ १९—२२॥

दक्षने सत्यस्वरूप होने तथा ब्रह्मस्वरूपिणी होनेके कारण उस देवीका नाम 'सती' रखा और उन्हें पुनः शिवको समर्पित कर दिया; क्योंकि वे पूर्वमें भी उन्हीं शिवकी शक्ति थीं। हे राजन्! वे ही सती पुनः दक्षके यज्ञमें दैवयोगसे अग्निमें जलकर भस्म हो गयीं॥ २३½ ॥

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने यह तो बड़ा ही अनर्थकारी प्रसंग सुनाया। इस प्रकारकी महान् विभूति वे सती, जिनके नामके स्मरणमात्रसे मनुष्योंको संसाररूप अग्निका भय नहीं रहता, अग्निमें जलकर भस्म क्यों हो गयीं? दक्षके किस प्रतिकूल कर्मके कारण वे सती भस्म हो गयीं?॥ २४-२५½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सतीके भस्म होनेका कारणसम्बन्धी प्राचीन वृत्तान्त सुनिये। किसी समय ऋषि दुर्वासा [जम्बूनदके तटपर स्थित] भगवती जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये। उन्होंने वहाँ देवीका दर्शन किया और वहींपर वे मायाबीज मन्त्रका जप करने लगे॥ २६-२७॥

ततः प्रसन्ना देवेशी निजकण्ठगतां स्त्रजम्।
भ्रमद्भ्रमरसंसक्तां मकरन्दमदाकुलाम्॥ २८

ददौ प्रसादभूतां तां जग्राह शिरसा मुनिः।
ततो निर्गत्य तरसा व्योममार्गेण तापसः॥ २९

आजगाम स यत्रास्ते दक्षः साक्षात्सतीपिता।
सन्दर्शनार्थमम्बाया ननाम च सतीपदे॥ ३०

पृष्टो दक्षेण स मुनिर्माला कस्यास्त्यलौकिकी।
कथं लब्धा त्वया नाथ दुर्लभा भुवि मानवैः॥ ३१

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य प्रोवाचाश्रुयुतेक्षणः।
देव्याः प्रसादमतुलं प्रेमगद्गदितान्तरः॥ ३२

प्रार्थयामास तां मालां तं मुनिं स सतीपिता।
अदेयं शक्तिभक्ताय नास्ति त्रैलोक्यमण्डले॥ ३३

इति बुद्ध्या तु तां मालां मनवे स समर्पयत्।
गृहीता शिरसा माला मनुना निजमन्दिरे॥ ३४

स्थापिता शयनं यत्र दम्पत्योरतिसुन्दरम्।
पशुकर्मरतो रात्रौ मालागन्धेन मोदितः॥ ३५

अभवत्स महीपालस्तेन पापेन शङ्करे।
शिवे द्वेषमतिर्जातो देव्यां सत्यां तथा नृप॥ ३६

राजंस्तेनापराधेन तज्जन्यो देह एव च।
सत्या योगाग्निना दग्धः सतीधर्मदिदृक्षया॥ ३७

पुनश्च हिमवत्पृष्ठे प्रादुरासीत्तु तन्महः।

जनमेजय उवाच

दह्यमाने सतीदेहे जाते किमकरोच्छिवः॥ ३८

प्राणाधिका सती तस्य तद्वियोगेन कातरः।

व्यास उवाच

ततः परं तु यज्जातं मया वक्तुं न शक्यते॥ ३९
त्रैलोक्यप्रलयो जातः शिवकोपाग्निना नृप।

उससे प्रसन्न होकर देवेश्वरीने दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उसपर मँडराते हुए भ्रमरोंसे सुशोभित अपने गलेमें पड़ी हुई माला मुनिको दे दी और उन्होंने सिर झुकाकर प्रसादरूपमें प्राप्त उस मालाको स्वीकार कर लिया॥ २८½ ॥

तदनन्तर वहाँसे तत्काल निकलकर वे तपस्वी मुनि दुर्वासा जगदम्बाके दर्शनार्थ आकाशमार्गसे वहाँ आ गये, जहाँ साक्षात् सतीके पिता दक्ष विराजमान थे। मुनिने सतीके चरणोंमें नमन किया॥ २९-३०॥

दक्षने उन मुनिसे पूछा—हे नाथ! यह अलौकिक माला किसकी है? पृथ्वीपर मनुष्योंके लिये परम दुर्लभ यह माला आपने कैसे प्राप्त कर ली?॥ ३१॥

उनका यह वचन सुनकर प्रेमसे विह्वलहृदय तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाले मुनि दुर्वासाने कहा—यह भगवतीका अनुपम प्रसाद है॥ ३२॥

तब सतीके पिता दक्षने उन मुनिसे उस मालाके लिये याचना की। 'तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो देवीभक्तको न दी जा सके'—ऐसा विचार करके मुनिने वह माला दक्षको दे दी। दक्षने सिर झुकाकर उस मालाको ग्रहण कर लिया और उसे अपने घरमें, जहाँपर पति-पत्नीकी अत्यन्त सुन्दर शय्या थी, वहीं पर रख दिया। उस मालाकी सुगन्धिसे मत्त होकर राजा दक्ष रातमें पशुकर्म (स्त्री-समागम)-में प्रवृत्त हुए। हे राजन्! उसी पाप-कर्मके प्रभावसे वे कल्याणकारी शंकर तथा देवी सतीके प्रति द्वेषबुद्धिवाले हो गये॥ ३३—३६॥

हे राजन्! उसी अपराधके परिणामस्वरूप सतीने सतीधर्म प्रदर्शित करनेके लिये उन दक्षसे उत्पन्न अपने शरीर को योगाग्निसे भस्म कर दिया। फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रादुर्भूत हुई॥ ३७॥

जनमेजय बोले—[हे मुने!] जिन शिवके लिये सती प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं, उन भगवान् शिवने सतीका शरीर भस्म हो जानेके उपरान्त उनके वियोगसे व्याकुल होकर क्या किया?॥ ३८½ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे कह सकनेमें मैं असमर्थ हूँ। शिवकी कोपाग्निसे तीनों लोकोंमें प्रलयकी स्थिति उत्पन्न हो

वीरभद्रः समुत्पन्नो भद्रकालीगणान्वितः॥ ४०

त्रैलोक्यनाशनोद्युक्तो वीरभद्रो यदाभवत्।
ब्रह्मादयस्तदा देवाः शङ्करं शरणं ययुः॥ ४१

जाते सर्वस्वनाशेऽपि करुणानिधिरीश्वरः।
अभयं दत्तवांस्तेभ्यो बस्तवक्त्रेण तं मनुम्॥ ४२

अजीवयन्महात्मासौ ततः खिन्नो महेश्वरः।
यज्ञवाटमुपागम्य रुरोद भृशदुःखितः॥ ४३

अपश्यत्तां सतीं वह्नौ दह्यमानां तु चित्कलाम्।
स्कन्धेऽप्यारोपयामास हा सतीति वदन्मुहुः॥ ४४

बभ्राम भ्रान्तचित्तः सन्नानादेशेषु शङ्करः।
तदा ब्रह्मादयो देवाश्चिन्तामापुरनुत्तमाम्॥ ४५

विष्णुस्तु त्वरया तत्र धनुरुद्यम्य मार्गणैः।
चिच्छेदावयवान्सत्यास्तत्तत्स्थानेषु तेऽपतन्॥ ४६

तत्तत्स्थानेषु तत्रासीन्नानामूर्तिधरो हरः।
उवाच च ततो देवान्स्थानेष्वेतेषु ये शिवाम्॥ ४७

भजन्ति परया भक्त्या तेषां किञ्चिन्न दुर्लभम्।
नित्यं सन्निहिता यत्र निजाङ्गेषु पराम्बिका॥ ४८

स्थानेष्वेतेषु ये मर्त्याः पुरश्चरणकर्मिणः।
तेषां मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति मायाबीजं विशेषतः॥ ४९

इत्युक्त्वा शङ्करस्तेषु स्थानेषु विरहातुरः।
कालं निन्ये नृपश्रेष्ठ जपध्यानसमाधिभिः॥ ५०

जनमेजय उवाच

कानि स्थानानि तानि स्युः सिद्धपीठानि चानघ।
कति संख्यानि नामानि कानि तेषां च मे वद॥ ५१

तत्र स्थितानां देवीनां नामानि च कृपाकर।
कृतार्थोऽहं भवे येन तद्वदाशु महामुने॥ ५२

गयी। उस समय वीरभद्र प्रकट हुए और जब वे वीरभद्र, भद्रकाली आदि गणोंको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये तत्पर हुए, तब ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरकी शरणमें गये॥ ३९—४१॥

सर्वस्व-नाश हो जानेपर भी करुणानिधि परमेश्वर शिवने उन देवताओंको अभय प्रदान कर दिया और बकरेका सिर जोड़कर उन दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया। तदनन्तर वे महात्मा शिव उदास होकर यज्ञस्थलपर गये और अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ४२-४३॥

उन्होंने वहाँ चिन्मय शरीरवाली सतीको अग्निमें दग्ध होते हुए देखा। तब 'हा सती'—ऐसा बार-बार बोलते हुए शिवने उस शरीरको अपने कन्धेपर रख लिया और भ्रमितचित्त होकर वे देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ ४४½॥

इससे ब्रह्मा आदि देवता अत्यन्त चिन्तित हो उठे। विष्णुने शीघ्रतापूर्वक धनुष उठाकर बाणोंसे सतीके अंगोंको काट डाला। वे अंग जिन-जिन स्थानोंपर गिरे, उन-उन स्थानोंपर भगवान् शंकर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गये॥ ४५-४६½॥

तत्पश्चात् शिवने देवताओंसे कहा कि जो लोग इन स्थानोंपर महान् श्रद्धाके साथ भगवती शिवाकी आराधना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि उन स्थानोंपर साक्षात् भगवती पराम्बा अपने अंगोंमें सदा निहित हैं। जो मनुष्य इन स्थानोंपर पुरश्चरण करेंगे; उनके मन्त्र, विशेषरूपसे मायाबीज मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जायँगे॥ ४७—४९॥

हे नृपश्रेष्ठ! ऐसा कहकर सतीके विरहसे अधीर भगवान् शिव उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत करने लगे॥ ५०॥

जनमेजय बोले—हे अनघ! वे कौनसे स्थान हैं, जो सिद्धपीठ हुए; वे संख्यामें कितने हैं, उनके क्या नाम हैं? मुझे बताइये। हे कृपाकर! हे महामुने! उन स्थानोंपर विराजमान देवियोंके नाम भी शीघ्र बतला दीजिये, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ॥ ५१-५२॥

व्यास उवाच

श्रृणु राजन्प्रवक्ष्यामि देवीपीठानि साम्प्रतम्।
येषां श्रवणमात्रेण पापहीनो भवेन्नरः॥ ५३

येषु येषु च पीठेषूपास्येयं सिद्धिकाङ्क्षिभिः।
भूतिकामैरभिध्येया तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ ५४

वाराणस्यां विशालाक्षी गौरीमुखनिवासिनी।
क्षेत्रे वै नैमिषारण्ये प्रोक्ता सा लिङ्गधारिणी॥ ५५

प्रयागे ललिता प्रोक्ता कामुकी गन्धमादने।
मानसे कुमुदा प्रोक्ता दक्षिणे चोत्तरे तथा॥ ५६

विश्वकामा भगवती विश्वकामप्रपूरणी।
गोमन्ते गोमती देवी मन्दरे कामचारिणी॥ ५७

मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे।
गौरी प्रोक्ता कान्यकुब्जे रम्भा तु मलयाचले॥ ५८

एकाम्रपीठे सम्प्रोक्ता देवी सा कीर्तिमत्यपि।
विश्वे विश्वेश्वरीं प्राहुः पुरुहूतां च पुष्करे॥ ५९

केदारपीठे सम्प्रोक्ता देवी सन्मार्गदायिनी।
मन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥ ६०

स्थानेश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका।
श्रीशैले माधवी प्रोक्ता भद्रा भद्रेश्वरे तथा॥ ६१

वराहशैले तु जया कमला कमलालये।
रुद्राणी रुद्रकोट्यां तु काली कालञ्जरे तथा॥ ६२

शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया।
महालिङ्गे तु कपिला माकोटे मुकुटेश्वरी॥ ६३

मायापुर्यां कुमारी स्यात्सन्ताने ललिताम्बिका।
गयायां मङ्गला प्रोक्ता विमला पुरुषोत्तमे॥ ६४

उत्पलाक्षी सहस्राक्षे हिरण्याक्षे महोत्पला।
विपाशायाममोघाक्षी पाडला पुण्ड्रवर्धने॥ ६५

नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे रुद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला देवी कल्याणी मलयाचले॥ ६६

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीपीठोंका वर्णन कर रहा हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। सिद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले तथा ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले पुरुषोंके द्वारा जिन-जिन स्थानोंपर इन देवीकी उपासना तथा इनका ध्यान किया जाना चाहिये, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बता रहा हूँ॥ ५३-५४॥

वाराणसीमें गौरीके मुखमें निवास करनेवाली देवी विशालाक्षी प्रतिष्ठित हैं और नैमिषारण्यक्षेत्रमें वे लिंगधारिणी नामसे कही गयी हैं॥ ५५॥

उन्हें प्रयागमें 'ललिता' तथा गन्धमादनपर्वतपर 'कामुकी' नामसे कहा गया है। वे दक्षिण मानसरोवरमें 'कुमुदा' तथा उत्तर मानसरोवरमें सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली भगवती 'विश्वकामा' कही गयी हैं। उन्हें गोमन्तपर देवी 'गोमती', मन्दराचलपर 'कामचारिणी', चैत्ररथमें 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचलपर 'रम्भा' कहा गया है॥ ५६—५८॥

वे भगवती एकाम्रपीठपर 'कीर्तिमती' नामवाली कही गयी हैं। लोग उन्हें विश्वपीठपर 'विश्वेश्वरी' और पुष्करमें 'पुरुहूता' नामवाली कहते हैं॥ ५९॥

वे देवी केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवत्पृष्ठपर 'मन्दा', गोकर्णमें 'भद्रकर्णिका', स्थानेश्वरमें 'भवानी', बिल्वकमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलमें 'माधवी' तथा भद्रेश्वरमें 'भद्रा' कही गयी हैं॥ ६०-६१॥

उन्हें वराहपर्वतपर 'जया', कमलालयमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी', कालंजरमें 'काली', शालग्राममें 'महादेवी', शिवलिंगमें 'जलप्रिया', महालिङ्गमें 'कपिला' और माकोटमें 'मुकुटेश्वरी' कहा गया है॥ ६२-६३॥

वे भगवती मायापुरीमें 'कुमारी', सन्तानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मंगला' और पुरुषोत्तमक्षेत्रमें 'विमला' कही गयी हैं। वे सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विपाशामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रवर्धनमें 'पाडला', सुपार्श्वमें 'नारायणी', त्रिकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर देवी 'कल्याणी', सह्याद्रिपर्वतपर 'एकवीरा', हरिश्चन्द्रमें

सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥ ६७
कोटवी कोटतीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
गोदावर्यां त्रिसन्ध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥ ६८
शिवकुण्डे शुभानन्दा नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥ ६९
देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी॥ ७०
करवीरे महालक्ष्मीरुमा देवी विनायके।
आरोग्या वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥ ७१
अभयेत्युष्णतीर्थेषु नितम्बा विन्ध्यपर्वते।
माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरीपुरे॥ ७२
छगलण्डे प्रचण्डा तु चण्डिकामरकण्टके।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥ ७३
देवमाता सरस्वत्यां पारावारा तटे स्मृता।
महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी॥ ७४
सिंहिका कृतशौचे तु कार्तिके त्वतिशाङ्करी।
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसङ्गमे॥ ७५
माता सिद्धवने लक्ष्मीरनङ्गा भरताश्रमे।
जालन्धरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते॥ ७६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले।
भीमा देवी हिमाद्रौ तु तुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा॥ ७७
कपालमोचने शुद्धिर्माता कामावरोहणे।
शङ्खोद्धारे धारा नाम धृतिः पिण्डारके तथा॥ ७८
कला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवधारिणी।
वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा॥ ७९
औषधिश्चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका।
मन्मथा हेमकूटे तु कुमुदे सत्यवादिनी॥ ८०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसन्निधौ॥ ८१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती।
सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता॥ ८२
अरुन्धती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम्॥ ८३

'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनामें 'मृगावती', कोटतीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसन्ध्या', गंगाद्वारमें 'रतिप्रिया', शिवकुण्डमें 'शुभानन्दा', देविकातटपर 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा', मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचलपर 'विन्ध्यवासिनी', करवीरक्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथधाममें 'आरोग्या', महाकालमें 'महेश्वरी', उष्णतीर्थोंमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर 'नितम्बा', माण्डव्यक्षेत्रमें 'माण्डवी' तथा माहेश्वरीपुरमें 'स्वाहा' नामसे प्रतिष्ठित हैं॥ ६४—७२॥

वे देवी छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चण्डिका', सोमेश्वरमें 'वरारोहा', प्रभासक्षेत्रमें 'पुष्करावती', सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता', समुद्रतटपर 'पारावारा', महालयमें 'महाभागा' और पयोष्णीमें 'पिंगलेश्वरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ७३-७४॥

वे कृतशौचक्षेत्रमें 'सिंहिका', कार्तिकक्षेत्रमें 'अतिशांकरी', उत्पलावर्तकमें 'लोला', सोनभद्रनदके संगमपर 'सुभद्रा', सिद्धवनमें माता 'लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनंगा', जालन्धरपर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धापर्वतपर 'तारा', देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीरमण्डलमें 'मेधा', हिमाद्रिपर देवी 'भीमा', विश्वेश्वरक्षेत्रमें 'तुष्टि', कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कामावरोहणतीर्थमें 'माता', शंखोद्धारतीर्थमें 'धारा' और पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे विख्यात हैं॥ ७५—७८॥

चन्द्रभागानदीके तटपर 'कला', अच्छोदक्षेत्रमें 'शिवधारिणी', वेणानदीके किनारे 'अमृता', बदरीवनमें 'उर्वशी', उत्तरकुरुप्रदेशमें 'औषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूटपर्वतपर 'मन्मथा', कुमुदवनमें 'सत्यवादिनी', अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालयक्षेत्रमें 'निधि', वेदवदनतीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके सांनिध्यमें 'पार्वती', देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्माके मुखोंमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा' तथा मातृकाओंमें 'वैष्णवी' नामसे कही गयी हैं। सतियोंमें 'अरुन्धती', अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' और सभी शरीरधारियोंके चित्तमें 'ब्रह्मकला' नामसे वे शक्ति प्रसिद्ध हैं॥ ७९—८३॥

इमान्यष्ट शतानि स्युः पीठानि जनमेजय।
तत्संख्याकास्तदीशान्यो देव्यश्च परिकीर्तिताः॥ ८४

सतीदेव्यङ्गभूतानि पीठानि कथितानि च।
अन्यान्यपि प्रसङ्गेन यानि मुख्यानि भूतले॥ ८५

यः स्मरेच्छृणुयाद्वापि नामाष्टशतमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीलोकं परं व्रजेत्॥ ८६

एतेषु सर्वपीठेषु गच्छेद्यात्राविधानतः।
सन्तर्पयेच्च पित्रादीञ्छ्राद्धादीनि विधाय च॥ ८७

कुर्याच्च महतीं पूजां भगवत्या विधानतः।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः॥ ८८

कृतकृत्यं स्वमात्मानं जानीयाज्जनमेजय।
भक्ष्यभोज्यादिभिः सर्वान्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः॥ ८९

सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकादींस्तथा नृप।
तस्मिन्क्षेत्रे स्थिता ये तु चाण्डालाद्या अपि प्रभो॥ ९०

देवीरूपाः स्मृताः सर्वे पूजनीयास्ततो हि ते।
प्रतिग्रहादिकं सर्वं तेषु क्षेत्रेषु वर्जयेत्॥ ९१

यथाशक्ति पुरश्चर्यां कुर्यान्मन्त्रस्य सत्तमः।
मायाबीजेन देवेशीं तत्तत्पीठाधिवासिनीम्॥ ९२

पूजयेदनिशं राजन् पुरश्चरणकृद्भवेत्।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत देवीभक्तिपरो नरः॥ ९३

य एवं कुरुते यात्रां श्रीदेव्याः प्रीतमानसः।
सहस्रकल्पपर्यन्तं ब्रह्मलोके महत्तरे॥ ९४

वसन्ति पितरस्तस्य सोऽपि देवीपुरे तथा।
अन्ते लब्ध्वा परं ज्ञानं भवेन्मुक्तो भवाम्बुधेः॥ ९५

हे जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ हैं और उन स्थानोंपर उतनी ही परमेश्वरी देवियाँ कही गयी हैं। भगवती सतीके अंगोंसे सम्बन्धित पीठोंको मैंने बतला दिया; साथ ही इस पृथ्वीतलपर और भी अन्य जो प्रमुख स्थान हैं, प्रसंगवश उनका भी वर्णन कर दिया॥ ८४-८५॥

जो मनुष्य इन एक सौ आठ उत्तम नामोंका स्मरण अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परम धाममें पहुँच जाता है॥ ८६॥

विधानके अनुसार इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ श्राद्ध आदि सम्पन्न करके पितरोंको सन्तृप्त करना चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक भगवतीकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये और फिर जगद्धात्री जगदम्बासे [अपने अपराधके लिये] बार-बार क्षमा-याचना करनी चाहिये। हे जनमेजय! ऐसा करके अपने आपको कृतकृत्य समझना चाहिये। हे राजन्! तदनन्तर भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थ सभी ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा बटुओं आदिको खिलाने चाहिये॥ ८७-८९½॥

हे प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल आदि हैं, वे भी देवीरूप कहे गये हैं। अतः उन सबकी भी पूजा करनी चाहिये। उन सिद्धपीठक्षेत्रोंमें सभी प्रकारके दानग्रहण आदिका निषेध करना चाहिये। श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि वह उन क्षेत्रोंमें यथाशक्ति मन्त्रका पुरश्चरण करे और मायाबीज मन्त्रसे उन-उन क्षेत्रोंकी अधिष्ठात्री देवेश्वरीकी निरन्तर उपासना करे। हे राजन्! इस प्रकार साधकको पुरश्चरणकर्ममें तत्पर रहना चाहिये। देवीकी भक्तिमें परायण पुरुषको चाहिये कि वह अनुष्ठान करते समय द्रव्यके व्ययमें कृपणता न करे॥ ९०—९३॥

जो मनुष्य इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्न मनसे यात्रा करता है, उसके पितर हजार कल्पोंतक महत्तर ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं और अन्तमें वह भी परम ज्ञान प्राप्त करके संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है तथा देवीलोकमें निवास करता है॥ ९४-९५॥

नामाष्टशतजापेन बहवः सिद्धतां गताः।
यत्रैतल्लिखितं साक्षात्पुस्तके वापि तिष्ठति॥ ९६

ग्रहमारीभयादीनि तत्र नैव भवन्ति हि।
सौभाग्यं वर्धते नित्यं यथा पर्वणि वारिधिः॥ ९७

न तस्य दुर्लभं किञ्चिन्नामाष्टशतजापिनः।
कृतकृत्यो भवेन्नूनं देवीभक्तिपरायणः॥ ९८

नमन्ति देवतास्तं वै देवीरूपो हि स स्मृतः।
सर्वथा पूज्यते देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः॥ ९९

श्राद्धकाले पठेदेतन्नामाष्टशतमुत्तमम्।
तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्॥ १००

इमानि मुक्तिक्षेत्राणि साक्षात्संविन्मयानि च।
सिद्धपीठानि राजेन्द्र संश्रयेन्मतिमान्नरः॥ १०१

पृष्टं यत्तत्त्वया राजन्नुक्तं सर्वं महेशितुः।
रहस्यातिरहस्यं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०२

इन एक सौ आठ नामोंके जपसे अनेक लोग सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। जहाँपर यह अष्टोत्तरशतनाम स्वयं लिखा हुआ अथवा पुस्तकमें अंकित रूपमें स्थित रहता है, उस स्थानपर ग्रहों तथा महामारी आदिके उपद्रवका भय नहीं रहता और पर्वपर जैसे समुद्र बढ़ता है, वैसे ही वहाँ सौभाग्यकी नित्य वृद्धि होती है॥ ९६-९७॥

इन एक सौ आठ नामोंका जप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता; ऐसा वह देवीभक्तिपरायण निश्चय ही कृतकृत्य हो जाता है। देवता भी उसे नमस्कार करते हैं; क्योंकि उसे देवीका ही रूप कहा गया है। देवतागण सब तरहसे उसकी पूजा करते हैं, तो फिर श्रेष्ठ मनुष्योंकी बात ही क्या!॥ ९८-९९॥

जो व्यक्ति अपने पितरोंके श्राद्धके समय इस उत्तम अष्टोत्तरशतनामका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं॥ १००॥

हे राजेन्द्र! ये सिद्धपीठ प्रत्यक्षज्ञानस्वरूप तथा मुक्तिक्षेत्र हैं, अतः बुद्धिमान् मनुष्यको इनका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १०१॥

हे राजन्! आपने भगवती महेश्वरीके अत्यन्त निगूढ रहस्यके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
देवीपीठवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भगवतीका हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देना

जनमेजय उवाच

धराधराधीशमौलावाविरासीत्परं महः।
यदुक्तं भवता पूर्वं विस्तरात्तद्वदस्व मे॥ १

को विरज्येत मतिमान् पिबञ्छक्तिकथामृतम्।
सुधां तु पिबतां मृत्युः स नैतच्छृण्वतो भवेत्॥ २

जनमेजय बोले—[हे मुने!] हिमालयके शिखरपर आविर्भूत जिस परम ज्योतिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं, उसे मुझे विस्तारसे बताइये॥ १॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो भगवतीके कथामृतका पान करता हुआ उससे विरत हो जाय; क्योंकि अमृत पीनेवालोंकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथामृतका पान करनेवालेकी मृत्यु नहीं हो सकती॥ २॥

व्यास उवाच

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि शिक्षितोऽसि महात्मभिः।
भाग्यवानसि यद्देव्यां निर्व्याजा भक्तिरस्ति ते॥ ३

शृणु राजन् पुरा वृत्तं सतीदेहेऽग्निभर्जिते।
भ्रान्तः शिवस्तु बभ्राम क्वचिद्देशे स्थिरोऽभवत्॥ ४

प्रपञ्चभानरहितः समाधिगतमानसः।
ध्यायन्देवीस्वरूपं तु कालं निन्ये स आत्मवान्॥ ५

सौभाग्यरहितं जातं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
शक्तिहीनं जगत्सर्वं साब्धिद्वीपं सपर्वतम्॥ ६

आनन्दः शुष्कतां यातः सर्वेषां हृदयान्तरे।
उदासीनाः सर्वलोकाश्चिन्ताजर्जरचेतसः॥ ७

सदा दुःखोदधौ मग्ना रोगग्रस्तास्तदाभवन्।
ग्रहाणां देवतानां च वैपरीत्येन वर्तनम्॥ ८

अधिभूताधिदैवानां सत्यभावान्नृपाभवन्।
अथास्मिन्नेव काले तु तारकाख्यो महासुरः॥ ९

ब्रह्मदत्तवरो दैत्योऽभवत्त्रैलोक्यनायकः।
शिवौरसस्तु यः पुत्रः स ते हन्ता भविष्यति॥ १०

इति कल्पितमृत्युः स देवदेवैर्महासुरः।
शिवौरससुताभावाज्जगर्ज च ननन्द च॥ ११

तेन चोपद्रुताः सर्वे स्वस्थानात्प्रच्युताः सुराः।
शिवौरससुताभावाच्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ १२

नाङ्गना शङ्करस्यास्ति कथं तत्सुतसम्भवः।
अस्माकं भाग्यहीनानां कथं कार्यं भविष्यति॥ १३

व्यासजी बोले—आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, भाग्यवान् हैं और महात्माओंद्वारा शिक्षित किये गये हैं; इसीसे भगवतीके प्रति आपकी निश्छल भक्ति है॥ ३॥

हे राजन्! एक प्राचीन कथा सुनिये। अग्निमें सतीदेहके दग्ध हो जानेपर भगवान् शिव व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और अन्तमें किसी स्थानपर ठहर गये। इसके बाद उन आत्मनिष्ठ शिवने प्रपंचज्ञानसे शून्य होकर मनको समाधिस्थ करके भगवतीके स्वरूपका ध्यान करते हुए कुछ समय वहींपर व्यतीत किया॥ ४-५॥

स्थावर-जंगममय तीनों लोक सौभाग्यसे रहित हो गये। समुद्रों, द्वीपों और पर्वतोंसहित सम्पूर्ण जगत् शक्तिहीन हो गया। सभी प्राणियोंके हृदयमें प्रवहमान आनन्द सूख गया और सभी लोग चिन्तासे पीड़ित मनवाले तथा खिन्नमनस्क हो गये। सभी दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये और रोगग्रस्त हो गये। हे राजन्! सतीके अभावसे उस समय ग्रहों, देवताओं, अधिभूत तथा अधिदैवत—इन सबका व्यवहार विपरीत हो गया और समस्त प्राणी अपनी मर्यादासे विचलित हो गये॥ ६—८$\frac{१}{२}$ ॥

उसी समय तारक नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ। वह दैत्य ब्रह्माजीसे वरदान पाकर तीनों लोकोंका शासक हो गया। भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, वही तुम्हारा संहारक होगा—देवाधिदेव ब्रह्माद्वारा इस प्रकारकी कल्पित मृत्युका वर पाकर वह महासुर तारक शंकरजीके औरस पुत्रके अभावके कारण [निर्भीक होकर] गर्जन तथा निनाद करने लगा॥ ९—११॥

इससे सभी देवता अपना-अपना स्थान छोड़कर भाग गये। शिवका कोई औरस पुत्र न होनेके कारण देवताओंको महान् चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि शंकरजीकी भार्या तो है नहीं, तो पुत्रोत्पत्ति कैसे होगी? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा?॥ १२-१३॥

इति चिन्तातुराः सर्वे जग्मुर्वैकुण्ठमण्डले।
शशंसुर्हरिमेकान्ते स चोपायं जगाद ह॥ १४

कुतश्चिन्तातुराः सर्वे कामकल्पद्रुमा शिवा।
जागर्ति भुवनेशानी मणिद्वीपाधिवासिनी॥ १५

अस्माकमनया देव तदुपेक्षास्ति नान्यथा।
शिक्षैवेयं जगन्मात्रा कृतास्मच्छिक्षणाय च॥ १६

लालने ताडने मातुर्नाकारुण्यं यथार्भके।
तद्वदेव जगन्मातुर्नियन्त्र्या गुणदोषयोः॥ १७

अपराधो भवत्येव तनयस्य पदे पदे।
कोऽपरः सहते लोके केवलं मातरं विना॥ १८

तस्माद्यूयं पराम्बां तां शरणं यात मा चिरम्।
निर्व्याजया चित्तवृत्त्या सा वः कार्यं विधास्यति॥ १९

इत्यादिश्य सुरान्सर्वान्महाविष्णुः स्वजायया।
संयुतो निर्जगामाशु देवैः सह सुराधिपः॥ २०

आजगाम महाशैलं हिमवन्तं नगाधिपम्।
अभवंश्च सुराः सर्वे पुरश्चरणकर्मिणः॥ २१

अम्बायज्ञविधानज्ञा अम्बायज्ञं च चक्रिरे।
तृतीयादिव्रतान्याशु चक्रुः सर्वे सुरा नृप॥ २२

केचित्समाधिनिष्णाताः केचिन्नामपरायणाः।
केचित्सूक्तपराः केचिन्नामपारायणोत्सुकाः॥ २३

मन्त्रपारायणपराः केचित्कृच्छ्रादिकारिणः।
अन्तर्यागपराः केचित्केचिन्न्यासपरायणाः॥ २४

हृल्लेखया पराशक्तेः पूजां चक्रुरतन्द्रिताः।
इत्येवं बहुवर्षाणि कालोऽगाज्जनमेजय॥ २५

इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल सभी देवता वैकुण्ठलोक गये और उन्होंने एकान्तमें भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताया। इसपर उन्होंने उपाय बताते हुए कहा—आप सब चिन्तासे व्यग्र क्यों हो रहे हैं? वे भगवती शिवा कामनाएँ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान हैं। मणिद्वीपमें विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरी सदा जागती रहती हैं॥ १४-१५॥

हमलोगोंके दोषके कारण ही हमारे प्रति उनकी उपेक्षा है, कोई अन्य कारण नहीं है। हमें सीख प्रदान करनेके लिये ही जगदम्बाने हमें यह शिक्षा प्रदान की है॥ १६॥

जिस प्रकार प्यार करने अथवा डाँटने-फटकारने—किसी भी स्थितिमें माता बालकके प्रति निर्दयताका व्यवहार नहीं करती, वैसे ही गुण-दोषपर नियन्त्रण करनेवाली जगदम्बाके विषयमें भी जानना चाहिये॥ १७॥

पुत्रसे तो पग-पगपर अपराध होता है, माताको छोड़कर जगत्‌में दूसरा कौन उसे सह सकता है। अतः आपलोग निष्कपट चित्तवृत्तिके साथ उन भगवती पराम्बाकी शरणमें अविलम्ब जाइये। वे आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगी॥ १८-१९॥

सभी देवताओंको यह उपदेश देकर देवेश्वर महाविष्णु अपनी भार्या लक्ष्मी तथा देवताओंके साथ शीघ्र चल पड़े और महाद्रि गिरिराज हिमालयपर आ गये। वहाँ सभी देवता पुरश्चरण कर्ममें संलग्न हो गये। हे राजन्! अम्बायज्ञकी विधि जाननेवाले देवतागण अम्बायज्ञ करने लगे। सभी देवता शीघ्रतापूर्वक तृतीया आदि व्रत सम्पादित करनेमें लग गये॥ २०—२२॥

कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये, कुछ लोग भगवतीके नामजपमें लीन हो गये, कुछ लोग सूक्तपाठ करने लगे और कुछ लोग नामोंका पारायण करनेमें निष्णात हो गये। इसी प्रकार कुछ देवता मन्त्रपारायणमें तत्पर हो गये, कुछ कृच्छ्रव्रत करने लगे, कुछ अन्तर्याग करनेमें संलग्न हो गये और कुछ देवता न्यास आदिमें तत्पर हो गये। कुछ देवता सावधान होकर हृल्लेखाबीज-मन्त्रसे पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करने लगे। हे जनमेजय! इस प्रकार बहुत वर्षोंतक भगवतीकी आराधना करते हुए समय व्यतीत हुआ॥ २३—२५॥

अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां च भृगोर्दिने।
प्रादुर्बभूव पुरतस्तन्महः श्रुतिबोधितम्॥ २६

चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुतम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥ २७

विद्युत्कोटिसमानाभमरुणं तत्परं महः।
नैव चोर्ध्वं न तिर्यक्च न मध्ये परिजग्रभत्॥ २८

आद्यन्तरहितं तत्तु न हस्ताद्यङ्गसंयुतम्।
न च स्त्रीरूपमथवा न पुंरूपमथोभयम्॥ २९

दीप्त्या पिधानं नेत्राणां तेषामासीन्महीपते।
पुनश्च धैर्यमालम्ब्य यावत्ते ददृशुः सुराः॥ ३०

तावत्तदेव स्त्रीरूपेणाभाद्दिव्यं मनोहरम्।
अतीव रमणीयाङ्गीं कुमारीं नवयौवनाम्॥ ३१

उद्यत्पीनकुचद्वन्द्वनिन्दिताम्भोजकुड्मलाम्।
रणत्किङ्किणिकाजालसिञ्जन्मञ्जीरमेखलाम्॥ ३२

कनकाङ्गदकेयूरग्रैवेयकविभूषिताम्।
अनर्घ्यमणिसम्भिन्नगलबन्धविराजिताम्॥ ३३

तनुकेतकसंराजन्नीलभ्रमरकुन्तलाम्।
नितम्बबिम्बसुभगां रोमराजिविराजिताम्॥ ३४

कर्पूरशकलोन्मिश्रताम्बूलपूरिताननाम्।
कनत्कनकताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजाम्॥ ३५

अष्टमीचन्द्रविम्बाभललाटामायतभ्रुवम्।
रक्तारविन्दनयनामुन्नसां मधुराधराम्॥ ३६

तदनन्तर चैत्रमासकी शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें शुक्रवारको श्रुतियोंद्वारा प्रतिपादित एक महान् ज्योति अकस्मात् सबके समक्ष प्रकट हुई। चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति कर रहे थे, वह ज्योति करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान आलोकित थी, उसमें करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतलता विद्यमान थी, वह करोड़ों बिजलियोंके समान अरुण आभासे युक्त थी, वह परम ज्योति न ऊँची, न तिरछी, न मध्यमें अपितु सभी ओर व्याप्त थी। आदि और अन्तसे हीन वह तेज हाथ आदि अंगोंसे युक्त नहीं था। वह तेज न स्त्रीरूप, न पुरुषरूप अथवा न उभयरूपमें ही था॥ २६—२९॥

हे राजन्! उस ज्योतिकी दीप्तिसे उन देवताओंकी आँखें बन्द हो गयीं। इसके बाद धैर्य धारणकर जब देवताओंने देखा तब वह दिव्य तथा मनोहर आभा उन्हें नव-यौवनसे सम्पन्न अति सुन्दर अंगोंवाली तथा कुमारी अवस्थावाली स्त्रीके रूपमें दृष्टिगोचर हुई॥ ३०-३१॥

उनके उन्नत तथा विशाल दोनों वक्ष:स्थल पूर्ण विकसित कमलको भी तिरस्कृत कर रहे थे। वे बजती हुई किंकिणी तथा मधुर ध्वनि करती हुई नूपुर एवं करधनी धारण किये हुए थीं। वे सुवर्णके बाजूबन्द, मुकुट तथा कण्ठहारसे सुशोभित थीं। वे बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ हार गलेमें धारण किये हुए थीं। केतकीके नूतन पत्तोंके समान उनके कपोलोंपर काले भ्रमरसदृश केश लटक रहे थे। उनका नितम्बस्थल अत्यन्त मनोहर था। वे सुन्दर रोमावलियोंसे अत्यन्त शोभा पा रही थीं। उनका मुख कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त ताम्बूलसे परिपूर्ण था। उनके कमलसदृश मुखपर सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि हो रही थी। उनका ललाट अष्टमीके चन्द्रमण्डलकी आभाके समान सुशोभित हो रहा था और उसपर उनकी फैली हुई विशाल भौंहें महान् शोभा पा रही थीं। उनके नेत्र लाल कमलके समान थे, नासिका उन्नत थी तथा ओष्ठ मधुर थे॥ ३२—३६॥

कुन्दकुड्मलदन्ताग्रां मुक्ताहारविराजिताम्।
रत्नसम्भिन्नमुकुटां चन्द्ररेखावतंसिनीम्॥ ३७

मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम् ।
काश्मीरबिन्दुनिटिलां नेत्रत्रयविलासिनीम्॥ ३८

पाशाङ्कुशवराभीतिचतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
रक्तवस्त्रपरीधानां दाडिमीकुसुमप्रभाम्॥ ३९

सर्वशृङ्गारवेषाढ्यां सर्वदेवनमस्कृताम्।
सर्वाशापूरिकां सर्वमातरं सर्वमोहिनीम्॥ ४०

प्रसादसुमुखीमम्बां मन्दस्मितमुखाम्बुजाम्।
अव्याजकरुणामूर्तिं ददृशुः पुरतः सुराः॥ ४१

दृष्ट्वा तां करुणामूर्तिं प्रणेमुः सादरं सुराः।
वक्तुं नाशक्नुवन् किञ्चिद्बाष्पसंरुद्धनिःस्वनाः॥ ४२

कथञ्चित्स्थैर्यमालम्ब्य भक्त्या चानतकन्धराः।
प्रेमाश्रुपूर्णनयनास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ ४३

देवा ऊचुः

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ४४

तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं
वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणमहं प्रपद्ये
सुतरसि तरसे नमः॥ ४५

देवीं वाचमजनयन्त देवा-
स्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना
धेनुर्वागस्मानुपसुष्टुतैतु ॥ ४६

वे भगवती कुन्दकी पूर्ण विकसित कलियोंके समान सुन्दर दाँतोंसे सुशोभित थीं। वे मोतियोंकी माला धारण किये हुए थीं। वे रत्नजटित मुकुट पहने हुई थीं। वे चन्द्ररेखारूपी शिरोभूषणसे सुशोभित हो रही थीं; उनके केशकी वेणीमें मल्लिका और मालती पुष्पोंकी माला विद्यमान थी। केसरकी बिन्दीसे उनका ललाट सुशोभित था। वे तीन नेत्रोंसे शोभा पा रही थीं। तीन नेत्रोंवाली वे अपनी चारों भुजाओंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्राएँ धारण किये हुए थीं। वे लाल रंगका वस्त्र पहने हुए थीं। उनके शरीरकी प्रभा दाडिमके पुष्पके समान थी। वे शृंगारके सभी वेषोंसे अलंकृत थीं और समस्त देवताओंसे नमस्कृत हो रही थीं। इस प्रकार देवताओंने सभी प्राणियोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाली, सभीकी जननी, सबको मोहित करनेवाली, प्रसन्नतायुक्त सुन्दर मुखमण्डलवाली, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखकमलवाली और विशुद्ध करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा माता जगदम्बाको अपने सामने देखा॥ ३७—४१ ॥

उन करुणामूर्ति भगवतीको देखकर देवताओंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। आनन्दाश्रुसे रुँधे हुए कण्ठवाले सभी देवता कुछ भी नहीं बोल सके॥ ४२ ॥

किसी प्रकार धैर्य धारणकर प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले वे देवगण शीश झुकाकर भक्तिपूर्वक जगदम्बिकाकी स्तुति करने लगे॥ ४३ ॥

देवताओंने कहा—देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको निरन्तर नमस्कार है, प्रकृति एवं भद्राको नमस्कार है; हमलोग नियमपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हैं ॥ ४४ ॥

उन अग्निसदृश वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमयी, कर्मफलोंकी प्राप्तिहेतु सेवन की जानेवाली भगवती दुर्गाकी शरण हम ग्रहण करते हैं। पार करनेयोग्य संसार-सागरसे तरनेके लिये उन भगवतीको नमस्कार है॥ ४५ ॥

विश्वरूप देवताओंने जिस वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनुतुल्य, आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें॥ ४६ ॥

कालरात्रिं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥ ४७

महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ ४८

नमो विराट्स्वरूपिण्यै नमः सूत्रात्ममूर्तये।
नमोऽव्याकृतरूपिण्यै नमः श्रीब्रह्ममूर्तये॥ ४९

यदज्ञानाज्जगद्भाति रज्जुसर्पस्रगादिवत्।
यज्ज्ञानाल्लयमाप्नोति नुमस्तां भुवनेश्वरीम्॥ ५०

नुमस्तत्पदलक्ष्यार्थां चिदेकरसरूपिणीम्।
अखण्डानन्दरूपां तां वेदतात्पर्यभूमिकाम्॥ ५१

पञ्चकोशातिरिक्तां तामवस्थात्रयसाक्षिणीम्।
नुमस्त्वंपदलक्ष्यार्थां प्रत्यगात्मस्वरूपिणीम्॥ ५२

नमः प्रणवरूपायै नमो ह्रींकारमूर्तये।
नानामन्त्रात्मिकायै ते करुणायै नमो नमः॥ ५३

इति स्तुता तदा देवैर्मणिद्वीपाधिवासिनी।
प्राह वाचा मधुरया मत्तकोकिलनिःस्वना॥ ५४

देव्युवाच

वदन्तु विबुधाः कार्यं यदर्थमिह सङ्गताः।
वरदाहं सदा भक्तकामकल्पद्रुमास्मि च॥ ५५

तिष्ठन्त्यां मयि का चिन्ता युष्माकं भक्तिशालिनाम्।
समुद्धरामि मद्भक्तान्दुःखसंसारसागरात्॥ ५६

इति प्रतिज्ञां मे सत्यां जानीथ विबुधोत्तमाः।

हम सब देवतागण कालरात्रिस्वरूपिणी, वेदोंद्वारा स्तुत, विष्णुकी शक्तिस्वरूपा, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति, दक्षपुत्री सती तथा पावन भगवती शिवाको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्ति-स्वरूपिणीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें इस ज्ञान-ध्यानमें प्रवृत्त करें॥ ४८॥

विराट्रूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, सूक्ष्मरूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, अव्यक्तरूप धारण करनेवालीको नमस्कार है और श्रीब्रह्ममूर्तिस्वरूपिणी देवीको नमस्कार है॥ ४९॥

जिन भगवतीको न जाननेके कारण यह जगत् मनुष्यको रस्सीमें सर्प, माला आदिकी भाँति प्रतीत होता है और जिसे जान लेनेपर यह भ्रान्ति नष्ट हो जाती है, उन जगदीश्वरीको हम नमस्कार करते हैं॥ ५०॥

'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ, एकमात्र चिन्मय स्वरूपवाली, अखण्डानन्दस्वरूपिणी तथा वेदोंके तात्पर्यकी भूमिकास्वरूपिणी उन भगवतीको हम नमन करते हैं॥ ५१॥

पंचकोशसे अतिरिक्त, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी, **'त्वम्'** पदकी लक्ष्यार्थ तथा प्रत्यगात्मस्वरूपिणी उन जगदम्बाको हम नमस्कार करते हैं॥ ५२॥

प्रणवरूपवाली भगवतीको नमस्कार है। ह्रींकारविग्रहवाली भगवतीको नमस्कार है। अनेक मन्त्रोंके स्वरूपवाली आप करुणामयी देवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली तथा मत्त कोयलके समान ध्वनि करनेवाली भगवती मधुर वाणीमें कहने लगीं॥ ५४॥

देवी बोलीं—आप सभी देवतागण अपना वह कार्य बताइये, जिसके लिये आप सब यहाँ एकत्रित हुए हैं। सर्वदा वर प्रदान करनेवाली मैं भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेहेतु कल्पवृक्ष हूँ॥ ५५॥

मेरे रहते भक्तिपरायण आप सब देवताओंको कौन-सी चिन्ता है? मैं इस दुःखमय संसारसागरसे अपने भक्तोंका उद्धार कर देती हूँ। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य समझिये॥ ५६½॥

इति प्रेमाकुलां वाणीं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसाः ॥ ५७

निर्भया निर्जरा राजन्नूचुर्दुःखं स्वकीयकम्।

देवा ऊचुः

नाज्ञातं किञ्चिदप्यत्र भवत्यास्ति जगत्त्रये ॥ ५८

सर्वज्ञया सर्वसाक्षिरूपिण्या परमेश्वरि।
तारकेणासुरेन्द्रेण पीडिताः स्मो दिवानिशम् ॥ ५९

शिवाङ्गजाद्वधस्तस्य निर्मितो ब्रह्मणा शिवे।
शिवाङ्गना तु नैवास्ति जानासि त्वं महेश्वरि ॥ ६०

सर्वज्ञपुरतः किं वा वक्तव्यं पामरैर्जनैः।
एतदुद्देशतः प्रोक्तमपरं तर्कयाम्बिके ॥ ६१

सर्वदा चरणाम्भोजे भक्तिः स्यात्तव निश्चला।
प्रार्थनीयमिदं मुख्यमपरं देहहेतवे ॥ ६२

इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रोवाच परमेश्वरी।
मम शक्तिस्तु या गौरी भविष्यति हिमालये ॥ ६३

शिवाय सा प्रदेया स्यात्सा वः कार्यं विधास्यति।
भक्तिर्मच्चरणाम्भोजे भूयाद्युष्माकमादरात् ॥ ६४

हिमालयो हि मनसा मामुपास्तेऽतिभक्तितः।
ततस्तस्य गृहे जन्म मम प्रियकरं मतम् ॥ ६५

व्यास उवाच

हिमालयोऽपि तच्छ्रुत्वात्यनुग्रहकरं वचः।
बाष्पैः संरुद्धकण्ठाक्षो महाराज्ञीं वचोऽब्रवीत् ॥ ६६

महत्तरं तं कुरुषे यस्यानुग्रहमिच्छसि।
नोचेत्क्वाहं जडः स्थाणुः क्व त्वं सच्चित्स्वरूपिणी ॥ ६७

असम्भाव्यं जन्मशतैस्त्वत्पितृत्वं ममानघे।
अश्वमेधादिपुण्यैर्वा पुण्यैर्वा तत्समाधिजैः ॥ ६८

अद्य प्रपञ्चे कीर्तिः स्याज्जगन्माता सुताभवत्।
अहो हिमालयस्यास्य धन्योऽसौ भाग्यवानिति ॥ ६९

हे राजन्! भगवतीकी यह स्नेहमयी वाणी सुनकर देवताओंके मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वे निर्भय होकर उनसे अपना दुःख कहने लगे ॥ ५७½ ॥

देवता बोले—हे परमेश्वरि! इस त्रिलोकीमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो सब कुछ जाननेवाली तथा सबकी साक्षिस्वरूपा आप भगवतीके लिये अज्ञात हो ॥ ५८½ ॥

हे शिवे! असुरराज तारक हमलोगोंको दिन-रात पीड़ित कर रहा है। ब्रह्माजीने शिवजीके औरसपुत्रके द्वारा उसका वध सुनिश्चित किया है। हे महेश्वरि! आप तो जानती ही हैं कि शिवकी कोई भार्या नहीं है। हम अल्पबुद्धि प्राणी सब कुछ जाननेवाली आपसे क्या कहें, [आप देह धारणकर अवतरित हों] इसी प्रयोजनसे हमलोगोंने आपसे निवेदन किया है। हे अम्बिके! दूसरी बात भी ध्यानमें रखें। आपके चरणकमलमें हमलोगोंकी अविचल भक्ति सर्वदा बनी रहे। देहकी रक्षाके निमित्त यह हमारा दूसरा मुख्य निवेदन है ॥ ५९—६२ ॥

उनकी यह बात सुनकर भगवती परमेश्वरीने कहा—'गौरी' नामक मेरी जो शक्ति है, वह हिमालयके घर आविर्भूत होगी। आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वह शिवको प्रदान कर दी जाय, वही गौरी आपलोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। मेरे चरणकमलमें आपलोगोंकी भक्ति सदा आदरपूर्वक बनी रहे। हिमालय भी अत्यन्त भक्तिके साथ मनोयोगसे मेरी उपासना कर रहे हैं; अतः उनके घर जन्म लेना मैंने प्रियकर माना है ॥ ६३—६५ ॥

व्यासजी बोले—[वहाँ देवताओंके साथ विद्यमान] हिमालयने भी देवीकी वह अति कृपापूर्ण वाणी सुनकर आँसुओंसे रुँधे कंठ तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे महाराज्ञी भगवतीसे यह वचन कहा—आप जिसपर कृपा करना चाहती हैं, उसे अति महान् बना देती हैं अन्यथा कहाँ जड़ तथा स्थाणु मैं और कहाँ सच्चित्स्वरूपिणी आप ॥ ६६-६७ ॥

हे अनघे! सैकड़ों जन्मोंमें अश्वमेध आदि यज्ञों तथा समाधिसे प्राप्त होनेवाले पुण्योंसे भी आपका पिता बन पाना असम्भव है। अब जगत्‌में मेरी कीर्ति फैल जायगी। लोग कहेंगे—अहो! इस हिमालयकी पुत्रीके रूपमें स्वयं जगज्जननी उत्पन्न हुई हैं, ये बड़े धन्य तथा भाग्यशाली हैं ॥ ६८-६९ ॥

यस्यास्तु जठरे सन्ति ब्रह्माण्डानां च कोटयः।
सैव यस्य सुता जाता को वा स्यात्तत्समो भुवि॥ ७०

न जानेऽस्मत्पितॄणां किं स्थानं स्यान्निर्मितं परम्।
एतादृशानां वासाय येषां वंशेऽस्ति मादृशः॥ ७१

इदं यथा च दत्तं मे कृपया प्रेमपूर्णया।
सर्ववेदान्तसिद्धं च त्वद्रूपं ब्रूहि मे तथा॥ ७२

योगं च भक्तिसहितं ज्ञानं च श्रुतिसम्मतम्।
वदस्व परमेशानि त्वमेवाहं यतो भवेः॥ ७३

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रसन्नमुखपङ्कजा।
वक्तुमारभताम्बा सा रहस्यं श्रुतिगूहितम्॥ ७४

जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वे ही जगदम्बा जिसकी कन्या होकर जन्म लें, उसके समान इस पृथ्वीपर कौन हो सकता है?॥ ७०॥

जिनके वंशमें मेरे-जैसा [भाग्यशाली] उत्पन्न हुआ है, मेरे ऐसे उन पूर्वजोंके निवासके लिये कैसा श्रेष्ठ स्थान निर्मित हुआ होगा—यह मैं नहीं जानता॥ ७१॥

जिस प्रकार आपने स्नेहपूर्ण कृपा करके मुझे गौरीका पिता होनेका अवसर प्रदान किया, उसी प्रकार अब आप सम्पूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत अपने स्वरूपको मुझे बताइये॥ ७२॥

हे परमेश्वरि! वेदसम्मत ज्ञान, भक्ति तथा योगका मुझे उपदेश करें, जिससे मैं आपके स्वरूपको प्राप्त हो जाऊँ॥ ७३॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर प्रसन्नतासे प्रफुल्लित मुखकमलवाली उन भगवतीने श्रुतियोंमें निहित रहस्यका वर्णन करना आरम्भ किया॥ ७४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
हिमालयगृहे पार्वतीजन्मविषये देवान् प्रति देवीकथनवर्णनं
नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

देवीगीताके प्रसंगमें भगवतीका हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका वर्णन

देव्युवाच

शृण्वन्तु निर्जराः सर्वे व्याहरन्त्या वचो मम।
यस्य श्रवणमात्रेण मद्रूपत्वं प्रपद्यते॥ १

अहमेवास पूर्वं तु नान्यत्किञ्चिन्नगाधिप।
तदात्मरूपं चित्संवित्परब्रह्मैकनामकम्॥ २

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम्।
तस्य काचित्स्वतः सिद्धा शक्तिर्मायेति विश्रुता॥ ३

न सती सा नासती सा नोभयात्मा विरोधतः।
एतद्विलक्षणा काचिद्वस्तुभूतास्ति सर्वदा॥ ४

देवी बोलीं—सभी देवता मेरे द्वारा कहे जानेवाले वचनको सुनें, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है॥ १॥

हे पर्वतराज! पूर्वमें केवल मैं ही थी और कुछ भी नहीं था। उस समय मेरा रूप चित्, संवित् (ज्ञानस्वरूप) और परब्रह्म नामवाला था। उसके सम्बन्धमें कोई तर्क नहीं किया जा सकता, इदमित्थं रूपसे उसका निर्देश नहीं किया जा सकता, उसकी कोई उपमा नहीं है तथा वह विकाररहित है॥ २½॥

भगवतीकी कोई स्वतःसिद्ध शक्ति है, जो माया नामसे प्रसिद्ध है। वह शक्ति न सत् है, न असत् है और दोनोंमें विरोध होनेके कारण वह सत्-असत्—उभयरूप भी नहीं है। सत्-असत् इन दोनोंसे विलक्षण वह माया कोई अन्य ही वस्तु है॥ ३-४॥

पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः।
चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममेयं सहजा ध्रुवा॥ ५

तस्यां कर्माणि जीवानां जीवाः कालाश्च सञ्चरे।
अभेदेन विलीनाः स्युः सुषुप्तौ व्यवहारवत्॥ ६

स्वशक्तेश्च समायोगादहं बीजात्मतां गता।
स्वाधारावरणात्तस्या दोषत्वं च समागतम्॥ ७

चैतन्यस्य समायोगान्निमित्तत्वं च कथ्यते।
प्रपञ्चपरिणामाच्च समवायित्वमुच्यते॥ ८

केचित्तां तप इत्याहुस्तमः केचिज्जडं परे।
ज्ञानं मायां प्रधानं च प्रकृतिं शक्तिमप्यजाम्॥ ९

विमर्श इति तां प्राहुः शैवशास्त्रविशारदाः।
अविद्यामितरे प्राहुर्वेदतत्त्वार्थचिन्तकाः॥ १०

एवं नानाविधानि स्युर्नामानि निगमादिषु।
तस्या जडत्वं दृश्यत्वाज्ज्ञाननाशात्ततोऽसती॥ ११

चैतन्यस्य न दृश्यत्वं दृश्यत्वे जडमेव तत्।
स्वप्रकाशं च चैतन्यं न परेण प्रकाशितम्॥ १२

अनवस्थादोषसत्त्वान्न स्वेनापि प्रकाशितम्।
कर्मकर्त्रीविरोधः स्यात्तस्मात्तद्दीपवत्स्वयम्॥ १३

प्रकाशमानमन्येषां भासकं विद्धि पर्वत।
अतएव च नित्यत्वं सिद्धसंवित्तनोर्मम॥ १४

जैसे अग्निमें उसकी उष्णता सदा रहती है, सूर्यमें प्रकाशकी किरण रहती है और चन्द्रमामें उसकी चन्द्रिका विद्यमान रहती है, उसी प्रकार यह माया निश्चितरूपसे सदा मेरी सहचरी है॥ ५॥

जैसे सुषुप्ति-अवस्थामें व्यवहार समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रलयकालमें समस्त जीव, काल तथा जीवोंके कर्म उन्हीं भगवतीमें अभेदरूपसे विलीन हो जाते हैं॥ ६॥

मैं अपनी उसी शक्तिके समायोगसे बीजरूपको प्राप्त हुई अर्थात् मुझमें सृष्टिके कर्तृत्वका उदय हुआ। उस मायाके अपने आधाररूपी आवरणके कारण मुझमें उसका कुछ दोष आ गया अर्थात् चैतन्यादिका तिरोधान हो गया॥ ७॥

चैतन्यके सम्बन्धसे मुझे संसारका निमित्तकारण कहा जाता है और मेरा परिणामरूप यह सृष्टिप्रपंच मुझसे ही उत्पन्न होता है तथा मुझमें ही विलीन होता है, अतः मुझे समवायिकारण कहा जाता है॥ ८॥

कुछ लोग उस शक्तिको तप, कुछ लोग तम तथा दूसरे लोग उसे जड—ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग उसे ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति तथा अजा कहते हैं और शैवशास्त्रके मनीषी उसे विमर्श भी कहते हैं। वेदतत्त्वार्थको जाननेवाले अन्य पुरुष उसे अविद्या कहते हैं। इस प्रकार वेद आदिमें उस शक्तिके नानाविध नाम प्रतिपादित हैं॥ ९-१०½॥

केवल दिखायी देनेके कारण वह जड है और ज्ञानप्राप्तिसे नष्ट होनेके कारण वह असत् है। चैतन्य दिखायी नहीं पड़ता और जो दिखायी पड़ता है, वह जड ही है। चैतन्य स्वयं प्रकाशस्वरूप है, वह दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता। वह अपने द्वारा भी प्रकाशित नहीं है; क्योंकि इससे अनवस्थाका दोष आ जायगा। कर्मत्व और कर्तृत्व—ये दोनों विरुद्ध धर्म एक अधिकरणमें नहीं रह सकते, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वह चैतन्य अपने द्वारा प्रकाशित होता है। प्रत्युत हे पर्वत! दीपककी भाँति प्रकाशमान उसे सूर्य आदि दूसरोंका प्रकाशक समझिये। अतएव मेरे ज्ञानरूप शरीरका नित्यत्व स्पष्टतः सिद्ध है॥ ११—१४॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादौ दृश्यस्य व्यभिचारतः।
संविदो व्यभिचारश्च नानुभूतोऽस्ति कर्हिचित्॥ १५

यदि तस्याप्यनुभवस्तर्ह्ययं येन साक्षिणा।
अनुभूतः स एवात्र शिष्टः संविद्वपुः पुरा॥ १६

अतएव च नित्यत्वं प्रोक्तं सच्छास्त्रकोविदैः।
आनन्दरूपता चास्याः परप्रेमास्पदत्वतः॥ १७

मा न भूवं हि भूयासमिति प्रेमात्मनि स्थितम्।
सर्वस्यान्यस्य मिथ्यात्वादसङ्गत्वं स्फुटं मम॥ १८

अपरिच्छिन्नताप्येवमत एव मता मम।
तच्च ज्ञानं नात्मधर्मो धर्मत्वे जडतात्मनः॥ १९

ज्ञानस्य जडशेषत्वं न दृष्टं न च सम्भवि।
चिद्धर्मत्वं तथा नास्ति चितश्चिन्न हि भिद्यते॥ २०

तस्मादात्मा ज्ञानरूपः सुखरूपश्च सर्वदा।
सत्यः पूर्णोऽप्यसङ्गश्च द्वैतजालविवर्जितः॥ २१

स पुनः कामकर्मादियुक्तया स्वीयमायया।
पूर्वानुभूतसंस्कारात् कालकर्मविपाकतः॥ २२

अविवेकाच्च तत्त्वस्य सिसृक्षावान्प्रजायते।
अबुद्धिपूर्वः सर्गोऽयं कथितस्ते नगाधिप॥ २३

एतद्धि यन्मया प्रोक्तं मम रूपमलौकिकम्।
अव्याकृतं तदव्यक्तं मायाशबलमित्यपि॥ २४

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें संवित् (ज्ञानस्वरूप स्वयं)-का अभाव प्रतीत न होकर प्रत्युत तीनों अवस्थाओंका अभाव अनुभवमें आता है, इस प्रकार कभी भी संवित्का अभाव अनुभवमें नहीं आता है। अतः संवित्के अभावका अनुभव न होनेके कारण उसका नित्यत्व स्वतः सिद्ध है। यदि किसीको संवित्के अभावका अनुभव होता है तो जिस साक्षीके द्वारा उस संविद्रूपके अभावका अनुभव होता है, वही संवित्का स्वरूप होगा। अतः उत्तम शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वानोंने उसे नित्य कहा है। वह परम प्रेमास्पद है, अतः उसमें आनन्दरूपता भी है॥ १५—१७॥

पूर्वमें मेरा अभाव था, ऐसा नहीं; मैं तब भी थी और प्रेमरूपमें सबकी आत्मामें स्थित थी। अन्य सभी वस्तुओंके मिथ्या होनेके कारण मेरा उन वस्तुओंसे सम्बन्ध न रहना स्वयं स्पष्ट है; अतः यह मेरे रूपकी अपरिच्छिन्नता (व्यापकता) भी कही गयी है। वह ज्ञान आत्माका धर्म नहीं है, अन्यथा धर्मत्व होनेसे उसमें जडता आ सकती है। ज्ञानके किसी भी अंशमें जडता और अनित्यताको न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है। ज्ञानरूप चित् आत्मरूप चित्का धर्म नहीं है; क्योंकि आत्मरूप चित् और ज्ञानरूप चित् एक ही हैं और धर्मिधर्मीभाव एकत्र सम्भव नहीं है। अतः आत्मा सर्वदा ज्ञानरूप तथा सुखरूप है; वह सत्य, पूर्ण और असंग है तथा द्वैत-जालसे रहित है॥ १८—२१॥

वही आत्मा काम अर्थात् इच्छा तथा कर्म अर्थात् अदृष्ट आदिके साथ युक्त होकर अपनी मायासे पूर्वमें किये गये अनुभवोंके संस्कार, कालके द्वारा किये गये कर्मके परिपाक और तत्त्वोंके अविवेकसे सृष्टि करनेकी इच्छावाला हो जाता है। हे पर्वतराज हिमालय! मैंने आपसे अबुद्धिपूर्वक (शयनके अनन्तर परमात्माकी जो जागरणरूप अवस्था है वह बुद्धिपूर्वक नहीं है) हुए इस सृष्टिक्रमका वर्णन किया है॥ २२-२३॥

यह मैंने आपसे अपने जिस रूपके विषयमें कहा है; वह अलौकिक, अव्याकृत (प्रारम्भिक), अव्यक्त (सृष्टिका आदिकारण) तथा मायाशबल (मायासे आवृत) भी है॥ २४॥

प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु सर्वकारणकारणम्।
तत्त्वानामादिभूतं च सच्चिदानन्दविग्रहम्॥ २५

सर्वकर्मघनीभूतमिच्छाज्ञानक्रियाश्रयम्।
ह्रींकारमन्त्रवाच्यं तदादितत्त्वं तदुच्यते॥ २६

तस्मादाकाश उत्पन्नः शब्दतन्मात्ररूपकः।
भवेत्स्पर्शात्मको वायुस्तेजोरूपात्मकं पुनः॥ २७

जलं रसात्मकं पश्चात्ततो गन्धात्मिका धरा।
शब्दैकगुण आकाशो वायुः स्पर्शरवान्वितः॥ २८

शब्दस्पर्शरूपगुणं तेज इत्युच्यते बुधैः।
शब्दस्पर्शरूपरसैरापो वेदगुणाः स्मृताः॥ २९

शब्दस्पर्शरूपरसगन्धैः पञ्चगुणा धरा।
तेभ्योऽभवन्महत्सूत्रं यल्लिङ्गं परिचक्षते॥ ३०

सर्वात्मकं तत्सम्प्रोक्तं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः।
अव्यक्तं कारणो देहः स चोक्तः पूर्वमेव हि॥ ३१

यस्मिञ्जगद्बीजरूपं स्थितं लिङ्गोद्भवो यतः।
ततः स्थूलानि भूतानि पञ्चीकरणमार्गतः॥ ३२

पञ्चसंख्यानि जायन्ते तत्प्रकारस्त्वथोच्यते।
पूर्वोक्तानि च भूतानि प्रत्येकं विभजेद् द्विधा॥ ३३

एकैकं भागमेकस्य चतुर्धा विभजेद् गिरे।
स्वस्वेतरद्वितीयांशे योजनात्पञ्च पञ्च ते॥ ३४

तत्कार्यं च विराड्देहः स्थूलदेहोऽयमात्मनः।
पञ्चभूतस्थसत्त्वांशैः श्रोत्रादीनां समुद्भवः॥ ३५

समस्त शास्त्रोंमें इसे सभी कारणोंका कारण; महत्, अहंकार आदि तत्त्वोंका आदिकारण तथा सत्-चित्-आनन्दमय विग्रहवाला बताया गया है॥ २५॥

उस रूपको सम्पूर्ण कर्मोंका साक्षी, इच्छा-ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका अधिष्ठान, ह्रींकार मन्त्रका वाच्य (अर्थ) और आदितत्त्व कहा गया है॥ २६॥

उसीसे शब्दतन्मात्रावाला आकाश, स्पर्शतन्मात्रावाला वायु और पुनः रूपतन्मात्रावाला तेज उत्पन्न हुआ। इसके बाद रसात्मक जल तथा पुनः गन्धात्मक पृथ्वीकी [क्रमशः] उत्पत्ति हुई। आकाश शब्द नामक एक गुणसे; वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंसे और तेज शब्द, स्पर्श, रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त हुए—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण जलके कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी है॥ २७—२९$\frac{१}{२}$॥

उन्हीं पृथ्वी आदि सूक्ष्म भूतोंसे महान् व्यापक सूत्र उत्पन्न हुआ, जिसे लिंग शब्दसे कहा जाता है; वह सर्वात्मक कहा गया है। यही परमात्माका सूक्ष्म शरीर है। जिसमें यह जगत् बीजरूपमें स्थित है और जिससे लिंगदेहकी उत्पत्ति हुई है, वह अव्यक्त कहा जाता है और वह परब्रह्मका कारणशरीर है; उसके विषयमें पहले ही कहा जा चुका है॥ ३०-३१$\frac{१}{२}$॥

तदनन्तर उसी अव्यक्तशरीर (लिंगशरीर)-से पंचीकरणप्रक्रियाके द्वारा पाँच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। अब उस पंचीकरणप्रक्रियाका वर्णन किया जा रहा है। पूर्वमें कहे गये पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश)-में प्रत्येक भूतके दो बराबर-बराबर भाग करके प्रत्येक भूतके प्रथम आधे भागको पुनः चार भागोंमें विभक्त कर दे। इस प्रकार प्रथम भागके विभक्त चतुर्थांशको अन्य चार भूतोंके अवशिष्ट अर्धांशमें संयोजित कर दे। इस प्रकार प्रत्येक भूतके अर्धांशमें तदतिरिक्त चार भूतोंके अंशका योग होनेसे पाँचों स्थूल भूतोंका निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पंचीकृतभूतरूपी कारणके द्वारा जो कार्य (सृष्टिप्रपंच) उत्पन्न हुआ, वही विराट् शरीर है और वही परमात्माका स्थूल देह है। हे राजेन्द्र! पंचभूतोंमें

ज्ञानेन्द्रियाणां राजेन्द्र प्रत्येकं मिलितैस्तु तैः।
अन्तःकरणमेकं स्याद् वृत्तिभेदाच्चतुर्विधम्॥ ३६

यदा तु संकल्पविकल्पकृत्यं
तदा भवेत्तन्मन इत्यभिख्यम्।
स्याद् बुद्धिसंज्ञं च यदा प्रवेत्ति
सुनिश्चितं संशयहीनरूपम्॥ ३७

अनुसन्धानरूपं तच्चित्तं च परिकीर्तितम्।
अहङ्कृत्यात्मवृत्त्या तु तदहङ्कारतां गतम्॥ ३८

तेषां रजोंशैर्जातानि क्रमात्कर्मेन्द्रियाणि च।
प्रत्येकं मिलितैस्तैस्तु प्राणो भवति पञ्चधा॥ ३९

हृदि प्राणो गुदेऽपानो नाभिस्थस्तु समानकः।
कण्ठदेशेऽप्युदानः स्याद् व्यानः सर्वशरीरगः॥ ४०

ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च।
प्राणादिपञ्चकं चैव धिया च सहितं मनः॥ ४१

एतत्सूक्ष्मं शरीरं स्यान्मम लिङ्गं यदुच्यते।
तत्र या प्रकृतिः प्रोक्ता सा राजन्द्विविधा स्मृता॥ ४२

सत्त्वात्मिका तु माया स्यादविद्या गुणमिश्रिता।
स्वाश्रयं या तु संरक्षेत्सा मायेति निगद्यते॥ ४३

तस्यां यत्प्रतिबिम्बं स्याद् बिम्बभूतस्य चेशितुः।
स ईश्वरः समाख्यातः स्वाश्रयज्ञानवान्परः॥ ४४

सर्वज्ञः सर्वकर्ता च सर्वानुग्रहकारकः।
अविद्यायां तु यत्किञ्चित्प्रतिबिम्बं नगाधिप॥ ४५

तदेव जीवसंज्ञं स्यात्सर्वदुःखाश्रयं पुनः।
द्वयोरपीह सम्प्रोक्तं देहत्रयमविद्यया॥ ४६

स्थित सत्त्वांशोंके परस्पर मिलनेसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा एक अन्तःकरणकी उत्पत्ति हुई, जो वृत्तिभेदसे चार प्रकार (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)-का हो जाता है॥ ३२—३६॥

जब उसमें संकल्प-विकल्पवृत्तिका उदय होता है, तब उस अन्तःकरणको मन कहा जाता है। जब वह अन्तःकरण संशयरहित निश्चयात्मक वृत्तिसे युक्त होता है, तब उसकी बुद्धि संज्ञा होती है। अनुसन्धान (चिन्तन)-वृत्तिके आनेपर वही अन्तःकरण चित्त कहा जाता है और अहंकृतिवृत्तिसे संयुक्त होनेपर वह अन्तःकरण अहंकारसंज्ञक हो जाता है॥ ३७-३८॥

तदनन्तर उन पाँच भूतोंके राजस अंशोंसे क्रमशः पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। प्रत्येक राजस अंशोंके मिलनेसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए। प्राण हृदयमें, अपान गुदामें, समान नाभिमें, उदान कंठमें तथा व्यान सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हुआ। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि पाँच वायु और बुद्धिसहित मन—इन्हीं सत्रह अवयवोंवाला मेरा सूक्ष्म शरीर है, जिसे लिंग शब्दसे भी कहा जाता है॥ ३९—४१½॥

हे राजन्! जो प्रकृति कही गयी है, वह भी दो भेदोंवाली बतायी गयी है। शुद्धसत्त्वप्रधान प्रकृति माया है तथा मलिनसत्त्वप्रधान प्रकृति अविद्या है। जो प्रकृति अपने आश्रित रहनेवालेकी रक्षा करती है अर्थात् आवरण या व्यामोह नहीं करती, उसे माया कहा जाता है। उस शुद्ध-सत्त्वप्रधान मायामें बिम्बरूप परमात्माका जो प्रतिबिम्ब होता है, वही ईश्वर कहा गया है। वह ईश्वर अपने आश्रय अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जाननेवाला, परात्पर, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेवाला है॥ ४२—४४½॥

हे पर्वतराज हिमालय! [मलिनसत्त्वप्रधान] अविद्यामें जो परमात्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव कहा जाता है और वही जीव अविद्याके द्वारा आनन्दांशका आवरण कर देनेके कारण सभी दुःखोंका आश्रय हो जाता है। माया—अविद्याके कारण ईश्वर

देहत्रयाभिमानाच्चाप्यभूनामत्रयं पुनः।
प्राज्ञस्तु कारणात्मा स्यात्सूक्ष्मदेही तु तैजसः॥ ४७

स्थूलदेही तु विश्वाख्यस्त्रिविधः परिकीर्तितः।
एवमीशोऽपि सम्प्रोक्त ईशसूत्रविराट्पदैः॥ ४८

प्रथमो व्यष्टिरूपस्तु समष्ट्यात्मा परः स्मृतः।
स हि सर्वेश्वरः साक्षाज्जीवानुग्रहकाम्यया॥ ४९

करोति विविधं विश्वं नानाभोगाश्रयं पुनः।
मच्छक्तिप्रेरितो नित्यं मयि राजन् प्रकल्पितः॥ ५०

और जीव—इन दोनोंके तीन देह तथा देहत्रयके अभिमानके कारण तीन नाम कहे जाते हैं। कारणदेहाभिमानी जीवको प्राज्ञ, सूक्ष्मदेहाभिमानीको तैजस तथा स्थूलदेहाभिमानीको विश्व—इन तीन प्रकारवाला कहा गया है। इसी प्रकार ईश्वर भी ईश, सूत्र तथा विराट् नामोंसे कहा गया है। जीवको व्यष्टिरूप तथा परमेश्वरको समष्टिरूप कहा गया है। वे सर्वेश्वर मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकर जीवोंपर कृपा करनेकी कामनासे विविध भोगोंसे युक्त विश्वोंकी सृष्टि करते हैं। हे राजन्! मेरी शक्तिके अधीन होकर वे ईश्वर रज्जुमें सर्पकी भाँति मुझ ब्रह्मरूपिणीमें नित्य कल्पित हैं॥ ४५—५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां
देव्या व्यष्टिसमष्टिरूपवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीका अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए विराट्रूप प्रकट करना, भयभीत देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न भगवतीका पुनः सौम्यरूप धारण करना

देव्युवाच

मन्मायाशक्तिसंक्लृप्तं जगत्सर्वं चराचरम्।
सापि मत्तः पृथङ्माया नास्त्येव परमार्थतः॥ १

व्यवहारदृशा सेयं विद्या मायेति विश्रुता।
तत्त्वदृष्ट्या तु नास्त्येव तत्त्वमेवास्ति केवलम्॥ २

साहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः प्रविशाम्यहम्।
मायाकर्मादिसहिता गिरे प्राणपुरःसरा॥ ३

लोकान्तरगतिर्नो चेत्कथं स्यादिति हेतुना।
यथा यथा भवन्त्येव मायाभेदास्तथा तथा॥ ४

उपाधिभेदाद्भिन्नाहं घटाकाशादयो यथा।
उच्चनीचादिवस्तूनि भासयन्भास्करः सदा॥ ५
न दुष्यति तथैवाहं दोषैर्लिप्ता कदापि न।

देवी बोलीं—[हे हिमालय!] यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरी मायाशक्तिसे ही उत्पन्न हुआ है। परमार्थदृष्टिसे विचार करनेपर वह माया भी मुझसे पृथक् नहीं है। व्यवहारदृष्टिसे वह विद्या ही 'माया' इस नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे भेदसम्बन्ध नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं॥ १-२॥

हे गिरे! मैं सम्पूर्ण जगत्का सृजनकर माया और कर्म आदिके साथ प्राणोंको आगे करके उस जगत्के भीतर प्रवेश करती हूँ, अन्यथा संसारके सभी क्रिया-कलाप कैसे हो पाते? इसी कारणसे मैं ऐसा करती हूँ। मायाके भेदानुसार मेरे विभिन्न कार्य होते हैं। जिस प्रकार आकाश एक होते हुए भी घटाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत है, उसी प्रकार मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ॥ ३-४½॥

जिस प्रकार उत्तम और निकृष्ट—सभी वस्तुओंको सदा प्रकाशित करता हुआ सूर्य कभी भी दूषित नहीं होता, उसी प्रकार मैं कभी उपाधियोंके दोषोंसे लिप्त नहीं होती हूँ॥ ५½॥

मयि बुद्ध्यादिकर्तृत्वमध्यस्यैवापरे जनाः॥ ६

वदन्ति चात्मा कर्मेति विमूढा न सुबुद्धयः।
अज्ञानभेदतस्तद्वन्मायाया भेदतस्तथा॥ ७

जीवेश्वरविभागश्च कल्पितो माययैव तु।
घटाकाशमहाकाशविभागः कल्पितो यथा॥ ८

तथैव कल्पितो भेदो जीवात्मपरमात्मनोः।
यथा जीवबहुत्वं च माययैव न च स्वतः॥ ९

तथेश्वरबहुत्वं च मायया न स्वभावतः।
देहेन्द्रियादिसङ्घातवासनाभेदभेदिता॥ १०

अविद्या जीवभेदस्य हेतुर्नान्यः प्रकीर्तितः।
गुणानां वासनाभेदभेदिता या धराधर॥ ११

माया सा परभेदस्य हेतुर्नान्यः कदाचन।
मयि सर्वमिदं प्रोतमोतं च धरणीधर॥ १२

ईश्वरोऽहं च सूत्रात्मा विराडात्माऽहमस्मि च।
ब्रह्माहं विष्णुरुद्रौ च गौरी ब्राह्मी च वैष्णवी॥ १३

सूर्योऽहं तारकाश्चाहं तारकेशस्तथास्म्यहम्।
पशुपक्षिस्वरूपाहं चाण्डालोऽहं च तस्करः॥ १४

व्याधोऽहं क्रूरकर्माहं सत्कर्माहं महाजनः।
स्त्रीपुन्नपुंसकाकारोऽप्यहमेव न संशयः॥ १५

यच्च किञ्चित्क्वचिद्वस्तु दृश्यते श्रूयतेऽपि वा।
अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्याहं सर्वदा स्थिता॥ १६

न तदस्ति मया त्यक्तं वस्तु किञ्चिच्चराचरम्।
यद्यस्ति चेत्तच्छून्यं स्याद्वन्ध्यापुत्रोपमं हि तत्॥ १७

कुछ अज्ञानी मुझमें बुद्धि इत्यादिके कर्तृत्वका आरोपकर मुझे आत्मा तथा कर्मकी संज्ञा देते हैं, किंतु विज्ञजन ऐसा नहीं करते। जिस प्रकार घटरूप उपाधिके द्वारा महाकाशका घटाकाशसे भेद कल्पित होता है, उसी प्रकार [ईश्वर तथा जीवमें वास्तविक भेद न होनेपर भी] अज्ञानरूप उपाधिके द्वारा ही जीवका ईश्वरसे भेद मायाके द्वारा कल्पित है॥ ६—८½ ॥

जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक प्रतीत होते हैं; जो वास्तवमें अनेक नहीं हैं, वैसे ही मायाके प्रभावसे ईश्वरकी भी विविधताका भान होता है न कि अपने स्वभाववश॥ ९½ ॥

विभिन्न जीवोंके देह तथा इन्द्रियके समूहमें जैसे भेदकी प्रतीति अविद्याके कारण है (वास्तविक नहीं है), उसी प्रकार जीवोंमें भेद अविद्याके कारण है, इसमें दूसरेको हेतु नहीं बताया गया है। हे धराधर! गुणों (सत्त्व, रज तथा तम)-में उन गुणोंके कार्यरूप वासनाके भेदसे जो भिन्नताकी प्रतीति करनेवाली है, वही माया एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें भेदका हेतु है, कोई अन्य कभी नहीं॥ १०-११½ ॥

हे धरणीधर! यह समग्र जगत् मुझमें ओतप्रोत है। मैं ईश्वर हूँ, मैं सूत्रात्मा हूँ तथा मैं ही विराट् आत्मा हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हूँ। गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी भी मैं ही हूँ॥ १२-१३॥

मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही चन्द्रमा हूँ और तारे भी मैं ही हूँ। पशु-पक्षी आदि भी मेरे ही स्वरूप हैं। चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूर कर्म करनेवाला, सत्कर्म करनेवाला तथा महान् पुरुष—ये सब मैं ही हूँ। स्त्री, पुरुष तथा नपुंसकके रूपमें मैं ही हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है॥ १४-१५॥

जो कुछ भी वस्तु जहाँ कहीं भी देखने या सुननेमें आती है—वह चाहे भीतर अथवा बाहर कहीं भी विद्यमान हो, उन सबको व्याप्तकर उनमें सर्वदा मैं ही स्थित रहती हूँ॥ १६॥

चराचर कोई भी वस्तु मुझसे रहित नहीं है। यदि मुझसे शून्य कोई वस्तु मान ली जाय तो वह वन्ध्यापुत्रके समान असम्भव ही है॥ १७॥

रज्जुर्यथा सर्पमालाभेदैरेका विभाति हि।
तथैवेशादिरूपेण भाम्यहं नात्र संशयः॥ १८

अधिष्ठानातिरेकेण कल्पितं तन्न भासते।
तस्मान्मत्सत्तयैवैतत्सत्तावान्नान्यथा भवेत्॥ १९

हिमालय उवाच

यथा वदसि देवेशि समष्ट्यात्मवपुस्त्विदम्।
तथैव द्रष्टुमिच्छामि यदि देवि कृपा मयि॥ २०

व्यास उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा सर्वे देवाः सविष्णवः।
ननन्दुर्मुदितात्मानः पूजयन्तश्च तद्वचः॥ २१

अथ देवमतं ज्ञात्वा भक्तकामदुघा शिवा।
अदर्शयन्निजं रूपं भक्तकामप्रपूरणी॥ २२

अपश्यंस्ते महादेव्या विराड्रूपं परात्परम्।
द्यौर्मस्तकं भवेद्यस्य चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी॥ २३

दिशः श्रोत्रे वचो वेदाः प्राणो वायुः प्रकीर्तितः।
विश्वं हृदयमित्याहुः पृथिवी जघनं स्मृतम्॥ २४

नभस्तलं नाभिसरो ज्योतिश्चक्रमुरःस्थलम्।
महर्लोकस्तु ग्रीवा स्याज्जनोलोको मुखं स्मृतम्॥ २५

तपोलोको रराटिस्तु सत्यलोकादधः स्थितः।
इन्द्रादयो बाहवः स्युः शब्दः श्रोत्रं महेशितुः॥ २६

नासत्यदस्रौ नासे स्तो गन्धो घ्राणं स्मृतो बुधैः।
मुखमग्निः समाख्यातो दिवारात्री च पक्ष्मणी॥ २७

ब्रह्मस्थानं भ्रूविजृम्भोऽप्यापस्तालुः प्रकीर्तिताः।
रसो जिह्वा समाख्याता यमो दंष्ट्राः प्रकीर्तिताः॥ २८

जिस प्रकार एक रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रूपसे प्रतीत होती हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है। अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त कल्पित वस्तुकी सत्ता नहीं होती। [उसकी प्रतीति अधिष्ठानकी सत्ताके कारण होती है।] अतः मेरी सत्तासे ही वह जगत् सत्तावान् है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं हो सकती॥ १८-१९॥

हिमालयने कहा—हे देवेश्वरि! हे देवि! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो आपने अपने इस समष्ट्यात्मक विराट् रूपका जैसा वर्णन किया है, आपके उसी रूपको मैं देखना चाहता हूँ॥ २०॥

व्यासजी बोले—उन हिमालयकी यह बात सुनकर विष्णुसहित सभी देवता प्रसन्नचित्त हो गये और उनकी बातका अनुमोदन करते हुए आनन्दित हो गये॥ २१॥

तदनन्तर देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली तथा भक्तोंके लिये कामधेनुतुल्य भगवती शिवाने अपना रूप दिखा दिया। वे देवता महादेवीके उस परात्पर विराट्रूपका दर्शन करने लगे; जिसका मस्तक आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ कान हैं और वेद वाणी है। वायुको उस रूपका प्राण कहा गया है। विश्व ही उसका हृदय कहा गया है और पृथ्वी उस रूपकी जंघा कही गयी है॥ २२—२४॥

पाताल उस रूपकी नाभि, ज्योतिश्चक्र वक्षःस्थल और महर्लोक ग्रीवा है। जनलोकको उसका मुख कहा गया है। सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक उसका ललाट है। इन्द्र आदि उन महेश्वरीके बाहु हैं और शब्द श्रोत्र हैं॥ २५-२६॥

नासत्य और दस्र (दोनों अश्विनीकुमार) उनकी नासिका हैं। विद्वान् लोगोंने गन्धको उनकी घ्राणेन्द्रिय कहा है। अग्निको मुख कहा गया है। दिन और रात उनके पक्ष्म (बरौनी) हैं। ब्रह्मस्थान भौंहोंका विस्तार है। जलको भगवतीका तालु कहा गया है। रस जिह्वा कही गयी है और यमको उनकी दाढ़ें बताया गया है॥ २७-२८॥

दन्ताः स्नेहकला यस्य हासो माया प्रकीर्तिता।
सर्गस्त्वपाङ्गमोक्षः स्याद् व्रीडोर्ध्वोष्ठो महेशितुः॥ २९

लोभः स्यादधरोष्ठोऽस्याधर्ममार्गस्तु पृष्ठभूः।
प्रजापतिश्च मेढ्रं स्याद्यः स्रष्टा जगतीतले॥ ३०

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थीनि देव्या महेशितुः।
नद्यो नाड्यः समाख्याता वृक्षाः केशाः प्रकीर्तिताः॥ ३१

कौमारयौवनजरा वयोऽस्य गतिरुत्तमा।
बलाहकास्तु केशाः स्युः सन्ध्ये ते वाससी विभोः॥ ३२

राजञ्छ्रीजगदम्बायाश्चन्द्रमास्तु मनः स्मृतः।
विज्ञानशक्तिस्तु हरी रुद्रोऽन्तःकरणं स्मृतम्॥ ३३

अश्वादिजातयः सर्वाः श्रोणिदेशे स्थिता विभोः।
अतलादिमहालोकाः कट्यधोभागतां गताः॥ ३४

एतादृशं महारूपं ददृशुः सुरपुङ्गवाः।
ज्वालामालासहस्राढ्यं लेलिहानं च जिह्वया॥ ३५

दंष्ट्राकटकटारावं वमन्तं वह्निमक्षिभिः।
नानायुधधरं वीरं ब्रह्मक्षत्रौदनं च यत्॥ ३६

सहस्रशीर्षनयनं सहस्रचरणं तथा।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं विद्युत्कोटिसमप्रभम्॥ ३७

भयङ्करं महाघोरं हृदक्ष्णोस्त्रासकारकम्।
ददृशुस्ते सुराः सर्वे हाहाकारं च चक्रिरे॥ ३८

विकम्पमानहृदया मूर्च्छामापुर्दुरत्ययाम्।
स्मरणं च गतं तेषां जगदम्बेयमित्यपि॥ ३९

अथ ते ये स्थिता वेदाश्चतुर्दिक्षु महाविभोः।
बोधयामासुरत्युग्रं मूर्च्छातो मूर्च्छितान्सुरान्॥ ४०

अथ ते धैर्यमालम्ब्य लब्ध्वा च श्रुतिमुत्तमाम्।
प्रेमाश्रुपूर्णनयना रुद्धकण्ठास्तु निर्जराः॥ ४१

स्नेहकी कलाएँ उस रूपके दाँत हैं, मायाको उसका हास कहा गया है। सृष्टि उन महेश्वरीका कटाक्षपात और लज्जा उनका ऊपरी ओष्ठ है। लोभ उनका नीचेका ओष्ठ और अधर्ममार्ग उनका पृष्ठभाग है। जो पृथ्वीलोकमें स्रष्टा कहे जाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपकी जननेन्द्रिय हैं॥ २९-३०॥

समुद्र उन देवी महेश्वरीकी कुक्षि और पर्वत उनकी अस्थियाँ हैं। नदियाँ उनकी नाडियाँ कही गयी हैं और वृक्ष उनके केश बताये गये हैं। कुमार, यौवन और बुढ़ापा—ये अवस्थाएँ उनकी उत्तम गति हैं। मेघ उनके सिरके केश हैं। [प्रातः और सायं] दोनों सन्ध्याएँ उन ऐश्वर्यमयी देवीके दो वस्त्र हैं॥ ३१-३२॥

हे राजन्! चन्द्रमाको श्रीजगदम्बाका मन कहा गया है। विष्णुको उनकी विज्ञानशक्ति और रुद्रको उनका अन्तःकरण बताया गया है। अश्व आदि जातियाँ उन ऐश्वर्यशालिनी भगवतीके कटिप्रदेशमें स्थित हैं और अतलसे लेकर पातालतकके सभी महान् लोक उनके कटिप्रदेशके नीचेके भाग हैं॥ ३३-३४॥

श्रेष्ठ देवताओंने हजारों प्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त, जीभसे बार-बार ओठ चाटते हुए, दाँत कट-कटाकर चीखनेकी ध्वनि करते हुए, आँखोंसे अग्नि उगलते हुए, अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए, पराक्रमी, ब्राह्मण-क्षत्रिय ओदनरूप, हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान तेजयुक्त तथा करोड़ों बिजलियोंके समान प्रभासे प्रदीप्त, भयंकर, महाभीषण तथा हृदय और नेत्रोंके लिये सन्त्रासकारक ऐसे विराट्रूपका दर्शन किया। जब उन देवताओंने इसे देखा तब वे हाहाकार करने लगे, उनके हृदय काँप उठे, उन्हें घोर मूर्च्छा आ गयी और उनकी यह स्मृति भी समाप्त हो गयी कि यही भगवती जगदम्बा हैं॥ ३५—३९॥

उन महाविभुकी चारों दिशाओंमें जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्च्छित देवताओंको अत्यन्त घोर मूर्च्छासे चेतना प्रदान की। इसके बाद धैर्य धारणकर वे देवताश्रेष्ठ श्रुति प्राप्त करके प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों तथा रुँधे हुए कंठसे गद्गद वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०-४१॥

बाष्पगद्गदया वाचा स्तोतुं समुपचक्रिरे।

देवा ऊचुः

अपराधं क्षमस्वाम्ब पाहि दीनांस्त्वदुद्भवान्॥ ४२

कोपं संहर देवेशि सभया रूपदर्शनात्।
का ते स्तुतिः प्रकर्तव्या पामरैर्निर्जरैरिह॥ ४३

स्वस्याप्यज्ञेय एवासौ यावान्यश्च स्वविक्रमः।
तदर्वाग्जायमानानां कथं स विषयो भवेत्॥ ४४

नमस्ते भुवनेशानि नमस्ते प्रणवात्मिके।
सर्ववेदान्तसंसिद्धे नमो ह्रींकारमूर्तये॥ ४५

यस्मादग्निः समुत्पन्नो यस्मात्सूर्यश्च चन्द्रमाः।
यस्मादोषधयः सर्वास्तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४६

यस्माच्च देवाः सम्भूताः साध्याः पक्षिण एव च।
पशवश्च मनुष्याश्च तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४७

प्राणापानौ व्रीहियवौ तपः श्रद्धा ऋतं तथा।
ब्रह्मचर्यं विधिश्चैव यस्मात्तस्मै नमो नमः॥ ४८

सप्तप्राणार्चिषो यस्मात्समिधः सप्त एव च।
होमाः सप्त तथा लोकास्तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ४९

यस्मात्समुद्रा गिरयः सिन्धवः प्रचरन्ति च।
यस्मादोषधयः सर्वा रसास्तस्मै नमो नमः॥ ५०

यस्माद्यज्ञः समुद्भूतो दीक्षा यूपश्च दक्षिणाः।
ऋचो यजूंषि सामानि तस्मै सर्वात्मने नमः॥ ५१

नमः पुरस्तात्पृष्ठे च नमस्ते पार्श्वयोर्द्वयोः।
अध ऊर्ध्वं चतुर्दिक्षु मातर्भूयो नमो नमः॥ ५२

उपसंहर देवेशि रूपमेतदलौकिकम्।
तदेव दर्शयास्माकं रूपं सुन्दरसुन्दरम्॥ ५३

देवता बोले—हे अम्ब! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये और अपने दीन सन्तानोंकी रक्षा कीजिये। हे देवेश्वरि! आप अपना क्रोध शान्त कर लीजिये; क्योंकि हमलोग यह रूप देखकर भयभीत हो गये हैं। हम मन्दबुद्धि देवता यहाँ आपकी कौन-सी स्तुति कर सकते हैं? आपका अपना जितना तथा जैसा पराक्रम है, उसे आप स्वयं भी नहीं जानतीं, तो फिर वह बादमें प्रादुर्भूत होनेवाले हम देवताओंके ज्ञानका विषय कैसे हो सकता है?॥ ४२—४४॥

हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे प्रणवात्मिके! आपको नमस्कार है। समस्त वेदान्तोंसे प्रमाणित तथा ह्रींकाररूप धारण करनेवाली हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ ४५॥

जिनसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, जिनसे सूर्य तथा चन्द्र आविर्भूत हुए हैं और जिनसे समस्त औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४६॥

जिनसे सभी देवता, साध्यगण, पक्षी, पशु तथा मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४७॥

जिनसे प्राण, अपान, व्रीहि (धान), यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधिका आविर्भाव हुआ है; उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ४८॥

जिनसे सातों प्राण, सात अग्नियाँ, सात समिधाएँ, सात होम तथा सात लोक उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४९॥

जिनसे समुद्र, पर्वत तथा सभी सिन्धु निकलते हैं और जिनसे सभी औषधियाँ तथा रस उद्भूत होते हैं, उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ५०॥

जिनसे यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणाएँ, ऋचाएँ, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्र उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ५१॥

हे माता! आपको आगे, पीछे, दोनों पार्श्वभाग, ऊपर, नीचे तथा चारों दिशाओंसे बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥

हे देवेश्वरि! अब इस अलौकिक रूपको छिपा लीजिये और हमें उसी परम सुन्दर रूपका दर्शन कराइये॥ ५३॥

व्यास उवाच

इति भीतान्सुरान्दृष्ट्वा जगदम्बा कृपार्णवा।
संहृत्य रूपं घोरं तद्दर्शयामास सुन्दरम्॥ ५४

पाशाङ्कुशवराभीतिधरं सर्वाङ्गकोमलम्।
करुणापूर्णनयनं मन्दस्मितमुखाम्बुजम्॥ ५५

दृष्ट्वा तत्सुन्दरं रूपं तदा भीतिविवर्जिताः।
शान्तचित्ताः प्रणेमुस्ते हर्षगद्गदनिःस्वनाः॥ ५६

व्यासजी बोले—देवताओंको भयभीत देखकर कृपासिन्धु जगदम्बाने उस घोर रूपको छिपाकर और पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रासे युक्त, समस्त कोमल अंगोंवाले, करुणासे परिपूर्ण नेत्रोंवाले एवं मन्द-मन्द मुसकान-युक्त मुखकमलवाले मनोहर रूपका दर्शन करा दिया॥ ५४-५५॥

तब भगवतीका वह सुन्दर रूप देखकर वे देवता भयरहित हो गये और शान्तचित्त होकर हर्षयुक्त गद्गद वाणीसे देवीको प्रणाम करने लगे॥ ५६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे श्रीदेवीविराड्रूपदर्शनसहितं देवकृततत्स्तववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीका हिमालय तथा देवताओंसे परमपदकी प्राप्तिका उपाय बताना

देव्युवाच

क्व यूयं मन्दभाग्या वै क्वेदं रूपं महाद्भुतम्।
तथापि भक्तवात्सल्यादीदृशं दर्शितं मया॥ १

न वेदाध्ययनैर्योगैर्न दानैस्तपसेज्यया।
रूपं द्रष्टुमिदं शक्यं केवलं मत्कृपां विना॥ २

प्रकृतं शृणु राजेन्द्र परमात्मात्र जीवताम्।
उपाधियोगात्सम्प्राप्तः कर्तृत्वादिकमप्युत॥ ३

क्रियाः करोति विविधा धर्माधर्मैकहेतवः।
नानायोनीस्ततः प्राप्य सुखदुःखैश्च युज्यते॥ ४

पुनस्तत्संस्कृतिवशान्नानाकर्मरतः सदा।
नानादेहान्समाप्नोति सुखदुःखैश्च युज्यते॥ ५

घटीयन्त्रवदेतस्य न विरामः कदापि हि।
अज्ञानमेव मूलं स्यात्ततः कामः क्रियास्ततः॥ ६

देवी बोलीं—कहाँ तुम सब मन्दभाग्य देवता और कहाँ मेरा यह अद्भुत रूप, तथापि भक्तवत्सलताके कारण मैंने आपलोगोंको ऐसे रूपका दर्शन कराया है। केवल मेरी कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तपस्या और यज्ञ आदि किन्हीं भी साधनसे मेरे उस रूपका दर्शन नहीं किया जा सकता॥ १-२॥

हे राजेन्द्र! अब ब्रह्मविद्याविषयक पूर्व प्रसंग सुनिये। परमात्मा ही उपाधिभेदसे जीवसंज्ञा प्राप्त करता है और उसमें कर्तृत्व आदि आ जाता है। वह धर्म-अधर्महेतुभूत विविध प्रकारके कर्म करने लगता है। फिर कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें जन्म प्राप्त करके वह सुख-दुःखका भोग करता है॥ ३-४॥

पुनः अपने उन संस्कारोंके प्रभावसे वह सदा नानाविध कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है, अनेक प्रकारके शरीर धारण करता है और सुखों तथा दुःखोंका भोग करता है। घटीयन्त्रकी भाँति इस जीवको कभी भी विश्राम नहीं मिलता। अज्ञान ही उसका कारण है; उसी अज्ञानसे कामना और पुनः क्रियाओंका प्रादुर्भाव होता है॥ ५-६॥

तस्मादज्ञाननाशाय यतेत नियतं नरः।
एतद्धि जन्मसाफल्यं यदज्ञानस्य नाशनम्॥ ७

पुरुषार्थसमाप्तिश्च जीवन्मुक्तदशापि च।
अज्ञाननाशने शक्ता विद्यैव तु पटीयसी॥ ८

न कर्म तज्जं नोपास्तिर्विरोधाभावतो गिरे।
प्रत्युताशाज्ञाननाशे कर्मणा नैव भाव्यताम्॥ ९

अनर्थदानि कर्माणि पुनः पुनरुशन्ति हि।
ततो रागस्ततो द्वेषस्ततोऽनर्थो महान्भवेत्॥ १०

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ज्ञानं सम्पादयेन्नरः।
कुर्वन्नेवेह कर्माणीत्यतः कर्माप्यवश्यकम्॥ ११

ज्ञानादेव हि कैवल्यमतः स्यात्तत्समुच्चयः।
सहायतां व्रजेत्कर्म ज्ञानस्य हितकारि च॥ १२

इति केचिद्वदन्त्यत्र तद्विरोधान्न सम्भवेत्।
ज्ञानाद्धृद्ग्रन्थिभेदः स्याद्धृद्ग्रन्थौ कर्मसम्भवः॥ १३

यौगपद्यं न सम्भाव्यं विरोधात्तु ततस्तयोः।
तमःप्रकाशयोर्यद्वद्यौगपद्यं न सम्भवि॥ १४

तस्मात्सर्वाणि कर्माणि वैदिकानि महामते।
चित्तशुद्ध्यन्तमेव स्युस्तानि कुर्यात्प्रयत्नतः॥ १५

शमो दमस्तितिक्षा च वैराग्यं सत्त्वसम्भवः।
तावत्पर्यन्तमेव स्युः कर्माणि न ततः परम्॥ १६

तदन्ते चैव संन्यस्य संश्रयेद् गुरुमात्मवान्।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं च भक्त्या निर्व्याजया पुनः॥ १७

वेदान्तश्रवणं कुर्यान्नित्यमेवमतन्द्रितः।
तत्त्वमस्यादिवाक्यस्य नित्यमर्थं विचारयेत्॥ १८

तत्त्वमस्यादिवाक्यं तु जीवब्रह्मैक्यबोधकम्।
ऐक्ये ज्ञाते निर्भयस्तु मद्रूपो हि प्रजायते॥ १९

अतः अज्ञानके नाशके लिये मनुष्यको निश्चितरूपसे प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका नष्ट हो जाना ही जीवनकी सफलता है। अज्ञानके नष्ट हो जानेपर पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि हो जाती है। विद्या ही अज्ञानका नाश करनेमें पूर्ण समर्थ है॥ ७-८॥

हे गिरे! अज्ञानसे ही कर्म होता है, इसलिये कर्मका अज्ञानसे विरोध नहीं है। अज्ञानके नाश हो जानेसे कर्म और उपासना आदिका अभाव हो जायगा, प्रत्युत आशारूपी अज्ञानके नाश हो जानेपर कर्मका अभाव हो जायगा। अनर्थकारी कर्म बार-बार होते रहते हैं। उसीसे राग, उसीसे द्वेष और फिर उसीसे महान् अनर्थकी उत्पत्ति होती है। अतः मनुष्यको पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानका अर्जन करना चाहिये। '**कुर्वन्नेवेह कर्माणि**' इस श्रुतिवचनके अनुसार कर्म भी आवश्यक है। साथ ही ज्ञानसे ही कैवल्यपदकी प्राप्ति सम्भव है, अतः मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान—दोनोंका समुच्चय आवश्यक है, साथ ही हितकारक कर्म ज्ञानकी सहायता करता है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं, किंतु उन दोनों (ज्ञान तथा कर्म)-के परस्पर विरोधी होनेसे वैसा सम्भव नहीं है॥ ९—१२½॥

ज्ञानसे हृदय-ग्रन्थिका भेदन होता है और हृदय-ग्रन्थिमें कर्म उत्पन्न होता है। फिर उन दोनों (ज्ञान और कर्म)-में परस्पर विरोधभाव होनेसे वे एक स्थानपर उसी तरह नहीं रह सकते, जैसे अन्धकार और प्रकाशका एक साथ रहना सम्भव नहीं है॥ १३-१४॥

हे महामते! इसलिये समस्त वैदिक कर्म जो चित्तकी शुद्धिके लिये होते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वका प्रादुर्भाव—इनकी प्राप्तितक ही कर्म आवश्यक हैं, इसके बाद नहीं॥ १५-१६॥

तदनन्तर ज्ञानी मनुष्यको चाहिये कि वह संन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुका आश्रय ग्रहण करे और पुनः सावधान होकर निष्कपट भक्तिके साथ प्रतिदिन वेदान्तका श्रवण करे। साथ ही '**तत्त्वमसि**' आदि वाक्यके अर्थका वह नित्य चिन्तन करे; क्योंकि तत्त्वमसि आदि वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताके बोधक हैं। ऐक्यका बोध हो जानेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है॥ १७—१९॥

पदार्थावगतिः पूर्वं वाक्यार्थावगतिस्ततः।
तत्पदस्य च वाक्यार्थो गिरेऽहं परिकीर्तितः॥ २०

त्वंपदस्य च वाच्यार्थो जीव एव न संशयः।
उभयोरैक्यमसिना पदेन प्रोच्यते बुधैः॥ २१

वाच्यार्थयोर्विरुद्धत्वादैक्यं नैव घटेत ह।
लक्षणातः प्रकर्तव्या तत्त्वमोः श्रुतिसंस्थयोः॥ २२

चिन्मात्रं तु तयोर्लक्ष्यं तयोरैक्यस्य सम्भवः।
तयोरैक्यं तथा ज्ञात्वा स्वाभेदेनाद्वयो भवेत्॥ २३

देवदत्तः स एवायमितिवल्लक्षणा स्मृता।
स्थूलादिदेहरहितो ब्रह्म सम्पद्यते नरः॥ २४

पञ्चीकृतमहाभूतसम्भूतः स्थूलदेहकः।
भोगालयो जराव्याधिसंयुतः सर्वकर्मणाम्॥ २५

मिथ्याभूतोऽयमाभाति स्फुटं मायामयत्वतः।
सोऽयं स्थूल उपाधिः स्यादात्मनो मे नगेश्वर॥ २६

ज्ञानकर्मेन्द्रिययुतं प्राणपञ्चकसंयुतम्।
मनोबुद्धियुतं चैतत्सूक्ष्मं तत्कवयो विदुः॥ २७

अपञ्चीकृतभूतोत्थं सूक्ष्मदेहोऽयमात्मनः।
द्वितीयोऽयमुपाधिः स्यात्सुखादेरवबोधकः॥ २८

अनाद्यनिर्वाच्यमिदमज्ञानं तु तृतीयकः।
देहोऽयमात्मनो भाति कारणात्मा नगेश्वर॥ २९

उपाधिविलये जाते केवलात्मावशिष्यते।
देहत्रये पञ्चकोशा अन्तःस्थाः सन्ति सर्वदा॥ ३०

हे पर्वत! वाक्यार्थमें पदार्थज्ञान कारण होता है, अतः पहले पदार्थका ज्ञान होता है, उसके बाद वाक्यार्थकी प्रतीति होती है। हे पर्वत! '**तत्**' पदके वाच्यार्थके रूपमें मैं ही कही गयी हूँ। '**त्वम्**' पदका वाच्यार्थ जीव ही है, इसमें कोई संशय नहीं है। विद्वान् पुरुष '**असि**' पदसे '**तत्**' और '**त्वम्**'—इन दोनों पदोंकी एकता बतलाते हैं॥ २०-२१॥

इन दोनों पदोंके वाच्यार्थ परस्पर विरोधी होनेसे इन पदार्थोंकी एकता सम्भव नहीं है, अतः श्रुतिप्रतिपादित इन '**तत्**' और '**त्वम्**'—दोनों पदोंके वाच्यार्थमें विशेषण-रूपसे सन्निविष्ट सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व धर्मका भागत्यागलक्षणाके द्वारा त्याग करके केवल चैतन्यांशको ग्रहण करनेसे उनकी एकता सम्भव होती है। उनके ऐक्यका इस प्रकार बोध हो जानेपर स्वगत भेद समाप्त होकर अद्वैत बुद्धिका उदय हो जाता है॥ २२-२३॥

'वह यही देवदत्त है'—इस वाक्यार्थमें देवदत्त और तत् पदके अभेद-बोधके लिये जैसे लक्षणा आवश्यक है, वैसी ही लक्षणा यहाँ समझनी चाहिये। स्थूलादि देहमें जीवका जो स्वरूपाध्यास है, उसकी निवृत्ति हो जानेपर वह जीव ब्रह्म ही हो जाता है॥ २४॥

पंचीकरणसे युक्त पाँच महाभूतोंसे रचित यह स्थूल शरीर सभी कर्मोंके भोगोंका आश्रय है। यह देह वृद्धत्व एवं रोगसे संयुक्त होनेवाला है। हे पर्वतराज! मायामय होनेके कारण ही यह मिथ्याभूत देह सत्य प्रतीत होता है। यह स्थूल शरीर भी मेरी आत्माकी ही उपाधि है॥ २५-२६॥

यह जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धिसे युक्त है तथा अपंचीकृत भूतोंसे उत्पन्न है, उसे विद्वानोंने सूक्ष्म शरीर कहा है। सुख-दुःखका बोध करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर आत्माकी दूसरी उपाधि है॥ २७-२८॥

हे पर्वतराज! अनादि, अनिर्वचनीय और अज्ञानमूलक जो यह कारण शरीर है, वही आत्माके तीसरे शरीरके रूपमें प्रतीत होता है। तीनों उपाधियों (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर)-का विलय हो जानेपर केवल परमात्मा ही शेष रह जाता है। इन तीनों देहोंके भीतर पंचकोश सदा स्थित रहते हैं। पंचकोशका परित्याग कर देनेपर

पञ्चकोशपरित्यागे ब्रह्मपुच्छं हि लभ्यते।
नेतिनेतीत्यादिवाक्यैर्मम रूपं यदुच्यते॥ ३१

न जायते म्रियते तत्कदाचि-
न्नायं भूत्वा न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥ ३२

हतं चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥ ३३

अणोरणीयान्महतो महीया-
नात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको
धातुः प्रसादान्महिमानमस्य॥ ३४

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥ ३५

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ ३६

यस्त्वविद्वान्भवति चामनस्कश्च सदाशुचिः।
न तत्पदमवाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ ३७

यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥ ३८

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति मदीयं यत्परं पदम्॥ ३९

ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जो 'नेति-नेति' आदि श्रुतिवाक्योंके द्वारा सम्बोधित किया जाता है और जिसे मेरा ही रूप कहा जाता है॥ २९—३१॥

यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर कभी हुआ भी नहीं। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता है॥ ३२॥

यदि कोई मारनेवाला आत्माको मारनेमें समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जानेवाला व्यक्ति अपनेको मरा हुआ मानता है तो वे दोनों ही आत्मस्वरूपको नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न तो मारा जाता है॥ ३३॥

यह आत्मा अणुसे भी सूक्ष्म है और महान्‌से भी महान् है। यह आत्मा (परमात्मा) इस जीवात्माके हृदयरूप गुफा (बुद्धि)-में निहित रहनेवाला है। संकल्प-विकल्परहित और चिन्तामुक्त साधक ही परमात्माकी उस महिमाको परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे देख पाता है॥ ३४॥

जीवात्माको रथका स्वामी और शरीरको रथ समझिये। बुद्धिको सारथि और मनको ही लगाम समझिये॥ ३५॥

विद्वान्‌लोग इन्द्रियोंको घोड़े, विषयोंको उन घोड़ोंके विचरनेका मार्ग बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा मन—इनके साथ रहनेवाले जीवात्माको भोक्ता कहते हैं॥ ३६॥

जो मनुष्य सदा अज्ञानी, असंयतचित्त और अपवित्र रहता है; वह उस परम पदको नहीं प्राप्त कर पाता और बार-बार संसारमें जन्म लेता रहता है। किंतु जो सदा ज्ञानशील, संयतचित्त और पवित्र रहता है; वह तो उस परम पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे लौटकर पुनः जन्म धारण नहीं करना पड़ता॥ ३७-३८॥

जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न और मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसारमार्गसे पार जो मेरा परम पद है; उसे प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

इत्थं श्रुत्या च मत्या च निश्चित्यात्मानमात्मना।
भावयेन्मामात्मरूपां निदिध्यासनतोऽपि च॥ ४०

योगवृत्तेः पुरा स्वस्मिन्भावयेदक्षरत्रयम्।
देवीप्रणवसंज्ञस्य ध्यानार्थं मन्त्रवाच्ययोः॥ ४१

हकारः स्थूलदेहः स्याद्रकारः सूक्ष्मदेहकः।
ईकारः कारणात्मासौ ह्रींकारोऽहं तुरीयकम्॥ ४२

एवं समष्टिदेहेऽपि ज्ञात्वा बीजत्रयं क्रमात्।
समष्टिव्यष्ट्योरेकत्वं भावयेन्मतिमान्नरः॥ ४३

समाधिकालात्पूर्वं तु भावयित्वैवमादृतः।
ततो ध्यायेन्निलीनाक्षो देवीं मां जगदीश्वरम्॥ ४४

प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ।
निवृत्तविषयाकाङ्क्षो वीतदोषो विमत्सरः॥ ४५

भक्त्या निर्व्याजया युक्तो गुहायां निःस्वने स्थले।
हकारं विश्वमात्मानं रकारे प्रविलापयेत्॥ ४६

रकारं तैजसं देवमीकारे प्रविलापयेत्।
ईकारं प्राज्ञमात्मानं ह्रींकारे प्रविलापयेत्॥ ४७

वाच्यवाचकताहीनं द्वैतभावविवर्जितम्।
अखण्डं सच्चिदानन्दं भावयेत्तच्छिखान्तरे॥ ४८

इति ध्यानेन मां राजन् साक्षात्कृत्य नरोत्तमः।
मद्रूप एव भवति द्वयोरप्येकता यतः॥ ४९

इस प्रकार [वेदान्त-] श्रवण तथा मननके द्वारा अपने यथार्थ स्वरूपका निश्चय करके बार-बार गम्भीर चिन्तन-मननके द्वारा मुझ परमात्मस्वरूपिणी भगवतीकी भावना करनी चाहिये॥ ४०॥

मन्त्र और अर्थके स्वरूपके सम्यक् ध्यानके लिये सर्वप्रथम योगाभ्यासमें प्रतिष्ठित होकर देवीप्रणव नामक मन्त्रके तीनों अक्षरोंकी अपने भीतर भावना करनी चाहिये॥ ४१॥

'हकार' स्थूलदेह, 'रकार' सूक्ष्मदेह और ईकार कारणदेह है। 'ह्रीं' यह चतुर्थरूप स्वयं मैं हूँ। इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि समष्टि शरीरमें भी क्रमशः तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि—इन दोनों रूपोंकी एकताका चिन्तन करे॥ ४२-४३॥

समाधिकालके पूर्व ही आदरपूर्वक इस प्रकारकी भावना करके पुनः उसके बाद दोनों नेत्र बन्दकर मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ४४॥

उस समय साधकको चाहिये कि वह किसी गुफा अथवा शब्दरहित एकान्त स्थानमें आसीन होकर विषयभोगोंकी कामनासे रहित, दोषमुक्त तथा ईर्ष्याशून्य रहते हुए और नासिकाके भीतर विचरणशील प्राण तथा अपान वायुको समान स्थितिमें करके निष्कपट भक्तिसे सम्पन्न होकर विश्वात्मारूप हकारको रकारमें समाविष्ट करे अर्थात् हकारवाच्य स्थूलदेहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करे, तैजस देवस्वरूप रकारको ईकारमें समाविष्ट करे अर्थात् रकारवाच्य तैजस—सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारणदेहमें लीन करे और प्राज्ञस्वरूप ईकारको ह्रींकारमें समाविष्ट करे अर्थात् ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लीन करे॥ ४५—४७॥

तब वाच्य-वाचकसे रहित, समस्त द्वैतभावसे परे अखण्ड सच्चिदानन्दकी भावना अपने शिखास्थान (सहस्रार)-में करे। हे राजन्! इस प्रकारके ध्यानसे श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार करके मेरे ही रूपवाला हो जाता है; क्योंकि दोनोंमें सदा एकता सिद्ध है। इस

योगयुक्त्यानया दृष्ट्वा मामात्मानं परात्परम्।
अज्ञानस्य सकार्यस्य तत्क्षणे नाशको भवेत्॥ ५०

योगरीतिसे मुझ परमात्मरूप परात्पर भगवतीका दर्शन करके साधक तत्क्षण कर्मसहित अपने अज्ञानका नाश करनेवाला हो जाता है॥ ४८—५०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्ववर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीद्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा कुण्डलीजागरणकी विधि बताना

हिमालय उवाच

योगं वद महेशानि साङ्गं संवित्प्रदायकम्।
कृतेन येन योग्योऽहं भवेयं तत्त्वदर्शने॥ १

देव्युवाच

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनोराहुर्योगं योगविशारदाः॥ २

तत्प्रत्यूहाः षडाख्याता योगविघ्नकरानघ।
कामक्रोधौ लोभमोहौ मदमात्सर्यसंज्ञकौ॥ ३

योगाङ्गैरेव भित्त्वा तान्योगिनो योगमाप्नुयुः।
यमं नियममासनप्राणायामौ ततः परम्॥ ४

प्रत्याहारं धारणाख्यं ध्यानं सार्धं समाधिना।
अष्टाङ्गान्याहुरेतानि योगिनां योगसाधने॥ ५

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमा दश॥ ६

तपः सन्तोष आस्तिक्यं दानं देवस्य पूजनम्।
सिद्धान्तश्रवणं चैव ह्रीर्मतिश्च जपो हुतम्॥ ७

दशैते नियमाः प्रोक्ता मया पर्वतनायक।
पद्मासनं स्वस्तिकं च भद्रं वज्रासनं तथा॥ ८

वीरासनमिति प्रोक्तं क्रमादासनपञ्चकम्।
ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले शुभे॥ ९

अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः।
पद्मासनमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्॥ १०

हिमालय बोले—हे महेश्वरि! अब आप ज्ञान प्रदान करनेवाले योगका सांगोपांग वर्णन कीजिये, जिसकी साधनासे मैं तत्त्वदर्शनकी प्राप्तिके योग्य हो जाऊँ॥ १॥

देवी बोलीं—यह योग न आकाशमण्डलमें है, न पृथ्वीतलपर है और न तो रसातलमें ही है। योगविद्याके विद्वानोंने जीव और आत्माके ऐक्यको ही योग कहा है॥ २॥

हे अनघ! उस योगमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक—ये छः प्रकारके दोष बताये गये हैं॥ ३॥

अतः योगके अंगोंके द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगियोंको योगकी प्राप्ति करनी चाहिये। योगियोंके लिये योगसिद्धिहेतु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ अंग बताये गये हैं॥ ४-५॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और शौच—ये दस प्रकारके यम कहे गये हैं॥ ६॥

हे पर्वतराज! तप, संतोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, शास्त्रसिद्धान्तोंका श्रवण, लज्जा, सद्‌बुद्धि, जप और हवन—ये दस नियम मेरे द्वारा कहे गये हैं॥ ७॥

पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन—क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों शुभ तलवोंको सम्यक् रूपसे जंघोंपर रखकर पीठकी ओरसे हाथोंको ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको और बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़े; योगियोंके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह पद्मासन कहा गया है॥ ८—१०॥

जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले शुभे।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥ ११

सीवन्याः पार्श्वयोर्न्यस्य गुल्फयुग्मं सुनिश्चितम्।
वृषणाधः पादपार्ष्णी पार्ष्णिभ्यां परिबन्धयेत्॥ १२

भद्रासनमिति प्रोक्तं योगिभिः परिपूजितम्।
ऊर्वोः पादौ क्रमान्न्यस्य जान्वोः प्रत्यङ्मुखाङ्गुली॥ १३

करौ विदध्यादाख्यातं वज्रासनमनुत्तमम्।
एकं पादमधः कृत्वा विन्यस्योरुं तथोत्तरे॥ १४

ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासनमितीरितम्।
इडयाकर्षयेद्वायुं बाह्यं षोडशमात्रया॥ १५

धारयेत्पूरितं योगी चतुःषष्ट्या तु मात्रया।
सुषुम्णामध्यगं सम्यग्द्वात्रिंशन्मात्रया शनैः॥ १६

नाड्या पिङ्गलया चैव रेचयेद्योगवित्तमः।
प्राणायाममिमं प्राहुर्योगशास्त्रविशारदाः॥ १७

भूयो भूयः क्रमात्तस्य बाह्यमेवं समाचरेत्।
मात्रावृद्धिक्रमेणैव सम्यग्द्वादश षोडश॥ १८

जपध्यानादिभिः सार्धं सगर्भं तं विदुर्बुधाः।
तदपेतं विगर्भं च प्राणायामं परे विदुः॥ १९

क्रमादभ्यस्यतः पुंसो देहे स्वेदोद्गमोऽधमः।
मध्यमः कम्पसंयुक्तो भूमित्यागः परो मतः॥ २०

उत्तमस्य गुणावाप्तिर्यावच्छीलनमिष्यते।

जाँघ और घुटनेके बीचमें पैरके दोनों सुन्दर तलवोंको अच्छी तरह करके योगीको शरीर सीधाकर बैठना चाहिये। इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है॥ ११॥

सीवनीके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अण्डकोषके नीचे अच्छी तरह रखकर दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर बैठना चाहिये। योगियोंके द्वारा सम्यक् पूजित यह आसन भद्रासन कहा गया है॥ १२½॥

दोनों पैरोंको क्रमशः दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें सीधी अँगुलीवाले दोनों हाथ स्थापित करके बैठनेको अत्युत्तम वज्रासन कहा गया है॥ १३½॥

एक पैरको नीचे करके उसके ऊपर दूसरे पैरका जंघा रखकर योगीको शरीर सीधा करके बैठना चाहिये; यह वीरासन कहा गया है॥ १४½॥

योगी सोलह बार प्रणवका उच्चारण करनेमें लगनेवाले समयतक इडा अर्थात् बायीं नासिकासे बाहरकी वायुको खींचे (पूरक), पुनः इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवके उच्चारणसमयतक सुषुम्नाके मध्य रोके रहे (कुम्भक) और इसके बाद योगविद्‌को चाहिये कि बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे—उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला नाडी अर्थात् दायीं नासिकाके द्वारा उस वायुको बाहर करे (रेचक)। योगशास्त्रके विद्वान् इस प्रक्रियाको 'प्राणायाम' कहते हैं॥ १५—१७॥

इस प्रकार पुनः-पुनः बाहरकी वायुको लेकर क्रमसे पूरक, कुंभक तथा रेचक करके प्राणायामका अभ्यास मात्रा (प्रणवके उच्चारणके समय)-की वृद्धिके अनुसार करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार इसके बाद क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिये॥ १८॥

जो प्राणायाम [अपने इष्टके] जप-ध्यान आदिसे युक्त होता है, उसे विद्वज्जनोंने सगर्भ प्राणायाम और उस जप-ध्यानसे रहित प्राणायामको विगर्भ प्राणायाम कहा है॥ १९॥

इस प्रकार क्रमसे अभ्यास करते हुए मनुष्यके शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे अधम, कम्पन उत्पन्न होनेपर मध्यम और जमीन छोड़कर ऊपर उठनेपर उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जबतक उत्तम प्राणायामतक पहुँचा जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये॥ २०½॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु निरर्गलम्॥ २१

बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारोऽभिधीयते।
अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुमूलाधोलिङ्गनाभिषु ॥ २२

हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि।
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि॥ २३

धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना॥ २४

आत्मन्यभीष्टदेवानां ध्यानं ध्यानमिहोच्यते।
समत्वभावना नित्यं जीवात्मपरमात्मनोः॥ २५

समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम्।
इदानीं कथये तेऽहं मन्त्रयोगमनुत्तमम्॥ २६

विश्वं शरीरमित्युक्तं पञ्चभूतात्मकं नग।
चन्द्रसूर्याग्नितेजोभिर्जीवब्रह्मैक्यरूपकम् ॥ २७

तिस्रः कोट्यस्तदर्धेन शरीरे नाडयो मताः।
तासु मुख्या दश प्रोक्तास्ताभ्यस्तिस्रो व्यवस्थिताः॥ २८

प्रधाना मेरुदण्डेऽत्र चन्द्रसूर्याग्निरूपिणी।
इडा वामे स्थिता नाडी शुभ्रा तु चन्द्ररूपिणी॥ २९

शक्तिरूपा तु सा नाडी साक्षादमृतविग्रहा।
दक्षिणे या पिङ्गलाख्या पुंरूपा सूर्यविग्रहा॥ ३०

सर्वतेजोमयी सा तु सुषुम्णा वह्निरूपिणी।
तस्या मध्ये विचित्राख्ये इच्छाज्ञानक्रियात्मकम्॥ ३१

मध्ये स्वयम्भूलिङ्गं तु कोटिसूर्यसमप्रभम्।
तदूर्ध्वं मायाबीजं तु हरात्माबिन्दुनादकम्॥ ३२

तदूर्ध्वं तु शिखाकारा कुण्डली रक्तविग्रहा।
देव्यात्मिका तु सा प्रोक्ता मदभिन्ना नगाधिप॥ ३३

अपने-अपने विषयोंमें स्वच्छन्दरूपसे विचरण करती हुई इन्द्रियोंको उन विषयोंसे बलपूर्वक हटानेको प्रत्याहार कहा जाता है॥ २१½ ॥

अँगूठा, एड़ी, घुटना, जाँघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य और मस्तक—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको धारणा कहा जाता है॥ २२-२३½ ॥

चेतन आत्मामें मनको स्थित करके एकाग्रचित्त होकर अपने भीतर अभीष्ट देवताका सतत चिन्तन करनेको ध्यान कहा जाता है॥ २४½ ॥

मुनियोंने जीवात्मा और परमात्मामें नित्य 'समत्व' भावना रखनेको समाधि कहा है। यह मैंने आपको अष्टांगयोगका लक्षण बतला दिया। अब मैं आपसे उत्कृष्ट मन्त्रयोगका वर्णन कर रही हूँ॥ २५-२६ ॥

हे नग! इस पंचभूतात्मक शरीरको 'विश्व' कहा जाता है। चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे युक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्नामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है॥ २७॥

इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। उनमें दस नाड़ियाँ मुख्य कही गयी हैं। उनमें भी तीन नाड़ियोंको प्रधान कहा गया है। चन्द्र, सूर्य तथा अग्निस्वरूपिणी—ये नाड़ियाँ मेरुदण्डमें व्यवस्थित रहती हैं। चन्द्ररूपिणी श्वेत 'इडा' नाड़ी उसके बायीं ओर स्थित है। शक्तिरूपा वह इडा नाड़ी साक्षात् अमृतस्वरूपिणी है। दायीं ओर जो 'पिंगला' नामक नाड़ी है, वह पुरुषरूपिणी तथा सूर्यमूर्ति है। उनके बीचमें जो सर्वतेजोमयी तथा अग्निरूपिणी नाड़ी स्थित है, वह 'सुषुम्ना' है॥ २८—३०॥

उसके भीतर 'विचित्रा' नामक नाड़ी स्थित है और उसके भीतर इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तिसे सम्पन्न करोड़ों सूर्योंके तेजके समान स्वयम्भूलिंग है। उसके ऊपर बिन्दुनाद (ँ)-सहित हरात्मा (हकार, रेफ तथा ईकार)-स्वरूप मायाबीज (ह्रीं) विराजमान है। उसके ऊपर रक्त विग्रहवाली शिखाके आकारकी कुण्डलिनी है। हे पर्वतराज हिमालय! वह देव्यात्मिका कही गयी है और मुझसे अभिन्न है॥ ३१—३३॥

तद्बाह्ये हेमरूपाभं वादिसान्तचतुर्दलम्।
द्रुतहेमसमप्रख्यं पद्मं तत्र विचिन्तयेत्॥ ३४

तदूर्ध्वं त्वनलप्रख्यं षड्दलं हीरकप्रभम्।
बादिलान्तषड्वर्णेन स्वाधिष्ठानमनुत्तमम्॥ ३५

मूलमाधारषट्कोणं मूलाधारं ततो विदुः।
स्वशब्देन परं लिङ्गं स्वाधिष्ठानं ततो विदुः॥ ३६

तदूर्ध्वं नाभिदेशे तु मणिपूरं महाप्रभम्।
मेघाभं विद्युदाभं च बहुतेजोमयं ततः॥ ३७

मणिवद्भिन्नं तत्पद्मं मणिपद्मं तथोच्यते।
दशभिश्च दलैर्युक्तं डादिफान्ताक्षरान्वितम्॥ ३८

विष्णुनाधिष्ठितं पद्मं विष्ण्वालोकनकारणम्।
तदूर्ध्वेनाहतं पद्ममुद्यदादित्यसन्निभम्॥ ३९

कादिठान्तदलैरर्कपत्रैश्च समधिष्ठितम्।
तन्मध्ये बाणलिङ्गं तु सूर्यायुतसमप्रभम्॥ ४०

शब्दब्रह्ममयं शब्दानाहतं तत्र दृश्यते।
अनाहताख्यं तत्पद्मं मुनिभिः परिकीर्तितम्॥ ४१

आनन्दसदनं तत्तु पुरुषाधिष्ठितं परम्।
तदूर्ध्वं तु विशुद्धाख्यं दलं षोडशपङ्कजम्॥ ४२

स्वरैः षोडशभिर्युक्तं धूम्रवर्णं महाप्रभम्।
विशुद्धं तनुते यस्माजीवस्य हंसलोकनात्॥ ४३

विशुद्धं पद्ममाख्यातमाकाशाख्यं महाद्भुतम्।

कुण्डलिनीके बाह्यभागमें स्वर्णवर्णके चतुर्दल कमल [मूलाधार]-का चिन्तन करना चाहिये, जिसपर व, श, ष, स—ये चार बीजाक्षर स्थित हैं। उसके ऊपर छः दलवाला उत्तम स्वाधिष्ठान पद्म स्थित है, जो अग्निके समान तेजोमय, हीरेकी चमकवाला और ब, भ, म, य, र, ल—इन छः बीजाक्षरोंसे युक्त है। आधार षट्कोणपर स्थित होनेके कारण मूलाधार तथा स्व शब्दसे परम लिंगको इंगित करनेके कारण स्वाधिष्ठान संज्ञा है॥ ३४—३६॥

इसके ऊपर नाभिदेशमें मेघ तथा विद्युत्के समान कान्तिवाला अत्यन्त तेजसम्पन्न और महान् प्रभासे युक्त मणिपूरक चक्र है। मणिके सदृश प्रभावाला होनेके कारण यह 'मणिपद्म' भी कहा जाता है। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—इन अक्षरोंसे समन्वित है। भगवान् विष्णुके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण यह कमल उनके दर्शनका महान् साधन है॥ ३७-३८½॥

उसके ऊपर उगते हुए सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न अनाहत पद्म है। यह कमल क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ—इन अक्षरोंसे युक्त बारह पत्रोंसे प्रतिष्ठित है। उसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला बाणलिंग स्थित है। बिना किसी आघातके इसमें शब्द होता रहता है। अतः मुनियोंके द्वारा उस शब्दब्रह्ममय पद्मको 'अनाहत' कहा गया है। परमपुरुषद्वारा अधिष्ठित वह चक्र आनन्दसदन है॥ ३९—४१½॥

उसके ऊपर सोलह दलोंसे युक्त 'विशुद्ध' नामक कमल है। महती प्रभासे युक्त तथा धूम्रवर्णवाला यह कमल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसमें हंसस्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है, इसीलिये इसे विशुद्ध पद्म (विशुद्ध चक्र) कहा गया है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहा गया है॥ ४२-४३½॥

आज्ञाचक्रं तदूर्ध्वं तु आत्मनाधिष्ठितं परम्॥ ४४

आज्ञासंक्रमणं तत्र तेनाज्ञेति प्रकीर्तितम्।
द्विदलं हक्षसंयुक्तं पद्मं तत्सुमनोहरम्॥ ४५

कैलासाख्यं तदूर्ध्वं तु रोधिनी तु तदूर्ध्वतः।
एवं त्वाधारचक्राणि प्रोक्तानि तव सुव्रत॥ ४६

सहस्त्रारयुतं बिन्दुस्थानं तदूर्ध्वमीरितम्।
इत्येतत्कथितं सर्वं योगमार्गमनुत्तमम्॥ ४७

आदौ पूरकयोगेनाप्याधारे योजयेन्मनः।
गुदमेढ्रान्तरे शक्तिस्तामाकुञ्च्य प्रबोधयेत्॥ ४८

लिङ्गभेदक्रमेणैव बिन्दुचक्रं च प्रापयेत्।
शम्भुना तां परां शक्तिमेकीभूतां विचिन्तयेत्॥ ४९

तत्रोत्थितामृतं यत्तु द्रुतलाक्षारसोपमम्।
पाययित्वा तु तां शक्तिं मायाख्यां योगसिद्धिदाम्॥ ५०

षट्चक्रदेवतास्तत्र सन्तर्प्यामृतधारया।
आनयेत्तेन मार्गेण मूलाधारं ततः सुधीः॥ ५१

एवमभ्यस्यमानस्याप्यहन्यहनि निश्चितम्।
पूर्वोक्तदूषिता मन्त्राः सर्वे सिद्ध्यन्ति नान्यथा॥ ५२

जरामरणदुःखाद्यैर्मुच्यते भवबन्धनात्।
ये गुणाः सन्ति देव्या मे जगन्मातुर्यथा तथा॥ ५३

ते गुणाः साधकवरे भवन्त्येव न चान्यथा।

उसके ऊपर परमात्माके द्वारा अधिष्ठित श्रेष्ठ 'आज्ञाचक्र' है। उसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है, इसीसे उसे 'आज्ञाचक्र'—ऐसा कहा गया है। वह कमल दो दलोंवाला, ह तथा क्ष—इन दो अक्षरोंसे युक्त और अत्यन्त मनोहर है॥ ४४-४५॥

उसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र और उसके भी ऊपर 'रोधिनी' नामक चक्र स्थित है। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने आपको आधारचक्रोंके विषयमें बता दिया। इसके और भी ऊपर सहस्त्र दलोंसे सम्पन्न बिन्दुस्थानरूप 'सहस्त्रारचक्र' बताया गया है। यह मैंने आपसे सम्पूर्ण श्रेष्ठ योगमार्गका वर्णन कर दिया॥ ४६-४७॥

सर्वप्रथम पूरक प्राणायामके द्वारा मूलाधारमें मन लगाना चाहिये। तत्पश्चात् गुदा और मेढ्रके बीचमें वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जाग्रत् करना चाहिये। पुनः लिंग-भेदनके क्रमसे स्वयम्भूलिंगसे आरम्भ करके उस कुण्डलिनी शक्तिको बिन्दुचक्र [सहस्त्रार]-तक ले जाना चाहिये। इसके बाद उस परा शक्तिका सहस्त्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करना चाहिये॥ ४८-४९॥

वहाँ द्रवीभूत लाक्षारसके समान उत्पन्न अमृतका योगसिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामक उस शक्तिको पान कराकर षट्चक्रमें स्थित देवताओंको उस अमृतधारासे सन्तृप्त करे। इसके बाद बुद्धिमान् साधक उसी मार्गसे कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये॥ ५०-५१॥

इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करनेपर साधकके पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र भी निश्चितरूपसे सिद्ध हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसके द्वारा साधक जरा-मरण आदि दुःखों तथा भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो गुण मुझ जगज्जननी भगवतीमें जिस प्रकार विद्यमान हैं, वे सभी गुण उसी प्रकार उस श्रेष्ठ साधकमें उत्पन्न हो जाते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ५२-५३½॥

इत्येवं कथितं तात वायुधारणमुत्तमम्॥ ५४

इदानीं धारणाख्यं तु शृणुष्वावहितो मम।
दिक्कालाद्यनवच्छिन्नदेव्यां चेतो विधाय च॥ ५५

तन्मयो भवति क्षिप्रं जीवब्रह्मैक्ययोजनात्।
अथवा समलं चेतो यदि क्षिप्रं न सिद्ध्यति॥ ५६

तदावयवयोगेन योगी योगान्समभ्यसेत्।
मदीयहस्तपादादावङ्गे तु मधुरे नग॥ ५७

चित्तं संस्थापयेन्मन्त्री स्थानं स्थानजयात्पुनः।
विशुद्धचित्तः सर्वस्मिन्रूपे संस्थापयेन्मनः॥ ५८

यावन्मनो लयं याति देव्यां संविदि पर्वत।
तावदिष्टमनुं मन्त्री जपहोमैः समभ्यसेत्॥ ५९

मन्त्राभ्यासेन योगेन ज्ञेयज्ञानाय कल्पते।
न योगेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विना हि सः॥ ६०

द्वयोरभ्यासयोगो हि ब्रह्मसंसिद्धिकारणम्।
तमः परिवृते गेहे घटो दीपेन दृश्यते॥ ६१

एवं मायावृतो ह्यात्मा मनुना गोचरीकृतः।
इति योगविधिः कृत्स्नः साङ्गः प्रोक्तो मयाधुना।
गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्रकोटिभिः॥ ६२

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे इस श्रेष्ठ प्राणायामका वर्णन किया है। अब आप सावधान होकर मुझसे धारणा नामक योगका श्रवण कीजिये। दिशा, काल आदिसे अपरिच्छिन्न मुझ भगवतीमें चित्त स्थिर करके जीव और ब्रह्मका ऐक्य हो जानेसे शीघ्र ही साधक तन्मय हो जाता है और यदि चित्तके मलयुक्त रहनेके कारण शीघ्रतापूर्वक सिद्धि प्राप्त न हो तो योगीको चाहिये कि मेरे विग्रहके अंगोंमें [अपना मन स्थित करके] निरन्तर योगका अभ्यास करता रहे। हे पर्वत! साधकको मेरे करचरणादि मधुर अंगोंमें चित्तको एक-एक करके केन्द्रित करना चाहिये और इस प्रकार विशुद्धचित्त होकर उसे मेरे समस्त रूपमें मनको स्थिर करना चाहिये। हे पर्वत! जबतक ज्ञानरूपिणी मुझ भगवतीमें मनका लय न हो जाय, तबतक मन्त्रजापकको जप-होमके द्वारा अपने इष्ट मन्त्रका अभ्यास करते रहना चाहिये॥ ५४—५९॥

मन्त्राभ्यास-योगके द्वारा ज्ञेय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। योगके बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और मन्त्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता। अतः योग और मन्त्र—इन दोनोंका अभ्यास-योग ही ब्रह्मसिद्धिका साधन है। अन्धकारसे आच्छादित घरमें स्थित घड़ा दीपकके प्रकाशमें दिखायी देने लगता है, इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार मैंने अंगोंसहित सम्पूर्ण योगविधि इस समय आपको बतला दी। गुरुके उपदेशसे ही यह योग जाना जा सकता है, इसके विपरीत करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा भी यह प्राप्त नहीं किया जा सकता॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
देवीगीतायां मन्त्रसिद्धिसाधनवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

भगवतीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन

देव्युवाच

इत्यादियोगयुक्तात्मा ध्यायेन्मां ब्रह्मरूपिणीम्।
भक्त्या निर्व्याजया राजन्नासने समुपस्थितः॥ १

देवी बोलीं—हे राजन्! इस प्रकार आसनपर सम्यक् विराजमान होकर योगसे युक्त चित्तवाले साधकको निष्कपट भक्तिके साथ मुझ ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करना चाहिये॥ १॥

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम महत्पदम्।
अत्रैतत्सर्वमर्पितमेजत्प्राणनिमिषच्च यत्॥ २

एतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं
विज्ञानाद्यद्वरिष्ठं प्रजानाम्।
यदर्चिमद्यदणुभ्योऽणु च
यस्मिँल्लोका निहिता लोकिनश्च॥ ३

तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदु वाङ्मनः।
तदेतत्सत्यममृतं तद्वेद्धव्यं सौम्य विद्धि॥ ४

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासानिशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सौम्य विद्धि॥ ५

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥ ६

यस्मिन्द्यौश्च पृथिवी चान्तरिक्षमोतं
मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथात्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः॥ ७

अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः॥ ८

ओमित्येवं ध्यायथात्मानं
स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्।
दिव्ये ब्रह्मपुरे व्योम्नि आत्मा सम्प्रतिष्ठितः॥ ९

जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदयरूपी गुफामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध परम तत्त्व है; उसीमें जितने भी चेष्टायुक्त, श्वास लेनेवाले तथा नेत्र खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं—वे सब उस ब्रह्ममें ही कल्पित हैं॥ २॥

जो सत्कारणरूप माया तथा असत्कार्यरूप जगत्—इन दोनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ, प्राणियोंके ज्ञानसे परे अर्थात् उनके ज्ञानका अविषय, सर्वोत्कृष्ट तथा सबको प्रकाशित करनेवाला, अणुसे भी अणु (सूक्ष्म) है और जिसमें सभी लोक तथा उसमें रहनेवाले प्राणी स्थित हैं—उस ब्रह्मको आपलोग जानिये॥ ३॥

जो अक्षरब्रह्म है—वही सबका प्राण है, वही वाणी है, वही सबका मन है, वही परम सत्य तथा अमृतस्वरूप है। अतः हे सौम्य [पर्वतराज]! उस भेदन करनेयोग्य ब्रह्मस्वरूप लक्ष्यका भेदन करो॥ ४॥

हे सौम्य! उपनिषदरूपी महान् धनुषास्त्र लेकर उसपर उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किये गये बाणको स्थापित करो और इसके बाद विषयोंसे विरक्त और भगवद्भावभावित चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको लक्ष्य करके वेधन करो॥ ५॥

प्रणव धनुष, जीवात्मा बाण और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित होकर उसका भेदन करना चाहिये और बाणकी भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये॥ ६॥

जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओतप्रोत है, उसी एकमात्र परब्रह्मको जानो और अन्य बातोंका परित्याग कर दो; [भवसागरसे पार होनेके लिये] यही अमृतका सेतु है॥ ७॥

रथके चक्केमें लगे अरोंकी भाँति जिस हृदयमें शरीरकी नाडियाँ एकत्र स्थित हैं—उसी हृदयमें विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म निरन्तर संचरण करता है॥ ८॥

संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये 'ओम्'—इस प्रणवमन्त्रके जपसे परमात्माका ध्यान करो। आपका कल्याण हो। वह परमात्मा अन्धकारसे सर्वथा परे ब्रह्मलोकस्वरूप दिव्य आकाश (हृदय)-में प्रतिष्ठित है॥ ९॥

मनोमयः प्राणशरीरनेता
प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा
आनन्दरूपममृतं यद्विभाति॥ १०

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ ११

हिरण्मये परे कोशे विराजं ब्रह्म निष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः॥ १२

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥ १३

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म
पश्चाद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं वरिष्ठम्॥ १४

एतादृगनुभवो यस्य स कृतार्थो नरोत्तमः।
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति॥ १५

द्वितीयाद्वै भयं राजंस्तदभावाद् बिभेति न।
न तद्वियोगो मेऽप्यस्ति मद्वियोगोऽपि तस्य न॥ १६

अहमेव स सोऽहं वै निश्चितं विद्धि पर्वत।
मद्दर्शनं तु तत्र स्याद्यत्र ज्ञानी स्थितो मम॥ १७

वह परब्रह्म मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करता है। वह समस्त प्राणियोंके हृदयमें निहित रहकर अन्नमय स्थूल शरीरमें प्रतिष्ठित है। जो आनन्दस्वरूप तथा अमृतमय परमात्मा सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है, उसे विज्ञान (अपरोक्षानुभूति)-के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष भलीभाँति दृष्टिगत कर लेते हैं॥ १०॥

उस कार्य-कारणरूप परमात्माको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी ग्रन्थिका भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्मपदार्थोंमें स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं॥ ११॥

वह निष्कल (व्यापक) ब्रह्म स्वर्णमय परकोश (आनन्दमयकोश)-में विराजमान है। वह शुभ्र तथा परम प्रकाशित वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही जान पाते हैं॥ १२॥

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और ताराओंका समुदाय ही, न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं; फिर यह लौकिक अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है। उसीके प्रकाशित होनेपर सब प्रकाशित होते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उसीके प्रकाशसे आलोकित होता है॥ १३॥

यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, यह ब्रह्म ही पीछे है और यह ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर स्थित है। यह ब्रह्म ही ऊपर तथा नीचे फैला हुआ है। यह समग्र जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है॥ १४॥

जिसका इस प्रकारका अनुभव है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कृतार्थ है। ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्नचित्त रहता है; वह न शोक करता है और न किसी प्रकारकी आकांक्षा रखता है॥ १५॥

हे राजन्! भय दूसरेसे हुआ करता है; द्वैतभाव न रहनेपर [संसारसे] भय नहीं होता। उस ज्ञानीसे मेरा कभी वियोग नहीं होता और मुझसे उस ज्ञानीका वियोग कभी नहीं होता॥ १६॥

हे पर्वत! आप यह निश्चित जान लीजिये कि मैं ही वह हूँ और वही मेरा स्वरूप है। जिस किसी भी स्थानमें ज्ञानी रहे, उसको वहीं मेरा दर्शन होता रहता है॥ १७॥

नाहं तीर्थे न कैलासे वैकुण्ठे वा न कर्हिचित्।
वसामि किं तु मज्ज्ञानिहृदयाम्भोजमध्यमे॥ १८

मत्पूजाकोटिफलदं सकृन्मज्ज्ञानिनोऽर्चनम्।
कुलं पवित्रं तस्यास्ति जननी कृतकृत्यका॥ १९

विश्वम्भरा पुण्यवती चिल्लयो यस्य चेतसः।
ब्रह्मज्ञानं तु यत्पृष्टं त्वया पर्वतसत्तम॥ २०

कथितं तन्मया सर्वं नातो वक्तव्यमस्ति हि।
इदं ज्येष्ठाय पुत्राय भक्तियुक्ताय शीलिने॥ २१

शिष्याय च यथोक्ताय वक्तव्यं नान्यथा क्वचित्।
यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ॥ २२

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।
येनोपदिष्टा विद्येयं स एव परमेश्वरः॥ २३

यस्यायं सुकृतं कर्तुमसमर्थस्ततो ऋणी।
पित्रोरप्यधिकः प्रोक्तो ब्रह्मजन्मप्रदायकः॥ २४

पितृजातं जन्म नष्टं नेत्थं जातं कदाचन।
तस्मै न द्रुह्येदित्यादि निगमोऽप्यवदन्नग॥ २५

तस्माच्छास्त्रस्य सिद्धान्तो ब्रह्मदाता गुरुः परः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न शङ्करः॥ २६

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं तोषयेन्नग।
कायेन मनसा वाचा सर्वदा तत्परो भवेत्॥ २७

अन्यथा तु कृतघ्नः स्यात्कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः।

मैं कभी भी न तीर्थमें, न कैलासपर और न तो वैकुण्ठमें ही निवास करती हूँ। मैं केवल अपने ज्ञानी भक्तके हृदयकमलमें निवास करती हूँ। मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी एक बारकी पूजा मेरी करोड़ों पूजाओंका फल प्रदान करती है॥ १८½ ॥

जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गया, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसे धारण करके पुण्यवती हो गयी॥ १९½ ॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! आपने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब इसके आगे बतानेयोग्य कुछ शेष नहीं है। भक्तिसम्पन्न तथा शीलवान् ज्येष्ठ पुत्र तथा इसी प्रकारके गुणवाले शिष्यको इसे बताना चाहिये, किसी दूसरेसे इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। जिसकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें है; उसी प्रकार गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं॥ २०—२२½ ॥

जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जाता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है। उपदिष्ट विद्याका प्रत्युपकार करनेमें मनुष्य सर्वथा असमर्थ है, इसलिये वह गुरुका सदा ऋणी रहता है। ब्रह्मजन्म प्रदान करनेवाला (ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार करानेवाला) गुरु माता-पितासे भी श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि माता-पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, किंतु गुरुद्वारा प्राप्त ब्रह्मजन्म कभी नष्ट नहीं होता॥ २३-२४½ ॥

हे पर्वत! **'तस्मै न द्रुह्येत्'** अर्थात् उन गुरुसे द्रोह नहीं करना चाहिये। इत्यादि वचन वेदने भी कहे हैं। अतः शास्त्रसिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञानदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है। हे नग! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते, अतः पूर्ण प्रयत्नसे गुरुको सन्तुष्ट रखना चाहिये। तन-मन-वचनसे सर्वदा गुरुपरायण रहना चाहिये, अन्यथा कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्न हो जानेपर उद्धार नहीं होता॥ २५—२७½ ॥

इन्द्रेणाथर्वणायोक्ता शिरश्छेदप्रतिज्ञया॥ २८
अश्विभ्यां कथने तस्य शिरश्छिन्नं च वज्रिणा।
अश्वीयं तच्छिरो नष्टं दृष्ट्वा वैद्यौ सुरोत्तमौ॥ २९
पुनः संयोजितं स्वीयं ताभ्यां मुनिशिरस्तदा।
इति संकटसम्पाद्या ब्रह्मविद्या नगाधिप।
लब्धा येन स धन्यः स्यात्कृतकृत्यश्च भूधर॥ ३०

पूर्व समयकी बात है—अथर्वणमुनिके द्वारा इन्द्रसे ब्रह्मविद्याकी याचना किये जानेपर इन्द्रने अथर्वणमुनिको ब्रह्मविद्या इस शर्तपर बतायी कि किसी अन्यको बतानेपर आपका सिर काट लूँगा। अश्विनीकुमारोंके याचना करनेपर मुनिने उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश कर दिया और इन्द्रने मुनिका सिर काट लिया। तदनन्तर सुरश्रेष्ठ दोनों वैद्योंने उनके सिरको कटा देखकर घोड़ेका सिर मुनिपर पुनः जोड़ दिया। हे भूधर! हे पर्वतराज! इस प्रकार महान् संकटसे सम्पादित होनेवाली ब्रह्मविद्याको जिसने प्राप्त कर लिया, वह धन्य तथा कृतकृत्य है॥ २८—३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे
देवीगीतायां ब्रह्मविद्योपदेशवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीद्वारा अपनी श्रेष्ठ भक्तिका वर्णन

हिमालय उवाच

स्वीयां भक्तिं वदस्वाम्ब येन ज्ञानं सुखेन हि।
जायेत मनुजस्यास्य मध्यमस्याविरागिणः॥ १

देव्युवाच

मार्गास्त्रयो मे विख्याता मोक्षप्राप्तौ नगाधिप।
कर्मयोगो ज्ञानयोगो भक्तियोगश्च सत्तम॥ २
त्रयाणामप्ययं योग्यः कर्तुं शक्योऽस्ति सर्वथा।
सुलभत्वान्मानसत्वात्कायचित्ताद्यपीडनात्॥ ३
गुणभेदान्मनुष्याणां सा भक्तिस्त्रिविधा मता।
परपीडां समुद्दिश्य दम्भं कृत्वा पुरःसरम्॥ ४
मात्सर्यक्रोधयुक्तो यस्तस्य भक्तिस्तु तामसी।
परपीडादिरहितः स्वकल्याणार्थमेव च॥ ५

हिमालय बोले—हे अम्ब! आप मुझे अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिस भक्तिके द्वारा अपरिपक्व वैराग्यवाले मध्यम अधिकारीको भी सुगमतापूर्वक ज्ञान हो जाय॥ १॥

देवी बोलीं—हे पर्वतराज! हे सत्तम! मोक्षप्राप्तिके साधनभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—ये मेरे तीन मार्ग प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंमें भी यह भक्तियोग सर्वथा सुलभ होने, [बाह्य साधनोंसे निरपेक्ष केवल] मनसे सम्पादित होने और शरीर तथा चित्त आदिको पीड़ा न पहुँचानेके कारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है॥ २-३॥

मनुष्योंके गुणभेदके अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी कही गयी है। जो मनुष्य डाह तथा क्रोधसे युक्त होकर दम्भपूर्वक दूसरोंको संतप्त करनेके उद्देश्यसे भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है॥ ४½॥

हे पर्वतराज! सर्वदा हृदयमें कामनाएँ रखनेवाला, यश चाहनेवाला तथा भोगका लोलुप जो मनुष्य परपीडासे

नित्यं सकामो हृदयं यशोऽर्थी भोगलोलुपः।
तत्तत्फलसमावाप्त्यै मामुपास्तेऽतिभक्तितः॥ ६

भेदबुद्ध्या तु मां स्वस्मादन्यां जानाति पामरः।
तस्य भक्तिः समाख्याता नगाधिप तु राजसी॥ ७

परमेशार्पणं कर्म पापसंक्षालनाय च।
वेदोक्तत्वादवश्यं तत्कर्तव्यं तु मयानिशम्॥ ८

इति निश्चितबुद्धिस्तु भेदबुद्धिमुपाश्रितः।
करोति प्रीतये कर्म भक्तिः सा नग सात्त्विकी॥ ९

परभक्तेः प्रापिकेयं भेदबुद्ध्यवलम्बनात्।
पूर्वप्रोक्ते ह्युभे भक्ती न परप्रापिके मते॥ १०

अधुना परभक्तिं तु प्रोच्यमानां निबोध मे।
मद्गुणश्रवणं नित्यं मम नामानुकीर्तनम्॥ ११

कल्याणगुणरत्नानामाकरायां मयि स्थिरम्।
चेतसो वर्तनं चैव तैलधारासमं सदा॥ १२

हेतुस्तु तत्र को वापि न कदाचिद्भवेदपि।
सामीप्यसार्ष्टिसायुज्यसालोक्यानां न चैषणा॥ १३

मत्सेवातोऽधिकं किञ्चिन्नैव जानाति कर्हिचित्।
सेव्यसेवकताभावात्तत्र मोक्षं न वाञ्छति॥ १४

परानुरक्त्या मामेव चिन्तयेद्यो ह्यतन्द्रितः।
स्वाभेदेनैव मां नित्यं जानाति न विभेदतः॥ १५

मद्रूपत्वेन जीवानां चिन्तनं कुरुते तु यः।
यथा स्वस्यात्मनि प्रीतिस्तथैव च परात्मनि॥ १६

चैतन्यस्य समानत्वान्न भेदं कुरुते तु यः।
सर्वत्र वर्तमानानां सर्वरूपां च सर्वदा॥ १७

नमते यजते चैवाप्याचाण्डालान्तमीश्वर।
न कुत्रापि द्रोहबुद्धिं कुरुते भेदवर्जनात्॥ १८

रहित होकर मात्र अपने ही कल्याणके लिये उन-उन फलोंकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करता है, साथ ही वह मन्दमति भेदबुद्धिके कारण मुझ भगवतीको अपनेसे भिन्न समझता है, उसकी वह भक्ति राजसी कही गयी है॥ ५—७॥

हे नग! जो मनुष्य अपना पाप धो डालनेके लिये अपना कर्म परमेश्वरको अर्पित कर देता है और 'वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे प्रतिदिन वही वेदनिर्दिष्ट कर्म अवश्य करना चाहिये'—ऐसा मनमें निश्चित करके [सेव्य-सेवक]-की भेदबुद्धिका आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करता है; उस मनुष्यकी वह भक्ति सात्त्विकी होती है॥ ८-९॥

[सेव्य-सेवककी] भेदबुद्धिका सहारा लेकर की गयी यह सात्त्विकी भक्ति पराभक्तिकी प्राप्ति करानेवाली सिद्ध होती है। पूर्वमें कही गयी तामसी और राजसी—दोनों भक्तियाँ पराभक्तिकी प्राप्तिका साधन नहीं मानी गयी हैं॥ १०॥

अब मैं पराभक्तिका वर्णन कर रही हूँ, आप उसे सुनिये—नित्य मेरे गुणोंका श्रवण और मेरे नामका संकीर्तन करना, कल्याण एवं गुणस्वरूप रत्नोंकी भण्डार मुझ भगवतीमें तैलधाराकी भाँति अपना चित्त सर्वदा लगाये रखना, किसी प्रकारकी हेतुभावना कभी नहीं होने देना, सामीप्य; सार्ष्टि; सायुज्य और सालोक्य मुक्तियोंकी कामना न होना—इन गुणोंसे युक्त जो भक्त मेरी सेवासे बढ़कर किसी भी वस्तुको कभी श्रेष्ठ नहीं समझता और सेव्य-सेवककी उत्कृष्ट भावनाके कारण मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं रखता, परम भक्तिके साथ सावधान होकर जो मेरा ही ध्यान करता रहता है, मुझमें तथा अपनेमें भेदबुद्धि छोड़कर अभेदबुद्धि रखते हुए मुझे नित्य जानता है, सभी जीवोंमें मेरे ही रूपका चिन्तन करता है, जैसी प्रीति अपने प्रति होती है; वैसी ही दूसरोंमें भी रखता है, चैतन्यपरब्रह्मकी समानरूपसे सर्वत्र व्याप्ति समझकर किसीमें भी भेद नहीं करता, हे राजन्! सर्वत्र विद्यमान् सभी प्राणियोंमें मुझ सर्वरूपिणीको विराजमान जानकर मेरा नमन तथा पूजन करता है, चाण्डालतकमें मेरी ही भावना करता

मत्स्थानदर्शने श्रद्धा मद्भक्तदर्शने तथा।
मच्छास्त्रश्रवणे श्रद्धा मन्त्रतन्त्रादिषु प्रभो॥ १९

मयि प्रेमाकुलमती रोमाञ्चिततनुः सदा।
प्रेमाश्रुजलपूर्णाक्षः कण्ठगद्गदनिःस्वनः॥ २०

अनन्येनैव भावेन पूजयेद्यो नगाधिप।
मामीश्वरीं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम्॥ २१

व्रतानि मम दिव्यानि नित्यनैमित्तिकान्यपि।
नित्यं यः कुरुते भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ २२

मदुत्सवदिदृक्षा च मदुत्सवकृतिस्तथा।
जायते यस्य नियतं स्वभावादेव भूधर॥ २३

उच्चैर्गायंश्च नामानि ममैव खलु नृत्यति।
अहङ्कारादिरहितो देहतादात्म्यवर्जितः॥ २४

प्रारब्धेन यथा यच्च क्रियते तत्तथा भवेत्।
न मे चिन्तास्ति तत्रापि देहसंरक्षणादिषु॥ २५

इति भक्तिस्तु या प्रोक्ता परभक्तिस्तु सा स्मृता।
यस्यां देव्यतिरिक्तं तु न किञ्चिदपि भाव्यते॥ २६

इत्थं जाता परा भक्तिर्यस्य भूधर तत्त्वतः।
तदैव तस्य चिन्मात्रे मद्रूपे विलयो भवेत्॥ २७

भक्तेस्तु या पराकाष्ठा सैव ज्ञानं प्रकीर्तितम्।
वैराग्यस्य च सीमा सा ज्ञाने तदुभयं यतः॥ २८

भक्तौ कृतायां यस्यापि प्रारब्धवशतो नग।
न जायते मम ज्ञानं मणिद्वीपं स गच्छति॥ २९

तत्र गत्वाखिलान्भोगाननिच्छन्नपि चर्च्छति।
तदन्ते मम चिद्रूपज्ञानं सम्यग्भवेन्नग॥ ३०

है और भेदका परित्याग करके किसीसे भी द्रोहभाव नहीं रखता, हे प्रभो! जो मेरे स्थानोंके दर्शन, मेरे भक्तोंके दर्शन, मेरे शास्त्रोंके श्रवण तथा मेरे तन्त्र-मन्त्रों आदिमें श्रद्धा रखता है, हे पर्वतराज! जो मेरे प्रति प्रेमसे आकुल चित्तवाला, मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए पुलकित शरीरवाला, प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाला तथा कंठ गद्गद होनेसे अवरुद्ध वाणीवाला होकर जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली तथा सभी कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीका अनन्य भावसे पूजन करता है, जो मेरे नित्य तथा नैमित्तिक सभी दिव्य व्रतोंको धनकी कृपणतासे रहित होकर भक्तिपूर्वक नित्य करता है, हे भूधर! जो स्वभावसे ही मेरा उत्सव देखनेकी अभिलाषा रखता है तथा मेरा उत्सव आयोजित करता है तथा जो अहंकार आदिसे रहित तथा देहभावनासे विहीन होकर ऊँचे स्वरसे मेरे नामोंका ही कीर्तन करते हुए नृत्य करता है और प्रारब्धके द्वारा जैसा जो किया जाता है, वह वैसा ही होता है, इसलिये अपने शरीरकी रक्षा आदि करनेकी भी कोई चिन्ता नहीं करता है, ऐसे पुरुषोंकी जो भक्ति कही गयी, वह पराभक्तिके नामसे विख्यात है, जिसमें देवीको छोड़कर अन्य किसीकी भी भावना नहीं की जाती॥ ११—२६॥

हे भूधर! इस प्रकारकी पराभक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, उसका उसी क्षण मेरे चिन्मयरूपमें विलय हो जाता है॥ २७॥

भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको ज्ञान कहा गया है और वही वैराग्यकी सीमा भी है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य—ये दोनों ही स्वयं सिद्ध हो जाते हैं॥ २८॥

हे नग! मेरी भक्ति करनेपर भी जिसे प्रारब्धवश मेरा ज्ञान नहीं हो पाता है, वह मेरे धाम 'मणिद्वीप' में जाता है। वहाँ जाकर समस्त प्रकारके भोगोंमें अनासक्त होता हुआ वह अपना समय व्यतीत करता है। हे नग! अन्तमें उसे मेरे चिन्मयरूपका सम्यक् ज्ञान हो

तेन मुक्तः सदैव स्याज्ज्ञानान्मुक्तिर्न चान्यथा।
इहैव यस्य ज्ञानं स्याद्धृद्गतप्रत्यगात्मनः॥ ३१

मम संवित्परतनोस्तस्य प्राणा व्रजन्ति न।
ब्रह्मैव संस्तदाप्नोति ब्रह्मैव ब्रह्म वेद यः॥ ३२

कण्ठचामीकरसममज्ञानात्तु तिरोहितम्।
ज्ञानादज्ञाननाशेन लब्धमेव हि लभ्यते॥ ३३

विदिताविदितादन्यन्नगोत्तम वपुर्मम।
यथादर्शे तथात्मनि यथा जले तथा पितृलोके॥ ३४

छायातपौ यथा स्वच्छौ विविक्तौ तद्वदेव हि।
मम लोके भवेज्ज्ञानं द्वैतभावविवर्जितम्॥ ३५

यस्तु वैराग्यवानेव ज्ञानहीनो म्रियेत चेत्।
ब्रह्मलोके वसेन्नित्यं यावत्कल्पं ततः परम्॥ ३६

शुचीनां श्रीमतां गेहे भवेत्तस्य जनिः पुनः।
करोति साधनं पश्चात्ततो ज्ञानं हि जायते॥ ३७

अनेकजन्मभी राजन् ज्ञानं स्यान्नैकजन्मना।
ततः सर्वप्रयत्नेन ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत्॥ ३८

नोचेन्महान् विनाशः स्याज्जन्मैतद्दुर्लभं पुनः।
तत्रापि प्रथमे वर्णे वेदप्राप्तिश्च दुर्लभा॥ ३९

शमादिषट्कसम्पत्तिर्योगसिद्धिस्तथैव च।
तथोत्तमगुरुप्राप्तिः सर्वमेवात्र दुर्लभम्॥ ४०

तथेन्द्रियाणां पटुता संस्कृतत्वं तनोस्तथा।
अनेकजन्मपुण्यैस्तु मोक्षेच्छा जायते ततः॥ ४१

जाता है। उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिये मुक्त हो जाता है; क्योंकि ज्ञानसे ही मुक्ति होती है; इसमें सन्देह नहीं है। इस लोकमें जिस व्यक्तिको हृदयमें स्थित प्रत्यगात्माका स्वरूपावबोध हो जाता है, मेरे ज्ञानपरायण उस भक्तके प्राण उत्क्रमण नहीं करते अर्थात् इस शरीरमें ही प्राणोंका लय हो जाता है। जो मनुष्य ब्रह्मको जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्मका ही रूप होकर उसी ब्रह्मको ही प्राप्त हो जाता है॥ २९—३२॥

जैसे कंठमें स्थित सोनेका हार भ्रमवश खो गयेके समान प्रतीत होने लगता है, किंतु भ्रमका नाश होते ही वह प्राप्त हो जाता है, जबकि वह मिला हुआ पहलेसे ही था। हे पर्वतश्रेष्ठ! मेरा स्वरूप ज्ञात और अज्ञातसे विलक्षण है। जैसे दर्पणपर परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीरमें आत्माकी परछाहींका अनुभव होता है। जैसे जलमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही पितृलोकमें अनुभव होता है। छाया और प्रकाश जैसे स्पष्टतः भिन्न दीखते हैं, वैसे ही मेरे लोकमें द्वैतभावसे रहित ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ ३३—३५॥

यदि मनुष्य वैराग्ययुक्त होकर पूर्ण ज्ञानके बिना मृत्युको प्राप्त हो जाय तो एक कल्पतक निरन्तर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घरमें उसका जन्म होता है। वहाँपर वह साधना करता है और फिर उसमें ज्ञानका उदय होता है॥ ३६-३७॥

हे राजन्! एक जन्ममें मनुष्यको ज्ञान नहीं होता, अपितु अनेक जन्मोंमें ज्ञानका आविर्भाव होता है। अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानप्राप्तिके लिये उपायका आश्रय लेना चाहिये, अन्यथा महान् अनर्थ होता है; क्योंकि यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मणवर्णमें और उसमें भी वेदज्ञानकी प्राप्ति होना महान् दुर्लभ है। साथ ही शम, दम आदि छः सम्पदाएँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरुकी प्राप्ति—यह सब इस लोकमें दुर्लभ है। अनेक जन्मोंके पुण्योंसे इन्द्रियोंमें सदा कार्य करते रहनेकी क्षमता, शरीरका संस्कारसम्पन्न रहना तथा मोक्षकी अभिलाषा

साधने सफलेऽप्येवं जायमानेऽपि यो नरः।
ज्ञानार्थं नैव यतते तस्य जन्म निरर्थकम्॥ ४२

तस्माद्राजन् यथाशक्त्या ज्ञानार्थं यत्नमाश्रयेत्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति निश्चितम्॥ ४३

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते च वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन॥ ४४

ज्ञानं लब्ध्वा कृतार्थः स्यादिति वेदान्तडिण्डिमः।
सर्वमुक्तं समासेन किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४५

उत्पन्न होती है। जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनसे युक्त रहनेपर भी ज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक है॥ ३८—४२॥

अतएव हे राजन्! मनुष्यको यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। उससे मनुष्य एक-एक पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक प्राणीमें विज्ञान रहता है। उसे मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथते रहना चाहिये और इस प्रकार उस विज्ञानको प्राप्त करके कृतार्थ हो जाना चाहिये—ऐसा वेदान्तका डिंडिमघोष है। [हे पर्वतराज हिमालय!] मैंने आपको सब कुछ संक्षेपमें बता दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४३—४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां भक्तिमहिमवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

* * *

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

भगवतीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों तथा उत्सवोंका वर्णन

हिमालय उवाच

कति स्थानानि देवेशि द्रष्टव्यानि महीतले।
मुख्यानि च पवित्राणि देवीप्रियतमानि च॥ १

व्रतान्यपि तथा यानि तुष्टिदान्युत्सवा अपि।
तत्सर्वं वद मे मातः कृतकृत्यो यतो नरः॥ २

देव्युवाच

सर्वं दृश्यं मम स्थानं सर्वे काला व्रतात्मकाः।
उत्सवाः सर्वकालेषु यतोऽहं सर्वरूपिणी॥ ३

तथापि भक्तवात्सल्यात्किञ्चित्किञ्चिदथोच्यते।
शृणुष्वावहितो भूत्वा नगराज वचो मम॥ ४

कोलापुरं महास्थानं यत्र लक्ष्मीः सदा स्थिता।
मातुःपुरं द्वितीयं च रेणुकाधिष्ठितं परम्॥ ५

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! इस पृथ्वीतलपर कौन-कौनसे पवित्र, मुख्य, दर्शनीय तथा आप भगवतीके लिये अत्यन्त प्रिय स्थान हैं? हे माता! आपको सन्तुष्ट करनेवाले जो-जो व्रत तथा उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बताइये, जिससे मुझ-जैसा प्राणी कृतकृत्य हो जाय॥ १-२॥

देवी बोलीं—दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे अपने हैं, सभी काल व्रतयोग्य हैं तथा सभी समयोंमें मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं; क्योंकि मैं सर्वरूपिणी हूँ। फिर भी हे पर्वतराज! भक्तवात्सल्यके कारण मैं कतिपय स्थानोंको बता रही हूँ, आप सावधान होकर मेरा वचन सुनिये॥ ३-४॥

कोलापुर एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है, जहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती हैं। मातृपुर दूसरा परम स्थान है, जहाँ भगवती रेणुका विराजमान हैं॥ ५॥

तुलजापुरं तृतीयं स्यात्सप्तशृङ्गं तथैव च।
हिङ्गुलाया महास्थानं ज्वालामुख्यास्तथैव च॥ ६

शाकम्भर्याः परं स्थानं भ्रामर्याः स्थानमुत्तमम्।
श्रीरक्तदन्तिकास्थानं दुर्गास्थानं तथैव च॥ ७

विन्ध्याचलनिवासिन्याः स्थानं सर्वोत्तमोत्तमम्।
अन्नपूर्णामहास्थानं काञ्चीपुरमनुत्तमम्॥ ८

भीमादेव्या परं स्थानं विमलास्थानमेव च।
श्रीचन्द्रलामहास्थानं कौशिकीस्थानमेव च॥ ९

नीलाम्बायाः परं स्थानं नीलपर्वतमस्तके।
जाम्बूनदेश्वरीस्थानं तथा श्रीनगरं शुभम्॥ १०

गुह्यकाल्या महास्थानं नेपाले यत्प्रतिष्ठितम्।
मीनाक्ष्याः परमं स्थानं यच्च प्रोक्तं चिदम्बरे॥ ११

वेदारण्यं महास्थानं सुन्दर्याः समधिष्ठितम्।
एकाम्बरं महास्थानं परशक्त्या प्रतिष्ठितम्॥ १२

महालसा परं स्थानं योगेश्वर्यास्तथैव च।
तथा नीलसरस्वत्याः स्थानं चीनेषु विश्रुतम्॥ १३

वैद्यनाथे तु बगलास्थानं सर्वोत्तमं मतम्।
श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्या मणिद्वीपं मम स्मृतम्॥ १४

श्रीमत्त्रिपुरभैरव्याः कामाख्यायोनिमण्डलम्।
भूमण्डले क्षेत्ररत्नं महामायाधिवासितम्॥ १५

नातः परतरं स्थानं क्वचिदस्ति धरातले।
प्रतिमासं भवेद्देवी यत्र साक्षाद्रजस्वला॥ १६

तत्रत्या देवताः सर्वाः पर्वतात्मकतां गताः।
पर्वतेषु वसन्त्येव महत्यो देवता अपि॥ १७

तत्रत्या पृथिवी सर्वा देवीरूपा स्मृता बुधैः।
नातः परतरं स्थानं कामाख्यायोनिमण्डलात्॥ १८

गायत्र्याश्च परं स्थानं श्रीमत्पुष्करमीरितम्।
अमरेशे चण्डिका स्यात्प्रभासे पुष्करेक्षिणी॥ १९

तीसरा स्थान तुलजापुर है। इसी प्रकार सप्तशृंग भी एक स्थान है। हिंगुला, ज्वालामुखी, शाकम्भरी, भ्रामरी, रक्तदन्तिका और दुर्गा—इन देवियोंके उत्तम स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं॥ ६-७॥

भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान [विन्ध्यपर्वत] सर्वोत्कृष्ट है। देवी अन्नपूर्णाका परम स्थान श्रेष्ठ कांचीपुर है। भगवती भीमा, विमला, श्रीचन्द्रला और कौशिकीके महास्थान इन्हींके नामोंसे प्रसिद्ध हैं॥ ८-९॥

भगवती नीलाम्बाका परम स्थान नीलपर्वतके शिखरपर है और देवी जाम्बूनदेश्वरीका पवित्र स्थान श्रीनगरमें है। भगवती गुह्यकालीका महान् स्थान है, जो नेपालमें प्रतिष्ठित है और देवी मीनाक्षीका श्रेष्ठ स्थान है, जो चिदम्बरमें स्थित बताया गया है॥ १०-११॥

भगवती सुन्दरीका महान् स्थान वेदारण्यमें अधिष्ठित है और भगवती पराशक्तिका महास्थान एकाम्बरमें स्थित है। भगवती महालसा और इसी प्रकार देवी योगेश्वरीके महान् स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं। भगवती नीलसरस्वतीका स्थान चीन देशमें स्थित कहा गया है॥ १२-१३॥

भगवती बगलाका सर्वोत्तम स्थान वैद्यनाथधाममें स्थित माना गया है। मुझ श्रीमत्-श्रीभुवनेश्वरीका स्थान मणिद्वीप बताया गया है। श्रीमत्त्रिपुरभैरवीका महान् स्थान कामाख्यायोनिमण्डल है, यह भूमण्डलपर क्षेत्ररत्नस्वरूप है तथा महामायाद्वारा अधिवासित क्षेत्र है॥ १४-१५॥

धरातलपर इससे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कहीं नहीं है, यहाँ भगवती प्रत्येक माहमें साक्षात् रजस्वला हुआ करती हैं। उस समय वहाँके सभी देवता पर्वतस्वरूप हो जाते हैं और अन्य महान् देवता भी वहाँ पर्वतोंपर निवास करते हैं। विद्वान् पुरुषोंने वहाँकी सम्पूर्ण भूमिको देवीरूप कहा है। इस कामाख्यायोनिमण्डलसे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कोई नहीं है॥ १६—१८॥

ऐश्वर्यमय पुष्करक्षेत्र भगवती गायत्रीका उत्तम स्थान कहा गया है। अमरेशमें चण्डिका तथा प्रभासमें भगवती पुष्करेक्षिणी विराजमान हैं।

नैमिषे तु महास्थाने देवी सा लिङ्गधारिणी।
पुरुहूता पुष्कराक्षे आषाढौ च रतिस्तथा॥ २०

चण्डमुण्डी महास्थाने दण्डिनी परमेश्वरी।
भारभूतौ भवेद्भूतिर्नाकुले नकुलेश्वरी॥ २१

चन्द्रिका तु हरिश्चन्द्रे श्रीगिरौ शाङ्करी स्मृता।
जप्येश्वरे त्रिशूला स्यात्सूक्ष्मा चाम्रातकेश्वरे॥ २२

शाङ्करी तु महाकाले शर्वाणी मध्यमाभिधे।
केदाराख्ये महाक्षेत्रे देवी सा मार्गदायिनी॥ २३

भैरवाख्ये भैरवी सा गयायां मङ्गला स्मृता।
स्थाणुप्रिया कुरुक्षेत्रे स्वायम्भुव्यपि नाकुले॥ २४

कनखले भवेदुग्रा विश्वेशा विमलेश्वरे।
अट्टहासे महानन्दा महेन्द्रे तु महान्तका॥ २५

भीमे भीमेश्वरी प्रोक्ता स्थाने वस्त्रापथे पुनः।
भवानी शाङ्करी प्रोक्ता रुद्राणी त्वर्धकोटिके॥ २६

अविमुक्ते विशालाक्षी महाभागा महालये।
गोकर्णे भद्रकर्णी स्याद्भद्रा स्याद्भद्रकर्णके॥ २७

उत्पलाक्षी सुवर्णाक्षे स्थाण्वीशा स्थाणुसंज्ञके।
कमलालये तु कमला प्रचण्डा छगलण्डके॥ २८

कुरण्डले त्रिसन्ध्या स्यान्माकोटे मुकुटेश्वरी।
मण्डलेशे शाण्डकी स्यात्काली कालञ्जरे पुनः॥ २९

शङ्कुकर्णे ध्वनिः प्रोक्ता स्थूला स्यात्स्थूलकेश्वरे।
ज्ञानिनां हृदयाम्भोजे हृल्लेखा परमेश्वरी॥ ३०

प्रोक्तानीमानि स्थानानि देव्याः प्रियतमानि च।
तत्तत्क्षेत्रस्य माहात्म्यं श्रुत्वा पूर्वं नगोत्तम॥ ३१

महास्थान नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी विराजमान हैं। पुष्कराक्षमें देवी पुरुहूता और आषाढीमें भगवती रति प्रतिष्ठित हैं॥ १९-२०॥

चण्डमुण्डी नामक महान् स्थानमें परमेश्वरी दण्डिनी और भारभूतिमें देवी भूति तथा नाकुलमें देवी नकुलेश्वरी विराजमान हैं। हरिश्चन्द्र नामक स्थानमें भगवती चन्द्रिका और श्रीगिरिपर शांकरी प्रतिष्ठित कही गयी हैं। जप्येश्वर स्थानमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें देवी सूक्ष्मा हैं॥ २१-२२॥

महाकालक्षेत्रमें शांकरी, मध्यम नामक स्थानमें शर्वाणी और केदार नामक महान् क्षेत्रमें वे भगवती मार्गदायिनी अधिष्ठित हैं। भैरव नामक स्थानमें भगवती भैरवी और गयामें भगवती मंगला प्रतिष्ठित कही गयी हैं। कुरुक्षेत्रमें देवी स्थाणुप्रिया और नाकुलमें भगवती स्वायम्भुवीका स्थान है॥ २३-२४॥

कनखलमें भगवती उग्रा, विमलेश्वरमें विश्वेशा, अट्टहासमें महानन्दा और महेन्द्रपर्वतपर देवी महान्तका विराजमान हैं। भीमपर्वतपर भगवती भीमेश्वरी, वस्त्रापथ नामक स्थानमें भवानी शांकरी और अर्धकोटिपर्वतपर भगवती रुद्राणी प्रतिष्ठित कही गयी हैं॥ २५-२६॥

अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-में भगवती विशालाक्षी, महालय क्षेत्रमें महाभागा, गोकर्णमें भद्रकर्णी और भद्रकर्णकमें देवी भद्रा विराजमान हैं। सुवर्णाक्ष नामक स्थानमें भगवती उत्पलाक्षी, स्थाणुसंज्ञक स्थानमें देवी स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला, छगलण्डकमें प्रचण्डा, कुरण्डलमें त्रिसन्ध्या, माकोटमें मुकुटेश्वरी, मण्डलेशमें शाण्डकी और कालंजरपर्वतपर काली प्रतिष्ठित हैं। शंकुकर्णपर्वतपर भगवती ध्वनि विराजमान बतायी गयी हैं। स्थूलकेश्वरपर भगवती स्थूला हैं। परमेश्वरी हृल्लेखा ज्ञानियोंके हृदयकमलमें विराजमान रहती हैं॥ २७—३०॥

बताये गये ये स्थान देवीके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। हे पर्वतराज! पहले उन क्षेत्रोंका माहात्म्य

तदुक्तेन विधानेन पश्चाद्देवीं प्रपूजयेत्।
अथवा सर्वक्षेत्राणि काश्यां सन्ति नगोत्तम॥ ३२

अतस्तत्र वसेन्नित्यं देवीभक्तिपरायणः।
तानि स्थानानि सम्पश्यञ्जपन्देवीं निरन्तरम्॥ ३३

ध्यायंस्तच्चरणाम्भोजं मुक्तो भवति बन्धनात्।
इमानि देवीनामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ ३४

भस्मीभवन्ति पापानि तत्क्षणान्नग सत्वरम्।
श्राद्धकाले पठेदेतान्यमलानि द्विजाग्रतः॥ ३५

मुक्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम्।
अधुना कथयिष्यामि व्रतानि तव सुव्रत॥ ३६

नारीभिश्च नरैश्चैव कर्तव्यानि प्रयत्नतः।
व्रतमनन्ततृतीयाख्यं रसकल्याणिनीव्रतम्॥ ३७

आर्द्रानन्दकरं नाम्ना तृतीयाया व्रतं च यत्।
शुक्रवारव्रतं चैव तथा कृष्णचतुर्दशी॥ ३८

भौमवारव्रतं चैव प्रदोषव्रतमेव च।
यत्र देवो महादेवो देवीं संस्थाप्य विष्टरे॥ ३९

नृत्यं करोति पुरतः सार्धं देवैर्निशामुखे।
तत्रोपोष्य रजन्यादौ प्रदोषे पूजयेच्छिवाम्॥ ४०

प्रतिपक्षं विशेषेण तद्देवीप्रीतिकारकम्।
सोमवारव्रतं चैव ममातिप्रियकृन्नग॥ ४१

तत्रापि देवीं सम्पूज्य रात्रौ भोजनमाचरेत्।
नवरात्रद्वयं चैव व्रतं प्रीतिकरं मम॥ ४२

एवमन्यान्यपि विभो नित्यनैमित्तिकानि च।
व्रतानि कुरुते यो वै मत्प्रीत्यर्थं विमत्सरः॥ ४३

सुनकर तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये अथवा हे नगश्रेष्ठ! ये सभी क्षेत्र काशीमें भी स्थित हैं, इसलिये देवीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको निरन्तर वहाँ रहना चाहिये। वहाँ रहकर उन स्थानोंका दर्शन, भगवतीके मन्त्रोंका निरन्तर जप और उनके चरणकमलका नित्य ध्यान करनेवाला मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ३१—३३½ ॥

हे नग! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवतीके इन नामोंका पाठ करता है, उसके समस्त पाप उसी क्षण शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। जो व्यक्ति श्राद्धके समय ब्राह्मणोंके समक्ष इन पवित्र नामोंका पाठ करता है, उसके सभी पितर मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३४-३५½ ॥

हे सुव्रत! अब मैं देवीके व्रतोंके विषयमें आपको बताऊँगा। सभी स्त्रियों और पुरुषोंको ये व्रत प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये॥ ३६½ ॥

व्रतोंमें जो तृतीयाके व्रत हैं; वे अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी और आर्द्रानन्दकर नामसे प्रसिद्ध हैं। शुक्रवार, कृष्णचतुर्दशी तथा भौमवारको देवीका व्रत किया जाता है। प्रदोष भी देवीव्रत है; उस दिन देवाधिदेव भगवान् शिव सायंकालके समय देवी पार्वतीको कुशासनपर विराजमान करके उनके समक्ष देवताओंके साथ नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें भगवती शिवाकी पूजा करनी चाहिये। देवीको विशेषरूपसे सन्तुष्ट करनेवाला यह प्रदोष प्रत्येक पक्षमें करना चाहिये॥ ३७—४०½ ॥

हे पर्वत! सोमवारका व्रत मुझे अत्यधिक सन्तुष्ट करनेवाला है। इस व्रतमें भी [उपवास करके] भगवतीकी पूजाकर रातमें भोजन करना चाहिये। इसी प्रकार चैत्र और आश्विन महीनोंके दोनों नवरात्रव्रत मेरे लिये अत्यन्त प्रियकर हैं॥ ४१-४२ ॥

हे विभो! इसी प्रकार और भी नित्य तथा नैमित्तिक व्रत हैं। जो मनुष्य राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिये इन व्रतोंको करता है, वह मेरा

प्राप्नोति मम सायुज्यं स मे भक्तः स मे प्रियः।
उत्सवानपि कुर्वीत दोलोत्सवमुखान्विभो॥ ४४

शयनोत्सवं तथा कुर्यात्तथा जागरणोत्सवम्।
रथोत्सवं च मे कुर्याद्दमनोत्सवमेव च॥ ४५

पवित्रोत्सवमेवापि श्रावणे प्रीतिकारकम्।
मम भक्तः सदा कुर्यादेवमन्यान्महोत्सवान्॥ ४६

मद्भक्तान्भोजयेत्प्रीत्या तथा चैव सुवासिनीः।
कुमारीर्वटुकांश्चापि मद्बुद्ध्या तद्गतान्तरः॥ ४७
वित्तशाठ्येन रहितो यजेदेतान्सुमादिभिः।

य एवं कुरुते भक्त्या प्रतिवर्षमतन्द्रितः॥ ४८

स धन्यः कृतकृत्योऽसौ मत्प्रीतेः पात्रमञ्जसा।
सर्वमुक्तं समासेन मम प्रीतिप्रदायकम्।
नाशिष्याय प्रदातव्यं नाभक्ताय कदाचन॥ ४९

सायुज्यपद प्राप्त कर लेता है। वह मेरा भक्त है और मुझे अतिप्रिय है। हे विभो! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर उत्सव मनाना चाहिये। मेरा शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव और दमनोत्सव आयोजित करना चाहिये॥ ४३—४५॥

श्रावण महीनेमें होनेवाला पवित्रोत्सव भी मेरे लिये प्रीतिकारक है। मेरे भक्तको चाहिये कि वह इसी तरहसे अन्य महोत्सवोंको भी सदा मनाये। उन अवसरोंपर मेरे भक्तों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और बटुकोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उनमें मन स्थित करके उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन कराना चाहिये, साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर पुष्प आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७$\frac{1}{2}$॥

जो मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रत्येक वर्ष ऐसा करता है, वह धन्य तथा कृतकृत्य है और वह शीघ्र ही मेरा प्रियपात्र बन जाता है। मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाला यह सब प्रसंग मैंने संक्षेपमें आपसे कह दिया। उपदेश न माननेवाले तथा मुझमें भक्ति न रखनेवाले मनुष्यके समक्ष इसे कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ४८-४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां श्रीदेव्या महोत्सवव्रतस्थानवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

* * *

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्याय

देवी-पूजनके विविध प्रकारोंका वर्णन

हिमालय उवाच

देवदेवि महेशानि करुणासागरेऽम्बिके।
ब्रूहि पूजाविधिं सम्यग्यथावदधुना निजम्॥ १

श्रीदेव्युवाच

वक्ष्ये पूजाविधिं राजन्नम्बिकाया यथाप्रियम्।
अत्यन्तश्रद्धया सार्धं शृणु पर्वतपुङ्गव॥ २

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! हे महेश्वरि! हे करुणासागरे! हे अम्बिके! अब आप यथार्थरूपसे अपने पूजनकी विधिको भलीभाँति बतलाइये॥ १॥

श्रीदेवी बोलीं—हे राजन्! हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं यथार्थरूपमें जगदम्बाको प्रसन्न करनेवाली पूजाविधि बता रही हूँ, महती श्रद्धाके साथ आप इसे सुनिये॥ २॥

द्विविधा मम पूजा स्याद् बाह्या चाभ्यन्तरापि च।
बाह्यापि द्विविधा प्रोक्ता वैदिकी तान्त्रिकी तथा॥ ३

वैदिक्यर्चापि द्विविधा मूर्तिभेदेन भूधर।
वैदिकी वैदिकैः कार्या वेददीक्षासमन्वितैः॥ ४

तन्त्रोक्तदीक्षावद्भिस्तु तान्त्रिकी संश्रिता भवेत्।
इत्थं पूजारहस्यं च न ज्ञात्वा विपरीतकम्॥ ५

करोति यो नरो मूढः स पतत्येव सर्वथा।
तत्र या वैदिकी प्रोक्ता प्रथमा तां वदाम्यहम्॥ ६

यन्मे साक्षात्परं रूपं दृष्टवानसि भूधर।
अनन्तशीर्षनयनमनन्तचरणं महत्॥ ७

सर्वशक्तिसमायुक्तं प्रेरकं यत्परात्परम्।
तदेव पूजयेन्नित्यं नमेद् ध्यायेत्स्मरेदपि॥ ८

इत्येतत्प्रथमार्चायाः स्वरूपं कथितं नग।
शान्तः समाहितमना दम्भाहङ्कारवर्जितः॥ ९

तत्परो भव तद्याजी तदेव शरणं व्रज।
तदेव चेतसा पश्य जप ध्यायस्व सर्वदा॥ १०

अनन्यया प्रेमयुक्तभक्त्या मद्भावमाश्रितः।
यज्ञैर्यज तपोदानैर्मामेव परितोषय॥ ११

इत्थं ममानुग्रहतो मोक्ष्यसे भवबन्धनात्।
मत्परा ये मदासक्तचित्ता भक्तवरा मताः॥ १२

प्रतिजाने भवादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु।
ध्यानेन कर्मयुक्तेन भक्तिज्ञानेन वा पुनः॥ १३

प्राप्याहं सर्वथा राजन्न तु केवलकर्मभिः।

मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पूजा भी वैदिकी और तान्त्रिकी—दो प्रकारकी कही गयी है॥ ३॥

हे भूधर! वैदिकी पूजा भी मूर्तिभेदसे दो प्रकारकी होती है। वेददीक्षासे सम्पन्न वैदिकोंद्वारा वैदिकी पूजा की जानी चाहिये और तन्त्रोक्त दीक्षासे युक्त पुरुषोंके द्वारा तान्त्रिकी पूजा की जानी चाहिये। इस प्रकार पूजाके रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मनुष्य इसके विपरीत करता है, उसका सर्वथा अधःपतन हो जाता है॥ ४-५½ ॥

उसमें जो पहली वैदिकी पूजा कही गयी है, उसे मैं बता रही हूँ, हे भूधर! तुम अनन्त मस्तक, नेत्र तथा चरणवाले मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो और जो समस्त शक्तियोंसे सम्पन्न, प्रेरणा प्रदान करनेवाला तथा परात्पर है; उसी रूपका नित्य पूजन, नमन, ध्यान तथा स्मरण करना चाहिये। हे नग! मेरी प्रथम पूजाका यही स्वरूप बताया गया है। आप शान्त होकर समाहित मनसे और दम्भ तथा अहंकारसे रहित होकर उसके परायण होइये, उसीका यजन कीजिये, उसीकी शरणमें जाइये और चित्तसे सदा उसीका दर्शन-जप-ध्यान कीजिये॥ ६—१०॥

अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरी पूजा कीजिये और तपस्या तथा दानके द्वारा मुझे पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कीजिये। ऐसा करनेपर मेरी कृपासे आप भवबन्धनसे छूट जायँगे॥ ११½ ॥

जो मेरे ऊपर निर्भर रहते हैं और अपना चित्त मुझमें लगाये रखते हैं, वे मेरे उत्तम भक्त माने गये हैं। यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं शीघ्र ही इस भवसागरसे उनका उद्धार कर देती हूँ॥ १२½ ॥

हे राजन्! मैं सर्वथा कर्मयुक्त ध्यानसे अथवा भक्तिपूर्ण ज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती हूँ। केवल कर्मोंसे ही मेरी प्राप्ति सम्भव नहीं है॥ १३½ ॥

धर्मात्सञ्जायते भक्तिर्भक्त्या सञ्जायते परम्॥ १४

श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितं यत्स धर्मः प्रकीर्तितः।
अन्यशास्त्रेण यः प्रोक्तो धर्माभासः स उच्यते॥ १५

सर्वज्ञात्सर्वशक्तेश्च मत्तो वेदः समुत्थितः।
अज्ञानस्य ममाभावादप्रमाणा न च श्रुतिः॥ १६

स्मृतयश्च श्रुतेरर्थं गृहीत्वैव च निर्गताः।
मन्वादीनां श्रुतीनां च ततः प्रामाण्यमिष्यते॥ १७

क्वचित्कदाचित्तन्त्रार्थकटाक्षेण परोदितम्।
धर्मं वदन्ति सोंऽशस्तु नैव ग्राह्योऽस्ति वैदिकैः॥ १८

अन्येषां शास्त्रकर्तॄणामज्ञानं प्रभवत्वतः।
अज्ञानदोषदुष्टत्वात्तदुक्तेर्न प्रमाणता॥ १९

तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थं सर्वथा वेदमाश्रयेत्।
राजाज्ञा च यथा लोके हन्यते न कदाचन॥ २०

सर्वेशान्या ममाज्ञा सा श्रुतिस्त्याज्या कथं नृभिः।
मदाज्ञारक्षणार्थं तु ब्रह्मक्षत्रियजातयः॥ २१

मया सृष्टास्ततो ज्ञेयं रहस्यं मे श्रुतेर्वचः।
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर॥ २२

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदा वेषान्बिभर्म्यहम्।
देवदैत्यविभागश्चाप्यत एवाभवन्नृप॥ २३

ये न कुर्वन्ति तद्धर्मं तच्छिक्षार्थं मया सदा।
सम्पादितास्तु नरकास्त्रासो यच्छ्रवणाद्भवेत्॥ २४

धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है। श्रुति और स्मृतिके द्वारा जो कुछ भी प्रतिपादित है, वही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंके द्वारा जो निरूपित किया गया है, उसे धर्माभास कहा जाता है॥ १४-१५॥

मुझ सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न भगवतीसे वेद उत्पन्न हुआ है और इस प्रकार मुझमें अज्ञानका अभाव रहनेके कारण श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है। श्रुतिके अर्थको लेकर ही स्मृतियाँ निकली हुई हैं। अतः श्रुतियों और मनु आदि स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है॥ १६-१७॥

स्मृति आदिमें कहीं-कहीं कटाक्षपूर्वक वामाचार-सम्बन्धी वेदविरुद्ध कही गयी बातको भी लोग धर्मके रूपमें स्वीकार करते हैं, किंतु वैदिक विद्वानोंके द्वारा वह अंश कभी भी ग्राह्य नहीं है॥ १८॥

अन्य शास्त्रकर्ताओंके वाक्य अज्ञानमूलक भी हो सकते हैं। अतः अज्ञानदोषसे दूषित होनेके कारण उनकी उक्तिकी कोई प्रामाणिकता नहीं है। इसलिये मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालेको धर्मकी प्राप्तिके लिये सदा वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १९½॥

जिस प्रकार लोकमें राजाकी आज्ञाकी अवहेलना कभी नहीं की जाती, वैसे ही मनुष्य मुझ सर्वेश्वरी भगवतीकी आज्ञास्वरूपिणी उस श्रुतिका त्याग कैसे कर सकते हैं? मेरी आज्ञाके पालनके लिये ही तो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि जातियाँ मेरे द्वारा सृजित की गयी हैं। अब मेरी श्रुतिकी वाणीका रहस्य समझ लीजिये॥ २०-२१½॥

हे भूधर! जब-जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न अवतार धारण करती हूँ। हे राजन्! इसीलिये देवताओं और दैत्योंका विभाग हुआ है॥ २२-२३॥

जो लोग उन धर्मोंका सदा आचरण नहीं करते, उन्हें शिक्षा देनेके लिये मैंने अनेक नरकोंकी व्यवस्था कर रखी है, जिनके सुननेमात्रसे भय उत्पन्न हो जाता है॥ २४॥

यो वेदधर्ममुज्झित्य धर्ममन्यं समाश्रयेत्।
राजा प्रवासयेद्देशान्निजादेतानधर्मिणः॥ २५

ब्राह्मणैर्न च सम्भाष्याः पंक्तिग्राह्या न च द्विजैः।
अन्यानि यानि शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्विविधानि च॥ २६

श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि तामसान्येव सर्वशः।
वामं कापालकं चैव कौलकं भैरवागमः॥ २७

शिवेन मोहनार्थाय प्रणीतो नान्यहेतुकः।
दक्षशापाद् भृगोः शापाद्दधीचस्य च शापतः॥ २८

दग्धा ये ब्राह्मणवरा वेदमार्गबहिष्कृताः।
तेषामुद्धरणार्थाय सोपानक्रमतः सदा॥ २९

शैवाश्च वैष्णवाश्चैव सौराः शाक्तास्तथैव च।
गाणपत्या आगमाश्च प्रणीताः शङ्करेण तु॥ ३०

तत्र वेदविरुद्धोंऽशोऽप्युक्त एव क्वचित्क्वचित्।
वैदिकैस्तद्ग्रहे दोषो न भवत्येव कर्हिचित्॥ ३१

सर्वथा वेदभिन्नार्थे नाधिकारी द्विजो भवेत्।
वेदाधिकारहीनस्तु भवेत्तत्राधिकारवान्॥ ३२

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिको वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥ ३३

सर्वैषणाः परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
सर्वभूतदयावन्तो मानाहङ्कारवर्जिताः॥ ३४

मच्चित्ता मद्गतप्राणा मत्स्थानकथने रताः।
संन्यासिनो वनस्थाश्च गृहस्था ब्रह्मचारिणः॥ ३५

उपासन्ते सदा भक्त्या योगमैश्वरसंज्ञितम्।
तेषां नित्याभियुक्तानामहमज्ञानजं तमः॥ ३६

ज्ञानसूर्यप्रकाशेन नाशयामि न संशयः।

जो लोग वेदप्रतिपादित धर्मका परित्याग करके अन्य धर्मका आश्रय लेते हैं, राजाको चाहिये कि वह ऐसे अधर्मियोंको अपने राज्यसे निष्कासित कर दे। ब्राह्मण उन अधार्मिकोंसे सम्भाषण न करें और द्विजगण उन्हें अपनी पंक्तिमें न बैठायें॥ २५½ ॥

इस लोकमें श्रुति-स्मृतिविरुद्ध नानाविध अन्य जो भी शास्त्र हैं, वे हर प्रकारसे तामस हैं। वाम, कापालक, कौलक और भैरवागम—ऐसे ही शास्त्र हैं, जो मोहमें डाल देनेके लिये शिवजीके द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं—इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कारण नहीं है॥ २६-२७½ ॥

वेदमार्गसे च्युत होनेके कारण जो उच्च कोटिके ब्राह्मण दक्षप्रजापतिके शापसे, महर्षि भृगुके शापसे और महर्षि दधीचिके शापसे दग्ध कर दिये गये थे; उनके उद्धारके लिये भगवान् शंकरने सोपान क्रमसे शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त तथा गाणपत्य आगमोंकी रचना की। उनमें कहीं-कहीं वेदविरुद्ध अंश भी कहा गया है। वैदिकोंको उस अंशके ग्रहण कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता है॥ २८—३१ ॥

वेदसे सर्वथा भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिये द्विज अधिकारी नहीं है। वेदाधिकारसे रहित व्यक्ति ही उसे ग्रहण करनेका अधिकारी है। अतः वैदिक पुरुषको पूरे प्रयत्नके साथ वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि वेद-प्रतिपादित धर्मसे युक्त ज्ञान ही परब्रह्मको प्रकाशित कर सकता है॥ ३२-३३ ॥

सम्पूर्ण इच्छाओंको त्यागकर मेरी ही शरणको प्राप्त, सभी प्राणियोंपर दया करनेवाले, मान-अहंकारसे रहित, मनसे मेरा ही चिन्तन करनेवाले, मुझमें ही अपना प्राण समर्पित करनेवाले तथा मेरे स्थानोंका वर्णन करनेमें संलग्न रहनेवाले जो संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी मेरे ऐश्वरसंज्ञक योगकी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं—मुझमें निरन्तर अनुरक्त रहनेवाले उन साधकोंके अज्ञानजनित अन्धकारको मैं ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट कर देती हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४—३६½ ॥

इत्थं वैदिकपूजायाः प्रथमाया नगाधिप॥ ३७

स्वरूपमुक्तं संक्षेपाद् द्वितीयाया अथो ब्रुवे।
मूर्तौ वा स्थण्डिले वापि तथा सूर्येन्दुमण्डले॥ ३८

जलेऽथवा बाणलिङ्गे यन्त्रे वापि महापटे।
तथा श्रीहृदयाम्भोजे ध्यात्वा देवीं परात्पराम्॥ ३९

सगुणां करुणापूर्णां तरुणीमरुणारुणाम्।
सौन्दर्यसारसीमां तां सर्वावयवसुन्दरीम्॥ ४०

शृङ्गाररससम्पूर्णां सदा भक्तार्तिकातराम्।
प्रसादसुमुखीमम्बां चन्द्रखण्डशिखण्डिनीम्॥ ४१

पाशाङ्कुशवराभीतिधरामानन्दरूपिणीम्।
पूजयेदुपचारैश्च यथावित्तानुसारतः॥ ४२

यावदान्तरपूजायामधिकारो भवेन्न हि।
तावद् बाह्यामिमां पूजां श्रयेज्जाते तु तां त्यजेत्॥ ४३

आभ्यन्तरा तु या पूजा सा तु संविल्लयः स्मृतः।
संविदेव परं रूपमुपाधिरहितं मम॥ ४४

अतः संविदि मद्रूपे चेतः स्थाप्यं निराश्रयम्।
संविद्रूपातिरिक्तं तु मिथ्या मायामयं जगत्॥ ४५

अतः संसारनाशाय साक्षिणीमात्मरूपिणीम्।
भावयेन्निर्मनस्केन योगयुक्तेन चेतसा॥ ४६

अतः परं बाह्यपूजाविस्तारः कथ्यते मया।
सावधानेन मनसा शृणु पर्वतसत्तम॥ ४७

हे पर्वतराज! इस प्रकार मैंने पहली वैदिक पूजाके स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन कर दिया। अब दूसरी पूजाके विषयमें बता रही हूँ॥ ३७½ ॥

मूर्ति, वेदी, सूर्य-चन्द्रमण्डल, जल, बाणलिंग, यन्त्र, महापट अथवा हृदयकमलमें सगुण रूपवाली परात्पर भगवतीका इस प्रकार ध्यान करे कि वे करुणासे परिपूर्ण हैं, तरुण अवस्थामें विद्यमान हैं, अरुणके समान अरुण आभासे युक्त हैं और सौन्दर्यके सारतत्त्वकी सीमा हैं। इनके सम्पूर्ण अंग परम मनोहर हैं, वे शृंगाररससे परिपूर्ण हैं तथा सदा भक्तोंके दुःखसे दुःखी रहा करती हैं। इन जगदम्बाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त रहता है; वे मस्तकपर बालचन्द्रमा तथा मयूरपंख धारण की हुई हैं; उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथा अभयमुद्रा धारण कर रखा है; वे आनन्दमयरूपसे सम्पन्न हैं—इस प्रकार ध्यान करके अपने वित्त-सामर्थ्यके अनुसार विभिन्न उपचारोंसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ३८—४२॥

जबतक अन्तःपूजामें अधिकार नहीं हो जाता, तबतक यह बाह्यपूजा करनी चाहिये। पुनः अन्तःपूजामें अधिकार हो जानेपर उस बाह्यपूजाको छोड़ देना चाहिये। जो आभ्यन्तरपूजा है, उसे ज्ञानरूप मुझ ब्रह्ममें चित्तका लय होना कहा गया है। उपाधिरहित ज्ञान ही मेरा परम रूप है, अतः मेरे ज्ञानमयरूपमें अपना आश्रयहीन चित्त लगा देना चाहिये॥ ४३-४४½ ॥

इस ज्ञानमयरूपके अतिरिक्त यह मायामय जगत् पूर्णतः मिथ्या है। अतः भव-बन्धनके नाशके लिये एकनिष्ठ तथा योगयुक्त चित्तसे मुझ सर्वसाक्षिणी तथा आत्मस्वरूपिणी भगवतीका चिन्तन करना चाहिये॥ ४५-४६॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! इसके बाद मैं बाह्यपूजाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रही हूँ, आप सावधान मनसे सुनिये॥ ४७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां श्रीदेव्याः पूजाविधिवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

* * *

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

देवीकी पूजा-विधि तथा फलश्रुति

देव्युवाच

प्रातरुत्थाय शिरसि संस्मरेत्पद्ममुज्ज्वलम्।
कर्पूराभं स्मरेत्तत्र श्रीगुरुं निजरूपिणम्॥ १

सुप्रसन्नं लसद्भूषाभूषितं शक्तिसंयुतम्।
नमस्कृत्य ततो देवीं कुण्डलीं संस्मरेद् बुधः॥ २

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तः पदव्यामनुसंचरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥ ३

ध्यात्वैवं तच्छिखामध्ये सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
मां ध्यायेदथ शौचादिक्रियाः सर्वाः समापयेत्॥ ४

अग्निहोत्रं ततो हुत्वा मत्प्रीत्यर्थं द्विजोत्तमः।
होमान्ते स्वासने स्थित्वा पूजासङ्कल्पमाचरेत्॥ ५

भूतशुद्धिं पुरा कृत्वा मातृकान्यासमेव च।
हृल्लेखामातृकान्यासं नित्यमेव समाचरेत्॥ ६

मूलाधारे हकारं च हृदये च रकारकम्।
भ्रूमध्ये तद्वदीकारं ह्रींकारं मस्तके न्यसेत्॥ ७

तत्तन्मन्त्रोदितानन्यान्यासान्सर्वान्समाचरेत्।
कल्पयेत्स्वात्मनो देहे पीठं धर्मादिभिः पुनः॥ ८

ततो ध्यायेन्महादेवीं प्राणायामैर्विजृम्भिते।
हृदम्भोजे मम स्थाने पञ्चप्रेतासने बुधः॥ ९

देवी बोलीं—प्रातःकाल उठकर सिरमें प्रतिष्ठित ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार-चक्र)-में कर्पूरके समान आभावाले उज्ज्वल कमलका ध्यान करना चाहिये। उसपर अत्यन्त प्रसन्न, वस्त्र-आभूषणसे सुसज्जित तथा शक्तिसे सम्पन्न अपने ही स्वरूपवाले श्रीगुरु विराजमान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विद्वान् साधकको भगवती कुण्डलिनी शक्तिका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—प्रथम प्रयाणमें अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें संचरण करनेपर प्रकाश-पुंजरूपवाली, प्रतिप्रयाणमें अर्थात् मूलाधारमें संचरण करनेपर अमृतमयस्वरूपवाली तथा अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजनेपर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १—३॥

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्तिका ध्यान करके उसकी शिखाके मध्यमें सच्चिदानन्दरूपिणी मुझ भगवतीका ध्यान करना चाहिये। इसके बाद शौच आदि सभी नित्य क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये॥ ४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्र करे। पुनः होमके अन्तमें अपने आसनपर बैठकर पूजनका संकल्प करना चाहिये। पहले भूतशुद्धि करके मातृकान्यास करे; हृल्लेखामातृकान्यास नित्य ही करना चाहिये। मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूमध्यमें ईकार तथा मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करना चाहिये। तत्-तत् मन्त्रोंके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंको सम्पन्न करना चाहिये। फिर अपने शरीरमें धर्म आदि सभी सत्कर्मोंसे परिपूर्ण एक दिव्य पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ५—८॥

तदनन्तर विज्ञ पुरुषको प्राणायामके प्रभावसे खिले हुए अपने हृदयकमलरूप स्थानमें पंचप्रेतासनके ऊपर महादेवीका ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँचों महाप्रेत मेरे

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते पञ्च महाप्रेताः पादमूले मम स्थिताः॥ १०

पञ्चभूतात्मका ह्येते पञ्चावस्थात्मका अपि।
अहं त्वव्यक्तचिद्रूपा तदतीतास्मि सर्वदा॥ ११

ततो विष्टरतां याताः शक्तितन्त्रेषु सर्वदा।
ध्यात्वैवं मानसैर्भोगैः पूजयेन्मां जपेदपि॥ १२

जपं समर्प्य श्रीदेव्यै ततोऽर्घ्यस्थापनं चरेत्।
पात्रासादनकं कृत्वा पूजाद्रव्याणि शोधयेत्॥ १३

जलेन तेन मनुना चास्त्रमन्त्रेण देशिकः।
दिग्बन्धं च पुरा कृत्वा गुरून्नत्वा ततः परम्॥ १४

तदनुज्ञां समादाय बाह्यपीठे ततः परम्।
हृदिस्थां भावितां मूर्तिं मम दिव्यां मनोहराम्॥ १५

आवाहयेत्ततः पीठे प्राणस्थापनविद्यया।
आसनावाहने चार्घ्यं पाद्याद्याचमनं तथा॥ १६

स्नानं वासोद्वयं चैव भूषणानि च सर्वशः।
गन्धपुष्पं यथायोग्यं दत्त्वा देव्यै स्वभक्तितः॥ १७

यन्त्रस्थानामावृतीनां पूजनं सम्यगाचरेत्।
प्रतिवारमशक्तानां शुक्रवारो नियम्यते॥ १८

मूलदेवीप्रभारूपाः स्मर्तव्या अङ्गदेवताः।
तत्प्रभापटलव्याप्तं त्रैलोक्यं च विचिन्तयेत्॥ १९

पुनरावृत्तिसहितां मूलदेवीं च पूजयेत्।
गन्धादिभिः सुगन्धैस्तु तथा पुष्पैः सुवासितैः॥ २०

नैवेद्यैस्तर्पणैश्चैव ताम्बूलैर्दक्षिणादिभिः।
तोषयेन्मां त्वत्कृतेन नाम्नां साहस्रकेण च॥ २१

कवचेन च सूक्तेनाहं रुद्रेभिरिति प्रभो।
देव्यथर्वशिरोमन्त्रैर्हृल्लेखोपनिषद्भवैः॥ २२

महाविद्यामहामन्त्रैस्तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः।

पादमूलमें अवस्थित हैं। ये महाप्रेत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच भूतों एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा अतीत—इन पाँच अवस्थाओंके स्वरूप हैं। चिन्मय तथा अव्यक्त-रूपवाली मैं इन सबसे सर्वथा परे हूँ। शक्तितन्त्रोंमें ब्रह्मा आदिका आसनरूपमें परिणत होना सर्वदा प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियोंसे मेरी पूजा करे और मेरा जप भी करे॥ ९—१२॥

श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य-स्थापन करना चाहिये। सर्वप्रथम पूजन-पात्रोंको सामने रखकर साधक अस्त्रमन्त्र (ॐ फट्)-का उच्चारण करके जलसे पूजाद्रव्योंको शुद्ध करे। पुनः इसी मन्त्रसे दिग्बन्ध करके गुरुको प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञा लेकर साधक अपने हृदयमें भावित मेरी दिव्य मनोहर मूर्तिको बाह्य पीठपर आवाहित करे। इसके बाद प्राणप्रतिष्ठामन्त्रद्वारा पीठपर उस मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करे॥ १३—१५½॥

इस प्रकार आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, दो वस्त्र, हर प्रकारके आभूषण, गन्ध, पुष्प आदि भगवतीको यथोचितरूपसे भक्तिपूर्वक अर्पण करके यन्त्रमें लिखित आवरणदेवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ लोगोंके लिये देवीकी पूजाहेतु शुक्रवारका दिन निर्धारित है॥ १६—१८॥

मूलदेवीके प्रभास्वरूप आवरणदेवताओंका ध्यान करना चाहिये। उन देवीके प्रभामण्डलमें त्रिलोक व्याप्त है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद सुगन्धित गन्ध आदि द्रव्यों, सुन्दर वाससे युक्त पुष्पों, विभिन्न प्रकारके नैवेद्यों, तर्पणों, ताम्बूलों तथा दक्षिणा आदिसे आवरणदेवताओंसहित मुझ मूलदेवीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हे राजन्! आपके द्वारा रचित सहस्रनामके द्वारा मुझे प्रसन्न करना चाहिये; साथ ही देवीकवच, '**अहं रुद्रेभिः**' इत्यादि सूक्त, हृल्लेखोपनिषद्-सम्बन्धी देव्यथर्वशीर्ष मन्त्रों और महाविद्याके प्रधान मन्त्रोंसे मुझे बार-बार प्रसन्न करना चाहिये॥ १९—२२½॥

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं प्रेमार्द्रहृदयो नरः ॥ २३

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गैर्बाष्परुद्धाक्षिनिःस्वनः ।
नृत्यगीतादिघोषेण तोषयेन्मां मुहुर्मुहुः ॥ २४

वेदपारायणैश्चैव पुराणैः सकलैरपि ।
प्रतिपाद्या यतोऽहं वै तस्मात्तैस्तोषयेत्तु माम् ॥ २५

निजं सर्वस्वमपि मे सदेहं नित्यशोऽर्पयेत् ।
नित्यहोमं ततः कुर्याद् ब्राह्मणांश्च सुवासिनीः ॥ २६

वटुकान्यामरानन्यान्देवीबुद्ध्या तु भोजयेत् ।
नत्वा पुनः स्वहृदये व्युत्क्रमेण विसर्जयेत् ॥ २७

सर्वं हृल्लेखया कुर्यात् पूजनं मम सुव्रत ।
हृल्लेखा सर्वमन्त्राणां नायिका परमा स्मृता ॥ २८

हृल्लेखादर्पणे नित्यमहं तत्प्रतिबिम्बिता ।
तस्माद्धृल्लेखया दत्तं सर्वमन्त्रैः समर्पितम् ॥ २९

गुरुं सम्पूज्य भूषाद्यैः कृतकृत्यत्वमावहेत् ।
य एवं पूजयेद्देवीं श्रीमद्भुवनसुन्दरीम् ॥ ३०

न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि ।
देहान्ते तु मणिद्वीपं मम यात्येव सर्वथा ॥ ३१

ज्ञेयो देवीस्वरूपोऽसौ देवा नित्यं नमन्ति तम् ।
इति ते कथितं राजन् महादेव्याः प्रपूजनम् ॥ ३२

विमृश्यैतदशेषेणाप्यधिकारानुरूपतः ।
कुरु मे पूजनं तेन कृतार्थस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३

इदं तु गीताशास्त्रं मे नाशिष्याय वदेत् क्वचित् ।
नाभक्ताय प्रदातव्यं न धूर्ताय च दुर्हृदे ॥ ३४

तत्पश्चात् पुलकित समस्त अंगोंसे युक्त, अश्रुसे अवरुद्ध नेत्र तथा कण्ठवाला और प्रेमसे आर्द्र हृदयवाला वह साधक मुझ जगद्धात्रीके प्रति क्षमापराधके लिये प्रार्थना करे; साथ ही नृत्य और गीत आदिकी ध्वनिसे मुझे बार-बार प्रसन्न करे। चूँकि मैं सभी वेदों तथा पुराणोंकी मुख्य प्रतिपाद्य विषय हूँ, अतः उनके पाठ-पारायणोंसे मुझे प्रसन्न करना चाहिये। देहसहित अपना सब कुछ मुझे नित्य अर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर नित्य होम करे। ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, वटुकों तथा अन्य दीनलोगोंको देवीका रूप समझकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। पुनः नमस्कार करके अपने हृदयमें जिस क्रमसे आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रमसे विसर्जन करना चाहिये॥ २३—२७॥

हे सुव्रत! मेरी सम्पूर्ण पूजा हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रसे सम्पन्न करनी चाहिये; क्योंकि यह हृल्लेखा सभी मन्त्रोंकी परम नायिका कही गयी है। हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं निरन्तर प्रतिबिम्बित होती रहती हूँ; अतः हृल्लेखा मन्त्रोंके द्वारा मुझे अर्पित किया गया पदार्थ सभी मन्त्रोंके द्वारा अर्पित किया गया समझा जाता है। भूषण आदि सामग्रियोंसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके अपनेको कृतकृत्य समझना चाहिये॥ २८-२९½॥

जो मनुष्य इस प्रकार मुझ श्रीमद्भुवनसुन्दरी भगवतीकी पूजा करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु किसी भी समयमें कहीं भी दुर्लभ नहीं रह सकती। देहावसान होनेपर वह निश्चित ही मेरे मणिद्वीपमें पहुँच जाता है। उसे देवीका ही स्वरूप समझना चाहिये; देवता उसे नित्य प्रणाम करते हैं॥ ३०-३१½॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे महादेवीके पूजनके विषयमें बता दिया। आप इसपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुरूप मेरा पूजन कीजिये; उससे आप कृतार्थ हो जायँगे॥ ३२-३३॥

जो सत् शिष्य नहीं है, उसे कभी भी मेरे इस गीताशास्त्रको नहीं बताना चाहिये। साथ ही जो भक्त न हो, धूर्त हो तथा दुरात्मा हो, उसे भी इसका उपदेश

एतत्प्रकाशनं मातुरुद्घाटनमुरोजयोः।
तस्मादवश्यं यत्नेन गोपनीयमिदं सदा॥ ३५

देयं भक्ताय शिष्याय ज्येष्ठपुत्राय चैव हि।
सुशीलाय सुवेषाय देवीभक्तियुताय च॥ ३६

श्राद्धकाले पठेदेतद् ब्राह्मणानां समीपतः।
तृप्तास्तत्पितरः सर्वे प्रयान्ति परमं पदम्॥ ३७

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा सा भगवती तत्रैवान्तरधीयत।
देवाश्च मुदिताः सर्वे देवीदर्शनतोऽभवन्॥ ३८

ततो हिमालये जज्ञे देवी हैमवती तु सा।
या गौरीति प्रसिद्धासीद्दत्ता सा शङ्कराय च॥ ३९

ततः स्कन्दः समुद्भूतस्तारकस्तेन पातितः।
समुद्रमन्थने पूर्वं रत्नान्यासुर्नराधिप॥ ४०

तत्र देवैः स्तुता देवी लक्ष्मीप्राप्त्यर्थमादरात्।
तेषामनुग्रहार्थाय निर्गता तु रमा ततः॥ ४१

वैकुण्ठाय सुरैर्दत्ता तेन तस्य शमोऽभवत्।
इति ते कथितं राजन् देवीमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ४२

गौरीलक्ष्म्योः समुद्भूतिविषयं सर्वकामदम्।
न वाच्यं त्वेतदन्यस्मै रहस्यं कथितं यतः॥ ४३

गीतारहस्यभूतेयं गोपनीया प्रयत्नतः।
सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयानघ।
पवित्रं पावनं दिव्यं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

नहीं देना चाहिये। अनधिकारीके समक्ष इसे प्रकाशित करना अपनी माताके वक्षःस्थलको प्रकट करनेके समान है, अतः इसे सदा प्रयत्नपूर्वक अवश्य गोपनीय रखना चाहिये॥ ३४-३५॥

भक्तिसम्पन्न शिष्यको तथा सुशील, सुन्दर और देवीभक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्रको ही इसका उपदेश करना चाहिये॥ ३६॥

श्राद्धके अवसरपर जो मनुष्य ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम पदको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३७॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर वे भगवती वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और देवीके दर्शनसे सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ३८॥

तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालयके यहाँ उत्पन्न हुईं, जो 'गौरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं। बादमें वे शंकरजीको प्रदान की गयीं। तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुरका संहार किया॥ ३९½॥

हे नराधिप! पूर्व समयमें समुद्रमन्थनसे अनेक रत्न निकले। उस समय लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये देवताओंने आदरपूर्वक भगवतीकी स्तुति की। तब उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये वे भगवती ही पुनः रमा (लक्ष्मी)-के रूपमें समुद्रसे प्रकट हुईं। देवताओंने उन लक्ष्मीको भगवान् विष्णुको सौंप दिया, इससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई॥ ४०-४१½॥

हे राजन्! मैंने आपसे भगवतीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन कर दिया। गौरी तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। मेरे द्वारा कहे गये इस रहस्यको किसी दूसरेको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि रहस्यमयी यह गीता सदा प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है। हे अनघ! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने आपको संक्षेपमें बता दिया। यह दिव्य प्रसंग [स्वयं] पवित्र है तथा दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला है। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२—४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां सप्तमस्कन्धे देवीगीतायां बाह्यपूजाविधिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

* * *

॥ सप्तमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अष्टमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रजाकी सृष्टिके लिये ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मनुका देवीकी आराधना करना तथा देवीका उन्हें वरदान देना

जनमेजय उवाच

सूर्यचन्द्रान्वयोत्थानां नृपाणां सत्कथाश्रितम्।
चरितं भवता प्रोक्तं श्रुतं तदमृतास्पदम्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि सा देवी जगदम्बिका।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यद्यद्रूपेण पूज्यते॥ २

यस्मिन्यस्मिंश्च वै स्थाने येन येन च कर्मणा।
(शरीरेण च देवेशी पूजनीया फलप्रदा।
येनैव मन्त्रबीजेन यत्र यत्र च पूज्यते॥)
देव्या विराट्स्वरूपस्य वर्णनं च यथातथम्॥ ३

येन ध्यानेन तत्सूक्ष्मे स्वरूपे स्यान्मतेर्गतिः।
तत्सर्वं वद विप्रर्षे येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्॥ ४

व्यास उवाच

शृणु राजन् प्रवक्ष्यामि देव्याराधनमुत्तमम्।
यत्कृतेन श्रुतेनापि नरः श्रेयोऽत्र विन्दते॥ ५

एवमेतन्नारदेन पृष्टो नारायणः पुरा।
तस्मै यदुक्तवान्देवो योगचर्याप्रवर्तकः॥ ६

एकदा नारदः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीमिमाम्।
नारायणाश्रमं प्राप्तो गतखेदश्च तस्थिवान्॥ ७

तस्मै योगात्मने नत्वा ब्रह्मदेवतनूद्भवः।
पर्यपृच्छदिमं चार्थं यत्पृष्टो भवतानघ॥ ८

जनमेजय बोले—[हे मुने!] आपने सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशमें उत्पन्न राजाओंका जो उत्तम कथाओंसे अन्वित तथा अमृतमय चरित्र वर्णित किया, उसे मैंने सुना॥ १॥

सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें जिस-जिस स्थानपर तथा जिस-जिस कर्मसे एवं जिस-जिस रूपसे उन देवी जगदम्बाकी पूजा की जाती है, अब उसे मैं सुनना चाहता हूँ। (सभी फल प्रदान करनेवाली वे पूज्या देवीश्वरी जिस बीज-मन्त्रसे, जहाँ-जहाँ तथा जिस रूपमें पूजी जाती हैं, उसे सुनाइये।) साथ ही भगवतीके विराट् स्वरूपका वर्णन यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विप्रर्षे! जिस ध्यानसे उन भगवतीके सूक्ष्म स्वरूपमें बुद्धि स्थिर हो जाय, वह सब मुझे बतलाइये जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीकी उत्तम आराधनाके विषयमें कह रहा हूँ, जिसे करने अथवा सुननेसे भी मनुष्य इस लोकमें कल्याण प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

इसी प्रकार पूर्वकालमें नारदजीके द्वारा योगचर्याके प्रवर्तक भगवान् नारायणसे पूछे जानेपर उन्होंने नारदजीसे जो कहा था, वही मैं बता रहा हूँ॥ ६॥

एक बार श्रीमान् नारद इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए नारायणके आश्रमपर पहुँचे और वहाँ निश्चिन्त होकर बैठ गये। हे अनघ! तत्पश्चात् उन योगात्मा नारायणको प्रणाम करके ब्रह्माजीके पुत्र नारदने उनसे यही प्रश्न पूछा था, जो आपने मुझसे पूछा है॥ ७-८॥

नारद उवाच

देवदेव महादेव पुराणपुरुषोत्तम।
जगदाधार सर्वज्ञ श्लाघनीयोरुसद्गुण॥ ९

जगतस्तत्त्वमाद्यं यत्तन्मे वद यथेप्सितम्।
जायते कुत एवेदं कुतश्चेदं प्रतिष्ठितम्॥ १०

कुतोऽन्तं प्राप्नुयात्काले कुत्र सर्वफलोदयः।
केन ज्ञातेन मायैषा मोहभूर्नाशमाप्नुयात्॥ ११

कयार्चया किं जपेन किं ध्यानेनात्महृत्कजे।
प्रकाशो जायते देव तमस्यर्कोदयो यथा॥ १२

एतत्प्रश्नोत्तरं देव ब्रूहि सर्वमशेषतः।
यथा लोकस्तरेदन्धतमसं त्वञ्जसैव हि॥ १३

व्यास उवाच

एवं देवर्षिणा पृष्टः प्राचीनो मुनिसत्तमः।
नारायणो महायोगी प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत्॥ १४

श्रीनारायण उवाच

शृणु देवर्षिवर्यात्र जगतस्तत्त्वमुत्तमम्।
येन ज्ञातेन मर्त्यो हि जायते न जगद्भ्रमे॥ १५

जगतस्तत्त्वमित्येव देवी प्रोक्ता मयापि हि।
ऋषिभिर्देवगन्धर्वैरन्यैश्चापि मनीषिभिः॥ १६

सा जगत्सृजते देवी तया च प्रतिपाल्यते।
तया च नाश्यते सर्वमिति प्रोक्तं गुणत्रयात्॥ १७

तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि देव्याः सिद्धर्षिपूजितम्।
स्मरतां सर्वपापघ्नं कामदं मोक्षदं तथा॥ १८

मनुः स्वायम्भुवस्त्वाद्यः पद्मपुत्रः प्रतापवान्।
शतरूपापतिः श्रीमान्सर्वमन्वन्तराधिपः॥ १९

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे पुराणपुरुषोत्तम! हे जगदाधार! हे सर्वज्ञ! हे श्लाघनीय! हे विपुल सद्गुणोंसे सम्पन्न! इस जगत्‌का जो आदितत्त्व है, उसे आप यथेच्छरूपसे मुझे बताइये। यह जगत् किससे उत्पन्न होता है, किससे इसकी रक्षा होती है, किसके द्वारा इसका संहार होता है, किस समय सभी कर्मोंका फल उदित होता है तथा किस ज्ञानके हो जानेपर इस मोहमयी मायाका नाश हो जाता है?॥ ९—११॥

हे देव! किस पूजासे, किस जपसे और किस ध्यानसे अन्धकारमें सूर्योदयकी भाँति अपने हृदयकमलमें प्रकाश उत्पन्न होता है?॥ १२॥

हे देव! इन सभी प्रश्नोंका उत्तर पूर्णरूपसे बताइये, जिससे इस संसारके प्राणी अज्ञानान्धकारमय जगत्‌को शीघ्रतासे पार कर लें॥ १३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर महायोगी, मुनिश्रेष्ठ तथा सनातन पुरुष भगवान् नारायणने साधुवाद देकर यह वचन कहा॥ १४॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब आप जगत्‌का उत्तम तत्त्व सुनिये, जिसे जान लेनेपर मनुष्य सांसारिक भ्रममें नहीं पड़ता॥ १५॥

इस जगत्‌का एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा ही हैं—ऐसा मैं बता चुका हूँ और ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों तथा अन्य मनीषियोंने भी ऐसा ही कहा है॥ १६॥

तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से युक्त होनेके कारण वे भगवती ही सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करती हैं, वे ही पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं—ऐसा कहा गया है॥ १७॥

अब मैं भगवतीके सिद्ध-ऋषिपूजित स्वरूपका वर्णन करूँगा; जो स्मरण करनेवालोंके सभी पापोंका नाश करनेवाला, उनके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला तथा उन्हें मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ १८॥

ब्रह्माके पुत्र तथा शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु आदि मनु हैं। उन प्रतापी तथा श्रीमान् मनुको समस्त मन्वन्तरोंका अधिपति कहा जाता है॥ १९॥

स मनुः पितरं देवं प्रजापतिमकल्मषम्।
भक्त्या पर्यचरत्पूर्वं तमुवाचात्मभूः सुतम्॥ २०

पुत्र पुत्र त्वया कार्यं देव्याराधनमुत्तमम्।
तत्प्रसादेन ते तात प्रजासर्गः प्रसिद्ध्यति॥ २१

एवमुक्तः प्रजास्रष्ट्रा मनुः स्वायम्भुवो विराट्।
जगद्योनिं तदा देवीं तपसातर्पयद् विभुः॥ २२

तुष्टाव देवीं देवेशीं समाहितमतिः किल।
आद्यां मायां सर्वशक्तिं सर्वकारणकारणाम्॥ २३

मनुरुवाच

नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे।
शङ्खचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते॥ २४

वेदमूर्त्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि।
वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे॥ २५

माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये।
महादेवप्रियावासे महादेवप्रियंकरि॥ २६

गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महोत्सवे।
महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते॥ २७

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २८

यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा।
चैतन्यमेकमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम्॥ २९

ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा।
पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात्॥ ३०

पूर्वकालमें एक बार वे स्वायम्भुव मनु अपने पुण्यात्मा पिता प्रजापति ब्रह्माके पास भक्तिपूर्वक सेवामें संलग्न थे। तब ब्रह्माजीने उन पुत्र मनुसे कहा—हे पुत्र! हे पुत्र! तुम्हें भगवतीकी उत्तम आराधना करनी चाहिये। हे तात! उन्हींके अनुग्रहसे प्रजासृष्टिका तुम्हारा कार्य सिद्ध हो सकेगा॥ २०-२१॥

प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर महान् ऐश्वर्यशाली स्वायम्भुव मनु अपनी तपस्यासे जगत्की योनिरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हो गये। उन्होंने एकाग्रचित्त होकर मायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी, सभी कारणोंकी भी कारण, देवेश्वरी आद्या भगवतीका स्तवन आरम्भ किया॥ २२-२३॥

मनु बोले—जगत्के कारणोंकी भी कारण, नारायणके हृदयमें विराजमान तथा हाथोंमें शंख-चक्र-गदा धारण करनेवाली हे देवेश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

वेदमूर्तिस्वरूपिणी, जगज्जननी, कारणस्थान-स्वरूपा, तीनों वेदोंके प्रमाण जाननेवाली, समस्त देवोंद्वारा नमस्कृत, कल्याणमयी, परमेश्वरी, परमभाग्यशालिनी, अनन्त मायासे सम्पन्न, महान् अभ्युदयवाली, महादेवकी प्रिय आवासरूपिणी, महादेवका प्रिय करनेवाली, गोपेन्द्रकी प्रिया, ज्येष्ठा, महान् आनन्दस्वरूपिणी, महोत्सवा, महामारीके भयका नाश करनेवाली तथा देवता आदिके द्वारा पूजित हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ २५—२७॥

सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली, सबका कल्याण करनेवाली, सभी पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतजनोंकी रक्षा करनेवाली तथा तीन नेत्रोंवाली हे गौरि! हे नारायणि! आपको नमस्कार है॥ २८॥

यह जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है तथा जिनसे पूर्णतया ओतप्रोत है; उन भगवतीके चैतन्यमय, अद्वितीय आदि-अन्तसे रहित तथा तेजोंके निधानभूत रूपको नमस्कार है॥ २९॥

जिनकी कृपादृष्टिसे ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टि करते हैं, विष्णु सदा पालन करते हैं और जिनके अनुग्रहसे विश्वेश्वर शिव संहार करते हैं, उन जगदम्बाको नमस्कार है॥ ३०॥

मधुकैटभसम्भूतभयार्तः पद्मसम्भवः।
यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः॥ ३१

त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कान्तिः कमला गिरिजा सती।
दाक्षायणी वेदगर्भा सिद्धिदात्री सदाभया॥ ३२

स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च।
ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे॥ ३३

ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः।
त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसाम्पतिरुत्तमः॥ ३४

कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट्।
नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः॥ ३५

त्रिलोकवन्द्ये लोकेशि महामाङ्गल्यरूपिणि।
नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः॥ ३६

श्रीनारायण उवाच

एवं स्तुता भगवती दुर्गा नारायणी परा।
प्रसन्ना प्राह देवर्षे ब्रह्मपुत्रमिदं वचः॥ ३७

देव्युवाच

वरं वरय राजेन्द्र ब्रह्मपुत्र यदिच्छसि।
प्रसन्नाहं स्तवेनात्र भक्त्या चाराधनेन च॥ ३८

मनुरुवाच

यदि देवि प्रसन्नासि भक्त्या कारुणिकोत्तमे।
तदा निर्विघ्नतः सृष्टिः प्रजायाः स्यात्तवाज्ञया॥ ३९

देव्युवाच

प्रजासर्गः प्रभवतु ममानुग्रहतः किल।
निर्विघ्नेन च राजेन्द्र वृद्धिश्चाप्युत्तरोत्तरम्॥ ४०

यः कश्चित्पठते स्तोत्रं मद्भक्त्या त्वत्कृतं सदा।
तेषां विद्या प्रजासिद्धिः कीर्तिः कान्त्युदयः खलु॥ ४१

मधु-कैटभके द्वारा उत्पन्न किये गये भयसे व्याकुल ब्रह्माने जिनकी स्तुति करके भयंकर दैत्यरूपी भव-सागरसे मुक्ति प्राप्त की थी, (उन भगवतीको नमस्कार है।)॥ ३१॥

आप ह्री, कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, सिद्धिदात्री तथा अभया नामसे सर्वदा प्रसिद्ध हैं। हे देवि! मैं आपकी स्तुति करता हूँ, आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी पूजा करता हूँ, आपका जप करता हूँ, आपका ध्यान करता हूँ, आपकी भावना करता हूँ, आपका दर्शन करता हूँ तथा आपका चरित्र सुनता हूँ; आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३२-३३॥

आपके ही अनुग्रहसे ब्रह्माजी वेदके निधि, श्रीहरि लक्ष्मीके स्वामी, इन्द्र त्रिलोकीके अधिपति, वरुण जलचर जन्तुओंके श्रेष्ठ नायक, कुबेर धनके स्वामी, यमराज प्रेतोंके अधिपति, नैर्ऋत राक्षसोंके नाथ और चन्द्रमा रसमय बन गये हैं॥ ३४-३५॥

हे त्रिलोकवन्द्ये! हे लोकेश्वरि! हे महामांगल्यस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे जगन्मातः! आपको बार-बार प्रणाम है॥ ३६॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करनेपर परारूपा नारायणी भगवती दुर्गा प्रसन्न होकर ब्रह्माके पुत्र मनुसे यह वचन कहने लगीं॥ ३७॥

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं आपके द्वारा भक्तिपूर्वक की गयी इस स्तुति तथा आराधनासे प्रसन्न हूँ। अतः हे ब्रह्मपुत्र! आप जो वर चाहते हैं, उसे माँग लें॥ ३८॥

मनु बोले—[भक्तोंपर] महान् अनुकम्पा करनेवाली हे देवि! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मेरी यही याचना है कि आपकी आज्ञासे प्रजाकी सृष्टि निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो॥ ३९॥

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मेरे अनुग्रहसे प्रजासृष्टि अवश्य सम्पन्न होगी और निर्विघ्नतापूर्वक निरन्तर उसकी वृद्धि भी होती रहेगी॥ ४०॥

जो कोई भी मनुष्य मेरी भक्तिसे युक्त होकर आपके द्वारा की गयी इस स्तुतिका पाठ करेगा; उसकी विद्या, सन्तान-सुख तथा कीर्ति बढ़ेगी तथा

जायन्ते धनधान्यानि शक्तिरप्रहता नृणाम्।
सर्वत्र विजयो राजन् सुखं शत्रुपरिक्षयः॥ ४२

श्रीनारायण उवाच

एवं दत्त्वा वरान् देवी मनवे ब्रह्मसूनवे।
अन्तर्धानं गता चासीत्पश्यतस्तस्य धीमतः॥ ४३

अथ लब्धवरो राजा ब्रह्मपुत्रः प्रतापवान्।
ब्रह्माणमब्रवीत्तात स्थानं मे दीयतां रहः॥ ४४

यत्राहं समधिष्ठाय प्रजाः स्रक्ष्यामि पुष्कलाः।
यक्ष्यामि यज्ञैर्देवेशं तत्समादिश माचिरम्॥ ४५

इति पुत्रवचः श्रुत्वा प्रजापतिपतिर्विभुः।
चिन्तयामास सुचिरं कथं कार्यं भवेदिदम्॥ ४६

सृजतो मे गतः कालो विपुलोऽनन्तसंख्यकः।
धरा वार्भिः प्लुता मग्ना रसं याताखिलाश्रया॥ ४७

इदं मच्चिन्तितं कार्यं भगवानादिपूरुषः।
करिष्यति सहायो मे यदादेशेऽहमाश्रितः॥ ४८

कान्तिका उदय होगा और धन-धान्य निरन्तर बढ़ते रहेंगे। हे राजन्! उन मनुष्योंकी शक्ति कभी निष्फल नहीं होगी, सर्वत्र उनकी विजय होगी, उनके शत्रुओंका नाश होगा और वे सदा सुखी रहेंगे॥ ४१-४२॥

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव मनुको इस प्रकारके वर देकर उन बुद्धिमान् मनुके देखते-देखते भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ४३॥

तत्पश्चात् वर प्राप्त करके महान् प्रतापी ब्रह्मापुत्र राजा स्वायम्भुव मनुने ब्रह्मासे कहा—हे तात! आप मुझे कोई ऐसा एकान्त स्थान दीजिये, जहाँ रहकर प्रचुर प्रजाओंकी सृष्टि और यज्ञोंके द्वारा देवेश्वरकी उपासना कर सकूँ। अतः अविलम्ब आदेश दीजिये॥ ४४-४५॥

अपने पुत्रकी यह बात सुनकर प्रजापतियोंके भी स्वामी ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा देरतक सोचने लगे कि यह कार्य कैसे सम्पन्न हो। प्रजाकी सृष्टि करते हुए मेरा अनन्तकालका बहुत समय बीत गया। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी जलके द्वारा आप्लावित हो गयी और जलमय होकर डूब गयी। अतः अब वे भगवान् आदिपुरुष मेरे सहायक बनकर मेरा यह सुचिन्तित कार्य सम्पन्न करेंगे, जिनके आदेशपर मैं आश्रित हूँ॥ ४६—४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशप्रसङ्गे देव्या मनवे वरदानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

ब्रह्माजीकी नासिकासे वराहके रूपमें भगवान् श्रीहरिका प्रकट होना और पृथ्वीका उद्धार करना, ब्रह्माजीका उनकी स्तुति करना

श्रीनारायण उवाच

एवं मीमांसतस्तस्य पद्मयोनेः परन्तप।
मन्वादिभिर्मुनिवरैर्मरीच्याद्यैः समन्ततः॥ १

ध्यायतस्तस्य नासाग्राद्विरञ्चेः सहसानघ।
वराहपोतो निरगादेकाङ्गुलप्रमाणतः॥ २

श्रीनारायण बोले—हे परन्तप! मनु एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए उन पद्मयोनि ब्रह्माजीके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हो रहे थे। हे अनघ! इस प्रकार ध्यान करते हुए उन ब्रह्माजीकी नासिकाके अग्रभागसे अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला एक वराह-शिशु सहसा प्रकट हो गया॥ १-२॥

तस्यैव पश्यतः खस्थः क्षणेन किल नारद।
करिमात्रं प्रववृधे तदद्भुततमं ह्यभूत्॥ ३

मरीचिमुख्यैर्विप्रेन्द्रैः सनकाद्यैश्च नारद।
तद् दृष्ट्वा सौकरं रूपं तर्कयामास पद्मभूः॥ ४

किमेतत्सौकरव्याजं दिव्यं सत्त्वमवस्थितम्।
अत्याश्चर्यमिदं जातं नासिकाया विनिःसृतम्॥ ५

दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाच्छैलेन्द्रसन्निभः।
आहोस्विद्भगवान्किं वा यज्ञो मे खेदयन्मनः॥ ६

इति तर्कयतस्तस्य ब्रह्मणः परमात्मनः।
वराहरूपो भगवाञ्जगर्जाचलसन्निभः॥ ७

विरञ्चिं हर्षयामास संहतांश्च द्विजोत्तमान्।
स्वगर्जशब्दमात्रेण दिक्प्रान्तमनुनादयन्॥ ८

ते निशम्य स्वखेदस्य क्षयिष्णुं घुर्घुरस्वनम्।
जनस्तपःसत्यलोकवासिनोऽमरवर्यकाः ॥ ९

छन्दोमयैः स्तोत्रवरैर्ऋक्सामाथर्वसम्भवैः।
वचोभिः पुरुषं त्वाद्यं द्विजेन्द्राः पर्यवाकिरन्॥ १०

तेषां स्तोत्रं निशम्याद्यो भगवान् हरिरीश्वरः।
कृपावलोकमात्रेणानुगृहीत्वाप आविशत्॥ ११

तस्यान्तर्विशतः क्रूरसटाघातप्रपीडितः।
समुद्रोऽथाब्रवीद्देव रक्ष मां शरणार्तिहन्॥ १२

इत्याकर्ण्य समुद्रोक्तं वचनं हरिरीश्वरः।
विदारयञ्जलचराञ्जगामान्तर्जले विभुः॥ १३

हे नारद! उन ब्रह्माजीके देखते-देखते वह वराह-शिशु आकाशमें स्थित होकर क्षणभरमें बढ़कर एक विशालकाय हाथीके आकारका हो गया। वह एक महान् आश्चर्यजनक घटना थी॥ ३॥

हे नारद! उस समय मरीचि आदि प्रधान विप्रवरों तथा सनक आदि ऋषियोंके साथ बैठे ब्रह्माजी वह वराहरूप देखकर मन-ही-मन विचार करने लगे कि सूकरके व्याजसे यह कौन-सा दिव्य प्राणी मेरी नासिकासे निकलकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया। यह तो महान् आश्चर्य है। अभी-अभी अँगूठेके पोरके बराबर दिखायी पड़नेवाला यह क्षणभरमें ही पर्वतराजके सदृश हो गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वयं यज्ञरूप भगवान् विष्णु ही मेरे मनको खिन्न करते हुए इस रूपमें प्रकट हुए हों॥ ४—६॥

परमात्मा ब्रह्माजी ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय पर्वतके समान आकृतिवाले वाराहरूपधारी उन भगवान्ने गर्जना की॥ ७॥

उन्होंने अपने गर्जनमात्रसे समस्त दिशाओंको निनादित करते हुए ब्रह्माजी तथा वहाँ उपस्थित उत्तम ब्राह्मणोंके समुदायको हर्षित कर दिया॥ ८॥

अपने खेदको नष्ट करनेवाली घुरघुराहटकी ध्वनि सुनकर जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाले उन श्रेष्ठ देवताओं और विप्रवरोंने छन्दोबद्ध उत्तम स्तोत्रों तथा ऋक्, साम और अथर्ववेदसे सम्भूत पवित्र सूक्तोंसे आदिपुरुषकी स्तुति प्रारम्भ कर दी॥ ९-१०॥

उनकी स्तुति सुनकर ऐश्वर्यसम्पन्न वाराहरूप भगवान् श्रीहरि अपनी कृपादृष्टिमात्रसे उन्हें अनुगृहीत करके जलमें प्रविष्ट हो गये॥ ११॥

जलमें प्रविष्ट होते हुए उन भगवान्की सटाके आघातसे अत्यन्त पीड़ित समुद्रने उनसे कहा—शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हे देव! मेरी रक्षा कीजिये॥ १२॥

समुद्रके द्वारा कथित यह वचन सुनकर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरि जलचर जीवोंको इधर-उधर हटाते हुए अथाह जलमें चले गये॥ १३॥

इतस्ततोऽभिधावन्सन् विचिन्वन्पृथिवीं धराम्।
आघ्रायाघ्राय सर्वेशो धरामासादयच्छनैः॥ १४

अन्तर्जलगतां भूमिं सर्वसत्त्वाश्रयां तदा।
भूमिं स देवदेवेशो दंष्ट्रयोदाजहार ताम्॥ १५

तां समुद्धृत्य दंष्ट्राग्रे यज्ञेशो यज्ञपूरुषः।
शुशुभे दिग्गजो यद्वदुद्धृत्याथ सुपद्मिनीम्॥ १६

तं दृष्ट्वा देवदेवेशो विरञ्चिः समनुः स्वराट्।
तुष्टाव वाग्भिर्देवेशं दंष्ट्रोद्धृतवसुन्धरम्॥ १७

ब्रह्मोवाच

जितं ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामार्तिनाशन।
खर्वीकृतसुराधार सर्वकामफलप्रद॥ १८

इयं च धरणी देव शोभते वसुधा तव।
पद्मिनीव सुपत्राढ्या मतङ्गजकरोद्धृता॥ १९

इदं च ते शरीरं वै शोभते भूमिसङ्गमात्।
उद्धृताम्बुजशुण्डाग्रकरीन्द्रतनुसन्निभम्॥ २०

नमो नमस्ते देवेश सृष्टिसंहारकारक।
दानवानां विनाशाय कृतनानाकृते प्रभो॥ २१

अग्रतश्च नमस्तेऽस्तु पृष्ठतश्च नमो नमः।
सर्वामराधारभूत बृहद्धाम नमोऽस्तु ते॥ २२

त्वयाहं च प्रजासर्गे नियुक्तः शक्तिबृंहितः।
त्वदाज्ञावशतः सर्गं करोमि विकरोमि च॥ २३

त्वत्सहायेन देवेशा अमराश्च पुरा हरे।
सुधां विभेजिरे सर्वे यथाकालं यथाबलम्॥ २४

इधर-उधर भ्रमण करते हुए, पृथ्वीको खोजते हुए उन सर्वेश्वरने धीरे-धीरे सूँघ-सूँघकर अन्तमें सबको धारण करनेवाली उस पृथ्वीको पा लिया॥ १४॥

उस समय अगाध जलके भीतर प्रविष्ट तथा सभी प्राणियोंको आश्रय देनेवाली उस पृथ्वीको देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने दाढ़ोंपर उठा लिया॥ १५॥

उस पृथ्वीको अपने दाढ़पर रखे हुए यज्ञेश्वर तथा यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कोई दिग्गज कमलिनीको [अपने दाँतपर] उठाये हो॥ १६॥

अपने दाढ़पर पृथ्वीको उठाये हुए उन देवेश्वरको देखकर स्वराट् मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥

ब्रह्माजी बोले—भक्तोंके कष्ट दूर करनेवाले, देवताओंके आवास स्वर्गको तिरस्कृत करनेवाले तथा समस्त मनोभिलषित फल प्रदान करनेवाले हे कमलनयन! आपकी जय हो॥ १८॥

हे देव! आपके दाढ़पर स्थित यह पृथ्वी उसी भाँति सुशोभित हो रही है, जैसे सुन्दर पत्रोंसे युक्त कमलिनी किसी मतवाले हाथीकी सूँड़पर विराजमान हो॥ १९॥

पृथ्वीके साथ आपका यह शरीर कमलको उखाड़कर उसे अपनी सूँड़के अग्रभागपर धारण किये गजराजके शरीरकी भाँति शोभायमान हो रहा है॥ २०॥

सृष्टि तथा संहार करनेवाले और दानवोंके विनाशके लिये अनेकविध रूप धारण करनेवाले हे देवेश्वर! हे प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २१॥

सभी देवताओंके आधारभूत! आपको आगेसे नमस्कार है, आपको पीछेसे बार-बार नमस्कार है। हे बृहद्धाम! आपको नमस्कार है॥ २२॥

मैं आपके द्वारा शक्तिशाली बनाकर प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया गया हूँ। आपकी आज्ञाके वशमें होकर ही मैं सृष्टि करता हूँ और उसे बिगाड़ता हूँ॥ २३॥

हे हरे! आपकी सहायतासे ही पूर्व कालमें देवेश्वर तथा देवता बल तथा कालके अनुसार अमृतके विभाजनमें सफल हुए थे॥ २४॥

इन्द्रस्त्रिलोकीसाम्राज्यं लब्धवांस्त्वन्निदेशतः।
भुनक्ति लक्ष्मीं बहुलां सुरसंघप्रपूजितः॥ २५

वह्निः पावकतां लब्ध्वा जाठरादिविभेदतः।
देवासुरमनुष्याणां करोत्याप्यायनं तथा॥ २६

धर्मराजोऽथ पितॄणामधिपः सर्वकर्मदृक्।
कर्मणां फलदातासौ त्वन्नियोगादधीश्वरः॥ २७

नैर्ऋतो रक्षसामीशो यक्षो विघ्नविनाशनः।
सर्वेषां प्राणिनां कर्मसाक्षी त्वत्तः प्रजायते॥ २८

वरुणो यादसामीशो लोकपालो जलाधिपः।
त्वदाज्ञाबलमाश्रित्य लोकपालत्वमागतः॥ २९

वायुर्गन्धवहः सर्वभूतप्राणनकारणम्।
जातस्तव निदेशेन लोकपालो जगद्गुरुः॥ ३०

कुबेरः किन्नरादीनां यक्षाणां जीवनाश्रयः।
त्वदाज्ञान्तर्गतः सर्वलोकपेषु च मान्यभूः॥ ३१

ईशानः सर्वरुद्राणामीश्वरान्तकरः प्रभुः।
जातो लोकेशवन्द्योऽसौ सर्वदेवाधिपालकः॥ ३२

नमस्तुभ्यं भगवते जगदीशाय कुर्महे।
यस्यांशभागाः सर्वे हि जाता देवाः सहस्रशः॥ ३३

नारद उवाच

एवं स्तुतो विश्वसृजा भगवानादिपूरुषः।
लीलावलोकमात्रेणाप्यनुग्रहमवासृजत्॥ ३४

तत्रैवाभ्यागतं दैत्यं हिरण्याक्षं महासुरम्।
रुन्धानमध्वनो भीमं गदयाताडयद्धरिः॥ ३५

आपके ही निर्देशसे इन्द्र त्रिलोकीका साम्राज्य प्राप्त कर सके हैं, देवसमुदायसे भलीभाँति पूजित होकर विपुल वैभवका उपभोग करते हैं और अग्निदेव दाहकताका गुण पाकर जठराग्नि आदिके भेदसे देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी तृप्ति करते हैं॥ २५-२६॥

आपके ही नियोगसे धर्मराज पितरोंके अधिपति, समस्त कर्मोंके साक्षी, कर्मोंका फल देनेवाले तथा अधीश्वर बने हुए हैं॥ २७॥

विघ्नोंको दूर करनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी और राक्षसोंके ईश्वर यक्षरूप नैर्ऋत भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ २८॥

आपकी ही आज्ञाका आश्रय लेकर लोकपाल वरुणने जलचर जीवोंके स्वामी, जलाधिपति और लोकपालका पद प्राप्त किया है॥ २९॥

गन्ध प्रवाहित करनेवाले तथा सभी प्राणियोंमें प्राण-संचार करनेवाले वायु आपकी ही आज्ञासे लोकपाल और जगद्गुरु हो सके हैं॥ ३०॥

किन्नरों और यक्षोंके जीवनके आधारस्वरूप कुबेर आपकी आज्ञाके वशवर्ती रहकर ही समस्त लोकपालोंमें सम्मान प्राप्त करते हैं॥ ३१॥

सभी देवताओंका अन्त करनेवाले, सभी देवोंके अधिपालक तथा तीनों लोकोंके ईश्वरके भी वन्दनीय भगवान् ईशान आपकी ही आज्ञासे सभी रुद्रोंमें प्रधान हो गये हैं॥ ३२॥

आप जगदीश्वर परमात्माको हम नमस्कार करते हैं, जिनके अंशमात्रसे हजारों देवता उत्पन्न हुए हैं॥ ३३॥

नारदजी बोले—इस प्रकार विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत होनेपर आदिपुरुष भगवान् श्रीहरि अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए उनपर अनुग्रह करनेके लिये तत्पर हो गये॥ ३४॥

भगवान् श्रीहरिने उस समय वहाँ आये हुए महान् असुर तथा भयंकर दैत्य हिरण्याक्षको, जिसने उनका मार्ग रोक रखा था, अपनी गदासे मार डाला॥ ३५॥

तद्रक्तपङ्कदिग्धाङ्गो भगवानादिपूरुषः।
उद्धृत्य धरणीं देवो दंष्ट्रया लीलयाप्सु ताम्॥ ३६

निवेश्य लोकनाथेशो जगाम स्थानमात्मनः।
एतद्भगवतश्चित्रं धरण्युद्धरणं परम्॥ ३७

शृणुयाद्यः पुमान् यश्च पठेच्चरितमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवीं गतिमाप्नुयात्॥ ३८

तत्पश्चात् उसके रक्तपंकसे लिप्त अंगोंवाले आदिपुरुष भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको अपने दाढ़से उठाकर लीलापूर्वक उसे जलके ऊपर स्थापित कर दिया। इसके बाद वे लोकनाथेश्वर भगवान् अपने धामको चले गये। जो मनुष्य पृथ्वीके उद्धारसे सम्बन्धित इस परम विचित्र तथा उत्तम भगवच्चरितको सुनेगा और पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर वैष्णवपद प्राप्त करेगा॥ ३६—३८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे धरण्युद्धारवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

महीं देवः प्रतिष्ठाप्य यथास्थाने च नारद।
वैकुण्ठलोकमगमद् ब्रह्मोवाच स्वमात्मजम्॥ १

स्वायम्भुव महाबाहो पुत्र तेजस्विनांवर।
स्थाने महीमये तिष्ठ प्रजाः सृज यथोचितम्॥ २

देशकालविभागेन यज्ञेशं पुरुषं यज।
उच्चावचपदार्थैश्च यज्ञसाधनकैर्विभो॥ ३

धर्ममाचर शास्त्रोक्तं वर्णाश्रमनिबन्धनम्।
एतेन क्रमयोगेन प्रजावृद्धिर्भविष्यति॥ ४

पुत्रानुत्पाद्य गुणतः कीर्त्या कान्त्यात्मरूपिणः।
विद्याविनयसम्पन्नान् सदाचारवतां वरान्॥ ५

कन्याश्च दत्त्वा गुणवद्यशोवद्भ्यः समाहितः।
मनः सम्यक् समाधाय प्रधानपुरुषे परे॥ ६

भक्तिसाधनयोगेन भगवत्परिचर्यया।
गतिमिष्टां सदा वन्द्यां योगिनां गमिता भवान्॥ ७

इत्याश्वास्य मनुं पुत्रं पद्मयोनिः प्रजापतिः।
प्रजासर्गे नियम्यामुं स्वधाम प्रत्यपद्यत॥ ८

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार पृथ्वीको यथास्थान प्रतिष्ठित करके भगवान् जब वैकुण्ठ चले गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा—॥ १॥

तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ तथा विशाल भुजाओंवाले हे पुत्र स्वायम्भुव! अब तुम उस स्थलमय स्थानपर रहकर समुचित रूपसे प्रजाओंकी सृष्टि करो। हे विभो! देश एवं कालके विभागके अनुसार यज्ञके साधनस्वरूप उत्तम तथा मध्यम सामग्रियोंसे यज्ञके स्वामी परम पुरुषका यजन करो; शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका आचरण करो और वर्णाश्रम-व्यवस्थाका पालन करो। इस क्रमसे प्रवृत्त रहनेपर प्रजा-वृद्धि होती रहेगी। विद्या-विनयसे सम्पन्न, सदाचारियोंमें श्रेष्ठ और अपने गुण, कीर्ति तथा कान्तिके अनुरूप पुत्र उत्पन्न करके कन्याओंको गुणी तथा यशस्वी पुरुषोंको अर्पण करके और एकाग्रचित्त होकर अपने मनको पूर्णरूपसे प्रधान पुरुष परमेश्वरमें स्थित करके भक्तिपूर्वक साधना तथा भगवान्‌की सेवाद्वारा आप योगियोंके लिये सदा वन्दनीय अभीष्ट गतिको प्राप्त कर लोगे॥ २—७॥

[हे नारद!] इस प्रकार अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको उपदेश देकर तथा उन्हें प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त करके पद्मयोनि ब्रह्माजी अपने धामको चले गये॥ ८॥

प्रजाः सृजत पुत्रेति पितुराज्ञां समादधत्।
स्वायम्भुवः प्रजासर्गमकरोत्पृथिवीपतिः॥ ९

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ।
कन्यास्तिस्रः प्रसूताश्च तासां नामानि मे शृणु॥ १०

आकूतिः प्रथमा कन्या द्वितीया देवहूतिका।
तृतीया च प्रसूतिर्हि विख्याता लोकपावनी॥ ११

आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय च मध्यमाम्।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यासां लोक इमाः प्रजाः॥ १२

रुचेः प्रजज्ञे भगवान् यज्ञो नामादिपूरुषः।
आकूत्यां देवहूत्यां च कपिलोऽसौ च कर्दमात्॥ १३

सांख्याचार्यः सर्वलोके विख्यातः कपिलो विभुः।
दक्षात्प्रसूत्यां कन्याश्च बहुशो जज्ञिरे प्रजाः॥ १४

यासां सन्तानसम्भूता देवतिर्यङ्नरादयः।
प्रसूता लोकविख्याताः सर्वे सर्गप्रवर्तकाः॥ १५

यज्ञश्च भगवान् स्वायम्भुवमन्वन्तरे विभुः।
मनुं ररक्ष रक्षोभ्यो यामैर्देवगणैर्वृतः॥ १६

कपिलोऽपि महायोगी भगवान् स्वाश्रमे स्थितः।
देवहूत्यै परं ज्ञानं सर्वाविद्यानिवर्तकम्॥ १७

सविशेषं ध्यानयोगमध्यात्मज्ञाननिश्चयम्।
कापिलं शास्त्रमाख्यातं सर्वाज्ञानविनाशनम्॥ १८

उपदिश्य महायोगी स ययौ पुलहाश्रमम्।
अद्यापि वर्तते देवः सांख्याचार्यो महाशयः॥ १९

यन्नामस्मरणेनापि सांख्ययोगश्च सिद्ध्यति।
तं वन्दे कपिलं योगाचार्यं सर्ववरप्रदम्॥ २०

'हे पुत्र! प्रजाओंका सृजन करो' पिताकी इस आज्ञाको पृथ्वीपति स्वायम्भुव मनुने हृदयमें धारण कर लिया और वे प्रजा-सृष्टि करने लगे॥ ९॥

मनुसे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो महान् ओजस्वी पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनके नाम मुझसे सुनिये; पहली कन्या आकूति, दूसरी देवहूति तथा लोकपावनी तीसरी कन्या प्रसूति नामसे विख्यात हुई॥ १०-११॥

उन्होंने आकूतिका रुचिके साथ, मध्यम कन्या देवहूतिका कर्दमके साथ और प्रसूतिका विवाह दक्षप्रजापतिके साथ कर दिया, जिनकी ये प्रजाएँ लोकमें फैली हुई हैं॥ १२॥

रुचिके द्वारा आकूतिसे यज्ञरूप भगवान् आदिपुरुष प्रकट हुए। कर्दमऋषिके द्वारा देवहूतिसे कपिल उत्पन्न हुए। परम ऐश्वर्यशाली उन कपिलमुनिने सभी लोकोंमें सांख्यशास्त्रके आचार्यके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी प्रकार दक्षके द्वारा प्रसूतिसे सन्तानके रूपमें बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं; जिनकी सन्तानोंके रूपमें देवता, पशु और मानव आदि उत्पन्न होकर लोकमें प्रसिद्ध हुए; वे सभी इस सृष्टिके प्रवर्तक हैं॥ १३—१५॥

सर्वसमर्थ भगवान् यज्ञपुरुषने याम नामक देवताओंके साथ मिलकर स्वायम्भुव मन्वन्तरमें राक्षसोंसे मनुकी रक्षा की थी॥ १६॥

महान् योगी भगवान् कपिलने अपने आश्रममें रहकर माता देवहूतिको सभी अविद्याओंका नाश करनेवाले परमज्ञानका उपदेश किया था॥ १७॥

उन्होंने ध्यानयोग तथा अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया। समस्त अज्ञानको नष्ट करनेवाला उनका शास्त्र कापिल शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध हुआ॥ १८॥

वे महायोगी कपिल अपनी माताको उपदेश देकर ऋषि पुलहके आश्रमपर चले गये। सांख्यशास्त्रके आचार्य महान् यशस्वी भगवान् कपिल आज भी विद्यमान हैं॥ १९॥

मैं सभी प्रकारके वर प्रदान करनेवाले उन योगाचार्य कपिलको प्रणाम करता हूँ, जिनके नामके स्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है॥ २०॥

एवमुक्तं मनोः कन्यावंशवर्णनमुत्तमम्।
पठतां शृण्वतां चापि सर्वपापविनाशनम्॥ २१

हे नारद! इस प्रकार मैंने स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका उत्तम वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २१॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि मनुपुत्रान्वयं शुभम्।
यदाकर्णनमात्रेण परं पदमवाप्नुयात्॥ २२

इसके बाद मैं मनु-पुत्रोंके पवित्र वंशका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य परम पद प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

द्वीपवर्षसमुद्रादिव्यवस्था यत्सुतैः कृता।
व्यवहारप्रसिद्ध्यर्थं सर्वभूतसुखाप्तये॥ २३

उन मनुपुत्रोंने व्यवहारकी सिद्धिके लिये और सभी प्राणियोंकी सुख-प्राप्तिके लिये द्वीप, वर्ष और समुद्र आदिकी व्यवस्था की है॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशविस्तारे स्वायम्भुवमनुवंशकीर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

~~0~~

अथ चतुर्थोऽध्यायः

महाराज प्रियव्रतका आख्यान तथा समुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्तिका प्रसंग

श्रीनारायण उवाच

मनोः स्वायम्भुवस्यासीज्ज्येष्ठः पुत्रः प्रियव्रतः।
पितुः सेवापरो नित्यं सत्यधर्मपरायणः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] स्वायम्भुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत थे, वे नित्य पिताकी सेवामें संलग्न रहते थे तथा सत्य-धर्मका पालन करते थे॥ १॥

प्रजापतेर्दुहितरं सुरूपां विश्वकर्मणः।
बर्हिष्मतीं चोपयेमे समानां शीलकर्मभिः॥ २

विश्वकर्मा नामक प्रजापतिकी सुन्दर रूपवाली कन्या बर्हिष्मतीके साथ प्रियव्रतने विवाह किया था, जो स्वभाव तथा कर्ममें उन्हींके सदृश थी॥ २॥

तस्यां पुत्रान्दश गुणैरन्वितान्भावितात्मनः।
जनयामास कन्यां चोर्जस्वतीं च यवीयसीम्॥ ३

प्रियव्रतने उस बर्हिष्मतीसे पवित्र आत्मावाले दस गुणी पुत्रों और ऊर्जस्वती नामक एक कन्याको उत्पन्न किया, जो सबसे छोटी थी॥ ३॥

आग्नीध्रश्चेध्मजिह्वश्च यज्ञबाहुस्तृतीयकः।
महावीरश्चतुर्थस्तु पञ्चमो रुक्मशुक्रकः॥ ४
घृतपृष्ठश्च सवनो मेधातिथिरथाष्टमः।
वीतिहोत्रः कविश्चेति दशैते वह्निनामकाः॥ ५

आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्र, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि—इन नामोंसे ये दसों पुत्र अग्निसंज्ञक कहे गये हैं॥ ४-५॥

एतेषां दशपुत्राणां त्रयोऽप्यासन्विरागिणः।
कविश्च सवनश्चैव महावीर इति त्रयः॥ ६
आत्मविद्यापरिष्णाताः सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
आश्रमे परहंसाख्ये निःस्पृहा ह्यभवन्मुदा॥ ७

इन दस पुत्रोंमें कवि, सवन और महावीर—ये तीन पुत्र विरागी हो गये। आत्मविद्यामें निष्णात तथा ब्रह्मचर्यव्रतके पालक वे सभी पुत्र परमहंस नामक आश्रममें आनन्दपूर्वक स्पृहारहित भावसे रहने लगे॥ ६-७॥

अपरस्यां च जायायां त्रयः पुत्राश्च जज्ञिरे।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चेति विश्रुताः॥ ८
मन्वन्तराधिपतय एते पुत्रा महौजसः।

प्रियव्रतकी दूसरी पत्नीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए; जो उत्तम, तामस और रैवत—इन नामोंसे विख्यात हुए। ये महान् प्रतापी पुत्र एक-एक मन्वन्तरके अधिपति बने॥ ८½॥

प्रियव्रतः स राजेन्द्रो बुभुजे जगतीमिमाम्॥ ९
एकादशार्बुदाब्दानामव्याहतबलेन्द्रियः ।
यदा सूर्यः पृथिव्याश्च विभागे प्रथमेऽतपत्॥ १०
भागे द्वितीये तत्रासीदन्धकारोदयः किल।
एवं व्यतिकरं राजा विलोक्य मनसा चिरम्॥ ११
प्रशास्ति मयि भूम्यां च तमः प्रादुर्भवेत्कथम्।
एवं निवारयिष्यामि भूमौ योगबलेन च॥ १२
एवं व्यवसितो राजा पुत्रः स्वायम्भुवस्य सः।
रथेनादित्यवर्णेन सप्तकृत्वः प्रकाशयन्॥ १३
तस्यापि गच्छतो राज्ञो भूमौ यद्रथनेमयः।
पतितास्ते समुद्राख्यां भेजिरे लोकहेतवे॥ १४
जाताः प्रदेशास्ते सप्त द्वीपा भूमौ विभागशः।
रथनेमिसमुत्थास्ते परिखाः सप्त सिन्धवः॥ १५
यत आसंस्ततः सप्त भुवो द्वीपा हि ते स्मृताः।
जम्बुद्वीपः प्लक्षद्वीपः शाल्मलीद्वीपसंज्ञकः॥ १६
कुशद्वीपः क्रौञ्चद्वीपः शाकद्वीपश्च पुष्करः।
तेषां च परिमाणं तु द्विगुणं चोत्तरोत्तरम्॥ १७
समन्ततश्चोपक्लृप्तं बहिर्भागक्रमेण च।
क्षारोदेक्षुरसोदौ च सुरोदश्च घृतोदकः॥ १८
क्षीरोदो दधिमण्डोदः शुद्धोदश्चेति ते स्मृताः।
सप्तैते प्रतिविख्याताः पृथिव्यां सिन्धवस्तदा॥ १९
प्रथमो जम्बुद्वीपाख्यो यः क्षारोदेन वेष्टितः।
तत्पतिं विदधे राजा पुत्रमाग्नीध्रसंज्ञकम्॥ २०
प्लक्षद्वीपे द्वितीयेऽस्मिन्द्वीपेक्षुरससंप्लुते।
जातस्तदधिपः प्रैयव्रत इध्मादिजिह्वकः॥ २१
शाल्मलीद्वीप एतस्मिन्सुरोदधिपरिप्लुते।
यज्ञबाहुं तदधिपं करोति स्म प्रियव्रतः॥ २२

अपराजेय बल तथा इन्द्रियोंवाले महाराज प्रियव्रतने इस पृथ्वीपर ग्यारह अर्बुद वर्षोंतक राज्य किया॥ ९½॥

एक बारकी बात है—जब सूर्य पृथ्वीके प्रथम भागमें प्रकाशित हो रहे थे, तब दूसरे भागमें अन्धकार हो गया। इस प्रकारका संकट देखकर राजाके मनमें तत्काल यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे शासन करते हुए पृथ्वीपर अन्धकार कैसे उत्पन्न हुआ? मैं अपने योगबलसे पृथ्वीपरसे इसका निवारण कर दूँगा॥ १०—१२॥

ऐसा निश्चय करके स्वायम्भुव मनुके पुत्र उन प्रियव्रतने सूर्य-सदृश तेजवाले रथपर आसीन होकर जगत्‌को प्रकाशित करते हुए पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणाएँ कीं॥ १३॥

उन राजा प्रियव्रतके परिक्रमण करते समय पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ रथके पहिये पड़े थे, वे स्थान लोक-हितके लिये सात समुद्र बन गये॥ १४॥

पृथ्वीकी परिक्रमाके बीचके स्थल विभागानुसार सात द्वीपके रूपमें हो गये और रथके पहियोंके धँसनेसे बने हुए सात समुद्र उनकी परिखा (खाई)-के रूपमें हो गये ॥ १५॥

तभीसे पृथ्वीपर सात द्वीप हो गये; जो जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीपके नामसे प्रसिद्ध हुए। उत्तरोत्तर क्रमसे उनका परिमाण दुगुना है॥ १६-१७॥

उन द्वीपोंके बाहर चारों ओर विभाग-क्रमसे समुद्र आप्लावित हैं। वे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद नामसे जाने गये। तभीसे भूमण्डलपर ये सातों समुद्र विख्यात हो गये॥ १८-१९॥

क्षारोद समुद्रसे घिरा हुआ जो पहला द्वीप है, वह जम्बूद्वीप नामसे विख्यात है। राजा प्रियव्रतने अपने आग्नीध्र नामक पुत्रको उस द्वीपका स्वामी बनाया था॥ २०॥

प्रियव्रत-पुत्र इध्मजिह्व इक्षुरससे आप्लावित इस दूसरे प्लक्षद्वीपके शासक हुए॥ २१॥

महाराज प्रियव्रतने सुरोदधिसे आप्लावित शाल्मली द्वीपका राजा अपने पुत्र यज्ञबाहुको बनाया॥ २२॥

कुशद्वीपेऽतिरम्ये च घृतोदेनोपवेष्टिते।
हिरण्यरेता राजाभूत्प्रियव्रततनूजनिः॥ २३

क्रौञ्चद्वीपे पञ्चमे तु क्षीरोदपरिसंप्लुते।
प्रैयव्रतो घृतपृष्ठः पतिरासीन्महाबलः॥ २४

शाकद्वीपे चारुतरे दधिमण्डोदसंकुले।
मेधातिथिरभूद्राजा प्रियव्रतसुतो वरः॥ २५

पुष्करद्वीपके शुद्धोदकसिन्धुसमाकुले।
वीतिहोत्रो बभूवासौ राजा जनकसम्मतः॥ २६

कन्यामूर्जस्वतीनाम्नीं ददावुशनसे विभुः।
आसीत्तस्यां देवयानी कन्या काव्यस्य विश्रुता॥ २७

एवं विभज्य पुत्रेभ्यः सप्तद्वीपान् प्रियव्रतः।
विवेकवशगो भूत्वा योगमार्गाश्रितोऽभवत्॥ २८

प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता घृतोद नामक समुद्रसे घिरे हुए अति रमणीक कुशद्वीपके राजा हुए॥ २३॥

महान् बलशाली प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ क्षीरसागरके द्वारा चारों ओरसे घिरे क्रौंचद्वीप नामक पाँचवें द्वीपके स्वामी हुए॥ २४॥

प्रियव्रतके उत्तम पुत्र मेधातिथि दधिमण्डोद नामक समुद्रसे आवृत तथा अन्य द्वीपोंसे अपेक्षाकृत सुन्दर शाकद्वीपके राजा बने॥ २५॥

अपने पिता प्रियव्रतकी अनुमति पाकर पुत्र वीतिहोत्र शुद्धोद नामक समुद्रसे घिरे पुष्करद्वीपके राजा हुए॥ २६॥

महाराज प्रियव्रतने अपनी ऊर्जस्वती नामक कन्या शुक्राचार्यको अर्पित कर दी थी। शुक्राचार्यकी सर्वविश्रुत कन्या देवयानी उन्हीं ऊर्जस्वतीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी॥ २७॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंमें सातों द्वीपोंका विभाजन करके महाराज प्रियव्रतने विवेकसम्पन्न होकर योगमार्गका आश्रय ग्रहण किया॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
भुवनकोशविषये प्रियव्रतवंशवर्णनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

भूमण्डलपर स्थित विभिन्न द्वीपों और वर्षोंका संक्षिप्त परिचय

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु विस्तारं द्वीपवर्षविभेदतः।
भूमण्डलस्य सर्वस्य यथा देवप्रकल्पितम्॥ १

समासात्सम्प्रवक्ष्यामि नालं विस्तरतः क्वचित्।
जम्बुद्वीपः प्रथमतः प्रमाणे लक्षयोजनः॥ २

विशालो वर्तुलाकारो यथाब्जस्य च कर्णिका।
नव वर्षाणि यस्मिंश्च नवसाहस्रयोजनैः॥ ३

आयामैः परिसंख्यानि गिरिभिः परितः श्रितैः।
अष्टाभिर्दीर्घरूपैश्च सुविभक्तानि सर्वतः॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब आप द्वीप तथा वर्षके भेदसे देवताओंके द्वारा किये गये सम्पूर्ण भूमण्डलके विस्तारके विषयमें सुनिये। इस प्रसंगमें कहीं भी विस्तार न करके मैं संक्षेपमें ही वर्णन करूँगा। सर्वप्रथम एक लाख योजन परिमाणवाले जम्बूद्वीपका निर्माण हुआ। यह अति विशाल द्वीप आकृतिमें जैसी कमलकी कर्णिका होती है, वैसा ही गोल है। इस द्वीपमें कुल नौ हजार योजनतक विस्तारवाले नौ वर्ष कहे गये हैं, जो चारों ओरसे घिरे हुए अतिविशाल रूपवाले आठ पर्वतोंसे अच्छी तरहसे विभाजित हैं॥ १—४॥

धनुर्वत्संस्थिते ज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे।
दीर्घाणि तत्र चत्वारि चतुरस्रमिलावृतम्॥ ५

इलावृतं मध्यवर्षं यन्नाभ्यां सुप्रतिष्ठितः।
सौवर्णो गिरिराजोऽयं लक्षयोजनमुच्छ्रितः॥ ६

कर्णिकारूप एवायं भूगोलकमलस्य च।
मूर्ध्नि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनैर्विततस्त्वयम्॥ ७

मूले षोडशसाहस्रस्तावतान्तर्गतः क्षितौ।
इलावृतस्योत्तरतो नीलः श्वेतश्च शृङ्गवान्॥ ८

त्रयो वै गिरयः प्रोक्ता मर्यादावधयस्त्रिषु।
रम्यकाख्ये तथा वर्षे द्वितीये च हिरण्मये॥ ९

कुरुवर्षे तृतीये तु मर्यादां व्यञ्जयन्ति ते।
प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयस्तथा॥ १०

द्विसहस्रपृथुतरास्तथा एकैकशः क्रमात्।
पूर्वात्पूर्वाच्चोत्तरस्यां दशांशादधिकांशतः॥ ११

दैर्घ्य एव ह्रसन्तीमे नानानदनदीयुताः।
इलावृताद्दक्षिणतो निषधो हेमकूटकः॥ १२

हिमालयश्चेति त्रयः प्राग्विस्तीर्णाः सुशोभनाः।
अयुतोत्सेधभाजस्ते योजनैः परिकीर्तिताः॥ १३

हरिवर्षं किम्पुरुषं भारतं च यथातथम्।
विभागात्कथयन्त्येते मर्यादागिरयस्त्रयः॥ १४

इलावृतात्पश्चिमतो माल्यवान्नामपर्वतः।
पूर्वेण च ततः श्रीमान् गन्धमादनपर्वतः॥ १५

आनीलनिषधं त्वेतौ चायतौ द्विसहस्रतः।
योजनैः पृथुतां यातौ मर्यादाकारकौ गिरी॥ १६

केतुमालाख्यभद्राश्ववर्षयोः प्रथितौ च तौ।
मन्दरश्च तथा मेरुमन्दरश्च सुपार्श्वकः॥ १७

कुमुदश्चेति विख्याता गिरयो मेरुपादकाः।
योजनायुतविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशम्॥ १८

अवष्टम्भकरास्ते तु सर्वतोऽभिविराजिताः।

धनुषके आकारकी भाँति दो वर्षोंको दक्षिण-उत्तरतक फैला हुआ जानना चाहिये। वहीं चार और विशाल वर्ष हैं। इलावृत नामका वर्ष चौकोर है। यह इलावृत मध्यवर्ष भी कहा जाता है; जिसकी नाभि (मध्यभाग)-में एक लाख योजन ऊँचाईवाला सुवर्णमय सुमेरु नामक पर्वतराज विद्यमान है। यह पर्वत ही गोलाकार पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिकाके रूपमें स्थित है। इस पर्वतका शिखरभाग बत्तीस हजार योजनके विस्तारमें है, इसका मूलभाग (तलहटी) सोलह हजार योजनतक पृथ्वीपर फैला है और इतने ही योजनतक पृथ्वीके भीतर प्रविष्ट है॥ ५—७½ ॥

इलावृतके उत्तरमें उसकी सीमाके रूपमें नील, श्वेत और शृंगवान्—ये तीन पर्वत कहे गये हैं॥ ८½ ॥

वे पर्वत रम्यक नामक वर्ष, दूसरे हिरण्मयवर्ष तथा तीसरे कुरुवर्षकी सीमा व्यक्त करते हैं॥ ९½ ॥

वे वर्ष आगेकी ओर फैले हुए हैं। दोनों ओरकी सीमा क्षार समुद्र है। वे दो हजार योजन विस्तारवाले हैं। वे क्रमशः एकसे एक पूर्वकी ओर दशांशमें बढ़ते गये हैं और उत्तरमें एक-एक दशांशका अन्तर चौड़ाईमें कम होता गया है। ये वर्ष अनेक नदियों तथा सरोवरोंसे युक्त हैं॥ १०-११½ ॥

इलावृतके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक अत्यन्त सुन्दर तीन पर्वत पूर्वकी ओर फैले हुए हैं। वे दस हजार योजन ऊँचाईवाले कहे जाते हैं। हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष—इन तीनोंका विभागानुसार यथार्थ वर्णन किया गया है। ये तीनों पर्वत (निषध, हेमकूट और हिमालय) उक्त तीनों वर्षोंकी सीमा हैं॥ १२—१४॥

इलावृतके पश्चिममें माल्यवान् नामक पर्वत और पूर्वकी ओर श्रीयुक्त गन्धमादनपर्वत स्थित हैं। ये दोनों पर्वत नीलपर्वतसे लेकर निषधपर्वततक लम्बाईमें फैले हैं और चौड़ाईमें इनका विस्तार दो हजार योजन है। वे दोनों पर्वत केतुमाल और भद्राश्व—इन दोनों वर्षोंकी सीमा निश्चित करते हैं॥ १५-१६॥

मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चारों पर्वत सुमेरुगिरिके पादके रूपमें कहे गये हैं। दस-दस हजार योजन ऊँचाईवाले ये पर्वत सभी ओरसे सुमेरुको सहारा दिये हुए चारों दिशाओंमें विराजमान हैं॥ १७-१८½ ॥

एतेषु गिरिषु प्राप्ताः पादपाश्चूतजम्बुनी॥ १९

कदम्बन्यग्रोध इति चत्वारः पर्वताः स्थिताः।
केतवो गिरिराजेषु एकादशशतोच्छ्रयाः॥ २०

तावद्विटपविस्ताराः शताख्यपरिणाहिनः।
चत्वारश्च ह्रदास्तेषु पयोमध्विक्षुसज्जलाः॥ २१

यदुपस्पर्शिनो देवा योगैश्वर्याणि विन्दते।
देवोद्यानानि चत्वारि भवन्ति ललनासुखाः॥ २२

नन्दनं चैत्ररथकं वैभ्राजं सर्वभद्रकम्।
येषु स्थित्वामरगणा ललनायूथसंयुताः॥ २३

उपदेवगणैर्गीतमहिमानो महाशयाः।
विहरन्ति स्वतन्त्रास्ते यथाकामं यथासुखम्॥ २४

मन्दरोत्सङ्गसंस्थस्य देवचूतस्य मस्तकात्।
एकादशशतोच्छ्रायात्फलान्यमृतभाञ्जि च॥ २५

गिरिकूटप्रमाणानि सुस्वादूनि मृदूनि च।

तेषां विशीर्यमाणानां फलानां सुरसेन च॥ २६

अरुणोदसवर्णेन अरुणोदा प्रवर्तते।
नदी रम्यजला देवदैत्यराजप्रपूजिता॥ २७

अरुणाख्या महाराज वर्तते पापहारिणी।
पूजयन्ति च तां देवीं सर्वकामफलप्रदाम्॥ २८

नानोपहारबलिभिः कल्मषघ्न्यभयप्रदाम्।
तस्याः कृपावलोकेन क्षेमारोग्यं व्रजन्ति ते॥ २९

आद्या मायातुलानन्ता पुष्टिरीश्वरमालिनी।
दुष्टनाशकरी कान्तिदायिनीति स्मृता भुवि॥ ३०

अस्याः पूजाप्रभावेण जाम्बूनदमुदावहत्॥ ३१

इन पर्वतोंपर आम, जामुन, कदम्ब तथा बरगदके वृक्ष स्थित हैं, जो इन पर्वतराजोंकी ध्वजाओंके रूपमें विराजमान हैं। इनमेंसे सभी वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचाईवाले हैं, इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है और ये सौ योजन मोटाईवाले हैं॥ १९-२०½ ॥

इन पर्वतोंपर दूध, मधु, ईखके रस और सुस्वादु जलसे परिपूर्ण चार सरोवर हैं; जिनमें स्नान, आचमन आदि करनेवाले देवता योग-सम्बन्धी महाशक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं॥ २१½ ॥

वहाँ स्त्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र नामक चार देवोद्यान हैं। गन्धर्व आदि उपदेवताओंके द्वारा गायी जानेवाली महिमासे युक्त महाभाग देवतागण सुन्दर अंगनाओंके साथ वहाँ निवास करते हैं और स्वतन्त्र होकर सुखपूर्वक यथेच्छ विहार करते हैं॥ २२—२४॥

मन्दराचलके शिखरपर विराजमान ग्यारह सौ योजन ऊँचे दिव्य आम्र-वृक्षके फल अमृतमय पर्वत-शिखरके समान विशाल, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा कोमल होते हैं। उस वृक्षके ऊँचे शिरोभागसे गिरकर विदीर्ण हुए उन फलोंके सुस्वादु एवं लाल वर्णवाले रससे 'अरुणोदा' नामक नदी बन गयी। रम्य जलवाली यह नदी बड़े-बड़े देवताओं तथा दैत्योंद्वारा पूजी जाती है॥ २५—२७॥

हे महाराज! उसी पर्वतपर पापनाशिनी भगवती 'अरुणा' प्रतिष्ठित हैं। लोग अनेकविध उपहारों तथा बलिसे समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली, पापोंका शमन करनेवाली तथा अभय प्रदान करनेवाली उन भगवतीका पूजन करते हैं। उनकी कृपादृष्टिमात्रसे वे कल्याण तथा आरोग्य प्राप्त कर लेते हैं॥ २८-२९॥

ये आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी, दुष्टनाशकरी और कान्तिदायिनी—इन नामोंसे भूमण्डलपर विख्यात हैं। इन्हींके पूजा-प्रभावसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न हुआ है॥ ३०-३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनलोकवर्णने द्वीपवर्षविभेदवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

भूमण्डलके विभिन्न पर्वतोंसे निकलनेवाली विभिन्न नदियोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अरुणोदा नदी या तु मया प्रोक्ता च नारद।
मन्दरान्निपतन्ती सा पूर्वेणेलावृतं प्लवेत्॥ १

यज्ञोषणाद्भवान्याश्चानुचरीणां स्त्रियामपि।
यक्षगन्धर्वपत्नीनां देहगन्धवहोनिलः॥ २

वासयत्यभितो भूमिं दशयोजनसंख्यया।
एवं जम्बूफलानां च तुङ्गदेशनिपातनात्॥ ३

विशीर्यतामनस्थीनां कुञ्जराङ्गप्रमाणिनाम्।
रसेन च नदी जम्बूनाम्नी मेर्वाख्यमन्दरात्॥ ४

पतन्ती भूमिभागे च दक्षिणेलावृतं गता।
देवी जम्बूफलास्वादतुष्टा जम्ब्वादिनी स्मृता॥ ५

तत्रत्यानां च लोकानां देवनागर्षिरक्षसाम्।
पूजनीयपदा मान्या सर्वभूतदयाकरी॥ ६

पावनी पापिनां रोगनाशिनी स्मरतामपि।
कीर्तिता विघ्नसंहर्त्री माननीया दिवौकसाम्॥ ७

कोकिलाक्षी कामकला करुणा कामपूजिता।
कठोरविग्रहा धन्या नाकिमान्या गभस्तिनी॥ ८

एभिर्नामपदैः कामं जपनीया सदा नृणाम्।
जम्बूनदीरोधसोर्या मृत्तिकातीरवर्तिनी॥ ९

जम्बूरसेनानुविद्ध्यमाना वाय्वर्कयोगतः।
विद्याधरामरस्त्रीणां भूषणं विविधं महत्॥ १०

जाम्बूनदं सुवर्णं च प्रोक्तं देवविनिर्मितम्।
यत्सुवर्णं च विबुधा योषिद्भिः कामुकाः सदा॥ ११
मुकुटं कटिसूत्रं च केयूरादीन्प्रकुर्वते।

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैंने अरुणोदा नामक जिस नदीका वर्णन किया है, वह मन्दरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्व भागमें प्रवाहित होती है॥ १॥

भगवतीकी अनुचरी स्त्रियों तथा यक्षों और गन्धर्वोंकी पत्नियोंके अरुणोदाके जलमें स्नान करनेसे उनके शरीरकी दिव्य गन्धसे उसका जल सुवासित हो जाता है। उस सुगन्धको लेकर बहता हुआ पवन चारों ओरकी दशयोजनपर्यन्त भूमिको सुगन्धित कर देता है॥ २½ ॥

इसी प्रकार पर्वतकी अधिक ऊँचाईसे गिरनेके कारण हाथीके शरीरके समान विशाल आकारवाले गुठलीरहित जम्बू-फलोंके फटनेसे निकले हुए रसके द्वारा जम्बू नामक नदी बन गयी। वह मेरुमन्दरसे पृथ्वीतलपर गिरती हुई इलावृतवर्षसे दक्षिणकी ओर प्रवाहित होने लगी॥ ३-४½ ॥

जम्बू-फलके स्वादसे सन्तुष्ट होनेवाली भगवती 'जम्ब्वादिनी' नामसे विख्यात हैं। वहाँके देवता, नाग, ऋषि, राक्षस तथा अन्य लोगोंके लिये सभी प्राणियोंपर दया करनेवाली ये भगवती मान्य तथा पूजाके योग्य हैं। ये स्मरण करनेवाले पापियोंको पवित्र कर देनेवाली तथा उनके रोगोंको नष्ट कर देनेवाली हैं। देवताओंकी भी वन्दनीया इन भगवतीका कीर्तन करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है। कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या, गभस्तिनी—इन नामोंका उच्चारण करके मनुष्योंको सदा देवीका जप करना चाहिये॥ ५—८½ ॥

जम्बूनदीके तटोंपर विद्यमान जो मिट्टी है, वह जम्बू-रससे सिक्त होकर और पुनः सूर्य तथा वायुके सम्पर्कसे सुवर्ण बन जाती है। उसीसे विद्याधरों और देवताओंकी स्त्रियोंके अनेक उत्तम आभूषण बने हैं, वह जाम्बूनद सुवर्ण देवनिर्मित कहा गया है। सदा अपनी स्त्रियोंकी कामना पूर्ण करनेवाले देवतागण उसी सुवर्णसे मुकुट, करधनी और केयूर आदिका निर्माण करते हैं॥ ९—११½ ॥

महाकदम्बः सम्प्रोक्तः सुपार्श्वगिरिसंस्थितः ॥ १२

तस्य कोटरदेशेभ्यः पञ्च धाराश्च याः स्मृताः ।
सुपार्श्वगिरिमूर्ध्नीह पतन्त्येता भुवं गताः ॥ १३

मधुधाराः पञ्च तास्तु पश्चिमेलावृतं प्लुताः ।
याश्चोपभुज्यमानानां देवानां मुखगन्धभृत् ॥ १४

वायुः समन्ततोऽगच्छञ्छतयोजनवासनः ।
धारेश्वरी महादेवी भक्तानां कार्यकारिणी ॥ १५

देवपूज्या महोत्साहा कालरूपा महानना ।
वसते कर्मफलदा कान्तारग्रहणेश्वरी ॥ १६

करालदेहा कालाङ्गी कामकोटिप्रवर्तिनी ।
इत्येतैर्नामभिः पूज्या देवी सर्वसुरेश्वरी ॥ १७

एवं कुमुदरूढो यो नाम्ना शतबलो वटः ।
तत्स्कन्धेभ्योऽधोमुखाश्च नदाः कुमुदमूर्धतः ॥ १८

पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरादिभिः ।
शय्यासनाद्याभरणैः सर्वे कामदुघाश्च ते ॥ १९

उत्तरेणेलावृतं ते प्लावयन्ति समन्ततः ।
मीनाक्षी तत्तले देवी देवासुरनिषेविता ॥ २०

नीलाम्बरा रौद्रमुखी नीलालकयुता च सा ।
नाकिनां देवसंघानां फलदा वरदा च सा ॥ २१

अतिमान्यातिपूज्या च मत्तमातङ्गगामिनी ।
मदनोन्मादिनी मानप्रिया मानप्रियान्तरा ॥ २२

मारवेगधरा मारपूजिता मारमादिनी ।
मयूरवरशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभूः ॥ २३

एभिर्नामपदैर्वन्द्या देवी सा मीनलोचना ।
जपतां स्मरतां मानदात्री चेश्वरसङ्गिनी ॥ २४

तेषां नदानां पानीयपानानुगतचेतसाम् ।
प्रजानां न कदाचित्स्याद्वलीपलितलक्षणम् ॥ २५

क्लमस्वेदादिदौर्गन्ध्यं जरामयमृतिभ्रमाः ।
शीतोष्णवातवैवर्ण्यमुखोपप्लवसंचयाः ॥ २६

कदम्बका एक विशाल वृक्ष सुपार्श्वपर्वतपर विराजमान बताया गया है। उसके कोटरोंसे जो पाँच धाराएँ निकली हुई बतायी गयी हैं, वे सुपार्श्वगिरिके शिखरपर गिरकर पृथ्वीतलपर आयीं। वे पाँचों मधुधाराएँ इलावृतवर्षके पश्चिमभागमें प्रवाहित होती हैं। इनका सेवन करनेवाले देवताओंके मुखकी सुगन्धि लेकर प्रवाहित होता हुआ पवन चारों ओर सौ योजनतककी भूमिको सुवासित कर देता है॥ १२—१४½ ॥

भक्तोंका काम सिद्ध करनेवाली महादेवी धारेश्वरी वहाँ वास करती हैं। देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महानना, कर्मफलदा, कान्तारग्रहणेश्वरी, करालदेहा, कालांगी और कामकोटिप्रवर्तिनी—इन नामोंसे सर्वसुरेश्वरी भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ १५—१७॥

इसी प्रकार कुमुदपर्वतके ऊपर शतबल नामसे प्रसिद्ध जो वट-वृक्ष है, उसकी शाखाओंसे नीचे गिरते हुए रससे बहुतसे नद हो गये हैं; कुमुदगिरिके शिखरसे नीचेकी ओर गिरनेवाले वे सभी नद दूध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन तथा आभूषण आदिके द्वारा सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। वे इलावृतवर्षके उत्तरभागकी सम्पूर्ण भूमिको आप्लावित किये रहते हैं॥ १८-१९½ ॥

इन्हींके तटपर देवताओं और दानवोंद्वारा नित्य उपासित भगवती मीनाक्षी प्रतिष्ठित हैं। नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातंगगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा, मारवेगधरा, मारपूजिता, मारमादिनी, मयूरवरशोभाढ्या तथा शिखिवाहनगर्भभू—इन नामोंसे युक्त पदोंके द्वारा स्वर्गवासी देवताओंको अभीष्ट फल तथा वर प्रदान करनेवाली देवीकी वन्दना करनी चाहिये। सदा परब्रह्मसे सांनिध्य रखनेवाली वे भगवती मीनाक्षी जप तथा ध्यान करनेवाले प्राणियोंको सम्मान प्रदान करती हैं॥ २०—२४॥

उन नदोंका जल पीनेसे चैतन्य प्राप्त करनेवाले प्राणियोंके शरीरपर झुर्रियों तथा केशोंकी सफेदीके लक्षण कभी नहीं दिखायी पड़ते। थकान, पसीने आदिमें दुर्गन्धि, जरा, रोग, भय, मृत्यु, भ्रम, शीत एवं उष्ण वायु-विकार, मुखपर उदासी एवं अन्य आपत्तियाँ

नापदश्चैव जायन्ते यावज्जीवं सुखं भवेत्।
नैरन्तर्येण तत्स्याद्वै सुखं निरतिशायकम्॥ २७
तत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सन्निवेशं च तद्गिरेः।
सुवर्णमयनाम्नो वै सुमेरोः पर्वताः पृथक्॥ २८
गिरयो विंशतिपराः कर्णिकाया इवेह ते।
केसरीभूय सर्वेऽपि मेरोर्मूलविभागके॥ २९
परितश्चोपक्लृप्तास्ते तेषां नामानि शृण्वतः।
कुरङ्गः कुरगश्चैव कुसुम्भोऽथो विकङ्कतः॥ ३०
त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा।
निषधश्च शिनीवासः कपिलः शङ्ख एव च॥ ३१
वैदूर्यश्चारुधिश्चैव हंसो ऋषभ एव च।
नागः कालञ्जरश्चैव नारदश्चेति विंशतिः॥ ३२

कभी नहीं उत्पन्न होती हैं और जीवनपर्यन्त प्राणीको सुख मिलता है और वह सुख पूर्णरूपसे निरन्तर बढ़ता ही रहता है॥ २५—२७॥

हे नारद! अब मैं उस सुमेरु नामक सुवर्णमय पर्वतके अवान्तर पर्वतोंका वर्णन करूँगा। इस पर्वतसे पृथक् बीस पर्वत हैं, जो कर्णिकाके समान हैं। उनके मूलभागमें सुमेरुपर्वत है और उसको चारों ओरसे घेरकर वे सभी पर्वत पुष्पके केसरके रूपमें विराजमान हैं। उनके नाम ये हैं—शृण्वत, कुरंग, कुरग, कुसुम्भ, विकंकत, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शिनीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, अरुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालंजर और नारद—ये बीस पर्वत हैं॥ २८—३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनेऽरुणोदादिनदीनां निसर्गस्थानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

सुमेरुपर्वतका वर्णन तथा गंगावतरणका आख्यान

श्रीनारायण उवाच

गिरी मेरुं च पूर्वेण द्वौ चाष्टादशयोजनैः।
सहस्रैरायतौ चोदग्द्विसहस्रं पृथूच्चकौ॥ १

जठरो देवकूटश्च तावेतौ गिरिवर्यकौ।
मेरोः पश्चिमतोऽद्री द्वौ पवमानस्तथापरः॥ २

पारियात्रश्च तौ तावद्विख्यातौ तुङ्गविस्तरौ।
मेरोर्दक्षिणतः ख्यातौ कैलासकरवीरकौ॥ ३

प्रागायतौ पूर्ववृत्तौ महापर्वतराजकौ।
एवं चोत्तरतो मेरोस्त्रिशृङ्गमकरौ गिरी॥ ४

एतैश्चाद्रिवरैरष्टसंख्यैः परिवृतो गिरिः।
सुमेरुः काञ्चनगिरिः परिभ्राजन् रविर्यथा॥ ५

मेरोर्मूर्धनि धातुर्हि पुरी पङ्कजजन्मनः।
मध्यतश्चोपक्लृप्तेयं दशसाहस्रयोजनैः॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुमेरुगिरिके पूर्वमें अठारह हजार योजन लम्बाई तथा दो हजार योजन चौड़ाई तथा ऊँचाईवाले दो पर्वत हैं। वे दोनों श्रेष्ठ पर्वत जठर और देवकूट हैं। सुमेरुके पश्चिममें भी दो पर्वत हैं; उनमें पहला पवमान और दूसरा पारियात्र नामसे विख्यात है। वे दोनों पर्वत जठर तथा देवकूटके ही समान ऊँचाई तथा विस्तारवाले कहे गये हैं। सुमेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर नामसे विख्यात दो पर्वत हैं; ये दोनों विशाल पर्वतराज पहलेके ही समान लम्बाई तथा चौड़ाईवाले हैं। इसी प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिशृंग और मकर नामक दो पर्वत स्थित हैं। सूर्यकी भाँति सदा प्रकाश करता हुआ यह सुवर्णमय सुमेरुपर्वत इन्हीं आठों पर्वतश्रेष्ठोंसे चारों तरफसे घिरा हुआ है॥ १—५॥

इस सुमेरुपर्वतके शिखरपर ठीक मध्यमें पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी है। यह दस हजार योजनके विस्तारमें विराजमान है॥ ६॥

समानचतुरस्रां च शातकौम्भमयीं पुरीम्।
वर्णयन्ति महात्मानः परावरविदो बुधाः॥ ७

तां पुरीमनुलोकानामष्टानामीशिषां पराः।
पुर्यः प्रख्यातसौवर्णरूपास्ताश्च यथादिशम्॥ ८

यथारूपं सार्धनेत्रसहस्रप्रमिताः कृताः।
मेरोर्नव पुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती॥ ९

तेजोवती संयमनी तथा कृष्णाङ्गनापरा।
श्रद्धावती गन्धवती तथा चान्या महोदया॥ १०

यशोवती च ब्रह्मेन्द्रवह्न्यादीनां यथाक्रमम्।
तत्रैव यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्भगवतो विभोः॥ ११

वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नस्य च नारद।
अण्डोर्ध्वभागरन्ध्रस्य मध्यात्संविशती दिवः॥ १२

मूर्धन्यवततारेयं गङ्गा संविशती विभो।
लोकानामखिलानां च पापहारिजलाकुला॥ १३

इयं च साक्षाद्भगवत्पदी लोकेषु विश्रुता।
कालेन महता सा तु युगसाहस्रकेण तु॥ १४

दिवो मूर्धानमागत्य देवी देवनदीश्वरी।
यत्तद्विष्णुपदं नाम स्थानं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ १५

औत्तानपादिर्यत्रास्ते ध्रुवः परमपावनः।
भगवत्पादयुगलं पद्मकोशरजो दधत्॥ १६

अद्याप्यास्ते स राजर्षिः पदवीमचलां श्रितः।
तत्र सप्तर्षयस्तस्य प्रभावज्ञा महाशयाः॥ १७

प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति सर्वलोकहितेप्सवः।
आत्यन्तिकी सिद्धिरियं तपतां सिद्धिदायिनी॥ १८

आद्रियन्ते च शिरसा जटाजूटोषितेन च।
ततो विष्णुपदाद्देवी नैकसाहस्रकोटिभिः॥ १९

तत्त्वज्ञानी विद्वान् महात्मागण समचौकोर इस स्वर्णमयी पुरीके विषयमें कहते हैं कि उस पुरीके चारों ओर आठ लोकपालोंकी श्रेष्ठ पुरियाँ प्रसिद्ध हैं। सुवर्णमयी वे पुरियाँ दिशा तथा रूपके अनुसार स्थापित हैं। ढाई हजार योजनके विस्तारमें इनकी रचना की गयी है॥ ७-८½ ॥

इस प्रकार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्मा तथा इन्द्र, अग्नि आदि लोकपालोंकी क्रमशः मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती—ये नौ पुरियाँ प्रतिष्ठित हैं॥ ९-१०½ ॥

हे नारद! यज्ञमूर्ति सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके बायें पैरके अँगूठेके नखसे आघातके कारण ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुए छिद्रके मध्यसे गंगा प्रकट हुईं और हे विभो! वे स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाले जलसे परिपूर्ण ये गंगा संसारमें साक्षात् विष्णुपदीके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ११—१३½ ॥

हजार युगका अत्यन्त दीर्घ समय बीतनेपर सम्पूर्ण देवनदियोंकी स्वामिनी वे भगवती गंगा स्वर्गके शिखरपर जहाँ आयी थीं, वह स्थान तीनों लोकमें 'विष्णुपद' नामसे विख्यात है। यह वही स्थान है, जहाँ उत्तानपादके पुत्र परम पवित्र ध्रुव रहते हैं। भगवान्‌के दोनों चरणकमलोंके पवित्र पराग धारण किये हुए वे परम पुण्यात्मा राजर्षि ध्रुव अचल पदवीका आश्रय लेकर आज भी वहींपर विराजमान हैं॥ १४—१६½ ॥

गंगाके प्रवाहको जाननेवाले तथा सभी प्राणियोंके हितकी कामना करनेवाले उदारहृदय सप्तर्षि भी वहीं रहते हैं और उनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं॥ १७½ ॥

आत्यन्तिकी सिद्धि (मोक्ष)-स्वरूपिणी ये गंगा तपस्या करनेवाले पुरुषोंको सिद्धि देनेवाली हैं—ऐसा समझकर सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले वे सिद्धगण उनमें निरन्तर स्नान करते रहते हैं॥ १८½ ॥

तत्पश्चात् वे गंगा विष्णुपदसे चलकर हजारों-करोड़ों विमानोंसे व्याप्त देवमार्गपर अवतरित होती

विमानैराकुले देवयानेऽवतरती च सा।
चन्द्रमण्डलमाप्लाव्य पतन्ती ब्रह्मसद्मनि॥ २०

चतुर्धा भिद्यमाना सा ब्रह्मलोके च नारद।
चतुर्भिर्नामभिर्देवी चतुर्दिशमभिसृता॥ २१

सरितां च नदीनां च पतिमेवान्वपद्यत।
सीता चालकनन्दा च चतुर्भद्रेति नामभिः॥ २२

सीता च ब्रह्मसदनाच्छिखरेभ्यः क्ष्माभृताम्।
केसराभिधनाम्ना च प्रस्रवन्ती च स्वर्णदी॥ २३

गन्धमादनमूर्ध्नीह पतिता पापहारिणी।
अन्तरेण तु भद्राश्ववर्षं प्राच्यां समागता॥ २४

क्षारोदधिं गता सा तु द्युनदी देवपूजिता।
ततो माल्यवतः शृङ्गाद् द्वितीया परिनिर्गता॥ २५

ततो वेगवती भूत्वा केतुमालं समागता।
चक्षुर्नाम्नी देवनदी प्रतीच्यां दिश्युपागता॥ २६

सरितां पतिमाविष्टा सा गङ्गा देववन्दिता।
ततस्तृतीया धारा तु नाम्ना ख्याता च नारद॥ २७

पुण्या चालकनन्दा वै दक्षिणेनाब्जभूपदात्।
वनानि गिरिकूटानि समतिक्रम्य चागता॥ २८

हेमकूटं गिरिवरं प्राप्तातोऽपीह निर्गता।
अतिवेगवती भूत्वा भारतं चागतापरा॥ २९

दक्षिणं जलधिं प्राप्ता तृतीया सा सरिद्वरा।
यस्याः स्नानाय सरतां मनुजानां पदे पदे॥ ३०

राजसूयाश्वमेधादि फलं तु न हि दुर्लभम्।
ततश्चतुर्थी धारा तु शृङ्गवत्पर्वतात्पुनः॥ ३१

भद्राभिधा संस्रवन्ती कुरून्सन्तर्प्य चोत्तरान्।
समुद्रं समनुप्राप्ता गङ्गा त्रैलोक्यपावनी॥ ३२

अन्ये नदाश्च नद्यश्च वर्षे वर्षेऽपि सन्ति हि।
बहुशो मेरुमन्दारप्रसूताश्चैव नारद॥ ३३

हुई चन्द्रमण्डलको आप्लावित करके ब्रह्मलोकमें पहुँचीं। हे नारद! वहाँ ब्रह्मलोकमें वे देवी गंगा चार भागोंमें विभक्त होकर चार नामोंसे चारों दिशाओंमें प्रवाहित हुईं और अन्तमें वे नद तथा नदियोंके स्वामी समुद्रमें मिल गयीं॥ १९—२१½॥

सीता, चतुः (चक्षु), अलकनन्दा और भद्रा—इन चार नामोंसे वे प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे सभी पापोंका शमन करनेवाली सीता नामसे विख्यात गंगा ब्रह्मलोकसे उतरकर केसर नामक पर्वतोंके शिखरसे गिरती हुईं गन्धमादनपर्वतके शिखरपर गिरीं और वहाँसे भद्राश्ववर्षके बीचसे होती हुई पूर्व दिशामें चली गयीं। इसके बाद देवताओंसे पूजित वे देवनदी गंगा क्षारोदधिमें जाकर मिल गयीं॥ २२—२४½॥

तदनन्तर चक्षु नामवाली दूसरी गंगा माल्यवान्पर्वतके शिखरसे निकलीं और अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई केतुमालवर्षमें आ गयीं। पुनः देववन्द्या वे देवनदी गंगा पश्चिम दिशामें आ गयीं और अन्तमें सागरमें समाविष्ट हो गयीं॥ २५-२६½॥

हे नारद! तीसरी वह पुण्यमयी धारा अलकनन्दा नामसे विख्यात है। वह ब्रह्मलोकके दक्षिणसे होकर बहुत-से वनों और पर्वत-शिखरोंको पार करके पर्वतश्रेष्ठ हेमकूटपर पहुँची। यहाँसे भी निकलकर वह अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई भारतवर्षमें आ गयी। इसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ अलकनन्दा नामक वह तीसरी नदी दक्षिण समुद्रमें मिल गयी, जिसमें स्नानके लिये प्रस्थान करनेवाले मनुष्योंको पग-पगपर राजसूय तथा अश्वमेध आदिका फल भी दुर्लभ नहीं है॥ २७—३०½॥

तदनन्तर भद्रा नामक चौथी धारा शृंगवान्पर्वतसे निकली। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली यह गंगा उत्तर कुरुप्रदेशोंको भलीभाँति तृप्त करती हुई अन्तमें समुद्रमें मिल गयी॥ ३१-३२॥

हे नारद! अन्य बहुतसे नद और नदियाँ प्रत्येक वर्षमें हैं। प्रायः ये सभी मेरु और मन्दारपर्वतसे ही निकले हुए हैं॥ ३३॥

तत्रापि भारतं वर्षं कर्मक्षेत्रमुशन्ति हि।
अन्यानि चाष्टवर्षाणि भौमस्वर्गप्रदानि च॥ ३४

स्वर्गिणां पुण्यशेषस्य भोगस्थानानि नारद।
पुरुषाणां चायुतायुर्वज्राङ्गा देवसन्निभाः॥ ३५

पुरुषा नागसाहस्त्रैर्दशभिः परिकल्पिताः।
महासौरतसन्तुष्टाः कलत्राढ्याः सुखान्विताः॥ ३६

एकवर्षोनके चायुष्याप्तगर्भाः स्त्रियोऽपि हि।
त्रेतायुगसमः कालो वर्तते सर्वदैव हि॥ ३७

उन नौ वर्षोंमें भारतवर्ष कर्मक्षेत्र कहा गया है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्ग-भोग प्रदान करनेवाले हैं। हे नारद! ये वर्ष स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके शेष पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं। देवताओंके समान स्वरूप तथा वज्रतुल्य अंगोंवाले उन पुरुषोंकी आयु दस हजार वर्ष होती है। दस हजार हाथियोंके बलसे सम्पन्न वे पुरुष स्त्रियोंसे समन्वित, यथेच्छ कामक्रीडासे सन्तुष्ट तथा सुखी रहते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ अपनी आयु समाप्त होनेके एक वर्ष पूर्वतक गर्भ धारण करती हैं। वहाँपर सदा त्रेतायुगके समान समय विद्यमान रहता है॥ ३४—३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने पर्वतनदीवर्षादिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी आराधना तथा भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाद्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना

श्रीनारायण उवाच

तेषु वर्षेषु देवेशाः पूर्वोक्तैः स्तवनैः सदा।
पूजयन्ति महादेवीं जपध्यानसमाधिभिः॥ १
सर्वर्तुकुसुमश्रेणी शोभिता वनराजयः।
फलानां पल्लवानां च यत्र शोभा निरन्तरम्॥ २
तेषु काननवर्षेषु वर्षपर्वतसानुषु।
गिरिद्रोणीषु सर्वासु निर्मलोदकराशिषु॥ ३
विकचोत्पलमालासु हंससारससञ्चयैः।
विमिश्रितेषु तेष्वेव पक्षिभिः कूजितेषु च॥ ४
जलक्रीडादिभिश्चित्रविनोदैः क्रीडयन्ति च।
सुन्दरीललितभ्रूणां विलासायतनेषु च॥ ५
तत्रत्या विहरन्त्यत्र स्वैरं युवतिभिः सह।
नवस्वपि च वर्षेषु भगवानादिपूरुषः॥ ६
(नारायणाख्यो लोकानामनुग्रहरसैकदृक्।)
देवीमाराधयन्नास्ते स च सर्वैश्च पूज्यते।
आत्मव्यूहेनेज्ययासौ सन्निधत्ते समाहितः॥ ७

श्रीनारायण बोले—उन नौ वर्षोंमें रहनेवाले सभी देवेश पूर्वोक्त स्तोत्रों तथा जप, ध्यान और समाधिके द्वारा महादेवीकी उपासना करते हैं॥ १॥

सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले पुष्पोंके समूहोंसे सुशोभित अनेक वन उनमें विद्यमान हैं, जहाँ फलों तथा पल्लवोंकी शोभा निरन्तर बनी रहती है॥ २॥

उन वर्षोंमें विद्यमान सभी वनोद्यानों, पर्वतशिखरों तथा सभी गिरिकन्दराओंमें और खिले हुए कमलोंसे शोभायमान तथा हंस-सारस आदि भिन्न-भिन्न जातिके पक्षियोंकी ध्वनिसे निनादित निर्मल जलवाले सरोवरोंमें वहाँके देवतागण जल-क्रीड़ा आदि विचित्र विनोदोंके द्वारा क्रीडा करते हैं और ललित भौंहोंवाली सुन्दरियोंके विलासभवनोंमें उन युवतियोंके साथ यथेच्छ विहार करते हैं॥ ३—५$\frac{१}{२}$॥

उन नौ वर्षोंमें (सभी लोकोंपर अनुग्रहरससे परिपूर्ण दृष्टि रखनेवाले नारायण नामसे प्रसिद्ध) भगवान् आदिपुरुष भगवतीकी आराधना करते हुए विराजमान रहते हैं और वहाँ सभी लोग उनकी पूजा करते हैं। वे भगवान् लोकोंसे पूजा स्वीकार करनेके निमित्त अपनी विभिन्न मूर्तियोंके रूपमें समाहित होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ६-७॥

इलावृते तु भगवान् पद्मजाक्षिसमुद्भवः।
एक एव भवो देवो नित्यं वसति साङ्गनः॥ ८

तत्क्षेत्रे नापरः कश्चित्प्रवेशं वितनोति च।
भवान्याः शापतस्तत्र पुमान्स्त्री भवति स्फुटम्॥ ९

भवानीनाथकैः स्त्रीणामसंख्यैर्गणकोटिभिः।
संरुध्यमानो देवेशो देवं सङ्कर्षणं भजन्॥ १०

आत्मना ध्यानयोगेन सर्वभूतहितेच्छया।
तां तामसीं तुरीयां च मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः॥ ११

उपधावते चैकाग्रमनसा भगवानजः।

श्रीभगवानुवाच

ॐनमो भगवते महापुरुषाय
सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति॥ १२

भजे भजन्यारणपादपङ्कजं
भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम्।
भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं
भवापहं त्वा भव भावमीश्वरम्॥ १३

न यस्य मायागुणकर्मवृत्तिभि-
र्निरीक्षितो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते।
ईशे यथा नो जितमन्युरंहसा
कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः॥ १४

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया
क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः।
न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया
यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः॥ १५

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीके नेत्रसे उत्पन्न भवरूपमें अपनी भार्या भवानीके साथ नित्य निवास करते हैं॥ ८॥

उस क्षेत्रमें कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता है। वहाँ जानेपर भवानीके शापसे पुरुष तत्काल नारी हो जाता है॥ ९॥

वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न असंख्य स्त्रियों तथा अपने करोड़ों गणोंसे घिरे हुए देवेश्वर भगवान् शिव संकर्षणदेवकी आराधना करते हैं। वे अजन्मा भगवान् शिव सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ तामस प्रकृतिवाली अपनी ही उस संकर्षण नामक चौथी मूर्तिका एकाग्र मनसे ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करते रहते हैं॥ १०-११½॥

श्रीभगवान् बोले—सभी गुणोंके अभिव्यक्तिरूप, अनन्त, अव्यक्त और ॐकारस्वरूप परम पुरुष भगवान्को नमस्कार है॥ १२॥

हे भजनीय प्रभो! भक्तोंके आश्रयस्वरूप चरण-कमलवाले, समग्र ऐश्वर्योंके परम आश्रय, भक्तोंके सामने अपना भूतभावनस्वरूप प्रकट करनेवाले और उनका सांसारिक बन्धन दूर करनेवाले, किंतु अभक्तोंको सदा भव-बन्धनमें बाँधे रहनेवाले आप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ॥ १३॥

हे प्रभो! मैं क्रोधको नहीं जीत सका हूँ तथा मेरी दृष्टि पापसे लिप्त हो जाती है, किंतु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये साक्षीरूपसे उसके व्यापारोंको देखते रहते हैं। फिर भी मेरी तरह आपकी दृष्टि उन मायिक गुणों तथा कर्म-वृत्तियोंसे प्रभावित नहीं होती। ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छावाला कौन पुरुष ऐसे आपका आदर नहीं करेगा॥ १४॥

मधुपान करके लाल आँखोंवाले मदमत्तकी भाँति जो प्रभु मायाके कारण विकृत नेत्रोंवाले दिखायी पड़ते हैं, जिन प्रभुके चरणोंका स्पर्श करके नागपत्नियोंका मन मोहित हो जाता है और लज्जावश वे अन्य प्रकारसे उपासना नहीं कर पातीं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।]॥ १५॥

यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं
त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः।
न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित्स्थितं
भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु॥ १६

यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान्
विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल।
यत्संवृतोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा
वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे॥ १७

एते वयं यस्य वशे महात्मनः
स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः।
महानहंवैकृततामसेन्द्रियाः
सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम्॥ १८

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं
मायां जनोऽयं गुरुसर्गमोहितः।
न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा
तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने॥ १९

श्रीनारायण उवाच

एवं स भगवान् रुद्रो देवं सङ्कर्षणं प्रभुम्।
इलावृतमुपासीत देवीगणसमाहितः॥ २०
तथैव धर्मपुत्रोऽसौ नाम्ना भद्रश्रवा इति।
तत्कुलस्यापि पतयः पुरुषा भद्रसेवकाः॥ २१
भद्राश्ववर्षे तां मूर्तिं वासुदेवस्य विश्रुताम्।
हयमूर्तिभिदा तां तु हयग्रीवपदाङ्किताम्॥ २२
परमेण समाध्यन्यवारकेण नियन्त्रिताम्।
एवमेव च तां मूर्तिं गृणन्त उपयान्ति च॥ २३

भद्रश्रवस ऊचुः

ॐ नमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति।
अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं
घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति।
ध्यायन्न सद्यर्हि विकर्म सेवितुं
निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः॥ २४

वेदके मन्त्र जिन्हें इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परंतु वे तीनोंसे रहित हैं और जिन्हें ऋषिगण अनन्त कहते हैं, जिनके सहस्र मस्तकोंपर स्थित यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान प्रतीत होता है और जिन्हें यह भी नहीं ज्ञात होता कि वह कहाँ स्थित है [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।] ॥ १६ ॥

जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहंकाररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं ॥ १७ ॥

महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पंचमहाभूत आदि हम सभी महात्मालोग डोरीमें बँधे हुए पक्षीकी भाँति जिनकी क्रियाशक्तिके वशीभूत होकर और जिनकी कृपाके द्वारा इस जगत्‌की रचना करते हैं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।] ॥ १८ ॥

सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित यह जीव जिनके द्वारा रचित तथा कर्मबन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान लेता है, किंतु उससे छूटनेका उपाय उसे सरलतापूर्वक नहीं ज्ञात हो पाता—उन जगत्‌की उत्पत्ति तथा लयरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है ॥ १९ ॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवीके गणोंसे घिरे हुए वे भगवान् रुद्र इलावृतवर्षमें सर्वसमर्थ परमेश्वर संकर्षणकी उपासना करते हैं ॥ २० ॥

उसी प्रकार भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवा नामक वे धर्मपुत्र और उनके कुलके प्रधान पुरुष तथा सेवक भी भगवान् वासुदेवकी हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध हयमूर्तिको एकनिष्ठ परम समाधिके द्वारा अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं और इस प्रकार उस हयमूर्तिरूप भगवान् वासुदेवकी स्तुति करते हुए उनके समीप रहते हैं ॥ २१—२३ ॥

भद्रश्रवा बोले—चित्तको शुद्ध करनेवाले ओंकारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है। अहो, ईश्वरकी लीला बड़ी विचित्र है कि यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखता हुआ भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये कुत्सित चिन्तन करता हुआ अपने ही पुत्र तथा पिताको जलाकर भी स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है ॥ २४ ॥

वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं
पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः।
तथापि मुह्यन्ति तवाज मायया
सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम्॥ २५

विश्वोद्भवस्थाननिरोधकर्म ते
ह्यकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ।
युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे
सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः॥ २६

वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान्
रसातलाद्यो नृतुरङ्गविग्रहः।
प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते
तस्मै नमस्ते वितथेहिताय ते॥ २७

एवं स्तुवन्ति देवेशं हयशीर्षं हरिं च ते।
भद्रश्रवसनामानो वर्णयन्ति च तद्गुणान्॥ २८

एषां चरितमेतद्धि यः पठेच्छ्रावयेच्च यः।
पापकंचुकमुत्सृज्य देवीलोकं व्रजेच्च सः॥ २९

हे अज! विद्वान् पुरुष इस विश्वको नाशवान् बताते हैं और अध्यात्मको जाननेवाले सूक्ष्मदर्शी महात्मा भी जगत्‌को इसी रूपमें देखते हैं, फिर भी वे आपकी मायासे मोहित हो जाते हैं। अतः मैं विस्मयकारक कृत्यवाले उस अजन्मा प्रभुको नमस्कार करता हूँ॥ २५॥ मायाके आवरणसे रहित आपने अकर्ता होते हुए भी विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारका कार्य अंगीकृत किया है। यह उचित ही है, सर्वात्मरूप तथा कार्यकारणभावसे सर्वथा अतीत आपके लिये यह कोई आश्चर्य नहीं है॥ २६॥ जब प्रलयकालमें तमोगुणसे युक्त दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर मनुष्य और अश्वके संयुक्त विग्रहवाले जिन्होंने रसातलसे उन्हें ला दिया था, ऐसा अमोघ हित करनेवाले उन आप प्रभुको नमस्कार है॥ २७॥ इस प्रकार भद्रश्रवा नामवाले वे महात्मागण हयग्रीवरूप देवेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करते हैं और उनके गुणोंका संकीर्तन करते हैं॥ २८॥

जो मनुष्य इनके इस चरित्रको पढ़ता है और दूसरोंको सुनाता है, वह पापरूपी केंचुलसे मुक्त होकर देवीलोकको प्राप्त होता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने इलावृतभद्राश्ववर्षवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी आराधना, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी तथा रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण उवाच

हरिवर्षे च भगवान्नृहरिः पापनाशनः।
वर्तते योगयुक्तात्मा भक्तानुग्रहकारकः॥ १
तस्य तद्दयितं रूपं महाभागवतोऽसुरः।
पश्यन्भक्तिसमायुक्तः स्तौति तद्गुणतत्त्ववित्॥ २

प्रह्लाद उवाच

ॐ नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे आविराविर्भव वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐ स्वाहा। अभयं ममात्मनि भूयिष्ठाः॥ ॐ क्ष्रौं॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] पापोंका नाश करनेवाले, योगसे युक्त आत्मावाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् नृसिंह हरिवर्षमें प्रतिष्ठित हैं॥ १॥

भगवान्‌के गुण-तत्त्वोंको जाननेवाले परम भागवत असुर प्रह्लाद उनके दयामयरूपका दर्शन करते हुए भक्तिभावसे युक्त होकर उनकी स्तुति करते हैं॥ २॥

प्रह्लाद बोले—तेजोंके भी तेज ॐकारस्वरूप भगवान् नरसिंहको बार-बार नमस्कार है। हे वज्रदंष्ट्र! आप मेरे सामने प्रकट होइये, प्रकट होइये; मेरे कर्मविषयोंको जला डालिये, जला डालिये और मेरे अज्ञानरूप अन्धकारको नष्ट कीजिये, ॐ स्वाहा; मुझे अभय दीजिये तथा मेरे अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित होइये। ॐ क्ष्रौं।

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेशयतां नो मतिरप्यहैतुकी॥ ३

मागारदारात्मजवित्तबन्धुषु
सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः।
यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान्
सिद्ध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः॥ ४

यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं
तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम्।
हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं
को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम्॥ ५

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥ ६

हरिर्हि साक्षाद्भगवाञ्छरीरिणा-
मात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम्।
हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे
तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम्॥ ७

तस्माद्रजोरागविषादमन्यु-
मानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम्।
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं
नृसिंहपादं भजतां कुतो भयम्॥ ८

एवं दैत्यपतिः सोऽपि भक्त्यानुदिनमीडते।
नृहरिं पापमातङ्गहरिं हृत्पद्मवासिनम्॥ ९

हे प्रभो! अखिल जगत्का कल्याण हो, दुष्टलोग शुद्ध भावनासे युक्त हों, सभी प्राणी अपने मनमें एक दूसरेके कल्याणका चिन्तन करें, हम सबका मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हमारी मति निष्कामभावसे युक्त होकर भगवान् श्रीहरिमें प्रविष्ट हो॥ ३॥

[हे भगवन्!] घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धु-बान्धवोंमें हमारी आसक्ति न हो और यदि हो तो भगवान्के प्रियजनोंमें हो। जो संयमी पुरुष केवल प्राण-रक्षाके योग्य आहारसे सन्तुष्ट रहता है, वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, किंतु इन्द्रियप्रिय व्यक्ति वैसा नहीं कर पाता॥ ४॥

जिन भगवद्भक्तोंके संगसे भगवान्के तीर्थतुल्य चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति-वैभवके सूचक हैं तथा जिनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके मार्गसे भगवान् हृदयमें प्रवेश करके उनके सभी प्रकारके मानसिक तथा दैहिक कष्टोंको हर लेते हैं—उन भगवद्भक्तोंका संग कौन नहीं करना चाहेगा?॥ ५॥

भगवान्में जिस पुरुषकी निष्काम भक्ति होती है, उसके हृदयमें देवता, धर्म, ज्ञान आदि सभी गुणोंसहित निवास करते हैं, किंतु अनेक मनोरथोंसे युक्त होकर बाहरी विषय-सुखकी ओर दौड़नेवाले भगवद्भक्तिरहित मनुष्यमें महान् गुण कहाँसे हो सकते हैं?॥ ६॥

जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही सभी देहधारियोंकी आत्मा हैं। उनका त्याग करके यदि कोई महत्त्वाभिमानी घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें दम्पतियोंका महत्त्व केवल उनकी आयुको लेकर माना जाता है, गुणोंकी दृष्टिसे कदापि नहीं॥ ७॥

अतएव तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, मान, कामना, भय, दीनता, मानसिक सन्तापके मूल और जन्म-मरणरूप संसारचक्रका वहन करनेवाले गृहका परित्याग करके भगवान् नृसिंहके चरणका आश्रय लेनेवालोंको भय कहाँ!॥ ८॥

[हे नारद!] इस प्रकार वे दैत्यपति प्रह्लाद पापरूपी हाथियोंके लिये सिंहस्वरूप तथा हृदयकमलमें निवास करनेवाले भगवान् नृसिंहकी भक्तिपूर्वक निरन्तर स्तुति करते रहते हैं॥ ९॥

केतुमाले च वर्षे हि भगवान्स्मररूपधृक्।
आस्ते तद्वर्षनाथानां पूजनीयश्च सर्वदा॥ १०

एतेनोपासते स्तोत्रजालेन च रमाब्धिजा।
तद्वर्षनाथा सततं महतां मानदायिका॥ ११

रमोवाच

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मने आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय महसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात्।

स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषीकेश्वरं स्वतो
ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम्।
तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं
प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः॥ १२

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वतः
समन्ततः पाति भयातुरं जनम्।
स एक एवेतरथा मिथो भयं
नैवात्मलाभादधिमन्यते परम्॥ १३

या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं
न कामयेत्साखिलकामलम्पटा।
तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो
यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते॥ १४

मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादय-
स्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रिये धियः।
ऋते भवत्पादपरायणान्न मां
विदन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित॥ १५

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि कामदेवका रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं। उस वर्षके अधीश्वरोंके लिये वे सर्वदा पूजनीय हैं॥ १०॥

इस वर्षकी अधीश्वरी तथा महान् लोगोंको सम्मान देनेवाली समुद्रतनया लक्ष्मीजी इस स्तोत्रसमूहसे निरन्तर उनकी उपासना करती हैं॥ ११॥

रमा बोलीं—इन्द्रियोंके स्वामी, सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंसे लक्षित आत्मावाले, ज्ञान-क्रिया-संकल्पशक्ति आदि चित्तके धर्मों तथा उनके विषयोंके अधिपति, सोलह कलाओंसे सम्पन्न, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले, अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय, महनीय, ओजवान्, बलशाली तथा कान्तियुक्त भगवान् कामदेवको ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ—इन बीजमन्त्रोंके साथ सब ओरसे नमस्कार है।

[हे प्रभो!] स्त्रियाँ अनेक प्रकारके व्रतोंद्वारा आप हृषीकेश्वरकी आराधना करके लोकमें अन्य पतिकी इच्छा किया करती हैं; किंतु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर पाते हैं; क्योंकि वे स्वयं ही परतन्त्र होते हैं॥ १२॥

[हे परमात्मन्!] पति तो वह होता है, जो स्वयं किसीसे भयभीत न रहकर भयग्रस्त जनकी भलीभाँति रक्षा करता है। वैसे पति एकमात्र आप ही हैं; यदि एक-से अधिक पति माने जायँ तो उन्हें परस्पर भयकी सम्भावना रहती है। अतः आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं मानते॥ १३॥

हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंके पूजनकी कामना करती है और अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब भोगके पश्चात् वह वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे दुःखित होना पड़ता है॥ १४॥

हे अजित! इन्द्रियसुख पानेका विचार रखनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव तथा दानव आदि मेरी प्राप्तिके लिये कठिन तप करते हैं; किंतु आपके चरणकमलोंकी उपासना करनेवालेके अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है॥ १५॥

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं
कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम्।
बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया
क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुः॥ १६

एवं कामं स्तुवन्त्येव लोकबन्धुस्वरूपिणम्।
प्रजापतिमुखा वर्षनाथाः कामस्य सिद्धये॥ १७

रम्यके नामवर्षे च मूर्तिं भगवतः पराम्।
मात्स्यां देवासुरैर्वन्द्यां मनुः स्तौति निरन्तरम्॥ १८

मनुरुवाच

ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे बलाय महामत्स्याय नमः।

अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकै-
रदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः।
स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नय-
न्नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम्॥ १९

यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा
हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च।
पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः
सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते॥ २०

भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि
क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम्।
मया सहोरुक्रम तेऽज ओजसा
तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नमः॥ २१

एवं स्तौति च देवेशं मनुः पार्थिवसत्तमः।
मत्स्यावतारं देवेशं संशयच्छेदकारणम्॥ २२

हे अच्युत! आप अपने जिस वन्दनीय करकमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे भी सिरपर रखिये। हे वरेण्य! आप मुझे केवल श्रीवत्सरूपसे अपने वक्षःस्थलपर ही धारण करते हैं। मायासे की हुई आप परमेश्वरकी लीलाको जाननेमें भला कौन समर्थ है?॥ १६॥

[हे नारद!] इस प्रकार [केतुमालवर्षमें] लक्ष्मीजी तथा इस वर्षके अन्य प्रजापति आदि प्रमुख अधीश्वर भी कामनासिद्धिके लिये कामदेव-रूपधारी लोकबन्धुस्वरूपी श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ १७॥

रम्यक नामक वर्षमें मनुजी भगवान् श्रीहरिकी देवदानवपूजित सर्वश्रेष्ठ मत्स्यमूर्तिकी निरन्तर इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं॥ १८॥

मनुजी बोले—सबसे प्रधान, सत्त्वमय, प्राणसूत्रात्मा, ओजस्वी तथा बलयुक्त ॐकारस्वरूप भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है।

आप सभी प्राणियोंके भीतर और बाहर संचरण करते हैं। आपके रूपको ब्रह्मा आदि सभी लोकपाल भी नहीं देख सकते। वेद ही आपका महान् शब्द है। वे ईश्वर आप ही हैं। ब्राह्मण आदि विधिनिषेधात्मकरूप डोरीसे इस जगत्को अपने अधीन करके उसे उसी प्रकार नचाते हैं, जैसे कोई नट कठपुतलीको नचाता है॥ १९॥

आपके प्रति ईर्ष्याभावसे भरे हुए लोकपाल आपको छोड़कर अलग-अलग तथा मिलकर भी मनुष्य, पशु, नाग आदि जंगम तथा स्थावर प्राणियोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हुए भी रक्षा नहीं कर सके॥ २०॥

हे अजन्मा प्रभो! जब ऊँची लहरोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्र विद्यमान था, तब आप औषधियों और लताओंकी निधिस्वरूप पृथ्वी तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें उत्साहपूर्वक क्रीडा कर रहे थे; जगत्के समस्त प्राणसमुदायके नियन्ता आप भगवान् मत्स्यको नमस्कार है॥ २१॥

इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ मनुजी सभी संशयोंको समूल समाप्त कर देनेवाले मत्स्यरूपमें अवतीर्ण देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ २२॥

ध्यानयोगेन देवस्य निर्धूताशेषकल्मषः।
आस्ते परिचरन्भक्त्या महाभागवतोत्तमः॥ २३

भगवान्‌के ध्यानयोगके द्वारा अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर चुके तथा महाभागवतोंमें श्रेष्ठ मनुजी भक्तिपूर्वक भगवान्‌की उपासना करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित रहते हैं॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने हरिवर्षकेतुमालरम्यकवर्षवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

~~~

अथ दशमोऽध्यायः

हिरणमयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी आराधना, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीद्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण उवाच

हिरण्मये नाम वर्षे भगवान्कूर्मरूपधृक्।
आस्ते योगपतिः सोऽयमर्यम्णा पूज्य ईड्यते॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] हिरण्मय नामक वर्षमें भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके विराजमान हैं। यहाँ अर्यमाके द्वारा उन योगेश्वरभगवान्‌की पूजा तथा स्तुति की जाती है॥ १॥

अर्यमोवाच

ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुण-विशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे नमो भूम्ने नमोऽवस्थानाय नमस्ते।

यद्रूपमेतन्निजमाययार्पित-
मर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम्।
संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भना-
त्तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे॥ २

अर्यमा बोले—सम्पूर्ण सत्त्व आदि गुण-विशेषणोंसे युक्त, जलमें रहनेके कारण अलक्षित स्थानवाले, कालसे सर्वथा अतीत, आधारस्वरूप तथा ॐकाररूप भगवान् कूर्मको बार-बार नमस्कार है।

[हे प्रभो!] अनेक रूपोंमें दिखायी देनेवाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है, इसलिये इसकी वस्तुतः कोई संख्या नहीं है; तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका ही रूप है, ऐसे उन अनिर्वचनीय आपको नमस्कार है॥ २॥

जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं
चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम्।
द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्र-
द्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः॥ ३

एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, चर, अचर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ३॥

यस्मिन्नसंख्येयविशेषनाम-
रूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम्।
संख्या यया तत्त्वदृशापनीयते
तस्मै नमः सांख्यनिदर्शनाय ते॥ ४

विद्वानोंने असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंवाले आपमें जिन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है, वह जिस-जिस तत्त्वदृष्टिका उदय होनेपर निवृत्त हो जाती है, वह भी वस्तुतः आपका ही स्वरूप है; ऐसे सांख्य-सिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है॥ ४॥

एवं स्तुवति देवेशमर्यमा सह वर्षपैः।
गीयते चापि भजते सर्वभूतभवं प्रभुम्॥ ५

इस प्रकार अर्यमा हिरण्मयवर्षके अन्य अधीश्वरोंके साथ सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले कूर्मरूप देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति, उनका गुणानुवाद तथा भजन करते हैं॥ ५॥
~~~

तथोत्तरेषु कुरुषु भगवान्यज्ञपूरुषः।
आदिवाराहरूपोऽसौ धरण्या पूज्यते सदा॥ ६

सम्पूज्य विधिवद्देवं तद्भक्त्यार्द्राईहृत्कजा।
भूमिः स्तौति हरिं यज्ञवाराहं दैत्यमर्दनम्॥ ७

भूरुवाच

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाध्वरावयवाय महावराहाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते॥ ८॥

यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो
गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्।
मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो
गूढं क्रियार्थैर्नम ईरितात्मने॥ ९

द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभि-
र्मायागुणैर्वस्तुभिरीक्षितात्मने ।
अन्वीक्षयाङ्गातिशयात्मबुद्धिभि-
र्निरस्तमायाकृतये नमोऽस्तु ते॥ १०

करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं
यस्येप्सितं नेप्सितुमीक्षितुर्गुणैः।
माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं
ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे॥ ११

प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे
यो मां रसाया जगदादिसूकरः।
कृत्वाग्रदंष्ट्रं निरगादुदन्वतः
क्रीडन्निवेभः प्रणतास्मि तं विभुम्॥ १२

उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीदेवी आदिवराहरूप यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरिकी निरन्तर उपासना करती हैं॥ ६॥

प्रेमरससे परिपूर्ण हृदयकमलवाली वे पृथ्वीदेवी दैत्योंका नाश करनेवाले यज्ञवराह श्रीहरिकी विधिपूर्वक पूजा करके भक्तिभावसे उनकी स्तुति करती हैं॥ ७॥

पृथ्वी बोलीं—मन्त्रोंके द्वारा ज्ञेय तत्त्वोंवाले, यज्ञ तथा क्रतुस्वरूप, बड़े-बड़े यज्ञरूप अवयवोंवाले, सात्त्विक कर्मोंवाले तथा त्रियुगमूर्तिरूप आप ओंकार-स्वरूप भगवान् महावराहको बार-बार नमस्कार है॥ ८॥

काष्ठोंमें छिपी हुई अग्निको प्रकट करनेके लिये मन्थन करनेवाले ऋत्विज्-गणोंकी भाँति परम प्रवीण विद्वान् पुरुष कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे अपने विवेकयुक्त मनरूपी मथानीद्वारा शरीर एवं इन्द्रियोंको मथ डालते हैं; इस प्रकार मन्थनके पश्चात् अपने रूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ९॥

हे प्रभो! विचार तथा यम-नियमादि योगांगोंके साधनोंके प्रभावसे निश्चयात्मिका बुद्धिवाले महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रियाहेतु (इन्द्रिय-व्यापार), अयन (शरीर), ईश और कर्ता (अहंकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं; ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको नमस्कार है॥ १०॥

जिसकी इच्छामात्रसे निःस्पृह होती हुई भी प्रकृति गुणोंके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कार्यमें इस प्रकार प्रवृत्त हो जाती है, जैसे चुम्बकका सम्पर्क पाकर लोहा गतिशील हो जाता है; उन आप सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी श्रीहरिको नमस्कार है॥ ११॥

जिन्होंने एक हाथीको पछाड़नेवाले दूसरे हाथीकी भाँति युद्धके अवसरपर खेल-खेलमें प्रतिद्वन्द्वी दैत्य हिरण्याक्षका लीलापूर्वक हनन करके मुझे अपने दाढ़ोंके अग्रभागपर उठाकर रसातलसे बाहर निकाल लिया, उन जगत्‌के आदिकारणस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वराहको नमस्कार है॥ १२॥

किम्पुरुषे वर्षेऽस्मिन्भगवन्तं दाशरथिं च सर्वेशम्।
सीतारामं देवं श्रीहनुमानादिपूरुषं स्तौति॥ १३

हनुमानुवाच

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम इति। आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मने उपासितलोकाय नमः। साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाभागाय नम इति।

यत्तद्विशुद्धानुभवात्ममेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥ १४

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभो।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥ १५

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान्वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥ १६

किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्‌के शासक आदिपुरुष दशरथपुत्र भगवान् श्रीसीतारामकी इस प्रकार स्तुति करते हैं॥ १३॥

हनुमान् बोले—उत्तम कीर्तिवाले ओंकारस्वरूप भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लक्षण, शील और व्रतसे सम्पन्न श्रीरामको नमस्कार है; संयत चित्तवाले तथा लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको नमस्कार है; साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीस्वरूप श्रीरामको नमस्कार है; ब्राह्मणोंके परम भक्त एवं महान् भाग्यशाली महापुरुष श्रीरामको नमस्कार है।

जो विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रत् आदि अवस्थाओंका निवारण करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, निर्मल बुद्धिके द्वारा ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित तथा अहंकारशून्य हैं; उन आप भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १४॥

हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है; अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् आप जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था॥ १५॥

आप धीर पुरुषोंके आत्मा[१] और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं[२]॥ १६॥

---

[१] यहाँ शंका होती है कि भगवान् तो सभीके आत्मा हैं, फिर यहाँ उन्हें आत्मवान् (धीर) पुरुषोंके ही आत्मा क्यों बताया गया? इसका कारण यही है कि सबके आत्मा होते हुए भी उन्हें केवल आत्मज्ञानी पुरुष ही अपने आत्मारूपसे अनुभव करते हैं—अन्य पुरुष नहीं। श्रुतिमें जहाँ-कहीं आत्मसाक्षात्कारकी बात आयी है, वहीं आत्मवेत्ताके लिये 'धीर' शब्दका प्रयोग किया है। जैसे '**कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत**' इति '**नः शुश्रुम धीराणाम्**' इत्यादि। इसीलिये यहाँ भी भगवान्‌को आत्मवान् या धीर पुरुषका आत्मा बताया है।

[२] एक बार भगवान् श्रीराम एकान्तमें एक देवदूतसे बात कर रहे थे। उस समय लक्ष्मणजी पहरेपर थे और भगवान्‌की आज्ञा थी कि यदि इस समय कोई भीतर आयेगा तो वह मेरे हाथसे मारा जायगा। इतनेमें ही दुर्वासामुनि चले आये और उन्होंने लक्ष्मणजीको अपने आनेकी सूचना देनेके लिये भीतर जानेको विवश किया। इससे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् बड़े असमंजसमें पड़ गये। तब वसिष्ठजीने कहा कि लक्ष्मणजीके प्राण न लेकर उन्हें त्याग देना चाहिये; क्योंकि अपने प्रियजनका त्याग मृत्युदण्डके समान ही है। इसीसे भगवान्‌ने उन्हें त्याग दिया।

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥ १७

सुरोऽसुरो वाप्यथवा नरोऽनरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान् दिवम्॥ १८

श्रीनारायण उवाच

एवं किम्पुरुषे वर्षे सत्यसन्धं दृढव्रतम्।
रामं राजीवपत्राक्षं हनुमान् वानरोत्तमः॥ १९

स्तौति गायति भक्त्या च सम्पूजयति सर्वशः।
य एतच्छृणुयाच्चित्रं रामचन्द्रकथानकम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति रामसलोकताम्॥ २०

न उत्तम कुलमें जन्म, न सुन्दरता, न वाक्चातुर्य, न तो बुद्धि और न तो श्रेष्ठ योनि ही आपकी प्रसन्नताके कारण हो सकते हैं; यही बात दिखानेके लिये हे लक्ष्मणाग्रज! आपने इन सभी गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है॥ १७॥

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य जो कोई भी हो, उस उपकारीके थोड़े उपकारको भी बहुत अधिक माननेवाले, नररूपधारी श्रेष्ठ श्रीरामस्वरूप आप श्रीहरिका सब प्रकारसे भजन करना चाहिये, जो दिव्य धामको प्रस्थान करते समय सभी उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ लेते गये थे॥ १८॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें वानरश्रेष्ठ हनुमान् सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती तथा कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले भगवान् श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं, उनके गुण गाते हैं तथा भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। जो पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रके इस अद्भुत कथाप्रसंगका श्रवण करता है; वह पापोंसे मुक्त होकर विशुद्ध आत्मावाला हो जाता है और श्रीरामके परम धामको प्राप्त होता है॥ १९-२०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने हिरण्मयकिम्पुरुषवर्षवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

जम्बूद्वीपस्थित भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासना तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन

श्रीनारायण उवाच

भारताख्ये च वर्षेऽस्मिन्नहमादिजपूरुषः।
तिष्ठामि भवता चैव स्तवनं क्रियतेऽनिशम्॥ १

नारद उवाच

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिञ्चनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे आत्मारामाधिपतये नमो नम इति।

कर्तास्य सर्गादिषु यो न बध्यते
न हन्यते देहगतोऽपि दैहिकैः।
द्रष्टुर्न दृश्यस्य गुणैर्विदूष्यते
तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] भारत नामक इस वर्षमें आदिपुरुष मैं सदा विराजमान रहता हूँ और यहाँ आप निरन्तर मेरी स्तुति करते रहते हैं॥ १॥

नारद बोले—शान्त स्वभाववाले, अहंकारसे रहित, निर्धनोंके परम धन, ऋषियोंमें श्रेष्ठ, परमहंसोंके परम गुरु, आत्मारामोंके अधिपति तथा ओंकारस्वरूप भगवान् नरनारायणको बार-बार नमस्कार है।

जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें उनके कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, जो देहमें रहते हुए भी भूख-प्यास आदि दैहिक गुण-धर्मोंके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती; उन असंग तथा विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नारायणको नमस्कार है॥ २॥

इदं हि योगेश्वरयोगनैपुणं
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगाद यत्।
यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो
भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः॥ ३
यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन्।
शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्यया-
द्यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम्॥ ४
तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां
त्वं माययाहं ममतामधोक्षज।
भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां
विधेहि योगं त्वयि नः स्वभावजम्॥ ५
एवं स्तौति सदा देवं नारायणमनामयम्।
नारदो मुनिशार्दूलः प्रज्ञाताखिलसारदृक्॥ ६
अस्मिन् वै भारते वर्षे सरिच्छैलास्तु सन्ति हि।
तान्प्रवक्ष्यामि देवर्षे शृणुष्वैकाग्रमानसः॥ ७
मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकश्च त्रिकूटकः।
ऋषभः कूटकः कोल्लः सह्यो देवगिरिस्तथा॥ ८
ऋष्यमूकश्च श्रीशैलो व्यङ्कटाद्रिर्महेन्द्रकः।
वारिधारश्च विन्ध्यश्च मुक्तिमानृक्षपर्वतः॥ ९
पारियात्रस्तथा द्रोणश्चित्रकूटगिरिस्तथा।
गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलपर्वतः॥ १०
गौरमुखश्चेन्द्रकीलो गिरिः कामगिरिस्तथा।
एते चान्येऽप्यसंख्याता गिरयो बहुपुण्यदाः॥ ११
एतदुत्पन्नसरितः शतशोऽथ सहस्रशः।
पानावगाहनस्नानदर्शनोत्कीर्तनैरपि॥ १२
नाशयन्ति च पापानि त्रिविधानि शरीरिणाम्।
ताम्रपर्णी चन्द्रवशा कृतमाला वटोदका॥ १३
वैहायसी च कावेरी वेणा चैव पयस्विनी।
तुङ्गभद्रा कृष्णवेणा शर्करावर्तका तथा॥ १४
गोदावरी भीमरथी निर्विन्ध्या च पयोष्णिका।
तापी रेवा च सुरसा नर्मदा च सरस्वती॥ १५
चर्मण्वती च सिन्धुश्च अन्धशोणौ महानदौ।
ऋषिकुल्या त्रिसामा च वेदस्मृतिर्महानदी॥ १६

हे योगेश्वर! हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीने योगसाधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्तकालमें देहाभिमानको छोड़कर भक्तिपूर्वक आप गुणातीतमें अपना मन लगाये॥ ३॥

लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी लालसा रखनेवाला मूढ मनुष्य जैसे पुत्र, स्त्री और धनकी चिन्ता करता हुआ मृत्युसे डरता है, उसी प्रकार यदि विद्वान् भी इस कुत्सित शरीरके छूट जानेके भयसे युक्त रहे तो ज्ञानप्राप्तिके लिये किया हुआ उसका सारा प्रयत्न केवल परिश्रममात्र है॥ ४॥

अतः हे अधोक्षज! हे प्रभो! आप हमें अपना स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिये, जिससे इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कारण बद्धमूल हुई दुर्भेद्य अहंता तथा ममताको हम तुरंत काट डालें॥ ५॥

इस प्रकार अखिल ज्ञातव्य रहस्योंको देखनेवाले मुनिश्रेष्ठ नारद निर्विकार भगवान् नारायणकी स्तुति करते रहते हैं॥ ६॥

[नारायण बोले—] हे देवर्षे! इस भारतवर्षमें अनेक नदियाँ तथा पर्वत हैं; अब मैं उनका वर्णन करूँगा; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ७॥

मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गौरमुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रचुर पुण्य प्रदान करनेवाले अन्य असंख्य पर्वत हैं॥ ८—११॥

इन पर्वतोंसे निकली हुई सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं; जिनका जल पीने, जिनमें डुबकी लगाकर स्नान करने, दर्शन करने तथा जिनके नामका उच्चारण करनेसे मनुष्योंके तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका, गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध तथा

कौशिकी यमुना चैव मन्दाकिनी दृषद्वती।
गोमती सरयू रोधवती सप्तवती तथा॥ १७

सुषोमा च शतद्रुश्च चन्द्रभागा मरुद्वृधा।
वितस्ता च असिक्नी च विश्वा चेति प्रकीर्तिता:॥ १८

अस्मिन्वर्षे लब्धजन्मपुरुषै: स्वस्वकर्मभि:।
शुक्ललोहितकृष्णाख्यैर्दिव्यमानुषनारका: ॥ १९

भवन्ति विविधा भोगा: सर्वेषां च निवासिनाम्।
यथा वर्णविधानेनापवर्गो भवति स्फुटम्॥ २०

एतदेव च वर्षस्य प्राधान्यं कार्यसिद्धित:।
वदन्ति मुनयो वेदवादिन: स्वर्गवासिन:॥ २१

अहो अमीषां किमकारि शोभनं
प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरि:।
यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे
मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि न:॥ २२

किं दुष्करैर्न: क्रतुभिस्तपोव्रतै-
र्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना।
न यत्र नारायणपादपङ्कज-
स्मृति: प्रमुष्टातिशयेन्द्रियोत्सवात्॥ २३

कल्पायुषां स्थानजयात्पुनर्भवा-
त्क्षणायुषां भारतभूजयो वरम्।
क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विन:
संन्यस्य संयान्त्यभयं पदं हरे:॥ २४

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रया:।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवा:
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥ २५

शोण नामवाले दो महान् नद, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा—ये प्रसिद्ध नदियाँ हैं॥ १२—१८॥

इस भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुष अपने-अपने शुक्ल (सात्त्विक), लोहित (राजस) तथा कृष्ण (तामस) कर्मोंके कारण क्रमश: देव, मनुष्य तथा नारकीय भोगोंको प्राप्त करते हैं। भारतवर्षमें निवास करनेवाले सभी लोगोंको अनेक प्रकारके भोग सुलभ होते हैं। अपने वर्णधर्मके नियमोंका पालन करनेसे मोक्षतक निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है॥ १९-२०॥

इस मोक्षरूपी महान् कार्यकी सिद्धिका साधन होनेके कारण ही स्वर्गके निवासी वेदज्ञ मुनिगण भारतवर्षकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—॥ २१॥

अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्‌की सेवाके योग्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हमलोग भी लालायित रहते हैं॥ २२॥

हमने कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दान आदिके द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है, इससे क्या लाभ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके कारण स्मरणशक्ति क्षीण हो जानेसे भगवान्‌के चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं॥ २३॥

इस स्वर्गके निवासियोंकी आयु एक कल्पकी होनेपर भी उन्हें पुन: जन्म लेना पड़ता है। उसकी अपेक्षा भारतभूमिमें अल्प आयुवाला होकर जन्म लेना श्रेष्ठ है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्य शरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान्‌को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेते हैं॥ २४॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ उसके उद्गमस्थानस्वरूप भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ समारोहपूर्वक भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा-अर्चा नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये॥ २५॥

प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो
ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसम्भृताम् ।
न वै यतेरन्न पुनर्भवाय ते
भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम्॥ २६

यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हवि-
र्निरुप्तमिष्टं विधिमन्त्रवस्तुतः।
एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा
गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः॥ २७

सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत्पुनरर्थिता यतः।
स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छता-
मिच्छापिधानं निजपादपल्लवम्॥ २८

(यद्यत्र नः स्वर्गसुखावशेषितं
स्विष्टस्य पूर्तस्य कृतस्य शोभनम्।
तेनाब्जनाभे स्मृतिमज्जन्म नः स्या-
द्वर्षे हरिर्भजतां शं तनोति॥)

श्रीनारायण उवाच

एवं स्वर्गगता देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
प्रवदन्ति च माहात्म्यं भारतस्य सुशोभनम्॥ २९

जम्बुद्वीपस्य चाष्टौ हि उपद्वीपाः स्मृताः परे।
हयमार्गान्विशोधद्भिः सागरैः परिकल्पिताः॥ ३०

स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्र आवर्तनरमाणकौ।
मन्दरोपाख्यहरिणः पाञ्चजन्यस्तथैव च॥ ३१
सिंहलश्चैव लङ्केति उपद्वीपाष्टकं स्मृतम्।

भारतवर्षमें उत्तम ज्ञान, कर्म तथा द्रव्य आदिसे सम्पन्न मानवयोनि प्राप्त करके भी जो प्राणी पुनर्भव (आवागमन)-रूप बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न नहीं करते, वे [व्याधकी फाँसीसे मुक्त होकर फल आदिके लोभसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले] जंगली पक्षियोंकी भाँति पुनः बन्धनमें पड़ते हैं॥ २६॥

भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है कि जब वे यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्य आदिके योगसे भक्तिपूर्वक हवि प्रदान करते हैं, तब भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे एक पूर्णब्रह्म श्रीहरि स्वयं ही प्रसन्न होकर उस हविभागको ग्रहण करते हैं॥ २७॥

यह ठीक है कि भगवान् सकाम पुरुषोंके माँगनेपर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किंतु यह भगवान्‌का वास्तविक दान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर भी मनुष्यके मनमें पुनः कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं—जो अन्य समस्त इच्छाओंको समाप्त कर देनेवाले हैं॥ २८॥

(अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ और पूर्त कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य अवशिष्ट हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्‌की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले प्राणियोंका परम कल्याण करते हैं।)

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार स्वर्गको प्राप्त देवता, सिद्ध और महर्षिगण भारतवर्षकी उत्तम महिमाका गान करते हैं॥ २९॥

जम्बूद्वीपमें अन्य आठ उपद्वीप भी बताये गये हैं। खोये हुए घोड़ेके मार्गोंका अन्वेषण करनेवाले सगरके पुत्रोंने इन उपद्वीपोंकी कल्पना की थी। स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमाणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका—ये आठ उपद्वीप

जम्बुद्वीपस्य मानं हि कीर्तितं विस्तरेण च॥ ३२
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्लक्षादिद्वीपषट्ककम्॥ ३३

प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मैंने विस्तारके साथ जम्बूद्वीपका परिमाण बता दिया। अब इसके बाद प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन करूँगा॥ ३०—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
भुवनकोशवर्णने भारतवर्षवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीपका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

जम्बुद्वीपो यथा चायं यत्प्रमाणेन कीर्तितः।
तावता सर्वतः क्षारोदधिना परिवेष्टितः॥ १
जम्ब्वाख्येन यथा मेरुस्तथा क्षारोदकेन च।
क्षारोदधिस्तु द्विगुणः प्लक्षाख्येनोपवेष्टितः॥ २
यथैव परिखा बाह्योपवनेन हि वेष्ट्यते।
प्लक्षाख्यश्च स्वयं जम्बुप्रमाणो द्वीपरूपधृक्॥ ३
हिरणमयोऽग्निस्तत्रैव तिष्ठतीति विनिश्चयः।
प्रियव्रतात्मजस्तत्र सप्तजिह्व इति स्मृतः॥ ४
अग्निस्तदधिपस्त्विध्मजिह्वः स्वं द्वीपमेव च।
विभज्य सप्तवर्षाणि स्वपुत्रेभ्यो ददौ विभुः॥ ५
स्वयमात्मविदां मान्यां योगचर्यां समाश्रितः।
तेनैव चात्मयोगेन भगवन्तमुपागतः॥ ६
शिवं च यवसं भद्रं शान्तं क्षेमामृते तथा।
अभयं चेति सप्तैव तद्वर्षाणि सदेक्षताम्॥ ७
तेषु प्रोक्ता नदीः सप्त गिरयः सप्त चैव हि।
अरुणा नृम्णाङ्गिरसी सावित्री सुप्रभातिका॥ ८
ऋतम्भरा सत्यम्भरा इति नद्यः प्रकीर्तिताः।
मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनस्तथैव च॥ ९
ज्योतिष्मान्वै सुपर्णश्च हिरण्यष्ठीव एव च।
मेघमाल इति ख्याताः प्लक्षद्वीपस्य पर्वताः॥ १०
नदीनां जलमात्रेण दर्शनस्पर्शनादिभिः।
निर्धूताशेषरजसो निस्तमस्काः प्रजास्तथा॥ ११

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यह जम्बूद्वीप जैसा और जितने परिमाणवाला बताया गया है, वह उतने ही परिमाणवाले क्षारसमुद्रसे चारों ओरसे उसी प्रकार घिरा है, जैसे मेरुपर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है। क्षारसमुद्र भी अपनेसे दूने परिमाणवाले प्लक्षद्वीपसे उसी प्रकार घिरा हुआ है, जिस प्रकार कोई परिखा (खाई) बाहरके उपवनसे घिरी रहती है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका वृक्ष है, उतने ही विस्तारवाला प्लक्ष (पाकड़)-का वृक्ष उस प्लक्षद्वीपमें है, इसीसे वह प्लक्षद्वीप नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १—३॥

सुवर्णमय अग्निदेव वहींपर निश्चितरूपसे प्रतिष्ठित हैं। सात जिह्वाओंवाले ये अग्निदेव प्रियव्रतके पुत्र कहे गये हैं। 'इध्मजिह्व' नामवाले ये अग्निदेव उस द्वीपके अधिपति थे, जिन्होंने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्तकर अपने पुत्रोंको सौंप दिया। तदनन्तर वे ऐश्वर्यशाली इध्मजिह्व आत्मज्ञानियोंके द्वारा मान्य योगसाधनमें तत्पर हो गये। उसी आत्मयोगके साधनसे उन्होंने भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त किया॥ ४—६॥

शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय—प्लक्षद्वीपके ये सात वर्ष उन पुत्रोंके नामोंसे विख्यात हैं। उन वर्षोंमें सात नदियाँ तथा सात पर्वत कहे गये हैं। अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—इन नामोंसे नदियाँ तथा मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—इन नामोंसे प्लक्षद्वीपके पर्वत प्रसिद्ध हैं॥ ७—१०॥

प्लक्षद्वीपकी नदियोंके जलके केवल दर्शन, स्पर्श आदिसे वहाँकी प्रजाका सम्पूर्ण पाप समाप्त हो जाता है और उनका अज्ञानान्धकार मिट जाता है॥ ११॥

हंसश्चैव पतङ्गश्च ऊर्ध्वायन इतीव च।
सत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः प्लक्षस्य द्वीपके॥ १२

सहस्त्रायुःप्रमाणाश्च विविधोपमदर्शनाः।
स्वर्गद्वारं त्रयीविद्याविधिनार्कं यजन्ति ते॥ १३

प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यर्तस्य च ब्रह्मणः।
अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहि॥ १४

प्लक्षादिषु च सर्वेषु पञ्चद्वीपेषु नारद।
आयुरिन्द्रियमोजश्च बलं बुद्धिः सहोऽपि च॥ १५

विक्रमः सर्वलोकानां सिद्धिरौत्पत्तिकी सदा।
प्लक्षद्वीपात्परं चेक्षुरसोदः सरिताम्पतिः॥ १६

प्लक्षद्वीपं समग्रं च परिवार्यावतिष्ठते।
शाल्मलाख्यस्ततो द्वीपश्चास्माद् द्विगुणविस्तरः॥ १७

समानेन सुरोदेन सिन्धुना परिवेष्टितः।
यत्र वै शाल्मलीवृक्षः प्लक्षायामः प्रकीर्तितः॥ १८

स्थानं तत्पक्षिराजस्य गरुडस्य महात्मनः।
तस्य द्वीपस्य नाथो हि यज्ञबाहुः प्रियव्रतात्॥ १९

जातः स एव सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो ददौ धराम्।
तद्वर्षाणां च नामानि कथितानि निबोधत॥ २०

सुरोचनं सौमनस्यं रमणं देववर्षकम्।
पारिभद्रं तथा चाप्यायनं विज्ञातनामकम्॥ २१

तेषु वर्षाद्रयः सप्त सप्तैव सरितः स्मृताः।
सरसः शतशृङ्गश्च वामदेवश्च कन्दकः॥ २२

कुमुदः पुष्पवर्षश्च सहस्त्रश्रुतिरेव च।
एते च पर्वताः सप्त नदीनामानि चोच्यते॥ २३

अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहूस्तथा।
रजनी चैव नन्दा च राकेति परिकीर्तिताः॥ २४

उस प्लक्षद्वीपमें हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामवाले चार वर्णके लोग निवास करते हैं॥ १२॥

उनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है और वे देखनेमें विलक्षण प्रतीत होते हैं। वे तीनों वेदोंमें बताये गये विधानसे स्वर्गके द्वारस्वरूप भगवान् सूर्यकी इस प्रकार उपासना करते हैं—जो सत्य, ऋत, वेद तथा सत्कर्मके अधिष्ठाता हैं; अमृत और मृत्यु जिनके विग्रह हैं, हम उन शाश्वत विष्णुरूप भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं॥ १३-१४॥

हे नारद! प्लक्ष आदि सभी पाँचों द्वीपोंमें वहाँके सभी प्राणियोंमें आयु, इन्द्रिय, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिकबल, बुद्धि और पराक्रम—ये सब स्वाभाविक रूपसे सिद्ध रहते हैं॥ १५½॥

सभी सरिताओंका पति इक्षुरसका समुद्र प्लक्षद्वीपसे भी बड़ा है। वह सम्पूर्ण प्लक्षद्वीपको सभी ओरसे घेरकर स्थित है॥ १६½॥

इस प्लक्षद्वीपके बाद इससे भी दूने विस्तारवाला शाल्मल नामक द्वीप है, जो अपने ही विस्तारवाले सुरोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। वहाँपर एक शाल्मली (सेमर)-का वृक्ष है, जो [प्लक्षद्वीपमें स्थित] 'पाकर' के वृक्षके विस्तारवाला कहा गया है॥ १७-१८॥

वह शाल्मलीद्वीप पक्षियोंके स्वामी महात्मा गरुडका निवासस्थान है। महाराज प्रियव्रतके ही पुत्र यज्ञबाहु उस द्वीपके शासक हुए। उन्होंने अपने सात पुत्रोंमें पृथ्वीको [विभक्त करके] प्रदान कर दिया है। अब उन वर्षोंके जो नाम बताये गये हैं; उन्हें सुनिये—सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञात॥ १९—२१॥

उन वर्षोंमें सात पर्वत और सात ही नदियाँ कही गयी हैं। सरस, शतशृंग, वामदेव, कन्दक, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्त्रश्रुति—ये सात पर्वत हैं और अब नदियोंके नाम बताये जाते हैं; अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका—ये नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २२—२४॥

तद्वर्षपुरुषाः सर्वे चातुर्वर्ण्यसमाह्वयाः।
श्रुतधरो वीर्यधरो वसुन्धर इषुन्धरः॥ २५

भगवन्तं वेदमयं यजन्ते सोममीश्वरम्।
स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन्कृष्णशुक्लयोः॥ २६

सर्वासां च प्रजानां च राजा सोमः प्रसीदतु।
एवं सुरोदाद् द्विगुणः स्वमानेन प्रकीर्तितः॥ २७

घृतोदेनावृतः सोऽयं कुशद्वीपः प्रकाशते।
यस्मिन्नास्ते कुशस्तम्बो द्वीपाख्याकारणो ज्वलन्॥ २८

स्वशष्परोचिषा काष्ठा भासयन्परितिष्ठते।
हिरण्यरेतास्तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतः स्वराट्॥ २९

स्वपुत्रेभ्यश्च सप्तभ्यस्तद्द्वीपं सप्तधाभजत्।
वसुश्च वसुदानश्च तथा दृढरुचिः परः॥ ३०

नाभिगुप्तस्तुत्यव्रतौ विविक्तनामदेवकौ।
तेषां वर्षेषु सप्तैव सीमागिरिवराः स्मृताः॥ ३१

नद्यः सप्तैव सन्तीह तन्नामानि निबोधत।
चक्रस्तथा चतुःशृङ्गः कपिलश्चित्रकूटकः॥ ३२

देवानीकश्चोर्ध्वरोमा द्रविणः सप्त पर्वताः।
रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा तथैव च॥ ३३

श्रुतविन्दा देवगर्भा घृतच्युन्मन्दमालिके।
यत्पयोभिः कुशद्वीपवासिनः सर्व एव ते॥ ३४

कुशलः कोविदश्चैवाप्यभियुक्तस्तथैव च।
कुलकश्चेति संज्ञाभिश्चतुर्वर्णाः प्रकीर्तिताः॥ ३५

जातवेदसरूपं तं देवं कर्मजकौशलैः।
यजन्ते देववर्याभाः सर्वे सर्वविदो जनाः॥ ३६

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषुन्धर नामक चार वर्णोंके सभी पुरुष साक्षात् वेदस्वरूप ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् चन्द्रमाकी इस प्रकार उपासना करते हैं—अपनी किरणोंसे पितरोंके लिये कृष्ण तथा देवताओंके लिये शुक्लमार्गका विभाजन करनेवाले और सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा भगवान् सोम प्रसन्न हों॥ २५-२६½ ॥

इसी प्रकार सुरोदकी अपेक्षा दूने विस्तारवाला कुशद्वीप बताया गया है। यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें कुशोंका एक महान् पुंज प्रकाशित होता रहता है, इसीसे इस द्वीपको कुशद्वीप कहा गया है। प्रज्वलित होता हुआ यह अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे सभी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वहाँ प्रतिष्ठित है॥ २७-२८½ ॥

उस कुशद्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेताने उस द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें सात भागोंमें विभाजित कर दिया। वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और नामदेव—ये उनके नाम थे॥ २९-३०½ ॥

उनके वर्षोंमें उनकी सीमा निर्धारित करनेवाले सात ही श्रेष्ठ पर्वत कहे गये हैं और सात ही नदियाँ भी हैं। उनके नाम सुनिये—चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविड—ये सात पर्वत हैं और रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्दमालिका—ये नदियाँ हैं, जिनके जलमें कुशद्वीपके निवासी स्नान करते हैं। वे सब कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक—इन नामोंसे चार वर्णोंवाले कहे हैं। श्रेष्ठ देवताओंके सदृश तेजस्वी तथा सर्वज्ञ वहाँके सभी लोग अपने यज्ञ आदि कुशलकर्मोंद्वारा अग्निस्वरूप उन भगवान् श्रीहरिकी उपासना करते हैं॥ ३१—३६ ॥

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट्।
देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यज।
एवं यजन्ते ज्वलनं सर्वे द्वीपाधिवासिनः॥ ३७

उस द्वीपमें निवास करनेवाले सभी पुरुष अग्निदेवकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—'हे जातवेद! आप परब्रह्मको साक्षात् हवि पहुँचानेवाले हैं। अतः भगवान्‌के अंगभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परम पुरुषका ही यजन करें'॥ ३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने प्लक्षद्वीपकुशद्वीपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीपका वर्णन

नारद उवाच

शिष्टद्वीपप्रमाणं च वद सर्वार्थदर्शन।
येन विज्ञातमात्रेण परानन्दमयो भवेत्॥ १

श्रीनारायण उवाच

कुशद्वीपस्य परितो घृतोदावरणं महत्।
ततो बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्यात्स्वमानतः॥ २
क्षीरोदेनावृतो भाति यस्मिन्क्रौञ्चाद्रिरस्ति च।
नामनिर्वर्तकः सोऽयं द्वीपस्य परिवर्तते॥ ३
योऽसौ गुहस्य शक्त्या च भिन्नकुक्षिः पुराभवत्।
क्षीरोदेनासिच्यमानो वरुणेन च रक्षितः॥ ४
घृतपृष्ठो नाम यस्य विभाति किल नायकः।
प्रियव्रतात्मजः श्रीमान् सर्वलोकनमस्कृतः॥ ५
स्वद्वीपं तु विभज्यैव सप्तधा स्वात्मजान्ददौ।
पुत्रनामसु वर्षेषु वर्षपान्सन्निवेशयन्॥ ६
स्वयं भगवतस्तस्य शरणं सञ्जगाम ह।
आमो मधुरुहश्चैव मेघपृष्ठः सुधामकः॥ ७
भ्राजिष्ठो लोहितार्णश्च वनस्पतिरितीव च।
नगा नद्यश्च सप्तैव विख्याता भुवि सर्वतः॥ ८
शुक्लो वै वर्धमानश्च भोजनश्चोपबर्हणः।
नन्दश्च नन्दनः सर्वतोभद्र इति कीर्तिताः॥ ९

नारदजी बोले—हे सर्वार्थदर्शन! अब आप शेष द्वीपोंके परिमाण बतलाइये, जिन्हें जाननेमात्रसे मनुष्य परम आनन्दमय हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कुशद्वीपके चारों ओर घृतके समुद्रका महान् आवरण है। उसके बाहर उससे दूने परिमाणवाला क्रौंचद्वीप है, जो अपने ही समान विस्तारवाले क्षीरसमुद्रसे घिरा हुआ सुशोभित होता है। उसमें क्रौंच नामक पर्वत विद्यमान है, उसीके कारण इसका नाम क्रौंचद्वीप पड़ गया॥ २-३॥

पूर्वकालमें स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिके प्रहारसे इसका कटिप्रदेश कट गया था, किंतु क्षीरसमुद्रसे सिंचित और वरुणदेवसे रक्षित होकर यह पुनः स्थिर हो गया॥ ४॥

इस द्वीपके शासक प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ थे। सम्पूर्ण लोकके वन्दनीय उन श्रीमान्‌ने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त करके अपने सात पुत्रोंको दे दिया। इस प्रकार पुत्रोंके ही नामवाले वर्षोंके अधिपतिके रूपमें पुत्रोंको नियुक्त करके उन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरिका आश्रय ग्रहण कर लिया॥ ५-६$\frac{1}{2}$॥

आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये उनके सात पुत्र हैं। [उनके वर्षोंमें] सात पर्वत तथा सात नदियाँ इस सम्पूर्ण भूमण्डलपर प्रसिद्ध हैं। शुक्ल, वर्धमान, भाजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र—ये पर्वत कहे गये हैं॥ ७—९॥

अभया अमृतौघा चार्यका तीर्थवतीति च।
वृत्तिरूपवती शुक्ला पवित्रवतिका तथा॥ १०

एतासामुदकं पुण्यं चातुर्वर्ण्येन पीयते।
पुरुषऋषभौ तद्वद् द्रविणाख्यश्च देवकः॥ ११

एते चतुर्वर्णजाताः पुरुषा निवसन्ति हि।
तत्रत्याः पुरुषा आपोमयं देवमपां पतिम्॥ १२

पूर्णेनाञ्जलिना भक्त्या यजन्ते विविधक्रियाः।
आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वरः॥ १३

ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुवः।
इति मन्त्रजपान्ते च स्तुवन्ति विविधैः स्तवैः॥ १४

एवं परस्तात्क्षीरोदात्परितश्चोपवेशितः।
द्वात्रिंशल्लक्षसंख्याकयोजनायाममाश्रितः॥ १५

स्वमानेन च द्वीपोऽयं दधिमण्डोदकेन च।
शाकद्वीपो विशिष्टोऽयं यस्मिञ्छाको महीरुहः॥ १६

स्वक्षेत्रव्यपदेशस्य कारणं स हि नारद।
प्रैयव्रतोऽधिपस्तस्य मेधातिथिरिति स्मृतः॥ १७

विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु च।
सप्त पुत्रान्निजान् स्थाप्य स्वयं योगगतिं गतः॥ १८

पुरोजवो मनःपूर्वजवोऽथ पवमानकः।
धूम्रानीकश्चित्ररेफो बहुरूपोऽथ विश्वधृक्॥ १९

मर्यादागिरयः सप्त नद्यः सप्तैव कीर्तिताः।
ईशान ऊरुशृङ्गोऽथ बलभद्रः शतकेशरः॥ २०

सहस्रस्रोतको देवपालोऽप्यन्ते महाशनः।
एतेऽद्रयः सप्त चोक्ताः सरिन्नामानि सप्त च॥ २१

अनघा प्रथमायुर्दा उभयस्पृष्टिरेव च।
अपराजिता पञ्चपदी सहस्रश्रुतिरेव च॥ २२
ततो निजधृतिश्चोक्ताः सप्त नद्यो महोज्ज्वलाः।

अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला और पवित्रवतिका—ये सात नदियाँ हैं। इन नदियोंका पवित्र जल वहाँके चार वर्णोंके समुदायद्वारा पीया जाता है। पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक—ये चार वर्णोंके पुरुष वहाँ निवास करते हैं। वहाँके पुरुष जलसे भरी हुई अंजलिके द्वारा विविध क्रियाएँ करते हुए भक्तिपूर्वक जलके स्वामी जलरूप भगवान् वरुणदेवकी उपासना इस प्रकार करते हैं—'हे जलदेवता! आपको परमात्मासे सामर्थ्य प्राप्त है। आप भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं; क्योंकि आप स्वरूपसे पापोंका नाश करनेवाले हैं। हम अपने शरीरसे आपका स्पर्श करते हैं, आप हमारे अंगोंको पवित्र करें'—इस मन्त्रके जपके पश्चात् वे विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हैं॥ १०—१४॥

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप फैला हुआ है। यह द्वीप भी अपने ही समान परिमाणवाले दधिमण्डोदक समुद्रसे घिरा हुआ है। यह शाकद्वीप एक विशिष्ट द्वीप है, जिसमें 'शाक' नामक एक विशाल वृक्ष स्थित है। हे नारद! वही वृक्ष इस क्षेत्रके नामका कारण है। प्रियव्रतपुत्र मेधातिथि उस द्वीपके अधिपति कहे जाते हैं। वे इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभाजित करके उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने सात पुत्रोंको नियुक्तकर स्वयं योगगतिकी प्राप्तिके उद्देश्यसे निकल पड़े। पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधृक्—ये उनके सात पुत्र थे॥ १५—१९॥

इसकी मर्यादा (सीमा) निश्चित करनेवाले सात प्रसिद्ध पर्वत हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महाशन—ये सात पर्वत वहाँ विद्यमान कहे गये हैं। इसी तरह वहाँकी सात नदियोंके भी नाम हैं—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति—ये सात परम पवित्र नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २०—२२½॥

तद्वर्षपुरुषाः सर्वे सत्यव्रतक्रतुव्रतौ ॥ २३

दानव्रतानुव्रतौ च चतुर्वर्णा उदीरिताः ।
भगवन्तं प्राणवायुं प्राणायामेन संयुताः ॥ २४

यजन्ति निर्धूतरजस्तमसः परमं हरिम् ।
अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ॥ २५

अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे इदम् ।
परस्ताद्दधिमण्डोदात्ततस्तु बहुविस्तरः ॥ २६

पुष्करद्वीपनामायं शाकद्वीपद्विसंगुणः ।
स्वसमानेन स्वादूदकेनायं परिवेष्टितः ॥ २७

यत्रास्ते पुष्करं भ्राजदग्निचूडानिभानि च ।
पत्राणि विशदानीह स्वर्णपत्रायुतायुतम् ॥ २८

श्रीमद्भगवतश्चेदमासनं परमेष्ठिनः ।
कल्पितं लोकगुरुणा सर्वलोकसिसृक्षया ॥ २९

तद्द्वीप एक एवायं मानसोत्तरनामकः ।
अर्वाचीनपराचीनवर्षयोरवधिर्गिरिः ॥ ३०

उच्छ्रायायामयोः संख्यायुतयोजनसम्मिता ।
यत्र दिक्षु च चत्वारि चतसृषु पुराणि ह ॥ ३१

इन्द्रादिलोकपालानां यदुपर्यर्कनिर्गमः ।
मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन् भानुः पर्येति यत्र हि ॥ ३२

संवत्सरात्मकं चक्रं देवाहोरात्रतो भ्रमन् ।
प्रैयव्रतोऽधिपो वीतिहोत्रः स्वात्मजकद्वयम् ॥ ३३

वर्षद्वये परिस्थाप्य वर्षनामधरं क्रमात् ।
रमणो धातकिश्चैव तत्तद्वर्षपती उभौ ॥ ३४
कृताः स्वयं पूर्वजवद्भगवद्भक्तितत्पराः ।

उस वर्षके सभी पुरुष सत्यव्रत, क्रतुव्रत, दानव्रत और अनुव्रत—इन चार वर्णोंवाले कहे गये हैं। वे प्राणायामके द्वारा अपने रजोगुण तथा तमोगुणको नष्ट करके प्राणवायुरूप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार उपासना करते हैं। 'जो प्राणादिवृत्तिरूप अपनी ध्वजाओंके सहित प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी भगवान् वायु हमारी रक्षा करें'॥ २३—२५½ ॥

इसी प्रकार उस दधिमण्डोद समुद्रसे आगे बहुत विस्तारवाला पुष्कर नामक अन्य द्वीप है, यह शाकद्वीपसे दो गुने विस्तारका है। यह अपने समान विस्तारवाले स्वादिष्ट जलके समुद्रसे चारों ओरसे घिरा हुआ है॥ २६-२७॥

अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान विशाल पंखुड़ियोंवाला तथा लाखों स्वर्णमय पत्रोंवाला एक पुष्कर (कमल) इस द्वीपमें विराजमान है। समस्त लोकोंकी रचना करनेकी कामनासे लोकगुरु श्रीहरिने भगवान् ब्रह्माके आसनके रूपमें उस कमलकी रचना की॥ २८-२९ ॥

उस द्वीपमें उसके पूर्वी तथा पश्चिमी वर्षोंकी सीमा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा तथा इतना ही विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंके चार पुर हैं और इनके ऊपरसे होकर सूर्य निकलते हैं और वे सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए संवत्सरात्मक चक्रके रूपमें देवताओंके दिन (उत्तरायण) तथा रात (दक्षिणायन)-के क्रमसे घूमते हुए परिक्रमण करते रहते हैं॥ ३०—३२॥

उस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र उसे दो वर्षोंमें बाँटकर वर्षोंके ही नामवाले अपने दो पुत्रों रमण तथा धातकीको उन वर्षोंका स्वामी नियुक्त करके स्वयं अपने बड़े भाइयोंकी भाँति भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ ३३-३४½ ॥

तद्वर्षपुरुषा ब्रह्मरूपिणं परमेश्वरम्॥ ३५

सकर्मकेन योगेन यजन्ति परिशीलिताः।
यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत्।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नमः॥ ३६

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले शीलसम्पन्न पुरुष ब्रह्मसालोक्यादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मयोगके द्वारा ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरकी इस प्रकार उपासना करते हैं—'कर्मफलस्वरूप, ब्रह्मके साक्षात् विग्रह, एकान्तस्वभाव, अद्वैत तथा शान्तस्वरूप जिन परमेश्वरकी लोग अर्चना करते हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है'॥ ३५-३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने क्रौञ्चशाकपुष्करद्वीपवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

लोकालोकपर्वतका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ततः परस्तादचलो लोकालोकेति नामकः।
अन्तराले च लोकालोकयोर्यः परिकल्पितः॥ १

यावदस्ति च देवर्षे ह्यन्तरं मानसोत्तरात्।
सुमेरोस्तावती शुद्धा काञ्चनी भूमिरस्ति हि॥ २

दर्पणोदरतुल्या सा सर्वप्राणिविवर्जिता।
यस्यां पदार्थः प्रहितो न किञ्चित्प्रत्युदीयते॥ ३

अतः सर्वप्राणिसङ्गरहिता सा च नारद।
लोकालोक इति व्याख्या यदत्र परिकल्पिता॥ ४

लोकालोकान्तरे चास्य वर्तते सर्वदा स्थितिः।
ईश्वरेण स लोकानां त्रयाणामन्तगः कृतः॥ ५

सूर्यादीनां ध्रुवान्तानां रश्मयो यद्वशादिह।
अर्वाचीनाश्च त्रीँल्लोकानातन्वानाः कदापि हि॥ ६

पराचीनत्वभाजो हि न भवन्ति च नारद।
तावदुन्नहनायामः पर्वतेन्द्रो महोदयः॥ ७

एतावाँल्लोकविन्यासोऽयं संस्थामानलक्षणैः।
कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिभिर्गणितस्य च॥ ८

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उसके आगे लोकालोक नामक पर्वत है, जो प्रकाशित तथा अप्रकाशित—दो प्रकारके लोकोंका विभाग करनेके लिये उनके मध्यमें स्थित है॥ १॥

हे देवर्षे! मानसोत्तरपर्वतसे लेकर सुमेरुपर्वततक जितना अन्तर है, उतनी भूमि सुवर्णमयी तथा दर्पणके समान स्वच्छ है। वह भूमि सर्वसाधारण प्राणियोंसे रहित है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती। अतः हे नारद! वह भूमि [देवताओंके अतिरिक्त] सभी प्राणिसमुदायसे रहित है। इस पर्वतको लोकालोक जो कहा गया है, वह इसीलिये; क्योंकि यह सूर्यसे प्रकाशित तथा अप्रकाशित दो भागोंके मध्य स्थित है॥ २—४$\frac{1}{2}$॥

भगवान्‌ने त्रिलोकीकी सीमा निर्धारित करनेके लिये उस पर्वतका निर्माण किया है। हे नारद! सूर्य आदिसे लेकर ध्रुवपर्यन्त सभी ग्रहोंकी किरणें उसके अधीन होनेके कारण उसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करती हैं और दूसरी ओरके लोक प्रकाशित नहीं हो पाते॥ ५-६$\frac{1}{2}$॥

यह अति विशाल पर्वतराज जितना ऊँचा है, उतना ही विस्तृत है। लोकोंका विस्तार इतना ही है। गणितशास्त्रके विद्वानोंने स्थिति, मान और लक्षणके अनुसार सम्पूर्ण भूगोलका परिमाण पचास करोड़ योजन निश्चित किया है। हे मुने! उस भूगोलका

भूगोलस्य चतुर्थांशो लोकालोकाचलो मुने।
तस्योपरि चतुर्दिक्षु ब्रह्मणा चात्मयोनिना॥ ९

निवेशिता दिग्गजा ये तन्नामानि निबोधत।
ऋषभः पुष्पचूडोऽथ वामनोऽथापराजितः॥ १०

एते समस्तलोकस्य स्थितिहेतव ईरिताः।
तेषां च स्वविभूतीनां बहुवीर्योपबृंहणम्॥ ११

विशुद्धसत्त्वं चैश्वर्यं वर्धयन्भगवान् हरिः।
आस्ते सिद्ध्यष्टकोपेतो विष्वक्सेनादिसंवृतः॥ १२

निजायुधैः परिवृतो भुजदण्डैः समन्ततः।
आस्ते सकललोकस्य स्वस्तये परमेश्वरः॥ १३

आकल्पमेवं वेषं स गतो विष्णुः सनातनः।
स्वमायारचितस्यास्य गोपीथायात्मसाधनः॥ १४

योऽन्तर्विस्तार एतेन ह्यलोकपरिमाणकम्।
व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचल इतीरणात्॥ १५

ततः परस्ताद्योगेशगतिं शुद्धां वदन्ति हि।
अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम्॥ १६

सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः।
मृतेऽण्ड एष एतस्मिञ्जातो मार्तण्डशब्दभाक्॥ १७

हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः।
सूर्येण हि विभज्यन्ते दिशः खं द्यौर्महीभिदा॥ १८

स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः।
देवतिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्॥ १९

सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः।
एतावान्भूमण्डलस्य सन्निवेश उदाहृतः॥ २०

चौथाई भाग (साढ़े बारह करोड़ योजन) केवल यह लोकालोकपर्वत ही है। उसके ऊपर चारों दिशाओंमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन चार दिग्गजोंको नियुक्त किया है, उनके नाम हैं—ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित। इन दिग्गजोंको समस्त लोकोंकी स्थितिका कारण कहा गया है॥ ७—१०½ ॥

भगवान् श्रीहरि उन दिग्गजों तथा अपनी विभूतिस्वरूप इन्द्र आदि लोकपालोंकी विविध शक्तियोंके विकास और उनमें विशुद्ध गुण तथा ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके उद्देश्यसे आठों सिद्धियोंसहित विष्वक्सेन आदि पार्षदोंसे घिरे हुए सदा उस लोकालोकपर्वतपर विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण लोकके कल्याणके लिये चारों भुजाओंमें अपने शंख, चक्र, गदा तथा पद्म—इन आयुधोंसे सुशोभित होते हुए भगवान् श्रीहरि वहाँ सर्वत्र विराजमान हैं। अपने मायारचित इस जगत्की रक्षाके लिये स्वयं साधनस्वरूप वे सनातन भगवान् अपने लीलामयरूपसे ऐसे वेषको धारण किये वहाँ कल्पपर्यन्त प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ११—१४॥

लोकालोकपर्वतके अन्तर्वर्ती भागका जो विस्तार कहा गया है, इसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी व्याख्या समझ लेनी चाहिये। विद्वान् लोग कहते हैं कि उसके आगे योगेश्वरोंकी ही विशुद्ध गति सम्भव है। पृथ्वी तथा स्वर्गके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वही सूर्यकी स्थिति है। सूर्य तथा ब्रह्माण्डगोलकके बीच सभी ओर पचीस करोड़ योजनकी दूरी है। इस मृत ब्रह्माण्डमें सूर्यके विराजमान रहनेके कारण इनका नाम 'मार्तण्ड' पड़ा और हिरण्यमय ब्रह्माण्डसे उत्पन्न होनेके कारण इन्हें 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है॥ १५—१७½ ॥

दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक और पाताल—इन सभीका भलीभाँति विभाजन सूर्यके ही द्वारा किया जाता है। देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं, वृक्ष तथा अन्य सभी प्रकारके जीवसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही हैं। ये नेत्रेन्द्रियके स्वामी हैं। हे नारद! भूमण्डलका इतना ही विस्तार कहा गया है। इस विषयके जानकार लोग इसीके द्वारा स्वर्गलोकका भी विस्तार

एतेन हि दिवो मानं वर्णयन्ति च तद्विदः।
द्विदलानां च निष्पावादीनां च दलयोर्यथा॥ २१

अन्तरेण तयोरन्तरिक्षं तदुभयसन्धितम्।
यन्मध्यगश्च भगवान् भानुर्वै तपतां वरः॥ २२

आतपेन त्रिलोकं च प्रतपत्येव भासयन्।
उत्तरायणमासाद्य गतिमान्द्यं वितन्वते॥ २३

आरोहणस्थानमसौ गत्वाहो दैर्घ्यमाचरेत्।
दक्षिणायनमासाद्य गतिशैघ्र्यं वितन्वते॥ २४

अवरोहस्थानमसौ गच्छन्ह्रस्वं दिनं चरेत्।
विषुवत्संज्ञमासाद्य गतिसाम्यं वितन्वते॥ २५

समस्थानमथासाद्य दिनसाम्यं करोति च।
यदा च मेषतुलयोः सञ्चरेद्धि दिवाकरः॥ २६

समानानि त्वहोरात्राण्यातनोति त्रयीमयः।
वृषादिपञ्चसु यदा राशिष्वर्को विरोचते॥ २७

तदाहानि च वर्धन्ते रात्रयोऽपि ह्रसन्ति च।
वृश्चिकादिषु सूर्यो हि यदा सञ्चरते रविः॥ २८

तदापीमान्यहोरात्राणि भवन्ति विपर्ययात्॥ २९

बतलाते हैं, जैसे कि चना-मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेपर दूसरेका अनुमान कर लिया जाता है॥ १८—२१॥

उन द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्यमें अन्तरिक्ष स्थित है। अन्तरिक्ष उन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यमें स्थित रहकर तपनेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्य चमकते हुए अपनी ऊष्मासे तीनों लोकोंको प्रतप्त करते हैं॥ २२½॥

उत्तरायण होनेपर सूर्य मन्दगतिसे चलने लगते हैं। उत्तरायण उनका आरोहणस्थान है, जहाँ पहुँचनेपर दिनमें वृद्धि होने लगती है। दक्षिणायनकी स्थिति प्राप्त करके वे तीव्र गति धारण कर लेते हैं। दक्षिणायन उनका अवरोहस्थान है, जिसपर सूर्यके चलनेपर दिन छोटा होने लगता है॥ २३-२४½॥

विषुवत् नामक स्थानपर पहुँचनेपर सूर्यकी गतिमें समानता आ जाती है। इस समस्थानपर सूर्यके आनेपर दिनके परिमाणमें समानता आ जाती है। जब वेदस्वरूप भगवान् सूर्य मेष और तुला राशिपर संचरण करते हैं, तब दिन और रात समान होने लगते हैं। जब सूर्य वृष आदि पाँच राशियोंपर होते हैं, तब दिन बढ़ने लगते हैं और रातें छोटी होने लगती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य वृश्चिक आदि पाँच राशियोंपर गति करते हैं, तब दिन और रातमें इसके विपरीत परिवर्तन होते हैं॥ २५—२९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
सूर्यगतिवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

सूर्यकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि भानोर्गमनमुत्तमम्।
शीघ्रमन्दादिगतिभिस्त्रिविधं गमनं रवेः॥ १

सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि सुरसत्तम।
स्थानं जारद्गवं मध्यं तथैरावतमुत्तरम्॥ २

वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिति तत्त्वतः।

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं सूर्यकी उत्तम गतिका वर्णन करूँगा। शीघ्र, मन्द गतियोंके द्वारा सूर्यका गमन होता है॥ १॥

हे सुरश्रेष्ठ! सभी ग्रहोंके तीन ही स्थान हैं। वे स्थान हैं—जारद्गव, ऐरावत तथा वैश्वानर; जिनमें जारद्गव मध्यमें, ऐरावत उत्तरमें तथा वैश्वानर दक्षिणमें यथार्थतः निर्दिष्ट किये गये हैं॥ २½॥

अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीति शब्दिता॥ ३

रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो गजवीथ्यभिधीयते।
पुष्याश्लेषा तथादित्या वीथी चैरावती स्मृता॥ ४

एतास्तु वीथयस्तिस्र उत्तरो मार्ग उच्यते।
तथा द्वे चापि फल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी मता॥ ५

हस्तश्चित्रा तथा स्वाती गोवीथीति तु शब्दिता।
ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी मता॥ ६

एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते।
मूलाषाढोत्तराषाढा अजवीथ्यभिशब्दिता॥ ७

श्रवणं च धनिष्ठा च मार्गी शतभिषक् तथा।
वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्तिता॥ ८

एतास्तु वीथयस्तिस्रो दक्षिणो मार्ग उच्यते।
उत्तरायणमासाद्य युगाक्षान्तर्निबद्धयोः॥ ९

कर्षणं पाशयोर्वायुबद्धयो रोहणं स्मृतम्।
तदाभ्यन्तरगान्मण्डलाद्रथस्य गतेर्भवेत्॥ १०

मान्द्यं दिवसवृद्धिश्च जायते सुरसत्तम।
रात्रिह्रासश्च भवति सौम्यायनक्रमो ह्ययम्॥ ११

दक्षिणायनके पाशे प्रेरणादवरोहणम्।
बहिर्मण्डलवेशेन गतिशैघ्र्यं तदा भवेत्॥ १२

तदा दिनाल्पता रात्रिवृद्धिश्च परिकीर्तिता।
वैषुवे पाशसाम्यात्तु समावस्थानतो रवेः॥ १३

मध्यमण्डलवेशश्च साम्यं रात्रिदिनादिके।
आकृष्येते यदा तौ तु ध्रुवेण समधिष्ठितौ॥ १४

तदाभ्यन्तरतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च।
ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन तु॥ १५

तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि च।

अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाको नागवीथी कहा जाता है। रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राको गजवीथी कहा जाता है। इसी प्रकार पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषाको ऐरावती-२७९वीथी कहा गया है। ये तीनों वीथियाँ उत्तरमार्ग कही गयी हैं॥ ३-४½ ॥

मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीको आर्षभी-वीथी माना गया है। हस्त, चित्रा तथा स्वातीको गोवीथी कहा गया है और इसी प्रकार ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधाको जारद्गवीवीथी कहा गया है। इन तीनों वीथियोंको मध्यममार्ग कहा जाता है॥ ५-६½ ॥

मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ अजवीथी नामसे पुकारी जाती है। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषाको मार्गीवीथी कहा जाता है और इसी तरह पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती वैश्वानरीवीथीके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिणमार्ग कही जाती हैं॥ ७-८½ ॥

जब सूर्यका रथ उत्तरायण मार्गपर रहता है, उस समय उसके दोनों पहियेके अक्षोंसे आबद्ध पवनरूपी पाशसे बँधकर ध्रुवद्वारा उसका कर्षण 'आरोहण' कहा गया है। उस समय मण्डलके भीतर रथ चलनेसे गतिकी मन्दता हो जाती है। हे सुरश्रेष्ठ! इस मन्द गतिमें दिनकी वृद्धि और रातका ह्रास होने लगता है। यही सौम्यायनका क्रम है। इसी प्रकार जब वह रथ दक्षिणायन मार्गपर पाशद्वारा खींचा जाता है, तब वह अवरोहण गति होती है। उस समय मण्डलके बाहरसे गति होनेके कारण सूर्यकी गतिमें तीव्रता हो जाती है। उस समय दिनका छोटा तथा रातका बड़ा होना बताया गया है॥ ९—१२½ ॥

विषुव मार्गपर सूर्यका रथ पाशद्वारा किसी ओर न खींचे जानेके कारण साम्य स्थिति बनी रहती है। इसमें मण्डलके मध्यसे गति होनेसे दिन तथा रातके मानमें समानता होती है॥ १३½ ॥

जब ध्रुवकी प्रेरणासे दोनों वायुपाश खींचे जाते हैं, उस समय भीतरके मण्डलोंमें ही सूर्य चक्कर लगाते हैं। पुनः ध्रुवके द्वारा दोनों पाशोंके मुक्त किये जाते ही सूर्य बाहरके मण्डलोंमें चक्कर लगाने लगते हैं॥ १४-१५½ ॥

तस्मिन्मेरौ पूर्वभागे पुर्यैन्द्री देवधानिका॥ १६

दक्षिणे वै संयमनी नाम याम्या महापुरी।
पश्चान्निम्लोचनी नाम वारुणी वै महापुरी॥ १७

तदुत्तरे पुरी सौम्या प्रोक्ता नाम विभावरी।
ऐन्द्रपुर्यां रवेः प्रोक्त उदयो ब्रह्मवादिभिः॥ १८

संयमन्यां च मध्याह्ने निम्लोचन्यां निमीलनम्।
विभावर्यां निशीथः स्यात्तिग्मांशोः सुरपूजितः॥ १९

प्रवृत्तेश्च निमित्तानि भूतानां तानि सर्वशः।
मेरोश्चतुर्दिशं भानोः कीर्तितानि मया मुने॥ २०

मेरुस्थानां सदा मध्यं गत एव विभाति हि।
सव्यं गच्छन्दक्षिणेन करोति स्वर्णपर्वतम्॥ २१

उदयास्तमये चैव सर्वकालं तु सम्मुखे।
दिशास्वशेषासु तथा सुरर्षे विदिशासु च॥ २२

यैर्यत्र दृश्यते भास्वान्स तेषामुदयः स्मृतः।
तिरोभावं च यत्रैति तत्रैवास्तमनं रवेः॥ २३

नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सतः।
उदयास्तमनाख्यं हि दर्शनादर्शनं रवेः॥ २४

शक्रादीनां पुरे तिष्ठन्स्पृशत्येष पुरत्रयम्।
विकर्णौ द्वौ विकर्णस्थस्त्रीन्कोणान्द्वे पुरे तथा॥ २५

सर्वेषां द्वीपवर्षाणां मेरुरुत्तरतः स्थितः।
यैर्यत्र दृश्यते भानुः सैव प्राचीति चोच्यते॥ २६

तद्वामभागतो मेरुर्वर्ततेति विनिर्णयः।
यदि चैन्द्र्याः प्रचलते घटिका दशपञ्चभिः॥ २७

याम्यां तदा योजनानां सपादं कोटियुग्मकम्।
सार्धद्वादशलक्षाणि पञ्चनेत्रसहस्रकम्॥ २८

प्रक्रामति सहस्रांशुः कालमार्गप्रदर्शकः।

उस मेरुपर्वतपर पूर्वभागमें इन्द्रकी पुरी 'देवधानिका' और दक्षिणभागमें यमराजकी 'संयमनी' नामक विशाल पुरी विद्यमान है। पश्चिममें वरुणदेवकी 'निम्लोचनी' नामक महान् पुरी है और उस मेरुके उत्तर-भागमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' नामक पुरी बतायी गयी है॥ १६-१७½ ॥

ब्रह्मवादियोंके द्वारा कहा गया है कि सूर्यका उदय इन्द्रकी पुरीमें होता है और वे मध्याह्नकालमें संयमनीपुरीमें पहुँचते हैं। सूर्यके निम्लोचनीपुरीमें पहुँचनेपर सायंकाल और विभावरीपुरीमें पहुँचनेपर आधी रात होती है। वे भगवान् सूर्य सभी देवताओंके पूज्य हैं॥ १८-१९ ॥

हे मुने! सुमेरुपर्वतके चारों ओर सूर्यके जिस परिभ्रमणसे जीवधारियोंकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, उसका वर्णन मैंने कर दिया॥ २० ॥

सुमेरुपर रहनेवालोंको सूर्य सदा मध्यमें विराजमान प्रतीत होते हैं। सूर्यका रथ सुमेरुके बायें चलते हुए वायुकी प्रेरणासे दायें हो जाता है। अतः उदय तथा अस्त-समयोंमें सर्वदा वह सामने ही पड़ता है। हे देवर्षे! सभी दिशाओं तथा विदिशाओंमें रहनेवाले जो लोग सूर्यको जहाँ देखते हैं, उनके लिये वह सूर्योदय तथा जहाँ सूर्य छिप जाते हैं, वहाँके लोगोंके लिये वह सूर्यास्त माना गया है। सर्वदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो उदय होता है और न अस्त ही होता है, उनका दर्शन तथा अदर्शन ही उदय और अस्त नामसे कहा गया है॥ २१—२४ ॥

जिस समय सूर्य इन्द्र आदिकी पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित होने लगते हैं। दो विकर्ण, उनके तीन कोण तथा दो पुरियाँ—सबमें सूर्यकी किरणसे प्रकाश फैल जाता है। सम्पूर्ण द्वीप और वर्ष सुमेरुके उत्तरमें स्थित हैं। जो लोग सूर्यको जहाँ उदय होते देखते हैं, उनके लिये वही पूर्व दिशा कही जाती है॥ २५-२६ ॥

उसके वाम भागमें मेरुपर्वत है—ऐसा सुनिश्चित है। काल तथा मार्गके प्रदर्शक हजार किरणोंवाले सूर्य जब इन्द्रपुरीसे संयमनीपुरीको जाते हैं, तब वे पन्द्रह घड़ीमें सवा दो करोड़ बारह लाख पचहत्तर हजार योजनकी दूरी तय करते हैं॥ २७-२८½ ॥

एवं ततो वारुणीं च सौम्यामैन्द्रीं सहस्रदृक्॥ २९

पर्येति कालचक्रात्मा द्युमणिः कालबुद्धये।
तथा चान्ये ग्रहाः सोमादयो ये दिग्विचारिणः॥ ३०

नक्षत्रैः सह चोद्यन्ति सह चास्तं व्रजन्ति ते।
एवं मुहूर्तेन रथो भानोरष्टशताधिकम्॥ ३१

योजनानां चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि भ्रमति प्रभुः।
त्रयीमयश्चतुर्दिक्षु पुरीषु च समीरणात्॥ ३२

प्रवहाख्यात्सदा कालचक्रं पर्येति भानुमान्।
यस्य चक्रं रथस्यैकं द्वादशारं त्रिनाभिकम्॥ ३३

षण्नेमि कवयस्तं च वत्सरात्मकमूचिरे।
मेरुमूर्धनि तस्याक्षो मानसोत्तरपर्वते॥ ३४

कृतेतरविभागो यः प्रोतं तत्र रथाङ्गकम्।
तैलकारकयन्त्रेण चक्रसाम्यं परिभ्रमन्। ३५

मानसोत्तरनाम्नीह गिरौ पर्येति चांशुमान्।
तस्मिन्नक्षे कृतं मूलं द्वितीयोऽक्षो ध्रुवे कृतः॥ ३६

तुर्यमानेन तैलस्य यन्त्राक्षवदितीरितः।
कृतोपरितनो भागः सूर्यस्य जगतां पतेः॥ ३७

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनमायतः।
तत्तुर्यभागतः सोऽयं परिणाहेन कीर्तितः॥ ३८

तावानर्करथस्यात्र युगस्तस्मिन्हयाः शुभाः।
सप्तच्छन्दोऽभिधानाश्च सूरसूतेन योजिताः॥ ३९

वहन्ति देवमादित्यं लोकानां सुखहेतवे।
पुरस्तात्सवितुः सूतोऽरुणः पश्चान्नियोजितः॥ ४०

सौत्ये कर्मणि संयुक्तो वर्तते गरुडाग्रजः।

इसी प्रकार सहस्र नेत्रोंवाले कालचक्रात्मा सूर्य कालज्ञान करानेके लिये वरुणलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोकका भ्रमण करते हैं॥ २९½ ॥

चन्द्रमा आदि अन्य आकाशचारी जो भी ग्रह हैं, वे नक्षत्रोंके साथ उदय तथा अस्त होते रहते हैं॥ ३०½ ॥

इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजन चलता है। प्रवह नामक वायुके प्रभावसे वह तेजस्वी कालचक्र चारों दिशाओंमें स्थित चारों पुरियोंपरसे घूमता रहता है॥ ३१-३२½ ॥

सूर्यके रथके एक चक्केमें बारह अरे, तीन धुरियाँ तथा छः नेमियाँ हैं; विद्वान् लोग उस चक्केको एक संवत्सरकी संज्ञा प्रदान करते हैं। इस रथकी धुरीका एक सिरा सुमेरुपर्वतके शिखरपर और दूसरा मानसोत्तरपर्वतके शिखरपर स्थित है। इस धुरीमें लगा हुआ जो पहिया है, वह तेल निकालनेवाले यन्त्र (कोल्हू)-के पहियेकी भाँति घूमता रहता है और सूर्य भी उस मानसोत्तरपर्वतके ऊपर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३३—३५½ ॥

उस धुरीमें जिसका मूल भाग लगा हुआ है, ऐसी ही एक दूसरी धुरी है, जिसकी लम्बाई पहली धुरीकी चौथाई है। ध्रुवसे लगी हुई वह धुरी तैलयन्त्रकी धुरीके सदृश कही गयी है॥ ३६½ ॥

रथके ऊपरी भागमें जगत्के स्वामी सूर्यके बैठनेका स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा तथा उसका चतुर्थांश अर्थात् नौ लाख योजन चौड़ा बताया गया है। उतना ही परिमाणवाला सूर्यके रथका जूआ भी है। रथके सारथि (अरुण)-के द्वारा उस जूएमें जुते हुए गायत्री आदि छन्दोंके नामवाले सात घोड़े जगत्के प्राणियोंके कल्याणके लिये भगवान् सूर्यका वहन करते रहते हैं॥ ३७—३९½ ॥

सूर्यके आगे उन्हींकी ओर मुख करके उनके सारथि अरुण बैठते हैं। सारथिके कामपर नियुक्त ये अरुण गरुडके ज्येष्ठ भ्राता हैं॥ ४०½ ॥

तथैव बालखिल्याख्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वकाः॥ ४१
प्रमाणेन परिख्याताः षष्टिसाहस्रसंख्यकाः।
स्तुवन्ति पुरतः सूर्यं सूक्तवाक्यैः सुशोभनैः॥ ४२
तथा चान्ये च ऋषयो गन्धर्वा अप्सरोरगाः।
ग्रामण्यो यातुधानाश्च देवाः सर्वे परेश्वरम्॥ ४३
एकैकशः सप्त सप्त मासि मासि विरोचनम्।
सार्धलक्षोत्तरं कोटिनवकं भूमिमण्डलम्॥ ४४
द्विसहस्रं योजनानां स गव्यूत्युत्तरं क्षणात्।
पर्येति देवदेवेशो विश्वव्यापी निरन्तरम्॥ ४५

उसी प्रकार बालखिल्य आदि साठ हजार ऋषिगण जो परिमाणमें अँगूठेके पोरके बराबर कहे गये हैं, सूर्यके सम्मुख स्थित होकर मनोहर वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन करते हैं। वैसे ही अन्य जो सभी ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता हैं—उनमेंसे एक-एक करके ये सातों दो-दो मिलकर प्रत्येक महीने परमेश्वर सूर्यकी उपासना करते हैं॥ ४१—४३॥

इस प्रकार वे विश्वव्यापी देवदेवेश्वर भगवान् सूर्य प्रतिक्षण दो हजार दो योजनकी दूरी चलते हुए नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन मार्गवाले भूमण्डलकी निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं॥ ४४-४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने सूर्यगतिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां चित्रं सोमादीनां गमादिकम्।
तद्गत्यनुसृता नृणां शुभाशुभनिदर्शना॥ १
यथा कुलालचक्रेण भ्रमता भ्रमतां सह।
तदाश्रयाणां च गतिरन्या कीटादिनां भवेत्॥ २
एवं हि राशिवृन्देन कालचक्रेण तेन च।
मेरुं ध्रुवं च सरतां प्रादक्षिण्येन सर्वदा॥ ३
ग्रहाणां भानुमुख्यानां गतिरन्यैव दृश्यते।
नक्षत्रान्तरगामित्वाद्भान्तरे गमनं तथा॥ ४
गतिद्वयं चाविरुद्धं सर्वत्रैष विनिर्णयः।
स एव भगवानादिपुरुषो लोकभावनः॥ ५
नारायणोऽखिलाधारो लोकानां स्वस्तये भ्रमन्।
कर्मशुद्धिनिमित्तं तु आत्मानं वै त्रयीमयम्॥ ६
कविभिश्चैव वेदेन विजिज्ञास्योऽर्कधाभवत्।
षट्सु क्रमेण ऋतुषु वसन्तादिषु च स्वयम्॥ ७
यथोपजोषमृतुजान् गुणान् वै विदधाति च।

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप चन्द्रमा आदिकी अद्भुत गतिका वर्णन सुनिये। उसकी गतिके द्वारा ही मनुष्योंको शुभ तथा अशुभका परिज्ञान होता है॥ १॥

जिस प्रकार कुम्हारके घूमते हुए चाकपर स्थित कीड़ों आदिकी एक दूसरी गति भी होती है, उसी प्रकार राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रके अनुसार सुमेरु और ध्रुवको दाहिने करके घूमनेवाले सूर्य आदि प्रमुख ग्रहोंकी एक अन्य गति भी दृष्टिगोचर होती है॥ २-३½॥

सूर्यकी यह गति नक्षत्रोंपर निर्भर करती है। एक नक्षत्रके बाद दूसरा नक्षत्र आनेपर सूर्यगतिमें परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों गतियाँ एक-दूसरेके अविरुद्ध हैं। यह निश्चित नियम सर्वत्रके लिये है॥ ४½॥

वेद तथा विद्वान् पुरुष जिन्हें जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे लोकप्रकाशक तथा सम्पूर्ण जगत्के आधार आदिपुरुष सूर्य प्राणियोंके कल्याणार्थ और कर्मोंकी शुद्धिके निमित्त भ्रमण करते हुए अपने वेदमय विग्रहको बारह भागोंमें विभक्त करके स्वयं वसन्त आदि छः ऋतुओंमें ऋतुसम्बन्धी सभी गुणोंकी यथोचित व्यवस्था करते हैं॥ ५—७½॥

तमेनं पुरुषाः सर्वे त्रय्या च विद्यया सदा॥ ८

वर्णाश्रमाचारपथा तथाम्नातैश्च कर्मभिः।
उच्चावचैः श्रद्धया च योगानां च वितानकैः॥ ९

अञ्जसा च यजन्ते ये श्रेयो विन्दन्ति ते मतम्।
अथैष आत्मा लोकानां द्यावाभूम्यन्तरेण च॥ १०

कालचक्रगतो भुङ्क्ते मासान्द्वादशराशिभिः।
संवत्सरस्यावयवान्मासः पक्षद्वयं दिवा॥ ११

नक्तं चेति स पादर्क्षद्वयमित्युपदिश्यते।
यावता षष्ठमंशं स भुञ्जीत ऋतुरुच्यते॥ १२

संवत्सरस्यावयवः कविभिश्चोपवर्णितः।
यावतार्धेन चाकाशवीथ्यां प्रचरते रविः॥ १३

तं प्राक्तना वर्णयन्ति अयनं मुनिपूजिताः।
अथ यावन्नभोमण्डलं सह प्रतिगच्छति॥ १४

कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत कालं तं वत्सरं विदुः।
संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमेव च॥ १५

अनुवत्सरमिद्वत्सरमिति पञ्चकमीरितम्।
भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः कालवित्तमैः॥ १६

एवं भानोर्गतिः प्रोक्ता चन्द्रादीनां निबोधत।
एवं चन्द्रोऽर्करश्मिभ्यो लक्षयोजनमूर्ध्वतः॥ १७

उपलभ्यमानो मित्रस्य संवत्सरभुजिं च सः।
पक्षाभ्यां चौषधीनाथो भुङ्क्ते मासभुजिं च सः॥ १८

सपादमाभ्यां दिवसभुक्तिं पक्षभुजिं चरेत्।
एवं शीघ्रगतिः सोमो भुङ्क्ते नूनं भचक्रकम्॥ १९

पूर्यमाणकलाभिश्चामराणां प्रीतिमावहन्।
क्षीयमाणकलाभिश्च पितॄणां चित्तरञ्जकः॥ २०

वर्णाश्रमधर्मका आचरण करनेवाले जो पुरुष त्रयीविद्या (वेद)-के आदेशोंका पालन करके, शास्त्र-निर्दिष्ट छोटे-बड़े कर्म सम्पादित करके तथा उच्च कोटिकी योग-साधना करके श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, वे शीघ्र ही कल्याण प्राप्त कर लेते हैं; यह निश्चित सिद्धान्त है॥ ८-९½॥

सभी प्राणियोंकी आत्मास्वरूप ये सूर्य कालचक्रपर स्थित होकर द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्य गति करते हुए बारह राशियोंके रूपमें संवत्सरके अवयवस्वरूप [बारह] महीनोंको भोगते हैं। उनमें प्रत्येक मास चन्द्रमानसे कृष्ण तथा शुक्ल—इन दो पक्षोंका, पितृमानसे एक दिन तथा एक रातका और सौरमानसे सवा दो नक्षत्रोंका कहा गया है। सूर्य जितने समयमें वर्षका छठा भाग भोगते हैं, विद्वान् लोग उसे संवत्सरका अवयवस्वरूप ऋतु कहते हैं॥ १०—१२½॥

भगवान् सूर्य जितने समयमें आकाशमार्गकी दूरी तय करते हैं, उसके आधे समयको पूज्य प्राचीन मुनिगण 'अयन' कहते हैं और जितने समयमें सूर्य सम्पूर्ण नभमण्डलको पार करते हैं, उस समयको वत्सर कहते हैं॥ १३-१४½॥

वत्सर पाँच प्रकारका कहा गया है—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर॥ १५½॥

कालतत्त्वके ज्ञाताओंने सूर्यके मन्द, शीघ्र तथा समान गतियोंसे चलनेके कारण उनकी इस प्रकार तीन गतियाँ बतायी हैं। [हे नारद!] अब चन्द्रमा आदिकी गतिके विषयमें सुनिये। इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर है। औषधियोंके स्वामी वे चन्द्रमा सूर्यके एक वर्षके मार्गको दो पक्षोंमें, एक महीनेमें तय किये गये मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षमें तय किये गये मार्गको एक दिनमें भोग लेते हैं। इस प्रकार तीव्र गतिसे चलनेवाले चन्द्रमा नक्षत्रचक्रमें गति करते रहते हैं॥ १६—१९॥

ये चन्द्र क्रमशः अपनी पूर्ण होनेवाली कलाओंसे देवताओंको प्रसन्न करते हैं और क्षीण होती हुई कलाओंसे पितरोंका चित्तानुरंजन करते हैं॥ २०॥

अहोरात्राणि तन्वानः पूर्वापरसुघस्त्रकैः।
सर्वजीवनिकायस्य प्राणो जीवः स एव हि॥ २१

भुङ्क्ते चैकैकनक्षत्रं मुहूर्तत्रिंशता विभुः।
स एव षोडशकलः पुरुषोऽनादिरुत्तमः॥ २२

मनोमयोऽप्यन्नमयोऽमृतधामा सुधाकरः।
देवपितृमनुष्यादिसरीसृपसवीरुधाम् ॥ २३

प्राणाप्यायनशीलत्वात्स सर्वमय उच्यते।
ततो भचक्रं भ्रमति योजनानां त्रिलक्षतः॥ २४

मेरुप्रदक्षिणेनैव योजितं चेश्वरेण तु।
अष्टाविंशतिसंख्यानि गणितानि सहाभिजित्॥ २५

ततः शुक्रो द्विलक्षेण योजनानामथोपरि।
पुरः पश्चात्सहैवासावर्कस्य परिवर्तते॥ २६

शीघ्रमन्दसमानाभिर्गतिभिर्विचरन्विभुः ।
लोकानामनुकूलोऽयं प्रायः प्रोक्तः शुभावहः॥ २७

वृष्टिविष्टम्भशमनो भार्गवः सर्वदा मुने।
शुक्राद् बुधः समाख्यातो योजनानां द्विलक्षतः॥ २८

शीघ्रमन्दसमानाभिर्गतिभिः शुक्रवत्सदा।
यदार्काद्व्यतिरिच्येत सौम्यः प्रायेण तत्र तु॥ २९

अतिवाताभ्रपातानां वृष्ट्यादिभयसूचकः।
उपरिष्टात्ततो भौमो योजनानां द्विलक्षतः॥ ३०

पक्षैस्त्रिभिस्त्रिभिः सोऽयं भुङ्क्ते राशीनथैकशः।
द्वादशापि च देवर्षे यदि वक्रो न जायते॥ ३१

प्रायेणाशुभकृत्सोऽयं ग्रहौघानां च सूचकः।
ततो द्विलक्षमानेन योजनानां च गीष्पतिः॥ ३२

एकैकस्मिन्नथो राशौ भुङ्क्ते संवत्सरं चरन्।
यदि वक्रो भवेन्नैवानुकूलो ब्रह्मवादिनाम्॥ ३३

अपने पूर्व और उत्तर पक्षोंके द्वारा दिन तथा रातका विभाजन करनेवाले वे चन्द्रमा ही समस्त जीव-जगत्‌के प्राण तथा जीवन हैं। परम ऐश्वर्यसम्पन्न वे चन्द्रमा तीस मुहूर्तमें एक-एक नक्षत्रका भोग करते हैं। सोलह कलाओंसे युक्त, मनोमय, अन्नमय, अमृतमय तथा श्रेष्ठ अनादि पुरुष वे भगवान् चन्द्रमा देवताओं, पितरों, मनुष्यों, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं तथा वृक्ष आदिके प्राणोंका पोषण करनेके कारण सर्वमय कहे जाते हैं॥ २१—२३½ ॥

चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। अभिजित्‌को लेकर इस मण्डलमें कुल नक्षत्र संख्यामें अट्ठाईस गिने गये हैं। भगवान्‌के द्वारा कालचक्रमें बँधा हुआ यह नक्षत्रमण्डल मेरुको दाहिने करके सदा भ्रमण करता रहता है॥ २४-२५॥

उससे भी दो लाख योजन ऊपर रहनेवाले शुक्र कभी सूर्यके आगे तथा कभी पीछे और कभी सूर्यके साथ-साथ तीव्र, मन्द और समान गतियोंसे चलते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं॥ २६½ ॥

ये प्राणियोंके लिये प्रायः अनुकूल ही रहते हैं। इन्हें शुभकारी ग्रह कहा गया है। हे मुने! ये भार्गव शुक्र वर्षाके विघ्नोंको सदा दूर करनेवाले हैं॥ २७½ ॥

शुक्रसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर बुध बताये गये हैं। ये भी शुक्रके ही समान तीव्र, मन्द तथा सम गतियोंसे सदा भ्रमण करते रहते हैं॥ २८½ ॥

ये चन्द्रपुत्र बुध जब सूर्यकी गतिका उल्लंघन करके चलते हैं, उस समय ये आँधी, विद्युत्पात और वृष्टि आदिके भयकी सूचना देते हैं॥ २९½ ॥

उनसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर मंगल हैं। हे देवर्षे! यदि वे वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षोंमें भोगते हुए बारहों राशियोंको पार करते हैं। ये प्रायः अशुभ करनेवाले तथा अमंगलके सूचक हैं॥ ३०-३१½ ॥

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। यदि वे वक्री न होकर भ्रमण करें तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं। वे प्रायः ब्रह्मवादियोंके अनुकूल रहते हैं॥ ३२-३३॥

ततः शनैश्चरो घोरो लक्षद्वयपरो मितः।
योजनैः सूर्यपुत्रोऽयं त्रिंशन्मासैः परिभ्रमन्॥ ३४

एकैकराशौ पर्येति सर्वान्राशीन्महाग्रहः।
सर्वेषामशुभो मन्दः प्रोक्तः कालविदां वरैः॥ ३५

तत उत्तरतः प्रोक्तमेकादशसुलक्षकैः।
योजनैः परिसंख्यातं सप्तर्षीणां च मण्डलम्॥ ३६

लोकानां शं भावयन्तो मुनयः सप्त ते मुने।
यत्तद्विष्णुपदं स्थानं दक्षिणं प्रक्रमन्ति ते॥ ३७

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर भयंकर शनि हैं। सूर्यके पुत्र कहे जानेवाले ये महाग्रह शनि एक-एक राशिको तीस-तीस महीनोंमें भोगते हुए सभी राशियोंका परिभ्रमण करते रहते हैं। श्रेष्ठ कालज्ञ पुरुषोंने शनिको सबके लिये अशुभ बताया है॥ ३४-३५॥

उनसे भी ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षियोंका मण्डल बताया गया है। हे मुने! वे सातों ऋषि प्राणियोंके कल्याणकी कामना करते हुए जो वह विष्णुपद है, उस ध्रुव-लोककी प्रदक्षिणा करते हैं॥ ३६-३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
सोमादिगतिवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

* * *

अथ सप्तदशोऽध्यायः

शिशुमारचक्र तथा ध्रुवमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथर्षिमण्डलादूर्ध्वं योजनानां प्रमाणतः।
लक्षैस्त्रयोदशमितैः परमं वैष्णवं पदम्॥ १

महाभागवतः श्रीमान् वर्तते लोकवन्दितः।
औत्तानपादिरिन्द्रेण वह्निना कश्यपेन च॥ २

धर्मेण सह चैवास्ते समकालयुजा ध्रुवः।
बहुमानं दक्षिणतः कुर्वद्भिः प्रेक्षकैः सदा॥ ३

आजीव्यः कल्पजीविनामुपास्ते भगवत्पदम्।
ज्योतिर्गणानां सर्वेषां ग्रहनक्षत्रभादिनाम्॥ ४

कालेनानिमिषेणायं भ्राम्यतां व्यक्तरंहसा।
अवष्टम्भस्थाणुरिव विहितश्चेश्वरेण सः॥ ५

भासते भासयन्भासा स्वीयया देवपूजितः।
मेढिस्तम्भे यथा युक्ताः पशवः कर्षणार्थकाः॥ ६

मण्डलानि चरन्तीमे सवनत्रितयेन च।
एवं ग्रहादयः सर्वे भगणाद्या यथाक्रमम्॥ ७

श्रीनारायण बोले—इस सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन दूरीपर वह परम वैष्णवपद स्थित है॥ १॥

परम भागवत तथा लोकपूजित उत्तानपादपुत्र श्रीमान् ध्रुव यहींपर विराजमान हैं। इन्द्र, अग्नि, कश्यप, धर्म तथा सप्तर्षिगण—ये सब देखते हुए आदरपूर्वक जिनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं, वे ध्रुव कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले प्राणियोंके जीवनाधार हैं और निरन्तर भगवान्‌के चरणोंकी उपासना करते रहते हैं॥ २-३½॥

सर्वदा जाग्रत् रहनेवाले व्यक्तगति भगवान् कालने भ्रमण करनेवाले ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि समस्त ज्योतिर्गणोंके अचल स्तम्भके रूपमें ध्रुवको व्यवस्थित कर रखा है। वे देवपूज्य ध्रुव अपने तेजसे सबको आलोकित करते हुए सदा प्रकाशित होते रहते हैं॥ ४-५½॥

जिस प्रकार अनाजको पृथक् करनेवाले पशु छोटी-बड़ी रस्सियोंमें बँधकर निकट, दूर और मध्यमें रहकर खलिहानमें गड़े खम्भेके चारों ओर मण्डल

अन्तर्बहिर्विभागेन कालचक्रे नियोजिताः।
ध्रुवमेवावलम्ब्याशु वायुनोदीरिताश्च ते॥ ८

आकल्पान्तं च क्रमन्ति खे श्येनाद्याः खगा इव।
कर्मसारथयो वायुवशगाः सर्व एव ते॥ ९

एवं ज्योतिर्गणाः सर्वे प्रकृतेः पुरुषस्य च।
संयोगानुगृहीतास्ते भूमौ न निपतन्ति च॥ १०

ज्योतिश्चक्रं केचिदेतच्छिशुमारस्वरूपकम्।
सोपयोगं भगवतो योगधारणकर्मणि॥ ११

यस्यार्वाक्शिरसः कुण्डलीभूतवपुषो मुने।
पुच्छाग्रे कल्पितो योऽयं ध्रुव उत्तानपादजः॥ १२

लाङ्गूलेऽस्य च सम्प्रोक्तः प्रजापतिरकल्मषः।
अग्निरिन्द्रश्च धर्मश्च तिष्ठन्ते सुरपूजिताः॥ १३

धाता विधाता पुच्छान्ते कट्यां सप्तर्षयस्ततः।
दक्षिणावर्तभोगेन कुण्डलाकारमीयुषः॥ १४

उत्तरायणभानीह दक्षपार्श्वेऽर्पितानि च।
दक्षिणायनभानीह सव्ये पार्श्वेऽर्पितानि च॥ १५

कुण्डलाभोगवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरपि।
समसंख्याश्चावयवा भवन्ति कजनन्दन॥ १६

अजवीथी पृष्ठभागे आकाशसरिदौदरे।
पुनर्वसुश्च पुष्यश्च श्रोण्यौ दक्षिणवामयोः॥ १७

आर्द्राश्लेषे पश्चिमयोः पादयोर्दक्षवामयोः।
अभिजिच्चोत्तराषाढा नासयोर्दक्षवामयोः॥ १८

यथासंख्यं च देवर्षे श्रुतिश्च जलभं तथा।
कल्पिते कल्पनाविद्भिर्नेत्रयोर्दक्षवामयोः॥ १९

धनिष्ठा चैव मूलं च कर्णयोर्दक्षवामयोः।
मघादीन्यष्टभानीह दक्षिणायनगानि च॥ २०

बनाकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सभी नक्षत्रगण और ग्रह आदि भीतर-बाहरके क्रमसे कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पपर्यन्त परिभ्रमण करते रहते हैं, जिस प्रकार बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें घूमते रहते हैं, उसी प्रकार वे सभी ज्योतिर्गण भी पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे अनुगृहीत होकर परिभ्रमण करते रहते हैं और भूमिपर नहीं गिरते॥ ६—१०॥

हे मुने! कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी योगमायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिष्चक्रका वर्णन शिशुमारके रूपमें करते हैं, जो नीचेकी ओर सिर किये हुए कुण्डली मारकर स्थित है। उसकी पूँछके अग्रभागपर उत्तानपादपुत्र ध्रुव विराजमान कहे गये हैं। उसकी पूँछके मध्यभागमें देवताओंद्वारा पूजित पवित्रात्मा प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म विराजमान हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता तथा उसके कटिभागमें सप्तर्षिगण स्थित हैं। यह शिशुमार अपने शरीरको दाहिनी ओरसे कुण्डलाकार बनाकर स्थित है॥ ११—१४॥

उत्तरायणके चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भागमें हैं और दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र इसके बायें भागमें हैं। हे ब्रह्मापुत्र नारद! लोकमें भी शिशुमार जब कुण्डलाकार होकर बैठता है तो उसके दोनों पार्श्वभागोंके अवयवोंकी संख्या समान होती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्रसंख्यामें भी समानता है॥ १५-१६॥

इसके पृष्ठभागमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंका समूह) और उदरमें आकाशगंगा है। दायें तथा बायें कटिप्रदेशमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र स्थित हैं॥ १७॥

पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र हैं। दाहिनी तथा बायीं नासिकाओंमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान हैं॥ १८॥

हे देवर्षे! इसी प्रकार कल्पनाविदोंने दाहिने तथा बायें नेत्रोंमें क्रमशः श्रवण तथा पूर्वाषाढ़ और दाहिने तथा बायें कानोंमें क्रमशः धनिष्ठा और मूल नक्षत्रोंकी

युञ्जीत वामपार्श्वीयवंक्रिषु क्रमतो मुने।
तथैव मृगशीर्षादीन्युदग्भानि च यानि हि॥ २१

दक्षपार्श्वे वंक्रिकेषु प्रातिलोम्येन योजयेत्।
शततारा तथा ज्येष्ठा स्कन्धयोर्दक्षवामयोः॥ २२

अगस्तिश्चोत्तरहनावधरायां हनौ यमः।
मुखेष्वङ्गारकः प्रोक्तो मन्दः प्रोक्त उपस्थके॥ २३

बृहस्पतिश्च ककुदि वक्षस्यर्को ग्रहाधिपः।
नारायणश्च हृदये चन्द्रो मनसि तिष्ठति॥ २४

स्तनयोरश्विनौ नाभ्यामुशनाः परिकीर्तितः।
बुधः प्राणापानयोश्च गले राहुश्च केतवः॥ २५

सर्वाङ्गेषु तथा रोमकूपे तारागणाः स्मृताः।
एतद्भगवतो विष्णोः सर्वदेवमयं वपुः॥ २६

सन्ध्यायां प्रत्यहं ध्यायेत्प्रयतो वाग्यतो मुनिः।
निरीक्षमाणश्चोत्तिष्ठेन्मन्त्रेणानेन धीश्वरः॥ २७

नमो ज्योतिर्लोकाय कालायानिमिषां
पतये महापुरुषायाभिधीमहीति॥ २८

ग्रहर्क्षतारामयमाधिदैविकं
पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम्।
नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं
नश्येत तत्कालजमाशु पापम्॥ २९

स्थिति बतायी है। हे मुने! दक्षिणायनके मघा आदि आठ नक्षत्र वाम पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। उसी प्रकार विपरीत क्रमसे उत्तरायणके मृगशिरा आदि जो आठ नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र दाहिने तथा बायें कन्धोंपर विराजमान हैं॥ १९—२२॥

इसकी ऊपरकी ठोड़ीमें अगस्ति, नीचेकी ठोड़ीमें यमराज, मुखमें मंगल और जननेन्द्रियमें शनि स्थित कहे गये हैं। इसके ककुद्पर बृहस्पति, वक्षपर ग्रहपति सूर्य, हृदयमें नारायण और मनमें चन्द्रमा स्थित रहते हैं॥ २३-२४॥

दोनों स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमारों तथा नाभिमें शुक्रका स्थान कहा गया है। प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु और केतु एवं सभी अंगों तथा रोमकूपोंमें तारागण कहे गये हैं। हे नारद! भगवान् विष्णुका यह सर्वदेवमय विग्रह है। परम बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन सायंकालके समय मौन धारण करके अपने हृदयमें भगवान्‌को स्थित देखते हुए उनके उस दिव्य स्वरूपका ध्यान करे और इस मन्त्रसे जप करते हुए स्तुति करे—सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्ररूपसे विराजमान तथा देवताओंके अधिपति परम पुरुषको मेरा नमस्कार है; मैं आपका ध्यान करता हूँ॥ २५—२८॥

ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओंके रूपमें भासित होता हुआ भगवान्‌का आधिदैविकस्वरूप तीनों कालोंमें इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषोंके पापोंका नाश कर देता है। तीनों कालोंमें भगवान्‌के इस रूपका वन्दन तथा ध्यान करनेवाले व्यक्तिका उस समयका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
ध्रुवमण्डलसंस्थानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अथाष्टादशोऽध्यायः

राहुमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अधस्तात्सवितुः प्रोक्तमयुतं राहुमण्डलम्।
नक्षत्रवच्चरति च सैंहिकेयोऽतदर्हणः॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल कहा गया है। यह सिंहिकापुत्र राहु योग्य न होनेपर भी नक्षत्रकी भाँति

सूर्याचन्द्रमसोरेव मर्दनः सिंहिकासुतः।
अमरत्वं च खेटत्वं लेभे यो विष्णवनुग्रहात्॥ २

यददस्तरणेर्बिम्बं तपतो योजनायुतम्।
तच्छादकोऽसुरो ज्ञेयोऽप्यर्कसाहस्रविस्तरम्॥ ३

त्रयोदशसहस्रं तु सोमस्याच्छादको ग्रहः।
यः पर्वसमये वैरानुबन्धी छादकोऽभवत्॥ ४

सूर्याचन्द्रमसोर्दूराद्भवेच्छादनकारकः ।
तन्निशम्योभयत्रापि विष्णुना प्रेरितं स्वकम्॥ ५

चक्रं सुदर्शनं नाम ज्वालामालातिभीषणम्।
तत्तेजसा दुःसहेन समन्तात्परिवारितम्॥ ६

मुहूर्तो द्विजमानस्तु दूराच्चकितमानसः।
आरान्निवर्तते सोऽयमुपराग इतीव ह॥ ७

उच्यते लोकमध्ये तु देवर्षे अवबुध्यताम्।
ततोऽधस्तात्समाख्याता लोकाः परमपावनाः॥ ८

सिद्धानां चारणानां च विद्याध्राणां च सत्तम।
योजनायुतविख्याता लोकाः पुण्यनिषेविताः॥ ९

ततोऽप्यधस्ताद्देवर्षे यक्षाणां च सरक्षसाम्।
पिशाचप्रेतभूतानां विहाराजिरमुत्तमम्॥ १०

अन्तरिक्षं च तत्प्रोक्तं यावद्वायुः प्रवाति हि।
यावन्मेघास्ततोद्यन्ति तत्प्रोक्तं ज्ञानकोविदैः॥ ११

ततोऽधस्ताद्योजनानां शतं यावद् द्विजोत्तम।
पृथिवी परिसंख्याता सुपर्णश्येनसारसाः॥ १२

हंसादयः प्रोत्पतन्ति पार्थिवाः पृथिवीभवाः।
भूसन्निवेशावस्थानं यथावदुपवर्णितम्॥ १३

विचरण करता रहता है। चन्द्रमा तथा सूर्यको पीड़ित करनेवाले इस सिंहिकापुत्र राहुने भगवान्‌की कृपासे ही अमर होने तथा आकाशमें विचरण करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया है॥ १-२॥

तेरह हजार योजन विस्तारवाला यह असुर दस हजार योजन विस्तारके बिम्बमण्डलवाले तपते सूर्यका तथा बारह हजार योजन विस्तृत मण्डलवाले चन्द्रमाका आच्छादक कहा गया है। पूर्वकालमें अमृतपानके समयके वैरको याद करके वह राहु अमावास्या और पूर्णिमाके पर्वपर उनका आच्छादक होता है। दूरसे ही वह राहु सूर्य तथा चन्द्रमाको आच्छादित करनेके लिये तत्पर होता है। यह बात जानकर भगवान् विष्णुने विशाल ज्वालाओंसे युक्त अपना अत्यन्त भयानक सुदर्शन नामक चक्र उन दोनों (सूर्य तथा चन्द्रमा)-के पास भेज दिया था। उसके दु:सह तेजसे सूर्य और चन्द्रमाका मण्डल चारों ओरसे घिरा रहता है। इससे खिन्न तथा चकित मनवाला वह राहु बिम्बके पास जाकर और वहाँ क्षणभर रुककर फिर सहसा लौट आता है। हे देवर्षे! जगत्‌में इसीको उपराग (ग्रहण) कहा जाता है—ऐसा आप समझिये॥ ३—७$\frac{1}{2}$॥

हे श्रेष्ठ! उस राहुमण्डलसे भी नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके परम पवित्र लोक कहे गये हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित ये लोक दस हजार योजन विस्तारवाले बताये गये हैं॥ ८-९॥

हे देवर्षे! इन लोकोंके भी नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, प्रेतों एवं भूतोंके उत्तम विहार-स्थल हैं। इसके नीचे जहाँतक वायु चलती है और जहाँतक मेघ दिखायी पड़ते हैं, ज्ञानी तथा विद्वान् लोगोंके द्वारा वह अन्तरिक्ष कहा गया है॥ १०-११॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उसके नीचे सौ योजनकी दूरीपर, जहाँतक गरुड, बाज, सारस और हंस आदि पृथ्वीपर होनेवाले पार्थिव पक्षी उड़ सकते हैं, पृथ्वी बतायी गयी है। पृथ्वीके परिमाण तथा स्थितिका वर्णन पहले ही किया जा चुका है॥ १२-१३॥

अधस्तादवनेः सप्त देवर्षे विवराः स्मृताः।
एकैकशो योजनानामायामोच्छ्रायतः पुनः॥ १४

अयुतान्तरविख्याताः सर्वर्तुसुखदायकाः।
अतलं प्रथमं प्रोक्तं द्वितीयं वितलं तथा॥ १५

तृतीयं सुतलं प्रोक्तं चतुर्थं वै तलातलम्।
महातलं पञ्चमं च षष्ठं प्रोक्तं रसातलम्॥ १६

सप्तमं विप्र पातालं सप्तैते विवराः स्मृताः।
एतेषु बिलस्वर्गेषु दिवोऽप्यधिकमेव च॥ १७

कामभोगैश्वर्यसुखसमृद्धभुवनेषु च।
नित्योद्यानविहारेषु सुखास्वादः प्रवर्तते॥ १८

दैत्याश्च काद्रवेयाश्च दानवा बलशालिनः।
नित्यप्रमुदिता रक्ताः कलत्रापत्यबन्धुभिः॥ १९

सुहृद्भिरनुजीवाद्यैः संयुताश्च गृहेश्वराः।
ईश्वरादप्रतिहतकामा मायाविनश्च ते॥ २०

निवसन्ति सदा हृष्टाः सर्वर्तुसुखसंयुताः।
मयेन मायाविभुना येषु येषु च निर्मिताः॥ २१

पुरः प्रकामशो भक्ता मणिप्रवरशालिनः।
विचित्रभवनाट्टालगोपुराद्याः सहस्रशः॥ २२

सभाचत्वरचैत्यादिशोभाढ्याः सुरदुर्लभाः।
नागासुराणां मिथुनैः सपारावतसारिकैः॥ २३

कीर्णकृत्रिमभूमिश्च विवरेशगृहोत्तमैः।
अलङ्कृताश्चकासन्ति उद्यानानि महान्ति च॥ २४

मनःप्रसन्नकारीणि फलपुष्पविशालिभिः।
ललनानां विलासार्हस्थानैः शोभितभाञ्जि च॥ २५

नानाविहंगमव्रातसंयुक्तजलराशिभिः।
स्वच्छार्णपूरितह्रदैः पाठीनसमलङ्कृतैः॥ २६

हे देवर्षे! इस पृथ्वीके नीचे सात विवर बताये गये हैं। इनमें प्रत्येक विवरकी लम्बाई तथा चौड़ाई दस-दस हजार योजन है और ये एक-दूसरेसे दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित कहे गये हैं; ये सभी ऋतुओंमें सुखदायक होते हैं॥ १४½ ॥

इनमें पहलेको अतल, दूसरेको वितल, तीसरेको सुतल, चौथेको तलातल, पाँचवेंको महातल, छठेको रसातल और सातवेंको पाताल कहा गया है। हे विप्र! इस प्रकार ये सात विवर बताये गये हैं॥ १५-१६½ ॥

ये विवर एक प्रकारसे स्वर्ग ही हैं। अनेक उद्यानों तथा विहारस्थलियोंवाले तथा काम, भोग, ऐश्वर्य, सुख तथा समृद्धिसे युक्त यहाँके भुवनोंमें स्वर्गसे भी बढ़कर सुख तथा आस्वाद उपलब्ध है॥ १७-१८ ॥

वहाँ निवास करनेवाले महाबली दैत्य, नाग तथा दानव अपने स्त्री, पुत्रों तथा बन्धुओंके साथ सदा आनन्दित तथा प्रफुल्लित रहते हैं। वे अपने-अपने घरोंके स्वामी होते हैं। मित्र तथा अनुचर आदि सदा उनके पास विद्यमान रहते हैं। ईश्वर भी जिनकी इच्छाको विफल नहीं कर सकते, ऐसे वे अत्यन्त मायावी सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हुए सभी ऋतुओंमें सुखी रहते हैं॥ १९-२०½ ॥

मायाके स्वामी मय नामक दानवने उनमें अनेक पुरियोंका निर्माण कराया, जो श्रेष्ठ मणियोंसे जटित हजारों अद्भुत भवनों, अट्टालिकाओं, गोपुरों, सभाभवनों, प्रांगणों तथा वृक्षसमूहों आदिसे सुशोभित हैं; वे पुरियाँ देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ हैं। जिनकी कृत्रिम भूमि (फर्श)-पर नागों तथा असुरोंके जोड़े और कबूतर-मैना आदि पक्षी विहार करते हैं—ऐसे विवराधीश्वरोंके मनोहर भवनोंसे अलंकृत वे पुरियाँ अतीव सुशोभित हो रही हैं। उनमें मनको मुग्ध करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर फलों तथा फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंवाले और कामिनियोंके विलासयोग्य स्थानोंसे अत्यधिक शोभा पानेवाले विशाल उद्यान विद्यमान हैं। उन उद्यानोंमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण रहनेवाले विशाल जलाशय हैं, जो विविध पक्षियोंके समूहोंके कलरवसे तथा पाठीन नामक मछलियोंसे सुशोभित रहते हैं। जलचर जन्तुओंके क्रीडा करनेपर जलके क्षुब्ध

जलजन्तुक्षुब्धनीरनीरजातैरनेकशः ।
कुमुदोत्पलकह्लारनीलरक्तोत्पलैस्तथा ॥ २७

तेषु कृतनिकेतानां विहारैः सङ्कुलानि च।
इन्द्रियोत्सवकारैश्च तथैव विविधैः स्वरैः॥ २८

अमराणां च परमां श्रियं चातिशयन्ति च।
यत्र नैव भयं क्वापि कालाङ्गैर्दिनरात्रिभिः॥ २९

यत्राहिप्रवराणां च शिरःस्थैर्मणिरश्मिभिः।
नित्यं तमः प्रबाध्येत सदा प्रस्फुटकान्तिभिः॥ ३०

न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसायनैः।
रसान्नपानस्नानाद्यैर्नाधयो न च व्याधयः॥ ३१

वलीपलितजीर्णत्ववैवर्ण्यस्वेदगन्धताः ।
अनुत्साहवयोऽवस्था न बाधन्ते कदाचन॥ ३२

कल्याणानां सदा तेषां न च मृत्युभयं कुतः।
भगवत्तेजसोऽन्यत्र चक्राच्चैव सुदर्शनात्॥ ३३

यस्मिन्प्रविष्टे दैतेयवधूनां गर्भराशयः।
प्रायो भयात्पतन्त्येव स्रवन्ति ब्रह्मपुत्रक॥ ३४

होनेसे उसमें उगे हुए कुमुद, उत्पल, कह्लार, नीलकमल तथा रक्तकमल हिलने लगते हैं। उन उद्यानोंमें स्थान बनाकर रहनेवाले पक्षी अपने विहारों तथा इन्द्रियोंको उत्साहित करनेवाली अपनी विविध ध्वनियोंसे उन्हें सदा निनादित किये रहते हैं॥ २१—२८॥

वे पुरियाँ देवताओंके श्रेष्ठ ऐश्वर्यसे भी बढ़कर हैं। जहाँ कालके अंगभूत दिन-रातका कोई भय नहीं रहता और जहाँ बड़े-बड़े सर्पोंके मस्तकपर स्थित मणियोंकी रश्मियोंसे प्रस्फुटित कान्तिके द्वारा अन्धकार सदा मिटा रहता है॥ २९-३०॥

इनमें निवास करनेवाले लोगोंको दिव्य ओषधियों, रसायनों, रस, अन्नपान एवं स्नान आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रहती; उन्हें किसी प्रकारके भी मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते; झुर्रियाँ पड़ने, बाल पकने, बुढ़ापा आ जाने, शरीरके विरूपित होने, पसीनेसे दुर्गन्ध निकलने, उत्साहहीन हो जाने और आयुके अनुसार शारीरिक अवस्थाओंमें परिवर्तन आने आदि विकार उन्हें कभी बाधित नहीं करते। हे ब्रह्मपुत्र नारद! उन कल्याणमय लोगोंको भगवान् श्रीहरिके तेजस्वी सुदर्शन चक्रके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी भय नहीं रहता; जिस चक्रके वहाँ प्रवेश करते ही भयके कारण प्रायः दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात-गर्भस्राव* हो जाता है॥ ३१—३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे राहुमण्डलाद्यवस्थानवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

~~○~~

अथैकोनविंशोऽध्यायः

अतल, वितल तथा सुतललोकका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

प्रथमे विवरे विप्र अतलाख्ये मनोरमे।
मयपुत्रो बलो नाम वर्ततेऽखर्वगर्वकृत्॥ १

षण्णवत्यो येन सृष्टा मायाः सर्वार्थसाधिकाः।
मायाविनो याश्च सद्यो धारयन्ति च काश्चन॥ २

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! अतल नामसे विख्यात पहले परम सुन्दर विवरमें मय दानवका पुत्र 'बल' नामक अति अभिमानी दैत्य रहता है॥ १॥

जिसने सभी प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि करानेवाली छियानबे प्रकारकी मायाएँ रची हैं, जिनमेंसे कुछ मायाओंको मायावी लोग शीघ्र ही धारण कर लेते

---

* 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' अर्थात् चौथे मासतक जो गर्भ गिरता है, उसे 'गर्भस्राव' कहते हैं तथा पाँचवें और छठे मासमें गिरनेसे वह 'गर्भपात' कहलाता है।

जृम्भमाणस्य यस्यैव बलस्य बलशालिनः।
स्त्रीगणा उपपद्यन्ते त्रयोलोकविमोहनाः॥ ३

पुंश्चल्यश्चैव स्वैरिण्यः कामिन्यश्चेति विश्रुताः।
या वै बिलायनं प्रेष्ठं प्रविष्टं पुरुषं रहः॥ ४

रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा प्रयत्नतः।
स्वविलासावलोकानुरागस्मितविगूहनैः ॥ ५

संलापविभ्रमाद्यैश्च रमयन्त्यपि ताः स्त्रियः।
यस्मिन्नुपयुक्ते जनो मनुते बहुधा स्वयम्॥ ६

ईश्वरोऽहमहं सिद्धो नागायुतबलो महान्।
आत्मानं मन्यमानः सन्मदान्ध इव कथ्यते॥ ७

एवं प्रोक्ता स्थितिश्चात्र अतलस्य च नारद।
द्वितीयविवरस्यात्र वितलस्य निबोधत॥ ८

भूतलाधस्तले चैव वितले भगवान्भवः।
हाटकेश्वरनामायं स्वपार्षदगणैर्वृतः॥ ९

प्रजापतिकृतस्यापि सर्गस्य बृंहणाय च।
भवान्या मिथुनीभूय आस्ते देवाधिपूजितः॥ १०

भवयोर्वीर्यसम्भूता हाटकी सरिदुत्तमा।
समिद्धो मरुता वह्निरोजसा पिबतीव हि॥ ११

तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं दैत्यवल्लभम्।
दैत्याङ्गना भूषणार्हं सदा तं धारयन्ति हि॥ १२

तद्बिलाधस्तलात्प्रोक्तं सुतलाख्यं बिलेश्वरम्।
पुण्यश्लोको बलिर्नामा आस्ते वैरोचनिर्मुने॥ १३

महेन्द्रस्य च देवस्य चिकीर्षुः प्रियमुत्तमम्।
त्रिविक्रमोऽपि भगवान् सुतले बलिमानयत्॥ १४

त्रैलोक्यलक्ष्मीमाक्षिप्य स्थापितः किल दैत्यराट्।
इन्द्रादिष्वप्यलब्धा या सा श्रीस्तमनुवर्तते॥ १५

हैं तथा जिस बलवान् दैत्य बलके जम्हाई लेते ही तीनों लोकोंके लोगोंको मोहित कर देनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वे पुंश्चली, स्वैरिणी और कामिनी—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं, जो अपने प्रिय पुरुषको बिलरूप भवनमें एकान्तमें ले जाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक हाटक नामक रस पिलाकर शक्तिसम्पन्न बना देती हैं। तत्पश्चात् वे स्त्रियाँ अपने हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेमपूर्ण व्यवहार, मुसकान, आलिंगन, मधुर वार्तालाप, प्रणयभाव आदिसे उन्हें आकर्षित करके उनके साथ रमण करती हैं॥ २—५½॥

उस हाटक-रसका पान कर लेनेपर मनुष्य स्वयंको बहुत बड़ा मानने लगता है और अपनेको दस हजार हाथियोंके समान महान् बलवान् मानता हुआ मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ—मदान्धकी भाँति ऐसा बढ़-चढ़कर बोलने लगता है॥ ६-७॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने अतललोककी स्थितिका वर्णन कर दिया। अब आप वितल नामक द्वितीय विवरके विषयमें सुनिये॥ ८॥

भूतलके नीचे वितल नामक विवरमें हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध ये भगवान् शिव अपने पार्षदगणोंसे निरन्तर घिरे रहते हैं। देवताओंसे सुपूजित ये भगवान् शिव ब्रह्माकी रची गयी सृष्टिके विस्तारके लिये भवानीके साथ रमण करते हुए यहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९-१०॥

वहाँ भगवान् शंकर और पार्वतीके तेजसे हाटकी नामक श्रेष्ठ नदी प्रादुर्भूत है। वायुसे प्रज्वलित अग्निदेव महान् ओजपूर्वक उसका जल पीते रहते हैं। उस समय उनके द्वारा निष्ठ्यूत (त्यक्त थूक) दैत्योंके लिये अत्यन्त प्रिय हाटक नामक सुवर्ण बन जाता है। दैत्योंकी स्त्रियाँ आभूषण-योग्य उस सुवर्णको सदा धारण किये रहती हैं॥ ११-१२॥

हे मुने! उस वितलके नीचे सुतल नामक विवर कहा गया है, जो सभी बिलोंमें श्रेष्ठ है। यहाँ विरोचनके पवित्र कीर्तिवाले बलि नामक पुत्र रहते हैं। देवराज इन्द्रका परम प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे वामनरूप त्रिविक्रम भगवान् विष्णु बलिको इस सुतलमें लाये और उन्होंने तीनों लोकोंकी लक्ष्मी सन्निविष्ट करके दानवराज बलिको यहाँ स्थापित किया। इन्द्र आदि देवताओंके पास भी जो लक्ष्मी नहीं है, वह उस बलिके पीछे-पीछे चलती है॥ १३—१५॥

तमेव देवदेवेशमाराधयति भक्तितः।
व्यपेतसाध्वसोऽद्यापि वर्तते सुतलाधिपः॥ १६
भूमिदानफलं ह्येतत्पात्रभूतेऽखिलेश्वरे।
वर्णयन्ति महात्मानो नैतद्युक्तं च नारद॥ १७
वासुदेवे भगवति पुरुषार्थप्रदे हरौ।
एतद्दानफलं विप्र सर्वथा नहि युज्यते॥ १८
यस्यैव देवदेवस्य नामापि विवशो गृणन्।
स्वकीयकर्मबन्धीयगुणान्विधुनुतेऽञ्जसा ॥ १९
यत्क्लेशबन्धहानाय सांख्ययोगादिसाधनम्।
कुर्वते यतयो नित्यं भगवत्यखिलेश्वरे॥ २०
न चायं भगवानस्माननुजग्राह नारद।
मायामयं च भोगानामैश्वर्यं व्यतनोत्परम्॥ २१
सर्वक्लेशाधिहेतुं तदात्मानुस्मृतिमोषणम्।
यं साक्षाद्भगवान् विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः॥ २२
याच्ञाछलेनापहृतं सर्वस्वं देहशेषकम्।
अप्राप्तान्योपाय ईशः पाशैर्वारुणसम्भवैः॥ २३
बन्धयित्वावमुच्यापि गिरिदर्यामिवाब्रवीत्।
असाविन्द्रो महामूढो यस्य मन्त्री बृहस्पतिः॥ २४
प्रसन्नमिममत्यर्थमयाचल्लोकसम्पदम् ।
त्रैलोक्यमिदमैश्वर्यं कियदेवातितुच्छकम्॥ २५
आशिषां प्रभवं मुक्त्वा यो मूढो लोकसम्पदि।
अस्मत्पितामहः श्रीमान् प्रह्लादो भगवत्प्रियः॥ २६
दास्यं वव्रे विभोस्तस्य सर्वलोकोपकारकः।
पित्र्यमैश्वर्यमतुलं दीयमानं च विष्णुना॥ २७
पितर्युपरते वीरे नैवैच्छद्भगवत्प्रियः।
तस्यातुलानुभावस्य सर्वलोकोपधीमतः॥ २८
अस्मद्विधो नाल्पपक्वेतरदोषोऽवगच्छति।
एवं दैत्यपतिः सोऽयं बलिः परमपूजितः॥ २९

बलि उन्हीं देवदेवेश्वर श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं। वे सुतलके अधिपतिके रूपमें आज भी वहाँ निर्भय होकर रहते हैं॥ १६॥

बलिके लिये यह सुतललोककी प्राप्ति अखिल जगत्के स्वामी तथा दानपात्रभूत भगवान् विष्णुको दिये गये भूमिदानका ही फल है—ऐसा महात्मालोग कहते हैं, किंतु हे नारद! यह समीचीन नहीं है। हे विप्र! चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले वासुदेव भगवान् श्रीहरिको दिये गये दानका इसे फल समझना किसी भी तरहसे उचित नहीं है; क्योंकि कोई विवश होकर भी उन देवाधिदेवके नामका उच्चारण करके अपने कर्मबन्धनरूपी पाशको शीघ्र ही काट देता है। योगीलोग उस क्लेशरूपी बन्धनको काटनेके लिये अखिल जगत्के स्वामीमें भक्ति रखते हुए सांख्ययोग आदिका साधन करते हैं। हे नारद! इन भगवान्ने हम देवताओंपर कोई अनुग्रह नहीं किया है, जो कि उन्होंने भोगोंका परम मायामय ऐश्वर्य इन्द्रको देनेके लिये यह प्रयत्न किया था; क्योंकि यह ऐश्वर्य तो सभी कष्टोंका मूल कारण है और परमात्माकी स्मृतिको मिटानेवाला है॥ १७—२१½ ॥

जिस समय समस्त उपायोंका सहज ज्ञान रखनेवाले साक्षात् विष्णुने कोई अन्य उपाय न देखकर याचनाके छलसे उस बलिका सर्वस्व छीन लिया और उसके पास केवल शरीरमात्र ही शेष रहने दिया, तब वरुणके पाशोंमें बाँधकर पर्वतकी गुफामें छोड़ दिये जानेपर उसने कहा था—जिसके मन्त्री बृहस्पति हों, वे इन्द्र इतने महान् मूर्ख हैं! जो कि उन्होंने परम प्रसन्न श्रीहरिसे सांसारिक सम्पत्तिकी याचना की। त्रिलोकीका यह ऐश्वर्य भला कितना नगण्य है। जो भगवान्के आशीर्वादोंका वैभव छोड़कर लोकसम्पत्तिकी कामना करता है, वह मूर्ख है॥ २२—२५½ ॥

सम्पूर्ण लोकका उपकार करनेवाले तथा भगवत्प्रिय मेरे पितामह श्रीमान् प्रह्लादने उन प्रभुसे दास्यभावकी याचना की थी। उनके पराक्रमी पिता हिरण्यकशिपुकी मृत्युके पश्चात् भगवान् विष्णुके द्वारा दी जानेवाली अतुलनीय पितृसम्पदाको ग्रहण करनेकी थोड़ी भी इच्छा उन भगवत्प्रिय प्रह्लादने नहीं की थी॥ २६—२८½ ॥

अतुलनीय अनुभाववाले तथा सम्पूर्ण लोकोंके उपकारकी बुद्धिवाले उन प्रह्लादका प्रभाव मुझ-जैसा

सुतले वर्तते यस्य द्वारपालो हरिः स्वयम्।
एकदा दिग्विजये राजा रावणो लोकरावणः॥ ३०

प्रविशन्सुतले येन भक्तानुग्रहकारिणा।
पादाङ्गुष्ठेन प्रक्षिप्तो योजनायुतमत्र हि॥ ३१

एवंभूतानुभावोऽयं बलिः सर्वसुखैकभुक्।
आस्ते सुतलराजस्थो देवदेवप्रसादतः॥ ३२

दोषोंका आगार पुरुष भला कैसे जान सकता है। इस प्रकारके विचारोंवाले परमपूज्य दानवराज बलि थे, जिनके द्वारपालके रूपमें स्वयं श्रीहरि सुतलमें विराजमान रहते हैं। एक समयकी बात है, जगत्‌को रुलानेवाला रावण दिग्विजयके उद्देश्यसे सुतललोकमें प्रवेश कर रहा था, इतनेमें भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीहरिके पैरके अँगूठेकी ठोकरसे वह दस हजार योजन दूर जा गिरा था॥ २९—३१॥

इस प्रकारके प्रभाववाले तथा सभी सुखोंका भोग करनेवाले बलि देवाधिदेव श्रीहरिकी कृपासे सुतललोकमें राजाके रूपमें प्रतिष्ठित होकर विराजमान हैं॥ ३२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
अतलवितलसुतललोकवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~0~~

अथ विंशोऽध्यायः

तलातल, महातल, रसातल और पाताल तथा भगवान् अनन्तका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ततोऽधस्ताद्विवरकं तलातलमुदीरितम्।
दानवेन्द्रो मयो नाम त्रिपुराधिपतिर्महान्॥ १
त्रिलोक्याः शङ्करेणायं पालितो दग्धपूस्त्रयः।
देवदेवप्रसादात्तु लब्धराज्यसुखास्पदः॥ २
आचार्यो मायिनां सोऽयं नानामायाविशारदः।
पूज्यते राक्षसैर्घोरैः सर्वकार्यसमृद्धये॥ ३
ततोऽधस्तात्सुविख्यातं महातलमिति स्फुटम्।
सर्पाणां काद्रवेयाणां गणः क्रोधवशो महान्॥ ४
अनेकशिरसां विप्र प्रधानान्कीर्तयामि ते।
कुहकस्तक्षकश्चैव सुषेणः कालियस्तथा॥ ५
महाभोगा महासत्त्वाः क्रूराः क्रूरस्वजातयः।
पतत्त्रिराजाधिपतेरुद्विग्नाः सर्व एव ते॥ ६
स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बस्य च सङ्गताः।
प्रमत्ता विहरन्त्येव नानाक्रीडाविशारदाः॥ ७

श्रीनारायण बोले—उस सुतलके नीचेके विवरको 'तलातल' कहा गया है। वहाँ त्रिपुराधिपति मय नामक महान् दानव रहता है॥ १॥

त्रिलोकीकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने उसकी तीनों पुरियाँ भस्म करके उसके यहाँ रहनेकी व्यवस्था कर दी। उसे देवाधिदेव शिवकी कृपासे यहाँ सुखदायक राज्य प्राप्त हो गया है॥ २॥

अपने समस्त कार्योंके अभ्युदयके लिये बड़े-बड़े भयानक राक्षसगण अनेक प्रकारकी माया रचनेमें परम प्रवीण उस मायावियोंके भी गुरु मयकी पूजा करते हैं॥ ३॥

उस तलातलके नीचे अति प्रसिद्ध 'महातल' नामक विस्तृत विवर है। उसमें कद्रूसे उत्पन्न हुए अनेक सिरोंवाले क्रोधी सर्पोंका एक बहुत बड़ा समूह रहता है। हे विप्र! उनमें प्रधान सर्पोंके नाम आपको बताता हूँ—कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिय। ये विशाल फनवाले, महान् शक्तिसे सम्पन्न तथा अत्यन्त भयानक होते हैं। इनकी जाति ही बड़ी क्रूर होती है। वे सभी केवल पक्षिराज गरुडसे ही आतंकित रहते हैं। अनेक प्रकारकी क्रीडा करनेमें परम दक्ष ये सर्प अपनी स्त्रियों, सन्तानों, सुहृदों तथा परिवारजनोंके साथ प्रमत्त होकर वहाँ विहार करते रहते हैं॥ ४—७॥

ततोऽधस्ताच्च विवरे रसातलसमाह्वये।
दैतेया निवसन्त्येव पणयो दानवाश्च ये॥ ८
निवातकवचा नाम हिरण्यपुरवासिनः।
कालेया इति च प्रोक्ताः प्रत्यनीका हविर्भुजाम्॥ ९
महौजसश्चोत्पत्त्यैव महासाहसिनस्तथा।
सकलेशस्य च हरेस्तेजसा हतविक्रमाः॥ १०
बिलेशया इव सदा विवरे निवसन्ति हि।
ये वै वाग्भिः सरमया शक्रदूत्या निरन्तरम्॥ ११
मन्त्रवर्णाभिरसुरास्ताडिता बिभ्यति स्म ह।
ततोऽप्यधस्तात्पाताले नागलोकाधिपालकाः॥ १२
वासुकिप्रमुखाः शङ्खः कुलिकः श्वेत एव च।
धनञ्जयो महाशङ्खो धृतराष्ट्रस्तथैव च॥ १३
शङ्खचूडः कम्बलाश्वतरो देवोपदत्तकः।
महामर्षा महाभोगा निवसन्ति विषोल्बणाः॥ १४
पञ्चमस्तकवन्तश्च फणासप्तकभूषिताः।
केचिद्दशफणाः केचिच्छतशीर्षास्तथापरे॥ १५
सहस्रशिरसः केऽपि रोचिष्णुमणिधारकाः।
पातालरन्ध्रतिमिरनिकरं स्वमरीचिभिः॥ १६
विधमन्ति च देवर्षे सदा सञ्जातमन्यवः।
अस्य मूलप्रदेशे हि त्रिंशत्साहस्रकेऽन्तरे॥ १७
योजनैः परिसंख्याते तामसी भगवत्कला।
अनन्ताख्या समास्ते हि सर्वदेवप्रपूजिता॥ १८
अहमित्यभिमानस्य लक्षणं यं प्रचक्षते।
सङ्कर्षणं सात्वतीयाः कर्षणं द्रष्टृदृश्ययोः॥ १९
इदं भूमण्डलं यस्य सहस्रशिरसः प्रभोः।
अनन्तमूर्तेः शेषस्य ध्रियमाणं च शीर्षके॥ २०
पृथ्वीगोलमशेषं हि सिद्धार्थ इव लक्ष्यते।

उसके भी नीचे 'रसातल' नामवाले विवरमें 'पणि' नामके दैत्य और दानव रहते हैं, जो निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय कहे गये हैं। देवताओंसे इनकी शत्रुता रहती है॥ ८-९॥

वे जन्मसे ही महान् पराक्रमी तथा साहसी होते हैं, किंतु अखिल जगत्के स्वामी भगवान् श्रीहरिके तेजसे कुण्ठित पराक्रमवाले होकर वे सर्पोंकी भाँति छिपकर सदा उस विवरमें पड़े रहते हैं। इन्द्रकी दूती सरमाके मन्त्र-वर्णरूप* वाक्योंके प्रभावसे असुर कष्ट पा चुके हैं—इसी बातका स्मरण करके वे हमेशा भयभीत रहते हैं॥ १०-११½॥

इससे भी नीचे स्थित 'पाताललोक'में मुख्यरूपसे वासुकि, शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवोपदत्तक आदि महान् क्रोधी, बड़े-बड़े फनोंवाले तथा महान् विषधर सर्प निवास करते हैं; वे सब नागलोकके अधिपालक हैं॥ १२—१४॥

उनमें कोई सर्प पाँच फनोंवाले, कोई सात फनोंवाले और कोई दस फनोंवाले हैं। कुछ सर्पोंके सौ सिर तथा कुछके हजार सिर हैं। हे देवर्षे! जगमगाती हुई मणियाँ धारण करनेवाले वे क्रोधयुक्त सर्प अपनी मणियोंके तेजसे पाताल-विवरके घोर अन्धकार-समूहको नष्ट कर देते हैं॥ १५-१६½॥

इस पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर भगवान् श्रीहरिकी एक तामसी कला विराजमान है। सम्पूर्ण देवताओंसे सम्यक् पूजित इस कलाका नाम अनन्त है॥ १७-१८॥

अहंरूप अभिमानका लक्षण होनेके कारण यह द्रष्टा तथा दृश्यका कर्षण करके एक कर देती है, इसीलिये पांचरात्र आगमके अनुयायी इसे संकर्षण कहते हैं॥ १९॥

हजार सिरोंवाले इन अनन्तमूर्ति भगवान् शेषके एक सिरपर रखा हुआ यह गोलाकार समग्र भूमण्डल सरसोंके दानेकी भाँति दिखायी पड़ता है॥ २०½॥

---

* एक कथा आती है कि जब पणि नामक दैत्योंने पृथ्वीको रसातलमें छिपा लिया, तब इन्द्रने उसे ढूँढ़नेके लिये सरमा नामकी एक दूतीको भेजा था। सरमासे दैत्योंने सन्धि करनी चाही, परंतु सरमाने सन्धि न करके इन्द्रकी स्तुति करते हुए कहा था—'**हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्**' (हे पणिगण! तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पृथ्वीपर सो जाओ) इसी शापके कारण उन्हें सदा इन्द्रका डर लगा रहता है।

यस्य कालेन देवस्य सञ्जिहीर्षोः समं विभोः ॥ २१
चराचरं भ्रुवोरन्तर्विवरादुदपद्यत ।
साङ्कर्षणो नाम रुद्रो व्यूहैकादशशोभितः ॥ २२
त्रिलोचनश्च त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्स्वयम् ।
उदतिष्ठन्महासत्त्वो महाभूतक्षयङ्करः ॥ २३
यस्याङ्घ्रिकमलद्वन्द्वशोणाच्छनखमण्डले ।
विराजन्मणिबिम्बेषु महाहिपतयोऽनिशम् ॥ २४
एकान्तभक्तियोगेन सह सात्त्वतपुङ्गवैः ।
प्रणमन्तः स्वमूर्ध्ना ते स्वमुखानि समीक्षते ॥ २५
स्फुरत्कुण्डलमाणिक्यप्रभामण्डलभाञ्ज्यपि ।
सुकपोलानि चारूणि गण्डस्थलद्युमन्ति च ॥ २६
नागराजकुमार्योऽपि चार्वङ्गविलसत्त्विषः ।
विशदैर्विपुलैस्तद्वद्धवलैः सुभगैस्तथा ॥ २७
रुचिरैर्भुजदण्डैश्च शोभमाना इतस्ततः ।
चन्दनागुरुकाश्मीरपङ्कलेपेन भूषिताः ॥ २८
तदभिमर्षसञ्जातकामावेशसमायुताः ।
ललितस्मितसंयुक्ताः सव्रीडं लोकयन्ति च ॥ २९
अनुरागमदोन्मत्तविघूर्णारुणलोचनम् ।
करुणावलोकनेत्रं च आशासानास्तथाशिषः ॥ ३०
सोऽनन्तो भगवान्देवोऽनन्तसत्त्वो महाशयः ।
अनन्तगुणवार्धिश्च आदिदेवो महाद्युतिः ॥ ३१
संहृतामर्षरोषादिवेगो लोकशुभाय च ।
आस्ते महासत्त्वनिधिः सर्वदेवप्रपूजितः ॥ ३२
ध्यायमानः सुरैः सिद्धैरसुरैश्चोरगैस्तथा ।
विद्याधरैश्च गन्धर्वैर्मुनिसङ्घैश्च नित्यशः ॥ ३३
अनारतमदोन्मत्तलोकविह्वललोचनः ।
वाक्यामृतेन विबुधान्स्वपार्षदगणानपि ॥ ३४

समय आनेपर जब ये भगवान् अनन्त चराचर जगत्‌के संहारकी इच्छा करते हैं, तब इनकी भौंहोंके विवरसे ग्यारह रुद्रोंसे सुशोभित विग्रहवाले सांकर्षण नामक रुद्र प्रकट हो जाते हैं॥ २१-२२॥

ये रुद्र तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं, ये स्वयं तीन नोकोंवाला त्रिशूल लेकर खड़े हो जाते हैं। असीम शक्तिसे सम्पन्न ये रुद्र अखिल प्राणिजगत्‌का संहार करनेवाले हैं॥ २३॥

उन भगवान् शेषनागके दोनों चरणकमलोंके नख स्वच्छ तथा लाल मणियोंके समान देदीप्यमान हैं। जब बड़े-बड़े नागराज एकान्तभक्तिसे युक्त होकर प्रधान भक्तोंके साथ भगवान् शेषके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, तब उन्हें माणिक्यजटित कुंडलकी प्रभासे प्रकाशित अपने मुख, सुन्दर कपोल तथा गण्डस्थल उनके मणिसदृश नखोंमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं॥ २४—२६॥

वहाँ नागराजोंकी सुन्दर तथा कान्तियुक्त अंगोंवाली कुमारियाँ भी रहती हैं। लम्बी, विशाल, स्वच्छ, सुन्दर तथा मनोहर भुजाओंसे सुशोभित वे कुमारियाँ इधर-उधर घूमा करती हैं। वे अपने अंगोंमें चन्दन, अगुरु और कस्तूरीका लेपन किये रहती हैं॥ २७-२८॥

उन भगवान् संकर्षणके स्पर्शजन्य कामावेशसे समन्वित तथा मधुर मुस्कानसे युक्त होकर उन अनुराग-मदसे उन्मत्त विघूर्णित रक्त नेत्रोंवाले तथा करुणापूर्ण दृष्टिवाले भगवान्‌को वे नागकन्याएँ आशीर्वादकी आशासे लज्जापूर्वक निहारती रहती हैं॥ २९-३०॥

अनन्त पराक्रमवाले, अत्यन्त उदार हृदयवाले, अनन्त गुणोंके सागर, महान् तेजस्वी, क्रोध-रोष आदिके वेगोंको रोकनेवाले, असीम शक्तिके आगार-स्वरूप वे आदिदेव भगवान् अनन्त सभी देवताओंसे प्रपूजित होकर सिद्धों, देवताओं, असुरों, नागों, विद्याधरों, गन्धर्वों और मुनिगणोंके द्वारा निरन्तर ध्यान किये जाते हुए लोकोंके कल्याणार्थ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३१—३३॥

निरन्तर प्रेमके मदसे मुग्ध एवं विह्वल नेत्रोंवाले वे भगवान् अपनी अमृतमयी वाणीसे सभी देवताओं तथा अपने पार्षदगणोंको भी सन्तुष्ट किये रहते हैं।

आप्यायमानः स विभुर्वैजयन्तीं स्रजं दधत्।
अम्लानाभिनवैः स्वच्छैस्तुलसीदलसञ्चयैः ॥ ३५

माद्यन्मधुकरव्रातघोषश्रीसंयुतां सदा।
नीलवासा देवदेव एककुण्डलभूषितः ॥ ३६

हलस्य ककुदि न्यस्तसुपीवरभुजोऽव्ययः।
महेन्द्रः काञ्चनीं यद्वद्वरत्रां च मतङ्गमः।
उदारलीलो देवेशो वर्णितः सात्त्वतर्षभैः ॥ ३७

वे कभी भी न मुरझानेवाले निर्मल और नवीन तुलसीदलोंसे सुशोभित वैजयन्तीकी माला धारण किये रहते हैं। वह माला मतवाले भौंरोंके समूहोंकी मधुर गुंजारसे सदा सुशोभित रहती है। वे देवदेव भगवान् शेष नीले रंगका वस्त्र धारण करते हैं और उनके कानमें केवल एक कुंडल सुशोभित रहता है। वे अविनाशी भगवान् अपनी विशाल भुजा हलकी मूठपर रखे रहते हैं। सुवर्णमयी पृथ्वीको अपने सिरपर धारण किये हुए भगवान् शेष पीठपर हौदा रखे किसी मतवाले हाथीकी भाँति सुशोभित होते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंने उदार लीलाओंवाले भगवान् शेषका वर्णन किया है॥ ३४—३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
तलातलादिलोकवर्णनेऽनन्तवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

अथैकविंशोऽध्यायः

देवर्षि नारदद्वारा भगवान् अनन्तकी महिमाका गान तथा नरकोंकी नामावली

श्रीनारायण उवाच

तस्यानुभावं भगवान् ब्रह्मपुत्रः सनातनः।
सभायां ब्रह्मदेवस्य गायमान उपासते॥ १

उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः
सत्त्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयासन्।
यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन्-
नानाधात्कथमुह वेद तस्य वर्त्म॥ २

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्त्वं
संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र।
यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्या-
मादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः॥ ३

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माके पुत्र महाभाग नारद ब्रह्मदेवकी सभामें उन भगवान् शेषकी महिमाका गान करते हुए उनकी उपासना करते हैं॥ १॥

जिनका दर्शन पाकर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंमें अपने कार्य करनेकी क्षमता आ जाती है, जिनका रूप अनन्त तथा अनादि है, जो अकेले होते हुए ही इस नानात्मक प्रपंचको धारण किये हुए हैं—उन भगवान् संकर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान सकता है?॥ २॥

जिनमें यह सत्-असत्रूप सारा प्रपंच भास रहा है तथा स्वजनोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीरतापूर्ण लीलाको परम पराक्रमी मृगराज सिंहने आदर्श मानकर अपनाया है, उन उदारवीर्य भगवान् संकर्षणने हमपर बड़ी कृपा करके यह विशुद्ध सत्त्वमय स्वरूप धारण किया है॥ ३॥

यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मा-
दार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्वा।
हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः॥ ४

मूर्धन्यर्पितमणुवत्सहस्रमूर्ध्नो
भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम्।
आनन्त्यादनमितविक्रमस्य भूम्नः
को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः॥ ५

एवंप्रभावो भगवाननन्तो
दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः ।
मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो
यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति॥ ६

एता ह्येवेह तु नृभिर्गतयो मुनिसत्तम।
गन्तव्या बहुशो यद्वद्यथाकर्मविनिर्मिताः॥ ७
यथोपदेशं च कामान्सदा कामयमानकैः।
एतावतीर्हि राजेन्द्र मनुष्यमृगपक्षिषु॥ ८
विपाकगतयः प्रोक्ता धर्मस्य वशगास्तथा।
उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं निबोधत॥ ९

नारद उवाच

वैचित्र्यमेतल्लोकस्य कथं भगवता कृतम्।
समानत्वे कर्मणां च तन्नो ब्रूहि यथातथम्॥ १०

श्रीनारायण उवाच

कर्तुः श्रद्धावशादेव गतयोऽपि पृथग्विधाः।
त्रिगुणत्वात्सदा तासां फलं विसदृशं त्विह॥ ११
सात्त्विक्या श्रद्धया कर्तुः सुखित्वं जायते सदा।
दुःखित्वं च तथा कर्तू राजस्या श्रद्धया भवेत्॥ १२
दुःखित्वं चैव मूढत्वं तामस्या श्रद्धयोदितम्।
तारतम्यात्तु श्रद्धानां फलवैचित्र्यमीरितम्॥ १३

यदि कोई दुःखी अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसी-हँसीमें उनके सुने हुए नामका एक बार भी उच्चारण कर लेता है तो वह दूसरे मनुष्योंके भी सभी पापोंको शीघ्र ही नष्ट कर देता है—ऐसे भगवान् शेषको छोड़कर मोक्षकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अन्य किसका आश्रय ग्रहण करे?॥ ४॥

पर्वत, नदी और समुद्र आदिसे पूर्ण यह सम्पूर्ण भूमण्डल उन हजार सिरोंवाले भगवान् शेषके एक मस्तकपर धूलके एक कणके समान स्थित है। वे अनन्त हैं, इसलिये उनके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। किसीके हजार जीभें हों, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्‌के पराक्रमकी गणना वह कैसे कर सकता है?॥ ५॥

वास्तवमें उनका वीर्य, अतिशय गुण और प्रभाव असीम है। ऐसे प्रभावशाली भगवान् अनन्त रसातलके मूलमें अपनी ही महिमामें स्थित होकर स्वतन्त्र हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये पृथ्वीको अपनी लीलासे धारण किये हुए हैं॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! निरन्तर भोगोंकी कामना करनेवाले पुरुषोंकी अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली भगवान्‌की रची हुई ये ही गतियाँ कही गयी हैं। जैसा मुझे उपदेश प्राप्त हुआ, वैसा कह दिया। हे राजेन्द्र! मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंके प्रवृत्तिधर्मके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली परस्पर विलक्षण ऊँच-नीच गतियाँ इतनी ही हैं। जो आपने पूछा था, उसे मैंने बता दिया और आगे भी सुनिये॥ ७—९॥

नारदजी बोले—सभी प्राणियोंके कर्म समान होनेपर भी भगवान्‌ने उन लोगोंमें यह विभिन्नता क्यों की है? इसे आप यथार्थरूपमें बताइये॥ १०॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कर्ताकी श्रद्धाके सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन भिन्न-भिन्न गुणोंके कारण गतियाँ भी अलग-अलग होती हैं और इसीलिये उनका फल भी भिन्न-भिन्न होता है॥ ११॥

सात्त्विक श्रद्धाके द्वारा कर्ताको सदा सुखकी प्राप्ति होती है, राजसी श्रद्धासे कर्ताको दुःख मिलता है और तामसी श्रद्धाके प्रभावसे कर्तामें दुःख और मूढ़ता दोनोंका उदय होता है। इस प्रकार श्रद्धाओंके तारतम्यसे फलोंमें भी विचित्रता बतायी गयी है॥ १२-१३॥

अनाद्यविद्याविहितकर्मणां परिणामजाः।
सहस्रशः प्रवृत्तास्तु गतयो द्विजपुङ्गव॥ १४
तद्भेदान्वर्णयिष्यामि प्राचुर्येण द्विजोत्तम।
त्रिजगत्या अन्तराले दक्षिणस्यां दिशीह वै॥ १५
भूमेरधस्तादुपरि त्वतलस्य च नारद।
अग्निष्वात्ताः पितृगणा वर्तन्ते पितरश्च ह॥ १६
वसन्ति यस्यां स्वीयानां गोत्राणां परमाशिषः।
सत्याः समाधिना शीघ्रं त्वाशासानाः परेण वै॥ १७
पितृराजोऽपि भगवान् सम्परेतेषु जन्तुषु।
विषयं प्रापितेष्वेषु स्वकीयैः पुरुषैरिह॥ १८
सगणो भगवत्प्रोक्ताज्ञापरो दमधारकः।
यथाकर्म यथादोषं विदधाति विचारदृक्॥ १९
स्वान्गणान्धर्मतत्त्वज्ञान्सर्वानाज्ञाप्रवर्तकान् ।
सदा प्रेरयति प्राज्ञो यथादेशनियोजितान्॥ २०
नरकानेकविंशत्या संख्यया वर्णयन्ति हि।
अष्टाविंशमितान्केचित्ताननुक्रमतो ब्रुवे॥ २१
तामिस्र अन्धतामिस्रो रौरवोऽपि तृतीयकः।
महारौरवनामा च कुम्भीपाकोऽपरो मतः॥ २२
कालसूत्रं तथा चासिपत्रारण्यमुदाहृतम्।
सूकरस्य मुखं चान्धकूपोऽथ कृमिभोजनः॥ २३
संदंशस्तप्तमूर्तिश्च वज्रकण्टक एव च।
शाल्मली चाथ देवर्षे नाम्ना वैरतणी तथा॥ २४
पूयोदः प्राणरोधश्च तथा विशसनं मतम्।
लालाभक्षः सारमेयादनमुक्तमतः परम्॥ २५
अवीचिरप्ययः पानं क्षारकर्दम एव च।
रक्षोगणाख्यसम्भोजः शूलप्रोतोऽप्यतः परम्॥ २६
दन्दशूकोऽवटारोधः पर्यावर्तनकः परम्।
सूचीमुखमिति प्रोक्ता अष्टाविंशतिनारकाः॥ २७
इत्येते नारका नाम यातनाभूमयः पराः।
कर्मभिश्चापि भूतानां गम्याः पद्मजसम्भव॥ २८

हे मुनिश्रेष्ठ! अनादि मायाके बनाये हुए कर्मोंके परिणामस्वरूप हजारों प्रकारकी गतियाँ प्रवृत्त होती हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं उन गतियोंके भेदोंका विस्तारसे वर्णन करूँगा॥ १४½ ॥

हे नारद! त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें अग्निष्वात्ता नामक पितृगण तथा अन्य पितर निवास करते हैं। यह स्थान पृथ्वीसे नीचे तथा अतल लोकसे ऊपर है। सत्यस्वरूप ये पितृगण सदा परम समाधिसे युक्त होकर अपने वंशजोंके परम कल्याणकी आशा करते हुए यहाँ रहते हैं॥ १५—१७॥

वहाँ पितृराज भगवान् यम अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं। सम्यक् विचार दृष्टिवाले तथा दण्डधारी वे यमराज भगवान्‌की कही गयी आज्ञाका पालन करते हुए अपने दूतोंद्वारा वहाँ लाये गये मृत प्राणियोंके लिये उनके कर्मों तथा दोषोंके अनुसार वैसे ही फलका विधान करते हैं॥ १८-१९॥

वे परम ज्ञानी यमराज धर्मतत्त्वको जाननेवाले, यथास्थान नियुक्त किये गये तथा आज्ञाकारी अपने सभी गणोंको सदा प्रेरित करते रहते हैं॥ २०॥

संख्यामें कुल इक्कीस नरक बताये गये हैं। कुछ लोग नरकोंकी संख्या अट्ठाईस बताते हैं। मैं क्रमशः उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ २१॥

हे देवर्षे! तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तमूर्ति, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान, क्षारकर्दम, रक्षोगणसंभोज, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटारोध, पर्यावर्तनक और सूचीमुख—ये अट्ठाईस नरक बताये गये हैं। हे ब्रह्मापुत्र! इन नामोंवाले ये नरक यातना भोगनेके परम स्थान हैं; जहाँ प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं॥ २२—२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
नरकस्वरूपवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

* * *

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

विभिन्न नरकोंका वर्णन

नारद उवाच

कर्मभेदाः कतिविधाः सनातनमुने मम।
श्रोतव्याः सर्वथैवैते यातनाप्राप्तिभूमयः॥ १

श्रीनारायण उवाच

यो वै परस्य वित्तानि दारापत्यानि चैव हि।
हरते स हि दुष्टात्मा यमानुचरगोचरः॥ २
कालपाशेन सम्बद्धो याम्यैरतिभयानकैः।
तामिस्रनामनरके पात्यते यातनास्पदे॥ ३
ताडनं दण्डनं चैव सन्तर्जनमतः परम्।
याम्याः कुर्वन्ति पाशाढ्याः कश्मलं याति चैव हि॥ ४
मूर्च्छामायाति विवशो नारकी पद्मभूसुत।
यः पतिं वञ्चयित्वा तु दारादीनुपभुज्यति॥ ५
अन्धतामिस्रनरके पात्यते यमकिङ्करैः।
पात्यमानो यत्र जन्तुर्वेदनापरवान्भवेत्॥ ६
नष्टदृष्टिर्नष्टमतिर्भवत्येवाविलम्बतः ।
वनस्पतिर्भज्यमानमूलो यद्वद्भवेदिह॥ ७
तस्मादप्यन्धतामिस्रनाम्ना प्रोक्तः पुरातनैः।
एतन्ममाहमिति यो भूतद्रोहेण केवलम्॥ ८
पुष्णाति प्रत्यहं स्वीयं कुटुम्बं कार्यलम्पटः।
एतद्विहाय चात्रैव स्वाशुभेन पतेदिह॥ ९
रौरवे नाम नरके सर्वसत्त्वभयावहे।
इह लोकेऽमुना ये तु हिंसिता जन्तवः पुरा॥ १०
त एव रुरवो भूत्वा परत्र पीडयन्ति तम्।
तस्माद्रौरवमित्याहुः पुराणज्ञा मनीषिणः॥ ११
रुरुः सर्पादतिक्रूरो जन्तुरुक्तः पुरातनैः।

नारदजी बोले—हे सनातन मुने! विविध प्रकारकी यातनाओंकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंके भेद कितने प्रकारके होते हैं; मैं इनके विषयमें भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीनारायण बोले—जो पुरुष दूसरेके धन, स्त्री और सन्तानका हरण करता है, वह दुष्टात्मा यमराजके दूतोंद्वारा पकड़कर ले जाया जाता है॥ २॥

अत्यन्त भयानक रूपवाले यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर ले जाते हैं और यातना भोगनेके भयावह स्थानस्वरूप **तामिस्र** नामक नरकमें गिरा देते हैं॥ ३॥

हाथमें रस्सी लिये हुए यमदूत उस प्राणीको पीटते हैं, तरह-तरहके दण्ड देते हैं और उसे डराते हैं। इस प्रकार वह जीव महान् क्लेश पाता है। हे नारद! वह नारकी विवश होकर एकाएक मूर्च्छित हो जाता है॥ ४½ ॥

इसी प्रकार जो व्यक्ति किसीके पतिको धोखा देकर उसकी स्त्रीके साथ भोग करता है, वह यमदूतोंके द्वारा **अन्धतामिस्र** नामक नरकमें गिराया जाता है; जहाँ गिराये जाते हुए जीवको असह्य वेदना होती है। वह दृष्टिहीन हो जाता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह शीघ्र ही जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति नरकमें गिर पड़ता है। इसीलिये प्राचीन पुरुषोंने इसे अन्धतामिस्र नामकी संज्ञा दी है॥ ५—७½ ॥

यह शरीर ही मैं हूँ और ये [धन, स्त्री, पुत्रादि] मेरे हैं—ऐसा सोचकर जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करता हुआ केवल अपने परिवारके भरण-पोषणमें प्रतिदिन लगा रहता है, वह स्वार्थलोलुप प्राणी शरीर छोड़कर अपने अशुभ कर्मोंके प्रभावसे जीवोंको अत्यधिक भय देनेवाले इस रौरव नामक नरकमें गिरता है; और इस व्यक्तिके द्वारा जिन जन्तुओंकी पहले इस जगत्में हिंसा हुई रहती है, वे प्राणी भयंकर रुरु नामक जन्तु बनकर उसे यहाँ कष्ट देते हैं। इसीलिये पुराणवेत्ता मनीषी इसे **रौरव** नरक कहते हैं। पुरातन पुरुषोंने इस रुरु नामक जन्तुको सर्पसे भी अधिक क्रूर बतलाया है॥ ८—११½ ॥

एवं महारौरवाख्यो नरको यत्र पूरुषः॥ १२

यातनां प्राप्यमाणो हि यः परं देहसम्भवः।
क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्ये घातयन्ति च॥ १३

य उग्रः पुरुषः क्रूरः पशुपक्षिगणानपि।
उपरन्धयते मूढो याम्यास्तं रन्धयन्ति च॥ १४

कुम्भीपाके तप्ततैले उपर्यपि च नारद।
यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्रकम्॥ १५

पितृविप्रब्राह्मणध्रुक्कालसूत्रे स नारके।
अग्न्यर्काभ्यां तप्यमाने नारकी विनिवेशितः॥ १६

क्षुत्पिपासादह्यमानोऽन्तःशरीरस्तथा बहिः।
आस्ते शेते चेष्टते चावतिष्ठति च धावति॥ १७

निजवेदपथाद्यो वै पाखण्डं चोपयाति च।
अनापद्यपि देवर्षे तं पापं पुरुषं भटाः॥ १८

असिपत्रवनं नाम नरकं वेशयन्ति च।
कशया प्रहरन्त्येव नारकी तद्गतस्तदा॥ १९

इतस्ततो धावमान उत्तालमतिवेगतः।
असिपत्रैश्छिद्यमान उभयत्र च धारभिः॥ २०

संछिद्यमानसर्वाङ्गो हाहतोऽस्मीति मूर्च्छितः।
वेदनां परमां प्राप्तः पतत्येव पदे पदे॥ २१

स्वधर्मानुगतं भुङ्क्ते पाखण्डफलमल्पधीः।
यो राजा राजपुरुषो दण्डयेद्वै त्वधर्मतः॥ २२

द्विजे शरीरदण्डं च पापीयान्नारकी च सः।
नरके सूकरमुखे पात्यते यमकिङ्करैः॥ २३

इसी प्रकार **महारौरव** नामक नरक भी है, जहाँ यातना पानेके लिये प्राणी दूसरा सूक्ष्म शरीर धारण करके जाता है। वहाँ कच्चा मांस खानेवाले रुरु नामक जन्तु उस जीवके मांसपर चोट पहुँचाते रहते हैं॥ १२-१३॥

हे नारद! जो अत्यन्त क्रोधी, निर्दयी तथा मूर्ख पुरुष पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस पकाता है, यमराजके दूत उसे **कुम्भीपाक** नरकमें खौलते हुए तेलमें डालकर उस पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक पकाते हैं॥ १४-१५॥

जो पिता, विप्र तथा ब्राह्मणसे द्रोह करता है, वह नारकी मनुष्य अग्नि तथा सूर्यसे सदा तप्त रहनेवाले **कालसूत्र** नामक नरकमें डाला जाता है। वहाँपर भूख और प्याससे पीड़ित हो जाता है और भीतर तथा बाहरसे जलते हुए शरीरवाला वह प्राणी व्याकुल होकर कभी बैठता है, कभी सोता है, कभी नानाविध चेष्टाएँ करता है, कभी उठकर खड़ा हो जाता है और कभी दौड़ने लगता है॥ १६-१७॥

हे देवर्षे! विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डका आश्रय लेता है, उस पापी पुरुषको यमदूत **असिपत्रवन** नामक नरकमें डाल देते हैं। जब वे उसके ऊपर कोड़ेसे प्रहार करते हैं, तब वहाँ डाला गया वह नारकी जीव उतावला होकर अत्यन्त वेगसे इधर-उधर भागने लगता है, जिससे दोनों ओर तीखी धारोंवाले असिपत्रोंसे उसका शरीर छिद जाता है। छिदे हुए सभी अंगोंवाला वह जीव 'हाय मैं मारा गया'—ऐसा कहते हुए मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार वह अल्पबुद्धि प्राणी वहाँ असीम कष्ट भोगते हुए पद-पदपर गिरता है और अपने किये हुए कर्मके अनुसार उस पाखण्डका फल भोगता है॥ १८—२१½॥

जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मका सहारा लेकर प्रजाको दण्डित करता है और ब्राह्मणको शारीरिक दण्ड देता है, वह नारकी तथा महापापी मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **सूकरमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। वहाँपर बलवान् यमदूतोंके द्वारा ईखकी भाँति पेरा जाता हुआ वह जीव सभी अंगोंके

विनिष्पिष्टावयवको बलवद्भिस्तथेक्षुवत्।
आर्तस्वरेण स्वनयन्मूर्च्छितः कश्मलङ्गतः॥ २४

स पीड्यमानो बहुधा वेदनां यात्यतीव हि।
विविक्तपरपीडो योऽप्यविविक्तपरव्यथाम्॥ २५

ईश्वराङ्कितवृत्तीनां व्यथामाचरते स्वयम्।
स चान्धकूपे पतति तदभिद्रोहयन्त्रिते॥ २६

तत्रासौ जन्तुभिः क्रूरैः पशुभिर्मृगपक्षिभिः।
सरीसृपैश्च मशकैर्यूकामत्कुणजातिभिः॥ २७

मक्षिकाभिश्च तमसि दन्दशूकैश्च पीड्यते।
परिक्रामति चैवात्र कुशरीरे च जन्तुवत्॥ २८

यस्तु संविहितैः पञ्चयज्ञैः काकैश्च संस्तुतः।
अश्नाति चासंविभज्य यत्किञ्चिदुपपद्यते॥ २९

स पापपुरुषः क्रूरैर्याम्यैश्च कृमिभोजने।
नरकाधमके दुष्टकर्मणा परिपात्यते॥ ३०

लक्षयोजनविस्तीर्णे कृमिकुण्डे भयङ्करे।
कृमिरूपं समासाद्य भक्ष्यमाणश्च तैः स्वयम्॥ ३१

अप्रत्ताप्रहुतादो यः पातमाप्नोति तत्र वै।
यस्तु स्तेयेन च बलाद्धिरण्यं रत्नमेव च॥ ३२

ब्राह्मणस्यापहरति अन्यस्यापि च कस्यचित्।

अनापदि च देवर्षे तममुत्र यमानुगाः॥ ३३

अयस्मयैरग्निपिण्डैः सदृशैर्निष्कुषन्ति च।
योऽगम्यां योषितं गच्छेदगम्यं पुरुषं च या॥ ३४

तावमुत्रापि कशया ताडयन्तो यमानुगाः।
तिग्मया लोहमय्या च सूर्म्याप्यालिङ्गयन्ति तम्॥ ३५

तां चापि योषितं सूर्म्यालिङ्गयन्ति यमानुगाः।

पिस जानेसे वेदनाके कारण आर्तस्वर करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है और महान् क्लेश प्राप्त करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे पीड़ित होता हुआ जीव बहुत पीड़ा पाता है॥ २२—२४½ ॥

जो पुरुष इस लोकमें खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह उनसे द्रोह करनेके कारण **अन्धकूप** नामक नरकमें गिरता है; क्योंकि स्वयं परमात्माने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उसके कारण उन्हें दूसरोंको कष्ट पहुँचानेका ज्ञान भी नहीं है, किंतु ईश्वरके द्वारा विधि-निषेधपूर्वक बनायी गयी वृत्तियोंवाले मनुष्योंको दूसरोंके कष्टका ज्ञान है। इसीलिये वह प्राणी पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल, मक्खी, दन्दशूक आदि क्रूर जन्तुओंके द्वारा अन्धकूप नरकमें पीडित किया जाता है। वह प्राणी भयानक रोगसे ग्रस्त शरीरमें रहनेवाले जीवकी भाँति व्यथित होकर इस नरकमें चक्कर काटता रहता है॥ २५—२८॥

जो कुछ भी धन आदि प्राप्त हो उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञोंमें विभक्त किये बिना ही जो भोजन करता है, उसे काकतुल्य समझना चाहिये। यमराजके अत्यन्त निर्मम दूत उस पापी पुरुषको उसके दुष्कर्मोंके फलस्वरूप **कृमिभोजन** नामक अधम नरकमें गिराते हैं। इस प्रकार जो अतिथियोंको दिये बिना ही भोजन करता है। वह एक लाख योजन विस्तारवाले भयंकर कृमिकुण्डमें कीड़ा होकर नरकके कीड़ोंद्वारा खाया जाता हुआ वहीं पड़ा रहता है॥ २९—३१½ ॥

हे देवर्षे! विपत्तिकाल न होनेपर भी जो प्राणी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी भी वर्णके लोगोंसे चोरीसे या बलात् स्वर्ण या रत्न छीन लेता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत **संदंश** नामक नरकमें गिराते हैं और अग्निके समान सन्तप्त लोहपिण्डोंसे उसे दागते हैं तथा संड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं॥ ३२-३३½ ॥

जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ समागम करती है, उन्हें यमदूत **तप्तसूर्मि (मूर्ति)** नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं। पुनः वे यमदूत लोहेकी बनी प्रज्वलित स्त्रीमूर्तिसे पुरुषको तथा लौहनिर्मित जलती हुई पुरुषमूर्तिसे स्त्रीको आलिंगित कराते हैं॥ ३४-३५½ ॥

यस्तु सर्वाभिगमनः पुरुषः पापसञ्चयी॥ ३६

निरयेऽमुत्र तं याम्याः शाल्मलीं रोपयन्ति तम्।
वज्रकण्टकसंयुक्तां शाल्मलीं तामयस्मयीम्॥ ३७

राजन्या राजपुरुषा ये वा पाखण्डवर्तिनः।
धर्मसेतुं विभिन्दन्ति ते परेत्य गता नराः॥ ३८

वैतरण्यां पतन्त्येव भिन्नमर्यादपातकाः।
नद्यां निरयदुर्गस्य परिखायां च नारद॥ ३९

यादोगणैः समन्तात्तु भक्ष्यमाणा इतस्ततः।
नात्मना वियुजन्त्येव नासुभिश्चापि नारद॥ ४०

स्वीयेन कर्मपाकेनोपतपन्ति च सर्वतः।
विण्मूत्रपूयरक्तैश्च केशास्थिनखमांसकैः॥ ४१

मेदोवसासंयुतायां नद्यामुपपतन्ति ते।
वृषलीपतयो ये च नष्टशौचा गतत्रपाः॥ ४२

आचारनियमैस्त्यक्ताः पशुचर्यापरायणाः।
तेऽत्रानुकष्टगतयो विण्मूत्रश्लेष्मरक्तकैः॥ ४३

श्लेष्ममलसमापूर्णे निपतन्ति दुराग्रहाः।
तदेव खादयन्त्येतान्यमानुचरवर्गकाः॥ ४४

ये श्वानगर्दभादीनां पतयो वै द्विजातयः।
मृगयारसिका नित्यमतीर्थे मृगघातकाः॥ ४५

परेतांस्तान्यमभटा लक्षीभूतान्नराधमान्।
इषुभिश्च विभिन्दन्ति तांस्तान्दुर्नयमागतान्॥ ४६

ये दम्भा दम्भयज्ञेषु पशून्घ्नन्ति नराधमाः।
तानमुष्मिन्यमभटा नरके वैशसे तदा॥ ४७

निपात्य पीडयन्त्येव कशाघातैर्दुरासदैः।
यो भार्यां च सवर्णां वै द्विजो मदनमोहितः॥ ४८

रेतः पाययति मूढोऽमुत्र तं यमकिङ्कराः।
रेतःकुण्डे पातयन्ति रेतः सम्पाययन्ति च॥ ४९

जो घोर पापी मनुष्य जिस किसीके साथ व्यभिचार करता है, उसके मरनेपर यमराजके दूत उसे **शाल्मली** नामक नरकमें वज्रके समान कठोर काँटोंवाले उस लोहमय शाल्मली (सेमर)-के वृक्षपर चढ़ाते हैं॥ ३६-३७॥

जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, वे इस मर्यादाभंगरूपी पापके कारण मरनेपर **वैतरणी** नामक नरकमें गिरते हैं। हे नारद! नरकरूपी दुर्गकी खाईके समान प्रतीत होनेवाली उस वैतरणी नदीमें रहनेवाले जीव-जन्तु उन्हें चारों ओरसे काटते हैं और वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। हे नारद! उनका शरीर नहीं छूटता तथा उनके प्राण भी नहीं निकलते और वे अपने पापकर्मके कारण सदा सन्तप्त रहते हैं। मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, अस्थि, नख, चर्बी, मांस और मज्जा आदिसे भरी पड़ी उस नदीमें गिरे हुए वे छटपटाते रहते हैं॥ ३८—४१½ ॥

जो लोग सदाचारके नियमोंसे विमुख तथा शौचाचारसे रहित होकर शूद्राओंके पति बन जाते हैं और निर्लज्जतापूर्वक पशुवत् आचरण करते हैं, उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद गतियाँ प्राप्त होती हैं। यमराजके दुराग्रही दूत उन्हें विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे युक्त **पूयोद** नामक नरकमें गिराते हैं; जहाँ ये पापी इन्हीं वस्तुओंको खाते हैं॥ ४२—४४॥

जो द्विजातिगण कुत्ते और गधे आदिको पालते हैं, आखेट करनेमें सदा रुचि रखते हैं तथा शास्त्रके विपरीत मृगोंका वध करते हैं; उन दुर्नीतिपूर्ण आचरणवाले अधम प्राणियोंको मरणोपरान्त यमदूत [**प्राणरोध** नामक नरकमें गिराकर] लक्ष्य बनाकर बाणोंसे बेधते हैं॥ ४५-४६॥

जो दम्भी और मनुष्योंमें अधम लोग अभिमानपूर्वक यज्ञोंका आयोजन करके उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें इस लोकसे जानेपर यमदूत **विशसन** नामक नरकमें गिराकर कोड़ोंके असहनीय प्रहारसे उनको अत्यधिक पीडा पहुँचाते हैं॥ ४७½ ॥

जो मूर्ख द्विज कामसे मोहित होकर सवर्णा भार्याको वीर्यपान कराता है, यमके दूत उसे वीर्यके कुण्डमें [**लालाभक्ष** नामक नरकमें] गिराते हैं और वीर्य ही पिलाते हैं॥ ४८-४९॥

ये दस्यवोऽग्निदाश्चैव गरदाः सार्थघातकाः।
ग्रामान्सार्थान्विलुम्पन्ति राजानो राजपूरुषाः॥ ५०

तान्परेतान्यमभटा नयन्ति श्वानकादनम्।
विंशत्यधिकसंख्याताः सारमेया महाद्भुताः॥ ५१

सप्तशत्या समाख्याता रभसं खादयन्ति ते।
सारमेयादनं नाम नरकं दारुणं मुने।
अतः परं प्रवक्ष्यामि अवीचिप्रमुखान्मुने॥ ५२

जो चोर, राजा अथवा राजपुरुष आग लगाते हैं, विष देते हैं, दूसरोंकी सम्पत्ति नष्ट करते हैं, गाँवों तथा धनिकोंको लूटते हैं, उनके मरनेपर यमराजके दूत उन्हें **सारमेयादन** नामक नरकमें ले जाते हैं। वहाँ सात सौ बीस अत्यन्त विचित्र सारमेय (कुत्ते) बताये गये हैं। वे बड़े वेगसे उन्हें नोच-नोचकर खाते हैं। हे मुने! वह सारमेयादन नामक नरक बड़ा ही भयानक है। हे मुने! अब इसके पश्चात् मैं अवीचि आदि प्रमुख नरकोंका वर्णन करूँगा॥ ५०—५२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे नरकप्रदपातकवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

नरक प्रदान करनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

ये नराः सर्वदा साक्ष्ये अनृतं भाषयन्ति च।
दाने विनिमयेऽर्थस्य देवर्षे पापबुद्धयः॥ १

ते प्रेत्यामुत्र नरके अवीच्याख्येऽतिदारुणे।
योजनानां शतोच्छ्रायाद्गिरिमूर्ध्नः पतन्ति हि॥ २

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! जो दान और धनके आदान-प्रदानमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं, वे पापबुद्धि मनुष्य मरनेपर सौ योजन ऊँचे पर्वत-शिखरसे **अवीचि** नामक परम भयंकर नरकमें गिरते हैं॥ १-२॥

अनाकाशेऽधःशिरसस्तदवीचीतिनामके।
यत्र स्थलं दृश्यते च जलवद्वीचिसंयुतम्॥ ३

अवीचिमत्ततस्तत्र तिलशश्छिन्नविग्रहः।
म्रियते नैव देवर्षे पुनरेवाऽवरोप्यते॥ ४

इस अवीचि नामक आधारशून्य नरकमें प्राणियोंको नीचा सिर किये हुए गिरना पड़ता है, जहाँ स्थलभाग लहरयुक्त जलकी भाँति दिखायी पड़ता है। इसीलिये इसे अवीचि कहते हैं। हे देवर्षे! वहाँ पत्थर-ही-पत्थर बिछे रहते हैं। उनपर गिरनेसे प्राणियोंका शरीर तिल-तिल करके कट जाता है। वे मरते भी नहीं और उसीमें उन्हें बार-बार गिराया जाता है॥ ३-४॥

यो वा द्विजो वा राजन्यो वैश्यो वा ब्रह्मसम्भव।
सोमपीथस्तत्कलत्रं सुरां वा पिबतीव हि॥ ५

प्रमादतस्तु तेषां वै निरये परिपातनम्।
कुर्वन्ति यमदूतास्ते पानं कार्ष्णायसो मुने॥ ६
वह्निना द्रवमाणस्य नितरां ब्रह्मसम्भव।

हे ब्रह्मपुत्र! जो ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी अथवा व्रतमें स्थित अन्य कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान* करता है, उसका **अयःपान** नामक नरकमें पतन होता है। हे मुने! हे ब्रह्मापुत्र! यमराजके दूत वहाँपर उन्हें आगसे अत्यन्त सन्तप्त तथा पिघला हुआ लोहा पिलाते हैं॥ ५-६½॥

---

* क्षत्रियों एवं वैश्योंके लिये शास्त्रमें सोमपानका निषेध है।

सम्भावनेन स्वस्यैव योऽधमोऽपि नराधमः॥ ७

विद्याजन्मतपोवर्णाश्रमाचारवतो नरान्।
वरीयसोऽपि न बहु मन्यते पुरुषाधमः॥ ८

स नीयते यमभटैः क्षारकर्दमनामके।
निरयेऽर्वाक्शिरा घोरा दुरन्तयातनाश्नुते॥ ९

ये वै नरा यजन्त्यन्यं नरमेधेन मोहिताः।
स्त्रियोऽपि वा नरपशुं खादन्त्यत्र महामुने॥ १०

पशवो निहितास्ते तु यमसद्मनि सङ्गताः।

सौनिका इव ते सर्वे विदार्य शितधारया॥ ११

असृक्पिबन्ति नृत्यन्ति गायन्ति बहुधा मुने।
यथेह मांसभोक्तारः पुरुषादा दुरासदाः॥ १२

अनागसोऽपि येऽरण्ये ग्रामे वा ब्रह्मपुत्रक।
वैश्रम्भकैरुपसृतान्विश्रम्भय्यजिजीविषून्॥ १३

शूलसूत्रादिषु प्रोतान्क्रीडनोत्कारकानिव।
पातयन्ति च ते प्रेत्य शूलपाते पतन्ति ह॥ १४

शूलादिषु प्रोतदेहाः क्षुत्तृड्भ्यां चातिपीडिताः।
तिग्मतुण्डैः कङ्कबकैरितश्चेतश्च ताडिताः॥ १५

पीडिता आत्मशमलं बहुधा संस्मरन्ति हि।
ये भूतानुद्वेजयन्ति नरा उल्बणवृत्तयः॥ १६

यथा सर्पादिकास्तेऽपि नरके निपतन्ति हि।
दन्दशूकाभिधाने च यत्रोत्तिष्ठन्ति सर्वतः॥ १७

पञ्चाननः सप्तमुखा ग्रसन्ति नरकागतान्।
यथा बिलेशया विप्र क्रूरबुद्धिसमन्विताः॥ १८

हे मुने! जो नराधम स्वयं निम्न श्रेणीमें उत्पन्न हुआ है, किंतु अभिमानवश विद्या, जन्म, तप, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका यथोचित सम्मान नहीं करता; वह महान् अधम मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **क्षारकर्दम** नामक नरकमें सिर नीचा किये हुए ले जाया जाता है; वहाँपर वह घोर कष्टप्रद यातनाएँ भोगता है॥ ७—९॥

हे महामुने! जो मनुष्य मोहग्रस्त होकर नरमेधके द्वारा अन्य [यक्ष, राक्षस आदि]-का पूजन करते हैं अथवा जो स्त्रियाँ भी नरपशुका मांस खाती हैं; वे **रक्षोगणसम्भोज** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके द्वारा इस लोकमें मारे गये वे पशु यमपुरीमें पहलेसे ही कसाईके रूपमें विद्यमान रहते हैं। हे मुने! जिस प्रकार इस लोकमें पशुओंका मांस खानेवाले पुरुष आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार वे पशु भी निर्मम कसाईका रूप धारणकर तेज धारवाले अस्त्रसे उनके शरीरको काटकर उससे निकले रक्तको पीते हैं और अनेक प्रकारसे नाचते तथा गाते हैं॥ १०—१२॥

हे ब्रह्मपुत्र! जो लोग ग्राममें अथवा जंगलमें रहनेवाले निरपराध प्राणियोंको—जो जीनेकी इच्छा रखते हैं—उन्हें विविध उपायोंसे विश्वासमें लेकर तथा फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और अपने मनोरंजनके लिये उनके शरीरमें काँटे चुभाकर अथवा रस्सी आदिमें बाँधकर पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनेपर **शूलपात (शूलप्रोत)** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके शरीरमें शूल आदि चुभाये जाते हैं, वे भूख तथा प्याससे अत्यन्त पीड़ित होते हैं और तीखी चोंचवाले कंक, बक आदि पक्षी उन्हें जहाँ-तहाँ नोचते हैं। उस समय कष्ट भोग रहे वे प्राणी अपने पूर्वकृत पापोंका बार-बार स्मरण करते हैं॥ १३—१५½॥

हे विप्र! उग्र स्वभाववाले जो मनुष्य सर्पोंकी भाँति प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं, वे मरणोपरान्त **दन्दशूक** नामक नरकमें पड़ते हैं, जहाँपर पाँच तथा सात मुखोंवाले क्रूरस्वभाव सर्प मरनेके बाद इस नरकमें पहुँचे हुए प्राणियोंको चूहेकी भाँति निगल जाते हैं॥ १६—१८॥

येऽवटेषु कुसूलादिगुहादिषु निरुन्धते।
तानमुत्रोद्यतकराः कीनाशपरिसेवकाः॥ १९

तेष्वेवोपविशित्वा च सगरेण च वह्निना।
धूमेन च निरुन्धन्ति पापकर्मरतान्नरान्॥ २०

योऽतिथीन्समयप्राप्तान्दिधक्षुरिव चक्षुषा।
पापेनेहालोकयेच्च स्वयं गृहपतिर्द्विजः॥ २१

तस्यापि पापदृष्टेर्हि निरये यमकिङ्कराः।
अक्षिणी वज्रतुण्डा ये कङ्काः काकवटादयः॥ २२

गृध्राः क्रूरतराश्चापि प्रसह्योत्पाटयन्ति हि।
य आढ्याभिमतिर्याति अहङ्कृत्यातिगर्वितः॥ २३

तिर्यक्प्रेक्षण एवात्राभिविशङ्की नराधमः।
चिन्तयार्थस्य सर्वत्रायतिव्ययस्वरूपया॥ २४

शुष्यद्धृदयवक्त्रश्च निर्वृतिं नैव गच्छति।
ग्रहवद्रक्षते चार्थं स प्रेतो यमकिङ्करैः॥ २५

सूचीमुखे च नरके पात्यते निजकर्मणा।
वित्तग्रहं च पुरुषं वायका इव याम्यकाः॥ २६

किङ्कराः सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति हि।
एते बहुविधा विप्र नरकाः पापकर्मणाम्॥ २७

नराणां शतशः सन्ति यातनास्थानभूमयः।
सहस्रशोऽपि देवर्षे उक्तानुक्तांस्तथापि हि॥ २८

विशन्ति नरकानेतान्यातनाबहुलान्मुने।
तथा धर्मपराश्चापि लोकान्यान्ति सुखोद्गतान्॥ २९

स्वधर्मो बहुधा गीतो यथा तव महामुने।
देवीपूजनरूपो हि देव्याराधनलक्षणः॥ ३०

जो अन्धकूपोंमें, प्रकाशरहित घर आदिमें अथवा अन्धकारयुक्त गुफाओंमें प्राणियोंको बन्द कर देते हैं, उन पापकर्मपरायण लोगोंको यमराजके दूत मरनेके उपरान्त [**अवटारोध** नामक नरकमें गिराते हैं और] उनका हाथ पकड़कर विषैली अग्निके धुएँसे भरे हुए उसी प्रकारके अँधेरे स्थानोंमें प्रवेश कराकर उन्हें बन्द कर देते हैं॥ १९-२०॥

जो द्विज स्वयं गृहका स्वामी होकर अपने यहाँ समयपर आये हुए अतिथियोंको पापपूर्ण नेत्रसे इस प्रकार देखता है, मानो उसे भस्म ही कर डालेगा, मरनेपर उस पापदृष्टिवाले पुरुषको यमराजके सेवक **पर्यावर्तन** नामक नरकमें गिराते हैं। वहाँपर वज्रतुल्य चोंचोंवाले कंक, काक, वट, गीध आदि महान् क्रूर पक्षी बलपूर्वक उसकी आँखें निकाल लेते हैं॥ २१-२२$\frac{१}{२}$॥

जो अधम मनुष्य अपनेको वैभवसम्पन्न मानकर अभिमानसे अत्यन्त गर्वित होकर दूसरोंको वक्रदृष्टिसे देखता है, जो सबके प्रति शंकाभाव रखता है, जो अपने चित्तमें सदा धन कमाने किंतु व्यय न करनेकी ही भावना रखता है तथा ग्रहकी भाँति सदा धनकी रक्षा करता है, वह सूखते हुए हृदय तथा मुखवाला प्राणी कभी शान्तिको प्राप्त नहीं होता है। मरनेपर यमराजके सेवकोंद्वारा वह अपने पापकर्मके कारण **सूचीमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। यमराजके दूत उस अर्थपिशाचके सम्पूर्ण अंगोंको उसी प्रकार सिल देते हैं, जैसे दर्जी सूई-धागेसे वस्त्र सिलते हैं॥ २३—२६$\frac{१}{२}$॥

हे विप्र! पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना देनेके लिये ये अनेक प्रकारके नरक हैं। इसी तरह और भी सैकड़ों तथा हजारों नरक हैं। हे देवर्षे! उनमेंसे कुछ ही बताये गये हैं, मैंने बहुत-से नरकोंका वर्णन ही नहीं किया। हे मुने! पापी मनुष्य अनेक यातनाओंसे भरे इन नरकोंमें जाते हैं और धर्मपरायणलोग सुखप्रद लोकोंमें जाते हैं॥ २७—२९॥

हे महामुने! मैंने जिस प्रकार आपसे भगवतीके पूजनके स्वरूप और देवीकी आराधनाके लक्षणोंका वर्णन विस्तारसे किया है, वही अपना धर्म है; जिसके

येनानुष्ठितमात्रेण नरो न नरकं व्रजेत्।
सा देवी भवपाथोधेरुद्धर्त्री पूजिता नृणाम्॥ ३१

अनुष्ठानमात्रसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। सम्यक् प्रकारसे पूजित होनेपर वे भगवती संसाररूपी समुद्रसे प्राणियोंका उद्धार कर देती हैं॥ ३०-३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे-
ऽवशिष्टनरकवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

* * *

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

देवीकी उपासनाके विविध प्रसंगोंका वर्णन

नारद उवाच

धर्मश्च कीदृशस्तात देव्याराधनलक्षणः।
कथमाराधिता देवी सा ददाति परं पदम्॥ १
आराधनविधिः को वा कथमाराधिता कदा।
केन सा दुर्गनरकादुर्गा त्राणप्रदा भवेत्॥ २

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु चित्तैकाग्र्येण मे विदुषां वर।
यथा प्रसीदते देवी धर्माराधनतः स्वयम्॥ ३
स्वधर्मो यादृशः प्रोक्तस्तं च मे शृणु नारद।
अनादाविह संसारे देवी सम्पूजिता स्वयम्॥ ४
परिपालयते घोरसङ्कटादिषु सा मुने।
सा देवी पूज्यते लोकैर्यथावत्तद्विधिं शृणु॥ ५
प्रतिपत्तिथिमासाद्य देवीमाज्येन पूजयेत्।
घृतं दद्याद् ब्राह्मणाय रोगहीनो भवेत्सदा॥ ६
द्वितीयायां शर्करया पूजयेज्जगदम्बिकाम्।
शर्करां प्रददेद्विप्रे दीर्घायुर्जायते नरः॥ ७
तृतीयादिवसे देव्यै दुग्धं पूजनकर्मणि।
क्षीरं दत्त्वा द्विजाग्र्याय सर्वदुःखातिगो भवेत्॥ ८
चतुर्थ्यां पूजनेऽपूपा देया देव्यै द्विजाय च।
अपूपा एव दातव्या न विघ्नैरभिभूयते॥ ९

नारदजी बोले—हे तात! देवीके आराधनरूपी धर्मका स्वरूप क्या है? किस प्रकारसे उपासना करनेपर वे देवी परम पद प्रदान करती हैं? उनकी आराधनाकी विधि क्या है? कैसे, कब और किस स्तोत्रसे आराधना करनेपर वे भगवती दुर्गा कष्टप्रद नरकरूपी दुर्गसे उद्धार करके त्राणदायिनी होती हैं?॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे विद्वद्वर! हे देवर्षे! जिस प्रकार धर्मपूर्वक आराधना करनेसे देवी स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, उसे अब आप एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनिये। हे नारद! जैसा स्वधर्मका स्वरूप बताया गया है, उसे भी आप मुझसे सुनिये॥ ३½॥

हे मुने! इस अनादि संसारमें सम्यक्‌रूपसे पूजित होनेपर वे देवी घोर संकटोंमें स्वयं रक्षा करती हैं। वे भगवती जिस प्रकार लोकमें पूजी जाती हैं, वह विधि सुनिये॥ ४-५॥

[शुक्लपक्षकी] प्रतिपदा तिथिमें घृतसे देवीकी पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणको घृतका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला सदा निरोग रहता है॥ ६॥

द्वितीया तिथिको शर्करासे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये और विप्रको शर्कराका ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है॥ ७॥

तृतीया तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें उन्हें दुग्ध अर्पण करना चाहिये और श्रेष्ठ ब्राह्मणको दुग्धका दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

चतुर्थीके दिन पूआ अर्पण करके देवीका पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणको पूआ ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता॥ ९॥

पञ्चम्यां कदलीजातं फलं देव्यै निवेदयेत्।
तदेव ब्राह्मणे देयं मेधावान्पुरुषो भवेत्॥ १०

षष्ठीतिथौ मधु प्रोक्तं देवीपूजनकर्मणि।
ब्राह्मणाय च दातव्यं मधु कान्तिर्यतो भवेत्॥ ११

सप्तम्यां गुडनैवेद्यं देव्यै दत्त्वा द्विजाय च।
गुडं दत्त्वा शोकहीनो जायते द्विजसत्तम॥ १२

नारिकेलमथाष्टम्यां देव्यै नैवेद्यमर्पयेत्।
ब्राह्मणाय प्रदातव्यं तापहीनो भवेन्नरः॥ १३

नवम्यां लाजमम्बायै चार्पयित्वा द्विजाय च।
दत्त्वा सुखाधिको भूयादिह लोके परत्र च॥ १४

दशम्यामर्पयित्वा तु देव्यै कृष्णतिलान्मुने।
ब्राह्मणाय प्रदत्त्वा तु यमलोकाद्भयं न हि॥ १५

एकादश्यां दधि तथा देव्यै चार्पयते तु यः।
ददाति ब्राह्मणायैतद्देवीप्रियतमो भवेत्॥ १६

द्वादश्यां पृथुकान्देव्यै दत्त्वाचार्याय यो ददेत्।
तानेव च मुनिश्रेष्ठ स देवीप्रियतां व्रजेत्॥ १७

त्रयोदश्यां च दुर्गायै चणकान्प्रददाति च।
तानेव दत्त्वा विप्राय प्रजासन्ततिमान्भवेत्॥ १८

चतुर्दश्यां च देवर्षे देव्यै सक्तून्प्रयच्छति।
तानेव दद्याद्विप्राय शिवस्य दयितो भवेत्॥ १९

पायसं पूर्णिमातिथ्यामपर्णायै प्रयच्छति।
ददाति च द्विजाग्र्याय पितॄनुद्धरतेऽखिलान्॥ २०

पंचमी तिथिको भगवतीका पूजन करके उन्हें केला अर्पण करे और ब्राह्मणको केलेका ही दान करे; ऐसा करनेसे मनुष्य बुद्धिमान् होता है॥ १०॥

षष्ठी तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें मधुको प्रधान बताया गया है। ब्राह्मणको मधु ही देना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य दिव्य कान्तिवाला हो जाता है॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सप्तमी तिथिको भगवतीको गुड़का नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको गुड़का दान करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके शोकोंसे मुक्त हो जाता है॥ १२॥

अष्टमीको भगवतीको नारियलका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और ब्राह्मणको भी नारियलका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी सन्तापोंसे रहित हो जाता है॥ १३॥

नवमीके दिन भगवतीको लावा अर्पण करनेके बाद ब्राह्मणको भी लावाका दान करनेसे मनुष्य इस लोकमें तथा परलोकमें परम सुखी रहता है॥ १४॥

हे मुने! दशमी तिथिको भगवतीको काले तिल अर्पित करने और ब्राह्मणको उसी तिलका दान करनेसे मनुष्यको यमलोकका भय नहीं रह जाता॥ १५॥

जो मनुष्य एकादशी तिथिको भगवतीको दधि अर्पित करता है और ब्राह्मणको भी दधि प्रदान करता है, वह देवीका परम प्रिय हो जाता है॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो द्वादशीके दिन भगवतीको चिउड़ेका भोग लगाकर आचार्यको भी चिउड़ेका दान करता है, वह भगवतीका प्रियपात्र बन जाता है॥ १७॥

जो त्रयोदशीको भगवतीको चना अर्पित करता है और ब्राह्मणको चनेका दान करता है, वह प्रजाओं तथा सन्तानोंसे सदा सम्पन्न रहता है॥ १८॥

हे देवर्षे! जो मनुष्य चतुर्दशीके दिन भगवतीको सत्तू अर्पण करता है और ब्राह्मणको भी सत्तू प्रदान करता है, वह भगवान् शंकरका प्रिय हो जाता है॥ १९॥

जो पूर्णिमा तिथिको भगवती अपर्णाको खीरका भोग लगाता है और श्रेष्ठ ब्राह्मणको खीर प्रदान करता है, वह अपने सभी पितरोंका उद्धार कर देता है॥ २०॥

तत्तिथौ हवनं प्रोक्तं देवीप्रीत्यै महामुने।
तत्तत्तिथ्युक्तवस्तूनामशेषारिष्टनाशनम् ॥ २१
रविवारे पायसं च नैवेद्यं परिकीर्तितम्।
सोमवारे पयः प्रोक्तं भौमे च कदलीफलम्॥ २२
बुधवारे च सम्प्रोक्तं नवनीतं नवं द्विज।
गुरुवारे शर्करां च सितां भार्गववासरे॥ २३
शनिवारे घृतं गव्यं नैवेद्यं परिकीर्तितम्।
सप्तविंशतिनक्षत्रनैवेद्यं श्रूयतां मुने॥ २४
घृतं तिलं शर्करां च दधि दुग्धं किलाटकम्।
दधिकूर्चीं मोदकं च फेणिकां घृतमण्डकम्॥ २५
कंसारं वटपत्रं च घृतपूरमतः परम्।
वटकं कोकरसकं पूरणं मधु सूरणम्॥ २६
गुडं पृथुकद्राक्षे च खर्जूरं चैव चारकम्।
अपूपं नवनीतं च मुद्गं मोदक एव च॥ २७
मातुलिङ्गमिति प्रोक्तं भनैवेद्यं च नारद।
विष्कम्भादिषु योगेषु प्रवक्ष्यामि निवेदनम्॥ २८
पदार्थानां कृतेष्वेषु प्रीणाति जगदम्बिका।
गुडं मधु घृतं दुग्धं दधि तक्रं त्वपूपकम्॥ २९
नवनीतं कर्कटीं च कूष्माण्डं चापि मोदकम्।
पनसं कदलं जम्बुफलमाम्रफलं तिलम्॥ ३०
नारङ्गं दाडिमं चैव बदरीफलमेव च।
धात्रीफलं पायसञ्च पृथुकं चणकं तथा॥ ३१
नारिकेलं जम्भफलं कसेरुं सूरणं तथा।
एतानि क्रमशो विप्र नैवेद्यानि शुभानि च॥ ३२
विष्कम्भादिषु योगेषु निर्णीतानि मनीषिभिः।
अथ नैवेद्यमाख्यास्ये करणानां पृथङ्मुने॥ ३३
कंसारं मण्डकं फेणी मोदकं वटपत्रकम्।
लड्डुकं घृतपूरं च तिलं दधि घृतं मधु॥ ३४
करणानामिदं प्रोक्तं देवीनैवेद्यमादरात्।

हे महामुने! देवीकी प्रसन्नताके लिये उसी तिथिको हवन भी बताया गया है। जिस तिथिमें नैवेद्यके लिये जो वस्तु बतायी गयी है, उसी वस्तुसे उन-उन तिथियोंमें हवन करनेसे सभी विपत्तियोंका नाश हो जाता है॥ २१॥

रविवारको खीरका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। सोमवारको दूध और मंगलवारको केलेका भोग लगाना बताया गया है॥ २२॥

हे द्विज! बुधको ताजा मक्खन भोगके लिये कहा गया है। गुरुवारको रक्त शर्करा, शुक्रवारको श्वेत शर्करा और शनिवारको गायका घृत नैवेद्यके रूपमें बताया गया है॥ २३½ ॥

हे मुने! अब सत्ताईस नक्षत्रोंमें दिये जानेवाले नैवेद्यके विषयमें सुनिये। घी, तिल, चीनी, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, फेणिका, घृतमण्ड (शक्करपारा), कंसार (गेहूँके आटे तथा गुड़से निर्मित पदार्थ विशेष), वटपत्र (पापड़), घेवर, वटक (बड़ा), कोकरस (खजूरका रस), घृतमिश्रित चनेका चूर्ण, मधु, सूरन, गुड़, चिउड़ा, दाख, खजूर, चारक, पूआ, मक्खन, मूँगका लड्डू और विजौरा नींबू—हे नारद! ये सत्ताईस नक्षत्रोंके नैवेद्य बताये गये हैं॥ २४—२७½ ॥

अब विष्कम्भ आदि योगोंमें नैवेद्य अर्पणके विषयमें कहूँगा। इन पदार्थोंको अर्पित करनेसे जगदम्बिका प्रसन्न होती हैं। गुड़, मधु, घी, दूध, दही, मट्ठा, पूआ, मक्खन, ककड़ी, कोंहड़ा, लड्डू, कटहल, केला, जामुन, आम, तिल, संतरा, अनार, बेरका फल, आमला, खीर, चिउड़ा, चना, नारियल, जम्भफल (जम्भीरा), कसेरू और सूरन—हे विप्र! ये शुभ नैवेद्य क्रमशः विष्कम्भ आदि योगोंमें [भगवतीको] अर्पण करनेके लिये विद्वानोंके द्वारा निश्चित किये गये हैं॥ २८—३२½ ॥

हे मुने! इसके बाद अब मैं भिन्न-भिन्न करणोंके नैवेद्यके बारेमें बताऊँगा। कंसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्र, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी और मधु—ये करणोंके नैवेद्य बताये गये हैं, जिन्हें आदरपूर्वक भगवतीको अर्पण करना चाहिये॥ ३३-३४½ ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवीप्रीतिकरं परम्॥ ३५

विधानं नारदमुने शृणु तत्सर्वमादृतः।
चैत्रशुद्धतृतीयायां नरो मधुकवृक्षकम्॥ ३६

पूजयेत्पञ्च खाद्यं च नैवेद्यमुपकल्पयेत्।
एवं द्वादशमासेषु तृतीयातिथिषु क्रमात्॥ ३७

शुक्लपक्षे विधानेन नैवेद्यमभिदध्महे।
वैशाखमासे नैवेद्यं गुडयुक्तं च नारद॥ ३८

ज्येष्ठमासे मधु प्रोक्तं देवीप्रीत्यर्थमेव तु।
आषाढे नवनीतं च मधुकस्य निवेदनम्॥ ३९

श्रावणे दधि नैवेद्यं भाद्रमासे च शर्करा।
आश्विने पायसं प्रोक्तं कार्तिके पय उत्तमम्॥ ४०

मार्गे फेण्युत्तमा प्रोक्ता पौषे च दधिकूर्चिका।
माघे मासि च नैवेद्यं घृतं गव्यं समाहरेत्॥ ४१

नारिकेलं च नैवेद्यं फाल्गुने परिकीर्तितम्।
एवं द्वादशनैवेद्यैर्मासे च क्रमतोऽर्चयेत्॥ ४२

मङ्गला वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया।
महामाया मतङ्गी च काली कमलवासिनी॥ ४३

शिवा सहस्रचरणा सर्वमङ्गलरूपिणी।
एभिर्नामपदैर्देवीं मधूके परिपूजयेत्॥ ४४

ततः स्तुवीत देवेशीं मधूकस्थां महेश्वरीम्।
सर्वकामसमृद्ध्यर्थं व्रतपूर्णत्वसिद्धये॥ ४५

नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते।
माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये॥ ४६

परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी।
परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी॥ ४७

मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता।
मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी॥ ४८

हे नारदमुने! अब मैं देवीको प्रसन्न करनेवाले दूसरे श्रेष्ठ विधानका वर्णन करूँगा, उस सम्पूर्ण विधानको आदरपूर्वक सुनिये। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको महुएके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके उनका पूजन करे और नैवेद्यमें पाँच प्रकारके भोज्य-पदार्थ अर्पित करे। इसी प्रकार बारहों महीनोंके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पूजन-विधानके साथ क्रमशः नैवेद्य अर्पित करे। हे नारद! वैशाखमासमें गुड़मिश्रित पदार्थ निवेदित करना चाहिये। ज्येष्ठ-महीनेमें भगवतीकी प्रसन्नताके लिये मधु अर्पित करना चाहिये। आषाढ़-महीनेमें नवनीत और महुएके रससे बना हुआ पदार्थ अर्पित करना चाहिये॥ ३५—३९॥

श्रावण-मासमें दही, भाद्रपद-मासमें शर्करा, आश्विन-मासमें खीर तथा कार्तिक-मासमें दूधका नैवेद्य उत्तम कहा गया है। मार्गशीर्ष-महीनेमें फेनी एवं पौष-माहमें दधिकूर्चिका (लस्सी)-का नैवेद्य उत्तम कहा गया है। माघके महीनेमें गायके घीका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये; फाल्गुनके महीनेमें नारियलका नैवेद्य बताया गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें बारह नैवेद्योंसे क्रमशः भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४०—४२॥

मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मतंगी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा और सर्वमंगलरूपिणी—इन नामोंका उच्चारण करते हुए महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् सभी कामनाओंकी सिद्धि तथा व्रतकी पूर्णताके लिये महुएके वृक्षमें स्थित देवेशी महेश्वरीकी इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये॥ ४३—४५॥

कमलके समान नेत्रोंवाली आप जगद्धात्रीको नमस्कार है। आप महामंगलमूर्तिस्वरूपा महेश्वरी महादेवीको नमस्कार है। [हे देवि!] परमा, पापहन्त्री, परमार्गप्रदायिनी, परमेश्वरी, प्रजोत्पत्ति, परब्रह्मस्वरूपिणी, मददात्री, मदोन्मत्ता, मानगम्या, महोन्नता, मनस्विनी, मुनिध्येया, मार्तण्डसहचारिणी—ये आपके नाम हैं। हे

जय लोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयाम्बुदसन्निभे।
महामोहविनाशार्थं पूजितासि सुरासुरैः॥ ४९

यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा।
यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः॥ ५०

समस्वभावा सर्वेशी सर्वसङ्गविवर्जिता।
सङ्गनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा॥ ५१

कङ्कालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी।
माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता॥ ५२

महामन्त्रवती मन्त्रगम्या मन्त्रप्रियङ्करी।
मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी॥ ५३

अश्वत्थवटनिम्बाम्रकपित्थबदरीगते।
पनसार्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणी॥ ५४

दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके।
दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे॥ ५५

एवं स्तवेन देवेशीं पूजनान्ते स्तुवीत ताम्।
व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा नरः॥ ५६

नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवीप्रीतिकरं नरः।
आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि॥ ५७

अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥ ५८

ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत्।
वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिकः॥ ५९

स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः।
पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी॥ ६०

लोकेश्वरि! हे प्राज्ञे! आपकी जय हो। हे प्रलयकालीन मेघके समान प्रतीत होनेवाली! देवता और दानव महामोहके विनाशके लिये आपकी उपासना करते हैं॥ ४६—४९॥

आप यमलोक मिटानेवाली, यमराजपूज्या, यमकी अग्रजा और यमनिग्रहस्वरूपिणी हैं। हे परमाराध्ये! आपको बार-बार नमस्कार है। आप समस्वभावा, सर्वेशी, सर्वसंगविवर्जिता, संगनाशकरी, काम्यरूपा, कारुण्यविग्रहा, कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधुर्यरूपशीला, मधुरस्वरपूजिता, महामन्त्रवती, मन्त्रगम्या, मन्त्रप्रियंकरी, मनुष्य-मानसगमा और मन्मथारिप्रियंकरी—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ५०—५३॥

पीपल, वट, नीम, आम, कैथ एवं बेरमें निवास करनेवाली आप कटहल, मदार, करील, जामुन आदि क्षीरवृक्षस्वरूपिणी हैं। दुग्धवल्लीमें निवास करनेवाली, दयनीय, महान् दयालु, कृपालुता एवं करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा एवं सर्वज्ञजनोंकी प्रियस्वरूपिणि! आपकी जय हो॥ ५४-५५॥

इस प्रकार पूजनके पश्चात् इस स्तोत्रसे उन देवेश्वरीकी स्तुति करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ५६॥

जो मनुष्य भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, उसे किसी प्रकारके शारीरिक या मानसिक रोगका भय नहीं होता और उसे शत्रुओंका भी कोई भय नहीं रहता। इस स्तोत्रके प्रभावसे अर्थ चाहनेवाला अर्थ प्राप्त कर लेता है, धर्मके अभिलाषीको धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, कामीको काम सुलभ हो जाते हैं और मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठसे ब्राह्मण वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्यसे परिपूर्ण और शूद्र परम सुखी हो जाता है। जो मनुष्य श्राद्धके समय मनको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितरोंकी एक कल्पतक स्थायी रहनेवाली अक्षय तृप्ति हो जाती है॥ ५७—६०॥

एवमाराधनं देव्याः समुक्तं सुरपूजितम्।
यः करोति नरो भक्त्या स देवीलोकभाग्भवेत्॥ ६१

देवीपूजनतो विप्र सर्वे कामा भवन्ति हि।
सर्वपापहतिः शुद्धा मतिरन्ते प्रजायते॥ ६२

यत्र तत्र भवेत्पूज्यो मान्यो मानधनेषु च।
जायते जगदम्बायाः प्रसादेन विरञ्चिज॥ ६३

नरकाणां न तस्यास्ति भयं स्वप्नेऽपि कुत्रचित्।
महामायाप्रसादेन पुत्रपौत्रादिवर्धनः॥ ६४

देवीभक्तो भवत्येव नात्र कार्या विचारणा।
इत्येवं ते समाख्यातं नरकोद्धारलक्षणम्॥ ६५

पूजनं हि महादेव्याः सर्वमङ्गलकारकम्।
मधूकपूजनं तद्वन्मासानां क्रमतो मुने॥ ६६

सर्वं समाचरेद्यस्तु पूजनं मधुकाह्वयम्।
न तस्य रोगबाधादिभयमुद्भवतेऽनघ॥ ६७

अथान्यदपि वक्ष्यामि प्रकृतेः पञ्चकं परम्।
नाम्ना रूपेण चोत्पत्त्या जगदानन्ददायकम्॥ ६८

साख्यानं च समाहात्म्यं प्रकृतेः पञ्चकं मुने।
कुतूहलकरं चैव शृणु मुक्तिविधायकम्॥ ६९

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने देवताओंके द्वारा देवीकी की गयी आराधना तथा पूजाके विषयमें आपको भलीभाँति बता दिया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना करता है, वह देवीलोकका अधिकारी हो जाता है॥ ६१॥

हे विप्र! भगवतीके पूजनसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उसकी बुद्धि सभी पापोंसे रहित होकर निर्मल हो जाती है॥ ६२॥

हे ब्रह्मपुत्र! भगवतीके अनुग्रहसे मनुष्य जहाँ-तहाँ पूजित होता है और मानको ही धन माननेवाले पुरुषोंमें सम्माननीय हो जाता है। उसे स्वप्नमें भी नरकोंका भय नहीं रहता। महामाया भगवतीकी कृपासे देवीका भक्त पुत्र तथा पौत्रोंसे सदा सम्पन्न रहता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६३-६४$\frac{१}{२}$॥

[हे नारद!] यह जो मैंने आपसे महादेवीके पूजनका वर्णन किया है, वह नरकसे उद्धार करनेवाला तथा सम्पूर्ण रूपसे मंगलकारी है। हे मुने! चैत्र आदि महीनोंमें क्रमसे महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। हे अनघ! जो मनुष्य मधूक नामक वृक्षमें सम्यक्‌रूपसे पूजन करता है; उसे रोग, बाधा आदिका कोई भय उत्पन्न नहीं होता॥ ६५—६७॥

अब मैं देवी मूलप्रकृतिके श्रेष्ठ पंचकसे सम्बन्धित अन्य प्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ। यह प्रसंग अपने नाम, रूप और प्रादुर्भावसे सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्दित कर देनेवाला है। हे मुने! यह प्रकृतिपंचक कुतूहल उत्पन्न करनेवाला तथा मुक्तिप्रदायक है; आख्यान तथा माहात्म्यसहित इसका श्रवण कीजिये॥ ६८-६९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामष्टमस्कन्धे
देवीपूजनविधिनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

* * *

॥ अष्टमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

नवमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

प्रकृतितत्त्वविमर्श; प्रकृतिके अंश, कला एवं कलांशसे उत्पन्न देवियोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥ १

नारद उवाच

आविर्बभूव सा केन का वा सा ज्ञानिनांवर।
किं वा तल्लक्षणं साधो बभूव पञ्चधा कथम्॥ २

सर्वासां चरितं पूजाविधानं गुण ईप्सितः।
अवतारः कुत्र कस्यास्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३

श्रीनारायण उवाच

प्रकृतेर्लक्षणं वत्स को वा वक्तुं क्षमो भवेत्।
किञ्चित्तथापि वक्ष्यामि यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ ४

प्रकृष्टवाचकः प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टौ प्रकृष्टा या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥ ५

गुणे सत्त्वे प्रकृष्टे च प्रशब्दो वर्तते श्रुतः।
मध्यमे रजसि कृश्च तिशब्दस्तमसि स्मृतः॥ ६

त्रिगुणात्मस्वरूपा या सा च शक्तिसमन्विता।
प्रधाना सृष्टिकरणे प्रकृतिस्तेन कथ्यते॥ ७

प्रथमे वर्तते प्रश्च कृतिश्च सृष्टिवाचकः।
सृष्टेरादौ च या देवी प्रकृतिः सा प्रकीर्तिता॥ ८

श्रीनारायण बोले—सृष्टिविधानमें मूलप्रकृति पाँच प्रकारकी कही गयी है—गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री॥ १॥

नारदजी बोले—हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! आप कृपापूर्वक बतायें कि किस निमित्त उनका आविर्भाव होता है, उनका स्वरूप क्या है, उनका लक्षण क्या है तथा वे किस प्रकार पाँच रूपोंमें प्रकट हुईं। हे साधो! इन सभी स्वरूपोंका चरित्र, पूजाविधान, अभीष्ट गुण तथा किसका अवतार कहाँ हुआ—यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बतायें॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे वत्स! देवी प्रकृतिके सम्पूर्ण लक्षण कौन बता सकता है? फिर भी धर्मराजके मुखसे मैंने जो सुना है, उसे यत्किंचित् रूपसे बताता हूँ॥ ४॥

'प्र' अक्षर प्रकृष्टका वाचक है और 'कृति' से सृष्टिका बोध होता है। जो देवी सृष्टिप्रक्रियामें प्रकृष्ट हैं, वे ही प्रकृति कही गयी हैं। 'प्र' शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण, 'कृ' रजोगुण और 'ति' शब्द तमोगुणका प्रतीक कहा गया है। जो त्रिगुणात्मिका हैं, वे ही सर्वशक्तिसे सम्पन्न होकर प्रधानरूपसे सृष्टिकार्यमें संलग्न रहती हैं, अतः उन्हें 'प्रकृति' या 'प्रधान' कहा जाता है॥ ५—७॥

प्रथमका बोधक 'प्र' और सृष्टिवाचक 'कृति' शब्दके संयोगसे सृष्टिके प्रारम्भमें जो देवी विद्यमान रहती हैं, उन्हें प्रकृति कहा गया है॥ ८॥

योगेनात्मा सृष्टिविधौ द्विधारूपो बभूव सः।
पुमांश्च दक्षिणार्धाङ्गो वामार्धा प्रकृतिः स्मृता॥ ९

सा च ब्रह्मस्वरूपा च नित्या सा च सनातनी।
यथात्मा च तथा शक्तिर्यथाग्नौ दाहिका स्थिता॥ १०

अत एव हि योगीन्द्रैः स्त्रीपुम्भेदो न मन्यते।
सर्वं ब्रह्ममयं ब्रह्मञ्छश्वत्सदपि नारद॥ ११

स्वेच्छामयस्येच्छया च श्रीकृष्णस्य सिसृक्षया।
साविर्बभूव सहसा मूलप्रकृतिरीश्वरी॥ १२

तदाज्ञया पञ्चविधा सृष्टिकर्मविभेदिका।
अथ भक्तानुरोधाद्वा भक्तानुग्रहविग्रहा॥ १३

गणेशमाता दुर्गा या शिवरूपा शिवप्रिया।
नारायणी विष्णुमाया पूर्णब्रह्मस्वरूपिणी॥ १४

ब्रह्मादिदेवैर्मुनिभिर्मनुभिः पूजिता स्तुता।
सर्वाधिष्ठातृदेवी सा शर्वरूपा सनातनी॥ १५

धर्मसत्यपुण्यकीर्तिर्यशोमङ्गलदायिनी।
सुखमोक्षहर्षदात्री शोकार्तिदुःखनाशिनी॥ १६

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणा।
तेजःस्वरूपा परमा तदधिष्ठातृदेवता॥ १७

सर्वशक्तिस्वरूपा च शक्तिरीशस्य सन्ततम्।
सिद्धेश्वरी सिद्धिरूपा सिद्धिदा सिद्धिरीश्वरी॥ १८

बुद्धिर्निद्रा क्षुत्पिपासा छाया तन्द्रा दया स्मृतिः।
जातिः क्षान्तिश्च भ्रान्तिश्च शान्तिः कान्तिश्च चेतना॥ १९

तुष्टिः पुष्टिस्तथा लक्ष्मीर्धृतिर्माया तथैव च।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा कृष्णस्य परमात्मनः॥ २०

सृष्टिके लिये योगमायाका आश्रय लेकर परमात्मा दो रूपोंमें विभक्त हो गये, जिनका दक्षिणार्ध भाग पुरुष और वामार्ध भाग प्रकृति कहा जाता है॥ ९॥

वे ब्रह्मस्वरूपा हैं, नित्या हैं और सनातनी हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति अभिन्नरूपसे स्थित है, वैसे ही परमात्मा और प्रकृतिरूपा शक्ति भी अभिन्न हैं॥ १०॥

हे ब्रह्मन्! हे नारद! इसीलिये योगीजन परमात्मामें स्त्री और पुरुषभावसे भेद नहीं मानते और सब कुछ ब्रह्ममय है—ऐसा निरन्तर चिन्तन करते हैं॥ ११॥

स्वतन्त्रभाववाले श्रीकृष्णकी इच्छासे वे मूलप्रकृति भगवती सृष्टि करनेकी कामनासे सहसा प्रकट हो गयीं। उनकी आज्ञासे भिन्न-भिन्न कर्मोंकी अधिष्ठात्री होकर एवं भक्तोंके अनुरोधसे उनपर अनुग्रह करनेहेतु विग्रह धारण करनेवाली वे पाँच रूपोंमें अवतरित हुईं॥ १२-१३॥

जो गणेशमाता दुर्गा शिवप्रिया तथा शिवरूपा हैं, वे ही विष्णुमाया नारायणी हैं तथा पूर्णब्रह्म स्वरूपा हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनि तथा मनुगण सभी उनकी पूजा-स्तुति करते हैं। वे सबकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं, सनातनी हैं तथा शिवस्वरूपा हैं॥ १४-१५॥

वे धर्म, सत्य, पुण्य तथा कीर्तिस्वरूपा हैं; वे यश, कल्याण, सुख, प्रसन्नता और मोक्ष भी देती हैं तथा शोक, दुःख और संकटोंका नाश करनेवाली हैं॥ १६॥

वे अपनी शरणमें आये हुए दीन और आर्तजनोंकी निरन्तर रक्षा करती हैं। वे ज्योतिस्वरूपा हैं, उनका विग्रह परम तेजस्वी है और वे भगवान् श्रीकृष्णके तेजकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ १७॥

वे सर्वशक्तिस्वरूपा हैं और महेश्वरकी शाश्वत शक्ति हैं। वे ही साधकोंको सिद्धि देनेवाली, सिद्धिरूपा, सिद्धेश्वरी, सिद्धि तथा ईश्वरी हैं। बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, धृति तथा माया—ये इनके नाम हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णके पास सर्वशक्तिस्वरूपा होकर स्थित रहती हैं॥ १८—२०॥

उक्तः श्रुतौ श्रुतगुणश्चातिस्वल्पो यथागमम्।
गुणोऽस्त्यनन्तोऽनन्ताया अपरां च निशामय॥ २१

शुद्धसत्त्वस्वरूपा या पद्मा सा परमात्मनः।
सर्वसम्पत्स्वरूपा सा तदधिष्ठातृदेवता॥ २२

कान्तातिदान्ता शान्ता च सुशीला सर्वमङ्गला।
लोभमोहकामरोषमदाहङ्कारवर्जिता ॥ २३

भक्तानुरक्ता पत्युश्च सर्वाभ्यश्च पतिव्रता।
प्राणतुल्या भगवतः प्रेमपात्रं प्रियंवदा॥ २४

सर्वसस्यात्मिका देवी जीवनोपायरूपिणी।
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे पतिसेवारता सती॥ २५

स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहेषु गृहलक्ष्मीश्च मर्त्यानां गृहिणां तथा॥ २६

सर्वप्राणिषु द्रव्येषु शोभारूपा मनोहरा।
कीर्तिरूपा पुण्यवतां प्रभारूपा नृपेषु च॥ २७

वाणिज्यरूपा वणिजां पापिनां कलहाङ्कुरा।
दयारूपा च कथिता वेदोक्ता सर्वसम्मता॥ २८

सर्वपूज्या सर्ववन्द्या चान्यां मत्तो निशामय।
वाग्बुद्धिविद्याज्ञानाधिष्ठात्री च परमात्मनः॥ २९

सर्वविद्यास्वरूपा या सा च देवी सरस्वती।
सा बुद्धिः कविता मेधा प्रतिभा स्मृतिदा नृणाम्॥ ३०

नानाप्रकारसिद्धान्तभेदार्थकलना मता।
व्याख्याबोधस्वरूपा च सर्वसन्देहभञ्जिनी॥ ३१

विचारकारिणी ग्रन्थकारिणी शक्तिरूपिणी।
स्वरसङ्गीतसन्धानतालकारणरूपिणी ॥ ३२

श्रुतियोंमें इनके प्रसिद्ध गुणोंका थोड़ेमें वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमोंमें भी वर्णन उपलब्ध है। उन अनन्ताके अनन्त गुण हैं। अब दूसरे स्वरूपके विषयमें सुनिये॥ २१॥

जो शुद्ध सत्त्वरूपा महालक्ष्मी हैं, वे भी परमात्माकी ही शक्ति हैं, वे सर्वसम्पत्स्वरूपिणी तथा सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ २२॥

वे शोभामयी, अति संयमी, शान्त, सुशील, सर्वमंगलरूपा हैं और लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद, अहंकारादिसे रहित हैं॥ २३॥

भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली, अपने स्वामीके लिये सबसे अधिक पतिव्रता, प्रभुके लिये प्राणतुल्य, उनकी प्रेमपात्र तथा प्रियवादिनी, सभी धन-धान्यकी अधिष्ठात्री तथा आजीविकास्वरूपिणी वे देवी सती महालक्ष्मी वैकुण्ठमें अपने स्वामी भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर रहती हैं॥ २४-२५॥

वे स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंमें राजलक्ष्मी, गृहस्थ मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी और सभी प्राणियों तथा पदार्थोंमें शोभारूपसे विराजमान रहती हैं। वे मनोहर हैं। वे पुण्यवान् लोगोंमें कीर्तिरूपसे, राजपुरुषोंमें प्रभारूपसे, व्यापारियोंमें वाणिज्यरूपसे तथा पापियोंमें कलहरूपसे विराजती हैं। वे दयारूपा कही गयी हैं, वेदोंमें उनका निरूपण हुआ है, वे सर्वमान्य, सर्वपूज्य तथा सबके लिये वन्दनीय हैं। अब आप अन्य स्वरूपके विषयमें मुझसे सुनिये॥ २६—२८½ ॥

जो परमात्माकी वाणी, बुद्धि, विद्या तथा ज्ञानकी अधिष्ठात्री हैं; सभी विद्याओंकी विग्रहरूपा हैं, वे देवी सरस्वती हैं। वे मनुष्योंको बुद्धि, कवित्व शक्ति, मेधा, प्रतिभा और स्मृति प्रदान करती हैं। वे भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके भेद-निरूपणका सामर्थ्य रखनेवाली, व्याख्या और बोधरूपिणी तथा सारे सन्देहोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं। वे विचारकारिणी, ग्रन्थकारिणी, शक्तिरूपिणी तथा स्वर-संगीत-सन्धान तथा तालकी कारणरूपा हैं। वे ही विषय, ज्ञान तथा वाणीस्वरूपा हैं; सभी प्राणियोंकी संजीवनी शक्ति हैं; वे व्याख्या और वाद-विवाद करनेवाली हैं; शान्तिस्वरूपा हैं तथा वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली हैं। वे शुद्ध

विषयज्ञानवाग्रूपा प्रतिविश्वोपजीविनी।
व्याख्यावादकरी शान्ता वीणापुस्तकधारिणी॥ ३३

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सुशीला श्रीहरिप्रिया।
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसन्निभा॥ ३४

यजन्ती परमात्मानं श्रीकृष्णं रत्नमालया।
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनाम्॥ ३५

सिद्धिविद्यास्वरूपा च सर्वसिद्धिप्रदा सदा।
यया विना तु विप्रौघो मूको मृतसमः सदा॥ ३६

देवी तृतीया गदिता श्रुत्युक्ता जगदम्बिका।
यथागमं यथाकिञ्चिदपरां त्वं निबोध मे॥ ३७

माता चतुर्णां वर्णानां वेदाङ्गानां च छन्दसाम्।
सन्ध्यावन्दनमन्त्राणां तन्त्राणां च विचक्षणा॥ ३८

द्विजातिजातिरूपा च जपरूपा तपस्विनी।
ब्रह्मण्यतेजोरूपा च सर्वसंस्काररूपिणी॥ ३९

पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया।
तीर्थानि यस्याः संस्पर्शं वाञ्छन्ति ह्यात्मशुद्धये॥ ४०

शुद्धस्फटिकसंकाशा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
परमानन्दरूपा च परमा च सनातनी॥ ४१

परब्रह्मस्वरूपा च निर्वाणपददायिनी।
ब्रह्मतेजोमयी शक्तिस्तदधिष्ठातृदेवता॥ ४२

यत्पादरजसा पूतं जगत्सर्वं च नारद।
देवी चतुर्थी कथिता पञ्चमीं वर्णयामि ते॥ ४३

पञ्चप्राणाधिदेवी या पञ्चप्राणस्वरूपिणी।
प्राणाधिकप्रियतमा सर्वाभ्यः सुन्दरी परा॥ ४४

सर्वयुक्ता च सौभाग्यमानिनी गौरवान्विता।
वामाङ्गार्धस्वरूपा च गुणेन तेजसा समा॥ ४५

परावरा सारभूता परमाद्या सनातनी।
परमानन्दरूपा च धन्या मान्या च पूजिता॥ ४६

सत्त्वगुणमयी, सुशील तथा श्रीहरिकी प्रिया हैं। उनकी कान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और श्वेत कमलके समान है। रत्नमाला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णका जप करती हुई वे साक्षात् तपःस्वरूपा हैं तथा तपस्वियोंको उनकी तपस्याका फल प्रदान करनेवाली हैं। वे सिद्धिविद्यास्वरूपा और सदा सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। जिनकी कृपाके बिना विप्रसमूह सदा मूक और मृततुल्य रहता है, उन श्रुतिप्रतिपादित तथा आगममें वर्णित तृतीया शक्ति जगदम्बिका भगवती सरस्वतीका यत्किंचित् वर्णन मैंने किया। अब अन्य शक्तिके विषयमें आप मुझसे सुनिये॥ २९—३७॥

वे विचक्षण सावित्री चारों वर्णों, वेदांगों, छन्दों, सन्ध्यावन्दनके मन्त्रों एवं समस्त तन्त्रोंकी जननी हैं। वे द्विजातियोंकी जातिरूपा हैं; जपरूपिणी, तपस्विनी, ब्राह्मणोंकी तेजरूपा और सर्वसंस्काररूपिणी हैं॥ ३८-३९॥

वे ब्रह्मप्रिया सावित्री और गायत्री परम पवित्र रूपसे विराजमान रहती हैं, तीर्थ भी अपनी शुद्धिके लिये जिनके स्पर्शकी इच्छा करते हैं॥ ४०॥

वे शुद्ध स्फटिककी कान्तिवाली, शुद्धसत्त्वगुणमयी, सनातनी, पराशक्ति तथा परमानन्दरूपा हैं। हे नारद! वे परब्रह्मस्वरूपा, मुक्तिप्रदायिनी, ब्रह्मतेजोमयी, शक्तिस्वरूपा तथा शक्तिकी अधिष्ठातृ-देवता भी हैं, जिनके चरणरजसे समस्त संसार पवित्र हो जाता है। इस प्रकार चौथी शक्तिका वर्णन कर दिया। अब पाँचवीं शक्तिके विषयमें आपसे कहता हूँ॥ ४१—४३॥

जो पंच प्राणोंकी अधिष्ठात्री, पंच प्राणस्वरूपा, सभी शक्तियोंमें परम सुन्दरी, परमात्माके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम, सर्वगुणसम्पन्न, सौभाग्यमानिनी, गौरवमयी, श्रीकृष्णकी वामांगार्धस्वरूपा और गुण-तेजमें परमात्माके समान ही हैं; वे परावरा, सारभूता, परमा, आदिरूपा, सनातनी, परमानन्दमयी, धन्य, मान्य और पूज्य हैं॥ ४४—४६॥

रासक्रीडाधिदेवी श्रीकृष्णस्य परमात्मनः।
रासमण्डलसम्भूता रासमण्डलमण्डिता॥ ४७

रासेश्वरी सुरसिका रासावासनिवासिनी।
गोलोकवासिनी देवी गोपीवेषविधायिका॥ ४८

परमाह्लादरूपा च सन्तोषहर्षरूपिणी।
निर्गुणा च निराकारा निर्लिप्तात्मस्वरूपिणी॥ ४९

निरीहा निरहङ्कारा भक्तानुग्रहविग्रहा।
वेदानुसारिध्यानेन विज्ञाता सा विचक्षणैः॥ ५०

दृष्टिदृष्टा न सा चेशैः सुरेन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः।
वह्निशुद्धांशुकधरा नानालङ्कारभूषिता॥ ५१

कोटिचन्द्रप्रभा पुष्टसर्वश्रीयुक्तविग्रहा।
श्रीकृष्णभक्तिदास्यैककरा च सर्वसम्पदाम्॥ ५२

अवतारे च वाराहे वृषभानुसुता च या।
यत्पादपद्मसंस्पर्शात्पवित्रा च वसुन्धरा॥ ५३

ब्रह्मादिभिरदृष्टा या सर्वैर्दृष्टा च भारते।
स्त्रीरत्नसारसम्भूता कृष्णवक्षःस्थले स्थिता॥ ५४

यथाम्बरे नवघने लोला सौदामनी मुने।
षष्टिवर्षसहस्राणि प्रतप्तं ब्रह्मणा पुरा॥ ५५

यत्पादपद्मनखरदृष्टये चात्मशुद्धये।
न च दृष्टं च स्वप्नेऽपि प्रत्यक्षस्यापि का कथा॥ ५६

तेनैव तपसा दृष्टा भुवि वृन्दावने वने।
कथिता पञ्चमी देवी सा राधा च प्रकीर्तिता॥ ५७

अंशरूपाः कलारूपाः कलांशांशांशसम्भवाः।
प्रकृतेः प्रतिविश्वेषु देव्यश्च सर्वयोषितः॥ ५८

परिपूर्णतमाः पञ्च विद्यादेव्यः प्रकीर्तिताः।
या याः प्रधानांशरूपा वर्णयामि निशामय॥ ५९

वे परमात्मा श्रीकृष्णके रासक्रीडाकी अधिष्ठातृदेवी हैं, रासमण्डलमें उनका आविर्भाव हुआ है, वे रासमण्डलसे सुशोभित हैं; वे देवी रासेश्वरी, सुरसिका, रासरूपी आवासमें निवास करनेवाली, गोलोकमें निवास करनेवाली, गोपीवेष धारण करनेवाली, परम आह्लाद-स्वरूपा, सन्तोष तथा हर्षरूपा, आत्मस्वरूपा, निर्गुण, निराकार और सर्वथा निर्लिप्त हैं॥ ४७—४९॥

वे इच्छारहित, अहंकाररहित और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। बुद्धिमान् लोगोंने वेदविहित मार्गसे ध्यान करके उन्हें जाना है॥ ५०॥

वे ईश्वरों, देवेन्द्रों और मुनिश्रेष्ठोंके दृष्टिपथमें भी नहीं आतीं। वे अग्निके समान शुद्ध वस्त्रोंको धारण करनेवाली, विविध अलंकारोंसे विभूषित, कोटिचन्द्रप्रभासे युक्त और पुष्ट तथा समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित विग्रहवाली हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्वितीय दास्यभक्ति तथा सम्पदा प्रदान करनेवाली हैं॥ ५१-५२॥

वाराहकल्पमें उन्होंने [व्रजमण्डलमें] वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया, जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वी पवित्र हुई। ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भी जो अदृष्ट थीं, वे भारतवर्षमें सर्वसाधारणको दृष्टिगत हुईं। हे मुने! स्त्रीरत्नोंमें सारस्वरूप वे भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें उसी प्रकार सुशोभित हैं, जैसे आकाशमण्डलमें नवीन मेघोंके बीच विद्युत्-लता सुशोभित होती है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने आत्मशुद्धिहेतु जिनके चरणकमलके नखके दर्शनके लिये साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की, किंतु स्वप्नमें भी नखज्योतिका दर्शन नहीं हुआ; साक्षात् दर्शनकी तो बात ही क्या? उन्हीं ब्रह्माने पृथ्वीतलके वृन्दावनमें तपस्याके द्वारा उनका दर्शन किया। मैंने पाँचवीं देवीका वर्णन कर दिया; वे ही राधा कही गयी हैं॥ ५३—५७॥

प्रत्येक भुवनमें सभी देवियाँ और नारियाँ इन्हीं प्रकृतिदेवीकी अंश, कला, कलांश अथवा अंशांशसे उत्पन्न हैं॥ ५८॥

भगवतीके पूर्णावताररूपमें जो-जो प्रधान अंशस्वरूपा पाँच विद्यादेवियाँ कही गयी हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ; सुनिये॥ ५९॥

प्रधानांशस्वरूपा सा गङ्गा भुवनपावनी।
विष्णुविग्रहसम्भूता द्रवरूपा सनातनी॥ ६०

पापिपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी।
सुखस्पर्शा स्नानपानैर्निर्वाणपददायिनी॥ ६१

गोलोकस्थानप्रस्थानसुखसोपानरूपिणी ।
पवित्ररूपा तीर्थानां सरितां च परावरा॥ ६२

शम्भुमौलिजटामेरुमुक्तापंक्तिस्वरूपिणी ।
तपःसम्पादिनी सद्यो भारतेषु तपस्विनाम्॥ ६३

चन्द्रपद्मक्षीरनिभा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
निर्मला निरहङ्कारा साध्वी नारायणप्रिया॥ ६४

प्रधानांशस्वरूपा च तुलसी विष्णुकामिनी।
विष्णुभूषणरूपा च विष्णुपादस्थिता सती॥ ६५

तपःसंकल्पपूजादिसङ्घसम्पादिनी मुने।
सारभूता च पुष्पाणां पवित्रा पुण्यदा सदा॥ ६६

दर्शनस्पर्शनाभ्यां च सद्यो निर्वाणदायिनी।
कलौ कलुषशुष्केध्मदहनायाग्निरूपिणी॥ ६७

यत्पादपद्मसंस्पर्शात्सद्यः पूता वसुन्धरा।
यत्स्पर्शदर्शने चैवेच्छन्ति तीर्थानि शुद्धये॥ ६८

यया विना च विश्वेषु सर्वकर्म च निष्फलम्।
मोक्षदा या मुमुक्षूणां कामिनी सर्वकामदा॥ ६९

कल्पवृक्षस्वरूपा या भारते वृक्षरूपिणी।
भारतीनां प्रीणनाय जाता या परदेवता॥ ७०

प्रधानांशस्वरूपा या मनसा कश्यपात्मजा।
शङ्करप्रियशिष्या च महाज्ञानविशारदा॥ ७१

लोकपावनी गंगा प्रधान अंशस्वरूपा हैं, वे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई हैं तथा सनातनरूपसे ब्रह्मद्रव होकर विराजती हैं॥ ६०॥

गंगा पापियोंके पापरूप ईंधनके दाहके लिये धधकती अग्निके समान हैं; किंतु [भक्तोंके लिये] सुखस्पर्शिणी तथा स्नान-आचमनादिसे मुक्तिपद-प्रदायिनी हैं॥ ६१॥

गंगा गोलोकादि दिव्य लोकोंमें जानेके लिये सुखद सीढ़ीके समान, तीर्थोंको पावन करनेवाली तथा नदियोंमें श्रेष्ठतम हैं। भगवान् शंकरके जटाजूटमें मुक्तामालकी भाँति सुशोभित होनेवाली वे गंगा भारतवर्षमें तपस्वीजनोंकी तपस्याको शीघ्र सफल करती रहती हैं। उनका जल चन्द्रमा, दुग्ध और श्वेत कमलके समान धवल है और वे शुद्ध सत्त्वरूपिणी हैं। वे निर्मल, निरहंकार, साध्वी और नारायणप्रिया हैं॥ ६२—६४॥

विष्णुवल्लभा तुलसी भी भगवतीकी प्रधानांशस्वरूपा हैं। वे सती सदा भगवान् विष्णुके चरणपर विराजती हैं और उनकी आभूषणरूपा हैं। हे मुने! उनसे तप, संकल्प और पूजादिके सभी सत्कर्मोंका सम्पादन होता है, वे सभी पुष्पोंकी सारभूता हैं तथा सदैव पवित्र एवं पुण्यप्रदा हैं॥ ६५-६६॥

वे अपने दर्शन एवं स्पर्शसे शीघ्र ही मोक्षपद देनेवाली हैं। कलिके पापरूप शुष्क ईंधनको जलानेके लिये वे अग्निस्वरूपा हैं। जिनके चरणकमलके संस्पर्शसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है और तीर्थ भी जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे स्वयंको पवित्र करनेके लिये कामना करते हैं॥ ६७-६८॥

जिनके बिना सम्पूर्ण जगत्में सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। जो मुमुक्षुजनोंको मोक्ष देनेवाली हैं, कामिनी हैं और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाली हैं। कल्पवृक्षस्वरूपा जो परदेवता भारतीयोंको प्रसन्न करनेके लिये भारतवर्षमें वृक्षरूपमें प्रादुर्भूत हुईं॥ ६९—७०॥

कश्यपकी पुत्री मनसादेवी भी शक्तिके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं। वे भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या हैं तथा अत्यन्त ज्ञानविशारद हैं। नागराज अनन्तकी

नागेश्वरस्यानन्तस्य भगिनी नागपूजिता।
नागेश्वरी नागमाता सुन्दरी नागवाहिनी॥ ७२

नागेन्द्रगणसंयुक्ता नागभूषणभूषिता।
नागेन्द्रवन्दिता सिद्धा योगिनी नगशायिनी॥ ७३

विष्णुरूपा विष्णुभक्ता विष्णुपूजापरायणा।
तपःस्वरूपा तपसां फलदात्री तपस्विनी॥ ७४

दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च तपस्तप्त्वा च या हरेः।
तपस्विनीषु पूज्या च तपस्विषु च भारते॥ ७५

सर्वमन्त्राधिदेवी च ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ब्रह्मभावनतत्परा॥ ७६

जरत्कारुमुनेः पत्नी कृष्णांशस्य पतिव्रता।
आस्तीकस्य मुनेर्माता प्रवरस्य तपस्विनाम्॥ ७७

प्रधानांशस्वरूपा या देवसेना च नारद।
मातृकासु पूज्यतमा सा षष्ठी च प्रकीर्तिता॥ ७८

पुत्रपौत्रादिदात्री च धात्री त्रिजगतां सती।
षष्ठांशरूपा प्रकृतेस्तेन षष्ठी प्रकीर्तिता॥ ७९

स्थाने शिशूनां परमा वृद्धरूपा च योगिनी।

पूजा द्वादशमासेषु यस्या विश्वेषु सन्ततम्॥ ८०

पूजा च सूतिकागारे पुरा षष्ठदिने शिशोः।

एकविंशतिमे चैव पूजा कल्याणहेतुकी॥ ८१

मुनिभिर्नमिता चैषा नित्यकामाप्यतः परा।
मातृका च दयारूपा शश्वद्रक्षणकारिणी॥ ८२

जले स्थले चान्तरिक्षे शिशूनां सद्मगोचरे।
प्रधानांशस्वरूपा च देवीमङ्गलचण्डिका॥ ८३

प्रकृतेर्मुखसम्भूता सर्वमङ्गलदा सदा।
सृष्टौ मङ्गलरूपा च संहारे कोपरूपिणी॥ ८४

बहन, नागोंसे पूजित नागमाता, नागोंपर शासन करनेवाली, सुन्दरी तथा नागवाहिनी हैं। वे बड़े-बड़े नागगणोंसे समन्वित, नागरूपी आभूषणसे भूषित, नागराजोंसे वन्दित, सिद्धा, योगिनी तथा नागोंपर शयन करनेवाली हैं॥ ७१—७३॥

वे भगवान् विष्णुकी परम भक्त हैं, वे विष्णुपूजामें लगी रहती हैं और विष्णुरूपा हैं। वे तपरूपिणी हैं, तपस्वियोंको उनके तपका फल प्रदान करती हैं और तपस्विनी हैं। दिव्य तीन लाख वर्षोंतक भगवान् श्रीहरिकी तपस्यामें निरत रहकर वे भारतवर्षके तपस्वियों तथा तपस्विनियोंमें पूज्य हुईं॥ ७४-७५॥

सभी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। ब्रह्मध्यानमें सदा निरत वे परमा ब्रह्मस्वरूपा ही हैं। वे पतिव्रता, श्रीकृष्णके अंशसे प्रकट महामुनि जरत्कारुकी पत्नी और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ आस्तीक मुनिकी माता हैं॥ ७६-७७॥

हे नारद! भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा जो मातृकाओंमें पूज्यतम देवसेना हैं, वे ही षष्ठी नामसे कही गयी हैं॥ ७८॥

वे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करनेवाली, तीनों लोकोंकी जननी तथा पतिव्रता हैं। वे मूलप्रकृतिकी षष्ठांशस्वरूपा हैं, इसलिये षष्ठी कही गयी हैं॥ ७९॥

शिशुओंके जन्मस्थानपर ये योगिनी परम वृद्धारूपमें विराजमान रहती हैं। समस्त जगत्में बारह महीने सदा इनकी पूजा होती रहती है। सूतिकागृहमें बालकके जन्मके छठे दिन तथा इक्कीसवें दिन उनकी पूजा कल्याणकारिणी होती है॥ ८०-८१॥

ये षष्ठीमाता मुनियोंसे वन्दित, नित्य कामना पूर्ण करनेवाली, दयारूपा एवं सदा रक्षा करनेवाली पराशक्ति हैं। जल, थल, आकाश और गृहमें भी बालकोंके कल्याणमें सदा निरत रहती हैं॥ ८२½॥

मंगलचण्डिका भी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं। वे प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं और सदा सभी प्रकारके मंगल प्रदान करनेवाली हैं। उत्पत्तिके समय वे मंगलरूपा तथा संहारके समय

तेन मङ्गलचण्डी सा पण्डितैः परिकीर्तिता।
प्रतिमङ्गलवारेषु प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ ८५

पुत्रपौत्रधनैश्वर्ययशोमङ्गलदायिनी।
परितुष्टा सर्ववाञ्छाप्रदात्री सर्वयोषिताम्॥ ८६

रुष्टा क्षणेन संहर्तुं शक्ता विश्वं महेश्वरी।
प्रधानांशस्वरूपा सा काली कमललोचना॥ ८७

दुर्गाललाटसम्भूता रणे शुम्भनिशुम्भयोः।
दुर्गार्धांशस्वरूपा सा गुणेन तेजसा समा॥ ८८

कोटिसूर्यसमाजुष्टपुष्टजाज्वलविग्रहा।
प्रधाना सर्वशक्तीनां बला बलवती परा॥ ८९

सर्वसिद्धिप्रदा देवी परमा योगरूपिणी।
कृष्णभक्ता कृष्णतुल्या तेजसा विक्रमैर्गुणैः॥ ९०

कृष्णभावनया शश्वत्कृष्णवर्णा सनातनी।
संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डं शक्ता निःश्वासमात्रतः॥ ९१

रणं दैत्यैः समं तस्याः क्रीडया लोकशिक्षया।
धर्मार्थकाममोक्षांश्च दातुं शक्ता च पूजिता॥ ९२

ब्रह्मादिभिः स्तूयमाना मुनिभिर्मनुभिर्नरैः।

प्रधानांशस्वरूपा सा प्रकृतेश्च वसुन्धरा॥ ९३

आधाररूपा सर्वेषां सर्वसस्या प्रकीर्तिता।
रत्नाकरा रत्नगर्भा सर्वरत्नाकराश्रया॥ ९४

प्रजाभिश्च प्रजेशैश्च पूजिता वन्दिता सदा।
सर्वोपजीव्यरूपा च सर्वसम्पद्विधायिनी॥ ९५

यया विना जगत्सर्वं निराधारं चराचरम्।

कोपरूपिणी हैं। इसीलिये विद्वानोंने इन्हें मंगलचण्डी कहा है। प्रत्येक मंगलवारको सर्वत्र इनकी पूजा होती है। ये पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, यश और मंगल प्रदान करती हैं। प्रसन्न होकर ये सभी नारियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। वे महेश्वरी रुष्ट होनेपर क्षणमात्रमें समस्त सृष्टिका संहार करनेमें सक्षम हैं॥ ८३—८६$\frac{१}{२}$ ॥

पराशक्तिके प्रधान अंशरूपसे कमललोचना भगवती कालीका प्राकट्य हुआ है। वे शुम्भ-निशुम्भके साथ युद्धकालमें जगदम्बा दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई हैं एवं दुर्गाके अर्धांशसे उत्पन्न होकर उन्हींके समान गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। वे करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, पुष्ट तथा उज्ज्वल विग्रहवाली हैं। वे बलशालिनी पराशक्ति सभी शक्तियोंमें प्रधान रूपसे विराजमान हैं। परम योगरूपिणी वे देवी सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। वे प्रभु श्रीकृष्णकी अनुगामिनी हैं और अपने तेज, पराक्रम तथा गुणोंमें श्रीकृष्णके समान ही हैं॥ ८७—९० ॥

श्रीकृष्णके चिन्तनमें संलग्न रहनेके कारण वे सनातनी कृष्णवर्णा हो गयीं। अपने निःश्वासमात्रसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें वे समर्थ हैं। फिर भी लोकशिक्षणके लिये लीलापूर्वक उन्होंने दैत्योंसे युद्ध किया। पूजासे प्रसन्न होकर वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें समर्थ हैं; ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, मनुगण तथा सभी मनुष्य उनकी उपासना करते हैं॥ ९१-९२$\frac{१}{२}$ ॥

भगवती प्रकृतिके प्रधान अंशरूपसे वे वसुन्धरादेवी प्रकट हुई हैं। वे सभी प्राणी-पदार्थोंकी आधाररूपा हैं तथा सभी प्रकारके शस्योंके स्वरूपवाली कही गयी हैं। वे रत्नोंकी निधि हैं। रत्नगर्भा तथा समस्त समुद्रोंकी आश्रयरूपा हैं। वे राजा-प्रजा सभीसे सदा पूजित तथा वन्दित हैं, वे सभीकी आश्रय तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली हैं, जिनके बिना चराचर सम्पूर्ण जगत् निराधार हो जाता है॥ ९३—९५$\frac{१}{२}$ ॥

प्रकृतेश्च कला या यास्ता निबोध मुनीश्वर॥ ९६
यस्य यस्य च या पत्नी तत्सर्वं वर्णयामि ते।
स्वाहादेवी वह्निपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ ९७
यया विना हविर्दानं न ग्रहीतुं सुराः क्षमाः।
दक्षिणा यज्ञपत्नी च दीक्षा सर्वत्र पूजिता॥ ९८
यया विना हि विश्वेषु सर्वकर्म हि निष्फलम्।
स्वधा पितॄणां पत्नी च मुनिभिर्मनुभिर्नरैः॥ ९९
पूजिता पितृदानं हि निष्फलं च यया विना।
स्वस्तिदेवी वायुपत्नी प्रतिविश्वेषु पूजिता॥ १००
आदानं च प्रदानं च निष्फलं च यया विना।
पुष्टिर्गणपतेः पत्नी पूजिता जगतीतले॥ १०१
यया विना परिक्षीणाः पुमांसो योषितोऽपि च।
अनन्तपत्नी तुष्टिश्च पूजिता वन्दिता भवेत्॥ १०२
यया विना न सन्तुष्टाः सर्वलोकाश्च सर्वतः।
ईशानपत्नी सम्पत्तिः पूजिता च सुरैर्नरैः॥ १०३
सर्वे लोका दरिद्राश्च विश्वेषु च यया विना।
धृतिः कपिलपत्नी च सर्वैः सर्वत्र पूजिता॥ १०४
सर्वे लोका अधैर्याश्च जगत्सु च यया विना।
सत्यपत्नी सती मुक्तैः पूजिता च जगत्प्रिया॥ १०५
यया विना भवेल्लोको बन्धुतारहितः सदा।
मोहपत्नी दया साध्वी पूजिता च जगत्प्रिया॥ १०६
सर्वे लोकाश्च सर्वत्र निष्फलाश्च यया विना।
पुण्यपत्नी प्रतिष्ठा सा पूजिता पुण्यदा सदा॥ १०७
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतसमं मुने।
सुकर्मपत्नी संसिद्धा कीर्तिर्धन्यैश्च पूजिता॥ १०८
यया विना जगत्सर्वं यशोहीनं मृतं यथा।
क्रिया तूद्योगपत्नी च पूजिता सर्वसम्मता॥ १०९

हे मुनीश्वर! अब आप देवी प्रकृतिकी जो-जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनिये। जिस-जिस देवताकी जो भार्या हैं, उन सबका मैं वर्णन करता हूँ। सभी लोकोंमें पूज्या स्वाहा-देवी अग्निदेवकी भार्या हैं, जिनके बिना देवगण यज्ञभाग प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाते। यज्ञदेवकी पत्नी दीक्षा तथा दक्षिणा हैं, जो सर्वत्र पूजित हैं तथा जिनके बिना लोकोंमें किये गये सभी कर्म निष्फल रहते हैं। पितृदेवोंकी पत्नी स्वधादेवी हैं। ये मुनियों, मनुओं तथा मनुष्योंसे पूजित हैं; जिनके बिना किया गया कोई भी पितृकर्म निष्फल रहता है। वायुदेवकी पत्नी स्वस्तिदेवी हैं, प्रत्येक लोकमें उनकी पूजा होती है। उनके बिना किया गया आदान-प्रदान निष्फल रहता है॥ ९६—१००½ ॥

भगवान् गणपतिकी पत्नी पुष्टिदेवी हैं, जो समस्त संसारमें पूजित हैं और जिनके बिना नर-नारी क्षीण शरीरवाले रहते हैं। भगवान् अनन्तकी पत्नी तुष्टि हैं, वे सभीसे वन्दित तथा पूजित हैं, जिनके बिना संसारमें सभी लोग सन्तुष्ट नहीं रहते। ईशानदेवकी पत्नी सम्पत्तिदेवी हैं, जिनकी सभी देव-मानव पूजा करते हैं तथा जिनके बिना संसारमें सभी लोग दरिद्र रहते हैं॥ १०१—१०३½ ॥

धृतिदेवी भगवान् कपिलकी पत्नी हैं, वे सभीके द्वारा सर्वत्र पूजित हैं, संसारमें जिनके बिना सभी लोग धैर्यहीन रहते हैं। सतीदेवी सत्यदेवकी पत्नी हैं जिन्हें सभी चाहते हैं; वे मुक्तलोगोंके द्वारा पूजित हैं और जगत्प्रिय हैं। इनके बिना लोग बन्धुत्वविहीन हो जाते हैं। दयादेवी मोहकी पत्नी हैं, वे साध्वी सबसे पूजित और जगत्प्रिय हैं। जिनके बिना सभी लोग सर्वत्र निष्फल हो जाते हैं। प्रतिष्ठादेवी पुण्यदेवकी पत्नी हैं। वे पुण्यदायिनी तथा सर्वत्र पूजित हैं, जिनके अभावमें सभी प्राणी जीवित रहते भी मृतकतुल्य हो जाते हैं। कीर्तिदेवी सुकर्मदेवकी पत्नी कही गयी हैं, जिनकी पूजा सौभाग्यशाली लोग करते हैं और जिनके बिना सम्पूर्ण संसार यशहीन होकर मृतकतुल्य हो जाता है॥ १०४—१०८½ ॥

उद्योगदेवकी पत्नी क्रियादेवी हैं, जो सभीके द्वारा पूजित तथा मान्य हैं, हे नारद! इनके बिना

यया विना जगत्सर्वं विधिहीनं च नारद।
अधर्मपत्नी मिथ्या सा सर्वधूर्तैश्च पूजिता॥ ११०

यया विना जगत्सर्वमुच्छिन्नं विधिनिर्मितम्।
सत्ये अदर्शना या च त्रेतायां सूक्ष्मरूपिणी॥ १११

अर्धावयवरूपा च द्वापरे चैव संवृता।
कलौ महाप्रगल्भा च सर्वत्र व्यापिका बलात्॥ ११२

कपटेन समं भ्रात्रा भ्रमते च गृहे गृहे।
शान्तिर्लज्जा च भार्ये द्वे सुशीलस्य च पूजिते॥ ११३

याभ्यां विना जगत्सर्वमुन्मत्तमिव नारद।
ज्ञानस्य तिस्रो भार्याश्च बुद्धिर्मेधाधृतिस्तथा॥ ११४

याभिर्विना जगत्सर्वं मूढं मत्तसमं सदा।
मूर्तिश्च धर्मपत्नी सा कान्तिरूपा मनोहरा॥ ११५

परमात्मा च विश्वौघो निराधारो यया विना।
सर्वत्र शोभारूपा च लक्ष्मीर्मूर्तिमती सती॥ ११६

श्रीरूपा मूर्तिरूपा च मान्या धन्यातिपूजिता।
कालाग्नी रुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी॥ ११७

सर्वे लोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु।
कालस्य तिस्रो भार्याश्च संध्या रात्रिर्दिनानि च॥ ११८

याभिर्विना विधाता च संख्यां कर्तुं न शक्यते।
क्षुत्पिपासे लोभभार्ये धन्ये मान्ये च पूजिते॥ ११९

याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं नित्यं चिन्तातुरं भवेत्।
प्रभा च दाहिका चैव द्वे भार्ये तेजसस्तथा॥ १२०

याभ्यां विना जगत्स्रष्टा विधातुं च न हीश्वरः।
कालकन्ये मृत्युजरे प्रज्वारस्य प्रियाप्रिये॥ १२१

याभ्यां जगत्समुच्छिन्नं विधात्रा निर्मितं विधौ।
निद्राकन्या च तन्द्रा सा प्रीतिरन्या सुखप्रिये॥ १२२

याभ्यां व्याप्तं जगत्सर्वं विधिपुत्र विधेर्विधौ।
वैराग्यस्य च द्वे भार्ये श्रद्धा भक्तिश्च पूजिते॥ १२३
याभ्यां शश्वज्जगत्सर्वं यजीवन्मुक्तिमन्मुने।

सम्पूर्ण जगत् विधिहीन हो जाता है। अधर्मकी पत्नी मिथ्यादेवी हैं, जिन्हें सभी धूर्तजन पूजते हैं तथा जिनके बिना विधिनिर्मित धूर्त-समुदायरूप जगत् नष्ट हो जाता है। सत्ययुगमें ये मिथ्यादेवी तिरोहित रहती हैं, त्रेतायुगमें सूक्ष्मरूपमें रहती हैं, द्वापरमें आधे शरीरवाली होकर रहती हैं; किंतु कलियुगमें महाप्रगल्भ होकर ये बलपूर्वक सर्वत्र व्याप्त रहती हैं और अपने भाई कपटके साथ घर-घर घूमती-फिरती हैं॥ १०९—११२½ ॥

हे नारद! सुशीलकी शान्ति और लज्जा नामक दो सर्वपूजित भार्याएँ हैं, जिनके बिना यह समस्त जगत् उन्मत्तकी भाँति हो जाता है। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—बुद्धि, मेधा और धृति; जिनके बिना सारा संसार मूर्ख तथा मत्त बना रहता है। धर्मकी पत्नी मूर्ति अत्यन्त मनोहर कान्तिवाली हैं, जिनके बिना परमात्मा तथा विश्वसमूह भी निराधार रहते हैं। ये सर्वत्र शोभारूपा, लक्ष्मीरूपिणी, मूर्तिमयी, साध्वी, श्रीरूपा, मूर्तिरूपा, सभीकी मान्य, धन्य और अतिपूज्य हैं॥ ११३—११६½ ॥

रुद्रकी पत्नी कालाग्नि हैं। वे ही सिद्धयोगिनी तथा निद्रारूपा हैं, जिनके संयोगसे रात्रिमें सभी लोग निद्रासे व्याप्त हो जाते हैं। कालकी तीन पत्नियाँ हैं—सन्ध्या, रात्रि और दिवा। जिनके बिना विधाता भी कालकी गणना नहीं कर सकते। लोभकी दो पत्नियाँ क्षुधा और पिपासा हैं, ये धन्य, मान्य और पूजित हैं। जिनसे व्याप्त यह सम्पूर्ण जगत् नित्य ही चिन्ताग्रस्त रहता है। तेजकी दो पत्नियाँ प्रभा और दाहिका हैं, जिनके बिना जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मा सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते॥ ११७—१२०½ ॥

कालकी दो पुत्रियाँ मृत्यु और जरा हैं, जो ज्वरकी प्रिय पत्नियाँ हैं। जिनके द्वारा सृष्टि-विधानके अन्तर्गत ब्रह्माका बनाया यह संसार नष्ट होता रहता है। निद्राकी एक पुत्री तन्द्रा और दूसरी प्रीति—ये दोनों सुखकी पत्नियाँ हैं। जिनसे हे नारद! ब्रह्माके द्वारा निर्मित यह सारा जगत् व्याप्त है। वैराग्यकी दो पत्नियाँ श्रद्धा और भक्ति सभीकी पूज्या हैं, जिनसे हे मुने! यह जगत् निरन्तर जीवन्मुक्तके समान हो जाता है॥ १२१—१२३½ ॥

अदितिर्देवमाता च सुरभी च गवां प्रसूः॥ १२४
दितिश्च दैत्यजननी कद्रूश्च विनता दनुः।
उपयुक्ताः सृष्टिविधावेतास्तु कीर्तिताः कलाः॥ १२५
कला अन्याः सन्ति बह्व्यस्तासु काश्चिन्निबोध मे।
रोहिणी चन्द्रपत्नी च संज्ञा सूर्यस्य कामिनी॥ १२६
शतरूपा मनोर्भार्या शचीन्द्रस्य च गेहिनी।
तारा बृहस्पतेर्भार्या वसिष्ठस्याप्यरुन्धती॥ १२७
अहल्या गौतमस्त्री साप्यनसूयात्रिकामिनी।
देवहूतिः कर्दमस्य प्रसूतिर्दक्षकामिनी॥ १२८
पितॄणां मानसी कन्या मेनका साम्बिकाप्रसूः।
लोपामुद्रा तथा कुन्ती कुबेरकामिनी तथा॥ १२९
वरुणानी प्रसिद्धा च बलेर्विन्ध्यावलिस्तथा।
कान्ता च दमयन्ती च यशोदा देवकी तथा॥ १३०
गान्धारी द्रौपदी शैव्या सा च सत्यवती प्रिया।
वृषभानुप्रिया साध्वी राधामाता कुलोद्वहा॥ १३१
मन्दोदरी च कौसल्या सुभद्रा कौरवी तथा।
रेवती सत्यभामा च कालिन्दी लक्ष्मणा तथा॥ १३२
जाम्बवती नाग्नजितिर्मित्रविन्दा तथापरा।
लक्ष्मणा रुक्मिणी सीता स्वयं लक्ष्मीः प्रकीर्तिता॥ १३३
काली योजनगन्धा च व्यासमाता महासती।
बाणपुत्री तथोषा च चित्रलेखा च तत्सखी॥ १३४
प्रभावती भानुमती तथा मायावती सती।
रेणुका च भृगोर्माता राममाता च रोहिणी॥ १३५
एकनन्दा च दुर्गा सा श्रीकृष्णभगिनी सती।
बह्व्यः सत्यः कलाश्चैव प्रकृतेरेव भारते॥ १३६
या याश्च ग्रामदेव्यः स्युस्ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
कलांशांशसमुद्भूताः प्रतिविश्वेषु योषितः॥ १३७
योषितामवमानेन प्रकृतेश्च पराभवः।
ब्राह्मणी पूजिता येन पतिपुत्रवती सती॥ १३८
प्रकृतिः पूजिता तेन वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
कुमारी चाष्टवर्षीया वस्त्रालङ्कारचन्दनैः॥ १३९
पूजिता येन विप्रस्य प्रकृतिस्तेन पूजिता।
सर्वाः प्रकृतिसम्भूता उत्तमाधममध्यमाः॥ १४०

देवताओंकी माता अदिति हैं और गायोंकी उत्पत्ति सुरभिसे हुई है। दैत्योंकी माता दिति, कद्रू, विनता और दनु—सृष्टिनिर्माणमें इनका उपयोग हुआ है। ये सभी प्रकृतिदेवीकी कलाएँ कही गयी हैं॥ १२४-१२५॥

प्रकृतिदेवीकी अन्य बहुत-सी कलाएँ हैं, उनमेंसे कुछके विषयमें मुझसे सुनिये। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी पत्नी संज्ञा, मनुकी पत्नी शतरूपा, इन्द्रकी पत्नी शची, बृहस्पतिकी पत्नी तारा, वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती, गौतमऋषिकी पत्नी अहल्या और अत्रिकी भार्या अनसूया, कर्दमकी पत्नी देवहूति तथा दक्षकी भार्या प्रसूति हैं॥ १२६—१२८॥

पितरोंकी मानसी कन्या मेनका हैं, जो अम्बिकाकी माता हैं। लोपामुद्रा, कुन्ती, कुबेरपत्नी, वरुणपत्नी, बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, कान्ता, दमयन्ती, यशोदा, देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिनी तथा प्रिय भार्या शैव्या, वृषभानुप्रिया राधाकी माता तथा कुलका उद्वहन करनेवाली पतिव्रता वृषभानुभार्या, मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कौरवी, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, रुक्मिणी, साक्षात् लक्ष्मी कही जानेवाली सीता, काली, व्यासमाता महासती योजनगन्धा, बाणपुत्री उषा, उसकी सखी चित्रलेखा, प्रभावती, भानुमती, साध्वी मायावती, परशुरामकी माता रेणुका, बलरामकी माता रोहिणी और श्रीकृष्णकी बहन दुर्गारूपी एकनन्दा—ये सब प्रकृतिदेवीकी कलारूपा अनेक शक्तियाँ भारतवर्षमें विख्यात हैं॥ १२९—१३६॥

जो-जो ग्रामदेवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। देवीके कलांशका अंश लेकर ही प्रत्येक लोकमें स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसलिये किसी नारीके अपमानसे प्रकृतिका ही अपमान माना जाता है। जिसने वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे पति-पुत्रवती साध्वी ब्राह्मणीका पूजन किया; उसने मानो प्रकृतिदेवीका ही पूजन किया है। इसी प्रकार जिसने आठ वर्षकी विप्रकन्याका वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे पूजन सम्पन्न कर लिया, उसने स्वयं प्रकृतिदेवीकी पूजा कर ली। उत्तम, मध्यम अथवा अधम—सभी स्त्रियाँ प्रकृतिसे ही उत्पन्न होती हैं॥ १३७—१४०॥

सत्त्वांशाश्चोत्तमा ज्ञेयाः सुशीलाश्च पतिव्रताः।
मध्यमा रजसश्चांशास्ताश्च भोग्याः प्रकीर्तिताः॥ १४१

सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये तत्पराः सदा।
अधमास्तमसश्चांशा अज्ञातकुलसम्भवाः॥ १४२

दुर्मुखाः कुलहा धूर्ताः स्वतन्त्राः कलहप्रियाः।
पृथिव्यां कुलटा याश्च स्वर्गे चाप्सरसां गणाः॥ १४३

प्रकृतेस्तमसश्चांशाः पुंश्चल्यः परिकीर्तिताः।
एवं निगदितं सर्वं प्रकृते रूपवर्णनम्॥ १४४

ताः सर्वाः पूजिताः पृथ्व्यां पुण्यक्षेत्रे च भारते।
पूजिता सुरथेनादौ दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी॥ १४५

ततः श्रीरामचन्द्रेण रावणस्य वधार्थिना।
तत्पश्चाज्जगतां माता त्रिषु लोकेषु पूजिता॥ १४६

जातादौ दक्षकन्या या निहत्य दैत्यदानवान्।
ततो देहं परित्यज्य यज्ञे भर्तुश्च निन्दया॥ १४७

जज्ञे हिमवतः पत्न्यां लेभे पशुपतिं पतिम्।
गणेशश्च स्वयं कृष्णः स्कन्दो विष्णुकलोद्भवः॥ १४८

बभूवतुस्तौ तनयौ पश्चात्तस्याश्च नारद।
लक्ष्मीर्मङ्गलभूपेन प्रथमं परिपूजिता॥ १४९

त्रिषु लोकेषु तत्पश्चाद्देवतामुनिमानवैः।
सावित्री चाश्वपतिना प्रथमं परिपूजिता॥ १५०

तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः।
आदौ सरस्वती देवी ब्रह्मणा परिपूजिता॥ १५१

तत्पश्चात्त्रिषु लोकेषु देवतामुनिपुङ्गवैः।
प्रथमं पूजिता राधा गोलोके रासमण्डले॥ १५२

पौर्णमास्यां कार्तिकस्य कृष्णेन परमात्मना।
गोपिकाभिश्च गोपैश्च बालिकाभिश्च बालकैः॥ १५३

गवां गणैः सुरभ्या च तत्पश्चादाज्ञया हरेः।
तदा ब्रह्मादिभिर्देवैर्मुनिभिः परया मुदा॥ १५४

प्रकृतिदेवीके सत्त्वांशसे उत्पन्न स्त्रियोंको उत्तम जानना चाहिये। वे सुशील एवं पतिव्रता होती हैं। उनके राजस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ मध्यम कही गयी हैं, वे प्रायः भोगप्रिय होती हैं। वे सुख-भोगादिके वशीभूत होती हैं तथा अपने ही कार्यमें सदा तत्पर रहती हैं। अधम स्त्रियाँ प्रकृतिके तामस अंशसे उत्पन्न हैं, उनका कुल अज्ञात रहता है। वे कलहप्रिय, कटुभाषिणी, धूर्त, स्वच्छन्द विचरण करनेवाली तथा कुलका नाश करनेवाली होती हैं। जो पृथ्वीपर कुलटा, स्वर्गमें अप्सराएँ तथा अन्य पुंश्चली नारियाँ हैं; वे प्रकृतिके तामसांशसे प्रकट कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने प्रकृतिदेवीके सभी रूपोंका वर्णन कर दिया॥ १४१—१४४॥

भगवती प्रकृतिके वे सभी रूप पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पूजित हैं, सर्वप्रथम राजा सुरथने दुर्गतिका नाश करनेवाली दुर्गादेवीका पूजन किया था। तत्पश्चात् रावणका वध करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रने उनका पूजन किया था। तभीसे जगज्जननी दुर्गा तीनों लोकोंमें पूजित हैं॥ १४५-१४६॥

जो प्रारम्भमें दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुईं और दैत्य-दानवोंका संहार करनेके उपरान्त यज्ञमें पतिनिन्दाके कारण देहत्याग करके हिमवान्की भार्यासे उत्पन्न हुईं और उन्होंने पुनः पशुपति भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया। हे नारद! बादमें स्वयं श्रीकृष्णरूप गणेश तथा विष्णुकी कलाओंसे युक्त स्कन्द—ये उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १४७-१४८½ ॥

राजा मंगलने सर्वप्रथम लक्ष्मीजीकी पूजा की थी। उसके बाद तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मनुष्योंने उनकी पूजा की। राजा अश्वपतिने सावित्रीदेवीकी सर्वप्रथम पूजा की, तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें देवता तथा श्रेष्ठ मुनियोंसे वे पूजित हुईं। ब्रह्माने सर्वप्रथम भगवती सरस्वतीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् वे तीनों लोकोंमें देवताओं तथा श्रेष्ठ मुनियोंद्वारा पूजित हुईं। कार्तिकपूर्णिमाको गोलोकके रासमण्डलमें सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णने गोप-गोपियों, बालक-बालिकाओं, सुरभि तथा गायोंके साथ राधारानीका पूजन किया था। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें परमात्माकी आज्ञासे

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता वन्दिता सदा।
पृथिव्यां प्रथमं देवी सुयज्ञेनैव पूजिता॥ १५५

शङ्करेणोपदिष्टेन पुण्यक्षेत्रे च भारते।
त्रिषु लोकेषु तत्पश्चादाज्ञया परमात्मनः॥ १५६

पुष्पधूपादिभिर्भक्त्या पूजिता मुनिभिः सदा।
कला या याः समुद्भूताः पूजितास्ताश्च भारते॥ १५७

पूजिता ग्रामदेव्यश्च ग्रामे च नगरे मुने।
एवं ते कथितं सर्वं प्रकृतेश्चरितं शुभम्॥ १५८

यथागमं लक्षणं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १५९

ब्रह्मादि देवों तथा मुनियोंद्वारा पुष्प, धूपादिसे भक्तिपूर्वक परम प्रसन्नताके साथ वे निरन्तर पूजित तथा वन्दित होने लगीं॥ १४९—१५४½॥

भगवान् शंकरके उपदेशसे पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें राजा सुयज्ञके द्वारा सर्वप्रथम इन भगवतीका पूजन किया गया। तदनन्तर परमात्माकी आज्ञासे तीनों लोकोंमें पुष्प, धूप आदिसे मुनियोंके द्वारा ये निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजित होने लगीं॥ १५५-१५६½॥

भारतवर्षमें प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, वे सभी पूजित हैं। हे मुने! प्रत्येक ग्राम और नगरमें वे ग्रामदेवियाँ पूजित हैं। इस प्रकार मैंने आगमोंके अनुसार प्रकृतिदेवीका सम्पूर्ण शुभ चरित्र तथा स्वरूप आपको बता दिया; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १५७—१५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
प्रकृतिचरित्रवर्णनं नाम प्रथमोध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन

नारद उवाच

समासेन श्रुतं सर्वं देवीनां चरितं प्रभो।
विबोधनाय बोधस्य व्यासेन वक्तुमर्हसि॥ १
सृष्टेराद्या सृष्टिविधौ कथमाविर्बभूव ह।
कथं वा पञ्चधा भूता वद वेदविदांवर॥ २
भूता ययांशकलया तया त्रिगुणया भवे।
व्यासेन तासां चरितं श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम्॥ ३
तासां जन्मानुकथनं पूजाध्यानविधिं बुध।
स्तोत्रं कवचमैश्वर्यं शौर्यं वर्णय मङ्गलम्॥ ४

श्रीनारायण उवाच

नित्य आत्मा नभो नित्यं कालो नित्यो दिशो यथा।
विश्वानां गोलकं नित्यं नित्यो गोलोक एव च॥ ५
तदेकदेशो वैकुण्ठो नम्रभागानुसारकः।
तथैव प्रकृतिर्नित्या ब्रह्मलीला सनातनी॥ ६

नारदजी बोले—हे प्रभो! देवियोंका सम्पूर्ण चरित्र मैंने संक्षेपमें सुन लिया, अब सम्यक् प्रकारसे बोध प्राप्त करनेके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सृष्टिप्रक्रियामें सृष्टिकी आद्यादेवीका प्राकट्य कैसे हुआ? हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ! वे प्रकृति पुनः पाँच रूपोंमें कैसे आविर्भूत हुईं; यह बतायें। इस संसारमें उन त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके कलांशोंसे जो देवियाँ उत्पन्न हुईं, उनका चरित्र मैं अब विस्तारसे सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विज्ञ! उनके जन्मकी कथा, उनके पूजा-ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और मंगलमय शौर्यका वर्णन कीजिये॥ ४॥

श्रीनारायण बोले—जैसे आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, काल नित्य है, दिशाएँ नित्य हैं, ब्रह्माण्डगोलक नित्य है, गोलोक नित्य है तथा उससे थोड़ा नीचे स्थित वैकुण्ठ नित्य है; उसी प्रकार ब्रह्मकी सनातनी लीलाशक्ति प्रकृति भी नित्य है॥ ५-६॥

यथाग्नौ दाहिका चन्द्रे पद्मे शोभा प्रभा रवौ।
शश्वद्युक्ता न भिन्ना सा तथा प्रकृतिरात्मनि॥ ७

विना स्वर्णं स्वर्णकारः कुण्डलं कर्तुमक्षमः।
विना मृदा घटं कर्तुं कुलालो हि नहीश्वरः॥ ८

न हि क्षमस्तथात्मा च सृष्टिं स्रष्टुं तया विना।
सर्वशक्तिस्वरूपा सा यया च शक्तिमान्सदा॥ ९

ऐश्वर्यवचनः शश्च क्तिः पराक्रम एव च।
तत्स्वरूपा तयोर्दात्री सा शक्तिः परिकीर्तिता॥ १०

ज्ञानं समृद्धिः सम्पत्तिर्यशश्चैव बलं भगः।
तेन शक्तिर्भगवती भगरूपा च सा सदा॥ ११

तया युक्तः सदात्मा च भगवांस्तेन कथ्यते।
स च स्वेच्छामयो देवः साकारश्च निराकृतिः॥ १२

तेजोरूपं निराकारं ध्यायन्ते योगिनः सदा।
वदन्ति च परं ब्रह्म परमानन्दमीश्वरम्॥ १३

अदृश्यं सर्वद्रष्टारं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
सर्वदं सर्वरूपं तं वैष्णवास्तन्न मन्वते॥ १४

वदन्ति चैव ते कस्य तेजस्तेजस्विना विना।
तेजोमण्डलमध्यस्थं ब्रह्म तेजस्विनं परम्॥ १५

स्वेच्छामयं सर्वरूपं सर्वकारणकारणम्।
अतीव सुन्दरं रूपं बिभ्रतं सुमनोहरम्॥ १६

किशोरवयसं शान्तं सर्वकान्तं परात्परम्।
नवीननीरदाभासधामैकं श्यामविग्रहम्॥ १७

शरन्मध्याह्नपद्मौघशोभामोचनलोचनम्।
मुक्ताच्छविविनिन्द्यैकदन्तपंक्तिमनोरमम्॥ १८

जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति, चन्द्रमा तथा कमलमें शोभा, सूर्यमें दीप्ति सदा विद्यमान रहती और उससे अलग नहीं होती है; उसी प्रकार परमात्मामें प्रकृति विद्यमान रहती है॥ ७॥

जैसे बिना स्वर्णके स्वर्णकार कुण्डलादि आभूषणोंका निर्माण करनेमें असमर्थ होता है और बिना मिट्टीके कुम्हार घड़ेका निर्माण करनेमें सक्षम नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिके सहयोगके बिना परमात्मा सृष्टिकी रचनामें समर्थ नहीं होता। वे प्रकृति ही सभी शक्तियोंकी अधिष्ठात्री हैं तथा उनसे ही परमात्मा सदा शक्तिमान् रहता है॥ ८-९॥

'श' ऐश्वर्यका तथा 'क्ति' पराक्रमका वाचक है। जो इनके स्वरूपवाली है तथा इन दोनोंको प्रदान करनेवाली है; उस देवीको शक्ति कहा गया है॥ १०॥

ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलको 'भग' कहते हैं। उन गुणोंसे सदा सम्पन्न रहनेके कारण ही शक्तिको भगवती कहते हैं तथा वे सदा भगरूपा हैं। उनसे सम्बद्ध होनेके कारण ही परमात्मा भी भगवान् कहे जाते हैं। वे परमेश्वर अपनी इच्छाशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण साकार और निराकार दोनों रूपोंसे अवस्थित रहते हैं॥ ११-१२॥

उस तेजस्वरूप निराकारका योगीजन सदा ध्यान करते हैं तथा उसे परमानन्द, परब्रह्म तथा ईश्वर कहते हैं॥ १३॥

अदृश्य, सबको देखनेवाले, सर्वज्ञ, सबके कारणस्वरूप, सब कुछ देनेवाले, सर्वरूप उस परब्रह्मको वैष्णवजन नहीं स्वीकार करते॥ १४॥

वे कहते हैं कि तेजस्वी सत्ताके बिना किसका तेज प्रकाशित हो सकता है? अतः तेजोमण्डलके मध्य अवश्य ही तेजस्वी परब्रह्म विराजते हैं॥ १५॥

वे स्वेच्छामय, सर्वरूप और सभी कारणोंके भी कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर तथा मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं, वे किशोर अवस्थावाले, शान्तस्वभाव, सभी मनोहर अंगोंवाले तथा परात्पर हैं। वे नवीन मेघकी कान्तिके एकमात्र धामस्वरूप श्याम विग्रहवाले हैं, उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नमें खिले कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले हैं और उनकी मनोरम दन्तपंक्ति मुक्ताकी शोभाको भी तुच्छ कर देनेवाली है॥ १६—१८॥

मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यमण्डितम्।
सुनसं सस्मितं कान्तं भक्तानुग्रहकारणम्॥ १९

ज्वलदग्निविशुद्धैकपीतांशुकसुशोभितम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥ २०

सर्वाधारं च सर्वेशं सर्वशक्तियुतं विभुम्।
सर्वैश्वर्यप्रदं सर्वस्वतन्त्रं सर्वमङ्गलम्॥ २१

परिपूर्णतमं सिद्धं सिद्धेशं सिद्धिकारकम्।
ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वद्देवदेवं सनातनम्॥ २२

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्।
ब्रह्मणो वयसा यस्य निमेष उपचर्यते॥ २३

स चात्मा स परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते।
कृषिस्तद्भक्तिवचनो नश्च तद्दास्यवाचकः॥ २४

भक्तिदास्यप्रदाता यः स च कृष्णः प्रकीर्तितः।
कृषिश्च सर्ववचनो नकारो बीजमेव च॥ २५

स कृष्णः सर्वस्त्रष्टादौ सिसृक्षन्नेक एव च।
सृष्ट्युन्मुखस्तदंशेन कालेन प्रेरितः प्रभुः॥ २६

स्वेच्छामयः स्वेच्छया च द्विधारूपो बभूव ह।
स्त्रीरूपो वामभागांशो दक्षिणांशः पुमान्स्मृतः॥ २७

तां ददर्श महाकामी कामाधारां सनातनः।
अतीव कमनीयां च चारुपङ्कजसन्निभाम्॥ २८

चन्द्रबिम्बविनिन्द्यैकनितम्बयुगलां पराम्।
सुचारुकदलीस्तम्भनिन्दितश्रोणिसुन्दरीम्॥ २९

श्रीयुक्तश्रीफलाकारस्तनयुग्ममनोरमाम्।
पुष्पजुष्टां सुवलितां मध्यक्षीणां मनोहराम्॥ ३०

उन्होंने मयूरपिच्छका मुकुट धारण किया है, उनके गलेमें मालतीकी माला सुशोभित हो रही है। उनकी सुन्दर नासिका है, उनका मुखमण्डल मुसकानयुक्त तथा सुन्दर है और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे प्रज्वलित अग्निके सदृश विशुद्ध तथा देदीप्यमान पीताम्बरसे सुशोभित हो रहे हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं, उन्होंने मुरलीको हाथमें धारण किया है, वे रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत हैं। वे सर्वाधार, सर्वेश, सर्वशक्तिसे युक्त, विभु, सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सब प्रकारसे स्वतन्त्र तथा सर्वमंगलरूप हैं॥ १९—२१॥

वे परिपूर्णतम सिद्धावस्थाको प्राप्त, सिद्धोंके स्वामी तथा सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयको दूर करते हैं, ऐसे उन सनातन परमेश्वरका वैष्णवजन सदा ध्यान करते रहते हैं॥ २२$\frac{1}{2}$॥

ब्रह्माजीकी आयु जिनके एक निमेषकी तुलनामें है, उन परमात्मा परब्रह्मको 'कृष्ण' नामसे पुकारा जाता है। 'कृष्' उनकी भक्ति तथा 'न' उनके दास्यके वाचक शब्द हैं। इस प्रकार जो भक्ति और दास्य प्रदान करते हैं, उन्हें कृष्ण कहा गया है। अथवा 'कृष्' सर्वार्थका तथा 'न'-कार बीजका वाचक है, अतः श्रीकृष्ण ही आदिमें सर्वप्रपंचके स्रष्टा तथा सृष्टिके एकमात्र बीजस्वरूप हैं। उनमें जब सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई, तब उनके अंशभूत कालके द्वारा प्रेरित होकर स्वेच्छामय वे प्रभु अपनी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम भागांश स्त्रीरूप तथा दक्षिणांश पुरुषरूप कहा गया है॥ २३—२७॥

उन [वामभागोत्पन्न] कामकी आधारस्वरूपाको उन सनातन महाकामेश्वरने देखा। उनका रूप अतीव मनोहर था। वे सुन्दर कमलकी शोभा धारण किये हुए थीं। उन परादेवीका नितम्बयुगल चन्द्रबिम्बको तिरस्कृत कर रहा था और अपने जघनप्रदेशसे सुन्दर कदलीस्तम्भको निन्दित करते हुए वे मनोहर प्रतीत हो रही थीं। शोभामय श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगलसे वे मनोरम प्रतीत हो रही थीं। वे मस्तकपर पुष्पोंकी सुन्दर माला धारण किये थीं, वे सुन्दर वलियोंसे युक्त थीं, उनका कटिप्रदेश क्षीण था, वे अति मनोहर थीं,

अतीव सुन्दरीं शान्तां सस्मितां वक्रलोचनाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधारां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ३१
शश्वच्चक्षुश्चकोराभ्यां पिबन्तीं सततं मुदा।
कृष्णस्य मुखचन्द्रं च चन्द्रकोटिविनिन्दितम्॥ ३२
कस्तूरीबिन्दुना सार्धमधश्चन्दनबिन्दुना।
समं सिन्दूरबिन्दुं च भालमध्ये च बिभ्रतीम्॥ ३३
वक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषितम्।
रत्नेन्द्रसारहारं च दधतीं कान्तकामुकीम्॥ ३४
कोटिचन्द्रप्रभामृष्टपुष्टशोभासमन्विताम्।
गमनेन राजहंसगजगर्वविनाशिनीम्॥ ३५
दृष्ट्वा तां तु तया सार्धं रासेशो रासमण्डले।
रासोल्लासे सुरसिको रासक्रीडाञ्चकार ह॥ ३६
नानाप्रकारशृङ्गारं शृङ्गारो मूर्तिमानिव।
चकार सुखसम्भोगं यावद्वै ब्रह्मणो दिनम्॥ ३७
ततः स च परिश्रान्तस्तस्या योनौ जगत्पिता।
चकार वीर्याधानं च नित्यानन्दे शुभक्षणे॥ ३८
गात्रतो योषितस्तस्याः सुरतान्ते च सुव्रत।
निःससार श्रमजलं श्रान्तायास्तेजसा हरेः॥ ३९
महाक्रमणक्लिष्टाया निःश्वासश्च बभूव ह।
तदा वव्रे श्रमजलं तत्सर्वं विश्वगोलकम्॥ ४०
स च निःश्वासवायुश्च सर्वाधारो बभूव ह।
निःश्वासवायुः सर्वेषां जीविनां च भवेषु च॥ ४१
बभूव मूर्तिमद्वायोर्वामाङ्गात्प्राणवल्लभा।
तत्पत्नी सा च तत्पुत्राः प्राणाः पञ्च च जीविनाम्॥ ४२
प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः।
बभूवुरेव तत्पुत्रा अधः प्राणाश्च पञ्च च॥ ४३
घर्मतोयाधिदेवश्च बभूव वरुणो महान्।
तद्वामाङ्गाच्च तत्पत्नी वरुणानी बभूव सा॥ ४४
अथ सा कृष्णचिच्छक्तिः कृष्णगर्भं दधार ह।
शतमन्वन्तरं यावज्ज्वलन्ती ब्रह्मतेजसा॥ ४५

वे अत्यन्त सुन्दर, शान्त मुसकान और कटाक्षसे सुशोभित थीं। उन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा था और वे रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित थीं॥ २८—३१॥

वे अपने चक्षुरूपी चकोरोंसे करोड़ों चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करनेवाले श्रीकृष्णके मुखमण्डलका प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर पान कर रही थीं। वे देवी ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिन्दीके साथ-साथ नीचे चन्दनकी बिन्दी तथा ललाटके मध्यमें सिन्दूरकी बिन्दी धारण किये थीं। अपने प्रियतममें अनुरक्त चित्तवाली वे देवी मालतीकी मालासे भूषित घुँघराले केशसे शोभा पा रही थीं तथा श्रेष्ठ रत्नोंकी माला धारण किये हुए थीं। कोटि चन्द्रकी प्रभाको लज्जित करनेवाली शोभा धारण किये वे अपनी चालसे राजहंस और गजके गर्वको तिरस्कृत कर रही थीं॥ ३२—३५॥

उन्हें देखकर रासेश्वर तथा परम रसिक श्रीकृष्णने उनके साथ रासमण्डलमें उल्लासपूर्वक रासलीला की। ब्रह्माके दिव्य दिवसकी अवधितक नाना प्रकारकी शृंगारचेष्टाओंसे युक्त उन्होंने मूर्तिमान् शृंगाररसके समान सुखपूर्वक क्रीड़ा की। तत्पश्चात् थके हुए उन जगत्पिताने नित्यानन्दमय शुभ मुहूर्तमें देवीके क्षेत्रमें तेजका आधान किया। हे सुव्रत! क्रीडाके अन्तमें हरिके तेजसे परिश्रान्त उन देवीके शरीरसे स्वेद निकलने लगा और महान् परिश्रमसे खिन्न उनका श्वास भी वेगसे चलने लगा। तब वह सम्पूर्ण स्वेद विश्वगोलक बन गया और वह निःश्वास वायु जगत्‌में सब प्राणियोंके जीवनका आधार बन गया॥ ३६—४१॥

उस मूर्तिमान् वायुके वामांगसे उसकी प्राणप्रिय पत्नी प्रकट हुई, पुनः उनके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए जो जीवोंके प्राणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पाँच वायु और उनके पाँच अधोगामी प्राणरूप पुत्र भी उत्पन्न हुए॥ ४२-४३॥

स्वेदके रूपमें निकले जलके अधिष्ठाता महान् वरुणदेव हुए। उनके वामांगसे उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं। श्रीकृष्णकी उन चिन्मयी शक्तिने उनके गर्भको धारण किया। वे सौ मन्वन्तरोंतक ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान बनी रहीं। वे श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी

कृष्णप्राणाधिदेवी सा कृष्णप्राणाधिकप्रिया।
कृष्णस्य सङ्गिनी शश्वत्कृष्णवक्षःस्थलस्थिता॥ ४६

शतमन्वन्तरान्ते च कालेऽतीते तु सुन्दरी।
सुषाव डिम्भं स्वर्णाभं विश्वाधारालयं परम्॥ ४७

दृष्ट्वा डिम्भं च सा देवी हृदयेन व्यदूयत।
उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डगोलके जले॥ ४८

दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह।
शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम्॥ ४९

यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले च निष्ठुरे।
भव त्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृति निश्चितम्॥ ५०

या यास्त्वदंशरूपाश्च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः।
अनपत्याश्च ताः सर्वास्त्वत्समा नित्ययौवनाः॥ ५१

एतस्मिन्नन्तरे देवी जिह्वाग्रात्सहसा ततः।
आविर्बभूव कन्यैका शुक्लवर्णा मनोहरा॥ ५२

श्वेतवस्त्रपरीधाना वीणापुस्तकधारिणी।
रत्नभूषणभूषाढ्या सर्वशास्त्राधिदेवता॥ ५३

अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपो बभूव ह।
वामार्धाङ्गाच्च कमला दक्षिणार्धाच्च राधिका॥ ५४

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः।
दक्षिणार्धश्च द्विभुजो वामार्धश्च चतुर्भुजः॥ ५५

उवाच वाणीं कृष्णस्तां त्वमस्य कामिनी भव।
अत्रैव मानिनी राधा तव भद्रं भविष्यति॥ ५६

एवं लक्ष्मीं च प्रददौ तुष्टो नारायणाय च।
स जगाम च वैकुण्ठं ताभ्यां सार्धं जगत्पतिः॥ ५७

अनपत्ये च ते द्वे च जाते राधांशसम्भवे।
भूता नारायणाङ्गाच्च पार्षदाश्च चतुर्भुजाः॥ ५८

तेजसा वयसा रूपगुणाभ्यां च समा हरेः।
बभूवुः कमलाङ्गाच्च दासीकोट्यश्च तत्समाः॥ ५९

हैं, कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। वे कृष्णकी सहचरी हैं और सदा उनके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं। सौ मन्वन्तर बीतनेपर उन सुन्दरीने स्वर्णकी कान्तिवाले, विश्वके आधार तथा निधानस्वरूप श्रेष्ठ बालकको जन्म दिया॥ ४४—४७॥

उस बालकको देखकर उन देवीका हृदय अत्यन्त दुःखित हो गया और उन्होंने उस बालकको कोपपूर्वक उस ब्रह्माण्डगोलकमें छोड़ दिया। बालकके उस त्यागको देखकर देवेश्वर श्रीकृष्ण हाहाकार करने लगे और उन्होंने उसी क्षण उन देवीको समयानुसार शाप दे दिया—हे कोपशीले! हे निष्ठुरे! तुमने पुत्रको त्याग दिया है, इस कारण आजसे तुम निश्चित ही सन्तानहीन रहोगी। तुम्हारे अंशसे जो-जो देवपत्नियाँ प्रकट होंगी, वे भी तुम्हारी तरह सन्तानरहित तथा नित्ययौवना रहेंगी॥ ४८—५१॥

इसके बाद देवीके जिह्वाग्रसे सहसा ही एक सुन्दर गौरवर्ण कन्या प्रकट हुई। उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था तथा वे हाथमें वीणा-पुस्तक लिये हुए थीं। सभी शास्त्रोंकी अधिष्ठात्री वे देवी रत्नोंके आभूषणसे सुशोभित थीं। कालान्तरमें वे भी द्विधारूपसे विभक्त हो गयीं। उनके वाम अर्धांगसे कमला तथा दक्षिण अर्धांगसे राधिका प्रकट हुईं॥ ५२—५४॥

इसी बीच श्रीकृष्ण भी द्विधारूपसे प्रकट हो गये। उनके दक्षिणार्धसे द्विभुज रूप प्रकट हुआ तथा वामार्धसे चतुर्भुज रूप प्रकट हुआ। तब श्रीकृष्णने उन सरस्वती-देवीसे कहा कि तुम इस (चतुर्भुज) विष्णुकी कामिनी बनो। ये मानिनी राधा इस द्विभुजके साथ यहीं रहेंगी। तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार प्रसन्न होकर उन्होंने लक्ष्मीको नारायणको समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् वे जगत्पति उन दोनोंके साथ वैकुण्ठको चले गये॥ ५५—५७॥

राधाके अंशसे प्रकट वे दोनों लक्ष्मी तथा सरस्वती निःसन्तान ही रहीं। भगवान् नारायणके अंगसे चतुर्भुज पार्षद प्रकट हुए। वे तेज, वय, रूप और गुणोंमें नारायणके समान ही थे। उसी प्रकार लक्ष्मीके अंगसे उनके ही समान करोड़ों दासियाँ प्रकट हो गयीं॥ ५८-५९॥

अथ गोलोकनाथस्य लोम्नां विवरतो मुने।
भूताश्चासंख्यगोपाश्च वयसा तेजसा समाः॥ ६०

रूपेण च गुणेनैव बलेन विक्रमेण च।
प्राणतुल्यप्रियाः सर्वे बभूवुः पार्षदा विभोः॥ ६१

राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः।
राधातुल्याश्च ताः सर्वा राधादास्यः प्रियंवदाः॥ ६२

रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत्सुस्थिरयौवनाः।
अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन सन्ततम्॥ ६३

एतस्मिन्नन्तरे विप्र सहसा कृष्णदेवता।
आविर्बभूव दुर्गा सा विष्णुमाया सनातनी॥ ६४

देवी नारायणीशाना सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
बुद्ध्यधिष्ठात्री देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः॥ ६५

देवीनां बीजरूपा च मूलप्रकृतिरीश्वरी।
परिपूर्णतमा तेजःस्वरूपा त्रिगुणात्मिका॥ ६६

तप्तकाञ्चनवर्णाभा कोटिसूर्यसमप्रभा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्या सहस्रभुजसंयुता॥ ६७

नानाशस्त्रास्त्रनिकरं बिभ्रती सा त्रिलोचना।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषिता॥ ६८

यस्याश्चांशांशकलया बभूवुः सर्वयोषितः।
सर्वे विश्वस्थिता लोका मोहिताः स्युश्च मायया॥ ६९

सर्वैश्वर्यप्रदात्री च कामिनां गृहवासिनाम्।
कृष्णभक्तिप्रदा या च वैष्णवानां च वैष्णवी॥ ७०

मुमुक्षूणां मोक्षदात्री सुखिनां सुखदायिनी।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च गृहलक्ष्मीर्गृहेषु च॥ ७१

तपस्विषु तपस्या च श्रीरूपा तु नृपेषु च।
या वह्नौ दाहिकारूपा प्रभारूपा च भास्करे॥ ७२

शोभारूपा च चन्द्रे च सा पद्मेषु च शोभना।
सर्वशक्तिस्वरूपा या श्रीकृष्णे परमात्मनि॥ ७३

हे मुने! गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोपगण प्रकट हुए; जो वय, तेज, रूप, गुण, बल तथा पराक्रममें उन्हींके समान थे। वे सभी परमेश्वर श्रीकृष्णके प्राणोंके समान प्रिय पार्षद बन गये॥ ६०-६१॥

श्रीराधाके अंगोंके रोमकूपोंसे अनेक गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। वे सब राधाके ही समान थीं तथा उनकी प्रियवादिनी दासियोंके रूपमें रहती थीं। वे सभी रत्नाभरणोंसे भूषित और सदा स्थिरयौवना थीं, किंतु परमात्माके शापके कारण वे सभी सदा सन्तानहीन रहीं। हे विप्र! इसी बीच श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाली सनातनी विष्णुमाया दुर्गा सहसा प्रकट हुईं। वे देवी सर्वशक्तिमती, नारायणी तथा ईशाना हैं और परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं॥ ६२—६५॥

सभी शक्तियोंकी बीजरूपा वे मूलप्रकृति ही ईश्वरी, परिपूर्णतमा तथा तेजपूर्ण त्रिगुणात्मिका हैं। वे तपाये हुए स्वर्णकी कान्तिवाली, कोटि सूर्योंकी आभा धारण करनेवाली, किंचित् हास्यसे युक्त प्रसन्नवदनवाली तथा सहस्र भुजाओंसे शोभायमान हैं। वे त्रिलोचना भगवती नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र-समूहोंको धारण करती हैं, अग्निसदृश विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए हैं और रत्नाभरणसे भूषित हैं॥ ६६—६८॥

उन्हींकी अंशांशकलासे सभी नारियाँ प्रकट हुई हैं। उनकी मायासे विश्वके सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं। वे गृहस्थ सकामजनोंको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, वैष्णवजनोंको वैष्णवी कृष्णभक्ति देनेवाली, मोक्षार्थी-जनोंको मोक्ष देनेवाली तथा सुख चाहनेवालोंको सुख प्रदान करनेवाली हैं॥ ६९-७०½॥

वे देवी स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहोंमें गृहलक्ष्मी, तपस्वियोंमें तप तथा राजाओंमें राज्यलक्ष्मीके रूपमें स्थित हैं। वे अग्निमें दाहिका शक्ति, सूर्यमें प्रभारूप, चन्द्रमा तथा कमलोंमें शोभारूपसे और परमात्मा श्रीकृष्णमें सर्वशक्तिरूपसे विद्यमान हैं॥ ७१—७३॥

यया च शक्तिमानात्मा यया च शक्तिमज्जगत्।
यया विना जगत्सर्वं जीवन्मृतमिव स्थितम्॥ ७४

या च संसारवृक्षस्य बीजरूपा सनातनी।
स्थितिरूपा वृद्धिरूपा फलरूपा च नारद॥ ७५

क्षुत्पिपासादयारूपा निद्रा तन्द्रा क्षमा मतिः।
शान्तिलज्जातुष्टिपुष्टिभ्रान्तिकान्त्यादिरूपिणी॥ ७६

सा च संस्तूय सर्वेशं तत्पुरः समुवास ह।
रत्नसिंहासनं तस्यै प्रददौ राधिकेश्वरः॥ ७७

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सस्त्रीकश्च चतुर्मुखः।
पद्मनाभेर्नाभिपद्मान्निःससार महामुने॥ ७८

कमण्डलुधरः श्रीमांस्तपस्वी ज्ञानिनां वरः।
चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥ ७९

सा तदा सुन्दरी सृष्टा शतचन्द्रसमप्रभा।
वह्निशुद्धांशुकाधाना रत्नभूषणभूषणा॥ ८०

रत्नसिंहासने रम्ये संस्तूय सर्वकारणम्।
उवास स्वामिना सार्धं कृष्णस्य पुरतो मुदा॥ ८१

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव सः।
वामार्धाङ्गो महादेवो दक्षिणे गोपिकापतिः॥ ८२

शुद्धस्फटिकसंकाशः शतकोटिरविप्रभः।
त्रिशूलपट्टिशधरो व्याघ्रचर्माम्बरो हरः॥ ८३

तप्तकाञ्चनवर्णाभो जटाभारधरः परः।
भस्मभूषितगात्रश्च सस्मितश्चन्द्रशेखरः॥ ८४

दिगम्बरो नीलकण्ठः सर्पभूषणभूषितः।
बिभ्रद्दक्षिणहस्तेन रत्नमालां सुसंस्कृताम्॥ ८५

हे नारद! जिनसे परमात्मा शक्तिसम्पन्न होता है तथा जगत् भी शक्ति प्राप्त करता है और जिनके बिना सारा चराचर विश्व जीते हुए भी मृतकतुल्य हो जाता है, जो सनातनी संसाररूपी बीजरूपसे वर्तमान हैं, वे ही समस्त सृष्टिकी स्थिति, वृद्धि और फलरूपसे स्थित हैं॥ ७४-७५॥

वे ही भूख-प्यास, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति तथा कान्तिरूपसे सर्वत्र विराजती हैं। सर्वेश्वर प्रभुकी स्तुति करके वे उनके समक्ष स्थित हो गयीं। राधिकाके ईश्वर श्रीकृष्णने उन्हें रत्नसिंहासन प्रदान किया॥ ७६-७७॥

हे महामुने! इसी समय वहाँ सपत्नीक ब्रह्माजी पद्मनाभ भगवान्‌के नाभिकमलसे प्रकट हुए। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा परम तपस्वी वे ब्रह्मा कमण्डलु धारण किये हुए थे। देदीप्यमान वे ब्रह्मा चारों मुखोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे॥ ७८-७९॥

सैकड़ों चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, अग्निके समान चमकीले वस्त्रोंको धारण किये और रत्नाभरणोंसे भूषित प्रकट हुईं वे सुन्दरी सबके कारणभूत परमात्माकी स्तुति करके अपने स्वामी श्रीकृष्णके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर उनके समक्ष प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं॥ ८०-८१॥

उसी समय वे श्रीकृष्ण दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम अर्धांग महादेवके रूपमें परिणत हो गया और दक्षिण अर्धांग गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण ही बना रह गया। वे महादेव शुद्ध स्फटिकके समान प्रभायुक्त थे, शतकोटि सूर्यकी प्रभासे सम्पन्न थे, त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किये हुए थे तथा बाघम्बर पहने हुए थे। वे परमेश्वर तप्त स्वर्णके समान कान्तिवाले थे, वे जटाजूट धारण किये हुए थे, उनका शरीर भस्मसे विभूषित था, वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण कर रखा था। वे दिगम्बर नीलकण्ठ सर्पोंके आभूषणसे अलंकृत थे। उन्होंने दाहिने हाथमें सुसंस्कृत रत्नमाला धारण कर रखी थी॥ ८२—८५॥

प्रजपन्पञ्चवक्त्रेण ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
सत्यस्वरूपं श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥ ८६
कारणं कारणानां च सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिहरं परम्॥ ८७
संस्तूय मृत्योर्मृत्युं तं यतो मृत्युञ्जयाभिधः।
रत्नसिंहासने रम्ये समुवास हरेः पुरः॥ ८८

वे पाँचों मुखोंसे सनातन ब्रह्मज्योतिका जप कर रहे थे। उन सत्यस्वरूप, परमात्मा, ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सभी मंगलोंके भी मंगल, जन्म-मृत्यु, जरा- व्याधि-शोक और भयको दूर करनेवाले, कालके काल, श्रेष्ठ श्रीकृष्णकी स्तुति करके मृत्युंजय नामसे विख्यात हुए वे शिव विष्णुके समक्ष रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठ गये॥ ८६—८८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
पञ्चप्रकृतितद्भर्तृगणोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे प्रकट विराट्रूप बालकका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथ डिम्भो जले तिष्ठन्यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
ततः स काले सहसा द्विधाभूतो बभूव ह॥ १

तन्मध्ये शिशुरेकश्च शतकोटिरविप्रभः।
क्षणं रोरूयमाणश्च स्तनान्धः पीडितः क्षुधा॥ २

पित्रा मात्रा परित्यक्तो जलमध्ये निराश्रयः।
ब्रह्माण्डासंख्यनाथो यो ददर्शोर्ध्वमनाथवत्॥ ३

स्थूलात्स्थूलतमः सोऽपि नाम्ना देवो महाविराट्।
परमाणुर्यथा सूक्ष्मात्परः स्थूलात्तथाप्यसौ॥ ४

तेजसा षोडशांशोऽयं कृष्णस्य परमात्मनः।
आधारः सर्वविश्वानां महाविष्णुश्च प्राकृतः॥ ५

प्रत्येकं लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
अस्यापि तेषां संख्यां च कृष्णो वक्तुं न हि क्षमः॥ ६

संख्या चेद्रजसामस्ति विश्वानां न कदाचन।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा संख्या न विद्यते॥ ७

प्रतिविश्वेषु सन्त्येवं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।

श्रीनारायण बोले—वह बालक जो पहले जलमें छोड़ दिया गया था, ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त जलमें ही पड़ा रहा। उसके बाद वह समय आनेपर अचानक ही दो रूपोंमें विभक्त हो गया॥ १॥

उनमेंसे एक बालक शतकोटि सूर्योंकी आभासे युक्त था; माताके स्तनपानसे रहित वह भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रो रहा था॥ २॥

माता-पितासे परित्यक्त होकर आश्रयहीन उस बालकने जलमें रहते हुए अनन्त ब्रह्माण्डनायक होते हुए भी अनाथकी भाँति ऊपरकी ओर दृष्टि डाली॥ ३॥

जैसे परमाणु सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म होता है, वैसे ही वह स्थूलसे भी स्थूल था। स्थूलसे भी स्थूलतम होनेसे वे देव महाविराट् नामसे प्रसिद्ध हुए। परमात्मा श्रीकृष्णके तेजसे सोलहवें अंशके रूपमें तथा प्रकृतिस्वरूपा राधासे उत्पन्न होनेके कारण यह सभी लोकोंका आधार तथा महाविष्णु कहा गया॥ ४-५॥

उसके प्रत्येक रोमकूपमें अखिल ब्रह्माण्ड स्थित थे, उनकी संख्या श्रीकृष्ण भी बता पानेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे पृथिवी आदि लोकोंमें व्याप्त रजकणोंकी संख्या कोई निर्धारित नहीं कर सकता, उसी प्रकार उसके रोमकूपस्थित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकी संख्या भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विद्यमान हैं॥ ६-७½॥

पातालाद् ब्रह्मलोकान्तं ब्रह्माण्डं परिकीर्तितम्॥ ८

तत ऊर्ध्वं च वैकुण्ठो ब्रह्माण्डाद् बहिरेव सः।
तत ऊर्ध्वं च गोलोकः पञ्चाशत्कोटियोजनः॥ ९

नित्यः सत्यस्वरूपश्च यथा कृष्णस्तथाप्ययम्।
सप्तद्वीपमिता पृथ्वी सप्तसागरसंयुता॥ १०

ऊनपञ्चाशदुपद्वीपासंख्यशैलवनान्विता।
ऊर्ध्वं सप्त स्वर्गलोका ब्रह्मलोकसमन्विताः॥ ११

पातालानि च सप्ताधश्चैवं ब्रह्माण्डमेव च।
ऊर्ध्वं धराया भूर्लोको भुवर्लोकस्ततः परम्॥ १२

ततः परश्च स्वर्लोको जनलोकस्तथा परः।
ततः परस्तपोलोकः सत्यलोकस्ततः परः॥ १३

ततः परं ब्रह्मलोकस्तप्तकाञ्चनसन्निभः।
एवं सर्वं कृत्रिमं च बाह्याभ्यन्तरमेव च॥ १४

तद्विनाशे विनाशश्च सर्वेषामेव नारद।
जलबुद्बुदवत्सर्वं विश्वसंघमनित्यकम्॥ १५

नित्यौ गोलोकवैकुण्ठौ प्रोक्तौ शश्वदकृत्रिमौ।
प्रत्येकं लोमकूपेषु ब्रह्माण्डं परिनिश्चितम्॥ १६

एषां संख्यां न जानाति कृष्णोऽन्यस्यापि का कथा।
प्रत्येकं प्रतिब्रह्माण्डं ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ १७

तिस्रः कोट्यः सुराणां च संख्या सर्वत्र पुत्रक।
दिगीशाश्चैव दिक्पाला नक्षत्राणि ग्रहादयः॥ १८

भुवि वर्णाश्च चत्वारोऽप्यधो नागाश्चराचराः।
अथ कालेऽत्र स विराडूर्ध्वं दृष्ट्वा पुनः पुनः॥ १९

डिम्भान्तरे च शून्यं च न द्वितीयं च किञ्चन।
चिन्तामवाप क्षुद्युक्तो रुरोद च पुनः पुनः॥ २०

ज्ञानं प्राप्य तदा दध्यौ कृष्णं परमपूरुषम्।
ततो ददर्श तत्रैव ब्रह्मज्योतिः सनातनम्॥ २१

पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त ब्रह्माण्ड कहा गया है। उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है; वह ब्रह्माण्डसे बाहर है। उसके ऊपर पचास करोड़ योजन विस्तारवाला गोलोक है। जैसे श्रीकृष्ण नित्य और सत्यस्वरूप हैं, वैसे ही यह गोलोक भी है॥ ८-९½॥

यह पृथ्वी सात द्वीपोंवाली तथा सात महासागरोंसे समन्वित है। इसमें उनचास उपद्वीप हैं और असंख्य वन तथा पर्वत हैं। इसके ऊपर सात स्वर्गलोक हैं, जिनमें ब्रह्मलोक भी सम्मिलित है। इसके नीचे सात पाताल-लोक भी हैं; यह सब मिलाकर ब्रह्माण्ड कहा जाता है॥ १०-११½॥

पृथ्वीसे ऊपर भूर्लोक, उसके बाद भुवर्लोक, उसके ऊपर स्वर्लोक, तत्पश्चात् जनलोक, फिर तपोलोक और उसके आगे सत्यलोक है। उसके भी ऊपर तप्त स्वर्णकी आभावाला ब्रह्मलोक है। ब्रह्माण्डके बाहर-भीतर स्थित रहनेवाले ये सब कृत्रिम हैं। हे नारद! उस ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर उन सबका विनाश हो जाता है; क्योंकि जलके बुलबुलेकी तरह यह सब लोक-समूह अनित्य है॥ १२—१५॥

गोलोक और वैकुण्ठ सनातन, अकृत्रिम और नित्य बताये गये हैं। महाविष्णुके प्रत्येक रोमकूपमें ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं। इनकी संख्या श्रीकृष्ण भी नहीं जानते, फिर दूसरेकी क्या बात? प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विराजमान रहते हैं। हे पुत्र! देवताओंकी संख्या वहाँ तीस करोड़ है। दिगीश्वर, दिक्पाल, ग्रह, नक्षत्र आदि भी ब्रह्माण्डमें विद्यमान रहते हैं। पृथ्वीपर चार वर्णके लोग और उसके नीचे पाताललोकमें नाग रहते हैं; इस प्रकार ब्रह्माण्डमें चराचर प्राणी विद्यमान हैं॥ १६—१८½॥

तदनन्तर उस विराट्स्वरूप बालकने बार-बार ऊपरकी ओर देखा; किंतु उस गोलाकार पिण्डमें शून्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। तब वह चिन्तित हो उठा और भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रोने लगा॥ १९-२०॥

चेतनामें आकर जब उसने परमात्मा श्रीकृष्णका ध्यान किया तब उसे सनातन ब्रह्मज्योतिके दर्शन हुए।

नवीनजलदश्यामं द्विभुजं पीतवाससम्।
सस्मितं मुरलीहस्तं भक्तानुग्रहकातरम्॥ २२

जहास बालकस्तुष्टो दृष्ट्वा जनकमीश्वरम्।
वरं तदा ददौ तस्मै वरेशः समयोचितम्॥ २३

मत्समो ज्ञानयुक्तश्च क्षुत्पिपासादिवर्जितः।
ब्रह्माण्डासंख्यनिलयो भव वत्स लयावधि॥ २४

निष्कामो निर्भयश्चैव सर्वेषां वरदो भव।
जरामृत्युरोगशोकपीडादिवर्जितो भव॥ २५

इत्युक्त्वा तस्य कर्णे स महामन्त्रं षडक्षरम्।
त्रिःकृत्वश्च प्रजजाप वेदाङ्गप्रवरं परम्॥ २६

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तं कृष्ण इत्यक्षरद्वयम्।
वह्निजायान्तमिष्टं च सर्वविघ्नहरं परम्॥ २७

मन्त्रं दत्त्वा तदाहारं कल्पयामास वै विभुः।
श्रूयतां तद् ब्रह्मपुत्र निबोध कथयामि ते॥ २८

प्रतिविश्वं यन्नैवेद्यं ददाति वैष्णवो जनः।
तत्षोडशांशो विषयिणो विष्णोः पञ्चदशास्य वै॥ २९

निर्गुणस्यात्मनश्चैव परिपूर्णतमस्य च।
नैवेद्ये चैव कृष्णस्य न हि किञ्चित्प्रयोजनम्॥ ३०

यद्यद्ददाति नैवेद्यं तस्मै देवाय यो जनः।
स च खादति तत्सर्वं लक्ष्मीनाथो विराट् तथा॥ ३१

तं च मन्त्रवरं दत्त्वा तमुवाच पुनर्विभुः।
वरमन्यं किमिष्टं ते तन्मे ब्रूहि ददामि च॥ ३२

कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा तमुवाच विराड् विभुः।
कृष्णं तं बालकस्तावद्वचनं समयोचितम्॥ ३३

बालक उवाच

वरो मे त्वत्पदाम्भोजे भक्तिर्भवतु निश्चला।
सततं यावदायुर्मे क्षणं वा सुचिरं च वा॥ ३४

त्वद्भक्तियुक्तलोकेऽस्मिञ्जीवन्मुक्तश्च सन्ततम्।
त्वद्भक्तिहीनो मूर्खश्च जीवन्नपि मृतो हि सः॥ ३५

नवीन मेघके समान श्याम वर्ण, दो भुजाओंवाले, पीताम्बर धारण किये, मुसकानयुक्त, हाथमें मुरली धारण किये, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल पिता परमेश्वरको देखकर वह बालक प्रसन्न होकर हँस पड़ा॥ २१-२२½ ॥

तब वरके अधिदेव प्रभुने उसे यह समयोचित वर प्रदान किया—हे वत्स! तुम मेरे समान ही ज्ञानसम्पन्न, भूख-प्याससे रहित तथा प्रलयपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आश्रय रहो। तुम निष्काम, निर्भय तथा सभीको वर प्रदान करनेवाले हो जाओ; जरा, मृत्यु, रोग, शोक, पीडा आदिसे रहित हो जाओ॥ २३—२५॥

ऐसा कहकर उसके कानमें उन्होंने वेदोंके प्रधान अंगस्वरूप श्रेष्ठ षडक्षर महामन्त्रका तीन बार उच्चारण किया। आदिमें प्रणव तथा इसके बाद दो अक्षरोंवाले कृष्ण शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें स्वाहासे संयुक्त यह परम अभीष्ट मन्त्र (**ॐ कृष्णाय स्वाहा**) सभी विघ्नोंका नाश करनेवाला है॥ २६-२७॥

मन्त्र देकर प्रभुने उसके आहारकी भी व्यवस्था की। हे ब्रह्मपुत्र! उसे सुनिये, मैं आपको बताता हूँ। प्रत्येक लोकमें वैष्णवभक्त जो नैवेद्य अर्पित करता है, उसका सोलहवाँ भाग तो भगवान् विष्णुका होता है तथा पन्द्रह भाग इस विराट् पुरुषके होते हैं॥ २८-२९॥

उन परिपूर्णतम तथा निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णको तो नैवेद्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। भक्त उन प्रभुको जो कुछ भी नैवेद्य अर्पित करता है, उसे वे लक्ष्मीनाथ विराट् पुरुष ग्रहण करते हैं॥ ३०-३१॥

उस बालकको श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करके प्रभुने उससे पुनः पूछा कि तुम्हें दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, उसे मुझे बताओ; मैं देता हूँ। श्रीकृष्णकी बात सुनकर बालकरूप उन विराट् प्रभुने कृष्णसे समयोचित बात कही॥ ३२-३३॥

बालक बोला—मेरा वर है आपके चरणकमलमें मेरी अविचल भक्ति आयुपर्यन्त निरन्तर बनी रहे। मेरी आयु चाहे क्षणभरकी ही हो या अत्यन्त दीर्घ। इस लोकमें आपकी भक्तिसे युक्त प्राणी जीवन्मुक्त ही है और जो आपकी भक्तिसे रहित है, वह मूर्ख जीते हुए भी मरेके समान है॥ ३४-३५॥

किं तज्जपेन तपसा यज्ञेन पूजनेन च।
व्रतेन चोपवासेन पुण्येन तीर्थसेवया॥ ३६

कृष्णभक्तिविहीनस्य मूर्खस्य जीवनं वृथा।
येनात्मना जीवितश्च तमेव न हि मन्यते॥ ३७

यावदात्मा शरीरेऽस्ति तावत्स शक्तिसंयुतः।

पश्चाद्यान्ति गते तस्मिन्स्वतन्त्राः सर्वशक्तयः॥ ३८

स च त्वं च महाभाग सर्वात्मा प्रकृतेः परः।
स्वेच्छामयश्च सर्वाद्यो ब्रह्मज्योतिः सनातनः॥ ३९

इत्युक्त्वा बालकस्तत्र विरराम च नारद।
उवाच कृष्णः प्रत्युक्तिं मधुरां श्रुतिसुन्दरीम्॥ ४०

श्रीकृष्ण उवाच

सुचिरं सुस्थिरं तिष्ठ यथाहं त्वं तथा भव।
ब्रह्मणोऽसंख्यपाते च पातस्ते न भविष्यति॥ ४१

अंशेन प्रतिब्रह्माण्डे त्वं च क्षुद्रविराड् भव।
त्वन्नाभिपद्माद् ब्रह्मा च विश्वस्त्रष्टा भविष्यति॥ ४२

ललाटे ब्रह्मणश्चैव रुद्राश्चैकादशैव ते।
शिवांशेन भविष्यन्ति सृष्टिसंहरणाय वै॥ ४३

कालाग्निरुद्रस्तेष्वेको विश्वसंहारकारकः।
पाता विष्णुश्च विषयी रुद्रांशेन भविष्यति॥ ४४

मद्भक्तियुक्तः सततं भविष्यसि वरेण मे।
ध्यानेन कमनीयं मां नित्यं द्रक्ष्यसि निश्चितम्॥ ४५

मातरं कमनीयां च मम वक्षःस्थलस्थिताम्।
यामि लोकं तिष्ठ वत्सेत्युक्त्वा सोऽन्तरधीयत॥ ४६

गत्वा स्वलोकं ब्रह्माणं शङ्करं समुवाच ह।
स्त्रष्टारं स्त्रष्टुमीशं च संहर्तुं चैव तत्क्षणम्॥ ४७

श्रीभगवानुवाच

सृष्टिं स्त्रष्टुं गच्छ वत्स नाभिपद्मोद्भवो भव।
महाविराड् लोमकूपे क्षुद्रस्य च विधे शृणु॥ ४८

उस जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य तथा तीर्थसेवनसे क्या लाभ है; जो आपकी भक्तिसे रहित है। कृष्णभक्तिसे रहित मूर्खका जीवन ही व्यर्थ है जो कि वह उस परमात्माको ही नहीं भजता, जिसके कारण वह जीवित है॥ ३६-३७॥

जबतक आत्मा शरीरमें है, तभीतक प्राणी शक्ति-सम्पन्न रहता है। उस आत्माके निकल जानेके बाद वे सारी शक्तियाँ स्वतन्त्र होकर चली जाती हैं॥ ३८॥

हे महाभाग! वे आप सबकी आत्मारूप हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। आप स्वेच्छामय, सबके आदि, सनातन तथा ब्रह्मज्योतिस्वरूप हैं॥ ३९॥

हे नारदजी! यह कहकर वह बालक चुप हो गया। तब श्रीकृष्णने मधुर और कानोंको प्रिय लगनेवाली वाणीमें उसे प्रत्युत्तर दिया॥ ४०॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम बहुत कालतक स्थिर भावसे रहो, जैसे मैं हूँ वैसे ही तुम भी हो जाओ। असंख्य ब्रह्माके नष्ट होनेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें तुम अपने अंशसे क्षुद्रविराट्‌रूपमें स्थित रहोगे। तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा विश्वका सृजन करनेवाले होंगे। सृष्टिके संहारकार्यके लिये ब्रह्माके ललाटमें शिवांशसे वे ग्यारह रुद्र प्रकट होंगे। उनमेंसे एक कालाग्नि नामक रुद्र विश्वका संहार करनेवाले होंगे। तत्पश्चात् विश्वका पालन करनेवाले भोक्ता विष्णु भी रुद्रांशसे प्रकट होंगे। मेरे वरके प्रभावसे तुम सदा ही मेरी भक्तिसे युक्त रहोगे। तुम मुझ परम सुन्दर [जगत्पिता] तथा मेरे वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली मनोहर जगन्माताको ध्यानके द्वारा निश्चितरूपसे निरन्तर देख सकोगे। हे वत्स! अब तुम यहाँ रहो, मैं अपने लोकको जा रहा हूँ—ऐसा कहकर वे प्रभु श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। अपने लोकमें जाकर उन्होंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये तथा [संहारकर्ता] शंकरजीको संहार करनेके लिये आदेश दिया॥ ४१—४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे वत्स! सृष्टिकी रचना करनेके लिये जाओ। हे विधे! सुनो, महाविराट्‌के एक रोमकूपमें स्थित क्षुद्रविराट्‌के नाभिकमलसे प्रकट

गच्छ वत्स महादेव ब्रह्मभालोद्भवो भव।
अंशेन च महाभाग स्वयं च सुचिरं तप॥ ४९

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम विधेः सुत।
जगाम ब्रह्मा तं नत्वा शिवश्च शिवदायकः॥ ५०

महाविराड् लोमकूपे ब्रह्माण्डगोलके जले।
बभूव च विराट् क्षुद्रो विराडंशेन साम्प्रतम्॥ ५१

श्यामो युवा पीतवासाः शयानो जलतल्पके।
ईषद्धास्यः प्रसन्नास्यो विश्वव्यापी जनार्दनः॥ ५२

तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलोद्भवः।
सम्भूय पद्मदण्डे च बभ्राम युगलक्षकम्॥ ५३

नान्तं जगाम दण्डस्य पद्मनालस्य पद्मजः।
नाभिजस्य च पद्मस्य चिन्तामाप पिता तव॥ ५४

स्वस्थानं पुनरागम्य दध्यौ कृष्णपदाम्बुजम्।
ततो ददर्श क्षुद्रं तं ध्यानेन दिव्यचक्षुषा॥ ५५

शयानं जलतल्पे च ब्रह्माण्डगोलकाप्लुते।
यल्लोमकूपे ब्रह्माण्डं तं च तत्परमीश्वरम्॥ ५६

श्रीकृष्णं चापि गोलोकं गोपगोपीसमन्वितम्।

तं संस्तूय वरं प्राप ततः सृष्टिं चकार सः॥ ५७

बभूवुर्ब्रह्मणः पुत्रा मानसाः सनकादयः।
ततो रुद्रकलाश्चापि शिवस्यैकादश स्मृताः॥ ५८

बभूव पाता विष्णुश्च क्षुद्रस्य वामपार्श्वतः।
चतुर्भुजश्च भगवान् श्वेतद्वीपे स चावसत्॥ ५९

क्षुद्रस्य नाभिपद्मे च ब्रह्मा विश्वं ससर्ज ह।
स्वर्गं मर्त्यं च पातालं त्रिलोकीं सचराचराम्॥ ६०

एवं सर्वं लोमकूपे विश्वं प्रत्येकमेव च।
प्रतिविश्वे क्षुद्रविराड् ब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ ६१

होओ। हे वत्स! (हे महादेव!) जाओ, अपने अंशसे ब्रह्माके ललाटसे प्रकट होओ। हे महाभाग! स्वयं भी दीर्घ कालतक तपस्या करो॥ ४८-४९॥

हे ब्रह्मपुत्र नारद! ऐसा कहकर जगत्पति श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके ब्रह्मा तथा कल्याणकारी शिवजी चल पड़े॥ ५०॥

महाविराट्के रोमकूपमें स्थित ब्रह्माण्डगोलकके जलमें वे विराट्पुरुष अपने अंशसे ही अब क्षुद्रविराट् पुरुषके रूपमें प्रकट हुए। श्याम वर्ण, युवा, पीताम्बर धारण किये वे विश्वव्यापी जनार्दन जलकी शय्यापर शयन करते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त था॥ ५१-५२॥

उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उत्पन्न होकर वे ब्रह्मा उस कमलदण्डमें एक लाख युगोंतक चक्कर लगाते रहे। फिर भी वे पद्मयोनि ब्रह्मा पद्मनाभकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलदण्ड तथा कमलनालके अन्ततक नहीं जा सके, [हे नारद!]तब आपके पिता (ब्रह्मा) चिन्तातुर हो गये॥ ५३-५४॥

तब अपने पूर्वस्थानपर आकर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान किया। तत्पश्चात् ध्यानद्वारा दिव्य चक्षुसे उन्होंने ब्रह्माण्डगोलकमें आप्लुत जलशय्यापर शयन करते हुए उन क्षुद्रविराट् पुरुषको देखा, साथ ही जिनके रोमकूपमें ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुषको तथा उनके भी परम प्रभु श्रीकृष्णको और गोप-गोपियोंसे समन्वित गोलोकको भी देखा। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी स्तुति करके उन्होंने उनसे वर प्राप्त किया और सृष्टिका कार्य प्रारम्भ कर दिया॥ ५५—५७॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजीके सनक आदि मानस पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् शिवकी सुप्रसिद्ध ग्यारह रुद्रकलाएँ प्रादुर्भूत हुईं। तदनन्तर क्षुद्रविराट्के वामभागसे लोकोंकी रक्षा करनेवाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्रकट हुए, वे श्वेतद्वीपमें निवास करने लगे॥ ५८-५९॥

क्षुद्रविराट्के नाभिकमलमें प्रकट हुए ब्रह्माजीने सारी सृष्टि रची। उन्होंने स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, चराचरसहित तीनों लोकोंकी रचना की। इस प्रकार महाविराट्के सभी रोमकूपोंमें एक-एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें क्षुद्रविराट्, ब्रह्मा, विष्णु एवं

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कृष्णसङ्कीर्तनं शुभम्।
सुखदं मोक्षदं ब्रह्मन् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ६२

शिव आदि भी हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने श्रीकृष्णका शुभ चरित्र कह दिया, जो सुख और मोक्ष देनेवाला है। हे ब्रह्मन्! आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६०—६२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे ब्रह्मविष्णुमहेश्वरादिदेवतोत्पत्तिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

~~○~~

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच

नारद उवाच

श्रुतं सर्वं मया पूर्वं त्वत्प्रसादात्सुधोपमम्।
अधुना प्रकृतीनां च व्यस्तं वर्णय पूजनम्॥ १

कस्याः पूजा कृता केन कथं मर्त्ये प्रचारिता।
केन वा पूजिता का वा केन का वा स्तुता प्रभो॥ २

तासां स्तोत्रं च ध्यानं च प्रभावं चरितं शुभम्।
काभिः केभ्यो वरो दत्तस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३

श्रीनारायण उवाच

गणेशजननी दुर्गा राधा लक्ष्मीः सरस्वती।
सावित्री च सृष्टिविधौ प्रकृतिः पञ्चधा स्मृता॥ ४

आसां पूजा प्रसिद्धा च प्रभावः परमाद्भुतः।
सुधोपमं च चरितं सर्वमङ्गलकारणम्॥ ५

प्रकृत्यंशाः कला याश्च तासां च चरितं शुभम्।
सर्वं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् सावधानो निशामय॥ ६

काली वसुन्धरा गङ्गा षष्ठी मङ्गलचण्डिका।
तुलसी मनसा निद्रा स्वधा स्वाहा च दक्षिणा॥ ७

संक्षिप्तमासां चरितं पुण्यदं श्रुतिसुन्दरम्।
जीवकर्मविपाकं च तच्च वक्ष्यामि सुन्दरम्॥ ८

दुर्गायाश्चैव राधाया विस्तीर्णं चरितं महत्।
तद्वृत्पश्चात्प्रवक्ष्यामि संक्षेपक्रमतः शृणु॥ ९

नारदजी बोले—हे भगवन्! मैंने आपकी कृपासे यह अमृततुल्य सारी कथा तो सुन ली, अब आप प्रकृतिदेवियोंके पूजनका विस्तृत वर्णन कीजिये॥ १॥

किसने किस देवीकी पूजा की और उसने मृत्युलोकमें किस प्रकार पूजाका विस्तार किया? हे प्रभो! किस मन्त्रसे किस देवीकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किस देवीकी स्तुति की गयी? उन देवियोंके स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव तथा पवित्र चरित्रके विषयमें मुझे बताइये। साथ ही किन-किन देवियोंने किन-किन भक्तोंको वर प्रदान किये, कृपा करके मुझे वह भी बताइये॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मूलप्रकृति सृष्टिकार्यके प्रयोजनार्थ गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री—इन पाँच रूपोंवाली कही गयी हैं॥ ४॥

इन देवियोंकी पूजा अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका प्रभाव परम अद्भुत है और इनका चरित्र अमृततुल्य तथा सभी मंगलोंका कारण है॥ ५॥

हे ब्रह्मन्! प्रकृतिकी अंशसंज्ञक तथा कलासंज्ञक जो देवियाँ हैं, उनका सम्पूर्ण पवित्र चरित्र मैं आपको बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ ६॥

काली, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा तथा दक्षिणा—इन देवियोंके महान् पुण्यदायक तथा सुननेमें प्रिय चरित्रका एवं प्राणियोंके कर्मविपाकका मैं संक्षिप्त तथा सुन्दर वर्णन करूँगा॥ ७-८॥

दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है, उसीका विस्तार बादमें कहूँगा। पहले संक्षेपके क्रमसे सुन लीजिये॥ ९॥

आदौ सरस्वतीपूजा श्रीकृष्णेन विनिर्मिता।
यत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ मूर्खो भवति पण्डितः॥ १०

आविर्भूता यथा देवी वक्त्रतः कृष्णयोषितः।
इयेष कृष्णं कामेन कामुकी कामरूपिणी॥ ११

स च विज्ञाय तद्भावं सर्वज्ञः सर्वमातरम्।
तामुवाच हितं सत्यं परिणामे सुखावहम्॥ १२

श्रीकृष्ण उवाच

भज नारायणं साध्वि मदंशं च चतुर्भुजम्।
युवानं सुन्दरं सर्वगुणयुक्तं च मत्समम्॥ १३

कामज्ञं कामिनीनां च तासां च कामपूरकम्।
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलालङ्कृतमीश्वरम्॥ १४

कान्ते कान्तं च मां कृत्वा यदि स्थातुमिहेच्छसि।
त्वत्तो बलवती राधा न भद्रं ते भविष्यति॥ १५

यो यस्माद् बलवान्वापि ततोऽन्यं रक्षितुं क्षमः।
कथं परान्साधयति यदि स्वयमनीश्वरः॥ १६

सर्वेशः सर्वशास्ताहं राधां बाधितुमक्षमः।
तेजसा मत्समा सा च रूपेण च गुणेन च॥ १७

प्राणाधिष्ठातृदेवी सा प्राणांस्त्यक्तुं च कः क्षमः।
प्राणतोऽपि प्रियः पुत्रः केषां वास्ति च कश्चन॥ १८

त्वं भद्रे गच्छ वैकुण्ठं तव भद्रं भविष्यति।
पतिं तमीश्वरं कृत्वा मोदस्व सुचिरं सुखम्॥ १९

लोभमोहकामक्रोधमानहिंसाविवर्जिता।
तेजसा त्वत्समा लक्ष्मी रूपेण च गुणेन च॥ २०

तया सार्धं तव प्रीत्या शश्वत्कालः प्रयास्यति।
गौरवं च हरिस्तुल्यं करिष्यति द्वयोरपि॥ २१

हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम श्रीकृष्णने सरस्वतीकी पूजा प्रारम्भ की, जिनकी कृपासे मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है॥ १०॥

जब देवी सरस्वती कृष्णवल्लभा राधाके मुखसे प्रकट हुईं, तब उन कामरूपा कामिनीने श्रीकृष्णको कामभावसे प्राप्त करनेकी लालसा की॥ ११॥

उनका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने सबकी माता उन सरस्वतीसे सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुखकर बात कही॥ १२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे साध्वि! तुम मेरे ही अंशस्वरूप चतुर्भुज नारायणका सेवन करो। वे सदा तरुणावस्थामें विराजमान, सुन्दर रूपवाले, सभी गुणोंसे सम्पन्न तथा मेरे ही समान हैं। वे कामिनियोंकी कामनाओंको जाननेवाले तथा उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं और लीलामय अलंकारोंसे अलंकृत हैं तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं॥ १३-१४॥

हे कान्ते! मुझे पति बनाकर यदि तुम यहाँ रहना चाहती हो, तो तुमसे भी अधिक बलवती राधा यहाँ हैं, अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा॥ १५॥

जो मनुष्य जिससे बलवान् होता है, वह उससे तो दूसरे प्राणीकी रक्षा करनेमें समर्थ है; किंतु यदि स्वयं सामर्थ्यरहित है तो दूसरोंकी रक्षा कैसे कर सकता है?॥ १६॥

सबका ईश्वर तथा सबपर शासन करनेवाला मैं राधाको रोक पानेमें असमर्थ हूँ; क्योंकि वे भी तेज, रूप तथा गुणमें मेरे ही समान हैं। किन्हीं भी पुरुषोंके लिये कोई पुत्र क्या प्राणसे अधिक प्रिय हो सकता है अर्थात् नहीं। वे राधा तो मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं तो फिर उन प्राणरूपा राधाको छोड़नेमें मैं कैसे समर्थ हो सकता हूँ। हे भद्रे! तुम वैकुण्ठलोक जाओ; तुम्हारा कल्याण होगा। उन्हीं ऐश्वर्यसम्पन्न विष्णुको पति बनाकर दीर्घ कालतक सुखपूर्वक आनन्द प्राप्त करो॥ १७—१९॥

लोभ, मोह, काम, क्रोध, मान और हिंसासे रहित एवं तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान [उनकी पत्नी] लक्ष्मी भी वहाँ हैं। उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक व्यतीत होगा और विष्णु भी तुम दोनोंका समान-रूपसे सम्मान करेंगे॥ २०-२१॥

प्रतिविश्वेषु तां पूजां महतीं गौरवान्विताम्।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भे च सुन्दरि॥ २२

मानवा मनवो देवा मुनीन्द्राश्च मुमुक्षवः।
वसवो योगिनः सिद्धा नागा गन्धर्वराक्षसाः॥ २३

मद्वरेण करिष्यन्ति कल्पे कल्पे लयावधि।
भक्तियुक्ताश्च दत्त्वा वै चोपचाराणि षोडश॥ २४

कण्वशाखोक्तविधिना ध्यानेन स्तवनेन च।
जितेन्द्रियाः संयताश्च घटे च पुस्तकेऽपि च॥ २५

कृत्वा सुवर्णगुटिकां गन्धचन्दनचर्चिताम्।
कवचं ते ग्रहीष्यन्ति कण्ठे वा दक्षिणे भुजे॥ २६

पठिष्यन्ति च विद्वांसः पूजाकाले च पूजिते।
इत्युक्त्वा पूजयामास तां देवीं सर्वपूजिताम्॥ २७

ततस्तत्पूजनं चक्रुर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
अनन्तश्चापि धर्मश्च मुनीन्द्राः सनकादयः॥ २८

सर्वे देवाश्च मुनयो नृपाश्च मानवादयः।
बभूव पूजिता नित्यं सर्वलोकैः सरस्वती॥ २९

नारद उवाच

पूजाविधानं कवचं ध्यानं चापि निरन्तरम्।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं पुष्पं च चन्दनादिकम्॥ ३०

वद वेदविदां श्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं मम।
वर्तते हृदये शश्वत्किमिदं श्रुतिसुन्दरम्॥ ३१

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कण्वशाखोक्तपद्धतिम्।
जगन्मातुः सरस्वत्याः पूजाविधिसमन्विताम्॥ ३२

माघस्य शुक्लपञ्चम्यां विद्यारम्भदिनेऽपि च।
पूर्वेऽह्नि समयं कृत्वा तत्राह्नि संयतः शुचिः॥ ३३

स्नात्वा नित्यक्रियाः कृत्वा घटं संस्थाप्य भक्तितः।
स्वशाखोक्तविधानेन तान्त्रिकेणाथवा पुनः॥ ३४

गणेशं पूर्वमभ्यर्च्य ततोऽभीष्टां प्रपूजयेत्।

हे सुन्दरि! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पंचमी तिथिको विद्यारम्भके अवसरपर मनुष्य, मनुगण, देवता, मुनीन्द्र, मुमुक्षुजन, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें भक्तिपूर्वक षोडशोपचार-पूजा अर्पण करके बड़े गौरवके साथ तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा सम्पन्न करेंगे॥ २२—२४॥

जितेन्द्रिय तथा संयमशील व्यक्ति कण्वशाखामें कही गयी विधिके अनुसार ध्यान तथा स्तुतिपूर्वक घट अथवा पुस्तकमें आवाहित करके तुम्हारा पूजन करेंगे। तुम्हारे कवचको लिखकर उसे सोनेकी गुटिका (डिब्बी)-में रखकर पुनः उसे गन्ध-चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गले अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे। पूजाके पावन अवसरपर विद्वज्जन तुम्हारे इस कवचका पाठ करेंगे॥ २५-२६½॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने सभी लोगोंके द्वारा पूजित उन भगवती सरस्वतीका पूजन किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, सनकादि मुनीश्वर, देवता, मुनिगण, राजा और मनुष्य आदि—ये सब भी सरस्वतीकी उपासना करने लगे। तभीसे ये सरस्वती सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा सदा पूजित होने लगीं॥ २७—२९॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप उन भगवतीके पूजाविधान, कवच, ध्यान, पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदिके विषयमें मुझे बतायें। यह सब सुननेकी लालसा मेरे हृदयमें निरन्तर बनी रहती है। सुननेमें इससे अधिक सुन्दर (प्रिय) क्या हो सकता है?॥ ३०-३१॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, जगज्जननी सरस्वतीकी पूजाविधिसे संयुक्त कण्वशाखोक्त पद्धतिका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३२॥

माघ शुक्ल पंचमी तथा विद्यारम्भके दिन भी पूर्वाह्णकालमें प्रतिज्ञा करके आराधक उस दिन संयम तथा पवित्रतासे युक्त रहे। स्नान और नित्यक्रिया करके भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करनेके बाद अपनी शाखामें कही गयी विधिसे अथवा तान्त्रिक विधिसे पहले गणेशजीका पूजन करके अभीष्ट देवी सरस्वतीकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ३३-३४½॥

ध्यानेन वक्ष्यमाणेन ध्यात्वा बाह्यघटे ध्रुवम्॥ ३५

ध्यात्वा पुनः षोडषोपचारेण पूजयेद् व्रती।
पूजोपयुक्तं नैवेद्यं यच्च वेदनिरूपितम्॥ ३६

वक्ष्यामि सौम्य तत्किञ्चिद्यथाधीतं यथागमम्।
नवनीतं दधि क्षीरं लाजांश्च तिललड्डुकम्॥ ३७

इक्षुमिक्षुरसं शुक्लवर्णं पक्वगुडं मधु।
स्वस्तिकं शर्करां शुक्लधान्यस्याक्षतमक्षतम्॥ ३८

अच्छिन्नशुक्लधान्यस्य पृथुकं शुक्लमोदकम्।
घृतसैन्धवसंयुक्तं हविष्यान्नं यथोदितम्॥ ३९

यवगोधूमचूर्णानां पिष्टकं घृतसंयुतम्।
पिष्टकं स्वस्तिकस्यापि पक्वरम्भाफलस्य च॥ ४०

परमान्नं च सघृतं मिष्टान्नं च सुधोपमम्।
नारिकेलं तदुदकं कसेरुं मूलमार्द्रकम्॥ ४१

पक्वरम्भाफलं चारु श्रीफलं बदरीफलम्।
कालदेशोद्भवं चारु फलं शुक्लं च संस्कृतम्॥ ४२

सुगन्धं शुक्लपुष्पं च सुगन्धं शुक्लचन्दनम्।
नवीनं शुक्लवस्त्रं च शङ्खं च सुन्दरं मुने॥ ४३

माल्यं च शुक्लपुष्पाणां शुक्लहारं च भूषणम्।
यादृशं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम्॥ ४४

तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम्।
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्॥ ४५

कोटिचन्द्रप्रभामुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम्॥ ४६

रत्नसारेन्द्रनिर्माणनवभूषणभूषिताम्।
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः॥ ४७

बताये गये ध्यानके द्वारा बाह्य घटमें देवीका ध्यान करके तत्पश्चात् व्रतीको चाहिये कि फिर ध्यानपूर्वक षोडशोपचार विधिसे भगवती सरस्वतीका पूजन करे। हे सौम्य! सरस्वती-पूजाके लिये उपयोगी जो कुछ नैवेद्य वेदोंमें बताये गये हैं और जैसा मैंने आगमशास्त्रमें अध्ययन किया है, उसे आपको बता रहा हूँ—मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलका लड्डू, सफेद गन्ना, गन्नेका रस, उसे पकाकर बनाया हुआ गुड़, मधु, स्वस्तिक (एक प्रकारका पक्वान्न), शक्कर, सफेद धानका बिना टूटा हुआ चावल (अक्षत), बिना उबाले हुए श्वेत धानका चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर बनाया गया शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, स्वस्तिक तथा पके हुए केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृततुल्य मधुर मिष्टान्न, नारियल, नारियलका जल, कसेरु, मूली, अदरक, पका हुआ केला, सुन्दर बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध सुन्दर, श्वेत और पवित्र ऋतुफल—ये नैवेद्य (प्रशस्त) हैं॥ ३५—४२॥

हे मुने! सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित श्वेत चन्दन, नवीन श्वेत वस्त्र तथा सुन्दर शंख, श्वेत पुष्पोंकी माला, श्वेत वर्णका हार तथा आभूषण भगवती सरस्वतीको अर्पण करने चाहिये॥ ४३½॥

हे महाभाग! भगवती सरस्वतीका जैसा ध्यान वेदमें वर्णित है; उस प्रशंसनीय, सुननेमें सुन्दर तथा भ्रमका नाश करनेवाले ध्यानके विषयमें सुनिये॥ ४४½॥

'मैं भक्तिपूर्वक शुक्ल वर्णवाली, मुसकानयुक्त, अत्यन्त मनोहर, करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले परिपुष्ट तथा श्रीसम्पन्नविग्रहवाली, अग्निसदृश विशुद्ध वस्त्र धारण करनेवाली, हाथमें वीणा तथा पुस्तक धारण करनेवाली, उत्कृष्ट कोटिके रत्नोंसे निर्मित नवीन आभूषणोंसे विभूषित, ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगणोंसे सम्यक् पूजित तथा मुनीश्वरों, मनुगण और मनुष्योंसे वन्दित भगवती सरस्वतीकी वन्दना करता हूँ'—इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष समस्त पूजन-सामग्री मूलमन्त्रसे विधिपूर्वक

वन्दे भक्त्या वन्दितां च मुनीन्द्रमनुमानवैः।
एवं ध्यात्वा च मूलेन सर्वं दत्त्वा विचक्षणः॥ ४८

संस्तूय कवचं धृत्वा प्रणमेद्दण्डवद्भुवि।
येषां चेयमिष्टदेवी तेषां नित्यक्रिया मुने॥ ४९

विद्यारम्भे च वर्षान्ते सर्वेषां पञ्चमीदिने।
सर्वोपयुक्तं मूलं च वैदिकाष्टाक्षरः परः॥ ५०

येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च।
सरस्वती चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥ ५१

लक्ष्मीमायादिकं चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः।
पुरा नारायणश्चेमं वाल्मीकाय कृपानिधिः॥ ५२

प्रददौ जाह्नवीतीरे पुण्यक्षेत्रे च भारते।
भृगुर्ददौ च शुक्राय पुष्करे सूर्यपर्वणि॥ ५३

चन्द्रपर्वणि मारीचो ददौ वाक्पतये मुदा।
भृगोश्चैव ददौ तुष्टो ब्रह्मा बदरिकाश्रमे॥ ५४

आस्तिकस्य जरत्कारुर्ददौ क्षीरोदसन्निधौ।
विभाण्डको ददौ मेरौ ऋष्यशृङ्गाय धीमते॥ ५५

शिवः कणादमुनये गौतमाय ददौ मुदा।
सूर्यश्च याज्ञवल्क्याय तथा कात्यायनाय च॥ ५६

शेषः पाणिनये चैव भारद्वाजाय धीमते।
ददौ शाकटायनाय सुतले बलिसंसदि॥ ५७

चतुर्लक्षजपेनैव मन्त्रः सिद्धो भवेन्नृणाम्।
यदि स्यान्मन्त्रसिद्धो हि बृहस्पतिसमो भवेत्॥ ५८

कवचं शृणु विप्रेन्द्र यद्दत्तं ब्रह्मणा पुरा।
विश्वस्रष्टा विश्वजयं भृगवे गन्धमादने॥ ५९

सरस्वतीको अर्पण करके स्तुति करे और कवचको धारण करके दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर सरस्वतीको प्रणाम करे। हे मुने! ये सरस्वती जिन लोगोंकी इष्ट देवी हैं, उनके लिये तो यह नित्यक्रिया है। अन्य सभी लोगोंको विद्यारम्भके अवसरपर, वर्षके अन्तमें तथा पंचमी तिथिको यह आराधना अवश्य करनी चाहिये॥ ४५—४९॥

वैदिक अष्टाक्षर मूल मन्त्र परम श्रेष्ठ तथा सबके लिये उपयोगी है। अथवा जिन्हें जिसने जिस मन्त्रका उपदेश दिया है, उनके लिये वही मूल मन्त्र है। सरस्वती—इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी तथा अन्तमें 'स्वाहा' लगाकर सबके आदिमें लक्ष्मीबीज और मायाबीज लगाकर बना हुआ यह मन्त्र '**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**' कल्पवृक्षके समान है॥ ५०-५१ १/२॥

प्राचीन कालमें कृपानिधि भगवान् नारायणने पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मन्त्र प्रदान किया था। इसी प्रकार भृगुमुनिने पुष्करक्षेत्रमें सूर्यग्रहणपर्वके अवसरपर यह मन्त्र शुक्राचार्यको प्रदान किया, मारीच (कश्यप)-ने चन्द्रग्रहणके समयपर प्रसन्न होकर बृहस्पतिको इसका उपदेश किया और ब्रह्माजीने भृगुसे सन्तुष्ट होकर बदरिकाश्रममें उन्हें यह मन्त्र दिया था॥ ५२—५४॥

जरत्कारुमुनिने क्षीरसागरके समीप आस्तिकको यह मन्त्र दिया था और विभाण्डकमुनिने मेरुपर्वतपर बुद्धिमान् ऋष्यशृंगको इसका उपदेश दिया था। भगवान् शिवने आनन्दित होकर कणादमुनि तथा गौतमको यह मन्त्र प्रदान किया था और सूर्यने याज्ञवल्क्य तथा कात्यायनको इस मन्त्रका उपदेश किया था। शेषनागने सुतल लोकमें बलिकी सभामें पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायनको यह मन्त्र दिया था॥ ५५—५७॥

चार लाख जप कर लेनेसे यह मन्त्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। यदि मनुष्य इस मन्त्रमें सिद्ध हो जाय, तो वह बृहस्पतिके समान हो जाता है॥ ५८॥

हे विप्रवर! अब आप विश्वपर विजय प्राप्त करानेवाले सरस्वतीकवचके विषयमें सुनिये, जिसे पूर्वकालमें जगत्‌का सृजन करनेवाले ब्रह्माजीने गन्धमादनपर्वतपर भृगुमुनिको प्रदान किया था॥ ५९॥

भृगुरुवाच

ब्रह्मन्ब्रह्मविदां श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानविशारद।
सर्वज्ञ सर्वजनक सर्वेश सर्वपूजित॥ ६०

सरस्वत्याश्च कवचं ब्रूहि विश्वजयं प्रभो।
अयातयामं मन्त्राणां समूहसंयुतं परम्॥ ६१

ब्रह्मोवाच

शृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्।
श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्॥ ६२

उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने।
रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥ ६३

अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्।
अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्॥ ६४

यद्धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः।

यद्धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः॥ ६५

पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः।
स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद्धृत्वा सर्वपूजितः॥ ६६

कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः।
ग्रन्थं चकार यद्धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्॥ ६७

धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च।
चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥ ६८

शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः।
यद्धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥ ६९

ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तिको देवलस्तथा।
जैगीषव्यो ययातिश्च धृत्वा सर्वत्र पूजिताः॥ ७०

कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः।
स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका॥ ७१

सर्वतत्त्वपरिज्ञानसर्वार्थसाधनेषु च।
कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः॥ ७२

भृगु बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञानमें पारंगत, सब कुछ जाननेवाले, सबकी सृष्टि करनेवाले, सबके स्वामी तथा सभीके द्वारा पूजित हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! आप मुझे मन्त्रोंके समूहसे युक्त तथा परम पवित्र 'विश्वजय' नामक सरस्वती-कवच बतलाइये॥ ६०-६१॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! सुनिये; मैं आपसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, कानोंको सुख देनेवाले, वेदप्रतिपादित तथा वेदपूजित कवचका वर्णन करूँगा। रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने गोलोक वृन्दावनमें रासलीलाके अवसरपर रासमण्डलमें मुझे यह कवच बताया था॥ ६२-६३॥

हे ब्रह्मन्! यह कवच परम गोपनीय, कल्पवृक्षके समान श्रेष्ठ तथा न सुने हुए अद्भुत मन्त्रसमूहोंसे युक्त है, जिसे धारण करके भगवान् शुक्राचार्य समस्त दैत्योंके पूज्य बन गये और जिसे धारण करके इसका पाठ करनेसे बृहस्पति परम बुद्धिमान् हो गये॥ ६४-६५॥

इसी प्रकार इस कवचके धारण करने तथा इसका पाठ करनेसे वाल्मीकिमुनि विद्वान् तथा कवीश्वर हो गये और स्वायम्भुव मनु इसे धारण करके सभीके पूज्य हो गये॥ ६६॥

इस कवचको धारण करके ही स्वयं कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन ग्रन्थ-रचना करनेमें समर्थ हुए॥ ६७॥

इसी प्रकार स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासजीने भी इसे धारण करके लीलामात्रमें वेदोंका विभाग तथा सम्पूर्ण पुराणोंका प्रणयन किया॥ ६८॥

शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर तथा याज्ञवल्क्यने इसे धारण करके इसके पाठसे ग्रन्थ-रचना की। इसी प्रकार ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तिक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इस कवचको धारण करके सर्वत्र पूजित हुए॥ ६९-७०॥

हे विप्रेन्द्र! इस कवचके ऋषि स्वयं प्रजापति ही हैं इसका छन्द बृहती है और देवता माता शारदा हैं। सभी तत्त्वोंके परिज्ञान करनेमें, सम्पूर्ण अर्थोंके साधनमें तथा सभी कविताओंके विवेचनमें इस कवचका विनियोग बताया गया है॥ ७१-७२॥

श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः।
श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु॥ ७३

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम्।
ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु॥ ७४

ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वदावतु।
ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा चोष्ठं सदावतु॥ ७५

ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपंक्तिं सदावतु।
ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु॥ ७६

ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु।
ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु॥ ७७

ॐ ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्।
ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदावतु॥ ७८

ॐ सर्ववर्णात्मिकायै [स्वाहा] पादयुग्मं सदावतु।
ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदावतु॥ ७९

ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु।
ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥ ८०

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।
सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु॥ ८१

ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां सर्वदावतु।
ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥ ८२

'**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सभी ओरसे मेरे सिरकी रक्षा करे। '**श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ललाटकी रक्षा करे॥ ७३॥

'**ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कानोंकी निरन्तर रक्षा करे और '**ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों नेत्रोंकी सदा रक्षा करे॥ ७४॥

'**ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करे और '**ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ओष्ठकी रक्षा करे॥ ७५॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी दन्तपंक्तिकी सदा रक्षा करे और '**ऐं**' यह एकाक्षरमन्त्र मेरे कण्ठकी सदा रक्षा करे॥ ७६॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं**'—यह मन्त्र मेरी गर्दनकी रक्षा करे तथा '**श्रीं**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कन्धोंकी सदा रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे॥ ७७॥

'**ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नाभिकी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करे॥ ७८॥

'**ॐ सर्ववर्णात्मिकायै [स्वाहा]**'—यह मन्त्र मेरे दोनों पैरोंकी सदा रक्षा करे और '**ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे सम्पूर्ण शरीरकी रक्षा करे॥ ७९॥

'**ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पूर्व दिशामें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र अग्निकोणमें मेरी रक्षा करे॥ ८०॥

'**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्रराज दक्षिण दिशामें सर्वदा निरन्तर मेरी रक्षा करे॥ ८१॥

'**ऐं ह्रीं श्रीं**'—यह त्र्यक्षर मन्त्र नैर्ऋत्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८२॥

ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु।
ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥ ८३

ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु।
ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु॥ ८४

ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाधो मां सदावतु।
ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥ ८५

इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्।
इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥ ८६

पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात्पर्वते गन्धमादने।
तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥ ८७

गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत्सुधीः॥ ८८

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्।
यदि स्यात्सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥ ८९

महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः॥ ९०

इदं च कण्वशाखोक्तं कवचं कथितं मुने।
स्तोत्रं पूजाविधानं च ध्यानं च वन्दनं शृणु॥ ९१

'**ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा**'—यह मन्त्र वायव्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८३॥

'**ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र ईशानकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा**'—यह मन्त्र ऊपरसे सदा मेरी रक्षा करे॥ ८४॥

'**ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र नीचेसे सदा मेरी रक्षा करे। '**ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सब ओरसे मेरी रक्षा करे॥ ८५॥

हे विप्र! मैंने आपको ब्रह्ममन्त्रसमूहके विग्रहरूप इस सरस्वतीकवचको बतला दिया। 'विश्वजय' नामक यह कवच साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है॥ ८६॥

पूर्व कालमें मैंने गन्धमादनपर्वतपर धर्मदेवके मुखसे यह कवच सुना था। आपके स्नेहके कारण मैंने आपको इसे बतलाया है। किसी अन्य व्यक्तिको इसे नहीं बताना चाहिये॥ ८७॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि नानाविध वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे भलीभाँति गुरुकी पूजा करके दण्डकी भाँति जमीनपर गिरकर प्रणाम करे और इसके बाद इस कवचको धारण करे॥ ८८॥

पाँच लाख जप कर लेनेसे यह कवच सिद्ध हो जाता है। इस कवचको यदि साधक सिद्ध कर ले तो वह बृहस्पतिके समान हो जाता है। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य महान् वक्ता, कवियोंका सम्राट् तथा तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला हो जाता है और वह सब कुछ जीत लेनेमें समर्थ हो जाता है॥ ८९-९०॥

हे मुने! मैंने कण्वशाखाके अन्तर्गत वर्णित यह सरस्वती-कवच आपको बतला दिया। अब आप सरस्वतीके स्तोत्र, पूजाविधान, ध्यान तथा वन्दनके विषयमें सुनिये॥ ९१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सरस्वतीस्तोत्रपूजाकवचादिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति

श्रीनारायण उवाच

वाग्देवतायाः स्तवनं श्रूयतां सर्वकामदम्।
महामुनिर्याज्ञवल्क्यो येन तुष्टाव तां पुरा॥ १

गुरुशापाच्च स मुनिर्हतविद्यो बभूव ह।
तदा जगाम दुःखार्तो रविस्थानं सुपुण्यदम्॥ २

सम्प्राप्य तपसा सूर्यं लोलार्के दृष्टिगोचरे।
तुष्टाव सूर्यं शोकेन रुरोद च मुहुर्मुहुः॥ ३

सूर्यस्तं पाठयामास वेदं वेदाङ्गमीश्वरः।
उवाच स्तौहि वाग्देवीं भक्त्या च स्मृतिहेतवे॥ ४

तमित्युक्त्वा दीननाथोऽप्यन्तर्धानं चकार सः।
मुनिः स्नात्वा च तुष्टाव भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥ ५

याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्।
गुरुशापात्स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्॥ ६

ज्ञानं देहि स्मृतिं विद्यां शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम्।
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम्॥ ७

प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम्।
लुप्तं सर्वं दैवयोगान्नवीभूतं पुनः कुरु॥ ८

यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः।
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी॥ ९
सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः।

श्रीनारायण बोले—हे मुने! अब आप वाग्देवी सरस्वतीका वह स्तोत्र सुनिये, जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है और जिसके द्वारा महामुनि याज्ञवल्क्यने प्राचीन कालमें उन सरस्वती-देवीकी स्तुति की थी॥ १॥

गुरुदेवके शापसे वे मुनि अपनी विद्यासे च्युत हो गये थे।* तब दुःखार्त होकर वे पुण्यप्रद सूर्यतीर्थ लोलार्क-क्षेत्रमें चले गये। वहाँ पहुँचकर अपनी तपस्यासे भगवान् सूर्यके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने सूर्यकी स्तुति की तथा शोकसे सन्तप्त होकर बार-बार रुदन किया॥ २-३॥

उस समय भगवान् सूर्यने उन याज्ञवल्क्यको वेद तथा वेदांग पढ़ाया और उनसे कहा कि आप स्मरणशक्ति प्राप्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक सरस्वतीदेवीकी स्तुति कीजिये॥ ४॥

उनसे ऐसा कहकर दीनोंके नाथ भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और याज्ञवल्क्यमुनि स्नान करके सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

याज्ञवल्क्य बोले—हे जगज्जननि! गुरुके शापसे इस प्रकार मुझ विनष्ट स्मृतिवाले, निस्तेज, विद्याविहीन तथा दुःखितपर कृपा कीजिये॥ ६॥

आप मुझे ज्ञान, स्मरणशक्ति, विद्या, शिष्योंको प्रबोध करानेवाली शक्ति, ग्रन्थनिर्माणका सामर्थ्य, सुप्रतिष्ठित शिष्य तथा सज्जनोंकी सभामें अभिव्यक्तिहेतु प्रतिभा एवं उत्तम विचारक्षमता प्रदान कीजिये। दैवयोगसे मेरी लुप्त हुई इन समस्त शक्तियोंको आप पुनः उसी प्रकार नवीनरूपमें कर दीजिये, जैसे देवता भस्ममें छिपे बीजको पुनः अंकुरित कर देते हैं॥ ७-८½॥

जो ब्रह्मस्वरूपिणी, परमा, ज्योतिरूपा, शाश्वत तथा सभी विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन सरस्वतीको बार-बार नमस्कार है॥ ९½॥

---

* महर्षि याज्ञवल्क्य वैशम्पायनजीके शिष्य थे। उनसे ही इन्होंने सम्पूर्ण वेदज्ञान प्राप्त किया था। एक बार गुरुसे विवाद हो जानेके कारण गुरुजीने इन्हें शाप दे दिया कि तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो। गुरुकी आज्ञासे याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमें वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके अन्य शिष्योंने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया, यजुर्वेदकी वही शाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। वेदज्ञानसे शून्य याज्ञवल्क्यजीने सूर्यकी उपासनाकर पुनः नवीन वेदमन्त्रोंको प्राप्त किया; जो यजुर्वेदकी वाजसनेय या माध्यन्दिन शाखा कहलायी। (श्रीमद्भा० स्क० १२ अ० ६)

विसर्गबिन्दुमात्रासु यदधिष्ठानमेव च॥ १०

तदधिष्ठात्री या देवी तस्यै नित्यै नमो नमः।
व्याख्यास्वरूपा सा देवी व्याख्याधिष्ठातृरूपिणी॥ ११

यया विना प्रसंख्यावान् संख्यां कर्तुं न शक्यते।
कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥ १२

भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः।
स्मृतिशक्तिज्ञानशक्तिबुद्धिशक्तिस्वरूपिणी ॥ १३

प्रतिभाकल्पनाशक्तिर्या च तस्यै नमो नमः।
सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै॥ १४

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः।
तदाजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः॥ १५

उवाच स तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते।
स च तुष्टाव तां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः॥ १६

चकार तत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्।
यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुन्धरा॥ १७

बभूव मूकवत्सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः।
तदा तां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया॥ १८

ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्।
व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा॥ १९

मौनीभूतश्च सस्मार तामेव जगदम्बिकाम्।
तदा चकार सिद्धान्तं तद्वरेण मुनीश्वरः॥ २०
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं भ्रमान्धध्वंसदीपकम्।

विसर्ग, बिन्दु तथा मात्रा—इन तीनोंमें जो अधिष्ठान-रूपसे विद्यमान हैं तथा जो उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन नित्या देवीको बार-बार नमस्कार है। वे भगवती सरस्वती व्याख्यास्वरूपिणी तथा व्याख्याकी अधिष्ठातृ भी हैं॥ १०-११॥

जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी गणनाकार्य नहीं कर सकते तथा जो साक्षात् कालसंख्यास्वरूपिणी हैं; उन देवीको बार-बार नमस्कार है॥ १२॥

जो भ्रमसिद्धान्तस्वरूपा हैं, उन देवीको बार-बार नमस्कार है। जो स्मरणशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति, प्रतिभाशक्ति तथा कल्पनाशक्तिस्वरूपिणी हैं; उन देवीको बार-बार नमस्कार है॥ १३½ ॥

एक बार जब सनत्कुमारने ब्रह्माजीसे ब्रह्मज्ञानके विषयमें पूछा था, उस समय ब्रह्मसिद्धान्तकी व्याख्या करनेमें वे ब्रह्मा मूककी भाँति अक्षम हो गये थे। उसी समय स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण वहाँ आ गये और उन्होंने कहा—हे प्रजापते! आप भगवती सरस्वतीको अपनी इष्ट देवी बनाकर उनकी स्तुति कीजिये॥ १४-१५½ ॥

परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माजीने उन सरस्वतीकी स्तुति की। उसके बाद वे सरस्वतीकी कृपासे उत्तम सिद्धान्तका विवेचन करनेमें सफल हो गये॥ १६½ ॥

इसी तरह जब पृथ्वीने शेषनागसे ज्ञानका एक रहस्य पूछा था, तब वे शेष भी मूक-जैसे बन गये और सिद्धान्तका विवेचन करनेमें असमर्थ रहे। तब अत्यन्त व्यथितहृदय शेषने कश्यपकी आज्ञाके अनुसार उन सरस्वतीकी स्तुति की। तदनन्तर वे भ्रमका नाश करनेवाले उस पवित्र सिद्धान्तका विवेचन कर सके॥ १७-१८½ ॥

ऐसे ही जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्र पूछा, तब वे मौन हो गये और तब उन्होंने उन्हीं जगदम्बा सरस्वतीका स्मरण किया। तत्पश्चात् उनके वरसे भ्रमरूपी अन्धकारको मिटानेवाला ज्योतिसदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त करके मुनीश्वर वाल्मीकि पुराण-सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हो सके॥ १९-२०½ ॥

पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः॥ २१

तां शिवां वेद दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह॥ २२

तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः।
यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम्॥ २३

क्षणं तामेव सञ्चिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः।
पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्॥ २४

दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे।
तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम्॥ २५

उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम्।
अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः॥ २६

ते च तां परिसञ्चिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम्।
त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः॥ २७

दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।
जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः॥ २८

यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः।
इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥ २९

प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः।
ज्योतीरूपा महामाया तेन दृष्टाप्युवाच तम्॥ ३०
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह।

भगवान् कृष्णके अंशसे उत्पन्न व्यासजीने उस पुराणसूत्रको सुनकर उन कल्याणमयी सरस्वतीको जाना और पुष्करक्षेत्रमें सौ वर्षोंतक उनकी उपासना की। [हे माता!] तत्पश्चात् आपसे वर प्राप्त करके वे श्रेष्ठ कवीन्द्र हुए और उसके बाद उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की॥ २१-२२½ ॥

जब इन्द्रने भगवान् शंकरसे तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें पूछा, तब क्षणभर उन सरस्वतीका ध्यान करके ही शिवजीने उन इन्द्रको ज्ञानोपदेश दिया॥ २३½ ॥

[हे माता!] जब इन्द्रने शब्दशास्त्रके विषयमें बृहस्पतिसे पूछा था, तब उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक हजार वर्षोंतक आपकी आराधना की। तदुपरान्त आपसे वर प्राप्त करके वे एक हजार दिव्य वर्षोंतक देवपति इन्द्रको शब्दशास्त्रका उपदेश करते रहे। इसी तरह बृहस्पतिने जिन शिष्योंको पढ़ाया तथा अन्य जिन मुनीश्वरोंने उनसे अध्ययन किया, वे सब-के-सब उन भगवती सुरेश्वरीकी सम्यक् आराधना करके ही सफल हुए हैं॥ २४—२६½ ॥

मुनीश्वरों, मनुगणों, मनुष्यों, दैत्येश्वरों तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके द्वारा भी सम्यक् रूपसे आपकी स्तुति तथा पूजा की गयी है। हजार मुखवाले शेषनाग, पाँच मुखवाले शिव तथा चार मुखवाले ब्रह्मा भी जिनकी स्तुति करनेमें जड़वत् हो जाते हैं, तब मैं साधारण-सा मनुष्य एक मुखसे उन आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ?॥ २७-२८½ ॥

[हे नारद!] इस प्रकार स्तुति करके याज्ञवल्क्यमुनि भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिभावसे उनका कन्धा झुक गया था, वे आहाररहित थे तथा बार-बार रो रहे थे॥ २९½ ॥

इसी बीच ज्योतिस्वरूपिणी महामाया सरस्वतीने उन्हें दर्शन दिया और वे मुनिसे बोलीं—'तुम महान् कवीन्द्र हो जाओ'—ऐसा कहकर वे वैकुण्ठ चली गयीं॥ ३०½ ॥

याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत्॥ ३१

स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्।
महामूर्खश्च दुर्बुद्धिर्वर्षमेकं यदा पठेत्॥ ३२

स पण्डितश्च मेधावी सुकवीन्द्रो भवेद् ध्रुवम्॥ ३३

[हे नारद!] जो मनुष्य याज्ञवल्क्यके द्वारा रचित इस सरस्वतीस्तोत्रका पाठ करता है, वह कवीन्द्र तथा बृहस्पतिके समान महान् वक्ता हो जाता है। यदि कोई महान् मूर्ख तथा दुर्बुद्धि भी इस स्तोत्रका एक वर्षतक नियमपूर्वक पाठ करे, तो वह निश्चय ही पण्डित, मेधावी तथा श्रेष्ठ कवि हो जाता है॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे याज्ञवल्क्यकृतं सरस्वतीस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~○~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना

श्रीनारायण उवाच

सरस्वती तु वैकुण्ठे स्वयं नारायणान्तिके।
गङ्गाशापेन कलहात्कलया भारते सरित्॥ १

पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यतीर्थस्वरूपिणी।
पुण्यवद्भिर्निषेव्या च स्थितिः पुण्यवतां मुने॥ २

तपस्विनां तपोरूपा तपसः फलरूपिणी।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥ ३

ज्ञानात्सरस्वतीतोये मृता ये मानवा भुवि।
तेषां स्थितिश्च वैकुण्ठे सुचिरं हरिसंसदि॥ ४

भारते कृतपापश्च स्नात्वा तत्र च लीलया।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके वसेच्चिरम्॥ ५

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामक्षयायां दिनक्षये।
व्यतीपाते च ग्रहणेऽन्यस्मिन्पुण्यदिनेऽपि च॥ ६

अनुषङ्गेण यः स्नातो हेतुना श्रद्धयापि वा।
सारूप्यं लभते नूनं वैकुण्ठे स हरेरपि॥ ७

श्रीनारायण बोले—हे मुने! साक्षात् भगवान् विष्णुके पास वैकुण्ठमें रहनेवाली सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके द्वारा दिये गये शापसे भारतवर्षमें अपनी एक कलासे नदीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। ये सरस्वती पुण्यदायिनी, पुण्यरूपिणी, पुण्यतीर्थस्वरूपिणी तथा पुण्यवान् मनुष्योंकी आश्रय हैं, अतः पुण्यात्मा लोगोंको इनका सेवन करना चाहिये॥ १-२॥

ये सरस्वती तपस्वियोंके लिये तपरूपिणी हैं और उनकी तपस्याका फल भी वे ही हैं। ये मनुष्यके द्वारा किये गये पापरूप ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं॥ ३॥

सरस्वतीकी महिमाको जानते हुए जो मनुष्य इनके जलमें अपना प्राण त्याग करते हैं, वे वैकुण्ठमें वास करते हुए दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिकी सन्निधि प्राप्त करते हैं॥ ४॥

भारतमें रहनेवाला कोई मनुष्य पाप कर लेनेके बाद खेल-खेलमें भी सरस्वतीमें स्नान कर लेनेमात्रसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दीर्घकालतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य चातुर्मास्यमें, पूर्णिमा तिथिपर, अक्षय नवमीके दिन, क्षयतिथिको तथा व्यतीपात या ग्रहणके अवसर अथवा अन्य किसी भी पुण्य दिन किसी हेतुसे अथवा श्रद्धापूर्वक सरस्वतीमें स्नान करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ ६-७॥

सरस्वतीमनु तत्र मासमेकं च यो जपेत्।
महामूर्खः कवीन्द्रश्च स भवेन्नात्र संशयः॥ ८

नित्यं सरस्वतीतोये यः स्नायान्मुण्डयन्नरः।
न गर्भवासं कुरुते पुनरेव स मानवः॥ ९

इत्येवं कथितं किञ्चिद्भारतीगुणकीर्तनम्।
सुखदं कामदं सारं भूयः किं श्रोतुमिच्छसि॥ १०

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा नारदो मुनिसत्तमः।
पुनः पप्रच्छ सन्देहमिमं शौनक सत्वरम्॥ ११

नारद उवाच

कथं सरस्वती देवी गङ्गाशापेन भारते।
कलया कलहेनैव बभूव पुण्यदा सरित्॥ १२

श्रवणे श्रुतिसाराणां वर्धते कौतुकं मम।
कथामृतेन मे तृप्तिः केन श्रेयसि तृप्यते॥ १३

कथं शशाप सा गङ्गा पूजितां तां सरस्वतीम्।
सा तु सत्त्वस्वरूपा या पुण्यदा शुभदा सदा॥ १४

तेजस्विनोर्द्वयोर्वादकारणं श्रुतिसुन्दरम्।
सुदुर्लभं पुराणेषु तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १५

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि कथामेतां पुरातनीम्।
यस्याः श्रवणमात्रेण सर्वपापात्प्रमुच्यते॥ १६

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि।
प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ॥ १७

चकार सैकदा गङ्गा विष्णोर्मुखनिरीक्षणम्।
सस्मिता च सकामा च सकटाक्षं पुनः पुनः॥ १८

जो मनुष्य एक महीनेतक प्रतिदिन सरस्वतीनदीके तटपर इनके मन्त्रका जप करता है, वह महान् मूर्ख होते हुए भी कवीश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८॥

जो मनुष्य मुण्डन कराकर प्रतिदिन सरस्वतीके जलमें स्नान करता है, वह मनुष्य फिरसे माताके गर्भमें वास नहीं करता है॥ ९॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सुख देनेवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सारस्वरूप भगवतीके गुणकीर्तनका वर्णन आपसे कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०॥

सूतजी बोले—हे शौनक! भगवान् नारायणकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद अपनी इस शंकाके विषयमें पुनः शीघ्र उनसे पूछने लगे—॥ ११॥

नारदजी बोले—ये भगवती सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके शापसे भारतवर्षमें अपनी कलासे पुण्यदायिनी नदीके रूपमें कैसे प्रकट हो गयीं?॥ १२॥

वेदोंके सारस्वरूप कथानकोंको सुननेहेतु मेरा कौतूहल बढ़ गया है, इस कथामृतको सुनकर ही मुझे तृप्ति होगी। अपने कल्याणके विषयमें कौन सन्तुष्ट होता है?॥ १३॥

जो सर्वदा पुण्य तथा कल्याण प्रदान करनेवाली हैं, उन सत्त्वस्वरूपा गंगाने पूज्य सरस्वतीको शाप क्यों दे दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण निश्चय ही कानोंके लिये सुखकर होगा। पुराणोंमें अत्यन्त दुर्लभ उस वृत्तान्तको आप मुझे बतलाइये॥ १४-१५॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैं यह प्राचीन कथा कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; आप इसे सुनिये॥ १६॥

लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा—ये तीनों ही विष्णुकी भार्याएँ हैं। ये बड़े प्रेमके साथ सर्वदा भगवान् विष्णुके समीप विराजमान रहती हैं॥ १७॥

एक बार गंगा कामातुर होकर मुसकराती हुई कटाक्षपूर्वक भगवान् विष्णुका मुख निहार रही थीं॥ १८॥

विभुर्जहास तद्वक्त्रं निरीक्ष्य च क्षणं तदा।
क्षमां चकार तद् दृष्ट्वा लक्ष्मीर्नैव सरस्वती॥ १९

बोधयामास पद्मा तां सत्त्वरूपा च सस्मिता।
क्रोधाविष्टा च सा वाणी न च शान्ता बभूव ह॥ २०

उवाच वाणी भर्तारं रक्तास्या रक्तलोचना।
कुपिता कामवेगेन शश्वत्प्रस्फुरिताधरा॥ २१

सरस्वत्युवाच

सर्वत्र समताबुद्धिः सद्भर्तुः कामिनीं प्रति।
धर्मिष्ठस्य वरिष्ठस्य विपरीता खलस्य च॥ २२

ज्ञातं सौभाग्यमधिकं गङ्गायां ते गदाधर।
कमलायां च तत्तुल्यं न च किञ्चिन्मयि प्रभो॥ २३

गङ्गायाः पद्मया सार्धं प्रीतिश्चास्ति सुसम्मता।
क्षमां चकार तेनेदं विपरीतं हरिप्रिया॥ २४

किं जीवनेन मेऽत्रैव दुर्भगायाश्च साम्प्रतम्।
निष्फलं जीवनं तस्या या पत्युः प्रेमवञ्चिता॥ २५

त्वां सर्वे सत्त्वरूपं च ये वदन्ति मनीषिणः।
ते च मूर्खा न वेदज्ञा न जानन्ति मतिं तव॥ २६

सरस्वतीवचः श्रुत्वा दृष्ट्वा तां कोपसंयुताम्।
मनसा च समालोच्य स जगाम बहिः सभाम्॥ २७

गते नारायणे गङ्गामुवाच निर्भयं रुषा।
वागधिष्ठातृदेवी सा वाक्यं श्रवणदुष्करम्॥ २८

हे निर्लज्जे हे सकामे स्वामिगर्वं करोषि किम्।
अधिकं स्वामिसौभाग्यं विज्ञापयितुमिच्छसि॥ २९

तब भगवान् विष्णु क्षणभर उनके मुखकी ओर देखकर मुसकराने लगे। उसे देखकर लक्ष्मीने तो सहन कर लिया, किंतु सरस्वतीने नहीं॥ १९॥

उदारताकी मूर्ति लक्ष्मीने हँसकर उन सरस्वतीको समझाया, किंतु अत्यन्त कोपाविष्ट वे सरस्वती शान्त नहीं हुईं॥ २०॥

उस समय लाल नेत्रों तथा मुखमण्डलवाली और कुपित तथा कामवेगके कारण निरन्तर काँपते हुए ओठोंवाली सरस्वती अपने पति भगवान् विष्णुसे कहने लगीं॥ २१॥

सरस्वती बोलीं—एक धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम पतिकी बुद्धि अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समान हुआ करती है, किंतु दुष्ट पतिकी बुद्धि इसके विपरीत होती है॥ २२॥

हे गदाधर! मुझे ज्ञात हो गया कि गंगापर आपका अधिक प्रेम रहता है और लक्ष्मीपर भी उसीके समान प्रेम रहता है। किंतु हे प्रभो! मुझपर आपका थोड़ा भी प्रेम नहीं है॥ २३॥

गंगा और लक्ष्मीके साथ आपकी प्रीति समान है, इसीलिये [गंगाके] इस विपरीत व्यवहारको भी लक्ष्मीने क्षमा कर दिया॥ २४॥

अब यहाँपर मुझ अभागिनीके जीवित रहनेसे क्या लाभ? क्योंकि जो स्त्री अपने पतिके प्रेमसे वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २५॥

जो विद्वान् लोग आपको सात्त्विक स्वरूपवाला कहते हैं, वे सब वेदज्ञ नहीं हैं अपितु मूर्ख हैं; वे आपकी बुद्धिको नहीं जानते हैं॥ २६॥

सरस्वतीकी यह बात सुनकर और उन्हें कोपाविष्ट देखकर भगवान्ने मन-ही-मन कुछ सोचा और इसके बाद वे वहाँसे बाहर निकलकर सभामें चले गये॥ २७॥

भगवान् नारायणके चले जानेपर वाणीकी अधिष्ठातृ-देवी उन सरस्वतीने कुपित होकर निर्भीकतापूर्वक गंगासे सुननेमें अत्यन्त कटु वचन कहा—॥ २८॥

हे निर्लज्ज! हे सकाम! तुम अपने पतिपर इतना गर्व क्यों कर रही हो? 'मेरे ऊपर पतिका अधिक प्रेम रहता है'—ऐसा तुम प्रदर्शित करना चाहती हो॥ २९॥

मानचूर्णं करिष्यामि तवाद्य हरिसन्निधौ।
किं करिष्यति ते कान्तो ममैवं कान्तवल्लभे॥ ३०

इत्येवमुक्त्वा गङ्गायाः केशं ग्रहीतुमुद्यता।
वारयामास तां पद्मा मध्यदेशं समाश्रिता॥ ३१

शशाप वाणी तां पद्मां महाबलवती सती।
वृक्षरूपा सरिद्रूपा भविष्यसि न संशयः॥ ३२

विपरीतं ततो दृष्ट्वा किञ्चिन्नो वक्तुमर्हसि।
सन्तिष्ठति सभामध्ये यथा वृक्षो यथा सरित्॥ ३३

शापं श्रुत्वा तु सा देवी न शशाप चुकोप ह।
तत्रैव दुःखिता तस्थौ वाणीं धृत्वा करेण च॥ ३४

असन्तुष्टां तु तां दृष्ट्वा कोपप्रस्फुरिताधराम्।
उवाच गङ्गा तां देवीं पद्मां चारक्तलोचनाम्॥ ३५

गङ्गोवाच

त्वमुत्सृज महोग्रां च पद्मे किं मे करिष्यति।
दुःशीला मुखरा नष्टा नित्यं वाचालरूपिणी॥ ३६

वागधिष्ठात्री देवीयं सततं कलहप्रिया।
यावती योग्यता चास्या यावती शक्तिरेव च॥ ३७

तथा करोतु वादं च मया सार्धं च दुर्मुखी।
स्वबलं यन्मम बलं विज्ञापयितुमिच्छति॥ ३८

जानन्तु सर्वे ह्युभयोः प्रभावं विक्रमं सति।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी वाण्यै शापं ददाविति॥ ३९

सरित्स्वरूपा भवतु सा या त्वां च शशाप ह।
अधोमर्त्यं सा प्रयातु सन्ति यत्रैव पापिनः॥ ४०
कलौ तेषां च पापानि ग्रहीष्यति न संशयः।

हे कान्तवल्लभे! आज मैं भगवान् विष्णुके सामने ही तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर दूँगी; तुम्हारा वह पति मेरा क्या कर लेगा?॥ ३०॥

ऐसा कहकर वे गंगाके बाल खींचनेके लिये उद्यत हुईं; तब लक्ष्मीने दोनोंके बीचमें आकर उन सरस्वतीको ऐसा करनेसे रोक दिया॥ ३१॥

इससे महान् बलवती तथा सतीत्वमयी सरस्वतीने उन लक्ष्मीको शाप दे दिया कि तुम नदी और वृक्षके रूपवाली हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३२॥

गंगाका विपरीत आचरण देखकर भी तुमने कुछ नहीं कहा और सभाके बीचमें वृक्ष तथा नदीकी भाँति तुम जड़वत् बन गयी थी; इसलिये तुम वही हो जाओ॥ ३३॥

यह शाप सुनकर भी लक्ष्मीने न तो शाप दिया और न क्रोध ही किया। वे सरस्वतीका हाथ पकड़कर दुःखित हो वहींपर बैठी रह गयीं॥ ३४॥

कोपके कारण काँपते हुए ओठों तथा लाल नेत्रोंवाली और अत्यन्त असन्तुष्ट उस सरस्वतीको देखकर गंगा लक्ष्मीसे कहने लगीं॥ ३५॥

गंगा बोलीं—हे पद्मे! तुम अत्यन्त उग्र स्वभाववाली इस सरस्वतीको छोड़ दो। यह शीलरहित, मुखर, विनाशिनी तथा नित्य वाचाल रहनेवाली सरस्वती मेरा क्या कर लेगी॥ ३६॥

वाणीकी अधिष्ठात्री देवी यह सरस्वती सर्वदा कलहप्रिय है। इसमें जितनी योग्यता तथा शक्ति हो, वह सब लगाकर यह आज मेरे साथ विवाद कर ले। यह दुर्मुखी अपने तथा मेरे बलका प्रदर्शन करना चाहती है तो सभी लोग आज दोनोंके प्रभाव तथा पराक्रमको जान लें॥ ३७-३८½ ॥

ऐसा कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप दे दिया। [और उन्होंने लक्ष्मीसे कहा—] जिस सरस्वतीने तुम्हें शाप दिया है, वह भी नदीरूप हो जाय। यह नीचे मृत्युलोकमें चली जाय, जहाँ पापीलोग निवास करते हैं। [वहाँ] यह कलियुगमें उन पापियोंके पाप ग्रहण करेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९-४०½ ॥

इत्येवं वचनं श्रुत्वा तां शशाप सरस्वती ॥ ४१

त्वमेव यास्यसि महीं पापिपापं लभिष्यसि।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र भगवानाजगाम ह॥ ४२

चतुर्भुजश्चतुर्भिश्च पार्षदैश्च चतुर्भुजैः।
सरस्वतीं करे धृत्वा वासयामास वक्षसि॥ ४३

बोधयामास सर्वज्ञः सर्वज्ञानं पुरातनम्।
श्रुत्वा रहस्यं तासां च शापस्य कलहस्य च॥ ४४

उवाच दुःखितास्ताश्च वाचं सामयिकीं विभुः।

श्रीभगवानुवाच

लक्ष्मि त्वं कलया गच्छ धर्मध्वजगृहं शुभे॥ ४५

अयोनिसम्भवा भूमौ तस्य कन्या भविष्यसि।
तत्रैव दैवदोषेण वृक्षत्वं च लभिष्यसि॥ ४६

मदंशस्यासुरस्यैव शङ्खचूडस्य कामिनी।
भूत्वा पश्चाच्च मत्पत्नी भविष्यसि न संशयः॥ ४७

त्रैलोक्यपावनी नाम्ना तुलसीति च भारते।
कलया च सरिद्भावं शीघ्रं गच्छ वरानने॥ ४८

भारतं भारतीशापान्नाम्ना पद्मावती भव।
गङ्गे यास्यसि पश्चात्त्वमंशेन विश्वपावनी॥ ४९

भारतं भारतीशापात्पापदाहाय पापिनाम्।
भगीरथस्य तपसा तेन नीता सुकल्पिते॥ ५०

नाम्ना भागीरथी पूता भविष्यसि महीतले ।
मदंशस्य समुद्रस्य जाया जायेर्ममाज्ञया॥ ५१

मत्कलांशस्य भूपस्य शन्तनोश्च सुरेश्वरि।
गङ्गाशापेन कलया भारतं गच्छ भारति॥ ५२

गंगाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने भी उसे शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और वहाँ पापियोंके पापको अंगीकार करना होगा॥ ४११/२॥

इसी बीच चार भुजाओंवाले भगवान् विष्णु चार भुजाओंवाले अपने चारों पार्षदोंके साथ वहाँ आ गये॥ ४२½॥

सर्वज्ञ श्रीहरिने सरस्वतीका हाथ पकड़कर प्रेमपूर्वक उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और उन्हें शाश्वत तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया। उनके कलह तथा शापकी बात सुनकर प्रभु श्रीहरि उन दुःखित स्त्रियोंसे समयानुकूल बात कहने लगे॥ ४३–४४½॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! हे शुभे! तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर राजा धर्मध्वजके घर जाओ। तुम अयोनिजके रूपमें उनकी कन्या होकर प्रकट होओगी। वहींपर तुम दुर्भाग्यसे वृक्ष बन जाओगी। मेरे ही अंशसे उत्पन्न शंखचूड नामक असुरकी भार्या होनेके बाद ही पुनः तुम मेरी पत्नी बनोगी; इसमें सन्देह नहीं है। उस समय तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली तुलसीके नामसे भारतवर्षमें तुम प्रसिद्ध होओगी। हे वरानने! अब तुम सरस्वतीके शापसे अपने अंशसे नदीरूपमें प्रकट होकर भारतवर्षमें शीघ्र जाओ और वहाँ 'पद्मावती' नामसे प्रतिष्ठित होओ॥ ४५—४८½॥

[तत्पश्चात् उन्होंने गंगासे कहा—] हे गंगे! लक्ष्मीके पश्चात् तुम भी सरस्वतीके शापवश पापियोंका पाप भस्म करनेके लिये अपने ही अंशसे विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाओ। हे सुकल्पिते! राजा भगीरथकी तपस्यासे उनके द्वारा धरातलपर ले जायी गयी तुम पवित्र 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध होओगी। हे सुरेश्वरि! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे ही अंशसे उत्पन्न समुद्रकी पत्नी और मेरी कलाके अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनुकी भी पत्नी होना स्वीकार कर लेना॥ ४९—५१½॥

[तदनन्तर उन्होंने सरस्वतीसे कहा—] हे भारति! गंगाके शापको स्वीकार करके तुम अपनी कलासे भारतवर्षमें जाओ और दोनों सपत्नियों (गंगा तथा

कलहस्य फलं भुंक्ष्व सपत्नीभ्यां सहाच्युते।
स्वयं च ब्रह्मसदने ब्रह्मणः कामिनी भव॥ ५३

गङ्गा यातु शिवस्थानमत्र पद्मैव तिष्ठतु।
शान्ता च क्रोधरहिता मद्भक्ता सत्त्वरूपिणी॥ ५४

महासाध्वी महाभागा सुशीला धर्मचारिणी।
यदंशकलया सर्वा धर्मिष्ठाश्च पतिव्रताः॥ ५५

शान्तरूपाः सुशीलाश्च प्रतिविश्वेषु पूजिताः।
तिस्रो भार्यास्त्रिशीलाश्च त्रयो भृत्याश्च बान्धवाः॥ ५६

ध्रुवं वेदविरुद्धाश्च न ह्येते मङ्गलप्रदाः।
स्त्रीपुंवच्च गृहे येषां गृहिणां स्त्रीवशः पुमान्॥ ५७

निष्फलं च जन्म तेषामशुभं च पदे पदे।
मुखे दुष्टा योनिदुष्टा यस्य स्त्री कलहप्रिया॥ ५८

अरण्यं तेन गन्तव्यं महारण्यं गृहाद्वरम्।
जलानां च स्थलानां च फलानां प्राप्तिरेव च॥ ५९

सततं सुलभा तत्र न तेषां गृह एव च।
वरमग्नौ स्थितिर्हिंस्त्रजन्तूनां सन्निधौ सुखम्॥ ६०

ततोऽपि दुःखं पुंसां च दुष्टस्त्रीसन्निधौ ध्रुवम्।
व्याधिज्वाला विषज्वाला वरं पुंसां वरानने॥ ६१

दुष्टस्त्रीणां मुखज्वाला मरणादतिरिच्यते।
पुंसां च स्त्रीजितां चैव भस्मान्तं शौचमध्रुवम्॥ ६२

लक्ष्मी)-के साथ कलह करनेका फल भोगो। साथ ही हे अच्युते! अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनमें ब्रह्माकी भार्या बन जाओ॥ ५२-५३॥

गंगाजी शिवके स्थानपर चली जायँ। यहाँपर केवल शान्त स्वभाववाली, क्रोधरहित, मेरी भक्त, सत्त्वस्वरूपा, महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, सुशील तथा धर्मका आचरण करनेवाली लक्ष्मी ही विराजमान रहें। जिनके एक अंशकी कलासे समस्त लोकोंमें सभी स्त्रियाँ धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशील बनकर पूजित होती हैं॥ ५४-५५½॥

[भगवान् बोले] विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियाँ, तीन नौकर तथा तीन बान्धवोंका एकत्र रहना वेदविरुद्ध है। अतः ये मंगलदायक नहीं हो सकते॥ ५६½॥

जिन गृहस्थोंके घरमें स्त्री पुरुषकी भाँति व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उनका जन्म निष्फल हो जाता है और पग-पगपर उनका अमंगल होता है॥ ५७½॥

जिसकी स्त्री मुखदुष्टा (कुवचन बोलनेवाली), योनिदुष्टा (व्यभिचारमें लिप्त रहनेवाली) तथा कलहप्रिया है, उस व्यक्तिको जंगलमें चले जाना चाहिये; क्योंकि उसके लिये बड़े-से-बड़ा जंगल भी घरसे बढ़कर श्रेयस्कर होता है; क्योंकि वहाँ उसे जल, स्थल और फल आदिकी निरन्तर प्राप्ति होती रहती है, किंतु घरपर ये सब नहीं मिल पाते॥ ५८-५९½॥

अग्निके पास रहना ठीक है अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है, किंतु दुष्ट स्त्रीके सान्निध्यमें रहनेवाले पुरुषोंको अवश्य ही उससे भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है॥ ६०½॥

हे वरानने! व्याधिज्वाला तथा विषज्वाला तो पुरुषोंके लिये ठीक हैं, किंतु दुष्ट स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी बढ़कर कष्टकारक होती है॥ ६१½॥

स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी निश्चित ही नहीं होती। ऐसा व्यक्ति दिनमें जो पुण्यकर्म करता है, उसके फलका

यदह्नि कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्।
निन्दितोऽत्र परत्रैव सर्वत्र नरकं व्रजेत्॥ ६३

यश:कीर्तिविहीनो यो जीवन्नपि मृतो हि सः।
बह्वीनां च सपत्नीनां नैकत्र श्रेयसे स्थितिः॥ ६४

एकभार्यः सुखी नैव बहुभार्यः कदाचन।
गच्छ गङ्गे शिवस्थानं ब्रह्मस्थानं सरस्वति॥ ६५

अत्र तिष्ठतु मद्गेहे सुशीला कमलालया।
सुसाध्या यस्य पत्नी च सुशीला च पतिव्रता॥ ६६

इह स्वर्गे सुखं तस्य धर्मो मोक्षः परत्र च।
पतिव्रता यस्य पत्नी स च मुक्तः शुचिः सुखी।
जीवन्मृतोऽशुचिर्दुःखी दुःशीलापतिरेव च॥ ६७

भागी नहीं होता है। वह इस लोक तथा परलोकमें सर्वत्र निन्दित होता है और नरक प्राप्त करता है। जो यश और कीर्तिसे रहित है, वह जीते हुए भी मृतकके समान है॥ ६२-६३½ ॥

किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियोंका एक साथ रहना कल्याणप्रद नहीं है। एक भार्यावाला तो सुखी है ही नहीं, फिर अनेक भार्याओंवाला कैसे सुखी रह सकता है?॥ ६४½ ॥

हे गंगे! तुम शिवके स्थानपर जाओ और हे सरस्वति! तुम ब्रह्माके स्थानपर जाओ। यहाँ मेरे भवनमें उत्तम स्वभाववाली लक्ष्मी ही रहें॥ ६५½ ॥

जिस पुरुषकी पत्नी सहजरूपसे अनुकूल हो जानेवाली, उत्तम स्वभाववाली तथा पतिव्रता होती है, उसे इस लोकमें तथा स्वर्गमें सुख तथा धर्म प्राप्त होते हैं और परलोकमें मोक्ष-पद प्राप्त होता है। जिसकी पत्नी पतिव्रता होती है, वह मुक्त, पवित्र तथा सुखी है। इसके विपरीत दुराचारिणी स्त्रीका पति जीते-जी मृतकके समान, अपवित्र तथा दुःखी है॥ ६६-६७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे लक्ष्मीगङ्गासरस्वतीनां भूलोकेऽवतरणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

भगवान् नारायणका गंगा, लक्ष्मी और सरस्वतीसे उनके शापकी अवधि बताना तथा अपने भक्तोंके महत्त्वका वर्णन करना

श्रीनारायण उवाच

इत्युक्त्वा जगतां नाथो विरराम च नारद।
अतीव रुरुदुर्देव्यः समालिङ्ग्य परस्परम्॥ १

ताश्च सर्वाः समालोक्य क्रमेणोचुस्तदेश्वरम्।
कम्पिताः साश्रुनेत्राश्च शोकेन च भयेन च॥ २

सरस्वत्युवाच

विशापं देहि हे नाथ दुष्टमाजन्मशोचनम्।
सत्स्वामिना परित्यक्ताः कुतो जीवन्ति ताः स्त्रियः॥ ३

श्रीनारायण बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु चुप हो गये। तब वे तीनों देवियाँ एक-दूसरेका आलिंगन करके बहुत रोने लगीं॥ १॥

भगवान्की ओर देखकर भय तथा शोकसे काँपती हुई वे सभी देवियाँ अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनसे बारी-बारीसे कहने लगीं॥ २॥

सरस्वती बोलीं—हे नाथ! मुझे जीवनभर सन्ताप देनेवाला कोई भी कठोर शाप दे दें (किंतु मेरा त्याग न करें); क्योंकि श्रेष्ठ स्वामीके द्वारा परित्यक्त वे स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। भारतवर्षमें जाकर
~~~

देहत्यागं करिष्यामि योगेन भारते ध्रुवम्।
अत्युन्नतो हि नियतं पातुमर्हति निश्चितम्॥ ४

गङ्गोवाच

अहं केनापराधेन त्वया त्यक्ता जगत्पते।
देहत्यागं करिष्यामि निर्दोषाया वधं लभ॥ ५

निर्दोषकामिनीत्यागं करोति यो नरो भुवि।
स याति नरकं घोरं किन्तु सर्वेश्वरोऽपि वा॥ ६

पद्मोवाच

नाथ सत्त्वस्वरूपस्त्वं कोपः कथमहो तव।
प्रसादं कुरु भार्ये द्वे सदीशस्य क्षमा वरा॥ ७

भारते भारतीशापाद्यास्यामि कलया ह्यहम्।
कियत्कालं स्थितिस्तत्र कदा द्रक्ष्यामि ते पदम्॥ ८

दास्यन्ति पापिनः पापं सद्यः स्नानावगाहनात्।
केन तेन विमुक्ताहमागमिष्यामि ते पदम्॥ ९

कलया तुलसीरूपं धर्मध्वजसुता सती।
भुक्त्वा कदा लभिष्यामि त्वत्पादाम्बुजमच्युत॥ १०

वृक्षरूपा भविष्यामि त्वदधिष्ठातृदेवता।
समुद्धरिष्यसि कदा तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥ ११

गङ्गा सरस्वतीशापाद्यदि यास्यति भारते।
शापेन मुक्ता पापाच्च कदा त्वां च लभिष्यति॥ १२

गङ्गाशापेन वा वाणी यदि यास्यति भारतम्।
कदा शापाद्विनिर्मुच्य लभिष्यति पदं तव॥ १३

तां वाणीं ब्रह्मसदनं गङ्गां वा शिवमन्दिरम्।
गन्तुं वदसि हे नाथ तत्क्षमस्व च ते वचः॥ १४

मैं निश्चय ही योगके द्वारा देह त्याग कर दूँगी। जिसकी भी अत्यधिक उन्नति होती है, उसका अधोपतन भी अवश्यम्भावी है॥ ३-४॥

गंगा बोली—हे जगत्पते! आपने मेरे किस अपराधके कारण मेरा त्याग कर दिया। मैं तो अपने देहको त्याग दूँगी और इस प्रकार आपको एक निरपराध स्त्रीके वधका पाप लगेगा। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर निर्दोष पत्नीका परित्याग कर देता है, वह घोर नरककी यात्रा करता है, चाहे वह सर्वेश्वर ही क्यों न हो॥ ५-६॥

पद्मा बोलीं—हे नाथ! आप तो सत्त्वस्वरूप हैं। अहो, आपको ऐसा कोप कैसे हो गया! आप अपनी इन दोनों पत्नियोंको प्रसन्न कीजिये, क्योंकि एक उत्तम पतिके लिये क्षमा ही श्रेष्ठ है॥ ७॥

मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी, किंतु मैं वहाँ कितने समयतक रहूँगी और आपके चरणोंका दर्शन कब कर पाऊँगी?॥ ८॥

पापीजन स्नान तथा अवगाहन करके शीघ्र ही अपना पाप मुझे दे देंगे। तब किस उपायके द्वारा उस पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें मैं पुनः स्थान पाऊँगी?॥ ९॥

हे अच्युत! अपनी एक कलासे धर्मध्वजकी साध्वी पुत्री होकर तुलसीरूप प्राप्त करके मैं आपके चरणकमल पुनः कब प्राप्त कर सकूँगी?॥ १०॥

आप जिसके अधिष्ठातृदेवता हैं, ऐसे वृक्षरूप तुलसीके रूपमें मैं प्रकट होऊँगी। किंतु हे कृपानिधान! आप मुझे यह बता दीजिये कि मेरा उद्धार कब करेंगे?॥ ११॥

यदि गंगा सरस्वतीके शापसे भारतमें जायँगी, तब पुनः कब शाप तथा पापसे मुक्त होकर ये आपको प्राप्त करेंगी?॥ १२॥

साथ ही, गंगाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जायँगी, तब पुनः कब शापसे मुक्त होकर ये आपके चरणोंका सांनिध्य प्राप्त कर सकेंगी?॥ १३॥

हे नाथ! आप जो उन सरस्वतीको ब्रह्माके तथा गंगाको शिवके भवन जानेके लिये कह रहे हैं, तो मैं आपके इन वचनोंके लिये आपसे क्षमा चाहती हूँ॥ १४॥

इत्युक्त्वा कमला कान्तपादं धृत्वा ननाम सा।
स्वकेशैर्वेष्टनं कृत्वा रुरोद च पुनः पुनः॥ १५

(उवाच पद्मनाभस्तां पद्मां कृत्वा स्ववक्षसि।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यो भक्तानुग्रहकातरः॥)

श्रीभगवानुवाच

त्वद्वाक्यमाचरिष्यामि स्ववाक्यं च सुरेश्वरि।
समतां च करिष्यामि शृणु त्वं कमलेक्षणे॥ १६

भारती यातु कलया सरिद्रूपा च भारते।
अर्धा सा ब्रह्मसदनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥ १७

भगीरथेन सा नीता गङ्गा यास्यति भारते।
पूतं कर्तुं त्रिभुवनं स्वयं तिष्ठतु मद्गृहे॥ १८

तत्रैव चन्द्रमौलेश्च मौलिं प्राप्स्यति दुर्लभम्।
ततः स्वभावतः पूताप्यतिपूता भविष्यति॥ १९

कलांशांशेन गच्छ त्वं भारते वामलोचने।
पद्मावती सरिद्रूपा तुलसीवृक्षरूपिणी॥ २०

कलेः पञ्चसहस्रे च गते वर्षे तु मोक्षणम्।
युष्माकं सरितां चैव मद्गेहे चागमिष्यथ॥ २१

सम्पदा हेतुभूता च विपत्तिः सर्वदेहिनाम्।
विना विपत्तेर्महिमा केषां पद्मभवे भवेत्॥ २२

मन्मन्त्रोपासकानां च सतां स्नानावगाहनात्।
युष्माकं मोक्षणं पापाद्दर्शनात्स्पर्शनात्तथा॥ २३

पृथिव्यां यानि तीर्थानि सन्त्यसंख्यानि सुन्दरि।
भविष्यन्ति च पूतानि मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २४

[हे नारद!] ऐसा कहकर लक्ष्मीने अपने पति श्रीविष्णुके चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपने केशोंसे उनके चरणोंको वेष्टित करके वे बार-बार रोने लगीं॥ १५॥

(भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले तथा मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीको अपने वक्षसे लगाकर उनसे कहने लगे।)

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे तथा अपने दोनोंके वचन सत्य सिद्ध करूँगा। हे कमलेक्षणे! सुनो, मैं तुम तीनोंमें समता कर दूँगा॥ १६॥

ये सरस्वती अपनी कलाके एक अंशसे नदीरूप होकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे ब्रह्माके भवन जायँ और पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें॥ १७॥

इसी प्रकार भगीरथके द्वारा ले जायी गयी ये गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करनेके लिये अपने कलांशसे भारतवर्षमें जायँगी और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे भवनमें रहें। वहाँपर ये चन्द्रशेखर शिवके दुर्लभ मस्तकको प्राप्त करेंगी। वहाँ जानेपर स्वभावतः पवित्र ये गंगा और भी पवित्र हो जायँगी॥ १८-१९॥

हे वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे पद्मावती नामक नदीके रूपमें तथा तुलसी नामक वृक्षके रूपमें भारतवर्षमें जाओ॥ २०॥

कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर नदीरूपिणी तुम सब देवियोंकी मुक्ति हो जायगी और इसके बाद तुमलोग पुनः मेरे भवन आ जाओगी॥ २१॥

हे पद्मभवे! विपत्ति सभी प्राणियोंकी सम्पदाओंका हेतुस्वरूप है। विना विपत्तिके भला किन लोगोंको गौरव प्राप्त हो सकता है॥ २२॥

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले सत्पुरुषोंके द्वारा तुम्हारे जलमें स्नान तथा अवगाहनसे और उनके दर्शन तथा स्पर्शसे तुमलोगोंकी पापसे मुक्ति हो जायगी॥ २३॥

हे सुन्दरि! जितने भी असंख्य तीर्थ पृथ्वीपर हैं, वे सब मेरे भक्तोंके स्पर्श तथा दर्शनमात्रसे पवित्र हो जायँगे॥ २४॥

मन्मन्त्रोपासका भक्ता विश्रमन्ति च भारते।
पूतं कर्तुं तारितुं च सुपवित्रां वसुन्धराम्॥ २५

मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च।
तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥ २६

स्त्रीघ्नो गोघ्नः कृतघ्नश्च ब्रह्मघ्नो गुरुतल्पगः।
जीवन्मुक्तो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २७

एकादशीविहीनश्च सन्ध्याहीनोऽथ नास्तिकः।
नरघाती भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २८

असिजीवी मसीजीवी धावको ग्रामयाचकः।
वृषवाहो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ २९

विश्वासघाती मित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्य दायकः।
स्थाप्याहारी भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३०

अत्युग्रवान्दूषकश्च जारकः पुंश्चलीपतिः।
पूतश्च वृषलीपुत्रो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३१

शूद्राणां सूपकारश्च देवलो ग्रामयाजकः।
अदीक्षितो भवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३२

पितरं मातरं भार्यां भ्रातरं तनयं सुताम्।
गुरोः कुलं च भगिनीं चक्षुर्हीनं च बान्धवम्॥ ३३

श्वश्रूं च श्वशुरं चैव यो न पुष्णाति सुन्दरि।
स महापातकी पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३४

अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा।
शूद्रान्नभोजी विप्रश्च पूतो मद्भक्तदर्शनात्॥ ३५

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले भक्त पृथ्वीको अत्यन्त पवित्र करने तथा वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको पावन करने तथा तारनेके लिये ही भारतवर्षमें निवास करते हैं॥ २५॥

मेरे भक्त जहाँ रहते तथा अपना पैर धोते हैं, वह स्थान निश्चितरूपसे अत्यन्त पवित्र महातीर्थके रूपमें हो जाता है॥ २६॥

स्त्रीवध करनेवाला, गोहत्या करनेवाला, कृतघ्न, ब्राह्मणका वध करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २७॥

एकादशीव्रत तथा सन्ध्यासे विहीन, नास्तिक तथा मनुष्यका वध करनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्श-मात्रसे पवित्र हो जाता है॥ २८॥

शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला, लेखनवृत्तिसे जीवनयापन करनेवाला, धावक, भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करनेवाला तथा बैल हाँकनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ २९॥

विश्वासघात करनेवाला, मित्रका वध करनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला तथा धरोहर सम्पत्तिका हरण कर लेनेवाला मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३०॥

अत्यन्त उग्र, दूषित करनेवाला, जार पुरुष, व्यभिचारिणी स्त्रीका पति और शूद्रा स्त्रीका पुत्र—ऐसा प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३१॥

शूद्रोंका रसोइया, देवधनका उपभोग करनेवाला, सभी वर्णोंका पौरोहित्य कर्म करानेवाला ब्राह्मण तथा दीक्षाविहीन मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३२॥

हे सुन्दरि! जो पिता, माता, पत्नी, भाई, पुत्र, पुत्री, गुरुकुल, बहन, नेत्रहीन, बन्धु-बान्धव, सास तथा श्वसुरका भरण-पोषण नहीं करता, वह महापापी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३३-३४॥

पीपलका वृक्ष काटनेवाला, मेरे भक्तोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला ब्राह्मण भी मेरे भक्तके दर्शनसे पवित्र हो जाता है॥ ३५॥

देवद्रव्यापहारी च विप्रद्रव्यापहारकः।
लाक्षालोहरसानां च विक्रेता दुहितुस्तथा॥ ३६

महापातकिनश्चैव शूद्राणां शवदाहकः।
भवेयुरेते पूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात्॥ ३७

महालक्ष्मीरुवाच

भक्तानां लक्षणं ब्रूहि भक्तानुग्रहकातर।
येषां तु दर्शनस्पर्शात्सद्यः पूता नराधमाः॥ ३८

हरिभक्तिविहीनाश्च महाहङ्कारसंयुतः।
स्वप्रशंसारता धूर्ताः शठाश्च साधुनिन्दकाः॥ ३९

पुनन्ति सर्वतीर्थानि येषां स्नानावगाहनात्।
येषां च पादरजसा पूता पादोदकान्मही॥ ४०

येषां संदर्शनं स्पर्शं ये वा वाञ्छन्ति भारते।
सर्वेषां परमो लाभो वैष्णवानां समागमः॥ ४१

न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः।
ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो॥ ४२

सूत उवाच

महालक्ष्मीवचः श्रुत्वा लक्ष्मीकान्तश्च सस्मितः।
निगूढतत्त्वं कथितुमपि श्रेष्ठोपचक्रमे॥ ४३

श्रीभगवानुवाच

भक्तानां लक्षणं लक्ष्मि गूढं श्रुतिपुराणयोः।
पुण्यस्वरूपं पापघ्नं सुखदं भुक्तिमुक्तिदम्॥ ४४

सारभूतं गोपनीयं न वक्तव्यं खलेषु च।
त्वां पवित्रां प्राणतुल्यां कथयामि निशामय॥ ४५

गुरुवक्त्राद्विष्णुमन्त्रो यस्य कर्णे पतिष्यति।
वदन्ति वेदास्तं चापि पवित्रं च नरोत्तमम्॥ ४६

पुरुषाणां शतं पूर्वं तथा तज्जन्ममात्रतः।
स्वर्गस्थं नरकस्थं वा मुक्तिमाप्नोति तत्क्षणात्॥ ४७

यैः कैश्चिद्यत्र वा जन्म लब्धं येषु च जन्तुषु।
जीवन्मुक्तास्तु ते पूता यान्ति काले हरेः पदम्॥ ४८

देवधन तथा विप्रधनका हरण करनेवाला, लाह-लोहा-रस तथा कन्याका विक्रय करनेवाला, महान् पातकी तथा शूद्रोंका शव जलानेवाला—ये सभी मेरे भक्तके स्पर्श तथा दर्शनसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३६-३७॥

महालक्ष्मी बोलीं—भक्तोंपर कृपा करनेहेतु आतुर रहनेवाले हे प्रभो! अब आप अपने भक्तोंका लक्षण बतलाइये जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे हरिभक्तिसे रहित, महान् अहंकारी, सदा अपनी प्रशंसामें लगे रहनेवाले, धूर्त, शठ, साधुनिन्दक तथा अत्यन्त अधम मनुष्य भी तत्काल पवित्र हो जाते हैं; जिनके स्नान तथा अवगाहनसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं; जिनके चरणरज तथा चरणोदकसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है एवं जिनके दर्शन तथा स्पर्शकी इच्छा भारतवर्षमें सभी लोग करते रहते हैं। विष्णुभक्तोंका समागम सभीके लिये परम लाभकारी होता है। जलमय तीर्थ तीर्थ नहीं है और मृण्मय तथा प्रस्तरमय देवता भी देवता नहीं हैं; क्योंकि वे बहुत समय बाद पवित्र करते हैं, किंतु यह आश्चर्य है कि विष्णुभक्त क्षणभरमें ही पवित्र कर देते हैं॥ ३८—४२॥

सूतजी बोले—महालक्ष्मीकी बात सुनकर कमलाकान्त श्रीहरि मुसकरा दिये और इसके बाद श्रेष्ठ तथा गूढ रहस्य कहनेके लिये उद्यत हुए॥ ४३॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! भक्तोंके लक्षण वेदों तथा पुराणोंमें रहस्यरूपमें प्रतिपादित हैं। वे पुण्यस्वरूप, पापोंका नाश करनेवाले, सुखप्रद तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ऐसे सारभूत तथा गोपनीय लक्षणोंको दुष्टोंके समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिये। तुम शुद्धस्वरूपा एवं प्राणप्रियासे इसे कह रहा हूँ, सुनो॥ ४४-४५॥

गुरुके मुखसे निकले विष्णुमन्त्र जिस मनुष्यके कानमें पड़ते हैं, वेद उसीको पवित्र तथा नरोंमें श्रेष्ठ कहते हैं। उस मनुष्यके जन्ममात्रसे पूर्वके सौ पुरुष चाहे वे स्वर्गमें हों या नरकमें हो, उसी क्षण मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, उनमें जो कोई भी जिन योनियोंमें जहाँ कहीं भी जन्म प्राप्त किये रहते हैं, वे वहींपर पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाते हैं और समयानुसार भगवान् विष्णुके परमधाम पहुँच जाते हैं॥ ४६—४८॥

मद्भक्तियुक्तो मर्त्यश्च स मुक्तो मद्गुणान्वितः।
मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्च सन्ततम्॥ ४९

मद्गुणश्रुतिमात्रेण सानन्दः पुलकान्वितः।
सगद्गदः साश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृत एव च॥ ५०

न वाञ्छति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥ ५१

इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्।
स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥ ५२

भ्रमन्ति भारते भक्तास्तादृग्जन्म सुदुर्लभम्।
मद्गुणश्रवणाः श्राव्यगानैर्नित्यं मुदान्विताः॥ ५३

ते यान्ति च महीं पूत्वा नरं तीर्थं ममालयम्।
इत्येवं कथितं सर्वं पद्मे कुरु यथोचितम्।
तदाज्ञया तास्तश्चक्रुर्हरिस्तस्थौ सुखासने॥ ५४

जो मेरे गुणोंके अनुसार आचरण करता है तथा निरन्तर मेरी कथाओंमें ही आसक्त रहता है, मेरी भक्तिसे युक्त वह मनुष्य मेरे गुणोंसे युक्त होकर मुक्त हो जाता है। मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे वह आनन्दविभोर हो जाता है, उसका शरीर पुलकित हो उठता है, हर्षातिरेकके कारण उसका गला भर आता है, उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और वह अपनेको भूल जाता है। वह सुख, सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व आदि कुछ भी नहीं चाहता है। वह सदा मेरी ही सेवामें लगा रहना चाहता है। वह स्वप्नमें भी इन्द्र, मनु, ब्रह्मा आदिके अत्यन्त दुर्लभ पदों तथा स्वर्गके राज्य आदिके भोगोंकी कामना नहीं करता है॥ ४९—५२॥

मेरे भक्त भारतवर्षमें भ्रमण करते रहते हैं, भक्तोंका वैसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। वे सदा मेरे गुणोंका श्रवण करते हुए तथा सुनानेयोग्य गीतोंको गाते हुए नित्य आनन्दित रहते हैं। अन्तमें वे मनुष्यों, तीर्थों तथा पृथ्वीको पवित्र करके मेरे धाम चले जाते हैं। हे पद्मे! इस प्रकार मैंने तुमसे यह सब कह दिया। अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वह करो। तत्पश्चात् उन श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार वे कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं और स्वयं भगवान् अपने सुखदायक आसनपर विराजमान हो गये॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
गङ्गादीनां शापोद्धारवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

* * *

अथाष्टमोऽध्यायः

कलियुगका वर्णन, परब्रह्म परमात्मा एवं शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिकी कृपासे त्रिदेवों तथा देवियोंके प्रभावका वर्णन और गोलोकमें राधा-कृष्णका दर्शन

श्रीनारायण उवाच

सरस्वती पुण्यक्षेत्रमाजगाम च भारते।
गङ्गाशापेन कलया स्वयं तस्थौ हरेः पदे॥ १

भारती भारतं गत्वा ब्राह्मी च ब्रह्मणः प्रिया।
वाण्यधिष्ठातृदेवी सा तेन वाणी प्रकीर्तिता॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] गंगाके शापसे सरस्वती अपनी एक कलासे पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें आ गयीं और अपने पूर्ण अंशसे भगवान् श्रीहरिके स्थानपर ही रह गयीं॥ १॥

वे सरस्वती भारतमें आनेके कारण 'भारती', ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण 'ब्राह्मी' और वाणीकी अधिष्ठातृदेवी होनेके कारण 'वाणी' नामसे कही गयीं॥ २॥

सरो वाप्यां च स्रोतस्सु सर्वत्रैव हि दृश्यते।
हरिः सरस्वांस्तस्येयं तेन नाम्ना सरस्वती॥ ३

सरस्वती नदी सा च तीर्थरूपातिपावनी।
पापिनां पापदाहाय ज्वलदग्निस्वरूपिणी॥ ४

पश्चाद्भागीरथी नीता महीं भगीरथेन च।
सा वै जगाम कलया वाणीशापेन नारद॥ ५

तत्रैव समये तां च दधार शिरसा शिवः।
वेगं सोढुमयं शक्तो भुवः प्रार्थनया विभुः॥ ६

पद्मा जगाम कलया सा च पद्मावती नदी।
भारतं भारतीशापात्स्वयं तस्थौ हरेः पदे॥ ७

ततोऽन्यया सा कलया लेभे जन्म च भारते।
धर्मध्वजसुता लक्ष्मीर्विख्याता तुलसीति च॥ ८

पुरा सरस्वतीशापात्पश्चाच्च हरिशापतः।
बभूव वृक्षरूपा सा कलया विश्वपावनी॥ ९

कलेः पञ्चसहस्त्रं च वर्षं स्थित्वा तु भारते।
जग्मुस्ताश्च सरिद्रूपं विहाय श्रीहरेः पदम्॥ १०

यानि सर्वाणि तीर्थानि काशीं वृन्दावनं विना।
यास्यन्ति सार्धं ताभिश्च वैकुण्ठमाज्ञया हरेः॥ ११

शालग्रामः शक्तिशिवौ जगन्नाथश्च भारतम्।
कलेर्दशसहस्त्रान्ते त्यक्त्वा यान्ति निजं पदम्॥ १२

साधवश्च पुराणानि शङ्खानि श्राद्धतर्पणे।
वेदोक्तानि च कर्माणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १३

देवपूजा देवनाम तत्कीर्तिगुणकीर्तनम्।
वेदाङ्गानि च शास्त्राणि ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १४

सरोवर, बावली तथा अन्य जलधाराओंमें सर्वत्र श्रीहरि दिखायी देते हैं, अतः वे सरस्वान् कहे जाते हैं; उनके इसी नामके कारण ये सरस्वती कही जाती हैं॥ ३॥

नदीके रूपमें आकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापियोंके पाप भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निरूपा हैं॥ ४॥

हे नारद! तत्पश्चात् भगीरथके द्वारा गंगाजी पृथ्वीपर ले जायी गयीं। वे सरस्वतीके शापसे अपनी एक कलासे पृथ्वीपर पहुँचीं॥ ५॥

उस समय गंगाके वेगको सह सकनेमें केवल शिव ही समर्थ थे। अतः पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर सर्वशक्तिशाली शिवने उन गंगाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ ६॥

पुनः सरस्वतीके शापसे लक्ष्मीजी अपनी एक कलासे 'पद्मावती' नदीके रूपमें भारतमें पहुँचीं और अपने पूर्ण अंशसे स्वयं श्रीहरिके पास स्थित रहीं॥ ७॥

तत्पश्चात् लक्ष्मीजीने अपनी दूसरी कलासे भारतमें राजा धर्मध्वजकी पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया और वे 'तुलसी'—इस नामसे विख्यात हुईं॥ ८॥

पूर्वकालमें सरस्वतीके शापसे और बादमें श्रीहरिके शापसे ये विश्वपावनी देवी अपनी एक कलासे वृक्षरूपमें हो गयीं॥ ९॥

कलिके पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर वे तीनों देवियाँ अपने नदीरूपका परित्यागकर वैकुण्ठधाम चली जायँगी॥ १०॥

काशी तथा वृन्दावनको छोड़कर अन्य जो भी तीर्थ हैं, वे सब श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे॥ ११॥

शालग्राम, शिव, शक्ति और जगन्नाथजी कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर चले जायँगे॥ १२॥

उन सभीके साथ साधु, पुराण, शंख, श्राद्ध, तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे चले जायँगे। देवताओंकी पूजा, देवताओंके नाम, उनके यश तथा गुणका कीर्तन, वेदांग तथा शास्त्र भी उनके साथ चले जायँगे। इसी प्रकार संत, सत्य, धर्म, समस्त वेद,

सन्तश्च सत्यधर्मश्च वेदाश्च ग्रामदेवताः।
व्रतं तपश्चानशनं ययुस्तैः सार्धमेव च॥ १५

वामाचाररताः सर्वे मिथ्याकपटसंयुताः।
तुलसीरहिता पूजा भविष्यति ततः परम्॥ १६

शठाः क्रूरा दाम्भिकाश्च महाहङ्कारसंयुताः।
चोराश्च हिंसकाः सर्वे भविष्यन्ति ततः परम्॥ १७

पुंसो भेदः स्त्रीविभेदो विवाहो वापि निर्भयः।
स्वस्वामिभेदो वस्तूनां भविष्यति ततः परम्॥ १८

सर्वे स्त्रीवशगाः पुंसः पुंश्चल्यश्च गृहे गृहे।
तर्जनैर्भर्त्सनैः शश्वत्स्वामिनं ताडयन्ति च॥ १९

गृहेश्वरी च गृहिणी गृही भृत्याधिकोऽधमः।
चेटीदाससमौ वध्वाः श्वश्रूश्च श्वशुरस्तथा॥ २०

कर्तारो बलिनो गेहे योनिसम्बन्धिबान्धवाः।
विद्यासम्बन्धिभिः सार्धं सम्भाषापि न विद्यते॥ २१

यथापरिचिता लोकास्तथा पुंसश्च बान्धवाः।
सर्वकर्माक्षमाः पुंसो योषितामाज्ञया विना॥ २२

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा जात्याचारविवर्जिताः।
सन्ध्या च यज्ञसूत्रं च भवेल्लुप्तं न संशयः॥ २३

म्लेच्छाचारा भविष्यन्ति वर्णाश्चत्वार एव च।
म्लेच्छशास्त्रं पठिष्यन्ति स्वशास्त्राणि विहाय च॥ २४

ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास आदि भी उनके साथ चले जायँगे। उनके चले जानेके पश्चात् सभी लोग वाममार्गका आचरण करनेवाले तथा मिथ्या और कपटपूर्ण आचरणमें संलग्न हो जायँगे और सर्वत्र बिना तुलसीके ही पूजा होने लगेगी॥ १३—१६॥

उनके जाते ही सभी लोग शठ, क्रूर, दम्भयुक्त, महान् अहंकारी, चोर तथा हिंसक हो जायँगे॥ १७॥

पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) रहेगा, स्त्रीविभेद अर्थात् पुरुष-स्त्रीका ही भेद रहेगा, जातिभेद समाप्त हो जायगा; जिससे किसी भी वर्णके स्त्री-पुरुषका परस्पर विवाह निर्भयतापूर्वक होगा। वस्तुओंमें स्व-स्वामिभेद होगा अर्थात् लोग परस्पर एक-दूसरेको कोई वस्तु नहीं देंगे॥ १८॥

तब सभी पुरुष स्त्रियोंके वशमें हो जायँगे। घर-घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बाहुल्य हो जायगा और वे अपने पतियोंको डाँटते हुए तथा दुर्वचन कहते हुए उन्हें पीड़ित करेंगी॥ १९॥

गृहिणी घरकी मालकिन बन जायगी तथा गृहस्वामी नौकरसे भी निकृष्ट रहेगा। घरकी बहू अपने सास-ससुरसे दाई-नौकर-जैसा व्यवहार करेगी॥ २०॥

घरमें बलवान् ही कर्ता माना जायगा, बान्धवोंकी सीमा [अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर] केवल स्त्रीके परिवारमें ही सीमित हो जायगी और एक साथ विद्याध्ययन करनेवाले लोगोंमें परस्पर बातचीत तकका व्यवहार नहीं रहेगा॥ २१॥

लोग अपने ही बन्धु-बान्धवोंसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भाँति व्यवहार करेंगे और स्त्रीके आदेशके बिना पुरुष सभी कार्य करनेमें असमर्थ रहेंगे॥ २२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी-अपनी जातिके आचार-विचारका परित्याग कर देंगे। सन्ध्यावन्दन तथा यज्ञोपवीत आदिका लोप हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २३॥

चारों वर्णोंके लोग म्लेच्छोंके समान आचरण करेंगे। वे अपने शास्त्र छोड़कर म्लेच्छशास्त्रका अध्ययन करेंगे॥ २४॥

ब्रह्मक्षत्रविशां वंशाः शूद्राणां सेवकाः कलौ।
सूपकारा धावकाश्च वृषवाहाश्च सर्वशः॥ २५

सत्यहीना जनाः सर्वे सस्यहीना च मेदिनी।
फलहीनाश्च तरवोऽपत्यहीनाश्च योषितः॥ २६

क्षीरहीनास्तथा गावः क्षीरं सर्पिर्विवर्जितम्।
दम्पती प्रीतिहीनौ च गृहिणः सत्यवर्जिताः॥ २७

प्रतापहीना भूपाश्च प्रजाश्च करपीडिताः।
जलहीना महानद्यो दीर्घिकाकन्दरादयः॥ २८

धर्महीनाः पुण्यहीना वर्णाश्चत्वार एव च।
लक्षेषु पुण्यवान्कोऽपि न तिष्ठति ततः परम्॥ २९

कुत्सिता विकृताकारा नरा नार्यश्च बालकाः।
कुवार्ता कुत्सितः शब्दो भविष्यति ततः परम्॥ ३०

केचिद् ग्रामाश्च नगरा नरशून्या भयानकाः।
केचित्स्वल्पकुटीरेण नरेण च समन्विताः॥ ३१

अरण्यानि भविष्यन्ति ग्रामेषु नगरेषु च।
अरण्यवासिनः सर्वे जनाश्च करपीडिताः॥ ३२

सस्यानि च भविष्यन्ति तडागेषु नदीषु च।
प्रकृष्टवंशजा हीना भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ३३

अलीकवादिनो धूर्ताः शठाश्चासत्यवादिनः।
प्रकृष्टानि च क्षेत्राणि सस्यहीनानि नारद॥ ३४

हीनाः प्रकृष्टा धनिनो देवभक्ताश्च नास्तिकाः।
हिंसकाश्च दयाहीनाः पौराश्च नरघातिनः॥ ३५

वामना व्याधियुक्ताश्च नरा नार्यश्च सर्वतः।
स्वल्पायुषो गदायुक्ता यौवनै रहिताः कलौ॥ ३६

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके वंशज कलियुगमें शूद्रोंके यहाँ सेवक, रसोइया, वस्त्र धोनेवाले तथा बैलोंपर बोझा ढोनेका काम करनेवाले होंगे॥ २५॥

सभी प्राणी सत्यहीन हो जायँगे, वसुन्धरा फसलोंसे रहित हो जायगी, वृक्षोंमें फल नहीं रह जायँगे और स्त्रियाँ सन्तानविहीन हो जायँगी॥ २६॥

गायोंमें दूध देनेकी क्षमता नहीं रह जायगी, दूधमें घृतका अंश समाप्त हो जायगा, पति-पत्नी परस्पर प्रेमभावसे वंचित रहेंगे और गृहस्थोंमें सत्यका अभाव हो जायगा॥ २७॥

राजा पराक्रमहीन हो जायँगे, प्रजाएँ करोंके भारसे पीड़ित रहेंगी, बड़ी-बड़ी नदियाँ-जलाशय और कन्दरा आदि जलसे शून्य हो जायँगे॥ २८॥

चारों वर्णके लोग धर्म तथा पुण्यसे रहित हो जायँगे। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् नहीं रह जायगा॥ २९॥

उसके बाद पुरुष, स्त्री तथा बालक नीच स्वभाववाले तथा विकृत स्वरूपवाले हो जायँगे। उस समय बुरी बातों तथा निन्दित शब्दोंका प्रयोग होगा॥ ३०॥

कुछ गाँव और नगर मनुष्योंसे शून्य होकर बड़े भयानक प्रतीत होंगे। कुछ गाँवोंमें बहुत थोड़ी कुटिया तथा बहुत ही कम मनुष्य रह जायँगे॥ ३१॥

गाँवों और नगरोंमें जंगल हो जायँगे। जंगलमें रहनेवाले सभी लोग भी करोंके भारसे पीड़ित रहेंगे॥ ३२॥

[वर्षाके अभावमें] नदियों और तालाबोंमें फसलें उगायी जायँगी। कलियुगमें उत्कृष्ट वंशमें उत्पन्न लोग नीच हो जायँगे॥ ३३॥

हे नारद! उस समय लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले, धूर्त, मूर्ख तथा असत्यभाषी हो जायँगे। उत्तम कोटिके खेत भी फसलोंसे विहीन रहेंगे॥ ३४॥

नीच लोग भी धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे और देवभक्त नास्तिक हो जायँगे। सभी नगरनिवासी हिंसक, निर्दयी और मनुष्योंका वध करनेवाले हो जायँगे॥ ३५॥

कलियुगमें सभी जगहके स्त्री और पुरुष बौने, नानाविध व्याधियोंसे युक्त, अल्पायु, रोगग्रस्त तथा यौवनसे हीन हो जायँगे। सोलह वर्षमें ही उनके सिरके

पलिताः षोडशे वर्षे महावृद्धाश्च विंशतौ।
अष्टवर्षा च युवती रजोयुक्ता च गर्भिणी॥ ३७

वत्सरान्तप्रसूता स्त्री षोडशे च जरान्विता।
पतिपुत्रवती काचित्सर्वा वन्ध्याः कलौ युगे॥ ३८

कन्याविक्रयिणः सर्वे वर्णाश्चत्वार एव च।
मातृजायावधूनां च जारोपेतान्नभक्षकाः॥ ३९

कन्यानां भगिनीनां वा जारोपात्तान्नजीविनः।
हरेर्नाम्नां विक्रयिणो भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ४०

स्वयमुत्सृज्य दानं च कीर्तिवर्धनहेतवे।
ततः पश्चात्स्वदानं च स्वयमुल्लङ्घयिष्यति॥ ४१

देववृत्तिं ब्रह्मवृत्तिं वृत्तिं गुरुकुलस्य च।
स्वदत्तां परदत्तां वा सर्वमुल्लङ्घयिष्यति॥ ४२

कन्यकागामिनः केचित्केचिच्च श्वश्रुगामिनः।
केचिद्वधूगामिनश्च केचिद्वै सर्वगामिनः॥ ४३

भगिनीगामिनः केचित्सपत्नीमातृगामिनः।
भ्रातृजायागामिनश्च भविष्यन्ति कलौ युगे॥ ४४

अगम्यागमनं चैव करिष्यन्ति गृहे गृहे।
मातृयोनिं परित्यज्य विहरिष्यन्ति सर्वतः॥ ४५

पत्नीनां निर्णयो नास्ति भर्तृणां च कलौ युगे।
प्रजानां चैव ग्रामाणां वस्तूनां च विशेषतः॥ ४६

अलीकवादिनः सर्वे सर्वे चौराश्च लम्पटाः।
परस्परं हिंसकाश्च सर्वे च नरघातिनः॥ ४७

ब्रह्मक्षत्रविशां वंशा भविष्यन्ति च पापिनः।
लाक्षा लोहरसानां च व्यापारं लवणस्य च॥ ४८

वृषवाहा विप्रवंशाः शूद्राणां शवदाहिनः।
शूद्रान्नभोजिनः सर्वे सर्वे च वृषलीरताः॥ ४९

बाल पक जायँगे और बीस वर्षमें वे अत्यन्त वृद्ध हो जायँगे। आठ वर्षकी युवती रजस्वला होकर गर्भ धारण करने लगेगी। प्रत्येक वर्षमें सन्तान उत्पन्न करके वह स्त्री सोलह वर्षकी अवस्थामें ही वृद्धा हो जायगी। कलियुगमें प्रायः सभी स्त्रियाँ वन्ध्या रहेंगी, कोई-कोई स्त्री पति तथा पुत्रवाली होगी॥ ३६—३८॥

चारों वर्णोंके सभी लोग कन्याका विक्रय करेंगे। वे अपनी माता, पत्नी, बहू, कन्या तथा बहनके व्यभिचारी पुरुषोंसे प्राप्त धनसे अपनी आजीविका चलानेवाले होंगे और उनसे प्राप्त अन्नका भक्षण करनेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भगवान्‌के नाम बेचनेवाले होंगे। लोग अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये दान देंगे और उसके बाद अपने उस दानरूप प्रदत्त धनको स्वयं ले लेंगे॥ ३९—४१॥

लोग अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति अथवा गुरुकुलकी वृत्ति—उन सबको पुनः छीन लेंगे॥ ४२॥

कलियुगमें कुछ लोग कन्याके साथ, कुछ लोग सासके साथ, कुछ लोग अपनी बहूके साथ, कुछ लोग बहनके साथ, कुछ लोग सौतेली माँके साथ, कुछ लोग भाईकी स्त्रीके साथ और कुछ लोग सब प्रकारकी स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाले होंगे॥ ४३-४४॥

लोग घर-घरमें अगम्या स्त्रीके साथ गमन करेंगे, केवल माताको छोड़कर वे सबके साथ रमण करेंगे। कलियुगमें पतियों तथा पत्नियोंका कोई निर्णय नहीं रहेगा और विशेषरूपसे सन्तानों, ग्रामों तथा वस्तुओंका कोई निर्णय नहीं रहेगा॥ ४५-४६॥

सभी लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले होंगे। सभी लोग चोर और लम्पट होंगे। सभी लोग एक-दूसरेकी हिंसा करनेवाले और नरघाती होंगे॥ ४७॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशके लोग पापी हो जायँगे। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे॥ ४८॥

विप्र-वंशमें उत्पन्न सभी लोग बैलोंपर बोझ ढोनेका कर्म करेंगे, शूद्रोंका शव जलायेंगे, शूद्रोंका अन्न खायेंगे और शूद्रजातिकी स्त्रीमें आसक्त

पञ्चयज्ञविहीनाश्च कुहूरात्रौ च भोजिनः।
यज्ञसूत्रविहीनाश्च संध्याशौचविहीनकाः॥ ५०

पुंश्चली वार्धुषाजीवा कुट्टनी च रजस्वला।
विप्राणां रन्धनागारे भविष्यति च पाचिका॥ ५१

अन्नानां नियमो नास्ति योनीनां च विशेषतः।
आश्रमाणां जनानां च सर्वे म्लेच्छाः कलौ युगे॥ ५२

एवं कलौ सम्प्रवृत्ते सर्वं म्लेच्छमयं भवेत्।
हस्तप्रमाणे वृक्षे च अङ्गुष्ठे चैव मानवे॥ ५३

विप्रस्य विष्णुयशसः पुत्रः कल्किर्भविष्यति।
नारायणकलांशश्च भगवान् बलिनां वरः॥ ५४

दीर्घेण करवालेन दीर्घघोटकवाहनः।
म्लेच्छशून्यां च पृथिवीं त्रिरात्रेण करिष्यति॥ ५५

निर्म्लेच्छां वसुधां कृत्वा चान्तर्धानं करिष्यति।
अराजका च वसुधा दस्युग्रस्ता भविष्यति॥ ५६

स्थूलाप्रमाणा षड्रात्रं वर्षधाराप्लुता मही।
लोकशून्या वृक्षशून्या गृहशून्या भविष्यति॥ ५७

ततश्च द्वादशादित्याः करिष्यन्त्युदयं मुने।
प्राप्नोति शुष्कतां पृथ्वी समा तेषां च तेजसा॥ ५८

कलौ गते च दुर्धर्षे प्रवृत्ते च कृते युगे।
तपःसत्त्वसमायुक्तो धर्मः पूर्णो भविष्यति॥ ५९

तपस्विनश्च धर्मिष्ठा वेदज्ञा ब्राह्मणा भुवि।
पतिव्रताश्च धर्मिष्ठा योषितश्च गृहे गृहे॥ ६०

होंगे, पंचयज्ञ करनेसे विरत रहेंगे, अमावास्याकी रात्रिमें भोजन करेंगे। यज्ञोपवीत धारण नहीं करेंगे और सन्ध्यावन्दन तथा शौचादि कर्मसे विहीन रहेंगे॥ ४९-५०॥

कुलटा, सूदसे जीविका चलानेवाली, कुट्टनी तथा रजस्वला स्त्री ब्राह्मणोंके भोजनालयोंमें भोजन पकानेवालीके रूपमें रहेगी॥ ५१॥

कलियुगमें अन्नोंके ग्रहणमें, आश्रम-व्यवस्थाके पालनमें तथा विशेषरूपसे स्त्रियोंके साथ सम्बन्धमें कोई भी नियम नहीं रह जायगा; सभी लोग म्लेच्छ हो जायँगे। इस प्रकार कलियुगके सम्यक्‌रूपसे प्रवृत्त हो जानेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छमय हो जायगा। उस समय वृक्ष हाथ-हाथ भर ऊँचे तथा मनुष्य अँगूठेकी लम्बाईके बराबर हो जायँगे॥ ५२-५३॥

उस समय विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ उनके पुत्ररूपमें भगवान् कल्कि अवतरित होंगे। श्रीनारायणकी कलाके अंशसे उत्पन्न तथा बलशालियोंमें श्रेष्ठ वे भगवान् कल्कि एक विशाल अश्वपर आरूढ होकर अपनी विशाल तलवारसे तीन रातमें ही सम्पूर्ण पृथ्वीको म्लेच्छोंसे विहीन कर देंगे। इस प्रकार पृथ्वीको म्लेच्छरहित करके वे अन्तर्धान हो जायँगे। तब पृथ्वीपर पुनः अराजकता फैल जायगी और यह चोरों तथा लुटेरोंसे पीड़ित हो जायगी॥ ५४—५६॥

तदनन्तर मोटी धारसे निरन्तर छः दिनोंतक असीम वर्षा होगी, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी आप्लावित हो जायगी। वह प्राणियों, वृक्षों और घर आदिसे विहीन हो जायगी॥ ५७॥

हे मुने! उसके बाद बारह सूर्य एक साथ उदित होंगे। उनके प्रचण्ड तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी सूख जायगी॥ ५८॥

इसके बाद भयंकर कलियुगके समाप्त होनेके बाद तथा सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर तप और सत्त्वसे युक्त धर्म पूर्णरूपसे प्रकट होगा॥ ५९॥

उस समय पृथ्वीपर ब्राह्मण धर्मपरायण, तपस्वी तथा वेदज्ञ होंगे और घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता तथा धर्मनिष्ठ होंगी॥ ६०॥

राजानः क्षत्रिया: सर्वे विप्रभक्ता मनस्विनः।
प्रतापवन्तो धर्मिष्ठाः पुण्यकर्मरताः सदा॥ ६१

वैश्या वाणिज्यनिरता विप्रभक्ताश्च धार्मिकाः।
शूद्राश्च पुण्यशीलाश्च धर्मिष्ठा विप्रसेविनः॥ ६२

विप्रक्षत्रविशां वंशा देवीभक्तिपरायणाः।
देवीमन्त्ररताः सर्वे देवीध्यानपरायणाः॥ ६३

श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञाः पुमांस ऋतुगामिनः।
लेशो नास्ति ह्यधर्मस्य पूर्णो धर्मः कृते युगे॥ ६४

धर्मस्त्रिपाच्च त्रेतायां द्विपाच्च द्वापरे ततः।
कलौ वृत्ते चैकपाच्च सर्वलुप्तिस्ततः परम्॥ ६५

वाराः सप्त तथा विप्र तिथयः षोडश स्मृताः।
तथा द्वादश मासाश्च ऋतवश्च षडेव च॥ ६६

द्वौ पक्षौ चायने द्वे च चतुर्भिः प्रहरैर्दिनम्।
चतुर्भिः प्रहरै रात्रिर्मासस्त्रिंशद्दिनैस्तथा॥ ६७

वर्षं पञ्चविधं ज्ञेयं कालसंख्याविधिक्रमे।
यथा चायान्ति यान्त्येव यथा युगचतुष्टयम्॥ ६८

वर्षे पूर्णे नराणां च देवानां च दिवानिशम्।
शतत्रये षष्ठ्यधिके नराणां च युगे गते॥ ६९

देवानां च युगं ज्ञेयं कालसंख्याविदां मतम्।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः॥ ७०

मन्वन्तरसमं ज्ञेयमायुष्यञ्च शचीपतेः।
अष्टाविंशतिमे चेन्द्रे गते ब्रह्मदिवानिशम्॥ ७१
अष्टोत्तरशते वर्षे गते पातश्च ब्रह्मणः।

क्षत्रियलोग ही राजा होंगे। वे सब सदा ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा तथा पुण्य कर्ममें संलग्न रहनेवाले होंगे॥ ६१॥

वैश्यलोग व्यापार-कर्ममें तत्पर, ब्राह्मणभक्त तथा धार्मिक होंगे। इसी प्रकार शूद्र भी पुण्य कृत्य करनेवाले, धर्मपरायण तथा विप्रोंके सेवक होंगे॥ ६२॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशज सदा भगवतीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले होंगे। वे सब देवीके मन्त्रका निरन्तर जप करनेवाले तथा उनके ध्यानमें सदा लीन रहनेवाले होंगे॥ ६३॥

उस समयके मनुष्य वेद-स्मृति-पुराणोंके ज्ञाता तथा ऋतुकालमें ही समागम करनेवाले होंगे। सत्ययुगमें लेशमात्र भी अधर्म नहीं रहेगा और धर्म अपने पूर्ण* स्वरूपमें स्थापित रहेगा। त्रेतायुगमें धर्म तीन पैरोंसे, द्वापरमें दो पैरोंसे तथा कलिके आनेपर एक पैरसे रहता है। तत्पश्चात् [घोर कलियुगके प्रवृत्त होनेपर] धर्मका पूर्णरूपसे लोप हो जाता है॥ ६४-६५॥

हे विप्र! सात वार, सोलह तिथियाँ, बारह महीने तथा छः ऋतुएँ बतायी गयी हैं। दो पक्ष (शुक्ल, कृष्ण), दो अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन), चार प्रहरका एक दिन, चार प्रहरकी एक रात और तीस दिनोंका एक माह होता है॥ ६६-६७॥

संवत्सर, इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष जानने चाहिये। यही कालकी संख्याका नियम है। जिस प्रकार दिन आते हैं तथा जाते हैं, उसी प्रकार चारों युगोंका आना-जाना लगा रहता है॥ ६८॥

मनुष्योंका एक वर्ष पूर्ण होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है। मनुष्योंके तीन सौ साठ युग बीतनेपर उसे देवताओंका एक युग समझना चाहिये—ऐसा कालसंख्याके विद्वानोंका मानना है। इस प्रकारके एकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इन्द्रकी आयु एक मन्वन्तरके बराबर समझनी चाहिये। अट्ठाईस इन्द्रके बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माका भी विनाश हो जाता है॥ ६९—७१$\frac{१}{२}$॥

---

* धर्मको चार पैरवाले वृषरूपमें कहा गया है—'**वृषो हि भगवान् धर्मः**' (मनु० ८। १६, श्रीमद्भा० १। १६। १८ आदि) तथा सत्य, दया, तप और दान—ये धर्मरूप वृषके चार चरण बताये गये हैं (चतुष्पाद् धर्म)। **कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः। सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥** (श्रीमद्भा० १२। ३। १८)

प्रलयः प्राकृतो ज्ञेयस्तत्रादृष्टा वसुन्धरा॥ ७२

जलप्लुतानि विश्वानि ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
ऋषयो ज्ञानिनः सर्वे लीनाः सत्ये चिदात्मनि॥ ७३

तत्रैव प्रकृतिर्लीना तत्र प्राकृतिको लयः।
लये प्राकृतिके जाते पाते च ब्रह्मणो मुने॥ ७४

निमेषमात्रं कालश्च श्रीदेव्याः प्रोच्यते मुने।
एवं नश्यन्ति सर्वाणि ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥ ७५

निमेषान्तरकालेन पुनः सृष्टिक्रमेण च।
एवं कतिविधा सृष्टिर्लयः कतिविधोऽपि वा॥ ७६

कति कल्पा गतायाताः संख्यां जानाति कः पुमान्।
सृष्टीनां च लयानां च ब्रह्माण्डानां च नारद॥ ७७

ब्रह्मादीनां च ब्रह्माण्डे संख्यां जानाति कः पुमान्।
ब्रह्माण्डानां च सर्वेषामीश्वरश्चैक एव सः॥ ७८

सर्वेषां परमात्मा च सच्चिदानन्दरूपधृक्।
ब्रह्मादयश्च तस्यांशास्तस्यांशश्च महाविराट्॥ ७९

तस्यांशश्च विराट् क्षुद्रः सैवेयं प्रकृतिः परा।
तस्याः सकाशात्सञ्जातोऽप्यर्धनारीश्वरस्ततः॥ ८०

सैव कृष्णो द्विधाभूतो द्विभुजश्च चतुर्भुजः।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठे गोलोके द्विभुजः स्वयम्॥ ८१

ब्रह्मादितृणपर्यन्तं सर्वं प्राकृतिकं भवेत्।
यद्यत्प्राकृतिकं सृष्टं सर्वं नश्वरमेव च॥ ८२

एवंविधं सृष्टिहेतुं सत्यं नित्यं सनातनम्।
स्वेच्छामयं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥ ८३

निरुपाधि निराकारं भक्तानुग्रहकातरम्।
करोति ब्रह्मा ब्रह्माण्डं यज्ज्ञानात्कमलोद्भवः॥ ८४

इसीको प्राकृत प्रलय समझना चाहिये, उस समय पृथ्वी दिखायी नहीं पड़ती। जगत्‌के सभी स्थावर-जंगम पदार्थ जलमें विलीन हो जाते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता, ऋषि तथा ज्ञानी—ये सब सत्यस्वरूप चिदात्मामें समाविष्ट हो जाते हैं। उसी परब्रह्ममें प्रकृति भी लीन हो जाती है। यही प्राकृतिक लय है। हे मुने! इस प्रकार प्राकृतिक लय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है, इस पूरे समयको भगवतीका एक निमेष कहा जाता है। हे मुने! इस प्रकार जितने भी ब्रह्माण्ड हैं, सब-के-सब देवीके एक निमेषमें विनष्ट हो जाते हैं। पुनः उसी निमेषमात्रमें ही सृष्टिके क्रमसे अनेक ब्रह्माण्ड बन भी जाते हैं॥ ७२—७५½ ॥

इस प्रकार कितनी सृष्टियाँ हुईं तथा कितने लय हुए और कितने कल्प आये तथा गये—उनकी संख्याको कौन व्यक्ति जान सकता है? हे नारद! सृष्टियों, लयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी संख्याको भला कौन व्यक्ति जान सकता है?॥ ७६-७७½ ॥

सभी ब्रह्माण्डोंका ईश्वर एक ही है। वही समस्त प्राणियोंका परमात्मस्वरूप तथा सच्चिदानन्दरूप धारण करनेवाला है॥ ७८½ ॥

ब्रह्मा आदि देवता, महाविराट् और क्षुद्रविराट्—ये सब उसी परमेश्वरके अंश हैं और वे परमात्मा ही यह पराप्रकृति हैं। उसी पराप्रकृतिसे अर्धनारीश्वर भी आविर्भूत हुए हैं। वही पराप्रकृति श्रीकृष्णरूप भी है। वे श्रीकृष्ण दो भुजाओं तथा चार भुजाओंवाले होकर दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनमें चतुर्भुज श्रीहरिरूपसे वैकुण्ठमें और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णरूपसे गोलोकमें प्रतिष्ठित हुए॥ ७९—८१ ॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ प्राकृतिक है और जो कुछ भी प्रकृतिसे उत्पन्न है, वह सब नश्वर ही है॥ ८२॥

इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत वे परब्रह्म परमात्मा सत्य, नित्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, उपाधिरहित, निराकार तथा भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले हैं। उन परब्रह्मको सम्यक् जानकर ही पद्मयोनि ब्रह्मा ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं॥ ८३-८४॥

शिवो मृत्युञ्जयश्चैव संहर्ता सर्वसत्त्ववित्।
यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा सर्वेशस्तु तपो महान्॥ ८५

महाविभूतियुक्तश्च सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वव्यापी सर्वपाता प्रदाता सर्वसम्पदाम्॥ ८६

विष्णुः सर्वेश्वरः श्रीमान् यद्भक्त्या यस्य सेवया।
महामाया च प्रकृतिः सर्वशक्तिमयीश्वरी॥ ८७

सैव प्रोक्ता भगवती सच्चिदानन्दरूपिणी।
यज्ज्ञानाद्यस्य तपसा यद्भक्त्या यस्य सेवया॥ ८८

सावित्री देवमाता च वेदाधिष्ठातृदेवता।
पूज्या द्विजानां वेदज्ञा यज्ज्ञानाद्यस्य सेवया॥ ८९

सर्वविद्याधिदेवी सा पूज्या च विदुषां परा।
यत्सेवया यत्तपसा सर्वविश्वेषु पूजिता॥ ९०

सर्वग्रामाधिदेवी सा सर्वसम्पत्प्रदायिनी।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या सर्वेषां पुत्रदायिनी॥ ९१

सर्वस्तुता च सर्वज्ञा सर्वदुर्गार्तिनाशिनी।
कृष्णवामांशसम्भूता कृष्णप्राणाधिदेवता॥ ९२

कृष्णप्राणाधिका प्रेम्णा राधिका शक्तिसेवया।
सर्वाधिकं च रूपं च सौभाग्यं मानगौरवे॥ ९३

कृष्णवक्षःस्थलस्थानं पत्नीत्वे प्राप सेवया।
तपश्चकार सा पूर्वं शतशृङ्गे च पर्वते॥ ९४

दिव्यवर्षसहस्रं च पतिं प्राप्त्यर्थमेव च।
जाते शक्तिप्रसादे तु दृष्ट्वा चन्द्रकलोपमाम्॥ ९५

कृष्णो वक्षःस्थले कृत्वा रुरोद कृपया विभुः।
वरं तस्यै ददौ सारं सर्वेषामपि दुर्लभम्॥ ९६

मृत्युपर विजय प्राप्त करनेवाले, समस्त तत्त्वार्थोंको जाननेवाले तथा महान् तपःस्वरूप सर्वेश्वर शिव उन्हींकी तपस्या करके, उन्हें जानकर ही जगत्‌का संहार करनेवाले हो सके। भगवान् विष्णु उन्हीं परब्रह्म परमात्माकी भक्ति तथा सेवाके द्वारा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापी, समस्त सम्पदा प्रदान करनेवाले, सबके ईश्वर, श्रीसम्पन्न तथा सबके रक्षक हुए॥ ८५-८६½ ॥

जिसके ज्ञानसे, जिसके तपसे, जिसकी भक्तिसे तथा जिसकी सेवासे महामायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी तथा परमेश्वरी वे प्रकृति ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती कही गयी हैं। जिसके ज्ञान तथा सेवासे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठातृदेवता, वेदज्ञानसे सम्पन्न तथा ब्राह्मणोंके द्वारा सुपूजित हुईं। जिनकी सेवा तथा तपस्याके द्वारा सरस्वती समस्त विद्याओंकी अधिष्ठातृदेवी, विद्वानोंके लिये पूज्य, श्रेष्ठ तथा समस्त लोकोंमें पूजित हुईं। इसी प्रकार इन्हींकी सेवा तथा तपस्यासे ही वे लक्ष्मी सभी प्रकारकी सम्पदा प्रदान करनेवाली, सभी प्राणिसमूहकी अधिष्ठातृदेवी, सर्वेश्वरी, सबकी वन्दनीया तथा सबको पुत्र देनेवाली हुईं और इन्हींकी उपासनाके प्रभावसे ही देवी दुर्गा सब प्रकारके कष्टका नाश करनेवाली, सबके द्वारा स्तुत तथा सर्वज्ञ हुईं॥ ८७—९१½ ॥

श्रीकृष्णके वाम अंशसे आविर्भूत राधा प्रेमपूर्वक उन्हीं शक्तिकी सेवा करके कृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवीके रूपमें प्रतिष्ठित हुईं और उनके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बन गयीं। उन्हींकी सेवासे राधाने सर्वोत्कृष्ट रूप, सौभाग्य, सम्मान, गौरव तथा पत्नीके रूपमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थान प्राप्त किया है॥ ९२-९३½ ॥

पूर्वकालमें श्रीराधाने श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये शतशृंगपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया था। उससे उन शक्तिस्वरूपाके प्रसन्न हो जानेपर श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। वे प्रभु चन्द्रमाकी कलाके समान शोभा पानेवाली राधाको देखकर उन्हें अपने वक्षःस्थलसे लगाकर [प्रेमातिरेकके कारण] रोने लगे। तत्पश्चात् कृपा करके उन प्रभु श्रीकृष्णने राधाको सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ यह उत्तम वर

मम वक्षःस्थले तिष्ठ मम भक्ता च शाश्वती।
सौभाग्येन च मानेन प्रेम्णाथो गौरवेण च॥ ९७

त्वं मे श्रेष्ठा च ज्येष्ठा च प्रेयसी सर्वयोषिताम्।
वरिष्ठा च गरिष्ठा च संस्तुता पूजिता मया॥ ९८

सततं तव साध्योऽहं वश्यश्च प्राणवल्लभे।
इत्युक्त्वा च जगन्नाथश्चकार ललनां ततः॥ ९९

सपत्नीरहितां तां च चकार प्राणवल्लभाम्।
अन्या या याश्च ता देव्यः पूजिताः शक्तिसेवया॥ १००

तपस्तु यादृशं यासां तादृक्तादृक्फलं मुने।
दिव्यवर्षसहस्रं च तपस्तप्त्वा हिमाचले॥ १०१

दुर्गा च तत्पदं ध्यात्वा सर्वपूज्या बभूव ह।
सरस्वती तपस्तप्त्वा पर्वते गन्धमादने॥ १०२

लक्षवर्षं च दिव्यं च सर्ववन्द्या बभूव सा।
लक्ष्मीर्युगशतं दिव्यं तपस्तप्त्वा च पुष्करे॥ १०३

सर्वसम्पत्प्रदात्री च जाता देवीनिषेवणात्।
सावित्री मलये तप्त्वा पूज्या वन्द्या बभूव सा॥ १०४

षष्टिवर्षसहस्रं च दिव्यं ध्यात्वा च तत्पदम्।
शतमन्वन्तरं तप्तं शङ्करेण पुरा विभो॥ १०५

शतमन्वन्तरं चेदं ब्रह्मा शक्तिं जजाप ह।
शतमन्वन्तरं विष्णुस्तप्त्वा पाता बभूव ह॥ १०६

दशमन्वन्तरं तप्त्वा श्रीकृष्णः परमं तपः।
गोलोकं प्राप्तवान्दिव्यं मोदतेऽद्यापि यत्र हि॥ १०७

दशमन्वन्तरं धर्मस्तप्त्वा वै भक्तिसंयुतः।
सर्वप्राणः सर्वपूज्यः सर्वाधारो बभूव सः॥ १०८

प्रदान किया—'मेरे वक्षःस्थलपर सदा विराजमान रहो, मेरी शाश्वत भक्त बनो और सौभाग्य, मान, प्रेम तथा गौरवसे नित्य सम्पन्न रहो। तुम मेरी सभी भार्याओंमें श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ प्रेयसीके रूपमें सदा प्रतिष्ठित रहोगी। तुम्हें वरिष्ठ तथा महिमामयी मानकर मैं सदा तुम्हारी स्तुति-पूजा किया करूँगा। हे प्राणवल्लभे! मैं तुम्हारे लिये सर्वदा सुलभ और हर प्रकारसे तुम्हारे अधीन रहूँगा।' परम सुन्दरी राधाको ऐसा वर प्रदान करके जगत्पति श्रीकृष्णने उन्हें सपत्नीके भावसे रहित कर दिया और अपनी प्राणप्रिया बना लिया॥ ९४—९९½ ॥

हे मुने! इसी प्रकार अन्य भी जो-जो देवियाँ हैं, वे भी मूलप्रकृतिकी सेवाके कारण ही सुपूजित हुई हैं। जिनका जैसा-जैसा तप रहा है, वैसा-वैसा उन्हें फल मिला है। भगवती दुर्गा हिमालयपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करके तथा उन मूलप्रकृतिके चरणोंका ध्यान करके सबकी पूज्य हो गयीं। वे भगवती सरस्वती गन्धमादनपर्वतपर एक लाख दिव्य वर्षोंतक तप करके सर्ववन्द्या बन गयीं। श्रीलक्ष्मी पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक सौ युगोंतक तप करके भगवतीकी उपासनाके द्वारा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ देनेवाली बन गयीं। इसी प्रकार सावित्री दिव्य साठ हजार वर्षोंतक मलयगिरिपर उन मूलप्रकृतिके दिव्य चरणोंका ध्यान करते हुए कठोर तप करके सबके लिये पूजनीय तथा वन्दनीय हो गयीं॥ १००—१०४½ ॥

हे विभो! प्राचीन कालमें शंकरजीने एक सौ मन्वन्तरतक उन भगवतीका तप किया था। ब्रह्माजीने भी सौ मन्वन्तरतक शक्तिके नामका जप किया था। इसी प्रकार भगवान् विष्णु भी सौ मन्वन्तरतक तपस्या करके सम्पूर्ण जगत्के रक्षक बने॥ १०५-१०६॥

श्रीकृष्णने दस मन्वन्तरतक कठोर तप करके दिव्य गोलोक प्राप्त किया, जहाँपर आज भी वे आनन्द प्राप्त कर रहे हैं॥ १०७॥

उन्हीं भगवतीकी भक्तिसे युक्त होकर धर्म दस मन्वन्तरतक तपस्या करके सबके प्राणस्वरूप, सर्वपूज्य तथा सर्वाधार हो गये॥ १०८॥

एवं देव्याश्च तपसा सर्वे देवाश्च पूजिताः।
मुनयो मनवो भूपा ब्राह्मणाश्चैव पूजिताः॥ १०९

एवं ते कथितं सर्वं पुराणं सयथागमम्।
गुरुवक्त्राद्यथा ज्ञातं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११०

इसी प्रकार सभी देवता, मुनि, मनुगण, राजा तथा ब्राह्मण भी उन भगवती मूलप्रकृतिकी तपस्याके द्वारा ही पूजित हुए हैं॥ १०९॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आगमसहित इस पुराणको गुरुके मुखसे जैसा जाना था, वह सब आपको बता दिया; अब आप आगे क्या सुनना चाहते हैं?॥ ११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे कलिमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा उनकी स्तुति

नारद उवाच

देव्या निमेषमात्रेण ब्रह्मणः पात एव च।
तस्य पातः प्राकृतिकः प्रलयः परिकीर्तितः॥ १

प्रलये प्राकृते चोक्ता तत्रादृष्टा वसुन्धरा।
जलप्लुतानि विश्वानि सर्वे लीनाः परात्मनि॥ २

वसुन्धरा तिरोभूता कुत्र वा सा च तिष्ठति।
सृष्टेर्विधानसमये साविर्भूता कथं पुनः॥ ३

कथं बभूव सा धन्या मान्या सर्वाश्रया जया।
तस्याश्च जन्मकथनं वद मङ्गलकारणम्॥ ४

श्रीनारायण उवाच

सर्वादिसृष्टौ सर्वेषां जन्म देव्या इति श्रुतिः।
आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषु प्रलयेषु च॥ ५

श्रूयतां वसुधाजन्म सर्वमङ्गलकारणम्।
विघ्ननिघ्नकरं पापनाशनं पुण्यवर्धनम्॥ ६

अहो केचिद्वदन्तीति मधुकैटभमेदसा।
बभूव वसुधा धन्या तद्विरुद्धमतः शृणु॥ ७

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने बतलाया कि देवीके निमेषमात्र व्यतीत होनेपर ब्रह्माका अन्त हो जाता है और उनका यह विनाश ही प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस प्राकृत प्रलयके होनेपर पृथ्वी अदृश्य हो जाती है—ऐसा कहा गया है, साथ ही सभी लोक जलमें डूब जाते हैं और समस्त प्राणी परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। [हे प्रभो!] उस समय अदृश्य हुई वह पृथ्वी कहाँ स्थित रहती है और सृष्टि होनेके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? वह पृथ्वी फिरसे धन्य, मान्य, सबको आश्रय प्रदान करनेवाली तथा विजयशालिनी कैसे हो जाती है? अब आप उस पृथ्वीके उद्भवकी मंगलकारी कथा कहिये॥ १—४॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें भगवतीसे ही अखिल जगत्‌की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सबका उन्हींसे आविर्भाव होता है और सभी प्रलयोंके समय प्राणियोंका उन्हींमें विलय हो जाता है—ऐसा श्रुति कहती है॥ ५॥

अब आप पृथ्वीके जन्मका वृत्तान्त सुनिये; जो सभी प्रकारका मंगल करनेवाला, विघ्नोंका नाश करनेवाला, पापोंका उच्छेद करनेवाला तथा पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है॥ ६॥

कुछ लोग कहते हैं कि मधु-कैटभ नामक दैत्योंके मेदसे यह धन्य पृथ्वी उत्पन्न हुई, किंतु इससे जो भिन्न मत है, उसे सुनो। उन दोनों दैत्योंने प्राचीन

ऊचतुस्तौ पुरा विष्णुं तुष्टौ युद्धेन तेजसा।
आवां वध्यौ न यत्रोर्वी पाथसा संवृतेति च॥ ८

तयोर्जीवनकाले न प्रत्यक्षा साभवत्स्फुटम्।
ततो बभूव मेदश्च मरणानन्तरं तयोः॥ ९

मेदिनीति च विख्यातेत्युक्तमेतन्मतं शृणु।
जलधौता कृता पूर्वं वर्धिता मेदसा यतः॥ १०

कथयामि ते तज्जन्म सार्थकं सर्वमङ्गलम्।
पुरा श्रुतं यच्छ्रुत्युक्तं धर्मवक्त्राच्च पुष्करे॥ ११

महाविराट्शरीरस्य जलस्थस्य चिरं स्फुटम्।
मनो बभूव कालेन सर्वाङ्गव्यापकं ध्रुवम्॥ १२

तच्च प्रविष्टं सर्वेषां तल्लोम्नां विवरेषु च।
कालेन महता पश्चाद् बभूव वसुधा मुने॥ १३

प्रत्येकं प्रतिलोम्नां च कूपेषु संस्थिता सदा।
आविर्भूता तिरोभूता सजला च पुनः पुनः॥ १४

आविर्भूता सृष्टिकाले तज्जलोपर्युपस्थिता।
प्रलये च तिरोभूता जलस्याभ्यन्तरे स्थिता॥ १५

प्रतिविश्वेषु वसुधा शैलकाननसंयुता।
सप्तसागरसंयुक्ता सप्तद्वीपसमन्विता॥ १६

हेमाद्रिमेरुसंयुक्ता ग्रहचन्द्रार्कसंयुता।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च सुरैर्लोकैस्तदाज्ञया॥ १७

कालमें भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें उनके तेजसे प्रसन्न होकर उनसे कहा कि हमदोनोंका वध वहींपर हो, जहाँ पृथ्वी जलमग्न न हो। उनके जीवनकालमें पृथ्वी जलके भीतर स्थित रहनेके कारण स्पष्ट रूपसे दिखायी नहीं पड़ती थी; यह बात उन्हें ज्ञात भी थी। इसीलिये उन्होंने वह वर माँगा था। उन दोनोंके वधके उपरान्त उनका मेद प्रभूत मात्रामें फैल गया। इस कारण पृथ्वी मेदिनी नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका स्पष्टीकरण सुनो; जलसे बाहर निकलनेके अनन्तर ही पृथ्वी मेदसे परिपुष्ट हुई। इसीलिये उसका नाम मेदिनी पड़ा। मैं अब पृथ्वीके जन्मकी मंगलकारिणी तथा श्रुतिप्रतिपादित सार्थक कथा कहता हूँ, जिसे मैंने पहले धर्मराजके मुखसे पुष्करक्षेत्रमें सुना था॥ ७—११॥

महाविराट् पुरुष अनन्त कालसे जलमें स्थित रहते हैं, यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वांगव्यापी शाश्वत मन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वह मन उस महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूपोंमें प्रविष्ट हो गया। हे मुने! बहुत समयके पश्चात् उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी प्रकट हुई॥ १२-१३॥

उस महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमें सर्वदा स्थित रहनेवाली यह पृथ्वी एक-एक करके जलसहित बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है॥ १४॥

यह पृथ्वी सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित हो जाती है और प्रलयके समय यह अदृश्य होकर जलके भीतर स्थित रहती है॥ १५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी पर्वतों तथा वनोंसे सम्पन्न रहती है, सात समुद्रोंसे घिरी रहती है और सात द्वीपोंसे युक्त रहती है॥ १६॥

यह वसुधा हिमालय तथा मेरु आदि पर्वतों, सूर्य तथा चन्द्र आदि ग्रहोंसे संयुक्त रहती है। महाविराट्की आज्ञाके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इसपर प्रकट होते हैं तथा समस्त प्राणी इसपर निवास करते हैं॥ १७॥

पुण्यतीर्थसमायुक्ता पुण्यभारतसंयुता।
काञ्चनीभूमिसंयुक्ता सप्तस्वर्गसमन्विता॥ १८

पातालसप्तं तदधस्तदूर्ध्वं ब्रह्मलोकतः।
ध्रुवलोकश्च तत्रैव सर्वं विश्वं च तत्र वै॥ १९

एवं सर्वाणि विश्वानि पृथिव्यां निर्मितानि च।
नश्वराणि च विश्वानि सर्वाणि कृत्रिमाणि वै॥ २०

प्रलये प्राकृते चैव ब्रह्मणश्च निपातने।
महाविराडादिसृष्टौ सृष्टः कृष्णेन चात्मना॥ २१

नित्यौ च स्थितिप्रलयौ काष्ठाकालेश्वरैः सह।
नित्याधिष्ठातृदेवी सा वाराहे पूजिता सुरैः॥ २२

मुनिभिर्मनुभिर्विप्रैर्गन्धर्वादिभिरेव च।
विष्णोर्वराहरूपस्य पत्नी सा श्रुतिसम्मता॥ २३

तत्पुत्रो मङ्गलो ज्ञेयो घटेशो मङ्गलात्मजः।

नारद उवाच

पूजिता केन रूपेण वाराहे च सुरैर्मही॥ २४

वाराहे चैव वाराही सर्वैः सर्वाश्रया सती।
मूलप्रकृतिसम्भूता पञ्चीकरणमार्गतः॥ २५

तस्याः पूजाविधानं चाप्यधश्चोर्ध्वमनेकशः।
मङ्गलं मङ्गलस्यापि जन्म वासं वद प्रभो॥ २६

श्रीनारायण उवाच

वाराहे च वराहश्च ब्रह्मणा संस्तुतः पुरा।
उद्धार महीं हत्वा हिरण्याक्षं रसातलम्॥ २७

जले तां स्थापयामास पद्मपत्रं यथा ह्रदे।
तत्रैव निर्ममे ब्रह्मा विश्वं सर्वं मनोहरम्॥ २८

यह पृथ्वी पुण्यतीर्थों तथा पवित्र भारतदेशसे सम्पन्न है। यह स्वर्णमयी भूमिसे सुशोभित है तथा सात स्वर्गोंसे समन्वित है। इस पृथ्वीके नीचे सात पाताल हैं, ऊपर ब्रह्मलोक है तथा ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है और उसमें समस्त विश्व स्थित है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक पृथ्वीपर ही निर्मित हैं। ये सभी विश्व विनाशशील तथा कृत्रिम हैं॥ १८—२०॥

प्राकृत प्रलयके अवसरपर ब्रह्माका भी निपात हो जाता है। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं; क्योंकि सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इनका सृजन किया था॥ २१॥

ये सृष्टि तथा प्रलय नित्य हैं और काष्ठा आदि अवयवोंवाले कालके स्वामीके अधीन होकर रहते हैं। सभीकी अधिष्ठातृदेवी पृथ्वी भी नित्य हैं। वाराहकल्पमें सभी देवता, मुनि, मनु, विप्र, गन्धर्व आदिने उन पृथ्वीका पूजन किया था। वेदसम्मत वे पृथ्वी वराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुईं; उनके पुत्ररूपमें मंगलको तथा मंगलके पुत्ररूपमें घटेशको जानना चाहिये॥ २२-२३½॥

नारदजी बोले—देवताओंने वाराहकल्पमें किस रूपमें पृथ्वीका पूजन किया था? सभी लोग उस वाराहकल्पमें सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस वाराही साध्वी पृथ्वीकी पूजा करते थे। यह पृथ्वी पंचीकरण-मार्गसे मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई है। हे प्रभो! नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें उस पृथ्वीके पूजनके विविध प्रकार और (पृथ्वीपुत्र) मंगलके कल्याणमय जन्म तथा निवास-स्थानके विषयमें भी बताइये॥ २४—२६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें वाराहकल्पमें ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि वराहरूप धारण करके हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको निकाल ले आये॥ २७॥

उन्होंने पृथ्वीको जलमें इस प्रकार रख दिया, मानो सरोवरमें कमलपत्र स्थित हो। वहींपर रहकर ब्रह्माजीने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की॥ २८॥

दृष्ट्वा तदधिदेवीं च सकामां कामुको हरिः।
वराहरूपी भगवान् कोटिसूर्यसमप्रभः॥ २९

कृत्वा रतिकलां सर्वां मूर्तिं च सुमनोहराम्।
क्रीडाञ्चकार रहसि दिव्यवर्षमहर्निशम्॥ ३०

सुखसम्भोगसंस्पर्शान्मूर्च्छां सम्प्राप सुन्दरी।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमोऽतिसुखप्रदः॥ ३१

विष्णुस्तदङ्गसंश्लेषाद् बुबुधे न दिवानिशम्।
वर्षान्ते चेतनां प्राप्य कामी तत्याज कामुकीम्॥ ३२

पूर्वरूपं वराहं च दधार स च लीलया।
पूजाञ्चकार तां देवीं ध्यात्वा च धरणीं सतीम्॥ ३३

धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः सिन्दूरैरनुलेपनैः।
वस्त्रैः पुष्पैश्च बलिभिः सम्पूज्योवाच तां हरिः॥ ३४

श्रीभगवानुवाच

सर्वाधारा भव शुभे सर्वैः सम्पूजिता सुखम्।
मुनिभिर्मनुभिर्देवैः सिद्धैश्च दानवादिभिः॥ ३५

अम्बुवाचीत्यागदिने गृहारम्भे प्रवेशने।
वापीतडागारम्भे च गृहे च कृषिकर्मणि॥ ३६

तव पूजां करिष्यन्ति मद्वरेण सुरादयः।
मूढा ये न करिष्यन्ति यास्यन्ति नरकं च ते॥ ३७

वसुधोवाच

वहामि सर्वं वाराहरूपेणाहं तवाज्ञया।
लीलामात्रेण भगवन् विश्वं च सचराचरम्॥ ३८

मुक्तां शुक्तिं हरेरर्चां शिवलिङ्गं शिवां तथा।
शङ्खं प्रदीपं यन्त्रं च माणिक्यं हीरकं तथा॥ ३९

यज्ञसूत्रं च पुष्पं च पुस्तकं तुलसीदलम्।
जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं च सुवर्णकम्॥ ४०

गोरोचनं चन्दनं च शालग्रामजलं तथा।
एतान्वोढुमशक्ताहं क्लिष्टा च भगवञ्छृणु॥ ४१

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीको कामभावसे युक्त देखकर करोड़ों सूर्यके समान प्रभावाले वाराहरूपधारी सकाम भगवान् श्रीहरिने अपना अत्यन्त मनोहर तथा रतिकलायोग्य समग्र रूप बना करके उसके साथ एकान्तमें दिव्य एक वर्षतक निरन्तर विहार किया। आनन्दकी अनुभूतिसे वह सुन्दरी मूर्च्छित हो गयी। विदग्ध पुरुषके साथ विदग्ध स्त्रीका संगम अत्यन्त सुखदायक होता है। उस सुन्दरीके अंग-संश्लेषके कारण विष्णुको दिन-रातका ज्ञान भी नहीं रहा। एक वर्षके पश्चात् चेतना आनेपर भगवान् श्रीहरि उससे विलग हो गये॥ २९—३२॥

तदनन्तर उन्होंने लीलापूर्वक अपना पूर्वका वराह-रूप धारण कर लिया। इसके बाद साध्वी भगवती पृथ्वीका ध्यान करके धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और बलि आदिसे उनकी पूजा करके श्रीहरि उनसे कहने लगे॥ ३३-३४॥

श्रीभगवान् बोले—हे शुभे! तुम सबको आश्रय देनेवाली बनो। तुम मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि—सभीके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर सुख प्राप्त करोगी॥ ३५॥

अम्बुवाचीयोग*को छोड़कर अन्य दिनोंमें, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, बावली तथा सरोवरके निर्माणके समयपर, गृह तथा कृषिकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे और जो मूर्ख प्राणी तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे नरकमें जायँगे॥ ३६-३७॥

वसुधा बोली—हे भगवन्! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं वाराहीरूपसे समस्त स्थावर-जंगममय विश्वका लीलापूर्वक वहन करती हूँ। किंतु हे भगवन्! आप यह सुन लीजिये कि मैं मोती, सीप, शालग्रामशिला, शिवलिंग, पार्वतीविग्रह, शंख, दीप, यन्त्र, माणिक्य, हीरा, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, सुवर्ण, गोरोचन, चन्दन और शालग्रामका जल—इन वस्तुओंका वहन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, इससे मुझे क्लेश होता है॥ ३८—४१॥

---

* सौरमानसे आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी ऋतुमती रहती है; इतने समयका नाम अम्बुवाची है।

श्रीभगवानुवाच

द्रव्याण्येतानि ये मूढा अर्पयिष्यन्ति सुन्दरि।
यास्यन्ति कालसूत्रं ते दिव्यं वर्षशतं त्वयि॥ ४२

इत्येवमुक्त्वा भगवान् विरराम च नारद।
बभूव तेन गर्भेण तेजस्वी मङ्गलग्रहः॥ ४३

पूजाञ्चक्रुः पृथिव्याश्च ते सर्वे चाज्ञया हरेः।
कण्वशाखोक्तध्यानेन तुष्टुवुश्च स्तवेन ते॥ ४४

ददुर्मूलेन मन्त्रेण नैवेद्यादिकमेव च।
संस्तुता त्रिषु लोकेषु पूजिता सा बभूव ह॥ ४५

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं तस्या मूलमन्त्रं च किं वद।
गूढं सर्वपुराणेषु श्रोतुं कौतूहलं मम॥ ४६

श्रीनारायण उवाच

आदौ च पृथिवी देवी वराहेण च पूजिता।
ततो हि ब्रह्मणा पश्चात्पूजिता पृथिवी तदा॥ ४७

ततः सर्वैर्मुनीन्द्रैश्च मनुभिर्मानवादिभिः।
ध्यानं च स्तवनं मन्त्रं शृणु वक्ष्यामि नारद॥ ४८

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहेत्यनेन
मन्त्रेण विष्णुना पूजिता पुरा।
श्वेतपङ्कजवर्णाभां शरच्चन्द्रनिभाननाम्॥ ४९

चन्दनोत्क्षिप्तसर्वाङ्गीं रत्नभूषणभूषिताम्।
रत्नाधारां रत्नगर्भां रत्नाकरसमन्विताम्॥ ५०

वह्निशुद्धांशुकाधानां सस्मितां वन्दितां भजे।
ध्यानेनानेन सा देवी सर्वैश्च पूजिताभवत्॥ ५१
स्तवनं शृणु विप्रेन्द्र कण्वशाखोक्तमेव च।

श्रीभगवान् बोले—हे सुन्दरि! जो मूर्ख तुम्हारे ऊपर (अर्थात् आसनविहीन भूमिपर) ये वस्तुएँ रखेंगे, वे कालसूत्र नामक नरकमें दिव्य सौ वर्षोंतक निवास करेंगे॥ ४२॥

हे नारद! यह कहकर भगवान् चुप हो गये। उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थीं। उसी गर्भसे तेजस्वी मंगलग्रह उत्पन्न हुए॥ ४३॥

भगवान्की आज्ञाके अनुसार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने पृथ्वीकी पूजा की और कण्वशाखामें कहे गये ध्यान तथा स्तोत्रपाठसे उनकी स्तुति की और मूलमन्त्रसे नैवेद्य आदि अर्पण किया। इस प्रकार तीनों लोकोंमें उन पृथ्वीकी पूजा तथा स्तुति होने लगी॥ ४४-४५॥

नारदजी बोले—पृथ्वीका ध्यान क्या है, उनका स्तवन क्या है और उनका मूलमन्त्र क्या है, यह सब मुझे बतलाइये। समस्त पुराणोंमें निगूढ़ इस प्रसंगको सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ ४६॥

श्रीनारायण बोले—सर्वप्रथम भगवान् वराहने भगवती पृथ्वीकी पूजा की, तत्पश्चात् ब्रह्माजीद्वारा इन पृथ्वीकी पूजा की गयी। इसके बाद सभी मुनीश्वरों, मनुओं और मनुष्यों आदिने पृथ्वीकी पूजा की॥ ४७$\frac{१}{२}$॥

हे नारद! सुनिये; अब मैं पृथ्वीके ध्यान, स्तवन तथा मन्त्रके विषयमें बता रहा हूँ। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुने प्राचीनकालमें इनका पूजन किया था। उनके ध्यानका स्वरूप यह है—'पृथ्वीदेवी श्वेतकमलके वर्णके समान आभासे युक्त हैं, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है, उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे अनुलिप्त हैं, वे रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित हैं, वे रत्नोंकी आधारस्वरूपा हैं, वे रत्नगर्भा हैं, वे रत्नोंके आकर (खान)-से समन्वित हैं, उन्होंने अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण कर रखे हैं, उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त है तथा वे सभी लोगोंके द्वारा वन्दित हैं—मैं ऐसी पृथ्वीदेवीकी आराधना करता हूँ।' इस प्रकारके ध्यानसे सभी लोगोंके द्वारा पृथ्वी पूजित हुईं। हे विप्रवर! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनिये॥ ४८—५१$\frac{१}{२}$॥

श्रीनारायण उवाच

जये जये जलाधारे जलशीले जलप्रदे॥ ५२

यज्ञसूकरजाये त्वं जयं देहि जयावहे।
मङ्गले मङ्गलाधारे माङ्गल्ये मङ्गलप्रदे॥ ५३

मङ्गलार्थं मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे।
सर्वाधारे च सर्वज्ञे सर्वशक्तिसमन्विते॥ ५४

सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे।
पुण्यस्वरूपे पुण्यानां बीजरूपे सनातनि॥ ५५

पुण्याश्रये पुण्यवतामालये पुण्यदे भवे।
सर्वसस्यालये सर्वसस्याढ्ये सर्वसस्यदे॥ ५६

सर्वसस्यहरे काले सर्वसस्यात्मिके भवे।
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे॥ ५७

भूमिपानां सुखकरे भूमिं देहि च भूमिदे।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ ५८

कोटिजन्मसु स भवेद् बलवान्भूमिपेश्वरः।
भूमिदानकृतं पुण्यं लभ्यते पठनाज्जनैः॥ ५९

भूमिदानहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
अम्बुवाचीभूकरणपापात्स मुच्यते ध्रुवम्॥ ६०

अन्यकूपे कूपखननपापात्स मुच्यते ध्रुवम्।
परभूमिहरात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः॥ ६१

भूमौ वीर्यत्यागपापाद्भूमौ दीपादिस्थापनात्।
पापेन मुच्यते सोऽपि स्तोत्रस्य पठनान्मुने॥ ६२

अश्वमेधशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
भूमिदेव्या महास्तोत्रं सर्वकल्याणकारकम्॥ ६३

श्रीनारायण बोले—जलकी आधारस्वरूपिणी, जलमयी तथा सबको जल प्रदान करनेवाली, यज्ञवराहकी भार्या तथा विजयकी प्राप्ति करानेवाली हे भगवति जये! आप मुझे विजय प्रदान कीजिये। मंगल करनेवाली, मंगलकी आश्रयस्वरूपिणी, मंगलमयी तथा मंगल प्रदान करनेवाली हे मंगलेश्वरि! हे भवे! मेरे मंगलके लिये आप मुझे मंगल प्रदान कीजिये। सबको आश्रय देनेवाली, सब कुछ जाननेवाली, सर्वशक्तिमयी तथा सभी लोगोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! हे भवे! मेरा सम्पूर्ण अभिलषित मुझे प्रदान कीजिये। पुण्यमय विग्रहवाली, पुण्योंकी बीजस्वरूपा, सनातनी, पुण्यको आश्रय देनेवाली, पुण्यवानोंकी शरणस्थली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली हे भवे! मुझे पुण्य प्रदान कीजिये। सभी फसलोंकी आलयस्वरूपिणी, सभी प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न, सभी फसलें प्रदान करनेवाली, (समयपर) सभी फसलोंको अपनेमें विलीन कर लेनेवाली तथा सभी फसलोंकी आत्मस्वरूपा हे भवे! मुझे फसलें प्रदान कीजिये। राजाओंकी सर्वस्व, राजाओंसे सम्मान पानेवाली, राजाओंको सुखी करनेवाली तथा भूमि प्रदान करनेवाली हे भूमे! मुझे भूमि प्रदान कीजिये॥ ५२—५७½ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस महान् पुण्यप्रद स्तोत्रका पाठ करता है, वह करोड़ों जन्मोंतक बलवान् तथा राजाओंका अधीश्वर होता है। इसके पढ़नेसे मनुष्य भूमिदान करनेसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। हे मुने! इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्य दानमें दी गयी भूमिका हरण करने, अम्बुवाची दिनोंमें भूमि-सम्बन्धी कार्य करने, बिना आज्ञाके दूसरेके कुएँमें कूप-खनन करने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, पृथ्वीपर वीर्यत्याग करने तथा भूमिपर दीपक आदि रखनेसे होनेवाले पापसे निश्चितरूपसे मुक्त हो जाता है और साथ ही वह एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे होनेवाला पुण्य भी प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। भूमिदेवीका यह महान् स्तोत्र सभी प्रकारका कल्याण करनेवाला है॥ ५८—६३ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
भूमिस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

नारद उवाच

भूमिदानकृतं पुण्यं पापं तद्धरणेन च।
परभूहरणात्पापं परकूपे खनने तथा॥ १

अम्बुवाच्यां भूखनने वीर्यस्य त्याग एव च।
दीपादिस्थापनात्पापं श्रोतुमिच्छामि यत्नतः॥ २

अन्यद्वा पृथिवीजन्यं पापं यत्पृच्छते परम्।
यदस्ति तत्प्रतीकारं वद वेदविदांवर॥ ३

श्रीनारायण उवाच

वितस्तिमात्रभूमिं च यो ददाति च भारते।
सन्ध्यापूताय विप्राय स याति शिवमन्दिरम्॥ ४

भूमिं च सर्वसस्याढ्यां ब्राह्मणाय ददाति च।
भूमिरेणुप्रमाणाब्दमन्ते विष्णुपदे स्थितिः॥ ५

ग्रामं भूमिं च धान्यं च ब्राह्मणाय ददाति यः।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तौ चोभौ देवीपुरःस्थितौ॥ ६

भूमिदानं च तत्काले यः साधुश्चानुमोदते।
स च प्रयाति वैकुण्ठे मित्रगोत्रसमन्वितः॥ ७

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेत्तु यः।
स तिष्ठति कालसूत्रे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ८

तत्पुत्रपौत्रप्रभृतिर्भूमिहीनः श्रिया हतः।
पुत्रहीनो दरिद्रश्च घोरं याति च रौरवम्॥ ९

नारदजी बोले—भूमिका दान करनेसे होनेवाले पुण्य तथा उसका हरण करनेसे होनेवाले पाप, दूसरेकी भूमि छीननेसे होनेवाले पाप, दूसरेके द्वारा खोदे गये जलहीन कुएँको बिना उसकी आज्ञा लिये खोदने, अम्बुवाची दिनोंमें भूखनन करने, पृथ्वीपर वीर्य-त्याग करने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उसे मैं यत्नपूर्वक सुनना चाहता हूँ। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीसम्बन्धी पाप हो, उसे तथा उसके निराकरणका उपाय बतलाइये॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—जो मनुष्य भारतवर्षमें वितस्ति (बित्ता)-मात्र भूमि भी किसी सन्ध्योपासनासे पवित्र हुए ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको सब प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न भूमि प्रदान करता है, वह उस भूमिमें विद्यमान धूलके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणको ग्राम, भूमि और धान्यका दान करता है, उसके पुण्यसे दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर जगदम्बाके लोकमें स्थान पाते हैं॥ ६॥

जो सज्जन भूमिदानके अवसरपर दाताके इस कर्मका अनुमोदन करता है, वह अपने मित्रों तथा सगोत्री बन्धुओंसहित वैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है॥ ७॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणकी अपने अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी आजीविकाको उससे छीनता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त कालसूत्र-नरकमें रहता है। इस पापके प्रभावसे उस व्यक्तिके पुत्र-पौत्र आदि भूमिसे हीन रहते हैं। वह लक्ष्मीरहित, पुत्रविहीन तथा दरिद्र होकर भीषण रौरवनरकमें पड़ता है॥ ८-९॥

गवां मार्गं विनिष्कृष्य यश्च सस्यं ददाति च।
दिव्यं वर्षशतं चैव कुम्भीपाके च तिष्ठति॥ १०

गोष्ठं तडागं निष्कृष्य मार्गे सस्यं ददाति यः।
स तिष्ठत्यसिपत्रे च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ११

पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य परकूपे च स्नाति यः।
प्राप्नोति नरकं चैव स्नानं निष्फलमेव च॥ १२

कामी भूमौ च रहसि वीर्यत्यागं करोति यः।
भूमिरेणुप्रमाणं च वर्षं तिष्ठति रौरवे॥ १३

अम्बुवाच्यां भूकरणं यः करोति च मानवः।
स याति कृमिदंशं च स्थितिस्तत्र चतुर्युगम्॥ १४

परकीये लुप्तकूपे कूपं मूढः करोति यः।
पुष्करिण्यां च लुप्तायां पुष्करिणीं ददाति यः॥ १५

सर्वं फलं परस्यैव तप्तकुण्डं व्रजेच्च सः।
तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १६

परकीये तडागे च पङ्कमुद्धृत्य चोन्मृजेत्।
रेणुप्रमाणवर्षं च ब्रह्मलोके वसेन्नरः॥ १७

पिण्डं पित्रे भूमिभर्तुर्न प्रदाय च मानवः।
श्राद्धं करोति यो मूढो नरकं याति निश्चितम्॥ १८

भूमौ दीपं योऽर्पयति स चान्धः सप्तजन्मसु।
भूमौ शङ्खं च संस्थाप्य कुष्ठं जन्मान्तरे लभेत्॥ १९

मुक्तां माणिक्यहीरौ च सुवर्णं च मणिं तथा।
पञ्च संस्थापयेद्भूमौ स चान्धः सप्तजन्मसु॥ २०

जो मनुष्य गोचर भूमिको जोतकर उससे उपार्जित धान्य ब्राह्मणको देता है, वह देवताओंके दिव्य सौ वर्षोंतक कुम्भीपाकनरकमें निवास करता है॥ १०॥

जो मनुष्य गायोंके रहनेके स्थान, तड़ाग तथा मार्गको जोतकर वहाँसे पैदा किये हुए अन्नका दान करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्र नामक नरकमें पड़ा रहता है॥ ११॥

जो मनुष्य किसी दूसरेके कुएँ, तड़ाग आदिमेंसे पाँच मृत्तिका-पिण्डोंको निकाले बिना ही उसमें स्नान करता है, वह नरक प्राप्त करता है और उसका स्नान भी निष्फल होता है॥ १२॥

जो कामासक्त पुरुष एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्यका त्याग करता है, वहाँकी जमीनपर जितने धूलकण हैं, उतने वर्षोंतक वह रौरवनरकमें वास करता है॥ १३॥

जो मनुष्य अम्बुवाचीकालमें भूमि खोदनेका कार्य करता है, वह कृमिदंश नामक नरकमें जाता है और वहाँपर चार युगोंतक उसकी स्थिति रहती है॥ १४॥

जो मूर्ख मनुष्य किसी दूसरेके लुप्त कुएँपर अपना कुआँ तथा लुप्त बावलीपर अपनी बावली बनवाता है, उस कार्यका सारा फल उस दूसरे व्यक्तिको मिल जाता है और वह स्वयं तप्तकुण्ड नामक नरकमें पड़ता है। वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कष्ट भोगते हुए वह पड़ा रहता है॥ १५-१६॥

जो मनुष्य दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को साफ करके स्नान करता है, उस कीचड़में जितने कण होते हैं, उतने वर्षोंतक वह ब्रह्मलोकमें निवास करता है॥ १७॥

जो मूर्ख मनुष्य भूमिपतिके पितरको पिण्ड दिये बिना श्राद्ध करता है, वह अवश्य ही नरकगामी होता है॥ १८॥

जो व्यक्ति भूमिपर दीपक रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है और जो भूमिपर शंख रखता है, वह दूसरे जन्ममें कुष्ठरोगसे ग्रसित होता है॥ १९॥

जो मनुष्य मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण तथा मणि—इन पाँच रत्नोंको भूमिपर रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है॥ २०॥

शिवलिङ्गं शिवामर्चां यश्चार्पयति भूतले।
शतमन्वन्तरं यावत्कृमिभक्षः स तिष्ठति॥ २१

शङ्खं यन्त्रं शिलातोयं पुष्पं च तुलसीदलम्।
यश्चार्पयति भूमौ च स तिष्ठेन्नरके ध्रुवम्॥ २२

जपमालां पुष्पमालां कर्पूरं रोचनं तथा।
यो मूढश्चार्पयेद्भूमौ स याति नरकं ध्रुवम्॥ २३

भूमौ चन्दनकाष्ठं च रुद्राक्षं कुशमूलकम्।
संस्थाप्य भूमौ नरके वसेन्मन्वन्तरावधि॥ २४

पुस्तकं यज्ञसूत्रं च भूमौ संस्थापयेन्नरः।
न भवेद्विप्रयोनौ च तस्य जन्मान्तरे जनिः॥ २५

ब्रह्महत्यासमं पापमिह वै लभते ध्रुवम्।
ग्रन्थियुक्तं यज्ञसूत्रं पूज्यं च सर्ववर्णकैः॥ २६

यज्ञं कृत्वा तु यो भूमिं क्षीरेण न हि सिञ्चति।
स याति तप्तभूमिं च सन्तप्तः सप्तजन्मसु॥ २७

भूकम्पे ग्रहणे यो हि करोति खननं भुवः।
जन्मान्तरे महापापो ह्यङ्गहीनो भवेद् ध्रुवम्॥ २८

भवनं यत्र सर्वेषां भूमिस्तेन प्रकीर्तिता।
काश्यपी कश्यपस्येयमचला स्थिररूपतः॥ २९

विश्वम्भरा धारणाच्चानन्तानन्तस्वरूपतः।
पृथिवी पृथुकन्यात्वाद्विस्तृतत्वान्महामुने॥ ३०

जो मनुष्य शिवलिंग, भगवती शिवाकी प्रतिमा तथा शालग्रामशिला भूमिपर रखता है, वह सौ मन्वन्तरतक कृमिभक्ष नामक नरकमें वास करता है॥ २१॥

जो शंख, यन्त्र, शालग्रामशिलाका जल, पुष्प और तुलसीदलको भूमिपर रखता है; वह निश्चितरूपसे नरकमें वास करता है॥ २२॥

जो मन्दबुद्धि मनुष्य जपमाला, पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचनको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे नरकगामी होता है॥ २३॥

चन्दनकाष्ठ, रुद्राक्ष और कुशकी जड़ जमीनपर रखनेवाला मनुष्य एक मन्वन्तरपर्यन्त नरकमें वास करता है॥ २४॥

जो मनुष्य पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, वह अगले जन्ममें विप्रयोनिमें उत्पन्न नहीं होता है॥ २५॥

जो सभी वर्णोंके द्वारा पूज्य ग्रन्थियुक्त यज्ञोपवीतको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे इस लोकमें ब्रह्म-हत्याके समान पापका भागी होता है॥ २६॥

जो मनुष्य यज्ञ करके यज्ञभूमिको दूधसे नहीं सींचता है, वह सात जन्मोंतक कष्ट भोगता हुआ तप्तभूमि नामक नरकमें निवास करता है॥ २७॥

जो मनुष्य भूकम्प तथा ग्रहणके अवसरपर भूमि खोदता है, वह महापापी जन्मान्तरमें निश्चितरूपसे अंगहीन होता है॥ २८॥

हे महामुने! इस धरतीपर सभी लोगोंके भवन हैं; इसलिये यह 'भूमि', कश्यपकी पुत्री होनेके कारण 'काश्यपी', स्थिररूपमें रहनेके कारण 'अचला', विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्त रूपोंवाली होनेके कारण 'अनन्ता' और पृथुकी कन्या होने अथवा सर्वत्र फैली रहनेके कारण 'पृथिवी' कही गयी है॥ २९-३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे पृथिव्युपाख्याने नरकफलप्राप्तिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

गंगाकी उत्पत्ति एवं उनका माहात्म्य

नारद उवाच

श्रुतं पृथिव्युपाख्यानमतीव सुमनोहरम्।
गङ्गोपाख्यानमधुना वद वेदविदांवर॥ १

भारते भारतीशापात्सा जगाम सुरेश्वरी।
विष्णुस्वरूपा परमा स्वयं विष्णुपदीति च॥ २

कथं कुत्र युगे केन प्रार्थिता प्रेरिता पुरा।
तत्क्रमं श्रोतुमिच्छामि पापघ्नं पुण्यदं शुभम्॥ ३

श्रीनारायण उवाच

राजराजेश्वरः श्रीमान् सगरः सूर्यवंशजः।
तस्य भार्या च वैदर्भी शैव्या च द्वे मनोहरे॥ ४

तत्पत्न्यामेकपुत्रश्च बभूव सुमनोहरः।
असमञ्ज इति ख्यातः शैव्यायां कुलवर्धनः॥ ५

अन्या चाराधयामास शङ्करं पुत्रकामुकी।
बभूव गर्भस्तस्याश्च हरस्य च वरेण ह॥ ६

गते शताब्दे पूर्णे च मांसपिण्डं सुषाव सा।
तद् दृष्ट्वा सा शिवं ध्यात्वा रुरोदोच्चैः पुनः पुनः॥ ७

शम्भुर्ब्राह्मणरूपेण तत्समीपं जगाम ह।
चकार संविभज्यैतत्पिण्डं षष्टिसहस्रधा॥ ८

सर्वे बभूवुः पुत्राश्च महाबलपराक्रमाः।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रभामुष्टकलेवराः॥ ९

कपिलस्य मुनेः शापाद् बभूवुर्भस्मसाच्च ते।
राजा रुरोद तच्छ्रुत्वा जगाम गहने वने॥ १०

तपश्चकारासमञ्जो गङ्गानयनकारणात्।
लक्षवर्षं तपस्तप्त्वा ममार कालयोगतः॥ ११

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान मैं सुन चुका; अब आप गंगाका उपाख्यान कहिये। सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा और स्वयं विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात वे श्रेष्ठ गंगा प्राचीनकालमें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार, किस युगमें तथा किसके द्वारा प्रार्थित और प्रेरित होकर गयीं। मैं इस पापनाशक, पुण्यप्रद तथा मंगलकारी प्रसंगको क्रमसे सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजराजेश्वर श्रीमान् सगर सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं। वैदर्भी तथा शैव्या नामोंवाली उनकी दो मनोहर भार्याएँ थीं। उनकी शैव्या नामक पत्नीसे अत्यन्त सुन्दर तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो असमंज—इस नामसे विख्यात हुआ॥ ४-५॥

उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की और शिवजीके वरदानसे उसने गर्भ धारण किया॥ ६॥

पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसने एक मांस-पिण्डको जन्म दिया। उसे देखकर तथा शिवका ध्यान करके वह बार-बार ऊँचे स्वरमें विलाप करने लगी॥ ७॥

तब भगवान् शंकर ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके पास गये और उन्होंने उस मांसपिण्डको बराबर-बराबर साठ हजार भागोंमें विभक्त कर दिया॥ ८॥

वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें हो गये। वे महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके शरीरकी कान्ति ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर देनेवाली थी॥ ९॥

कपिलमुनिके शापसे वे सभी जलकर भस्म हो गये। यह समाचार सुनकर राजा सगर बहुत रोये और वे घोर जंगलमें चले गये॥ १०॥

तदनन्तर उनके पुत्र असमंज गंगाको लानेके निमित्त तपस्या करने लगे। इस प्रकार एक लाख वर्षतक तप करनेके पश्चात् वे कालयोगसे मर गये॥ ११॥

अंशुमांस्तस्य तनयो गङ्गानयनकारणात्।
तपः कृत्वा लक्षवर्षं ममार कालयोगतः॥ १२

भगीरथस्तस्य पुत्रो महाभागवतः सुधीः।
वैष्णवो विष्णुभक्तश्च गुणवानजरामरः॥ १३

तपः कृत्वा लक्षवर्षं गङ्गानयनकारणात्।
ददर्श कृष्णं ग्रीष्मस्थसूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १४

द्विभुजं मुरलीहस्तं किशोरं गोपवेषिणम्।
गोपालसुन्दरीरूपं भक्तानुग्रहरूपिणम्॥ १५

स्वेच्छामयं परं ब्रह्म परिपूर्णतमं प्रभुम्।
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च स्तुतं मुनिगणैर्नुतम्॥ १६

निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकारणम्॥ १७

वह्निशुद्धांशुकाधानं रत्नभूषणभूषितम्।
तुष्टाव दृष्ट्वा नृपतिः प्रणम्य च पुनः पुनः॥ १८

लीलया च वरं प्राप वाञ्छितं वंशतारणम्।
कृत्वा च स्तवनं दिव्यं पुलकाङ्कितविग्रहः॥ १९

श्रीभगवानुवाच

भारतं भारतीशापाद् गच्छ शीघ्रं सुरेश्वरि।
सगरस्य सुतान्सर्वान्पूतान्कुरु ममाज्ञया॥ २०

त्वत्स्पर्शवायुना पूता यास्यन्ति मम मन्दिरम्।
बिभ्रतो मम मूर्तीश्च दिव्यस्यन्दनगामिनः॥ २१

मत्पार्षदा भविष्यन्ति सर्वकालं निरामयाः।
समुच्छिद्य कर्मभोगान् कृताञ्जन्मनि जन्मनि॥ २२

उन असमंजके पुत्र अंशुमान् भी गंगाको पृथ्वीपर ले आनेके उद्देश्यसे एक लाख वर्षतक तप करनेके उपरान्त कालयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये॥ १२॥

अंशुमान्‌के पुत्र भगीरथ थे। वे भगवान्‌के परम भक्त, विद्वान्, विष्णुके भक्त, गुणवान्, अजर-अमर तथा वैष्णव थे। उन्होंने गंगाको ले आनेके लिये एक लाख वर्षतक तप करके भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन किया। वे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे सम्पन्न थे, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे हाथमें मुरली धारण किये हुए थे, उनकी किशोर अवस्था थी, वे गोपवेषमें थे और कभी गोपालसुन्दरीके रूपमें हो जाते थे, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उन्होंने यह रूप धारण किया था, उस समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता अपनी इच्छाके अधीन उन परिपूर्णतम परब्रह्मस्वरूप प्रभु श्रीकृष्णका स्तवन कर रहे थे, मुनियोंने उनके समक्ष अपने मस्तक झुका रखे थे, सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी, निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीकृष्णका मुखमण्डल मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रसन्नतासे भरा हुआ था; वे अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए थे और रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित हो रहे थे—ऐसे स्वरूपवाले भगवान् कृष्णको देखकर राजा भगीरथ बार-बार प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने लीलापूर्वक श्रीकृष्णसे अपने पूर्वजोंको तारनेवाला अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया। उस समय भगवान्‌की स्तुति करनेसे उनका रोम-रोम पुलकित हो गया था॥ १३—१९॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! सरस्वतीके शापके प्रभावसे आप शीघ्र ही भारतवर्षमें जाइये और मेरी आज्ञासे राजा सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र कीजिये॥ २०॥

आपसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर वे सब पवित्र हो जायँगे और मेरा स्वरूप धारण करके दिव्य रथपर आरूढ़ होकर मेरे लोकको प्राप्त होंगे। वे जन्म-जन्मान्तरमें किये गये कर्मोंके फलोंका समूल उच्छेद करके सर्वथा निर्विकार भावसे युक्त होकर मेरे पार्षदके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ २१-२२॥

कोटिजन्मार्जितं पापं भारते यत्कृतं नृभिः।
गङ्गाया वातस्पर्शेन नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्॥ २३

स्पर्शनाद्दर्शनाद्देव्याः पुण्यं दशगुणं ततः।
मौसलस्नानमात्रेण सामान्यदिवसे नृणाम्॥ २४

शतकोटिजन्मपापं नश्यतीति श्रुतौ श्रुतम्।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥ २५

जन्मसंख्यार्जितान्येव कामतोऽपि कृतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति मौसलस्नानतो नृणाम्॥ २६

पुण्याहस्नानतः पुण्यं वेदा नैव वदन्ति च।
किञ्चिद्वदन्ति ते विप्र फलमेव यथागमम्॥ २७

ब्रह्मविष्णुशिवाद्याश्च सर्वं नैव वदन्ति च।
सामान्यदिवसस्नानसङ्कल्पं शृणु सुन्दरि॥ २८

पुण्यं दशगुणं चैव मौसलस्नानतः परम्।
ततस्त्रिंशद्गुणं पुण्यं रविसंक्रमणे दिने॥ २९

अमायां चापि तत्तुल्यं द्विगुणं दक्षिणायने।
ततो दशगुणं पुण्यं नराणामुत्तरायणे॥ ३०

चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं पुण्यमेव च।
अक्षयायां च तत्तुल्यं चैतद्वेदे निरूपितम्॥ ३१

असंख्यपुण्यफलदमेतेषु स्नानदानकम्।
सामान्यदिवसस्नानाद्दानाच्छतगुणं फलम्॥ ३२

श्रुतिमें ऐसा कहा गया है कि भारतवर्षमें मनुष्योंके द्वारा करोड़ों जन्मोंमें किये गये दुष्कर्मके परिणामस्वरूप जो भी पाप संचित रहता है, वह गंगाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाता है॥ २३॥

गंगाजीके स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा दस गुना पुण्य गंगामें मौसल* स्नान करनेसे प्राप्त होता है। सामान्य दिनोंमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं—ऐसा श्रुति कहती है। इच्छापूर्वक इस जन्ममें किये गये तथा अनेक पूर्वजन्मोंके संचित जो कुछ भी मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप हैं, वे सब मौसलस्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं॥ २४—२६॥

हे विप्र [नारद]! पुण्यप्रद दिनोंमें गंगास्नानसे होनेवाले पुण्यका वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते। आगमशास्त्रके जो विद्वान् हैं, वे आगमोंमें प्रतिपादित कुछ-कुछ फल बताते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता भी पुण्यप्रद दिनोंके स्नानका सम्पूर्ण फल नहीं बता सकते। हे सुन्दरि! अब सामान्य दिवसोंमें संकल्पपूर्वक किये गये स्नानका फल सुनो। साधारण दिवसके संकल्पपूर्वक स्नानका पुण्य मौसलस्नानसे दस गुना अधिक होता है। उससे भी तीस गुना पुण्य सूर्य-संक्रान्तिके दिन स्नान करनेसे होता है॥ २७—२९॥

अमावस्यातिथिको भी स्नान करनेसे उसी सूर्यसंक्रान्तिके स्नानके समान पुण्य होता है। किंतु दक्षिणायनमें गंगा-स्नान करनेसे उसका दूना और उत्तरायणमें गंगा-स्नान करनेसे मनुष्योंको उससे दस गुना पुण्य प्राप्त होता है। चातुर्मास तथा पूर्णिमाके अवसरपर स्नान करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है, अक्षय तृतीयाके दिन स्नान करनेसे भी उसीके समान पुण्य होता है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ ३०-३१॥

इन विशेष पर्वोंपर किये गये स्नान तथा दान असंख्य पुण्य-फल प्रदान करते हैं। इन पर्वोंपर किये गये स्नान-दानका फल सामान्य दिवसोंमें किये गये स्नान तथा दानकी अपेक्षा सौ गुना अधिक होता है॥ ३२॥

---

* गंगाको प्रणाम करके प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले। इसे मौसलस्नान कहते हैं।

मन्वन्तराद्यायां तिथौ युगाद्यायां तथैव च।
माघस्य सितसप्तम्यां भीष्माष्टम्यां तथैव च॥ ३३

अथाप्यशोकाष्टम्यां च नवम्यां च तथा हरेः।
ततोऽपि द्विगुणं पुण्यं नन्दायां तव दुर्लभम्॥ ३४

दशहरादशम्यां तु युगाद्यादिसमं फलम्।
नन्दासमं च वारुण्यां महत्पूर्वे चतुर्गुणम्॥ ३५

ततश्चतुर्गुणं पुण्यं द्विमहत्पूर्वके सति।
पुण्यं कोटिगुणं चैव सामान्यस्नानतोऽपि यत्॥ ३६

चन्द्रोपरागसमये सूर्ये दशगुणं ततः।
पुण्यमर्धोदये काले ततः शतगुणं फलम्॥ ३७

इत्येवमुक्त्वा देवेशो विरराम तयोः पुरः।
तमुवाच ततो गङ्गा भक्तिनम्रात्मकन्धरा॥ ३८

गङ्गोवाच

यामि चेद्भारतं नाथ भारतीशापतः पुरा।
तवाज्ञया च राजेन्द्र तपसा चैव साम्प्रतम्॥ ३९

दास्यन्ति पापिनो मह्यं पापानि यानि कानि च।
तानि मे केन नश्यन्ति तमुपायं वद प्रभो॥ ४०

कतिकालं परिमितं स्थितिर्मे तत्र भारते।
कदा यास्यामि देवेश तद्विष्णोः परमं पदम्॥ ४१

ममान्यद्वाञ्छितं यद्यत्सर्वं जानासि सर्ववित्।
सर्वान्तरात्मन् सर्वज्ञ तदुपायं वद प्रभो॥ ४२

श्रीभगवानुवाच

जानामि वाञ्छितं गङ्गे तव सर्वं सुरेश्वरि।
पतिस्ते द्रवरूपाया लवणोदो भविष्यति॥ ४३

मन्वन्तरादि[1] तथा युगादि[2] तिथियों, माघ शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी तथा नन्दा तिथिको दुर्लभ गंगा-स्नान करनेपर उससे भी दूना फल मिलता है॥ ३३-३४॥

गंगादशहराकी दशमीतिथिको स्नान करनेसे युगादि तिथियोंके तुल्य और वारुणीपर्वपर स्नान करनेसे नन्दातिथिके तुल्य फल प्राप्त होता है। महावारुणी आदि पर्वोंपर स्नान करनेसे उससे चार गुना पुण्य प्राप्त होता है। महामहावारुणी-पर्वपर स्नान करनेसे उससे भी चार गुना और सामान्य स्नानकी अपेक्षा करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे उससे भी दस गुना पुण्य मिलता है और अर्धोदयकालमें स्नान करनेसे उससे भी सौ गुना फल प्राप्त होता है॥ ३५—३७॥

गंगा और भगीरथके समक्ष ऐसा कहकर देवेश्वर श्रीहरि चुप हो गये। तब गंगा भक्तिभावसे अपना मस्तक झुकाकर कहने लगीं॥ ३८॥

गंगा बोलीं—हे नाथ! हे राजेन्द्र! भारतीके पूर्व शाप और साथ ही आपकी आज्ञा तथा भगीरथकी तपस्याके कारण मैं इस समय भारतवर्षमें जा रही हूँ। किंतु हे प्रभो! वहाँ जानेपर पापीलोग मुझमें स्नान करके अपने जो कुछ पाप मुझे दे देंगे, वे मेरे पाप किस प्रकार नष्ट होंगे; इसका उपाय मुझे बताइये॥ ३९-४०॥

हे देवेश! मुझे भारतवर्षमें कितने समयतक रहना होगा और पुनः भगवान् विष्णुके परम धामको मैं कब प्राप्त होऊँगी?॥ ४१॥

हे सर्ववित्! हे सर्वान्तरात्मन्! हे सर्वज्ञ! मेरा अन्य जो कुछ भी अभिलषित है, वह सब आप जानते ही हैं। अतः हे प्रभो! मेरे उन अभीष्टोंके पूर्ण होनेका उपाय बतला दीजिये॥ ४२॥

श्रीभगवान् बोले—हे गंगे! हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको जानता हूँ। वहाँ भारतवर्षमें लवणसमुद्र नदीस्वरूपिणी तुम्हारे पति होंगे। वे मेरे ही अंशस्वरूप

---

[1] १-आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्र शुक्ल तृतीया, फाल्गुन अमावास्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ़ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुन पूर्णिमा, चैत्र पूर्णिमा और ज्येष्ठ पूर्णिमा—ये स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं। (मत्स्यपुराण १७। ६—८)

[2] २-सत्ययुग—वैशाख शुक्ल तृतीया, त्रेतायुग—कार्तिक शुक्ल नवमी, द्वापर—माघ पूर्णिमा एवं कलियुग—भाद्र शुक्ल त्रयोदशी—ये सत्ययुग आदि चारों युगोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं (मत्स्यपुराण १७। ४)।

स ममांशस्वरूपश्च त्वं च लक्ष्मीस्वरूपिणी।
विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भुवि॥ ४४

यावत्यः सन्ति नद्यश्च भारत्याद्याश्च भारते।
सौभाग्या त्वं च तास्वेव लवणोदस्य सौरते॥ ४५

अद्यप्रभृति देवेशि कलेः पञ्चसहस्रकम्।
वर्षं स्थितिस्ते भारत्याः शापेन भारते भुवि॥ ४६

नित्यं त्वमब्धिना सार्धं करिष्यसि रहो रतिम्।
त्वमेव रसिका देवि रसिकेन्द्रेण संयुता॥ ४७

त्वां स्तोष्यन्ति च स्तोत्रेण भगीरथकृतेन च।
भारतस्था जनाः सर्वे पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥ ४८

कण्वशाखोक्तध्यानेन ध्यात्वा त्वां पूजयिष्यति।
यः स्तौति प्रणमेन्नित्यं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ४९

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ५०

सहस्रपापिनां स्नानाद्यत्पापं ते भविष्यति।
प्रकृतेर्भक्तसंस्पर्शादेव तद्धि विनङ्क्ष्यति॥ ५१

पापिनां तु सहस्राणां शवस्पर्शेन यत्त्वयि।
तन्मन्त्रोपासकस्नानात्तदघं च विनङ्क्ष्यति॥ ५२

तत्रैव त्वमधिष्ठानं करिष्यस्यघमोचनम्।
सार्धं सरिद्भिः श्रेष्ठाभिः सरस्वत्यादिभिः शुभे॥ ५३

तत्तु तीर्थं भवेत्सद्यो यत्र त्वद्गुणकीर्तनम्।
त्वद्रेणुस्पर्शमात्रेण पूतो भवति पातकी॥ ५४
रेणुप्रमाणवर्षं च देवीलोके वसेद् ध्रुवम्।

हैं और तुम साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपिणी हो। इस प्रकार पृथ्वीपर एक गुणवान् पुरुषके साथ एक गुणवती स्त्रीका मेल बड़ा ही उत्तम होगा॥ ४३-४४॥

भारतवर्षमें सरस्वती आदि जो भी नदियाँ हैं, उन सबमें क्रीडाकी दृष्टिसे लवणसमुद्रके लिये तुम्ही सर्वाधिक सौभाग्यवती होओगी॥ ४५॥

हे देवेशि! इस समयसे कलियुगके पाँच हजार वर्षोंतक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतभूमिपर रहना होगा॥ ४६॥

हे देवि! रसिकास्वरूपिणी तुम रसिकराज लवणसमुद्रसे संयुक्त होकर उनके साथ एकान्तमें सदा विहार करोगी॥ ४७॥

भारतवर्षमें रहनेवाले सभी लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे और भगीरथके द्वारा रचित स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे॥ ४८॥

जो कण्वशाखामें बतायी गयी ध्यान-विधिसे तुम्हारा ध्यान करके तुम्हारी पूजा तथा स्तुति और तुम्हें नित्य प्रणाम करेगा, उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होगा॥ ४९॥

जो मनुष्य सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा'—इस प्रकार उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है॥ ५०॥

हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मूलप्रकृति देवी भुवनेश्वरीके भक्तोंके स्पर्शमात्रसे विनष्ट हो जायगा॥ ५१॥

हजारों पापी प्राणियोंके शवके स्पर्शसे जो पाप तुम्हें लगेगा, वह भगवतीके मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले पुण्यात्मा भक्तोंके स्नानसे नष्ट हो जायगा॥ ५२॥

हे शुभे! तुम सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियोंके साथ भारतवर्षमें निवास करोगी और वहाँ प्राणियोंको पापसे मुक्त करती रहोगी॥ ५३॥

जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तत्काल तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रजःकणका स्पर्शमात्र हो जानेसे पापी भी पवित्र हो जायगा और उन रजःकणोंकी जितनी संख्या होगी, उतने वर्षोंतक वह निश्चितरूपसे देवीलोकमें निवास करेगा॥ ५४½॥

ज्ञानेन त्वयि ये भक्त्या मन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ५५

समुत्सृजन्ति प्राणांश्च ते गच्छन्ति हरेः पदम्।
पार्षदप्रवरास्ते च भविष्यन्ति हरेश्चिरम्॥ ५६

लयं प्राकृतिकं ते च द्रक्ष्यन्ति चाप्यसंख्यकम्।
मृतस्य बहुपुण्येन तच्छवं त्वयि विन्यसेत्॥ ५७

प्रयाति स च वैकुण्ठं यावदह्नः स्थितिस्त्वयि।
कायव्यूहं ततः कृत्वा भोजयित्वा स्वकर्मकम्॥ ५८

तस्मै ददामि सारूप्यं करोमि तं च पार्षदम्।
अज्ञानी त्वज्जलस्पर्शाद्यदि प्राणान्समुत्सृजेत्॥ ५९

तस्मै ददामि सालोक्यं करोमि तं च पार्षदम्।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ६०

तस्मै ददामि सालोक्यं यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
अन्यत्र वा त्यजेत्प्राणांस्त्वन्नामस्मृतिपूर्वकम्॥ ६१

तस्मै ददामि सारूप्यमसंख्यं प्राकृतं लयम्।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानेन सह पार्षदैः॥ ६२

सद्यः प्रयाति गोलोकं मम तुल्यो भवेद् ध्रुवम्।
तीर्थेऽप्यतीर्थे मरणे विशेषो नास्ति कश्चन॥ ६३

मन्मन्त्रोपासकानां तु नित्यं नैवेद्यभोजिनाम्।
पूतं कर्तुं सशक्तो हि लीलया भुवनत्रयम्॥ ६४

रत्नेन्द्रसारयानेन गोलोकं सम्प्रयान्ति च।
मद्भक्ता बान्धवा येषां तेऽपि पश्वादयोऽपि हि॥ ६५

प्रयान्ति रत्नयानेन गोलोकं चातिदुर्लभम्।
यत्र यत्र स्मृतास्ते च ज्ञानेन ज्ञानिनः सति॥ ६६
जीवन्मुक्ताश्च ते पूता मद्भक्तेः संविधानतः।

जो मनुष्य ज्ञान तथा भक्तिसे युक्त होकर मेरे नामका स्मरण करते हुए तुम्हारे जलमें अपने प्राणोंका त्याग करेंगे, वे श्रीहरिके लोकमें जायँगे और वहाँपर दीर्घ-कालतक उनके श्रेष्ठ पार्षदोंके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे और वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखेंगे॥ ५५-५६½ ॥

महान् पुण्यसे किसी मृत प्राणीका शव तुम्हारे जलमें आ सकता है। जितने दिनोंतक उसकी स्थिति तुम्हारेमें रहती है, उतने समयतक वह वैकुण्ठमें वास करता है। तदनन्तर जब वह अनेक शरीर धारण करके अपने कर्मोंका फल भोग चुकता है, तब मैं उसे सारूप्य मुक्ति दे देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ॥ ५७-५८½ ॥

यदि कोई अज्ञानी मनुष्य भी तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राणोंका त्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान कर देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ। अथवा तुम्हारे नामका स्मरण करके कोई व्यक्ति अन्यत्र कहीं भी यदि प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह ब्रह्माकी आयुपर्यन्त मेरे लोकमें निवास करता है॥ ५९-६०½ ॥

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य तुम्हारे नामका स्मरण करके अन्यत्र किसी भी स्थानपर प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखता है। तदनन्तर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानमें बैठकर वह मेरे पार्षदोंके साथ गोलोकमें जा पहुँचता है और निश्चय ही मेरे तुल्य हो जाता है॥ ६१-६२½ ॥

प्रतिदिन मेरे मन्त्रकी उपासना तथा मेरा नैवेद्य ग्रहण करनेवाले भक्तोंके लिये तीर्थ अथवा अतीर्थमें मृत्युको प्राप्त होनेमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मेरा ऐसा भक्त तीनों लोकोंको सहजतापूर्वक पवित्र करनेमें समर्थ है। अन्तमें मेरे वे भक्त बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक जाते हैं। साथ ही, मेरे भक्त जिनके बान्धव हैं; वे तथा उनके पशु आदि भी रत्ननिर्मित विमानसे अत्यन्त दुर्लभ गोलोकमें चले जाते हैं। हे सती! जो ज्ञानीजन चाहे जहाँ भी ज्ञानपूर्वक मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरी भक्तिके प्रभावसे जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं॥ ६३—६६½ ॥

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तांश्च प्रत्युवाच भगीरथम्॥ ६७

स्तुहि गङ्गामिमां भक्त्या पूजां च कुरु साम्प्रतम्।
भगीरथस्तां तुष्टाव पूजयामास भक्तितः॥ ६८

कौथुमोक्तेन ध्यानेन स्तोत्रेणापि पुनः पुनः।
प्रणनाम च श्रीकृष्णं परमात्मानमीश्वरम्॥ ६९

भगीरथश्च गङ्गा च सोऽन्तर्धानं चकार ह।

नारद उवाच

केन ध्यानेन स्तोत्रेण केन पूजाक्रमेण च॥ ७०

पूजां चकार नृपतिर्वद वेदविदांवर।

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा नित्यक्रियां कृत्वा धृत्वा धौते च वाससी॥ ७१

सम्पूज्य देवषट्कं च संयतो भक्तिपूर्वकम्।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥ ७२

सम्पूज्य देवषट्कं च सोऽधिकारी च पूजने।
गणेशं विघ्ननाशाय आरोग्याय दिवाकरम्॥ ७३

वह्निं शौचाय विष्णुं च लक्ष्म्यर्थं पूजयेन्नरः।
शिवं ज्ञानाय ज्ञानेशं शिवां च मुक्तिसिद्धये॥ ७४

सम्पूज्यैताँल्लभेत्प्राज्ञो विपरीतमतोऽन्यथा।
दध्यावनेन ध्यानेन तद्ध्यानं शृणु नारद॥ ७५

[हे नारद!] गंगासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरिने उन भगीरथसे कहा—अब आप भक्तिपूर्वक इन गंगाकी स्तुति तथा पूजा कीजिये॥ ६७½ ॥

तदनन्तर भगीरथने कौथुमशाखामें बताये गये ध्यान तथा स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक उन गंगाकी बार-बार स्तुति तथा पूजा की। इसके बाद भगीरथ तथा गंगाने परमेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम किया तथा वे प्रभु अन्तर्धान हो गये॥ ६८-६९½ ॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! राजा भगीरथने किस ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिसे गंगाका पूजन किया, यह मुझे बतलाइये॥ ७०½ ॥

श्रीनारायण बोले—राजा भगीरथने नित्य-क्रिया तथा स्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारणकर इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके भक्तिपूर्वक गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा की। इन छः देवताओंकी सम्यक् पूजा करके वे गंगापूजनके अधिकारी हुए॥ ७१-७२½ ॥

मनुष्यको चाहिये कि विघ्न दूर करनेके लिये गणेशकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी, पवित्रताके लिये अग्निकी, लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये विष्णुकी, ज्ञानके लिये ज्ञानेश्वर शिवकी तथा मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवती शिवाकी पूजा करे। इन देवताओंकी पूजा कर लेनेके बाद ही विद्वान् पुरुष अन्य पूजामें सफलता प्राप्त कर सकता है, अन्यथा इसके विपरीत परिणाम होता है। हे नारद! जिस ध्यानके द्वारा भगीरथने गंगाका ध्यान किया था, उस ध्यानको सुनिये॥ ७३—७५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
गङ्गोपाख्यानवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

गंगाके ध्यान एवं स्तवनका वर्णन, गोलोकमें श्रीराधा-कृष्णके अंशसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च कण्वशाखोक्तं सर्वपापप्रणाशनम्।
श्वेतपङ्कजवर्णाभां गङ्गां पापप्रणाशिनीम्॥ १
कृष्णविग्रहसम्भूतां कृष्णतुल्यां परां सतीम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कण्वशाखामें कहा गया यह देवी-ध्यान सभी पापोंका नाश करनेवाला है। गंगाका वर्ण श्वेतकमलके समान स्वच्छ है, ये समस्त पापोंका नाश करनेवाली हैं, भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहसे आविर्भूत हैं, परम साध्वी

शरत्पूर्णेन्दुशतकमृष्टशोभाकरां पराम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ ३

नारायणप्रियां शान्तां तत्सौभाग्यसमन्विताम्।
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्॥ ४

सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः।
कस्तूरीपत्रकं गण्डे नानाचित्रसमन्वितम्॥ ५

पक्वबिम्बविनिन्द्याच्छचार्वोष्ठपुटमुत्तमम्।
मुक्तापंक्तिप्रभामुष्टदन्तपंक्तिमनोरमम्॥ ६

सुचारुवक्त्रनयनं सकटाक्षं मनोहरम्।
कठिनं श्रीफलाकारं स्तनयुग्मं च बिभ्रतीम्॥ ७

बृहच्छ्रोणिं सुकठिनां रम्भास्तम्भविनिन्दिताम्।
स्थलपद्मप्रभामुष्टपादपद्मयुगं वरम्॥ ८

रत्नपादुकसंयुक्तं कुङ्कुमाक्तं सयावकम्।
देवेन्द्रमौलिमन्दारमकरन्दकणारुणम्॥ ९

सुरसिद्धमुनीन्द्रैश्च दत्तार्घसंयुतं सदा।
तपस्विमौलिनिकरभ्रमरश्रेणिसंयुतम्॥ १०

मुक्तिप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वभोगदम्।
वरां वरेण्यां वरदां भक्तानुग्रहकारिणीम्॥ ११

श्रीविष्णोः पददात्रीं च भजे विष्णुपदीं सतीम्।
इत्यनेनैव ध्यानेन ध्यात्वा त्रिपथगां शुभाम्॥ १२

गंगा उन्हीं श्रीकृष्णके समान हैं, इन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा है, ये रत्नमय भूषणोंसे विभूषित हैं, ये श्रेष्ठ गंगा शरत्कालीन पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रोंकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली हैं। मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्नतासे इनका मुखमण्डल शोभा पा रहा है, इनका तारुण्य सदा स्थिर रहनेवाला है, ये भगवान् नारायणकी प्रिया हैं, शान्त स्वभाववाली हैं और उनके सौभाग्यसे समन्वित हैं, ये मालतीके पुष्पोंकी मालासे विभूषित चोटी धारण की हुई हैं, इनका ललाट चन्दनकी बिन्दियोंके साथ सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित है। इनके गण्डस्थलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ की हुई हैं, इनके परम मनोहर दोनों होठ पके हुए बिम्बाफलकी लालिमाको तिरस्कृत कर रहे हैं, इनकी मनोहर दन्तपंक्ति मोतियोंकी पंक्ति-प्रभाको भी तिरस्कृत कर रही है, इनके सुन्दर मुखपर कटाक्षपूर्ण चितवनसे युक्त मनोहर नेत्र शोभा पा रहे हैं, इन्होंने कठोर तथा श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगल धारण कर रखे हैं, ये केलेके खम्भोंको भी लज्जित कर देनेवाले विशाल तथा कठोर जघनप्रदेशसे सम्पन्न हैं, इनके मनोहर दोनों चरणारविन्द स्थलपद्मकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर रहे हैं, रत्नमयी पादुकाओंसे युक्त इन चरणोंमें कुमकुम तथा महावर शोभित हो रहे हैं, देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दार पुष्पोंके रजकणसे ये चरण लाल हो गये हैं, देवता-सिद्ध-मुनीश्वरगणोंके द्वारा प्रदत्त अर्घसे इनके चरण सदा सिक्त रहते हैं, ये चरणकमल तपस्वियोंके जटा-समूहरूपी भ्रमरश्रेणियोंसे सुशोभित हैं, ये चरण मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको मोक्ष तथा सकाम पुरुषोंको सभी प्रकारके भोग प्रदान करनेवाले हैं! श्रेष्ठ, वरेण्य, वर देनेवाली, भक्तोंपर कृपा करनेवाली, मनुष्योंको भगवान् विष्णुका पद प्रदान करनेवाली विष्णुपदी नामसे विख्यात तथा साध्वी भगवती गंगाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १—११ $\frac{1}{2}$ ॥

हे ब्रह्मन्! इसी ध्यानके द्वारा तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली पवित्र गंगाका ध्यान करके सोलह प्रकारके पूजनोपचारोंसे इनकी विधिवत् पूजा करनी

दत्त्वा सम्पूजयेद् ब्रह्मन्नुपचाराणि षोडश।
आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्॥ १३

धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्।
वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्॥ १४

मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश।
दत्त्वा भक्त्या च प्रणमेत्संस्तूय सम्पुटाञ्जलिः॥ १५

सम्पूज्यैवं प्रकारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत्।

नारद उवाच

श्रोतुमिच्छामि देवेश लक्ष्मीकान्त जगत्पते॥ १६
विष्णोर्विष्णुपदीस्तोत्रं पापघ्नं पुण्यकारकम्।

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि पापघ्नं पुण्यकारकम्॥ १७

शिवसङ्गीतसंमुग्धश्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवाम्।
राधाङ्गद्रवसंयुक्तां तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ १८

यज्जन्म सृष्टेरादौ च गोलोके रासमण्डले।
सन्निधाने शङ्करस्य तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ १९

गोपैर्गोपीभिराकीर्णे शुभे राधामहोत्सवे।
कार्तिकीपूर्णिमायां च तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २०

कोटियोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये लक्षगुणा ततः।
समावृता या गोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २१

षष्टिलक्षयोजना या ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
समावृता या वैकुण्ठे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २२

त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता ब्रह्मलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २३

त्रिंशल्लक्षयोजना या दैर्घ्ये चतुर्गुणा ततः।
आवृता शिवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २४

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये सप्तगुणा ततः।
आवृता ध्रुवलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २५

चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये अर्पणयोग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भक्तिपूर्वक गंगाको अर्पण करके दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे। इस विधिसे गंगाकी विधिवत् पूजा करके वह मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ १२—१५½ ॥

नारदजी बोले—हे देवेश! हे लक्ष्मीकान्त! हे जगत्पते! अब मैं भगवान् विष्णुकी चिरसंगिनी विष्णुपदी गंगाके पापनाशक तथा पुण्यदायक स्तोत्रका श्रवण करना चाहता हूँ॥ १६½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं उस पापनाशक तथा पुण्यप्रद स्तोत्रको कहूँगा। जो भगवान् शिवके संगीतसे मुग्ध श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत तथा राधाके अंगद्रवसे सम्पन्न हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १७-१८॥

सृष्टिके आरम्भमें गोलोकके रासमण्डलमें जिनका आविर्भाव हुआ है और जो सदा शंकरके सान्निध्यमें रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १९॥

जो कार्तिक-पूर्णिमाके दिन गोप तथा गोपियोंसे भरे राधा-महोत्सवके शुभ अवसरपर सदा विद्यमान रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २०॥

जो गोलोकमें करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी लाख गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २१॥

जो साठ लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईसे वैकुण्ठलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २२॥

जो ब्रह्मलोकमें तीन लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २३॥

जो तीन लाख योजन चौड़ी और उससे भी चार गुनी लम्बी होकर शिवलोकमें विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २४॥

जो ध्रुवलोकमें एक लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी सात गुनी लम्बाईसे विराजमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २५॥

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता चन्द्रलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २६

षष्टिसहस्रयोजना या दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
आवृता सूर्यलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २७

लक्षयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या तपोलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २८

सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
आवृता जनलोके या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ २९

दशलक्षयोजना या दैर्घ्ये पञ्चगुणा ततः।
आवृता या महर्लोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३०

सहस्रयोजनायामा दैर्घ्ये शतगुणा ततः।
आवृता या च कैलासे तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३१

शतयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये दशगुणा ततः।
मन्दाकिनी येन्द्रलोके तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३२

पाताले भोगवती च विस्तीर्णा दशयोजना।
ततो दशगुणा दैर्घ्ये तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३३

क्रोशैकमात्रविस्तीर्णा ततः क्षीणा च कुत्रचित्।
क्षितौ चालकनन्दा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३४

सत्ये या क्षीरवर्णा च त्रेतायामिन्दुसन्निभा।
द्वापरे चन्दनाभा या तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३५

जलप्रभा कलौ या च नान्यत्र पृथिवीतले।
स्वर्गे च नित्यं क्षीराभा तां गङ्गां प्रणमाम्यहम्॥ ३६

यत्तोयकणिकास्पर्शे पापिनां ज्ञानसम्भवः।
ब्रह्महत्यादिकं पापं कोटिजन्मार्जितं दहेत्॥ ३७

जो एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २६॥

जो सूर्यलोकमें साठ हजार योजन चौड़े तथा उससे भी दस गुने लम्बे प्रस्तारमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २७॥

जो तपोलोकमें एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २८॥

जो जनलोकमें एक हजार योजन चौड़ाई तथा उससे भी दस गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २९॥

जो दस लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर महर्लोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३०॥

जो चौड़ाईमें एक हजार योजन और लम्बाईमें उससे भी सौ गुनी होकर कैलासपर फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३१॥

जो एक सौ योजन चौड़ी तथा उससे भी दस गुनी लम्बी होकर 'मन्दाकिनी' नामसे इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३२॥

जो दस योजन चौड़ी तथा लम्बाईमें उससे भी दस गुनी होकर पाताललोकमें 'भोगवती' नामसे विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३३॥

जो एक कोसभर चौड़ी तथा कहीं-कहीं इससे भी कम चौड़ी होकर 'अलकनन्दा' नामसे पृथ्वीलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३४॥

जो सत्ययुगमें दुग्धवर्ण, त्रेतायुगमें चन्द्रमाकी प्रभा और द्वापरमें चन्दनकी आभावाली रहती हैं; उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कलियुगमें केवल पृथ्वीतलपर जलकी प्रभावाली तथा स्वर्गलोकमें सर्वदा दुग्धके समान आभावाली रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही पापियोंके हृदयमें उत्पन्न हुआ ज्ञान उनके करोड़ों जन्मोंके संचित ब्रह्महत्या आदि पापोंको भस्म कर देता है, [उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ] ॥ ३५—३७॥

इत्येवं कथिता ब्रह्मन् गङ्गापद्यैकविंशतिः।
स्तोत्ररूपं च परमं पापघ्नं पुण्यजीवनम्॥ ३८

नित्यं यो हि पठेद्भक्त्या सम्पूज्य च सुरेश्वरीम्।
सोऽश्वमेधफलं नित्यं लभते नात्र संशयः॥ ३९

अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्स्त्रियम्।
रोगात्प्रमुच्यते रोगी बन्धान्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥ ४०

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय गङ्गास्तोत्रमिदं शुभम्॥ ४१

शुभं भवेच्च दुःस्वप्ने गङ्गास्नानफलं लभेत्।

श्रीनारायण उवाच

स्तोत्रेणानेन गङ्गां च स्तुत्वा चैव भगीरथः॥ ४२

जगाम तां गृहीत्वा च यत्र नष्टाश्च सागराः।
वैकुण्ठं ते ययुस्तूर्णं गङ्गायाः स्पर्शवायुना॥ ४३

भगीरथेन सा नीता तेन भागीरथी स्मृता।
इत्येवं कथितं सर्वं गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्॥ ४४

पुण्यदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

कथं गङ्गा त्रिपथगा जाता भुवनपावनी॥ ४५

कुत्र वा केन विधिना तत्सर्वं वद मे प्रभो।
तत्रस्थाश्च जना ये ये ते च किं चक्रुरुत्तमम्॥ ४६
एतत्सर्वं तु विस्तीर्णं कृत्वा वक्तुमिहार्हसि।

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार इक्कीस श्लोकोंमें गंगाकी यह स्तुति कही गयी है। यह श्रेष्ठ स्तोत्र पापोंका नाश तथा पुण्योंकी उत्पत्ति करनेवाला है॥ ३८॥

जो मनुष्य सुरेश्वरी गंगाकी भक्तिपूर्वक पूजा करके प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह नित्य ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है; इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३९॥

इस स्तोत्रके प्रभावसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्र प्राप्त कर लेता है, स्त्रीहीन मनुष्यको स्त्रीकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी मनुष्य रोगरहित हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ प्राणी बन्धनमुक्त हो जाता है, कीर्तिरहित मनुष्य सुन्दर यशसे सम्पन्न हो जाता है और मूर्ख व्यक्ति विद्वान् हो जाता है; यह सर्वथा सत्य है। जो प्रातःकाल उठकर इस पवित्र गंगास्तोत्रका पाठ करता है, दुःस्वप्नमें भी उसका मंगल ही होता है और वह गंगा-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है॥ ४०-४१½॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस स्तोत्रके द्वारा गंगाकी स्तुति करके और फिर उन्हें अपने साथ लेकर वे भगीरथ उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ राजा सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गंगाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके सम्पर्कमें आते ही वे सगरपुत्र तत्काल वैकुण्ठ चले गये। वे गंगा भगीरथके द्वारा लायी गयीं, इसलिये 'भागीरथी' नामसे विख्यात हुईं॥ ४२-४३½॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सारभूत और पुण्य तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले उत्तम गंगोपाख्यानका सम्पूर्ण वर्णन कर दिया! अब आप आगे और क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४½॥

नारदजी बोले—हे प्रभो! तीन मार्गोंसे संचरण करनेवाली तथा समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली गंगा किसलिये, कहाँ और किस प्रकारसे आविर्भूत हुईं? यह सब मुझे बतलाइये। वहाँपर जो-जो लोग स्थित थे, उन्होंने क्या श्रेष्ठ कार्य किया? आप इन सभी बातोंको विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये॥ ४५-४६½॥

श्रीनारायण उवाच

कार्तिक्यां पूर्णिमायां तु राधायाः सुमहोत्सवः॥ ४७

कृष्णः सम्पूज्य तां राधामुवास रासमण्डले।
कृष्णेन पूजितां तां तु सम्पूज्य हृष्टमानसाः॥ ४८

ऊषुर्ब्रह्मादयः सर्वे ऋषयः शौनकादयः।
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णसङ्गीता च सरस्वती॥ ४९

जगौ सुन्दरतालेन वीणया च मनोहरम्।
तुष्टो ब्रह्मा ददौ तस्यै रत्नेन्द्रसारहारकम्॥ ५०

शिवो मणीन्द्रसारं तु सर्वब्रह्माण्डदुर्लभम्।
कृष्णः कौस्तुभरत्नं च सर्वरत्नात्परं वरम्॥ ५१

अमूल्यरत्ननिर्माणं हारसारं च राधिका।
नारायणश्च भगवान् ददौ मालां मनोहराम्॥ ५२

अमूल्यरत्ननिर्माणं लक्ष्मीः कनककुण्डलम्।
विष्णुमाया भगवती मूलप्रकृतिरीश्वरी॥ ५३

दुर्गा नारायणीशाना ब्रह्मभक्तिं सुदुर्लभाम्।
धर्मबुद्धिं च धर्मश्च यशश्च विपुलं भवे॥ ५४

वह्निशुद्धांशुकं वह्निर्वायुश्च मणिनूपुरान्।
एतस्मिन्नन्तरे शम्भुर्ब्रह्मणा प्रेरितो मुहुः॥ ५५

जगौ श्रीकृष्णसङ्गीतं रासोल्लाससमन्वितम्।
मूर्च्छां प्रापुः सुराः सर्वे चित्रपुत्तलिका यथा॥ ५६

कष्टेन चेतनां प्राप्य ददृशू रासमण्डले।
स्थलं सर्वं जलाकीर्णं राधाकृष्णविहीनकम्॥ ५७

अत्युच्चै रुरुदुः सर्वे गोपा गोप्यः सुरा द्विजाः।
ध्यानेन ब्रह्मा बुबुधे सर्वं तीर्थमभीप्सितम्॥ ५८

गतश्च राधया सार्धं श्रीकृष्णो द्रवतामिति।
ततो ब्रह्मादयः सर्वे तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ ५९

स्वमूर्तिं दर्शय विभो वाञ्छितं वरमेव नः।

श्रीनारायण बोले—एक समयकी बात है—कार्तिक पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण राधाकी विधिवत् पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता तथा शौनक आदि ऋषिगण श्रीकृष्णके द्वारा पूजित उन राधाकी प्रसन्नचित्त होकर विधिवत् पूजा करके वहींपर स्थित हो गये॥ ४७-४८½ ॥

इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती वीणा लेकर सुन्दर ताल-स्वरके साथ मनोहर गीत गाने लगीं॥ ४९½ ॥

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उन सरस्वतीको सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित एक हार समर्पित किया। इसी प्रकार शिवजीने उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि; भगवान् श्रीकृष्णने सभी रत्नोंसे श्रेष्ठतम कौस्तुभमणि, राधाने अमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक श्रेष्ठ हार, भगवान् नारायणने एक मनोहर माला, लक्ष्मीजीने बहुमूल्य रत्नोंसे जटित स्वर्ण-कुण्डल; विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मभक्ति; धर्मने धार्मिक बुद्धि तथा लोकमें महान् यशका वरदान; अग्निदेवताने अग्निके समान पवित्र वस्त्र तथा पवनदेवने मणिनिर्मित नूपुर भगवती सरस्वतीको प्रदान किये॥ ५०—५४½ ॥

इतनेमें ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर भगवान् शंकर रासके उल्लासको बढ़ानेकी शक्तिसे सम्पन्न श्रीकृष्णसम्बन्धी मधुर गीत गाने लगे। उसे सुनकर सभी देवता सम्मोहित हो गये और चित्र-विचित्र पुतलेकी भाँति प्रतीत होने लगे। बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार चेतना लौटनेपर उन्होंने देखा कि रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलमय हो गया है और वह राधा तथा श्रीकृष्णसे रहित है॥ ५५—५७॥

तब सभी गोप, गोपियाँ, देवता और द्विज उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। वहाँ उपस्थित ब्रह्माजीने ध्यानके द्वारा श्रीकृष्णका सारा पवित्र विचार जान लिया कि वे श्रीकृष्ण ही राधाके साथ मिलकर द्रवमय हो गये हैं। तदनन्तर ब्रह्मा आदि सभी देवता परमेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। पुनः उन्होंने कहा—हे विभो! हमलोगोंका यही अभिलषित वर है कि आप हमें अपने श्रीविग्रहका दर्शन करा दें॥ ५८-५९½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ६०

तामेव शुश्रुवुः सर्वे सुव्यक्तां मधुरान्विताम्।
सर्वात्माहमियं शक्तिर्भक्तानुग्रहविग्रहा॥ ६१

ममाप्यस्याश्च देहेन कर्तव्यं च किमावयोः।
मनवो मानवाः सर्वे मुनयश्चैव वैष्णवाः॥ ६२

मन्मन्त्रपूता मां द्रष्टुमागमिष्यन्ति मत्पदम्।
मूर्तिं द्रष्टुं च सुव्यक्तां यदीच्छथ सुरेश्वराः॥ ६३

करोतु शम्भुस्तत्रैवं मदीयं वाक्यपालनम्।
स्वयं विधातस्त्वं ब्रह्मन्नाज्ञां कुरु जगद्गुरुम्॥ ६४

कर्तुं शास्त्रविशेषं च वेदाङ्गं सुमनोहरम्।
अपूर्वमन्त्रनिकरैः सर्वाभीष्टफलप्रदैः॥ ६५

स्तोत्रैश्च निकरैर्ध्यानैर्युतं पूजाविधिक्रमैः।
मन्मन्त्रकवचस्तोत्रं कृत्वा यत्नेन गोपनम्॥ ६६

भवन्ति विमुखा येन जना मां तत्करिष्यति।
सहस्रेषु शतेष्वेको मन्मन्त्रोपासको भवेत्॥ ६७

जना मन्मन्त्रपूताश्च गमिष्यन्ति च मत्पदम्।
अन्यथा न भविष्यन्ति सर्वे गोलोकवासिनः॥ ६८

निष्फलं भविता सर्वं ब्रह्माण्डं चैव ब्रह्मणः।
जनाः पञ्चप्रकाराश्च युक्ताः स्रष्टुं भवे भवे॥ ६९

पृथिवीवासिनः केचित्केचित्स्वर्गनिवासिनः।
इदं कर्तुं महादेवः करोति देवसंसदि॥ ७०
प्रतिज्ञां सुदृढां सद्यस्ततो मूर्तिं च द्रक्ष्यति।

इसी बीच आकाशवाणी हुई। पूर्णरूपसे स्पष्ट तथा मधुरतायुक्त उस वाणीको सभी लोगोंने सुना कि 'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण हूँ तथा मेरी शक्तिस्वरूपा यह राधा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। [हम दोनोंने ही यह जलमय विग्रह धारण किया है।] मेरे तथा इन राधाके देहसे आप सबको क्या करना है? हे सुरेश्वरो! मनु, मानव, मुनि तथा वैष्णव—ये सभी लोग मेरे मन्त्रोंसे पवित्र होकर मेरा दर्शन करनेके लिये मेरे धाममें आयेंगे। इसी प्रकार यदि आपलोग भी मेरे वास्तविक श्रीविग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं, तो आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे शिवजी वहींपर रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। हे विधातः! हे ब्रह्मन्! आप स्वयं जगद्गुरु शिवको आदेश कीजिये कि वे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले बहुत-से अपूर्व मन्त्रों, स्तोत्रों, ध्यानों तथा पूजनकी विधियोंसे युक्त वेदांगस्वरूप अत्यन्त मनोहर तथा विशिष्ट शास्त्रकी रचना करें। मेरे मन्त्र, कवच और स्तोत्रसे सम्पन्न वह शिवरचित शास्त्र यत्नपूर्वक गुप्त रखा जाना चाहिये। मेरे जिन मन्त्रोंके गुप्त रखनेसे पापीलोग मुझसे विमुख रहें, वैसा ही कीजिये। किंतु हजारों-सैकड़ोंमें यदि कोई मेरे मन्त्रका उपासक पुण्यात्मा मिल जाय, तो उसके समक्ष मेरे मन्त्रका प्रकाशन कर देना चाहिये; क्योंकि सर्वथा गोपनीय रखनेसे शास्त्र-रचना ही व्यर्थ हो जायगी। इस प्रकार मेरे मन्त्रसे पवित्र होकर वे लोग मेरे धामको प्राप्त होंगे, नहीं तो शास्त्रके अभावमें कोई भी मेरे लोकमें नहीं जा पायेगा। साथ ही पुण्यात्माओंके लिये प्रकाशित किये गये पूर्वोक्त मन्त्रोपदेशके कारण यदि परम्परानुसार सभी लोग उस मन्त्रके प्रभावसे गोलोकवासी हो जायँगे, तब तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्राणियोंके अभावके कारण ब्रह्माजीका यह ब्रह्माण्ड ही निष्फल हो जायगा। अतः हे ब्रह्मन्! आप सात्त्विक आदि भेदसे पाँच प्रकारके लोगोंकी रचना प्रत्येक सृष्टिके अन्तर्गत कीजिये, यही सर्वथा समीचीन है। ऐसा होनेपर कुछ लोग पृथ्वीपर रहेंगे और कुछ लोग स्वर्गमें रहेंगे। हे ब्रह्मन्! यदि शिवजी तन्त्रशास्त्रकी रचनाहेतु देव-सभामें दृढ़ प्रतिज्ञा करेंगे, तो वे शीघ्र ही मेरे विग्रहका साक्षात् दर्शन भी प्राप्त कर लेंगे'॥ ६०—७०½ ॥

इत्येवमुक्त्वा गगने विरराम सनातनः॥ ७१

तच्छ्रुत्वा जगतां धाता तमुवाच शिवं मुदा।
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ज्ञानेशो ज्ञानिनां वरः॥ ७२

गङ्गातोयं करे कृत्वा स्वीकारं च चकार सः।
संयुक्तं विष्णुमायाया मन्त्रौघैः शास्त्रमुत्तमम्॥ ७३

वेदसारं करिष्यामि प्रतिज्ञापालनाय च।
गङ्गातोयमुपस्पृश्य मिथ्या यदि वदेज्जनः॥ ७४

स याति कालसूत्रं च यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
इत्युक्ते शङ्करे ब्रह्मन् गोलोके सुरसंसदि॥ ७५

आविर्बभूव श्रीकृष्णो राधया सहितस्ततः।
तं सुदृष्ट्वा च संहृष्टास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम्॥ ७६

परमानन्दपूर्णाश्च चक्रुश्च पुनरुत्सवम्।
कालेन शम्भुर्भगवान् मुक्तिदीपं चकार सः॥ ७७

इत्येवं कथितं सर्वं सुगोप्यं च सुदुर्लभम्।
स एव द्रवरूपा सा गङ्गा गोलोकसम्भवा॥ ७८

राधाकृष्णाङ्गसम्भूता भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
स्थाने स्थाने स्थापिता सा कृष्णेन च परात्मना।
कृष्णास्वरूपा परमा सर्वब्रह्माण्डपूजिता॥ ७९

आकाशवाणीके रूपमें इस प्रकार कहकर सनातन श्रीकृष्ण चुप हो गये। उनकी वाणी सुनकर जगत्‌की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माजीने उन भगवान् शिवसे प्रसन्नतापूर्वक वह बात कही॥ ७१½ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानेश्वर उन भगवान् शिवने हाथमें गंगाजल लेकर आज्ञाका पालन करना स्वीकार कर लिया॥ ७२½ ॥

उन्होंने कहा कि मैं प्रतिज्ञापालनके लिये विष्णुमायाके मन्त्र-समूहोंसे सम्पन्न तथा वेदोंके सारभूत उत्तम तन्त्रशास्त्रकी रचना करूँगा। यदि कोई मनुष्य हाथमें गंगाजल लेकर झूठी प्रतिज्ञा करता है तो वह 'कालसूत्र' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँपर उसे रहना पड़ता है॥ ७३-७४½ ॥

हे ब्रह्मन्! गोलोकमें देवसभामें शंकरजीके ऐसा कहते ही भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। तब उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष देखकर सभी देवता परम प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर फिरसे उत्सव मनाने लगे॥ ७५-७६½ ॥

[हे नारद!] समयानुसार उन भगवान् शिवने मुक्तिदीपस्वरूप तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया। इस प्रकार मैंने आपसे अत्यन्त गोपनीय तथा दुर्लभ प्रसंगका वर्णन कर दिया। गोलोकसे आविर्भूत तथा राधा और श्रीकृष्णके विग्रहसे उत्पन्न वे द्रवरूपिणी गंगा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने स्थान-स्थानपर उन गंगाकी स्थापना की है। श्रीकृष्णस्वरूपा ये अतिश्रेष्ठ गंगा समस्त ब्रह्माण्डोंमें पूजी जाती हैं॥ ७७—७९ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
गङ्गोपाख्यानवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

~~O~~

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

श्रीराधाजीके रोषसे भयभीत गंगाका श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शरण लेना, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गंगाका प्रकट होना

नारद उवाच

कलेः पञ्चसहस्राब्दे समतीते सुरेश्वर।
क्व गता सा महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

नारदजी बोले—हे सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर वे गंगा कहाँ चली गयीं? हे महाभाग! मुझे वह प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

भारतं भारतीशापात्समागत्येश्वरेच्छया।
जगाम तत्र वैकुण्ठे शापान्ते पुनरेव सा॥ २

भारती भारतं त्यक्त्वा तज्जगाम हरेः पदम्।
पद्मावती च शापान्ते गङ्गा सा चैव नारद॥ ३

गङ्गा सरस्वती लक्ष्मीश्चैतास्तिस्त्रः प्रिया हरेः।
तुलसीसहिता ब्रह्मंश्चतस्त्रः कीर्तिताः श्रुतौ॥ ४

नारद उवाच

केनोपायेन सा देवी विष्णुपादाब्जसम्भवा।
ब्रह्मकमण्डलुस्था च श्रुता शिवप्रिया च सा॥ ५

बभूव सा मुनिश्रेष्ठ गङ्गा नारायणप्रिया।
अहो केन प्रकारेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ६

श्रीनारायण उवाच

पुरा बभूव गोलोके सा गङ्गा द्रवरूपिणी।
राधाकृष्णाङ्गसम्भूता तदंशा तत्स्वरूपिणी॥ ७

द्रवाधिष्ठातृदेवी या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
नवयौवनसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता॥ ८

शरन्मध्याह्नपद्मास्या सस्मिता सुमनोहरा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा शरच्चन्द्रसमप्रभा॥ ९

स्निग्धप्रभातिसुस्निग्धा शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी।
सुपीनकठिनश्रोणिः सुनितम्बयुगंधरा॥ १०

पीनोन्नतं सुकठिनं स्तनयुग्मं सुवर्तुलम्।
सुचारुनेत्रयुगलं सुकटाक्षं सुवंक्रिमम्॥ ११

वंक्रिमं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।
सिन्दूरबिन्दुललितं सार्धं चन्दनबिन्दुभिः॥ १२

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सरस्वतीके शापके प्रभावसे वे गंगा भारतवर्षमें आयीं और पुनः शापकी अवधि बीत जानेपर श्रीहरिकी इच्छासे वैकुण्ठ चली गयीं। इसी प्रकार सरस्वती और पद्मावतीनदी-स्वरूपिणी वे लक्ष्मी भी शापके अन्तमें भारत छोड़कर उन विष्णुके लोकमें चली गयीं॥ २-३॥

हे ब्रह्मन्! गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी—ये तीनों ही भगवान् श्रीहरिकी भार्याएँ हैं। साथ ही तुलसीसहित भगवान् श्रीहरिकी चार स्त्रियाँ वेदोंमें कही गयी हैं॥ ४॥

नारदजी बोले—हे भगवन्! विष्णुके चरण-कमलोंसे प्रकट होकर वे गंगाजी किस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलुमें स्थित हुईं और शिवकी प्रियाके रूपमें कैसे विख्यात हुईं? हे मुनिश्रेष्ठ! वे गंगा भगवान् नारायणकी भी प्रेयसी किस प्रकार हुईं, वह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५-६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें द्रवरूपिणी वे गंगा गोलोकमें विराजमान थीं। राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत वे गंगा उन्हींके अंश तथा स्वरूपवाली हैं॥ ७॥

जलमयी गंगाकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं, वे अनुपम रूप धारणकर पृथ्वीलोकमें आयीं। उनका श्रीविग्रह नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा सभी प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित था॥ ८॥

शरद् ऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलके समान प्रतीत होनेवाला उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था। उनके शरीरका वर्ण तप्त स्वर्णकी आभाके समान तथा कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाके समान थी॥ ९॥

वे स्निग्ध प्रभावाली देवी अत्यन्त दयालु मुद्रामें थीं। उनका स्वरूप शुद्ध तथा सात्त्विक था। उनके जघन स्थूल तथा कठोर थे। उनके नितम्बयुगल अत्यन्त सुन्दर थे॥ १०॥

उनका वक्षःस्थल उन्नत, स्थूल, कठोर तथा गोल था। कटाक्षयुक्त तथा वक्राकार उनकी दोनों आँखें बड़ी सुन्दर थीं। मालतीके पुष्प-हारसे सुसज्जित उनके केशपाश घुँघराले थे। उनका ललाट चन्दनके

कस्तूरीपत्रिकायुक्तं गण्डयुग्मं मनोरमम्।
बन्धूककुसुमाकारमधरोष्ठं च सुन्दरम्॥ १३

पक्वदाडिमबीजाभदन्तपंक्तिसमुज्ज्वलम् ।
वाससी वह्निशुद्धे च नीवीयुक्ते च बिभ्रती॥ १४

सा सकामा कृष्णपार्श्वे समुवास सुलज्जिता।
वाससा मुखमाच्छाद्य लोचनाभ्यां विभोर्मुखम्॥ १५

निमेषरहिताभ्यां च पिबन्ती सततं मुदा।
प्रफुल्लवदना हर्षान्नवसङ्गमलालसा॥ १६

मूर्च्छिता प्रभुरूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र विद्यमाना च राधिका॥ १७

गोपीत्रिंशत्कोटियुक्ता चन्द्रकोटिसमप्रभा।
कोपेनारक्तपद्मास्या रक्तपङ्कजलोचना॥ १८

पीतचम्पकवर्णाभा गजेन्द्रमन्दगामिनी।
अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषिता ॥ १९

अमूल्यरत्नखचितममूल्यं वह्निशौचकम्।
पीतवस्त्रस्य युगलं नीवीयुक्तं च बिभ्रती॥ २०

स्थलपद्मप्रभामुष्टं कोमलं च सुरञ्जितम्।
कृष्णदत्तार्घ्यसंयुक्तं विन्यसन्ती पदाम्बुजम्॥ २१

रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानादवरुह्य सा।
सेव्यमाना च ऋषिभिः श्वेतचामरवायुना॥ २२

कस्तूरीबिन्दुभिर्युक्तं चन्दनेन समन्वितम्।
दीप्तदीपप्रभाकारं सिन्दूरं बिन्दुशोभितम्॥ २३

दधती भालमध्ये च सीमन्ताधःस्थलोज्ज्वले।
पारिजातप्रसूनानां मालायुक्तं सुवंक्रिमम्॥ २४

तिलकके साथ-साथ सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित हो रहा था। उनके दोनों गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे मनोहर पत्र-रचनाएँ की हुई थीं। उनका अधरोष्ठ बन्धूकके पुष्पके समान अत्यन्त सुन्दर था। उनके दाँतोंकी अति उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। वे अग्निके समान पवित्र तथा नीवीयुक्त दो वस्त्र धारण किये हुए थीं। कामभाववाली वे गंगाजी वस्त्रसे मुँह ढँककर लज्जित होती हुई श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं और प्रसन्न होकर अपलक नेत्रोंसे प्रभुके मुख-सौन्दर्यका निरन्तर पान करने लगीं। हर्षके कारण नवीन संगमकी लालसासे युक्त उन गंगाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा और उनके शरीरका रोम-रोम पुलकित हो गया। प्रभु श्रीकृष्णके रूपसे वे चेतनारहित-सी हो गयी थीं॥ ११—१६½ ॥

इसी बीच राधिका वहाँ आकर विराजमान हो गयीं। उनके साथ तीस करोड़ गोपियाँ भी थीं। उनके शरीरकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान थी; कोपके कारण उनके मुख तथा नेत्र लाल कमलके समान प्रतीत हो रहे थे; उनके श्रीविग्रहका वर्ण पीले चम्पक-पुष्पके समान आभावाला था; वे मत्त गजराजकी भाँति मन्द गतिवाली थीं; बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं; वे अपने शरीरपर अमूल्य रत्नोंसे जटित तथा अग्निके समान पवित्र दो नीवीयुक्त बहुमूल्य पीले वस्त्र धारण किये हुए थीं, वे स्थल-कमलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले, कोमल, सुरंजित तथा भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रदत्त अर्घ्यसे सुशोभित चरण-कमलोंको धीरे-धीरे रख रही थीं; वे देवी सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानसे उतरकर वहाँ उपस्थित हुई थीं; स्वच्छ चँवरकी वायुसे ऋषियोंके द्वारा उनकी सेवा की जा रही थी; कस्तूरीके बिन्दुओंसे युक्त, चन्दन-मिश्रित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला तथा बिन्दुरूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्य भागमें सुशोभित हो रहा था, उनके सीमन्त (माँग)-का निचला भाग परम स्वच्छ था, पारिजातके पुष्पोंकी मालासे सुशोभित अपनी

सुचारुकबरीभारं कम्पयन्ती सुकम्पिता।
सुचारुरागसंयुक्तमोष्ठं कम्पयती रुषा॥ २५

गत्वोवास कृष्णपार्श्वे रत्नसिंहासने शुभे।
सखीनां च समूहैश्च परिपूर्णा विभोः प्रिया॥ २६

तां दृष्ट्वा च समुत्तस्थौ कृष्णः सादरपूर्वकम्।
सम्भाष्य मधुरालापैः सस्मितश्च ससंभ्रमः॥ २७

प्रणेमुरतिसन्त्रस्ता गोपा नम्रात्मकन्धराः।
तुष्टुवुस्ते च भक्त्या च तुष्टाव परमेश्वरः॥ २८

उत्थाय गङ्गा सहसा स्तुतिं बहु चकार सा।
कुशलं परिपप्रच्छ भीतातिविनयेन च॥ २९

नम्रभागस्थिता त्रस्ता शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
ध्यानेन शरणायत्ता श्रीकृष्णचरणाम्बुजे॥ ३०

तां हृत्पद्मस्थितां कृष्णो भीतायै चाभयं ददौ।
बभूव स्थिरचित्ता सा सर्वेश्वरवरेण च॥ ३१

ऊर्ध्वसिंहासनस्थां च राधां गङ्गा ददर्श सा।
सुस्निग्धां सुखदृश्यां च ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा॥ ३२

असंख्यब्रह्मणः कर्त्रीमादिसृष्टेः सनातनीम्।
सदा द्वादशवर्षीयां कन्याभिनवयौवनाम्॥ ३३

विश्ववृन्दे निरुपमां रूपेण च गुणेन च।
शान्तां कान्तामनन्तां तामाद्यन्तरहितां सतीम्॥ ३४

शुभां सुभद्रां सुभगां स्वामिसौभाग्यसंयुताम्।
सौन्दर्यसुन्दरीं श्रेष्ठां सर्वासु सुन्दरीषु च॥ ३५

घुँघराली तथा सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं, ऐसी वे राधा रोषके कारण अपने सुन्दर तथा रागयुक्त ओष्ठ कँपाती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर रत्नमय सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं। प्रभु श्रीकृष्णकी प्रिया उन राधाके साथ सखियोंका महान् समुदाय विद्यमान था॥ १७—२६॥

उन्हें देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण आदरपूर्वक उठ खड़े हुए और आश्चर्यपूर्ण मुद्रामें मुसकराते हुए उनसे मधुर बातें करने लगे॥ २७॥

उस समय अत्यन्त भयभीत गोपोंने सिर झुकाकर भगवती राधिकाको प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। साथ ही परमेश्वर श्रीकृष्णने भी राधिकाकी स्तुति की॥ २८॥

तदनन्तर गंगाने भी तुरन्त उठकर राधिकाकी बहुत स्तुति की। भयभीत उन गंगाने अति विनम्रतापूर्वक राधासे कुशल पूछा॥ २९॥

वे डरके मारे झुककर खड़ी थीं। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। उन्होंने ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी शरण ली॥ ३०॥

अपने हृदयकमलपर स्थित उन गंगाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन भयभीत देवीको अभय प्रदान किया। सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गंगाका चित्त शान्त हो गया॥ ३१॥

तदनन्तर गंगाने राधाको ऊँचे आसनपर विराजमान देखा। उनका रूप परम मनोहर था, उन्हें देखनेमें सुख प्राप्त हो रहा था और वे ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रही थीं॥ ३२॥

वे सनातन देवी सृष्टिके आरम्भमें असंख्य ब्रह्माओंकी रचना करनेवाली हैं और नवीन यौवनसे युक्त कन्याके समान सदा बारह वर्षकी अवस्थामें रहती हैं॥ ३३॥

सम्पूर्ण विश्वमें रूप तथा गुणमें उनके समान कोई नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, आदि-अन्तसे रहित, साध्वी, पवित्र, कल्याणमयी, सुन्दर भाग्यवाली तथा अपने स्वामीके सौभाग्यसे सम्पन्न रहती हैं। वे सम्पूर्ण सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ तथा सौन्दर्यसे सुशोभित हैं॥ ३४-३५॥

कृष्णार्धाङ्गां कृष्णसमां तेजसा वयसा त्विषा।
पूजितां च महालक्ष्मीं लक्ष्म्या लक्ष्मीश्वरेण च॥ ३६

प्रच्छाद्यमानां प्रभया सभामीशस्य सुप्रभाम्।
सखीदत्तं च ताम्बूलं भुक्तवन्तीं च दुर्लभम्॥ ३७

अजन्यां सर्वजननीं धन्यां मान्यां च मानिनीम्।
कृष्णप्राणाधिदेवीं च प्राणप्रियतमां रमाम्॥ ३८

दृष्ट्वा रासेश्वरीं तृप्तिं न जगाम सुरेश्वरी।
निमेषरहिताभ्यां च लोचनाभ्यां पपौ च ताम्॥ ३९

एतस्मिन्नन्तरे राधा जगदीशमुवाच सा।
वाचा मधुरया शान्ता विनीता सस्मिता मुने॥ ४०

राधोवाच

केयं प्राणेश कल्याणी सस्मिता त्वन्मुखाम्बुजम्।
पश्यन्ती सस्मितं पार्श्वे सकामा वक्रलोचना॥ ४१

मूर्च्छां प्राप्नोति रूपेण पुलकाङ्कितविग्रहा।
वस्त्रेण मुखमाच्छाद्य निरीक्षन्ती पुनः पुनः॥ ४२

त्वं चापि तां संनिरीक्ष्य सकामः सस्मितः सदा।
मयि जीवति गोलोके भूता दुर्वृत्तिरीदृशी॥ ४३

त्वमेव चैव दुर्वृत्तं वारं वारं करोषि च।
क्षमां करोमि प्रेम्णा च स्त्रीजातिः स्निग्धमानसा॥ ४४

संगृह्येमां प्रियामिष्टां गोलोकाद् गच्छ लम्पट।
अन्यथा न हि ते भद्रं भविष्यति व्रजेश्वर॥ ४५

दृष्टस्त्वं विरजायुक्तो मया चन्दनकानने।
क्षमा कृता मया पूर्वं सखीनां वचनादहो॥ ४६

वे श्रीकृष्णकी अर्धांगिनी हैं। तेज, आयु और कान्तिमें वे श्रीकृष्णके ही सदृश हैं। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके द्वारा लक्ष्मीसहित वे महालक्ष्मीस्वरूपा राधिका पूजित हैं॥ ३६॥

वे राधिका परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रभामयी सभाको अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित किये रहती हैं। वे सखियोंके द्वारा प्रदत्त दुर्लभ ताम्बूलका सदा सेवन करती रहती हैं॥ ३७॥

वे स्वयं अजन्मा होती हुई भी सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, उनके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी, धन्य, मान्य तथा मानिनी और मनोरम हैं॥ ३८॥

[हे नारद!] उस समय उन रासेश्वरी राधिकाको देखकर सुरेश्वरी गंगा तृप्त नहीं हुईं और वे अपलक नेत्रोंसे राधाकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगीं॥ ३९॥

हे मुने! इसी बीच शान्त तथा विनम्र स्वभाववाली राधा मुसकराकर मधुर वाणीमें जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहने लगीं॥ ४०॥

राधा बोलीं—हे प्राणेश! पासमें बैठकर आपके मुसकानयुक्त मुखकमलको मुसकराकर तिरछी दृष्टिसे देखती हुई यह कामनायुक्त सुन्दरी कौन है? अपना मुख वस्त्रसे ढँककर आपके रूपको बार-बार देखती हुई पुलकित शरीरवाली यह सुन्दरी चेतनारहित हो जाया करती है॥ ४१-४२॥

आप भी कामनायुक्त होकर उसकी ओर देखकर हँस रहे हैं। मेरे जीवित रहते गोलोकमें ऐसी दुर्वृत्तिवाली स्त्री कैसे आयी? और आप भी बार-बार दुश्चेष्टा करते जा रहे हैं। कोमल स्वभाववाली स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं आपको क्षमा कर दे रही हूँ॥ ४३-४४॥

हे कामी व्रजेश्वर! अपनी इस अभीष्ट प्रेयसीको लेकर आप अभी गोलोकसे चले जाइये, अन्यथा आपका कल्याण नहीं है॥ ४५॥

एक बार पूर्वमें मैंने आपको चन्दनवनमें विरजाके साथ देखा था। सखियोंका वचन मानकर मैंने उस समय क्षमा कर दिया था॥ ४६॥

त्वया मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं पुरा।
देहं तत्याज विरजा नदीरूपा बभूव सा॥ ४७

कोटियोजनविस्तीर्णा ततो दैर्घ्ये चतुर्गुणा।
अद्यापि विद्यमाना सा तव सत्कीर्तिरूपिणी॥ ४८

गृहं मयि गतायां च पुनर्गत्वा तदन्तिके।
उच्चै रुरोद विरजे विरजे चेति संस्मरन्॥ ४९

तदा तोयात्समुत्थाय सा योगात्सिद्धयोगिनी।
सालङ्कारा मूर्तिमती ददौ तुभ्यं च दर्शनम्॥ ५०

ततस्तां च समाक्षिप्य वीर्याधानं कृतं त्वया।
ततो बभूवुस्तस्यां च समुद्राः सप्त एव च॥ ५१

दृष्टस्त्वं शोभया गोप्या युक्तश्चम्पककानने।
सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया॥ ५२

शोभा देहं परित्यज्य जगाम चन्द्रमण्डले।
ततस्तस्याः शरीरं च स्निग्धं तेजो बभूव ह॥ ५३

संविभज्य त्वया दत्तं हृदयेन विदूयता।
रत्नाय किञ्चित्स्वर्णाय किञ्चिन्मणिवराय च॥ ५४

किञ्चित्स्त्रीणां मुखाब्जेभ्यः चिञ्चिद्राज्ञे च किञ्चन।
किञ्चित्किसलयेभ्यश्च पुष्पेभ्यश्चापि किञ्चन॥ ५५

किञ्चित्फलेभ्यः पक्वेभ्यः सस्येभ्यश्चापि किञ्चन।
नृपदेवगृहेभ्यश्च संस्कृतेभ्यश्च किञ्चन॥ ५६

किञ्चिन्नूतनपत्रेभ्यो दुग्धेभ्यश्चापि किञ्चन।
दृष्टस्त्वं प्रभया गोप्या युक्तो वृन्दावने वने॥ ५७

सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।
प्रभा देहं परित्यज्य जगाम सूर्यमण्डले॥ ५८

ततस्तस्याः शरीरं च तीव्रं तेजो बभूव ह।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा॥ ५९

विसृष्टं चक्षुषोः कृष्ण लज्जया मद्भयेन च।
हुताशनाय किञ्चिच्च यक्षेभ्यश्चापि किञ्चन॥ ६०

मेरी ध्वनि सुनते ही आप उस समय छिप गये थे। विरजाने वह शरीर त्याग दिया और उसने नदीका रूप धारण कर लिया था॥ ४७॥

वे देवी आज भी एक करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईवाली आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी नदीके रूपमें विद्यमान हैं॥ ४८॥

मेरे घर चले जानेपर आप पुनः उसके पास जाकर विरजे! विरजे! ऐसा कहते हुए जोर-जोरसे रोने लगे थे॥ ४९॥

तब उस सिद्धयोगिनीने योगबलके प्रभावसे जलसे बाहर निकलकर अलंकारयुक्त मूर्तिमती सुन्दरीके रूपमें आपको दर्शन दिया था॥ ५०॥

उस समय आपने उसमें अपने तेजका आधान किया था और समयानुसार उससे सात समुद्र उत्पन्न हुए॥ ५१॥

इसी प्रकार मैंने आपको शोभा नामक गोपीके साथ चम्पक वनमें देखा था। उस समय भी मेरी ध्वनि सुनते ही आप छिप गये थे और वह शोभा शरीर छोड़कर चन्द्रमण्डलमें चली गयी थी। तब उसका शरीर परम सुन्दर तथा तेजोमय हो गया था॥ ५२-५३॥

तत्पश्चात् आपने दुःखित हृदयसे उस तेजको विभक्त करके कुछ तेज रत्नको, कुछ स्वर्णको, कुछ श्रेष्ठ मणियोंको, कुछ स्त्रियोंके मुखकमलको, कुछ राजाको, कुछ नव पल्लवोंको, कुछ पुष्पोंको, कुछ पके फलोंको, कुछ फसलोंको, कुछ राजाओंके सुसज्जित महलोंको, कुछ नये पत्तोंको और कुछ तेज दुग्धको प्रदान कर दिया॥ ५४—५६½॥

इसी प्रकार मैंने वृन्दावनमें आपको प्रभा नामक गोपीके साथ देखा था। उस समय आप मेरा शब्द सुनते ही शीघ्रतापूर्वक छिप गये थे और प्रभा अपनी देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें चली गयी थी॥ ५७-५८॥

उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय हो गया था और आपने रोते-रोते उस तेजको प्रेमपूर्वक विभाजित करके जगह-जगह स्थान प्रदान कर दिया था। हे कृष्ण! लज्जा तथा मेरे भयके कारण आपकी आँखोंसे निकले हुए उस तेजको आपने कुछ अग्निको

किञ्चित्पुरुषसिंहेभ्यो देवेभ्यश्चापि किञ्चन।
किञ्चिद्विष्णुजनेभ्यश्च नागेभ्योऽपि च किञ्चन॥ ६१

ब्राह्मणेभ्यो मुनिभ्यश्च तपस्विभ्यश्च किञ्चन।
स्त्रीभ्यः सौभाग्ययुक्ताभ्यो यशस्विभ्यश्च किञ्चन॥ ६२

तत्तु दत्त्वा च सर्वेभ्यः पूर्वं प्ररुदितं त्वया।
शान्तिगोप्या युतस्त्वं च दृष्टोऽसि रासमण्डले॥ ६३

वसन्ते पुष्पशय्यायां माल्यवांश्चन्दनोक्षितः।
रत्नप्रदीपैर्युक्ते च रत्ननिर्माणमन्दिरे॥ ६४

रत्नभूषणभूषाढ्यो रत्नभूषितया सह।
तया दत्तं च ताम्बूलं भुक्तवांश्च पुरा विभो॥ ६५

सद्यो मच्छब्दमात्रेण तिरोधानं कृतं त्वया।
शान्तिर्देहं परित्यज्य भिया लीना त्वयि प्रभो॥ ६६

ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह।
संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुरा॥ ६७

विश्वे तु विपिने किञ्चिद्ब्रह्मणे च मयि प्रभो।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै किञ्चिल्लक्ष्म्यै पुरा विभो॥ ६८

त्वन्मन्त्रोपासकेभ्यश्च शाक्तेभ्यश्चापि किञ्चन।
तपस्विभ्यश्च धर्माय धर्मिष्ठेभ्यश्च किञ्चन॥ ६९

मया पूर्वं च त्वं दृष्टो गोप्या च क्षमया सह।
सुवेषयुक्तो मालावान् गन्धचन्दनचर्चितः॥ ७०

रत्नभूषितया गन्धचन्दनोक्षितया सह।
सुखेन मूर्च्छितस्तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ७१

श्लिष्टो निद्रितया सद्यः सुखेन नवसङ्गमात्।
मया प्रबोधिता सा च भवांश्च स्मरणं कुरु॥ ७२

कुछ यक्षोंको, कुछ राजाओंको, कुछ देवताओंको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ नागोंको, कुछ ब्राह्मण-मुनि तथा तपस्वियोंको और कुछ तेज सौभाग्यवती स्त्रियों तथा यशस्वी पुरुषोंको प्रदान कर दिया। इस प्रकार इन सबको वह तेज प्रदान करके पूर्व कालमें आपने बहुत रुदन किया था॥ ५९—६२$\frac{१}{२}$॥

इसी तरह एक बार मैंने आपको शान्ति नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें देखा था। वसन्त ऋतुमें रत्नमय दीपकोंसे युक्त रत्ननिर्मित महलमें आप माला धारण किये तथा शरीरमें चन्दन लगाकर और विभिन्न प्रकारके आभूषण पहनकर अनेकविध रत्नाभूषणोंसे अलंकृत उसके साथ पुष्पकी शय्यापर विराजमान थे। हे विभो! पूर्वकालमें उसने आपको ताम्बूल दिया और आपने उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया था॥ ६३—६५॥

हे प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनकर आप तुरन्त छिप गये थे और वह शान्ति भयसे अपना देह त्यागकर आपमें समाविष्ट हो गयी थी॥ ६६॥

तब उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर रोते हुए आपने उसे विभाजित करके प्रेमपूर्वक विश्वमें बाँट दिया था। हे प्रभो! उसका कुछ अंश निकुंजमें, कुछ भाग ब्राह्मणोंमें और कुछ भाग मुझ राधामें समाहित हो गया। हे विभो! फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्धस्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ भाग अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ भाग शक्तिकी आराधना करनेवालोंको, कुछ भाग तपस्वियोंको, कुछ भाग धर्मको और कुछ भाग धर्मात्मा पुरुषोंको दे दिया॥ ६७—६९॥

इसी तरह पूर्वकालमें मैंने आपको क्षमा नामक गोपीके साथ देखा था। आप सुन्दर वेष धारण करके, माला पहनकर तथा शरीरमें गन्ध और चन्दनका लेप करके रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत और गन्ध-चन्दनचर्चित उस क्षमाके साथ पुष्प तथा चन्दनसे सुरभित शय्यापर सुखपूर्वक अचेतावस्थामें विराजमान थे। उस निद्राग्रस्त सुन्दरीके साथ आप सुखपूर्वक क्रीडामें संसक्त थे। उसी समय पहुँचकर मैंने उस क्षमाको तथा आपको जगाया था, इस बातको आप स्मरण कीजिये॥ ७०—७२॥

गृहीतं पीतवस्त्रं च मुरली च मनोहरा।
वनमालाकौस्तुभश्चाप्यमूल्यं रत्नकुण्डलम्॥ ७३

पश्चात्प्रदत्तं प्रेम्णा च सखीनां वचनादहो।
लज्जया कृष्णवर्णोऽभूद्भवान् पापेन यः प्रभो॥ ७४

क्षमा देहं परित्यज्य लज्जया पृथिवीं गता।
ततस्तस्याः शरीरं च गुणश्रेष्ठं बभूव ह॥ ७५

संविभज्य त्वया दत्तं प्रेम्णा प्ररुदता पुनः।
किञ्चिद्दत्तं विष्णवे च वैष्णवेभ्यश्च किञ्चन॥ ७६

धार्मिकेभ्यश्च धर्माय दुर्बलेभ्यश्च किञ्चन।
तपस्विभ्योऽपि देवेभ्यः पण्डितेभ्यश्च किञ्चन॥ ७७

एतत्ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।
त्वद्गुणं चैव बहुशो न जानामि परं प्रभो॥ ७८

इत्येवमुक्त्वा सा राधा रक्तपङ्कजलोचना।
गङ्गां वक्तुं समारेभे नम्रास्यां लज्जितां सतीम्॥ ७९

गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी।
तिरोभूय सभामध्ये स्वजलं प्रविवेश सा॥ ८०

राधा योगेन विज्ञाय सर्वत्रावस्थितां च ताम्।
पानं कर्तुं समारेभे गण्डूषात्सिद्धयोगिनी॥ ८१

गङ्गा रहस्यं विज्ञाय योगेन सिद्धयोगिनी।
श्रीकृष्णचरणाम्भोजे विवेश शरणं ययौ॥ ८२

गोलोके सा च वैकुण्ठे ब्रह्मलोकादिके तथा।
ददर्श राधा सर्वत्र नैव गङ्गां ददर्श सा॥ ८३

सर्वत्र जलशून्यं च शुष्कपङ्कं च गोलकम्।
जलजन्तुसमूहैश्च मृतदेहैः समन्वितम्॥ ८४

उस समय मैंने आपका पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ और बहुमूल्य रत्नमय कुण्डल ले लिया था। किंतु बादमें सखियोंके प्रेमपूर्वक कहनेपर उसे आपको लौटा दिया था। हे प्रभो! उस समय आप लज्जा तथा पापसे कृष्णवर्णके हो गये थे॥ ७३-७४॥

तत्पश्चात् लज्जाके कारण क्षमा अपना शरीर त्यागकर पृथ्वीमें समा गयी और उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तब रोते हुए आपने उस क्षमाका विभाजन करके उसे प्रेमपूर्वक अनेक लोगोंको दे दिया। उसका कुछ अंश विष्णुको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ धार्मिक पुरुषोंको, कुछ धर्मको, कुछ दुर्बलोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ देवताओंको और कुछ भाग पण्डितोंको आपने दे दिया था॥ ७५—७७॥

हे प्रभो! यह सब मैंने आपको बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? आपके और भी बहुत-से बड़े-बड़े गुण हैं, किंतु मैं सब नहीं जानती॥ ७८॥

श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर लालकमलके समान नेत्रोंवाली उन राधाने नीचेकी ओर मुख की हुई लज्जित साध्वी गंगासे कहना आरम्भ किया, तभी सिद्धयोगिनी वे गंगा योगके द्वारा सभी रहस्य समझकर सभाके मध्यमें अन्तर्धान होकर अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं॥ ७९-८०॥

तब सिद्धयोगिनी राधा योगबलके प्रभावसे इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गंगाको अंजलिसे उठाकर मुँहसे पान करने लगीं॥ ८१॥

तत्पश्चात् सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे इस रहस्यको जान लेनेके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रवेश कर गयीं और उनके शरणागत हो गयीं॥ ८२॥

तब राधाने गोलोक, वैकुण्ठ तथा ब्रह्मलोक आदि सभी स्थानोंमें गंगाको खोजा, किंतु उन्हें कहीं भी गंगा दिखायी नहीं दीं॥ ८३॥

उस समय सर्वत्र जलका अभाव हो गया तथा सूखा कीचड़ और गोला दिखायी दे रहा था, जो जलचर जन्तुओंके मृत शरीरोंसे युक्त था॥ ८४॥

ब्रह्मविष्णुशिवानन्तधर्मेन्द्रेन्दुदिवाकराः ।
मनवो मुनयः सर्वे देवसिद्धतपस्विनः॥ ८५

गोलोकं च समाजग्मुः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः।
सर्वे प्रणेमुर्गोविन्दं सर्वेशं प्रकृतेः परम्॥ ८६

वरं वरेण्यं वरदं वरिष्ठं वरकारणम्।
गोपिकागोपवृन्दानां सर्वेषां प्रवरं प्रभुम्॥ ८७

निरीहं च निराकारं निर्लिप्तं च निराश्रयम्।
निर्गुणं च निरुत्साहं निर्विकारं निरञ्जनम्॥ ८८

स्वेच्छामयं च साकारं भक्तानुग्रहकारकम्।
सत्त्वस्वरूपं सत्येशं साक्षिरूपं सनातनम्॥ ८९

परं परेशं परमं परमात्मानमीश्वरम्।
प्रणम्य तुष्टुवुः सर्वे भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥ ९०

सगद्गदाः साश्रुनेत्राः पुलकाङ्कितविग्रहाः।
सर्वे संस्तूय सर्वेशं भगवन्तं परात्परम्॥ ९१

ज्योतिर्मयं परं ब्रह्म सर्वकारणकारणम्।
अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासनस्थितम् ॥ ९२

सेव्यमानं च गोपालैः श्वेतचामरवायुना।
गोपालिकानृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥ ९३

प्राणाधिकप्रियतमं राधावक्षःस्थलस्थितम्।
तया प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥ ९४

परिपूर्णतमं रासे ददृशुश्च सुरेश्वरम्।
मुनयो मनवः सिद्धास्तापसाश्च तपस्विनः॥ ९५

प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुः परमविस्मयम्।
परस्परं समालोक्य प्रोचुस्ते च चतुर्मुखम्॥ ९६

निवेदितं जगन्नाथं स्वाभिप्रायमभीप्सितम्।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुं कृत्वा स्वदक्षिणे॥ ९७

वामतो वामदेवं च जगाम कृष्णसन्निधिम्।
परमानन्दयुक्तं च परमानन्दरूपिणीम्॥ ९८

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिवृन्द, देवता, सिद्ध और तपस्वी—ये सभी गोलोक चले गये। उस समय उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। वहाँ पहुँचकर उन सबने प्रकृतिसे भी परे, सर्वेश्वर, श्रेष्ठ, पूज्य, वरदायक, वरिष्ठ, वरके कारणस्वरूप, सभी गोपों तथा गोपिकाओंके समुदायमें सर्वश्रेष्ठ, कामनारहित, निराकार, आसक्तिहीन, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार, निर्दोष, अपनी इच्छासे साकार रूपमें प्रकट होनेवाले, भक्तोंपर कृपा करनेवाले, सत्त्वस्वरूप, सत्येश, सबके साक्षीस्वरूप तथा सनातन प्रभु श्रीकृष्णको प्रणाम किया। उन परम परमेश्वर परमात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करके वे सब भक्तिके कारण अपने मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये थे और उनके शरीरके रोम-रोम पुलकित हो गये थे॥ ८५—९०½ ॥

इस प्रकार उन सबने सर्वेश्वर, परात्पर, ज्योतिर्मय विग्रहवाले, परब्रह्म तथा सभी कारणोंके भी कारण, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, विचित्र सिंहासनपर विराजमान, गोपालोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवा किये जाते हुए, प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए, गोपिकाओंका नृत्यसंगीत देखनेमें संलग्न, राधाके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, राधाके वक्षःस्थलमें स्थित तथा उन राधाके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका सेवन करते हुए उन परिपूर्णतम सुरेश्वर भगवान्‌की स्तुति करके उन्हें रासमण्डलमें विराजमान देखा। सभी मुनि, स्वायम्भुव आदि मनु, सिद्ध और तपस्वी महात्मा प्रसन्नचित्त हो गये, उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। एक-दूसरेको देखकर वे सभी लोग जगत्प्रभु चतुर्मुख ब्रह्मासे अपना वांछित अभिप्राय कहने लगे॥ ९१—९६½ ॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी भगवान् विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके परम आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्ण तथा परमानन्दस्वरूपिणी राधाके पास पहुँचे॥ ९७-९८॥

सर्वं कृष्णमयं धाता ददर्श रासमण्डले।
सर्वं समानवेषं च समानासनसंस्थितम्॥ ९९

द्विभुजं मुरलीहस्तं वनमालाविभूषितम्।
मयूरपिच्छचूडं च कौस्तुभेन विराजितम्॥ १००

अतीव कमनीयं च सुन्दरं शान्तविग्रहम्।
गुणभूषणरूपेण तेजसा वयसा त्विषा॥ १०१

परिपूर्णतमं सर्वं सर्वैश्वर्यसमन्वितम्।
किं सेव्यं सेवकं किं वा दृष्ट्वा निर्वक्तुमक्षमः॥ १०२

क्षणं तेजःस्वरूपं च रूपं तत्र स्थितं क्षणम्।
निराकारं च साकारं ददर्श द्विविधं क्षणम्॥ १०३

एकमेव क्षणं कृष्णं राधया रहितं परम्।
प्रत्येकासनसंस्थं च तया सार्धं च तत्क्षणम्॥ १०४

राधारूपधरं कृष्णं कृष्णरूपं कलत्रकम्।
किं स्त्रीरूपं च पुरुषं विधाता ध्यातुमक्षमः॥ १०५

हृत्पद्मस्थं च श्रीकृष्णं ध्यात्वा ध्यानेन चक्षुषा।
चकार स्तवनं भक्त्या परिहारमनेकधा॥ १०६

ततः स्वचक्षुरुन्मील्य पुनश्च तदनुज्ञया।
ददर्श कृष्णमेकं च राधावक्षःस्थलस्थितम्॥ १०७

स्वपार्षदैः परिवृतं गोपीमण्डलमण्डितम्।
पुनः प्रणेमुस्तं दृष्ट्वा तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ १०८

उस समय ब्रह्माजीने रासमण्डलमें सब कुछ श्रीकृष्णमय देखा। सबकी वेष-भूषा एक समान थी, सभी लोग समान आसनपर विराजमान थे, सभी लोगों ने दो भुजाओंवाले श्रीकृष्णके रूपमें हाथमें मुरली ले रखी थी, सभी लोग वनमालासे सुशोभित थे, सबके मुकुटमें मोरके पंख लगे थे, सभी लोग कौस्तुभमणिसे शोभायमान हो रहे थे, गुण-भूषण-रूप-तेज-आयु और कान्तिसे सम्पन्न उन सबका विग्रह अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा शान्त था, सब-के-सब परिपूर्णतम और सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न थे, उन्हें देखकर कौन सेव्य है तथा कौन सेवक है, यह बता सकनेमें वे ब्रह्मा असमर्थ थे, भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभरमें तेजःस्वरूप हो जाते थे और क्षणभरमें ही विग्रहवान् होकर आसनपर विराजित हो जाते थे, इस प्रकार ब्रह्माजीने एक ही क्षणमें उनके साकार तथा निराकार दोनों प्रकारके रूपों को देखा॥ ९९—१०३॥

तदनन्तर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि वे परमेश्वर श्रीकृष्ण राधासे रहित हैं और फिर उसी क्षण वे राधिकाके साथ प्रत्येक आसनपर विराजमान दिखायी देने लगे। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको राधाका रूप धारण किये हुए तथा राधाको श्रीकृष्णका रूप धारण किये हुए देखा। इस प्रकार वहाँ कौन स्त्रीरूपमें तथा कौन पुरुषरूपमें है—इस रहस्यको जाननेमें वे ब्रह्मा भी अक्षम हो गये॥ १०४-१०५॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने हृदयकमलपर विराजमान श्रीकृष्णका ध्यान करके ध्याननेत्रसे उनका दर्शन किया और स्त्री-पुंभावविषयक संशयका अनेक प्रकारसे निराकरण करते हुए भक्तिपूर्वक उनका स्तवन किया॥ १०६॥

इसके बाद भगवान्की आज्ञासे उन्होंने अपने नेत्र खोलकर देखा कि वे अद्वितीय श्रीकृष्ण राधिकाके वक्षःस्थलपर स्थित हैं, वे अपने पार्षदोंसे घिरे हुए हैं और गोपिकाओंके समुदायसे सुशोभित हो रहे हैं। तदनन्तर उन ब्रह्मा आदि देवताओंने परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की॥ १०७-१०८॥

तदभिप्रायमाज्ञाय तानुवाच रमेश्वरः।
सर्वात्मा स च सर्वज्ञः सर्वेशः सर्वभावनः॥ १०९

श्रीभगवानुवाच

आगच्छ कुशलं ब्रह्मन्नागच्छ कमलापते।
इहागच्छ महादेव शश्वत्कुशलमस्तु वः॥ ११०

आगता हि महाभागा गङ्गानयनकारणात्।
गङ्गा च चरणाम्भोजे भयेन शरणं गता॥ १११

राधेमां पातुमिच्छन्ती दृष्ट्वा मत्सन्निधानतः।
दास्यामीमां च भवतां यूयं कुरुत निर्भयाम्॥ ११२

श्रीकृष्णस्य वचः श्रुत्वा सस्मितः कमलोद्भवः।
तुष्टाव राधामाराध्यां श्रीकृष्णपरिपूजिताम्॥ ११३

वक्त्रैश्चतुर्भिः संस्तूय भक्तिनम्रात्मकन्धरः।
धाता चतुर्णां वेदानामुवाच चतुराननः॥ ११४

चतुरानन उवाच

गङ्गा त्वदङ्गसम्भूता प्रभोश्च रासमण्डले।
युवयोर्द्रवरूपा सा मुग्धयोः शङ्करस्वनात्॥ ११५

कृष्णांशा च त्वदंशा च त्वत्कन्यासदृशी प्रिया।
त्वन्मन्त्रग्रहणं कृत्वा करोतु तव पूजनम्॥ ११६

भविष्यति पतिस्तस्या वैकुण्ठेशश्चतुर्भुजः।
भूस्थायाः कलया तस्याः पतिर्लवणवारिधिः॥ ११७

गोलोकस्था च या गङ्गा सर्वत्रस्था तथाम्बिके।
तदम्बिका त्वं देवेशी सर्वदा सा त्वदात्मजा॥ ११८

तदनन्तर सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सब कुछ जाननेवाले, सर्वेश्वर तथा सबका सृजन करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण उन देवताओंका अभिप्राय समझकर उनसे कहने लगे॥ १०९॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! आपका कुशल हो, आइये। हे कमलापते! आइये। हे महादेव! यहाँ आइये। आप लोगोंका सदा कुशल हो। आप सभी महाभाग गंगाको ले जानेके लिये यहाँ आये हुए हैं, किंतु गंगाजी तो इस समय भयभीत होकर मेरे चरणकमलमें शरणागत हो गयी हैं। जब वे गंगा मेरे सांनिध्यमें थी, तब उन्हें देखकर पी जानेके लिये राधिका उद्यत हो गयी थीं, इसलिये वे मेरे सांनिध्यमें आ गयीं। मैं आपलोगोंको उन्हें अवश्य दे दूँगा, किंतु आपलोग पहले उन्हें भयमुक्त कीजिये॥ ११०—११२॥

[हे नारद!] श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कमलयोनि ब्रह्मा मुसकराने लगे और वे भक्तिके कारण अपना मस्तक झुकाकर चारों मुखोंसे सबकी आराध्या तथा श्रीकृष्णके द्वारा सुपूजित राधिकाकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति करके चारों वेदोंको धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा राधासे इस प्रकार कहने लगे॥ ११३-११४॥

चतुरानन बोले—भगवान् शंकरकी संगीत-ध्वनिसे मुग्ध आपके तथा प्रभु श्रीकृष्णके द्रवरूपमें परिणत हुए अंगसे वह गंगा रासमण्डलमें प्रकट हुई थीं॥ ११५॥

अतः आप तथा श्रीकृष्णके अंशस्वरूप होनेके कारण आपकी प्रिय पुत्रीके तुल्य ये गंगा आपका मन्त्र ग्रहण करके आपकी पूजा करें। [इसके फलस्वरूप] वैकुण्ठके अधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इनको पतिके रूपमें प्राप्त होंगे और साथ ही अपनी एक कलासे जब ये भूमण्डलपर जायँगी, उस समय लवणसमुद्र भी इनके पति बनेंगे॥ ११६-११७॥

हे अम्बिके! ये गंगा जैसे गोलोकमें हैं, वैसे ही इन्हें सर्वत्र रहना चाहिये। आप देवेश्वरी इनकी माता हैं और वे सदा आपकी पुत्री हैं॥ ११८॥

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा स्वीचकार च सस्मिता।
बहिर्बभूव सा कृष्णपादाङ्गुष्ठनखाग्रतः॥ ११९

तत्रैव सत्कृता शान्ता तस्थौ तेषां च मध्यतः।
उवास तोयादुत्थाय तदधिष्ठातृदेवता॥ १२०

तत्तोयं ब्रह्मणा किञ्चित्स्थापितं च कमण्डलौ।
किञ्चिद्दधार शिरसि चन्द्रार्धकृतशेखरः॥ १२१

गङ्गायै राधिकामन्त्रं प्रददौ कमलोद्भवः।
तत्स्तोत्रं कवचं पूजां विधानं ध्यानमेव च॥ १२२

सर्वं तत्सामवेदोक्तं पुरश्चर्याक्रमं तथा।
गङ्गा तामेव सम्पूज्य वैकुण्ठं प्रययौ सह॥ १२३

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी।
एता नारायणस्यैव चतस्रो योषितो मुने॥ १२४

अथ तं सस्मितः कृष्णो ब्रह्माणं समुवाच सः।
सर्वकालस्य वृत्तान्तं दुर्बोधमविपश्चितम्॥ १२५

श्रीकृष्ण उवाच

गृहाण गङ्गां हे ब्रह्मन् हे विष्णो हे महेश्वर।
शृणु कालस्य वृत्तान्तं मत्तो ब्रह्मन्निशामय॥ १२६

यूयं च येऽन्ये देवाश्च मुनयो मनवस्तथा।
सिद्धा यशस्विनश्चैव ये येऽत्रैव समागताः॥ १२७

एते जीवन्ति गोलोके कालचक्रविवर्जिते।
जलाप्लुते सर्वविश्वं जातं कल्पक्षयोऽधुना॥ १२८

ब्रह्माद्या येऽन्यविश्वस्थास्ते विलीनाधुना मयि।
वैकुण्ठं च विना सर्वं जलमग्नं च पद्मज॥ १२९

गत्वा सृष्टिं कुरु पुनर्ब्रह्मलोकादिकं भवम्।
स्वं ब्रह्माण्डं विरचय पश्चाद् गङ्गा प्रयास्यति॥ १३०

[हे नारद!] ब्रह्माका यह वचन सुनकर राधाने हँसते हुए सभी बातें स्वीकार कर लीं। तब वे गंगा श्रीकृष्णके चरणके अँगूठेके नखके अग्रभागसे बाहर निकलीं। वहाँ सब लोगोंने उनका सत्कार किया और वे सबके मध्य शान्त होकर स्थित रहीं। तब जलस्वरूपा गंगाकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर वहींपर विराजमान हो गयीं॥ ११९-१२०॥

उस समय ब्रह्माजीने गंगाका कुछ जल अपने कमण्डलुमें रख लिया और कुछ जल चन्द्रशेखर भगवान् शिवने अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १२१॥

तदनन्तर कमलयोनि ब्रह्माने गंगाको राधा-मन्त्र प्रदान किया और उन्हें राधाके स्तोत्र, कवच, ध्यान और पूजाकी विधि तथा पुरश्चर्याक्रम—इन सभी सामवेद-प्रतिपादित अनुष्ठानोंके विषयमें बतलाया। गंगाने इन नियमोंके द्वारा उन राधाकी विधिवत् पूजा करके नारायणके साथ वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया॥ १२२-१२३॥

हे मुने! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी ही पत्नियाँ हैं॥ १२४॥

इसके बाद वे श्रीकृष्ण हँसकर उन ब्रह्माको दुर्बोध, सूक्ष्म तथा सामयिक वृत्तान्त बताने लगे॥ १२५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन्! आप गंगाको ग्रहण कीजिये। हे विष्णो! हे महेश्वर! हे ब्रह्मन्! आपलोग ध्यानपूर्वक कालका वृत्तान्त मुझसे सुनिये॥ १२६॥

आपलोग तथा अन्य देवता, मुनि, मनुगण, सिद्ध तथा यशस्वीजन—जो-जो यहाँ आये हुए हैं—केवल ये लोग ही कालचक्रके प्रभावसे रहित इस गोलोकमें जीवित हैं। इस समय कल्पक्षयके कारण सम्पूर्ण विश्व जलमें आप्लावित हो गया है। अन्य ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे मुझमें विलीन हो गये हैं। हे पद्मज! इस समय केवल वैकुण्ठको छोड़कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूबा हुआ है। आप जाकर ब्रह्मलोक आदि लोकोंकी पुनः सृष्टि कीजिये। आप अपने ब्रह्माण्डकी रचना कीजिये, इसके बाद गंगा वहाँ जायँगी॥ १२७—१३०॥

एवमन्येषु विश्वेषु सृष्टौ ब्रह्मादिकं पुनः।
करोम्यहं पुनः सृष्टिं गच्छ शीघ्रं सुरैः सह॥ १३१

गतो बहुतरः कालो युष्माकं च चतुर्मुखाः।
गताः कतिविधास्ते च भविष्यन्ति च वेधसः॥ १३२

इत्युक्त्वा राधिकानाथो जगामान्तःपुरे मुने।
देवा गत्वा पुनः सृष्टिं चक्रुरेव प्रयत्नतः॥ १३३

गोलोके च स्थिता गङ्गा वैकुण्ठे शिवलोकके।
ब्रह्मलोके स्थितान्यत्र यत्र यत्र पुरः स्थिता॥ १३४

तत्रैव सा गता गङ्गा चाज्ञया परमात्मनः।
निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदी स्मृता॥ १३५

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् गङ्गोपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १३६

इसी प्रकार इस सृष्टिके अवसरपर मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी ब्रह्मा आदिकी रचनाका प्रयत्न कर रहा हूँ। अब आप देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र जाइये। आपका बहुत समय बीत चुका है, न जाने कितने ब्रह्मा समाप्त हो गये और न जाने कितने ब्रह्मा अभी होंगे॥ १३१-१३२॥

हे मुने! ऐसा कहकर राधिकानाथ भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये और ब्रह्मा आदि देवता वहाँसे चलकर प्रयत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें संलग्न हो गये॥ १३३॥

तब गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानपर गंगाको रहनेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस-उसपर वे गंगा चली गयीं। वे गंगा भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकली हैं, इसलिये वे विष्णुपदी कही गयी हैं॥ १३४-१३५॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने आपसे गंगाके इस सर्वोत्तम, सुखदायक, मोक्षप्रद तथा सारगर्भित उपाख्यानका वर्णन कर दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
गङ्गोपाख्यानवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गंगाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग

नारद उवाच

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी विश्वपावनी।
एता नारायणस्यैव चतस्रश्च प्रिया इति॥ १

गङ्गा जगाम वैकुण्ठमिदमेव श्रुतं मया।
कथं सा तस्य पत्नी च बभूवेति च न श्रुतम्॥ २

श्रीनारायण उवाच

गङ्गा जगाम वैकुण्ठं तत्पश्चाज्जगतां विधिः।
गत्वोवाच तया सार्धं प्रणम्य जगदीश्वरम्॥ ३

नारदजी बोले—[हे प्रभो!] यह तो मैंने आपसे सुन लिया कि लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों ही भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं और उनमेंसे गंगा वैकुण्ठ चली गयीं। किंतु वे गंगा विष्णुकी पत्नी कैसे हुईं—यह प्रसंग मैंने नहीं सुना॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] जब गंगाजी वैकुण्ठ चली गयीं, उसके पश्चात् जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी भी वहाँ पहुँचे। गंगाके साथ जगदीश्वर विष्णुके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके वे उनसे कहने लगे॥ ३॥

ब्रह्मोवाच

राधाकृष्णाङ्गसम्भूता या देवी द्रवरूपिणी।
नवयौवनसम्पन्ना सुशीला सुन्दरी वरा॥ ४

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च क्रोधाहङ्कारवर्जिता।
तदङ्गसम्भवा नान्यं वृणोतीयं च तं विना॥ ५

तत्रातिमानिनी राधा सा च तेजस्विनी वरा।
समुद्युक्ता पातुमिमां भीतेयं बुद्धिपूर्वकम्॥ ६

विवेश चरणाम्भोजे कृष्णस्य परमात्मनः।
सर्वत्र गोलकं शुष्कं दृष्ट्वाहमगमं तदा॥ ७

गोलोके यत्र कृष्णश्च सर्ववृत्तान्तप्राप्तये।
सर्वान्तरात्मा सर्वेषां ज्ञात्वाभिप्रायमेव च॥ ८

बहिश्चकार गङ्गां च पादाङ्गुष्ठनखाग्रतः।
दत्त्वास्यै राधिकामन्त्रं पूरयित्वा च गोलकम्॥ ९

प्रणम्य तां च राधेशं गृहीत्वात्रागमं प्रभो।
गान्धर्वेण विवाहेन गृहाणेमां सुरेश्वरीम्॥ १०

सुरेश्वरेषु रसिको रसिकेयं समागता।
त्वं रत्नं पुंसु देवेश स्त्रीरत्नं स्त्रीष्वियं सती॥ ११

विदग्धया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान् भवेत्।
उपस्थितां स्वयं कन्यां न गृह्णातीह यः पुमान्॥ १२

तं विहाय महालक्ष्मी रुष्टा याति न संशयः।
यो भवेत्पण्डितः सोऽपि प्रकृतिं नावमन्यते॥ १३

सर्वे प्राकृतिकाः पुंसः कामिन्यः प्रकृतेः कलाः।
त्वमेव भगवान्नाथो निर्गुणः प्रकृतेः परः॥ १४

ब्रह्माजी बोले—राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत जो द्रवरूपिणी देवी गंगा हैं, वे इस समय नवीन यौवनसे सम्पन्न तथा उत्तम स्वभाव-वाली श्रेष्ठ सुन्दरीके रूपमें विराजमान हैं। ये देवी शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी तथा क्रोध और अहंकारसे रहित हैं। उन श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत ये गंगा उन्हें छोड़कर किसी अन्यका पतिरूपमें वरण नहीं करना चाहतीं॥ ४-५॥

किंतु अतिमानिनी राधा वहाँ विद्यमान हैं। वे श्रेष्ठ तथा तेजस्विनी राधा इन गंगाको पी जानेके लिये उद्यत थीं। इससे अत्यन्त भयभीत ये गंगा बड़ी बुद्धिमानीके साथ परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलमें समाविष्ट हो गयीं॥ ६$\frac{१}{२}$॥

उस समय सर्वत्र ब्रह्माण्ड-गोलकको शुष्क हुआ देखकर मैं गोलोक गया, जहाँपर सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिये विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणके अँगुष्ठ-नखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाल दिया। तब मैंने इन गंगाको राधिका-मन्त्र प्रदानकर इनके जलसे ब्रह्माण्ड-गोलकको पूर्ण करके उन राधा तथा राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके मैं इन्हें साथ लेकर यहाँ आया। हे प्रभो! अब आप गान्धर्व-विवाहके द्वारा इन सुरेश्वरी गंगाको स्वीकार कर लीजिये। श्रेष्ठ देवताओंमें आप परम रसिक हैं और यहाँ विराजमान ये गंगा भी रसिका हैं। हे देवेश! आप पुरुषोंमें रत्न हैं और ये साध्वी गंगा भी स्त्रियोंमें रत्न हैं। विदग्ध नारीका विदग्ध पुरुषके साथ सम्मिलन कल्याणकारी होता है॥ ७—११$\frac{१}{२}$॥

जो पुरुष स्वतःप्राप्त कन्याको नहीं ग्रहण करता, उससे महालक्ष्मी रुष्ट हो जाती हैं और उसे छोड़कर चली जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। जो विद्वान् होता है, वह कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करता॥ १२-१३॥

सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान् जगन्नाथ ही निर्गुण और प्रकृतिसे परे हैं॥ १४॥

अर्धाङ्गं द्विभुजः कृष्णो योऽर्धाङ्गेन चतुर्भुजः।
कृष्णवामाङ्गसम्भूता बभूव राधिका पुरा॥ १५

दक्षिणांशः स्वयं सा च वामांशः कमला तथा।
तेनेयं त्वां वृणोत्येव यतस्त्वद्देहसम्भवा॥ १६

एकाङ्गं चैव स्त्रीपुंसोर्यथा प्रकृतिपूरुषौ।
इत्येवमुक्त्वा धाता तां तं समर्प्य जगाम सः॥ १७

गान्धर्वेण विवाहेन तां जग्राह हरिः स्वयम्।
नारायणः करं धृत्वा पुष्पचन्दनचर्चितम्॥ १८

रेमे रमापतिस्तत्र गङ्गया सहितो मुदा।
गङ्गा पृथ्वीं गता या सा स्वस्थानं पुनरागता॥ १९

निर्गता विष्णुपादाब्जात्तेन विष्णुपदीति च।
मूर्च्छां सम्प्राप सा देवी नवसङ्गमलीलया॥ २०

रसिका सुखसम्भोगाद्रसिकेश्वरसंयुता।
तां दृष्ट्वा दुःखिता वाणी पद्मया वर्जितापि च॥ २१

नित्यमीर्ष्यति तां वाणी न च गङ्गा सरस्वतीम्।
गङ्गा शशाप कोपेन भारते च हरिप्रिया॥ २२

गङ्गया सह तस्यैव तिस्रो भार्या रमापतेः।
सार्धं तुलस्या पश्चाच्च चतस्रश्चाभवन्मुने॥ २३

वे श्रीकृष्ण ही आधे अंगसे दो भुजावाले श्रीकृष्ण बने रहे और आधे भागसे चतुर्भुज हो गये। इसी प्रकार पूर्वकालमें श्रीकृष्णके वाम अंगसे प्रादुर्भूत राधा भी दो भागोंमें विभक्त हो गयी थीं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं राधा बनी रहीं और बायें अंशसे कमला हो गयीं। इसलिये ये गंगा आपको ही पतिरूपमें वरण करना चाहती हैं; क्योंकि ये आपके ही देहसे उत्पन्न हुई हैं। हे प्रभो! प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनोंका शरीर एक ही होता है॥ १५-१६$\frac{१}{२}$ ॥

ऐसा कहकर वे ब्रह्माजी श्रीहरिको गंगा सौंपकर वहाँसे चल दिये। तत्पश्चात् नारायण श्रीहरिने गंगाका पुष्प-चन्दनचर्चित हाथ पकड़कर गान्धर्व विवाह-विधिके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे रमापति श्रीहरि गंगाके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करने लगे। इस प्रकार जो गंगा पृथ्वीपर गयी हुई थीं, वे अपने स्थानपर पुनः आ गयीं। ये गंगा भगवान् विष्णुके चरण-कमलसे निकली हैं, इसलिये विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात हुईं॥ १७—१९$\frac{१}{२}$ ॥

अब रसिकेश्वर भगवान् श्रीहरिके साथ प्रथम रतिक्रीड़ामें अतिशय सुखानुभूतिके कारण वे रसिका देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं। उन गंगाको देखकर सरस्वती नित्य दुःखित रहती थीं। लक्ष्मीके बार-बार मना करनेपर भी सरस्वती उन गंगासे सदा ईर्ष्या करती थीं, किंतु गंगाने सरस्वतीके प्रति ऐसा नहीं किया। अन्तमें विष्णुप्रिया गंगाने कोप करके सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था॥ २०—२२॥

हे मुने! इस प्रकार उन रमापति श्रीहरिकी गंगासहित तीन भार्याएँ हैं। इसके बादमें तुलसीको लेकर उनकी चार पत्नियाँ हुईं॥ २३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
गङ्गायाः कृष्णपत्नीत्ववर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

तुलसीके कथा-प्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन

नारद उवाच

नारायणप्रिया साध्वी कथं सा च बभूव ह।
तुलसी कुत्र सम्भूता का वा सा पूर्वजन्मनि॥ १

कस्य वा सा कुले जाता कस्य कन्या कुले सती।
केन वा तपसा सा च सम्प्राप्ता प्रकृतेः परम्॥ २

निर्विकारं निरीहं च सर्वविश्वस्वरूपकम्।
नारायणं परं ब्रह्म परमेश्वरमीश्वरम्॥ ३

सर्वाराध्यं च सर्वेशं सर्वज्ञं सर्वकारणम्।
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वेषां परिपालकम्॥ ४

कथमेतादृशी देवी वृक्षत्वं समवाप ह।
कथं साप्यसुरग्रस्ता सम्बभूव तपस्विनी॥ ५

सुस्निग्धं मे मनो लोलं प्रेरयन्मां मुहुर्मुहुः।
छेत्तुमर्हसि सन्देहं सर्वं सन्देहभञ्जन॥ ६

श्रीनारायण उवाच

मनुश्च दक्षसावर्णिः पुण्यवान् वैष्णवः शुचिः।
यशस्वी कीर्तिमांश्चैव विष्णोरंशसमुद्भवः॥ ७

तत्पुत्रो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मिष्ठो वैष्णवः शुचिः।
तत्पुत्रो धर्मसावर्णिर्वैष्णवश्च जितेन्द्रियः॥ ८

तत्पुत्रो रुद्रसावर्णिर्भक्तिमान्विजितेन्द्रियः।
तत्पुत्रो देवसावर्णिर्विष्णुव्रतपरायणः॥ ९

तत्पुत्र इन्द्रसावर्णिर्महाविष्णुपरायणः।
वृषध्वजश्च तत्पुत्रो वृषध्वजपरायणः॥ १०

यस्याश्रमे स्वयं शम्भुरासीद्देवयुगत्रयम्।
पुत्रादपि परः स्नेहो नृपे तस्मिञ्छिवस्य च॥ ११

न च नारायणं मेने न लक्ष्मीं न सरस्वतीम्।
पूजां च सर्वदेवानां दूरीभूतां चकार सः॥ १२

नारदजी बोले—परम साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी प्रिय भार्या कैसे बनीं, वे कहाँ उत्पन्न हुई थीं, पूर्वजन्ममें कौन थीं, किसके कुलमें उत्पन्न हुई थीं और वे सती किसके कुलमें कन्याके रूपमें प्रादुर्भूत हुईं और अपने किस तपस्याके प्रभावसे वे तुलसी प्रकृतिसे परे, विकाररहित, निष्काम, सर्वविश्वरूप, नारायण, परब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, सबके आराध्य, सर्वेश, सब कुछ जाननेवाले, सम्पूर्ण जगत्के कारण, सर्वाधार, सर्वरूप तथा सभी प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान् श्रीहरिको पत्नीरूपमें प्राप्त हुईं? ऐसी साध्वी देवी कैसे वृक्ष बन गयीं और वे तपस्विनी किस प्रकारसे असुरके द्वारा गृहीत हुईं। समस्त शंकाओंका निवारण करनेवाले हे प्रभो! यह सब जाननेके लिये मेरा कोमल तथा चंचल मन मुझे बार-बार प्रेरित कर रहा है। आप मेरे सम्पूर्ण सन्देहको दूर करनेकी कृपा कीजिये॥ १—६॥

श्रीनारायण बोले—विष्णुके अंशसे उत्पन्न दक्ष-सावर्णि मनु परम पवित्र, यशस्वी, कीर्तिमान्, पुण्यशाली तथा विष्णुभक्त थे। उनके पुत्र ब्रह्मसावर्णि थे, जो धर्म-परायण, भगवान् विष्णुके भक्त तथा परम पवित्र थे। उनके पुत्र धर्मसावर्णि थे, जो विष्णुके भक्त तथा जितेन्द्रिय थे। उनके पुत्र रुद्रसावर्णि भक्तिपरायण तथा जितेन्द्रिय थे। उन रुद्रसावर्णिके पुत्र देवसावर्णि थे, जो सर्वदा विष्णु-भगवान्का व्रत करनेमें संलग्न रहते थे। उन देवसावर्णिके पुत्र इन्द्रसावर्णि महाविष्णुके भक्त थे। उन इन्द्रसावर्णिका पुत्र वृषध्वज हुआ, जो भगवान् शिवकी भक्तिमें आसक्ति रखता था; उसके आश्रममें स्वयं भगवान् शंकर तीन युगोंतक स्थित रहे। राजा वृषध्वजके प्रति शिवजीका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था॥ ७—११॥

वह भगवान् नारायण, लक्ष्मी, सरस्वती—इनमें किसीके भी प्रति आस्था नहीं रखता था और उसने अन्य सभी देवताओंकी पूजाका परित्याग कर दिया था॥ १२॥

भाद्रे मासि महालक्ष्मीपूजां मत्तो बभञ्ज ह।
तथा माघीयपञ्चम्यां विस्तृतां सर्वदैवतैः॥ १३

पापः सरस्वतीपूजां दूरीभूतां चकार सः।
यज्ञं च विष्णुपूजां च निन्दन्तं तं दिवाकरः॥ १४

चुकोप देवो भूपेन्द्रं शशाप शिवकारणात्।
भ्रष्टश्रीस्त्वञ्च भवेति तं शशाप दिवाकरः॥ १५

शूलं गृहीत्वा तं सूर्यमधावच्छङ्करः स्वयम्।
पित्रा सार्धं दिनेशश्च ब्रह्माणं शरणं ययौ॥ १६

शिवस्त्रिशूलहस्तश्च ब्रह्मलोकं ययौ क्रुधा।
ब्रह्मा सूर्यं पुरस्कृत्य वैकुण्ठं च ययौ भिया॥ १७

ब्रह्मकश्यपमार्तण्डाः सन्त्रस्ताः शुष्कतालुकाः।
नारायणं च सर्वेशं ते ययुः शरणं भिया॥ १८

मूर्ध्ना प्रणेमुस्ते गत्वा तुष्टुवुश्च पुनः पुनः।
सर्वं निवेदनं चक्रुर्भयस्य कारणं हरौ॥ १९

नारायणश्च कृपया तेभ्यश्च ह्यभयं ददौ।
स्थिरा भवत हे भीता भयं किञ्च मयि स्थिते॥ २०

स्मरन्ति ये यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः।
तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः॥ २१

पाताहं जगतां देवाः कर्ता च सततं सदा।
स्रष्टा च ब्रह्मरूपेण संहर्ता शिवरूपतः॥ २२

शिवोऽहं त्वमहं चापि सूर्योऽहं त्रिगुणात्मकः।
विधाय नानारूपं च करोमि सृष्टिपालनम्॥ २३

अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रपद महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उत्पन्न करता था। इसी प्रकार उस पापीने माघ शुक्ल पंचमीके दिन समस्त देवताओंद्वारा विस्तृत रूपसे की जानेवाली सरस्वती-पूजाका भी त्याग कर दिया था। इस तरह केवल शिवकी आराधनामें निरत रहनेवाले और यज्ञ तथा विष्णुकी पूजाकी निन्दा करनेवाले उस राजेन्द्र वृषध्वजपर भगवान् सूर्यदेव कुपित हो गये और उन्होंने उसे शाप दे दिया 'तुम श्रीविहीन हो जाओ'—यह शाप सूर्यने उसे दे दिया था॥ १३—१५॥

इसपर स्वयं भगवान् शिव हाथमें त्रिशूल लेकर सूर्यके पीछे दौड़े। तब सूर्य अपने पिता कश्यपके साथ ब्रह्माकी शरणमें गये॥ १६॥

तदनन्तर भगवान् शंकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए। इसपर भयभीत ब्रह्माजीने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थान कर दिया॥ १७॥

वे सन्तप्त तथा शुष्क तालुवाले ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य भयपूर्वक सर्वेश्वर नारायणकी शरणमें गये॥ १८॥

उन तीनोंने वहाँ पहुँचकर मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम किया और बार-बार उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीहरिसे भयका समस्त कारण बताया॥ १९॥

तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक [यह कहकर] उन्हें अभय प्रदान किया—हे भयभीत देवगण! आपलोग स्थिरचित्त हो जाइये। मेरे रहते आपलोगोंको भय कैसा? विपत्तिमें भयत्रस्त जो लोग जहाँ भी मुझे याद करते हैं, मैं हाथमें चक्र धारण किये वहाँ तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा करता हूँ॥ २०-२१॥

हे देवतागण! मैं सदा निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी रचना तथा रक्षा किया करता हूँ। मैं ही ब्रह्मारूपसे जगत्‌की सृष्टि करनेवाला और शिवरूपसे संहार करनेवाला हूँ। मैं ही शिव हूँ, आप भी मेरे ही रूप हो और ये सूर्य भी मेरे ही स्वरूप हैं। तीनों गुणोंसे युक्त मैं ही अनेकविध रूप धारण करके सृष्टि-पालन करता हूँ॥ २२-२३॥

यूयं गच्छत भद्रं वो भविष्यति भयं कुतः।
अद्यप्रभृति मद्वरेण भयं वो नास्ति शङ्करात्॥ २४

सर्वेशो वै स भगवाञ्छङ्करश्च सतां पतिः।
भक्ताधीनश्च भक्तानां भक्तात्मा भक्तवत्सलः॥ २५

सुदर्शनः शिवश्चैव मम प्राणाधिकः प्रियः।
ब्रह्माण्डेषु न तेजस्वी हे ब्रह्मन्ननयोः परः॥ २६

शक्तः स्रष्टुं महादेवः सूर्यकोटिं च लीलया।
कोटिं च ब्रह्मणामेवं नासाध्यं शूलिनः प्रभोः॥ २७

बाह्यज्ञानं नैव किञ्चिद्ध्यायते मां दिवानिशम्।
मन्मन्त्रान्मद्गुणान्भक्त्या पञ्चवक्त्रेण गायति॥ २८

अहमेवं चिन्तयामि तत्कल्याणं दिवानिशम्।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ २९

शिवस्वरूपो भगवाञ्छिवाधिष्ठातृदेवता।
शिवं भवति तस्माच्च शिवं तेन विदुर्बुधाः॥ ३०

एतस्मिन्नन्तरे तत्र जगाम शङ्करः स्थितः।
शूलहस्तो वृषारूढो रक्तपङ्कजलोचनः॥ ३१

अवरुह्य वृषात्तूर्णं भक्तिनम्रात्मकन्धरः।
ननाम भक्त्या तं शान्तं लक्ष्मीकान्तं परात्परम्॥ ३२

रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालङ्कारभूषितम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं चक्रिणं वनमालिनम्॥ ३३

नवीननीरदश्यामं सुन्दरं च चतुर्भुजम्।
चतुर्भुजैः सेवितं च श्वेतचामरवायुना॥ ३४

आपलोग जाइये। आपलोगोंका कल्याण होगा, आपलोगोंको भय कहाँ। मेरे वरके प्रभावसे आपलोगोंको आजसे शंकरजीसे भय नहीं होगा। वे सर्वेश्वर भगवान् शिव सज्जनोंके स्वामी, भक्तोंके वशमें रहनेवाले, भक्तोंकी आत्मा तथा भक्तवत्सल हैं। हे ब्रह्मन्! सुदर्शन चक्र और भगवान् शिव—ये दोनों ही मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इन दोनोंसे बढ़कर तेजस्वी ब्रह्माण्डोंमें कोई भी नहीं है॥ २४—२६॥

वे महादेव खेल-खेलमें करोड़ों सूर्यों तथा करोड़ों ब्रह्माकी रचना कर सकते हैं। उन त्रिशूलधारी प्रभु शिवके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। वे भगवान् शिव कुछ भी बाह्य ज्ञान न रखते हुए दिन-रात मेरा ही ध्यान करते रहते हैं और अपने पाँचों मुखोंसे भक्तिपूर्वक सदा मेरे मन्त्रोंका जप तथा गुणोंका गान करते रहते हैं॥ २७-२८॥

मैं भी दिन-रात उनके कल्याणका ही चिन्तन करता हूँ; क्योंकि जो लोग जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ। भगवान् शंकर शिवस्वरूप हैं और वे कल्याणके अधिष्ठातृदेवता हैं, उन्हींसे कल्याण होता है, अतः विद्वान् लोग उन्हें शिव कहते हैं॥ २९-३०॥

इसी बीच भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गये। उनके हाथमें त्रिशूल था, वे वृषभपर सवार थे तथा उनकी आँखें लाल कमलके समान थीं। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने तुरंत वृषभसे उतरकर तथा भक्तिसे परिपूर्ण होनेके कारण अपना मस्तक झुकाकर उन शान्तस्वभाव परात्पर लक्ष्मीपति विष्णुको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया॥ ३१-३२॥

उस समय भगवान् श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे, रत्ननिर्मित अलंकारोंसे वे अलंकृत थे, वे किरीट; कुण्डल; चक्र और वनमाला धारण किये हुए थे, उनके शरीरकी कान्ति नूतन मेघके समान श्यामवर्णकी थी, वे परम सुन्दर थे, चार भुजाओंसे सुशोभित थे और चार भुजावाले अनेक पार्षदोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की जा रही थी॥ ३३-३४॥

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भूषितं पीतवाससम्।
लक्ष्मीप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं च नारद॥ ३५

विद्याधरीनृत्यगीतं पश्यन्तं सस्मितं सदा।
ईश्वरं परमात्मानं भक्तानुग्रहविग्रहम्॥ ३६

तं ननाम महादेवो ब्रह्मणा नमितश्च सः।
ननाम सूर्यो भक्त्या च सन्त्रस्तश्चन्द्रशेखरम्॥ ३७

कश्यपश्च महाभक्त्या तुष्टाव च ननाम च।
शिवः संस्तूय सर्वेशं समुवास सुखासने॥ ३८

सुखासने सुखासीनं विश्रान्तं चन्द्रशेखरम्।
श्वेतचामरवातेन सेवितं विष्णुपार्षदैः॥ ३९

पीयूषतुल्यमधुरं वचनं सुमनोहरम्।

विष्णुरुवाच

आगतोऽसि कथं चात्र वद कोपस्य कारणम्॥ ४०

महादेव उवाच

वृषध्वजं च मद्भक्तं मम प्राणाधिकं प्रियम्।
सूर्यः शशाप इति मे प्रकोपस्य तु कारणम्॥ ४१

पुत्रवत्सलशोकेन सूर्यं हन्तुं समुद्यतः।
स ब्रह्माणं प्रपन्नश्च सूर्यश्च स विधिस्त्वयि॥ ४२

त्वयि ये शरणापन्ना ध्यानेन वचसापि वा।
निरापदो विशङ्कास्ते जरा मृत्युश्च तैर्जितः॥ ४३

प्रत्यक्षं शरणापन्नास्तत्फलं किं वदामि भोः।
हरिस्मृतिश्चाभयदा सर्वमङ्गलदा सदा॥ ४४

किं मे भक्तस्य भविता तन्मे ब्रूहि जगत्प्रभो।
श्रीहतस्यास्य मूढस्य सूर्यशापेन हेतुना॥ ४५

हे नारद! उनका सम्पूर्ण अंग दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त था, वे अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। वे लक्ष्मीके द्वारा दिये गये ताम्बूलका सेवन कर रहे थे, मुसकराते हुए वे विद्याधरियोंके नृत्य-गीत आदिका निरन्तर अवलोकन कर रहे थे। भक्तोंके लिये साक्षात् कृपामूर्ति ऐसे उन परमेश्वर प्रभुको महादेवने प्रणाम किया। ब्रह्माजीने भी महादेवको प्रणाम किया और अत्यन्त भयभीत सूर्यने भी चन्द्रशेखर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इसी प्रकार कश्यपने महान् भक्तिके साथ शिवकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया॥ ३५—३७½ ॥

शिवजी सर्वेश्वर श्रीहरिका स्तवन करके एक सुखप्रद आसनपर विराजमान हो गये। इसके बाद सुखमय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान तथा विष्णुके पार्षदोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवित होते हुए उन विश्रान्त शिवजीसे भगवान् श्रीहरि अमृतके समान मधुर तथा मनोहर वचन कहने लगे॥ ३८-३९½ ॥

विष्णुजी बोले—आप यहाँ किसलिये आये हैं, आप अपने क्रोधका कारण बताइये॥ ४० ॥

महादेवजी बोले—[हे भगवन्!] सूर्यने मेरे लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मेरे भक्त वृषध्वजको शाप दे दिया है—यही मेरे क्रोधका कारण है। जब मैं अपने पुत्रतुल्य भक्तके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब उस सूर्यने ब्रह्माकी शरण ली और पुनः सूर्य तथा ब्रह्मा—ये दोनों आपकी शरणमें आ गये॥ ४१-४२॥

[हे प्रभो!] जो लोग ध्यानसे अथवा वचनसे भी आपकी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे विपत्ति तथा भयसे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। वे जरा तथा मृत्युतकको जीत लेते हैं। ये लोग तो प्रत्यक्ष शरणागत हुए हैं। इस शरणागतिका फल क्या बताऊँ! आप श्रीहरिका स्मरण सदा अभय तथा सर्वविध मंगल प्रदान करता है। हे जगत्प्रभो! सूर्यके शापके कारण श्रीरहित तथा विवेकहीन मेरे भक्तका क्या होगा? इसे मुझे बतायें॥ ४३—४५॥

विष्णुरुवाच

कालोऽतियातो दैवेन युगानामेकविंशतिः।
वैकुण्ठं घटिकार्धेन शीघ्रं गच्छ त्वमालयम्॥ ४६

वृषध्वजो मृतः कालाद्दुर्निवार्यात्सुदारुणात्।
रथध्वजश्च तत्पुत्रो मृतः सोऽपि श्रिया हतः॥ ४७

तत्पुत्रौ च महाभागौ धर्मध्वजकुशध्वजौ।
हतश्रियौ सूर्यशापात्स्मृतौ परमवैष्णवौ॥ ४८

राज्यभ्रष्टौ श्रिया भ्रष्टौ कमलातपसा रतौ।
तयोश्च भार्ययोर्लक्ष्मीः कलया च भविष्यति॥ ४९

सम्पद्युक्तौ तदा तौ च नृपश्रेष्ठौ भविष्यतः।
मृतस्ते सेवकः शम्भो गच्छ यूयं च गच्छत॥ ५०

इत्युक्त्वा च सलक्ष्मीकः सभातोऽभ्यन्तरं गतः।
देवा जग्मुः सम्प्रहृष्टाः स्वाश्रमं परया मुदा।
शिवश्च तपसे शीघ्रं परिपूर्णतमो ययौ॥ ५१

विष्णुजी बोले—[हे शिव!] दैवकी प्रेरणासे इक्कीस युगोंका बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया, यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थान चले जाइये। किसीसे भी नियन्त्रित न किये जा सकनेवाले अत्यन्त भीषण कालने वृषध्वजको मार डाला है। उसका पुत्र रथध्वज था, वह भी श्रीसे हीन होकर मृत्युको प्राप्त हो गया। उस रथध्वजके भी धर्मध्वज तथा कुशध्वज नामक दो महान् भाग्यशाली पुत्र भी सूर्यके शापसे श्रीहीन हो गये हैं। वे दोनों विष्णुके महान् भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हैं। राज्य तथा श्रीसे भ्रष्ट वे दोनों लक्ष्मीके तपमें रत हैं। उन दोनोंकी भार्याओंसे भगवती लक्ष्मी अपनी कलासे आविर्भूत होंगी। उस समय वे दोनों महान् सम्पदासे सम्पन्न होकर श्रेष्ठ राजाके रूपमें पुनः प्रतिष्ठित होंगे। हे शम्भो! आपका भक्त मर चुका है; अब आप यहाँ से जाइये। हे देवतागण! अब आप सबलोग भी यहाँसे प्रस्थान कीजिये॥ ४६—५०॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर वे भगवान् श्रीहरि सभासे उठकर लक्ष्मीके साथ अन्तःपुरमें चले गये। तत्पश्चात् परम प्रसन्नतासे युक्त देवतागण भी परम आनन्दका अनुभव करते हुए अपने-अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गये। तब परिपूर्णतम भगवान् शिव भी तपस्याके उद्देश्यसे वहाँसे चल दिये॥ ५१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शक्तिप्रादुर्भावो नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

~~~

अथ षोडशोऽध्यायः

वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् श्रीरामके चरित्रके एक अंशका कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदी के पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्रीनारायण उवाच

लक्ष्मीं तौ च समाराध्य चोग्रेण तपसा मुने।
वरमिष्टं च प्रत्येकं सम्प्रापतुरभीप्सितम्॥ १

महालक्ष्मीवरेणैव तौ पृथ्वीशौ बभूवतुः।
पुण्यवन्तौ पुत्रवन्तौ धर्मध्वजकुशध्वजौ॥ २

श्रीनारायण बोले—हे मुने! उन दोनोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी आराधना करके अपना मनोवांछित वर प्राप्त कर लिया॥ १॥

महालक्ष्मीके वरदानसे ही वे धर्मध्वज और कुशध्वज महान् पुण्यशाली तथा पुत्रवान् राजा हो गये॥ २॥
~~~

कुशध्वजस्य पत्नी च देवी मालावती सती।
सा सुषाव च कालेन कमलांशां सुतां सतीम्॥ ३

सा च भूयिष्ठकालेन ज्ञानयुक्ता बभूव ह।
कृत्वा वेदध्वनिं स्पष्टमुत्तस्थौ सूतिकागृहात्॥ ४

वेदध्वनिं सा चकार जातमात्रेण कन्यका।
तस्मात्तां च वेदवतीं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ५

जातमात्रेण सुस्नाता जगाम तपसे वनम्।
सर्वैर्निषिद्धा यत्नेन नारायणपरायणा॥ ६

एकमन्वन्तरं चैव पुष्करे च तपस्विनी।
अत्युग्रं च तपस्यां च लीलया हि चकार सा॥ ७

तथापि पुष्टा न क्लिष्टा नवयौवनसंयुता।
सुश्राव सा च सहसा सुवाचमशरीरिणीम्॥ ८

जन्मान्तरे च ते भर्ता भविष्यति हरिः स्वयम्।
ब्रह्मादिभिर्दुराराध्यं पतिं लप्स्यसि सुन्दरि॥ ९

इति श्रुत्वा च सा हृष्टा चकार ह पुनस्तपः।
अतीव निर्जनस्थाने पर्वते गन्धमादने॥ १०

तत्रैव सुचिरं तप्त्वा विश्वस्य समुवास सा।
ददर्श पुरतस्तत्र रावणं दुर्निवारणम्॥ ११

दृष्ट्वा सातिथिभक्त्या च पाद्यं तस्मै ददौ किल।
सुस्वादुभूतं च फलं जलं चापि सुशीतलम्॥ १२

तच्च भुक्त्वा स पापिष्ठश्चोवास तत्समीपतः।
चकार प्रश्नमिति तां का त्वं कल्याणि वर्तसे॥ १३

तां दृष्ट्वा स वरारोहां पीनश्रोणिपयोधराम्।
शरत्पद्मोत्सवास्यां च सस्मितां सुदतीं सतीम्॥ १४

मूर्च्छामवाप कृपणः कामबाणप्रपीडितः।
स करेण समाकृष्य शृङ्गारं कर्तुमुद्यतः॥ १५

कुशध्वजकी मालावती नामक साध्वी भार्या थी। उस देवीने दीर्घकाल बीतनेपर यथासमय लक्ष्मीके अंशसे सम्पन्न एक साध्वी कन्याको जन्म दिया। उसे जन्मसे ही ज्ञान प्राप्त था। वह कन्या स्पष्ट वाणीमें वेद-मन्त्रोंका उच्चारणकर सूतिकागृहसे बाहर निकल आयी। उस कन्याने जन्म लेते ही वेदध्वनि की थी, इसलिये विद्वान् लोग उसे 'वेदवती' कहने लगे॥ ३—५॥

जन्म लेते ही उस कन्याने विधिवत् स्नान किया और तपस्याके लिये वनको प्रस्थान कर दिया; यद्यपि सभी लोगोंने श्रीहरिके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस कन्याको ऐसा करनेसे प्रयत्नपूर्वक रोका था॥ ६॥

उस तपस्विनी कन्याने एक मन्वन्तरतक पुष्कर-क्षेत्रमें रहकर लीलापूर्वक अत्यन्त कठोर तप किया, फिर भी वह दुर्बल नहीं हुई; अपितु स्वस्थ और नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही॥ ७½॥

उसने सहसा स्पष्ट शब्दोंवाली यह आकाशवाणी सुनी—हे सुन्दरि! दूसरे जन्ममें स्वयं भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा आदिके द्वारा भी बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले भगवान् श्रीहरिको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी॥ ८-९॥

यह आकाशवाणी सुनकर वह कन्या अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और गन्धमादनपर्वतपर निर्जन स्थानमें पुनः तप करने लगी॥ १०॥

वहाँ दीर्घकालतक तपश्चर्या करती हुई वह निश्चिन्त होकर रहती थी। एक बार उसने अपने समक्ष उपस्थित ढीठ रावणको देखा॥ ११॥

उसे देखकर वेदवतीने अतिथिभक्तिसे युक्त होकर उसे पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल प्रदान किया। उन्हें ग्रहण करके वह पापी रावण उसके पास बैठ गया और उससे यह प्रश्न करने लगा 'हे कल्याणि! तुम कौन हो?'॥ १२-१३॥

स्थूल नितम्बदेश तथा वक्षःस्थलवाली, शरदृतुके विकसित कमलकी भाँति प्रसन्न मुखवाली, मुसकानयुक्त तथा स्वच्छ दाँतोंवाली उस परम साध्वी सुन्दरीको देखकर कामबाणसे आहत होकर वह नीच रावण मूर्च्छित हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर शृंगारिक चेष्टाएँ करने लगा॥ १४-१५॥

सती चुकोप दृष्ट्वा तं स्तम्भितं च चकार ह।
स जडो हस्तपादैश्च किञ्चिद्वक्तुं न च क्षमः॥ १६

तुष्टाव मनसा देवीं प्रययौ पद्मलोचनाम्।
सा तुष्टा तस्य स्तवनं सुकृतं च चकार ह॥ १७

सा शशाप मदर्थे त्वं विनंक्ष्यसि सबान्धवः।
स्पृष्टाहं च त्वया कामाद् बलं चाप्यवलोकय॥ १८

इत्युक्त्वा सा च योगेन देहत्यागं चकार ह।
गङ्गायां तां च संन्यस्य स्वगृहं रावणो ययौ॥ १९

अहो किमद्भुतं दृष्टं किं कृतं वानयाधुना।
इति सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य विललाप पुनः पुनः॥ २०

सा च कालान्तरे साध्वी बभूव जनकात्मजा।
सीतादेवीति विख्याता यदर्थे रावणो हतः॥ २१

महातपस्विनी सा च तपसा पूर्वजन्मतः।
लेभे रामं च भर्तारं परिपूर्णतमं हरिम्॥ २२

सम्प्राप तपसाराध्यं दुराराध्यं जगत्पतिम्।
सा रमा सुचिरं रेमे रामेण सह सुन्दरी॥ २३

जातिस्मरा न स्मरति तपसश्च क्लमं पुरा।
सुखेन तज्जहौ सर्वं दुःखं चापि सुखं फले॥ २४

नानाप्रकारविभवं चकार सुचिरं सती।
सम्प्राप्य सुकुमारं तमतीव नवयौवना॥ २५

गुणिनं रसिकं शान्तं कान्तं देवमनुत्तमम्।
स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरं तथा लेभे यथेप्सितम्॥ २६

यह देखकर वह साध्वी अत्यन्त क्रोधित हो उठी और उसने [तपोबलसे] उसे स्तम्भित कर दिया। वह हाथों तथा पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया और कुछ भी बोल सकनेमें समर्थ नहीं रहा॥ १६॥

वह मन-ही-मन उस कमलनयनी देवीकी शरणमें गया और उसने उसका स्तवन किया। देवी वेदवती उसपर प्रसन्न हो गयी और [परलोकमें] उसे स्तुतिका फल देना स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने यह शाप भी दिया—'तुम मेरे ही कारण अपने बान्धवोंसहित विनष्ट हो जाओगे; क्योंकि काम-भावनासे तुमने मेरा स्पर्श किया है। अब तुम मेरा बल देख लो'॥ १७-१८॥

ऐसा कहकर उसने योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर दिया। इसके बाद रावणने उसे गंगामें छोड़कर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया—'अहो, इस समय मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा है, इस देवीने इस समय क्या कर डाला'— ऐसा सोच-सोचकर वह रावण बार-बार विलाप करता रहा॥ १९-२०॥

[हे मुने!] वही साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुई और वे देवी 'सीतादेवी'—इस नामसे विख्यात हुईं, जिनके कारण रावण मारा गया। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे उस महान् तपस्विनी वेदवतीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीरामको पतिरूपमें प्राप्त किया। तपस्याके द्वारा उस देवीने अत्यन्त कठिनतासे सन्तुष्ट होनेवाले तथा सबके आराध्य जगत्पति श्रीरामको प्राप्त किया था। उस सुन्दरी सीताने अत्यन्त दीर्घ कालतक भगवान् श्रीरामके साथ विलास किया॥ २१—२३॥

उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था, फिर भी पूर्व समयमें तपस्याके कष्टपर उसने ध्यान नहीं दिया। उसने सुखपूर्वक उस क्लेशका त्याग कर दिया था; क्योंकि परिणामके उत्तम होनेपर दुःख भी सुखके रूपमें हो जाता है॥ २४॥

उन सुकुमार श्रीरामको प्राप्त करके उस नवयौवना साध्वीने दीर्घकालतक नाना प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त किया। उसने अपनी अभिलाषाके अनुरूप ही गुणवान्, रसिक, शान्त, कमनीय, स्त्रियोंके लिये कामदेवतुल्य मनोहर एवं सर्वश्रेष्ठ देवको प्राप्त किया था॥ २५-२६॥

पितुः सत्यपालनार्थं सत्यसन्धो रघूद्वहः।
जगाम काननं पश्चात्कालेन च बलीयसा॥ २७

तस्थौ समुद्रनिकटे सीतया लक्ष्मणेन च।
ददर्श तत्र वह्निं च विप्ररूपधरं हरिः॥ २८

रामं च दुःखितं दृष्ट्वा स च दुःखी बभूव ह।
उवाच किञ्चित्सत्येष्टं सत्यं सत्यपरायणः॥ २९

द्विज उवाच

भगवञ्छ्रूयतां राम कालोऽयं यदुपस्थितः।
सीताहरणकालोऽयं तवैव समुपस्थितः॥ ३०

दैवं च दुर्निवार्यं च न च दैवात्परो बली।
जगत्प्रसूं मयि न्यस्य छायां रक्षान्तिकेऽधुना॥ ३१

दास्यामि सीतां तुभ्यं च परीक्षासमये पुनः।
देवैः प्रस्थापितोऽहं च न च विप्रो हुताशनः॥ ३२

रामस्तद्वचनं श्रुत्वा न प्रकाश्य च लक्ष्मणम्।
स्वीकारं वचसश्चक्रे हृदयेन विदूयता॥ ३३

वह्निर्योगेन सीताया मायासीतां चकार ह।
तत्तुल्यगुणसर्वाङ्गां ददौ रामाय नारद॥ ३४

सीतां गृहीत्वा स ययौ गोप्यं वक्तुं निषिध्य च।
लक्ष्मणो नैव बुबुधे गोप्यमन्यस्य का कथा॥ ३५

एतस्मिन्नन्तरे रामो ददर्श कानकं मृगम्।
सीता तं प्रेरयामास तदर्थे यत्नपूर्वकम्॥ ३६

संन्यस्य लक्ष्मणं रामो जानक्या रक्षणे वने।
स्वयं जगाम तूर्णं तं विव्याध सायकेन च॥ ३७

तदनन्तर रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले सत्यसंकल्प श्रीराम बलवान् कालसे प्रेरित होकर अपने पिताके वचनको सत्य करनेके लिये वनमें चले गये॥ २७॥

वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप स्थित थे। उसी समय भगवान्ने विप्ररूपधारी अग्निदेवको वहाँ देखा। तब श्रीरामको दुःखित देखकर अग्नि भी बहुत दुःखी हुए। इसके बाद सत्यपरायण वे अग्निदेव सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे यह सत्यवचन कहने लगे॥ २८-२९॥

द्विज बोले—हे भगवन्! हे श्रीराम! सुनिये, यह जो काल आपके समक्ष उपस्थित है, वह सीता-हरणके समयके रूपमें ही आया हुआ है। दैवका प्रतिकार अत्यन्त कठिन है, उस दैवसे बढ़कर बलवान् अन्य कोई नहीं है। अतः आप इस समय जगज्जननी सीताको मुझमें स्थापित करके छायामयी सीताको अपने साथ रख लीजिये। इनकी परीक्षाका समय आनेपर मैं इन सीताको पुनः आपको सौंप दूँगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अपितु इसी कार्यहेतु देवताओंके द्वारा भेजा गया साक्षात् अग्निदेव हूँ॥ ३०—३२॥

श्रीरामने उनकी यह बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही अत्यन्त दुःखी मनसे वह वचन स्वीकार कर लिया॥ ३३॥

हे नारद! तत्पश्चात् अग्निदेवने योगबलसे सीताके ही समान एक माया-सीताकी रचना की। इसके बाद अग्निने गुण और स्वरूपमें उस सीताके ही तुल्य माया-सीताको श्रीरामको सौंप दिया॥ ३४॥

श्रीराम इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेका निषेध करके माया-सीताको साथ लेकर चल पड़े। लक्ष्मणतक इस रहस्यको नहीं जान पाये तो दूसरेकी बात ही क्या॥ ३५॥

इसी बीच श्रीरामने एक स्वर्णमृग देखा। तब सीता जिस किसी भी यत्नसे उसे लानेके लिये श्रीरामको प्रेरित करने लगीं॥ ३६॥

श्रीराम उस वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहींपर नियुक्त करके स्वयं शीघ्रतापूर्वक मृगकी ओर दौड़ पड़े और बाणसे उसका वध कर दिया॥ ३७॥

लक्ष्मणेति च शब्दं स कृत्वा च मायया मृगः।
प्राणांस्तत्याज सहसा पुरो दृष्ट्वा हरिं स्मरन्॥ ३८

मृगदेहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च।
रत्ननिर्माणयानेन वैकुण्ठं स जगाम ह॥ ३९

वैकुण्ठलोकद्वार्यासीत्किङ्करो द्वारपालयोः।
पुनर्जगाम तद्द्वारमादेशाद् द्वारपालयोः॥ ४०

अथ शब्दं च सा श्रुत्वा लक्ष्मणेति च विक्लवम्।
तं हि सा प्रेरयामास लक्ष्मणं रामसन्निधौ॥ ४१

गते च लक्ष्मणे रामं रावणो दुर्निवारणः।
सीतां गृहीत्वा प्रययौ लङ्कामेव स्वलीलया॥ ४२

विषसाद च रामश्च वने दृष्ट्वा च लक्ष्मणम्।
तूर्णं च स्वाश्रमं गत्वा सीतां नैव ददर्श सः॥ ४३

मूर्च्छां सम्प्राप सुचिरं विललाप भृशं पुनः।
पुनः पुनश्च बभ्राम तदन्वेषणपूर्वकम्॥ ४४

कालेन प्राप्य तद्वार्तां गोदावरीनदीतटे।
सहायान्वानरान्कृत्वा बबन्ध सागरं हरिः॥ ४५

लङ्कां गत्वा रघुश्रेष्ठो जघान सायकेन च।
कालेन प्राप्य तं हत्वा रावणं बान्धवैः सह॥ ४६

तां च वह्निपरीक्षां च कारयामास सत्वरम्।
हुताशस्तत्र काले तु वास्तवीं जानकीं ददौ॥ ४७

उवाच छाया वह्निं च रामं च विनयान्विता।
करिष्यामीति किमहं तदुपायं वदस्व मे॥ ४८

श्रीरामाग्नी ऊचतुः

त्वं गच्छ तपसे देवि पुष्करं च सुपुण्यदम्।
कृत्वा तपस्यां तत्रैव स्वर्गलक्ष्मीर्भविष्यसि॥ ४९

सा च तद्वचनं श्रुत्वा प्रतप्य पुष्करे तपः।
दिव्यं त्रिलक्षवर्षं च स्वर्गलक्ष्मीर्बभूव ह॥ ५०

उस मायामृगने 'हा लक्ष्मण'—यह शब्द करके अपने समक्ष भगवान् श्रीहरिका दर्शन प्राप्त करके उनका स्मरण करते हुए सहसा अपने प्राण त्याग दिये॥ ३८॥

मृगका शरीर त्यागकर दिव्य स्वरूप धारण करके वह रत्ननिर्मित विमानसे वैकुण्ठ चला गया। वह मारीच पूर्वजन्ममें दोनों द्वारपालोंके सेवकके रूपमें वैकुण्ठके द्वारपर रहता था। अब द्वारपालोंके आदेशानुसार वह फिर वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया॥ ३९-४०॥

इधर 'हा लक्ष्मण'—यह आर्तनाद सुनकर सीताने रामके पास जानेके लिये लक्ष्मणको प्रेरित किया॥ ४१॥

रामके पास लक्ष्मणके चले जानेपर अत्यन्त दुर्धर्ष वह रावण अपनी मायासे सीताका हरण करके लंकाकी ओर चल दिया॥ ४२॥

लक्ष्मणको वनमें देखकर श्रीराम विषादग्रस्त हो गये। अपने आश्रमपर तत्काल पहुँचकर जब उन्होंने सीताको नहीं देखा तब वे मूर्च्छित हो गये और पुनः [चेतना आनेपर] उन्होंने बार-बार बहुत विलाप किया। इसके बाद सीताको खोजते हुए वे बार-बार इधर-उधर भटकने लगे॥ ४३-४४॥

कुछ समय पश्चात् गोदावरीनदीके तटपर सीताका समाचार मिलनेपर भगवान् श्रीरामने वानरोंको अपना सहायक बनाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ ४५॥

पुनः समय आनेपर लंका जाकर उन रघुश्रेष्ठ रामने बाणसे रावणको मार डाला। इस प्रकार बान्धवोंसहित उस रावणका वध करके श्रीरामने तत्काल उन सीताकी अग्निपरीक्षा करायी। उसी समय अग्निदेवने वास्तविक सीता श्रीरामको सौंप दी॥ ४६-४७॥

तब छायामयी सीताने विनम्र होकर अग्निदेव और श्रीरामसे कहा—अब मैं क्या करूँ? मुझे वह उपाय बताइये॥ ४८॥

श्रीराम और अग्निदेव बोले—हे देवि! तुम तपस्या करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें जाओ। वहाँ तपस्या करके तुम स्वर्गलक्ष्मी बनोगी। वे यह वचन सुनकर पुष्करक्षेत्रमें जाकर दिव्य तीन लाख वर्षोंतक कठिन तपस्या करके स्वर्गलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं॥ ४९-५०॥

सा च कालेन तपसा यज्ञकुण्डसमुद्भवा।
कामिनी पाण्डवानां च द्रौपदी द्रुपदात्मजा॥ ५१

कृते युगे वेदवती कुशध्वजसुता शुभा।
त्रेतायां रामपत्नी च सीतेति जनकात्मजा॥ ५२

तच्छाया द्रौपदी देवी द्वापरे द्रुपदात्मजा।
त्रिहायणी च सा प्रोक्ता विद्यमाना युगत्रये॥ ५३

नारद उवाच

प्रियाः पञ्च कथं तस्या बभूवुर्मुनिपुङ्गव।
इति मच्चित्तसंदेहं भञ्ज संदेहभञ्जन॥ ५४

श्रीनारायण उवाच

लङ्कायां वास्तवी सीता रामं सम्प्राप नारद।
रूपयौवनसम्पन्ना छाया च बहुचिन्तया॥ ५५

रामाग्न्योराज्ञया तप्तुमुपास्ते शङ्करं परम्।
कामातुरा पतिव्यग्रा प्रार्थयन्ती पुनः पुनः॥ ५६

पतिं देहि पतिं देहि पतिं देहि त्रिलोचन।
पतिं देहि पतिं देहि पञ्चवारं चकार सा॥ ५७

शिवस्तत्प्रार्थनां श्रुत्वा प्रहस्य रसिकेश्वरः।
प्रिये तव प्रियाः पञ्च भविष्यन्ति वरं ददौ॥ ५८

तेन सा पाण्डवानां च बभूव कामिनी प्रिया।
इति ते कथितं सर्वं प्रस्तावं वास्तवं शृणु॥ ५९

अथ सम्प्राप्य लङ्कायां सीतां रामो मनोहराम्।
विभीषणाय तां लङ्कां दत्त्वायोध्यां ययौ पुनः॥ ६०

एकादशसहस्राब्दं कृत्वा राज्यं च भारते।
जगाम सर्वैर्लोकैश्च सार्धं वैकुण्ठमेव च॥ ६१
कमलांशा वेदवती कमलायां विवेश सा।

कालक्रमसे वे ही देवी तपस्याके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न होकर महाराज द्रुपदकी पुत्री तथा पाण्डवोंकी प्रिया द्रौपदी बनीं॥ ५१॥

इस प्रकार सत्ययुगमें कुशध्वजकी वही कन्या कल्याणमयी वेदवती त्रेतायुगमें जनककी पुत्री सीता हुईं और बादमें वे श्रीरामकी पत्नी बनीं। पुनः वही छायासीता द्वापरमें द्रुपदकी पुत्री देवी द्रौपदीके रूपमें आविर्भूत हुईं। अतः तीनों युगोंमें विद्यमान रहनेवाली उस देवीको 'त्रिहायणी' भी कहा गया है॥ ५२-५३॥

नारदजी बोले—शंकाओंका समाधान करनेवाले हे मुनिश्रेष्ठ! उस द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए? मेरे मनका यह सन्देह दूर कीजिये॥ ५४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! जब लंकामें वास्तविक सीता भगवान् रामको प्राप्त हो गयीं, तब रूप एवं यौवनसे सम्पन्न छायासीता महान् चिन्तासे व्याकुल हो उठी॥ ५५॥

तदनन्तर भगवान् श्रीराम और अग्निकी आज्ञाके अनुसार वह भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। कामातुर वह पतिप्राप्तिके लिये व्यग्र होकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगी—'हे त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये'। ऐसा उसने पाँच बार कहा था॥ ५६-५७॥

उस प्रार्थनाको सुनकर रसिकेश्वर शंकरने हँसकर यह वर दे दिया—'हे प्रिये! तुम्हारे पाँच पति होंगे'। [हे नारद!] इसीलिये वे छायासीता [द्वापरमें] पाँचों पाण्डवोंकी प्रिय भार्या हुईं। इस प्रकार मैंने आपको यह सब बता दिया, अब वास्तविक प्रसंग सुनिये॥ ५८-५९॥

भगवान् श्रीराम लंकामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके अनन्तर वह लंका विभीषणको सौंपकर अयोध्या वापस चले गये और भारतवर्षमें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके समस्त पुरवासियों-सहित वैकुण्ठ चले गये। लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत वह वेदवती लक्ष्मीके विग्रहमें समाविष्ट हो गयी॥ ६०-६१$\frac{1}{2}$॥

कथितं पुण्यमाख्यानं पुण्यदं पापनाशनम्॥ ६२

सततं मूर्तिमन्तश्च वेदाश्चत्वार एव च।
सन्ति यस्याश्च जिह्वाग्रे सा च वेदवती श्रुता॥ ६३

धर्मध्वजसुताख्यानं निबोध कथयामि ते॥ ६४

इस प्रकार मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा पापनाशक आख्यान आपसे कह दिया। मूर्तिमान् रूपमें चारों वेद उसकी जिह्वाके अग्रभागपर निरन्तर विराजमान रहते थे, इसीलिये वह वेदवती नामसे प्रसिद्ध थी। अब मैं आपको धर्मध्वजकी कन्याका आख्यान बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६२—६४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे महालक्ष्म्या
वेदवतीरूपेण राजगृहे जन्मवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग

श्रीनारायण उवाच

धर्मध्वजस्य पत्नी माधवीति च विश्रुता।
नृपेण सार्धं सारामे रेमे च गन्धमादने॥ १

शय्यां रतिकरीं कृत्वा पुष्पचन्दनचर्चिताम्।
चन्दनालिप्तसर्वाङ्गीं पुष्पचन्दनवायुना॥ २

स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी रत्नभूषणभूषिता।
कामुकी रसिका सृष्टा रसिकेन च संयुता॥ ३

सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः।
गतं देववर्षशतं न ज्ञातं च दिवानिशम्॥ ४

ततो राजा मतिं प्राप्य सुरताद्विरराम च।
कामुकी सुन्दरी किञ्चिन्न च तृप्तिं जगाम सा॥ ५

दधार गर्भं सा सद्यो दैवादब्दशतं सती।
श्रीगर्भा श्रीयुता सा च सम्बभूव दिने दिने॥ ६

शुभे क्षणे शुभदिने शुभयोगे च संयुते।
शुभलग्ने शुभांशे च शुभस्वामिग्रहान्विते॥ ७

कार्तिकीपूर्णिमायां तु सितवारे च पाद्मज।
सुषाव सा च पद्मांशां पद्मिनीं तां मनोहराम्॥ ८

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा धर्मध्वजकी पत्नी माधवी नामसे प्रसिद्ध थी। वह राजाके साथ गन्धमादनपर्वतपर एक सुरम्य उपवनमें विहार करती थी॥ १॥

पुष्प और चन्दनसे सुरभित सुखदायी शय्यापर अपने समस्त अंगोंको चन्दनसे सुसज्जितकर, रत्नाभरणोंसे विभूषित हो पुष्प-चन्दनादिसे सुगन्धित पवनका सुख लेते हुए वह स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सर्वांगसुन्दरी अपने रसिक पतिके साथ कामोपभोगमें लगी रहती थी॥ २-३॥

रतिक्रीड़ाके विज्ञ वे दोनों कभी भी भोगसे विरत नहीं होते थे। इस प्रकार उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु उन्हें दिन-रातका भी ज्ञान नहीं रहा॥ ४॥

तदनन्तर राजाके हृदयमें कुछ ज्ञानका उदय होनेपर वे भोगसे विरत हो गये, किंतु वह कामासक्त सुन्दरी पूर्ण रूपसे तृप्त नहीं हुई। दैवयोगसे उसने शीघ्र ही गर्भ धारण कर लिया। श्रीस्वरूप गर्भवाली वह दिनों-दिन सौन्दर्यसम्पन्न होती गयी। उस साध्वीका गर्भ सौ वर्षोंतक रहा॥ ५-६॥

हे नारद! उस माधवीने कार्तिकपूर्णिमा तिथिमें शुक्रवारको शुभ दिन, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न, शुभ अंश तथा शुभ स्वामिग्रहसे युक्त उत्तम मुहूर्तमें लक्ष्मीकी अंशस्वरूपिणी तथा पद्मिनीतुल्य एक मनोहर कन्याको जन्म दिया॥ ७-८॥

शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्।
पक्वबिम्बाधरोष्ठीं च पश्यन्तीं सस्मितां गृहम्॥ ९

हस्तपादतलारक्तां निम्ननाभिं मनोरमाम्।
तदधस्त्रिवलीयुक्तां नितम्बयुगवर्तुलाम्॥ १०

शीते सुखोष्णसर्वाङ्गीं ग्रीष्मे च सुखशीतलाम्।
श्यामां सुकेशीं रुचिरां न्यग्रोधपरिमण्डलाम्॥ ११

पीतचम्पकवर्णाभां सुन्दरीष्वेव सुन्दरीम्।
नरा नार्यश्च तां दृष्ट्वा तुलनां दातुमक्षमाः॥ १२

तेन नाम्ना च तुलसीं तां वदन्ति मनीषिणः।
सा च भूमिष्ठमात्रेण योग्या स्त्री प्रकृतिर्यथा॥ १३

सर्वैर्निषिद्धा तपसे जगाम बदरीवनम्।
तत्र देवाब्दलक्षं च चकार परमं तपः॥ १४

मनसा नारायणः स्वामी भवितेति च निश्चिता।
ग्रीष्मे पञ्चतपाः शीते तोयवस्त्रा च प्रावृषि॥ १५

आसनस्था वृष्टिधाराः सहन्तीति दिवानिशम्।
विंशत्सहस्रवर्षं च फलतोयाशना च सा॥ १६

त्रिंशत्सहस्रवर्षं च पत्राहारा तपस्विनी।
चत्वारिंशत्सहस्राब्दं वाय्वाहारा कृशोदरी॥ १७

ततो दशसहस्राब्दं निराहारा बभूव सा।
निर्लक्ष्यां चैकपादस्थां दृष्ट्वा तां कमलोद्भवः॥ १८

समाययौ वरं दातुं परं बदरिकाश्रमम्।
चतुर्मुखं च सा दृष्ट्वा ननाम हंसवाहनम्॥ १९
तामुवाच जगत्कर्ता विधाता जगतामपि।

उस कन्याका मुख शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान थे, ओष्ठ पके हुए बिम्बाफलके सदृश थे, उस समय वह कन्या मुसकराती हुई अपने घरको देख रही थी, उसके हाथ-पैरके तलवे लाल थे, उसकी नाभि गम्भीर थी, उसका विग्रह मनको मुग्ध कर देनेवाला था, उसका कटिप्रदेश तीन वलियोंसे युक्त था। उसके दोनों नितम्ब गोल थे। शीतकालमें सुख देनेके लिये वह सम्पूर्ण उष्ण अंगोंवाली और ग्रीष्मकालमें शीतल अंगोंवाली थी। वह श्यामा सुन्दरी वटवृक्षको घेरकर शोभित होनेवाले वरोहोंकी भाँति बड़े सुन्दर केशपाशसे सुसज्जित थी, वह पीत चम्पकके वर्णके समान आभावाली थी, वह सुन्दरियोंकी भी सुन्दरी थी—ऐसे अनुपम सौन्दर्यवाली उस कन्याको देखकर सभी स्त्री और पुरुष किसीके साथ उसकी तुलना करनेमें असमर्थ थे, इसलिये विद्वान् पुरुष उसे तुलसी नामसे पुकारते हैं। पृथ्वीपर आते ही वह प्रकृतिदेवी-जैसी योग्य स्त्री हो गयी॥ ९—१३॥

सभी लोगोंद्वारा मना किये जानेपर भी वह तपस्या करनेके उद्देश्यसे बदरीवन चली गयी और वहाँ उसने दिव्य एक लाख वर्षोंतक कठिन तप किया। स्वयं भगवान् नारायण मेरे स्वामी हों—ऐसा अपने मनमें निश्चय करके वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापती थी, जाड़ेके समयमें गीले वस्त्र पहनती थी और वर्षाऋतुमें एक आसनपर बैठकर जलधाराओंको सहती हुई दिन-रात तप करती थी। वह तपस्विनी बीस हजार वर्षोंतक फल और जलके आहारपर, तीस हजार वर्षोंतक पत्तोंके आहारपर और चालीस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर रही। तत्पश्चात् वह कृशोदरी दस हजार वर्षोंतक निराहार रही॥ १४—१७½॥

इस प्रकार उसे निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर स्थित रहकर तपस्या करते हुए देखकर ब्रह्माजी उसे वर प्रदान करनेके लिये उत्तम बदरिकाश्रम आये॥ १८½॥

हंसपर विराजमान चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर उस तुलसीने प्रणाम किया। तब जगत्की सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा उससे कहने लगे—॥ १९½॥

ब्रह्मोवाच

वरं वृणीष्व तुलसि यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ २०

हरिभक्तिं हरेर्दास्यमजरामरतामपि।

तुलस्युवाच

शृणु तात प्रवक्ष्यामि यन्मे मनसि वाञ्छितम्॥ २१

सर्वज्ञस्यापि पुरतः का लज्जा मम साम्प्रतम्।
अहं तु तुलसी गोपी गोलोकेऽहं स्थिता पुरा॥ २२

कृष्णप्रिया किंकरी च तदंशा तत्सखी प्रिया।
गोविन्दरतिसम्भुक्तामतृप्तां मां च मूर्च्छिताम्॥ २३

रासेश्वरी समागत्य ददर्श रासमण्डले।
गोविन्दं भर्त्सयामास मां शशाप रुषान्विता॥ २४

याहि त्वं मानवीं योनिमित्येवं च शशाप ह।
मामुवाच स गोविन्दो मदंशं च चतुर्भुजम्॥ २५

लभिष्यसि तपस्तप्त्वा भारते ब्रह्मणो वरात्।
इत्येवमुक्त्वा देवेशोऽप्यन्तर्धानं चकार सः॥ २६

देव्या भिया तनुं त्यक्त्वा प्राप्तं जन्म गुरो भुवि।
अहं नारायणं कान्तं शान्तं सुन्दरविग्रहम्॥ २७

साम्प्रतं तं पतिं लब्धुं वरये त्वं च देहि मे।

ब्रह्मदेव उवाच

सुदामा नाम गोपश्च श्रीकृष्णाङ्गसमुद्भवः॥ २८

तदंशश्चातितेजस्वी लेभे जन्म च भारते।
साम्प्रतं राधिकाशापाद्दनुवंशसमुद्भवः॥ २९
शङ्खचूडेति विख्यातस्त्रैलोक्ये न च तत्समः।

गोलोके त्वां पुरा दृष्ट्वा कामोन्मथितमानसः॥ ३०

ब्रह्माजी बोले—हे तुलसि! हरिकी भक्ति, हरिकी दासता और अजरता-अमरता—इनमेंसे जो भी तुम्हारे मनमें अभीष्ट हो, उसे माँग लो॥ २०½ ॥

तुलसी बोली—हे तात! सुनिये, मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे बता रही हूँ; क्योंकि सब कुछ जाननेवाले आप ब्रह्माके समक्ष अपनी बात कहनेमें मुझे अब लाज ही क्या है? मैं पूर्वजन्ममें तुलसी नामकी गोपी थी और गोलोकमें निवास करती थी। उस समय मैं भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अंशस्वरूपा तथा उनकी प्रेयसी सखीके रूपमें प्रतिष्ठित थी॥ २१-२२½ ॥

एक समय जब मैं भगवान् श्रीकृष्णके साथ विहारमें अचेत तथा अतृप्त अवस्थामें थी, तभी रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमण्डलमें आकर मुझे देख लिया। उन्होंने श्रीकृष्णकी बहुत भर्त्सना की और कुपित होकर मुझे शाप दे दिया था—'तुम मनुष्ययोनि प्राप्त करो'—यह शाप उन्होंने मुझे दे दिया॥ २३-२४½ ॥

तब उन गोविन्दने मुझसे कहा—'भारतवर्षमें जन्म लेकर घोर तपस्या करके तुम ब्रह्माजीके वरदानसे मेरे अंशस्वरूप चतुर्भुज विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त करोगी'। इस प्रकार कहकर वे देवेश्वर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। हे गुरो! देवी राधाके भयसे अपना वह शरीर त्यागकर मैंने अब भूमण्डलपर जन्म लिया है और सुन्दर विग्रहवाले तथा शान्तस्वभाव भगवान् नारायण जो उस समय मेरे पति थे, उन्हींको अब भी पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये वर माँग रही हूँ, आप मुझे यह वर दीजिये॥ २५—२७½ ॥

ब्रह्मदेव बोले—भगवान् श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत, उन्हींके अंशस्वरूप तथा परम तेजस्वी सुदामा नामक गोपने भी इस समय भारतवर्षमें जन्म लिया है। वह राधाके शापसे दनुवंशमें उत्पन्न हुआ है और शंखचूड़ नामसे विख्यात है, उसके समान तीनों लोकोंमें कोई भी नहीं है॥ २८-२९½ ॥

पूर्वकालमें एक बार गोलोकमें तुम्हें देखकर उसके मनमें कामभावना उत्पन्न हो गयी, किंतु राधिकाके प्रभावके कारण वह तुम्हें नहीं पा सका

विलम्भितुं न शशाक राधिकायाः प्रभावतः।
स च जातिस्मरस्तस्मात्सुदामाभूच्च सागरे॥ ३१

जातिस्मरा त्वमपि सा सर्वं जानासि सुन्दरि।
अधुना तस्य पत्नी त्वं सम्भविष्यसि शोभने॥ ३२

पश्चान्नारायणं शान्तं कान्तमेव वरिष्यसि।
शापान्नारायणस्यैव कलया दैवयोगतः॥ ३३

भविष्यसि वृक्षरूपा त्वं पूता विश्वपावनी।
प्रधाना सर्वपुष्पेषु विष्णुप्राणाधिका भवेः॥ ३४

त्वया विना च सर्वेषां पूजा च विफला भवेत्।
वृन्दावने वृक्षरूपा नाम्ना वृन्दावनीति च॥ ३५

त्वत्पत्रैर्गोपिगोपाश्च पूजयिष्यन्ति माधवम्।
वृक्षाधिदेवीरूपेण सार्धं कृष्णेन सन्ततम्॥ ३६

विहरिष्यसि गोपेन स्वच्छन्दं मद्वरेण च।
इत्येवं वचनं श्रुत्वा सस्मिता हृष्टमानसा॥ ३७

प्रणनाम च ब्रह्माणं तं च किञ्चिदुवाच सा।

तुलस्युवाच

यथा मे द्विभुजे कृष्णे वाञ्छा च श्यामसुन्दरे॥ ३८

सत्यं ब्रवीमि हे तात न तथा च चतुर्भुजे।
अतृप्ताहं च गोविन्दे दैवाच्छृङ्गारभङ्गतः॥ ३९

गोविन्दस्यैव वचनात्प्रार्थयामि चतुर्भुजम्।
त्वत्प्रसादेन गोविन्दं पुनरेव सुदुर्लभम्॥ ४०

ध्रुवमेव लभिष्यामि राधाभीतिं प्रमोचय।

ब्रह्मदेव उवाच

गृहाण राधिकामन्त्रं ददामि षोडशाक्षरम्॥ ४१

था। वह सुदामा इस समय समुद्रमें उत्पन्न हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातोंका स्मरण है। हे सुन्दरि! तुम्हें भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, अतः तुम सब कुछ भलीभाँति जाननेवाली हो। हे शोभने! अब इस जन्ममें तुम उसी सुदामाकी पत्नी बनोगी और बादमें शान्तस्वरूप भगवान् नारायणका पतिरूपमें वरण करोगी॥ ३०—३२½ ॥

दैवयोगसे उन्हीं भगवान् नारायणके शापसे तुम अपनी कलासे विश्वको पवित्र करनेवाली पावन वृक्षरूपमें प्रतिष्ठित होओगी। तुम समस्त पुष्पोंमें प्रधान मानी जाओगी और भगवान् विष्णुके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय रहोगी। तुम्हारे बिना की गयी सभी देवताओंकी पूजा व्यर्थ समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूप तुम वृन्दावनी नामसे विख्यात रहोगी। समस्त गोप और गोपिकाएँ तुम्हारे पत्रोंसे ही भगवान् माधवकी पूजा करेंगे। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर विहार करोगी॥ ३३—३६½ ॥

[हे नारद!] ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर तुलसी मुसकराने लगी और उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और फिर वह उनसे कुछ कहने लगी॥ ३७½ ॥

तुलसी बोली—हे तात! मैं यह सत्य कह रही हूँ कि दो भुजाओं वाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रति जैसी मेरी रुचि है, वैसी चार भुजाओंवाले श्रीविष्णुके लिये नहीं है; क्योंकि मैं दैवयोगसे शृंगार-भंग होनेके कारण गोविन्दसे अभी भी अतृप्त ही हूँ। मैं तो उन गोविन्दकी आज्ञामात्रसे ही चतुर्भुज श्रीहरिके लिये प्रार्थना कर रही हूँ। अब तो मैं आपकी कृपासे उन अत्यन्त दुर्लभ गोविन्दको निश्चितरूपसे प्राप्त कर लूँगी। हे प्रभो! साथ ही आप मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये॥ ३८—४०½ ॥

ब्रह्मदेव बोले—हे सुभगे! मैं तुम्हें भगवती राधिकाका सोलह अक्षरोंवाला मन्त्र प्रदान करता हूँ; तुम इसे ग्रहण कर लो। तुम मेरे वरके प्रभावसे उन

तस्याश्च प्राणतुल्या त्वं मद्वरेण भविष्यसि।
शृङ्गारं युवयोर्गोप्यं न ज्ञास्यति च राधिका॥ ४२

राधासमा त्वं सुभगे गोविन्दस्य भविष्यसि।
इत्येवमुक्त्वा दत्त्वा च देव्या वै षोडशाक्षरम्॥ ४३

मन्त्रं चैव जगद्धाता स्तोत्रं च कवचं परम्।
सर्वं पूजाविधानं च पुरश्चर्याविधिक्रमम्॥ ४४

परां शुभाशिषं चैव पूजां चैव चकार सा।
बभूव सिद्धा सा देवी तत्प्रसादाद्रमा यथा॥ ४५

सिद्धं मन्त्रेण तुलसी वरं प्राप यथोदितम्।
बुभुजे च महाभोगं यद्विश्वेषु च दुर्लभम्॥ ४६

प्रसन्नमनसा देवी तत्याज तपसः क्लमम्।
सिद्धे फले नराणां च दुःखं च सुखमुत्तमम्॥ ४७

भुक्त्वा पीत्वा च सन्तुष्टा शयनं च चकार सा।
तल्पे मनोरमे तत्र पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ४८

राधाके लिये प्राणतुल्य हो जाओगी। तुम दोनों (श्रीकृष्ण और तुलसी)-के गुप्त प्रेमको राधिका नहीं जान पायेगी। राधाके समान ही तुम गोविन्दकी प्रेयसी हो जाओगी॥ ४१-४२½ ॥

[हे मुने!] ऐसा कहकर जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माने देवी तुलसीको भगवती राधाके षोडशाक्षर-मन्त्र, स्तोत्र, उत्तम कवच, समस्त पूजाविधान और पुरश्चर्याविधिके क्रम बता करके उसे उत्तम शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् तुलसीने [पूर्वोक्त विधिसे भगवती राधाका] पूजन किया और उनकी कृपासे वह देवी तुलसी भगवती लक्ष्मीके समान सिद्ध हो गयी॥ ४३—४५॥

ब्रह्माजीने जैसा कहा था, उस मन्त्रके प्रभावसे ठीक वैसा ही वर तुलसीको प्राप्त हो गया। उसने विश्वमें दुर्लभ महान् सुखोंका भोग किया। मन प्रसन्न हो जानेके कारण उस देवीके तपस्याजनित सभी कष्ट दूर हो गये; क्योंकि फलकी प्राप्ति हो जानेके बाद मनुष्योंका दुःख उत्तम सुखमें परिणत हो जाता है॥ ४६-४७॥

तदनन्तर भोजन-पानादि करके तथा सन्तुष्ट होकर उस तुलसीने पुष्प-चन्दनसे चर्चित मनोहर शय्यापर शयन किया॥ ४८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे धर्मध्वजसुतातुलस्युपाख्यानवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

* * *

अथाष्टादशोऽध्यायः

तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़का दर्शन, ब्रह्माजीका शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिये आदेश देना

श्रीनारायण उवाच

तुलसी परितुष्टा च सुष्वाप हृष्टमानसा।
नवयौवनसम्पन्ना वृषध्वजवराङ्गना॥ १

चिक्षेप पञ्चबाणश्च पञ्चबाणांश्च तां प्रति।
पुष्पायुधेन सा दग्धा पुष्पचन्दनचर्चिता॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] एक समयकी बात है—वृषध्वजकी नवयौवनसम्पन्न कन्या तुलसी अत्यन्त सन्तुष्ट तथा प्रसन्नचित्त होकर शयन कर रही थी॥ १॥

उसी समय कामदेवने उसपर अपने पाँचों बाण चला दिये। पुष्प तथा चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली वह कन्या कामदेवके पुष्प-बाणसे परितप्त हो गयी। उसका सारा अंग पुलकित हो उठा, उसके शरीरमें

पुलकाङ्कितसर्वाङ्गी कम्पितारक्तलोचना।
क्षणं सा शुष्कतां प्राप क्षणं मूर्च्छामवाप ह॥ ३

क्षणमुद्विग्नतां प्राप क्षणं तन्द्रां सुखावहाम्।
क्षणं च दहनं प्राप क्षणं प्राप प्रसन्नताम्॥ ४

क्षणं सा चेतनां प्राप क्षणं प्राप विषण्णताम्।
उत्तिष्ठन्ती क्षणं तल्पाद् गच्छन्ती निकटे क्षणम्॥ ५

भ्रमन्ती क्षणमुद्वेगान्निवसन्ती क्षणं पुनः।
क्षणमेव समुद्वेगात्सुष्वाप पुनरेव सा॥ ६

पुष्पचन्दनतल्पं च तद् बभूवातिकण्टकम्।
विषहारि सुखं दिव्यं सुन्दरं च फलं जलम्॥ ७

निलयं च बिलाकारं सूक्ष्मवस्त्रं हुताशनः।
सिन्दूरपत्रकं चैव व्रणतुल्यं च दुःखदम्॥ ८

क्षणं ददर्श तन्द्रायां सुवेषं पुरुषं सती।
सुन्दरं च युवानं च सस्मितं रसिकेश्वरम्॥ ९

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्।
आगच्छन्तं माल्यवन्तं पिबन्तं तन्मुखाम्बुजम्॥ १०

कथयन्तं रतिकथां ब्रुवन्तं मधुरं मुहुः।
सम्भुक्तवन्तं तल्पे च समाश्लिष्यन्तमीप्सितम्॥ ११

पुनरेव तु गच्छन्तमागच्छन्तं च सन्निधौ।
यान्तं क्व यासि प्राणेश तिष्ठत्येवमुवाच सा॥ १२

पुनश्च चेतनां प्राप्य विललाप पुनः पुनः।
एवं सा यौवनं प्राप्य तस्थौ तत्रैव नारद॥ १३

शङ्खचूडो महायोगी जैगीषव्यान्मनोहरम्।
कृष्णमन्त्रं च सम्प्राप्य कृत्वा सिद्धं तु पुष्करे॥ १४

कँपकँपी होने लगी और उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह क्षणभरमें सूख जाती थी और दूसरे क्षणमें मूर्च्छित हो जाती थी, पुनः क्षणभरमें उद्विग्न हो उठती थी और फिर क्षणभरमें सुखदायक तन्द्रासे युक्त हो जाती थी। वह क्षणभरमें उत्तप्त हो जाती थी और फिर तुरंत प्रसन्न हो जाती थी। क्षणभरमें सचेत हो जाती थी और क्षणमें विषादग्रस्त हो जाती थी। वह कभी शय्यासे उठती हुई, कभी क्षणभरमें पासमें ही टहलती हुई, क्षणभरमें उद्वेगपूर्वक घूमती हुई और क्षणभरमें बैठती हुई दिखायी पड़ती थी और फिर क्षणभरमें ही अत्यन्त उद्विग्न होकर अपनी शय्यापर पुनः सो जाती थी॥ २—६॥

पुष्प तथा चन्दनसे सुसज्जित शय्या उसे काँटों-जैसी लगने लगी, दिव्य सुख और सुन्दर फल तथा जल उसके लिये विषतुल्य हो गये। उसे अपना भव्य भवन बिलके समान, शरीरके कोमल वस्त्र अग्निके समान और मस्तकका सिन्दूर दुःखदायी व्रणके समान लगने लगा॥ ७-८॥

थोड़ी देरमें तन्द्राकी अवस्थामें उस साध्वी तुलसीने सुन्दर वेष धारण किये हुए, अपने सभी अंगोंमें चन्दन लगाये हुए तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत एक सुन्दर युवा अवस्थावाले, मुसकानयुक्त तथा परम रसिक पुरुषको देखा। मालासे सुशोभित वह युवक उसके मुखकमलका पान करनेके लिये उसकी ओर आ रहा था, वह निरन्तर रतिक्रीड़ा-सम्बन्धी कथाएँ कह रहा था और मधुर-मधुर बोल रहा था तथा सहसा अपनी भुजाओंमें आलिंगित करके शय्यापर विहार कर रहा था। कुछ ही क्षणोंमें वह चला गया और फिर पास आ गया। इसके बाद पुनः जाते हुए उस युवकसे तुलसीने कहा—'हे प्राणनाथ! आप कहाँ जा रहे हैं? बैठ जाइये।' तत्पश्चात् जाग जानेपर वह तुलसी बार-बार विलाप करने लगी। हे नारद! इस प्रकार युवावस्थाको प्राप्तकर वह तुलसी वहींपर स्थित रही॥ ९—१३॥

शंखचूड़ जैगीषव्यमुनिसे श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र प्राप्त करके और उस मन्त्रको पुष्करक्षेत्रमें सिद्ध करके महान् योगी हो गया था। सभी मंगलोंका भी

कवचं च गले बद्ध्वा सर्वमङ्गलमङ्गलम्।
ब्रह्मणश्च वरं प्राप्य यत्ते मनसि वाञ्छितम्॥ १५

आज्ञया ब्रह्मणः सोऽपि बदरीं च समाययौ।
आगच्छन्तं शङ्खचूडं ददर्श तुलसी मुने॥ १६

नवयौवनसम्पन्नं कामदेवसमप्रभम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभं रत्नभूषणभूषितम्॥ १७

शरत्पार्वणचन्द्रास्यं शरत्पङ्कजलोचनम्।
रत्नसारविनिर्माणविमानस्थं मनोहरम्॥ १८

रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्।
पारिजातप्रसूनानां मालावन्तं च सुस्मितम्॥ १९

कस्तूरीकुङ्कुमायुक्तं सुगन्धिचन्दनान्वितम्।
सा दृष्ट्वा सन्निधावेनं मुखमाच्छाद्य वाससा॥ २०

सस्मिता तं निरीक्षन्ती सकटाक्षं पुनः पुनः।
बभूवातिनम्रमुखी नवसङ्गमलज्जिता॥ २१

शरदिन्दुविनिन्द्यैकस्वमुखेन्दुविराजिता।
अमूल्यरत्ननिर्माणयावकावलिसंयुता॥ २२

मणीन्द्रसारनिर्माणक्वणन्मञ्जीररञ्जिता।
दधती कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्॥ २३

अमूल्यरत्ननिर्माणमकराकृतिकुण्डला।
चित्रकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजिता॥ २४

रत्नेन्द्रसारहारेण स्तनमध्यस्थलोज्ज्वला।
रत्नकङ्कणकेयूरशङ्खभूषणभूषिता॥ २५

रत्नाङ्गुलीयकैर्दिव्यैरङ्गुल्यावलिराजिता।
दृष्ट्वा तां ललितां रम्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम्॥ २६
उवास तत्समीपे तु मधुरं तामुवाच सः।

मंगल करनेवाले उस कवचको गलेमें बाँधकर और ब्रह्माजीसे 'जो तुम्हारे मनमें अभिलषित हो, वह पूर्ण हो जाय'—ऐसा वर प्राप्तकर वह शंखचूड़ भी ब्रह्माकी आज्ञासे बदरीवन आ गया॥ १४-१५ १/२ ॥

हे मुने! तुलसीने आते हुए शंखचूड़को देख लिया। वह नवयौवनसे सम्पन्न था, उसकी कान्ति कामदेवके समान थी, उसका वर्ण श्वेत चम्पाकी आभाके समान था, वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित था, उसका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलसदृश थे, वह अमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान था, वह अत्यन्त मनोहर था, दो रत्नमय कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल शोभायमान था, उसने पारिजात पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी, उसका मुखमण्डल मुसकानसे भरा हुआ था और उसका सर्वांग कस्तूरी, कुमकुमसे युक्त तथा सुगन्धित चन्दनसे अनुलिप्त था—ऐसे शंखचूड़को अपने पास देखकर वस्त्रसे अपना मुख ढँककर मुसकराती हुई तथा कटाक्षके साथ बार-बार उसकी ओर देखती हुई तुलसीने नवमिलनके कारण लज्जावश अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया॥ १६—२१॥

उसका चन्द्रसदृश मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा था, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित नूपुरोंकी पंक्तिसे वह सुशोभित हो रही थी, सर्वोत्तम मणिसे निर्मित तथा सुन्दर शब्द करती हुई करधनीसे वह सुशोभित हो रही थी, वह मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केशपाश धारण किये हुई थी, उसने बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल अपने कानोंमें धारण कर रखे थे, चित्रमय दो कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल सुशोभित था, सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हारके द्वारा उसके वक्ष:स्थलका मध्यभाग उज्ज्वल दिखायी दे रहा था, रत्नमय कंकण-केयूर-शंख आदि आभूषणोंसे वह सुशोभित थी। रत्नजटित दिव्य अँगूठियाँ उसकी अँगुलियोंको सुशोभित कर रही थीं—ऐसी भव्य, रमणीय, सुशील, सुन्दर तथा साध्वी तुलसीको देखकर वह शंखचूड़ उसके पास बैठ गया और मधुर वाणीमें उससे कहने लगा॥ २२—२६ १/२ ॥

शङ्खचूड उवाच

का त्वं कस्य च कन्या च धन्या मान्या च योषिताम्॥ २७

का त्वं मानिनि कल्याणि सर्वकल्याणदायिनि।
मौनीभूते किङ्करे मां सम्भाषां कुरु सुन्दरि॥ २८

इत्येवं वचनं श्रुत्वा सकामा वामलोचना।
सस्मिता नम्रवदना सकामं तमुवाच सा॥ २९

तुलस्युवाच

धर्मध्वजसुताहं च तपस्यायां तपोवने।
तपस्विन्यहं तिष्ठामि कस्त्वं गच्छ यथासुखम्॥ ३०

कामिनीं कुलजातां च रहस्येकाकिनीं सतीम्।
न पृच्छति कुले जात इत्येवं मे श्रुतौ श्रुतम्॥ ३१

लम्पटोऽसत्कुले जातो धर्मशास्त्रार्थवर्जितः।
येनाश्रुतः श्रुतेरर्थः स कामीच्छति कामिनीम्॥ ३२

आपातमधुरां मत्तामन्तकां पुरुषस्य ताम्।
विषकुम्भाकाररूपाममृतास्यां च सन्ततम्॥ ३३

हृदये क्षुरधाराभां शश्वन्मधुरभाषिणीम्।
स्वकार्यपरिनिष्पत्त्यै तत्परां सततं च ताम्॥ ३४

कार्यार्थे स्वामिवशगामन्यथैवावशां सदा।
स्वान्तर्मलिनरूपां च प्रसन्नवदनेक्षणाम्॥ ३५

श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमतिदूषितम्।
तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः॥ ३६

तासां को वा रिपुर्मित्रं प्रार्थयन्ति नवं नवम्।
दृष्ट्वा सुवेषं पुरुषमिच्छन्ति हृदये सदा॥ ३७

शंखचूड़ बोला—हे मानिनि! हे कल्याणि! हे सर्वकल्याणदायिनि! तुम कौन हो और किसकी कन्या हो? तुम समस्त स्त्रियोंमें धन्य तथा मान्य हो। हे सुन्दरि! स्तब्ध हुए मुझ सेवकसे वार्तालाप करो॥ २७-२८॥

शंखचूड़का यह वचन सुनकर सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कामयुक्त तुलसी उस कामपीड़ित शंखचूड़से मुसकराते हुए तथा नीचेकी ओर मुख झुकाकर कहने लगी॥ २९॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी पुत्री हूँ और इस तपोवनमें तपस्या करनेके निमित्त एक तपस्विनीके रूपमें रह रही हूँ। आप कौन हैं? आप यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये। श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न पुरुष उच्च कुलमें उत्पन्न किसी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें बातचीत नहीं करते—ऐसा मैंने श्रुतिमें सुना है॥ ३०-३१॥

जो नीच कुलमें उत्पन्न है तथा धर्मशास्त्रके ज्ञानसे वंचित है और जिसे श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी अवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामासक्त होकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्री ऊपरसे बड़ी मधुर दिखायी देती है, किंतु सदा अभिमानमें चूर रहती है, पुरुषके लिये विनाशक होती है, वह विषसे परिपूर्ण ऐसे घटके सदृश होती है, जिसके मुखपर अमृत लगा हुआ हो, स्त्रीका हृदय छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है, किंतु ऊपरसे वह सदा मधुर बातें करती है, स्त्री अपना ही प्रयोजन सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहती है, अपने कार्यकी सिद्धिके लिये ही वह स्वामीके वशमें रहती है, अन्यथा वह सदा वशमें न रहनेवाली है, स्त्रीका हृदय अत्यन्त दूषित रहता है और उसके मुखमण्डल तथा नेत्रोंसे सदा प्रसन्नता झलकती रहती है॥ ३२—३५॥

श्रुतियों तथा पुराणोंमें जिन स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त दूषित बताया गया है; बुरे विचारवाले व्यक्तिको छोड़कर ऐसा कौन विद्वान् तथा बुद्धिमान् होगा, जो उनपर विश्वास कर सकता है॥३६॥

उनका कौन शत्रु है और कौन मित्र? वे नित्य नये-नये पुरुषकी कामना करती हैं। वे किसी भी सुन्दर वेषयुक्त पुरुषको देखकर उसे मन-ही-मन चाहने लगती हैं॥ ३७॥

बाह्ये स्वार्थं सतीत्वं च ज्ञापयन्ती प्रयत्नतः।
शश्वत्कामा च रामा च कामाधारा मनोहरा॥ ३८

बाह्ये छलात्खेदयन्ती स्वान्तमैथुनमानसा।
कान्तं हसन्ती रहसि बाह्येऽतीव सुलज्जिता॥ ३९

मानिनी मैथुनाभावे कोपना कलहाङ्कुरा।
सुप्रीता भूरिसम्भोगात्स्वल्पमैथुनदुःखिता॥ ४०

सुमिष्टान्नाच्छीततोयादाकाङ्क्षन्ती च मानसे।
सुन्दरं रसिकं कान्तं युवानं गुणिनं सदा॥ ४१

सुतात्परमभिस्नेहं कुर्वती रसिकोपरि।
प्राणाधिकं प्रियतमं सम्भोगकुशलं प्रियम्॥ ४२

पश्यन्ती रिपुतुल्यं च वृद्धं वा मैथुनाक्षमम्।
कलहं कुर्वती शश्वत्तेन सार्धं सुकोपना॥ ४३

वाचया भक्षयन्ती तं सर्प आखुमिवोल्बणम्।
दुःसाहसस्वरूपा च सर्वदोषाश्रया सदा॥ ४४

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां दुःसाध्या मोहरूपिणी।
तपोमार्गार्गला शश्वन्मोक्षद्वारकपाटिका॥ ४५

हरेर्भक्तिव्यवहिता सर्वमायाकरण्डिका।
संसारकारागारे च शश्वन्निगडरूपिणी॥ ४६

इन्द्रजालस्वरूपा च मिथ्या च स्वप्नरूपिणी।
बिभ्रती बाह्यसौन्दर्यमधोऽङ्गमतिकुत्सितम्॥ ४७

नानाविण्मूत्रपूयानामाधारं मलसंयुतम्।
दुर्गन्धिदोषसंयुक्तं रक्तारक्तमसंस्कृतम्॥ ४८

वे बाहरसे अपना हित साधनेके लिये अपने सतीत्वका प्रयत्नपूर्वक प्रदर्शन करती हैं, किंतु वास्तवमें सदा कामातुर रहती हैं। मनको आकृष्ट करनेवाली वे स्त्रियाँ कामदेवका आधारस्तम्भ होती हैं॥ ३८॥

स्त्री बाहरसे छलपूर्वक [अपनेको वासनावृत्तिसे रहित दिखाती हुई] अपने प्रेमीको सन्तप्त करती है, किंतु मनमें समागमकी अभिलाषा रखती है। वह बाहरसे अत्यन्त लज्जित दीखती है, किंतु एकान्तमें अपने प्रेमीके साथ हास-परिहास करती है॥ ३९॥

रतिका सुयोग न मिलनेपर मानिनी स्त्री कुपित हो जाती है और कलह करने लगती है। यथेच्छ सम्भोगसे स्त्री प्रसन्न रहती है और स्वल्प सम्भोगसे दुःखी हो जाती है॥ ४०॥

स्त्री स्वादिष्ट भोजन और शीतल जलकी अपेक्षा सुन्दर, रसिक, गुणी तथा युवक पतिकी ही आकांक्षा अपने मनमें रखती है॥ ४१॥

स्त्री अपने पुत्रसे भी अधिक स्नेह रसिक पुरुषपर रखती है। वह सम्भोगमें कुशल प्रेमीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती है॥ ४२॥

स्त्री वृद्ध तथा सम्भोग करनेमें अक्षम पुरुषको शत्रुके समान समझती है और वह अत्यन्त कुपित होकर उस पुरुषके साथ सदा कलह करती रहती है। जिस प्रकार सर्प चूहेपर झपटता है, उसी प्रकार स्त्री वैसे पुरुषको बात-बातपर खाने दौड़ती है। नारी दुःसाहसकी मूर्ति तथा सर्वदा समस्त दोषोंकी आश्रयस्थली है॥ ४३-४४॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी स्त्री दुःसाध्य है। मोहस्वरूपिणी नारी तपस्याके मार्गमें अर्गलादण्डके समान और मोक्षके द्वारपर कपाटके समान बाधक होती है। वह भगवान्‌की भक्तिमें बाधा डालनेवाली तथा सभी प्रकारकी मायाकी पिटारी है। वह संसाररूपी कारागारमें सदा जकड़े रखनेके लिये जंजीरके समान है। स्त्री इन्द्रजालस्वरूप तथा स्वप्नके समान मिथ्या कही गयी है। स्त्री बाह्य सौन्दर्य तो धारण करती है, किंतु इसके भीतरी अंग अत्यन्त कुत्सित रहते हैं। स्त्रीका शरीर विष्ठा-मूत्र-पीब आदिका आधार, मलयुक्त, दुर्गन्धि-दोषसे परिपूर्ण,

मायारूपा मायिनां च विधिना निर्मिता पुरा।
विषरूपा मुमुक्षूणामदृश्याप्यभिवाञ्छताम्॥ ४९

इत्युक्त्वा तुलसी तं तु विरराम च नारद।
सस्मितः शङ्खचूडश्च प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ५०

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देवि न च सर्वमलीककम्।
किञ्चित्सत्यमलीकं च किञ्चिन्मत्तो निशामय॥ ५१

निर्मितं द्विविधं धात्रा स्त्रीरूपं सर्वमोहनम्।
कृत्वा रूपं वास्तवं च प्रशस्यं चाप्रशंसितम्॥ ५२

लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिकादिका।
सृष्टिसूत्रस्वरूपा च आद्या सृष्टिर्विनिर्मिता॥ ५३

एतासामंशरूपं च स्त्रीरूपं वास्तवं स्मृतम्।
तत्प्रशस्यं यशोरूपं सर्वमङ्गलकारकम्॥ ५४

शतरूपा देवहूती स्वधा स्वाहा च दक्षिणा।
छायावती रोहिणी च वरुणानी शची तथा॥ ५५

कुबेरस्य च पत्नी याप्यदितिश्च दितिस्तथा।
लोपामुद्रानसूया च कोटभी तुलसी तथा॥ ५६

अहल्यारुन्धती मेना तारा मन्दोदरी तथा।
दमयन्ती वेदवती गङ्गा च मनसा तथा॥ ५७

पुष्टिस्तुष्टिः स्मृतिर्मेधा कालिका च वसुन्धरा।
षष्ठी मङ्गलचण्डी च मूर्तिश्च धर्मकामिनी॥ ५८

स्वस्तिः श्रद्धा च शान्तिश्च कान्तिः क्षान्तिस्तथा परा।
निद्रा तन्द्रा क्षुत्पिपासा सन्ध्या रात्रिदिनानि च॥ ५९

सम्पत्तिर्धृतिकीर्ती च क्रिया शोभा प्रभा शिवा।
यत्स्त्रीरूपं च सम्भूतमुत्तमं तु युगे युगे॥ ६०

कलाकलांशरूपं च स्वर्वेश्यादिकमेव च।
तदप्रशस्यं विश्वेषु पुंश्चलीरूपमेव च॥ ६१

सत्त्वप्रधानं यद्रूपं तद्युक्तं च प्रभावतः।
तदुत्तमं च विश्वेषु साध्वीरूपं प्रशंसितम्॥ ६२

रक्तरंजित तथा अपवित्र रहता है। पूर्व समयमें ब्रह्माने स्त्रीका सृजन मायावी पुरुषोंके लिये मायास्वरूपिणीके रूपमें, मुमुक्षुजनोंके लिये विषस्वरूपिणीके रूपमें तथा उसकी कामना करनेवालोंके लिये अदृश्यरूपिणीके रूपमें किया था॥ ४५—४९॥

हे नारद! उस शंखचूड़से ऐसा कहकर जब तुलसी चुप हो गयी, तब उसने हँसकर कहना आरम्भ किया॥ ५०॥

शंखचूड़ बोला—हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब असत्य नहीं है, किंतु अब मुझसे भी कुछ सत्य तथा कुछ असत्यके विषयमें सुन लीजिये॥ ५१॥

विधाताने सबको मोहित करनेवाला नारीरूप [वास्तविक और अवास्तविक] दो प्रकारसे रचा है—वास्तविक रूप प्रशंसनीय और दूसरा रूप निन्दनीय है। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा आदि आद्या शक्तियाँ सृष्टिकी सूत्ररूपा हैं, इन्हींसे सृष्टिका प्रारम्भ हुआ है॥ ५२-५३॥

इन देवियोंके अंशसे प्रकट स्त्रीरूप वास्तविक कहा गया है; वह श्रेष्ठ, यशोरूप तथा समस्त मंगलोंका कारण है। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरकी पत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्मपत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—ये देवियाँ जो स्त्रीरूपमें प्रकट हैं, वे प्रत्येक युगमें श्रेष्ठ मानी गयी हैं॥ ५४—६०॥

जगदम्बाकी कलाके कलांशसे उत्पन्न जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, उन्हें अप्रशस्त तथा सम्पूर्ण लोकोंमें पुंश्चलीरूप कहा गया है॥ ६१॥

स्त्रियोंका जो सत्त्व-प्रधान रूप है, वही सर्वथा समीचीन है। अपने प्रभावके कारण वे ही उत्तम तथा साध्वीस्वरूप स्त्रियाँ सम्पूर्ण लोकोंमें प्रशंसित हैं।

तद्वास्तवं च विज्ञेयं प्रवदन्ति मनीषिणः।
रजोरूपं तमोरूपं कलासु विविधं स्मृतम्॥ ६३

मध्यमा रजसश्चांशास्तास्तु भोगेषु लोलुपाः।
सुखसम्भोगवश्याश्च स्वकार्ये निरताः सदा॥ ६४

कपटा मोहकारिण्यो धर्मार्थविमुखाः सदा।
रजोरूपस्य साध्वीत्वमतो नैवोपजायते॥ ६५

इदं मध्यमरूपं च प्रवदन्ति मनीषिणः।
तमोरूपं दुर्निवार्यमधमं तद्विदुर्बुधाः॥ ६६

न पृच्छति कुले जातः पण्डितश्च परस्त्रियम्।
निर्जने निर्जले वापि रहस्यपि परस्त्रियम्॥ ६७

आगच्छामि त्वत्समीपमाज्ञया ब्रह्मणोऽधुना।
गान्धर्वेण विवाहेन त्वां ग्रहीष्यामि शोभने॥ ६८

अहमेव शङ्खचूडो देवविद्रावकारकः।
दनुवंश्यो विशेषेण सुदामाहं हरेः पुरा॥ ६९

अहमष्टसु गोपेषु गोपोऽपि पार्षदेषु च।
अधुना दानवेन्द्रोऽहं राधिकायाश्च शापतः॥ ७०

जातिस्मरोऽहं जानामि कृष्णमन्त्रप्रभावतः।
जातिस्मरा त्वं तुलसी सम्भुक्ता हरिणा पुरा॥ ७१

त्वमेव राधिकाकोपाज्जातासि भारते भुवि।
त्वां सम्भोक्तुमुत्सुकोऽहं नालं राधाभयात्ततः॥ ७२

इत्येवमुक्त्वा स पुमान्विरराम महामुने।
सस्मितं तुलसी तुष्टा प्रवक्तुमुपचक्रमे॥ ७३

उन्हींको 'वास्तवरूपा' कहना चाहिये, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। रजोरूप और तमोरूपकी कलाओंके भेदसे अनेक प्रकारकी स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं॥ ६२-६३॥

रजोगुणका अंश जिनमें प्रधान है, वे मध्यम श्रेणीकी हैं और वे भोगोंमें आसक्त रहती हैं। सुखभोगके वशीभूत होकर वे सदा अपने ही कार्यमें संलग्न रहती हैं। वे कपटयुक्त, मोहकारिणी तथा धर्मके अर्थसे पराङ्मुख रहती हैं; अतः रजोगुण-प्रधान स्त्रीमें साध्वीभाव कभी नहीं उत्पन्न हो सकता है, विद्वान् लोग इसे स्त्रियोंका मध्यमरूप कहते हैं॥ ६४-६५½॥

तमोरूप दुर्निवार्य है, बुद्धिमान् पुरुषोंने इस रूपको 'अधम' कहा है। [हे देवि! तुमने जो कहा है कि] उत्तम कुलमें उत्तम विद्वान् पुरुष निर्जन, जलविहीन तथा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछता है—यह तो उचित ही है, किंतु हे शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञासे ही तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्वविवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें पत्नीरूपमें ग्रहण करूँगा॥ ६६—६८॥

देवताओंको सन्त्रस्त करनेवाला शंखचूड़ मैं ही हूँ। मैं दनुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। विशेष बात यह है कि पूर्व-जन्ममें मैं श्रीहरिके साथ उनके पार्षदरूपमें रहनेवाले आठ गोपोंमें सुदामा नामक एक गोप था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बन गया हूँ॥ ६९-७०॥

कृष्णके मन्त्रके प्रभावके कारण मैं पूर्वजन्मकी सभी बातें जानता हूँ। तुम्हें भी अपने पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण होगा कि तुम उस समय तुलसी थी और श्रीहरिने तुम्हारे साथ विहार किया था और वही तुम राधिकाके कोपके कारण भारत-भूमिपर उत्पन्न हुई हो। उस समय मैं तुम्हारे साथ रमण करनेके लिये बहुत लालायित था, किंतु राधिकाके भयके कारण ऐसा नहीं हुआ॥ ७१-७२॥

हे महामुने! इस प्रकार कहकर जब वह शंखचूड़ चुप हो गया, तब प्रसन्नतासे युक्त तुलसीने हँसते हुए कहना आरम्भ किया॥ ७३॥

तुलस्युवाच

एवंविधो बुधो नित्यं विश्वेषु च प्रशंसितः।
कान्तमेवंविधं कान्ता शश्वदिच्छति कामतः॥ ७४

त्वयाहमधुना सत्यं विचारेण पराजिता।
स निन्दितश्चाप्यशुचिर्यः पुमांश्च स्त्रिया जितः॥ ७५

निन्दन्ति पितरो देवा बान्धवाः स्त्रीजितं नरम्।
स्त्रीजितं मनसा माता पिता भ्राता च निन्दति॥ ७६

शुद्धो विप्रो दशाहेन जातके मृतके यथा।
भूमिपो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहतः॥ ७७

शूद्रो मासेन वेदेषु मातृवद्धीनसङ्करः।
अशुचिः स्त्रीजितः शुद्ध्येच्चितादहनकालतः॥ ७८

न गृह्णन्तीच्छया तस्य पितरः पिण्डतर्पणम्।
न गृह्णन्त्येव देवाश्च तस्य पुष्पजलादिकम्॥ ७९

किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः।
किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥ ८०

विद्याप्रभावज्ञानार्थं मया त्वं च परीक्षितः।
कृत्वा परीक्षां कान्तस्य वृणोति कामिनी वरम्॥ ८१

वराय गुणहीनाय वृद्धायाज्ञानिने तथा।
दरिद्राय च मूर्खाय रोगिणे कुत्सिताय च॥ ८२

अत्यन्तकोपयुक्ताय वात्यन्तदुर्मुखाय च।
पङ्गवे चाङ्गहीनाय चान्धाय बधिराय च॥ ८३

जडाय चैव मूकाय क्लीबतुल्याय पापिने।
ब्रह्महत्यां लभेत्सोऽपि स्वकन्यां प्रददाति यः॥ ८४

शान्ताय गुणिने चैव यूने च विदुषेऽपि च।
साधवे च सुतां दत्त्वा दशयज्ञफलं लभेत्॥ ८५

तुलसी बोली—इस प्रकारके [सद्विचारसम्पन्न] विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। कोई स्त्री कामसे प्रेरित होकर ऐसे ही पतिकी सदा अभिलाषा रखती है॥ ७४॥

आप-जैसे उत्तम विचारवाले पुरुषसे मैं निश्चित ही इस समय पराजित हो गयी हूँ। निन्दनीय तथा अपवित्र पुरुष तो वह होता है, जो स्त्रीके द्वारा जीत लिया गया हो॥ ७५॥

पितृगण, देवता तथा बान्धव—ये सब लोग स्त्रीके द्वारा पराभूत व्यक्तिकी निन्दा करते हैं तथा माता-पिता एवं भ्राता भी स्त्रीजित मनुष्यकी मन-ही-मन निन्दा करते रहते हैं॥ ७६॥

शास्त्रोंमें विहित है कि जन्म और मृत्युजनित अशौचसे ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पन्द्रह दिनोंमें, शूद्र एक मासमें तथा वर्णसंकर अपनी मातृकुलपरम्पराके आचारके अनुसार शुद्ध हो जाते हैं, किंतु स्त्रीसे पराजित व्यक्ति सर्वदा अपवित्र रहता है और चितादहनके कालमें ही वह शुद्ध होता है॥ ७७-७८॥

स्त्रीजित मनुष्यके पितर उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड तथा तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते और देवता भी उसके द्वारा अर्पित पुष्प, जल आदिको स्वीकार नहीं करते हैं॥ ७९॥

जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो; उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन!॥ ८०॥

आपकी विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही मैंने आपकी परीक्षा की है; क्योंकि कोई स्त्री किसी पुरुषकी सम्यक् परीक्षा करके ही पतिरूपमें उसका वरण करती है॥ ८१॥

जो मनुष्य गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, नीच, परम क्रोधी, अत्यन्त कटुवचन बोलनेवाले, पंगु, अंगहीन, अन्धे, बहरे, जड़, गूँगे, नपुंसकतुल्य तथा पापी वरको अपनी कन्या देता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ८२—८४॥

शान्त, गुणी, युवक, विद्वान् तथा सदाचारी वरको अपनी पुत्री अर्पण करनेसे मनुष्यको दस यज्ञोंका फल प्राप्त होता है॥ ८५॥

यः कन्यापालनं कृत्वा करोति यदि विक्रयम्।
विक्रेता धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥ ८६

कन्यामूत्रं पुरीषं च तत्र भक्षति पातकी।
कृमिभिर्दंशितः काकैर्यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ८७

तदन्ते व्याधिसंयुक्तः स लभेज्जन्म निश्चितम्।
विक्रीणाति मांसभारं वहत्येव दिवानिशम्॥ ८८

इत्येवमुक्त्वा तुलसी विरराम तपोनिधे।

ब्रह्मोवाच

किं करोषि शङ्खचूड संवादमनया सह॥ ८९

गान्धर्वेण विवाहेन त्वं चास्या ग्रहणं कुरु।
पुरुषेष्वसि रत्नं त्वं स्त्रीषु रत्नं त्वियं सती॥ ९०

विदग्धाया विदग्धेन सङ्गमो गुणवान्भवेत्।
निर्विरोधसुखं राजन् को वा त्यजति दुर्लभम्॥ ९१

योऽविरोधसुखत्यागी स पशुर्नात्र संशयः।
किं परीक्षसि त्वं कान्तमीदृशं गुणिनं सति॥ ९२

देवानामसुराणां च दानवानां विमर्दकम्।
यथा लक्ष्मीश्च लक्ष्मीशे यथा कृष्णे च राधिका॥ ९३

यथा मयि च सावित्री भवानी च भवे यथा।
यथा धरा वराहे च दक्षिणा च यथाध्वरे॥ ९४

यथात्रेरनसूया च दमयन्ती यथा नले।
रोहिणी च यथा चन्द्रे यथा कामे रतिः सती॥ ९५

यथादितिः कश्यपे च वसिष्ठेऽरुन्धती सखी।
यथाहल्या गौतमे च देवहूतिश्च कर्दमे॥ ९६

यथा बृहस्पतौ तारा शतरूपा मनौ यथा।
यथा च दक्षिणा यज्ञे यथा स्वाहा हुताशने॥ ९७

यथा शची महेन्द्रे च यथा पुष्टिर्गणेश्वरे।
देवसेना यथा स्कन्दे धर्मे मूर्तिर्यथा सती॥ ९८

सौभाग्या सुप्रिया त्वं च शङ्खचूडे तथा भव।
अनेन सार्धं सुचिरं सुन्दरेण च सुन्दरि॥ ९९

कोई कन्याका पालन-पोषण करके यदि उसे बेच देता है, तब धनके लोभसे कन्याका विक्रय करनेवाले उस मनुष्यको 'कुम्भीपाक' नरकमें जाना पड़ता है। वहाँपर वह पापी भोजनके रूपमें कन्याके मल-मूत्रका ही भक्षण करता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कीड़े तथा कौवे उसे नोचते रहते हैं। तदनन्तर वह फिरसे जन्म प्राप्त करता है और अनेक रोगोंसे ग्रस्त रहता है। वह दिन-रात मांस ढोता है और मांस-विक्रय करता रहता है, यह निश्चित है। हे तपोनिधे! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी॥ ८६—८८½॥

ब्रह्मा बोले—हे शंखचूड़! तुम इसके साथ क्या बातचीत कर रहे हो? गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार अब तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी तुलसी भी स्त्रियोंमें रत्न है। एक प्रवीण स्त्रीका एक प्रवीण पुरुषके साथ संयोग बड़ा कल्याणकारी होता है। हे राजन्! निर्बाध तथा दुर्लभ सुखको पाकर भला कौन उसका त्याग करता है। जो मनुष्य विरोधरहित सुखका त्याग कर देता है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८९—९१½॥

[इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—] हे सति! तुम ऐसे गुणी और समस्त देवताओं, असुरों तथा दानवोंका दमन करनेवाले पतिकी क्या परीक्षा ले रही हो? जिस प्रकार विष्णुके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मुझ ब्रह्माके पास सावित्री, भगवान् शिवके पास भवानी, भगवान् वराहके पास धरा, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास साध्वी रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, यज्ञके पास दक्षिणा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्द (कार्तिकेय)-के पास देवसेना और धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे प्रतिष्ठित हैं; उसी प्रकार तुम भी शंखचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ और हे सुन्दरि! अपने इस सुन्दर प्रियतमके साथ विभिन्न स्थानोंपर अपनी इच्छाके

स्थाने स्थाने विहारं च यथेच्छं कुरु सन्ततम्।
पश्चात्प्राप्स्यसि गोलोके श्रीकृष्णं पुनरेव च।
चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥ १००

अनुसार निरन्तर विहार करो। अन्तमें तुम गोलोकमें पुनः भगवान् श्रीकृष्णको तथा वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीविष्णुको प्राप्त करोगी॥ ९२—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे शङ्खचूडेन सह तुलस्याः सङ्गतिवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

तुलसीके साथ शंखचूड़का गान्धर्वविवाह, शंखचूड़से पराजित और निर्वासित देवताओंका ब्रह्मा तथा शंकरजीके साथ वैकुण्ठधाम जाना, श्रीहरिका शंखचूड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना

नारद उवाच

विचित्रमिदमाख्यानं भवता समुदाहृतम्।
श्रुतेन येन मे तृप्तिर्न कदापि हि जायते॥ १

ततः परं तु यज्जातं तत्त्वं वद महामते।

श्रीनारायण उवाच

इत्येवमाशिषं दत्त्वा स्वालयं च ययौ विधिः॥ २

गान्धर्वेण विवाहेन जगृहे तां च दानवः।
स्वर्गे दुन्दुभिवाद्यं च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥ ३

स रेमे रामया सार्धं वासगेहे मनोरमे।
मूर्च्छां सा प्राप तुलसी नवसङ्गमसङ्गता॥ ४

निमग्ना निर्जले साध्वी सम्भोगसुखसागरे।
चतुःषष्टिकलामानं चतुःषष्टिविधं सुखम्॥ ५

कामशास्त्रे यन्निरुक्तं रसिकानां यथेप्सितम्।
अङ्गप्रत्यङ्गसंश्लेषपूर्वकं स्त्रीमनोहरम्॥ ६

तत्सर्वं रसशृङ्गारं चकार रसिकेश्वरः।
अतीव रम्यदेशे च सर्वजन्तुविवर्जिते॥ ७

पुष्पचन्दनतल्पे च पुष्पचन्दनवायुना।
पुष्पोद्याने नदीतीरे पुष्पचन्दनचर्चिते॥ ८

गृहीत्वा रसिको रासे पुष्पचन्दनचर्चिताम्।
भूषितो भूषणेनैव रत्नभूषणभूषिताम्॥ ९

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने यह अत्यन्त अद्भुत आख्यान सुनाया, जिसे सुनकर किसी भी प्रकारसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। हे महामते! उसके बाद जो कुछ घटित हुआ, उसे आप मुझे बताइये॥ १½॥

श्रीनारायण बोले—इस प्रकार [शंखचूड़ तथा तुलसीको] आशीर्वाद देकर ब्रह्माजी अपने लोक चले गये। तब दानव शंखचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार उस तुलसीको पत्नीरूपमें ग्रहण कर लिया। उस अवसरपर स्वर्गमें दुंदुभियाँ बजने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ २-३॥

अब वह शंखचूड़ अपने सुन्दर भवनमें तुलसीके साथ विलास करने लगा। आनन्दका अनुभवकर वह तुलसी मूर्च्छित-सी हो गयी। वह साध्वी उस समय सुखरूपी निर्जल सागरमें निमग्न हो गयी थी॥ ४½॥

कामशास्त्रमें जो चौंसठ प्रकारकी कलाएँ तथा चौंसठ प्रकारके सुख बताये गये हैं, वे रसिकजनोंके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। अंग-प्रत्यंगके स्पर्श करनेसे स्त्रियोंको सुखप्रद लगनेवाले जो भी रस-शृंगार होते हैं, उन सबको रसिकेश्वर शंखचूड़ने प्रस्तुत किया॥ ५-६½॥

अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित वह रसिक शंखचूड़ पुष्प-चन्दनसे चर्चित तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत उस तुलसीको साथमें लेकर अत्यन्त रमणीक तथा पूर्णरूपसे निर्जन स्थानमें पुष्प-चन्दनसे सुरभित वायुयुक्त पुष्पोद्यान और पुष्प-चन्दनसे सुशोभित नदीके तटपर पुष्प-चन्दनसे चर्चित शय्यापर रासक्रीडामें निरत रहता था॥ ७—९॥

सुरते विरतिर्नास्ति तयोः सुरतिविज्ञयोः।
जहार मानसं भर्तुर्लोलया लीलया सती॥ १०

चेतनां रसिकायाश्च जहार रसभाववित्।
वक्षसश्चन्दनं राज्ञस्तिलकं विजहार सा॥ ११

स च जहार तस्याश्च सिन्दूरं बिन्दुपत्रकम्।
तद्वक्षस्युरोजे च नखरेखां ददौ मुदा॥ १२

सा ददौ तद्वामपार्श्वे करभूषणलक्षणम्।
राजा तदोष्ठपुटके ददौ रदनदंशनम्॥ १३

तद्‌गण्डयुगले सा च प्रददौ तच्चतुर्गुणम्।
आलिङ्गनं चुम्बनं च जङ्घादिमर्दनं तथा॥ १४

एवं परस्परं क्रीडां चक्रतुस्तौ विजानतौ।
सुरते विरते तौ च समुत्थाय परस्परम्॥ १५

सुवेषं चक्रतुस्तत्र यद्यन्मनसि वाञ्छितम्।
चन्दनैः कुङ्कुमारक्तैः सा तस्य तिलकं ददौ॥ १६

सर्वाङ्गे सुन्दरे रम्ये चकार चानुलेपनम्।
सुवासं चैव ताम्बूलं वह्निशुद्धे च वाससी॥ १७

पारिजातस्य कुसुमं जरारोगहरं परम्।
अमूल्यरत्ननिर्माणमङ्गुलीयकमुत्तमम् ॥ १८

सुन्दरं च मणिवरं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम्।
दासी तवाहमित्येवं समुच्चार्य पुनः पुनः॥ १९

ननाम परया भक्त्या स्वामिनं गुणशालिनम्।
सस्मिता तन्मुखाम्भोजं लोचनाभ्यां पुनः पुनः॥ २०

निमेषरहिताभ्यां चाप्यपश्यत्कामसुन्दरम्।
स च तां च समाकृष्य चकार वक्षसि प्रियाम्॥ २१

सस्मितं वाससाच्छन्नं ददर्श मुखपङ्कजम्।
चुचुम्ब कठिने गण्डे बिम्बोष्ठौ पुनरेव च॥ २२

कामक्रीड़ाके ज्ञाता वे दोनों कभी भी विलाससे विरत नहीं होते थे। उस साध्वी तुलसीने अपनी चंचल लीलासे अपने पतिका मन हर लिया था। इसी प्रकार रस-भावोंके ज्ञाता शंखचूड़ने भी रसिका तुलसीका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। उस तुलसीने राजाके वक्ष:स्थलका चन्दन तथा मस्तकका तिलक मिटा दिया, उसी प्रकार उस शंखचूड़ने भी तुलसीके सिन्दूर-बिन्दुको मिटा दिया। कामक्रीड़ामें शंखचूड़ने प्रसन्नतापूर्वक उस तुलसीके वक्ष:स्थल आदिपर और उसी प्रकार तुलसीने उसके वाम पार्श्वमें अपने हाथके आभूषणका चिह्न बना दिया। इस प्रकार परस्पर आलिंगन आदि करते हुए कामकलाका सम्यक् ज्ञान रखनेवाले वे दोनों क्रीड़ा करने लगे॥ १०—१४½ ॥

रतिक्रीड़ासे विरत होकर वे दोनों मनमें जो-जो इच्छा रहती थी, उसके अनुसार एक-दूसरेका शृंगार करते थे। वह तुलसी शंखचूड़के मस्तकपर कुमकुम-मिश्रित चंदन लगाती थी और उसके सभी मनोहर अंगोंमें चन्दनका लेप करती थी। वह शंखचूड़को सुवासित ताम्बूल खिलाती थी, अग्निके समान शुद्ध दो वस्त्र पहनाती थी, वृद्धावस्थारूपी रोग दूर करनेवाला पारिजात पुष्प प्रदान करती थी, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित उत्तम अँगूठी पहनाती थी और तीनों लोकोंमें दुर्लभ उत्तम मणियोंके आभूषणोंसे अलंकृत करती थी—इस प्रकार शंखचूड़का शृंगार करनेके पश्चात् 'मैं आपकी दासी हूँ'—ऐसा बार-बार कहकर वह तुलसी महान् भक्तिके साथ अपने गुणवान् पतिको प्रणाम करती थी। वह अपलक नेत्रोंसे कामदेवके समान अपने पतिके मुखारविन्दको मुसकराती हुई बार-बार देखती रहती थी॥ १५—२०½ ॥

इसी प्रकार शंखचूड़ भी प्रिया तुलसीको आकृष्ट करके वक्षसे लगा लेता था और वस्त्रसे ढँके हुए उसके मुसकानयुक्त मुखकमलको निहारने लगता था। वह तुलसीके कठोर कपोलों तथा बिम्बाफलके समान लाल ओठोंका स्पर्श करने लगता था॥ २१-२२॥

ददौ तस्यै वस्त्रयुग्मं वरुणादाहृतं च यत्।
तदाहृतां रत्नमालां त्रिषु लोकेषु दुर्लभाम्॥ २३

ददौ मञ्जीरयुग्मं च स्वाहाया आहृतं च यत्।
केयूरयुग्मं छायाया रोहिण्याश्चैव कुण्डलम्॥ २४

अङ्गुलीयकरत्नानि रत्याश्च करभूषणम्।
शङ्खं च रुचिरं चित्रं यद्दत्तं विश्वकर्मणा॥ २५

विचित्रपद्मकश्रेणीं शय्यां चापि सुदुर्लभाम्।
भूषणानि च दत्त्वा स भूपो हासं चकार ह॥ २६

निर्ममे कबरीभारे तस्या माङ्गल्यभूषणम्।
सुचित्रं पत्रकं गण्डमण्डलेऽस्याः समं तथा॥ २७

चन्द्रलेखात्रिभिर्युक्तं चन्दनेन सुगन्धिना।
परीतं परितश्चित्रैः सार्धं कुङ्कुमबिन्दुभिः॥ २८

ज्वलत्प्रदीपाकारं च सिन्दूरतिलकं ददौ।
तत्पादपद्मयुगले स्थलपद्मविनिन्दिते॥ २९

चित्रालक्तकरागं च नखरेषु ददौ मुदा।
स्ववक्षसि मुहुर्न्यस्य सरागं चरणाम्बुजम्॥ ३०

हे देवि तव दासोऽहमित्युच्चार्य पुनः पुनः।
रत्नभूषितहस्तेन तां च कृत्वा स्ववक्षसि॥ ३१

तपोवनं परित्यज्य राजा स्थानान्तरं ययौ।
मलये देवनिलये शैले शैले तपोवने॥ ३२

स्थाने स्थानेऽतिरम्ये च पुष्पोद्याने च निर्जने।
कन्दरे कन्दरे सिन्धुतीरे चैवातिसुन्दरे॥ ३३

पुष्पभद्रानदीतीरे नीरवातमनोहरे।
पुलिने पुलिने दिव्ये नद्यां नद्यां नदे नदे॥ ३४

मधौ मधुकराणां च मधुरध्वनिनादिते।
विस्पन्दने सुरसने नन्दने गन्धमादने॥ ३५

देवोद्याने नन्दने च चित्रचन्दनकानने।
चम्पकानां केतकीनां माधवीनां च माधवे॥ ३६

कुन्दानां मालतीनां च कुमुदाम्भोजकानने।
कल्पवृक्षे कल्पवृक्षे पारिजातवने वने॥ ३७

तदनन्तर उसने वरुणके यहाँसे प्राप्त वस्त्रोंका जोड़ा और तीनों लोकोंमें दुर्लभ रत्नमयी माला उस तुलसीको प्रदान की। इसी प्रकार उसने स्वाहादेवीसे प्राप्त दो मंजीर (पायजेब), छायासे प्राप्त एक जोड़ी बाजूबन्द और रोहिणीसे प्राप्त कुण्डल, रतिसे प्राप्त हाथके आभूषणके रूपमें रत्नमय अँगूठी और विश्वकर्माके द्वारा प्रदत्त अद्भुत तथा मनोहर शंख तुलसीको प्रदान किये॥ २३—२५॥

तदनन्तर विचित्र कमल-पुष्पोंसे सुसज्जित हुई अत्यन्त दुर्लभ शय्या तथा अन्य भूषण प्रदान करके राजा शंखचूड़ हँसने लगा। उसने उसकी चोटीमें मांगलिक आभूषण लगाया और उसके गण्डस्थलपर सुगन्धित चन्दनसे तीन चन्द्रलेखाओंसे युक्त तथा चारों ओर कुमकुमबिन्दुओंसे सुशोभित सुन्दर चित्र बनाया। शंखचूड़ने उसके ललाटपर जलती हुई दीपशिखाके आकारके समान सिन्दूर-तिलक लगाया और स्थलकमलिनीको भी लज्जित कर देनेवाले उसके दोनों कमलसदृश चरणोंमें तथा नाखूनोंपर प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर महावर लगाया। तत्पश्चात् तुलसीके महावरयुक्त चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर बार-बार रखकर 'हे देवि! मैं तुम्हारा दास हूँ'—ऐसा बार-बार उच्चारण करते हुए उस शंखचूड़ने रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत अपने हाथसे उसे अपने वक्षःस्थलसे लगा लिया॥ २६—३१॥

तदनन्तर राजा शंखचूड़ वह तपोवन छोड़कर अन्य स्थानपर चला गया। पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित शरीरवाला वह सकाम शंखचूड़ मलयपर्वतपर, देवस्थानोंमें, विभिन्न पर्वतोंपर, तपोवनोंमें, अत्यन्त रमणीक स्थानोंमें, निर्जन पुष्पोद्यानमें, समुद्रकी तटवर्ती अत्यन्त सुन्दर कन्दराओंमें, जल तथा वायुसे युक्त पुष्पभद्रा नदीके मनोहर तटपर, नदियों तथा सरोवरोंके दिव्य तटोंपर, वसन्त ऋतुमें भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित वनोंमें, अत्यन्त अनुपम तथा आनन्दकर गन्धमादनपर्वतपर, नन्दन नामक देवोद्यानमें, अद्भुत चन्दनवनमें, चम्पा-केतकी तथा माधवीके निकुंजमें, कुन्द-मालती-कुमुद तथा कमलोंके वनमें, कल्पवृक्ष तथा पारिजातके वनमें, निर्जन कांचन स्थानमें, पवित्र

निर्जने काञ्चने स्थाने धन्ये काञ्चनपर्वते।
काञ्चीवने किञ्जलके कञ्चुके काञ्चनाकरे॥ ३८

पुष्पचन्दनतल्पेषु पुंस्कोकिलरुतश्रुते।
पुष्पचन्दनसंयुक्तः पुष्पचन्दनवायुना॥ ३९

कामुक्या कामुकः कामात्स रेमे रामया सह।
न हि तृप्तो दानवेन्द्रस्तृप्तिं नैव जगाम सा॥ ४०

हविषा कृष्णवर्त्मेव ववृधे मदनस्तयोः।
तया सह समागत्य स्वाश्रमं दानवस्ततः॥ ४१

रम्यं क्रीडालयं गत्वा विजहार पुनः पुनः।
एवं स बुभुजे राज्यं शङ्खचूडः प्रतापवान्॥ ४२

एकमन्वन्तरं पूर्णं राजराजेश्वरो महान्।
देवानामसुराणां च दानवानां च सन्ततम्॥ ४३

गन्धर्वाणां किन्नराणां राक्षसानां च शान्तिदः।
हृताधिकारा देवाश्च चरन्ति भिक्षुका यथा॥ ४४

ते सर्वेऽतिविषण्णाश्च प्रजग्मुर्ब्रह्मणः सभाम्।
वृत्तान्तं कथयामासू रुरुदुश्च भृशं मुहुः॥ ४५

तदा ब्रह्मा सुरैः सार्धं जगाम शङ्करालयम्।
सर्वेशं कथयामास विधाता चन्द्रशेखरम्॥ ४६

ब्रह्मा शिवश्च तैः सार्धं वैकुण्ठं च जगाम ह।
दुर्लभं परमं धाम जरामृत्युहरं परम्॥ ४७

सम्प्राप च वरं द्वारमाश्रमाणां हरेरहो।
ददर्श द्वारपालांश्च रत्नसिंहासनस्थितान्॥ ४८

शोभितान्पीतवस्त्रैश्च रत्नभूषणभूषितान्।
वनमालान्वितान्सर्वान् श्यामसुन्दरविग्रहान्॥ ४९

शङ्खचक्रगदापद्मधरांश्चैव चतुर्भुजान्।
सस्मितान्स्मेरवक्त्रास्यान्पद्मनेत्रान्मनोहरान् ॥ ५०

कांचन-पर्वतपर, कांचीवनमें, किंजलक, कंचुक और कांचनाकर आदि स्थानोंमें—वनमें, जहाँ कोयलकी मधुर ध्वनि सुनायी देती और पुष्प-चन्दनकी सुगन्धसे सुरभित वायु बहती रहती थी, पुष्प-चन्दनसे सुसज्जित शय्यापर कामनायुक्त रमणी तुलसीके साथ इच्छानुसार विहार किया करता था। किंतु न तो दानवेन्द्र शंखचूड़ तृप्त हुआ और न वह तुलसी ही तृप्त हुई; अपितु आहुतिसे बढ़नेवाली अग्निकी भाँति उन दोनोंकी वासना निरन्तर बढ़ती ही गयी॥ ३२—४०½ ॥

तदनन्तर वह दानव शंखचूड़ उस तुलसीके साथ अपने आश्रम आकरके वहाँ अपने रमणीक क्रीड़ा-भवनमें जाकर बार-बार विहार करने लगा। इस प्रकार महान् प्रतापी राजराजेश्वर शंखचूड़ने पूरे एक मन्वन्तरतक राज्यका उपभोग किया॥ ४१-४२½ ॥

वह देवताओं, असुरों, दानवों, गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसोंको सदा शान्त कर देनेवाला था। उसके द्वारा छिने हुए अधिकारवाले देवतागण भिक्षुकोंकी भाँति विचरण करते थे, अतः वे सभी अत्यन्त दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये। उन्होंने अपना वृत्तान्त बताया और बार-बार अत्यधिक विलाप किया॥ ४३—४५ ॥

तब विधाता ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश्वर शिवसे सारी बातें बतायीं॥ ४६ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा और शिव उन देवताओंको साथ लेकर जरा तथा मृत्युका नाश करनेवाले, सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ तथा परमधाम श्रेष्ठ वैकुण्ठलोकमें गये। जब वे श्रीहरिके लोकोंके श्रेष्ठ प्रवेशद्वारपर पहुँचे, तब वहाँपर उन्होंने रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको देखा। वे सभी पीताम्बरोंसे सुशोभित थे, वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके शरीर सुन्दर तथा श्यामवर्णके थे, शंख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित उनकी चार भुजाएँ थीं, उनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी और उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके समान थे॥ ४७—५० ॥

ब्रह्मा तान्कथयामास वृत्तान्तं गमनार्थकम्।
तेऽनुज्ञां च ददुस्तस्मै प्रविवेश तदाज्ञया॥ ५१

एवं षोडश द्वाराणि निरीक्ष्य कमलोद्भवः।
देवैः सार्धंताननतीत्य प्रविवेश हरेः सभाम्॥ ५२

देवर्षिभिः परिवृतां पार्षदैश्च चतुर्भुजैः।
नारायणस्वरूपैश्च सर्वैः कौस्तुभभूषितैः॥ ५३

नवेन्दुमण्डलाकारां चतुरस्त्रां मनोहराम्।
मणीन्द्रहारनिर्माणां हीरासारसुशोभिताम्॥ ५४

अमूल्यरत्नखचितां रचितां स्वेच्छया हरेः।
माणिक्यमालाजालाभां मुक्तापङ्क्तिविभूषिताम्॥ ५५

मण्डितां मण्डलाकारै रत्नदर्पणकोटिभिः।
विचित्रैश्चित्ररेखाभिर्नानाचित्रविचित्रिताम्॥ ५६

पद्मरागेन्द्ररचितां रुचिरां मणिपङ्कजैः।
सोपानशतकैर्युक्तां स्यमन्तकविनिर्मितैः॥ ५७

पट्टसूत्रग्रन्थियुक्तैश्चारुचन्दनपल्लवैः।
इन्द्रनीलस्तम्भवर्यैर्वेष्टितां सुमनोहराम्॥ ५८

सद्रत्नपूर्णकुम्भानां समूहैश्च समन्विताम्।
पारिजातप्रसूनानां मालाजालैर्विराजिताम्॥ ५९

कस्तूरीकुङ्कुमारक्तैः सुगन्धिचन्दनद्रुमैः।
सुसंस्कृतां तु सर्वत्र वासितां गन्धवायुना॥ ६०

विद्याधरीसमूहानां नृत्यजालैर्विराजिताम्।
सहस्त्रयोजनायामां परिपूर्णां च किङ्करैः॥ ६१

ददर्श श्रीहरिं ब्रह्मा शङ्करश्च सुरैः सह।
वसन्तं तन्मध्यदेशे यथेन्दुं तारकावृतम्॥ ६२

अमूल्यरत्ननिर्माणचित्रसिंहासने स्थितम्।
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालाविभूषितम्॥ ६३

ब्रह्माजीने उन द्वारपालोंको अपने आनेका प्रयोजन बताया। तब उन द्वारपालोंने ब्रह्माको अन्दर जानेकी आज्ञा दे दी और ब्रह्माजीने उनकी आज्ञा पाकर भीतर प्रवेश किया॥ ५१॥

इस प्रकार ब्रह्माजीने भीतर सोलह द्वारोंको देखा और देवताओंके साथ उन्हें पार करके वे श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। वह सभा देवर्षियों तथा चार भुजावाले पार्षदोंसे घिरी हुई थी। वे सभी पार्षद नारायणस्वरूप थे और कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। उस सभाका आकार नवीन चन्द्रमण्डलके समान था, वह मनोहर सभा चौकोर थी, वह सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे निर्मित थी, वह बहुमूल्य हीरोंसे सजी हुई थी, भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे निर्मित उस सभाभवनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, मणिमयी मालाएँ उसमें जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं, मोतियोंकी झालरोंसे वह सुशोभित थी, मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय विचित्र दर्पणोंसे वह सभा मण्डित थी, अनेक प्रकारके रेखाचित्रोंसे युक्त वह सभा अत्यन्त सुन्दर तथा अद्भुत प्रतीत हो रही थी, पद्मरागमणिसे निर्मित वह सभा मणिमय पंकजोंसे परम सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह स्यमन्तकमणिसे बनी हुई सौ सीढ़ियोंसे युक्त थी, वहाँ दिव्य चन्दन वृक्षके सुन्दर पल्लव रेशमके सूत्रोंसे बँधे वन्दनवारके रूपमें शोभा दे रहे थे, वह मनोहर सभा उत्तम कोटिके इन्द्रनीलमणिसे निर्मित खम्भोंसे आवृत थी, वह उत्तम रत्नोंसे निर्मित अनेक कलशोंसे युक्त थी, पारिजात-पुष्पोंकी माला-पंक्तियोंसे तथा कस्तूरी और कुमकुमसे रंजित सुगन्धित चन्दनके वृक्षोंसे वह सभा सुसज्जित थी, वह सर्वत्र सुगन्धित वायुसे सुरभित थी, बहुत-सी विद्याधरियोंके नृत्यसे उस सभाकी शोभा बढ़ रही थी, वह सभा एक हजार योजन विस्तारवाली थी और बहुतसे सेवकोंसे व्याप्त थी॥ ५२—६१॥

देवताओंसहित ब्रह्मा तथा शिवने सभाके मध्य भागमें विराजमान श्रीहरिको तारोंसे घिरे चन्द्रमाके समान देखा। वे बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजमान थे। वे किरीट, कुण्डल तथा वनमालासे सुशोभित थे। उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे

चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं बिभ्रतं केलिपङ्कजम्।
पुरतो नृत्यगीतं च पश्यन्तं सस्मितं मुदा॥ ६४

शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम्।
लक्ष्म्या प्रदत्तं ताम्बूलं भुक्तवन्तं सुवासितम्॥ ६५

गङ्गया परया भक्त्या सेवितं श्वेतचामरैः।
सर्वैश्च स्तूयमानं च भक्तिनम्रात्मकन्धरैः॥ ६६

एवं विशिष्टं तं दृष्ट्वा परिपूर्णतमं प्रभुम्।
ब्रह्मादयः सुराः सर्वे प्रणम्य तुष्टुवुस्तदा॥ ६७

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गाः साश्रुनेत्राश्च गद्गदाः।
भक्ताश्च परया भक्त्या भीता नम्रात्मकन्धराः॥ ६८

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा विधाता जगतामपि।
वृत्तान्तं कथयामास विनयेन हरेः पुरः॥ ६९

हरिस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वज्ञः सर्वभाववित्।
प्रहस्योवाच ब्रह्माणं रहस्यं च मनोहरम्॥ ७०

श्रीभगवानुवाच

शङ्खचूडस्य वृत्तान्तं सर्वं जानामि पद्मज।
मद्भक्तस्य च गोपस्य महातेजस्विनः पुरा॥ ७१

शृणु तत्सर्ववृत्तान्तमितिहासं पुरातनम्।
गोलोकस्यैव चरितं पापघ्नं पुण्यकारकम्॥ ७२

सुदामा नाम गोपश्च पार्षदप्रवरो मम।
स प्राप दानवीं योनिं राधाशापात्सुदारुणात्॥ ७३

तत्रैकदाहमगमं स्वालयाद्रासमण्डलम्।
विरजामपि नीत्वा च मम प्राणाधिका परा॥ ७४

अनुलिप्त थे। वे अपने हाथमें लीला-कमल धारण किये हुए थे। वे प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए अपने सामने नृत्य-गीत आदिका अवलोकन कर रहे थे। उन सरस्वतीकान्त भगवान् श्रीहरिका विग्रह शान्त था, लक्ष्मीजी उनके चरणकमल पकड़े हुए उनकी सेवामें संलग्न थीं और लक्ष्मीजीके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका वे सेवन कर रहे थे। भगवती गंगा परम भक्तिके साथ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। वहाँ उपस्थित सभी लोग भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ६२—६६ ॥

[हे नारद!] ऐसे उन विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिको देखकर ब्रह्मा आदि सभी देवता प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनके सभी अंग पुलकित हो गये थे, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद हो गयी थी। वे सभी भक्त परम भक्तिके साथ अपने कन्धे झुकाये भयभीत होकर उनके समक्ष खड़े होकर स्तुति कर रहे थे। इसके बाद जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिके सामने विनम्रतापूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदित कर दिया॥ ६७—६९ ॥

उनकी यह बात सुनकर सभी अभिप्रायोंको समझनेवाले सर्वज्ञ श्रीहरिने ब्रह्माजीसे हँसकर मनको मुग्ध करनेवाला एक अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया॥ ७० ॥

श्रीभगवान् बोले—हे पद्मज! यह महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था और मेरा परम भक्त था, मैं इसका सभी वृत्तान्त जानता हूँ। अब आप पुरातन इतिहासके रूपमें निबद्ध उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनिये। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाला यह चरित पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ ७१-७२ ॥

सुदामा नामक एक गोप मेरा प्रधान पार्षद था। राधिकाके दारुण शापके कारण उसे दानवयोनिमें जन्म लेना पड़ा ॥ ७३ ॥

एक बार मैं अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रेष्ठ विरजाको साथमें लेकर अपने निवास-स्थानसे रासमण्डलमें गया था॥ ७४ ॥

सा मां विरजया सार्धं विज्ञाय किङ्करीमुखात्।
पश्चात्क्रुद्धा साजगाम न ददर्श च तत्र माम्॥ ७५

विरजां च नदीरूपां मां ज्ञात्वा च तिरोहितम्।
पुनर्जगाम सा दृष्ट्वा स्वालयं सखिभिः सह॥ ७६

मां दृष्ट्वा मन्दिरे देवी सुदाम्ना सहितं पुरा।
भृशं सा भर्त्सयामास मौनीभूतं च सुस्थिरम्॥ ७७

तच्छ्रुत्वासहमानश्च सुदामा तां चुकोप ह।
स च तां भर्त्सयामास कोपेन मम सन्निधौ॥ ७८

तच्छ्रुत्वा कोपयुक्ता सा रक्तपङ्कजलोचना।
बहिष्कर्तुं चकाराज्ञां संत्रस्तं मम संसदि॥ ७९

सखीलक्षं समुत्तस्थौ दुर्वारं तेजसोल्बणम्।
बहिश्चकार तं तूर्णं जल्पन्तं च पुनः पुनः॥ ८०

सा च तत्ताडनं तासां श्रुत्वा रुष्टा शशाप ह।
याहि रे दानवीं योनिमित्येवं दारुणं वचः॥ ८१

तं गच्छन्तं शपन्तं च रुदन्तं मां प्रणम्य च।
वारयामास तुष्टा सा रुदती कृपया पुनः॥ ८२

हे वत्स तिष्ठ मा गच्छ क्व यासीति पुनः पुनः।
समुच्चार्य च तत्पश्चाज्जगाम सा च विक्लवम्॥ ८३

गोप्यश्च रुरुदुः सर्वा गोपाश्चापि सुदुःखिताः।
ते सर्वे राधिका चापि तत्पश्चाद् बोधिता मया॥ ८४

आयास्यति क्षणार्धेन कृत्वा शापस्य पालनम्।
सुदामंस्त्वमिहागच्छेत्युक्त्वा सा च निवारिता॥ ८५

'मैं विरजाके साथ रासमण्डलमें गया हूँ'—परिचारिकाके मुखसे ऐसा सुनकर कुपित हो राधिका वहाँ आ गयीं, किंतु उसने मुझे वहाँ नहीं देखा। बादमें मेरे अन्तर्धान होने तथा विरजाके नदीरूपमें परिणत हो जानेका समाचार सुनकर राधा अपनी सखियोंके साथ फिर अपने भवन चली गयीं॥ ७५-७६॥

उस भवनमें सुदामाके साथ मौन तथा स्थिरचित्त होकर मुझे बैठा हुआ देखकर देवी राधाने मेरी बहुत भर्त्सना की॥ ७७॥

उसे सुनकर सुदामा सहन नहीं कर सका और उनपर कुपित हो गया। उसने मेरे सामने ही राधाको क्रोधके साथ बहुत फटकारा॥ ७८॥

उसकी बात सुनकर राधिका क्रोधित हो उठीं और उनकी आँखें रक्तकमलके समान लाल हो गयीं। उन्होंने तत्काल भयभीत सुदामाको मेरी सभासे बाहर निकाल देनेका आदेश दिया॥ ७९॥

[आज्ञा पाते ही] प्रबल तेजसे सम्पन्न तथा दुर्निवार्य सखियोंका समूह उठ खड़ा हुआ और उसे शीघ्र ही सभासे बाहर कर दिया। उस समय वह सुदामा बार-बार कुछ बोलता जा रहा था॥ ८०॥

इस तरह उन सखियोंसे सुदामाके विवाद करनेके कारण राधा और भी कुपित हो उठीं और उन्होंने कुपित होकर शाप दे दिया—'तुम दानवयोनिमें जन्म प्राप्त करो'। ऐसा दारुण वचन कहा था॥ ८१॥

तदनन्तर सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ तथा सखियोंको कोसता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब करुणामयी राधाने कृपावश उसके ऊपर फिर प्रसन्न होकर उसे रोक लिया और रोते हुए कहा—'हे वत्स! ठहरो, मत जाओ। कहाँ जा रहे हो?'—ऐसा बार-बार कहती हुई वे राधा व्याकुल होकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं॥ ८२-८३॥

यह देखकर सभी गोपी और गोप अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे। तब मैंने राधिकाको तथा उन सभीको समझाया कि शापका पालन करके वह सुदामा आधे क्षणमें ही वापस आ जायगा। हे सुदामन्! तुम यहाँ अवश्य आ जाना—ऐसा कहकर मैंने राधाको शान्त किया॥ ८४-८५॥

गोलोकस्य क्षणार्धेन चैकं मन्वन्तरं भवेत्।
पृथिव्यां जगतां धातरित्येव वचनं ध्रुवम्॥ ८६

इत्येवं शङ्खचूडश्च पुनस्तत्रैव यास्यति।
महाबलिष्ठो योगेशः सर्वमायाविशारदः॥ ८७

मम शूलं गृहीत्वा च शीघ्रं गच्छत भारतम्।
शिवः करोतु संहारं मम शूलेन रक्षसः॥ ८८

ममैव कवचं कण्ठे सर्वमङ्गलकारकम्।
बिभर्ति दानवः शश्वत्संसारे विजयी ततः॥ ८९

तस्मिन् ब्रह्मन् स्थिते चैव न कोऽपि हिंसितुं क्षमः।
तद्याचनां करिष्यामि विप्ररूपोऽहमेव च॥ ९०

सतीत्वहानिस्तत्पत्न्या यत्र काले भविष्यति।
तत्रैव काले तन्मृत्युरिति दत्तो वरस्त्वया॥ ९१

तत्पत्न्याश्चोदरे वीर्यमर्पयिष्यामि निश्चितम्।
तत्क्षणे चैव तन्मृत्युर्भविष्यति न संशयः॥ ९२

पश्चात्सा देहमुत्सृज्य भविष्यति मम प्रिया।
इत्युक्त्वा जगतां नाथो ददौ शूलं हराय च॥ ९३

शूलं दत्त्वा ययौ शीघ्रं हरिरभ्यन्तरे मुदा।
भारतं च ययुर्देवा ब्रह्मरुद्रपुरोगमाः॥ ९४

हे सम्पूर्ण जगत्‌की रक्षा करनेवाले ब्रह्मन्! गोलोकके आधे क्षणमें ही पृथ्वीलोकपर एक मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जाता है; यह बात बिलकुल सत्य है। इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओंका पूर्ण ज्ञाता, महान् बलशाली तथा योगेश्वर शंखचूड़ समय आनेपर पुनः उसी गोलोकमें वापस चला जायगा॥ ८६-८७॥

अब आपलोग मेरा त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें और वहाँपर शंकरजी मेरे त्रिशूलसे उस राक्षसका संहार करें॥ ८८॥

वह दानव शंखचूड़ अपने कण्ठमें मेरा सर्वमंगलकारी कवच निरन्तर धारण किये रहता है। इसीसे वह सदा संसार-विजयी बना हुआ है॥ ८९॥

हे ब्रह्मन्! उसके कण्ठमें उस कवचके रहते उसे मारनेमें कोई प्राणी समर्थ नहीं है। अतः मैं ही ब्राह्मणका रूप धारणकर उससे कवचकी याचना करूँगा॥ ९०॥

जिस समय उसकी पत्नीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—ऐसा आपने उसे वर भी दे रखा है॥ ९१॥

इसके लिये मैं अवश्य ही उसकी पत्नीके उदरमें अपना तेज स्थापित करूँगा, जिससे उसी क्षण उस शंखचूड़की मृत्यु हो जायगी; इसमें सन्देह नहीं है। तब उसकी पत्नी अपना शरीर त्यागकर पुनः मेरी प्रिया बन जायगी॥ ९२$\frac{१}{२}$॥

ऐसा कहकर जगत्‌के स्वामी भगवान् श्रीहरिने शंकरजीको त्रिशूल दे दिया और त्रिशूल देकर वे श्रीहरि प्रसन्नतापूर्वक तत्काल अन्तःपुरमें चले गये। इसके बाद सभी देवताओंने ब्रह्मा तथा शंकरजीको आगे करके भारतवर्षके लिये प्रस्थान किया॥ ९३-९४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे शङ्खचूडेन सह तुलसीसङ्गमवर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

~~~o~~~
~~~

अथ विंशोऽध्यायः

पुष्पदन्तका शंखचूड़के पास जाकर भगवान् शंकरका सन्देश सुनाना, युद्धकी बात सुनकर तुलसीका सन्तप्त होना और शंखचूड़का उसे ज्ञानोपदेश देना

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मा शिवं संनियोज्य संहारे दानवस्य च।
जगाम स्वालयं तूर्णं यथास्थानं सुरोत्तमाः॥ १

चन्द्रभागानदीतीरे वटमूले मनोहरे।
तत्र तस्थौ महादेवो देवविस्तारहेतवे॥ २

दूतं कृत्वा चित्ररथं गन्धर्वेश्वरमीप्सितम्।
शीघ्रं प्रस्थापयामास शङ्खचूडान्तिकं मुदा॥ ३

सर्वेश्वराज्ञया शीघ्रं ययौ तन्नगरं परम्।
महेन्द्रनगरोत्कृष्टं कुबेरभवनाधिकम्॥ ४

पञ्चयोजनविस्तीर्णं दैर्घ्ये तद् द्विगुणं भवेत्।
स्फटिकाकारमणिभिर्निर्मितं यानवेष्टितम्॥ ५

सप्तभिः परिखाभिश्च दुर्गमाभिः समन्वितम्।
ज्वलदग्निनिभैः शश्वत्कल्पितं रत्नकोटिभिः॥ ६

युक्तं च वीथीशतकैर्मणिवेदिविचित्रितैः।
परितो वणिजां सौधैर्नानावस्तुविराजितैः॥ ७

सिन्दूराकारमणिभिर्निर्मितैश्च विचित्रितैः।
भूषितं भूषितैर्दिव्यैराश्रमैः शतकोटिभिः॥ ८

गत्वा ददर्श तन्मध्ये शङ्खचूडालयं परम्।
अतीव वलयाकारं यथा पूर्णेन्दुमण्डलम्॥ ९

ज्वलदग्निशिखाक्ताभिः परिखाभिश्चतसृभिः।
तद्दुर्गमं च शत्रूणामन्येषां सुगमं सुखम्॥ १०

अत्युच्चैर्गगनस्पर्शिमणिशृङ्गविराजितम्।
राजितं द्वादशद्वारैर्द्वारपालसमन्वितम्॥ ११

मणीन्द्रसारनिर्माणैः शोभितं लक्षमन्दिरैः।
शोभितं रत्नसोपानै रत्नस्तम्भविराजितम्॥ १२

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस दानवके संहारकार्यमें शिवजीको नियुक्तकर ब्रह्माजी तत्काल अपने स्थानपर चले गये और अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हो गये॥ १॥

तदनन्तर महादेवजी देवताओंके अभ्युदयके उद्देश्यसे चन्द्रभागानदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे आसीन हो गये॥ २॥

उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूत बनाकर तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक शंखचूड़के पास भेजा॥ ३॥

सर्वेश्वर शिवकी आज्ञा पाकर चित्ररथ तत्काल शंखचूड़के उत्तम नगरमें गया, जो इन्द्रपुरीसे भी उत्कृष्ट तथा कुबेरके भवनसे भी अधिक सुन्दर था॥ ४॥

वह नगर पाँच योजन चौड़ा तथा उससे दुगुना लम्बा था। वह स्फटिकके आकारवाली मणियोंसे निर्मित था तथा उसके चारों ओर अनेक वाहन स्थित थे। वह नगर सात दुर्गम खाइयोंसे युक्त था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंसे उसका निर्माण किया गया था। वह नगर सैकड़ों वीथियों तथा मणिमय विचित्र वेदियोंसे सम्पन्न था। वह व्यापारियोंके बड़े-बड़े महलोंसे आवृत था, जिनमें अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ विराजमान थीं। उसी प्रकार वह नगर सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा निर्मित विचित्र, सुन्दर तथा दिव्य करोड़ों आश्रमोंसे सुशोभित था॥ ५—८॥

हे मुने! नगरमें पहुँचकर पुष्पदन्तने उसके मध्यमें स्थित शंखचूड़का श्रेष्ठ भवन देखा, जो पूर्णचन्द्र-मण्डलकी भाँति पूर्णतः वलयाकार था, प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान प्रतीत होनेवाली चार परिखाओंसे सुरक्षित था, शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्गम था, किंतु दूसरे लोगोंके लिये सुगम एवं सुखप्रद था, अत्यन्त ऊँचाईवाले गगनस्पर्शी मणि-निर्मित कंगूरोंसे सुशोभित था, द्वारपालोंसे युक्त बारह द्वारोंसे सुसज्जित था और सर्वोत्कृष्ट मणियोंसे निर्मित लाखों मन्दिरों, सोपानों तथा रत्नमय खम्भोंसे मण्डित था॥ ९—१२॥

तद् दृष्ट्वा पुष्पदन्तोऽपि वरं द्वारं ददर्श सः।
द्वारे नियुक्तं पुरुषं शूलहस्तं च सस्मितम्॥ १३

तिष्ठन्तं पिङ्गलाक्षं च ताम्रवर्णं भयङ्करम्।
कथयामास वृत्तान्तं जगाम तदनुज्ञया॥ १४

अतिक्रम्य च तद्द्वारं जगामाभ्यन्तरं पुनः।
न कोऽपि रक्षति श्रुत्वा दूतरूपं रणस्य च॥ १५

गत्वा सोऽभ्यन्तरद्वारं द्वारपालमुवाच ह।
रणस्य सर्ववृत्तान्तं विज्ञापयत माचिरम्॥ १६

स च तं कथयित्वा च दूतो गन्तुमुवाच ह।
स गत्वा शङ्खचूडं तं ददर्श सुमनोहरम्॥ १७

राजमण्डलमध्यस्थं स्वर्णसिंहासने स्थितम्।
मणीन्द्ररचितं दिव्यं रत्नदण्डसमन्वितम्॥ १८

रत्नकृत्रिमपुष्पैश्च प्रशस्तैः शोभितं सदा।
भृत्येन मस्तकन्यस्तं स्वर्णच्छत्रं मनोहरम्॥ १९

सेवितं पार्षदगणै रुचिरैः श्वेतचामरैः।
सुवेषं सुन्दरं रम्यं रत्नभूषणभूषितम्॥ २०

माल्येन लेपनं सूक्ष्मं सुवस्त्रं दधतं मुने।
दानवेन्द्रैः परिवृतं सुवेषैश्च त्रिकोटिभिः॥ २१

शतकोटिभिरन्यैश्च भ्रमद्भिरस्त्रपाणिभिः।
एवंभूतञ्च तं दृष्ट्वा पुष्पदन्तः सविस्मयः॥ २२
उवाच स च वृत्तान्तं यदुक्तं शङ्करेण च।

पुष्पदन्त उवाच

राजेन्द्र शिवभृत्योऽहं पुष्पदन्ताभिधः प्रभो॥ २३

यदुक्तं शङ्करेणैव तद् ब्रवीमि निशामय।
राज्यं देहि च देवानामधिकारं च साम्प्रतम्॥ २४

उसे देखकर पुष्पदन्तने एक दूसरा प्रधान द्वार देखा। उस द्वारपर सुरक्षाहेतु नियुक्त एक पुरुष हाथमें त्रिशूल धारण किये मुसकराता हुआ वहाँ स्थित था। पुष्पदन्तने पीली आँखोंवाले तथा ताम्र वर्णके शरीरवाले उस भयंकर पुरुषसे सारी बातें बतायीं और फिर उसकी आज्ञासे वह आगे बढ़ा। उस द्वारको पार करके वह भीतर चला गया। यह युद्धका सन्देश देनेवाला दूत है—यह जानकर कोई उसे रोकता भी नहीं था॥ १३—१५॥

भीतरी द्वारपर पहुँचकर उसने द्वारपालसे कहा—युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त [राजाको] बता दो, इसमें विलम्ब मत करो। उस द्वारपालसे ऐसा कहकर वह दूत [पुष्पदन्त] स्वयं जानेके लिये बोला। वहाँ जाकर उसने राजमण्डलीके मध्यमें स्वर्णके सिंहासनपर बैठे हुए परम मनोहर शंखचूड़को देखा। उस दिव्य सिंहासनमें सर्वोत्तम मणियाँ जड़ी थीं, वह रत्नमय दण्डोंसे युक्त था, वह रत्ननिर्मित कृत्रिम तथा उच्च कोटिके पुष्पोंसे सदा सुशोभित था, एक सेवक शंखचूडके सिरके ऊपर स्वर्णका मनोहर छत्र लगाये खड़ा था, सुन्दर तथा श्वेत चँवर डुलाते हुए पार्षदगण उसकी सेवामें संलग्न थे, सुन्दर वेष धारण करने तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत होनेके कारण वह रमणीय प्रतीत हो रहा था। हे मुने! वह माला पहने था, शरीरमें चन्दनका लेप किये हुआ था और दो महीन तथा सुन्दर वस्त्र धारण किये हुआ था। वह शंखचूड़ सुन्दर वेष धारण करनेवाले तीन करोड़ दानवेन्द्रोंसे घिरा हुआ था। इसी प्रकार हाथमें अस्त्र धारण किये हुए सैकड़ों करोड़ अन्य दानव भी उसके चारों ओर इधर-उधर घूम रहे थे। इस प्रकारके उस शंखचूड़को देखकर परम विस्मयको प्राप्त उस पुष्पदन्तने शंकरजीके द्वारा जो युद्धविषयक समाचार कहा गया था, उसे बताना आरम्भ किया॥ १६—२२½॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! हे प्रभो! मैं शंकरजीका सेवक हूँ, मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरजीने जो कुछ कहा है, मैं वही कह रहा हूँ, आप सुनिये—अब आप देवताओंका राज्य तथा अधिकार लौटा

देवाश्च शरणापन्ना देवेशं श्रीहरिं परम्।
हरिर्दत्त्वास्य शूलं च तेन प्रस्थापित: शिव:॥ २५
पुष्पभद्रानदीतीरे वटमूले त्रिलोचन:।
विषयं देहि तेषां च युद्धं वा कुरु निश्चितम्॥ २६
गत्वा वक्ष्यामि किं शम्भुमथ तद्वद मामपि।
दूतस्य वचनं श्रुत्वा शङ्खचूड: प्रहस्य च॥ २७
प्रभातेऽहं गमिष्यामि त्वं च गच्छेत्युवाच ह।
स गत्वोवाच तं तूर्णं वटमूलस्थमीश्वरम्॥ २८
शङ्खचूडस्य वचनं तदीयं तन्मुखोदितम्।
एतस्मिन्नन्तरे स्कन्द आजगाम शिवान्तिकम्॥ २९
वीरभद्रश्च नन्दी च महाकाल: सुभद्रक:।
विशालाक्षश्च बाणश्च पिङ्गलाक्षो विकम्पन:॥ ३०
विरूपो विकृतिश्चैव मणिभद्रश्च बाष्कल:।
कपिलाख्यो दीर्घदंष्ट्रो विकटस्ताम्रलोचन:॥ ३१
कालकण्ठो बलीभद्र: कालजिह्व: कुटीचर:।
बलोन्मत्तो रणश्लाघी दुर्जयो दुर्गमस्तथा॥ ३२
अष्टौ च भैरवा रौद्रा रुद्राश्चैकादश स्मृता:।
वसवोऽष्टौ वासवश्च आदित्या द्वादश स्मृता:॥ ३३
हुताशनश्च चन्द्रश्च विश्वकर्माश्विनौ च तौ।
कुबेरश्च यमश्चैव जयन्तो नलकूबर:॥ ३४
वायुश्च वरुणश्चैव बुधश्च मङ्गलस्तथा।
धर्मश्च शनिरीशान: कामदेवश्च वीर्यवान्॥ ३५
उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटरा कैटभी तथा।
स्वयं चाष्टभुजा देवी भद्रकाली भयङ्करी॥ ३६
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानोपरि संस्थिता।
रक्तवस्त्रपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना॥ ३७
नृत्यन्ती च हसन्ती च गायन्ती सुस्वरं मुदा।
अभयं ददाति भक्तेभ्योऽभया सा च भयं रिपुम्॥ ३८
बिभ्रती विकटां जिह्वां सुलोलां योजनायताम्।
शङ्खचक्रगदापद्मखड्गचर्मधनु:शरान्॥ ३९
खर्परं वर्तुलाकारं गम्भीरं योजनायतम्।
त्रिशूलं गगनस्पर्शि शक्तिं च योजनायताम्॥ ४०

दीजिये; क्योंकि वे देवता देवेश श्रेष्ठ श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन श्रीहरिने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशार्थ शिवजीको भेजा है। वे त्रिलोचन शिव इस समय भद्रशीला नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। अत: आप उन देवताओंका राज्य लौटा दीजिये अथवा युद्ध कीजिये। अब आप मुझे यह भी बता दीजिये कि मैं शिवजीके पास जाकर उनसे क्या कहूँ?॥ २३—२६½ ॥

[हे नारद!] दूतकी बात सुनकर शंखचूड़ने हँसकर कहा—'तुम चलो, मैं प्रात:काल वहाँ पहुँचूँगा'॥ २७½ ॥

तदनन्तर पुष्पदन्तने वटवृक्षके नीचे विराजमान परमेश्वर शिवके पास पहुँचकर शंखचूड़के मुखसे कही गयी वह बात ज्यों-की-त्यों उनसे कह दी॥ २८½ ॥

इतनेमें ही कार्तिकेयजी भगवान् शंकरके पास आ गये। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाख्य, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम तथा जो आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और बारह आदित्य कहे गये हैं—वे सब, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान तथा ओजस्वी कामदेव भी वहाँ आ गये॥ २९—३५ ॥

उग्रद्रंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरा तथा कैटभी आदि देवियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। इसी प्रकार आठ भुजाएँ धारण करनेवाली तथा भय उत्पन्न करनेवाली साक्षात् भगवती भद्रकाली भी वहाँ पहुँच गयीं। वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं। वे लाल वस्त्र तथा लाल पुष्पोंकी माला धारण किये थीं और लाल चन्दनसे अनुलिप्त थीं। वे प्रसन्नतापूर्वक नाचती, हँसती तथा मधुर स्वरमें गाती हुई सुशोभित हो रही थीं। वे देवी अभया भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान करती हैं। वे योजनभर लम्बी तथा लपलपाती हुई भयंकर जीभ, शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, ढाल, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, आकाशको छूता हुआ विशाल त्रिशूल,

मुद्‍गरं मुसलं वज्रं खेटं फलकमुज्ज्वलम्।
वैष्णवास्त्रं वारुणास्त्रं वाह्नेयं नागपाशकम्॥ ४१

नारायणास्त्रं गान्धर्वं ब्रह्मास्त्रं गारुडं तथा।
पर्जन्यास्त्रं पाशुपतं जृम्भणास्त्रं च पार्वतम्॥ ४२

माहेश्वरास्त्रं वायव्यं दण्डं सम्मोहनं तथा।
अव्यर्थमस्त्रकं दिव्यं दिव्यास्त्रशतकं परम्॥ ४३

आगत्य तत्र तस्थौ च योगिनीनां त्रिकोटिभिः।
सार्धं च डाकिनीनां च विकटानां त्रिकोटिभिः॥ ४४

भूतप्रेतपिशाचाश्च कूष्माण्डा ब्रह्मराक्षसाः।
वेताला राक्षसाश्चैव यक्षाश्चैव तु किन्नराः॥ ४५

ताभिश्चैव सह स्कन्दः प्रणम्य चन्द्रशेखरम्।
पितुः पार्श्वे सहायार्थं समुवास तदाज्ञया॥ ४६

अथ दूते गते तत्र शङ्खचूडः प्रतापवान्।
उवाच तुलसीं वार्तां गत्वाभ्यन्तरमेव च॥ ४७

रणवार्तां च सा श्रुत्वा शुष्ककण्ठोष्ठतालुका।
उवाच मधुरं साध्वी हृदयेन विदूयता॥ ४८

तुलस्युवाच

हे प्राणबन्धो हे नाथ तिष्ठ मे वक्षसि क्षणम्।
हे प्राणाधिष्ठातृदेव रक्ष मे जीवितं क्षणम्॥ ४९

भुंक्ष्व जन्म समासाद्य यन्मे मनसि वाञ्छितम्।
पश्यामि त्वां क्षणं किञ्चिल्लोचनाभ्यां च सादरम्॥ ५०

आन्दोलयन्ते प्राणा मे मनो दग्धं च सन्ततम्।
दुःस्वप्नश्च मया दृष्टश्चाद्यैव चरमे निशि॥ ५१

तुलसीवचनं श्रुत्वा भुक्त्वा पीत्वा नृपेश्वरः।
उवाच वचनं प्राज्ञो हितं सत्यं यथोचितम्॥ ५२

शङ्खचूड उवाच

कालेन योजितं सर्वं कर्मभोगनिबन्धनम्।
शुभं हर्षः सुखं दुःखं भयं शोकश्च मङ्गलम्॥ ५३

एक योजन लम्बी शक्ति, मुद्‍गर, मुसल, वज्र, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहन दण्ड, दिव्य अमोघ अस्त्र तथा दिव्य श्रेष्ठ सैकड़ों अस्त्र धारणकर तीन करोड़ योगिनियों और तीन करोड़ भयंकर डाकिनियोंको साथ लिये वहाँ आकर विराजमान हो गयीं॥ ३६—४४॥

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी वहाँ उपस्थित हो गये। उन सभी देवियों [तथा अन्य देवगणों]-को साथ लेकर कार्तिकेय अपने पिता शिवको प्रणाम करके सहायता प्रदान करनेके उद्देश्यसे उनकी आज्ञासे उनके पास बैठ गये॥ ४५-४६॥

इधर, दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूड़ने अन्तःपुरमें जाकर तुलसीको सारी बात बतायी॥ ४७॥

युद्धकी बात सुनकर उस तुलसीके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये और वह साध्वी तुलसी दुःखी मनसे मधुर वाणीमें कहने लगी॥ ४८॥

तुलसी बोली—हे प्राणबन्धो! हे नाथ! हे प्राणेश्वर! मेरे वक्षःस्थलपर क्षणभरके लिये विराजिये। हे प्राणाधिष्ठातृदेव! क्षणभर मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये। मैं क्षणभर अपने नेत्रोंसे आदरपूर्वक आपको देख लूँ और यह जन्म पाकर आप मेरे मनमें विहारकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण कीजिये। आज ही रात्रिके अन्तमें मैंने एक दुःस्वप्न देखा है, जिससे मेरे प्राण काँप रहे हैं और मनमें लगातार जलन हो रही है॥ ४९—५१॥

तुलसीकी बात सुनकर परम ज्ञानसम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड भोजन-पानादिसे निवृत्त होकर तुलसीसे हितकर, सत्य तथा यथोचित वचन कहने लगा॥ ५२॥

शंखचूड़ बोला—कल्याण, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मंगल—ये समस्त कर्मभोगके बन्धन कालके साथ बँधे हुए हैं॥ ५३॥

काले भवन्ति वृक्षाश्च स्कन्धवन्तश्च कालतः।
क्रमेण पुष्पवन्तश्च फलवन्तश्च कालतः॥ ५४

तेषां फलानि पक्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।
ते सर्वे फलिताः काले पातं यान्ति च कालतः॥ ५५

काले भवन्ति विश्वानि काले नश्यन्ति सुन्दरि।
कालात्स्रष्टा च सृजति पाता पाति च कालतः॥ ५६

संहर्ता संहरेत्काले क्रमेण सञ्चरन्ति ते।
ब्रह्मविष्णुशिवादीनामीश्वरः प्रकृतिः परा॥ ५७

स्रष्टा पाता च संहर्ता स चात्मा कालनर्तकः।
काले स एव प्रकृतिं स्वाभिन्नां स्वेच्छया प्रभुः॥ ५८

निर्माय कृतवान्सर्वान्विश्वस्थांश्च चराचरान्।
सर्वेशः सर्वरूपश्च सर्वात्मा परमेश्वरः॥ ५९

जनं जनेन जनिता जनं पाति जनेन यः।
जनं जनेन हरते तं देवं भज साम्प्रतम्॥ ६०

यस्याज्ञया वाति वातः शीघ्रगामी च साम्प्रतम्।
यस्याज्ञया च तपनस्तपत्येव यथाक्षणम्॥ ६१

यथाक्षणं वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु।
यथाक्षणं दहत्यग्निश्चन्द्रो भ्रमति शीतवान्॥ ६२

मृत्योर्मृत्युं कालकालं यमस्य च यमं परम्।
विभुं स्रष्टुश्च स्रष्टारं मातुश्च मातृकं भवे॥ ६३

संहर्तारं च संहर्तुस्तं देवं शरणं व्रज।
को वा बन्धुश्च केषां वा सर्वबन्धुं भज प्रिये॥ ६४

अहं को वा च त्वं का वा विधिना योजितः पुरा।
त्वया सार्धं कर्मणा च पुनस्तेन वियोजितः॥ ६५

समयसे ही वृक्ष उगते हैं, समयसे ही उनमें शाखाएँ निकलती हैं और फिर क्रमशः पुष्प तथा फल भी उनमें कालानुसार ही लगते हैं। तत्पश्चात् उन वृक्षोंके फल भी समयसे ही पकते हैं। अन्तमें फलयुक्त वे सभी वृक्ष समयानुसार नष्ट भी हो जाते हैं॥ ५४-५५॥

हे सुन्दरि! समयसे विश्व बनते हैं और समयपर नष्ट हो जाते हैं। कालकी प्रेरणासे ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और विश्वके संहारक शम्भु संहार करते हैं। वे सब क्रमशः कालानुसार ही अपने-अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंकी नियामिका वे पराप्रकृति ही हैं। वही परमेश्वर सृष्टि, रक्षा तथा संहार करनेवाला है और वही परमात्मा कालको नचानेवाला है। उन्हीं प्रभुने समयानुसार इच्छा-पूर्वक अपनेसे अभिन्न प्रकृतिका निर्माणकर विश्वमें रहनेवाले समस्त स्थावर-जंगम जीवोंकी रचना की है। वे ही सबके ईश्वर हैं, सभी रूपोंमें वे ही विद्यमान हैं, वे ही सबकी आत्मा हैं और वे ही परम ईश्वर हैं॥ ५६—५९॥

जो जनसे जनकी उत्पत्ति करता है, जनसे जनकी रक्षा करता है और जनसे जनका संहार करता है, उन्हीं प्रभुकी अब तुम उपासना करो॥ ६०॥

जिनकी आज्ञासे शीघ्रगामी पवनदेव प्रवाहित होते हैं, सूर्य यथासमय तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वृष्टि करते हैं, मृत्यु सभी जीवोंमें विचरण करती है, अग्निदेव यथासमय दाह उत्पन्न करते हैं, शीतल चन्द्रमा आकाशमें परिभ्रमण करते हैं—उन्हीं मृत्युके भी मृत्यु, कालके भी काल, यमराजसे भी बड़े यमराज, सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भी स्रष्टा, जगत्में माताकी माता, संहार करनेवाले शिवके भी संहर्ता परमप्रभु परमेश्वरकी शरणमें जाओ। हे प्रिये! इस जगत्में कौन किसका बन्धु है; अतः सभी प्राणियोंके बन्धुस्वरूप उन प्रभुकी उपासना करो॥ ६१—६४॥

मैं कौन हूँ और तुम कौन हो? ब्रह्माने पहले मुझे तुम्हारे साथ संयुक्त कर दिया और फिर उन्हींके द्वारा कर्मानुसार वियुक्त भी कर दिया जाऊँगा। शोक

अज्ञानी कातरः शोके विपत्तौ न च पण्डितः।
सुखे दुःखे भ्रमत्येव कालनेमिक्रमेण च॥ ६६

नारायणं तं सर्वेशं कान्तं यास्यसि निश्चितम्।
तपः कृतं यदर्थं च पुरा बदरिकाश्रमे॥ ६७

मया त्वं तपसा लब्धा ब्रह्मणस्तु वरेण च।
हर्यर्थे यत्तव तपो हरिं प्राप्स्यसि कामिनि॥ ६८

वृन्दावने च गोविन्दं गोलोके त्वं लभिष्यसि।
अहं यास्यामि तल्लोकं तनुं त्यक्त्वा च दानवीम्॥ ६९

तत्र द्रक्ष्यसि मां त्वं च द्रक्ष्यामि त्वां च साम्प्रतम्।
अगमं राधिकाशापाद्भारतं च सुदुर्लभम्॥ ७०

पुनर्यास्यामि तत्रैव कः शोको मे शृणु प्रिये।
त्वं च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च॥ ७१

तत्कालं प्राप्स्यसि हरिं मा कान्ते कातरा भव।
इत्युक्त्वा च दिनान्ते च तया सार्धं मनोहरम्॥ ७२

सुष्वाप शोभने तल्पे पुष्पचन्दनचर्चिते।
नानाप्रकारविभवं चकार रत्नमन्दिरे॥ ७३

रत्नप्रदीपसंयुक्ते स्त्रीरत्नं प्राप्य सुन्दरीम्।
निनाय रजनीं राजा क्रीडाकौतुकमङ्गलैः॥ ७४

कृत्वा वक्षसि तां कान्तां रुदतीमतिदुःखिताम्।
कृशोदरीं निराहारां निमग्नां शोकसागरे॥ ७५

पुनस्तां बोधयामास दिव्यज्ञानेन ज्ञानवित्।
पुरा कृष्णेन यद्दत्तं भाण्डीरे तत्त्वमुत्तमम्॥ ७६

स च तस्यै ददौ सर्वं सर्वशोकहरं परम्।
ज्ञानं सम्प्राप्य सा देवी प्रसन्नवदनेक्षणा॥ ७७
क्रीडां चकार हर्षेण सर्वं मत्वेति नश्वरम्।

तथा विपत्तिमें अज्ञानी मनुष्य भयभीत होता है, न कि विद्वान्। इस प्रकार मनुष्य कालचक्रके क्रमसे सुख तथा दुःखके चक्रमें भ्रमण करता रहता है॥ ६५-६६॥

अब तुम निश्चय ही सर्वेश्वर भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, जिनके लिये तुमने पूर्वकालमें बदरिकाश्रममें रहकर तप किया था॥ ६७॥

तपस्या तथा ब्रह्माजीके वरदानसे तुम मुझे प्राप्त हुई हो। हे कामिनि! उस समय जो तुम्हारी तपस्या थी, वह भगवान् श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये थी, अतः तुम उन्हीं गोविन्द श्रीहरिको गोलोक-स्थित वृन्दावनमें प्राप्त करोगी। मैं भी अपना यह दानवी शरीर त्यागकर उसी लोकमें चलूँगा, तब वहींपर तुम मुझे देखोगी और मैं तुम्हें देखूँगा। हे प्रिये! सुनो इस समय मैं राधिकाके शापसे ही अगम तथा अत्यन्त दुर्लभ इस भारतवर्षमें आया हूँ और वहींपर पुनः चला जाऊँगा, अतः मेरे लिये शोक क्या? हे कान्ते! तुम भी शीघ्र ही इस शरीरका त्यागकर दिव्य रूप धारण करके उन्हीं श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, अतः दुःखी मत होओ॥ ६८—७१ १/२ ॥

यह कहकर वह शंखचूड़ सायंकाल होनेपर उस तुलसीके साथ पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित सुन्दर शय्यापर सो गया और अनेकविध विलास करने लगा। रत्नके दीपकोंसे सुशोभित अपने रत्नमय भवनमें स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सुन्दरीको पाकर राजा शंखचूड़ने मांगलिक आमोद-प्रमोदोंके द्वारा रात्रि व्यतीत की। तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखित होकर रोती हुई, निराहार रहनेके कारण कृश शरीरवाली तथा शोक-सागरमें निमग्न अपनी उस प्रिया तुलसीको अपने वक्षःसे लगाकर वह ज्ञानसम्पन्न शंखचूड़ दिव्यज्ञानके द्वारा उसे पुनः समझाने लगा। प्राचीनकालमें भांडीरवनमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने जिस उत्तम, सभी शोकोंको दूर करनेवाले परम ज्ञानका उपदेश उसके लिये किया था, उसी सम्पूर्ण ज्ञानको शंखचूड़ने उस तुलसीको प्रदान किया। ज्ञान पाकर देवी तुलसीका मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठा। 'सब कुछ नश्वर है'—ऐसा मानकर वह हर्षपूर्वक विहार करने लगी॥ ७२—७७ १/२ ॥

तौ दम्पती च क्रीडन्तौ निमग्नौ सुखसागरे॥ ७८

पुलकाञ्चितसर्वाङ्गौ मूर्च्छितौ निर्जने मुने।
अङ्गप्रत्यङ्गसंयुक्तौ सुप्रीतौ सुरतोत्सुकौ॥ ७९

एकाङ्गौ च तथा तौ द्वौ चार्धनारीश्वरो यथा।
प्राणेश्वरं च तुलसी मेने प्राणाधिकं परम्॥ ८०

प्राणाधिकां च तां मेने राजा प्राणेश्वरीं सतीम्।
तौ स्थितौ सुखसुप्तौ च तन्द्रितौ सुन्दरौ समौ॥ ८१

सुवेषौ सुखसम्भोगादचेष्टौ सुमनोहरौ।
क्षणं सुचेतनौ तौ च कथयन्तौ रसाश्रयात्॥ ८२

कथां मनोरमां दिव्यां हसन्तौ च क्षणं पुनः।
क्षणं च केलिसंयुक्तौ रसभावसमन्वितौ॥ ८३

सुरते विरतिर्नास्ति तौ तद्विषयपण्डितौ।
सततं जययुक्तौ द्वौ क्षणं नैव पराजितौ॥ ८४

हे मुने! विहार करते हुए वे दोनों पति-पत्नी सुखके सागरमें निमग्न हो गये। रतिक्रीडाके लिये उत्सुक वे दोनों निर्जन स्थानमें परस्पर अंग-प्रत्यंगके स्पर्शसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। उस समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त उन दोनोंके सभी अंग पुलकित थे। वे दोनों एक अंगके रूपमें होकर अर्धनारीश्वरके समान प्रतीत हो रहे थे। तुलसी अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती थी और राजा शंखचूड़ भी अपनी उस साध्वी प्राणेश्वरीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझता था। समान सौन्दर्यवाले वे दोनों ही तन्द्रायुक्त दम्पती सुखपूर्वक सोये हुए थे। सुन्दर वेष धारण किये हुए वे मनोहर दम्पती सम्भोगजनित सुखके कारण अचेत पड़े थे। जब कभी वे चेतनामें आते, तब परस्पर रसमयी बातें करने लगते तथा मनोरम और दिव्य कथा कहने लगते, फिर हँसने लगते थे, इसके बाद क्षणभरमें ही शृंगार भावसे युक्त होकर क्रीडा करने लगते थे। इस प्रकार कामकलाके जाननेवाले वे दोनों क्रीडा-विलाससे कभी भी विरत नहीं होते थे। दोनों ही निरन्तर विजयी बने रहकर कभी क्षणभरको भी अपनेको पराजित नहीं मानते थे॥ ७८—८४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शङ्खचूडेन सह देवानां सङ्ग्रामोद्योगवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

~~~

अथैकविंशोऽध्यायः

शंखचूड़ और भगवान् शंकरका विशद वार्तालाप

श्रीनारायण उवाच

श्रीकृष्णं मनसा ध्यात्वा रक्षः कृष्णपरायणः।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय पुष्पतल्पान्मनोहरात्॥ १

रात्रिवासः परित्यज्य स्नात्वा मङ्गलवारिणा।
धौते च वाससी धृत्वा कृत्वा तिलकमुज्ज्वलम्॥ २

चकाराह्निकमावश्यमभीष्टदेववन्दनम्।
दध्याज्यमधुलाजांश्च ददर्श वस्तु मङ्गलम्॥ ३

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले शंखचूड़ने मनमें श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममूहूर्तमें ही अपनी मनोहर पुष्प-शय्यासे उठकर स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्यागकर धुले हुए दो वस्त्र धारण किये। तदनन्तर उज्ज्वल तिलक लगाकर उसने अपने इष्ट देवताके वन्दन आदि नित्य कृत्य सम्पन्न किये। उसने दधि, घृत, मधु और धानका लावा आदि मंगलकारी वस्तुओंका दर्शन किया॥ १—३॥
~~~

रत्नश्रेष्ठं मणिश्रेष्ठं वस्त्रश्रेष्ठं च काञ्चनम्।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ भक्त्या यथा नित्यं च नारद॥ ४

अमूल्यरत्नं यत्किञ्चिन्मुक्तामाणिक्यहीरकम्।
ददौ विप्राय गुरवे यात्रामङ्गलहेतवे॥ ५

गजरत्नमश्वरत्नं धनरत्नं मनोहरम्।
ददौ सर्वं दरिद्राय विप्राय मङ्गलाय च॥ ६

भाण्डाराणां सहस्राणि नगराणां द्विलक्षकम्।
ग्रामाणां शतकोटिं च ब्राह्मणाय ददौ मुदा॥ ७

पुत्रं कृत्वा तु राजेन्द्रं सर्वेषु दानवेषु च।
पुत्रं समर्प्य भार्यां तां राज्यं च सर्वसम्पदम्॥ ८

प्रजानुचरसङ्घं च भाण्डारं वाहनादिकम्।
स्वयं सन्नाहयुक्तश्च धनुष्पाणिर्बभूव ह॥ ९

भृत्यद्वारा क्रमेणैव चकार सैन्यसञ्चयम्।
अश्वानां च त्रिलक्षेण लक्षेण वरहस्तिनाम्॥ १०

रथानामयुतेनैव धानुष्काणां त्रिकोटिभिः।
त्रिकोटिभिर्वर्मिणां च शूलिनां च त्रिकोटिभिः॥ ११

कृता सेनापरिमिता दानवेन्द्रेण नारद।
तस्यां सेनापतिश्चैव युद्धशास्त्रविशारदः॥ १२

महारथः स विज्ञेयो रथिनां प्रवरो रणे।
त्रिलक्षाक्षौहिणीसेनापतिं कृत्वा नराधिपः॥ १३

त्रिंशदक्षौहिणीबाधं भाण्डौघं च चकार ह।
बहिर्बभूव शिविरान्मनसा श्रीहरिं स्मरन्॥ १४

रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानमारुरोह सः।
गुरुवर्गान्पुरस्कृत्य प्रययौ शङ्करान्तिकम्॥ १५

पुष्पभद्रानदीतीरे यत्राक्षयवटः शुभः।
सिद्धाश्रमं च सिद्धानां सिद्धिक्षेत्रं च नारद॥ १६
कपिलस्य तपःस्थानं पुण्यक्षेत्रे च भारते।

हे नारद! उसने प्रतिदिनकी भाँति ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक उत्तम रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र तथा स्वर्ण प्रदान किया। यात्रा मंगलमयी होनेके लिये उसने बहुमूल्य रत्न, मोती, मणि तथा हीरा आदि जो कुछ उसके पास था, अपने विप्र गुरुको समर्पित किया। उसने अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ तथा सुन्दर हाथी, घोड़े और धन-सामग्री सब कुछ दरिद्र ब्राह्मणोंको प्रदान किये। इसी प्रकार शंखचूड़ने ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक हजारों कोष, भण्डार, दो लाख नगर और सौ करोड़ गाँव प्रदान किये॥ ४—७॥

तत्पश्चात् उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा, सेवक वर्ग, कोष और वाहन आदि सौंपकर स्वयं कवच पहन लिया और हाथमें धनुष धारण कर लिया, फिर क्रमसे सेवकोंके माध्यमसे सैनिकोंको एकत्र किया। हे नारद! उस दानवराजके द्वारा तीन लाख घोड़ों, एक लाख उत्तम कोटिके हाथियों, दस हजार रथों, तीन करोड़ धनुर्धारियों, तीन करोड़ कवचधारियों और तीन करोड़ त्रिशूलधारियोंसे युक्त एक विशाल सेना तैयार कर ली गयी॥ ८—११½॥

जो रणमें सभी रथियोंमें श्रेष्ठ होता है, उसे महारथी कहा जाता है। उसने युद्धशास्त्रमें विशारद ऐसे ही एक महारथीको उस सेनाका सेनापति नियुक्त कर दिया। इस प्रकार राजा शंखचूड़ने उसे तीन लाख अक्षौहिणी सेनाका सेनापति बनाकर उसे तीस-तीस अक्षौहिणी सेनाके समूहोंमें रक्षाके लिये सैन्यसामग्रीसे सम्पन्न कर दिया और तत्पश्चात् मनमें भगवान् श्रीहरिका स्मरण करता हुआ वह शिविरसे बाहर निकल गया॥ १२—१४॥

वह सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ हुआ और गुरुवृन्दोंको आगे करके भगवान् शंकरके पास चल पड़ा॥ १५॥

हे नारद! पुष्पभद्रानदीके तटपर एक सुन्दर वटवृक्ष है, वहाँ सिद्ध महात्माओंका सिद्धाश्रम है। उस स्थानको सिद्धिक्षेत्र कहा गया है। भारतमें स्थित वह पुण्यक्षेत्र कपिलमुनिकी तपोभूमि है। वह पश्चिमी

पश्चिमोदधिपूर्वे च मलयस्य च पश्चिमे॥ १७

श्रीशैलोत्तरभागे च गन्धमादनदक्षिणे।
पञ्चयोजनविस्तीर्णा दैर्घ्ये शतगुणा तथा॥ १८

शुद्धस्फटिकसङ्काशा भारते च सुपुण्यदा।
शाश्वती जलपूर्णा च पुष्पभद्रा नदी शुभा॥ १९

लवणाब्धिप्रिया भार्या शश्वत्सौभाग्यसंयुता।
शरावतीमिश्रिता च निर्गता सा हिमालयात्॥ २०

गोमतीं वामतः कृत्वा प्रविष्टा पश्चिमोदधौ।
तत्र गत्वा शङ्खचूडो ददर्श चन्द्रशेखरम्॥ २१

वटमूले समासीनं सूर्यकोटिसमप्रभम्।
कृत्वा योगासनं दृष्ट्वा मुद्रायुक्तं च सस्मितम्॥ २२

शुद्धस्फटिकसङ्काशं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
त्रिशूलपट्टिशधरं व्याघ्रचर्माम्बरं वरम्॥ २३

भक्तमृत्युहरं शान्तं गौरीकान्तं मनोहरम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्॥ २४

आशुतोषं प्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्।
विश्वनाथं विश्वबीजं विश्वरूपं च विश्वजम्॥ २५

विश्वम्भरं विश्ववरं विश्वसंहारकारकम्।
कारणं कारणानां च नरकार्णवतारणम्॥ २६

ज्ञानप्रदं ज्ञानबीजं ज्ञानानन्दं सनातनम्।
अवरुह्य विमानाच्च तं दृष्ट्वा दानवेश्वरः॥ २७

सर्वैः सार्धं भक्तियुक्तः शिरसा प्रणनाम सः।
वामतो भद्रकालीं च स्कन्दं च तत्पुरः स्थितम्॥ २८
आशिषं च ददौ तस्मै काली स्कन्दश्च शङ्करः।

समुद्रके पूर्वमें, मलयपर्वतके पश्चिममें, श्रीशैलपर्वतकी उत्तर दिशामें तथा गन्धमादनपर्वतकी दक्षिण दिशामें स्थित है॥ १६-१७$\frac{1}{2}$ ॥

वहाँ भारतवर्षकी एक पुण्यदायिनी नदी बहती है, जो पाँच योजन चौड़ी तथा उससे सौ गुनी लम्बी है। पुष्पभद्रा नामक वह कल्याणकारिणी, शाश्वत तथा शुद्ध स्फटिकमणिके सदृश प्रतीत होनेवाली नदी जलसे सदा परिपूर्ण रहती है। लवण-समुद्रकी प्रिय भार्याके रूपमें प्रतिष्ठित वह नदी सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। वह हिमालयसे निकली हुई है तथा कुछ दूर जाकर शरावती नदीमें मिल गयी है। वह गोमतीको अपनेसे बायें करके प्रवाहित होती हुई अन्तमें पश्चिमी समुद्रमें समाविष्ट हो जाती है॥ १८—२०$\frac{1}{2}$ ॥

वहाँ पहुँचकर शंखचूड़ने देखा कि करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान चन्द्रशेखर भगवान् शिव वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। वे मुद्रासे युक्त होकर योगासनमें स्थित थे और उनके मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी। ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान वे भगवान् शंकर शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रतीत हो रहे थे। वे अपने हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर धारण किये हुए थे॥ २१—२३ ॥

अपने भक्तोंकी मृत्युतकको टाल देनेवाले, शान्तस्वभाव, मनोहर, तपस्याओंका फल तथा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसादपूर्ण मुखमण्डलवाले, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल, विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर, विश्वसंहारक, कारणोंके भी कारण, नरकरूपी समुद्रसे पार करनेवाले, ज्ञानप्रद, ज्ञानबीज, ज्ञानानन्द तथा सनातन उन गौरीपति महादेवको देखकर उस दानवेश्वर शंखचूड़ने विमानसे उतरकर सबके साथ वहाँ विद्यमान शंकरको सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। शंखचूड़ने शिवके वामभागमें विराजमान भद्रकाली तथा उनके सामने स्थित कार्तिकेयको भी प्रणाम किया। तब भद्रकाली, कार्तिकेय तथा भगवान् शंकरने उसे आशीर्वाद प्रदान किया॥ २४—२८$\frac{1}{2}$ ॥

उत्तस्थुरागतं दृष्ट्वा सर्वे नन्दीश्वरादयः॥ २९

परस्परं च भाषन्ते चक्रुस्तत्र च साम्प्रतम्।
राजा कृत्वा च सम्भाषामुवास शिवसन्निधौ॥ ३०

प्रसन्नात्मा महादेवो भगवांस्तमुवाच ह।

महादेव उवाच

विधाता जगतां ब्रह्मा पिता धर्मस्य धर्मवित्॥ ३१

मरीचिस्तस्य पुत्रश्च वैष्णवाश्चापि धार्मिकः।
कश्यपश्चापि तत्पुत्रो धर्मिष्ठश्च प्रजापतिः॥ ३२

दक्षः प्रीत्या ददौ तस्मै भक्त्या कन्यास्त्रयोदश।
तास्वेका च दनुः साध्वी तत्सौभाग्यविवर्धिता॥ ३३

चत्वारिंशद्दनोः पुत्रा दानवास्तेजसोल्बणाः।
तेष्वेको विप्रचित्तिश्च महाबलपराक्रमः॥ ३४

तत्पुत्रो धार्मिको दम्भो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः।
जजाप परमं मन्त्रं पुष्करे लक्षवत्सरम्॥ ३५

शुक्राचार्यं गुरुं कृत्वा कृष्णस्य परमात्मनः।
तदा त्वां तनयं प्राप परं कृष्णपरायणम्॥ ३६

पुरा त्वं पार्षदो गोपो गोपेष्वपि सुधार्मिकः।
अधुना राधिकाशापाद्भारते दानवेश्वरः॥ ३७

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तुच्छं मेने च वैष्णवः।
सालोक्यसार्ष्टिसायुज्यसामीप्यं च हरेरपि॥ ३८

दीयमानं न गृह्णन्ति वैष्णवाः सेवनं विना।
ब्रह्मत्वममरत्वं वा तुच्छं मेने च वैष्णवः॥ ३९

इन्द्रत्वं वा मनुत्वं वा न मेने गणनासु च।
कृष्णभक्तस्य ते किं वा देवानां विषये भ्रमे॥ ४०

शंखचूड़को वहाँ आया देखकर नन्दीश्वर आदि सभी गण उठकर खड़े हो गये और परस्पर सामयिक बातें करने लगे। उनसे बातचीत करके राजा शंखचूड़ शिवके समीप बैठ गया, तब प्रसन्न चित्तवाले भगवान् महादेव उससे कहने लगे॥ २९–३०½ ॥

महादेवजी बोले—सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाले धर्मात्मा ब्रह्मा धर्मके पिता हैं, परम वैष्णव तथा धर्मपरायण मरीचि उन धर्मके पुत्र हैं और उन मरीचिके पुत्र धर्मपरायण कश्यप हैं। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपनी तेरह कन्याएँ सौंप दी थीं। उन्हीं कन्याओंमें एक परम साध्वी दनु भी है, जो उस वंशका सौभाग्य बढ़ानेवाली हुई॥ ३१—३३ ॥

उस दनुके चालीस पुत्र हुए, जो तेजसम्पन्न प्रबल दानवके रूपमें विख्यात थे। उन पुत्रोंमें महान् बल तथा पराक्रमसे युक्त एक पुत्र विप्रचित्ति था। उसका पुत्र दम्भ था; जो परम धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय था। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर परमात्मा श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें एक लाख वर्षतक जप किया; तब उसने कृष्णकी भक्तिमें सदा संलग्न रहनेवाले तुम-जैसे श्रेष्ठ पुरुषको पुत्ररूपमें प्राप्त किया॥ ३४—३६ ॥

पूर्वजन्ममें तुम भगवान् कृष्णके पार्षद और गोपोंमें परम धार्मिक गोप थे। इस समय तुम राधिकाके शापसे भारतवर्षमें दानवेश्वर बन गये हो॥ ३७ ॥

भगवान् विष्णुका भक्त ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभीको तुच्छ समझता है। वैष्णव श्रीहरिकी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन मुक्तियोंको दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णव ब्रह्मत्व अथवा अमरत्वको भी तुच्छ मानता है, इन्द्रत्व अथवा मनुष्यत्वको तो वह किन्हीं भी गणनाओंमें स्थान नहीं देता है; तो फिर तुम-जैसे कृष्णभक्तको देवताओंके भ्रमात्मक राज्यसे क्या प्रयोजन!॥ ३८—४० ॥

देहि राज्यं च देवानां मत्प्रीतिं रक्ष भूमिप।
सुखं स्वराज्ये त्वं तिष्ठ देवास्तिष्ठन्तु वै पदे॥ ४१

अलं भूतविरोधेन सर्वे कश्यपवंशजाः।
यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च॥ ४२

ज्ञातिद्रोहस्य पापानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
स्वसम्पदां च हानिं च यदि राजेन्द्र मन्यसे॥ ४३

सर्वावस्था च समतां केषां याति च सर्वदा।
ब्रह्मणश्च तिरोभावो लये प्राकृतिके सदा॥ ४४

आविर्भावः पुनस्तस्य प्रभावादीश्वरेच्छया।
ज्ञानवृद्धिश्च तपसा स्मृतिलोपश्च निश्चितम्॥ ४५

करोति सृष्टिं ज्ञानेन स्रष्टा सोऽपि क्रमेण च।
परिपूर्णतमो धर्मः सत्ये सत्याश्रये सदा॥ ४६

त्रिभागः सोऽपि त्रेतायां द्विभागो द्वापरे स्मृतः।
एकभागः कलौ पूर्वं तदंशश्च क्रमेण च॥ ४७

कलामात्रं कलेः शेषे कुह्वां चन्द्रकला यथा।
यादृक् तेजो रवेर्ग्रीष्मे न तादृक् शिशिरे पुनः॥ ४८

दिनेषु यादृङ्मध्याह्ने सायं प्रातर्न तत्समम्।
उदयं याति कालेन बालतां च क्रमेण च॥ ४९

प्रकाण्डतां च तत्पश्चात्कालेऽस्तं पुनरेति सः।
दिने प्रच्छन्नतां याति कालेन दुर्दिने घने॥ ५०

हे राजन्! तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो और मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यमें सुखपूर्वक रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। प्राणियोंमें परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये; क्योंकि सभी तो मुनि कश्यपके ही वंशज हैं। ब्रह्महत्या आदिसे होनेवाले जितने पाप हैं, वे जाति-द्रोह करनेसे लगनेवाले पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४१-४२½ ॥

हे राजेन्द्र! यदि तुम इसे अपनी सम्पत्तिकी हानि मानते हो तो यह सोचो कि किन लोगोंकी सभी स्थितियाँ सदा एकसमान रहती हैं। प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्माका भी सदा तिरोधान हो जाया करता है। तदनन्तर ईश्वरके प्रभाव तथा उनकी इच्छासे पुनः उनका प्राकट्य होता है। उस समय उनकी स्मृति लुप्त रहती है, फिर तपस्याके द्वारा उनके ज्ञानमें वृद्धि हो जाती है, यह निश्चित है। तत्पश्चात् वे ब्रह्मा ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं॥ ४३—४५½ ॥

सत्ययुगमें लोग सदा सत्यके आश्रयपर रहते हैं, इसलिये उस युगमें धर्म अपने परिपूर्णतम स्वरूपमें विद्यमान रहता है। वही धर्म त्रेतायुगमें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा गया है। इस प्रकार क्रमसे उसका एक-एक अंश कम होता रहता है। कलिके अन्तमें अमावस्याके चन्द्रमाकी भाँति धर्मकी कला केवल नाममात्र रह जाती है॥ ४६-४७½ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं रह जाता। दिनमें भी सूर्यका जैसा तेज मध्याह्नकालमें होता है, उसके समान तेज प्रातः तथा सायंकालमें नहीं रहता। सूर्य समयसे उगते हैं, फिर क्रमसे बालसूर्यके रूपमें हो जाते हैं, तत्पश्चात् प्रचण्डरूपसे प्रकाशित होने लगते हैं और पुनः यथासमय अस्त हो जाते हैं। वह काल ऐसा भी कर देता है कि सूर्यको दिनमें ही मेघाच्छन्न आकाशमें छिप जाना पड़ता है। वे ही सूर्य राहुसे ग्रसित होनेपर काँपने लगते हैं और फिर थोड़ी ही देरमें प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४८—५०॥

राहुग्रस्ते कम्पितश्च पुनरेव प्रसन्नताम्।
परिपूर्णतमश्चन्द्रः पूर्णिमायां च जायते॥ ५१

तादृशो न भवेन्नित्यं क्षयं याति दिने दिने।
पुनश्च पुष्टिमायाति परं कुह्वा दिने दिने॥ ५२

सम्पद्युक्तः शुक्लपक्षे कृष्णे म्लानश्च यक्ष्मणा।
राहुग्रस्ते दिने म्लानो दुर्दिने न विरोचते॥ ५३

काले चन्द्रो भवेच्छुक्लो भ्रष्टश्रीः कालभेदतः।
भविष्यति बलिश्चेन्द्रो भ्रष्टश्रीः सुतलेऽधुना॥ ५४

कालेन पृथ्वी सस्याढ्या सर्वाधारा वसुन्धरा।
काले जले निमग्ना सा तिरोभूताम्बुविप्लुता॥ ५५

काले नश्यन्ति विश्वानि प्रभवन्त्येव कालतः।
चराचराश्च कालेन नश्यन्ति प्रभवन्ति च॥ ५६

ईश्वरस्यैव समता ब्रह्मणः परमात्मनः।
अहं मृत्युञ्जयो यस्मादसंख्यं प्राकृतं लयम्॥ ५७

आदर्शं चापि द्रक्ष्यामि वारं वारं पुनः पुनः।
स च प्रकृतिरूपश्च स एव पुरुषः स्मृतः॥ ५८

स चात्मा स च जीवश्च नानारूपधरः परः।
करोति सततं यो हि तन्नामगुणकीर्तनम्॥ ५९

काले मृत्युं स जयति जन्मरोगभयं जराम्।
स्रष्टा कृतो विधिस्तेन पाता विष्णुः कृतो भवेत्॥ ६०
अहं कृतश्च संहर्ता वयं विषयिणः कृताः।

जैसे पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमा पूर्णतम रहते हैं, वैसे वे सदा नहीं रहते, अपितु प्रतिदिन उनकी कलामें क्रमशः क्षय होता रहता है। तत्पश्चात् अमावस्यासे इनमें दिनोंदिन वृद्धि होने लगती है और ये पुनः पुष्ट हो जाते हैं। चन्द्रमा शुक्लपक्षमें शोभायुक्त रहते हैं और कृष्णपक्षमें क्षयके द्वारा म्लान हो जाते हैं। राहुके द्वारा ग्रसित होनेके अवसरपर ये शोभाहीन हो जाते हैं और आकाशके मेघाच्छन्न होनेके समय ये प्रकाशित नहीं होते; इस प्रकार कालभेदसे चन्द्रमा किसी समय तेजस्वी और किसी समय शोभाविहीन हो जाते हैं॥ ५१—५३½ ॥

इस समय श्रीविहीन राजा बलि भविष्यमें सुतललोकके इन्द्र होंगे। सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी कालके प्रभावसे सस्योंसे सम्पन्न हो जाती है और फिर वही पृथ्वी कालके प्रभावसे [प्रलयकालीन] जलमें निमग्न हो जाती है और तिरोहित होकर आप्लावित हो जाती है॥ ५४-५५ ॥

एक निश्चित समयपर सभी लोक नष्ट हो जाते हैं और फिर समयपर उत्पन्न भी हो जाते हैं। इस प्रकार जगत्‌के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ कालके ही प्रभावसे नष्ट होते हैं तथा उत्पन्न होते हैं॥ ५६ ॥

ऐश्वर्यसम्पन्न परब्रह्म परमात्माकी ही समता कालसे हो सकती है। उन्हींकी कृपासे मैं मृत्युंजय हो सका हूँ, मैंने असंख्य प्राकृत प्रलय देखे हैं तथा आगे भी बार-बार देखूँगा। वे ही प्रकृतिरूप हैं और वे ही परम पुरुष भी कहे गये हैं। वे परमेश्वर ही आत्मा हैं, वे ही जीव हैं और वे ही अनेक प्रकारके रूप धारण करके सर्वत्र विराजमान हैं॥ ५७-५८½ ॥

जो मनुष्य उन परमेश्वरके नामों तथा गुणोंका सतत कीर्तन करता है, वह यथासमय जन्म, मृत्यु, रोग, भय तथा बुढ़ापेपर विजय प्राप्त कर लेता है। उन्हीं परमेश्वरने ब्रह्माको सृजनकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता तथा मुझ महादेवको संहारकर्ताके रूपमें स्थापित किया है। इस प्रकार उन्हींके द्वारा हमलोग अपने-अपने कार्योंमें नियुक्त किये गये हैं॥ ५९-६०½ ॥

कालाग्निरुद्रं संहारे नियोज्य विषये नृप॥ ६१

अहं करोमि सततं तन्नामगुणकीर्तनम्।
तेन मृत्युञ्जयोऽहं च ज्ञानेनानेन निर्भयः॥ ६२

मृत्युर्मृत्युभयाद्याति वैनतेयादिवोरगाः।
इत्युक्त्वा स च सर्वेशः सर्वभावेन तत्परः॥ ६३

विरराम च शम्भुश्च सभामध्ये च नारद।
राजा तद्वचनं श्रुत्वा प्रशशंस पुनः पुनः॥ ६४

उवाच मधुरं देवं परं विनयपूर्वकम्।

शङ्खचूड उवाच

त्वया यत्कथितं देव नान्यथा वचनं स्मृतम्॥ ६५

तथापि किञ्चिद्यथार्थं श्रूयतां मन्निवेदनम्।
ज्ञातिद्रोहे महत्पापं त्वयोक्तमधुना च यत्॥ ६६

गृहीत्वा तस्य सर्वस्वं कुतः प्रस्थापितो बलिः।
मया समुद्धृतं सर्वमूर्ध्वमैश्वर्यमीश्वर॥ ६७

सुतलाच्च समुद्धर्तुं नालं तत्र गदाधरः।
सभ्रातृको हिरण्याक्षः कथं देवैश्च हिंसितः॥ ६८

शुम्भादयश्चासुराश्च कथं देवैर्निपातिताः।
पुरा समुद्रमथने पीयूषं भक्षितं सुरैः॥ ६९

क्लेशभाजो वयं तत्र ते सर्वे फलभोगिनः।
क्रीडाभाण्डमिदं विश्वं प्रकृतेः परमात्मनः॥ ७०

यस्मै यत्र स ददाति तस्यैश्वर्यं भवेत्तदा।
देवदानवयोर्वादः शश्वन्नैमित्तिकः सदा॥ ७१

हे राजन्! इस समय मैं कालाग्नि रुद्रको संहार-कार्यमें नियुक्त करके उन्हीं परमात्माके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन कर रहा हूँ। इसीसे मैं मृत्युको जीत लेनेवाला हो गया हूँ और इस ज्ञानसे सम्पन्न हुआ मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मेरे पास आनेसे मृत्यु भी अपनी मृत्युके भयसे उसी प्रकार भाग जाती है, जैसे गरुडके भयसे सर्प॥ ६१-६२½ ॥

हे नारद! पूर्णरूपसे तत्पर होकर सभाके बीच अपने सम्पूर्ण भावोंको प्रदर्शित करते हुए सर्वेश्वर महादेव शंखचूड़से ऐसा कहकर चुप हो गये। उनकी बात सुनकर राजा शंखचूड़ने बार-बार उनकी प्रशंसा की और वह विनम्रतापूर्वक उन परम प्रभुसे यह मधुर वचन कहने लगा॥ ६३-६४½ ॥

शंखचूड़ बोला—[हे भगवन्!] आपने जो बात कही है, उसे अन्यथा नहीं कहा जा सकता, परन्तु मेरा भी कुछ यथार्थ निवेदन है, उसे आप सुन लीजिये॥ ६५½ ॥

आपने अभी यह कहा है कि जाति-द्रोह करनेमें महान् पाप होता है, तो फिर बलिका सर्वस्व छीनकर आपलोगोंने उसे सुतललोकमें क्यों भेज दिया? हे प्रभो! मैं ही बलिके समस्त ऐश्वर्यको पातालसे उठाकर यहाँ लाया हूँ, [अतः इसपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है।] उस समय मैं बलिको सुतललोकसे लानेमें समर्थ नहीं था; क्योंकि भगवान् श्रीहरि गदा धारण किये वहाँ स्थित थे। देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षका वध क्यों किया और उन्होंने शुम्भ आदि असुरोंको क्यों मार डाला? इसी प्रकार प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनके समय देवता सारा अमृत पी गये थे। उस समय कष्ट तो हम दानवोंने उठाया था और उसके अमृतरूपी फलका भोग उन समस्त देवताओंने किया था॥ ६६—६९½ ॥

यह विश्व प्रकृतिस्वरूप उन परमात्माका क्रीडाभाण्ड है। वे जिस व्यक्तिको जहाँ जो सम्पत्ति देते हैं, वह उस समय उसीकी हो जाती है। किसी निमित्तको लेकर देवता तथा दानवोंके बीच विवाद सदासे निरन्तर चला आ रहा है। किसी समय उनकी जीत अथवा हार होती है और समयानुसार कभी हमारी

पराजयो जयस्तेषां कालेऽस्माकं क्रमेण च।
तदावयोर्विरोधे वागमनं निष्फलं परम्॥ ७२

समसम्बन्धिनो बन्धोरीश्वरस्य महात्मनः।
इयं ते महती लज्जा युद्धेऽस्माभिः सहाधुना॥ ७३

जये ततोऽधिका कीर्तिर्हानिश्चैव पराजये।
इत्येतद्वचनं श्रुत्वा प्रहस्य च त्रिलोचनः॥ ७४

यथोचितमुत्तरं तमुवाच दानवेश्वरम्।

महादेव उवाच

युष्माभिः सह युद्धे मे ब्रह्मवंशसमुद्भवैः॥ ७५

का लज्जा महती राजन्नकीर्तिर्वा पराजये।
युद्धमादौ हरेरेव मधुना कैटभेन च॥ ७६

हिरण्यकशिपोश्चैव सह तेनात्मना नृप।
हिरण्याक्षस्य युद्धं च पुनस्तेन गदाभृता॥ ७७

त्रिपुरैः सह युद्धं च मयापि च पुरा कृतम्।
सर्वेश्वर्याः सर्वमातुः प्रकृत्याश्च बभूव ह॥ ७८

सह शुम्भादिभिः पूर्वं समरः परमाद्भुतः।
पार्षदप्रवरस्त्वं च कृष्णस्य परमात्मनः॥ ७९

ये ये हताश्च दैतेया नहि केऽपि त्वया समाः।
का लज्जा महती राजन् मम युद्धे त्वया सह॥ ८०

सुराणां शरणस्यैव प्रेषितश्च हरेरहो।
देहि राज्यं च देवानामिति मे निश्चितं वचः॥ ८१

युद्धं वा कुरु मत्सार्धं वाग्व्यये किं प्रयोजनम्।
इत्युक्त्वा शङ्करस्तत्र विरराम च नारद।
उत्तस्थौ शङ्खचूडश्च ह्यमात्यैः सह सत्वरम्॥ ८२

जीत-हार होती है। अतः ऐसी स्थितिमें देवता तथा दानव दोनोंके समान सम्बन्धी तथा बन्धुस्वरूप आप महात्मा परमेश्वरका हम दोनोंके विरोधके बीचमें आना निरर्थक है। यदि इस समय हमलोगोंके साथ आप युद्ध करेंगे, तो यह आपके लिये महान् लज्जाकी बात होगी। हमारी जीत होनेपर पहलेसे भी अधिक हम दानवोंकी कीर्ति बढ़ जायगी और पराजय होनेपर आपकी मानहानि होगी॥ ७०—७३½ ॥

[हे नारद!] शंखचूड़की यह बात सुनकर तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिवने हँसकर उस दानवेन्द्रको समुचित उत्तर देना आरम्भ किया॥ ७४½ ॥

महादेवजी बोले—हे राजन्! ब्रह्माके ही वंशमें उत्पन्न हुए तुमलोगोंके साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर अपकीर्ति ही क्या होगी? हे नृप! इसके पहले भी तो मधु और कैटभसे श्रीहरिका युद्ध हो चुका है। एक बार उनके साथ हिरण्यकशिपुका युद्ध हुआ था और इसके बाद श्रीहरिने गदा लेकर हिरण्याक्षके साथ भी युद्ध किया था। मैं भी तो पूर्वकालमें त्रिपुर राक्षसके साथ युद्ध कर चुका हूँ। इसी प्रकार पूर्व समयमें शुम्भ आदि दानवोंके साथ सर्वेश्वरी, सर्वजननी पराप्रकृतिका भी अत्यन्त विस्मयकारी युद्ध हुआ था॥ ७५—७८½ ॥

तुम तो परमात्मा श्रीकृष्णके प्रधान पार्षद रहे हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, वे तुम्हारे-जैसे नहीं थे। अतः हे राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा है? सभी देवता श्रीहरिकी शरणमें गये थे, तब देवताओंकी सहायताके लिये उन्होंने मुझे भेजा है। तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो—यह मेरा निश्चित वचन है, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो। वाणीका अपव्यय करनेसे क्या लाभ?॥ ७९—८१½ ॥

हे नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये; और शंखचूड़ भी मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ॥ ८२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे शङ्खचूडकृते प्रबोधवाक्यवर्णनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

~~O~~

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

कुमार कार्तिकेय और भगवती भद्रकालीसे शंखचूड़का भयंकर युद्ध और आकाशवाणीका पाशुपतास्त्रसे शंखचूड़की अवध्यताका कारण बताना

श्रीनारायण उवाच

शिवं प्रणम्य शिरसा दानवेन्द्रः प्रतापवान्।
समारुरोह यानं च सहामात्यैः स सत्वरः॥ १
शिवः स्वसैन्यं देवांश्च प्रेरयामास सत्वरम्।
दानवेन्द्रः ससैन्यश्च युद्धारम्भे बभूव ह॥ २
स्वयं महेन्द्रो युयुधे सार्धं च वृषपर्वणा।
भास्करो युयुधे विप्रचित्तिना सह सत्वरः॥ ३
दम्भेन सह चन्द्रश्च चकार परमं रणम्।
कालस्वरेण कालश्च गोकर्णेन हुताशनः॥ ४
कुबेरः कालकेयेन विश्वकर्मा मयेन च।
भयङ्करेण मृत्युश्च संहारेण यमस्तथा॥ ५
विकङ्कणेन वरुणश्चञ्चलेन समीरणः।
बुधश्च घृतपृष्ठेन रक्ताक्षेण शनैश्चरः॥ ६
जयन्तो रत्नसारेण वसवो वर्चसां गणैः।
अश्विनौ च दीप्तिमता धूम्रेण नलकूबरः॥ ७
धुरन्धरेण धर्मश्च उषाक्षेण च मङ्गलः।
शोभाकरेण वै भानुः पिठरेण च मन्मथः॥ ८
गोधामुखेन चूर्णेन खड्गेन च ध्वजेन च।
काञ्चीमुखेन पिण्डेन धूम्रेण सह नन्दिना॥ ९
विश्वेन च पलाशेनादित्याद्या युयुधुः परे।
एकादश च रुद्रा वै एकादशभयङ्करैः॥ १०
महामारी च युयुधे चोग्रचण्डादिभिः सह।
नन्दीश्वरादयः सर्वे दानवानां गणैः सह॥ ११
युयुधुश्च महायुद्धे प्रलयेऽपि भयङ्करे।
वटमूले च शम्भुश्च तस्थौ काल्या सुतेन च॥ १२
सर्वे च युयुधुः सैन्यसमूहाः सततं मुने।
रत्नसिंहासने रम्ये कोटिभिर्दानवैः सह॥ १३
उवास शङ्खचूडश्च रत्नभूषणभूषितः।

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] दानवराज प्रतापी शंखचूड़ सिर झुकाकर शिवजीको प्रणाम करके मन्त्रियोंके साथ तत्काल यानपर सवार हुआ॥ १॥

उसी समय महादेवजीने अपनी सेना तथा देवताओंको तुरंत युद्धके लिये आज्ञा दे दी और दानवेन्द्र शंखचूड़ भी अपनी सेनाको साथ लेकर युद्धके लिये तैयार हो गया॥ २॥

स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ और सूर्यदेव विप्रचित्तिके साथ वेगपूर्वक युद्ध करने लगे। इसी तरह दम्भके साथ चन्द्रमाने भीषण युद्ध किया। उस समय कालस्वरके साथ काल, गोकर्णके साथ अग्निदेव, कालकेयके साथ कुबेर, मयके साथ विश्वकर्मा, भयंकरके साथ मृत्यु, संहारके साथ यम, विकंकणके साथ वरुण, चंचलके साथ पवनदेव, घृतपृष्ठके साथ बुध, रक्ताक्षके साथ शनैश्चर, रत्नसारके साथ जयन्त, वर्चसगणोंके साथ सभी वसु, दीप्तिमान्‌के साथ दोनों अश्विनीकुमार, धूम्रके साथ नलकूबर, धुरन्धरके साथ धर्म, उषाक्षके साथ मंगल, शोभाकरके साथ भानु, पिठरके साथ मन्मथ; गोधामुख, चूर्ण, खड्ग, ध्वज, कांचीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी, विश्व और पलाश आदि दानवोंके साथ आदित्यगण युद्ध करने लगे। इसी तरह ग्यारह भयंकर दानवोंके साथ ग्यारहों रुद्र, उग्रचण्डा आदिके साथ महामारी और दानवगणोंके साथ सभी नन्दीश्वर आदि गण प्रलयसदृश भयंकर महासंग्राममें युद्ध करने लगे॥ ३—११½॥

हे मुने! जब दोनों ओरके सभी सैनिक निरन्तर युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् शंकर भगवती काली तथा पुत्र कार्तिकेयके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उधर रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत शंखचूड़ करोड़ों दानवोंके साथ रत्ननिर्मित रम्य सिंहासनपर बैठा हुआ था॥ १२-१३½॥

शङ्करस्य च ये योधा दानवैश्च पराजिताः॥ १४

देवाश्च दुद्रुवुः सर्वे भीताश्च क्षतविग्रहाः।
चकार कोपं स्कन्दश्च देवेभ्यश्चाभयं ददौ॥ १५

बलं च स्वर्गणानां च वर्धयामास तेजसा।
सोऽयमेकश्च युयुधे दानवानां गणैः सह॥ १६

अक्षौहिणीनां शतकं समरे च जघान सः।
असुरान्पातयामास काली कमललोचना॥ १७

पपौ रक्तं दानवानामतिक्रुद्धा ततः परम्।
दशलक्षगजेन्द्राणां शतलक्षं च कोटिशः॥ १८

समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप लीलया।
कबन्धानां सहस्रं च ननर्त समरे मुने॥ १९

स्कन्दस्य शरजालेन दानवाः क्षतविग्रहाः।
भीताश्च दुद्रुवुः सर्वे महारणपराक्रमाः॥ २०

वृषपर्वा विप्रचित्तिर्दम्भश्चापि विकङ्कणः।
स्कन्देन सार्धं युयुधुस्ते सर्वे विक्रमेण च॥ २१

महामारी च युयुधे न बभूव पराङ्मुखी।
बभूवुस्ते च संक्षुब्धाः स्कन्दस्य शक्तिपीडिताः॥ २२

न दुद्रुवुर्भयात्स्वर्गे पुष्पवृष्टिर्बभूव ह।
स्कन्दस्य समरं दृष्ट्वा महारौद्रं समुल्बणम्॥ २३

दानवानां क्षयकरं यथा प्राकृतिको लयः।
राजा विमानमारुह्य चकार बाणवर्षणम्॥ २४

नृपस्य शरवृष्टिश्च घनस्य वर्षणं यथा।
महाघोरान्धकारश्च वह्न्युत्थानं बभूव च॥ २५

देवाः प्रदुद्रुवुः सर्वेऽप्यन्ये नन्दीश्वरादयः।
एक एव कार्तिकेयस्तस्थौ समरमूर्धनि॥ २६

उस युद्धमें दानवोंने शंकरजीके अनेक योद्धाओंको परास्त कर दिया। सभी देवताओंके अंग क्षत-विक्षत हो गये और वे भयभीत होकर भाग चले। [यह देखकर] कार्तिकेय कुपित हो उठे और उन्होंने देवताओंको अभय प्रदान किया। उन्होंने अपने तेजसे अपने गणोंके बलमें वृद्धि की। तदनन्तर वे अकेले ही दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने संग्राममें एक सौ अक्षौहिणी सेनाको मार डाला॥ १४—१६½ ॥

उस युद्धमें कमलके समान नेत्रवाली कालीने बहुतसे असुरोंको धराशायी कर दिया और उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे दानवोंका रक्त पीने लगीं। वे दस लाख हाथियों तथा करोड़ों-करोड़ों सैनिकोंको एक हाथसे पकड़-पकड़कर लीलापूर्वक अपने मुखमें डालने लगीं। हे मुने! उस समय हजारों मुण्डविहीन धड़ रणभूमिमें नाचने लगे॥ १७—१९ ॥

रणमें महान् पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले समस्त दानव कार्तिकेयकी बाणवर्षासे क्षत-विक्षत शरीरवाले हो गये और भयभीत होकर भागने लगे। तत्पश्चात् वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकण—ये सभी दानव पराक्रमी कार्तिकेयके साथ युद्ध करने लगे। भगवती महामारी भी युद्ध करने लगीं, उन्होंने युद्धसे मुख नहीं मोड़ा। उधर स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे पीड़ित होकर दानव क्षुब्ध हो उठे, किंतु वे भयके कारण रणसे नहीं भागे। कार्तिकेयका वह महाभयंकर तथा भीषण युद्ध देखकर स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। दानवोंका क्षय करनेवाला वह युद्ध प्राकृतिक प्रलयके समान था॥ २०—२३½ ॥

[दानवोंकी यह स्थिति देखकर] राजा शंखचूड़ विमानपर चढ़कर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजाकी बाणवर्षा मेघोंकी वृष्टिके समान थी। इससे चारों ओर महाघोर अन्धकार छा गया और सर्वत्र अग्निकी लपटें निकलने लगीं। इससे सभी देवता तथा अन्य नन्दीश्वर आदि गण भी भाग खड़े हुए। उस समय एकमात्र स्वामी कार्तिकेय ही समरभूमिमें डटे रहे॥ २४—२६ ॥

पर्वतानां च सर्पाणां शिलानां शाखिनां तथा।
नृपश्चकार वृष्टिं च दुर्वारां च भयङ्करीम्॥ २७

नृपस्य शरवृष्ट्या च प्रहितः शिवनन्दनः।
नीहारेण च सान्द्रेण प्रहितो भास्करो यथा॥ २८

धनुश्चिच्छेद स्कन्दस्य दुर्वहं च भयङ्करः।
बभञ्ज च रथं दिव्यं चिच्छेद रथपीठकान्॥ २९

मयूरं जर्जरीभूतं दिव्यास्त्रेण चकार सः।
शक्तिं चिक्षेप सूर्याभां तस्य वक्षस्य घातिनीम्॥ ३०

क्षणं मूर्च्छां च सम्प्राप बभूव चेतनः पुनः।
गृहीत्वा तद्धनुर्दिव्यं यद्दत्तं विष्णुना पुरा॥ ३१

रत्नेन्द्रसारनिर्माणयानमारुह्य कार्तिकः।
शस्त्रास्त्रं च गृहीत्वा च चकार रणमुल्बणम्॥ ३२

सर्पांश्च पर्वतांश्चैव वृक्षांश्च प्रस्तरांस्तथा।
सर्वांश्चिच्छेद कोपेन दिव्यास्त्रेण शिवात्मजः॥ ३३

वह्निं निर्वापयामास पार्जन्येन प्रतापवान्।
रथं धनुश्च चिच्छेद शङ्खचूडस्य लीलया॥ ३४

सन्नाहं सारथिं चैव किरीटं मुकुटोज्ज्वलम्।
चिक्षेप शक्तिं शुक्लाभां दानवेन्द्रस्य वक्षसि॥ ३५

मूर्च्छां सम्प्राप्य राजा च चेतनश्च बभूव ह।
आरुरोह यानमन्यद्धनुर्जग्राह सत्वरः॥ ३६

चकार शरजालं च मायया मायिनां वरः।
गुहं चच्छाद समरे शरजालेन नारद॥ ३७

जग्राह शक्तिमव्यग्रां शतसूर्यसमप्रभाम्।
प्रलयाग्निशिखारूपां विष्णोश्च तेजसावृताम्॥ ३८

चिक्षेप तां च कोपेन महावेगेन कार्तिके।
पपात शक्तिस्तद्गात्रे वह्निराशिरिवोज्ज्वला॥ ३९
मूर्च्छां सम्प्राप शक्त्या च कार्तिकेयो महाबलः।

राजा शंखचूड़ पर्वतों, सर्पों, पत्थरों तथा वृक्षोंकी दुर्निवार्य तथा भयंकर वर्षा करने लगा। राजा शंखचूड़की बाणवर्षासे शिवपुत्र कार्तिकेय उसी प्रकार ढँक गये, जैसे घने कुहरेसे सूर्य ढँक जाते हैं। उसने कार्तिकेयके दुर्वह तथा भयंकर धनुषको काट डाला, दिव्य रथको खण्ड-खण्ड कर दिया और रथपीठोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने कार्तिकेयके मयूरको अपने दिव्य अस्त्रसे जर्जर कर दिया और सूर्यके समान चमकनेवाली प्राण-घातिनी शक्ति उनके वक्षपर चला दी॥ २७—३०॥

इससे वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये, फिर थोड़ी ही देरमें सचेत हो गये। तदनन्तर जिस दिव्य धनुषको पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने कार्तिकेयको दिया था, उसे हाथमें लेकर वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर और अनेक शस्त्रास्त्रोंको लेकर भयंकर युद्ध करने लगे॥ ३१-३२॥

वह दानव सर्पों, पर्वतों, वृक्षों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, किंतु शिवपुत्र कार्तिकेयने क्रोधित होकर अपने दिव्य अस्त्रसे उन सबको काट डाला। प्रतापी कार्तिकेयने शंखचूड़द्वारा लगायी गयी आगको अपने पार्जन्य अस्त्रसे बुझा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने शंखचूड़के रथ, धनुष, कवच, सारथी, किरीट तथा उज्ज्वल मुकुटको खेल-खेलमें काट डाला और उस दानवेन्द्रके वक्षपर शुक्ल आभावाली शक्ति चला दी॥ ३३—३५॥

उसके आघातसे राजा शंखचूड़ मूर्च्छित हो गया, किंतु थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वह तत्काल दूसरे रथपर सवार हो गया और उसने शीघ्र ही दूसरा धनुष उठा लिया। हे नारद! मायावियोंमें श्रेष्ठ उस शंखचूड़ने अपनी मायासे बाणोंका जाल फैला दिया और उस बाणजालसे कार्तिकेयको आच्छादित कर दिया॥ ३६-३७॥

उसने कभी भी व्यग्र न होनेवाली, सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभायुक्त, प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान आकृतिवाली और सदा विष्णुके तेजसे आवृत रहनेवाली शक्ति उठा ली तथा क्रोध करके बड़े वेगसे उसे कार्तिकेयपर चला दिया। अग्नि-राशिके समान उज्ज्वल वह शक्ति उनके शरीरपर गिरी और वे महाबली कार्तिकेय उस शक्तिके प्रभावसे मूर्च्छित हो गये॥ ३८-३९ १/२ ॥

काली गृहीत्वा तं क्रोडे निनाय शिवसन्निधौ॥ ४०

शिवस्तं चापि ज्ञानेन जीवयामास लीलया।
ददौ बलमनन्तं च समुत्तस्थौ प्रतापवान्॥ ४१

काली जगाम समरं रक्षितुं कार्तिकस्य या।
वीरास्तामनुजग्मुश्च ते च नन्दीश्वरादयः॥ ४२

सर्वे देवाश्च गन्धर्वा यक्षराक्षसकिन्नराः।
वाद्यभाण्डाश्च बहुशः शतशो मधुवाहकाः॥ ४३

सा च गत्वाथ संग्रामं सिंहनादं चकार च।
देव्याश्च सिंहनादेन प्रापुर्मूर्च्छां च दानवाः॥ ४४

अट्टाट्टहासमशिवं चकार च पुनः पुनः।
दृष्ट्वा पपौ च माध्वीकं ननर्त रणमूर्धनि॥ ४५

उग्रदंष्ट्रा चोग्रदण्डा कोटवी च पपौ मधु।
योगिनीडाकिनीनां च गणाः सुरगणादयः॥ ४६

दृष्ट्वा कालीं शङ्खचूडः शीघ्रमाजौ समाययौ।
दानवाश्च भयं प्रापू राजा तेभ्योऽभयं ददौ॥ ४७

काली चिक्षेप वह्निं च प्रलयाग्निशिखोपमम्।
राजा निर्वापयामास पार्जन्येन च लीलया॥ ४८

चिक्षेप वारुणं सा च तीव्रं च महदद्भुतम्।
गान्धर्वेण च चिच्छेद दानवेन्द्रश्च लीलया॥ ४९

माहेश्वरं प्रचिक्षेप काली वह्निशिखोपमम्।
राजा जघान तं शीघ्रं वैष्णवेन च लीलया॥ ५०

नारायणास्त्रं सा देवी चिक्षेप मन्त्रपूर्वकम्।
राजा ननाम तद् दृष्ट्वा चावरुह्य रथादसौ॥ ५१

ऊर्ध्वं जगाम तच्चास्त्रं प्रलयाग्निशिखोपमम्।
पपात शङ्खचूडश्च भक्त्या तं दण्डवद्भुवि॥ ५२

तब भद्रकाली उन्हें अपनी गोदमें लेकर शिवके पास ले गयीं। शिवने अपने ज्ञानके द्वारा उन्हें लीलापूर्वक चेतनायुक्त कर दिया, साथ ही उन्हें असीम शक्ति भी प्रदान की। तब प्रतापी कार्तिकेय उठ खड़े हुए॥ ४०-४१ ॥

कार्तिकेयकी रक्षामें तत्पर जो भद्रकाली थीं, वे युद्धभूमिके लिये प्रस्थित हो गयीं और नन्दीश्वर आदि जो वीर थे, वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मृदंग आदि बाजे बजानेवाले तथा मधु ढोनेवाले कई सौ अन्य लोग भी उनके साथ चल दिये॥ ४२-४३ ॥

रणभूमिमें पहुँचते ही कालीने सिंह-गर्जन किया। भगवतीके सिंहनादसे बहुतसे दानव मूर्च्छित हो गये। दानवोंको देखकर देवीने बार-बार भीषण अट्टहास किया और मधुपान किया तथा वे रणभूमिमें नाचने लगीं। उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी, योगिनियों तथा डाकिनियोंके गण और देवतालोग भी मधुपान करने लगे॥ ४४—४६ ॥

भद्रकालीको देखकर शंखचूड़ भी शीघ्र युद्धभूमिमें आ गया। दानव डरे हुए थे, अतः राजा शंखचूड़ने उन्हें अभय प्रदान किया॥ ४७ ॥

भद्रकालीने प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान आग्नेयास्त्र शंखचूड़पर चला दिया। राजाने अपने पार्जन्यास्त्रसे खेल-खेलमें उसे बुझा दिया॥ ४८ ॥

तदनन्तर उस कालीने अत्यन्त तीव्र तथा अद्भुत वारुणास्त्र उसपर चलाया, जिसे उस दानवराजने अपने गान्धर्वास्त्रसे लीलापूर्वक काट दिया। तब कालीने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी माहेश्वरास्त्र उसपर चलाया, जिसे राजा शंखचूड़ने अपने वैष्णवास्त्रसे बड़ी सहजतापूर्वक शीघ्र ही विफल कर दिया॥ ४९-५० ॥

इसके बाद कालीने राजा शंखचूड़पर मन्त्रपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उसे देखते ही उसने रथसे उतरकर प्रणाम किया और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजस्वी वह अस्त्र ऊपरकी ओर चला गया। शंखचूड़ भक्तिपूर्वक दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर पुनः प्रणाम करने लगा॥ ५१-५२ ॥

ब्रह्मास्त्रं सा च चिक्षेप यत्नतो मन्त्रपूर्वकम्।
ब्रह्मास्त्रेण महाराजो निर्वापं च चकार सः॥ ५३

तदा चिक्षेप दिव्यास्त्रं सा देवी मन्त्रपूर्वकम्।
राजा दिव्यास्त्रजालेन तन्निर्वाणं चकार च॥ ५४

तदा चिक्षेप शक्तिं च यत्नतो योजनायताम्।
राजा दिव्यास्त्रजालेन शतखण्डां चकार ह॥ ५५

जग्राह मन्त्रपूतं च देवी पाशुपतं रुषा।
निक्षेपणं निरोद्धुं च वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ५६

मृत्युः पाशुपते नास्ति नृपस्य च महात्मनः।
यावदस्ति च मन्त्रस्य कवचं च हरेरिति॥ ५७

यावत्सतीत्वमस्त्येव सत्याश्च नृपयोषितः।
तावदस्य जरामृत्युर्नास्तीति ब्रह्मणो वचः॥ ५८

इत्याकर्ण्य भद्रकाली न तच्चिक्षेप शस्त्रकम्।
शतलक्षं दानवानां जग्रास लीलया क्षुधा॥ ५९

ग्रस्तुं जगाम वेगेन शङ्खचूडं भयङ्करी।
दिव्यास्त्रेण सुतीक्ष्णेन वारयामास दानवः॥ ६०

खड्गं चिक्षेप सा देवी ग्रीष्मसूर्योपमं यथा।
दिव्यास्त्रेण दानवेन्द्रः शतखण्डं चकार सः॥ ६१

पुनर्ग्रस्तुं महादेवी वेगेन च जगाम तम्।
सर्वसिद्धेश्वरः श्रीमान्ववृधे दानवेश्वरः॥ ६२

वेगेन मुष्टिना काली कोपयुक्ता भयङ्करी।
बभञ्ज च रथं तस्य जघान सारथिं सती॥ ६३

सा च शूलं प्रचिक्षेप प्रलयाग्निशिखोपमम्।
वामहस्तेन जग्राह शङ्खचूडः स्वलीलया॥ ६४

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नशील होकर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया, उस राजा शंखचूड़ने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसका शमन कर दिया। तब देवीने मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र चलाया, राजाने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसे भी नष्ट कर दिया॥ ५३-५४॥

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नपूर्वक राजापर योजनभर लम्बी शक्ति चलायी। उसने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसके सैकड़ों खण्ड कर दिये। तब देवीने कुपित होकर मन्त्रसे पवित्र किया हुआ पाशुपतास्त्र उठा लिया। इसी बीच उस अस्त्रको चलानेसे रोकने हेतु यह आकाशवाणी हुई—'महान् आत्मावाले इस राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं होगी। जबतक यह भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच अपने गलेमें धारण किये रहेगा और जबतक इसकी साध्वी पत्नीका सतीत्व विद्यमान रहेगा, तबतक जरा और मृत्यु इसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते'—यह ब्रह्माका वचन है॥ ५५—५८॥

यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं चलाया। अब वे क्षुधातुर होकर लीलापूर्वक करोड़ों दानवोंको निगलने लगीं। जब भयंकर भगवती काली शंखचूड़को निगल जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब उस दानवने अपने अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया॥ ५९-६०॥

तदनन्तर उन भद्रकालीने ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान तेजसम्पन्न खड्ग उसपर चला दिया। तब दानवेन्द्र शंखचूड़ने दिव्यास्त्रसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इसके बाद महादेवी उसे खा जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब सर्वसिद्धेश्वर तथा श्रीसम्पन्न दानवेन्द्र शंखचूड़ने अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया॥ ६१-६२॥

भयंकर रूपवाली सती कालीने कुपित होकर तेज मुष्टिका-प्रहारसे उसका रथ खण्ड-खण्ड कर दिया और उसके सारथीको मार डाला॥ ६३॥

तत्पश्चात् उन भद्रकालीने उसके ऊपर प्रलयाग्निकी शिखाके समान त्रिशूल चलाया। शंखचूड़ने अपनी लीलासे बायें हाथसे उसे पकड़ लिया॥ ६४॥

मुष्ट्या जघान तं देवी महाकोपेन वेगतः।
बभ्राम च तया दैत्यः क्षणं मूर्च्छामवाप च॥ ६५

क्षणेन चेतनां प्राप्य समुत्तस्थौ प्रतापवान्।
न चकार बाहुयुद्धं देव्या सह ननाम ताम्॥ ६६

देव्याश्चास्त्रं स चिच्छेद जग्राह च स्वतेजसा।
नास्त्रं चिक्षेप तां भक्तो मातृभक्त्या तु वैष्णवः॥ ६७

गृहीत्वा दानवं देवी भ्रामयित्वा पुनः पुनः।
ऊर्ध्वं च प्रापयामास महावेगेन कोपिता॥ ६८

ऊर्ध्वात्पपात वेगेन शङ्खचूडः प्रतापवान्।
निपत्य च समुत्तस्थौ प्रणम्य भद्रकालिकाम्॥ ६९

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं विमानं सुमनोहरम्।
आरुरोह हर्षयुक्तो न विश्रान्तो महारणे॥ ७०

दानवानां च क्षतजं सा देवी च पपौ क्षुधा।
पीत्वा भुक्त्वा भद्रकाली जगाम शङ्करान्तिकम्॥ ७१

उवाच रणवृत्तान्तं पौर्वापर्यं यथाक्रमम्।
श्रुत्वा जहास शम्भुश्च दानवानां विनाशनम्॥ ७२

लक्षं च दानवेन्द्राणामवशिष्टं रणेऽधुना।
भुञ्जन्त्या निर्गतं वक्त्रात्तदन्यं भुक्तमीश्वर॥ ७३

संग्रामे दानवेन्द्रं च हन्तुं पाशुपतेन वै।
अवध्यस्तव राजेति वाग्बभूवाशरीरिणी॥ ७४

राजेन्द्रश्च महाज्ञानी महाबलपराक्रमः।
न च चिक्षेप मय्यस्त्रं चिच्छेद मम सायकम्॥ ७५

इसके बाद देवीने अत्यन्त क्रोध करके बड़ी तेजीसे उसपर मुष्टिप्रहार किया। उसके फलस्वरूप उसे चक्कर आ गया और वह क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया। वह प्रतापी शंखचूड़ अपने तेजसे थोड़ी ही देरमें फिर चेतनामें आकर उठ खड़ा हुआ। उसने देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया, बल्कि उन्हें प्रणाम करने लगा॥ ६५-६६॥

उस शंखचूड़ने अबतक भगवतीके अस्त्रोंको अपने तेजसे काट दिया था अथवा उनके अस्त्रोंको पकड़ लिया था, किंतु उस वैष्णव भक्तने मातृभक्तिके कारण उनपर अस्त्र नहीं चलाया था॥ ६७॥

तदनन्तर देवीने उस दानवको पकड़कर कई बार घुमाया और कुपित होकर बड़े वेगसे उसे ऊपरकी ओर फेंक दिया। वह प्रतापी शंखचूड़ ऊपरसे बड़े वेगसे गिरा और नीचे गिरते ही उठकर खड़ा हो गया। तदनन्तर भद्रकालीको प्रणाम करके वह अत्यन्त मनोहर रत्ननिर्मित विमानपर हर्षपूर्वक आरूढ़ हो गया। उस महारणमें उसने थोड़ी देर भी विश्राम नहीं किया॥ ६८—७०॥

इसके बाद भगवती भूखके कारण दानवोंका रक्त पीने लगीं। इस प्रकार दानवोंका रक्तपान तथा भक्षण करके वे भद्रकाली शंकरके पास चली गयीं॥ ७१॥

[वहाँ पहुँचकर] उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक युद्ध-सम्बन्धी सभी वृत्तान्त क्रमसे बतलाया। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। भद्रकालीने यह भी कहा—हे ईश्वर! रणभूमिमें इस समय भी एक लाख दानव बच गये हैं। जब मैं उन दानवोंको खा रही थी, उस समय कुछ दानव खानेसे बचकर मेरे मुखसे निकल गये थे। जब मैं संग्राममें दानवेन्द्र शंखचूड़को मारनेके लिये पाशुपतास्त्र छोड़नेको उद्यत हुई, उसी समय यह आकाशवाणी हुई 'राजा शंखचूड़ तुमसे अवध्य है।' महान् ज्ञानी तथा असीम बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड़ने मुझपर अस्त्र नहीं चलाया, अपितु मेरे द्वारा छोड़े गये बाणको वह काट दिया करता था॥ ७२—७५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे कालीशङ्खचूडयुद्धवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

~~~
~~~

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

भगवान् शंकर और शंखचूड़का युद्ध, भगवान् श्रीहरिका वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें शंखचूड़से कवच माँग लेना तथा शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे हास-विलास करना, शंखचूड़का भस्म होना और सुदामागोपके रूपमें गोलोक पहुँचना

श्रीनारायण उवाच

शिवस्तत्त्वं समाकर्ण्य तत्त्वज्ञानविशारदः।
ययौ स्वयं च समरे स्वगणैः सह नारद॥ १

शङ्खचूडः शिवं दृष्ट्वा विमानादवरुह्य च।
ननाम परया भक्त्या शिरसा दण्डवद्भुवि॥ २

तं प्रणम्य च वेगेन विमानमारुरोह सः।
तूर्णं चकार सन्नाहं धनुर्जग्राह दुर्वहम्॥ ३

शिवदानवयोर्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।
न बभूवतुरन्योन्यं ब्रह्मञ्जयपराजयौ॥ ४

न्यस्तशस्त्रश्च भगवान् न्यस्तशस्त्रश्च दानवः।
रथस्थः शङ्खचूडश्च वृषस्थो वृषभध्वजः॥ ५

दानवानां च शतकमुद्धृतं च बभूव ह।
रणे ये ये मृताः शम्भुर्जीवयामास तान्विभुः॥ ६

एतस्मिन्नन्तरे वृद्धब्राह्मणः परमातुरः।
आगत्य च रणस्थानमुवाच दानवेश्वरम्॥ ७

वृद्धब्राह्मण उवाच

देहि भिक्षां च राजेन्द्र मह्यं विप्राय साम्प्रतम्।
त्वं सर्वसम्पदां दाता यन्मे मनसि वाञ्छितम्॥ ८

निरीहाय च वृद्धाय तृषिताय च साम्प्रतम्।
पश्चात्त्वां कथयिष्यामि पुरः सत्यं च कुर्विति॥ ९

ओमित्युवाच राजेन्द्रः प्रसन्नवदनेक्षणः।
कवचार्थी जनश्चाहमित्युवाचातिमायया॥ १०

श्रीनारायण बोले—हे नारद! तत्त्वज्ञानके पूर्ण विद्वान् शिवजी सम्पूर्ण बातें सुनकर अपने गणोंके साथ स्वयं संग्राम-भूमिमें गये॥ १॥

शिवजीको देखकर उस शंखचूड़ने तत्काल विमानसे उतरकर परमभक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर दण्डवत् प्रणाम किया॥ २॥

उन्हें प्रणाम करके वह बड़े वेगसे रथपर चढ़ गया और शीघ्रतापूर्वक कवच धारणकर उसने अपना दुर्वह धनुष उठा लिया॥ ३॥

हे ब्रह्मन्! भगवान् शिव तथा दानव शंखचूड़का वह युद्ध पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वे एक-दूसरेको न तो जीत पाते थे और न एक-दूसरेसे पराजित ही हो रहे थे॥ ४॥

कभी अपना शस्त्र रखकर भगवान् शिव वृषभपर विश्राम करने लगते और कभी शस्त्र रखकर दानव शंखचूड़ रथपर ही विश्राम करने लगता था॥ ५॥

असंख्य दानवोंका संहार हुआ। साथ ही रणमें देवपक्षके जो योद्धा मारे गये थे, उन्हें भगवान् शिवने पुनः जीवित कर दिया॥ ६॥

इसी बीच एक परम आतुर बूढ़े ब्राह्मणदेवता रणभूमिमें आकर दानवेन्द्र शंखचूड़से कहने लगे॥ ७॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले—हे राजेन्द्र! मुझ ब्राह्मणको भिक्षा प्रदान कीजिये। इस समय आप सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हैं, अतः मेरे मनमें जो अभिलषित है, उसे दीजिये। इस समय पहले आप मुझ निरीह, वृद्ध तथा तृषित ब्राह्मणको देनेके लिये सत्य-प्रतिज्ञा कीजिये, तब बादमें मैं अपनी अभिलाषा बताऊँगा॥ ८-९॥

इसपर प्रफुल्लित मुख तथा नेत्रोंवाले राजेन्द्र शंखचूड़ने 'हाँ-हाँ, ठीक है'—ऐसा कहा। तत्पश्चात् वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी श्रीहरिने अत्यधिक मायाके साथ कहा 'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ'॥ १०॥

तच्छ्रुत्वा कवचं दिव्यं जग्राह हरिरेव च।
शङ्खचूडस्य रूपेण जगाम तुलसीं प्रति॥ ११

गत्वा तस्यां मायया च वीर्याधानं चकार ह।
अथ शम्भुर्हरेः शूलं जग्राह दानवं प्रति॥ १२

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डप्रलयाग्निशिखोपमम्।
दुर्निवार्यं च दुर्धर्षमव्यर्थं वैरिघातकम्॥ १३

तेजसा चक्रतुल्यं च सर्वशस्त्रास्त्रसारकम्।
शिवकेशवयोरन्यैर्दुर्वहं च भयङ्करम्॥ १४

धनुःसहस्रं दैर्घ्येण प्रस्थेन शतहस्तकम्।
सजीवं ब्रह्मरूपं च नित्यरूपमनिर्दिशम्॥ १५

संहर्तुं सर्वब्रह्माण्डमलं यत्स्वीयलीलया।
चिक्षेप तोलनं कृत्वा शङ्खचूडे च नारद॥ १६

राजा चापं परित्यज्य श्रीकृष्णचरणाम्बुजम्।
ध्यानं चकार भक्त्या च कृत्वा योगासनं धिया॥ १७

शूलं च भ्रमणं कृत्वा पपात दानवोपरि।
चकार भस्मसात्तं च सरथं चाथ लीलया॥ १८

राजा धृत्वा दिव्यरूपं किशोरं गोपवेषकम्।
द्विभुजं मुरलीहस्तं रत्नभूषणभूषितम्॥ १९

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वेष्टितं गोपकोटिभिः।
गोलोकादागतं यानमारुरोह पुरं ययौ॥ २०

उनकी बात सुनकर शंखचूड़ने कवच दे दिया और भगवान् श्रीहरिने उसे ले लिया। तत्पश्चात् वे शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मायापूर्वक उस तुलसीमें अपने तेजका आधान किया॥ ११॥

उसी समय शंकरजीने श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल शंखचूड़पर चलानेके लिये हाथमें ले लिया। वह त्रिशूल ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नकालीन सूर्य और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजवान् था, किसीसे भी रोका न जा सकनेवाला, प्रचण्ड, अव्यर्थ तथा शत्रुघाती वह त्रिशूल तेजमें भगवान् विष्णुके चक्रके समान था, वह सभी शस्त्रास्त्रोंका सारस्वरूप था, वह भयंकर त्रिशूल शिव तथा केशवके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये दुर्वह तथा भयंकर था। वह लम्बाईमें हजार धनुष*के बराबर तथा चौड़ाईमें सौ हाथकी मापवाला था, वह त्रिशूल साक्षात् सजीव ब्रह्मस्वरूप ही था, वह नित्यस्वरूप था, उसे सभी लोग देख नहीं सकते थे॥ १२—१५॥

हे नारद! भगवान् शंकरने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें समर्थ उस त्रिशूलको अपनी लीलासे हाथपर सँभालकर शंखचूड़पर फेंक दिया॥ १६॥

[तब सभी रहस्य समझकर] राजा शंखचूड़ अपना धनुष त्यागकर तथा बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा॥ १७॥

वह त्रिशूल कुछ समयतक चक्कर काटकर दानव शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उस त्रिशूलने रथसमेत शंखचूड़को लीलापूर्वक जलाकर भस्म कर दिया॥ १८॥

तदनन्तर शंखचूड़ने किशोर अवस्था तथा दिव्य रूपवाले एक गोपका वेष धारण कर लिया। वह दो भुजाओंसे सुशोभित था, उसके हाथमें मुरली थी तथा वह रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत था। वह उसी समय गोलोकसे आये हुए तथा करोड़ों गोपोंसे घिरे हुए एक सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक चला गया॥ १९-२०॥

---

* चार हाथके बराबर लम्बाईकी नापको 'धनुष' कहा जाता है।

गत्वा ननाम शिरसा स राधाकृष्णयोर्मुने।
भक्त्या च चरणाम्भोजं रासे वृन्दावने वने॥ २१

सुदामानं च तौ दृष्ट्वा प्रसन्नवदनेक्षणौ।
क्रोडे चक्रतुरत्यन्तं प्रेम्णातिपरिसंयुतौ॥ २२

अथ शूलं च वेगेन प्रययौ तं च सादरम्।
अस्थिभिः शङ्खचूडस्य शङ्खजातिर्बभूव ह॥ २३

नानाप्रकाररूपेण शश्वत्पूता सुरार्चने।
प्रशस्तं शङ्खतोयं च देवानां प्रीतिदं परम्॥ २४

तीर्थतोयस्वरूपं च पवित्रं शम्भुना विना।
शङ्खशब्दो भवेद्यत्र तत्र लक्ष्मीः सुसंस्थिरा॥ २५

स स्नातः सर्वतीर्थेषु यः स्नातः शङ्खवारिणा।
शङ्खो हरेरधिष्ठानं यत्र शङ्खस्ततो हरिः॥ २६

तत्रैव वसते लक्ष्मीर्दूरीभूतममङ्गलम्।
स्त्रीणां च शङ्खध्वनिभिः शूद्राणां च विशेषतः॥ २७

भीता रुष्टा याति लक्ष्मीस्तत्स्थलादन्यदेशतः।
शिवोऽपि दानवं हत्वा शिवलोकं जगाम ह॥ २८

प्रहृष्टो वृषभारूढः स्वगणैश्च समावृतः।
सुराः स्वविषयं प्रापुः परमानन्दसंयुताः॥ २९

नेदुर्दुन्दुभयः स्वर्गे जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
बभूव पुष्पवृष्टिश्च शिवस्योपरि सन्ततम्।
प्रशशंसुः सुरास्तं च मुनीन्द्रप्रवरादयः॥ ३०

हे मुने! वहाँ पहुँचकर उसने वहाँके वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य विराजमान श्रीकृष्ण और राधाके चरणकमलमें भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया॥ २१॥

उस सुदामागोपको देखकर उन दोनोंके मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ उसे अपनी गोदमें बैठा लिया॥ २२॥

तदनन्तर वह त्रिशूल वेगपूर्वक आदरके साथ श्रीकृष्णके पास लौट आया। शंखचूड़की हड्डियोंसे शंखजातिकी उत्पत्ति हुई। वही शंख अनेक प्रकारके रूपोंमें निरन्तर विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें पवित्र माना जाता है। अत्यन्त प्रशस्त, पवित्र तथा तीर्थजलस्वरूप शंखजल केवल शंकरजीको छोड़कर अन्य देवताओंके लिये परम प्रीतिदायक है। जहाँ शंखकी ध्वनि होती है, वहाँ लक्ष्मीजी स्थिररूपसे सदा विराजमान रहती हैं॥ २३—२५॥

जो शंखके जलसे स्नान कर लेता है, उसने मानो समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। शंख भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठानस्वरूप है। जहाँ शंख रहता है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं, वहींपर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं तथा उस स्थानसे सारा अमंगल दूर भाग जाता है, किंतु स्त्रियों और विशेषरूपसे शूद्रोंके द्वारा की गयी शंखध्वनियोंसे भयभीत तथा रुष्ट होकर लक्ष्मीजी उस स्थानसे अन्य देशको चली जाती हैं॥ २६-२७॥

दानव शंखचूड़को मारकर शिवजी भी वृषभपर सवार होकर अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शिवलोक चले गये। देवताओंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया और वे परम आनन्दित हो गये। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे, भगवान् शिवके ऊपर निरन्तर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देवता तथा श्रेष्ठ मुनीश्वर आदि उन शिवजीकी प्रशंसा करने लगे॥ २८—३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
शङ्खचूडवधवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

शंखचूड़रूपधारी श्रीहरिका तुलसीके भवनमें जाना, तुलसीका श्रीहरिको पाषाण होनेका शाप देना, तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण एवं माहात्म्यका वर्णन

नारद उवाच

नारायणश्च भगवान्वीर्याधानं चकार ह।
तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

श्रीनारायण उवाच

नारायणश्च भगवान्देवानां साधनेषु च।
शङ्खचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया॥ २

पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम्।
पातिव्रतस्य नाशेन शङ्खचूडजिघांसया॥ ३

दुन्दुभिं वादयामास तुलसीद्वारसन्निधौ।
जयशब्दं च तद्द्वारे बोधयामास सुन्दरीम्॥ ४

तच्छ्रुत्वा च रवं साध्वी परमानन्दसंयुता।
राजमार्गे गवाक्षेण ददर्श परमादरात्॥ ५

ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा कारयामास मङ्गलम्।
वन्दिभ्यो भिक्षुकेभ्यश्च वाचिभ्यश्च धनं ददौ॥ ६

अवरुह्य रथाद्देवो देव्याश्च भवनं ययौ।
अमूल्यरत्ननिर्माणं सुन्दरं सुमनोहरम्॥ ७

दृष्ट्वा च पुरतः कान्तं सा तं कान्तं मुदान्विता।
तत्पादं क्षालयामास ननाम च रुरोद च॥ ८

रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास कामुकी।
ताम्बूलं च ददौ तस्मै कर्पूरादिसुवासितम्॥ ९

अद्य मे सफलं जन्म जीवनं च बभूव ह।
रणे गतं च प्राणेशं पश्यन्त्याश्च पुनर्गृहे॥ १०

नारदजी बोले—भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारणकर तुलसीमें वीर्याधान किया था, उसे मुझे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीहरि वैष्णवी मायाके द्वारा शंखचूड़का कवच लेकर और फिर उसी शंखचूड़का रूप धारणकर उसकी पत्नीका पातिव्रत्य नष्ट करके शंखचूड़को मारनेकी इच्छासे साध्वी तुलसीके घर गये थे॥ २-३॥

उन्होंने तुलसीके भवनके द्वारके पास दुन्दुभि बजवायी और उस द्वारपर जयकार लगवाकर सुन्दरी तुलसीको यह ज्ञात कराया कि उसके पति विजयी होकर आ गये हैं॥ ४॥

वह ध्वनि सुनकर साध्वी तुलसी परम आनन्दित हुई और अत्यन्त आदरके साथ [पतिदर्शनकी कामनासे] खिड़कीमेंसे राजमार्गकी ओर देखने लगी॥ ५॥

तत्पश्चात् उसने ब्राह्मणोंको धन प्रदान करके मंगलाचार करवाया और बन्दीजनों, भिक्षुकों तथा सूत-मागधोंको [न्यौछावरस्वरूप] धन दिया॥ ६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीहरि रथसे उतरकर देवी तुलसीके सुन्दर, अत्यन्त मनोहर तथा अमूल्य रत्ननिर्मित भवनमें गये॥ ७॥

अपने कान्तिमान् पतिको समक्ष देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने प्रेमपूर्वक उनका चरण धोया, फिर उन्हें प्रणाम किया और वह रोने लगी॥ ८॥

तत्पश्चात् उस कामिनी तुलसीने उन्हें अत्यन्त मनोहर रत्नमय सिंहासनपर बैठाया, पुनः उसने कपूर आदिसे सुगन्धित ताम्बूल उन्हें प्रदान किया। [इसके बाद तुलसीने कहा—] आज मेरा जन्म तथा जीवन—ये दोनों सफल हो गये; क्योंकि मैं युद्धभूमिमें गये हुए अपने प्राणनाथको फिरसे घरमें देख रही हूँ॥ ९-१०॥

सस्मिता सकटाक्षं च सकामा पुलकाङ्किता।
पप्रच्छ रणवृत्तान्तं कान्तं मधुरया गिरा॥ ११

तुलस्युवाच

असंख्यविश्वसंहर्त्रा सार्धमाजौ तव प्रभो।
कथं बभूव विजयस्तन्मे ब्रूहि कृपानिधे॥ १२

तुलसीवचनं श्रुत्वा प्रहस्य कमलापतिः।
शङ्खचूडस्य रूपेण तामुवाचामृतं वचः॥ १३

श्रीभगवानुवाच

आवयोः समरः कान्ते पूर्णमब्दं बभूव ह।
नाशो बभूव सर्वेषां दानवानां च कामिनि॥ १४

प्रीतिञ्च कारयामास ब्रह्मा च स्वयमावयोः।
देवानामधिकारश्च प्रदत्तस्तस्य चाज्ञया॥ १५

मयागतं स्वभवनं शिवलोकं शिवो गतः।
इत्युक्त्वा जगतां नाथः शयनं च चकार ह॥ १६

रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद।
सा साध्वी सुखसम्भोगादाकर्षणव्यतिक्रमात्॥ १७

सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाच सा।

तुलस्युवाच

को वा त्वं वद मायेश भुक्ताहं मायया त्वया॥ १८

दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे।
तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिः शापभयेन च॥ १९

दधार लीलया ब्रह्मन् सुमूर्तिं सुमनोहराम्।
ददर्श पुरतो देवी देवदेवं सनातनम्॥ २०

नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्।
कोटिकन्दर्पलीलाभं रत्नभूषणभूषितम्॥ २१

ईषद्धास्यं प्रसन्नास्यं शोभितं पीतवाससम्।
तं दृष्ट्वा कामिनी कामं मूर्च्छां सम्प्राप लीलया॥ २२

पुनश्च चेतनां प्राप्य पुनः सा तमुवाच ह।

तत्पश्चात् मुसकानयुक्त, तिरछी दृष्टिसे देखती हुई, काममदसे विह्वल और पुलकित अंगोंवाली तुलसी अपने प्राणनाथसे मधुर वाणीमें युद्धसम्बन्धी समाचार पूछने लगी॥ ११॥

तुलसी बोली—प्रभो! असंख्य ब्रह्माण्डोंका संहार करनेवाले शिवजीके साथ हुए युद्धमें आपकी विजय कैसे हुई? हे कृपानिधे! इसे मुझे बताइये॥ १२॥

तुलसीका वचन सुनकर शंखचूड़रूपधारी लक्ष्मीकान्त श्रीहरि उस तुलसीसे हँसकर अमृतमय वाणीमें कहने लगे॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रिये! हम दोनोंका युद्ध पूरे एक वर्षतक होता रहा। हे कामिनि! उस युद्धमें सभी दानवोंका विनाश हो गया। तब स्वयं ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रेम करवा दिया और फिर उनकी आज्ञासे मैंने देवताओंको उनका सम्पूर्ण अधिकार लौटा दिया। इसके बाद मैं अपने घर चला आया और शिवजी अपने लोकको चले गये॥ १४-१५$\frac{1}{2}$॥

हे नारद! यह कहकर जगन्नाथ रमापति श्रीहरि शय्यापर सो गये और जब उस रमणीके साथ विहार करने लगे, तब उस साध्वी तुलसीने अपने मनमें विचार करके सब कुछ जान लिया और 'तुम कौन हो?'—ऐसा वह उनसे पूछने लगी॥ १६-१७$\frac{1}{2}$॥

तुलसी बोली—हे मायेश! तुम कौन हो, यह मुझे बताओ। तुमने छलपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट किया, अतः मैं तुम्हें शाप देती हूँ॥ १८$\frac{1}{2}$॥

हे ब्रह्मन्! तुलसीका वचन सुनकर भगवान् श्रीहरिने शापके भयसे लीलापूर्वक अपना मनोहर विष्णुरूप धारण कर लिया॥ १९$\frac{1}{2}$॥

तब देवी तुलसीने नूतन मेघके समान श्याम वर्णवाले, शरत्कालीन कमलके समान नेत्रोंवाले, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर प्रतीत होनेवाले, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुख-मण्डलवाले, पीताम्बर धारण किये हुए तथा अनुपम शोभासम्पन्न देवाधिदेव सनातन श्रीहरिको अपने समक्ष देखा। उन्हें देखकर कामिनी तुलसी लीलापूर्वक पूर्णतः मूर्च्छित हो गयी और कुछ देर बाद चेतना प्राप्त करके वह उन श्रीहरिसे पुनः कहने लगी॥ २०—२२$\frac{1}{2}$॥

तुलस्युवाच

हे नाथ ते दया नास्ति पाषाणसदृशस्य च॥ २३

छलेन धर्मभङ्गेन मम स्वामी त्वया हतः।
पाषाणहृदयस्त्वं हि दयाहीनो यतः प्रभो॥ २४

तस्मात्पाषाणरूपस्त्वं भवे देव भवाधुना।
ये वदन्ति च साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः॥ २५

भक्तो विनापराधेन परार्थे च कथं हतः।
भृशं रुरोद शोकार्ता विललाप मुहुर्मुहुः॥ २६

ततश्च करुणां दृष्ट्वा करुणारससागरः।
नयेन तां बोधयितुमुवाच कमलापतिः॥ २७

श्रीभगवानुवाच

तपस्त्वया कृतं भद्रे मदर्थे भारते चिरम्।
त्वदर्थे शङ्खचूडश्च चकार सुचिरं तपः॥ २८

कृत्वा त्वां कामिनीं सोऽपि विजहार च तत्क्षणात्।
अधुना दातुमुचितं तवैव तपसः फलम्॥ २९

इदं शरीरं त्यक्त्वा च दिव्यदेहं विधाय च।
रामे रम मया सार्धं त्वं रमासदृशी भव॥ ३०

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति च विश्रुता।
पूता सुपुण्यदा नृणां पुण्ये भवतु भारते॥ ३१

तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति।
तुलसीकेशसम्भूता तुलसीति च विश्रुता॥ ३२

त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने।
प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥ ३३

स्वर्गे मर्त्ये च पाताले गोलोके मम सन्निधौ।
भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी॥ ३४

तुलसी बोली—हे नाथ! आप पाषाणसदृश हो गये हैं, आपमें दया नहीं है। आपने छलपूर्वक मेरा धर्म नष्ट करके मेरे स्वामीको मार डाला। हे प्रभो! आप पाषाण-हृदयवाले हैं तथा दयाहीन हो गये हैं, अतः हे देव! आप इसी समय लोकमें पाषाणरूप हो जायँ। जो लोग आपको साधु कहते हैं, वे भ्रमित हैं; इसमें सन्देह नहीं है। दूसरेका हित साधनेके लिये आपने अपने भक्तको क्यों मार डाला?॥ २३—२५½॥

[हे नारद!] इस प्रकार शोक-सन्तप्त तुलसीने बहुत रुदन तथा बार-बार विलाप किया। तदनन्तर करुणारसके सागर कमलापति श्रीहरि तुलसीकी कारुणिक अवस्था देखकर नीतियुक्त वचनोंसे उसे समझाते हुए कहने लगे॥ २६-२७॥

श्रीभगवान् बोले—हे भद्रे! तुमने भारतमें रहकर मेरे लिये बहुत समयतक तपस्या की है, साथ ही इस शंखचूड़ने भी उस समय तुम्हारे लिये दीर्घ समयतक तपस्या की थी॥ २८॥

तुम्हें पत्नीरूपमें प्राप्त करके उसने तपस्याका फल प्राप्त करके तुम्हारे साथ विहार किया है। अब तुम्हें तुम्हारेद्वारा की गयी तपस्याका फल देना उचित है॥ २९॥

हे रामे! अब तुम इस शरीरको त्यागकर तथा दिव्य देह धारण करके मेरे साथ आनन्द करो और [मेरे लिये] लक्ष्मीके समान हो जाओ॥ ३०॥

तुम्हारा यह शरीर गण्डकीनदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। वह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षके मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली होगी॥ ३१॥

तुम्हारा केशसमूह पुण्य वृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न वह वृक्ष तुलसी नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ३२॥

हे वरानने! देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले त्रिलोकीके समस्त पुष्पों तथा पत्रोंमें तुलसी प्रधानरूपवाली मानी जायगी॥ ३३॥

स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल तथा गोलोक— इन सभी स्थानोंमें तुम मेरे सान्निध्यमें रहोगी। वृक्षश्रेष्ठ उत्तम तुलसी नामसे तुम पुष्पोंके मध्य सदा प्रतिष्ठित रहोगी॥ ३४॥

गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने वने।
भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥ ३५

माधवीकेतकीकुन्दमालिकामालतीवने।
वासस्तेऽत्रैव भवतु पुण्यस्थानेषु पुण्यदः॥ ३६

तुलसीतरुमूलेषु पुण्यदेशेषु पुण्यदम्।
अधिष्ठानं च तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥ ३७

तत्रैव सर्वदेवानां ममाधिष्ठानमेव च।
तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने॥ ३८

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥ ३९

सुधाघटसहस्राणां या तुष्टिस्तु भवेद्धरेः।
सा च तुष्टिर्भवेन्नूनं तुलसीपत्रदानतः॥ ४०

गवामयुतदानेन यत्फलं तत्फलं भवेत्।
तुलसीपत्रदानेन तत्फलं कार्तिके सति॥ ४१

तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते॥ ४२

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुंक्ते भक्त्या च मानवः।
लक्षाश्वमेधजं पुण्यं सम्प्राप्नोति स मानवः॥ ४३

तुलसीं स्वकरे कृत्वा धृत्वा देहे च मानवः।
प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं च गच्छति॥ ४४

तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥ ४५

तुलसीं स्वकरे कृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति।
स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४६

करोति मिथ्याशपथं तुलस्यां योऽत्र मानवः।
स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४७

गोलोक, विरजानदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन, माधवी, केतकी, कुन्द, मालिका, मालतीवन—इन सभी पुण्यमय स्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद वास होगा॥ ३५-३६॥

तुलसीवृक्षके मूलोंके सान्निध्यवाले पुण्यमय स्थानोंमें समस्त तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा। हे वरानने! तुलसीके पत्र अपने ऊपर पड़ें इस उद्देश्यसे वहाँपर मेरा तथा सभी देवताओंका निवास होगा॥ ३७-३८॥

तुलसी-पत्रके जलसे जो व्यक्ति स्नान करता है, उसने मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया॥ ३९॥

हजारों अमृतकलशोंसे भगवान् श्रीहरिको जो सन्तुष्टि होती है, वह उन्हें तुलसीका एक पत्र अर्पण करनेसे अवश्य ही मिल जाती है॥ ४०॥

जो फल दस हजार गायोंका दान करनेसे होता है, वही फल कार्तिकमासमें तुलसीके पत्रके दानसे प्राप्त हो जाता है॥ ४१॥

जिस व्यक्तिको मृत्युके अवसरपर तुलसीपत्रका जल सुलभ हो जाता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४२॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वह एक लाख अश्वमेधयज्ञोंसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसी लेकर या शरीरमें इसे धारणकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोक जाता है॥ ४४॥

जो मनुष्य तुलसी-काष्ठसे निर्मित मालाको धारण करता है, वह पद-पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चय ही प्राप्त करता है॥ ४५॥

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर अपने प्रतिज्ञा-वचनकी रक्षा नहीं करता, वह कालसूत्रनरकमें पड़ता है और वहाँपर चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वास करता है॥ ४६॥

जो मनुष्य इस लोकमें तुलसीके समीप झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितितक वहाँ पड़ा रहता है॥ ४७॥

तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्।
रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठे प्राप्यते ध्रुवम्॥ ४८

पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे।
तैलाभ्यङ्गं च कृत्वा च मध्याह्ने निशि सन्ध्ययोः॥ ४९

अशौचेऽशुचिकाले ये रात्रिवासोऽन्विता नराः।
तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥ ५०

त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति।
श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥ ५१

भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति।
शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥ ५२

वृक्षाधिष्ठातृदेवी या गोलोके च निरामये।
कृष्णेन सार्धं नित्यं च नित्यक्रीडां करिष्यसि॥ ५३

नद्यधिष्ठातृदेवी या भारते च सुपुण्यदा।
लवणोदस्य सा पत्नी मदंशस्य भविष्यति॥ ५४

त्वं च स्वयं महासाध्वी वैकुण्ठे मम सन्निधौ।
रमासमा च रामा च भविष्यसि न संशयः॥ ५५

अहं च शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ।
अधिष्ठानं करिष्यामि भारते तव शापतः॥ ५६

कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रावरायुधैः।
तच्छिलाकुहरे चक्रं करिष्यन्ति मदीयकम्॥ ५७

एकद्वारं चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम्।
नवीननीरदाकारं लक्ष्मीनारायणाभिधम्॥ ५८

एकद्वारं चतुश्चक्रं नवीननीरदोपमम्।
लक्ष्मीजनार्दनो ज्ञेयो रहितो वनमालया॥ ५९

मृत्युके समय जिस मनुष्यके मुखमें तुलसी-जलका एक कण भी पहुँच जाता है, वह रत्नमय विमानपर आरूढ़ होकर निश्चय ही विष्णुलोकको जाता है॥ ४८॥

पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, सूर्य-संक्रान्ति, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, अशौच तथा अपवित्र समयोंमें, रातके कपड़े पहने हुए तथा शरीरमें तेल लगाकर जो लोग तुलसीके पत्र तोड़ते हैं; वे साक्षात् श्रीहरिका मस्तक ही काटते हैं॥ ४९-५०॥

श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक शुद्ध बना रहता है॥ ५१॥

पृथ्वीपर पड़ा हुआ अथवा जलमें गिरा हुआ या श्रीविष्णुको चढ़ाया हुआ तुलसीपत्र धो देनेपर दूसरे कार्योंके लिये शुद्ध होता है॥ ५२॥

वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर तुम शाश्वत गोलोकमें मुझ कृष्णके साथ सदा विहार करोगी। उसी प्रकार भारतवर्षमें नदियोंकी जो अत्यन्त पुण्यदायिनी अधिष्ठात्री देवी हैं, उस रूपमें भी तुम मेरे ही अंशस्वरूप लवणसमुद्रकी पत्नी बनोगी॥ ५३-५४॥

स्वयं महासाध्वी तुम वैकुण्ठलोकमें मेरे सन्निकट लक्ष्मीके समान भार्याके रूपमें सदा विराजमान रहोगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

मैं भी तुम्हारे शापसे पाषाण बनकर भारतवर्षमें गण्डकीनदीके तटके समीप निवास करूँगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीट अपने तीक्ष्ण दाँतरूपी श्रेष्ठ आयुधोंसे काट-काटकर उस शिलाके गड्ढेमें मेरे चक्रका चिह्न बनायेंगे॥ ५६-५७॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान वर्णवाला पाषाण 'लक्ष्मीनारायण' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ५८॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न तथा चार चक्रके चिह्न होंगे, किंतु जो वनमालाकी रेखासे रहित होगा, उस नवीन मेघके समान श्यामवर्ण-वाले पाषाणको 'लक्ष्मी-जनार्दन' नामवाला समझना चाहिये॥ ५९॥

द्वारद्वये चतुश्चक्रं गोष्पदेन विराजितम्।
रघुनाथाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥ ६०

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च नवीनजलदप्रभम्।
तद्वामनाभिधं ज्ञेयं रहितं वनमालया॥ ६१

अतिक्षुद्रं द्विचक्रं च वनमालाविभूषितम्।
विज्ञेयं श्रीधरं रूपं श्रीप्रदं गृहिणां सदा॥ ६२

स्थूलं च वर्तुलाकारं रहितं वनमालया।
द्विचक्रं स्फुटमत्यन्तं ज्ञेयं दामोदराभिधम्॥ ६३

मध्यमं वर्तुलाकारं द्विचक्रं बाणविक्षतम्।
रणरामाभिधं ज्ञेयं शरतूणसमन्वितम्॥ ६४

मध्यमं सप्तचक्रञ्च छत्रभूषणभूषितम्।
राजराजेश्वरं ज्ञेयं राजसम्पत्प्रदं नृणाम्॥ ६५

द्विसप्तचक्रं स्थूलं च नवनीरदसुप्रभम्।
अनन्ताख्यं च विज्ञेयं चतुर्वर्गफलप्रदम्॥ ६६

चक्राकारं द्विचक्रं च सश्रीकं जलदप्रभम्।
सगोष्पदं मध्यमं च विज्ञेयं मधुसूदनम्॥ ६७

सुदर्शनं चैकचक्रं गुप्तचक्रं गदाधरम्।
द्विचक्रं हयवक्त्राभं हयग्रीवं प्रकीर्तितम्॥ ६८

दो द्वार तथा चार चक्रसे युक्त, गायके खुरसे सुशोभित तथा वनमालासे रहित पाषाणको 'रघुनाथ' नामसे जानना चाहिये॥ ६०॥

जिसमें बहुत सूक्ष्म दो चक्रके चिह्न हों और वनमालाकी रेखा न हो, उस नवीन मेघके सदृश वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'वामन' नामसे मानना चाहिये॥ ६१॥

जिस पाषाणमें अत्यन्त सूक्ष्म आकारके दो चक्र हों तथा जो वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सदा श्री प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'श्रीधर' का ही स्वरूप समझना चाहिये॥ ६२॥

स्थूल, गोलाकार, वनमालासे रहित तथा अत्यन्त स्पष्ट दो चक्रोंसे अंकित पाषाणको भगवान्‌का 'दामोदर' नामवाला स्वरूप जानना चाहिये॥ ६३॥

जो मध्यम गोलाईके आकारवाला हो, जिसमें दो चक्र बने हों, जिसपर बाण तथा तरकशका चिह्न अंकित हो और जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'राम' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६४॥

मध्यम आकारवाले, सात चक्रोंके चिह्नोंसे अंकित, छत्र तथा आभूषणसे अलंकृत पाषाणको भगवान् 'राजराजेश्वर' समझना चाहिये। वह पाषाण मनुष्योंको विपुल राजसम्पदा प्रदान करनेवाला है॥ ६५॥

जो पाषाण स्थूल हो, चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघसदृश प्रभावाला हो; उस धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों प्रकारके फल प्रदान करनेवाले पाषाणको भगवान् 'अनन्त' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ६६॥

जो चक्रके आकारवाला हो; जिसमें दो चक्र, श्री और गोखुरके चिह्न सुशोभित हों, ऐसे मध्यम तथा नवीन मेघके समान वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६७॥

सुन्दर दर्शनवाले तथा केवल एक गुप्त चक्रसे युक्त पाषाणको भगवान् 'गदाधर' तथा दो चक्रसे युक्त एवं अश्वके मुखकी आकृतिवाले पाषाणको भगवान् 'हयग्रीव' का विग्रह कहा गया है॥ ६८॥

अतीव विस्तृतास्यं च द्विचक्रं विकटं सति।
नरसिंहं सुविज्ञेयं सद्यो वैराग्यदं नृणाम्॥ ६९

जो अत्यन्त विस्तृत मुखवाला हो, दो चक्रके चिह्नोंसे सुशोभित हो, जो देखनेमें बड़ा विकट लगता हो, मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ६९॥

द्विचक्रं विस्तृतास्यं च वनमालासमन्वितम्।
लक्ष्मीनृसिंहं विज्ञेयं गृहिणां च सुखप्रदम्॥ ७०

जिसमें दो चक्र हों, जो विस्तृत मुखवाला हो तथा वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको 'लक्ष्मीनृसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ७०॥

द्वारदेशे द्विचक्रं च सश्रीकं च समं स्फुटम्।
वासुदेवं तु विज्ञेयं सर्वकामफलप्रदम्॥ ७१

जिसके द्वारदेशमें दो चक्र तथा 'श्री' का चिह्न स्पष्ट रूपसे अंकित हो, समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह जानना चाहिये॥ ७१॥

प्रद्युम्नं सूक्ष्मचक्रं च नवीननीरदप्रभम्।
सुषिरच्छिद्रबहुलं गृहिणां च सुखप्रदम्॥ ७२

जो सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त हो, नवीन मेघके समान श्यामवर्णका हो और जिसके मुखपर बहुतसे छोटे-छोटे छिद्र विद्यमान हों, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको 'प्रद्युम्न' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ७२॥

द्वे चक्रे चैकलग्ने च पृष्ठं यत्र तु पुष्कलम्।
सङ्कर्षणं सुविज्ञेयं सुखदं गृहिणां सदा॥ ७३

जिसमें परस्पर सटे हुए दो चक्रोंके चिह्न विद्यमान हों तथा जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण' का ही रूप समझना चाहिये॥ ७३॥

अनिरुद्धं तु पीताभं वर्तुलं चातिशोभनम्।
सुखप्रदं गृहस्थानां प्रवदन्ति मनीषिणः॥ ७४

जो अत्यन्त सुन्दर, गोलाकार तथा पीत आभावाला हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको विद्वान् पुरुष भगवान् 'अनिरुद्ध' का स्वरूप कहते हैं॥ ७४॥

शालग्रामशिला यत्र तत्र सन्निहितो हरिः।
तत्रैव लक्ष्मीर्वसति सर्वतीर्थसमन्विता॥ ७५

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और वहींपर भगवती लक्ष्मी भी सभी तीर्थोंको साथ लेकर सदा निवास करती हैं॥ ७५॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति शालग्रामशिलार्चनात्॥ ७६

ब्रह्महत्या आदि जो भी पाप हैं, वे सब शालग्रामकी शिलाके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं॥ ७६॥

छत्राकारे भवेद्राज्यं वर्तुले च महाश्रियः।
दुःखञ्च शकटाकारे शूलाग्रे मरणं ध्रुवम्॥ ७७

छत्राकार शालग्रामके पूजनसे राज्य, गोलाकार शालग्रामके पूजनसे महालक्ष्मी, शकटके आकारवाले शालग्रामके पूजनसे कष्ट तथा शूलके समान अग्रभागवाले शालग्रामके पूजनसे निश्चितरूपसे मृत्यु होती है॥ ७७॥

विकृतास्ये च दारिद्र्यं पिङ्गले हानिरेव च।
भग्नचक्रे भवेद्व्याधिर्विदीर्णे मरणं ध्रुवम्॥ ७८

व्रतं दानं प्रतिष्ठा च श्राद्धं च देवपूजनम्।
शालग्रामस्य सान्निध्यात्प्रशस्तं तद्भवेदिति॥ ७९

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सर्वयज्ञेषु तीर्थेषु व्रतेषु च तपःसु च॥ ८०

पाठे चतुर्णां वेदानां तपसां करणे सति।
तत्पुण्यं लभते नूनं शालग्रामशिलार्चनात्॥ ८१

(शालग्रामशिलातोयैर्योऽभिषेकं सदा चरेत्।
सर्वदानेषु यत्पुण्यं प्रदक्षिणं भुवो यथा॥)

शालग्रामशिलातोयं नित्यं भुङ्क्ते च यो नरः।
सुरेप्सितं प्रसादं च लभते नात्र संशयः॥ ८२

तस्य स्पर्शं च वाञ्छन्ति तीर्थानि निखिलानि च।
जीवन्मुक्तो महापूतोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्॥ ८३

तत्रैव हरिणा सार्धमसंख्यं प्राकृतं लयम्।
यास्यत्येव हि दास्ये च नियुक्तो दास्यकर्मणि॥ ८४

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यासमानि च।
तं दृष्ट्वा च पलायन्ते वैनतेयादिवोरगाः॥ ८५

तत्पादरजसा देवी सद्यःपूता वसुन्धरा।
पुंसां लक्षं तत्पितॄणां निस्तरेत्तस्य जन्मतः॥ ८६

शालग्रामशिलातोयं मृत्युकाले च यो लभेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ८७

निर्वाणमुक्तिं लभते कर्मभोगात्प्रमुच्यते।
विष्णोः पदे प्रलीनश्च भविष्यति न संशयः॥ ८८

विकृत मुखवाले शालग्रामसे दरिद्रता, पिंगलवर्णवालेसे हानि, खण्डित चक्रवालेसे व्याधि तथा विदीर्ण शालग्रामसे निश्चय ही मरण होता है॥ ७८॥

व्रत, स्नान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन आदि जो भी कर्म शालग्रामकी सन्निधिमें किया जाता है, वह प्रशस्त माना जाता है और वह कर्ता मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर चुका और सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। इस प्रकार उसे सम्पूर्ण यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंका फल मिल जाता है॥ ७९-८०॥

चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शालग्रामकी शिलाके पूजनसे निश्चितरूपसे सुलभ हो जाता है॥ ८१॥

(जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलसे नित्य अभिषेक करता है, वह सभी दान करने तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है।) जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलका नित्य पान करता है, वह देवाभिलषित प्रसाद प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। समस्त तीर्थ उसका स्पर्श करना चाहते हैं। वह जीवन्मुक्त तथा परम पवित्र मनुष्य अन्तमें भगवान् श्रीहरिके लोक चला जाता है। वहाँपर वह भगवान् श्रीहरिके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयपर्यन्त रहता है। वह वहाँ भगवान्‌का दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और उनके सेवाकार्यमें नियुक्त हो जाता है॥ ८२—८४॥

ब्रह्महत्यासदृश जो कोई भी पाप हों, वे भी उस व्यक्तिको देखते ही उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प॥ ८५॥

उस मनुष्यके चरणकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरन्त पवित्र हो जाती हैं और उसके जन्मसे उसके लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है॥ ८६॥

जो मनुष्य मृत्युके समय शालग्रामशिलाके जलका पान कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। इस प्रकार वह सभी कर्मभोगोंसे मुक्त होकर निर्वाणमुक्ति प्राप्त कर लेता है और भगवान् विष्णुके चरणोंमें लीन हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८७-८८॥

शालग्रामशिलां धृत्वा मिथ्यावाक्यं वदेत्तु यः।
स याति कुम्भीपाके च यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ ८९

शालग्रामशिलां धृत्वा स्वीकारं यो न पालयेत्।
स प्रयात्यसिपत्रं च लक्षमन्वन्तरावधि॥ ९०

तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामे करोति यः।
तस्य जन्मान्तरे कान्ते स्त्रीविच्छेदो भविष्यति॥ ९१

तुलसीपत्रविच्छेदं शङ्खे यो हि करोति च।
भार्याहीनो भवेत्सोऽपि रोगी च सप्तजन्मसु॥ ९२

शालग्रामं च तुलसीं शङ्खं चैकत्र एव च।
यो रक्षति महाज्ञानी स भवेच्छ्रीहरेः प्रियः॥ ९३

सकृदेव हि यो यस्यां वीर्याधानं करोति च।
तद्विच्छेदे तस्य दुःखं भवेदेव परस्परम्॥ ९४

त्वं प्रिया शङ्खचूडस्य चैकमन्वन्तरावधि।
शङ्खेन सार्धं त्वद्भेदः केवलं दुःखदस्तथा॥ ९५

इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तां च विरराम च नारद।
सा च देहं परित्यज्य दिव्यरूपं विधाय च॥ ९६

यथा श्रीश्च तथा सा चाप्युवास हरिवक्षसि।
स जगाम तया सार्धं वैकुण्ठं कमलापतिः॥ ९७

लक्ष्मीः सरस्वती गङ्गा तुलसी चापि नारद।
हरेः प्रियाश्चतस्रश्च बभूवुरीश्वरस्य च॥ ९८

सद्यस्तद्देहजाता च बभूव गण्डकी नदी।
ईश्वरः सोऽपि शैलश्च तत्तीरे पुण्यदो नृणाम्॥ ९९

कुर्वन्ति तत्र कीटाश्च शिलां बहुविधां मुने।
जले पतन्ति या याश्च फलदास्ताश्च निश्चितम्॥ १००

शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर जो मनुष्य मिथ्या वचन बोलता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँ निवास करता है॥ ८९॥

जो शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर अपने द्वारा की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह असिपत्र नामक नरकमें जाता है और वहाँ एक लाख मन्वन्तरकी अवधितक रहता है॥ ९०॥

हे कान्ते! जो मनुष्य शालग्रामशिलासे तुलसीपत्रको हटा देता है, वह दूसरे जन्ममें स्त्रीसे वियुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जो पुरुष शंखसे तुलसीपत्रको अलग करता है, वह भी सात जन्मोंतक भार्याविहीन तथा रोगयुक्त रहता है॥ ९१-९२॥

जो महाज्ञानी व्यक्ति शालग्राम, तुलसी और शंखको एकत्र रखता है, वह भगवान् श्रीहरिके लिये अत्यन्त प्रिय हो जाता है॥ ९३॥

जो पुरुष एक बार भी जिस किसी स्त्रीके साथ एकान्तवास कर लेता है, वियोग होनेपर उसका दुःख उन दोनोंको परस्पर होता है। तुम एक मन्वन्तरकी अवधितक शंखचूड़की भार्या रह चुकी हो, अतः उसके साथ तुम्हारा वियोग कष्टदायक तो होगा ही॥ ९४-९५॥

हे नारद! उस तुलसीसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तुलसी अपना वह शरीर त्यागकर और दिव्य रूप धारण करके श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होने लगी। इसके बाद वे लक्ष्मीपति श्रीहरि उसके साथ वैकुण्ठलोक चले गये॥ ९६-९७॥

हे नारद! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं॥ ९८॥

उसी समय तुरन्त तुलसीके शरीरसे गण्डकीनदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम बन गये॥ ९९॥

हे मुने! वहाँ रहनेवाले कीट शिलाको काट-काटकर उन्हें अनेक प्रकारके रूपोंवाला बना देते हैं। जो-जो शिलाएँ जलमें गिरती हैं, वे निश्चितरूपसे उत्तम फल देनेवाली होती हैं। जो शिलाएँ धरतीपर

स्थलस्थाः पिङ्गला ज्ञेयाश्चोपतापाद्रवेरिति।
इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १०१

गिरी रहती हैं, वे सूर्यके तापके कारण पीली पड़ जाती हैं, उन्हें पिंगला शिला समझना चाहिये। इस प्रकार मैंने सारा प्रसंग कह दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १००-१०१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे तुलसीमाहात्म्येन सह शालग्राममहत्त्ववर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन

नारद उवाच

तुलसी च यदा पूज्या कृता नारायणप्रिया।
अस्याः पूजाविधानं च स्तोत्रं च वद साम्प्रतम्॥ १

केन पूजा कृता केन स्तुता प्रथमतो मुने।
तत्र पूज्या सा बभूव केन वा वद मामहो॥ २

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः।
कथां कथितुमारेभे पुण्यां पापहरां पराम्॥ ३

श्रीनारायण उवाच

हरिः सम्पूज्य तुलसीं रेमे च रमया सह।
रमासमानसौभाग्यां चकार गौरवेण च॥ ४

सेहे च लक्ष्मीर्गङ्गा च तस्याश्च नवसङ्गमम्।
सौभाग्यगौरवं कोपात्ते न सेहे सरस्वती॥ ५

सा तां जघान कलहे मानिनी हरिसन्निधौ।
व्रीडया चापमानेन सान्तर्धानं चकार ह॥ ६

सर्वसिद्धेश्वरी देवी ज्ञानिनां सिद्धियोगिनी।
जगामादर्शनं कोपात्सर्वत्र च हरेरहो॥ ७

हरिर्न दृष्ट्वा तुलसीं बोधयित्वा सरस्वतीम्।
तदनुज्ञां गृहीत्वा च जगाम तुलसीवनम्॥ ८

नारदजी बोले—जिस समय विष्णुप्रिया तुलसीकी पूजा की गयी थी, उस समय उनके लिये किये गये पूजन-विधान तथा स्तोत्रको अब आप मुझे बताइये। हे मुने! सर्वप्रथम किसने उनकी पूजा की, किसने उनका स्तवन किया और किस प्रकार वे सर्वत्र पूज्य हुईं—यह सब आप मुझे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! नारदका वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारायणने हँसकर सभी पापोंका नाश करनेवाली, पुण्यमयी तथा श्रेष्ठ कथा कहना आरम्भ किया॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—भगवान् श्रीहरि तुलसीकी विधिवत् पूजा करके उस साध्वीके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको गौरव प्रदान करके उसे लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बना दिया॥ ४॥

लक्ष्मी और गंगाने तो उस तुलसीके नवसमागम तथा सौभाग्य-गौरवको सहन कर लिया, किंतु अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न होनेके कारण सरस्वती इसे सहन नहीं कर सकीं॥ ५॥

उस मानिनी सरस्वतीने कलहमें श्रीहरिके समक्ष तुलसीको बहुत पीड़ित किया। इससे लज्जा और अपमानके कारण तुलसी अन्तर्धान हो गयीं॥ ६॥

ज्ञानियोंके लिये सर्वसिद्धेश्वरी तथा सिद्धयोगिनी देवी तुलसी कोपके कारण भगवान् श्रीहरिकी आँखोंसे ओझल हो गयीं॥ ७॥

जब भगवान् श्रीहरिने तुलसीको कहीं नहीं देखा, तब सरस्वतीको समझा-बुझाकर तथा उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनकी ओर चल दिये॥ ८॥

तत्र गत्वा च सुस्नातो हरिः स तुलसीं सतीम्।
पूजयामास तां ध्यात्वा स्तोत्रं भक्त्या चकार ह॥ ९

लक्ष्मीमायाकामवाणीबीजपूर्वं दशाक्षरम्।
वृन्दावनीति ङेऽन्तं च वह्निजायान्तमेव च॥ १०

अनेन कल्पतरुणा मन्त्रराजेन नारद।
पूजयेद्यो विधानेन सर्वसिद्धिं लभेद् ध्रुवम्॥ ११

घृतदीपेन धूपेन सिन्दूरचन्दनेन च।
नैवेद्येन च पुष्पेण चोपचारेण नारद॥ १२

हरिस्तोत्रेण तुष्टा सा चाविर्भूता महीरुहात्।
प्रसन्ना चरणाम्भोजे जगाम शरणं शुभा॥ १३

वरं तस्यै ददौ विष्णुः सर्वपूज्या भवेरिति।
अहं त्वां धारयिष्यामि सुरूपां मूर्ध्नि वक्षसि॥ १४

सर्वे त्वां धारयिष्यन्ति स्वमूर्ध्नि च सुरादयः।
इत्युक्त्वा तां गृहीत्वा च प्रययौ स्वालयं विभुः॥ १५

नारद उवाच

किं ध्यानं स्तवनं किं वा किं वा पूजाविधानकम्।
तुलस्याश्च महाभाग तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १६

श्रीनारायण उवाच

अन्तर्हितायां तस्यां च हरिर्वृन्दावने तदा।
तस्याश्चक्रे स्तुतिं गत्वा तुलसीं विरहातुरः॥ १७

श्रीभगवानुवाच

वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च।
विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥ १८

वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने विधिवत् स्नान किया और उन साध्वी तुलसीका पूजन किया। तत्पश्चात् उनका ध्यान करके भगवान्ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। उन्होंने लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजोंको पूर्वमें लगाकर 'वृन्दावनी'—इस शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर तथा अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा)-का प्रयोग करके दशाक्षर मन्त्र (**श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा**)-से पूजन किया था॥ ९-१०॥

हे नारद! जो इस कल्पवृक्षरूपी मन्त्रराजसे विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

हे नारद! घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारों तथा स्तोत्रसे भगवान् श्रीहरिके द्वारा सम्यक् पूजित होकर तुलसीदेवी वृक्षसे तत्काल प्रकट हो गयीं। वे कल्याणकारिणी तुलसी प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणकमलकी शरणमें चली गयीं॥ १२-१३॥

तब भगवान् विष्णुने उन्हें यह वर प्रदान किया—'तुम सर्वपूज्या हो जाओ। सुन्दर रूपवाली तुमको मैं अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा और समस्त देवता आदि भी तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे'—ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि उन तुलसीको साथ लेकर अपने स्थानपर चले गये॥ १४-१५॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! तुलसीका ध्यान क्या है, स्तवन क्या है तथा पूजा-विधान क्या है? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस समय तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे व्यथित हो उठे और वृन्दावन जाकर उन तुलसीकी इस प्रकार स्तुति* करने लगे॥ १७॥

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा अन्य वृक्ष एकत्र होते हैं, तब विद्वान् लोग उसे 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी 'वृन्दा' नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रियाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १८॥

पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने।
तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥ १९

असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्।
तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च भजाम्यहम्॥ २०

असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा।
तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥ २१

देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना।
तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥ २२

विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्।
नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह॥ २३

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च।
तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥ २४

कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती।
तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम्॥ २५

इत्येवं स्तवनं कृत्वा तस्थौ तत्र रमापतिः।
ददर्श तुलसीं साक्षात्पादपद्मनतां सतीम्॥ २६

रुदतीमवमानेन मानिनीं मानपूजिताम्।
प्रियां दृष्ट्वा प्रियः शीघ्रं वासयामास वक्षसि॥ २७

भारत्याज्ञां गृहीत्वा च स्वालयं च ययौ हरिः।
भारत्या सह तत्प्रीतिं कारयामास सत्वरम्॥ २८

वरं विष्णुर्ददौ तस्यै सर्वपूज्या भवेरिति।
शिरोधार्या च सर्वेषां वन्द्या मान्या ममेति च॥ २९

विष्णोर्वरेण सा देवी परितुष्टा बभूव च।
सरस्वती तामाकृष्य वासयामास सन्निधौ॥ ३०

जो देवी प्राचीन कालमें सर्वप्रथम वृन्दावनमें प्रकट हुई थी और इसलिये जो 'वृन्दावनी' नामसे प्रसिद्ध हुई, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ॥ १९॥ असंख्य विश्वोंमें सदा जिसकी पूजा की जाती है, इसलिये 'विश्वपूजिता' नामसे प्रसिद्ध उस सर्वपूजित भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ २०॥ तुम असंख्य विश्वोंको सदा पवित्र करती हो, अतः तुम 'विश्वपावनी' नामक देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ॥ २१॥ जिसके विना प्रचुर पुष्प अर्पित करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते हैं, मैं शोकाकुल होकर 'पुष्पसारा' नामसे विख्यात, पुष्पोंकी सारभूत तथा शुद्धस्वरूपिणी उस देवी तुलसीके दर्शनकी कामना करता हूँ॥ २२॥ संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्तको निश्चय ही आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे विख्यात वह देवी अब मुझपर प्रसन्न हो॥ २३॥ सम्पूर्ण विश्वोंमें जिस देवीकी कोई तुलना नहीं है, अतः 'तुलसी' नामसे विख्यात अपनी उस प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ २४॥ वह साध्वी तुलसी श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा तथा उन्हें निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली है, इसलिये 'कृष्णजीवनी' नामसे प्रसिद्ध वह देवी मेरे जीवनकी रक्षा करे॥ २५॥

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि वहीं विराजमान हो गये। तभी उन्होंने साक्षात् तुलसीको सामने देखा। वह साध्वी उन श्रीहरिके चरणकमलोंमें अपना मस्तक झुकाये हुए थी और अपमानके कारण वह मानिनी तुलसी रो रही थी। ऐसी मानपूजित प्रियाको देखकर प्रेममूर्ति श्रीहरिने उसे अपने वक्षपर स्थान दिया॥ २६-२७॥

तत्पश्चात् सरस्वतीसे आज्ञा लेकर श्रीहरि उसे अपने भवनमें ले गये और वहाँ शीघ्र ही सरस्वतीके साथ उसकी प्रीति करवायी। श्रीहरिने उसे वर प्रदान किया—'तुम सबके लिये तथा मेरे लिये पूजनीय, सिरपर धारण करने योग्य, वन्दनीय तथा मान्य हो जाओ'॥ २८-२९॥

भगवान् विष्णुके इस वरदानसे वे देवी तुलसी परम सन्तुष्ट हो गयीं और सरस्वतीने उन्हें पकड़कर अपने पास बैठा लिया॥ ३०॥

लक्ष्मीर्गङ्गा सस्मिता च तां समाकृष्य नारद।
गृहं प्रवेशयामास विनयेन सतीं तदा॥ ३१

वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी।
पुष्पसारा नन्दनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥ ३२

एतन्नामाष्टकञ्चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम्।
यः पठेत्तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ३३

कार्तिक्यां पूर्णिमायां च तुलस्या जन्म मङ्गलम्।
तत्र तस्याश्च पूजा च विहिता हरिणा पुरा॥ ३४

तस्यां यः पूजयेत्तां च भक्त्या वै विश्वपावनीम्।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥ ३५

कार्तिके तुलसीपत्रं यो ददाति च विष्णवे।
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्॥ ३६

अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत्प्रियाम्।
बन्धुहीनो लभेद् बन्धून् स्तोत्रश्रवणमात्रतः॥ ३७

रोगी प्रमुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु पापान्मुच्येत पातकी॥ ३८

इत्येवं कथितं स्तोत्रं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
त्वमेव वेदे जानासि कण्वशाखोक्तमेव च॥ ३९

तद्वृक्षे पूजयेत्तां च भक्त्या चावाहनं विना।
तां ध्यात्वा चोपचारेण ध्यानं पातकनाशनम्॥ ४०

तुलसीं पुष्पसारां च सतीं पूतां मनोहराम्।
कृतपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥ ४१

हे नारद! उस समय लक्ष्मी और गंगाके मुखपर मुसकराहट आ गयी और उन्होंने विनम्रतापूर्वक उन साध्वी तुलसीको पकड़कर घरमें प्रवेश करवाया॥ ३१॥

वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी—ये तुलसीके आठ नाम हैं। जो मनुष्य तुलसीकी विधिवत् पूजा करके नामके अर्थोंसे युक्त आठ नामोंवाले इस नामाष्टकस्तोत्रका पाठ करता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

कार्तिकपूर्णिमा तिथिको तुलसीका मंगलमय प्राकट्य हुआ था। उस समय सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उनकी पूजा सम्पन्न की थी। अतः जो मनुष्य उस दिन उन विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है॥ ३४-३५॥

जो व्यक्ति कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गायोंके दानका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है॥ ३६॥

इस नामाष्टकस्तोत्रके श्रवणमात्रसे पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त हो जाता है, भार्याहीनको भार्या मिल जाती है, बन्धुविहीनको बन्धुओंकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य निर्भय हो जाता है और पापी पापसे छूट जाता है॥ ३७-३८॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपको तुलसीस्तोत्र बतला दिया। अब उनका ध्यान तथा पूजाविधि सुनिये। आप भी तो वेदमें कण्व-शाखाके अन्तर्गत प्रतिपादित इनके ध्यानके विषयमें जानते ही हैं॥ ३९॥

तुलसीका ध्यान पापोंका नाश करनेवाला है, अतः उनका ध्यान करके बिना आवाहन किये ही तुलसीके वृक्षमें विविध पूजनोपचारोंसे पुष्पोंकी सारभूता, पवित्र, अत्यन्त मनोहर और किये गये पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान साध्वी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ४०-४१॥

पुष्पेषु तुलना यस्या नास्ति वेदेषु भाषितम्।
पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥ ४२

शिरोधार्या च सर्वेषामीप्सिता विश्वपावनी।
जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥ ४३

इति ध्यात्वा च सम्पूज्य स्तुत्वा च प्रणमेत् सुधीः।
उक्तं तुलस्युपाख्यानं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ४४

पुष्पोंमें किसीसे भी जिनकी तुलना नहीं है, जिनका महत्त्व वेदोंमें वर्णित है, जो सभी अवस्थाओंमें सदा पवित्र बनी रहती हैं, जो तुलसी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो भगवान्‌के लिये शिरोधार्य हैं, सबकी अभीष्ट हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं; उन जीवन्मुक्त, मुक्तिदायिनी तथा श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ४२-४३॥

[हे नारद!] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारसे देवी तुलसीका ध्यान, पूजन तथा स्तवन करके उन्हें प्रणाम करे। मैंने आपसे तुलसीके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
तुलसीपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

* * *

अथ षड्विंशोऽध्यायः

सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारद उवाच

तुलस्युपाख्यानमिदं श्रुतं चातिसुधोपमम्।
ततः सावित्र्युपाख्यानं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १
पुरा केन समुद्भूता सा श्रुता च श्रुतेः प्रसूः।
केन वा पूजिता लोके प्रथमे कैश्च वा परे॥ २

श्रीनारायण उवाच

ब्रह्मणा वेदजननी प्रथमे पूजिता मुने।
द्वितीये च वेदगणैस्तत्पश्चाद्विदुषां गणैः॥ ३
तदा चाश्वपतिर्भूपः पूजयामास भारते।
तत्पश्चात्पूजयामासुर्वर्णाश्चत्वार एव च॥ ४

नारद उवाच

को वा सोऽश्वपतिर्ब्रह्मन् केन वा तेन पूजिता।
सर्वपूज्या च सा देवी प्रथमे कैश्च वा परे॥ ५

श्रीनारायण उवाच

मद्रदेशे महाराजो बभूवाश्वपतिर्मुने।
वैरिणां बलहर्ता च मित्राणां दुःखनाशनः॥ ६

नारदजी बोले—तुलसीकी यह अमृततुल्य कथा तो मैंने सुन ली, अब आप सावित्रीकी कथा कहनेकी कृपा कीजिये। ऐसा सुना गया है कि वे सावित्री वेदोंकी जननी हैं। वे सर्वप्रथम किससे उत्पन्न हुईं, जगत्‌में सर्वप्रथम इनकी पूजा किसने की और बादमें किन लोगोंने इनकी पूजा की?॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीकी पूजा की, इसके बाद वेदोंने और तदनन्तर विद्वद्गणोंने इनका पूजन किया। तत्पश्चात् भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनका पूजन किया और इसके बाद चारों वर्णके लोग इनकी पूजा करने लगे॥ ३-४॥

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! वे अश्वपति कौन थे, सर्वप्रथम उन्होंने सर्वपूज्या उन देवीकी पूजा किस कामनासे की तथा बादमें किन लोगोंने उनका पूजन किया?॥ ५॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! मद्रदेशमें अश्वपति नामक एक महान् राजा हुए। वे अपने शत्रुओंके बलका नाश करनेवाले तथा मित्रोंका दुःख दूर करनेवाले थे॥ ६॥

आसीत्तस्य महाराज्ञी महिषी धर्मचारिणी।
मालतीति समाख्याता यथा लक्ष्मीर्गदाभृतः॥ ७

सा च राज्ञी च वन्ध्या च वसिष्ठस्योपदेशतः।
चकाराराधनं भक्त्या सावित्र्याश्चैव नारद॥ ८

प्रत्यादेशं न सा प्राप्ता महिषी न ददर्श ताम्।
गृहं जगाम दुःखार्ता हृदयेन विदूयता॥ ९

राजा तां दुःखितां दृष्ट्वा बोधयित्वा नयेन वै।
सावित्र्यास्तपसे भक्त्या जगाम पुष्करं तदा॥ १०

तपश्चकार तत्रैव संयतः शतवत्सरम्।
न ददर्श च सावित्र्याः प्रत्यादेशो बभूव च॥ ११

शुश्रावाकाशवाणीं च नृपेन्द्रश्चाशरीरिणीम्।
गायत्र्या दशलक्षं च जपं त्वं कुरु नारद॥ १२

एतस्मिन्नन्तरे तत्र आजगाम पराशरः।
प्रणनाम ततस्तं च मुनिर्नृपमुवाच च॥ १३

मुनिरुवाच

सकृज्जपश्च गायत्र्याः पापं दिनभवं हरेत्।
दशवारं जपेनैव नश्येत्पापं दिवानिशम्॥ १४

शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत्।
सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम्॥ १५

लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्यजन्मजम्।
सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद्विनश्यति॥ १६

करोति मुक्तिं विप्राणां जपो दशगुणस्ततः।
करं सर्पफणाकारं कृत्वा तद्रन्ध्रमुद्रितम्॥ १७

आनम्रमूर्धमचलं प्रजपेत्प्राङ्मुखो द्विजः।
अनामिकामध्यदेशादधोऽवामक्रमेण च॥ १८
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैवं क्रमः करे।

उनकी महारानी मालती नामसे विख्यात थीं। वे रानी धर्मनिष्ठ थीं। वे उनके लिये उसी प्रकार थीं, जैसे गदाधारी विष्णुके लिये लक्ष्मी॥ ७॥

हे नारद! वे रानी मालती निःसन्तान थीं। अतः उन्होंने वसिष्ठके उपदेशानुसार भगवती सावित्रीकी भक्तिपूर्वक आराधना की। किंतु रानीको देवीसे न तो कोई संकेत मिला और न उनके दर्शन ही हुए, अतः कष्टसे व्याकुल होकर दुःखित मनसे वे घर चली गयीं॥ ८-९॥

राजा अश्वपतिने उन्हें दुःखित देखकर नीतिपूर्ण वचनोंसे समझाया। इसके बाद भक्तिपूर्वक सावित्रीकी तपस्याके लिये वे पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँपर उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके सौ वर्षतक तपस्या की। उन्हें सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। हे नारद! उन नृपेन्द्रने यह अशरीरी आकाशवाणी सुनी—[हे राजेन्द्र!] तुम गायत्रीका दस लाख जप करो॥ १०—१२॥

इसी बीच वहाँ मुनि पराशर आ गये। राजाने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर मुनि राजासे कहने लगे॥ १३॥

मुनि बोले—एक बारका गायत्री-जप दिनभरके पापका नाश कर देता है। दस बार गायत्री-जप करनेसे दिन और रातका पाप नष्ट हो जाता है। गायत्रीका सौ बारका जप महीनेभरके संचित पापको हर लेता है और एक हजार बारका जप वर्षभरके संचित पापका नाश कर देता है। गायत्रीका एक लाख जप इस जन्मके किये गये पापों तथा दस लाख जप अन्य जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट कर देता है। गायत्रीके एक करोड़ जपसे सभी जन्मोंमें किये गये पाप भस्म हो जाते हैं और इससे भी दस गुना जप विप्रोंकी मुक्ति कर देता है॥ १४—१६½॥

द्विजको चाहिये कि हाथको सर्पके फणके आकारका बनाकर अँगुलियोंको परस्पर पूर्णरूपसे सटाकर छिद्ररहित कर ले फिर हाथको नाभिस्थानसे ऊपरकी ओर हृदयदेशतक लाकर कुछ नीचेकी ओर झुकाये हुए उसे स्थिर करके स्वयं पूरबकी ओर मुख करके जप करे। अनामिकाके मध्य भागसे नीचेकी ओर होते हुए प्रदक्षिण क्रमसे तर्जनीके मूलतक जाना चाहिये, करमालाके जपका यही नियम है॥ १७-१८½॥

श्वेतपङ्कजबीजानां स्फटिकानां च संस्कृताम्॥ १९

कृत्वा वै मालिकां राजन् जपेत्तीर्थे सुरालये।
संस्थाप्य मालामश्वत्थपत्रे पद्मे च संयतः॥ २०

कृत्वा गोरोचनाक्तां च गायत्र्या स्नापयेत्सुधीः।
गायत्रीशतकं तस्यां जपेच्च विधिपूर्वकम्॥ २१

अथवा पञ्चगव्येन स्नात्वा मालां सुसंस्कृताम्।
अथ गङ्गोदकेनैव स्नात्वा वातिसुसंस्कृताम्॥ २२

एवं क्रमेण राजर्षे दशलक्षं जपं कुरु।
साक्षाद्द्रक्ष्यसि सावित्रीं त्रिजन्मपातकक्षयात्॥ २३

नित्यं सन्ध्यां च हे राजन् करिष्यसि दिने दिने।
मध्याह्ने चापि सायाह्ने प्रातरेव शुचिः सदा॥ २४

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदह्ना कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥ २५

नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥ २६

यावज्जीवनपर्यन्तं त्रिःसन्ध्यां यः करोति च।
स च सूर्यसमो विप्रस्तेजसा तपसा सदा॥ २७

तत्पादपद्मरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा।
जीवन्मुक्तः स तेजस्वी सन्ध्यापूतो हि यो द्विजः॥ २८

तीर्थानि च पवित्राणि तस्य संस्पर्शमात्रतः।
ततः पापानि यान्त्येव वैनतेयादिवोरगाः॥ २९

न गृह्णन्ति सुराः पूजां पितरः पिण्डतर्पणम्।
स्वेच्छया च द्विजातेश्च त्रिसन्ध्यारहितस्य च॥ ३०

मूलप्रकृत्यभक्तो यस्तन्मन्त्रस्याप्यनर्चकः।
तदुत्सवविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३१

हे राजन्! श्वेतकमलके बीजों अथवा स्फटिक-मणिकी पवित्र माला बनाकर तीर्थमें या किसी देवालयमें जप करना चाहिये। पीपलके पत्र अथवा कमलपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे, फिर गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष मालाको स्नान कराये। तत्पश्चात् उसी मालासे विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये अथवा पंचगव्य या गंगाजलसे स्नान कराकर शुद्ध की हुई मालासे भी जप किया जा सकता है॥ १९—२२॥

हे राजर्षे! इस क्रमसे आप दस लाख गायत्रीका जप कीजिये। इससे आपके तीन जन्मोंके पापोंका नाश हो जायगा और आप भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन प्राप्त करेंगे॥ २३॥

हे राजन्! आप पवित्र होकर प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालकी सन्ध्या सदा कीजिये। सन्ध्या न करनेवाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य हो जाता है। वह दिनमें जो भी सत्कर्म करता है, उसके फलका अधिकारी नहीं रह जाता है॥ २४-२५॥

जो ब्राह्मण प्रातः एवं सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्रके समान है और समस्त ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देनेयोग्य है॥ २६॥

जो विप्र जीवनपर्यन्त सदा त्रिकालसन्ध्या करता है, वह तपस्या तथा तेजके कारण सूर्यके समान हो जाता है। उसके चरण-कमलकी धूलसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है। जो द्विज सन्ध्या करनेके कारण पवित्र हो चुका है, वह तेजसे सम्पन्न तथा जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और उसके पाससे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुडको देखते ही सर्प॥ २७—२९॥

जो द्विज त्रिकालसन्ध्या नहीं करता, उसके द्वारा सम्पादित पूजाको देवगण तथा पिण्ड-तर्पणको पितृगण स्वेच्छापूर्वक स्वीकार नहीं करते हैं॥ ३०॥

जो व्यक्ति मूलप्रकृतिकी भक्ति नहीं करता, उनके मन्त्रकी आराधना नहीं करता और उनका उत्सव नहीं मनाता; वह विषहीन सर्पकी तरह तेजरहित होता है॥ ३१॥

विष्णुमन्त्रविहीनश्च त्रिसन्ध्यारहितो द्विजः।
एकादशीविहीनश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३२

हरेरनैवेद्यभोजी धावको वृषवाहकः।
शूद्रान्नभोजी यो विप्रो विषहीनो यथोरगः॥ ३३

शूद्राणां शवदाही यः स विप्रो वृषलीपतिः।
शूद्राणां सूपकारश्च विषहीनो यथोरगः॥ ३४

शूद्राणां च प्रतिग्राही शूद्रयाजी च यो द्विजः।
मसिजीवी असिजीवी विषहीनो यथोरगः॥ ३५

यः कन्याविक्रयी विप्रो यो हरेर्नामविक्रयी।
यो विप्रोऽवीरान्नभोजी ऋतुस्नातान्नभोजकः॥ ३६

भगजीवी बार्धुषिको विषहीनो यथोरगः।
यो विद्याविक्रयी विप्रो विषहीनो यथोरगः॥ ३७

सूर्योदये स्वपेद्यो हि मत्स्यभोजी च यो द्विजः।
शिवापूजादिरहितो विषहीनो यथोरगः॥ ३८

इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठः सर्वपूजाविधिक्रमम्।
तमुवाच च सावित्र्या ध्यानादिकमभीप्सितम्॥ ३९

दत्त्वा सर्वं नृपेन्द्राय ययौ च स्वाश्रमे मुने।
राजा सम्पूज्य सावित्रीं ददर्श वरमाप च॥ ४०

नारद उवाच

किं वा ध्यानं च सावित्र्याः किं वा पूजाविधानकम्।
स्तोत्रं मन्त्रं च किं दत्त्वा प्रययौ स पराशरः॥ ४१

नृपः केन विधानेन सम्पूज्य श्रुतिमातरम्।
वरं च कं वा सम्प्राप सम्पूज्य तु विधानतः॥ ४२

जो द्विज विष्णुके मन्त्रसे विहीन है, त्रिकालसन्ध्यासे रहित है और एकादशी व्रतसे वंचित है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३२॥

जो ब्राह्मण भगवान् श्रीहरिको अर्पण किया गया नैवेद्य प्रसादरूपमें ग्रहण नहीं करता, धोबीका काम करता है, बैलपर बोझा ढोनेका काम करता है, शूद्रोंका अन्न खाता है; वह विषहीन सर्पके समान है॥ ३३॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका शव जलाता है, शूद्र स्त्रीका पति बनता है और शूद्रोंके लिये भोजन तैयार करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३४॥

जो द्विज शूद्रोंसे दान लेता है, शूद्रोंका यज्ञ कराता है, मुनीमीका काम करता है और तलवार लेकर पहरेदारी करके जीविकोपार्जन करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति तेजशून्य होता है॥ ३५॥

जो ब्राह्मण कन्या-विक्रय करता है, भगवान्‌का नाम बेचता है, पति तथा पुत्रसे हीन और ऋतुस्नाता स्त्रीके यहाँ भोजन करता है, स्त्रियोंके व्यभिचारसे अपनी आजीविका चलाता है और सूदखोर होता है; वह विषहीन सर्पके समान तेजरहित होता है। जो द्विज विद्याका विक्रय करता है, वह भी विषहीन सर्पके सदृश होता है। जो ब्राह्मण सूर्योदय हो जानेके बाद सोता रहता है, भोजनमें मछली ग्रहण करता है और भगवतीकी पूजासे वंचित है; वह विषहीन सर्पके समान निस्तेज है॥ ३६—३८॥

हे मुने! ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि आवश्यक प्रयोग बतला दिये। महाराज अश्वपतिको सम्पूर्ण उपदेश देकर मुनि अपने आश्रम चले गये। तत्पश्चात् राजाने भगवती सावित्रीकी विधिवत् उपासना करके उनके दर्शन प्राप्त किये तथा उन्हें अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया॥ ३९-४०॥

नारदजी बोले—उन मुनि पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीके किस ध्यान, पूजा-विधान, स्तोत्र तथा मन्त्रका उपदेश देकर प्रस्थान किया था? साथ ही राजाने किस विधानसे वेदमाता सावित्रीकी भलीभाँति पूजा की और इस प्रकार उनकी विधिवत्

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि सावित्र्याः परमं महत्।
रहस्यातिरहस्यं च श्रुतिसिद्धं समासतः॥ ४३

श्रीनारायण उवाच

ज्येष्ठकृष्णत्रयोदश्यां शुद्धकाले च यत्नतः।
व्रतमेव चतुर्दश्यां व्रती भक्त्या समाचरेत्॥ ४४

व्रतं चतुर्दशाब्दं च द्विसप्तफलसंयुतम्।
दत्त्वा द्विसप्तनैवेद्यं पुष्पधूपादिकं चरेत्॥ ४५

वस्त्रं यज्ञोपवीतं च भोजनं विधिपूर्वकम्।
संस्थाप्य मङ्गलघटं फलशाखासमन्वितम्॥ ४६

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
सम्पूज्य पूजयेदिष्टं घटे आवाहिते द्विजः॥ ४७

शृणु ध्यानं च सावित्र्याश्चोक्तं माध्यन्दिने च यत्।
स्तोत्रं पूजाविधानं च मन्त्रं च सर्वकामदम्॥ ४८

तप्तकाञ्चनवर्णाभां ज्वलन्तीं ब्रह्मतेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रसम्मितप्रभाम् ॥ ४९

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां भक्तानुग्रहविग्रहाम्॥ ५०

सुखदां मुक्तिदां शान्तां कान्तां च जगतां विधेः।
सर्वसम्पत्स्वरूपां च प्रदात्रीं सर्वसम्पदाम्॥ ५१

वेदाधिष्ठातृदेवीं च वेदशास्त्रस्वरूपिणीम्।
वेदबीजस्वरूपां च भजे तां वेदमातरम्॥ ५२

ध्यात्वा ध्यानेन नैवेद्यं दत्त्वा पाणिं स्वमूर्धनि।
पुनर्ध्यात्वा घटे भक्त्या देवीमावाहयेद् व्रती॥ ५३

पूजा करके उन्होंने कौन-सा वर प्राप्त किया? [हे प्रभो!] सावित्रीका वह परम महिमामय, अत्यन्त रहस्ययुक्त और वेदप्रमाणित सम्पूर्ण प्रसंग संक्षेपमें सुनना चाहता हूँ॥ ४१—४३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीतिथिको संयमपूर्वक रहकर व्रतीको चतुर्दशीतिथिमें व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिपूर्वक सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४४॥

यह व्रत चौदह वर्षका है। इसमें चौदह फलसहित चौदह प्रकारके नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प, धूप, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवद्य अर्पण करना चाहिये। एक मंगल-कलश स्थापित करके उसपर पल्लव रख दे। तत्पश्चात् गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वतीकी सम्यक् पूजा करके द्विजको आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ४५—४७॥

माध्यन्दिनी शाखामें भगवती सावित्रीका जो ध्यान, स्तोत्र, पूजा-विधान तथा सर्वकामप्रद मन्त्र प्रतिपादित किया गया है, उसे आप सुनिये॥ ४८॥

ध्यान इस प्रकार है—'भगवती सावित्रीका वर्ण तप्त सुवर्णकी प्रभाके समान है, ये ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हैं, ये ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी सम्मिलित प्रभासे सम्पन्न हैं, इनका मुखमण्डल प्रसन्नता तथा मुसकानसे युक्त है, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र इन्होंने धारण कर रखा है, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने यह विग्रह धारण किया है, ये सुख प्रदान करनेवाली हैं, मुक्ति देनेवाली हैं, ये शान्त स्वभाववाली हैं, जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजीकी प्रिया हैं, ये सर्वसम्पत्तिस्वरूपिणी हैं, सभी प्रकारकी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली हैं, वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा समस्त वेद-शास्त्र इन्हींके स्वरूप हैं—ऐसी उन वेदबीजस्वरूपा वेदमाता सावित्रीकी मैं उपासना करता हूँ।' इस ध्यानके द्वारा देवी सावित्रीका ध्यान करके नैवेद्य अर्पण करना चाहिये, तदनन्तर हाथोंको सिरसे लगाकर पुनः ध्यान करके भक्तिपूर्वक व्रतीको कलशपर देवी सावित्रीका आवाहन करना चाहिये॥ ४९—५३॥

दत्त्वा षोडशोपचारं वेदोक्तं मन्त्रपूर्वकम्।
सम्पूज्य स्तुत्वा प्रणमेद्देवदेवीं विधानतः॥ ५४

आसनं पाद्यमर्घ्यं च स्नानीयं चानुलेपनम्।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं शीतलं जलम्॥ ५५

वसनं भूषणं माल्यं गन्धमाचमनीयकम्।
मनोहरं सुतल्पं च देयान्येतानि षोडश॥ ५६

दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा।
देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५७

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५८

पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पदलान्वितम्।
पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५९

सुगन्धं गन्धतोयं च स्नेहं सौगन्धकारकम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥ ६०

गन्धद्रव्योद्भवं पुण्यं प्रीतिदं दिव्यगन्धदम्।
मया निवेदितं भक्त्या गन्धतोयं तवाम्बिके॥ ६१

सर्वमङ्गलरूपं च सर्वं च मङ्गलप्रदम्।
पुण्यदं च सुधूपं तं गृहाण परमेश्वरि॥ ६२

सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्।
जगतां दर्शनार्थाय प्रदीपं दीप्तिकारकम्॥ ६३

अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्॥ ६४
पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।

तदनन्तर वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पण करके विधिपूर्वक महादेवी सावित्रीकी पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करना चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये ही देनेयोग्य सोलह उपचार हैं (इनके निम्न मन्त्र हैं)॥ ५४—५६॥

[आसन—] हे देवि! श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित अथवा स्वर्णनिर्मित यह देवताओंका आधारस्वरूप पुण्यप्रद आसन मैंने आपको श्रद्धापूर्वक निवेदित किया है॥ ५७॥

[पाद्य—] परम प्रीति उत्पन्न करनेवाला, पुण्यप्रद तथा पूजाका अंगभूत यह पवित्र तीर्थजल मेरे द्वारा आपको पाद्यरूपमें अर्पित किया गया है॥ ५८॥

[अर्घ्य—] दूर्वा, पुष्प, तुलसी तथा शंखजलसे समन्वित यह पवित्र तथा पुण्यदायक अर्घ्य मैंने आपको अर्पण किया है॥ ५९॥

[स्नान—] चन्दन मिलाकर सुगन्धित किया गया जल तथा सुगन्ध फैलानेवाला यह तैल आपको स्नानहेतु भक्तिपूर्वक निवेदित किया है, आप इसे स्वीकार करें॥ ६०॥

[अनुलेपन—] हे अम्बिके! सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित, दिव्य गन्ध प्रदान करनेवाला तथा चन्दनजलसे मिश्रित यह पवित्र तथा प्रीतिदायक अनुलेपन मैंने आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है॥ ६१॥

[धूप—] हे परमेश्वरि! समस्त मंगल प्रदान करनेवाला, पुण्यदायक, सुगन्धयुक्त, सुखदायक तथा सर्वमंगलरूप यह उत्तम धूप मैंने आपको अर्पण किया है, आप ग्रहण करें॥ ६२½॥

[दीप—] अन्धकारके नाशके बीजस्वरूप, प्रकाश फैलानेवाला यह दीपक मैंने आपको जगत्के दर्शनार्थ अर्पित किया है॥ ६३½॥

[नैवेद्य—] सन्तुष्टि, पुष्टि, प्रीति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले एवं भूख शान्त करनेवाले इस स्वादिष्ट नैवेद्यको आप स्वीकार करें॥ ६४½॥

ताम्बूलप्रवरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥ ६५

तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया तुभ्यं निवेदितम्।
सुशीतलं वारि शीतं पिपासानाशकारणम्॥ ६६

जगतां जीवनरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्।
देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्धनम्॥ ६७

कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्।
काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीकरं श्रीयुतं सदा॥ ६८

सुखदं पुण्यदं रत्नभूषणं प्रतिगृह्यताम्।
नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्॥ ६९

फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्।
सर्वमङ्गलरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥ ७०

नानापुष्पविनिर्माणं बहुशोभासमन्वितम्।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥ ७१

पुण्यदं च सुगन्धाढ्यं गन्धं च देवि गृह्यताम्।
सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्धनम्॥ ७२

भूषणानां च प्रवरं सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्।
विशुद्धं ग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्॥ ७३

पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्।
द्रव्याण्येतानि मूलेन दत्त्वा स्तोत्रं पठेत्सुधीः॥ ७४

ततो विप्राय भक्त्या च व्रती दद्याच्च दक्षिणाम्।
सावित्रीति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥ ७५

लक्ष्मीमायाकामपूर्वं मन्त्रमष्टाक्षरं विदुः।
माध्यन्दिनोक्तं स्तोत्रं च सर्वकामफलप्रदम्॥ ७६
विप्रजीवनरूपं च निबोध कथयामि ते।

[**ताम्बूल—**] कर्पूर आदिसे सुवासित, तुष्टिदायक, पुष्टिप्रद तथा रम्य यह उत्तम ताम्बूल मैंने आपको निवेदित किया है॥ ६५½ ॥

[**शीतल जल—**] प्यासका शमन करनेवाले, जगत्‌के जीवन तथा प्राणरूप इस परम शीतल जलको आप स्वीकार करें॥ ६६½ ॥

[**वस्त्र—**] कपास तथा रेशमसे निर्मित, देहके शोभास्वरूप तथा सभाओंमें सौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले इस वस्त्रको आप स्वीकार करें॥ ६७½ ॥

[**आभूषण—**] सुवर्ण आदिसे निर्मित, प्रभायुक्त, सदा शोभा बढ़ानेवाले, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस रत्नमय आभूषणको आप स्वीकार करें॥ ६८½ ॥

[**फल—**] अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न, विविध रूपोंवाले, फलस्वरूप तथा फल प्रदान करनेवाले इस फलको आप स्वीकार करें॥ ६९½ ॥

[**पुष्पमाला—**] सभी मंगलोंका मंगल करनेवाली, सर्वमंगलरूपा, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे विनिर्मित, परम शोभासे सम्पन्न, प्रीतिदायिनी तथा पुण्यमयी इस मालाको आप स्वीकार करें॥ ७०-७१ ॥

[**सिन्दूर—**] हे देवि! पुण्यप्रद तथा सुगन्धपूर्ण इस गन्धको आप स्वीकार करें। ललाटकी शोभा बढ़ानेवाले, भूषणोंमें परम श्रेष्ठ तथा अत्यन्त मनोहर इस सिन्दूरको आप स्वीकार करें॥ ७२½ ॥

[**यज्ञोपवीत—**] पवित्र सूत्रोंसे निर्मित, विशुद्ध, ग्रन्थि (गाँठ)-से युक्त तथा वैदिक मन्त्रोंसे शुद्ध किये गये इस यज्ञोपवीतको आप स्वीकार करें॥ ७३½ ॥

[हे नारद!] विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इन द्रव्योंको भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र-पाठ करे और इसके बाद व्रती ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दक्षिणा प्रदान करे। 'सावित्री'—इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके अन्तमें स्वाहा तथा उसके पूर्वमें लक्ष्मी, माया और कामबीजोंको लगानेसे '**श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा**'—यह अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। माध्यन्दिनीशाखामें वर्णित, सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले तथा विप्रोंके जीवनस्वरूप सावित्री-स्तोत्रको आपके सामने व्यक्त करता हूँ—इसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ७४—७६½ ॥

कृष्णेन दत्तां सावित्रीं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥ ७७

नायाति सा तेन सार्धं ब्रह्मलोके च नारद।
ब्रह्मा कृष्णाज्ञया भक्त्या तुष्टाव वेदमातरम्॥ ७८

तदा सा परितुष्टा च ब्रह्माणं चकमे पतिम्।

ब्रह्मोवाच

सच्चिदानन्दरूपे त्वं मूलप्रकृतिरूपिणि॥ ७९

हिरण्यगर्भरूपे त्वं प्रसन्ना भव सुन्दरि।
तेजःस्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि॥ ८०

द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि।
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि॥ ८१

सर्वमङ्गलरूपे च प्रसन्ना भव सुन्दरि।
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे॥ ८२

सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे॥ ८३

ब्रह्मतेजःप्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि।
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते नरः॥ ८४

तत्त्वत्स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति।
इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ तत्रैव संसदि॥ ८५

सावित्री ब्रह्मणा सार्धं ब्रह्मलोकं जगाम सा।
अनेन स्तवराजेन संस्तूयाश्वपतिर्नृपः॥ ८६

ददर्श तां च सावित्रीं वरं प्राप मनोगतम्।
स्तवराजमिमं पुण्यं सन्ध्यां कृत्वा च यः पठेत्।
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं लभते च तत्॥ ८७

हे नारद! प्राचीन कालकी बात है—गोलोकमें विराजमान श्रीकृष्णने सावित्रीको ब्रह्माके पास जानेकी आज्ञा दी, किंतु वे सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको तैयार नहीं हुईं। तब कृष्णके कहनेपर ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीका स्तवन करने लगे। तदनन्तर उन सावित्रीने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया॥ ७७-७८½ ॥

ब्रह्माजी बोले—सच्चिदानन्द विग्रहवाली, मूलप्रकृति-स्वरूपिणी तथा हिरण्यगर्भरूपवाली हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। परम तेजमय विग्रहवाली, परमानन्दस्वरूपिणी तथा द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपिणी तथा सर्वमंगलमयी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। ब्राह्मणोंकी सर्वस्वरूपिणी, मन्त्रोंकी सारभूता, परात्परा, सुख प्रदान करनेवाली तथा मोक्षदायिनी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। विप्रोंके पापरूपी ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तथा ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाली हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी पाप करता है, वह सब आपके स्मरणमात्रसे जलकर भस्म हो जायगा॥ ७९—८४½ ॥

इस प्रकार स्तुति करके जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी वहींपर सभा-भवनमें विराजमान हो गये। तब वे सावित्री ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हो गयीं॥ ८५½ ॥

[हे मुने!] इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति करके उनका दर्शन किया और उनसे मनोभिलषित वर भी प्राप्त किया। जो मनुष्य सन्ध्या करके इस स्तोत्रराजका पाठ करता है, वह उस फलको प्राप्त कर लेता है, जो चारों वेदोंका पाठ करनेसे मिलता है॥ ८६-८७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सावित्रीपूजाविधिकथनं नाम षड्‌विंशोऽध्यायः॥ २६॥

* * *

अथ सप्तविंशोऽध्यायः

भगवती सावित्रीकी उपासनासे राजा अश्वपतिको सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

श्रीनारायण उवाच

स्तुत्वानेन सोऽश्वपतिः सम्पूज्य विधिपूर्वकम्।
ददर्श तत्र तां देवीं सहस्रार्कसमप्रभाम्॥ १

उवाच सा च राजानं प्रसन्ना सस्मिता सती।
यथा माता स्वपुत्रं च द्योतयन्ती दिशस्त्विषा॥ २

सावित्र्युवाच

जानाम्यहं महाराज यत्ते मनसि वाञ्छितम्।
वाञ्छितं तव पत्न्याश्च सर्वं दास्यामि निश्चितम्॥ ३

साध्वी कन्याभिलाषं च करोति तव कामिनी।
त्वं प्रार्थयसि पुत्रं च भविष्यति क्रमेण च॥ ४

इत्युक्त्वा सा तदा देवी ब्रह्मलोकं जगाम ह।
राजा जगाम स्वगृहं तत्कन्यादौ बभूव ह॥ ५

आराधनाच्च सावित्र्या बभूव कमला परा।
सावित्रीति च तन्नाम चकाराश्वपतिर्नृपः॥ ६

कालेन सा वर्धमाना बभूव च दिने दिने।
रूपयौवनसम्पन्ना शुक्ले चन्द्रकला यथा॥ ७

सा वरं वरयामास द्युमत्सेनात्मजं तदा।
सत्यवन्तं सत्यशीलं नानागुणसमन्वितम्॥ ८

राजा तस्मै ददौ तां च रत्नभूषणभूषिताम्।
सोऽपि सार्धं कौतुकेन तां गृहीत्वा गृहं ययौ॥ ९

श्रीनारायण बोले—हे नारद! राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनकी स्तुति करनेके अनन्तर उसी स्थानपर हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न उन देवीके दर्शन किये॥ १॥

अपने प्रभामण्डलसे दिशाओंको आलोकित करती हुई प्रसन्नवदना भगवतीने मुसकराते हुए इस प्रकार राजाको सम्बोधित किया, जैसे माता अपने पुत्रको कहती है॥ २॥

सावित्री बोलीं—हे महाराज! मैं जानती हूँ कि आपके मनमें क्या कामना है और आपकी पत्नी क्या चाहती है, मैं निश्चितरूपसे वह सब प्रदान करूँगी॥ ३॥

आपकी साध्वी पत्नी कन्याकी कामना करती है और आप पुत्रकी इच्छा रखते हैं, ये दोनों ही अभिलाषाएँ क्रमसे पूर्ण होंगी॥ ४॥

ऐसा कहकर वे भगवती सावित्री ब्रह्मलोक चली गयीं और राजा अश्वपति अपने घर लौट गये। उन्हें समयपर पहले कन्या उत्पन्न हुई। भगवती सावित्रीकी आराधनाके प्रभावसे श्रेष्ठ देवी कमला ही पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई थीं। राजा अश्वपतिने उस कन्याका नाम 'सावित्री' रखा॥ ५-६॥

वह कन्या शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी और यथासमय रूप तथा यौवनसे सम्पन्न हो गयी॥ ७॥

उसने द्युमत्सेनके सत्यनिष्ठ तथा अनेक गुणोंसे युक्त पुत्र सत्यवान्‌का पतिरूपमें वरण किया। तब राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत उस कन्याको उन्हें समर्पित कर दिया। सत्यवान् भी बड़े हर्षके साथ उस कन्याको लेकर अपने घर चले गये॥ ८-९॥

स च संवत्सरेऽतीते सत्यवान् सत्यविक्रमः।
जगाम फलकाष्ठार्थं प्रहर्षं पितुराज्ञया॥ १०

जगाम साध्वी तत्पश्चात्सावित्री दैवयोगतः।
निपत्य वृक्षाद्दैवेन प्राणांस्तत्याज सत्यवान्॥ ११

यमस्तं पुरुषं दृष्ट्वा बद्ध्वाङ्गुष्ठसमं मुने।
गृहीत्वा गमनं चक्रे तत्पश्चात्प्रययौ सती॥ १२

पश्चात्तां सुदतीं दृष्ट्वा यमः संयमनीपतिः।
उवाच मधुरं साध्वीं साधूनां प्रवरो महान्॥ १३

धर्मराज उवाच

अहो क्व यासि सावित्रि गृहीत्वा मानुषीं तनुम्।
यदि यास्यसि कान्तेन सार्धं देहं तदा त्यज॥ १४

गन्तुं मर्त्यो न शक्नोति गृहीत्वा पाञ्चभौतिकम्।
देहं च मम लोकं च नश्वरं नश्वरः सदा॥ १५

भर्तुस्ते पूर्णकालो वै बभूव भारते सति।
स्वकर्मफलभोगार्थं सत्यवान् याति मद्गृहम्॥ १६

कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते।
सुखं दुःखं भयं शोकः कर्मणैव प्रणीयते॥ १७

कर्मणेन्द्रो भवेज्जीवो ब्रह्मपुत्रः स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा हरेर्दासो जन्मादिरहितो भवेत्॥ १८

स्वकर्मणा सर्वसिद्धिममरत्वं लभेद् ध्रुवम्।
लभेत्स्वकर्मणा विष्णोः सालोक्यादिचतुष्टयम्॥ १९

सुरत्वं च मनुत्वं च राजेन्द्रत्वं लभेन्नरः।
कर्मणा च शिवत्वं च गणेशत्वं तथैव च॥ २०

कर्मणा च मुनीन्द्रत्वं तपस्वित्वं स्वकर्मणा।
स्वकर्मणा क्षत्रियत्वं वैश्यत्वं च स्वकर्मणा॥ २१

कर्मणैव च म्लेच्छत्वं लभते नात्र संशयः।
स्वकर्मणा जङ्गमत्वं शैलत्वं च स्वकर्मणा॥ २२

एक वर्ष बीतनेके पश्चात् वे सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल तथा लकड़ी लानेके लिये वनमें गये॥ १०॥

साध्वी सावित्री भी उनके पीछे-पीछे गयी। दैवयोगसे सत्यवान् वृक्षसे गिर पड़े और उनके प्राण निकल गये॥ ११॥

हे मुने! सत्यवान्‌को मृत देखकर जब यमराजने उनके अंगुष्ठ-प्रमाण सूक्ष्म शरीरको साथ लेकर प्रस्थान किया, तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी॥ १२॥

संयमनीपुरीके स्वामी और साधुओंमें परम श्रेष्ठ धर्मराज सुन्दर दाँतोंवाली उस सावित्रीको अपने पीछे-पीछे आते देखकर मधुर वाणीमें उससे कहने लगे॥ १३॥

धर्मराज बोले—हे सावित्रि! तुम यह मानव-शरीर धारण किये कहाँ जा रही हो? यदि तुम अपने पतिके साथ जानेकी इच्छा रखती हो, तो पहले इस शरीरका त्याग करो॥ १४॥

विनाशशील मनुष्य अपने इस नश्वर तथा पांचभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोक कभी नहीं जा सकता है॥ १५॥

हे साध्वि! भारतवर्षमें आये हुए तुम्हारे पतिकी आयु अब पूर्ण हो चुकी है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये अब यह सत्यवान् मेरे लोकमें जा रहा है॥ १६॥

प्राणी कर्मके अनुसार ही जन्म प्राप्त करता है और कर्मानुसार ही मृत्युको भी प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय और शोक भी कर्मसे ही मिलते रहते हैं। जीव अपने कर्मके प्रभावसे इन्द्र हो सकता है, वह अपने कर्मसे ब्रह्मपुत्र बन सकता है और अपने कर्मके द्वारा वह हरिका दास बनकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य अपने कर्मके प्रभावसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ, अमरत्व और भगवान् विष्णुके सालोक्य आदि चार प्रकारके मोक्षपद निश्चितरूपसे प्राप्त कर सकता है॥ १७—१९॥

मनुष्यको अपने कर्मके द्वारा देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव तथा गणेशतकका पद सुलभ हो जाता है। उसी प्रकार अपने कर्मके प्रभावसे ही मनुष्य

कर्मणा राक्षसत्वं च किन्नरत्वं स्वकर्मणा।
कर्मणैवाधिपत्यं च वृक्षत्वं च स्वकर्मणा॥ २३
कर्मणैव पशुत्वं च वनजीवी स्वकर्मणा।
कर्मणा क्षुद्रजन्तुत्वं कृमित्वं च स्वकर्मणा॥ २४
दैतेयत्वं दानवत्वमसुरत्वं स्वकर्मणा।
इत्येतदुक्त्वा सावित्रीं विरराम स वै यमः॥ २५

श्रेष्ठ मुनि, तपस्वी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा म्लेच्छ बन जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपने कर्मानुसार ही प्राणीको जंगम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, वनके प्राणी, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीट, दैत्य, दानव तथा असुर आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। सावित्रीसे ऐसा कहकर वे यमराज चुप हो गये॥ २०—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

~~○~~

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

सावित्री-यमराज-संवाद

श्रीनारायण उवाच

यमस्य वचनं श्रुत्वा सावित्री च पतिव्रता।
तुष्टाव परया भक्त्या तमुवाच मनस्विनी॥ १

सावित्र्युवाच

किं कर्म तद्भवेत्केन को वा तद्धेतुरेव च।
को वा देही च देहः कः को वात्र कर्मकारकः॥ २

किं वा ज्ञानं च बुद्धिः का को वा प्राणः शरीरिणाम्।
कानीन्द्रियाणि किं तेषां लक्षणं देवताश्च काः॥ ३

भोक्ता भोजयिता को वा को वा भोगश्च निष्कृतिः।
को जीवः परमात्मा कस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ४

धर्म उवाच

वेदप्रणिहितो धर्मः कर्म यन्मङ्गलं परम्।
अवैदिकं तु यत्कर्म तदेवाशुभमेव च॥ ५

अहैतुकी देवसेवा संकल्परहिता सती।
कर्मनिर्मूलरूपा च सा एव परभक्तिदा॥ ६

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] यमराजकी बात सुनकर पतिव्रता तथा दृढ़ निश्चयवाली सावित्रीने परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की और वह उनसे कहने लगी॥ १॥

सावित्री बोली—कर्म क्या है, वह किससे होता है और उसका हेतु कौन है? देही कौन है, देह कौन है और इस लोकमें प्राणियोंसे कौन कर्म कराता है? ज्ञान क्या है, बुद्धि क्या है और शरीरधारियोंका प्राण क्या है? इन्द्रियाँ क्या हैं तथा उनके कौन-कौन-से लक्षण हैं और देवता कौन हैं, भोग करनेवाला कौन है, भोग करानेवाला कौन है, भोग क्या है, निष्कृति क्या है, जीव कौन है तथा परमात्मा कौन हैं?—यह सब आप मुझे कृपा करके बताइये॥ २—४॥

धर्म बोले—वेदमें जो भी प्रतिपादित है, वह धर्म है, और वही कर्म परम मंगलकारी कर्म है। इसके विपरीत जो कर्म अवैदिक होता है, वह निश्चितरूपसे अशुभ होता है॥ ५॥

देवताओंकी संकल्परहित तथा अहैतुकी सेवा कर्म-निर्मूलरूपा कही जाती है। यही सेवा पराभक्ति प्रदान करनेवाली होती है॥ ६॥

को वा कर्मफलं भुङ्क्ते को वा निर्लिप्त एव च।
ब्रह्मभक्तो यो नरश्च स च मुक्तः श्रुतः श्रुतौ॥ ७

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकभीतिविवर्जितः ।
भक्तिश्च द्विविधा साध्वि श्रुत्युक्ता सर्वसम्मता॥ ८

निर्वाणपददात्री च हरिरूपप्रदा नृणाम्।
हरिरूपस्वरूपां च भक्तिं वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥ ९

अन्ये निर्वाणमिच्छन्ति योगिनो ब्रह्मवित्तमाः।
कर्मणो बीजरूपश्च सततं तत्फलप्रदः॥ १०

कर्मरूपश्च भगवान्परात्मा प्रकृतिः परा।
सोऽपि तद्धेतुरूपश्च देहो नश्वर एव च॥ ११

पृथिवी वायुराकाशो जलं तेजस्तथैव च।
एतानि सूत्ररूपाणि सृष्टिरूपविधौ सतः॥ १२

कर्मकर्ता च देही च आत्मा भोजयिता सदा।
भोगो विभवभेदश्च निष्कृतिर्मुक्तिरेव च॥ १३

सदसद्भेदबीजं च ज्ञानं नानाविधं भवेत्।
विषयाणां विभागानां भेदि बीजं च कीर्तितम्॥ १४

बुद्धिर्विवेचना सा च ज्ञानबीजं श्रुतौ श्रुतम्।
वायुभेदाश्च प्राणाश्च बलरूपाश्च देहिनाम्॥ १५

इन्द्रियाणां च प्रवरमीश्वरांशमनूहकम्।
प्रेरकं कर्मणां चैव दुर्निवार्यं च देहिनाम्॥ १६
अनिरूप्यमदृश्यं च ज्ञानभेदो मनः स्मृतम्।

कर्मफलका भोक्ता कौन है और कौन निर्लिप्त है? इसके उत्तरमें श्रुतिका वचन है कि जो मनुष्य ब्रह्मकी भक्ति करता है, वही मुक्त है और वह जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा भय—इन सबसे रहित हो जाता है॥ ७½ ॥

हे साध्वि! श्रुतिमें दो प्रकारकी सर्वमान्य भक्ति बतायी गयी है। पहली भक्ति निर्वाण पद प्रदान करती है और दूसरे प्रकारकी भक्ति मनुष्योंको साक्षात् श्रीहरिका रूप प्रदान करती है। वैष्णवजन श्रीहरिका सारूप्य प्रदान करनेवाली भक्तिकी कामना करते हैं और अन्य ब्रह्मवेत्ता योगी निर्वाणपद देनेवाली भक्ति चाहते हैं॥ ८-९½ ॥

कर्मका जो बीजरूप है, वह उसका सदा फल प्रदान करनेवाला है। कर्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि तथा परा प्रकृतिका ही रूप है। वे परमात्मा ही कर्मके कारणरूप हैं, यह शरीर तो सदासे नश्वर है॥ १०-११ ॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये सूत्ररूप पंच महाभूत हैं, जो परमात्माके सृष्टिप्रकरणमें प्रयुक्त होते हैं॥ १२ ॥

कर्म करनेवाला जीव देही है और वही अन्तर्यामी रूपसे भोजयिता भी है। सुख और दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवको ही भोग कहते हैं और इससे छूटनेको ही 'निष्कृति' (मोक्ष) कहा गया है॥ १३ ॥

सत् तथा असत्‌में भेद करनेका जो प्रधान बीजरूप हेतु है, वही ज्ञान है और वह ज्ञान अनेक भेदोंवाला होता है। वह ज्ञान घट-पट आदि विषयोंके भेदका कारण कहा गया है॥ १४ ॥

विवेचनमयी शक्ति ही बुद्धि है। वह श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे विख्यात है। वायुके विभिन्न रूप प्राण हैं। ये देहधारियोंके लिये बलस्वरूप हैं॥ १५ ॥

जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, ईश्वरका अंशरूप, अतर्क्य, कर्मोंका प्रेरक, देहधारियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका भेदक है; उसीको मन कहा गया है॥ १६½ ॥

लोचनं श्रवणं घ्राणं त्वक्च रसनमिन्द्रियम्॥ १७
अङ्गिनामङ्गरूपं च प्रेरकं सर्वकर्मणाम्।
रिपुरूपं मित्ररूपं सुखरूपं च दुःखदम्॥ १८
सूर्यो वायुश्च पृथिवी ब्रह्माद्या देवताः स्मृताः।
प्राणदेहादिभृद्यो हि स जीवः परिकीर्तितः॥ १९
परमं व्यापकं ब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
कारणं कारणानां च परमात्मा स उच्यते॥ २०
इत्येवं कथितं सर्वं त्वया पृष्टं यथागमम्।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपं च गच्छ वत्से यथासुखम्॥ २१

सावित्र्युवाच

त्यक्त्वा क्व यामि कान्तं वा त्वां वा ज्ञानार्णवं ध्रुवम्।
यद्यत्करोमि प्रश्नं च तद्भवान्वक्तुमर्हति॥ २२
कां कां योनिं याति जीवः कर्मणा केन वा पुनः।
केन वा कर्मणा स्वर्गं केन वा नरकं पितः॥ २३
केन वा कर्मणा मुक्तिः केन भक्तिर्भवेद् गुरौ।
केन वा कर्मणा योगी रोगी वा केन कर्मणा॥ २४
केन वा दीर्घजीवी च केनाल्पायुश्च कर्मणा।
केन वा कर्मणा दुःखी सुखी वा केन कर्मणा॥ २५
अङ्गहीनश्च काणश्च बधिरः केन कर्मणा।
अन्धो वा पङ्गुरपि वा प्रमत्तः केन कर्मणा॥ २६
क्षिप्तोऽतिलुब्धकश्चौरः केन वा कर्मणा भवेत्।
केन सिद्धिमवाप्नोति सालोक्यादिचतुष्टयम्॥ २७
केन वा ब्राह्मणत्वं च तपस्वित्वं च केन वा।
स्वर्गभोगादिकं केन वैकुण्ठं केन कर्मणा॥ २८
गोलोकं केन वा ब्रह्मन् सर्वोत्कृष्टं निरामयम्।
नरको वा कतिविधः किंसंख्यो नाम किं च वा॥ २९
को वा कं नरकं याति कियन्तं तेषु तिष्ठति।
पापिनां कर्मणा केन को वा व्याधिः प्रजायते।
यद्यत्प्रियं मया पृष्टं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ३०

आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा—ये कर्मेन्द्रियाँ प्राणियोंके अंगरूप, सभी कर्मोंकी प्रेरक, शत्रुरूप, मित्ररूप, [सत्कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] सुख देनेवाली तथा [बुरे कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] दुःख देनेवाली हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मा आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं॥ १७-१८$\frac{१}{२}$ ॥

जो प्राण तथा देहको धारण करता है, उसे जीव कहा गया है। प्रकृतिसे परे तथा कारणका भी कारण जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म है, वही परमात्मा कहा जाता है। [हे सावित्रि!] इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार बतला दिया। यह प्रसंग ज्ञानियोंके लिये ज्ञानरूप है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक चली जाओ॥ १९—२१ ॥

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] मैं अपने इन प्राणनाथ तथा ज्ञानके सागरस्वरूप आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ? इस समय मैं आपसे जो-जो प्रश्न कर रही हूँ, उन्हें आप मुझे बताइये॥ २२ ॥

हे पितः! किस-किस कर्मके प्रभावसे जीव किस-किस योनिमें जाता है, वह किस कर्मसे स्वर्ग तथा किस कर्मसे नरकमें जाता है?॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन्! किस कर्मसे मुक्ति होती है तथा किस कर्मसे गुरुके प्रति भक्ति होती है? उसी तरह किन-किन कर्मोंके प्रभावसे प्राणी योगी, रोगी, दीर्घजीवी, अल्पायु, दुःखी, सुखी, अंगहीन, काना, बहरा, अन्धा, पंगु, उन्मादी, पागल, अत्यन्त लोभी अथवा चोर हो जाता है? किस कर्मके द्वारा मनुष्य सिद्धि, सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ, ब्राह्मणत्व, तपस्विता, स्वर्गके भोग आदि, वैकुण्ठ और सर्वोत्तम तथा विशुद्ध गोलोक प्राप्त करता है?॥ २४—२८$\frac{१}{२}$ ॥

कितने प्रकारके नरक हैं, उनकी संख्या कितनी है, उनके नाम क्या-क्या हैं? कौन प्राणी किस नरकमें जाता है और वहाँ कितने समयतक निवास करता है? किस कर्मके प्रभावसे पापी मनुष्योंको कौन-सी व्याधि होती है? [हे प्रभो!] मैंने अपनी जो-जो प्रिय बात आपसे पूछी है, उसे कृपा करके मुझे बताइये॥ २९-३० ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
सावित्र्युपाख्याने यमसावित्रीसंवादवर्णनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

* * *

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर और धर्मराजद्वारा सावित्रीको वरदान

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा जगाम विस्मयं यमः।
प्रहस्य वक्तुमारेभे कर्मपाकं तु जीविनाम्॥ १

धर्म उवाच

कन्या द्वादशवर्षीया वत्से त्वं वयसाधुना।
ज्ञानं ते पूर्वविदुषां ज्ञानिनां योगिनां परम्॥ २

सावित्रीवरदानेन त्वं सावित्री कला सती।
प्राप्ता पुरा भूभृता च तपसा तत्समा सुते॥ ३

यथा श्रीः श्रीपतेः क्रोडे भवानी च भवोरसि।
यथादितिः कश्यपे च यथाहल्या च गौतमे॥ ४

यथा शची महेन्द्रे च यथा चन्द्रे च रोहिणी।
यथा रतिः कामदेवे यथा स्वाहा हुताशने॥ ५

यथा स्वधा च पितृषु यथा सन्ध्या दिवाकरे।
वरुणानी च वरुणे यज्ञे च दक्षिणा यथा॥ ६

यथा वराहे पृथिवी देवसेना च कार्तिके।
सौभाग्या सुप्रिया त्वं च तथा सत्यवतः प्रिये॥ ७

अयं तुभ्यं वरो दत्तोऽप्यपरं च यथेप्सितम्।
वृणु देवि महाभागे ददामि सकलेप्सितम्॥ ८

सावित्र्युवाच

सत्यवत औरसानां पुत्राणां शतकं मम।
भविष्यति महाभाग वरमेतन्मदीप्सितम्॥ ९

मत्पितुः पुत्रशतकं श्वशुरस्य च चक्षुषी।
राज्यलाभो भवत्वेवं वरमेतन्मदीप्सितम्॥ १०

अन्ते सत्यवता सार्धं यास्यामि हरिमन्दिरम्।
समतीते लक्षवर्षे देहीदं मे जगत्प्रभो॥ ११

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर यमराज आश्चर्यमें पड़ गये और हँसकर उन्होंने प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बताना आरम्भ किया॥ १॥

धर्म बोले—हे वत्से! इस समय तुम्हारी अवस्था तो मात्र बारह वर्षकी है, किंतु तुम्हारा ज्ञान बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर है॥ २॥

हे पुत्रि! तुम भगवती सावित्रीके वरदानसे उन्हींकी कलासे जन्म लेकर सती सावित्री नामसे विख्यात हो। प्राचीन कालमें राजा अश्वपतिने अपनी की गयी तपस्याके द्वारा उन्हीं सावित्रीके सदृश तुम्हें कन्यारूपमें प्राप्त किया है॥ ३॥

जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णुकी गोदमें तथा भवानी भगवान् शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं एवं जैसे अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची महेन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, सन्ध्या सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास उनकी सौभाग्यवती प्रिया बनकर सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार हे प्रिये! तुम भी सत्यवान्‌की सौभाग्यवती प्रियाके रूपमें सुशोभित होओ। यह वर मैंने तुम्हें प्रदान कर दिया। हे देवि! हे महाभागे! इसके अतिरिक्त और भी जो दूसरा वर तुम्हें अभीष्ट हो, उसे माँग लो; मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर प्रदान करूँगा॥ ४—८॥

सावित्री बोली—हे महाभाग! सत्यवान्‌से मुझे सौ औरस पुत्र प्राप्त हों, यह मेरा अभीष्ट वर है। मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे श्वसुरको नेत्र-ज्योति मिल जाय और उन्हें राज्य भी प्राप्त हो जाय—यह मेरा अभिलषित वर है। हे जगत्प्रभो! अन्तमें एक लाख वर्ष बीतनेके पश्चात् मैं सत्यवान्‌के साथ भगवान् श्रीहरिके धाम चली जाऊँ—यह वर भी आप मुझे दीजिये॥ ९—११॥

जीवकर्मविपाकं च श्रोतुं कौतूहलं मम।
विश्वनिस्तारबीजं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १२

धर्मराज उवाच

भविष्यति महासाध्वि सर्वं मानसिकं तव।
जीवकर्मविपाकं च कथयामि निशामय॥ १३

शुभानामशुभानां च कर्मणां जन्म भारते।
पुण्यक्षेत्रे च नान्यत्र सर्वं च भुञ्जते जनाः॥ १४

सुरा दैत्या दानवाश्च गन्धर्वा राक्षसादयः।
नराश्च कर्मजनका न सर्वे जीविनः सति॥ १५

विशिष्टजीविनः कर्म भुञ्जते सर्वयोनिषु।
शुभाशुभं च सर्वत्र स्वर्गेषु नरकेषु च॥ १६

विशेषतो जीविनश्च भ्रमन्ते सर्वयोनिषु।
शुभाशुभं भुञ्जते च कर्म पूर्वार्जितं परम्॥ १७

शुभेन कर्मणा याति स्वर्लोकादिकमेव च।
कर्मणा चाशुभेनैव भ्रमन्ति नरकेषु च॥ १८

कर्मनिर्मूलने भक्तिः सा चोक्ता द्विविधा सति।
निर्वाणरूपा भक्तिश्च ब्रह्मणः प्रकृतेरिह॥ १९

रोगी कुकर्मणा जीवश्चारोगी शुभकर्मणा।
दीर्घजीवी च क्षीणायुः सुखी दुःखी च कर्मणा॥ २०

अन्धादयश्चाङ्गहीनाः कर्मणा कुत्सितेन च।
सिद्ध्यादिकमवाप्नोति सर्वोत्कृष्टेन कर्मणा॥ २१

सामान्यं कथितं देवि विशेषं शृणु सुन्दरि।
सुदुर्लभं सुगोप्यं च पुराणेषु स्मृतिष्वपि॥ २२

जीवके कर्मोंका फल तथा संसारसे उसके उद्धारका उपाय सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है, अतः वह सब मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ १२॥

धर्मराज बोले—हे महासाध्वि! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं जीवोंके कर्मफलके विषयमें बता रहा हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो॥ १३॥

पुण्यभूमि भारतवर्षमें ही शुभ और अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। दूसरी जगह लोग केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। हे पतिव्रते! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसादि ये ही शुभाशुभ कर्म करनेवाले हैं, दूसरे पशु आदि प्राणी नहीं। देवादि विशिष्ट प्राणी ही सभी योनियोंका फल भोगते हैं, सभी योनियोंमें भटकते हैं और शुभाशुभ कर्मोंका फल स्वर्ग तथा नरकमें भोगते हैं॥ १४—१६॥

वे विशिष्ट प्राणी समस्त योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं और पूर्वजन्ममें अर्जित किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगते रहते हैं। शुभ कर्मके प्रभावसे प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं तथा अशुभ कर्मके कारण वे विभिन्न नरकोंमें पड़ते हैं॥ १७-१८॥

कर्मके निःशेष हो जानेपर भक्ति उत्पन्न होती है। हे साध्वि! वह भक्ति दो प्रकारकी बतलायी गयी है। एक निर्वाणस्वरूपा भक्ति है और दूसरी ब्रह्मरूपिणी भगवती प्रकृतिके लिये की जानेवाली भक्ति है॥ १९॥

प्राणी पूर्वजन्ममें किये गये कुकर्मके कारण रोगी और शुभ कर्मके कारण रोगरहित होता है। इस प्रकार अपने कर्मसे ही जीव दीर्घजीवी, अल्प आयुवाला, सुखी तथा दुःखी होता है। प्राणी अपने कुत्सित कर्मके प्रभावसे नेत्रहीन तथा अंगहीन होता है। सर्वोत्कृष्ट कर्मके द्वारा प्राणी अपने दूसरे जन्ममें सिद्धि आदि भी प्राप्त कर लेता है॥ २०-२१॥

हे देवि! साधारण बात कह चुका, अब विशेष बात सुनो। हे सुन्दरि! यह अत्यन्त दुर्लभ विषय पुराणों और स्मृतियोंमें वर्णित है। इसे पूर्णरूपसे गुप्त रखना चाहिये॥ २२॥

दुर्लभा मानुषी जातिः सर्वजातिषु भारते।
सर्वेभ्यो ब्राह्मणः श्रेष्ठः प्रशस्तः सर्वकर्मसु॥ २३

ब्रह्मनिष्ठो द्विजश्चैव गरीयान् भारते सति।
निष्कामश्च सकामश्च ब्राह्मणो द्विविधः सति॥ २४

सकामाच्च प्रधानश्च निष्कामो भक्त एव च।
कर्मभोगी सकामश्च निष्कामो निरुपद्रवः॥ २५

स याति देहं त्यक्त्वा च पदं यत्तन्निरामयम्।
पुनरागमनं नास्ति तेषां निष्कामिनां सति॥ २६

सेवन्ते द्विभुजं कृष्णं परमात्मानमीश्वरम्।
गोलोकं प्रति ते भक्ता दिव्यरूपविधारिणः॥ २७

सकामिनो वैष्णवाश्च गत्वा वैकुण्ठमेव च।
भारतं पुनरायान्ति तेषां जन्म द्विजातिषु॥ २८

काले गते च निष्कामा भवन्त्येव क्रमेण च।
भक्तिं च निर्मलां तेभ्यो दास्यामि निश्चितं पुनः॥ २९

ब्राह्मणा वैष्णवाश्चैव सकामाः सर्वजन्मसु।
न तेषां निर्मला बुद्धिर्विष्णुभक्तिविवर्जिताः॥ ३०

तीर्थाश्रिता द्विजा ये च तपस्यानिरताः सति।
ते यान्ति ब्रह्मलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३१

स्वधर्मनिरता ये च तीर्थान्यत्रनिवासिनः।
व्रजन्ति ते सत्यलोकं पुनरायान्ति भारते॥ ३२

स्वधर्मनिरता विप्राः सूर्यभक्ताश्च भारते।
व्रजन्ति ते सूर्यलोकं पुनरायान्ति भारते॥ ३३

मूलप्रकृतिभक्ता ये निष्कामा धर्मचारिणः।
मणिद्वीपं प्रयान्त्येव पुनरावृत्तिवर्जितम्॥ ३४

भारतवर्षमें समस्त योनियोंमें मानवयोनि परम दुर्लभ है। सभी मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। वह सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रशस्त माना गया है। हे साध्वि! उनमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण भारतवर्षमें अधिक गरिमामय माना जाता है। हे साध्वि! सकाम तथा निष्काम भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके होते हैं। सकाम होनेसे वह कर्मप्रधान होता है। निष्काम केवल भक्त होता है। सकाम कर्मफल भोगता है और निष्काम समस्त सुखासुख भोगोंके उपद्रवोंसे रहित रहता है। हे साध्वि! वह शरीर त्यागकर भगवान्‌का जो निरामय धाम है, उसे प्राप्त करता है और हे साध्वि! उन निष्काम जनोंको पुनः इस लोकमें नहीं आना पड़ता। वे द्विभुज परमात्मा श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं और अन्तमें वे भक्त दिव्यरूप धारणकर गोलोकको प्राप्त होते हैं॥ २३—२७॥

सकाम वैष्णव वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं और यहाँपर द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे सभी कुछ समय बीतनेपर क्रमशः निष्काम भक्त बन जाते हैं और मैं उन्हें अपनी निर्मल भक्ति प्रदान कर देता हूँ; यह सर्वथा निश्चित है। जो सकाम ब्राह्मण तथा वैष्णवजन हैं, अनेक जन्मोंमें भी विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण उनकी बुद्धि निर्मल नहीं हो पाती॥ २८—३०॥

हे साध्वि! जो द्विज तीर्थोंमें रहकर सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे ब्रह्मलोक जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें आते हैं॥ ३१॥

जो तीर्थोंमें अथवा कहीं अन्यत्र रहकर सदा अपने ही धर्म-कर्ममें लगे रहते हैं, वे सत्यलोक पहुँचते हैं और पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३२॥

जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न रहकर भारतवर्षमें सूर्यकी उपासना करते हैं, वे सूर्यलोक जाते हैं और समयानुसार लौटकर पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३३॥

जो धर्मपरायण तथा निष्काम मानव मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी भक्ति करते हैं, वे मणिद्वीप लोकमें जाते हैं और फिर वहाँसे लौटकर नहीं आते॥ ३४॥

स्वधर्मे निरता भक्ताः शैवाः शाक्ताश्च गाणपाः।
ते यान्ति शिवलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३५

ये विप्रा अन्यदेवेज्याः स्वधर्मनिरताः सति।
ते यान्ति सर्वलोकं च पुनरायान्ति भारते॥ ३६

हरिभक्ताश्च निष्कामाः स्वधर्मनिरता द्विजाः।
ते च यान्ति हरेर्लोकं क्रमाद्भक्तिबलादहो॥ ३७

स्वधर्मरहिता विप्रा देवान्यसेवनाः सदा।
भ्रष्टाचाराश्च कामाश्च ते यान्ति नरकं ध्रुवम्॥ ३८

स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च।
भवन्त्येव शुभस्यैव कर्मणः फलभोगिनः॥ ३९

स्वकर्मरहिता ये च नरकं यान्ति ते ध्रुवम्।
भारते न भवन्त्येव कर्मणः फलभोगिनः॥ ४०

स्वधर्मनिरता एव वर्णाश्चत्वार एव च।
स्वधर्मनिरता विप्राः स्वधर्मनिरताय च॥ ४१

कन्यां ददति विप्राय चन्द्रलोकं प्रयान्ति ते।
वसन्ति तत्र ते साध्वि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४२

सालङ्कृताया दानेन द्विगुणं फलमुच्यते।
सकामा यान्ति तल्लोकं न निष्कामाश्च साधवः॥ ४३

ते प्रयान्ति विष्णुलोकं फलसङ्घातवर्जिताः।
गव्यं च रजतं स्वर्णं वस्त्रं सर्पिः फलं जलम्॥ ४४

ये ददत्येव विप्रेभ्यश्चन्द्रलोकं प्रयान्ति ते।
वसन्ति ते च तल्लोके यावन्मन्वन्तरं सति॥ ४५
सुचिरात्सुचिरं वासं कुर्वन्ति तेन ते जनाः।

जो अपने धर्मोंमें संलग्न रहते हुए शिव, शक्ति और गणपतिकी उपासना करते हैं; वे शिवलोक जाते हैं और कुछ समय पश्चात् वहाँसे पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं॥ ३५॥

हे साध्वि! जो ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत रहकर अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे विभिन्न लोकोंमें जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३६॥

जो द्विज अपने धर्ममें संलग्न रहते हुए निष्काम भावसे भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करते हैं, वे उस भक्तिके प्रभावसे क्रमसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होते हैं॥ ३७॥

जो विप्र सदा अपने धर्मसे विमुख, आचारहीन, कामलोलुप तथा देवाराधनसे रहित हैं, वे अवश्य ही नरकमें पड़ते हैं॥ ३८॥

चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें संलग्न रहकर ही शुभ कर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं॥ ३९॥

जो अपने कर्तव्यसे विमुख हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं और अपने कर्मका फल भोगते हैं। वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतः चारों वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये॥ ४०½॥

हे साध्वि! अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न ब्राह्मणको अपनी कन्या प्रदान करते हैं, वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। कन्याको अलंकारोंसे विभूषित करके दान करनेसे दुगुना फल कहा जाता है। सकाम भावसे दान करनेवाले उसी चन्द्रलोकमें जाते हैं, किंतु निष्काम भावसे दान करनेवाले साधुपुरुष वहाँ नहीं जाते, फलकी इच्छासे रहित वे विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं॥ ४१—४३½॥

जो लोग ब्राह्मणोंको गव्य, चाँदी, सोना, वस्त्र, घृत, फल और जल प्रदान करते हैं; वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे उस लोकमें एक मन्वन्तरतक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे ही वे लोग वहाँ इतने दीर्घकालतक सुखपूर्वक निवास करते हैं॥ ४४-४५½॥

ये ददति सुवर्णांश्च गाश्च ताम्रादिकं सति॥ ४६

ते यान्ति सूर्यलोकं च शुचये ब्राह्मणाय च।
वसन्ति ते तत्र लोके वर्षाणामयुतं सति॥ ४७

विपुले सुचिरं वासं कुर्वन्ति च निरामयाः।
ददाति भूमिं विप्रेभ्यो धनानि विपुलानि च॥ ४८

स याति विष्णुलोकं च श्वेतद्वीपं मनोहरम्।
तत्रैव निवसत्येव यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४९

विपुले विपुलं वासं करोति पुण्यवान्मुने।
गृहं ददति विप्राय ये जना भक्तिपूर्वकम्॥ ५०

ते यान्ति विष्णुलोकं च सुचिरं सुखदायकम्।
गृहरेणुप्रमाणं च विष्णुलोके महत्तमे॥ ५१

विपुले विपुलं वासं कुर्वन्ति मानवाः सति।
यस्मै यस्मै च देवाय यो ददाति गृहं नरः॥ ५२

स याति तस्य लोकं च रेणुमानाब्दमेव च।
सौधे चतुर्गुणं पुण्यं देशे शतगुणं फलम्॥ ५३

प्रकृष्टे द्विगुणं तस्मादित्याह कमलोद्भवः।
यो ददाति तडागं च सर्वपापापनुत्तये॥ ५४

स याति जनलोकं च रेणुमानाब्दमेव च।
वाप्यां फलं दशगुणं प्राप्नोति मानवः सदा॥ ५५

स तु वापीप्रदानेन तडागस्य फलं लभेत्।
धनुश्चतुःसहस्रेण दैर्घ्यमानेन निश्चितम्॥ ५६

न्यूना वा तावती प्रस्थे सा वापी परिकीर्तिता।
दशवापीसमा कन्या यदि पात्रे प्रदीयते॥ ५७

हे साध्वि! जो लोग पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि देते हैं, वे सूर्यलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे वहाँ उस लोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करते हैं। वे उस विस्तृत लोकमें निर्विकार होकर दीर्घकालतक निवास करते हैं॥ ४६-४७½ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंको भूमि तथा प्रचुर धन प्रदान करता है, वह भगवान् विष्णुके श्वेतद्वीप नामक मनोहर लोकमें पहुँच जाता है और वहाँपर चन्द्र-सूर्यकी स्थितिपर्यन्त निवास करता है। हे मुने! वह पुण्यवान् मनुष्य उस महान् लोकमें विपुल कालतक वास करता है॥ ४८-४९½ ॥

जो लोग विप्रको भक्तिपूर्वक गृहका दान करते हैं, वे चिरकालतक स्थिर रहनेवाले सुखदायी विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं। हे साध्वि! वे मनुष्य दानमें दिये गये उस गृहके रजकणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस अत्यन्त श्रेष्ठ तथा विशाल विष्णुलोकमें निवास करते हैं। जो मनुष्य जिस किसी भी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका दान करता है, वह उस देवताके लोकमें जाता है और उस लोकमें उतने ही वर्षोंतक वास करता है, जितने उस मन्दिरमें रजकण होते हैं। अपने घरपर दान करनेसे चार गुना, किसी पवित्र तीर्थमें दान करनेसे सौ गुना और किसी श्रेष्ठ स्थानमें दान करनेसे दुगुना पुण्यफल प्राप्त होता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५०—५३½ ॥

जो व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्त होनेके लिये तड़ागका दान करता है, वह जनलोक जाता है और उस तड़ागमें विद्यमान रेणु-संख्याके बराबर वर्षोंतक उस लोकमें रहता है। वापीका दान करनेसे मनुष्य उससे भी दस गुना फल प्राप्त कर लेता है। वापीके दानसे तड़ाग-दानका फल स्वतः प्राप्त हो जाता है। चार हजार धनुषके बराबर लम्बा तथा उतना ही अथवा उससे कुछ कम चौड़ा जिसका प्रमाण हो, उसे वापी कहा गया है॥ ५४—५६½ ॥

यदि कन्या किसी योग्य वरको प्रदान की जाती है, तो वह दान दस वापीके दानके समान होता है और यदि कन्या अलंकारोंसे सम्पन्न करके दी जाती

फलं ददाति द्विगुणं यदि सालङ्कृता भवेत्।
यत्फलं च तडागे च तदुद्धारे च तत्फलम्॥ ५८

वाप्याश्च पङ्कोद्धरणे वापीतुल्यफलं लभेत्।
अश्वत्थवृक्षमारोप्य प्रतिष्ठां यः करोति च॥ ५९

स प्रयाति तपोलोकं वर्षाणामयुतं सति।
पुष्पोद्यानं यो ददाति सावित्रि सर्वभूतये॥ ६०

स वसेद् ध्रुवलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
यो ददाति विमानं च विष्णवे भारते सति॥ ६१

विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं परम्।
चित्रयुक्ते च विपुले फलं तस्य चतुर्गुणम्॥ ६२

तस्यार्धं शिबिकादाने फलमेव लभेद् ध्रुवम्।
यो ददाति भक्तियुक्तो हरये दोलमन्दिरम्॥ ६३

विष्णुलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम्।
राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पतिव्रते॥ ६४

वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते।
ब्राह्मणेभ्योऽथ देवेभ्यो दाने समफलं लभेत्॥ ६५

यद्धि दत्तं च तद्भुङ्क्ते न दत्तं नोपतिष्ठते।
भुक्त्वा स्वर्गादिजं सौख्यं पुण्यवाञ्जन्म भारते॥ ६६

लभेद्विप्रकुलेष्वेव क्रमेणैवोत्तमादिषु।
भारते पुण्यवान्विप्रो भुक्त्वा स्वर्गादिकं फलम्॥ ६७

पुनः सोऽपि भवेद्विप्रश्चैवं च क्षत्रियादयः।
क्षत्रियो वाथ वैश्यो वा कल्पकोटिशतेन च॥ ६८
तपसा ब्राह्मणत्वं च न प्राप्नोति श्रुतौ श्रुतम्।

है, तो उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है। जो फल तड़ागके दानसे मिलता है, वही फल उस तड़ागके जीर्णोद्धारसे भी प्राप्त हो जाता है। किसी वापीका कीचड़ दूर कराकर उसका उद्धार करनेसे वापी-दानके समान पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ ५७-५८½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह तपोलोक पहुँचता है और वहाँपर दस हजार वर्षोंतक निवास करता है। हे सावित्रि! जो व्यक्ति समस्त प्राणियोंके लिये पुष्पोद्यानका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें निश्चितरूपसे निवास करता है॥ ५९-६०½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विष्णुके उद्देश्यसे भारतमें विमानका दान करता है, वह पूरे एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें निवास करता है। चित्रयुक्त तथा विशाल विमानका दान करनेपर उसके दानका चौगुना फल होता है। शिविकाका दान करनेसे मनुष्य उसका आधा फल प्राप्त करता है—यह निश्चित है। जो व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक दोला-मन्दिरका दान करता है, वह भी विष्णुलोकमें सौ मन्वन्तरतक निवास करता है॥ ६१—६३½ ॥

हे पतिव्रते! जो मनुष्य आरामगृहोंसे युक्त राजमार्गका निर्माण कराता है, वह दस हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ६४½ ॥

ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्वजन्ममें दिया गया है, जन्मान्तरमें उसीका फल प्राप्त होता है और जो नहीं दिया गया है, उसका फल नहीं मिलता। पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि लोकोंके सुख भोगकर भारतवर्षमें क्रमशः उत्तमसे उत्तम ब्राह्मणकुलोंमें जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार वह पुण्यवान् विप्र भी पुनः स्वर्गमें अपने कर्मफलका भोग करके भारतवर्षमें ब्राह्मण होकर जन्म प्राप्त करता है। क्षत्रिय आदिके लिये भी ऐसा ही है। क्षत्रिय हो अथवा वैश्य—कोई करोड़ों कल्पके तपस्याके प्रभावसे भी ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त कर सकता—ऐसा श्रुतियोंमें सुना गया है॥ ६५—६८½ ॥

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ६९

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
देवतीर्थसहायेन कायव्यूहेन शुध्यति।
एतत्ते कथितं किञ्चित् किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ७०

करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग प्राप्त किये कर्मका क्षय नहीं होता। अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायतासे तथा कायव्यूह (तप)-से प्राणी शुद्ध हो जाता है। हे साध्वि! ये कुछ बातें मैंने तुम्हें बतला दीं; अब आगे क्या सुनना चाहती हो?॥ ६९-७०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्याने कर्मविपाकवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंका वर्णन

सावित्र्युवाच

प्रयान्ति स्वर्गमन्यं च येनैव कर्मणा यम।
मानवाः पुण्यवन्तश्च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ १

धर्मराज उवाच

अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते।
अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते॥ २

अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः।
अन्नदानप्रमाणं च शिवलोके महीयते॥ ३

अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।
नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥ ४

देवेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो वा ददाति चासनं यदि।
महीयते विष्णुलोके वर्षाणामयुतं सति॥ ५

यो ददाति च विप्राय दिव्यां धेनुं पयस्विनीम्।
तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते॥ ६

चतुर्गुणं पुण्यदिने तीर्थे शतगुणं फलम्।
दानं नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्॥ ७

सावित्री बोली—हे यम! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें जाते हैं, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

धर्मराज बोले—[हे साध्वि!] जो भारतवर्षमें विप्रको अन्नका दान करता है, वह दान दिये गये अन्नकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अन्नदान महादान है। जो अन्य लोगोंको भी अन्नदान करता है, वह भी अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अन्नदानसे बढ़कर न कोई दान हुआ है और न होगा। इस दानमें पात्र-परीक्षा अथवा समय-सम्बन्धी नियमकी कोई आवश्यकता नहीं होती है॥ २—४॥

हे साध्वि! यदि कोई मनुष्य देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको आसनका दान करता है, तो वह दस हजार वर्षोंतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको दूध देनेवाली दिव्य गाय प्रदान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित रहता है॥ ६॥

[साधारण दिनोंकी अपेक्षा] पुण्य-दिनमें दिये गये गोदानका फल चार गुना, तीर्थमें सौ गुना और नारायणक्षेत्रमें गोदानका फल करोड़ गुना होता है॥ ७॥

गां यो ददाति विप्राय भारते भक्तिपूर्वकम्।
वर्षाणामयुतं चैव चन्द्रलोके महीयते॥ ८

यश्चोभयमुखीदानं करोति ब्राह्मणाय च।
तल्लोममानवर्षं च विष्णुलोके महीयते॥ ९

यो ददाति ब्राह्मणाय श्वेतच्छत्रं मनोहरम्।
वर्षाणामयुतं सोऽपि मोदते वरुणालये॥ १०

विप्राय पीडिताङ्गाय वस्त्रयुग्मं ददाति च।
महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं सति॥ ११

यो ददाति ब्राह्मणाय शालग्रामं सवस्त्रकम्।
महीयते स वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ १२

यो ददाति ब्राह्मणाय दिव्यां शय्यां मनोहराम्।
महीयते चन्द्रलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ १३

यो ददाति प्रदीपं च देवेभ्यो ब्राह्मणाय च।
यावन्मन्वन्तरं सोऽपि वह्निलोके महीयते॥ १४

करोति गजदानं च यदि विप्राय भारते।
यावदिन्द्रो नरस्तावदिन्द्रस्यार्धासने वसेत्॥ १५

भारते योऽश्वदानं च करोति ब्राह्मणाय च।
मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १६

प्रकृष्टां शिबिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च।
मोदते वारुणे लोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ १७

प्रकृष्टां वाटिकां यो हि ददाति ब्राह्मणाय च।
महीयते वायुलोके यावन्मन्वन्तरं सति॥ १८

जो मनुष्य भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है॥ ८॥

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको उभयमुखी (प्रसव करती हुई) गायका दान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ९॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको स्वच्छ तथा मनोहर छत्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोतक वरुणलोकमें आनन्दित रहता है॥ १०॥

हे साध्वि! जो मनुष्य पीड़ित शरीरवाले दुःखी ब्राह्मणको एक जोड़ा वस्त्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ११॥

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको वस्त्रसहित शालग्रामका अर्पण करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १२॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको दिव्य तथा मनोहर शय्याका दान करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यके स्थिति-कालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १३॥

जो देवताओं तथा ब्राह्मणोंको दीपकका दान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है॥ १४॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथीका दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान रहता है॥ १५॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको अश्वका दान करता है, वह जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वरुणलोकमें आनन्द प्राप्त करता है॥ १६॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणके लिये उत्तम शिबिकाका दान करता है, वह भी चौदह इन्द्रोंकी स्थितितक वरुणलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १७॥

हे साध्वि! जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम वाटिका प्रदान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १८॥

यो ददाति च विप्राय व्यजनं श्वेतचामरम्।
महीयते वायुलोके वर्षाणामयुतं ध्रुवम्॥ १९

धान्यं रत्नं यो ददाति चिरञ्जीवी भवेत्सुधीः।
दाता ग्रहीता तौ द्वौ च ध्रुवं वैकुण्ठगामिनौ॥ २०

सततं श्रीहरेर्नाम भारते यो जपेन्नरः।
स एव चिरजीवी च ततो मृत्युः पलायते॥ २१

यो नरो भारते वर्षे दोलनं कारयेत्सुधीः।
पूर्णिमारजनीशेषे जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥ २२

इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते विष्णुमन्दिरम्।
निश्चितं निवसेत्तत्र शतमन्वन्तरावधि॥ २३

फलमुत्तरफल्गुन्यां ततोऽपि द्विगुणं भवेत्।
कल्पान्तजीवी स भवेदित्याह कमलोद्भवः॥ २४

तिलदानं ब्राह्मणाय यः करोति च भारते।
तिलप्रमाणवर्षं च मोदते शिवमन्दिरे॥ २५

ततः सुयोनिं सम्प्राप्य चिरञ्जीवी भवेत्सुखी।
ताम्रपात्रस्य दानेन द्विगुणं च फलं लभेत्॥ २६

सालङ्कृतां च भोग्यां च सवस्त्रां सुन्दरीं प्रियाम्।
यो ददाति ब्राह्मणाय भारते च पतिव्रताम्॥ २७

महीयते चन्द्रलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तत्र स्वर्वेश्यया सार्धं मोदते च दिवानिशम्॥ २८

ततो गन्धर्वलोके च वर्षाणामयुतं ध्रुवम्।
दिवानिशं कौतुकेन चोर्वश्या सह मोदते॥ २९

ततो जन्मसहस्रं च प्राप्नोति सुन्दरीं प्रियाम्।
सतीं सौभाग्ययुक्तां च कोमलां प्रियवादिनीम्॥ ३०

जो व्यक्ति ब्राह्मणको पंखा तथा श्वेत चँवरका दान करता है, वह निश्चितरूपसे दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १९॥

जो मनुष्य धान्य तथा रत्नका दान करता है, वह दीर्घायु तथा विद्वान् होता है। दान देनेवाला तथा लेनेवाला—वे दोनों निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं॥ २०॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका जप करता है, वह दीर्घजीवी होता है और मृत्यु उससे सदा दूर रहती है॥ २१॥

भारतवर्षमें जो विद्वान् पुरुष पूर्णिमाकी रातके कुछ शेष रहनेपर दोलोत्सव कराता है, वह जीवन्मुक्त होता है, इस लोकमें सुख भोगकर वह अन्तमें विष्णुके धामको प्राप्त होता है और वहाँ सौ मन्वन्तरकी अवधि-तक निश्चितरूपसे निवास करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें यह उत्सव मनानेपर उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है और वह व्यक्ति कल्पपर्यन्त जीवित रहता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ २२—२४॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह तिलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवजीके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह दीर्घकालतक जीवित रहते हुए सुख भोगता है। तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रका दान करनेसे उससे भी दूना फल प्राप्त होता है॥ २५-२६॥

भारतमें जो मनुष्य उपभोग करनेयोग्य पतिव्रता तथा सुन्दर कन्याको अलंकारों तथा वस्त्रोंसे विभूषित करके उसे किसी ब्राह्मणको भार्याके रूपमें अर्पण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और वहाँपर स्वर्गकी अप्सराओंके साथ दिन-रात आनन्द प्राप्त करता रहता है। उसके बाद वह निश्चय ही गन्धर्वलोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करता है और वहाँपर उर्वशीके साथ क्रीडा करते हुए दिन-रात आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् उसे हजारों जन्मतक सुन्दर, साध्वी, सौभाग्यवती, कोमल तथा प्रिय सम्भाषण करनेवाली भार्या प्राप्त होती है॥ २७—३०॥

प्रददाति फलं चारु ब्राह्मणाय च यो नरः।
फलप्रमाणवर्षं च शक्रलोके महीयते॥ ३१

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य लभते सुतमुत्तमम्।
सफलानां च वृक्षाणां सहस्रं च प्रशंसितम्॥ ३२

केवलं फलदानं वा ब्राह्मणाय ददाति च।
सुचिरं स्वर्गवासं च कृत्वा याति च भारते॥ ३३

नानाद्रव्यसमायुक्तं नानासस्यसमन्वितम्।
ददाति यश्च विप्राय भारते विपुलं गृहम्॥ ३४

सुरलोके वसेत्सोऽपि यावन्मन्वन्तरं शतम्।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य स महाधनवान्भवेत्॥ ३५

यो नरः सस्यसंयुक्तां भूमिं च रुचिरां सति।
ददाति भक्त्या विप्राय पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ३६

महीयते च वैकुण्ठे मन्वन्तरशतं ध्रुवम्।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य महांश्च भूमिपो भवेत्॥ ३७

तं न त्यजति भूमिश्च जन्मनां शतकं परम्।
श्रीमांश्च धनवांश्चैव पुत्रवांश्च प्रजेश्वरः॥ ३८

यो व्रजं च प्रकृष्टं च ग्रामं दद्याद् द्विजाय च।
लक्षमन्वन्तरं चैव वैकुण्ठे स महीयते॥ ३९

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य ग्रामलक्षसमन्वितम्।
न जहाति च तं पृथ्वी जन्मनां लक्षमेव च॥ ४०

सुप्रजं च प्रकृष्टं च पक्वसस्यसमन्वितम्।
नानापुष्करिणीवृक्षफलवल्लीसमन्वितम् ॥ ४१

नगरं यश्च विप्राय ददाति भारते भुवि।
महीयते स कैलासे दशलक्षेन्द्रकालकम्॥ ४२

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य राजेन्द्रो भारते भवेत्।
नगराणां च नियुतं स लभेन्नात्र संशयः॥ ४३

धरा तं न जहात्येव जन्मनामयुतं ध्रुवम्।
परमैश्वर्यनियुतो भवेदेव महीतले॥ ४४

जो मनुष्य ब्राह्मणको सुन्दर फल प्रदान करता है, वह जितने फल दिये गये होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसके बाद वह उत्तम योनिमें जन्म लेकर श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानका फल उससे भी हजार गुना अधिक बताया गया है। जो मनुष्य ब्राह्मणको केवल फलदान करता है, वह भी दीर्घ कालतक स्वर्गमें निवास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहण करता है॥ ३१—३३॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य अनेक प्रकारके द्रव्योंसे युक्त तथा नानाविध धान्योंसे परिपूर्ण विशाल भवन ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह सौ मन्वन्तरतक देवलोकमें निवास करता है। तदनन्तर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनाढ्य हो जाता है॥ ३४-३५॥

हे साध्वि! पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो मनुष्य हरी-भरी फसलोंसे सम्पन्न सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे सौ मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर वह बहुत महान् राजा होता है। सौ जन्मोंतक भूमि उसका त्याग नहीं करती और वह श्रीयुक्त, धनवान् तथा पुत्रवान् राजा होता है॥ ३६—३८॥

जो व्यक्ति उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह एक लाख मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर वह लाखों गाँवोंसे सम्पन्न हो जाता है और लाख जन्मोंतक भूमि उसका साथ नहीं छोड़ती॥ ३९-४०॥

भारतभूमिपर जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम प्रजाओंसे युक्त, उत्कृष्ट, पकी हुई फसलोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके कमलयुक्त जलाशयों, वृक्षों, फलों और लताओंसे सुशोभित नगर प्रदान करता है; वह दस लाख इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें उत्तम योनिमें जन्म लेकर राजेश्वर होता है और लाखों नगर प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। दस हजार वर्षोंतक धरा उस मनुष्यका साथ नहीं छोड़ती और वह निश्चितरूपसे पृथ्वीतलपर सर्वदा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है॥ ४१—४४॥

नगराणां च शतकं देशं यो हि द्विजातये।
सुप्रकृष्टं मध्यकृष्टं प्रजायुक्तं ददाति च॥ ४५

वापीतडागसंयुक्तं नानावृक्षसमन्वितम्।
महीयते स वैकुण्ठे कोटिमन्वन्तरावधि॥ ४६

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य जम्बुद्वीपपतिर्भवेत्।
परमैश्वर्यसंयुक्तो यथा शक्रस्तथा भुवि॥ ४७

मही तं न जहात्येव जन्मनां कोटिमेव च।
कल्पान्तजीवी स भवेद्राजराजेश्वरो महान्॥ ४८

स्वाधिकारं समग्रं च यो ददाति द्विजातये।
चतुर्गुणं फलं चान्ते भवेत्तस्य न संशयः॥ ४९

जम्बुद्वीपं यो ददाति ब्राह्मणाय तपस्विने।
फलं शतगुणं चान्ते भवेत्तस्य न संशयः॥ ५०

जम्बुद्वीपमहीदातुः सर्वतीर्थानि सेवितुः।
सर्वेषां तपसां कर्तुः सर्वेषां वासकारिणः॥ ५१

सर्वदानप्रदातुश्च सर्वसिद्धेश्वरस्य च।
अस्त्येव पुनरावृत्तिर्न भक्तस्य महेशितुः॥ ५२

असंख्यब्रह्मणां पातं पश्यन्ति भुवनेशितुः।
निवसन्ति मणिद्वीपे श्रीदेव्याः परमे पदे॥ ५३

देवीमन्त्रोपासकाश्च विहाय मानवीं तनुम्।
विभूतिं दिव्यरूपं च जन्ममृत्युजराहरम्॥ ५४

लब्ध्वा देव्याश्च सारूप्यं देवीसेवां च कुर्वते।
पश्यन्ति ते मणिद्वीपे सखण्डं लोकसंक्षयम्॥ ५५

नश्यन्ति देवाः सिद्धाश्च विश्वानि निखिलानि च।
देवीभक्ता न नश्यन्ति जन्ममृत्युजराहराः॥ ५६

जो मनुष्य अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीवाले, प्रजाओंसे परिपूर्ण, बावली-तड़ागसे युक्त तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सम्पन्न एक सौ नगरोंका दान किसी द्विजको करता है, वह करोड़ मन्वन्तरकी अवधितक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वह फिरसे उत्तम वंशमें जन्म लेकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और जैसे इन्द्र स्वर्गमें सुशोभित होते हैं, वैसे ही वह परम ऐश्वर्यवान् होकर पृथ्वीलोकमें शोभा प्राप्त करता है। करोड़ों जन्मोंतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती और वह महान् राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होकर कल्पके अन्ततक जीवित रहता है॥ ४५—४८॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको अपना सम्पूर्ण अधिकार दे देता है, उसे अन्तमें चौगुना फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४९॥

जो व्यक्ति तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान देता है, वह अन्तमें सौ गुना फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०॥

जम्बूद्वीपकी भूमिका दान करनेवाले, समस्त तीर्थोंमें निवास करनेवाले, सभी तपस्याओंमें रत रहनेवाले, सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानोंमें निवास करनेवाले, अपना सर्वस्व दान करनेवाले तथा समस्त प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त किये हुए महेश्वरी जगदम्बाके भक्तको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ५१-५२॥

भगवती जगदम्बाके उपासकोंके समक्ष असंख्य ब्रह्माओंका लय हो जाता है, किंतु वे भगवती भुवनेश्वरीके परम धाम मणिद्वीपमें निवास करते रहते हैं॥ ५३॥

भगवतीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष मानव-शरीर त्यागनेके अनन्तर जन्म, मृत्यु एवं जरारहित ऐश्वर्यमय दिव्यरूप धारण करके उन भगवतीकी सारूप्यमुक्ति प्राप्तकर उनकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। वे मणिद्वीपमें निवास करते हुए खण्डप्रलयका अवलोकन करते रहते हैं॥ ५४-५५॥

देवता, सिद्ध तथा समग्र विश्व एक निश्चित अवधिपर नष्ट हो जाते हैं; किंतु जन्म, मृत्यु और जरासे रहित देवीभक्त विनाशको प्राप्त नहीं होते॥ ५६॥

कार्तिके तुलसीदानं करोति हरये च यः।
युगत्रयप्रमाणं च मोदते हरिमन्दिरे॥ ५७

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरः स भवेद्भारते भुवि॥ ५८

मध्ये यः स्नाति गङ्गायामरुणोदयकालतः।
युगषष्टिसहस्राणि मोदते हरिमन्दिरे॥ ५९

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य विष्णुमन्त्रं लभेद् ध्रुवम्।
त्यक्त्वा च मानुषं देहं पुनर्याति हरेः पदम्॥ ६०

नास्ति तत्पुनरावृत्तिर्वैकुण्ठाच्च महीतले।
करोति हरिदास्यं च तथा सारूप्यमेव च॥ ६१

नित्यस्नायी च गङ्गायां स पूतः सूर्यवद्भुवि।
पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥ ६२

तस्यैव पादरजसा सद्यःपूता वसुन्धरा।
मोदते स च वैकुण्ठे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ६३

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य हरिभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जीवन्मुक्तोऽतितेजस्वी तपस्विप्रवरो भवेत्॥ ६४

स्वधर्मनिरतः शुद्धो विद्वांश्च स जितेन्द्रियः।
मीनकर्कटयोर्मध्ये गाढं तपति भास्करः॥ ६५

भारते यो ददात्येव जलमेव सुवासितम्।
स मोदते च कैलासे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ६६

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य रूपवांश्च सुखी भवेत्।
शिवभक्तश्च तेजस्वी वेदवेदाङ्गपारगः॥ ६७

वैशाखे सक्तुदानं च यः करोति द्विजातये।
सक्तुरेणुप्रमाणाब्दं मोदते शिवमन्दिरे॥ ६८

जो मनुष्य कार्तिक महीनेमें भगवान् श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह श्रीहरिके धाममें तीन युगोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह निश्चितरूपसे भगवान्की भक्ति प्राप्त करता है और इस भारतभूमिमें रहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंमें अति श्रेष्ठ हो जाता है॥ ५७-५८॥

जो व्यक्ति अरुणोदयके समय गंगाके मध्य स्नान करता है, वह साठ हजार युगोंतक भगवान् श्रीहरिके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर विष्णुमन्त्रकी सिद्धि करता है और अन्तमें पुनः मानवशरीर त्यागकर भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। उस वैकुण्ठधामसे फिर पृथ्वीतलपर उसका दुबारा जन्म नहीं होता। भगवान्का सारूप्य प्राप्त करके वह सदा उनकी सेवामें संलग्न रहता है॥ ५९—६१॥

जो व्यक्ति प्रतिदिन गंगामें स्नान करता है, वह सूर्यकी भाँति पृथ्वीलोकमें पवित्र माना जाता है और उसे पग-पगपर अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है, यह सर्वथा निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। अन्तमें वह वैकुण्ठधाम पहुँचकर सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त वहाँ आनन्द प्राप्त करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें पुनः जन्म लेकर उसे अवश्य ही भगवान् श्रीहरिकी भक्ति सुलभ होती है। वह जीवन्मुक्त, परम तेजस्वी, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, स्वधर्मपरायण, निर्मलहृदय, विद्वान् तथा जितेन्द्रिय होता है॥ ६२—६४½॥

मीन और कर्कराशिपर रहते समय सूर्य अत्यधिक तपते हैं। जो पुरुष उस समय भारतमें सुवासित जलका दान करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद-वेदांगका पारगामी विद्वान् होता है॥ ६५—६७॥

जो मनुष्य वैशाख महीनेमें ब्राह्मणको सत्तूका दान करता है, वह उस सत्तूके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें आनन्दपूर्वक निवास करता है॥ ६८॥

करोति भारते यो हि कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्।
शतजन्मकृतं पापं मुच्यते नात्र संशयः॥ ६९

वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य कृष्णे भक्तिं लभेद् ध्रुवम्॥ ७०

इहैव भारते वर्षे शिवरात्रिं करोति यः।
मोदते शिवलोके स सप्तमन्वन्तरावधि॥ ७१

शिवाय शिवरात्रौ च बिल्वपत्रं ददाति यः।
पत्रमानयुगं तत्र मोदते शिवमन्दिरे॥ ७२

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य शिवभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
विद्यावान्पुत्रवाञ्छ्रीमान् प्रजावान्भूमिमान्भवेत्॥ ७३

चैत्रमासेऽथवा माघे शङ्करं योऽर्चयेद् व्रती।
करोति नर्तनं भक्त्या वेत्रपाणिर्दिवानिशम्॥ ७४

मासं वाप्यर्धमासं वा दश सप्त दिनानि च।
दिनमानयुगं सोऽपि शिवलोके महीयते॥ ७५

श्रीरामनवमीं यो हि करोति भारते पुमान्।
सप्तमन्वन्तरं यावन्मोदते विष्णुमन्दिरे॥ ७६

पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य रामभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
जितेन्द्रियाणां प्रवरो महांश्च धनवान्भवेत्॥ ७७

शारदीयां महापूजां प्रकृतेर्यः करोति च।
महिषैश्छागलैर्मेषैः खड्गैर्भेकादिभिः सति॥ ७८

नैवेद्यैरुपहारैश्च धूपदीपादिभिस्तथा।
नृत्यगीतादिभिर्वाद्यैर्नानाकौतुकमङ्गलम्॥ ७९

शिवलोके वसेत्सोऽपि सप्तमन्वन्तरावधि।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य नरो बुद्धिं च निर्मलाम्॥ ८०

अतुलां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रविवर्धनीम्।
महाप्रभावयुक्तश्च गजवाजिसमन्वितः॥ ८१

राजराजेश्वरः सोऽपि भवेदेव न संशयः।

भारतवर्षमें जो मनुष्य श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका व्रत करता है, वह अपने सौ जन्मोंमें किये गये पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वह वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। इसके बाद वह पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर निश्चितरूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है॥ ६९-७०॥

इस भारतवर्षमें जो मनुष्य शिवरात्रिका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तरोंके कालतक शिवलोकमें आनन्दसे रहता है॥ ७१॥

जो मनुष्य शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र अर्पण करता है, वह बिल्वपत्रोंकी जितनी संख्या है उतने वर्षोंतक उस शिवलोकमें आनन्द भोगता है। पुनः श्रेष्ठ योनि प्राप्त करके वह निश्चय ही शिवभक्ति प्राप्त करता है और विद्या, पुत्र, श्री, प्रजा तथा भूमि—इन सबसे सदा सम्पन्न रहता है॥ ७२-७३॥

जो व्रती चैत्र अथवा माघमें पूरे मासभर, आधे मास, दस दिन अथवा सात दिनतक भगवान् शंकरकी पूजा करता है और हाथमें बेंत लेकर भक्तिपूर्वक उनके सम्मुख नर्तन करता है, वह उपासनाके दिनोंकी संख्याके बराबर युगोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७४-७५॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीरामनवमीका व्रत सम्पन्न करता है, वह विष्णुके धाममें सात मन्वन्तरतक आनन्द करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह निश्चय ही रामकी भक्ति प्राप्त करता है और जितेन्द्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा महान् धनी होता है॥ ७६-७७॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विविध प्रकारके नैवेद्यों, उपहार-सामग्रियों, धूप-दीप आदि पूजनोपचारोंके द्वारा भगवती प्रकृतिकी शारदीय महापूजा करता है तथा उस अवसरपर नृत्य, गीत, वाद्य आदिके द्वारा अनेकविध मंगलोत्सव मनाता है; वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक शिवलोकमें निवास करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह मनुष्य निर्मल बुद्धि, अपार सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि प्राप्त करता है। वह हाथी, घोड़े आदि वाहनोंसे सम्पन्न तथा महान् प्रभावशाली राजराजेश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ७८—८१ १/२ ॥

ततः शुक्लाष्टमीं प्राप्य महालक्ष्मीं च योऽर्चयेत्॥ ८२

नित्यं भक्त्या पक्षमेकं पुण्यक्षेत्रे च भारते।
दत्त्वा तस्यै प्रकृष्टानि चोपचाराणि षोडश॥ ८३

गोलोके च वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
पुनः सुयोनिं सम्प्राप्य राजराजेश्वरो भवेत्॥ ८४

कार्तिकीपूर्णिमायां च कृत्वा तु रासमण्डलम्।
गोपानां शतकं कृत्वा गोपीनां शतकं तथा॥ ८५

शिलायां प्रतिमायां च श्रीकृष्णं राधया सह।
भारते पूजयेद्भक्त्या चोपचाराणि षोडश॥ ८६

गोलोके वसते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः।
भारतं पुनरागत्य कृष्णे भक्तिं लभेद् दृढाम्॥ ८७

क्रमेण सुदृढां भक्तिं लब्ध्वा मन्त्रं हरेरहो।
देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः॥ ८८

ततः कृष्णस्य सारूप्यं पार्षदप्रवरो भवेत्।
पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत्॥ ८९

शुक्लां वाप्यथवा कृष्णां करोत्येकादशीं च यः।
वैकुण्ठे मोदते सोऽपि यावद्वै ब्रह्मणो वयः॥ ९०

भारते पुनरागत्य कृष्णभक्तिं लभेद् ध्रुवम्।
क्रमेण भक्तिं सुदृढां करोत्येकां हरेरहो॥ ९१

देहं त्यक्त्वा च गोलोकं पुनरेव प्रयाति सः।
ततः कृष्णस्य सारूप्यं सम्प्राप्य पार्षदो भवेत्॥ ९२

पुनस्तत्पतनं नास्ति जरामृत्युहरो भवेत्।
भाद्रे च शुक्लद्वादश्यां यः शक्रं पूजयेन्नरः॥ ९३

षष्टिवर्षसहस्राणि शक्रलोके महीयते।
रविवारे च संक्रान्त्यां सप्तम्यां शुक्लपक्षके॥ ९४

सम्पूज्यार्कं हविष्यान्नं यः करोति च भारते।
महीयते सोऽर्कलोके यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ९५
भारतं पुनरागत्य चारोगी श्रीयुतो भवेत्।

शारदीय नवरात्रकी शुक्लाष्टमी तिथिसे प्रारम्भ करके एक पक्षतक नित्य पवित्र भारतभूमिपर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उत्तम षोडशोपचार अर्पित करके भगवती महालक्ष्मीकी पूजा करता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त गोलोकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह राजराजेश्वर बनता है॥ ८२—८४॥

जो भारतवर्षमें कार्तिकपूर्णिमाको सैकड़ों गोपों तथा गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनाकर शिलापर या प्रतिमामें सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंसे भक्तिपूर्वक राधासहित श्रीकृष्णकी पूजा सम्पन्न करता है, वह ब्रह्माजीके स्थितिपर्यन्त गोलोकमें निवास करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर वह श्रीकृष्णकी स्थिर भक्ति प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः सुदृढ़ भक्ति तथा उनका मन्त्र प्राप्त करके देह-त्यागके अनन्तर वह पुनः गोलोक चला जाता है। वहाँ श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके वह उनका प्रमुख पार्षद बन जाता है। पुनः वहाँसे उसका पतन नहीं होता, वह जरा तथा मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाता है॥ ८५—८९॥

जो व्यक्ति शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह निश्चय ही श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है और वह क्रमशः एकमात्र श्रीहरिके प्रति अपनी भक्तिको सुदृढ़ करता जाता है। अन्तमें मानव देह त्यागकर वह पुनः गोलोक चला जाता है और वहाँपर श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। वहाँसे पुनः संसारमें उसका आगमन नहीं होता और वह सदाके लिये जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो जाता है॥ ९०—९२½॥

जो मनुष्य भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको इन्द्रकी पूजा करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है। जो भारतवर्षमें रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सूर्यकी पूजा करके भोजनमें हविष्यान्न ग्रहण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंके आयुपर्यन्त सूर्यलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद भारतवर्षमें फिरसे जन्म लेकर वह आरोग्ययुक्त तथा श्रीसम्पन्न होता है॥ ९३—९५½॥

ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीं यो हि पूजयेत्॥ ९६

महीयते ब्रह्मलोके सप्तमन्वन्तरावधि।
पुनर्महीं समागत्य श्रीमानतुलविक्रमः॥ ९७

चिरजीवी भवेत्सोऽपि ज्ञानवान्सम्पदा युतः।
माघस्य शुक्लपञ्चम्यां पूजयेद्यः सरस्वतीम्॥ ९८

संयतो भक्तितो दत्त्वा चोपचाराणि षोडश।
महीयते मणिद्वीपे यावद्ब्रह्म दिवानिशम्॥ ९९

सम्प्राप्य च पुनर्जन्म स भवेत्कविपण्डितः।
गां सुवर्णादिकं यो हि ब्राह्मणाय ददाति च॥ १००

नित्यं जीवनपर्यन्तं भक्तियुक्तश्च भारते।
गवां लोमप्रमाणाब्दं द्विगुणं विष्णुमन्दिरे॥ १०१

मोदते हरिणा सार्धं क्रीडाकौतुकमङ्गलैः।
तदन्ते पुनरागत्य राजराजेश्वरो भवेत्॥ १०२

श्रीमांश्च पुत्रवान्विद्वाञ्ज्ञानवान्सर्वतः सुखी।
भोजयेद्योऽपि मिष्टान्नं ब्राह्मणेभ्यश्च भारते॥ १०३

विप्रलोमप्रमाणाब्दं मोदते विष्णुमन्दिरे।
ततः पुनरिहागत्य सुखी च धनवान्भवेत्॥ १०४

विद्वान्सुचिरजीवी च श्रीमानतुलविक्रमः।
यो वक्ति वा ददात्येव हरेर्नामानि भारते॥ १०५

युगं नाम प्रमाणं च विष्णुलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य स सुखी धनवान्भवेत्॥ १०६

यदि नारायणक्षेत्रे फलं कोटिगुणं भवेत्।
नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्॥ १०७

जो मनुष्य ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको भगवती सावित्रीका पूजन करता है, वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुनः पृथ्वीपर लौटकर वह श्रीमान्, अतुल पराक्रमी, चिरंजीवी, ज्ञानवान् तथा सम्पदासम्पन्न हो जाता है॥ ९६-९७½ ॥

जो मनुष्य माघ महीनेके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिको भक्तिपूर्वक सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंको अर्पणकर सरस्वतीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त मणिद्वीपमें दिन-रात प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और पुनः जन्म ग्रहणकर महान् कवि तथा पण्डित होता है॥ ९८-९९½ ॥

भारतवर्षमें जो जीवनभर भक्तिसे सम्पन्न होकर ब्राह्मणको नित्य गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह उस गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उससे भी दुगुने वर्षोंतक विष्णुलोकमें वास करता है और वहाँ भगवान् श्रीहरिके साथ मंगलमय क्रीड़ा तथा उत्सव करते हुए आनन्दका भोग करता है। तत्पश्चात् पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर श्रीसम्पन्न, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् तथा हर प्रकारसे सुखी राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होता है॥ १००—१०२½ ॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मिष्टान्नका भोजन कराता है, वह उस ब्राह्मणके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वहाँसे पुनः इस लोकमें जन्म लेकर वह सुखी, धनवान्, विद्वान्, दीर्घजीवी, श्रीमान् तथा अतुलनीय पराक्रमवाला होता है॥ १०३-१०४½ ॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा इसके लिये दूसरेको प्रेरणा देता है, वह जपे गये नामोंकी संख्याके बराबर युगोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँसे पुनः इस लोकमें आकर वह सुखी तथा धनवान् होता है॥ १०५-१०६ ॥

यदि भगवान्का नामजप नारायणक्षेत्रमें किया जाय तो उसका फल करोड़ों गुना अधिक होता है। जो मनुष्य नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका

सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
न लभेत्स पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते॥ १०८

लभेद्विष्णोश्च सारूप्यं न तस्य पतनं भवेत्।
विष्णुभक्तिं लभेत्सोऽपि विष्णुसारूप्यमाप्नुयात्॥ १०९

शिवं यः पूजयेन्नित्यं कृत्वा लिङ्गं च पार्थिवम्।
यावज्जीवनपर्यन्तं स याति शिवमन्दिरम्॥ ११०

मृदो रेणुप्रमाणाब्दं शिवलोके महीयते।
ततः पुनरिहागत्य राजेन्द्रो भारते भवेत्॥ १११

शिलां च पूजयेन्नित्यं शिलातोयं च भक्षति।
महीयते च वैकुण्ठे यावद्वै ब्रह्मणः शतम्॥ ११२

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म हरिभक्तिं च दुर्लभाम्।
महीयते विष्णुलोके न तस्य पतनं भवेत्॥ ११३

तपांसि चैव सर्वाणि व्रतानि निखिलानि च।
कृत्वा तिष्ठति वैकुण्ठे यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ११४

ततो लब्ध्वा पुनर्जन्म राजेन्द्रो भारते भवेत्।
ततो मुक्तो भवेत्पश्चात्पुनर्जन्म न विद्यते॥ ११५

यः स्नात्वा सर्वतीर्थेषु भुवः कृत्वा प्रदक्षिणाम्।
स तु निर्वाणतां याति न च जन्म भवेद्भुवि॥ ११६

पुण्यक्षेत्रे भारते च योऽश्वमेधं करोति च।
अश्वलोममिताब्दं च शक्रस्यार्धासनं भजेत्॥ ११७

एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह सत्य है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है और वहाँसे उसका पतन नहीं होता है। इस प्रकार वह भगवान् विष्णुकी परम भक्ति सुलभ कर लेता है और अन्ततः उसे भगवान् विष्णुकी सारूप्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ १०७—१०९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन पार्थिव लिंग बनाकर शिवकी पूजा करता है और जीवनपर्यन्त इस नियमका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है और उस पार्थिव लिंगमें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह महान् राजा होता है॥ ११०-१११॥

जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामका पूजन करता है और शालग्रामशिलाके जलका पान करता है, वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके बाद फिरसे जन्म लेकर भगवान् श्रीहरिकी दुर्लभ भक्ति प्राप्त करता है और पुनः विष्णुलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है और उसका पतन नहीं होता॥ ११२-११३॥

जो मनुष्य समस्त तपों तथा व्रतोंको सम्पन्न कर लेता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त वैकुण्ठमें निवास करता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहणकर वह महान् सम्राट् होता है। तदनन्तर वह मुक्त हो जाता है और फिर उसे दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ११४-११५॥

जो सभी तीर्थोंमें स्नान तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लेता है, वह निर्वाणपदको प्राप्त होता है और पुनः पृथ्वीलोकमें उसका जन्म नहीं होता है॥ ११६॥

जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें अश्वमेधयज्ञ करता है, वह उस अश्वके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्य इससे भी चार गुना फल प्राप्त करता है॥ ११७॥

चतुर्गुणं राजसूये फलमाप्नोति मानवः।
सर्वेभ्योऽपि मखेभ्यो हि परो देवीमखः स्मृतः॥ ११८
विष्णुना च कृतः पूर्वं ब्रह्मणा च वरानने।
शङ्करेण महेशेन त्रिपुरासुरनाशने॥ ११९
शक्तियज्ञः प्रधानश्च सर्वयज्ञेषु सुन्दरि।
नानेन सदृशो यज्ञस्त्रिषु लोकेषु विद्यते॥ १२०
दक्षेण च कृतः पूर्वं महान्संवादसंयुतः।
बभूव कलहो यत्र दक्षशङ्करयोः सति॥ १२१
शेपुश्च नन्दिनं विप्रा नन्दी विप्रांश्च कोपतः।
यद्धेतोर्दक्षयज्ञं च बभञ्ज चन्द्रशेखरः॥ १२२
चकार देवीयज्ञं स पुरा दक्षः प्रजापतिः।
धर्मश्च कश्यपश्चैव शेषश्चापि च कर्दमः॥ १२३
स्वायम्भुवो मनुश्चैव तत्पुत्रश्च प्रियव्रतः।
शिवः सनत्कुमारश्च कपिलश्च ध्रुवस्तथा॥ १२४
राजसूयसहस्राणां फलमाप्नोति निश्चितम्।
देवीयज्ञात्परो यज्ञो नास्ति वेदे फलप्रदः॥ १२५
वर्षाणां शतजीवी च जीवन्मुक्तो भवेद् ध्रुवम्।
ज्ञानेन तेजसा चैव विष्णुतुल्यो भवेदिह॥ १२६
देवानां च यथा विष्णुर्वैष्णवानां च नारद।
शास्त्राणां च यथा वेदा वर्णानां ब्राह्मणो यथा॥ १२७
तीर्थानां च यथा गङ्गा पवित्राणां शिवो यथा।
एकादशी व्रतानां च पुष्पाणां तुलसी यथा॥ १२८
नक्षत्राणां यथा चन्द्रः पक्षिणां गरुडो यथा।
यथा स्त्रीणां च प्रकृती राधा वाणी वसुन्धरा॥ १२९
शीघ्राणां चेन्द्रियाणां च चञ्चलानां मनो यथा।
प्रजापतीनां ब्रह्मा च प्रजानां च प्रजापतिः॥ १३०
वृन्दावनं वनानां च वर्षाणां भारतं यथा।
श्रीमतां च यथा श्रीश्च विदुषां च सरस्वती॥ १३१
पतिव्रतानां दुर्गा च सौभाग्यानां च राधिका।
देवीयज्ञस्तथा वत्से सर्वयज्ञेषु भामिनि॥ १३२

भगवतीका यज्ञ सभी यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ कहा गया है। हे वरानने! विष्णु और ब्रह्माने पूर्वकालमें इस यज्ञको किया था और त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये महादेव शंकरजीने भी इस यज्ञको सम्पन्न किया था। हे सुन्दरि! यह शक्ति-यज्ञ सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रधान है; तीनों लोकोंमें इस यज्ञके समान कोई भी यज्ञ नहीं है॥ ११८—१२०॥

हे साध्वि! पूर्व कालकी बात है, दक्षप्रजापतिने महान् उत्सवके साथ भगवतीका यज्ञ किया था, जिसमें दक्ष-प्रजापति तथा शंकरमें परस्पर कलह हो गया। क्रोधमें आकर ब्राह्मणोंने नन्दीको तथा नन्दीने ब्राह्मणोंको शाप दे दिया। इसलिये चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शिवने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला॥ १२१-१२२॥

प्राचीन कालमें दक्षप्रजापति, धर्म, कश्यप, शेषनाग, मुनि कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुव—ये सभी लोग भगवतीयज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं॥ १२३-१२४॥

देवीयज्ञ करनेवाला पुरुष हजारों राजसूययज्ञोंका फल निश्चित-रूपसे प्राप्त कर लेता है। देवीयज्ञसे बढ़कर फल प्रदान करनेवाला कोई यज्ञ नहीं है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ १२५॥

देवीयज्ञ करनेवाला सौ वर्षतक जीवित रहकर अन्तमें जीवन्मुक्त हो जाता है, यह सत्य है। वह इस लोकमें ज्ञान तथा तपमें साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो जाता है॥ १२६॥

हे वत्से! हे भामिनि! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, विष्णुभक्तोंमें नारद, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गंगा, पुण्यात्मा पवित्रोंमें शिव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड, स्त्रियोंमें मूलप्रकृति; राधा; सरस्वती तथा पृथिवी, शीघ्रगामी तथा चंचल इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजाओंमें राजा, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमान् लोगोंमें श्री, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्ण-भार्याओंमें राधा सर्वोपरि हैं, उसी प्रकार समस्त यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है॥ १२७—१३२॥

अश्वमेधशतेनैव शक्रत्वं च लभेद् ध्रुवम्।
सहस्रेण विष्णुपदं सम्प्राप्तः पृथुरेव च॥ १३३

स्नानं च सर्वतीर्थानां सर्वयज्ञेषु दीक्षणम्।
सर्वेषां च व्रतानां च तपसां फलमेव च॥ १३४

पाठे चतुर्णां वेदानां प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा।
फलभूतमिदं सर्वं मुक्तिदं शक्तिसेवनम्॥ १३५

पुराणेषु च वेदेषु चेतिहासेषु सर्वतः।
निरूपितं सारभूतं देवीपादाम्बुजार्चनम्॥ १३६

तद्वर्णनं च तद्ध्यानं तन्नामगुणकीर्तनम्।
तत्स्तोत्रस्मरणं चैव वन्दनं जपमेव च॥ १३७

तत्पादोदकनैवेद्यं भक्षणं नित्यमेव च।
सर्वसम्मतमित्येवं सर्वेप्सितमिदं सति॥ १३८

भज नित्यं परं ब्रह्म निर्गुणं प्रकृतिं पराम्।
गृहाण स्वामिनं वत्से सुखं वस च मन्दिरे॥ १३९

अयं ते कथितः कर्मविपाको मङ्गलो नृणाम्।
सर्वेप्सितः सर्वमतस्तत्त्वज्ञानप्रदः परः॥ १४०

एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे मनुष्य इन्द्रपद पा जाता है। एक हजार अश्वमेध करके राजा पृथुने विष्णुपद प्राप्त किया था॥ १३३॥

सम्पूर्ण तीर्थोंके स्नान, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, सभी व्रतों, तपों तथा चारों वेदोंके पाठोंका पुण्य और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—इन सभी साधनोंके फल-स्वरूप शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाकी सेवा सुलभ हो जाती है, जो प्राणीको मोक्ष प्रदान कर देती है॥ १३४-१३५॥

पुराणों, वेदों तथा इतिहासोंमें सर्वत्र भगवतीके चरणकमलकी उपासनाको ही सारभूत बताया गया है। उन भगवतीके चरित्रका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम तथा गुणोंका कीर्तन, उनके स्तोत्रोंका स्मरण, उनकी वन्दना, उनका नाम-जप, उनके चरणोदक तथा नैवेद्यका ग्रहण—यह सब नित्य सम्पादित करना चाहिये। हे साध्वि! यह सर्वसम्मत तथा सभीके लिये अभीष्ट भी है॥ १३६—१३८॥

हे वत्से! तुम निर्गुण परब्रह्मस्वरूपिणी पराम्बा भगवती मूलप्रकृतिकी उपासना करो। अब तुम अपने पतिको ग्रहण करो और सुखपूर्वक अपने भवनमें निवास करो। मनुष्योंका यह मंगलमय कर्मविपाक मैंने तुमसे कह दिया, यह प्रसंग सबके लिये अभीष्ट, सर्वसम्मत, श्रेष्ठ तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है॥ १३९-१४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
यमेन कर्मविपाककथनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

* * *

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

सावित्रीका यमाष्टकद्वारा धर्मराजका स्तवन

श्रीनारायण उवाच

शक्तेरुत्कीर्तनं श्रुत्वा सावित्री यमवक्त्रतः।
साश्रुनेत्रा सपुलका यमं पुनरुवाच सा॥ १

सावित्र्युवाच

शक्तेरुत्कीर्तनं धर्म सकलोद्धारकारणम्।
श्रोतॄणां चैव वक्तॄणां जन्ममृत्युजराहरम्॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यमके मुखसे भगवतीके नामकीर्तनकी महिमा सुनकर सावित्रीके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और उसका शरीर पुलकित हो गया। वह यमसे पुनः कहने लगी॥ १॥

सावित्री बोली—हे धर्म! शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाका नामकीर्तन सबका उद्धार करनेवाला और श्रोता तथा वक्ता—दोनोंके जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापेका नाश करनेवाला है॥ २॥

दानवानां च सिद्धानां तपसां च परं पदम्।
योगानां चैव वेदानां कीर्तनं सेवनं विभो॥ ३

मुक्तित्वममरत्वं च सर्वसिद्धित्वमेव च।
श्रीशक्तिसेवकस्यैव कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ४

भजामि केन विधिना वद वेदविदांवर।
शुभकर्मविपाकं च श्रुतं नृणां मनोहरम्॥ ५

कर्माशुभविपाकं च तन्मे व्याख्यातुमर्हसि।
इत्युक्त्वा च सती ब्रह्मन् भक्तिनम्रात्मकन्धरा॥ ६

तुष्टाव धर्मराजं च वेदोक्तेन स्तवेन च।

सावित्र्युवाच

तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा॥ ७

धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्।
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः॥ ८

अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम्।
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्॥ ९

कामानुरूपं कालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्।
बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे॥ १०

नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम्।
विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च सन्ततम्॥ ११

अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्।
तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी सञ्जितेन्द्रियः॥ १२

जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम्।
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्॥ १३

पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्।
यज्जन्म ब्रह्मणोऽशेन ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥ १४
यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम्।

हे विभो! भगवतीका यह कीर्तन दानवों, सिद्धों तथा तपस्वियोंका परम पद है और समस्त योगों तथा वेदोंका सेवनरूप ही है॥ ३॥

मोक्षपद, अमरता और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ श्रीशक्तिके उपासककी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं किस विधिसे उन भगवतीकी उपासना करूँ, मुझे यह बताइये। मैंने आपसे मनुष्योंके शुभ कर्मका मनोहर फल सुन लिया, अब आप मुझे उनके अशुभ कर्मोंका फल बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५½॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर वह सावित्री भक्तिभावसे अपना कन्धा झुकाकर वेदोक्त स्तोत्रके द्वारा उन धर्मराजकी स्तुति करने लगी॥ ६½॥

सावित्री बोली— प्राचीन कालमें सूर्यने पुष्करक्षेत्रमें तपस्याके द्वारा धर्मकी उपासना की थी। उस समय जिन धर्मको सूर्यने पुत्ररूपमें प्राप्त किया, उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ७½॥ जो सभी प्राणियोंमें समभाव रखते हैं और जो सबके साक्षी हैं, अतः जिनका नाम शमन है—उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ८½॥ जो कालके अनुसार इच्छापूर्वक विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान् कृतान्तको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ९½॥ जो सभी प्राणियोंको नियन्त्रणमें रखते हैं तथा पापियोंकी शुद्धिहेतु उन्हें दण्डित करनेके लिये हाथमें दण्ड धारण करते हैं, उन भगवान् दण्डधरको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १०½॥ जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंके समयका निरन्तर परिगणन करते हैं तथा जो परम दुर्धर्ष हैं, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ११½॥ जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी, जितेन्द्रिय तथा जीवोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १२½॥ जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओंके मित्र तथा पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं; उन भगवान् पुण्यमित्रको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १३½॥ ब्रह्माके अंशसे जिनका जन्म हुआ है तथा जो सदा परब्रह्मका ध्यान करते रहते हैं—ब्रह्मतेजसे दीप्तिमान् उन भगवान् ईशको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १४½॥

इत्युक्त्वा सा च सावित्री प्रणनाम यमं मुने॥ १५

यमस्तां शक्तिभजनं कर्मपाकमुवाच ह।
इदं यमाष्टकं नित्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्॥ १६

यमात्तस्य भयं नास्ति सर्वपापात्प्रमुच्यते।
महापापी यदि पठेन्नित्यं भक्तिसमन्वितः।
यमः करोति संशुद्धं कायव्यूहेन निश्चितम्॥ १७

हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके उस सावित्रीने यमराजको प्रणाम किया। तदनन्तर धर्मराजने उस सावित्रीको भगवतीके मन्त्र तथा प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बतलाया॥ १५½॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस यमाष्टकका नित्य पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि महान् पापी मनुष्य भी भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करे, तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चितरूपसे उसे शुद्ध कर देते हैं॥ १६-१७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
यमाष्टकवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

* * *

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजका सावित्रीको अशुभ कर्मोंके फल बताना

श्रीनारायण उवाच

मायाबीजं महामन्त्रं प्रदत्त्वा विधिपूर्वकम्।
कर्माशुभविपाकं च तामुवाच रवेः सुतः॥ १

धर्मराज उवाच

शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति मानवः।
कर्माशुभविपाकं च कथयामि निशामय॥ २

नानापुराणभेदेन नामभेदेन भामिनि।
नानाप्रकारं स्वर्गं च याति जीवः स्वकर्मभिः॥ ३

शुभकर्मविपाकान्न नरकं याति कर्मभिः।
कुकर्मणा च नरकं याति नानाविधं नरः॥ ४

नरकाणां च कुण्डानि सन्ति नानाविधानि च।
नानाशास्त्रप्रमाणेन कर्मभेदेन यानि च॥ ५

विस्तृतानि च गर्तानि क्लेशदानि च दुःखिनाम्।
भयङ्कराणि घोराणि हे वत्से कुत्सितानि च॥ ६

षडशीति च कुण्डानि एवमन्यानि सन्ति च।
निबोध तेषां नामानि प्रसिद्धानि श्रुतौ सति॥ ७

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यपुत्र यमराज सावित्रीको विधिपूर्वक भगवतीके महामन्त्र मायाबीजकी दीक्षा प्रदानकर उसे प्राणियोंके अशुभ कर्मका फल बताने लगे॥ १॥

धर्मराज बोले—शुभ कर्मके विपाकके कारण मनुष्य नरकमें नहीं जाता है। अब मैं अशुभ कर्मोंका फल कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो—॥ २॥

हे भामिनि! अनेक प्रकारके पुराणोंके अनुसार नामभेदसे अनेकविध स्वर्ग हैं। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जीव वहाँ जाता है॥ ३॥

मनुष्य अपने शुभ कर्मोंके फलसे नरकमें नहीं जाता है। वह अपने बुरे कर्मके कारण अनेक प्रकारके नरकमें पड़ता है॥ ४॥

नरकोंके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं। हे वत्से! विविध शास्त्रोंके प्रमाणोंके अनुसार तथा जीवोंके कर्मभेदसे प्राप्त होनेवाले अत्यन्त विस्तृत, गहरे, पापियोंके लिये क्लेशदायक, भयंकर, घोर तथा कुत्सित कुल छियासी कुण्ड हैं; इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कुण्ड भी हैं। हे साध्वि! उन कुण्डोंके वेदप्रसिद्ध नामोंको बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ५—७॥

वह्निकुण्डं तप्तकुण्डं क्षारकुण्डं भयानकम्।
विट्कुण्डं मूत्रकुण्डं च श्लेष्मकुण्डं च दुःसहम्॥ ८
गरकुण्डं दूषिकुण्डं वसाकुण्डं तथैव च।
शुक्रकुण्डमसृक्कुण्डमश्रुकुण्डं च कुत्सितम्॥ ९
कुण्डं गात्रमलानां च कर्णविट्कुण्डमेव च।
मज्जाकुण्डं मांसकुण्डं नक्रकुण्डं च दुस्तरम्॥ १०
लोमकुण्डं केशकुण्डमस्थिकुण्डं च दुस्तरम्।
ताम्रकुण्डं लोहकुण्डं प्रतप्तं क्लेशदं महत्॥ ११
चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं च परिकीर्तितम्।
तीक्ष्णकण्टककुण्डं च विषोदं विषकुण्डकम्॥ १२
प्रतप्तकुण्डं तैलस्य कुन्तकुण्डं च दुर्वहम्।
कृमिकुण्डं पूयकुण्डं सर्पकुण्डं दुरन्तकम्॥ १३
मशकुण्डं दंशकुण्डं भीमं गरलकुण्डकम्।
कुण्डं च वज्रदंष्ट्राणां वृश्चिकानां च सुव्रते॥ १४
शरकुण्डं शूलकुण्डं खड्गकुण्डं च भीषणम्।
गोलकुण्डं नक्रकुण्डं काककुण्डं शुचास्पदम्॥ १५
मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं वज्रकुण्डं च दुःसहम्।
तप्तपाषाणकुण्डं च तीक्ष्णपाषाणकुण्डकम्॥ १६
लालाकुण्डं मसीकुण्डं चूर्णकुण्डं तथैव च।
चक्रकुण्डं वक्रकुण्डं कूर्मकुण्डं महोल्बणम्॥ १७
ज्वालाकुण्डं भस्मकुण्डं दग्धकुण्डं शुचिस्मिते।
तप्तसूचीमसिपत्रं क्षुरधारं सूचीमुखम्॥ १८
गोकामुखं नक्रमुखं गजदंशं च गोमुखम्।
कुम्भीपाकं कालसूत्रं मत्स्योदं कृमितन्तुकम्॥ १९
पांसुभोज्यं पाशवेष्टं शूलप्रोतं प्रकम्पनम्।
उल्कामुखमन्धकूपं वेधनं ताडनं तथा॥ २०
जालरन्ध्रं देहचूर्णं दलनं शोषणं कषम्।
शूर्पं ज्वालामुखं चैव धूमान्धं नागवेष्टनम्॥ २१
कुण्डान्येतानि सावित्रि पापिनां क्लेशदानि च।
नियुतैः किङ्करगणै रक्षितानि च सन्ततम्॥ २२
दण्डहस्तैः पाशहस्तैर्मदमत्तैर्भयङ्करैः।
शक्तिहस्तैर्गदाहस्तैरसिहस्तैः सुदारुणैः॥ २३

वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक्कुण्ड, कुत्सित अश्रुकुण्ड, गात्रमलकुण्ड, कर्णविट्कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, दुस्तर नक्रकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, दुस्तर अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड, प्रतप्त एवं महान् कष्टदायक लोहकुण्ड, चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्ण कण्टककुण्ड, विषपूर्ण विषकुण्ड—ये कुण्ड बताये गये हैं॥ ८—१२॥

हे सुव्रते! इसी प्रकार प्रतप्त तैलकुण्ड, दुर्वह कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, अत्यन्त कष्टप्रद सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दंशकुण्ड, भयानक गरलकुण्ड और वज्रके समान दाँतोंवाले बिच्छुओंके भी कुण्ड हैं। हे शुचिस्मिते! शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, कष्टदायक काककुण्ड, मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, दुःसह वज्रकुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, महाभयंकर कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, नक्रमुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुम्भीपाककुण्ड, कालसूत्रकुण्ड, मत्स्योदकुण्ड, कृमितन्तु-कुण्ड, पांसुभोज्यकुण्ड, पाशवेष्टकुण्ड, शूलप्रोतकुण्ड, प्रकम्पनकुण्ड, उल्कामुखकुण्ड, अन्धकूपकुण्ड, वेधनकुण्ड, ताडनकुण्ड, जालरन्ध्रकुण्ड, देहचूर्णकुण्ड, दलनकुण्ड, शोषणकुण्ड, कषकुण्ड, शूर्पकुण्ड, ज्वालामुखकुण्ड, धूमान्धकुण्ड और नागवेष्टनकुण्ड—ये कुण्ड कहे गये हैं॥ १३—२१॥

हे सावित्रि! ये सभी कुण्ड पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं। दस लाख अनुचर सदा इन कुण्डोंकी रखवाली करते रहते हैं। वे सभी निर्दयी, अभिमानमें चूर तथा भयंकर सेवकगण अपने हाथोंमें दण्ड, पाश, शक्ति, गदा और तलवार लिये रहते हैं। वे तमोगुणसे युक्त तथा दयाशून्य रहते हैं और कोई भी उनका प्रतिरोध नहीं कर सकता। उन तेजस्वी तथा निर्भीक अनुचरोंकी आँखें ताँबेके सदृश तथा कुछ-कुछ पीले

तमोयुक्तैर्दयाहीनैर्निवार्यैश्च न सर्वतः।
तेजस्विभिश्च निःशङ्कैराताम्रपिङ्गलोचनैः॥ २४

योगयुक्तैः सिद्धियुक्तैर्नानारूपधरैर्भटैः।
आसन्नमृत्युभिर्दृष्टैः पापिभिः सर्वजीविभिः॥ २५

स्वकर्मनिरतैः सर्वैः शाक्तैः सौरैश्च गाणपैः।
अदृश्यैः पुण्यकृद्भिश्च सिद्धैर्योगिभिरेव च॥ २६

स्वधर्मनिरतैर्वापि विततैर्वा स्वतन्त्रकैः।
बलवद्भिश्च निःशङ्कैः स्वप्नदृष्टैश्च वैष्णवैः॥ २७

एतत्ते कथितं साध्वि कुण्डसंख्यानिरूपणम्।
येषां निवासो यत्कुण्डे निबोध कथयामि ते॥ २८

वर्णकी हैं। योगयुक्त तथा सिद्धियोंसे सम्पन्न वे सभी सेवक अनेक प्रकारके रूप धारण कर लिया करते हैं। वे सेवक समस्त पापी प्राणियोंको उनकी मृत्यु निकट आनेपर दिखायी पड़ते हैं। शक्ति, सूर्य तथा गणपतिके उपासकों एवं अपने कर्मोंमें लगे रहनेवाले पुण्यशाली सिद्धों तथा योगियोंको वे दिखायी नहीं पड़ते। इसी प्रकार जो सदा अपने धर्ममें लगे रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है, जो पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा जिन्हें स्वप्नमें या कहीं भी अपने इष्टदेवका दर्शन हो चुका है—ऐसे वैष्णवजनोंको वे बलवान् तथा निःशंक यमदूत कभी दिखायी नहीं पड़ते॥ २२—२७॥

हे साध्वि! यह मैंने तुमसे कुण्डोंकी संख्याका निरूपण कर दिया। जिन-जिन पापियोंका जिन-जिन कुण्डोंमें वास होता है, अब मैं तुम्हें यह बता रहा हूँ, ध्यानसे सुनो॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
सावित्र्युपाख्याने कुण्डसंख्यानिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

अथ त्रयस्त्रिशोऽध्यायः

विभिन्न नरककुण्डोंमें जानेवाले पापियों तथा उनके पापोंका वर्णन

धर्मराज उवाच

हरिसेवारतः शुद्धो योगसिद्धो व्रती सति।
तपस्वी ब्रह्मचारी च न याति नरकं ध्रुवम्॥ १

कटुवाचा बान्धवांश्च बललेपेन यो नरः।
दग्धान्करोति बलवान् वह्निकुण्डं प्रयाति सः॥ २

स्वगात्रलोममानाब्दं तत्र स्थित्वा हुताशने।
पशुयोनिमवाप्नोति रौद्रदग्धां त्रिजन्मनि॥ ३

ब्राह्मणं तृषितं तप्तं क्षुधितं गृहमागतम्।
न भोजयति यो मूढस्तप्तकुण्डं प्रयाति सः॥ ४

तत्र तल्लोममानं च वर्षं स्थित्वा च दुःखदे।
तप्तस्थले वह्नितल्पे पक्षी च सप्तजन्मसु॥ ५

धर्मराज बोले—हे साध्वि! भगवान् श्रीहरिकी सेवामें संलग्न रहनेवाला, विशुद्धात्मा, योगसिद्ध, व्रती, तपस्वी तथा ब्रह्मचारी पुरुष निश्चित ही नरकमें नहीं जाता॥ १॥

जो बलशाली मनुष्य बलके अभिमानमें आकर अपने कटुवचनसे बान्धवोंको दग्ध करता है, वह वह्निकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस वह्निकुण्डमें वास करके वह तीन जन्मोंतक रौद्रदग्ध पशुयोनि प्राप्त करता है॥ २-३॥

जो मूर्ख घरपर आये हुए भूखे-प्यासे दुःखी ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता है, वह तप्तकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस ब्राह्मणके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस दुःखप्रद नरकमें वास करके वह सात जन्मोंतक पक्षीकी योनिमें पैदा होकर तपते हुए स्थानपर वह्निशय्यापर यातना भोगता है॥ ४-५॥

रविवारे च संक्रान्त्याममायां श्राद्धवासरे।
वस्त्राणां क्षारसंयोगं करोति केवलं नरः॥ ६

स याति क्षारकुण्डं च सूत्रमानाब्दमेव च।
स व्रजेद्रजकीं योनिं सप्तजन्मसु भारते॥ ७

मूलप्रकृतिनिन्दां यः कुरुते मानवाधमः।
वेदनिन्दां शास्त्रनिन्दां पुराणानां तथैव च॥ ८

ब्रह्मविष्णुशिवादीनां तथा निन्दापरो जनः।
गौरीवाण्यादिदेवीनां तथा निन्दापरो जनः॥ ९

ते सर्वे निरये यान्ति तस्मिन्कुण्डे भयानके।
नातः परतरं कुण्डं दुःखदं तु भविष्यति॥ १०

तत्र स्थित्वानेककल्पं सर्पयोनिं व्रजेत्पुनः।
देवीनिन्दापराधस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ११

स्वदत्तां परदत्तां वा वृत्तिं च सुरविप्रयोः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कुण्डं च प्रयाति सः॥ १२

तावन्त्येव च वर्षाणि विड्भोजी तत्र तिष्ठति।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च पुनर्भुवि॥ १३

परकीयतडागे च तडागं यः करोति च।
उत्सृजेद्दैवदोषेण मूत्रकुण्डं प्रयाति सः॥ १४

तद्रेणुमानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
पुनः पूर्णशताब्दं च स वृषो भारते भवेत्॥ १५

एकाकी मिष्टमश्नाति श्लेष्मकुण्डं प्रयाति च।
पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ १६

ततः पूर्णशताब्दं च स प्रेतो भारते भवेत्।
श्लेष्ममूत्रपरं चैव पूयं भुङ्क्ते ततः शुचिः॥ १७

जो मनुष्य रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्धके अवसरपर क्षार पदार्थोंसे वस्त्र धोता है, वह क्षारकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस वस्त्रमें विद्यमान सूतोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक रजकयोनिमें उसे जन्म लेना पड़ता है॥ ६-७॥

जो अधम मनुष्य मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी निन्दा करता है, जो वेद-शास्त्र तथा पुराणोंकी निन्दा करता है, जो ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवताओंकी निन्दामें संलग्न रहता है और जो मनुष्य गौरी-सरस्वती आदि देवियोंकी निन्दामें तत्पर रहता है—वे सब उस भयानक नरककुण्डमें जाते हैं, जिससे बढ़कर दुःखदायी दूसरा कोई कुण्ड नहीं होता। उस कुण्डमें अनेक कल्पोंतक वास करके वह मनुष्य सर्पयोनिको प्राप्त होता है। भगवतीकी निन्दाके अपराधका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है॥ ८—११॥

जो मनुष्य अपने या दूसरेके द्वारा दी गयी देवता अथवा ब्राह्मणकी वृत्तिको छीनता है, वह साठ हजार वर्षोंके लिये विट्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उतने ही वर्षोंतक विष्ठाभोजी बनकर वहाँ रहता है। इसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कृमि होता है॥ १२-१३॥

जो व्यक्ति दूसरोंके बनवाये तड़ागमें अपने नामसे निर्माण करता है और फिर जनताके लिये उसका उत्सर्ग (लोकार्पण) करता है, वह उस दोषके कारण मूत्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह उस तड़ागके रज-कणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उसी मूत्र आदिको ग्रहण करते हुए रहता है और पुनः भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक वृषकी योनिमें रहता है॥ १४-१५॥

जो अकेले ही मिष्टान्न आदिका भक्षण करता है, वह श्लेष्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी श्लेष्माको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक वहाँ रहता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक प्रेतयोनिमें पड़ा रहता है; यहाँ श्लेष्मा, मूत्र तथा पीव आदिका उसे भक्षण करना पड़ता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १६-१७॥

पितरं मातरं चैव गुरुं भार्यां सुतं सुताम्।
यो न पुष्णात्यनाथं च गरकुण्डं प्रयाति सः॥ १८

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥ १९

दृष्ट्वातिथिं वक्रचक्षुः करोति यो हि मानवः।
पितृदेवास्तस्य जलं न गृह्णन्ति च पापिनः॥ २०

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
इहैव लभते चान्ते दूषिकाकुण्डमाव्रजेत्॥ २१

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो व्रजेद्भूतयोनिं शतवर्षं ततः शुचिः॥ २२

दत्त्वा द्रव्यं च विप्राय चान्यस्मै दीयते यदि।
स तिष्ठति वसाकुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ २३

कृकलासो भवेत्सोऽपि भारते सप्तजन्मसु।
ततो भवेन्महारौद्रो दरिद्रोऽल्पायुरेव च॥ २४

पुमांसं कामिनी वापि कामिनीं वा पुमानथ।
यः शुक्रं पाययत्येव शुक्रकुण्डं प्रयाति सः॥ २५

पूर्णमब्दशतं चैव तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
कृमियोनिं शताब्दं च व्रजेद्भूत्वा ततः शुचिः॥ २६

सन्ताड्य च गुरुं विप्रं रक्तपातं च कारयेत्।
स च तिष्ठत्यसृक्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ २७

ततो लभेद्व्याघ्रजन्म सप्तजन्मसु भारते।
ततः शुद्धिमवाप्नोति मानवश्च क्रमेण ह॥ २८

जो मनुष्य माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, पुत्री और अनाथका भरण-पोषण नहीं करता; वह गरकुण्ड (विषकुण्ड) नामक नरकमें जाता है और वहाँपर उसी विषको खाते हुए वह पूरे सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तदनन्तर वह सौ वर्षोंतकके लिये भूतयोनिमें जाता है, इसके बाद वह शुद्ध होता है॥ १८-१९॥

जो मनुष्य अतिथिको देखकर [उसके प्रति उपेक्षाभावसे] अपनी दृष्टिको वक्र कर लेता है, उस पापीके जलको देवता तथा पितर ग्रहण नहीं करते और ब्रह्महत्या आदि जो कुछ भी पाप हैं, उन सबका फल उसे इसी लोकमें भोगना पड़ता है। अन्तमें वह दूषिकाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँपर दूषित पदार्थोंको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक भूतयोनिमें रहनेके अनन्तर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २०—२२॥

यदि कोई मनुष्य ब्राह्मणको द्रव्यका दान करनेके बाद वह द्रव्य किसी अन्यको दे देता है, तो वह वसाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी वसाको खाते हुए उसे सौ वर्षोंतक वहीं रहना पड़ता है। तदनन्तर उसे भारतवर्षमें सात जन्मोंतक गिरगिट होना पड़ता है। उसके बाद वह महान् क्रोधी, दरिद्र तथा अल्पायु प्राणीके रूपमें जन्म लेता है॥ २३-२४॥

यदि कोई स्त्री परपुरुषसे सम्बन्ध रखती है अथवा कोई पुरुष परनारीमें वीर्याधान करता है, वह शुक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर उसी वीर्यको खाते हुए उसे पूरे सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। इसके बाद वह सौ वर्षोंतक कीटयोनिमें रहता है, तदनन्तर शुद्ध होता है॥ २५-२६॥

जो व्यक्ति गुरु अथवा ब्राह्मणको मारकर उनके शरीरसे रक्त बहाता है, वह असृक्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी रक्तका पान करते हुए उसे वहाँ सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वह भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याघ्रका जन्म प्राप्त करता है। इस प्रकार वह क्रमसे शुद्ध होता है और वह फिरसे मानवयोनिमें जन्म लेता है॥ २७-२८॥

योऽश्रु तत्याज गायन्तं भक्तं दृष्ट्वा सगद्‌गदम्।
श्रीकृष्णगुणसङ्गीते हसत्येव हि यो नरः॥ २९

स वसेदश्रुकुण्डे च तद्भोजी शतवर्षकम्।
ततो भवेच्च चाण्डालस्त्रिजन्मनि ततः शुचिः॥ ३०

करोति शठतां तद्वन्नित्यं सुहृदि यो नरः।
कुण्डं गात्रमलानां च स प्रयाति शताब्दकम्॥ ३१

ततः स गार्दभीं योनिमवाप्नोति त्रिजन्मनि।
त्रिजन्मनि च शार्गालीं ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्॥ ३२

बधिरं यो हसत्येव निन्दत्येवाभिमानतः।
स वसेत्कर्णविट्कुण्डे तद्भोजी शतवत्सरम्॥ ३३

ततो भवेत्स बधिरो दरिद्रः सप्तजन्मसु।
सप्तजन्मन्यङ्गहीनस्ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्॥ ३४

लोभात्स्वभरणार्थाय जीविनं हन्ति यो नरः।
मज्जाकुण्डे वसेत्सोऽपि तद्भोजी लक्षवत्सरम्॥ ३५

ततो भवेच्च शशको मीनश्च सप्तजन्मसु।
त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु॥ ३६

एणादयश्च कर्मभ्यस्ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्।
स्वकन्यापालनं कृत्वा विक्रीणाति च यो नरः॥ ३७

अर्थलोभान्महामूढो मांसकुण्डं प्रयाति सः।
कन्यालोमप्रमाणाब्दं तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ ३८

भगवान् श्रीकृष्णका प्रेमपूर्वक गुणगान करनेवाले भक्तको देखकर जो मनुष्य खेदपूर्वक आँसू बहाता है तथा उनके गुणसम्बन्धी संगीतके अवसरपर जो उपहास करता है, वह सौ वर्षोंतक अश्रुकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ उसी अश्रुको भोजनके रूपमें उसे ग्रहण करना पड़ता है, तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक चाण्डालकी योनिमें पैदा होता है, तब वह शुद्ध होता है॥ २९-३०॥

उसी प्रकार जो मनुष्य सहृदय व्यक्तिके साथ सदा शठताका व्यवहार करता है, वह गात्रमलकुण्ड नामक नरकमें जाता है और सौ वर्षोंतक वहाँ वास करता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक गर्दभ-योनिमें तथा तीन जन्मोंतक शृगाल-योनिमें जन्म लेता है, इसके बाद वह निश्चित ही शुद्ध हो जाता है॥ ३१-३२॥

जो मनुष्य किसी बहरेको देखकर हँसता है और अभिमानपूर्वक उसकी निन्दा करता है, वह कर्णविट्कुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और वहाँ रहते हुए कानकी मैलका भोजन करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक दरिद्र तथा बहरा होता है। पुनः सात जन्मोंतक अंगहीन होकर वह जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ३३-३४॥

जो मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अपने भरण-पोषणके लिये जीवोंकी हत्या करता है, वह मज्जाकुण्ड नामक नरकमें लाख वर्षोंतक वास करता है और वहाँपर भोजनमें उसे वही मज्जा ही मिलती है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक खरगोश और मछली, तीन जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक कुक्कुट होकर जन्म लेता है, फिर कर्मोंके प्रभावसे वह मृग आदि योनियाँ प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ३५-३६½॥

जो मनुष्य अपनी कन्याको पाल-पोसकर धनके लोभसे उसे बेच देता है, वह महामूर्ख मांसकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस कन्याके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वह उस नरकमें रहता है और वहाँपर उसे भोजनके रूपमें वहाँ

तस्य दण्डप्रहारं च कुर्वन्ति यमकिङ्कराः।
मांसभारं मूर्ध्नि कृत्वा रक्तभारं लिहेत्क्षुधा॥ ३९

ततो हि भारते पापी कन्याविट्कृमिगो भवेत्।
षष्टिवर्षसहस्राणि व्याधश्च सप्तजन्मसु॥ ४०

त्रिजन्मनि वराहश्च कुक्कुटः सप्तजन्मसु।
मण्डूको हि जलौकाश्च सप्तजन्मसु भारते॥ ४१

सप्तजन्मसु काकश्च ततः शुद्धिं लभेद् ध्रुवम्।
व्रतानामुपवासानां श्राद्धादीनां च सङ्गमे॥ ४२

करोति यः क्षौरकर्म सोऽशुचिः सर्वकर्मसु।
स च तिष्ठति कुण्डे च नखादीनाञ्च सुन्दरि॥ ४३

तद्दैवदिनमानाब्दं तद्भोजी दण्डताडितः।
सकेशं पार्थिवं लिङ्गं यो वार्चयति भारते॥ ४४

स तिष्ठति केशकुण्डे मृद्रेणुमानवर्षकम्।
तदन्ते यावनीं योनिं प्रयाति हरकोपतः॥ ४५

शताब्दाच्छुद्धिमाप्नोति राक्षसः स भवेद् ध्रुवम्।
पितॄणां यो विष्णुपदे पिण्डं नैव ददाति च॥ ४६

स च तिष्ठत्यस्थिकुण्डे स्वलोमाब्दं महोल्बणे।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य कुखञ्जः सप्तजन्मसु॥ ४७

भवेन्महादरिद्रश्च ततः शुद्धो हि देहतः।
यः सेवते महामूढो गुर्विणीं च स्वकामिनीम्॥ ४८

प्रतप्ते ताम्रकुण्डे च शतवर्षं स तिष्ठति।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते ऋतुस्नातान्नमेव च॥ ४९

मांस खाना पड़ता है। यमदूत उसपर दण्ड-प्रहार करते हैं। उसे मांस तथा रक्तका बोझ मस्तकपर उठाकर ढोना पड़ता है और रक्त आदिको चाटकर वह अपनी क्षुधा शान्त करता है। तत्पश्चात् वह पापी साठ हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें उस कन्याकी विष्ठाका कीड़ा बनकर रहता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याध, तीन जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कुक्कुट, सात जन्मोंतक मेढक और जोंक तथा पुनः सात जन्मोंतक कौएकी योनि प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है॥ ३७—४१½ ॥

जो मनुष्य व्रतों, उपवासों और श्राद्धों आदिके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अपवित्र हो जाता है। हे सुन्दरि! वह नख आदि कुण्डोंमें उन दिनोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वास करता है, उन्हीं दुष्पदार्थोंका भक्षण करता है और डण्डोंसे पीटा जाता है॥ ४२-४३½ ॥

जो भारतवर्षमें केशयुक्त मिट्टीसे बने पार्थिव लिंगकी पूजा करता है, वह उस मृदामें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक केशकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर भगवान् शिवके कोपके कारण वह यवनयोनिमें जन्म लेता है और फिर वह राक्षसयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तथा सौ वर्षके पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४४-४५½ ॥

जो मनुष्य विष्णुपदतीर्थ (गयातीर्थ)-में पितरोंको पिण्ड नहीं देता, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अस्थिकुण्ड नामक अत्यन्त भयानक कुण्डमें वास करता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनि प्राप्तकर सात जन्मोंतक लँगड़ा तथा महान् दरिद्र होता है। तत्पश्चात् उसकी देहशुद्धि हो जाती है॥ ४६-४७½ ॥

जो महामूर्ख मनुष्य अपनी गर्भवती स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह सौ वर्षोंतक अत्यन्त तपते हुए ताम्रकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है॥ ४८½ ॥

जो व्यक्ति पति-पुत्रहीन स्त्री तथा ऋतुस्नाता स्त्रीका अन्न खाता है, वह जलते हुए लोहकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक रहता है। इसके बाद वह

लोहकुण्डे शताब्दं च स च तिष्ठति तप्तके।
स व्रजेद्रजकीं योनिं काकानां सप्तजन्मसु॥ ५०

महाव्रणी दरिद्रश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।
यो हि चर्माक्तहस्तेन देवद्रव्यमुपस्पृशेत्॥ ५१

शतवर्षप्रमाणं च चर्मकुण्डे स तिष्ठति।
यः शूद्रेणाभ्यनुज्ञातो भुङ्क्ते शूद्रान्नमेव च॥ ५२

स च तप्तसुराकुण्डे शताब्दं तिष्ठति द्विजः।
ततो भवेच्छूद्रयाजी ब्राह्मणः सप्तजन्मसु॥ ५३

शूद्रश्राद्धान्नभोजी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्।
वाग्दुष्टः कटुको वाचा ताडयेत्स्वामिनं सदा॥ ५४

तीक्ष्णकण्टककुण्डे स तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ताडितो यमदूतेन दण्डेन च चतुर्गुणम्॥ ५५

ततः उच्चैःश्रवाः सप्तजन्मस्वेव ततः शुचिः।
विषेण जीवनं हन्ति निर्दयो यो हि मानवः॥ ५६

विषकुण्डे च तद्भोजी सहस्राब्दं च तिष्ठति।
ततो भवेन्नृघाती च व्रणी च शतजन्मसु॥ ५७

सप्तजन्मसु कुष्ठी च ततः शुद्धो भवेद् ध्रुवम्।
दण्डेन ताडयेद् गां हि वृषञ्च वृषवाहकः॥ ५८

भृत्यद्वारा स्वतन्त्रो वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
प्रतप्ते तैलकुण्डेऽग्नौ तिष्ठति स्म चतुर्युगम्॥ ५९

गवां लोमप्रमाणाब्दं वृषो भवति तत्परम्।
कुन्तेन हन्ति यो जीवं वह्निलोहेन हेलया॥ ६०

सात जन्मोंतक रजक तथा कौएकी योनि पाता है। उस समय वह दरिद्र रहता है और विशाल घावोंसे युक्त रहता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ४९-५०½ ॥

जो व्यक्ति चर्मसे स्पर्शित हाथके द्वारा देवद्रव्यका स्पर्श करता है, वह सौ वर्षोंतक चर्मकुण्ड नामक नरकमें वास करता है॥ ५१½ ॥

जो ब्राह्मण किसी शूद्रसे स्वीकृति प्राप्तकर उसका अन्न खाता है, वह तप्तसुराकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक शूद्रयाजी (शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला) ब्राह्मण होता है और शूद्रोंका श्राद्धान्न ग्रहण करता है, तदनन्तर वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५२-५३½ ॥

जो कटुभाषी मनुष्य कठोर वचनके द्वारा अपने स्वामीको सदा पीडित करता रहता है, वह तीक्ष्णकण्टककुण्ड नामक नरकमें वास करता है और उसे वहाँपर कण्टक ही खानेको मिलते हैं। यमदूतके द्वारा डंडेसे वह चार गुना ताडित किया जाता है। उसके बाद वह सात जन्मतक अश्वकी योनि प्राप्त करता है, फिर वह शुद्ध हो जाता है॥ ५४-५५½ ॥

जो दयाहीन मनुष्य विषके द्वारा किसी प्राणीकी हत्या करता है, वह हजार वर्षोंतक विषकुण्ड नामक नरकमें रहता है और वहाँपर उसे उसी विषका भोजन करना पड़ता है। उसके बाद वह नरघाती सात जन्मोंतक बड़े-बड़े घावोंसे युक्त तथा सात जन्मोंतक कोढ़से ग्रस्त रहता है, तत्पश्चात् वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५६-५७½ ॥

पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो वृषवाहक गायको और बैलको डण्डेसे स्वयं मारता है अथवा सेवकके द्वारा मरवाता है, उसे चार युगोंतक तपते हुए तैलकुण्ड नामक नरकमें वास करना पड़ता है और तत्पश्चात् उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे बैल होना पड़ता है॥ ५८-५९½ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य भालेसे अथवा अग्निमें तपाये गये लोहेसे किसी प्राणीकी उपेक्षापूर्वक हत्या कर देता है, वह दस हजार वर्षोंतक कुन्तकुण्ड

कुन्तकुण्डे वसेत्सोऽपि वर्षाणामयुतं सति।
ततः सुयोनिं सम्प्राप्य चोदरे व्याधिसंयुतः॥ ६१

जन्मनैकेन क्लेशेन ततः शुद्धो भवेन्नरः।
यो भुङ्क्ते च वृथा मांसं मांसलोभी द्विजाधमः॥ ६२

हरेरनैवेद्यभोजी कृमिकुण्डं प्रयाति सः।
स्वलोममानवर्षं च तद्भोजी तत्र तिष्ठति॥ ६३

ततो भवेन्म्लेच्छजातिस्त्रिजन्मनि ततो द्विजः।
ब्राह्मणः शूद्रयाजी च शूद्रश्राद्धान्नभोजकः॥ ६४

शूद्राणां शवदाही च पूयकुण्डे वसेद् ध्रुवम्।
यावल्लोमप्रमाणाब्दं यमदण्डेन सुव्रते॥ ६५

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततो भारतमागत्य स शूद्रः सप्तजन्मसु॥ ६६

महारोगी दरिद्रश्च बधिरो मूक एव च।
कृष्णं पद्मं च के यस्य तं सर्पं हन्ति यो नरः॥ ६७

स्वलोममानवर्षं च सर्पकुण्डं प्रयाति सः।
सर्पेण भक्षितः सोऽथ यमदूतेन ताडितः॥ ६८

वसेच्च सर्पविड्भोजी ततः सर्पो भवेद् ध्रुवम्।
ततो भवेन्मानवश्च स्वल्पायुर्दद्रुसंयुतः॥ ६९

महाक्लेशेन तन्मृत्युः सर्पेण भक्षिताद् ध्रुवम्।
विधिप्रदत्तजीव्यांश्च क्षुद्रजन्तूंश्च हन्ति यः॥ ७०

नामक नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम मानवयोनिमें जन्म प्राप्त करके वह उदररोगसे पीडित होता है। इस प्रकार एक ही जन्ममें कष्ट भोगनेके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६०-६१½ ॥

जो अधम द्विज भगवत्प्रसादका त्याग करके मांसस्वादके लोभसे व्यर्थ ही मांस-भक्षण करता है, वह कृमिकुण्डमें जाता है। वहाँ अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके समान वर्षोंतक रोमका ही भक्षण करता हुआ वह पड़ा रहता है। फिर तीन जन्मोंतक म्लेच्छ जातिमें जन्म लेकर पुनः द्विज होता है॥ ६२-६३½ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका यज्ञ कराता है, शूद्रोंका श्राद्धान्न खाता है तथा शूद्रोंका शव जलाता है, वह अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं; उतने वर्षोंतक पूयकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। हे सुव्रते! वह उस नरकमें यमदूतके द्वारा यमदण्डसे पीटा जाता है तथा पीवका भोजन करते हुए पड़ा रहता है। तत्पश्चात् वह भारतवर्षमें जन्म लेकर सात जन्मोंतक शूद्र रहता है। उस समय वह अत्यन्त रोगी, दरिद्र, बहरा तथा गूँगा रहता है॥ ६४—६६½ ॥

कृष्णवर्णवाले तथा जिसके मस्तकपर कमल-चिह्न विद्यमान हो, उस सर्पको जो मनुष्य मारता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतकके लिये सर्पकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसे वहाँपर सर्प काटते हैं तथा यमदूत उसे पीटते हैं। सर्पकी विष्ठा खाते हुए वह उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उसे निश्चय ही सर्पयोनि प्राप्त होती है। तदनन्तर वह मानवयोनि प्राप्त करता है, उस समय वह दाद आदि रोगोंसे युक्त तथा अल्प आयुवाला होता है। उसके बाद सर्पके काटनेसे अत्यन्त कष्टपूर्वक उसकी मृत्यु होती है, यह निश्चित है॥ ६७—६९½ ॥

ब्रह्माके विधानके अनुसार रक्तपान आदिपर जीवित रहनेवाले [मच्छर आदि] क्षुद्र जन्तुओंको जो व्यक्ति मारता है, वह उन जन्तुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दंशकुण्ड और मशककुण्ड नामक नरकमें

स दंशमशयोः कुण्डे जन्तुमानाब्दमेव च।
दिवानिशं भक्षितस्तैरनाहारश्च शब्दवान्॥ ७१

हस्तपादादिबद्धश्च यमदूतेन ताडितः।
ततो भवेत्क्षुद्रजन्तुर्जातिश्च यावनी भवेत्॥ ७२

ततो भवेन्मानवश्च सोऽङ्गहीनस्ततः शुचिः।
यो मूढो मधुमश्नाति हत्वा च मधुमक्षिकाः॥ ७३

स एव गारले कुण्डे जीवमानाब्दकं वसेत्।
भक्षितो गरलैर्दग्धो यमदूतेन ताडितः॥ ७४

ततो हि मक्षिकाजातिस्ततः शुद्धो भवेन्नरः।
दण्डं करोत्यदण्ड्ये च विप्रे दण्डं करोति च॥ ७५

स कुण्डं वज्रदंष्ट्राणां कीटानां याति सत्वरम्।
स तल्लोमप्रमाणाब्दं तत्र तिष्ठत्यहर्निशम्॥ ७६

शब्दकृद्भक्षितस्तैस्तु यमदूतेन ताडितः।
करोति रोदनं भद्रे हाहाकारं क्षणे क्षणे॥ ७७

पुनः सूकरयोनौ च जायते सप्तजन्मसु।
त्रिजन्मनि काकयोनौ ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ७८

अर्थलोभेन यो मूढः प्रजादण्डं करोति सः।
वृश्चिकानां च कुण्डं च तल्लोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ७९

ततो वृश्चिकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते।
ततो नरश्चाङ्गहीनो व्याधिशुद्धो भवेद् ध्रुवम्॥ ८०

निवास करता है। वे जन्तु उसे दिन-रात काटते रहते हैं, उसे वहाँ खानेको कुछ भी नहीं मिलता और वह जोर-जोरसे रोता-चिल्लाता रहता है। यमदूत उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे पीटते हैं। तत्पश्चात् वह उन्हीं क्षुद्र जन्तुओंकी योनिमें जाता है और पुनः यवनजातिमें जन्म लेता है। तदनन्तर वह अंगहीन मानव होकर जन्म लेता है, तब उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ७०—७२½॥

जो मूर्ख मनुष्य मधुमक्खियोंको मारकर मधुका भक्षण करता है, वह उन मारी गयी मक्खियोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक गरलकुण्डमें वास करता है। वहाँपर उसे मधुमक्खियाँ काटती रहती हैं, वह सदा विषसे जलता रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह मक्खियोंकी योनिमें जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ७३-७४½॥

जो मनुष्य किसी विप्रको अथवा दण्ड न देनेयोग्य किसी व्यक्तिको दण्डित करता है, वह वज्रके समान दाँतोंवाले भयानक जन्तुओंसे भरे वज्रदंष्ट्रकुण्ड नामक नरकमें शीघ्र ही जाता है। उस दण्डित व्यक्तिके शरीरमें जितने रोम होते हैं; उतने वर्षोंतक वह उस नरकमें निवास करता है। उसे नरकके वे कीड़े दिन-रात काटते रहते हैं और वह चीखता-चिल्लाता है। हे भद्रे! यमदूत उसे सदा पीटते रहते हैं, जिससे वह रोता है और प्रतिक्षण हाहाकार करता रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक सूअरकी योनिमें और तीन जन्मोंतक कौवेकी योनिमें उत्पन्न होता है, उसके बाद वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ७५—७८॥

जो मूर्ख धनके लोभसे प्रजाको दण्ड देता है, वह वृश्चिककुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस प्रजाके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक वह भारतवर्षमें बिच्छुओंकी योनिमें जन्म लेता है। इसके पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म प्राप्त करता है तथा अंगहीन और रोगी होकर वह शुद्ध हो जाता है—यह सत्य है॥ ७९-८०॥

ब्राह्मणः शस्त्रधारी यो ह्यन्येषां धावको भवेत्।
सन्ध्याहीनश्च यो विप्रो हरिभक्तिविहीनकः॥ ८१

स तिष्ठति स्वलोमाब्दं कुण्डेषु च शरादिषु।
विद्धः शरादिभिः शश्वत्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ८२

कारागारे सान्धकारे प्रणिहन्ति प्रजाश्च यः।
प्रमत्तः स्वस्य दोषेण गोलकुण्डं प्रयाति सः॥ ८३

स पङ्कतप्ततोयाक्तं सान्धकारं भयङ्करम्।
तीक्ष्णदंष्ट्रैश्च कीटैश्च संयुक्तं गोलकुण्डकम्॥ ८४

कीटैर्विद्धो वसेत्तत्र प्रजालोमाब्दमेव च।
ततो भवेत्प्रजाभृत्यस्ततः शुद्धो भवेत्क्रमात्॥ ८५

सरोवरादुत्थितांश्च नक्रादीन्हन्ति यो नरः।
नक्रकण्टकमानाब्दं नक्रकुण्डं प्रयाति सः॥ ८६

ततो नक्रादिजातीयो भवेन्नक्रादिषु ध्रुवम्।
ततः सद्यो विशुद्धो हि दण्डेनैव पुनः पुनः॥ ८७

वक्षःश्रोणीस्तनास्यञ्च यः पश्यति परस्त्रियाः।
कामेन कामुको यो हि पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ८८

स वसेत्काककुण्डे च काकैः संचूर्णलोचनः।
ततः स्वलोममानाब्दं भवेद्दग्धस्त्रिजन्मनि॥ ८९

स्वर्णस्तेयी च यो मूढो भारते सुरविप्रयोः।
स च मन्थानकुण्डे वै स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९०

जो ब्राह्मण शस्त्र लेकर दूसरे लोगोंके लिये दूतका काम करता है, जो विप्र सन्ध्या-वन्दन नहीं करता तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख है, वह शर आदिके कुण्डोंमें (शरकुण्ड, शूलकुण्ड, खड्गकुण्ड आदिमें) अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। वह वहाँपर निरन्तर शर आदिसे बेधा जाता है, इसके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ८१-८२॥

अभिमानमें चूर रहनेवाला जो व्यक्ति अन्धकारपूर्ण कारागारमें प्रजाओंको मारता-पीटता है, वह अपने इस दोषके प्रभावसे गोलकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वह गोलकुण्ड प्रतप्त कीचड़ तथा जलसे युक्त, अन्धकारपूर्ण, अत्यन्त भयंकर तथा तीखे दाँतोंवाले कीटोंसे परिपूर्ण है। उन कीड़ोंसे सदा काटा जाता हुआ वह व्यक्ति प्रजाओंके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् मनुष्यका जन्म पाकर वह उन प्रजाओंका सेवक बनता है, इस प्रकार क्रमसे वह शुद्ध हो जाता है॥ ८३—८५॥

जो मनुष्य सरोवरसे निकले हुए नक्र आदि जल-जन्तुओंकी हत्या करता है, वह नक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ उस नक्रके शरीरमें विद्यमान काँटोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् वह निश्चितरूपसे नक्र आदि योनियोंमें जन्म लेता है और बार-बार दण्ड पानेपर शीघ्र ही उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ८६-८७॥

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जन्म लेकर कामवासनाके वशीभूत हो परायी स्त्रीका वक्ष, नितम्ब, स्तन तथा मुख देखता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक काककुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँ कौवे उसकी आँखें नोचते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक संतप्त होता रहता है॥ ८८-८९॥

जो मूढ भारतवर्षमें जन्म पाकर देवता तथा ब्राह्मणका स्वर्ण चुराता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मन्थानकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। यमदूत उसकी आँखोंपर पट्टी

ताडितो यमदूतेन मन्थानैश्छन्नलोचनः।
तद्विड्भोजी च तत्रैव ततश्चान्धस्त्रिजन्मनि॥ ९१

सप्तजन्म दरिद्रश्च महाक्रूरश्च पातकी।
भारते स्वर्णकारश्च स च स्वर्णवणिक् ततः॥ ९२

यो भारते ताम्रचौरो लोहचौरश्च सुन्दरि।
स च स्वलोममानाब्दं बीजकुण्डं प्रयाति सः॥ ९३

तत्रैव बीजविड्भोजी बीजैश्च छन्नलोचनः।
ताडितो यमदूतेन ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९४

भारते देवचौरश्च देवद्रव्यापहारकः।
स दुस्तरे वज्रकुण्डे स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९५

देहदग्धोऽपि तद्वज्रैरनाहारश्च शब्दकृत्।
ताडितो यमदूतैश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९६

रौप्यगव्यांशुकानां च यश्चौरः सुरविप्रयोः।
तप्तपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेद् ध्रुवम्॥ ९७

त्रिजन्मनि च कंसोऽपि श्वेतरूपस्त्रिजन्मनि।
जन्मैकं श्वेतचिह्नश्च ततोऽन्ये श्वेतपक्षिणः॥ ९८

ततो रक्तविकारी च शूली वै मानवो भवेत्।
सप्तजन्मसु चाल्पायुस्ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ ९९

रैतं कांस्यमयं पात्रं यो हरेद्देवविप्रयोः।
तीक्ष्णपाषाणकुण्डे च स्वलोमाब्दं वसेन्नरः॥ १००

स भवेदश्वजातिश्च भारते सप्तजन्मसु।
ततोऽधिकाङ्गजातिश्च पादरोगी ततः शुचिः॥ १०१

बाँधकर उसे डण्डोंसे पीटते हैं। उसे वहाँ उनकी विष्ठा खानी पड़ती है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक अन्धा तथा सात जन्मोंतक दरिद्र रहता है। तदनन्तर वह पापी तथा अति क्रूर मनुष्य भारतमें स्वर्णकारका जन्म लेकर स्वर्णका व्यवसाय करता है॥ ९०—९२॥

हे सुन्दरि! जो मनुष्य भारतवर्षमें जन्म पाकर ताँबे तथा लोहेकी चोरी करता है, वह बीजकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। वहाँ कीड़ोंकी विष्ठा खाता हुआ कीड़ोंसे ढकी आँखोंवाला वह प्राणी यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और तब कालक्रमसे वह शुद्ध होता है॥ ९३-९४॥

जो व्यक्ति भारतवर्षमें जन्म पाकर देवताओंकी मूर्ति तथा देवसम्बन्धी द्रव्योंकी चोरी करता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दुस्तर वज्रकुण्ड नामक नरकमें निश्चित-रूपसे निवास करता है। उसे वहाँ भूखा रहना पड़ता है। उन वज्रोंके द्वारा यमदूतोंसे पीटे जानेपर उसका शरीर दग्ध हो जाता है और वह रोने-चिल्लाने लगता है, तत्पश्चात् उस मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है॥ ९५-९६॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और देवताके रजत, गव्य पदार्थ तथा वस्त्रोंको चुराता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक तप्तपाषाणकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे वास करता है। तत्पश्चात् तीन जन्मोंतक कच्छप, तीन जन्मोंतक श्वेतकुष्ठी, एक जन्ममें श्वेत दागवाला और फिर श्वेत पक्षी होता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक रक्तदोषसे युक्त, शूलरोगसे पीडित तथा अल्पायु मनुष्य होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ ९७—९९॥

जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मणके पीतल तथा कांसेके बर्तनोंका हरण करता है, वह अपने शरीरके लोमसंख्यक वर्षोंतक तीक्ष्णपाषाणकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। फिर वह सात जन्मोंतक भारतवर्षमें घोड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद वह अधिक अंगोंवाला तथा पैरके रोगसे ग्रस्त होता है। तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १००-१०१॥

पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते पुंश्चलीजीव्यजीविनः।
स्वलोममानवर्षं च लालाकुण्डे वसेद् ध्रुवम्॥ १०२

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र दुःखितः।
ततश्चक्षुःशूलरोगी ततः शुद्धः क्रमेण सः॥ १०३

म्लेच्छसेवी मसीजीवी यो विप्रो भारते भुवि।
वसेत्स्वलोममानाब्दं मसीकुण्डे स दुःखभाक्॥ १०४

ताडितो यमदूतेन तद्भोजी तत्र तिष्ठति।
ततस्त्रिजन्मनि भवेत्कृष्णवर्णः पशुः सति॥ १०५

त्रिजन्मनि भवेच्छागः कृष्णवर्णस्त्रिजन्मनि।
ततः स तालवृक्षश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ १०६

धान्यादिसस्यं ताम्बूलं यो हरेत्सुरविप्रयोः।
आसनं च तथा तल्पं चूर्णकुण्डे प्रयाति सः॥ १०७

शताब्दं तत्र निवसेद्यमदूतेन ताडितः।
ततो भवेन्मेषजातिः कुक्कुटश्च त्रिजन्मनि॥ १०८

ततो भवेद्वानरश्च कासव्याधियुतो भुवि।
वंशहीनो दरिद्रश्च स्वल्पायुश्च ततः शुचिः॥ १०९

करोति चक्रं विप्राणां हृत्वा द्रव्यं च यो जनः।
स वसेच्चक्रकुण्डे च शताब्दं दण्डताडितः॥ ११०

ततो भवेन्मानवश्च तैलकारस्त्रिजन्मनि।
व्याधियुक्तो भवेद्रोगी वंशहीनस्ततः शुचिः॥ १११

जो मनुष्य किसी व्यभिचारिणी स्त्रीका अन्न तथा उस स्त्रीकी जीविकापर आश्रित रहनेवाले व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक लालाकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे निवास करता है। वहाँपर वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और अत्यन्त दुःखी होकर उसे वही लाला (लार) खानी पड़ती है। तदनन्तर वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर नेत्र तथा शूलके रोगसे पीड़ित होता है। इसके बाद वह क्रमसे शुद्ध हो जाता है॥ १०२-१०३॥

जो ब्राह्मण भारतवर्षमें म्लेच्छोंकी सेवा करनेवाला तथा मसिजीवी (मसिपर आश्रित रहकर अपनी जीविका चलानेवाला) है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मसीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ बहुत दुःख पाता है। यमदूत उसे पीटते हैं और उसे वहाँपर उसी मसि (स्याही)-का सेवन करना पड़ता है। हे साध्वि! तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक काले रंगका पशु होता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक काले रंगका छाग बकरा होता है और उसके बाद तीन जन्मोंतक ताड़का वृक्ष होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १०४—१०६॥

जो मनुष्य देवता अथवा ब्राह्मणके अन्न, फसल, ताम्बूल, आसन और शय्या आदिकी चोरी करता है; वह चूर्णकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ सौ वर्षोंतक निवास करता है। वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक मेष और कुक्कुट होता है। उसके बाद वानर होता है। तदनन्तर भारतभूमिपर कासरोगसे पीड़ित, वंशहीन, दरिद्र तथा अल्पायु मनुष्य होता है; इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १०७—१०९॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणके धनका हरण करके उससे चक्र (कोल्हू)-सम्बन्धी व्यवसाय करता है, वह चक्रकुण्ड नामक नरकमें डण्डोंसे पीटा जाता हुआ सौ वर्षोंतक वास करता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और तीन जन्मोंतक अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त रोगी तथा वंशहीन तैलकार (तेलका व्यापार करनेवाला) होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११०-१११॥

गोधनेषु च विप्रेषु करोति वक्रतां पुमान्।
प्रयाति वक्रकुण्डं स तिष्ठेद्युगशतं सति॥ ११२

ततो भवेत्स वक्राङ्गो हीनाङ्गः सप्तजन्मनि।
दरिद्रो वंशहीनश्च भार्याहीनस्ततः शुचिः॥ ११३

ततो भवेद् गृध्रजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः।
त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च त्रिजन्मनि॥ ११४

निषिद्धं कूर्ममांसं च ब्राह्मणो यो हि भक्षति।
कूर्मकुण्डे वसेत्सोऽपि शताब्दं कूर्मभक्षितः॥ ११५

ततो भवेत्कूर्मजन्मा त्रिजन्मनि च सूकरः।
त्रिजन्मनि बिडालश्च मयूरश्च ततः शुचिः॥ ११६

घृतं तैलादिकं चैव यो हरेत्सुरविप्रयोः।
स याति ज्वालाकुण्डं च भस्मकुण्डं च पातकी॥ ११७

तत्र स्थित्वा शताब्दं च स भवेत्तैलपाचितः।
सप्तजन्मनि मत्स्यश्च मूषकश्च ततः शुचिः॥ ११८

सुगन्धितैलं धात्रीं वा गन्धद्रव्यान्यदेव वा।
भारते पुण्यवर्षे च यो हरेत्सुरविप्रयोः॥ ११९

स वसेद्दग्धकुण्डे च भवेद्दग्धो दिवानिशम्।
स्वलोममानवर्षं च ततो दुर्गन्धिको भवेत्॥ १२०

दुर्गन्धिकः सप्तजन्म मृगनाभिस्त्रिजन्मनि।
सप्तजन्मसु मन्थानस्ततो हि मानवो भवेत्॥ १२१

बलेनैव छलेनैव हिंसारूपेण वा सति।
बलिष्ठश्च हरेद्भूमिं भारते परपैतृकीम्॥ १२२

हे साध्वि! जो व्यक्ति गौओं और ब्राह्मणके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है, वह सौ युगोंतक वक्रतुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक वक्र अंगोंवाला, हीन अंगवाला, दरिद्र, वंशहीन तथा भार्याहीन मानव होता है। उसके बाद वह तीन जन्मोंतक गीध, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोर होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११२—११४॥

जो ब्राह्मण कछुएका निषिद्ध मांस खाता है, वह सौ वर्षोंतक कूर्मकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। वहाँपर उसे कछुए सदा नोंच-नोंचकर खाते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक कछुए, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोरकी योनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ ११५-११६॥

जो व्यक्ति किसी देवता या ब्राह्मणका घृत, तेल आदि चुराता है, वह पापी ज्वालाकुण्ड और भस्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक सौ वर्षोंतक वास करते हुए तेलमें पकाया जाता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक मछली और सात जन्मोंतक चूहा होता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११७-११८॥

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें किसी देवता या ब्राह्मणके सुगन्धित तेल, इत्र, आँवलाचूर्ण तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यकी चोरी करता है; वह दग्धकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँपर वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है और दिन-रात दग्ध होता रहता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक दुर्गन्धिक होता है। पुनः तीन जन्मोंतक कस्तूरी मृग और सात जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा होता है, तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है॥ ११९—१२१॥

हे साध्वि! जो बलिष्ठ पुरुष भारतवर्षमें अपने बलसे अथवा छलसे अथवा हिंसाके द्वारा किसी दूसरेकी पैतृकसम्पत्तिका हरण करता है, वह तप्तसूचीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वह उस नरकमें

स वसेत्तप्तसूचिं च भवेत्तापी दिवानिशम्।
तप्ततैले यथा जीवो दग्धो भवति सन्ततम्॥ १२३

भस्मसान्न भवत्येव भोगे देही न नश्यति।
सप्तमन्वन्तरं पापी सन्तप्तस्तत्र तिष्ठति॥ १२४

शब्दं करोत्यनाहारो यमदूतेन ताडितः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विट्कृमिश्च भवेत्ततः॥ १२५

ततो भवेद्भूमिहीनो दरिद्रश्च ततः शुचिः।
ततः स्वयोनिं सम्प्राप्य शुभं कर्माचरेत्पुनः॥ १२६

दिन-रात उसी तरह संतप्त होता रहता है, जैसे कोई जीव तप्त तेलमें निरन्तर दग्ध होता रहता है। जलाये जानेपर भी कर्मभोगके कारण उसका देह न तो भस्मसात् होता है और न तो उसका नाश ही होता है, अपितु वह पापी सात मन्वन्तरतक वहाँ सन्तप्त होता रहता है। वह सदा चिल्लाता रहता है, भूखा रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर भूमिहीन और दरिद्र होता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है और अपनी योनिमें जन्म प्राप्तकर पुनः शुभ आचरण करने लगता है॥ १२२—१२६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
नानाकर्मविपाकफलकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न पापकर्म तथा उनके कारण प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन

यम उवाच

छिनत्ति जीवं खड्गेन दयाहीनः सुदारुणः।
नरघाती हन्ति नरमर्थलोभेन भारते॥ १

असिपत्रे वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
तेषु यो ब्राह्मणान् हन्ति शतमन्वन्तरं वसेत्॥ २

छिन्नाङ्गः संवसेत् सोऽपि खड्गधारेण सन्ततम्।
अनाहारः शब्दमुच्चैर्यमदूतेन ताडितः॥ ३

मन्थानः शतजन्मानि शतजन्मानि सूकरः।
कुक्कुटः सप्त जन्मानि शृगालः सप्तजन्मसु॥ ४

व्याघ्रश्च सप्त जन्मानि वृकश्चैव त्रिजन्मसु।
सप्तजन्मसु मण्डूको यमदूतेन ताडितः॥ ५

स भवेद्भारते वर्षे महिषश्च ततः शुचिः।
ग्रामाणां नगराणां वा दहनं यः करोति च॥ ६

यमराज बोले—[हे सावित्रि!] भारतवर्षमें जो कोई निर्दयी तथा क्रूर व्यक्ति खड्गसे किसी जीवको काटता है या कोई नरघाती धनके लोभसे किसी मनुष्यकी हत्या करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्रवन नामक नरकमें वास करता है। उनमें भी जो ब्राह्मणोंकी हत्या करता है, वह सौ मन्वन्तरतक वहाँ रहता है। तलवारकी धारसे उसके शरीरके अंग निरन्तर कटते रहते हैं। आहार न मिलने और यमदूतोंसे पीटे जानेके कारण वह जोर-जोरसे चिल्लाता रहता है। तत्पश्चात् वह सौ जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक मुर्गा, सात जन्मोंतक सियार, सात जन्मोंतक बाघ, तीन जन्मोंतक भेड़िया और सात जन्मोंतक मेंढक होता है, साथ ही वह यमदूतसे निरन्तर पीटा भी जाता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें महिष होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १—५½॥

हे सति! जो मनुष्य गाँवों और नगरोंको जलाता है, वह क्षुरधार नामक नरकमें क्षत-विक्षत अंगोंवाला होकर तीन युगोंतक रहता है। तत्पश्चात् वह शीघ्र

क्षुरधारे वसेत्सोऽपि छिन्नाङ्गस्त्रियुगं सति।
ततः प्रेतो भवेत्सद्यो वह्निवक्त्रो भ्रमन्महीम्॥ ७

सप्तजन्मामेध्यभोजी कपोतः सप्तजन्मसु।
ततो भवेन्महाशूली मानवः सप्तजन्मनि॥ ८

सप्तजन्म गलत्कुष्ठी ततः शुद्धो भवेन्नरः।
परकर्णे मुखं दत्त्वा परनिन्दां करोति यः॥ ९

परदोषे महाश्लाघी देवब्राह्मणनिन्दकः।
सूचीमुखे वसेत्सोऽपि सूचीविद्धो युगत्रयम्॥ १०

ततो भवेद् वृश्चिकश्च सर्पश्च सप्तजन्मसु।
वज्रकीटः सप्तजन्म भस्मकीटस्ततः परम्॥ ११

ततो भवेन्मानवश्च महाव्याधिस्ततः शुचिः।
गृहिणां हि गृहं भित्त्वा वस्तुस्तेयं करोति यः॥ १२

गाश्च छागांश्च मेषांश्च याति गोकामुखे च सः।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्र युगत्रयम्॥ १३

ततो भवेत्सप्तजन्म गोजातिर्व्याधिसंयुतः।
त्रिजन्मनि मेषजातिश्छागजातिस्त्रिजन्मनि॥ १४

ततो भवेन्मानवश्च नित्यरोगी दरिद्रकः।
भार्याहीनो बन्धुहीनः सन्तापी च ततः शुचिः॥ १५

सामान्यद्रव्यचौरश्च याति नक्रमुखं च सः।
ताडितो यमदूतेन वसेत्तत्राब्दकत्रयम्॥ १६

ततो भवेत्सप्तजन्म गोपतिर्व्याधिसंयुतः।
ततो भवेन्मानवश्च महारोगी ततः शुचिः॥ १७

ही प्रेत होता है और मुँहसे आग उगलते हुए पृथ्वीपर घूमता रहता है। फिर वह सात जन्मोंतक अपवित्र मल-मूत्र आदि पदार्थोंको खाता रहता है और सात जन्मोंतक कपोत होता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और महान् शूलरोगसे पीड़ित रहता है। पुनः वह सात जन्मोंतक गलित कुष्ठरोगसे ग्रस्त रहता है और तत्पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६—८$\frac{1}{2}$ ॥

जो मनुष्य दूसरेके कानमें अपना मुख लगाकर परायी निन्दा करता है, परदोष निकालकर बड़ी-बड़ी डींग हाँकता है और देवता तथा ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह सूचीमुख नामक नरकमें तीन युगोंतक वास करता है। वहाँ उसके शरीरमें निरन्तर सूई चुभायी जाती है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक बिच्छू, सात जन्मोंतक सर्प, सात जन्मोंतक वज्रकीट और सात जन्मोंतक भस्मकीटकी योनिमें रहता है। तदनन्तर मानवयोनिमें जन्म लेकर वह महाव्याधिसे ग्रस्त रहता है, पुनः शुद्ध हो जाता है॥ ९—११$\frac{1}{2}$ ॥

जो व्यक्ति गृहस्थोंके घरमें सेंध लगाकर वस्तुओंकी चोरी करता है और गौओं, बकरों तथा भेड़ोंको चुरा लेता है; वह गोकामुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ वह तीन युगोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक रोगग्रस्त गौकी योनिमें, तीन जन्मोंतक भेड़की योनिमें और तीन जन्मोंतक बकरेकी योनिमें जन्म पाता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है, उस समय वह नित्य रोगी, दरिद्र, भार्याहीन, बन्धु-बान्धवरहित और दुःखी रहता है, उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ १२—१५॥

सामान्य द्रव्योंकी चोरी करनेवाला नक्रमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ तीन वर्षोंतक निवास करता है, तदनन्तर वह सात जन्मोंतक रोगसे पीड़ित रहनेवाला बैल होता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें जन्म लेकर महान् रोगोंसे ग्रस्त रहता है और फिर शुद्ध हो जाता है॥ १६-१७॥

हन्ति गाश्च गजांश्चैव तुरगांश्च नगांस्तथा।
स याति गजदंशं च महापापी युगत्रयम्॥ १८

ताडितो यमदूतेन नागदन्तेन सन्ततम्।
स भवेद्गजजातिश्च तुरगश्च त्रिजन्मनि॥ १९

गोजातिर्म्लेच्छजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः।
जलं पिबन्तीं तृषितां गां वारयति यः पुमान्॥ २०

नरकं गोमुखाकारं कृमितप्तोदकान्वितम्।
तत्र तिष्ठति सन्तप्तो यावन्मन्वन्तरावधि॥ २१

ततो नरोऽपि गोहीनो महारोगी दरिद्रकः।
सप्तजन्मान्त्यजातिश्च ततः शुद्धो भवेन्नरः॥ २२

गोहत्यां ब्रह्महत्यां च करोति ह्यतिदेशिकीम्।
यो हि गच्छत्यगम्यां च यः स्त्रीहत्यां करोति च॥ २३

भिक्षुहत्यां महापापी भ्रूणहत्यां च भारते।
कुम्भीपाके वसेत्सोऽपि यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ २४

ताडितो यमदूतेन चूर्ण्यमानश्च सन्ततम्।
क्षणं पतति वह्नौ च क्षणं पतति कण्टके॥ २५

क्षणं पतेत्तप्ततैले तप्तो येन क्षणं क्षणम्।
क्षणं च तप्तलोहे च क्षणं च तप्तताम्रके॥ २६

गृध्रो जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरः।
काकश्च सप्त जन्मानि सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ २७

षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः।
नानाजन्मसु स वृषस्ततः कुष्ठी दरिद्रकः॥ २८

सावित्र्युवाच

विप्रहत्या च गोहत्या किंविधा चातिदैशिकी।
का वा नृणामगम्या च को वा संध्याविहीनकः॥ २९

अदीक्षितः पुमान्को वा को वा तीर्थप्रतिग्रही।
द्विजः को वा ग्रामयाजी को वा विप्रोऽथ देवलः॥ ३०

जो मनुष्य गायों, हाथियों, घोड़ों और सर्पोंका वध करता है; वह महापापी गजदंश नामक नरकमें जाता है और तीन युगोंतक वहाँ वास करता है। यमदूत उसे हाथी-दाँतसे निरन्तर पीटते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक हाथी, तीन जन्मोंतक घोड़े, तीन जन्मोंतक गाय और तीन जन्मोंतक म्लेच्छकी योनिमें पैदा होता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ १८-१९½ ॥

जो मनुष्य पानी पीती हुई प्यासी गायको वहाँसे हटा देता है, वह कीड़ोंसे भरे तथा तप्त जलसे युक्त गोमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक मन्वन्तरकी अवधितक सन्तप्त रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक अन्त्य जातिमें उत्पन्न होकर गोहीन, महान् रोगी तथा दरिद्र मनुष्यके रूपमें रहता है। उसके बाद वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है॥ २०—२२॥

जो भारतवर्षमें शास्त्र-वचनकी आड़ लेकर गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भिक्षुहत्या तथा भ्रूणहत्या करता है और जो अगम्या स्त्रीके साथ समागम करता है, वह महापापी व्यक्ति चौदह इन्द्रोंके स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें वास करता है। यमदूतके द्वारा वह निरन्तर पीटा जाता है, जिससे उसके शरीरके अंग चूर-चूर हो जाते हैं। उसे कभी आगमें गिराया जाता है और कभी काँटोंपर लिटाया जाता है। उसे कभी तप्त तेलमें, कभी प्रतप्त लोहेमें और ताँबेमें डाला जाता है, जिससे वह प्रत्येक क्षण तपता रहता है। उसके बाद वह हजार जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कौवा और सात जन्मोंतक सर्प होता है। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा और अनेक जन्मोंतक बैल होता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर कोढ़ी तथा दरिद्र होता है॥ २३—२८॥

सावित्री बोली—आतिदेशिकी ब्रह्महत्या तथा गोहत्या कितने प्रकारकी होती है? मनुष्योंके लिये कौन स्त्री अगम्य होती है और कौन मनुष्य सन्ध्यासे विहीन है, कौन अदीक्षित है, तीर्थ-प्रतिग्रही कौन है? कौन ग्रामयाजी द्विज है तथा कौन देवल ब्राह्मण है?

शूद्राणां सूपकारश्च प्रमत्तो वृषलीपतिः।
एतेषां लक्षणं सर्वं वद वेदविदां वर॥ ३१

धर्मराज उवाच

श्रीकृष्णे च तदर्चायामन्येषां प्रकृतौ सति।
शिवे च शिवलिङ्गे च सूर्ये सूर्यमणौ तथा॥ ३२

गणेशे वाथ दुर्गायामेवं सर्वत्र सुन्दरि।
यः करोति भेदबुद्धिं ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३३

स्वगुरौ स्वेष्टदेवे च जन्मदातरि मातरि।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३४

वैष्णवेषु च भक्तेषु ब्राह्मणेष्वितरेषु च।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३५

विप्रपादोदके चैव शालग्रामोदके तथा।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३६

शिवनैवेद्यके चैव हरिनैवेद्यके तथा।
करोति भेदबुद्धिं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३७

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे सर्वकारणकारणे।
सर्वाद्ये सर्वदेवानां सेव्ये सर्वान्तरात्मनि॥ ३८

माययानेकरूपे वाप्येक एव हि निर्गुणे।
करोतीशेन भेदं यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ३९

शक्तिभक्ते द्वेषबुद्धिं शक्तिशास्त्रे तथैव च।
द्वेषं यः कुरुते मर्त्यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४०

पितृदेवार्चनं यो वा त्यजेद्वेदनिरूपितम्।
यः करोति निषिद्धं च ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४१

यो निन्दति हृषीकेशं तन्मन्त्रोपासकं तथा।
पवित्राणां पवित्रं च ज्ञानानन्दं सनातनम्॥ ४२

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रसोइयाका काम करता है, प्रमत्त है और शूद्रापति है—इन सभीके समस्त लक्षणोंको आप मुझे बतलाइये॥ २९—३१॥

धर्मराज बोले—हे साध्वि! हे सुन्दरि! श्रीकृष्णमें तथा उनकी मूर्तिमें, अन्य देवताओंमें तथा उनकी प्रतिमामें, शिवमें तथा शिवलिंगमें, सूर्यमें तथा सूर्यकान्तमणिमें, गणेशमें तथा उनकी मूर्तिमें और दुर्गामें तथा उनकी प्रतिमामें जो भेदबुद्धि रखता है, उसे [आतिदेशिकी] ब्रह्महत्या लगती है॥ ३२-३३॥

जो व्यक्ति अपने गुरु, अपने इष्टदेव तथा जन्म देनेवाली मातामें भेद मानता है; वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३४॥

जो भगवान् विष्णुके भक्तों तथा दूसरे देवताओंकी पूजा करनेवाले ब्राह्मणोंमें भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३५॥

जो मनुष्य ब्राह्मणके चरणोदक तथा शालग्रामके जलमें भेदबुद्धि करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३६॥

जो मनुष्य शिवके नैवेद्य तथा भगवान् विष्णुके नैवेद्यमें भेदबुद्धि रखता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३७॥

जो व्यक्ति सर्वेश्वरोंके भी ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सबके आदिस्वरूप, सभी देवताओंके आराध्य, सबकी अन्तरात्मा, एक होते हुए भी अपनी योगमायाके प्रभावसे अनेक रूप धारण करनेमें सक्षम तथा निर्गुण श्रीकृष्णमें और ईशान शिवजीमें भेद करता है; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य भगवती शक्तिकी उपासना करनेवालेके प्रति द्वेषभाव रखता है तथा शक्ति-शास्त्रोंकी निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४०॥

जो मनुष्य वेदोंमें प्रतिपादित रीतिसे पितृपूजन तथा देवार्चनका त्याग कर देता है और निषिद्ध विधिसे कर्म सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ४१॥

जो भगवान् हृषीकेश और उनके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंकी निन्दा करता है और जो पवित्रोंके भी पवित्र, ज्ञानानन्द, सनातन, वैष्णवोंके

प्रधानं वैष्णवानां च देवानां सेव्यमीश्वरम्।
ये नार्चयन्ति निन्दन्ति ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४३

ये निन्दन्ति महादेवीं कारणब्रह्मरूपिणीम्।
सर्वशक्तिस्वरूपां च प्रकृतिं सर्वमातरम्॥ ४४

सर्वदेवस्वरूपां च सर्वेषां वन्दितां सदा।
सर्वकारणरूपां च ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४५

कृष्णजन्माष्टमीं रामनवमीं च सुपुण्यदाम्।
शिवरात्रिं तथा चैकादशीं वारे रवेस्तथा॥ ४६

पञ्च पर्वाणि पुण्यानि ये न कुर्वन्ति मानवाः।
लभन्ति ब्रह्महत्यां ते चाण्डालाधिकपापिनः॥ ४७

अम्बुवाच्यां भूखननं जलशौचादिकं च ये।
कुर्वन्ति भारते वर्षे ब्रह्महत्यां लभन्ति ते॥ ४८

गुरुञ्च मातरं तातं साध्वीं भार्यां सुतं सुताम्।
अनिन्द्यां यो न पुष्णाति ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ४९

विवाहो यस्य न भवेन्न पश्यति सुतं तु यः।
हरिभक्तिविहीनो यो ब्रह्महत्यां लभेत्तु सः॥ ५०

हरेरनैवेद्यभोजी नित्यं विष्णुं न पूजयेत्।
पुण्यं पार्थिवलिङ्गं च ब्रह्महासौ प्रकीर्तितः॥ ५१

गोप्रहारं प्रकुर्वन्तं दृष्ट्वा यो न निवारयेत्।
याति गोविप्रयोर्मध्ये गोहत्यां तु लभेत्तु सः॥ ५२

दण्डैर्गोस्ताडयेन्मूढो यो विप्रो वृषवाहनः।
दिने दिने गोवधं च लभते नात्र संशयः॥ ५३

ददाति गोभ्य उच्छिष्टं भोजयेद् वृषवाहकम्।
भुनक्ति वृषवाहान्नं स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५४

परम आराध्य तथा देवताओंके सेव्य परमेश्वरकी पूजा नहीं करते; अपितु निन्दा करते हैं, वे ब्रह्महत्याके पापके भागी होते हैं॥ ४२-४३॥

जो कारणब्रह्मरूपिणी, सर्वशक्तिस्वरूपा, सर्वजननी, सर्वदेवस्वरूपिणी, सबके द्वारा वन्दित तथा सर्वकारणरूपिणी मूलप्रकृति महादेवीकी सदा निन्दा करते हैं; उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४४-४५॥

जो मनुष्य पुण्यदायिनी कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी और रविवार—इन पाँच पुण्य पर्वोंके अवसरपर व्रत नहीं करते, वे चाण्डालसे भी बढ़कर पापी हैं और उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४६-४७॥

जो इस भारतवर्षमें अम्बुवाचीयोग (आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरण)-में पृथ्वी खोदते हैं या जलमें शौच आदि करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अपने गुरु, माता, पिता, साध्वी भार्या, पुत्र तथा अनिन्दनीय आचरण करनेवाली पुत्रीका भरण-पोषण नहीं करता; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४९॥

जिसका विवाह न हुआ हो, जिसने पुत्र न देखा हो, अर्थात् पुत्रवान् न हो तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख हो, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ५०॥

जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिको नैवेद्य अर्पण किये बिना भोजन करता है, विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता और पवित्र पार्थिव लिंगका पूजन नहीं करता; उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ ५१॥

जो किसी मनुष्यको गायपर प्रहार करते हुए देखकर उसे नहीं रोकता और जो गाय तथा ब्राह्मणके बीचसे निकलता है, वह गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ५२॥

जो मूर्ख ब्राह्मण गायोंको डंडोंसे पीटता है और बैलपर सवारी करता है, उसे प्रतिदिन गोहत्याका पाप लगता है॥ ५३॥

जो व्यक्ति गायोंको जूठा अन्न खिलाता है, बैलकी सवारी करनेवालेको भोजन कराता है और बैलकी सवारी करनेवालेका अन्न खाता है; उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५४॥

वृषलीपतिं याजयेद्यो भुङ्क्तेऽन्नं तस्य यो नरः।
गोहत्याशतकं सोऽपि लभते नात्र संशयः॥ ५५

पादं ददाति वह्नौ यो गाश्च पादेन ताडयेत्।
गेहं विशेदधौताङ्घ्रिः स्नात्वा गोवधमाप्नुयात्॥ ५६

यो भुङ्क्ते स्निग्धपादेन शेते स्निग्धाङ्घ्रिरेव च।
सूर्योदये च यो भुङ्क्ते स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५७

अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते योनिजीव्यस्य च द्विजः।
यस्त्रिसन्ध्याविहीनश्च गोहत्यां लभते च सः॥ ५८

स्वभर्तरि च देवे वा भेदबुद्धिं करोति या।
कटूक्त्या ताडयेत् कान्तं सा गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ५९

गोमार्गवर्जनं कृत्वा ददाति सस्यमेव वा।
तडागे वा तु दुर्गे वा स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६०

प्रायश्चित्ते गोवधस्य यः करोति व्यतिक्रमम्।
पुत्रलोभादथाज्ञानात्स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६१

राजके दैवके यत्नाद् गोस्वामी गां न रक्षति।
दुःखं ददाति यो मूढो गोहत्यां स लभेद् ध्रुवम्॥ ६२

प्राणिनो लङ्घयेद्यो हि देवार्चामनलं जलम्।
नैवेद्यं पुष्पमन्नं च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६३

शश्वन्नास्तीति यो वादी मिथ्यावादी प्रतारकः।
देवद्वेषी गुरुद्वेषी स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६४

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा गुरुं वा ब्राह्मणं सति।
सम्भ्रमान्न नमेद्यो हि स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६५

जो ब्राह्मण शूद्रापतिके यहाँ यज्ञ कराता है और उसका अन्न ग्रहण करता है, वह एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

जो मनुष्य पैरसे अग्निका स्पर्श करता है, गायोंको पैरसे मारता है और स्नान करके बिना पैर धोये देवालयमें प्रवेश करता है; उसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५६॥

जो व्यक्ति गीले पैर भोजन करता है, गीले पैर सोता है और सूर्योदयके समय भोजन करता है; उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ५७॥

जो द्विज पति-पुत्रहीन स्त्रीका तथा योनिजीवी व्यक्तिका अन्न खाता है और जो त्रिकाल सन्ध्यासे विहीन है, उसे भी गोहत्याका पाप लगता है॥ ५८॥

जो स्त्री अपने पति तथा देवतामें भेदबुद्धि रखती है तथा कटु वचनोंसे अपने पतिको पीड़ित करती है, उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५९॥

जो मनुष्य गोचरभूमिको जोतकर उसमें अनाज बोता है या तालाब अथवा दुर्गमें फसल उगाता है, उसे निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६०॥

जो व्यक्ति पुत्रके मोहसे अथवा अज्ञानके कारण गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम करता है, उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६१॥

जो गायका स्वामी अराजकता तथा दैवोपद्रवके अवसरपर गायकी रक्षा नहीं करता तथा जो गायको पीड़ा पहुँचाता है, उस मूर्खको निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६२॥

जो मनुष्य प्राणियों, देवमूर्ति, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प तथा अन्नको लाँघता है; वह निश्चितरूपसे गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ६३॥

मेरे पास कुछ नहीं है—ऐसा जो सदा कहता है, झूठ बोलता है, दूसरोंको ठगता है और देवता तथा गुरुसे द्वेष करता है, उसे गोहत्याका पाप अवश्य लगता है॥ ६४॥

हे साध्वि! जो मनुष्य देवप्रतिमा, गुरु तथा ब्राह्मणको देखकर आदरपूर्वक प्रणाम नहीं करता, उसे निश्चित-रूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६५॥

न ददात्याशिषं कोपात्प्रणताय च यो द्विजः।
विद्यार्थिने च विद्यां च स गोहत्यां लभेद् ध्रुवम्॥ ६६

गोहत्या विप्रहत्या च कथिता चातिदेशिकी।
गम्यां स्त्रियं नृणामेव निबोध कथयामि ते॥ ६७

स्वस्त्री गम्या च सर्वेषामिति वेदानुशासनम्।
अगम्या च तदन्या या चेति वेदविदो विदुः॥ ६८

सामान्यं कथितं सर्वं विशेषं शृणु सुन्दरि।
अत्यगम्या हि या याश्च निबोध कथयामि ताः॥ ६९

शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी।
अत्यगम्या च निन्द्या च लोके वेदे पतिव्रते॥ ७०

शूद्रश्च ब्राह्मणीं गत्वा ब्रह्महत्याशतं लभेत्।
तत्समं ब्राह्मणी चापि कुम्भीपाकं लभेद् ध्रुवम्॥ ७१

शूद्राणां विप्रपत्नी च विप्राणां शूद्रकामिनी।
यदि शूद्रां व्रजेद्विप्रो वृषलीपतिरेव सः॥ ७२

स भ्रष्टो विप्रजातेश्च चाण्डालात्सोऽधमः स्मृतः।
विष्ठासमश्च तत्पिण्डो मूत्रं तस्य च तर्पणम्॥ ७३

न पितॄणां सुराणां च तद्दत्तमुपतिष्ठति।
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं तस्यार्चात्तपसार्जितम्॥ ७४

द्विजस्य वृषलीलोभान्नश्यत्येव न संशयः।
ब्राह्मणश्च सुरापीतिर्विड्भोजी वृषलीपतिः॥ ७५

तप्तमुद्रादग्धदेहस्तप्तशूलाङ्कितस्तथा।
हरिवासरभोजी च कुम्भीपाकं व्रजेद् द्विजः॥ ७६

जो ब्राह्मण प्रणाम करनेवालेको क्रोधवश आशीर्वाद नहीं देता और विद्यार्थीको विद्या प्रदान नहीं करता, उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६६॥

[हे साध्वि!] यह मैंने आतिदेशिकी ब्रह्महत्या और गोहत्याका वर्णन कर दिया, अब मैं मनुष्योंके लिये गम्य स्त्रीके विषयमें तुमसे कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६७॥

सभी मनुष्योंको केवल अपनी भार्याके साथ गमन करना चाहिये—यह वेदोंका आदेश है। उसके अतिरिक्त अन्य स्त्री अगम्य है—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ६८॥

हे सुन्दरि! यह सब सामान्य नियम कहा गया, अब कुछ विशेष नियमोंको सुनो। जो स्त्रियाँ विशेषरूपसे गमन करनेयोग्य नहीं हैं, उनके विषयमें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६९॥

हे पतिव्रते! शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी पत्नी और ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी पत्नी अति अगम्य तथा निन्द्य है —ऐसा लोक और वेदमें प्रसिद्ध है॥ ७०॥

ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे शूद्र एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरक प्राप्त करता है तथा उस शूद्रके साथ ब्राह्मणी भी कुम्भीपाक नरकमें जाती है। अतः शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी स्त्री तथा ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी स्त्री सर्वथा अगम्य है॥ ७१½॥

यदि कोई विप्र शूद्रा नारीका सेवन करता है तो वह वृषलीपति कहा जाता है। वह विप्रजातिसे च्युत हो जाता है और वह चाण्डालसे भी बढ़कर अधम कहा गया है। उसके द्वारा दिया गया पिण्ड विष्ठातुल्य तथा तर्पण मूत्रके समान हो जाता है। उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड आदि पितरों तथा देवताओंको प्राप्त नहीं होता। करोड़ों जन्मोंमें पूजन तथा तप करके उस ब्राह्मणके द्वारा अर्जित किया गया पुण्य शूद्रा नारीके साथ गमन करनेसे नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। सुरापान करनेवाला, वेश्याओंका अन्न खानेवाला, शूद्रा नारीका सेवन करनेवाला, तप्त मुद्रा तथा तप्त त्रिशूल आदिसे दागे गये शरीरवाला तथा एकादशीको अन्न ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७२—७६॥

गुरुपत्नीं राजपत्नीं सपत्नीं मातरं ध्रुवम्।
सुतां पुत्रवधूं श्वश्रूं सगर्भां भगिनीं सतीम्॥ ७७

सहोदरभ्रातृजायां मातुलानीं पितुः प्रसूम्।
मातुः प्रसूं तत्स्वसारं भगिनीं भ्रातृकन्यकाम्॥ ७८

शिष्यां शिष्यस्य पत्नीं च भागिनेयस्य कामिनीम्।
भ्रातुः पुत्रप्रियां चैवात्यगम्या आह पद्मजः॥ ७९

एताः कामेन कान्ता यो व्रजेद्वै मानवाधमः।
स मातृगामी वेदेषु ब्रह्महत्याशतं व्रजेत्॥ ८०

अकर्मार्होऽप्यसंस्पृश्यो लोके वेदे च निन्दितः।
स याति कुम्भीपाके च महापापी सुदुष्करे॥ ८१

करोत्यशुद्धां सन्ध्यां वा न सन्ध्यां वा करोति च।
त्रिसन्ध्यं वर्जयेद्यो वा सन्ध्याहीनश्च स द्विजः॥ ८२

वैष्णवं च तथा शैवं शाक्तं सौरं च गाणपम्।
योऽहङ्कारान्न गृह्णाति मन्त्रं सोऽदीक्षितः स्मृतः॥ ८३

प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्।
तत्र नारायणः स्वामी गङ्गागर्भान्तरे वसेत्॥ ८४

तत्र नारायणक्षेत्रे मृतो याति हरेः पदम्।
वाराणस्यां बदर्यां च गङ्गासागरसङ्गमे॥ ८५

पुष्करे हरिहरक्षेत्रे प्रभासे कामरूस्थले।
हरिद्वारे च केदारे तथा मातृपुरेऽपि च॥ ८६

सरस्वतीनदीतीरे पुण्ये वृन्दावने वने।
गोदावर्यां च कौशिक्यां त्रिवेण्यां च हिमाचले॥ ८७

एषु तीर्थेषु यो दानं प्रतिगृह्णाति कामतः।
स च तीर्थप्रतिग्राही कुम्भीपाके प्रयाति सः॥ ८८

शूद्रसेवी शूद्रयाजी ग्रामयाजीति कीर्तितः।
तथा देवोपजीवी च देवलः परिकीर्तितः॥ ८९

शूद्रपाकोपजीवी यः सूपकार इति स्मृतः।
सन्ध्यापूजनहीनश्च प्रमत्तः पतितः स्मृतः॥ ९०

ब्रह्माजीने गुरुकी पत्नी, राजाकी पत्नी, सौतेली माँ, पुत्री, पुत्रवधू, सास, गर्भवती स्त्री, बहन, पतिव्रता स्त्री, सहोदर भाईकी पत्नी, मामी, दादी, नानी, मौसी, भतीजी, शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भाँजेकी स्त्री और भाईके पुत्रकी पत्नीको अति अगम्या कहा है। जो नराधम काममोहित होकर इनके साथ गमन करता है, उसे वेदोंमें मातृगामी कहा गया है और उसे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है। वह कोई भी कर्म करनेका पात्र नहीं रह जाता, वह अस्पृश्य है और लोकमें तथा वेदमें सब जगह उसकी निन्दा होती है। वह महापापी अत्यन्त क्लेशदायक कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७७—८१॥

जो शास्त्रोक्त विधानसे सन्ध्या नहीं करता अथवा सन्ध्या करता ही नहीं और जो तीनों कालोंकी सन्ध्यासे रहित है, वह द्विज सन्ध्याहीन द्विज कहा गया है॥ ८२॥

जो अहंकारके कारण विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य तथा गणेश—इन देवोंके मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण नहीं करता, उसे 'अदीक्षित' कहा गया है॥ ८३॥

गंगाके प्रवाहके दोनों ओरकी चार हाथकी चौड़ी भूमिको गंगागर्भ कहते हैं; वहींपर भगवान् नारायण निवास करते हैं। उस नारायणक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है॥ ८४॥

वाराणसी, बदरिकाश्रम, गंगासागरसंगम, पुष्करक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कामाख्यापीठ, हरिद्वार, केदारक्षेत्र, मातृपुर, सरस्वती नदीके तट, पवित्र वृन्दावन, गोदावरीनदी, कौशिकीनदी, त्रिवेणीसंगम और हिमालय—इन तीर्थोंमें जो मनुष्य कामनापूर्वक दान लेता है; वह तीर्थप्रतिग्राही है और इस दानग्रहणके कारण वह कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ८५—८८॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंकी सेवा करता है तथा उनके यहाँ यज्ञ आदि कराता है, उसे ग्रामयाजी कहा गया है। देवताकी पूजा करके अपनी आजीविका चलानेवाला ब्राह्मण देवल कहा गया है। शूद्रके यहाँ रसोई बनाकर आजीविका चलानेवाले विप्रको सूपकार कहा गया है। सन्ध्या तथा पूजनकर्मसे विमुख विप्रको प्रमत्त तथा पतित कहा गया है॥ ८९-९०॥

उक्तं सर्वं मया भद्रे लक्षणं वृषलीपतेः।
एते महापातकिनः कुम्भीपाकं प्रयान्ति ते।
कुण्डान्यन्यानि ये यान्ति निबोध कथयामि ते॥ ९१

हे कल्याणि! वृषलीपतिके समस्त लक्षणोंका वर्णन मैंने कर दिया है। ये सब महापापी हैं और वे कुम्भीपाक नामक नरकमें जाते हैं। [हे साध्वि!] जो पापी दूसरे कुण्डोंमें जाते हैं, उनके विषयमें अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ९१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
सावित्र्युपाख्याने नानाकर्मविपाकफलवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

* * *

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाली विभिन्न योनियोंका वर्णन

धर्मराज उवाच

देवसेवां विना साध्वि न भवेत्कर्मकृन्तनम्।
शुद्धकर्म शुद्धबीजं नरकश्च कुकर्मणा॥ १

पुंश्चल्यन्नं च यो भुङ्क्ते योऽस्यां गच्छेत्पतिव्रते।
स द्विजः कालसूत्रं च मृतो याति सुदुर्गमम्॥ २

शतवर्षं कालसूत्रे स्थिरीभूतो भवेद् ध्रुवम्।
तत्र जन्मनि रोगी च ततः शुद्धो भवेद् द्विजः॥ ३

पतिव्रता चैकपतौ द्वितीये कुलटा स्मृता।
तृतीये धर्षिणी ज्ञेया चतुर्थे पुंश्चलीत्यपि॥ ४

वेश्या च पञ्चमे षष्ठे पुङ्गी च सप्तमेऽष्टमे।
तत ऊर्ध्वं महावेश्या सास्पृश्या सर्वजातिषु॥ ५

यो द्विजः कुलटां गच्छेद्धर्षिणीं पुंश्चलीमपि।
पुङ्गीं वेश्यां महावेश्यां मत्स्योदे याति निश्चितम्॥ ६

शताब्दं कुलटागामी धृष्टागामी चतुर्गुणम्।
षड्गुणं पुंश्चलीगामी वेश्यागामी गुणाष्टकम्॥ ७

पुङ्गीगामी दशगुणं वसेत्तत्र न संशयः।
महावेश्याकामुकश्च ततो दशगुणं वसेत्॥ ८

धर्मराज बोले—हे साध्वि! देवताओंकी उपासनाके बिना कर्म-बन्धनसे मुक्ति नहीं होती। शुद्ध कर्मका बीज शुद्ध होता है और कुकर्मसे नरककी प्राप्ति होती है॥ १॥

हे पतिव्रते! जो ब्राह्मण पुंश्चली स्त्रीका अन्न खाता है अथवा जो इसके साथ भोग करता है, वह मरनेके पश्चात् अत्यन्त कष्टदायक कालसूत्र नामक नरकमें जाता है और उस कालसूत्रमें सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर वह सदा रोगी रहता है। उसके बाद वह द्विज शुद्ध हो जाता है॥ २-३॥

एक पतिवाली स्त्री पतिव्रता तथा दो पतिवाली स्त्री कुलटा कही गयी है। तीन पतिवाली स्त्री धर्षिणी, चार पतिवाली पुंश्चली, पाँच-छः पतिवाली वेश्या तथा सात-आठ पतिवाली स्त्रीको पुंगी जानना चाहिये। इससे अधिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रीको महावेश्या कहा गया है, वह सभी जातिके लोगोंके लिये अस्पृश्य है॥ ४-५॥

जो द्विज कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, पुंगी, वेश्या तथा महावेश्याके साथ समागम करता है; वह निश्चित-रूपसे मत्स्योद नामक नरकमें जाता है। उस नरकमें कुलटागामी सौ वर्षोंतक, धर्षिणीगामी उससे चार गुने अर्थात् चार सौ वर्षोंतक, पुंश्चलीगामी छः सौ वर्षोंतक, वेश्यागामी आठ सौ वर्षोंतक और पुंगीगामी एक हजार वर्षोंतक निवास करता है, महावेश्याके साथ गमन करनेवाले कामुक व्यक्तिको

तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यमदूतेन ताडितः।
तित्तिरिः कुलटागामी धृष्टागामी च वायसः॥ ९

कोकिलः पुंश्चलीगामी वेश्यागामी वृकः स्मृतः।
पुङ्गीगामी सूकरश्च सप्तजन्मनि भारते॥ १०

महावेश्याप्रगामी च जायते शाल्मलीतरुः।
यो भुङ्क्ते ज्ञानहीनश्च ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः॥ ११

अरुन्तुदं स यात्येवाप्यन्नमानाब्दमेव च।
ततो भवेन्मानवश्चाप्युदरे रोगपीडितः॥ १२

गुल्मयुक्तश्च काणश्च दन्तहीनस्ततः शुचिः।
वाक्प्रदत्तां स्वकन्यां च योऽन्यस्मै प्रददाति च॥ १३

स वसेत्पांसुकुण्डे च तद्भोजी शतवत्सरम्।
तद्द्रव्यहारी यः साध्वि पांसुवेष्टे शताब्दकम्॥ १४

निवसेच्छरशय्यायां मम दूतेन ताडितः।
भक्त्या न पूजयेद्विप्रः शिवलिङ्गं च पार्थिवम्॥ १५

स याति शूलिनः पापाच्छूलप्रोतं सुदारुणम्।
स्थित्वा शताब्दं तत्रैव श्वापदः सप्तजन्मसु॥ १६

ततो भवेद्देवलश्च सप्तजन्म ततः शुचिः।
करोति कुण्ठितं विप्रं यद्भिया कम्पते द्विजः॥ १७

प्रकम्पने वसेत्सोऽपि विप्रलोमाब्दमेव च।
प्रकोपवदना कोपात् स्वामिनं या च पश्यति॥ १८

दस हजार वर्षोंतक वहाँ रहना पड़ता है; इसमें संशय नहीं है। वहाँपर यमदूतसे पीटा जाता हुआ वह तरह-तरहकी यातना भोगता है। उसके बाद कुलटागामी तीतर, धर्षिणीगामी कौवा, पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी भेड़िया और पुंगीगामी सूअरकी योनिमें भारतवर्षमें सात जन्मोंतक पैदा होते रहते हैं—ऐसा कहा गया है। महावेश्यासे समागम करनेवाला मनुष्य सेमरका वृक्ष होता है॥ ६—१०½ ॥

जो अज्ञानी मनुष्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर भोजन करता है, वह अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अरुन्तुद नामक नरककुण्डमें जाता है। तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है। उस समय वह उदररोगसे पीड़ित, प्लीहारोगसे ग्रस्त, काना तथा दन्तविहीन हो जाता है; उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११-१२½ ॥

जो अपनी कन्याका वाग्दान करके उसे किसी अन्य पुरुषको प्रदान कर देता है, वह पांसुकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और उसी धूलराशिका भोजन करता है। हे साध्वि! जो मनुष्य अपनी कन्याके धनका हरण करता है, वह पांशुवेष्ट नामक नरककुण्डमें सौ वर्षोंतक वास करता है। वह वहाँ बाणोंकी शय्यापर लेटा रहता है और मेरे दूत उसे पीटते रहते हैं॥ १३-१४½ ॥

जो विप्र भक्तिपूर्वक पार्थिव शिवलिंगकी पूजा नहीं करता, वह त्रिशूल धारण करनेवाले भगवान् शिवके प्रति अपराधजन्य पापके कारण शूलप्रोत नामक अत्यन्त भयानक नरककुण्डमें जाता है। वहाँ सौ वर्षतक रहनेके पश्चात् वह सात जन्मोंतक वन्य पशु होता है। उसके बाद सात जन्मोंतक देवल होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १५-१६½ ॥

जो किसी विप्रको कुण्ठित कर देता है और उसके भयसे वह काँपने लगता है, वह उस द्विजके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक प्रकम्पनकुण्डमें निवास करता है॥ १७½ ॥

कोपाविष्ट मुखवाली जो स्त्री अपने पतिको क्रोधभरी दृष्टिसे देखती है और कटु वाणीमें उससे बात करती है, वह उल्मुक नामक नरककुण्डमें जाती

कटूक्तिं तं प्रवदति सोल्मुकं सम्प्रयाति हि।
उल्कां ददाति तद्वक्त्रे सततं मम किङ्करः॥ १९

दण्डेन ताडयेन्मूर्ध्नि तल्लोमाब्दप्रमाणकम्।
ततो भवेन्मानवी च विधवा सप्तजन्मसु॥ २०

सा भुक्त्वा चैव वैधव्यं व्याधियुक्ता ततः शुचिः।
या ब्राह्मणी शूद्रभोग्या चान्धकूपे प्रयाति सा॥ २१

तप्तशौचोदके ध्वान्ते तदाहारी दिवानिशम्।
निवसेदतिसन्तप्ता मम दूतेन ताडिता॥ २२

शौचोदके निमग्ना सा यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
काकी जन्मसहस्राणि शतजन्मानि सूकरी॥ २३

शृगाली शतजन्मानि शतजन्मानि कुक्कुटी।
पारावती सप्तजन्म वानरी सप्तजन्मसु॥ २४

ततो भवेत्सा चाण्डाली सर्वभोग्या च भारते।
ततो भवेच्च रजकी यक्ष्मग्रस्ता च पुंश्चली॥ २५

ततः कुष्ठयुता तैलकारी शुद्धा भवेत्ततः।
निवसेद्वेधने वेश्या पुङ्गी च दण्डताडने॥ २६

जलरन्ध्रे वसेद्वेश्या कुलटा देहचूर्णके।
स्वैरिणी दलने चैव धृष्टा च शोषणे तथा॥ २७

निवसेद्यातनायुक्ता मम दूतेन ताडिता।
विण्मूत्रभक्षा सततं यावन्मन्वन्तरं सति॥ २८

ततो भवेद्विट्कृमिश्च लक्षवर्षं ततः शुचिः।
ब्राह्मणो ब्राह्मणीं गच्छेत्क्षत्रियां वापि क्षत्रियः॥ २९

है। वहाँपर मेरे दूत उसके मुखमें निरन्तर प्रज्वलित अंगार डालते रहते हैं और उसके सिरपर डंडेसे प्रहार करते रहते हैं। उसके पतिके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक उस स्त्रीको उस नरक-कुण्डमें रहना पड़ता है। उसके बाद मानवजन्म प्राप्त करके वह सात जन्मोंतक विधवा रहती है। विधवाका जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वह रोगसे ग्रस्त हो जाती है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १८—२०½ ॥

जो ब्राह्मणी शूद्रके साथ भोग करती है, वह अन्धकूप नामक नरककुण्डमें जाती है। अन्धकारमय तथा तप्त शौचजलयुक्त उस कुण्डमें वह दिन-रात पड़ी रहती है और उसी तप्त शौचजलका भोजन करती है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटी जाती हुई वह वहाँ अत्यन्त सन्तप्त रहती है। वह स्त्री चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त उस शौचजलमें डूबी रहती है। तत्पश्चात् वह एक हजार जन्मतक कौवी, एक सौ जन्मतक सूकरी, एक सौ जन्मतक सियारिन, एक सौ जन्मतक कुक्कुटी, सात जन्मतक कबूतरी और सात जन्मतक वानरी होती है। इसके बाद वह भारतवर्षमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है, उसके बाद वह व्यभिचारिणी धोबिन होती है और सदा यक्ष्मारोगसे ग्रस्त रहती है। तत्पश्चात् वह कोढ़रोगसे युक्त तैलकारी (तेलिन) होती है और उसके बाद शुद्ध हो जाती है॥ २१—२५½ ॥

वेश्या वेधनकुण्डमें, पुंगी दण्डताडनकुण्डमें, महावेश्या जलरन्ध्रकुण्डमें, कुलटा देहचूर्णकुण्डमें, स्वैरिणी दलनकुण्डमें और धृष्टा शोषणकुण्डमें वास करती है। हे साध्वि! मेरे दूतसे पीटी जाती हुई वह वहाँ यातना भोगती रहती है। उसे एक मन्वन्तरतक निरन्तर विष्ठा और मूत्रका भक्षण करना पड़ता है। उसके बाद वह एक लाख वर्षतक विष्ठाके कीटके रूपमें रहती है और फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २६—२८½ ॥

यदि ब्राह्मण किसी परायी ब्राह्मणीके साथ, क्षत्रिय क्षत्राणीके साथ, वैश्य किसी वैश्याके साथ और शूद्र किसी शूद्राके साथ भोग करता है; तो अपने

वैश्यो वैश्यां च शूद्रां वा शूद्रश्चापि व्रजेद्यदि।
सवर्णपरदारैश्च कषायं यान्ति ते जनाः॥ ३०

'भुक्त्वा कषायतप्तोदं निवसेद्वा शताब्दकम्।
ततो विप्रो भवेच्छुद्धस्ततो वै क्षत्रियादयः॥ ३१

योषितश्चापि शुद्ध्यन्तीत्येवमाह पितामहः।
क्षत्रियो ब्राह्मणीं गच्छेद्वैश्यो वापि पतिव्रते॥ ३२

मातृगामी भवेत्सोऽपि शूर्पे च नरके वसेत्।
शूर्पाकारैश्च कृमिभिर्ब्राह्मण्या सह भक्षितः॥ ३३

प्रतप्तमूत्रभोजी च मम दूतेन ताडितः।
तत्रैव यातनां भुङ्क्ते यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ३४

सप्तजन्म वराहश्च छागलश्च ततः शुचिः।
करे धृत्वा तु तुलसीं प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३५

मिथ्या वा शपथं कुर्यात्स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
गङ्गातोयं करे कृत्वा प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३६

शिलां वा देवप्रतिमां स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
दत्त्वा दक्षिणहस्तं च प्रतिज्ञां यो न पालयेत्॥ ३७

स्थित्वा देवगृहे वापि स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
आस्पृश्य ब्राह्मणं गां च ज्वालावह्निं व्रजेद् द्विजः॥ ३८

न पालयेत्प्रतिज्ञां च स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः॥ ३९

मिथ्यासाक्ष्यप्रदश्चैव स च ज्वालामुखं व्रजेत्।
एते तत्र वसन्त्येव यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ४०

तथाङ्गारप्रदग्धाश्च मम दूतेन ताडिताः।

ही वर्णकी परायी स्त्रियोंके साथ भोग करनेवाले वे पुरुष कषाय नामक नरकमें जाते हैं। वहाँ वे कषाय (खारा) तथा गर्म जल पीते हुए सौ वर्षतक पड़े रहते हैं। उसके बाद वे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पुरुष शुद्ध होते हैं। उसी प्रकार यातनाएँ भोगकर वे ब्राह्मणी आदि स्त्रियाँ भी शुद्ध होती हैं—ऐसा पितामह ब्रह्माने कहा है॥ २९—३१½ ॥

हे पतिव्रते! जो क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी ब्राह्मणीके साथ समागम करता है, वह मातृगामी होता है और वह शूर्प नामक नरकमें वास करता है। ब्राह्मणीसहित वह मनुष्य सूपके आकारके कीड़ोंके द्वारा नोचा जाता है। वहाँ वह अत्यन्त गर्म मूत्रका सेवन करता है और मेरे दूत उसे पीटते हैं। वहाँपर वह चौदह इन्द्रोंके आयुपर्यन्त यातना भोगता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक बकरा होता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ ३२—३४½ ॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसीदल लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता अथवा मिथ्या शपथ लेता है, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी प्रकार जो मनुष्य अपने हाथमें गंगाजल, शालग्रामशिला अथवा किसी देवताकी प्रतिमा लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो मनुष्य किसी दूसरे व्यक्तिके दाहिने हाथमें अपना दायाँ हाथ रखकर अथवा किसी देवालयमें स्थित होकर की गयी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो द्विज किसी ब्राह्मण अथवा गायका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी तरह जो मनुष्य अपने मित्रके साथ द्रोह करता है, कृतघ्न है, विश्वासघात करता है और झूठी गवाही देता है, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। ये लोग उस नरकमें चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। मेरे दूत अंगारोंसे उन्हें दागते हैं और बहुत पीटते हैं॥ ३५—४०½ ॥

चाण्डालस्तुलसीं स्पृष्ट्वा सप्तजन्म ततः शुचिः॥ ४१

म्लेच्छो गङ्गाजलस्पर्शी पञ्चजन्म ततः शुचिः।
शिलास्पर्शी विट्कृमिश्च सप्तजन्मसु सुन्दरि॥ ४२

अर्चास्पर्शी ब्रह्मकृमिः सप्तजन्म ततः शुचिः।
दक्षहस्तप्रदाता च सर्पश्च सप्तजन्मसु॥ ४३

ततो भवेद् ब्रह्महीनो मानवश्च ततः शुचिः।
मिथ्यावादी देवगृहे देवलः सप्तजन्मसु॥ ४४

विप्रादिस्पर्शकारी च व्याघ्रजातिर्भवेद् ध्रुवम्।
ततो भवेच्च मूकः स बधिरश्च त्रिजन्मनि॥ ४५

भार्याहीनो बन्धुहीनो वंशहीनस्ततः शुचिः।
मित्रद्रोही च नकुलः कृतघ्नश्चापि गण्डकः॥ ४६

विश्वासघाती व्याघ्रश्च सप्तजन्मसु भारते।
मिथ्यासाक्षी च वक्तव्ये मण्डूकः सप्तजन्मसु॥ ४७

पूर्वान्सप्तापरान्सप्त पुरुषान्हन्ति चात्मनः।
नित्यक्रियाविहीनश्च जडत्वेन युतो द्विजः॥ ४८

यस्यानास्था वेदवाक्ये मन्दं हसति संततम्।
व्रतोपवासहीनश्च सद्वाक्यपरनिन्दकः॥ ४९

धूम्रान्धे च वसेत्सोऽपि शताब्दं धूम्रभक्षकः।
जलजन्तुर्भवेत्सोऽपि शतजन्मक्रमेण च॥ ५०
ततो नानाप्रकारश्च मत्स्यजातिस्ततः शुचिः।

तुलसीका स्पर्श करके मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक चाण्डाल होता है, उसके बाद उसकी शुद्धि होती है। गंगाजलका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला पाँच जन्मतक म्लेच्छ होता है, उसके बाद वह शुद्ध होता है। हे सुन्दरि! शालग्रामशिलाका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला सात जन्मतक विष्ठाका कीड़ा होता है। किसी देवप्रतिमाका स्पर्श करके जो मिथ्या प्रतिज्ञा करता है, वह सात जन्मतक ब्राह्मण-गृहस्थके घर कीड़ा होता है, इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है। किसीके दाहिने हाथपर अपना दाहिना हाथ रखकर मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक सर्प होता है। उसके बाद ब्रह्मज्ञानविहीन मानव होता है, पुनः शुद्ध हो जाता है। जो देवमन्दिरमें मिथ्या वचन बोलता है, वह सात जन्मतक देवल होता है। ब्राह्मण आदिको स्पर्श करके झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला निश्चितरूपसे बाघयोनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह तीन जन्मतक गूँगा और फिर तीन जन्मतक बहरा होता है। वह भार्यारहित, बन्धु-बान्धवोंसे विहीन तथा निःसन्तान रहता है, तत्पश्चात् शुद्ध हो जाता है। जो मित्रके साथ द्रोह करता है, वह नेवला होता है; जो दूसरोंका उपकार नहीं मानता, वह गैंडा होता है; जो विश्वासघाती होता है, वह सात जन्मतक भारतवर्षमें बाघ होता है और जो झूठी गवाही देता है, वह सात जन्मतक मेढक होता है। वह अपनी सात पीढ़ी पहले तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंका अधःपतन करा देता है॥ ४१—४७½ ॥

जो द्विज नित्यक्रियासे विहीन तथा जड़तासे युक्त है, वेदवाक्योंमें जिसकी आस्था नहीं है, जो कपटपूर्वक उनका सदा उपहास करता है, जो व्रत तथा उपवास नहीं करता और दूसरोंके उत्तम विचारोंकी निन्दा करता है, वह धूम्रान्ध नामक नरकमें धूमका ही भक्षण करते हुए एक सौ वर्षतक निवास करता है। उसके बाद वह क्रमसे सौ जन्मोंतक अनेक प्रकारका जलजन्तु होता है। तत्पश्चात् वह अनेक प्रकारकी मत्स्ययोनिमें जन्म लेता है, उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४८—५०½ ॥

यः करोत्युपहासं च देवब्राह्मणयोर्धने॥ ५१

पातयित्वा स पुरुषान्दशपूर्वान्दशापरान्।
सोऽयं याति च धूम्रान्धं धूम्रध्वान्तसमन्वितम्॥ ५२

धूम्रक्लिष्टो धूम्रभोजी वसेत्तत्र चतुर्गुणम्।
ततो मूषकजातिश्च सप्तजन्मसु भारते॥ ५३

ततो नानाविधाः पक्षिजातयः कृमिजातिभिः।
ततो नानाविधा वृक्षाः पशवश्च ततो नरः॥ ५४

विप्रो दैवज्ञजीवी च वैद्यजीवी चिकित्सकः।
लाक्षालोहादिव्यापारी रसादिविक्रयी च यः॥ ५५

स याति नागवेष्टं च नागैर्वेष्टितमेव च।
वसेत्स लोममानाब्दं तत्रैव नागपाशितः॥ ५६

ततो नानाविधाः पक्षिजातयश्च ततो नरः।
ततो भवेत्स गणको वैद्यश्च सप्तजन्मसु॥ ५७

गोपश्च कर्मकारश्च रङ्गकारस्ततः शुचिः।
प्रसिद्धानि च कुण्डानि कथितानि पतिव्रते॥ ५८

अन्यानि चाप्रसिद्धानि क्षुद्राणि सन्ति तत्र वै।
सन्ति पातकिनस्तेषु स्वकर्मफलभोगिनः।
भ्रमन्ति नानायोनिं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५९

जो मनुष्य देवता तथा ब्राह्मणकी सम्पत्तिका उपहास करता है, वह अपनी दस पीढ़ी पहले तथा दस पीढ़ी बादके पुरुषोंका पतन कराकर स्वयं धूम्र तथा अन्धकारसे युक्त धूम्रान्ध नामक नरकमें जाता है। वहाँपर धुएँसे कष्ट सहते हुए तथा धुएँका ही भोजन करते हुए वह चार सौ वर्षतक रहता है। उसके बाद वह भारतवर्षमें सात जन्मतक चूहेकी योनिमें जन्म पाता है। तदनन्तर वह अनेक प्रकारके पक्षियों तथा कीड़ोंकी योनिमें जाता है, उसके बाद अनेकविध वृक्ष तथा पशु होनेके अनन्तर वह मनुष्ययोनिमें जन्म ग्रहण करता है॥ ५१—५४॥

जो विप्र ज्योतिषविद्यासे अपनी आजीविका चलाता है, वैद्य होकर चिकित्सावृत्तिसे आजीविका चलाता है, लाख-लोहा आदिका व्यापार करता और रस आदिका विक्रय करता है; वह नागोंसे व्याप्त नागवेष्टन नामक नरकमें जाता है और नागोंसे आबद्ध होकर अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्षोंतक वहाँ निवास करता है, तत्पश्चात् उसे नानाविध पक्षी-योनियाँ मिलती हैं और उसके बाद वह मनुष्य होता है, तत्पश्चात् वह सात जन्मतक गणक और सात जन्मतक वैद्य होता है। पुनः गोप, कर्मकार और रंगकार होकर शुद्ध होता है॥ ५५—५७½॥

हे पतिव्रते! मैंने प्रसिद्ध नरककुण्डोंका वर्णन कर दिया। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे कुण्ड हैं, जो प्रसिद्ध नहीं हैं, अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये पापी लोग वहाँ जाते हैं और विविध योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं, अब तुम और क्या सुनना चाहती हो?॥ ५८-५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
नानाकर्मविपाकफलकथनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

~~O~~

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजद्वारा सावित्रीसे देवोपासनासे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलोंको कहना

सावित्र्युवाच

धर्मराज महाभाग वेदवेदाङ्गपारग।
नानापुराणेतिहासे यत्सारं तत्प्रदर्शय॥ १

सावित्री बोली—हे वेद-वेदांगमें पारंगत महाभाग धर्मराज! नानाविध पुराणों तथा इतिहासोंमें जो सारस्वरूप है, उसे प्रदर्शित कीजिये। अब आप

सर्वेषु सारभूतं यत्सर्वेष्टं सर्वसम्मतम्।
कर्मच्छेदबीजरूपं प्रशस्तं सुखदं नृणाम्॥ २

सर्वप्रदं च सर्वेषां सर्वमङ्गलकारणम्।
भयं दुःखं न पश्यन्ति येन वै सर्वमानवाः॥ ३

कुण्डानि ते न पश्यन्ति तेषु नैव पतन्ति च।
न भवेद्येन जन्मादि तत्कर्म वद साम्प्रतम्॥ ४

किमाकाराणि कुण्डानि तानि वा निर्मितानि च।
के च केनैव रूपेण तत्र तिष्ठन्ति पापिनः॥ ५

स्वदेहे भस्मसाद्भूते याति लोकान्तरं नरः।
केन देहेन वा भोगं करोति च शुभाशुभम्॥ ६

सुचिरं क्लेशभोगेन कथं देहो न नश्यति।
देहो वा किंविधो ब्रह्मंस्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ ७

श्रीनारायण उवाच

सावित्रीवचनं श्रुत्वा धर्मराजो हरिं स्मरन्।
कथां कथितुमारेभे कर्मबन्धनिकृन्तनीम्॥ ८

धर्मराज उवाच

वत्से चतुर्षु वेदेषु धर्मेषु संहितासु च।
पुराणेष्वितिहासेषु पाञ्चरात्रादिकेषु च॥ ९

अन्येषु धर्मशास्त्रेषु वेदाङ्गेषु च सुव्रते।
सर्वेष्टं सारभूतं च पञ्चदेवानुसेवनम्॥ १०

जन्ममृत्युजराव्याधिशोकसन्तापनाशनम्।
सर्वमङ्गलरूपं च परमानन्दकारणम्॥ ११

कारणं सर्वसिद्धीनां नरकार्णवतारणम्।
भक्तिवृक्षाङ्कुरकरं कर्मवृक्षनिकृन्तनम्॥ १२

विमोक्षसोपानमिदमविनाशपदं स्मृतम्।
सालोक्यसार्ष्टिसारूप्यसामीप्यादिप्रदं शुभम्॥ १३

मुझसे उस कर्मका वर्णन कीजिये; जो सबका सारभूत, सबका अभीष्ट, सर्वसम्मत, कर्मोंका उच्छेद करनेके लिये बीजरूप, परम श्रेष्ठ, मनुष्योंको सुख देनेवाला, सब कुछ प्रदान करनेवाला तथा सभीका सब प्रकारका कल्याण करनेवाला है और जिसके प्रभावसे सभी मनुष्य भय तथा दुःखका अनुभव नहीं करते, नरककुण्डोंको उन्हें देखना नहीं पड़ता, वे उनमें नहीं गिरते तथा जिससे उनका जन्म आदि नहीं होता है॥ १—४॥

उन नरककुण्डोंके आकार कैसे हैं और वे किस प्रकार बने हैं? कौन-कौन पापी किस रूपसे वहाँ निवास करते हैं? अपने देहके भस्मसात् हो जानेपर मनुष्य किस देहसे परलोकमें जाता है और अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगता है? दीर्घकालतक महान् क्लेशका भोग करनेपर भी उस देहका नाश क्यों नहीं होता और वह देह किस प्रकारका होता है? हे ब्रह्मन्! यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५—७॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर धर्मराजने भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुए कर्मबन्धनको काटनेवाली कथा कहनी आरम्भ की॥ ८॥

धर्मराज बोले—हे वत्से! हे सुव्रते! चारों वेदों, धर्मशास्त्रों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों, पांचरात्र आदि धर्मग्रन्थों तथा अन्य धर्मशास्त्रों और वेदांगोंमें पाँच देवताओंकी उपासनाको सर्वेष्ट तथा सारभूत बताया गया है॥ ९-१०॥

यह देवोपासना जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा संतापका नाश करनेवाली; सर्वमंगलरूप; परम आनन्दका कारण; सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली; नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेवाली; भक्तिरूपी वृक्षको अंकुरित करनेवाली; कर्मबन्धनरूपी वृक्षको काटनेवाली; मोक्षके लिये सोपानस्वरूप; शाश्वतपदस्वरूप; सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य तथा सामीप्य आदि मुक्तियोंको प्रदान करनेवाली तथा मंगलकारी बतायी गयी है॥ ११—१३॥

कुण्डानि यमदूतैश्च रक्षितानि सदा शुभे।
न हि पश्यन्ति स्वप्ने च पञ्चदेवार्चका नराः॥ १४

देवीभक्तिविहीना ये ते पश्यन्ति ममालयम्।
यान्ति ये हरितीर्थं वा श्रयन्ति हरिवासरम्॥ १५

प्रणमन्ति हरिं नित्यं हर्यर्चां कल्पयन्ति च।
न यान्ति तेऽपि घोरां च मम संयमिनीं पुरीम्॥ १६

त्रिसन्धिपूता विप्राश्च शुद्धाचारसमन्विताः।
निवृत्तिं नैव लप्स्यन्ति देवीसेवां विना नराः॥ १७

स्वधर्मनिरताचाराः स्वधर्मनिरतास्तथा।
गच्छन्तो मृत्युलोकं च दुर्दृशा मम किङ्कराः॥ १८

भीताः शिवोपासकेभ्यो वैनतेयादिवोरगाः।
स्वदूतं पाशहस्तं च गच्छन्तं वारयाम्यहम्॥ १९

यास्यन्ति ते च सर्वत्र हरिदासाश्रमं विना।
कृष्णमन्त्रोपासकाच्च वैनतेयादिवोरगाः॥ २०

देवीमन्त्रोपासकानां नाम्नाञ्चैव निकृन्तनम्।
करोति नखलेखन्या चित्रगुप्तश्च भीतवत्॥ २१

मधुपर्कादिकं तेषां कुरुते च पुनः पुनः।
विलङ्घ्य ब्रह्मलोकं च लोकं गच्छन्ति ते सति॥ २२

दुरितानि च नश्यन्ति येषां संस्पर्शमात्रतः।
ते महाभाग्यवन्तो हि सहस्रकुलपावनाः॥ २३

यथा च प्रज्वलद्वह्नौ शुष्कानि च तृणानि च।
प्राप्नोति मोहः सम्मोहं तांश्च दृष्ट्वा च भीतवत्॥ २४

कामश्च कामिनं याति लोभक्रोधौ ततः सति।
मृत्युः प्रलीयते रोगो जरा शोको भयं तथा॥ २५
कालः शुभाशुभं कर्म हर्षो भोगस्तथैव च।

हे शुभे! यमदूत इन नरककुण्डोंकी सदा रखवाली किया करते हैं। पंचदेवोंकी आराधना करनेवाले मनुष्योंको स्वप्नमें भी इन कुण्डोंका दर्शन नहीं होता। जो भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं, वे ही मेरी पुरीको देखते हैं॥ १४१/२॥

जो भगवान्‌के तीर्थोंमें जाते हैं, एकादशीका व्रत करते हैं, भगवान् श्रीहरिको नित्य प्रणाम करते हैं और उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं, उन्हें भी मेरी भयंकर संयमिनी पुरीमें नहीं जाना पड़ता॥ १५-१६॥

त्रिकाल सन्ध्यासे पवित्र तथा विशुद्ध सदाचारसे युक्त ब्राह्मण भी बिना भगवतीकी उपासनाके मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते॥ १७॥

अपने धार्मिक आचार-विचारसे सम्पन्न तथा अपने धर्ममें संलग्न रहनेवालोंको मृत्युलोक गये हुए मेरे दूत दिखायी नहीं पड़ते। मेरे दूत शिवके उपासकोंसे उसी तरह भयभीत होते हैं, जैसे गरुड़से सर्प। हाथमें पाश लिये हुए अपने दूतको शिवोपासककी ओर जाते देखकर मैं उसे रोक देता हूँ॥ १८-१९॥

मेरे दूत भगवान् श्रीहरिके भक्तोंके आश्रमको छोड़कर सभी जगह जा सकते हैं। श्रीकृष्णके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंसे मेरे दूत गरुड़से सर्पकी भाँति डरते हैं॥ २०॥

[पाप करनेवालोंकी सूचीसे] देवीके मन्त्रोपासकोंके लिखे नामोंको चित्रगुप्त भयभीत होकर अपनी नखरूपी लेखनीसे काट देते हैं; साथ ही मधुपर्क आदिसे बार-बार उनका सत्कार करते हैं। हे सति! वे भक्त ब्रह्मलोक पार करके भगवतीके लोक (मणिद्वीप)-को चले जाते हैं॥ २१-२२॥

जिनके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, वे [भक्त] महान् सौभाग्यशाली हैं। वे हजारों कुलोंको पवित्र कर देते हैं। जलती हुई अग्निमें पड़े सूखे पत्तोंकी भाँति उनके पाप जल जाते हैं। उन भक्तोंको देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है, हे साध्वि! काम निर्मूल हो जाता है, लोभ तथा क्रोध नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु विलीन हो जाती है; इसी प्रकार रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग—ये सब प्रभावहीन हो जाते हैं॥ २३—२५$\frac{१}{२}$॥

ये ये न यान्ति तां पीडां कथितास्ते मया सति॥ २६

शृणु देहविवरणं कथयामि यथागमम्।
पृथिवी वायुराकाशस्तेजस्तोयमिति स्फुटम्॥ २७

देहिनां देहबीजं च स्रष्टृसृष्टिविधौ परम्।
पृथिव्यादिपञ्चभूतैर्यो देहो निर्मितो भवेत्॥ २८

स कृत्रिमो नश्वरश्च भस्मसाच्च भवेदिह।
बद्धोऽङ्गुष्ठप्रमाणश्च यो जीवः पुरुषः कृतः॥ २९

बिभर्ति सूक्ष्मं देहं तं तद्रूपं भोगहेतवे।
स देहो न भवेद्भस्म ज्वलदग्नौ ममालये॥ ३०

जलेन नष्टो देही वा प्रहारे सुचिरं कृते।
न शस्त्रेण न वास्त्रेण सुतीक्ष्णकण्टके तथा॥ ३१

तप्तद्रवे तप्तलोहे तप्तपाषाण एव च।
प्रतप्तप्रतिमाश्लेषे यत्पूर्वपतनेऽपि च॥ ३२

न दग्धो न च भग्नः स भुङ्क्ते सन्तापमेव च।
कथितो देहवृत्तान्तः कारणं च यथागमम्।
कुण्डानां लक्षणं सर्वं बोधाय कथयामि ते॥ ३३

हे साध्वि! जो-जो लोग उस नारकीय पीड़ाको प्राप्त नहीं करते, उनके विषयमें मैंने बता दिया। अब आगम-शास्त्रके अनुसार देहका विवरण बताता हूँ, उसे सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व स्पष्ट ही हैं। स्रष्टाके सृष्टिविधानमें प्राणियोंके लिये एक देहबीज निर्मित होता है। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे जो देह निर्मित होता है, वह कृत्रिम तथा नश्वर है और इस लोकमें ही वह भस्मसात् हो जाता है॥ २६—२८½ ॥

उस शरीरमें जो जीव आबद्ध रहता है, वह उस समय अँगूठेके आकारवाले पुरुषके रूपमें हो जाता है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये वह जीव सूक्ष्मरूपसे उस देहको धारण करता है। मेरी पुरीमें प्रज्वलित अग्निमें डाले जानेपर भी वह देह भस्म नहीं होता॥ २९-३०॥

वह सूक्ष्म यातनाशरीर न तो जलमें नष्ट होता है और न दीर्घकालतक प्रहार करनेपर ही नष्ट होता है। उस शरीरको अस्त्र अथवा शस्त्रसे नष्ट नहीं किया जा सकता। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले काँटे, तपते हुए तेल, तप्त लोहे और तप्त पाषाणपर पड़नेपर तथा अत्यन्त तप्त प्रतिमासे सटानेपर और पूर्वकथित नरककुण्डोंमें गिरानेपर भी वह यातनाशरीर न तो दग्ध होता है और न भग्न ही होता है; अपितु कष्ट ही भोगता रहता है। [हे साध्वि!] आगमशास्त्रके अनुसार देहवृत्तान्त तथा कारण आदि मैंने बता दिये, अब तुम्हारी जानकारीके लिये नरककुण्डोंका लक्षण बताता हूँ॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे देवपूजनात् सर्वारिष्टनिवृत्तिवर्णनं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

विभिन्न नरककुण्ड तथा वहाँ दी जानेवाली यातनाका वर्णन

धर्मराज उवाच

पूर्णेन्दुमण्डलाकारं सर्वं कुण्डं च वर्तुलम्।
निम्नं पाषाणभेदैश्च पाचितं बहुभिः सति॥ १

धर्मराज बोले—हे साध्वि! वे सभी नरककुण्ड पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गोलाकार तथा बहुत गहरे हैं। वे अनेक प्रकारके पत्थरोंसे बनाये गये हैं। वे कुण्ड नाशवान् नहीं हैं और प्रलयकालतक बने रहते हैं।

न नश्वरं चाप्रलयं निर्मितं चेश्वरेच्छया।
क्लेशदं पातकानां च नानारूपं तदालयम्॥ २

ज्वलदङ्गाररूपं च शतहस्तशिखान्वितम्।
परितः क्रोशमानं च वह्निकुण्डं प्रकीर्तितम्॥ ३

महाशब्दं प्रकुर्वद्भिः पापिभिः परिपूरितम्।
रक्षितं मम दूतैश्च ताडितैश्चापि सन्ततम्॥ ४

प्रतप्तोदकपूर्णं च हिंस्रजन्तुसमन्वितम्।
महाघोरं काकुशब्दं प्रहारेण दृढेन च॥ ५

क्रोशार्धमानं तद्दूतैस्ताडितैर्मम पार्षदैः।
तप्तक्षारोदकैः पूर्णं पुनः काकैश्च सङ्कुलम्॥ ६

सङ्कुलं पापिभिश्चैव क्रोशमानं भयानकम्।
त्राहीति शब्दं कुर्वद्भिर्मम दूतैश्च ताडितैः॥ ७

प्रचलद्भिरनाहारैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।
विड्भिरेव कृतं पूर्णं क्रोशमानं च कुत्सितम्॥ ८

अतिदुर्गन्धिसंसक्तं व्याप्तं पापिभिरन्वहम्।
ताडितैर्मम दूतैश्च तदाहारैः सुदारुणैः॥ ९

रक्षेति शब्दं कुर्वद्भिस्तत्कीटैरेव भक्षितैः।
तप्तमूत्रद्रवैः पूर्णं मूत्रकीटैश्च सङ्कुलम्॥ १०

युक्तं महापातकिभिस्तत्कीटैर्भक्षितैः सदा।
गव्यूतिमानं ध्वान्ताक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ११
मद्दूतैस्ताडितैर्घोरैः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।

भगवान्‌की इच्छासे उनकी रचना की गयी है, वे पापियोंको क्लेश देनेवाले हैं और अनेक रूपोंवाले हैं॥ १-२॥

चारों ओरसे एक कोसके विस्तारवाले, सौ हाथ ऊपरतक उठती हुई लपटोंवाले तथा प्रज्वलित अंगारके रूपवाले कुण्डको अग्निकुण्ड कहा गया है। भयानक चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह भरा रहता है। उन पापियोंको पीटनेवाले मेरे दूत निरन्तर उस कुण्डकी रक्षामें तत्पर रहते हैं॥ ३-४॥

तप्तजल तथा हिंसक जन्तुओंसे भरा पड़ा, अत्यन्त भयंकर तथा आधे कोसके विस्तारवाला कुण्ड तप्तकुण्ड कहा गया है, जो मेरे सेवकों तथा दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे युक्त रहता है। उनके दृढ़ प्रहार करनेपर वे नारकी जीव उसमें चिल्लाते रहते हैं॥ ५$\frac{१}{२}$॥

तप्तक्षारोदकुण्ड एक कोश परिमाणवाला है, वह भयानक कुण्ड खौलते हुए खारे जलसे परिपूर्ण तथा कौवोंसे भरा पड़ा रहता है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जानेपर 'मेरी रक्षा करो'—ऐसे शब्दका जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड परिपूर्ण रहता है। आहार न मिलनेके कारण सूखे कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले पापी उस कुण्डमें इधर-उधर भागते फिरते हैं॥ ६-७$\frac{१}{२}$॥

एक कोसके विस्तारवाला विट्कुण्ड है। वह दारुण नरक विष्ठासे सदा पूर्ण रहता है, उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध फैली रहती है। मेरे महानिर्दयी दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, 'मेरी रक्षा करो'—ऐसे शब्द करके चिल्लाते हुए तथा विष्ठाका आहार करनेवाले पापियोंसे वह नरककुण्ड सदा भरा रहता है। विष्ठाके कीड़े उन पापियोंको सदा काटते रहते हैं॥ ८-९$\frac{१}{२}$॥

मूत्रकुण्ड नामक नरक खौलते हुए मूत्रसे भरा रहता है। उसमें मूत्रके कीड़े सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस नरककुण्डमें मूत्रके कीड़ोंद्वारा निरन्तर काटे जाते हुए तथा मेरे भयानक दूतों द्वारा लगातार पीटे जानेके कारण जोर-जोर चिल्लाते हुए और सूखे कण्ठ, ओष्ठ और तालुवाले महापापी भरे पड़े रहते हैं॥ १०-११$\frac{१}{२}$॥

श्लेष्मपूर्णं प्रशमितं तत्कीटैः पूरितं सदा॥ १२

तद्भोजिभिः पापिभिश्च वेष्टितं वेष्टितैः सदा।
क्रोशार्धं गरकुण्डं च गरभोजिभिरन्वितम्॥ १३

गरकीटैर्भक्षितैश्च पापिभिः पूर्णमेव च।
ताडितैर्मम दूतैश्च शब्दकृद्भिश्च कम्पितैः॥ १४

सर्पाकारैर्वज्रदंष्ट्रैः शुष्ककण्ठैः सुदारुणैः।
नेत्रयोर्मलपूर्णं च क्रोशार्धं कीटसंयुतम्॥ १५

पापिभिः सङ्कुलं शश्वद् भ्रमद्भिः कीटभक्षितैः।
वसारसेन सम्पूर्णं क्रोशतुर्यं सुदुःसहम्॥ १६

तद्भोजिभिः पातकिभिर्मम दूतैश्च ताडितैः।
शुक्रकुण्डं क्रोशमितं शुक्रकीटैश्च संयुतम्॥ १७

पापिभिः सङ्कुलं शश्वद् द्रवद्भिः कीटभक्षितैः।
दुर्गन्धिरक्तपूर्णं च वापीमानं गभीरकम्॥ १८

तद्भोजिभिः पापिभिश्च सङ्कुलं कीटभक्षितम्।
पूर्णं नेत्राश्रुभिस्तप्तं बहुपापिभिरन्वितम्॥ १९

वापीतुर्यप्रमाणं च रुदद्भिः कीटभक्षितैः।
नृणां गात्रमलैर्युक्तं तद्भक्षैः पापिभिर्युतम्॥ २०
ताडितैर्मम दूतैश्च व्यग्रैश्च कीटभक्षितैः।

श्लेष्मकुण्ड नामक नरक श्लेष्मा आदि अपवित्र वस्तुओं तथा उनके कीड़ोंसे सदा व्याप्त रहता है। वह नरककुण्ड श्लेष्माका ही निरन्तर भोजन करनेवाले पापीजनोंसे भरा पड़ा हुआ है॥ १२½ ॥

गरकुण्डका विस्तार आधे कोसका है, जो विषका भोजन करनेवाले पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। सर्पके समान आकारवाले, वज्रमय दाँतोंसे युक्त, सूखे कण्ठवाले तथा अत्यन्त भयंकर विषैले जन्तुओंके द्वारा काटे जाते हुए और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते तथा अत्यन्त भयके मारे काँपते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड भरा पड़ा रहता है॥ १३-१४½ ॥

आधे कोसके विस्तारवाला दूषिकाकुण्ड है, जो आँखोंके मल तथा कीटोंसे सदा भरा रहता है। कीड़ोंके काटनेपर व्याकुल होकर इधर-उधर सदा घूमते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड व्याप्त रहता है॥ १५½ ॥

वसारससे परिपूर्ण तथा चार कोसके विस्तारवाला वसाकुण्ड है, जो अत्यन्त दुःसह है। वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए वसाभोजी पापियोंसे पूर्णतः भरा रहता है॥ १६½ ॥

एक कोसके विस्तारवाला शुक्रकुण्ड है। शुक्रके कीड़ोंसे वह व्याप्त रहता है। कीड़ोंके द्वारा काटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ १७½ ॥

वापीके समान परिमाणवाला, दुर्गन्धित रक्तसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त गहरा रक्तकुण्ड नामक नरक है। उसमें रक्तका पान करनेवाले पापी तथा उन्हें काटनेवाले कीड़े भरे रहते हैं॥ १८½ ॥

अश्रुकुण्ड नामक नरक चार बावलियोंके समान विस्तारवाला है। वह अत्यन्त तप्त तथा नेत्रके आँसुओंसे परिपूर्ण रहता है एवं वहाँके कीड़ोंके काटनेपर रोते हुए बहुत-से पापियोंसे भरा पड़ा रहता है॥ १९½ ॥

मनुष्यके शरीरके मलोंसे तथा मलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे युक्त गात्रकुण्ड नामक नरक है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा वहाँके कीटोंद्वारा काटे जाते हुए व्याकुल पापियोंसे वह कुण्ड व्याप्त रहता है॥ २०½ ॥

कर्णविट्परिपूर्णं च तद्भक्षैः पापिभिर्वृतम्॥ २१

वापीतुर्यप्रमाणं च ब्रुवद्भिः कीटभक्षितैः।
मज्जापूर्णं नराणां च महादुर्गन्धिसंयुतम्॥ २२

महापातकिभिर्युक्तं वापीतुर्यप्रमाणकम्।
परिपूर्णं स्निग्धमांसैर्मम दूतैश्च ताडितैः॥ २३

पापिभिः सङ्कुलं चैव वापीमानं भयानकम्।
कन्याविक्रयिभिश्चैव तद्भक्ष्यैः कीटभक्षितैः॥ २४

पाहीति शब्दं कुर्वद्भिस्त्रासितैश्च भयानकैः।
वापीतुर्यप्रमाणं च नखादिकचतुष्टयम्॥ २५

पापिभिः संयुतं शश्वन्मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्तताम्रकुण्डं च ताम्रोपर्युल्मुकान्वितम्॥ २६

ताम्राणां प्रतिमालक्षैः प्रतप्तैर्व्याप्तं सदा।
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्॥ २७

गव्यूतिमानं विस्तीर्णं मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्तलोहधारं च ज्वलदङ्गारसंयुतम्॥ २८

लोहानां प्रतिमाश्लिष्टैः रुदद्भिः पापिभिर्युतम्।
प्रत्येकं प्रतिमाश्लिष्टैः शश्वत्प्रज्वलितैर्भिया॥ २९

रक्ष रक्षेति शब्दं च कुर्वद्भिर्दूतताडितैः।
महापातकिभिर्युक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ३०

भयानकं ध्वान्तयुक्तं लोहकुण्डं प्रकीर्तितम्।
चर्मकुण्डं तप्तसुराकुण्डं वाप्यर्धमेव च॥ ३१
तद्भोजिपापिभिर्व्याप्तं मम दूतैश्च ताडितैः।

चार बावलियोंके समान विस्तारवाला कर्णविट्-कुण्ड है। वह कानोंकी मैलसे सदा भरा रहता है। उसी मैलको खानेवाले तथा कीड़ोंके काटनेपर चिल्लाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ २१½ ॥

मनुष्योंकी मज्जासे भरा हुआ तथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मज्जाकुण्ड है। चार बावलियोंके विस्तारवाला वह नरककुण्ड महापापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २२½ ॥

एक वापीके समान विस्तारवाला अत्यन्त भयानक मांसकुण्ड है। वह कुण्ड गीले मांसों तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे भरा रहता है। कन्याका विक्रय करनेवाले वे पापी वहाँ रहकर उसी मांसका भक्षण करते हैं और भयानक कीड़ोंके काटनेपर अत्यन्त भयभीत होकर 'बचाओ-बचाओ'—इस शब्दको बोलते रहते हैं॥ २३-२४½ ॥

चार बावलियोंके विस्तारवाले नखादि चार कुण्ड हैं। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड भरे पड़े रहते हैं॥ २५½ ॥

ताम्रमयी उल्कासे युक्त तथा जलते हुए ताँबेके सदृश ताम्रकुण्ड है। वह ताँबेकी लाखों अतितप्त प्रतिमाओंसे परिपूर्ण रहता है। दो कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे सटानेपर रोते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २६-२७½ ॥

प्रज्वलित लोहधार तथा दहकते हुए अंगारोंसे युक्त लोहकुण्ड लोहेकी प्रतिमाओंसे चिपके हुए तथा रोते हुए पापियोंसे भरा रहता है। वहाँ निरन्तर दग्ध होते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे श्लिष्ट और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसे शब्द करनेवाले महापापियोंसे भरे पड़े, भयानक, दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस कुण्डको लोहकुण्ड कहा गया है॥ २८—३०½ ॥

चर्मकुण्ड और तप्तसुराकुण्ड आधी बावलीके प्रमाणवाले हैं। चर्म खाते हुए तथा सुरापान करते हुए और मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड सदा व्याप्त रहते हैं॥ ३१½ ॥

अतः शाल्मलिकुण्डं च वृक्षकण्टकशोभितम्॥ ३२

लक्षपौरुषमानं च क्रोशमानं च दुःखदम्।
धनुर्मानैः कण्टकैश्च सुतीक्ष्णैः परिवेष्टितम्॥ ३३

प्रत्येकं विद्धगात्रैश्च महापातकिभिर्युतम्।
वृक्षाग्रान्निपतद्भिश्च मम दूतैश्च पातितैः॥ ३४

जलं देहीति शब्दं च कुर्वद्भिः शुष्कतालुकैः।
महाभियातिव्यग्रैश्च दण्डैः सम्भग्नमस्तकैः॥ ३५

प्रचलद्भिर्यथा तप्ततैलजीविभिरेव च।
विषोदैस्तक्षकाणां च पूर्वं च क्रोशमानकम्॥ ३६

तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः।
प्रतप्ततैलपूर्णं च कीटादिपरिवर्जितम्॥ ३७

महापातकिभिर्युक्तं दग्धाङ्गारैश्च वेष्टितम्।
काकुशब्दं प्रकुर्वद्भिश्चलद्भिर्दूतपीडितैः॥ ३८

ध्वान्तयुक्तं क्रोशमानं क्लेशदं च भयानकम्।
शूलाकारैः सुतीक्ष्णाग्रैर्लोहशस्त्रैश्च वेष्टितम्॥ ३९

शस्त्रतल्पस्वरूपञ्च क्रोशतुर्यप्रमाणकम्।
वेष्टितं तत्पातकिभिः कुन्तविद्धैश्च वेष्टितैः॥ ४०

ताडितैर्मम दूतैश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकैः।
कीटैश्च शङ्कुप्रमितैः सर्पमानैर्भयङ्करैः॥ ४१

तीक्ष्णदन्तैश्च विकृतैर्व्याप्तं ध्वान्तयुतं सति।
महापातकिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥ ४२

द्विगव्यूतिप्रमाणं च पूयकुण्डं प्रचक्षते।
तद्भक्ष्यैः प्राणिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः॥ ४३

कण्टकमय वृक्षोंसे भरा शाल्मलीकुण्ड है। एक कोसके विस्तारवाले उस दुःखप्रद कुण्डमें लाखों पुरुष समा सकते हैं। वहाँ शाल्मलीवृक्षसे गिरकर तथा मेरे दूतोंद्वारा गिराये जाकर धनुषकी लम्बाईवाले अत्यन्त तीखे काँटे बिछे रहते हैं। एक-एक करके सभी पापियोंके अंग काँटोंसे छिद उठते हैं। सूखे तालुवाले वे पापी 'मुझे जल दो'—ऐसा शब्द करते रहते हैं। जिस प्रकार प्रतप्त तेलमें पड़नेपर जीव छटपटा उठते हैं, वैसे ही मेरे दूतोंके डण्डोंके प्रहारसे भग्न सिरवाले वे महापापी महान् भयसे अत्यधिक व्याकुल होकर चकराने लगते हैं॥ ३२—३५½ ॥

विषोदकुण्ड एक कोसके परिमाणवाला है। वह कुण्ड तक्षकके समान विषधर जीवों, मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए और उसी विषका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ३६½ ॥

प्रतप्ततैलकुण्डमें सदा खौलता हुआ तेल भरा रहता है। उसमें कीड़े आदि नहीं रहते। चारों ओर जलते हुए अंगारोंसे घिरा हुआ वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेसे चीत्कार करते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए महापापियोंसे भरा रहता है। एक कोसके विस्तारवाला वह नरककुण्ड बड़ा ही भयानक, क्लेशप्रद तथा अन्धकारपूर्ण है॥ ३७-३८½ ॥

कुन्तकुण्ड त्रिशूलके समान आकारवाले तथा अत्यन्त तीखी धारवाले लौहके अस्त्रोंसे परिपूर्ण है। चार कोसके विस्तारवाला वह नरककुण्ड शस्त्रोंकी शय्याके समान प्रतीत होता है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, भालोंसे बिँधे हुए, सूखे कंठ; ओठ तथा तालुवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ३९-४०½ ॥

हे साध्वि! शंकु तथा सर्पके आकार-प्रकारवाले, भयंकर, तीक्ष्ण दाँतोंवाले तथा विकृत कीड़ोंसे युक्त कृमिकुण्ड है। वह अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है॥ ४१-४२ ॥

पूयकुण्ड चार कोसके विस्तारवाला कहा गया है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पूयभक्षी पापियोंसे वह कुण्ड परिपूर्ण रहता है॥ ४३ ॥

तालवृक्षप्रमाणैश्च सर्पकोटिभिरावृतम्।
सर्पवेष्टितगात्रैश्च पापिभिः सर्पभक्षितैः॥ ४४

सङ्कुलं शब्दकृद्भिश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
कुण्डत्रयं मशादीनां पूर्णं च मशकादिभिः॥ ४५

सर्वं क्रोशार्धमानं च महापातकिभिर्युतम्।
हस्तपादादिबद्धैश्च क्षतजौघेन लोहितैः॥ ४६

हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्ताडितैर्मम पार्षदैः।
वज्रवृश्चिकयोः कुण्डं ताभ्यां च परिपूरितम्॥ ४७

वाप्यर्धं पापिभिर्युक्तं वज्रवृश्चिकदंशितैः।
कुण्डत्रयं शरादीनां तैरेव परिपूरितम्॥ ४८

तैर्विद्धैः पापिभिर्युक्तं वाप्यर्धं रक्तलोहितैः।
तप्ततोयोदकैः पूर्णं सध्वान्तं गोलकुण्डकम्॥ ४९

कीटैः शङ्कुसमानैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।
वाप्यर्धमानं भीतैश्च पापिभिः कीटभक्षितैः॥ ५०

रुदद्भिः क्रोशमानैश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
अतिदुर्गन्धिसंयुक्तं दुःखदं पापिनां सदा॥ ५१

दारुणैर्विकृताकारैर्भक्षितं पापिभिर्युतम्।
वाप्यर्धं परिपूर्णं च जलस्थैर्नक्रकोटिभिः॥ ५२

विण्मूत्रश्लेष्मभक्षैश्च संयुतं शतकोटिभिः।
काकैश्च विकृताकारैर्भक्षितैः पापिभिर्युतम्॥ ५३

सर्पकुण्ड ताड़के वृक्षके समान लम्बाईवाले करोड़ों सर्पोंसे युक्त है। सर्पोंसे जकड़े हुए शरीरवाले, सर्पोंके द्वारा डँसे जाते हुए तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ ४४½ ॥

मशक आदि जन्तुओंसे पूर्ण मशककुण्ड, दंशकुण्ड और गरलकुण्ड—ये तीन नरक हैं। उन नरकोंका विस्तार आधे-आधे कोसका है। जिनके हाथ बँधे रहते हैं, रुधिरसे सभी अंग लाल रहते हैं तथा जो मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर 'हा-हा'—ऐसा शब्द करते रहते हैं—उन महापापियोंसे वे कुण्ड भरे रहते हैं॥ ४५-४६½ ॥

वज्र तथा बिच्छुओंसे परिपूर्ण वज्रकुण्ड तथा वृश्चिककुण्ड है। आधी वापीके विस्तारवाले वे कुण्ड वज्र तथा बिच्छुओंसे निरन्तर डँसे जाते हुए पापियोंसे भरे रहते हैं॥ ४७½ ॥

शरकुण्ड, शूलकुण्ड और खड्गकुण्ड—ये तीन नरककुण्ड उन्हीं शर, शूल और खड्गसे परिपूर्ण हैं। आधी वापीके परिमाणवाले वे कुण्ड उन तीनों अस्त्रोंसे बिँधे तथा रक्तसे लोहित शरीरवाले पापियोंसे व्याप्त रहते हैं॥ ४८½ ॥

गोलकुण्ड तप्त जलसे भरा हुआ तथा अन्धकारसे पूर्ण रहता है। आधी वापीके विस्तारवाला वह नरककुण्ड शंकुके समान आकारवाले कीड़ोंसे भक्षित होनेवाले पापियोंसे भरा रहता है। वह कुण्ड कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेपर भयभीत तथा व्याकुल होकर रोते हुए पापियोंसे सदा व्याप्त रहता है॥ ४९-५०½ ॥

अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त तथा पापियोंको निरन्तर दुःख देनेवाला नक्रकुण्ड है। नक्र आदि करोड़ों भयानक तथा विकृत आकारवाले जलचर जन्तुओंके द्वारा खाये जाते हुए पापियोंसे आधी वापीके परिमाणवाला वह कुण्ड भरा रहता है॥ ५१-५२॥

काककुण्ड भयानक तथा विकृत आकारवाले कौओंके द्वारा नोचे जाते हुए तथा विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मभोजी सैकड़ों-करोड़ों पापियोंसे सदा परिपूर्ण रहता है॥ ५३॥

मन्थानकुण्डं बीजकुण्डं ताभ्यां पूर्णं धनुःशतम्।
भक्षितैः पापिभिर्युक्तं शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ५४

धनुःशतं जीवयुक्तं पापिभिः सङ्कुलं सदा।
शब्दकृद्भिर्वज्रदंष्ट्रैः सान्द्रध्वान्तमयं परम्॥ ५५

वापीद्विगुणमानं च तप्तप्रस्तरनिर्मितम्।
ज्वलदङ्गारसदृशं चलद्भिः पापिभिर्युतम्॥ ५६

क्षुरधारोपमैस्तीक्ष्णैः पाषाणैर्निर्मितं परम्।
महापातकिभिर्युक्तं लालाकुण्डं च लोहितैः॥ ५७

क्रोशमात्रं च गम्भीरं मम दूतैश्च ताडितैः।
तप्ताञ्जनाचलाकारैः परिपूर्णं धनुःशतम्॥ ५८

चलद्भिः पापिभिर्युक्तं मम दूतैश्च ताडितैः।
पूर्णं चूर्णद्रवैः क्रोशमानं पापिभिरन्वितम्॥ ५९

तद्भोजिभिः प्रदग्धैश्च मम दूतैश्च ताडितैः।
कुण्डं कुलालचक्रं च घूर्णमानञ्च सन्ततम्॥ ६०

सुतीक्ष्णं षोडशारं च चूर्णितैः पापिभिर्युतम्।
अतीव वक्रं निम्नं च द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ६१

कन्दराकारनिर्माणं तप्तोदैश्च समन्वितम्।
महापातकिभिर्युक्तं भक्षितैर्जलजन्तुभिः॥ ६२
ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च ध्वान्तयुक्तं भयानकम्।

मन्थानकुण्ड तथा बीजकुण्ड—इन्हीं दोनों मन्थान तथा बीज नामक कीटोंसे भरे रहते हैं। इन कुण्डोंका परिमाण सौ धनुषके बराबर है। कीड़ोंके काटनेपर निरन्तर चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वे कुण्ड व्याप्त रहते हैं॥ ५४॥

हाहाकार करनेवाले पापियोंसे व्याप्त वज्रकुण्ड है। वज्रके समान दाँतवाले जन्तुओंसे युक्त तथा अत्यन्त घने अन्धकारसे आच्छादित उस नरककुण्डका विस्तार सौ धनुषके परिमाणके बराबर है॥ ५५॥

दो वापीके समान विस्तारवाला, अत्यन्त तप्त पत्थरोंसे निर्मित तथा जलते हुए अंगारके सदृश तप्तपाषाणकुण्ड है। वह व्याकुल होकर इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ ५६॥

छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे बना हुआ विशाल तीक्ष्णपाषाणकुण्ड है। वह महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है। रक्तसे लथपथ जीवोंसे भरा हुआ लालाकुण्ड है। कोसभरकी गहराईवाला यह कुण्ड मेरे दूतोंसे निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। इसी प्रकार सौ धनुषके परिमाणवाला मसीकुण्ड है, वह काजलके समान वर्णवाले तप्त पत्थरोंसे बना हुआ है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूर्णरूपसे भरा रहता है॥ ५७-५८½ ॥

तपे हुए बालूसे परिपूर्ण एक कोसके विस्तारवाला चूर्णकुण्ड है। [अत्यन्त दहकते हुए बालूसे] दग्ध उसी बालूका भोजन करनेवाले तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूरित रहता है॥ ५९½ ॥

कुम्हारके चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता हुआ, अत्यन्त तीक्ष्ण तथा सोलह अरोंवाला चक्रकुण्ड क्षत-विक्षत अंगोंवाले पापियोंसे भरा रहता है। चार कोसके विस्तारवाला, कन्दराके आकारवाला, अत्यन्त गहरा, टेढ़ा-मेढ़ा तथा सदा खौलते हुए जलसे परिपूर्ण वक्रकुण्ड है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारसे परिपूर्ण वह कुण्ड जल-जन्तुओंके काटने तथा तप्त जलसे दग्ध होनेके कारण चीत्कार करते हुए महापापियोंसे भरा रहता है॥ ६०—६२½ ॥

कोटिभिर्विकृताकारैः कच्छपैश्च सुदारुणैः॥ ६३

जलस्थैः संयुतं तैश्च भक्षितैः पापिभिर्युतम्।
ज्वालाकलापैस्तेजोभिर्निर्मितैः क्रोशमानकम्॥ ६४

शब्दकृद्भिः पातकिभिः संयुतं क्लेशदं सदा।
क्रोशमानञ्च गम्भीरं तप्तभस्मभिरन्वितम्॥ ६५

शश्वज्ज्वलद्भिः संयुक्तं पापिभिर्भस्मभक्षितैः।
तप्तपाषाणलोहानां समूहैः परिपूरितैः॥ ६६

पापिभिर्दग्धगात्रैश्च युक्तञ्च शुष्कतालुकैः।
क्रोशमानं ध्वान्तयुक्तं गम्भीरमतिदारुणम्॥ ६७

ताडितैश्च प्रदग्धैश्च दग्धकुण्डं प्रकीर्तितम्।
अतीवोर्मियुतं तोयं प्रतप्तक्षारसंयुतम्॥ ६८

नानाप्रकारैर्विरुतैर्जलजन्तुभिरन्वितम्।
द्विगव्यूतिप्रमाणं च गम्भीरं ध्वान्तसंयुतम्॥ ६९

तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं दंशितैर्जलजन्तुभिः।
ज्वलद्भिः शब्दकृद्भिश्च न पश्यद्भिः परस्परम्॥ ७०

प्रतप्तसूचीकुण्डञ्च कीर्तितं च भयानकम्।
असीव धारापत्रस्याऽप्युच्चैस्तालतरोरधः॥ ७१

क्रोशार्धमानं कुण्डं च पतत्पत्रसमन्वितम्।
पापिनां रक्तपूर्णं च वृक्षाग्रात्पततां ध्रुवम्।७२

परित्राहीति शब्दं च कुर्वतामसतामपि।
गम्भीरं ध्वान्तयुक्तं च रक्तकीटसमन्वितम्॥ ७३

तदसीपत्रकुण्डं च कीर्तितं च भयानकम्।
धनुःशतप्रमाणं च क्षुरधारास्त्रसंयुतम्॥ ७४
पापिनां रक्तपूर्णं च क्षुरधारं भयानकम्।

विकृत आकारवाले अत्यन्त भयानक करोड़ों कच्छपोंसे भरा हुआ कूर्मकुण्ड है। जलमें रहनेवाले कछुए वहाँके पापियोंको नोंचते रहते हैं। प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त ज्वालाकुण्ड है, जो एक कोसके विस्तारमें है। वह क्लेशप्रद कुण्ड चीखते-चिल्लाते हुए पापियोंसे सदा भरा रहता है॥ ६३-६४½ ॥

एक कोसकी गहराईवाला भस्मकुण्ड है। उस कुण्डमें अत्यन्त तपता हुआ भस्म व्याप्त रहता है। जलते भस्मको खानेके कारण वहाँके पापियोंके अंगोंमें निरन्तर दाह उत्पन्न होता रहता है। जो तप्त पाषाण तथा लोहेके समूहोंसे परिपूर्ण तथा जले हुए शरीरवाले पापियोंसे युक्त नरक है, उसे दग्धकुण्ड कहा गया है। वह अत्यन्त भयंकर, गहरा,एक कोसके विस्तारवाला तथा अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए तथा जलाये जाते हुए शुष्क तालुवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ६५—६७½ ॥

जो बड़ी-बड़ी लहरोंवाले खौलते हुए खारे जल तथा नाना प्रकारके शब्द करनेवाले जल-जंतुओंसे युक्त है, चार कोसके विस्तारमें फैला हुआ है, अत्यन्त गहरा तथा अन्धकारपूर्ण है, जल-जन्तुओंके काटनेपर चीत्कार करनेवाले तथा तापसे जलते रहनेवाले और घोर अन्धकारके कारण एक-दूसरेको न देख पानेवाले पापियोंसे सदा भरा रहता है, उस भयानक कुण्डको प्रतप्तसूचीकुण्ड कहा गया है॥ ६८—७०½ ॥

तलवारकी धारके समान तीखे पत्तोंवाले ऊँचे-ऊँचे ताड़के वृक्षोंके नीचे स्थित, एक कोसके परिमाणवाले, उन वृक्षोंसे गिरे हुए पत्तोंसे परिपूर्ण, वृक्षोंके अग्रभागसे गिराये जानेपर 'रक्षा करो-रक्षा करो'—ऐसा शब्द करनेवाले अधम पापियोंके रक्तसे भरे हुए, अत्यन्त गहरे, अन्धकारपूर्ण, रक्तके कीड़ोंसे व्याप्त तथा अत्यन्त भयानक कुण्डको असिपत्रकुण्ड कहा गया है॥ ७१—७३½ ॥

क्षुरधारकुण्ड सौ धनुषके बराबर विस्तार-वाला, छुरेकी धारके समान तीखे अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे परिपूर्ण और बड़ा ही भयानक है॥ ७४½ ॥

सूचीमुखास्त्रसंयुक्तं पापिरक्तौघपूरितम्॥ ७५

पञ्चाशद्धनुरायामं क्लेशदं सूचिकामुखम्।
कस्यचिज्जन्तुभेदस्य गोकाख्यस्य मुखाकृति॥ ७६

कूपरूपं गभीरं च धनुर्विंशत्प्रमाणकम्।
महापातकिनां चैव महत्क्लेशप्रदं परम्॥ ७७

तत्कीटभक्षितानां च नम्रास्यानां च सन्ततम्।
कुण्डं नक्रमुखाकारं धनुःषोडशमानकम्॥ ७८

गम्भीरं कूपरूपं च पापिनां सङ्कुलं सदा।
धनुःशतप्रमाणं च कीर्तितं गजदंशनम्॥ ७९

धनुस्त्रिंशत्प्रमाणं च कुण्डं च गोमुखाकृति।
पापिनां क्लेशदं शश्वद् गोमुखं परिकीर्तितम्॥ ८०

कालचक्रेण संयुक्तं भ्रममाणं भयानकम्।
कुम्भाकारं ध्वान्तयुक्तं द्विगव्यूतिप्रमाणकम्॥ ८१

लक्षपौरुषमानं च गम्भीरं विस्तृतं सति।
कुत्रचित्तप्ततैलं च ताम्रादिकुण्डमेव च॥ ८२

पापिनां च प्रधानैश्च मूर्च्छितैः कृमिभिर्युतम्।
परस्परं च नश्यद्भिः शब्दकृद्भिश्च सन्ततम्॥ ८३

ताडितैर्यमदूतैश्च मुसलैर्मुद्गरैस्तथा।
घूर्णमानैः पतद्भिश्च मूर्च्छितैश्च क्षणं क्षणम्॥ ८४

पातितैर्यमदूतैश्च रुदन्त्यस्मात्क्षणं पुनः।
यावन्तः पापिनः सन्ति सर्वकुण्डेषु सुन्दरि॥ ८५

ततश्चतुर्गुणाः सन्ति कुम्भीपाके च दुःखदे।
सुचिरं वध्यमानास्ते भोगदेहा न नश्वराः॥ ८६
सर्वकुण्डप्रधानं च कुम्भीपाकं प्रकीर्तितम्।

सूईकी नोंकवाले अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे सदा परिपूर्ण, पचास धनुषके बराबर विस्तारवाले तथा क्लेशप्रद कुण्डको सूचीमुखकुण्ड कहा गया है॥ ७५½ ॥

जो कुण्ड 'गोका' नामक जन्तुविशेषके मुखके समान आकृतिवाला, कुएँके समान गहरा, बीस धनुषके बराबर विस्तारवाला तथा महापापियोंके लिये अत्यन्त कष्टदायक है, वह गोकामुखकुण्ड है। उस नरकके कीड़ोंके काटनेसे वहाँके पापी जीव सदा अपना मुख नीचे किये रहते हैं॥ ७६-७७½ ॥

नक्र (मगर)-के मुखके समान आकृतिवाले कुण्डको नक्रमुखकुण्ड कहते हैं। वह सोलह धनुषके बराबर विस्तारवाला, गहरा, कुएँके सदृश तथा पापियोंसे परिपूर्ण है। गजदंशकुण्डको सौ धनुषके बराबर विस्तारवाला बताया गया है॥ ७८-७९ ॥

तीस धनुषके बराबर विस्तृत, गोके मुखकी आकृतिके तुल्य और पापियोंको निरन्तर क्लेश प्रदान करनेवाले कुण्डको गोमुखकुण्ड कहा गया है॥ ८० ॥

कुम्भीपाककुण्ड कालचक्रसे युक्त होकर निरन्तर चक्कर काटनेवाला तथा कुम्भके समान आकारवाला है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारपूर्ण इस कुण्डका विस्तार चार कोसमें है। हे साध्वि! यह नरक एक लाख पौरुष* (पोरसा) मानके बराबर गहरा तथा विस्तृत है। उसमें कहीं-कहीं तप्ततैल तथा ताम्रकुण्ड आदि अनेक कुण्ड हैं। उस कुण्डमें बड़े-बड़े पापी अचेत होकर पड़े रहते हैं। भयंकर कीड़ोंके काटनेपर चीत्कार करते हुए वे पापी एक-दूसरेको देखतक नहीं पाते हैं। मूसलों तथा मुद्गरोंसे मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए वे क्षण-क्षणमें कभी चक्कर खाने लगते हैं, कभी गिर पड़ते हैं और कभी मूर्च्छित हो जाते हैं। वे पापी क्षण-प्रतिक्षण यमदूतोंके द्वारा गिराये जानेपर रोने लगते हैं। हे सुन्दरि! जितने पापी अन्य सभी कुण्डोंमें हैं, उनसे चौगुने पापी केवल इस अति दुःखप्रद कुम्भीपाक नरकमें हैं। दीर्घकालतक यातना पानेपर भी उन भोगदेहोंका विनाश नहीं होता। वह कुम्भीपाक समस्त कुण्डोंमें मुख्य कहा गया है॥ ८१—८६½ ॥

---

* सामान्य पुरुषकी लम्बाईको पौरुष (पोरसा) कहा गया है।

कालनिर्मितसूत्रेण निबद्धा यत्र पापिनः॥ ८७

उत्थापिताश्च दूतैश्च क्षणमेव निमज्जिताः।
निःश्वासबद्धाः सुचिरं तथा मोहं गताः पुनः॥ ८८

अतीव क्लेशसंयुक्ता देहभोगेन सुन्दरि।
प्रतप्ततोययुक्तं च कालसूत्रं प्रकीर्तितम्॥ ८९

अवटः कूपभेदश्च मत्स्योदः स उदाहृतः।
प्रतप्ततोयपूर्णं च चतुर्विंशत्प्रमाणकम्॥ ९०

व्याप्तं महापातकिभिर्व्यादग्धाङ्गैश्च सन्ततम्।
मद्दूतैस्ताडितैः शश्वदवटोदं प्रकीर्तितम्॥ ९१

यत्रोदस्पर्शमात्रेण सर्वव्याधिश्च पापिनाम्।
भवेदकस्मात्पततां यस्मिन्कुण्डे धनुःशते॥ ९२

अरुन्तुदैर्भक्षितैस्तु प्राणिभिर्यच्च सङ्कुलम्।
हाहेति शब्दं कुर्वद्भिस्तदेवारुन्तुदं विदुः॥ ९३

तप्तपांसुभिराकीर्णं ज्वलद्भिस्तुषदग्धकैः।
तद्भक्षैः पापिभिर्युक्तं पांसुभोजैर्धनुःशतम्॥ ९४

पातमात्रेण पापी च पाशेन वेष्टितो भवेत्।
क्रोशमात्रेण कुण्डं च तत्पाशवेष्टनं विदुः॥ ९५

पातमात्रेण पापी च शूलेन वेष्टितो भवेत्।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च शूलप्रोतं प्रकीर्तितम्॥ ९६

पततां पापिनां यत्र भवेदेव प्रकम्पनम्।
अतीव हिमतोयाक्तं क्रोशार्धं च प्रकम्पनम्॥ ९७

जहाँ कालके द्वारा निर्मित सूत्रसे बँधे हुए प्राणी निवास करते हैं, वे मेरे दूतोंके द्वारा क्षणभरमें ऊपर उठाये जाते हैं तथा क्षणभरमें डुबो दिये जाते हैं। उनकी साँसें बहुत देरतक बन्द रहती हैं, पुनः वे अचेत हो जाते हैं तथा हे सुन्दरि! देहभोगके कारण पापियोंको जहाँ महान् क्लेश प्राप्त होता है तथा जो खौलते जलसे युक्त है, उसे कालसूत्रकुण्ड कहा गया है॥ ८७—८९॥

अवट नामक एक कूप है, उसीको मत्स्योदकुण्ड कहा गया है। चौबीस धनुषके बराबर विस्तारवाला वह कुण्ड प्रतप्त जलसे सदा परिपूर्ण रहता है। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए, दग्ध अंगोंवाले महापापियोंसे युक्त उस नरकको अवटोदकुण्ड भी कहा गया है॥ ९०-९१॥

सौ धनुषकी लम्बाईके बराबर विस्तारवाले जिस नरककुण्डके जलका स्पर्श होते ही उसमें अकस्मात् गिरे हुए पापियोंको सभी व्याधियाँ ग्रस्त कर लेती हैं तथा जो अरुन्तुद नामक भयानक कीड़ोंके काटनेसे हाहाकार मचाते हुए पापी जीवोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे अरुन्तुदकुण्ड कहा गया है॥ ९२-९३॥

पांसुकुण्ड अत्यन्त तपी हुई धूलसे भरा रहता है। उसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है। जलती हुई धूलसे दग्ध त्वचावाले तथा उसी धूलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ९४॥

जिसमें गिरते ही पापी पाशसे आवेष्टित हो जाता है तथा जिसका विस्तार कोसभरका है, उसे पाशवेष्टनकुण्ड कहा गया है॥ ९५॥

जिसमें गिरते ही पापी शूलसे जकड़ उठता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके परिमाणके बराबर है, उसे शूलप्रोतकुण्ड कहा गया है॥ ९६॥

जिस नरककुण्डमें गिरनेवाले पापियोंके शरीरमें कँपकँपी उठने लगती है, उसे प्रकम्पन-कुण्ड कहा जाता है। आधे कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड सदा बर्फके समान अत्यन्त शीतल जलसे भरा रहता है॥ ९७॥

ददत्येव हि मे दूता यत्रोल्काः पापिनां मुखे।
धनुर्विंशत्प्रमाणं तदुल्काभिश्च सुसङ्कुलम्॥ ९८

लक्षपौरुषमानं च गम्भीरं च धनुःशतम्।
नानाप्रकारकृमिभिः संयुक्तं च भयानकम्॥ ९९

अत्यन्धकारव्याप्तं च कूपाकारं च वर्तुलम्।
तद्भक्ष्यैः पापिभिर्युक्तं प्रणश्यद्भिः परस्परम्॥ १००

तप्ततोयप्रदग्धैश्च ज्वलद्भिः कीटभक्षितैः।
ध्वान्तेन चक्षुषा चान्धैरन्धकूपः प्रकीर्तितः॥ १०१

नानाप्रकारशस्त्रौघैर्यत्र विद्धाश्च पापिनः।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च वेधनं तत्प्रकीर्तितम्॥ १०२

दण्डेन ताडिता यत्र मम दूतैश्च पापिनः।
धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दण्डताडनम्॥ १०३

निरुद्धाश्च महाजालैर्यथा मीनाश्च पापिनः।
धनुर्विंशत्प्रमाणं च जालरन्ध्रं प्रकीर्तितम्॥ १०४

पततां पापिनां कुण्डे देहश्चूर्णो भवेदिह।
लोहबन्दीनिबद्धानां कोटिपौरुषमानकम्॥ १०५

गम्भीरं ध्वान्तसंयुक्तं धनुर्विंशत्प्रमाणकम्।
मूर्च्छितानां जडानां च देहचूर्णं प्रकीर्तितम्॥ १०६

दलिताः पापिनो यत्र मम दूतैश्च ताडिताः।
धनुःषोडशमानं च तत्कुण्डं दलनं स्मृतम्॥ १०७

पतनेनैव पापी च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
बालुकासु च तप्तासु धनुस्त्रिंशत्प्रमाणकम्॥ १०८

शतपौरुषमानं च गम्भीरं ध्वान्तसंयुतम्।
शोषणं कुण्डमेतद्धि पापिनां परदुःखदम्॥ १०९

जिस नरकमें रहनेवाले पापियोंके मुखमें मेरे दूत जलती हुई लकड़ी डाल देते हैं, वह उल्कामुखकुण्ड है। जलती हुई लकड़ियोंसे युक्त उस कुण्डका विस्तार बीस धनुषके बराबर है॥ ९८॥

एक लाख पोरसेके बराबर गहरे, सौ धनुषके बराबर विस्तृत, भयानक, अनेक प्रकारके कीड़ोंसे युक्त, कुएँके समान गोलाकार तथा सदा अन्धकारसे व्याप्त नरकको अन्धकूप कहा गया है। वह कीड़ोंके काटनेपर परस्पर लड़नेवाले, खौलते हुए जलसे दग्ध शरीरवाले, कीड़ोंके द्वारा निरन्तर काटे जाते हुए और अन्धकारके कारण नेत्रोंसे देखनेमें असमर्थ पापियोंसे युक्त रहता है॥ ९९—१०१॥

जहाँ पापियोंको अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे वेधा जाता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके प्रमाणके बराबर है, उसे वेधनकुण्ड कहा गया है॥ १०२॥

जहाँ मेरे दूतोंके द्वारा पापीलोग पीटे जाते हैं तथा जो सोलह धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह दण्डताडनकुण्ड है॥ १०३॥

जहाँ जाते ही पापी मछलियोंकी भाँति बड़े-बड़े जालोंमें फँस जाते हैं तथा जो बीस धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह जालरन्ध्रकुण्ड कहा गया है॥ १०४॥

जिस कुण्डमें गिरनेवाले पापियोंकी देह चूर-चूर हो जाती है, जहाँके पापियोंके पैरमें लोहेकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं, जो करोड़ पोरसा गहरा तथा बीस धनुषके बराबर विस्तृत है, जो पूर्णरूपसे अन्धकारसे व्याप्त है तथा जहाँ पापी जीव मूर्च्छित होकर जड़की भाँति पड़े रहते हैं—उसे देहचूर्णकुण्ड कहा गया है॥ १०५-१०६॥

जहाँ मेरे दूत पापियोंको कुचलते तथा पीटते हैं तथा जो सोलह धनुषके विस्तारमें है, उसे दलनकुण्ड कहा गया है॥ १०७॥

प्रतप्त बालूसे व्याप्त होनेके कारण जहाँ गिरते ही पापीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं; जो तीस धनुषके परिमाणके विस्तारवाला तथा सौ पोरसा गहरा है, जो सदा अन्धकारसे आच्छादित रहता है तथा पापियोंको महान् कष्ट पहुँचानेवाला है, उसे शोषणकुण्ड कहा गया है॥ १०८-१०९॥

नानाचर्मकषायोदपरिपूर्णं धनुःशतम्।
दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः प्राणिभिः सङ्कुलं कषम्॥ ११०

शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमानकम्।
तप्तलोहबालुकाभिः पूर्णं पातकिसंयुतम्॥ १११

दुर्गन्धियुक्तं तद्भक्ष्यैः पापिभिः सङ्कुलं सति।
शूर्पाकारमुखं कुण्डं धनुर्द्वादशमात्रकम्॥ ११२

प्रतप्तबालुकापूर्णं महापातकिभिर्युतम्।
अन्तरग्निशिखानां च ज्वालाव्याप्तमुखं सदा॥ ११३

धनुर्विंशतिमात्रं च प्रमाणं यस्य सुन्दरि।
ज्वालाभिर्दग्धगात्रैश्च पापिभिर्व्याप्तमेव च॥ ११४

तन्महाक्लेशदं शश्वत्कुण्डं ज्वालामुखं स्मृतम्।
पातमात्राद्यत्र पापी मूर्च्छितो वै नरो भवेत्॥ ११५

तप्तेष्टकाभ्यन्तरितं वाप्यर्धं जिह्मकुण्डकम्।
धूमान्धकारसंयुक्तं धूम्रान्धैः पापिभिर्युतम्॥ ११६

धनुःशतं श्वासरन्ध्रैर्धूम्रान्धं परिकीर्तितम्।
पातमात्राद्यत्र पापी नागैश्च वेष्टितो भवेत्॥ ११७

धनुःशतं नागपूर्णं तन्नागैर्वेष्टितं भवेत्।
षडशीति च कुण्डानि मयोक्तानि निशामय।
लक्षणं चापि तेषां च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ११८

जो अनेक प्रकारके चर्मोंके कषाय (कसैले) जलसे परिपूर्ण रहता है, जिसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है, जो दुर्गन्धसे भरा रहता है तथा जो चमड़ेके आहारपर रहनेवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, उसे कषकुण्ड कहा गया है॥ ११०॥

हे साध्वि! जिस कुण्डका मुख सूपके आकारका है, जिसका विस्तार बारह धनुषके बराबर है, जो तपते हुए लौहकणोंसे व्याप्त रहता है, जहाँ सर्वत्र पापी भरे रहते हैं, जो दुर्गन्धसे परिपूर्ण रहता है तथा जो उसी लोहबालुकाका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है, उसे शूर्पकुण्ड कहा जाता है॥ १११-११२॥

हे सुन्दरि! जो प्रतप्त बालूसे भरा रहता है, महान् पापियोंसे युक्त रहता है, जिसके भीतर आगकी लपटें उठती रहती हैं, जिसका मुखभाग ज्वालाओंसे सदा व्याप्त रहता है, जिसका विस्तार बीस धनुषके बराबर है, जो ज्वालाओंसे दग्ध शरीरवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, निरन्तर महान् कष्ट प्रदान करनेवाले उस कुण्डको ज्वालामुखकुण्ड कहा गया है॥ ११३—११४½॥

जिसमें गिरते ही पापी मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है, जिसका भीतरी भाग तपती हुई ईंटोंसे युक्त है, जो आधी बावड़ीके विस्तारवाला है, वह जिह्मकुण्ड है। धुएँके कारण अन्धकारसे युक्त, धूम्रसे अन्धे हो जानेवाले पापियोंसे सदा भरे रहनेवाले, सौ धनुषके बराबर परिमाणवाले तथा श्वास लेनेहेतु बहुतसे छिद्रोंसे युक्त नरककुण्डको धूम्रान्धकुण्ड कहा गया है। जहाँ जाते ही पापी नागोंके द्वारा लपेट लिये जाते हैं, जो सौ धनुषके तुल्य परिमाणवाला है तथा जो नागोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे नागवेष्टनकुण्ड कहा गया है। [हे सावित्रि!] सुनो, मैंने इन छियासी नरककुण्डों तथा इनके लक्षणोंका वर्णन कर दिया; अब तुम क्या सुनना चाहती हो?॥ ११५—११८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
नानानरककुण्डवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

* * *

अथाष्टत्रिंशोऽध्यायः

धर्मराजका सावित्रीसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उसके पतिको जीवनदान देना

सावित्र्युवाच

देवीभक्तिं देहि मह्यं साराणां चैव सारकम्।
पुंसां मुक्तिद्वारबीजं नरकार्णवतारकम्॥ १

कारणं मुक्तिसाराणां सर्वाशुभविनाशनम्।
दारकं कर्मवृक्षाणां कृतपापौघहारणम्॥ २

मुक्तिश्च कतिधाप्यस्ति किं वा तासां च लक्षणम्।
देवीभक्तिं भक्तिभेदं निषेकस्यापि खण्डनम्॥ ३

तत्त्वज्ञानविहीना च स्त्रीजातिर्विधिनिर्मिता।
किञ्चिज्ज्ञानं सारभूतं वद वेदविदां वर॥ ४

सर्वं दानं च यज्ञश्च तीर्थस्नानं व्रतं तपः।
अज्ञानिज्ञानदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ५

पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो॥ ६

धर्मराज उवाच

पूर्वं सर्वो वरो दत्तो यस्ते मनसि वाञ्छितः।
अधुना शक्तिभक्तिस्ते वत्से भवतु मद्वरात्॥ ७

श्रोतुमिच्छसि कल्याणि श्रीदेवीगुणकीर्तनम्।
वक्तॄणां पृच्छकानां च श्रोतॄणां कुलतारणम्॥ ८

शेषो वक्त्रसहस्रेण नहि यद्वक्तुमीश्वरः।
मृत्युञ्जयो न क्षमश्च वक्तुं पञ्चमुखेन च॥ ९

धाता चतुर्णां वेदानां विधाता जगतामपि।
ब्रह्मा चतुर्मुखेनैव नालं विष्णुश्च सर्ववित्॥ १०

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] आप मुझे भगवतीकी भक्ति प्रदान कीजिये; वह देवीभक्ति समस्त तत्त्वोंका तत्त्व, मनुष्योंके लिये मुक्तिद्वारका मूल कारण, नरकरूपी समुद्रसे तारनेवाली, मुक्तिके तत्त्वोंका आधार, सभी अशुभोंका नाश करनेमें समर्थ, समस्त कर्मवृक्षोंको काटनेवाली तथा मनुष्यके द्वारा किये गये पापोंका हरण करनेवाली है॥ १-२॥

[हे भगवन्!] मुक्ति कितने प्रकारकी होती है और उनके क्या लक्षण हैं? देवीभक्तिके स्वरूप, भक्तिके भेद तथा किये हुए कर्मोंके भोगके नाशके विषयमें मुझे बताइये। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! ब्रह्माके द्वारा निर्मित स्त्रीजाति तत्त्वज्ञानसे रहित होती है, अतः आप संक्षेपमें मुझे सारभूत बात बताइये॥ ३-४॥

हे प्रभो! दान, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, व्रत और तप—ये सब अज्ञानी मनुष्यको ज्ञान देनेसे होनेवाले पुण्यफलकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। पिताकी अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ हैं, यह निश्चित है, किंतु ज्ञान प्रदान करनेवाला गुरु मातासे भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है॥ ५-६॥

धर्मराज बोले—हे वत्से! तुम्हारे मनमें पहले जो भी अभिलषित वर था, वह सब मैं दे चुका हूँ, अब जो तुम भगवतीकी भक्ति चाहती हो, वह भी मेरे वरके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त हो जाय॥ ७॥

हे कल्याणि! तुम जो श्रीदेवीका गुणकीर्तन सुनना चाहती हो, वह उसे करनेवाले, सुननेवाले तथा इसके विषयमें पूछनेवाले—इन सभीके कुलका उद्धार कर देता है॥ ८॥

भगवान् शेषनाग अपने हजार मुखोंसे उसे बता नहीं सकते और मृत्युंजय महादेव भी अपने पाँच मुखसे उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ९॥

चारों वेदोंकी उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा अपने चार मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते, उसी प्रकार सर्वज्ञ विष्णु भी उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ १०॥

कार्तिकेयः षण्मुखेन नापि वक्तुमलं ध्रुवम्।
न गणेशः समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥ ११

सारभूताश्च शास्त्राणां वेदाश्चत्वार एव च।
कलामात्रं यद्गुणानां न विदन्ति बुधाश्च ये॥ १२

सरस्वती जडीभूता नालं तद्गुणवर्णने।
सनत्कुमारो धर्मश्च सनन्दनः सनातनः॥ १३

सनकः कपिलः सूर्यो येऽन्ये च ब्रह्मणः सुताः।
विचक्षणा न यद्वक्तुं किञ्चान्ये जडबुद्धयः॥ १४

न यद्वक्तुं क्षमाः सिद्धा मुनीन्द्रा योगिनस्तथा।
के चान्ये च वयं के वा श्रीदेव्या गुणवर्णने॥ १५

ध्यायन्ते यत्पदाम्भोजं ब्रह्मविष्णुशिवादयः।
अतिसाध्यं स्वभक्तानां तदन्येषां सुदुर्लभम्॥ १६

कश्चित्किञ्चिद्विजानाति तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम्।
अतिरिक्तं विजानाति ब्रह्मा ब्रह्मविशारदः॥ १७

ततोऽतिरिक्तं जानाति गणेशो ज्ञानिनां गुरुः।
सर्वातिरिक्तं जानाति सर्वज्ञः शम्भुरेव सः॥ १८

तस्मै दत्तं पुरा ज्ञानं कृष्णेन परमात्मना।
अतीव निर्जनेऽरण्ये गोलोके रासमण्डले॥ १९

तत्रैव कथितं किञ्चित्तद्गुणोत्कीर्तनं शुभम्।
धर्मं च कथयामास शिवलोके शिवः स्वयम्॥ २०

धर्मस्तु कथयामास भास्वते पृच्छते तथा।
यामाराध्य मत्पितापि सम्प्राप तपसा सति॥ २१

भगवान् कार्तिकेय अपने छः मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते और योगीश्वरोंके गुरुके भी गुरु श्रीगणेश भी भगवतीकी महिमाका वर्णन कर सकनेमें समर्थ नहीं हैं—यह निश्चित है॥ ११॥

सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारभूत चारों वेद तथा उन्हें जाननेवाले जो विद्वान् हैं—ये सब उन भगवतीके गुणोंकी एक कलातकको नहीं जानते॥ १२॥

सरस्वती भी जड़के समान होकर उन भगवतीके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, धर्म, कपिल तथा सूर्य—ये लोग तथा ब्रह्माजीके अन्य बुद्धिमान् पुत्रगण भी उनकी महिमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो फिर अन्य जड़बुद्धिवाले लोगोंकी बात ही क्या!॥ १३-१४॥

श्रीदेवीके जिन गुणोंका वर्णन करनेमें सिद्ध, मुनीन्द्र तथा योगीजन भी समर्थ नहीं हैं, उनका वर्णन करनेमें हम तथा अन्य लोग भला किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं?॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण भगवतीके जिस चरणकमलका ध्यान करते हैं, वह उनके भक्तोंके लिये तो अति सुगम है, किंतु अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है॥ १६॥

कोई व्यक्ति उन भगवतीके पवित्र गुण-कीर्तनको कुछ-कुछ जान सकता है, किंतु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्माजी उससे अधिक जानते हैं। ज्ञानियोंके भी गुरु गणेशजी उन ब्रह्मासे भी कुछ विशेष जानते हैं और सब कुछ जाननेवाले भगवान् शिव सबसे अधिक जानते हैं॥ १७-१८॥

पूर्वकालमें गोलोकमें अत्यन्त निर्जन वनमें रासमण्डलके मध्य परमेश्वर श्रीकृष्णने उन शिवको ज्ञान प्रदान किया था। वहींपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें भगवतीके कुछ पवित्र गुण बताये थे॥ १९½॥

तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शिवने शिवलोकमें धर्मके प्रति उसका उपदेश किया था। उसके बाद सूर्यके पूछनेपर धर्मने उनसे भगवतीके गुणोंका वर्णन किया था। हे साध्वि! मेरे पिता सूर्यने भी तपस्याके द्वारा उन देवीकी आराधना करके उस ज्ञानको प्राप्त किया था॥ २०-२१॥

पूर्वं स्वं विषयं चाहं न गृह्णामि प्रयत्नतः।
वैराग्ययुक्तस्तपसे गन्तुमिच्छामि सुव्रते॥ २२

तदा मां कथयामास पिता तद्गुणकीर्तनम्।
यथागमं तद्वदामि निबोधातीव दुर्गमम्॥ २३

तद्गुणं सा न जानाति तदन्यस्य च का कथा।
यथाकाशो न जानाति स्वान्तमेव वरानने॥ २४

सर्वात्मा सर्वभगवान् सर्वकारणकारणः।
सर्वेश्वरश्च सर्वाद्यः सर्ववित्परिपालकः। २५

नित्यरूपी नित्यदेही नित्यानन्दो निराकृतिः।
निरङ्कुशो निराशङ्को निर्गुणश्च निरामयः॥ २६

निर्लिप्तः सर्वसाक्षी च सर्वाधारः परात्परः।
मायाविशिष्टः प्रकृतिस्तद्विकाराश्च प्राकृताः॥ २७

स्वयं पुमांश्च प्रकृतिस्तावभिन्नौ परस्परम्।
यथा वह्नेस्तस्य शक्तिर्न भिन्नास्त्येव कुत्रचित्॥ २८

सेयं शक्तिर्महामाया सच्चिदानन्दरूपिणी।
रूपं बिभर्त्यरूपा च भक्तानुग्रहहेतवे॥ २९

गोपालसुन्दरीरूपं प्रथमं सा ससर्ज ह।
अतीव कमनीयं च सुन्दरं सुमनोहरम्॥ ३०

नवीननीरदश्यामं किशोरं गोपवेषकम्।
कन्दर्पकोटिलावण्यं लीलाधाममनोहरम्॥ ३१

शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचनम्।
शरत्पार्वणकोटीन्दुशोभाप्रच्छादनाननम् ॥ ३२

अमूल्यरत्ननिर्माणनानाभूषणभूषितम् ।
सस्मितं शोभितं शश्वदमूल्यपीतवाससा॥ ३३

परब्रह्मस्वरूपं च ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
सुखदृश्यं च शान्तं च राधाकान्तमनन्तकम्॥ ३४

हे सुव्रते! पूर्वसमयमें मेरे पिताजी यत्नपूर्वक मुझे अपना राज्य देना चाहते थे, किंतु मैंने स्वीकार नहीं किया। उस समय वैराग्ययुक्त होनेके कारण मैं तपस्याके लिये जाना चाहता था। तब पिताजीने मेरे सामने भगवतीके गुणोंका वर्णन किया। उस समय मैंने उनसे जो प्राप्त किया, उसी परम दुर्लभ तत्त्वको तुम्हें बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ २२-२३॥

हे वरानने! जैसे आकाश अपना ही अन्त नहीं जानता, उसी प्रकार वे भगवती भी अपने सभी गुण नहीं जानतीं, तो अन्य व्यक्तिकी बात ही क्या है!॥ २४॥

सर्वात्मा, सबके भगवान्, सभी कारणोंके भी कारण, सर्वेश्वर, सबके आदिरूप, सर्वज्ञ, परिपालक, नित्यस्वरूप, नित्य देहवाले, नित्यानन्द, निराकार, स्वतन्त्र, निराशंक, निर्गुण, निर्विकार, अनासक्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर तथा मायाविशिष्ट परमात्मा ही मूलप्रकृतिके रूपमें अभिव्यक्त हो जाते हैं; सभी प्राकृत पदार्थ उन्हींसे आविर्भूत हैं॥ २५—२७॥

स्वयं परम पुरुष ही प्रकृति हैं। वे दोनों परस्पर उसी प्रकार अभिन्न हैं, जैसे अग्निसे उसकी शक्ति कुछ भी भिन्न नहीं है॥ २८॥

वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति महामाया हैं। वे निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये रूप धारण करती हैं॥ २९॥

उन भगवतीने सर्वप्रथम गोपालसुन्दरीका रूप धारण किया था। वह रूप अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा मनोहर था। किशोर गोपवेषवाला वह रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्णका था। वह करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर था, वह मनोहर लीलाधामस्वरूप था, उस विग्रहके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तुच्छ बना देनेवाले थे, मुख शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर देनेवाला था, अमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे उनका विग्रह सुशोभित था, मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाला वह विग्रह निरन्तर अमूल्य पीताम्बरसे शोभित हो रहा था, परब्रह्मस्वरूप वह विग्रह ब्रह्मतेजसे प्रकाशित था, वह रूप देखनेमें बड़ा ही सुखकर था, वह शान्तरूप

गोपीभिर्वीक्ष्यमाणं च सस्मिताभिश्च सन्ततम्।
रासमण्डलमध्यस्थं रत्नसिंहासनस्थितम्॥ ३५

वंशीं क्वणन्तं द्विभुजं वनमालाविभूषितम्।
कौस्तुभेन्द्रमणीन्द्रेण शश्वद्वक्षःस्थलोज्ज्वलम्॥ ३६

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्दनार्चितविग्रहम्।
चारुचम्पकमालाक्तं मालतीमाल्यमण्डितम्॥ ३७

चारुचन्द्रकशोभाढ्यं चूडावङ्क्रिमराजितम्।
एवंभूतं च ध्यायन्ति भक्ता भक्तिपरिप्लुताः॥ ३८

यद्भयाज्जगतां धाता विधत्ते सृष्टिमेव च।
कर्मानुसाराल्लिखितं करोति सर्वकर्मणाम्॥ ३९

तपसां फलदाता च कर्मणां च यदाज्ञया।
विष्णुः पाता च सर्वेषां यद्भयात्पाति सन्ततम्॥ ४०

कालाग्निरुद्रः संहर्ता सर्वविश्वेषु यद्भयात्।
शिवो मृत्युञ्जयश्चैव ज्ञानिनां च गुरोर्गुरुः॥ ४१

यज्ज्ञानाज्ज्ञानवानस्ति योगीशो ज्ञानवित्प्रभुः।
परमानन्दयुक्तश्च भक्तिवैराग्यसंयुतः॥ ४२

यद्भयाद्वाति पवनः प्रवरः शीघ्रगामिनाम्।
तपनश्च प्रतपति यद्भयात्सन्ततं सति॥ ४३

यदाज्ञया वर्षतीन्द्रो मृत्युश्चरति जन्तुषु।
यदाज्ञया दहेद्वह्निर्जलमेवं सुशीतलम्॥ ४४

दिशो रक्षन्ति दिक्पाला महाभीता यदाज्ञया।
भ्रमन्ति राशिचक्राणि ग्रहाश्च यद्भयेन च॥ ४५

भयात्फलन्ति वृक्षाश्च पुष्यन्त्यपि च यद्भयात्।
यदाज्ञां तु पुरस्कृत्य कालः काले हरेद्भयात्॥ ४६

राधाको अत्यधिक प्रसन्न करनेवाला था, मुसकराती हुई गोपियाँ उस रूपको निरन्तर निहार रही थीं, वह भगवद्विग्रह रासमण्डलके मध्य रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान था, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे वंशी बजा रहे थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके वक्षःस्थलपर मणिराज श्रेष्ठ कौस्तुभमणि निरन्तर प्रकाशित हो रही थी, उनका विग्रह कुमकुम-अगुरु-कस्तूरीसे मिश्रित दिव्य चन्दनसे लिप्त था, वह चम्पा और मालतीकी मनोहर मालाओंसे सुशोभित था, वह कान्तिमान् चन्द्रमाकी शोभासे परिपूर्ण तथा मनोहर चूडामणिसे सुशोभित था। भक्तिरससे आप्लावित भक्तजन उनके इसी रूपका ध्यान करते हैं॥ ३०—३८॥

जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्मा उन्हींके भयसे सृष्टिका विधान करते हैं तथा कर्मानुसार सभी प्राणियोंके कर्मोंका उल्लेख करते हैं और उन्हींकी आज्ञासे वे मनुष्योंको तपों तथा कर्मोंका फल देते हैं। उन्हींके भयसे सभी प्राणियोंके रक्षक भगवान् विष्णु सदा रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे कालाग्निके समान भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं। ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु मृत्युंजय शिव उसी परब्रह्मरूप विग्रहको जान लेनेपर ज्ञानवान्, योगीश्वर, ज्ञानविद्, परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा भक्ति-वैराग्यसे सम्पन्न हो सके हैं॥ ३९—४२॥

हे साध्वि! उन्हींके भयसे तीव्र चलनेवालोंमें प्रमुख पवनदेव प्रवाहित होते हैं और उन्हींके भयसे सूर्य निरन्तर तपते रहते हैं॥ ४३॥

उन्हींकी आज्ञासे इन्द्र वृष्टि करते हैं, मृत्यु प्राणियोंपर अपना प्रभाव डालती है, उन्हींकी आज्ञासे अग्नि जलाती है और जल शीतल करता है॥ ४४॥

उन्हींके आदेशसे भयभीत दिक्पालगण दिशाओंकी रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे ग्रह तथा राशियाँ अपने मार्गपर परिभ्रमण करती हैं॥ ४५॥

उन्हींके भयसे वृक्ष फलते तथा फूलते हैं और उन्हींकी आज्ञा स्वीकार करके भयभीत काल निश्चित समयपर प्राणियोंका संहार करता है॥ ४६॥

तथा जलस्थलस्थाश्च न जीवन्ति यदाज्ञया।
अकाले नाहरेद्विद्धं रणेषु विषमेषु च॥ ४७

धत्ते वायुस्तोयराशिं तोयं कूर्मं तदाज्ञया।
कूर्मोऽनन्तं स च क्षोणीं समुद्रान् सा च पर्वतान्॥ ४८

सर्वा चैव क्षमारूपा नानारत्नं बिभर्ति या।
यतः सर्वाणि भूतानि स्थीयन्ते हन्ति तत्र हि॥ ४९

इन्द्रायुश्चैव दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः।
अष्टाविंशे शक्रपाते ब्रह्मणश्च दिवानिशम्॥ ५०

एवं त्रिंशद्दिनैर्मासो द्वाभ्यामाभ्यामृतुः स्मृतः।
ऋतुभिः षड्भिरेवाब्दं ब्रह्मणो वै वयः स्मृतम्॥ ५१

ब्रह्मणश्च निपाते च चक्षुरुन्मीलनं हरेः।
चक्षुरुन्मीलने तस्य लयं प्राकृतिकं विदुः॥ ५२

प्रलये प्राकृते सर्वे देवाद्याश्च चराचराः।
लीना धाता विधाता च श्रीकृष्णनाभिपङ्कजे॥ ५३

विष्णुः क्षीरोदशायी च वैकुण्ठे यश्चतुर्भुजः।
विलीना वामपार्श्वे च कृष्णस्य परमात्मनः॥ ५४

यस्य ज्ञाने शिवो लीनो ज्ञानाधीशः सनातनः।
दुर्गायां विष्णुमायायां विलीनाः सर्वशक्तयः॥ ५५

सा च कृष्णस्य बुद्धौ च बुद्ध्यधिष्ठातृदेवता।
नारायणांशः स्कन्दश्च लीनो वक्षसि तस्य च॥ ५६

श्रीकृष्णांशश्च तद्बाहौ देवाधीशो गणेश्वरः।
पद्मांशाश्चैव पद्मायां सा राधायां च सुव्रते॥ ५७

उनकी आज्ञाके बिना जल तथा स्थलमें रहनेवाले कोई भी प्राणी जीवन धारण नहीं कर सकते और संग्राममें आहत तथा विषम स्थितियोंमें पड़े प्राणीकी भी अकाल-मृत्यु नहीं होती॥ ४७॥

उन्हींकी आज्ञासे वायु जलराशिको, जल कच्छपको, कच्छप शेषनागको, शेष पृथ्वीको और पृथ्वी सभी समुद्रों तथा पर्वतोंको धारण किये रहती है। जो सब प्रकारसे क्षमाशालिनी हैं, वे पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नानाविध रत्नोंको धारण करती हैं। उन्हींकी आज्ञासे पृथ्वीपर सभी प्राणी रहते हैं तथा नष्ट होते हैं॥ ४८-४९॥

[हे साध्वि!] देवताओंके इकहत्तर युगोंकी इन्द्रकी आयु होती है; ऐसे अट्ठाईस इन्द्रोंके समाप्त होनेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। ऐसे तीस दिनोंका एक महीना होता है और इन्हीं दो महीनोंकी एक ऋतु कही गयी है। इन्हीं छः ऋतुओंका एक वर्ष होता है और ऐसे (सौ वर्षों)-की ब्रह्माकी आयु कही गयी है॥ ५०-५१॥

ब्रह्माकी आयु समाप्त होनेपर श्रीहरि आँखें मूँद लेते हैं। श्रीहरिके आँखें मूँद लेनेपर प्राकृत प्रलय हो जाता है। उस प्राकृतिक प्रलयके समय समस्त चराचर प्राणी, देवता, विष्णु तथा ब्रह्मा—ये सब श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं॥ ५२-५३॥

क्षीरसागरमें शयन करनेवाले तथा वैकुण्ठवासी चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु प्रलयके समय परमात्मा श्रीकृष्णके वाम पार्श्वमें विलीन होते हैं। ज्ञानके अधिष्ठाता सनातन शिव उनके ज्ञानमें विलीन हो जाते हैं। सभी शक्तियाँ विष्णुमाया दुर्गामें समाविष्ट हो जाती हैं और वे बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धिमें प्रविष्ट हो जाती हैं। नारायणके अंश स्वामी कार्तिकेय उनके वक्षःस्थलमें लीन हो जाते हैं॥ ५४—५६॥

हे सुव्रते! श्रीकृष्णके अंशस्वरूप तथा गणोंके स्वामी देवेश्वर गणेश श्रीकृष्णकी दोनों भुजाओंमें समाविष्ट हो जाते हैं। श्रीलक्ष्मीकी अंशस्वरूपा देवियाँ भगवती लक्ष्मीमें तथा वे देवी लक्ष्मी राधामें

गोप्यश्चापि च तस्यां च सर्वाश्च देवयोषितः।
कृष्णप्राणाधिदेवी सा तस्य प्राणेषु संस्थिता॥ ५८

सावित्री च सरस्वत्यां वेदाः शास्त्राणि यानि च।
स्थिता वाणी च जिह्वायां यस्य च परमात्मनः॥ ५९

गोलोकस्य च गोपाश्च विलीनास्तस्य लोमसु।
तत्प्राणेषु च सर्वेषां प्राणा वाता हुताशनाः॥ ६०

जठराग्नौ विलीनाश्च जलं तद्रसनाग्रतः।
वैष्णवाश्चरणाम्भोजे परमानन्दसंयुताः॥ ६१

सारात्सारतरा भक्तिरसपीयूषपायिनः।
विराडंशाश्च महति लीनाः कृष्णे महाविराट्॥ ६२

यस्यैव लोमकूपेषु विश्वानि निखिलानि च।
यस्य चक्षुष उन्मेषे प्राकृतः प्रलयो भवेत्॥ ६३

चक्षुरुन्मीलने सृष्टिर्यस्यैव पुनरेव सः।
यावत्कालो निमेषेण तावदुन्मीलनेन च॥ ६४

ब्रह्मणश्च शताब्दे च सृष्टेः सूत्रलयः पुनः।
ब्रह्मसृष्टिलयानां च संख्या नास्त्येव सुव्रते॥ ६५

यथा भूरजसां चैव संख्यानं नैव विद्यते।
चक्षुर्निमेषे प्रलयो यस्य सर्वान्तरात्मनः॥ ६६

उन्मीलने पुनः सृष्टिर्भवेदेवेश्वरेच्छया।
स कृष्णः प्रलये तस्यां प्रकृतौ लीन एव हि॥ ६७

एकैव च परा शक्तिर्निर्गुणः परमः पुमान्।
सदेवेदमग्र आसीदिति वेदविदो विदुः॥ ६८

मूलप्रकृतिरव्यक्ताप्यव्याकृतपदाभिधा।
चिदभिन्नत्वमापन्ना प्रलये सैव तिष्ठति॥ ६९
तद्गुणोत्कीर्तनं वक्तुं ब्रह्माण्डेषु च कः क्षमः।

विलीन हो जाती हैं। इसी प्रकार समस्त गोपिकाएँ तथा देवपत्नियाँ भी उन्हीं श्रीराधामें अन्तर्हित हो जाती हैं और श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधीश्वरी वे राधा उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें अधिष्ठित हो जाती हैं॥ ५७-५८॥

सावित्री तथा जितने भी वेद और शास्त्र हैं, वे सब सरस्वतीमें प्रवेश कर जाते हैं और सरस्वती उन परमात्मा श्रीकृष्णकी जिह्वामें विलीन हो जाती हैं॥ ५९॥

गोलोकके सभी गोप उनके रोमकूपोंमें प्रवेश कर जाते हैं। सभी प्राणियोंकी प्राणवायु उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें, समस्त अग्नियाँ उनकी जठराग्निमें तथा जल उनकी जिह्वाके अग्रभागमें विलीन हो जाते हैं। सारके भी सारस्वरूप तथा भक्तिरसरूपी अमृतका पान करनेवाले वैष्णवजन परम आनन्दित होकर उनके चरणकमलमें समाहित हो जाते हैं॥ ६०-६१½॥

विराट्के अंशस्वरूप क्षुद्रविराट् महाविराट्में और महाविराट् उन श्रीकृष्णमें विलीन हो जाते हैं, जिनके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्व समाहित हैं, जिनके आँख मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाता है और जिनके नेत्र खुल जानेपर पुनः सृष्टिकार्य आरम्भ हो जाता है। जितना समय उनके पलक गिरनेमें लगता है, उतना ही समय उनके पलक उठानेमें लगता है। ब्रह्माके सौ वर्ष बीत जानेपर सृष्टिका सूत्रपात और पुनः लय होता है। हे सुव्रते! जैसे पृथ्वीके रज:कणोंकी संख्या नहीं है, वैसे ही ब्रह्माकी सृष्टि तथा प्रलयकी कोई संख्या नहीं है॥ ६२—६५½॥

जिन सर्वान्तरात्मा परमेश्वरकी इच्छासे उनके पलक झपकते ही प्रलय होता है तथा पलक खोलते ही पुनः सृष्टि आरम्भ हो जाती है, वे श्रीकृष्ण प्रलयके समय उन परात्पर मूलप्रकृतिमें लीन हो जाते हैं; उस समय एकमात्र पराशक्ति ही शेष रह जाती है, यही निर्गुण परम पुरुष भी है। यही सत्स्वरूप तत्त्व सर्वप्रथम विराजमान था—ऐसा वेदोंके ज्ञाताओंने कहा है॥ ६६—६८॥

अव्यक्तस्वरूपी मूलप्रकृति 'अव्याकृत' नामसे कही जाती हैं। चैतन्यस्वरूपिणी वे ही केवल प्रलयकालमें विद्यमान रहती हैं। उनके गुणोंका वर्णन करनेमें ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है?॥ ६९½॥

मुक्तयश्च चतुर्वेदैर्निरुक्ताश्च चतुर्विधाः॥ ७०

तत्प्रधाना देवभक्तिर्मुक्तेरपि गरीयसी।
सालोक्यदा भवेदेका तथा सारूप्यदा परा॥ ७१

सामीप्यदाथ निर्वाणप्रदा मुक्तिश्चतुर्विधा।
भक्तास्ता न हि वाञ्छन्ति विना तत्सेवनं विभोः॥ ७२

शिवत्वममरत्वं च ब्रह्मत्वं चावहेलया।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयशोकादिकं धनम्॥ ७३

दिव्यरूपधारणं च निर्वाणं मोक्षणं विदुः।
मुक्तिश्च सेवारहिता भक्तिः सेवाविवर्धिनी॥ ७४

भक्तिमुक्त्योरयं भेदो निषेकखण्डनं शृणु।
विदुर्बुधा निषेकं च भोगं च कृतकर्मणाम्॥ ७५

तत्खण्डनं च शुभदं श्रीविभोः सेवनं परम्।
तत्त्वज्ञानमिदं साध्वि स्थिरं च लोकवेदयोः॥ ७६

निर्विघ्नं शुभदं चोक्तं गच्छ वत्से यथासुखम्।
इत्युक्त्वा सूर्यपुत्रश्च जीवयित्वा च तत्पतिम्॥ ७७

तस्यै शुभाशिषं दत्त्वा गमनं कर्तुमुद्यतः।
दृष्ट्वा यमं च गच्छन्तं सा सावित्री प्रणम्य च॥ ७८

रुरोद चरणौ धृत्वा साधुच्छेदेन दुःखिता।
सावित्रीरोदनं श्रुत्वा यमश्चैव कृपानिधिः॥ ७९

तामित्युवाच सन्तुष्टः स्वयं चैव रुरोद ह।

धर्मराज उवाच

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते॥ ८०

अन्ते यास्यसि तल्लोकं यत्र देवी विराजते।
गत्वा च स्वगृहं भद्रे सावित्र्याश्च व्रतं कुरु॥ ८१

चारों वेदोंने चार प्रकारकी मुक्तियाँ बतलायी हैं। भगवान्‌की भक्ति प्रधान है; क्योंकि वह मुक्तिसे श्रेष्ठ है। एक मुक्ति सालोक्य प्रदान करनेवाली, दूसरी सारूप्य देनेवाली, तीसरी सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाली और चौथी निर्वाण प्रदान करनेवाली है; इस प्रकार मुक्ति चार तरहकी होती है। भक्तजन उन परमात्मप्रभुकी सेवा छोड़कर उन मुक्तियोंकी कामना नहीं करते हैं। वे शिवत्व, अमरत्व तथा ब्रह्मत्वतककी अवहेलना करते हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय, शोक, धन, दिव्यरूप धारण करना, निर्वाण तथा मोक्षकी अवहेलना करते हैं। मुक्ति सेवारहित है तथा भक्ति सेवाभावमें वृद्धि करनेवाली है—भक्ति तथा मुक्तिमें यही भेद है; अब निषेकखण्डनका प्रसंग सुनो॥ ७०—७४½ ॥

विद्वान् पुरुषोंने निषेक (जन्म) एवं भोगके खण्डनका कल्याणकारी उपाय श्रीप्रभुकी एकमात्र परम सेवाको ही कहा है। हे साध्वि! यह तत्त्वज्ञान लोक और वेदमें प्रतिष्ठित है। इसे विघ्नरहित तथा शुभप्रद बताया गया है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक जाओ॥ ७५-७६½ ॥

ऐसा कहकर सूर्यपुत्र धर्मराज उसके पतिको जीवितकर और उसे आशीर्वाद प्रदान करके वहाँसे जानेके लिये उद्यत हो गये। धर्मराजको जाते देखकर सावित्री उन्हें प्रणाम करके उनके दोनों चरण पकड़कर साधुवियोगके कारण उत्पन्न दुःखसे व्याकुल हो रोने लगी॥ ७७-७८½ ॥

सावित्रीका विलाप सुनकर कृपानिधि धर्मराज भी स्वयं रोने लगे और सन्तुष्ट होकर उससे इस प्रकार कहने लगे—॥ ७९½ ॥

धर्मराज बोले—[हे सावित्रि!] तुम पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुखका भोग करके अन्तमें उस लोकमें जाओगी, जहाँ साक्षात् भगवती विराजमान रहती हैं॥ ८०½ ॥

हे भद्रे! अब तुम अपने घर जाओ और स्त्रियोंके लिये मोक्षके कारणरूप सावित्रीव्रतका चौदह वर्षतक पालन करो। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको किया गया सावित्रीव्रत उसी प्रकार

द्विसप्तवर्षपर्यन्तं नारीणां मोक्षकारणम्।
ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सावित्र्याश्च व्रतं शुभम्॥ ८२

शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे महालक्ष्म्या यथा व्रतम्।
द्व्यष्टवर्षं व्रतं चैव प्रत्यादेयं शुचिस्मिते॥ ८३

करोति भक्त्या या नारी सा याति च विभोः पदम्।
प्रतिमङ्गलवारे च देवीं मङ्गलदायिनीम्॥ ८४

प्रतिमासं शुक्लषष्ठ्यां षष्ठीं मङ्गलदायिनीम्।
तथा चाषाढसङ्क्रान्त्यां मनसां सर्वसिद्धिदाम्॥ ८५

राधां रासे च कार्तिक्यां कृष्णप्राणाधिकप्रियाम्।
उपोष्य शुक्लाष्टम्यां च प्रतिमासं वरप्रदाम्॥ ८६

विष्णुमायां भगवतीं दुर्गां दुर्गतिनाशिनीम्।
प्रकृतिं जगदम्बां च पतिपुत्रवतीषु च॥ ८७

पतिव्रतासु शुद्धासु यन्त्रेषु प्रतिमासु च।
या नारी पूजयेद्भक्त्या धनसन्तानहेतवे॥ ८८

इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीविभोः पदम्।
एवं देव्या विभूतीश्च पूजयेत्साधकोऽनिशम्॥ ८९

सर्वकालं सर्वरूपा संसेव्या परमेश्वरी।
नातः परतरं किञ्चित्कृतकृत्यत्वदायकम्॥ ९०

इत्युक्त्वा तां धर्मराजो जगाम निजमन्दिरम्।
गृहीत्वा स्वामिनं सा च सावित्री च निजालयम्॥ ९१

सावित्री सत्यवांश्चैव प्रययौ च यथागमम्।
अन्यांश्च कथयामास स्ववृत्तान्तं हि नारद॥ ९२

सावित्रीजनकः पुत्रान् सम्प्राप्तः प्रक्रमेण च।
श्वशुरश्चक्षुषी राज्यं सा च पुत्रान् वरेण च॥ ९३

अत्यन्त मंगलकारी होता है, जैसे भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको महालक्ष्मीव्रत कल्याणप्रद होता है। हे शुचिस्मिते! इस महालक्ष्मीव्रतको सोलह वर्षतक करना चाहिये। जो स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेती है॥ ८१—८३½ ॥

प्रत्येक मंगलवारको मंगलकारिणी भगवती मंगलचण्डिकाका व्रत करना चाहिये। प्रत्येक मासकी शुक्लषष्ठीके दिन व्रतपूर्वक मंगलदायिनी देवी षष्ठीकी पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार आषाढ़-संक्रान्तिके अवसरपर समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली देवी मनसाकी पूजा करनी चाहिये॥ ८४-८५॥

कार्तिकपूर्णिमाको रासके अवसरपर श्रीकृष्णके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधाकी उपासना करनी चाहिये। प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत करके वर प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। पति-पुत्रवती तथा पुण्यमयी पतिव्रताओं, प्रतिमाओं तथा यन्त्रोंमें दुर्गतिनाशिनी विष्णुमाया भगवती दुर्गाकी भावना करके जो स्त्री धन-सन्तानकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक उनका पूजन करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें ऐश्वर्यमयी भगवतीके परम पदको प्राप्त होती है। इस प्रकार साधकको भगवतीकी विभूतियोंकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये। उन सर्वरूपा परमेश्वरीकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये; इससे बढ़कर कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला और कुछ भी नहीं है॥ ८६—९०॥

[हे नारद!] उससे ऐसा कहकर धर्मराज अपने लोकको चले गये और अपने पतिको साथ लेकर सावित्री भी अपने घर चली गयी॥ ९१॥

हे नारद! सावित्री और सत्यवान् जब घरपर आ गये तब सावित्रीने अपने अन्य बन्धु-बान्धवोंसे यह सारा वृत्तान्त कहा॥ ९२॥

धर्मराजके वरके प्रभावसे सावित्रीके पिताने पुत्र प्राप्त कर लिये, उसके ससुरकी दोनों आँखें ठीक हो गयीं और उन्हें अपना राज्य मिल गया तथा उस

लक्षवर्षं सुखं भुक्त्वा पुण्यक्षेत्रे च भारते।
जगाम स्वामिना सार्धं देवीलोकं पतिव्रता॥ ९४

सवितुश्चाधिदेवी या मन्त्राधिष्ठातृदेवता।
सावित्री ह्यपि वेदानां सावित्री तेन कीर्तिता॥ ९५

इत्येवं कथितं वत्स सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
जीवकर्मविपाकं च किं पुनः श्रोतुमिच्छसि॥ ९६

सावित्रीको भी पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुख भोगकर वह पतिव्रता सावित्री अपने पतिके साथ देवीलोक चली गयी॥ ९३-९४॥

सविताकी अधिष्ठात्री देवी होने अथवा सूर्यके ब्रह्मप्रतिपादक गायत्री मन्त्रकी अधिदेवता होने तथा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे ये जगत्में सावित्री नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ९५॥

हे वत्स! इस प्रकार मैंने सावित्रीके श्रेष्ठ उपाख्यान तथा प्राणियोंके कर्मविपाकका वर्णन कर दिया, अब आगे क्या सुनना चाहते हो॥ ९६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे सावित्र्युपाख्यानवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

* * *

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य, समस्त देवताओंद्वारा उनका पूजन

नारद उवाच

श्रीमूलप्रकृतेर्देव्या गायत्र्यास्तु निराकृतेः।
सावित्रीयमसंवादे श्रुतं वै निर्मलं यशः॥ १

तद्गुणोत्कीर्तनं सत्यं मङ्गलानां च मङ्गलम्।
अधुना श्रोतुमिच्छामि लक्ष्म्युपाख्यानमीश्वर॥ २

केनादौ पूजिता सापि किंभूता केन वा पुरा।
तद्गुणोत्कीर्तनं मह्यं वद वेदविदांवर॥ ३

श्रीनारायण उवाच

सृष्टेरादौ पुरा ब्रह्मन् कृष्णस्य परमात्मनः।
देवी वामांससम्भूता बभूव रासमण्डले॥ ४

अतीव सुन्दरी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता।
यथा द्वादशवर्षीया शश्वत्सुस्थिरयौवना॥ ५

श्वेतचम्पकवर्णाभा सुखदृश्या मनोहरा।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाप्रच्छादनानना ॥ ६
शरन्मध्याह्नपद्मानां शोभामोचनलोचना।

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैं सावित्री तथा धर्मराजके संवादमें निराकार मूलप्रकृति भगवती गायत्रीका निर्मल यश सुन चुका। उनके गुणोंका कीर्तन सत्यस्वरूप तथा मंगलोंका भी मंगल है। हे प्रभो! अब मैं लक्ष्मीका उपाख्यान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! सर्वप्रथम उन भगवती लक्ष्मीकी पूजा किसने की, उनका स्वरूप क्या है तथा पूर्वकालमें किसने उनके गुणोंका कीर्तन किया? यह सब मुझे बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! प्राचीन समयमें सृष्टिके आरम्भमें रासमण्डलके मध्य परमात्मा श्रीकृष्णके वाम भागसे भगवती राधा प्रकट हुईं॥ ४॥

वे भगवती लावण्यसम्पन्न तथा अत्यन्त सुन्दर थीं, उनके चारों ओर वटवृक्ष सुशोभित थे, वे बारह वर्षकी सुन्दरीकी भाँति दिख रही थीं, सर्वदा स्थिर रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न थीं, श्वेत चम्पाके पुष्प-जैसी कान्तिवाली थीं, उन मनोहारिणी देवीका दर्शन बड़ा ही सुखदायक था, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको तिरोहित कर रहा था और उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे थे॥ ५-६½॥

सा देवी द्विविधा भूता सह सर्वेश्वरेच्छया॥ ७

स्वीयरूपेण वर्णेन तेजसा वयसा त्विषा।
यशसा वाससा कृत्या भूषणेन गुणेन च॥ ८

स्मितेन वीक्षणेनैव प्रेम्णा वानुनयेन च।
तद्वामांसान्महालक्ष्मीर्दक्षिणांसाच्च राधिका॥ ९

राधादौ वरयामास द्विभुजञ्च परात्परम्।
महालक्ष्मीश्च तत्पश्चाच्चकमे कमनीयकम्॥ १०

कृष्णस्तद्गौरवेणैव द्विधारूपो बभूव ह।
दक्षिणांसश्च द्विभुजो वामांसश्च चतुर्भुजः॥ ११

चतुर्भुजाय द्विभुजो महालक्ष्मीं ददौ पुरा।
लक्ष्यते दृश्यते विश्वं स्निग्धदृष्ट्या ययानिशम्॥ १२

देवीभूता च महती महालक्ष्मीश्च सा स्मृता।
राधाकान्तश्च द्विभुजो लक्ष्मीकान्तश्चतुर्भुजः॥ १३

शुद्धसत्त्वस्वरूपा च गोपैर्गोपीभिरावृता।
चतुर्भुजश्च वैकुण्ठं प्रययौ पद्मया सह॥ १४

सर्वांशेन समौ तौ द्वौ कृष्णनारायणौ परौ।
महालक्ष्मीश्च योगेन नानारूपा बभूव सा॥ १५

वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः परिपूर्णतमा रमा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा च सर्वसौभाग्यसंयुता॥ १६

प्रेम्णा सा च प्रधाना च सर्वासु रमणीषु च।
स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीश्च शक्रसम्पत्स्वरूपिणी॥ १७

पाताले नागलक्ष्मीश्च राजलक्ष्मीश्च राजसु।
गृहलक्ष्मीर्गृहेष्वेव गृहिणां च कलांशतः॥ १८
सम्पत्स्वरूपा गृहिणां सर्वमङ्गलमङ्गला।

सर्वेश्वर श्रीकृष्णके साथ विराजमान रहनेवाली वे देवी उनकी इच्छासे दो रूपोंमें व्यक्त हो गयीं। वे दोनों ही देवियाँ अपने रूप, वर्ण, तेज, आयु, कान्ति, यश, वस्त्र, कृत्य, आभूषण, गुण, मुसकान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय-विनय आदिमें समान थीं। उनके बायें अंशसे महालक्ष्मी आविर्भूत हुईं तथा दाहिने अंशसे राधिका स्वयं ही विद्यमान रहीं॥ ७—९॥

पहले राधिकाने दो भुजाओंवाले परात्पर श्रीकृष्णको पतिरूपसे वरण किया। तत्पश्चात् महालक्ष्मीने भी उन्हीं मनोहर श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छा प्रकट की। तब उन्हें गौरव प्रदान करनेके विचारसे वे श्रीकृष्ण भी दो रूपोंमें हो गये। वे अपने दाहिने अंशसे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बायें अंशसे चार भुजाओंवाले श्रीविष्णु हो गये। उसके बाद द्विभुज श्रीकृष्णने चतुर्भुज विष्णुको महालक्ष्मी समर्पित कर दी॥ १०-११½ ॥

जो भगवती अपनी स्नेहमयी दृष्टिसे निरन्तर विश्वकी देखभाल करती रहती हैं, वे अत्यन्त महत्त्वशालिनी होनेके कारण महालक्ष्मी कही गयी हैं। इस प्रकार दो भुजाओंवाले श्रीकृष्ण राधाके पति बने और चतुर्भुज श्रीविष्णु महालक्ष्मीके पति हुए॥ १२-१३॥

शुद्ध सत्त्वस्वरूपिणी भगवती श्रीराधा गोपों और गोपिकाओंसे आवृत होकर अत्यन्त शोभा पाने लगीं और चतुर्भुज भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ १४॥

परात्पर श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु—वे दोनों ही समस्त अंशोंमें समान हैं। भगवती महालक्ष्मी योगबलसे नाना रूपोंमें विराजमान हुईं॥ १५॥

वे ही भगवती परिपूर्णतम परम शुद्धस्वरूपा महालक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हो सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सम्पन्न होकर वैकुण्ठलोकमें निवास करने लगीं॥ १६॥

वे प्रेमके कारण समस्त नारियोंमें प्रधान हुईं। वे भगवती इन्द्रकी विभवस्वरूपा होकर स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हुईं। वे पातालमें नागलक्ष्मी, राजाओंके यहाँ राजलक्ष्मी और गृहस्थोंके घरोंमें गृहलक्ष्मीके रूपमें अपनी कलाके एक अंशसे विराजमान हुईं। सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी गृहस्थोंके लिये सम्पत्तिस्वरूपिणी हैं॥ १७-१८½ ॥

गवां प्रसूतिः सुरभिर्दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ १९

क्षीरोदसिन्धुकन्या सा श्रीरूपा पद्मिनीषु च।
शोभास्वरूपा चन्द्रे च सूर्यमण्डलमण्डिता॥ २०

विभूषणेषु रत्नेषु फलेषु च जलेषु च।
नृपेषु नृपपत्नीषु दिव्यस्त्रीषु गृहेषु च॥ २१

सर्वसस्येषु वस्त्रेषु स्थानेषु संस्कृतेषु च।
प्रतिमासु च देवानां मङ्गलेषु घटेषु च॥ २२

माणिक्येषु च मुक्तासु माल्येषु च मनोहरा।
मणीन्द्रेषु च हीरेषु क्षीरेषु चन्दनेषु च॥ २३

वृक्षशाखासु रम्यासु नवमेघेषु वस्तुषु।
वैकुण्ठे पूजिता सादौ देवी नारायणेन च॥ २४

द्वितीये ब्रह्मणा भक्त्या तृतीये शङ्करेण च।
विष्णुना पूजिता सा च क्षीरोदे भारते मुने॥ २५

स्वायम्भुवेन मनुना मानवेन्द्रैश्च सर्वतः।
ऋषीन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च सद्भिश्च गृहिभिर्भवे॥ २६

गन्धर्वैश्चैव नागाद्यैः पातालेषु च पूजिता।
शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे कृता पूजा च ब्रह्मणा॥ २७

भक्त्या च पक्षपर्यन्तं त्रिषु लोकेषु नारद।
चैत्रे पौषे च भाद्रे च पुण्ये मङ्गलवासरे॥ २८

विष्णुना पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु भक्तितः।
वर्षान्ते पौषसङ्क्रान्त्यां माध्यामावाह्य मङ्गले॥ २९

मनुस्तां पूजयामास सा भूता भुवनत्रये।
पूजिता सा महेन्द्रेण मङ्गलेनैव मङ्गला॥ ३०

केदारेणैव नीलेन सुबलेन नलेन च।
ध्रुवेणोत्तानपादेन शक्रेण बलिना तथा॥ ३१

कश्यपेन च दक्षेण कर्दमेन विवस्वता।
प्रियव्रतेन चन्द्रेण कुबेरेणैव वायुना॥ ३२

गायोंकी जननी सुरभि तथा यज्ञपत्नी दक्षिणाके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। वे महालक्ष्मी ही क्षीरसागरकी कन्याके रूपमें प्रकट हुईं। वे कमलिनियोंमें श्रीरूपसे तथा चन्द्रमामें शोभारूपसे विराजमान हैं और सूर्यमण्डल इन्हींसे सुशोभित है। भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य स्त्री, गृह, सभी प्रकारके धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवप्रतिमा, मंगलकलश, माणिक्य, मुक्ता, माला, श्रेष्ठ मणि, हीरा, दुग्ध, चन्दन, वृक्षोंकी सुरम्य शाखा तथा नवीन मेघ—इन सभी वस्तुओंमें परम मनोहर महालक्ष्मीका ही अंश विद्यमान है॥ १९—२३½ ॥

हे मुने! सर्वप्रथम भगवान् नारायणने वैकुण्ठमें उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की थी, दूसरी बार ब्रह्माने तथा तीसरी बार शंकरने भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, भगवान् विष्णुने भारतवर्षमें क्षीरसागरमें उन महालक्ष्मीकी पूजा की। उसके बाद स्वायम्भुव मनु, सभी राजागण, श्रेष्ठ ऋषि, मुनीश्वर तथा सदाचारी गृहस्थ—इन सभी लोगोंने जगत्में महालक्ष्मीकी उपासना की। गन्धर्वों तथा नाग आदिके द्वारा वे पाताललोकमें पूजित हुईं॥ २४—२६½ ॥

हे नारद! ब्रह्माजीने भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे प्रारम्भ करके पक्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, फिर तीनों लोकोंमें उनकी पूजा होने लगी। चैत्र, पौष तथा भाद्रपदमासोंके पवित्र मंगलवारको विष्णुके द्वारा उनकी पूजा की गयी, बादमें तीनों लोकोंमें सभी लोग भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करने लगे॥ २७-२८½ ॥

वर्षके अन्तमें पौषकी संक्रान्तिके अवसरपर मध्याह्नकालमें मनुने मंगलकलशपर आवाहन करके उनकी पूजा की। उसके बाद वे भगवती तीनों लोकोंमें पूज्य हो गयीं। इन्द्रके द्वारा वे पूजित हुईं। मंगलने भी उन मंगलमयी भगवतीकी पूजा की। उसके बाद केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, शक्र, बलि, कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुणने उनकी उपासना की। इस प्रकार समस्त ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री देवी

यमेन वह्निना चैव वरुणेनैव पूजिता।
एवं सर्वत्र सर्वेषु पूजिता वन्दिता सदा।
सर्वैश्वर्याधिदेवी सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥ ३३

तथा समग्र सम्पदाओंकी विग्रहस्वरूपिणी वे भगवती महालक्ष्मी सर्वत्र सब लोगोंद्वारा सदा पूजित तथा वन्दित हुईं॥ २९—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
लक्ष्म्युपाख्यानवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना

नारद उवाच

नारायणप्रिया सा च परा वैकुण्ठवासिनी।
वैकुण्ठाधिष्ठातृदेवी महालक्ष्मीः सनातनी॥ १

कथं बभूव सा देवी पृथिव्यां सिन्धुकन्यका।
पुरा केन स्तुतादौ सा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि॥ २

श्रीनारायण उवाच

पुरा दुर्वाससः शापाद् भ्रष्टश्रीश्च पुरन्दरः।
बभूव देवसङ्घश्च मर्त्यलोके हि नारद॥ ३

लक्ष्मीः स्वर्गादिकं त्यक्त्वा रुष्टा परमदुःखिता।
गत्वा लीना तु वैकुण्ठे महालक्ष्मीश्च नारद॥ ४

तदा शोकाद्ययुः सर्वे दुःखिता ब्रह्मणः सभाम्।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ययुर्वैकुण्ठमेव च॥ ५

वैकुण्ठे शरणापन्ना देवा नारायणे परे।
अतीव दैन्ययुक्ताश्च शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः॥ ६

तदा लक्ष्मीश्च कलया पुराणपुरुषाज्ञया।
बभूव सिन्धुकन्या सा सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥ ७

तथा मथित्वा क्षीरोदं देवा दैत्यगणैः सह।
सम्प्राप्ताश्च महालक्ष्मीं विष्णुस्तां च ददर्श ह॥ ८

सुरादिभ्यो वरं दत्त्वा वनमालां च विष्णवे।
ददौ प्रसन्नवदना तुष्टा क्षीरोदशायिने॥ ९

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] वे श्रेष्ठ महालक्ष्मी भगवान् नारायणकी प्रिया होकर वैकुण्ठमें निवास करती हैं। वे सनातनी भगवती वैकुण्ठकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे महालक्ष्मी पूर्व कालमें पृथ्वीलोकमें सिन्धुकी पुत्री कैसे बनीं और सर्वप्रथम किसके द्वारा उनकी स्तुति की गयी, वह सब मुझे बताइये॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! पूर्व कालमें दुर्वासाके शापके कारण इन्द्र श्रीविहीन हो गये थे और सम्पूर्ण देवसमुदाय मृत्युलोकमें भटकने लगा। हे नारद! तब कुपित लक्ष्मीने स्वर्गका परित्याग करके अत्यन्त दुःखित हो वैकुण्ठलोक पहुँचकर वहाँ महालक्ष्मीमें अपनेको विलीन कर दिया॥ ३-४॥

उस समय शोकसे संतप्त सभी देवता ब्रह्माकी सभामें गये और वहाँसे ब्रह्माजीको आगे करके वैकुण्ठलोकको गये। वहाँपर सभी देवताओंने भगवान् नारायण श्रीविष्णुकी शरण ग्रहण की। उस समय अत्यन्त दीनतायुक्त सभी देवताओंके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे॥ ५-६॥

तब पुराणपुरुष भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वे सर्वसम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे सिन्धुकी कन्या हुई थीं। उस समय सभी देवताओंने दैत्योंके साथ मिलकर समुद्रमन्थन करके महालक्ष्मीकी प्राप्ति की थी। भगवान् विष्णुने महालक्ष्मीको प्रेमपूर्वक देखा। तब प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलवाली परम सन्तुष्ट भगवती महालक्ष्मीने देवता आदिको वर प्रदान करके क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको वनमाला अर्पित कर दी॥ ७—९॥

देवाश्चाप्यसुरग्रस्तं राज्यं प्रापुश्च नारद।
तां सम्पूज्य च सम्भूय सर्वत्र च निरापदः॥ १०

नारद उवाच

कथं शशाप दुर्वासा मुनिश्रेष्ठः कदाचन।
केन दोषेण वा ब्रह्मन् ब्रह्मिष्ठस्तत्त्ववित्पुरा॥ ११

ममन्थुः केनरूपेण जलधिं ते सुरादयः।
केन स्तोत्रेण वा देवी शक्रं साक्षाद्बभूव सा॥ १२

को वा तयोश्च संवादो बभूव तद्वद प्रभो।

श्रीनारायण उवाच

मधुपानप्रमत्तश्च त्रैलोक्याधिपतिः पुरा॥ १३

क्रीडां चकार रहसि रम्भया सह कामुकः।
कृत्वा क्रीडां तया सार्धं कामुक्या हृतमानसः॥ १४

तस्थौ तत्र महारण्ये कामोन्मथितमानसः।
कैलासशिखरे यान्तं वैकुण्ठादृषिसत्तमम्॥ १५

दुर्वाससं ददर्शेन्द्रो ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा।
ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डसहस्रप्रभमीश्वरम्॥ १६

प्रतप्तकाञ्चनाकारं जटाभारमहोज्ज्वलम्।
शुक्लयज्ञोपवीतं च चीरदण्डौ कमण्डलुम्॥ १७

महोज्ज्वलं च तिलकं बिभ्रन्तं चेन्दुसन्निभम्।
समन्वितं शिष्यलक्षैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ १८

दृष्ट्वा ननाम शिरसा सम्प्रमत्तः पुरन्दरः।
शिष्यवर्गं तदा भक्त्या तुष्टाव च मुदान्वितम्॥ १९

मुनिना च सशिष्येण दत्तास्तस्मै शुभाशिषः।
विष्णुदत्तं पारिजातपुष्पं च सुमनोहरम्॥ २०

हे नारद! देवताओंने असुरोंके द्वारा अपहृत किया गया अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् उन भगवती महालक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करके वे देवता सब प्रकारसे विपत्तिरहित हो गये॥ १०॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें ब्रह्मनिष्ठ तथा तत्त्वज्ञानी मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने कब, क्यों और किस अपराधके कारण इन्द्रको शाप दिया था? उन देवता आदिने किस रूपसे समुद्रका मन्थन किया, किस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर भगवती लक्ष्मी इन्द्रके समक्ष प्रकट हुईं और उन दोनोंके बीच क्या संवाद हुआ? हे प्रभो! यह सब आप मुझे बताइये॥ ११-१२½॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है—तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त और कामासक्त होकर रम्भाके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। उस कामुकी अप्सराके साथ क्रीडा करनेसे उनका मन मोहित हो गया था। इस प्रकार कामदेवसे मथित मनवाले वे इन्द्र उसी महावनमें स्थित हो गये॥ १३-१४॥

उसी समय इन्द्रने वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जाते हुए महर्षि दुर्वासाको देखा। उनका शरीर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान था, ऐश्वर्यसम्पन्न वे ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, उनका अत्यन्त स्वच्छ जटाजूट प्रतप्त सुवर्णके समान प्रकाशमान था, वे श्वेतवर्णका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, उन्होंने अपने हाथोंमें चीर, दण्ड तथा कमण्डलु धारण कर रखा था, वे अपने ललाटपर चन्द्रमाके समान प्रतीत होनेवाला अत्यन्त उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए थे। वेदवेदांगके पारगामी लाखों शिष्य उनके साथ विद्यमान थे॥ १५—१८॥

उन्हें देखकर अति प्रमत्त इन्द्रने सिर झुकाकर मुनि तथा शिष्यवर्गको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की। तब शिष्योंसहित मुनि दुर्वासाने इन्द्रको शुभाशीर्वाद दिया, साथ ही उन्होंने भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया॥ १९-२०॥

तज्जरारोगमृत्युघ्नं शोकघ्नं मोक्षकारकम्।
शक्रः पुष्पं गृहीत्वा च प्रमत्तो राज्यसम्पदा॥ २१

पुष्पं स न्यस्तयामास तदैव करिमस्तके।
हस्ती तत्स्पर्शमात्रेण रूपेण च गुणेन च॥ २२

तेजसा वयसाकस्माद्विष्णुतुल्यो बभूव ह।
त्यक्त्वा शक्रं गजेन्द्रश्च जगाम घोरकाननम्॥ २३

न शशाक महेन्द्रस्तं रक्षितुं तेजसा मुने।
तत्पुष्पं त्यक्तवन्तं च दृष्ट्वा शक्रं मुनीश्वरः॥ २४

तमुवाच महारुष्टः शशाप च रुषान्वितः।

मुनिरुवाच

अरे श्रिया प्रमत्तस्त्वं कथं मामवमन्यसे॥ २५

मद्दत्तपुष्पं दत्तं च गर्वेण करिमस्तके।
विष्णोर्निवेदितं चैव नैवेद्यं वा फलं जलम्॥ २६

प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा भवेत्।
भ्रष्टश्रीर्भ्रष्टबुद्धिश्च पुरभ्रष्टो भवेत्तु सः॥ २७

यस्त्यजेद्विष्णुनैवेद्यं भाग्येनोपस्थितं शुभम्।
प्राप्तिमात्रेण यो भुङ्क्ते भक्तो विष्णुनिवेदितम्॥ २८

पुंसां शतं समुद्धृत्य जीवन्मुक्तः स्वयं भवेत्।
नैवेद्यं भोजनं कृत्वा नित्यं यः प्रणमेद्धरिम्॥ २९

पूजयेत्स्तौति वा भक्त्या स विष्णुसदृशो भवेत्।
तत्स्पर्शवायुना सद्यस्तीर्थौघश्च विशुध्यति॥ ३०
तत्पादरजसा मूढ सद्यः पूता वसुन्धरा।

तब बुढ़ापा, रोग, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले उस पुष्पको लेकर राज्यसम्पदासे मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके मस्तकपर फेंक दिया॥ २१½ ॥

उस पुष्पका स्पर्श होते ही वह ऐरावत हाथी रूप, गुण, तेज तथा आयुमें अकस्मात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो गया। तब इन्द्रको छोड़कर वह गजराज घोर वनमें चला गया। हे मुने! अपने तेजोबलसे सम्पन्न इन्द्र उस ऐरावतको रोक पानेमें समर्थ नहीं हो सके॥ २२-२३½ ॥

इन्द्रने उस पुष्पका तिरस्कार किया है—ऐसा जानकर मुनीश्वर दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषमें आकर उन्हें शाप देते हुए कहने लगे॥ २४½ ॥

मुनि बोले—अरे! राज्यश्रीके अभिमानसे प्रमत्त होकर तुम मेरा अपमान क्यों कर रहे हो? मेरे द्वारा दिये गये पुष्पको तुमने गर्वित होकर हाथीके मस्तकपर फेंक दिया? श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जलके प्राप्त होते ही उनका उपभोग कर लेना चाहिये, उनका त्याग करनेसे वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ २५-२६½ ॥

जो मनुष्य सौभाग्यसे प्राप्त हुए भगवान् विष्णुके पावन नैवेद्यका त्याग करता है; वह श्री, बुद्धि तथा राज्य—इन सबसे वंचित हो जाता है॥ २७½ ॥

जो भक्त श्रीविष्णुके लिये अर्पित किये गये नैवेद्यको पाते ही उसे ग्रहण कर लेता है, वह अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २८½ ॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिके नैवेद्यको ग्रहण करके उन्हें प्रणाम करता है तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन एवं स्तवन करता है, वह भगवान् विष्णुके समान हो जाता है। हे मूर्ख! उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थसमुदाय शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और उसकी चरणरजसे पृथ्वी शीघ्र ही पवित्र हो जाती है॥ २९-३०½ ॥

पुंश्चल्यन्नमवीरान्नं शूद्रश्राद्धान्नमेव च॥ ३१

यद्धरेरनिवेद्यं च वृथा मांसस्य भक्षणम्।
शिवलिङ्गप्रदानं च यद्दत्तं शूद्रयाजिना॥ ३२

चिकित्सकद्विजान्नं च देवलान्नं तथैव च।
कन्याविक्रयिणामन्नं यदन्नं योनिजीविनाम्॥ ३३

उच्छिष्टान्नं पर्युषितं सर्वभक्षावशेषितम्।
शूद्रापतिद्विजानां च वृषवाहद्विजान्नकम्॥ ३४

अदीक्षितद्विजानां च यदन्नं शवदाहिनाम्।
अगम्यागामिनां चैव द्विजानामन्नमेव च॥ ३५

मित्रद्रुहां कृतघ्नानामन्नं विश्वासघातिनाम्।
मिथ्यासाक्ष्यप्रदान्नं च ब्राह्मणान्नं तथैव च॥ ३६

एते सर्वे विशुध्यन्ति विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्।
श्वपचश्चेद्विष्णुसेवी वंशानां कोटिमुद्धरेत्॥ ३७

हरेरभक्तो मनुजः स्वं च रक्षितुमक्षमः।
अज्ञानाद्यदि गृह्णाति विष्णोर्निर्माल्यमेव च॥ ३८

सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः।
ज्ञात्वा भक्त्या च गृह्णाति विष्णोर्नैवेद्यमेव च॥ ३९

कोटिजन्मार्जितात्पापान्मुच्यते निश्चितं हरे।
यस्मात्संस्थापितं पुष्पं गर्वेण करिमस्तके॥ ४०

तस्माद्युष्मान्परित्यज्य यातु लक्ष्मीर्हरेः पदम्।
नारायणस्य भक्तोऽहं न बिभेमि सुराद्विधेः॥ ४१

कालान्मृत्योर्जरातश्च कानन्यान् गणयामि च।
किं करिष्यति ते तात कश्यपश्च प्रजापतिः॥ ४२

बृहस्पतिर्गुरुश्चैव निःशङ्कस्य च मे हरे।
इदं पुष्पं यस्य मूर्ध्नि तस्यैव पूजनं परम्॥ ४३

भगवान् श्रीहरिको भोग न लगाया हुआ अन्न व्यभिचारिणी स्त्री, पतिपुत्रहीन स्त्री तथा शूद्रके श्राद्धान्नके समान व्यर्थ होता है और वह मांस-भक्षणके समान है॥ ३१½ ॥

शिवलिंगके लिये अर्पण किया हुआ अन्न, शूद्रोंके यहाँ यजन करानेवाले ब्राह्मणके द्वारा प्रदत्त अन्न, चिकित्सावृत्तिमें लगे ब्राह्मणका अन्न; देवल, कन्याविक्रयी तथा वेश्याओंकी वृत्तिपर आश्रित रहनेवाले पुरुषोंका अन्न; उच्छिष्ट, बासी तथा सबके भोजन कर लेनेपर बचा हुआ अन्न; शूद्रापति द्विज, वृषवाही द्विज, दीक्षाहीन द्विज, शवदाही, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाले द्विज, मित्रद्रोही, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा झूठी गवाही देनेवाले और तीर्थप्रतिग्राही ब्राह्मणोंका अन्न ग्रहण करनेवाले—ये सभी भगवान् विष्णुका नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३२—३६½ ॥

यदि चाण्डाल भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, तो वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति न करनेवाला मनुष्य स्वयं अपनी भी रक्षा करनेमें असमर्थ रहता है॥ ३७½ ॥

यदि कोई मनुष्य अनजानमें भी श्रीविष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर लेता है, वह अपने सात जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो ज्ञानपूर्वक भक्तिके साथ भगवान् विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करता है, वह तो करोड़ों जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है—यह निश्चित है। हे इन्द्र! तुमने जो अभिमानवश इस पारिजात पुष्पको हाथीके मस्तकपर फेंक दिया है, इस अपराधके कारण लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ॥ ३८—४०½ ॥

मैं नारायणका भक्त हूँ। मैं देवता, ब्रह्मा, काल, मृत्यु तथा जरासे भी भयभीत नहीं होता तो फिर अन्य किन लोगोंकी गिनती करूँ। हे इन्द्र! तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप और गुरु बृहस्पति मुझ निःशंकका क्या कर लेंगे? यह पारिजात पुष्प जिसके सिरपर रहता है, उसीकी पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है॥ ४१—४३॥

इति श्रुत्वा महेन्द्रश्च धृत्वा स चरणं मुनेः।
उच्चै रुरोद शोकार्तस्तमुवाच भयाकुलः॥ ४४

महेन्द्र उवाच

दत्तः समुचितः शापो मह्यं मायापहः प्रभो।
हृतां न याचे सम्पत्तिं किञ्चिज्ज्ञानं च देहि मे॥ ४५

ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम्।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम्॥ ४६

मुनिरुवाच

जन्ममृत्युजराशोकरोगबीजाङ्कुरं परम्।
सम्पत्तितिमिरान्धश्च मुक्तिमार्गं न पश्यति॥ ४७

सम्पन्मत्तो विमूढश्च सुरामत्तः स एव च।
बान्धवैर्वेष्टितः सोऽपि बन्धुत्वेनैव हे हरे॥ ४८

सम्पत्तिमदमत्तश्च विषयान्धश्च विह्वलः।
महाकामी राजसिकः सत्त्वमार्गं न पश्यति॥ ४९

द्विविधो विषयान्धश्च राजसस्तामसः स्मृतः।
अशास्त्रज्ञस्तामसश्च शास्त्रज्ञो राजसः स्मृतः॥ ५०

शास्त्रं च द्विविधं मार्गं दर्शयेत्सुरपुङ्गव।
प्रवृत्तिबीजमेकं च निवृत्तेः कारणं परम्॥ ५१

चरन्ति जीविनश्चादौ प्रवृत्तेर्दुःखवर्त्मनि।
स्वच्छन्दं च प्रसन्नं च निर्विरोधं च सन्ततम्॥ ५२

आयाति मधुनो लोभात्क्लेशेन सुखमानितः।
परिणामे नाशबीजे जन्ममृत्युजराकरे॥ ५३

यह सुनकर देवराज इन्द्र मुनि दुर्वासाके चरण पकड़कर शोकसन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उच्च स्वरसे रोने लगे और उनसे कहने लगे—॥ ४४॥

महेन्द्र बोले—हे प्रभो! आपने मुझे अत्यन्त उचित शाप दिया है; क्योंकि यह मायाका नाश कर देनेवाला है। मैं अपनी अपहृत सम्पत्तिकी याचना नहीं कर रहा हूँ, आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश दीजिये। [क्योंकि यह लौकिक] ऐश्वर्य समस्त विपत्तियोंका बीजस्वरूप है, ज्ञानका आच्छादन कर देनेवाला है, मुक्तिमार्गका कुठार है तथा भक्तिमें व्यवधान उत्पन्न करनेवाला है॥ ४५-४६॥

मुनि बोले—यह ऐश्वर्य जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रोगके बीजका महान् अंकुर है। सम्पत्तिके घोर अन्धकारसे अन्धा बना हुआ मानव मुक्तिका मार्ग नहीं देख पाता है॥ ४७॥

हे इन्द्र! जो मूर्ख सम्पत्तिसे उन्मत्त है, उसको वास्तवमें मदिरापानसे भी प्रमत्त समझना चाहिये। बन्धु-बान्धव उसे बन्धु समझकर सदा घेरे रहते हैं॥ ४८॥

सम्पत्तिके मदमें उन्मत्त वह व्यक्ति विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक होकर सात्त्विक मार्गका अवलोकन नहीं कर पाता है॥ ४९॥

विषयान्ध भी राजस तथा तामस भेदसे दो प्रकारका बताया गया है। शास्त्रज्ञानसे हीन व्यक्तिको तामस तथा शास्त्रज्ञको राजस कहा गया है॥ ५०॥

हे सुरश्रेष्ठ! शास्त्र भी दो प्रकारके मार्ग दिखलाता है। एक संसृतिका हेतु है तथा दूसरा निवृत्तिका कारण कहा गया है॥ ५१॥

पहले प्रवृत्तिबीजरूपी दुःखमय मार्गपर सभी प्राणी स्वच्छन्द तथा प्रसन्न होकर निर्विरोधभावसे निरन्तर चलते रहते हैं। जैसे मधुके लोभसे भौंरा अत्यन्त सुख मानकर क्लेशके साथ पुष्पोंपर आता है, वैसे ही मनुष्य परिणाममें विनाशके बीजस्वरूप तथा जन्म-मृत्यु-जराके आश्रयस्वरूप इस प्रवृत्तिमार्गपर अग्रसर होता है॥ ५२-५३॥

अनेकजन्मपर्यन्तं कृत्वा च भ्रमणं मुदा।
स्वकर्मविहितायां च नानायोन्यां क्रमेण च॥ ५४

ततश्चेशानुग्रहाच्च सत्सङ्गं लभते च सः।
सहस्रेषु शतेष्वेको भवाब्धिपारकारणम्॥ ५५

साधुस्तत्त्वप्रदीपेन मुक्तिमार्गं प्रदर्शयेत्।
तदा करोति यत्नं च जीवो बन्धनखण्डने॥ ५६

अनेकजन्मयोगेन तपसानशनेन च।
तदा लभेन्मुक्तिमार्गं निर्विघ्नं सुखदं परम्॥ ५७

इदं श्रुतं गुरोर्वक्त्राद्यत् पृच्छसि पुरन्दर।
मुनेस्तद्वचनं श्रुत्वा वीतरागो बभूव सः॥ ५८

वैराग्यं वर्धयामास तस्य ब्रह्मन् दिने दिने।
मुनेः स्थानाद् गृहं गत्वा स ददर्शामरावतीम्॥ ५९

दैत्यैरसुरसङ्घैश्च समाकीर्णां भयाकुलाम्।
विषमोपप्लवां पुत्रबन्धुहीनां च कुत्रचित्॥ ६०

पितृमातृकलत्रादिविहीनामतिचञ्चलाम् ।
शत्रुग्रस्तां च तां दृष्ट्वा जगाम वाक्पतिं प्रति॥ ६१

शक्रो मन्दाकिनीतीरे ददर्श गुरुमीश्वरम्।
ध्यायमानं परं ब्रह्म गङ्गातोये स्थितं परम्॥ ६२

सूर्याभिसम्मुखं पूर्वमुखं च विश्वतोमुखम्।
साश्रुनेत्रं पुलकिनं परमानन्दसंयुतम्॥ ६३

वरिष्ठं च गरिष्ठं च धर्मिष्ठं श्रेष्ठसेवितम्।
प्रेष्ठं च बन्धुवर्गाणामतिश्रेष्ठं च ज्ञानिनाम्॥ ६४

ज्येष्ठं च भ्रातृवर्गाणामनिष्टं सुरवैरिणाम्।
दृष्ट्वा गुरुं जपन्तं च तत्र तस्थौ सुरेश्वरः॥ ६५

प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मोंतक अपने किये कर्मके परिणामस्वरूप नाना प्रकारकी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करनेके पश्चात् भगवान्‌की कृपासे ही सैकड़ों तथा हजारों प्राणियोंमेंसे कोई बिरला ही संसारसागरसे पार करनेवाले सत्संगको प्राप्त कर पाता है॥ ५४-५५॥

जब कोई साधु तत्त्वज्ञानरूपी दीपकसे उसे मुक्तिमार्ग दिखा देता है, तब संसारबन्धनको तोड़नेके लिये जीव प्रयत्न करने लगता है। अनेक जन्मोंमें किये गये तप तथा उपवाससे जब मानवका पुण्योदय होता है, तब वह निर्विघ्न तथा परम सुखप्रद मुक्तिमार्गको प्राप्त कर पाता है। हे इन्द्र! तुम जो बात पूछ रहे हो, उसे मैंने गुरुके मुखसे सुना है॥ ५६-५७$\frac{१}{२}$॥

हे ब्रह्मन्! मुनि दुर्वासाका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र रागरहित हो गये और उनके हृदयमें दिनोंदिन वैराग्यकी भावना बढ़ने लगी॥ ५८$\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् मुनिके स्थानसे अपने भवन पहुँचकर इन्द्रने देखा कि अमरावतीपुरी दैत्यों तथा असुरोंसे भरी हुई है, चारों ओर भय व्याप्त है, सर्वत्र विषमता तथा उपद्रवकी स्थिति है, कहीं किसीके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव नहीं थे, कहीं किसीके माता-पिता और स्त्री आदिने उसका साथ छोड़ दिया है, चारों ओर हलचल मची हुई है तथा सम्पूर्ण नगरी शत्रुओंसे पूर्णतया आक्रान्त है। उस अमरावतीको इस स्थितिमें देखकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके पास गये॥ ५९—६१॥

मन्दाकिनीनदीके तटपर पहुँचकर देवराज इन्द्रने देखा कि गुरुदेव बृहस्पति पूरबकी ओर सूर्यके अभिमुख हो गंगाजलमें खड़े होकर सर्वतोमुख परब्रह्म परमात्माका ध्यान कर रहे हैं और पुलकित तथा प्रसन्नतायुक्त उनके नेत्रोंसे अश्रु गिर रहे हैं। परम श्रेष्ठ, आदरणीय, धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ जनोंद्वारा सेवित, बन्धुवर्गोंमें अति महान्, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, भाई-बन्धुओंमें ज्येष्ठ तथा देवशत्रुओंके लिये अनिष्टकारी गुरु बृहस्पतिको जप करते हुए देखकर सुरेश्वर इन्द्र वहींपर स्थित हो गये॥ ६२—६५॥

प्रहरान्ते गुरुं दृष्ट्वा चोत्थितं प्रणनाम सः।
प्रणम्य चरणाम्भोजे रुरोदोच्चैर्मुहुर्मुहुः॥ ६६

वृत्तान्तं कथयामास ब्रह्मशापादिकं तथा।
पुनर्वरोपलब्धिं च ज्ञानप्राप्तिं सुदुर्लभाम्॥ ६७

वैरिग्रस्तां च स्वपुरीं क्रमेणैव सुरेश्वरः।
शिष्यस्य वचनं श्रुत्वा सुबुद्धिर्वदतां वरः॥ ६८

बृहस्पतिरुवाचेदं कोपसंरक्तलोचनः।

गुरुरुवाच

श्रुतं सर्वं सुरश्रेष्ठ मा रोदीर्वचनं शृणु॥ ६९

न कातरो हि नीतिज्ञो विपत्तौ च कदाचन।
सम्पत्तिर्वा विपत्तिर्वा नश्वरा श्रमरूपिणी॥ ७०

पूर्वस्य कर्मायत्ता च स्वयं कर्ता तयोरपि।
सर्वेषां च भवत्येव शश्वज्जन्मनि जन्मनि॥ ७१

चक्रनेमिक्रमेणैव तत्र का परिदेवना।
उक्तं हि स्वकृतं कर्म भुज्यतेऽखिलभारते॥ ७२

शुभाशुभं च यत्किञ्चित्स्वकर्मफलभुक् पुमान्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥ ७३

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
इत्येवमुक्तं वेदे च कृष्णेन परमात्मना॥ ७४

सामवेदोक्तशाखायां सम्बोध्य कमलोद्भवम्।
जन्मभोगावशेषे च सर्वेषां कृतकर्मणाम्॥ ७५

अनुरूपं हि तेषां च भारतेऽन्यत्र चैव हि।
कर्मणा ब्रह्मशापं च कर्मणा च शुभाशिषम्॥ ७६

कर्मणा च महालक्ष्मीं लभेद्दैन्यं च कर्मणा।
कोटिजन्मार्जितं कर्म जीविनामनुगच्छति॥ ७७
न हि त्यजेद्विना भोगं तच्छायेव पुरन्दर।

एक प्रहरके बाद गुरुको ध्यानसे उपरत देखकर इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके चरणकमलमें मस्तक झुकाकर इन्द्र उच्च स्वरसे बार-बार विलाप करने लगे। देवराज इन्द्रने गुरु बृहस्पतिसे दुर्वासाके द्वारा प्रदत्त शाप आदिसे सम्बन्धित सारा वृत्तान्त, वरकी उपलब्धि, दुर्वासासे अत्यन्त दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति और शत्रुओंसे आक्रान्त अपनी नगरीके विषयमें सभी बातें क्रमसे कहीं॥ ६६–६७½ ॥

अपने शिष्य इन्द्रकी बात सुनकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले परम बुद्धिमान् तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पति इस प्रकार कहने लगे— ॥ ६८½ ॥

गुरु बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया, मत रोओ, मेरी बात सुनो। नीतिज्ञ पुरुष विपत्तिकालमें कभी भी घबराता नहीं; क्योंकि सम्पत्ति अथवा विपत्ति नश्वर हैं। ये दोनों ही श्रमसाध्य हैं। सम्पत्ति अथवा विपत्ति अपने पूर्व जन्ममें किये गये कर्मका फल है और उन्हींके अधीन होकर कर्ताको स्वयं फल भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये प्रत्येक जन्ममें यही स्थिति है, जो चक्रमण्डलकी भाँति निरन्तर आती-जाती रहती है, अतः इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता है?॥ ६९—७१½ ॥

ऐसा कहा गया है कि सम्पूर्ण भारतमें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। शुभ अथवा अशुभ जो कुछ भी कर्म मनुष्य करता है, वह उसे भोगता ही है। सैकड़ों करोड़ों कल्प बीत जानेके बाद भी बिना भोगे हुए कर्मोंका क्षय नहीं होता॥ ७२–७३ ॥

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा परमात्मा श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको सम्बोधित करके सामवेदकी शाखामें कहा है। किये हुए सम्पूर्ण कर्मोंका भोग शेष रह जानेपर उन प्राणियोंका कर्मानुसार भारतवर्षमें अथवा अन्यत्र जन्म होता है॥ ७४–७५½ ॥

प्राणी कर्मसे ही ब्रह्मशाप, कर्मसे ही शुभाशीर्वाद, कर्मसे ही महालक्ष्मी और कर्मसे ही दरिद्रता प्राप्त करता है। हे पुरन्दर! करोड़ों जन्मोंके संचित कर्म प्राणीके पीछे उसकी छायाकी भाँति लगे रहते हैं और बिना भोगे उस प्राणीको नहीं छोड़ते॥ ७६–७७½ ॥

कालभेदे देशभेदे पात्रभेदे च कर्मणाम्॥ ७८

न्यूनताधिकभावोऽपि भवेदेव हि कर्मणा।
वस्तुदानेन वस्तूनां समं पुण्यं दिने दिने॥ ७९

दिनभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
समे देशे च वस्तूनां दाने पुण्यं समं सुर॥ ८०

देशभेदे कोटिगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
समे पात्रे समं पुण्यं वस्तूनां कर्तुरेव च॥ ८१

पात्रभेदे शतगुणमसंख्यं वा ततोऽधिकम्।
यथा फलन्ति सस्यानि न्यूनान्यप्यधिकानि च॥ ८२

कर्षकाणां क्षेत्रभेदे पात्रभेदे फलं तथा।
सामान्यदिवसे विप्रदानं समफलं भवेत्॥ ८३

अमायां रविसंक्रान्त्यां फलं शतगुणं भवेत्।
चातुर्मास्यां पौर्णमास्यामनन्तं फलमेव च॥ ८४

ग्रहणे शशिनः कोटिगुणं च फलमेव च।
सूर्यस्य ग्रहणे वापि ततो दशगुणं भवेत्॥ ८५

अक्षयायामक्षयं तदसंख्यं फलमुच्यते।
एवमन्यत्र पुण्याहे फलाधिक्यं भवेदिति॥ ८६

यथा दाने तथा स्नाने जपेऽन्यपुण्यकर्मसु।
एवं सर्वत्र बोद्धव्यं नराणां कर्मणां फलम्॥ ८७

यथा दण्डेन चक्रेण शरावेण भ्रमेण च।
कुम्भं निर्माति निर्माता कुम्भकारो मृदा भुवि॥ ८८

काल, देश और पात्रके भेदसे कर्मोंका न्यूनाधिक भाव हुआ ही करता है। साधारण समयमें दानमें दी गयी वस्तुओंका साधारण फल होता है। यदि किसी विशेष पुण्य दिनमें कोई वस्तु दानमें दी जाती है तो उसका फल साधारण दिनकी अपेक्षा करोड़ों गुना उससे भी अधिक या असंख्य गुना प्राप्त होता है॥ ७८-७९½॥

उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! साधारण स्थानमें दानमें दी गयी वस्तुका साधारण पुण्य होता है, किंतु देशभेदके अनुसार किसी विशेष स्थानमें दानका फल करोड़ गुना या उससे भी अधिक असंख्य गुना होता है॥ ८०½॥

साधारण पात्रको दान करनेपर उन वस्तुओंका दान करनेवालेको उसका साधारण पुण्य मिलता है, किंतु किसी विशेष पात्रको दान देनेसे उसकी अपेक्षा सौ गुना या उससे अधिक असंख्य गुना पुण्य होता है॥ ८१½॥

जैसे क्षेत्रभेदसे भिन्न-भिन्न खेतोंमें बीज बोनेपर किसानोंके लिये कम या अधिक धान्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही पात्रभेदसे दान देनेपर दाता न्यूनाधिक फल प्राप्त करता है॥ ८२½॥

सामान्य दिनमें ब्राह्मणको दिये गये दानका सामान्य फल होता है, किंतु अमावास्या तथा सूर्यसंक्रान्तिको दान देनेसे सौ गुना फल होता है और चातुर्मास्यमें तथा पूर्णिमा तिथिको दिये गये दानका अनन्त फल होता है। चन्द्रग्रहणके अवसरपर दान देनेसे करोड़ गुना फल प्राप्त होता है तथा सूर्यग्रहणके समयपर दिये गये दानका फल उससे भी दस गुना अधिक होता है। अक्षय तृतीयाको दिया गया दान अक्षय होता है और उसका अनन्त फल कहा गया है। इसी प्रकार अन्य पर्वदिनोंमें भी फलोंकी अधिकता हो जाती है। जिस प्रकार दानके फलमें आधिक्य हो जाता है, उसी प्रकार स्नान, जप तथा अन्य पुण्यकार्योंमें भी होता है। मनुष्योंके लिये कर्मफलके विषयमें इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये॥ ८३—८७॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें कुम्भकार दण्ड, चक्र, शराव और भ्रमणके द्वारा मिट्टीसे कुम्भका निर्माण करता है, उसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे प्राणियोंको फल प्रदान करते हैं॥ ८८॥

तथैव कर्मसूत्रेण फलं धाता ददाति च।
यस्याज्ञया सृष्टमिदं तं च नारायणं भज॥ ८९

स विधाता विधातुश्च पातुः पाता जगत्त्रये।
स्त्रष्टुः स्त्रष्टा च संहर्तुः संहर्ता कालकालकः॥ ९०

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥ ९१

इत्येवमुक्त्वा तत्त्वज्ञः समालिङ्ग्य सुरेश्वरम्।
दत्त्वा शुभाशिषं चेष्टं बोधयामास नारद॥ ९२

[अतः हे देवराज!] जिनकी आज्ञासे इस जगत्‌की सृष्टि हुई है, उन भगवान् नारायणकी आप आराधना कीजिये। वे भगवान् नारायण त्रिलोकीमें विधाताके भी विधाता, पालन करनेवालेके भी पालक, सृष्टि करनेवालेके भी स्त्रष्टा, संहार करनेवालेके भी संहारक और कालके भी काल हैं॥ ८९-९०॥

जो मनुष्य इस संसारमें घोर विपत्तिके समयमें भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है—ऐसा भगवान् शंकरने कहा है।॥ ९१॥

हे नारद! ऐसा कहकर तत्त्वज्ञानी बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको हृदयसे लगाकर और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें अभीष्ट बात समझा दी॥ ९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे लक्ष्म्युत्पत्तिवर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

ब्रह्माजीका इन्द्र तथा देवताओंको साथ लेकर श्रीहरिके पास जाना, श्रीहरिका उनसे लक्ष्मीके रुष्ट होनेके कारणोंको बताना, समुद्रमन्थन तथा उससे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव

श्रीनारायण उवाच

हरिं ध्यात्वा हरिर्ब्रह्मन् जगाम ब्रह्मणः सभाम्।
बृहस्पतिं पुरस्कृत्य सर्वैः सुरगणैः सह॥ १

शीघ्रं गत्वा ब्रह्मलोकं दृष्ट्वा च कमलोद्भवम्।
प्रणेमुर्देवताः सर्वाः सहेन्द्रा गुरुणा सह॥ २

वृत्तान्तं कथयामास सुराचार्यो विधिं प्रति।
प्रहस्योवाच तच्छ्रुत्वा महेन्द्रं कमलासनः॥ ३

ब्रह्मोवाच

वत्स मद्वंशजातोऽसि प्रपौत्रो मे विचक्षणः।
बृहस्पतेश्च शिष्यस्त्वं सुराणामधिपः स्वयम्॥ ४

मातामहश्च दक्षस्ते विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
कुलत्रयं यस्य शुद्धं कथं सोऽहङ्कृतो भवेत्॥ ५

माता पतिव्रता यस्य पिता शुद्धो जितेन्द्रियः।
मातामहो मातुलश्च कथं सोऽहङ्कृतो भवेत्॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके देवराज इन्द्र बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माकी सभामें गये॥ १॥

इन्द्रसमेत सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके साथ शीघ्र ही ब्रह्मलोक जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया॥ २॥

तत्पश्चात् देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर ब्रह्माजी हँस करके देवराज इन्द्रसे कहने लगे॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! तुम मेरे वंशमें उत्पन्न हुए हो और मेरे बुद्धिमान् प्रपौत्र हो, इसके अतिरिक्त बृहस्पतिके शिष्य हो और स्वयं देवताओंके स्वामी हो। परम प्रतापी तथा विष्णुभक्त दक्षप्रजापति तुम्हारे नाना हैं। जिसके तीनों कुल पवित्र हों, वह पुरुष अहंकारी कैसे हो सकता है? जिसकी माता पतिव्रता, पिता शुद्धस्वरूप और नाना तथा मामा जितेन्द्रिय हों,

जनः पैतृकदोषेण दोषान्मातामहस्य च।
गुरुदोषात्त्रिभिर्दोषैर्हरिदोषी भवेद् ध्रुवम्॥ ७

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः।
यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्॥ ८

मनोऽहमिन्द्रियेशं च ज्ञानरूपो हि शङ्करः।
विष्णुप्राणा च प्रकृतिर्बुद्धिर्भगवती सती॥ ९

निद्रादयः शक्तयश्च ताः सर्वाः प्रकृतेः कलाः।
आत्मनः प्रतिबिम्बश्च जीवो भोगशरीरभृत्॥ १०

आत्मनीशे गते देहात्सर्वे यान्ति ससम्भ्रमाः।
यथा वर्त्मनि गच्छन्तं नरदेवमिवानुगाः॥ ११

अहं शिवश्च शेषश्च विष्णुर्धर्मो महाविराट्।
यूयं यदंशा भक्ताश्च तत्पुष्पं न्यक्कृतं त्वया॥ १२

शिवेन पूजितं पादपद्मं पुष्पेण येन च।
तत्र दुर्वाससा दत्तं दैवेन न्यक्कृतं त्वया॥ १३

तत्पुष्पं मस्तके यस्य कृष्णपादाब्जप्रच्युतम्।
सर्वेषां च सुराणां च तत्पूजापुरतो भवेत्॥ १४

दैवेन वञ्चितस्त्वं हि दैवं च बलवत्तरम्।
भाग्यहीनं जनं मूढं को वा रक्षितुमीश्वरः॥ १५

सा श्रीर्गताधुना कोपात्कृष्णनिर्माल्यवर्जनात्।
अधुना गच्छ वैकुण्ठं मया च गुरुणा सह॥ १६
निषेव्य तत्र श्रीनाथं श्रियं प्राप्स्यति मद्वरात्।

वह अहंकारयुक्त कैसे हो सकता है? पिताके दोष, नानाके दोष और गुरुके दोष—इन्हीं तीन दोषोंसे ही मनुष्य भगवान् श्रीहरिका द्रोही हो जाता है॥ ४—७॥

सभीकी अन्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीरसे निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है॥ ८॥

मैं प्राणियोंके शरीरमें इन्द्रियोंका स्वामी मन बनकर रहता हूँ, शंकर ज्ञानका रूप धारण करके रहते हैं और विष्णुकी प्राणस्वरूपा भगवती श्रीराधा मूलप्रकृतिके रूपमें और साध्वी भगवती दुर्गा बुद्धिरूपमें विराजमान हैं। निद्रा आदि सभी शक्तियाँ भगवती प्रकृतिकी कलाएँ हैं। आत्माका प्रतिबिम्ब भोगशरीर धारण करके जीवरूपमें प्रतिष्ठित है। शरीरके स्वामीरूप आत्माके देहसे निकल जानेपर ये सब उसीके साथ तुरंत उसी प्रकार चले जाते हैं, जैसे मार्गमें चलते हुए राजाके पीछे-पीछे उसके अनुचर आदि चलते हैं॥ ९—११॥

मैं, शिव, शेषनाग, विष्णु, धर्म, महाविराट् तथा तुम सब लोग जिनके अंश तथा भक्त हैं; उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र पुष्पका तुमने अपमान कर दिया है॥ १२॥

शंकरजीने जिस पुष्पसे भगवान् श्रीहरिके चरणकमलकी पूजा की थी, वही पुष्प मुनि दुर्वासाके द्वारा तुम्हें प्रदान किया गया था; किंतु तुमने दैववश उसका तिरस्कार कर दिया॥ १३॥

भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलसे च्युत वह पुष्प जिसके मस्तकपर स्थान पाता है, उसकी पूजा सभी देवताओंमें सबसे पहले होती है॥ १४॥

तुम तो दैवके द्वारा ठग लिये गये हो। प्रारब्ध सबसे अधिक बलशाली होता है। भाग्यहीन तथा मूर्ख व्यक्तिकी रक्षा करनेमें कौन समर्थ है?॥ १५॥

भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित किये जानेवाले पुष्पका तुम्हारे द्वारा त्याग किये जानेके कारण वे भगवती श्रीदेवी कोप करके इस समय तुम्हारे पाससे चली गयी हैं। अतः तुम इसी समय मेरे तथा गुरु बृहस्पतिके साथ वैकुण्ठ चलो। मेरे वरके प्रभावसे वहाँपर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिकी सेवा करके तुम लक्ष्मीको पुनः प्राप्त कर लोगे॥ १६½॥

एवमुक्त्वा च स ब्रह्मा सर्वैः सुरगणैः सह॥ १७

तत्र गत्वा परब्रह्म भगवन्तं सनातनम्।
दृष्ट्वा तेजःस्वरूपं तं प्रज्वलन्तं स्वतेजसा॥ १८

ग्रीष्ममध्याह्नमार्तण्डशतकोटिसमप्रभम्।
शान्तमनादिमध्यान्तं लक्ष्मीकान्तमनन्तकम्॥ १९

चतुर्भुजैः पार्षदैश्च सरस्वत्या युतं प्रभुम्।
भक्त्या चतुर्भिर्वेदैश्च गङ्गया परिवेष्टितम्॥ २०

तं प्रणेमुः सुराः सर्वे मूर्ध्ना ब्रह्मपुरोगमाः।
भक्तिनम्राः साश्रुनेत्रास्तुष्टुवुः परमेश्वरम्॥ २१

वृत्तान्तं कथयामास स्वयं ब्रह्मा कृताञ्जलिः।
रुरुदुर्देवताः सर्वाः स्वाधिकाराच्च्युताश्च ताः॥ २२

स ददर्श सुरगणं विपद्ग्रस्तं भयाकुलम्।
रत्नभूषणशून्यं च वाहनादिविवर्जितम्॥ २३

शोभाशून्यं हतश्रीकं निष्प्रभं सभयं परम्।
उवाच कातरं दृष्ट्वा भयभीतिविभञ्जनः॥ २४

श्रीभगवानुवाच

मा भैर्ब्रह्मन् हे सुराश्च भयं किं वो मयि स्थिते।
दास्यामि लक्ष्मीमचलां परमैश्वर्यवर्धिनीम्॥ २५

किञ्च मद्वचनं किञ्चिच्छ्रूयतां समयोचितम्।
हितं सत्यं सारभूतं परिणामसुखावहम्॥ २६

जनाश्चासंख्यविश्वस्था मदधीनाश्च सन्ततम्।
यथा तथाहं मद्भक्तपराधीनोऽस्वतन्त्रकः॥ २७

यं यं रुष्टो हि मद्भक्तो मत्परो हि निरङ्कुशः।
तद्गृहेऽहं न तिष्ठामि पद्मया सह निश्चितम्॥ २८

[हे नारद!] ऐसा कहकर ब्रह्माजीने सभी देवताओंके साथ वैकुण्ठलोक पहुँचकर परब्रह्म सनातन भगवान् श्रीहरिको देखा। वे तेजस्वरूप प्रभु अपने ही तेजसे देदीप्यमान हो रहे थे, वे ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन सौ करोड़ सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, आदि-अन्त-मध्यसे रहित अनन्तरूप लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि शान्तभावसे विराजमान थे, वे प्रभु चार भुजाओंवाले पार्षदों तथा भगवती सरस्वतीके साथ सुशोभित हो रहे थे और चारों वेदोंसहित देवी गंगा भक्तिभावसे युक्त होकर उनके पास विराजमान थीं। उन प्रभुको देखकर ब्रह्माके अनुगामी सभी देवताओंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। भक्ति तथा विनयसे युक्त होकर देवताओंने नेत्रोंमें आँसू भरकर उन परमेश्वरकी स्तुति की॥ १७—२१॥

तत्पश्चात् स्वयं ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिसे सारा वृत्तान्त कहा। अपने अधिकारसे वंचित सभी देवता उस समय रो रहे थे॥ २२॥

उन भगवान् श्रीहरिने देखा कि सभी देवगण विपत्तिसे ग्रस्त, भयसे व्याकुल, रत्न तथा आभूषणसे विहीन, वाहन आदिसे रहित, शोभाशून्य, श्रीहीन, निस्तेज तथा अत्यन्त भयग्रस्त हैं। उन्हें इस प्रकार कष्टसे व्याकुल देखकर संसारका भय दूर करनेवाले प्रभु कहने लगे॥ २३-२४॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवगण! आप लोग मत डरिये। मेरे रहते आपलोगोंको किस बातका भय है। मैं आपलोगोंको परम ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाली स्थिर लक्ष्मी प्रदान करूँगा। किंतु मेरी कुछ समयोचित बात सुनिये; जो हितकर, सत्य, सारभूत तथा परिणाममें सुखकारी है॥ २५-२६॥

जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले सभी प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे प्रति समर्पित मेरा निरंकुश भक्त जिस-जिसके ऊपर रुष्ट होता है, उसके घर मैं लक्ष्मीके साथ कभी नहीं ठहरता—यह निश्चित है॥ २७-२८॥

दुर्वासाः शङ्करांशश्च वैष्णवो मत्परायणः।
तच्छापादागतोऽहं च सलक्ष्मीको हि वो गृहात्॥ २९

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम्।
न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति॥ ३०

मद्भक्तानां च मे निन्दा यत्र ब्रह्मन् भवेत्सुराः।
महारुष्टा महालक्ष्मीस्ततो याति पराभवम्॥ ३१

मद्भक्तिहीनो यो मूढो भुङ्क्ते यो हरिवासरे।
मम जन्मदिने वापि याति श्रीस्तद्गृहादपि॥ ३२

मन्नामविक्रयी यश्च विक्रीणाति स्वकन्यकाम्।
यत्रातिथिर्न भुङ्क्ते च मत्प्रिया याति तद्गृहात्॥ ३३

यो विप्रः पुंश्चलीपुत्रो महापापी च तत्पतिः।
पापिनो यो गृहं याति शूद्रश्राद्धान्नभोजकः॥ ३४

महारुष्टा ततो याति मन्दिरात्कमलालया।
शूद्राणां शवदाही च भाग्यहीनो द्विजाधमः॥ ३५

याति रुष्टा तद्गृहाच्च देवाः कमलवासिनी।
शूद्राणां सूपकारी यो ब्राह्मणो वृषवाहकः॥ ३६

तत्तोयपानभीता च कमला याति तद्गृहात्।
अशुद्धहृदयः क्रूरो हिंसको निन्दको द्विजः॥ ३७

ब्राह्मणः शूद्रयाजी च याति देवी च तद्गृहात्।
अवीरान्नं च यो भुङ्क्ते तस्माद्याति जगत्प्रसूः॥ ३८

भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न ऋषि दुर्वासा महान् वैष्णव हैं तथा मेरे प्रति अनन्य भक्ति रखते हैं। उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया है, अतः मैं आपलोगोंके घरसे लक्ष्मीसहित चला आया हूँ॥ २९॥

जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहतीं, शिवकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं॥ ३०॥

हे ब्रह्मन्! हे देवगण! जहाँ मेरी तथा मेरे भक्तोंकी निन्दा होती है, वहाँसे महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं और उसका पराभव हो जाता है॥ ३१॥

जो मूर्ख मनुष्य मेरी भक्तिसे रहित है तथा एकादशी और मेरे जन्मके दिन (जन्माष्टमी आदि)-को भोजन करता है, उसके भी घरसे लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३२॥

जो व्यक्ति मेरे नामका तथा अपनी कन्याका विक्रय करता है और जिसके यहाँ अतिथि भोजन नहीं करता, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३३॥

जो ब्राह्मण वेश्याका पुत्र है अथवा उसका पति है, वह महापापी है। जो विप्र ऐसे पापीके घर जाता है तथा शूद्रका श्राद्धान्न खाता है, उसके घरसे कमलासना महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं॥ ३४½॥

हे देवगण! जो द्विजाधम शूद्रोंका शव जलाता है, वह भाग्यहीन हो जाता है। उससे रुष्ट होकर कमलवासिनी लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३५½॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ भोजन पकानेका काम करता है तथा जो बैल हाँकता है, उसका जल पीनेसे लक्ष्मी डरती हैं और उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३६½॥

जो ब्राह्मण अशुद्ध हृदयवाला, क्रूर, हिंसक, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला होता है, उसके घरसे भगवती लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ब्राह्मण पति-पुत्रहीन स्त्रीका अन्न खाता है, उसके घरसे भी जगज्जननी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३७-३८॥

तृणं छिनत्ति नखरैस्तैर्वा यो विलिखेन्महीम्।
निराशो ब्राह्मणो यत्र तद्गृहाद्याति मत्प्रिया॥ ३९

सूर्योदये द्विजो भुङ्क्ते दिवास्वापी च ब्राह्मणः।
दिवा मैथुनकारी च यस्तस्माद्याति मत्प्रिया॥ ४०

आचारहीनो विप्रो यो यश्च शूद्रप्रतिग्रही।
अदीक्षितो हि यो मूढस्तस्माद्वै याति मत्प्रिया॥ ४१

स्निग्धपादश्च नग्नो हि यः शेते ज्ञानदुर्बलः।
शश्वद्वदति वाचालो याति सा तद्गृहात्सती॥ ४२

शिरःस्नातस्तु तैलेन योऽन्याङ्गं समुपस्पृशेत्।
स्वाङ्गं च वादयेद्वाद्यं रुष्टा सा याति तद्गृहात्॥ ४३

व्रतोपवासहीनो यः सन्ध्याहीनोऽशुचिर्द्विजः।
विष्णुभक्तिविहीनस्तु तस्माद्याति च मत्प्रिया॥ ४४

ब्राह्मणं निन्दयेद्यो हि तं च यो द्वेष्टि सन्ततम्।
जीवहिंस्रो दयाहीनो याति सर्वप्रसूस्ततः॥ ४५

यत्र यत्र हरेरर्चा हरेरुत्कीर्तनं तथा।
तत्र तिष्ठति सा देवी सर्वमङ्गलमङ्गला॥ ४६

यत्र प्रशंसा कृष्णस्य तद्भक्तस्य पितामह।
सा च कृष्णप्रिया देवी तत्र तिष्ठति सन्ततम्॥ ४७

यत्र शङ्खध्वनिः शङ्खः शिला च तुलसीदलम्।
तत्सेवा वन्दनं ध्यानं तत्र सा परितिष्ठति॥ ४८

जो नखोंसे निष्प्रयोजन तृण तोड़ता है अथवा नखोंसे भूमिको कुरेदता रहता है तथा जिसके यहाँसे ब्राह्मण निराश होकर चला जाता है, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३९॥

जो ब्राह्मण सूर्योदयके समय भोजन करता है, दिनमें शयन करता है तथा दिनमें मैथुन करता है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४०॥

जो ब्राह्मण आचारहीन, शूद्रोंसे दान ग्रहण करनेवाला, दीक्षासे विहीन तथा मूर्ख है; उसके भी घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४१॥

जो अल्पज्ञ भींगे पैर अथवा नग्न होकर सोता है तथा वाचालकी भाँति निरन्तर बोलता रहता है, उसके घरसे वे साध्वी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति अपने सिरपर तेल लगाकर उसी हाथसे दूसरेके अंगका स्पर्श करता है और अपने किसी अंगको बाजेकी तरह बजाता है, उससे रुष्ट होकर वे लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ४३॥

जो ब्राह्मण व्रत-उपवास नहीं करता, सन्ध्या-वन्दन नहीं करता, सदा अपवित्र रहता है तथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४४॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणकी निन्दा करता है और उससे सदा द्वेषभाव रखता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव नहीं रखता है; सबकी जननी लक्ष्मी उस व्यक्तिसे दूर चली जाती हैं॥ ४५॥

जिस-जिस जगह भगवान् विष्णुकी पूजा होती है तथा उनका गुणगान होता है, वहाँ सम्पूर्ण मंगलोंको भी मंगल प्रदान करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं॥ ४६॥

हे पितामह! जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका यशोगान किया जाता है, वहाँ उन श्रीकृष्णकी प्रिया भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं॥ ४७॥

जहाँ शंखध्वनि होती है और शंख, शालग्रामशिला तथा तुलसीदल—ये रहते हैं एवं उनकी सेवा, वन्दना तथा ध्यान किया जाता है; वहाँ वे लक्ष्मी सर्वदा निवास करती हैं॥ ४८॥

शिवलिङ्गार्चनं यत्र तस्य चोत्कीर्तनं शुभम्।
दुर्गार्चनं तद्गुणाश्च तत्र पद्मनिवासिनी॥ ४९

विप्राणां सेवनं यत्र तेषां च भोजनं शुभम्।
अर्चनं सर्वदेवानां तत्र पद्ममुखी सती॥ ५०

इत्युक्त्वा च सुरान्सर्वान् रमामाह रमापतिः।
क्षीरोदसागरे जन्म कलयाकलयेति च॥ ५१

इत्युक्त्वा तां जगन्नाथो ब्रह्माणं पुनराह च।
मथित्वा सागरं लक्ष्मीं देवेभ्यो देहि पद्मज॥ ५२

इत्युक्त्वा कमलाकान्तो जगामान्तःपुरं मुने।
देवाश्चिरेण कालेन ययुः क्षीरोदसागरम्॥ ५३

मन्थानं मन्दरं कृत्वा कूर्मं कृत्वा च भाजनम्।
कृत्वा शेषं मन्थपाशं ममन्थुरसुराः सुराः॥ ५४

धन्वन्तरिं च पीयूषमुच्चैःश्रवसमीप्सितम्।
नानारत्नं हस्तिरत्नं प्रापुर्लक्ष्मीं सुदर्शनम्॥ ५५

वनमालां ददौ सा च क्षीरोदशायिने मुने।
सर्वेश्वराय रम्याय विष्णवे वैष्णवी सती॥ ५६

देवैः स्तुता पूजिता च ब्रह्मणा शङ्करेण च।
ददौ दृष्टिं सुरगृहे ब्रह्मशापविमोचनात्॥ ५७

प्रापुर्देवाः स्वविषयं दैत्यग्रस्तं भयङ्करम्।
महालक्ष्मीप्रसादेन वरदानेन नारद॥ ५८

जहाँ शिवलिंगकी पूजा तथा उनके गुणोंका शुभ कीर्तन और भगवती दुर्गाका पूजन तथा उनका गुणगान किया जाता है, वहाँ पद्मनिवासिनी देवी लक्ष्मी वास करती हैं॥ ४९॥

जहाँ ब्राह्मणोंकी सेवा होती है, उन्हें उत्तम भोजन कराया जाता है और सभी देवताओंकी पूजा होती है, वहाँ कमलके समान मुखवाली साध्वी लक्ष्मी विराजमान रहती हैं॥ ५०॥

[हे नारद!] समस्त देवताओंसे ऐसा कहकर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिने लक्ष्मीजीसे कहा—क्षीरसागरके यहाँ तुम अपनी एक कलासे जन्म ग्रहण करो॥ ५१॥

लक्ष्मीजीसे ऐसा कहकर जगत्प्रभु श्रीहरिने ब्रह्माजीसे पुनः कहा—हे कमलोद्भव! आप समुद्रमन्थन करके उससे प्रकट होनेवाली लक्ष्मी देवताओंको सौंप दीजिये॥ ५२॥

हे मुने! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि अन्तःपुरमें चले गये और देवताओंने भी कुछ कालके अनन्तर क्षीरसागरकी ओर प्रस्थान किया॥ ५३॥

समस्त देवताओं तथा राक्षसोंने मन्दराचल-पर्वतको मथानी, कच्छपको आधार और शेषनागको मथानीकी रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया। उसके परिणामस्वरूप उन्हें धन्वन्तरि, अमृत, इच्छित उच्चैःश्रवा नामक अश्व, अनेकविध रत्न, हाथियोंमें रत्नस्वरूप ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शन चक्र और वनमाला आदि प्राप्त हुए। हे मुने! तब विष्णुपरायणा साध्वी लक्ष्मीने वह वनमाला क्षीरसागरमें शयन करनेवाले मनोहर सर्वेश्वर श्रीविष्णुको समर्पित कर दी॥ ५४—५६॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा, शिव तथा देवताओंके द्वारा पूजा तथा स्तुति किये जानेपर भगवती लक्ष्मीने देवताओंके भवनपर अपनी कृपादृष्टि डाली, फलस्वरूप वे देवगण मुनि दुर्वासाके शापसे मुक्त हो गये। हे नारद! इस प्रकार महालक्ष्मीके अनुग्रह तथा वरदानसे उन देवताओंने दैत्योंके द्वारा अधिकृत किये गये तथा भयंकर बना दिये गये अपने राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया॥ ५७-५८॥

इत्येवं कथितं सर्वं लक्ष्म्युपाख्यानमुत्तमम्।
सुखदं सारभूतं च किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ५९

इस प्रकार मैंने लक्ष्मीका अत्यन्त उत्तम, सुखप्रद तथा सारभूत सम्पूर्ण उपाख्यान आपसे कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
श्रीलक्ष्म्युपाख्यानवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रद्वारा भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन एवं स्तवन

नारद उवाच

हरेरुत्कीर्तनं भद्रं श्रुतं तज्ज्ञानमुत्तमम्।
ईप्सितं लक्ष्म्युपाख्यानं ध्यानं स्तोत्रं वद प्रभो॥ १

श्रीनारायण उवाच

स्नात्वा तीर्थे पुरा शक्रो धृत्वा धौते च वाससी।
घटं संस्थाप्य क्षीरोदे षड् देवान् पर्यपूजयत्॥ २

गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्।
एतान् भक्त्या समभ्यर्च्य पुष्पगन्धादिभिस्तदा॥ ३

आवाह्य च महालक्ष्मीं परमैश्वर्यरूपिणीम्।
पूजाञ्चकार देवेशो ब्रह्मणा च पुरोधसा॥ ४

पुरःस्थितेषु मुनिषु ब्राह्मणेषु गुरौ हरौ।
देवादिषु सुदेशे च ज्ञानानन्दे शिवे मुने॥ ५

पारिजातस्य पुष्पं च गृहीत्वा चन्दनोक्षितम्।
ध्यात्वा देवीं महालक्ष्मीं पूजयामास नारद॥ ६

ध्यानं च सामवेदोक्तं यद्दत्तं ब्रह्मणे पुरा।
हरिणा तेन ध्यानेन तन्निबोध वदामि ते॥ ७

सहस्रदलपद्मस्थकर्णिकावासिनीं पराम्।
शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभामुष्टिकरां पराम्॥ ८

नारदजी बोले—हे प्रभो! मैंने भगवान् श्रीहरिका कल्याणप्रद गुणानुवाद, उनका उत्तम ज्ञान तथा भगवती लक्ष्मीका अभीष्ट उपाख्यान सुना। अब उन देवीके ध्यान तथा स्तोत्रके विषयमें बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है। इन्द्रने क्षीरसमुद्रके तटपर तीर्थस्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारण करनेके बाद कलशकी स्थापना करके श्रीगणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा की। गन्ध, पुष्प आदिसे भक्तिपूर्वक इन देवोंकी पूजा करके देवेश्वर इन्द्रने ब्रह्माजी तथा अपने पुरोहित गुरु बृहस्पतिके द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार परम ऐश्वर्यमयी भगवती महालक्ष्मीका आवाहन करके उनकी पूजा की। हे मुने! उस समय उस पावन स्थलपर अनेक मुनि, ब्राह्मणसमुदाय, गुरु बृहस्पति, श्रीहरि, देवगण तथा ज्ञानानन्द भगवान् शिव आदि विराजमान थे॥ २—५॥

हे नारद! इन्द्रने पारिजातका चन्दन-चर्चित पुष्प लेकर पूर्वकालमें भगवान् श्रीहरिने ब्रह्माजीको सामवेदमें वर्णित जो ध्यान बतलाया था, उसी ध्यानके द्वारा भगवती महालक्ष्मीका ध्यान करके उनका पूजन किया, मैं वही ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो॥ ६-७॥

'ये पराम्बा महालक्ष्मी सहस्रदलवाले कमलपर स्थित कर्णिकाके ऊपर विराजमान हैं, वे श्रेष्ठ भगवती शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिका हरण करनेवाली हैं, अपने ही तेजसे देदीप्यमान हैं, इन मनोहर देवीका दर्शन अत्यन्त सुखप्रद है, ये

स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम्।
प्रतप्तकाञ्चननिभशोभां मूर्तिमतीं सतीम्॥ ९

रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ १०

सर्वसम्पत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम्।
ध्यानेनानेन तां ध्यात्वा नानागुणसमन्विताम्॥ ११

सम्पूज्य ब्रह्मवाक्येन चोपचाराणि षोडश।
ददौ भक्त्या विधानेन प्रत्येकं मन्त्रपूर्वकम्॥ १२

प्रशस्तानि प्रकृष्टानि वराणि विविधानि च।
अमूल्यरत्नसारं च निर्मितं विश्वकर्मणा॥ १३

आसनं च विचित्रं च महालक्ष्मि प्रगृह्यताम्।
शुद्धं गङ्गोदकमिदं सर्ववन्दितमीप्सितम्॥ १४

पापेध्मवह्निरूपं च गृह्यतां कमलालये।
पुष्पचन्दनदूर्वादिसंयुतं जाह्नवीजलम्॥ १५

शङ्खगर्भस्थितं स्वर्घ्यं गृह्यतां पद्मवासिनि।
सुगन्धिपुष्पतैलं च सुगन्धामलकीफलम्॥ १६

देहसौन्दर्यबीजं च गृह्यतां श्रीहरेः प्रिये।
कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्॥ १७

रत्नस्वर्णविकारं च देहभूषाविवर्धनम्।
शोभायै श्रीकरं रत्नं भूषणं देवि गृह्यताम्॥ १८

सर्वसौन्दर्यबीजं च सद्यः शोभाकरं परम्।
वृक्षनिर्यासरूपं च गन्धद्रव्यादिसंयुतम्॥ १९

श्रीकृष्णकान्ते धूपं च पवित्रं प्रतिगृह्यताम्।
सुगन्धियुक्तं सुखदं चन्दनं देवि गृह्यताम्॥ २०

साध्वी महालक्ष्मी मूर्तिमान् होकर तपाये हुए सुवर्णके समान शोभित हो रही हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत तथा पीताम्बरसे सुशोभित हो रही हैं, इनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मन्द-मन्द मुसकान विराज रही है, ये सर्वदा स्थिर रहनेवाले यौवनसे सम्पन्न हैं—ऐसी कल्याणमयी तथा सर्वसम्पत्तिदायिनी महालक्ष्मीकी मैं उपासना करता हूँ'॥ ८—१०½ ॥

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रने ब्रह्माजीके कथनानुसार सोलह पूजनोपचारोंसे अनेक गुणोंवाली उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की, उन्होंने भक्तिके साथ मन्त्रपूर्वक विधानके अनुसार प्रत्येक उपचार अर्पित किया। इन्द्रने विविध प्रकारके प्रशस्त, उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ उपचार इस प्रकार समर्पित किये॥ ११-१२½ ॥

हे महालक्ष्मि! विश्वकर्माके द्वारा निर्मित अमूल्य रत्नसारस्वरूप इस विचित्र आसनको ग्रहण कीजिये॥ १३½ ॥

हे कमलालये! पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये वह्निस्वरूप, सबके द्वारा वन्दित तथा अभिलषित और परम पवित्र इस गंगाजलको [पाद्यके रूपमें] स्वीकार कीजिये॥ १४½ ॥

हे पद्मवासिनि! पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदिसे युक्त इस शंखमें स्थित गंगाजलको सुन्दर अर्घ्यके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ १५½ ॥

हे श्रीहरिप्रिये! सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकीचूर्ण—इन देहसौन्दर्यके बीजरूप स्नानीय उपचारोंको आप ग्रहण कीजिये। हे देवि! कपास तथा रेशमसे निर्मित इस वस्त्रको आप स्वीकार कीजिये॥ १६-१७॥

हे देवि! स्वर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित, देहसौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण सुन्दरताके कारणस्वरूप तथा शीघ्र ही शोभा प्रदान करनेवाले इस श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणको अपनी शोभाके लिये आप ग्रहण कीजिये। हे श्रीकृष्णकान्ते! वृक्षसे रसके रूपमें निकले हुए तथा सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त यह पवित्र धूप आप ग्रहण करें। हे देवि! सुगन्धसे परिपूर्ण तथा सुखप्रद इस चन्दनको आप स्वीकार कीजिये॥ १८—२०॥

जगच्चक्षुःस्वरूपं च पवित्रं तिमिरापहम्।
प्रदीपं सुखरूपं च गृह्यतां च सुरेश्वरि॥ २१

नानोपहाररूपं च नानारससमन्वितम्।
अतिस्वादुकरं चैव नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ २२

अन्नं ब्रह्मस्वरूपं च प्राणरक्षणकारणम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव देव्यन्नं प्रतिगृह्यताम्॥ २३

शाल्यन्नजं सुपक्वं च शर्करागव्यसंयुतम्।
स्वादुयुक्तं महालक्ष्मि परमान्नं प्रगृह्यताम्॥ २४

शर्करागव्यपक्वं च सुस्वादु सुमनोहरम्।
स्वस्तिकं नाम नैवेद्यं गृहाण परमेश्वरि॥ २५

नानाविधानि रम्याणि पक्वान्नानि फलानि च।
सुरभिस्तनसंत्यक्तं सुस्वादु सुमनोहरम्॥ २६

मर्त्यामृतं सुगव्यं च गृह्यतामच्युतप्रिये।
सुस्वादु रससंयुक्तमिक्षुवृक्षसमुद्भवम् ॥ २७

अग्निपक्वमतिस्वादु गुडं च प्रतिगृह्यताम्।
यवगोधूमसस्यानां चूर्णरेणुसमुद्भवम्॥ २८

सुपक्वं गुडगव्याक्तं मिष्टान्नं देवि गृह्यताम्।
सस्यचूर्णोद्भवं पक्वं स्वस्तिकादिसमन्वितम्॥ २९

मया निवेदितं भक्त्या नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्।
शीतवायुप्रदं चैव दाहे च सुखदं परम्॥ ३०

कमले गृह्यतां चेदं व्यजनं श्वेतचामरम्।
ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्॥ ३१

जिह्वाजाड्यच्छेदकरं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम्।
सुवासितं सुशीतं च पिपासानाशकारणम्॥ ३२
जगज्जीवनरूपं च जीवनं देवि गृह्यताम्।

हे सुरेश्वरि! जगत्के लिये चक्षुस्वरूप, अन्धकार दूर करनेवाले, सुखरूप तथा परम पवित्र इस दीपकको आप स्वीकार कीजिये॥ २१॥

नाना प्रकारके उपहारस्वरूप अनेकविध रसोंसे युक्त तथा अत्यन्त स्वादिष्ट इस नैवेद्यको आप स्वीकार कीजिये। अन्न ब्रह्मस्वरूप होता है, यह प्राणरक्षाका परम कारण है, तुष्टि तथा पुष्टि प्रदान करता है, अतः हे देवि! आप इस अन्नको ग्रहण कीजिये॥ २२-२३॥

हे महालक्ष्मि! शर्करा और गोघृत मिलाकर अगहनी चावलसे तैयार किये गये इस स्वादिष्ट पक्वान्नको परमान्नके रूपमें आप स्वीकार करें। हे परमेश्वरि! शर्करा और घृतमें पकाया गया यह स्वादिष्ट तथा अत्यन्त मनोहर स्वस्तिक नामक नैवेद्य आप ग्रहण करें॥ २४-२५॥

हे अच्युतप्रिये! ये अनेक प्रकारके सुन्दर पक्वान्न तथा फल और सुरभीधेनुके स्तनसे दुहे गये मृत्युलोकके लिये अमृतस्वरूप, अत्यन्त मनोहर तथा सुस्वादु दुग्धको आप स्वीकार कीजिये। ईखसे निकाले गये अत्यन्त स्वादिष्ट रसको अग्निपर पकाकर निर्मित किये गये इस परम स्वादिष्ट गुड़को आप स्वीकार कीजिये। हे देवि! जौ, गेहूँ आदिके चूर्णमें गुड़ तथा गायका घृत मिलाकर भलीभाँति पकाये गये इस मिष्टान्नको आप ग्रहण कीजिये। मैंने धान्यके चूर्णसे बनाये गये तथा स्वस्तिक आदिसे युक्त यह पका हुआ नैवेद्य आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है, इसे स्वीकार करें॥ २६—२९½॥

हे कमले! शीतल वायु प्रदान करनेवाला और उष्णकालमें परम सुखदायक यह पंखा तथा स्वच्छ चँवर ग्रहण कीजिये॥ ३०½॥

कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित तथा जिह्वाकी जड़ताको दूर करनेवाले इस उत्तम ताम्बूलको आप स्वीकार करें॥ ३१½॥

हे देवि! प्यास बुझानेवाले, अत्यन्त शीतल, सुवासित तथा जगत्के लिये जीवनस्वरूप इस जलको स्वीकार कीजिये॥ ३२½॥

देहसौन्दर्यबीजं च सदा शोभाविवर्धनम्॥ ३३

कार्पासजं च कृमिजं वसनं देवि गृह्यताम्।
रक्तस्वर्णविकारं च देहभूषादिवर्धनम्॥ ३४

शोभाधारं श्रीकरं च भूषणं देवि गृह्यताम्।
नानाऋतुषु निर्माणं बहुशोभाश्रयं परम्॥ ३५

सुरभूपप्रियं शुद्धं माल्यं देवि प्रगृह्यताम्।
शुद्धिदं शुद्धरूपं च सर्वमङ्गलमङ्गलम्॥ ३६

गन्धवस्तूद्भवं रम्यं गन्धं देवि प्रगृह्यताम्।
पुण्यतीर्थोदकं चैव विशुद्धं शुद्धिदं सदा॥ ३७

गृह्यतां कृष्णकान्ते त्वं रम्यमाचमनीयकम्।
रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनचर्चितम्॥ ३८

रत्नभूषणभूषाढ्यं सुतल्पं देवि गृह्यताम्।
यद्यद् द्रव्यमपूर्वं च पृथिव्यामपि दुर्लभम्॥ ३९

देवभूषार्हभोग्यं च तद् द्रव्यं देवि गृह्यताम्।
द्रव्याण्येतानि दत्त्वा च मूलेन देवपुङ्गवः॥ ४०

मूलं जजाप भक्त्या च दशलक्षं विधानतः।
जपेन दशलक्षेण मन्त्रसिद्धिर्बभूव ह॥ ४१

मन्त्रश्च ब्रह्मणा दत्तः कल्पवृक्षश्च सर्वतः।
लक्ष्मीर्माया कामवाणी ङेऽन्ता कमलवासिनी॥ ४२

वैदिको मन्त्रराजोऽयं प्रसिद्धः स्वाहयान्वितः।
कुबेरोऽनेन मन्त्रेण परमैश्वर्यमाप्तवान्॥ ४३

हे देवि! देहसौन्दर्यके मूल कारण तथा सदा शोभा बढ़ानेवाले इस सूती तथा रेशमी वस्त्रको आप ग्रहण करें॥ ३३½ ॥

हे देवि! रक्तस्वर्णनिर्मित, शरीरकी शोभा आदिकी वृद्धि करनेवाला, सौन्दर्यका आधार तथा कान्तिवर्धक यह आभूषण ग्रहण कीजिये॥ ३४½ ॥

हे देवि! विविध ऋतुओंके पुष्पोंसे गूँथी गयी, अत्यधिक शोभाके आश्रयस्वरूप तथा देवराज इन्द्रके लिये भी परम प्रिय इस श्रेष्ठ तथा पवित्र मालाको आप स्वीकार करें॥ ३५½ ॥

हे देवि! सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पन्न, सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाले, शुद्धि प्रदान करनेवाले तथा शुद्धस्वरूप इस दिव्य चन्दनको आप ग्रहण कीजिये॥ ३६½ ॥

हे कृष्णकान्ते! यह पवित्र तीर्थजल स्वयं शुद्ध है तथा दूसरोंको भी सदा शुद्धि प्रदान करनेवाला है, इस दिव्य जलको आप आचमनके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ ३७½ ॥

हे देवि! अमूल्य रत्नोंसे निर्मित, पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित और वस्त्र-आभूषण तथा शृंगार-सामग्रीसे सम्पन्न इस दिव्य शय्याको आप स्वीकार करें। हे देवि! इस पृथ्वीपर जो भी अपूर्व तथा दुर्लभ द्रव्य शरीरकी शोभावृद्धिके योग्य हैं, उन समस्त द्रव्योंको आपको अर्पण कर रहा हूँ, आप ग्रहण कीजिये॥ ३८-३९½ ॥

[हे मुने!] मूलमन्त्र पढ़ते हुए ये उपचार भगवतीको समर्पित करके देवराज इन्द्रने विधानके अनुसार भक्तिपूर्वक उनके मूल मन्त्रका दस लाख जप किया। उस दस लाख जपसे इन्द्रको मन्त्रकी सिद्धि हो गयी॥ ४०-४१ ॥

सभीके लिये कल्पवृक्षके समान यह मूलमन्त्र उन्हें ब्रह्माजीके द्वारा प्रदान किया गया था। पूर्वमें लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)-का प्रयोग करके कमलवासिनी इस शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर पुनः 'स्वाहा' शब्द जोड़ देनेपर '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा**'—यही मन्त्र वैदिक मन्त्रराजके

राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च।
मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपेऽवनीपतिः॥ ४४

प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च।
एते सिद्धाश्च राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद॥ ४५

सिद्धे मन्त्रे महालक्ष्मीः शक्राय दर्शनं ददौ।
रत्नेन्द्रसारनिर्माणविमानस्था वरप्रदा॥ ४६

सप्तद्वीपवतीं पृथ्वीं छादयन्ती त्विषा च सा।
श्वेतचम्पकवर्णाभा रत्नभूषणभूषिता॥ ४७

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
बिभ्रती रत्नमालां च कोटिचन्द्रसमप्रभाम्॥ ४८

दृष्ट्वा जगत्प्रसूं शान्तां तुष्टावैतां पुरन्दरः।
पुलकाञ्चितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रः कृताञ्जलिः॥ ४९

ब्रह्मणा च प्रदत्तेन स्तोत्रराजेन संयुतः।
सर्वाभीष्टप्रदेनैव वैदिकेनैव तत्र च॥ ५०

पुरन्दर उवाच

नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः।
कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः॥ ५१

पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः।
पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥ ५२

सर्वसम्पत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः।
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः॥ ५३

कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः।
चन्द्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने॥ ५४

सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः।
नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः॥ ५५

रूपमें प्रसिद्ध है। कुबेरने इसी मन्त्रके द्वारा परम ऐश्वर्य प्राप्त किया था और दक्षसावर्णि नामक मनुने राजराजेश्वरका पद प्राप्त कर लिया था। मंगल इसी मन्त्रके प्रभावसे सात द्वीपोंके राजा हुए थे। हे नारद! प्रियव्रत, उत्तानपाद और केदार—ये सभी इसी मन्त्रके प्रभावसे परम सिद्ध राजाधिराज बने॥ ४२—४५॥

इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर भगवती महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिया। उस समय वे वरदायिनी भगवती सर्वोत्तम रत्नसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं, उन्होंने अपने तेजसे सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याप्त कर रखा था, उनका श्रीविग्रह श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान था, वे रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थीं, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये परम आतुर थीं, उन्होंने रत्नमयी माला धारण कर रखी थी और वे करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिसे युक्त थीं। उन शान्त स्वभाववाली जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको देखकर इन्द्रके सभी अंग पुलकित हो उठे और वे दोनों हाथ जोड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे ब्रह्माजीसे प्राप्त तथा सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाले इस वैदिक स्तोत्रराजके द्वारा उन महालक्ष्मीकी स्तुति करने लगे॥ ४६—५०॥

पुरन्दर बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको नमस्कार है, कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरन्तर बार-बार नमस्कार है॥ ५१॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाली और कमलके समान मुखवालीको बार-बार नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी और वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥ सर्वसम्पत्स्वरूपा तथा सबकी आराध्या देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली तथा हर्षदायिनी भगवती लक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥ हे रत्नपद्मे! हे शोभने! श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर सुशोभित होनेवाली तथा चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली आप कृष्णेश्वरीको बार-बार नमस्कार है॥ ५४॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। वृद्धिस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। वृद्धि प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५५॥

वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे।
स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥ ५६

गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता।
सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥ ५७

अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया।
स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥ ५८

त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥ ५९

क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा।
परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥ ६०

यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्।
जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना॥ ६१

सर्वेषां च परा माता सर्वबान्धवरूपिणी।
धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥ ६२

यथा माता स्तनान्धानां शिशूनां शैशवे सदा।
तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥ ६३

मातृहीनः स्तनान्धस्तु स च जीवति दैवतः।
त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥ ६४

सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके।
वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥ ६५

अहं यावत्त्वया हीनो बन्धुहीनश्च भिक्षुकः।
सर्वसम्पद्विहीनश्च तावदेव हरिप्रिये॥ ६६

ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्।
प्रभावञ्च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च॥ ६७
जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च।

हे भगवति! आप वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसागरमें लक्ष्मी, इन्द्रके भवनमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंके भवनमें राजलक्ष्मी, गृहस्थोंके घरमें गृहलक्ष्मी और गृहदेवता, सागरके यहाँ सुरभि तथा यज्ञके पास दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हैं॥ ५६-५७॥ आप अदिति, देवमाता, कमला तथा कमलालया नामसे प्रसिद्ध हैं और हवि प्रदान करते समय स्वाहा तथा कव्य प्रदान करते समय स्वधा नामसे कही गयी हैं॥ ५८॥ सम्पूर्ण जगत्‌को धारण करनेवाली विष्णुस्वरूपिणी पृथ्वी आप ही हैं। आप भगवान् नारायणकी आराधनामें सदा तत्पर रहनेवाली तथा विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न हैं। आप क्रोध तथा हिंसासे रहित, वर प्रदान करनेवाली, बुद्धि प्रदान करनेवाली, मंगलमयी, श्रेष्ठ, परमार्थ तथा भगवान्‌का दास्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ५९-६०॥ आपके बिना सम्पूर्ण जगत् भस्मीभूत तथा सारहीन है। आपके बिना यह समग्र विश्व सर्वथा जीते-जी मरे हुएके समान है॥ ६१॥ आप समस्त प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता, सबकी बान्धवस्वरूपिणी और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष (पुरुषार्थचतुष्टय)-की मूल कारण हैं॥ ६२॥ जिस प्रकार माता शैशवावस्थामें स्तनपायी शिशुओंकी सदा रक्षा करती है, उसी प्रकार आप सभी प्राणियोंकी माताके रूपमें सब प्रकारसे उनकी रक्षा करती हैं॥ ६३॥ स्तनपायी शिशु माताके न रहनेपर भी दैवयोगसे जी भी सकता है, किंतु आपसे रहित होकर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता—यह निश्चित है। हे अम्बिके! आप अत्यन्त प्रसन्नतापूर्ण स्वरूपवाली हैं, अतः मुझपर प्रसन्न हों॥ ६४$\frac{१}{२}$॥

हे सनातनि! शत्रुओंके द्वारा अधिकृत किया गया मेरा राज्य मुझे पुनः प्राप्त कराइये। हे हरिप्रिये! मैं जबतक आपके दर्शनसे वंचित था; तभीतक बन्धुहीन, भिक्षुक और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे विहीन था। अब आप मुझे ज्ञान, धर्म, पूर्ण सौभाग्य, सम्पूर्ण अभीष्ट, प्रभाव, प्रताप, सम्पूर्ण अधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्धमें विजय प्रदान कीजिये॥ ६५—६७$\frac{१}{२}$॥

इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह॥ ६८

प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः।
ब्रह्मा च शङ्करश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः॥ ६९

सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः।
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्॥ ७०

केशवाय ददौ लक्ष्मीः सन्तुष्टा सुरसंसदि।
ययुर्देवाश्च सन्तुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद॥ ७१

देवी ययौ हरेः स्थानं हृष्टा क्षीरोदशायिनः।
ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद॥ ७२

दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः॥ ७३

कुबेरतुल्यः स भवेद्राजराजेश्वरो महान्।
पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ७४

सिद्धस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं तु सन्ततम्।
महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः॥ ७५

[हे नारद!] ऐसा कहकर सभी देवताओंके साथ इन्द्रने अश्रुपूरित नेत्रोंसे तथा मस्तक झुकाकर भगवतीको बार-बार प्रणाम किया। ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग, धर्म तथा केशव—इन सभीने देवताओंके कल्याणहेतु भगवतीसे बार-बार प्रार्थना की॥ ६८-६९½ ॥

तब देवसभामें परम प्रसन्न होकर भगवती महालक्ष्मीने देवताओंको वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्णको मनोहर पुष्पमाला समर्पित कर दी। हे नारद! तदनन्तर सभी देवता प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये और प्रसन्नचित्त महालक्ष्मी भी क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीहरिके लोकको चली गयीं। हे नारद! देवताओंको आशीर्वाद देकर ब्रह्मा और शिव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने लोकको चले गये॥ ७०—७२½ ॥

[हे नारद!] जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालमें इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह कुबेरके समान महान् राजराजेश्वर हो जाता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है। यदि कोई मनुष्य एक मासतक निरन्तर इस सिद्ध स्तोत्रका पाठ करे, तो वह परम सुखी तथा राजेन्द्र हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७३—७५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे महालक्ष्म्या ध्यानस्तोत्रवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

* * *

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती स्वाहाका उपाख्यान

नारद उवाच

नारायण महाभाग नारायण महाप्रभो।
रूपेणैव गुणेनैव यशसा तेजसा त्विषा॥ १
त्वमेव ज्ञानिनां श्रेष्ठः सिद्धानां योगिनां मुने।
तपस्विनां मुनीनां च परो वेदविदांवर॥ २
महालक्ष्म्या उपाख्यानं विज्ञातं महदद्भुतम्।
अन्यत्किञ्चिदुपाख्यानं निगूढं वद साम्प्रतम्॥ ३
अतीव गोपनीयं यदुपयुक्तं च सर्वतः।
अप्रकाश्यं पुराणेषु वेदोक्तं धर्मसंयुतम्॥ ४

नारदजी बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आप रूप, गुण, यश, तेज और कान्तिमें साक्षात् नारायण ही हैं॥ १॥

हे मुने! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और मुनियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। मैंने आपसे महालक्ष्मीका अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान जान लिया, अब आप मुझे कोई दूसरा उपाख्यान बतलाइये; जो रहस्यमय, अत्यन्त गोपनीय, सबके लिये उपयोगी, पुराणोंमें अप्रकाशित, धर्मयुक्त तथा वेदप्रतिपादित हो॥ २—४॥

श्रीनारायण उवाच

नानाप्रकारमाख्यानमप्रकाश्यं पुराणतः।
श्रुतं कतिविधं गूढमास्ते ब्रह्मन् सुदुर्लभम्॥ ५

तेषु यत्सारभूतं च श्रोतुं किं वा त्वमिच्छसि।
तन्मे ब्रूहि महाभाग पश्चाद्वक्ष्यामि तत्पुनः॥ ६

नारद उवाच

स्वाहा देवी हविर्दाने प्रशस्ता सर्वकर्मसु।
पितृदाने स्वधा शस्ता दक्षिणा सर्वतो वरा॥ ७

एतासां चरितं जन्मफलं प्राधान्यमेव च।
श्रोतुमिच्छामि त्वद्वक्त्राद्वद वेदविदांवर॥ ८

सूत उवाच

नारदस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्य मुनिसत्तमः।
कथां कथितुमारेभे पुराणोक्तां पुरातनीम्॥ ९

श्रीनारायण उवाच

सृष्टेः प्रथमतो देवाः स्वाहारार्थं ययुः पुरा।
ब्रह्मलोकं ब्रह्मसभामाजग्मुः सुमनोहराम्॥ १०

गत्वा निवेदनं चक्रुराहारहेतुकं मुने।
ब्रह्मा श्रुत्वा प्रतिज्ञाय निषेवे श्रीहरिं परम्॥ ११

नारद उवाच

यज्ञरूपो हि भगवान् कलया च बभूव ह।
यज्ञे यद्यद्धविर्दानं दत्तं तेभ्यश्च ब्राह्मणैः॥ १२

श्रीनारायण उवाच

हविर्ददति विप्राश्च भक्त्या च क्षत्रियादयः।
सुरा नैव प्राप्नुवन्ति तद्दानं मुनिपुङ्गव॥ १३

देवा विषण्णास्ते सर्वे तत्सभां च ययुः पुनः।
गत्वा निवेदनं चक्रुराहाराभावहेतुकम्॥ १४

ब्रह्मा श्रुत्वा तु ध्यानेन श्रीकृष्णं शरणं ययौ।
पूजाञ्चकार प्रकृतेर्ध्यानेनैव तदाज्ञया॥ १५

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! ऐसे अनेकविध आख्यान हैं, जो पुराणोंमें वर्णित नहीं हैं। कई प्रकारके आख्यान सुने भी गये हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ तथा गूढ़ हैं, उनमें किस सारभूत आख्यानको आप सुनना चाहते हैं? हे महाभाग! आप पहले मुझसे उसे बताइये, तब मैं उसका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

नारदजी बोले—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवि-प्रदानके समय स्वाहादेवी और श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं। यज्ञ आदि कर्मोंमें दक्षिणादेवी सर्वश्रेष्ठ हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं आपके मुखसे इन्हीं देवियोंके चरित्र, अवतारग्रहणका प्रयोजन तथा महत्त्व सुनना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ७-८॥

सूतजी बोले—नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायणने हँसकर पुराणप्रतिपादित प्राचीन कथा कहनी आरम्भ की॥ ९॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! प्राचीन समयमें सृष्टिके प्रारम्भिक कालमें देवतागण अपने आहारके लिये ब्रह्मलोक गये। वहाँपर वे ब्रह्माजीकी मनोहर सभामें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने आहारके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनके लिये आहारकी प्रतिज्ञा करके परमेश्वर श्रीहरिकी आराधना की॥ १०-११॥

नारदजी बोले—भगवान् श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके थे। तब यज्ञमें ब्राह्मणोंके द्वारा उन देवताओंको जो-जो हव्य प्रदान किया जाता था, क्या उससे उनकी तृप्ति नहीं होती थी?॥ १२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण देवताओंके निमित्त भक्तिपूर्वक जो हविदान करते थे, उस प्रदत्त हविको देवगण नहीं प्राप्त कर पाते थे। उसीसे वे सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मसभामें गये और वहाँ जाकर उन्होंने आहारके अभावकी बात बतायी॥ १३-१४॥

देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने ध्यान करके श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की। तब उन श्रीकृष्णके आदेशानुसार ब्रह्माजी ध्यानके साथ मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना करने लगे। इसके फलस्वरूप सर्वशक्ति-स्वरूपिणी स्वाहादेवी भगवती मूलप्रकृतिकी कलासे

प्रकृतेः कलया चैव सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
अतीव सुन्दरी श्यामा रमणीया मनोहरा॥ १६

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या भक्तानुग्रहकातरा।
उवाचेति विधेरग्रे पद्मयोने वरं वृणु॥ १७

विधिस्तद्वचनं श्रुत्वा सम्भ्रमात्समुवाच ताम्।

प्रजापतिरुवाच

त्वमग्नेर्दाहिका शक्तिर्भव यातीव सुन्दरी॥ १८

दग्धुं न शक्तः प्रकृतीर्हुताशश्च त्वया विना।
त्वन्नामोच्चार्य मन्त्रान्ते यो दास्यति हविर्नरः॥ १९

सुरेभ्यस्तत्प्राप्नुवन्ति सुराः सानन्दपूर्वकम्।
अग्नेः सम्पत्स्वरूपा च श्रीरूपा सा गृहेश्वरी॥ २०

देवानां पूजिता शश्वन्नरादीनां भवाम्बिके।
ब्रह्मणश्च वचः श्रुत्वा सा विषण्णा बभूव ह॥ २१

तमुवाच ततो देवी स्वाभिप्रायं स्वयम्भुवम्।

स्वाहोवाच

अहं कृष्णं भजिष्यामि तपसा सुचिरेण च॥ २२

ब्रह्मंस्तदन्यं यत्किञ्चित्स्वप्नवद् भ्रममेव च।
विधाता जगतस्त्वं च शम्भुर्मृत्युञ्जयो विभुः॥ २३

बिभर्ति शेषो विश्वं च धर्मः साक्षी च धर्मिणाम्।
सर्वाद्यपूज्यो देवानां गणेषु च गणेश्वरः॥ २४

प्रकृतिः सर्वसम्पूज्या यत्प्रसादात्पुराभवत्।
ऋषयो मुनयश्चैव पूजिता यन्निषेवया॥ २५

तत्पादपद्मं नियतं भावेन चिन्तयाम्यहम्।
पद्मास्या पाद्ममित्युक्त्वा पद्मनाभानुसारतः॥ २६

प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, लावण्यमय, रमणीय तथा मनोहर था, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर-सी प्रतीत हो रही थीं, ऐसे स्वरूपवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—हे पद्मयोने! वर माँगो। उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी आदरपूर्वक उन भगवतीसे कहने लगे—॥ १५—१७½ ॥

प्रजापति बोले—[हे देवि!] आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि आपके बिना अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य मन्त्रके अन्तमें आपके नामका उच्चारण करके देवताओंको हवि प्रदान करेगा, उसे देवगण प्रेमपूर्वक ग्रहण करेंगे। हे अम्बिके! आप अग्निदेवकी सम्पत्स्वरूपिणी तथा श्रीरूपिणी गृहस्वामिनी बन जाइये, देवता तथा मनुष्य आदिके लिये आप नित्य पूजनीय होवें॥ १८—२०½ ॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर वे भगवती स्वाहा उदास हो गयीं। उसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया॥ २१½ ॥

स्वाहा बोलीं—हे ब्रह्मन्! मैं दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँगी; क्योंकि उनके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब स्वप्नकी भाँति केवल भ्रम है॥ २२½ ॥

जिनके अनुग्रहसे आप जगत्‌का विधान करते हैं, भगवान् शिवने मृत्युपर विजय प्राप्त की है, शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं, धर्मराज सभी धर्मनिष्ठ प्राणियोंके साक्षी बने हैं, गणेश्वर सभी देवगणोंमें सबसे पहले पूजे जाते हैं, पूर्वकालमें भगवती मूलप्रकृति सबके द्वारा पूजित हुईं और जिनकी उपासनाके प्रभावसे ऋषि तथा मुनिगण पूजित हुए हैं, मैं उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरण-कमलका संयत होकर प्रेमपूर्वक निरन्तर ध्यान करती हूँ॥ २३—२५½ ॥

ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर कमलके समान मुखवाली स्वाहादेवी भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार तपस्या करनेके लिये चली गयीं और उन पद्मजा स्वाहाने

जगाम तपसे देवी ध्यात्वा कृष्णं निरामयम्।
तपस्तेपे वर्षलक्षमेकपादेन पद्मजा॥ २७

तदा ददर्श श्रीकृष्णं निर्गुणं प्रकृतेः परम्।
अतीव कमनीयं च रूपं दृष्ट्वा च रूपिणी॥ २८

मूर्च्छां सम्प्राप कालेन कामेशस्य च कामुकी।
विज्ञाय तदभिप्रायं सर्वज्ञस्तामुवाच ह॥ २९

समुत्थाप्य च तां क्रोडे क्षीणाङ्गीं तपसा चिरम्।

श्रीभगवानुवाच

वाराहे वै त्वमंशेन मम पत्नी भविष्यसि॥ ३०

नाम्ना नाग्नजिती कन्या कान्ते नग्नजितस्य च।
अधुनाग्नेर्दाहिका त्वं भव पत्नी च भामिनी॥ ३१

मन्त्राङ्गरूपा पूज्या च मत्प्रसादाद् भविष्यसि।
वह्निस्त्वां भक्तिभावेन सम्पूज्य च गृहेश्वरीम्॥ ३२

रमिष्यति त्वया सार्धं रामया रमणीयया।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवीं सम्भाष्य नारद॥ ३३

तत्राजगाम सन्त्रस्तो वह्निर्ब्रह्मनिदेशतः।
सामवेदोक्तध्यानेन ध्यात्वा तां जगदम्बिकाम्॥ ३४

सम्पूज्य परितुष्टाव पाणिं जग्राह मन्त्रतः।
तदा दिव्यं वर्षशतं स रेमे रामया सह॥ ३५

अतीव निर्जने देशे सम्भोगसुखदे सदा।
बभूव गर्भस्तस्यां च हुताशस्य च तेजसा॥ ३६

तं दधार च सा देवी दिव्यं द्वादशवत्सरम्।
ततः सुषाव पुत्रांश्च रमणीयान्मनोहरान्॥ ३७
दक्षिणाग्निगार्हपत्याहवनीयान् क्रमेण च।

निर्विकार श्रीकृष्णका ध्यान करके एक पैरपर खड़े होकर एक लाख वर्षतक तप किया। तत्पश्चात् उन्हें अप्राकृत निर्गुण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त मनोहर रूप देखकर ही वे रूपवती भगवती स्वाहा मूर्च्छित हो गयीं; क्योंकि उन कामुकी देवीने दीर्घकालके अनन्तर उन कामेश्वर श्रीकृष्णको देखा था॥ २६—२८½ ॥

भगवती स्वाहाका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण दीर्घकालतक तपस्याके कारण अत्यन्त क्षीण देहवाली उन देवीको गोदमें बैठाकर उनसे कहने लगे॥ २९½ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे कान्ते! तुम अंशरूपसे वाराहकल्पमें मेरी भार्या बनोगी, उस समय तुम नग्नजित्की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर नाग्नजिती नामसे विख्यात होओगी। इस समय तुम दाहिका-शक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। मेरे अनुग्रहसे तुम मन्त्रोंकी अंगस्वरूपिणी बनकर सबसे पूजित होओगी। अग्निदेव तुम्हें गृहस्वामिनी बनाकर भक्तिभावके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे और वे परम रमणीया भार्याके रूपमें तुम्हारे साथ रमण करेंगे॥ ३०—३२½ ॥

हे नारद! देवी स्वाहासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। इसके बाद ब्रह्माज्ञासे अत्यन्त भयभीत अग्निदेव वहाँ आये। उन्होंने सामवेदमें कही गयी ध्यानविधिसे उन भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके तथा विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें परम प्रसन्न किया तथा मन्त्रोच्चारपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ३३-३४½ ॥

तत्पश्चात् वे विहारके लिये सुखप्रद तथा अत्यन्त निर्जन स्थानमें भगवती स्वाहाके साथ दिव्य एक सौ वर्षोंतक रमण करते रहे और अग्निके तेजसे उन्होंने गर्भधारण कर लिया। देवी स्वाहा उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन भगवती स्वाहाने क्रमसे दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि—इन सुन्दर तथा मनोहर पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३५—३७½ ॥

ऋषयो मुनयश्चैव ब्राह्मणाः क्षत्रियादयः॥ ३८

स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चार्य हविर्दानं च चक्रिरे।
स्वाहायुक्तं च मन्त्रं च यो गृह्णाति प्रशस्तकम्॥ ३९

सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य मन्त्रग्रहणमात्रतः।
विषहीनो यथा सर्पो वेदहीनो यथा द्विजः॥ ४०

पतिसेवाविहीना स्त्री विद्याहीनो यथा पुमान्।
फलशाखाविहीनश्च यथा वृक्षो हि निन्दितः॥ ४१

स्वाहाहीनस्तथा मन्त्रो न हुतः फलदायकः।
परितुष्टा द्विजाः सर्वे देवाः सम्प्रापुराहुतीः॥ ४२

स्वाहान्तेनैव मन्त्रेण सफलं सर्वमेव च।
इत्येवं कथितं सर्वं स्वाहोपाख्यानमुत्तमम्॥ ४३

सुखदं मोक्षदं सारं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

स्वाहापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं मुनीश्वर॥ ४४

सम्पूज्य वह्निस्तुष्टाव येन तद्वद मे प्रभो।

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च सामवेदोक्तं स्तोत्रपूजाविधानकम्॥ ४५

वदामि श्रूयतां ब्रह्मन् सावधानो मुनीश्वर।
सर्वयज्ञारम्भकाले शालग्रामे घटेऽथवा॥ ४६

स्वाहां सम्पूज्य यत्नेन यज्ञं कुर्यात्फलाप्तये।
स्वाहां मन्त्राङ्गयुक्तां च मन्त्रसिद्धिस्वरूपिणीम्॥ ४७

सिद्धां च सिद्धिदां नृणां कर्मणां फलदां शुभाम्।
इति ध्यात्वा च मूलेन दत्त्वा पाद्यादिकं नरः॥ ४८

सर्वसिद्धिं लभेत्स्तुत्वा मूलमन्त्रं मुने शृणु।
ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहेत्यनेन च॥ ४९
यः पूजयेच्च तां भक्त्या सर्वेष्टं सम्भवेद् ध्रुवम्।

तभीसे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मन्त्रके अन्तमें स्वाहा शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे। जो मनुष्य स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है; मन्त्रके उच्चारणमात्रसे उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ ३८-३९½ ॥

जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्यासे शून्य मनुष्य और फल तथा शाखासे रहित वृक्ष निन्दनीय होता है, उसी प्रकार स्वाहारहित मन्त्र निन्द्य होता है; ऐसे मन्त्रसे किया गया हवन फलप्रद नहीं होता॥ ४०-४१½ ॥

तब समस्त ब्राह्मण सन्तुष्ट हो गये और देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं। अन्तमें स्वाहायुक्त मन्त्रसे सब कुछ सफल हो जाता है। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने भगवती स्वाहासे सम्बन्धित सम्पूर्ण उत्तम आख्यानका वर्णन कर दिया। यह आख्यान सुखदायक, सारभूत तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२-४३½ ॥

नारदजी बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! अग्निने जिस पूजा-विधान, ध्यान तथा स्तोत्रद्वारा स्वाहाको प्रसन्न किया था, उसे आप मुझे बताइये॥ ४४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भगवतीके सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजा-विधानको बता रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ४५½ ॥

फलप्राप्तिके निमित्त सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भिक कालमें शालग्राम अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका विधिवत् पूजन करके यज्ञ करना चाहिये॥ ४६½ ॥

भगवती स्वाहा वेदांगमय मन्त्रोंसे सम्पन्न, मन्त्रसिद्धिस्वरूपा, सिद्धस्वरूपिणी, मनुष्योंको सिद्धि तथा उनके कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा कल्याणमयी हैं—इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करके भगवतीका स्तवन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अब मूलमन्त्र सुनिये—'**ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक उन भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसका समस्त अभीष्ट निश्चितरूपसे पूर्ण हो जाता है॥ ४७—४९½ ॥

वह्निरुवाच

स्वाहा वह्निप्रिया वह्निजाया सन्तोषकारिणी ॥ ५०
शक्तिः क्रिया कालदात्री परिपाककरी ध्रुवा ।
गतिः सदा नराणां च दाहिका दहनक्षमा ॥ ५१
संसारसाररूपा च घोरसंसारतारिणी ।
देवजीवनरूपा च देवपोषणकारिणी ॥ ५२
षोडशैतानि नामानि यः पठेद्भक्तिसंयुतः ।
सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य इह लोके परत्र च ॥ ५३
नाङ्गहीनं भवेत्तस्य सर्वं कर्म सुशोभनम् ।
अपुत्रो लभते पुत्रं भार्याहीनो लभेत्प्रियाम् ॥ ५४
रम्भोपमां स्वकान्तां च सम्प्राप्य सुखमाप्नुयात् ॥ ५५

वह्नि बोले—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मनुष्योंकी गति, दाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोरसंसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषणकारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं। जो मनुष्य इनका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उसका कोई कर्म अपूर्ण नहीं रहता, समस्त कर्म उत्तम फलदायी होते हैं, पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है तथा भार्याहीन व्यक्ति पत्नीको प्राप्त कर लेता है और रम्भातुल्य अपनी उस भार्याको प्राप्त करके वह सुख भोगता है ॥ ५०—५५ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
स्वाहोपाख्यानवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती स्वधाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् ।
पितॄणां च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धनम् ॥ १

सृष्टेरादौ पितृगणान्ससर्ज जगतां विधिः ।
चतुरश्च मूर्तिमतस्त्रींश्च तेजःस्वरूपिणः ॥ २

दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान्मनोहरान् ।
आहारं ससृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३

स्नानं तर्पणपर्यन्तं श्राद्धं तु देवपूजनम् ।
आह्निकं च त्रिसन्ध्यान्तं विप्राणां च श्रुतौ श्रुतम् ॥ ४

नित्यं न कुर्याद्यो विप्रस्त्रिसन्ध्यं श्राद्धतर्पणम् ।
बलिं वेदध्वनिं सोऽपि विषहीनो यथोरगः ॥ ५

देवीसेवाविहीनश्च श्रीहरेरनिवेद्यभुक् ।
भस्मान्तं सूतकं तस्य न कर्मार्हश्च नारद ॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं स्वधाका उत्तम आख्यान कहूँगा, जो पितरोंके लिये तृप्तिकारक तथा श्राद्धान्नके फलकी वृद्धि करनेवाला है ॥ १ ॥

जगत्‌का विधान करनेवाले ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें चार मूर्तिमान् तथा तीन तेजःस्वरूप पितरोंका सृजन किया। उन सातों सुखस्वरूप तथा मनोहर पितरोंको देखकर उन्होंने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनका आहार भी सृजित किया ॥ २-३ ॥

स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा त्रिकाल सन्ध्या—ये ब्राह्मणोंके आह्निक कर्म श्रुतिमें प्रसिद्ध हैं ॥ ४ ॥

जो ब्राह्मण प्रतिदिन त्रिकाल सन्ध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदध्वनि नहीं करता, वह विषहीन सर्पके समान है ॥ ५ ॥

हे नारद! जो व्यक्ति भगवतीकी सेवासे वंचित है तथा भगवान् श्रीहरिको बिना नैवेद्य अर्पण किये ही भोजन ग्रहण करता है, उसका अशौच केवल दाहपर्यन्त बना रहता है और वह कोई भी शुभ कृत्य करनेके योग्य नहीं रह जाता ॥ ६ ॥

ब्रह्मा श्राद्धादिकं सृष्ट्वा जगाम पितृहेतवे।
न प्राप्नुवन्ति पितरो ददति ब्राह्मणादयः॥ ७

सर्वे च जग्मुः क्षुधिताः खिन्नास्तु ब्रह्मणः सभाम्।
सर्वं निवेदनं चक्रुस्तमेव जगतां विधिम्॥ ८

ब्रह्मा च मानसीं कन्यां ससृजे च मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां शतचन्द्रनिभाननाम्॥ ९

विद्यावतीं गुणवतीमतिरूपवतीं सतीम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥ १०

विशुद्धां प्रकृतेरंशां सस्मितां वरदां शुभाम्।
स्वधाभिधां च सुदतीं लक्ष्मीलक्षणसंयुताम्॥ ११

शतपद्मपदन्यस्तपादपद्मं च बिभ्रतीम्।
पत्नीं पितॄणां पद्मास्यां पद्मजां पद्मलोचनाम्॥ १२

पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम्।
ब्राह्मणानां चोपदेशं चकार गोपनीयकम्॥ १३

स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य पितृभ्यो देयमित्यपि।
क्रमेण तेन विप्राश्च पित्रे दानं ददुः पुरा॥ १४

स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता।
सर्वत्र दक्षिणा शस्ता हतं यज्ञमदक्षिणम्॥ १५

पितरो देवता विप्रा मुनयो मनवस्तथा।
पूजां चक्रुः स्वधां शान्तां तुष्टुवुः परमादरात्॥ १६

देवादयश्च सन्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
विप्रादयश्च पितरः स्वधादेवीवरेण च॥ १७

इस प्रकार ब्रह्माजी पितरोंके लिये श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये, किंतु ब्राह्मण आदि जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण करते थे, उन्हें पितरगण प्राप्त नहीं कर पाते थे॥ ७॥

अतः क्षुधासे व्याकुल तथा उदास मनवाले सभी पितर ब्रह्माजीकी सभामें गये और उन्होंने जगत्‌का विधान करनेवाले उन ब्रह्माको सारी बात बतायी॥ ८॥

तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। वह रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थी और उसका मुख सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् था। वह साध्वी विद्या, गुण तथा परम रूपसे सम्पन्न थी। उसका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल था और वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थी। विशुद्ध, मूलप्रकृतिकी अंशरूपा, वरदायिनी तथा कल्याणमयी वह मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त थी। लक्ष्मीके लक्षणोंसे युक्त स्वधा नामक वह देवी सुन्दर दाँतोंवाली थी। शतदलकमलके ऊपर रखे चरणकमलवाली वह देवी अतिशय सुशोभित हो रही थी। पितरोंकी पत्नीस्वरूपा उस कमलोद्भवा स्वधादेवीके मुख तथा नेत्र कमलके समान थे। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया। उसी समय ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि आपलोगोंको अन्तमें स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करके ही पितरोंको कव्य पदार्थ अर्पण करना चाहिये। तभीसे ब्राह्मणलोग उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे॥ ९—१४॥

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है। दक्षिणा सर्वत्र प्रशस्त मानी गयी है; क्योंकि दक्षिणाविहीन यज्ञ विनष्ट हो जाता है॥ १५॥

उस समय पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा मनुगणोंने परम आदरपूर्वक शान्तिस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा तथा स्तुति की॥ १६॥

भगवती स्वधाके वरदानसे पितरगण, देवता तथा विप्र आदि परम सन्तुष्ट तथा पूर्ण मनोरथवाले हो गये॥ १७॥

इत्येवं कथितं सर्वं स्वधोपाख्यानमेव च।
सर्वेषां च तुष्टिकरं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ १८

नारद उवाच

स्वधापूजाविधानं च ध्यानं स्तोत्रं महामुने।
श्रोतुमिच्छामि यत्नेन वद वेदविदांवर॥ १९

श्रीनारायण उवाच

ध्यानं च स्तवनं ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वमङ्गलम्।
सर्वं जानासि च कथं ज्ञातुमिच्छसि वृद्धये॥ २०

शरत्कृष्णत्रयोदश्यां मघायां श्राद्धवासरे।
स्वधां सम्पूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत्॥ २१

स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः।
न भवेत्फलभाक्सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च॥ २२

ब्रह्मणो मानसीं कन्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
पूज्यां वै पितृदेवानां श्राद्धानां फलदां भजे॥ २३

इति ध्यात्वा शिलायां वा ह्यथवा मङ्गले घटे।
दद्यात्पाद्यादिकं तस्यै मूलेनेति श्रुतौ श्रुतम्॥ २४

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहेति च महामुने।
समुच्चार्य तु सम्पूज्य स्तुत्वा तां प्रणमेद् द्विजः॥ २५

स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ ब्रह्मपुत्र विशारद।
सर्ववाञ्छाप्रदं नृणां ब्रह्मणा यत्कृतं पुरा॥ २६

श्रीनारायण उवाच

स्वधोच्चारणमात्रेण तीर्थस्नायी भवेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो वाजपेयफलं लभेत्॥ २७

हे नारद! इस प्रकार मैंने सभी प्राणियोंको तुष्टि प्रदान करनेवाला यह सम्पूर्ण स्वधाका उपाख्यान आपसे कह दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १८॥

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे महामुने! मैं भगवती स्वधाकी पूजाका विधान, उनका ध्यान तथा स्तोत्र सुनना चाहता हूँ; यत्नपूर्वक बतलाइये॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! आप समस्त प्राणियोंका मंगल करनेवाला भगवती स्वधाका वेदोक्त ध्यान तथा स्तवन आदि सब कुछ जानते ही हैं तो फिर उसे क्यों जानना चाहते हैं? तो भी लोगोंके कल्याणार्थ मैं उसे आपको बता रहा हूँ—शरत्कालमें आश्विनमासके कृष्णपक्षमें त्रयोदशी तिथिको मघा नक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक देवी स्वधाकी विधिवत् पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये॥ २०-२१॥

अहंकारयुक्त बुद्धिवाला जो विप्र भगवती स्वधाका पूजन किये बिना ही श्राद्ध करता है, वह श्राद्ध तथा तर्पणका फल प्राप्त नहीं करता, यह सत्य है॥ २२॥

मैं सर्वदा स्थिर यौवनवाली, पितरों तथा देवताओंकी पूज्या और श्राद्धोंका फल प्रदान करनेवाली ब्रह्माकी मानसी कन्या भगवती स्वधाकी आराधना करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मंगलमय कलशपर उनका आवाहनकर मूलमन्त्रसे उन्हें पाद्य आदि उपचार अर्पण करने चाहिये—ऐसा श्रुतिमें प्रसिद्ध है॥ २३-२४॥

हे महामुने! द्विजको चाहिये कि '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करके उनकी विधिवत् पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्रह्मपुत्र! हे विशारद! अब आप सभी मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाले उस स्तोत्रको सुनिये, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पाठ किया था॥ २६॥

श्रीनारायण बोले—'स्वधा' शब्दका उच्चारण करनेमात्रसे मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा वाजपेययज्ञका फल प्राप्त कर लेता है॥ २७॥

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्।
श्राद्धस्य फलमाप्नोति बलेश्च तर्पणस्य च॥ २८

श्राद्धकाले स्वधास्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
स लभेच्छ्राद्धसम्भूतं फलमेव न संशयः॥ २९

स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः।
प्रियां विनीतां स लभेत्साध्वीं पुत्रगुणान्विताम्॥ ३०

पितॄणां प्राणतुल्या त्वं द्विजजीवनरूपिणी।
श्राद्धाधिष्ठातृदेवी च श्राद्धादीनां फलप्रदा॥ ३१

नित्या त्वं सत्यरूपासि पुण्यरूपासि सुव्रते।
आविर्भावतिरोभावौ सृष्टौ च प्रलये तव॥ ३२

ॐ स्वस्तिश्च नमः स्वाहा स्वधा त्वं दक्षिणा तथा।
निरूपिताश्चतुर्वेदैः प्रशस्ताः कर्मिणां पुनः॥ ३३

कर्मपूर्त्यर्थमेवैता ईश्वरेण विनिर्मिताः।
इत्येवमुक्त्वा स ब्रह्मा ब्रह्मलोके स्वसंसदि॥ ३४

तस्थौ च सहसा सद्यः स्वधा साविर्बभूव ह।
तदा पितृभ्यः प्रददौ तामेव कमलाननाम्॥ ३५

तां सम्प्राप्य ययुस्ते च पितरश्च प्रहर्षिताः।
स्वधास्तोत्रमिदं पुण्यं यः शृणोति समाहितः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु वाञ्छितं फलमाप्नुयात्॥ ३६

यदि मनुष्य स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस प्रकार तीन बार स्मरण कर ले तो वह श्राद्ध, बलिवैश्वदेव तथा तर्पणका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

जो व्यक्ति श्राद्धके अवसरपर सावधान होकर स्वधास्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धसे होनेवाला सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९॥

जो मनुष्य त्रिकाल सन्ध्याके समय स्वधा, स्वधा, स्वधा—ऐसा उच्चारण करता है; उसे पुत्रों तथा सद्‌गुणोंसे सम्पन्न, विनम्र, प्रिय तथा पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है॥ ३०॥

हे देवि! आप पितरोंके लिये प्राणतुल्य और ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूपिणी हैं। आप श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्राद्ध आदिका फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ३१॥

हे सुव्रते! आप नित्य, सत्य तथा पुण्यमय विग्रहवाली हैं। आप सृष्टिके समय प्रकट होती हैं तथा प्रलयके समय तिरोहित हो जाती हैं॥ ३२॥

आप ॐ, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा तथा दक्षिणा रूपमें विराजमान हैं। चारों वेदोंने आपकी इन मूर्तियोंको अत्यन्त प्रशस्त बतलाया है। प्राणियोंके कर्मोंकी पूर्तिके लिये ही परमेश्वरने आपकी ये मूर्तियाँ बनायी हैं॥ ३३½॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें अपनी सभामें विराजमान हो गये। उसी समय भगवती स्वधा सहसा प्रकट हो गयीं। तब ब्रह्माजीने उन कमलमुखी स्वधादेवीको पितरोंके लिये समर्पित कर दिया। उन भगवतीको पाकर पितरगण अत्यन्त हर्षित हुए और वहाँसे चले गये। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर भगवती स्वधाके इस पवित्र स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया। वह इसके प्रभावसे वांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३४—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे
स्वधोपाख्यानवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

* * *

अथ पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान

श्रीनारायण उवाच

उक्तं स्वाहास्वधाख्यानं प्रशस्तं मधुरं परम्।
वक्ष्यामि दक्षिणाख्यानं सावधानो निशामय॥ १

गोपी सुशीला गोलोके पुरासीत्प्रेयसी हरेः।
राधा प्रधाना सध्रीची धन्या मान्या मनोहरा॥ २

अतीव सुन्दरी रामा सुभगा सुदती सती।
विद्यावती गुणवती चातिरूपवती सती॥ ३

कलावती कोमलाङ्गी कान्ता कमललोचना।
सुश्रोणी सुस्तनी श्यामा न्यग्रोधपरिमण्डिता॥ ४

ईषद्धास्यप्रसन्नास्या रत्नालङ्कारभूषिता।
श्वेतचम्पकवर्णाभा बिम्बोष्ठी मृगलोचना॥ ५

कामशास्त्रेषु निपुणा कामिनी हंसगामिनी।
भावानुरक्ता भावज्ञा कृष्णस्य प्रियभामिनी॥ ६

रसज्ञा रसिका रासे रासेशस्य रसोत्सुका।
उवासादक्षिणे क्रोडे राधायाः पुरतः पुरा॥ ७

सम्बभूवानम्रमुखो भयेन मधुसूदनः।
दृष्ट्वा राधां च पुरतो गोपीनां प्रवरोत्तमाम्॥ ८

कामिनीं रक्तवदनां रक्तपङ्कजलोचनाम्।
कोपेन कम्पिताङ्गीं च कोपेन स्फुरिताधराम्॥ ९

वेगेन तां तु गच्छन्तीं विज्ञाय तदनन्तरम्।
विरोधभीतो भगवानन्तर्धानं चकार सः॥ १०

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने भगवती स्वाहा तथा स्वधाका अत्यन्त मधुर तथा कल्याणकारी उपाख्यान बता दिया। अब मैं भगवती दक्षिणाका आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १॥

प्राचीनकालमें गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी सुशीला नामक एक गोपी थी। परम धन्य, मान्य तथा मनोहर वह गोपी भगवती राधाकी प्रधान सखी थी। वह अत्यन्त सुन्दर, लक्ष्मीके लक्षणोंसे सम्पन्न, सौभाग्यवती, उज्ज्वल दाँतोंवाली, परम पतिव्रता, साध्वी, विद्या; गुण तथा रूपसे अत्यधिक सम्पन्न थी। वह विविध कलाओंमें निपुण, कोमल अंगोंवाली, आकर्षक, कमलनयनी, श्यामा, सुन्दर नितम्ब तथा वक्ष:स्थलसे सुशोभित होती हुई वट-वृक्षोंसे घिरी रहती थी। उसका मुखमण्डल मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वह रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित थी, उसके शरीरकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी, उसके ओष्ठ बिम्बाफलके समान रक्तवर्णके थे, मृगके सदृश उसके नेत्र थे, कामिनी तथा हंसके समान गतिवाली वह कामशास्त्रमें निपुण थी। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रियभामिनी वह सुशीला उनके भावोंको भलीभाँति जानती थी तथा उनके भावोंसे सदा अनुरक्त रहती थी। रसज्ञानसे परिपूर्ण, रासक्रीडाकी रसिक तथा रासेश्वर श्रीकृष्णके प्रेमरसहेतु लालायित रहनेवाली वह गोपी सुशीला एक बार राधाके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णके वाम अंकमें बैठ गयी॥ २—७॥

तब मधुसूदन श्रीकृष्णने गोपिकाओंमें परम श्रेष्ठ राधाकी ओर देखकर भयभीत हो अपना मुख नीचे कर लिया। उस समय कामिनी राधाका मुख लाल हो गया और उनके नेत्र रक्तकमलके समान हो गये। क्रोधसे उनके अंग काँप रहे थे तथा ओठ प्रस्फुरित हो रहे थे। तब उन राधाको बड़े वेगसे जाती देखकर उनके विरोधसे अत्यन्त डरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ ८—१०॥

पलायन्तं च कान्तं च शान्तं सत्त्वं सुविग्रहम्।
विलोक्य कम्पिता गोप्यः सुशीलाद्यास्ततो भिया॥ ११

विलोक्य लम्पटं तत्र गोपीनां लक्षकोटयः।
पुटाञ्जलियुता भीता भक्तिनम्रात्मकन्धराः॥ १२

रक्ष रक्षेत्युक्तवन्त्यो देवीमिति पुनः पुनः।
ययुर्भयेन शरणं यस्याश्चरणपङ्कजे॥ १३

त्रिलक्षकोटयो गोपाः सुदामादय एव च।
ययुर्भयेन शरणं तत्पादाब्जे च नारद॥ १४

पलायन्तं च कान्तं च विज्ञाय परमेश्वरी।
पलायन्तीं सहचरीं सुशीलां च शशाप सा॥ १५

अद्यप्रभृति गोलोकं सा चेदायाति गोपिका।
सद्यो गमनमात्रेण भस्मसाच्च भविष्यति॥ १६

इत्येवमुक्त्वा तत्रैव देवदेवेश्वरी रुषा।
रासेश्वरी रासमध्ये रासेशमाजुहाव ह॥ १७

नालोक्य पुरतः कृष्णं राधा विरहकातरा।
युगकोटिसमं मेने क्षणभेदेन सुव्रता॥ १८

हे कृष्ण प्राणनाथेशागच्छ प्राणाधिकप्रिय।
प्राणाधिष्ठातृदेवेश प्राणा यान्ति त्वया विना॥ १९

स्त्रीगर्वः पतिसौभाग्याद्वर्धते च दिने दिने।
सुखं च विपुलं यस्मात्तं सेवेद्धर्मतः सदा॥ २०

पतिर्बन्धुः कुलस्त्रीणामधिदेवः सदागतिः।
परसम्पत्स्वरूपश्च मूर्तिमान् भोगदः सदा॥ २१

धर्मदः सुखदः शश्वत्प्रीतिदः शान्तिदः सदा।
सम्मानैर्दीप्यमानश्च मानदो मानखण्डनः॥ २२

सारात्सारतरः स्वामी बन्धूनां बन्धुवर्धनः।
न च भर्तुः समो बन्धुर्बन्धोर्बन्धुषु दृश्यते॥ २३

कान्तिमान्, शान्त स्वभाववाले, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीकृष्णको अन्तर्हित हुआ देखकर सुशीला आदि गोपियाँ भयसे काँपने लगीं। श्रीकृष्णको अन्तर्धान हुआ देखकर वे भयभीत लाखों-करोड़ों गोपियाँ भक्तिपूर्वक कन्धा झुकाकर और दोनों हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा भगवती राधासे बार-बार कहने लगीं और उन राधाके चरणकमलमें भयपूर्वक शरणागत हो गयीं। हे नारद! वहाँके तीन लाख करोड़ सुदामा आदि गोप भी भयभीत होकर उन राधाके चरण-कमलकी शरणमें गये॥ ११—१४॥

परमेश्वरी राधाने अपने कान्त श्रीकृष्णको अन्तर्धान तथा सहचरी सुशीलाको पलायन करते देखकर उन्हें शाप दे दिया कि यदि गोपिका सुशीला आजसे गोलोकमें आयेगी, तो वह आंते ही भस्मसात् हो जायगी॥ १५-१६॥

ऐसा कहकर देवदेवेश्वरी रासेश्वरी राधा रोषपूर्वक रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारने लगीं॥ १७॥

श्रीकृष्णको समक्ष न देखकर राधिकाजी विरहसे व्याकुल हो गयीं। उन परम साध्वीको एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा। उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे ईश! आ जाइये। हे प्राणोंसे अधिक प्रिय तथा प्राणके अधिष्ठाता देवेश्वर! आपके बिना मेरे प्राण निकल रहे हैं॥ १८-१९॥

पतिके सौभाग्यसे स्त्रियोंका स्वाभिमान दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है और उन्हें महान् सुख प्राप्त होता है। अतः स्त्रीको सदा धर्मपूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये॥ २०॥

कुलीन स्त्रियोंके लिये पति ही बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा भोग प्रदान करनेवाला साक्षात् विग्रह है॥ २१॥

वही स्त्रीके लिये धर्म, सुख, निरन्तर प्रीति, सदा शान्ति तथा सम्मान प्रदान करनेवाला; आदरसे देदीप्यमान होनेवाला और मानभंग भी करनेवाला है। पति ही स्त्रीके लिये परम सार है और बन्धुओंमें बन्धुभावको बढ़ानेवाला है। समस्त बन्धु-बान्धवोंमें पतिके समान कोई बन्धु दिखायी नहीं देता॥ २२-२३॥

भरणादेव भर्ता च पालनात्पतिरुच्यते।
शरीरेशाच्च स स्वामी कामदः कान्त उच्यते॥ २४

बन्धुश्च सुखवृद्ध्या च प्रीतिदानात्प्रियः स्मृतः।
ऐश्वर्यदानादीशश्च प्राणेशात्प्राणनायकः॥ २५

रतिदानाच्च रमणः प्रियो नास्ति प्रियात्परः।
पुत्रस्तु स्वामिनः शुक्राज्जायते तेन स प्रियः॥ २६

शतपुत्रात्परः स्वामी कुलजानां प्रियः सदा।
असत्कुलप्रसूता या कान्तं विज्ञातुमक्षमा॥ २७

स्नानं च सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दक्षिणा।
प्रादक्षिण्यं पृथिव्याश्च सर्वाणि च तपांसि च॥ २८

सर्वाण्येव व्रतादीनि महादानानि यानि च।
उपोषणानि पुण्यानि यानि यानि श्रुतानि च॥ २९

गुरुसेवा विप्रसेवा देवसेवादिकं च यत्।
स्वामिनः पादसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ३०

गुरुविप्रेन्द्रदेवेषु सर्वेभ्यश्च पतिर्गुरुः।
विद्यादाता यथा पुंसां कुलजानां तथा प्रियः॥ ३१

गोपीनां लक्षकोटीनां गोपानां च तथैव च।
ब्रह्माण्डानामसंख्यानां तत्रस्थानां तथैव च॥ ३२

विश्वादिगोलकान्तानामीश्वरी यत्प्रसादतः।
अहं न जाने तं कान्तं स्त्रीस्वभावो दुरत्ययः॥ ३३

इत्युक्त्वा राधिका कृष्णं तत्र दध्यौ स्वभक्तितः।
रुरोद प्रेम्णा सा राधा नाथ नाथेति चाब्रवीत्॥ ३४
दर्शनं देहि रमण दीना विरहदुःखिता।

वह स्त्रीका भरण करनेके कारण 'भर्ता', पालन करनेके कारण 'पति', उसके शरीरका शासक होनेके कारण 'स्वामी' तथा उसकी कामनाएँ पूर्ण करनेके कारण 'कान्त' कहा जाता है। वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्य प्रदान करनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनायक' और रतिसुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहा गया है। स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। पतिके शुक्रसे पुत्र उत्पन्न होता है, इसलिये वह प्रिय होता है॥ २४—२६॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न स्त्रियोंके लिये उनका पति सदा सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। जो असत्-कुलमें उत्पन्न स्त्री है, वह पतिके महत्त्वको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहती है॥ २७॥

सभी तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, सम्पूर्ण तप, सभी प्रकारके व्रत और जो महादान आदि हैं, जो-जो पुण्यप्रद उपवास आदि प्रसिद्ध हैं और गुरुसेवा, विप्रसेवा तथा देव-पूजन आदि जो भी शुभ कृत्य हैं, वे सब पतिके चरणकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ २८—३०॥

गुरु, ब्राह्मण और देवता—इन सभीकी अपेक्षा स्त्रीके लिये पति ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिये विद्याका दान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है; उसी प्रकार कुलीन स्त्रियोंके लिये पति श्रेष्ठ है॥ ३१॥

जिनके अनुग्रहसे मैं लाखों-करोड़ गोपियों, गोपों, असंख्य ब्रह्माण्डों, वहाँके निवासियों तथा अखिल ब्रह्माण्ड-गोलककी ईश्वरी बनी हूँ, अपने उन कान्त श्रीकृष्णका रहस्य मैं नहीं जानती। स्त्रियोंका स्वभाव अत्यन्त दुर्लंघ्य है॥ ३२-३३॥

ऐसा कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। विरहसे दुःखित तथा दीन वे राधिका प्रेमके कारण रो रही थीं और 'हे नाथ! हे रमण! मुझे दर्शन दीजिये'—ऐसा कह रही थीं॥ ३४½॥

अथ सा दक्षिणा देवी ध्वस्ता गोलोकतो मुने॥ ३५

सुचिरं च तपस्तप्त्वा विवेश कमलातनौ।
अथ देवादयः सर्वे यज्ञं कृत्वा सुदुष्करम्॥ ३६

नालभंस्ते फलं तेषां विषण्णाः प्रययुर्विधिम्।
विधिर्निवेदनं श्रुत्वा देवादीनां जगत्पतिम्॥ ३७

दध्यौ च सुचिरं भक्त्या प्रत्यादेशमवाप सः।
नारायणश्च भगवान् महालक्ष्याश्च देहतः॥ ३८

विनिष्कृष्य मर्त्यलक्ष्मीं ब्रह्मणे दक्षिणां ददौ।
ब्रह्मा ददौ तां यज्ञाय पूरणार्थं च कर्मणाम्॥ ३९

यज्ञः सम्पूज्य विधिवत्तां तुष्टाव तदा मुदा।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्॥ ४०

अतीव कमनीयां च सुन्दरीं सुमनोहराम्।
कमलास्यां कोमलाङ्गीं कमलायतलोचनाम्॥ ४१

कमलासनपूज्यां च कमलाङ्गसमुद्भवाम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां बिम्बोष्ठीं सुदतीं सतीम्॥ ४२

बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यसंयुतम्।
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ४३

सुवेषाढ्यां च सुस्नातां मुनिमानसमोहिनीम्।
कस्तूरीबिन्दुभिः सार्धं सुगन्धिचन्दनेन्दुभिः॥ ४४

सिन्दूरबिन्दुनाल्पेनाप्यलकाधःस्थलोज्ज्वलाम्।
सुप्रशस्तनितम्बाढ्यां बृहच्छ्रोणिपयोधराम्॥ ४५

हे मुने! इसके बाद राधाके द्वारा गोलोकसे च्युत सुशीला नामक वह गोपी दक्षिणा नामसे प्रसिद्ध हुई। दीर्घकालतक तपस्या करके उसने भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें स्थान प्राप्त कर लिया। अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये॥ ३५-३६॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने बहुत समयतक भक्तिपूर्वक जगत्पति भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। अन्तमें उन्हें प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट करके और उसका नाम दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये उन देवी दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया। तब यज्ञपुरुषने प्रसन्नतापूर्वक उन देवी दक्षिणाकी विधिवत् पूजा करके उनकी स्तुति की॥ ३७—३९½॥

उन भगवती दक्षिणाका वर्ण तपाये हुए सोनेके समान था; उनके विग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंके तुल्य थी; वे अत्यन्त कमनीय, सुन्दर तथा मनोहर थीं; उनका मुख कमलके समान था; उनके अंग अत्यन्त कोमल थे; कमलके समान उनके विशाल नेत्र थे; कमलके आसनपर पूजित होनेवाली वे भगवती कमलाके शरीरसे प्रकट हुई थीं, उन्होंने अग्निके समान शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे; उन साध्वीके ओष्ठ बिम्बाफलके समान थे; उनके दाँत अत्यन्त सुन्दर थे; उन्होंने अपने केशपाशमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी; उनके प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलपर मन्द मुसकान व्याप्त थी; वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थीं; उनका वेष अत्यन्त सुन्दर था; वे विधिवत् स्नान किये हुए थीं; वे मुनियोंके भी मनको मोह लेती थीं; कस्तूरीमिश्रित सुगन्धित चन्दनसे बिन्दीके रूपमें अर्धचन्द्राकार तिलक उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था; केशोंके नीचेका भाग (सीमन्त) सिन्दूरकी छोटी-छोटी बिन्दियोंसे अत्यन्त प्रकाशमान था। सुन्दर नितम्ब, बृहत् श्रोणी तथा विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभित हो रही थीं; उनका विग्रह कामदेवका

कामदेवाधाररूपां कामबाणप्रपीडिताम्।
तां दृष्ट्वा रमणीयां च यज्ञो मूर्च्छामवाप ह॥ ४६

पत्नीं तामेव जग्राह विधिबोधितपूर्वकम्।
दिव्यं वर्षशतं चैव तां गृहीत्वा तु निर्जने॥ ४७

यज्ञो रेमे मुदा युक्तो रामेशो रमया सह।
गर्भं दधार सा देवी दिव्यं द्वादशवर्षकम्॥ ४८

ततः सुषाव पुत्रं च फलं वै सर्वकर्मणाम्।
परिपूर्णे कर्मणि च तत्पुत्रः फलदायकः॥ ४९

यज्ञो दक्षिणया सार्धं पुत्रेण च फलेन च।
कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदो विदुः॥ ५०

यज्ञश्च दक्षिणां प्राप्य पुत्रं च फलदायकम्।
फलं ददौ च सर्वेभ्यः कर्मणां चैव नारद॥ ५१

तदा देवादयस्तुष्टाः परिपूर्णमनोरथाः।
स्वस्थाने ते ययुः सर्वे धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥ ५२

कृत्वा कर्म च कर्ता च तूर्णं दद्याच्च दक्षिणाम्।
तत्क्षणं फलमाप्नोति वेदैरुक्तमिदं मुने॥ ५३

कर्मी कर्मणि पूर्णे च तत्क्षणे यदि दक्षिणाम्।
न दद्याद् ब्राह्मणेभ्यश्च दैवेनाज्ञानतोऽथवा॥ ५४

मुहूर्ते समतीते तु द्विगुणा सा भवेद् ध्रुवम्।
एकरात्रे व्यतीते तु भवेच्छतगुणा च सा॥ ५५

त्रिरात्रे तच्छतगुणा सप्ताहे द्विगुणा ततः।
मासे लक्षगुणा प्रोक्ता ब्राह्मणानां च वर्धते॥ ५६

संवत्सरे व्यतीते तु सा त्रिकोटिगुणा भवेत्।
कर्म तद्यजमानानां सर्वं वै निष्फलं भवेत्॥ ५७

आधारस्वरूप था और वे कामदेवके बाणसे अत्यन्त व्यथित थीं—ऐसी उन रमणीया दक्षिणाको देखकर यज्ञपुरुष मूर्च्छित हो गये। पुनः ब्रह्माजीके कथनानुसार उन्होंने भगवती दक्षिणाको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया॥ ४०—४६$\frac{१}{२}$॥

तत्पश्चात् यज्ञपुरुष उन रामेशने रमारूपिणी भगवती दक्षिणाको निर्जन स्थानमें ले जाकर उनके साथ दिव्य सौ वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रमण किया। वे देवी दक्षिणा दिव्य बारह वर्षोंतक गर्भ धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन्होंने सभी कर्मोंके फलरूप पुत्रको जन्म दिया। कर्मके परिपूर्ण होनेपर वही पुत्र फल प्रदान करनेवाला होता है। भगवान् यज्ञ भगवती दक्षिणा तथा अपने पुत्र फलसे युक्त होनेपर ही कर्म करनेवालोंको फल प्रदान करते हैं—ऐसा वेदवेत्ता पुरुषोंने कहा है॥ ४७—५०॥

हे नारद! इस प्रकार देवी दक्षिणा तथा फलदायक पुत्रको प्राप्तकर यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथवाले वे सभी देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये—ऐसा मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ५१-५२॥

हे मुने! कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे। ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है—ऐसा वेदोंने कहा है॥ ५३॥

कर्मके सम्पन्न हो जानेपर यदि कर्ता दैववश या अज्ञानसे उसी क्षण ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता, तो एक मुहूर्त बीतनेपर वह दक्षिणा निश्चय ही दो गुनी हो जाती है और एक रात बीतनेपर वह सौ गुनी हो जाती है। वह दक्षिणा तीन रात बीतनेके बाद उसकी सौ गुनी और एक सप्ताह बीतनेपर उसकी दो सौ गुनी हो जाती है। एक माहके बाद वह लाख गुनी बतायी गयी है। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी दक्षिणा बढ़ती जाती है और एक वर्ष बीत जानेपर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है, जिससे यजमानोंका सारा कर्म भी व्यर्थ हो जाता है॥ ५४—५७॥

स च ब्रह्मस्वहारी च न कर्मार्होऽशुचिर्नरः।
दरिद्रो व्याधियुक्तश्च तेन पापेन पातकी॥ ५८

तद्गृहाद्याति लक्ष्मीश्च शापं दत्त्वा सुदारुणम्।
पितरो नैव गृह्णन्ति तद्दत्तं श्राद्धतर्पणम्॥ ५९

एवं सुराश्च तत्पूजां तद्दत्तामग्निराहुतिम्।
दत्तं न दीयते दानं ग्रहीता नैव याचते॥ ६०

उभौ तौ नरके यातश्छिन्नरज्जौ यथा घटः।
नार्पयेद्यजमानश्चेद्याचितश्चापि दक्षिणाम्॥ ६१

भवेद् ब्रह्मस्वापहारी कुम्भीपाकं व्रजेद् ध्रुवम्।
वर्षलक्षं वसेत्तत्र यमदूतेन ताडितः॥ ६२

ततो भवेत्स चाण्डालो व्याधियुक्तो दरिद्रकः।
पातयेत्पुरुषान्सप्त पूर्वांश्च सप्त जन्मतः॥ ६३

इत्येवं कथितं विप्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

यत्कर्म दक्षिणाहीनं को भुङ्क्ते तत्फलं मुने॥ ६४

पूजाविधिं दक्षिणायाः पुरा यज्ञकृतं वद।

श्रीनारायण उवाच

कर्मणोऽदक्षिणस्यैव कुत एव फलं मुने॥ ६५

सदक्षिणे कर्मणि च फलमेव प्रवर्तते।
अदक्षिणं च यत्कर्म तद्भुङ्क्ते च बलिर्मुने॥ ६६
बलये तत्प्रदत्तं च वामनेन पुरा मुने।

ब्राह्मणका धन हरनेवाला वह मनुष्य अपवित्र हो जाता है तथा किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। उस पापके कारण वह पापी मनुष्य रोगी तथा दरिद्र रहता है। भगवती लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं। उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्ध तथा तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते। उसी प्रकार देवतागण उसकी पूजा तथा उसके द्वारा अग्निमें प्रदत्त आहुतिको स्वीकार नहीं करते॥ ५८-५९½ ॥

यदि यज्ञके समय कर्ताके द्वारा संकल्पित दान नहीं दिया गया और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं, तो वे दोनों ही (यजमान और ब्राह्मण) नरकमें उसी प्रकार गिरते हैं, जैसे रस्सी टूट जानेपर घड़ा॥ ६०½ ॥

ब्राह्मणके याचना करनेपर भी यदि यजमान उसे दक्षिणा नहीं देता, तो वह ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला कहा जाता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। वहाँ यमदूतोंके द्वारा पीटा जाता हुआ वह एक लाख वर्षतक रहता है। उसके बाद वह चाण्डाल होकर सदा दरिद्र तथा रोगी बना रहता है। वह अपनी सात पीढ़ी पूर्वके तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंको नरकमें गिरा देता है। हे विप्र! मैंने यह सब कह दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६१—६३½ ॥

नारदजी बोले—हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके किया जाता है, उसका फल कौन भोगता है? साथ ही, यज्ञपुरुषके द्वारा पूर्वकालमें की गयी भगवती दक्षिणाकी पूजाविधिको भी मुझे बतलाइये॥ ६४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! दक्षिणाविहीन कर्मका फल हो ही कहाँ सकता है? दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है। हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् वामन राजा बलिके लिये वैसा कर्म अर्पण कर चुके हैं॥ ६५-६६½ ॥

अश्रोत्रियः श्राद्धद्रव्यमश्रद्धादानमेव च॥ ६७

वृषलीपतिविप्राणां पूजाद्रव्यादिकं च यत्।
असद्द्विजैः कृतं यज्ञमशुचेः पूजनं च यत्॥ ६८

गुरावभक्तस्य कर्म बलिर्भुङ्क्ते न संशयः।
दक्षिणायाश्च यद्ध्यानं स्तोत्रं पूजाविधिक्रमम्॥ ६९

तत्सर्वं कण्वशाखोक्तं प्रवक्ष्यामि निशामय।
पुरा सम्प्राप्य तां यज्ञः कर्मदक्षां च दक्षिणाम्॥ ७०

मुमोहास्याः स्वरूपेण तुष्टाव कामकातरः।

यज्ञ उवाच

पुरा गोलोकगोपी त्वं गोपीनां प्रवरा वरा॥ ७१

राधासमा तत्सखी च श्रीकृष्णप्रेयसी प्रिया।
कार्तिकीपूर्णिमायां तु रासे राधामहोत्सवे॥ ७२

आविर्भूता दक्षिणांसाल्लक्ष्म्याश्च तेन दक्षिणा।
पुरा त्वं च सुशीलाख्या ख्याता शीलेन शोभने॥ ७३

लक्ष्मीदक्षांसभागात्त्वं राधाशापाच्च दक्षिणा।
गोलोकात्त्वं परिभ्रष्टा मम भाग्यादुपस्थिता॥ ७४

कृपां कुरु महाभागे मामेव स्वामिनं कुरु।
कर्मिणां कर्मणां देवी त्वमेव फलदा सदा॥ ७५

त्वया विना च सर्वेषां सर्वं कर्म च निष्फलम्।
त्वया विना तथा कर्म कर्मिणां च न शोभते॥ ७६

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च दिक्पालादय एव च।
कर्मणश्च फलं दातुं न शक्ताश्च त्वया विना॥ ७७

अश्रोत्रिय व्यक्तिके द्वारा श्रद्धाहीन होकर दिया गया श्राद्धद्रव्य तथा दान आदि, शूद्रापति ब्राह्मणोंका पूजा-द्रव्य आदि, सदाचारहीन विप्रोंद्वारा किया गया यज्ञ, अपवित्र व्यक्तिका पूजन और गुरुभक्तिसे हीन मनुष्यके कर्मफलको राजा बलि आहारके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६७-६८½ ॥

[हे नारद!] भगवती दक्षिणाका जो भी ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिका क्रम आदि है, वह सब कण्वशाखामें वर्णित है, अब मैं उसे बताऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६९½ ॥

पूर्वसमयमें कर्मका फल प्रदान करनेमें दक्ष उन भगवती दक्षिणाको प्राप्त करके वे यज्ञपुरुष कामपीड़ित होकर उनके स्वरूपपर मोहित हो गये और उनकी स्तुति करने लगे॥ ७०½ ॥

यज्ञ बोले—[हे महाभागे!] तुम पूर्वकालमें गोलोककी एक गोपी थी और गोपियोंमें परम श्रेष्ठ थी। श्रीकृष्ण तुमसे अत्यधिक प्रेम करते थे और तुम राधाके समान ही उन श्रीकृष्णकी प्रिय सखी थी॥ ७१½ ॥

एक बार कार्तिकपूर्णिमाको राधामहोत्सवके अवसरपर रासलीलामें तुम भगवती लक्ष्मीके दक्षिणांशसे प्रकट हो गयी थी, उसी कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। हे शोभने! इससे भी पहले अपने उत्तम शीलके कारण तुम सुशीला नामसे प्रसिद्ध थी। तुम भगवती राधिकाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर और पुनः देवी लक्ष्मीके दक्षिणांशसे आविर्भूत हो अब देवी दक्षिणाके रूपमें मेरे सौभाग्यसे मुझे प्राप्त हुई हो। हे महाभागे! मुझपर कृपा करो और मुझे ही अपना स्वामी बना लो॥ ७२—७४½ ॥

तुम्हीं यज्ञ करनेवालोंको उनके कर्मोंका सदा फल प्रदान करनेवाली देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंका सारा कर्म निष्फल हो जाता है और तुम्हारे बिना अनुष्ठानकर्ताओंका कर्म शोभा नहीं पाता है॥ ७५-७६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल आदि भी तुम्हारे बिना प्राणियोंको कर्मका फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७७॥

कर्मरूपी स्वयं ब्रह्मा फलरूपी महेश्वरः।
यज्ञरूपी विष्णुरहं त्वमेषां साररूपिणी॥ ७८

फलदातृपरं ब्रह्म निर्गुणा प्रकृतिः परा।
स्वयं कृष्णश्च भगवान् स च शक्तस्त्वया सह॥ ७९

त्वमेव शक्तिः कान्ते मे शश्वज्जन्मनि जन्मनि।
सर्वकर्मणि शक्तोऽहं त्वया सह वरानने॥ ८०

इत्युक्त्वा च पुरस्तस्थौ यज्ञाधिष्ठातृदेवता।
तुष्टा बभूव सा देवी भेजे तं कमलाकला॥ ८१

इदं च दक्षिणास्तोत्रं यज्ञकाले च यः पठेत्।
फलं च सर्वयज्ञानां प्राप्नोति नात्र संशयः॥ ८२

राजसूये वाजपेये गोमेधे नरमेधके।
अश्वमेधे लाङ्गले च विष्णुयज्ञे यशस्करे॥ ८३

धनदे भूमिदे पूर्ते फलदे गजमेधके।
लोहयज्ञे स्वर्णयज्ञे रत्नयज्ञेऽथ ताम्रके॥ ८४

शिवयज्ञे रुद्रयज्ञे शक्रयज्ञे च बन्धुके।
वृष्टौ वरुणयागे च कण्डके वैरिमर्दने॥ ८५

शुचियज्ञे धर्मयज्ञेऽध्वरे च पापमोचने।
ब्रह्माणीकर्मयागे च योनियागे च भद्रके॥ ८६

एतेषां च समारम्भे इदं स्तोत्रं च यः पठेत्।
निर्विघ्नेन च तत्कर्म सर्वं भवति निश्चितम्॥ ८७

इदं स्तोत्रं च कथितं ध्यानं पूजाविधिं शृणु।
शालग्रामे घटे वापि दक्षिणां पूजयेत्सुधीः॥ ८८

लक्ष्मीदक्षांससम्भूतां दक्षिणां कमलाकलाम्।
सर्वकर्मसुदक्षां च फलदां सर्वकर्मणाम्॥ ८९

विष्णोः शक्तिस्वरूपां च पूजितां वन्दितां शुभाम्।
शुद्धिदां शुद्धिरूपां च सुशीलां शुभदां भजे॥ ९०

ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं, महेश्वर फलरूप हैं और मैं विष्णु यज्ञरूप हूँ, इन सबमें तुम ही साररूपा हो॥ ७८॥

फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म, गुणरहित पराप्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् हैं॥ ७९॥

हे कान्ते! जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हीं सदा मेरी शक्ति रही हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं सारा कर्म करनेमें समर्थ हूँ॥ ८०॥

ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठातृदेवता भगवान् यज्ञपुरुष दक्षिणाके समक्ष स्थित हो गये। तब भगवती कमलाकी कलास्वरूपिणी देवी दक्षिणा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने यज्ञपुरुषका वरण कर लिया॥ ८१॥

जो मनुष्य यज्ञके अवसरपर भगवती दक्षिणाके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८२॥

राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगलयज्ञ, यश बढ़ानेवाला विष्णुयज्ञ, धनदायक और भूमि देनेवाला पूर्तयज्ञ, फल प्रदान करनेवाला गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धुकयज्ञ, वृष्टिकारक वरुणयज्ञ, वैरिमर्दन कण्डकयज्ञ, शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचनयज्ञ, ब्रह्माणीकर्मयज्ञ और कल्याणकारी अम्बायज्ञ—इन सभीके आरम्भमें जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसका सारा यज्ञकर्म निर्विघ्नरूपसे अवश्य ही सम्पन्न हो जाता है॥ ८३—८७॥

यह स्तोत्र मैंने कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। शालग्राममें अथवा कलशपर भगवती दक्षिणाका आवाहन करके विद्वान्‌को उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ८८॥

[उनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—] भगवती लक्ष्मीके दाहिने स्कन्धसे आविर्भूत होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं, सभी कर्मोंमें अत्यन्त प्रवीण हैं, सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं, भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं, सबकी वन्दनीय तथा पूजनीय, मंगलमयी, शुद्धिदायिनी, शुद्धिस्वरूपिणी, शोभनशीलवाली और शुभदायिनी हैं—ऐसी देवीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८९-९०॥

ध्यात्वानेनैव वरदां मूलेन पूजयेत्सुधीः।
दत्त्वा पाद्यादिकं देव्यै वेदोक्तेनैव नारद॥ ९१

ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहेति च विचक्षणः।
पूजयेद्विधिवद् भक्त्या दक्षिणां सर्वपूजिताम्॥ ९२

इत्येवं कथितं ब्रह्मन् दक्षिणाख्यानमेव च।
सुखदं प्रीतिदं चैव फलदं सर्वकर्मणाम्॥ ९३

इदं च दक्षिणाख्यानं यः शृणोति समाहितः।
अङ्गहीनं च तत्कर्म न भवेद्भारते भुवि॥ ९४

अपुत्रो लभते पुत्रं निश्चितं च गुणान्वितम्।
भार्याहीनो लभेद्भार्यां सुशीलां सुन्दरीं पराम्॥ ९५

वरारोहां पुत्रवतीं विनीतां प्रियवादिनीम्।
पतिव्रतां च शुद्धां च कुलजां च वधूं वराम्॥ ९६

विद्याहीनो लभेद्विद्यां धनहीनो लभेद्धनम्।
भूमिहीनो लभेद्भूमिं प्रजाहीनो लभेत्प्रजाम्॥ ९७

सङ्कटे बन्धुविच्छेदे विपत्तौ बन्धने तथा।
मासमेकमिदं श्रुत्वा मुच्यते नात्र संशयः॥ ९८

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मन्त्रके द्वारा देवी दक्षिणाको पाद्य आदि अर्पण करके '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षिणायै स्वाहा**'—इस मूल मन्त्रसे बुद्धिमान् व्यक्तिको सभी प्राणियोंद्वारा पूजित भगवती दक्षिणाकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ९१-९२॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवती दक्षिणाका यह आख्यान आपसे कह दिया; यह सुख, प्रीति तथा सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ ९३॥

पृथ्वीतलपर भारतवर्षमें जो मनुष्य सावधान होकर देवी दक्षिणाके इस आख्यानका श्रवण करता है, उसका कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रहता। पुत्रहीन व्यक्ति गुणी पुत्र तथा भार्याहीन पुरुष परम सुन्दर तथा सुशील पत्नी प्राप्त कर लेता है; साथ ही वह सुन्दर, पुत्रवती, विनम्र, प्रियभाषिणी, पतिव्रता, पवित्र तथा कुलीन श्रेष्ठ पुत्रवधू भी प्राप्त कर लेता है और विद्याहीन विद्या प्राप्त कर लेता है तथा धनहीन धन पा जाता है। भूमिहीन व्यक्तिको भूमि उपलब्ध हो जाती है और सन्तानहीन व्यक्ति सन्तान प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनकी स्थितिमें एक महीनेतक इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य इनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९४—९८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे दक्षिणोपाख्यानवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

* * *

अथ षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा

नारद उवाच

अनेकानां च देवीनां श्रुतमाख्यानमुत्तमम्।
अन्यासां चरितं ब्रह्मन् वद वेदविदांवर॥ १

श्रीनारायण उवाच

सर्वासां चरितं विप्र वेदेषु च पृथक्पृथक्।
पूर्वोक्तानां च देवीनां कासां श्रोतुमिहेच्छसि॥ २

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैंने अनेक उत्तम देवियोंका उत्तम आख्यान सुन लिया; अब आप दूसरी देवियोंके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! पूर्वकालमें कही गयी सभी देवियोंके चरित्र वेदोंमें अलग-अलग बताये गये हैं, आप इनमेंसे किनका चरित्र सुनना चाहते हैं?॥ २॥

नारद उवाच

षष्ठी मङ्गलचण्डी च मनसा प्रकृतेः कला।
उत्पत्तिमासां चरितं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ३

श्रीनारायण उवाच

षष्ठांशा प्रकृतेर्या च सा च षष्ठी प्रकीर्तिता।
बालकानामधिष्ठात्री विष्णुमाया च बालदा॥ ४

मातृकासु च विख्याता देवसेनाभिधा च या।
प्राणाधिकप्रिया साध्वी स्कन्दभार्या च सुव्रता॥ ५

आयुःप्रदा च बालानां धात्री रक्षणकारिणी।
सततं शिशुपार्श्वस्था योगेन सिद्धियोगिनी॥ ६

तस्याः पूजाविधिं ब्रह्मन्नितिहासमिदं शृणु।
यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण सुखदं पुत्रदं परम्॥ ७

राजा प्रियव्रतश्चासीत्स्वायम्भुवमनोः सुतः।
योगीन्द्रो नोद्वहद्भार्यां तपस्यासु रतः सदा॥ ८

ब्रह्माज्ञया च यत्नेन कृतदारो बभूव ह।
सुचिरं कृतदारश्च न लेभे तनयं मुने॥ ९

पुत्रेष्टियज्ञं तं चापि कारयामास कश्यपः।
मालिन्यै तस्य कान्तायै मुनिर्यज्ञचरुं ददौ॥ १०

भुक्त्वा च तं चरुं तस्याः सद्यो गर्भो बभूव ह।
दधार तं च सा देवी दैवं द्वादशवत्सरम्॥ ११

ततः सुषाव सा ब्रह्मन् कुमारं कनकप्रभम्।
सर्वावयवसम्पन्नं मृतमुत्तारलोचनम्॥ १२

तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वा नार्यश्च बान्धवस्त्रियः।
मूर्च्छामवाप तन्माता पुत्रशोकेन भूयसा॥ १३

नारदजी बोले—भगवती षष्ठी, मंगलचण्डी और मनसादेवी मूलप्रकृतिकी कला हैं; मैं इनकी उत्पत्ति तथा इनका चरित्र साररूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—मूलप्रकृतिके छठे अंशसे जो देवी आविर्भूत हैं, वे भगवती षष्ठी कही गयी हैं। ये बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें विष्णुमाया और बालदा भी कहा जाता है। ये मातृकाओंमें देवसेना नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली तथा साध्वी ये भगवती षष्ठी स्वामी कार्तिकेयकी भार्या हैं और उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। ये बालकोंको आयु प्रदान करनेवाली, उनका भरण-पोषण करनेवाली तथा उनकी रक्षा करनेवाली हैं। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे शिशुओंके पास निरन्तर विराजमान रहती हैं॥ ४—६॥

हे ब्रह्मन्! उन षष्ठीदेवीकी पूजाविधि तथा यह इतिहास भी सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है; यह आख्यान पुत्र तथा परम सुख प्रदान करनेवाला है॥ ७॥

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत नामवाले एक राजा थे। योगिराज प्रियव्रत विवाह नहीं करना चाहते थे। वे सदा तपस्याओंमें संलग्न रहते थे, किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा उनके प्रयत्नसे उन्होंने विवाह कर लिया॥ ८॥

हे मुने! विवाह करनेके अनन्तर बहुत समयतक जब उन्हें पुत्रप्राप्ति नहीं हुई, तब महर्षि कश्यपने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। मुनिने उनकी प्रिय भार्या मालिनीको यज्ञचरु प्रदान किया। उस चरुको ग्रहण कर लेनेपर उन्हें शीघ्र ही गर्भ स्थित हो गया। वे देवी उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं॥ ९—११॥

हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्णसदृश कान्तिवाले, शरीरके समस्त अवयवोंसे सम्पन्न, मरे हुए तथा उलटी आँखोंवाले पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

उसे देखकर सभी स्त्रियाँ तथा बान्धवोंकी पत्नियाँ रोने लगीं और महान् पुत्रशोकके कारण उसकी माता मूर्च्छित हो गयीं॥ १३॥

श्मशानं च ययौ राजा गृहीत्वा बालकं मुने।
रुरोद तत्र कान्तारे पुत्रं कृत्वा स्ववक्षसि॥ १४

नोत्सृजद् बालकं राजा प्राणांस्त्यक्तुं समुद्यतः।
ज्ञानयोगं विसस्मार पुत्रशोकात्सुदारुणात्॥ १५

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं च ददर्श सः।
शुद्धस्फटिकसंकाशं मणिराजविनिर्मितम्॥ १६

तेजसा ज्वलितं शश्वच्छोभितं क्षौमवाससा।
नानाचित्रविचित्राढ्यं पुष्पमालाविराजितम्॥ १७

ददर्श तत्र देवीं च कमनीयां मनोहराम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ १८

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां रत्नभूषणभूषिताम्।
कृपामयीं योगसिद्धां भक्तानुग्रहकातराम्॥ १९

दृष्ट्वा तां पुरतो राजा तुष्टाव परमादरात्।
चकार पूजनं तस्या विहाय बालकं भुवि॥ २०

पप्रच्छ राजा तां तुष्टां ग्रीष्मसूर्यसमप्रभाम्।
तेजसा ज्वलितां शान्तां कान्तां स्कन्दस्य नारद॥ २१

राजोवाच

का त्वं सुशोभने कान्ते कस्य कान्तासि सुव्रते।
कस्य कन्या वरारोहे धन्या मान्या च योषिताम्॥ २२

नृपेन्द्रस्य वचः श्रुत्वा जगन्मङ्गलचण्डिका।
उवाच देवसेना सा देवानां रणकारिणी॥ २३

देवानां दैत्यग्रस्तानां पुरा सेना बभूव सा।
जयं ददौ सा तेभ्यश्च देवसेना च तेन सा॥ २४

हे मुने! उस बालकको लेकर राजा प्रियव्रत श्मशान गये और वहाँ निर्जन स्थानमें पुत्रको अपने वक्षसे लगाकर रुदन करने लगे। राजाने उस पुत्रको नहीं छोड़ा। वे प्राणत्याग करनेको तत्पर हो गये। अत्यन्त दारुण पुत्रशोकके कारण राजाका ज्ञानयोग विस्मृत हो गया॥ १४-१५॥

इसी बीच वहाँ उन्होंने शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रकाशमान, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, तेजसे निरन्तर देदीप्यमान, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे विभूषित और पुष्प तथा मालाओंसे सुसज्जित एक विमान देखा। साथ ही उन्होंने उस विमानमें कमनीय, मनोहर, श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली, सदा स्थायी रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त, प्रसन्न मुखमण्डलवाली, रत्ननिर्मित आभूषणोंसे अलंकृत, कृपाकी साक्षात् मूर्ति, योगसिद्ध और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम आतुर प्रतीत होनेवाली देवीको भी देखा॥ १६—१९॥

उन देवीको समक्ष देखकर राजाने उस बालकको भूमिपर रखकर परम आदरपूर्वक उनका स्तवन तथा पूजन किया। हे नारद! तत्पश्चात् राजा प्रियव्रत प्रसन्नताको प्राप्त, ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, अपने तेजसे देदीप्यमान तथा शान्त स्वभाववाली उन कार्तिकेयप्रिया [भगवती षष्ठी]-से पूछने लगे—॥ २०-२१॥

राजा बोले—हे सुशोभने! हे कान्ते! हे सुव्रते! हे वरारोहे! समस्त स्त्रियोंमें परम धन्य तथा आदरणीय तुम कौन हो, किसकी भार्या हो और किसकी पुत्री हो?॥ २२॥

[हे नारद!] नृपेन्द्र प्रियव्रतकी बात सुनकर जगत्का कल्याण करनेमें दक्ष तथा देवताओंके लिये संग्राम करनेवाली भगवती देवसेना उनसे कहने लगीं। वे देवी प्राचीनकालमें दैत्योंके द्वारा पीडित देवताओंकी सेना बनी थीं। उन्होंने उन्हें विजय प्रदान किया था, इसलिये वे देवसेना नामसे विख्यात हैं॥ २३-२४॥

श्रीदेवसेनोवाच

ब्रह्मणो मानसी कन्या देवसेनाहमीश्वरी।
सृष्ट्वा तां मनसा धाता ददौ स्कन्दाय भूमिप॥ २५

मातृकासु च विख्याता स्कन्दभार्या च सुव्रता।
विश्वे षष्ठीति विख्याता षष्ठांशा प्रकृतेः परा॥ २६

अपुत्राय पुत्रदाहं प्रियादात्री प्रियाय च।
धनदाहं दरिद्रेभ्यः कर्मिभ्यश्च स्वकर्मदा॥ २७

सुखं दुःखं भयं शोको हर्षो मङ्गलमेव च।
सम्पत्तिश्च विपत्तिश्च सर्वं भवति कर्मणा॥ २८

कर्मणा बहुपुत्रश्च वंशहीनः स्वकर्मणा।
कर्मणा मृतपुत्रश्च कर्मणा चिरजीवनः॥ २९

कर्मणा गुणवांश्चैव कर्मणा चाङ्गहीनकः।
कर्मणा बहुभार्यश्च भार्याहीनश्च कर्मणा॥ ३०

कर्मणा रूपवान्धर्मी रोगी शश्वत्स्वकर्मणा।
कर्मणा च भवेद्व्याधिः कर्मणारोग्यमेव च॥ ३१

तस्मात्कर्म परं राजन् सर्वेभ्यश्च श्रुतौ श्रुतम्।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी गृहीत्वा बालकं मुने॥ ३२

महाज्ञानेन सा देवी जीवयामास लीलया।
राजा ददर्श तं बालं सस्मितं कनकप्रभम्॥ ३३

देवसेना च पश्यन्तं नृपमापृच्छ्य सा तदा।
गृहीत्वा बालकं देवी गगनं गन्तुमुद्यता॥ ३४

पुनस्तुष्टाव तां राजा शुष्ककण्ठोष्ठतालुकः।
नृपस्तोत्रेण सा देवी परितुष्टा बभूव ह॥ ३५
उवाच तं नृपं ब्रह्मन् वेदोक्तं कर्मनिर्मितम्।

श्रीदेवसेना बोलीं—हे राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। सबपर शासन करनेवाली मैं 'देवसेना' नामसे विख्यात हूँ। विधाताने अपने मनसे मेरी सृष्टि करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया। मातृकाओंमें विख्यात मैं स्वामी कार्तिकेयकी पतिव्रता भार्या हूँ। भगवती परा-प्रकृतिका षष्ठांश होनेके कारण मैं विश्वमें 'षष्ठी'—इस नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं पुत्रहीनको पुत्र, पतिको प्रिय पत्नी, दरिद्रोंको धन देनेवाली और कर्म करनेवालोंको उनके कर्मका फल प्रदान करनेवाली हूँ॥ २५—२७॥

हे राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति—यह सब कर्मानुसार होता है। अपने कर्मसे मनुष्य अनेक पुत्रोंवाला होता है, कर्मसे ही वह वंशहीन होता है, कर्मसे ही उसे मरा हुआ पुत्र होता है और कर्मसे ही वह पुत्र दीर्घजीवी होता है। मनुष्य कर्मसे ही गुणी, कर्मसे ही अंगहीन, कर्मसे ही अनेक पत्नियोंवाला तथा कर्मसे ही भार्याहीन होता है। कर्मसे ही मनुष्य रूपवान् तथा कर्मसे ही निरन्तर रोगग्रस्त रहता है, कर्मसे ही व्याधि तथा कर्मसे ही नीरोगता होती है। अतः हे राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—ऐसा श्रुतिमें कहा गया है॥ २८—३११/२॥

हे मुने! इस प्रकार कहकर उन भगवती षष्ठीने बालकको लेकर अपने महाज्ञानके द्वारा खेल-खेलमें उसे जीवित कर दिया। अब राजा प्रियव्रत स्वर्णकी प्रभाके समान कान्तिसे सम्पन्न तथा मुसकानयुक्त उस बालकको देखने लगे। उसी समय वे भगवती देवसेना बालकको देख रहे राजासे कहकर उस बालकको ले करके आकाशमें जानेको उद्यत हो गयीं॥ ३२—३४॥

[यह देखकर] शुष्क कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले वे राजा उन भगवतीकी स्तुति करने लगे, तब राजाके स्तोत्रसे वे देवी षष्ठी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और हे ब्रह्मन्! उन राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहने लगीं॥ ३५१/२॥

देव्युवाच

त्रिषु लोकेषु त्वं राजा स्वायम्भुवमनोः सुतः॥ ३६

मम पूजां च सर्वत्र कारयित्वा स्वयं कुरु।
तदा दास्यामि पुत्रं ते कुलपद्मं मनोहरम्॥ ३७

सुव्रतं नाम विख्यातं गुणवन्तं सुपण्डितम्।
जातिस्मरं च योगीन्द्रं नारायणकलात्मकम्॥ ३८

शतक्रतुकरं श्रेष्ठं क्षत्रियाणां च वन्दितम्।
मत्तमातङ्गलक्षाणां धृतवन्तं बलं शुभम्॥ ३९

धनिनं गुणिनं शुद्धं विदुषां प्रियमेव च।
योगिनां ज्ञानिनां चैव सिद्धिरूपं तपस्विनाम्॥ ४०

यशस्विनं च लोकेषु दातारं सर्वसम्पदाम्।
इत्येवमुक्त्वा सा देवी तस्मै तद्बालकं ददौ॥ ४१

राजा चकार स्वीकारं पूजार्थं च प्रियव्रतः।
जगाम देवी स्वर्गं च दत्त्वा तस्मै शुभं वरम्॥ ४२

आजगाम सहामात्यः स्वगृहं हृष्टमानसः।
आगत्य कथयामास वृत्तान्तं पुत्रहेतुकम्॥ ४३

श्रुत्वा बभूवुः सन्तुष्टा नरा नार्यश्च नारद।
मङ्गलं कारयामास सर्वत्र पुत्रहेतुकम्॥ ४४

देवीं च पूजयामास ब्राह्मणेभ्यो धनं ददौ।
राजा च प्रतिमासेषु शुक्लषष्ठ्यां महोत्सवम्॥ ४५

षष्ठ्या देव्याश्च यत्नेन कारयामास सर्वतः।
बालानां सूतिकागारे षष्ठाहे यत्नपूर्वकम्॥ ४६

तत्पूजां कारयामास चैकविंशतिवासरे।
बालानां शुभकार्ये च शुभान्नप्राशने तथा॥ ४७

सर्वत्र वर्धयामास स्वयमेव चकार ह।
ध्यानं पूजाविधानं च स्तोत्रं मत्तो निशामय॥ ४८

यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रेण कौथुमोक्तं च सुव्रत।

देवी बोलीं—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो और तीनों लोकोंके राजा हो। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराकर स्वयं भी करो, तभी मैं तुम्हें कुलके कमलस्वरूप यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। यह सुव्रत नामसे विख्यात होगा, यह गुणी तथा विद्वान् होगा, इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी, यह योगीन्द्र होगा तथा भगवान् नारायणकी कलासे सम्पन्न होगा, यह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ तथा सभीके द्वारा वन्दनीय होगा और सौ अश्वमेधयज्ञ करनेवाला होगा। यह बालक लाखों मतवाले हाथियोंके समान बल धारण करेगा तथा महान् कल्याणकारी होगा। यह धनी, गुणवान्, शुद्ध, विद्वानोंका प्रिय और योगियों, ज्ञानियों तथा तपस्वियोंका सिद्धिस्वरूप, समस्त लोकोंमें यशस्वी तथा सभीको समस्त सम्पदाएँ प्रदान करनेवाला होगा॥ ३६—४०$\frac{१}{२}$ ॥

ऐसा कहकर उन देवीने वह बालक राजाको दे दिया। राजा प्रियव्रतने भी पूजाकी बातें स्वीकार कर लीं। तब भगवती भी उन्हें कल्याणकारी वर देकर स्वर्ग चली गयीं और राजा प्रसन्नचित्त होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर आ गये। घर आकर उन्होंने पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कहा। हे नारद! उसे सुनकर समस्त नर तथा नारी परम प्रसन्न हुए॥ ४१—४३$\frac{१}{२}$ ॥

राजाने पुत्र-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें सर्वत्र मंगलोत्सव कराया, भगवती षष्ठीकी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको धन प्रदान किया॥ ४४$\frac{१}{२}$ ॥

उसी समयसे राजा प्रियव्रत प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको भगवती षष्ठीका महोत्सव प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र कराने लगे॥ ४५$\frac{१}{२}$ ॥

सूतिकागृहमें बालकोंके जन्मके छठें दिन, इक्कीसवें दिन, बालकोंसे सम्बन्धित किसी भी मांगलिक कार्यमें तथा शुभ अन्नप्राशनके अवसरपर वे भगवतीकी पूजा कराने लगे और स्वयं भी करने लगे, इस प्रकार उन्होंने सर्वत्र भगवतीकी पूजाका प्रचार कराया॥ ४६-४७$\frac{१}{२}$ ॥

हे सुव्रत! अब आप मुझसे भगवती षष्ठीके ध्यान, पूजाविधान तथा स्तोत्रको सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था और जो सामवेदकी कौथुमशाखामें वर्णित है॥ ४८$\frac{१}{२}$ ॥

शालग्रामे घटे वाथ वटमूलेऽथवा मुने॥ ४९

भित्त्यां पुत्तलिकां कृत्वा पूजयेद्वा विचक्षणः।
षष्ठांशां प्रकृतेः शुद्धां प्रतिष्ठाप्य च सुप्रभाम्॥ ५०

सुपुत्रदां च शुभदां दयारूपां जगत्प्रसूम्।
श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्॥ ५१

पवित्ररूपां परमां देवसेनां परां भजे।
इति ध्यात्वा स्वशिरसि पुष्पं दत्त्वा विचक्षणः॥ ५२

पुनर्ध्यात्वा च मूलेन पूजयेत्सुव्रतां सतीम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च गन्धपुष्पप्रदीपकैः॥ ५३

नैवेद्यैर्विविधैश्चापि फलेन शोभनेन च।
ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहेति विधिपूर्वकम्॥ ५४

अष्टाक्षरं महामन्त्रं यथाशक्ति जपेन्नरः।
ततः स्तुत्वा च प्रणमेद्भक्तियुक्तः समाहितः॥ ५५

स्तोत्रं च सामवेदोक्तं वरं पुत्रफलप्रदम्।
अष्टाक्षरं महामन्त्रं लक्षधा यो जपेत्ततः॥ ५६

सुपुत्रं स लभेन्नूनमित्याह कमलोद्भवः।
स्तोत्रं शृणु मुनिश्रेष्ठ सर्वकामशुभावहम्॥ ५७

वाञ्छाप्रदं च सर्वेषां गूढं वेदेषु नारद।
नमो देव्यै महादेव्यै सिद्ध्यै शान्त्यै नमो नमः॥ ५८

शुभायै देवसेनायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
वरदायै पुत्रदायै धनदायै नमो नमः॥ ५९

सुखदायै मोक्षदायै षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
सृष्ट्यै षष्ठांशरूपायै सिद्धायै च नमो नमः॥ ६०

हे मुने! शालग्राम, कलश अथवा वटके मूलमें अथवा दीवालपर पुत्तलिका बनाकर भगवती प्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेवाली, शुद्धस्वरूपिणी तथा दिव्य प्रभासे सम्पन्न षष्ठीदेवीको प्रतिष्ठित करके बुद्धिमान् मनुष्यको उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

'उत्तम पुत्र प्रदान करनेवाली, कल्याणदायिनी, दयास्वरूपिणी, जगत्की सृष्टि करनेवाली, श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान वर्णवाली, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, परम पवित्रस्वरूपिणी तथा अतिश्रेष्ठ परा भगवती देवसेनाकी मैं आराधना करता हूँ।' विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस विधिसे ध्यान करके [हाथमें लिये हुए] पुष्पको अपने मस्तकसे लगाकर उसे भगवतीको अर्पण कर दे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फल आदि उपचारोंके द्वारा उत्तम व्रतमें निरत रहनेवाली साध्वी भगवती देवसेनाकी पूजा करनी चाहिये और उस मनुष्यको '**ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा**' इस अष्टाक्षर महामन्त्रका अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक जप भी करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करके देवीको प्रणाम करना चाहिये। पुत्र-फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो मनुष्य भगवती षष्ठीके अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, वह निश्चितरूपसे सुन्दर पुत्र प्राप्त करता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५१—५६$\frac{१}{२}$॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाले, सभी प्राणियोंको वांछित फल प्रदान करनेवाले तथा वेदोंमें रहस्यमय रूपसे प्रतिपादित स्तोत्रका श्रवण कीजिये॥ ५७$\frac{१}{२}$॥

देवीको नमस्कार है, महादेवीको नमस्कार है, भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना तथा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा तथा धनदा देवीको बार-बार नमस्कार है। सुखदा, मोक्षदा तथा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठें अंशसे अवतीर्ण, सृष्टिस्वरूपिणी तथा सिद्धस्वरूपिणी भगवतीको बार-बार नमस्कार है। माया तथा सिद्धयोगिनी षष्ठीदेवीको

मायायै सिद्धयोगिन्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
सारायै शारदायै च परादेव्यै नमो नमः॥ ६१

बालाधिष्ठातृदेव्यै च षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
कल्याणदायै कल्याण्यै फलदायै च कर्मणाम्॥ ६२

प्रत्यक्षायै स्वभक्तानां षष्ठ्यै देव्यै नमो नमः।
पूज्यायै स्कन्दकान्तायै सर्वेषां सर्वकर्मसु॥ ६३

देवरक्षणकारिण्यै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
शुद्धसत्त्वस्वरूपायै वन्दितायै नृणां सदा॥ ६४

हिंसाक्रोधवर्जितायै षष्ठीदेव्यै नमो नमः।
धनं देहि प्रियां देहि पुत्रं देहि सुरेश्वरि॥ ६५

मानं देहि जयं देहि द्विषो जहि महेश्वरि।
धर्मं देहि यशो देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ ६६

देहि भूमिं प्रजां देहि विद्यां देहि सुपूजिते।
कल्याणं च जयं देहि षष्ठीदेव्यै नमो नमः॥ ६७

इति देवीं च संस्तूय लेभे पुत्रं प्रियव्रतः।
यशस्विनं च राजेन्द्रः षष्ठीदेव्याः प्रसादतः॥ ६८

षष्ठीस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् यः शृणोति तु वत्सरम्।
अपुत्रो लभते पुत्रं वरं सुचिरजीविनम्॥ ६९

वर्षमेकं च यो भक्त्या सम्पूज्येदं शृणोति च।
सर्वपापाद्विनिर्मुक्तो महावन्ध्या प्रसूयते॥ ७०

वीरं पुत्रं च गुणिनं विद्यावन्तं यशस्विनम्।
सुचिरायुष्यवन्तं च सूते देवीप्रसादतः॥ ७१

काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत्।
वर्षं श्रुत्वा लभेत्पुत्रं षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ ७२

रोगयुक्ते च बाले च पिता माता शृणोति चेत्।
मासेन मुच्यते बालः षष्ठीदेवीप्रसादतः॥ ७३

बार-बार नमस्कार है। सारस्वरूपिणी, शारदा तथा परादेवीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी, सभी कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण कार्योंमें सभीके लिये पूजनीय तथा देवताओंकी रक्षा करनेवाली स्वामी कार्तिकेयकी भार्या देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी, मनुष्योंके लिये सदा वन्दनीय तथा क्रोध-हिंसासे रहित षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरि! आप मुझे धन दीजिये, प्रिय भार्या दीजिये, पुत्र प्रदान कीजिये, मान प्रदान कीजिये तथा विजय प्रदान कीजिये और हे महेश्वरि! मेरे शत्रुओंका संहार कर डालिये। मुझे धर्म दीजिये और कीर्ति दीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुपूजिते! भूमि दीजिये, प्रजा दीजिये, विद्या दीजिये, कल्याण और जय प्रदान कीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५८—६७॥

इस प्रकार भगवती षष्ठीकी स्तुति करके महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीकी कृपासे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया॥ ६८॥

हे ब्रह्मन्! जो एक वर्षतक भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह पुत्रहीन मनुष्य सुन्दर तथा दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवी षष्ठीकी विधिवत् पूजा करके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। महावन्ध्या स्त्री भी इसके श्रवणसे प्रसवके योग्य हो जाती है और वह भगवती षष्ठीकी कृपासे वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी तथा दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न करती है। यदि कोई स्त्री काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा हो तो भी वह एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करके षष्ठीदेवीके अनुग्रहसे पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रके व्याधिग्रस्त हो जानेपर यदि माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रको सुनें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे वह बालक रोगमुक्त हो जाता है॥ ६९—७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे षष्ठ्युपाख्यानवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

* * *

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती मंगलचण्डी तथा भगवती मनसाका आख्यान

श्रीनारायण उवाच

कथितं षष्ठ्युपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्।
देवी मङ्गलचण्डी च तदाख्यानं निशामय॥ १

तस्याः पूजादिकं सर्वं धर्मवक्त्रेण यच्छ्रुतम्।
श्रुतिसम्मतमेवेष्टं सर्वेषां विदुषामपि॥ २

दक्षा या वर्तते चण्डी कल्याणेषु च मङ्गला।
मङ्गलेषु च या दक्षा सा च मङ्गलचण्डिका॥ ३

पूज्या या वर्तते चण्डी मङ्गलोऽपि महीसुतः।
मङ्गलाभीष्टदेवी या सा वा मङ्गलचण्डिका॥ ४

मङ्गलो मनुवंश्यश्च सप्तद्वीपधरापतिः।
तस्य पूज्याभीष्टदेवी तेन मङ्गलचण्डिका॥ ५

मूर्तिभेदेन सा दुर्गा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
कृपारूपातिप्रत्यक्षा योषितामिष्टदेवता॥ ६

प्रथमे पूजिता सा च शङ्करेण परात्परा।
त्रिपुरस्य वधे घोरे विष्णुना प्रेरितेन च॥ ७

ब्रह्मन् ब्रह्मोपदेशेन दुर्गतेन च सङ्कटे।
आकाशात्पतिते याने दैत्येन पातिते रुषा॥ ८

ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च दुर्गां तुष्टाव शङ्करः।
सा च मङ्गलचण्डी या बभूव रूपभेदतः॥ ९

उवाच पुरतः शम्भोर्भयं नास्तीति ते प्रभो।
भगवान्वृषरूपश्च सर्वेशस्ते भविष्यति॥ १०

युद्धशक्तिस्वरूपाहं भविष्यामि न संशयः।
मायात्मना च हरिणा सहायेन वृषध्वज॥ ११
जहि दैत्यं स्वशत्रुं च सुराणां पदघातकम्।

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आगमशास्त्रके अनुसार मैंने षष्ठीदेवीका आख्यान कह दिया, अब भगवती मंगलचण्डीका आख्यान और उनका पूजा-विधान आदि सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था। यह उपाख्यान श्रुतिसम्मत है तथा सभी विद्वानोंको अभीष्ट है॥ १-२॥

कल्याण करनेमें सुदक्षा जो चण्डी अर्थात् प्रतापवती हैं तथा मंगलोंके मध्यमें जो प्रचण्ड मंगला हैं, वे देवी 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं। अथवा भूमिपुत्र मंगल भी जिन चण्डीकी पूजा करते हैं तथा जो भगवती उन मंगलकी अभीष्ट देवी हैं, वे 'मंगलचण्डिका' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३-४॥

मनुवंशमें उत्पन्न मंगल नामक एक राजा सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी थे। ये भगवती उनकी पूज्य अभीष्ट देवी थीं, इससे भी वे 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं॥ ५॥

वे ही मूर्तिभेदसे मूलप्रकृति भगवती दुर्गा हैं। कृपारूपिणी होकर वे देवी साक्षात् प्रकट होनेवाली हैं और स्त्रियोंकी अभीष्ट देवता हैं॥ ६॥

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने विष्णुकी प्रेरणासे तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे उन परात्परा भगवतीकी पूजा की थी। हे ब्रह्मन्! त्रिपुरासुरके घोर वधके समय जब शिवजी संकटमें पड़ गये थे और उस दैत्यके द्वारा रोषपूर्वक उनका विमान आकाशसे नीचे गिरा दिया गया था, तब ब्रह्मा और विष्णुका उपदेश मानकर दुर्गतिको प्राप्त भगवान् शंकरने भगवती दुर्गाकी स्तुति की। वे मंगलचण्डी ही थीं; जिन्होंने केवल रूप बदल लिया था, वे शिवजीके सामने प्रकट होकर बोलीं—हे प्रभो! अब आपको कोई भय नहीं है, सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि वृषरूपमें आपका वाहन बनेंगे और मैं युद्धमें शक्तिस्वरूपा होकर आपकी सहायता करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। हे वृषध्वज! तब मायास्वरूप भगवान् श्रीहरिकी सहायतासे आप देवताओंको पदच्युत कर देनेवाले अपने शत्रु उस त्रिपुरदैत्यका वध कर डालेंगे॥ ७—११½॥

इत्युक्त्वान्तर्हिता देवी शम्भोः शक्तिर्बभूव सा॥ १२

विष्णुदत्तेन शस्त्रेण जघान तमुमापतिः।
मुनीन्द्र पतिते दैत्ये सर्वे देवा महर्षयः॥ १३

तुष्टुवुः शङ्करं देवं भक्तिनम्रात्मकन्धराः।
सद्यः शिरसि शम्भोश्च पुष्पवृष्टिर्बभूव ह॥ १४

ब्रह्मा विष्णुश्च सन्तुष्टो ददौ तस्मै शुभाशिषम्।
ब्रह्मविष्णूपदिष्टश्च सुस्नातः शङ्करस्तथा॥ १५

पूजयामास तां भक्त्या देवीं मङ्गलचण्डिकाम्।
पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च वस्त्रैश्च विविधैरपि॥ १६

पुष्पचन्दननैवेद्यैर्भक्त्या नानाविधैर्मुने।
छागैर्मेषैश्च महिषैर्गवयैः पक्षिभिस्तथा॥ १७

वस्त्रालङ्कारमाल्यैश्च पायसैः पिष्टकैरपि।
मधुभिश्च सुधाभिश्च फलैर्नानाविधैरपि॥ १८

सङ्गीतैर्नर्तकैर्वाद्यैरुत्सवैर्नामकीर्तनैः ।
ध्यात्वा माध्यन्दिनोक्तेन ध्यानेन भक्तिपूर्वकम्॥ १९

ददौ द्रव्याणि मूलेन मन्त्रेणैव च नारद।
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके॥ २०

हूँ हूँ फट् स्वाहाप्येकविंशाक्षरो मनुः।
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः॥ २१

दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम्।
ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम्॥ २२

देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्।
बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम्॥ २३

श्वेतचम्पकवर्णाभां सुनीलोत्पललोचनाम्।
जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम्॥ २४

संसारसागरे घोरे ज्योतीरूपां सदा भजे।
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने॥ २५

हे मुनिवर! ऐसा कहकर वे भगवती अन्तर्धान हो गयीं और उसी क्षण वे भगवान् शिवकी शक्ति बन गयीं। तत्पश्चात् उमापति शंकरने विष्णुजीके द्वारा दिये गये शस्त्रसे उस दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके धराशायी हो जानेपर सभी देवता तथा महर्षिगण भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे॥ १२-१३½ ॥

उसी क्षण भगवान् शिवके सिरपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा तथा विष्णुने परम प्रसन्न होकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया॥ १४½ ॥

तत्पश्चात् हे मुने! ब्रह्मा तथा विष्णुका उपदेश मानकर भगवान् शंकरने विधिवत् स्नान करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अनेक प्रकारके वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, वस्त्रालंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा, अनेक प्रकारके फल आदि उपचारों, संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव तथा नामकीर्तन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उन देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया॥ १५—१८½ ॥

हे नारद! माध्यन्दिनशाखामें बताये गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवती मंगलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान करके उन्होंने मूल मन्त्रसे ही सभी द्रव्य अर्पण किये। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा**' यह इक्कीस अक्षरोंवाला मन्त्र पूजनीय तथा भक्तोंको समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष ही है। दस लाख जप करनेसे इस मन्त्रकी सिद्धि निश्चितरूपसे हो जाती है॥ १९—२१½ ॥

हे ब्रह्मन्! अब वेदोक्त तथा सर्वसम्मत ध्यानका श्रवण कीजिये—'सोलह वर्षकी अवस्थावाली, सर्वदा सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान होठोंवाली, सुन्दर दन्तपंक्तिवाली, शुद्धस्वरूपिणी, शरत्कालीन कमलके समान मुखवाली, श्वेत चम्पाके वर्णकी आभावाली, विकसित नीलकमलके सदृश नेत्रोंवाली, जगत्का पालन-पोषण करनेवाली, सभीको सम्पूर्ण सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली और घोर संसारसागरमें पड़े हुए प्राणियोंके लिये ज्योतिस्वरूपिणी भगवतीकी मैं सदा आराधना करता हूँ।' हे मुने! यह भगवती मंगलचण्डिकाका ध्यान है, अब उनका स्तवन सुनिये॥ २२—२५ ॥

महादेव उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके।
हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके॥ २६

हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलदायिके।
शुभे मङ्गलदक्षे च शुभे मङ्गलचण्डिके॥ २७

मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले।
सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये॥ २८

पूज्ये मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदेवते।
पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य सन्ततम्॥ २९

मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले।
संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि॥ ३०

सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम्।
प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये मङ्गसुखप्रदे॥ ३१

स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्।
प्रतिमङ्गलवारे च पूजां दत्त्वा गतः शिवः॥ ३२

प्रथमे पूजिता देवी शिवेन सर्वमङ्गला।
द्वितीये पूजिता सा च मङ्गलेन ग्रहेण च॥ ३३

तृतीये पूजिता भद्रा मङ्गलेन नृपेण च।
चतुर्थे मङ्गले वारे सुन्दरीभिः प्रपूजिता॥ ३४

पञ्चमे मङ्गलाकाङ्क्षिनरैर्मङ्गलचण्डिका।
पूजिता प्रतिविश्वेषु विश्वेशपूजिता सदा॥ ३५

ततः सर्वत्र सम्पूज्या बभूव परमेश्वरी।
देवैश्च मुनिभिश्चैव मानवैर्मनुभिर्मुने॥ ३६

देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः।
तन्मङ्गलं भवेत्तस्य न भवेत्तदमङ्गलम्।
वर्धते पुत्रपौत्रैश्च मङ्गलं च दिने दिने॥ ३७

महादेवजी बोले—जगत्की माता, विपत्तिराशिका नाश करनेवाली, हर्ष तथा मंगल उत्पन्न करनेवाली, हर्ष तथा मंगल देनेमें प्रवीण, हर्ष तथा मंगल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी, मंगल करनेमें दक्ष, शुभस्वरूपिणी, मंगलरूपिणी, मंगल करनेमें परम योग्यतासम्पन्न, समस्त मंगलोंकी भी मंगलरूपा, सज्जनोंको मंगल प्रदान करनेवाली, सभी मंगलोंकी आश्रय-स्वरूपिणी, मंगलवारके दिन पूजी जानेवाली, मंगलग्रहकी अभीष्ट देवी, मनुवंशमें उत्पन्न राजा मंगलके लिये सदा पूजनीया, मंगलकी अधिष्ठात्री देवी, मंगलोंके लिये भी मंगल, संसारके समस्त मंगलोंकी आधारस्वरूपा, मोक्षरूप मंगल प्रदान करनेवाली, साररूपिणी, मंगलाधार, सभी कर्मोंकी फलस्वरूपिणी तथा मंगलवारको पूजित होनेपर सबको महान् सुख प्रदान करनेवाली हे देवि मंगलचण्डिके! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ २६—३१॥

भगवान् शिव इस स्तोत्रसे देवी मंगलचण्डिकाकी स्तुति करके तथा प्रत्येक मंगलवारको उनकी पूजा करके वहाँसे [अपने लोक] चले गये॥ ३२॥

इस प्रकार सर्वप्रथम भगवान् शिवके द्वारा वे सर्वमंगला देवी मंगलचण्डिका पूजित हुईं। दूसरी बार मंगलग्रहने उनकी पूजा की, तीसरी बार राजा मंगलने उन कल्याणमयी देवीकी पूजा की। चौथी बार मंगलवारके दिन भद्र महिलाओंने उनकी पूजा की। तत्पश्चात् पाँचवीं बार अपने कल्याणकी कामना रखनेवाले पुरुषोंने देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया। इस तरह विश्वेश्वर शिवके द्वारा पूजित ये भगवती सभी लोकोंमें पूजी जाने लगीं। हे मुने! तदनन्तर सभी देवताओं, मुनियों, मानवों तथा मनुओंके द्वारा भगवती मंगलचण्डिका सर्वत्र पूजित हो गयीं॥ ३३—३६॥

जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर भगवती मंगलचण्डिकाके इस मंगलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसका सदा मंगल होता है और उसका अमंगल कभी नहीं होता, पुत्र-पौत्रोंसहित उसके मंगलकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है॥ ३७॥

श्रीनारायण उवाच

उक्तं द्वयोरुपाख्यानं ब्रह्मपुत्र यथागमम्।
श्रूयतां मनसाख्यानं यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ ३८

सा च कन्या भगवती कश्यपस्य च मानसी।
तेनैव मनसा देवी मनसा या च दीव्यति॥ ३९

मनसा ध्यायते या च परमात्मानमीश्वरम्।
तेन सा मनसा देवी तेन योगेन दीव्यति॥ ४०

आत्मारामा च सा देवी वैष्णवी सिद्धयोगिनी।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥ ४१

जरत्कारुशरीरं च दृष्ट्वा यत्क्षीणमीश्वरः।
गोपीपतिर्नाम चक्रे जरत्कारुरिति प्रभुः॥ ४२

वाञ्छितं च ददौ तस्यै कृपया च कृपानिधिः।
पूजां च कारयामास चकार च स्वयं प्रभुः॥ ४३

स्वर्गे च नागलोके च पृथिव्यां ब्रह्मलोकतः।
भृशं जगत्सु गौरी सा सुन्दरी च मनोहरा। ४४

जगद्गौरीति विख्याता तेन सा पूजिता सती।
शिवशिष्या च सा देवी तेन शैवी प्रकीर्तिता॥ ४५

विष्णुभक्तातीव शश्वद्वैष्णवी तेन कीर्तिता।
नागानां प्राणरक्षित्री यज्ञे पारीक्षितस्य च॥ ४६

नागेश्वरीति विख्याता सा नागभगिनीति च।
विषं संहर्तुमीशा या तेन विषहरी स्मृता॥ ४७

सिद्धयोगं हरात्प्राप तेन सा सिद्धयोगिनी।
महाज्ञानं च योगं च मृतसञ्जीवनीं पराम्॥ ४८
महाज्ञानयुतां तां च प्रवदन्ति मनीषिणः।

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! मैंने आगमशास्त्रके अनुसार देवी षष्ठी और मंगलचण्डिका—इन दोनोंके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप भगवती मनसाका आख्यान सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ३८॥

वे भगवती कश्यपकी मानसी कन्या हैं तथा वे मनसे ध्यान करनेपर प्रकाशित होती हैं; इसीलिये 'मनसा' देवी नामसे विख्यात हैं। वे मनसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करती हैं तथा उसी ध्यानयोगके द्वारा प्रकाशित होती हैं, इसीलिये वे देवी 'मनसा'—इस नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३९-४०॥

आत्मामें रमण करनेवाली तथा सिद्धयोगिनी उन वैष्णवी देवीने तीन युगोंतक तप करके परमात्मा श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त किया। उस समय गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर उनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया। कृपानिधि श्रीकृष्णने उन देवीको कृपापूर्वक वाञ्छित वर प्रदान किया। उन प्रभुने उनकी स्वयं पूजा की तथा और लोगोंसे भी उनकी पूजा करायी॥ ४१—४३॥

ब्रह्मलोकसे लेकर स्वर्गमें, पृथ्वीलोकमें तथा नागलोकमें सर्वत्र ये पूजित होने लगीं। सम्पूर्ण जगत्में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी तथा मनोहारिणी हैं, अतः ये साध्वी 'जगद्गौरी'—इस नामसे विख्यात होकर पूजित हैं। वे देवी भगवान् शिवकी शिष्या हैं, इसलिये 'शैवी' कही गयी हैं। वे सदा भगवान् विष्णुकी परम भक्तिमें संलग्न रहती हैं, इसलिये 'वैष्णवी' कही गयी हैं॥ ४४-४५½॥

परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयके यज्ञमें उन्होंने नागोंकी प्राणरक्षा की थी, अतः वे 'नागेश्वरी' तथा 'नागभगिनी' नामसे विख्यात हुईं। वे विषका हरण करनेमें समर्थ हैं, अतः 'विषहरी' कही गयी हैं। उन्होंने भगवान् शिवसे सिद्धयोग प्राप्त किया था, इसलिये वे 'सिद्धयोगिनी' कही जाती हैं। साथ ही शिवजीसे उन्होंने महाज्ञान, योग तथा परम मृतसंजीवनीविद्या प्राप्त की थी, अतः विद्वान् पुरुष उन्हें 'महाज्ञानयुता' कहते हैं॥ ४६—४८½॥

आस्तीकस्य मुनीन्द्रस्य माता सापि तपस्विनी॥ ४९

आस्तीकमाता विज्ञाता जगत्यां सुप्रतिष्ठिता।
प्रिया मुनेर्जरत्कारोर्मुनीन्द्रस्य महात्मनः॥ ५०

योगिनो विश्वपूज्यस्य जरत्कारुप्रिया ततः।
जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी॥ ५१

वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा।
जरत्कारुप्रियास्तीकमाता विषहरेति च॥ ५२

महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता।
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्॥ ५३

तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।
नागभीते च शयने नागग्रस्ते च मन्दिरे॥ ५४

नागशोभे महादुर्गे नागवेष्टितविग्रहे।
इदं स्तोत्रं पठित्वा तु मुच्यते नात्र संशयः॥ ५५

नित्यं पठेद्यस्तं दृष्ट्वा नागवर्गः पलायते।
दशलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ५६

स्तोत्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स विषं भोक्तुमीश्वरः।
नागैश्च भूषणं कृत्वा स भवेन्नागवाहनः॥ ५७

नागासनो नागतल्पो महासिद्धो भवेन्नरः।
अन्ते च विष्णुना सार्धं क्रीडत्येव दिवानिशम्॥ ५८

वे तपस्विनी देवी मुनीश्वर आस्तीककी माता हैं, इसलिये 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात होकर जगत्‌में सुप्रतिष्ठित हैं। वे भगवती विश्ववन्द्य, परम योगी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ महात्मा जरत्कारुकी प्रिय पत्नी थीं, इसलिये 'जरत्कारुप्रिया' कहलाती हैं॥ ४९-५०½॥

जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरा और महाज्ञानयुता—इन नामोंसे वे भगवती विश्वमें पूजी जाती हैं। जो मनुष्य पूजाके समय देवीके इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको नागोंका भय नहीं रहता॥ ५१—५३½॥

जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें नाग रहते हों, जो स्थान नागोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दारुण बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, उन स्थानोंपर इस स्तोत्रका पाठ करके मनुष्य सर्पभयसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४-५५॥

जो मनुष्य इसे नित्य पढ़ता है, उसे देखकर नागोंका समुदाय भाग जाता है। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिस मनुष्यको स्तोत्रसिद्धि हो जाती है, वह विषभक्षण करनेमें समर्थ हो जाता है। वह नागोंको भूषण बनाकर नागोंपर सवारी करनेमें सक्षम हो जाता है। वह व्यक्ति नागोंपर आसन लगानेवाला, नागोंपर शयन करनेवाला तथा महासिद्ध हो जाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुके साथ दिन-रात क्रीडा करता है॥ ५६—५८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे नारायणनारदसंवादे मङ्गलचण्डीमनसयोरुपाख्यानवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

भगवती मनसाका पूजन-विधान, मनसा-पुत्र आस्तीकका जनमेजयके सर्पसत्रमें नागोंकी रक्षा करना, इन्द्रद्वारा मनसादेवीका स्तवन करना

श्रीनारायण उवाच

मत्तः पूजाविधानं च श्रूयतां मुनिपुङ्गव।
ध्यानं च सामवेदोक्तं प्रोक्तं देवीविधानकम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने देवी मनसाके विषयमें विधानपूर्वक कह दिया। अब आप उनके सामवेदोक्त ध्यान तथा पूजा-विधानके विषयमें मुझसे सुनिये॥ १॥

श्वेतचम्पकवर्णाभां रत्नभूषणभूषिताम्।
वह्निशुद्धांशुकाधानां नागयज्ञोपवीतिनीम्॥ २

महाज्ञानयुतां तां च प्रवरज्ञानिनां वराम्।
सिद्धाधिष्ठातृदेवीं च सिद्धां सिद्धिप्रदां भजे॥ ३

इति ध्यात्वा च तां देवीं मूलेनैव प्रपूजयेत्।
नैवेद्यैर्विविधैर्धूपैः पुष्पगन्धानुलेपनैः॥ ४

मूलमन्त्रैश्च वेदोक्तैर्भक्तानां वाञ्छितप्रदः।
मुने कल्पतरुर्नाम सुसिद्धो द्वादशाक्षरः॥ ५

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहेति कीर्तितः।
पञ्चलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥ ६

मन्त्रसिद्धिर्भवेद्यस्य स सिद्धो जगतीतले।
सुधासमं विषं तस्य धन्वन्तरिसमो भवेत्॥ ७

ब्रह्मन् स्नात्वा तु सङ्क्रान्त्यां गूढशालासु यत्नतः।
आवाह्य देवीमीशानां पूजयेद्योऽतिभक्तितः॥ ८

पञ्चम्यां मनसा ध्यायन् देव्यै दद्याच्च यो बलिम्।
धनवान्पुत्रवांश्चैव कीर्तिमान्स भवेद् ध्रुवम्॥ ९

पूजाविधानं कथितं तदाख्यानं निशामय।
कथयामि महाभाग यच्छ्रुतं धर्मवक्त्रतः॥ १०

पुरा नागभयाक्रान्ता बभूवुर्मानवा भुवि।
गतास्ते शरणं सर्वे कश्यपं मुनिपुङ्गवम्॥ ११

'भगवती मनसा श्वेत चम्पकपुष्पके वर्णके समान आभावाली हैं, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण कर रखा है, ये नागोंके यज्ञोपवीतसे युक्त हैं, महान् ज्ञानसे सम्पन्न हैं, प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सिद्धिस्वरूपिणी हैं तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं—ऐसी भगवती मनसाकी मैं आराधना करता हूँ'॥ २-३॥

इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे देवी मनसाकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मूलमन्त्रोंका उच्चारण करके विविध प्रकारके नैवेद्य, धूप, पुष्प तथा पवित्र गन्ध-द्रव्योंके अनुलेपनसे उनकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। हे मुने! भगवतीका द्वादशाक्षर मन्त्र पूर्णरूपसे सिद्ध हो जानेपर कल्पतरु नामक वृक्षकी भाँति भक्तोंको वांछित फल प्रदान करनेवाला हो जाता है। वह मन्त्र '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा**'—ऐसा बताया गया है। पाँच लाख जप करनेसे मनुष्योंके लिये इस मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। जिसकी मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह पृथ्वीतलपर सिद्ध हो जाता है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है और वह धन्वन्तरितुल्य हो जाता है॥ ४—७॥

हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य संक्रान्तिके दिन स्नान करके यत्नपूर्वक किसी गुप्त स्थानमें अति भक्तिसे सम्पन्न होकर भगवती मनसाका आवाहन करके इनकी पूजा करता है तथा पंचमी तिथिको मनसे ध्यान करते हुए देवीको नैवेद्य अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे धनवान्, पुत्रवान् तथा कीर्तिमान् होता है॥ ८-९॥

हे महाभाग! मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान बतला चुका, अब मैं उनके उपाख्यानका वर्णन आपसे कर रहा हूँ, जिसे मैंने साक्षात् धर्मदेवके मुखसे सुना, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १०॥

प्राचीन कालमें एक बार भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। तब वे सब मुनिश्रेष्ठ कश्यपकी शरणमें गये॥ ११॥

मन्त्रांश्च ससृजे भीतः कश्यपो ब्रह्मणान्वितः।
वेदबीजानुसारेण चोपदेशेन ब्रह्मणः॥ १२

मन्त्राधिष्ठातृदेवीं तां मनसा ससृजे तथा।
तपसा मनसा तेन बभूव मनसा च सा॥ १३

कुमारी सा च सम्भूता जगाम शङ्करालयम्।
भक्त्या सम्पूज्य कैलासे तुष्टाव चन्द्रशेखरम्॥ १४

दिव्यवर्षसहस्रं तं सिषेवे च मुनेः सुता।
आशुतोषो महेशश्च तां च तुष्टो बभूव ह॥ १५

महाज्ञानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च।
कृष्णमन्त्रं कल्पतरुं ददावष्टाक्षरं मुने॥ १६

लक्ष्मीमायाकामबीजं ङेऽन्तं कृष्णपदं ततः।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं पूजनक्रमम्॥ १७

पुरश्चर्याक्रमं चापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम्।
प्राप्य मृत्युञ्जयान्मन्त्रं सा सती च मुनेः सुता॥ १८

जगाम तपसे साध्वी पुष्करं शङ्कराज्ञया।
त्रियुगं च तपस्तप्त्वा कृष्णस्य परमात्मनः॥ १९

सिद्धा बभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम्।
दृष्ट्वा कृशाङ्गीं बालां च कृपया च कृपानिधिः॥ २०

पूजां च कारयामास चकार च स्वयं हरिः।
वरं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव॥ २१
वरं दत्त्वा तु कल्याण्यै ततश्चान्तर्दधे हरिः।

तत्पश्चात् अत्यन्त भयभीत मुनि कश्यपने ब्रह्माजीके साथ मिलकर मन्त्रोंकी रचना की। उन्होंने वेदबीजमन्त्रोंके अनुसार तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे मन्त्रोंका सृजन किया था। साथ ही उन्होंने अपने मनसे मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी उन भगवती मनसाका सृजन भी किया, अतः तपस्या तथा मनसे सृजित होनेके कारण वे 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं॥ १२-१३॥

कुमारी अवस्थामें विद्यमान वे भगवान् शिवके धाममें चली गयीं। कैलासपर उन्होंने भक्तिपूर्वक विधिवत् शिवजीकी पूजा करके उनकी स्तुति की। इस प्रकार दिव्य एक हजार वर्षोंतक उस मुनि-कन्याने शिवजीकी उपासना की॥ १४$\frac{१}{२}$ ॥

आशुतोष भगवान् शिव उनपर प्रसन्न हो गये। हे मुने! तब उन्होंने मनसादेवीको महाज्ञान प्रदान किया तथा सामवेद पढ़ाया और श्रीकृष्णके कल्पवृक्षस्वरूप अष्टाक्षर मन्त्रका उपदेश किया। लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर उसके बाद 'नमः' जोड़ देनेपर बना हुआ अष्टाक्षर (**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः**) मन्त्र है॥ १५-१६$\frac{१}{२}$ ॥

भगवान् मृत्युंजय शिवसे त्रैलोक्यमंगल नामक कवच, पूजनक्रम, सर्वसम्मत तथा वेदोक्त पुरश्चरण-क्रम और मन्त्र प्राप्त करके वे मुनिकन्या साध्वी मनसा भगवान् शंकरकी आज्ञासे तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चली गयीं। वहाँ तीन युगोंतक परमेश्वर श्रीकृष्णकी तपस्या करके वे देवी सिद्ध हो गयीं और उन्होंने अपने समक्ष साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये॥ १७—१९$\frac{१}{२}$ ॥

उस समय कृपानिधि भगवान् श्रीकृष्णने कृश शरीरवाली उन बालाको कृपापूर्वक देखकर उनकी स्वयं पूजा की तथा दूसरोंसे भी पूजा करायी। उन्होंने उन देवीको यह वर भी दिया कि 'तुम जगत्में पूजित होओ'। कल्याणी मनसादेवीको यह वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ २०-२१$\frac{१}{२}$ ॥

प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना॥ २२

द्वितीये शङ्करेणैव कश्यपेन सुरेण च।
मुनिना मनुना चैव नागेन मानवादिभिः॥ २३

बभूव पूजिता सा च त्रिषु लोकेषु सुव्रता।
जरत्कारुमुनीन्द्राय कश्यपस्तां ददौ पुरा॥ २४

अयाचितो मुनिश्रेष्ठो जग्राह ब्राह्मणाज्ञया।
कृत्वोद्वाहं महायोगी विश्रान्तस्तपसा चिरम्॥ २५

सुष्वाप देव्या जघने वटमूले च पुष्करे।
निद्रां जगाम स मुनिः स्मृत्वा निद्रेशमीश्वरम्॥ २६

जगामास्तं दिनकरः सायङ्काल उपस्थिते।
सञ्चिन्त्य मनसा साध्वी मनसा सा पतिव्रता॥ २७

धर्मलोपभयेनैव चकारालोचनं सती।
अकृत्वा पश्चिमां सन्ध्यां नित्यां चैव द्विजन्मनाम्॥ २८

ब्रह्महत्यादिकं पापं लभिष्यति पतिर्मम।
नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्॥ २९

स सर्वत्राशुचिर्नित्यं ब्रह्महत्यादिकं लभेत्।
वेदोक्तमिति सञ्चिन्त्य बोधयामास सुन्दरी॥ ३०

स च बुद्धो मुनिश्रेष्ठस्तां चुकोप भृशं मुने।

मुनिरुवाच

कथं मे सुखिनः साध्वि निद्राभङ्गः कृतस्त्वया॥ ३१

व्यर्थं व्रतादिकं तस्या या भर्तुश्चापकारिणी।
तपश्चानशनं चैव व्रतं दानादिकं च यत्॥ ३२

भर्तुरप्रियकारिण्याः सर्वं भवति निष्फलम्।
यया प्रियः पूजितश्च श्रीकृष्णः पूजितस्तया॥ ३३

पतिव्रताव्रतार्थञ्च पतिरूपो हरिः स्वयम्।
सर्वदानं सर्वयज्ञः सर्वतीर्थनिषेवणम्॥ ३४

सर्वं व्रतं तपः सर्वमुपवासादिकं च यत्।
सर्वधर्मश्च सत्यं च सर्वदेवप्रपूजनम्॥ ३५

तत्सर्वं स्वामिसेवायाः कलां नार्हति षोडशीम्।

इस प्रकार वे मनसादेवी सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा पूजित हुईं। दूसरी बार भगवान् शिवने उनकी पूजा की और इसके बाद कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिके द्वारा वे सुव्रता मनसादेवी तीनों लोकोंमें पूजित हुईं॥ २२-२३½ ॥

इसके बाद कश्यपजीने उन देवीको जरत्कारुमुनिको सौंप दिया। कामनारहित होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुने ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्हें पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। विवाह करनेके पश्चात् चिरकालीन तपस्यासे थके हुए महायोगी मुनि जरत्कारु पुष्करक्षेत्रमें एक वटवृक्षके नीचे देवी मनसाके जंघापर लेट गये और निद्रेश्वर भगवान् शिवका स्मरण करके सो गये॥ २४—२६॥

इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। तब सायंकाल उपस्थित होनेपर परम साध्वी देवी मनसा धर्मलोपके भयसे अपने मनमें विचार करके यह सोचने लगीं कि 'ब्राह्मणोंके लिये नित्यकी सायंकालीन सन्ध्या न करके मेरे पतिदेव ब्रह्महत्या आदि पापके भागी होंगे। जो मनुष्य प्रातः तथा सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह सब प्रकारसे सदा अपवित्र होकर ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है—ऐसा वेदोंमें कहा गया है'—यह सोचकर उस सुन्दरीने अपने पतिको जगा दिया। हे मुने! जग जानेपर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु मनसादेवीपर अत्यधिक कुपित हो उठे॥ २७—३०½ ॥

मुनि बोले—हे साध्वि! तुमने सुखपूर्वक सोये हुए मेरी निद्रा क्यों भंग कर दी? जो स्त्री अपने पतिका अपकार करती है, उसके व्रत आदि निरर्थक हो जाते हैं। अपने पतिका अपकार करनेवाली स्त्रीका जो भी तप, उपवास, व्रत, दान आदि है; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ३१-३२½ ॥

जिस स्त्रीने अपने पतिकी पूजा की, उसने मानो साक्षात् श्रीकृष्णकी पूजा कर ली। पतिव्रता नारियोंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिरूपमें विराजमान रहते हैं॥ ३३½ ॥

समस्त दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और सभी देवताओंका पूजन आदि जो भी पुण्य-कर्म है, वह सब पतिकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है॥ ३४-३५½ ॥

पुण्ये च भारते वर्षे पतिसेवां करोति या॥ ३६

वैकुण्ठे स्वामिना सार्धं सा याति ब्रह्मणः पदम्।
विप्रियं कुरुते भर्तुर्विप्रियं वदति प्रियम्॥ ३७

असत्कुले प्रसूता हि तत्फलं श्रूयतां सति।
कुम्भीपाकं व्रजेत्सा च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ३८

ततो भवति चाण्डाली पतिपुत्रविवर्जिता।
इत्युक्त्वा च मुनिश्रेष्ठो बभूव स्फुरिताधरः॥ ३९

चकम्पे तेन सा साध्वी भयेनोवाच तं पतिम्।

साध्व्युवाच

सन्ध्यालोपभयेनैव निद्राभङ्गः कृतस्तव॥ ४०

कुरु शान्तिं महाभाग दुष्टाया मम सुव्रत।
शृङ्गाराहारनिद्राणां यश्च भङ्गं करोति वै॥ ४१

स व्रजेत्कालसूत्रं वै यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
इत्युक्त्वा मनसा देवी स्वामिनश्चरणाम्बुजे॥ ४२

पपात भक्त्या भीता च रुरोद च पुनः पुनः।
कुपितं च मुनिं दृष्ट्वा श्रीसूर्यं शप्तुमुद्यतम्॥ ४३

तत्राजगाम भगवान्सन्ध्यया सह नारद।
तत्रागत्य मुनिं सम्यगुवाच भास्करः स्वयम्॥ ४४

विनयेन च भीतश्च तया सह यथोचितम्।

भास्कर उवाच

सूर्यास्तसमयं दृष्ट्वा साध्वी धर्मभयेन च॥ ४५

बोधयामास त्वां विप्र शरणं त्वामहं गतः।
क्षमस्व भगवन्ब्रह्मन् मां शप्तुं नोचितं मुने॥ ४६

ब्राह्मणानां च हृदयं नवनीतसमं सदा।
तेषां क्षणार्धं क्रोधश्च ततो भस्म भवेज्जगत्॥ ४७

जो स्त्री पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने पतिके साथ वैकुण्ठधाम जाती है और वहाँ परब्रह्म भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है॥ ३६½ ॥

हे साध्वि! असत्कुलमें उत्पन्न जो स्त्री अपने पतिके प्रतिकूल आचरण करती है तथा उससे अप्रिय वचन बोलती है, उसके कृत्यका फल सुनो। वह स्त्री कुम्भीपाक नरकमें जाती है और वहाँ सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिकालतक निवास करती है। तत्पश्चात् वह चाण्डाली होती है और पति तथा पुत्रसे विहीन रहती है॥ ३७-३८½ ॥

ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुके ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगे, जिससे वह साध्वी भयसे काँपने लगी और वह अपने पतिसे कहने लगी॥ ३९½ ॥

साध्वी बोली—हे महाभाग! आपकी सन्ध्याके लोपके भयसे ही मैंने आपकी निद्रा भंग की है। हे सुव्रत! मुझ दुष्टाका यह अपराध अवश्य है, अब आप शान्त हो जाइये॥ ४०½ ॥

जो मानव शृंगार, आहार और निद्राका भंग करता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्रनरकमें वास करता है॥ ४१½ ॥

ऐसा कहकर भयभीत मनसादेवी भक्तिपूर्वक अपने स्वामीके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बार-बार विलाप करने लगीं॥ ४२½ ॥

मुनि जरत्कारुको कुपित होकर सूर्यको शाप देनेके लिये उद्यत देखकर भगवान् सूर्य देवी सन्ध्याको साथ लेकर वहाँ आ गये। हे नारद! उन देवीके साथ स्वयं भगवान् भास्कर वहाँ आकर भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिसे सम्यक् प्रकारसे यथोचित बात कहने लगे॥ ४३-४४½ ॥

भास्कर बोले—हे विप्र! सूर्यास्तका समय जानकर साध्वी मनसाने धर्मलोपके भयसे आपको जगा दिया है। हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ, मुझे क्षमा कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हे मुने! मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय तो सदा नवनीतके समान कोमल होता है, उनके आधे क्षणमात्रके क्रोधसे सारा संसार भस्म हो सकता

पुनः स्त्रष्टुं द्विजः शक्तो न तेजस्वी द्विजात्परः।
ब्राह्मणो ब्रह्मणो वंशः प्रज्वलन्ब्रह्मतेजसा॥ ४८

श्रीकृष्णं भावयेन्नित्यं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्।
सूर्यस्य वचनं श्रुत्वा द्विजस्तुष्टो बभूव ह॥ ४९

सूर्यो जगाम स्वस्थानं गृहीत्वा ब्राह्मणाशिषम्।
तत्याज मनसां विप्रः प्रतिज्ञापालनाय च॥ ५०

रुदतीं शोकसंयुक्तां हृदयेन विदूयता।
सा सस्मार गुरुं शम्भुमिष्टदेवं विधिं हरिम्॥ ५१

कश्यपं जन्मदातारं विपत्तौ भयकर्शिता।
तत्राजगाम गोपीशो भगवाञ्छम्भुरेव च॥ ५२

विधिश्च कश्यपश्चैव मनसा परिचिन्तितः।
दृष्ट्वा विप्रोऽभीष्टदेवं निर्गुणं प्रकृतेः परम्॥ ५३

तुष्टाव परया भक्त्या प्रणनाम मुहुर्मुहुः।
नमश्चकार शम्भुं च ब्रह्माणं कश्यपं तथा॥ ५४

कथमागमनं देवा इति प्रश्नं चकार सः।
ब्रह्मा तद्वचनं श्रुत्वा सहसा समयोचितम्॥ ५५

प्रत्युवाच नमस्कृत्य हृषीकेशपदाम्बुजम्।
यदि त्यक्ता धर्मपत्नी धर्मिष्ठा मनसा सती॥ ५६

कुरुष्वास्यां सुतोत्पत्तिं स्वधर्मपालनाय वै।
जायायां च सुतोत्पत्तिं कृत्वा पश्चात्त्यजेन्मुने॥ ५७

अकृत्वा तु सुतोत्पत्तिं विरागी यस्त्यजेत्प्रियाम्।
स्त्रवते तस्य पुण्यं च चालन्यां च यथा जलम्॥ ५८

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा जरत्कारुर्मुनीश्वरः।
चकार नाभिसंस्पर्शं योगेन मन्त्रपूर्वकम्॥ ५९
मनसाया मुनिश्रेष्ठ मुनिश्रेष्ठ उवाच ताम्।

है, द्विज फिरसे जगत्की सृष्टि भी कर सकता है, द्विजसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान, ब्रह्मज्योतिस्वरूप तथा ब्रह्मवंश ब्राह्मणको निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनी चाहिये॥ ४५—४८½ ॥

सूर्यका वचन सुनकर द्विज जरत्कारु प्रसन्न हो गये। भगवान् सूर्य भी विप्र जरत्कारुका आशीर्वाद लेकर अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन विप्रने विक्षुब्ध हृदयसे रुदन करती हुई तथा शोकसन्तप्त देवी मनसाका परित्याग कर दिया॥ ४९-५०½ ॥

उस विपत्तिमें भयसे व्याकुल देवी मनसाने अपने गुरुदेव शिव, इष्टदेवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया॥ ५१½ ॥

मनसे देवी मनसाके ध्यान करनेपर गोपियोंके ईश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यपजी वहाँ आ गये॥ ५२½ ॥

प्रकृतिसे परे तथा निर्गुण अपने अभीष्ट देवको देखकर मुनि जरत्कारुने उनकी स्तुति की तथा बार-बार उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भगवान् शिव, ब्रह्मा तथा कश्यपको भी नमस्कार किया। 'हे देवगण! यहाँ आपलोगोंका आगमन किसलिये हुआ है?' उन्होंने ऐसा प्रश्न किया॥ ५३-५४½ ॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके सहसा समयोचित उत्तर दिया—'हे मुने! यदि आप अपनी साध्वी तथा धर्मपरायणा पत्नी मनसाका त्याग ही करना चाहते हैं, तो इसे स्त्रीधर्म-पालनके योग्य बनानेहेतु पहले इससे पुत्र उत्पन्न कीजिये। अपनी भार्यासे पुत्र उत्पन्न करनेके बाद आप इसका त्याग कर सकते हैं; क्योंकि जो विरागी पुरुष पुत्र उत्पन्न किये बिना ही अपनी प्रिय भार्याका त्याग करता है, उसका पुण्य चलनीसे बहकर निकल जानेवाले जलकी भाँति नष्ट हो जाता है'॥ ५५—५८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीका वचन सुनकर मुनीश्वर जरत्कारुने मन्त्रोच्चारण करते हुए योगबलका आश्रय लेकर मनसादेवीकी नाभिका स्पर्श किया। तत्पश्चात् मुनिवर जरत्कारु उन देवीसे कहने लगे॥ ५९½ ॥

जरत्कारुरुवाच

गर्भेणानेन मनसे तव पुत्रो भविष्यति॥ ६०
जितेन्द्रियाणां प्रवरो धार्मिको ब्राह्मणाग्रणीः।
तेजस्वी च तपस्वी च यशस्वी च गुणान्वितः॥ ६१
वरो वेदविदां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा।
स च पुत्रो विष्णुभक्तो धार्मिकः कुलमुद्धरेत्॥ ६२
नृत्यन्ति पितरः सर्वे जन्ममात्रेण वै मुदा।
पतिव्रता सुशीला या सा प्रिया प्रियवादिनी॥ ६३
धर्मिष्ठा पुत्रमाता च कुलस्त्री कुलपालिका।
हरिभक्तिप्रदो बन्धुर्न चाभीष्टसुखप्रदः॥ ६४
यो बन्धुश्चेत्स च पिता हरिवर्त्मप्रदर्शकः।
सा गर्भधारिणी या च गर्भावासविमोचनी॥ ६५
दयारूपा च भगिनी यमभीतिविमोचनी।
विष्णुमन्त्रप्रदाता च स गुरुर्विष्णुभक्तिदः॥ ६६
गुरुश्च ज्ञानदो यो हि यज्ज्ञानं कृष्णभावनम्।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं ततो विश्वं चराचरम्॥ ६७
आविर्भूतं तिरोभूतं किं वा ज्ञानं तदन्यतः।
वेदजं यज्ञजं यद्यत्तत्सारं हरिसेवनम्॥ ६८
तत्त्वानां सारभूतं च हरेरन्यद्विडम्बनम्।
दत्तं ज्ञानं मया तुभ्यं स स्वामी ज्ञानदो हि यः॥ ६९
ज्ञानात्प्रमुच्यते बन्धात्स रिपुर्यो हि बन्धदः।
विष्णुभक्तियुतं ज्ञानं नो ददाति च यो गुरुः॥ ७०
स रिपुः शिष्यघाती च यतो बन्धान्न मोचयेत्।
जननीं गर्भजक्लेशाद्यमयातनया तथा॥ ७१
न मोचयेद्यः स कथं गुरुस्तातो हि बान्धवः।
परमानन्दरूपं च कृष्णमार्गमनश्वरम्॥ ७२
न दर्शयेद्यः सततं कीदृशो बान्धवो नृणाम्।

जरत्कारु बोले—हे मनसे! तुम्हारे इस गर्भसे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्राह्मणोंमें अग्रणी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणसम्पन्न और वेदवेत्ताओं-ज्ञानियों-योगियोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। वह धार्मिक तथा विष्णुभक्त पुत्र कुलका उद्धार करेगा। ऐसे पुत्रके जन्म लेनेमात्रसे पितृगण हर्षपूर्वक नाच उठते हैं। प्रिय पत्नी वही है; जो मृदुभाषिणी, सुशीला, पतिव्रता, धर्मिष्ठा, सुपुत्रकी माता, कुलस्त्री तथा कुलका पालन करनेवाली होती है। श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाला ही सच्चा बन्धु होता है, न कि अभीष्ट सुख देनेवाला। भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखानेवाला बन्धु ही सच्चा पिता है। जो आवागमनसे मुक्त कर देनेवाली है, वही सच्ची माता होती है। वही बहन दयास्वरूपिणी है, जो यमके त्राससे छुटकारा दिला दे॥ ६०—६५॥

गुरु वही है, जो विष्णुका मन्त्र प्रदान करनेवाला तथा भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करनेवाला हो। ज्ञानदाता गुरु वही है, जो भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करानेवाला ज्ञान प्रदान करे; क्योंकि तृणसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व आविर्भूत होकर पुनः विनष्ट हो जाता है, तो फिर अन्य वस्तुसे ज्ञान कैसे हो सकता है? वेद अथवा यज्ञसे जो भी सारतत्त्व निकलता है, वह भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही है। यही हरिसेवा समस्त तत्त्वोंका सारस्वरूप है, भगवान् श्रीहरिकी सेवाके अतिरिक्त अन्य सब कुछ विडम्बनामात्र है॥ ६६—६८½॥

[हे देवि!] इस प्रकार मैंने तुम्हें ज्ञानोपदेश कर दिया। ज्ञानदाता स्वामी वही है, जो ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त कर देता है और जो बन्धनमें डालता है, वह शत्रु है॥ ६९½॥

जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, वह शिष्यघाती तथा शत्रु है; क्योंकि वह बन्धनसे मुक्त नहीं करता। जो जननीके गर्भजनित कष्ट तथा यमयातनासे मुक्त न कर सके; उसे गुरु, तात तथा बान्धव कैसे कहा जाय? जो भगवान् श्रीकृष्णके परमानन्दस्वरूप सनातन मार्गका निरन्तर दर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है?॥ ७०—७२½॥

भज साध्वि परं ब्रह्माच्युतं कृष्णं च निर्गुणम्॥ ७३

निर्मूलं च भवेत्पुंसां कर्म वै तस्य सेवया।
मया छलेन त्वं त्यक्ता क्षमस्वैतन्मम प्रिये॥ ७४

क्षमायुतानां साध्वीनां सत्त्वात्क्रोधो न विद्यते।
पुष्करे तपसे यामि गच्छ देवि यथासुखम्॥ ७५

श्रीकृष्णचरणाम्भोजे निःस्पृहाणां मनोरथाः।
जरत्कारुवचः श्रुत्वा मनसा शोककातरा॥ ७६

साश्रुनेत्रा च विनयादुवाच प्राणवल्लभम्।

मनसोवाच

दोषो नास्त्येव मे त्यक्तुं निद्राभङ्गेन ते प्रभो॥ ७७

यत्र स्मरामि त्वां नित्यं तत्र मामागमिष्यसि।
बन्धुभेदः क्लेशतमः पुत्रभेदस्ततः परम्॥ ७८

प्राणेशभेदः प्राणानां विच्छेदात्सर्वतः परः।
पतिः पतिव्रतानां तु शतपुत्राधिकं प्रियः॥ ७९

सर्वस्मात्तु प्रियः स्त्रीणां प्रियस्तेनोच्यते बुधैः।
पुत्रे यथैकपुत्राणां वैष्णवानां यथा हरौ॥ ८०

नेत्रे यथैकनेत्राणां तृषितानां यथा जले।
क्षुधितानां यथान्ने च कामुकानां च मैथुने॥ ८१

यथा परस्वे चौराणां यथा जारे कुयोषिताम्।
विदुषां च यथा शास्त्रे वाणिज्ये वणिजां यथा॥ ८२
तथा शश्वन्मनः कान्ते साध्वीनां योषितां प्रभो।

अतः हे साध्वि! तुम निर्गुण तथा अच्युत परब्रह्म श्रीकृष्णकी आराधना करो। उनकी उपासनासे मनुष्योंका सारा कर्म निर्मूल हो जाता है। हे प्रिये! मैंने छलपूर्वक तुम्हारा परित्याग किया है, अतः मेरे इस अपराधको क्षमा करो। सत्त्वगुणके प्रभावसे क्षमाशील साध्वी नारियोंमें क्रोध नहीं रहता। हे देवि! मैं तप करनेके लिये पुष्करक्षेत्र जा रहा हूँ। तुम भी यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें अनुराग ही निःस्पृह प्राणियोंका एकमात्र मनोरथ होता है॥ ७३—७५½ ॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर शोकसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली मनसादेवी अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे विनम्रतापूर्वक कहने लगीं॥ ७६½ ॥

मनसा बोलीं—हे प्रभो! निद्राभंग कर देनेके कारण जो आप मेरा त्याग कर रहे हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है। [अतः आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि] मैं जहाँ भी आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे सदा दर्शन दीजियेगा॥ ७७½ ॥

अपने बन्धुओंका वियोग अत्यन्त कष्टदायक होता है, पुत्रका वियोग उससे भी अधिक कष्टदायक होता है, किंतु प्राणेश्वर पतिदेवका वियोग प्राण-विच्छेदके तुल्य होनेके कारण सबसे अधिक कष्टकर होता है॥ ७८½ ॥

पतिव्रता स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। स्त्रियोंके लिये पति सबसे बढ़कर प्रिय होता है, अतः विद्वान् पुरुषोंने पतिको प्रियकी संज्ञा प्रदान की है॥ ७९½ ॥

जिस प्रकार एक पुत्रवाले लोगोंका मन पुत्रमें, वैष्णवजनोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे प्राणियोंका जलमें, भूखे प्राणियोंका अन्नमें, कामासक्त-जनोंका मैथुनमें, चोरोंका पराये धनमें, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंका व्यभिचारी पुरुषमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका मन वाणिज्यमें लगा रहता है; उसी प्रकार हे प्रभो! पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने पतिमें लगा रहता है॥ ८०—८२½ ॥

इत्युक्त्वा मनसा देवी पपात स्वामिनः पदे॥ ८३

क्षणं चकार क्रोडे तां कृपया च कृपानिधिः।
नेत्रोदकेन मनसां स्नापयामास तां मुनिः॥ ८४

साश्रु नेत्रा मुनेः क्रोडं सिषेच भेदकातरा।
तदा ज्ञानेन तौ द्वौ च विशोकौ सम्बभूवतुः॥ ८५

स्मारं स्मारं पदाम्भोजं कृष्णस्य परमात्मनः।
जगाम तपसे विप्रः स्वकान्तां सम्प्रबोध्य च॥ ८६

जगाम मनसा शम्भोः कैलासं मन्दिरं गुरोः।
पार्वती बोधयामास मनसां शोककर्शिताम्॥ ८७

शिवश्चातीव ज्ञानेन शिवेन च शिवालयः।
सुप्रशस्ते दिने साध्वी सुषुवे मङ्गलक्षणे॥ ८८

नारायणांशं पुत्रं तं योगिनां ज्ञानिनां गुरुम्।
गर्भस्थितो महाज्ञानं श्रुत्वा शङ्करवक्त्रतः॥ ८९

सम्बभूव च योगीन्द्रो योगिनां ज्ञानिनां गुरुः।
जातकं कारयामास वाचयामास मङ्गलम्॥ ९०

वेदांश्च पाठयामास शिवाय च शिवः शिशोः।
मणिरत्नकिरीटांश्च ब्राह्मणेभ्यो ददौ शिवः॥ ९१

पार्वती च गवां लक्षं रत्नानि विविधानि च।
शम्भुश्च चतुरो वेदान्वेदाङ्गानितरांस्तथा॥ ९२

बालकं पाठयामास ज्ञानं मृत्युञ्जयं परम्।
भक्तिरस्त्यधिका कान्तेऽभीष्टदेवे गुरौ तथा॥ ९३

यस्यास्तेन च तत्पुत्रो बभूवास्तीक एव च।

ऐसा कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ीं। कृपानिधि मुनिवर जरत्कारुने कृपा करके क्षणभरके लिये उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। मुनिने अश्रुसे मनसादेवीको सम्पृक्त कर दिया। वियोगजन्य भयसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली देवी मनसाने भी अपने आँसुओंसे उन मुनिकी गोदको सींच डाला॥ ८३-८४½ ॥

तत्पश्चात् मुनि जरत्कारु तथा देवी मनसा—वे दोनों ही ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हो गये। अपनी प्रियाको समझाकर बार-बार परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करते हुए मुनि जरत्कारु तपस्याके लिये चले गये और देवी मनसा भी अपने गुरु भगवान् शिवके धाम कैलासपर चली गयीं। वहाँ पार्वतीने शोकसन्तप्त देवी मनसाको बहुत समझाया और कल्याण-निधान भगवान् शिवने भी उसे अत्यन्त मंगलकारी ज्ञान प्रदान किया॥ ८५—८७½ ॥

तदनन्तर देवी मनसाने अत्यन्त प्रशस्त तथा मंगलमय वेलामें एक पुत्रको जन्म दिया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों तथा ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह बालक गर्भमें स्थित रहते हुए ही भगवान् शिवके मुखसे महाज्ञानका श्रवण करके योगियों तथा ज्ञानियोंका गुरु और योगीश्वर हो गया था॥ ८८-८९ ॥

भगवान् शिवने उस शिशुका जातकर्म-संस्कार कराया तथा उसके कल्याणके लिये स्वस्तिवाचन और वेदपाठ कराया॥ ९०½ ॥

शिवजीने बहुतसे मणि, रत्न तथा मुकुट ब्राह्मणोंको दान दिये और पार्वतीजीने लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न उन्हें प्रदान किये॥ ९१½ ॥

भगवान् शिवने उस बालकको चारों वेद तथा वेदांग पढ़ाये और उसे श्रेष्ठ मृत्युंजय-ज्ञानका उपदेश दिया॥ ९२½ ॥

अपने पति, अभीष्ट देवता तथा गुरुमें उस मनसाकी अत्यधिक भक्ति थी, इसलिये उसके पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ॥ ९३½ ॥

जगाम तपसे विष्णोः पुष्करं शङ्कराज्ञया॥ ९४

सम्प्राप्य च महामन्त्रं ततश्च परमात्मनः।
दिव्यं वर्षत्रिलक्षं च तपस्तप्त्वा तपोधनः॥ ९५

आजगाम महायोगी नमस्कर्तुं शिवं प्रभुम्।
शङ्करं च नमस्कृत्य स्थित्वा तत्रैव बालकः॥ ९६

सा चाजगाम मनसा कश्यपस्याश्रमं पितुः।
तां सपुत्रां सुतां दृष्ट्वा मुदं प्राप प्रजापतिः॥ ९७

शतलक्षं च रत्नानां ब्राह्मणेभ्यो ददौ मुने।
ब्राह्मणान्भोजयामास सोऽसंख्यान् श्रेयसे शिशोः॥ ९८

अदितिश्च दितिश्चान्या मुदं प्राप परन्तप।
सा सपुत्रा च सुचिरं तस्थौ तातालये सदा॥ ९९

तदीयं पुनराख्यानं वक्ष्यामि तन्निशामय।
अथाभिमन्युतनये ब्रह्मशापः परीक्षिते॥ १००

बभूव सहसा ब्रह्मन् दैवदोषेण कर्मणा।
सप्ताहे समतीते तु तक्षकस्त्वां च धक्ष्यति॥ १०१

शशाप शृङ्गी तत्रैव कौशिक्याश्च जलेन वै।
राजा श्रुत्वा तत्प्रवृत्तिं निर्वातस्थानमागतः॥ १०२

तत्र तस्थौ च सप्ताहं देहरक्षणतत्परः।
सप्ताहे समतीते तु गच्छन्तं तक्षकं पथि॥ १०३

धन्वन्तरिर्नृपं भोक्तुं ददर्श गामुकः पथि।
तयोर्बभूव संवादः सुप्रीतिश्च परस्परम्॥ १०४

धन्वन्तरिर्मणिं प्राप तक्षकः स्वेच्छया ददौ।
स ययौ तं गृहीत्वा तु सन्तुष्टो हृष्टमानसः॥ १०५

तक्षको भक्षयामास नृपं तं मञ्चके स्थितम्।
राजा जगाम तरसा देहं त्यक्त्वा परत्र च॥ १०६

संस्कारं कारयामास पितुर्वै जनमेजयः।

मुनि जरत्कारु पहले ही शिवजीकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। वहाँ परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके वे तपोधन महायोगी जरत्कारु दिव्य तीन लाख वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शिवको नमस्कार करनेके लिये आये। शंकरको नमस्कार करके वे वहीं रुक गये। बालक भी वहींपर था॥ ९४—९६॥

तत्पश्चात् वे देवी मनसा अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें आ गयीं। पुत्रसहित उस पुत्रीको देखकर प्रजापति कश्यप अत्यन्त हर्षित हुए। हे मुने! कश्यपजीने शिशुके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्नोंका दान किया और असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया॥ ९७-९८॥

हे परंतप! प्रजापति कश्यपकी दिति, अदिति तथा अन्य सभी पत्नियाँ परम प्रसन्न हुईं। उस समय देवी मनसा अपने पुत्रके साथ दीर्घकालतक अपने पिताके आश्रममें स्थित रहीं। अब उनका आगेका आख्यान पुनः कहूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ९९½॥

हे ब्रह्मन्! एक समयकी बात है, अभिमन्युपुत्र राजा परीक्षित् दैवकी प्रेरणासे अपने द्वारा किये गये सदोष कर्मके कारण ब्रह्मशापसे सहसा ग्रस्त हो गये। शृंगीऋषिने कौशिकीनदीका जल लेकर उन्हें शाप दे दिया कि एक सप्ताह व्यतीत होते ही तक्षकनाग तुम्हें डँस लेगा॥ १००-१०१½॥

शृंगीऋषिका वह शाप सुनकर राजा परीक्षित् ऐसे सुरक्षित स्थानपर आ गये, जहाँ वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता था। अपने देहकी रक्षामें तत्पर रहते हुए राजा परीक्षित् एक सप्ताहतक वहाँ रहे॥ १०२½॥

राजा परीक्षित्को विषमुक्त करनेके लिये जाते हुए धन्वन्तरिने सप्ताह बीतनेपर राजाको डँसनेके लिये जा रहे तक्षकको मार्गमें देखा॥ १०३½॥

उन दोनोंमें बातचीत होने लगी और परस्पर बड़ी प्रीति हो गयी। तक्षकने अपनी इच्छासे उन्हें मणि दे दी और धन्वन्तरिने मणि ग्रहण कर ली। मणि पाकर वे सन्तुष्ट हो गये और प्रसन्नचित्त होकर लौट गये। इसके बाद तक्षकने मंचपर बैठे हुए राजाको डँस लिया। इसके परिणामस्वरूप राजा परीक्षित् तत्काल देह त्यागकर परलोक चले गये। तब राजा जनमेजयने अपने पिताका समस्त और्ध्वदैहिक संस्कार कराया॥ १०४—१०६½॥

राजा चकार यज्ञं च सर्पसत्रं ततो मुने॥ १०७

प्राणांस्तत्याज सर्पाणां समूहो ब्रह्मतेजसा।
स तक्षको वै भीतस्तु महेन्द्रं शरणं ययौ॥ १०८

सेन्द्रं च तक्षकं हन्तुं विप्रवर्गः समुद्यतः।
अथ देवाश्च सेन्द्राश्च सञ्जग्मुर्मनसान्तिकम्॥ १०९

तां तुष्टाव महेन्द्रश्च भयकातरविह्वलः।
तत आस्तीक आगत्य यज्ञं च मातुराज्ञया॥ ११०

महेन्द्रतक्षकप्राणान्ययाचे भूमिपं परम्।
ददौ वरं नृपश्रेष्ठः कृपया ब्राह्मणाज्ञया॥ १११

यज्ञं समाप्य विप्रेभ्यो दक्षिणां च ददौ मुदा।
विप्राश्च मुनयो देवा गत्वा च मनसान्तिकम्॥ ११२

मनसां पूजयामासुस्तुष्टुवुश्च पृथक् पृथक्।
शक्रः सम्भृतसम्भारो भक्तियुक्तः सदा शुचिः॥ ११३

मनसां पूजयामास तुष्टाव परमादरात्।
नत्वा षोडशोपचारं बलिं च तत्प्रियं तदा॥ ११४

प्रददौ परितुष्टश्च ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया।
सम्पूज्य मनसां देवीं प्रययुः स्वालयं च ते॥ ११५

इत्येवं कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि।

नारद उवाच

केन स्तोत्रेण तुष्टाव महेन्द्रो मनसां सतीम्॥ ११६

पूजाविधिक्रमं तस्याः श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।

श्रीनारायण उवाच

सुस्नातः शुचिराचान्तो धृत्वा धौते च वाससी॥ ११७

रत्नसिंहासने देवीं वासयामास भक्तितः।
स्वर्गङ्गाया जलेनैव रत्नकुम्भस्थितेन च॥ ११८

स्नापयामास मनसां महेन्द्रो वेदमन्त्रतः।
वाससी वासयामास वह्निशुद्धे मनोहरे॥ ११९

हे मुने! तत्पश्चात् राजाने सर्पसत्र नामक यज्ञ आरम्भ किया, जिसमें ब्रह्मतेजके कारण अनेक सर्प प्राण त्यागने लगे। तब तक्षक भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। विप्रसमुदाय इन्द्रसहित तक्षकको मारनेके लिये उद्यत हुआ॥ १०७-१०८½ ॥

ऐसी स्थितिमें इन्द्रसहित सभी देवगण देवी मनसाके पास गये। वहाँपर भयातुर तथा व्याकुल इन्द्रने उन भगवती मनसाकी स्तुति की॥ १०९½ ॥

तदनन्तर मुनिवर आस्तीकने माताकी आज्ञासे यज्ञमें आकर श्रेष्ठ राजा जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। तब महाराज जनमेजयने उन्हें कृपापूर्वक प्राणदानका वर दे दिया और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञका समापन करके विप्रोंको प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा दी॥ ११०-१११½ ॥

तत्पश्चात् ब्राह्मण, मुनि तथा देवताओंने देवी मनसाके पास जाकर पृथक्-पृथक् उनकी पूजा तथा स्तुति की। इन्द्रने भी सभी पूजन-सामग्री एकत्र करके पवित्र होकर परम आदरपूर्वक मनसादेवीका पूजन तथा स्तवन किया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवीको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके उन्हें षोडशोपचार तथा प्रियपदार्थ प्रदान किये। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञाके अनुसार देवी मनसाकी पूजा करके वे सब अपने-अपने स्थानको चले गये। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने मनसादेवीका सम्पूर्ण आख्यान कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ११२—११५½ ॥

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की? साथ ही मैं उन देवीके पूजा-विधानका क्रम यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ११६½ ॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवराज इन्द्रने विधिपूर्वक स्नान किया। इसके बाद पवित्र होकर तथा आचमन करके उन्होंने दो शुद्ध वस्त्र धारण किये, फिर देवी मनसाको भक्तिपूर्वक रत्नमय सिंहासनपर विराजित किया। तत्पश्चात् इन्द्रने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए रत्नमय कलशमें भरे हुए स्वर्गंगाके जलसे भगवतीको स्नान कराया और अग्नितुल्य शुद्ध दो

सर्वाङ्गे चन्दनं कृत्वा पादार्घ्यं भक्तिसंयुतः।
गणेशं च दिनेशं च वह्निं विष्णुं शिवं शिवाम्॥ १२०

सम्पूज्यादौ देवषट्कं पूजयामास तां सतीम्।
ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहेत्येवं च मन्त्रतः॥ १२१

दशाक्षरेण मूलेन ददौ सर्वं यथोचितम्।
दत्त्वा षोडशोपचारान्दुर्लभान्देवनायकः॥ १२२

पूजयामास भक्त्या च विष्णुना प्रेरितो मुदा।
वाद्यं नानाप्रकारं च वादयामास तत्र वै॥ १२३

बभूव पुष्पवृष्टिश्च नभसो मनसोपरि।
देवप्रियाज्ञया तत्र ब्रह्मविष्णुशिवाज्ञया॥ १२४

तुष्टाव साश्रुनेत्रश्च पुलकाङ्कितविग्रहः।

पुरन्दर उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां वराम्॥ १२५

परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना।
स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतत्परम्॥ १२६

न क्षमः प्रकृते वक्तुं गुणानां गणनां तव।
शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसादिवर्जिता॥ १२७

न च शक्तो मुनिस्तेन त्यक्तुं याच्ञा कृता यतः।
त्वं मया पूजिता साध्वी जननी मे यथादितिः॥ १२८

दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः।
त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥ १२९

अहं करोमि त्वत्पूजां प्रीतिश्च वर्धतां सदा।
नित्या यद्यपि पूज्या त्वं सर्वत्र जगदम्बिके॥ १३०

तथापि तव पूजां च वर्धयामि सुरेश्वरि।
ये त्वामाषाढसङ्क्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः॥ १३१

मनोहर वस्त्र पहनाये। देवीके सम्पूर्ण अंगोंमें चन्दन लगाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्य अर्पण करनेके अनन्तर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा करके इन्द्रने साध्वी मनसाका पूजन किया॥ ११७—१२०½॥

इन्द्रने '**ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा**'—इस दशाक्षर मूल मन्त्रके द्वारा यथोचितरूपसे सभी पूजन-सामग्री अर्पित की। इस तरह भगवान् विष्णुकी प्रेरणा पाकर देवराज इन्द्रने सोलह प्रकारके दुर्लभ पूजनोपचार अर्पण करके प्रसन्नतापूर्वक भक्तिके साथ देवी मनसाकी पूजा की। उस समय इन्द्रने नाना प्रकारके वाद्य बजवाये॥ १२१—१२३॥

देवताओंके प्रिय इन्द्रकी आज्ञा तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे देवी मनसाके ऊपर आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। तत्पश्चात् पुलकित शरीरवाले इन्द्र नेत्रोंमें आँसू भरकर भगवती मनसाकी स्तुति करने लगे॥ १२४½॥

पुरन्दर बोले—हे देवि! पतिव्रताओंमें अतिश्रेष्ठ, परात्पर तथा परमा आप भगवतीकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु इस समय आपकी स्तुति कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। हे प्रकृते! मैं वेदमें वर्णित आपके स्तोत्रोंके लक्षण तथा आपके चरित्रसम्बन्धी आख्यान आदिका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं हूँ। [हे देवि!] मैं आपके गुणोंकी गणना नहीं कर सकता॥ १२५-१२६½॥

आप शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं तथा क्रोध, हिंसा आदिसे रहित हैं। मुनि जरत्कारु आपका त्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं थे, इसलिये उन्होंने आपसे क्षमायाचना की थी। आप साध्वी मेरी माता अदितिके समान ही मेरी पूजनीया हैं। आप दयारूपसे मेरी भगिनी तथा क्षमारूपसे मेरी जननी हैं॥ १२७-१२८½॥

हे सुरेश्वरि! आपके द्वारा मेरे प्राण, पुत्र और स्त्रीकी रक्षा हुई है, अतः मैं आपकी पूजा करता हूँ। आपके प्रति मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ती रहे। हे जगदम्बिके! यद्यपि आप सनातनी भगवती सर्वत्र पूज्य हैं, फिर भी मैं आपकी पूजाका प्रचार कर रहा हूँ। हे सुरेश्वरि! जो मनुष्य आषाढ़-मासकी संक्रान्ति,

पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्ते वा दिने दिने।
पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै॥ १३२

यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः।
ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः॥ १३३

लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा।
त्वं स्वयं सर्वलक्ष्मीश्च वैकुण्ठे कमलालया॥ १३४

नारायणांशो भगवाञ्जरत्कारुर्मुनीश्वरः।
तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता॥ १३५

अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा।
मनसादेवि शक्त्या त्वं स्वात्मना सिद्धयोगिनी॥ १३६

तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भव।
ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम्॥ १३७

तेन त्वां मनसां देवीं प्रवदन्ति मनीषिणः।
सत्यस्वरूपा देवि त्वं शश्वत्सत्यनिषेवणात्॥ १३८

यो हि त्वां भावयेन्नित्यं स त्वां प्राप्नोति तत्परः।
इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीवरम्॥ १३९

प्रजगाम स्वभवनं भूषया सपरिच्छदम्।
पुत्रेण सार्धं सा देवी चिरं तस्थौ पितुर्गृहे॥ १४०

भ्रातृभिः पूजिता शश्वन्मान्या वन्द्या च सर्वतः।
गोलोकात्सुरभिर्ब्रह्मन् तत्रागत्य सुपूजिताम्॥ १४१

तां स्नापयित्वा क्षीरेण पूजयामास सादरम्।
ज्ञानं च कथयामास गोप्यं सर्वं सुदुर्लभम्॥ १४२

तया देवैः पूजिता सा स्वर्लोकं च पुनर्ययौ।

मनसा-पंचमी (नागपंचमी), मासके अन्तमें अथवा प्रतिदिन भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करेंगे, उनके पुत्र-पौत्र आदि तथा धनकी वृद्धि अवश्य ही होगी और वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्यासम्पन्न तथा गुणी होंगे। जो प्राणी आपकी पूजा नहीं करेंगे तथा अज्ञानके कारण आपकी निन्दा करेंगे, वे लक्ष्मीविहीन रहेंगे और उन्हें सदा नागोंसे भय बना रहेगा॥ १२९—१३३½ ॥

[हे देवि!] आप स्वयं सर्वलक्ष्मी हैं तथा वैकुण्ठमें कमलालया हैं और मुनीश्वर भगवान् जरत्कारु नारायणके अंश हैं। आपके पिताने हमलोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे ही तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा आपका सृजन किया है, अतः आप 'मनसा' नामसे विख्यात हैं॥ १३४-१३५½ ॥

हे मनसादेवि! आप अपनी शक्तिसे सिद्धयोगिनी हैं, अतः आप मनसादेवी सबके द्वारा पूजित और वन्दित हों। देवगण भक्तिपूर्वक मनसे निरन्तर आपकी श्रेष्ठ पूजा करते हैं, इसीलिये विद्वान् पुरुष आपको 'मनसादेवी' कहते हैं। हे देवि! सत्यकी सर्वदा उपासना करनेके कारण आप सत्यस्वरूपिणी हैं। जो मनुष्य तत्पर होकर निरन्तर आपका ध्यान करता है, वह आपको प्राप्त कर लेता है॥ १३६—१३८½ ॥

[हे मुने!] इस प्रकार मनसादेवीकी स्तुति करके और उन भगिनीरूप देवीसे वर प्राप्तकर देवराज इन्द्र अनेकविध भूषणोंसे अलंकृत अपने भवनको चले गये॥ १३९½ ॥

मनसादेवीने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपके आश्रममें दीर्घकालतक निवास किया। भ्राताओंके द्वारा वे सदा पूजित, सम्मानित और वन्दित हुईं॥ १४०½ ॥

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर सुरभि गौने गोलोकसे वहाँ आकर इन्द्रद्वारा सुपूजित उन मनसादेवीको अपने दुग्धसे स्नान कराकर आदरपूर्वक उनकी पूजा की और उन देवीने उन्हें अत्यन्त दुर्लभ तथा गोपनीय सम्पूर्ण ज्ञानका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उस सुरभि तथा देवताओंके द्वारा पूजित वे देवी मनसा पुनः स्वर्गलोकको चली गयीं॥ १४१-१४२½ ॥

इन्द्रस्तोत्रं पुण्यबीजं मनसां पूजयेत्पठेत्॥ १४३

तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च।
विषं भवेत्सुधातुल्यं सिद्धस्तोत्रो यदा भवेत्॥ १४४

पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धस्तोत्रो भवेन्नरः।
सर्पशायी भवेत्सोऽपि निश्चितं सर्पवाहनः॥ १४५

जो मनुष्य पुण्यबीजस्वरूप इस इन्द्रस्तोत्रका पाठ करता है तथा भगवती मनसाकी पूजा करता है, उसे तथा उसके वंशजोंके लिये नागोंका भय नहीं रह जाता। यदि मनुष्य इस स्तोत्रको सिद्ध कर ले, तो उसके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप कर लेनेसे मनुष्यको इसकी सिद्धि हो जाती है और वह निश्चय ही सर्पपर शयन करनेवाला तथा सर्पपर सवारी करनेवाला हो जाता है॥ १४३—१४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
मनसोपाख्यानवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

अथैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

आदि गौ सुरभिदेवीका आख्यान

नारद उवाच

का वा सा सुरभिर्देवी गोलोकादागता च या।
तज्जन्मचरितं ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि यत्नतः॥ १

श्रीनारायण उवाच

गवामधिष्ठातृदेवी गवामाद्या गवां प्रसूः।
गवां प्रधाना सुरभिर्गोलोके सा समुद्भवा॥ २

सर्वादिसृष्टेश्चरितं कथयामि निशामय।
बभूव तेन तज्जन्म पुरा वृन्दावने वने॥ ३

एकदा राधिकानाथो राधया सह कौतुकी।
गोपाङ्गनापरिवृतः पुण्यं वृन्दावनं ययौ॥ ४

सहसा तत्र रहसि विजहार स कौतुकात्।
बभूव क्षीरपानेच्छा तस्य स्वेच्छामयस्य च॥ ५

ससृजे सुरभिं देवीं लीलया वामपार्श्वतः।
वत्सयुक्तां दुग्धवतीं वत्सो नाम मनोरथः॥ ६

दृष्ट्वा सवत्सां श्रीदामा नवभाण्डे दुदोह च।
क्षीरं सुधातिरिक्तं च जन्ममृत्युजराहरम्॥ ७

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! गोलोकसे जो सुरभिदेवी आयी थीं, वे कौन थीं? मैं ध्यानपूर्वक उनका जन्मचरित्र सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] वे देवी सुरभि गोलोकमें प्रकट हुईं। वे गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी तथा गौओंमें प्रधान हैं। मैं सभी गौओंकी आदिसृष्टिस्वरूपा उन सुरभिके चरित्रका वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये। पूर्वकालमें वृन्दावनमें सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था॥ २-३॥

एक समयकी बात है, गोपांगनाओंसे घिरे हुए परम कौतुकी राधिकापति श्रीकृष्ण राधाके साथ पुनीत वृन्दावनमें गये हुए थे। वहाँ वे एकान्तमें क्रीडापूर्वक विहार करने लगे, तभी सहसा उन स्वेच्छामय प्रभुको दुग्धपानकी इच्छा हो गयी॥ ४-५॥

उसी समय उन्होंने अपने वामभागसे लीलापूर्वक बछड़ेसहित दुग्धवती सुरभि गौको प्रकट कर दिया। उस बछड़ेका नाम मनोरथ था॥ ६॥

बछड़ेसहित उस गायको देखकर श्रीदामाने एक नवीन पात्रमें उसका दूध दुहा। जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापाको हरनेवाला वह दुग्ध अमृतसे भी बढ़कर

तदुत्थं च पयः स्वादु पपौ गोपीपतिः स्वयम्।
सरो बभूव पयसां भाण्डविस्रंसनेन च॥ ८

दीर्घं च विस्तृतं चैव परितः शतयोजनम्।
गोलोकेऽयं प्रसिद्धश्च सोऽपि क्षीरसरोवरः॥ ९

गोपिकानां च राधायाः क्रीडावापी बभूव सा।
रत्नेन्द्ररचिता पूर्णं भूता चापीश्वरेच्छया॥ १०

बभूव कामधेनूनां सहसा लक्षकोटयः।
यावन्तस्तत्र गोपाश्च सुरभ्या लोमकूपतः॥ ११

तासां पुत्राश्च बहवः सम्बभूवुरसंख्यकाः।
कथिता च गवां सृष्टिस्तया च पूरितं जगत्॥ १२

पूजां चकार भगवान् सुरभ्याश्च पुरा मुने।
ततो बभूव तत्पूजा त्रिषु लोकेषु दुर्लभा॥ १३

दीपान्वितापरदिने श्रीकृष्णस्याज्ञया हरेः।
बभूव सुरभिः पूज्या धर्मवक्त्रादिदं श्रुतम्॥ १४

ध्यानं स्तोत्रं मूलमन्त्रं यद्यत्पूजाविधिक्रमम्।
वेदोक्तं च महाभाग निबोध कथयामि ते॥ १५

ॐ सुरभ्यै नम इति मन्त्रस्तस्याः षडक्षरः।
सिद्धो लक्षजपेनैव भक्तानां कल्पपादपः॥ १६

ध्यानं यजुर्वेदगीतं तस्याः पूजा च सर्वतः।
ऋद्धिदा वृद्धिदा चैव मुक्तिदा सर्वकामदा॥ १७

लक्ष्मीस्वरूपां परमां राधासहचरीं पराम्।
गवामधिष्ठातृदेवीं गवामाद्यां गवां प्रसूम्॥ १८

पवित्ररूपां पूतां च भक्तानां सर्वकामदाम्।
यया पूतं सर्वविश्वं तां देवीं सुरभिं भजे॥ १९

घटे वा धेनुशिरसि बन्धस्तम्भे गवामपि।
शालग्रामे जलाग्नौ वा सुरभिं पूजयेद् द्विजः॥ २०

था। सुरभिसे दुहे गये उस स्वादिष्ट दूधको स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्ण पीने लगे। तभी पात्रके गिरकर फूट जानेसे चारों ओर सौ योजनकी लम्बाई तथा चौड़ाईवाला एक विशाल दूधका सरोवर हो गया। यही सरोवर गोलोकमें क्षीरसरोवर नामसे प्रसिद्ध है॥ ७—९॥

वह सरोवर गोपिकाओं तथा राधाका क्रीडावापी हो गया। वापीके [घाट आदि] पूर्णरूपसे श्रेष्ठ रत्नोंसे निर्मित थे। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे उसी समय सहसा लाखों-करोड़ों कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं। वहाँ जितने गोप थे वे सभी उस सुरभिके रोमकूपोंसे प्रकट हुए थे। तत्पश्चात् उन गौओंकी असंख्य सन्तानें उत्पन्न हो गयीं। इस प्रकार उस सुरभिसे गायोंकी सृष्टि कही गयी है; उसीसे यह जगत् व्याप्त है॥ १०—१२॥

हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभिकी पूजा की थी, उसी समयसे तीनों लोकोंमें उस सुरभिकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभि पूजित हुई थीं—यह मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ १३-१४॥

हे महाभाग! अब मैं आपको देवी सुरभिका वेदोक्त ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा जो-जो पूजाका विधिक्रम है, उसे बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १५॥

'ॐ सुरभ्यै नमः'—यह उनका षडक्षर मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षतुल्य हो जाता है॥ १६॥

देवी सुरभिका ध्यान यजुर्वेदमें वर्णित है। उनकी पूजा सब प्रकारसे ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली है॥ १७॥

[ध्यान इस प्रकार है—] 'लक्ष्मीस्वरूपा, परमा, राधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी, पवित्ररूपिणी, पावन, भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् पावन बना हुआ है—उन पराभगवती सुरभिकी मैं आराधना करता हूँ'॥ १८-१९॥

द्विजको चाहिये कि कलश, गायके मस्तक, गायोंके बाँधनेके स्तम्भ, शालग्रामशिला, जल अथवा अग्निमें सुरभिकी भावना करके उनकी पूजा करे॥ २०॥

दीपान्वितापरदिने पूर्वाह्ले भक्तिसंयुतः।
यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि॥ २१

एकदा त्रिषु लोकेषु वाराहे विष्णुमायया।
क्षीरं जहार सुरभिश्चिन्तिताश्च सुरादयः॥ २२

ते गत्वा ब्रह्मलोके च ब्रह्माणं तुष्टुवुस्तदा।
तदाज्ञया च सुरभिं तुष्टाव पाकशासनः॥ २३

पुरन्दर उवाच

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः।
गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥ २४

नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः।
नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥ २५

कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे।
क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः॥ २६

शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः।
यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः॥ २७

स्तोत्रश्रवणमात्रेण तुष्टा हृष्टा जगत्प्रसूः।
आविर्बभूव तत्रैव ब्रह्मलोके सनातनी॥ २८

महेन्द्राय वरं दत्त्वा वाञ्छितं चापि दुर्लभम्।
जगाम सा च गोलोकं ययुर्देवादयो गृहम्॥ २९

बभूव विश्वं सहसा दुग्धपूर्णं च नारद।
दुग्धं घृतं ततो यज्ञस्ततः प्रीतिः सुरस्य च॥ ३०

इदं स्तोत्रं महापुण्यं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्।
स गोमान् धनवांश्चैव कीर्तिमान्पुत्रवांस्तथा॥ ३१

स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते कृष्णमन्दिरे॥ ३२

जो मनुष्य दीपावलीके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भक्तिसे युक्त होकर सुरभिकी पूजा करता है, वह पृथ्वीलोकमें पूज्य हो जाता है॥ २१॥

एक समयकी बात है, वाराहकल्पमें भगवान् विष्णुकी मायासे देवी सुरभिने तीनों लोकोंमें दूध देना बन्द कर दिया, जिससे समस्त देवता आदि चिन्तित हो गये। ब्रह्मलोकमें जाकर उन्होंने ब्रह्माकी स्तुति की, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्द्र सुरभिकी स्तुति करने लगे॥ २२-२३॥

पुरन्दर बोले—देवीको नमस्कार है, महादेवी सुरभिको बार-बार नमस्कार है। हे जगदम्बिके! गौओंकी बीजस्वरूपिणी आपको नमस्कार है॥ २४॥ राधाप्रियाको नमस्कार है, देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है, कृष्णप्रियाको नमस्कार है और गौओंकी जननीको बार-बार नमस्कार है॥ २५॥ हे परादेवि! सभी प्राणियोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपिणी, दुग्ध देनेवाली, धन प्रदान करनेवाली तथा बुद्धि देनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है॥ २६॥ शुभा, सुभद्रा तथा गोप्रदाको बार-बार नमस्कार है। यश, कीर्ति तथा धर्म प्रदान करनेवाली भगवती सुरभिको बार-बार नमस्कार है॥ २७॥

इस स्तोत्रको सुनते ही जगज्जननी सनातनी देवी सुरभि सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर उस ब्रह्मलोकमें प्रकट हो गयीं॥ २८॥

देवराज इन्द्रको दुर्लभ वांछित वर प्रदान करके वे गोलोकको चली गयीं और देवता आदि अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २९॥

हे नारद! उसके बाद विश्व सहसा दुग्धसे परिपूर्ण हो गया। दुग्ध होनेसे घृतका प्राचुर्य हो गया और उससे यज्ञ होने लगा, जिससे देवताओंको सन्तुष्टि होने लगी॥ ३०॥

जो भक्तिपूर्वक इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह गौओंसे सम्पन्न, धनवान्, यशस्वी तथा पुत्रवान् हो जाता है। उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया तथा वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीकृष्णके धाममें

सुचिरं निवसेत्तत्र करोति कृष्णसेवनम्।
न पुनर्भवनं तत्र ब्रह्मपुत्रो भवेत्ततः॥ ३३

चला जाता है। वह वहाँ दीर्घकालतक निवास करता है और भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें संलग्न रहता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है॥ ३१—३३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे
सुरभ्युपाख्यानवर्णनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

* * *

अथ पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन

नारद उवाच

श्रुतं सर्वमुपाख्यानं प्रकृतीनां यथातथम्।
यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि रहस्यं वेदगोपितम्।
राधायाश्चैव दुर्गाया विधानं श्रुतिचोदितम्॥ २

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मूलप्रकृतिरूपा देवियोंका सारा आख्यान मैंने यथार्थरूपमें सुन लिया, जिसका श्रवण करके प्राणी जन्म-मरणरूपी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब मैं भगवती राधा तथा दुर्गाका वेदगोपित रहस्य तथा वेदोक्त पूजा-विधान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

महिमा वर्णितोऽतीव भवता परयोर्द्वयोः।
श्रुत्वा तं तद्गतं चेतो न कस्य स्यान्मुनीश्वर॥ ३

हे मुनीश्वर! आपने इन दोनों पराशक्तियोंकी अद्भुत महिमा बतायी, उसे सुनकर भला किस पुरुषका मन उनमें लीन नहीं हो जायगा॥ ३॥

ययोरंशो जगत्सर्वं यन्नियम्यं चराचरम्।
ययोर्भक्त्या भवेन्मुक्तिस्तद्विधानं वदाधुना॥ ४

[हे भगवन्!] यह सम्पूर्ण जगत् जिनका अंश है, यह चराचर विश्व जिनसे नियन्त्रित है तथा जिनकी भक्तिसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जाती है, उन देवियोंके पूजा-विधानके विषयमें अब आप मुझे बताइये॥ ४॥

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि रहस्यं श्रुतिचोदितम्।
यन्न कस्यापि चाख्यातं सारात्सारं परात्परम्॥ ५

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, मैं वह वेदवर्णित परम सारस्वरूप तथा परात्पर रहस्य आपको बता रहा हूँ, जिसे मैंने किसीको भी नहीं बताया है। इसे सुनकर आप किसी दूसरेसे मत कहियेगा; क्योंकि यह परम गोपनीय है॥ ५॥

श्रुत्वा परस्मै नो वाच्यं यतोऽतीव रहस्यकम्।
मूलप्रकृतिरूपिण्याः संविदो जगदुद्भवे॥ ६

प्रादुर्भूतं शक्तियुग्मं प्राणबुद्ध्यधिदैवतम्।
जीवानां चैव सर्वेषां नियन्तृप्रेरकं सदा॥ ७
तदधीनं जगत्सर्वं विराडादिचराचरम्।

जगत्की उत्पत्तिके समय मूलप्रकृतिस्वरूपिणी ज्ञानमयी भगवतीसे प्राण तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवियोंके रूपमें दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। [श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी तथा श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं।] वे शक्तियाँ ही सम्पूर्ण जीवोंको सदा नियन्त्रित तथा प्रेरित करती हैं। विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं शक्तियोंके अधीन है॥ ६-७½॥

यावत्तयोः प्रसादो न तावन्मोक्षो हि दुर्लभः॥ ८

ततस्तयोः प्रसादार्थं नित्यं सेवेत तद्द्वयम्।
तत्रादौ राधिकामन्त्रं शृणु नारद भक्तितः॥ ९

ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्नित्यं सेवितो यः परात्परः।
श्रीराधेति चतुर्थ्यन्तं वह्नेर्जाया ततः परम्॥ १०

षडक्षरो महामन्त्रो धर्माद्यर्थप्रकाशकः।
मायाबीजादिकश्चायं वाञ्छाचिन्तामणिः स्मृतः॥ ११

वक्त्रकोटिसहस्रैस्तु जिह्वाकोटिशतैरपि।
एतन्मन्त्रस्य माहात्म्यं वर्णितुं नैव शक्यते॥ १२

जग्राह प्रथमं मन्त्रं श्रीकृष्णो भक्तितत्परः।
उपदेशान्मूलदेव्या गोलोके रासमण्डले॥ १३

विष्णुस्तेनोपदिष्टस्तु तेन ब्रह्मा विराट् तथा।
तेन धर्मस्तेन चाहमित्येषा हि परम्परा॥ १४

अहं जपामि तं मन्त्रं तेनाहमृषिरीडितः।
ब्रह्माद्याः सकला देवा नित्यं ध्यायन्ति तां मुदा॥ १५

कृष्णार्चायां नाधिकारो यतो राधार्चनं विना।
वैष्णवैः सकलैस्तस्मात्कर्तव्यं राधिकार्चनम्॥ १६

कृष्णप्राणाधिदेवी सा तदधीनो विभुर्यतः।
रासेश्वरी तस्य नित्यं तया हीनो न तिष्ठति॥ १७
राध्नोति सकलान्कामांस्तस्माद्राधेति कीर्तिता।

जबतक उन दोनों शक्तियोंकी कृपा नहीं होती, तबतक मोक्ष दुर्लभ रहता है। अतएव उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये उनकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये॥ ८½ ॥

हे नारद! उनमें आप पहले राधिकामन्त्रको भक्तिपूर्वक सुनिये, जिस परात्पर मन्त्रको ब्रह्मा, विष्णु आदि भी सदा जपते रहते हैं। 'श्रीराधा' इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे अग्निपत्नी 'स्वाहा' पद जोड़ देनेपर '**श्रीराधायै स्वाहा**' नामक यह षडक्षर महामन्त्र धर्म, अर्थ आदिको प्रकाशित करनेवाला है। इसी राधिकामन्त्रके आदिमें मायाबीज (ह्रीं)-से युक्त होकर **ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा**—यह वाञ्छाचिन्तामणि मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्रका माहात्म्य करोड़ों मुखों तथा जिह्वाओंके द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है॥ ९—१२॥

सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकमें रासमण्डलमें मूलदेवी भगवती श्रीराधाके उपदेश करनेपर भक्तिपूर्वक इस मन्त्रको ग्रहण किया था। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझको इस मन्त्रका उपदेश किया। इस प्रकार यह परम्परा चली आयी॥ १३-१४॥

मैं उस मन्त्रका जप करता हूँ, इसी कारणसे मैं ऋषिरूपमें पूजित हूँ। ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सदा प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीराधिकाका ध्यान करते रहते हैं। राधाकी पूजाके बिना श्रीकृष्णकी पूजा करनेका अधिकार नहीं है, अतः सभी वैष्णवोंको राधिकाका पूजन [अवश्य] करना चाहिये॥ १५-१६॥

वे भगवती राधिका भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अतः वे विभु उनके अधीन रहते हैं। वे श्रीकृष्णके रासकी सदा स्वामिनी हैं, इसलिये श्रीकृष्ण उन राधिकाके बिना नहीं रह सकते। वे [प्राणियोंके] सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करती हैं, इसलिये वे 'राधा'—इस नामसे विख्यात हैं॥ १७½ ॥

अत्रोक्तानां मनूनां च ऋषिरस्म्यहमेव च॥ १८

छन्दश्च देवी गायत्री देवतात्र च राधिका।
तारो बीजं शक्तिबीजं शक्तिस्तु परिकीर्तिता॥ १९

मूलावृत्त्या षडङ्गानि कर्तव्यानीतरत्र च।
अथ ध्यायेन्महादेवीं राधिकां रासनायिकाम्॥ २०

पूर्वोक्तरीत्या तु मुने सामवेदे विगीतया।
श्वेतचम्पकवर्णाभां शरदिन्दुसमाननाम्॥ २१

कोटिचन्द्रप्रतीकाशां शरदम्भोजलोचनाम्।
बिम्बाधरां पृथुश्रोणीं काञ्चीयुतनितम्बिनीम्॥ २२

कुन्दपङ्क्तिसमानाभदन्तपङ्क्तिविराजिताम्।
क्षौमाम्बरपरीधानां वह्निशुद्धांशुकान्विताम्॥ २३

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां करिकुम्भयुगस्तनीम्।
सदा द्वादशवर्षीयां रत्नभूषणभूषिताम्॥ २४

शृङ्गारसिन्धुलहरीं भक्तानुग्रहकातराम्।
मल्लिकामालतीमालाकेशपाशविराजिताम्॥ २५

सुकुमाराङ्गलतिकां रासमण्डलमध्यगाम्।
वराभयकरां शान्तां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्॥ २६

रत्नसिंहासनासीनां गोपीमण्डलनायिकाम्।
कृष्णप्राणाधिकां वेदबोधितां परमेश्वरीम्॥ २७

एवं ध्यात्वा ततो बाह्ये शालग्रामे घटेऽथवा।
यन्त्रे वाष्टदले देवीं पूजयेत्तु विधानतः॥ २८

यहाँ कहे गये सभी मन्त्रोंका ऋषि मैं नारायण ही हूँ, उनमें राधामन्त्रका देवी गायत्री छन्द है तथा राधिका देवता हैं, तार (प्रणव) बीज है और देवी भुवनेश्वरीको शक्ति कहा गया है। मूलमन्त्रकी आवृत्तिसे षडंगन्यास कर लेना चाहिये॥ १८-१९½॥

हे मुने! इसके बाद सामवेदमें वर्णित पूर्वोक्त रीतिके अनुसार रासेश्वरी महादेवी राधिकाका ध्यान करना चाहिये। [ध्यान इस प्रकार है]—'परमेश्वरी श्रीराधा श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली हैं, शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मुखवाली हैं, इनके श्रीविग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंकी प्रभाके समान है, ये शरद् ऋतुके खिले हुए कमलके समान नेत्रोंवाली हैं, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली तथा स्थूल श्रोणीवाली हैं, करधनीसे सुशोभित नितम्बदेशवाली हैं। कुन्द-पुष्पोंकी पंक्तिके सदृश आभावाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध रेशमी वस्त्र धारण कर रखा है, ये मन्द-मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाली हैं, इनके दोनों वक्ष:स्थल हाथीके मस्तकके समान विशाल हैं, ये सदा बारह वर्षकी अवस्थावाली प्रतीत होती हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, शृंगारसिन्धुकी तरंगोंके समान हैं, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर हैं, मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंकी मालाओंसे युक्त केशपाशसे सुशोभित हो रही हैं, इनके सुकुमार अंगोंमें मोतियोंकी लड़ियाँ शोभा दे रही हैं, ये रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान हैं, इन्होंने अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्राओंको धारण कर रखा है, ये शान्त स्वभाववाली हैं, सदा शाश्वत यौवनसे सम्पन्न हैं, रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान हैं, समस्त गोपियोंकी स्वामिनी हैं, ये भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं और वेदोंमें इन परमेश्वरी राधिकाकी महिमाका वर्णन हुआ है'॥ २०—२७॥

इस प्रकार हृदयदेशमें ध्यान करके बाहर शालग्रामशिला, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर विधानपूर्वक देवी राधिकाकी पूजा करनी चाहिये॥ २८॥

आवाह्य देवीं तत्पश्चादासनादि प्रदीयताम्।
मूलमन्त्रं समुच्चार्य चासनादीनि कल्पयेत्॥ २९

पाद्यं तु पादयोर्दद्यान्मस्तकेऽर्घ्यं समीरितम्।
मुखे त्वाचमनीयं स्यात्त्रिवारं मूलविद्यया॥ ३०

मधुपर्कं ततो दद्यादेकां गां च पयस्विनीम्।
ततो नयेत्स्नानशालां तां च तत्रैव भावयेत्॥ ३१

अभ्यङ्गादिस्नानविधिं कल्पयित्वाथ वाससी।
ततश्च चन्दनं दद्यान्नानालङ्कारपूर्वकम्॥ ३२

पुष्पमाला बहुविधास्तुलसीमञ्जरीयुताः।
पारिजातप्रसूनानि शतपत्रादिकानि च॥ ३३

ततः कुर्यात्पवित्रं तत्परिवारार्चनं विभोः।
अग्नीशासुरवायव्यमध्ये दिक्ष्वङ्गपूजनम्॥ ३४

कृत्वा पश्चादष्टदले दक्षिणावर्ततोऽग्रतः।
मालावतीमग्रदले वह्निकोणे च माधवीम्॥ ३५

रत्नमालां दक्षिणे च नैर्ऋत्ये तु सुशीलकाम्।
पश्चाद्दले शशिकलां पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ३६

मारुते पारिजातां चाप्युत्तरे च परावतीम्।
ईशानकोणे सम्पूज्या सुन्दरी प्रियकारिणी॥ ३७

ब्राह्म्यादयस्तु तद्बाह्येऽप्याशापालांस्तु भूपुरे।
वज्रादिकान्यायुधानि देवीमित्थं प्रपूजयेत्॥ ३८

ततो देवीं सावरणां गन्धाद्यैरुपचारकैः।
राजोपचारसहितैः पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ३९

ततः स्तुवीत देवेशीं स्तोत्रैर्नामसहस्रकैः।
सहस्रसंख्यं च जपं नित्यं कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ४०

देवी राधिकाका आवाहन करनेके पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्रका सम्यक् उच्चारण करके ही आसन आदि वस्तुएँ भगवतीके सम्मुख उपस्थित करनी चाहिये। पाद्य-जल उनके चरणोंमें अर्पण करना चाहिये। उनके मस्तकपर अर्घ्य देनेका विधान बताया गया है। मूलमन्त्रसे तीन बार मुखमें आचमन कराना चाहिये। तत्पश्चात् मधुपर्क देकर श्रीराधाके लिये एक पयस्विनी (दूध देनेवाली) गौ प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर उन्हें स्नानगृहमें ले जाकर वहींपर उनकी भावना करे॥ २९—३१॥

तैल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे विधिपूर्वक स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। तदनन्तर नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत करके चन्दन समर्पित करे। इसके बाद तुलसीकी मंजरीसे युक्त अनेक प्रकारकी पुष्पमालाएँ और पारिजात तथा शतदल कमलके पुष्प आदि समर्पित करे॥ ३२-३३॥

तदनन्तर प्रधान देवता उन भगवतीकी पवित्र आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा पूर्व आदि दिशाओंमें भगवती राधिकाके अंगपूजनका विधान है। इसके बाद अष्टदल यन्त्रको आगे करके दक्षिणावर्त क्रमसे पूर्वसे प्रारम्भ करके पूजन करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल यन्त्रके पूर्वदिशावाले दलमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावतीका पूजन करे तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणीकी पूजा करे। यन्त्रपर दलके बाहर ब्राह्मी आदि शक्तियोंकी तथा भूपुरमें दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंका अर्चन करे—इस विधिसे भगवती श्रीराधिकाका पूजन करना चाहिये॥ ३४—३८॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको राजोपचारसहित गन्ध आदि पूजनोपचारोंसे आवरणोंसहित भगवती राधिकाकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद सहस्रनामस्तोत्रसे देवेश्वरी राधाकी स्तुति करनी चाहिये और मन्त्रका एक हजार जप भी नित्य प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३९-४०॥

य एवं पूजयेद्देवीं राधां रासेश्वरीं पराम्।
स भवेद्विष्णुतुल्यस्तु गोलोकं याति सन्ततम्॥ ४१

यः कार्तिक्यां पौर्णमास्यां राधाजन्मोत्सवं बुधः।
कुरुते तस्य सान्निध्यं दद्याद्रासेश्वरी परा॥ ४२

केनचित्कारणेनैव राधा वृन्दावने वने।
वृषभानुसुता जाता गोलोकस्थायिनी सदा॥ ४३

अत्रोक्तानां तु मन्त्राणां वर्णसंख्याविधानतः।
पुरश्चरणकर्मोक्तं दशांशं होममाचरेत्॥ ४४

तिलैस्त्रिस्वादुसंयुक्तैर्जुहुयाद्भक्तिभावतः ।

नारद उवाच

स्तोत्रं वद मुने सम्यग्येन देवी प्रसीदति॥ ४५

श्रीनारायण उवाच

नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि।
रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥ ४६

नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे।
ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे ॥ ४७

नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शङ्करि।
गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥ ४८

नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि।
नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥ ४९

मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्।
संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु॥ ५०

इदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेद्राधां स्मरन्नरः।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचिच्च भविष्यति॥ ५१

देहान्ते च वसेन्नित्यं गोलोके रासमण्डले।
इदं रहस्यं परमं न चाख्येयं तु कस्यचित्॥ ५२

जो मनुष्य इस विधिसे रासेश्वरी परात्परा राधिकाकी पूजा करता है, वह विष्णुतुल्य हो जाता है और गोलोकमें जाकर सदा वास करता है॥ ४१॥

जो बुद्धिमान् पुरुष कार्तिकपूर्णिमा तिथिको भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी परमा श्रीराधिका अपना सान्निध्य प्रदान कर देती हैं॥ ४२॥

गोलोकमें सदा निवास करनेवाली भगवती श्रीराधा किसी कारणसे ही वृन्दावनमें वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुईं॥ ४३॥

यहाँ कहे गये मन्त्रोंकी वर्णसंख्याके अनुसार पुरश्चरण-क्रिया बतायी गयी है। इसमें जपे गये मन्त्रके दशांशसे हवन करना चाहिये, भक्ति-भावपूर्वक दुग्ध, मधु और घृत—इन तीन मधुर पदार्थोंसे मिश्रित तिलोंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ ४४½॥

नारदजी बोले—हे मुने! अब आप वह स्तोत्र बताइये, जिससे भगवती श्रीराधिका भलीभाँति प्रसन्न हो जाती हैं॥ ४५॥

श्रीनारायण बोले—[स्तोत्र इस प्रकार है—] रासमण्डलमें निवास करनेवाली हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हे रासेश्वरि! आपको नमस्कार है॥ ४६॥ ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके द्वारा वन्दित चरणकमलवाली हे त्रैलोक्यजननि! आपको नमस्कार है। हे करुणार्णवे! आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ ४७॥ हे सरस्वतीरूपे! आपको नमस्कार है। हे सावित्रि! हे शंकरि! हे गंगा-पद्मावतीरूपे! हे षष्ठि! हे मंगलचण्डिके! आपको नमस्कार है॥ ४८॥ हे तुलसीरूपे! आपको नमस्कार है। हे लक्ष्मीस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे दुर्गे! हे भगवति! आपको नमस्कार है। हे सर्वरूपिणि! आपको नमस्कार है॥ ४९॥ हे अम्ब! मूलप्रकृतिस्वरूपिणी तथा करुणासिन्धु आप भगवतीकी हम उपासना करते हैं, संसारसागरसे हमारा उद्धार कीजिये, दया कीजिये॥ ५०॥

जो मनुष्य तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में श्रीराधिकाका स्मरण करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु कभी भी दुर्लभ नहीं रहती। वह देह-त्यागके अनन्तर गोलोकमें रासमण्डलमें निरन्तर निवास करता है। [हे मुने!]

अधुना शृणु विप्रेन्द्र दुर्गादेव्या विधानकम्।
यस्याः स्मरणमात्रेण पलायन्ते महापदः॥ ५३

एनां न भजते यो हि तादृङ्नास्त्येव कुत्रचित्।
सर्वोपास्या सर्वमाता शैवी शक्तिर्महाद्भुता॥ ५४

सर्वबुद्ध्यधिदेवीयमन्तर्यामिस्वरूपिणी ।
दुर्गसङ्कटहन्त्रीति दुर्गेति प्रथिता भुवि॥ ५५

वैष्णवानां च शैवानामुपास्येयं च नित्यशः।
मूलप्रकृतिरूपा सा सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी॥ ५६

तस्या नवाक्षरं मन्त्रं वक्ष्ये मन्त्रोत्तमोत्तमम्।
वाग्भवं शम्भुवनिता कामबीजं ततः परम्॥ ५७

चामुण्डायै पदं पश्चाद्विच्चे इत्यक्षरद्वयम्।
नवाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कल्पपादपः॥ ५८

ब्रह्मविष्णुमहेशाना ऋषयोऽस्य प्रकीर्तिताः।
छन्दांस्युक्तानि सततं गायत्र्युष्णिगनुष्टुभः॥ ५९

महाकाली महालक्ष्मीः सरस्वत्यपि देवताः।
स्याद्रक्तदन्तिकाबीजं दुर्गा च भ्रामरी तथा॥ ६०

नन्दाशाकम्भरीदेव्यौ भीमा च शक्तयः स्मृताः।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोग उदाहृतः॥ ६१

ऋषिच्छन्दो दैवतानि मौलौ वक्त्रे हृदि न्यसेत्।
स्तनयोः शक्तिबीजानि न्यसेत्सर्वार्थसिद्धये॥ ६२

इस परम रहस्यको किसीके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ५१-५२॥

हे विप्रवर! अब आप उन भगवती दुर्गाका पूजा-विधान सुनिये, जिनके स्मरणमात्रसे घोर विपत्तियाँ भाग जाती हैं॥ ५३॥

जो इन भगवती दुर्गाकी उपासना नहीं करता हो, वैसा कोई मनुष्य कहीं नहीं है। ये भगवती सबकी उपास्या, सभी प्राणियोंकी जननी तथा अत्यन्त अद्भुत शैवी शक्ति हैं। ये समस्त प्राणियोंकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा अन्तर्यामीस्वरूपिणी हैं। ये घोर संकटसे रक्षा करती हैं, अतः जगत्‌में 'दुर्गा' नामसे विख्यात हैं॥ ५४-५५॥

सभी वैष्णवों तथा शैवोंकी ये सदा उपास्य हैं। मूल प्रकृतिरूपिणी हैं और जगत्‌का सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली हैं॥ ५६॥

[हे नारद!] अब मैं उन भगवती दुर्गाके उत्तमोत्तम नवाक्षर मन्त्रका वर्णन करूँगा। सरस्वतीबीज (ऐं), भुवनेश्वरीबीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं)— इन तीनोंका आदिमें क्रमशः प्रयोग करनेके बाद '**चामुण्डायै**'—इस पदको लगानेके अनन्तर '**विच्चे**' इन दो अक्षरोंको जोड़ देनेपर बना हुआ '**ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे**'—यह नवाक्षर मन्त्र कहा गया है, जो जप करनेवाले मनुष्यके लिये कल्पवृक्षके समान है॥ ५७-५८॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप्—ये तीनों इस मन्त्रके छन्द कहे गये हैं। महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इस मन्त्रकी देवता हैं। रक्तदन्तिका, दुर्गा तथा भ्रामरी—इस मन्त्रके बीज हैं। नन्दा, शाकम्भरी और भीमा—ये देवियाँ इस मन्त्रकी शक्तियाँ कही गयी हैं॥ ५९-६०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है। ऋषि, छन्द और देवताका क्रमशः मस्तकपर, मुखमें और हृदयमें न्यास करना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिके लिये दोनों स्तनोंमें शक्तिबीजोंका न्यास करना चाहिये॥ ६१-६२॥

बीजत्रयैश्चतुर्भिश्च द्वाभ्यां सर्वेण चैव हि।
षडङ्गानि मनोः कुर्याज्जातियुक्तानि देशिकः॥ ६३

शिखायां लोचनद्वन्द्वे श्रुतिनासाननेषु च।
गुदे न्यसेन्मन्त्रवर्णान्सर्वेण व्यापकं चरेत्॥ ६४

खड्गचक्रगदाबाणचापानि परिघं तथा।
शूलं भुशुण्डीं च शिरः शङ्खं सन्दधतीं करैः॥ ६५

महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम्।
नीलाञ्जनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे॥ ६६

मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः।
एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम्॥ ६७

अक्षमालां च परशुं गदेषुकुलिशानि च।
पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दण्डं शक्तिमसिं तथा॥ ६८

चर्माम्बुजं तथा घण्टां सुरापात्रं च शूलकम्।
पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम्॥ ६९

रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम्।
महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम्॥ ७०

घण्टाशूले हलं शङ्खं मुसलं च सुदर्शनम्।
धनुर्बाणान् हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम्॥ ७१

शुम्भादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम्।
महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानन्दविग्रहाम्॥ ७२

यन्त्रमस्याः शृणु प्राज्ञ त्र्यस्रं षट्कोणसंयुतम्।
ततोऽष्टदलपद्मं च चतुर्विंशतिपत्रकम्॥ ७३

भूगृहेण समायुक्तं यन्त्रमेवं विचिन्तयेत्।
शालग्रामे घटे वापि यन्त्रे वा प्रतिमासु वा॥ ७४

ऐं, ह्रीं, क्लीं—तीन बीजमन्त्रों, चार वर्णोंवाले **चामुण्डायै**, दो वर्णोंवाले **विच्चे**के साथ तथा पूरे मन्त्रके साथ क्रमशः **नमः**, **स्वाहा**, **वषट्**, **हुम्**, **वौषट्** और **फट्**—इन छः जातिसंज्ञक वर्णोंको लगाकर साधकको शिखा, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, मुख और गुदा आदि छः स्थानोंमें न्यास करना चाहिये; साथ ही सम्पूर्ण मन्त्रसे [सिरसे लेकर पैरतक] व्यापक न्यास करना चाहिये॥ ६३-६४॥

[महाकालीका ध्यान—] 'हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, कपाल तथा शंख धारण करनेवाली; नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत; नीलांजनके समान कान्तिवाली; दस चरणों तथा दस मुखोंवाली एवं तीन नेत्रोंवाली भगवती महाकालीकी मैं आराधना करता हूँ, जिनका स्तवन कमलासन ब्रह्माजीने मधु और कैटभका वध करनेके लिये किया था'—इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी भगवती महाकालीका ध्यान करना चाहिये॥ ६५—६७॥

[महालक्ष्मीका ध्यान—] 'जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, कमल, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्र धारण करती हैं; जो अरुण प्रभावाली हैं; रक्त कमलके आसनपर विराजमान हैं तथा मायाबीजस्वरूपिणी हैं'—इस तरहसे महिषासुरमर्दिनी उन महालक्ष्मीका ध्यान करना चाहिये॥ ६८—७०॥

[महासरस्वतीका ध्यान—] 'जो अपने कर-कमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शंख, मुसल, सुदर्शनचक्र, धनुष तथा बाण धारण करती हैं; कुन्दके समान मनोहर कान्तिवाली हैं; शुम्भ आदि दैत्योंका संहार करनेवाली हैं; सच्चिदानन्द-विग्रहसे सम्पन्न हैं तथा वाणीबीजस्वरूपिणी हैं'—उन भगवती महासरस्वतीका ध्यान करना चाहिये॥ ७१-७२॥

हे प्राज्ञ! अब इन भगवतीके यन्त्रके विषयमें सुनिये। तीन अस्रोंवाला तथा छः कोणोंसे युक्त यन्त्र होना चाहिये, उसके चारों ओर अष्टदलकमल हो और कमलमें चौबीस पंखुड़ियाँ विद्यमान हों, वह यन्त्र भूगृहसे सम्पन्न हो—इस प्रकारके यन्त्रके विषयमें चिन्तन करना चाहिये॥ ७३$\frac{१}{२}$॥

एकाग्रचित्त होकर शालग्राम, कलश, यन्त्र, प्रतिमा, बाणलिंग अथवा सूर्यमें भगवतीकी भावना करके उनका

बाणलिङ्गेऽथवा सूर्ये यजेद्देवीमनन्यधीः।
जयादिशक्तिसंयुक्ते पीठे देवीं प्रपूजयेत्॥ ७५

पूर्वकोणे सरस्वत्या सहितं पद्मजं यजेत्।
श्रिया सह हरिं तत्र नैर्ऋते कोणके यजेत्॥ ७६

पार्वत्या सहितं शम्भुं वायुकोणे समर्चयेत्।
देव्या उत्तरतः पूज्यः सिंहो वामे महासुरम्॥ ७७

महिषं पूजयेदन्ते षट्कोणेषु यजेत्क्रमात्।
नन्दजां रक्तदन्तां च तथा शाकम्भरीं शिवाम्॥ ७८

दुर्गां भीमां भ्रामरीं च ततो वसुदलेषु च।
ब्राह्मीं माहेश्वरीं चैव कौमारीं वैष्णवीं तथा॥ ७९

वाराहीं नारसिंहीं च ऐन्द्रीं चामुण्डकां तथा।
पूजयेच्च ततः पश्चात्तत्त्वपत्रेषु पूर्वतः॥ ८०

विष्णुमायां चेतनां च बुद्धिं निद्रां क्षुधां तथा।
छायां शक्तिं परां तृष्णां शान्तिं जातिं च लज्जया॥ ८१

क्षान्तिं श्रद्धां कीर्तिलक्ष्म्यौ धृतिं वृत्तिं श्रुतिं स्मृतिम्।
दयां तुष्टिं ततः पुष्टिं मातृभ्रान्ती इति क्रमात्॥ ८२

ततो भूपुरकोणेषु गणेशं क्षेत्रपालकम्।
वटुकं योगिनीश्चापि पूजयेन्मतिमान्नरः॥ ८३

इन्द्राद्यानपि तद्बाह्ये वज्राद्यायुधसंयुतान्।
पूजयेदनया रीत्या देवीं सावरणां ततः॥ ८४

राजोपचारान्विविधान्दद्यादम्बाप्रतुष्टये ।
ततो जपेन्नवार्णं च मन्त्रं मन्त्रार्थपूर्वकम्॥ ८५

ततः सप्तशतीस्तोत्रं देव्या अग्रे तु सम्पठेत्।
नानेन सदृशं स्तोत्रं विद्यते भुवनत्रये॥ ८६

ततश्चानेन देवेशीं तोषयेत् प्रत्यहं नरः।
धर्मार्थकाममोक्षाणामालयं जायते नरः॥ ८७

इति ते कथितं विप्र श्रीदुर्गाया विधानकम्।
कृतार्थता येन भवेत्तदेतत्कथितं तव॥ ८८

सर्वे देवा हरिब्रह्मप्रमुखा मनवस्तथा।
मुनयो ज्ञाननिष्ठाश्च योगिनश्चाश्रमास्तथा॥ ८९

यजन करना चाहिये। जया आदि शक्तियोंसे सम्पन्न पीठपर देवीकी विधिवत् पूजा करे॥ ७४-७५॥

यन्त्रके पूर्वकोणमें सरस्वतीसहित ब्रह्माकी पूजा करे, नैर्ऋत्यकोणमें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा करे तथा वायव्यकोणमें पार्वतीसहित भगवान् शिवकी पूजा करे। देवीके उत्तरमें सिंहकी तथा बायीं ओर महिषासुरकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद छः कोणोंमें क्रमशः भगवती नन्दजा, रक्तदन्ता, शाकम्भरी, कल्याणकारिणी दुर्गा, भीमा तथा भ्रामरीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलोंमें ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री और चामुण्डाकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् चौबीस पंखुड़ियोंमें पूर्वके क्रमसे विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, पराशक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, माता और भ्रान्ति—इन देवियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ७६—८२॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भूपुर-कोणोंमें गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनियोंकी पूजा करे। दलके बाहर वज्र आदि आयुधोंसे युक्त इन्द्र आदि देवताओंकी भी पूजा करे। इसी रीतिसे आवरणसहित भगवती दुर्गाकी पूजा करे। भगवतीकी प्रसन्नताके लिये विविध प्रकारके राजसी पूजनोपचार उन्हें अर्पण करने चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रार्थपर ध्यान रखते हुए नवार्ण मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ८३—८५॥

तदनन्तर भगवती दुर्गाके सामने सप्तशतीस्तोत्रका पाठ करना चाहिये। तीनों लोकोंमें इस स्तोत्रके सदृश दूसरा कोई भी स्तोत्र नहीं है, इसलिये मनुष्यको इस स्तोत्रके द्वारा प्रतिदिन देवेश्वरी दुर्गाको प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका आलय बन जाता है॥ ८६-८७॥

हे विप्र! इस प्रकार मैंने आपको भगवती दुर्गाके पूजनका विधान बता दिया। इसके द्वारा सबकी कृतार्थता सम्पन्न हो सके, इसीलिये मैंने आपसे इसका वर्णन किया है॥ ८८॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी प्रमुख देवतागण, सभी मनुगण, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगिजन, आश्रमवासी तथा लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन भगवती शिवाका

लक्ष्म्यादयस्तथा देव्यः सर्वे ध्यायन्ति तां शिवाम्।
तदैव जन्मसाफल्यं दुर्गास्मरणमस्ति चेत्॥ ९०

चतुर्दशापि मनवो ध्यात्वा चरणपङ्कजम्।
मनुत्वं प्राप्तवन्तश्च देवाः स्वं स्वं पदं तथा॥ ९१

तदेतत्सर्वमाख्यातं रहस्यातिरहस्यकम्।
प्रकृतीनां पञ्चकस्य तदंशानां च वर्णनम्॥ ९२

श्रुत्वैतन्मनुजो नित्यं पुरुषार्थचतुष्टयम्।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं मयोदितम्॥ ९३

अपुत्रो लभते पुत्रं विद्यार्थी प्राप्नुयाच्च ताम्।
यं यं कामं स्मरेद्वापि तं तं श्रुत्वा समाप्नुयात्॥ ९४

नवरात्रे पठेदेतद्देव्यग्रे तु समाहितः।
परितुष्टा जगद्धात्री भवत्येव हि निश्चितम्॥ ९५

नित्यमेकैकमध्यायं पठेद्यः प्रत्यहं नरः।
तस्य वश्या भवेद्देवी देवीप्रियकरो हि सः॥ ९६

शकुनांश्च परीक्षेत नित्यमस्मिन्यथाविधि।
कुमारीदिव्यहस्तेन यद्वा बटुकराम्बुजात्॥ ९७

मनोरथं तु सङ्कल्प्य पुस्तकं पूजयेत्ततः।
देवीं च जगदीशानीं प्रणमेच्च पुनः पुनः॥ ९८

सुस्नातां कन्यकां तत्रानीयाभ्यर्च्य यथाविधि।
शलाकां रोपयेन्मध्ये तथा स्वर्णेन निर्मिताम्॥ ९९

शुभं वाप्यशुभं तत्र यदायाति च तद्भवेत्।
उदासीनेऽप्युदासीनं कार्यं भवति निश्चितम्॥ १००

ध्यान करते हैं। जन्मकी सफलता तभी समझी जाती है, जब श्रीदुर्गाका स्मरण हो जाय॥ ८९-९०॥

भगवती दुर्गाके चरणकमलका ध्यान करके ही चौदहों मनुओंने मनुपद तथा देवतागणोंने अपना-अपना स्थान प्राप्त किया है॥ ९१॥

इस प्रकार मैंने रहस्योंका भी अति रहस्यस्वरूप यह सारा आख्यान कह दिया। इसमें भगवती प्रकृतिके पाँच मुख्य स्वरूपों तथा उनके अंशोंका वर्णन है॥ ९२॥

इसका नित्य श्रवण करनेसे मनुष्य चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। यह सब मैंने सच-सच कहा है॥ ९३॥

इस रहस्यके प्रभावसे पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र तथा विद्याभिलाषी मनुष्य विद्या प्राप्त कर लेता है। इसका श्रवण करके मनुष्य जिस-जिस मनोरथकी पूर्णताकी कामना करता है, उस-उसको प्राप्त कर लेता है॥ ९४॥

नवरात्रमें एकाग्रचित्त होकर भगवती दुर्गाके सम्मुख इसका पाठ करना चाहिये। जगद्धात्री भगवती दुर्गा इससे निश्चय ही प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९५॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस नवम स्कन्धके एक अध्यायका पाठ करता है, भगवती दुर्गा उसके अधीन हो जाती हैं और वह मनुष्य देवीका प्रियकर हो जाता है॥ ९६॥

इस विषयमें किसी कुमारीके दिव्य हाथ अथवा बालकके करकमलसे यथाविधि शकुनकी परीक्षा करनी चाहिये। अपने मनोरथका संकल्प करके पुस्तककी पूजा करे, तत्पश्चात् जगदीश्वरी भगवती दुर्गाको बार-बार प्रणाम करे। भलीभाँति स्नान की हुई कन्याको वहाँ विराजमान करके [देवीके रूपमें] उसकी विधिपूर्वक पूजा करनेके अनन्तर स्वर्णनिर्मित शलाका उस कन्यासे स्कन्धके मध्यमें रखवाना चाहिये। शलाका रखनेपर शुभ अथवा अशुभ जो भी प्रसंग आता है, वैसा ही फल होता है; अथवा उदासीन प्रसंग आनेपर कार्य भी उदासीन ही होता है—यह निश्चित है॥। ९७—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां नवमस्कन्धे देव्या आवरणपूजाविधिवर्णनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

* * *

॥ नवमः स्कन्धः समाप्तः ॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

दशमः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना

नारद उवाच

नारायण धराधार सर्वपालनकारण।
भवतोदीरितं देवीचरितं पापनाशनम्॥ १

मन्वन्तरेषु सर्वेषु सा देवी यत्स्वरूपिणी।
यदाकारेण कुरुते प्रादुर्भावं महेश्वरी॥ २

तान्नः सर्वान्समाख्याहि देवीमाहात्म्यमिश्रितान्।
यथा च येन येनेह पूजिता संस्तुतापि हि॥ ३

मनोरथान्पूरयति भक्तानां भक्तवत्सला।
तन्नः शुश्रूषमाणानां देवीचरितमुत्तमम्॥ ४

वर्णयस्व कृपासिन्धो येनाप्नोति सुखं महत्।

श्रीनारायण उवाच

आकर्णय महर्षे त्वं चरितं पापनाशनम्॥ ५

भक्तानां भक्तिजननं महासम्पत्तिकारकम्।
जगद्योनिर्महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः॥ ६

आविरासीन्नाभिपद्माद्देवदेवस्य चक्रिणः।
स चतुर्मुख आसाद्य प्रादुर्भावं महामते॥ ७

मनुं स्वायम्भुवं नाम जनयामास मानसात्।
स मानसो मनुः पुत्रो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ८

नारदजी बोले—हे नारायण! हे धराके आधार! हे सर्वपालनकारण! आपने पापोंका नाश करनेवाले देवीचरित्रका वर्णन कर दिया॥ १॥

सभी मन्वन्तरोंमें वे देवी जो-जो स्वरूप धारण करती हैं तथा जिस-जिस स्वरूपसे उन माहेश्वरीका प्रादुर्भाव हुआ है—भगवतीकी महिमासे युक्त उन समस्त प्रसंगोंका अब आप हमसे सम्यक् वर्णन करें॥ २½ ॥

जिस प्रकारसे तथा जिस-जिस मन्त्र अथवा स्तोत्रसे भगवतीका पूजन तथा स्तवन किया गया है और वे भक्तवत्सला देवी भक्तोंका जिस प्रकार मनोरथ पूर्ण करती हैं, सुननेकी अभिलाषावाले हमलोगोंसे आप देवीके उस उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिससे महान् सुख प्राप्त होता है॥ ३-४½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे महर्षे! भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न करनेवाले, महान् सम्पदा प्रदान करनेवाले तथा पापोंका शमन करनेवाले देवी-चरित्रका अब आप श्रवण कीजिये॥ ५½ ॥

सर्वप्रथम जगत्के मूल कारण महान् तेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा चक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत हुए॥ ६½ ॥

हे महामते! विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट होकर उन चतुर्मुख ब्रह्माने स्वायम्भुव नामक मनुको अपने मनसे उत्पन्न किया। इस प्रकार वे मनु परमेष्ठी ब्रह्माके मानस पुत्र कहलाये। पुनः ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको उत्पन्न किया और उन्हें मनुकी पत्नीके

शतरूपां च तत्पत्नीं जज्ञे धर्मस्वरूपिणीम्।
स मनुः क्षीरसिन्धोश्च तीरे परमपावने॥ ९

देवीमाराधयामास महाभाग्यफलप्रदाम्।
मूर्तिं च मृण्मयीं तस्या विधाय पृथिवीपतिः॥ १०

उपासते स्म तां देवीं वाग्भवं स जपन् रहः।
निराहारो जितश्वासो नियमव्रतकर्शितः॥ ११

एकपादेन सन्तिष्ठन् धरायामनिशं स्थिरः।
शतवर्षं जितः कामः क्रोधस्तेन महात्मना॥ १२

भेजे स्थावरतां देव्याश्चरणौ चिन्तयन् हृदि।
तस्य तत्तपसा देवी प्रादुर्भूता जगन्मयी॥ १३

उवाच वचनं दिव्यं वरं वरय भूमिप।
तत आनन्दजनकं श्रुत्वा वाक्यं महीपतिः॥ १४

वरयामास तान् हृत्स्थान् वरानमरदुर्लभान्।

मनुरुवाच

जय देवि विशालाक्षि जय सर्वान्तरस्थिते॥ १५

मान्ये पूज्ये जगद्धात्रि सर्वमङ्गलमङ्गले।
त्वत्कटाक्षावलोकेन पद्मभूः सृजते जगत्॥ १६

वैकुण्ठः पालयत्येव हरः संहरते क्षणात्।
शचीपतिस्त्रिलोक्याश्च शासको भवदाज्ञया॥ १७

प्राणिनः शिक्षयत्येव दण्डेन च परेतराट्।
यादसामधिपः पाशी पालनं मादृशामपि॥ १८

कुरुते स कुबेरोऽपि निधीनां पतिरव्ययः।
हुतभुङ् नैर्ऋतो वायुरीशानः शेष एव च॥ १९

त्वदंशसम्भवा एव त्वच्छक्तिपरिबृंहिताः।
अथापि यदि मे देवि वरो देयोऽस्ति साम्प्रतम्॥ २०

रूपमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे मनु क्षीरसागरके परम पवित्र तटपर महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाली जगदम्बाकी आराधना करने लगे॥ ७—९½॥

वहाँपर देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पृथ्वीपति मनु एकान्तमें उन भगवतीके वाग्भव-मन्त्रका जप करते हुए उनकी उपासनामें तत्पर हो गये॥ १०½॥

नियमों तथा व्रतोंका पालन करते हुए निराहार रहकर श्वासको नियन्त्रित करके वे सौ वर्षोंतक निरन्तर पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहे। महात्मा मनुने काम तथा क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली। अपने हृदयमें भगवतीके चरणोंका चिन्तन करते हुए वे किसी स्थावरकी भाँति हो गये॥ ११-१२½॥

उनकी उस तपस्यासे जगन्मयी भगवती प्रकट हो गयीं और उन्होंने यह दिव्य वचन कहा—'हे भूपाल! तुम वर माँगो'॥ १३½॥

तब देवीका आनन्ददायक वचन सुनकर महाराज मनुने देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ अपने मनोभिलषित उन श्रेष्ठ वरोंकी याचना की॥ १४½॥

मनु बोले—हे देवि! हे विशालनयने! हे समस्त प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाली! आपकी जय हो। हे मान्ये! हे पूज्ये! हे जगद्धात्रि! हे सर्वमंगलमंगले! आपके कटाक्षपातमात्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा रुद्र क्षणभरमें संहार करते हैं, शचीपति इन्द्र आपकी ही आज्ञासे तीनों लोकोंपर शासन करते हैं॥ १५—१७॥

आपके ही आदेशपर यमराज दण्डके द्वारा प्राणियोंको नियन्त्रित करते हैं तथा जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव हम-जैसे प्राणियोंका पालन करते हैं। आपकी ही कृपासे कुबेर निधियोंके अविनाशी अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान और शेषनाग आपके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं और आपकी ही शक्तिसे परिवर्धित हैं॥ १८-१९½॥

फिर भी हे देवि! यदि इस समय आप मुझे वर देना चाहती हैं तो हे शिवे! सृष्टिकार्यमें आनेवाले मेरे सभी विघ्न क्षीण होकर नष्ट हो जायँ। जो भी

तदा प्रह्वाः सर्गकार्ये विघ्ना नश्यन्तु मे शिवे।
वाग्भवस्यापि मन्त्रस्य ये केचिदुपसेविनः॥ २१
तेषां सिद्धिः सत्वरापि कार्याणां जायतामपि।
ये संवादमिमं देवि पठन्ति श्रावयन्ति च॥ २२
तेषां लोके भुक्तिमुक्ती सुलभे भवतां शिवे।
जातिस्मरत्वं भवतु वक्तृत्वं सौष्ठवं तथा॥ २३
ज्ञानसिद्धिः कर्ममार्गसंसिद्धिरपि चास्तु हि।
पुत्रपौत्रसमृद्धिश्च जायेदित्येव मे वचः॥ २४

लोग वाग्भव बीजमन्त्रके उपासक हों, उनके कार्योंकी सिद्धि शीघ्र ही हो जाय। हे देवि! जो लोग इस संवादको पढ़ें और दूसरोंको सुनायें, उनके लिये इस लोकमें भोग तथा मोक्ष सुलभ हो जायँ। हे शिवे! उन्हें पूर्वजन्मोंकी स्मृति बनी रहे और वे वक्तृता तथा वाणी-सौष्ठवसे सम्पन्न रहें। उन्हें ज्ञानकी सिद्धि हो तथा कर्मयोगकी भी सिद्धि प्राप्त हो, साथ ही उनके यहाँ पुत्र-पौत्रकी समृद्धि निरन्तर होती रहे—यही मेरा आपसे निवेदन है॥ २०—२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
मनुकृतं देवीस्तवनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

* * *

अथ द्वितीयोऽध्यायः

देवीद्वारा मनुको वरदान, नारदजीका विन्ध्यपर्वतसे सुमेरुपर्वतकी श्रेष्ठता कहना

श्रीदेव्युवाच

भूमिपाल महाबाहो सर्वमेतद्भविष्यति।
यत्त्वया प्रार्थितं तत्ते ददामि मनुजाधिप॥ १

अहं प्रसन्ना दैत्येन्द्रनाशनामोघविक्रमा।
वाग्भवस्य जपेनैव तपसा ते सुनिश्चितम्॥ २

राज्यं निष्कण्टकं तेऽस्तु पुत्रा वंशकरा अपि।
मयि भक्तिर्दृढा वत्स मोक्षान्ते सत्पदे भवेत्॥ ३

एवं वरान्महादेवी तस्मै दत्त्वा महात्मने।
पश्यतस्तु मनोरेव जगाम विन्ध्यपर्वतम्॥ ४

योऽसौ विन्ध्याचलो रुद्धः कुम्भोद्भवमहर्षिणा।
भानुमार्गावरोधार्थं प्रवृत्तो गगनं स्पृशन्॥ ५

सा विन्ध्यवासिनी विष्णोरनुजा वरदेश्वरी।
बभूव पूज्या लोकानां सर्वेषां मुनिसत्तम॥ ६

ऋषय ऊचुः

कोऽसौ विन्ध्याचलः सूत किमर्थं गगनं स्पृशन्।
भानुमार्गावरोधं च किमर्थं कृतवानसौ॥ ७

श्रीदेवी बोलीं—हे भूमिपाल! हे महाबाहो! हे मनुजाधिप! यह सब पूर्ण होगा। तुमने जो-जो माँगा है, वह मैं तुम्हें दे रही हूँ॥ १॥

बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करनेवाली तथा अमोघ पराक्रमवाली मैं तुम्हारे द्वारा किये गये वाग्भव-मन्त्रके जप तथा तपसे निश्चितरूपसे प्रसन्न हूँ। हे वत्स! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा और तुम्हारे पुत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले होंगे; तुम मेरे प्रति दृढ़ भक्तिवाले रहोगे और अन्तमें परमपद प्राप्त करोगे॥ २-३॥

इस प्रकार उन महात्मा मनुको वर देकर महादेवी जगदम्बा उनके देखते-देखते विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं॥ ४॥

यह वही विन्ध्याचल है, जो सूर्यके मार्गका अवरोध करनेके लिये आकाशको छूता हुआ ऊपरकी ओर बढ़नेके लिये प्रवृत्त था और महर्षि अगस्त्यने उसे रोक दिया था॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वरदायिनी तथा परमेश्वरी वे विष्णुभगिनी विन्ध्यवासिनी सभी लोगोंके लिये पूज्य हो गयीं॥ ६॥

ऋषि बोले—हे सूतजी! वह विन्ध्याचल कौन है, आकाशको छूता हुआ वह क्यों बढ़ा, उसने सूर्यके मार्गका अवरोध क्यों किया और मैत्रावरुणि अगस्त्यजीने

कथं च मैत्रावरुणिः पर्वतं तं महोन्नतम्।
प्रकृतिस्थं चकारेति सर्वं विस्तरतो वद॥ ८

न हि तृप्यामहे साधो त्वदास्यगलितामृतम्।
देव्याश्चरित्ररूपाख्यं पीत्वा तृष्णा प्रवर्धते॥ ९

सूत उवाच

आसीद्विन्ध्याचलो नाम मान्यः सर्वधराभृताम्।
महावनसमूहाढ्यो महापादपसंवृतः॥ १०

सुपुष्पितैरनेकैश्च लतागुल्मैस्तु संवृतः।
मृगा वराहा महिषा व्याघ्राः शार्दूलका अपि॥ ११

वानराः शशका ऋक्षाः शृगालाश्च समन्ततः।
विचरन्ति सदा हृष्टा पुष्टा एव महोद्यमाः॥ १२

नदीनदजलाक्रान्तो देवगन्धर्वकिन्नरैः।
अप्सरोभिः किम्पुरुषैः सर्वकामफलद्रुमैः॥ १३

एतादृशे विन्ध्यनगे कदाचित्पर्यटन् महीम्।
देवर्षिः परमप्रीतो जगाम स्वेच्छया मुनिः॥ १४

तं दृष्ट्वा स नगो मङ्क्षु तूर्णमुत्थाय सम्भ्रमात्।
पाद्यमर्घ्यं तथा दत्त्वा वरासनमथार्पयत्॥ १५

सुखोपविष्टं देवर्षिं प्रसन्नं नग ऊचिवान्।

विन्ध्य उवाच

देवर्षे कथ्यतां जात आगमः कुत उत्तमः॥ १६

तवागमनतो जातमनर्घ्यं मम मन्दिरम्।
तव चङ्क्रमणं देवाभयार्थं हि यथा रवेः॥ १७

अपूर्वं यन्मनोवृत्तं तद् ब्रूहि मम नारद।

नारद उवाच

ममागमनमिन्द्रारे जातं स्वर्णगिरेरथ॥ १८

तत्र दृष्टा मया लोकाः शक्राग्नियमपाशिनाम्।
सर्वेषां लोकपालानां भवनानि समन्ततः॥ १९

मया दृष्टानि विन्ध्याग नानाभोगप्रदानि च।

उस महान् ऊँचे पर्वतको बढ़नेसे क्यों रोक दिया? यह सब आप विस्तारसे मुझे बताइये॥ ७-८॥

हे साधो! आपके मुखसे निःसृत देवीचरित्ररूपी अमृतका पान करते हुए हम सब तृप्त नहीं हो रहे हैं, अपितु तृष्णा बढ़ती ही जा रही है॥ ९॥

सूतजी बोले—सम्पूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल नामक एक पर्वत था। वह बड़े-बड़े वनोंसे सम्पन्न तथा अति विशाल वृक्षोंसे घिरा था। वह अनेक प्रकारके पुष्पोंसे लदी हुई लताओं तथा वल्लरियोंसे आच्छादित था। मृग, वराह, महिष, बाघ, सिंह, वानर, खरगोश, भालू, सियार आदि हृष्ट-पुष्ट तथा अति शक्ति-शाली वन्य जन्तु उसमें चारों ओर सदा विचरण करते रहते थे। वह नदियों तथा नदोंके जलसे व्याप्त था एवं देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, किम्पुरुषों तथा सभी प्रकारके मनोवांछित फल देनेवाले वृक्षोंसे शोभायमान था॥ १०—१३॥

किसी समय देवर्षि नारद परम प्रसन्न होकर इच्छापूर्वक पृथ्वीलोकमें विचरण करते हुए इस प्रकारके विन्ध्यपर्वतपर पहुँच गये॥ १४॥

उन्हें देखकर विन्ध्याचलने शीघ्र ही वेगपूर्वक उठ करके आदरपूर्वक उन्हें पाद्य-अर्घ्य प्रदानकर उत्तम आसन अर्पित किया। तदनन्तर सुखपूर्वक आसनपर विराजमान उन प्रसन्न देवर्षि नारदसे विन्ध्यपर्वत कहने लगा॥ १५१/२॥

विन्ध्य बोला—हे देवर्षे! कहिये, आपका यह शुभागमन कहाँसे हुआ है?॥ १६॥

आपके आगमनसे मेरा घर परम पावन हो गया। जैसे सूर्य संसारके कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, उसी प्रकार आप भी देवताओंको अभय प्रदान करनेहेतु भ्रमण करते रहते हैं। हे नारदजी! आपके मनमें जो भी विशेष बात हो, उसे मुझे बताइये॥ १७१/२॥

नारदजी बोले—हे इन्द्रशत्रु! मेरा आगमन सुमेरुगिरिसे हुआ है। वहाँ मैंने इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरुणके लोकोंको देखा है। हे विन्ध्यपर्वत! वहाँपर मुझे समस्त लोकपालोंके नानाविध भोग प्रदान करनेवाले भवन चारों ओर दिखायी पड़े॥ १८-१९१/२॥

इति चोक्त्वा ब्रह्मयोनिः पुनरुच्छ्‌वासमाविशत्॥ २०

उच्छ्‌वसन्तं मुनिं दृष्ट्वा पुनः पप्रच्छ शैलराट्।
उच्छ्‌वासकारणं किं तद् ब्रूहि देवऋषे मम॥ २१

इत्याकर्ण्य नगस्योक्तं देवर्षिरमितद्युतिः।
अब्रवीच्छ्रूयतां वत्स ममोच्छ्‌वासस्य कारणम्॥ २२

गौरीगुरुस्तु हिमवाञ्छिवस्य श्वशुरः किल।
सम्बन्धित्वात्पशुपतेः पूज्य आसीत्क्ष्माभृताम्॥ २३

एवमेव च कैलासः शिवस्यावसथः प्रभुः।
पूज्यः पृथ्वीभृतां जातो लोके पापौघदारणः॥ २४

निषधः पर्वतो नीलो गन्धमादन एव च।
पूज्याः स्वस्थानमासाद्य सर्व एव क्षमाभृतः॥ २५

यं पर्येति च विश्वात्मा सहस्रकिरणः स्वराट्।
सग्रहर्क्षगणोपेतः सोऽयं कनकपर्वतः॥ २६

आत्मानं मनुते श्रेष्ठं वरिष्ठं च धराभृताम्।
सर्वेषामहमेवाग्र्यो नास्ति लोकेषु मत्समः॥ २७

एवं मानाभिमानं तं स्मृत्वोच्छ्‌वासो मयोज्झितः।
अस्तु नैतावता कृत्यं तपोबलवतां नग।
प्रसङ्गतो मयोक्तं ते गमिष्यामि निजं गृहम्॥ २८

ऐसा कहकर ब्रह्माजीके पुत्र नारदने दीर्घ श्वास ली। नारदमुनिको इस प्रकार श्वास लेते हुए देखकर पर्वतराज विन्ध्यने उनसे पुनः पूछा—हे देवर्षे! इस उच्छ्‌वासका क्या कारण है, उसे मुझे बताइये॥ २०-२१॥

विन्ध्यपर्वतका यह कथन सुनकर अपरिमित तेजवाले देवर्षि नारद बोले—हे वत्स! मेरे उच्छ्‌वासका कारण सुनो॥ २२॥

पार्वतीके पिता हिमालय शिवजीके श्वसुर हैं। इस प्रकार शंकरजीसे सम्बन्ध होनेके कारण वे सभी पर्वतोंके पूज्य हो गये॥ २३॥

इसी प्रकार शिवजीका निवास-स्थल कैलास भी सभी पर्वतोंका पूज्य स्वामी बन गया और लोकमें पापसमूहका विनाशक हो गया॥ २४॥

इसी तरह निषध, नील तथा गन्धमादन आदि सभी पर्वत भी अपने-अपने स्थानपर स्थित होकर पूज्य पर्वतके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ २५॥

यह वही सुमेरुगिरि है, जिसकी परिक्रमा समस्त विश्वकी आत्मा, स्वर्गके राजा तथा हजारों किरणें धारण करनेवाले सूर्य समस्त ग्रह-नक्षत्रोंके समूहसहित करते हैं॥ २६॥

वह अपनेको पर्वतोंमें श्रेष्ठ तथा महान् मानता है। वह समझता है कि मैं ही सभी पर्वतोंमें अग्रणी हूँ तथा मेरे समान लोकोंमें कोई नहीं है॥ २७॥

इस प्रकारके मान-अभिमानवाले उस पर्वतका स्मरण करके मैंने यह उच्छ्‌वास लिया है। हे पर्वत! जो भी हो, तपरूपी बलवाले हम सबको इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो प्रसंगवश आपसे ऐसा कह दिया; अब मैं अपने घरके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ॥ २८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे विन्ध्योपाख्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

* * *

अथ तृतीयोऽध्यायः

विन्ध्यपर्वतका आकाशतक बढ़कर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध कर लेना

सूत उवाच

एवं समुपदिश्यायं देवर्षिः परमः स्वराट्।
जगाम ब्रह्मणो लोकं स्वैरचारी महामुनिः॥ १

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस प्रकार विन्ध्यगिरिसे वार्तालाप करके परम स्वतन्त्र तथा स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले महामुनि देवर्षि नारद ब्रह्मलोक चले गये॥ १॥

गते मुनिवरे विन्ध्यश्चिन्तां लेभेऽनपायिनीम्।
नैव शान्तिं स लेभे च सदान्तःकृतशोचनः॥ २

कथं किं त्वत्र मे कार्यं कथं मेरुं जयाम्यहम्।
नैव शान्तिं लभे नापि स्वास्थ्यं मे मानसे भवेत्॥ ३

(धिगुत्साहं च मानं च धिङ् मे कीर्तिं च धिक्कुलम्)
धिग्बलं मे पौरुषं धिक् स्मृतं पूर्वैर्महात्मभिः।
एवं चिन्तयमानस्य विन्ध्यस्य मनसि स्फुटम्॥ ४

प्रादुर्भूता मतिः कार्ये कर्तव्ये दोषकारिणी।
मेरुप्रदक्षिणां कुर्वन्नित्यमेव दिवाकरः॥ ५

सग्रहर्क्षगणोपेतः सदा दृप्यत्ययं नगः।
तस्य मार्गस्य संरोधं करिष्यामि निजैः करैः॥ ६

तदा निरुद्धो द्युमणिः परिक्रामेत्कथं नगम्।
एवं मार्गे निरुद्धे तु मया दिनकरस्य च॥ ७

भग्नदर्पो दिव्यनगो भविष्यति विनिश्चयम्।
एवं निश्चित्य विन्ध्याद्रिः खं स्पृशन् ववृधे भुजैः॥ ८

महोन्नतैः शृङ्गवरैः सर्वं व्याप्य व्यवस्थितः।
कदोदेष्यति भास्वांस्तं रोधयिष्याम्यहं कदा॥ ९

एवं सञ्चिन्तयानस्य सा व्यतीयाय शर्वरी।
प्रभातं विमलं जज्ञे दिशो वितिमिराः करैः॥ १०

कुर्वन्स निर्गतो भानुरुदयायोदये गिरौ।
प्रकाशते स्म विमलं नभो भानुकरैः शुभैः॥ ११

विकासं नलिनी भेजे मीलनं च कुमुद्वती।
स्वानि कार्याणि सर्वे च लोकाः समुपतस्थिरे॥ १२

हव्यं कव्यं भूतबलिं देवानां च प्रवर्धयन्।
प्राह्णापराह्णमध्याह्नविभागेन त्विषां पतिः॥ १३

मुनिवर नारदके चले जानेपर विन्ध्य निरन्तर चिन्तित रहने लगा। उसे शान्ति नहीं मिल पाती थी। वह अपने अन्तर्मनमें सदा यही सोचता कि अब मैं कौन-सा कार्य करूँ तथा किस प्रकारसे सुमेरुगिरिको जीत लूँ? इस समय मुझे न तो शान्ति मिल पा रही है और न तो मेरा मन ही सुस्थिर हो पा रहा है। (मेरे उत्साह, सम्मान, यश तथा कुलको धिक्कार है) मेरे बल तथा पुरुषार्थको धिक्कार है। पूर्वकालीन महात्माओंने भी ऐसा ही कहा है॥ २-३½ ॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए विन्ध्यगिरिके मनमें कर्तव्यके निर्णयमें दोष उत्पन्न कर देनेवाली बुद्धिका उदय हो गया॥ ४½ ॥

सूर्य सभी ग्रह-नक्षत्रसमूहोंसे युक्त होकर सुमेरु-पर्वतकी सदा परिक्रमा करते रहते हैं, जिससे यह सुमेरु-गिरि अभिमानमें चूर रहता है। मैं अपने शिखरोंसे उस सूर्यका मार्ग रोक दूँगा। तब इस प्रकार अवरुद्ध हुए ये सूर्य सुमेरुगिरिका परिक्रमण कैसे कर सकेंगे?॥ ५-६½ ॥

इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यका मार्गावरोध कर दिये जानेसे उस दिव्य सुमेरुगिरिका अभिमान निश्चितरूपसे खण्डित हो जायगा॥ ७½ ॥

ऐसा निश्चय करके विन्ध्यगिरि अपने शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ बढ़ने लगा और अत्युच्च श्रेष्ठ शिखरोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके व्यवस्थित हो गया। वह प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्य उदित हों और कब मैं उनका मार्ग अवरुद्ध करूँ॥ ८-९ ॥

इस प्रकार उसके सोचते-सोचते वह रात्रि व्यतीत हो गयी और विमल प्रभातका आगमन हो गया। अपनी किरणोंसे दिशाओंको अन्धकाररहित करते हुए भगवान् सूर्य उदयाचलपर उदित होनेके लिये प्रकट होने लगे। सूर्यकी शुभ किरणोंसे आकाश स्वच्छ प्रकाशित होने लगा, कमलिनी खिलने लगी और कुमुदिनी संकुचित होने लगी, सभी प्राणी अपने-अपने कार्योंमें लग गये॥ १०—१२ ॥

इस प्रकार पूर्वाह्ण, अपराह्ण तथा मध्याह्नके विभागसे देवताओंके लिये हव्य, कव्य तथा भूतबलिका

एवं प्राचीं तथाग्नेयीं समाश्वास्य वियोगिनीम्।
ज्वलन्तीं चिरकालीनविरहादिव कामिनीम्॥ १४

भास्करोऽथ कृशानोश्च दिशं नूनं विहाय च।
याम्यां गन्तुं ततस्तूर्णं प्रतस्थे कमलाकरः॥ १५

न शशाकाग्रतो गन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत्।

अनूरुरुवाच

भानो मानोन्नतो विन्ध्यो निरुध्य गगनं स्थितः॥ १६

स्पर्धते मेरुणा प्रेप्सुस्त्वद्दत्तां च प्रदक्षिणाम्।

सूत उवाच

अनूरुवाक्यमाकर्ण्य सविता ह्यास चिन्तयन्॥ १७

अहो गगनमार्गोऽपि रुध्यते चातिविस्मयः।
प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः॥ १८

निरुद्धो नो वाजिमार्गो दैवं हि बलवत्तरम्।
राहुबाहुग्रहव्यग्रो यः क्षणं नावतिष्ठते॥ १९

स चिरं रुद्धमार्गोऽपि किं करोति विधिर्बली।
एवं च मार्गे संरुद्धे लोकाः सर्वे च सेश्वराः॥ २०

नान्वविन्दन्त शरणं कर्तव्यं नान्वपद्यत।
चित्रगुप्तादयः सर्वे कालं जानन्ति सूर्यतः॥ २१

संरुद्धो विन्ध्यगिरिणा अहो दैवविपर्ययः।
यदा निरुद्धः सविता गिरिणा स्पर्धया तदा॥ २२

नष्टः स्वाहास्वधाकारो नष्टप्रायमभूज्जगत्।
एवं च पाश्चिमा लोका दाक्षिणात्यास्तथैव च॥ २३

संवर्धन करते हुए प्रभाके स्वामी सूर्य चिरकालीन विरहाग्निसे सन्तप्त तथा वियोगिनी कामिनीसदृश प्राची तथा आग्नेयी दिशाओंको आश्वासन देकर एवं पुनः अग्नि-दिशाको छोड़कर बड़ी तेजीसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेका प्रयास करने लगे। किंतु जब वे सूर्य आगे नहीं बढ़ सके, तब उनका सारथि अनूरु (अरुण) कहने लगा—॥ १३—१५½ ॥

अनूरु बोला—हे सूर्य! अत्यधिक अभिमानी विन्ध्यगिरि आपका मार्ग रोककर आकाशमें स्थित हो गया है। वह सुमेरुगिरिसे स्पर्धा करता है और आपके द्वारा सुमेरुकी की जानेवाली परिक्रमा प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है॥ १६½ ॥

सूतजी बोले—अरुणका यह वचन सुनकर सूर्य सोचने लगे—अहो! आकाशका भी मार्ग अवरुद्ध हो गया, यह तो महान् आश्चर्य है। प्रायः कुमार्गपर चलनेवाला पराक्रमी व्यक्ति क्या नहीं कर सकता॥ १७-१८॥

दैव बड़ा बलवान् होता है। आज मेरे घोड़ोंका मार्ग रोक दिया गया है। राहुकी भुजाओंमें जकड़े जानेपर जो क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता था, वही मैं चिरकालसे अवरुद्ध मार्गवाला हो गया हूँ। बलवान् विधाता अब न जाने क्या करेगा?॥ १९½ ॥

इस प्रकार सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे समस्त लोक तथा लोकेश्वर कहीं भी शरण नहीं प्राप्त कर सके और वे अपने-अपने कार्य सम्पादित करनेमें अक्षम हो गये॥ २०½ ॥

चित्रगुप्त आदि सभी लोग जिन सूर्यसे समयका ज्ञान करते थे, वे ही सूर्य आज विन्ध्यगिरिके द्वारा अवरुद्ध कर दिये गये। अहो! दैव भी कितना विपरीत हो जाता है॥ २१½ ॥

जब स्पर्धाके कारण विन्ध्यने सूर्यको रोक दिया, तब स्वाहा-स्वधाकार नष्ट हो गये और सम्पूर्ण जगत् भी नष्टप्राय हो गया॥ २२½ ॥

पश्चिम तथा दक्षिणके प्राणी रात्रिके प्रभावमें थे और निद्रासे नेत्र बन्द किये हुए थे, साथ ही पूर्व तथा उत्तरके प्राणी सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीसे दग्ध हो रहे थे।

निद्रामीलितचक्षुष्का निशामेव प्रपेदिरे।
प्राञ्चस्तथोत्तराहाश्च तीक्ष्णतापप्रतापिताः॥ २४
मृता नष्टाश्च भग्नाश्च विनाशमभजन् प्रजाः।
हाहाभूतं जगत्सर्वं स्वधाकव्यविवर्जितम्।
देवाः सेन्द्राः समुद्विग्नाः किं कुर्म इतिवादिनः॥ २५

प्रजाओंका विनाश होने लगा। बहुत-से प्राणी मर गये, कितने ही नष्ट हो गये, कितने भग्न हो गये, सम्पूर्ण जगत्‌में हाहाकार मच गया और श्राद्ध-तर्पणसे जगत् रहित हो गया। इन्द्रसहित सभी देवता व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे कि अब हमलोग क्या करें?॥ २३—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये विन्ध्योपाख्यानवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

देवताओंका भगवान् शंकरसे विन्ध्यपर्वतकी वृद्धि रोकनेकी प्रार्थना करना और शिवजीका उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेजना

सूत उवाच

ततः सर्वे सुरगणा महेन्द्रप्रमुखास्तदा।
पद्मयोनिं पुरस्कृत्य रुद्रं शरणमन्वयुः॥ १

उपतस्थुः प्रणतिभिः स्तोत्रैश्चारुविभूतिभिः।
देवदेवं गिरिशयं शशिलोलितशेखरम्॥ २

देवा ऊचुः

जय देव गणाध्यक्ष उमालालितपङ्कज।
अष्टसिद्धिविभूतीनां दात्रे भक्तजनाय ते॥ ३

महामायाविलसितस्थानाय परमात्मने।
वृषाङ्कायामरेशाय कैलासस्थितिशालिने॥ ४

अहिर्बुध्न्याय मान्याय मनवे मानदायिने।
अजाय बहुरूपाय स्वात्मारामाय शम्भवे॥ ५

गणनाथाय देवाय गिरिशाय नमोऽस्तु ते।
महाविभूतिदात्रे ते महाविष्णुस्तुताय च॥ ६

विष्णुहृत्कञ्जवासाय महायोगरताय च।
योगगम्याय योगाय योगिनां पतये नमः॥ ७

योगीशाय नमस्तुभ्यं योगानां फलदायिने।
दीनदानपरायापि दयासागरमूर्तये॥ ८

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी प्रधान देवगण ब्रह्माजीको आगे करके भगवान् शिवकी शरणमें गये॥ १॥

गिरिपर शयन करनेवाले तथा चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाले देवदेव शिवको प्रणाम करके वे देवता उनके सम्मुख खड़े हो गये और सुन्दर महिमासे युक्त स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे॥ २॥

देवता बोले—हे देव! हे गणाध्यक्ष! हे पार्वतीद्वारा पूजित चरणकमलवाले! हे भक्तजनको आठों सिद्धियोंकी विभूतियाँ प्रदान करनेवाले आपकी जय हो॥ ३॥

महामायारूपी स्थलीमें विलास करनेवाले, परमात्मा, वृषांक, अमरेश, कैलासवासी, अहिर्बुध्न्य, मान्य, मनु, मान प्रदान करनेवाले, अज, अनेक रूपोंवाले, अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, शम्भु, गणोंके नाथ, गिरिपर शयन करनेवाले, महान् ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा महाविष्णुके द्वारा स्तुत किये जानेवाले आप महादेवको नमस्कार है॥ ४—६॥

विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाले, महायोगमें रत रहनेवाले, योगसे प्राप्त होनेवाले, योगस्वरूप तथा योगियोंके अधीश्वरको नमस्कार है॥ ७॥

योगीश, योगोंके फलदाता, दीनोंको दान देनेमें तत्पर तथा दयासागरकी साक्षात् मूर्ति आपको नमस्कार है॥ ८॥

आर्तिप्रशमनायोग्रवीर्याय गुणमूर्तये।
वृषध्वजाय कालाय कालकालाय ते नमः॥ ९

सूत उवाच

एवं स्तुतः स देवेशो यज्ञभुग्भिर्वृषध्वजः।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रहसन्विबुधर्षभान्॥ १०

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽहं दिविषदः स्तोत्रेणोत्तमपूरुषाः।
मनोरथं पूरयामि सर्वेषां देवतर्षभाः॥ ११

देवा ऊचुः

सर्वदेवेश गिरिश शशिमौलिविराजित।
आर्तानां शङ्करस्त्वं च शं विधेहि महाबल॥ १२

पर्वतो विन्ध्यनामास्ति मेरुद्वेष्टा महोन्नतः।
भानुमार्गनिरोद्धा हि सर्वेषां दुःखदोऽनघ॥ १३

तद्वृद्धिं स्तम्भयेशान सर्वकल्याणकृद्भव।
भानुसञ्चाररोधेन कालज्ञानं कथं भवेत्॥ १४

नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत्।
अस्माकं च भयार्तानां भवानेव हि दृश्यते॥ १५

दुःखनाशकरो देव प्रसीद गिरिजापते।

श्रीशिव उवाच

नास्माकं शक्तिरस्तीह तद्वृद्धिस्तम्भने सुराः॥ १६

इममेवं वदिष्यामो भगवन्तं रमाधवम्।
सोऽस्माकं प्रभुरात्मा च पूज्यः कारणरूपधृक्॥ १७

गोविन्दो भगवान्विष्णुः सर्वकारणकारणः।
तं गत्वा कथयिष्यामः स दुःखान्तो भविष्यति॥ १८

आर्त प्राणियोंका कष्ट निवारण करनेवाले, उग्र पराक्रमवाले, गुणमूर्ति, वृषध्वज, कालस्वरूप तथा कालोंके भी काल आपको नमस्कार है॥ ९॥

सूतजी बोले—यज्ञभोक्ता देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुत किये गये वृषध्वज देवेश शिव उन श्रेष्ठ देवताओंसे हँसते हुए गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १०॥

श्रीभगवान् बोले—हे स्वर्गमें निवास करनेवाले! हे उत्तम पुरुषो! मैं [आपलोगोंकी] स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं आप सभीका मनोरथ पूर्ण करूँगा॥ ११॥

देवता बोले—हे सर्वदेवेश! हे गिरिश! हे शशिशेखर! हे महाबल! आप दुःखी प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, अतएव हमारा भी कल्याण कीजिये॥ १२॥

हे पुण्यात्मन्! विन्ध्य नामक एक पर्वत है, जिसने सुमेरुगिरिसे द्वेष करके आकाशमें अत्यधिक ऊपर उठकर सूर्यका मार्ग रोक दिया है और वह सबके लिये दुःखदायी बन गया है॥ १३॥

हे ईशान! उसकी वृद्धिको रोक दीजिये और सबके लिये कल्याणकारी बन जाइये। सूर्यकी गति अवरुद्ध हो जानेपर लोगोंको कालज्ञान कैसे होगा? लोकमें स्वाहा तथा स्वधाकारके विलुप्त हो जानेपर हमें कौन शरण देगा? भयसे पीड़ित हम देवताओंके लिये एकमात्र शरणदाता तो केवल आप ही परिलक्षित हो रहे हैं। हे पार्वतीपते! हे देव! आप हमपर प्रसन्न होइये और हमारे कष्टका निवारण कीजिये॥ १४-१५½॥

श्रीशिव बोले—हे देवताओ! उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोकनेकी शक्ति इस समय मुझमें नहीं है। अब हमलोग भगवान् लक्ष्मीकान्तसे यह समाचार कहेंगे॥ १६½॥

वे कारणरूपधारी, समस्त कारणोंके कारण, आत्मारूप, गोविन्द भगवान् श्रीविष्णु हमलोगोंके पूज्य स्वामी हैं। अतएव उन्हींके पास जाकर हम कहेंगे और वे हमारा दुःख दूर करनेवाले होंगे॥ १७-१८॥

इत्येवमाकर्ण्य गिरीशभाषितं
देवाश्च सेन्द्राः सपयोजसम्भवाः।
रुद्रं पुरस्कृत्य च वेपमाना
वैकुण्ठलोकं प्रतिजग्मुरञ्जसा॥ १९

इस प्रकार भगवान् शिवका कथन सुनकर इन्द्र तथा ब्रह्मासहित समस्त देवता शंकरजीको आगे करके थर-थर काँपते हुए शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थित हुए॥ १९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां
दशमस्कन्धे रुद्रप्रार्थनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

देवताओंका वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करना

सूत उवाच

ते गत्वा देवदेवेशं रमानाथं जगद्गुरुम्।
विष्णुं कमलपत्राक्षं ददृशुः प्रभयान्वितम्॥ १

स्तोत्रेण तुष्टुवुर्भक्त्या गद्गदस्वरसत्कृताः।

देवा ऊचुः

जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज॥ २

दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद।
महावराह गोविन्द महायज्ञस्वरूपक॥ ३

महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण।
मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक॥ ४

सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः।
जयाकूपार दैत्यारे सुरकार्यसमर्पक॥ ५

अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः।
जयादिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक्॥ ६

मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपाय ते नमः।
नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः॥ ७

करजैर्वरदृप्ताङ्गं तस्मै नृहरये नमः।
वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम्॥ ८
बलिं सञ्छलयामास तस्मै वामनरूपिणे।

सूतजी बोले—वैकुण्ठमें जाकर उन देवताओंने कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले, देवदेवेश्वर, रमाकान्त, जगद्गुरु भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजीके साथ विराजमान देखा। वे गद्गद वाणीसे सत्कार करते हुए भक्तिपूर्वक स्तोत्रसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १½॥

देवता बोले—हे विष्णो! हे रमेश! हे आद्य! हे महापुरुष! हे पूर्वज! हे दैत्यशत्रु! हे कामजनक! हे सम्पूर्ण कामनाओंके फल प्रदान करनेवाले! हे महावराह! हे गोविन्द! हे महायज्ञस्वरूप! आपकी जय हो॥ २-३॥

हे महाविष्णो! हे ध्रुवेश! हे आद्य! हे जगत्की उत्पत्तिके कारण! हे मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेके लिये आधारस्वरूप! हे सत्यव्रत! हे धराधीश! आप मत्स्यरूपधारीको नमस्कार है॥ ४½॥

हे कच्छपावतार! हे दैत्यशत्रु! हे देवकार्यसमर्पक! आपकी जय हो। अमृतकी प्राप्ति करानेवाले हे ईश्वर! आप कूर्मरूपधारीको नमस्कार है॥ ५½॥

आदिदैत्य हिरण्याक्षका संहार करनेके लिये सूकररूप-धारी हे ईश्वर! आपकी जय हो। पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु उद्योगपरायण आप वराहरूपधारीको नमस्कार है॥ ६½॥

नृसिंहका रूप धारणकर जिन्होंने वरदानसे उन्मत्त अंगोंवाले महान् दैत्य हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला, उन नृसिंहभगवान्‌को नमस्कार है॥ ७½॥

वामनरूप धारणकर जिन्होंने त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित राजा बलिको छला था, उन वामनरूपधारीको नमस्कार है॥ ८½॥

दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे॥ ९
रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः।
दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥ १०
श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनन्तक्रमाय च।
कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलाञ्छनैः॥ ११
भाराक्रान्तां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः।
धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः॥ १२
तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो।
दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये॥ १३
बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः।
म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते॥ १४
कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः।
दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै॥ १५
दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत्।
जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु॥ १६
रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः।
इत्येवं देवदेवेशं स्तुत्वा श्रीपीतवाससम्॥ १७
प्रणेमुर्भक्तिसहिताः साष्टाङ्गं विबुधर्षभाः।
तेषां स्तवं समाकर्ण्य देवः श्रीपुरुषोत्तमः॥ १८
उवाच विबुधान्सर्वान् हर्षयञ्छ्रीगदाधरः।

श्रीभगवानुवाच

प्रसन्नोऽस्मि स्तवेनाहं देवास्तापं विमुञ्चथ॥ १९
भवतां नाशयिष्यामि दुःखं परमदुःसहम्।

दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेवाले, कार्तवीर्य सहस्रार्जुनके शत्रु तथा रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न आप जमदग्निपुत्र परशुरामको नमस्कार है॥ ९½ ॥

पुलस्त्यनन्दन दुराचारी राक्षस रावणके सिर काटनेमें परम पटु, अनन्त पराक्रमवाले आप दशरथपुत्र श्रीमान् रामको नमस्कार है॥ १०½ ॥

राजाओंके लिये कलंकस्वरूप कंस, दुर्योधन आदि दैत्योंके द्वारा भाराक्रान्त पृथ्वीका जिन महाप्रभुने उद्धार किया तथा पापोंका अन्त करके जिन्होंने धर्मकी स्थापना की, हे विभो! उन आप श्रीकृष्णभगवान्‌को बार-बार नमस्कार है॥ ११-१२½ ॥

दुष्ट यज्ञोंको विनष्ट करने तथा पशुहिंसा रोकनेके लिये जिन्होंने बौद्धरूप धारण किया; उन आप बुद्धदेवको नमस्कार है॥ १३½ ॥

सम्पूर्ण जगत्‌में म्लेच्छोंका बाहुल्य हो जानेपर तथा दुष्ट राजाओंद्वारा प्रजाओंको पीड़ित किये जानेपर आपने कल्किरूप धारण किया था; उन आप देवाधिदेवको नमस्कार है॥ १४½ ॥

हे देव! आपके ये दसों अवतार भक्तोंकी रक्षाके लिये तथा दुष्ट राक्षसोंके विनाशके लिये ही हुए हैं, अतएव आप सभी प्राणियोंका दुःख हरनेवाले हैं॥ १५½ ॥

भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये आपने मोहिनी स्त्री तथा जल-जन्तुओंका रूप धारण किया, अतएव हे देव! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन दयासागर हो सकता है? आपकी जय हो॥ १६½ ॥

इस प्रकार पीताम्बरधारी देवदेवेश श्रीहरिका स्तवन करके उन श्रेष्ठ देवताओंने भक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ १७½ ॥

उनकी स्तुति सुनकर गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सभी देवताओंको हर्षित करते हुए बोले—॥ १८½ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवताओ! मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, आपलोग शोकका त्याग कर दें। मैं आपलोगोंके इस परम दुःसह कष्टको दूर करूँगा॥ १९½ ॥

वृणुध्वं च वरं मत्तो देवाः परमदुर्लभम्॥ २०

ददामि परमप्रीतः स्तवस्यास्य प्रसादतः।
य एतत्पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः॥ २१

मयि भक्तिं परां कृत्वा न तं शोकः स्पृशेत्कदा।
अलक्ष्मीः कालकर्णी च नाक्रामेत्तद्गृहं सुराः॥ २२

नोपसर्गा न वेताला न ग्रहा ब्रह्मराक्षसाः।
न रोगा वातिकाः पैत्ताः श्लेष्मसम्भविनस्तथा॥ २३

नाकालमरणं तस्य कदापि च भविष्यति।
सन्ततिश्चिरकालस्था भोगाः सर्वे सुखादयः॥ २४

सम्भविष्यन्ति तन्मर्त्यगृहे यः स्तोत्रपाठकः।
किं पुनर्बहुनोक्तेन स्तोत्रं सर्वार्थसाधकम्॥ २५

एतस्य पठनान्नॄणां भुक्तिमुक्ती न दूरतः।
देवा भवत्सु यद्दुःखं कथ्यतां तदसंशयम्॥ २६

नाशयामि न सन्देहश्चात्र कार्योऽणुरेव च।
एवं श्रीभगवद्वाक्यं श्रुत्वा सर्वे दिवौकसः।
प्रसन्नमनसः सर्वे पुनरूचुर्वृषाकपिम्॥ २७

हे देवताओ! आपलोग मुझसे परम दुर्लभ वर माँग लीजिये; [आपलोगोंकी] इस स्तुतिके प्रभावसे अति प्रसन्न होकर मैं वर प्रदान करूँगा॥ २०$\frac{१}{२}$ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मुझमें दृढ़ भक्ति रखकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे कभी शोक स्पर्श नहीं कर सकेगा। हे देवताओ! दरिद्रता तथा दुर्भाग्य उसके घरपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। विघ्न-बाधाएँ, वेताल, ग्रह तथा ब्रह्मराक्षस उसे पीड़ित नहीं कर सकते। वात-पित्त-कफसम्बन्धी रोग भी उसे नहीं होंगे। उसकी अकाल-मृत्यु कभी नहीं होगी और उसकी सन्तानें दीर्घ कालतक जीवित रहेंगी। जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उस मनुष्यके घरमें सुख आदि सभी भोग-साधन विद्यमान रहेंगे। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, यह स्तोत्र सभी अर्थोंका परम साधन करनेवाला है॥ २१—२५॥

इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्योंके लिये भोग तथा मोक्ष उनसे दूर नहीं रहेंगे। हे देवताओ! आपलोगोंको जो कष्ट हो, उसे आप निःसंकोच बताइये, मैं उसे दूर करूँगा; इसमें आपलोगोंको अणुमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २६$\frac{१}{२}$ ॥

इस प्रकार श्रीभगवान्‌का वचन सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया और वे पुनः वृषाकपि भगवान् विष्णुसे कहने लगे॥ २७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
श्रीविष्णुना देवेभ्यो वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

* * *

अथ षष्ठोऽध्यायः

भगवान् विष्णुका देवताओंको काशीमें अगस्त्यजीके पास भेजना, देवताओंकी अगस्त्यजीसे प्रार्थना

सूत उवाच

श्रीशस्य वचनाद्देवाः सन्तुष्टाः सर्व एव हि।
प्रसन्नमनसो भूत्वा पुनरेनं समूचिरे॥ १

देवा ऊचुः

देवदेव महाविष्णो सृष्टिस्थित्यन्तकारण।
विष्णो विन्ध्यनगोऽर्कस्य मार्गरोधं करोति हि॥ २

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] लक्ष्मीकान्त श्रीविष्णुके वचनसे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर उन भगवान्‌से पुनः इस प्रकार कहा—॥ १॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महाविष्णो! हे सृजन-पालन-संहारके कारण! हे विष्णो! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग रोक दिया है। सूर्यका

तेन भानुविरोधेन सर्व एव महाविभो।
अलब्धभोगभागा हि किं कुर्मः कुत्र याम हि॥ ३

श्रीभगवानुवाच

या कर्त्री सर्वजगतामाद्या च कुलवर्धनी।
देवी भगवती तस्याः पूजकः परमद्युतिः॥ ४

अगस्त्यो मुनिवर्योऽसौ वाराणस्यां समासते।
तत्तेजोवञ्चकोऽगस्त्यो भविष्यति सुरोत्तमाः॥ ५

तं प्रसाद्य द्विजवरमगस्त्यं परमौजसम्।
याचध्वं विबुधाः काशीं गत्वा निःश्रेयसः पदीम्॥ ६

सूत उवाच

एवं समुपदिष्टास्ते विष्णुना विबुधोत्तमाः।
प्रतीताः प्रणताः सर्वे जग्मुर्वाराणसीं पुरीम्॥ ७

क्षणेन विबुधश्रेष्ठा गत्वा काशीपुरीं शुभाम्।
मणिकर्णीं समाप्लुत्य सचैलं भक्तिसंयुताः॥ ८

सन्तर्प्य देवांश्च पितॄन्दत्त्वा दानं विधानतः।
आगत्य मुनिवर्यस्य चाश्रमं परमं महत्॥ ९

प्रशान्तश्वापदाकीर्णं नानापादपसङ्कुलम्।
मयूरैः सारसैर्हंसैश्चक्रवाकैरुपाश्रितम्॥ १०

महावराहैः कोलैश्च व्याघ्रैः शार्दूलकैरपि।
मृगै रुरुभिरत्यर्थं खड्गैः शरभकैरपि॥ ११

समाश्रितं परमया लक्ष्म्या मुनिवरं तदा।
दण्डवत्पतिताः सर्वे प्रणेमुश्च पुनः पुनः॥ १२

देवा ऊचुः

जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर।
वातापीबलनाशाय नमस्ते कुम्भयोनये॥ १३

लोपामुद्रापते श्रीमन्मित्रावरुणसम्भव।
सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते॥ १४

यस्योदये प्रसन्नानि भवन्त्युज्ज्वलभांज्यपि।
तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥ १५

मार्ग अवरुद्ध हो जानेके कारण हमलोगोंको यज्ञभाग नहीं मिल पा रहा है। अतएव हे महाविभो! अब हमलोग क्या करें तथा कहाँ जायँ?॥ २-३॥

श्रीभगवान् बोले—हे उत्तम देवगण! सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाली, आदिस्वरूपिणी तथा कुलकी अभिवृद्धि करनेवाली जो भगवती अम्बा हैं, उन्हींके उपासक परम तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी हैं। वे इस समय वाराणसीमें विद्यमान हैं। वे अगस्त्यमुनि ही उस विन्ध्यगिरिके तेजको निरस्त करनेमें समर्थ होंगे। हे देवताओ! मोक्षपद प्रदान करनेवाली उस काशीपुरीमें जाकर परम ओजस्वी द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्न करके याचना कीजिये॥ ४—६॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इस प्रकार भगवान् विष्णुसे आदेश प्राप्त करके वे सभी श्रेष्ठ देवता आश्वस्त होकर नम्रतापूर्वक काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७॥

क्षणभरमें पावन काशीपुरीमें पहुँचकर वे श्रेष्ठ देवगण मणिकर्णिकातीर्थमें भक्तिपूर्वक सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करके पुनः देवतर्पण तथा पितृतर्पण करनेके बाद विधिपूर्वक दान देकर मुनिवर अगस्त्यके परम पवित्र आश्रमपर आये, जो शान्तस्वभाववाले हिंसक पशुओंसे व्याप्त था; वहाँ नानाविध वृक्ष उगे हुए थे। वह आश्रम मयूर, सारस, हंस, चक्रवाक, महावराह, शूकर, व्याघ्र, सिंह, मृग, काले हिरन, गैंडा तथा शरभ आदि जन्तुओंसे परिपूर्ण था। सभी देवता परम कान्तिसे सम्पन्न मुनिवर अगस्त्यके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगे॥ ८—१२॥

देवता बोले—हे द्विजगणोंके स्वामी! हे मान्य! हे पूज्य! हे भूसुर! हे वातापीका बल नष्ट करनेवाले तथा घटसे प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है, आपकी जय हो॥ १३॥ हे लोपामुद्रापते! हे श्रीमन्! हे मित्रावरुणसे आविर्भूत! हे सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार! हे शास्त्रयोनि अगस्त्यमुने! आपको नमस्कार है॥ १४॥ जिनके उदय होनेपर समुद्रोंका जल प्रसन्न तथा विमल हो जाता है, उन आपको नमस्कार स्वीकार हो॥ १५॥

काशपुष्पविकासाय लङ्कावासप्रियाय च।
जटामण्डलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तु ते॥ १६

जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने।
वरिष्ठाय च पूज्याय सस्त्रीकाय नमोऽस्तु ते॥ १७

प्रसादः क्रियतां स्वामिन् वयं त्वां शरणं गताः।
दुस्तराच्छैलजादुःखात्पीडिताः परमद्युते॥ १८

इत्येवं संस्तुतोऽगस्त्यो मुनिः परमधार्मिकः।
प्राह प्रसन्नया वाचा विहसन् द्विजसत्तमः॥ १९

मुनिरुवाच

भवन्तः परमश्रेष्ठा देवास्त्रिभुवनेश्वराः।
लोकपाला महात्मानो निग्रहानुग्रहक्षमाः॥ २०

योऽमरावत्यधीशानः कुलिशं यस्य चायुधम्।
सिद्ध्यष्टकं च यद्द्वारि स शक्रो मरुतां पतिः॥ २१

वैश्वानरः कृशानुर्हि हव्यकव्यवहोऽनिशम्।
मुखं सर्वामराणां हि सोऽग्निः किं तस्य दुष्करम्॥ २२

रक्षोगणाधिपो भीमः सर्वेषां कर्मसाक्षिकः।
दण्डव्यग्रकरो देवः किं तस्यासुकरं सुराः॥ २३

तथापि यदि देवेशाः कार्यं मच्छक्तिसिद्धिभृत्।
अस्ति चेदुच्यतां देवाः करिष्यामि न संशयः॥ २४

एवं मुनिवरेणोक्तं निशम्य विबुधर्षभाः।
प्रतीताः प्रणयोद्विग्नाः कार्यं निजगदुर्निजम्॥ २५

महर्षे विन्ध्यगिरिणा निरुद्धोऽर्कविनिर्गमः।
त्रैलोक्यं तेन संविष्टं हाहाभूतमचेतनम्॥ २६

काशपुष्पको विकसित करनेवाले, लंकावास (श्रीराम)-के परम प्रिय, जटासमूहसे सम्पन्न तथा शिष्योंसे निरन्तर आवृत आपको नमस्कार है॥ १६॥ समस्त देवताओंसे स्तुत होनेवाले हे महामुने! हे गुणनिधे! वरिष्ठ, पूज्य तथा भार्यासहित आपको नमस्कार है, आपकी जय हो॥ १७॥

हे स्वामिन्! आप हमपर अनुग्रह करें; हम आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे परमद्युते! विन्ध्यगिरिद्वारा उत्पन्न किये गये दुःसह कष्टसे हमलोग बहुत पीड़ित हैं॥ १८॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम धर्मनिष्ठ द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनि हँसते हुए प्रसन्नतासे युक्त वाणीमें कहने लगे—॥ १९॥

मुनि बोले—हे देवताओ! आपलोग परम श्रेष्ठ, त्रिलोकीके स्वामी, लोकपाल, महान् आत्मावाले तथा निग्रह-अनुग्रह करनेमें सक्षम हैं॥ २०॥

जो अमरावतीपुरीके स्वामी हैं, वज्र ही जिनका शस्त्र है, आठों सिद्धियाँ जिनके द्वारपर विराजमान रहती हैं तथा जो मरुद्गणोंके नायक हैं—वे ही ये इन्द्रदेव हैं॥ २१॥

सर्वदा हव्य-कव्यका वहन करनेवाले, वैश्वानर तथा कृशानु नामसे प्रसिद्ध और सभी देवताओंके मुखस्वरूप जो ये अग्निदेव हैं, उनके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है?॥ २२॥

हे देवताओ! हाथमें दण्ड लेकर सदा व्यस्त रहनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षीस्वरूप तथा राक्षसगणोंके अधिपति भयंकर यमदेवके लिये कौन-सा कार्य सुकर नहीं है? तथापि हे देवताओ! मेरे सामर्थ्यसे यदि आपका कोई कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो आप उसे बताइये। हे देवगण! मैं उसे अवश्य करूँगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

मुनिवर अगस्त्यका वचन सुनकर वे श्रेष्ठ देवता आश्वस्त हो गये और अधीर होकर विनम्रतापूर्वक अपने कार्यके विषयमें बताने लगे—हे महर्षे! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग निरुद्ध कर दिया है और तीनों लोकोंको आच्छादित कर रखा है, जिससे सर्वत्र हाहाकार मच गया है तथा सभी प्राणियोंमें अचेतनता उत्पन्न हो गयी है॥ २५-२६॥

तद्वृद्धिं स्तम्भय मुने निजया तपसः श्रिया।
भवतस्तेजसागस्त्य नूनं नम्रो भविष्यति।
एतदेवास्मदीयं च कार्यं कर्तव्यमस्ति हि॥ २७

हे मुने! आप अपने तपोबल तथा प्रतापसे उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोक दीजिये। हे अगस्त्य! आपके तेजसे वह अवश्य ही नम्र हो जायगा, इस समय आपको हमारा इतना ही कार्य सम्पन्न करना है॥ २७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे-
ऽगस्त्याश्वासनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

~~o~~

अथ सप्तमोऽध्यायः

अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना

सूत उवाच

इति वाक्यं समाकर्ण्य विबुधानां द्विजोत्तमः।
करिष्ये कार्यमेतद्वः प्रत्युवाच ततो मुनिः॥ १

अङ्गीकृते तदा कार्ये मुनिना कुम्भजन्मना।
देवाः प्रमुदिताः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः॥ २

ते देवाः स्वानि धिष्ण्यानि भेजिरे मुनिवाक्यतः।
पत्नीं मुनिवरः श्रीमानुवाच नृपकन्यकाम्॥ ३

अये नृपसुते प्राप्तो विघ्नोऽनर्थस्य कारकः।
भानुमार्गनिरोधेन कृतो विन्ध्यमहीभृता॥ ४

आज्ञातं कारणं तच्च स्मृतं वाक्यं पुरातनम्।
काशीमुद्दिश्य यद् गीतं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ५

अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति काश्यां निवसतां सताम्॥ ६

सोऽन्तरायो मया प्राप्तः काश्यां निवसता प्रिये।
इत्येवमुक्त्वा भार्यां तां मुनिः परमतापनः॥ ७

मणिकर्ण्यां समाप्लुत्य दृष्ट्वा विश्वेश्वरं विभुम्।
दण्डपाणिं समभ्यर्च्य कालराजं समागतः॥ ८

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] देवताओंका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनिने उनसे कहा—मैं आपलोगोंका यह कार्य करूँगा॥ १॥

हे द्विजवरो! कुम्भसे आविर्भूत अगस्त्यमुनिके द्वारा देवकार्य करना स्वीकार कर लिये जानेपर समस्त देवता अत्यन्त हर्षित हो उठे॥ २॥

मुनिके वचनसे आश्वस्त होकर जब वे देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये तब श्रीमान् मुनिवर अगस्त्यने अपनी पत्नी राजकन्या लोपामुद्रासे कहा—॥ ३॥

हे राजपुत्रि! विन्ध्यगिरिने सूर्यके मार्गका अवरोध करके महान् अनर्थकारी विघ्न उपस्थित कर दिया है॥ ४॥

मुझे इसका कारण ज्ञात हो गया। काशीको उद्देश्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने जो कहा है, वह पुरातन वाक्य मुझे स्मरण हो आया कि मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंको अविमुक्त काशीक्षेत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये, किंतु काशीवास करनेवाले सत्पुरुषोंके समक्ष भी विघ्न आते हैं। हे प्रिये! काशीमें निवास कर रहे मेरे समक्ष भी वही बाधा उपस्थित हुई॥ ५-६½॥

अपनी उन भार्यासे ऐसा कहकर परम तपस्वी मुनि अगस्त्य मणिकर्णिकाकुण्डमें स्नान करके तथा भगवान् विश्वनाथ और दण्डपाणिका सम्यक् पूजन करके कालभैरवका दर्शन करने वहाँ आये॥ ७-८॥

कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक।
कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वरः॥ ९

त्वं काशीवासविघ्नानां नाशको भक्तरक्षकः।
मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तार्तिविनिवारक॥ १०

परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम्।
केन कर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम्॥ ११

एवं प्रार्थ्य च तं कालनाथं कुम्भोद्भवो मुनिः।
जगाम साक्षिविघ्नेशं सर्वविघ्ननिवारणम्॥ १२

तं दृष्ट्वाभ्यर्च्य सम्प्रार्थ्य ततः पुर्या विनिर्गतः।
लोपामुद्रापतिः श्रीमानगस्त्यो दक्षिणां दिशम्॥ १३

काशीविरहसन्तप्तो महाभाग्यनिधिर्मुनिः।
संस्मृत्यानुक्षणं काशीं जगाम सह भार्यया॥ १४

तपोयानमिवारुह्य निमिषार्धेन वै मुनिः।
अग्रे ददर्श तं विन्ध्यं रुद्धाम्बरमथोन्नतम्॥ १५

चकम्पे चाचलस्तूर्णं दृष्ट्वैवाग्रे स्थितं मुनिम्।
गिरिः खर्वतरो भूत्वा विवक्षुरवनीमिव॥ १६

दण्डवत्पतितो भूमौ साष्टाङ्गं भक्तिभावितः।
तं दृष्ट्वा नम्रशिखरं विन्ध्यं नाम महागिरिम्॥ १७

प्रसन्नवदनोऽगस्त्यो मुनिर्विन्ध्यमथाब्रवीत्।
वत्सैवं तिष्ठ तावत्त्वं यावदागम्यते मया॥ १८

अशक्तोऽहं गण्डशैलारोहणे तव पुत्रक।
एवमुक्त्वा मुनिर्याम्यदिशं प्रति गमोत्सुकः॥ १९

आरुह्य तस्य शिखराण्यवारुहदनुक्रमात्।
गतो याम्यदिशं चापि श्रीशैलं प्रेक्ष्य वर्त्मनि॥ २०

मलयाचलमासाद्य तत्राश्रमपरोऽभवत्।

[वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—] हे भक्तोंका भय दूर करनेवाले महाबाहो कालराज! आप काशीपुरीके अधिपति हैं, मुझे इस पुरीसे दूर क्यों कर रहे हैं?॥ ९ ॥ आप तो काशीमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी बाधाओंका नाश करनेवाले तथा भक्तजनोंके रक्षक हैं, तो फिर हे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले स्वामिन्! मुझे क्यों दूर कर रहे हैं?॥ १० ॥ मैंने दूसरोंके लिये कभी निन्दित वचन नहीं कहा, चुगली नहीं की तथा मिथ्या-भाषण नहीं किया, तो मेरे किस कर्मके परिणामस्वरूप आप मुझे काशीसे दूर कर रहे हैं?॥ ११ ॥

उन कालभैरवसे ऐसी प्रार्थना करके कुम्भयोनि अगस्त्यमुनि समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले साक्षीविनायकके पास गये॥ १२ ॥

उन साक्षीविनायकका दर्शन, पूजन तथा स्तवन करके लोपामुद्रापति श्रीमान् अगस्त्य उस पुरीसे दक्षिण दिशाकी ओर निकल पड़े॥ १३ ॥

काशीत्यागसे सन्तप्त महान् भाग्यशाली अगस्त्यमुनि प्रतिक्षण काशीका स्मरण करते हुए अपने तपोबलरूपी विमानपर चढ़कर अपनी भार्याके साथ आधे निमेषमें ही वहाँ पहुँच गये और मुनिने देखा कि सामने विन्ध्यगिरिने अत्यन्त ऊँचे उठकर आकाशको आच्छादित कर रखा है॥ १४-१५ ॥

मुनिको समक्ष उपस्थित देखकर विन्ध्यपर्वत तेजीसे काँपने लगा। वह पर्वत पूर्णरूपसे अभिमानरहित होकर कुछ कहनेके विचारसे उनके सम्मुख पृथ्वीकी भाँति विनयावनत हो भक्ति-भावनासे युक्त होकर दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करने लगा॥ १६½ ॥

तब उस विन्ध्य नामक महागिरिको उस समय नम्र शिखरवाला देखकर प्रसन्न मुखवाले अगस्त्यमुनिने विन्ध्याचलसे कहा—हे वत्स! जबतक मैं लौटकर आता हूँ तबतक तुम इसी प्रकार स्थित रहो; क्योंकि हे पुत्र! मैं तुम्हारे उच्च शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ॥ १७-१८½ ॥

इस प्रकार कहकर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेकी इच्छावाले अगस्त्यमुनि उस विन्ध्यके शिखरोंपर चढ़कर क्रमशः नीचे पृथ्वीपर उतर आये और वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। मार्गमें श्रीशैलका अवलोकन करते हुए मलयाचलपर आकर आश्रममें निवास करने लगे॥ १९-२०½ ॥

सापि देवी तत्र विन्ध्यमागता मनुपूजिता॥ २१

लोकेषु प्रथिता विन्ध्यवासिनीति च शौनक।

सूत उवाच

एतच्चरित्रं परमं शत्रुनाशनमुत्तमम्॥ २२

अगस्त्यविन्ध्यनगयोराख्यानं पापनाशनम्।
राज्ञां विजयदं तच्च द्विजानां ज्ञानवर्धनम्॥ २३

वैश्यानां धान्यधनदं शूद्राणां सुखदं तथा।
धर्मार्थी धर्ममाप्नोति धनार्थी धनमाप्नुयात्॥ २४

कामानवाप्नुयात्कामी भक्त्या चास्य सकृच्छ्रवात्।
एवं स्वायम्भुवमनुर्देवीमाराध्य भक्तितः॥ २५

लेभे राज्यं धरायाश्च निजमन्वन्तराश्रयम्।
इत्येतद्वर्णितं सौम्य मया मन्वन्तराश्रितम्।
आद्यं चरित्रं श्रीदेव्याः किं पुनः कथयामि ते॥ २६

मनुके द्वारा पूजित वे भगवती भी वहीं विन्ध्यगिरिपर आ गयीं। हे शौनक! वे ही देवी समस्त लोकोंमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हो गयीं॥ २१½ ॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! इन देवीका चरित्र परम पावन तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है। अगस्त्य तथा विन्ध्यगिरिका यह उपाख्यान समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। यह आख्यान राजाओंको विजय दिलाता है तथा द्विजोंके ज्ञानकी वृद्धि करता है। यह वैश्योंके लिये धन-धान्यदायक तथा शूद्रोंके लिये सुखप्रद है। इस आख्यानके भक्तिपूर्वक एक बार श्रवण करनेसे धर्म चाहनेवाला धर्म प्राप्त करता है, धनकी अभिलाषा रखनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और सकाम पुरुष अपने सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है॥ २२—२४½ ॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने भक्तिपूर्वक देवीकी आराधना करके अपने मन्वन्तरपर्यन्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया। हे सौम्य! मन्वन्तरसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवती श्रीदेवीके इस आद्य चरित्रका वर्णन मैंने कर दिया; अब आगे किस प्रसंगका वर्णन आपसे करूँ?॥ २५-२६ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
विन्ध्यवृद्ध्यवरोधवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक मनुओंका वर्णन

शौनक उवाच

आद्यो मन्वन्तरः प्रोक्तो भवता चायमुत्तमः।
अन्येषामुद्भवं ब्रूहि मनूनां दिव्यतेजसाम्॥ १

सूत उवाच

एवमाद्यस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा स्वायम्भुवस्य हि।
अन्येषां क्रमशस्तेषां सम्भूतिं परिपृच्छति॥ २

नारदः परमो ज्ञानी देवीतत्त्वार्थकोविदः।

नारद उवाच

मनूनां मे समाख्याहि सूत्पत्तिं च सनातन॥ ३

शौनकजी बोले—[हे सूतजी!] यह तो आपने आदिमन्वन्तरका उत्तम उपाख्यान कहा, अब दिव्य तेजवाले अन्य मनुओंकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये॥ १ ॥

सूतजी बोले—इसी प्रकार भगवतीके तात्त्विक रहस्योंको पूर्णरूपेण जाननेवाले परम ज्ञानी देवर्षि नारदजीने भी आद्य स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनकर क्रमशः अन्य मनुओंके प्रादुर्भावके विषयमें भगवान् नारायणसे पूछा था॥ २½ ॥

नारदजी बोले—हे सनातन! मनुओंकी उत्तम उत्पत्तिके विषयमें मुझे भलीभाँति बताइये॥ ३ ॥

श्रीनारायण उवाच

प्रथमोऽयं मनुः स्वायम्भुव उक्तो महामुने।
देव्याराधनतो येन प्राप्तं राज्यमकण्टकम्॥ ४

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ।
राज्यपालनकर्तारौ विख्यातौ वसुधातले॥ ५

द्वितीयश्च मनुः स्वारोचिष उक्तो मनीषिभिः।
प्रियव्रतसुतः श्रीमानप्रमेयपराक्रमः॥ ६

स स्वारोचिषनामापि कालिन्दीकूलतो मनुः।
निवासं कल्पयामास सर्वसत्त्वप्रियङ्करः॥ ७

जीर्णपत्राशनो भूत्वा तपः कर्तुमनुव्रतः।
देव्या मूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः॥ ८

एवं द्वादश वर्षाणि वनस्थस्य तपस्यतः।
देवी प्रादुरभूत्तात सहस्रार्कसमद्युतिः॥ ९

ततः प्रसन्ना देवेशी स्तवराजेन सुव्रता।
ददौ स्वारोचिषायैव सर्वमन्वन्तराश्रयम्॥ १०

आधिपत्यं जगद्धात्री तारिणीति प्रथामगात्।
एवं स्वारोचिषमनुस्तारिण्याराधनात्ततः॥ ११

आधिपत्यं च लेभे स सर्वारातिविवर्जितम्।
धर्मं संस्थाप्य विधिवद्राज्यं पुत्रैः समं विभुः॥ १२

भुक्त्वा जगाम स्वर्लोकं निजमन्वन्तराश्रयात्।
तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः॥ १३

गङ्गाकूले तपस्तप्त्वा वाग्भवं सञ्जपन् रहः।
वर्षाणि त्रीण्युपवसन् देव्यनुग्रहमाविशत्॥ १४

स्तुत्वा देवीं स्तोत्रवरैर्भक्तिभावितमानसः।
राज्यं निष्कण्टकं लेभे सन्ततिं चिरकालिकीम्॥ १५

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! मैंने इन आद्य स्वायम्भुव मनुका वर्णन कर दिया, जिन्होंने देवीकी उपासनासे निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया। उन मनुके प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक महान् तेजस्वी दो पुत्र हुए। राज्यका भलीभाँति पालन करनेवाले वे दोनों भूलोकमें अति प्रसिद्ध हुए॥ ४-५॥

विद्वानोंने स्वारोचिष मनुको द्वितीय मनु कहा है। अमित पराक्रमवाले वे श्रीमान् स्वारोचिष मनु राजा प्रियव्रतके पुत्र थे॥ ६॥

सभी प्राणियोंका हित करनेवाले वे स्वारोचिष नामक मनु यमुनाके तटपर निवास करने लगे। वे सूखे पत्तोंके आहारपर रहकर एक महान् व्रतीके रूपमें तपस्या करनेमें संलग्न हो गये और भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने लगे॥ ७-८॥

हे तात! इस प्रकार वनमें रहकर बारह वर्षोंतक तपस्या करनेवाले उन मनुके समक्ष हजारों सूर्योंके समान तेजवाली देवी प्रकट हो गयीं॥ ९॥

तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उन देवेश्वरीने उस स्तवराजसे प्रसन्न होकर स्वारोचिष मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरका आधिपत्य प्रदान कर दिया। उसी समयसे भगवती जगद्धात्रीको तारिणी मानकर उनकी उपासना करनेकी प्रथा चल पड़ी॥ १०½॥

इस प्रकार स्वारोचिष मनुने उन तारिणीदेवीकी उपासनासे समस्त शत्रुओंसे रहित राज्य प्राप्त कर लिया। इसके अनन्तर वे ऐश्वर्यसम्पन्न मनु विधिपूर्वक धर्मकी स्थापना करके पुत्रोंके साथ अपना राज्य भोगकर अन्तमें अपने मन्वन्तरका अधिकार त्यागकर स्वर्गलोक चले गये॥ ११-१२½॥

इसके बाद प्रियव्रतके उत्तम नामक पुत्र तृतीय मनु हुए। उन्होंने गंगाके तटपर रहकर एकान्तमें निरन्तर भगवतीके वाग्भव मन्त्रका जप करते हुए तीन वर्षोंतक तप करके देवीका अनुग्रह प्राप्त किया॥ १३-१४॥

भक्तिपूर्ण मनसे उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा भगवतीकी स्तुति करके उन्होंने निष्कंटक राज्य तथा दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त की॥ १५॥

राज्योत्थान्यानि सौख्यानि भुक्त्वा धर्मान्युगस्य च।
सोऽप्याजगाम पदवीं राजर्षिवरभाविताम्॥ १६

चतुर्थस्तामसो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः।
नर्मदादक्षिणे कूले समाराध्य जगन्मयीम्॥ १७

महेश्वरीं कामराजकूटजापपरायणः।
वासन्ते शारदे काले नवरात्रसपर्यया॥ १८

तोषयामास देवेशीं जलजाक्षीमनूपमाम्।
तस्याः प्रसादमासाद्य नत्वा स्तोत्रैरनुत्तमैः॥ १९

अकण्टकं महद्राज्यं बुभुजे गतसाध्वसः।
पुत्रान्बलोद्धताञ्छूरान्दश वीर्यनिकेतनान्॥ २०

उत्पाद्य निजभार्यायां जगामाम्बरमुत्तमम्।
पञ्चमो मनुराख्यातो रैवतस्तामसानुजः॥ २१

कालिन्दीकूलमाश्रित्य जजाप कामसंज्ञकम्।
बीजं परमवाग्दर्पदायकं साधकाश्रयम्॥ २२

एतदाराधनादाप स्वाराज्यर्द्धिमनुत्तमाम्।
बलमप्रहतं लोके सर्वसिद्धिविधायकम्॥ २३

सन्ततिं चिरकालीनां पुत्रपौत्रमयीं शुभाम्।
धर्मान्व्यस्य व्यवस्थाप्य विषयानुपभुज्य च।
जगामाप्रतिमः शूरो महेन्द्रालयमुत्तमम्॥ २४

राज्यसे प्राप्त होनेवाले सुखोंका भोग करके तथा युग-धर्मोंका पालन करके वे अन्य श्रेष्ठ राजर्षियोंद्वारा प्राप्त पदपर पहुँच गये॥ १६॥

तामस नामवाले चौथे मनु प्रियव्रतके पुत्र थे। नर्मदा नदीके दक्षिणी तटपर गुह्य कामबीज मन्त्रका सतत जप करते हुए उन्होंने जगद्व्यापिनी महेश्वरीकी आराधना की। चैत्र तथा आश्विनमासके नवरात्रमें उपासनाके द्वारा उन्होंने कमलके समान नेत्रोंवाली अनुपमेय देवेश्वरीको सन्तुष्ट किया॥ १७-१८½॥

अति श्रेष्ठ स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके उनकी कृपा प्राप्तकर तामस मनुने निःशंक होकर निष्कण्टक विशाल राज्यका भोग किया॥ १९½॥

अपनी भार्यासे दस ओजस्वी, शक्तिशाली तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करके वे उत्तम लोकको प्राप्त हुए॥ २०½॥

तामस मनुके अनुज रैवतको पाँचवाँ मनु कहा गया है। यमुनाके तटपर रहकर उन्होंने परम वाक्-शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले एवं साधकोंके लिये आश्रयस्वरूप कामबीजसंज्ञक मन्त्रका जप किया॥ २१-२२॥

भगवतीकी इस आराधनासे उन्होंने उत्तम समृद्धिसे सम्पन्न अपना राज्य तथा जगत्में सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला अप्रतिहत बल प्राप्त कर लिया। उन्होंने शुभ तथा पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न सन्तति प्राप्त की। पुनः लोकमें धर्मकी स्थापना करके, राज्यकी व्यवस्था करके तथा राज्य-सुख भोगकर अप्रतिम शूर उन रैवत मनुने उत्तम इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २३-२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे मनूत्पत्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

* * *

अथ नवमोऽध्यायः

चाक्षुष मनुकी कथा, उनके द्वारा देवीकी आराधनाका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां चित्रं देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
अङ्गपुत्रेण मनुना यथाप्तं राज्यमुत्तमम्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप जगदम्बाका अद्भुत तथा उत्तम माहात्म्य और अंगके पुत्र मनुने जिस तरहसे श्रेष्ठ राज्य प्राप्त किया था, उसे सुनिये॥ १॥

अङ्गस्य राज्ञः पुत्रोऽभूच्चाक्षुषो मनुरुत्तमः।
षष्ठः सुपुलहं नाम ब्रह्मर्षिं शरणं गतः॥ २

ब्रह्मर्षे त्वामहं प्राप्तः शरणं प्रणतार्तिहन्।
शाधि मां किङ्करं स्वामिन् येनाहं प्राप्नुयां श्रियम्॥ ३

मेदिन्याश्चाधिपत्यं मे स्याद्यथावदखण्डितम्।
अव्याहतं भुजबलं शस्त्रास्त्रनिपुणं क्षमम्॥ ४

सन्ततिश्चिरकालीनाप्यखण्डं वय उत्तमम्।
अन्तेऽपवर्गलाभश्च स्यात्तथोपदिशाद्य मे॥ ५

इत्येवं वचनं तस्य मनोः कर्णपथेऽभवत्।
प्रत्युवाच मुनिः श्रीमान् देव्याः संराधनं परम्॥ ६

राजन्नाकर्णय वचो मम श्रोत्रसुखं महत्।
शिवामाराधयाद्य त्वं तत्प्रसादादिदं भवेत्॥ ७

चाक्षुष उवाच

कीदृगाराधनं देव्यास्तस्याः परमपावनम्।
केनाकारेण कर्तव्यं कारुण्याद्वक्तुमर्हसि॥ ८

मुनिरुवाच

राजन्नाकर्णयतां देव्याः पूजनं परमव्ययम्।
वाग्भवं बीजमव्यक्तं सञ्जप्यमनिशं तथा॥ ९

त्रिकालं सञ्जपन्मर्त्यो भुक्तिमुक्ती लभेत्तु हि।
न बीजं वाग्भवादन्यदस्ति राजन्यनन्दन॥ १०

जपात्सिद्धिकरं वीर्यबलवृद्धिकरं परम्।
एतस्य जापात्पाद्योऽपि सृष्टिकर्ता महाबलः॥ ११

विष्णुर्यज्जपतः सृष्टिपालकः परिकीर्तितः।
महेश्वरोऽपि संहर्ता यज्जपादभवन्नृप॥ १२

लोकपालास्तथान्येऽपि निग्रहानुग्रहक्षमाः।
यदाश्रयादभूवंस्ते बलवीर्यमदोद्धताः॥ १३

राजा अंगके उत्तम पुत्र चाक्षुष छठें मनु हुए। वे सुपुलह नामक ब्रह्मर्षिकी शरणमें गये॥ २॥

[उन्होंने सुपुलहसे कहा—] शरणागतोंके कष्टोंको दूर करनेवाले हे ब्रह्मर्षे! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे स्वामिन्! मुझ सेवकको ऐसी शिक्षा दीजिये; जिससे मैं 'श्री' प्राप्त कर सकूँ, पृथ्वीपर मेरा अखण्ड आधिपत्य हो जाय, मेरी भुजाओंमें अप्रतिहतबल हो जाय तथा अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगमें मैं निपुण तथा समर्थ हो जाऊँ, मेरी सन्तानें चिरकालतक जीवित रहें, मैं अखण्डित उत्तम आयुवाला हो जाऊँ तथा आपके उपदेशसे अन्तमें मुझे मोक्षलाभ हो जाय॥ ३—५॥

उन चाक्षुष मनुका यह वचन जब मुनि पुलहके कानमें पड़ा तब उन श्रीमान्ने कहा—हे राजन्! कानोंको महान् सुख प्रदान करनेवाली मेरी बात सुनिये—देवीकी आराधना सबसे बढ़कर है। इस समय आप कल्याणी जगदम्बाकी उपासना कीजिये; उन्हींके अनुग्रहसे आपको यह सब सुलभ हो जायगा॥ ६-७॥

चाक्षुष बोले—उन देवीकी परम पावन आराधनाका क्या स्वरूप है तथा उसे किस प्रकार करना चाहिये? इसे आप मेरे ऊपर दया करके बतायें॥ ८॥

मुनि बोले—हे राजन्! देवीके परम सनातन पूजनके विषयमें सुनिये। देवीके अव्यक्त वाग्भव मन्त्रका सतत जप करना चाहिये। इस मन्त्रको त्रिकाल जपनेवाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे राजनन्दन! इस वाग्भव बीजसे बढ़कर अन्य कोई बीजमन्त्र नहीं है॥ ९-१०॥

जप करनेसे यह मन्त्र श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्रदान करता है और वीर्य तथा बलकी वृद्धि करता है। इस मन्त्रका जप करके ही ब्रह्माजी महाबली तथा सृजन करनेकी क्षमतावाले बन गये। हे राजन्! इसी बीजका जप करके भगवान् विष्णु सृष्टिपालक कहे गये तथा इसीके जपसे भगवान् शंकर जगत्का संहार करनेवाले हुए॥ ११-१२॥

इन्हींका आश्रय लेकर अन्यान्य लोकपाल भी निग्रह तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ और बल तथा वीर्यसे सम्पन्न हुए हैं॥ १३॥

एवं त्वमपि राजन्य महेशीं जगदम्बिकाम्।
समाराध्य महर्द्धिं च लप्स्यसेऽचिरकालतः॥ १४

एवं स मुनिवर्येण पुलहेन प्रबोधितः।
अङ्गपुत्रस्तपस्तप्तुं जगाम विरजां नदीम्॥ १५

स च तेपे तपस्तीव्रं वाग्भवस्य जपे रतः।
बीजस्य पृथिवीपालः शीर्णपर्णाशनो विभुः॥ १६

प्रथमेऽब्दे पल्लवाशो द्वितीये तोयभक्षणः।
तृतीयेऽब्दे पवनभुक् तस्थौ स्थाणुरिवाचलः॥ १७

एवं द्वादश वर्षाणि त्यक्ताहारस्य भूभुजः।
वाग्भवं जपतो नित्यं मतिरासीच्छुभान्विता॥ १८

तथा च देव्याः परमं मन्त्रं सञ्जपतो रहः।
प्रादुरासीज्जगन्माता साक्षाच्छ्रीपरमेश्वरी॥ १९

तेजोमयी दुराधर्षा सर्वदेवमयीश्वरी।
उवाचाङ्गतनूजं तं प्रसन्ना ललिताक्षरम्॥ २०

देव्युवाच

पृथिवीपाल ते यत्स्याच्चिन्तितं परमं वरम्।
तद् ब्रूहि सम्प्रदास्यामि तपसा ते सुतोषिता॥ २१

चाक्षुष उवाच

जानासि देवदेवेशि यत्प्रार्थ्यं मनसेप्सितम्।
अन्तर्यामिस्वरूपेण तत्सर्वं देवपूजिते॥ २२

तथापि मम भाग्येन जातं यत्तव दर्शनम्।
ब्रवीमि देवि मे देहि राज्यं मन्वन्तराश्रितम्॥ २३

देव्युवाच

दत्तं मन्वन्तरस्यास्य राज्यं राजन्यसत्तम।
पुत्रा महाबलास्ते च भविष्यन्ति गुणाधिकाः॥ २४
राज्यं निष्कण्टकं भावि मोक्षोऽन्ते चापि निश्चितः।

हे राजन्य! इसी प्रकार आप भी महेश्वरी जगदम्बाकी सम्यक् आराधना करके थोड़े ही समयमें महान् समृद्धि प्राप्त कर लेंगे॥ १४॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ पुलहसे उपदिष्ट होकर वे अंगपुत्र चाक्षुष मनु तप करनेके लिये विरजानदीके तटपर गये॥ १५॥

वे ऐश्वर्यशाली राजा चाक्षुष जीर्ण-शीर्ण पत्तोंके आहारपर रहकर भगवतीके वाग्भव बीजके जपमें निरन्तर रत रहते हुए उग्र तपस्या करने लगे॥ १६॥

वे प्रथम वर्षमें पत्तोंके आहारपर, दूसरे वर्षमें जल पीकर और तीसरे वर्षमें केवल वायुका आहार करते हुए ठूँठ वृक्षकी भाँति अविचल स्थित रहे॥ १७॥

आहार छोड़कर बारह वर्षोंतक वाग्भव बीजका निरन्तर जप करते हुए राजा चाक्षुषकी बुद्धि परम पवित्र हो गयी॥ १८॥

इस प्रकार देवीके उस परम पवित्र मन्त्रका एकान्तमें जप करते हुए उन राजाके समक्ष जगन्माता परमेश्वरी भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। किसीसे भी पराभूत न होनेवाली तेजस्विनी सर्वदेवमयी भगवती प्रसन्न होकर ललितवाणीमें उन अंगपुत्र चाक्षुषसे कहने लगीं—॥ १९-२०॥

देवी बोलीं—हे पृथ्वीपाल! तुमने अपने मनमें जो भी श्रेष्ठ वर सोचा हो, उसे बताओ, तुम्हारे तपसे परम सन्तुष्ट मैं उसे अवश्य दूँगी॥ २१॥

चाक्षुष बोले—हे देवदेवेश्वरि! हे देवपूजिते! मैं जिस मनोवांछित वरके लिये आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ, उसे आप अन्तर्यामी स्वरूपवाली होनेके कारण भलीभाँति जानती हैं, तथापि हे देवि! मेरे सौभाग्यसे यदि आपका दर्शन हो गया है तो मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप मुझे मन्वन्तरसे सम्बन्धित राज्य प्रदान करें॥ २२-२३॥

देवी बोलीं—हे नृपश्रेष्ठ! इस मन्वन्तरका राज्य मैंने तुम्हें दे दिया, तुम्हारे पुत्र भी अत्यधिक गुणवान् तथा महान् बलशाली होंगे। तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा तथा अन्तमें तुम्हें निश्चितरूपसे मोक्ष मिलेगा॥ २४½॥

एवं दत्त्वा परं देवी मनवे वरमुत्तमम्॥ २५

जगामादर्शनं सद्यस्तेन भक्त्या च संस्तुता।
सोऽपि राजा मनुः षष्ठः प्रसादात्तु तदाश्रयात्॥ २६

बभूव मनुमान्योऽसौ सार्वभौमसुखैर्वृतः।
पुत्रास्तस्य बलोद्युक्ताः कार्यभारसहादृताः॥ २७

देवीभक्ताश्च शूराश्च महाबलपराक्रमाः।
अन्यत्र माननीयाश्च महाराज्यसुखास्पदाः॥ २८

एवं च चाक्षुषमनुर्देव्याराधनतः प्रभुः।
बभूव मनुवर्योऽसौ जगामान्ते शिवापदम्॥ २९

इस प्रकार उन चाक्षुष मनुके द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुत वे देवी उन्हें अत्यन्त उत्तम वर प्रदान करके शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ २५½ ॥

वे राजा चाक्षुष मनु भी भगवतीकी कृपासे उनका आश्रय प्राप्तकर छठें मनुके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और वे सम्मान्य मनु सार्वभौम सुखोंसे सम्पन्न हो गये। उनके पुत्र बलवान्, कार्यभार सँभालनेमें दक्ष, देवीभक्त, शूरवीर, महान् बलशाली, पराक्रमी, सर्वत्र समादर प्राप्त करनेवाले तथा महान् राज्यसुखके अधिष्ठान थे॥ २६—२८॥

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे चाक्षुष मनु भगवतीकी आराधनाके प्रभावसे मनुश्रेष्ठके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और अन्तमें देवीके परम धामको प्राप्त हुए॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
देवीचरित्रे चाक्षुषमनुवृत्तवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

~~~

अथ दशमोऽध्यायः

वैवस्वत मनुका भगवतीकी कृपासे मन्वन्तराधिप होना, सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथा

श्रीनारायण उवाच

सप्तमो मनुराख्यातो मनुर्वैवस्वतः प्रभुः।
श्राद्धदेवः परानन्दभोक्ता मान्यस्तु भूभुजाम्॥ १

स च वैवस्वतमनुः परदेव्याः प्रसादतः।
तथा तत्तपसा चैव जातो मन्वन्तराधिपः॥ २

अष्टमो मनुराख्यातः सावर्णिः प्रथितः क्षितौ।
स जन्मान्तर आराध्य देवीं तद्वरलाभतः॥ ३

जातो मन्वन्तरपतिः सर्वराजन्यपूजितः।
महापराक्रमी धीरो देवीभक्तिपरायणः॥ ४

नारद उवाच

कथं जन्मान्तरे तेन मनुनाराधनं कृतम्।
देव्याः पृथिव्युद्भवायास्तन्ममाख्यातुमर्हसि॥ ५

श्रीनारायण उवाच

चैत्रवंशसमुद्भूतो राजा स्वारोचिषेऽन्तरे।
सुरथो नाम विख्यातो महाबलपराक्रमः॥ ६

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा वैवस्वत सातवें मनु कहे गये हैं। समस्त राजाओंमें मान्य तथा दिव्य आनन्दका भोग करनेवाले वे श्राद्धदेव भी कहे जाते हैं॥ १॥

वे वैवस्वत मनु पराम्बा भगवतीकी तपस्या करके उनके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति बन गये॥ २॥

आठवें मनु भूलोकमें सावर्णि नामसे विख्यात हुए। पूर्वजन्ममें देवीकी आराधना करके तथा उनसे वरदान प्राप्तकर वे मन्वन्तरके अधिपति हो गये। वे सभी राजाओंसे पूजित, धीर, महापराक्रमी तथा देवीभक्तिपरायण थे॥ ३-४॥

नारदजी बोले—उन सावर्णि मनुने पूर्वजन्ममें भगवतीकी पार्थिव मूर्तिकी किस प्रकार आराधना की थी; इसे मुझे बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

श्रीनारायण बोले—स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामसे विख्यात एक राजा हुए। वे महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न, गुणग्राही, धनुर्धर, माननीय, श्रेष्ठ, कवि, कुशल, धनसंग्रह
~~~

गुणग्राही धनुर्धारी मान्यः श्रेष्ठः कविः कृती।
धनसंग्रहकर्ता च दाता याचकमण्डले॥ ७

अरीणां मर्दनो मानी सर्वास्त्रकुशलो बली।
तस्यैकदा बभूवुस्ते कोलाविध्वंसिनो नृपाः॥ ८

शत्रवः सैन्यसहिताः परिवार्यैनमूर्जिताः।
रुरुधुर्नगरीं तस्य राज्ञो मानधनस्य हि॥ ९

तदा स सुरथो नाम राजा सैन्यसमावृतः।
निर्ययौ नगरात्स्वीयात्सर्वशत्रुनिबर्हणः॥ १०

तदा स समरे राजा सुरथः शत्रुभिर्जितः।
अमात्यैर्मन्त्रिभिश्चैव तस्य कोशगतं धनम्॥ ११

हृतं सर्वमशेषेण तदातप्यत भूमिपः।
निष्कासितश्च नगरात्स राजा परमद्युतिः॥ १२

जगामाश्वमथारुह्य मृगयामिषतो वनम्।
एकाकी विजनेऽरण्ये बभ्रामोद्भ्रान्तमानसः॥ १३

मुनेः कस्यचिदागत्य स्वाश्रमं शान्तमानसः।
प्रशान्तजन्तुसंयुक्तं मुनिशिष्यगणैर्युतम्॥ १४

उवास कञ्चित्कालं स राजा परमशोभने।
आश्रमे मुनिवर्यस्य दीर्घदृष्टेः सुमेधसः॥ १५

एकदा स महीपालो मुनिं पूजावसानके।
काले गत्वा प्रणम्याशु पप्रच्छ विनयान्वितः॥ १६

मुने मम मनोदुःखं बाधते चाधिसम्भवम्।
ज्ञाततत्त्वस्य भूदेव निष्प्रज्ञस्य च सन्ततम्॥ १७

शत्रुभिर्निर्जितस्यापि हृतराज्यस्य सर्वशः।
तथापि तेषु मनसि ममत्वं जायते स्फुटम्॥ १८

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे मुने।
त्वदनुग्रहमाशासे वद वेदविदां वर॥ १९

करनेवाले तथा याचकोंको दान देनेवाले, शत्रुओंका दमन करनेवाले, मानी, सभी अस्त्रोंके संचालनमें परम दक्ष तथा बलवान् थे॥ ६-७½॥

एक बार कोलाविध्वंसी* नामक क्षत्रिय राजा उनके शत्रु हो गये। महान् बलशाली शत्रुओंने सेनाके साथ चढ़ाई करके सम्मानके धनी उन राजा सुरथकी नगरीको घेर लिया॥ ८-९॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका विनाश करनेवाले वे राजा सुरथ सेनासे सुसज्जित होकर अपने नगरसे निकल पड़े॥ १०॥

वे राजा सुरथ युद्धमें शत्रुओंके द्वारा जीत लिये गये। उनके अमात्यों तथा मन्त्रियोंने अवसर पाकर उनके कोषमें स्थित सम्पूर्ण धनका पूरी तरहसे हरण कर लिया। इससे राजाको महान् सन्ताप हुआ। वे परम तेजस्वी राजा सुरथ नगरसे निष्कासित कर दिये गये॥ ११-१२॥

तत्पश्चात् वे एक अश्वपर चढ़कर आखेट करनेके बहाने वनमें गये और भ्रमित चित्तवाले वे उस निर्जन वनमें अकेले घूमने लगे॥ १३॥

पुनः शान्त स्वभाववाले पशुओंसे युक्त तथा मुनिशिष्योंसे परिपूर्ण [सुमेधा] मुनिके आश्रममें पहुँच जानेपर उनके चित्तको शान्ति मिली॥ १४॥

उन राजाने दूरदृष्टिवाले मुनिवर सुमेधाऋषिके परम रमणीक आश्रममें कुछ कालतक निवास किया॥ १५॥

एक दिन राजा सुरथ मुनिके पूजनकृत्यकी समाप्तिपर शीघ्र उनके पास पहुँचकर प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे पूछने लगे—॥ १६॥

हे मुने! मेरा मन अत्यधिक मानसिक कष्टके कारण सदा सन्तप्त रहता है। हे भूदेव! इस दुःखने सभी तत्त्वोंके ज्ञाता होनेपर भी मुझे अज्ञानी-सा बना दिया है। मैं शत्रुओंसे पराजित कर दिया गया हूँ तथा राज्यच्युत हो गया हूँ, फिर भी उनके प्रति मेरे मनमें बार-बार ममता उत्पन्न हो रही है॥ १७-१८॥

हे मुने! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अब तो मैं एकमात्र आपसे ही अनुग्रहकी आशा करता हूँ। इस कष्टके निवारणका कोई उपाय बताइये॥ १९॥

---

* 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

मुनिरुवाच

आकर्णय महीपाल महाश्चर्यकरं परम्।
देवीमाहात्म्यमतुलं सर्वकामप्रदं परम्॥ २०

जगन्मयी महामाया विष्णुब्रह्महरोद्भवा।
सा बलादपहृत्यैव जन्तूनां मानसानि हि॥ २१

मोहाय प्रतिसंयच्छेदिति जानीहि भूमिप।
सा सृजत्यखिलं विश्वं सा पालयति सर्वदा॥ २२

संहारे हररूपेण संहरत्येव भूमिप।
कामदात्री महामाया कालरात्रिर्दुरत्यया॥ २३

विश्वसंहारिणी काली कमला कमलालया।
तस्यां सर्वं जगज्जातं तस्यां विश्वं प्रतिष्ठितम्॥ २४

लयमेष्यति तस्यां च तस्मात्सैव परात्परा।
तस्या देव्याः प्रसादश्च यस्योपरि भवेन्नृप।
स एव मोहमत्येति नान्यथा धरणीपते॥ २५

मुनि बोले—हे राजन्! आप अत्यन्त विस्मयकारी, अनुपम तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्रेष्ठ देवी-माहात्म्यका श्रवण कीजिये॥ २०॥

वे विश्वमयी महामाया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। वे ही प्राणियोंके मनको बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं; हे राजन्! इस रहस्यको आप भलीभाँति जान लीजिये। हे पृथ्वीपते! वे ही समग्र विश्वका सृजन करती हैं, सर्वदा पालन करती हैं तथा अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करती हैं। वे महामाया सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली, विश्वका संहार करनेवाली तथा दुर्धर्ष कालरात्रिरूपा साक्षात् काली हैं और वे ही कमल-निवासिनी महालक्ष्मी हैं। यह जगत् उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित भी है और अन्तमें उन्हींमें विलीन भी हो जायगा, अतएव वे भगवती परात्परा हैं। हे राजन्! उन भगवतीकी कृपा जिसके ऊपर हो जाती है, वही इस मोहजालसे मुक्त होता है; हे भूपते! इसमें सन्देह नहीं है॥ २१—२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
सुरथनृपतिवृत्तवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथाके प्रसंगमें मधु-कैटभकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुद्वारा उनके वधका वर्णन

राजोवाच

का सा देवी त्वया प्रोक्ता ब्रूहि कालविदां वर।
का मोहयति सत्त्वानि कारणं किं भवेद् द्विज॥ १

कस्मादुत्पद्यते देवी किंरूपा सा किमात्मिका।
सर्वमाख्याहि भूदेव कृपया मम सर्वतः॥ २

राजा बोले—हे कालज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ! आपने जिन देवीका वर्णन किया है, वे कौन हैं, वे प्राणियोंको क्यों मोहित करती हैं और हे द्विज! इसमें क्या कारण है? वे देवी किसलिये आविर्भूत होती हैं, उनका स्वरूप क्या है तथा उनका स्वभाव कैसा है? हे भूदेव! इन सभी बातोंको कृपा करके सम्यक् प्रकारसे मुझे बताइये॥ १-२॥

मुनिरुवाच

राजन् देव्याः स्वरूपं ते वर्णयामि निशामय।
यथा चोत्पतिता देवी येन वा सा जगन्मयी॥ ३

मुनि बोले—हे राजन्! वे जगन्मयी भगवती जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, जिनसे उत्पन्न हुईं तथा उन देवीका जैसा स्वरूप है—इन सबका मैं आपसे वर्णन कर रहा हूँ; ध्यानसे सुनिये॥ ३॥

यदा नारायणो देवो विश्वं संहृत्य योगराट्।
आस्तीर्य शेषं भगवान् समुद्रे निद्रितोऽभवत्॥ ४

तदा प्रस्वापवशगो देवदेवो जनार्दनः।
तत्कर्णमलसञ्जातौ दानवौ मधुकैटभौ॥ ५

ब्रह्माणं हन्तुमुद्युक्तौ दानवौ घोररूपिणौ।
तदा कमलजो देवो दृष्ट्वा तौ मधुकैटभौ॥ ६

निद्रितं देवदेवेशं चिन्तामाप दुरत्ययाम्।
निद्रितो भगवानीशो दानवौ च दुरासदौ॥ ७

किं करोमि क्व गच्छामि कथं शर्म लभे ह्यहम्।
एवं चिन्तयतस्तस्य पद्मयोनेर्महात्मनः॥ ८

बुद्धिः प्रादुरभूत्तात तदा कार्यप्रसाधिनी।
यस्या वशं गतो देवो निद्रितो भगवान् हरिः॥ ९

तां देवीं शरणं यामि निद्रां सर्वप्रसूतिकाम्।

ब्रह्मोवाच

देवि देवि जगद्धात्रि भक्ताभीष्टफलप्रदे॥ १०

जगन्माये महामाये समुद्रशयने शिवे।
त्वदाज्ञावशगाः सर्वे स्वस्वकार्यविधायिनः॥ ११

कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिर्मदोत्कटा।
व्यापिनी वशगा मान्या महानन्दैकशेवधिः॥ १२

महनीया महाराध्या माया मधुमती मही।
परापराणां सर्वेषां परमा त्वं प्रकीर्तिता॥ १३

लज्जा पुष्टिः क्षमा कीर्तिः कान्तिः कारुण्यविग्रहा।
कमनीया जगद्वन्द्या जाग्रदादिस्वरूपिणी॥ १४

परमा परमेशानी परानन्दपरायणा।
एकाप्येकस्वरूपा च सद्वितीया द्वयात्मिका॥ १५

[कल्पके अन्तमें] जब योगराट् भगवान् नारायण विश्वका संहार करके समुद्रके भीतर शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें सोये हुए थे। तब उन देवदेव भगवान् जनार्दनके निद्राके वशीभूत हो जानेपर उनके कानोंके मैलसे मधु तथा कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए। भयंकर आकृतिवाले वे दोनों दानव ब्रह्माजीको मारनेको उद्यत हो गये॥ ४-५½॥

तब पद्मयोनि ब्रह्मदेव उन मधु-कैटभ दानवोंको तथा देवदेव नारायणको निद्रित देखकर घोर चिन्तामें पड़ गये॥ ६½॥

भगवान् विष्णु तो निद्राकी अवस्थामें हैं और ये दोनों दानव दुर्जेय हैं। ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे तात! इस प्रकार चिन्तन कर रहे कमलयोनि महात्मा ब्रह्माके मनमें कार्य सिद्ध करनेवाली यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि निद्रित अवस्थावाले ये भगवान् विष्णुदेव इस समय जिनकी अधीनताको प्राप्त हैं, सबको उत्पन्न करनेवाली उन्हीं निद्रा देवीकी शरणमें मैं भी चला जाऊँ॥ ७—९½॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे जगत्का पालन करनेवाली देवि! हे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली! हे जगन्माये! हे महामाये! हे समुद्रमें शयन करनेवाली! हे शिवे! आपकी आज्ञाके अधीन होकर ही सभी अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ १०-११॥

आप ही कालरात्रि हैं, आप ही महारात्रि हैं तथा आप ही भयंकर मोहरात्रि हैं। आप सर्वव्यापिनी, भक्तोंके वशीभूत, सम्माननीया तथा महान् आनन्दकी एकमात्र सीमा हैं। आप ही महनीया, महाराध्या, माया, मधुमती, मही तथा पर-अपर सभीमें श्रेष्ठतम कही गयी हैं॥ १२-१३॥

आप लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति, करुणाकी प्रतिमूर्ति, कमनीया, विश्ववन्द्या तथा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिके स्वरूपवाली हैं॥ १४॥

आप ही परमा, परमेशानी तथा परमानन्दपरायणा हैं। आप ही एका (अद्वितीया) हैं, अतएव आप प्रथमा हैं। आप ही सद्वितीया (मायासहित) होनेके कारण द्वितीया भी हैं। आप ही धर्म-अर्थ-काम—इन

त्रयी त्रिवर्गनिलया तुर्या तुर्यपदात्मिका।
पञ्चमी पञ्चभूतेशी षष्ठी षष्ठेश्वरीति च॥ १६

सप्तमी सप्तवारेशी सप्तसप्तवरप्रदा।
अष्टमी वसुनाथा च नवग्रहमयीश्वरी॥ १७

नवरागकला रम्या नवसंख्या नवेश्वरी।
दशमी दशदिक्पूज्या दशाशाव्यापिनी रमा॥ १८

एकादशात्मिका चैकादशरुद्रनिषेविता।
एकादशीतिथिप्रीता एकादशगणाधिपा॥ १९

द्वादशी द्वादशभुजा द्वादशादित्यजन्मभूः।
त्रयोदशात्मिका देवी त्रयोदशगणप्रिया॥ २०

त्रयोदशाभिधा भिन्ना विश्वेदेवाधिदेवता।
चतुर्दशेन्द्रवरदा चतुर्दशमनुप्रसूः॥ २१

पञ्चाधिकदशी वेद्या पञ्चाधिकदशी तिथिः।
षोडशी षोडशभुजा षोडशेन्दुकलामयी॥ २२

षोडशात्मकचन्द्रांशुव्याप्तदिव्यकलेवरा।
एवंरूपासि देवेशि निर्गुणे तामसोदये॥ २३

त्वया गृहीतो भगवान्देवदेवो रमापतिः।
एतौ दुरासदौ दैत्यौ विक्रान्तौ मधुकैटभौ॥ २४

एतयोश्च वधार्थाय देवेशं प्रतिबोधय।

तीनोंका धाम होनेसे त्रयी अर्थात् तृतीया हैं। आप तुर्या अर्थात् सबसे परे होनेके कारण चतुर्थी भी हैं। आप पंचमहाभूतों (पृथ्वी, तेज, जल, वायु, आकाश)-की ईश्वरी होनेके कारण पंचमी और काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर—इन छ:की अधिष्ठात्री होनेके कारण षष्ठी हैं॥ १५-१६॥

आप रवि आदि सातों वारोंकी ईश्वरी होनेके कारण तथा सात-सात वर प्रदान करनेके कारण सप्तमी हैं तथा आठ वसुओंकी स्वामिनी होनेके कारण अष्टमी हैं। आप ही नवग्रहमयी ईश्वरी, रम्य नौ रागोंकी कला तथा नवेश्वरी होनेके कारण नवमी हैं। आप दसों दिशाओंमें व्याप्त रमारूपिणी हैं तथा दसों दिशाओंमें पूजित होती हैं, अतएव दशमी कही जाती हैं॥ १७-१८॥

आप एकादश रुद्रद्वारा आराधित हैं, एकादशी तिथिके प्रति आपकी प्रीति है तथा आप ग्यारह गणोंकी अधीश्वरी हैं; अत: आप एकादशी हैं॥ १९॥

आप बारह भुजाओंवाली हैं तथा बारह आदित्योंको जन्म देनेवाली हैं, अत: द्वादशी हैं। आप मलमास-सहित तेरह मासस्वरूपा हैं, तेरह गणोंकी प्रिया हैं और विश्वेदेवोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अत: आप त्रयोदशी नामसे प्रसिद्ध हैं। आप चौदह इन्द्रोंको वर प्रदान करनेवाली तथा चौदह मनुओंको उत्पन्न करनेवाली हैं, अतएव चतुर्दशी हैं॥ २०-२१॥

आप पंचदशी अर्थात् कामराज-विद्यारूपा त्रिपुर-सुन्दरीरूपसे जानी जाती हैं तथा आप पंचदशी तिथि-रूपिणी हैं। सोलह भुजाओंवाली, चन्द्रमाकी सोलहवीं कलासे विभूषित तथा चन्द्रमाकी षोडश कलारूपी किरणोंसे व्याप्त दिव्य विग्रहवाली होनेके कारण आप षोडशी हैं। हे तमोगुणसे युक्त होकर प्रकट होनेवाली! हे निर्गुणे! हे देवेशि! आप इस प्रकारके विविध रूपवाली हैं॥ २२-२३॥

देवाधिदेव लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुको आपने निद्राके वशवर्ती कर रखा है और ये दोनों मधु-कैटभ दानव अत्यन्त पराक्रमी तथा दुर्जेय हैं; अतएव आप इन दोनोंका संहार करनेके लिये देवेश्वर विष्णुको जगाइये॥ २४½॥

मुनिरुवाच

एवं स्तुता भगवती तामसी भगवत्प्रिया॥ २५

देवदेवं तदा त्यक्त्वा मोहयामास दानवौ।
तदैव भगवान्विष्णुः परमात्मा जगत्पतिः॥ २६

प्रबोधमाप देवेशो ददृशे दानवोत्तमौ।
तदा तौ दानवौ घोरौ दृष्ट्वा तं मधुसूदनम्॥ २७

युद्धाय कृतसङ्कल्पौ जग्मतुः सन्निधिं हरेः।
युयुधे च ततस्ताभ्यां भगवान्मधुसूदनः॥ २८

पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तौ तदातिबलोन्मत्तौ जगन्मायाविमोहितौ॥ २९

व्रियतां वर इत्येवमूचतुः परमेश्वरम्।
एवं तयोर्वचः श्रुत्वा भगवानादिपूरुषः॥ ३०

वव्रे वध्यावुभौ मेऽद्य भवेतामिति निश्चितम्।
तौ तदातिबलौ देवं पुनरेवोचतुर्हरिम्॥ ३१

आवां जहि न यत्रोर्वी पयसा च परिप्लुता।
तथेत्युक्त्वा भगवता गदाशङ्खभृता नृप॥ ३२

कृत्वा चक्रेण वै छिन्ने जघने शिरसी तयोः।
एवं देवी समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता नृप॥ ३३

महाकाली महाराज सर्वयोगेश्वरेश्वरी।
महालक्ष्म्यास्तथोत्पत्तिं निशामय महीपते॥ ३४

मुनि बोले—[ब्रह्माजीके] इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान्‌को प्रिय तमोगुणमयी भगवतीने देवदेव विष्णुके शरीरको छोड़कर उन दोनों दानवोंको मोहित कर दिया॥ २५½ ॥

उसी समय जगन्नाथ, परमात्मा, परमेश्वर भगवान् विष्णु जग गये और उन्होंने दानवोंमें श्रेष्ठ उन दोनों मधु-कैटभको देखा॥ २६½ ॥

तभी उन दोनों भयंकर दानवोंने मधुसूदन विष्णुको देखकर युद्ध करनेका निश्चय किया और वे भगवान्‌के पास पहुँच गये॥ २७½ ॥

तब सर्वव्यापी भगवान् मधुसूदन उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध करते रहे॥ २८½ ॥

तत्पश्चात् जगन्मायाके द्वारा विमोहित किये गये वे दोनों अत्यधिक बलसे उन्मत्त दानव परमेश्वर विष्णुसे कहने लगे—आप [हम दोनोंसे] वरदान माँग लीजिये॥ २९½ ॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर आदिपुरुष भगवान् विष्णुने यह वर माँगा—तुम दोनों मेरे द्वारा आज ही मार दिये जाओ॥ ३०½ ॥

इसके बाद अत्यन्त बलशाली उन दोनों दानवोंने भगवान् श्रीहरिसे पुनः कहा—जिस स्थानपर पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो, वहींपर आप हमारा वध कीजिये॥ ३१½ ॥

हे राजन्! 'वैसा ही होगा'—यह कहकर गदा तथा शंख धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने उनके मस्तकोंको अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट दिया॥ ३२½ ॥

हे नृप! हे महाराज! इस प्रकार ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर सभी योगेश्वरोंकी ईश्वरी महाकाली भगवती प्रकट हुई थीं। हे महीपते! अब आप महालक्ष्मीकी उत्पत्तिके विषयमें सुनिये॥ ३३-३४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीमाहात्म्ये
मधुकैटभवधवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

***

अथ द्वादशोऽध्यायः

समस्त देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका प्राकट्य और उनके द्वारा महिषासुरका वध, शुम्भ-निशुम्भका अत्याचार और देवीद्वारा चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध

मुनिरुवाच

महिषीगर्भसम्भूतो महाबलपराक्रमः।
देवान्सर्वान्पराजित्य महिषोऽभूज्जगत्प्रभुः॥ १

सर्वेषां लोकपालानामधिकारान्महासुरः।
बलान्निर्जित्य बुभुजे त्रैलोक्यैश्वर्यमद्भुतम्॥ २

ततः पराजिताः सर्वे देवाः स्वर्गपरिच्युताः।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य ते जग्मुर्लोकमुत्तमम्॥ ३

यत्रोत्तमौ देवदेवौ संस्थितौ शङ्कराच्युतौ।
वृत्तान्तं कथयामासुर्महिषस्य दुरात्मनः॥ ४

देवानां चैव सर्वेषां स्थानानि तरसासुरः।
विनिर्जित्य स्वयं भुङ्क्ते बलवीर्यमदोद्धतः॥ ५

महिषासुरनामासौ दुष्टदैत्योऽमरेश्वरौ।
वधोपायश्च तस्याशु चिन्त्यतामसुरार्दनौ॥ ६

एवं श्रुत्वा स भगवान्देवानामार्तियुग्वचः।
चकार कोपं सुबहुं तथा शङ्करपद्मजौ॥ ७

एवं कोपयुतस्यास्य हरेरास्यान्महीपते।
तेजः प्रादुरभूद्दिव्यं सहस्रार्कसमद्युति॥ ८

अथानुक्रमतस्तेजः सर्वेषां त्रिदिवौकसाम्।
शरीरादुद्भवं प्राप हर्षयद्विबुधाधिपान्॥ ९

यदभूच्छम्भुजं तेजो मुखमस्योदपद्यत।
केशा बभूवुर्याम्येन वैष्णवेन च बाहवः॥ १०

सौम्येन च स्तनौ जातौ माहेन्द्रेण च मध्यमः।
वारुणेन ततो भूप जङ्घोरू सम्बभूवतुः॥ ११

नितम्बौ तेजसा भूमेः पादौ ब्राह्मेण तेजसा।
पादाङ्गुल्यो भानवेन वासवेन कराङ्गुलीः॥ १२

मुनि बोले—[एक बार] महिषीके गर्भसे उत्पन्न महान् बलशाली तथा पराक्रमी महिषासुर सभी देवताओंको पराजित करके सम्पूर्ण जगत्का स्वामी हो गया॥ १॥

वह महान् असुर समस्त लोकपालोंके अधिकारोंको बलपूर्वक छीनकर तीनों लोकोंके अद्भुत ऐश्वर्यका भोग करने लगा॥ २॥

सभी देवता उससे पराजित होकर स्वर्गसे निष्कासित कर दिये गये। तत्पश्चात् वे ब्रह्माजीको आगे करके उस उत्तम लोकमें पहुँचे, जहाँ देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा शिव विराजमान थे। वे उस दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त बताने लगे—॥ ३-४॥

हे देवेश्वरो! बल, वीर्य तथा मदसे उन्मत्त वह महिषासुर नामक दुष्ट दैत्य सभी देवताओंके लोकोंको शीघ्र जीतकर उनपर स्वयं शासन कर रहा है। हे असुरोंका नाश करनेवाले! आप दोनों शीघ्र ही उस महिषासुरके वधका कोई उपाय सोचिये॥ ५-६॥

तब देवताओंकी यह दुःखभरी वाणी सुनकर वे भगवान् विष्णु, शिव तथा पद्मयोनि ब्रह्मा अत्यधिक कुपित हो उठे॥ ७॥

हे महीपते! इस प्रकार कुपित उन भगवान् विष्णुके मुखसे हजारों सूर्योंकी कान्तिके समान दिव्य तेज उत्पन्न हुआ॥ ८॥

इसके पश्चात् क्रमसे इन्द्र आदि सभी देवताओंके शरीरसे उन देवाधिपोंको प्रसन्न करता हुआ तेज निकला॥ ९॥ शिवके शरीरसे जो तेज निकला, उससे मुख बना, यमराजके तेजसे केश बने तथा विष्णुके तेजसे भुजाएँ बनीं॥ १०॥

हे भूप! चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तन हुए। इन्द्रके तेजसे कटिप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और ऊरु उत्पन्न हुए। पृथिवीके तेजसे दोनों नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अँगुलियाँ और वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ निर्मित हुईं॥ ११-१२॥

कौबेरेण तथा नासा दन्ताः सञ्जज्ञिरे तदा।
प्राजापत्येनोत्तमेन तेजसा वसुधाधिप॥ १३

पावकेन च सञ्जातं लोचनत्रितयं शुभम्।
सान्ध्येन तेजसा जाते भृकुट्यौ तेजसां निधी॥ १४

कर्णौ वायव्यतो जातौ तेजसो मनुजाधिप।
सर्वेषां तेजसा देवी जाता महिषमर्दिनी॥ १५

शूलं ददौ शिवो विष्णुश्चक्रं शङ्खं च पाशभृत्।
हुताशनो ददौ शक्तिं मारुतश्चापसायकौ॥ १६

वज्रं महेन्द्रः प्रददौ घण्टां चैरावताद् गजात्।
कालदण्डं यमो ब्रह्मा चाक्षमालाकमण्डलू॥ १७

दिवाकरो रश्मिमालां रोमकूपेषु सन्ददौ।
कालः खड्गं तथा चर्म निर्मलं वसुधाधिप॥ १८

समुद्रो निर्मलं हारमजरे चाम्बरे नृप।
चूडामणिं कुण्डले च कटकानि तथाङ्गदे॥ १९

अर्धचन्द्रं निर्मलं च नूपुराणि तथा ददौ।
ग्रैवेयकं भूषणं च तस्यै देव्यै मुदान्वितः॥ २०

विश्वकर्मा चोर्मिकाश्च ददौ तस्यै धरापते।
हिमवान्वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च॥ २१

पानपात्रं सुरापूर्णं ददौ तस्यै धनाधिपः।
शेषश्च भगवान्देवो नागहारं ददौ विभुः॥ २२

अन्यैरशेषविबुधैर्मानिता सा जगन्मयी।
तां तुष्टुवुर्महादेवीं देवा महिषपीडिताः॥ २३

नानास्तोत्रैर्महेशानीं जगदुद्भवकारिणीम्।
तेषां निशम्य देवेशी स्तोत्रं विबुधपूजिता॥ २४

महिषस्य वधार्थाय महानादं चकार ह।
तेन नादेन महिषश्चकितोऽभूद्धरापते॥ २५

आससाद जगद्धात्रीं सर्वसैन्यसमावृतः।

हे पृथ्वीपते! कुबेरके तेजसे नासिका और प्रजापतिके उत्कृष्ट तेजसे दाँत उत्पन्न हुए। अग्निके तेजसे शुभकारक तीनों नेत्र उत्पन्न हुए, सन्ध्याके तेजसे कान्तिकी निधिस्वरूपा दोनों भृकुटियाँ उत्पन्न हुईं और वायुके तेजसे दोनों कान उत्पन्न हुए। हे नरेश! इस प्रकार सभी देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनी प्रकट हुईं॥ १३—१५॥

शिवजीने उन्हें अपना शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने शंख, अग्निने शक्ति और वायुने धनुष-बाण प्रदान किये॥ १६॥

इन्द्रने वज्र तथा ऐरावत हाथीका घण्टा, यमराजने कालदण्ड और ब्रह्माने अक्षमाला तथा कमण्डलु प्रदान किये॥ १७॥

हे पृथ्वीपते! सूर्यने देवीके रोमछिद्रोंमें अपनी रश्मिमालाओंका संचार किया। कालने देवीको तलवार तथा स्वच्छ ढाल दी॥ १८॥

हे राजन्! समुद्रने स्वच्छ हार, कभी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र, चूडामणि, कुण्डल, कटक, बाजूबन्द, विमल अर्धचन्द्र, नूपुर तथा गलेमें धारण किया जानेवाला आभूषण अति प्रसन्न होकर उन भगवतीको प्रदान किये॥ १९-२०॥

हे धरणीपते! विश्वकर्माने उन भगवतीको अँगूठियाँ दीं। हिमालयने उन्हें वाहनके रूपमें सिंह तथा विविध प्रकारके रत्न प्रदान किये। धनपति कुबेरने उन्हें सुरासे पूर्ण एक पानपात्र दिया तथा सर्वव्यापी भगवान् शेषनागने उन्हें नागहार प्रदान किया॥ २१-२२॥

इसी प्रकार अन्य समस्त देवताओंने जगन्मयी भगवतीको सम्मानित किया। इसके बाद महिषासुरद्वारा पीडित देवताओंने जगत्की उत्पत्तिकी कारणस्वरूपिणी उन महेश्वरी महाभगवतीकी अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की॥ २३½॥

उन देवताओंकी स्तुति सुनकर देवपूजित सुरेश्वरी महिषासुरके वधके लिये उच्च स्वरसे गर्जना करने लगीं॥ २४½॥

हे भूपते! महिषासुर उस नादसे चकित हो उठा और अपने सभी सैनिकोंको साथमें लेकर जगद्धात्री भगवतीके पास पहुँचा॥ २५½॥

ततः स युयुधे देव्या महिषाख्यो महासुरः॥ २६

शस्त्रास्त्रैर्बहुधा क्षिप्तैः पूरयन्नम्बरान्तरम्।
चिक्षुरो ग्रामणीः सेनापतिर्दुर्धरदुर्मुखौ॥ २७

बाष्कलस्ताम्रकश्चैव बिडालवदनोऽपरः।
एतैश्चान्यैरसंख्यातैः संग्रामान्तकसन्निभैः॥ २८

योधैः परिवृतो वीरो महिषो दानवोत्तमः।
ततः सा कोपताम्राक्षी देवी लोकविमोहिनी॥ २९

जघान योधान्समरे देवी महिषमाश्रितान्।
ततस्तेषु हतेष्वेव स दैत्यो रोषमूर्च्छितः॥ ३०

आससाद तदा देवीं तूर्णं मायाविशारदः।
रूपान्तराणि सम्भेजे मायया दानवेश्वरः॥ ३१

तानि तान्यस्य रूपाणि नाशयामास सा तदा।
ततोऽन्ते माहिषं रूपं बिभ्राणममरार्दनम्॥ ३२

पाशेन बद्ध्वा सुदृढं छित्त्वा खड्गेन तच्छिरः।
पातयामास महिषं देवी देवगणान्तकम्॥ ३३

हाहाकृतं ततः शेषं सैन्यं भग्नं दिशो दश।
तुष्टुवुर्देवदेवेशीं सर्वे देवाः प्रमोदिताः॥ ३४

एवं लक्ष्मीः समुत्पन्ना महिषासुरमर्दिनी।
राजञ्छृणु सरस्वत्याः प्रादुर्भावो यथाभवत्॥ ३५

एकदा शुम्भनामासीद्दैत्यो मदबलोत्कटः।
निशुम्भश्चापि तद्भ्राता महाबलपराक्रमः॥ ३६

तेन सम्पीडिता देवाः सर्वे भ्रष्टश्रियो नृप।
हिमवन्तमथासाद्य देवीं तुष्टुवुरादरात्॥ ३७

तत्पश्चात् महिष नामक वह प्रबल दानव अपने द्वारा छोड़े गये विविध शस्त्रास्त्रोंसे सम्पूर्ण आकाश-मण्डलको आच्छादित करते हुए भगवतीके साथ युद्ध करने लगा॥ २६½॥

प्रधान सेनापति चिक्षुरके अतिरिक्त दुर्धर, दुर्मुख, बाष्कल, ताम्र तथा विडालवदन—इन सभीसे तथा संग्राममें यमराजकी भाँति भयंकर अन्य असंख्य योद्धाओंसे वह दानवश्रेष्ठ पराक्रमी महिषासुर घिरा हुआ था॥ २७-२८½॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखोंवाली उन जगन्मोहिनी भगवतीने युद्धभूमिमें महिषासुरके अधीनस्थ मुख्य योद्धाओंको मार डाला॥ २९½॥

उन योद्धाओंके मारे जानेके अनन्तर परम मायावी वह महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित होकर देवीके समक्ष शीघ्रतासे आ खड़ा हुआ॥ ३०½॥

वह दानवेन्द्र महिष अपनी मायाके प्रभावसे अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता था; किंतु वे देवी उसके उन सभी रूपोंको नष्ट कर डालती थीं॥ ३१½॥

तब अन्तमें महिषका रूप धारण किये हुए उस देवपीडक तथा देवगणोंके लिये यमराजतुल्य महिषासुरको पाशमें दृढ़तापूर्वक बाँधकर भगवतीने अपने खड्गसे उसका सिर काटकर [पृथ्वीपर] गिरा दिया॥ ३२-३३॥

इससे [दानवी सेनामें] हाहाकार मच गया और उसकी शेष सेना दसों दिशाओंमें भाग गयी। समस्त देवगण इससे अति प्रसन्न होकर देवदेवेश्वरी भगवतीकी स्तुति करने लगे॥ ३४॥

महिषासुरका वध करनेवाली देवी महालक्ष्मीका इस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ था। हे राजन्! जिस प्रकार सरस्वतीका आविर्भाव हुआ; अब आप वह वृत्तान्त सुनिये॥ ३५॥

एक समयकी बात है—अपने मद तथा बलका अहंकार करनेवाला शुम्भ नामक दैत्य था। महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न निशुम्भ नामक उसका एक भाई भी था॥ ३६॥

हे नृप! उस शुम्भसे सन्तापित सभी देवता राज्यविहीन होकर हिमालयपर्वतपर जाकर श्रद्धापूर्वक भगवतीका स्तवन करने लगे॥ ३७॥

देवा ऊचुः

जय देवेशि भक्तानामार्तिनाशनकोविदे।
दानवान्तकरूपे त्वमजरामरणेऽनघे॥ ३८

देवेशि भक्तिसुलभे महाबलपराक्रमे।
विष्णुशङ्करब्रह्मादिस्वरूपेऽनन्तविक्रमे ॥ ३९

सृष्टिस्थितिकरे नाशकारिके कान्तिदायिनि।
महाताण्डवसुप्रीते मोददायिनि माधवि॥ ४०

प्रसीद देवदेवेशि प्रसीद करुणानिधे।
निशुम्भशुम्भसम्भूतभयापाराम्बुवारिधे ॥ ४१

उद्धरास्मान् प्रपन्नार्तिनाशिके शरणागतान्।
एवं संस्तुवतां तेषां त्रिदशानां धरापते॥ ४२

प्रसन्ना गिरिजा प्राह ब्रूत स्तवनकारणम्।
एतस्मिन्नन्तरे यस्याः कोशरूपात्समुत्थिता॥ ४३

कौशिकी सा जगत्पूज्या देवान्प्रीत्येदमब्रवीत्।
प्रसन्नाहं सुरश्रेष्ठाः स्तवेनोत्तमरूपिणी॥ ४४

व्रियतां वर इत्युक्ते देवाः संवव्रिरे वरम्।
शुम्भनामावरो भ्राता निशुम्भस्तस्य विश्रुतः॥ ४५

त्रैलोक्यमोजसाक्रान्तं दैत्येन बलशालिना।
तद्वधश्चिन्त्यतां देवि दुरात्मा दानवेश्वरः॥ ४६

बाधते सततं देवि तिरस्कृत्य निजौजसा।

देव्युवाच

देवशत्रुं पातयिष्ये निशुम्भं शुम्भमेव च॥ ४७

स्वस्थास्तिष्ठत भद्रं वः कण्टकं नाशयामि वः।

देवता बोले—हे भक्तोंका कष्ट दूर करनेमें परम दक्ष देवेश्वरि! हे दानवोंके लिये यमराजस्वरूपिणि! हे जरा-मरणसे रहित! हे अनघे! आपकी जय हो॥ ३८॥

हे देवेश्वरि! हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली! हे महान् बल तथा पराक्रमवाली! हे ब्रह्मा-विष्णु-महेशस्वरूपिणि! हे अनन्त शौर्यशालिनि! हे सृजन तथा पालन करनेवाली! हे संहार करनेवाली! हे कान्तिप्रदे! हे महाताण्डवमें प्रीति रखनेवाली! हे मोददायिके! हे माधवि! हे देवदेवेश्वरि! आप हमपर प्रसन्न होइये। हे करुणानिधे! प्रसन्न होइये। हे शरणमें आये हुए प्राणियोंके दुःखका नाश करनेवाली! शुम्भ तथा निशुम्भसे उत्पन्न महान् भयरूपी अपार समुद्रसे हम शरणागत देवताओंका उद्धार कीजिये॥ ३९—४१½ ॥

हे महाराज सुरथ! इस प्रकार उन देवताओंके स्तुति करनेपर हिमाद्रितनया पार्वती प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—आपलोग इस स्तुतिका उद्देश्य बताइये॥ ४२½ ॥

इसी बीच उनके शरीररूपी कोशसे जगद्वन्द्या कौशिकीदेवी प्रकट हुईं और वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक देवताओंसे कहने लगीं॥ ४३½ ॥

हे सुरश्रेष्ठ! उत्तमस्वरूपिणी मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, अतः आपलोग वर माँग लीजिये। देवीके ऐसा कहनेपर देवताओंने इस प्रकार वर माँगा—शुम्भ नामक एक प्रसिद्ध दानव है तथा निशुम्भ नामवाला उसका एक लघु भ्राता भी है। उस बलवान् दैत्यने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंको आतंकित कर रखा है। हे देवि! उसके वधका कोई उपाय सोचिये; क्योंकि हे भगवति! वह कुत्सित आत्मावाला दानवेन्द्र शुम्भ अपने बलसे हमें अपमानित करके सदा पीडित करता रहता है॥ ४४—४६½ ॥

श्रीदेवी बोलीं—मैं देवताओंके शत्रु शुम्भ तथा निशुम्भको मार गिराऊँगी। आपलोग निश्चिन्त रहिये। आपलोगोंका कल्याण होगा। मैं आपलोगोंके कंटकरूप दैत्यका विनाश अभी करती हूँ॥ ४७½ ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशी देवान्सेन्द्रान्दयामयी॥ ४८

जगामादर्शनं सद्यो मिषतां त्रिदिवौकसाम्।
देवाः समागता हृष्टाः सुवर्णाद्रिगुहां शुभाम्॥ ४९

चण्डमुण्डौ पश्यतःस्म भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः।
दृष्ट्वा तां चारुसर्वाङ्गीं देवीं लोकविमोहिनीम्॥ ५०

कथयामासतू राज्ञे भृत्यौ तौ चण्डमुण्डकौ।
देव सर्वासुरश्रेष्ठ रत्नभोगार्ह मानद॥ ५१

अपूर्वा कामिनी दृष्टा चावाभ्यां रिपुमर्दन।
तस्याः सम्भोगयोग्यत्वमस्त्येव तव साम्प्रतम्॥ ५२

तां समानय चार्वङ्गीं भुङ्क्ष्व सौख्यसमन्वितः।
तादृशी नासुरी नारी न गन्धर्वी न दानवी॥ ५३

न मानवी नापि देवी यादृशी सा मनोहरा।
एवं भृत्यवचः श्रुत्वा शुम्भः परबलार्दनः॥ ५४

दूतं सम्प्रेषयामास सुग्रीवं नाम दानवम्।
स दूतस्त्वरितं गत्वा देव्याः सविधमादरात्॥ ५५

वृत्तान्तं कथयामास देव्यै शुम्भस्य यद्वचः।
देवि शुम्भासुरो नाम त्रैलोक्यविजयी प्रभुः॥ ५६

सर्वेषां रत्नवस्तूनां भोक्ता मान्यो दिवौकसाम्।
तदुक्तं शृणु मे देवि रत्नभोक्ताहमव्ययः॥ ५७

त्वं चापि रत्नभूतासि भज मां चारुलोचने।
सर्वेषु यानि रत्नानि देवासुरनरेषु च॥ ५८
तानि मय्येव सुभगे भज मां कामजै रसैः।

इन्द्रसहित सभी देवताओंसे ऐसा कहकर करुणामयी देवदेवेश्वरी उन देवताओंके देखते-देखते शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ ४८½ ॥

तत्पश्चात् सभी देवता हर्षित होकर सुमेरुपर्वतकी सुन्दर कन्दरामें चले गये। इधर, शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक दो सेवकोंने [उन देवीको] देख लिया॥ ४९½ ॥

तब उन दोनों चण्ड-मुण्ड नामवाले दानव-सेवकोंने सम्पूर्ण लोकको मोहित करनेवाली सर्वांगसुन्दरी भगवतीको देखकर अपने राजा शुम्भके पास आकर उससे कहा॥ ५० ॥

हे देव! हे समस्त असुरोंमें श्रेष्ठ! हे रत्नोंका भोग करनेयोग्य! हे मान प्रदान करनेवाले! हे शत्रुदलन! हम दोनोंने अभी-अभी एक अद्वितीय कामिनी देखी है। उसके साथ भोग करनेयोग्य एकमात्र आप ही हैं। अतएव इसी समय सुन्दर अंगोंवाली उस स्त्रीको ले आइये और सुखपूर्वक उसका भोग कीजिये। जैसी मनोहर वह स्त्री है, वैसी न कोई असुर-नारी है, न गन्धर्व-नारी, न दानव-नारी, न मानव-नारी और न तो कोई देवनारी ही है॥ ५१—५३½ ॥

इस प्रकार अपने सेवककी बात सुनकर शत्रुके बलका मर्दन करनेवाले शुम्भने सुग्रीव नामक दानवको दूतके रूपमें भेजा॥ ५४½ ॥

उस दूतने तत्काल देवीके पास पहुँचकर शुम्भकी जो बात थी, उस वृत्तान्तको आदरपूर्वक यथाविधि देवीसे कह दिया॥ ५५½ ॥

हे देवि! शुम्भ नामक असुर तीनों लोकोंके विजेता राजा हैं। सभी रत्न-सामग्रियोंका भोग करनेवाले उस शुम्भका सभी देवता भी सम्मान करते हैं॥ ५६½ ॥

उन्होंने जो कहा है, उसे मुझसे सुनिये—हे देवि! मैं नित्य सभी रत्नोंका उपभोग करनेवाला हूँ, तुम भी रत्न-स्वरूपा हो, अतएव हे सुलोचने! मेरा वरण कर लो। समस्त देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके पास जो-जो रत्न थे, वे सब इस समय मेरे पास हैं। अतएव हे सुभगे! कामजन्य रसोंके द्वारा तुम मेरे साथ भोग करो॥ ५७-५८½ ॥

देव्युवाच

सत्यं वदसि हे दूत दैत्यराजप्रियङ्करम्॥ ५९

प्रतिज्ञा या मया पूर्वं कृता साप्यनृता कथम्।
भवेत्तां शृणु मे दूत या प्रतिज्ञा मया कृता॥ ६०

यो मे दर्पं विधुनुते यो मे बलमपोहति।
यो मे प्रतिबलो भूयात्स एव मम भोगभाक्॥ ६१

तत एनां प्रतिज्ञां मे सत्यां कृत्वासुरेश्वरः।
गृह्णातु पाणिं तरसा तस्याशक्यं किमत्र हि॥ ६२

तस्माद् गच्छ महादूत स्वामिनं ब्रूहि चादृतः।
प्रतिज्ञां चापि मे सत्यां विधास्यति बलाधिकः॥ ६३

एवं वाक्यं महादेव्याः समाकर्ण्य स दानवः।
कथयामास शुम्भाय देव्या वृत्तान्तमादितः॥ ६४

तदाप्रियं दूतवाक्यं शुम्भः श्रुत्वा महाबलः।
कोपमाहारयामास महान्तं दनुजाधिपः॥ ६५

ततो धूम्राक्षनामानं दैत्यं दैत्यपतिः प्रभुः।
आदिदेश शृणु वचो धूम्राक्ष मम चादृतः॥ ६६

तां दुष्टां केशपाशेषु धृत्वाप्यानीयतां मम।
समीपमविलम्बेन शीघ्रं गच्छस्व मे पुरः॥ ६७

इत्यादेशं समासाद्य दैत्येशो धूम्रलोचनः।
षष्ट्यासुराणां सहितः सहस्राणां महाबलः॥ ६८

तुहिनाचलमासाद्य देव्याः सविधमेव सः।
उच्चैर्देवीं जगादाशु भज दैत्यपतिं शुभे॥ ६९

शुम्भं नाम महावीर्यं सर्वभोगानवाप्नुहि।
नोचेत्केशान्गृहीत्वा त्वां नेष्ये दैत्यपतिं प्रति॥ ७०

इत्युक्ता सा ततो देवी दैत्येन त्रिदशारिणा।
उवाच दैत्य यद् ब्रूषे तत्सत्यं ते महाबल॥ ७१

राजा शुम्भासुरस्त्वं च किं करिष्यसि तद्वद।

देवी बोलीं—हे दूत! तुम दैत्यराज शुम्भके लिये प्रियकर तथा सत्य बात कह रहे हो, किंतु मैंने पूर्वकालमें जो प्रतिज्ञा की है, वह भी मिथ्या कैसे हो सकती है? हे दूत! मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तुम सुनो॥ ५९-६०॥

जो मेरा अभिमान चूर कर देगा, जो मेरे बलको निष्प्रभावी बना देगा तथा मेरे समान बलशाली होगा, वही मेरे साथ भोग करनेका अधिकारी हो सकता है॥ ६१॥

अतएव वह असुराधिपति मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य सिद्ध करके तत्काल मेरा पाणिग्रहण कर ले। इस लोकमें ऐसा क्या है, जिसे वह नहीं कर सकता?॥ ६२॥

इसलिये हे महादूत! तुम जाओ और अपने स्वामीसे आदरपूर्वक यह बात कहो। वह अत्यधिक बलवान् शुम्भ मेरी प्रतिज्ञाको अवश्य सत्य सिद्ध कर देगा॥ ६३॥

महादेवीका यह वचन सुनकर उस दानव-दूतने आरम्भसे लेकर अन्ततक देवीका वृत्तान्त शुम्भसे कह दिया॥ ६४॥

तब दूतकी अप्रिय बात सुनकर महाबली दानवराज शुम्भ अत्यधिक कुपित हो उठा॥ ६५॥

तत्पश्चात् उस दानवपति बलशाली शुम्भने धूम्राक्ष नामक दैत्यको आदेश दिया—हे धूम्राक्ष! सावधान होकर मेरी बात सुनो। तुम उस दुष्टाको उसके केशपाश पकड़कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। अब तुम मेरे सामनेसे शीघ्र चले जाओ॥ ६६-६७॥

ऐसा आदेश प्राप्तकर वह महाबली दैत्येश धूम्रलोचन साठ हजार असुरोंके साथ चल पड़ा और शीघ्र ही देवीके पास हिमालयपर्वतपर पहुँचकर उसने उच्च स्वरमें देवीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शीघ्र ही महान् पराक्रमी शुम्भ नामक दैत्यपतिका वरण कर लो और सभी प्रकारके सुखोपभोग प्राप्त करो अन्यथा तुम्हारे केश पकड़कर मैं तुम्हें दैत्यराजके पास ले चलूँगा॥ ६८—७०॥

देवशत्रु दैत्यके ऐसा कहनेपर उन भगवतीने कहा—हे महाबली दैत्य! यह जो तुम बोल रहे हो, वह तो ठीक है, किंतु यह बताओ कि तुम्हारे राजा शुम्भासुर तथा तुम मेरा क्या कर लोगे?॥ ७१½॥

इत्युक्तो दैत्यपोऽधावत्तूर्णं शस्त्रसमन्वितः॥ ७२

भस्मसात्तं चकाराशु हुङ्कारेण महेश्वरी।
ततः सैन्यं वाहनेन देव्या भग्नं महीपते॥ ७३

दिशो दशाभजच्छीघ्रं हाहाभूतमचेतनम्।
तद्वृत्तान्तं समाश्रुत्य स शुम्भो दैत्यराड् विभुः॥ ७४

चुकोप च महाकोपाद् भ्रुकुटीकुटिलाननः।
ततः कोपपरीतात्मा दैत्यराजः प्रतापवान्॥ ७५

चण्डं मुण्डं रक्तबीजं क्रमतः प्रैषयद्विभुः।
ते च गत्वा त्रयो दैत्या विक्रान्ता बहुविक्रमाः॥ ७६

देवीं ग्रहीतुमारब्धयत्नास्ते ह्यभवन्बलात्।
तानापतत एवासौ जगद्धात्री मदोत्कटा॥ ७७

शूलं गृहीत्वा वेगेन पातयामास भूतले।
ससैन्यान्निहताञ्छ्रुत्वा दैत्यांस्त्रीन्दानवेश्वरौ॥ ७८

शुम्भश्चैव निशुम्भश्च समाजग्मतुरोजसा।
निशुम्भश्चैव शुम्भश्च कृत्वा युद्धं महोत्कटम्॥ ७९

देव्याश्च वशगौ जातौ निहतौ च तयासुरौ।
इति दैत्यवरं शुम्भं घातयित्वा जगन्मयी॥ ८०

विबुधैः संस्तुता तद्वत्साक्षाद्वागीश्वरी परा।
एवं ते वर्णितो राजन् प्रादुर्भावोऽतिरम्यकः॥ ८१

काल्याश्चैव महालक्ष्म्याः सरस्वत्याः क्रमेण च।
परा परेश्वरी देवी जगत्सर्गं करोति च॥ ८२

पालनं चैव संहारं सैव देवी दधाति हि।
तां समाश्रय देवेशीं जगन्मोहनिवारिणीम्॥ ८३

महामायां पूज्यतमां सा कार्यं ते विधास्यति।

श्रीनारायण उवाच

इति राजा वचः श्रुत्वा मुनेः परमशोभनम्॥ ८४

देवीं जगाम शरणं सर्वकामफलप्रदाम्।
निराहारो यतात्मा च तन्मनाश्च समाहितः॥ ८५

देवीके ऐसा कहनेपर वह दैत्य-सेनापति धूम्राक्ष शस्त्र लेकर बड़ी तेजीसे देवीकी ओर दौड़ा, किंतु महेश्वरीने अपने हुंकारमात्रसे उसे तत्क्षण भस्म कर दिया॥ ७२½ ॥

हे महीपते! देवीका वाहन सिंह भी दैत्यसेनाको नष्ट करने लगा। सम्पूर्ण सेना हाहाकार मचाती हुई बेसुध होकर दसों दिशाओंमें तेजीसे तितर-बितर हो गयी॥ ७३½ ॥

दैत्यराज पराक्रमी शुम्भ यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा कुपित हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। उस प्रतापी दैत्यराजने कोपाविष्ट होकर क्रमशः चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज [नामक दैत्यों]-को भेजा। वे तीनों बलशाली और क्रूर दैत्य वहाँ जाकर बलपूर्वक देवीको पकड़नेका यत्न करने लगे। तब मदोन्मत्त होकर जगदम्बा शूल लेकर वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़ीं और उन्होंने उन्हें धराशायी कर दिया॥ ७४—७७½ ॥

उन तीनों दैत्योंको सेनासहित मारा गया सुनकर दानवराज शुम्भ और निशुम्भ तेजीसे वहाँ आ पहुँचे। देवीके साथ भयंकर युद्ध करनेके अनन्तर वे दोनों असुर उनके अधीन हो गये और अन्तमें उनके द्वारा मार डाले गये॥ ७८-७९½ ॥

तत्पश्चात् दैत्यश्रेष्ठ शुम्भका वध करके वे साक्षात् वागीश्वरी पराम्बा जगन्मयी सरस्वती भगवती महालक्ष्मीकी भाँति देवताओंके द्वारा स्तुत हुईं॥ ८०½ ॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे क्रमशः काली, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीके अत्यन्त सुन्दर प्रादुर्भावका वर्णन कर दिया॥ ८१½ ॥

वे ही परमा परमेश्वरी भगवती समस्त जगत्की रचना करती हैं और वे ही देवी पालन तथा संहारकार्य भी सम्पादित करती हैं। [हे राजन्!] आप सांसारिक मोहको दूर करनेवाली उन्हीं पूज्यतमा महामाया देवेश्वरीका आश्रय लीजिये; वे ही आपका कार्य सिद्ध करेंगी॥ ८२-८३½ ॥

श्रीनारायण बोले—मुनि (सुमेधा)-की यह परम सुन्दर बात सुनकर राजा सुरथ सभी वांछित फल प्रदान करनेवाली भगवतीकी शरणमें गये। निराहार

देवीमूर्तिं मृण्मयीं च पूजयामास भक्तितः।
पूजनान्ते बलिं तस्यै निजगात्रासृजं ददत्॥ ८६

तदा प्रसन्ना देवेशी जगद्योनिः कृपावती।
प्रादुर्बभूव पुरतो वरं ब्रूहीति भाषिणी॥ ८७

स राजा निजमोहस्य नाशनं ज्ञानमुत्तमम्।
राज्यं निष्कण्टकं चैव याचति स्म महेश्वरीम्॥ ८८

देव्युवाच

राजन्निष्कण्टकं राज्यं ज्ञानं वै मोहनाशनम्।
भविष्यति मया दत्तमस्मिन्नेव भवे तव॥ ८९

अन्यच्च शृणु भूपाल जन्मान्तरविचेष्टितम्।
भानोर्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता भवान्॥ ९०

तत्र मन्वन्तरस्यापि पतित्वं बहुविक्रमम्।
सन्ततिं बहुलां चापि प्राप्स्यते मद्वराद्भवान्॥ ९१

एवं दत्त्वा वरं देवी जगामादर्शनं तदा।
सोऽपि देव्याः प्रसादेन जातो मन्वन्तराधिपः॥ ९२

एवं ते वर्णितं साधो सावर्णेर्जन्म कर्म च।
एतत्पठंस्तथा शृण्वन्देव्यनुग्रहमाप्नुयात्॥ ९३

रहते हुए एकाग्रचित्त होकर संयत आत्मावाले वे राजा सुरथ तन्मनस्क होकर देवीकी पार्थिव मूर्तिकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे। पूजाकी समाप्तिपर उन्होंने देवीको अपने शरीरके रक्तसे बलि प्रदान किया॥ ८४—८६॥

तब दयामयी जगन्माता देवेश्वरी प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गयीं और कहने लगीं—वर माँगो। इसपर उन राजा सुरथने महेश्वरीसे अपने मोहका नाश करनेवाले उत्तम ज्ञान तथा निष्कंटक राज्यकी याचना की॥ ८७-८८॥

देवी बोलीं—हे राजन्! मैं आपको वर प्रदान करती हूँ कि इसी जन्ममें आपको निष्कंटक राज्य तथा मोहका नाश करनेवाला ज्ञान प्राप्त होगा। हे भूपाल! अब आप अपने दूसरे जन्मके विषयमें सुनिये। आप उस जन्ममें सूर्यके अंशसे जन्म लेकर सावर्णि मनु होंगे। मेरे वरदानसे आप उस जन्ममें भी मन्वन्तरका स्वामित्व, अत्यधिक पराक्रम तथा बहुत-सी सन्तानें प्राप्त करेंगे॥ ८९—९१॥

ऐसा वर देकर भगवती उसी समय अन्तर्धान हो गयीं। वे राजा सुरथ भी देवीके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ ९२॥

हे साधो! इस प्रकार मैंने सावर्णि मनुके जन्म तथा कर्मका वर्णन कर दिया। इसको पढ़ने तथा सुननेवाला व्यक्ति भगवतीकी कृपा प्राप्त कर लेता है॥ ९३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे देवीचरित्रसहितं सावर्णिमनुवृत्तान्तवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

मनुपुत्रोंकी तपस्या, भगवतीका उन्हें मन्वन्तराधिपति होनेका वरदान देना, दैत्यराज अरुणकी तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान, देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और भगवतीका भ्रामरीके रूपमें अवतार लेकर अरुणका वध करना

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां शेषमनूनां चित्रमुद्भवम्।
यस्य स्मरणमात्रेण देवीभक्तिः प्रजायते॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अब आप शेष मनुओंकी अद्भुत उत्पत्तिके विषयमें सुनिये, जिसके स्मरणमात्रसे देवीभक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ १॥

आसन्वैवस्वतमनोः पुत्राः षड् विमलोदयाः।
करूषश्च पृषध्रश्च नाभागो दिष्ट एव च॥ २

शर्यातिश्च त्रिशङ्कुश्च सर्व एव महाबलाः।
ततः षडेव ते गत्वा कालिन्द्यास्तीरमुत्तमम्॥ ३

निराहारा जितश्वासाः पूजां चक्रुस्ततः स्थिताः।
देव्या महीमयीं मूर्तिं विनिर्माय पृथक्पृथक्॥ ४

विविधैरुपचारैस्तां पूजयामासुरादृताः।
ततश्च सर्व एवैते तपःसारा महाबलाः॥ ५

जीर्णपर्णाशना वायुभक्षणास्तोयजीवनाः।
धूम्रपाना रश्मिपानाः क्रमशश्च बहुश्रमाः॥ ६

ततस्तेषामादरेणाराधनं कुर्वतां सदा।
विमला मतिरुत्पन्ना सर्वमोहविनाशिनी॥ ७

बभूवुर्मनुपुत्रास्ते देवीपादैकचिन्तनाः।
मत्या विमलया तेषामात्मन्येवाखिलं जगत्॥ ८

दर्शनं सञ्जगामाशु तदद्भुतमिवाभवत्।
एवं द्वादशवर्षान्ते तपसा जगदीश्वरी॥ ९

प्रादुर्बभूव देवेशी सहस्त्रार्कसमद्युतिः।
तां दृष्ट्वा विमलात्मानो राजपुत्राः षडेव ते॥ १०

तुष्टुवुर्भक्तिनम्रान्तःकरणा भावसंयुताः।

राजपुत्रा ऊचुः

महेश्वरि जयेशानि परमे करुणालये॥ ११

वाग्भवाराधनप्रीते वाग्भवप्रतिपादिते।
क्लींकारविग्रहे देवि क्लींकारप्रीतिदायिनि॥ १२

कामराजमनोमोददायिनीश्वरतोषिणि ।
महामाये मोदपरे महासाम्राज्यदायिनि॥ १३
विष्ण्वर्कहरशक्रादिस्वरूपे भोगवर्धिनि।

वैवस्वत मनुके करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु नामक उज्ज्वल यशवाले छः पुत्र थे। वे सब महान् पराक्रमी थे॥ २½ ॥

वे छहों पुत्र यमुनाके पावन तटपर जाकर निराहार रहते हुए अपने श्वासपर नियन्त्रण रखकर वहीं स्थित होकर भगवतीकी उपासना करने लगे। भगवतीकी अलग-अलग पार्थिव मूर्ति बनाकर वे भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आदरपूर्वक उनकी पूजा करते थे। इसके बाद उन सभी महाबली तथा महातपस्वी मनुपुत्रोंने क्रमशः सूखे पत्तों, वायु, जल, धूम्र तथा सूर्यकी किरणोंके आहारपर जीवन धारण करते हुए घोर तपस्या की॥ ३—६ ॥

तत्पश्चात् आदरपूर्वक देवीकी अनवरत आराधना कर रहे उन पुत्रोंके मनमें समस्त मोहोंको नष्ट कर देनेवाली निर्मल बुद्धि जाग्रत् हुई॥ ७॥

वे मनुपुत्र एकमात्र भगवतीके चरणोंमें ही मन लगाये हुए थे। विशुद्ध बुद्धिके प्रभावसे उन्हें शीघ्र अपने ही भीतर सम्पूर्ण जगत् दिखायी पड़ने लगा। वह अद्भुत स्थिति थी। इस प्रकार बारह वर्षोंके पश्चात् उनके तपसे हजारों सूर्योंके समान कान्तिवाली जगत्की स्वामिनी देवेश्वरी प्रकट हुईं॥ ८-९½ ॥

तब विमल आत्मावाले वे छहों राजकुमार देवीको देखते ही विनम्र तथा भाव-विह्वल होकर भक्तिपूर्ण अन्तःकरणसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १०½ ॥

राजकुमार बोले—हे महेश्वरि! हे ईशानि! हे परमे! हे करुणालये! हे वाग्भव बीजमन्त्रकी आराधनासे प्रसन्न होनेवाली! हे वाग्भव मन्त्रसे प्रतिपादित होनेवाली! हे क्लींकाररूपी विग्रहवाली! हे 'क्लीं' बीजमन्त्रसे उपासित होनेपर प्रीति प्रदान करनेवाली! हे कामेश्वरके मनको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली! हे परमेश्वरको सन्तुष्ट करनेवाली! हे महामाये! हे मोदपरे! हे महान् साम्राज्य देनेवाली! हे विष्णु, सूर्य, महेश, इन्द्र आदिके स्वरूपवाली! हे भोगकी वृद्धि करनेवाली! आपकी जय हो॥ ११—१३½ ॥

एवं स्तुता भगवती राजपुत्रैर्महात्मभिः॥ १४
प्रसादसुमुखी देवी प्रोवाच वचनं शुभम्।

देव्युवाच

राजपुत्रा महात्मानो भवन्तस्तपसा युताः॥ १५
निष्कल्मषाः शुद्धधियो जाता वै मदुपासनात्।
वरं मनोगतं सर्वं याचध्वमविलम्बितम्॥ १६
प्रसन्नाहं प्रदास्यामि युष्माकं मनसि स्थितम्।

राजपुत्रा ऊचुः

देवि निष्कण्टकं राज्यं सन्ततिश्चिरजीविनी॥ १७
भोगा अव्याहताः कामं यशस्तेजो मतिश्च ह।
अकुण्ठितत्वं सर्वेषामेष एव वरो हितः॥ १८

देव्युवाच

एवमस्तु च सर्वेषां भवतां यन्मनोगतम्।
अथान्यदपि मे वाक्यं श्रूयतामादरादिदम्॥ १९
भवन्तः सर्व एवैते मन्वन्तरपतीश्वराः।
सन्तत्या दीर्घया भोगैरनेकैरपि सङ्गमः॥ २०
अखण्डितबलैश्वर्यं यशस्तेजोविभूतयः।
भवितारो मत्प्रसादाद्राजपुत्राः क्रमेण तु॥ २१

श्रीनारायण उवाच

एवं तेभ्यो वरान्दत्त्वा भ्रामरी जगदम्बिका।
अन्तर्धानं जगामाशु भक्त्या तैः संस्तुता सती॥ २२
ते राजपुत्राः सर्वेऽपि तस्मिञ्जन्मन्यनुत्तमम्।
राज्यं महीगतान्भोगान्बुभुजुश्च महौजसः॥ २३
सन्ततिं चाखण्डितां ते समुत्पाद्य महीतले।
वंशं संस्थाप्य सर्वेऽपि मनूनां पतयोऽभवन्॥ २४
भवान्तरे क्रमेणैव सावर्णिपदभागिनः।
प्रथमो दक्षसावर्णिर्नवमो मनुरीरितः॥ २५
अव्याहतबलो देव्याः प्रसादादभवद्विभुः।

इस प्रकार उन महात्मा राजपुत्रोंके स्तुति करनेपर प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाली भगवती उनसे कल्याणमय वचन कहने लगीं॥ १४½॥

देवी बोलीं—हे महात्मा राजपुत्रो! तपस्यासे युक्त आपलोग मेरी उपासनासे निष्कल्मष तथा विमल बुद्धिवाले हो गये हैं। अब आपलोग अपना मनोवांछित वर शीघ्र ही माँग लीजिये। मैं अतीव प्रसन्न हूँ, इस समय आपलोगोंके मनमें जो भी होगा, वह सब मैं अवश्य दूँगी॥ १५-१६½॥

राजपुत्र बोले—हे भगवति! निष्कंटक राज्य, दीर्घजीवी सन्तान, अखण्डित भोग, यथेच्छ यश, तेज, बुद्धि तथा सभीसे अपराजेयता हमें प्राप्त हो जाय, यही हमारे लिये हितकर वर है॥ १७-१८॥

देवी बोलीं—ऐसा ही हो, आप सभीकी जो मनोगत कामनाएँ हैं, वे पूर्ण होंगी। अब आपलोग मेरी एक और बात सावधान होकर सुन लीजिये॥ १९॥

हे राजपुत्रो! मेरी कृपासे आप सभी लोग क्रमसे मन्वन्तराधिपति बनेंगे, दीर्घजीवी सन्तानें तथा अनेक प्रकारके भोग आपको प्राप्त होंगे। अखण्डित बल, ऐश्वर्य, यश, तेज तथा विभूतियाँ—ये सब आपको प्राप्त होंगे॥ २०-२१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उन राजकुमारोंके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर साध्वी भ्रामरी जगदम्बिका उन्हें वर प्रदानकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

उन महान् तेजस्वी सभी राजपुत्रोंने उस जन्ममें महान् राज्य तथा समस्त सांसारिक सुखोंका भोग किया॥ २३॥

सावर्णि पद नामवाले वे सभी राजपुत्र अखण्डित सन्तानें उत्पन्न करके भूलोकमें अपनी-अपनी वंश-परम्परा स्थापितकर दूसरे जन्ममें क्रमसे मन्वन्तरोंके अधिपति हुए॥ २४½॥

दक्षसावर्णि नामक पहले राजपुत्र नौवें मनु कहलाये। भगवतीकी कृपासे वे अव्याहत बलवाले तथा परम ऐश्वर्यशाली हुए॥ २५½॥

द्वितीयो मेरुसावर्णिर्दशमो मनुरेव च॥ २६

बभूव मन्वन्तरपो महादेवीप्रसादतः।
तृतीयो मनुराख्यातः सूर्यसावर्णिनामकः॥ २७

एकादशो महोत्साहस्तपसा स्वेन भावितः।
चतुर्थश्चन्द्रसावर्णिर्द्वादशो मनुराड् विभुः॥ २८

देवीसमाराधनेन जातो मन्वन्तरेश्वरः।
पञ्चमो रुद्रसावर्णिस्त्रयोदशमनुः स्मृतः॥ २९

महाबलो महासत्त्वो बभूव जगदीश्वरः।
षष्ठश्च विष्णुसावर्णिश्चतुर्दशमनुः कृती॥ ३०

बभूव देवीवरतो जगतां प्रथितः प्रभुः।
चतुर्दशैते मनवो महातेजोबलैर्युताः॥ ३१

देव्याराधनतः पूज्या वन्द्या लोकेषु नित्यशः।
महाप्रतापिनः सर्वे भ्रामर्यास्तु प्रसादतः॥ ३२

नारद उवाच

केयं सा भ्रामरी देवी कथं जाता किमात्मिका।
तदाख्यानं वद प्राज्ञ विचित्रं शोकनाशकम्॥ ३३

न तृप्तिमधिगच्छामि पिबन्देवीकथामृतम्।
अमृतं पिबतां मृत्युर्नास्य श्रवणतो यतः॥ ३४

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि जगन्मातुर्विचेष्टितम्।
अचिन्त्याव्यक्तरूपाया विचित्रं मोक्षदायकम्॥ ३५

यद्यच्चरित्रं श्रीदेव्यास्तत्सर्वं लोकहेतवे।
निर्व्याजया करुणया पुत्रे मातुर्यथा तथा॥ ३६

मेरुसावर्णि नामक दूसरे राजपुत्र दसवें मनु हुए। महादेवीकी कृपासे वे मन्वन्तरपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २६½ ॥

सूर्यसावर्णि नामक तीसरे राजपुत्र ग्यारहवें मनुके रूपमें प्रसिद्ध हुए। अपनी तपस्यासे भावित ये मनु परम उत्साहसे सम्पन्न थे॥ २७½ ॥

चन्द्रसावर्णि नामक चौथे राजपुत्र परम ऐश्वर्यशाली बारहवें मनुके रूपमें अधिष्ठित हुए, जो देवीकी उपासनाके प्रभावसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ २८½ ॥

रुद्रसावर्णि नामवाले पाँचवें राजपुत्र तेरहवें मनु कहे गये हैं। महान् बल तथा महान् पराक्रमसे सम्पन्न वे मनु पृथ्वीके स्वामी हुए॥ २९½ ॥

विष्णुसावर्णि नामक छठे राजपुत्र चौदहवें मनु कहे गये हैं। भगवतीके वरदानसे वे लोकोंमें विख्यात राजाके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ ३०½ ॥

ये सभी चौदहों मनु भगवती भ्रामरीकी आराधना तथा उनके प्रसादसे महान् तेज तथा बलसे सम्पन्न, लोकोंमें नित्य पूजनीय, वन्दनीय और महाप्रतापी हो गये थे॥ ३१-३२॥

नारदजी बोले—ये भ्रामरी देवी कौन हैं, वे कैसे प्रकट हुईं तथा किस स्वरूपवाली हैं? हे प्राज्ञ! आप शोकका नाश करनेवाले उस अद्भुत आख्यानका वर्णन कीजिये॥ ३३॥

मैं भगवतीके कथारूपी अमृतका पान करके भी तृप्त नहीं हो रहा हूँ। अमृत पीनेवालेकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथाका श्रवण करनेवालेकी मृत्यु सम्भव नहीं है॥ ३४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं अचिन्त्य तथा अव्यक्तस्वरूपिणी जगज्जननीकी मोक्षदायिनी अद्भुत लीलाका वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ ३५॥

भगवती श्रीदेवीके जो-जो चरित्र हैं, वे सब अहैतुकी दयासे लोकहितमें उसी प्रकार सम्पादित किये जाते हैं; जैसे माताके कार्य पुत्रके हितार्थ हुआ करते हैं॥ ३६॥

पूर्वं दैत्यो महानासीदरुणाख्यो महाबलः।
पाताले दैत्यसंस्थाने देवद्वेषी महाखलः॥ ३७

स देवाञ्जेतुकामश्च चकार परमं तपः।
पद्मसम्भवमुद्दिश्य स नस्त्राता भविष्यति॥ ३८

गत्वा हिमवतः पार्श्वे गङ्गाजलसुशीतले।
पक्वपर्णाशनो योगी सन्निरुध्य मरुद्गणम्॥ ३९

गायत्रीजपसंसक्तः सकामस्तमसा युतः।
दशवर्षसहस्राणि ततो वारिकणाशनः॥ ४०

दशवर्षसहस्राणि ततः पवनभोजनः।
दशवर्षसहस्राणि निराहारोभवत्ततः॥ ४१

एवं तपस्यतस्तस्य शरीरादुत्थितोऽनलः।
ददाह जगतीं सर्वां तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४२

किमिदं किमिदं चेति देवाः सर्वे चकम्पिरे।
सन्त्रस्ताः सकला लोका ब्रह्माणं शरणं ययुः॥ ४३

विज्ञापितं देववरैः श्रुत्वा तत्र चतुर्मुखः।
गायत्रीसहितो हंससमारूढो ययौ मुदा॥ ४४

प्राणमात्रावशिष्टं तं धमनीशतसङ्कुलम्।
शुष्कोदरं क्षामगात्रं ध्यानमीलितलोचनम्॥ ४५

ददर्श तेजसा दीप्तं द्वितीयमिव पावकम्।
वरं वरय भद्रं ते वत्स यन्मनसि स्थितम्॥ ४६

श्रुतिमात्रेण सन्तोषकारकं वाक्यमूचिवान्।
श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्वाणीं सुधाधारामिवारुणः॥ ४७

उन्मीलिताक्षः पुरतो ददर्श जलजोद्भवम्।
गायत्रीसहितं देवं चतुर्वेदसमन्वितम्॥ ४८
अक्षस्रक्कुण्डिकाहस्तं जपन्तं ब्रह्म शाश्वतम्।

पूर्वकालमें अरुण नामक एक महान् बलशाली दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह घोर नीच दानव दैत्योंके निवासस्थान पातालमें रहता था॥ ३७॥

देवताओंको जीतनेकी इच्छावाला वह दैत्य हिमालयपर पहुँचकर उसके समीप अत्यन्त शीतल गंगाजलमें पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे यह सोचकर कठोर तप करने लगा कि एकमात्र वे ही हमारे रक्षक हो सकते हैं। सूखे पत्तोंके आहारपर रहते हुए वह अपना श्वास रोककर तमोगुणसे युक्त हो सकामभावसे योगपरायण होते हुए गायत्रीमन्त्रके जपमें लीन हो गया। इसके बाद दस हजार वर्षोंतक जलकण पीकर, पुनः दस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर और पुनः दस हजार वर्षोंतक वह पूर्णरूपसे निराहार रहा॥ ३८—४१॥

इस प्रकार तप करते हुए उस दैत्यके शरीरसे अग्नि उठी, जो सम्पूर्ण जगत्‌को जलाने लगी; वह एक अद्भुत घटना थी॥ ४२॥

यह क्या, यह क्या? ऐसा कहते हुए सभी देवता काँपने लगे तथा सभी प्राणी भयभीत हो गये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सभी श्रेष्ठ देवताओंने वह बात बतायी। उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी गायत्रीसहित हंसपर सवार होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ ४३-४४॥

उस समय उस दैत्यके सैकड़ों नाड़ियोंसे युक्त शरीरमें प्राणमात्र अवशिष्ट था, उसका उदर सूख गया था, शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था, आँखें मूँदकर वह ध्यानमें अवस्थित था तथा अपने तेजसे दूसरे अग्निकी भाँति प्रतीत हो रहा था—ऐसे उस दैत्यको ब्रह्माजीने देखा और तब श्रवणमात्रसे ही सन्तुष्टि प्रदान करनेवाला यह वाक्य उससे कहा—हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह माँग लो॥ ४५-४६½॥

ब्रह्माजीके मुखसे अमृतकी धाराके सदृश वाणी सुनकर अरुणने जब आँखें खोलीं, तब उसने गायत्रीको साथ लिये हुए, चारों वेदोंको धारण किये हुए, हाथोंमें अक्षमाला तथा कुण्डिका ग्रहण किये हुए तथा शाश्वत ब्रह्मका जप करते हुए पद्मयोनि ब्रह्माजीको सामने देखा॥ ४७-४८½॥

दृष्ट्वोत्थाय ननामाथ स्तुत्वा च विविधैः स्तवैः ॥ ४९

वरं वव्रे स्वबुद्धिस्थं मा भवेन्मृत्युरित्यपि।
श्रुत्वारुणवचो ब्रह्मा बोधयामास सादरम् ॥ ५०

ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या मृत्युना कवलीकृताः।
तदान्येषां तु का वार्ता मरणे दानवोत्तम ॥ ५१

वरं योग्यं ततो ब्रूहि दातुं यः शक्यते मया।
नात्राग्रहं प्रकुर्वन्ति बुद्धिमन्तो जनाः क्वचित् ॥ ५२

इति ब्रह्मवचः श्रुत्वा पुनः प्रोवाच सादरम्।
न युद्धे न च शस्त्रास्त्रान्न पुंभ्यो नापि योषितः ॥ ५३

द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतस्तथा।
भवेन्मे मृत्युरित्येवं देव देहि वरं प्रभो ॥ ५४

बलं च विपुलं देहि येन देवजयो भवेत्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा तथास्त्विति वचोऽब्रवीत् ॥ ५५

दत्त्वा वरं जगामाशु पद्मजः स्वं निकेतनम्।
ततोऽरुणाख्यो दैत्यस्तु पातालात्स्वाश्रयस्थितान् ॥ ५६

दैत्यानाकारयामास ब्रह्मणो वरदर्पितः।
आगत्य तेऽसुराः सर्वे दैत्येशं तं प्रचक्रिरे ॥ ५७

दूतं च प्रेषयामासुर्युद्धार्थममरावतीम्।
दूतवाक्यं तदा श्रुत्वा देवराड् भयकम्पितः ॥ ५८

देवैः सार्धं जगामाशु ब्रह्मणः सदनं प्रति।
ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य जग्मुस्ते शङ्करालयम् ॥ ५९

विचारं चक्रिरे तत्र वधार्थं ते सुरद्रुहाम्।
एतस्मिन्समये तत्र दैत्यसेनासमावृतः ॥ ६०

अरुणाख्यो दैत्यराजो जगामाशु त्रिविष्टपम्।
सूर्येन्दुयमवह्नीनामधिकारान्पृथक्पृथक् ॥ ६१

स्वयं चकार तपसा नानारूपधरो मुने।

उसने ब्रह्माजीको देखते ही उठकर प्रणाम किया तथा अनेकविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनी बुद्धिमें स्थित वरकी याचना की कि मेरी मृत्यु कभी न हो ॥ ४९½ ॥

अरुणका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उसे आदरपूर्वक समझाया—हे दानवश्रेष्ठ! जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी मृत्युके ग्रास बन जाते हैं तो फिर मृत्युके सम्बन्धमें अन्य लोगोंकी बात ही क्या? अतएव तुम दूसरा उचित वर माँगो, जिसे मैं तुम्हें दे सकूँ, बुद्धिमान् लोग इस विषयमें कभी भी आग्रह नहीं करते ॥ ५०—५२ ॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर उसने पुनः आदरपूर्वक कहा—हे प्रभो! हे देव! तो फिर मुझे यह वर दीजिये कि मेरी मृत्यु न युद्धमें हो, न अस्त्र-शस्त्रसे हो, न पुरुषसे हो, न स्त्रीसे हो, न दो पैरवाले, न चार पैरोंवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवाले प्राणीसे ही हो, इसके साथ-साथ मुझे अत्यधिक बल भी दीजिये, जिससे देवताओंपर मेरी विजय स्थापित हो जाय ॥ ५३-५४½ ॥

अरुणकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने तथास्तु—ऐसा वचन कह दिया और इस प्रकार उसे वर प्रदान करके वे तत्काल अपने लोक चले गये ॥ ५५½ ॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अभिमानमें चूर उस अरुण नामक दैत्यने अपने आश्रित रहनेवाले पातालवासी दैत्योंको बुला लिया ॥ ५६½ ॥

पातालसे आकर उन सभी दैत्योंने उसे दैत्योंका राजा बना दिया और देवताओंसे युद्ध करनेके अभिप्रायसे देवपुरीके लिये एक दूत भेजा ॥ ५७½ ॥

दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे और शीघ्र ही देवताओंके साथ ब्रह्मलोकके लिये चल पड़े ॥ ५८½ ॥

वहाँसे पुनः ब्रह्मा तथा विष्णुको आगे करके वे देवता शिवलोक पहुँचे और वहाँ देवशत्रु राक्षसोंके वधके लिये विचार-विमर्श करने लगे ॥ ५९½ ॥

उसी समय वह अरुण नामक दैत्यराज दैत्यसेनाको साथमें लेकर स्वर्ग पहुँच गया। हे मुने! अपनी तपस्यासे अनेक रूप धारण करनेवाले उस दैत्यने सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने अधीन कर लिया ॥ ६०-६१½ ॥

स्वस्वस्थानच्युताः सर्वे जग्मुः कैलासमण्डलम्॥ ६२

शशंसुः शङ्करं देवाः स्वस्वदुःखं पृथक्पृथक्।
महान् विचारस्तत्रासीत्किं कर्तव्यमतः परम्॥ ६३

न युद्धेन च शस्त्रास्त्रैर्न पुंभ्यो नापि योषितः।
द्विपाद्भ्यो वा चतुष्पाद्भ्यो नोभयाकारतोऽपि वा॥ ६४

मृत्युर्भवेदिति ब्रह्मा प्रोवाच वचनं यतः।
इति चिन्तातुराः सर्वे कर्तुं किञ्चिन्न च क्षमाः॥ ६५

एतस्मिन्समये तत्र वागभूदशरीरिणी।
भजध्वं भुवनेशानीं सा वः कार्यं विधास्यति॥ ६६

गायत्रीजपसंसक्तो दैत्यराड् यदि तां त्यजेत्।
मृत्युयोग्यस्तदा भूयादित्युच्चैस्तोषकारिणी॥ ६७

श्रुत्वा दैवीं तथा वाणीं मन्त्रयामासुरादृताः।
बृहस्पतिं समाहूय वचनं प्राह देवराट्॥ ६८

गुरो गच्छ सुराणां तु कार्यार्थमसुरं प्रति।
यथा भवेच्च गायत्रीत्यागस्तस्य तथा कुरु॥ ६९

अस्माभिः परमेशानी सेव्यते ध्यानयोगतः।
प्रसन्ना सा भगवती साहाय्यं ते करिष्यति॥ ७०

इत्यादिश्य गुरुं सर्वे जग्मुर्जाम्बूनदेश्वरीम्।
सास्मान्दैत्यभयत्रस्तान् पालयिष्यति शोभना॥ ७१

तत्र गत्वा तपश्चर्यां चक्रुः सर्वे सुनिष्ठिताः।
मायाबीजजपासक्ता देवीमखपरायणाः॥ ७२

बृहस्पतिस्तदा शीघ्रं जगामासुरसन्निधौ।
आगतं मुनिवर्यं तं पप्रच्छाथ स दैत्यराट्॥ ७३

तदनन्तर अपने-अपने स्थानसे च्युत हुए सभी देवता कैलासपर्वतपर गये और एक-एक करके शंकरजीको अपनी दुःखगाथा सुनाने लगे॥ ६२$\frac{१}{२}$ ॥

उस समय शंकरजी भी महान् सोचमें पड़ गये कि अब ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये? क्योंकि ब्रह्माजी इसे वरदान दे चुके हैं, अतः इसकी मृत्यु न युद्धमें, न शस्त्रास्त्रोंसे, न पुरुषसे, न स्त्रीसे, न दो पैरवाले प्राणियोंसे, न चार पैरवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवालोंसे ही सम्भव है। वे सभी इसी चिन्तामें व्याकुल थे; किंतु कुछ भी कर पानेमें समर्थ नहीं हुए॥ ६३—६५॥

इसी बीच वहाँ उच्च स्वरमें सन्तोषदायिनी आकाशवाणी हुई—[हे देवताओ!] तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करो। वे ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी। गायत्रीजपमें संलग्न दैत्यराज अरुण यदि गायत्री-उपासनाका त्याग कर दे तो उसकी मृत्यु हो सकती है॥ ६६-६७॥

इस दिव्य वाणीको सुनकर आदरणीय देवताओंने परस्पर मन्त्रणा की। तदुपरान्त देवराज इन्द्रने बृहस्पतिको बुलाकर उनसे यह वचन कहा—हे गुरो! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये दैत्य अरुणके पास जाइये और जिस किसी भी तरहसे उसके द्वारा गायत्री-जपका त्याग हो सके, वैसा प्रयत्न कीजिये। इधर, हमलोग भी ध्यानयोगमें अवस्थित होकर परमेश्वरीकी उपासना कर रहे हैं। वे प्रसन्न होकर आपकी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६८—७०॥

गुरु बृहस्पतिसे इस प्रकार कहकर वे सभी देवता भगवती जम्बूनदेश्वरीके पास गये कि वे कल्याणी उस दैत्यके भयसे त्रस्त हम देवताओंकी रक्षा अवश्य करेंगी॥ ७१॥

वहाँ पहुँचकर देवीयज्ञपरायण वे सभी देवता अत्यन्त निष्ठापूर्वक मायाबीजके जपमें लीन होकर घोर तपश्चर्या करने लगे॥ ७२॥

इधर, बृहस्पति शीघ्र ही दानव अरुणके पास पहुँच गये। तब आये हुए उन मुनिवर बृहस्पतिसे उस दैत्यराजने पूछा—हे मुने! आप यहाँ कहाँ आ गये? इस समय कहाँसे तथा किस उद्देश्यसे यहाँ

मुने कुत्रागमः कस्मात्किमर्थमिति मे वद।
नाहं युष्मत्पक्षपाती प्रत्युताराातिरेव च॥ ७४

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिनायकः।
अस्मत्सेव्या च या देवी सा त्वया पूज्यतेऽनिशम्॥ ७५

तस्मादस्मत्पक्षपाती न भवेस्त्वं कथं वद।
इति तस्य वचः श्रुत्वा मोहितो देवमायया॥ ७६

तत्याज परमं मन्त्रमभिमानेन सत्तम।
गायत्रीत्यागतो दैत्यो निस्तेजस्को बभूव ह॥ ७७

कृतकार्यो गुरुस्तस्मात्स्थानान्निर्गतवान्पुनः।
ततो वृत्तान्तमखिलं कथयामास वज्रिणे॥ ७८

संतुष्टास्ते सुराः सर्वे भेजिरे परमेश्वरीम्।
एवं बहुगते काले कस्मिंश्चित्समये मुने॥ ७९

प्रादुरासीज्जगन्माता जगन्मङ्गलकारिणी।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा कोटिकन्दर्पसुन्दरी॥ ८०

चित्रानुलेपना देवी चित्रवासोयुगान्विता।
विचित्रमाल्याभरणा चित्रभ्रमरमुष्टिका॥ ८१

वराभयकरा शान्ता करुणामृतसागरा।
नानाभ्रमरसंयुक्तपुष्पमालाविराजिता ॥ ८२

भ्रामरीभिर्विचित्राभिरसंख्याभिः समावृता।
भ्रमरैर्गायमानैश्च ह्रींकारमनुमन्वहम्॥ ८३

समन्ततः परिवृता कोटिकोटिभिरम्बिका।
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सर्ववेदप्रशंसिता॥ ८४

सर्वात्मिका सर्वमयी सर्वमङ्गलरूपिणी।
सर्वज्ञा सर्वजननी सर्वा सर्वेश्वरी शिवा॥ ८५

दृष्ट्वा तां तरलात्मानो देवा ब्रह्मपुरोगमाः।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो विष्टरश्रवसां शिवाम्॥ ८६

आपका आगमन हुआ है? यह मुझे बताइये। मैं आपका पक्षधर तो हूँ नहीं, अपितु सदासे शत्रु ही हूँ॥ ७३-७४॥

उसकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिने कहा—जो देवी हम लोगोंकी आराध्या हैं, उन्हींकी उपासना तुम भी अनवरत कर रहे हो, तो फिर यह बताओ कि क्या तुम हमारे पक्षधर नहीं हुए?॥ ७५ $\frac{१}{२}$ ॥

हे सत्तम (नारद!) उन बृहस्पतिकी यह बात सुनकर देवमायासे मोहित हुए उस दैत्यने अभिमानपूर्वक परम गायत्री-मन्त्रके जपका त्याग कर दिया। तब गायत्री-जपसे विरत होते ही वह तेजशून्य हो गया॥ ७६-७७॥

इसके बाद गुरु बृहस्पति अपना कार्य सिद्ध करके उस स्थानसे चल दिये और वापस आकर उन्होंने इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। इससे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये और वे देवी परमेश्वरीकी आराधना करने लगे॥ ७८ $\frac{१}{२}$ ॥

हे मुने! इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद किसी समय जगत्का कल्याण करनेवाली जगज्जननी प्रकट हुईं। वे देवी करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाली थीं, करोड़ों कामदेवके सदृश सुन्दर, अंगोंमें अद्भुत अनुलेपनसे युक्त, दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित तथा विचित्र माला तथा आभूषणोंसे मण्डित थीं। वे अपनी मुट्ठीमें अद्भुत प्रकारके भ्रमर लिये हुए थीं, वे भगवती अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्रा धारण की हुई थीं, शान्त तथा करुणामृतके सागरके सदृश अनेकविध भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे वे शोभायमान थीं, वे अद्भुत प्रकारकी असंख्य भ्रामरियोंसे घिरी हुई थीं और वे अम्बिका 'ह्रींकार' मन्त्रका गान कर रहे करोड़ों-करोड़ों भ्रमरोंसे सभी ओरसे परिवृत थीं। वे सभी प्रकारके शृंगारों तथा वेषोंसे अलंकृत थीं तथा सभी वेदोंद्वारा स्तुत हो रही थीं। वे सबकी आत्मारूपा, सर्वमयी, सर्वमंगलरूपिणी, सर्वज्ञ, सर्वजननी, सर्वरूपिणी, सर्वेश्वरी तथा कल्याणमयी हैं॥ ७९—८५॥

उन्हें देखकर ब्रह्माजीको आगे करके दीन देवगण प्रसन्नचित्त होकर वेदोंमें प्रतिपादित देवीकी स्तुति करने लगे॥ ८६॥

देवा ऊचुः

नमो देवि महाविद्ये सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
नमः कमलपत्राक्षि सर्वाधारे नमोऽस्तु ते॥ ८७

सविश्वतैजसप्राज्ञविराट्सूत्रात्मिके नमः।
नमो व्याकृतरूपायै कूटस्थायै नमो नमः॥ ८८

दुर्गे सर्गादिरहिते दुष्टसंरोधनार्गले।
निरर्गलप्रेमगम्ये भर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ८९

नमः श्रीकालिके मातर्नमो नीलसरस्वति।
उग्रतारे महोग्रे ते नित्यमेव नमो नमः॥ ९०

नमः पीताम्बरे देवि नमस्त्रिपुरसुन्दरि।
नमो भैरवि मातङ्गि धूमावति नमो नमः॥ ९१

छिन्नमस्ते नमस्तेऽस्तु क्षीरसागरकन्यके।
नमः शाकम्भरि शिवे नमस्ते रक्तदन्तिके॥ ९२

निशुम्भशुम्भदलनि रक्तबीजविनाशिनि।
धूम्रलोचननिर्णाशे वृत्रासुरनिबर्हिणि॥ ९३

चण्डमुण्डप्रमथिनि दानवान्तकरे शिवे।
नमस्ते विजये गङ्गे शारदे विकचानने॥ ९४

पृथ्वीरूपे दयारूपे तेजोरूपे नमो नमः।
प्राणरूपे महारूपे भूतरूपे नमोऽस्तु ते॥ ९५

विश्वमूर्ते दयामूर्ते धर्ममूर्ते नमो नमः।
देवमूर्ते ज्योतिमूर्ते ज्ञानमूर्ते नमोऽस्तु ते॥ ९६

देवता बोले—सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली हे देवि! हे महाविद्ये! आपको नमस्कार है। हे कमल-पत्रके समान नेत्रोंवाली! आपको नमस्कार है। हे समस्त जगत्को धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है॥ ८७॥

हे विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा विराट्रूपके साथ सूक्ष्मरूप धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। व्याकृत तथा कूटस्थरूपवाली आप भगवतीको बार-बार नमस्कार है॥ ८८॥

हे दुर्गे! हे उत्पत्ति आदिसे रहित देवि! हे दुष्टोंके अवरोधार्थ अर्गलास्वरूपिणि! हे अटूट प्रेमसे प्राप्त की जानेवाली! हे तेजोमयी देवि! आपको नमस्कार है॥ ८९॥

हे श्रीकालिके! आपको नमस्कार है। हे मातः! आपको नमस्कार है। हे नीलसरस्वति! हे उग्रतारे! हे महोग्रे! आपको नित्य बार-बार नमस्कार है॥ ९०॥

हे पीताम्बरे! आपको नमस्कार है। हे देवि! हे त्रिपुरसुन्दरि! आपको नमस्कार है। हे भैरवि! आपको नमस्कार है। हे मातंगि! हे धूमावति! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ९१॥

हे छिन्नमस्ते! आपको नमस्कार है। हे क्षीरसागरकन्यके! आपको नमस्कार है। हे शाकम्भरि! हे शिवे! हे रक्तदन्तिके! आपको नमस्कार है॥ ९२॥

हे शुम्भ तथा निशुम्भका संहार करनेवाली! हे रक्तबीजका विनाश करनेवाली! हे धूम्रलोचनका वध करनेवाली! हे वृत्रासुरका ध्वंस करनेवाली! हे चण्ड तथा मुण्डका दलन करनेवाली! हे दानवोंका अन्त करनेवाली! हे शिवे! हे विजये! हे गंगे! हे शारदे! हे प्रसन्नमुखि! आपको नमस्कार है॥ ९३-९४॥

हे पृथ्वीरूपे! हे दयारूपे! हे तेजोरूपे! आपको बार-बार नमस्कार है। हे प्राणरूपे! हे महारूपे! हे भूतरूपे! आपको नमस्कार है॥ ९५॥

हे विश्वमूर्ते! हे दयामूर्ते! हे धर्ममूर्ते! आपको बार-बार नमस्कार है। हे देवमूर्ते! हे ज्योतिमूर्ते! हे ज्ञानमूर्ते! आपको नमस्कार है॥ ९६॥

गायत्रि वरदे देवि सावित्रि च सरस्वति।
नमः स्वाहे स्वधे मातर्दक्षिणे ते नमो नमः॥ ९७

नेति नेतीति वाक्यैर्या बोध्यते सकलागमैः।
सर्वप्रत्यक्स्वरूपां तां भजामः परदेवताम्॥ ९८

भ्रमरैर्वेष्टिता यस्माद् भ्रामरी या ततः स्मृता।
तस्यै देव्यै नमो नित्यं नित्यमेव नमो नमः॥ ९९

नमस्ते पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्ते पुरतोऽम्बिके।
नम ऊर्ध्वं नमश्चाधः सर्वत्रैव नमो नमः॥ १००

कृपां कुरु महादेवि मणिद्वीपाधिवासिनि।
अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायिके जगदम्बिके॥ १०१

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे।
जय श्रीभुवनेशानि जय सर्वोत्तमोत्तमे॥ १०२

कल्याणगुणरत्नानामाकरे भुवनेश्वरि।
प्रसीद परमेशानि प्रसीद जगतोरणे॥ १०३

श्रीनारायण उवाच

इति देववचः श्रुत्वा प्रगल्भं मधुरं वचः।
उवाच जगदम्बा सा मत्तकोकिलभाषिणी॥ १०४

देव्युवाच

प्रसन्नाहं सदा देवा वरदेशशिखामणिः।
ब्रुवन्तु विबुधाः सर्वे यदेव स्याच्चिकीर्षितम्॥ १०५

देवीवाक्यं सुराः श्रुत्वा प्रोचुर्दुःखस्य कारणम्।
दुष्टदैत्यस्य चरितं जगद्बाधाकरं परम्॥ १०६

देवब्राह्मणवेदानां हेलनं नाशनं तथा।
स्थानभ्रंशं सुराणां च कथयामासुरादृताः॥ १०७
ब्रह्मणो वरदानं च यथावत्ते समूचिरे।

हे गायत्रि! हे वरदे! हे देवि! हे सावित्रि! हे सरस्वति! आपको नमस्कार है। हे स्वाहे! हे स्वधे! हे मातः! हे दक्षिणे! आपको बार-बार नमस्कार है॥ ९७॥

समस्त शास्त्र 'नेति-नेति' वचनोंसे जिनका बोध करते हैं, उन प्रत्यक्स्वरूपा परादेवता भगवतीकी हम सभी देवगण उपासना करते हैं॥ ९८॥

सदा भ्रमरोंसे घिरी रहनेके कारण जो 'भ्रामरी' कही जाती हैं, उन भगवतीको नित्य-नित्य अनेकशः प्रणाम है॥ ९९॥

हे अम्बिके! आपके पार्श्व तथा पृष्ठ भागमें हमारा नमस्कार है। आपके आगे नमस्कार है, ऊपर नमस्कार है, नीचे नमस्कार है तथा सभी ओर नमस्कार है॥ १००॥

हे मणिद्वीपमें निवास करनेवाली! हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरि! हे महादेवि! हे जगदम्बिके! हम सबपर कृपा कीजिये॥ १०१॥

हे जगज्जननि! हे देवि! आपकी जय हो! हे देवि! हे परात्परे! आपकी जय हो! हे श्रीभुवनेश्वरि! आपकी जय हो! हे सर्वोत्तमोत्तमे! आपकी जय हो॥ १०२॥

हे कल्याण तथा गुणरत्नोंकी निधिस्वरूपे! हे भुवनेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे संसारकी तोरणस्वरूपे! प्रसन्न हो जाइये॥ १०३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंकी यह प्रगल्भ तथा मधुर वाणी सुनकर मत्त कोयलके समान बोलनेवाली वे जगदम्बा कहने लगीं॥ १०४॥

देवी बोलीं—हे देवताओ! वर प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ मैं (आपसे) सदा प्रसन्न हूँ। आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा हो, उसे बतायें॥ १०५॥

देवीका यह वचन सुनकर देवताओंने अपने दुःखका कारण बतलाया। उन्होंने दुष्ट दैत्यके द्वारा जगत्‌में किये जानेवाले महान् पीडाकारक कृत्यों; सर्वत्र देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी अवहेलना तथा विनाश और अपने-अपने स्थानसे देवताओंके च्युत कर दिये जानेका वर्णन बड़े विनयपूर्वक कर दिया। साथ ही ब्रह्माजीद्वारा उस दैत्यको दिये गये वरदानके विषयमें भी देवताओंने देवीसे यथावत् कह दिया॥ १०६-१०७½॥

श्रुत्वा देवमुखाद्वाणीं महाभगवती तदा॥ १०८

प्रेरयामास हस्तस्थान्भ्रमरान्भ्रामरी तदा।
पार्श्वस्थानग्रभागस्थान्नानारूपधरांस्तथा॥ १०९

जनयामास बहुशो यैर्व्याप्तं भुवनत्रयम्।
मटचीयूथवत्तेषां समुदायस्तु निर्गतः॥ ११०

तदान्तरिक्षं तैर्व्याप्तमन्धकारः क्षितावभूत्।
दिवि पर्वतशृङ्गेषु द्रुमेषु विपिनेष्वपि॥ १११

भ्रमरा एव सञ्जातास्तदद्भुतमिवाभवत्।
ते सर्वे दैत्यवक्षांसि दारयामासुरुद्गताः॥ ११२

नरं मधुहरं यद्वन्मक्षिकाः कोपसंयुताः।
उपायो न च शस्त्राणां तथास्त्राणां तदाभवत्॥ ११३

न युद्धं न च सम्भाषा केवलं मरणं खलु।
यस्मिन्यस्मिन्स्थले ये ये स्थिता दैत्या यथा यथा॥ ११४

तत्रैव च तथा सर्वे मरणं प्रापुरुत्स्मयाः।
परस्परं समाचारो न कस्याप्यभवत्तदा॥ ११५

क्षणमात्रेण ते सर्वे विनष्टा दैत्यपुङ्गवाः।
कृत्वेत्थं भ्रमराः कार्यं देवीनिकटमाययुः॥ ११६

आश्चर्यमेतदाश्चर्यमिति लोकाः समूचिरे।
किं चित्रं जगदम्बाया यस्या मायेयमीदृशी॥ ११७

ततो देवगणाः सर्वे ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
निमग्ना हर्षजलधौ पूजयामासुरम्बिकाम्॥ ११८

नानोपचारैर्विविधैर्नानोपायनपाणयः।
जयशब्दं प्रकुर्वाणा मुमुचुः सुमनांसि च॥ ११९

तब देवताओंके मुखसे यह वाणी सुनकर महाभगवती भ्रामरीने अपने हस्तस्थित, पार्श्व-प्रान्तस्थित तथा अग्रभागस्थित अनेकरूपधारी भ्रमरोंको प्रेरित किया; इसके साथ ही बहुत-से भ्रमरोंको उत्पन्न भी किया, जिनसे तीनों भुवन व्याप्त हो गये॥ १०८-१०९½ ॥

उस समय उन भ्रमरोंके झुण्ड टिड्डियोंके दलके समान निकलने लगे। उन भ्रमरोंसे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। आकाशमें, पर्वतोंके शिखरोंपर, वृक्षोंपर तथा वनोंमें सर्वत्र भ्रमर-ही-भ्रमर हो गये। वह दृश्य अत्यन्त आश्चर्यजनक था॥ ११०-१११½ ॥

वे सभी भ्रमर निकल-निकलकर दैत्योंके वक्षःस्थलको उसी प्रकार छेदने लगे, जैसे क्रोधमें भरी मधुमक्खियाँ मधुका दोहन करनेवाले व्यक्तिको काटती हैं॥ ११२½ ॥

उस समय अस्त्रों तथा शस्त्रोंसे किसी प्रकार भी सुरक्षाका उपाय सम्भव नहीं हो सका। दैत्य न युद्ध कर सके और न कोई सम्भाषण ही। उन्हें केवल अपनी मृत्यु दिखायी दे रही थी॥ ११३½ ॥

जिस-जिस स्थानपर जो-जो दैत्य जिस-जिस स्थितिमें विद्यमान थे, वे सब उसी रूपमें उसी स्थानपर अट्टहास करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए॥ ११४½ ॥

उन दैत्योंमेंसे किसीकी भी एक-दूसरेसे कोई बातचीत भी नहीं हो सकी और वे सभी दैत्यश्रेष्ठ क्षणभरमें विनष्ट हो गये॥ ११५½ ॥

इस प्रकार यह कार्य करके वे भ्रमर पुनः देवीके पास आ गये। यह तो आश्चर्य हो गया—ऐसा सभी लोग कहने लगे। जिन जगदम्बाकी इस प्रकारकी यह माया है, उनके लिये कौन-सा कार्य आश्चर्यजनक है॥ ११६-११७॥

तदनन्तर हर्षरूपी समुद्रमें डूबे हुए सभी देवगणोंने ब्रह्मा, विष्णु आदिको अग्रसर करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे देवीकी पूजा की, अपने हाथोंसे उन्हें नानाविध उपहार प्रदान किये और जय-जयकार करते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा की॥ ११८-११९॥

दिवि दुन्दुभयो नेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
पेठुर्वेदान्मुनिश्रेष्ठा गन्धर्वाद्या जगुस्तथा॥ १२०

मृदङ्गमुरजावीणाढक्काडमरुनिःस्वनैः ।
घण्टाशङ्खनिनादैश्च व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम्॥ १२१

नानास्तोत्रैस्तदा स्तुत्वा मूर्ध्न्याधायाञ्जलींस्तथा।
जय मातर्जयेशानीत्येवं सर्वे समूचिरे॥ १२२

ततस्तुष्टा महादेवी वरान्दत्त्वा पृथक्पृथक्।
स्वस्मिंश्च विपुलां भक्तिं प्रार्थिता तैर्ददौ च ताम्॥ १२३

पश्यतामेव देवानामन्तर्धानं गता ततः।
इति ते सर्वमाख्यातं भ्रामर्याश्चरितं महत्॥ १२४

पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम्।
श्रुतमाश्चर्यजनकं संसारार्णवतारकम्॥ १२५

एवं मनूनां सर्वेषां चरितं पापनाशनम्।
देवीमाहात्म्यसंयुक्तं पठञ्शृण्वञ्शुभप्रदम्॥ १२६

यश्चैतत्पठते नित्यं शृणुयाद्योऽनिशं नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥ १२७

आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व आदि गाने लगे तथा श्रेष्ठ मुनिगण वेदपाठ करने लगे। मृदंग, ढोल, वीणा, ढाक, डमरू, घण्टा और शंख आदिकी ध्वनियोंसे तीनों लोक व्याप्त हो गये॥ १२०-१२१॥

उस समय अनेकविध स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके अपनी अंजलियाँ मस्तकपर रखकर सभी देवता कहने लगे—हे मातः! आपकी जय हो। हे ईशानि! आपकी जय हो॥ १२२॥

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनपर परम प्रसन्न भगवती महादेवीने उन देवताओंको पृथक्-पृथक् वर प्रदान करके उन्हें अपनी विपुल भक्ति प्रदान की। इसके बाद देवताओंके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गयीं॥ १२३१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपसे भगवती भ्रामरीके सम्पूर्ण महिमाशाली चरित्रका वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सुननेमें आश्चर्यजनक यह [देवीचरित्र] संसाररूपी सागरसे पार कर देनेवाला है॥ १२४-१२५॥

इसी प्रकार अन्य सभी मनुओंका चरित्र भी पापको नष्ट करनेवाला, देवीके माहात्म्यसे परिपूर्ण तथा पढ़ने-सुननेवालेके लिये कल्याणप्रद है॥ १२६॥

जो मनुष्य इस चरित्रको नित्य पढ़ता है तथा निरन्तर सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवी-सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे
भ्रामरीचरित्रवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

~~o~~

॥ दशमः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

एकादशः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

भगवान् नारायणका नारदजीसे देवीको प्रसन्न करनेवाले सदाचारका वर्णन

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश नारायण सनातन।
आख्यातं परमाश्चर्यं देवीचारित्रमुत्तमम्॥ १

प्रादुर्भावः परो मातुः कार्यार्थमसुरद्रुहाम्।
अधिकाराप्तिरुक्तात्र देवीपूर्णकृपावशात्॥ २

अधुना श्रोतुमिच्छामि येन प्रीणाति सर्वदा।
स्वभक्तान्परिपुष्णाति तमाचारं वद प्रभो॥ ३

श्रीनारायण उवाच

शृणु नारद तत्त्वज्ञ सदाचारविधिक्रमम्।
यदनुष्ठानमात्रेण देवी प्रीणाति सर्वदा॥ ४

प्रातरुत्थाय कर्तव्यं यद् द्विजेन दिने दिने।
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि द्विजानामुपकारकम्॥ ५

उदयास्तमयं यावद् द्विजः सत्कर्मकृद्भवेत्।
नित्यनैमित्तिकैर्युक्तः काम्यैश्चान्यैरगर्हितैः॥ ६

आत्मनश्च सहायार्थं पिता माता न तिष्ठति।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम्॥ ७

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनु साधनैः।
धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम्॥ ८

नारद बोले—हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे नारायण! हे सनातन! आपने भगवतीके परम विस्मयकारक एवं श्रेष्ठ चरित्रका वर्णन किया। साथ ही आपके द्वारा असुरद्रोही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त माता भगवतीके उत्तम प्राकट्य तथा देवीकी पूर्ण कृपासे उनकी अधिकार-प्राप्तिका वर्णन भी किया गया॥ १-२॥

हे प्रभो! अब मैं उस आचारके विषयमें सुनना चाहता हूँ, जिससे भगवती अपने भक्तोंपर सदा प्रसन्न होती हैं तथा उनका पालन-पोषण करती हैं, उसे बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—हे तत्त्वोंके ज्ञाता नारद! जिस सदाचारके अनुष्ठानसे देवी सर्वदा प्रसन्न रहती हैं, उसकी विधिके विषयमें अब आप क्रमसे सुनिये॥ ४॥

प्रातःकाल उठकर द्विजको प्रतिदिन जिस आचारका पालन करना चाहिये; अब मैं द्विजोंका उपकार करनेवाले उस आचारका भलीभाँति वर्णन करूँगा॥ ५॥

द्विजको सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्तपर्यन्त नित्य, नैमित्तिक तथा अनिन्द्य काम्य कर्मोंसे युक्त होकर सत्कर्मोंमें संलग्न रहना चाहिये॥ ६॥

पिता, माता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी [परलोकमें] आत्माके सहायतार्थ उपस्थित नहीं रहते; केवल धर्म ही उपस्थित होता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये। धर्मके ही साहाय्यसे मनुष्य दुस्तर अन्धकारको पार कर लेता है॥ ७-८॥

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च।
तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः॥ ९

आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः।
आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम्॥ १०

आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः।
इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥ ११

अज्ञानान्धजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम्।
धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः॥ १२

आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते।
कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम्॥ १३

सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः।
तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते॥ १४

यस्त्वाचारविहीनोऽत्र वर्तते द्विजसत्तमः।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यो यथा शूद्रस्तथैव सः॥ १५

आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा।
उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता॥ १६

ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः।
परिग्राह्या नृभिः सर्वैर्नैव ताल्लँङ्घयेन्मुने॥ १७

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च॥ १८

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।
धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च॥ १९

आचार ही प्रथम (मुख्य) धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है, अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने कल्याणके लिये इस सदाचारके पालनमें नित्य संलग्न रहे॥ ९॥

मनुष्य आचारसे आयु प्राप्त करता है, आचारसे सन्तानें प्राप्त करता है तथा आचारसे अक्षय अन्न प्राप्त करता है। यह आचार पापको नष्ट कर देता है॥ १०॥

आचार मनुष्योंका परम धर्म है तथा उनके लिये कल्याणप्रद है। सदाचारी व्यक्ति इस लोकमें सुखी रहकर परलोकमें भी सुख प्राप्त करता है॥ ११॥

मोहसे भ्रमित चित्तवाले तथा अज्ञानान्धकारमें भटकनेवाले लोगोंके लिये यह आचार धर्मरूपी महान् दीपक बनकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखाता है॥ १२॥

आचारसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है, आचारसे ही सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है और सत्कर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है—मनुका यह प्रसिद्ध वचन है॥ १३॥

यह आचार सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ तथा परम तप है। उसीको ज्ञान भी कहा गया है। उसीसे सब कुछ सिद्ध कर लिया जाता है॥ १४॥

द्विजश्रेष्ठ होकर भी जो इस लोकमें आचारसे रहित है, वह शूद्रकी भाँति बहिष्कारके योग्य है; क्योंकि जैसा शूद्र है वैसा ही वह भी है॥ १५॥

आचार शास्त्रीय तथा लौकिक-भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। अपना कल्याण चाहनेवालेको इन दोनों ही आचारोंका सम्यक् पालन करना चाहिये और उनसे कभी भी विरत नहीं होना चाहिये॥ १६॥

हे मुने! सभी मनुष्योंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म तथा कुलधर्मोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये, उनका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये॥ १७॥

दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दुःख प्राप्त करता है और रोगसे सदा ग्रस्त रहता है॥ १८॥

जो अर्थ तथा काम धर्मसे रहित हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। साथ ही लोकविरुद्ध धर्मको भी छोड़ देना चाहिये; क्योंकि वह परिणाममें दुःखदायी होता है॥ १९॥

नारद उवाच

बहुत्वादिह शास्त्राणां निश्चयः स्यात्कथं मुने।
कियत्प्रमाणं तद् ब्रूहि धर्ममार्गविनिर्णये॥ २०

श्रीनारायण उवाच

श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्।
एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥ २१

विरोधो यत्र तु भवेत्त्रयाणां च परस्परम्।
श्रुतिस्तत्र प्रमाणं स्याद् द्वयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा॥ २२

श्रुतिद्वैधं भवेद्यत्र तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ।
स्मृतिद्वैधं तु यत्र स्याद्विषयः कल्प्यतां पृथक्॥ २३

पुराणेषु क्वचिच्चैव तन्त्रदृष्टं यथातथम्।
धर्मं वदन्ति तं धर्मं गृह्णीयान्न कथञ्चन॥ २४

वेदाविरोधि चेत्तन्त्रं तत्प्रमाणं न संशयः।
प्रत्यक्षश्रुतिरुद्धं यत्तत्प्रमाणं भवेन्न च॥ २५

सर्वथा वेद एवासौ धर्ममार्गप्रमाणकः।
तेनाविरुद्धं यत्किञ्चित्तत्प्रमाणं न चान्यथा॥ २६

यो वेदधर्ममुज्झित्य वर्ततेऽन्यप्रमाणतः।
कुण्डानि तस्य शिक्षार्थं यमलोके वसन्ति हि॥ २७

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदोक्तं धर्ममाश्रयेत्।
स्मृतिः पुराणमन्यद्वा तन्त्रं वा शास्त्रमेव च॥ २८

तन्मूलत्वे प्रमाणं स्यान्नान्यथा तु कदाचन।
ये कुशास्त्राभियोगेन वर्तयन्तीह मानवान्॥ २९
अधोमुखोर्ध्वपादास्ते यास्यन्ति नरकार्णवम्।

नारदजी बोले—हे मुने! जगत्में तो शास्त्रोंका बाहुल्य है; ऐसी स्थितिमें कुछ भी कैसे निश्चित किया जाय। धर्ममार्गका निर्णय करनेवाले कितने प्रमाण हैं; यह मुझे बताइये॥ २०॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रुति तथा स्मृति दोनों नेत्र हैं तथा पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंमें जो भी कहा गया है, वही धर्म है, इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं॥ २१॥

इन तीनोंमें जहाँ परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रुतिको प्रमाण मानना चाहिये। इसी प्रकार स्मृति तथा पुराणमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ है॥ २२॥

श्रुतिमें जहाँ दो वचनोंमें परस्पर विरोध हो तो वहाँ वे दोनों ही वचन धर्म हैं। यदि स्मृतिमें द्वैध-स्थिति हो जाय तो प्रसंगानुसार पृथक्-पृथक् विषय कल्पित कर लेने चाहिये॥ २३॥

पुराणोंमें कहीं-कहीं तन्त्र भी सूक्ष्मरूपसे व्याख्यायित किये गये हैं। जिसे धर्म बताया गया है, उसीको धर्मरूपसे ग्रहण करना चाहिये, किसी अन्यको किसी भी तरह नहीं॥ २४॥

यदि तन्त्रका वचन वेदविरोधी नहीं है तो उसकी प्रामाणिकतामें सन्देह नहीं है, किंतु श्रुतिसे जो प्रत्यक्ष विरुद्ध हो, वह वचन प्रमाण नहीं हो सकता॥ २५॥

वेद ही पूर्णरूपसे धर्म-मार्गके प्रमाण हैं। उस वेदराशिसे विरोध न रखनेवाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है; दूसरा नहीं॥ २६॥

वेद-प्रतिपादित धर्मको छोड़कर जो अन्यको प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे दण्डित करनेके लिये यमलोकमें नरककुण्ड स्थित हैं। अतएव सभी प्रयत्नोंसे वेदोक्त धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। स्मृति, पुराण, तन्त्र, शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थ—इनके वेदमूलक होनेकी स्थितिमें ही वे प्रमाण होते हैं; इसके विपरीत वे कभी भी प्रमाण नहीं हो सकते॥ २७-२८½॥

जो लोग इस लोकमें मनुष्योंको निन्दित शास्त्रोंका उपदेश करते हैं, वे मुख नीचे तथा पैर ऊपर किये हुए नरकसागर जायँगे॥ २९½॥

कामाचाराः पाशुपतास्तथा वै लिङ्गधारिणः॥ ३०

तप्तमुद्राङ्किता ये च वैखानसमतानुगाः।
ते सर्वे निरयं यान्ति वेदमार्गबहिष्कृताः॥ ३१

वेदोक्तमेव सद्धर्मं तस्मात्कुर्यान्नरः सदा।
उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं किं मयाद्य कृतं कृतम्॥ ३२

दत्तं वा दापितं वापि वाक्येनापि च भाषितम्।
उपपापेषु सर्वेषु पातकेषु महत्स्वपि॥ ३३

अवाप्य रजनीयामं ब्रह्मध्यानं समाचरेत्।
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये चोरौ तथोत्तरम्॥ ३४

उत्तानं किञ्चिदुत्तानं मुखमवष्टभ्य चोरसा।
निमीलिताक्षः सत्त्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्॥ ३५

तालुस्थाचलजिह्वश्च संवृतास्यः सुनिश्चलः।
सन्निरुद्धेन्द्रियग्रामो नातिनिम्नस्थितासनः॥ ३६

द्विगुणं त्रिगुणं वापि प्राणायाममुपक्रमेत्।
ततो ध्येयः स्थितो योऽसौ हृदये दीपवत्प्रभुः॥ ३७

धारयेत्तत्र चात्मानं धारणां धारयेद् बुधः।
सधूमश्च विधूमश्च सगर्भश्चाप्यगर्भकः॥ ३८

सलक्ष्यश्चाप्यलक्ष्यश्च प्राणायामस्तु षड्विधः।
प्राणायामसमो योगः प्राणायाम इतीरितः॥ ३९

प्राणायाम इति प्रोक्तो रेचपूरककुम्भकैः।
वर्णत्रयात्मका ह्येते रेचपूरककुम्भकाः॥ ४०
स एव प्रणवः प्रोक्तः प्राणायामश्च तन्मयः।

स्वेच्छाचारी, पाशुपतमार्गावलम्बी, लिंगधारी, तप्तमुद्रासे अंकित तथा वैखानस मत माननेवाले जो भी लोग हैं, वेदमार्गसे विचलित होनेके कारण वे सभी नरक जाते हैं॥ ३०-३१॥

अतएव मनुष्यको सदा वेदोक्त सद्धर्मका ही पालन करना चाहिये। उसे सावधान होकर बार-बार विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन-कौन-सा कार्य किया, क्या दिया, क्या दिलाया अथवा वाणीसे कैसा सम्भाषण किया? यह भी सोचना चाहिये कि अत्यन्त दारुण सभी पातकों तथा उपपातकोंमें कहीं मेरी प्रवृत्ति तो नहीं हो गयी॥ ३२-३३॥

रात्रिके चौथे प्रहरमें [उठकर] ब्रह्मध्यान करना चाहिये। जंघाओंपर पैरको ऊपरकी ओर करके (पद्मासनमें) बैठे, बायीं जंघापर दाहिना पैर उत्तान करके रखना चाहिये। हनु (ठुड्डी)-को वक्षःस्थलसे लगाकर नेत्रोंको बन्द करके सहज भावमें स्थित होकर बैठना चाहिये, दाँतोंका दाँतोंसे स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ३४-३५॥

जिह्वाको तालुके समीप अचल स्थितिमें रखे, मुँह बन्द किये रहे, शान्तचित्त रहे, इन्द्रियसमूहोंपर नियन्त्रण रखे तथा बहुत नीचे आसनपर स्थित न हो। दो बार अथवा तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। तत्पश्चात् दीपकस्वरूप जो प्रभु हृदयमें अवस्थित हैं, उनका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार विद्वान् व्यक्तिको अपने हृदयमें परमात्माके विराजमान रहनेकी धारणा करनी चाहिये॥ ३६-३७½॥

सधूम (श्वाससहित), विधूम (श्वासरहित), सगर्भ (मन्त्र-जपसहित), अगर्भ (मन्त्ररहित), सलक्ष्य (इष्टदेवके ध्यानसहित) और अलक्ष्य (ध्यानरहित)—यह छः प्रकारका प्राणायाम होता है। प्राणायाममें वायुका नियमन किया जाता है, अतएव इस प्राणायामको ही योग कहा गया है॥ ३८-३९॥

यह प्राणायाम भी रेचक, पूरक तथा कुम्भक भेदोंवाला कहा गया है। रेचक, पूरक तथा कुम्भक-संज्ञक प्राणायाम वर्णत्रयात्मक है, इसीको प्रणव कहा गया है। उस प्रणवमें तन्मय हो जाना ही प्राणायाम है॥ ४०½॥

इडया वायुमारोप्य पूरयित्वोदरे स्थितम्॥ ४१

शनैः षोडशमात्राभिरन्यया तं विरेचयेत्।
एवं सधूमः प्राणानामायामः कथितो मुने॥ ४२

आधारे लिङ्गनाभिप्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदलद्वादशार्धे चतुष्के।
वासान्ते बालमध्ये डफकठसहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि॥ ४३

अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
हरनियमितचिह्ना पद्मतन्तुस्वरूपा।
रविहुतवहराकानायकास्यस्तनाढ्या
सकृदपि यदि चित्ते संवसेत्स्यात्स मुक्तः॥ ४४

स्थितिः सैव गतिर्यात्रा मतिश्चिन्ता स्तुतिर्वचः।
अहं सर्वात्मको देवः स्तुतिः सर्वं त्वदर्चनम्॥ ४५

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिन्तयेत्॥ ४६

प्रकाशमानां प्रथमे प्रयाणे
प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम्।
अन्तःपदव्यामनुसञ्चरन्ती-
मानन्दरूपामबलां प्रपद्ये॥ ४७

इडा नाड़ीसे वायुको ऊपर खींचकर उदरमें पूर्णरूपसे स्थित कर लेनेके अनन्तर पुनः दूसरी (पिंगला) नाड़ीसे धीरे-धीरे सोलह मात्रामें उस वायुको निकालना चाहिये। हे मुने! इस प्रकार यह सधूमप्राणायाम कहा गया है॥ ४१-४२॥

मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ तथा ललाट (भ्रूमध्य)-में क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल कमल विद्यमान हैं। मूलाधारचक्रमें वँ, शँ, षँ, सँ वर्णों; स्वाधिष्ठानचक्रमें बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ वर्णों; मणिपूरकचक्रमें डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ वर्णों; अनाहतचक्रमें कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ, ठँ वर्णों; विशुद्धाख्यचक्र (कण्ठदेश)-में सभी सोलह स्वरों तथा आज्ञाचक्रमें हँ, क्षँ वर्णोंवाले द्विदल पद्ममें विराजमान तत्त्वार्थयुक्त उन ब्रह्मस्वरूप सभी वर्णोंको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ४३॥

जिसके चित्तमें एक बार भी अरुणकमलासना, पद्मरागके पुंजके समान वर्णवाली, शिवलिंगसे अंकित, कमलतन्तुके समान सूक्ष्म स्वरूपवाली, सूर्य-अग्नि-चन्द्र (-रूपी नेत्रों)-से आलोकित मुखमण्डल और उन्नत स्तनोंसे सुशोभित जगदम्बाका निवास हो जाता है, वही मुक्त है॥ ४४॥

वे भगवती ही स्थिति हैं, वे ही गति हैं, वे ही यात्रा हैं, वे ही मति हैं, वे ही चिन्ता हैं, वे ही स्तुति हैं और वे ही वाणी हैं। मैं सर्वात्मा देवता हूँ और मेरे द्वारा की गयी स्तुति ही आपकी समस्त अर्चना है, मैं स्वयं देवीरूप हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ, मुझमें शोक व्याप्त नहीं हो सकता और मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ—ऐसा अपनेको समझना चाहिये॥ ४५-४६॥

प्रथम प्रयाणके समय अर्थात् मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रकी ओर (जाते समय) विद्युत्-सदृश प्रकाशमान, प्रतिप्रयाणमें अमृतसदृश प्रतीतिवाली तथा अन्तिम प्रयाणमें सुषुम्ना नाड़ीमें संचरित होनेवाली आनन्दस्वरूप भगवती कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ ४७॥

ततो निजब्रह्मरन्ध्रे ध्यायेत्तं गुरुमीश्वरम्।
उपचारैर्मानसैश्च पूजयेत्तु यथाविधि॥ ४८

स्तुवीतानेन मन्त्रेण साधको नियतात्मवान्।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४९

तत्पश्चात् अपने ब्रह्मरन्ध्रमें ईश्वररूप उन गुरुका ध्यान करना चाहिये और मानसिक उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः साधकको संयतचित्त होकर इस मन्त्रसे गुरुकी प्रार्थना करनी चाहिये—'**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥**' गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही महेश्वर शिव हैं और गुरु ही परब्रह्म हैं; उन श्रीगुरुको नमस्कार है॥ ४८-४९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
प्रातश्चिन्तनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

\~\~o\~\~

अथ द्वितीयोऽध्यायः

शौचाचारका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

आचारहीनं न पुनन्ति वेदा
यदप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥ १

ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय तत्सर्वं सम्यगाचरेत्।
रात्रेरन्तिमयामे तु वेदाभ्यासं चरेद् बुधः॥ २

किञ्चित्कालं ततः कुर्यादिष्टदेवानुचिन्तनम्।
योगी तु पूर्वमार्गेण ब्रह्मध्यानं समाचरेत्॥ ३

जीवब्रह्मैक्यता येन जायते तु निरन्तरम्।
जीवन्मुक्तश्च भवति तत्क्षणादेव नारद॥ ४

पञ्चपञ्च उषःकालः सप्तपञ्चारुणोदयः।
अष्टपञ्चभवेत्प्रातः शेषः सूर्योदयः स्मृतः॥ ५

प्रातरुत्थाय यः कुर्याद्विण्मूत्रं द्विजसत्तमः।
नैर्ऋत्यामिषुविक्षेपमतीत्याभ्यधिकं भुवः॥ ६

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] छहों अंगोंसहित अधीत किये गये वेद भी आचारविहीन व्यक्तिको पवित्र नहीं कर सकते। पढ़े गये छन्द (वेद) ऐसे आचारहीन प्राणीको उसी भाँति मृत्युकालमें छोड़ देते हैं, जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला त्याग देते हैं॥ १॥

विद्वान् पुरुषको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आचारसम्बन्धी सभी कर्मोंको भलीभाँति सम्पादित करना चाहिये और रातके अन्तिम प्रहरमें वेदाभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् योगी पुरुष कुछ समय अपने इष्टदेवका चिन्तन करे और पुनः पूर्वोक्त मार्गसे ब्रह्मका ध्यान करे॥ २-३॥

हे नारद! ऐसा निरन्तर करनेसे जब जीव तथा ब्रह्ममें ऐक्य स्थापित हो जाता है, तब उसी क्षण वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ४॥

रात्रिके अन्तमें पचपन घड़ीके बाद उषःकाल, सत्तावन घड़ीके बाद अरुणोदयकाल तथा अट्ठावन घड़ीके बाद प्रातःकाल होता है। इसके बादवाला शेष समय सूर्योदयकाल कहा गया है॥ ५॥

श्रेष्ठ द्विजको प्रातःकाल उठकर नैर्ऋत्यदिशामें धनुषसे छोड़े गये बाणद्वारा तय की गयी दूरीसे भी आगेकी भूमिपर जाकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ६॥

विण्मूत्रेऽपि च कर्णस्थ आश्रमे प्रथमे द्विजः।
निवीतं पृष्ठतः कुर्याद्वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ ७

कृत्वा यज्ञोपवीतं तु पृष्ठतः कण्ठलम्बितम्।
विण्मूत्रं तु गृही कुर्यात्कर्णस्थं प्रथमाश्रमी॥ ८

अन्तर्धाय तृणैर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा।
वाचं नियम्य यत्नेन ष्ठीवनश्वासवर्जितः॥ ९

न फालकृष्टे न जले न चितायां न पर्वते।
जीर्णदेवालये कुर्यान्न वल्मीके न शाद्वले॥ १०

न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन्न पथि स्थितः।
सन्ध्ययोरुभयोर्जप्ये भोजने दन्तधावने॥ ११

पितृकार्ये च दैवे च तथा मूत्रपुरीषयोः।
उत्साहे मैथुने वापि तथा वै गुरुसन्निधौ॥ १२

यागे दाने ब्रह्मयज्ञे द्विजो मौनं समाचरेत्।
देवता ऋषयः सर्वे पिशाचोरगराक्षसाः॥ १३

इतो गच्छन्तु भूतानि बहिर्भूमिं करोम्यहम्।
इति सम्प्रार्थ्य पश्चात्तु कुर्याच्छौचं यथाविधि॥ १४

वाय्वग्नी विप्रमादित्यमापः पश्यंस्तथैव गाः।
न कदाचन कुर्वीत विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ १५

उदङ्मुखो दिवा कुर्याद्रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः।
तत आच्छाद्य विण्मूत्रं लोष्ठपर्णतृणादिभिः॥ १६

गृहीतलिङ्ग उत्थाय स गच्छेद्वारिसन्निधौ।
पात्रे जलं गृहीत्वा तु गच्छेदन्यत्र चैव हि॥ १७

ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित द्विजको मल-मूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत अपने कानपर रख लेना चाहिये। वानप्रस्थ तथा गृहस्थ यज्ञोपवीतको आगे लटकाकर पीठपर कर ले॥ ७॥

गृहस्थको यज्ञोपवीत कण्ठीके समान पीठकी ओर लटकाकर और प्रथम आश्रममें स्थित ब्रह्मचारीको यज्ञोपवीत कानपर रखकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ८॥

तृणोंसे भूमिको ढँककर, सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके, मौन हो करके, थूकने तथा श्वासक्रियासे रहित होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ९॥

जोती हुई भूमिपर, जलमें, चिताके स्थानपर, पर्वतपर, जीर्ण देवस्थलोंपर, वल्मीक (बिमौट)-पर तथा हरी घासपर, मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग न तो जीव-जन्तुवाले गड्ढोंमें, न तो चलते हुए और न तो रास्तेमें स्थित होकर ही करे॥ १०½॥

दोनों सन्ध्याओंमें, जपकालमें, भोजनके समय, दन्तधावन करते समय, पितृ तथा देव-कार्य सम्पन्न करते समय, मल-मूत्रके उत्सर्गके समय, हर्षातिरेककी स्थितिमें, मैथुन करते समय, गुरुकी सन्निधिमें, यज्ञ करते समय, दान देते समय तथा ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-के समय द्विजको मौन धारण किये रहना चाहिये॥ ११-१२½॥

शौचसे पूर्व ऐसा उच्चारण करना चाहिये—सभी देवता, ऋषि, पिशाच, नाग, राक्षस तथा भूत-समुदाय यहाँसे चले जायँ; क्योंकि मैं यहाँ मल-त्याग करना चाहता हूँ। इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक शौच करना चाहिये॥ १३-१४॥

वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल तथा गौको देखते हुए मल-मूत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। दिनमें उत्तर दिशाकी ओर तथा रातमें दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। तत्पश्चात् मल-मूत्रको मिट्टीके ढेलों, पत्तों, तृण आदिसे ढँक करके पुनः उठकर जननेन्द्रियको पकड़े हुए जलके निकट जाना चाहिये। पात्रमें जल लेकर वहाँसे दूसरे स्थानपर जाना चाहिये॥ १५—१७॥

गृहीत्वा मृत्तिकां कूलाच्छ्वेतां ब्राह्मणसत्तमः।
रक्तां पीतां तथा कृष्णां गृह्णीयुश्चान्यवर्णकाः॥ १८

अथवा या यत्र देशे सैव ग्राह्या द्विजोत्तमैः।
अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषकोत्करात् ॥ १९
कृतशौचावशिष्टाच्च न ग्राह्याः पञ्चमृत्तिकाः।

मूत्रात्तु द्विगुणं शौचे मैथुने त्रिगुणं स्मृतम्॥ २०

एका लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम्।
मूत्रशौचं समाख्यातं शौचे तद् द्विगुणं स्मृतम्॥ २१

विट्शौचे लिङ्गदेशे तु प्रदद्यान्मृत्तिकाद्वयम्।
पञ्चापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः॥ २२

वामपादं पुरस्कृत्य पश्चाद्दक्षिणमेव च।
प्रत्येकं च चतुर्वारं मृत्तिकां लेपयेत्सुधीः॥ २३

एवं शौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः।
त्रिगुणं वानप्रस्थस्य यतीनां च चतुर्गुणम्॥ २४

आर्द्रामलकमाना तु मृत्तिका शौचकर्मणि।
प्रत्येकं तु सदा ग्राह्या नातो न्यूना कदाचन॥ २५

एतद्दिवा स्याद्विट्शौचं तदर्धं निशि कीर्तितम्।
आतुरस्य तदर्धं तु मार्गस्थस्य तदर्धकम्॥ २६

स्त्रीशूद्राणामशक्तानां बालानां शौचकर्मणि।
यथा गन्धक्षयः स्यात्तु तथा कुर्यादसंख्यकम्॥ २७

गन्धलेपक्षयो यावत्तावच्छौचं विधीयते।
सर्वेषामेव वर्णानामित्याह भगवान्मनुः॥ २८

शुद्धिके लिये जलाशयके तटसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको श्वेत, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीली तथा शूद्रको काली मिट्टी लेनी चाहिये अथवा जिस स्थानपर जो मिट्टी उपलब्ध हो जाय; उत्तम द्विजको वही ले लेनी चाहिये। पानीके अन्दरसे, देवालयसे, वल्मीकसे तथा चूहेके बिलसे गृहीत और शौचसे अवशिष्ट—ये पाँच मिट्टियाँ ग्राह्य नहीं हैं॥ १८–१९½ ॥

मूत्र-त्यागकी अपेक्षा मल-त्यागमें दोगुनी तथा मैथुनके बाद तीन गुनी शुद्धि कही गयी है। मूत्र-त्यागके पश्चात् लिंगमें एक बार, बायें हाथमें तीन बार और पुनः दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाना बताया गया है; इसे मूत्र-शौच कहा गया है। मल-शौचमें यही क्रिया दोगुनी कही गयी है। मल-त्यागके पश्चात् शुद्धिहेतु लिंगमें दो बार, गुदामें पाँच बार तथा दोनों हाथोंमें ग्यारह बार मिट्टी लगानी चाहिये॥ २०—२२॥

उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको पहले अपने बायें पैर तथा बादमें दाहिने पैरमें—इस प्रकार प्रत्येकमें चार-चार बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करनी चाहिये॥ २३॥

शुद्धि सम्बन्धी यह नियम गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारीको इससे दुगुनी, वानप्रस्थको तीन गुनी तथा संन्यासीको चार गुनी शुद्धि करनेका विधान है॥ २४॥

शौचकर्ममें प्रत्येक बार आर्द्र आँवलेके बराबर मिट्टी सदा लेनी चाहिये, इससे कम कभी नहीं लेनी चाहिये। दिनमें मल-त्यागके बादकी शुद्धिका यही नियम है। रात्रिमें इससे आधे, रोगीके लिये उससे आधे तथा मार्गमें स्थित व्यक्तिके लिये उससे भी आधे परिमाणमें शुद्धिका विधान बताया गया है॥ २५–२६॥

स्त्रियों, शूद्रों, अशक्तजनों तथा बालकोंके लिये शौचकर्ममें मिट्टी लगानेकी कोई संख्या नहीं है। जितनी बारमें दुर्गन्ध समाप्त हो जाय, उतनी बार मिट्टी लगानी चाहिये। जबतक दुर्गन्धि मिट नहीं जाती, तबतक बार-बार मिट्टीके अनुलेपनसे शुद्धि-कर्म करनेका विधान है। यह नियम सभी वर्णोंके लिये है—ऐसा भगवान् मनुने कहा है॥ २७–२८॥

वामहस्तेन शौचं तु कुर्याद्वै दक्षिणेन न।
नाभेरधो वामहस्तो नाभेरूर्ध्वं तु दक्षिणः॥ २९

शौचकर्मणि विज्ञेयो नान्यथा द्विजपुङ्गवैः।
जलपात्रं न गृह्णीयाद्विण्मूत्रोत्सर्जने बुधः॥ ३०

गृह्णीयाद्यदि मोहेन प्रायश्चित्तं चरेत्ततः।
मोहाद्वाप्यथवालस्यान्न कुर्याच्छौचमात्मनः॥ ३१

जलाहारस्त्रिरात्रः स्यात्ततो जापाच्च शुध्यति।
देशकालद्रव्यशक्तिस्वोपपत्तीश्च सर्वशः॥ ३२

ज्ञात्वा शौचं प्रकर्तव्यमालस्यं नात्र धारयेत्।
पुरीषोत्सर्जने कुर्याद् गण्डूषान्द्वादशैव तु॥ ३३

चतुरो मूत्रविक्षेपे नातो न्यूनान्कदाचन।
अधोमुखं नरः कृत्वा त्यजेत्तं वामतः शनैः॥ ३४

आचम्य च ततः कुर्याद्दन्तधावनमादरात्।
कण्टकिक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशाङ्गुलमव्रणम्॥ ३५

कनिष्ठिकाग्रवत्स्थूलं पूर्वार्धे कृतकूर्चकम्।
करञ्जोदुम्बरौ चूतः कदम्बो लोध्रचम्पकौ।
बदरीति द्रुमाश्चेति प्रोक्ता दन्तप्रधावने॥ ३६

अन्नाद्याय व्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत्।
स मे मुखं प्रक्षाल्य तेजसा च भगेन च॥ ३७

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च।
ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते॥ ३८

अभावे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिनेषु च।
अपां द्वादशगण्डूषैर्विदध्याद्दन्तधावनम्॥ ३९

शुद्धि-कार्य दाहिने हाथसे न करके सदा बायें हाथसे ही करना चाहिये। नाभिसे नीचे बायें हाथ तथा इससे ऊपर दाहिने हाथका प्रयोग करना चाहिये। शौचकर्मके सम्बन्धमें श्रेष्ठ द्विजोंको यही नियम समझना चाहिये, इसके विपरीत नहीं॥ २९½॥

मल-मूत्रका त्याग करते समय विद्वान्‌को जलपात्र हाथमें नहीं लिये रहना चाहिये। यदि अज्ञानतावश लेता है तो बादमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। मोह अथवा आलस्यवश यदि वह अपनी शुद्धि नहीं करता तो [इसके प्रायश्चित्तस्वरूप] तीन रात केवल जलके आहारपर रहना चाहिये। इसके बाद गायत्रीजपसे शुद्धि हो जाती है॥ ३०-३१½॥

देश, काल, द्रव्य, शक्ति तथा अपने साधनोंपर भलीभाँति विचार करके शुद्धिकार्य करना चाहिये; इसमें आलस्य नहीं करना चाहिये॥ ३२½॥

मल-त्यागके उपरान्त शुद्धिके लिये बारह बार तथा मूत्र-त्यागके उपरान्त चार बार कुल्ला करना चाहिये; इससे कम कभी नहीं करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि मुख नीचे करके कुल्लेका जल धीरे-धीरे अपने बायीं ओर फेंके॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् आचमन करके सावधानीपूर्वक दन्तधावन करना चाहिये। इसके लिये काँटे तथा दूधवाले वृक्षसे बारह अंगुलके प्रमाणवाली, छिद्ररहित, कनिष्ठिका अँगुलीके अग्र-भागके सदृश मोटाईवाली तथा आधे भागतक कूर्चके समान बनायी गयी दातौन लेनी चाहिये। करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा तथा बेरके वृक्ष दन्तधावनके लिये उत्तम कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

[उस समय ऐसी प्रार्थना करे] अन्न आदिको सुपाच्य बनाने तथा विघ्नोंको दूर करनेके लिये स्वयं ये [वनस्पतियोंके] राजा सोम यहाँ आये हुए हैं। वे अपने तेज तथा ऐश्वर्यसे मेरे मुखका प्रक्षालन करें। हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान तथा मेधा प्रदान करें॥ ३७-३८॥

दन्तकाष्ठके अभावमें अथवा निषिद्ध तिथियोंमें जलसे बारह बार कुल्ला कर लेनेसे दन्तधावनकी विधि पूर्ण हो जाती है॥ ३९॥

रवेर्दिने यः कुरुते प्राणी दन्तस्य धावनम्।
सविता भक्षितस्तेन स्वकुलं तेन घातितम्॥ ४०
प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्येकादशीरवौ।
दन्तानां काष्ठसंयोगाद्दहत्यासप्तमं कुलम्॥ ४१
कृत्वालं पादशौचं ह्यमलमथ जलं
त्रिःपिबेद् द्विर्विमृज्य
तर्जन्याङ्गुष्ठवत्या सजलमभिमृशे-
न्नासिकारन्ध्रयुग्मम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां नयनयुगयुतं
कर्णयुग्मं कनिष्ठा-
ङ्गुष्ठाभ्यां नाभिदेशे हृदयमथ तले-
नाङ्गुलीभिः शिरांसि॥ ४२

जो मनुष्य रविवारको दन्तधावन करता है, उसने मानो सूर्यका ही भक्षण कर लिया तथा अपने कुलका स्वयं विनाश कर लिया। साथ ही प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी, एकादशी तथा रविवारको काष्ठसे दन्तधावन करनेसे वह व्यक्ति अपनी सात पीढ़ियोंको जला डालता है॥ ४०-४१॥

पाद-प्रक्षालन करके तीन बार शुद्ध जलसे आचमन करनेके पश्चात् दो बार मुख पोंछ लेना चाहिये। तदनन्तर जल लेकर तर्जनी तथा अँगूठेसे दोनों नासिकाछिद्रोंका, अँगूठे तथा अनामिकासे दोनों नेत्रों तथा दोनों कानोंका, कनिष्ठा तथा अँगूठेसे नाभिस्थलका, हाथके तलसे हृदयका और सभी अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये॥ ४२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
शौचविधिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

सदाचार-वर्णन और रुद्राक्ष-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

(शुद्धं स्मार्तं चाचमनं पौराणं वैदिकं तथा।
तान्त्रिकं श्रौतमित्याहुः षड्विधं श्रुतिचोदितम्॥

विण्मूत्रादिकशौचं च शुद्धं च परिकीर्तितम्।
स्मार्तं पौराणिकं कर्म आचान्ते विधिपूर्वकम्॥

वैदिकं श्रौत्रमित्यादि ब्रह्मयज्ञादिपूर्वकम्।
अस्त्रविद्यादिकं कर्म तान्त्रिको विधिरुच्यते॥)

स्मृत्वा चोङ्कारगायत्रीं निबध्नीयाच्छिखां तथा।
पुनराचम्य हृदयं बाहू स्कन्धौ च संस्पृशेत्॥ १

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्॥ २

अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा।
सर्वे नारद विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे॥ ३

श्रीनारायण बोले—(शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक तथा श्रौत—यह छः प्रकारका श्रुति-प्रतिपादित आचमन कहा गया है। मल-मूत्रादिके विसर्जनके पश्चात् शुद्धिके लिये किया जानेवाला आचमन शुद्ध आचमन कहा गया है। कर्मके पूर्व किया गया आचमन स्मार्त तथा पौराणिक कहा जाता है। ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) आरम्भ करनेके पूर्व किया गया आचमन वैदिक तथा श्रौत एवं अस्त्र-विद्या आदि कर्मोंके प्रारम्भसे पूर्व कृत आचमन तान्त्रिक आचमन कहा जाता है।)

ॐकार तथा गायत्री मन्त्रका स्मरण करके शिखाबन्धन करे। तत्पश्चात् आचमन करके हृदय, दोनों भुजाओं तथा दोनों स्कन्धोंका स्पर्श करे॥ १॥

छींकने, थूकने, दाँतोंसे जूठनका स्पर्श हो जाने, झूठ बोलने तथा पतितोंसे बातचीत हो जानेपर शुद्धिहेतु दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। हे नारद! अग्नि, जल, चारों वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु—ये सब ब्राह्मणके दाहिने कानपर विराजमान रहते हैं॥ २-३॥

ततस्तु गत्वा नद्यादौ प्रातःस्नानं विशोधनम्।
समाचरेन्मुनिश्रेष्ठ देहसंशुद्धिहेतवे॥ ४

अत्यन्तमलिनो देहो नवद्वारैर्मलं वहन्।
सदास्ते तच्छोधनाय प्रातःस्नानं विधीयते॥ ५

अगम्यागमनात्पापं यच्च पापं प्रतिग्रहात्।
रहस्याचरितं पापं मुच्यते स्नानकर्मणा॥ ६

अस्नातस्य क्रियाः सर्वा भवन्ति विफला यतः।
तस्मात्प्रातश्चरेत्स्नानं नित्यमेव दिने दिने॥ ७

दर्भयुक्तश्चरेत्स्नानं तथा सन्ध्याभिवन्दनम्।
सप्ताहं प्रातरस्नायी सन्ध्याहीनस्त्रिभिर्दिनैः॥ ८

द्वादशाहमनग्निः सन्द्विजः शूद्रत्वमाप्नुयात्।
अल्पत्वाद्धोमकालस्य बहुत्वात्स्नानकर्मणः॥ ९

प्रातर्न तु तथा स्नायाद्धोमकाले विगर्हितः।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥ १०

गायन्तं त्रायते यस्माद् गायत्रीत्यभिधीयते।
प्रणवेन तु संयुक्तां व्याहृतित्रयसंयुताम्॥ ११

वायुं वायौ जयेद्विप्रः प्राणसंयमनत्रयात्।
ब्राह्मणः श्रुतिसम्पन्नः स्वधर्मनिरतः सदा॥ १२

स वैदिकं जपेन्मन्त्रं लौकिकं न कदाचन।
गौशृङ्गे सर्षपो यावत् तावद्येषां न स स्थिरः॥ १३

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् नदी आदिपर जाकर देह-शुद्धिके लिये विधिपूर्वक प्रातःकालिक स्नान करना चाहिये। नौ द्वारोंसे निरन्तर मल निकालनेवाला शरीर अत्यन्त अशुद्ध रहता है, अतएव उसकी शुद्धिके लिये प्रभात-वेलामें स्नान किया जाता है। अगम्या स्त्रीके साथ गमन करने, प्रतिग्रह स्वीकार करने तथा एकान्तमें निन्द्य कर्म करनेसे जो पाप लगता है, उन सभीसे मनुष्य प्रातःस्नान कर लेनेसे मुक्त हो जाता है॥ ४—६॥

चूँकि प्रातःस्नान न करनेवालेकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं, अतएव प्रतिदिन प्रातःकालीन स्नान अवश्य ही करना चाहिये॥ ७॥

स्नान तथा सन्ध्यावन्दन-कार्य कुशसहित करना चाहिये। सात दिनोंतक प्रातःकाल स्नान न करनेवाला, तीन दिनोंतक सन्ध्योपासन न करनेवाला तथा बारह दिनोंतक अग्निकर्म (हवन) न करनेवाला द्विज शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ८½॥

स्नानादिके अधिक समय-साध्य होनेके फलस्वरूप हवन-कर्मके लिये कम समय बचनेके कारण प्रातःकाल उस प्रकार स्नान न करे कि होम-कार्य उचित समयपर सम्पन्न न हो पानेसे कर्ताको निन्दाका पात्र बनना पड़े॥ ९½॥

गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है। चूँकि यह उच्चारण करनेवालेकी रक्षा करती है, अतः इसे गायत्री नामसे अभिहित किया जाता है॥ १०॥

तीन बार प्राणायाम करके विप्रको प्राणवायुको अपानवायुमें नियन्त्रित करना चाहिये और प्रणव (ॐकार) तथा व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः)-सहित गायत्री-जप करना चाहिये॥ ११½॥

श्रुति-सम्पन्न ब्राह्मणको सदा अपने धर्मका पालन करना चाहिये। उसे वैदिक मन्त्रका जप करना चाहिये, लौकिक मन्त्रका जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १२½॥

गायकी सींगपर सरसों जितने समयतक स्थिर रह सकती है, उतने समय भी जिनका प्राणवायु प्राणायाम-कालमें नहीं रुकता, वे अपने दोनों पक्षों

न तारयन्त्युभौ पक्षौ पितॄनेकोत्तरं शतम्।
सगर्भो जपसंयुक्तस्त्वगर्भो ध्यानमात्रकः॥ १४

स्नानाङ्गतर्पणं कृत्वा देवर्षिपितृतोषकम्।
शुद्धे वस्त्रे परीधाय जलाद् बहिरुपागतः॥ १५

विभूतिधारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम्।
क्रमयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जपसाधकैः॥ १६

रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशनपरिमिता-
न्मस्तके विंशती द्वे
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलकृते
द्वादश द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिर्नयनयुगकृते
त्वेकमेकं शिखायां
वक्षस्यष्टाधिकं यः कलयति शतकं
स स्वयं नीलकण्ठः॥ १७

बद्ध्वा स्वर्णेन रुद्राक्षं रजतेनाथवा मुने।
शिखायां धारयेन्नित्यं कर्णयोर्वा समाहितः॥ १८

यज्ञोपवीते हस्ते वा कण्ठे तुन्देऽथवा नरः।
श्रीमत्पञ्चाक्षरेणैव प्रणवेन तथापि वा॥ १९

निर्व्याजभक्त्या मेधावी रुद्राक्षं धारयेन्मुदा।
रुद्राक्षधारणं साक्षाच्छिवज्ञानस्य साधनम्॥ २०

रुद्राक्षं यच्छिखायां तत्तारतत्त्वमिति स्मरेत्।
कर्णयोरुभयोर्ब्रह्मन् देवं देवीं च भावयेत्॥ २१

यज्ञोपवीते वेदांश्च तथा हस्ते दिशः स्मरेत्।
कण्ठे सरस्वतीं देवीं पावकं चापि भावयेत्॥ २२

सर्वाश्रमाणां वर्णानां रुद्राक्षाणां च धारणम्।
कर्तव्यं मन्त्रतः प्रोक्तं द्विजानां नान्यवर्णिनाम्॥ २३

(माता-पिता)-की एक सौ एक पीढ़ियोंके पितरोंको कभी नहीं तार सकते। जपसहित किया गया प्राणायाम सगर्भ और केवल ध्यानयुक्त प्राणायाम अगर्भ नामवाला है॥ १३-१४॥

देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको सन्तुष्ट करनेके निमित्त स्नानांग-तर्पण करना चाहिये। पुनः जलसे बाहर आकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करके विभूति तथा रुद्राक्षकी माला धारण करनी चाहिये। इस प्रकार जप-साधना करनेवालोंको क्रमसे यह सब सदैव करना चाहिये॥ १५-१६॥

जो व्यक्ति अपने कण्ठमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, दोनों कानोंमें छः-छः, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, दोनों बाहुओंमें चन्द्रकलाके बराबर सोलह-सोलह, दोनों नेत्रोंमें एक-एक, शिखामें एक तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् नीलकण्ठ शिव हो जाता है॥ १७॥

हे मुने! सोने अथवा चाँदीके तारमें पिरोकर मनुष्यको शिखामें, दोनों कानोंमें, यज्ञोपवीतमें, हाथमें, कण्ठमें तथा उदरपर श्रीपंचाक्षर मन्त्र '**नमः शिवाय**' अथवा प्रणव (ओंकार)-के जपके साथ समाहित होकर रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८-१९॥

मेधावी पुरुषको निष्कपट भक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिये; क्योंकि रुद्राक्ष धारण करना साक्षात् शिवज्ञानकी प्राप्तिका साधन है॥ २०॥

जो रुद्राक्ष शिखामें धारण किया जाता है, उसे तारक तत्त्वकी भाँति समझना चाहिये। हे ब्रह्मन्! दोनों कानोंमें धारण किये गये रुद्राक्षमें शिव तथा शिवाकी भावना करनी चाहिये। यज्ञोपवीतमें धारण किये गये रुद्राक्षको चारों वेद तथा हाथमें धारण किये गये रुद्राक्षको दिशाएँ जानना चाहिये। कण्ठमें धारित रुद्राक्षको देवी सरस्वती तथा अग्निके तुल्य मानना चाहिये॥ २१-२२॥

सभी आश्रमों तथा वर्णोंके लोगोंके लिये रुद्राक्ष-धारण करनेका विधान है। द्विजोंको मन्त्रोच्चारणके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, किंतु अन्य वर्णके लोगोंको नहीं॥ २३॥

रुद्राक्षधारणाद्रुद्रो भवत्येव न संशयः।
पश्यन्नपि निषिद्धांश्च तथा शृण्वन्नपि स्मरन्॥ २४

जिघ्रन्नपि तथा चाश्नन् प्रलपन्नपि सन्ततम्।
कुर्वन्नपि सदा गच्छन्विसृजन्नपि मानवः॥ २५

रुद्राक्षधारणादेव सर्वपापैर्न लिप्यते।
अनेन भुक्तं देवेन भुक्तं यत्तु तथा भवेत्॥ २६

पीतं रुद्रेण तत्पीतं घ्रातं घ्रातं शिवेन तत्।
रुद्राक्षधारणे लज्जा येषामस्ति महामुने॥ २७

तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।
रुद्राक्षधारिणं दृष्ट्वा परिवादं करोति यः॥ २८

उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमस्त्येवेति विनिश्चयः।
रुद्राक्षधारणादेव रुद्रो रुद्रत्वमाप्नुयात्॥ २९

मुनयः सत्यसङ्कल्पा ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः।
रुद्राक्षधारणाच्छ्रेष्ठं न किञ्चिदपि विद्यते॥ ३०

रुद्राक्षधारिणे भक्त्या वस्त्रं धान्यं ददाति यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥ ३१

रुद्राक्षधारिणं श्राद्धे भोजयेत विमोदतः।
पितृलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ३२

रुद्राक्षधारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भिः पिबेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ३३

हारं वा कटकं वापि सुवर्णं वा द्विजोत्तमः।
रुद्राक्षसहितं भक्त्या धारयन् रुद्रतामियात्॥ ३४

रुद्राक्षं केवलं वापि यत्र कुत्र महामते।
समन्त्रकं वा मन्त्रेण रहितं भाववर्जितम्॥ ३५

यो वा को वा नरो भक्त्या धारयेल्लज्जयापि वा।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सम्यग्ज्ञानमवाप्नुयात्॥ ३६

रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे व्यक्ति साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। निषिद्ध चीजोंको देखने, उनके विषयमें सुनने, उनका स्मरण करने, उन्हें सूँघने, खाने, निरन्तर उनके विषयमें बातचीत करने, सदा ऐसे कर्म करने, अपरित्याज्य अर्थात् विहितका परित्याग करनेपर रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे प्रभावित नहीं होता। ऐसे व्यक्तिने जो कुछ ग्रहण कर लिया, उसे मानो शिवजीने स्वीकार कर लिया, उसने जो भी पी लिया, उसे शिवजीने पी लिया तथा जो कुछ सूँघ लिया, उसे भी मानो शिवजीने ही सूँघ लिया॥ २४—२६½॥

हे महामुने! जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं, करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे उनका मोक्ष नहीं हो सकता॥ २७½॥

किसी रुद्राक्ष धारण करनेवालेको देखकर जो मनुष्य उसकी निन्दा करता है, उसके उत्पन्न होनेमें वर्णसंकरताका दोष निश्चितरूपसे विद्यमान होता है॥ २८½॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे ही रुद्र रुद्रत्वको प्राप्त हुए, मुनिगण सत्यसंकल्पवाले हुए तथा ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए। अतएव रुद्राक्ष धारण करनेसे अतिरिक्त कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है॥ २९-३०॥

जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण करनेवालेको भक्तिपूर्वक वस्त्र तथा अन्न प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको जाता है॥ ३१॥

जो व्यक्ति प्रसन्न होकर रुद्राक्ष धारण करनेवालेको श्राद्धकर्ममें भोजन कराता है, वह पितृलोकको प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३२॥

रुद्राक्ष धारण करनेवालेके दोनों चरणोंको जलसे प्रक्षालित करके उस जलको पीनेवाला मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३३॥

भक्तिपूर्वक रुद्राक्षसहित हार, कड़ा या स्वर्णाभूषण धारण करनेवाला द्विजश्रेष्ठ रुद्रत्वको प्राप्त होता है॥ ३४॥

हे महामते! जो कोई भी मनुष्य जहाँ-कहीं भी समन्त्रक या अमन्त्रक अथवा भावरहित होकर अथवा लज्जासे भी भक्तिपूर्वक केवल रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सम्पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३५-३६॥

अहो रुद्राक्षमाहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्रुद्राक्षधारणम्॥ ३७

अहो, मैं रुद्राक्षमाहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतएव पूर्ण प्रयत्नके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ३७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सदाचारनिरूपणे रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

रुद्राक्षकी उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन

नारद उवाच

एवंभूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो भवतानघ।
वर्णितो महतां पूज्यः कारणं तत्र किं वद॥ १

नारदजी बोले—हे अनघ! इस प्रकारका यह आपका महान् अनुग्रह है जो आपने रुद्राक्षके विषयमें बताया; यह महान् लोगोंके लिये पूज्य है, इसका क्या कारण है, इसे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

एवमेव पुरा पृष्टो भगवान् गिरिशः प्रभुः।
षण्मुखेन च रुद्रस्तं यदुवाच शृणुष्व तत्॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसी तरहसे पूर्व कालमें षडानन स्कन्दकुमारने गिरिशायी भगवान् रुद्रसे पूछा था; तब उन्होंने उनसे जो कहा था, उसे आप सुनिये॥ २॥

ईश्वर उवाच

शृणु षण्मुख तत्त्वेन कथयामि समासतः।
त्रिपुरो नाम दैत्यस्तु पुरासीत्सर्वदुर्जयः॥ ३

ईश्वर बोले—हे षडानन! सुनो, मैं [रुद्राक्षके विषयमें] संक्षेपमें यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें सभी लोगोंसे अपराजेय त्रिपुर नामक एक दैत्य था॥ ३॥

जितास्तेन सुराः सर्वे ब्रह्मविष्ण्वादिदेवताः।
सर्वैस्तु कथिते तस्मिंस्तदाहं त्रिपुरं प्रति॥ ४

अचिन्तयं महाशस्त्रमघोराख्यं मनोहरम्।
सर्वदेवमयं दिव्यं ज्वलन्तं घोररूपि यत्॥ ५

उसने ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओंको जीत लिया था। तब सभी देवताओंके द्वारा उसके विषयमें मुझसे बतानेपर मैं समस्त देवताओंकी शक्तिसे सम्पन्न, दिव्य, प्रज्वलित, भयानक रूपवाले तथा मनोहर अघोर नामक एक महान् अस्त्रके विषयमें कल्पना करने लगा॥ ४-५॥

त्रिपुरस्य वधार्थाय देवानां तारणाय च।
सर्वविघ्नोपशमनमघोरास्त्रमचिन्तयम्॥ ६

दिव्यवर्षसहस्रं तु चक्षुरुन्मीलितं मया।
पश्चान्ममाकुलाक्षिभ्यः पतिता जलबिन्दवः॥ ७

उस त्रिपुरके संहार तथा देवताओंके उद्धारके लिये मैं समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले उस अघोरास्त्रके लिये चिन्तन करता रहा और दिव्य एक हजार वर्षोंतक मैं नेत्र खोले रह गया। तत्पश्चात् अत्यन्त आकुल मेरे नेत्रोंसे जलकी बूँदें गिरने लगीं॥ ६-७॥

तत्राश्रुबिन्दुतो जाता महारुद्राक्षवृक्षकाः।
ममाज्ञया महासेन सर्वेषां हितकाम्यया॥ ८

बभूवुस्ते च रुद्राक्षा अष्टत्रिंशत्प्रभेदतः।
सूर्यनेत्रसमुद्भूताः कपिला द्वादश स्मृताः॥ ९

उन अश्रु-बिन्दुओंसे रुद्राक्षके बड़े-बड़े वृक्ष उत्पन्न हो गये। हे महासेन! मेरी आज्ञासे सभी लोगोंके कल्याणार्थ वे अड़तीस प्रकारके रुद्राक्ष हुए। मेरे सूर्यनेत्र (दाहिने नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कपिलवर्णके थे, वे बारह प्रकारके कहे गये हैं। मेरे चन्द्रनेत्र (बायें नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष श्वेतवर्णवाले थे, वे क्रमसे

सोमनेत्रोत्थिताः श्वेतास्ते षोडशविधाः क्रमात्।
वह्निनेत्रोद्भवाः कृष्णा दश भेदा भवन्ति हि॥ १०

श्वेतवर्णश्च रुद्राक्षो जातितो ब्राह्म उच्यते।
क्षात्रो रक्तस्तथा मिश्रो वैश्यः कृष्णस्तु शूद्रकः॥ ११

एकवक्त्रः शिवः साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
द्विवक्त्रो देवदेव्यो स्याद् विविधं नाशयेदघम्॥ १२

त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात्।
चतुर्वक्त्रः स्वयं ब्रह्मा नरहत्यां व्यपोहति॥ १३

पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः।
अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरगम्यागमनोद्भवैः॥ १४

मुच्यते सर्वपापैस्तु पञ्चवक्त्रस्य धारणात्।
षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु स धार्यो दक्षिणे करे॥ १५

ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।
सप्तवक्त्रो महाभागो ह्यनङ्गो नाम नामतः॥ १६

तद्धारणान्मुच्यते हि स्वर्णस्तेयादिपातकैः।
अष्टवक्त्रो महासेन साक्षाद्देवो विनायकः॥ १७

अन्नकूटं तूलकूटं स्वर्णकूटं तथैव च।
दुष्टान्वयस्त्रियं वाथ संस्पृशंश्च गुरुस्त्रियम्॥ १८

एवमादीनि पापानि हन्ति सर्वाणि धारणात्।
विघ्नास्तस्य प्रणश्यन्ति याति चान्ते परं पदम्॥ १९

भवन्त्येते गुणाः सर्वे ह्यष्टवक्त्रस्य धारणात्।

सोलह प्रकारके हैं। इसी प्रकार अग्निनेत्र (तीसरे नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कृष्णवर्णके थे, उनके दस भेद हैं॥ ८—१०॥

श्वेतवर्णका रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण, रक्तवर्णका रुद्राक्ष क्षत्रिय, मिश्रवर्णका रुद्राक्ष वैश्य तथा कृष्णवर्णका रुद्राक्ष शूद्र कहा जाता है॥ ११॥

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है, वह ब्रह्महत्या-तकके पापको मिटा देता है। दोमुखी रुद्राक्ष देवी-देवता—इन दोनोंका स्वरूप है, वह दो प्रकारके पापोंका शमन करता है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है, वह स्त्री-वधजनित पापको क्षणभरमें भस्म कर डालता है। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्मास्वरूप है, वह नरवधजनित पापको दूर करता है॥ १२-१३॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्नि नामवाले रुद्रका स्वरूप है। पंचमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे उत्पन्न होनेवाले तथा अगम्या नारीके साथ सहवास करनेसे लगे हुए सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४½॥

छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है, उसे दाहिने हाथमें धारण करना चाहिये। इसे धारण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १५½॥

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनंग नामवाले महाभाग्यशाली कामदेवका रूप है। उसे धारण करनेसे मनुष्य स्वर्णकी चोरी आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १६½॥

हे महासेन! आठ मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् विनायक देव है। इसे धारण करनेसे अन्न, वस्त्र तथा स्वर्ण आदिकी विपुल मात्रामें प्राप्ति होती है। धारण करनेपर यह रुद्राक्ष दूषित कुलकी स्त्री तथा गुरुपत्नीके साथ संसर्ग करनेसे लगनेवाले पापों और इसी प्रकारके अन्यान्य पापोंको भी नष्ट कर देता है। उस मनुष्यकी सभी विघ्न-बाधाएँ विनष्ट हो जाती हैं तथा अन्तमें वह परमपदको प्राप्त होता है। ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे फलीभूत होते हैं॥ १७—१९½॥

नववक्त्रो भैरवस्तु धारयेद्वामबाहुके॥ २०

भुक्तिमुक्तिप्रदः प्रोक्तो मम तुल्यबलो भवेत्।
भ्रूणहत्यासहस्राणि ब्रह्महत्याशतानि च॥ २१

सद्यः प्रलयमायान्ति नववक्त्रस्य धारणात्।
दशवक्त्रस्तु देवेशः साक्षाद्देवो जनार्दनः॥ २२

ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः।
पन्नगाश्चोपशाम्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात्॥ २३

वक्त्रैकादशरुद्राक्षो रुद्रैकादशकं स्मृतम्।
शिखायां धारयेद्यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु॥ २४

अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च।
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्॥ २५

तत्फलं लभते शीघ्रं वक्त्रैकादशधारणात्।
द्वादशास्यस्य रुद्राक्षस्यैव कर्णे तु धारणात्॥ २६

आदित्यास्तोषिता नित्यं द्वादशास्ये व्यवस्थिताः।
गोमेधे चाश्वमेधे च यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ २७

शृङ्गिणां शस्त्रिणां चैव व्याघ्रादीनां भयं न हि।
न च व्याधिभयं तस्य नैव चाधिः प्रकीर्तितः॥ २८

न च किञ्चिद्भयं तस्य न च व्याधिः प्रवर्तते।
न कुतश्चिद्भयं तस्य सुखी चैवेश्वरो भवेत्॥ २९

हस्त्यश्वमृगमार्जारसर्पमूषकदर्दुरान्।
खरांश्च श्वशृगालांश्च हत्वा बहुविधानपि॥ ३०

मुच्यते नात्र सन्देहो वक्त्रद्वादशधारणात्।
वक्त्रत्रयोदशो वत्स रुद्राक्षो यदि लभ्यते॥ ३१

कार्तिकेयसमो ज्ञेयः सर्वकामार्थसिद्धिदः।
रसो रसायनं चैव तस्य सर्वं प्रसिद्ध्यति॥ ३२

नौ मुखवाला रुद्राक्ष भैरवस्वरूप है, इसे बायीं भुजापर धारण करना चाहिये। यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला बताया गया है। इसे धारण करनेवाला मेरे समान बलवान् हो जाता है। हजारों भ्रूणहत्या तथा सैकड़ों ब्रह्महत्याके पाप इस नौमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ २०-२१½॥

दसमुखी रुद्राक्ष साक्षात् देवेश्वर जनार्दन है। इस दस मुखवाले रुद्राक्षके धारण करनेसे ग्रहों, पिशाचों, बेतालों, ब्रह्मराक्षसों तथा पन्नगोंसे उत्पन्न होनेवाले विघ्न शान्त हो जाते हैं॥ २२-२३॥

ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् एकादश रुद्र है। जो मनुष्य इसे शिखामें धारण करता है, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनो। मनुष्य हजारों अश्वमेधयज्ञ करने, वाजपेय-यज्ञ करने और सम्यक्‌रूपसे लाखों गायोंके दान करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे ग्यारहमुखी रुद्राक्ष धारण करनेसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ २४-२५½॥

बारह मुखवाले रुद्राक्षको कानमें धारण करनेसे द्वादश आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं; क्योंकि वे रुद्राक्षके बारहों मुखपर विराजमान रहते हैं। अश्वमेध करनेसे जो फल मिलता है, वह फल केवल इसे धारण करनेमात्रसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। उसे सींगवाले जानवरों, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं तथा शस्त्रधारी शत्रुओंका भय नहीं होता। उसे शारीरिक तथा मानसिक कष्टका भी भय नहीं होता। उसे किसी तरहका रोग नहीं होता तथा वह कहींसे भी किसी तरहके भयसे ग्रस्त न रहते हुए सदा सुख तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य हाथी, घोड़े, मृग, बिल्ली, सर्प, चूहे, मेढक, गर्दभ, कुत्ते, सियार तथा अनेक प्रकारके जानवरोंको मारनेसे लगनेवाले पापसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २६—३०½॥

हे वत्स! तेरहमुखी रुद्राक्ष यदि प्राप्त हो जाय तो उसे कार्तिकेयके सदृश जानना चाहिये। वह सभी प्रकारकी कामनाओं, अर्थों तथा सिद्धियोंको देनेवाला है। उसके लिये रस-रसायन—सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा समस्त प्रकारके भोग्य-पदार्थ उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे

तस्यैव सर्वभोग्यानि नात्र कार्या विचारणा।
मातरं पितरं चैव भ्रातरं वा निहन्ति यः॥ ३३

मुच्यते सर्वपापेभ्यो धारणात्तस्य षण्मुख।
चतुर्दशास्यो रुद्राक्षो यदि लभ्येत पुत्रक॥ ३४

धारयेत्सततं मूर्ध्नि तस्य पिण्डः शिवस्य तु।
किं मुने बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः॥ ३५

पूज्यते सन्ततं देवैः प्राप्यते च परा गतिः।
रुद्राक्ष एकः शिरसा धार्यो भक्त्या द्विजोत्तमैः॥ ३६

षड्विंशद्भिः शिरोमाला पञ्चाशद्धृदयेन तु।
कलाक्षैर्बाहुवलये अर्काक्षैर्मणिबन्धनम्॥ ३७

अष्टोत्तरशतैर्माला पञ्चाशद्भिः षडानन।
अथवा सप्तविंशत्या कृत्वा रुद्राक्षमालिकाम्॥ ३८

धारणाद्वा जपाद्वापि ह्यनन्तं फलमश्नुते।
अष्टोत्तरशतैर्माला रुद्राक्षैर्धार्यते यदि॥ ३९

क्षणे क्षणेऽश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति षण्मुख।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य शिवलोके महीयते॥ ४०

षडानन! अपने माता-पिता अथवा भाईका वध करनेवाला व्यक्ति भी उस रुद्राक्षको धारण करनेमात्रसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३३½ ॥

हे पुत्र! यदि किसीको चौदह मुखवाला रुद्राक्ष मिल जाय और वह उसे निरन्तर अपने मस्तकपर धारण करे तो उसका शरीर साक्षात् शिवतुल्य हो जाता है॥ ३४½ ॥

[श्रीनारायण बोले—] हे मुने! अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन? देवतालोग भी उसकी निरन्तर पूजा करते हैं और अन्तमें उसे परमगति मिलती है॥ ३५½ ॥

[शिवजी बोले—] हे षडानन! उत्तम द्विजोंको भक्तिपूर्वक एक रुद्राक्ष सिरपर धारण करना चाहिये। छब्बीस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे सिरपर, पचास रुद्राक्षकी माला हृदयपर, सोलह रुद्राक्षकी माला बाहु-वलयपर तथा बारह रुद्राक्षकी माला मणिबन्धपर धारण करना चाहिये। एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला अथवा पचास रुद्राक्षोंकी माला अथवा सत्ताईस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे धारण करने अथवा उससे जप करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है॥ ३६—३८½ ॥

हे षडानन! यदि कोई मनुष्य एक सौ आठ रुद्राक्षोंसे निर्मित माला धारण करता है, तो वह प्रतिक्षण अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३९-४०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

~~O~~

अथ पञ्चमोऽध्यायः

जपमालाका स्वरूप तथा रुद्राक्ष-धारणका विधान

ईश्वर उवाच

लक्षणं जपमालायाः शृणु वक्ष्यामि षण्मुख।
रुद्राक्षस्य मुखं ब्रह्मा बिन्दू रुद्र इतीरितः॥ १
विष्णुः पुच्छं भवेच्चैव भोगमोक्षफलप्रदम्।

ईश्वर बोले—हे षडानन! अब मैं जपमालाका लक्षण बताऊँगा, उसे सुनो। रुद्राक्षके मुखको ब्रह्मा तथा बिन्दु (ऊपरी भाग)-को रुद्र कहा गया है। रुद्राक्षका पुच्छ (नीचेका भाग) विष्णुरूप है, यह भोग तथा मोक्षका फल प्रदान करता है॥ १½ ॥

पञ्चविंशतिभिश्चाक्षैः पञ्चवक्त्रैः सकण्टकैः॥ २

रक्तवर्णैः सितैर्मिश्रैः कृतरन्ध्रविदर्भितैः।
अक्षसूत्रं प्रकर्तव्यं गोपुच्छवलयाकृति॥ ३

वक्त्रं वक्त्रेण संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत्।
मेरुमूर्ध्वमुखं कुर्यात्तदूर्ध्वं नागपाशकम्॥ ४

एवं संग्रथितां मालां मन्त्रसिद्धिप्रदायिनीम्।
प्रक्षाल्य गन्धतोयेन पञ्चगव्येन चोपरि॥ ५

ततः शिवाम्भसाक्षाल्य ततो मन्त्रगणान् न्यसेत्।
स्पृष्ट्वा शिवास्त्रमन्त्रेण कवचेनावगुण्ठयेत्॥ ६

मूलमन्त्रं न्यसेत्पश्चात्पूर्ववत्कारयेत्तथा।
सद्योजातादिभिः प्रोक्ष्य यावदष्टोत्तरं शतम्॥ ७

मूलमन्त्रं समुच्चार्य शुद्धभूमौ निधाय च।
तस्योपरि न्यसेत्साम्बं शिवं परमकारणम्॥ ८

प्रतिष्ठिता भवेन्माला सर्वकामफलप्रदा।
यस्य देवस्य यो मन्त्रस्तां तेनैवाभिपूजयेत्॥ ९

मूर्ध्नि कण्ठेऽथवा कर्णे न्यसेद्वा जपमालिकाम्।
रुद्राक्षमालया चैवं जप्तव्यं नियतात्मना॥ १०

कण्ठे मूर्ध्नि हृदि प्रान्ते कर्णे बाहुयुगेऽथवा।
रुद्राक्षधारणं नित्यं भक्त्या परमया युतः। ११

किमत्र बहुनोक्तेन वर्णनेन पुनः पुनः।
रुद्राक्षधारणं नित्यं तस्मादेतत्प्रशस्यते॥ १२

स्नाने दाने जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
प्रायश्चित्ते तथा श्राद्धे दीक्षाकाले विशेषतः॥ १३

श्वेतवर्ण या रक्तवर्ण या मिश्रित वर्णवाले, छिद्रयुक्त, अखण्डित तथा काँटेदार पाँच मुखवाले पचीस रुद्राक्षोंसे गायकी पूँछके आकारकी एक अक्षमाला बनानी चाहिये॥ २-३॥

[माला बनानेके लिये] एक दानेका मुख दूसरे दानेके मुखसे संयोजित करते हुए एक दानेका पुच्छ (नुकीला भाग) दूसरे दानेके पुच्छसे जोड़ते जाना चाहिये। सुमेरुका मुख ऊपरकी तरफ और नागपाश उसके ऊपर करना चाहिये॥ ४॥

इस प्रकार गूँथी गयी मन्त्र-सिद्धिप्रदायिनी मालाको पहले गन्धोदक और बादमें पंचगव्यसे विधिवत् प्रक्षालित करके तथा पुनः शिवाभिषिक्त जलसे स्नान करानेके पश्चात् इसमें मन्त्रोंका न्यास करना चाहिये। शिवास्त्रमन्त्रसे स्पर्श करके कवच-मन्त्र (हुम्)-से अवगुंठन करना चाहिये॥ ५-६॥

इसके बाद मूलमन्त्रसे पूर्ववत् न्यास करे तथा गुरु आदिसे न्यास कराये। पुनः सद्योजात आदि मन्त्रोंसे एक सौ आठ बार उसपर जलसे प्रोक्षण करनेके पश्चात् मूलमन्त्रका उच्चारण करके उसे शुद्ध भूमिपर रखकर उसके ऊपर जगत्के परम कारण साम्बसदाशिवका न्यास करना चाहिये॥ ७-८॥

इस प्रकार प्रतिष्ठित की गयी माला समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली होती है। जिस देवताका जो मन्त्र सिद्ध करना हो, उसी मन्त्रसे उस मालाका पूजन करना चाहिये॥ ९॥

जपमालाको मस्तकपर, गलेमें अथवा कानपर धारण करना चाहिये और संयतचित्त होकर रुद्राक्षमालासे ही जप करना चाहिये। परम श्रद्धासे युक्त होकर रुद्राक्षकी माला कण्ठमें, मस्तकपर, हृदयपर, पार्श्वभागमें, कानमें तथा दोनों भुजाओंपर नित्य धारण करनी चाहिये॥ १०-११॥

रुद्राक्षके सम्बन्धमें अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या लाभ? अतः नित्य रुद्राक्ष धारण करना श्रेयस्कर है। विशेष करके स्नान, दान, जप, होम, बलिवैश्वदेव, देवपूजन, प्रायश्चित्त कर्म, श्राद्ध तथा दीक्षाके समय इसे अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२-१३॥

अरुद्राक्षधरो भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्।
कुर्वन्विप्रस्तु मोहेन नरके पतति ध्रुवम्॥ १४

रुद्राक्षं धारयेन्मूर्ध्नि कण्ठे सूत्रे करेऽथवा।
सुवर्णमणिसम्भिन्नं शुद्धं नान्यैर्धृतं शिवम्॥ १५

नाशुचिर्धारयेदक्षं सदा भक्त्यैव धारयेत्।
रुद्राक्षतरुसम्भूतवातोद्धूततृणान्यपि ॥ १६

पुण्यलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
रुद्राक्षं धारयन्पापं कुर्वन्नपि च मानवः॥ १७

सर्वं तरति पाप्मानं जाबालश्रुतिराह हि।
पशवो हि च रुद्राक्षधारणाद्यान्ति रुद्रताम्॥ १८

किमु ये धारयन्ति स्म नरा रुद्राक्षमालिकाम्।
रुद्राक्षः शिरसा ह्येको धार्यो रुद्रपरैः सदा॥ १९

ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविमोचनम्।
व्याहरन्ति च नामानि ये शम्भोः परमात्मनः॥ २०

रुद्राक्षालङ्कृता ये च ते वै भागवतोत्तमाः।
रुद्राक्षधारणं कार्यं सर्वश्रेयोऽर्थिभिर्नृभिः॥ २१

कर्णपाशे शिखायां च कण्ठे हस्ते तथोदरे।
महादेवश्च विष्णुश्च ब्रह्मा तेषां विभूतयः॥ २२

देवाश्चान्ये तथा भक्त्या खलु रुद्राक्षधारिणः।
गोत्रर्षयश्च सर्वेषां कूटस्था मूलरूपिणः॥ २३

तेषां वंशप्रसूताश्च मुनयः सकला अपि।
श्रौतधर्मपराः शुद्धाः खलु रुद्राक्षधारिणः॥ २४

श्रद्धा न जायते साक्षाद्वेदसिद्धे विमुक्तिदे।
बहूनां जन्मनामन्ते महादेवप्रसादतः॥ २५

रुद्राक्षधारणे वाञ्छा स्वभावादेव जायते।
रुद्राक्षस्य तु माहात्म्यं जाबालैरादरेण तु॥ २६

रुद्राक्ष धारण न करके मोहपूर्वक कुछ भी वैदिक कृत्य सम्पन्न करनेवाला ब्राह्मण निश्चितरूपसे नरकमें पड़ता है॥ १४॥

सुवर्ण अथवा मणिसे जटित रुद्राक्ष मस्तक, कण्ठ, यज्ञोपवीत अथवा हाथमें धारण करना चाहिये। अन्य व्यक्तिके द्वारा धारण किया हुआ रुद्राक्ष अपने लिये शुद्ध तथा कल्याणकारी नहीं होता है॥ १५॥

अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये; सर्वदा पवित्र अवस्थामें ही इसे भक्तिपूर्वक धारण करना चाहिये। रुद्राक्षके वृक्षसे चली हुई वायुके सम्पर्कमें आकर उगे हुए तृण भी पुण्यलोकमें जाते हैं और वहाँसे पुनः वे इस लोकमें नहीं आते॥ १६½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य पाप करके भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है—ऐसा जाबालोपनिषद्‌में कहा गया है। रुद्राक्षधारणसे पशु भी रुद्रत्वको प्राप्त हो जाते हैं; फिर मनुष्य होकर जो लोग रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं, उनकी बात ही क्या! शिवभक्तोंको एक रुद्राक्ष सिरपर सर्वदा अवश्य धारण करना चाहिये, इससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है तथा सभी पापोंकी समाप्ति हो जाती है। जो लोग परमात्मा शिवके नामोंका उच्चारण करते हैं तथा जो रुद्राक्षसे अलंकृत रहते हैं, वे ही भगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त होते हैं। अपने समस्त कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्यको कर्णपाशमें, शिखामें, कण्ठमें, हाथमें तथा उदरपर रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १७—२१½ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, उनकी विभूतियाँ तथा सभी देवता भक्तिपूर्वक अवश्य ही रुद्राक्ष धारण करते हैं। गोत्रप्रवर्तक ऋषिगण, सभीके कूटस्थ मूल पुरुष, उनके वंशज तथा शुद्ध आत्मावाले श्रौतधर्मावलम्बी लोग भी रुद्राक्ष अवश्य धारण करते हैं॥ २२—२४॥

यदि आरम्भमें साक्षात् वेद-प्रतिपादित तथा मुक्तिदायक रुद्राक्षको धारण करनेमें श्रद्धा न उत्पन्न हो, तो भी अनेक जन्मोंके बाद भगवान् शिवके अनुग्रहसे रुद्राक्ष धारण करनेके प्रति स्वाभाविक रूपसे इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जाबालशाखाके सभी मुनिलोग अत्यन्त आदरपूर्वक रुद्राक्षके माहात्म्यका

पठ्यते मुनिभिः सर्वैर्मया पुत्र तथैव च।
रुद्राक्षस्य फलं चैव त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ २७

फलस्य दर्शने पुण्यं स्पर्शात्कोटिगुणं भवेत्।
शतकोटिगुणं पुण्यं धारणाल्लभते नरः॥ २८

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च।
जपाच्च लभते नित्यं नात्र कार्या विचारणा॥ २९

हस्ते चोरसि कण्ठे च कर्णयोर्मस्तके तथा।
रुद्राक्षं धारयेद्यस्तु स रुद्रो नात्र संशयः॥ ३०

अवध्यः सर्वभूतानां रुद्रवद्धि चरेद्भुवि।
सुराणामसुराणां च वन्दनीयो यथा शिवः॥ ३१

रुद्राक्षधारी सततं वन्दनीयस्तथा नरैः।
उच्छिष्टो वा विकर्मस्थो युक्तो वा सर्वपातकैः॥ ३२

मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
कण्ठे रुद्राक्षमाबध्य श्वापि वा म्रियते यदि॥ ३३

सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति किं पुनर्मानुषोऽपि सः।
जपध्यानविहीनोऽपि रुद्राक्षं यदि धारयेत्॥ ३४

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।
एकं वापि हि रुद्राक्षं कृत्वा यत्नेन धारयेत्॥ ३५

एकविंशतिमुद्धृत्य रुद्रलोके महीयते।
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राक्षस्य पुनर्विधिम्॥ ३६

पाठ करते हैं और मैंने भी रुद्राक्ष-माहात्म्यके विषयमें पढ़ा है। हे पुत्र! रुद्राक्ष-धारणका फल तीनों लोकोंमें विख्यात है॥ २५—२७॥

रुद्राक्ष-फलके दर्शनसे महान् पुण्य मिलता है, इसके स्पर्शसे करोड़ गुना अधिक पुण्य होता है तथा इसे धारण कर लेनेपर मनुष्य सौ करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है। रुद्राक्ष-मालासे नित्य जप करनेसे वह सैकड़ों लाख-करोड़ गुना तथा हजारों लाख-करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८-२९॥

जो अपने हाथमें, वक्षःस्थलपर, कण्ठमें, दोनों कानोंमें तथा मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र है; इसमें सन्देह नहीं है। वह सभी प्राणियोंसे अवध्य रहते हुए इस पृथ्वीपर रुद्रकी भाँति निर्भय होकर विचरण करता है और शिवजीकी तरह समस्त देवता तथा दानवोंके लिये वन्दनीय हो जाता है॥ ३०-३१॥

सभी मनुष्य भी रुद्राक्ष-धारण करनेवालेकी निरन्तर वन्दना करते हैं। उच्छिष्टकी भाँति त्याज्य, निषिद्ध कर्मोंमें रत तथा सभी प्रकारके पापोंसे युक्त मनुष्य भी रुद्राक्ष धारण करनेपर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। गलेमें रुद्राक्ष बँधा हुआ कुत्ता भी यदि मर जाय तो वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है, फिर मनुष्यकी बात ही क्या? ॥ ३२-३३½ ॥

जप तथा ध्यानसे विहीन रहता हुआ भी यदि कोई मनुष्य रुद्राक्ष धारण कर ले तो वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। यदि कोई एक भी रुद्राक्ष प्रयत्नपूर्वक धारण करता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद अब मैं रुद्राक्षकी और भी विधिका वर्णन करूँगा॥ ३४—३६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
रुद्राक्षजपमालाविधानवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

~~○~~

अथ षष्ठोऽध्यायः

रुद्राक्षधारणकी महिमाके सन्दर्भमें गुणनिधिका उपाख्यान

ईश्वर उवाच

महासेन कुशग्रन्थिपुत्राजीवादयः परे।
रुद्राक्षस्य तु नैकोऽपि कलामर्हति षोडशीम्॥ १

पुरुषाणां यथा विष्णुर्ग्रहाणां च यथा रविः।
नदीनां तु यथा गङ्गा मुनीनां कश्यपो यथा॥ २

उच्चैःश्रवा यथाश्वानां देवानामीश्वरो यथा।
देवीनां तु यथा गौरी तद्वच्छ्रेष्ठमिदं भवेत्॥ ३

नातः परतरं स्तोत्रं नातः परतरं व्रतम्।
अक्षय्येषु च दानेषु रुद्राक्षस्तु विशिष्यते॥ ४

शिवभक्ताय शान्ताय दद्याद्रुद्राक्षमुत्तमम्।
तस्य पुण्यफलस्यान्तं न चाहं वक्तुमुत्सहे॥ ५

धृतरुद्राक्षकण्ठाय यस्त्वन्नं सम्प्रयच्छति।
त्रिःसप्तकुलमुद्धृत्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६

यस्य भाले विभूतिर्न नाङ्गे रुद्राक्षधारणम्।
न शम्भोर्भवने पूजा स विप्रः श्वपचाधमः॥ ७

खादन्मांसं पिबन्मद्यं सङ्गच्छन्नन्त्यजानपि।
पातकेभ्यो विमुच्येत रुद्राक्षे शिरसि स्थिते॥ ८

सर्वयज्ञतपोदानवेदाभ्यासैश्च यत्फलम्।
तत्फलं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्॥ ९

वेदैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं पुराणपठनेन च।
यत्तीर्थसेवनेनैव सर्वविद्यादिभिस्तथा॥ १०

तत्पुण्यं लभते सद्यो रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
प्रयाणकाले रुद्राक्षं बन्धयित्वा म्रियेद्यदि॥ ११
स रुद्रत्वमवाप्नोति पुनर्जन्म न विद्यते।

ईश्वर बोले—हे महासेन! कुश-ग्रन्थि, पुत्रजीव (जियापोती) आदिसे निर्मित तथा अन्य वस्तुसे बनी हुई मालाओंमेंसे कोई एक भी रुद्राक्ष-मालाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती॥ १॥

जैसे पुरुषोंमें विष्णु, ग्रहोंमें सूर्य, नदियोंमें गंगा, मुनियोंमें कश्यप, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें महेश्वर, देवियोंमें गौरी श्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार यह रुद्राक्ष श्रेष्ठ है॥ २-३॥

रुद्राक्षसे बढ़कर न कोई स्तोत्र है और न कोई व्रत है। सभी प्रकारके अक्षय दानोंकी तुलनामें रुद्राक्ष-दान विशेष महिमावाला है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी शान्त स्वभाववाले शिवभक्तको उत्तम रुद्राक्षका दान करता है, उसके पुण्यफलकी सीमाका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ५॥

जो मनुष्य कण्ठमें रुद्राक्ष धारण किये हुए किसी व्यक्तिको अन्न प्रदान करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करके रुद्रलोकको जाता है॥ ६॥

जो ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्म नहीं लगाता, शरीरपर रुद्राक्ष नहीं धारण करता और शिवमन्दिरमें पूजा नहीं करता, वह चाण्डालोंमें भी अधम है॥ ७॥

मांस खानेवाला, सुरापान करनेवाला तथा अन्त्यजोंके सान्निध्यमें रहनेवाला भी सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेपर तज्जन्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

सभी प्रकारके यज्ञ, तप, दान तथा वेदाध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल मात्र रुद्राक्ष-धारणसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ ९॥

चारों वेदोंका स्वाध्याय करने, पुराणोंको पढ़ने, तीर्थोंका सेवन करने तथा सभी विद्याओंका अध्ययन करनेके फलस्वरूप जो पुण्य होता है, वह पुण्य मनुष्य केवल रुद्राक्षधारणसे तत्काल प्राप्त कर लेता है॥ १०½॥

प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारण करके यदि कोई मृत्युको प्राप्त होता है, तो वह रुद्रत्वको प्राप्त हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ११½॥

रुद्राक्षं धारयेत्कण्ठे बाह्वोर्वा म्रियते यदि॥ १२
कुलैकविंशमुत्तार्य रुद्रलोके वसेन्नरः।
ब्राह्मणो वापि चाण्डालो निर्गुणः सगुणोऽपि च॥ १३

भस्मरुद्राक्षधारी यः स देवत्वं शिवं व्रजेत्।
शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि तथाभक्ष्यस्य भक्षकः॥ १४

म्लेच्छो वाप्यथ चाण्डालो युतो वा सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणादेव स रुद्रो नात्र संशयः॥ १५

शिरसा धारिते कोटिः कर्णयोर्दशकोटयः।
शतकोटिर्गले बद्धो मूर्ध्नि कोटिसहस्रकम्॥ १६

अयुतं चोपवीते तु लक्षकोटिर्भुजे स्थिते।
मणिबन्धे तु रुद्राक्षो मोक्षसाधनकः परः॥ १७

रुद्राक्षधारको भूत्वा यत्किञ्चित्कर्म वैदिकम्।
कुर्वन्विप्रः सदा भक्त्या महदाप्नोति तत्फलम्॥ १८

रुद्राक्षमालिकां कण्ठे धारयेद्भक्तिवर्जितः।
पापकर्मा तु यो नित्यं स मुक्तः सर्वबन्धनात्॥ १९

रुद्राक्षार्पितचेता यो रुद्राक्षस्तु न वै धृतः।
असौ माहेश्वरो लोके नमस्यः स तु लिङ्गवत्॥ २०

अविद्यो वा सविद्यो वा रुद्राक्षस्य तु धारणात्।
शिवलोकं प्रपद्येत कीकटे गर्दभो यथा॥ २१

स्कन्द उवाच

रुद्राक्षान्सन्दधे देव गर्दभः केन हेतुना।
कीकटे केन वा दत्तस्तद् ब्रूहि परमेश्वर॥ २२

यदि मनुष्य कण्ठमें या दोनों भुजाओंपर रुद्राक्ष धारण किये हुए मर जाता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको तारकर अन्तमें रुद्रलोकमें निवास करता है॥ १२½ ॥

जो भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करता है; वह महादेव शिवके लोकमें पहुँच जाता है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल और गुणवान् हो अथवा गुणसे रहित। पवित्र हो अथवा अपवित्र तथा चाहे वह अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करनेवाला ही क्यों न हो। म्लेच्छ हो अथवा चाण्डाल हो या सभी पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, वह केवल रुद्राक्षधारणसे ही रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १३—१५॥

सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे करोड़ गुना, दोनों कानोंमें पहननेसे दस करोड़ गुना, गलेमें धारण करनेसे सौ करोड़ गुना, मस्तकपर धारण करनेसे हजार करोड़ गुना, यज्ञोपवीतमें धारण करनेसे इससे भी दस हजार गुना तथा दोनों भुजाओंपर धारण करनेसे लाख करोड़ गुना फल मिलता है और मणिबन्धमें धारण करनेपर यह रुद्राक्ष मोक्षका परम साधन बन जाता है॥ १६-१७॥

कोई ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण करके भक्तिपूर्वक जो कुछ भी वैदिक कर्म करता है, उसे उसका महान् फल प्राप्त होता है॥ १८॥

श्रद्धारहित होकर भी यदि कोई गलेमें रुद्राक्ष धारण कर ले तो नित्य पापकर्ममें रत रहनेपर भी वह सभी बन्धनोंसे छूट जाता है॥ १९॥

जो अपने मनमें रुद्राक्ष धारण करनेकी भावना रखता है, किंतु उसे धारण नहीं कर पाता, तो भी वह महेश्वर-स्वरूप है और इस लोकमें शिवलिंगकी भाँति नमस्कारके योग्य है॥ २०॥

कोई व्यक्ति चाहे विद्यासम्पन्न हो अथवा विद्यारहित, वह रुद्राक्ष धारण कर लेनेमात्रसे ही शिवलोकको प्राप्त हो जाता है, जैसे कीकट नामक स्थानविशेषमें एक गर्दभ शिवलोक चला गया था॥ २१॥

स्कन्द बोले—हे देव! उस गर्दभने कीकटदेशमें किस कारणसे रुद्राक्षोंको धारण किया था और किसने उसे रुद्राक्ष दिया था? हे परमेश्वर! वह सारा वृत्तान्त आप मुझे बताइये॥ २२॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु पुत्र पुरावृत्तं गर्दभो विन्ध्यपर्वते।
धत्ते रुद्राक्षभारं तु वाहितः पथिकेन तु॥ २३

श्रान्तोऽसमर्थस्तद्भारं वोढुं पतितवान्भुवि।
प्राणैस्त्यक्तस्त्रिनेत्रस्तु शूलपाणिर्महेश्वरः॥ २४

मत्प्रसादान्महासेन मदन्तिकमुपागतः।
यावद्वक्त्रस्य संख्यानं रुद्राक्षाणां सुदुर्लभम्॥ २५

तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते।
स्वशिष्येभ्यस्तु वक्तव्यं नाशिष्येभ्यः कदाचन॥ २६

अभक्तेभ्योऽपि मूर्खेभ्यः कदाचिन्न प्रकाशयेत्।
अभक्तो वास्तु भक्तो वा नीचो नीचतरोऽपि वा॥ २७

रुद्राक्षान्धारयेद्यस्तु मुच्यते सर्वपातकैः।
रुद्राक्षधारणं पुण्यं केन वा सदृशं भवेत्॥ २८

महाव्रतमिदं प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः।
सहस्रं धारयेद्यस्तु रुद्राक्षाणां धृतव्रतः॥ २९

तं नमन्ति सुराः सर्वे यथा रुद्रस्तथैव सः।
अभावे तु सहस्रस्य बाह्वोः षोडश षोडश॥ ३०

एकं शिखायां करयोर्द्वादश द्वादशैव तु।
द्वात्रिंशत्कण्ठदेशे तु चत्वारिंशच्च मस्तके॥ ३१

एकैकं कर्णयोः षट् षट् वक्षस्यष्टोत्तरं शतम्।
यो धारयति रुद्राक्षान् रुद्रवत्स तु पूज्यते॥ ३२

मुक्ताप्रवालस्फटिकरौप्यवैदूर्यकाञ्चनैः।
समेतान्धारयेद्यस्तु रुद्राक्षान्स शिवो भवेत्॥ ३३

केवलानपि रुद्राक्षान्यद्यालस्याद् बिभर्ति यः।
तं न स्पृशन्ति पापानि तमांसीव विभावसुम्॥ ३४

श्रीभगवान् बोले—हे पुत्र! अब तुम एक प्राचीन वृत्तान्त सुनो। एक गर्दभ विन्ध्यपर्वतपर रुद्राक्षका बोझा ढोया करता था। एक समय पथिक अधिक बोझा लादकर उसे हाँकने लगा, जिससे अत्यधिक थका हुआ वह गर्दभ उस बोझको ढोनेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिर पड़ा और उसने प्राण त्याग दिये। हे महासेन! इसके बाद मेरे अनुग्रहसे वह हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए तथा त्रिनेत्रधारी होकर महेश्वररूपमें मेरे पास आ गया॥ २३—२४½ ॥

रुद्राक्षके मुखोंकी जितनी दुर्लभ संख्या होती है, उतने हजार युगोंतक रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २५½ ॥

अपने शिष्यको ही रुद्राक्ष-माहात्म्य बताना चाहिये, जो शिष्य न हो उसे कभी नहीं बताना चाहिये, साथ ही अभक्तों तथा मूर्खोंके समक्ष इसे प्रकट नहीं करना चाहिये॥ २६½ ॥

चाहे कोई भक्तिपरायण हो अथवा भक्तिरहित हो, नीच हो अथवा नीचसे भी बढ़कर हो, यदि वह रुद्राक्ष धारण कर ले तो सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ २७½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे होनेवाले पुण्यकी तुलना भला किसके साथ की जा सकती है? तत्त्वदर्शी मुनिगण इस रुद्राक्षधारणको महाव्रतकी संज्ञा देते हैं॥ २८½ ॥

जिस व्यक्तिने एक हजार रुद्राक्षके धारण करनेका नियम बना रखा है, सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं, जैसे रुद्र हैं वैसे ही वह भी है॥ २९ ॥

जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षके अभावकी स्थितिमें दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, शिखामें एक, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, गलेमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, प्रत्येक कानमें छः-छः तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है; वह रुद्रके समान पूजित होता है॥ ३०—३२ ॥

जो व्यक्ति मोती, मूँगा, स्फटिक, रौप्य, वैदूर्य तथा सुवर्ण आदिसे जटित रुद्राक्ष धारण करता है; वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है॥ ३३ ॥

जो आलस्यवश केवल रुद्राक्षोंको ही धारण करता है, उस व्यक्तिको पाप उसी तरह स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे अन्धकार सूर्यको स्पर्श नहीं कर पाता॥ ३४ ॥

रुद्राक्षमालया मन्त्रो जप्तोऽनन्तफलप्रदः।
यस्याङ्गे नास्ति रुद्राक्ष एकोऽपि बहुपुण्यदः॥ ३५

तस्य जन्म निरर्थं स्यात्त्रिपुण्ड्ररहितं यथा।
रुद्राक्षं मस्तके धृत्वा शिरःस्नानं करोति यः॥ ३६

गङ्गास्नानफलं तस्य जायते नात्र संशयः।
एकवक्त्रः पञ्चवक्त्र एकादशमुखाः परे॥ ३७

चतुर्दशमुखाः केचिद्रुद्राक्षा लोकपूजिताः।
भक्त्या सम्पूज्यते नित्यं रुद्राक्षः शङ्करात्मकः॥ ३८

दरिद्रं वापि पुरुषं राजानं कुरुते भुवि।
अत्र ते कथयिष्यामि पुराणं मतमुत्तमम्॥ ३९

कोसलेषु द्विजः कश्चिद् गिरिनाथ इति श्रुतः।
महाधनी च धर्मात्मा वेदवेदाङ्गपारगः॥ ४०

यज्ञकृद्दीक्षितस्तस्य तनयः सुन्दराकृतिः।
नाम्नागुणनिधिः ख्यातस्तरुणः कामसुन्दरः॥ ४१

गुरोः सुधिषणस्याथ पत्नीं मुक्तावलीमथ।
मोहयामास रूपेण यौवनेन मदेन च॥ ४२

सङ्गतस्तु तया सार्धं कञ्चित्कालं ततो भिया।
विषं ददौ च गुरवे येभे पश्चात्तु निर्भयः॥ ४३

यदा माता पिता कर्म किञ्चिज्जानाति यत्क्षणे।
मातरं पितरं चापि मारयामास तद्विषात्॥ ४४

नानाविलासभोगैश्च जाते द्रव्यव्यये ततः।
ब्राह्मणानां गृहे चौर्यं चकार स तदा खलः॥ ४५

सुरापानमदोन्मत्तस्तदा ज्ञातिबहिष्कृतः।
ग्रामान्निष्कासितः सर्वैस्तदा सोऽभूद्वनेचरः॥ ४६

रुद्राक्षकी मालासे जपा गया मन्त्र अनन्त फल प्रदान करता है। जिसके शरीरपर अत्यन्त पुण्यदायक एक भी रुद्राक्ष नहीं रहता, उसका जन्म उसी भाँति निरर्थक है, जैसे त्रिपुण्ड्र धारण न करनेवालेका जीवन अर्थहीन होता है॥ ३५½ ॥

जो अपने मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करके शिरःस्नान करता है, उसे गंगास्नान करनेका फल प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है॥ ३६½ ॥

एकमुखी, पंचमुखी, ग्यारहमुखी, चौदहमुखी तथा और भी कुछ रुद्राक्षोंकी लोकमें पूजा की जाती है॥ ३७½ ॥

साक्षात् शंकरके आत्मस्वरूप इस रुद्राक्षकी यदि नित्य भक्तिपूर्वक पूजा की जाय तो यह दरिद्र व्यक्तिको भी पृथ्वीपर राजा बना देता है॥ ३८½ ॥

अब इस सम्बन्धमें मैं तुमसे एक प्राचीन उत्तम आख्यानका वर्णन करूँगा। ऐसा सुना जाता है कि कोसल-देशमें गिरिनाथ नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह महाधनी, धर्मात्मा, वेद-वेदांगमें पारंगत, यज्ञपरायण तथा दीक्षायुक्त था। उसका गुणनिधि नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो युवा, मनोहर आकृतिवाला तथा कामदेवके समान सुन्दर था॥ ३९—४१ ॥

उसने अपने रूप तथा मदयुक्त यौवनसे सुधिषण नामक अपने गुरुकी मुक्तावली नामवाली भार्याको मोहित कर लिया॥ ४२ ॥

कुछ दिनोंतक मुक्तावलीके साथ उसका सम्पर्क रहा, किंतु बादमें गुरुसे भयके कारण उसने उन्हें विष दे दिया और वह निर्भय होकर सहवासपरायण हो गया॥ ४३ ॥

जब उसके माता-पिताको इस कर्मके विषयमें कुछ ज्ञात हुआ, तब उसने माता-पिताको भी उसी क्षण विष देकर मार डाला॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् अनेक प्रकारके भोग-विलासोंमें सम्पूर्ण धनके व्यय हो जानेपर उस दुष्टने ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करना आरम्भ कर दिया॥ ४५ ॥

सुरापानसे निरन्तर मदोन्मत्त रहनेके कारण वह जातिसे बहिष्कृत कर दिया गया तथा सभी लोगोंने उसे गाँवसे बाहर निकाल दिया। तब वह वनमें विचरण करने लगा॥ ४६ ॥

मुक्तावल्या तया सार्धं जगाम गहनं वनम्।
मार्गे स्थितो द्रव्यलोभाज्जघान ब्राह्मणान्बहून्॥ ४७

एवं बहुगते काले ममार स तदाधमः।
नेतुं तं यमदूताश्च समाजग्मुः सहस्रशः॥ ४८

शिवलोकाच्छिवगणास्तथैव च समागताः।
तयोः परस्परं वादो बभूव गिरिजासुत॥ ४९

यमदूतास्तदा प्रोचुः पुण्यमस्य किमस्ति हि।
ब्रुवन्तु सेवकाः शम्भोर्यद्येनं नेतुमिच्छथ॥ ५०

शिवदूतास्तदा प्रोचुरयं यस्मिन्स्थले मृतः।
दशहस्तादधो भूमे रुद्राक्षस्तत्र चास्ति हि॥ ५१

तत्प्रभावेण हे दूता नेष्यामः शिवसन्निधिम्।
ततो विमानमारुह्य दिव्यरूपधरो द्विजः॥ ५२

गतो गुणनिधिर्दूतैः सहितः शङ्करालयम्।
इति रुद्राक्षमाहात्म्यं कथितं तव सुव्रत॥ ५३

एवं रुद्राक्षमहिमा समासात्कथितो मया।
सर्वपापक्षयकरो महापुण्यफलप्रदः॥ ५४

उस मुक्तावलीको साथमें लेकर वह घने जंगलमें चला गया। वहाँ मार्गमें स्थित होकर उसने [आने-जानेवाले] अनेक ब्राह्मणोंको धनके लोभसे मार डाला॥ ४७॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद वह नीच प्राणी मृत्युको प्राप्त हुआ और उसे लेनेके लिये हजारों यमदूत आये॥ ४८॥

उसी समय शिवके गण शिवलोकसे वहाँ आ पहुँचे और फिर हे गिरिजानन्दन! उन दोनों (यमदूतों तथा शिवदूतों)-में परस्पर विवाद होने लगा॥ ४९॥

तब यमदूतोंने कहा—हे शम्भुके सेवको! आपलोग बतायें कि इसका कौन-सा पुण्य है, जो आपलोग इसे शिवलोक ले जाना चाहते हैं?॥ ५०॥

इसपर शिवदूत कहने लगे कि यह जिस स्थानपर मृत्युको प्राप्त हुआ है, उस भूमिके दस हाथ नीचे रुद्राक्ष विद्यमान है। हे यमदूतो! उसी रुद्राक्षके प्रभावसे इसे हमलोग शिवके पास ले जायँगे॥ ५१½॥

तत्पश्चात् वह गुणनिधि नामक ब्राह्मण दिव्य रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ होकर शिवदूतोंके साथ शिवलोक चला गया। हे सुव्रत! मैंने तुमसे रुद्राक्षका यह माहात्म्य कह दिया। इस प्रकार मेरे द्वारा संक्षेपमें वर्णित यह रुद्राक्षमाहात्म्य सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है॥ ५२—५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
रुद्राक्षमाहात्म्ये गुणनिधिमोक्षवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

विभिन्न प्रकारके रुद्राक्ष और उनके अधिदेवता

श्रीनारायण उवाच

एवं नारद षड्वक्त्रो गिरिशेन विबोधितः।
रुद्राक्षमहिमानं च ज्ञात्वासीत्स कृतार्थकः॥ १

इत्थं भूतानुभावोऽयं रुद्राक्षो वर्णितो मया।
सदाचारप्रसङ्गेन शृणु चान्यत्समाहितः॥ २

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार गिरिशायी भगवान् शिवने षडाननको रुद्राक्षके विषयमें बताया और इस रुद्राक्षमहिमाको जानकर वे भी कृतार्थ हो गये। इस प्रकारके माहात्म्यवाले रुद्राक्षके विषयमें मैंने आपसे वर्णन कर दिया। अब सदाचारके प्रसंगमें रुद्राक्षसम्बन्धी अन्य बातें एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ १-२॥

यथा रुद्राक्षमहिमा वर्णितोऽनन्तपुण्यदः।
लक्षणं मन्त्रविन्यासं तथाहं वर्णयामि ते॥ ३

लक्षं तु दर्शनात्पुण्यं कोटिस्तत्स्पर्शनाद्भवेत्।
तस्य कोटिगुणं पुण्यं लभते धारणान्नरः॥ ४

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतानि च।
तज्जपाल्लभते पुण्यं नरो रुद्राक्षधारणात्॥ ५

रुद्राक्षाणां तु भद्राक्षधारणात्स्यान्महाफलम्।
धात्रीफलप्रमाणं यच्छ्रेष्ठमेतदुदाहृतम्॥ ६

बदरीफलमात्रं तु प्रोच्यते मध्यमं बुधैः।
अधमं चणमात्रं स्यात्प्रतिज्ञैषा मयोदिता॥ ७

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेति शिवाज्ञया।
वृक्षा जाताः पृथिव्यां तु तज्जातीयाः शुभाक्षकाः॥ ८

श्वेतास्तु ब्राह्मणा ज्ञेयाः क्षत्रिया रक्तवर्णकाः।
पीता वैश्यास्तु विज्ञेयाः कृष्णाः शूद्राः प्रकीर्तिताः॥ ९

ब्राह्मणो बिभृयाच्छ्वेतान् रक्तान् राजा तु धारयेत्।
पीतान्वैश्यस्तु बिभृयात्कृष्णान् शूद्रस्तु धारयेत्॥ १०

समाः स्निग्धा दृढास्तद्वत्कण्टकैः संयुताः शुभाः।
कृमिदष्टाञ्छिन्नभिन्नान्कण्टकैरहितांस्तथा ॥ ११

व्रणयुक्तानावृतांश्च षड्रुद्राक्षांस्तु वर्जयेत्।
स्वयमेव कृतद्वारो रुद्राक्षः स्यादिहोत्तमः॥ १२

यत्तु पौरुषयत्नेन कृतं तन्मध्यमं भवेत्।
समान्स्निग्धान्दृढान्वृत्तान्क्षौमसूत्रेण धारयेत्॥ १३

जिस प्रकार मैंने अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली रुद्राक्ष-महिमाका वर्णन किया है, उसी प्रकार मैं रुद्राक्षके लक्षण तथा मन्त्र-विन्यासका वर्णन आपसे करूँगा॥ ३॥

रुद्राक्षके दर्शनसे एक लाख गुना तथा स्पर्शसे करोड़ गुना पुण्य होता है। रुद्राक्ष धारण कर लेनेपर मनुष्य उसका करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ४॥

रुद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा उसके द्वारा जपसे मनुष्य एक सौ लाख करोड़ गुना और हजार लाख करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ५॥

भद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा रुद्राक्ष धारण करनेका महान् फल होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके परिमाणका होता है, वह श्रेष्ठ माना गया है॥ ६॥

विद्वानोंने बेरके फलके परिमाणवाले रुद्राक्षको मध्यम तथा चनेके परिमाण-तुल्य रुद्राक्षको अधम कहा है; यह एक सिद्धान्त है, जिसका वर्णन मैंने आपसे किया है॥ ७॥

शिवजीकी आज्ञासे पृथ्वीतलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-भेदानुसार उन-उन जातियोंवाले रुद्राक्षके श्रेष्ठ वृक्ष उत्पन्न हुए। श्वेत रुद्राक्षोंको ब्राह्मण, रक्त वर्णके रुद्राक्षोंको क्षत्रिय तथा पीले वर्णके रुद्राक्षोंको वैश्य जानना चाहिये। इसी प्रकार काले रंगके रुद्राक्ष शूद्र कहे जाते हैं॥ ८-९॥

ब्राह्मणको श्वेत वर्ण तथा राजा (क्षत्रिय)-को लाल वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये। इसी तरह वैश्यको पीले वर्ण तथा शूद्रको काले वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये॥ १०॥

समरूप, चिकने, दृढ़ तथा स्पष्टरूपसे कंटक (काँटों)-की रेखाओंसे युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ होते हैं; किंतु कीड़ोंद्वारा खाये गये, टूटे हुए, फूटे हुए, काँटोंकी रेखाओंसे रहित, व्रणयुक्त तथा परतसे आवृत—इन छः तरहके रुद्राक्षोंको नहीं धारण करना चाहिये॥ ११½॥

जिस रुद्राक्षमें स्वयं ही छिद्र बना हो, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है और जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छिद्र किया गया हो, वह मध्यम रुद्राक्ष होता है। सब ओरसे समान, चिकने, मजबूत और गोल रुद्राक्षोंको रेशमके डोरेमें पिरोकर धारण करना चाहिये। शरीरके

सर्वगात्रेषु साम्येन समानातिविलक्षणा।
निर्घर्षे हेमलेखाभा यत्र लेखा प्रदृश्यते॥ १४
तदक्षमुत्तमं विद्यात्स धार्यः शिवपूजकैः।
शिखायामेकरुद्राक्षं त्रिंशद्वै शिरसा वहेत्॥ १५
षट्त्रिंशच्च गले धार्या बाह्वोः षोडश षोडश।
मणिबन्धे द्वादशाक्षान्स्कन्धे पञ्चाशतं भवेत्॥ १६
अष्टोत्तरशतैर्मालोपवीतं च प्रकल्पयेत्।
द्विसरं त्रिसरं वापि बिभृयात्कण्ठदेशतः॥ १७
कुण्डले मुकुटे चैव कर्णिकाहारकेषु च।
केयूरे कटके चैव कुक्षिवंशे तथैव च॥ १८
सुप्ते पीते सर्वकालं रुद्राक्षं धारयेन्नरः।
त्रिशतं त्वधमं पञ्चशतं मध्यममुच्यते॥ १९
सहस्रमुत्तमं प्रोक्तं चैवं भेदेन धारयेत्।
शिरसीशानमन्त्रेण कर्णे तत्पुरुषेण च॥ २०
अघोरेण ललाटे तु तेनैव हृदयेऽपि च।
अघोरबीजमन्त्रेण करयोर्धारयेत्पुनः॥ २१
पञ्चाशदक्षग्रथितां वामदेवेन चोदरे।
पञ्चब्रह्मभिरङ्गैश्चाप्येवं रुद्राक्षधारणम्॥ २२
ग्रथितान्मूलमन्त्रेण सर्वानक्षांस्तु धारयेत्।
एकवक्त्रस्तु रुद्राक्षः परतत्त्वप्रकाशकः॥ २३
परतत्त्वधारणाच्च जायते तत्प्रकाशनम्।
द्विवक्त्रस्तु मुनिश्रेष्ठ अर्धनारीश्वरो भवेत्॥ २४
धारणादर्धनारीशः प्रीयते तस्य नित्यशः।
त्रिवक्त्रस्त्वनलः साक्षात्स्त्रीहत्यां दहति क्षणात्॥ २५
त्रिमुखश्चैव रुद्राक्षोऽप्यग्नित्रयस्वरूपकः।
तद्धारणाच्च हुतभुक् तस्य तुष्यति नित्यशः॥ २६

सभी (पूर्वोक्त) अंगोंपर उन्हें समानरूपसे धारण करना चाहिये। जिस रुद्राक्षको घिसनेसे समान तथा अति विलक्षण स्वर्ण-रेखाकी आभाके समान रेखा दिखायी दे, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है। उसे शिवभक्तोंको अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२—१४½ ॥

एक रुद्राक्ष शिखामें, तीस रुद्राक्ष सिरपर, छत्तीस रुद्राक्ष गलेमें, दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, मणिबन्धमें बारह तथा कन्धेपर पचास रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १५-१६॥

एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और दो लड़ी या तीन लड़ीवाली रुद्राक्षकी माला गलेमें पहननी चाहिये॥ १७॥

मनुष्यको कुण्डलमें, मुकुटमें, कर्णिकामें, हारमें, केयूरमें, कटकमें तथा करधनीमें, शयन तथा भोजनपानादि सभी कालोंमें रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८½ ॥

तीन सौ रुद्राक्षोंका धारण करना अधम तथा पाँच सौ रुद्राक्षोंका धारण करना मध्यम कहा जाता है और एक हजार रुद्राक्षोंका धारण करना उत्तम कहा गया है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम-भेदसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १९½ ॥

पचास रुद्राक्षोंकी माला बनाकर ईशानमन्त्रसे सिरपर, तत्पुरुषमन्त्रसे कानमें, अघोरमन्त्रसे ललाट तथा हृदयपर और अघोरबीजमन्त्रसे दोनों हाथोंपर और वामदेवमन्त्रसे उदरपर धारण करना चाहिये। इस प्रकार ईशान आदि पाँच ब्रह्ममन्त्र तथा छः षडंग मन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। मूलमन्त्रका उच्चारण करके गूँथे गये सभी रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये॥ २०—२२½ ॥

एकमुखी रुद्राक्ष परमतत्त्वका प्रकाशक है। अतः इस परमतत्त्वमय एकमुखी रुद्राक्षके धारणसे उस ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है॥ २३½ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर होता है। इसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर भगवान् अर्धनारीश्वर सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २४½ ॥

तीनमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप होता है। यह स्त्री-हत्याके पापको क्षणभरमें भस्म कर देता है। यह तीनमुखी रुद्राक्ष अग्नित्रय (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि)-के भी स्वरूपवाला है। उसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर अग्निदेवता सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २५-२६॥

चतुर्मुखस्तु रुद्राक्षः पितामहस्वरूपकः।
तद्धारणान्महाश्रीमान्महदारोग्यमुत्तमम् ॥ २७

महती ज्ञानसम्पत्तिः शुद्धये धारयेन्नरः।
पञ्चमुखस्तु रुद्राक्षः पञ्चब्रह्मस्वरूपकः॥ २८

तस्य धारणमात्रेण सन्तुष्यति महेश्वरः।
षड्वक्त्रश्चैव रुद्राक्षः कार्तिकेयाधिदैवतः॥ २९

विनायकं चापि देवं प्रवदन्ति मनीषिणः।
सप्तवक्त्रस्तु रुद्राक्षः सप्तमात्राधिदैवतः॥ ३०

सप्ताश्वदैवतश्चैव मुनिसप्तकदैवतः।
तद्धारणान्महाश्रीः स्यान्महदारोग्यमुत्तमम्॥ ३१

महती ज्ञानसम्पत्तिः शुचिर्वै धारयेन्नरः।
अष्टवक्त्रस्तु रुद्राक्षोऽप्यष्टमात्राधिदैवतः॥ ३२

वस्वष्टकप्रीतिकरो गङ्गाप्रीतिकरः शुभः।
तद्धारणादिमे प्रीता भवेयुः सत्यवादिनः॥ ३३

नववक्त्रस्तु रुद्राक्षो यमदेव उदाहृतः।
तद्धारणाद्यमभयं न भवत्येव सर्वथा॥ ३४

दशवक्त्रस्तु रुद्राक्षो दशाशादैवतः स्मृतः।
दशाशाप्रीतिजनको धारणे नात्र संशयः॥ ३५

एकादशमुखस्त्वक्षो रुद्रैकादशदैवतः।
तमिन्द्रदैवतं चाहुः सदा सौख्यविवर्धनम्॥ ३६

रुद्राक्षो द्वादशमुखो महाविष्णुस्वरूपकः।
द्वादशादित्यदैवश्च बिभर्त्येव हि तत्परः॥ ३७

त्रयोदशमुखश्चाक्षः कामदः सिद्धिदः शुभः।
तस्य धारणमात्रेण कामदेवः प्रसीदति॥ ३८

चतुर्दशमुखश्चाक्षो रुद्रनेत्रसमुद्भवः।
सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वारोग्यप्रदायकः॥ ३९

चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मास्वरूप है। उसे धारण करनेसे महान् वैभव, अत्यन्त उत्तम आरोग्य तथा विशद ज्ञान-सम्पदाकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको आत्मशुद्धिके लिये इसे धारण करना चाहिये॥ २७½ ॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् पंचब्रह्म-स्वरूप है। उसके धारणमात्रसे ही महेश्वर शिव उस व्यक्तिपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ २८½ ॥

छः मुखी रुद्राक्षके अधिदेवता कार्तिकेय हैं और कुछ मनीषिगण विनायक गणेशको भी इस रुद्राक्षके देवतारूपमें बताते हैं॥ २९½ ॥

सातमुखी रुद्राक्षकी अधिदेवी सात मातृकाएँ हैं। इसके अधिदेवता सूर्य तथा सप्तर्षि भी हैं। इसे धारण करनेसे विपुल सम्पदा, उत्तम आरोग्य तथा महान् ज्ञान-राशिकी प्राप्ति होती है। पवित्र होकर ही मनुष्यको इसे धारण करना चाहिये॥ ३०-३१½ ॥

आठमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता अष्टमातृकाएँ हैं। यह शुभ रुद्राक्ष आठों वसुओं तथा गंगाके लिये प्रीतिकर है। उसे धारण करनेसे ये सत्यवादी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३२-३३ ॥

नौमुखी रुद्राक्ष साक्षात् यमदेवके तुल्य माना गया है। उसे धारण करनेसे यमका कोई भय नहीं रहता॥ ३४॥

दसमुखी रुद्राक्षके देवता दसों दिशाएँ कही गयी हैं। उसे धारण करनेसे मनुष्य दसों दिशाओंके लिये प्रीतिजनक होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३५॥

ग्यारहमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता एकादश रुद्र हैं। कुछ लोग इन्द्रको भी निरन्तर सौख्यकी वृद्धि करनेवाले इस रुद्राक्षका देवता कहते हैं॥ ३६॥

बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है। इसके अधिदेवता बारह सूर्य हैं। ये देवगण उसे धारण करनेवालेका सदा भरण-पोषण करते हैं॥ ३७॥

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला तथा कल्याण करनेवाला है। उसे धारण करनेमात्रसे कामदेव प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३८॥

चौदह मुखवाला रुद्राक्ष भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है। यह सभी प्रकारकी व्याधियोंको नष्ट करनेवाला तथा सर्वविध आरोग्य प्रदान करनेवाला है॥ ३९॥

मद्यं मांसं च लशुनं पलाण्डुं शिग्रुमेव च।
श्लेष्मातकं विड्वराहं भक्षणे वर्जयेत्ततः॥ ४०

ग्रहणे विषुवे चैव सङ्क्रमे त्वयने तथा।
दर्शे च पौर्णमासे च पुण्येषु दिवसेष्वपि।
रुद्राक्षधारणात्सद्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४१

रुद्राक्ष धारण करनेवालेको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोडा तथा विड्वराहका आहारमें त्याग कर देना चाहिये। ग्रहणके समय, सूर्यके विषुवत् रेखापर, संक्रमणकालमें, उत्तरायण तथा दक्षिणायनके संक्रान्तिकालमें, अमावास्या तथा पूर्णिमाके समय तथा अन्यान्य पुण्य दिवसोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे मनुष्य शीघ्र समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४०-४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

भूतशुद्धि

श्रीनारायण उवाच

भूतशुद्धिप्रकारं च कथयामि महामुने।
मूलाधारात्समुत्थाय कुण्डलीं परदेवताम्॥ १

सुषुम्णामार्गमाश्रित्य ब्रह्मरन्ध्रगतां स्मरेत्।
जीवं ब्रह्मणि संयोज्य हंसमन्त्रेण साधकः॥ २

पादादिजानुपर्यन्तं चतुष्कोणं सवज्रकम्।
लं बीजाढ्यं स्वर्णवर्णं स्मरेदवनिमण्डलम्॥ ३

जान्वाद्यानाभिचन्द्रार्धनिभं पद्मद्वयाङ्कितम्।
वं बीजयुक्तं श्वेताभमम्भसो मण्डलं स्मरेत्॥ ४

नाभेर्हृदयपर्यन्तं त्रिकोणं स्वस्तिकान्वितम्।
रं बीजेन युतं रक्तं स्मरेत्पावकमण्डलम्॥ ५

हृदो भ्रूमध्यपर्यन्तं वृत्तं षड्बिन्दुलाञ्छितम्।
यं बीजयुक्तं धूम्राभं नभस्वन्मण्डलं स्मरेत्॥ ६

आब्रह्मरन्ध्रं भ्रूमध्याद् वृत्तं स्वच्छं मनोहरम्।
हं बीजयुक्तमाकाशमण्डलं च विचिन्तयेत्॥ ७

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! अब मैं भूतशुद्धिका प्रकार बता रहा हूँ। सर्वप्रथम मूलाधारसे उठकर सुषुम्नामार्गपर होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक देवी परदेवता कुण्डलिनीके पहुँचनेकी भावना करे। तत्पश्चात् साधक हंसमन्त्रसे जीवका ब्रह्ममें संयोजन करके अपने शरीरमें पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चतुष्कोण (चौकोर), वज्रचिह्नसे युक्त, पीतवर्णवाले तथा 'लं' बीजसे अंकित पृथ्वीमण्डलकी कल्पना करे॥ १—३॥

घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागमें अर्धचन्द्रतुल्य आकृतिवाले, दो कमलोंसे युक्त, शुक्लवर्ण तथा 'वं' बीजमन्त्रसे अंकित जलमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ४॥

इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक चिह्नसे अंकित, रक्तवर्णवाले तथा 'रं' बीजमन्त्रसे युक्त अग्निमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ५॥

पुनः हृदयसे ऊपर भ्रूमध्यतकके भागमें गोल, छः बिन्दुओंसे अंकित, धूम्रवर्णवाले तथा 'यं' बीजसे युक्त वायुमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ६॥

इसके बाद भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतकके भागमें वृत्ताकार, स्वच्छ, परम मनोहर तथा 'हं' बीजसे अंकित आकाशमण्डलका ध्यान करना चाहिये॥ ७॥

एवं भूतानि सञ्चिन्त्य प्रत्येकं संविलापयेत्।
भुवं जले जलं वह्नौ वह्निं वायौ नभस्यमुम्॥ ८

विलाप्य खमहङ्कारे महत्तत्त्वेऽप्यहङ्कृतिम्।
महान्तं प्रकृतौ मायामात्मनि प्रविलापयेत्॥ ९

शुद्धसंविन्मयो भूत्वा चिन्तयेत्पापपूरुषम्।
वामकुक्षिस्थितं कृष्णमङ्गुष्ठपरिमाणकम्॥ १०

ब्रह्महत्याशिरोयुक्तं कनकस्तेयबाहुकम्।
मदिरापानहृदयं गुरुतल्पकटीयुतम्॥ ११

तत्संसर्गिपदद्वन्द्वमुपपातकमस्तकम्।
खड्गचर्मधरं कृष्णमधोवक्त्रं सुदुःसहम्॥ १२

वायुबीजं स्मरन्वायुं सम्पूर्यैनं विशोषयेत्।
स्वशरीरयुतं मन्त्रो वह्निबीजेन निर्दहेत्॥ १३

कुम्भके परिजप्तेन ततः पापनरोद्भवम्।
बहिर्भस्म समुत्सार्य वायुबीजेन रेचयेत्॥ १४

सुधाबीजेन देहोत्थं भस्म संप्लावयेत्सुधीः।
भूबीजेन घनीकृत्य भस्म तत्कनकाण्डवत्॥ १५

विशुद्धमुकुराकारं जपन्बीजं विहायसः।
मूर्धादिपादपर्यन्तान्यङ्गानि रचयेत्सुधीः॥ १६

इस प्रकारसे पंचभूतोंकी भावना करके प्रत्येकका अपने कारणरूप दूसरे भूतमें लय करे। पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें विलीन करनेका ध्यान करके पुनः आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको प्रकृतिमें और मायारूपी प्रकृतिको आत्मामें विलीन करना चाहिये॥ ८-९॥

इस प्रकार निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न होकर अपने शरीरमें पापपुरुषकी कल्पना करनी चाहिये कि यह मेरी बायीं कुक्षिमें स्थित है, यह काले रंगका है तथा अँगूठेके परिमाणवाला है, ब्रह्महत्या ही इसका सिर है, स्वर्णकी चोरी ही इसके बाहु हैं, सुरापान ही इसका हृदय है, गुरुतल्प (गुरुपत्नीगमन) ही इसका कटिप्रदेश है, इन महापातकोंसे संसर्ग ही इसके दोनों चरण हैं, उपपातक इसका मस्तक है, यह ढाल-तलवार लिये रहता है, यह कृष्णवर्णवाला है, सदा नीचेकी ओर मुख किये रहता है और अत्यन्त दुःसह है॥ १०—१२॥

तत्पश्चात् वायुबीज 'यं'का स्मरण करते हुए पूरक प्राणायामसे वायुको भरकर उसके द्वारा इस पापपुरुषको सुखा देना चाहिये। पुनः 'रं' अग्निबीजमन्त्रके द्वारा अपने शरीरसे लगे हुए उस पापपुरुषको भस्म कर देना चाहिये॥ १३॥

कुम्भकके जपसे दग्ध किये गये पापपुरुषकी भस्मको वायुबीज 'यं'के जपसे रेचक प्राणायामद्वारा बाहर निकाल देना चाहिये॥ १४॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष अपने शरीरसे उत्पन्न हुए भस्मको सुधाबीज 'वं'के उच्चारणसे उत्पन्न अमृतसे आप्लावित करे। पुनः भू-बीजमन्त्र 'लं'से उस द्रवीभूत भस्मको घनीभूत करके उसके सोनेके अण्ड-जैसा बन जानेकी कल्पना करे॥ १५॥

इसके बाद आकाशबीज 'हं'का जप करते हुए उस सुवर्ण-अण्डकी एक स्वच्छ दर्पणकी तरह कल्पना करके बुद्धिमान् साधकको उसमें मस्तकसे लेकर चरणपर्यन्त सभी अंगोंकी मानसिक रचना करनी चाहिये॥ १६॥

आकाशादीनि भूतानि पुनरुत्पादयेच्चितः।
सोऽहं मन्त्रेण चात्मानमानयेद्धृदयाम्बुजे॥ १७

कुण्डलीजीवमादाय परसङ्गात्सुधामयम्।
संस्थाप्य हृदयाम्भोजे मूलाधारगतां स्मरेत्॥ १८

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुण-
सरोजाधिरूढा कराब्जैः
शूलं कोदण्डमिक्षूद्भवमणिगुण-
मप्यङ्कुशं पञ्चबाणान्।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयन-
लसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु
सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः॥ १९

एवं ध्यात्वा प्राणशक्तिं परमात्मस्वरूपिणीम्।
विभूतिधारणं कार्यं सर्वाधिकृतिसिद्धये॥ २०

विभूतेर्विस्तरं वक्ष्ये धारणे च महाफलम्।
श्रुतिस्मृतिप्रमाणोक्तं भस्मधारणमुत्तमम्॥ २१

पुनः चित्तमें आकाश आदि पाँचों भूतोंकी कल्पना करे और '**सोऽहम्**' मन्त्रके द्वारा आत्माको अपने हृदयकमलपर विराजित करे॥ १७॥

तत्पश्चात् जीवको ब्रह्ममें संयोजित करनेवाली कुण्डलिनीको तथा परमात्माके संसर्गसे सुधामय जीवको हृदयरूपी कमलपर स्थापित करके मूलाधारमें विराजनेवाली देवी कुण्डलिनीका [इस प्रकार] ध्यान करना चाहिये॥ १८॥

रक्तवर्णवाले जलका एक समुद्र है। उसमें एक पोत है, जिसपर एक अरुणवर्णका कमल खिला हुआ है। उस कमलपर विराजमान, अपने छः करकमलोंमें त्रिशूल, इक्षुधनुष, रत्नमय पाश, अंकुश, पाँच बाण तथा रक्तपूरित खप्पर धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाली, स्थूल वक्षःस्थलवाली तथा बालसूर्यके समान वर्णवाली प्राणशक्तिस्वरूपा पराभगवती कुण्डलिनी हमें सुख प्रदान करनेवाली हों॥ १९॥

इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्ति देवी कुण्डलिनीका ध्यान करके समस्त कार्योंमें अधिकार प्राप्त करनेके लिये विभूति धारण करना चाहिये॥ २०॥

विभूति धारण करनेसे महान् फल प्राप्त होता है; श्रुति तथा स्मृतिके प्रमाणके अनुसार भस्मधारण अतीव उत्तम है। अब मैं विभूतिके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ २१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे भूतशुद्धिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

भस्म-धारण (शिरोव्रत)

श्रीनारायण उवाच

इदं शिरोव्रतं चीर्णं विधिवद्यैर्द्विजातिभिः।
तेषामेव परां विद्यां वदेदज्ञानबाधिकाम्॥ १

विधिवच्छ्रद्धया सार्धं न चीर्णं यैः शिरोव्रतम्।
श्रौतस्मार्तसमाचारस्तेषामनुपकारकः॥ २

श्रीनारायण बोले—जो द्विजातिगण शिरोव्रत (मस्तकपर भस्म धारण करनेके नियम)-का पालन करते हैं, उन्हींको अज्ञानको नष्ट करनेवाली पराविद्याके विषयमें बताना चाहिये॥ १॥

जो लोग भलीभाँति श्रद्धापूर्वक शिरोव्रतका पालन नहीं करते, उनके लिये श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें प्रतिपादित सदाचार व्यर्थ सिद्ध होता है॥ २॥

शिरोव्रतसमाचारादेव ब्रह्मादिदेवताः।
देवता अभवन्विद्वन् खलु नान्येन हेतुना॥ ३

शिरोव्रतस्य माहात्म्यं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवताः सकला अपि॥ ४

सर्वपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः।
शिरोव्रतमिदं येन चरितं विधिवद् बुधैः॥ ५

शिरोव्रतमिदं नाम शिरस्याथर्वणश्रुतेः।
यदुक्तं तद्धि नैवान्यत्तत्तु पुण्येन लभ्यते॥ ६

शाखाभेदेषु नामानि व्रतस्यास्य विभेदतः।
पठ्यन्ते मुनिशार्दूल शाखास्वेकव्रतं हि तत्॥ ७

सर्वशाखासु वस्त्वेकं शिवाख्यं सत्यचिद्घनम्।
तथा तद्विषयं ज्ञानं तथैव च शिरोव्रतम्॥ ८

शिरोव्रतविहीनस्तु सर्वधर्मविवर्जितः।
अपि सर्वासु विद्यासु सोऽधिकारी न संशयः॥ ९

शिरोव्रतमिदं कार्यं पापकान्तारदाहकम्।
साधनं सर्वविद्यानां यतस्तत्सम्यगाचरेत्॥ १०

श्रुतिराथर्वणी सूक्ष्मा सूक्ष्मार्थस्य प्रकाशिनी।
यदुवाच व्रतं प्रीत्या तन्नित्यं सम्यगाचरेत्॥ ११

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिः शुद्धेन भस्मना।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्याच्छिरोव्रतसमाह्वयम्॥ १२

एतच्छिरोव्रतं कुर्यात्सन्ध्याकालेषु सादरम्।
यावद्विद्योदयस्तावत्तस्य विद्या खलूत्तमा॥ १३

हे विद्वन्! ब्रह्मा आदि देवता शिरोव्रतके सदाचारसे ही देवत्वको प्राप्त हुए हैं; इसमें कोई अन्य हेतु नहीं था॥ ३॥

प्राचीन कालके महर्षियोंने शिरोव्रतका माहात्म्य प्रतिपादित किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा समस्त देवता भी भस्म धारण करते थे॥ ४॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक इस शिरोव्रतका अनुष्ठान करता है, वह सभी प्रकारके पातकोंसे युक्त होनेपर भी उन सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है—विद्वानोंने ऐसा कहा है॥ ५॥

अथर्ववेदके शिरोभागमें इस व्रतका उल्लेख होनेसे यह शिरोव्रत नामवाला है। इसके विषयमें जो वर्णन वहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह पुण्यसे ही प्राप्त होता है॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! विभिन्न शाखाओंमें इस व्रतके भिन्न-भिन्न नाम कहे गये हैं, किंतु नामभेद होनेपर भी यही एक व्रत सभी शाखाओंमें वर्णित है॥ ७॥

सभी शाखाओंमें मात्र एक शिव नामक सत्-चित्-घनरूपवाला पदार्थ है और इस पदार्थ (तत्त्व)-का ज्ञान तथा शिरोव्रत भी वैसा ही है॥ ८॥

सभी प्रकारकी विद्याओंमें पारंगत होनेपर भी यदि कोई मनुष्य शिरोव्रतसे विहीन है, तो वह सभी धर्मोंसे विहीन है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ९॥

यह शिरोव्रत पापरूपी वनको दग्ध करनेवाला तथा समस्त विद्याओंका साधन है, अतः इसका सम्यक् पालन करना चाहिये॥ १०॥

आथर्वण श्रुति अत्यन्त सूक्ष्म है तथा सूक्ष्म अर्थका प्रकाशन करनेवाली है। उसमें इस शिरोव्रतके विषयमें जो कहा गया है, उसका भलीभाँति प्रेमपूर्वक नित्य आचरण करना चाहिये॥ ११॥

'**अग्निरिति भस्म**' आदि इन छः आथर्वण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए शरीरके सभी अंगोंमें शुद्ध भस्म लगाना चाहिये, यह शिरोव्रत कहा गया है॥ १२॥

सभी सन्ध्याकालोंमें इस शिरोव्रतको तबतक करना चाहिये, जबतक ब्रह्मविद्याका उदय न हो। उसकी विद्या उत्तम है॥ १३॥

द्वादशाब्दमथाब्दं वा तदर्धं च तदर्धकम्।
प्रकुर्याद् द्वादशाहं वा सङ्कल्पेन शिरोव्रतम्॥ १४

शिरोव्रतेन यः स्नातस्तं तु नोपदिशेत्तु यः।
तस्य विद्या विनष्टा स्यान्निर्घृणः स गुरुः खलु॥ १५

ब्रह्मविद्यागुरुः साक्षान्मुनिः कारुणिकः खलु।
यथा सर्वेश्वरः श्रीमान्मृदुः कारुणिकः खलु॥ १६

जन्मान्तरसहस्रेषु नरा ये धर्मचारिणः।
तेषामेव खलु श्रद्धा जायते न कदाचन॥ १७

प्रत्युताज्ञानबाहुल्याद् द्वेष एव विजायते।
अतः प्रद्वेषयुक्तस्य न भवेदात्मवेदनम्॥ १८

ब्रह्मविद्योपदेशस्य साक्षादेवाधिकारिणः।
त एव नेतरे विद्वन् ये तु स्नाताः शिरोव्रतैः॥ १९

व्रतं पाशुपतं चीर्णं यैर्द्विजैरादरेण तु।
तेषामेवोपदेष्टव्यमिति वेदानुशासनम्॥ २०

यः पशुस्तत्पशुत्वं च व्रतेनानेन सन्त्यजेत्।
तान्हत्वा न स पापीयान्भवेद्वेदान्तनिश्चयः॥ २१

त्रिपुण्ड्रधारणं प्रोक्तं जाबालैरादरेण तु।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण सतारेण शिवेन च॥ २२

त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं गृहस्थाश्रममाश्रितः।
ओङ्कारेण त्रिरुक्तेन सहंसेन त्रिपुण्ड्रकम्॥ २३

धारयेद्भिक्षुको नित्यमिति जाबालिकी श्रुतिः।
त्रियम्बकेन मन्त्रेण प्रणवेन शिवेन च॥ २४

बारह वर्षतक या एक वर्षतक या छः मासतक या तीन मासतक अथवा कम-से-कम बारह दिनोंतक संकल्पके साथ इस शिरोव्रतका पालन करना चाहिये॥ १४॥

शिरोव्रतके स्नातकको जो गुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं देता, वह अत्यन्त निर्दयी होता है और उसकी विद्याका नाश हो जाता है॥ १५॥

जिस प्रकार भगवान् सर्वेश्वर कोमलचित्त तथा परम कारुणिक होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाला गुरु भी साक्षात् मुनि तथा दयावान् होता है॥ १६॥

जो मनुष्य हजारों जन्म-जन्मान्तरोंमें निरन्तर धर्माचरण करते रहते हैं, उन्हींके हृदयमें शिरोव्रतके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, दूसरोंके हृदयमें कभी भी नहीं; अपितु उनके हृदयमें अज्ञानकी अधिकताके कारण विद्वेष उत्पन्न होता है। अतएव विद्वेषभावनासे युक्त मनुष्यको आत्मबोध नहीं हो पाता॥ १७-१८॥

हे विद्वन्! ब्रह्मविद्याके उपदेशके सच्चे अधिकारी वे ही हैं जो शिरोव्रतमें स्नातक हो चुके हैं, अन्य लोग नहीं॥ १९॥

जिन द्विजोंने आदरपूर्वक इस पाशुपत शिरोव्रतका अनुष्ठान किया है, उन्हींको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना चाहिये—ऐसा वेदोंका आदेश है॥ २०॥

देहाभिमानी पशुतुल्य प्राणियोंको इस शिरोव्रतके पालनसे अपने पशुत्वका नाश करना चाहिये। वेदान्तशास्त्रका ऐसा निश्चय है कि इस व्रतके द्वारा पशुत्वनाशसे कोई हिंसाजन्य पाप भी नहीं होता॥ २१॥

जाबालश्रुतिके अवलम्बियोंद्वारा आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र-धारणका विधान बताया गया है। गृहस्थाश्रमका आचरण करनेवालेको त्रियम्बक मन्त्र अथवा तारकमन्त्र (ॐ)-के साथ '**नमः शिवाय**' मन्त्रका उच्चारण करके प्रतिदिन आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। संन्यासीको ॐकारके साथ हंसमन्त्रका तीन बार उच्चारण करके प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये—ऐसा जाबालोपनिषद्का कथन है। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको त्रियम्बक-मन्त्रसे अथवा

गृहस्थश्च वानप्रस्थो धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम्।
मेधावीत्यादिना वापि ब्रह्मचारी दिने दिने॥ २५

भस्मना सजलेनापि धारयेच्च त्रिपुण्ड्रकम्।
ब्राह्मणो विधिनोत्पन्नस्त्रिपुण्ड्रभस्मनैव तु॥ २६

ललाटे धारयेन्नित्यं तिर्यग्भस्मावगुण्ठनम्।
(महादेवस्य सम्बन्धात्तद्धर्मेऽप्यस्ति सङ्गतिः।)
सम्यक् त्रिपुण्ड्रधर्मं च ब्राह्मणो नित्यमाचरेत्॥ २७

आदिब्राह्मणभूतेन त्रिपुण्ड्रं भस्मना धृतम्।
यतोऽत एव विप्रस्तु त्रिपुण्ड्रं धारयेत्सदा॥ २८

भस्मना वेदसिद्धेन त्रिपुण्ड्रं देहगुण्ठनम्।
रुद्रलिङ्गार्चनं वापि मोहतोऽपि च न त्यजेत्॥ २९

त्रियम्बकेन मन्त्रेण सतारेण तथैव च।
पञ्चाक्षरेण मन्त्रेण प्रणवेन तथैव च॥ ३०

ललाटे हृदये चैव दोर्द्वन्द्वे च महामुने।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं संन्यासाश्रममाश्रितः॥ ३१

त्रियायुषेण मन्त्रेण मेधावीत्यादिनाथवा।
गौणेन भस्मना धार्यं त्रिपुण्ड्रं ब्रह्मचारिणा॥ ३२

नमोऽन्तेन शिवेनैव शूद्रः शुश्रूषणे रतः।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च नित्यं भक्त्या समाचरेत्॥ ३३

अन्येषामपि सर्वेषां विना मन्त्रेण सुव्रत।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च कर्तव्यं भक्तितो मुने॥ ३४

भूत्यैवोद्धूलनं तिर्यक् त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्।
वरेण्यं सर्वधर्मेभ्यस्तस्मान्नित्यं समाचरेत्॥ ३५

प्रणवसहित पंचाक्षरमन्त्रसे त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको **'मेधावी०'** इत्यादि मन्त्रसे प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

भस्ममें जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र भस्म लगानेसे ही ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व प्रकट होता है। अतः उसे प्रतिदिन तिरछी रेखाओंवाला त्रिपुण्ड्र अपने ललाटपर धारण करना चाहिये। (शिवजीद्वारा अपने शरीरमें भस्म धारण करनेके कारण उनके अनुयायियोंको भी भस्म धारण करना युक्तियुक्त है)। ब्राह्मणको प्रतिदिन त्रिपुण्ड्रधारणव्रतका विधिपूर्वक पालन करना चाहिये। आदिब्राह्मणस्वरूप ब्रह्माजीने भी भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण किया था, अतः ब्राह्मणको सदा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २६—२८॥

वेदप्रतिपादित भस्मसे शरीरमें अनुलेपन करना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और नित्य शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये, भूलकर भी इनका परित्याग नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे महामुने! संन्यास-आश्रममें स्थित व्यक्तिको तारक मन्त्रके साथ त्रियम्बकमन्त्र और प्रणव (ॐ)-के साथ पंचाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए अपने ललाट, हृदयदेश तथा दोनों भुजदण्डोंपर नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३०-३१॥

ब्रह्मचारीको **त्र्यायुषमन्त्रसे** अथवा **मेधावी०** इत्यादि मन्त्रसे गौण भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। निरन्तर सेवाकार्यमें तत्पर शूद्रको **'शिवाय नमः'** मन्त्रसे श्रद्धापूर्वक अपने पूरे शरीरमें भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे मुने! हे सुव्रत! इसी प्रकार अन्य सभी लोगोंको भी बिना मन्त्रका उच्चारण किये ही अपने शरीरमें भक्तिपूर्वक भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३२—३४॥

सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना तथा मस्तकपर तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ है। अतः उसका प्रतिदिन पालन करना चाहिये॥ ३५॥

भस्माग्निहोत्रजं वाथ विरजाग्निसमुद्भवम्।
आदरेण समादाय शुद्धे पात्रे निधाय तत्॥ ३६

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च द्विराचम्य समाहितः।
गृहीत्वा भस्म तत्पञ्चब्रह्ममन्त्रैः शनैः शनैः॥ ३७

प्राणायामत्रयं कृत्वा अग्निरित्यादिमन्त्रितम्।
तैरेव सप्तभिर्मन्त्रैस्त्रिवारमभिमन्त्रयेत्॥ ३८

ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा ध्यात्वा मन्त्रानुदीरयेत्।
सितेन भस्मना पूर्वं समुद्धूल्य शरीरकम्॥ ३९

विपापो विरजो मर्त्यो जायते नात्र संशयः।
ततो ध्यात्वा महाविष्णुं जगन्नाथं जलाधिपम्॥ ४०

संयोज्य भस्मना तोयमग्निरित्यादिभिः पुनः।
विमृज्य साम्बं ध्यात्वा च समुद्धूल्योर्ध्वमस्तकम्॥ ४१

तेन भावनया ब्राह्मभूतेन सितभस्मना।
ललाटवक्षःस्कन्धेषु स्वाश्रमोचितमन्त्रतः॥ ४२

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरनुलोमविलोमतः।
त्रिपुण्ड्रं धारयेन्नित्यं त्रिकालेष्वपि भक्तितः॥ ४३

अग्निहोत्रजन्य भस्म तथा विरजाग्निजन्य भस्मको अत्यन्त आदरपूर्वक लेकर उसे किसी शुद्ध पात्रमें रखकर पुनः दोनों हाथ तथा पैर धोकर दो बार आचमन करके हाथमें भस्म लेकर एकाग्रचित्त हो धीरे-धीरे पाँच ब्रह्ममन्त्रों (**सद्योजातं प्रपद्यामि** आदि)-का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार प्राणायाम करके '**अग्निरिति भस्म**' आदि [छः आथर्वण मन्त्रों तथा बृहज्जाबालोपनिषद्के **तेजो भस्मेति**] कुल सात मन्त्रोंसे उसे तीन बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम्**' ऐसा उच्चारण करके शिवजीका ध्यानकर उन सात मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। इस श्वेत भस्मको पूरे शरीरमें लगाकर मनुष्य पापसे रहित तथा विशुद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६—३९½ ॥

तत्पश्चात् जगत्के स्वामी जलाधिपति महाविष्णुका ध्यान करके भस्ममें जल मिलाकर पुनः '**अग्निरिति**' आदि मन्त्रोंके द्वारा उसका संस्कार करके साम्ब सदाशिवका ध्यानकर उस भस्मको ऊर्ध्व मस्तकपर लगा लेना चाहिये। उस भस्ममें शिवजीकी भावना करके सभी आश्रमोंके लोगोंको अपने-अपने आश्रमके लिये विहित मन्त्रोंका उच्चारणकर ललाटपर, वक्षःस्थलपर तथा कन्धेपर उस ब्रह्मस्वरूप श्वेत भस्मसे मध्यमा-अनामिका तथा अँगूठेसे अनुलोम-विलोमक्रमसे प्रतिदिन तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ४०—४३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
सशिरोव्रतं त्रिपुण्ड्रधारणवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

भस्म-धारणकी विधि

श्रीनारायण उवाच

आग्नेयं गौणमज्ञानध्वंसकं ज्ञानसाधकम्।
गौणं नानाविधं विद्धि ब्रह्मन्ब्रह्मविदांवर॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अग्निसे तैयार किया गया 'गौण' भस्म भी अज्ञानका नाश करनेवाला तथा ज्ञानका साधन है। इस गौण भस्मको भी आप अनेक प्रकारवाला जानिये॥ १॥

अग्निहोत्राग्निजं तद्वद्विरजानलजं मुने।
औपासनसमुत्पन्नं समिदग्निसमुद्भवम्॥ २

पचनाग्निसमुत्पन्नं दावानलसमुद्भवम्।
त्रैवर्णिकानां सर्वेषामग्निहोत्रसमुद्भवम्॥ ३

विरजानलजं चैव धार्यं भस्म महामुने।
औपासनसमुत्पन्नं गृहस्थानां विशेषतः॥ ४

समिदग्निसमुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा।
शूद्राणां श्रोत्रियागारपचनाग्निसमुद्भवम्॥ ५

अन्येषामपि सर्वेषां धार्यं दावानलोद्भवम्।
कालश्चित्रा पौर्णमासी देशः स्वीयः परिग्रहः॥ ६

क्षेत्रारामाद्यरण्यं वा प्रशस्तः शुभलक्षणः।
तत्र पूर्वत्रयोदश्यां सुस्नातः सुकृताह्निकः॥ ७

अनुज्ञाप्य स्वमाचार्यं सम्पूज्य प्रणिपत्य च।
पूजां वैशेषिकीं कृत्वा शुक्लाम्बरधरः स्वयम्॥ ८

शुद्धयज्ञोपवीती च शुक्लमाल्यानुलेपनः।
दर्भासने समासीनो दर्भमुष्टिं प्रगृह्य च॥ ९

प्राणायामत्रयं कृत्वा प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
ध्यात्वा देवं च देवीं च तद्विज्ञापनवर्त्मना॥ १०

व्रतमेतत्करोमीति भवेत्सङ्कल्पदीक्षितः।
यावच्छरीरपातं वा द्वादशाब्दमथापि वा॥ ११

तदर्धं वा तदर्धं वा मासद्वादशकं तु वा।
तदर्धं वा तदर्धं वा मासमेकमथापि वा॥ १२

दिनद्वादशकं वापि दिनषट्कमथापि वा।
तदर्धं दिनमेकं वा व्रतसङ्कल्पनावधि॥ १३

हे मुने! अग्निहोत्राग्निजनित भस्म, उसी तरह विरजाग्निजनित भस्म, औपासनाग्निसे उत्पन्न भस्म, समिधाग्निजन्य भस्म, पचनाग्नि (भोजननिर्माण)-जन्य भस्म तथा दावाग्निसे उत्पन्न भस्म गौण भस्म हैं। हे महामुने! समस्त त्रैवर्णिकों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-को अग्निहोत्रजन्य तथा विरजाग्निजन्य भस्म धारण करना चाहिये। गृहस्थोंको विशेषकर औपासन-अग्निजनित भस्म तथा ब्रह्मचारीको समिधाग्निसे उत्पन्न भस्म लगाना चाहिये। शूद्रोंको वैदिक ब्राह्मणकी पाकशालामें भोजननिर्माणसे उत्पन्न भस्म तथा अन्य सभी जनोंको दावानलजनित भस्म लगाना चाहिये॥ २—५½॥

[हे ब्रह्मन्! अब मैं विरजाग्निजन्य भस्मकी उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हूँ] चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाकी तिथि तथा अपना निवासस्थान ही इसके निर्माणके लिये समीचीन है। इसके अतिरिक्त खेत, बाग तथा वन भी इस विरजाहोमके लिये शुभ लक्षणोंवाले तथा प्रशस्त हैं। पूर्णिमा तिथिके पूर्व त्रयोदशीको विधिवत् स्नान करके सन्ध्या आदि नित्य कर्म सम्पादितकर अपने आचार्यसे आज्ञा लेकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर उनकी विशिष्ट पूजा करके स्वयं श्वेत वस्त्र धारणकर शुद्ध यज्ञोपवीत पहनकर श्वेत माला धारण करे तथा चन्दनादि लगाये॥ ६—८½॥

तत्पश्चात् कुशके आसनपर बैठकर हाथकी मुट्ठीमें कुश लेकर पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। पुनः महादेव तथा महादेवीका ध्यान करके उनके द्वारा निर्दिष्ट रीतिके अनुसार इस प्रकार निवेदन करके संकल्पमें दीक्षित होना चाहिये—'मैं इस शिरोव्रतको इस शरीरकी समाप्तितक अथवा बारह वर्षतक अथवा छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक अथवा बारह मासतक अथवा छः मासतक अथवा तीन मासतक अथवा एक मासतक अथवा बारह दिनतक अथवा छः दिनतक अथवा तीन दिनतक अथवा एक दिनकी अवधितक अनुष्ठित करनेके लिये यह व्रत-संकल्प ग्रहण करता हूँ'॥ ९—१३॥

अग्निमाधाय विधिवद्विरजाहोमकारणात्।
हुत्वाज्येन समिद्भिश्च चरुणा च यथाविधि॥ १४

पूताहात्पुरतो भूयस्तत्त्वानां शुद्धिमुद्दिशन्।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण तैरेव समिदादिभिः॥ १५

तत्त्वान्येतानि मे देहे शुध्यन्तामित्यनुस्मरन्।
पश्चाद्भूतादितन्मात्राः पञ्चकर्मेन्द्रियाणि च॥ १६

ज्ञानकर्मविभेदेन पञ्च पञ्च विभागशः।
त्वगादिधातवः सप्त पञ्च प्राणादिवायवः॥ १७

मनो बुद्धिरहङ्कारो गुणाः प्रकृतिपूरुषौ।
रागो विद्या कला चैव नियतिः काल एव च॥ १८

माया च शुद्धविद्या च महेश्वरसदाशिवौ।
शक्तिश्च शिवतत्त्वं च तत्त्वानि क्रमशो विदुः॥ १९

मन्त्रैस्तु विरजैर्हुत्वा होतासौ विरजो भवेत्।
अथ गोमयमादाय पिण्डीकृत्याभिमन्त्र्य च॥ २०

न्यस्याग्नौ तं च संरक्ष्य दिने तस्मिन् हविष्यभुक्।
प्रभाते च चतुर्दश्यां कृत्वा सर्वं पुरोदितम्॥ २१

तस्मिन्दिने निराहारः कालशेषं समापयेत्।
प्रातः पर्वणि चाप्येवं कृत्वा होमावसानतः॥ २२

उपसंहृत्य रुद्राग्निं गृहीत्वा भस्म यत्नतः।
ततश्च जटिलो मुण्डः शिखैकजट एव च॥ २३

भूत्वा स्नात्वा पुनर्वीतलज्जश्चेत्स्याद्दिगम्बरः।
अन्यः काषायवसनश्चर्मचीराम्बरोऽथवा॥ २४

एकाम्बरो वल्कलवान्भवेद्दण्डी च मेखली।
प्रक्षाल्य चरणौ पश्चाद् द्विराचम्यात्मनस्तनुम्॥ २५

इसके बाद विरजाहोमके लिये विधिपूर्वक (अपनी शाखाके गृह्यसूत्रकी विधिसे) अग्न्याधान करके घृत, समिधा तथा चरुसे विधिवत् हवन करना चाहिये। पुनः इस पवित्र दिनके बाद चतुर्दशीको अपने तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हीं समिधा आदि द्रव्योंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। मेरे शरीरमें ये तत्त्व शुद्धताको प्राप्त हो जायँ—ऐसी भावना करते हुए आहुति डालनी चाहिये। पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), पंचतन्मात्राएँ (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, वाक्, पायु, उपस्थ), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र, कान, नासिका, जीभ, त्वचा), सात धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य) प्राण आदि पाँच वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान), मन, बुद्धि, अहंकार, तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम), प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति तथा शिवतत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं॥ १४—१९॥

विरजामन्त्रोंसे आहुति प्रदान करके वह होता निष्पाप हो जाता है। इसके बाद गायका गोबर लेकर उसका पिण्ड बनाकर उसे [पंचाक्षरमन्त्रसे] अभिमन्त्रित करके पुनः उसे अग्निमें रखकर उसका संरक्षण करता रहे। उस दिन केवल हविष्यान्न ग्रहण करे। चतुर्दशीको प्रातःकाल पूर्वोक्त विधिसे [नित्यकर्म तथा हवन आदि] समस्त कार्य सम्पन्न करके उस दिन निराहार रहकर सम्पूर्ण समय व्यतीत करे॥ २०-२१½॥

तत्पश्चात् पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल नित्यकर्म करके हवन करे और होमके अनन्तर रुद्राग्निका विसर्जन करके सावधानीके साथ भस्म ग्रहण कर ले। तदनन्तर जटाधारी, मुण्डी अथवा शिखारूपी एक जटावाला होकर पुनः स्नान कर लेनेके अनन्तर यदि लज्जाशून्य हो गया हो तो दिगम्बर (नग्न) हो जाय, यदि नहीं तो गेरुआ वस्त्र अथवा मृगचर्म अथवा वस्त्रका एक टुकड़ा या एक वस्त्र या पेड़की छाल पहनकर हाथमें दण्ड तथा कटिप्रदेशमें मेखला धारण करे। तत्पश्चात् अपने दोनों पैर प्रक्षालित-कर दो बार आचमन करके विरजाग्निजन्य उस भस्मको

सङ्कलीकृत्य तद्भस्म विरजानलसम्भवम्।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः षड्भिराथर्वणैः क्रमात्॥ २६

विमृज्याङ्गानि मूर्धादिचरणान्तं च तैः स्पृशेत्।
ततस्तेन क्रमेणैव समुद्धूल्य च भस्मना॥ २७

सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात्प्रणवेन शिवेन वा।
ततश्च पुण्ड्रं रचयेत्त्रियायुषसमाह्वयम्॥ २८

शिवभावं समागम्य शिवभावमथाचरेत्।
कुर्यात्त्रिसन्ध्यमप्येवमेतत्पाशुपतं व्रतम्॥ २९

भुक्तिमुक्तिप्रदं चैव पशुत्वं विनिवर्तयेत्।
तत्पशुत्वं परित्यज्य कृत्वा पाशुपतं व्रतम्॥ ३०

पूजनीयो महादेवो लिङ्गमूर्तिः सदाशिवः।
भस्मस्नानं महापुण्यं सर्वसौख्यकरं परम्॥ ३१

आयुष्यं बलमारोग्यं श्रीपुष्टिवर्धनं यतः।
रक्षार्थं मङ्गलार्थं च सर्वसम्पत्समृद्धये॥ ३२

भस्मस्निग्धमनुष्याणां महामारीभयं न च।
शान्तिकं पौष्टिकं भस्म कामदं च त्रिधा भवेत्॥ ३३

एकत्र करके '**अग्निरिति भस्म**' आदि छः आथर्वण मन्त्रोंसे अंगोंका शोधन करके पुनः उन्हीं मन्त्रोंसे क्रमसे मस्तकसे लेकर चरणतक भस्म लगाना चाहिये। इस क्रमसे उस भस्मद्वारा उद्धूलन करके प्रणव (ॐ) मन्त्रसे या शिवमन्त्रसे सम्पूर्ण शरीरमें भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसके बाद '**त्र्यायुष**' संज्ञावाले मन्त्रसे त्रिपुण्ड्र धारण करे। ऐसा कर लेनेपर शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावका ही आचरण करे॥ २२—२८½ ॥

इस प्रकार इस पाशुपतव्रतको प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन तथा सायंकालीन तीनों सन्ध्याओंके समय करना चाहिये। यह पाशुपतव्रत भोग तथा मोक्षको देनेवाला है और यह पशुत्वभावको दूर कर देता है। अतएव पशुत्व-विचारका त्याग करके पाशुपतव्रतका अनुष्ठान करनेके अनन्तर लिंगमूर्ति महादेव सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २९-३०½ ॥

भस्मस्नान महान् पुण्यदायक; सभी सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला; अतिश्रेष्ठ; आयु, बल, आरोग्य, लक्ष्मी तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला है। अतः अपनी रक्षा, कल्याण तथा सर्वविधसम्पदाकी समृद्धिके लिये मनुष्योंको भस्म धारण करना चाहिये। भस्मस्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं रहता है। यह भस्म शान्तिक (शान्तिकारक), पौष्टिक (पुष्टिकारक) तथा कामद (सिद्धिप्रदायक)—इन तीन प्रकारका होता है॥ ३१—३३ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
भस्ममाहात्म्ये पाशुपतव्रतवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

भस्मके प्रकार

नारद उवाच

त्रिविधत्वं कथं चास्य भस्मनः परिकीर्तितम्।
एतत्कथय मे देव महत्कौतूहलं मम॥ १

श्रीनारायण उवाच

त्रिविधत्वं प्रवक्ष्यामि देवर्षे भस्मनः शृणु।
महापापक्षयकरं महाकीर्तिकरं परम्॥ २

नारदजी बोले—हे देव! यह भस्म तीन प्रकारका कैसे कहा गया है? यह मुझे आप बताइये; क्योंकि इस विषयमें मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ १॥

नारायण बोले—हे देवर्षे! मैं भस्मके तीन प्रकारोंका वर्णन करूँगा, आप सुनिये। यह महान् पापोंको नष्ट करनेवाला तथा विपुल कीर्ति प्रदान करनेवाला है॥ २॥

गोमयं योनिसम्बद्धं तद्धस्तेनैव गृह्यते।
ब्राह्मैर्मन्त्रैस्तु सन्दग्धं तच्छान्तिकृदिहोच्यते॥ ३

सावधानस्तु गृह्णीयान्नरो वै गोमयं तु यत्।
अन्तरिक्षे गृहीत्वा तत्षडङ्गेन दहेदतः॥ ४

पौष्टिकं तत्समाख्यातं कामदं च ततः शृणु।
प्रासादेन दहेदेतत्कामदं भस्म कीर्तितम्॥ ५

प्रातरुत्थाय देवर्षे भस्मव्रतपरः शुचिः।
गवां गोष्ठेषु गत्वा तु नमस्कृत्य तु गोकुलम्॥ ६

गवां वर्णानुरूपाणां गृह्णीयाद् गोमयं शुभम्।
ब्राह्मणस्य च गौः श्वेता रक्ता गौः क्षत्रियस्य च॥ ७

पीतवर्णा तु वैश्यस्य कृष्णा शूद्रस्य कथ्यते।
पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यां वा विशुद्धधीः॥ ८

प्रासादेन तु मन्त्रेण गृहीत्वा गोमयं शुभम्।
हृदयेन तु मन्त्रेण पिण्डीकृत्य तु गोमयम्॥ ९

रविरश्मिसुसन्तप्तं शुचौ देशे मनोहरे।
तुषेण वा बुसैर्वापि प्रासादेन तु निक्षिपेत्॥ १०

अरण्युद्भवमग्निं वा श्रोत्रियागारजं तु वा।
तदग्नौ विन्यसेत्तं च शिवबीजेन मन्त्रतः॥ ११

गृह्णीयादथ तत्राग्निकुण्डाद्भस्म विचक्षणः।
नवपात्रं समादाय प्रासादेन तु निक्षिपेत्॥ १२

केतकी पाटली तद्वदुशीरं चन्दनं तथा।
नानासुगन्धिद्रव्याणि काश्मीरप्रभृतीनि च॥ १३

निक्षिपेत्तत्र पात्रे तु सद्योमन्त्रेण शुद्धधीः।
जलस्नानं पुरा कृत्वा भस्मस्नानमतः परम्॥ १४

जो गोमय (गोबर) योनिसे सम्बद्ध अर्थात् योनिसे अलग होनेके पूर्व हाथपर ग्रहण कर लिया गया हो, उस गोमयको [**सद्योजात०** आदि] ब्राह्ममन्त्रोंसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे शान्तिक भस्म कहा जाता है॥ ३॥

जिस गोमयको [जमीनपर गिरनेसे पूर्व] अन्तरिक्षमें ही सावधानीपूर्वक हाथपर ले लिया गया हो, उस गोमयको षडंगमन्त्रसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे पौष्टिक भस्म कहा गया है। [हे देवर्षे!] अब इसके बाद कामद भस्मके विषयमें सुनिये। प्रासादमन्त्र (हौम्)-से दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे कामद भस्म कहा गया है॥ ४-५॥

हे देवर्षे! भस्मव्रतपरायण मनुष्यको प्रात:काल उठकर [नित्यकर्मसे] पवित्र होनेके पश्चात् गोशालामें जाकर गोवृन्दको नमस्कार करके वर्णानुरूप गायोंका शुद्ध गोमय लेना चाहिये। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीले तथा शूद्रके लिये काले रंगकी गाय [श्रेयस्कर] कही जाती है। विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको पूर्णिमा, अमावास्या अथवा अष्टमीको प्रासाद (हौम्) मन्त्रसे शुद्ध गोमय उठाकर हृदयमन्त्र (नमः)-से उस गोमयको पिण्डके आकारका बना लेनेके अनन्तर पुनः उस पिण्डको सूर्यकी किरणोंमें भलीभाँति सुखाकर उसे धानकी भूसी या [गेहूँ आदिके] भूसेसे वेष्टित करके प्रासादमन्त्रका उच्चारण करते हुए किसी सुन्दर तथा पवित्र स्थानपर रख देना चाहिये॥ ६—१०॥

तत्पश्चात् अरणिसे उत्पन्न अग्नि अथवा वैदिक ब्राह्मणके घरसे अग्नि लाकर शिवबीजमन्त्रसे उस पिण्डको अग्निमें डाल देना चाहिये॥ ११॥

पुनः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उस अग्निकुण्डसे भस्म निकाले और एक नया पात्र लेकर उसमें भस्मको प्रासाद-मन्त्रसे रख दे। तत्पश्चात् विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको केवड़ा, गुलाब, खस, चन्दन और केसर आदि विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंको सद्योजात मन्त्रसे उस पात्रमें स्थित भस्ममें मिला लेना चाहिये। पहले जल-स्नान करके उसके बाद ही भस्म-स्नान करना चाहिये॥ १२—१४॥

जलस्नाने त्वशक्तश्च भस्मस्नानं समाचरेत्।
प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च शिरश्चेशानमन्त्रतः॥ १५

समुद्धूल्य ततः पश्चादाननं तत्पुरुषेण तु।
अघोरेण तु हृदयं नाभिं वामेन तत्परम्॥ १६

सद्योमन्त्रेण सर्वाङ्गं समूद्धूल्य विचक्षणः।
पूर्ववस्त्रं परित्यज्य शुद्धवस्त्रं परिग्रहेत्॥ १७

प्रक्षाल्य पादौ हस्तौ च पश्चादाचमनं चरेत्।
भस्मनोद्धूलनाभावे त्रिपुण्ड्रं तु विधीयते॥ १८

मध्याह्नात्प्रागजलैर्युक्तं परतो जलवर्जितम्।
तर्जन्यनामिकामध्यैस्त्रिपुण्ड्रं च समाचरेत्॥ १९

मूर्ध्नि चैव ललाटे च कर्णे कण्ठे तथैव च।
हृदये चैव बाह्वोश्च न्यासस्थानं हि चोच्यते॥ २०

पञ्चाङ्गुलैर्न्यसेन्मूर्ध्नि प्रासादेन तु मन्त्रतः।
त्र्यङ्गुलैर्विन्यसेद्भाले शिरोमन्त्रेण देशिकः॥ २१

सद्येन दक्षिणे कर्णे वामदेवेन वामतः।
अघोरेण तु कण्ठे च मध्याङ्गुल्या स्पृशेद् बुधः॥ २२

हृदयं हृदयेनैव त्रिभिरङ्गुलिभिः स्पृशेत्।
विन्यसेद्दक्षिणे बाहौ शिखामन्त्रेण देशिकः॥ २३

वामबाहौ न्यसेद्धीमान्कवचेन त्रियङ्गुलैः।
मध्येन संस्पृशेन्नाभ्यामीशान इति मन्त्रतः॥ २४

ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तिस्रो रेखा इति स्मृताः।
आद्यो ब्रह्मा ततो विष्णुस्तदूर्ध्वं तु महेश्वरः॥ २५

यदि जलस्नान करनेमें किसी प्रकारकी असमर्थता हो तो केवल भस्मस्नान ही करे। हाथ-पैर धोकर 'ईशान' मन्त्रसे सिरपर भस्म लगा करके 'तत्पुरुष' मन्त्रसे मुखपर, 'अघोर' मन्त्रसे हृदयपर, 'वामदेव' मन्त्रसे नाभिपर भस्म लगाये। तदनन्तर 'सद्योजात' मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंपर भस्म लगाकर बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि पहलेका धारण किया हुआ वस्त्र छोड़कर शुद्ध वस्त्र पहन ले॥ १५—१७॥

तत्पश्चात् हाथ-पैर धोकर आचमन करना चाहिये। और यदि पूरे शरीरपर भस्म न लगा सके तो केवल त्रिपुण्ड्र ही धारण कर लेनेका भी विधान है॥ १८॥

मध्याह्नके पूर्व भस्मको जलमें मिलाकर तथा इसके बाद लगाना हो तो जलरहित (सूखा) भस्मका त्रिपुण्ड्र तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा—इन तीनों अँगुलियोंसे धारण करना चाहिये॥ १९॥

सिर, ललाट, कान, कण्ठ, हृदय और दोनों बाहु—ये त्रिपुण्ड्र धारण करनेके स्थान बताये गये हैं। प्रासाद मन्त्रका उच्चारण करते हुए पाँचों अँगुलियोंसे सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधकको चाहिये कि तीन अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से शिरोमन्त्र (स्वाहा)-द्वारा ललाटपर त्रिपुण्ड्र लगाये। साधकको सद्योजात मन्त्रसे दाहिने कानपर, वामदेव मन्त्रसे बायें कानपर तथा अघोर मन्त्रसे कण्ठपर मध्यमा अँगुलीद्वारा भस्म लगाना चाहिये॥ २०—२२॥

इसी प्रकार साधकको चाहिये कि हृदयमन्त्रसे तीनों अँगुलियोंद्वारा हृदयमें और शिखामन्त्रसे दाहिनी भुजापर त्रिपुण्ड्र धारण करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको उन्हीं तीनों अँगुलियोंद्वारा कवचमन्त्रसे बायीं भुजापर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये और मध्यमाद्वारा **'ईशानः सर्वविद्यानाम्०'**—इस मन्त्रसे नाभिपर भस्म धारण करना चाहिये॥ २३-२४॥

ये तीनों रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरका स्वरूप मानी गयी हैं। त्रिपुण्ड्रकी पहली रेखा ब्रह्मा, उसके बादवाली रेखा विष्णु तथा उसके ऊपरकी रेखा महेश्वरका स्वरूप है॥ २५॥

एकाङ्गुलेन न्यस्तं यदीश्वरस्तत्र देवता।
शिरोमध्ये त्वयं ब्रह्मा ईश्वरस्तु ललाटके॥ २६

कर्णयोरश्विनौ देवौ गणेशस्तु गले तथा।
क्षत्रियश्च तथा वैश्यः शूद्रश्चोद्धूलनं त्यजेत्॥ २७

सर्वेषामन्त्यजातीनां मन्त्रेण रहितं भवेत्।
(अदीक्षितं मनुष्याणामपि मन्त्रं विना भवेत्)॥ २८

एक अँगुली (मध्यमा)-से जो भस्म लगायी जाती है, उस रेखाके देवता ईश्वर हैं। सिरमें साक्षात् ब्रह्मा, ललाटपर ईश्वर, कानोंमें दोनों अश्विनीकुमार और गलेमें गणेश विद्यमान हैं। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको सर्वांगमें भस्म नहीं लगाना चाहिये और समस्त अन्त्य जातियोंको मन्त्रोंका उच्चारण किये बिना ही भस्म धारण करना चाहिये। (इसी प्रकार दीक्षारहित मनुष्योंको भी मन्त्रके बिना ही भस्म लगाना चाहिये)॥ २६—२८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
त्रिविधभस्ममाहात्म्यवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

भस्म न धारण करनेपर दोष

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु तत्सर्वं भस्मोद्धूलनजं फलम्।
सरहस्यविधानं च सर्वकामफलप्रदम्॥ १

कपिलायाः शकृत्स्वच्छं गृहीत्वा गगनेऽपतत्।
न क्लिन्नं नापि कठिनं न दुर्गन्धं न चोषितम्॥ २

उपर्यधः परित्यज्य गृह्णीयात्पतितं यदि।
पिण्डीकृत्य शिवाग्न्यादौ तत्क्षिपेन्मूलमन्त्रितम्॥ ३

आदाय वाससाच्छाद्य भस्माधाने विनिक्षिपेत्।
सुकृते सुदृढे शुद्धे क्षालिते प्रोक्षिते शुभे॥ ४

विन्यस्य मन्त्री मन्त्रेण पात्रे भस्म विनिक्षिपेत्।
तैजसं दारवं चाथ मृण्मयं चैलमेव च॥ ५

अन्यद्वा शोभनं शुद्धं भस्माधारं प्रकल्पयेत्।
क्षौमे चैवातिशुद्धे वा धनवद्भस्म निक्षिपेत्॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब रहस्य तथा विधानके साथ भस्म लगानेसे प्राप्त होनेवाले समस्त फलके विषयमें सुनिये। यह भस्मोद्धूलन सभी कामनाओंको सफल करनेवाला है॥ १॥

कपिला गायका स्वच्छ गोमय भूमिपर गिरनेके पूर्व ही हाथोंसे ग्रहण कर ले। वह न गीला हो, न कठोर हो, न दुर्गन्धयुक्त हो और न बासी हो। यदि गोबर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो तो ऊपर तथा नीचेका भाग छोड़कर बीचका अंश लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसे पिण्डके आकारका बनाकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शिवाग्निमें डाल देना चाहिये॥ २-३॥

जल जानेपर भस्मको निकालकर तथा उसे किसी शुद्ध वस्त्रसे छानकर एक सुन्दर, पवित्र, सुदृढ़, स्वच्छ, सम्यक् प्रक्षालित किये गये तथा प्रोक्षित भस्मपात्रमें रख ले। मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भस्मको पात्रमें रखे। भस्म रखनेके लिये किसी धातु (सोना, ताँबा आदि), काष्ठ, मिट्टी, वस्त्र अथवा किसी अन्य सुन्दर तथा शुद्ध पदार्थका भस्मपात्र बनाना चाहिये। अथवा किसी अति शुद्ध रेशमी वस्त्रसे बने पात्रमें धनकी तरह भस्मको सुरक्षित रखना चाहिये॥ ४—६॥

प्रस्थितो भस्म गृह्णीयात्स्वयं चानुचरोऽपि वा।
न चायुक्तकरे दद्यान्न चाशुचितले क्षिपेत्॥ ७

न संस्पृशेत्तु नीचाङ्गैर्न क्षिपेन्न च लङ्घयेत्।
तस्माद्भसितमादाय विनियुञ्जीत मन्त्रितम्॥ ८

विभूतिधारणविधिः स्मृतिप्रोक्तो मयेरितः।
यदीयाचरणेनैव शिवतुल्यो न संशयः॥ ९

शैवैः सम्पादितं भस्म वैदिकैः शिवसन्निधौ।
भक्त्या परमया ग्राह्यं प्रार्थयित्वा तु पूजयेत्॥ १०

तन्त्रोक्तवर्त्मना सिद्धं भस्म तान्त्रिकपूजकैः।
यत्रकुत्रापि दत्तं चेत्तद् ग्राह्यं नैव वैदिकैः॥ ११

शूद्रैः कापालिकैर्वाथ पाखण्डैरपरैस्तु तत्।
त्रिपुण्ड्रं धारयेद्भक्त्या मनसापि न लङ्घयेत्॥ १२

श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत्।
त्रिपुण्ड्रधारणं भक्त्या तथा देहावगुण्ठनम्॥ १३

द्विजः कुर्याद्धि मन्त्रेण तत्त्यागी पतितो भवेत्।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च भक्त्या नैवाचरन्ति ये॥ १४

तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।
येन भस्मोक्तमार्गेण धृतं न मुनिपुङ्गव॥ १५

तस्य विद्धि मुने जन्म निष्फलं सौकरं यथा।
येषां वपुर्मनुष्याणां त्रिपुण्ड्रेण विना स्थितम्॥ १६

श्मशानसदृशं तत्स्यान्न प्रेक्ष्यं पुण्यकृज्जनैः।

कहीं प्रस्थान करते समय भस्मपात्र या तो स्वयं लिये रहे अथवा साथ चलनेवाला अनुचर (सेवक) इसे लिये रहे। इसे न किसी अयोग्य व्यक्तिके हाथमें दे और न तो किसी अपवित्र स्थानपर ही रखे॥ ७॥

शरीरके नीचेके अंग (पैर आदि)-से भस्मको न तो स्पर्श करे, न तो उसे फेंके और न तो लाँघे। उस पात्रसे भस्म निकालकर अभिमन्त्रित करनेके बाद ही उसे धारण करना चाहिये॥ ८॥

विभूतिधारणकी जो विधि स्मृतिग्रन्थोंमें बतायी गयी है, मैंने उसीका वर्णन किया है। जिसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९॥

भगवान् शिवकी सन्निधिमें वैदिक शिवभक्तोंद्वारा बनाये गये भस्मको ही परम श्रद्धाके साथ ग्रहण करना चाहिये और उसे माँगकर उसकी पूजा करनी चाहिये। तन्त्रशास्त्रमें कही गयी विधिसे तान्त्रिक पूजकोंद्वारा निर्मित किया गया भस्म तान्त्रिकोंके लिये ग्राह्य है, वैदिकोंके लिये नहीं। वैदिकोंको चाहिये कि वे शूद्रों, कापालिकों तथा पाखण्डियोंद्वारा ग्राह्य तथा जिस किसीको भी दिये जानेवाले भस्मको ग्रहण न करें। सभीको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और मनसे भी भस्मका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। श्रुतिके द्वारा इसका विधान किया गया है, अतः भस्मका त्याग करनेवाला पतित हो जाता है। द्विजको भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारणके साथ त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये तथा शरीरपर भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसका परित्याग करनेवालेका पतन हो जाता है॥ १०—१३½॥

जो लोग भक्तिपूर्वक सभी अंगोंमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, करोड़ों जन्मोंमें भी इस संसारसे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती॥ १४½॥

हे मुनिवर! जिस मनुष्यने विहित मार्गसे भस्म धारण नहीं किया; हे मुने! आप उसके जन्मको सूअरके जन्मकी भाँति निरर्थक समझिये॥ १५½॥

जिन मनुष्योंका शरीर बिना त्रिपुण्ड्रके रहता है, उनका शरीर श्मशानके तुल्य होता है, पुण्यात्मा व्यक्तियोंको ऐसे शरीरपर दृष्टितक नहीं डालनी चाहिये॥ १६½॥

धिग्भस्मरहितं भालं धिग्ग्राममशिवालयम्॥ १७

धिगनीशार्चनं जन्म धिग्विद्यामशिवाश्रयाम्।
त्रिपुण्ड्रं ये विनिन्दन्ति निन्दन्ति शिवमेव ते॥ १८

धारयन्ति च ये भक्त्या धारयन्ति तमेव ते।
यथा कृशानुरहितो भूधरो न विराजते॥ १९

अशेषसाधनेऽप्येवं भस्महीनं शिवार्चनम्।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च श्रद्धया नाचरन्ति ये॥ २०

तैः पूर्वाचरितं सर्वं विपरीतं भवेदपि।
भस्मना वेदमन्त्रेण त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ २१

विना वेदोचिताचारं स्मार्तस्यानर्थकारणम्।
कृतं स्यादकृतं तेन श्रुतमप्यश्रुतं भवेत्॥ २२

अधीतमनधीतं च त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत्।
वृथा वेदा वृथा यज्ञा वृथा दानं वृथा तपः॥ २३

वृथा व्रतोपवासेन त्रिपुण्ड्रं यो न धारयेत्।
भस्मधारणकं त्यक्त्वा मुक्तिमिच्छति यः पुमान्॥ २४

विषपानेन नित्यत्वं कुरुते ह्यात्मनो हि सः।
स्रष्टा सृष्टिच्छलेनाह त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ २५

ससर्ज स ललाटं हि तिर्यगूर्ध्वं न वर्तुलम्।
तिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम्॥ २६
तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वन्ति त्रिपुण्ड्रकम्।

भस्मरहित मस्तकको धिक्कार है, शिवालयविहीन ग्रामको धिक्कार है, शिव-अर्चनसे विमुख व्यक्तिके जन्मको धिक्कार है तथा शिवका आश्रय प्रदान न करानेवाली विद्याको धिक्कार है॥ १७½ ॥

जो लोग त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे वस्तुतः शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो लोग भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे मानो साक्षात् शिवजीको ही धारण करते हैं॥ १८½ ॥

जिस तरह अग्निहोत्र किये बिना ब्राह्मण सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार भस्मरहित होकर किया गया शिवार्चन शोभा नहीं देता, चाहे वह सभी पूजनोपचारोंके साथ ही क्यों न किया गया हो॥ १९½ ॥

जो लोग श्रद्धापूर्वक अपने सर्वांगमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, उनके द्वारा पूर्वमें किया गया समस्त सत्कर्म भी विपरीत हो जाता है॥ २०½ ॥

वेदमन्त्रके साथ ही भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। वेदोचित आचारके बिना त्रिपुण्ड्र धारण करना स्मार्तोंके लिये अनर्थकारी होता है॥ २१½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता, उसके द्वारा किया गया कृत्य न किये हुएके समान, सुना गया वेदवचन न सुने हुएके समान तथा अधीत शास्त्र अध्ययन न किये हुएके समान हो जाता है॥ २२½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता उसके यज्ञ, दान, वेदाध्ययन, तपश्चरण, व्रत तथा उपवास—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं॥ २३½ ॥

जो मनुष्य भस्मधारणका त्याग करके मुक्तिकी अभिलाषा रखता है, वह मानो विषपान करके अपनेको अमर करना चाहता है॥ २४½ ॥

सृष्टिकर्ताने मस्तककी सृष्टिके बहाने ही त्रिपुण्ड्र धारण करना बतला दिया है; इसीलिये उन्होंने मस्तकको तिरछा तथा ऊँचा बनाया है, गोल नहीं॥ २५½ ॥

सभी देहधारियोंके ललाटपर तिरछी रेखाएँ स्पष्ट-रूपसे दिखायी पड़ती हैं, फिर भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते॥ २६½ ॥

न तद्ध्यानं न तन्मोक्षं न तज्ज्ञानं न तत्तपः॥ २७

विना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं च विप्रेण यदनुष्ठितम्।
वेदस्याध्ययने शूद्रो नाधिकारी यथा भवेत्॥ २८

त्रिपुण्ड्रेण विना विप्रो नाधिकारी शिवार्चने।
प्राङ्मुखश्चरणौ हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य पूर्ववत्॥ २९

प्राणानायम्य सङ्कल्प्य भस्मस्नानं समाचरेत्।
आदाय भसितं शुद्धमग्निहोत्रसमुद्भवम्॥ ३०

ईशानेन तु मन्त्रेण स्वमूर्धनि विनिक्षिपेत्।
तत आदाय तद्भस्म मुखे च पुरुषेण तु॥ ३१

अघोराख्येण हृदये गुह्ये वामाह्वयेन च।
सद्योजाताभिधानेन भस्म पादद्वये क्षिपेत्॥ ३२

सर्वाङ्गं प्रणवेनैव मन्त्रेणोद्धूलनं ततः।
एतदाग्नेयकं स्नानमुदितं परमर्षिभिः॥ ३३

सर्वकर्मसमृद्ध्यर्थं कुर्यादादाविदं बुधः।
ततः प्रक्षाल्य हस्तादीनुपस्पृश्य यथाविधि॥ ३४

तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं विधिना ललाटे हृदये गले।
पञ्चभिर्ब्रह्मभिर्वापि कृतेन भसितेन च॥ ३५

धृतमेतत्त्रिपुण्ड्रं स्यात्सर्वकर्मसु पावनम्।
शूद्रैरन्त्यजहस्तस्थं न धार्यं भस्म च क्वचित्॥ ३६

भस्मना साग्निहोत्रेण लिप्तः कर्म समाचरेत्।
अन्यथा सर्वकर्माणि न फलन्ति कदाचन॥ ३७

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिपूजनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्॥ ३८

त्रिपुण्ड्रधृग्विप्रवरो यो रुद्राक्षधरः शुचिः।
स हन्ति रोगदुरितव्याधिदुर्भिक्षतस्करान्॥ ३९

समाप्नोति परं ब्रह्म यतो नावर्तते पुनः।
स पङ्क्तिपावनः श्राद्धे पूज्यो विप्रैः सुरैरपि॥ ४०

ब्राह्मण बिना तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण किये जो कुछ भी अनुष्ठान करता है, वह न तो ध्यान है, न तो मोक्ष है, न तो ज्ञान है और न तप ही है॥ २७½ ॥

जिस तरह शूद्र वेदके अध्ययनका अधिकारी नहीं है, उसी प्रकार बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये ब्राह्मण शिवकी पूजाका अधिकारी नहीं है॥ २८½ ॥

पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पूर्ववत् हाथ-पैर धोकर आचमन करके प्राणायाम करनेके अनन्तर संकल्प करके भस्म-स्नान करना चाहिये॥ २९½ ॥

अग्निहोत्रजन्य शुद्ध भस्म लेकर ईशान मन्त्रसे अपने मस्तकपर भस्म धारण करना चाहिये। इसके बाद उस भस्मको लेकर तत्पुरुष मन्त्रसे मुखपर, अघोर मन्त्रसे हृदयपर, वामदेव मन्त्रसे गुह्यस्थलपर तथा सद्योजात मन्त्रसे दोनों पैरोंपर भस्म लगाना चाहिये। तत्पश्चात् प्रणव मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंमें भस्म लगाना चाहिये। महर्षियोंके द्वारा इसे आग्नेय स्नान कहा गया है। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने सभी कर्मोंकी समृद्धिके लिये यह आग्नेयस्नान सबसे पहले करना चाहिये॥ ३०—३३½ ॥

तदनन्तर हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन करके विधिपूर्वक 'सद्योजात' आदि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके निर्मित भस्मसे ललाट, हृदयदेश तथा गलेमें तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करे। इस प्रकार धारण किया गया यह त्रिपुण्ड्र सभी कर्मोंमें पवित्रता प्रदान करनेवाला होता है। शूद्रोंको अन्त्यजोंके हाथका भस्म कभी नहीं लगाना चाहिये। अग्निहोत्र-जन्य भस्म लगाकर ही कोई शुभ कर्म करना चाहिये; अन्यथा किये गये सभी कर्म कभी भी फलीभूत नहीं होते॥ ३४—३७॥

जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता; उसका सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ तथा देवपूजन आदि—यह सब व्यर्थ हो जाता है॥ ३८॥

जो विप्रश्रेष्ठ शुद्ध मनसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है तथा रुद्राक्ष पहनता है; वह रोग, पाप, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा चोर आदिको विनष्ट कर देता है। वह परब्रह्मका सांनिध्य प्राप्त कर लेता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। वह श्राद्धमें पंक्तिपावन ब्राह्मण माना जाता है तथा ब्राह्मणों और देवताओंद्वारा भी पूजित होता है॥ ३९-४०॥

श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः।
भस्मधारणमाहात्म्यं भूयोऽपि कथयामि ते॥ ४१

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव तथा देवताओंके पूजन आदिमें जो त्रिपुण्ड्र धारण किये रहता है, वह पवित्र आत्मावाला मनुष्य मृत्युको भी जीत लेता है। अब मैं भस्म धारण करनेका और भी माहात्म्य आपसे कह रहा हूँ॥ ४१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
भस्मधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

* * *

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

भस्म तथा त्रिपुण्ड्र-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

महापातकसङ्घाश्च पातकान्यपराण्यपि।
नश्यन्ति मुनिशार्दूल सत्यं सत्यं न चान्यथा॥ १

एकं भस्म धृतं येन तस्य पुण्यफलं शृणु।
यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वानस्थानां विरक्तिदम्॥ २

गृहस्थानां मुने तद्वद्धर्मवृद्धिकरं तथा।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च॥ ३

शूद्राणां पुण्यदं नित्यमन्येषां पापनाशनम्।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ४

रक्षार्थं सर्वभूतानां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ५

यज्ञत्वेनैव सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ६

सर्वधर्मतया तेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।
भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ७
माहेश्वराणां लिङ्गार्थं विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! भस्म धारण करनेसे महापातकोंके समूह तथा अन्य पातक भी नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सच-सच कह रहा हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

जिसने एकमात्र भस्म ही धारण किया हो, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनिये। हे मुने! यह भस्मधारण संन्यासियोंको ब्रह्मज्ञान देनेवाला, वानप्रस्थलोगोंको विरक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। उसी प्रकार यह गृहस्थोंके धर्मकी वृद्धि करनेवाला, ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित लोगोंके लिये स्वाध्यायके प्रति प्रेरणा देनेवाला, शूद्रोंको नित्य पुण्य प्रदान करनेवाला तथा अन्य लोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है॥ २-३½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी जीवोंकी रक्षाके लिये है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ४½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये यज्ञतुल्य है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ५½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी (पाशुपत, शैव आदि) धर्मोंमें सामान्य नियम है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ६½॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना माहेश्वर लोगोंका चिह्न है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ७½॥

भस्मनोद्धूलनं चैव तथा तिर्यक् त्रिपुण्ड्रकम्॥ ८
विज्ञानार्थं च सर्वेषां विधत्ते वैदिकी श्रुतिः।

शिवेन विष्णुना चैव ब्रह्मणा वज्रिणा तथा॥ ९
हिरण्यगर्भेण तदवतारैर्वरुणादिभिः।
देवताभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मकम्॥ १०

उमादेव्या च लक्ष्म्या च वाचा चान्याभिरास्तिकैः।
सर्वस्त्रीभिर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ ११

यक्षराक्षसगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः।
मुनिभिश्च धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ १२

ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैरपि च सङ्करैः।
अपभ्रंशैर्धृतं भस्म त्रिपुण्ड्रोद्धूलनात्मना॥ १३

उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं च यैः समाचरितं मुदा।
त एव शिष्टा विद्वांसो नेतरे मुनिपुङ्गव॥ १४

शिवलिङ्गं मणिः सख्यं मन्त्रः पञ्चाक्षरस्तथा।
विभूतिरौषधं पुंसां मुक्तिस्त्रीवश्यकर्मणि॥ १५

भुनक्ति यत्र भस्माङ्गो मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा।
तत्र भुङ्क्ते महादेवः सपत्नीको वृषध्वजः॥ १६

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गमनुगच्छति यः पुमान्।
सर्वपातकयुक्तोऽपि पूजितो मानवोऽचिरात्॥ १७

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गं यः स्तौति श्रद्धया सह।
सर्वपातकयुक्तोऽपि पूज्यते मानवोऽचिरात्॥ १८

त्रिपुण्ड्रधारिणे भिक्षाप्रदानेन हि केवलम्।
तेनाधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्॥ १९

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये ज्ञान-प्राप्तिका साधन है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ८½॥

शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, हिरण्यगर्भ तथा उनके अवतारोंने और वरुण आदि देवताओंने भी त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ९-१०॥

देवी पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, अन्य सभी देवांगनाओं तथा अन्य आस्तिकजनोंने त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ११॥

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा मुनि आदिने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर तथा वर्णधर्मसे च्युत लोगोंने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो लोग प्रसन्नतापूर्वक भस्मका अनुलेपन करते हैं तथा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे ही शिष्ट तथा विद्वान् हैं, अन्य लोग नहीं॥ १४॥

मोक्षरूपिणी नारीको वशीभूत करनेके निमित्त मनुष्योंके लिये शिवलिंग एक मणिरूप आभूषण है, पंचाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) मित्र है और भस्म औषधि है॥ १५॥

जहाँ मूर्ख या पण्डित कोई भी अपने शरीरमें भस्म धारण करके भोजन करता है, वहाँ मानो वृषध्वज महादेव अपनी भार्या पार्वतीके साथ भोजन करते हैं॥ १६॥

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेका अनुगमन करता है, वह सब पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबका पूजनीय हो जाता है॥ १७॥

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबके द्वारा पूजित होता है॥ १८॥

जिसने त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेको केवल भिक्षाभर दे दी, उसने मानो वेदोंका अध्ययन कर लिया, सम्पूर्ण श्रुतियोंको सुन लिया तथा सभी धार्मिक कार्योंको कर लिया॥ १९॥

येन विप्रेण शिरसि त्रिपुण्ड्रं भस्मना कृतम्।
कीकटेष्वपि देशेषु यत्र भूतिविभूषणः॥ २०

मानवस्तु वसेन्नित्यं काशीक्षेत्रसमं हि तत्।
दुःशीलः शीलयुक्तो वा योगयुक्तोऽप्यलक्षणः॥ २१

भूतिशासनयुक्तो वा स पूज्यो मम पुत्रवत्।
छद्मनापि चरेद्यो हि भूतिशासनमैश्वरम्॥ २२

सोऽपि यां गतिमाप्नोति न तां यज्ञशतैरपि।
सम्पर्काल्लीलया वापि भयाद्वा धारयेत्तु यः॥ २३

विधियुक्तो विभूतिं तु स च पूज्यो यथा ह्यहम्।
शिवस्य विष्णोर्देवानां ब्रह्मणस्तृप्तिकारणम्॥ २४

पार्वत्याश्च महालक्ष्म्या भारत्यास्तृप्तिकारणम्।
न दानेन न यज्ञेन न तपोभिः सुदुर्लभैः॥ २५

न तीर्थयात्रया पुण्यं त्रिपुण्ड्रेण च लभ्यते।
दानं यज्ञाश्च धर्माश्च तीर्थयात्राश्च नारद॥ २६

ध्यानं तपस्त्रिपुण्ड्रस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
यथा राजा स्वचिह्नाङ्कं स्वजनं मन्यते सदा॥ २७

तथा शिवस्त्रिपुण्ड्राङ्कं स्वकीयमिव मन्यते।
द्विजातिर्वान्यजातिर्वा शुद्धचित्तेन भस्मना॥ २८

धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्राङ्कं रुद्रस्तेन वशीकृतः।
त्यक्तसर्वाश्रमाचारो लुप्तसर्वक्रियोऽपि सः॥ २९
सकृत्तिर्यक्त्रिपुण्ड्राङ्कं धारयेत्सोऽपि मुच्यते।

यदि कोई ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके कीकट आदि देशोंमें भी नित्य निवास करता हो; तो विभूतिसे विभूषित उस मनुष्यके लिये वह स्थान काशीक्षेत्रके समान हो जाता है॥ २०½ ॥

कोई मनुष्य आचारवान् हो या आचारहीन, योगसम्पन्न हो या योग-लक्षणोंसे रहित, यदि उसने केवल भस्ममात्र धारण किया है तो वह मेरे पुत्र ब्रह्माके समान पूजनीय है॥ २१½ ॥

छद्मसे भी यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्यमय भस्म धारण करता है, तो वह भी उस गतिको प्राप्त करता है, जो सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी प्राप्त नहीं की जा सकती॥ २२½ ॥

जो भस्म धारण करनेवालेके सम्पर्कसे, विनोदमें अथवा भयसे ही विधिपूर्वक भस्म धारण करता है, वह मेरी तरह पूजनीय हो जाता है॥ २३½ ॥

यह भस्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अन्य देवगण, पार्वती, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीकी तृप्तिका कारण है॥ २४½ ॥

जो पुण्य त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे प्राप्त होता है; वह पुण्य न दानसे, न यज्ञसे, न दुःसाध्य तपस्याओंसे और न तो तीर्थयात्रासे ही प्राप्त होता है॥ २५½ ॥

हे नारद! दान, सभी यज्ञ, सभी धर्म, तीर्थयात्रा, ध्यान तथा तपस्या आदि त्रिपुण्ड्रकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते॥ २६½ ॥

जिस प्रकार राजा अपने चिह्नसे अंकित व्यक्तिको स्वजन समझता है, उसी प्रकार भगवान् शिव त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण करनेवालेको सदा अपना मानते हैं॥ २७½ ॥

द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अथवा अन्य किसी जातिका मनुष्य यदि शुद्ध मनसे भस्मद्वारा त्रिपुण्ड्रका चिह्न धारण करे तो भगवान् शिव उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ २८½ ॥

जिसने समस्त आश्रमोंके आचारोंका त्याग कर दिया है तथा समस्त नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको छोड़ दिया है, वह भी यदि एक बार त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण कर ले तो मुक्त हो जाता है॥ २९½ ॥

नास्य ज्ञानं परीक्षेत न कुलं न व्रतं तथा॥ ३०

त्रिपुण्ड्राङ्कितभालेन पूज्य एव हि नारद।
शिवमन्त्रात्परो मन्त्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम्॥ ३१

शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थं च भस्मना।
रुद्राग्नेर्यत्परं तीर्थं तद्भस्म परिकीर्तितम्॥ ३२

ध्वंसनं सर्वदुःखानां सर्वपापविशोधनम्।
अन्त्यजो वाधमो वापि मूर्खो वा पण्डितोऽपि वा॥ ३३

यस्मिन्देशे वसेन्नित्यं भूतिशासनसंयुतः।
तस्मिन्सदाशिवः सोमः सर्वभूतगणैर्वृतः।
सर्वतीर्थैश्च संयुक्तः सान्निध्यं कुरुते सदा॥ ३४

एतानि पञ्चशिवमन्त्रपवित्रितानि
भस्मानि कामदहनाङ्गविभूषितानि।
त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे
लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि॥ ३५

हे नारद! इस त्रिपुण्ड्रधारीके न तो ज्ञानकी, न उसके कुलकी और न तो उसके व्रतकी ही परीक्षा करे; क्योंकि वह तो अपने त्रिपुण्ड्रांकित मस्तकके कारण ही पूज्य है॥ ३०½ ॥

शिवमन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, शिवके समान कोई दूसरा देवता नहीं है, शिवके पूजनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और भस्मसे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है॥ ३१½ ॥

रुद्राग्निका जो परम तीर्थ है, उसे ही भस्म कहा गया है, वह सभी प्रकारके कष्टोंका नाश करनेवाला तथा सभी पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३२½ ॥

अन्त्यज, निर्धन, मूर्ख अथवा पण्डित कोई भी हो, वह नित्य भस्म धारण करके जिस देशमें निवास करता है, सदाशिव महादेव सभी भूतगणोंको साथमें लेकर सभी तीर्थोंसहित पार्वतीके साथ उस स्थानपर सदा विराजमान रहते हैं॥ ३३-३४॥

कामदेवको भस्म करनेवाले भगवान् शिवके अंगके भूषणस्वरूप तथा पंच-शिवमन्त्रोंसे पवित्र की गयी यह भस्मराशि त्रिपुण्ड्ररूपमें [ललाटपर] धारण करनेसे ललाटपट्टपर विधाताके द्वारा लिखे गये अभाग्यसूचक अक्षरोंको भी मिटा देती है॥ ३५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिपुण्ड्रधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

~~~

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

भस्मस्नानका महत्त्व

श्रीनारायण उवाच

भस्मदिग्धशरीराय यो ददाति धनं मुदा।
तस्य सर्वाणि पापानि विनश्यन्ति न संशयः॥ १

श्रुतयः स्मृतयः सर्वाः पुराणान्यखिलान्यपि।
वदन्ति भूतिमाहात्म्यं तत्तस्माद्धारयेद् द्विजः॥ २

सितेन भस्मना कुर्यात् त्रिसन्ध्यं यस्त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ ३

श्रीनारायण बोले—जो मनुष्य शरीरमें भस्म धारण करनेवालेको प्रसन्नतापूर्वक धन देता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

सभी श्रुतियाँ, स्मृतियाँ एवं समस्त पुराण भी विभूतिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, अतएव द्विजको विभूति धारण करना चाहिये॥ २॥

जो तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न एवं सायं)-के समय श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३॥
~~~

योगी सर्वाङ्गकं स्नानमापादतलमस्तकम्।
त्रिसन्ध्यमाचरेन्नित्यमाशु योगमवाप्नुयात्॥ ४

भस्मस्नानेन पुरुषः कुलस्योद्धारको भवेत्।
भस्मस्नानं जलस्नानादसंख्येयगुणान्वितम्॥ ५

सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
तत्फलं लभते सर्वं भस्मस्नानान्न संशयः॥ ६

महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः।
भस्मस्नानेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनम्॥ ७

भस्मस्नानात्परं स्नानं पवित्रं नैव विद्यते।
एवमुक्तं शिवेनादौ तदा स्नातः स्वयं शिवः॥ ८

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या मुनयश्च शिवार्थिनः।
सर्वकर्मसु यत्नेन भस्मस्नानं प्रचक्रिरे॥ ९

तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत्।
अनेनैव शरीरेण स हि रुद्रो न संशयः॥ १०

ये भस्मधारिणं दृष्ट्वा परितृप्ता भवन्ति ते।
देवासुरमुनीन्द्रैश्च पूज्या नित्यं न संशयः॥ ११

भस्मसञ्छन्नसर्वाङ्गं दृष्ट्वोत्तिष्ठति यः पुमान्।
तं दृष्ट्वा देवराजोऽपि दण्डवत्प्रणमिष्यति॥ १२

अभक्ष्यभक्षणं येषां भस्मधारणपूर्वकम्।
तेषां तद्भक्ष्यमेव स्यान्मुने नात्र विचारणा॥ १३

यः स्नाति भस्मना नित्यं जले स्नात्वा ततः परम्।
ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवादरात्॥ १४

सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्।
आग्नेयं भस्मना स्नानं यतीनां च विशिष्यते॥ १५

जो योगी तीनों सन्ध्याओंको करते समय पैरोंके तलवेसे लेकर मस्तकपर्यन्त सभी अंगोंमें नित्य भस्म लगाता है (भस्मस्नान करता है), वह शीघ्र ही योगस्थिति प्राप्त कर लेता है॥ ४॥

भस्मस्नानसे मनुष्य अपने कुलका उद्धार करनेवाला हो जाता है। भस्मस्नान जलस्नानकी अपेक्षा असंख्य गुना फलदायी होता है॥ ५॥

सभी तीर्थोंका सेवन करनेसे जो पुण्य होता है तथा जो फल मिलता है, वह फल केवल भस्मस्नानसे ही प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

मनुष्य चाहे जितने भी महापातकों अथवा उपपातकोंसे युक्त हो; केवल भस्मस्नान उसके सभी पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे अग्नि ईंधनको॥ ७॥

'भस्मस्नानसे बढ़कर पवित्र कोई दूसरा स्नान नहीं है'—ऐसा शिवजीने कहा है और शिवजीने ही सर्वप्रथम स्वयं भस्मस्नान किया था॥ ८॥

उसी समयसे कल्याणकी इच्छावाले ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनिगण सभी कर्मोंमें तत्परतापूर्वक भस्मस्नान करने लगे॥ ९॥

अतएव जो मनुष्य यह आग्नेय नामक शिरःस्नान करता है, वह इसी शरीरसे साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

जो लोग भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर आनन्दित होते हैं; वे देवताओं, दैत्यों तथा महर्षियोंसे नित्य पूजित होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

अपने शरीरके सभी अंगोंमें भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर जो मनुष्य [श्रद्धाके साथ] उठ जाता है, उसे देखकर देवराज इन्द्र भी दण्डवत् प्रणाम करते हैं॥ १२॥

हे मुने! जो लोग भस्म धारण करके अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं, उनके लिये वह भी भक्ष्य हो जाता है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १३॥

जो जलमें स्नान करनेके अनन्तर श्रद्धापूर्वक नित्य भस्मस्नान करता है, वह ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ हो अथवा वानप्रस्थी हो, सभी पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है। यतियोंके लिये भस्मके द्वारा अग्निस्नानको विशिष्ट कहा गया है॥ १४-१५॥

आर्द्रस्नानाद्वरं भस्मस्नानमार्द्रवधो ध्रुवः।
आर्द्रं तु प्रकृतिं विद्यात्प्रकृतिं बन्धनं विदुः॥ १६

प्रकृतेस्तु प्रहाणाय भस्मना स्नानमिष्यते।
भस्मना सदृशं ब्रह्मन्नास्ति लोकत्रयेष्वपि॥ १७

रक्षार्थं मङ्गलार्थं च पवित्रार्थं पुरा सुरैः।
भस्म दृष्ट्वा मुने पूर्वं दत्तं देव्यै प्रियेण तु॥ १८

तस्मादेतच्छिरःस्नानमाग्नेयं यः समाचरेत्।
भवपाशैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते॥ १९

ज्वररक्षःपिशाचाश्च पूतनाकुष्ठगुल्मकाः।
भगन्दराणि सर्वाणि चाशीतिर्वातरोगकाः॥ २०

चतुःषष्टिः पित्तरोगाः श्लेष्माः सप्तत्रिपञ्चकाः।
व्याघ्रचौरभयं चैवाप्यन्ये दुष्टग्रहा अपि॥ २१

भस्मस्नानेन नश्यन्ति सिंहेनैव यथा गजाः।
शुद्धशीतजलेनैव भस्मना च त्रिपुण्ड्रकम्॥ २२

यो धारयेत्परं ब्रह्म स प्राप्नोति न संशयः।
(भस्मना च त्रिपुण्ड्रं च यः कोऽपि धारयेत्परम्।
स ब्रह्मलोकमाप्नोति मुक्तपापो न संशयः॥)
यथाविधि ललाटे वै वह्निवीर्यप्रधारणात्॥ २३

नाशयेल्लिखितां यामीं ललाटस्थां लिपिं ध्रुवम्।
कण्ठोपरिकृतं पापं नाशयेत्तत्प्रधारणात्॥ २४

कण्ठे च धारणात्कण्ठभोगादिकृतपातकम्।
बाह्वोर्बाहुकृतं पापं वक्षसा मनसा कृतम्॥ २५

जलस्नानकी अपेक्षा भस्मस्नान श्रेष्ठ होता है; इसीसे आर्द्र (प्रकृति-बन्धन)-का नष्ट होना सम्भव है। आर्द्रको 'प्रकृति' समझना चाहिये और इस प्रकृतिको ही 'बन्धन' कहा गया है। अतएव इस प्रकृतिरूप बन्धनको काटनेके लिये भस्मसे स्नान करना चाहिये। हे ब्रह्मन्! तीनों लोकोंमें भस्मके समान कुछ भी नहीं है॥ १६-१७॥

पूर्व कालमें देवताओंने अपनी रक्षाके लिये; अपने कल्याणके लिये और पवित्रताके लिये भस्मको स्वीकार किया था। हे मुने! सबसे पहले शिवजीने भस्म प्राप्त करके इसे देवी पार्वतीको दिया था॥ १८॥

अतएव जो मनुष्य इस आग्नेय शिरःस्नानको करता है, वह सांसारिक बन्धनोंसे विमुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १९॥

ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतनारोग, कुष्ठ, गुल्मरोग, सभी प्रकारका भगंदर रोग, अस्सी प्रकारके वातरोग, चौंसठ प्रकारके पित्तरोग, एक सौ पाँच प्रकारके कफरोग, बाघ आदि जन्तुओंका भय, चोरोंका भय और अन्य प्रकारके दुष्टग्रह—ये सब भस्मस्नानसे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंहके द्वारा हाथी विनष्ट कर दिये जाते हैं॥ २०-२१½ ॥

जो मनुष्य शुद्ध तथा शीतल जल मिलाकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। (जो कोई भी मनुष्य भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है; इसमें संशय नहीं है)। ललाटपर विधिपूर्वक इस अग्निवीर्यरूपी भस्मको धारण करनेसे यह मनुष्यके भालपर अंकित यमकी लिपिको भी निश्चितरूपसे मिटा देता है। कण्ठके ऊपरी भागसे किया गया पाप भी उसके धारणसे नष्ट हो जाता है॥ २२—२४॥

कण्ठद्वारा अभक्ष्य पदार्थोंके भोगजनित पाप कण्ठपर भस्म धारण करनेसे, बाहुद्वारा किया गया पाप दोनों बाहुओंपर भस्म लगानेसे तथा मनद्वारा किये गये पाप वक्षःस्थलपर भस्म धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। नाभिपर भस्म लगानेसे लिंगजनित पाप तथा गुदापर भस्म लगानेसे गुदेन्द्रियजनित पाप मिट जाता

नाभ्यां शिश्नकृतं पापं गुदे गुदकृतं हरेत्।
पार्श्वयोर्धारणाद् ब्रह्मन् परस्त्र्यालिङ्गनादिकम्॥ २६

तद्भस्मधारणं शस्तं सर्वत्रैव त्रिलिङ्गकम्।
ब्रह्मविष्णुमहेशानां त्र्यग्नीनां च धारणम्॥ २७

गुणलोकत्रयाणां च धारणं तेन वै कृतम्।
भस्मच्छन्नो द्विजो विद्वान्महापातकसम्भवैः॥ २८

दोषैर्वियुज्यते सद्यो मुच्यते च न संशयः।
भस्मनिष्ठस्य दह्यन्ते दोषा भस्माग्निसङ्गमात्॥ २९

भस्मस्नानविशुद्धात्मा आत्मनिष्ठ इति स्मृतः।
भस्मना दिग्धसर्वाङ्गो भस्मदीप्तत्रिपुण्ड्रकः॥ ३०

भस्मशायी च पुरुषो भस्मनिष्ठ इति स्मृतः।
भूतप्रेतपिशाचाद्या रोगाश्चातीव दुःसहाः॥ ३१

भस्मनिष्ठस्य सान्निध्याद्विद्रवन्ति न संशयः।
भासनाद्भसितं प्रोक्तं भस्म कल्मषभक्षणात्॥ ३२

भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी पुरा।
त्रिपुण्ड्रधारिणं दृष्ट्वा भूतप्रेतपुरःसराः॥ ३३

भीताः प्रकम्पिताः शीघ्रं नश्यन्त्येव न संशयः।
स्मरणादेव रुद्रस्य यथा पापं प्रणश्यति॥ ३४

अप्यकार्यसहस्राणि कृत्वा यः स्नाति भस्मना।
तत्सर्वं दहते भस्म यथाग्निस्तेजसा वनम्॥ ३५

कृत्वापि चातुलं पापं मृत्युकालेऽपि यो द्विजः।
भस्मस्नायी भवेत्कश्चित्क्षिप्रं पापैः प्रमुच्यते॥ ३६

है। हे ब्रह्मन्! दोनों पार्श्वमें भस्म धारण करनेसे परनारीका आलिंगन आदि करनेसे लगा हुआ पाप विनष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

सर्वत्र तीन तिर्यक् रेखावाला (त्रिपुण्ड्र) भस्म प्रशस्त माना गया है। जिसने त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया, उसने मानो ब्रह्मा, विष्णु, महेश; तीनों अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि); तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) और तीनों लोकोंको धारण कर लिया॥ २७½॥

भस्म धारण करनेवाला विद्वान् द्विज महापातक-जन्य दोषोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २८½॥

भस्म धारण करनेवाले मनुष्यके दोष भस्मकी अग्निके सम्पर्कसे नष्ट हो जाते हैं। भस्म-स्नानसे विशुद्ध आत्मावाला व्यक्ति आत्मनिष्ठ कहा गया है॥ २९½॥

अपने सर्वांगमें भस्म लगानेवाला, भस्मसे प्रदीप्त त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला तथा भस्मपर ही शयन करनेवाला पुरुष 'भस्मनिष्ठ' कहा गया है॥ ३०½॥

भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ तथा अति दुःसह रोग भस्म धारण करनेवालेके पाससे भाग जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१½॥

इस भस्मको ब्रह्मका भास करानेसे 'भसित', पापका भक्षण करनेके कारण 'भस्म', मनुष्योंको भूति (ऐश्वर्य तथा सिद्धियाँ आदि) प्रदान करनेसे 'भूति' तथा रक्षा करनेके कारण 'रक्षा' कहा गया है॥ ३२½॥

त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको अपने सम्मुख देखकर भूत-प्रेत आदि भयभीत होकर काँपने लगते हैं और वे शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं, जैसे भगवान् रुद्रके स्मरणमात्रसे पाप दग्ध हो जाते हैं॥ ३३-३४॥

हजारों प्रकारके दुष्कृत्योंको करके भी जो मनुष्य भस्मसे स्नान करता है, उसके उन सभी कुकर्मोंको भस्म उसी प्रकार जला डालता है; जैसे अग्नि अपने तेजसे वनको भस्म कर देती है॥ ३५॥

जो द्विज घोर पाप करके भी यदि मृत्युके समय भस्मस्नान कर लेता है, वह तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३६॥

भस्मस्नानाद्धि शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
मत्समीपं समागम्य न स भूयोऽभिवर्तते॥ ३७

वनस्पतिगते सोमे भस्मोद्धूलितविग्रहः।
अर्चितं शङ्करं दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३८

आयुष्कामोऽथवा विद्वान्भूतिकामोऽथवा नरः।
नित्यं वै धारयेद्भस्म मोक्षकामी च वै द्विजः॥ ३९

त्रिपुण्ड्रं परमं पुण्यं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्।
ये घोरा राक्षसाः प्रेता ये चान्ये क्षुद्रजन्तवः॥ ४०

त्रिपुण्ड्रधारणं दृष्ट्वा पलायन्ते न संशयः।
कृत्वा शौचादिकं कर्म स्नात्वा तु विमले जले॥ ४१

भस्मनोद्धूलनं कार्यमापादतलमस्तकम्।
केवलं वारुणं स्नानं देहे बाह्यमलापहम्॥ ४२

विभूतिस्नानमनघं बाह्यान्तरमलापहम्।
त्यक्त्वापि वारुणं स्नानं तत्परः स्यान्न संशयः॥ ४३

कृतमप्यकृतं सत्यं भस्मस्नानं विना मुने।
भस्मस्नानं श्रुतिप्रोक्तमाग्नेयं स्नानमुच्यते॥ ४४

अन्तर्बहिश्च संशुद्धं शिवपूजाफलं लभेत्।
यद् बाह्यमलमात्रस्य नाशकं स्नानमस्ति तत्॥ ४५

तन्नाशयति तीव्रेण प्राणिबाह्यान्तरं मलम्।
कृत्वापि कोटिशो नित्यं वारुणं स्नानमादरात्॥ ४६

न भवत्येव पूतात्मा भस्मस्नानं विना मुने।
यद्भस्मस्नानमाहात्म्यं तद्वेदो वेद तत्त्वतः॥ ४७
यद्वा वेद महादेवः सर्वदेवशिखामणिः।

भस्मस्नान करके शुद्ध आत्मावाला, क्रोधको जीत लेनेवाला तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण कर लेनेवाला मनुष्य मेरे सांनिध्यमें आकर पुनः जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता॥ ३७॥

सोमवती अमावास्याके दिन भस्मसे अनुलिप्त देहवाला व्यक्ति पूजित हुए भगवान् शिवका दर्शन करके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३८॥

दीर्घ आयुकी इच्छा रखनेवाले, विपुल ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले अथवा मोक्षकी कामना करनेवाले विद्वान् द्विजको भस्म और ब्रह्मा, विष्णु, शिवके स्वरूपवाले परम पवित्र त्रिपुण्ड्रको नित्य धारण करना चाहिये॥ ३९½॥

भयंकर राक्षस, प्रेत तथा जो भी अन्य क्षुद्र जन्तु हैं, वे सभी त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको देखकर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०½॥

शौच आदि कार्योंसे निवृत्त होकर स्वच्छ जलमें स्नान करनेके पश्चात् मस्तकसे लेकर पैरके तलवेतक भस्म धारण करना चाहिये॥ ४१½॥

जलका स्नान केवल बाह्य मलको धोनेवाला है, किंतु पवित्र भस्मस्नान बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके मलोंको नष्ट करनेवाला है। अतः जलस्नानका परित्याग करके भी भस्मस्नानके लिये तत्पर होना चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

हे मुने! भस्मस्नानके बिना किया गया कृत्य न किये हुएके बराबर हो जाता है, यह सत्य है। यह वेदोक्त भस्मस्नान ही 'आग्नेयस्नान' कहा जाता है॥ ४४॥

भीतर तथा बाहरसे शुद्ध होनेपर ही मनुष्य शिवपूजाका फल प्राप्त कर सकता है। जो जलस्नान है वह तो केवल बाह्य मलका नाश करता है, किंतु वह भस्मस्नान प्राणीके बाहरी तथा भीतरी दोनों प्रकारके मलोंको बड़ी तीव्रतापूर्वक विनष्ट कर देता है॥ ४५½॥

हे मुने! नित्य करोड़ों बार श्रद्धापूर्वक जलस्नान करके भी कोई मनुष्य बिना भस्मस्नान किये पवित्र आत्मावाला नहीं हो सकता॥ ४६½॥

भस्मस्नानका जो माहात्म्य है, उसे तात्त्विकरूपसे या तो वेद जानते हैं और या समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप भगवान् महादेव जानते हैं॥ ४७½॥

भस्मस्नानमकृत्वैव यः कुर्यात्कर्म वैदिकम्॥ ४८

स तत्कर्मकलार्धार्धमपि नाप्नोति वस्तुतः।
यः करिष्यति यत्नेन भस्मस्नानं यथाविधि॥ ४९

स एवैकः सर्वकर्मस्वधिकारी श्रुतिश्रुतः।
पावनं पावनानां च भस्मस्नानं श्रुतिश्रुतम्॥ ५०

न करिष्यति यो मोहात्स महापातकी भवेत्।
अनन्तैर्वारुणैः स्नानैर्यत्पुण्यं प्राप्यते द्विजैः॥ ५१

ततोऽनन्तगुणं पुण्यं भस्मस्नानादवाप्यते।
कालत्रयेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः॥ ५२

भस्मस्नानं स्मृतं श्रौतं तत्त्यागी पतितो भवेत्।
मूत्राद्युत्सर्जनान्ते तु भस्मस्नानं प्रयत्नतः॥ ५३

कर्तव्यमन्यथा पूता न भविष्यन्ति मानवाः।
विधिवत्कृतशौचोऽपि भस्मस्नानं विना द्विजः॥ ५४

न भविष्यति पूतात्मा नाधिकार्यपि कर्मणि।
अपानवायुनिर्याते जृम्भणे स्कन्दने क्षुते॥ ५५

श्लेष्मोद्गारेऽपि कर्तव्यं भस्मस्नानं प्रयत्नतः।
श्रीभस्मस्नानमाहात्म्यस्यैकदेशोऽत्र वर्णितः॥ ५६

पुनश्च सम्प्रवक्ष्यामि भस्मस्नानोत्थितं फलम्।
सावधानेन मनसा श्रोतव्यं मुनिपुङ्गव॥ ५७

जो मनुष्य भस्मस्नान किये बिना ही वैदिक कर्म करता है, वह वस्तुतः उस कर्मकी चौथाई कलाके बराबर भी फल नहीं प्राप्त करता॥ ४८½ ॥

जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक विधि-विधानसे भस्मस्नान करता है, एकमात्र वही समस्त कर्मोंका अधिकारी है; वेदोंमें ऐसा प्रतिपादित किया गया है॥ ४९½ ॥

यह वेदप्रतिपादित भस्मस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो अज्ञानवश भस्मस्नान नहीं करता, वह महापातकी होता है॥ ५०½ ॥

द्विजगण असंख्य बार जलस्नान करके जो पुण्य प्राप्त करते हैं, उसका अनन्तगुना पुण्य केवल भस्मस्नानसे ही उन्हें मिल जाता है॥ ५१½ ॥

तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रयत्न-पूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये। भस्मस्नान श्रौतकर्म कहा गया है, अतः इसका परित्याग करनेवाला पतित हो जाता है॥ ५२½ ॥

मल-मूत्र आदिका त्याग करनेके पश्चात् प्रयत्नके साथ भस्मस्नान करना चाहिये, अन्यथा इसे न करनेवाले मनुष्य पवित्र नहीं होंगे॥ ५३½ ॥

विधिपूर्वक शौच आदि कृत्य करनेके बाद भी बिना भस्मस्नानके कोई द्विज पवित्र अन्तःकरणवाला नहीं हो सकता और वह किसी कृत्यको सम्पादित करनेका अधिकारी भी नहीं हो सकता है॥ ५४½ ॥

अपान वायु निकलनेपर, जम्हाई आनेपर, दस्त हो जानेपर तथा श्लेष्मा (कफ) निकलनेपर प्रयत्नपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये॥ ५५½ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह मैंने श्रीभस्मस्नानके मात्र एक अंशका वर्णन आपसे किया है। अब मैं भस्मस्नानसे प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें पुनः बताऊँगा, सावधान मनसे सुनिये॥ ५६-५७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
विभूतिधारणमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

~~~
~~~

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

भस्म-माहात्म्यके सम्बन्धमें दुर्वासामुनि और कुम्भीपाकस्थ जीवोंका आख्यान, ऊर्ध्वपुण्ड्रका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्म संशोध्य सादरम्।
धारणीयं ललाटादौ त्रिपुण्ड्रं केवलं द्विजैः॥ १

ब्रह्मक्षत्रियवैश्याश्च एते सर्वे द्विजाः स्मृताः।
तस्माद् द्विजैः प्रयत्नेन त्रिपुण्ड्रं धार्यमन्वहम्॥ २

यस्योपनयनं ब्रह्मन् स एव द्विज उच्यते।
तस्माच्छ्रौतं द्विजैः कार्यं त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्॥ ३

विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः सत्कर्म समाचरेत्।
तत्कृतं चाकृतप्रायं भवत्येव न संशयः॥ ४

न गायत्र्युपदेशोऽपि भस्मनो धारणं विना।
ततो धृत्वैव भस्माङ्गे गायत्रीजपमाचरेत्॥ ५

गायत्रीं मूलमेवाहुर्ब्राह्मण्ये मुनिपुङ्गव।
सा भस्मधारणाभावे न केनाप्युपदिश्यते॥ ६

न तावदधिकारोऽस्ति गायत्रीग्रहणे मुने।
यावन्न भस्म भालादौ धृतमग्निसमुद्भवम्॥ ७

भस्महीनललाटत्वं न ब्राह्मण्यानुमापकम्।
एवमेव मया ब्रह्मन् हेतुरुक्तः सुपुण्यदः॥ ८

मन्त्रपूतं सितं भस्म ललाटे परिवर्तते।
स एव ब्राह्मणो विद्वान्सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ ९

यस्यास्ति सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे।
स एव ब्राह्मणो ब्रह्मन् सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ १०

श्रीनारायण बोले—द्विजोंको '**अग्निरिति भस्म**' आदि मन्त्रोंसे भस्मको श्रद्धापूर्वक शुद्ध करके अपने ललाट आदिपर त्रिपुण्ड्ररूपमें धारण करना चाहिये॥ १॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—ये सब द्विज कहे गये हैं। अतः द्विजोंको प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! जिसका उपनयन हो गया है, उसीको द्विज कहा जाता है। अतः द्विजोंको श्रुतिविहित त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३॥

जो मनुष्य भस्म-धारणका त्याग करके कुछ भी सत्कृत्य करता है, उसका सब किया हुआ न कियेके बराबर हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४॥

बिना भस्म धारण किये गायत्रीमन्त्रका उपदेश सार्थक नहीं होता है, अतः अपने शरीरमें भस्म लगाकर ही गायत्रीजप करना चाहिये॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गायत्रीको ही ब्राह्मणत्वका मूल कहा गया है। भस्म धारण न करनेपर कोई भी उस गायत्रीका उपदेश देनेका अधिकारी नहीं हो सकता है॥ ६॥

हे मुने! उसी प्रकार जबतक अग्निहोत्रजनित भस्म ललाट आदि अंगोंमें धारण नहीं किया जाता, तबतक किसीको भी गायत्रीमन्त्र लेनेका अधिकार नहीं होता॥ ७॥

किसीके भस्मरहित ललाटसे उसके ब्राह्मणत्वका अनुमान नहीं किया जा सकता है; इसीलिये हे ब्रह्मन्! मैंने भस्मको अत्यन्त पुण्यदायक हेतु बतलाया है॥ ८॥

जिसके ललाटपर मन्त्रसे पवित्र किया गया श्वेत भस्म विद्यमान रहता है, वस्तुतः वही विद्वान् ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

हे ब्रह्मन्! मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति रहती है, वस्तुतः वही ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ, किंतु

न यस्य सहजा प्रीतिर्मणिवद्भस्मसंग्रहे।
स चाण्डाल इति ज्ञेयो जन्मजन्मान्तरे ध्रुवम्॥ ११

न यस्य सहजा प्रीतिस्त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिषु।
स चाण्डाल इति ज्ञेयः सत्यं सत्यं मयोच्यते॥ १२

ये भस्मधारणं त्यक्त्वा भुञ्जन्ते च फलादिकम्।
ते सर्वे नरकं घोरं प्राप्नुवन्ति न संशयः॥ १३

(विभूतिधारणं त्यक्त्वा यः शिवं पूजयिष्यति।
स दुर्भगः शिवद्वेष्टा स द्वेषो नरकप्रदः।
सर्वकर्मबहिर्भूतो भस्मधारणवर्जितः॥)

विभूतिधारणं त्यक्त्वा कुर्वन् हेमतुलामपि।
न तत्फलमवाप्नोति पतितो हि भवेद्धि सः॥ १४

यथोपवीतरहितैः सन्ध्या न क्रियते द्विजैः।
तथा सन्ध्या न कर्तव्या विभूतिरहितैरपि॥ १५

गतोपवीतैः सन्ध्यायां कार्यः प्रतिनिधिः क्वचित्।
जपादिकं तु सावित्र्यास्तथैवोपोषणादिकम्॥ १६

विभूतिधारणे त्वन्यो नास्ति प्रतिनिधिः क्वचित्।
विभूतिधारणं त्यक्त्वा यदि सन्ध्यां करोति यः॥ १७

प्रत्यवैत्येव येनासौ नाधिकारी तदा द्विजः।
यथा श्रुत्वान्त्यजो वेदान्प्रत्यवैति तथा द्विजः॥ १८

प्रत्यवैति न सन्देहः सन्ध्याकृद्भस्मवर्जितः।
सम्पादनीयं यत्नेन श्रौतं भस्म सदा द्विजैः॥ १९

स्मार्तं वा तदभावे तु लौकिकं वा समाहितैः।
यादृशं तादृशं वास्तु पवित्रं भस्म सन्ततम्॥ २०

मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति न हो तो ऐसा जान लेना चाहिये कि वह जन्म-जन्मान्तरमें निश्चित ही चाण्डाल रहा होगा॥ १०-११॥

त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलन आदिमें जिसकी सहज निष्ठा नहीं होती, उसे चाण्डाल समझना चाहिये, ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १२॥

जो लोग भस्म-धारणका त्याग करके फल आदिका भक्षण करते हैं, वे सब घोर नरकको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है; (विभूति-धारणका त्याग करके जो शिवकी पूजा करता है, वह भाग्यहीन शिवसे द्वेष करनेवाला होता है और वह द्वेष उसके लिये नरकप्रदायक होता है। भस्म न धारण करनेवाला मनुष्य सभी प्रकारके कर्मोंका अनधिकारी होता है।) विभूतिधारणका त्याग करके स्वर्णका तुलादान करनेवाला भी उस दानका फल प्राप्त नहीं कर पाता और वह अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है॥ १३-१४॥

जिस प्रकार यज्ञोपवीतसे विहीन द्विज सन्ध्या नहीं करते, उसी प्रकार भस्मविहीन रहनेपर भी द्विजोंको सन्ध्या नहीं करनी चाहिये॥ १५॥

यज्ञोपवीतके च्युत हो जानेपर सन्ध्यामें गायत्री-जप आदि करनेके लिये तथा उसी प्रकार व्रत-उपवास आदिमें किसीको प्रतिनिधिके रूपमें नियुक्त किया जा सकता है, किंतु विभूतिधारणमें कोई दूसरा व्यक्ति प्रतिनिधिके रूपमें नहीं हो सकता। यदि विभूतिधारणका परित्याग करके कोई द्विज सन्ध्या करता है तो वह पापका भागी होता है; क्योंकि वह उस समय सन्ध्या करनेका अधिकारी ही नहीं है। जैसे अन्त्यजको वेदोंका श्रवण करनेसे पाप लगता है, उसी प्रकार भस्म न लगाकर सन्ध्या करनेवाले द्विजको भी पाप लगता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६—१८½॥

द्विजोंको सदैव यत्नपूर्वक श्रौताग्निजन्य या स्मार्ताग्निजन्य भस्म अथवा उनके अभावमें लौकिकाग्निजन्य भस्म ही अत्यन्त समाहितचित्त होकर धारण करना चाहिये। भस्म चाहे जैसा हो, वह सदा पवित्र होता है। अतः द्विजोंको चाहिये कि

धारणीयं प्रयत्नेन द्विजैः सन्ध्यादिकर्मसु।
न संविशन्ति पापानि भस्मनिष्ठे ततः सदा॥ २१

कर्तव्यमपि यत्नेन ब्राह्मणैर्भस्मधारणम्।
मध्याङ्गुलित्रयेणैव स्वदक्षिणकरस्य तु॥ २२

षडङ्गुलायतं मानमपि चाधिकमानकम्।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन भाले दीप्तं त्रिपुण्ड्रकम्॥ २३

कदाचिद्भस्मना कुर्यात्स रुद्रो नात्र संशयः।
अकारोऽनामिका प्रोक्त उकारो मध्यमाङ्गुलिः॥ २४

मकारस्तर्जनी तस्मात् त्रिपुण्ड्रं त्रिगुणात्मकम्।
त्रिपुण्ड्रं मध्यमातर्जन्यनामाभिरनुलोमतः॥ २५

अत्र ते कथयाम्येनमितिहासं पुरातनम्।
कदाचिदथ दुर्वासाः पितृलोकं गतोऽभवत्॥ २६

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गो रुद्राक्षाभरणान्वितः।
शिव शङ्कर सर्वात्मञ्छ्रीमातर्जगदम्बिके॥ २७

नामानीति गृणन्नुच्चैस्तापसानां शिखामणिः।
कव्यवाडादयस्ते तु प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥ २८

आसनाद्युपचारैश्च सम्मानं बहु चक्रिरे।
नानाकथाभिरन्योन्यं सम्भाषाञ्चक्रिरे तदा॥ २९

तस्मिंस्तु समये कुम्भीपाकस्थानां तु पापिनाम्।
घोरः समभवच्छब्दो हा हताः स्मेतिवादिनाम्॥ ३०

मृताः स्मेति वदन्त्येके दग्धाः स्मेति परे जगुः।
छिन्नाः स्मेति विभिन्नाः स्मेत्येवं रोदनकारिणः॥ ३१

श्रुत्वा तं करुणं शब्दं दुःखितो मुनिराड् हृदि।
पप्रच्छ पितृनाथांस्तान्केषां शब्दोऽयमित्यपि॥ ३२

वे सन्ध्या आदि कर्मोंमें उसे प्रयत्नके साथ धारण करें। भस्मनिष्ठ मनुष्यमें पाप प्रविष्ट नहीं हो सकते, अतः ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक सदा भस्म धारण किये रहना चाहिये॥ १९—२१½ ॥

यदि कोई अपने दाहिने हाथकी तीनों मध्यकी अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से छः अंगुलतक अथवा इससे भी अधिक लम्बे परिमाणका अथवा एक नेत्रसे लेकर दूसरे नेत्रतक लम्बा देदीप्यमान त्रिपुण्ड्र भस्मसे अपने ललाटपर लगाये तो वह साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। अनामिका अँगुलीको अकार, मध्यमाको उकार तथा तर्जनीको मकार कहा गया है। अतएव त्रिपुण्ड्र त्रिगुणात्मक है। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंसे अनुलोमक्रमसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

इस सम्बन्धमें आपसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय तपस्वियोंके शिरोमणि ऋषि दुर्वासा अपने सर्वांगमें भस्म धारण किये हुए तथा रुद्राक्षके आभूषण पहने हुए 'हे शिव! हे शंकर! हे सर्वात्मन्! हे श्रीमातः! हे जगदम्बिके!'— इन नामोंका उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए पितृलोक गये हुए थे॥ २६-२७½ ॥

उन्हें देखकर कव्यवाट् (अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, सोमपा) आदि पितरोंने उठकर अभिवादनके द्वारा तथा आसन आदि उपचारोंसे उनका अत्यधिक सम्मान किया। तब वे अनेक प्रकारकी कथाओंके माध्यमसे परस्पर वार्तालाप करने लगे॥ २८-२९॥

उसी समय कुम्भीपाकनरकमें पड़े हुए पापियोंका भयंकर चीत्कार हुआ। 'हाय! हमलोग मारे जा रहे हैं'—वे ऐसा बोल रहे थे। उनमें कुछ चिल्ला रहे थे 'हम मर गये', दूसरे कह रहे थे 'हम जल गये', कुछ चीत्कार कर रहे थे 'हम कट गये' तथा कुछ चिल्ला रहे थे 'हम छेदे जा रहे हैं'—इस प्रकार कहकर वे रुदन कर रहे थे॥ ३०-३१॥

वह करुण-क्रन्दन सुनकर मुनिराज दुर्वासाके मनमें बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने उन पितृदेवोंसे पूछा कि यह किन लोगोंकी ध्वनि है?॥ ३२॥

ते समूचुर्मुनेऽत्रैव पुरी संयमनी परा।
वर्तते यमराडत्र पापिनां भोगदायकः॥ ३३

नानादूतैः कालरूपैः कृष्णवर्णैर्भयङ्करैः।
सहितोऽत्रैव तत्पुर्या नायको विद्यतेऽनघ॥ ३४

तत्र कुण्डान्यनेकानि पापिनां भोगदानि च।
षडशीतिर्घोररूपैर्दूतैः परिवृतानि च॥ ३५

तत्र मुख्यतमं कुण्डं कुम्भीपाकाभिधं महत्।
वर्तते तद्गतानां च यातनानां तु वर्णनम्॥ ३६

कर्तुं न शक्यते कैश्चिदपि वर्षशतैरपि।
ये शिवद्रोहिणः सन्ति तथा देवीविनिन्दकाः॥ ३७

ये विष्णुद्रोहिणः सन्ति पतन्त्यत्रैव ते मुने।
ये वेदनिन्दकाः सन्ति सूर्यस्य च गणेशितुः॥ ३८

ब्राह्मणानां द्रोहिणो ये पतन्त्यत्रैव ते मुने।
कामाचाराश्च ये सन्ति तप्तमुद्राङ्किताश्च ये॥ ३९

त्रिशूलधारिणो ये च पतन्त्यत्रैव ते मुने।
मातृपितृगुरुज्येष्ठपुराणस्मृतिनिन्दकाः॥ ४०

ये धर्मदूषकाः सन्ति पतन्त्यत्रैव ते मुने।
तेषामयं महाघोरः शब्दः श्रवणदारुणः॥ ४१

श्रूयतेऽस्माभिरनिशं वैराग्यं यच्छ्रुतेर्भवेत्।
इति तेषां वचः श्रुत्वा मुनिराट् तद्दिदृक्षया॥ ४२

उत्थाय चलितस्तूर्णं ययौ कुण्डसमीपतः।
अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तस्मिन्नेव क्षणे मुने॥ ४३
तत्रत्यानां पापिनां तु स्वर्गाधिकमभूत्सुखम्।

तब उन पितृदेवोंने कहा—हे मुने! यहींपर संयमनी नामक एक विशाल पुरी है। यहाँ पापियोंको उनके कर्मोंका भोग प्रदान करनेवाले यमराज रहते हैं॥ ३३॥

हे अनघ! साक्षात् कालरूप तथा कृष्णवर्णवाले अनेक भयानक दूतोंके साथ यमराज उस पुरीमें स्वामीके रूपमें निवास करते हैं॥ ३४॥

उस पुरीमें पापियोंको उनके कुकर्मका भोग प्रदान करनेवाले छियासी कुण्ड हैं, जो भयंकर रूपवाले दूतोंसे सदा घिरे रहते हैं॥ ३५॥

उनमें सबसे मुख्य कुम्भीपाक नामक एक विशाल कुण्ड है। उस नरककुण्डमें मिलनेवाली यातनाओंका वर्णन कोई भी सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकता॥ ३६½॥

हे मुने! जो शिव तथा विष्णुके द्रोही हैं और देवीके निन्दक हैं, वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३७½॥

जो वेदके निन्दक हैं एवं सूर्य, गणेश तथा ब्राह्मणोंके द्रोही हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३८½॥

जो लोग स्वेच्छाचारी हैं तथा जो तप्तमुद्रासे अंकित हैं तथा जो त्रिशूल धारण करते हैं, हे मुने! वे इसी 'कुम्भीपाक' नरककुण्डमें गिरते हैं॥ ३९½॥

जो लोग माता, पिता, गुरु, श्रेष्ठजनों, पुराणों तथा स्मृतियोंके निन्दक हैं और धर्मको दूषित करनेवाले हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें पड़ते हैं॥ ४०½॥

[हे मुने!] सुननेमें अत्यन्त दारुण तथा महाभयानक यह ध्वनि उन्हीं लोगोंकी है। हमलोग यह ध्वनि नित्य सुनते रहते हैं, जिसके सुननेसे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है॥ ४१½॥

उन पितृगणोंकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उन पापियोंको देखनेकी इच्छासे वहाँसे उठकर चल दिये और शीघ्र ही कुम्भीपाक नरककुण्डके पास पहुँच गये॥ ४२½॥

[श्रीनारायण कहते हैं—] हे मुने! मुख झुकाकर जब दुर्वासामुनि नीचेकी ओर देखने लगे, उसी समय उस कुण्डमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखका अनुभव होने लगा॥ ४३½॥

हसन्ति केचिद् गायन्ति नृत्यन्ति च तथापरे॥ ४४
परस्परं रमन्ते तेऽप्युन्मत्ताः सुखवर्धनात्।
मृदङ्गमुरजावीणाढक्कादुन्दुभिनिस्वनाः ॥ ४५
समुद्भूतास्तु मधुराः पञ्चमस्वरभूषिताः।
वसन्तवल्लीपुष्पाणां सुगन्धमरुतो ववुः॥ ४६
मुनिस्तु चकितो दृष्ट्वा यमदूताश्च विस्मिताः।
शीघ्रं ते कथयामासुर्धर्मराजाय वेदिने॥ ४७
महाराज महाश्चर्यमधुनैवाभवद्विभो।
स्वर्गादप्यधिकं सौख्यं कुम्भीपाकस्थपापिनाम्॥ ४८
निमित्तं नैव जानीमः कस्मादिदमभूद्विभो।
चकिताः स्म वयं सर्वे प्राप्ता देव त्वदन्तिकम्॥ ४९
निशम्य दूतवाणीं तां धर्मराट् शीघ्रमुत्थितः।
महामहिषमारूढो ययौ ते यत्र पापिनः॥ ५०
तां वार्तां प्रेषयामास दूतद्वारामरावतीम्।
श्रुत्वा तां देवराजोऽपि प्राप्तो देवगणैः सह॥ ५१
ब्रह्मलोकात्पद्मजोऽपि वैकुण्ठाद्विष्टरश्रवाः।
तत्तल्लोकाच्च दिक्पालाः समाजग्मुर्गणैः सह॥ ५२
परिवार्य स्थिताः सर्वे कुम्भीपाकमितस्ततः।
अपश्यंस्तद्गताञ्जीवान्स्वर्गाधिकसुखान्वितान्॥ ५३
चकिता एव ते सर्वे न विदुस्तस्य कारणम्।
अहो पापस्य भोगार्थं कुण्डमेतद्विनिर्मितम्॥ ५४
तत्र सौख्यं यदा जातं तदा पापात्तु किं भयम्।
उच्छिन्ना वेदमर्यादा परमेशकृता कथम्॥ ५५
भगवान् स्वस्य संकल्पं वितथं कृतवान्कथम्।
आश्चर्यमेतदाश्चर्यमेतदित्येव भाषिणः॥ ५६
तटस्था अभवन्सर्वे न विदुस्तत्र कारणम्।

उनमेंसे कुछ हँसने लगे, कुछ गाने लगे तथा कुछ नाचने लगे। सुख-वृद्धिके कारण उन्मत्त होकर वे परस्पर क्रीडा करने लगे॥ ४४½ ॥

मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का तथा दुन्दुभिकी कोयलसदृश पंचम स्वरसे युक्त मधुर ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगीं और वासन्ती लताके पुष्पोंके सम्पर्कसे सुगन्धित हवाएँ बहने लगीं॥ ४५-४६ ॥

यह देखकर मुनि दुर्वासा आश्चर्यचकित हो गये और यमदूत भी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये। वे यमदूत सर्वज्ञ धर्मराजके पास शीघ्र पहुँचकर उनसे कहने लगे—हे महाराज! हे विभो! अभी-अभी एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी है। कुम्भीपाकमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख प्राप्त हो रहा है। हे विभो! यह कैसे हो गया, इसका कारण हम नहीं जानते। हे देव! इस घटनासे हम सभी लोग चकित हैं और आपके पास आये हुए हैं॥ ४७—४९ ॥

दूतोंकी वह बात सुनकर धर्मराज शीघ्र ही उठ खड़े हुए और एक विशाल महिषपर आरूढ होकर उस कुम्भीपाक नरककुण्डके लिये प्रस्थित हुए, जहाँ वे पापी पड़े हुए थे॥ ५० ॥

उन्होंने अपने दूतोंद्वारा वह सन्देश अमरावती (इन्द्रपुरी)-में भेज दिया। उस सन्देशको सुनकर देवराज इन्द्र भी देवताओंके साथ वहाँ आ गये। इसी प्रकार ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा, वैकुण्ठलोकसे विष्णु तथा अपने-अपने लोकोंसे समस्त दिक्पाल अपने गणोंसहित वहाँ आ गये॥ ५१-५२ ॥

वे सभी कुम्भीपाकको इधर-उधरसे घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने वहाँपर स्थित जीवोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखी देखा। विस्मयमें पड़े हुए वे सभी देवता उसका कारण नहीं जान पाये। वे कहने लगे—'अहो! यह कुण्ड तो पाप भोगनेके निमित्त है। जब यहाँपर ऐसा सुख प्राप्त हो रहा है तो फिर लोगोंको पापसे क्या भय रहेगा? परमेश्वरके द्वारा बनायी गयी वेदमर्यादा कैसे विनष्ट हो गयी? भगवान्‌ने अपने ही संकल्पको मिथ्या कैसे कर दिया? यह तो आश्चर्य है, यह तो आश्चर्य है'—ऐसा कहते हुए वे सभी देवता उदास हो गये; वे उस घटनाका कारण नहीं जान सके॥ ५३—५६½ ॥

एतस्मिन्नन्तरे शौरिः सम्मन्त्र्य विबुधादिभिः॥ ५७

ययौ कैश्चित्सुरगणैः सहितः शङ्करालयम्।
पार्वत्या सहितं देवं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥ ५८

रमणीयतमाङ्गं तं लावण्यखनिमद्भुतम्।
सदा षोडशवर्षीयं नानालङ्कारभूषितम्॥ ५९

नानागणैः परिवृतं लालयन्तं परां शिवाम्।
ददर्श चन्द्रमौलिं स चतुर्वेदं ननाम ह॥ ६०

वृत्तान्तं कथयामास चमत्कृतमतिस्फुटम्।
एतस्य कारणं देव न जानीमः कथञ्चन॥ ६१

वद तत्कारणं देव सर्वज्ञोऽसि यतः प्रभो।
विष्णुवाक्यं तदा श्रुत्वा प्रसन्नमुखपङ्कजः॥ ६२

उवाच मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरया गिरा।
शृणु विष्णो तन्निमित्तं नाश्चर्यं त्वत्र विद्यते॥ ६३

भस्मनो महिमैवायं भस्मना किं भवेन्न हि।
कुम्भीपाकं गतो द्रष्टुं दुर्वासाः शैवसम्मतः॥ ६४

अवाङ्मुखो ददर्शाधस्तदा वायुवशाद्धरे।
भालभस्मकणास्तत्र पतिता दैवयोगतः॥ ६५

तेन जातमिदं सर्वं भस्मनो महिमा त्वयम्।
इतः परं तु तत्तीर्थं पितृलोकनिवासिनाम्॥ ६६

भविष्यति न सन्देहो यत्र स्नात्वा सुखी भवेत्।
पितृतीर्थं तु तन्नाम्नाप्यत ऊर्ध्वं भविष्यति॥ ६७

मल्लिङ्गस्थापनं तत्र कार्यं देव्याश्च सत्तम।
पूजयिष्यन्ति ते तत्र पितृलोकनिवासिनः॥ ६८

त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि तत्र श्रेष्ठमिदं भवेत्।
पित्रीश्वरीपूजया तु त्रैलोक्यं पूजितं भवेत्॥ ६९

इसी बीच भगवान् विष्णु देवताओं आदिसे मन्त्रणा करके कुछ देवगणोंके साथ शंकरजीके निवास-स्थानपर गये। वहाँपर उन्होंने पार्वतीके साथ विराजमान, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, परम रमणीय अंगोंवाले, लावण्यकी खान, अद्भुत, सदा सोलह वर्षकी अवस्थावाले, अनेकविध अलंकारोंसे सुशोभित, विविध गणोंसे घिरे हुए तथा परा शिवाको प्रमुदित करते हुए चतुर्वेदस्वरूप चन्द्रशेखर भगवान् शिवको देखा और उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट वाणीमें उस आश्चर्यजनक घटनाको बताया—'हे देव! हम इस घटनाका कुछ भी कारण नहीं समझ पा रहे हैं। हे देव! इसका जो कारण हो, उसे आप बताइये; क्योंकि हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं'॥ ५७—६१½ ॥

तब विष्णुका कथन सुनकर प्रसन्न मुखारविन्दवाले भगवान् शिवने मेघके समान गम्भीर वाणीमें यह मधुर वचन कहा—'हे विष्णो! उसका कारण सुनिये।' इस विषयमें कोई आश्चर्य नहीं है। यह भस्मकी महिमा है। भस्मसे क्या नहीं हो सकता है?॥ ६२-६३½ ॥

शैवसम्मत होकर अर्थात् भस्म तथा त्रिपुण्ड्र आदि धारण करके दुर्वासामुनि कुम्भीपाक देखने गये थे। हे हरे! वे मुख झुकाकर नीचेकी ओर देखने लगे, तभी उनके ललाटपर स्थित भस्मके कुछ कण दैवयोगसे वायुके प्रभावसे उस कुण्डमें गिर पड़े। उसीसे यह सारी घटना हुई है; यह तो भस्मकी ही महिमा है॥ ६४-६५½ ॥

अबसे यह कुम्भीपाक पितृलोकमें निवास करनेवालोंके लिये तीर्थ बन जायगा, जिसमें स्नान करके सुख प्राप्त होगा; इसमें सन्देह नहीं है। आजसे उन्हींके नामसे यह 'पितृतीर्थ' नामवाला होगा। हे श्रेष्ठ! आप वहाँपर मेरे लिंग तथा देवीकी मूर्तिकी स्थापना करें, जिससे पितृलोकमें रहनेवाले हमारी पूजा कर सकें। तीनों लोकोंमें जितने तीर्थ हैं, उनमें यह श्रेष्ठ तीर्थ होगा। वहाँपर स्थापित पित्रीश्वरीकी पूजामात्रसे तीनों लोकोंकी पूजा हो जायगी॥ ६६—६९ ॥

श्रीनारायण उवाच

इति देववचः श्रुत्वा देवं मूर्ध्ना प्रणम्य च।
तदनुज्ञां समादाय ययौ देवान्तिकं हरिः॥ ७०

तत्सर्वं कथयामास कारणं शङ्करोदितम्।
साधु साध्विति ते प्रोचुरमरा मौलिचालनैः॥ ७१

शशंसुर्भस्ममाहात्म्यं हरिब्रह्मादयः सुराः।
पितरश्चैव सन्तुष्टास्तीर्थलाभात्परन्तप॥ ७२

तत्तीर्थतीरे लिङ्गं च देव्या मूर्तिं यथाविधि।
स्थापयामासुरमराः पूजयामासुरन्वहम्॥ ७३

तत्र ये प्राणिनोऽभूवन्पापभोगार्थमास्थिताः।
ते विमानं समारुह्य गताः कैलासमण्डलम्॥ ७४

नाम्ना भद्रगणास्ते तु वसन्त्यद्यापि तत्र हि।
पुनश्च दूरदेशे तु कुम्भीपाको विनिर्मितः॥ ७५

निरुद्धं शैवगमनं देवैस्तत्र तु तद्दिनात्।
इति ते सर्वमाख्यातं भस्ममाहात्म्यमुत्तमम्॥ ७६

नातः परतरं किञ्चिदधिकं विद्यते मुने।
ऊर्ध्वपुण्ड्रविधिं चैवाप्यधिकारिविभेदतः॥ ७७

प्रवक्ष्ये मुनिशार्दूल वैष्णवागमलोकनात्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रप्रमाणानि दिव्यान्यङ्गुलिभेदतः॥ ७८

वर्णाभिमन्त्रदेवांश्च प्रवक्ष्यामि फलानि च।
पर्वताग्रे नदीतीरे शिवक्षेत्रे विशेषतः॥ ७९

सिन्धुतीरे च वल्मीके तुलसीमूलमाश्रिते।
मृद एतास्तु सङ्ग्राह्या वर्जयेदन्यमृत्तिकाः॥ ८०

श्यामं शान्तिकरं प्रोक्तं रक्तं वश्यकरं भवेत्।
श्रीकरं पीतमित्याहुर्धर्मदं श्वेतमुच्यते॥ ८१

श्रीनारायण बोले—हे नारद! महादेवजीकी यह बात सुनकर विष्णुजीने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर वे देवताओंके पास चले गये। वहाँ पहुँचकर भगवान् विष्णुने शंकरजीद्वारा बतायी गयी समस्त बातें उनसे कहीं, जिसपर वे सभी देवता सिर हिलाकर 'साधु-साधु'—ऐसा कहने लगे॥ ७०-७१॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भस्मके माहात्म्यकी प्रशंसा करने लगे और हे परंतप! कुम्भीपाकके तीर्थ हो जानेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ७२॥

देवताओंने उस तीर्थके तटपर शिवलिंग तथा देवीकी मूर्तिकी विधिपूर्वक स्थापना की और प्रतिदिन पूजन करने लगे॥ ७३॥

अपने पापकर्मोंका फल भोगनेके लिये उस कुण्डमें जितने भी जीव थे, वे सब विमानपर आरूढ होकर कैलासमण्डलको चले गये। वे इस समय भी वहाँ भद्रगण नामसे निवास करते हैं; और फिर वहाँसे दूर अन्य स्थानपर 'कुम्भीपाक' निर्मित हुआ और उसी दिनसे देवताओंने भस्म तथा त्रिपुण्ड्रधारी शैवोंका कुम्भीपाक नरककुण्ड जाना निरुद्ध कर दिया॥ ७४-७५ १/२॥

इस प्रकार मैंने आपसे भस्मके उत्तम माहात्म्यका सारा वर्णन कर दिया। हे मुने! इस भस्मसे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है॥ ७६ १/२॥

हे मुनिशार्दूल! वैष्णवशास्त्रोंके अवलोकनसे प्राप्त ज्ञानके अनुसार अब अधिकार-भेदसे ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधिका भी वर्णन करूँगा॥ ७७ १/२॥

हे मुने! अँगुलिके नापसे दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्रके प्रमाण, उसके रंग, उसके मन्त्र, उसके देवता तथा उसके फलोंका वर्णन करूँगा॥ ७८ १/२॥

इसके लिये पर्वतकी चोटी, नदीके तट, विशेष रूपसे शिवक्षेत्र, समुद्रके तट, वल्मीक (बाँबी) और तुलसीके वृक्षकी जड़—इन्हीं स्थानोंकी मिट्टियोंको लेना चाहिये, इसके अतिरिक्त अन्य मिट्टियाँ नहीं लेनी चाहिये॥ ७९-८०॥

श्यामवर्णकी मिट्टी शान्तिदायिनी कही गयी है तथा रक्तवर्णकी मिट्टी वशमें करनेवाली होती है। इसी प्रकार पीली मिट्टी श्रीदायिनी तथा श्वेत मिट्टी धर्मकी ओर प्रवृत्त करनेवाली कही गयी है॥ ८१॥

अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तो मध्यमायुष्करी भवेत्।
अनामिकान्नदा नित्यं मुक्तिदा च प्रदेशिनी॥ ८२

एतैरङ्गुलिभेदैस्तु कारयेन्न नखैः स्पृशेत्।
वर्तिदीपावलिकृतिं वेणुपत्राकृतिं तथा॥ ८३

पद्मस्य मुकुलाकारं तथा कुर्यात्प्रयत्नतः।
मत्स्यकूर्माकृतिं वापि शङ्खाकारं ततः परम्॥ ८४

दशाङ्गुलिप्रमाणं तु उत्तमोत्तममुच्यते।
नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम्॥ ८५

सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं त्रिविधं स्मृतम्।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैः पुण्ड्रं कनिष्ठं त्रिविधं भवेत्॥ ८६

ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे।
माधवं हृदि विन्यस्य गोविन्दं कण्ठकूपके॥ ८७

उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्यभिधीयते।
तत्पार्श्वबाहुमध्ये च मधुसूदनमेव च॥ ८८

त्रिविक्रमं कर्णदेशे वामकुक्षौ तु वामनम्।
श्रीधरं बाहुके वामे हृषीकेशं तु कर्णके॥ ८९

पृष्ठे च पद्मनाभं तु ककुद्दामोदरं स्मरेत्।
द्वादशैतानि नामानि वासुदेवेति मूर्धनि॥ ९०

पूजाकाले च होमे च सायं प्रातः समाहितः।
नामान्युच्चार्य विधिना धारयेदूर्ध्वपुण्ड्रकम्॥ ९१

अँगूठा पुष्टि देनेवाला कहा गया है। मध्यमा अँगुली आयु प्रदान करनेवाली है। अनामिका नित्य अन्न देनेवाली तथा तर्जनी मुक्तिदायिनी कही गयी है। अँगुलिभेदसे इन्हींसे ही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा लगाते समय नखोंसे स्पर्श न करे। दीपककी बत्तीकी लौके आकारका, बाँसके पत्तेके आकारका, कमलकी कलीकी आकृतिका, मत्स्यके आकारका, कछुएके आकारका अथवा शंखके आकारका ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये॥ ८२—८४॥

दस अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें उत्तम कहा जाता है। नौ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें मध्यम तथा आठ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें कनिष्ठ होता है॥ ८५॥

इसी प्रकार सात, छः तथा पाँच अंगुल परिमाणवाला मध्यम कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ]—तीन प्रकारका कहा गया है और चार, तीन तथा दो अंगुल परिमाणवाला कनिष्ठ कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ] तीन प्रकारका होता है॥ ८६॥

ललाटके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'केशव', उदरके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'नारायण', हृदयके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'माधव' तथा कण्ठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'गोविन्द' जानना चाहिये। उदरके दाहिने पार्श्वमें धारित ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'विष्णु' कहा जाता है। उदरके वाम पार्श्वके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'मधुसूदन', कर्णदेशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'त्रिविक्रम', वाम कुक्षिके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'वामन', बायें बाहुके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'श्रीधर', दाहिने कानके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'हृषीकेश', पीठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'पद्मनाभ', ककुद्देशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'दामोदर'—इन बारह नामोंसे तथा मूर्धाके ऊर्ध्वपुण्ड्रको वासुदेवके रूपमें समझकर उन-उन स्थानोंपर उन-उन देवताओंका स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार प्रातःकालीन तथा सायंकालीन पूजन तथा हवनके समय शान्तचित्त होकर इन नामोंका उच्चारण करके विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ८७—९१॥

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरेत्।
शुचिरेव भवेन्नित्यं मूर्ध्नि पुण्ड्राङ्कितो नरः॥ ९२

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित्।
श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते॥ ९३

एकान्तिनो महाभागा मत्स्वरूपविदोऽमलाः।
सान्तरालान्प्रकुर्वन्ति पुण्ड्रान्विष्णुपदाकृतीन्॥ ९४

परमैकान्तिनोऽप्येवं मत्पादैकपरायणाः।
हरिद्राचूर्णसंयुक्ताञ्छूलाकारांस्तु वामलान्॥ ९५

अन्ये तु वैष्णवाः पुण्ड्रानच्छिद्रानपि भक्तितः।
प्रकुर्वीरन्दीपपद्मवेणुपत्रोपमाकृतीन्॥ ९६

अच्छिद्रानपि सच्छिद्रान् कुर्युः केवलवैष्णवाः।
अच्छिद्रकरणे तेषां प्रत्यवायो न विद्यते॥ ९७

एकान्तिनां प्रपन्नानां परमैकान्तिनामपि।
अच्छिद्रपुण्ड्राकरणे प्रत्यवायो महान्भवेत्॥ ९८

ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु यः कुर्याद्दण्डाकारं तु शोभनम्।
मध्ये छिद्रं वैष्णवाश्च नमोऽन्तैः केशवादिभिः॥ ९९

विमलान्यूर्ध्वपुण्ड्राणि सान्तरालानि यो नरः।
करोति विपुलं तत्र मन्दिरं मे करोति सः॥ १००

ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु विशाले सुमनोहरे।
लक्ष्म्या साकं सहासीनो रमते विष्णुरव्ययः॥ १०१

निरन्तरालं यः कुर्यादूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजाधमः।
स हि तत्र स्थितं विष्णुं श्रियं चैव व्यपोहति॥ १०२

कोई भी अपवित्र, अनाचारी अथवा मनसे भी निरन्तर पापकर्मका चिन्तन करनेवाला मनुष्य अपने सिरपर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर लेनेमात्रसे पवित्र हो जाता है॥ ९२॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले चाण्डाल मनुष्यकी भी मृत्यु चाहे कहीं भी हो, वह विमानमें स्थित होकर मेरे लोक पहुँचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ९३॥

विशुद्ध आत्मावाले तथा मेरे स्वरूपको जाननेवाले महाभाग्यशाली ऐकान्तिक वैष्णवजन भगवान् विष्णुके चरणके आकारवाले तथा बीचमें रिक्त स्थानसे युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं। इसी प्रकार एकमात्र मेरे चरणोंके प्रति परायणता रखनेवाले परम ऐकान्तिक भक्त निर्मल, शूलकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रको हल्दीके चूर्णसे धारण करते हैं॥ ९४-९५॥

अन्य वैष्णवजनोंको भक्तिपूर्वक दीपककी बत्तीकी तरह, कमलकी तरह अथवा बाँसके पत्तेकी आकृतिके सदृश तथा रेखाओंके मध्य रिक्तस्थान-रहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधारण वैष्णव गृहस्थ अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानसे रहित) अथवा सच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानयुक्त) कोई भी त्रिपुण्ड्र धारण कर सकते हैं। अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेसे उन्हें पाप नहीं लगता है। किंतु प्रपन्न ऐकान्तिक तथा परम ऐकान्तिक वैष्णवोंको अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेपर महान् पाप लगता है॥ ९६—९८॥

जो वैष्णव दण्डके आकारके, सुन्दर, रेखाओंके बीचमें रिक्त स्थान छोड़कर पूर्वोक्त 'केशव' आदिके साथ 'नमः' जोड़कर विभिन्न अंगोंमें विमल ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करता है, वह उन-उन स्थानोंपर मानो मेरा विशाल मन्दिर ही बनाता है॥ ९९-१००॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्य विशाल तथा अत्यन्त मनोहर रिक्त स्थानमें शाश्वत विष्णुजी लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्दित होते हैं॥ १०१॥

जो अधम द्विज रेखाओंके बीचमें रिक्तस्थान छोड़े बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह उस स्थानपर विराजमान विष्णु तथा लक्ष्मीका तिरस्कार करता है॥ १०२॥

अच्छिद्रमूर्ध्वपुण्ड्रं तु यः करोति विमूढधीः।
स पर्यायेण तानेति नरकानेकविंशतिम्॥ १०३

ऋजूनि स्फुटपार्श्वानि सान्तरालानि विन्यसेत्।
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि दण्डाब्जदीपमत्स्यनिभानि च॥ १०४

शिखोपवीतवद्धार्यमूर्ध्वपुण्ड्रं द्विजेन च।
विना कृताश्चेद्विफलाः क्रियाः सर्वा महामुने॥ १०५

तस्मात्सर्वेषु कार्येषु कार्यं विप्रस्य धीमतः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रकम्॥ १०६

अर्धचन्द्रादिकं लिङ्गं वेदनिष्ठो न धारयेत्।
जन्मना लब्धजातिस्तु वेदपन्थानमाश्रितः॥ १०७

पुण्ड्रान्तरं भ्रमाद्वापि ललाटे नैव धारयेत्।
ख्यातिकान्त्यादिसिद्ध्यर्थं चापि विष्णवागमादिषु॥ १०८

स्थितं पुण्ड्रान्तरं नैव धारयेद्वैदिको जनः।
तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं सन्त्यज्य श्रौतं कथमपि भ्रमात्॥ १०९

ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रस्य च धारणम्।
विना पुण्ड्रान्तरं मोहाद्धारयन्नारकी भवेत्॥ ११०

वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यङ्कितो यदि।
पतत्येव न सन्देहस्तथा पुण्ड्रान्तरादपि॥ १११

नाङ्कनं विग्रहे कुर्याद्वेदमार्गं समाश्रितः।
श्रौतधर्मैकनिष्ठानां लिङ्गं तु श्रौतमेव हि॥ ११२

अश्रौतधर्मनिष्ठानामश्रौतं लिङ्गमीरितम्।
देवता वेदसिद्धा यास्तासां लिङ्गं तु वैदिकम्॥ ११३
अश्रौततन्त्रनिष्ठा यास्तासामश्रौतमेव हि।

जो मूर्ख अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानरहित) ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह क्रमशः इक्कीस नरकोंको प्राप्त होता रहता है॥ १०३॥

स्पष्ट तथा सीधी रेखाओंवाले, बीचमें रिक्त स्थानवाले, दण्ड, कमल, दीपककी लौ अथवा मत्स्यकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करना चाहिये॥ १०४॥

द्विजको शिखा और यज्ञोपवीतकी भाँति ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे महामुने! इसे धारण किये बिना किये गये समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् ब्राह्मणको समस्त कर्मोंमें त्रिशूलके आकारका गोल अथवा चौकोर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ १०५-१०६॥

वेदनिष्ठ ब्राह्मणको अर्धचन्द्रके आकारका तिलक नहीं लगाना चाहिये। जन्मसे ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न तथा वैदिकपन्थके अनुयायी व्यक्तिको भूलकर भी अपने ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्रके अतिरिक्त अन्य पुण्ड्र नहीं धारण करना चाहिये। श्रौत तिर्यक् त्रिपुण्ड्र छोड़कर प्रसिद्धि अथवा शारीरिक कान्ति आदिकी प्राप्तिके लिये वैष्णवशास्त्रादिमें वर्णित दूसरे प्रकारके पुण्ड्र वैदिक व्यक्तिको भूलकर भी नहीं धारण करने चाहिये॥ १०७—१०९॥

ललाटपर भस्मसे तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण न करके अज्ञानवश अन्य प्रकारका त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला वैदिक ब्राह्मण नरकगामी होता है। एकमात्र वेदमार्गका अनुयायी व्यक्ति यदि अज्ञानवश भी भिन्न प्रकारका पुण्ड्र शरीरपर धारण कर लेता है तो वह नरकमें अवश्य ही पड़ता है; इसमें संशय नहीं है॥ ११०-१११॥

वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यको अपने शरीरपर किसी प्रकारका चिह्न नहीं करना चाहिये। वैदिक धर्मका पालन करनेवालोंके लिये एकमात्र वैदिक चिह्न त्रिपुण्ड्र ही है। अश्रौत धर्ममें निष्ठ लोगोंके लिये अश्रौत चिह्न बताया गया है॥ ११२½ ॥

वेदोंमें जो-जो देवता वर्णित हैं, उनके चिह्न वैदिक ही हैं। अश्रौततन्त्रमें निष्ठा रखनेवाले जो लोग हैं, उनके चिह्न अश्रौत ही हैं॥ ११३½ ॥

वेदसिद्धो महादेवः साक्षात्संसारमोचकः॥ ११४

भवबन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले वेदसिद्ध महादेवजी भक्तोंके उपकारके लिये श्रौत चिह्न (भस्म—त्रिपुण्ड्र) धारण करते हैं॥ ११४½ ॥

भक्तानामुपकाराय श्रौतं लिङ्गं दधाति च।
वेदसिद्धस्य विष्णोश्च श्रौतं लिङ्गं न चेतरत्॥ ११५

वेदसिद्ध भगवान् विष्णुका भी वैदिक चिह्न ही है, इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं। विशेष अवतारोंमें भी उनका चिह्न वही [भस्म—त्रिपुण्ड्र] रहता है॥ ११५½ ॥

प्रादुर्भावविशेषाणामपि तस्य तदेव हि।
श्रौतं लिङ्गं तु विज्ञेयं त्रिपुण्ड्रोद्धूलनादिकम्॥ ११६

सर्वांगमें भस्म लगाने तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेको वैदिक चिह्न समझना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि अश्रौत चिह्न हैं, तिर्यक् त्रिपुण्ड्र अश्रौत नहीं है॥ ११६½ ॥

अश्रौतमूर्ध्वपुण्ड्रादि नैव तिर्यक्त्रिपुण्ड्रकम्।
वेदमार्गैकनिष्ठानां वेदोक्तेनैव वर्त्मना॥ ११७
ललाटे भस्मना तिर्यक्त्रिपुण्ड्रं धार्यमेव हि।
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्नः परमं पदम्।
धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिणा॥ ११८

एकमात्र वेदमार्गका अनुगमन करनेवालेको वेदोक्त पद्धतिसे भस्मद्वारा ललाटपर तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जो भगवान् नारायणके शरणागत हो तथा उनके परमपदका अभिलाषी हो, उसे गन्ध-द्रव्य-युक्त जलसे अपने ललाटपर शूलकी आकृति धारण करनी चाहिये॥ ११७-११८ ॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रधारणविधिवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

* * *

अथ षोडशोऽध्यायः

सन्ध्योपासना तथा उसका माहात्म्य

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां पुण्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्।
भस्मधारणमाहात्म्यं कथितं चैव विस्तरात्॥ १

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने आपसे भस्म धारण करनेके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया; अब आप पुण्यदायक तथा उत्तम सन्ध्योपासनके विषयमें सुनिये॥ १॥

प्रातःसन्ध्याविधानं च कथयिष्यामि तेऽनघ।
प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रां मध्याह्ने मध्यभास्कराम्॥ २
ससूर्यां पश्चिमां सन्ध्यां तिस्त्रः सन्ध्या उपासते।
तद्भेदानपि वक्ष्यामि शृणु देवर्षिसत्तम॥ ३

हे अनघ! मैं सर्वप्रथम आपसे प्रातःकालीन सन्ध्याका विधान कह रहा हूँ। प्रातःकालकी सन्ध्या आकाशमें तारोंके रहते-रहते, मध्याह्नकी सन्ध्या सूर्यके मध्य-आकाशमें आनेपर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें रहनेपर करनेका विधान है; इस प्रकार इन तीनों सन्ध्याओंको करना चाहिये। हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब मैं उनके भेद भी बताऊँगा, आप सुनिये॥ २-३॥

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता॥ ४

तारोंके आकाशमें विद्यमान रहते की जानेवाली प्रातःसन्ध्या उत्तम, तारोंके लुप्त होनेसे लेकर सूर्योदयके बीचकी अवधिमें की जानेवाली सन्ध्या मध्यम और सूर्यके उदय हो जानेपर की जानेवाली सन्ध्या

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमास्तमिते रवौ।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥ ५

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या
वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥ ६

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते॥ ७

तस्मान्नित्यं प्रकर्तव्यं सन्ध्योपासनमुत्तमम्।
तदभावेऽन्यकर्मादावधिकारी भवेन्न हि॥ ८

उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयम्।
तावत्सन्ध्यामुपासीत प्रायश्चित्तं ततः परम्॥ ९

कालातिक्रमणे जाते चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत्।
अथवाष्टशतं देवीं जप्त्वादौ तां समाचरेत्॥ १०

यस्मिन्काले तु यत्कर्म तत्कालाधीश्वरीं च ताम्।
सन्ध्यामुपास्य पश्चात्तु तत्कालीनं समाचरेत्॥ ११

गृहे साधारणा प्रोक्ता गोष्ठे वै मध्यमा भवेत्।
नदीतीरे चोत्तमा स्याद्देवीगेहे तदुत्तमा॥ १२

यतो देव्या उपासेयं ततो देव्यास्तु सन्निधौ।
सन्ध्यात्रयं प्रकर्तव्यं तदानन्त्याय कल्पते॥ १३

अधम—यह तीन प्रकारकी प्रातःसन्ध्या कही गयी है। सायंकालमें सूर्यके विद्यमान रहते की गयी सायं-सन्ध्या उत्तम, सूर्यके अस्त होने तथा तारोंके उदयके पूर्व की गयी सन्ध्या मध्यम और तारोंके उदयके पश्चात् की गयी सन्ध्या अधम—यह तीन प्रकारकी सायंसन्ध्या कही गयी है॥ ४-५॥

विप्र वृक्ष है, ये सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ें हैं, वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं। अतएव प्रयत्नके साथ मूल अर्थात् सन्ध्याकी ही रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट जानेपर न तो वृक्ष रहता है और न शाखा॥ ६॥

जिसने सन्ध्याका ज्ञान नहीं किया तथा जिसने सन्ध्योपासन नहीं किया, वह जीते-जी शूद्रके समान होता है और मृत्युके अनन्तर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है॥ ७॥

अतः द्विजको नित्य उत्तम सन्ध्या करनी चाहिये। उसे न करनेवाला अन्य किसी भी शुभ कर्मको करनेका अधिकारी नहीं है॥ ८॥

सूर्यके उदय होने तथा अस्त होनेके तीन-तीन घड़ी बादतक सन्ध्योपासना कर लेनी चाहिये। उसके बाद सन्ध्या करनेपर प्रायश्चित्त करना पड़ता है॥ ९॥

समय बीत जानेपर यदि सन्ध्या की जाय, तो [तीन अर्घ्यके अतिरिक्त] चौथा अर्घ्य देना चाहिये अथवा आरम्भमें एक सौ आठ बार गायत्रीका जप करके सन्ध्या करनी चाहिये॥ १०॥

जिस समय जो कर्म करना हो, उस समयकी अधीश्वरी उस गायत्री-स्वरूपिणी सन्ध्याकी उपासना करनेके अनन्तर ही उस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये॥ ११॥

घरमें की गयी सन्ध्या साधारण कही गयी है, गोशालामें की गयी सन्ध्या मध्यम कोटिकी होती है, नदीके तटपर की गयी सन्ध्या उत्तम होती है और देवीमन्दिरमें की गयी सन्ध्या उससे भी उत्तम कही गयी है॥ १२॥

सन्ध्योपासन देवीकी उपासना है, अतः देवीकी सन्निधिमें ही तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-की सन्ध्या करनी चाहिये, वह उन्हें अनन्त फल प्रदान करती है॥ १३॥

एतस्या अपरं दैवं ब्राह्मणानां च विद्यते।
न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा॥ १४

यथा भवेन्महादेव्या गायत्र्याः श्रुतिचोदिता।
सर्ववेदसारभूता गायत्र्यास्तु समर्चना॥ १५

ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च।
वेदा जपन्ति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता॥ १६

तस्मात्सर्वे द्विजाः शाक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥ १७

आचान्तः प्राणमायम्य केशवादिकनामभिः।
केशवश्च तथा नारायणो माधव एव च॥ १८

गोविन्दो विष्णुरेवाथ मधुसूदन एव च।
त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरोऽपि ततः परम्॥ १९

हृषीकेशः पद्मनाभो दामोदर अतः परम्।
सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नोऽप्यनिरुद्धकः॥ २०

पुरुषोत्तमाधोक्षजौ च नारसिंहोऽच्युतस्तथा।
जनार्दन उपेन्द्रश्च हरिः कृष्णोऽन्तिमस्तथा॥ २१

ॐकारपूर्वकं नाम चतुर्विंशतिसङ्ख्यया।
स्वाहान्तैः प्राशयेद्वारि नमोऽन्तैः स्पर्शयेत्तथा॥ २२

केशवादित्रिभिः पीत्वा द्वाभ्यां प्रक्षालयेत्करौ।
मुखं प्रक्षालयेद् द्वाभ्यां द्वाभ्यामुन्मार्जनं तथा॥ २३
एकेन पाणिं सम्प्रोक्ष्य पादावपि शिरोऽपि च।

ब्राह्मणोंके लिये इन गायत्रीदेवीके अतिरिक्त अन्य देवता नहीं है। विष्णु तथा शिवकी उपासना भी वैसी नित्य नहीं है, जैसी महादेवी गायत्रीकी वेदप्रतिपादित सन्ध्या नित्य है। गायत्रीदेवीकी आराधना सम्पूर्ण वेदोंका सार-स्वरूप है॥ १४-१५॥

ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्योपासनाके समय उन गायत्रीदेवीका ध्यान तथा जप करते हैं। वेद उन गायत्रीका नित्य जप करते हैं, अतएव वे 'वेदोपास्या' कही गयी हैं॥ १६॥

इसीलिये सभी द्विज शाक्त हैं, वे न शैव हैं न वैष्णव। वे सभी वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं॥ १७॥

केशव आदि नामोंसे आचमन करनेके बाद प्राणायाम करनेके अनन्तर सन्ध्योपासनमें प्रवृत्त होना चाहिये। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि तथा श्रीकृष्ण—इन चौबीस नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर जलका प्राशन (आचमन) और इन्हीं नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'नमः' लगाकर शरीरके विभिन्न अंगोंका स्पर्श करना चाहिये॥ १८—२२॥

'**ॐ केशवाय स्वाहा**' आदि (**ॐ केशवाय स्वाहा, ॐ माधवाय स्वाहा, ॐ नारायणाय स्वाहा**) तीन नाम-मन्त्रोंसे आचमन करके '**ॐ गोविन्दाय नमः**', '**ॐ विष्णवे नमः**'—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दोनों हाथोंका प्रक्षालन करना चाहिये। पुनः 'मधुसूदन' तथा 'त्रिविक्रम'—इन दो नामोंसे अँगूठेके मूलद्वारा दोनों ओष्ठोंका प्रक्षालन और 'वामन' तथा 'श्रीधर'—इन नामोंसे मुखका सम्मार्जन करना चाहिये॥ २३॥

'हृषीकेश'—इस नामसे बायें हाथका, 'पद्मनाभ' नामसे दोनों पैरोंका, तथा 'दामोदर' नामसे सिरका प्रोक्षण करना चाहिये। इसी प्रकार 'संकर्षण' आदि देवनामोंसे बारह अंगोंका स्पर्श करना चाहिये। ('संकर्षण' नामसे परस्पर मिली हुई बीचकी तीन अँगुलियोंद्वारा मुखका, 'वासुदेव' तथा 'प्रद्युम्न'—इन

सङ्कर्षणादिदेवानां द्वादशाङ्गानि संस्पृशेत्॥ २४

दक्षिणेनोदकं पीत्वा वामेन संस्पृशेद् बुधः।
तावन्न शुध्यते तोयं यावद्वामेन न स्पृशेत्॥ २५

गोकर्णाकृतिहस्तेन माषमात्रं जलं पिबेत्।
ततो न्यूनाधिकं पीत्वा सुरापायी भवेद् द्विजः॥ २६

संहताङ्गुलिना तोयं पाणिना दक्षिणेन तु।
मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठाभ्यां शेषेणाचमनं विदुः॥ २७

प्राणायामं ततः कृत्वा प्रणवस्मृतिपूर्वकम्।
गायत्रीं शिरसा सार्धं तुरीयपदसंयुताम्॥ २८

दक्षिणे रेचयेद्वायुं वामेन पूरितोदरम्।
कुम्भेन धारयेन्नित्यं प्राणायामं विदुर्बुधाः॥ २९

पीडयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम्।
कनिष्ठानामिकाभ्यां तु मध्यमां तर्जनीं त्यजेत्॥ ३०

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः॥ ३१

दो नामोंसे अँगूठे और तर्जनी अँगुलियोंद्वारा दोनों नासापुटोंका, 'अनिरुद्ध' तथा 'पुरुषोत्तम' से अँगूठे और अनामिकाद्वारा दोनों नेत्रोंका, 'अधोक्षज' और 'नारसिंह' नामोंद्वारा दोनों कानोंका, 'अच्युत' से कनिष्ठिका और अँगूठेद्वारा नाभिका, 'जनार्दन' से करतलद्वारा हृदयका, 'उपेन्द्र' से सिरका एवं '**ॐ हरये नमः**' तथा '**ॐ कृष्णाय नमः**'—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दाहिनी और बायीं भुजाका स्पर्श करना चाहिये)॥ २४॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि दाहिने हाथसे जल पीते समय बायें हाथसे उसे स्पर्श किये रहे; क्योंकि वह जल तबतक शुद्ध नहीं होता जबतक बायें हाथका स्पर्श नहीं होता॥ २५॥

हाथकी मुद्रा गायके कानके आकारकी बनाकर उससे मात्र एक माष जलसे आचमन करना चाहिये। उससे अधिक या कम जलसे आचमन करनेवाला द्विज सुरापान करनेवालेके समान होता है॥ २६॥

दाहिने हाथकी कनिष्ठिका तथा अँगूठेको अलग-अलग करके शेष तीन अँगुलियोंको सटाकर दाहिने हाथसे जलसे आचमन करना बताया गया है॥ २७॥

तत्पश्चात् प्रणवका उच्चारण करके गायत्रीशिरस् तथा गायत्रीके तुरीय (चतुर्थ) पादसहित गायत्रीका जप करते हुए प्राणायाम करना चाहिये॥ २८॥

नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुका रेचन करना चाहिये, बायें छिद्रसे वायुको उदरमें भरना चाहिये तथा उस वायुको उदरमें भरकर कुम्भरूपसे धारण किये रहना चाहिये—इसीको विद्वानोंने प्राणायाम कहा है॥ २९॥

[वायुको खींचते समय] नासिकाके दाहिने छिद्रको अँगूठेसे दबाये। तत्पश्चात् कनिष्ठिका तथा अनामिका अँगुलियोंसे बायें नासिका-छिद्रको बन्द कर ले; इसमें मध्यमा तथा तर्जनीका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ ३०॥

संयमित चित्तवाले योगियोंने सभी शास्त्रोंमें इसी प्रकारके पूरक, कुम्भक तथा रेचकको ही प्राणायाम बताया है॥ ३१॥

रेचकः सृजते वायुं पूरकः पूरयेत्तु तम्।
साम्येन संस्थितिर्यत्तत्कुम्भकः परिकीर्तितः॥ ३२

नीलोत्पलदलश्यामं नाभिमध्ये प्रतिष्ठितम्।
चतुर्भुजं महात्मानं पूरके चिन्तयेद्धरिम्॥ ३३

कुम्भके तु हृदि स्थाने ध्यायेत्तु कमलासनम्।
प्रजापतिं जगन्नाथं चतुर्वक्त्रं पितामहम्॥ ३४

रेचके शङ्करं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम्॥ ३५

पूरके विष्णुसायुज्यं कुम्भके ब्रह्मणो गतिम्।
रेचकेन तृतीयं तु प्राप्नुयादीश्वरं परम्॥ ३६

पौराणाचमनाद्यं च प्रोक्तं देवर्षिसत्तम।
श्रौतमाचमनाद्यं च शृणु पापापहं मुने॥ ३७

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य गायत्रीं तु तदित्यृचम्।
पादादौ व्याहृतीस्तिस्रः श्रौताचमनमुच्यते॥ ३८

गायत्रीं शिरसा सार्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम्।
प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रितयं प्राणसंयमः॥ ३९

(सलक्षणं तु प्राणानामायामं कीर्त्यतेऽधुना।
नानापापैकशमनं महापुण्यफलप्रदम्॥)
पञ्चाङ्गुलीभिर्नासाग्रं पीडयेत्प्रणवेन तु।
सर्वपापहरा मुद्रा वानप्रस्थगृहस्थयोः॥ ४०
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्यतेश्च ब्रह्मचारिणः।

'रेचक' वायुका सृजन करता है, 'पूरक' उसे पूर्ण करता है तथा साम्य स्थितिमें जो उसे धारण किये रहता है, वह कुम्भक कहा गया है॥ ३२॥

पूरक करते समय नीले कमल-पत्रके समान श्याम वर्णवाले चतुर्भुज परमात्मा श्रीहरिका नाभिदेशमें ध्यान करना चाहिये॥ ३३॥

कुम्भक करते समय कमलके आसनपर विराजमान, चार मुखवाले, जगत्‌के स्वामी प्रजापति ब्रह्माका हृदयमें ध्यान करना चाहिये॥ ३४॥

रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके सदृश, निर्मल तथा पापोंका नाश करनेवाले महेश्वर शिवका ललाटमें ध्यान करना चाहिये॥ ३५॥

मनुष्य पूरक प्राणायामसे विष्णु-सायुज्य, कुम्भक प्राणायामसे ब्रह्माका पद तथा तीसरे रेचक प्राणायामसे माहेश्वरपद प्राप्त करता है॥ ३६॥

हे देवर्षिश्रेष्ठ! मैंने पहले पौराणिक आचमन बता दिया है। हे मुने! अब आप पापको दूर करनेवाले 'श्रौत आचमन' के विषयमें सुनिये॥ ३७॥

पहले प्रणव (ॐ)-का उच्चारण करके गायत्रीकी ऋचा (**तत्सवितुः** आदि) तथा पदके आदिमें तीनों व्याहृतियोंसे युक्त गायत्री मन्त्रको पढ़कर किया गया आचमन 'श्रौत-आचमन' कहा जाता है॥ ३८॥

गायत्रीके पूर्व तीनों व्याहृतियाँ लगाकर तथा प्रत्येक व्याहृतिमें प्रणव (ॐ) जोड़कर शिरोभागके साथ गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय इसका तीन बार जप ही प्राणायाम है (अब लक्षणसहित प्राणायामका वर्णन किया जा रहा है। यह प्राणायाम नानाविध पापोंका शमन करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है)। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको प्रणवमन्त्रसे पाँचों अँगुलियोंद्वारा नासिकाके अग्रभागको दबाना चाहिये। यह मुद्रा सभी प्रकारके पापोंका हरण करनेवाली है। ब्रह्मचारी और संन्यासी कनिष्ठिका, अनामिका तथा अँगूठा—इन अँगुलियोंसे प्राणायाम करें॥ ३९-४०$\frac{1}{2}$॥

आपो हि ष्ठेति तिसृभिः प्रोक्षणं स्यात्कुशोदकैः ॥ ४१

ऋगन्ते मार्जनं कुर्यात्पादान्ते वा समाहितः ।
नवप्रणवयुक्तेन आपो हि ष्ठेत्यनेन तु ॥ ४२

नश्येदघं मार्जनेन संवत्सरसमुद्भवम् ।
तत आचमनं कृत्वा सूर्यश्चेति पिबेदपः ॥ ४३

अन्तःकरणसम्भिन्नं पापं तस्य विनश्यति ।
प्रणवेन व्याहृतिभिर्गायत्र्या प्रणवाद्यया ॥ ४४

आपो हि ष्ठेति सूक्तेन मार्जनं चैव कारयेत् ।
उद्धृत्य दक्षिणे हस्ते जलं गोकर्णवत्कृते ॥ ४५

नीत्वा तं नासिकाग्रं तु वामकुक्षौ स्मरेदघम् ।
पुरुषं कृष्णवर्णं च ऋतं चेति पठेत्ततः ॥ ४६

द्रुपदां वा ऋचं पश्चाद्दक्षनासापुटेन च ।
श्वासमार्गेण तं पापमानयेत्करवारिणि ॥ ४७

नावलोक्यैव तद्वारि वामभागेऽश्मनि क्षिपेत् ।
निष्पापं तु शरीरं मे सञ्जातमिति भावयेत् ॥ ४८

उत्थाय तु ततः पादौ द्वौ समौ सन्नियोजयेत् ।
जलाञ्जलिं गृहीत्वा तु तर्जन्यङ्गुष्ठवर्जितम् ॥ ४९

वीक्ष्य भानुं क्षिपेद्वारि गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ।
त्रिवारं मुनिशार्दूल विधिरेषोऽर्घ्यमोचने ॥ ५०

ततः प्रदक्षिणां कुर्यादसावादित्यमन्त्रतः ।
मध्याह्ने सकृदेव स्यात्सन्ध्ययोस्तु त्रिवारतः ॥ ५१

ईषन्नम्रः प्रभाते तु मध्याह्ने दण्डवत्स्थितः ।
आसने चोपविष्टस्तु द्विजः सायं क्षिपेदपः ॥ ५२

'**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि तीन ऋचाओंसे कुशाके जलद्वारा शरीरका प्रोक्षण करे अथवा समाहित चित्तसे इन तीन ऋचाओंमें विद्यमान नौ पदोंके आदिमें प्रणवका उच्चारण करके उनसे मार्जन करे। इस मार्जनसे वर्षभरमें किया गया समस्त पाप मिट जाता है ॥ ४१-४२½ ॥

तत्पश्चात् '**सूर्यश्च०**' इस मन्त्रसे जलसे आचमन करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट पाप मिट जाता है ॥ ४३½ ॥

प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके साथ आदिमें प्रणवसहित गायत्रीका और '**आपो हि ष्ठा०**' इस सूक्तका एक साथ उच्चारण करके मार्जन करना चाहिये ॥ ४४½ ॥

दाहिने हाथको गायके कानके समान बनाकर उसमें जल भरे और उसे नासिकाके अग्रभागपर ले जाकर अपनी वामकुक्षिमें कृष्णवर्णवाले पुरुषरूप पापकी भावना करनी चाहिये और इसके बाद '**ऋतञ्च सत्यं०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये ॥ ४५-४६ ॥

तत्पश्चात् '**द्रुपदा०**' इस ऋचाका पाठ करके नासिकाके दाहिने पुटसे श्वासमार्गद्वारा उस पापको दाहिने हाथके जलमें लाये और उस जलपर दृष्टिपात न करते हुए उसे अपने वामभागमें भूमिपर फेंक दे और यह भावना करे कि मेरा शरीर अब पापरहित हो गया है ॥ ४७-४८ ॥

इसके बाद उठकर दोनों पैरोंको सीधा करके मिला ले। पुनः तर्जनी तथा अँगूठेको अलग रखते हुए अंजलिमें जल लेकर सूर्यकी ओर देखकर गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन बार सूर्यको जलांजलि अर्पित करे। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यार्घ्य-अर्पणकी यही विधि है ॥ ४९-५० ॥

तदनन्तर उस उपासकको आदित्य-मन्त्रसे सूर्यकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। मध्याह्नमें एक बार और प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें तीन-तीन बार अर्घ्यदान देना चाहिये ॥ ५१ ॥

द्विजको चाहिये कि प्रातःकाल कुछ झुककर, मध्याह्नमें दण्डकी भाँति स्थित होकर तथा सायंकालमें आसनपर बैठकर सूर्यको जल अर्पण करे ॥ ५२ ॥

उदकं प्रक्षिपेद्यस्मात्तत्कारणमतः शृणु।
त्रिंशत्कोट्यो महावीरा मन्देहा नाम राक्षसाः॥ ५३

कृतघ्ना दारुणा घोराः सूर्यमिच्छन्ति खादितुम्।
ततो देवगणाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः॥ ५४

उपासते महासन्ध्यां प्रक्षिपन्त्युदकाञ्जलिम्।
दह्यन्ते तेन दैत्यास्ते वज्रीभूतेन वारिणा॥ ५५

एतस्मात्कारणाद्विप्राः सन्ध्यां नित्यमुपासते।
महापुण्यस्य जननं सन्ध्योपासनमीरितम्॥ ५६

अर्घ्याङ्गभूतमन्त्रोऽयं प्रोच्यते शृणु नारद।
यदुच्चारणमात्रेण साङ्गं सन्ध्याफलं भवेत्॥ ५७

सोऽहमर्कोऽस्म्यहं ज्योतिरात्मा ज्योतिरहं शिवः।
आत्मज्योतिरहं शुक्लः सर्वज्योती रसोऽस्म्यहम्॥ ५८

आगच्छ वरदे देवि गायत्रि ब्रह्मरूपिणि।
जपानुष्ठानसिद्ध्यर्थं प्रविश्य हृदयं मम॥ ५९

उत्तिष्ठ देवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च।
अर्घ्येषु देवि गन्तव्यं प्रविश्य हृदयं मम॥ ६०

ततः शुद्धः स्थले नैजमासनं स्थापयेद् बुधः।
तत्रारुह्य जपेत्पश्चाद् गायत्रीं वेदमातरम्॥ ६१

अत्रैव खेचरी मुद्रा प्राणायामोत्तरं मुने।
प्रातःसन्ध्याविधाने च कीर्तिता मुनिपुङ्गव॥ ६२

तन्नामार्थं प्रवक्ष्यामि सादरं शृणु नारद।
चित्तं चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खे गता॥ ६३

भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी।
न चासनं सिद्धसमं न कुम्भसदृशोऽनिलः॥ ६४

न खेचरीसमा मुद्रा सत्यं सत्यं च नारद।
घण्टावत्प्रणवोच्चाराद्वायुं निर्जित्य यत्नतः॥ ६५

हे नारद! सूर्यको जलका अर्पण क्यों किया जाता है, उसका कारण अब सुनिये। मन्देहा नामके महापराक्रमी तीस करोड़ राक्षस हैं। वे कृतघ्न, भयंकर तथा क्रूर राक्षस सूर्यको खा जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें सभी देवता तथा तपोधन ऋषिगण भगवती महासन्ध्याकी उपासना करते हैं और जलांजलि प्रदान करते हैं। इस प्रकार वज्रके समान हो जानेवाले उस जलसे वे दैत्य भस्म हो जाते हैं। इसी कारणसे विप्रगण नित्य सन्ध्याकी उपासना करते हैं। सन्ध्योपासन महापुण्यका जनक कहा गया है॥ ५३—५६॥

हे नारद! सुनिये, अब अर्घ्यका अंगरूप यह मन्त्र कहा जा रहा है, जिसके उच्चारणमात्रसे सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त होता है॥ ५७॥

वह सूर्य मैं ही हूँ, मैं ही आत्मज्योति हूँ, मैं ही शिव-सम्बन्धी ज्योति हूँ, आत्मज्योति भी मेरा ही रूप है, मैं सर्वशुक्ल ज्योति हूँ और मैं रसस्वरूप हूँ॥ ५८॥

हे वरदे! हे देवि! हे गायत्रि! हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप आइये और मेरे जप-अनुष्ठानकी सिद्धिहेतु मेरे हृदयमें प्रवेश कीजिये। हे देवि! उठिये और पुनः आगमनके लिये यहाँसे प्रस्थान कीजिये और हे देवि! इसी अर्घ्यके जलमें स्थित होइये तथा पुनः मेरे हृदयदेशमें विराजमान होइये॥ ५९-६०॥

तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष पवित्र स्थानपर अपना आसन लगाये और उसपर बैठकर वेदमाता गायत्रीका जप करे॥ ६१॥

हे मुने! इसी समय प्राणायामके पश्चात् खेचरी मुद्रा करनी चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! प्रातःकालीन सन्ध्याके विधानमें इस मुद्राको बताया गया है। हे नारद! अब मैं इसके नामका अर्थ बता रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये। जिसके प्रभावसे चित्त आकाशमें विचरण करता है, जिह्वा भी आकाशमें जाकर संचरण करती है और दृष्टि दोनों भौंहोंके अन्तर्गत स्थिर रहती है, वही खेचरी मुद्रा होती है। हे नारद! सिद्धासनके समान कोई आसन नहीं है, कुम्भक वायुके समान कोई वायु नहीं है और खेचरी मुद्राके समान कोई मुद्रा नहीं है, यह ध्रुव सत्य है। घण्टा-ध्वनिके समान प्लुत स्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हुए श्वासको यत्नपूर्वक

स्थिरासने स्थिरो भूत्वा निरहङ्कारनिर्ममः।
लक्षणं नारद मुने शृणु सिद्धासनस्य च॥ ६६

योनिस्थानकमङ्घ्रिमूलघटितं कृत्वा दृढं विन्यसे-
न्मेढ्रे पादमथैकमेव हृदयं कृत्वा समं विग्रहम्।
स्थाणुः संयमितेन्द्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरन्तरं
तिष्ठत्येतदतीव योगिसुखदं सिद्धासनं प्रोच्यते॥ ६७

आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम्।
गायत्री छन्दसां मातरिदं ब्रह्म जुषस्व मे॥ ६८

यदह्ना कुरुते पापं तदह्नात्प्रतिमुच्यते।
यद्रात्र्या कुरुते पापं तद्रात्र्यात्प्रतिमुच्यते॥ ६९

सर्ववर्णे महादेवि सन्ध्याविद्ये सरस्वति।
अजरे अमरे देवि सर्वदेवि नमोऽस्तु ते॥ ७०

तेजोऽसीत्यादिमन्त्रेण देवीमावाहयेत्ततः।
यत्कृतं त्वदनुष्ठानं तत्सर्वं पूर्णमस्तु मे॥ ७१

ततः शापविमोक्षाय विधानं सम्यगाचरेत्।
ब्रह्मशापस्ततो विश्वामित्रस्य च तथैव च॥ ७२

वसिष्ठशाप इत्येतत्त्रिविधं शापलक्षणम्।
ब्रह्मणः स्मरणेनैव ब्रह्मशापो निवर्तते॥ ७३

विश्वामित्रस्मरणतो विश्वामित्रस्य शापतः।
वसिष्ठस्मरणादेव तस्य शापो विनश्यति॥ ७४

हृत्पद्ममध्ये पुरुषं प्रमाणं
सत्यात्मकं सर्वजगत्स्वरूपम्।
ध्यायामि नित्यं परमात्मसंज्ञं
चिद्रूपमेकं वचसामगम्यम्॥ ७५

रोककर अहंकार तथा ममतासे रहित होकर स्थिर भावसे स्थिरासनपर बैठना चाहिये। हे नारद! हे मुने! अब आप सिद्धासनका लक्षण सुनिये। ६२-६६॥

सिद्धासनमें एक पैरका मूल लिंगके मूलस्थानपर करके दूसरे पैरका मूल अण्डकोशके नीचे दृढ़तापूर्वक टिकाना चाहिये। हृदय आदि तथा शरीरको सीधा रखते हुए स्थाणुके रूपमें तथा संयमित इन्द्रियोंवाला होकर दोनों भौंहोंके बीचमें अचल दृष्टिसे देखते हुए स्थिर रहना चाहिये। योगियोंके लिये अत्यन्त सुखदायक इस आसनको सिद्धासन कहा जाता है॥ ६७॥

[हे नारद! अब मैं देवीके आवाहन तथा नमस्कारका मन्त्र बताता हूँ]—हे छन्दोंकी माता! आप वर प्रदान करनेवाली भगवती गायत्री हैं। आप अक्षरब्रह्मरूप हैं। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप यहाँ आइये और मुझपर प्रसन्न होइये। मनुष्य दिनमें जो पाप करता है, वह पाप सायंकालीन उपासनासे नष्ट हो जाता है और जो पाप रातमें करता है, वह प्रात:कालीन उपासनासे मिट जाता है। हे सर्ववर्णस्वरूपिणि! हे महादेवि! हे सन्ध्याविद्ये! हे सरस्वति! हे अजरे! हे अमरे! हे देवि! हे सर्वदेवि! आपको नमस्कार है॥ ६८—७०॥

तदनन्तर '**तेजोऽसीति०**' आदि मन्त्रसे देवीका आवाहन करना चाहिये। पुनः इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे कि मैंने जो कुछ भी आपका अनुष्ठान किया है, मेरा वह सब कार्य पूर्ण हो॥ ७१॥

तत्पश्चात् शापसे मुक्त होनेके लिये सम्यक् प्रकारसे यत्न करना चाहिये। ब्रह्मशाप, विश्वामित्रशाप तथा वसिष्ठशाप—यह तीन प्रकारका शाप है। ब्रह्माका स्मरण करनेसे ही ब्रह्मशाप मिट जाता है। इसी प्रकार विश्वामित्रका स्मरण करनेसे विश्वामित्रके शापसे तथा वसिष्ठका स्मरण करनेसे वसिष्ठके शापसे निवृत्ति हो जाती है॥ ७२—७४॥

[हे नारद! परमात्माका इस प्रकार ध्यान करे]—मैं पुरुषाकार, सत्यात्मक, सम्पूर्ण जगत्के साक्षात् विग्रह, अद्वितीय, चिद्रूप, वाणीसे अगम्य, शाश्वत तथा परमात्मा संज्ञावाले परमेश्वरका अपने हृदयकमलमें नित्य ध्यान करता हूँ॥ ७५॥

अथ न्यासविधिं वक्ष्ये सन्ध्याया अङ्गसम्भवम्।
ॐकारं पूर्ववद्योज्यं ततो मन्त्रानुदीरयेत्॥ ७६

भूरित्युक्त्वा च पादाभ्यां नम इत्येव चोच्चरेत्।
भुवः पूर्वं तु जानुभ्यां स्वः कटिभ्यां नमो वदेत्॥ ७७

महर्नाभ्यै जनश्चैव हृदयाय ततस्तपः।
कण्ठाय च ततः सत्यं ललाटे परिकीर्तयेत्॥ ७८

अङ्गुष्ठाभ्यां तत्सवितुस्तर्जनीभ्यां वरेण्यकम्।
भर्गो देवस्य मध्याभ्यां धीमहीत्येव कीर्तयेत्॥ ७९
अनामाभ्यां कनिष्ठाभ्यां धियो यो नः पदं वदेत्।
प्रचोदयात्करपृष्ठतलयोर्विन्यसेत्सुधीः ॥ ८०

ब्रह्मात्मने तत्सवितुर्हृदयाय नमस्तथा।
विष्ण्वात्मने वरेण्यं च शिरसे नम इत्यपि॥ ८१

भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै प्रकीर्तितम्।
शक्त्यात्मने धीमहीति कवचाय ततः परम्॥ ८२

कालात्मने धियो यो नो नेत्रत्रय उदीरितम्।
प्रचोदयाच्च सर्वात्मनेऽस्त्राय परिकीर्तितम्॥ ८३

अक्षरन्यासमेवाग्रे कथयामि महामुने।
गायत्रीवर्णसम्भूतन्यासः पापहरः परः॥ ८४

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य वर्णन्यासः प्रकीर्तितः।
तत्कारमादावुच्चार्य पादाङ्गुष्ठद्वये न्यसेत्॥ ८५

सकारं गुल्फयोस्तद्वद्विकारं जङ्घयोर्न्यसेत्।
जान्वोस्तुकारं विन्यस्य ऊर्वोश्चैव वकारकम्॥ ८६

रेकारं च गुदे न्यस्य णिकारं लिङ्ग एव च।
कट्यां यकारमेवात्र भकारं नाभिमण्डले॥ ८७

गोकारं हृदये न्यस्य देकारं स्तनयोर्द्वयोः।
वकारं हृदि विन्यस्य स्यकारं कण्ठकूपके॥ ८८

हे नारद! अब मैं सन्ध्याके प्रधान अंगस्वरूप न्यासकी विधिका वर्णन करूँगा। सभी मन्त्रोंके पूर्व ॐकार लगाना चाहिये, इसके बाद उन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ७६॥

'**ॐ भूः पादाभ्यां नमः**' ऐसा बोलकर दोनों पैरोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार '**ॐ भुवः जानुभ्यां नमः**' बोलकर जानुका, '**ॐ स्वः कटिभ्यां नमः**' बोलकर कमरका, '**ॐ महः नाभ्यै नमः**' बोलकर नाभिका, '**ॐ जनः हृदयाय नमः**' बोलकर हृदयका, '**ॐ तपः कण्ठाय नमः**' बोलकर कण्ठका और '**ॐ सत्यं ललाटाय नमः**' बोलकर ललाटका स्पर्श करना चाहिये॥ ७७-७८॥

'**ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः**', '**ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः**', '**ॐ भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः**', '**ॐ धीमहि अनामिकाभ्यां नमः**', '**ॐ धियो यो नः कनिष्ठाकाभ्यां नमः**', '**ॐ प्रचोदयात् करतल-करपृष्ठाभ्यां नमः**'—इस प्रकार उच्चारण करके बुद्धिमान् पुरुषको करन्यास करना चाहिये॥ ७९-८०॥

'**ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः**', '**ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे नमः**', '**ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै नमः**', '**ॐ धीमहि शक्त्यात्मने कवचाय नमः**', '**ॐ धियो यो नः कालात्मने नेत्रत्रयाय नमः**', '**ॐ प्रचोदयात् सर्वात्मने अस्त्राय नमः**'—इस तरहसे उच्चारण करके हृदय आदि अंगोंमें न्यास करना चाहिये॥ ८१—८३॥

हे महामुने! अब इसके आगे मैं अक्षरन्यास बता रहा हूँ। गायत्रीके वर्णोंसे किया जानेवाला यह न्यास श्रेष्ठ तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। पहले प्रणवका उच्चारण करके वर्णन्यास करनेकी विधि बतायी गयी है। आरम्भमें 'तत्'कारका उच्चारण करके पैरके दोनों अँगूठोंमें न्यास करना चाहिये। 'स'कारका उच्चारण करके दोनों गुल्फोंमें तथा 'वि'कारका उच्चारण करके दोनों जंघोंमें न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् 'तु'कारका उच्चारण करके दोनों जानुओंमें न्यास करके 'व'कारका दोनों उरुओंमें, 'रे'कारका गुदामें, 'णि'कारका लिंगमें, 'य'कारका कटिभागमें, 'भ'कारका नाभिमण्डलमें, 'गो'कारका

धीकारं मुखदेशे तु मकारं तालुदेशके।
हिकारं नासिकाग्रे तु धिकारं नेत्रमण्डले॥ ८९

भ्रूमध्ये चैव योकारं योकारं च ललाटके।
नकारं वै पूर्वमुखे प्रकारं दक्षिणे मुखे॥ ९०

चोकारं पश्चिममुखे दकारं चोत्तरे मुखे।
याकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तकारं व्यापकं न्यसेत्॥ ९१

एतन्न्यासविधिं केचिन्नेच्छन्ति जपतत्पराः।
ततो ध्यायेन्महादेवीं जगन्मातरमम्बिकाम्॥ ९२

भास्वज्जपाप्रसूनाभां कुमारीं परमेश्वरीम्।
रक्ताम्बुजासनारूढां रक्तगन्धानुलेपनाम्॥ ९३

रक्तमाल्याम्बरधरां चतुरास्यां चतुर्भुजाम्।
द्विनेत्रां स्रुक्स्रुवौ मालां कुण्डिकां चैव बिभ्रतीम्॥ ९४

सर्वाभरणसन्दीप्तामृग्वेदाध्यायिनीं पराम्।
हंसपत्रामाहवनीयमध्यस्थां ब्रह्मदेवताम्॥ ९५

चतुष्पदामष्टकुक्षिं सप्तशीर्षां महेश्वरीम्।
अग्निवक्त्रां रुद्रशिखां विष्णुचित्तां तु भावयेत्॥ ९६

ब्रह्मा तु कवचं यस्या गोत्रं सांख्यायनं स्मृतम्।
आदित्यमण्डलान्तःस्थां ध्यायेद्देवीं महेश्वरीम्॥ ९७

एवं ध्यात्वा विधानेन गायत्रीं वेदमातरम्।
ततो मुद्राः प्रकुर्वीत देव्याः प्रीतिकराः शुभाः॥ ९८

हृदयमें, 'दे'कारका दोनों स्तनोंमें, 'व'कारका हृदयमें, 'स्य'कारका कण्ठकूपमें, 'धी'कारका मुखमें, 'म'कारका तालुदेशमें, 'हि'कारका नासिकाके अग्रभागमें, 'धि'-कारका नेत्रमण्डलमें, 'यो'कारका भ्रूमध्यमें, 'यो'कारका ललाटमें, 'न'कारका मुखके पूर्व भागमें, 'प्र'कारका मुखके दक्षिण भागमें, 'चो'कारका मुखके पश्चिम भागमें, 'द'कारका मुखके उत्तर भागमें, 'या'कारका मस्तकमें तथा 'त'कारका सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये॥ ८४—९१॥

जपमें तत्पर रहनेवाले कुछ लोग न्यासकी इस विधिको अभीष्ट नहीं मानते हैं। न्यासके पश्चात् जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली महाभगवती अम्बिकाका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—इन परमेश्वरीका विग्रह तेजोमय जपाकुसुमकी आभाके तुल्य है, ये कुमारी हैं, ये रक्त-कमलके आसनपर अवस्थित हैं, इनका श्रीविग्रह रक्त-चन्दनसे अनुलिप्त है, ये रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुई हैं, ये चार मुखों तथा चार भुजाओंवाली हैं, इनके प्रत्येक मुखमें दो-दो नेत्र हैं। इन्होंने अपने हाथोंमें स्रुक्, स्रुवा, जपमाला तथा कमण्डलु धारण कर रखा है, ये सभी प्रकारके आभूषणोंसे प्रकाशित हैं, ये परा भगवती ऋग्वेदका पारायण कर रही हैं, ये हंसके वाहनपर विराजमान हैं, ये आहवनीय अग्निके मध्य स्थित हैं, ये ब्रह्माजीकी उपास्य देवता हैं, चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व) ही इनके चार पद हैं, आठ दिशा (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः, अन्तरिक्ष तथा अवान्तर)-रूपी कुक्षियोंसे ये शोभायमान हैं, सात सिरों (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास-पुराण तथा उपनिषद्)-से मण्डित हैं, ये अग्निरूप मुख; रुद्ररूप शिखा तथा विष्णुरूप चित्तवाली हैं—ऐसे स्वरूपवाली परमेश्वरी भगवतीकी भावना करनी चाहिये। ब्रह्मा जिनके कवच हैं तथा सांख्यायन जिनका गोत्र कहा गया है, आदित्यमण्डलमें विराजमान ऐसी भगवती महेश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ९२—९७॥

इस प्रकार विधिपूर्वक वेदमाता गायत्रीका ध्यान करनेके अनन्तर भगवतीको प्रसन्न करनेवाली कल्याणकारी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९८॥

सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुष्कं पञ्चकं तथा॥ ९९
षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सम्मुखोन्मुखम्॥ १००
विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा॥ १०१
चतुर्विंशतिमुद्राश्च गायत्र्याः सम्प्रदर्शयेत्।
शताक्षरां च गायत्रीं सकृदावर्तयेत्सुधीः॥ १०२
चतुर्विंशत्यक्षराणि गायत्र्याः कीर्तितानि हि।
जातवेदसनाम्नीं च ऋचमुच्चारयेत्ततः॥ १०३
त्र्यम्बकस्यर्चमावृत्य गायत्री शतवर्णका।
भवतीयं महापुण्या सकृज्जप्या बुधैरियम्॥ १०४
ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्तथैव च।
चतुर्विंशत्यक्षरां च गायत्रीं प्रोच्चरेत्ततः॥ १०५
एवं नित्यं जपं कुर्याद् ब्राह्मणो विप्रपुङ्गवः।
स समग्रं फलं प्राप्य सन्ध्यायाः सुखमेधते॥ १०६

सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—इन चौबीस मुद्राओंको गायत्रीके समक्ष प्रदर्शित करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि सौ अक्षरोंवाली गायत्रीकी एक आवृत्ति करे॥ ९९—१०२॥

गायत्रीके चौबीस अक्षर तो बताये ही गये हैं। उसके बाद '**जातवेदस**' नामक ऋचाका तथा त्र्यम्बक ऋचा (**त्र्यम्बकं यजामहे०**)-की आवृत्ति करनेसे यह सौ अक्षरोंवाली गायत्री होती है*। विद्वानोंको एक बार इस महापुण्यदायिनी गायत्रीका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले ॐकारका उच्चारण करके '**भूर्भुवः स्वः**' के बाद चौबीस अक्षरोंवाली गायत्रीका जप करना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणको नित्य जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह विप्रश्रेष्ठ सन्ध्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त करके सुखी हो जाता है॥ १०३—१०६॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे सन्ध्योपासननिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

गायत्री-महिमा

श्रीनारायण उवाच

भिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्याप्रणाशिनी।
अभिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति॥ १

अच्छिन्नपादागायत्रीजपं कुर्वन्ति ये द्विजाः।
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति कल्पकोटिशतानि च॥ २

सम्पुटैका षडोङ्कारा गायत्री विविधा मता।
धर्मशास्त्रपुराणेषु इतिहासेषु सुव्रत॥ ३

पञ्चप्रणवसंयुक्तां जपेदित्यनुशासनम्।
जपसंख्याष्टभागान्ते पादो जप्यस्तुरीयकः॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे नारद! भिन्न पादवाली गायत्री ब्रह्महत्याका शमन करनेवाली है तथा अभिन्न पादवाली गायत्रीके जपसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो द्विज अभिन्न पादवाली गायत्रीका जप करते हैं, वे कई सौ करोड़ कल्पोंतक नीचे मुख करके लटके हुए रहते हैं॥ १-२॥

हे सुव्रत! धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहासोंमें गायत्री विविध प्रकारकी मानी गयी है; यथा—प्रणवसे सम्पुटित तथा छः ॐकारसे संयुक्त। पाँच प्रणववाली गायत्रीका जप करना चाहिये, ऐसा भी शास्त्रोंका आदेश है। जितनी जप-संख्या करना अभीष्ट हो, उसके आठवें-आठवें भागके अन्तमें गायत्रीके चौथे पदका जप करना चाहिये। इस तरहसे जप करनेवाले

---

* **ॐभूभुर्वः स्वः तत्सवितुर्वरण्येम्। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नात्रैव सिन्धुं दुरितात्यग्निः**—यह सौ अक्षरकी गायत्री है। इसमें 'भूर्भुवः स्वः' तीन व्याहृतियाँ नहीं गिनी जाती हैं। ॐ (एक प्रणव)-से सम्पन्न है।

स द्विजः परमो ज्ञेयः परं सायुज्यमाप्नुयात्।
अन्यथा प्रजपेद्यस्तु स जपो विफलो भवेत्॥ ५

सम्पुटैका षडोङ्कारा भवेत्सा ऊर्ध्वरेतसाम्।
गृहस्थो ब्रह्मचारी वा मोक्षार्थी तुरीयां जपेत्॥ ६

तुरीयपादो गायत्र्याः परोरजसे सावदोम्।
ध्यानमस्य प्रवक्ष्यामि जपसाङ्गफलप्रदम्॥ ७

हृदि विकसितपद्मं सार्कसोमाग्निबिम्बं
प्रणवमयमचिन्त्यं यस्य पीठं प्रकल्प्यम्।
अचलपरमसूक्ष्मं ज्योतिराकाशसारं
भवतु मम मुदेऽसौ सच्चिदानन्दरूपः॥ ८

त्रिशूलयोनी सुरभिमक्षमालां च लिङ्गकम्।
अम्बुजं च महामुद्रामिति सप्त प्रदर्शयेत्॥ ९

या सन्ध्या सैव गायत्री सच्चिदानन्दरूपिणी।
भक्त्या तां ब्राह्मणो नित्यं पूजयेच्च नमेत्ततः॥ १०

ध्यातस्य पूजां कुर्वीत पञ्चभिश्चोपचारकैः।
लं पृथिव्यात्मने गन्धमर्पयामि नमो नमः॥ ११

हमाकाशात्मने पुष्पं चार्पयामि नमो नमः।
यं च वाय्वात्मने धूपं चार्पयामि ततो वदेत्॥ १२

रं च वह्न्यात्मने दीपमर्पयामि ततो वदेत्।
वममृतात्मने तस्मै नैवेद्यमपि चार्पयेत्॥ १३

यं रं लं वं हमिति च पुष्पाञ्जलिमथार्पयेत्।
एवं पूजां विधायाथ चान्ते मुद्राः प्रदर्शयेत्॥ १४

उस द्विजको परम ज्ञानी समझना चाहिये; वह द्विज परम सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो इसके विपरीत गायत्रीका जप करता है, वह जप व्यर्थ हो जाता है॥ ३—५॥

एक सम्पुटवाली तथा छः ॐकारवाली जो गायत्री है, वह केवल एकनिष्ठ ब्रह्मचारियोंके लिये है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा मोक्षकी कामना करनेवालेको तुरीया गायत्रीका जप करना चाहिये। गायत्रीका तुरीय पाद '**परोरजसे सावदोम्**' यही है। हे नारद! अब मैं इसके ध्यानके विषयमें बता रहा हूँ, जो जपके सांगोपांग फलको देनेवाला है॥ ६-७॥

हृदयदेशमें सूर्य-चन्द्र तथा अग्निमण्डलसे युक्त, प्रणवमय तथा अचिन्त्य विकसित कमल ही जिनका आसन है—वे ब्रह्म अचल, परम सूक्ष्म, ज्योतिस्वरूप तथा आकाशके साररूप हैं। वे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर मेरी प्रसन्नताके हेतु बनें॥ ८॥

त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अम्बुज तथा महामुद्रा—ये सात मुद्राएँ गायत्रीको प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९॥

जो सन्ध्या हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी गायत्री हैं। ब्राह्मणको उन गायत्रीका नित्य पूजन तथा नमन करना चाहिये॥ १०॥

ध्यान किये गये देवताकी पाँच उपचारोंसे [मानसिक] पूजा करनी चाहिये। '**लं**' पृथ्वीस्वरूपिणी देवीको गन्ध अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। '**हं**' आकाशस्वरूपिणी देवीको पुष्प अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। तत्पश्चात् '**यं**' वायुस्वरूपिणी देवीको धूप अर्पित करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। तदनन्तर '**रं**' अग्निस्वरूपिणी देवीको दीपक अर्पित करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। पुनः '**वं**' अमृतस्वरूपिणी देवीको नैवेद्य भी (उसी प्रकार) अर्पित करना चाहिये॥ ११—१३॥

अन्तमें यं, रं, लं, वं, हं—ऐसा उच्चारण करके पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिये। इस प्रकार मानसिक पूजन करनेके उपरान्त मुद्राएँ दिखानी चाहिये॥ १४॥

ध्यायेत्तु मनसा देवीं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः।
न कम्पयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥ १५

विधिनाष्टोत्तरशतमष्टाविंशतिरेव वा।
दशवारमशक्तो वा नातो न्यूनं कदाचन॥ १६

तत उद्वासयेद्देवीमुत्तमेत्यनुवाकतः।
न गायत्रीं जपेद्विद्वाञ्जलमध्ये कथञ्चन॥ १७

यतः साग्निमुखी प्रोक्तेत्याहुः केचिन्महर्षयः।
सुरभिर्ज्ञानशूर्पं च कूर्मो योनिश्च पङ्कजम्॥ १८

लिङ्गं निर्वाणकं चैव जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्।
यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम्॥ १९

तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनि।
गायत्रीतर्पणं चातः करणीयं महामुने॥ २०

गायत्री छन्द आख्यातं विश्वामित्रऋषिः स्मृतः।
सविता देवता प्रोक्ता विनियोगश्च तर्पणे॥ २१

भूरित्युक्त्वा च ऋग्वेदपुरुषं तर्पयामि च।
भुव इत्येतदुक्त्वा च यजुर्वेदमथो वदेत्॥ २२

स्वर्व्याहृतिं समुक्त्वा च सामवेदं समुच्चरेत्।
मह इत्येतदुक्त्वान्तेऽथर्ववेदं च तर्पयेत्॥ २३

जनः पदान्त इतिहासपुराणमितीरयेत्।
तपः सर्वागमं चैव पुरुषं तर्पयामि च॥ २४

सत्यं च सत्यलोकाख्यपुरुषं तर्पयामि च।
ॐ भूर्भूर्लोकपुरुषं तर्पयामि ततो वदेत्॥ २५

भुवश्चेति भुवर्लोकपुरुषं तर्पयामि च।
स्वः स्वर्गलोकपुरुषं तर्पयामि ततः परम्॥ २६

मनसे देवीका ध्यान करना चाहिये और मन्त्रका उच्चारण धीरे-धीरे करना चाहिये। इस समय सिर तथा गर्दन नहीं हिलाना चाहिये और दाँत नहीं दिखाने चाहिये॥ १५॥

एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा अशक्त होनेकी स्थितिमें दस बार ही विधिपूर्वक गायत्रीका जप करना चाहिये, किंतु इससे कम जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १६॥

इसके बाद '**उत्तम०**' इत्यादि अनुवाक् मन्त्र उच्चारण करके देवीका विसर्जन करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि जलमें स्थित रहकर गायत्रीमन्त्रका जप कभी भी न करे; क्योंकि वे अग्निमुखी कही गयी हैं—ऐसा कुछ महर्षियोंने कहा है। जपके अनन्तर सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज, लिंग और निर्वाण—ये आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। इसके बाद इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—कश्यपके प्रति प्रिय सम्भाषण करनेवाली हे देवि! मेरे उच्चारणमें अक्षरों तथा पदोंका जो विचलन हुआ हो और स्वर तथा व्यंजनसम्बन्धी जो दोष रहा हो; उन सबको आप क्षमा कीजिये। हे महामुने! इसके बाद गायत्री-तर्पण करना चाहिये॥ १७—२०॥

'गायत्री' इसका छन्द कहा गया है, 'विश्वामित्र' इसके ऋषि कहे गये हैं और 'सविता' इसके देवता कहे गये हैं। तर्पणक्रियामें इसका विनियोग किया जाता है। '**भूः**' ऐसा बोलकर ऋग्वेद-पुरुषका तर्पण करता हूँ और '**भुवः**' ऐसा उच्चारण करके यजुर्वेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**स्वः**' व्याहृतिका उच्चारण करके सामवेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे और '**महः**' ऐसा बोलकर अथर्ववेदका तर्पण करे। पुनः '**जनः**' पदके साथ इतिहास-पुराणका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**तपः**' से सम्पूर्ण आगमस्वरूप पुरुषका और '**सत्यं**' से सत्यलोकाख्य पुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ भूः**' से भूर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ, '**भुवः**' से भुवर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ तथा '**स्वः**' से स्वर्गलोकपुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। इसके बाद '**ॐ भूः**' से एकपदा नामवाली गायत्रीका

ॐभूरेकपदां नाम गायत्रीं तर्पयामि च।
भुवो द्विपदां गायत्रीं तर्पयामीति कीर्तयेत्॥ २७

स्वश्च त्रिपदां गायत्रीं तर्पयामि ततो वदेत्।
ॐभूर्भुवः स्वश्चेति तथा गायत्रीं च चतुष्पदाम्॥ २८

उषसीं चैव गायत्रीं सावित्रीं च सरस्वतीम्।
वेदानां मातरं पृथ्वीमजां चैव तु कौशिकीम्॥ २९

साङ्कृतिं वै सार्वजितिं गायत्रीं तर्पणे वदेत्।
तर्पणान्ते च शान्त्यर्थं जातवेदसमीरयेत्॥ ३०

मानस्तोकेति मन्त्रं च शान्त्यर्थं प्रजपेत्सुधीः।
ततोऽपि त्र्यम्बको मन्त्रः शान्त्यर्थः परिकीर्तितः॥ ३१

तच्छंयोरिति मन्त्रं च जपेच्छान्त्यर्थमेव तु।
अतो देवा इति द्वाभ्यां सर्वाङ्गस्पर्शनं चरेत्॥ ३२

स्योनापृथिविमन्त्रेण भूम्यै कुर्यात्प्रणामकम्।
यथाविधि च गोत्रादीनुच्चरेद् द्विजसत्तमः॥ ३३

एवं विधानं सन्ध्यायाः प्रातःकाले प्रकीर्तितम्।
सन्ध्याकर्म समाप्यान्तेऽप्यग्निहोत्रं स्वयं हुनेत्॥ ३४

पञ्चायतनपूजां च ततः कुर्यात्समाहितः।
शिवां शिवं गणपतिं सूर्यं विष्णुं तथार्चयेत्॥ ३५

पौरुषेण तु सूक्तेन व्याहृत्या वा समाहितः।
मूलमन्त्रेण वा कुर्याद् ह्रीश्च ते इति मन्त्रतः॥ ३६

भवानीं तु यजेन्मध्ये तथेशान्यां तु माधवम्।
आग्नेय्यां गिरिजानाथं गणेशं रक्षसां दिशि॥ ३७

वायव्यामर्चयेत्सूर्यमिति देवस्थितिक्रमः।
षोडशानुपचारांश्च षोडशर्ग्भिर्हरेन्नरः॥ ३८

देवीमभ्यर्च्य पुरतो यजेदन्याननुक्रमात्।
न देवीपूजनात्पुण्यमधिकं क्वचिदीक्ष्यते॥ ३९

तर्पण कर रहा हूँ और '**भुवः**' से द्विपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। '**स्वः**' से त्रिपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ और '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' से चतुष्पदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—इस प्रकार बोलना चाहिये॥ २१—२८॥

तदनन्तर उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी, सांकृति और सार्वजिति—इन नामोंको उच्चारित करके गायत्रीदेवीका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अन्तमें शान्तिके लिये '**जातवेदसम्०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शान्तिके लिये '**मानस्तोके०**'—इस मन्त्रका भी पाठ करे। तत्पश्चात् शान्तिके लिये '**त्र्यम्बकम्**'—इस मन्त्रका भी पाठ करना बताया गया है। शान्तिहेतु '**तच्छंयो०**' इस मन्त्रका भी जप करना चाहिये। इसके बाद '**देवा गातु०**' इस मन्त्रके द्वारा अपने दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करना चाहिये और '**स्योना पृथिवी०**' मन्त्रके द्वारा पृथ्वीको प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम करते समय द्विजश्रेष्ठको विधिके अनुसार अपने गोत्र आदिका उच्चारण कर लेना चाहिये। प्रातःकालीन सन्ध्या-सम्बन्धी इस प्रकारका विधान कहा गया है। सन्ध्याकर्म समाप्त करनेके उपरान्त स्वयं अग्निहोत्र भी करना चाहिये॥ २९—३४॥

तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो पंचायतनपूजा करनी चाहिये; इसमें शिवा, शिव, गणेश, सूर्य तथा विष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। पुरुषसूक्त, व्याहृति, मूल मन्त्र अथवा '**ह्रीश्च ते०**' इस मन्त्रसे समाहितचित्त होकर पूजन करना चाहिये॥ ३५-३६॥

देवीकी पंचायतनपूजामें मण्डलके मध्यमें भवानीका पूजन करना चाहिये। मण्डलके ईशानकोणमें माधव, अग्निकोणमें पार्वतीपति शंकर, नैर्ऋत्य-कोणमें गणेश और वायव्यकोणमें सूर्यका अर्चन करना चाहिये। देवी-पंचायतनमें देवताओंकी स्थापनाका यही क्रम है। मनुष्य सोलह ऋचाओंका पाठ करके सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पित करे॥ ३७-३८॥

सर्वप्रथम देवीकी पूजा करके ही क्रमशः अन्य देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। देवीके पूजनसे बढ़कर अधिक पुण्यप्रद कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता॥ ३९॥

अत एव तु सन्ध्यासु सन्ध्योपास्तिः श्रुतीरिता।
नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणेश्वरम्॥ ४०
दूर्वाभिर्नार्चयेद्दुर्गां केतकैर्न महेश्वरम्।
मल्लिकाजातिकुसुमं कुटजं पनसं तथा॥ ४१
किंशुकं बकुलं कुन्दं लोध्रं तु करवीरकम्।
शिंशपाऽपराजितापुष्पं बन्धूकागस्त्यपुष्पके॥ ४२
मदन्तं सिन्दुवारं च पालाशकुसुमं तथा।
दूर्वाङ्कुरं बिल्वदलं कुशमञ्जरिकां तथा॥ ४३
शल्लकीमाधवीपुष्पमर्कमन्दारपुष्पकम्।
केतकीं कर्णिकारं च कदम्बकुसुमं तथा॥ ४४
पुन्नागश्चम्पकस्तद्वद्यूथिकातगरौ तथा।
एवमादीनि पुष्पाणि देवीप्रियकराणि च॥ ४५
गुग्गुलस्य भवेद्धूपो दीपः स्यात्तिलतैलतः।
कृत्वेत्थं देवतापूजां ततो मूलमनुं जपेत्॥ ४६
एवं पूजां समाप्यैव वेदाभ्यासं चरेद् बुधः।
ततः स्ववृत्त्या कुर्वीत पोष्यवर्गार्थसाधनम्।
तृतीयदिनभागे तु नियमेन विचक्षणः॥ ४७

इसीलिये सन्ध्याकालोंमें सन्ध्या (गायत्री)-की उपासना श्रुतियोंमें कही गयी है। अक्षतसे भगवान् विष्णुकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वासे दुर्गाकी तथा केतकी-पुष्पसे शंकरकी पूजा नहीं करनी चाहिये। मल्लिका, जातिपुष्प, कुटज, पनस, किंशुक, बकुल, कुन्द, लोध्र, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, बन्धूक, अगस्त्य, मदंत, सिन्दुवार, पलाश-पुष्प, दूर्वांकुर, बिल्वदल, कुश-मंजरी, शल्लकी, माधवी, अर्क, मन्दार, केतकी, कर्णिकार, कदम्ब, नागकेसर, चम्पा, जूही और तगर आदि—ये पुष्प देवीको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले हैं॥ ४०—४५॥

भवानीके लिये गुग्गुलका धूप तथा तिलके तेलका दीपक अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंका पूजन करके मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। इस रीतिसे पूजा समाप्त करनेके अनन्तर ही विद्वान् व्यक्तिको वेदाभ्यासमें प्रवृत्त होना चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुषको दिनके तीसरे भागमें नियमपूर्वक अपनी वृत्तिके अनुसार अपने आश्रितवर्गके भरण-पोषणहेतु प्रयत्न करना चाहिये॥ ४६-४७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
सन्ध्यादिकृत्यवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

~~~

अथाष्टादशोऽध्यायः

भगवतीकी पूजा-विधिका वर्णन, अन्नपूर्णादेवीके माहात्म्यमें राजा बृहद्रथका आख्यान

नारद उवाच

पूजाविशेषं श्रीदेव्याः श्रोतुमिच्छामि मानद।
येनाश्रितेन मनुजः कृतकृत्यत्वमावहेत्॥ १

नारदजी बोले—हे मानद! अब मैं श्रीदेवीकी विशेष पूजाका विधान सुनना चाहता हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

देवर्षे शृणु वक्ष्यामि श्रीमातुः पूजनक्रमम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं साक्षात्समस्तापन्निवारणम्॥ २

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! समस्त आपदाओंको दूर करनेवाले तथा साक्षात् भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले श्रीमाताके पूजनका क्रम मैं बता रहा हूँ; आप इसे सुनिये॥ २॥

आचम्य मौनी सङ्कल्प्य भूतशुद्ध्यादिकं चरेत्।
मातृकान्यासपूर्वं तु षडङ्गन्यासमाचरेत्॥ ३

वाक्संयमीको सर्वप्रथम आचमन करके संकल्प करनेके बाद भूतशुद्धि आदि करनी चाहिये। पुनः पहले मातृकान्यास करके षडंगन्यास करना चाहिये॥ ३॥

शङ्खस्य स्थापनं कृत्वा सामान्यार्घ्यं विधाय च।
पूजाद्रव्याणि चास्त्रेण प्रोक्षयेन्मतिमान्नरः॥ ४

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शंखकी स्थापना करके कलश-स्थापन करनेके अनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे समस्त पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। इसके बाद
~~~

गुरोरनुज्ञामादाय ततः पूजां समारभेत्।
पीठपूजां पुरा कृत्वा देवीं ध्यायेत्ततः परम्॥ ५

आसनाद्युपचारैश्च भक्तिप्रेमयुतः सदा।
स्नापयेत्परदेवीं तां पञ्चामृतरसादिभिः॥ ६

पौण्ड्रेक्षुरसपूर्णैस्तु कलशैः शतसंख्यकैः।
स्नापयेद्यो महेशानीं न स भूयोऽभिजायते॥ ७

यश्च चूतरसैरेवं स्नापयेज्जगदम्बिकाम्।
वेदपारायणं कृत्वा रसेनेक्षूद्भवेन वा॥ ८

तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती।
यस्तु द्राक्षारसेनैव वेदपारायणं चरन्॥ ९

अभिषिञ्चेन्महेशानीं सकुटुम्बो नरोत्तमः।
रसरेणुप्रमाणं च देवीलोके महीयते॥ १०

कर्पूरागुरुकाश्मीरकस्तूरीपङ्कपङ्किलैः।
सलिलैः स्नापयेद्देवीं वेदपारायणं चरन्॥ ११

भस्मीभवन्ति पापानि शतजन्मार्जितानि च।
यो दुग्धकलशैर्देवीं स्नापयेद्वेदपाठतः॥ १२

आकल्पं स वसेन्नित्यं तस्मिन् वै क्षीरसागरे।
यस्तु दध्नाभिषिञ्चेत्तां दधिकुल्यापतिर्भवेत्॥ १३

मधुना च घृतेनैव तथा शर्करयापि च।
स्नापयेन्मधुकुल्यादिनदीनां स पतिर्भवेत्॥ १४

सहस्रकलशैर्देवीं स्नापयन्भक्तितत्परः।
इह लोके सुखी भूत्वाप्यन्यलोके सुखी भवेत्॥ १५

क्षौमं वस्त्रद्वयं दत्त्वा वायुलोकं स गच्छति।
रत्ननिर्मितभूषाणां दाता निधिपतिर्भवेत्॥ १६

काश्मीरचन्दनं दत्त्वा कस्तूरीबिन्दुभूषितम्।
तथा सीमन्तसिन्दूरं चरणेऽलक्तपत्रकम्॥ १७
इन्द्रासने समारूढो भवेद्देवपतिः परः।

गुरुसे आदेश प्राप्त करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। पहले पीठ-पूजन करके बादमें देवीका ध्यान करना चाहिये॥ ४-५॥

भगवतीको भक्ति तथा प्रेमसे युक्त होकर आसन आदि उपचार अर्पण करनेके पश्चात् पंचामृत तथा रस आदिसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। जो मनुष्य पौण्ड्र नामक गन्नेके रससे भरे हुए सौ कलशोंद्वारा भगवती महेश्वरीको स्नान कराता है, वह पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता॥ ६-७॥

इसी प्रकार जो पुरुष वेदका पारायण करके आमके रससे तथा ईखके रससे जगदम्बिकाको स्नान कराता है, लक्ष्मी तथा सरस्वती उसके घरका त्याग कभी नहीं करतीं। जो श्रेष्ठ मानव वेदपारायण करते हुए द्राक्षारससे भगवती महेश्वरीका अभिषेक करता है, वह अपने कुटुम्ब-सहित उस रसमें विद्यमान रेणुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८—१०॥

वेद-पारायण करते हुए जो पुरुष कर्पूर, अगुरु, केसर, कस्तूरी और कमलके जलसे भगवतीको स्नान कराता है; उसके सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पाप भस्म हो जाते हैं। जो पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए दुग्धसे पूर्ण कलशोंसे देवीको स्नान कराता है, वह क्षीरसागरमें कल्पपर्यन्त निरन्तर वास करता है। जो उन भगवतीको दधिसे स्नापित करता है, वह दधिकुल्या नदीका स्वामी होता है॥ ११—१३॥

इसी प्रकार जो मनुष्य मधुसे, घृतसे तथा शर्करासे भगवतीको स्नान कराता है, वह मधुकुल्या आदि नदियोंका अधिपति होता है॥ १४॥

भक्तिमें तत्पर होकर हजार कलशोंसे देवीको स्नान करानेवाला मनुष्य इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें भी सुखी होता है॥ १५॥

भगवतीको एक जोड़ा रेशमी वस्त्र प्रदान करके वह पुरुष वायुलोकमें जाता है। इसी प्रकार रत्नोंसे निर्मित आभूषण प्रदान करनेवाला निधिपति हो जाता है॥ १६॥

देवीको कस्तूरीकी बिन्दीसे सुशोभित केसरका चन्दन, ललाटपर सिन्दूर तथा उनके चरणोंमें महावर अर्पित करनेसे वह व्यक्ति इन्द्रासनपर विराजमान होकर दूसरे देवेन्द्रके रूपमें सुशोभित होता है॥ १७½॥

पुष्पाणि विविधान्याहुः पूजाकर्मणि साधवः॥ १८

तानि दत्त्वा यथालाभं कैलासं लभते स्वयम्।
बिल्वपत्राण्यमोघानि यो दद्यात्परशक्तये॥ १९

तस्य दुःखं कदाचिच्च क्वचिच्च न भविष्यति।
बिल्वपत्रत्रये रक्तचन्दनेन तु संल्लिखेत्॥ २०

मायाबीजत्रयं यत्नात्सुस्फुटं चातिसुन्दरम्।
मायाबीजादिकं नाम चतुर्थ्यन्तं समुच्चरेत्॥ २१

नमोऽन्तं परया भक्त्या देवीचरणपङ्कजे।
समर्पयेन्महादेव्यै कोमलं तच्च पत्रकम्॥ २२

य एवं कुरुते भक्त्या मनुत्वं लभते हि सः।
यस्तु कोटिदलैरेवं कोमलैरतिनिर्मलैः॥ २३

पूजयेद्भुवनेशानीं ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्।
कुन्दपुष्पैर्नवीनैस्तु लुलितैरष्टगन्धतः॥ २४

कोटिसङ्ख्यैः पूजयेत्तु प्राजापत्यं लभेद् ध्रुवम्।
मल्लिकामालतीपुष्पैरष्टगन्धेन लोलितैः॥ २५

कोटिसङ्ख्यैः पूजया तु जायते स चतुर्मुखः।
दशकोटिभिरप्येवं तैरेव कुसुमैर्मुने॥ २६

विष्णुत्वं लभते मर्त्यो यत्सुरेष्वपि दुर्लभम्।
विष्णुनैतद् व्रतं पूर्वं कृतं स्वपदलब्धये॥ २७

शतकोटिभिरप्येवं सूत्रात्मत्वं व्रजेद् ध्रुवम्।
व्रतमेतत्पुरा सम्यक्कृतं भक्त्या प्रयत्नतः॥ २८

तेन व्रतप्रभावेण हिरण्योदरतां व्रजेत्।
जपाकुसुमपुष्पस्य बन्धूककुसुमस्य च॥ २९

साधुपुरुषोंने पूजाकर्ममें प्रयुक्त होनेवाले अनेक प्रकारके पुष्पोंका वर्णन किया है; यथोपलब्ध उन पुष्पोंको देवीको अर्पण करके मनुष्य स्वयं कैलासधाम प्राप्त कर लेता है॥ १८½ ॥

जो मनुष्य पराशक्ति जगदम्बाको अमोघ बिल्वपत्र अर्पित करता है, उसे कभी किसी भी परिस्थितिमें दुःख नहीं होता है॥ १९½ ॥

तीन पत्तेवाले बिल्वदलपर लाल चन्दनसे यत्नपूर्वक अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरोंमें मायाबीज (ह्रीं) तीन बार लिखे। मायाबीज जिसके आदिमें हो, भुवनेश्वरी इस नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका उच्चारण करके उसके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर (**ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः**) इस मन्त्रसे महादेवी भगवतीके चरणकमलमें परम भक्तिपूर्वक वह कोमल बिल्वपत्र समर्पित करे। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक करता है, वह मनुत्व प्राप्त कर लेता है और जो अत्यन्त कोमल तथा निर्मल एक करोड़ बिल्वपत्रोंसे भुवनेश्वरीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका अधिपति होता है॥ २०—२३½ ॥

अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ नवीन तथा सुन्दर कुन्द-पुष्पोंसे जो उनकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे प्रजापतिका पद प्राप्त करता है। इसी प्रकार अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंसे भगवतीकी पूजाके द्वारा वह चतुर्मुख ब्रह्मा हो जाता है॥ २४-२५½ ॥

हे मुने! इसी तरह दस करोड़ उन्हीं पुष्पोंसे भगवतीका अर्चन करके मनुष्य विष्णुत्व प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। अपना विष्णुपद प्राप्त करनेके लिये भगवान् विष्णुने भी पूर्वकालमें यह व्रत किया था। सौ करोड़ पुष्पोंसे देवीकी पूजा करनेवाला मनुष्य सूत्रात्मत्व (सूक्ष्म ब्रह्मपद) अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। भगवान् विष्णुने भी पूर्व कालमें प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ सम्यक् प्रकारसे इस व्रतको अनुष्ठित किया था; उसी व्रतके प्रभावसे वे हिरण्यगर्भ हुए॥ २६—२८½ ॥

जपाकुसुम, बन्धूक और दाडिमका पुष्प भी देवीको अर्पित किया जाता है—ऐसी विधि कही गयी

दाडिमीकुसुमस्यापि विधिरेष उदीरितः।
एवमन्यानि पुष्पाणि श्रीदेव्यै विधिनार्पयेत्॥ ३०

तस्य पुण्यफलस्यान्तं न जानातीश्वरोऽपि सः।
तत्तदृतूद्भवैः पुष्पैर्नामसाहस्रसंख्यया॥ ३१

समर्पयेन्महादेव्यै प्रतिवर्षमतन्द्रितः।
य एवं कुरुते भक्त्या महापातकसंयुतः॥ ३२

उपपातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः।
देहान्ते श्रीपदाम्भोजं दुर्लभं देवसत्तमैः॥ ३३

प्राप्नोति साधकवरो मुने नास्त्यत्र संशयः।
कृष्णागुरुं सकर्पूरं चन्दनेन समन्वितम्॥ ३४

सिल्हकं चाज्यसंयुक्तं गुग्गुलेन समन्वितम्।
धूपं दद्यान्महादेव्यै येन स्याद्धूपितं गृहम्॥ ३५

तेन प्रसन्ना देवेशी ददाति भुवनत्रयम्।
दीपं कर्पूरखण्डैश्च दद्याद्देव्यै निरन्तरम्॥ ३६

सूर्यलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा।
शतदीपांस्तथा दद्यात्सहस्रान्वा समाहितः॥ ३७

नैवेद्यं पुरतो देव्याः स्थापयेत्पर्वताकृतिम्।
लेह्यैश्चोष्यैस्तथा पेयैः षड्रसैस्तु समाहितैः॥ ३८

नानाफलानि दिव्यानि स्वादूनि रसवन्ति च।
स्वर्णपात्रस्थितान्नानि दद्याद्देव्यै निरन्तरम्॥ ३९

तृप्तायां श्रीमहादेव्यां भवेत्तृप्तं जगत्त्रयम्।
यतस्तदात्मकं सर्वं रज्जौ सर्पो यथा तथा॥ ४०

ततः पानीयकं दद्याच्छुभं गङ्गाजलं महत्।
कर्पूरवालासंयुक्तं शीतलं कलशस्थितम्॥ ४१

है। इसी प्रकार अन्य पुष्प भी श्रीदेवीको विधिपूर्वक अर्पित करने चाहिये। उसके पुण्यफलकी सीमा वे ईश्वर भी नहीं जानते॥ २९-३०½ ॥

जिस-जिस ऋतुमें जो-जो पुष्प उपलब्ध हो सकें, सहस्रनामकी संख्याके अनुसार उन पुष्पोंको प्रमादरहित होकर प्रत्येक वर्ष भगवतीको समर्पित करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक ऐसा करता है, वह महापातकों तथा उपपातकोंसे युक्त होनेपर भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२½ ॥

हे मुने! ऐसा श्रेष्ठ साधक देहावसानके पश्चात् श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी दुर्लभ श्रीदेवीके चरणकमलको प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३३½ ॥

कृष्ण अगुरु, कर्पूर, चन्दन, सिल्हक (लोहबान), घृत और गुग्गुलसे संयुक्त धूप महादेवीको समर्पित करना चाहिये, जिससे मन्दिर धूपित हो जाय; इससे प्रसन्न होकर देवेश्वरी तीनों लोक प्रदान कर देती हैं॥ ३४-३५½ ॥

देवीको कर्पूर-खण्डोंसे युक्त दीपक निरन्तर अर्पित करना चाहिये; ऐसा करनेवाला उपासक सूर्यलोक प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। समाहितचित्त होकर एक सौ अथवा हजार दीपक देवीको प्रदान करने चाहिये॥ ३६-३७॥

देवीके सम्मुख पर्वतकी आकृतिके रूपमें नैवेद्यराशि स्थापित करे; जिसमें लेह्य, चोष्य, पेय तथा षड्रसोंवाले पदार्थ हों। अनेक प्रकारके दिव्य, स्वादिष्ट तथा रसमय फल एवं अन्न स्वर्णपात्रमें रखकर भगवतीको निरन्तर अर्पित करे॥ ३८-३९ ॥

श्रीमहादेवीके तृप्त होनेपर तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् उन्हींका आत्मरूप है; जिस प्रकार रज्जुमें सर्पका आभास मिथ्या है, उसी प्रकार जगत्का आभास भी मिथ्या है॥ ४० ॥

तत्पश्चात् अत्यन्त पवित्र गंगाजल भगवतीको पीनेके लिये निवेदित करे और कर्पूर तथा नारियल-जलसे युक्त कलशका शीतल जल भी देवीको समर्पित करे॥ ४१ ॥

ताम्बूलं च ततो देव्यै कर्पूरशकलान्वितम्।
एलालवङ्गसंयुक्तं मुखसौगन्ध्यदायकम्॥ ४२

दद्याद्देव्यै महाभक्त्या येन देवी प्रसीदति।
मृदङ्गवीणामुरजढक्कादुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ४३

तोषयेज्जगतां धात्रीं गायनैरतिमोहनैः।
वेदपारायणैः स्तोत्रैः पुराणादिभिरप्युत॥ ४४

छत्रं च चामरे द्वे च दद्याद्देव्यै समाहितः।
राजोपचारान् श्रीदेव्यै नित्यमेव समर्पयेत्॥ ४५

प्रदक्षिणां नमस्कारं कुर्याद्देव्या अनेकधा।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं जगदम्बां मुहुर्मुहुः॥ ४६

सकृत्स्मरणमात्रेण यत्र देवी प्रसीदति।
एतादृशोपचारैश्च प्रसीदेदत्र कः स्मयः॥ ४७

स्वभावतो भवेन्माता पुत्रेऽतिकरुणावती।
तेन भक्तौ कृतायां तु वक्तव्यं किं ततः परम्॥ ४८

अत्र ते कथयिष्यामि पुरा वृत्तं सनातनम्।
बृहद्रथस्य राजर्षेः प्रियं भक्तिप्रदायकम्॥ ४९

चक्रवाकोऽभवत्पक्षी क्वचिद्देशे हिमालये।
भ्रमन्नानाविधान्देशान्ययौ काशीपुरं प्रति॥ ५०

अन्नपूर्णामहास्थाने प्रारब्धवशतो द्विजः।
जगाम लीलया तत्र कणलोभादनाथवत्॥ ५१

कृत्वा प्रदक्षिणामेकां जगाम स विहायसा।
देशान्तरं विहायैव पुरीं मुक्तिप्रदायिनीम्॥ ५२

कालान्तरे ममारासौ गतः स्वर्गपुरीं प्रति।
बुभुजे विषयान्सर्वान् दिव्यरूपधरो युवा॥ ५३

तत्पश्चात् कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ों, लवंग तथा इलायचीसे युक्त और मुखको सुगन्धि प्रदान करनेवाला ताम्बूल अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवीको अर्पित करे, जिससे देवी प्रसन्न हो जायँ। इसके बाद मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का तथा दुन्दुभि आदिकी ध्वनियोंसे; अत्यन्त मनोहर गीतोंसे; वेद-पारायणोंसे; स्तोत्रोंसे तथा पुराण आदिके पाठसे जगत्‌को धारण करनेवाली भगवतीको सन्तुष्ट करना चाहिये॥ ४२—४४॥

तदनन्तर समाहितचित्त होकर देवीको छत्र तथा दो चँवर अर्पण करे। उन श्रीदेवीको नित्य राजोचित उपचार समर्पित करना चाहिये॥ ४५॥

अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा करे तथा उन्हें नमस्कार करे और जगद्धात्री जगदम्बासे बार-बार क्षमाप्रार्थना करे॥ ४६॥

एक बारके स्मरणमात्रसे जब देवी प्रसन्न हो जाती हैं तब इस प्रकारके पूजनोपचारोंसे वे प्रसन्न हो जायँ तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है?॥ ४७॥

माता स्वाभाविक रूपसे पुत्रपर अति करुणा करनेवाली होती है, फिर जो माताके प्रति भक्तिपरायण है, उसके विषयमें कहना ही क्या?॥ ४८॥

इस विषयमें मैं राजर्षि बृहद्रथसे सम्बद्ध एक रोचक तथा भक्तिप्रदायक सनातन पौराणिक आख्यानका वर्णन आपसे करूँगा॥ ४९॥

हिमालयपर किसी जगह एक चक्रवाक पक्षी रहता था। वह अनेकविध देशोंका भ्रमण करता हुआ काशीपुरी पहुँच गया॥ ५०॥

वहाँ वह पक्षी प्रारब्धवश अनाथकी भाँति अन्न-कणोंके लोभसे लीलापूर्वक भगवती अन्नपूर्णाके दिव्य धाममें जा पहुँचा॥ ५१॥

आकाशमें घूमते हुए वह पक्षी मन्दिरकी एक प्रदक्षिणा करके मुक्तिदायिनी काशीको छोड़कर किसी अन्य देशमें चला गया॥ ५२॥

कालान्तरमें वह मृत्युको प्राप्त हो गया और स्वर्ग चला गया। वहाँ एक दिव्य रूपधारी युवक होकर वह समस्त सुखोंका भोग करने लगा॥ ५३॥

कल्पद्वयं तथा भुक्त्वा पुनः प्राप भुवं प्रति।
क्षत्रियाणां कुले जन्म प्राप सर्वोत्तमोत्तमम्॥ ५४

बृहद्रथेति नाम्नाभूत्प्रसिद्धः क्षितिमण्डले।
महायज्वा धार्मिकश्च सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ ५५

त्रिकालज्ञः सार्वभौमो यमी परपुरञ्जयः।
पूर्वजन्मस्मृतिस्तस्य वर्तते दुर्लभा भुवि॥ ५६

इति श्रुत्वा किंवदन्तीं मुनयः समुपागताः।
कृतातिथ्या नृपेन्द्रेण विष्टरेषूषुरेव ते॥ ५७

पप्रच्छुर्मुनयः सर्वे संशयोऽस्ति महान्नृप।
केन पुण्यप्रभावेण पूर्वजन्मस्मृतिस्तव॥ ५८

त्रिकालज्ञानमेवापि केन पुण्यप्रभावतः।
ज्ञानं तवेति तज्ज्ञातुमागताः स्म तवान्तिकम्॥ ५९

वद निर्व्याजया वृत्त्या तदस्माकं यथातथम्।

श्रीनारायण उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा परमधार्मिकः॥ ६०

उवाच सकलं ब्रह्मन् त्रिकालज्ञानकारणम्।
श्रूयतां मुनयः सर्वे मम ज्ञानस्य कारणम्॥ ६१

चक्रवाकः स्थितः पूर्वं नीचयोनिगतोऽपि वा।
अज्ञानतोऽपि कृतवानन्नपूर्णाप्रदक्षिणाम्॥ ६२

तेन पुण्यप्रभावेण स्वर्गे कल्पद्वयस्थितिः।
त्रिकालज्ञानताप्यस्मिन्नभूज्जन्मनि सुव्रताः॥ ६३

को वेद जगदम्बायाः पदस्मृतिफलं कियत्।
स्मृत्वा तन्महिमानं तु पतन्त्यश्रूणि मेऽनिशम्॥ ६४

धिगस्तु जन्म तेषां वै कृतघ्नानां तु पापिनाम्।
ये सर्वमातरं देवीं स्वोपास्यां न भजन्ति हि॥ ६५

इस प्रकार दो कल्पतक वहाँ सुखोपभोग करनेके बाद वह पुनः पृथ्वीलोकमें आया। क्षत्रियोंके कुलमें उसने सर्वोत्तम जन्म प्राप्त किया और पृथ्वीमण्डलपर बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह महान् यज्ञनिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, इन्द्रियजयी, त्रिकालज्ञ, सार्वभौम, संयमी और शत्रु-राज्योंको जीतनेवाला राजा हुआ। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था, जो पृथ्वीपर दूसरोंके लिये दुर्लभ है॥ ५४—५६॥

जनश्रुतिके माध्यमसे उसके विषयमें सुनकर मुनिगण वहाँ आये। उन नृपेन्द्रसे आतिथ्य-सत्कार पाकर वे आसनोंपर विराजमान हुए॥ ५७॥

तत्पश्चात् सभी मुनियोंने पूछा—हे राजन्! हमलोगोंको इस बातका महान् सन्देह है कि किस पुण्यके प्रभावसे आपको पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है और किस पुण्यके प्रभावसे आपको तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान)-का ज्ञान है? आपके उस ज्ञानके विषयमें जाननेके लिये हमलोग आपके पास आये हुए हैं। आप निष्कपट भावसे यथार्थरूपमें उसे हमें बतायें॥ ५८-५९½॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! उनकी यह बात सुनकर परम धार्मिक राजा अपने त्रिकालज्ञानका सारा रहस्य बताने लगे॥ ६०½॥

हे मुनिगणो! आपलोग मेरे इस ज्ञानका कारण सुनिये। मैं पूर्वजन्ममें चक्रवाक पक्षी था। नीच योनिमें जन्म लेनेपर भी मैंने अज्ञानपूर्वक भगवती अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा कर ली थी। हे सुव्रतो! उसी पुण्यप्रभावसे मैंने दो कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास किया और उसके बाद इस जन्ममें भी मुझमें त्रिकालज्ञता विद्यमान है॥ ६१—६३॥

जगदम्बाके चरणोंके स्मरणका कितना फल होता है—इसे कौन जान सकता है? उनकी महिमाका स्मरण करते ही मेरी आँखोंसे निरन्तर अश्रु गिरने लगते हैं॥ ६४॥

किंतु उन कृतघ्न तथा पापियोंके जन्मको धिक्कार है, जो सभी प्राणियोंकी जननी तथा अपनी उपास्य भगवतीकी आराधना नहीं करते॥ ६५॥

न शिवोपासना नित्या न विष्णूपासना तथा।
नित्योपास्तिः परा देव्या नित्या श्रुत्यैव चोदिता॥ ६६

न तो शिवकी उपासना नित्य है और न तो विष्णुकी उपासना नित्य है। एकमात्र परा भगवतीकी उपासना ही नित्य है; क्योंकि श्रुतिद्वारा वे नित्या कही गयी हैं॥ ६६॥

किं मया बहु वक्तव्यं स्थाने संशयवर्जिते।
सेवनीयं पदाम्भोजं भगवत्या निरन्तरम्॥ ६७

इस सन्देहरहित विषयमें मैं अधिक क्या कहूँ! भगवतीके चरणकमलोंकी सेवा निरन्तर करनी चाहिये॥ ६७॥

नातः परतरं किञ्चिदधिकं जगतीतले।
सेवनीया परा देवी निर्गुणा सगुणाथवा॥ ६८

इन भगवतीसे बढ़कर इस धरातलपर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। अतः सगुणा अथवा निर्गुणा किसी भी रूपमें उन परा भगवतीकी उपासना करनी चाहिये॥ ६८॥

श्रीनारायण उवाच

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजर्षेर्धार्मिकस्य च।
प्रसन्नहृदयाः सर्वे गताः स्वस्वनिकेतनम्॥ ६९

श्रीनारायण बोले—उन धार्मिक राजर्षिका यह वचन सुनकर प्रसन्न हृदयवाले वे सभी मुनि अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६९॥

एवंप्रभावा सा देवी तत्पूजायाः फलं कियत्।
अस्तीति केन प्रष्टव्यं वक्तव्यं वा न केनचित्॥ ७०

वे भगवती जगदम्बा इस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी पूजाका कितना फल होता है—इस विषयमें न कोई पूछनेमें समर्थ है और न कोई बतानेमें समर्थ है॥ ७०॥

येषां तु जन्मसाफल्यं तेषां श्रद्धा तु जायते।
येषां तु जन्मसाङ्कर्यं तेषां श्रद्धा न जायते॥ ७१

जिनका जन्म सफल होनेको होता है, उन्हीं लोगोंके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। जो लोग वर्णसंकर जन्मवाले हैं, उनके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती॥ ७१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
देवीमाहात्म्ये बृहद्रथकथानकं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

मध्याह्नसन्ध्या तथा गायत्रीजपका फल

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् सन्ध्यां माध्याह्निकीं शुभाम्।
यदनुष्ठानतोऽपूर्वं जायतेऽत्युत्तमं फलम्॥ १

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब आप मध्याह्नकालीन पुण्यदायिनी सन्ध्याके विषयमें सुनिये, जिसका अनुष्ठान करनेसे अद्भुत तथा अतिश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है॥ १॥

सावित्रीं युवतीं श्वेतवर्णां चैव त्रिलोचनाम्।
वरदां चाक्षमालाढ्यां त्रिशूलाभयहस्तकाम्॥ २

वृषारूढां यजुर्वेदसंहितां रुद्रदेवताम्।
तमोगुणयुतां चैव भुवर्लोकव्यवस्थिताम्॥ ३

युवावस्थावाली, श्वेत वर्णवाली, तीन नेत्रोंवाली, हाथोंमें वरदमुद्रा-अक्षमाला-त्रिशूल तथा अभयमुद्रा धारण करनेवाली, वृषभपर विराजमान, यजुर्वेदसंहितास्वरूपिणी, रुद्रके द्वारा उपास्य, तमोगुणसे सम्पन्न, भुवर्लोकमें स्थित रहनेवाली तथा सूर्यको उनके मार्गपर संचरण करानेवाली, महामाया गायत्रीको मैं

आदित्यमार्गसंचारकर्त्रीं मायां नमाम्यहम्।
आदिदेवीमथ ध्यात्वाचमनादि च पूर्ववत्॥ ४

अथ चार्घ्यप्रकरणं पुष्पाणि चिनुयात्ततः।
तदलाभे बिल्वपत्रं तोयेन मिश्रयेत्ततः॥ ५

ऊर्ध्वं च सूर्याभिमुखं क्षिप्त्वार्घ्यं प्रतिपादयेत्।
प्रातःसन्ध्यादिवत्सर्वमुपसंहारपूर्वकम् ॥ ६

मध्याह्ने केचिदिच्छन्ति सावित्रीं तु तदित्यृचम्।
असम्प्रदायं तत्कर्म कार्यहानिस्तु जायते॥ ७

कारणं सन्ध्ययोश्चात्र मन्देहा नाम राक्षसाः।
भक्षितुं सूर्यमिच्छन्ति कारणं श्रुतिचोदितम्॥ ८

अतस्तु कारणाद्विप्रः सन्ध्यां कुर्यात्प्रयत्नतः।
सन्ध्ययोरुभयोर्नित्यं गायत्र्या प्रणवेन च॥ ९

अम्भस्तु प्रक्षिपेत्तेन नान्यथा श्रुतिघातकः।
आकृष्णेनेति मन्त्रेण पुष्पैर्वाम्बुविमिश्रितम्॥ १०

अलाभे बिल्वदूर्वादिपत्रेणोक्तेन पूर्वकम्।
अर्घ्यं दद्यात्प्रयत्नेन साङ्गं सन्ध्याफलं लभेत्॥ ११

अत्रैव तर्पणं वक्ष्ये शृणु देवर्षिसत्तम।
भुवः पुनः पूरुषं तु तर्पयामि नमो नमः॥ १२

यजुर्वेदं तर्पयामि मण्डलं तर्पयामि च।
हिरण्यगर्भं च तथान्तरात्मानं तथैव च॥ १३

सावित्रीं च ततो देवमातरं साङ्कृतिं तथा।
सन्ध्यां तथैव युवतीं रुद्राणीं नीमृजां तथा॥ १४

सर्वार्थानां सिद्धिकरीं सर्वमन्त्रार्थसिद्धिदाम्।
भूर्भुवः स्वः पूरुषं तु इति मध्याह्नतर्पणम्॥ १५

उदुत्यमिति सूक्तेन सूर्योपस्थानमेव च।
चित्रं देवानामिति च सूर्योपस्थानमाचरेत्॥ १६

प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार आदिदेवीका ध्यान करके आचमन आदि सभी क्रियाएँ पूर्वकी भाँति करनी चाहिये॥ २—४॥

अब अर्घ्यका प्रकरण बताता हूँ। इसके लिये पुष्प चुनना चाहिये। पुष्पके अभावमें बिल्वपत्रको जलमें मिला लेना चाहिये और सूर्यकी ओर मुख करके ऊपरकी ओर जल छोड़कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। आदिसे लेकर अन्ततक सभी नियम प्रातःकालीन सन्ध्याके ही समान हैं॥ ५-६॥

कुछ लोग मध्याह्नसन्ध्यामें गायत्रीमन्त्र '**तत्सवितुः०**' पढ़कर अर्घ्य प्रदान करनेकी सम्मति देते हैं, किंतु वह कर्म परम्पराविरुद्ध है और इससे कार्यकी हानि होती है॥ ७॥

[प्रातः तथा सायं] दोनों सन्ध्याओंको करनेका वेदोक्त कारण यह है कि मन्देहा नामवाले राक्षस सूर्यका भक्षण करना चाहते हैं। अतएव उन राक्षसोंके निवारणके निमित्त ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक सन्ध्या करनी चाहिये। प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें नित्य प्रणवसहित गायत्रीमन्त्रसे [अर्घ्यके निमित्त] जलका प्रक्षेप करना चाहिये, अन्यथा वह श्रुतिघातक होता है। [मध्याह्नकालकी सन्ध्यामें] जलमिश्रित पुष्पोंसे और यदि पुष्प न मिल सके तो बिल्व और दूर्वा आदिके पत्रसे पूर्वमें बतायी गयी विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक '**आकृष्णेन०**' इस मन्त्रसे सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त करता है॥ ८—११॥

हे देवर्षिसत्तम! अब इसी प्रकरणमें तर्पणकी विधि बता रहा हूँ, उसे सुनिये। '**भुवः पूरुषं तर्पयामि नमो नमः**', '**यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः**', '**मण्डलं तर्पयामि नमो नमः**'—इसी प्रकार हिरण्यगर्भ, अन्तरात्मा, सावित्री, देवमाता, सांकृति, सन्ध्या, युवती, रुद्राणी, नीमृजा, सर्वार्थसिद्धिकरी, सर्वार्थमन्त्रसिद्धिदा और **भूर्भुवः स्वः पूरुषं**—इन नामोंके साथ '**तर्पयामि नमो नमः**' जोड़कर तर्पण करना चाहिये। यह मध्याह्न-तर्पण है॥ १२—१५॥

तदनन्तर '**उदुत्यम्०**' तथा '**चित्रं देवानाम्०**'—इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। तत्पश्चात्

ततो जपं प्रकुर्वीत मन्त्रसाधनतत्परः।
जपस्यापि प्रकारं तु वक्ष्यामि शृणु नारद॥ १७

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधः करौ तथा।
मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत्॥ १८

पर्वद्वयमनामिक्याः कनिष्ठादिक्रमेण तु।
तर्जनीमूलपर्यन्तं करमाला प्रकीर्तिता॥ १९

गोघ्नः पितृघ्नो मातृघ्नो भ्रूणहा गुरुतल्पगः।
ब्रह्मस्वक्षेत्रहारी च यश्च विप्रः सुरां पिबेत्॥ २०

स गायत्र्याः सहस्रेण पूतो भवति मानवः।
मानसं वाचिकं पापं विषयेन्द्रियसङ्गजम्॥ २१

तत्किल्विषं नाशयति त्रीणि जन्मानि मानवः।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः॥ २२

पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत्।
वेदानां चावृतेस्तद्वद् गायत्रीजप उत्तमः॥ २३

इति मध्याह्नसन्ध्यायाः प्रकारः कीर्तितो मया।
अतः परं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मयज्ञविधिक्रमम्॥ २४

मन्त्र-साधनमें तत्पर रहनेवाले साधकको जप करना चाहिये। हे नारद! अब मैं जपका भी प्रकार बताऊँगा; सुनिये॥ १६-१७॥

प्रात:काल दोनों हाथोंको उत्तान करके, सायंकालमें हाथोंको नीचेकी ओर करके तथा मध्याह्न-कालमें उन्हें हृदयके पास करके जप करना चाहिये॥ १८॥

अनामिका अँगुलीके दूसरे पर्व (मध्य पोर)-से आरम्भ करके कनिष्ठिका आदिके क्रमसे तर्जनी अँगुलीके मूलपर्यन्त करमाला कही गयी है॥ १९॥

जो गोहत्यारा, माता-पिताकी हत्या करनेवाला, भ्रूणघाती, गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला, ब्राह्मणका धन तथा भूमि हरनेवाला है और जो विप्र सुरापान करता है, वह गायत्रीके एक हजार जपसे पवित्र हो जाता है। गायत्री-जप तीन जन्मोंके मानसिक तथा वाचिक पाप और विषयेन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले पापको विनष्ट कर देता है। जो मनुष्य गायत्रीमन्त्र नहीं जानता, उसका सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ है॥ २०—२२॥

मनुष्य एक ओर चारों वेदोंको पढ़े तथा दूसरी ओर गायत्रीजप करे, इनमें वेदोंकी आवृत्तिसे गायत्रीजप उत्तम है। यह मैंने आपको मध्याह्न-सन्ध्याकी विधि बतायी और अब ब्रह्मयज्ञकी विधिका क्रम बताऊँगा॥ २३-२४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
मध्याह्नसंध्यावर्णनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

* * *

अथ विंशोऽध्यायः

तर्पण तथा सायंसन्ध्याका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

त्रिराचम्य द्विजः पूर्वं द्विर्मार्जनमथाचरेत्।
उपस्पृशेत्सव्यपाणिं पादौ च प्रोक्षयेत्ततः॥ १

शिरसि चक्षुषि तथा नासायां श्रोत्रदेशके।
हृदये च तथा मौलौ प्रोक्षणं सम्यगाचरेत्॥ २

देशकालौ समुच्चार्य ब्रह्मयज्ञमथाचरेत्।
द्वौ दर्भौ दक्षिणे हस्ते वामे त्रीनासने सकृत्॥ ३

श्रीनारायण बोले—हे नारद! द्विजको चाहिये कि पहले तीन बार आचमन करके दो बार मार्जन करे। इसके बाद पहले अपने दाहिने हाथका तदनन्तर पैरोंका प्रोक्षण करे। इसी प्रकार सिर, नेत्र, नासिका, कान, हृदय तथा शिखाका विधिवत् प्रोक्षण करना चाहिये॥ १-२॥

तदनन्तर देश-कालका उच्चारण करके ब्रह्मयज्ञ करे। दाहिने हाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन कुशा, आसनपर एक कुशा, यज्ञोपवीतमें एक कुशा, शिखापर

उपवीते शिखायां च पादमूले सकृत्सकृत्।
विमुक्तये सर्वपापक्षयार्थं चैवमेव हि॥ ४
सूत्रोक्तदेवताप्रीत्यै ब्रह्मयज्ञं करोम्यहम्।
गायत्रीं त्रिर्जपेत्पूर्वं चाग्निमीळे ततः परम्॥ ५
यदङ्गेति ततः प्रोच्य अग्निर्वै इति कीर्तयेत्।
अथ महाव्रतं चैव पन्था एतच्च कीर्तयेत्॥ ६
अथातः संहितायाश्च विदा मघवदित्यपि।
महाव्रतस्येति तथा इषे त्वोर्जे इतीव हि॥ ७
अग्न आयाहि चेत्येवं शन्नो देवीरितीति च।
अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैजितीव हि॥ ८
अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पञ्चसंवत्सरेति च।
मयरसतजभनेत्येव गौर्ग्मा इत्येव कीर्तयेत्॥ ९
अथातो धर्मजिज्ञासा अथातो ब्रह्म इत्यपि।
तच्छंयोरिति च प्रोच्य ब्रह्मणे नम इत्यपि॥ १०
तर्पणं चैव देवानां ततः कुर्यात्प्रदक्षिणम्।
प्रजापतिश्च ब्रह्मा च वेदा देवास्तथर्षयः॥ ११
सर्वाणि चैव छन्दांसि तथोङ्कारस्तथैव च।
वषट्कारो व्याहृतयः सावित्री च ततः परम्॥ १२
गायत्री चैव यज्ञाश्च द्यावापृथिवी इत्यपि।
अन्तरिक्षं त्वहोरात्राणि च सांख्या अतः परम्॥ १३
सिद्धाः समुद्रा नद्यश्च गिरयश्च ततः परम्।
क्षेत्रौषधिवनस्पत्यो गन्धर्वाप्सरसस्तथा॥ १४
नागा वयांसि गावश्च साध्या विप्रास्तथैव च।
यक्षा रक्षांसि भूतानीत्येवमन्तानि कीर्तयेत्॥ १५
अथो निवीती भूत्वा च ऋषीन्सन्तर्पयेदपि।
शतर्चिनो माध्यमाश्च गृत्समदस्तथैव च॥ १६
विश्वामित्रो वामदेवोऽत्रिर्भरद्वाज एव च।
वसिष्ठश्च प्रगाथश्च पावमान्यस्ततः परम्॥ १७
क्षुद्रसूक्ता महासूक्ताः सनकश्च सनन्दनः।
सनातनस्तथैवात्र सनत्कुमार एव च॥ १८
कपिलासुरिनामानौ वोहलिः पञ्चशीर्षकः।
प्राचीनावीतिना तच्च कर्तव्यमथ तर्पणम्॥ १९
सुमन्तुर्जैमिनिर्वैशम्पायनः पैलसूत्रयुक्।
भाष्यभारतपूर्वं च महाभारत इत्यपि॥ २०

एक कुशा और पादमूलमें एक कुशा रखे। इसके बाद विमुक्त होनेके लिये, सम्पूर्ण पापोंके विनाशहेतु तथा सूत्रोक्त देवताकी प्रसन्नताके लिये मैं ब्रह्मयज्ञ कर रहा हूँ—ऐसा संकल्प करे॥ ३-४½ ॥

पहले तीन बार गायत्रीका जप करे और इसके बाद '**अग्निमीडे०**', फिर '**यदङ्ग०**' का उच्चारण करके '**अग्निर्वै०**' इस मन्त्रको बोलना चाहिये। तत्पश्चात् '**अथ महाव्रतं चैव पन्थाः०**'—इसका भी पाठ करना चाहिये॥ ५-६ ॥

तत्पश्चात् संहिताके '**विदा मघवत्०**', '**महाव्रतस्य०**', '**इषे त्वोर्जे०**', '**अग्न आयाहि०**', '**शन्नो देवी०**', '**अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैच्०**', '**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि०**', '**पञ्चसंवत्सर०**', '**मयरसतजभन०**' और '**गौर्ग्मा०**' इत्यादि मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। पुनः '**अथातो धर्मजिज्ञासा**' और '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' के साथ '**तच्छंयो०**' तथा '**ब्रह्मणे नमः**'—इन मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये॥ ७—१० ॥

तदनन्तर देवताओंका तर्पण करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये। [तर्पणके समय] प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि, सभी छन्द, ॐकार, वषट्कार, व्याहृतियाँ, सावित्री, गायत्री, यज्ञ, द्यावा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य, सिद्ध, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, क्षेत्र, औषधि, वनस्पतियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, पक्षी, गौएँ, साध्यगण, विप्रगण, यक्ष, राक्षस, भूत एवं यमराज आदिके नामोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ११—१५ ॥

एतदनन्तर यज्ञोपवीतको कण्ठीकी भाँति करके शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ, पावमान्य, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोहलि तथा पंचशीर्ष—इन ऋषियोंका तर्पण करना चाहिये। इसके बाद अपसव्य होकर सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत तथा धर्माचार्योंका तर्पण करे तथा ये सभी तृप्त हो जायँ—ऐसा उच्चारण करे। इसी प्रकार जानन्ति, बाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल, बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय,

धर्माचार्या इमे सर्वे तृप्यन्त्विति च कीर्तयेत्।
जानन्ति बाहविगार्ग्यगौतमाश्चैव शाकलः॥ २१
बाभ्रव्यमाण्डव्ययुतोमाण्डूकेयस्ततः परम्।
गार्गी वाचक्नवी चैव वडवा प्रातिथेयिका॥ २२
सुलभायुक्तमैत्रेयी कहोलश्च ततः परम्।
कौषीतकं महाकौषीतकं वै तर्पयेत्ततः॥ २३
भारद्वाजं च पैङ्ग्यं च महापैङ्ग्यं सुयज्ञकम्।
सांख्यायनमैतरेयं महैतरेयमेव च॥ २४
बाष्कलं शाकलं चैव सुजातवक्त्रमेव च।
औदवाहिं च सौजामिं शौनकं चाश्वलायनम्॥ २५
ये चान्ये सर्व आचार्यास्ते सर्वे तृप्तिमाप्नुयुः।
ये के चास्मत्कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः॥ २६
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम्।
एवं ते ब्रह्मयज्ञस्य विधिरुक्तो महामुने॥ २७
यश्चायं कुरुते ब्रह्मयज्ञस्य विधिमुत्तमम्।
सर्ववेदाङ्गपाठस्य फलमाप्नोति साधकः॥ २८
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्नित्यश्राद्धं तथैव च।
अतिथिभ्योऽन्नदानं च नित्यमेव समाचरेत्॥ २९
गोग्रासं च ततो दत्त्वा भुञ्जीत ब्राह्मणैः सह।
अह्नस्तु पञ्चमे भागे प्रकुर्यादेतदुत्तमम्॥ ३०
इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमकौ नयेत्।
अष्टमे लोकयात्रा तु बहिः सन्ध्यां ततः पुनः॥ ३१
अथ सायन्तनीं सन्ध्यां प्रवक्ष्यामि महामुने।
यदनुष्ठानमात्रेण महामाया प्रसीदति॥ ३२
आचम्य प्राणानायम्य साधकः स्थिरमानसः।
बद्धपद्मासनो योगी सायंकाले स्थिरो भवेत्॥ ३३
श्रुतिस्मृत्यादिकर्मादौ सगर्भः प्राणसंयमः।
अगर्भो ध्यानमात्रं तु स चामन्त्रः प्रकीर्तितः॥ ३४
भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा नान्यथा कर्म कीर्तितम्।
सलक्षो देवतां ध्यात्वा पूरकुम्भकरेचकैः॥ ३५

गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भारद्वाज, पैंग्य, महापैंग्य, सुयज्ञ, सांख्यायन, ऐतरेय, महैतरेय, बाष्कल, शाकल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक और आश्वलायन—इनका तर्पण करे तथा जो अन्य आचार्य हों, वे सब भी तृप्तिको प्राप्त हों—ऐसा कहे। इसके बाद इस प्रकार उच्चारण करते हुए तर्पण करे—जो कोई भी मेरे कुलमें उत्पन्न होकर अपुत्र ही दिवंगत हो चुके हैं तथा मेरे गोत्रसे सम्बद्ध हैं, वे मेरे द्वारा वस्त्र निचोड़कर दिये गये जलको ग्रहण करें। हे महामुने! इस प्रकार मैंने आपको ब्रह्मयज्ञकी विधि बतला दी॥ १६—२७॥

जो साधक ब्रह्मयज्ञकी इस उत्तम विधिका सम्यक् पालन करता है, वह अंगोंसहित समस्त वेदोंके पाठका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

इसके बाद वैश्वदेव तथा नित्यश्राद्ध करना चाहिये। अतिथियोंको अन्नदान नित्य करना चाहिये॥ २९॥

गोग्रास देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करना चाहिये। यह उत्तम कार्य दिनके पाँचवें भागमें करना चाहिये॥ ३०॥

दिनका छठाँ तथा सातवाँ भाग इतिहास, पुराण आदिके स्वाध्यायमें व्यतीत करना चाहिये। दिनके आठवें भागमें लोकव्यवहारसम्बन्धी कार्योंको करे और इसके बाद सायंसन्ध्या करे॥ ३१॥

हे महामुने! अब मैं सायंकालकी सन्ध्याका वर्णन करूँगा, जिसके अनुष्ठानमात्रसे भगवती महामाया प्रसन्न हो जाती हैं॥ ३२॥

सायं वेलामें साधक योगीको आचमन तथा प्राणायाम करके शान्तचित्त हो पद्मासन लगाकर निश्चलरूपसे बैठ जाना चाहिये॥ ३३॥

श्रुति-स्मृतिसम्बन्धी कर्मोंमें प्राणवायुको संयमित करके किया जानेवाला समन्त्रक प्राणायाम सगर्भ कहा गया है तथा ध्यानमात्रवाला प्राणायाम अगर्भ है; वह अगर्भ प्राणायाम अमन्त्रक कहा गया है॥ ३४॥

भूतशुद्धि आदि करके ही कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये, अन्यथा उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। लक्ष्य स्थिर करके पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामद्वारा

ध्यानं प्रकुर्यात्सन्ध्यायां सायंकाले विचक्षणः।
वृद्धां सरस्वतीं देवीं कृष्णाङ्गीं कृष्णवाससम्॥ ३६

शङ्खचक्रगदापद्महस्तां गरुडवाहनाम्।
नानारत्नलसद्भूषां क्वणन्मञ्जीरमेखलाम्॥ ३७

अनर्घ्यरत्नमुकुटां तारहारावलीयुताम्।
ताटङ्कबद्धमाणिक्यकान्तिशोभिकपोलकाम्॥ ३८

पीताम्बरधरां देवीं सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
सामवेदेन सहितां संयुतां सत्त्ववर्त्मना॥ ३९

व्यवस्थितां च स्वर्लोके आदित्यपथगामिनीम्।
आवाहयाम्यहं देवीमायान्तीं सूर्यमण्डलात्॥ ४०

एवं ध्यात्वा च तां देवीं सन्ध्यासङ्कल्पमाचरेत्।
आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण अग्निश्चेति तथैव च॥ ४१

विदध्यादाचमनकं शेषं पूर्ववदीरितम्।
गायत्रीमन्त्रमुच्चार्य श्रीनारायणप्रीतये॥ ४२

अर्घ्यं दद्याच्च सूर्याय साधकः शुद्धमानसः।
उभौ पादौ समौ कृत्वा हस्ते धृत्वा जलाञ्जलिम्॥ ४३

देवं ध्यात्वा मण्डलस्थं क्षिपेदर्घ्यं ततः क्रमात्।
अर्घ्यं दद्यात्तु यो नीरे मूढात्मा ज्ञानवर्जितः॥ ४४

उल्लङ्घ्य स्मृतिमन्त्रांश्च प्रायश्चित्ती भवेद् द्विजः।
ततः सूर्यमुपस्थायाप्यसावादित्यमन्त्रतः॥ ४५

गायत्र्याश्च जपं कुर्यादुपविश्य ततो बृसीम्।
सहस्रं वा तदर्धं वा श्रीदेवीध्यानपूर्वकम्॥ ४६

यथा प्रातः पुनस्तद्वदुपस्थानादिकं चरेत्।
सायं सन्ध्यातर्पणे च क्रमेण परिकीर्तयेत्॥ ४७

इष्ट देवताका ध्यान करके विद्वान् पुरुषको सायंकालमें सन्ध्या करते समय इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—'भगवती सरस्वती वृद्धावस्थाको प्राप्त हैं, कृष्णवर्ण हैं, वे कृष्ण वस्त्र धारण की हुई हैं, उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा है, वे गरुडरूपी वाहनपर विराजमान हैं, वे अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित वेशभूषासे सुशोभित हो रही हैं, उनकी पैजनी तथा करधनीसे ध्वनि निकल रही है, उनके मस्तकपर अमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट विद्यमान है, वे तारोंके हारकी आवलीसे युक्त हैं, मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे उनके कपोल सुशोभित हो रहे हैं, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है, वे सत्-चित्-आनन्दस्वरूपवाली हैं, वे सामवेद तथा सत्त्वमार्गसे संयुक्त हैं, वे स्वर्गलोकमें व्यवस्थित हैं, वे सूर्यपथपर गमन करनेवाली हैं, सूर्यमण्डलसे निकलकर मेरी ओर आती हुई इन देवीका मैं आवाहन कर रहा हूँ'॥ ३५—४०॥

इस प्रकार उन देवीका ध्यान करके सायंकालकी सन्ध्याका संकल्प करना चाहिये। **'आपो हि ष्ठा०'** इस मन्त्रसे मार्जन तथा **'अग्निश्च०'** इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। शेष कर्म प्रात:कालीन सन्ध्याके समान बताया गया है॥ ४१½॥

साधक पुरुषको शुद्ध मनवाला होकर भगवान् नारायणके प्रसन्नतार्थ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये॥ ४२½॥

दोनों पैरोंको समानरूपसे सीधा करके हाथकी अंजलिमें जल लेकर मण्डलस्थ देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ ४३½॥

जो मूढात्मा तथा अज्ञानी द्विज जलमें अर्घ्य प्रदान करता है, वह स्मृतिमन्त्रोंका उल्लंघन करके प्रायश्चित्तका भागी होता है॥ ४४½॥

तत्पश्चात् **'असावादित्य०'** इस मन्त्रसे सूर्योपस्थान करके कुशके आसनपर बैठकर श्रीदेवीका ध्यान करते हुए एक हजार अथवा उसकी आधी संख्यामें गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ४५-४६॥

जैसे प्रात:कालकी सन्ध्यामें उपस्थान आदि किये जाते हैं, उसी तरह सायंकालीन सन्ध्याके तर्पणमें उपस्थान आदि क्रमसे करने चाहिये॥ ४७॥

वसिष्ठो ऋषिरेवात्र सरस्वत्याः प्रकीर्तितः।
देवता विष्णुरूपा सा छन्दश्चैव सरस्वती॥ ४८
सायंकालीनसन्ध्यायास्तर्पणे विनियोगकः।
स्वरित्युक्त्वा च पुरुषं सामवेदं तथैव च॥ ४९
मण्डलं चेति सम्प्रोच्य हिरण्यगर्भकं तथा।
तथैव परमात्मानं ततोऽपि च सरस्वतीम्॥ ५०
वेदमातरमेवात्र सङ्कृतिं तद्वदेव च।
सन्ध्यां वृद्धां तथा विष्णुरूपिणीमुषसीं तथा॥ ५१
निर्मृजीं च तथा सर्वसिद्धीनां कारिणीं तथा।
सर्वमन्त्राधिपतिकां भूर्भुवः स्वश्च पूरुषम्॥ ५२
इत्येवं तर्पणं कार्यं सन्ध्यायाः श्रुतिसम्मतम्।
सायं सन्ध्याविधानं च कथितं पापनाशनम्॥ ५३
सर्वदुःखहरं व्याधिनाशकं मोक्षदं तथा।
सदाचारेषु सन्ध्यायाः प्राधान्यं मुनिपुङ्गव।
सन्ध्याचरणतो देवी भक्ताभीष्टं प्रयच्छति॥ ५४

सायंकालीन सन्ध्यामें सरस्वतीरूपा गायत्रीके ऋषि 'वसिष्ठ' कहे गये हैं, देवता वे विष्णुरूपा 'सरस्वती' हैं तथा छन्द भी वे 'सरस्वती' ही हैं। सायंकालकी सन्ध्याके तर्पणमें इसका विनियोग किया जाता है। स्वः पुरुष, सामवेद, मण्डल, हिरण्यगर्भ, परमात्मा, सरस्वती, वेदमाता, संकृति, सन्ध्या, विष्णुस्वरूपिणी, वृद्धा, उषसी, निर्मृजी, सर्वसिद्धिकारिणी, सर्वमन्त्राधिपतिका तथा भूर्भुवः स्वः पूरुष—इस प्रकार उच्चारण करके श्रुतिसम्मत सायंकालीन सन्ध्याका तर्पण करना चाहिये॥ ४८—५२१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पापोंका नाश करनेवाले, सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले, व्याधियोंका शमन करनेवाले तथा मोक्ष देनेवाले सायंकालीन सन्ध्या-विधानका वर्णन कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! समस्त सदाचारोंमें सन्ध्याकी प्रधानता है। सन्ध्याका सम्यक् आचरण करनेसे भगवती भक्तको मनोवांछित फल प्रदान करती हैं॥ ५३-५४॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
ब्रह्मयज्ञादिकीर्तनं नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

गायत्रीपुरश्चरण और उसका फल

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् गायत्र्याः पापनाशनम्।
पुरश्चरणकं पुण्यं यथैष्टफलदायकम्॥ १

पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले जलाशये।
गोष्ठे देवालयेऽश्वत्थे उद्याने तुलसीवने॥ २

पुण्यक्षेत्रे गुरोः पार्श्वे चित्तैकाग्र्यस्थलेऽपि च।
पुरश्चरणकृन्मन्त्री सिध्यत्येव न संशयः॥ ३

यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत्।
व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं चायुतं जपेत्॥ ४

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! इसके बाद अब आप देवीके पापनाशक, पुण्यप्रद और यथेष्ट फल देनेवाले पुरश्चरणके विषयमें सुनिये॥ १॥

पर्वतके शिखरपर, नदीके तटपर, बिल्व-वृक्षके नीचे, जलाशयके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, पीपलके नीचे, उद्यानमें, तुलसीवनमें, पुण्यक्षेत्रमें अथवा गुरुके पास अथवा जहाँ भी चित्तकी एकाग्रता बनी रहे—उस स्थानपर मन्त्रका पुरश्चरण करनेवाला व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २-३॥

जिस किसी भी मन्त्रका पुरश्चरण आरम्भ करना हो, उसके पूर्व तीनों व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः)-सहित दस हजार गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ४॥

नृसिंहार्कवराहाणां तान्त्रिकं वैदिकं तथा।
विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥ ५

सर्वे शाक्ता द्विजाः प्रोक्ता न शैवा न च वैष्णवाः।
आदिशक्तिमुपासन्ते गायत्रीं वेदमातरम्॥ ६

मन्त्रं संशोध्य यत्नेन पुरश्चरणतत्परः।
मन्त्रशोधनपूर्वाङ्गमात्मशोधनमुत्तमम् ॥ ७

आत्मतत्त्वशोधनाय त्रिलक्षं प्रजपेद् बुधः।
अथवा चैकलक्षं तु श्रुतिप्रोक्तेन वर्त्मना॥ ८

आत्मशुद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः।
निष्फलास्तास्तु विज्ञेयाः कारणं श्रुतिचोदितम्॥ ९

तपसा तापयेद्देहं पितॄन्देवांश्च तर्पयेत्।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विन्दते महत्॥ १०

क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापद आत्मनः।
धनेन वैश्यः शूद्रस्तु जपहोमैर्द्विजोत्तमः॥ ११

अतएव तु विप्रेन्द्र तपः कुर्यात्प्रयत्नतः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥ १२

शोधयेद्विधिमार्गेण कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
अथान्नशुद्धिकरणं वक्ष्यामि शृणु नारद॥ १३

अयाचितोञ्छशुक्लाख्यभिक्षावृत्तिचतुष्टयम्।
तान्त्रिकैर्वैदिकैश्चैवं प्रोक्तान्नस्य विशुद्धता॥ १४

भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भागचतुष्टयम्।
एकं भागं द्विजेभ्यस्तु गोग्रासस्तु द्वितीयकः॥ १५

अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं तु स्वभार्ययोः।
आश्रमस्य यथा यस्य कृत्वा ग्रासविधिं क्रमात्॥ १६

नृसिंह, सूर्य तथा वराह—इन देवताओंका जो भी तान्त्रिक अथवा वैदिक कर्म बिना गायत्रीका जप किये सम्पन्न किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है॥ ५॥

सभी द्विज शाक्त कहे गये हैं; शैव और वैष्णव नहीं; क्योंकि सभी द्विज आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं॥ ६॥

गायत्रीके जपद्वारा मन्त्रको शुद्ध करके यत्नपूर्वक पुरश्चरणमें तत्पर हो जाना चाहिये। मन्त्रशोधनके पूर्व आत्मशुद्धि कर लेना उत्तम होता है॥ ७॥

आत्मतत्त्वके शोधनके लिये विद्वान् पुरुषको श्रुतियोंके द्वारा बताये गये नियमके अनुसार गायत्री-मन्त्रका तीन लाख अथवा एक लाख जप करना चाहिये॥ ८॥

कर्ताकी आत्मशुद्धिके बिना की गयी जप-होमादि क्रियाएँ निष्फल ही समझी जानी चाहिये; क्योंकि आत्मशुद्धि करना श्रुतिसम्मत है॥ ९॥

तपस्याके द्वारा अपने शरीरको तपाना चाहिये और पितरों तथा देवताओंको तृप्त रखना चाहिये। तपस्यासे मनुष्य स्वर्ग तथा महान् फल प्राप्त करता है॥ १०॥

क्षत्रियको बाहुबलसे, वैश्यको धनसे, शूद्रको द्विजातियोंकी सेवासे और श्रेष्ठ ब्राह्मणको जप तथा होमसे अपनी आपदाओंका निवारण करना चाहिये॥ ११॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! प्रयत्नपूर्वक तपस्या करनी चाहिये। तपस्वियोंने शरीर सुखानेको ही उत्तम तप बतलाया है। विहित मार्गसे कृच्छ्र तथा चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा शरीरका शोधन करना चाहिये। हे नारद! अब मैं अन्नशुद्धिका प्रकरण बताऊँगा; उसे सुनिये॥ १२-१३॥

अयाचित, उञ्छ, शुक्ल तथा भिक्षा—ये आजीविकाके चार मुख्य साधन हैं। तान्त्रिकों और वैदिकोंके द्वारा इन वृत्तियोंसे प्राप्त अन्नकी विशुद्धता कही गयी है॥ १४॥

भिक्षासे प्राप्त शुद्ध अन्न लाकर उसके चार भाग करके एक भाग द्विजोंके लिये, दूसरा भाग गोग्रासके रूपमें गौके लिये, तीसरा भाग अतिथियोंके लिये तथा चौथा भाग भार्यासहित अपने लिये व्यवस्थित करे। जिस आश्रममें ग्रासकी जो विधि निश्चित है, उसी क्रमसे उसका पालन करना चाहिये॥ १५-१६॥

आदौ क्षिप्त्वा तु गोमूत्रं यथाशक्ति यथाक्रमम्।
तदूर्ध्वं ग्राससंख्या स्याद्वानप्रस्थगृहस्थयो:॥ १७

कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते।
अष्टौ ग्रासा गृहस्थस्य वनस्थस्य तदर्धकम्॥ १८

ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्रं विधिपूर्वकम्।
प्रोक्षणं नववारं च षड्वारं च त्रिवारकम्॥ १९

निश्छिद्रं च करं कृत्वा सावित्रीं च तदित्यृचम्।
मन्त्रमुच्चार्य मनसा प्रोक्षणे विधिरुच्यते॥ २०

चौरो वा यदि चाण्डालो वैश्य: क्षत्रस्तथैव च।
अन्नं दद्यात्तु य: कश्चिदधमो विधिरुच्यते॥ २१

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कं शूद्रेण च सहाशनम्।
ते यान्ति नरकं घोरं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ २२

गायत्रीच्छन्दो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च।
तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा॥ २३

द्वात्रिंशल्लक्षमानं तु विश्वामित्रमतं तथा।
जीवहीनो यथा देह: सर्वकर्मसु न क्षम:॥ २४

पुरश्चरणहीनस्तु तथा मन्त्र: प्रकीर्तित:।
ज्येष्ठाषाढौ भाद्रपदं पौषं तु मलमासकम्॥ २५

अङ्गारं शनिवारं च व्यतीपातं च वैधृतिम्।
अष्टमीं नवमीं षष्ठीं चतुर्थीं च त्रयोदशीम्॥ २६

चतुर्दशीममावास्यां प्रदोषं च तथा निशाम्।
यमाग्निरुद्रसर्पेन्द्रवसुश्रवणजन्मभम् ॥ २७

मेषकर्कतुलाकुम्भान्मकरं चैव वर्जयेत्।
सर्वाण्येतानि वर्ज्यानि पुरश्चरणकर्मणि॥ २८

चन्द्रतारानुकूले च शुक्लपक्षे विशेषत:।
पुरश्चरणकं कुर्यान्मन्त्रसिद्धि: प्रजायते॥ २९

आरम्भमें उस अन्नपर शक्ति तथा क्रमके अनुसार गोमूत्रका छींटा देकर वानप्रस्थी तथा गृहस्थाश्रमीको ग्रासकी संख्या निर्धारित करनी चाहिये॥ १७॥

ग्रासका परिमाण मुर्गीके अण्डेके बराबर होना चाहिये। गृहस्थको आठ ग्रास, वानप्रस्थीको उसका आधा (चार ग्रास) तथा ब्रह्मचारीको यथेष्ट ग्रास लेनेका विधान है। सर्वप्रथम गोमूत्रकी विधि सम्पन्न करके नौ, छ: अथवा तीन बार अन्नका प्रोक्षण करना चाहिये। अँगुलियोंको परस्पर छिद्ररहित करके '**तत्सवितु:०**' इस गायत्री-ऋचाके साथ प्रोक्षण होना चाहिये। मन्त्रका मन-ही-मन उच्चारण करते हुए प्रोक्षण करनेकी विधि कही गयी है॥ १८—२०॥

चोर, चाण्डाल, वैश्य तथा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई भी यदि अन्न प्रदान करता है तो अन्न-प्राप्तिकी इस विधिको अधम कहा गया है॥ २१॥

जो विप्र शूद्रका अन्न खाते हैं, शूद्रके साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा शूद्रके साथ भोजन करते हैं; वे तबतक घोर नरकमें वास करते हैं जबतक सूर्य तथा चन्द्रमाका अस्तित्व रहता है॥ २२॥

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ २३॥

विश्वामित्रका मत है कि बत्तीस लाख जप होना चाहिये। जिस प्रकार प्राणरहित शरीर समस्त कार्योंको करनेमें समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरणसे हीन मन्त्र भी फल देनेमें असमर्थ कहा गया है॥ २४½॥

ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, अधिकमास, मंगलवार, शनिवार, व्यतीपात, वैधृति, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, प्रदोष, रात्रि, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, जन्म-नक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ तथा मकर (लग्न)—इन्हें छोड़ देना चाहिये; पुरश्चरणकर्ममें ये सब त्याज्य हैं॥ २५—२८॥

चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंके अनुकूल रहनेपर और मुख्यरूपसे शुक्ल पक्षमें पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये; ऐसा करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है॥ २९॥

स्वस्तिवाचनकं कुर्यान्नान्दीश्राद्धं यथाविधि।
विप्रान्सन्तर्प्य यत्नेन भोजनाच्छादनादिभिः॥ ३०

आरभेत्तु ततः पश्चादनुज्ञानपुरःसरम्।
प्रत्यङ्मुखः शिवस्थाने द्विजश्चान्यतमे जपेत्॥ ३१

काशीपुरी च केदारो महाकालोऽथ नासिकम्।
त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पञ्च दीपा इमे भुवि॥ ३२

सर्वत्रैव हि दीपस्तु कूर्मासनमिति स्मृतम्।
प्रारम्भदिनमारभ्य समाप्तिदिवसावधि॥ ३३

न न्यूनं नातिरिक्तं च जपं कुर्याद्दिने दिने।
नैरन्तर्येण कुर्वन्ति पुरश्चर्यां मुनीश्वराः॥ ३४

प्रातरारभ्य विधिवज्जपेन्मध्यदिनावधि।
मनःसंहरणं शौचं ध्यानं मन्त्रार्थचिन्तनम्॥ ३५

गायत्रीच्छन्दो मन्त्रस्य यथासंख्याक्षराणि च।
तावल्लक्षाणि कर्तव्यं पुरश्चरणकं तथा॥ ३६

जुहुयात्तद्दशांशेन सघृतेन पयोऽन्धसा।
तिलैः पत्रैः प्रसूनैश्च यवैश्च मधुरान्वितैः॥ ३७

कुर्याद्दशांशतो होमं ततः सिद्धो भवेन्मनुः।
गायत्री चैव संसेव्या धर्मकामार्थमोक्षदा॥ ३८

नित्ये नैमित्तिके काम्ये त्रितये तु परायणः।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति इह लोके परत्र च॥ ३९

मध्याह्नमितभुङ् मौनी त्रिःस्नानार्चनतत्परः।
जले लक्षत्रयं धीमाननन्यमानसक्रियः॥ ४०

कर्मणा यो जपेत्पश्चात्कर्मभिः स्वेच्छयापि वा।
यावत्कार्यं न सिध्येत्तु तावत्कुर्याज्जपादिकम्॥ ४१

आरम्भमें विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन तथा नान्दीश्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। भोजन तथा वस्त्र आदिसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके पुनः उनसे आज्ञा लेकर पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि शिवमन्दिर तथा अन्य किसी भी शिवस्थानपर पूर्वाभिमुख बैठकर जप करे॥ ३०-३१॥

काशीपुरी, केदार, महाकाल, नासिक और महाक्षेत्र त्र्यम्बक—ये पाँच स्थान पृथ्वीलोकमें दीप (सिद्धिस्थान) हैं। इन स्थानोंके अतिरिक्त सभी जगह कूर्मासनको दीप (सिद्धिस्थान) कहा गया है। प्रारम्भके दिनसे लेकर समाप्तिके दिनतक किसी भी दिन न तो अधिक और न तो कम जप करना चाहिये; श्रेष्ठ मुनिगण निरन्तर पुरश्चरण करते रहते हैं॥ ३२—३४॥

प्रातःकालसे आरम्भ करके मध्याह्नतक विधिवत् जप करना चाहिये। जपकी अवधिमें मनपर नियन्त्रण रखे, पवित्रतासे रहे, इष्टदेवताका ध्यान करता रहे तथा मन्त्रके अर्थका चिन्तन करता रहे॥ ३५॥

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ ३६॥

घृत तथा मधुमिश्रित खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प तथा यव आदि द्रव्योंसे जपसंख्याके दशांशसे आहुति देनी चाहिये। दसवें अंशसे हवन करना चाहिये, तभी मन्त्र सिद्ध होता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली गायत्रीकी सम्यक् उपासना करनी चाहिये॥ ३७-३८॥

नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इन तीनों कर्मोंमें गायत्री-उपासनामें तत्पर रहना चाहिये। गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है॥ ३९॥

[पुरश्चरणकी दूसरी विधि यह भी है] मध्याह्नकालमें अल्प भोजन करे, मौन रहे, तीनों समय स्नान करे और सन्ध्योपासन करे। बुद्धिमान् पुरुषको अन्य वृत्तियोंसे मनको हटाकर जलमें तीन लाख मन्त्रोंका जप करना चाहिये॥ ४०॥

इस प्रकार पहले पुरश्चरणकर्म करनेके पश्चात् अभिलषित काम्य कर्मोंके निमित्त जप करना चाहिये। जबतक कार्यमें सिद्धिकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक जप आदि करते रहना चाहिये॥ ४१॥

सामान्यकाम्यकर्मादौ यथावद्विधिरुच्यते।
आदित्यस्योदये स्नात्वा सहस्रं प्रत्यहं जपेत्॥ ४२

आयुरारोग्यमैश्वर्यं धनं च लभते ध्रुवम्।
षण्मासं वा त्रिमासं वा वर्षान्ते सिद्धिमाप्नुयात्॥ ४३

पद्मानां लक्षहोमेन घृताक्तानां हुताशने।
प्राप्नोति निखिलं मोक्षं सिध्यत्येव न संशयः॥ ४४

मन्त्रसिद्धिं विना कर्तुर्जपहोमादिकाः क्रियाः।
काम्यं वा यदि वा मोक्षः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्॥ ४५

पञ्चविंशतिलक्षेण दध्ना क्षीरेण वा हुतात्।
स्वदेहे सिध्यते जन्तुर्महर्षीणां मतं तथा॥ ४६

अष्टाङ्गयोगसिद्ध्या च नरः प्राप्नोति यत्फलम्।
तत्फलं सिद्धिमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ ४७

शक्तो वापि त्वशक्तो वा आहारं नियतं चरेत्।
षण्मासात्तस्य सिद्धिः स्याद् गुरुभक्तिरतः सदा॥ ४८

एकाहं पञ्चगव्याशी चैकाहं मारुताशनः।
एकाहं ब्राह्मणान्नाशी गायत्रीजपकृद्भवेत्॥ ४९

स्नात्वा गङ्गादितीर्थेषु शतमन्तर्जले जपेत्।
शतेनापस्ततः पीत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ५०

चान्द्रायणादिकृच्छ्रस्य फलं प्राप्नोति निश्चितम्।
राजा वा यदि वा विप्रस्तपः कुर्यात्स्वके गृहे॥ ५१

गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽथवापि च।
अधिकारपरत्वेन फलं यज्ञादिपूर्वकम्॥ ५२

सामान्य काम्य कर्मोंमें यथावत् विधि कही गयी है। सूर्योदयकालमें स्नान करके प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ऐसा करनेवाला साधक आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा धन अवश्य प्राप्त करता है और तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षके अन्तमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३॥

एक लाख घृताक्त कमलपुष्पोंका अग्निमें होम करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वांछित फलको प्राप्त कर लेता है तथा उसे मोक्ष भी सुलभ हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४॥

मन्त्रसिद्धि किये बिना कर्ताकी जप-होम आदि क्रियाएँ, काम्यकर्म अथवा मोक्ष आदि जो भी हो; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ४५॥

पचीस लाख गायत्री-जपसे तथा दही अथवा दूधसे हवन करनेसे मनुष्य सिद्धशरीर हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका मत है॥ ४६॥

मनुष्य अष्टांगयोगके द्वारा जो फल प्राप्त करता है, वही फल इस जपसे सिद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४७॥

साधक सशक्त हो अथवा अशक्त, किंतु उसे नियत आहार ग्रहण करना चाहिये। गुरुके प्रति सदा भक्तिपरायण रहते हुए जो जप करता रहता है, उसे छः महीनेमें सिद्धि मिल जाती है॥ ४८॥

गायत्री-जप करनेवालेको एक दिन पंचगव्यके आहारपर, एक दिन वायुके आहारपर तथा एक दिन ब्राह्मणसे प्राप्त अन्नके आहारपर रहना चाहिये॥ ४९॥

गंगा आदि पवित्र नदियोंमें स्नान करके जलके भीतर ही एक सौ जप करना चाहिये। इसके बाद एक सौ मन्त्रोंका उच्चारण करके जलका पान कर लेनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। ऐसा करनेवालेको चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि व्रतोंका फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है। यदि साधक राजा अथवा ब्राह्मण हो तो उसे अपने घरपर ही तपरूपी पुरश्चरण करना चाहिये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थीको भी अपने-अपने अधिकारके अनुसार जपयज्ञ करनेके पश्चात् [पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर] फल प्राप्त हो जाता है॥ ५०—५२॥

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म क्रियते मोक्षकाङ्क्षिभिः।
साग्निकश्च सदाचारो विद्वद्भिश्च सुशिक्षितः॥ ५३

ततः कुर्यात्प्रयत्नेन फलमूलोदकादिभिः।
भिक्षान्नं शुद्धमश्नीयादष्टौ ग्रासान्स्वयं भुजेत्॥ ५४

एवं पुरश्चरणकं कृत्वा मन्त्रसिद्धिमवाप्नुयात्।
देवर्षे यदनुष्ठानाद्दारिद्र्यं विलयं व्रजेत्।
यच्छ्रुत्वापि च पुण्यानां महतीं सिद्धिमाप्नुयात्॥ ५५

मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष श्रौत और स्मार्त आदि कर्म करते हैं। साधकको फल, मूल तथा जल आदिके आहारपर रहते हुए विद्वानोंके द्वारा सम्यक् शिक्षा प्राप्त करके सदाचारी तथा अग्निहोत्री होकर प्रयत्नपूर्वक जप करना चाहिये। भिक्षामें प्राप्त शुद्ध अन्न ही ग्रहण करे, जिसमें स्वयं मात्र आठ ग्रास ही भोजन करे॥ ५३-५४॥

हे देवर्षे! इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसके अनुष्ठानमात्रसे दरिद्रता समाप्त हो जाती है और इसके श्रवणसे भी मनुष्य पुण्योंकी महती सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
गायत्रीपुरश्चरणविधिकथनं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधि

श्रीनारायण उवाच

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वैश्वदेवविधानकम्।
पुरश्चर्याप्रसङ्गेन ममापि स्मृतिमागतम्॥ १

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च।
पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैव तु पञ्चमः॥ २

पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः।
कण्डणी चोदकुम्भश्च तेषां पापस्य शान्तये॥ ३

न चुल्ल्यां नायसे पात्रे न भूमौ न च खर्परे।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा॥ ४

न पाणिना न शूर्पेण न च मेध्याजिनादिभिः।
मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत॥ ५

पटकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिना मृत्युमाप्नोति कर्मसिद्धिर्मुखेन तु॥ ६

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब वैश्वदेवकी विधि सुनिये। पुरश्चरणके प्रसंगमें यह भी मेरी स्मृतिमें आ गया है॥ १॥

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ—ये महायज्ञ हैं॥ २॥

गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, जलका घड़ा—इन पाँच वस्तुओंसे होनेवाले पापकी शान्तिके लिये यह यज्ञ आवश्यक होता है। चूल्हा, लौहपात्र, पृथ्वी, मिट्टीके बर्तन, कुण्ड अथवा वेदीपर बलिवैश्वदेव नहीं करना चाहिये॥ ३-४॥

हाथसे, सूपसे अथवा पवित्र मृगचर्म आदिसे धौंककर अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये, अपितु मुखसे फूँककर अग्निको प्रज्वलित करना चाहिये; क्योंकि अग्निका प्राकट्य मुखसे ही हुआ है॥ ५॥

कपड़ेसे हवा करनेपर व्याधि, सूपसे हवा करनेपर धननाश तथा हाथसे हवा करनेपर मृत्युकी प्राप्ति होती है। मुखसे फूँककर आग प्रज्वलित करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है॥ ६॥

फलैर्दधिघृतैः कुर्यान्मूलशाकोदकादिभिः।
अलाभे येन केनापि काष्ठमूलतृणादिभिः॥ ७

जुहुयात्सर्पिषाभ्यक्तं तैलक्षारविवर्जितम्।
दध्यक्तं वा पायसाक्तं तदभावेऽम्भसापि वा॥ ८

शुष्कैः पर्युषितैः कुष्ठी उच्छिष्टेन द्विषां वशी।
रुक्षैर्दरिद्रतां याति क्षारं हुत्वा व्रजत्यधः॥ ९

अङ्गारान्भस्ममिश्रांस्तु निर्हृत्योत्तरतोऽनलात्।
जुहुयाद्वैश्वदेवं तु न क्षारादिविमिश्रितम्॥ १०

अकृत्वा वैश्वदेवं तु यो भुङ्क्ते मूढधीर्द्विजः।
स मूढो नरकं याति कालसूत्रमवाक्शिराः॥ ११

शाकं वा यदि वा पत्रं मूलं वा यदि वा फलम्।
सङ्कल्पयेद्यदाहारं तेनाग्नौ जुहुयादपि॥ १२

अकृते वैश्वदेवे तु भिक्षौ भिक्षार्थमागते।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत्॥ १३

वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम्।
न तु भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति॥ १४

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्नस्वामिनावुभौ।
तयोरन्नमदत्त्वा तु भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ १५

वैश्वदेवान्तरं च गोग्रासं प्रतिपादयेत्।
तद्विधानं प्रवक्ष्यामि शृणु देवर्षिपूजित॥ १६

फल, दही, घी, मूल, शाक, जल आदिसे बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इन वस्तुओंके उपलब्ध न होनेपर काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि जिस किसी भी वस्तुसे उसे कर लेना चाहिये॥ ७॥

घृतसे सिक्त किये हुए हव्य-पदार्थसे हवन करना चाहिये। तैल तथा लवणमिश्रित पदार्थ हवनहेतु वर्जित हैं। दधि-मिश्रित अथवा दूध-मिश्रित और यदि इनका भी अभाव हो तो जल-मिश्रित द्रव्यसे भी हवन सम्पन्न किया जा सकता है॥ ८॥

मनुष्य शुष्क अथवा बासी अन्नसे हवन करनेपर कुष्ठी होता है, जूठे अन्नसे हवन करनेपर शत्रुका वशवर्ती हो जाता है, रुक्ष अन्नसे हवन करनेपर दरिद्र होता है तथा क्षार-वस्तुओंसे हवन करनेपर अधोगामी होता है॥ ९॥

कुछ भस्ममिश्रित अंगारोंको अग्निके उत्तरकी ओरसे निकालकर फेंक दे, तत्पश्चात् क्षार आदिसे रहित वस्तुओंसे वैश्वदेवके लिये हवन करे॥ १०॥

जो मूर्खबुद्धि द्विज विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करता है, वह मूर्ख 'कालसूत्र' नरकमें सिर नीचेकी ओर किये हुए निवास करता है॥ ११॥

शाक, पत्र, मूल अथवा फल—जो कुछ भी भोजनके लिये उपलब्ध हों, उसमेंसे संकल्पपूर्वक अग्निमें हवन भी करना चाहिये॥ १२॥

वैश्वदेव करनेसे पूर्व ही भिक्षाके लिये किसी भिक्षुकके आ जानेपर वैश्वदेवके लिये सामग्री अलग करके शेष सामग्रीमेंसे भिक्षा देकर उसे विदा कर देना चाहिये; क्योंकि पहले वैश्वदेव न करनेसे उत्पन्न दोषको शान्त करनेमें भिक्षुक तो समर्थ है, किंतु भिक्षुकके अपमानजन्य दोषका शमन करनेमें वैश्वदेव समर्थ नहीं हैं॥ १३-१४॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों ही पके हुए अन्नके स्वामी हैं, अतएव इन्हें अन्न प्रदान किये बिना ही भोजन कर लेनेपर मनुष्यको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये॥ १५॥

बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात् गोग्रास निकालना चाहिये। हे देवर्षिपूजित! उसका विधान मैं बता रहा हूँ, आप सुनिये॥ १६॥

सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता।
गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम्॥ १७

गोभ्यश्च नम इत्येव पूजां कृत्वा गवेऽर्पयेत्।
गोग्रासेन तु गोमाता सुरभिः सम्प्रसीदति॥ १८

ततो गोदोहनं कालं तिष्ठेच्चैव गृहाङ्गणे।
अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते॥ १९

स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।
माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दासः समाश्रितः॥ २०

अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निरेते पोष्या उदाहृताः।
एवं ज्ञात्वा तु यो मोहान्न करोति गृहाश्रमम्॥ २१

तस्य नायं तु न परो लोको भवति धर्मतः।
यत्फलं सोमयागेन प्राप्नोति धनवान्द्विजः॥ २२

सम्यक् पञ्चमहायज्ञैर्दरिद्रस्तेन चाप्नुयात्।
अथ प्राणाग्निहोत्रं तु वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव॥ २३

यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्ममृत्युजरादिभिः।
परिज्ञानेन मुच्यन्ते नराः पातककिल्बिषैः॥ २४

विधिना भुज्यते येन मुच्येत स ऋणत्रयात्।
कुलान्युद्धरते विप्रो नरकानेकविंशतिम्॥ २५

सर्वयज्ञफलप्राप्तिः सर्वलोकेषु गच्छति।
हृत्पुण्डरीकमरणिर्मनो मन्थानसंज्ञकम्॥ २६

वायुरज्ज्वा मथेदग्निं चक्षुरध्वर्युरेव च।
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणस्यैवाहुतिं क्षिपेत्॥ २७

हे सुरभे! आप सुरभि नामक वैष्णवी माता हैं, आप सदा वैकुण्ठमें विराजमान रहती हैं। आप मेरे द्वारा निवेदित किये गये इस गोग्रासको स्वीकार कीजिये। **गोभ्यः नमः**—ऐसा कहकर गो-पूजन करके वह गोग्रास गौको अर्पित कर दे; क्योंकि गोग्राससे गोमाता सुरभि परम प्रसन्न होती हैं॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् गोदोहनकालतक अतिथिकी प्रतीक्षामें घरके आँगनमें स्थित रहना चाहिये; क्योंकि अतिथि निराश होकर जिसके घरसे लौट जाता है, वह अतिथि उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है॥ १९½॥

माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजा, सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाला व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्य कहे गये हैं। ऐसा जानकर जो व्यक्ति मोहवश धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रमका पालन नहीं करता, उसका न तो यह लोक बनता है और न परलोक ही बनता है। धनवान् द्विज सोमयज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक दरिद्र पंचमहायज्ञोंके द्वारा सम्यक्‌रूपसे प्राप्त कर लेता है॥ २०-२२½॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं प्राणाग्निहोत्रके विषयमें बताऊँगा, जिसे जानकर मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा आदिसे मुक्त हो जाता है। इसके सम्यक् ज्ञान होनेसे मनुष्य समस्त प्रकारके पापों तथा दोषोंसे छूट जाते हैं॥ २३-२४॥

जो विप्र इस विधिसे भोजन करता है, वह तीनों ऋणों (पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण)-से मुक्त हो जाता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार कर देता है। उसे सभी यज्ञोंके फल प्राप्त हो जाते हैं तथा वह सभी लोकोंमें जानेका सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है॥ २५½॥

हृदयरूपी कमल अरणि है, मन मन्थन-काष्ठ है, वायु रस्सी है और यह नेत्र अध्वर्यु बनकर अग्निका मन्थन कर रहा है—ऐसी भावना करके तर्जनी, मध्यमा और अँगूठेसे प्राणके लिये आहुति डालनी चाहिये। मध्यमा, अनामिका और अँगूठेसे अपानके लिये आहुति डालनी चाहिये। कनिष्ठिका,

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैरपानस्याहुतिं क्षिपेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्व्यानस्य तदनन्तरम्॥ २८

कनिष्ठातर्जन्यङ्गुष्ठैरुदानस्याहुतिं क्षिपेत्।
सर्वाङ्गुलैर्गृहीत्वान्नं समानस्याहुतिं क्षिपेत्॥ २९

स्वाहान्तान्प्रणवाद्यांश्च नाममन्त्रांश्च वै पठेत्।
मुखे चाहवनीयस्तु हृदये गार्हपत्यकः॥ ३०

नाभौ च दक्षिणाग्निः स्यादधः सभ्यावसथ्यकौ।
वाग्घोता प्राण उद्गाता चक्षुरध्वर्युरेव च॥ ३१

मनो ब्रह्मा भवेच्छ्रोत्रमाग्नीध्रस्थान एव च।
अहङ्कारः पशुश्चात्र प्रणवः पय ईरितम्॥ ३२

बुद्धिश्च पत्नी सम्प्रोक्ता यदधीनो गृहाश्रमी।
उरो वेदिस्तु रोमाणि दर्भाः स्युः स्रुक्स्रुवौ करौ॥ ३३

प्राणमन्त्रस्य च ऋषी रुक्मवर्णः क्षुधाग्निकः।
देवतादित्य एवात्र गायत्रीच्छन्द उच्यते॥ ३४

प्राणाय च तथा स्वाहा मन्त्रान्ते कीर्तयेदपि।
इदमादित्यदेवाय न ममेति वदेदपि॥ ३५

अपानमन्त्रस्य तथा गोक्षीरधवलाकृतिः।
श्रद्धाग्निर्ऋषिरेवात्र सोमो वै देवता स्मृता॥ ३६

उष्णिक्छन्दस्तथापानाय स्वाहेत्यपि कीर्तयेत्।
सोमायेदं च न ममेत्यत्रोहः परिकीर्तितः॥ ३७

व्यानमन्त्रस्य चाख्यातोऽम्बुजवर्णहुताशनः।
ऋषिरुक्तो देवताग्निरनुष्टुप् छन्द ईरितम्॥ ३८

व्यानाय च तथा स्वाहाग्नयेदं न ममेत्यपि।
उदानमन्त्रस्य तथा शक्रगोपसवर्णकः॥ ३९

ऋषिरग्निः समाख्यातो वायुर्वै देवता स्मृता।
बृहतीच्छन्द आख्यातमुदानाय च पूर्ववत्॥ ४०

वायवे चेदं न मम एवं चैवोच्चरेद् द्विजः।

अनामिका और अँगूठेसे व्यानके लिये और पुनः तर्जनी तथा अँगूठेसे उदानके लिये आहुति डालनी चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण अँगुलियोंसे अन्न उठाकर समानाग्निके लिये आहुति डालनी चाहिये। इनके आदिमें प्रणव 'ॐ' तथा अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर नाममन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये [यथा **ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा** आदि]॥ २६-२९½॥

तदनन्तर मुखमें आहवनीय अग्नि, हृदयमें गार्हपत्य अग्नि, नाभिमें दक्षिणाग्नि तथा नीचेके भागमें सभ्याग्नि और आवसथ्यकाग्नि विद्यमान हैं—ऐसा चिन्तन करे। वाणी होता है, प्राण उद्गाता है, नेत्र ही अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र आग्नीध्रस्थान है, अहंकार यज्ञ-पशु है और प्रणवको पय कहा गया है। बुद्धिको पत्नी कहा गया है, जिसके अधीन गृहस्थ रहता है। वक्षःस्थल वेदी है, शरीरके रोम कुश हैं तथा दोनों हाथ स्रुक्-स्रुवा हैं॥ ३०—३३॥

सुवर्णके समान कान्तिवाले क्षुधाग्निको इस प्राणमन्त्र (**ॐ प्राणाय स्वाहा**)-का ऋषि, आदित्यको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा जाता है। '**ॐ प्राणाय स्वाहा**'—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये और मन्त्रके अन्तमें '**इदमादित्यदेवाय न मम**'—यह भी कहना चाहिये॥ ३४-३५॥

गायके दूधके समान श्वेत वर्णवाले श्रद्धाग्नि अपान मन्त्रके ऋषि हैं। सोमको इस मन्त्रका देवता कहा गया है। उष्णिक् इसका छन्द है। '**ॐ अपानाय स्वाहा**' मन्त्रके अन्तमें '**इदं सोमाय न मम**'—ऐसा पूर्वकी भाँति उच्चारण करना चाहिये॥ ३६-३७॥

कमलके समान वर्णवाले आख्यात नामक अग्नि व्यानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। अग्नि इस मन्त्रके देवता हैं तथा अनुष्टुप् इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ व्यानाय स्वाहा**' के अन्तमें '**इदमग्नये न मम**'—यह भी कहना चाहिये। इन्द्रगोपके समान रक्त वर्णवाले अग्नि उदान मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, वायु इसके देवता कहे गये हैं और बृहती इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति ही '**ॐ उदानाय स्वाहा**', '**इदं वायवे न मम**'—ऐसा द्विजको उच्चारण करना चाहिये॥ ३८—४०½॥

समानवायुमन्त्रस्य विद्युद्वर्णो विरूपकः॥ ४१

ऋषिरग्निः समाख्यातः पर्जन्यो देवता मता।
पङ्क्तिश्छन्दः समाख्यातं समानाय च पूर्ववत्॥ ४२

पर्जन्यायेदमित्युक्त्वा षष्ठीं चैवाहुतिं क्षिपेत्।
वैश्वानरो महानग्निर्ऋषिर्वै परिकीर्तितः॥ ४३

गायत्रीच्छन्द आख्यातं देवस्त्वात्मा भवेदपि।
स्वाहान्तो मन्त्र आख्यातः परमात्मन उच्चरेत्॥ ४४

इदं न मम चेत्येवं जातं प्राणाग्निहोत्रकम्।
एतज्ज्ञात्वा विधिं कृत्वा ब्रह्मभूयाय कल्पते।
प्राणाग्निहोत्रविद्येयं संक्षेपात्कथिता हि ते॥ ४५

विद्युत्‌के समान वर्णवाले विरूपकसंज्ञक अग्नि समानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, पर्जन्यको इस मन्त्रका देवता माना गया है और पंक्तिको इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति '**ॐ समानाय स्वाहा**', '**इदं पर्जन्याय न मम**' इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। एतदनन्तर छठी आहुति डालनी चाहिये। वैश्वानर नामक महान् अग्नि इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। आत्माको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ परमात्मने स्वाहा**' के बाद '**इदं परमात्मने न मम**' का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र सम्पन्न हुआ। [हे नारद!] इस विधिको जानकर तथा उसके अनुसार आचरण करके मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। इस प्रकार मैंने इस प्राणाग्निहोत्रविद्याका वर्णन आपसे संक्षेपमें कर दिया॥ ४१—४५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
वैश्वदेवादिविधिनिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

* * *

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

कृच्छ्रचान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

अमृतापिधानमित्येवमुच्चार्य साधकोत्तमः।
उच्छिष्टभाग्भ्यः पात्रान्नं दद्यादन्ते विचक्षणः॥ १

ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकाङ्क्षिणः।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन भूतले॥ २

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] साधकोंमें उत्तम विद्वान् पुरुषको भोजनके पश्चात् '**ॐ अमृतापिधानमसि**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके आचमन करना चाहिये और पात्रमें अवशिष्ट अन्न उच्छिष्टभागी पितरोंको अर्पित करना चाहिये। [उस समय इस प्रकार कहना चाहिये] 'मेरे कुलमें जो उत्पन्न हुए हों तथा जो दास-दासियाँ रही हों, साथ ही मुझसे अन्न पानेकी अभिलाषा रखनेवाले हों—वे सब मेरे द्वारा भूमिपर रखे गये इस अन्नसे तृप्त हो जायँ॥ १-२॥

रौरवेऽपुण्यनिलये पद्मार्बुदनिवासिनाम्।
अर्थिनामुदकं दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु॥ ३

तत्पश्चात् यह बोलकर जल प्रदान करे—रौरव नामक अपवित्र नरकमें पद्म तथा अर्बुद वर्षोंसे यातना भोगते हुए निवास करनेवाले तथा मुझसे जल पानेकी अभिलाषा रखनेवालोंको यह मेरे द्वारा प्रदत्त अक्षय्योदक प्राप्त हो॥ ३॥

पवित्रग्रन्थिमुत्सृज्य मण्डले भुवि निक्षिपेत्।
पात्रे तु निक्षिपेद्यस्तु स विप्रः पङ्क्तिदूषकः॥ ४

उच्छिष्टस्तेन संस्पृष्टः शुना शूद्रेण च द्विजः।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ५

अनुच्छिष्टेन संस्पृष्टैः स्नानमेव विधीयते।
एकाहुतिप्रदानेन कोटियज्ञफलं लभेत्॥ ६

पञ्चभिः पञ्चकोटीनां तदनन्तफलं स्मृतम्।
प्राणाग्निहोत्रवेत्रे यो ह्यन्नदानं करोति च॥ ७

दातुश्चैव तु यत्पुण्यं भोक्तुश्चैव तु यत्फलम्।
प्राप्नुतस्तौ तदेव द्वावुभौ तौ स्वर्गगामिनौ॥ ८

सपवित्रकरो भुङ्क्ते यस्तु विप्रो विधानतः।
ग्रासे ग्रासे फलं तस्य पञ्चगव्यसमं भवेत्॥ ९

पूजाकालत्रये नित्यं जपस्तर्पणमेव च।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते॥ १०

अधःशयानो धर्मात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
लघुमिष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतसा॥ ११

नित्यं त्रिषवणस्नायी नित्यं स शुभभाषणः।
स्त्रीशूद्रपतितव्रात्यनास्तिकोच्छिष्टभाषणम् ॥ १२

चाण्डालभाषणं चैव न कुर्यान्मुनिसत्तम।
नत्वा नैव च भाषेत जपहोमार्चनादिषु॥ १३

मैथुनस्य तथालापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत्।
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा॥ १४

सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते।
राज्ञश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ १५

[भोजनके समय अँगुलीमें पड़े हुए] पवित्रककी ग्रन्थि खोलकर पृथ्वीपर रख दे। जो विप्र उसे पात्रमें ही रख देता है, वह पंक्तिदूषक कहा जाता है॥ ४॥

यदि उच्छिष्ट द्विजका किसी उच्छिष्टसे या कुत्ते अथवा शूद्रसे स्पर्श हो जाता है, तो वह द्विज एक रात उपवास करके पुनः पंचगव्य ग्रहण करनेसे शुद्ध हो जाता है और अनुच्छिष्टसे स्पर्श होनेपर केवल स्नान करनेका विधान है। प्राणाग्निमें एक आहुति देनेसे करोड़ यज्ञका फल मिलता है, पाँच आहुतियाँ देनेसे पाँच करोड़ यज्ञोंका अनन्त फल प्राप्त होना बताया गया है। जो मनुष्य प्राणाग्निहोत्रवेत्ताको अन्नका दान करता है, उस दाताको जो पुण्य होता है तथा भोक्ताको जो फल मिलता है, वह उनको समानरूपमें प्राप्त होता है। वे दोनों ही स्वर्ग प्राप्त करते हैं॥ ५—८॥

जो विप्र हाथमें पवित्रक धारण करके विधिपूर्वक भोजन ग्रहण करता है, उसे प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्य-प्राशनके समान फल प्राप्त होता है॥ ९॥

पूजाके तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रतिदिन जप, तर्पण, होम, ब्राह्मणभोजन [तथा मार्जन]-को पुरश्चरण कहा जाता है। वह साधक नीचे भूमिपर शयन करे, धर्मपरायण रहे, क्रोधपर तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखे, अल्प; मधुर तथा हितकर पदार्थोंको ग्रहण करे, शान्त मनसे विनम्रतापूर्वक रहे। नित्य तीनों समय स्नान करे तथा सदा सुन्दर वाणी बोले। हे मुनिवर! स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक, जूठे मुखवाले व्यक्ति तथा चाण्डालसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। जप, होम, पूजन आदिके समय किसीको नमस्कार करके बातचीत नहीं करनी चाहिये॥ १०—१३॥

मन, वाणी तथा कर्मसे सभी स्थितियोंमें सर्वदा मैथुनसम्बन्धी बातचीत तथा उससे सम्बन्धित गोष्ठीका भी त्याग कर देना चाहिये। सभी तरहसे मैथुनका त्याग ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। राजा तथा गृहस्थके लिये भी ब्रह्मचर्यपालन बताया गया है॥ १४-१५॥

ऋतुस्नातेषु दारेषु सङ्गतिर्या विधानतः।
संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः॥ १६

रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत्।
ऋणत्रयमसंशोध्य त्वनुत्पाद्य सुतानपि॥ १७

तथा यज्ञाननिष्ट्वा च मोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः।
अजागलस्य यज्जन्म तज्जन्म श्रुतिचोदितम्॥ १८

अतः कार्यं तु विप्रेन्द्र ऋणत्रयविशोधनम्।
ते देवानामृषीणां च पितॄणामृणिनस्तथा॥ १९

ऋषिभ्यो ब्रह्मचर्येण पितृभ्यस्तु तिलोदकैः।
मुच्येद्यज्ञेन देवेभ्यः स्वाश्रमं धर्ममाचरेत्॥ २०

क्षीराहारी फलाशी वा शाकाशी वा हविष्यभुक्।
भिक्षाशी वा जपेद्विद्वान्कृच्छ्रचान्द्रायणादिकृत्॥ २१

लवणं क्षारमम्लं च गृञ्जनं कांस्यभोजनम्।
ताम्बूलं च द्विभुक्तं च दुष्टवासः प्रमत्तनम्॥ २२

श्रुतिस्मृतिविरोधं च जपं रात्रौ विवर्जयेत्।
वृथा न कालं गमयेद् द्यूतस्त्रीस्वापवादतः॥ २३

गमयेद्देवतापूजास्तोत्रागमविलोकनैः।
भूशय्या ब्रह्मचारित्वं मौनचर्या तथैव च॥ २४

नित्यं त्रिषवणस्नानं शूद्रकर्मविवर्जनम्।
नित्यपूजा नित्यदानमानन्दस्तुतिकीर्तनम्॥ २५

नैमित्तिकार्चनं चैव विश्वासो गुरुदेवयोः।
जपनिष्ठस्य धर्मा ये द्वादशैते सुसिद्धिदाः॥ २६

नित्यं सूर्यमुपस्थाय तस्य चाभिमुखो जपेत्।
देवताप्रतिमादौ वा वह्नौ वाभ्यर्च्य तन्मुखः॥ २७

ऋतुस्नान की हुई अपनी भार्याके साथ ही विधिपूर्वक सहवास करना चाहिये। अपने समान वर्णवाली पाणि-गृहीती भार्याका ऋतुकाल उपस्थित जानकर ही प्रयत्नपूर्वक रात्रिमें उसके साथ गमन करना चाहिये। उससे ब्रह्मचर्यका नाश नहीं होता है। तीनों ऋणोंका मार्जन, पुत्रोंकी उत्पत्ति तथा पंचमहायज्ञादि किये बिना ही मोक्षकी कामना करनेवाले व्यक्तिका अधःपतन हो जाता है। बकरीके गलेके स्तनकी भाँति उसका जन्म श्रुतियोंद्वारा निष्फल बताया गया है॥ १६—१८॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणी होते हैं। मनुष्य ब्रह्मचर्यद्वारा ऋषियोंके, तिलोदकदानसे पितरोंके तथा यज्ञानुष्ठानसे देवताओंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने-अपने आश्रमसम्बन्धी धर्मोंका पालन करे॥ १९-२०॥

कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले विद्वान्‌को दुग्ध, फल, शाक, हविष्यान्न तथा भिक्षान्नके आहारपर रहते हुए जप करना चाहिये। उसे लवण, क्षार, अम्ल, गाजर, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल, दो बार भोजन, दुष्टोंकी संगति, उन्मत्तता, श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध व्यवहार तथा रातमें जप आदिका त्याग कर देना चाहिये। जुआ खेलने, स्त्रीसंग करने तथा निन्दा आदिमें समयको व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहिये; अपितु देवताओंकी पूजा, स्तुति तथा शास्त्रावलोकनमें ही समय व्यतीत करना चाहिये॥ २१—२३$\frac{1}{2}$॥

भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यपालन, मौनधारण, प्रतिदिन त्रिकाल स्नान, नीच कर्मोंसे विरत रहना, प्रतिदिन पूजा करना, दान देना, आनन्दित रहना, स्तुति करना, कीर्तनमें तत्पर रहना, नैमित्तिक पूजन तथा गुरु और देवतामें विश्वास रखना—जपपरायण पुरुषके लिये महान् सिद्धि प्रदान करनेवाले ये बारह धर्म हैं॥ २४—२६॥

प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उनके सम्मुख होकर जप करना चाहिये। देवप्रतिमा आदि अथवा अग्निमें सूर्यका अभ्यर्चन करके उनके सम्मुख स्थित होकर

स्नानपूजाजपध्यानहोमतर्पणतत्परः ।
निष्कामो देवतायां च सर्वकर्मनिवेदकः॥ २८

एवमादींश्च नियमान्पुरश्चरणकृच्चरेत्।
तस्माद् द्विजः प्रसन्नात्मा जपहोमपरायणः॥ २९

तपस्यध्ययने युक्तो भवेद्भूतानुकम्पकः।
तपसा स्वर्गमाप्नोति तपसा विन्दते महत्॥ ३०

तपोयुक्तस्य सिध्यन्ति कर्माणि नियतात्मनः।
विद्वेषणं संहरणं मारणं रोगनाशनम्॥ ३१

येन येनाथ ऋषिणा यदर्थं देवताः स्तुताः।
स स कामः समृद्ध्येत तेषां तेषां तथा तथा॥ ३२

तानि कर्माणि वक्ष्यामि विधानानि च कर्मणाम्।
पुरश्चरणमादौ च कर्मणां सिद्धिकारकम्॥ ३३

स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
केशश्मश्रुलोमनखान् वापयित्वा ततः शुचिः॥ ३४

तिष्ठेदहनि रात्रौ तु शुचिरासीत वाग्यतः।
सत्यवादी पवित्राणि जपेद्व्याहृतयस्तथा॥ ३५

ॐकाराद्यास्तु ता जप्त्वा सावित्रीं च तदित्यृचम्।
आपो हि ष्ठेति सूक्तं च पवित्रं पापनाशनम्॥ ३६

पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च पावमान्यस्तथैव च।
सर्वत्रैतत्प्रयोक्तव्यमादावन्ते च कर्मणाम्॥ ३७

आसहस्रादाशताद्वाप्यादशादथवा जपेत्।
ॐकारं व्याहृतीस्तिस्रः सावित्रीमथवायुतम्॥ ३८

तर्पयित्वाद्भिराचार्यानृषींश्छन्दांसि देवताः।
अनार्येण न भाषेत शूद्रेणापि न गर्हितैः॥ ३९

नापि चोदक्यया वध्वा पतितैर्नान्त्यजैर्नृभिः।
न देवब्राह्मणद्विष्टैर्नाचार्यगुरुनिन्दकैः॥ ४०

जप करना चाहिये। इस प्रकार स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम तथा तर्पणमें तत्पर रहना चाहिये और निष्काम होकर अपने सम्पूर्ण कर्म देवताको समर्पित कर देने चाहिये। पुरश्चरण करनेवाले व्यक्तिको चाहिये कि वह इन प्रारम्भिक नियमोंका पालन अवश्य करे। अतएव द्विजको प्रसन्न मनसे जप तथा होममें लगे रहना चाहिये। उसे तपस्या तथा अध्ययनमें निरत और प्राणियोंके प्रति दयाभाववाला होना चाहिये॥ २७—२९$\frac{१}{२}$ ॥

मनुष्य तपस्यासे स्वर्ग प्राप्त करता है तथा तपस्यासे महान् फल पाता है। संयत आत्मावाला तपपरायण पुरुष विद्वेषण, संहरण, मारण तथा रोगशमन आदि सभी कार्योंको सिद्ध कर लेता है॥ ३०-३१ ॥

जिस-जिस ऋषिने जिस-जिस प्रयोजनके लिये देवताओंकी स्तुति की, उन सभीकी वह-वह कामना सिद्ध हुई। अब उन कर्मों तथा उनके विधानोंके विषयमें बताऊँगा। कर्मोंके आरम्भके पूर्व पुरश्चरण कर लेना कर्मसिद्धिका कारक होता है॥ ३२-३३ ॥

स्वाध्यायाभ्यसन अर्थात् गायत्रीमन्त्रके पुरश्चरणमें द्विजको पहले प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। इसके लिये सिर तथा दाढ़ीके केश और नखोंको कटाकर शुद्ध हो जाय। इसके बाद एक दिन-रात शरीरकी पवित्रता बनाये रखे। वाणीसे पवित्र रहे। सत्य भाषण करे और पवित्र मन्त्रोंका जप करे। गायत्रीकी व्याहृतियोंके आदिमें ॐकार लगाकर '**तत्सवितुः०**' इस सावित्री ऋचाका जप करना चाहिये। '**आपो हि ष्ठा०**' यह सूक्त पवित्र तथा पापनाशक है। इसी प्रकार '**पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च०**' एवं '**पावमान्यः०**'—इन पवित्र मन्त्रोंका प्रयोग सभी कर्मोंके आदि तथा अन्तमें सर्वत्र करना चाहिये। शान्तिके लिये एक हजार, एक सौ अथवा दस बार इनका जप कर लेना चाहिये। अथवा ॐकार और तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रका दस हजार जप करना चाहिये॥ ३४—३८ ॥

आचार्यों, ऋषियों, छन्दों तथा देवताओंका जलसे तर्पण करना चाहिये। अनार्य, शूद्र, निन्द्य पुरुषों, ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतितजनों, चाण्डालों, देवता-ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाले, आचार्य तथा गुरुकी निन्दा करनेवाले और माता-पितासे द्वेष रखनेवाले

न मातृपितृविद्विष्टैर्नावमन्येत कञ्चन।
कृच्छ्राणामेष सर्वेषां विधिरुक्तोऽनुपूर्वशः॥ ४१

प्राजापत्यस्य कृच्छ्रस्य तथा सान्तपनस्य च।
पराकस्य च कृच्छ्रस्य विधिश्चान्द्रायणस्य च॥ ४२

पञ्चभिः पातकैः सर्वैर्दुष्कृतैश्च प्रमुच्यते।
तप्तकृच्छ्रेण सर्वाणि पापानि दहति क्षणात्॥ ४३

त्रिभिश्चान्द्रायणैः पूतो ब्रह्मलोकं समश्नुते।
अष्टभिर्देवताः साक्षात्पश्येत वरदास्तदा॥ ४४

छन्दांसि दशभिर्ज्ञात्वा सर्वान्कामान्समश्नुते।
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्॥ ४५

त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यं चरेद् द्विजः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ ४६

एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम्।
एकैकं ग्रासमश्नीयादहानि त्रीणि पूर्ववत्॥ ४७

त्र्यहं चोपवसेदित्थमतिकृच्छ्रं चरेद् द्विजः।
एवमेव त्रिभिर्युक्तं महासान्तपनं स्मृतम्॥ ४८

तप्तकृच्छ्रं चरन्विप्रो जलक्षीरघृतानिलान्।
प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायी समाहितः॥ ४९

नियतस्तु पिबेदापः प्राजापत्यविधिः स्मृतः।
यतात्मनोऽप्रमत्तस्य द्वादशाहमभोजनम्॥ ५०

व्यक्तियोंके साथ बातचीत न करे तथा किसीका भी अपमान न करे। सम्पूर्ण कृच्छ्र व्रतोंकी यही विधि है, जिसका आनुपूर्वी वर्णन मैंने कर दिया॥ ३९—४१॥

अब कृच्छ्र, प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, चान्द्रायण आदि कृच्छ्र व्रतोंकी विधि कही जाती है। इसके प्रभावसे मनुष्य पाँच प्रकारके पातकों तथा समस्त दुष्कृत्योंसे मुक्त हो जाता है। तप्तकृच्छ्रव्रतसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं॥ ४२-४३॥

तीन चान्द्रायणव्रतोंको कर लेनेसे मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, आठ चान्द्रायणव्रतोंसे वर प्रदान करनेवाले देवताओंका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेता है और दस चान्द्रायणव्रतोंके द्वारा वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके अपने सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है॥ ४४½॥

तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन बिना माँगे प्राप्त हुआ भोज्यपदार्थ ग्रहण करे। इसके बाद तीन दिनोंतक कुछ भी नहीं ग्रहण करना चाहिये; इस प्रकारसे द्विजको प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥ ४५½॥

प्रथम दिन गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, दधि, घृत तथा कुशोदकको एकमें सम्मिश्रित करके पी ले; फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह कृच्छ्रसान्तपनव्रत कहा जाता है॥ ४६½॥

तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास प्रातःकाल तथा तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास सायंकाल और तीन दिनोंतक अयाचित रूपसे एक-एक ग्रास ग्रहण करना चाहिये और तीन दिनोंतक उपवास करना चाहिये; इस प्रकार द्विजको अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इस व्रतके नियमोंका तीन गुने रूपसे पालन करना महासान्तपनव्रत कहा गया है॥ ४७-४८॥

इसी प्रकार तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करनेवाले विप्रको चाहिये कि समाहितचित्त होकर तीन-तीन दिनोंतक क्रमसे उष्ण जल, उष्ण दुग्ध, उष्ण घृत तथा उष्ण वायुके आहारपर रहे और एक बार स्नान करे॥ ४९॥

नियमपूर्वक केवल जल पीकर रहना प्राजापत्यव्रतकी विधि कही गयी है। मनको अधिकारमें

पराको नाम कृच्छ्रोऽयं सर्वपापप्रणोदनः।
एकैकं तु ग्रसेत्पिण्डं कृष्णे शुक्ले च वर्धयेत्॥ ५१

अमावास्यां न भुञ्जीत एवं चान्द्रायणे विधिः।
उपस्पृश्य त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ ५२

चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिण्डान्कृताह्निकः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं स्मृतम्॥ ५३

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिने स्थिते।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं व्रतम्॥ ५४

एतद्रुद्रास्तथादित्या वसवश्च चरन्ति हि।
सर्वे कुशलिनो देवा मरुतश्च भुवा सह॥ ५५

एकैकं सप्तरात्रेण पुनाति विधिवत्कृतम्।
त्वगसृक्पिशितास्थीनि मेदोमज्जावसास्तथा॥ ५६

एकैकं सप्तरात्रेण शुध्यत्येव न संशयः।
एभिर्व्रतैर्विपूतात्मा कर्म कुर्वीत नित्यशः॥ ५७

एवं शुद्धस्य कर्माणि सिध्यन्त्येव न संशयः।
शुद्धात्मा कर्म कुर्वीत सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ ५८

इष्टान्कामांस्ततः सर्वान्सम्प्राप्नोति न संशयः।
त्रिरात्रमेवोपवसेद्रहितः सर्वकर्मणा॥ ५९

त्रीणि नक्तानि वा कुर्यात्ततः कर्म समारभेत्।
एवं विधानं कथितं पुरश्चर्याफलप्रदम्॥ ६०

रखना, प्रमत्तकी भाँति आचरण न करना तथा बारह दिनोंतक उपवास करना—यही पराक नामक कृच्छ्रव्रत है; यह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ५०½ ॥

[अब चान्द्रायणव्रतकी विधि कही जा रही है]—कृष्णपक्षमें एक-एक ग्रास कम करके तथा शुक्लपक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ाकर आहार ग्रहण करना चाहिये तथा अमावास्याके दिन भोजन नहीं करना चाहिये—इस प्रकारकी विधिका चान्द्रायणव्रतमें पालन करना चाहिये। इसमें तीनों समय स्नान करनेका विधान है। इन सभी नियमोंका पालन चान्द्रायणव्रत कहा गया है॥ ५१-५२॥

प्रातःकाल स्नान आदि आह्निक कृत्य सम्पन्नकर विप्र प्रातः चार ग्रास भोजन करे तथा सूर्यास्त हो जानेपर भी चार ही ग्रास ग्रहण करे, इसे शिशुचान्द्रायणव्रत कहा गया है। संयमित आत्मावाले पुरुषको [मासपर्यन्त] दिनके मध्याह्नकालमें हविष्यके आठ-आठ ग्रास ग्रहण करने चाहिये। इसे यतिचान्द्रायणव्रत कहते हैं॥ ५३-५४॥

रुद्र, आदित्य, वसुगण, मरुद्गण, पृथ्वी तथा सभी कुशल देवता इस व्रतका अनुष्ठान सदैव करते रहते हैं। विधि-विधानसे किया गया यह व्रत सात रात्रिमें शरीरकी त्वचा, रक्त, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा तथा वसा—इन धातुओंको एक-एक करके पवित्र कर देता है; इस प्रकार सात रातोंमें वह व्रती शुद्ध हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५-५६½ ॥

अतएव व्रतीको चाहिये कि इन व्रतोंके द्वारा पवित्र मनवाला होकर सदा सत्कर्म करता रहे। इस प्रकार शुद्धिको प्राप्त हुए मनुष्यके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। मनुष्यको विशुद्धात्मा, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय होकर कर्म करना चाहिये; तभी वह अपनी सम्पूर्ण अभिलषित कामनाओंकी प्राप्ति करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७-५८½ ॥

सम्पूर्ण कर्मोंसे अनासक्त होकर पहले तीन दिन उपवास रखे अथवा तीन दिन केवल रातमें भोजन करे; इसके बाद कार्यका आरम्भ करे। यह विधान पुरश्चरणका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। हे देवर्षे! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण वांछित

गायत्र्याश्च पुरश्चर्या सर्वकामप्रदायिनी।
कथिता तव देवर्षे महापापविनाशिनी॥ ६१

फल प्रदान करनेवाले तथा महान् पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीपुरश्चरणका वर्णन आपसे कर दिया॥ ५९—६१॥

आदौ कुर्याद् व्रतं मन्त्री देहशोधनकारकम्।
पुरश्चर्यां ततः कुर्यात्समस्तफलभाग्भवेत्॥ ६२

मन्त्रसाधकको आरम्भमें शरीरकी शुद्धि करनेवाला व्रत करना चाहिये। इसके बाद ही पुरश्चरण प्रारम्भ करना चाहिये, तभी साधक सम्पूर्ण फलका भागी होता है॥ ६२॥

इति ते कथितं गुह्यं पुरश्चर्याविधानकम्।
एतत्परस्मै नो वाच्यं श्रुतिसारं यतः स्मृतम्॥ ६३

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पुरश्चरणका यह गोपनीय विधान आपको बता दिया है। इसे दूसरोंको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि यह श्रुतियोंका सार कहा गया है॥ ६३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
तप्तकृच्छ्रादिलक्षणवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग

नारद उवाच

नारायण महाभाग गायत्र्यास्तु समासतः।
शान्त्यादिकान्प्रयोगांस्तु वदस्व करुणानिधे॥ १

नारदजी बोले—हे महाभाग! हे नारायण! हे करुणा-निधान! अब आप गायत्रीके शान्ति आदिसे सम्बद्ध प्रयोगोंका संक्षेपमें वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण उवाच

अतिगुह्यमिदं पृष्टं त्वया ब्रह्मतनूद्भव।
न कस्यापि च वक्तव्यं दुष्टाय पिशुनाय च॥ २

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आपने यह अत्यन्त गोपनीय बात पूछी है; किसी भी दुष्ट तथा चुगलखोरको इसे नहीं बताना चाहिये॥ २॥

अथ शान्तिः पयोऽक्ताभिः समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः।
शमीसमिद्भिः शाम्यन्ति भूतरोगग्रहादयः॥ ३

आर्द्राभिः क्षीरवृक्षस्य समिद्भिर्जुहुयाद् द्विजः।
जुहुयाच्छकलैर्वापि भूतरोगादिशान्तये॥ ४

हे नारद! अब मैं शान्तिका वर्णन करता हूँ। द्विजको दुग्धमिश्रित समिधाओंसे हवन करना चाहिये। शमीकी समिधाओंसे भूत, रोग, ग्रह आदि शान्त हो जाते हैं। द्विजको चाहिये कि भूत, रोग आदिकी शान्तिके लिये क्षीरवृक्ष (पीपल, गूलर, पाकड़, वट आदि)-की गीली समिधाओंसे हवन करे अथवा उन क्षीरवृक्षोंकी समिधाओंके खण्डोंसे हवन करे॥ ३-४॥

जलेन तर्पयेत्सूर्यं पाणिभ्यां शान्तिमाप्नुयात्।
जानुदघ्ने जले जप्त्वा सर्वान्दोषाञ्छमं नयेत्॥ ५

कण्ठदघ्ने जले जप्त्वा मुच्येत्प्राणान्तिकाद्भयात्।
सर्वेभ्यः शान्तिकर्मभ्यो निमज्याप्सु जपः स्मृतः॥ ६

दोनों हाथोंमें जल लेकर सूर्यका तर्पण करे और इससे शान्ति प्राप्त करे। जानुपर्यन्त जलमें स्थित होकर गायत्रीका जप करके अपने सभी दोषोंको शान्त करे। कण्ठपर्यन्त जलमें स्थित होकर जप करनेसे मनुष्य प्राणका अन्त करनेवाले भयसे भी मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके शान्तिकर्मोंके लिये जलमें निमग्न होकर गायत्रीका जप करना बताया गया है॥ ५-६॥

सौवर्णे राजते वापि पात्रे ताम्रमयेऽपि वा।
क्षीरवृक्षमये वापि निर्व्रणे मृण्मयेऽपि वा॥ ७

सहस्रं पञ्चगव्येन हुत्वा सुज्वलितेऽनले।
क्षीरवृक्षमयैः काष्ठैः शेषं सम्पादयेच्छनैः॥ ८

प्रत्याहुतिं स्पृशञ्जप्त्वा सहस्रं पात्रसंस्थितम्।
तेन तं प्रोक्षयेद्देशं कुशैर्मन्त्रमनुस्मरन्॥ ९

बलिं किरंस्ततस्तस्मिन्ध्यायेत्तु परदेवताम्।
अभिचारसमुत्पन्ना कृत्या पापं च नश्यति॥ १०

देवभूतपिशाचाद्यान् यद्येवं कुरुते वशे।
गृहं ग्रामं पुरं राष्ट्रं सर्वं तेभ्यो विमुच्यते॥ ११

निखने मुच्यते तेभ्यो लिखने मध्यतोऽपि च।
मण्डले शूलमालिख्य पूर्वोक्ते च क्रमेऽपि वा॥ १२

अभिमन्त्र्य सहस्रं तन्निखनेत्सर्वशान्तये।
सौवर्णं राजतं वापि कुम्भं ताम्रमयं च वा॥ १३

मृण्मयं वा नवं दिव्यं सूत्रवेष्टितमव्रणम्।
स्थण्डिले सैकते स्थाप्य पूरयेन्मन्त्रविज्जलैः॥ १४

दिग्भ्य आहृत्य तीर्थानि चतसृभ्यो द्विजोत्तमैः।
एलाचन्दनकर्पूरजातीपाटलमल्लिकाः॥ १५

बिल्वपत्रं तथा क्रान्तां देवीं व्रीहियवांस्तिलान्।
सर्षपान्क्षीरवृक्षाणां प्रवालानि च निक्षिपेत्॥ १६

सर्वाण्यभिविधायैवं कुशकूर्चसमन्वितम्।
स्नातः समाहितो विप्रः सहस्रं मन्त्रयेद् बुधः॥ १७

[अब दूसरा प्रयोग कहा जाता है—] सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा दूधवाले वृक्षकी लकड़ीके छिद्ररहित पात्रमें रखे हुए पंचगव्यद्वारा प्रज्वलित अग्निमें क्षीरवाले वृक्षकी समिधाओंसे एक हजार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके हवन करे। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न करे। प्रत्येक आहुतिके समय पंचगव्यका स्पर्श करते हुए हवन करके पात्रमें अवशिष्ट पंचगव्यको हजार बार गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रितकर मन्त्रका स्मरण करते हुए कुशोंद्वारा पंचगव्यसे वहाँके स्थानका प्रोक्षण करे॥ ७—९॥

तदनन्तर बलि-द्रव्य विकीर्ण करते हुए इष्ट देवताका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे अभिचार कर्मोंसे उत्पन्न कृत्या तथा पापका नाश हो जाता है। यदि कोई ऐसा करता है तो देवता, भूत तथा पिशाच उसके वशीभूत हो जाते हैं। साथ ही उसके इस कर्मसे गृह, ग्राम, पुर तथा राष्ट्र—ये सब उनके अनिष्टकारी प्रभावसे मुक्त हो जाते हैं॥ १०-११॥

भूमिपर चतुष्कोणमण्डल बनाकर उसके मध्य भागमें गायत्रीमन्त्र पढ़कर त्रिशूल गाड़ दे। इससे भी उन पिशाचादिसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा मन्त्रज्ञ पुरुषको चाहिये कि सभी प्रकारकी शान्तिके लिये पूर्वोक्त मण्डलमें ही गायत्रीके एक हजार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिशूलको गाड़े और वहाँपर सोने, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका एक छिद्ररहित, सूत्रवेष्टित नवीन तथा दिव्य कलश बालूसे बनी हुई एक वेदीपर स्थापित करके जलसे उसे भर दे॥ १२—१४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चारों दिशाओंके तीर्थोंका उसमें आवाहन करके इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, गुलाब, मालती, बिल्वपत्र, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, धान, यव, तिल, सरसों तथा दूधवाले वृक्षोंके कोमल पत्तोंको उस कलशमें छोड़ देना चाहिये और उसमें कुशोंसे बनाया गया एक कूर्च भी रख देना चाहिये। इस प्रकार सब कुछ सम्पन्न हो जानेपर स्नान आदिसे पवित्र बुद्धिमान् विप्रको एकाग्रचित्त होकर एक हजार गायत्रीमन्त्रसे उस कलशको अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ १५—१७॥

दिक्षु सौरानधीयीरन्मन्त्रान्विप्रास्त्रयीविदः।
प्रोक्षयेत्पाययेदेनं नीरं तेनाभिषिञ्चयेत्॥ १८

भूतरोगाभिचारेभ्यः स निर्मुक्तः सुखी भवेत्।
अभिषेकेण मुच्येत मृत्योरास्यगतो नरः॥ १९

अवश्यं कारयेद्विद्वान्राजा दीर्घं जिजीविषुः।
गावो देयाश्च ऋत्विग्भ्य अभिषेके शतं मुने॥ २०

दक्षिणा येन वा तुष्टिर्यथाशक्त्याथवा भवेत्।
जपेदश्वत्थमालभ्य मन्दवारे शतं द्विजः॥ २१

भूतरोगाभिचारेभ्यो मुच्यते महतो भयात्।
गुडूच्याः पर्वविच्छिन्नाः पयोऽक्ता जुहुयाद् द्विजः॥ २२

एवं मृत्युञ्जयो होमः सर्वव्याधिविनाशनः।
आम्रस्य जुहुयात्पत्रैः पयोऽक्तैर्ज्वरशान्तये॥ २३

वचाभिः पयसाक्ताभिः क्षयं हुत्वा विनाशयेत्।
मधुत्रितयहोमेन राजयक्ष्मा विनश्यति॥ २४

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम्।
राजयक्ष्माभिभूतं च प्राशयेच्छान्तिमाप्नुयात्॥ २५

लताः पर्वसु विच्छिद्य सोमस्य जुहुयाद् द्विजः।
सोमे सूर्येण संयुक्ते पयोऽक्ताः क्षयशान्तये॥ २६

कुसुमैः शङ्खवृक्षस्य हुत्वा कुष्ठं विनाशयेत्।
अपस्मारविनाशः स्यादपामार्गस्य तण्डुलैः॥ २७

पुनः वेदज्ञ ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंमें बैठकर सूर्य-सम्बन्धी मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। उस भूतादिग्रस्त पुरुषको वह अभिमन्त्रित जल पिलाना चाहिये और उसीसे उसका प्रोक्षण तथा अभिषेक भी करना चाहिये। इस अभिषेकसे वह व्यक्ति भूतों, रोगों तथा अभिचारोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है; साक्षात् मृत्युके मुखमें गया हुआ प्राणी भी अभिषेकसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

दीर्घ कालतक जीवन धारण करनेकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् राजाको ऐसे अनुष्ठान अवश्य कराने चाहिये। हे मुने! अभिषेककी समाप्तिपर ऋत्विजोंको एक सौ गायें प्रदान करनी चाहिये और दक्षिणा उतनी हो, जिससे ऋत्विक् सन्तुष्ट हो जायँ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार भी दक्षिणा दी जा सकती है॥ २०$\frac{१}{२}$॥

द्विजको चाहिये कि शनिवारको पीपलवृक्षके नीचे गायत्रीका सौ बार जप करे। इससे वह भूत, रोग तथा अभिचारसे उत्पन्न महान् भयसे मुक्त हो जाता है॥ २१$\frac{१}{२}$॥

द्विजको गाँठोंपरसे खण्ड-खण्ड किये गये गुरुचको दूधमें भिगोकर उससे हवन करना चाहिये। यह 'मृत्युंजयहोम' है, जो समस्त व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥ २२$\frac{१}{२}$॥

ज्वरकी शान्तिके लिये दूधमें भिगोये गये आमके पत्तोंकी आहुति देनी चाहिये। दूधमें भिगोये गये 'वच' का हवन करनेसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। तीनों मधु (दूध, दही, घृत)-से किये गये हवनसे राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है। खीरका हवन करके उसे सूर्यको अर्पित करनेके बाद राजयक्ष्मासे ग्रस्त पुरुषको [प्रसाद-रूपमें] उसका प्राशन कराना चाहिये, जिससे रोग शान्त हो जाता है॥ २३—२५॥

द्विजको क्षयरोगकी शान्तिके लिये सोमलताको गाँठोंपरसे अलग-अलग करके उसे दूधमें भिगोकर अमावास्या तिथिको उससे हवन करना चाहिये। शंखवृक्षके पुष्पोंसे हवन करके कुष्ठरोग दूर करे। इसी तरह अपामार्गके बीजोंसे हवन करनेपर अपस्मार (मिर्गी) रोगका नाश हो जाता है॥ २६-२७॥

क्षीरवृक्षसमिद्धोमादुन्मादोऽपि विनश्यति।
औदुम्बरसमिद्धोमादतिमेहः क्षयं व्रजेत्॥ २८

प्रमेहं शमयेद्धुत्वा मधुनेक्षुरसेन वा।
मधुत्रितयहोमेन नयेच्छान्तिं मसूरिकाम्॥ २९

कपिलासर्पिषा हुत्वा नयेच्छान्तिं मसूरिकाम्।
उदुम्बरवटाश्वत्थैर्गोगजाश्वामयं हरेत्॥ ३०

पिपीलिमधुवल्मीके गृहे जाते शतं शतम्।
शमीसमिद्भिरन्नेन सर्पिषा जुहुयाद् द्विजः॥ ३१

तदुत्थं शान्तिमायाति शेषैस्तत्र बलिं हरेत्।
अभ्रस्तनितभूकम्पालक्ष्यादौ वनवेतसः॥ ३२

सप्ताहं जुहुयादेवं राष्ट्रे राज्यं सुखी भवेत्।
यां दिशं शतजप्तेन लोष्ठेनाभिप्रताडयेत्॥ ३३

ततोऽग्निमारुतारिभ्यो भयं तस्य विनश्यति।
मनसैव जपेदेनां बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ ३४

भूतरोगविषादिभ्यः स्पृशञ्जप्त्वा विमोचयेत्।
भूतादिभ्यो विमुच्येत जलं पीत्वाभिमन्त्रितम्॥ ३५

अभिमन्त्र्य शतं भस्म न्यसेद्भूतादिशान्तये।
शिरसा धारयेद्भस्म मन्त्रयित्वा तदित्यृचा॥ ३६

सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः सुखी जीवेच्छतं समाः।
अशक्तः कारयेच्छान्तिं विप्रं दत्त्वा तु दक्षिणाम्॥ ३७

क्षीरवृक्षकी समिधासे किये गये होमसे उन्माद रोग दूर हो जाता है। गूलरकी समिधासे हवन करनेपर अतिमेहरोग नष्ट हो जाता है; साथ ही मधु अथवा ईखके रससे हवन करके मनुष्य प्रमेहरोगको शान्त कर सकता है। मनुष्य त्रिमधु (दूध, दही और घी)-के हवनसे चेचकरोगको समाप्त कर सकता है, उसी प्रकार कपिला गायके घीसे हवन करके भी चेचकरोगको शान्त कर सकता है और गूलर, वट तथा पीपलकी समिधाओंसे हवन करके गाय, घोड़े और हाथियोंके रोगको नष्ट कर सकता है॥ २८—३०॥

पिपीलिका और मधुवल्मीक जन्तुओंका घरमें उपद्रव होनेपर घृतयुक्त शमीकी समिधाओं तथा भातसे प्रत्येक कार्यके लिये सौ-सौ आहुतियाँ द्विजको देनी चाहिये। ऐसा करनेसे उनके द्वारा उत्पन्न उपद्रव शान्त हो जाता है। इसके बाद बचे हुए पदार्थोंसे वहाँ बलि प्रदान करनी चाहिये॥ ३१½॥

बिजली गिरने और भूकम्प आदिके लक्षित होनेपर जंगली बेंतकी समिधासे सात दिनोंतक हवन करना चाहिये; इससे राष्ट्रमें राज्यसुख विद्यमान रहता है॥ ३२½॥

कोई पुरुष सौ बार गायत्रीमन्त्रका जप करके जिस दिशामें मिट्टीका ढेला फेंकता है, उसे उस दिशामें अग्नि, हवा तथा शत्रुओंसे होनेवाला भय दूर हो जाता है। मन-ही-मन इस गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे बन्धनमें पड़ा मनुष्य उस बन्धनसे छूट जाता है॥ ३३-३४॥

कोई मनुष्य भूत, रोग तथा विषसे संग्रस्त व्यक्तिको स्पर्श करते हुए गायत्रीका जप करके इनसे मुक्त कर देता है। गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल पीकर मनुष्य भूत-प्रेतादिसे मुक्त हो जाता है॥ ३५॥

भूत आदिसे शान्तिके लिये गायत्रीमन्त्रका सौ बार उच्चारण करके भस्मको अभिमन्त्रितकर उसे रख लेना चाहिये और '**तत्सवितु०**' ऋचासे उस भस्मको सिरपर धारण करना चाहिये॥ ३६॥

ऐसा करनेसे वह पुरुष समस्त व्याधियोंसे मुक्त होकर सौ वर्षतक सुखपूर्वक जीता है। यदि कोई इसे करनेमें असमर्थ हो तो किसी विप्रको दक्षिणा देकर उससे शान्ति-कर्म करा लेना चाहिये॥ ३७॥

अथ पुष्टिं श्रियं लक्ष्मीं पुष्पैर्हुत्वाप्नुयाद् द्विजः।
श्रीकामो जुहुयात्पद्मै रक्तैः श्रियमवाप्नुयात्॥ ३८

हुत्वा श्रियमवाप्नोति जातीपुष्पैर्नवैः शुभैः।
शालितण्डुलहोमेन श्रियमाप्नोति पुष्कलाम्॥ ३९

समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य हुत्वा श्रियमवाप्नुयात्।
बिल्वस्य शकलैर्हुत्वा पत्रैः पुष्पैः फलैरपि॥ ४०

श्रियमाप्नोति परमां मूलस्य शकलैरपि।
समिद्भिर्बिल्ववृक्षस्य पायसेन च सर्पिषा॥ ४१

शतं शतं च सप्ताहं हुत्वा श्रियमवाप्नुयात्।
लाजैस्त्रिमधुरोपेतैर्होमे कन्यामवाप्नुयात्॥ ४२

अनेन विधिना कन्या वरमाप्नोति वाञ्छितम्।
रक्तोत्पलशतं हुत्वा सप्ताहं हेम चाप्नुयात्॥ ४३

सूर्यबिम्बे जलं हुत्वा जलस्थं हेम चाप्नुयात्।
अन्नं हुत्वाप्नुयादन्नं व्रीहीन्व्रीहिपतिर्भवेत्॥ ४४

करीषचूर्णैर्वत्सस्य हुत्वा पशुमवाप्नुयात्।
प्रियङ्गुपायसाज्यैश्च भवेद्धोमादिभिः प्रजा॥ ४५

निवेद्य भास्करायान्नं पायसं होमपूर्वकम्।
भोजयेत्तदृतुस्नातां पुत्रं परमवाप्नुयात्॥ ४६

सप्ररोहाभिरार्द्राभिरायुर्हुत्वा समाप्नुयात्।
समिद्भिः क्षीरवृक्षस्य हुत्वायुषमवाप्नुयात्॥ ४७

सप्ररोहाभिरार्द्राभी रक्ताभिर्मधुरत्रयैः।
व्रीहीणां च शतं हुत्वा हेम चायुरवाप्नुयात्॥ ४८

पुष्पोंकी आहुति देकर द्विज पुष्टि, श्री तथा लक्ष्मी प्राप्त करता है। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले पुरुषको लाल कमलपुष्पोंसे हवन करना चाहिये, इससे वह श्रीकी प्राप्ति करता है। जातीके नवीन शुभ पुष्पोंसे आहुति देकर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा शालिके चावलोंके हवनसे वियुक्त लक्ष्मी प्राप्त करता है। बिल्ववृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है। साथ ही बिल्वफलके खण्डों, पत्तों, पुष्पों, फलों तथा बिल्ववृक्षके मूलके खण्डोंसे हवन करके उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है। इसी प्रकार खीर तथा घृतसे मिश्रित बिल्ववृक्षकी समिधाओंकी सात दिनोंतक सौ-सौ आहुतियाँ देकर मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४१½ ॥

मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त लावाका हवन करनेसे पुरुष कन्या प्राप्त करता है और इसी विधिसे कन्या भी अभिलषित वर प्राप्त कर लेती है। एक सप्ताहतक रक्तकमलकी सौ आहुतियाँ देकर पुरुष सुवर्ण प्राप्त कर लेता है और सूर्यके बिम्बमें जलकी आहुति देकर मनुष्य जलमें स्थित सोना प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३½ ॥

अन्नका हवन करके मनुष्य अन्न प्राप्त करता है तथा व्रीहिका हवन करके व्रीहिका स्वामी हो जाता है। बछड़ेके गोमयके चूर्णसे हवन करके पुरुष पशुओंकी प्राप्ति करता है। प्रियंगु, दूध तथा घीके द्वारा हवनसे प्रजा—सन्तान प्राप्त होती है। खीरका हवन करके तथा सूर्यको निवेदित करके उसे ऋतुस्नाता स्त्रीको खिलाये; ऐसा करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है॥ ४४—४६ ॥

अंकुरित शाखाओंवाली आर्द्र समिधाओंसे हवन करनेपर आयुकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार दूधवाले वृक्षोंकी समिधासे हवन करके मनुष्य आयु प्राप्त करता है। अंकुरित शाखाओंवाली गीली, लाल समिधाओं और मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त व्रीहिकी सौ आहुति देकर मनुष्य स्वर्ण तथा दीर्घ आयु प्राप्त करता है॥ ४७-४८ ॥

सुवर्णकुड्मलं हुत्वा शतमायुरवाप्नुयात्।
दूर्वाभिः पयसा वापि मधुना सर्पिषापि वा॥ ४९

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
शमीसमिद्भिरन्नेन पयसा वा च सर्पिषा॥ ५०

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
न्यग्रोधसमिधो हुत्वा पायसं होमयेत्ततः॥ ५१

शतं शतं च सप्ताहमपमृत्युं व्यपोहति।
क्षीराहारो जपेन्मृत्योः सप्ताहाद्विजयी भवेत्॥ ५२

अनश्नन्वाग्यतो जप्त्वा त्रिरात्रं मुच्यते यमात्।
निमज्ज्याप्सु जपेदेवं सद्यो मृत्योर्विमुच्यते॥ ५३

जपेद् बिल्वं समाश्रित्य मासं राज्यमवाप्नुयात्।
बिल्वं हुत्वाप्नुयाद्राज्यं समूलफलपल्लवम्॥ ५४

हुत्वा पद्मशतं मासं राज्यमाप्नोत्यकण्टकम्।
यवागूं ग्राममाप्नोति हुत्वा शालिसमन्वितम्॥ ५५

अश्वत्थसमिधो हुत्वा युद्धादौ जयमाप्नुयात्।
अर्कस्य समिधो हुत्वा सर्वत्र विजयी भवेत्॥ ५६

संयुक्तैः पयसा पत्रैः पुष्पैर्वा वेतसस्य च।
पायसेन शतं हुत्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात्॥ ५७

नाभिदघ्ने जले जप्त्वा सप्ताहं वृष्टिमाप्नुयात्।
जले भस्मशतं हुत्वा महावृष्टिं निवारयेत्॥ ५८

पालाशाभिरवाप्नोति समिद्भिर्ब्रह्मवर्चसम्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा सर्वमिष्टमवाप्नुयात्॥ ५९

पयो हुत्वाप्नुयान्मेधामाज्यं बुद्धिमवाप्नुयात्।
अभिमन्त्र्य पिबेद् ब्राह्मं रसं मेधामवाप्नुयात्॥ ६०

सुनहरे रंगके कमलकी आहुति देकर मनुष्य सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है। दूर्वा, दूध, मधु अथवा घीसे सप्ताहपर्यन्त प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देकर मनुष्य अपमृत्यु दूर कर देता है। उसी प्रकार शमीकी समिधाओं, अन्न, दूध तथा घीसे एक सप्ताहतक प्रतिदिन सौ-सौ आहुतियोंसे अपमृत्युका विनाश कर देता है। बरगदकी समिधाओंसे हवन करके खीरका हवन करना चाहिये; एक सप्ताहतक प्रतिदिन इनकी सौ-सौ आहुतियोंसे मनुष्य अपमृत्युको नष्ट कर देता है। यदि कोई दुग्धके आहारपर रहकर गायत्रीका जप करे तो वह सप्ताहभरमें मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है और बिना कुछ आहार ग्रहण किये मौन रहकर जप करे तो तीन रातमें ही यमसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार यदि जलमें निमग्न होकर जप करे तो वह उसी क्षण मृत्युसे मुक्ति पा लेता है॥ ४९—५३॥

बिल्ववृक्षके नीचे जप करनेसे एक मासमें राज्य मिल जाता है। बिल्ववृक्षके मूल, फल तथा पल्लवकी आहुतिसे भी मनुष्य राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ५४॥

एक मासतक कमलकी सौ आहुति देनेपर मनुष्य निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है। शालिचावलकी लपसीकी आहुतिसे ग्रामकी प्राप्ति होती है। पीपलवृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य युद्ध आदिमें विजय करता है और मदारकी समिधाओंसे हवन करके सभी जगह विजयी सिद्ध होता है॥ ५५-५६॥

दुग्ध तथा खीरसे युक्त बेंतके पुष्पों अथवा पत्रोंसे सप्ताहपर्यन्त सौ-सौ आहुति देनेसे वृष्टि प्राप्त होती है। नाभिपर्यन्त जलमें खड़े रहकर एक सप्ताहतक जप करनेसे वृष्टि होती है। जलमें भस्मकी सौ आहुति देनेसे महावृष्टिका निवारण हो जाता है॥ ५७-५८॥

पलाशकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य ब्रह्मतेज प्राप्त करता है और पलाशके पुष्पोंसे हवनद्वारा उसे समस्त अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है॥ ५९॥

मनुष्य दूधकी आहुति देकर मेधा तथा घीकी आहुति देकर बुद्धि प्राप्त करता है। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित ब्राह्मीके रसका पान करनेसे मनुष्यको मेधाकी प्राप्ति होती है॥ ६०॥

पुष्पहोमे भवेद्वासस्तन्तुभिस्तद्विधं पटम्।
लवणं मधुसम्मिश्रं हुत्वेष्टं वशमानयेत्॥ ६१

नयेदिष्टं वशं हुत्वा लक्ष्मीपुष्पैर्मधुप्लुतैः।
नित्यमञ्जलिनात्मानमभिषिञ्चेज्जले स्थितः॥ ६२

मतिमारोग्यमायुष्यमग्र्यं स्वास्थ्यमवाप्नुयात्।
कुर्याद्विप्रोऽन्यमुद्दिश्य सोऽपि पुष्टिमवाप्नुयात्॥ ६३

अथ चारुविधिर्मासं सहस्रं प्रत्यहं जपेत्।
आयुष्कामः शुचौ देशे प्राप्नुयादायुरुत्तमम्॥ ६४

आयुरारोग्यकामस्तु जपेन्मासद्वयं द्विजः।
भवेदायुष्यमारोग्यं श्रियै मासत्रयं जपेत्॥ ६५

आयुः श्रीपुत्रदाराद्याश्चतुर्भिश्च यशो जपात्।
पुत्रदारायुरारोग्यं श्रियं विद्यां च पञ्चभिः॥ ६६

एवमेवोत्तरान्कामान् मासैरेवोत्तरैर्व्रजेत्।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहुः स्थित्वा निराश्रयः॥ ६७

मासं शतत्रयं विप्रः सर्वान्कामानवाप्नुयात्।
एवं शतोत्तरं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्॥ ६८

रुद्ध्वा प्राणमपानं च जपेन्मासं शतत्रयम्।
यदिच्छेत्तदवाप्नोति सहस्रात्परमाप्नुयात्॥ ६९

ब्राह्मीपुष्पोंके हवनसे सुगन्ध तथा उसके तन्तुओंके हवनसे उसीके समान वस्त्रकी प्राप्ति होती है। मधु-मिश्रित लवणकी आहुति देकर मनुष्य अभीष्टको वशमें कर लेता है। इसी प्रकार शहदसे सिक्त किये गये बिल्वपुष्पोंसे हवन करनेपर मनुष्य अपने इष्टको वशमें कर लेता है। जलमें खड़े होकर [गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए] अंजलिसे अपने ऊपर नित्य अभिषेक करनेसे मनुष्य बुद्धि, आरोग्य, उत्तम आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करता है। यदि किसी अन्य व्यक्तिके निमित्त कोई ब्राह्मण ऐसा करे तो वह भी पुष्टि प्राप्त करता है॥ ६१—६३॥

आयुकी कामना करनेवालेको किसी पवित्र स्थानमें उत्तम विधिके साथ मासपर्यन्त प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे उसे उत्तम आयु प्राप्त होती है। आयु तथा आरोग्य दोनोंकी कामना करनेवाले द्विजको दो मासतक गायत्रीजप करना चाहिये। इसी प्रकार आयु, आरोग्य तथा लक्ष्मीकी कामना करनेवालेको तीन मासतक जप करना चाहिये। द्विजको चार मासतक जप करनेसे आयु, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री तथा यशकी प्राप्ति होती है और पाँच मासतक जप करनेसे पुत्र, स्त्री, आयु, आरोग्य, लक्ष्मी और विद्याकी प्राप्ति होती है। इस तरहसे जितने मनोरथ संख्यामें बढ़ते जायँ, उसीके अनुसार जपके लिये मास-संख्या भी बढ़ानी चाहिये। विप्रको एक पैरपर स्थित होकर बिना किसी आश्रयके बाँहोंको ऊपर किये हुए तीन सौ गायत्रीमन्त्रोंका प्रतिदिन मास-पर्यन्त जप करना चाहिये; ऐसा करनेसे वह सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है। इस प्रकार ग्यारह सौ मन्त्र नित्य मासपर्यन्त जप करके वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ६४—६८॥

प्राण और अपान वायु रोककर प्रतिदिन तीन सौ गायत्रीमन्त्रका जप मासपर्यन्त करनेसे पुरुषको वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है, जिसकी वह अभिलाषा रखता है; और इसी तरह एक हजार जप करनेसे सर्वस्वकी प्राप्ति हो जाती है॥ ६९॥

एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वानिलं वशः।
मासं शतमवाप्नोति यदिच्छेदिति कौशिकः॥ ७०

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्।
निमज्ज्याप्सु जपेन्मासं शतमिष्टमवाप्नुयात्॥ ७१

एवं शतत्रयं जप्त्वा सहस्रं सर्वमाप्नुयात्।
एकपादो जपेदूर्ध्वबाहू रुद्ध्वा निराश्रयः॥ ७२

नक्तमश्नन् हविष्यान्नं वत्सरादृषितामियात्।
गीरमोघा भवेदेवं जप्त्वा संवत्सरद्वयम्॥ ७३

त्रिवत्सरं जपेदेवं भवेत्त्रैकालदर्शनम्।
आयाति भगवान्देवश्चतुःसंवत्सरं जपेत्॥ ७४

पञ्चभिर्वत्सरैरेवमणिमादिगुणो भवेत्।
एवं षड्वत्सरं जप्त्वा कामरूपित्वमाप्नुयात्॥ ७५

सप्तभिर्वत्सरैरेवममरत्वमवाप्नुयात्।
मनुत्वं नवभिः सिद्धमिन्द्रत्वं दशभिर्भवेत्॥ ७६

एकादशभिराप्नोति प्राजापत्यं सुवत्सरैः।
ब्रह्मत्वं प्राप्नुयादेवं जप्त्वा द्वादशवत्सरान्॥ ७७

एतेनैव जिता लोकास्तपसा नारदादिभिः।
शाकमन्ये परे मूलं फलमन्ये पयः परे॥ ७८

घृतमन्ये परे सोममपरे चरुवृत्तयः।
ऋषयः पक्षमश्नन्ति केचिद्भैक्ष्याशिनोऽहनि॥ ७९
हविष्यमपरेऽश्नन्तः कुर्वन्त्येव परं तपः।

इन्द्रियोंको वशमें करके एक पैरपर स्थित होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास निरुद्ध करके मासभर प्रतिदिन एक सौ गायत्रीमन्त्र जपनेसे मनुष्य जो चाहता है, उसकी वह अभिलाषा पूर्ण हो जाती है—ऐसा विश्वामित्रजीका कथन है। इसी प्रकार तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जलमें निमग्न होकर एक मासतक प्रतिदिन सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है; इसी तरह तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे वह सब कुछ पा लेता है॥ ७०-७१½ ॥

बिना किसी अवलम्बके एक पैरपर खड़े होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास-नियमन करके एक वर्षतक जप करे और रात्रिमें केवल हविष्यान्न भक्षण करे तो वह पुरुष ऋषित्वको प्राप्त हो जाता है। इसी तरह यदि मनुष्य दो वर्षतक जप करे तो उसकी वाणी अमोघ हो जाती है॥ ७२-७३ ॥

इसी प्रकार तीन वर्षोंतक जप करे तो मनुष्य त्रिकालदर्शी हो जाता है और यदि चार वर्षोंतक जप करे तो भगवान् सूर्यदेव स्वयं उस व्यक्तिके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार पाँच वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है और इसी प्रकार छः वर्षोंतक जप करके वह कामरूपित्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७४-७५ ॥

सात वर्षोंतक जप करनेसे पुरुषको देवत्व, नौ वर्षोंतक जप करनेसे मनुत्व और दस वर्षोंतक जप करनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति हो जाती है। ग्यारह वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य प्रजापति हो जाता है तथा बारह वर्षोंतक जप करके वह ब्रह्मत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७६-७७ ॥

इसी प्रकारकी तपस्याके द्वारा नारद आदि ऋषियोंने सम्पूर्ण लोकोंको जीत लिया था। कुछ ऋषि केवल शाकके आहारपर, कुछ फलपर, कुछ मूलपर और कुछ दूधके आहारपर रहते थे। कुछ ऋषिगण घीके आहारपर, कुछ सोमरसके आहारपर और अन्य ऋषि चरुके आहारपर रहते थे। इसी प्रकार कुछ ऋषि पूरे पक्षभर केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे तथा कुछ ऋषि प्रतिदिन भिक्षान्नके आहारपर रहते थे और कुछ ऋषि हविष्यान्न ग्रहण करते हुए कठोर तपश्चर्या करते थे॥ ७८-७९½ ॥

अथ शुद्ध्यै रहस्यानां त्रिसहस्रं जपेद् द्विजः॥ ८०

मासं शुद्धो भवेत्स्तेयात्सुवर्णस्य द्विजोत्तमः।
जपेन्मासं त्रिसाहस्रं सुरापः शुद्धिमाप्नुयात्॥ ८१

मासं जपेत् त्रिसाहस्रं शुचिः स्याद् गुरुतल्पगः।
त्रिसहस्रं जपेन्मासं कुटीं कृत्वा वने वसन्॥ ८२

ब्रह्महा मुच्यते पापादिति कौशिकभाषितम्।
द्वादशाहं निमज्ज्याप्सु सहस्रं प्रत्यहं जपेत्॥ ८३

मुच्येरन्नंहसः सर्वे महापातकिनो द्विजाः।
त्रिसाहस्रं जपेन्मासं प्राणानायम्य वाग्यतः॥ ८४

महापातकयुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्।
प्राणायामसहस्रेण ब्रह्महापि विशुध्यति॥ ८५

षट्कृत्वस्त्वभ्यसेदूर्ध्वं प्राणापानौ समाहितः।
प्राणायामो भवेदेष सर्वपापप्रणाशनः॥ ८६

सहस्रमभ्यसेन्मासं क्षितिपः शुचितामियात्।
द्वादशाहं त्रिसाहस्रं जपेद्धि गोवधे द्विजः॥ ८७

अगम्यागमनस्तेयहननाभक्ष्यभक्षणे।
दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्री शोधयेद् द्विजम्॥ ८८

प्राणायामशतं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्विषात्।
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे सति शुद्धये॥ ८९

सहस्रमभ्यसेन्मासं नित्यजापी वने वसन्।
उपवाससमं जप्यं त्रिसहस्रं तदित्यृचम्॥ ९०

चतुर्विंशतिसाहस्रमभ्यस्तात्कृच्छ्रसंज्ञिता।
चतुःषष्टिसहस्राणि चान्द्रायणसमानि तु॥ ९१

द्विजको चाहिये कि प्रच्छन्न पातकोंकी शुद्धिके लिये तीन हजार गायत्रीके मन्त्रोंका जप करे। द्विजोंमें श्रेष्ठ पुरुष एक महीनेतक प्रतिदिन इस प्रकार जप करनेसे सुवर्णकी चोरीके पापसे मुक्त हो जाता है। सुरापान करनेवाला मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार जप करे तो वह शुद्ध हो जाता है। गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला व्यक्ति महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्र जपनेसे पवित्र हो जाता है। वनमें कुटी बनाकर वहीं रहते हुए महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीजप करनेसे ब्रह्मघाती उस पापसे मुक्त हो जाता है—ऐसा विश्वामित्रऋषिने कहा है। जलमें निमग्न होकर बारह दिनोंतक प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीमन्त्रका जप करनेसे सभी महापातकी द्विज सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ८०—८३½ ॥

महापातकी व्यक्ति मौन रहकर प्राणायामपूर्वक मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्रका जप करे तो वह महान् भयसे मुक्त हो जाता है। एक हजार प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापसे मुक्त हो जाता है॥ ८४-८५॥

प्राण और अपान वायुको ऊपर खींचकर संयमपूर्वक गायत्रीमन्त्रका छः बार जप करे; यह प्राणायाम सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८६॥

मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करनेसे राजा पवित्र हो जाता है। गोवधजन्य पापसे शुद्धिहेतु द्विजको बारह दिनोंतक प्रतिदिन तीन-तीन हजार गायत्रीजप करना चाहिये॥ ८७॥

दस हजार गायत्रीका जप द्विजको अगम्यागमन, चोरी, हिंसा तथा अभक्ष्यभक्षणके पापसे शुद्ध कर देता है। सौ बार प्राणायाम करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके मिले-जुले पापोंसे शुद्धिके लिये प्रतिदिन एक मासतक **तत्सवितु०** ऋचाका एक हजार जप वनमें रहकर करना चाहिये। इसका तीन हजार जप उपवासके समकक्ष होता है॥ ८८—९०॥

चौबीस हजार गायत्रीजप कृच्छ्रव्रतके समान और चौंसठ हजार गायत्रीजप चान्द्रायणव्रतके समान कहा गया है॥ ९१॥

शतकृत्वोऽभ्यसेन्नित्यं प्राणानायम्य सन्ध्ययोः।
तदित्यृचमवाप्नोति सर्वपापक्षयं परम्॥ ९२

निमज्ज्याप्सु जपेन्नित्यं शतकृत्वस्तदित्यृचम्।
ध्यायन्देवीं सूर्यरूपां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९३

इति ते सम्यगाख्याताः शान्तिशुद्ध्यादिकल्पनाः।
रहस्यातिरहस्याश्च गोपनीयास्त्वया सदा॥ ९४

इति संक्षेपतः प्रोक्तः सदाचारस्य संग्रहः।
विधिनाचरणादस्य माया दुर्गा प्रसीदति॥ ९५

नैमित्तिकं च नित्यं च काम्यं कर्म यथाविधि।
आचरेन्मनुजः सोऽयं भुक्तिमुक्तिफलाप्तिभाक्॥ ९६

आचारः प्रथमो धर्मो धर्मस्य प्रभुरीश्वरी।
इत्युक्तं सर्वशास्त्रेषु सदाचारफलं महत्॥ ९७

आचारवान्सदा पूतः सदैवाचारवान्सुखी।
आचारवान्सदा धन्यः सत्यं सत्यं च नारद॥ ९८

देवीप्रसादजनकं सदाचारविधानकम्।
यदपि शृणुयान्मर्त्यो महासम्पत्तिसौख्यभाक्॥ ९९

सदाचारेण सिद्धेच्च ऐहिकामुष्मिकं सुखम्।
तदेव ते मया प्रोक्तं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥ १००

प्रातः तथा सायंकालीन दोनों सन्ध्याओंके समय नित्य प्राणायाम करके '**तत्सवितु०**' इस ऋचाका एक सौ जप करनेवाले पुरुषके सभी पाप पूर्णरूपसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ९२॥

जलमें निमग्न होकर सूर्यस्वरूपिणी देवीका ध्यान करते हुए गायत्रीमन्त्रका नित्य सौ बार जप करनेवाला समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९३॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने शान्ति, शुद्धि आदिसे सम्बन्धित अनुष्ठानोंका वर्णन आपसे कर दिया। रहस्योंमें भी अति रहस्य इस प्रसंगको आपको सदा गोपनीय रखना चाहिये; इस प्रकार यह सदाचार-संग्रह संक्षेपमें बतला दिया। इस सदाचारका विधिपूर्वक पालन करनेसे महामाया दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९४-९५॥

जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मोंसे सम्बद्ध आचारोंका विधिपूर्वक पालन करता है, वह भोग तथा मोक्षके फलका अधिकारी होता है॥ ९६॥

आचार प्रथम धर्म है और धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बा हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंमें सदाचारका महान् फल बताया गया है॥ ९७॥

हे नारद! सदाचारपरायण पुरुष सर्वदा पवित्र, सुखी तथा धन्य होता है; यह सत्य है, सत्य है॥ ९८॥

सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नताको उत्पन्न करनेवाला है। इस विधानको सुननेमात्रसे मनुष्य विपुल सम्पदा तथा सुखका अधिकारी हो जाता है। सदाचारके पालनसे मनुष्यको ऐहिक तथा पारलौकिक सुख सुलभ हो जाता है। उसी सदाचारका वर्णन मैंने आपसे किया है। [हे नारद!] अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ९९-१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायामेकादशस्कन्धे
सदाचारनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

~~○~~

॥ एकादशः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥
॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वादशः स्कन्धः

अथ प्रथमोऽध्यायः

गायत्रीजपका माहात्म्य तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द आदिका वर्णन

नारद उवाच

सदाचारविधिर्देव भवता वर्णितः प्रभो।
तस्याप्यतुलमाहात्म्यं सर्वपापविनाशनम्॥ १

श्रुतं भवन्मुखाम्भोजच्युतं देवीकथामृतम्।
व्रतानि यानि चोक्तानि चान्द्रायणमुखानि ते॥ २

दुःखसाध्यानि जानीमः कर्तृसाध्यानि तानि च।
तदस्मात्साम्प्रतं यत्तु सुखसाध्यं शरीरिणाम्॥ ३

देवीप्रसादजनकं शुभानुष्ठानसिद्धिदम्।
तत्कर्म वद मे स्वामिन् कृपापूर्वं सुरेश्वर॥ ४

सदाचारविधौ यश्च गायत्रीविधिरीरितः।
तस्मिन्मुख्यतमं किं स्यात्किं वा पुण्याधिकप्रदम्॥ ५

ये गायत्रीगता वर्णास्तत्त्वसंख्यास्त्वयेरिताः।
तेषां के ऋषयः प्रोक्ताः कानि छन्दांसि वै मुने॥ ६

तेषां का देवताः प्रोक्ताः सर्वं कथय मे प्रभो।
महत्कौतूहलं मे च मानसे परिवर्तते॥ ७

श्रीनारायण उवाच

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥ ८

सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्रीजपमेव च।
सहस्रत्रितयं कुर्वन्सुरैः पूज्यो भवेन्मुने॥ ९

नारदजी बोले—हे देव! हे प्रभो! आपने सदाचार-विधिका वर्णन कर दिया; उस विधिका माहात्म्य अत्यन्त अतुलनीय तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ १॥

आपके मुखकमलसे निःसृत देवीके कथारूप अमृतका श्रवण तो कर लिया; किंतु आपने जिन चान्द्रायण आदि मुख्य व्रतोंका वर्णन किया है, कर्तृसाध्य उन व्रतोंको मैं अत्यन्त कष्टसाध्य समझता हूँ। इसलिये अब आप ऐसा उपाय बताइये, जो मनुष्योंके लिये सुखसाध्य हो। हे स्वामिन्! हे सुरेश्वर! आप मुझे कृपापूर्वक उस कर्मानुष्ठानके विषयमें बताइये; जो मंगलकारी, सिद्धि देनेवाला तथा भगवतीकी प्रसन्नताकी प्राप्ति करानेवाला हो॥ २—४॥

सदाचारविधानके अन्तर्गत आपने जिस गायत्री-विधिका वर्णन किया है, उसमें मुख्यतम वस्तु क्या है और क्या करनेसे अधिक पुण्यकी प्राप्ति होती है?॥ ५॥

आपने गायत्रीके जिन चौबीस अक्षरोंको बताया है, उन अक्षरोंके कौन-कौन ऋषि, कौन-कौन छन्द तथा कौन-कौन देवता कहे गये हैं? हे प्रभो! यह सब मुझे बताइये; क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरे मनमें महान् कौतूहल उत्पन्न हो रहा है॥ ६-७॥

श्रीनारायण बोले—द्विज कोई दूसरा अनुष्ठान आदि कर्म करे अथवा न करे, किंतु एकनिष्ठ होकर केवल गायत्रीका अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है॥ ८॥

हे मुने! तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेवाला तथा तीन हजार गायत्रीजप करनेवाला पुरुष देवताओंका पूज्य हो जाता है॥ ९॥

न्यासान्करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाभ्यसेत्।
ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ १०
यदक्षरैकसंसिद्धेः स्पर्धते ब्राह्मणोत्तमः।
हरिशङ्करकञ्जोत्थसूर्यचन्द्रहुताशनैः ॥ ११
अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वर्णऋष्यादिकांस्तथा।
छन्दांसि देवतास्तद्वत्क्रमात्तत्त्वानि चैव हि॥ १२
वामदेवोऽत्रिर्वसिष्ठः शुक्रः कण्वः पराशरः।
विश्वामित्रो महातेजाः कपिलः शौनको महान्॥ १३
याज्ञवल्क्यो भरद्वाजो जमदग्निस्तपोनिधिः।
गौतमो मुद्गलश्चैव वेदव्यासश्च लोमशः॥ १४
अगस्त्यः कौशिको वत्सः पुलस्त्यो माण्डुकस्तथा।
दुर्वासास्तपसां श्रेष्ठो नारदः कश्यपस्तथा॥ १५
इत्येते ऋषयः प्रोक्ता वर्णानां क्रमशो मुने।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च॥ १६
त्रिष्टुभं जगती चैव तथातिजगती मता।
शक्वर्यतिशक्वरी च धृतिश्चातिधृतिस्तथा॥ १७
विराट् प्रस्तारपङ्क्तिश्च कृतिः प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः संकृतिश्चैवाक्षरपङ्क्तिस्तथैव च॥ १८
भूर्भुवः स्वरितिच्छन्दस्तथा ज्योतिष्मती स्मृतम्।
इत्येतानि च छन्दांसि कीर्तितानि महामुने॥ १९
दैवतानि शृणु प्राज्ञ तेषामेवानुपूर्वशः।
आग्नेयं प्रथमं प्रोक्तं प्राजापत्यं द्वितीयकम्॥ २०
तृतीयं च तथा सौम्यमीशानं च चतुर्थकम्।
सावित्रं पञ्चमं प्रोक्तं षष्ठमादित्यदैवतम्॥ २१
बार्हस्पत्यं सप्तमं तु मैत्रावरुणमष्टमम्।
नवमं भगदैवत्यं दशमं चार्यमेश्वरम्॥ २२
गणेशमेकादशकं त्वाष्ट्रं द्वादशकं स्मृतम्।
पौष्णं त्रयोदशं प्रोक्तमैन्द्राग्नं च चतुर्दशम्॥ २३
वायव्यं पञ्चदशकं वामदैव्यं च षोडशम्।
मैत्रावरुणिदैवत्यं प्रोक्तं सप्तदशाक्षरम्॥ २४
अष्टादशं वैश्वदेवमूनविंशं तु मातृकम्।
वैष्णवं विंशतितमं वसुदैवतमीरितम्॥ २५
एकविंशतिसंख्याकं द्वाविंशं रुद्रदैवतम्।
त्रयोविंशं च कौबेरमाश्विनं तत्त्वसंख्यकम्॥ २६

न्यास करे अथवा न करे, किंतु निष्कपट भावसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीजप अवश्य करना चाहिये॥ १०॥

उसके एक अक्षरकी भी सिद्धि हो जानेपर ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र और अग्निके साथ स्पर्धा करनेयोग्य हो जाता है॥ ११॥

हे ब्रह्मन्! अब आप गायत्रीके वर्ण, ऋषि, छन्द, देवता तथा तत्त्व आदिके विषयमें क्रमसे सुनिये॥ १२॥

वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महातेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान् शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डुक, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासा, नारद और कश्यप—हे मुने! ये चौबीस ऋषि क्रमसे गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके 'ऋषि' कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्, जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः तथा ज्योतिष्मती—हे महामुने! ये गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके क्रमशः छन्द कहे गये हैं॥ १३—१९॥

हे प्राज्ञ! अब क्रमशः उन वर्णोंके देवताओंके नाम सुनिये। पहले वर्णके देवता अग्नि, दूसरेके प्रजापति, तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पाँचवेंके सविता, छठेके आदित्य, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दसवेंके ईश्वर, ग्यारहवेंके गणेश, बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्राग्नि, पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मित्रावरुण, अठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके मातृक, बीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर और चौबीसवें वर्णके देवता अश्विनीकुमार कहे गये हैं। हे मुने! इस प्रकार मैंने गायत्रीके चौबीस वर्णोंके देवताओंका वर्णन कर दिया। यह नामसंग्रह

चतुर्विंशतिवर्णानां देवतानां च सङ्ग्रहः।
कथितः परमश्रेष्ठो महापापैकशोधनः।
यदाकर्णनमात्रेण साङ्गं जाप्यफलं मुने॥ २७

परम श्रेष्ठ और महान् पापोंका विनाश करनेवाला है, जिसके श्रवणमात्रसे सांगोपांग गायत्रीजपका फल प्राप्त हो जाता है॥ २०—२७॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीविचारो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः

गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी शक्तियों, रंगों एवं मुद्राओंका वर्णन

श्रीनारायण उवाच

वर्णानां शक्तयः काश्च ताः शृणुष्व महामुने।
वामदेवी प्रिया सत्या विश्वा भद्रविलासिनी॥ १
प्रभावती जया शान्ता कान्ता दुर्गा सरस्वती।
विद्रुमा च विशालेशा व्यापिनी विमला तथा॥ २
तमोऽपहारिणी सूक्ष्मा विश्वयोनिर्जया वशा।
पद्मालया परा शोभा भद्रा च त्रिपदा स्मृता॥ ३
चतुर्विंशतिवर्णानां शक्तयः समुदाहृताः।
अतः परं वर्णवर्णान्व्याहरामि यथातथम्॥ ४
चम्पका अतसीपुष्पसन्निभं विद्रुमं तथा।
स्फटिकाकारकं चैव पद्मपुष्पसमप्रभम्॥ ५
तरुणादित्यसङ्काशं शङ्खकुन्देन्दुसन्निभम्।
प्रवालपद्मपत्राभं पद्मरागसमप्रभम्॥ ६
इन्द्रनीलमणिप्रख्यं मौक्तिकं कुङ्कुमप्रभम्।
अञ्जनाभं च रक्तं च वैदूर्यं क्षौद्रसन्निभम्॥ ७
हारिद्रं कुन्ददुग्धाभं रविकान्तिसमप्रभम्।
शुकपुच्छनिभं तद्वच्छतपत्रनिभं तथा॥ ८
केतकीपुष्पसंकाशं मल्लिकाकुसुमप्रभम्।
करवीरश्च इत्येते क्रमेण परिकीर्तिताः॥ ९
वर्णाः प्रोक्ताश्च वर्णानां महापापविशोधनाः।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाश एव च॥ १०
गन्धो रसश्च रूपं च शब्दः स्पर्शस्तथैव च।
उपस्थं पायुपादं च पाणी वागपि च क्रमात्॥ ११
प्राणं जिह्वा च चक्षुश्च त्वक्श्रोत्रं च ततः परम्।
प्राणोऽपानस्तथा व्यानः समानश्च ततः परम्॥ १२
तत्त्वान्येतानि वर्णानां क्रमशः कीर्तितानि तु।
अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्णमुद्राः क्रमेण तु॥ १३
सुमुखं सम्पुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुःपञ्चमुखं तथा॥ १४

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! उन वर्णोंकी कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं, अब आप उन्हें सुनिये। वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला, तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, पराशोभा, भद्रा तथा त्रिपदा—चौबीस गायत्रीवर्णोंकी ये शक्तियाँ कही गयी हैं॥ १—३½॥

[हे मुने!] अब मैं उन अक्षरोंके वास्तविक वर्णों (रंगों)-के विषयमें बता रहा हूँ। गायत्रीके चौबीस वर्णोंके रंग क्रमशः चम्पा, अलसी-पुष्प, मूँगा, स्फटिक, कमल-पुष्प, तरुण सूर्य, शंख-कुन्द-चन्द्रमा, रक्त कमलपत्र, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, मोती, कुमकुम, अंजन, रक्तचन्दन, वैदूर्य, मधु, हरिद्रा, कुन्द एवं दुग्ध, सूर्यकान्तमणि, तोतेकी पूँछ, कमल, केतकीपुष्प, मल्लिकापुष्प और कनेरके पुष्पकी आभाके समान कहे गये हैं। चौबीस अक्षरोंके बताये गये ये चौबीस वर्ण महान् पापोंको नष्ट करनेवाले हैं॥ ४—९½॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, जननेन्द्रिय, गुदा, पाद, हस्त, वागिन्द्रिय, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, प्राण, अपान, व्यान तथा समान—ये वर्णोंके क्रमशः चौबीस तत्त्व कहे गये हैं॥ १०—१२½॥

[हे नारद!] अब मैं क्रमशः वर्णोंकी मुद्राओंका वर्णन करूँगा। सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुखोन्मुख,

षण्मुखाधोमुखं चैव व्यापकाञ्जलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रथितं सन्मुखोन्मुखम्॥ १५
विलम्बं मुष्टिकं चैव मत्स्यं कूर्मं वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्‌गरं पल्लवं तथा॥ १६
त्रिशूलयोनी सुरभिश्चाक्षमाला च लिङ्गकम्।
अम्बुजं च महामुद्रास्तुर्यरूपाः प्रकीर्तिताः॥ १७
इत्येताः कीर्तिता मुद्रा वर्णानां ते महामुने।
महापापक्षयकराः कीर्तिदाः कान्तिदा मुने॥ १८

विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्‌गर तथा पल्लव—गायत्रीके अक्षरोंकी ये चौबीस मुद्राएँ हैं। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग और अम्बुज—ये महामुद्राएँ गायत्रीके चौथे चरणकी कही गयी हैं। हे महामुने! गायत्रीके वर्णोंकी इन मुद्राओंको मैंने आपको बता दिया। हे मुने! ये मुद्राएँ महान् पापोंका नाश करनेवाली, कीर्ति देनेवाली तथा कान्ति प्रदान करनेवाली हैं॥ १३—१८॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्त्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
गायत्रीशक्त्यादिप्रतिपादनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन

नारद उवाच

स्वामिन्सर्वजगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो।
चतुःषष्टिकलाभिज्ञ पातकाद्योगविद्वर॥ १

मुच्यते केन पुण्येन ब्रह्मरूपः कथं भवेत्।
देहश्च देवतारूपो मन्त्ररूपो विशेषतः॥ २

कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम्।
ऋषिश्छन्दोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवद्विभो॥ ३

श्रीनारायण उवाच

अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्रीकवचं तथा।
पठनाद्धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४

सर्वान्कामानवाप्नोति देवीरूपश्च जायते।
गायत्रीकवचस्यास्य ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ५

ऋषयो ऋग्यजुःसामाथर्वश्छन्दांसि नारद।
ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला॥ ६

तद् बीजं भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः।
कीलकं च धियः प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियोजनम्॥ ७

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! हे सम्पूर्ण जगत्‌के नाथ! हे प्रभो! हे चौंसठ कलाओंके ज्ञाता! हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मनुष्य किस पुण्यकर्मसे पापमुक्त हो सकता है, किस प्रकार ब्रह्मरूपत्व प्राप्त कर सकता है और किस कर्मसे उसका देह देवतारूप तथा विशेषरूपसे मन्त्ररूप हो सकता है? हे प्रभो! उस कर्मके विषयमें साथ ही विधिपूर्वक न्यास, ऋषि, छन्द, अधिदेवता तथा ध्यानको विधिवत् सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—गायत्रीकवच नामक एक परम गोपनीय उपाय है, जिसके पाठ करने तथा धारण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं तथा वह स्वयं देवीरूप हो जाता है॥ ४½॥

हे नारद! इस गायत्रीकवचके ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ऋषि हैं। ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इसके छन्द हैं। परम कलाओंसे सम्पन्न ब्रह्मस्वरूपिणी 'गायत्री' इसकी देवता कही गयी हैं॥ ५-६॥

भर्ग इसका बीज है, विद्वानोंने स्वयं इसीको शक्ति कहा है, बुद्धिको इसका कीलक कहा गया है और मोक्षके लिये इसके विनियोगका भी विधान बताया गया है॥ ७॥

चतुर्भिर्हृदयं प्रोक्तं त्रिभिर्वर्णैः शिरः स्मृतम्।
चतुर्भिः स्याच्छिखा पश्चात् त्रिभिस्तु कवचं स्मृतम्॥ ८
चतुर्भिर्नेत्रमुद्दिष्टं चतुर्भिः स्यात्तदस्त्रकम्।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकाभीष्टदायकम्॥ ९
मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुनिबद्धरत्नमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुभ्रं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे॥ १०
गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे।
ब्रह्मसन्ध्या तु मे पश्चादुत्तरायां सरस्वती॥ ११
पार्वती मे दिशं रक्षेत्पावकीं जलशायिनी।
यातुधानी दिशं रक्षेद् यातुधानभयङ्करी॥ १२
पावमानीं दिशं रक्षेत्पवमानविलासिनी।
दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी॥ १३
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद्वैष्णवी तथा।
एवं दश दिशो रक्षेत्सर्वाङ्गं भुवनेश्वरी॥ १४
तत्पदं पातु मे पादौ जङ्घे मे सवितुः पदम्।
वरेण्यं कटिदेशे तु नाभिं भर्गस्तथैव च॥ १५
देवस्य मे तद्धृदयं धीमहीति च गल्लयोः।
धियः पदं च मे नेत्रे यः पदं मे ललाटकम्॥ १६
नः पातु मे पदं मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात्।
तत्पदं पातु मूर्धानं सकारः पातु भालकम्॥ १७
चक्षुषी तु विकारार्णस्तुकारस्तु कपोलयोः।
नासापुटं वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा॥ १८
णिकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यकारस्त्वधरोष्ठकम्।
आस्यमध्ये भकारार्णो र्गोकारश्चिबुके तथा॥ १९
देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कन्धदेशकम्।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम्॥ २०
मकारो हृदयं रक्षेद्धिकार उदरे तथा।
धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा॥ २१

चार वर्णोंसे इसका हृदय, तीन वर्णोंसे सिर, चार वर्णोंसे शिखा, तीन वर्णोंसे कवच, चार वर्णोंसे नेत्र तथा चार वर्णोंसे अस्त्र कहा गया है॥ ८$\frac{१}{२}$ ॥

[हे नारद!] अब मैं साधकोंको उनके अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाले ध्यानका वर्णन करूँगा। मोती, मूँगा, स्वर्ण, नील और धवल आभावाले [पाँच] मुखों, तीन नेत्रों तथा चन्द्रकलायुक्त रत्नमुकुटको धारण करनेवाली, चौबीस अक्षरोंसे विभूषित और हाथोंमें वरद-अभयमुद्रा, अंकुश, चाबुक, शुभ्र कपाल, रज्जु, शंख, चक्र तथा दो कमलपुष्प धारण करनेवाली भगवती गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ९-१० ॥

[इस प्रकार ध्यान करके कवचका पाठ करे—] पूर्व दिशामें गायत्री मेरी रक्षा करें, दक्षिण दिशामें सावित्री रक्षा करें, पश्चिममें ब्रह्मसन्ध्या तथा उत्तरमें सरस्वती मेरी रक्षा करें। जलमें व्याप्त रहनेवाली भगवती पार्वती अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। राक्षसोंमें भय उत्पन्न करनेवाली भगवती यातुधानी नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। वायुमें विलासलीला करनेवाली भगवती पावमानी वायव्यकोणमें मेरी रक्षा करें। रुद्ररूप धारण करनेवाली भगवती रुद्राणी ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। ब्रह्माणी ऊपरकी ओर तथा वैष्णवी नीचेकी ओर मेरी रक्षा करें। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी दसों दिशाओंमें मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करें॥ ११—१४॥

'**तत्**' पद मेरे दोनों पैरोंकी, '**सवितुः**' पद मेरी दोनों जंघाओंकी, '**वरेण्यं**' पद कटिदेशकी, '**भर्गः**' पद नाभिकी, '**देवस्य**' पद हृदयकी, '**धीमहि**' पद दोनों कपोलोंकी, '**धियः**' पद दोनों नेत्रोंकी, '**यः**' पद ललाटकी, '**नः**' पद मस्तककी तथा '**प्रचोदयात्**' पद मेरी शिखाकी रक्षा करे॥ १५-१६$\frac{१}{२}$ ॥

'**तत्**' पद मस्तककी रक्षा करे तथा '**स**' कार ललाटकी रक्षा करे। इसी तरह '**वि**' कार दोनों नेत्रोंकी, '**तु**' कार दोनों कपोलोंकी, '**व**' कार नासापुटकी, '**रे**' कार मुखकी, '**णि**' कार ऊपरी ओष्ठकी, '**य**' कार नीचेके ओष्ठकी, '**भ**' कार मुखके मध्यभागकी, रेफयुक्त '**गो**' कार (**र्गो**) ठुड्डीकी, '**दे**' कार कण्ठकी, '**व**' कार कन्धोंकी, '**स्य**' कार दाहिने हाथकी, '**धी**' कार बायें हाथकी, '**म**' कार हृदयकी, '**हि**' कार

गुह्यं रक्षतु योकार ऊरू द्वौ नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेच्चोकारो जङ्घदेशकम्॥ २२

दकारं गुल्फदेशे तु यकारः पदयुग्मकम्।
तकारव्यञ्जनं चैव सर्वाङ्गं मे सदावतु॥ २३

इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशतविनाशनम्।
चतुःषष्टिकलाविद्यादायकं मोक्षकारकम्॥ २४

मुच्यते सर्वपापेभ्यः परं ब्रह्माधिगच्छति।
पठनाच्छ्रवणाद्वापि गोसहस्रफलं लभेत्॥ २५

उदरकी, '**धि**' कार नाभिदेशकी, '**यो**' कार कटिप्रदेशकी, पुनः '**यो**' कार गुह्य अंगोंकी, '**नः**' पद दोनों ऊरुओंकी, '**प्र**' कार दोनों घुटनोंकी, '**चो**' कार दोनों जंघाओंकी, '**द**' कार गुल्फोंकी, '**या**' कार दोनों पैरोंकी और '**त**' कार व्यंजन (**त्**) सर्वदा मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करे॥ १७—२३॥

[हे नारद!] भगवती गायत्रीका यह दिव्य कवच सैकड़ों विघ्नोंका विनाश करनेवाला, चौंसठ कलाओं तथा समस्त विद्याओंको देनेवाला और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। इस कवचके प्रभावसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और परब्रह्मभावकी प्राप्ति कर लेता है। इसे पढ़ने अथवा सुननेसे भी मनुष्य एक हजार गोदानका फल प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
गायत्रीमन्त्रकवचवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

* * *

अथ चतुर्थोऽध्यायः

गायत्रीहृदय तथा उसका अंगन्यास

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो।
कवचं च श्रुतं दिव्यं गायत्रीमन्त्रविग्रहम्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्रीहृदयं परम्।
यद्धारणाद्भवेत्पुण्यं गायत्रीजपतोऽखिलम्॥ २

श्रीनारायण उवाच

देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाथर्वणे स्फुटम्।
तदेवाहं प्रवक्ष्यामि रहस्यातिरहस्यकम्॥ ३

विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेदमातरम्।
ध्यात्वा तस्यास्त्वथाङ्गेषु ध्यायेदेताश्च देवताः॥ ४

पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्याद्भावयेत्स्वतनौ तथा।
देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः॥ ५

नारदजी बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे भूतभव्यजगत्प्रभो! मैंने गायत्रीमन्त्रविग्रह तथा दिव्य गायत्रीकवचके विषयमें सुन लिया। अब मैं श्रेष्ठ 'गायत्रीहृदय' सुनना चाहता हूँ, जिसके धारण करनेसे गायत्रीजपसे प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! देवीका गायत्री-हृदय अथर्ववेदमें स्पष्टरूपसे वर्णित है। रहस्योंमें भी अति रहस्ययुक्त उसी प्रसंगका वर्णन मैं आपसे करूँगा॥ ३॥

विराट् रूपवाली वेदमाता महादेवी गायत्रीका ध्यान करनेके बाद अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करना चाहिये॥ ४॥

पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमें स्थापित एकत्वकी भाँति अपने तथा देवीमें अभेदकी भावना करनी चाहिये। साधकको देवीके रूपमें तथा अपने शरीरमें तन्मयताभाव रखना चाहिये॥ ५॥

नादेवोऽभ्यर्चयेद्देवमिति वेदविदो विदुः।
ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद्देवता इमाः॥ ६

अथ तत्सम्प्रवक्ष्यामि तन्मयत्वमथो भवेत्।
गायत्रीहृदयस्यास्याप्यहमेव ऋषिः स्मृतः॥ ७

गायत्रीच्छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी।
पूर्वोक्तेन प्रकारेण कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात्।
आसने विजने देशे ध्यायेदेकाग्रमानसः॥ ८

न्यास

द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम्। दन्तपङ्क्तावश्विनौ। उभे सन्ध्ये चोष्ठौ। मुखमग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोर्वसवोऽष्टौ। बाह्वोर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशमुदरम्। नाभावन्तरिक्षम्। कट्योरिन्द्राग्नी। जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः। कैलासमलये ऊरू। विश्वेदेवा जान्वोः। जङ्घायां कौशिकः। गुह्यमयने। ऊरू पितरः। पादौ पृथिवी। वनस्पतयोऽङ्गुलीषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसमृतवः। संवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रावादित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ॐ तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ॐ तत्पूर्वाजयाय नमः। तत्प्रातरादित्याय नमः। तत्प्रातरादित्यप्रतिष्ठायै नमः। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातरधीयानो अपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वैर्देवैर्ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात्पूतो भवति। अभक्ष्यभक्षणात्पूतो

देवभावसे सम्पन्न हुए बिना देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है। इसलिये अभेदसम्पादनके लिये अपने शरीरमें इन देवताओंकी भावना करनी चाहिये॥ ६॥

[हे नारद] अब मैं वह उपाय बता रहा हूँ जिससे तन्मयता प्राप्त हो सकती है। स्वयं मैं नारायण ही इस गायत्रीहृदयका ऋषि कहा गया हूँ। गायत्री इसका छन्द है और भगवती परमेश्वरी इसकी देवता हैं। पूर्वमें कही गयी रीतिसे अपने छहों अंगोंमें क्रमसे इनका न्यास करना चाहिये। इसके लिये सर्वप्रथम निर्जन स्थानमें किसी आसनपर बैठकर एकाग्रचित्त हो भगवती गायत्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ७-८॥

[अब अंगन्यासकी विधि बतायी जाती है—] मस्तकमें द्यौ नामक देवता, दन्तपंक्तिमें दोनों अश्विनीकुमारों, दोनों ओठोंमें दोनों संध्याओं, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, दोनों स्तनोंमें आठों वसुओं, दोनों भुजाओंमें मरुद्गणों, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, दोनों कटिदेशमें इन्द्र तथा अग्नि, जघनमें विज्ञानघन प्रजापति, एक उरुमें कैलास तथा मलयगिरि, दोनों घुटनोंमें विश्वेदेवों, पिण्डलीमें कौशिक, गुह्यदेशमें उत्तरायण एवं दक्षिणायनके अधिष्ठातृदेवता, दूसरे उरुमें पितरों, पैरोंमें पृथ्वी, अँगुलियोंमें वनस्पतियों, रोमोंमें ऋषियों, नखोंमें मुहूर्तों, हड्डियोंमें ग्रहों तथा रुधिर एवं मांसमें ऋतुओंकी भावना करे। संवत्सर जिनके लिये एक पलके समान है तथा जिनके आदेशसे सूर्य और चन्द्रमा दिन-रातका विभाजन करते हैं, मैं उन परम श्रेष्ठ, दिव्य तथा सहस्र नेत्रोंवाली भगवती गायत्रीकी शरण ग्रहण करता हूँ। ॐ सूर्यके उस श्रेष्ठ तेजको नमस्कार है। ॐ पूर्व दिशामें उदय होनेवाले उन सूर्यको नमस्कार है। प्रातःकालीन उन सूर्यको नमस्कार है। आदित्यमण्डलमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाली उन गायत्रीको नमस्कार है। प्रातःकाल गायत्रीहृदयका पाठ करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापका नाश करता है, सायंकालमें इसका पाठ करनेवाला दिनमें किये गये पापोंका शमन करता है और सायं तथा प्रातः दोनों वेलाओंमें पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। वह समस्त तीर्थोंमें स्नान किया हुआ हो जाता है। वह सभी देवताओंके लिये ज्ञात हो जाता है। गायत्रीकी कृपासे

भवति। अभोज्यभोजनात्पूतो भवति। अचोष्यचोषणात्पूतो भवति। असाध्यसाधनात्पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात्पूतो भवति। सर्वप्रतिग्रहात्पूतो भवति। पङ्क्तिदूषणात्पूतो भवति। अनृतवचनात्पूतो भवति। अथाब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेनाधीतेन क्रतुसहस्रेणेष्टं भवति। षष्टिशतसहस्रगायत्र्या जप्यानि फलानि भवन्ति। अष्टौ ब्राह्मणान्सम्यग्ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति। य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यत इति। ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् श्रीनारायणः।

मनुष्य अभाष्यभाषण, अभक्ष्यभक्षण, अभोज्यभोजन, अचोष्यचोषण, असाध्यसाधन, लाखों दुष्प्रतिग्रहों, सभी प्रकारके प्रतिग्रहों, पंक्तिदूषण तथा असत्यवचन—इन सभीसे पवित्र हो जाता है। उनकी कृपासे अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है। इस गायत्रीहृदयके पाठसे हजार यज्ञोंके करनेसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है। इसके पाठसे साठ लाख गायत्रीजपसे मिलनेवाले फल प्राप्त हो जाते हैं। इसके अनुष्ठानमें सम्यक् प्रकारसे आठ ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये; ऐसा करनेसे उस व्यक्तिको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर इस गायत्रीहृदयका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—ऐसा स्वयं भगवान् श्रीनारायणने कहा है।

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे गायत्रीहृदयं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

* * *

अथ पञ्चमोऽध्यायः

गायत्रीस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारद उवाच

भक्तानुकम्पिन् सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम्।
गायत्र्याः कथितं तस्माद् गायत्र्याः स्तोत्रमीरय॥ १

श्रीनारायण उवाच

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि।
सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसन्ध्ये ते नमोऽस्तु ते॥ २

त्वमेव सन्ध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी च वैष्णवी रौद्री रक्ता श्वेता सितेतरा॥ ३

प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः।
वृद्धा सायं भगवती चिन्त्यते मुनिभिः सदा॥ ४

हंसस्था गरुडारूढा तथा वृषभवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः॥ ५

यजुर्वेदं पठन्ती च अन्तरिक्षे विराजते।
सा सामगापि सर्वेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि॥ ६

नारदजी बोले—हे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले! हे सर्वज्ञ! आपने पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीहृदयका तो वर्णन कर दिया; अब गायत्रीस्तोत्रका कथन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे आदिशक्ते! हे जगन्मातः! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली! हे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली! हे अनन्ते! हे श्रीसन्ध्ये! आपको नमस्कार है॥ २॥

आप ही सन्ध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री हैं। आप रक्त, श्वेत तथा कृष्ण वर्णोंवाली हैं॥ ३॥

आप प्रातःकालमें बाल्यावस्थावाली, मध्याह्नकालमें युवावस्थासे युक्त तथा सायंकालमें वृद्धावस्थासे सम्पन्न हो जाती हैं। मुनिगण इन रूपोंमें आप भगवतीका सदा चिन्तन करते रहते हैं॥ ४॥

आप प्रातःकाल हंसपर, मध्याह्नकालमें गरुडपर तथा सायंकालमें वृषभपर विराजमान रहती हैं। आप ऋग्वेदका पाठ करती हुई भूमण्डलपर तपस्वियोंको दृष्टिगोचर होती हैं। आप यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान रहती हैं। वही आप सामगान करती हुई भूमण्डलपर सर्वत्र भ्रमण करती रहती हैं॥ ५-६॥

रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोकनिवासिनी।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्यानुग्रहकारिणी॥ ७

सप्तर्षिप्रीतिजननी माया बहुवरप्रदा।
शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुद्भवा॥ ८

आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते।
वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी॥ ९

गरिष्ठा च वरार्हा च वरारोहा च सप्तमी।
नीलगङ्गा तथा सन्ध्या सर्वदा भोगमोक्षदा॥ १०

भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि।
त्रिलोकवाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी॥ ११

भूर्लोकस्था त्वमेवासि धरित्री लोकधारिणी।
भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः॥ १२

महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनेत्यपि।
तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक्॥ १३

कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकदा।
रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धाङ्गनिवासिनी। १४

अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे।
साम्यावस्थात्मिका त्वं हि शबलब्रह्मरूपिणी॥ १५

ततः परा परा शक्तिः परमा त्वं हि गीयसे।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा॥ १६

गङ्गा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती।
सरयूर्देविका सिन्धुर्नर्मदैरावती तथा॥ १७

गोदावरी शतद्रूश्च कावेरी देवलोकगा।

कौशिकी चन्द्रभागा च वितस्ता च सरस्वती॥ १८

गण्डकी तापिनी तोया गोमती वेत्रवत्यपि।
इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा च तृतीयका॥ १९

गान्धारी हस्तिजिह्वा च पूषापूषा तथैव च।
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी प्राणवाहिनी॥ २०

विष्णुलोकमें निवास करनेवाली आप रुद्रलोकमें भी गमन करती हैं। देवताओंपर अनुग्रह करनेवाली आप ब्रह्मलोकमें भी विराजमान रहती हैं॥ ७॥

मायास्वरूपिणी आप सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेवाली तथा अनेक प्रकारके वर प्रदान करनेवाली हैं। आप शिवशक्तिके हाथ, नेत्र, अश्रु तथा स्वेदसे दस प्रकारकी दुर्गाके रूपमें प्रादुर्भूत हुई हैं। आप आनन्दकी जननी हैं। वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, सातवीं वरारोहा, नीलगंगा, सन्ध्या और भोगमोक्षदा—आपके ये दस नाम हैं॥ ८—१०॥

आप मृत्युलोकमें भागीरथी, पातालमें भोगवती और स्वर्गमें त्रिलोकवाहिनी (मन्दाकिनी)-देवीके रूपमें तीनों लोकोंमें निवास करती हैं॥ ११॥

लोकको धारण करनेवाली आप ही धरित्रीरूपसे भूलोकमें निवास करती हैं। आप भुवर्लोकमें वायुशक्ति, स्वर्लोकमें तेजोनिधि, महर्लोकमें महासिद्धि, जनलोकमें जना, तपोलोकमें तपस्विनी, सत्यलोकमें सत्यवाक्, विष्णुलोकमें कमला, ब्रह्मलोकमें गायत्री और रुद्रलोकमें शंकरके अर्धांगमें निवास करनेवाली गौरीके रूपमें स्थित हैं॥ १२—१४॥

अहंकार और महत् तत्त्वोंकी प्रकृतिके रूपमें आप ही कही जाती हैं। नित्य साम्य अवस्थामें विराजमान आप शबल ब्रह्मस्वरूपिणी हैं॥ १५॥

आप उससे भी बड़ी 'पराशक्ति' तथा 'परमा' कही गयी हैं। आप इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिके रूपमें विद्यमान हैं और इन तीनों शक्तियोंको प्रदान करनेवाली हैं॥ १६॥

आप गंगा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, देवलोकमें गमन करनेवाली कावेरी, कौशिकी, चन्द्रभागा, वितस्ता, सरस्वती, गण्डकी, तापिनी, तोया, गोमती तथा वेत्रवती नदियोंके रूपमें विराजमान हैं और इडा, पिंगला, तीसरी सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी—इन प्राणवाहिनी नाड़ियोंके रूपमें आपको ही प्राचीन विद्वानोंने शरीरमें स्थित बताया है। आप हृदयकमलमें प्राणशक्तिके रूपमें, कण्ठदेशमें स्वप्ननायिकाके रूपमें, तालुओंमें

नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः।
हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कण्ठस्था स्वप्ननायिका॥ २१

तालुस्था त्वं सदाधारा बिन्दुस्था बिन्दुमालिनी।
मूले तु कुण्डलीशक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा॥ २२

शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी।
किमन्यद् बहुनोक्तेन यत्किञ्चिज्जगतीत्रये॥ २३

तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये सन्ध्ये नमोऽस्तु ते।
इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं सन्ध्यायां बहुपुण्यदम्॥ २४

महापापप्रशमनं महासिद्धिविधायकम्।
य इदं कीर्तयेत्स्तोत्रं सन्ध्याकाले समाहितः॥ २५

अपुत्रः प्राप्नुयात्पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात्।
सर्वतीर्थतपोदानयज्ञयोगफलं लभेत्॥ २६

भोगान्भुक्त्वा चिरं कालमन्ते मोक्षमवाप्नुयात्।
तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत्॥ २७

यत्र कुत्र जले मग्नः सन्ध्यामज्जनजं फलम्।
लभते नात्र सन्देहः सत्यं सत्यं च नारद॥ २८

शृणुयाद्योऽपि तद्भक्त्या स तु पापात्प्रमुच्यते।
पीयूषसदृशं वाक्यं सन्ध्योक्तं नारदेरितम्॥ २९

सर्वाधारस्वरूपिणीके रूपमें और भ्रूमध्यमें बिन्दुमालिनीके रूपमें विराजमान रहती हैं। आप मूलाधारमें कुण्डलीशक्तिके रूपमें तथा चूडामूलपर्यन्त व्यापिनीशक्तिके रूपमें स्थित हैं। शिखाके मध्यभागमें परमात्मशक्तिके रूपमें तथा शिखाके अग्रभागमें मनोन्मनीशक्तिके रूपमें आप ही विराजमान रहती हैं। हे महादेवि! अधिक कहनेसे क्या लाभ? तीनों लोकोंमें जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। हे सन्ध्ये! मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये आपको नमस्कार है॥ १७—२३½॥

[हे नारद!] सन्ध्याके समय पढ़ा गया यह स्तोत्र अत्यधिक पुण्य प्रदान करनेवाला, महान् पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर सन्ध्याकालमें इस गायत्रीस्तोत्रका पाठ करता है, वह यदि पुत्रहीन है तो पुत्र और यदि धनका अभिलाषी है तो धन प्राप्त कर लेता है। ऐसा करनेवालेको समस्त तीर्थ, तप, दान, यज्ञ तथा योगका फल प्राप्त हो जाता है और दीर्घ कालतक सुखोंका उपभोग करके अन्तमें वह मोक्षको प्राप्त होता है॥ २४—२६½॥

हे नारद! जो पुरुष स्नानकालमें तपस्वियोंद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह जहाँ कहीं भी जलमें स्नान करे, उसे सन्ध्यारूपी मज्जनसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है; मेरा यह कथन सत्य है, सत्य है॥ २७-२८॥

हे नारद! सन्ध्याको उद्देश्य करके कहे गये इस अमृततुल्य स्तोत्रको जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक सुनता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है॥ २९॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
श्रीगायत्रीस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

गायत्रीसहस्रनामस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारद उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यं त्वन्मुखाच्छ्रुतम्॥ १
सर्वपापहरं देव येन विद्या प्रवर्तते।

नारदजी बोले—सभी धर्मोंको जाननेवाले तथा सभी शास्त्रोंमें निष्णात हे भगवन्! मैंने आपके मुखसे श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणोंसे सम्बद्ध सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला वह रहस्य सुन लिया,

केन वा ब्रह्मविज्ञानं किं नु वा मोक्षसाधनम्॥ २

ब्राह्मणानां गतिः केन केन वा मृत्युनाशनम्।
ऐहिकामुष्मिकफलं केन वा पद्मलोचन॥ ३

वक्तुमर्हस्यशेषेण सर्वं निखिलमादितः।

श्रीनारायण उवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ सम्यक् पृष्टं त्वयानघ॥ ४

शृणु वक्ष्यामि यत्नेन गायत्र्यष्टसहस्रकम्।
नाम्नां शुभानां दिव्यानां सर्वपापविनाशनम्॥ ५

सृष्ट्यादौ यद्भगवता पूर्वं प्रोक्तं ब्रवीमि ते।
अष्टोत्तरसहस्रस्य ऋषिर्ब्रह्मा प्रकीर्तितः॥ ६

छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवी गायत्री देवता स्मृता।
हलो बीजानि तस्यैव स्वराः शक्तय ईरिताः॥ ७

अङ्गन्यासकरन्यासावुच्येते मातृकाक्षरैः।
अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि साधकानां हिताय वै॥ ८

रक्तश्वेतहिरण्यनीलधवलैर्युक्तां त्रिनेत्रोज्ज्वलां
रक्तां रक्तनवस्रजं मणिगणैर्युक्तां कुमारीमिमाम्।
गायत्रीं कमलासनां करतलव्यानद्धकुण्डाम्बुजां
पद्माक्षीं च वरस्रजं च दधतीं हंसाधिरूढां भजे॥ ९

अचिन्त्यलक्षणाव्यक्ताप्यर्थमातृमहेश्वरी।
अमृतार्णवमध्यस्थाप्यजिता चापराजिता॥ १०

जिससे विद्याकी प्राप्ति होती है। हे देव! किसके द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और मोक्षका साधन क्या है? हे कमलनयन! किस साधनसे ब्राह्मणोंको उत्तम गति मिलती है, किससे मृत्युका नाश होता है? और किसके आश्रयसे मनुष्यको इहलोक तथा परलोकमें उत्तम फल प्राप्त होता है? इस सम्बन्धमें प्रारम्भसे लेकर सम्पूर्ण बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये॥ १—३½ ॥

श्रीनारायण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे अनघ! आपको साधुवाद है, जो आपने इतनी उत्तम बात पूछी है। सुनिये, मैं प्रयत्नपूर्वक गायत्रीके दिव्य तथा मंगलकारी एक हजार आठ नामोंवाले सर्वपापहारीस्तोत्रका वर्णन करता हूँ॥ ४-५॥

पूर्वकालमें सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने जिसे कहा था, वही मैं आपको बता रहा हूँ। इस एक हजार आठ नामवाले स्तोत्रके ऋषि ब्रह्माजी कहे गये हैं। अनुष्टुप् इसका छन्द है तथा भगवती गायत्री इसकी देवता कही गयी हैं। हल् (व्यंजन) वर्ण इसके बीज और स्वर इसकी शक्तियाँ कही गयी हैं। मातृकामन्त्रके छः अक्षर ही इसके छः अंगन्यास और करन्यास कहे जाते हैं॥ ६-७½ ॥

अब साधकोंके कल्याणके लिये देवीका ध्यान बताता हूँ। रक्त-श्वेत-पीत-नील एवं धवलवर्ण (-वाले मुखों)-से सम्पन्न, तीन नेत्रोंसे देदीप्यमान विग्रहवाली, रक्तवर्णवाली, नवीन रक्तपुष्पोंकी माला धारण करनेवाली, अनेक मणिसमूहोंसे युक्त, कमलके आसनपर विराजमान, अपने दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं अन्य दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला धारण करनेवाली, कमलके समान नेत्रोंवाली, हंसपर विराजमान रहनेवाली तथा कुमारी अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ८-९॥ [देवीके सहस्रनाम इस प्रकार हैं—]

१. **अचिन्त्यलक्षणा** (बुद्धिकी पहुँचसे परे लक्षणोंवाली) २. **अव्यक्ता,** ३. **अर्थमातृमहेश्वरी** (अर्थ आदि पार्थिव पदार्थोंके परिच्छेदक ब्रह्मा आदि देवताओंपर नियन्त्रण करनेवाली) ४. **अमृता** (अमृतस्वरूपिणी), ५. **अर्णवमध्यस्था** (समुद्रके भीतर विराजमान रहनेवाली),

अणिमादिगुणाधाराप्यर्कमण्डलसंस्थिता ।
अजराजापराधर्मा अक्षसूत्रधराधरा ॥ ११

६. **अजिता**, ७. **अपराजिता** ८. **अणिमादिगुणाधारा** (अणिमा आदि सिद्धियोंकी आश्रयभूता), ९. **अर्कमण्डलसंस्थिता** (सूर्यमण्डलमें विराजमान), १०. **अजरा** (सदा तरुण अवस्थामें रहनेवाली), ११. **अजा** (जन्मरहित), १२. **अपरा** (जिनसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है), १३. **अधर्मा** (जात्यादिनिमित्तक लोकधर्मोंसे रहित), १४. **अक्षसूत्रधरा** (अक्षसूत्र धारण करनेवाली), १५. **अधरा** (अपने ही आधारपर स्थित) ॥ १०-११ ॥

अकारादिक्षकारान्ताप्यरिषड्वर्गभेदिनी ।
अञ्जनाद्रिप्रतीकाशाप्यञ्जनाद्रिनिवासिनी ॥ १२

१६. **अकारादिक्षकारान्ता** (जिनके आदिमें अकार तथा अन्तमें क्षकार है, वे वर्णमातृकास्वरूपिणी देवी), १७. **अरिषड्वर्गभेदिनी** (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य—इन छः प्रकारके शत्रुओंका भेदन करनेवाली), १८. **अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा** (अंजनगिरिके समान कृष्णवर्णकी प्रभासे सुशोभित), १९. **अञ्जनाद्रिनिवासिनी** (अंजनगिरिपर निवास करनेवाली) ॥ १२ ॥

अदितिश्चाजपाविद्याप्यरविन्दनिभेक्षणा ।
अन्तर्बहिःस्थिताविद्याध्वंसिनी चान्तरात्मिका ॥ १३

२०. **अदितिः** (देवताओंकी माता), २१. **अजपा** (अजपाजपरूपिणी), २२. **अविद्या** (माया), २३. **अरविन्दनिभेक्षणा** (कमलसदृश नेत्रोंवाली), २४. **अन्तर्बहिःस्थिता** (सभीके भीतर तथा बाहर स्थित रहनेवाली), २५. **अविद्याध्वंसिनी** (अविद्याका नाश करनेवाली), २६. **अन्तरात्मिका** (सभीके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली) ॥ १३ ॥

अजा चाजमुखावासाप्यरविन्दनिभानना ।
अर्धमात्रार्थदानज्ञाप्यरिमण्डलमर्दिनी ॥ १४

२७. **अजा** (जन्मसे रहित प्रकृतिस्वरूपिणी), २८. **अजमुखावासा** (ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली), २९. **अरविन्दनिभानना** (कमलके समान प्रफुल्लित मुखवाली), ३०. **अर्धमात्रा** (प्रणवांगभूत अर्धमात्रास्वरूपा), ३१. **अर्थदानज्ञा** (धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंका दान करनेमें कुशल), ३२. **अरिमण्डलमर्दिनी** (शत्रु-समूहोंका मर्दन करनेवाली) ॥ १४ ॥

असुरघ्नी ह्यमावास्याप्यलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता ।
आदिलक्ष्मीश्चादिशक्तिराकृतिश्चायतानना ॥ १५

३३. **असुरघ्नी** (राक्षसोंका संहार करनेवाली), ३४. **अमावास्या** (अमावस्यातिथिरूपा), ३५. **अलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता** (अलक्ष्मीका संहार करनेवाली अन्त्यजा—मातंगीदेवीसे अर्चित होनेवाली), ३६. **आदिलक्ष्मीः**, ३७. **आदिशक्तिः** (महामाया), ३८. **आकृतिः** (आकारस्वरूपिणी), ३९. **आयतानना** (विशाल मुखवाली) ॥ १५ ॥

आदित्यपदवीचाराप्यादित्यपरिसेविता ।
आचार्यावर्तनाचाराप्यादिमूर्तिनिवासिनी ॥ १६

४०. आदित्यपदवीचारा (आदित्यमार्गपर चलनेवाली सूर्यगतिरूपा), **४१. आदित्यपरिसेविता** (सूर्य आदि देवताओंसे सुसेवित), **४२. आचार्या** (सदाचारकी व्याख्या करनेवाली), **४३. आवर्तना** (भ्रमणशील जगत्‌की रचना करनेवाली), **४४. आचारा** (आचारस्वरूपिणी), **४५. आदिमूर्तिनिवासिनी** (आदिमूर्ति अर्थात् ब्रह्ममें निवास करनेवाली) ॥ १६ ॥

आग्नेयी चामरी चाद्या चाराध्या चासनस्थिता ।
आधारनिलयाधारा चाकाशान्तनिवासिनी ॥ १७

४६. आग्नेयी (अग्निकी अधिष्ठात्री), **४७. आमरी** (देवताओंकी पुरी जिनका रूप माना जाता है), **४८. आद्या** (आदिस्वरूपिणी), **४९. आराध्या** (सभीके द्वारा आराधित), **५०. आसनस्थिता** (दिव्य आसनपर विराजमान रहनेवाली), **५१. आधारनिलया** (मूलाधारमें निवास करनेवाली कुण्डलिनीस्वरूपिणी), **५२. आधारा** (जगत्‌को धारण करनेवाली), **५३. आकाशान्तनिवासिनी** (आकाशतत्त्वके अन्तरूप अहंकारमें निवास करनेवाली) ॥ १७ ॥

आद्याक्षरसमायुक्ता चान्तराकाशरूपिणी ।
आदित्यमण्डलगता चान्तरध्वान्तनाशिनी ॥ १८

५४. आद्याक्षरसमायुक्ता (आदि अक्षर अर्थात् अकारसे युक्त), **५५. आन्तराकाशरूपिणी** (दहराकाशरूपिणी), **५६. आदित्यमण्डलगता** (सूर्यमण्डलमें विद्यमान), **५७. आन्तरध्वान्तनाशिनी** (अज्ञानरूप आन्तरिक अन्धकारका नाश करनेवाली) ॥ १८ ॥

इन्दिरा चेष्टदा चेष्टा चेन्दीवरनिभेक्षणा ।
इरावती चेन्द्रपदा चेन्द्राणी चेन्दुरूपिणी ॥ १९

५८. इन्दिरा (लक्ष्मी), **५९. इष्टदा** (मनोरथ पूर्ण करनेवाली), **६०. इष्टा** (साधकोंकी अभीष्ट देवतारूपिणी), **६१. इन्दीवरनिभेक्षणा** (सुन्दर नीलकमलके समान नेत्रोंवाली), **६२. इरावती** (इरा अर्थात् पृथ्वीसे युक्त), **६३. इन्द्रपदा** (अपनी कृपासे इन्द्रको पद दिलानेवाली), **६४. इन्द्राणी** (शचीरूपसे विराजमान), **६५. इन्दुरूपिणी** (चन्द्रमाके समान सुन्दर रूपवाली) ॥ १९ ॥

इक्षुकोदण्डसंयुक्ता चेषुसन्धानकारिणी ।
इन्द्रनीलसमाकारा चेडापिङ्गलरूपिणी ॥ २०

६६. इक्षुकोदण्डसंयुक्ता (हाथमें इक्षुका धनुष धारण करनेवाली), **६७. इषुसन्धानकारिणी** (बाणोंका संधान करनेमें दक्ष), **६८. इन्द्रनीलसमाकारा** (इन्द्रनील-मणिके समान प्रभावाली), **६९. इडापिङ्गलरूपिणी** (इडा और पिंगला आदि नाड़ीरूपिणी) ॥ २० ॥

इन्द्राक्षी चेश्वरी देवी चेहात्रयविवर्जिता ।

७०. इन्द्राक्षी (शताक्षी नामवाली देवी), **७१. ईश्वरी देवी** (अखिल ऐश्वर्योंसे युक्त भगवती), **७२. ईहात्रयविवर्जिता** (तीन प्रकारकी ईहा अर्थात्

उमा चोषा ह्युडुनिभा उर्वारुकफलानना॥ २१

उडुप्रभा चोडुमती ह्युडुपा ह्युडुमध्यगा।
ऊर्ध्वं चाप्यूर्ध्वकेशी चाप्यूर्ध्वाधोगतिभेदिनी॥ २२

ऊर्ध्वबाहुप्रिया चोर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी।
ऋतं चर्षिर्ऋतुमती ऋषिदेवनमस्कृता॥ २३

ऋग्वेदा ऋणहर्त्री च ऋषिमण्डलचारिणी।
ऋद्धिदा ऋजुमार्गस्था ऋजुधर्मा ऋतुप्रदा॥ २४

ऋग्वेदनिलया ऋज्वी लुप्तधर्मप्रवर्तिनी।
लूतारिवरसम्भूता लूतादिविषहारिणी॥ २५

एकाक्षरा चैकमात्रा चैका चैकैकनिष्ठिता।

लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणासे रहित), **७३. उमा, ७४. उषा, ७५. उडुनिभा** (नक्षत्रके सदृश प्रभावाली), **७६. उर्वारुकफलानना** (ककड़ीके फलके समान सदा प्रफुल्लित मुखवाली)॥ २१॥

७७. उडुप्रभा (जलके समान वर्णवाली), **७८. उडुमती** (रात्रिरूपिणी), **७९. उडुपा** (चन्द्रमा अथवा नौकारूपिणी), **८०. उडुमध्यगा** (नक्षत्रमण्डलके मध्य विराजमान), **८१. ऊर्ध्वम्** (ऊर्ध्वदेशरूपिणी), **८२. ऊर्ध्वकेशी** (ऊपरकी ओर उठे हुए केशोंवाली), **८३. ऊर्ध्वाधोगतिभेदिनी** (ऊर्ध्वगति अर्थात् स्वर्ग और अधोगति अर्थात् नरक दोनोंका भेदन करनेवाली)॥ २२॥

८४. ऊर्ध्वबाहुप्रिया (भुजाओंको ऊपर उठाकर आराधना करनेवाले भक्तोंसे प्रेम करनेवाली), **८५. ऊर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी** (तरंगमालाओंके समान श्रेष्ठ वाणीसे सम्पन्न ग्रन्थ-रचनाका सामर्थ्य प्रदान करनेवाली), **८६. ऋतम्** (सूनृत-स्वरूपिणी), **८७. ऋषिः** (वेदरूपा), **८८. ऋतुमती, ८९. ऋषिदेव-नमस्कृता** (ऋषियों तथा देवताओंसे नमस्कृत होनेवाली)॥ २३॥

९०. ऋग्वेदा (ऋग्वेदरूपा), **९१. ऋणहर्त्री** (देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणका नाश करनेवाली), **९२. ऋषिमण्डलचारिणी** (ऋषियोंकी मण्डलीमें विचरण करनेवाली), **९३. ऋद्धिदा** (समृद्धि प्रदान करनेवाली), **९४. ऋजुमार्गस्था** (सदाचारके मार्गपर चलनेवाली), **९५. ऋजुधर्मा** (सहज धर्मवाली), **९६. ऋतुप्रदा** (अपनी कृपासे विभिन्न ऋतुएँ प्रदान करनेवाली)॥ २४॥

९७. ऋग्वेदनिलया (ऋग्वेदमें निवास करनेवाली), **९८. ऋज्वी** (सरल स्वभाववाली), **९९. लुप्तधर्म-प्रवर्तिनी** (लुप्त धर्मोंका पुनः प्रवर्तन करनेवाली), **१००. लूतारिवरसम्भूता** (लूता नामक रोगविशेषके महान् शत्रुरूपी मन्त्रोंको उत्पन्न करनेवाली), **१०१. लूतादिविषहारिणी** (मकड़ी आदिके विषका हरण करनेवाली)॥ २५॥

१०२. एकाक्षरा (एक अक्षरसे युक्त), **१०३. एकमात्रा** (एक मात्रामें विराजनेवाली), **१०४. एका** (अद्वितीय), **१०५. एकनिष्ठा** (सर्वदा एकनिष्ठ

ऐन्द्री ह्यैरावतारूढा चैहिकामुष्मिकप्रदा॥ २६

ओङ्कारा ह्योषधी चोता चोतप्रोतनिवासिनी।
और्वा ह्यौषधसम्पन्ना औपासनफलप्रदा॥ २७

अण्डमध्यस्थिता देवी चाःकारमनुरूपिणी।
कात्यायनी कालरात्रिः कामाक्षी कामसुन्दरी॥ २८

कमला कामिनी कान्ता कामदा कालकण्ठिनी।
करिकुम्भस्तनभरा करवीरसुवासिनी॥ २९

कल्याणी कुण्डलवती कुरुक्षेत्रनिवासिनी।
कुरुविन्ददलाकारा कुण्डली कुमुदालया॥ ३०

कालजिह्वा करालास्या कालिका कालरूपिणी।
कमनीयगुणा कान्तिः कलाधारा कुमुद्वती॥ ३१

भावमें रहनेवाली), **१०६. ऐन्द्री** (इन्द्रकी शक्तिस्वरूपा), **१०७. ऐरावतारूढा** (ऐरावतपर आरूढ़ रहनेवाली), **१०८. ऐहिकामुष्मिकप्रदा** (इहलोक तथा परलोकका फल प्रदान करनेवाली)॥ २६॥

१०९. ओङ्कारा (प्रणवस्वरूपिणी), **११०. ओषधी** (सांसारिक रोगोंसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा), **१११. ओता** (मणिमें सूत्रकी भाँति सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान), **११२. ओतप्रोतनिवासिनी** (ब्रह्मसे व्याप्त ब्रह्माण्डमें निवास करनेवाली), **११३. और्वा** (वाडवाग्निस्वरूपिणी), **११४. औषधसम्पन्ना** (भवरोगके शमनहेतु औषधियोंसे सम्पन्न), **११५. औपासनफलप्रदा** (उपासना करनेवालोंको श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाली)॥ २७॥

११६. अण्डमध्यस्थिता देवी (ब्रह्माण्डके भीतर विराजमान देवी), **११७. अःकारमनुरूपिणी** (अःकार अर्थात् विसर्गरूप मन्त्रमय विग्रहवाली), **११८. कात्यायनी** (कात्यायनऋषिद्वारा उपासित), **११९. कालरात्रि** (दानवोंके संहारके लिये कालरात्रिके रूपमें प्रकट करनेवाली), **१२०. कामाक्षी** (कामको नेत्रोंमें धारण करनेवाली), **१२१. कामसुन्दरी** (यथेच्छ सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाली)॥ २८॥

१२२. कमला, १२३. कामिनी, १२४. कान्ता, १२५. कामदा, १२६. कालकण्ठिनी (कालको अपने कण्ठमें समाहित कर लेनेवाली), **१२७. करिकुम्भस्तनभरा** (हाथीके कुम्भसदृश पयोधरोंवाली), **१२८. करवीरसुवासिनी** (करवीर अर्थात् महालक्ष्मीक्षेत्रमें निवास करनेवाली)॥ २९॥

१२९. कल्याणी, १३०. कुण्डलवती, १३१. कुरुक्षेत्रनिवासिनी, १३२. कुरुविन्ददलाकारा (कुरुविन्ददलके समान आकारवाली), **१३३. कुण्डली, १३४. कुमुदालया, १३५. कालजिह्वा** (राक्षसोंके संहारके लिये कालरूपिणी जिह्वासे सम्पन्न), **१३६. करालास्या** (शत्रुओंके समक्ष विकराल मुखाकृतिवाली), **१३७. कालिका, १३८. कालरूपिणी, १३९. कमनीयगुणा** (सुन्दर गुणोंसे सम्पन्न), **१४०. कान्तिः, १४१. कलाधारा** (समस्त चौंसठ कलाओंको धारण करनेवाली), **१४२. कुमुद्वती**॥ ३०-३१॥

कौशिकी कमलाकारा कामचारप्रभञ्जिनी।
कौमारी करुणापाङ्गी ककुबन्ता करिप्रिया॥ ३२

१४३. **कौशिकी**, १४४. **कमलाकारा** (कमलके समान सुन्दर आकार धारण करनेवाली), १४५. **कामचारप्रभञ्जिनी** (स्वेच्छाचारका ध्वंस करनेवाली), १४६. **कौमारी**, १४७. **करुणापाङ्गी** (करुणामय कटाक्षसे भक्तोंपर कृपा करनेवाली), १४८. **ककुबन्ता** (दिशाओंकी अवसानरूपा), १४९. **करिप्रिया** (जिन्हें हाथी प्रिय है)॥ ३२॥

केसरी केशवनुता कदम्बकुसुमप्रिया।
कालिन्दी कालिका काञ्ची कलशोद्भवसंस्तुता॥ ३३

काममाता क्रतुमती कामरूपा कृपावती।
कुमारी कुण्डनिलया किराती कीरवाहना। ३४

१५०. **केसरी**, १५१. **केशवनुता** (भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रणम्य), १५२. **कदम्बकुसुमप्रिया** (कदम्बके पुष्पसे प्रेम करनेवाली), १५३. **कालिन्दी**, १५४. **कालिका**, १५५. **काञ्ची**, १५६. **कलशोद्भवसंस्तुता** (अगस्त्यमुनिसे स्तुत होनेवाली), १५७. **काममाता**, १५८. **क्रतुमती** (यज्ञमय विग्रह धारण करनेवाली), १५९. **कामरूपा**, १६०. **कृपावती**, १६१. **कुमारी**, १६२. **कुण्डनिलया** (हवन-कुण्डमें विराजनेवाली), १६३. **किराती** (भक्तोंका कार्यसाधन करनेके लिये किरात-वेष धारण करनेवाली), १६४. **कीरवाहना** (तोतापक्षीको वाहनरूपमें रखनेवाली)॥ ३३-३४॥

कैकेयी कोकिलालापा केतकी कुसुमप्रिया।
कमण्डलुधरा काली कर्मनिर्मूलकारिणी॥ ३५

१६५. **कैकेयी**, १६६. **कोकिलालापा**, १६७. **केतकी**, १६८. **कुसुमप्रिया**, १६९. **कमण्डलुधरा** (ब्रह्मचारिणीके रूपमें कमण्डलु धारण करनेवाली), १७०. **काली**, १७१. **कर्मनिर्मूलकारिणी** (आराधित होनेपर कर्मोंको निर्मूल कर देनेवाली)॥ ३५॥

कलहंसगतिः कक्षा कृतकौतुकमङ्गला।
कस्तूरीतिलका कम्रा करीन्द्रगमना कुहूः॥ ३६

१७२. **कलहंसगतिः**, १७३. **कक्षा**, १७४. **कृतकौतुकमङ्गला** (सर्वदा मंगलमय वैवाहिक वेष धारण करनेवाली), १७५. **कस्तूरीतिलका**, १७६. **कम्रा** (चंचला), १७७. **करीन्द्रगमना** (ऐरावतपर आरूढ होनेवाली), १७८. **कुहूः** (अमावस्या नामसे प्रसिद्ध)॥ ३६॥

कर्पूरलेपना कृष्णा कपिला कुहराश्रया।
कूटस्था कुधरा कम्रा कुक्षिस्थाखिलविष्टपा॥ ३७

१७९. **कर्पूरलेपना**, १८०. **कृष्णा**, १८१. **कपिला**, १८२. **कुहराश्रया** (बुद्धिरूपी गुहामें स्थित रहनेवाली), १८३. **कूटस्था** (पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली), १८४. **कुधरा** (पृथ्वीको धारण करनेवाली), १८५. **कम्रा** (अत्यन्त सुन्दरी), १८६. **कुक्षिस्थाखिलविष्टपा** (अपनी कुक्षिमें स्थित अखिल जगत्की रक्षा करनेवाली)॥ ३७॥

खड्गखेटकरा खर्वा खेचरी खगवाहना।
खट्वाङ्गधारिणी ख्याता खगराजोपरिस्थिता॥ ३८

खलघ्नी खण्डितजरा खण्डाख्यानप्रदायिनी।
खण्डेन्दुतिलका गङ्गा गणेशगुहपूजिता॥ ३९

गायत्री गोमती गीता गान्धारी गानलोलुपा।
गौतमी गामिनी गाधा गन्धर्वाप्सरसेविता॥ ४०

गोविन्दचरणाक्रान्ता गुणत्रयविभाविता।
गन्धर्वी गह्वरी गोत्रा गिरीशा गहना गमी॥ ४१

गुहावासा गुणवती गुरुपापप्रणाशिनी।
गुर्वी गुणवती गुह्या गोप्तव्या गुणदायिनी॥ ४२

गिरिजा गुह्यमातङ्गी गरुडध्वजवल्लभा।
गर्वापहारिणी गोदा गोकुलस्था गदाधरा॥ ४३

१८७. **खड्गखेटकरा** (दानवोंको मारनेके लिये हाथमें ढाल-तलवार धारण करनेवाली), १८८. **खर्वा** (अभिमानिनी), १८९. **खेचरी**, १९०. **खगवाहना**, १९१. **खट्वाङ्गधारिणी**, १९२. **ख्याता**, १९३. **खगराजोपरिस्थिता** (गरुडके ऊपर विराजमान रहनेवाली) ॥ ३८ ॥

१९४. **खलघ्नी**, १९५. **खण्डितजरा** (बुढ़ापेसे रहित विग्रहवाली), १९६. **खण्डाख्यानप्रदायिनी** (मधुर कथाओंको प्रदान करनेवाली), १९७. **खण्डेन्दुतिलका** (ललाटपर खण्डित चन्द्रमा अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रमाको तिलकरूपमें धारण करनेवाली), १९८. **गङ्गा**, १९९. **गणेशगुहपूजिता** (गणेश तथा कार्तिकेयसे पूजित) ॥ ३९ ॥

२००. **गायत्री** (अपना गुणगान करनेवालोंकी संरक्षिका), २०१. **गोमती**, २०२. **गीता**, २०३. **गान्धारी**, २०४. **गानलोलुपा**, २०५. **गौतमी**, २०६. **गामिनी**, २०७. **गाधा** (पृथ्वीको आश्रय देनेवाली), २०८. **गन्धर्वाप्सरसेविता** (गन्धर्व तथा अप्सराओंसे सेवित) ॥ ४० ॥

२०९. **गोविन्दचरणाक्रान्ता** (श्रीविष्णुके चरणोंसे आक्रान्त अर्थात् पृथ्वीस्वरूपिणी), २१०. **गुणत्रयविभाविता** (तीन गुणोंके साथ आविर्भूत होनेवाली), २११. **गन्धर्वी**, २१२. **गह्वरी** (दुरूह महिमावाली), २१३. **गोत्रा** (पृथ्वीरूपा), २१४. **गिरीशा** (पर्वतकी अधिष्ठात्री), २१५. **गहना** (गूढ़ स्वभाववाली), २१६. **गमी** (गमनशीला) ॥ ४१ ॥

२१७. **गुहावासा**, २१८. **गुणवती**, २१९. **गुरुपापप्रणाशिनी** (महान् पापोंका नाश करनेवाली), २२०. **गुर्वी**, २२१. **गुणवती**, २२२. **गुह्या**, २२३. **गोप्तव्या** (हृदयमें छिपाये रखनेयोग्य), २२४. **गुणदायिनी** ॥ ४२ ॥

२२५. **गिरिजा**, २२६. **गुह्यमातङ्गी** (ब्रह्म-विद्यास्वरूपिणी), २२७. **गरुडध्वजवल्लभा** (विष्णुकी परम प्रिया), २२८. **गर्वापहारिणी** (अभिमानका नाश करनेवाली), २२९. **गोदा** (गौ अथवा पृथ्वीका दान करनेवाली), २३०. **गोकुलस्था**, २३१. **गदाधरा** ॥ ४३ ॥

गोकर्णनिलयासक्ता गुह्यमण्डलवर्तिनी।
घर्मदा घनदा घण्टा घोरदानवमर्दिनी॥ ४४

२३२. **गोकर्णनिलयासक्ता** (गोकर्ण नामक तीर्थस्थानमें निवासहेतु तत्पर रहनेवाली), २३३. **गुह्यमण्डलवर्तिनी** (अत्यन्त गोपनीय मण्डलमें विद्यमान रहनेवाली), २३४. **घर्मदा** (ऊष्मा प्रदान करनेवाली), २३५. **घनदा** (मेघ उत्पन्न करनेवाली), २३६. **घण्टा**, २३७. **घोरदानवमर्दिनी** ॥ ४४ ॥

घृणिमन्त्रमयी घोषा घनसम्पातदायिनी।
घण्टारवप्रिया घ्राणा घृणिसन्तुष्टकारिणी॥ ४५

२३८. **घृणिमन्त्रमयी** (सूर्यको प्रसन्न करनेवाले मन्त्ररूपसे विराजमान), २३९. **घोषा** (युद्धमें भयावह नाद करनेवाली), २४०. **घनसम्पातदायिनी** (मेघोंको जलवृष्टिकी आज्ञा देनेवाली), २४१. **घण्टारवप्रिया** (घण्टाध्वनिसे प्रसन्न होनेवाली), २४२. **घ्राणा** (घ्राणेन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवी), २४३. **घृणिसन्तुष्टकारिणी** (सूर्यको सन्तुष्ट करनेवाली) ॥ ४५ ॥

घनारिमण्डला घूर्णा घृताची घनवेगिनी।
ज्ञानधातुमयी चर्चा चर्चिता चारुहासिनी॥ ४६

२४४. **घनारिमण्डला** (अनेकानेक शत्रुओंसे परिवृता), २४५. **घूर्णा** (सर्वत्र भ्रमणशीला), २४६. **घृताची** (सरस्वतीरूपा अथवा रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), २४७. **घनवेगिनी** (प्रचण्ड वेगशाली), २४८. **ज्ञानधातुमयी** (चिन्मय धातुओंसे बनी हुई), २४९. **चर्चा**, २५०. **चर्चिता** (चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सुपूजित), २५१. **चारुहासिनी** ॥ ४६ ॥

चटुला चण्डिका चित्रा चित्रमाल्यविभूषिता।
चतुर्भुजा चारुदन्ता चातुरी चरितप्रदा॥ ४७

२५२. **चटुला**, २५३. **चण्डिका**, २५४. **चित्रा**, २५५. **चित्रमाल्यविभूषिता** (अनेक प्रकारके रंगोंकी मालाओंसे सुशोभित), २५६. **चतुर्भुजा**, २५७. **चारुदन्ता**, २५८. **चातुरी**, २५९. **चरितप्रदा** (सदाचारकी शिक्षा प्रदान करनेवाली) ॥ ४७ ॥

चूलिका चित्रवस्त्रान्ता चन्द्रमःकर्णकुण्डला।
चन्द्रहासा चारुदात्री चकोरी चन्द्रहासिनी॥ ४८

२६०. **चूलिका** (देवी-देवताओंमें शीर्ष स्थानवाली), २६१. **चित्रवस्त्रान्ता**, २६२. **चन्द्रमःकर्णकुण्डला** (कानोंमें चन्द्राकार कुण्डल धारण करनेवाली), २६३. **चन्द्रहासा**, २६४. **चारुदात्री**, २६५. **चकोरी**, २६६. **चन्द्रहासिनी** (चन्द्रमाको अपने मुखसौन्दर्यसे आह्लादित करनेवाली) ॥ ४८ ॥

चन्द्रिका चन्द्रधात्री च चौरी चौरा च चण्डिका।
चञ्चद्वाग्वादिनी चन्द्रचूडा चोरविनाशिनी॥ ४९

२६७. **चन्द्रिका**, २६८. **चन्द्रधात्री**, २६९. **चौरी** (अपनी शक्तिको गुप्त रखनेवाली), २७०. **चौरा** (भक्तोंका पाप हरण करनेवाली), २७१. **चण्डिका**, २७२. **चञ्चद्वाग्वादिनी** (चंचलतापूर्वक सम्भाषण करनेवाली), २७३. **चन्द्रचूडा**, २७४. **चोरविनाशिनी** (चौरवृत्तिमें लिप्त लोगोंका विनाश करनेवाली) ॥ ४९ ॥

चारुचन्दनलिप्ताङ्गी चञ्चच्चामरवीजिता।
चारुमध्या चारुगतिश्चन्दिला चन्द्ररूपिणी॥ ५०

चारुहोमप्रिया चार्वाचरिता चक्रबाहुका।
चन्द्रमण्डलमध्यस्था चन्द्रमण्डलदर्पणा॥ ५१

चक्रवाकस्तनी चेष्टा चित्रा चारुविलासिनी।
चित्स्वरूपा चन्द्रवती चन्द्रमाश्चन्दनप्रिया॥ ५२

चोदयित्री चिरप्रज्ञा चातका चारुहेतुकी।
छत्रयाता छत्रधरा छाया छन्दःपरिच्छदा॥ ५३

छायादेवीच्छिद्रनखा छन्नेन्द्रियविसर्पिणी।
छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता छिद्रोपद्रवभेदिनी॥ ५४

छेदा छत्रेश्वरी छिन्ना छुरिका छेदनप्रिया।
जननी जन्मरहिता जातवेदा जगन्मयी॥ ५५

जाह्नवी जटिला जेत्री जरामरणवर्जिता।
जम्बूद्वीपवती ज्वाला जयन्ती जलशालिनी॥ ५६

जितेन्द्रिया जितक्रोधा जितामित्रा जगत्प्रिया।
जातरूपमयी जिह्वा जानकी जगती जरा॥ ५७

२७५. **चारुचन्दनलिप्ताङ्गी** (सुन्दर चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली), २७६. **चञ्चच्चामरवीजिता** (निरन्तर डुलाये जाते हुए चँवरोंसे सुसेवित), २७७. **चारुमध्या** (सुन्दर कटिप्रदेशवाली), २७८. **चारुगतिः** (मनमोहक गतिवाली), २७९. **चन्दिला,** २८०. **चन्द्ररूपिणी** ॥ ५० ॥

२८१. **चारुहोमप्रिया** (श्रेष्ठ हवनसे प्रसन्न होनेवाली), २८२. **चार्वाचरिता** (उत्तम आचरणसे सम्पन्न), २८३. **चक्रबाहुका,** २८४. **चन्द्रमण्डलमध्यस्था,** २८५. **चन्द्रमण्डलदर्पणा** (चन्द्रमण्डलरूपी दर्पणको धारण करनेवाली) ॥ ५१ ॥

२८६. **चक्रवाकस्तनी** (चक्रवाकके समान स्तनोंवाली), २८७. **चेष्टा,** २८८. **चित्रा,** २८९. **चारुविलासिनी,** २९०. **चित्स्वरूपा** (चिन्मय स्वरूपवाली), २९१. **चन्द्रवती,** २९२. **चन्द्रमा,** २९३. **चन्दनप्रिया** ॥ ५२ ॥

२९४. **चोदयित्री** (भक्तोंको प्रेरणा प्रदान करनेवाली), २९५. **चिरप्रज्ञा** (सनातन विद्यास्वरूपिणी), २९६. **चातका** (चातकके समान दृढ संकल्पवाली), २९७. **चारुहेतुकी,** २९८. **छत्रयाता** (छत्रयुक्त होकर गमन करनेवाली), २९९. **छत्रधरा,** ३००. **छाया,** ३०१. **छन्दःपरिच्छदा** (वेदोंसे ज्ञात होनेवाली) ॥ ५३ ॥

३०२. **छायादेवी,** ३०३. **छिद्रनखा,** ३०४. **छन्नेन्द्रियविसर्पिणी** (जितेन्द्रिय योगियोंके पास पधारनेवाली), ३०५. **छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता** (अनुष्टुप् छन्दमें प्रतिष्ठित रहनेवाली), ३०६. **छिद्रोपद्रवभेदिनी** (कपटरूप उपद्रवको शान्त करनेवाली) ॥ ५४ ॥

३०७. **छेदा** (पापोंका उच्छेदन करनेवाली), ३०८. **छत्रेश्वरी,** ३०९. **छिन्ना,** ३१०. **छुरिका,** ३११. **छेदनप्रिया,** ३१२. **जननी,** ३१३. **जन्मरहिता,** ३१४. **जातवेदा** (अग्निस्वरूपिणी), ३१५. **जगन्मयी** ॥ ५५ ॥

३१६. **जाह्नवी,** ३१७. **जटिला,** ३१८. **जेत्री,** ३१९. **जरामरणवर्जिता,** ३२०. **जम्बूद्वीपवती,** ३२१. **ज्वाला,** ३२२. **जयन्ती,** ३२३. **जलशालिनी,** ३२४. **जितेन्द्रिया,** ३२५. **जितक्रोधा,** ३२६. **जितामित्रा,** ३२७. **जगत्प्रिया,** ३२८. **जातरूपमयी** (परम सुन्दर रूपवाली), ३२९. **जिह्वा,** ३३०. **जानकी,** ३३१. **जगती,** ३३२. **जरा** (सन्ध्याकालमें वृद्धरूप धारण करनेवाली) ॥ ५६-५७ ॥

जनित्री जह्नुतनया जगत्त्रयहितैषिणी।
ज्वालामुखी जपवती ज्वरघ्नी जितविष्टपा॥ ५८

३३३. **जनित्री**, ३३४. **जह्नुतनया**, ३३५. **जगत्त्रयहितैषिणी** (तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली), ३३६. **ज्वालामुखी**, ३३७. **जपवती** (सदा ब्रह्मके जपमें तत्पर रहनेवाली), ३३८. **ज्वरघ्नी**, ३३९. **जितविष्टपा** (सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त करनेवाली)॥ ५८॥

जिताक्रान्तमयी ज्वाला जाग्रती ज्वरदेवता।
ज्वलन्ती जलदा ज्येष्ठा ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी॥ ५९

३४०. **जिताक्रान्तमयी** (सबको आक्रान्त करनेके लिये विजयशालिनी देवी), ३४१. **ज्वाला**, ३४२. **जाग्रती**, ३४३. **ज्वरदेवता**, ३४४. **ज्वलन्ती**, ३४५. **जलदा**, ३४६. **ज्येष्ठा**, ३४७. **ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी** (दिशाओं-विदिशाओंको अपने धनुषकी स्पष्ट तथा भीषण टंकारसे व्याप्त कर देनेवाली)॥ ५९॥

जम्भिनी जृम्भणा जृम्भा ज्वलन्माणिक्यकुण्डला।
झिंझिका झणनिर्घोषा झंझामारुतवेगिनी॥ ६०

३४८. **जम्भिनी** (अपने दाँतोंसे दानवोंको पीस डालनेवाली), ३४९. **जृम्भणा**, ३५०. **जृम्भा**, ३५१. **ज्वलन्माणिक्यकुण्डला** (प्रभायुक्त मणियोंके कुण्डलोंसे सुशोभित), ३५२. **झिंझिका** (झींगुरसदृश तुच्छ प्राणीको भी अपने अंशसे उत्पन्न करनेवाली), ३५३. **झणनिर्घोषा** (कंकणकी झंकार ध्वनिसे सर्वदा मुखरित), ३५४. **झंझामारुतवेगिनी** (झंझावातके सदृश भयावह वेगशाली)॥ ६०॥

झल्लरीवाद्यकुशला ञरूपा ञभुजा स्मृता।
टङ्कबाणसमायुक्ता टङ्किनी टङ्कभेदिनी॥ ६१

३५५. **झल्लरीवाद्यकुशला** (झाँझ नामक वाद्य बजानेमें अत्यन्त निपुण), ३५६. **ञरूपा** (बलीवर्दके समान रूपवाली), ३५७. **ञभुजा** (बलीवर्दके समान पराक्रमी भुजाओंवाली), ३५८. **टङ्कबाणसमायुक्ता**, ३५९. **टङ्किनी**, ३६०. **टङ्कभेदिनी**॥ ६१॥

टङ्कीगणकृताघोषा टङ्कनीयमहोरसा।
टङ्कारकारिणी देवी ठठशब्दनिनादिनी॥ ६२

३६१. **टङ्कीगणकृताघोषा** (रुद्रगणके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाली), ३६२. **टङ्कनीयमहोरसा** (वर्णनीय महान् वक्षःस्थलवाली), ३६३. **टङ्कारकारिणीदेवी**, ३६४. **ठठशब्दनिनादिनी** (ठ ठ शब्दके घोर निनादसे शत्रुओंको भयाक्रान्त करनेवाली)॥ ६२॥

डामरी डाकिनी डिम्भा डुण्डुमारैकनिर्जिता।
डामरीतन्त्रमार्गस्था डमड्डमरुनादिनी॥ ६३

३६५. **डामरी**, ३६६. **डाकिनी**, ३६७. **डिम्भा**, ३६८. **डुण्डुमारैकनिर्जिता** (डुण्डुमार नामक राक्षसको परास्त करनेवाली), ३६९. **डामरीतन्त्रमार्गस्था** (डामर-तन्त्रके मार्गपर स्थित), ३७०. **डमड्डमरुनादिनी** (डमरुसे डमड्-डमड् ध्वनि उत्पन्न करनेवाली)॥ ६३॥

डिण्डीरवसहा डिम्भलसत्क्रीडापरायणा।
ढुण्ढिविघ्नेशजननी ढक्काहस्ता ढिलिव्रजा॥ ६४

नित्यज्ञाना निरुपमा निर्गुणा नर्मदा नदी।
त्रिगुणा त्रिपदा तन्त्री तुलसीतरुणातरुः॥ ६५

त्रिविक्रमपदाक्रान्ता तुरीयपदगामिनी।
तरुणादित्यसङ्काशा तामसी तुहिना तुरा॥ ६६

त्रिकालज्ञानसम्पन्ना त्रिवेणी च त्रिलोचना।
त्रिशक्तिस्त्रिपुरा तुङ्गा तुरङ्गवदना तथा॥ ६७

तिमिङ्गिलगिला तीव्रा त्रिस्रोता तामसादिनी।
तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा तनुमध्या त्रिविष्टपा॥ ६८

त्रिसन्ध्या त्रिस्तनी तोषासंस्था तालप्रतापिनी।
ताटङ्किनी तुषाराभा तुहिनाचलवासिनी॥ ६९

तन्तुजालसमायुक्ता तारहारावलिप्रिया।
तिलहोमप्रिया तीर्था तमालकुसुमाकृतिः॥ ७०

३७१. डिण्डीरवसहा (डिण्डी नामक वाद्यकी ध्वनिको सहन करनेवाली), **३७२. डिम्भलसत्क्रीडापरायणा** (छोटे बच्चोंके साथ प्रेमपूर्वक क्रीडा करनेमें संलग्न), **३७३. ढुण्ढिविघ्नेशजननी**, **३७४. ढक्काहस्ता**, **३७५. ढिलिव्रजा** (ढिलि नामक गणसमूहोंसे समन्वित) ॥ ६४ ॥

३७६. नित्यज्ञाना, **३७७. निरुपमा**, **३७८. निर्गुणा**, **३७९. नर्मदा**, **३८०. नदी**, **३८१. त्रिगुणा**, **३८२. त्रिपदा**, **३८३. तन्त्री**, **३८४. तुलसीतरुणातरुः** (वृक्षोंमें तरुणी तुलसीरूपसे विराजमान) ॥ ६५ ॥

३८५. त्रिविक्रमपदाक्रान्ता (भगवान् वामनके तीन डगोंसे आक्रान्त पृथ्वीरूपा), **३८६. तुरीयपदगामिनी** (चतुर्थ पादमें गमन करनेवाली), **३८७. तरुणादित्यसङ्काशा** (प्रचण्ड सूर्यके समान तेजवाली), **३८८. तामसी**, **३८९. तुहिना** (चन्द्रमासदृश शीतल किरणोंवाली), **३९०. तुरा** (शीघ्र गमन करनेवाली) ॥ ६६ ॥

३९१. त्रिकालज्ञानसम्पन्ना, **३९२. त्रिवेणी** (गंगा-यमुना-सरस्वतीरूपा), **३९३. त्रिलोचना**, **३९४. त्रिशक्तिः** (इच्छाशक्ति-क्रियाशक्ति-ज्ञानशक्तिरूपा), **३९५. त्रिपुरा**, **३९६. तुङ्गा**, **३९७. तुरङ्गवदना** ॥ ६७ ॥

३९८. तिमिङ्गिलगिला (मत्स्यभोजी तिमिंगिलको भी खा जानेवाली), **३९९. तीव्रा**, **४००. त्रिस्रोता**, **४०१. तामसादिनी** (अज्ञानरूपी अन्धकारका भक्षण करनेवाली), **४०२. तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा**, **४०३. तनुमध्या**, **४०४. त्रिविष्टपा** ॥ ६८ ॥

४०५. त्रिसन्ध्या, **४०६. त्रिस्तनी** (राजा मलयध्वजके यहाँ कन्याके रूपमें विराजमान), **४०७. तोषासंस्था** (सदा सन्तुष्ट भावमें स्थित), **४०८. तालप्रतापिनी** (ताली बजाकर शत्रुओंको आतंकित करनेवाली), **४०९. ताटङ्किनी**, **४१०. तुषाराभा** (बर्फके समान धवल कान्तिवाली), **४११. तुहिनाचलवासिनी** (हिमालयमें निवास करनेवाली) ॥ ६९ ॥

४१२. तन्तुजालसमायुक्ता, **४१३. तारहारावलिप्रिया** (चमकीले तारोंसे युक्त हार-पंक्तियोंसे प्रेम करनेवाली), **४१४. तिलहोमप्रिया**, **४१५. तीर्था**, **४१६. तमालकुसुमाकृतिः** (तमालपुष्पके समान श्याम आकृतिवाली) ॥ ७० ॥

तारका त्रियुता तन्वी त्रिशङ्कुपरिवारिता।
तलोदरी तिलाभूषा ताटङ्कप्रियवाहिनी॥ ७१

त्रिजटा तित्तिरी तृष्णा त्रिविधा तरुणाकृतिः।
तप्तकाञ्चनसंकाशा तप्तकाञ्चनभूषणा॥ ७२

त्रैयम्बका त्रिवर्गा च त्रिकालज्ञानदायिनी।
तर्पणा तृप्तिदा तृप्ता तामसी तुम्बुरुस्तुता॥ ७३

तार्क्ष्यस्था त्रिगुणाकारा त्रिभङ्गी तनुवल्लरिः।
थात्कारी थारवा थान्ता दोहिनी दीनवत्सला॥ ७४

दानवान्तकरी दुर्गा दुर्गासुरनिबर्हिणी।
देवरीतिर्दिवारात्रिर्द्रौपदी दुन्दुभिस्वना॥ ७५

देवयानी दुरावासा दारिद्र्योद्भेदिनी दिवा।
दामोदरप्रिया दीप्ता दिग्वासा दिग्विमोहिनी॥ ७६

दण्डकारण्यनिलया दण्डिनी देवपूजिता।
देववन्द्या दिविषदा द्वेषिणी दानवाकृतिः॥ ७७

४१७. **तारका** (भक्तोंको तारनेवाली), ४१८. **त्रियुता**, ४१९. **तन्वी**, ४२०. **त्रिशङ्कुपरिवारिता** (राजा त्रिशंकुके द्वारा उपास्यरूपमें वरण की हुई), ४२१. **तलोदरी** (पृथ्वीको उदरके रूपमें धारण करनेवाली), ४२२. **तिलाभूषा** (तिलके पुष्पके सदृश नीलकान्तिवाली), ४२३. **ताटङ्कप्रियवाहिनी** (कानोंमें सुन्दर कर्णफूल धारण करनेवाली)॥ ७१॥

४२४. **त्रिजटा**, ४२५. **तित्तिरी**, ४२६. **तृष्णा**, ४२७. **त्रिविधा**, ४२८. **तरुणाकृतिः**, ४२९. **तप्तकाञ्चनसङ्काशा** (तप्त सोनेके सदृश प्रभावाली), ४३०. **तप्तकाञ्चनभूषणा** (तप्त सोनेके सदृश दीप्तिवाले आभूषणोंसे अलंकृत)॥ ७२॥

४३१. **त्रैयम्बका**, ४३२. **त्रिवर्गा**, ४३३. **त्रिकालज्ञानदायिनी**, ४३४. **तर्पणा**, ४३५. **तृप्तिदा**, ४३६. **तृप्ता**, ४३७. **तामसी**, ४३८. **तुम्बुरुस्तुता**, ४३९. **तार्क्ष्यस्था** (गरुडपर विराजमान रहनेवाली), ४४०. **त्रिगुणाकारा**, ४४१. **त्रिभङ्गी**, ४४२. **तनुवल्लरिः** (कोमल लताकी भाँति कमनीय अंगोंवाली), ४४३. **थात्कारी** (युद्धभूमिमें 'थात्' शब्दका उच्चारण करनेवाली), ४४४. **थारवा** (भयसे मुक्त करनेवाले शब्दका उच्चारण करनेवाली), ४४५. **थान्ता** (मंगलमयी देवी), ४४६. **दोहिनी** (यथेच्छ दोहन करनेयोग्य कामधेनुस्वरूपिणी), ४४७. **दीनवत्सला**॥ ७३-७४॥

४४८. **दानवान्तकरी**, ४४९. **दुर्गा**, ४५०. **दुर्गासुरनिबर्हिणी** (दुर्ग नामक राक्षसका वध करनेवाली), ४५१. **देवरीतिः** (दिव्य मार्गसे सम्पन्न), ४५२. **दिवारात्रिः**, ४५३. **द्रौपदी**, ४५४. **दुन्दुभिस्वना** (दुन्दुभिके समान तीव्र ध्वनि करनेवाली)॥ ७५॥

४५५. **देवयानी**, ४५६. **दुरावासा**, ४५७. **दारिद्र्योद्भेदिनी** (दरिद्रता दूर करनेवाली), ४५८. **दिवा**, ४५९. **दामोदरप्रिया**, ४६०. **दीप्ता**, ४६१. **दिग्वासा** (दिशारूपी वस्त्रवाली), ४६२. **दिग्विमोहिनी** (समस्त दिशाओंको मोहित करनेवाली)॥ ७६॥

४६३. **दण्डकारण्यनिलया**, ४६४. **दण्डिनी**, ४६५. **देवपूजिता**, ४६६. **देववन्द्या**, ४६७. **दिविषदा** (सदा स्वर्गमें विराजमान रहनेवाली), ४६८. **द्वेषिणी** (राक्षसोंसे द्वेष करनेवाली), ४६९. **दानवाकृतिः** (समयानुसार दानवसदृश आकृति धारण करनेवाली)॥ ७७॥

दीनानाथस्तुता दीक्षा दैवतादिस्वरूपिणी।
धात्री धनुर्धरा धेनुर्धारिणी धर्मचारिणी॥ ७८

धरंधरा धराधारा धनदा धान्यदोहिनी।
धर्मशीला धनाध्यक्षा धनुर्वेदविशारदा॥ ७९

धृतिर्धन्या धृतपदा धर्मराजप्रिया ध्रुवा।
धूमावती धूमकेशी धर्मशास्त्रप्रकाशिनी॥ ८०

नन्दा नन्दप्रिया निद्रा नृनुता नन्दनात्मिका।
नर्मदा नलिनी नीला नीलकण्ठसमाश्रया॥ ८१

नारायणप्रिया नित्या निर्मला निर्गुणा निधिः।
निराधारा निरुपमा नित्यशुद्धा निरञ्जना॥ ८२

नादबिन्दुकलातीता नादबिन्दुकलात्मिका।
नृसिंहिनी नगधरा नृपनागविभूषिता॥ ८३

नरकक्लेशशमनी नारायणपदोद्भवा।
निरवद्या निराकारा नारदप्रियकारिणी॥ ८४

नानाज्योतिःसमाख्याता निधिदा निर्मलात्मिका।
नवसूत्रधरा नीतिर्निरुपद्रवकारिणी॥ ८५

नन्दजा नवरत्नाढ्या नैमिषारण्यवासिनी।
नवनीतप्रिया नारी नीलजीमूतनिःस्वना॥ ८६

निमेषिणी नदीरूपा नीलग्रीवा निशीश्वरी।
नामावलिर्निशुम्भघ्नी नागलोकनिवासिनी॥ ८७

४७०. **दीनानाथस्तुता**, ४७१. **दीक्षा**, ४७२. **दैवतादिस्वरूपिणी**, ४७३. **धात्री**, ४७४. **धनुर्धरा**, ४७५. **धेनुः**, ४७६. **धारिणी**, ४७७. **धर्मचारिणी**, ४७८. **धरंधरा**, ४७९. **धराधारा**, ४८०. **धनदा**, ४८१. **धान्यदोहिनी**, ४८२. **धर्मशीला**, ४८३. **धनाध्यक्षा**, ४८४. **धनुर्वेदविशारदा**॥ ७८-७९॥

४८५. **धृतिः**, ४८६. **धन्या**, ४८७. **धृतपदा**, ४८८. **धर्मराजप्रिया**, ४८९. **ध्रुवा**, ४९०. **धूमावती**, ४९१. **धूमकेशी**, ४९२. **धर्मशास्त्रप्रकाशिनी**, ४९३. **नन्दा**, ४९४. **नन्दप्रिया**, ४९५. **निद्रा**, ४९६. **नृनुता** (मनुष्योंद्वारा नमस्कृत), ४९७. **नन्दनात्मिका**, ४९८. **नर्मदा**, ४९९. **नलिनी**, ५००. **नीला**, ५०१. **नीलकण्ठसमाश्रया** (नीलकण्ठ महादेवकी आश्रयरूपा)॥ ८०-८१॥

५०२. **नारायणप्रिया**, ५०३. **नित्या**, ५०४. **निर्मला**, ५०५. **निर्गुणा**, ५०६. **निधिः**, ५०७. **निराधारा**, ५०८. **निरुपमा**, ५०९. **नित्यशुद्धा**, ५१०. **निरञ्जना** (मायासे रहित), ५११. **नादबिन्दुकलातीता** (नाद-बिन्दु-कलासे परे), ५१२. **नादबिन्दुकलात्मिका** (नादबिन्दुकला-रूपिणी), ५१३. **नृसिंहरूपा**, ५१४. **नगधरा**, ५१५. **नृपनागविभूषिता** (नागराजसे विभूषित)॥ ८२-८३॥

५१६. **नरकक्लेशशमनी**, ५१७. **नारायणपदोद्भवा** (भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट गंगास्वरूपिणी), ५१८. **निरवद्या** (दोषरहित), ५१९. **निराकारा**, ५२०. **नारदप्रियकारिणी**, ५२१. **नानाज्योतिःसमाख्याता** (अनेकविध ज्योतिरूपसे विख्यात), ५२२. **निधिदा**, ५२३. **निर्मलात्मिका** (विशुद्धस्वरूपा), ५२४. **नवसूत्रधरा** (नवीन सूत्र धारण करनेवाली), ५२५. **नीतिः**, ५२६. **निरुपद्रवकारिणी** (समस्त उपद्रवोंको समाप्त कर देनेवाली)॥ ८४-८५॥

५२७. **नन्दजा** (नन्दकी पुत्री), ५२८. **नवरत्नाढ्या** (नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित), ५२९. **नैमिषारण्यवासिनी** (नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी ललितादेवीके रूपमें विराजमान), ५३०. **नवनीतप्रिया**, ५३१. **नारी**, ५३२. **नीलजीमूतनिःस्वना** (नीले मेघके समान गर्जन करनेवाली), ५३३. **निमेषिणी** (निमेषरूपा), ५३४. **नदीरूपा**, ५३५. **नीलग्रीवा**, ५३६. **निशीश्वरी** (रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), ५३७. **नामावलिः** (नानाविध नामोंवाली), ५३८. **निशुम्भघ्नी** (निशुम्भ दैत्यका संहार करनेवाली), ५३९. **नागलोकनिवासिनी**॥ ८६-८७॥

नवजाम्बूनदप्रख्या नागलोकाधिदेवता।
नूपुराक्रान्तचरणा नरचित्तप्रमोदिनी॥ ८८

निमग्नारक्तनयना निर्घातसमनिःस्वना।
नन्दनोद्याननिलया निर्व्यूहोपरिचारिणी॥ ८९

पार्वती परमोदारा परब्रह्मात्मिका परा।
पञ्चकोशविनिर्मुक्ता पञ्चपातकनाशिनी॥ ९०

परचित्तविधानज्ञा पञ्चिका पञ्चरूपिणी।
पूर्णिमा परमा प्रीतिः परतेजः प्रकाशिनी॥ ९१

पुराणी पौरुषी पुण्या पुण्डरीकनिभेक्षणा।
पातालतलनिर्मग्ना प्रीता प्रीतिविवर्धिनी॥ ९२

पावनी पादसहिता पेशला पवनाशिनी।
प्रजापतिः परिश्रान्ता पर्वतस्तनमण्डला॥ ९३

पद्मप्रिया पद्मसंस्था पद्माक्षी पद्मसम्भवा।
पद्मपत्रा पद्मपदा पद्मिनी प्रियभाषिणी॥ ९४

५४०. नवजाम्बूनदप्रख्या (नवीन सुवर्णसदृश कान्तिसे सम्पन्न), **५४१. नागलोकाधिदेवता** (पाताललोककी अधिष्ठात्री देवी), **५४२. नूपुराक्रान्तचरणा** (नूपुरोंकी झंकारसे समन्वित चरणोंवाली), **५४३. नरचित्तप्रमोदिनी**, **५४४. निमग्नारक्तनयना** (धँसी हुई लाल आँखोंवाली), **५४५. निर्घातसमनिःस्वना** (वज्रपातके समान भीषण शब्द करनेवाली), **५४६. नन्दनोद्याननिलया** (नन्दनवनमें विहार करनेवाली), **५४७. निर्व्यूहोपरिचारिणी** (बिना व्यूहरचनाके आकाशमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाली)॥ ८८-८९॥

५४८. पार्वती, **५४९. परमोदारा**, **५५०. परब्रह्मात्मिका**, **५५१. परा**, **५५२. पञ्चकोशविनिर्मुक्ता** (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँच कोशोंसे रहित विग्रहवाली), **५५३. पञ्चपातकनाशिनी** (पाँच प्रकारके महापातकोंका नाश करनेवाली), **५५४. परचित्तविधानज्ञा** (दूसरोंके मनोभावोंको समझनेवाली), **५५५. पञ्चिका** (पंचिकादेवीके नामसे प्रसिद्ध), **५५६. पञ्चरूपिणी**, **५५७. पूर्णिमा**, **५५८. परमा**, **५५९. प्रीतिः**, **५६०. परतेजः** (परम तेजस्विनी), **५६१. प्रकाशिनी**॥ ९०-९१॥

५६२. पुराणी, **५६३. पौरुषी**, **५६४. पुण्या**, **५६५. पुण्डरीकनिभेक्षणा** (विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली), **५६६. पातालतलनिर्मग्ना** (पातालके तलतक प्रविष्ट होनेकी सामर्थ्यसे सम्पन्न), **५६७. प्रीता**, **५६८. प्रीतिविवर्धनी**, **५६९. पावनी**, **५७०. पादसहिता** (तीन पदोंसे शोभा पानेवाली), **५७१. पेशला** (परम सुन्दर विग्रहवाली), **५७२. पवनाशिनी** (वायुका भक्षण करनेवाली), **५७३. प्रजापतिः**, **५७४. परिश्रान्ता** (प्रयत्नशीला), **५७५. पर्वतस्तनमण्डला** (विशाल स्तनोंसे सुशोभित)॥ ९२-९३॥

५७६. पद्मप्रिया (कमलपुष्प अर्पित करनेसे प्रसन्न होनेवाली), **५७७. पद्मसंस्था** (कमलके आसनपर स्थित रहनेवाली), **५७८. पद्माक्षी**, **५७९. पद्मसम्भवा**, **५८०. पद्मपत्रा** (कमलपत्रकी भाँति जगत्से निर्लिप्त रहनेवाली), **५८१. पद्मपदा** (कमलके समान कोमल चरणोंवाली), **५८२. पद्मिनी** (हाथमें कमल धारण करनेवाली), **५८३. प्रियभाषिणी**॥ ९४॥

पशुपाशविनिर्मुक्ता पुरन्ध्री पुरवासिनी।
पुष्कला पुरुषा पर्वा पारिजातसुमप्रिया॥ ९५

पतिव्रता पवित्राङ्गी पुष्पहासपरायणा।
प्रज्ञावतीसुता पौत्री पुत्रपूज्या पयस्विनी॥ ९६

पट्टिपाशधरा पङ्क्तिः पितृलोकप्रदायिनी।
पुराणी पुण्यशीला च प्रणतार्तिविनाशिनी॥ ९७

प्रद्युम्नजननी पुष्टा पितामहपरिग्रहा।
पुण्डरीकपुरावासा पुण्डरीकसमानना॥ ९८

पृथुजङ्घा पृथुभुजा पृथुपादा पृथूदरी।
प्रवालशोभा पिङ्गाक्षी पीतवासाः प्रचापला॥ ९९

प्रसवा पुष्टिदा पुण्या प्रतिष्ठा प्रणवागतिः।
पञ्चवर्णा पञ्चवाणी पञ्चिका पञ्जरस्थिता॥ १००

परमाया परज्योतिः परप्रीतिः परागतिः।
पराकाष्ठा परेशानी पावनी पावकद्युतिः॥ १०१

५८४. **पशुपाशविनिर्मुक्ता** (पाशविक बन्धनोंसे मुक्त), ५८५. **पुरन्ध्री** (गृहस्थीके कार्यमें संलग्न स्त्रीके रूपमें विराजमान), ५८६. **पुरवासिनी**, ५८७. **पुष्कला**, ५८८. **पुरुषा** (पुरुषार्थमयी), ५८९. **पर्वा** (पर्वस्वरूपा), ५९०. **पारिजातसुमप्रिया** (पारिजात पुष्पसे अत्यधिक प्रेम रखनेवाली), ५९१. **पतिव्रता**, ५९२. **पवित्राङ्गी**, ५९३. **पुष्पहासपरायणा** (खिले हुए पुष्पके समान हँसनेवाली), ५९४. **प्रज्ञावतीसुता**, ५९५. **पौत्री**, ५९६. **पुत्रपूज्या**, ५९७. **पयस्विनी** (प्राणियोंके संवर्धनहेतु अमृततुल्य दुग्ध प्रदान करनेवाली)॥ ९५-९६॥

५९८. **पट्टिपाशधरा**, ५९९. **पंक्तिः**, ६००. **पितृलोकप्रदायिनी**, ६०१. **पुराणी**, ६०२. **पुण्यशीला**, ६०३. **प्रणतार्तिविनाशिनी** (शरणागतजनोंका क्लेश दूर करनेवाली), ६०४. **प्रद्युम्नजननी**, ६०५. **पुष्टा** (पुष्टिरूपा), ६०६. **पितामहपरिग्रहा** (आदिशक्तिद्वारा पितामह ब्रह्माके लिये अर्पित की गयी देवी), ६०७. **पुण्डरीकपुरावासा** (पुण्डरीकपुर अर्थात् चिदम्बरक्षेत्रमें निवास करनेवाली), ६०८. **पुण्डरीकसमानना** (कमल-सदृश सुन्दर मुखवाली)॥ ९७-९८॥

६०९. **पृथुजङ्घा** (विशाल जाँघोंवाली), ६१०. **पृथुभुजा** (दीर्घ भुजाओंवाली), ६११. **पृथुपादा** (बृहत् चरणोंवाली), ६१२. **पृथूदरी** (विशाल उदरवाली), ६१३. **प्रवालशोभा** (मूँगेके समान कान्तिसे सम्पन्न), ६१४. **पिङ्गाक्षी**, ६१५. **पीतवासाः**, ६१६. **प्रचापला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), ६१७. **प्रसवा** (सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली), ६१८. **पुष्टिदा**, ६१९. **पुण्या**, ६२०. **प्रतिष्ठा**, ६२१. **प्रणवागतिः** (ओंकारकी मूलरूपा), ६२२. **पञ्चवर्णा**, ६२३. **पञ्चवाणी**, ६२४. **पञ्चिका**, ६२५. **पञ्जरस्थिता** (प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाली)॥ ९९-१००॥

६२६. **परमाया** (परम मायारूपा), ६२७. **परज्योतिः**, ६२८. **परप्रीतिः**, ६२९. **परागतिः**, ६३०. **पराकाष्ठा** (ब्रह्माण्डकी अन्तिम सीमा), ६३१. **परेशानी** (परमेश्वरी), ६३२. **पावनी**, ६३३. **पावकद्युतिः**, ६३४. **पुण्यभद्रा** (पवित्र करनेमें अतीव दक्ष),

पुण्यभद्रा परिच्छेद्या पुष्पहासा पृथूदरी।
पीताङ्गी पीतवसना पीतशय्या पिशाचिनी॥ १०२

पीतक्रिया पिशाचघ्नी पाटलाक्षी पटुक्रिया।
पञ्चभक्षप्रियाचारा पूतनाप्राणघातिनी॥ १०३

पुन्नागवनमध्यस्था पुण्यतीर्थनिषेविता।
पञ्चाङ्गी च पराशक्तिः परमाह्लादकारिणी॥ १०४

पुष्पकाण्डस्थिता पूषा पोषिताखिलविष्टपा।
पानप्रिया पञ्चशिखा पन्नगोपरिशायिनी॥ १०५

पञ्चमात्रात्मिका पृथ्वी पथिका पृथुदोहिनी।
पुराणन्यायमीमांसा पाटली पुष्पगन्धिनी॥ १०६

पुण्यप्रजा पारदात्री परमार्गैकगोचरा।
प्रवालशोभा पूर्णाशा प्रणवा पल्लवोदरी॥ १०७

फलिनी फलदा फल्गुः फूत्कारी फलकाकृतिः।
फणीन्द्रभोगशयना फणिमण्डलमण्डिता॥ १०८

६३५. **परिच्छेद्या** (सबसे विलक्षण स्वभाववाली), ६३६. **पुष्पहासा**, ६३७. **पृथूदरी**, ६३८. **पीताङ्गी**, ६३९. **पीतवसना**, ६४०. **पीतशय्या** (पीले रंगकी शय्यापर शयन करनेवाली), ६४१. **पिशाचिनी** (पिशाचोंके गण साथमें रखनेवाली)॥ १०१-१०२॥

६४२. **पीतक्रिया** (मधुपानक्रियारूपा), ६४३. **पिशाचघ्नी**, ६४४. **पाटलाक्षी** (विकसित गुलाब-पुष्पसदृश नयनोंवाली), ६४५. **पटुक्रिया** (चतुरताके साथ कार्य सम्पन्न करनेवाली), ६४६. **पञ्चभक्षप्रियाचारा** (भोज्य-चर्व्य-चोष्य-लेह्य और पेय—इन पाँचों प्रकारके पदार्थोंका प्रेमपूर्वक आहार करनेवाली), ६४७. **पूतनाप्राणघातिनी** (पूतनाके प्राणोंका नाश करनेवाली), ६४८. **पुन्नागवनमध्यस्था** (जायफलके वनके मध्य भागमें विराजमान रहनेवाली), ६४९. **पुण्यतीर्थनिषेविता** (पुण्यमय तीर्थोंमें निवास करनेवाली), ६५०. **पञ्चाङ्गी**, ६५१. **पराशक्तिः**, ६५२. **परमाह्लादकारिणी** (परम आनन्द प्रदान करनेवाली)॥ १०३-१०४॥

६५३. **पुष्पकाण्डस्थिता** (फूलोंके डंठलोंपर स्थित रहनेवाली), ६५४. **पूषा**, ६५५. **पोषिताखिलविष्टपा** (सम्पूर्ण संसारका भरण-पोषण करनेवाली), ६५६. **पानप्रिया**, ६५७. **पञ्चशिखा**, ६५८. **पन्नगोपरिशायनी** (सर्पोंपर शयन करनेवाली), ६५९. **पञ्चमात्रात्मिका**, ६६०. **पृथ्वी**, ६६१. **पथिका**, ६६२. **पृथुदोहिनी** (पर्याप्त दोहन करनेवाली), ६६३. **पुराणन्यायमीमांसा** (पुराण, न्याय तथा मीमांसास्वरूपिणी), ६६४. **पाटली**, ६६५. **पुष्पगन्धिनी**, ६६६. **पुण्यप्रजा**, ६६७. **पारदात्री**, ६६८. **परमार्गैकगोचरा** (एकमात्र श्रेष्ठ मार्गद्वारा अनुभवगम्य), ६६९. **प्रवालशोभा** (मूँगेसे सुशोभित विग्रहवाली), ६७०. **पूर्णाशा**, ६७१. **प्रणवा** (ॐकारस्वरूपिणी), ६७२. **पल्लवोदरी** (नवीन पल्लवके समान सुकोमल उदरवाली)॥ १०५—१०७॥

६७३. **फलिनी** (फलरूपिणी), ६७४. **फलदा**, ६७५. **फल्गुः** (फल्गु नामक नदीके रूपमें विद्यमान), ६७६. **फूत्कारी** (क्रोधावस्थामें फूत्कार करनेवाली), ६७७. **फलकाकृतिः** (बाणके अग्रभागके समान आकारवाली), ६७८. **फणीन्द्रभोगशयना** (नागराज शेषनागके फनपर शयन करनेवाली), ६७९. **फणिमण्डलमण्डिता** (नागमण्डलोंसे सुशोभित)॥ १०८॥

बालबाला बहुमता बालातपनिभांशुका।
बलभद्रप्रिया वन्द्या वडवा बुद्धिसंस्तुता॥ १०९

बन्दीदेवी बिलवती बडिशघ्नी बलिप्रिया।
बान्धवी बोधिता बुद्धिर्बन्धूककुसुमप्रिया॥ ११०

बालभानुप्रभाकारा ब्राह्मी ब्राह्मणदेवता।
बृहस्पतिस्तुता वृन्दा वृन्दावनविहारिणी॥ १११

बालाकिनी बिलाहारा बिलवासा बहूदका।
बहुनेत्रा बहुपदा बहुकर्णावतंसिका॥ ११२

बहुबाहुयुता बीजरूपिणी बहुरूपिणी।
बिन्दुनादकलातीता बिन्दुनादस्वरूपिणी॥ ११३

बद्धगोधाङ्गुलित्राणा बदर्याश्रमवासिनी।
बृन्दारका बृहत्स्कन्धा बृहती बाणपातिनी॥ ११४

वृन्दाध्यक्षा बहुनुता वनिता बहुविक्रमा।
बद्धपद्मासनासीना बिल्वपत्रतलस्थिता॥ ११५

बोधिद्रुमनिजावासा बडिस्था बिन्दुदर्पणा।
बाला बाणासनवती वडवानलवेगिनी॥ ११६

६८०. **बालबाला** (बालिकाओंमें बालारूपिणी), ६८१. **बहुमता**, ६८२. **बालातपनिभांशुका** (उदयकालके सूर्यकी भाँति अरुण वस्त्र धारण करनेवाली), ६८३. **बलभद्रप्रिया**, ६८४. **वन्द्या**, ६८५. **वडवा**, ६८६. **बुद्धिसंस्तुता**, ६८७. **बन्दीदेवी**, ६८८. **बिलवती** (गुहामें रहनेवाली), ६८९. **बडिशघ्नी** (कपटका विनाश करनेवाली), ६९०. **बलिप्रिया**, ६९१. **बान्धवी**, ६९२. **बोधिता**, ६९३. **बुद्धिः**, ६९४. **बन्धूककुसुमप्रिया** (बन्धूकपुष्पसे प्रसन्न होनेवाली)॥ १०९-११०॥

६९५. **बालभानुप्रभाकारा** (प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभासे युक्त विग्रहवाली), ६९६. **ब्राह्मी**, ६९७. **ब्राह्मणदेवता**, ६९८. **बृहस्पतिस्तुता**, ६९९. **वृन्दा**, ७००. **वृन्दावनविहारिणी**, ७०१. **बालाकिनी** (बगुलोंकी पंक्तिसदृश रूपवाली), ७०२. **बिलाहारा** (कर्मोंके दोषका निवारण करनेवाली), ७०३. **बिलवासा** (बिलरूपिणी गुहामें निवास करनेवाली), ७०४. **बहूदका**, ७०५. **बहुनेत्रा**, ७०६. **बहुपदा**, ७०७. **बहुकर्णावतंसिका** (अनेक प्रकारके कर्णभूषणोंसे अलंकृत)॥ १११-११२॥

७०८. **बहुबाहुयुता**, ७०९. **बीजरूपिणी**, ७१०. **बहुरूपिणी**, ७११. **बिन्दुनादकलातीता** (बिन्दु, नाद और कलासे सर्वथा परे), ७१२. **बिन्दुनादस्वरूपिणी** (बिन्दु और नादके स्वरूपवाली), ७१३. **बद्धगोधाङ्गुलित्राणा** (गोधाके चर्मका अंगुलित्राण धारण करनेवाली), ७१४. **बदर्याश्रमवासिनी** (बदरिकाश्रममें निवास करनेवाली), ७१५. **बृन्दारका**, ७१६. **बृहत्स्कन्धा** (विशाल कन्धोंवाली), ७१७. **बृहती**, ७१८. **बाणपातिनी** (बाणोंकी वर्षा करनेवाली)॥ ११३-११४॥

७१९. **वृन्दाध्यक्षा** (वृन्दा आदि कृष्णसखियोंमें प्रमुखतम), ७२०. **बहुनुता** (सभीके द्वारा नमस्कृत), ७२१. **वनिता**, ७२२. **बहुविक्रमा**, ७२३. **बद्धपद्मासनासीना**, ७२४. **बिल्वपत्रतलस्थिता**, ७२५. **बोधिद्रुमनिजावासा** (पीपलके वृक्षके नीचे अपना निवासस्थान बनानेवाली), ७२६. **बडिस्था**, ७२७. **बिन्दुदर्पणा** (अव्यक्तमायारूप दर्पणवाली), ७२८. **बाला**, ७२९. **बाणासनवती** (हाथमें धनुष धारण करनेवाली), ७३०. **वडवानलवेगिनी** (वडवाग्निके समान वेग धारण करनेवाली)॥ ११५-११६॥

ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी।
भवानी भीषणवती भाविनी भयहारिणी॥ ११७

भद्रकाली भुजङ्गाक्षी भारती भारताशया।
भैरवी भीषणाकारा भूतिदा भूतिमालिनी॥ ११८

भामिनी भोगनिरता भद्रदा भूरिविक्रमा।
भूतवासा भृगुलता भार्गवी भूसुरार्चिता॥ ११९

भागीरथी भोगवती भवनस्था भिषग्वरा।
भामिनी भोगिनी भाषा भवानी भूरिदक्षिणा॥ १२०

भर्गात्मिका भीमवती भवबन्धविमोचिनी।
भजनीया भूतधात्रीरञ्जिता भुवनेश्वरी॥ १२१

भुजङ्गवलया भीमा भेरुण्डा भागधेयिनी।
माता माया मधुमती मधुजिह्वा मधुप्रिया॥ १२२

महादेवी महाभागा मालिनी मीनलोचना।
मायातीता मधुमती मधुमांसा मधुद्रवा॥ १२३

७३१. **ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था** (ब्रह्माण्डके भीतर तथा बाहर दोनों स्थानोंमें रहनेवाली), ७३२. **ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी** (ब्रह्माकी कंकणसूत्रस्वरूपिणी),७३३. **भवानी**, ७३४. **भीषणवती** (दानवोंके वधके लिये भयावह रूप धारण करनेवाली), ७३५. **भाविनी** (जगत्की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली),७३६. **भयहारिणी**, ७३७. **भद्रकाली**, ७३८. **भुजङ्गाक्षी**, ७३९. **भारती**, ७४०. **भारताशया** (अपने ध्यानमें रत पुरुषोंके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली), ७४१. **भैरवी**, ७४२. **भीषणाकारा**, ७४३. **भूतिदा** (ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली), ७४४. **भूतिमालिनी** (विपुल ऐश्वर्यसे सम्पन्न)॥ ११७-११८॥

७४५. **भामिनी**, ७४६. **भोगनिरता**, ७४७. **भद्रदा**, ७४८. **भूरिविक्रमा** (अत्यधिक पराक्रमसे सम्पन्न), ७४९. **भूतवासा** (सभी प्राणियोंमें विद्यमान रहनेवाली), ७५०. **भृगुलता**, ७५१. **भार्गवी** (भृगुमुनिकी शक्तिके रूपमें विराजमान), ७५२. **भूसुरार्चिता** (ब्राह्मणोंके द्वारा अर्चित), ७५३. **भागीरथी**, ७५४. **भोगवती**, ७५५. **भवनस्था**, ७५६. **भिषग्वरा** (भवरोग दूर करनेके लिये श्रेष्ठ वैद्यरूपा), ७५७. **भामिनी**, ७५८. **भोगिनी**, ७५९. **भाषा**, ७६०. **भवानी**, ७६१. **भूरिदक्षिणा**॥ ११९-१२०॥

७६२. **भर्गात्मिका** (परम तेजसे सम्पन्न), ७६३. **भीमवती**, ७६४. **भवबन्धविमोचिनी**, ७६५. **भजनीया**, ७६६. **भूतधात्रीरञ्जिता** (प्राणियोंका पालन तथा अनुरंजन करनेवाली), ७६७. **भुवनेश्वरी**, ७६८. **भुजङ्गवलया** (साँपोंको वलयाकृतिके रूपमें हाथोंमें धारण करनेवाली), ७६९. **भीमा**, ७७०. **भेरुण्डा** (भेरुण्डा नामसे प्रसिद्ध देवी), ७७१. **भागधेयिनी** (परम सौभाग्यवती), ७७२. **माता**, ७७३. **माया**, ७७४. **मधुमती** (मधुपान करनेवाली), ७७५. **मधुजिह्वा**, ७७६. **मधुप्रिया** (मधुसे अतिशय प्रीति रखनेवाली)॥ १२१-१२२॥

७७७. **महादेवी**, ७७८. **महाभागा**, ७७९. **मालिनी**, ७८०. **मीनलोचना** (मछलीके समान नेत्रोंवाली), ७८१. **मायातीता**, ७८२. **मधुमती**, ७८३. **मधुमांसा**, ७८४. **मधुद्रवा** (मधुका अर्पण करनेसे भक्तोंपर द्रवित होनेवाली), ७८५. **मानवी** (मानवरूप धारण

मानवी मधुसम्भूता मिथिलापुरवासिनी।
मधुकैटभसंहर्त्री मेदिनी मेघमालिनी॥ १२४

मन्दोदरी महामाया मैथिली मसृणप्रिया।
महालक्ष्मीर्महाकाली महाकन्या महेश्वरी॥ १२५

माहेन्द्री मेरुतनया मन्दारकुसुमार्चिता।
मञ्जुमञ्जीरचरणा मोक्षदा मञ्जुभाषिणी॥ १२६

मधुरद्राविणी मुद्रा मलया मलयान्विता।
मेधा मरकतश्यामा मागधी मेनकात्मजा॥ १२७

महामारी महावीरा महाश्यामा मनुस्तुता।
मातृका मिहिराभासा मुकुन्दपदविक्रमा॥ १२८

मूलाधारस्थिता मुग्धा मणिपूरकवासिनी।
मृगाक्षी महिषारूढा महिषासुरमर्दिनी॥ १२९

योगासना योगगम्या योगा यौवनकाश्रया।
यौवनी युद्धमध्यस्था यमुना युगधारिणी॥ १३०

करनेवाली), ७८६. **मधुसम्भूता** (चैत्रमासमें प्रकट होनेवाली), ७८७. **मिथिलापुरवासिनी** (मिथिलापुरीमें निवास करनेवाली सीतास्वरूपिणी), ७८८. **मधुकैटभसंहर्त्री** (मधु तथा कैटभ दानवोंका संहार करनेवाली), ७८९. **मेदिनी** (पृथ्वीस्वरूपिणी), ७९०. **मेघमालिनी** (मेघमालाओंसे घिरी हुई)॥ १२३-१२४॥

७९१. **मन्दोदरी**, ७९२. **महामाया**, ७९३. **मैथिली**, ७९४. **मसृणप्रिया** (मधुर पदार्थोंसे प्रेम करनेवाली), ७९५. **महालक्ष्मीः**, ७९६. **महाकाली**, ७९७. **महाकन्या**, ७९८. **महेश्वरी**, ७९९. **माहेन्द्री** (शचीके रूपमें विराजमान), ८००. **मेरुतनया**, ८०१. **मन्दारकुसुमार्चिता** (मन्दारपुष्पसे पूजित होनेवाली), ८०२. **मञ्जुमञ्जीरचरणा** (चरणोंमें सुन्दर पायल धारण करनेवाली), ८०३. **मोक्षदा**, ८०४. **मञ्जुभाषिणी**॥ १२५-१२६॥

८०५. **मधुरद्राविणी** (भक्तिसे द्रवित होकर मधुर वचन बोलनेवाली), ८०६. **मुद्रा**, ८०७. **मलया** (मलयाचलपर निवास करनेवाली), ८०८. **मलयान्विता** (मलयगिरि चन्दनसे युक्त), ८०९. **मेधा**, ८१०. **मरकतश्यामा** (मरकतमणिके सदृश श्याम वर्णवाली), ८११. **मागधी**, ८१२. **मेनकात्मजा**, ८१३. **महामारी**, ८१४. **महावीरा**, ८१५. **महाश्यामा**, ८१६. **मनुस्तुता** (मनुके द्वारा स्तुत), ८१७. **मातृका**, ८१८. **मिहिराभासा** (सूर्यके समान प्रभावाली), ८१९. **मुकुन्दपदविक्रमा** (भगवान् विष्णुके पदका अनुसरण करनेवाली)॥ १२७-१२८॥

८२०. **मूलाधारस्थिता** (मूलाधारचक्रमें कुण्डलिनीके रूपमें स्थित रहनेवाली), ८२१. **मुग्धा** (सर्वदा प्रसन्नचित्त रहनेवाली), ८२२. **मणिपूरकवासिनी** (मणिपूर नामक चक्रमें निवास करनेवाली), ८२३. **मृगाक्षी** (मृगके समान नेत्रोंवाली), ८२४. **महिषारूढा** (महिषपर आरूढ़ होनेवाली), ८२५. **महिषासुरमर्दिनी** (महिष नामक दानवका वध करनेवाली)॥ १२९॥

८२६. **योगासना**, ८२७. **योगगम्या**, ८२८. **योगा**, ८२९. **यौवनकाश्रया** (सदा यौवनावस्थामें विराजमान), ८३०. **यौवनी**, ८३१. **युद्धमध्यस्था**, ८३२. **यमुना**, ८३३. **युगधारिणी**, ८३४. **यक्षिणी**, ८३५. **योगयुक्ता**,

यक्षिणी योगयुक्ता च यक्षराजप्रसूतिनी।
यात्रा यानविधानज्ञा यदुवंशसमुद्भवा॥ १३१

यकारादिहकारान्ता याजुषी यज्ञरूपिणी।
यामिनी योगनिरता यातुधानभयङ्करी॥ १३२

रुक्मिणी रमणी रामा रेवती रेणुका रतिः।
रौद्री रौद्रप्रियाकारा राममाता रतिप्रिया॥ १३३

रोहिणी राज्यदा रेवा रमा राजीवलोचना।
राकेशी रूपसम्पन्ना रत्नसिंहासनस्थिता॥ १३४

रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तगन्धानुलेपना।
राजहंससमारूढा रम्भा रक्तबलिप्रिया॥ १३५

रमणीययुगाधारा राजिताखिलभूतला।
रुरुचर्मपरीधाना रथिनी रत्नमालिका॥ १३६

रोगेशी रोगशमनी राविणी रोमहर्षिणी।
रामचन्द्रपदाक्रान्ता रावणच्छेदकारिणी॥ १३७

रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना रथस्था रुक्मभूषणा।
लज्जाधिदेवता लोला ललिता लिङ्गधारिणी॥ १३८

लक्ष्मीर्लोला लुप्तविषा लोकिनी लोकविश्रुता।
लज्जा लम्बोदरी देवी ललना लोकधारिणी॥ १३९

८३६. **यक्षराजप्रसूतिनी** (यक्षराजको उत्पन्न करनेवाली), ८३७. **यात्रा**, ८३८. **यानविधानज्ञा** (विमानोंकी व्यवस्थाका विशेष ज्ञान रखनेवाली), ८३९. **यदुवंशसमुद्भवा** (यदुवंशमें प्रादुर्भूत देवी)॥ १३०-१३१॥

८४०. **यकारादिहकारान्ता** (यकारसे लेकर हकारतक सभी वर्णोंके रूपवाली), ८४१. **याजुषी** (यजुर्वेदस्वरूपिणी), ८४२. **यज्ञरूपिणी**, ८४३. **यामिनी**, ८४४. **योगनिरता**, ८४५. **यातुधानभयङ्करी** (राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाली)॥ १३२॥

८४६. **रुक्मिणी**, ८४७. **रमणी**, ८४८. **रामा**, ८४९. **रेवती**, ८५०. **रेणुका**, ८५१. **रतिः**, ८५२. **रौद्री**, ८५३. **रौद्रप्रियाकारा** (रौद्र आकृतिसे प्रीति करनेवाली), ८५४. **राममाता** (कौसल्यारूपमें विराजमान), ८५५. **रतिप्रिया**, ८५६. **रोहिणी**, ८५७. **राज्यदा**, ८५८. **रेवा** (नर्मदासंज्ञक नदी), ८५९. **रमा**, ८६०. **राजीवलोचना**, ८६१. **राकेशी**, ८६२. **रूपसम्पन्ना**, ८६३. **रत्नसिंहासनस्थिता** (रत्नसे निर्मित सिंहासनपर विराजमान रहनेवाली)॥ १३३-१३४॥

८६४. **रक्तमाल्याम्बरधरा**, ८६५. **रक्तगन्धानुलेपना**, ८६६. **राजहंससमारूढा**, ८६७. **रम्भा**, ८६८. **रक्तबलिप्रिया**, ८६९. **रमणीययुगाधारा** (रमणीय युगकी आश्रयस्वरूपिणी), ८७०. **राजिताखिलभूतला** (सम्पूर्ण पृथ्वीतलको सुशोभित करनेवाली), ८७१. **रुरुचर्मपरीधाना** (मृगचर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाली), ८७२. **रथिनी**, ८७३. **रत्नमालिका**॥ १३५-१३६॥

८७४. **रोगेशी** (रोगोंपर शासन करनेवाली), ८७५. **रोगशमनी**, ८७६. **राविणी** (भयावह गर्जन करनेवाली), ८७७. **रोमहर्षिणी**, ८७८. **रामचन्द्रपदाक्रान्ता**, ८७९. **रावणच्छेदकारिणी** (रावणका संहार करनेवाली), ८८०. **रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना** (रत्न तथा वस्त्रोंसे सम्यक् आच्छादित), ८८१. **रथस्था**, ८८२. **रुक्मभूषणा** (स्वर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित), ८८३. **लज्जाधिदेवता**, ८८४. **लोला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), ८८५. **ललिता**, ८८६. **लिङ्गधारिणी**॥ १३७-१३८॥

८८७. **लक्ष्मीः**, ८८८. **लोला**, ८८९. **लुप्तविषा** (विषसे निष्प्रभावित रहनेवाली), ८९०. **लोकिनी**, ८९१. **लोकविश्रुता**, ८९२. **लज्जा**, ८९३. **लम्बोदरीदेवी**, ८९४. **ललना** (स्त्रीस्वरूपा), ८९५. **लोकधारिणी**॥ १३९॥

वरदा वन्दिता विद्या वैष्णवी विमलाकृतिः।
वाराही विरजा वर्षा वरलक्ष्मीर्विलासिनी॥ १४०

विनता व्योममध्यस्था वारिजासनसंस्थिता।
वारुणी वेणुसम्भूता वीतिहोत्रा विरूपिणी॥ १४१

वायुमण्डलमध्यस्था विष्णुरूपा विधिप्रिया।
विष्णुपत्नी विष्णुमती विशालाक्षी वसुन्धरा॥ १४२

वामदेवप्रिया वेला वज्रिणी वसुदोहिनी।
वेदाक्षरपरीताङ्गी वाजपेयफलप्रदा॥ १४३

वासवी वामजननी वैकुण्ठनिलया वरा।
व्यासप्रिया वर्मधरा वाल्मीकिपरिसेविता॥ १४४

शाकम्भरी शिवा शान्ता शारदा शरणागतिः।
शातोदरी शुभाचारा शुम्भासुरविमर्दिनी॥ १४५

शोभावती शिवाकारा शङ्करार्धशरीरिणी।
शोणा शुभाशया शुभ्रा शिरःसन्धानकारिणी॥ १४६

८९६. **वरदा**, ८९७. **वन्दिता**, ८९८. **विद्या**, ८९९. **वैष्णवी**, ९००. **विमलाकृतिः**, ९०१. **वाराही** (वराहरूप धारण करनेवाली), ९०२. **विरजा**, ९०३. **वर्षा** (वृष्टिरूपा), ९०४. **वरलक्ष्मीः**, ९०५. **विलासिनी**, ९०६. **विनता**, ९०७. **व्योममध्यस्था**, ९०८. **वारिजासनसंस्थिता** (कमलके आसनपर विराजमान रहनेवाली), ९०९. **वारुणी** (वरुणकी शक्तिस्वरूपिणी), ९१०. **वेणुसम्भूता** (बाँससे प्रकट होनेवाली), ९११. **वीतिहोत्रा** (अग्निस्वरूपिणी), ९१२. **विरूपिणी** (विशिष्टरूपसे सम्पन्न)॥ १४०-१४१॥

९१३. **वायुमण्डलमध्यस्था**, ९१४. **विष्णुरूपा**, ९१५. **विधिप्रिया**, ९१६. **विष्णुपत्नी**, ९१७. **विष्णुमती**, ९१८. **विशालाक्षी** (विशाल नेत्रोंवाली), ९१९. **वसुन्धरा**, ९२०. **वामदेवप्रिया** (रुद्राणीरूपसे विद्यमान), ९२१. **वेला** (समयकी अधिष्ठात्री देवी), ९२२. **वज्रिणी**, ९२३. **वसुदोहिनी** (सम्पदाका दोहन करनेवाली), ९२४. **वेदाक्षरपरीताङ्गी** (वेदाक्षरोंसे युक्त अंगोंवाली), ९२५. **वाजपेयफलप्रदा** (वाजपेययज्ञका फल प्रदान करनेवाली), ९२६. **वासवी**, ९२७. **वामजननी** (वामदेवकी जननी), ९२८. **वैकुण्ठनिलया**, ९२९. **वरा**, ९३०. **व्यासप्रिया**, ९३१. **वर्मधरा** (कवच धारण करनेवाली), ९३२. **वाल्मीकिपरिसेविता** (वाल्मीकिके द्वारा भलीभाँति सेवित)॥ १४२—१४४॥

९३३. **शाकम्भरी** (शाकम्भरीदेवी नामसे प्रसिद्ध), ९३४. **शिवा**, ९३५. **शान्ता**, ९३६. **शारदा**, ९३७. **शरणागतिः**, ९३८. **शातोदरी** (तेजसे युक्त उदरवाली), ९३९. **शुभाचारा** (पवित्र आचरणवाली), ९४०. **शुम्भासुरविमर्दिनी** (शुम्भ नामक दानवका वध करनेवाली), ९४१. **शोभावती**, ९४२. **शिवाकारा** (कल्याणमयी आकृति धारण करनेवाली), ९४३. **शङ्करार्धशरीरिणी** (शिवकी अर्धांगिनी), ९४४. **शोणा** (रक्त वर्णवाली), ९४५. **शुभाशया** (मंगलकारी अभिप्रायसे युक्त), ९४६. **शुभ्रा**, ९४७. **शिरःसन्धानकारिणी** (दैत्योंके मस्तकपर संधान करनेवाली)॥ १४५-१४६॥

शरावती शरानन्दा शरज्ज्योत्स्ना शुभानना।
शरभा शूलिनी शुद्धा शबरी शुकवाहना॥ १४७

श्रीमती श्रीधरानन्दा श्रवणानन्ददायिनी।
शर्वाणी शर्वरीवन्द्या षड्भाषा षड्ऋतुप्रिया॥ १४८

१४८. **शरावती** (बाणोंसे रक्षा करनेवाली), १४९. **शरानन्दा** (आनन्दपूर्वक बाणका संचालन करनेवाली), १५०. **शरज्ज्योत्स्ना** (शरत्कालीन चन्द्रमाके समान धवल किरणोंवाली), १५१. **शुभानना**, १५२. **शरभा** (हरिणी-स्वरूपा), १५३. **शूलिनी**, १५४. **शुद्धा**, १५५. **शबरी**, १५६. **शुकवाहना** (शुकपर सवार होनेवाली), १५७. **श्रीमती**, १५८. **श्रीधरानन्दा** (विष्णुको आनन्द प्रदान करनेवाली), १५९. **श्रवणानन्ददायिनी** (देवी-चरित्र सुननेसे भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाली), १६०. **शर्वाणी** (शंकरकी शक्तिरूपा भगवती पार्वती), १६१. **शर्वरीवन्द्या** (रात्रिमें पूजित होनेवाली), १६२. **षड्भाषा** (छः भाषाओंके रूपवाली), १६३. **षड्ऋतुप्रिया** (सभी छः ऋतुओंसे प्रीति रखनेवाली) ॥ १४७-१४८ ॥

षडाधारस्थिता देवी षण्मुखप्रियकारिणी।
षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता ॥ १४९

सरस्वती सदाधारा सर्वमङ्गलकारिणी।
सामगानप्रिया सूक्ष्मा सावित्री सामसम्भवा॥ १५०

१६४. **षडाधारस्थितादेवी** (छः प्रकारके आधारोंमें विराजमान होनेवाली भगवती), १६५. **षण्मुखप्रियकारिणी** (कार्तिकेयका प्रिय करनेवाली), १६६. **षडङ्गरूपसुमतिसुरासुरनमस्कृता** (षडंग रूपवाले सुमति नामक देवताओं तथा असुरोंद्वारा नमस्कृत), १६७. **सरस्वती**, १६८. **सदाधारा** (सत्यपर प्रतिष्ठित रहनेवाली), १६९. **सर्वमङ्गलकारिणी** (सबका कल्याण करनेवाली), १७०. **सामगानप्रिया**, १७१. **सूक्ष्मा**, १७२. **सावित्री**, १७३. **सामसम्भवा** (सामवेदसे प्रादुर्भूत होनेवाली) ॥ १४९-१५० ॥

सर्वावासा सदानन्दा सुस्तनी सागराम्बरा।
सर्वैश्वर्यप्रिया सिद्धिः साधुबन्धुपराक्रमा॥ १५१

सप्तर्षिमण्डलगता सोममण्डलवासिनी।
सर्वज्ञा सान्द्रकरुणा समानाधिकवर्जिता॥ १५२

१७४. **सर्वावासा** (सबमें व्याप्त रहनेवाली), १७५. **सदानन्दा**, १७६. **सुस्तनी**, १७७. **सागराम्बरा** (वस्त्रके रूपमें सागरको धारण करनेवाली), १७८. **सर्वैश्वर्यप्रिया** (समस्त ऐश्वर्योंसे प्रेम करनेवाली), १७९. **सिद्धिः**, १८०. **साधुबन्धुपराक्रमा** (सज्जनों तथा प्रिय भक्तजनोंके लिये पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली), १८१. **सप्तर्षिमण्डलगता**, १८२. **सोममण्डलवासिनी** (चन्द्रमण्डलमें विराजमान रहनेवाली), १८३. **सर्वज्ञा**, १८४. **सान्द्रकरुणा** (अतीव करुणामयी), १८५. **समानाधिकवर्जिता** (सदा एक समान रहनेवाली) ॥ १५१-१५२ ॥

सर्वोत्तुङ्गा सङ्गहीना सद्गुणा सकलेष्टदा।
सरघा सूर्यतनया सुकेशी सोमसंहतिः॥ १५३

हिरण्यवर्णा हरिणी ह्रींकारी हंसवाहिनी।
क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी क्षीराब्धितनया क्षमा॥ १५४

गायत्री चैव सावित्री पार्वती च सरस्वती।
वेदगर्भा वरारोहा श्रीगायत्री पराम्बिका॥ १५५

इति साहस्रकं नाम्नां गायत्र्याश्चैव नारद।
पुण्यदं सर्वपापघ्नं महासम्पत्तिदायकम्॥ १५६

एवं नामानि गायत्र्यास्तोषोत्पत्तिकराणि हि।
अष्टम्यां च विशेषेण पठितव्यं द्विजैः सह॥ १५७

जपं कृत्वा होमपूजाध्यानं कृत्वा विशेषतः।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गायत्र्यास्तु विशेषतः॥ १५८

सुभक्ताय सुशिष्याय वक्तव्यं भूसुराय वै।
भ्रष्टेभ्यः साधकेभ्यश्च बान्धवेभ्यो न दर्शयेत्॥ १५९

यद्गृहे लिखितं शास्त्रं भयं तस्य न कस्यचित्।
चञ्चलापि स्थिरा भूत्वा कमला तत्र तिष्ठति॥ १६०

इदं रहस्यं परमं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
पुण्यप्रदं मनुष्याणां दरिद्राणां निधिप्रदम्॥ १६१

९८६. सर्वोत्तुङ्गा (सर्वोच्च स्थान रखनेवाली), **९८७. सङ्गहीना** (आसक्तिभावनासे रहित), **९८८. सद्गुणा**, **९८९. सकलेष्टदा** (सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली), **९९०. सरघा** (मधुमक्षिका-स्वरूपिणी), **९९१. सूर्यतनया** (सूर्यपुत्री), **९९२. सुकेशी** (सुन्दर केशोंसे सम्पन्न), **९९३. सोमसंहतिः** (अनेक चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न)॥ १५३॥

९९४. हिरण्यवर्णा (स्वर्णके समान वर्णवाली), **९९५. हरिणी**, **९९६. ह्रींकारी** (ह्रीं-बीजस्वरूपिणी), **९९७. हंसवाहिनी** (हंसपर सवार होनेवाली), **९९८. क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी** (रेशमी वस्त्रोंसे ढँके हुए अंगोंवाली), **९९९. क्षीराब्धितनया** (क्षीरसागरकी पुत्रीस्वरूपा), **१०००. क्षमा**, **१००१. गायत्री**, **१००२. सावित्री**, **१००३. पार्वती**, **१००४. सरस्वती**, **१००५. वेदगर्भा**, **१००६. वरारोहा**, **१००७. श्रीगायत्री**, **१००८. पराम्बिका**॥ १५४-१५५॥

हे नारद! भगवती गायत्रीका यह सहस्रनाम है। यह अत्यन्त पुण्यदायक, सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा विपुल सम्पदाओंको प्रदान करनेवाला है॥ १५६॥

इस प्रकार कहे गये ये नाम गायत्रीको सन्तुष्टि प्रदान करनेवाले हैं। ब्राह्मणोंके साथ विशेष करके अष्टमी तिथिको इस सहस्रनामका पाठ करना चाहिये। भलीभाँति जप, होम, पूजा और ध्यान करके इसका पाठ करना चाहिये। जिस किसीको भी इस गायत्रीसहस्रनामका उपदेश नहीं करना चाहिये; अपितु योग्य भक्त, उत्तम शिष्य तथा ब्राह्मणको ही इसे बताना चाहिये। पथभ्रष्ट साधकों अथवा ऐसे अपने बन्धुओंके भी समक्ष इसे प्रदर्शित नहीं करना चाहिये॥ १५७—१५९॥

जिस व्यक्तिके घरमें यह गायत्रीसम्बन्धी शास्त्र लिखा होता है, उसे किसीका भी भय नहीं रहता और अत्यन्त चपल लक्ष्मी भी उस घरमें स्थिर होकर विराजमान रहती हैं॥ १६०॥

यह परम रहस्य गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य है। यह मनुष्योंको पुण्य प्रदान करानेवाला, दरिद्रोंको सम्पत्ति सुलभ करानेवाला, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालोंको

मोक्षप्रदं मुमुक्षूणां कामिनां सर्वकामदम्।
रोगाद्वै मुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥ १६२

ब्रह्महत्यासुरापानसुवर्णस्तेयिनो नराः।
गुरुतल्पगतो वापि पातकान्मुच्यते सकृत्॥ १६३

असत्प्रतिग्रहाच्चैवाभक्ष्यभक्षाद्विशेषतः।
पाखण्डानृतमुख्येभ्यः पठनादेव मुच्यते॥ १६४

इदं रहस्यममलं मयोक्तं पद्मजोद्भव।
ब्रह्मसायुज्यदं नृणां सत्यं सत्यं न संशयः॥ १६५

मोक्षप्राप्ति करानेवाला तथा सकाम पुरुषोंको समस्त अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। इस सहस्रनामके प्रभावसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है तथा बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छूट जाता है। ब्रह्महत्या, सुरापान, स्वर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नीगमनसदृश महान् पाप करनेवाले भी इसके एक बारके पाठसे पापमुक्त हो जाते हैं॥ १६१—१६३॥

इसका पाठ करनेसे मनुष्य निन्दनीय दान लेने, अभक्ष्यभक्षण करने, पाखण्डपूर्ण व्यवहार करने और मिथ्याभाषण करने आदि प्रमुख पापोंसे मुक्त हो जाता है। हे ब्रह्मापुत्र नारद! मेरे द्वारा कहा गया यह परम पवित्र रहस्य मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्य प्रदान करनेवाला है। यह बात सत्य है, सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६४-१६५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

दीक्षाविधि

नारद उवाच

श्रुतं सहस्रनामाख्यं श्रीगायत्र्याः फलप्रदम्।
स्तोत्रं महोन्नतिकरं महाभाग्यकरं परम्॥ १

अधुना श्रोतुमिच्छामि दीक्षालक्षणमुत्तमम्।
विना येन न सिध्येत देवीमन्त्रेऽधिकारिता॥ २

ब्राह्मणानां क्षत्रियाणां विशां स्त्रीणां तथैव च।
सामान्यविधिना सर्वं विस्तरेण वद प्रभो॥ ३

श्रीनारायण उवाच

शृणु दीक्षां प्रवक्ष्यामि शिष्याणां भावितात्मनाम्।
देवाग्निगुरुपूजादावधिकारो यया भवेत्॥ ४

दिव्यं ज्ञानं हि या दद्यात्कुर्यात्पापक्षयं तु या।
सैव दीक्षेति सम्प्रोक्ता वेदतन्त्रविशारदैः॥ ५

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैंने यह श्रीगायत्रीदेवीका सहस्रनामसंज्ञक श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाला, महान् उन्नतिकी प्राप्ति करानेवाला तथा महान् भाग्योदय करनेवाला स्तोत्र सुन लिया। अब मैं दीक्षाका उत्तम लक्षण सुनना चाहता हूँ; जिसके बिना ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा स्त्रियोंको देवीमन्त्र जपनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। अतः हे प्रभो! सामान्य विधिसे [दीक्षासम्बन्धी] सम्पूर्ण प्रसंगका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सुनिये, मैं आपको पुण्यात्मा शिष्योंके दीक्षा लेनेका विधान बता रहा हूँ, जिससे उन्हें देवता, अग्नि तथा गुरुकी पूजा आदिका अधिकार प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

जो दिव्य ज्ञान दे और जो पापोंका क्षय करे, उसीको वेदतन्त्रोंके पारगामी विद्वानोंने 'दीक्षा' इस नामकी संज्ञा दी है॥ ५॥

अवश्यं सा तु कर्तव्या यतो बहुफला मता।
गुरुशिष्यावुभावत्राप्यतिशुद्धावपेक्षितौ ॥ ६

गुरुस्तु विधिवत्प्रातः कृत्यं सर्वं विधाय च।
स्नानसन्ध्यादिकं सर्वं यथाविधि विधाय च॥ ७

कमण्डलुकरो मौनी गृहं यायात्सरित्तटात्।
यागमण्डपमासाद्य विशेत्तत्रासने वरे॥ ८

आचम्य प्राणानायम्य गन्धपुष्पविमिश्रितम्।
सप्तवारास्त्रमन्त्रेण जप्तं वारि सुसाधयेत्॥ ९

वारिणा तेन मतिमानस्त्रमन्त्रं समुच्चरन्।
प्रोक्षयेद् द्वारमखिलं ततः पूजां समाचरेत्॥ १०

ऊर्ध्वोदुम्बरके देवं गणनाथं तथा श्रियम्।
सरस्वतीं नाममन्त्रैः पूजयेद् गन्धपुष्पकैः॥ ११

द्वारदक्षिणशाखायां गङ्गां विघ्नेशमर्चयेत्।
द्वारस्य वामशाखायां क्षेत्रपालं च सूर्यजाम्॥ १२

देहल्यां पूजयेदस्त्रदेवतामस्त्रमन्त्रतः।
सर्वं देवीमयं दृश्यमिति सञ्चिन्त्य सर्वतः॥ १३

दिव्यानुत्सारयेद्विघ्नानस्त्रमन्त्रजपेन तु।
अन्तरिक्षगतान्विघ्नान्पादघातैस्तु भूमिगान्॥ १४

वामशाखां स्पृशन्पश्चात्प्रविशेद्दक्षिणाङ्घ्रिणा।
प्रविश्य कुम्भं संस्थाप्य सामान्यार्घ्यं विधाय च॥ १५

तेन चार्घ्यजलेनापि नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत्।
वास्तुनाथं पद्मयोनिं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥ १६

ततः कुर्यात्पञ्चगव्यं तेन चार्घ्योदकेन च।
तोरणस्तम्भपर्यन्तं प्रोक्षयेन्मण्डपं गुरुः॥ १७

दीक्षा अवश्य लेनी चाहिये; क्योंकि यह अनेक फल प्रदान करनेवाली बतायी गयी है। इस दीक्षाग्रहणकार्यमें गुरु तथा शिष्य दोनों ही अत्यन्त शुद्ध भाववाले होने चाहिये॥ ६॥

गुरुको चाहिये कि प्रातःकालीन सम्पूर्ण कृत्य विधिवत् सम्पन्न करके पुनः विधानके अनुसार स्नान तथा सन्ध्या आदि करनेके अनन्तर हाथमें कमण्डलु लेकर मौनभावसे नदीतटसे घरपर आये और यज्ञमण्डपमें पहुँचकर वहाँ एक उत्तम आसनपर बैठ जाय॥ ७-८॥

तदनन्तर आचमन तथा प्राणायाम करके '**ॐ फट्**' इस अस्त्रमन्त्रको सात बार जपते हुए गन्ध और पुष्पसे मिश्रित जलको अभिमन्त्रित करे। पुनः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करते हुए उसी जलसे सम्पूर्ण द्वारका प्रोक्षण करे और उसके बाद पूजन करे॥ ९-१०॥

दरवाजेके ऊपरी भागमें भगवान् गणेश, लक्ष्मी तथा सरस्वतीका पूजन नाममन्त्रोंका उच्चारण करते हुए गन्ध तथा पुष्प आदि अर्पित करके करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वारकी दक्षिणशाखामें भगवती गंगा और विघ्नेश्वर गणेशकी एवं द्वारकी वामशाखामें क्षेत्रपाल तथा सूर्यपुत्री यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार देहलीपर अस्त्रमन्त्रसे अस्त्रदेवताकी पूजा करे। सब ओर ऐसी भावना करे कि सम्पूर्ण दृश्य जगत् देवीमय ही है॥ ११—१३॥

पुनः अस्त्रमन्त्रके जपद्वारा दैवीविघ्नोंका उच्छेद करे और पदके आघातोंसे अन्तरिक्ष तथा भूतलके विघ्नोंका अपसारण करे॥ १४॥

इसके बाद द्वारदेशकी बायीं शाखाका स्पर्श करते हुए पहले दाहिना पैर रखकर मण्डपमें प्रवेश करे। भीतर प्रवेश करके जलका कलश रखकर सामान्य अर्घ्य बना ले और उसी अर्घ्यजलसे तथा गन्ध-पुष्प-अक्षत आदिसे नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्माकी पूजा करे॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् पंचगव्य बनाना चाहिये और पुनः गुरुका उस पंचगव्य तथा अर्घ्य-जलके द्वारा तोरणसे लेकर स्तम्भतक उस मण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये।

सर्वं देवीमयं चेदं भावयेन्मनसा किल।
मूलमन्त्रं जपन्भक्त्या प्रोक्षणं स्याच्छराणुना॥ १८

शरमन्त्रं समुच्चार्य ताडयेन्मण्डपक्ष्माम्।
हुंमन्त्रं तु समुच्चार्य कुर्यादभ्युक्षणं ततः॥ १९

धूपयेदन्तरं धूपैर्विकिरान् विकिरेत्ततः।
मार्जयेत्तांस्तु मार्जन्या कुशनिर्मितया पुनः॥ २०

ईशानदिशि तत्पुञ्जं कृत्वा संस्थापयेन्मुने।
पुण्याहवाचनं कृत्वा दीनानाथांश्च तोषयेत्॥ २१

विशेन्मृद्वासने पश्चान्नमस्कृत्य गुरुं निजम्।
प्राङ्मुखो विधिवद्ध्यात्वा देयमन्त्रस्य देवताम्॥ २२

भूतशुद्ध्यादिकं कृत्वा पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
ऋष्यादिन्यासकं कुर्याद्देयमन्त्रस्य वै मुने॥ २३

न्यसेन्मुनिं तु शिरसि मुखे छन्दः समीरितम्।
देवतां हृदयाम्भोजे गुह्ये बीजं तु पादयोः॥ २४

शक्तिं विन्यस्य पश्चात्तु तालत्रयरवात्ततः।
दिग्बन्धं कारयेत्पश्चाच्छोटिकाभिस्त्रिभिर्नरः॥ २५

प्राणायामं ततः कृत्वा मूलमन्त्रमनुस्मरन्।
मातृकां विन्यसेद्देहे तत्प्रकारस्तथोच्यते॥ २६

ॐ अं नम इति प्रोच्य न्यसेच्छिरसि मन्त्रवित्।
एवमेव तु सर्वेषु न्यसेत्स्थानेषु वै मुने॥ २७

मूलमन्त्रं षडङ्गं च न्यसेदङ्गेषु सत्तमः।
अङ्गुष्ठादिष्वङ्गुलीषु हृदयादिषु च क्रमात्॥ २८

नमः स्वाहावषड्युक्तैर्हुंवौषट्फट्पदान्वितैः।
प्रणवादियुतैर्मन्त्रैः षड्भिरेवं षडङ्गकम्॥ २९

वर्णन्यासादिकं पश्चान्मूलमन्त्रस्य योजयेत्।
स्थानेषु तत्तत्कल्पोक्तेष्विति न्यासविधिः स्मृतः॥ ३०

उस समय मनमें यह भावना करे कि यह सब कुछ देवीमय है। भक्तिपूर्वक मूलमन्त्रका जप करते हुए अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करना चाहिये॥ १७-१८॥

अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके मण्डपभूमिका ताडन करे और इसके बाद '**हुम्**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके उसपर जलके छींटे दे। तदनन्तर धूप आदि सुगन्धित पदार्थोंसे धूपित करे और विघ्नकी शान्तिहेतु जल, चन्दन, सरसों, अक्षत, दूर्वा और भस्म वहाँ विकिरित कर दे। पुनः कुशकी निर्मित मार्जनीसे उनका मार्जन करे। हे मुने! उन मार्जित द्रव्योंको एकत्र करके ईशान दिशामें किसी उचित स्थानपर रख दे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन करके दीनों और अनाथोंको सन्तुष्ट करे॥ १९—२१॥

इसके बाद पूर्व दिशाकी ओर मुख करके कोमल आसनपर बैठना चाहिये और अपने गुरुको नमस्कार करके देयमन्त्रके देवताका विधिवत् ध्यान करना चाहिये॥ २२॥

हे मुने! पूर्वोक्त विधिसे ही भूतशुद्धि आदि क्रिया करके देयमन्त्रके ऋषि आदिका न्यास करना चाहिये॥ २३॥

मस्तकमें देयमन्त्रके ऋषिका, मुखमें छन्दका, हृदयकमलमें देवताका, गुह्यमें बीजका और दोनों पैरोंमें शक्तिका न्यास करके तीन बार ताली बजाये, फिर साधक पुरुषको चाहिये कि तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् प्राणायाम करके मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए अपनी देहमें मातृकाका न्यास करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार बतायी जा रही है। हे मुने! मन्त्रवित्‌को चाहिये कि '**ॐ अं नमः**' का उच्चारण करके सिरमें मातृकान्यास करे, इसी प्रकार शरीरके सभी अंगोंमें न्यास करे॥ २६-२७॥

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अंगुष्ठ आदि अँगुलियों और हृदय आदि अंगोंमें क्रमशः मूलमन्त्रसे षडंगन्यास करे॥ २८॥

'नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्'—इन पदोंके साथ 'ॐ' लगे हुए छः मन्त्रोंसे ही षडंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर देय मूलमन्त्रके वर्णोंसे तत्तत् कल्पित स्थानोंमें न्यास करे, यही न्यासकी विधि कही गयी है॥ २९-३०॥

ततो निजे शरीरेऽस्मिंश्चिन्तयेदासनं शुभम्।
दक्षांसे च न्यसेद्धर्मं वामांसे ज्ञानमेव च॥ ३१

वामोरौ चापि वैराग्यं दक्षोरावथ विन्यसेत्।
ऐश्वर्यं मुखदेशे तु मुने ध्यायेदधर्मकम्॥ ३२

वामपार्श्वे नाभिदेशे दक्षपार्श्वे तथा पुनः।
नञादींश्चापि ज्ञानादीन्पूर्वोक्तानेव विन्यसेत्॥ ३३

पादा धर्मादयः प्रोक्ताः पीठस्य मुनिसत्तम।
अधर्माद्यास्तु गात्राणि स्मृतानि मुनिपुङ्गवैः॥ ३४

मध्येऽनन्तं हृदि स्थाने न्यसेन्मृद्वासने स्थले।
प्रपञ्चपद्मं विमलं तस्मिन्सूर्येन्दुपावकान्॥ ३५

न्यसेत्कलायुतान्मन्त्री संक्षेपात्ता वदाम्यहम्।
सूर्यस्य द्वादश कलास्ता इन्दोः षोडश स्मृताः॥ ३६

दश वह्नेः कलाः प्रोक्तास्ताभिर्युक्तांस्तु तान्स्मरेत्।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव न्यसेत्तेषामथोपरि॥ ३७

आत्मानमन्तरात्मानं परमात्मानमेव च।
ज्ञानात्मानं न्यसेद्विद्वानित्थं पीठस्य कल्पना॥ ३८

अमुकासनाय नम इति मन्त्रेण साधकः।
आसनं पूजयित्वा तु तस्मिन्ध्यायेत्पराम्बिकाम्॥ ३९

कल्पोक्तविधिना मन्त्री देयमन्त्रस्य देवताम्।
मानसैरुपचारैश्च पूजयेत्तां यथाविधि॥ ४०

मुद्राः प्रदर्शयेद्विद्वान्कल्पोक्ता मोदकारिकाः।
याभिर्विरचिताभिस्तु मोदो देव्यास्तु जायते॥ ४१

श्रीनारायण उवाच

ततः स्ववामभागाग्रे षट्कोणोपरि वर्तुलम्।
चतुरस्त्रयुतं सम्यङ्मध्ये मण्डलमालिखेत्॥ ४२

तदनन्तर अपने इस शरीरमें एक पवित्र आसनकी भावना करनी चाहिये। हे मुने! इसके दक्षिण भागमें धर्म, वामभागमें ज्ञान, वाम ऊरूमें वैराग्य और दक्षिण ऊरूमें ऐश्वर्यका न्यास करना चाहिये। मुखदेशमें धर्मका न्यास करना चाहिये। साथ ही वामपार्श्व, नाभिस्थल तथा दक्षिणपार्श्वमें नञ् समासपूर्वक क्रमशः धर्म, ज्ञान तथा वैराग्यका (अर्थात् अधर्म आदिका) न्यास करना चाहिये॥ ३१—३३॥

हे मुने! उस आसनके ये धर्मादि पाये कहे गये हैं तथा मुनिश्रेष्ठोंने अधर्म आदिको उसका शरीर बताया है॥ ३४॥

तत्पश्चात् ऐसी भावना करे कि इस अत्यन्त सुकोमल आसनके मध्यमें हृदय है, जिसमें भगवान् अनन्त विराजमान हैं। पुनः उस अनन्तमें प्रपंचमय विमल कमलका चिन्तन करे और साधकको चाहिये कि उस कमलके ऊपर कलायुक्त सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी भावना करे। अब मैं संक्षेपमें उन कलाओंके विषयमें बताता हूँ। सूर्यकी बारह, चन्द्रमाकी सोलह और अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। उन कलाओंके साथ उन सूर्य आदिका भी स्मरण करना चाहिये। इसके बाद उनके ऊपर सत्त्व, रज और तमका न्यास करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि उस पीठकी चारों दिशाओंमें आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्माका न्यास करे। इस प्रकार पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ३५—३८॥

तदनन्तर साधक पुरुष '**अमुकासनाय नमः**'—इस मन्त्रसे शरीररूपी आसनकी पूजा करके उसपर पराम्बिकाका ध्यान करे। इसके बाद मन्त्रवित्‌को चाहिये कि कल्पोक्त विधिसे मानसिक उपचारोंद्वारा देयमन्त्रके देवता उन भगवतीकी विधिपूर्वक पूजा करे॥ ३९-४०॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली कल्पोक्त मुद्राएँ प्रदर्शित करे, जिन्हें बनाकर प्रदर्शित करनेसे देवीको परम प्रसन्नता होती है॥ ४१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] तत्पश्चात् अपने वामभागके अग्रस्थानमें षट्कोण चक्र बनाये और उसके ऊपर एक गोल चक्र बनाये और उसके

मध्ये त्रिकोणं संलिख्य शङ्खमुद्रां प्रदर्शयेत्।
षडङ्गानि च षट्कोणेष्वर्चयेत्कुसुमादिभिः॥ ४३

अग्न्यादिषु तु कोणेषु षडङ्गार्चनमाचरेत्।
आधारपात्रमादाय शङ्खस्य मुनिसत्तम॥ ४४

अस्त्रमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य स्थापयेत्तत्र मण्डले।
मं वह्निमण्डलायोक्त्वा ततो दशकलात्मने॥ ४५

अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नम इत्यपि।
मन्त्रोऽयमुक्तः शङ्खस्याप्याधारस्थापने बुधैः॥ ४६

आधारे पूर्वमारभ्य प्रदक्षिणक्रमेण तु।
दश वह्निकलाः पूज्या वह्निमण्डलसंस्थिताः॥ ४७

ततो वै मूलमन्त्रेण प्रोक्षितं शङ्खमुत्तमम्।
स्थापयेत्तत्र चाधारे मूलमन्त्रमनुस्मरन्॥ ४८

अं सूर्यमण्डलायोक्त्वा द्वादशान्ते कलात्मने।
अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नम इत्युच्चरेत्ततः॥ ४९

शं शङ्खाय पदं प्रोच्य नम इत्येतदुच्चरेत्।
प्रोक्षयेत्तेन तं शङ्खं तस्मिन्द्वादश पूजयेत्॥ ५०

सूर्यस्य द्वादश कलास्तपन्याद्या यथाक्रमम्।
विलोममातृकां प्रोच्य मूलमन्त्रं विलोमकम्॥ ५१

जलैरापूरयेच्छङ्खं तत्र चेन्दोः कलां न्यसेत्।
ॐ सोममण्डलायोक्त्वान्ते षोडशकलात्मने॥ ५२

अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मन्त्रान्तो मनुः स्मृतः।
पूजयेन्मनुना तेन जलं तु सृणिमुद्रया॥ ५३

तीर्थान्यावाह्य तत्रैवाप्यष्टकृत्वो जपेन्मनुम्।
षडङ्गानि जले न्यस्य हृदा सम्पूजयेदपः॥ ५४

अष्टकृत्वो जपेन्मूलं छादयेन्मत्स्यमुद्रया।
ततो दक्षिणदिग्भागे शङ्खस्य प्रोक्षणीं न्यसेत्॥ ५५

शङ्खाम्बु किञ्चिन्निक्षिप्य प्रोक्षयेत्तेन सर्वतः।
पूजाद्रव्यं निजात्मानं विशुद्धं भावयेत्ततः॥ ५६

ऊपर चतुष्कोण मण्डलका निर्माण करे। तत्पश्चात् उस मण्डलके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा प्रदर्शित करे और छः कोणोंमें छः अंगोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे। हे मुनिश्रेष्ठ! अग्नि आदि कोणोंमें छः अंगोंका अर्चन करे। तत्पश्चात् शंख रखनेका पात्र लेकर '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करके उसे मण्डलमें स्थापित करे। '**मं वह्निमण्डलाय नमः**' मन्त्र पढ़कर '**दशकलात्मने अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नमः**' इसका उच्चारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंने शंखके आधारस्थापनके लिये यही मन्त्र बताया है। आधारदेशमें पूर्वसे आरम्भ करके दक्षिणके क्रमसे अग्निमण्डलमें निवास करनेवाली दसों अग्निकलाओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२—४७॥

तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षित किये गये उत्तम शंखको वहीं आधारपर मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए रख देना चाहिये। फिर '**अं सूर्यमण्डलाय नमः**' कहकर '**द्वादशान्ते कलात्मने अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नमः**'—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये॥ ४८-४९॥

इसके बाद '**शं शङ्खाय नमः**' इस पदका उच्चारण करके उसीसे उस शंखका प्रोक्षण करे और उस शंखमें सूर्यकी 'तपिनी' आदि बारह कलाओंकी यथाक्रम रीतिसे पूजा करे। फिर विलोम मातृका और विलोम मूलमन्त्रका उच्चारण करके शंखको जलसे भर दे और उसमें चन्द्रमाकी कलाओंका न्यास करे। '**ॐ सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः**' यह मन्त्रका रूप बतलाया गया है। उसी मन्त्रके द्वारा अंकुशमुद्रासे जलकी पूजा करनी चाहिये॥ ५०—५३॥

वहींपर तीर्थोंका आवाहन करके आठ बार इस मन्त्रका जप करे। फिर जलमें षडंगन्यास करके '**हृदयाय नमः**' इस मन्त्रसे जलका पूजन करना चाहिये॥ ५४॥

तत्पश्चात् आठ बार मूलमन्त्रका जप करके मत्स्य-मुद्रासे जलको ढक दे, फिर दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी रखे। शंखसे कुछ जल लेकर उसके द्वारा सब ओर प्रोक्षण करे। पूजन-सामग्री और अपने शरीरका भी उस जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् अपने शरीरकी परमशुद्धिकी कल्पना कर ले॥ ५५-५६॥

श्रीनारायण उवाच

ततः स्वपुरतो वेद्यां सर्वतोभद्रमण्डलम्।
संलिख्य कर्णिकामध्यं पूरयेच्छालितण्डुलैः॥ ५७

आस्तीर्य दर्भांस्तत्रैव न्यसेत्कूर्चं सलक्षणम्।
आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्वन्तमर्चयेत्॥ ५८

निर्व्रणं कुम्भमादायाप्यस्त्राद्भिः क्षालितान्तरम्।
तन्तुना वेष्टयेत्तं तु त्रिगुणेनारुणेन च॥ ५९

नवरत्नोदरं कूर्चयुतं गन्धादिपूजितम्।
स्थापयेत्तत्र पीठे तु तारमन्त्रेण देशिकः॥ ६०

ऐक्यं कुम्भस्य पीठस्य भावयेत्पूरयेत्ततः।
मातृकां प्रतिलोमेन जपंस्तीर्थोदकैर्मुने॥ ६१

मूलमन्त्रं च सञ्जप्य पूरयेद् देवताधिया।
अश्वत्थपनसाम्राणां कोमलैर्नवपल्लवैः॥ ६२

छादयेत्कुम्भवदनं चषकं सफलाक्षतम्।
संस्थापयेत मतिमान् वस्त्रयुग्मेन वेष्टयेत्॥ ६३

प्राणस्थापनमन्त्रेण प्राणस्थापनमाचरेत्।
आवाहनादिमुद्राभिर्मोदयेद्देवतां पराम्॥ ६४

ध्यायेत्तां परमेशानीं कल्पोक्तेन प्रकारतः।
स्वागतं कुशलप्रश्नं देव्या अग्रे समुच्चरेत्॥ ६५

पाद्यं दद्यात्ततोऽप्यर्घ्यं ततश्चाचमनीयकम्।
मधुपर्कं च साभ्यङ्गं देव्यै स्नानं निवेदयेत्॥ ६६

वाससी च ततो दद्याद्रक्ते क्षौमे सुनिर्मले।
नानामणिगणाकीर्णानाकल्पान्कल्पयेत्ततः॥ ६७

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अपने सामने वेदीपर 'सर्वतोभद्रमण्डल' बनाकर उसकी कर्णिकाके मध्यभागको अगहनी धानके चावलसे भर दे। वहीं पर 'कूर्च' संज्ञावाले कुशोंको स्थापित करके '**ॐ आधारशक्तये नमः**', '**ॐ मूलप्रकृत्यै नमः**', '**ॐ कूर्माय नमः**', '**ॐ शेषाय नमः**' '**ॐ क्षमायै नमः**', '**ॐ सुधासिन्धवे नमः**', '**ॐ दुर्गादेवीयोगपीठाय नमः**'—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके पीठका पूजन करे॥ ५७-५८॥

तदनन्तर छिद्ररहित कलश हाथमें लेकर '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा उसे प्रक्षालित करे। इसके बाद तिगुने रक्तसूत्रसे उस कलशको आवेष्टित करे। उस कलशमें नवरत्न तथा कूर्च डालकर गन्ध आदिसे उसका पूजनकर प्रणवमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस पीठपर कलशको साधक स्थापित कर दे॥ ५९-६०॥

हे मुने! तत्पश्चात् कलश और पीठमें ऐक्यकी भावना करे; फिर प्रतिलोमके क्रमसे मातृकामन्त्रका उच्चारण करते हुए तीर्थके जलसे उस कलशको भर दे। देव-बुद्धिसे मूलमन्त्रका जप करके उस कलशको पूर्ण करे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पीपल, कटहल तथा आमके कोमल नवीन पल्लवोंसे कलशका मुख आच्छादित कर दे और उसके ऊपर फल और अक्षतसहित पात्र रखकर दो वस्त्रोंसे उस कलशको वेष्टित कर दे॥ ६१—६३॥

तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्रसे प्राणप्रतिष्ठाकी क्रिया सम्पन्न करे; फिर आवाहन आदि मुद्राओंसे परादेवता भगवतीको प्रसन्न करे। इसके बाद कल्पोक्तविधिसे उन परमेश्वरीका ध्यान करे और उन भगवतीके आगे स्वागत तथा कुशल-प्रश्न-सम्बन्धी वाक्योंका उच्चारण करे॥ ६४-६५॥

तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क और अभ्यंगसहित स्नान आदि देवीको निवेदित करे। इसके बाद उन्हें रक्तवर्णवाले तथा स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र प्रदान करके नानाविध मणियोंसे जटित आभूषण कल्पित करने चाहिये॥ ६६-६७॥

मनुना पुटितैर्वर्णैर्मातृकाया विधानतः।
देव्या अङ्गेषु विन्यस्य चन्दनाद्यैः समर्चयेत्॥ ६८

गन्धः कालागुरुभवः कर्पूरेण समन्वितः।
काश्मीरं चन्दनं चापि कस्तूरीसहितं मुने॥ ६९

कुन्दपुष्पादिपुष्पाणि परदेव्यै समर्पयेत्।
धूपोऽगुरुपुरुव्रातोशीरचन्दनशर्कराः ॥ ७०

मधुमिश्राः स्मृता देव्याः प्रिया धूपात्मना सदा।
दीपाननेकान्दत्त्वाथ नैवेद्यं दर्शयेत्सुधीः॥ ७१

प्रतिद्रव्यं जलं दद्यात्प्रोक्षणीस्थं न चान्यथा।
ततः कुर्यादङ्गपूजां कल्पोक्तावरणानि च॥ ७२

साङ्गां देवीमथाभ्यर्च्य वैश्वदेवं ततश्चरेत्।
दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तत्राधाय हुताशनम्॥ ७३

मूर्तिस्थां देवतां तत्रावाह्य सम्पूज्य च क्रमात्।
तारव्याहृतिभिर्हुत्वा मूलमन्त्रेण वै ततः॥ ७४

पञ्चविंशतिवारं तु पायसेन ससर्पिषा।
हुनेत्पश्चाद्व्याहृतिभिः पुनश्च जुहुयान्मुने॥ ७५

गन्धाद्यैरर्चयित्वा च देवीं पीठे तु योजयेत्।
वह्निं विसृज्य हविषा परितो विकिरेद् बलिम्॥ ७६

देवतायाः पार्षदेभ्यो गन्धपुष्पादिसंयुतान्।
पञ्चोपचारान्दत्त्वाथ ताम्बूलं छत्रचामरे॥ ७७

दद्याद्देव्यै ततो मन्त्रं सहस्रावृत्तितो जपेत्।
जपं समर्प्य चैशान्यां विकिरे दिशि संस्थिते॥ ७८

कर्करीं स्थापयेत्तस्यां दुर्गामावाह्य पूजयेत्।
रक्ष रक्षेति चोच्चार्य नालमुक्तेन वारिणा॥ ७९

अस्त्रमन्त्रं जपन्देशं सेचयेत्तु प्रदक्षिणम्।
कर्करीं स्थापयेत्स्थाने पूजयेच्चास्त्रदेवताम्॥ ८०

तदनन्तर मन्त्र-पुटित वर्णोंद्वारा विधिपूर्वक देवीके अंगोंमें मातृकाका न्यास करके चन्दन आदि उपचारोंसे भलीभाँति उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ६८॥

हे मुने! काले अगुरु तथा कपूरसे युक्त गन्ध, कस्तूरीयुक्त केसर, चन्दन, कुन्दपुष्प तथा अन्य प्रकारके पुष्प आदि परा भगवतीको अर्पित करे। अगुरु, गुग्गुल, उशीर तथा चन्दनके चूर्णमें शर्करा और मधु मिलाकर बनाया गया धूप देवीके लिये सदा अत्यन्त प्रिय कहा गया है। विद्वान् पुरुष अनेक प्रकारके दीपक प्रदर्शित करके देवीको नैवेद्य अर्पण करे। प्रत्येक पूजन-द्रव्यमें प्रोक्षणीमें स्थित कुछ जल अवश्य छोड़े, अन्य जलका प्रयोग न करे। तत्पश्चात् अंगपूजा तथा कल्पोक्त-आवरणपूजा करे॥ ६९—७२॥

देवीकी सांगपूजा करनेके बाद विश्वेदेवकी पूजा करे। तदनन्तर दक्षिण दिशामें वेदी बनाकर उसपर अग्नि-स्थापन करके कलशस्थित देवताका आवाहनकर क्रमसे अर्चन करे। इसके बाद प्रणवपूर्वक व्याहृतियोंसहित मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतसहित खीरकी पचीस आहुतियाँ दे; तत्पश्चात् हे मुने! व्याहृति-मन्त्रोंसे हवन करे॥ ७३—७५॥

तदनन्तर गन्ध आदि उपचारोंसे देवीकी पूजा करके उन्हें उस पीठपर विराजित करे। उसके बाद अग्निको विसर्जित करके वहाँ होमसे अवशिष्ट खीरको बलि-प्रदानके रूपमें चारों ओर बिखेर दे॥ ७६॥

प्रधान देवताके पार्षदोंको गन्ध-पुष्प आदिसे युक्त पंचोपचार अर्पण करके उन्हें ताम्बूल, छत्र तथा चामर समर्पित करे। इसके बाद देवीके मन्त्रका एक हजार जप करे। परमेश्वरीको वह जप समर्पित करके ईशान दिग्भागमें स्थित विकिरके ऊपर कर्करी (करवा) स्थापित करे और उसके ऊपर भगवती दुर्गाका आवाहन करके उनका पूजन करे। तत्पश्चात् 'रक्ष-रक्ष'—इस मन्त्रका उच्चारण करके उस करवेकी टोंटीसे जल गिराते हुए तथा 'फट्' मन्त्रका जप करते हुए दाहिनी ओरके मण्डपस्थानको सींचे। इसके बाद कर्करीको अपनी जगह रख दे और अस्त्रदेवताका पूजन करे॥ ७७—८०॥

पश्चाद् गुरुस्तु शिष्येण सह भुञ्जीत वाग्यतः।
तस्यां रात्रौ तु तद्वेद्यां निद्रां कुर्यात्प्रयत्नतः॥ ८१

श्रीनारायण उवाच

ततः कुण्डस्य संस्कारं स्थण्डिलस्य च वा मुने।
प्रवक्ष्यामि समासेन यथाविधि विधानतः॥ ८२

मूलमन्त्रं समुच्चार्य वीक्षयेदस्त्रमन्त्रतः।
प्रोक्षयेत्ताडनं कुर्यात्तेनैव कवचेन तु॥ ८३

अभ्युक्षणं समुद्दिष्टं तिस्रस्तिस्रस्ततः परम्।
प्रागग्रा उदगग्राश्च लिखेल्लेखाः समन्ततः॥ ८४

प्रणवेन समभ्युक्ष्य पीठं देव्याः समर्चयेत्।
आधारशक्तिमारभ्य पीठमन्त्रावसानकम्॥ ८५

तस्मिन्पीठे समावाह्य शिवौ परमकारणौ।
गन्धाद्यैरुपचारैश्च पूजयेत्तौ समाहितः॥ ८६

देवीं ध्यायेदृतुस्नातां संसक्तां शङ्करेण तु।
कामातुरां तयोः क्रीडां किञ्चित्कालं विभावयेत्॥ ८७

अथ वह्निं समादाय पात्रेण पुरतो न्यसेत्।
क्रव्यादांशं परित्यज्य पूर्वोक्तैर्वीक्षणादिभिः॥ ८८

संस्कृत्य वह्निं रं बीजमुच्चार्य तदनन्तरम्।
चैतन्यं योजयेत्तस्मिन्प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्॥ ८९

सप्तवारं ततो धेनुमुद्रां सन्दर्शयेद् गुरुः।
शरेण रक्षितं कृत्वा तनुत्रेणावगुण्ठयेत्॥ ९०

अर्चितं त्रिः परिभ्राम्य प्रादक्षिण्येन सत्तमः।
कुण्डोपरि जपंस्तारं जानुस्पृष्टमहीतलः॥ ९१

शिवबीजधिया देव्या योनौ वह्निं विनिक्षिपेत्।
आचामयेत्ततो देवं देवीं च जगदम्बिकाम्॥ ९२

तदनन्तर गुरु मौन होकर शिष्यके साथ भोजन करे और उस रात उसी वेदीपर प्रयत्नपूर्वक शयन करे॥ ८१॥

श्रीनारायणजी बोले—हे मुने! अब मैं कुण्ड तथा वेदीके विधि-विधानसे किये जानेवाले संस्कारका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ ८२॥

सर्वप्रथम मूलमन्त्रका उच्चारण करके कुण्ड अथवा वेदीका निरीक्षण करे, फिर '**फट्**' इस अस्त्र-मन्त्रसे समिधा आदिका प्रोक्षण तथा ताडन करे। इसके बाद '**हुं**'—इस कवचमन्त्रसे अभ्युक्षण करे और फिर उसपर प्रागग्र तथा उदगग्र तीन-तीन रेखाएँ खींचे॥ ८३-८४॥

इसके बाद प्रणवमन्त्रसे अभ्युक्षण करके '**ॐ आधारशक्तये नमः**' से आरम्भ करके पीठमन्त्र (**ॐ अमुकदेवीयोगपीठाय नमः**)-तकके मन्त्रोंको पढ़कर भगवतीके पीठकी पूजा करे॥ ८५॥

तदनन्तर उस पीठपर जगत्के परम कारण भगवान् शिव और पार्वतीका आवाहन करके गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त होकर उनका पूजन करे। उस समय इस प्रकार देवीका ध्यान करे कि 'भगवती पार्वती ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर आसक्त भावसे भगवान् शिवके साथ विराजमान हैं। उन दोनोंके परस्पर हासविलासकी क्रीड़ाकी भी कुछ कालतक भावना करनी चाहिये'॥ ८६-८७॥

तत्पश्चात् एक पात्रमें अग्नि लाकर सामने रखे और उसमेंसे क्रव्यादांशका परित्याग करके पूर्वोक्त वीक्षण आदि क्रियाओंद्वारा अग्निका संस्कार करके '**रं**'—इस बीज-मन्त्रका उच्चारणकर उस अग्निमें चैतन्यकी भावना करे। पुनः सात बार प्रणवका उच्चारणकर उसे अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात् गुरु अग्निको धेनुमुद्रा प्रदर्शित करे। इसके बाद '**फट्**'—इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके अग्निको सुरक्षितकर '**हुं**'—इस कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे॥ ८८—९०॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अपने घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर तारमन्त्रका जप करते हुए भलीभाँति पूजित अग्निको प्रदक्षिणाके क्रमसे कुण्डके ऊपर तीन बार घुमाकर उस अग्निमें शिवबीजकी भावना करके उसे देवीकी कुण्डरूपा योनिमें छोड़ दे। इसके बाद भगवान् शिव और भगवती जगदम्बिकाको आचमन कराये॥ ९१-९२॥

चित्पिङ्गल हनदहपचयुग्मं ततः परम्।
सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा मन्त्रोऽयं वह्निदीपने॥ ९३

अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्।
सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ ९४

मन्त्रेणानेन तं वह्निं स्तुवीत परमादरात्।
ततो न्यसेद्वह्निमन्त्रं षडङ्गं देशिकोत्तमः॥ ९५

सहस्रार्चिः स्वस्तिपूर्ण उत्तिष्ठपुरुषः स्मृतः।
धूमव्यापी सप्तजिह्वो धनुर्धर इति क्रमात्॥ ९६

जातियुक्ताः षडङ्गाः स्युः पूर्वस्थानेषु विन्यसेत्।
ध्यायेद्वह्निं हेमवर्णं त्रिनेत्रं पद्मसंस्थितम्॥ ९७

इष्टशक्तिस्वस्तिकाभीर्धारकं मङ्गलं परम्।
परिषिञ्चेत्ततः कुण्डं मेखलोपरि मन्त्रवित्॥ ९८

दर्भैः परिस्तरेत्पश्चात्परिधीन्विन्यसेदथ।
त्रिकोणवृत्तषट्कोणं साष्टपत्रं सभूपुरम्॥ ९९

यन्त्रं विभावयेद्वह्नेः पूर्वं वा संलिखेदथ।
तन्मध्ये पूजयेद्वह्निं मन्त्रेणानेन वै मुने॥ १००

वैश्वानर ततो जातवेदः पश्चादिहावह।
लोहिताक्षपदं प्रोक्त्वा सर्वकर्माणि साधय॥ १०१

वह्निजायान्तको मन्त्रस्तेन वह्निं तु पूजयेत्।
मध्ये षट्स्वपि कोणेषु हिरण्या गगना तथा॥ १०२

रक्ता कृष्णा सुप्रभा च बहुरूपातिरक्तिका।
पूजयेत्सप्तजिह्वास्ताः केसरेष्वङ्गपूजनम्॥ १०३

दलेषु पूजयेन्मूर्तीः शक्तिस्वस्तिकधारिणीः।
जातवेदाः सप्तजिह्वो हव्यवाहन एव च॥ १०४

अश्वोदरजसंज्ञोऽन्यः पुनर्वैश्वानराह्वयः।
कौमारतेजाः स्याद्विश्वमुखो देवमुखः स्मृतः॥ १०५

'चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' यह अग्निदीपनका मन्त्र है। जातवेदा नामसे प्रसिद्ध, तेजोमय, सुवर्णके समान पीतवर्णवाले, निर्मल, परम प्रदीप्त तथा सभी ओर मुखवाले हुतभुक् अग्निदेवको मैं प्रणाम करता हूँ। श्रेष्ठ साधकको अत्यन्त आदरपूर्वक इस मन्त्रसे उन अग्निदेवकी स्तुति करनी चाहिये और इसके बाद वह्निमन्त्रसे षडंगन्यास करना चाहिये। **'सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः'**, **'स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा'**, **'उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्'**, **'धूमव्यापिने कवचाय हुम्'**, **'सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्'**, **'धनुर्धराय अस्त्राय फट्'** इस प्रकार क्रमसे पूर्व स्थानोंमें षडंगन्यास करे। ये नाम अंगन्यासके समय जातियुक्त अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—इन पदोंसे युक्त होने चाहिये। इसके बाद अग्निका इस प्रकार ध्यान करे—ये सुवर्णतुल्य वर्णवाले, तीन नेत्र धारण किये हुए, कमलके आसनपर विराजमान, इष्टशक्ति-स्वस्तिक-अभयमुद्रा धारण किये हुए तथा परम मंगल स्वरूप हैं॥ ९३—९७½॥

इसके बाद मन्त्रवित्‌को चाहिये कि मेखलासे ऊपर कुण्डका सेचन करे और कुशोंसे परिस्तरण करे। पुनः कुण्डके चारों ओर परिधियाँ बनाये। अग्निस्थापनके पूर्व त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, अष्टदल कमल और भूपुरसहित यन्त्र लिखे अथवा अग्निस्थापन करके भी उसे लिख ले। हे मुने! उसके मध्यमें वह्निमन्त्रसे अग्निकी पूजा करे। **'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा'**—यह अग्निमन्त्र है, इससे अग्निकी पूजा करे। यन्त्रके मध्यमें तथा छः कोणोंमें हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्तिका—इन सात जिह्वाओंकी पूजा करे। केसरोंमें अंगपूजन करना चाहिये और दलोंमें शक्ति तथा स्वस्तिक धारण करनेवाली मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये। जातवेदा, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेज, विश्वमुख और देवमुख—ये अग्नियाँ कही गयी हैं। इन अग्निनामोंके आदिमें **'ॐ अग्नये'** तथा अन्तमें

ताराग्नये पदाद्याः स्युर्नत्यन्ता वह्निमूर्तयः।
लोकपालांश्चतुर्दिक्षु वज्राद्यायुधसंयुतान्॥ १०६

श्रीनारायण उवाच

ततः स्रुक्स्रुवसंस्कारावाज्यसंस्कार एव च।
कृत्वा होमं ततः कुर्यात्स्रुवेणादाय वै घृतम्॥ १०७

दक्षिणाद् घृतभागात्तु वह्नेर्दक्षिणलोचने।
जुहुयादग्नये स्वाहेत्येवं वै वामतोऽन्यतः॥ १०८

सोमाय स्वाहेति मध्याद् घृतमादाय सत्तम।
अग्नीषोमाभ्यां स्वाहेति मध्यनेत्रे हुनेत्ततः॥ १०९

पुनर्दक्षिणभागात्तु घृतमादाय वै मुखे।
अग्नये स्विष्टकृत्स्वाहेत्यनेनैव हुनेत्ततः॥ ११०

सताराभिर्व्याहृतिभिर्जुहुयादथ साधकः।
जुहुयादग्निमन्त्रेण त्रिवारं तु ततः परम्॥ १११

ततस्तु प्रणवेनैवाप्यष्टावष्टौ घृताहुतीः।
गर्भाधानादिसंस्कारकृते तु जुहुयान्मुने॥ ११२

गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं ततः।
जातकर्म नामकर्माप्युपनिष्क्रमणं तथा॥ ११३

अन्नाशनं तथा चूडा व्रतबन्धस्तथैव च।
महानाम्न्यं व्रतं पश्चात्तथौपनिषदं व्रतम्॥ ११४

गोदानोद्वाहकौ प्रोक्ताः संस्काराः श्रुतिचोदिताः।
ततः शिवं पार्वतीं च पूजयित्वा विसर्जयेत्॥ ११५

जुहुयात्पञ्च समिधो वह्निमुद्दिश्य साधकः।
पश्चादावरणानां चाप्येकैकामाहुतिं हुनेत्॥ ११६

घृतं स्रुचि समादाय चतुर्वारं स्रुवेण च।
पिधाय तां तु तेनैव मुने तिष्ठन्निजासने॥ ११७

वौषडन्तेन मनुना वह्नेस्तु जुहुयात्ततः।
महागणेशमन्त्रेण जुहुयादाहुतीर्दश॥ ११८

'नमः' पद लगाकर यथा '**ॐ अग्नये जातवेदसे नमः**' इत्यादिके द्वारा पूजनका विधान है। इसके बाद चारों दिशाओंमें वज्र आदि आयुध धारण करनेवाले लोकपालोंका पूजन करे॥ ९८—१०६॥

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] तत्पश्चात् स्रुक्, स्रुवा और घृतका संस्कार करके स्रुवासे घी लेकर अग्निमें हवन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षिण भागसे घृत उठाकर '**ॐ अग्नये स्वाहा**'—ऐसा उच्चारण करके अग्निके दक्षिणनेत्रमें हवन करे। इसी प्रकार वामभागसे घृत उठाकर '**ॐ सोमाय स्वाहा**'—ऐसा बोलकर बायें नेत्रमें तथा मध्यभागसे घृत लेकर '**ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा**'—ऐसा उच्चारण करके अग्निके मध्य नेत्रमें हवन करे॥ १०७—१०९॥

तत्पश्चात् दक्षिणभागसे पुनः घृत लेकर '**ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा**'—इस मन्त्रसे अग्निके मुखमें आहुति डाले॥ ११०॥

तदनन्तर साधक पुरुष प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके द्वारा हवन करे; पुनः अग्निमन्त्रसे तीन बार आहुति प्रदान करे॥ १११॥

हे मुने! तदनन्तर प्रणवमन्त्रसे गर्भाधान आदि संस्कारोंके निमित्त घृतकी आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिये। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, व्रतबन्ध, महानाम्न्यव्रत, औपनिषद-व्रत, गोदान (केशान्तसंस्कार) और उद्वाहक (विवाह)—ये वेदप्रतिपादित संस्कार बताये गये हैं। तत्पश्चात् शिव और पार्वतीकी पूजा करके उनका विसर्जन करना चाहिये॥ ११२—११५॥

इसके बाद साधकको चाहिये कि अग्निको उद्देश्य करके पाँच समिधाओंका हवन करे, फिर आवरण-देवताओंके निमित्त भी एक-एक आहुति प्रदान करे॥ ११६॥

हे मुने! तत्पश्चात् स्रुक्में घृत रखकर उसे ढँक दे, पुनः अपने आसनपर बैठे हुए ही स्रुवाके द्वारा उसी घृतसे अग्निमन्त्रके साथ वौषट् लगाकर चार बार आहुति प्रदान करे। इसके बाद महागणेश मन्त्रसे दस आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११७-११८॥

वह्नौ पीठं समभ्यर्च्य देयमन्त्रस्य देवताम्।
वह्नौ ध्यात्वा तु तद्वक्त्रे पञ्चविंशतिसंख्यया॥ ११९

मूलमन्त्रेण जुहुयाद्वक्त्रैकीकरणाय च।
वह्निदेवतयोरैक्यं भावयन्नात्मना सह॥ १२०

एकीभूतं भावयेत्तु ततस्तु साधकोत्तमः।
षडङ्गं देवतानां च जुहुयादाहुतीः पृथक्॥ १२१

एकादशैव जुहुयादाहुतीर्मुनिसत्तम।
एतेन नाडीसन्धानं वह्निदेवतयोर्मुने॥ १२२

एकैकक्रमयोगेनाप्यावृत्तीनां तथैव च।
एकैकक्रमयोगेन घृतेन जुहुयान्मुने॥ १२३

ततः कल्पोक्तद्रव्यैस्तु जुहुयादथवा तिलैः।
देवतामूलमन्त्रेण गजान्तकसहस्रकम्॥ १२४

एवं हुत्वा ततो देवीं सन्तुष्टां भावयेन्मुने।
तथैवावृतिदेवीश्च वह्न्याद्या देवता अपि॥ १२५

ततः शिष्यं च सुस्नातं कृतसन्ध्यादिकक्रियम्।
वस्त्रद्वययुतं स्वर्णाभरणेन समन्वितम्॥ १२६

कमण्डलुकरं शुद्धं कुण्डस्यान्तिकमानयेत्।
नमस्कृत्य ततः शिष्यो गुरूनथ सभासदः॥ १२७

कुलदेवं नमस्कृत्य विशेत्तत्राथ विष्टरे।
गुरुस्ततस्तु तं शिष्यं कृपादृष्ट्या विलोकयेत्॥ १२८

तच्चैतन्यं निजे देहे भावयेत्सङ्गतं त्विति।
ततः शिष्यतनुस्थानामध्वनां परिशोधनम्॥ १२९

कुर्यात्तु होमतो विद्वान्दिव्यदृष्ट्यवलोकनात्।
येन जायेत शुद्धात्मा योग्यो देवाद्यनुग्रहे॥ १३०

तत्पश्चात् देयमन्त्रके देवताके पीठासनकी अग्निमें पूजा करके उसी अग्निमें उनका ध्यान करके उनके मुखके एकीकरणके निमित्त मुखमें मूलमन्त्रसे पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके बाद अग्नि तथा देयमन्त्रके देवताके ऐक्यकी भावना करते हुए अपने साथ इनके एकीभूत होनेकी कल्पना करनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि छः अंगवाले देवताओंको पृथक्-पृथक् आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११९—१२१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निदेव और देयमन्त्रके देवताकी नाड़ियोंके एकीकरणके निमित्त ग्यारह आहुतियाँ देनी चाहिये। हे मुने! एक देवताके उद्देश्यसे एक आहुति होनी चाहिये, इस प्रकार आवृत्तिपूर्वक घृतसे क्रमशः एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ १२२-१२३॥

इसके बाद कल्पोक्त द्रव्यों अथवा तिलोंसे देवताके मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करे॥ १२४॥

हे मुने! इस प्रकार आहुति देनेके पश्चात् यह भावना करे कि भगवती अब पूर्णरूपसे प्रसन्न हो गयी हैं। उसी तरह इस आवृत्तिसे देवी, अग्नि तथा देयमन्त्रके देवता भी प्रसन्न हो गये हैं॥ १२५॥

तत्पश्चात् भलीभाँति स्नान किये हुए, संध्या आदि क्रियाओंसे निवृत्त, दो वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्णके आभूषणसे अलंकृत तथा हाथमें कमण्डलु धारण किये पवित्र शिष्यको आचार्य कुण्डके पास ले आये और शिष्य वहाँ आकर गुरुजनोंको तथा सभासदोंको नमस्कार करनेके अनन्तर कुलदेवको नमस्कार करके कुशासनपर बैठ जाय। इसके बाद गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखे और अपने शरीरके अन्दर उस शिष्यके चैतन्यकी समाविष्ट होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् विद्वान् गुरुको चाहिये कि अपनी दिव्य दृष्टिके अवलोकनस्वरूप होमद्वारा शिष्यके शरीरमें स्थित अध्वोंका शोधन करे, जिससे शुद्ध आत्मावाला वह शिष्य देवता आदिके अनुग्रहके योग्य हो जाय॥ १२६—१३०॥

श्रीनारायण उवाच

तनौ ध्यायेत्तु शिष्यस्य षडध्वनः क्रमेण तु।
पादयोस्तु कलाध्वानमन्धौ तत्त्वाध्वकं पुनः॥ १३१

नाभौ तु भुवनाध्वानं वर्णाध्वानं तथा हृदि।
पदाध्वानं तथा भाले मन्त्राध्वानं तु मूर्धनि॥ १३२

शिष्यं स्पृशंस्तु कूर्चेन तिलैराज्यपरिप्लुतैः।
शोधयाम्यमुमध्वानं स्वाहेति मनुमुच्चरन्॥ १३३

ताराढ्यं जुहुयादष्टवारं प्रत्यध्वमेव हि।
षडध्वनस्ततस्तांस्तु लीनान् ब्रह्मणि भावयेत्॥ १३४

पुनरुत्पादयेत्तस्मात्सृष्टिमार्गेण वै गुरुः।
आत्मस्थितं तच्चैतन्यं पुनः शिष्ये तु योजयेत्॥ १३५

पूर्णाहुतिं ततो हुत्वा देवतां कलशे नयेत्।
पुनर्व्याहृतिभिर्हुत्वा वह्नेरङ्गाहुतीस्तथा॥ १३६

एकैकशो गुरुर्दत्त्वा विसृजेद्वह्निमात्मनि।
ततः शिष्यस्य नेत्रे तु बध्नीयाद्वाससा गुरुः॥ १३७

नेत्रमन्त्रेण तं शिष्यं कुण्डतो मण्डलं नयेत्।
पुष्पाञ्जलिं मुख्यदेव्यां कारयेच्छिष्यहस्ततः॥ १३८

नेत्रबन्धं निराकृत्य वेशयेत्कुशविष्टरे।
भूतशुद्धिं शिष्यदेहे कुर्यात्प्रोक्तेन वर्त्मना॥ १३९

मन्त्रोदितांस्तथा न्यासान्कृत्वा शिष्यतनौ ततः।
मण्डले वेशयेच्छिष्यमन्यस्मिन्कुम्भसंस्थितान्॥ १४०

पल्लवाञ्छिष्यशिरसि विन्यसेन्मातृकां जपेत्।
कलशस्थजलैः शिष्यं स्नापयेद्देवतात्मकैः॥ १४१

वर्धनीजलसेकं च कुर्याद्रक्षार्थमञ्जसा।
ततः शिष्यः समुत्थाय वाससी परिधाय च॥ १४२

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] गुरु शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः अध्वोंका चिन्तन करे। दोनों पैरोंमें कलाध्वका, लिंगमें तत्त्वाध्वका, नाभिमें भुवनाध्वका, हृदयमें वर्णाध्वका, ललाटमें पदाध्वका तथा मस्तकमें मन्त्राध्वका चिन्तन करना चाहिये॥ १३१-१३२॥

गुरुको चाहिये कि कूर्चसे शिष्यको स्पर्श करते हुए '**ॐ अमुमध्वानं शोधयामि स्वाहा**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतमिश्रित तिलोंसे प्रत्येक अध्वके निमित्त आठ बार आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् उन छहों अध्वोंके ब्रह्ममें लीन हो जानेकी भावना करे॥ १३३-१३४॥

इसके बाद गुरु ब्रह्ममें लीन उन अध्वों (मार्गों)-को पुनः सृष्टिमार्गसे उत्पन्न करनेकी भावना करें और अपने शरीरमें स्थित उस चैतन्यको पुनः शिष्यमें नियोजित करें॥ १३५॥

तत्पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करके आवाहित देवताको कलशमें प्रतिष्ठित करे और इसके बाद व्याहृतियोंका उच्चारण करके अग्निके अंगोंके निमित्त आहुतियाँ दे। गुरुको चाहिये कि एक-एक देवताके लिये एक-एक आहुति देकर अपनी आत्मामें अग्निका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् गुरु 'वौषट्' इस नेत्रमन्त्रका उच्चारण करके वस्त्रसे शिष्यके दोनों नेत्रोंको बाँध दे और फिर उस शिष्यको कुण्ड-स्थलसे मण्डलमें ले जाय। इसके बाद शिष्यके हाथसे प्रधान देवीके लिये पुष्पांजलि अर्पित कराये॥ १३६—१३८॥

तदनन्तर नेत्रोंका आवरण हटाकर शिष्यको कुशके आसनपर बैठा दे और पूर्वोक्त रीतिसे शिष्यकी देहमें भूतशुद्धि करे॥ १३९॥

शिष्यके शरीरमें मन्त्रोक्त न्यास करनेके पश्चात् शिष्यको दूसरे मण्डलमें बैठाये। तत्पश्चात् कलशपर स्थित पल्लवोंको शिष्यके सिरपर रखे और मातृका-जप करे। इसके बाद कलशमें स्थित देवमय जलसे शिष्यको स्नान कराये। स्नानके पश्चात् शिष्यकी रक्षाके लिये वर्धनीसंज्ञक कलशके जलसे भलीभाँति अभिषेक करे। इसके बाद शिष्य उठकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे और भस्म आदि लगाकर गुरुके समीप बैठ जाय। तत्पश्चात् करुणानिधान

कृतभस्मावलेपश्च संविशेद् गुरुसन्निधौ।
ततो गुरुः स्वकीयात्तु हृदयान्निर्गतां शिवाम्॥ १४३

प्रविष्टां शिष्यहृदये भावयेत्करुणानिधिः।
पूजयेद् गन्धपुष्पाद्यैरैक्यं वै भावयंस्तयोः॥ १४४

ततस्त्रिंशो दक्षकर्णे शिष्यस्योपदिशेद् गुरुः।
महामन्त्रं महादेव्याः स्वहस्तं शिरसि न्यसन्॥ १४५

अष्टोत्तरशतं मन्त्रं शिष्योऽपि प्रजपेन्मुने।
दण्डवत्प्रणमेद्भूमौ तं गुरुं देवतात्मकम्॥ १४६

सर्वस्वमर्पयेत्तस्मै यावज्जीवमनन्यधीः।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दत्त्वा ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत्॥ १४७

सुवासिनीः कुमारीश्च बटुकांश्चैव सर्वशः।
दीनानाथान्दरिद्रांश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ १४८

कृतार्थतां स्वस्य बुद्ध्वा नित्यमाराधयेन्मनुम्।
इति ते कथितः सम्यग्दीक्षाविधिरनुत्तमः॥ १४९

विमृश्यैतदशेषेण भज देवीपदाम्बुजम्।
नान्यस्तु परमो धर्मो ब्राह्मणस्यात्र विद्यते॥ १५०

वैदिकः स्वस्वगृह्योक्तक्रमेणोपदिशेन्मनुम्।
तान्त्रिकस्तन्त्ररीत्या तु स्थितिरेषा सनातनी॥ १५१

तत्तदुक्तप्रयोगांस्ते ते ते कुर्युर्न चान्यथा।

श्रीनारायण उवाच

इति सर्वं मयाख्यातं यत्पृष्टं नारद त्वया॥ १५२

अतः परं पराम्बाया भज नित्यं पदाम्बुजम्।
नित्यमाराध्य तच्चाहं निर्वृतिं परमां गतः॥ १५३

व्यास उवाच

इति राजन्नारदाय प्रोक्त्वा सर्वमनुत्तमम्।
समाधिमीलिताक्षस्तु दध्यौ देवीपदाम्बुजम्॥ १५४

गुरुदेव यह भावना करें कि भगवती शिवा उनके हृदयसे निकलकर अब शिष्यके हृदयमें प्रविष्ट हो गयी हैं। अतः शिष्य तथा देवी उन दोनोंमें तादात्म्यकी भावना करते हुए वे गन्ध-पुष्प आदिसे शिष्यका पूजन करें॥ १४०—१४४॥

तत्पश्चात् गुरु अपना दाहिना हाथ शिष्यके सिरपर रखते हुए उसके दाहिने कानमें महाभगवतीके महामन्त्रका तीस बार उपदेश करें। हे मुने! इसके बाद शिष्य उस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। पुनः पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर उन देवतास्वरूप गुरुको प्रणाम करे॥ १४५-१४६॥

इसके बाद शिष्य जीवनभरके लिये गुरुके प्रति अनन्यबुद्धिवाला होकर गुरुके प्रति एकनिष्ठ भावसे अपना सर्वस्व उन्हें अर्पण कर दे। तदनन्तर ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्मणों, सौभाग्यवती स्त्रियों, कन्याओं और बटुकोंको भलीभाँति भोजन कराये। साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर दीनों, अनाथों तथा दरिद्रोंको सन्तुष्ट करे। अपनेको कृतार्थ समझकर मन्त्रकी नित्य उपासना करे। इस प्रकार दीक्षाकी यह उत्तम विधि मैंने आपको बतला दी॥ १४७—१४९॥

इस विषयमें पूर्णरूपसे विचार करके अब आप देवीके चरण-कमलका सेवन कीजिये। ब्राह्मणके लिये इसके अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है॥ १५०॥

वैदिक पुरुष अपने-अपने गृह्यसूत्रमें कहे गये नियमके अनुसार तथा तान्त्रिक पुरुष तन्त्र-पद्धतिके अनुसार मन्त्रका उपदेश करें; यही सनातन नियम है। जिनके लिये जो-जो प्रयोग बताये गये हैं, उन्हें उसीका उपयोग करना चाहिये; दूसरे नियमोंका नहीं॥ १५१½॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! आपने जो पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब आप पराम्बा भगवतीके पदारविन्दकी नित्य उपासना कीजिये। मैं भी उसी चरणकमलकी नित्य आराधना करके परम शान्तिको प्राप्त हुआ हूँ॥ १५२-१५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार यह सम्पूर्ण उत्तम प्रसंग नारदजीसे कहकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी शिरोमणि भगवान् नारायण अपने नेत्र बन्द करके समाधिस्थ होकर भगवतीके चरण-

नारायणस्तु भगवान् मुनिवर्यशिखामणिः।
नारदोऽपि ततो नत्वा गुरुं नारायणं परम्।
जगाम सद्यस्तपसे देवीदर्शनलालसः॥ १५५

कमलका ध्यान करने लगे। नारदजीने भी उन परम गुरु भगवान् नारायणको प्रणाम करके भगवतीके दर्शनकी लालसासे तपस्या करनेके लिये उसी क्षण प्रस्थान कर दिया॥ १५४-१५५॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
मन्त्रदीक्षाविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

देवताओंका विजयगर्व तथा भगवती उमाद्वारा उसका भंजन, भगवती उमाका इन्द्रको दर्शन देकर ज्ञानोपदेश देना

जनमेजय उवाच

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रवतांवर।
द्विजातीनां तु सर्वेषां शक्त्युपास्तिः श्रुतीरिता॥ १

सन्ध्याकालत्रयेऽन्यस्मिन् काले नित्यतया विभो।
तां विहाय द्विजाः कस्माद् गृह्णीयुश्चान्यदेवताः॥ २

दृश्यन्ते वैष्णवाः केचिद् गाणपत्यास्तथापरे।
कापालिकाश्चीनमार्गरता वल्कलधारिणः॥ ३

दिगम्बरास्तथा बौद्धाश्चार्वाका एवमादयः।
दृश्यन्ते बहवो लोके वेदश्रद्धाविवर्जिताः॥ ४

किमत्र कारणं ब्रह्मंस्तद्भवान् वक्तुमर्हति।
बुद्धिमन्तः पण्डिताश्च नानातर्कविचक्षणाः॥ ५

अपि सन्त्येव वेदेषु श्रद्धया तु विवर्जिताः।
न हि कश्चित्स्वकल्याणं बुद्ध्या हातुमिहेच्छति॥ ६

किमत्र कारणं तस्माद्वद वेदविदांवर।
मणिद्वीपस्य महिमा वर्णितो भवता पुरा॥ ७

कीदृक् तदस्ति यद्देव्याः परं स्थानं महत्तरम्।
तच्चापि वद भक्ताय श्रद्दधानाय मेऽनघ॥ ८

प्रसन्नास्तु वदन्त्येव गुरवो गुह्यमप्युत।

जनमेजय बोले—सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा समस्त धर्मोंको जाननेवाले हे भगवन्! सभी द्विजातियोंके लिये शक्तिकी उपासना नित्य होनेके कारण तीनों सन्ध्या-कालोंमें तथा अन्य समयमें भी करणीय है—ऐसा श्रुतिका कथन है; तो फिर हे विभो! उन भगवतीको छोड़कर द्विजगण अन्य देवताओंकी उपासना क्यों करते हैं?॥ १-२॥

कुछ विष्णुके उपासक, कुछ गणपतिके उपासक, कुछ कापालिक, कुछ चीनमार्गी, कुछ वल्कलधारी, कुछ दिगम्बर, कुछ बौद्ध, कुछ चार्वाक आदि दिखायी पड़ते हैं। इसी प्रकार लोकमें बहुतसे ऐसे लोग भी दिखायी देते हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धा-भावसे रहित हैं। हे ब्रह्मन्! इसमें क्या कारण है? वह मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ ३-४½॥

कुछ बुद्धिमान् पण्डित और अनेक प्रकारके तर्क करनेमें दक्ष विद्वान् लोग भी हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धासे विहीन हैं। कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर अपने कल्याणका परित्याग नहीं करना चाहता है, तो फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इसमें क्या कारण है; मुझे बतलाइये॥ ५-६½॥

आपने पहले मणिद्वीपकी महिमाका वर्णन किया था। भगवतीका वह परम उत्तम स्थान कैसा है? हे अनघ! आप मुझ श्रद्धावान् भक्तको इसे भी बताइये; क्योंकि प्रसन्न गुरुजन गुप्त बात भी बता देते हैं॥ ७-८½॥

सूत उवाच

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा भगवान् बादरायणः॥ ९

निजगाद ततः सर्वं क्रमेणैव मुनीश्वराः।
यच्छ्रुत्वा तु द्विजातीनां वेदश्रद्धा विवर्धते॥ १०

व्यास उवाच

सम्यक्पृष्टं त्वया राजन् समये समयोचितम्।
बुद्धिमानसि वेदेषु श्रद्धावांश्चैव लक्ष्यसे॥ ११

पूर्वं मदोद्धता दैत्या देवैर्युद्धं तु चक्रिरे।
शतवर्षं महाराज महाविस्मयकारकम्॥ १२

नानाशस्त्रप्रहरणं नानामायाविचित्रितम्।
जगत्क्षयकरं नूनं तेषां युद्धमभून्नृप॥ १३

पराशक्तिकृपावेशाद्देवैर्दैत्या जिता युधि।
भुवं स्वर्गं परित्यज्य गताः पातालवेश्मनि॥ १४

ततः प्रहर्षिता देवाः स्वपराक्रमवर्णनम्।
चक्रुः परस्परं मोहात्साभिमानाः समन्ततः॥ १५

जयोऽस्माकं कुतो न स्यादस्माकं महिमा यतः।
सर्वोत्तरः कुत्र दैत्याः पामरा निष्पराक्रमाः॥ १६

सृष्टिस्थितिक्षयकरा वयं सर्वे यशस्विनः।
अस्मदग्रे पामराणां दैत्यानां चैव का कथा॥ १७

पराशक्तिप्रभावं ते न ज्ञात्वा मोहमागताः।
तेषामनुग्रहं कर्तुं तदैव जगदम्बिका॥ १८

प्रादुरासीत्कृपापूर्णा यक्षरूपेण भूमिप।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम्॥ १९

विद्युत्कोटिसमानाभं हस्तपादादिवर्जितम्।
अदृष्टपूर्वं तद् दृष्ट्वा तेजः परमसुन्दरम्॥ २०

सविस्मयास्तदा प्रोचुः किमिदं किमिदं त्विति।
दैत्यानां चेष्टितं किं वा माया कापि महीयसी॥ २१

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! महाराज जनमेजयकी यह बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने उन्हें क्रमसे वह सब कुछ बतला दिया, जिसे सुनकर द्विजातियोंके मनमें वेदोंके प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस समय आपने जो पूछा है, वह अत्युत्तम तथा कालके अनुरूप ही है। आप बुद्धिमान् तथा वेदोंमें श्रद्धा रखनेवाले प्रतीत होते हैं॥ ११॥

हे महाराज! पूर्वकालमें मदसे उन्मत्त दानवोंने देवताओंके साथ सौ वर्षोंतक एक अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध किया था॥ १२॥

हे नृप! अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहार तथा अनेक प्रकारकी मायाओंके प्रयोगसे भरा उनका वह युद्ध जगत्के लिये अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ॥ १३॥

उस समय पराशक्ति भगवतीकी कृपासे देवताओंने युद्धमें दैत्योंको जीत लिया और वे दैत्य भूलोक तथा स्वर्ग छोड़कर पाताललोकमें चले गये॥ १४॥

इस विजयसे अत्यन्त हर्षित देवतागण मोहके कारण अभिमानयुक्त होकर चारों ओर परस्पर अपने पराक्रमकी इस प्रकार चर्चा करने लगे—हमारी विजय क्यों न हो? क्योंकि हमारी महिमा सर्वोत्तम है। कहाँ ये अधम और पराक्रमहीन दैत्य तथा कहाँ सृजन, पालन तथा संहार करनेवाले हम यशस्वी देवता! तो फिर हमारे सामने असहाय दैत्योंकी बात ही क्या॥ १५—१७॥

हे राजन्! पराशक्तिके प्रभावको न जाननेके कारण ही वे देवता मोहित हो गये थे। तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये दयामयी जगदम्बा एक यक्षके रूपमें प्रकट हुईं॥ १८$\frac{1}{2}$॥

करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले, करोड़ों चन्द्रमाओंके समान अत्यन्त शीतल, करोड़ों विद्युत्के समान आभावाले और हाथ-पैर आदि अवयवोंसे रहित, पहले कभी न देखे गये उस परम सुन्दर तेजको देखकर देवता महान् विस्मयमें पड़ गये और कहने लगे—यह क्या है! यह क्या है! यह दैत्योंकी चेष्टा है अथवा कोई बलवती माया है? देवताओंको आश्चर्यचकित करनेवाली यह माया किसके द्वारा

केनचिन्निर्मिता वाथ देवानां स्मयकारिणी।
सम्भूय ते तदा सर्वे विचारं चक्रुरुत्तमम्॥ २२

यक्षस्य निकटे गत्वा प्रष्टव्यं कस्त्वमित्यपि।
बलाबलं ततो ज्ञात्वा कर्तव्या तु प्रतिक्रिया॥ २३

ततो वह्निं समाहूय प्रोवाचेन्द्रः सुराधिपः।
गच्छ वह्ने त्वमस्माकं यतोऽसि मुखमुत्तमम्॥ २४

ततो गत्वा तु जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि।
सहस्राक्षवचः श्रुत्वा स्वपराक्रमगर्भितम्॥ २५

वेगात्स निर्गतो वह्निर्ययौ यक्षस्य सन्निधौ।
तदा प्रोवाच यक्षस्तं त्वं कोऽसीति हुताशनम्॥ २६

वीर्यं च त्वयि किं यत्तद्वद सर्वं ममाग्रतः।
अग्निरस्मि तथा जातवेदा अस्मीति सोऽब्रवीत्॥ २७

सर्वस्य दहने शक्तिर्मयि विश्वस्य तिष्ठति।
तदा यक्षं परं तेजस्तदग्रे निदधौ तृणम्॥ २८

दहैनं यदि ते शक्तिर्विश्वस्य दहनेऽस्ति हि।
तदा सर्वबलेनैवाकरोद्यत्नं हुताशनः॥ २९

न शशाक तृणं दग्धुं लज्जितोऽगात्सुरान्प्रति।
पृष्टे देवैस्तु वृत्तान्ते सर्वं प्रोवाच हव्यभुक्॥ ३०

वृथाभिमानो ह्यस्माकं सर्वेशत्वादिके सुराः।
ततस्तु वृत्रहा वायुं समाहूयेदमब्रवीत्॥ ३१

त्वयि प्रोतं जगत्सर्वं त्वच्चेष्टाभिस्तु चेष्टितम्।
त्वं प्राणरूपः सर्वेषां सर्वशक्तिविधारकः॥ ३२

त्वमेव गत्वा जानीहि किमिदं यक्षमित्यपि।
नान्यः कोऽपि समर्थोऽस्ति ज्ञातुं यक्षं परं महः॥ ३३

रची गयी है? तब उन सभी देवताओंने एकत्र होकर उत्तम विचार किया कि यक्षके समीप जाकर पूछना चाहिये कि 'तुम कौन हो?' इस प्रकार उसके बलाबलकी जानकारी कर लेनेके पश्चात् ही कोई प्रतिक्रिया करनी चाहिये॥ १९—२३॥

तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने अग्निको बुलाकर उनसे कहा—'हे अग्निदेव! आप जाइये। चूँकि आप ही हम लोगोंके उत्तम मुख हैं, इसलिये वहाँ जाकर इसकी जानकारी कीजिये कि यह यक्ष कौन है'॥ २४½॥

हजार नेत्रोंवाले इन्द्रके मुखसे अपने प्रति पराक्रमसे युक्त वचन सुनकर वे अग्निदेव अत्यन्त वेगपूर्वक निकल पड़े और शीघ्र ही यक्षके पास जा पहुँचे॥ २५½॥

तब यक्षने उन अग्निसे पूछा—'तुम कौन हो? तुममें कौन-सा पराक्रम है? जो हो वह सब मुझे बतलाओ'॥ २६½॥

इसपर उसने कहा—'मैं अग्नि हूँ; मैं जातवेदा हूँ। सम्पूर्ण विश्वको दग्ध कर डालनेका सामर्थ्य मुझमें विद्यमान है'॥ २७½॥

तब परम तेजस्वी यक्षने अग्निके समक्ष एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको भस्म करनेकी शक्ति तुममें है, तो इसे जला दो'॥ २८½॥

तब अग्निने अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करते हुए उस तृणको जलानेका प्रयास किया, किंतु वे उस तृणको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हुए और लज्जित होकर देवताओंके पास लौट गये॥ २९½॥

देवताओंके द्वारा वृत्तान्त पूछे जानेपर अग्निदेवने सब कुछ बता दिया और कहा—हे देवताओ! सर्वेश आदि बननेमें हमलोगोंका अभिमान सर्वथा व्यर्थ है॥ ३०½॥

तत्पश्चात् वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा—सम्पूर्ण जगत् आपमें व्याप्त है और आपकी ही चेष्टाओंसे यह क्रियाशील है। आप प्राणरूप होकर सभी प्राणियोंमें सम्पूर्ण शक्तिका संचार करते हैं। आप ही जाकर यह जानकारी प्राप्त कीजिये कि यह यक्ष कौन है? क्योंकि अन्य कोई भी उस परम तेजस्वी यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं है॥ ३१—३३॥

सहस्राक्षवचः श्रुत्वा गुणगौरवगुम्फितम्।
साभिमानो जगामाशु यत्र यक्षं विराजते॥ ३४

यक्षं दृष्ट्वा ततो वायुं प्रोवाच मृदुभाषया।
कोऽसि त्वं त्वयि का शक्तिर्वद सर्वं ममाग्रतः॥ ३५

ततो यक्षवचः श्रुत्वा गर्वेण मरुदब्रवीत्।
मातरिश्वाहमस्मीति वायुरस्मीति चाब्रवीत्॥ ३६

वीर्यं तु मयि सर्वस्य चालने ग्रहणेऽस्ति हि।
मच्चेष्टया जगत्सर्वं सर्वव्यापारवद्भवेत्॥ ३७

इति श्रुत्वा वायुवाणीं निजगाद परं महः।
तृणमेतत्तवाग्रे यत्तच्चालय यथेप्सितम्॥ ३८

नोचेद् गर्वं विहायैनं लज्जितो गच्छ वासवम्।
श्रुत्वा यक्षवचो वायुः सर्वशक्तिसमन्वितः॥ ३९

उद्योगमकरोत्तच्च स्वस्थानान्न चचाल ह।
लज्जितोऽगाद्देवपार्श्वे हित्वा गर्वं स चानिलः॥ ४०

वृत्तान्तमवदत्सर्वं गर्वनिर्वापकारणम्।
नैतज्ज्ञातुं समर्थाः स्म मिथ्यागर्वाभिमानिनः॥ ४१

अलौकिकं भाति यक्षं तेजः परमदारुणम्।
ततः सर्वे सुरगणाः सहस्राक्षं समूचिरे॥ ४२

देवराडसि यस्मात्त्वं यक्षं जानीहि तत्त्वतः।
तत इन्द्रो महागर्वात्तद्यक्षं समुपाद्रवत्॥ ४३

प्राद्रवच्च परं तेजो यक्षरूपं परात्परम्।
अन्तर्धानं ततः प्राप तद्यक्षं वासवाग्रतः॥ ४४

अतीव लज्जितो जातो वासवो देवराडपि।
यक्षसम्भाषणाभावाल्लघुत्वं प्राप चेतसि॥ ४५

गुण और गौरवसे समन्वित इन्द्रकी बात सुनकर वे वायुदेव अभिमानसे भर उठे और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये, जहाँ यक्ष विराजमान था॥ ३४॥

तब वायुको देखकर यक्षने मधुर वाणीमें कहा—तुम कौन हो? तुममें कौन-सी शक्ति है? यह सब मेरे सामने बतलाओ॥ ३५॥

यक्षका वचन सुनकर वायुने गर्वपूर्वक कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ; मैं वायु हूँ। सबको संचालित करने तथा ग्रहण करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है। मेरी चेष्टासे ही सम्पूर्ण जगत् सब प्रकारके व्यवहार-वाला होता है'॥ ३६-३७॥

वायुकी यह वाणी सुनकर परम तेजस्वी यक्षने कहा—तुम्हारे सामने यह जो तृण रखा हुआ है, उसे तुम अपनी इच्छाके अनुसार गतिमान् कर दो; अन्यथा इस अभिमान का त्याग करके लज्जित हो इन्द्रके पास लौट जाओ॥ ३८½॥

यक्षका वचन सुनकर वायुदेवने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर उस तृणको उड़ानेका प्रयत्न किया, किंतु वह तृण अपने स्थानसे हिलातक नहीं। तब वे पवनदेव लज्जित होकर अभिमानका त्याग करके इन्द्रके पास चले गये॥ ३९-४०॥

उन्होंने अभिमानको चूर करनेवाला सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'मिथ्या गर्व तथा अभिमान करनेवाले हमलोग इस यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। परम प्रचण्ड तेजवाला यह यक्ष अलौकिक प्रतीत हो रहा है'॥ ४१½॥

तत्पश्चात् सभी देवताओंने सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रसे कहा—'आप देवताओंके स्वामी हैं, अतः अब आप ही यक्षके विषयमें ठीक-ठीक जाननेका प्रयत्न कीजिये'॥ ४२½॥

तब इन्द्र अत्यन्त अभिमानपूर्वक उस यक्षके पास गये। उनके पहुँचते ही यक्षरूप परात्पर परम तेज शीघ्र ही अदृश्य हो गया। जब वह यक्ष इन्द्रके सामनेसे अन्तर्हित हो गया तब देवराज इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये और यक्षके उनसे बाततक न करनेके कारण वे मनमें अपनेको छोटा समझने लगे। वे सोचने लगे कि अब मुझे देवताओंके समाजमें नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ देवताओंके समक्ष अपनी

अतः परं न गन्तव्यं मया तु सुरसंसदि।
किं मया तत्र वक्तव्यं स्वलघुत्वं सुरान्प्रति॥ ४६

देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम्।
माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः॥ ४७

इति निश्चित्य तत्रैव गर्वं हित्वा सुरेश्वरः।
चरित्रमीदृशं यस्य तमेव शरणं गतः॥ ४८

तस्मिन्नेव क्षणे जाता व्योमवाणी नभस्तले।
मायाबीजं सहस्राक्ष जप तेन सुखी भव॥ ४९

ततो जजाप परमं मायाबीजं परात्परम्।
लक्षवर्षं निराहारो ध्यानमीलितलोचनः॥ ५०

अकस्माच्चैत्रमासीयनवम्यां मध्यगे रवौ।
तदेवाविरभूत्तेजस्तस्मिन्नेव स्थले पुनः॥ ५१

तेजोमण्डलमध्ये तु कुमारीं नवयौवनाम्।
भास्वज्जपाप्रसूनाभां बालकोटिरविप्रभाम्॥ ५२

बालशीतांशुमुकुटां वस्त्रान्तर्व्यञ्जितस्तनीम्।
चतुर्भिर्वरहस्तैस्तु वरपाशाङ्कुशाभयान्॥ ५३

दधानां रमणीयाङ्गीं कोमलाङ्गलतां शिवाम्।
भक्तकल्पद्रुमामम्बां नानाभूषणभूषिताम्॥ ५४

त्रिनेत्रां मल्लिकामालाकबरीजूटशोभिताम्।
चतुर्दिक्षु चतुर्वेदैर्मूर्तिमद्भिरभिष्टुताम्॥ ५५

दन्तच्छटाभिरभितः पद्मरागीकृतक्ष्माम्।
प्रसन्नस्मेरवदनां कोटिकन्दर्पसुन्दराम्॥ ५६

रक्ताम्बरपरीधानां रक्तचन्दनचर्चिताम्।
उमाभिधानां पुरतो देवीं हैमवतीं शिवाम्॥ ५७

निर्व्याजकरुणामूर्तिं सर्वकारणकारणाम्।
ददर्श वासवस्तत्र प्रेमगद्गदितान्तरः॥ ५८

इस हीनताके विषयमें क्या बताऊँगा। अतः शरीरका त्याग कर देना ही मेरे लिये अच्छा होगा; क्योंकि मान ही महापुरुषोंका धन होता है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यका जीवित रहना मृत्युके समान है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३—४७॥

यह निश्चय करके देवराज इन्द्र अभिमान त्यागकर उन्हीं पराशक्तिकी शरणमें गये, जिनकी ऐसी अद्भुत लीला है॥ ४८॥

उसी क्षण गगन-मण्डलमें यह आकाशवाणी हुई—'हे सहस्राक्ष! तुम मायाबीजका जप करो और उससे सुखी हो जाओ'॥ ४९॥

तब इन्द्रने नेत्र बन्द करके देवीका ध्यान करते हुए निराहार रहकर एक लाख वर्षतक अतिश्रेष्ठ परम मायाबीजका जप किया॥ ५०॥

एक दिन चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें नवमी तिथिको मध्याह्नकालमें उसी स्थलपर सहसा एक महान् तेज प्रकट हुआ॥ ५१॥

इन्द्रने उस तेजमण्डलके मध्यमें नूतन यौवनसे सम्पन्न, कुमारी अवस्थामें विद्यमान, प्रभायुक्त जपाकुसुमकी कान्तिसे सम्पन्न, प्रातःकालीन करोड़ों सूर्यकी प्रभासे सुशोभित, द्वितीयाके चन्द्रमासदृश मुकुट धारण किये हुई, वस्त्रके अन्दरसे परिलक्षित होते हुए वक्षःस्थलवाली, अपने चारों श्रेष्ठ हाथोंमें वर-पाश-अंकुश और अभयमुद्रा धारण करनेवाली, अत्यन्त मनोहर अंगोंसे सम्पन्न, कोमल लताके समान अंगोंवाली, कल्याणस्वरूपिणी, भक्तोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा, नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाली, अपनी वेणीमें चमेलीकी माला धारण की हुई, चारों दिशाओंमें स्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेदोंद्वारा स्तुत होती हुई, अपने दाँतोंकी प्रभासे वहाँकी भूमिको पद्मरागमय बना देनेवाली, प्रसन्नता तथा मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर रक्तवर्णके वस्त्र धारण की हुई, लालचन्दनसे अनुलिप्त विग्रहवाली, समस्त कारणोंकी भी कारण तथा बिना किसी हेतुके साक्षात् करुणाकी मूर्तिस्वरूपा उमा नामसे विख्यात जगदम्बा हैमवती भगवती शिवाको अपने समक्ष देखा। इससे इन्द्रका अन्तःकरण प्रेमसे गद्गद हो उठा॥ ५२—५८॥

प्रेमाश्रुपूर्णनयनो रोमाञ्चिततनुस्ततः।
दण्डवत्प्रणनामाथ पादयोर्जगदीशितुः॥ ५९

तुष्टाव विविधैः स्तोत्रैर्भक्तिसन्नतकन्धरः।
उवाच परमप्रीतः किमिदं यक्षमित्यपि॥ ६०

प्रादुर्भूतं च कस्मात्तद्वद सर्वं सुशोभने।
इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रोवाच करुणार्णवा॥ ६१

रूपं मदीयं ब्रह्मैतत्सर्वकारणकारणम्।
मायाधिष्ठानभूतं तु सर्वसाक्षि निरामयम्॥ ६२

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि॥ ६३

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म तदेवाहुश्च ह्रींमयम्।
द्वे बीजे मम मन्त्रौ स्तो मुख्यत्वेन सुरोत्तम॥ ६४

भागद्वयवती यस्मात्सृजामि सकलं जगत्।
तत्रैकभागः सम्प्रोक्तः सच्चिदानन्दनामकः॥ ६५

मायाप्रकृतिसंज्ञस्तु द्वितीयो भाग ईरितः।
सा च माया परा शक्तिः शक्तिमत्यहमीश्वरी॥ ६६

चन्द्रस्य चन्द्रिकेवेयं ममाभिन्नत्वमागता।
साम्यावस्थात्मिका चैषा माया मम सुरोत्तम॥ ६७

प्रलये सर्वजगतो मदभिन्नैव तिष्ठति।
प्राणिकर्मपरीपाकवशतः पुनरेव हि॥ ६८

रूपं तदेवमव्यक्तं व्यक्तीभावमुपैति च।
अन्तर्मुखा तु यावस्था सा मायेत्यभिधीयते॥ ६९

बहिर्मुखा तु या माया तमःशब्देन सोच्यते।
बहिर्मुखात्तमोरूपाज्जायते सत्त्वसम्भवः॥ ७०
रजोगुणस्तदैव स्यात्सर्गादौ सुरसत्तम।

प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण नयनवाले तथा रोमांचित शरीरवाले इन्द्रने उन जगदीश्वरीके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम किया और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। भक्ति-भावसे सम्पन्न हो सिर झुकाकर परम प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रने देवीसे कहा—हे सुशोभने! यह यक्ष कौन था और किसलिये प्रकट हुआ था? यह सब आप मुझे बतलाइये॥ ५९-६०½ ॥

उनकी यह बात सुनकर करुणासागर भगवतीने कहा—यह मेरा ही रूप है; यही ब्रह्म है जो मायाका अधिष्ठानस्वरूप, सबका साक्षी, निर्विकार और समस्त कारणोंका भी कारण है॥ ६१-६२॥

सभी वेद जिस पदका बार-बार प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप भी तपश्चरणके द्वारा जिस पदकी प्राप्तिको बताते हैं और साधकगण जिसकी प्राप्तिकी अभिलाषासे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उसी पदको मैं तुम्हें नामपूर्वक बतलाती हूँ॥ ६३॥

उसीको 'ॐ' एक अक्षरवाला ब्रह्म कहते हैं और वही 'ह्रीं' रूप भी है। हे सुरश्रेष्ठ! ह्रीं और ॐ ये दो मेरे मुख्य बीजमन्त्र हैं। इन्हीं दो भागोंसे सम्पन्न होकर मैं सम्पूर्ण जगत्‌का सृजन करती हूँ। उनमें एक भाग सच्चिदानन्द नामवाला कहा गया है और दूसरा भाग मायाप्रकृति संज्ञावाला कहा गया है। वह माया ही परा शक्ति है और सम्पूर्ण जगत्‌पर प्रभुत्व रखनेवाली वह शक्तिशालिनी देवी मैं ही हूँ॥ ६४—६६॥

यह माया चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति अभिन्नरूपसे सर्वदा मुझमें विराजमान रहती है। हे सुरोत्तम! साम्यावस्थास्वरूपिणी मेरी यह माया सम्पूर्ण जगत्‌के प्रलय होते समय भी मुझसे भिन्न नहीं रहती है। प्राणियोंके कर्मपरिपाकवश मायाका वही अव्यक्तरूप पुनः व्यक्तरूप धारण कर लेता है॥ ६७-६८½ ॥

जो अवस्था अन्तर्मुखी है, वह माया कही जाती है और जो बहिर्मुखी अवस्थावाली माया है, वह तम (अविद्या) नामसे कही जाती है। तमोरूपिणी उस बहिर्मुखी मायासे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। हे सुरश्रेष्ठ! सृष्टिके आदिमें यह माया रजोगुणरूपसे विद्यमान रहती है॥ ६९-७०½ ॥

गुणत्रयात्मकाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ ७१

रजोगुणाधिको ब्रह्मा विष्णुः सत्त्वाधिको भवेत्।
तमोगुणाधिको रुद्रः सर्वकारणरूपधृक्॥ ७२

स्थूलदेहो भवेद् ब्रह्मा लिङ्गदेहो हरिः स्मृतः।
रुद्रस्तु कारणो देहस्तुरीया त्वहमेव हि॥ ७३

साम्यावस्था तु या प्रोक्ता सर्वान्तर्यामिरूपिणी।
अत ऊर्ध्वं परं ब्रह्म मद्रूपं रूपवर्जितम्॥ ७४

निर्गुणं सगुणं चेति द्विधा मद्रूपमुच्यते।
निर्गुणं मायया हीनं सगुणं मायया युतम्॥ ७५

साहं सर्वं जगत्सृष्ट्वा तदन्तः सम्प्रविश्य च।
प्रेरयाम्यनिशं जीवं यथाकर्म यथाश्रुतम्॥ ७६

सृष्टिस्थितितिरोधाने प्रेरयाम्यहमेव हि।
ब्रह्माणं च तथा विष्णुं रुद्रं वै कारणात्मकम्॥ ७७

मद्भयाद्वाति पवनो भीत्या सूर्यश्च गच्छति।
इन्द्राग्निमृत्यवस्तद्वत्साहं सर्वोत्तमा स्मृता॥ ७८

मत्प्रसादाद्भवद्भिस्तु जयो लब्धोऽस्ति सर्वथा।
युष्मानहं नर्तयामि काष्ठपुत्तलिकोपमान्॥ ७९

कदाचिद्देवविजयं दैत्यानां विजयं क्वचित्।
स्वतन्त्रा स्वेच्छया सर्वं कुर्वे कर्मानुरोधतः॥ ८०

तां मां सर्वात्मिकां यूयं विस्मृत्य निजगर्वतः।
अहङ्कारावृतात्मानो मोहमाप्ता दुरन्तकम्॥ ८१

अनुग्रहं ततः कर्तुं युष्मद्देहादनुत्तमम्।
निःसृतं सहसा तेजो मदीयं यक्षमित्यपि॥ ८२

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये देवता त्रिगुणात्मक कहे गये हैं। ब्रह्मामें रजोगुणकी अधिकता, विष्णुमें सत्त्वगुणकी अधिकता तथा सभी कारणोंके स्वरूपवाले रुद्रमें तमोगुणकी अधिकता रहती है॥ ७१-७२॥

ब्रह्मा स्थूलदेहवाले हैं। विष्णु लिंगदेहवाले तथा रुद्र कारणदेहवाले कहे गये हैं। जो सर्वान्तर्यामिस्वरूपिणी साम्यावस्था कही गयी है, वह तुरीयरूपा मैं ही हूँ और इसके भी ऊपर जो निराकार परब्रह्म है, वह भी मेरा ही रूप है॥ ७३-७४॥

निर्गुण तथा सगुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा जाता है। मायासे रहित रूप निर्गुण और मायायुक्त रूप सगुण है। वही मैं सम्पूर्ण जगत्की रचना करके उसके भीतर भलीभाँति प्रविष्ट होकर जीवको उसके कर्म तथा शास्त्रके अनुसार निरन्तर प्रेरित करती रहती हूँ॥ ७५-७६॥

ब्रह्माको सृष्टि करने, विष्णुको जगत्का पालन करने और कारणरूप रुद्रको संहार करनेके लिये मैं ही प्रेरणा प्रदान करती हूँ॥ ७७॥

वायु मेरे भयसे प्रवाहित होता है और सूर्य मेरा भय मानकर निरन्तर गति करता रहता है। उन्हींकी भाँति इन्द्र, अग्नि और यम भी मेरे भयसे अपने-अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। इसीलिये मैं सर्वश्रेष्ठ कही गयी हूँ॥ ७८॥

आप सभी देवताओंने मेरी ही कृपासे सब प्रकारकी विजय प्राप्त की है। मैं आपलोगोंको कठपुतलीके समान नचाती रहती हूँ॥ ७९॥

मैं कभी देवताओंकी विजय कराती हूँ और कभी दैत्योंकी। मैं स्वतन्त्र होकर अपनी इच्छासे सभीके कर्म-विपाकके अनुसार सब कुछ सम्पादित करती हूँ॥ ८०॥

अहंकारसे आवृत बुद्धिवाले तुमलोग अपने गर्वसे वैसी प्रभाववाली मुझ सर्वात्मिका भगवतीको भूलकर दुःखदायी मोहको प्राप्त हो गये थे। इसलिये तुमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंके शरीरसे मेरा दिव्य तेज निकलकर यक्षके रूपमें प्रकट हो गया था॥ ८१-८२॥

अतः परं सर्वभावैर्हित्वा गर्वं तु देहजम्।
मामेव शरणं यात सच्चिदानन्दरूपिणीम्॥ ८३

व्यास उवाच

इत्युक्त्वा च महादेवी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
अन्तर्धानं गता सद्यो भक्त्या देवैरभिष्टुता॥ ८४

ततः सर्वे स्वगर्वं तु विहाय पदपङ्कजम्।
सम्यगाराधयामासुर्भगवत्याः परात्परम्॥ ८५

त्रिसन्ध्यं सर्वदा सर्वे गायत्रीजपतत्पराः।
यज्ञभागादिभिः सर्वे देवीं नित्यं सिषेविरे॥ ८६

एवं सत्ययुगे सर्वे गायत्रीजपतत्पराः।
तारहृल्लेखयोश्चापि जपे निष्णातमानसाः॥ ८७

न विष्णूपासना नित्या वेदेनोक्ता तु कुत्रचित्।
न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च॥ ८८

गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता।
यया विना त्वधःपातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा॥ ८९

तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि।
गायत्रीमात्रनिष्णातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात्॥ ९०

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादिति प्राह मनुः स्वयम्।
विहाय तां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः॥ ९१

शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः।
देवीपदाम्बुजरता आसन्सर्वे द्विजोत्तमाः॥ ९२

अब तुमलोग अपने देहसे उत्पन्न गर्वका सब प्रकारसे त्याग करके मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी ही शरणमें आ जाओ॥ ८३॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर मूलप्रकृतिरूपा सर्वेश्वरी महादेवी देवताओंके द्वारा भक्तिपूर्वक सुपूजित होकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं॥ ८४॥

तत्पश्चात् सभी देवता अपने अभिमानका त्याग करके भगवतीके परात्पर चरणकमलकी विधिवत् आराधना करने लगे। वे सब तीनों सन्ध्याओंमें सदा गायत्री-जपमें संलग्न रहते थे और यज्ञ-भाग आदिके द्वारा नित्य भगवतीकी उपासना करते थे॥ ८५-८६॥

इस प्रकार सत्ययुगमें सभी लोग गायत्री-जपमें तत्पर थे और वे प्रणव तथा हृल्लेखाके जपमें भी दत्तचित्त रहते थे॥ ८७॥

वेदके द्वारा कहीं भी विष्णुकी उपासना तथा विष्णु-दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है; उसी प्रकार शिवकी भी उपासना तथा दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है, किंतु गायत्रीकी उपासना सभी वेदोंके द्वारा नित्य कही गयी है, जिसके बिना ब्राह्मणका सब प्रकार अधःपतन हो जाता है। द्विज केवल उतनेसे ही कृतकृत्य हो जाता है, उसे किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रहती। केवल गायत्री-उपासनामें ही तत्पर रहकर द्विज मोक्ष प्राप्त कर लेता है, चाहे वह अन्य कार्य करे अथवा न करे—ऐसा मनुने स्वयं कहा है। उन गायत्रीके बिना विष्णु तथा शिवकी उपासनामें संलग्न रहनेवाला विप्र सब प्रकारसे नरकगामी होता है। इसीलिये हे राजन्! सत्ययुगमें सभी उत्तम द्विजगण गायत्रीजप तथा भगवतीके चरणकमलकी उपासनामें निरन्तर संलग्न रहते थे॥ ८८—९२॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे पराशक्तेराविर्भाववर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतमके द्वारा अनेक ब्राह्मणपरिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान

व्यास उवाच

कदाचिदथ काले तु दशपञ्चसमा विभो।
प्राणिनां कर्मवशतो न ववर्ष शतक्रतुः॥ १

व्यासजी बोले—हे विभो! एक समयकी बात है, प्राणियोंको कर्म-फलका भोग करानेके लिये इन्द्रने पन्द्रह वर्षोंतक वृष्टि नहीं की॥ १॥

अनावृष्ट्यातिदुर्भिक्षमभवत्क्षयकारकम् ।
गृहे गृहे शवानां तु संख्या कर्तुं न शक्यते॥ २

केचिदश्वान्वराहान्वा भक्षयन्ति क्षुधार्दिताः।
शवानि च मनुष्याणां भक्षयन्त्यपरे जनाः॥ ३

बालकं बालजननी स्त्रियं पुरुष एव च।
भक्षितुं चलिताः सर्वे क्षुधया पीडिता नराः॥ ४

ब्राह्मणा बहवस्तत्र विचारं चक्रुरुत्तमम्।
तपोधनो गौतमोऽस्ति स नः खेदं हरिष्यति॥ ५

सर्वैर्मिलित्वा गन्तव्यं गौतमस्याश्रमेऽधुना।
गायत्रीजपसंसक्तगौतमस्याश्रमेऽधुना ॥ ६

सुभिक्षं श्रूयते तत्र प्राणिनो बहवो गताः।
एवं विमृश्य भूदेवाः साग्निहोत्राः कुटुम्बिनः॥ ७

सगोधनाः सदासाश्च गौतमस्याश्रमं ययुः।
पूर्वदेशाद्ययुः केचित्केचिद्दक्षिणदेशतः॥ ८

पाश्चात्या औत्तराहाश्च नानादिग्भ्यः समाययुः।
दृष्ट्वा समाजं विप्राणां प्रणनाम स गौतमः॥ ९

आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास वाडवान्।
चकार कुशलप्रश्नं ततश्चागमकारणम्॥ १०

ते सर्वे स्वस्ववृत्तान्तं कथयामासुरुत्स्मयाः।
दृष्ट्वा तान्दुःखितान्विप्रानभयं दत्तवान्मुनिः॥ ११

युष्माकमेतत्सदनं भवद्दासोऽस्मि सर्वथा।
का चिन्ता भवतां विप्रा मयि दासे विराजति॥ १२

धन्योऽहमस्मिन्समये यूयं सर्वे तपोधनाः।
येषां दर्शनमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते॥ १३

इस अनावृष्टिके कारण घोर विनाशकारी दुर्भिक्ष पड़ गया। घर-घरमें शवोंकी संख्याका आकलन नहीं किया जा सकता था॥ २॥

क्षुधासे पीड़ित कुछ लोग घोड़ों और सूअरोंका भक्षण कर जाते थे और कुछ लोग मनुष्योंके शवतक खा जाते थे। माता अपने बच्चेको और पुरुष पत्नीको खा जाते थे। इस प्रकार सभी लोग क्षुधासे पीड़ित होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़ पड़ते थे॥ ३-४॥

तब बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह उत्तम विचार प्रस्तुत किया कि महर्षि गौतम तपस्याके महान् धनी हैं। वे हमारे कष्टका निवारण कर देंगे। अतएव इस समय हम सभी लोगोंको मिलकर गौतमके आश्रममें चलना चाहिये। सुना गया है कि गायत्रीजपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले गौतमके आश्रममें इस समय भी सुभिक्ष है और बहुत लोग वहाँ गये हुए हैं॥ ५-६½ ॥

इस प्रकार परस्पर विचार करके वे सभी ब्राह्मण अग्निहोत्रकी सामग्री, अपने परिवारजनों, गोधन तथा दासोंको साथमें लेकर गौतमऋषिके आश्रमपर गये। कुछ लोग पूर्व दिशासे, कुछ लोग दक्षिण दिशासे, कुछ लोग पश्चिम दिशासे और कुछ लोग उत्तर दिशासे—इस प्रकार अनेक स्थलोंसे लोग वहाँ पहुँच गये॥ ७-८½ ॥

ब्राह्मणोंके उस समाजको देखकर उन गौतमऋषिने प्रणाम किया और आसन आदि उपचारोंसे विप्रोंकी पूजा की। तत्पश्चात् महर्षि गौतमने उनका कुशल-क्षेम तथा उनके वहाँ आनेका कारण पूछा॥ ९-१०॥

उन सभी ब्राह्मणोंने उदास होकर अपना-अपना वृत्तान्त कहा। मुनि गौतमने उन विप्रोंको दुःखित देखकर उन्हें अभय प्रदान किया। [और कहा—] हे विप्रो! यह आश्रम आपलोगोंका घर है और मैं हर तरहसे आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता किस बात की? आप सभी तपोधन ब्राह्मण यहाँ आये हैं, इसलिये मैं अपनेको धन्य मानता हूँ। जिनके दर्शनमात्रसे दुष्कृत भी सुकृतमें परिणत हो जाता है, वे सभी विप्रगण अपने

ते सर्वे पादरजसा पावयन्ति गृहं मम।
को मदन्यो भवेद् धन्यो भवतां समनुग्रहात्॥ १४

स्थेयं सर्वैः सुखेनैव सन्ध्याजपपरायणैः।

व्यास उवाच

इति सर्वान्समाश्वास्य गौतमो मुनिराट् ततः॥ १५

गायत्रीं प्रार्थयामास भक्तिसन्नतकन्धरः।
नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे॥ १६

व्याहृत्यादिमहामन्त्ररूपे प्रणवरूपिणि।
साम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणि॥ १७

स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम्।
भक्तकल्पलतां देवीमवस्थात्रयसाक्षिणीम्॥ १८

तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानन्दरूपिणीम्।
सर्ववेदान्तसंवेद्यां सूर्यमण्डलवासिनीम्॥ १९

प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम्।
सायाह्ने कृष्णवर्णां तां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम्॥ २०

सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरि।
इति स्तुता जगन्माता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ॥ २१

पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात्सर्वपोषणम्।
उवाच मुनिमम्बा सा यं यं कामं त्वमिच्छसि॥ २२

तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवी गायत्री परमा कला॥ २३

अन्नानां राशयस्तस्मान्निर्गताः पर्वतोपमाः।
षड्रसा विविधा राजंस्तृणानि विविधानि च॥ २४

भूषणानि च दिव्यानि क्षौमानि वसनानि च।
यज्ञानां च समारम्भाः पात्राणि विविधानि च॥ २५

चरणरजसे मेरे आश्रमको पवित्र बना रहे हैं। आपलोगोंके अनुग्रहसे मुझसे बढ़कर धन्य दूसरा कौन है? सन्ध्या और जपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले आप सभी लोग सुखपूर्वक यहाँ रहिये॥ ११—१४½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार सभी ब्राह्मणोंको आश्वस्त करके मुनिराज गौतम भक्तिभावसे सिर झुकाकर गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे—हे देवि! आपको नमस्कार है। आप महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हैं। व्याहृति आदि महामन्त्रों तथा प्रणवके स्वरूपवाली, साम्यावस्थामें विराजमान रहनेवाली तथा ह्रींकार स्वरूपवाली हे मातः! आपको नमस्कार है॥ १५—१७॥

स्वाहा और स्वधा-रूपसे शोभा पानेवाली हे देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली, भक्तोंके लिये कल्पलतासदृश, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी-स्वरूपा, तुरीयावस्थासे अतीत स्वरूपवाली, सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी, सभी वेदान्तोंकी वेद्यविषयरूपा, सूर्यमण्डलमें विराजमान रहनेवाली, प्रातःकालमें बाल्यावस्था तथा रक्तवर्णवाली, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवतीकी भाँति शोभा पानेवाली और सायंकालमें वृद्धास्वरूपिणी तथा कृष्णवर्णवाली उन भगवतीको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली हे परमेश्वरि! हे देवि! आप क्षमा करें॥ १८—२०½॥

गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगज्जननी भगवतीने उन्हें अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन्होंने उन गौतमऋषिको एक ऐसा पूर्णपात्र प्रदान किया, जिसके द्वारा सबका भरण-पोषण हो सके॥ २१½॥

उन जगदम्बाने मुनिसे कहा—आप जिस-जिस वस्तुकी कामना करेंगे, मेरे द्वारा प्रदत्त यह पूर्णपात्र उसकी पूर्ति करनेवाला सिद्ध होगा॥ २२½॥

ऐसा कहकर श्रेष्ठ कलास्वरूपिणी भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। हे राजन्! उस पात्रसे पर्वतके समान विशाल अन्नराशि, छः प्रकारके रस, भाँति-भाँतिके तृण, दिव्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, यज्ञोंकी सामग्रियाँ तथा अनेक प्रकारके पात्र निकले॥ २३—२५॥

यद्यदिष्टमभूद्राजन् मुनेस्तस्य महात्मनः।
तत्सर्वं निर्गतं तस्माद् गायत्रीपूर्णपात्रतः॥ २६

अथाहूय मुनीन्सर्वान्मुनिराड् गौतमस्तदा।
धनं धान्यं भूषणानि वसनानि ददौ मुदा॥ २७

गोमहिष्यादिपशवो निर्गताः पूर्णपात्रतः।
निर्गतान्यज्ञसम्भारान्स्रुक्स्रुवप्रभृतीन्ददौ ॥ २८

ते सर्वे मिलिता यज्ञांश्चक्रिरे मुनिवाक्यतः।
स्थानं तदेव भूयिष्ठमभवत्स्वर्गसन्निभम्॥ २९

यत्किञ्चित् त्रिषु लोकेषु सुन्दरं वस्तु दृश्यते।
तत्सर्वं तत्र निष्पन्नं गायत्रीदत्तपात्रतः॥ ३०

देवाङ्गनासमा दाराः शोभन्ते भूषणादिभिः।
मुनयो देवसदृशा वस्त्रचन्दनभूषणैः॥ ३१

नित्योत्सवः प्रववृते मुनेराश्रममण्डले।
न रोगादिभयं किञ्चिन्न च दैत्यभयं क्वचित्॥ ३२

स मुनेराश्रमो जातः समन्ताच्छतयोजनः।
अन्ये च प्राणिनो येऽपि तेऽपि तत्र समागताः॥ ३३

तांश्च सर्वान्पुपोषायं दत्त्वाभयमथात्मवान्।
नानाविधैर्महायज्ञैर्विधिवत्कल्पितैः सुराः॥ ३४

सन्तोषं परमं प्रापुर्मुनेश्चैव जगुर्यशः।
सभायां वृत्रहा भूयो जगौ श्लोकं महायशाः॥ ३५

अहो अयं नः किल कल्पपादपो
मनोरथान्पूरयति प्रतिष्ठितः।
नोचेदकाण्डे क्व हविर्वपा वा
सुदुर्लभा यत्र तु जीवनाशा॥ ३६

हे राजन्! उन महात्मा गौतमको जिस-जिस पदार्थकी अभिलाषा होती थी, वे सभी पदार्थ भगवती गायत्रीके द्वारा प्रदत्त उस पूर्णपात्रसे निकल आते थे॥ २६॥

इसके बाद मुनिवर गौतमने सभी मुनियोंको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, आभूषण तथा वस्त्र आदि प्रदान किये। उस पूर्णपात्रसे निर्गत गाय-भैंस आदि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ सभी मुनियोंको दी गयीं॥ २७-२८॥

तदनन्तर वे सभी मुनि एकत्र होकर गौतमऋषिकी आज्ञासे नानाविध यज्ञ करने लगे। इस प्रकार वह आश्रम स्वर्गके समान एक अत्यन्त दिव्य स्थान हो गया॥ २९॥

तीनों लोकोंमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तु दृष्टिगत होती, वह सब कुछ गायत्रीके द्वारा दिये गये पात्रसे प्राप्त हो जाती थी॥ ३०॥

मुनियोंकी स्त्रियाँ भूषण आदिके द्वारा देवांगनाओंकी भाँति और मुनिगण वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे देवताओंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३१॥

गौतमऋषिके आश्रममें चारों ओर नित्य उत्सव मनाया जाने लगा। किसीको भी रोग आदिका कोई भी भय नहीं था और दैत्योंका कहीं भी भय नहीं रहा॥ ३२॥

गौतममुनिका वह आश्रम चारों ओरसे सौ योजनके विस्तारवाला हो गया; और भी अन्य जिन प्राणियोंको इसकी जानकारी हुई, वे भी वहाँ आ गये। तब आत्मज्ञानी गौतममुनिने उन्हें अभय प्रदान करके उन सभीके भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध कर दिया। अनेक प्रकारके महायज्ञोंके विधिपूर्वक सम्पन्न हो जानेसे देवतागण परम प्रसन्न हुए और मुनिका यशोगान करने लगे। वृत्रासुरका संहार करनेवाले महान् यशस्वी इन्द्रने भी अपनी सभामें बार-बार यह श्लोक कहा—अहो, इस समय ये गौतमऋषि हमारे लिये साक्षात् कल्पवृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होकर हमारे सभी मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं, अन्यथा इस दुष्कालमें जहाँ जीवनकी आशा भी अत्यन्त दुर्लभ थी, फिर हमलोग हवि कैसे प्राप्त करते?॥ ३३—३६॥

इत्थं द्वादशवर्षाणि पुपोष मुनिपुङ्गवान्।
पुत्रवन्मुनिराड् गर्वगन्धेन परिवर्जितः॥ ३७

गायत्र्याः परमं स्थानं चकार मुनिसत्तमः।
यत्र सर्वैर्मुनिवरैः पूज्यते जगदम्बिका॥ ३८

त्रिकालं परया भक्त्या पुरश्चरणकर्मभिः।
अद्यापि यत्र देवी सा प्रातर्बाला तु दृश्यते॥ ३९

मध्याह्ने युवती वृद्धा सायंकाले तु दृश्यते।
तत्रैकदा समायातो नारदो मुनिसत्तमः॥ ४०

रणयन्महतीं गायन्गायत्र्याः परमान्गुणान्।
निषसाद सभामध्ये मुनीनां भावितात्मनाम्॥ ४१

गौतमादिभिरत्युच्चैः पूजितः शान्तमानसः।
कथाश्चकार विविधा यशसो गौतमस्य च॥ ४२

ब्रह्मर्षे देवसदसि देवराट् तव यद्यशः।
जगौ बहुविधं स्वच्छं मुनिपोषणजं परम्॥ ४३

श्रुत्वा शचीपतेर्वाणीं त्वां द्रष्टुमहमागतः।
धन्योऽसि त्वं मुनिश्रेष्ठ जगदम्बाप्रसादतः॥ ४४

इत्युक्त्वा मुनिवर्यं तं गायत्रीसदनं ययौ।
ददर्श जगदम्बां तां प्रेमोत्फुल्लविलोचनः॥ ४५

तुष्टाव विधिवद्देवीं जगाम त्रिदिवं पुनः।
अथ तत्र स्थिता ये ते ब्राह्मणा मुनिपोषिताः॥ ४६

उत्कर्षं तु मुनेः श्रुत्वासूयया खेदमागताः।
यथास्य न यशो भूयात्कर्तव्यं सर्वथैव हि॥ ४७
काले समागते पश्चादिति सर्वैस्तु निश्चितम्।

ततः कालेन कियताप्यभूद् वृष्टिर्धरातले॥ ४८

इस प्रकार वे मुनिवर गौतम अभिमानकी गन्धतकसे रहित होकर बारह वर्षोंतक उन श्रेष्ठ मुनियोंका पुत्रवत् पालन-पोषण करते रहे॥ ३७॥

उन मुनिश्रेष्ठ गौतमने गायत्रीकी उपासनाहेतु एक पवित्र स्थलका निर्माण कराया, जहाँ सभी श्रेष्ठ मुनिगण पुरश्चरण आदि कर्मोंके द्वारा परम भक्तिके साथ तीनों कालों—प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालमें भगवती जगदम्बाकी पूजा करते थे। उस स्थानपर आज भी वे भगवती प्रातःकाल बाला-रूपमें, मध्याह्न-कालमें युवतीके रूपमें तथा सायंकालमें वृद्धाके रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं॥ ३८-३९$\frac{१}{२}$ ॥

एक बार मुनिश्रेष्ठ नारदजी अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए और गायत्रीके उत्तम गुणोंका गान करते हुए वहाँ आये और पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये॥ ४०-४१ ॥

तत्पश्चात् गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंसे विधिवत् पूजित होकर शान्त मनवाले नारदजी गौतमकी यश-सम्बन्धी विविध कथाओंका वर्णन करने लगे—हे ब्रह्मर्षे! देवराज इन्द्रने मुनियोंके भरण-पोषणसे सम्बन्धित आपकी विमल कीर्तिका गान देवताओंकी सभामें अनेक प्रकारसे किया है। शचीपति इन्द्रकी वही वाणी सुनकर आपका दर्शन करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! जगदम्बाकी कृपासे आप धन्य हैं॥ ४२—४४॥

उन मुनिवर गौतमसे ऐसा कहकर नारदजी गायत्री-सदनमें गये। प्रेमसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले नारदजीने वहाँ उन भगवती जगदम्बाका दर्शन किया और विधिवत् उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। इसके बाद वहाँपर मुनि गौतमके द्वारा पालित-पोषित जो ब्राह्मण थे, वे मुनिका उत्कर्ष सुनकर ईर्ष्यासे दुःखी हो गये। कुछ समय बीतनेके बाद उन सभीने यह निश्चय किया कि किसी भी प्रकारसे हमलोगोंको सर्वथा वही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इस गौतमऋषिका यश न बढ़े॥ ४५—४७$\frac{१}{२}$ ॥

हे महाराज! कुछ कालके अनन्तर पृथ्वीतलपर वृष्टि भी होने लगी और सभी देशोंमें सुभिक्ष हो गया।

सुभिक्षमभवत्सर्वदेशेषु नृपसत्तम।
श्रुत्वा वार्तां सुभिक्षस्य मिलिताः सर्ववाडवाः॥ ४९

गौतमं शप्तुमुद्योगं हा हा राजन् प्रचक्रिरे।
धन्यौ तेषां च पितरौ ययोरुत्पत्तिरीदृशी॥ ५०

कालस्य महिमा राजन् वक्तुं केन हि शक्यते।
गौर्निर्मिता माययैका मुमूर्षुर्जरती नृप॥ ५१

जगाम सा च शालायां होमकाले मुनेस्तदा।
हुंहुंशब्दैर्वारिता सा प्राणांस्तत्याज तत्क्षणे॥ ५२

गौर्हतानेन दुष्टेनेत्येवं ते चुक्रुशुर्द्विजाः।
होमं समाप्य मुनिराड् विस्मयं परमं गतः॥ ५३

समाधिमीलिताक्षः संश्चिन्तयामास कारणम्।
कृतं सर्वं द्विजैरेतदिति ज्ञात्वा तदैव सः॥ ५४

दधार कोपं परमं प्रलये रुद्रकोपवत्।
शशाप च ऋषीन्सर्वान्कोपसंरक्तलोचनः॥ ५५

वेदमातरि गायत्र्यां तद्ध्याने तन्मनोर्जपे।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वथा ब्राह्मणाधमाः॥ ५६

वेदे वेदोक्तयज्ञेषु तद्वार्तासु तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५७

शिवे शिवस्य मन्त्रे च शिवशास्त्रे तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५८

मूलप्रकृत्याः श्रीदेव्यास्तद्ध्याने तत्कथासु च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ५९

देवीमन्त्रे तथा देव्याः स्थानेऽनुष्ठानकर्मणि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६०

देव्युत्सवदिदृक्षायां देवीनामानुकीर्तने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६१

देवीभक्तस्य सान्निध्ये देवीभक्तार्चने तथा।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६२

सर्वत्र सुभिक्षकी बात सुनकर वे ब्राह्मण एकत्र हो गये और हे राजन्! हाय-हाय! वे गौतमको शाप देनेका प्रयत्न करने लगे। वे माता-पिता भी आज धन्य हो गये, जिनके यहाँ ऐसे [कृतघ्न ब्राह्मण-] पुत्रोंका जन्म हुआ है॥ ४८—५०॥

हे राजन्! कालकी महिमा भला कौन जान सकता है? उस समय उन ब्राह्मणोंने मायाके द्वारा एक मरणासन्न वृद्ध गाय बनायी, जब मुनि हवन कर रहे थे, उसी समय वह गाय यज्ञशालामें पहुँची। मुनि गौतमने 'हुं हुं' शब्दोंसे उसे आनेसे रोका; उसी क्षण उसने अपने प्राण त्याग दिये॥ ५१-५२॥

तब वे ब्राह्मण जोर-जोरसे कहने लगे कि इस दुष्ट गौतमने गौकी हत्या कर दी। तब मुनिराज गौतम हवन समाप्त करनेके पश्चात् इस घटनासे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे। वे अपने नेत्र बन्द करके समाधिमें स्थित होकर इसके कारणपर विचार करने लगे। यह सब कुछ ब्राह्मणोंने ही किया है—ऐसा जानकर उन्होंने प्रलयकालीन रुद्रके क्रोधके समान परम कोप किया। इस प्रकार कोपसे लाल नेत्रोंवाले उन गौतमने सभी ऋषियोंको यह शाप दे दिया—'अधम ब्राह्मणो! तुमलोग वेदमाता गायत्रीकी उपासना, ध्यान और उनके मन्त्र-जपसे सर्वथा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! वेद, वेदोक्त यज्ञों तथा वेदसम्बन्धी वार्ताओंसे तुम सभी सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! तुम सभी शिवोपासना, शिव-मन्त्रके जप तथा शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंसे सर्वदा विमुख हो जाओ॥ ५३—५८॥

हे अधम ब्राह्मणो! मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीकी उपासना, उनके ध्यान तथा उनकी कथाओंसे तुमलोग सदा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! देवीके मन्त्र-जप, उनकी प्रतिष्ठास्थली तथा उनके अनुष्ठान-कर्मसे तुमलोग सदा पराङ्मुख हो जाओ॥ ५९-६०॥

हे अधम ब्राह्मणो! देवीका उत्सव देखने तथा उनके नामोंके कीर्तनसे तुम सब सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! देवी-भक्तके समीप रहने तथा देवी-भक्तोंकी अर्चना करनेसे तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६१-६२॥

शिवोत्सवदिदृक्षायां शिवभक्तस्य पूजने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६३

रुद्राक्षे बिल्वपत्रे च तथा शुद्धे च भस्मनि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६४

श्रौतस्मार्तसदाचारे ज्ञानमार्गे तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६५

अद्वैतज्ञाननिष्ठायां शान्तिदान्त्यादिसाधने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६६

नित्यकर्माद्यनुष्ठानेऽप्यग्निहोत्रादिसाधने।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६७

स्वाध्यायाध्ययने चैव तथा प्रवचनेऽपि च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६८

गोदानादिषु दानेषु पितृश्राद्धेषु चैव हि।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ६९

कृच्छ्रचान्द्रायणे चैव प्रायश्चित्ते तथैव च।
भवतानुन्मुखा यूयं सर्वदा ब्राह्मणाधमाः॥ ७०

श्रीदेवीभिन्नदेवेषु श्रद्धाभक्तिसमन्विताः।
शङ्खचक्राद्यङ्कितांश्च भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७१

कापालिकमतासक्ता बौद्धशास्त्ररताः सदा।
पाखण्डाचारनिरता भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७२

पितृमातृसुताभ्रातृकन्याविक्रयिणस्तथा।
भार्याविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७३

वेदविक्रयिणस्तद्वत्तीर्थविक्रयिणस्तथा।
धर्मविक्रयिणस्तद्वद्भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७४

पाञ्चरात्रे कामशास्त्रे तथा कापालिके मते।
बौद्धे श्रद्धायुता यूयं भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७५

हे अधम ब्राह्मणो! भगवान् शिवका उत्सव देखने तथा शिवभक्तका पूजन करनेसे तुम सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! रुद्राक्ष, बिल्वपत्र तथा शुद्ध भस्मसे तुमलोग सर्वदा वंचित रहो॥ ६३-६४॥

हे अधम ब्राह्मणो! श्रौत-स्मार्त-सम्बन्धी सदाचार तथा ज्ञान-मार्गसे तुमलोग सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! अद्वैत ज्ञाननिष्ठा और शम-दम आदि साधनोंसे तुमलोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६५-६६॥

हे अधम ब्राह्मणो! नित्यकर्म आदिके अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र आदि सम्पन्न करनेसे भी तुमलोग सदा वंचित हो जाओ॥ ६७॥

हे अधम ब्राह्मणो! स्वाध्याय-अध्ययन तथा प्रवचन आदिसे भी तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६८॥

हे अधम ब्राह्मणो! गौ आदिके दान और पितरोंके श्राद्धकर्मसे तुम सभी लोग सदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ६९॥

हे अधम ब्राह्मणो! कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतों तथा पाप आदिके प्रायश्चित्त कर्मोंसे तुम सभी लोग सर्वदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ७०॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग देवी भगवतीके अतिरिक्त अन्य देवताओंके प्रति श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर और शंख-चक्र आदिका चिह्न धारण करनेवाले हो जाओ॥ ७१॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग कापालिक मतमें आसक्त, बौद्ध शास्त्रोंके परायण तथा पाखण्डपूर्ण आचारमें निरत रहो॥ ७२॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पिता, माता, पुत्री, भाई, कन्या और पत्नीका विक्रय करनेवाले व्यक्तियोंके समान हो जाओ॥ ७३॥

हे अधम ब्राह्मणो! वेदका विक्रय करनेवाले, तीर्थ बेचनेवाले और धर्म बेचनेवाले व्यक्तियोंके समान तुमलोग हो जाओ॥ ७४॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पांचरात्र, कामशास्त्र, कापालिक मत और बौद्ध मतके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हो जाओ॥ ७५॥

मातृकन्यागामिनश्च भगिनीगामिनस्तथा।
परस्त्रीलम्पटाः सर्वे भवत ब्राह्मणाधमाः॥ ७६

युष्माकं वंशजाताश्च स्त्रियश्च पुरुषास्तथा।
मद्दत्तशापदग्धास्ते भविष्यन्ति भवत्समाः॥ ७७

किं मया बहुनोक्तेन मूलप्रकृतिरीश्वरी।
गायत्री परमा भूयाद्युष्मासु खलु कोपिता॥ ७८

अन्धकूपादिकुण्डेषु युष्माकं स्यात्सदा स्थितिः।

व्यास उवाच

वाग्दण्डमीदृशं कृत्वाप्युपस्पृश्य जलं ततः॥ ७९

जगाम दर्शनार्थं च गायत्र्याः परमोत्सुकः।
प्रणनाम महादेवीं सापि देवी परात्परा॥ ८०

ब्राह्मणानां कृतिं दृष्ट्वा स्मयं चित्ते चकार ह।
अद्यापि तस्या वदनं स्मययुक्तं च दृश्यते॥ ८१

उवाच मुनिवर्यं तं स्मयमानमुखाम्बुजा।
भुजङ्गायार्पितं दुग्धं विषायैवोपजायते॥ ८२

शान्तिं कुरु महाभाग कर्मणो गतिरीदृशी।
इति देवीं प्रणम्याथ ततोऽगात्स्वाश्रमं प्रति॥ ८३

ततो विप्रैः शापदग्धैर्विस्मृता वेदराशयः।
गायत्री विस्मृता सर्वैस्तदद्भुतमिवाभवत्॥ ८४

ते सर्वेऽथ मिलित्वा तु पश्चात्तापयुतास्तथा।
प्रणेमुर्मुनिवर्यं तं दण्डवत्पतिता भुवि॥ ८५

नोचुः किञ्चन वाक्यं तु लज्जयाधोमुखाः स्थिताः।
प्रसीदेति प्रसीदेति प्रसीदेति पुनः पुनः॥ ८६

प्रार्थयामासुरभितः परिवार्य मुनीश्वरम्।

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग माता, कन्या, भगिनी तथा परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेवाले हो जाओ॥ ७६॥

तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्रियाँ तथा पुरुष मेरे द्वारा दिये हुए इस शापसे दग्ध होकर तुमलोगोंके ही समान हो जायँगे॥ ७७॥

मेरे अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन! मूलप्रकृति परमेश्वरी भगवती गायत्रीका अवश्य ही तुमलोगोंपर महान् कोप है। अतः तुमलोगोंका अन्धकूप आदि नरककुण्डोंमें सदा वास होगा॥ ७८½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकारका वाग्दण्ड देकर गौतममुनिने आचमन किया और तत्पश्चात् भगवती गायत्रीके दर्शनार्थ अत्यन्त उत्सुक होकर वे देवी-मन्दिर गये। वहाँ उन्होंने महादेवीको प्रणाम किया। वे परात्परा भगवती गायत्री भी ब्राह्मणोंकी कृतघ्नताको देखकर स्वयं अपने मनमें चकित हो रही थीं और आज भी उनका मुख आश्चर्यसे युक्त दिखायी पड़ता है॥ ७९—८१॥

आश्चर्ययुक्त मुखकमलवाली भगवती गायत्रीने उन मुनिवर गौतमसे कहा—'हे महाभाग! सर्पको दिया गया दुग्ध उसके विषको ही बढ़ानेवाला होता है। अब आप धैर्य धारण कीजिये; क्योंकि कर्मकी ऐसी ही गति होती है।' तत्पश्चात् भगवतीको प्रणामकर गौतमजी अपने आश्रमके लिये चल दिये॥ ८२-८३॥

तब शापदग्ध वे ब्राह्मण वेदोंको भूल गये। उन सभीको गायत्री मन्त्र भी विस्मृत हो गया। ऐसी आश्चर्यकारी घटना हुई॥ ८४॥

अब वे सभी ब्राह्मण एकत्र होकर पश्चात्ताप करने लगे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्होंने मुनिवर गौतमको प्रणाम किया॥ ८५॥

लज्जासे अपने मुख नीचेकी ओर किये हुए वे कुछ भी वाक्य नहीं बोल सके। वे चारों ओरसे मुनीश्वरको घेरकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगे—आप प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये॥ ८६½॥

करुणापूर्णहृदयो मुनिस्तान्समुवाच ह॥ ८७

कृष्णावतारपर्यन्तं कुम्भीपाके भवेत्स्थितिः।
न मे वाक्यं मृषा भूयादिति जानीथ सर्वथा॥ ८८

ततः परं कलियुगे भुवि जन्म भवेद्धि वाम्।
मदुक्तं सर्वमेतत्तु भवेदेव न चान्यथा॥ ८९

मच्छापस्य विमोक्षार्थं युष्माकं स्याद्यदीषणा।
तर्हि सेव्यं सदा सर्वैर्गायत्रीपदपङ्कजम्॥ ९०

व्यास उवाच

इति सर्वान्विसृज्याथ गौतमो मुनिसत्तमः।
प्रारब्धमिति मत्वा तु चित्ते शान्तिं जगाम ह॥ ९१

एतस्मात्कारणाद्राजन् गते कृष्णे तु धीमति।
कलौ युगे प्रवृत्ते तु कुम्भीपाकात्तु निर्गताः॥ ९२

भुवि जाता ब्राह्मणाश्च शापदग्धाः पुरा तु ये।
सन्ध्यात्रयविहीनाश्च गायत्रीभक्तिवर्जिताः॥ ९३

वेदभक्तिविहीनाश्च पाखण्डमतगामिनः।
अग्निहोत्रादिसत्कर्मस्वधास्वाहाविवर्जिताः॥ ९४

मूलप्रकृतिमव्यक्तां नैव जानन्ति कर्हिचित्।
तप्तमुद्राङ्किताः केचित्कामाचाररताः परे॥ ९५

कापालिकाः कौलिकाश्च बौद्धा जैनास्तथापरे।
पण्डिता अपि ते सर्वे दुराचारप्रवर्तकाः॥ ९६

लम्पटाः परदारेषु दुराचारपरायणाः।
कुम्भीपाकं पुनः सर्वे यास्यन्ति निजकर्मभिः॥ ९७

तस्मात्सर्वात्मना राजन् संसेव्या परमेश्वरी।
न विष्णूपासना नित्या न शिवोपासना तथा॥ ९८

नित्या चोपासना शक्तेर्यां विना तु पतत्यधः।
सर्वमुक्तं समासेन यत्पृष्टं तत्त्वयानघ॥ ९९

इसपर मुनिका हृदय करुणासे भर आया और वे उन ब्राह्मणोंसे बोले—'कृष्णावतारपर्यन्त तुमलोगोंको कुम्भीपाक नरकमें वास करना पड़ेगा; क्योंकि मेरा वचन मिथ्या कदापि नहीं हो सकता—इसे तुमलोग भलीभाँति जान लो। तत्पश्चात् कलियुगमें भूमण्डलपर तुमलोगोंका जन्म होगा। मेरे द्वारा कही गयी ये सारी बातें अन्यथा नहीं हो सकतीं। यदि मेरे शापसे मुक्तिकी तुमलोगोंको इच्छा है, तो तुम सब भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सदा उपासना करो'॥ ८७—९०॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने सभी ब्राह्मणोंको विदा कर दिया। तत्पश्चात् 'यह सब प्रारब्धका प्रभाव है'—ऐसा मानकर उन्होंने अपना चित्त शान्त कर लिया। हे राजन्! यही कारण है कि बुद्धिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णके महाप्रयाण करनेके पश्चात् कलियुग आनेपर वे सभी ब्राह्मण कुम्भीपाक नरककुण्डसे निकल आये॥ ९१-९२॥

इस प्रकार पूर्वकालमें शापसे दग्ध वे ब्राह्मण भूमण्डलपर उत्पन्न हुए; जो त्रिकाल सन्ध्यासे हीन, भगवती गायत्रीकी भक्तिसे विमुख, वेदोंके प्रति श्रद्धारहित, पाखण्डमतका अनुसरण करनेवाले, अग्निहोत्र आदि सत्कर्म न करनेवाले और स्वाहा-स्वधासे रहित हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जो मूलप्रकृति तथा अव्यक्तस्वरूपिणी गायत्रीके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। कोई-कोई तप्तमुद्रा धारण करके स्वेच्छाचार-परायण हो गये हैं। उनमेंसे कुछ कापालिक, कौलिक, बौद्ध तथा जैनमतको माननेवाले हैं, वे सभी पण्डित होते हुए भी दुराचारके प्रवर्तक हैं। परायी स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेवाले सभी लम्पट अपने कुत्सित कर्मोंके कारण पुनः उसी कुम्भीपाक नरककुण्डमें जायँगे॥ ९३—९७॥

अतएव हे राजन्! हर प्रकारसे परमेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये। न विष्णुकी उपासना नित्य है और न तो शिवकी ही उपासना नित्य है; केवल शक्तिकी उपासना नित्य है, जिसके न करनेसे मनुष्यका अध:पतन हो जाता है। हे निष्पाप! आपने मुझसे जो पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपमें बता दिया। अब आप

अतः परं मणिद्वीपवर्णनं शृणु सुन्दरम्।
यत्परं स्थानमाद्याया भुवनेश्या भवारणेः॥ १००

मणिद्वीपका मनोरम वर्णन सुनिये, जो जगत्‌को उत्पन्न करनेवाली आदिशक्तिस्वरूपिणी भुवनेश्वरीका परमधाम है॥ ९८—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे ब्राह्मणादीनां गायत्रीभिन्नान्यदेवोपासनाश्रद्धाहेतुनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

* * *

अथ दशमोऽध्यायः

मणिद्वीपका वर्णन

व्यास उवाच

ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः।
मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥ १

सर्वस्मादधिको यस्मात्सर्वलोकस्ततः स्मृतः।
पुरा पराम्बयैवायं कल्पितो मनसेच्छया॥ २

सर्वादौ निजवासार्थं प्रकृत्या मूलभूतया।
कैलासादधिको लोको वैकुण्ठादपि चोत्तमः॥ ३

गोलोकादपि सर्वस्मात्सर्वलोकोऽधिकः स्मृतः।
न तत्समं त्रिलोक्यां तु सुन्दरं विद्यते क्वचित्॥ ४

छत्रीभूतं त्रिजगतो भवसन्तापनाशकम्।
छायाभूतं तदेवास्ति ब्रह्माण्डानां तु सत्तम॥ ५

बहुयोजनविस्तीर्णो गम्भीरस्तावदेव हि।
मणिद्वीपस्य परितो वर्तते तु सुधोदधिः॥ ६

मरुत्सङ्घट्टनोत्कीर्णतरङ्गशतसङ्कुलः।
रत्नाच्छवालुकायुक्तो झषशङ्खसमाकुलः॥ ७

वीचिसङ्घर्षसञ्जातलहरीकणशीतलः।
नानाध्वजसमायुक्तनानापोतगतागतैः॥ ८

विराजमानः परितस्तीररत्नद्रुमो महान्।
तदुत्तरमयोधातुनिर्मितो गगने ततः॥ ९
सप्तयोजनविस्तीर्णः प्राकारो वर्तते महान्।

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती विराजमान रहती हैं॥ १॥

चूँकि यह सभी लोकोंसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसे सर्वलोक कहा गया है। पूर्वकालमें मूलप्रकृतिस्वरूपिणी पराम्बा भगवतीने सबसे प्रारम्भमें अपने निवासहेतु स्वेच्छासे इसका निर्माण किया था। यह लोक कैलास, वैकुण्ठ और गोलोकसे भी महान् तथा उत्तम है। समस्त लोकोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण यह सर्वलोक कहा गया है। तीनों लोकोंमें उसके समान सुन्दर स्थान कहीं नहीं है॥ २—४॥

हे सत्तम! वह मणिद्वीप तीनों जगत्‌का छत्रस्वरूप तथा सांसारिक सन्तापोंका नाश करनेवाला है और सभी ब्रह्माण्डोंका भी छायास्वरूप वही है॥ ५॥

उस मणिद्वीपके चारों ओर अनेक योजन विस्तारवाला तथा परिमाणमें उतना ही गहरा अमृतका सागर विद्यमान है, जो पवनके आघातसे उठी हुई सैकड़ों तरंगोंसे परिपूर्ण, रत्नमयी स्वच्छ बालुकासे युक्त, मत्स्य और शंखोंसे सम्पन्न, तरंगोंके परस्पर संघर्षसे उत्पन्न बड़ी-बड़ी लहरोंद्वारा विकीर्ण शीतल जल-कणोंसे शोभायमान और अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे युक्त नानाविध आवागमनवाले पोतोंसे मण्डित है॥ ६—८॥

उस सुधासागरके चारों ओर तटोंपर रत्नमय वृक्ष विराजमान हैं। उसके उत्तर तरफ लौहधातुकी बनी हुई सात योजन विस्तारवाली एक गगनस्पर्शी महान् चहारदीवारी है॥ ९½॥

नानाशस्त्रप्रहरणा नानायुद्धविशारदाः ॥ १०

रक्षका निवसन्त्यत्र मोदमानाः समन्ततः।
चतुर्द्वारसमायुक्तो द्वारपालशतान्वितः ॥ ११

नानागणैः परिवृतो देवीभक्तियुतैर्नृप।
दर्शनार्थं समायान्ति ये देवा जगदीशितुः ॥ १२

तेषां गणा वसन्त्यत्र वाहनानि च तत्र हि।
विमानशतसङ्घर्षघण्टास्वनसमाकुलः ॥ १३

हयहेषाखुराघातबधिरीकृतदिङ्मुखः ।
गणैः किलकिलारावैर्वेत्रहस्तैश्च ताडिताः ॥ १४

सेवका देवसङ्घानां भ्राजन्ते तत्र भूमिप।
तस्मिन्कोलाहले राजन्न शब्दः केनचित्क्वचित् ॥ १५

कस्यचिच्छ्रूयतेऽत्यन्तं नानाध्वनिसमाकुले।
पदे पदे मिष्टवारिपरिपूर्णसरांसि च ॥ १६

वाटिका विविधा राजन् रत्नद्रुमविराजिताः।
तदुत्तरं महासारधातुनिर्मितमण्डलः ॥ १७

सालोऽपरो महानस्ति गगनस्पर्शि यच्छिरः।
तेजसा स्याच्छतगुणः पूर्वसालादयं परः ॥ १८

गोपुरद्वारसहितो बहुवृक्षसमन्वितः।
या वृक्षजातयः सन्ति सर्वास्तास्तत्र सन्ति च ॥ १९

निरन्तरं पुष्पयुताः सदा फलसमन्विताः।
नवपल्लवसंयुक्ताः परसौरभसङ्कुलाः ॥ २०

पनसा बकुला लोध्राः कर्णिकाराश्च शिंशपाः।
देवदारुकाञ्चनारा आम्राश्चैव सुमेरवः ॥ २१

लिकुचा हिङ्गुलाश्चैला लवङ्गाः कट्फलास्तथा।
पाटला मुचुकुन्दाश्च फलिन्यो जघनेफलाः ॥ २२

उसमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें दक्ष तथा नानाविध युद्धकलाओंमें पारंगत बहुत-से रक्षक सभी ओर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं ॥ १०½ ॥

हे राजन्! उस परकोटेमें चार द्वार तथा सैकड़ों द्वारपाल हैं। भगवतीमें भक्ति रखनेवाले अनेक गणोंसे वह चारों ओरसे घिरा हुआ है। जो देवता भगवती जगदीश्वरीके दर्शनार्थ आते हैं, उनके गण तथा वाहन यहाँ रहते हैं ॥ ११-१२½ ॥

यह सैकड़ों विमानोंकी घरघराहट तथा घंटा-ध्वनिसे सदा परिपूर्ण रहता है। घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके खुरोंके आघातकी ध्वनिसे दिशाएँ बधिर-सी हो जाती हैं। हे राजन्! किलकिलाहटकी ध्वनि करते हुए तथा हाथमें बेंत लिये हुए देवी-गणोंके द्वारा ताडित देवताओंके सेवक वहाँ सदा विराजमान रहते हैं ॥ १३-१४½ ॥

हे राजन्! उस कोलाहलमें कोई किसीकी बात नहीं सुन पाता। अनेक प्रकारकी ध्वनियोंसे मिश्रित उस स्थानपर अत्यधिक चेष्टा करनेपर ही किसीकी बात सुनी जा सकती है। हे राजन्! वहाँ स्थान-स्थानपर मीठे जलसे परिपूर्ण सरोवर और रत्नमय वृक्षोंसे युक्त अनेक प्रकारके उद्यान सुशोभित हो रहे हैं ॥ १५-१६½ ॥

उस परकोटेके आगे कांस्य धातुसे बना हुआ उससे भी विशाल दूसरा मण्डलाकार परकोटा है, जिसका शिखर आकाशको छूता रहता है। यह परकोटा पहले परकोटेसे तेजमें सौ गुना अधिक है ॥ १७-१८ ॥

गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाला यह प्राकारमण्डल अनेक वृक्षोंसे युक्त है। वृक्षोंकी जितनी जातियाँ होती हैं, वे सब वहाँपर हैं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते हैं तथा वे नये-नये पल्लवों और उत्तम सुगन्धसे सदा परिपूर्ण रहते हैं ॥ १९-२० ॥

कटहल, मौलसिरी, लोध, कर्णिकार, शीशम, देवदारु, कचनार, आम, सुमेरु, लिकुच, हिंगुल, इलायची, लौंग, कट्फल, पाटल, मुचुकुन्द, फलिनी,

तालास्तमालाः सालाश्च कङ्कोला नागभद्रकाः।
पुन्नागाः पीलवः साल्वका वै कर्पूरशाखिनः॥ २३

अश्वकर्णा हस्तिकर्णास्तालपर्णाश्च दाडिमाः।
गणिका बन्धुजीवाश्च जम्बीराश्च कुरण्डकाः॥ २४

चाम्पेया बन्धुजीवाश्च तथा वै कनकद्रुमाः।
कालागुरुद्रुमाश्चैव तथा चन्दनपादपाः॥ २५

खर्जूरा यूथिकास्तालपर्ण्यश्चैव तथेक्षवः।
क्षीरवृक्षाश्च खदिराश्चिञ्चाभल्लातकास्तथा॥ २६

रुचकाः कुटजा वृक्षा बिल्ववृक्षास्तथैव च।
तुलसीनां वनान्येवं मल्लिकानां तथैव च॥ २७

इत्यादितरुजातीनां वनान्युपवनानि च।
नानावापीशतैर्युक्तान्येवं सन्ति धराधिप॥ २८

कोकिलारावसंयुक्ता गुञ्जद्भ्रमरभूषिताः।
निर्यासस्राविणः सर्वे स्निग्धच्छायास्तरूत्तमाः॥ २९

नानाऋतुभवा वृक्षा नानापक्षिसमाकुलाः।
नानारसस्राविणीभिर्नदीभिरतिशोभिताः॥ ३०

पारावतशुकव्रातसारिकापक्षमारुतैः।
हंसपक्षसमुद्भूतावातव्रातैश्चलद्द्रुमम्॥ ३१

सुगन्धग्राहिपवनपूरितं तद्वनोत्तमम्।
सहितं हरिणीयूथैर्धावमानैरितस्ततः॥ ३२

नृत्यद्बर्हिकदम्बस्य केकारावैः सुखप्रदैः।
नादितं तद्वनं दिव्यं मधुस्रावि समन्ततः॥ ३३

कांस्यसालादुत्तरे तु ताम्रसालः प्रकीर्तितः।
चतुरस्रसमाकार उन्नत्या सप्तयोजनः॥ ३४

द्वयोस्तु सालयोर्मध्ये सम्प्रोक्ता कल्पवाटिका।
येषां तरूणां पुष्पाणि काञ्चनाभानि भूमिप॥ ३५

पत्राणि काञ्चनाभानि रत्नबीजफलानि च।
दशयोजनगन्धो हि प्रसर्पति समन्ततः॥ ३६

तद्वनं रक्षितं राजन् वसन्तेनर्तुनानिशम्।
पुष्पसिंहासनासीनः पुष्पच्छत्रविराजितः॥ ३७

पुष्पभूषाभूषितश्च पुष्पासवविघूर्णितः।
मधुश्रीर्माधवश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ३८

जघनेफल, ताल, तमाल, साल, कंकोल, नागभद्र, नागकेसर, पीलु, साल्व, कर्पूरशाखी, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, दाडिम, गणिका, बन्धुजीव, जम्भीरी नीबू, कुरण्डक, चम्पा, बन्धुजीव, धतूरा, कालागुरु, चन्दन, खजूर, जूही, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, इमली, भेलावा, बिजौरा नीबू, कुटज तथा बिल्वके वृक्ष वहाँ सुशोभित रहते हैं। तुलसी तथा मल्लिकाके वन भी वहाँ विद्यमान हैं। हे राजन्! अनेक जातिवाले वृक्षोंके वन तथा उपवन यहाँ शोभायमान हैं, जो सैकड़ों बावलियोंसे युक्त हैं॥ २१—२८॥

कोयलोंकी मीठी ध्वनिसे युक्त, भौंरोके गुंजारसे भूषित तथा शीतल छाया प्रदान करनेवाले वे सभी उत्तम वृक्ष निरन्तर रसस्राव करते रहते हैं। अनेक ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले वे वृक्ष अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सदा युक्त रहते हैं। वे अनेकविध रस प्रवाहित करनेवाली नदियोंसे सर्वदा सुशोभित रहते हैं। कबूतर, तोता, मैना तथा हंस आदि पक्षियोंके पंखोंसे निकली हुई वायुसे वहाँके वृक्ष सदा हिलते रहते हैं। सुगन्धि-मिश्रित पवनसे परिपूर्ण वह वन इधर-उधर दौड़ती हुई हरिणियोंके समूहोंसे सदा शोभा प्राप्त करता है। नाचते हुए मोरोंकी सुखदायक केका-ध्वनियोंसे मुखरित वह दिव्य वन सदा मधुका स्राव करता रहता है॥ २९—३३॥

उस कांस्यके प्राकारके आगे ताम्रकी चहारदीवारी बतायी गयी है, जो आकारमें चौकोर तथा ऊँचाईमें सात योजन परिमाणवाली है। हे राजन्! उन दोनों प्राकारोंके मध्यमें एक कल्पवाटिका कही गयी है, जिसके वृक्षोंके पुष्प तथा पत्ते सुवर्ण-सदृश आभावाले हैं और बीज तथा फल रत्नके समान हैं। वहाँ चारों ओर दस योजनतक सुगन्ध फैली रहती है॥ ३४—३६॥

हे राजन्! वसन्त ऋतु उस वनकी सदा सुरक्षा करता रहता है। पुष्पके भूषणसे विभूषित, पुष्प-छत्रसे सुशोभित तथा पुष्पके आसवका सेवन करके मदमत्त वह वसन्त पुष्पके सिंहासनपर विराजमान रहता है। मधुश्री तथा माधवश्री नामक मुसकानयुक्त मुखवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं, जो सदा पुष्पोंके गुच्छोंका

क्रीडतः स्मेरवदने सुमस्तबककन्दुकैः।
अतीव रम्यं विपिनं मधुस्रावि समन्ततः॥ ३९

दशयोजनपर्यन्तं कुसुमामोदवायुना।
पूरितं दिव्यगन्धर्वैः साङ्गनैर्गानलोलुपैः॥ ४०

शोभितं तद्वनं दिव्यं मत्तकोकिलनादितम्।
वसन्तलक्ष्मीसंयुक्तं कामिकामप्रवर्धनम्॥ ४१

ताम्रसालादुत्तरत्र सीससालः प्रकीर्तितः।
समुच्छ्रायः स्मृतोऽप्यस्य सप्तयोजनसंख्यया॥ ४२

सन्तानवाटिकामध्ये सालयोस्तु द्वयोर्नृप।
दशयोजनगन्धस्तु प्रसूनानां समन्ततः॥ ४३

हिरण्याभानि कुसुमान्युत्फुल्लानि निरन्तरम्।
अमृतद्रवसंयुक्तफलानि मधुराणि च॥ ४४

ग्रीष्मर्तुर्नायकस्तस्या वाटिकाया नृपोत्तम।
शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ४५

सन्तापत्रस्तलोकास्तु वृक्षमूलेषु संस्थिताः।
नानासिद्धैः परिवृतो नानादेवैः समन्वितः॥ ४६

विलासिनीनां वृन्दैस्तु चन्दनद्रवपङ्किलैः।
पुष्पमालाभूषितैस्तु तालवृन्तकराम्बुजैः॥ ४७

प्राकारः शोभितो राजञ्छीतलाम्बुनिषेविभिः।
सीससालादुत्तरत्राप्यारकूटमयः शुभः॥ ४८

प्राकारो वर्तते राजन् मुनियोजनदैर्घ्यवान्।
हरिचन्दनवृक्षाणां वाटी मध्ये तयोः स्मृता॥ ४९

सालयोरधिनाथस्तु वर्षर्तुर्मेघवाहनः।
विद्युत्पिङ्गलनेत्रश्च जीमूतकवचः स्मृतः॥ ५०

कन्दुक बनाकर क्रीडा करती रहती हैं। वह अत्यन्त रम्य वन चारों ओर मधुकी धारा प्रवाहित करता रहता है॥ ३७—३९॥

पुष्पोंकी गन्धको लेकर प्रवाहित होनेवाली वायुके द्वारा वहाँका दस योजनपर्यन्त स्थान सदा सुवासित रहता है। इस प्रकार वह दिव्य वन वसन्तलक्ष्मीसे संयुक्त, कामियोंके कामको उद्दीप्त करनेवाला, मतवाले कोकिलोंकी ध्वनिसे मुखरित तथा अपनी अंगनाओंसहित गान-लोलुप दिव्य गन्धर्वोंसे सदा सुशोभित रहता है॥ ४०-४१॥

उस ताम्रके परकोटेके आगे एक सीसेका परकोटा है; इसकी भी ऊँचाई सात योजन कही गयी है। हे राजन्! इन दोनों प्राकारोंके मध्यमें सन्तान नामक वाटिका है। वहाँके पुष्पोंकी सुगन्धि चारों ओर दस योजनतक फैली रहती है। सुवर्णकी आभावाले खिले हुए फूल तथा अमृत-तुल्य मधुर रसोंसे परिपूर्ण मधुर फल वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं॥ ४२—४४॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस वाटिकाका नायक ग्रीष्मऋतु है। शुक्रश्री तथा शुचिश्री नामवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। सन्तापसे व्याकुल प्राणी उस वाटिकाके वृक्षोंकी छायामें सुखपूर्वक स्थित रहते हैं। अनेक सिद्धों तथा देवताओंसे वह प्राकार सदा समन्वित रहता है॥ ४५-४६॥

हे राजन्! पुष्प-मालाओंसे विभूषित होकर अपने करकमलोंमें ताड़का पंखा लिये और अपने अंगोंमें चन्दन लगाये तथा शीतल जलका सेवन करनेवाली अनेक विलासिनी अंगनाओंके द्वारा वह प्राकार नित्य सुशोभित रहता है॥ ४७½॥

हे राजन्! उस सीसेके प्राकारके भी आगे परिमाणमें सात योजन लम्बा पीतलकी धातुसे निर्मित एक सुन्दर परकोटा है॥ ४८½॥

उन दोनों परकोटोंके मध्यमें हरिचन्दन वृक्षोंकी एक वाटिका कही गयी है। वहाँका स्वामी मेघोंपर आसीन रहनेवाला वर्षाऋतु है। वह पिंगल-वर्णवाले विद्युत्को नेत्रके रूपमें तथा मेघोंको कवचके रूपमें धारण करनेवाला कहा गया है। विद्युत्का गर्जन ही इसका मुख है और वह इन्द्रधनुषको

वज्रनिर्घोषमुखरश्चेन्द्रधन्वा समन्ततः।
सहस्रशो वारिधारा मुञ्चन्नास्ते गणावृतः॥ ५१

नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्या रस्यमालिनी।
अम्बा दुला निरत्निश्चाभ्रमन्ती मेघयन्तिका॥ ५२

वर्षयन्ती चिपुणिका वारिधारा च सम्मताः।
वर्षर्तोर्द्वादश प्रोक्ताः शक्तयो मदविह्वलाः॥ ५३

नवपल्लववृक्षाश्च नवीनलतिकान्विताः।
हरितानि तृणान्येव वेष्टिता यैर्धराखिला॥ ५४

नदीनदप्रवाहाश्च प्रवहन्ति च वेगतः।
सरांसि कलुषाम्बूनि रागिचित्तसमानि च॥ ५५

वसन्ति देवाः सिद्धाश्च ये देवीकर्मकारिणः।
वापीकूपतडागाश्च ये देव्यर्थं समर्पिताः॥ ५६

ते गणा निवसन्त्यत्र सविलासाश्च साङ्गनाः।
आरकूटमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्॥ ५७

पञ्चलोहात्मकः सालो मध्ये मन्दारवाटिका।
नानापुष्पलताकीर्णा नानापल्लवशोभिता॥ ५८

अधिष्ठातात्र सम्प्रोक्तः शरदृतुरनामयः।
इषुलक्ष्मीरूर्जलक्ष्मीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते॥ ५९

नानासिद्धा वसन्त्यत्र साङ्गनाः सपरिच्छदाः।
पञ्चलोहमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्॥ ६०

दीप्यमानो महाशृङ्गैर्वर्तते रौप्यसालकः।
पारिजाताटवीमध्ये प्रसूनस्तबकान्विता॥ ६१

दशयोजनगन्धीनि कुसुमानि समन्ततः।
मोदयन्ति गणान्सर्वान्ये देवीकर्मकारिणः॥ ६२

धनुषरूपमें धारण किये रहता है। वह अपने गणोंसे आवृत होकर चारों ओर हजारों जलधाराएँ छोड़ता रहता है॥ ४९—५१॥

नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चिपुणिका और वारिधारा—ये बारह वर्षाऋतुकी प्रिय शक्तियाँ कही गयी हैं, जो सदा मदसे विह्वल रहती हैं॥ ५२-५३॥

नवीन लताओंसे समन्वित तथा नवीन पल्लवोंसे युक्त वृक्ष तथा हरे-भरे तृण वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं, जिनसे वहाँकी सम्पूर्ण भूमि आच्छादित रहती है। वहाँ नदी तथा नद अत्यन्त वेगसे प्रवाहित होते रहते हैं। राग-द्वेषसे युक्त मनुष्योंके चित्तके समान गन्दे जलवाले अनेक सरोवर भी वहाँ विद्यमान हैं॥ ५४-५५॥

देवता तथा सिद्धपुरुष वहाँ निवास करते हैं। देवी-कर्ममें निरन्तर तत्पर रहनेवाले तथा वापी, कूप और तालाबका निर्माण कराके देवीको अर्पण करनेवाले वे लोग अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ आनन्दपूर्वक रहते हैं॥ ५६½॥

उस पीतलके प्राकारके आगे सात योजनकी लम्बाईवाला एक पंचलौह-निर्मित परकोटा है, जिसके बीचमें नानाविध पुष्पों, लताओं तथा पल्लवोंसे सुशोभित मन्दारवाटिका विराजमान है॥ ५७-५८॥

विकाररहित शरद् ऋतुको यहाँका अधिष्ठाता कहा गया है। इक्षुलक्ष्मी और ऊर्जलक्ष्मी—ये उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। अनेक सिद्धलोग अपनी भार्याओं तथा अनुचरोंके साथ यहाँ निवास करते हैं॥ ५९½॥

उस पंचलौहमय परकोटेके आगे विशाल शिखरों तथा सात योजन लम्बाईवाला एक दीप्तियुक्त रजत-निर्मित परकोटा है। उसके मध्यमें पुष्पोंके गुच्छोंसे परिपूर्ण पारिजात-वन विद्यमान है॥ ६०-६१॥

चारों ओर दस योजनकी दूरीतक सुगन्ध फैलानेवाले पुष्प वहाँपर देवी-पूजन आदि कर्मोंमें तत्पर सभी गणोंको प्रसन्न किये रहते हैं॥ ६२॥

तत्राधिनाथः सम्प्रोक्तो हेमन्तर्तुर्महोज्ज्वलः।
सगणः सायुधः सर्वान् रागिणो रञ्जयन्नृप॥ ६३

सहश्रीश्च सहस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते।
वसन्ति तत्र सिद्धाश्च ये देवीव्रतकारिणः॥ ६४

रौप्यसालमयादग्रे सप्तयोजनदैर्घ्यवान्।
सौवर्णसालः सम्प्रोक्तस्तप्तहाटककल्पितः॥ ६५

मध्ये कदम्बवाटी तु पुष्पपल्लवशोभिता।
कदम्बमदिराधाराः प्रवर्तन्ते सहस्रशः॥ ६६

याभिर्निपीतपीताभिर्निजानन्दोऽनुभूयते।
तत्राधिनाथः सम्प्रोक्तः शैशिरर्तुर्महोदयः॥ ६७

तपःश्रीश्च तपस्यश्रीर्द्वे भार्ये तस्य सम्मते।
मोदमानः सहैताभ्यां वर्तते शिशिराकृतिः॥ ६८

नानाविलाससंयुक्तो नानागणसमावृतः।
निवसन्ति महासिद्धा ये देवीदानकारिणः॥ ६९

नानाभोगसमुत्पन्नमहानन्दसमन्विताः।
साङ्गनाः परिवारैस्तु सङ्घशः परिवारिताः॥ ७०

स्वर्णसालमयादग्रे मुनियोजनदैर्घ्यवान्।
पुष्परागमयः सालः कुङ्कुमारुणविग्रहः॥ ७१

पुष्परागमयी भूमिर्वनान्युपवनानि च।
रत्नवृक्षालवालाश्च पुष्परागमयाः स्मृताः॥ ७२

प्राकारो यस्य रत्नस्य तद्रत्नरचिता द्रुमाः।
वनभूः पक्षिणश्चैव रत्नवर्णजलानि च॥ ७३

मण्डपा मण्डपस्तम्भाः सरांसि कमलानि च।
प्राकारे तत्र यद्यत्स्यात्तत्सर्वं तत्समं भवेत्॥ ७४

हे राजन्! महान् उज्ज्वल हेमन्तऋतु वहाँका स्वामी कहा गया है। वह सभी रागी पुरुषोंको आनन्दित करते हुए हाथमें आयुध लेकर अपने गणोंके साथ वहाँ उपस्थित रहता है॥ ६३॥

उसकी सहश्री तथा सहस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। भगवतीका व्रत करनेवाले जो सिद्धलोग हैं, वे वहाँ निवास करते हैं॥ ६४॥

उस रजतके परकोटेके आगे तप्त स्वर्णसे निर्मित सात योजन लम्बा एक अन्य परकोटा है, जिसे सौवर्णसाल कहा गया है॥ ६५॥

उसके बीचमें पुष्पों तथा पल्लवोंसे सुशोभित एक कदम्ब-वाटिका है, जहाँ कदम्बके आसवकी हजारों धाराएँ निरन्तर बहती रहती हैं, जिसका सेवन करनेसे आत्मानन्दका अनुभव होता है। वहाँका स्वामी श्रेष्ठ शिशिर ऋतु कहा गया है॥ ६६-६७॥

उसकी तपःश्री और तपस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। अपने अनेक गणोंसे घिरा हुआ शिशिर ऋतु इन दोनों भार्याओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक अनेकविध क्रीडाओंमें तत्पर रहता है॥ ६८½॥

देवीकी प्रसन्नताके निमित्त अनेक दान करनेवाले जो महान् सिद्धपुरुष हैं, वे अनेकविध भोगोंसे उत्पन्न महानन्दसे युक्त होकर और अपने परिवारजनों तथा भार्याओंको साथ लेकर वहाँ समूहमें निवास करते हैं॥ ६९-७०॥

उस स्वर्णनिर्मित परकोटेके आगे कुमकुमके समान अरुणवर्णवाला तथा सात योजन लम्बा पुष्परागमणिनिर्मित परकोटा है॥ ७१॥

वहाँकी भूमि पुष्परागमयी है। इसी प्रकार वहाँके वन, उपवन तथा थालोंसमेत वृक्ष पुष्परागरत्नसे युक्त कहे गये हैं॥ ७२॥

वहाँ जिस रत्नका परकोटा बना हुआ है, उसी रत्नसे वहाँके वृक्ष, वन, भूमि, पक्षी, मण्डप, मण्डपोंके स्तम्भ, सरोवर और कमल भी निर्मित हैं; वहाँ जल भी उसी रत्नके वर्णका है। उस परकोटेके अन्दर जो-जो वस्तुएँ हैं, वे सब उसी रत्नके समान हैं॥ ७३-७४॥

परिभाषेयमुद्दिष्टा रत्नसालादिषु प्रभो।
तेजसा स्याल्लक्षगुणः पूर्वसालात्परो नृप॥ ७५

दिक्पाला निवसन्त्यत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्।
दिक्पालानां समष्ट्यात्मरूपाः स्फूर्जद्वरायुधाः॥ ७६

पूर्वाशायां समुत्तुङ्गशृङ्गा पूरमरावती।
नानोपवनसंयुक्तो महेन्द्रस्तत्र राजते॥ ७७

स्वर्गशोभा च या स्वर्गे यावती स्यात्ततोऽधिका।
समष्टिशतनेत्रस्य सहस्त्रगुणतः स्मृता॥ ७८

ऐरावतसमारूढो वज्रहस्तः प्रतापवान्।
देवसेनापरिवृतो राजतेऽत्र शतक्रतुः॥ ७९

देवाङ्गनागणयुता शची तत्र विराजते।
वह्निकोणे वह्निपुरी वह्निपूःसदृशी नृप॥ ८०

स्वाहास्वधासमायुक्तो वह्निस्तत्र विराजते।
निजवाहनभूषाढ्यो निजदेवगणैर्वृतः॥ ८१

याम्याशायां यमपुरी तत्र दण्डधरो महान्।
स्वभटैर्वेष्टितो राजन् चित्रगुप्तपुरोगमैः॥ ८२

निजशक्तियुतो भास्वत्तनयोऽस्ति यमो महान्।
नैर्ऋत्यां दिशि राक्षस्यां राक्षसैः परिवारितः॥ ८३

खड्गधारी स्फुरन्नास्ते निर्ऋतिर्निजशक्तियुक्।
वारुण्यां वरुणो राजा पाशधारी प्रतापवान्॥ ८४

महाझषसमारूढो वारुणीमधुविह्वलः।
निजशक्तिसमायुक्तो निजयादोगणान्वितः॥ ८५

समास्ते वारुणे लोके वरुणानीरताकुलः।

हे प्रभो! रत्ननिर्मित परकोटोंके विषयमें मैंने आपको यह सम्यक् परिचय दे दिया। हे राजन्! इनमें प्रत्येक अगला प्राकार अपने पहलेवाले प्राकारसे एक लाख गुना अधिक तेजसम्पन्न है॥ ७५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले दिक्पाल अपना एक समूह बनाकर हाथोंमें श्रेष्ठ तथा अत्यन्त तेजोमय आयुध धारण किये हुए यहाँ निवास करते हैं॥ ७६॥

इस मणिद्वीपकी पूर्वदिशामें ऊँचे शिखरोंसे युक्त अमरावतीपुरी है। अनेकविध उपवनोंसे युक्त उस पुरीमें इन्द्र विराजमान रहते हैं॥ ७७॥

स्वर्गलोकमें जितनी शोभा स्वर्गकी है, उससे भी अधिक शोभा इस अमरावतीपुरीकी है। अनेक इन्द्रोंके हजार गुनेसे भी अधिक इसकी शोभा कही गयी है। अपने ऐरावतपर आरूढ होकर हाथमें वज्र धारण किये हुए प्रतापी इन्द्र देवसेनाके साथ यहाँ सुशोभित होते हैं और वहींपर अनेक देवांगनाओंके साथ शची भी विराजमान रहती हैं॥ ७८-७९½॥

हे राजन्! उस मणिद्वीपके अग्निकोणमें अग्निसदृश प्रज्वलित वह्निपुरी है। वहाँपर अपने देवगणोंसे घिरे हुए अग्निदेव अपने वाहनों तथा भूषणोंसे सुशोभित होकर 'स्वाहा' और 'स्वधा'—इन दो शक्तियोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८०-८१॥

मणिद्वीपकी दक्षिणदिशामें यमपुरी है। हे राजन्! सूर्यपुत्र महाभाग श्रेष्ठ यमराज चित्रगुप्त आदि मन्त्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे रहकर हाथमें दण्ड धारण किये अपनी शक्तिके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ८२½॥

इस मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें राक्षसोंकी पुरी विद्यमान है, जिसमें खड्गधारी निर्ऋति अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए विराजमान रहते हैं॥ ८३½॥

पश्चिमदिशामें वरुणलोकमें वारुणीपानसे विह्वल, पाश धारण करनेवाले प्रतापवान् वरुणराज विशाल मत्स्यपर सवार होकर वरुणानीमें आसक्त रहते हुए अपनी शक्ति वरुणानी तथा अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८४-८५½॥

वायुकोणे वायुलोको वायुस्तत्राधितिष्ठति॥ ८६

वायुसाधनसंसिद्धयोगिभिः परिवारितः।
ध्वजहस्तो विशालाक्षो मृगवाहनसंस्थितः॥ ८७

मरुद्गणैः परिवृतो निजशक्तिसमन्वितः।
उत्तरस्यां दिशि महान् यक्षलोकोऽस्ति भूमिप॥ ८८

यक्षाधिराजस्तत्रास्ते वृद्धिऋद्ध्यादिशक्तिभिः।
नवभिर्निधिभिर्युक्तस्तुन्दिलो धननायकः॥ ८९

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्मणिकन्धरः।
मणिभूषो मणिस्रग्वी मणिकार्मुकधारकः॥ ९०

इत्यादियक्षसेनानीसहितो निजशक्तियुक्।
ईशानकोणे सम्प्रोक्तो रुद्रलोको महत्तरः॥ ९१

अनर्घ्यरत्नखचितो यत्र रुद्रोऽधिदैवतम्।

मन्युमान्दीप्तनयनो बद्धपृष्ठमहेषुधिः॥ ९२

स्फूर्जद्धनुर्वामहस्तोऽधिज्यधन्वभिरावृतः।
स्वसमानैरसंख्यातरुद्रैः शूलवरायुधैः॥ ९३

विकृतास्यैः करालास्यैर्वमद्वह्निभिरास्यतः।
दशहस्तैः शतकरैः सहस्रभुजसंयुतैः॥ ९४

दशपादैर्दशग्रीवैस्त्रिनेत्रैरुग्रमूर्तिभिः।
अन्तरिक्षचरा ये च ये च भूमिचराः स्मृताः॥ ९५

रुद्राध्याये स्मृता रुद्रास्तैः सर्वैश्च समावृतः।
रुद्राणीकोटिसहितो भद्रकाल्यादिमातृभिः॥ ९६

नानाशक्तिसमाविष्टडामर्यादिगणावृतः।
वीरभद्रादिसहितो रुद्रो राजन् विराजते॥ ९७

मुण्डमालाधरो नागवलयो नागकन्धरः।
व्याघ्रचर्मपरीधानो गजचर्मोत्तरीयकः॥ ९८

चिताभस्माङ्गलिप्ताङ्गः प्रमथादिगणावृतः।
निनदड्डमरुध्वानैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः॥ ९९

अट्टहासास्फोटशब्दैः सन्त्रासितनभस्तलः।

मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक स्थित है। विशाल नेत्रोंवाले वायुदेव प्राणायाम करनेमें परम सिद्ध योगियोंके समूह तथा मरुद्गणोंसे सदा घिरे रहकर हाथमें ध्वजा धारण करके मृगपर आरूढ होकर अपनी शक्तिके साथ वहाँ निवास करते हैं॥ ८६-८७½॥

हे राजन्! मणिद्वीपकी उत्तरदिशामें यक्षोंका महान् लोक है। वहाँपर अपनी शक्तिसहित यक्षोंके अधिराज तुन्दिल कुबेर वृद्धि-ऋद्धि आदि शक्तियों, नौ निधियों और मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूष, मणिस्रग्वी, मणिकार्मुकधारक आदि यक्षसेनानियोंके साथ अपनी शक्तिसे समन्वित होकर विराजमान रहते हैं॥ ८८—९०½॥

मणिद्वीपके ईशानकोणमें बहुमूल्य रत्नोंसे सम्पन्न महान् रुद्रलोक कहा गया है, जहाँ प्रज्वलित नेत्रों तथा कोपयुक्त विग्रहवाले भगवान् रुद्र अपनी पीठपर महान् तरकस बाँधे तथा बायें हाथमें तेजस्वी धनुष लिये हुए अधिदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे भगवान् रुद्र धनुष्कोटिपर प्रत्यंचा चढ़ाये हुए धनुर्धारियों, हाथमें शूल तथा श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले, विकृत मुखवाले, विकराल मुखाकृतिवाले, मुखसे निरन्तर अग्निज्वाला उगलनेवाले, दस भुजाओंवाले, कोई सौ भुजाओंवाले, कितने हजार भुजाओंवाले, दस पैरोंवाले, दस गर्दनवाले, तीन नेत्रोंवाले और अत्यन्त उग्र विग्रहवाले अपने ही सदृश असंख्य रुद्रोंसे सदा घिरे रहते हैं। अन्तरिक्षलोकमें तथा भूलोकमें विचरण करनेवाले जो-जो रुद्र प्रसिद्ध हैं और रुद्राध्यायमें भी जो रुद्र वर्णित हैं; उन सबसे वे भगवान् रुद्र वहाँ आवृत रहते हैं। इसी प्रकार वे करोड़ों रुद्राणियों, भद्रकाली आदि मातृकाओं और विविध शक्तियोंसे युक्त डामरी आदि गणोंसे सदा घिरे रहते हैं। हे राजन्! गलेमें मुण्डकी माला, हाथमें सर्प-वलय, कन्धेपर सर्पका यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर और उत्तरीयके रूपमें गज-चर्म धारण करनेवाले; शरीरके अंगोंमें सदा चिताकी भस्म लगाये रहनेवाले; अपने डमरूकी तीव्र ध्वनिसे दिशाओंको बधिर बना देनेवाले; अपने अट्टहास और आस्फोट शब्दोंसे गगनमण्डलको भयभीत कर देनेवाले, भूतसमुदायसे युक्त रहनेवाले तथा समस्त प्राणियोंके आवासस्वरूप भगवान् महेश्वर

भूतसङ्घसमाविष्टो भूतावासो महेश्वरः।
ईशानदिक्पतिः सोऽयं नाम्ना चेशान एव च॥ १००

रुद्र वहाँपर वीरभद्र आदि गणोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। ये ईशानदिशाके अधिपति हैं; इसीलिये ये 'ईशान' नामसे विख्यात हैं॥ ९१—१००॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे मणिद्वीपवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

* * *

अथैकादशोऽध्यायः

मणिद्वीपके रत्नमय नौ प्राकारोंका वर्णन

व्यास उवाच

पुष्परागमयादग्रे कुङ्कुमारुणविग्रहः।
पद्मरागमयः सालो मध्ये भूश्चैव तादृशी॥ १
दशयोजनवान्दैर्घ्ये गोपुरद्वारसंयुतः।
तन्मणिस्तम्भसंयुक्ता मण्डपाः शतशो नृप॥ २
मध्ये भुवि समासीनाश्चतुःषष्टिमिताः कलाः।
नानायुधधरा वीरा रत्नभूषणभूषिताः॥ ३
प्रत्येकलोकस्तासां तु तत्तल्लोकस्य नायकाः।
समन्तात्पद्मरागस्य परिवार्य स्थिताः सदा॥ ४
स्वस्वलोकजनैर्जुष्टाः स्वस्ववाहनहेतिभिः।
तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु त्वं जनमेजय॥ ५
पिङ्गलाक्षी विशालाक्षी समृद्धिर्वृद्धिरेव च।
श्रद्धा स्वाहा स्वधाभिख्या माया संज्ञा वसुन्धरा॥ ६
त्रिलोकधात्री सावित्री गायत्री त्रिदशेश्वरी।
सुरूपा बहुरूपा च स्कन्दमाताच्युतप्रिया॥ ७
विमला चामला तद्वदरुणी पुनरारुणी।
प्रकृतिर्विकृतिः सृष्टिः स्थितिः संहृतिरेव च॥ ८
सन्ध्या माता सती हंसी मर्दिका वज्रिका परा।
देवमाता भगवती देवकी कमलासना॥ ९
त्रिमुखी सप्तमुख्यन्या सुरासुरविमर्दिनी।
लम्बोष्ठी चोर्ध्वकेशी च बहुशीर्षा वृकोदरी॥ १०
रथरेखाह्वया पश्चाच्छशिरेखा तथापरा।
गगनवेगा पवनवेगा वेगा चैव ततः परम्॥ ११
अग्रे भुवनपाला स्यात्तत्पश्चान्मदनातुरा।
अनङ्गानङ्गमथना तथैवानङ्गमेखला॥ १२
अनङ्गकुसुमा पश्चाद्विश्वरूपा सुरादिका।
क्षयङ्करी भवेच्छक्तिरक्षोभ्या च ततः परम्॥ १३
सत्यवादिन्यथ प्रोक्ता बहुरूपा शुचिव्रता।
उदाराख्या च वागीशी चतुःषष्टिमिताः स्मृताः॥ १४

व्यासजी बोले—पुष्परागनिर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणियुक्त प्राकार है, जिसके मध्यमें भूमि भी उसी प्रकारकी है। अनेक गोपुर और द्वारोंसे युक्त यह प्राकार लम्बाईमें दस योजन परिमाणवाला है। हे राजन्! वहाँ उसी मणिसे निर्मित खम्भोंसे युक्त सैकड़ों मण्डप विद्यमान हैं॥ १-२॥

उसके मध्यकी भूमिपर रत्नमय भूषणोंसे भूषित, अनेक आयुध धारण करनेवाली तथा पराक्रमसम्पन्न चौंसठ कलाएँ विराजमान रहती हैं। उन कलाओंका एक-एक पृथक् लोक है और अपने-अपने लोकको वे अधीश्वरी हैं। वहाँ चारों ओरकी सभी वस्तुएँ पद्मरागमणिसे निर्मित हैं। अपने-अपने लोकके वाहनों तथा आयुधोंसे युक्त वे कलाएँ अपने-अपने लोकके निवासियोंसे सदा घिरी रहती हैं। हे जनमेजय! अब मैं उन कलाओंके नाम बता रहा हूँ; आप सुनें॥ ३—५॥

पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, सन्ध्यामाता, सती, हंसी, मर्दिका, परा वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला, अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशी—ये चौंसठ कलाएँ कही गयी हैं॥ ६—१४॥

ज्वलज्जिह्वाननाः सर्वा वमन्त्यो वह्निमुल्बणम्।
जलं पिबामः सकलं संहरामो विभावसुम्॥ १५

पवनं स्तम्भयामोऽद्य भक्षयामोऽखिलं जगत्।
इति वाचं संगिरन्ते क्रोधसंरक्तलोचनाः॥ १६

चापबाणधराः सर्वा युद्धायैवोत्सुकाः सदा।
दंष्ट्राकटकटारावैर्बधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥ १७

पिङ्गोर्ध्वकेश्यः सम्प्रोक्ताश्चापबाणकराः सदा।
शताक्षौहिणिका सेनाप्येकैकस्याः प्रकीर्तिता॥ १८

एकैकशक्तेः सामर्थ्यं लक्षब्रह्माण्डनाशने।
शताक्षौहिणिका सेना तादृशी नृपसत्तम॥ १९

किं न कुर्याज्जगत्यस्मिन्नशक्यं वक्तुमेव तत्।
सर्वापि युद्धसामग्री तस्मिन्साले स्थिता मुने॥ २०

रथानां गणना नास्ति हयानां करिणां तथा।
शस्त्राणां गणना तद्वद् गणानां गणना तथा॥ २१

पद्मरागमयादग्रे गोमेदमणिनिर्मितः।
दशयोजनदैर्घ्येण प्राकारो वर्तते महान्॥ २२

भास्वज्जपाप्रसूनाभो मध्यभूस्तस्य तादृशी।
गोमेदकल्पितान्येव तद्वासिसदनानि च॥ २३

पक्षिणः स्तम्भवर्याश्च वृक्षा वाप्यः सरांसि च।
गोमेदकल्पिता एव कुङ्कुमारुणविग्रहाः॥ २४

तन्मध्यस्था महादेव्यो द्वात्रिंशच्छक्तयः स्मृताः।
नानाशस्त्रप्रहरणा गोमेदमणिभूषिताः॥ २५

प्रत्येकलोकवासिन्यः परिवार्य समन्ततः।
गोमेदसाले सन्नद्धाः पिशाचवदना नृप॥ २६

क्रोधके कारण अति रक्त नेत्रोंवाली तथा प्रज्वलित जिह्वासे युक्त मुखवाली वे सभी कलाएँ प्रचण्ड अग्नि उगलती हुई सदा इन शब्दोंका उच्चारण करती रहती हैं—‘हम अभी सम्पूर्ण जल पी डालेंगी, हम अग्निको नष्ट कर देंगी, हम वायुको रोक देंगी और समस्त संसारका भक्षण कर डालेंगी’॥ १५-१६॥

वे सभी कलाएँ धनुष-बाण धारण करके सदा युद्धके लिये तत्पर रहती हैं और दाँतोंके कटकटानेकी ध्वनिसे दिशाओंको बधिर-सी बना देती हैं॥ १७॥

अपने हाथमें सदा धनुष और बाण धारण करनेवाली ये शक्तियाँ पिंगलवर्णके उठे हुए केशोंसे सम्पन्न कही गयी हैं। इनमेंसे एक-एक कलाके पास सौ-सौ अक्षौहिणी सेना बतायी गयी है। लाखों ब्रह्माण्डोंको नष्ट कर डालनेकी क्षमता एक-एक शक्तिमें विद्यमान है। हे नृपश्रेष्ठ! तो फिर वैसी शक्तियोंसे सम्पन्न सौ अक्षौहिणी सेना इस संसारमें क्या नहीं कर सकती—उसे बतानेमें मैं असमर्थ हूँ॥ १८-१९½॥

हे मुने! युद्धकी समस्त सामग्री उस पद्मरागके प्राकारमें सदा विद्यमान रहती है। उसमें रथों, घोड़ों, हाथियों और शस्त्रोंकी गणना नहीं है। उसी प्रकार गणोंकी भी कोई गणना नहीं है॥ २०-२१॥

इस पद्मरागमय प्राकारके आगे गोमेदमणिसे निर्मित दस योजन लम्बा एक परकोटा है, जो प्रभायुक्त जपाकुसुमके समान कान्तिमान् है। इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही है। वहाँके निवासियोंके भवन, पक्षी, उत्तम खम्भे, वृक्ष, वापी तथा सरोवर—ये सभी गोमेदमणिसे ही निर्मित हैं। गोमेदमणिसे बनी वहाँकी सभी वस्तुओंका विग्रह कुमकुमके समान अरुण वर्णका है॥ २२—२४॥

उस प्राकारके मध्यमें गोमेदमणिसे भूषित तथा अनेकविध शस्त्र धारण करनेवाली बत्तीस महादेवियाँ निवास करती हैं, जो शक्तियाँ कही गयी हैं। हे राजन्! गोमेदनिर्मित उस प्राकारमें पिशाचोंके समान भयंकर मुखवाली प्रत्येक लोककी निवासिनी शक्तियाँ सावधान होकर चारों ओरसे उसे घेरकर स्थित रहती हैं॥ २५-२६॥

स्वर्लोकवासिभिर्नित्यं पूजिताश्चक्रबाहवः।
क्रोधरक्तेक्षणा भिन्धि पचच्छिन्धि दहेति च॥ २७

वदन्ति सततं वाचं युद्धोत्सुकहृदन्तराः।
एकैकस्या महाशक्तेर्दशाक्षौहिणिका मता॥ २८

सेना तत्राप्येकशक्तिर्लक्षब्रह्माण्डनाशिनी।
तादृशीनां महासेना वर्णनीया कथं नृप॥ २९

रथानां नैव गणना वाहनानां तथैव च।
सर्वयुद्धसमारम्भस्तत्र देव्या विराजते॥ ३०

तासां नामानि वक्ष्यामि पापनाशकराणि च।
विद्याह्रीपुष्टयः प्रज्ञा सिनीवाली कुहूस्तथा॥ ३१

रुद्रा वीर्या प्रभा नन्दा पोषिणी ऋद्धिदा शुभा।
कालरात्रिर्महारात्रिर्भद्रकाली कपर्दिनी॥ ३२

विकृतिर्दण्डिमुण्डिन्यौ सेन्दुखण्डा शिखण्डिनी।
निशुम्भशुम्भमथिनी महिषासुरमर्दिनी॥ ३३

इन्द्राणी चैव रुद्राणी शङ्करार्धशरीरिणी।
नारी नारायणी चैव त्रिशूलिन्यपि पालिनी॥ ३४

अम्बिका ह्लादिनी पश्चादित्येवं शक्तयः स्मृताः।
यद्येताः कुपिता देव्यस्तदा ब्रह्माण्डनाशनम्॥ ३५

पराजयो न चैतासां कदाचित्क्वचिदस्ति हि।
गोमेदकमयादग्रे सद्वज्रमणिनिर्मितः॥ ३६

दशयोजनतुङ्गोऽसौ गोपुरद्वारसंयुतः।
कपाटशृङ्खलाबद्धो नववृक्षसमुज्ज्वलः॥ ३७

सालस्तन्मध्यभूम्यादि सर्वं हीरमयं स्मृतम्।
गृहाणि वीथयो रथ्या महामार्गाङ्गणानि च॥ ३८

वृक्षालवालतरवः सारङ्गा अपि तादृशाः।
दीर्घिकाश्रेणयो वाप्यस्तडागाः कूपसंयुताः॥ ३९

तत्र श्रीभुवनेश्वर्या वसन्ति परिचारिकाः।
एकैका लक्षदासीभिः सेविता मदगर्विताः॥ ४०

स्वर्गलोकके निवासियोंद्वारा नित्य पूजी जानेवाली वे शक्तियाँ हृदयमें युद्धकी लालसासे युक्त होकर हाथोंमें चक्र धारण किये हुए तथा क्रोधके कारण नेत्र लाल करके 'काटो, पकाओ, छेदो और भस्म कर डालो'—इन शब्दोंको निरन्तर बोलती रहती हैं। उनमें एक-एक महाशक्तिके पास दस-दस अक्षौहिणी सेना कही गयी है। उस सेनाकी एक ही शक्ति एक लाख ब्रह्माण्डोंका संहार करनेमें समर्थ है तो हे राजन्! उस प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त विशाल सेनाका वर्णन कैसे किया जा सकता है!॥ २७—२९ ॥

उनके रथों तथा वाहनोंकी गणना नहीं की जा सकती। भगवतीकी युद्ध-सम्बन्धी समस्त सामग्री वहाँ विद्यमान रहती है। अब मैं भगवतीकी शक्तियोंके पापनाशक नामोंका वर्णन करूँगा—विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभ्रा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथिनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका और ह्लादिनी—ये शक्तियाँ कही गयी हैं। यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ, तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका तत्क्षण नाश हो जायगा। कहीं किसी भी समय इन शक्तियोंकी पराजय सम्भव नहीं है॥ ३०—३५½ ॥

गोमेदनिर्मित प्राकारके आगे वज्रमणि (हीरे)-से निर्मित दस योजन ऊँचाईवाला एक परकोटा है। उस परकोटेमें अनेक गोपुर तथा द्वार बने हुए हैं। वह परकोटा कपाट और सांकलसे बन्द रहता है तथा नये-नये वृक्षोंसे सदा सुशोभित रहता है। उस प्राकारके मध्यभागकी समस्त भूमि हीरायुक्त कही गयी है। भवन, गलियाँ, चौराहे, महामार्ग, आँगन, वृक्षोंके थाले, वृक्ष, सारंग, अनेक बावलियाँ, वापी, तडाग तथा कुएँ—ये सब उसी प्रकार हीरकमय हैं॥ ३६—३९ ॥

उस प्राकारमें भगवती भुवनेश्वरीकी परिचारिकाएँ रहती हैं। मदसे गर्वित रहनेवाली एक-एक परिचारिका लाखों दासियोंसे सेवित रहती हैं॥ ४० ॥

तालवृन्तधराः काश्चिच्चषकाढ्यकराम्बुजाः।
काश्चित्ताम्बूलपात्राणि धारयन्त्योऽतिगर्विताः॥ ४१

काश्चित्तच्छत्रधारिण्यश्चामराणां विधारिकाः।
नानावस्त्रधराः काश्चित्काश्चित्पुष्पकराम्बुजाः॥ ४२

नानादर्शकराः काश्चित्काश्चित्कुङ्कुमलेपनम्।
धारयन्त्यः कज्जलं च सिन्दूरचषकं पराः॥ ४३

काश्चिच्चित्रकनिर्मात्र्यः पादसंवाहने रताः।
काश्चित्तु भूषाकारिण्यो नानाभूषाधराः पराः॥ ४४

पुष्पभूषणनिर्मात्र्यः पुष्पशृङ्गारकारिकाः।
नानाविलासचतुरा बह्व्य एवंविधाः पराः॥ ४५

निबद्धपरिधानीया युवत्यः सकला अपि।
देवीकृपालेशवशात्तुच्छीकृतजगत्त्रयाः॥ ४६

एता दूत्यः स्मृता देव्यः शृङ्गारमदगर्विताः।
तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम॥ ४७

अनङ्गरूपा प्रथमाप्यनङ्गमदना परा।
तृतीया तु ततः प्रोक्ता सुन्दरी मदनातुरा॥ ४८

ततो भुवनवेगा स्यात्तथा भुवनपालिका।
स्यात्सर्वशिशिरानङ्गवदनानङ्गमेखला॥ ४९

विद्युद्दामसमानाङ्ग्यः क्वणत्काञ्चीगुणान्विताः।
रणन्मञ्जीरचरणा बहिरन्तरितस्ततः॥ ५०

धावमानास्तु शोभन्ते सर्वा विद्युल्लतोपमाः।
कुशलाः सर्वकार्येषु वेत्रहस्ताः समन्ततः॥ ५१

अष्टदिक्षु तथैतासां प्राकाराद् बहिरेव च।
सदनानि विराजन्ते नानावाहनहेतिभिः॥ ५२

वज्रसालादग्रभागे सालो वैदूर्यनिर्मितः।
दशयोजनतुङ्गोऽसौ गोपुरद्वारभूषितः॥ ५३

अत्यधिक गर्वित कई परिचारिकाएँ ताड़के पंखे, कई अपने करकमलोंमें मधुपात्र तथा कई अपने हाथमें ताम्बूलपात्र धारण किये रहती हैं। कई परिचारिकाएँ छत्र लिये रहती हैं, कई चामर धारण किये रहती हैं, कुछ अनेक प्रकारके वस्त्र धारण किये रहती हैं और कुछ अपने कमलसदृश हाथोंमें पुष्प लिये स्थित रहती हैं॥ ४१-४२॥

कुछ परिचारिकाएँ अपने हाथोंमें दर्पण, कुछ कुमकुमका लेप, कुछ काजल और कुछ सिन्दूर-पात्र धारण किये खड़ी रहती हैं। कुछ चित्रकारी बनाने, कुछ चरण दबाने, कुछ भूषण सजाने तथा कुछ भगवतीके भूषणसे पूरित रत्नमय पात्र धारण करनेमें तत्पर रहती हैं। कुछ पुष्पोंके आभूषण बनानेवाली, कुछ पुष्प-शृंगारमें कुशल तथा अनेक प्रकारके विलासमें चतुर इसी तरहकी बहुत-सी युवतियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं॥ ४३—४५॥

सुन्दर-सुन्दर परिधान धारण की हुई वे सभी युवतियाँ भगवतीकी लेशमात्र कृपाके प्रभावसे तीनों लोकोंको तुच्छ समझती हैं। शृंगारके मदमें उन्मत्त ये सब देवीकी दूतिकाएँ कही गयी हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उनके नाम बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४६-४७॥

पहली अनंगरूपा, दूसरी अनंगमदना और तीसरी सुन्दर रूपवाली मदनातुरा कही गयी है। तत्पश्चात् भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवदना और अनंगमेखला हैं। इनके सभी अंग विद्युत्की कान्तिके समान प्रकाशमान रहते हैं, इनके कटिभाग कई लड़ियोंवाली ध्वनिमय किंकिणियोंसे सुशोभित हैं और इनके चरण ध्वनि करते हुए नूपुरसे सुशोभित हैं। ये सभी दूतियाँ वेगपूर्वक बाहर तथा भीतर जाते समय विद्युत्की लताके सदृश सुशोभित होती हैं। हाथमें बेंत लेकर सभी ओर भ्रमण करनेवाली ये दूतियाँ सभी कार्योंमें दक्ष हैं। इस प्राकारसे बाहर आठों दिशाओंमें इन दूतियोंके निवासहेतु अनेकविध वाहनों तथा शस्त्रोंसे सम्पन्न भवन विद्यमान हैं॥ ४८—५२॥

वज्रमणि-निर्मित प्राकारसे आगे वैदूर्यमणिसे बना हुआ एक प्राकार है। अनेक गोपुरों तथा द्वारोंसे सुशोभित वह प्राकार दस योजन ऊँचाईवाला है॥ ५३॥

वैदूर्यभूमिः सर्वापि गृहाणि विविधानि च।
वीथ्यो रथ्या महामार्गाः सर्वे वैदूर्यनिर्मिताः॥ ५४

वापीकूपतडागाश्च स्रवन्तीनां तटानि च।
बालुका चैव सर्वापि वैदूर्यमणिनिर्मिता॥ ५५

तत्राष्टदिक्षु परितो ब्राह्म्यादीनां च मण्डलम्।
निजैर्गणैः परिवृतं भ्राजते नृपसत्तम॥ ५६

प्रतिब्रह्माण्डमातॄणां ताः समष्टय ईरिताः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा॥ ५७

वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डाः सप्त मातरः।
अष्टमी तु महालक्ष्मीर्नाम्ना प्रोक्तास्तु मातरः॥ ५८

ब्रह्मरुद्रादिदेवानां समाकारास्तु ताः स्मृताः।
जगत्कल्याणकारिण्यः स्वस्वसेनासमावृताः॥ ५९

तत्सालस्य चतुर्द्वार्षु वाहनानि महेशितुः।
सज्जानि नृपते सन्ति सालङ्काराणि नित्यशः॥ ६०

दन्तिनः कोटिशो वाहाः कोटिशः शिबिकास्तथा।
हंसाः सिंहाश्च गरुडा मयूरा वृषभास्तथा॥ ६१

तैर्युक्ताः स्यन्दनास्तद्वत्कोटिशो नृपनन्दन।
पार्ष्णिग्राहसमायुक्ता ध्वजैराकाशचुम्बिनः॥ ६२

कोटिशस्तु विमानानि नानाचिह्नान्वितानि च।
नानावादित्रयुक्तानि महाध्वजयुतानि च॥ ६३

वैदूर्यमणिसालस्याप्यग्रे सालः परः स्मृतः।
दशयोजनतुङ्गोऽसाविन्द्रनीलाश्मनिर्मितः ॥ ६४

तन्मध्यभूस्तथा वीथ्यो महामार्गा गृहाणि च।
वापीकूपतडागाश्च सर्वे तन्मणिनिर्मिताः॥ ६५

तत्र पद्मं तु सम्प्रोक्तं बहुयोजनविस्तृतम्।
षोडशारं दीप्यमानं सुदर्शनमिवापरम्॥ ६६

तत्र षोडशशक्तीनां स्थानानि विविधानि च।
सर्वोपस्करयुक्तानि समृद्धानि वसन्ति हि॥ ६७

वहाँकी सम्पूर्ण भूमि वैदूर्यमणियुक्त है। वहाँके अनेक प्रकारके भवन, गलियाँ, चौराहे तथा महामार्ग—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं। इस परकोटेकी बावलियाँ, कुएँ, तडाग, नदियोंके तट और बालू—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस प्राकारकी आठों दिशाओंमें सब ओर अपने गणोंसे सदा घिरी रहनेवाली ब्राह्मी आदि देवियोंका मण्डल सुशोभित रहता है। वे प्रत्येक ब्रह्माण्डके मातृकाओंकी समष्टियाँ कही गयी हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ और आठवीं महालक्ष्मी नामवाली—इस प्रकार ये आठ मातृकाएँ कही गयी हैं॥ ५६—५८॥

जगत्का कल्याण करनेवाली तथा अपनी-अपनी सेनाओंसे घिरी हुई वे मातृकाएँ ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके समान आकारवाली कही गयी हैं॥ ५९॥

हे राजन्! उस परकोटेके चारों द्वारोंपर महेश्वरी भगवतीके वाहन अलंकारोंसे सुसज्जित होकर सर्वदा विराजमान रहते हैं॥ ६०॥

उनके वाहनके रूपमें करोड़ों हाथी, करोड़ों घोड़े, पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड, मयूर और वृषभ हैं। हे नृपनन्दन! उन वाहनोंसे युक्त करोड़ों रथ वहाँ विद्यमान रहते हैं, जिनपर सेनापति विराजमान रहते हैं और आकाशतक पहुँचनेवाली पताकाएँ सुशोभित रहती हैं॥ ६१-६२॥

अनेकविध वाद्य-यन्त्रोंसे युक्त, विशाल ध्वजाओंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके चिह्नोंसे अंकित करोड़ों विमान उस प्राकारमें स्थित रहते हैं॥ ६३॥

वैदूर्यमणिमय प्राकारके भी आगे इन्द्रनीलमणि-निर्मित दस योजन ऊँचा एक दूसरा प्राकार कहा गया है॥ ६४॥

उस प्राकारके मध्यकी भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन, वापी, कुएँ और सरोवर—ये सब उसी मणिसे बने हुए हैं॥ ६५॥

वहाँपर दूसरे सुदर्शन चक्रकी भाँति प्रतीत होनेवाला, अनेक योजन विस्तृत तथा सोलह दलोंवाला एक दीप्तिमान् कमल विद्यमान कहा गया है। उसपर सोलह शक्तियोंके लिये सभी सामग्रियों तथा समृद्धियोंसे सम्पन्न विविध स्थान बने हुए हैं॥ ६६-६७॥

तासां नामानि वक्ष्यामि शृणु मे नृपसत्तम।
कराली विकराली च तथोमा च सरस्वती॥ ६८

श्रीदुर्गोषा तथा लक्ष्मीः श्रुतिश्चैव स्मृतिर्धृतिः।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडश शक्तयः॥ ६९

नीलजीमूतसंकाशाः करवालकराम्बुजाः।
समाः खेटकधारिण्यो युद्धोपक्रान्तमानसाः॥ ७०

सेनान्यः सकला एताः श्रीदेव्या जगदीशितुः।
प्रतिब्रह्माण्डसंस्थानां शक्तीनां नायिकाः स्मृताः॥ ७१

ब्रह्माण्डक्षोभकारिण्यो देवीशक्त्युपबृंहिताः।
नानारथसमारूढा नानाशक्तिभिरन्विताः॥ ७२

एतत्पराक्रमं वक्तुं सहस्रास्योऽपि न क्षमः।
इन्द्रनीलमहासालादग्रे तु बहुविस्तृतः॥ ७३

मुक्ताप्राकार उदितो दशयोजनदैर्घ्यवान्।
मध्यभूः पूर्ववत्प्रोक्ता तन्मध्येऽष्टदलाम्बुजम्॥ ७४

मुक्तामणिगणाकीर्णं विस्तृतं तु सकेसरम्।
तत्र देवीसमाकारा देव्यायुधधराः सदा॥ ७५

सम्प्रोक्ता अष्टमन्त्रिण्यो जगद्वार्ताप्रबोधिकाः।
देवीसमानभोगास्ता इङ्गितज्ञास्तु पण्डिताः॥ ७६

कुशलाः सर्वकार्येषु स्वामिकार्यपरायणाः।
देव्यभिप्रायबोध्यस्ताश्चतुरा अतिसुन्दराः॥ ७७

नानाशक्तिसमायुक्ताः प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्।
प्राणिनां ताः समाचारं ज्ञानशक्त्या विदन्ति च॥ ७८

तासां नामानि वक्ष्यामि मत्तः शृणु नृपोत्तम।
अनङ्गकुसुमा प्रोक्ताप्यनङ्गकुसुमातुरा॥ ७९

हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उन शक्तियोंके नामोंका वर्णन करूँगा, सुनिये—कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति और आर्या—ये सोलह शक्तियाँ हैं॥ ६८-६९॥

अपने करकमलोंमें ढाल तथा तलवार धारण किये हुए, नीले मेघके समान वर्णवाली तथा अपने मनमें सदा युद्धकी लालसा रखनेवाली ये सभी शक्तियाँ जगदीश्वरी श्रीदेवीकी सेनानी हैं। ये प्रत्येक ब्रह्माण्डमें स्थित रहनेवाली शक्तियोंकी नायिकाएँ कही गयी हैं॥ ७०-७१॥

अनेक शक्तियोंको साथ लेकर भाँति-भाँतिके रथोंपर विराजमान ये शक्तियाँ भगवती जगदम्बाकी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें समर्थ हैं। हजार मुखवाले शेषनाग भी इनके पराक्रमका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७२½ ॥

उस इन्द्रनीलमणिके विशाल प्राकारके आगे दस योजनकी ऊँचाईतक उठा हुआ एक अतिविस्तीर्ण तथा प्रकाशमान मोतीका प्राकार है। इसके मध्यकी भूमि भी मोतीकी बनी हुई कही गयी है। उसके मध्यमें मुक्तामणियोंसे निर्मित तथा केसरयुक्त आठ दलोंवाला एक विशाल कमल विद्यमान है। उन आठों दलोंपर भगवती जगदम्बाके ही समान आकारवाली देवियाँ अपने हाथोंमें आयुध धारण किये सदा विराजमान रहती हैं। जगत्‌का समाचार सूचित करनेवाली ये आठ देवियाँ भगवतीकी मन्त्रिणी कही गयी हैं॥ ७३—७५½ ॥

वे देवियाँ भगवतीके समान भोगवाली, उनके संकेतको समझनेवाली, बुद्धिसम्पन्न, सभी कार्योंमें कुशल, अपनी स्वामिनीके कार्य-सम्पादनमें तत्पर, भगवतीके अभिप्रायको जाननेवाली, चतुर तथा अत्यन्त सुन्दर हैं॥ ७६-७७॥

विविध शक्तियोंसे सम्पन्न वे देवियाँ अपनी ज्ञान-शक्तिके द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले प्राणियोंका समाचार जान लेती हैं। हे नृपश्रेष्ठ! मैं उनके नाम बता रहा हूँ, आप सुनिये—अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, भुवन-

अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा।
भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम्॥ ८०

शशिरेखा च गगनरेखा चैव ततः परम्।
पाशाङ्कुशवराभीतिधरा अरुणविग्रहाः॥ ८१

विश्वसम्बन्धिनीं वार्तां बोधयन्ति प्रतिक्षणम्।
मुक्तासालादग्रभागे महामारकतोऽपरः॥ ८२

सालोत्तमः समुद्दिष्टो दशयोजनदैर्घ्यवान्।
नानासौभाग्यसंयुक्तो नानाभोगसमन्वितः॥ ८३

मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि तथैव च।
षट्कोणमत्र विस्तीर्णं कोणस्था देवताः शृणु॥ ८४

पूर्वकोणे चतुर्वक्त्रो गायत्रीसहितो विधिः।
कुण्डिकाक्षगुणाभीतिदण्डायुधधरः परः॥ ८५

तदायुधधरा देवी गायत्री परदेवता।
वेदाः सर्वे मूर्तिमन्तः शास्त्राणि विविधानि च॥ ८६

स्मृतयश्च पुराणानि मूर्तिमन्ति वसन्ति हि।
ये ब्रह्मविग्रहाः सन्ति गायत्रीविग्रहाश्च ये॥ ८७

व्याहृतीनां विग्रहाश्च ते नित्यं तत्र सन्ति हि।
रक्षःकोणे शङ्खचक्रगदाम्बुजकराम्बुजा॥ ८८

सावित्री वर्तते तत्र महाविष्णुश्च तादृशः।
ये विष्णुविग्रहाः सन्ति मत्स्यकूर्मादयोऽखिलाः॥ ८९

सावित्रीविग्रहा ये च ते सर्वे तत्र सन्ति हि।
वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितः॥ ९०

महारुद्रो वर्ततेऽत्र सरस्वत्यपि तादृशी।
ये ये तु रुद्रभेदाः स्युर्दक्षिणास्यादयो नृप॥ ९१

गौरीभेदाश्च ये सर्वे ते तत्र निवसन्ति हि।
चतुःषष्ट्यागमा ये च ये चान्येऽप्यागमाः स्मृताः॥ ९२

ते सर्वे मूर्तिमन्तश्च तत्रैव निवसन्ति हि।

पाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा। अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्राएँ धारण किये हुए लाल विग्रहवाली वे देवियाँ विश्वसे सम्बन्धित सभी बातोंसे भगवतीको प्रतिक्षण अवगत कराती रहती हैं॥ ७८—८१½ ॥

इस मुक्ता-प्राकारके आगे महामरकतमणिसे निर्मित एक दूसरा श्रेष्ठ प्राकार कहा गया है। वह दस योजन लम्बा और अनेकविध सौभाग्य तथा भोगवाली सामग्रियोंसे परिपूर्ण है॥ ८२-८३॥

इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही कही गयी है अर्थात् मरकत-मणिके सदृश है और वहाँके भवन भी उसी मणिसे निर्मित हैं। उस प्राकारमें भगवतीका एक विशाल तथा छः कोणोंवाला यन्त्र है। अब आप उन कोणोंपर विराजमान रहनेवाले देवताओंके विषयमें सुनिये॥ ८४॥

इसके पूर्वकोणमें कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभयमुद्रा, दण्ड तथा आयुध धारण करनेवाले चतुर्मुख श्रेष्ठ ब्रह्माजी भगवती गायत्रीके साथ विराजमान रहते हैं। परादेवता भगवती गायत्री भी उन्हीं आयुधोंको धारण किये रहती हैं। समस्त वेद, विविध शास्त्र, स्मृतियाँ तथा पुराण मूर्तिमान् होकर वहाँ निवास करते हैं। ब्रह्माके जो विग्रह हैं, गायत्रीके जो विग्रह हैं और व्याहृतियोंके जो विग्रह हैं—वे सभी वहाँ नित्य निवास करते हैं॥ ८५—८७½ ॥

नैर्ऋत्यकोणमें भगवती सावित्री अपने करकमलमें शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये विराजमान हैं। महाविष्णु भी वहाँपर उसी रूपमें विराजमान रहते हैं। मत्स्य तथा कूर्म आदि जो महाविष्णुके विग्रह हैं और जो भगवती सावित्रीके विग्रह हैं—वे सब वहाँ निवास करते हैं॥ ८८-८९½ ॥

वायुकोणमें परशु, अक्षमाला, अभय और वरमुद्रा धारण करनेवाले महारुद्र विराजमान हैं और सरस्वती भी उसी रूपमें वहाँ रहती हैं। हे राजन्! भगवान् रुद्रके दक्षिणास्य आदि जो-जो रूप हैं और इसी प्रकार भगवती गौरीके जो-जो रूप हैं—वे सभी वहाँ निवास करते हैं। चौंसठ प्रकारके जो आगम तथा इसके अतिरिक्त भी जो अन्य आगमशास्त्र कहे गये हैं—वे सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९०—९२½ ॥

अग्निकोणे रत्नकुम्भं तथा मणिकरण्डकम्॥ ९३

दधानो निजहस्ताभ्यां कुबेरो धनदायकः।
नानावीथीसमायुक्तो महालक्ष्मीसमन्वितः॥ ९४

देव्या निधिपतिस्त्वास्ते स्वगुणैः परिवेष्टितः।
वारुणे तु महाकोणे मदनो रतिसंयुतः॥ ९५

पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरो नित्यं विराजते।
शृङ्गारा मूर्तिमन्तस्तु तत्र सन्निहिताः सदा॥ ९६

ईशानकोणे विघ्नेशो नित्यं पुष्टिसमन्वितः।
पाशाङ्कुशधरो वीरो विघ्नहर्ता विराजते॥ ९७

विभूतयो गणेशस्य या याः सन्ति नृपोत्तम।
ताः सर्वा निवसन्त्यत्र महैश्वर्यसमन्विताः॥ ९८

प्रतिब्रह्माण्डसंस्थानां ब्रह्मादीनां समष्टयः।
एते ब्रह्मादयः प्रोक्ताः सेवन्ते जगदीश्वरीम्॥ ९९

महामारकतस्याग्रे शतयोजनदैर्घ्यवान्।
प्रवालसालोऽस्त्यपरः कुङ्कुमारुणविग्रहः॥ १००

मध्यभूस्तादृशी प्रोक्ता सदनानि च पूर्ववत्।
तन्मध्ये पञ्चभूतानां स्वामिन्यः पञ्च सन्ति च॥ १०१

हृल्लेखा गगना रक्ता चतुर्थी तु करालिका।
महोच्छुष्मा पञ्चमी च पञ्चभूतसमप्रभाः॥ १०२

पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः।
देवीसमानवेषाढ्या नवयौवनगर्विताः॥ १०३

प्रवालसालादग्रे तु नवरत्नविनिर्मितः।
बहुयोजनविस्तीर्णो महासालोऽस्ति भूमिप॥ १०४

तत्र चाम्नायदेवीनां सदनानि बहून्यपि।
नवरत्नमयान्येव तडागाश्च सरांसि च॥ १०५

अग्निकोणमें धन प्रदान करनेवाले कुबेर अपने दोनों हाथोंमें रत्नयुक्त कुम्भ तथा मणिमय करण्डक (पात्र) धारण किये हुए विराजमान हैं। अनेक प्रकारकी वीथियोंसे युक्त और अपने सद्गुणोंसे सम्पन्न देवीकी निधिके स्वामी कुबेर महालक्ष्मीके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९३-९४½ ॥

पश्चिमके महान् वरुणकोणमें अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाले कामदेव रतिके साथ निवास करते हैं। सभी प्रकारके शृंगार मूर्तिमान् होकर वहाँ सदा विराजमान रहते हैं॥ ९५-९६ ॥

ईशानकोणमें विघ्नको दूर करनेवाले तथा पराक्रमी विघ्नेश्वर गणेशजी अपने हाथोंमें पाश तथा अंकुश धारण किये हुए देवी पुष्टिके साथ सदा विराजमान रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! गणेशजीकी जो-जो विभूतियाँ हैं, वे सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर वहाँ निवास करती हैं॥ ९७-९८ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी समष्टियाँ ब्रह्मा आदि नामसे कही गयी हैं—ये सभी भगवती जगदीश्वरीकी सेवामें संलग्न रहती हैं॥ ९९ ॥

इस महामरकतमणि-निर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला तथा सौ योजन लम्बाईवाला एक दूसरा प्रवालमणिका प्राकार है। उसके मध्यकी भूमि तथा भवन भी उसी प्रकारके कहे गये हैं। उसके मध्यभागमें पंचभूतोंकी पाँच स्वामिनियाँ निवास करती हैं। हृल्लेखा, गगना, रक्ता, चौथी करालिका और पाँचवीं महोच्छुष्मा नामक ये शक्तियाँ पंचभूतोंके समान ही प्रभावाली हैं। पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाली ये शक्तियाँ अनेक प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत, नूतन यौवनसे गर्वित और भगवती जगदम्बाके सदृश वेषभूषासे मण्डित हैं॥ १००—१०३ ॥

हे राजन्! इस प्रवालमय प्राकारके आगे नौ रत्नोंसे बना हुआ अनेक योजन विस्तृत एक विशाल प्राकार है। आम्नायमें वर्णित देवियोंके बहुतसे भवन, तडाग तथा सरोवर—वे सभी उन्हीं नौ रत्नोंसे निर्मित हैं। हे भूपाल! श्रीदेवीके जो-जो अवतार हैं, वे सब

श्रीदेव्या येऽवताराः स्युस्ते तत्र निवसन्ति हि।
महाविद्या महाभेदाः सन्ति तत्रैव भूमिप॥ १०६

निजावरणदेवीभिर्निजभूषणवाहनैः ।
सर्वदेव्यो विराजन्ते कोटिसूर्यसमप्रभाः॥ १०७

सप्तकोटिमहामन्त्रदेवताः सन्ति तत्र हि।
नवरत्नमयादग्रे चिन्तामणिगृहं महत्॥ १०८

तत्रत्यं वस्तुमात्रं तु चिन्तामणिविनिर्मितम्।
सूर्योद्गारोपलैस्तद्वच्चन्द्रोद्गारोपलैस्तथा ॥ १०९

विद्युत्प्रभोपलैः स्तम्भाः कल्पितास्तु सहस्रशः।
येषां प्रभाभिरन्तःस्थं वस्तु किञ्चिन्न दृश्यते॥ ११०

वहाँ निवास करते हैं और महाविद्याके सभी रूप वहाँ विद्यमान हैं। करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे युक्त सभी देवियाँ अपनी-अपनी आवरणशक्तियों, अपने भूषणों तथा वाहनोंके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। सात करोड़ महामन्त्रोंके देवता भी वहाँ रहते हैं॥ १०४—१०७½ ॥

इस नौ रत्नमय प्राकारके आगे चिन्तामणिसे बना हुआ एक विशाल भवन है। वहाँकी प्रत्येक वस्तु चिन्तामणिसे निर्मित है। उसमें सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत्के समान दीप्तिवाले पत्थरोंसे निर्मित हजारों स्तम्भ हैं, जिनकी तीव्र प्रभाके कारण उस भवनके अन्दर स्थित कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हो पाती है॥ १०८—११०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
पद्मरागादिमणिविनिर्मितप्राकारवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

अथ द्वादशोऽध्यायः

भगवती जगदम्बाके मण्डपका वर्णन तथा मणिद्वीपकी महिमा

व्यास उवाच

तदेव देवीसदनं मध्यभागे विराजते।
सहस्रस्तम्भसंयुक्ताश्चत्वारस्तेषु मण्डपाः॥ १

शृङ्गारमण्डपश्चैको मुक्तिमण्डप एव च।
ज्ञानमण्डपसंज्ञस्तु तृतीयः परिकीर्तितः॥ २

एकान्तमण्डपश्चैव चतुर्थः परिकीर्तितः।
नानावितानसंयुक्ता नानाधूपैस्तु धूपिताः॥ ३

कोटिसूर्यसमाः कान्त्या भ्राजन्ते मण्डपाः शुभाः।
तन्मण्डपानां परितः काश्मीरवनिका स्मृता॥ ४

मल्लिकाकुन्दवनिका यत्र पुष्कलकाः स्थिताः।
असंख्याता मृगमदैः पूरितास्तत्स्रवा नृप॥ ५

महापद्माटवी तद्वद्रत्नसोपाननिर्मिता।
सुधारसेन सम्पूर्णा गुञ्जन्मत्तमधुव्रता॥ ६

हंसकारण्डवाकीर्णा गन्धपूरितदिक्तटा।
वनिकानां सुगन्धैस्तु मणिद्वीपं सुवासितम्॥ ७

व्यासजी बोले—त्रिकोणके मध्यभागमें भगवती जगदम्बाका वही चिन्तामणि नामक भवन विराजमान है। उसमें हजार स्तम्भोंवाले चार मण्डप विद्यमान हैं॥ १॥

उनमें पहला शृंगारमण्डप, दूसरा मुक्तिमण्डप, तीसरा ज्ञानमण्डप और चौथा एकान्तमण्डप कहा गया है॥ २½ ॥

अनेक प्रकारके वितानोंसे युक्त तथा नानाविध धूपोंसे सुवासित ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् रहते हैं॥ ३½ ॥

हे राजन्! उन मण्डपोंके चारों ओर केसर, मल्लिका और कुन्दकी वाटिकाएँ बतायी गयी हैं, जिनमें मृगमदोंसे परिपूर्ण तथा मदस्रावी असंख्य गन्धमृग स्थित हैं। उसी प्रकार मण्डपोंके चारों ओर रत्नसे निर्मित सोपानोंवाली महापद्माटवी है। वह अमृतरससे परिपूर्ण, गुंजार करते हुए मतवाले भौरोंसे युक्त, कारण्डवों तथा हंसोंसे सदा सुशोभित और चारों ओरसे सुगन्धसे परिपूर्ण तटवाली है। इस प्रकार वह मणिद्वीप इन वाटिकाओंकी सुगन्धोंसे सदा सुवासित रहता है॥ ४—७॥

शृङ्गारमण्डपे देव्यो गायन्ति विविधैः स्वरैः।
सभासदो देववरा मध्ये श्रीजगदम्बिका॥ ८

मुक्तिमण्डपमध्ये तु मोचयत्यनिशं शिवा।
ज्ञानोपदेशं कुरुते तृतीये नृप मण्डपे॥ ९

चतुर्थमण्डपे चैव जगद्रक्षाविचिन्तनम्।
मन्त्रिणीसहिता नित्यं करोति जगदम्बिका॥ १०

चिन्तामणिगृहे राजञ्छक्तितत्त्वात्मकैः परैः।
सोपानैर्दशभिर्युक्तो मञ्चकोऽप्यधिराजते॥ ११

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च ईश्वरश्च सदाशिवः।
एते मञ्चखुराः प्रोक्ताः फलकस्तु सदाशिवः॥ १२

तस्योपरि महादेवो भुवनेशो विराजते।
या देवी निजलीलार्थं द्विधाभूता बभूव ह॥ १३

सृष्ट्यादौ तु स एवायं तदर्धाङ्गो महेश्वरः।
कन्दर्पदर्पनाशोद्यत्कोटिकन्दर्पसुन्दरः ॥ १४

पञ्चवक्त्रस्त्रिनेत्रश्च मणिभूषणभूषितः।
हरिणाभीतिपरशून् वरं च निजबाहुभिः॥ १५

दधानः षोडशाब्दोऽसौ देवः सर्वेश्वरो महान्।

कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः ॥ १६

शुद्धस्फटिकसंकाशस्त्रिनेत्रः शीतलद्युतिः।
वामाङ्के सन्निषण्णास्य देवी श्रीभुवनेश्वरी॥ १७

नवरत्नगणाकीर्णकाञ्चीदामविराजिता ।
तप्तकाञ्चनसन्नद्धवैदूर्याङ्गदभूषणा ॥ १८

कनच्छ्रीचक्रताटङ्कविटङ्कवदनाम्बुजा ।
ललाटकान्तिविभवविजितार्धसुधाकरा ॥ १९

शृंगारमण्डपके मध्यभागमें विराजमान जगदम्बिकाके चारों ओर सभासद्‌के रूपमें श्रेष्ठ देवगण विद्यमान रहते हैं और वहाँ देवियाँ नानाविध स्वरोंमें सदा गाती रहती हैं। मुक्तिमण्डपके मध्यमें विराजमान होकर कल्याणमयी भगवती जगदम्बा भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं और हे राजन्! तीसरे ज्ञानमण्डपमें विराजमान होकर वे ज्ञानका उपदेश करती हैं। एकान्तमण्डप नामक चौथे मण्डपमें अपनी मन्त्रिणियोंके साथ भगवती जगत्‌की रक्षाके विषयमें नित्य विचार-विमर्श किया करती हैं॥ ८—१०॥

हे राजन्! चिन्तामणिगृहमें भगवतीके शक्ति-तत्त्वरूपी दस श्रेष्ठ सोपानोंसे युक्त उनका मंच अत्यधिक सुशोभित होता है॥ ११॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिव ईश्वर—ये उस मंचके पाये कहे गये हैं। सदाशिव मंचके फलक हैं। उसके ऊपर भुवनेश्वर महादेव विराजमान हैं॥ १२½॥

सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिये जो भगवती स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुई थीं, उन्हींके अर्धांगस्वरूप ये भगवान् महेश्वर हैं॥ १३½॥

वे कामदेवके अभिमानका नाश करनेमें परम कुशल, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, पाँच मुख तथा तीन नेत्रोंसे युक्त और मणिके भूषणोंसे विभूषित हैं॥ १४½॥

सदा सोलह वर्षके प्रतीत होनेवाले वे सर्वेश्वर महादेव अपनी भुजाओंमें हरिण, अभयमुद्रा, परशु तथा वरमुद्रा धारण किये हुए हैं॥ १५½॥

वे त्रिनेत्र महादेव करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल, शुद्ध स्फटिकमणिके समान आभावाले तथा शीतल कान्तिवाले हैं॥ १६½॥

इनके वाम अंकमें देवी श्रीभुवनेश्वरी विराजमान हैं, वे नौ प्रकारके रत्नोंसे जटित सुवर्णकी करधनीसे सुशोभित हैं और तप्त सुवर्ण तथा वैदूर्यमणिसे निर्मित बाजूबन्दसे भूषित हैं॥ १७-१८॥

कमलके समान मुखवाली भगवतीके कानोंमें श्रीचक्रकी आकृतिके समान सुवर्णका कर्णफूल सुशोभित हो रहा है। उनके ललाटकी कान्तिके वैभवने अर्धचन्द्रके सौन्दर्यको जीत लिया है॥ १९॥

बिम्बकान्तितिरस्कारिरदच्छदविराजिता ।
लसत्कुङ्कुमकस्तूरीतिलकोद्भासितानना ॥ २०

वे बिम्बाफलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले होठोंसे सुशोभित हैं। कुमकुम-कस्तूरीके तिलकसे अनुलिप्त उनका मुखमण्डल अति प्रकाशित है॥ २०॥

दिव्यचूडामणिस्फारचञ्चच्चन्द्रकसूर्यका ।
उद्यत्कविसमस्वच्छनासाभरणभासुरा ॥ २१

कान्तियुक्त चन्द्रमा तथा सूर्यके समान दिव्य तथा उज्ज्वल रत्नमय चूडामणि उनके मस्तकपर विराजमान है। उदयकालीन शुक्रनक्षत्रके सदृश स्वच्छ नासिकाभूषणसे वे सुशोभित हैं॥ २१॥

चिन्ताकलम्बितस्वच्छमुक्तागुच्छविराजिता ।
पाटीरपङ्ककर्पूरकुङ्कुमालङ्कृतस्तनी ॥ २२

चिन्ताक नामक कण्ठभूषणमें लटकते हुए मोतीके गुच्छसे वे सुशोभित हो रही हैं। चन्दन, कपूर और कुमकुमके अनुलेपसे उनका वक्ष:स्थल अलंकृत है॥ २२॥

विचित्रविविधाकल्पा कम्बुसंकाशकन्धरा।
दाडिमीफलबीजाभदन्तपङ्क्तिविराजिता ॥ २३

वे अनेक रूपोंसे सुसज्जित, शंखके समान ग्रीवावाली तथा अनारके दानोंके सदृश दन्तपंक्तिसे सुशोभित हो रही हैं॥ २३॥

अनर्घ्यरत्नघटितमुकुटाञ्चितमस्तका ।
मत्तालिमालाविलसदलकाढ्यमुखाम्बुजा ॥ २४

वे अपने मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट धारण किये रहती हैं। उनके मुखकमलपर मतवाले भ्रमरोंकी पंक्तिके सदृश अलकावली सुशोभित है॥ २४॥

कलङ्ककार्श्यनिर्मुक्तशरच्चन्द्रनिभानना ।
जाह्नवीसलिलावर्तशोभिनाभिविभूषिता ॥ २५

वे कलंककी कालिमासे रहित शारदीय चन्द्रमाके सदृश मुखमण्डलवाली हैं और गंगाके जलावर्त (भँवर)-तुल्य सुन्दर नाभिसे विभूषित हैं॥ २५॥

माणिक्यशकलाबद्धमुद्रिकाङ्गुलिभूषिता ।
पुण्डरीकदलाकारनयनत्रयसुन्दरी ॥ २६

वे माणिक्यके दानोंसे जटित मुद्रिकासे युक्त अँगुलियोंसे सुशोभित हैं और कमलदलकी आकृतिवाले तीन नेत्रोंसे वे अत्यन्त सौन्दर्यमयी प्रतीत होती हैं॥ २६॥

कल्पिताच्छमहारागपद्मरागोज्ज्वलप्रभा ।
रत्नकिङ्किणिकायुक्तरत्नकङ्कणशोभिता ॥ २७

वे शानपर चढ़ाकर अतीव स्वच्छ किये गये महाराग तथा पद्मरागमणिके सदृश उज्ज्वल कान्तिसे सम्पन्न हैं और रत्नमय घुँघरूवाली करधनी तथा रत्ननिर्मित कंकणसे सुशोभित हैं॥ २७॥

मणिमुक्तासरापारलसत्पदकसन्ततिः ।
रत्नाङ्गुलिप्रविततप्रभाजाललसत्करा ॥ २८

उनके चरणकमल मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें विराजमान रहनेवाली अपार शोभासे सम्पन्न हैं। वे रत्नोंसे युक्त अँगुलियोंसे फैलते हुए प्रभाजालसे सुशोभित हाथवाली हैं॥ २८॥

कञ्चुकीगुम्फितापारनानारत्नततिद्युतिः ।
मल्लिकामोदिधम्मिल्लमल्लिकालिसरावृता ॥ २९

उनकी कंचुकीमें गुथे हुए नानाविध रत्नोंकी पंक्तियोंसे अनुपम प्रकाश निर्गत हो रहा है। मल्लिकाकी सुगन्धिसे पूर्ण केशके जूड़ेपर स्थित मल्लिकाकी मालापर मँडरानेवाले भौंरोंके समूहसे देवी सुशोभित हो रही हैं॥ २९॥

सुवृत्तनिविडोत्तुङ्गकुचभारालसा शिवा।
वरपाशाङ्कुशाभीतिलसद्बाहुचतुष्टया ॥ ३०

सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी।
सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥ ३१

निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी ।
कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥ ३२

नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः।
सर्वाभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥ ३३

इच्छाशक्त्या ज्ञानशक्त्या क्रियाशक्त्या समन्विता।
लज्जा तुष्टिस्तथा पुष्टिः कीर्तिः कान्तिः क्षमा दया॥ ३४

बुद्धिर्मेधा स्मृतिर्लक्ष्मीर्मूर्तिमत्योऽङ्गनाः स्मृताः।
जया च विजया चैवाप्यजिता चापराजिता॥ ३५

नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गला नव।
पीठशक्तय एतास्तु सेवन्ते यां पराम्बिकाम्॥ ३६

यस्यास्तु पार्श्वभागे स्तो निधी तौ शङ्खपद्मकौ।
नवरत्नवहा नद्यस्तथा वै काञ्चनस्रवाः॥ ३७

सप्तधातुवहा नद्यो निधिभ्यां तु विनिर्गताः।
सुधासिन्ध्वन्तगामिन्यस्ताः सर्वा नृपसत्तम॥ ३८

सा देवी भुवनेशानी तद्वामाङ्के विराजते।
सर्वेशत्वं महेशस्य यत्सङ्गादेव नान्यथा॥ ३९

चिन्तामणिगृहस्यास्य प्रमाणं शृणु भूमिप।
सहस्रयोजनायामं महान्तस्तत्प्रचक्षते॥ ४०

तदुत्तरे महाशालाः पूर्वस्माद् द्विगुणाः स्मृताः।
अन्तरिक्षगतं त्वेतन्निराधारं विराजते॥ ४१

वृत्ताकार, सघन तथा उन्नत उरोजोंके भारसे कल्याणमयी भगवती अलसायी हुई प्रतीत होती हैं। उनकी चारों भुजाओंमें वर, पाश, अंकुश तथा अभयमुद्रा सुशोभित हो रही है॥ ३०॥

वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं॥ ३१॥

वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं॥ ३२॥

वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं॥ ३३॥

वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति तथा लक्ष्मी—ये मूर्तिमती अंगनाएँ कही गयी हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला—ये नौ पीठशक्तियाँ उन भगवती पराम्बाकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं॥ ३४—३६॥

शंख तथा पद्म नामक वे दोनों निधियाँ उन भगवतीके पार्श्वभागमें विराजमान रहती हैं। नवरत्नवहा (नौ प्रकारके रत्नोंका वहन करनेवाली), कांचनस्रवा (स्वर्णका स्राव करनेवाली) तथा सप्तधातुवहा (सातों धातुओंका वहन करनेवाली) नामक नदियाँ उन्हीं दोनों निधियोंसे निकली हुई हैं और हे राजेन्द्र! वे सभी नदियाँ अन्तमें सुधा-सिन्धुमें जाकर समाहित होती हैं॥ ३७-३८॥

वे भगवती भुवनेश्वरी परमेश्वरके वाम अंकमें विराजमान रहती हैं। उन्हीं भगवतीके सांनिध्यसे महेश्वरको सर्वेश्वरत्व प्राप्त है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९॥

हे भूपाल! अब आप इस चिन्तामणिगृहके परिमाणके विषयमें सुनिये। यह विशाल भवन हजार योजन विस्तारवाला कहा जाता है॥ ४०॥

उसके उत्तर भागमें अनेक विशाल प्राकार हैं, जो परिमाणमें पूर्व प्राकारसे दुगुने कहे गये हैं। भगवतीका यह मणिद्वीप बिना किसी आधारके अन्तरिक्षमें विराजमान है॥ ४१॥

सङ्कोचश्च विकासश्च जायतेऽस्य निरन्तरम्।
पटवत्कार्यवशतः प्रलये सर्जने तथा॥ ४२

शालानां चैव सर्वेषां सर्वकान्तिपरावधि।
चिन्तामणिगृहं प्रोक्तं यत्र देवी महोमयी॥ ४३

ये ये उपासकाः सन्ति प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनः।
देवेषु नागलोकेषु मनुष्येष्वितरेषु च॥ ४४

श्रीदेव्यास्ते च सर्वेऽपि व्रजन्त्यत्रैव भूमिप।
देवीक्षेत्रे ये त्यजन्ति प्राणान्देव्यर्चने रताः॥ ४५

ते सर्वे यान्ति तत्रैव यत्र देवी महोत्सवा।
घृतकुल्या दुग्धकुल्या दधिकुल्या मधुस्रवाः॥ ४६

स्यन्दन्ति सरितः सर्वास्तथामृतवहाः पराः।
द्राक्षारसवहाः काश्चिज्जम्बूरसवहाः पराः॥ ४७

आम्रेक्षुरसवाहिन्यो नद्यस्तास्तु सहस्रशः।
मनोरथफला वृक्षा वाप्यः कूपास्तथैव च॥ ४८

यथेष्टपानफलदा न न्यूनं किञ्चिदस्ति हि।
न रोगपलितं वापि जरा वापि कदाचन॥ ४९

न चिन्ता न च मात्सर्यं कामक्रोधादिकं तथा।
सर्वे युवानः सस्त्रीकाः सहस्रादित्यवर्चसः॥ ५०

भजन्ति सततं देवीं तत्र श्रीभुवनेश्वरीम्।
केचित्सलोकतापन्नाः केचित्सामीप्यतां गताः॥ ५१

सरूपतां गताः केचित्सार्ष्टितां च परे गताः।
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्॥ ५२

समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्।
सप्तकोटिमहामन्त्रा मूर्तिमन्त उपासते॥ ५३

महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्।
कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥ ५४

जैसे किसी कार्यवश पटका संकोच तथा विकास होता रहता है, वैसे ही प्रलयावस्थामें इस मणिद्वीपका संकोच तथा सृष्टिकालमें विकास हो जाता है। इसका सृष्टि-विनाश नहीं होता॥ ४२॥

सभी परकोटोंकी सम्पूर्ण कान्तिकी परम सीमाको ही चिन्तामणिगृह कहा गया है, जहाँ तेजोमयी देवी विराजमान रहती हैं॥ ४३॥

हे भूपाल! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले तथा देवलोक, नागलोक, मनुष्यलोक एवं अन्य लोकोंमें निवास करनेवाले जो भी श्रीदेवी भुवनेश्वरीके उपासक हैं, वे सब इसी मणिद्वीपको प्राप्त होते हैं॥ ४४ १/२॥

जो लोग भगवतीकी आराधनामें संलग्न रहते हुए देवीक्षेत्रमें प्राणोत्सर्ग करते हैं वे सब वहीं जाते हैं, जहाँ महानन्दस्वरूपिणी भगवती विराजमान रहती हैं॥ ४५ १/२॥

घृतकुल्या, दुग्धकुल्या, दधिकुल्या तथा मधुस्रवा नदियाँ वहाँ सदा प्रवाहित रहती हैं। उसी प्रकार अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा, आम्ररसवाहिनी तथा इक्षुरसवाहिनी हजारों अन्य नदियाँ भी वहाँ हैं॥ ४६–४७ १/२॥

वहाँ मनोरथरूपी फलवाले अनेक वृक्ष तथा वैसे ही बावलियाँ और कूप भी विद्यमान हैं, जो प्राणियोंकी इच्छाके अनुरूप उन्हें यथेष्ट फल तथा जल प्रदान करते हैं। वहाँ किसी प्रकारका अभाव नहीं है॥ ४८ १/२॥

उस मणिद्वीपमें किसीको भी रोगोंसे जर्जरता, बुढ़ापा, चिन्ता, मात्सर्य, काम, क्रोध आदि कभी नहीं होते॥ ४९ १/२॥

वहाँ रहनेवाले सभी लोग युवावस्थासे सम्पन्न, स्त्रीयुक्त और हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रहते हैं और वे श्रीभुवनेश्वरीदेवीकी निरन्तर उपासना करते हैं॥ ५० १/२॥

उपासना-परायण लोगोंमेंसे कुछ लोग सालोक्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं, कुछ सामीप्य मुक्तिको प्राप्त हुए हैं, कुछ सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं तथा कुछ अन्य प्राणी सार्ष्टि मुक्तिके अधिकारी हुए हैं॥ ५१ १/२॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं॥ ५२—५४॥

इत्थं राजन् मया प्रोक्तं मणिद्वीपं महत्तरम्।
न सूर्यचन्द्रौ नो विद्युत्कोटयोऽग्निस्तथैव च॥ ५५

एतस्य भासा कोट्यंशकोट्यंशेनापि ते समाः।
क्वचिद्विद्रुमसंकाशं क्वचिन्मरकतच्छवि॥ ५६

विद्युद्भानुसमच्छायं मध्यसूर्यसमं क्वचित्।
विद्युत्कोटिमहाधारा सारकान्तिततं क्वचित्॥ ५७

क्वचित्सिन्दूरनीलेन्द्रमाणिक्यसदृशच्छवि।
हीरसारमहागर्भधगद्धगितदिक्तटम्॥ ५८

कान्त्या दावानलसमं तप्तकाञ्चनसन्निभम्।
क्वचिच्चन्द्रोपलोद्गारं सूर्योद्गारं च कुत्रचित्॥ ५९

रत्नशृङ्गिसमायुक्तं रत्नप्राकारगोपुरम्।
रत्नपत्रै रत्नफलैर्वृक्षैश्च परिमण्डितम्॥ ६०

नृत्यन्मयूरसङ्घैश्च कपोतरणितोज्ज्वलम्।
कोकिलाकाकलीलापैः शुकलापैश्च शोभितम्॥ ६१

सुरम्यरमणीयाम्बुलक्षावधिसरोवृतम्।
तन्मध्यभागविलसद्विकचद्रत्नपङ्कजैः॥ ६२

सुगन्धिभिः समन्तात्तु वासितं शतयोजनम्।
मन्दमारुतसम्भिन्नचलद्द्रुमसमाकुलम्॥ ६३

चिन्तामणिसमूहानां ज्योतिषा वितताम्बरम्।
रत्नप्रभाभिरभितो धगद्धगितदिक्तटम्॥ ६४

वृक्षव्रातमहागन्धवातव्रातसुपूरितम्।
धूपधूपायितं राजन् मणिदीपायुतोज्ज्वलम्॥ ६५

मणिजालकसच्छिद्रतरलोदरकान्तिभिः।
दिङ्मोहजनकं चैतद्दर्पणोदरसंयुतम्॥ ६६

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य शृङ्गारस्याखिलस्य च।
सर्वज्ञतायाः सर्वायास्तेजसश्चाखिलस्य वै॥ ६७

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अत्यन्त महान् मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् और अग्नि—वे सब इस मणिद्वीपकी प्रभाके करोड़वें अंशके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं हैं। वहाँ कहींपर मूँगेके समान प्रकाश फैल रहा है, कहीं मरकतमणिकी छवि छिटक रही है, कहीं विद्युत् तथा भानुसदृश तेज विद्यमान है, कहीं मध्याह्नकालीन सूर्यके समान प्रचण्ड तेज फैला हुआ है और कहीं करोड़ों बिजलियोंकी महान् धाराओंकी दिव्य कान्ति व्याप्त है। कहीं सिन्दूर, नीलेन्द्रमणि और माणिक्यके समान छवि विद्यमान है। कुछ दिशाओंका भाग हीरा-मोतीकी रश्मियोंसे प्रकाशित हो रहा है, वह कान्तिमें दावानल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान प्रतीत हो रहा है। कहीं-कहीं चन्द्रकान्तमणि और सूर्यकान्तमणिसे बने स्थान हैं॥ ५५—५९॥

इस मणिद्वीपका शिखर रत्नमय तथा इसके प्राकार और गोपुर भी रत्ननिर्मित हैं। यह रत्नमय पत्रों, फलों तथा वृक्षोंसे पूर्णतः मण्डित है॥ ६०॥

यह पुरी मयूरसमूहोंके नृत्यों, कबूतरोंकी बोलियों और कोयलोंकी काकली तथा शुकोंकी मधुर ध्वनियोंसे सुशोभित रहती है॥ ६१॥

यह सुरम्य तथा रमणीय जलवाले लाखों सरोवरोंसे घिरा हुआ है। इस मणिद्वीपका मध्यभाग विकसित रत्नमय कमलोंसे सुशोभित है॥ ६२॥

उसके चारों ओर सौ योजनतकका क्षेत्र उत्तम गन्धोंसे सर्वदा सुवासित रहता है। मन्द गतिसे प्रवाहित वायुके द्वारा हिलाये गये वृक्षोंसे यह व्याप्त रहता है॥ ६३॥

चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योतिसे वहाँका विस्तृत आकाश सदा प्रकाशित रहता है और रत्नोंकी प्रभासे सभी दिशाएँ प्रज्वलित रहती हैं॥ ६४॥

वृक्षसमूहोंकी मधुर सुगन्धोंसे सुपूरित वायु वहाँ सदा बहती रहती है। हे राजन्! दस हजार योजनतक प्रकाशमान वह मणिद्वीप सदा सुगन्धित धूपसे सुवासित रहता है॥ ६५॥

रत्नमयी जालियोंके छिद्रोंसे निकलनेवाली चपल किरणोंकी कान्ति तथा दर्पणसे युक्त यह मणिद्वीप दिशाभ्रम उत्पन्न कर देनेवाला है॥ ६६॥

हे राजन्! समग्र ऐश्वर्य, सम्पूर्ण शृंगार, समस्त सर्वज्ञता, समग्र तेज, अखिल पराक्रम, समस्त उत्तम

पराक्रमस्य सर्वस्य सर्वोत्तमगुणस्य च।
सकलाया दयायाश्च समाप्तिरिह भूपते॥ ६८

राज्ञ आनन्दमारभ्य ब्रह्मलोकान्तभूमिषु।
आनन्दा ये स्थिताः सर्वे तेऽत्रैवान्तर्भवन्ति हि॥ ६९

इति ते वर्णितं राजन् मणिद्वीपं महत्तरम्।
महादेव्याः परं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम्॥ ७०

एतस्य स्मरणात्सद्यः सर्वं पापं विनश्यति।
प्राणोत्क्रमणसन्धौ तु स्मृत्वा तत्रैव गच्छति॥ ७१

अध्यायपञ्चकं त्वेतत्पठेन्नित्यं समाहितः।
भूतप्रेतपिशाचादिबाधा तत्र भवेन्न हि॥ ७२

नवीनगृहनिर्माणे वास्तुयागे तथैव च।
पठितव्यं प्रयत्नेन कल्याणं तेन जायते॥ ७३

गुण और समग्र दयाकी इस मणिद्वीपमें अन्तिम सीमा है॥ ६७-६८॥

एक राजाके आनन्दसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो-जो आनन्द हो सकते हैं, वे सब इस मणिद्वीपके आनन्दमें अन्तर्निहित हैं॥ ६९॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे अति महनीय मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। महादेवीका यह परम धाम सम्पूर्ण उत्तम लोकोंसे भी उत्तम है॥ ७०॥

इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और मृत्युकालमें इसका स्मरण हो जानेपर प्राणी उसी पुरीको प्राप्त हो जाता है॥ ७१॥

इन पाँच अध्यायोंका (अध्याय आठसे लेकर बारहतक) जो प्राणी सावधान होकर नित्य पाठ करता है; उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ नहीं होतीं॥ ७२॥

नये भवनके निर्माण तथा वास्तुयज्ञके अवसरपर प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये; उससे कल्याण होता है॥ ७३॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे
मणिद्वीपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

राजा जनमेजयद्वारा अम्बायज्ञ और श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका माहात्म्य

व्यास उवाच

इति ते कथितं भूप यद्यत्पृष्टं त्वयानघ।
नारायणेन यत्प्रोक्तं नारदाय महात्मने॥ १

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्।
कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥ २

कुरु चाम्बामखं राजन् स्वपितुरुद्धरणाय वै।
खिन्नोऽसि येन राजेन्द्र पितुर्ज्ञात्वा तु दुर्गतिम्॥ ३

गृहाण त्वं महादेव्या मन्त्रं सर्वोत्तमोत्तमम्।
यथाविधिविधानेन जन्मसाफल्यदायकम्॥ ४

सूत उवाच

तच्छ्रुत्वा नृपशार्दूलः प्रार्थयित्वा मुनीश्वरम्।
तस्मादेव महामन्त्रं देवीप्रणवसंज्ञकम्॥ ५

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे अनघ! आपने मुझसे जो-जो पूछा था, वह मैंने आपको बता दिया, जिसे पूर्वमें नारायणने महात्मा नारदसे कहा था॥ १॥

महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है॥ २॥

हे राजेन्द्र! चूँकि अपने पिताकी दुर्गतिके विषयमें जानकर आप अत्यन्त विषादग्रस्त हैं, अतएव हे राजन्! अब आप अपने पिताके उद्धारके निमित्त देवीयज्ञ कीजिये। आप विधि-विधानके अनुसार महादेवीके सर्वोत्तमोत्तम मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण कीजिये, जो मनुष्य-जन्मको सार्थक कर देता है॥ ३-४॥

सूतजी बोले—उसे सुनकर नृपश्रेष्ठ जनमेजयने मुनीन्द्र व्याससे प्रार्थना करके उन्हींसे विधिपूर्वक देवीके प्रणवसंज्ञक महामन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की।

दीक्षाविधिं विधानेन जग्राह नृपसत्तमः।
तत आहूय धौम्यादीन्नवरात्रसमागमे॥ ६

अम्बायज्ञं चकाराशु वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ब्राह्मणैः पाठयामास पुराणं त्वेतदुत्तमम्॥ ७

श्रीदेव्यग्रेऽम्बिकाप्रीत्यै देवीभागवतं परम्।
ब्राह्मणान्भोजयामासाप्यसंख्यातान्सुवासिनीः॥ ८

कुमारीर्वटुकादींश्च दीनानाथांस्तथैव च।
द्रव्यप्रदानैस्तान्सर्वान् सन्तोष्य वसुधाधिपः॥ ९

समाप्य यज्ञं संस्थाने संस्थितो यावदेव हि।
तावदेव हि चाकाशान्नारदः समवातरत्॥ १०

रणयन्महतीं वीणां ज्वलदग्निशिखोपमः।
ससम्भ्रमः समुत्थाय दृष्ट्वा तं नारदं मुनिम्॥ ११

आसनाद्युपचारैश्च पूजयामास भूमिपः।
कृत्वा तु कुशलप्रश्नं पप्रच्छागमकारणम्॥ १२

राजोवाच

कुत आगमनं साधो ब्रूहि किं करवाणि ते।
सनाथोऽहं कृतार्थोऽहं त्वदागमनकारणात्॥ १३

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा प्रोवाच मुनिसत्तमः।
अद्याश्चर्यं मया दृष्टं देवलोके नृपोत्तम॥ १४

तन्निवेदयितुं प्राप्तस्त्वत्सकाशे सुविस्मितः।
पिता ते दुर्गतिं प्राप्तो निजकर्मविपर्ययात्॥ १५

स एवायं दिव्यरूपवपुर्भूत्वाधुनैव हि।
देवदेवैः स्तुतः सम्यगप्सरोभिः समन्ततः॥ १६

विमानवरमारुह्य मणिद्वीपं गतोऽभवत्।
देवीभागवतस्यास्य श्रवणोत्थफलेन च॥ १७

अम्बामखफलेनापि पिता ते सुगतिं गतः।
धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि जीवितं सफलं तव॥ १८

नरकादुद्धृतस्तातस्त्वया तु कुलभूषण।
देवलोके स्फीतकीर्तिस्तवाद्य विपुलाभवत्॥ १९

तत्पश्चात् महाराजने नवरात्रके आनेपर धौम्य आदि मुनियोंको बुलाकर धनकी कृपणता किये बिना शीघ्रतापूर्वक अम्बायज्ञ आरम्भ कर दिया। इसमें उन्होंने भगवती जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये उनके समक्ष ब्राह्मणोंके द्वारा इस परम उत्तम देवीभागवत-महापुराणका पाठ कराया॥ ५—७½ ॥

इस यज्ञमें उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं, ब्रह्मचारियों, दीनों तथा अनाथोंको भोजन कराया। तत्पश्चात् धन-दानके द्वारा उन सभीको पूर्ण सन्तुष्ट करनेके बाद पृथ्वीपति जनमेजय यज्ञ समाप्त करके ज्यों ही अपने स्थानपर विराजमान हुए, उसी समय प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजवाले देवर्षि नारद अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए आकाशसे उतरे॥ ८—१०½ ॥

उन नारदमुनिको देखकर आश्चर्यचकित हो महाराज जनमेजय अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने आसन आदि उपचारोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् वे कुशल-क्षेमसम्बन्धी प्रश्न करके उनके आनेका कारण पूछने लगे॥ ११-१२॥

राजा बोले—हे साधो! आप कहाँसे आ रहे हैं? आप मुझे यह बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपके आगमनसे सनाथ और कृतार्थ हो गया हूँ॥ १३॥

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज मैंने देवलोकमें एक आश्चर्यजनक घटना देखी है। उसीको बतानेके लिये मैं विस्मित होकर आपके पास आया हूँ॥ १४½ ॥

अपने विपरीत कर्मोंके कारण आपके पिताजी दुर्गतिमें पड़े हुए थे। वे ही अब दिव्य शरीर धारण करके श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर श्रेष्ठ देवताओं तथा अप्सराओंसे चारों ओरसे भलीभाँति स्तुत होते हुए मणिद्वीपको चले गये हैं॥ १५-१६½ ॥

इस देवीभागवतके श्रवणजनितफल तथा देवीयज्ञके फलसे ही आपके पिताजी उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं। हे कुलभूषण! आप धन्य तथा कृतकृत्य हो गये हैं और आपका जीवन सफल हो गया। आपने नरकसे अपने पिताजीका उद्धार कर दिया है और आज देवलोकमें आपकी महान् कीर्ति और अधिक विस्तृत हो गयी है॥ १७—१९॥

सूत उवाच

नारदोक्तं समाकर्ण्य प्रेमगद्‌गदितान्तरः।
पपात पादाम्बुजयोर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः॥ २०

तवानुग्रहतो देव कृतार्थोऽहं महामुने।
किं मया प्रतिकर्तव्यं नमस्कारादृते तव॥ २१

अनुग्राह्यः सदैवाहमेवमेव त्वया मुने।
इति राज्ञो वचः श्रुत्वाप्याशीर्भिरभिनन्द्य च॥ २२

उवाच वचनं श्लक्ष्णं भगवान् बादरायणः।
राजन्सर्वं परित्यज्य भज देवीपदाम्बुजम्॥ २३

देवीभागवतं चैव पठ नित्यं समाहितः।
अम्बामखं सदा भक्त्या कुरु नित्यमतन्द्रितः॥ २४

अनायासेन तेन त्वं मोक्ष्यसे भवबन्धनात्।
सन्त्यन्यानि पुराणानि हरिरुद्रमुखानि च॥ २५

देवीभागवतस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
सारमेतत्पुराणानां वेदानां चैव सर्वशः॥ २६

मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते।
समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥ २७

पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय।
पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥ २८

इत्युक्त्वा नृपवर्यं तं जगाम मुनिराट् ततः।
जग्मुश्चैव यथास्थानं धौम्यादिमुनयोऽमलाः॥ २९

देवीभागवतस्यैव प्रशंसां चक्रुरुत्तमाम्।
राजा शशास धरणीं ततः सन्तुष्टमानसः।
देवीभागवतं चैव पठञ्छृण्वन्निरन्तरम्॥ ३०

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] नारदजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजयका हृदय प्रेमसे गद्‌गद हो गया और वे अद्भुत कर्मोंवाले व्यासजीके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। [वे कहने लगे—] हे देव! आपकी कृपासे ही मैं कृतार्थ हुआ हूँ। हे महामुने! नमस्कारके अतिरिक्त मैं आपके लिये विशेष कर ही क्या सकता हूँ। हे मुने! आप मुझपर इसी प्रकार अनुग्रह सदा करते रहें॥ २०-२१$\frac{१}{२}$॥

राजाका यह वचन सुनकर भगवान् बादरायण व्यासने अपने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दनकर मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! सब कुछ त्याग करके आप भगवतीके चरणकमलोंकी उपासना कीजिये और दत्तचित्त होकर नित्य देवीभागवतपुराणका पाठ कीजिये। साथ ही नित्य आलस्यरहित होकर भक्तिपूर्वक देवीयज्ञका अनुष्ठान कीजिये; उसके फलस्वरूप आप भव-बन्धनसे अनायास ही छूट जायँगे॥ २२—२४$\frac{१}{२}$॥

यद्यपि विष्णुपुराण तथा शिवपुराण आदि अनेक पुराण हैं, किंतु वे इस देवीभागवतपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते। यह देवीभागवत समस्त वेदों तथा पुराणोंका सारस्वरूप है॥ २५-२६॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूल-प्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है?॥ २७॥

हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ २८॥

उन नृपश्रेष्ठ जनमेजयसे ऐसा कहकर मुनिराज व्यास चले गये। उसके बाद विमलात्मा धौम्य आदि मुनि भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उन्होंने देवीभागवतकी ही श्रेष्ठ प्रशंसा की। तदनन्तर सन्तुष्ट मनवाले महाराज जनमेजय देवीभागवतपुराणका निरन्तर पाठ तथा श्रवण करते हुए पृथ्वीका शासन करने लगे॥ २९-३०॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे जनमेजयेनाम्बामखकरण-देवीभागवतश्रवणपूर्वकं स्वपितुरुद्धारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

* * *

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणकी महिमा

सूत उवाच

अर्धश्लोकात्मकं यत्तु देवीवक्त्राब्जनिर्गतम्।
श्रीमद्भागवतं नाम वेदसिद्धान्तबोधकम्॥ १

उपदिष्टं विष्णवे यद्वटपत्रनिवासिने।
शतकोटिप्रविस्तीर्णं तत्कृतं ब्रह्मणा पुरा॥ २

तत्सारमेकतः कृत्वा व्यासेन शुकहेतवे।
अष्टादशसहस्रं तु द्वादशस्कन्धसंयुतम्॥ ३

देवीभागवतं नाम पुराणं ग्रथितं पुरा।
अद्यापि देवलोके तद् बहुविस्तीर्णमस्ति हि॥ ४

नानेन सदृशं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्।
पदे पदेऽश्वमेधस्य फलमाप्नोति मानवः॥ ५

पौराणिकं पूजयित्वा वस्त्राद्याभरणादिभिः।
व्यासबुद्ध्या तन्मुखात्तु श्रुत्वैतत्समुपोषितः॥ ६

लिखित्वा निजहस्तेन लेखकेनाथवा मुने।
प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंहसमन्वितम्॥ ७

दद्यात्पौराणिकायाथ दक्षिणां च पयस्विनीम्।
सालङ्कृतां सवत्सां च कपिलां हेममालिनीम्॥ ८

भोजयेद् ब्राह्मणानन्तेऽप्यध्यायपरिसम्मितान्।
सुवासिनीस्तावतीश्च कुमारीर्बटुकैः सह॥ ९

देवीबुद्ध्या पूजयेत्तान्वसनाभरणादिभिः।
पायसान्नवरेणापि गन्धस्रक्कुसुमादिभिः॥ १०

पुराणदानेनैतेन भूदानस्य फलं लभेत्।
इहलोके सुखी भूत्वाप्यन्ते देवीपुरं व्रजेत्॥ ११

सूतजी बोले—पराम्बा देवीके मुखकमलसे वेद-सिद्धान्तका बोधक जो आधा श्लोक* निकला था और जिसका उपदेश स्वयं देवीने वट-पटपर शयन करनेवाले विष्णुको किया था, उसीको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंके रूपमें विस्तृत कर दिया॥ १-२॥

तत्पश्चात् व्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ानेके लिये इसके सारभागको एकत्र करके अठारह हजार श्लोकों तथा बारह स्कन्धोंसे युक्त श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराणकी रचना की। वह पुराण अब भी देवलोकमें वैसे ही विस्तृतरूपसे विद्यमान है॥ ३-४॥

इस पुराणके समान पुण्यदायक, पवित्र तथा पापनाशक दूसरा कोई पुराण नहीं है। इसके एक-एक पदका पाठ करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ५॥

हे मुने! स्वयं अपने हाथसे देवीभागवतपुराण लिखकर या किसी लेखकसे लिखवाकर पुराणका वाचन करनेवाले विद्वान्‌को इसे देकर वस्त्र तथा आभूषण आदिसे उनकी पूजा करके उनके प्रति व्यासबुद्धि रखकर नियमपूर्वक उनके मुखसे इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। कथाकी समाप्तिके दिन भाद्रपदपूर्णिमा तिथिको स्वर्णसिंहासनपर स्थापित करके इस पुराणका दान उस पौराणिक विद्वान्‌को करना चाहिये। पुनः दक्षिणाके रूपमें उन्हें विविध अलंकारों तथा सोनेके हारसे विभूषित और बछड़ेसे युक्त दूध देनेवाली कपिला गौ प्रदान करनी चाहिये॥ ६—८॥

कथाके अन्तमें पुराणमें जितने अध्याय हैं; उतने ही ब्राह्मणों तथा उतनी ही सुवासिनियोंको, उतनी ही कुमारियों और बालकोंके साथ भोजन कराना चाहिये। उन सबमें देवीकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे एवं उत्तम पायसान्न (खीर)-का भोजन कराये॥ ९-१०॥

मनुष्य इस पुराणके दानसे पृथ्वीके दानका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है॥ ११॥

---

* सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२) अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है।

नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥ १२

अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्।
विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥ १३

वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना।
श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥ १४

यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति।
तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥ १५

नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः।
ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥ १६

मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः।
शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥ १७

प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः।
एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥ १८

शकुनांश्चैव वीक्षेत कार्याकार्येषु चैव हि।
तत्प्रकारः पुरस्तात्तु कथितोऽस्ति मया मुने॥ १९

नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः।
तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥ २०

वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा।
सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥ २१

पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये।
वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥ २२

पठितव्यं प्रयत्नेन विरोधो नात्र कस्यचित्।
उपासना तु सर्वेषां शक्तियुक्तास्ति सर्वदा॥ २३

जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है॥ १२-१३॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है॥ १५—१७॥

जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्या-विधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है॥ १८॥

कार्य-अकार्यके अवसरोंपर इस पुराणके द्वारा शकुनका भी विचार करना चाहिये। हे मुने! उसकी विधिका वर्णन मेरे द्वारा पहले किया जा चुका है॥ १९॥

शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं॥ २०॥

वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। इस पुराणमें कहीं किसीका विरोधवचन नहीं है। [वैष्णव, सौर आदि] सभी जनोंकी उपासना

तच्छक्तेरेव तोषार्थं पठितव्यं सदा द्विजैः।
स्त्रीशूद्रो न पठेदेतत्कदापि च विमोहितः॥ २४

शृणुयाद् द्विजवक्त्रात्तु नित्यमेवेति च स्थितिः।
किं पुनर्बहुनोक्तेन सारं वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ २५

वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः।
वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥ २६

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २७

इति सूतवचः श्रुत्वा नैमिषीयास्तपोधनाः।
पूजयामासुरत्युच्चैः सूतं पौराणिकोत्तमम्॥ २८

प्रसन्नहृदयाः सर्वे देवीपादाम्बुजार्चकाः।
निर्वृतिं परमां प्राप्ताः पुराणस्य प्रभावतः॥ २९

नमश्चक्रुः पुनः सूतं क्षमाप्य च मुहुर्मुहुः।
संसारवारिधेस्तात प्लवोऽस्माकं त्वमेव हि॥ ३०

इति स मुनिवराणामग्रतः श्रावयित्वा
सकलनिगमगुह्यं दौर्गमेतत्पुराणम्।
नतमथ मुनिसङ्घं वर्धयित्वाशिषाम्बा-
चरणकमलभृङ्गो निर्जगामाथ सूतः॥ ३१

सदा शक्तियुक्त ही होती है, इसलिये शक्तिको सन्तुष्ट करनेके लिये द्विजोंको इस पुराणका सदा पाठ करना चाहिये। स्त्रियों तथा शूद्रोंको चाहिये कि वे अज्ञानवश इसका कभी पाठ न करें, अपितु वे ब्राह्मणके मुखसे ही इसका नित्य श्रवण करें, यही मर्यादा है। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं आपको इसका वास्तविक सार बताऊँगा॥ २१—२५॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है॥ २६॥

गायत्री नामसे प्रतिपादित उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणी ह्रींमयी भगवतीको मैं प्रणाम करता हूँ, वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें—

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २७॥

पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका यह वचन सुनकर नैमिषारण्यवासी तपोधन मुनियोंने बड़े समारोहके साथ उनका सम्मान किया॥ २८॥

भगवतीके चरणकमलोंके उपासक वे सभी मुनि प्रसन्न हृदयवाले हो गये। इस पुराणके प्रभावसे वे परम शान्तिको प्राप्त हुए॥ २९॥

मुनियोंने सूतजीको नमस्कार किया और बार-बार क्षमा-प्रार्थना करके कहा—हे तात! इस संसार-सागरसे पार करनेके लिये आप ही निश्चितरूपसे हमारे लिये नौकास्वरूप हैं॥ ३०॥

इस प्रकार सभी श्रेष्ठ मुनियोंके समक्ष सभी वेदोंके गुह्य विषयरूप इस दुर्गाचरित्रप्रतिपादक श्रीमद्देवीभागवत-पुराणको विनयसम्पन्न मुनिजनोंको सुनाकर तथा उनके आशीर्वादसे वृद्धिको प्राप्त होकर भगवतीके चरणकमलोंके भृंगस्वरूप सूतजी वहाँसे चले गये॥ ३१॥

इति श्रीमद्देवीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां द्वादशस्कन्धे श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणश्रवणफलवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

* * *

॥ द्वादशः स्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण सम्पूर्णम्॥

[सम्पूर्णोऽयं ग्रन्थः]

* * *

॥ श्रीदुर्गायन्त्रम् ॥

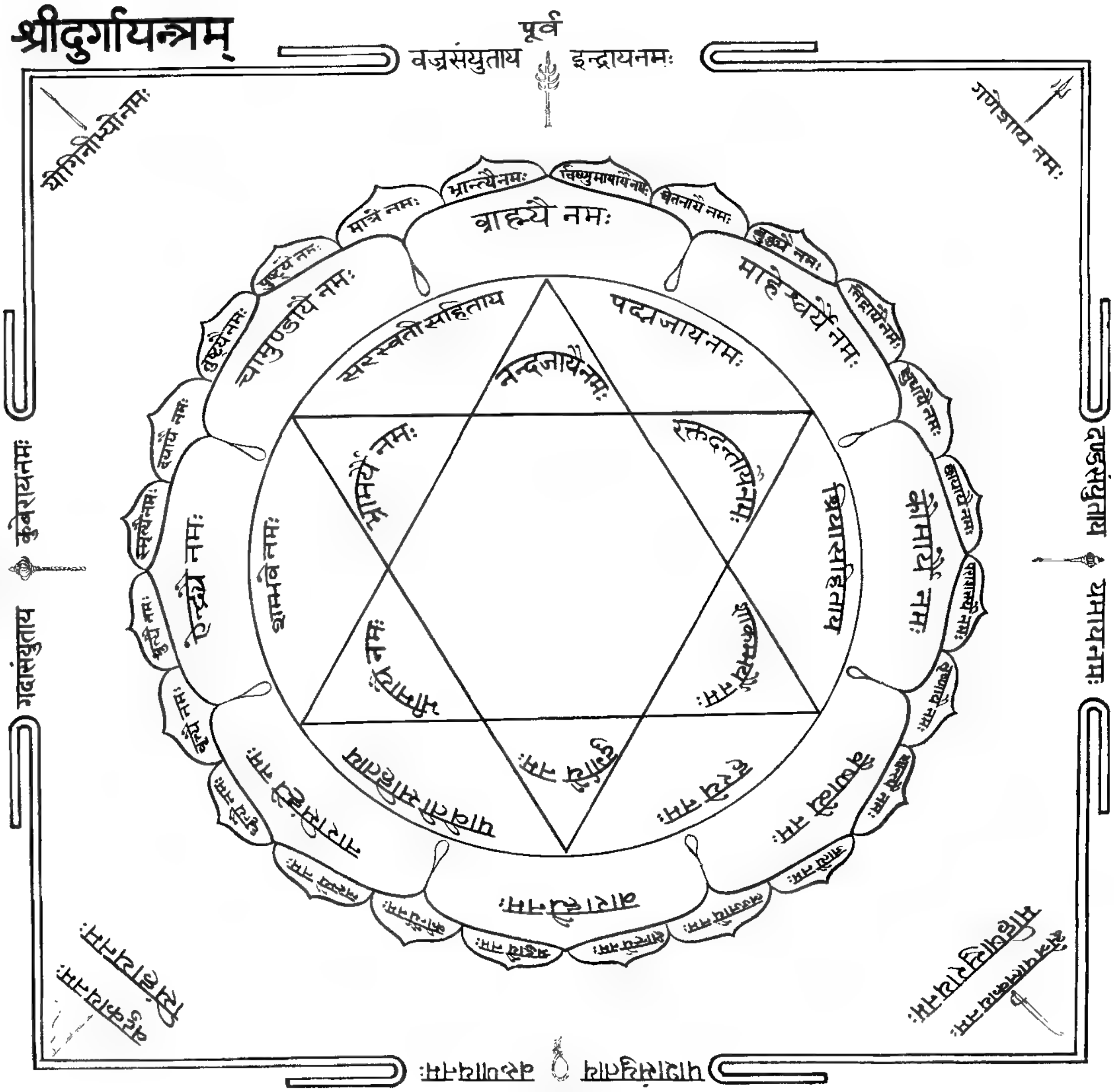
श्रीदुर्गायन्त्रम्
पूर्व
वज्रसंयुताय
इन्द्रायनमः
गणेशाय नमः
योगिनीभ्यो नमः
भ्रान्त्यै नमः
विष्णुमायायै नमः
चेतनायै नमः
मात्रे नमः
ब्राह्म्यै नमः
बुद्ध्यै नमः
माहेश्वर्यै नमः
पुष्ट्यै नमः
निद्रायै नमः
चामुण्डायै नमः
तुष्ट्यै नमः
सरस्वतीसहिताय
पद्मजायनमः
नन्दजायै नमः
रक्तदन्तिकायै नमः
भ्रामर्यै नमः
दयायै नमः
कुबेरायनमः
उत्तर
गदासंयुताय
स्मृत्यै नमः
ऐन्द्र्यै नमः
शाम्भवे नमः
श्रियासहिताय
कौमार्यै नमः
दक्षिण
दण्डसंयुताय
यमायनमः

[सन्दर्भ—श्रीमद्देवीभागवत स्कन्ध ९, अ० ५०]

॥ श्रीगायत्रीयन्त्रम् ॥

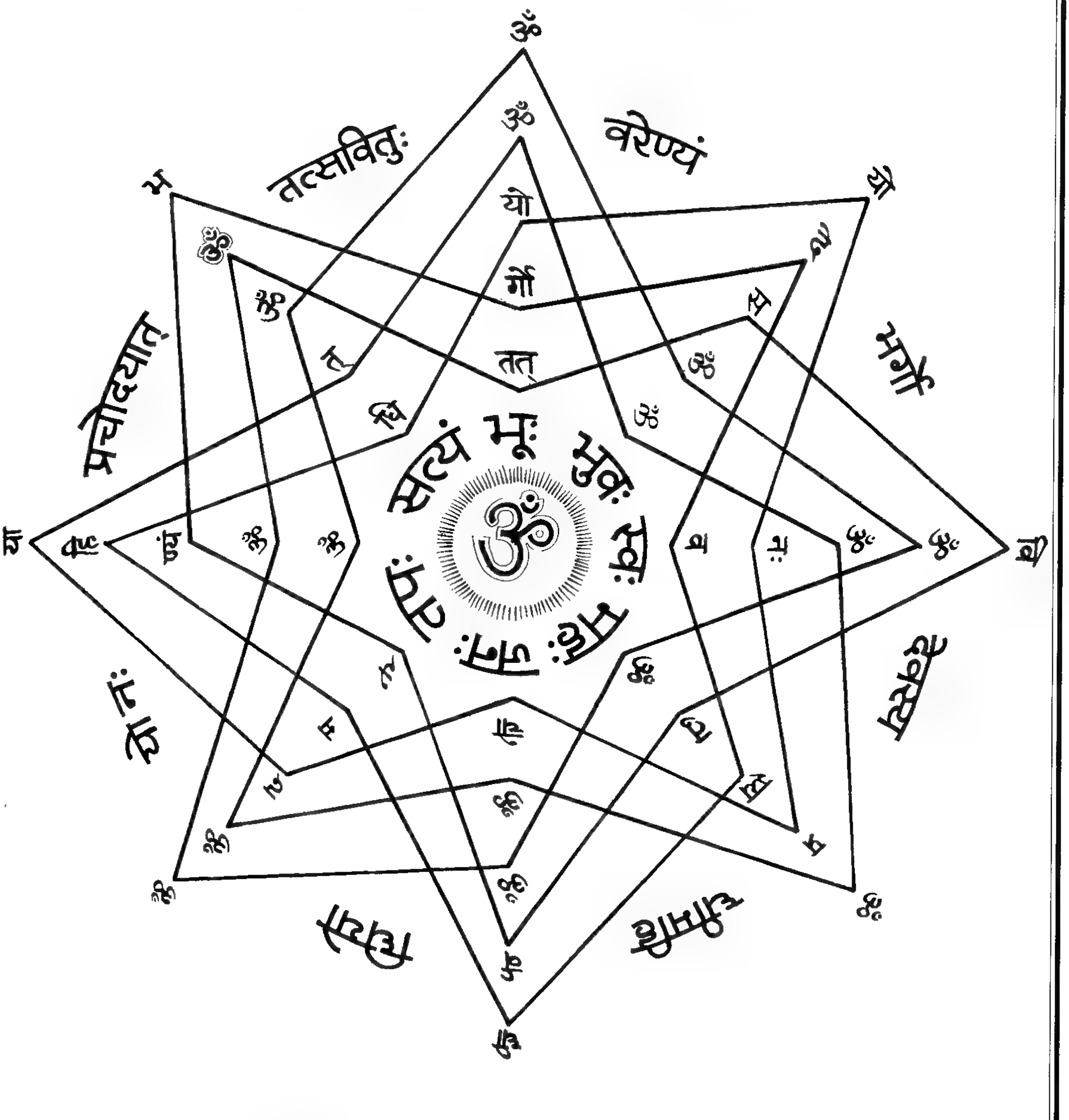
ॐ
तत्सवितुः
वरेण्यं
भर्गो
देवस्य
धीमहि
धियो
यो नः
प्रचोदयात्
सत्यं
भूः
भुवः
स्वः
महः
जनः
तपः
ॐ

[श्रीमद्देवीभागवतके गायत्री-प्रकरणसे सम्बद्ध]

श्रीगायत्रीयन्त्रम्

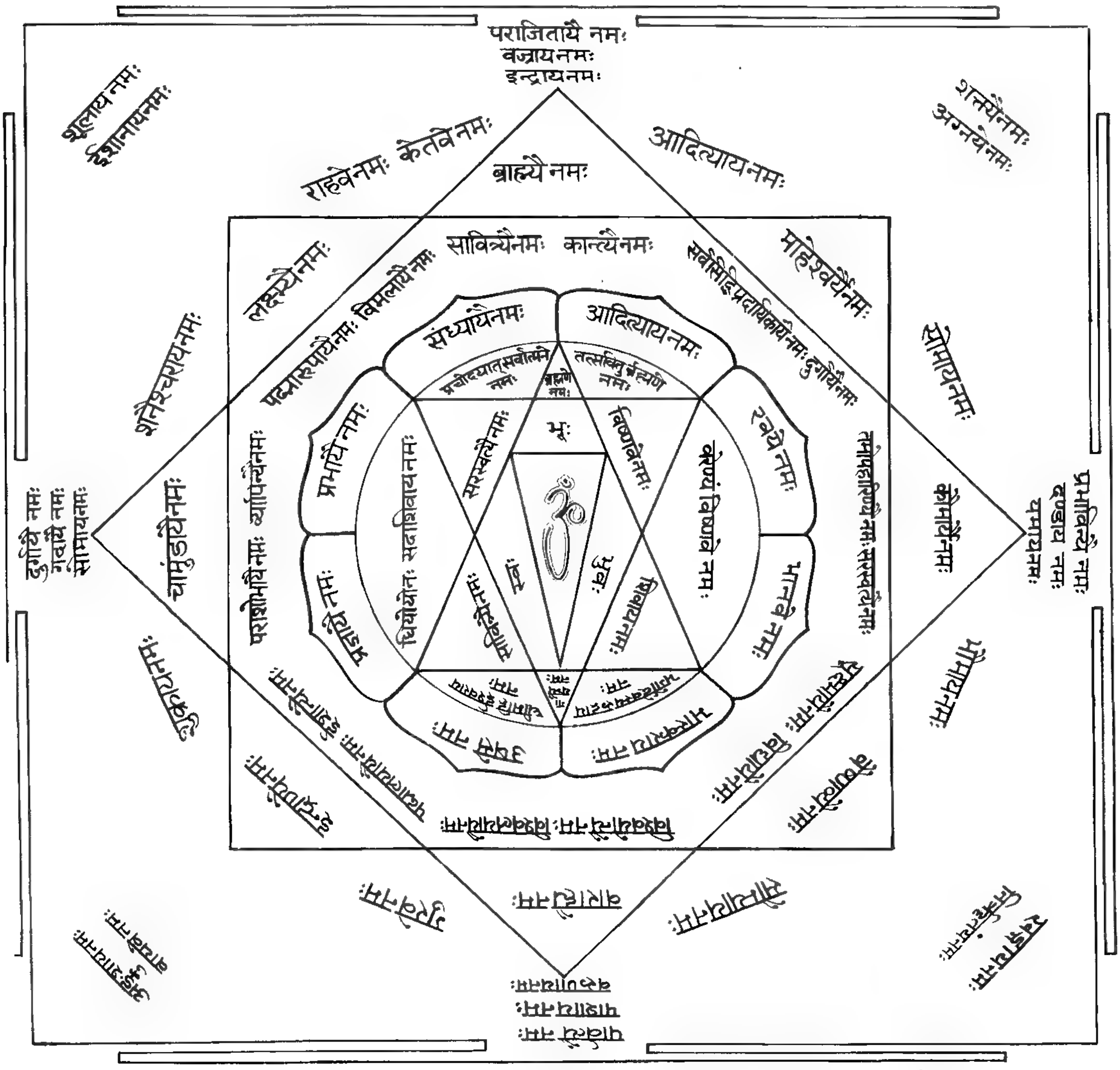
पराजितायै नमः
वज्राय नमः
इन्द्राय नमः
शूलाय नमः
ईशानाय नमः
शक्त्यै नमः
अग्नये नमः
राहवे नमः केतवे नमः
ब्राह्म्यै नमः
आदित्याय नमः
सावित्र्यै नमः कान्त्यै नमः
लक्ष्म्यै नमः
विमलायै नमः
सर्वसिद्धिप्रदायिकायै नमः
माहेश्वर्यै नमः
सोमाय नमः
शनैश्चराय नमः
संध्यायै नमः
आदित्याय नमः
प्रचोदयात् सर्वात्मने नमः
ब्रह्मणे नमः
तत्सवितुर्वरेण्यं नमः
दुर्गायै नमः
पद्मास्यायै नमः
प्रभायै नमः
भूः
सदाशिवाय नमः
सरस्वत्यै नमः
विष्णवे नमः
केशवं विष्णवे नमः
व्यापिन्यै नमः
चामुण्डायै नमः
दुर्गायै नमः
गङ्गायै नमः
सोमाय नमः

श्री विश्वामित्रकल्प अ० १२।१३से ३५के आधारपर

[श्रीमद्देवीभागवतके गायत्री-प्रकरणसे सम्बद्ध]

सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥

देव्युवाच

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ १॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥ २॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ३॥

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ५॥

शिवजी बोले—हे देवि! तुम भक्तोंके लिये सुलभ हो और समस्त कर्मोंका विधान करनेवाली हो। कलियुगमें कामनाओंकी सिद्धि-हेतु यदि कोई उपाय हो तो उसे अपनी वाणीद्वारा सम्यक्-रूपसे व्यक्त करो।

देवीने कहा—हे देव! आपका मेरे ऊपर बहुत स्नेह है। कलियुगमें समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला जो साधन है वह बतलाऊँगी, सुनिये! उसका नाम है 'अम्बास्तुति'।

विनियोग—ॐ इस दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्रमन्त्रके नारायण ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीमहाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं, श्रीदुर्गाकी प्रसन्नताके लिये सप्तश्लोकी दुर्गापाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं॥ १॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ २॥

नारायणि! आप सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हैं, आप ही कल्याणदायिनी शिवा हैं, आप सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागत-वत्सला, तीन नेत्रोंवाली गौरी हैं; आपको नमस्कार है॥ ३॥

शरणागतों, दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! आपको नमस्कार है॥ ४॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा कीजिये; आपको नमस्कार है॥ ५॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ ६॥

देवि! आप प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हैं और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हैं। जो लोग आपकी शरणमें हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं; आपकी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ ६॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ७॥

सर्वेश्वरि! आप इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करें और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहें॥ ७॥

॥ इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा।

देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ १॥

माँ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र; अहो! मुझे स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है। न आवाहनका पता है, न ध्यानका। स्तोत्र और कथाकी भी जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएँ जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता है; परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारे पीछे चलना। जो कि सब क्लेशोंको—समस्त दुःख-विपत्तियोंको हर लेनेवाला है॥ १॥

विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ २॥

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणमयी माता! मैं पूजाकी विधि नहीं जानता, मेरे पास धनका भी अभाव है, मैं स्वभावसे भी आलसी हूँ तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजाका सम्पादन हो भी नहीं सकता; इन सब कारणोंसे तुम्हारे चरणोंकी सेवामें जो त्रुटि हो गयी है, उसे क्षमा करना; क्योंकि कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ २॥

पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ३॥

माँ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र तो बहुत-से हैं, किंतु उन सबमें मैं ही अत्यन्त चपल तुम्हारा बालक हूँ; मेरे-जैसा चंचल कोई विरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ४॥

जगदम्ब! मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा कभी नहीं की, देवि! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ-जैसे अधमपर जो तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि संसारमें कुपुत्र पैदा हो सकता है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ४॥

परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ५॥

गणेशजीको जन्म देनेवाली माता पार्वती! [अन्य देवताओंकी आराधना करते समय] मुझे नाना प्रकारकी सेवाओंमें व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिये पचासी वर्षसे अधिक अवस्था बीत जानेपर मैंने देवताओंको छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती; अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलम्बरहित होकर किसकी शरणमें जाऊँगा॥ ५॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ॥ ६॥

माता अपर्णा ! तुम्हारे मन्त्रका एक अक्षर भी कानमें पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाकके समान मधुर वाणीका उच्चारण करनेवाला उत्तम वक्ता हो जाता है, दीन मनुष्य भी करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओंसे सम्पन्न हो चिरकालतक निर्भय विहार करता रहता है। जब मन्त्रके एक अक्षरके श्रवणका ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जपमें लगे रहते हैं, उनके जपसे प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा ? इसको कौन मनुष्य जान सकता है॥ ६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ ७॥

भवानी! जो अपने अंगोंमें चिताकी राख—भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगम्बरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तकपर जटा और कण्ठमें नागराज वासुकिको हारके रूपमें धारण करते हैं तथा जिनके हाथमें कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणिग्रहणकी परिपाटीका फल है; तुम्हारे साथ विवाह होनेसे ही उनका महत्त्व बढ़ गया॥ ७॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव॥ ९॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥ १०॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥ १२॥

मुखमें चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली माँ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी भी अभिलाषा नहीं है; न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकांक्षा; अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते॥ ८॥

माँ श्यामा! नाना प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी। सदा कठोर भावका चिन्तन करनेवाली मेरी वाणीने कौन-सा अपराध नहीं किया है ! फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथपर जो किंचित् कृपादृष्टि रखती हो, माँ ! यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्रको भी आश्रय दे सकती है॥ ९॥

माता दुर्गे! करुणासिन्धु महेश्वरी! मैं विपत्तियोंमें फँसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ [पहले कभी नहीं करता रहा], इसे मेरी शठता न मान लेना; क्योंकि भूख-प्याससे पीड़ित बालक माताका ही स्मरण करते हैं॥ १०॥

जगदम्ब! मुझपर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है, पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती॥ ११॥

महादेवि! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है; ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो॥ १२॥

॥ इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

* * *

श्रीदुर्गाजीकी आरती

जगजननी जय! जय!! (मा! जगजननी जय! जय!!)
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय! जय॥ टेक॥
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा॥ जग० ॥
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनन्दराशी॥ जग० ॥
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी।
कर्ता विधि, भर्ता हरि, हर सँहारकारी॥ जग० ॥
तू विधिवधू, रमा, तू उमा, महामाया।
मूल प्रकृति विद्या तू, तू जननी, जाया॥ जग० ॥
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वांछाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा॥ जग० ॥
दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा॥ जग० ॥
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू॥ जग० ॥
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा॥ जग० ॥
तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना॥ जग० ॥
मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे।
कालातीता काली, कमला तू वरदे॥ जग० ॥
शक्ति शक्तिधर तू ही नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले! वेदत्रयी॥ जग० ॥
हम अति दीन दुखी मा! विपत-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे॥ जग० ॥
निज स्वभाववश जननी! दयादृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि! चरण-शरण दीजै॥ जग० ॥